

नमस्ते जी

ऋषि दयानंद द्वारा प्रचारित वैदिक विचारधारा ने सैकड़ो हृदय को क्रन्तिकारी विचारों से भर दिया | जो वेद उस काल में विचारों से भी भूति हुए गए थे | ऋषि दयानंद ने उन हृदयों को वेदों के विचारों से ओतप्रोत कर दिया और देश में वेद गंगा बहने लगी | ऋषि के अपने अल्प कार्य काल में समीज की आध्यात्मिक, सामाजिक, और व्यक्तिगत विचार धारा को बदल के रख दिया | ऋषि के बाद भी कही वर्षों तक यह परिपाटी चली पर यह वैचारिक परिवर्शन पुनः उसी विकृति की और लौट रहा है | और इसी विकृति को रोकने के लिए वैदिक विद्वान प्रो॰ राजेंद्र जी जिजास के सानिध्य में "पंडित लेखराम बैदिक मिशन" संस्था का जन्म हुआ है | इस संस्था का मुख्य उद्देश्य वेदों को समाज रूपी शरीर के रक्त धमनियों में रक्त के समान स्थापित करना है | यह कार्य अधि के जीवन कर मुख्य उद्देश्य था और यही इस संस्था का भी मुख्य उद्देश्य है | संस्था के अन्य उद्देश्यों में सम्लित है साहित्य का सृजन करना | जो दुर्लभ कार्य साहित्य कर होने की और अग्रसर है उस साहित्य को नष्ट होने से बचाना और उस साहित्य को कम बद तरीके से हमारे भाई और बहनों के समक्ष प्रस्तृत करना जिससे उनकी स्वध्या में रुचि बढ़े और अन्य मत मतान्तरों की जानकारी उन्हें प्राप्त हो और वे विधिमयों से स्वयं भी बचें और अन्यों की भी सहयता करें | संस्था का उद्देश है समाज के समक्ष हमारे गौरव शाली इतिहास को प्रस्तृत करना जिससे हमारा रक्त जो ठंडा हो गया है वह पुनः गर्म हो सके और हम हमारे इतिहास पुरुषों का समक्ष हमारे गरे विधिन करे और उनके बताये गये नीतिगत मार्ग पर चलें | संस्था का अन्य उद्देश्य गौ पालन और गौ सेवा को बढ़ावा देना जिससे पशुओं के प्रति हमा सुख्य का अंग हम पशुओं की हत्या बंद हो, समाज में हो रहे परमात्मा के नाम पर पाखण्ड, अन्यविश्वास, अत्याचार को जड़ से नण्ट करना और परमात्मा के समक्ष रखना, हमारे युवा शक्त को अनेक भोग, विबिन्न व्यसनों, छल, कपट इत्यादि से बचाना |

इन कार्यों को हम अकेले पूरा करने का सामर्थ्य नहीं रखते पर, यह सारे कार्य है तो बड़े विशाल और ट्यापक पर अगर संस्था को आप का साथ मिला तो बड़ी सरलता से पूर्ण किये जा सकते है | हमारा समाजिक ढाचा ऐसा है की हम पत्यक कार्य की लिए एक दुसरे पर निर्भर है | आशा करते है की इस कार्य में आप हमारी तन, मन से साहयता करेंगे | संस्था द्वारा चलाई जा रही वेबसाइट क्ष्मिक्ट अपना कार्य और www.vedickranti.in पर आप संस्था द्वारा स्थापित संकल्पों सम्बन्धी लेख पड़ सकते है और भिन्न-भिन्न वैदिक साहित्य को निशुक्त डाउनलाई कर सकते है | कृपया स्वयं भी जाये और अन्यों को भी सूचित करे यही आप की हवी होंगी इस यज्ञ में जो आप अवश्य करेंगे यही परमातमा से प्रार्थना करते है |

जिन सज्जनों के पास दुर्लभ आर्य साहित्य है एवं वे उसे सरक्षित करने में संस्था की सहायता करना चाहते हैं वो कृपया निम्न पते पर सूचित करें

धन्यवाद् !

पंडित लेखराम वैदिक मिशन
आर्य मंतव्य टीम

॥ओ३म्॥

ऋग्वेद:॥

अथर्ग्वेदभाष्यारम्भ:॥

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि पर्रा सुव। यद्धद्रं तन्न आ सुव॥ ऋ० ५.६२.५॥

विद्यानन्दं समवति चतुर्वेदसंस्तावनाया,

सम्पूर्येशं निगमनिलयं सम्प्रणम्याथ कुर्वे। वेदत्र्यङ्के विधुयुतसरे मार्गशुक्लेऽङ्गभौमे,

ऋग्वेदस्याखिलगुणगुणिज्ञानदातुर्हि भाष्यम्॥ १॥

आभिः स्तुवन्तीत्युक्तत्वाद्विद्वांस उक्तपूर्वं वेदार्थं आवसाहित्यपठनपुरः सरमृग्वेदमधीत्य तत्रस्थैर्मन्त्रैरीश्वरमारभ्य भूमिपर्य्यन्ताना पदार्थानां गुणान् प्रथावद्विस्विते कार्येषूपकृतये मितं जनयन्ति। ऋचन्ति स्तुवन्ति पदार्थानां गुणकर्मस्वभावाननया सा ऋक्, ऋके जासौ वेदश्चर्ग्वेदः।

एतस्मिन्नग्निमीड इत्यारभ्य यथा वः सुसहास्तिपर्य्यन्तैऽष्ट्रावष्टकाः सन्ति। तत्रैकैकस्मिन्नष्टावष्टावध्यायाः सन्ति, तेषामेकैकस्य प्रत्यध्यायं वर्गाः संख्यायन्ते-

प्रथमा	ष्टके	द्वितीय	ाष्ट्रके	तृतीया	ष्टके	चतुर्थाः	हके.	पञ्चमा	ष्टके	षष्ठाष्ट	क्रे	सप्तम	ष्ट्रके	अष्टमा	ष्टके
अ०	व०	अ०	व॰	अ०	व०	36	वि०	এ০	व॰	अ०	व॰	अ०	व०	अ०	व॰
१	३७	१	२६	१	38	18/	३३	१	२७	१	४०	१	४१	१	३०
२	३८	२	२७	7	\$4	2	२८	२	३०	२	४०	२	३३	२	२४
3	३५	3	२६	æ /	38	3) ११	३	३०	3	४९	3	२६	३	२८
8	२९	8	२९		२५	8	३६	8	३०	8	५४	8	२८	8	३१
ч	३१	ч	२९	D4(, M	ч	३०	ч	२७	ц	३८	ч	३३	ч	२७
ξ	३२	Ę	3 7	φ (30	ξ	२५	ξ	२५	ξ	३८	ξ	२८	ξ	२७
O	३७	9/	pf	0	२७	O	३५	9	३३	9	३९	9	३०	9	३०
۷	२६	To The second	20/	۷	२६	۷	३२	۷	३६	۷	३३	۷	२९	۷	४९
छ	२६५	य ं	1 3728	सं	२२५	ख्या	२५०	प्रत्य	२३८	ष्टकं	३३१	वेदि	२४८	त	२४६

सर्भेष्वष्टकेषु सर्वे वर्गाः संयुक्ताः २०२४ चतुर्विंशत्यधिके द्वे सहस्रे सन्ति।

तथास्मिन्नृग्वेदे दश मण्डलानि सन्ति, तत्र प्रथमे मण्डले चतुर्विंशतिरनुवाकाः, एकनवतिशते

सुक्तानि। तत्रैकैकस्मिन् सुक्ते मन्त्राश्च संख्यायन्ते-

सू० मिं० सू० मिं० सू० सू० मिं० सू० मिं० सू० मिं० सू० मिं० रू १९ १५ ११५ ११५ ५८ १९ १९ १९ १९ १९ १९ १९ १९ १९ १९ १९ १९ १९	\$98 5 \$98 5 \$98 5 \$98 5 \$98 5 \$98 5	# 2 4 E E E U
2 9 26 80 40 98 9 9 8 9 8 <td>800 808 808 808 808 804 806 806 800</td> <td>4 E</td>	800 808 808 808 808 804 806 806 800	4 E
3 82 29 83 48 94 4 89 8 823 83 889 4 8 80 8	898 893 893 898 898 894 894 895 896 899 899	w
8 80 82 8 9 8 8 8 8 9 8 8 8 8 9 8<	१७३ १ १७३ १ १७४ १ १७५ ६ १७६ ६ १७७ ८	₹ ₹ ₹ ₹ €
4 80 28 90 4 808 88 824 98 888 4 6 80 30 72 48 90 4 808 88 876 90 88 80 80 88 80 80 88 80 <t< td=""><td>१७३ १ १७४ १ १७५ १ १७६ १ १७७ ८</td><td>१३ १० ६</td></t<>	१७३ १ १७४ १ १७५ १ १७६ १ १७७ ८	१३ १० ६
E 80 30 72 48 92 4 802 80 <t< td=""><td>१७४ १७५ १७६ १७७</td><td>१० <i>६</i></td></t<>	१७४ १७५ १७६ १७७	१० <i>६</i>
9 80 38 82 44 98 82 803 2 82 82 84 8 2 80 32 84 49 28 804 88 82 2 84 9 8 80 33 84 49 28 804 88 84 84 84 80 82 83 82 42 28 80 </td <td>१७५ ह १७६ ह</td> <td>e e</td>	१७५ ह १७६ ह	e e
C 80 32 84 46 60 86 808 8 87 60 80 <t< td=""><td>१७६ E</td><td>ξ</td></t<>	१७६ E	ξ
9 80 33 84 40 C8 8 804 88 848 8 80 88 38 88 46 C8 8 808 9 830 80 848 8	१७७	
१० १२ ३४ १२ ५८ ८२ ६ १०६ ७ १३० १० १५४ ६		4
	१७८ ८	
	ı İ	ч
११ ८ ३५ ११ ५९ ८३ ६ १०७ ३ (१३)१ ७ १५५ ६	१७९ ह	ξ
१२ १२ ३६ २० ६० ८४ २० १० १३ १३२ ६ १५६ ५	१८० १	१०
१३ १२ ३७ १५ ६१ ८५ १२ १०९ ४ १३३ ७ १५७ ६	१८१	9
१४ १२ ३८ १५ ६२ ८६ १० ११० १ १३४ ६ १५८ ६	१८२ ८	۷
१५ १२ ३९ १० ६३ ८७ ६ १९९ ५	१८३ ह	६
१६ ९ ४० ८ ६४ ८८ ६ ४१२ २५ १३६ ७ १६० ५	१८४ ह	ξ
१७ ९ ४१ ९ ६५ ८९ ११३ २० १३७ ३ १६१ १४	१८५	११
१८ ९ ४२ १० ६६ १९० ९) ११४ ११ १३८ ४ १६२ २२	१८६	११
१९ ९ ४३ ९ ६७ ९१ २६ ११५ ६ १३९ ११ १६३ १३	१८७	११
२० ८ ४४ १४ ६४ ९२ १८ ११६ २५ १४० १३ १६४ ५२	१८८	११
२१ ६ ४५ १० ६६ ९३ १२ ११७ २५ १४१ १३ १६५ १५	१८९	۷
२२ २१ ४६ १५ ७० ९४ १६ ११८ ११ १४२ १३ १६६ १५	१९० ८	۷
२३ २४ 🗡 १५ ७१ ९५ ११ ११९ १० १४३ ८ १६७ ११	१९१	१६
२४ १५ ४८ १६ ७२ ९६ ९ १२० १२ १४४ ७ १६८ १०	_ =	_

अस्पिन्मण्डले सर्वे मन्त्रा मिलित्वा १९७६ षट्सप्तत्यधिकान्येकोनविंशति: शतानि सन्तीति

मण्डल-१। अनुवाक-१। सूक्त-१

अथ द्वितीयमण्डले चत्वारोऽनुवाकाः, त्रयश्चत्वारिंशत् सूक्तानि सन्ति। तत्र प्रतिसूक्तमियं

मन्त्रसंख्या ज्ञातव्या-

सू०	मं०	सू०	मं०	सू०	मं०	सू०	मं०	सू०	मं०	सू०	मं०	सू०	मंद	सूर्	100
१	१६	9	६	१३	१३	१९	9	२५	ц	३१	9	30/	Lu	783	m
२	१३	۷	ĸ	१४	१२	२०	9	२६	8	32	۷	32	११	->	ı
३	११	9	६	१५	१०	२१	Ę	२७	१७	33	१५	38)	
8	9	१०	ĸ	१६	9	२२	8	२८	११	38	(85)	800	ξ		
ч	۷	११	२१	१७	9	२३	१९	२९	9	300	१५		२१		
६	۷	१२	१५	१८	9	२४	१६	३०	११ (36	Br)	४२	w		

अस्मिन्मण्डले सर्वे मन्त्रा मिलित्वा ४२९ एकोनत्रिंशद्धिकानि चेत्र्वारि शतानि सन्ति।

अथ तृतीयमण्डले पञ्चानुवाका, द्विषष्टिश्च सूक्तार्ति सुन्ति। त्रेज प्रतिसूक्तिमयं मन्त्रसंख्या वेद्या-

सू०	मं०	सू०	मं०	सू०	मं०	सू०	मं०	सू०	Ŧjø	सू०	मं०	सू०	मं०	सू०	मं०
१	२३	9	9	१७	ч	२५	d(33	1 १३	४१	9	४९	ч	५७	ĸ
7	१५	१०	9	१८	ч	7.5	3	33/8	११	४२	9	40	ч	५८	९
3	११	११	9	१९	4 6	(२७)	१५)	३५	११	४३	۷	५१	१२	49	9
8	११	१२	9	२०	X	J.) w	३६	११	४४	ч	५२	۷	६०	6
4	११	१३	9	२१		२९	१६	३७	११	४५	ч	५३	२४	६१	6
ξ	११	१४	9	२२	13	/3° C) ₂₂	३८	१०	४६	ч	५४	२२	६२	१८
9	११	१५	9 (52/	30)	३१	२२	39	9	४७	ч	५५	२२	_	_
۷	११	१६	६	28	کر	३२	१७	४०	9	४८	ч	५६	۷		

अस्मिन् मेपेइले सर्वे मन्त्रा मिलित्वा ६१७ सप्तदशोत्तरष्टशतानि सन्ति।

अश्र चतुर्शे मण्डले पञ्चानुवाकाः, अष्टपञ्चाशच्च सूक्तानि सन्ति। तत्र प्रतिसूक्तमियं मन्त्रसंख्या

वेद्या-

	\													
सू० र्गं०	सू०	मं०	सू ^o	ं म	सू०	मं०	सू०	ं म	सू०	मं०	सू०	मं०	मू [°]	मं०
8 33	9	۷	१७	२१	२५	۷	33	११	४१	११	४९	ĸ	5	6

8							ऋग्वेद	भाष्यम्						С	,
२	२०	१०	۷	१८	१३	२६	७	38	११	४२	१०	40	११	५८	88
3	१६	११	ξ	१९	११	२७	ц	३५	9	४३	9	५१	११		
8	१५	१२	ξ	२०	११	२८	ц	३६	9	४४	9	५२	9	5/	
ч	१५	१३	ч	२१	११	२९	ч	३७	۷	४५	9	५३	10 N		
ξ	११	१४	ч	२२	११	३०	२४	३८	१०	४६	9	400	ξ		
9	११	१५	१०	२३	११	३१	१५	39	ξ	४७	8 6	My	780	0	
۷	۷	१६	२१	२४	११	37	२४	४०	ч	४८	1	५६	9		

अस्मिन् मण्डले सर्वे मन्त्रा मिलित्वा ५८९ एकोननवतिः पञ्चशृज्ञानि सन्ति।

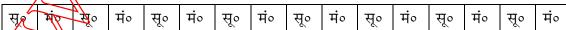
अथ पञ्चममण्डले षडनुवाकाः, सप्ताशीतिः सूक्तानि च सन्ति। तत्र प्रतिसूक्तमियं मन्त्रसंख्यास्तीति वेद्यम्-

			`						/ 71	`	、フ				
सू०	मं०	सू०	मं०	सू०	मं०	सू०	मं०	सू०	ं में	सूब	मं०	सू०	मं०	सू०	मं०
१	१२	१२	ξ	२३	४	38	9	४५(2/8	SE.	9	६७	ц	৩८	9
२	१२	१३	६	२४	४	३५	۷	XE.		५७	۷	६८	ц	७९	१०
w	१२	१४	Ę	२५	9	३६	w 7	89	2	५८	۷	६९	8	८०	Ę
8	११	१५	ц	२६	9	39	5	84	ų	५९	۷	90	8	८१	ų
ч	११	१६	ц	२७	Ę) Jef) ⁸ 8	ч	६०	۷	७१	æ	८२	9
ĸ	१०	१७	ц	२८	ξ /	39)5)	५०	ч	६१	१९	७२	æ	८३	१०
9	१०	१८	ц	२९	J.	89	9	५१	१५	६२	9	७३	१०	८४	æ
۷	9	१९	ц	30	१५	४१	२०	५२	१७	६३	9	७४	१०	८५	۷
9	9	२०	8	(3)) ~5	४२	१८	५३	१६	६४	9	७५	9	८६	Ę
१०	9	२१	8	3/2	१२	४३	१७	५४	१५	६५	ξ	७६	ц	८७	9
११	κ	22/	8	<u>a</u>	१०	88	१५	५५	१०	६६	ξ	୯୭	ч	_	_

अस्मिन् मण्डले सर्वे मन्त्रा मिलित्वा ७२७ सप्तविंशतिः सप्तशतानि सन्ति।

अथ षष्टे मण्डले षडनुवाकाः, पञ्चसप्ततिश्च सूक्तानि सन्ति। तत्र प्रतिसूक्तमियं मन्त्रसंख्या

बोध्या,-



मण्डल-१। अनुवाक-१। सूक्त-१

१	१३	११	ξ	२१	१२	३१	4	४१	4	५१	१६	६१	१४	७१	ξ
२	११	१२	ξ	२२	११	37	ч	४२	8	५२	१७	६२	११	P	<u> </u>
3	۷	१३	ξ	२३	१०	33	ч	४३	8	५३	१०	६३	88	७३	2
8	۷	१४	६	२४	१०	38	ч	88	२४	५४	१०	£8/	Juf	198	8
ч	9	१५	१९	२५	9	३५	ч	४५	33	५५	ξ	६५	Ę	_{બ્}	१९
ξ	9	१६	४८	२६	۷	३६	ч	४६	१४	५६	w (६६	88	-	-
9	9	१७	१५	२७	۷	₹ <i>9</i>	ч	४७	३१	40	(5)	60)	११		
۷	9	१८	१५	२८	۷	३८	ч	४८	२२	*	8	æ/L	११		
9	9	१९	१३	२९	६	39	ч	४९	१५	(3)) &)	६९	۷		
१०	9	२०	१३	३०	ц	४०	ц	५०	१५	80) १५	७०	६		

अस्मिन् मण्डले सर्वे मन्त्रा मिलित्वा ७६५ पञ्चषष्टिः पुप्तुशतानि सिन्ति।

अथ सप्तमे मण्डले षडनुवाकाः, चतुःशतं च सूक्तापि सन्ति। तत्र प्रतिसूक्तमियं मन्त्रसंख्यास्तीति

वेदितव्यम्-

सू०	मं०	सू०	मं०	सू०	मं०	सू०	爬	सू०	7मं०	सू०	मं०	सू०	मं०	सू०	मं०
१	२५	१४	3	२७	ч	86	B	X	m	६६	१९	७९	ц	९२	ч
२	११	१५	१५	२८	4 /	188	9	४	m	६७	१०	८०	æ	९३	۷
Ą	१०	१६	१२	२९	X	84	ĸ	4	V	६८	9	८१	Ę	९४	१२
8	१०	१७	9	30	Ç	४३	4	५	२५	६९	۷	८२	१०	९५	६
4	9	१८	२५	38	83	188 (ų	9	9	७०	9	८३	१०	९६	ξ
ξ	9	१९	११	D₹) R	४५	४	४	w	७१	Ę	८४	ų	९७	१०
O	9	20/	१०	33	१४	४६	४	५९	१२	७२	ų	८५	ų	९८	૭
۷	9	3/2_		38	२५	७४	8	o w	१२	७३	ц	८६	۷	९९	9
9	ε _	32	18	३५	१५	४८	४	६१	9	७४	Ę	८७	9	१००	9
१०	4	२३	Jw	३६	9	४९	४	६२	w	૭५	۷	۷۷	9	१०१	Ę
११	7	1/8.R	६	३७	۷	५०	8	६३	w	७६	9	८९	ч	१०२	३

	ξ							ऋग्वेद	भाष्यम्						0	
	१२	3	२५	ξ	३८	۷	५१	3	६४	ų	७७	ξ	९०	9	१०३	१०
-	१३	3	२६	ч	39	9	५२	3	६५	ц	৩८	ц	९१	9	20%	२५

अस्मिन् मण्डले सर्वे मन्त्रा मिलित्वा ८४१ एकचत्वारिंशदष्टौ शतानि सन्ति।

अथाष्टमे मण्डले दशानुवाका:, त्रिशतं च सूक्तानि सन्ति। तत्र प्रतिसूक्तमियं मृत्र्यसंख्या ज्ञेया-

सू०	मं०	सू०	मं०	सू०	मं०	सू०	मं०	सू०	मं०	सू०	मं०	सू%्र्	म०	सूर	मं०
१	38	१४	१५	२७	२२	४०	१२	५३	۷	६६	१५	/ 69_	18	97	३३
२	४२	१५	१३	२८	ц	४१	१०	५४	۷	६७	3%	८०	१०	९३	38
w	२४	१६	१२	२९	१०	४२	ξ	५५	ч	EC	63	2)	9	९४	१२
8	२१	१७	१५	३०	8	४३	33	५६	ч	६९	34) (2	9	९५	9
ч	३९	१८	२२	३१	१८	४४	३०	५७	8 4	಄	25	८३	9	९६	२१
Ę	४८	१९	३७	३२	३०	४५	४२	46	3	198	184	८४	9	९७	१५
9	३६	२०	३६	33	१९	४६	33	49	D9(१८	८५	9	९८	१२
۷	२३	२१	१८	38	१८	ઇહ	१८	EO	२०	७३	१८	८६	ч	99	۷
9	२१	२२	१८	३५	२४	४८	34	ER	ZL	७४	१५	८७	ĸ	१००	१२
१०	κ	२३	३०	३६	9	४९	१०	£3/	१२	૭५	१६	۷۷	ξ	१०१	१६
११	१०	२४	३०	३७	9	u	189)६३	१२	७६	१२	८९	9	१०२	२२
१२	३३	२५	२४	३८	20	98	20	६४	१२	୧୭୧	११	९०	w	१०३	१४
१३	३३	२६	२५	39	30	43	१०	६५	१२	৩८	१०	९१	9	_	_
		_		~ \			11								

अस्मिन् मण्डले सर्वे सन्त्रा मिलित्वर १७२६ षड्विंशति सप्तदशशतानि सन्ति।

अथ नवमे मण्हले सप्तानुबाकाः, चतुर्दशोत्तरं शतं च सूक्तानि सन्ति। तत्र प्रति सूक्तमियं मन्त्रसंख्या वेद्या-

सू०	मं०	सू०८	मं०	₹5	मं०	सू०	मं०								
१	१०	24	4	२९	κ	४३	ξ	५७	४	७१	9	८५	१२	९९	۷
२	१०८	१६	¥	३०	ĸ	४४	ξ	40	8	७२	9	८६	४८	१००	9
3	/१०/	१७	۷	३१	κ	४५	ξ	५९	४	७३	9	८७	9	१०१	१६
8/C	3/4	Ser.	9	३२	Ę	४६	ξ	६०	8	७४	9	۷۷	۷	१०२	۷

मण्डल-१। अनुवाक-१। सूक्त-१

4	११	१९	७	33	ξ	४७	ų	६१	३०	૭५	ų	८९	9	१०३	ξ
ξ	9	२०	G	38	६	४८	ц	६२	३०	७६	ц	९०	ξ	(80)	
9	9	२१	9	३५	ξ	४९	ц	६३	३०	<i>७७</i>	ч	९१	ξ <	800	2
۷	9	२२	9	३६	६	५०	ц	६४	ကို	৩८	ц	९२	Jy	१०६	१४
9	9	२३	9	३७	ĸ	५१	ų	६५	ကို	७९	ч	SA SA	لإ	१०७	२६
१०	9	२४	9	३८	६	५२	ц	६६	ကို	८०	4	९४	18	१०८	१६
११	9	२५	Ę	39	ĸ	५३	8	६७	a a	८१			પ	१०९	२२
१२	9	२६	Ę	४०	Ę	५४	४	६८	१०	28	3/) ek	२४	११०	१२
१३	9	२७	Ę	४१	Ę	५५	8	६९	१०	(F)	$)/_{5}\rangle$	९७	५८	१११	भ
१४	۷	२८	Ę	४२	ĸ	५६	8	७०	ر مر	ZX		९८	१२	११२	8
								(\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\\				११३	११
														११४	8

अस्मिन् मण्डले सर्वे मन्त्रा मिलित्वा १०६० सप्तनवस्यकसहस्रं सन्ति।

अथ दशमे मण्डले द्वादशानुवाकाः एकनविष्णातं च सूक्तानि सन्ति। तत्र प्रतिसूक्तमियं

मन्त्रसंख्या ज्ञेया-

						_ (<u>\</u>							
सू०	मं०	सू०	मं०	सू०	मं०	All o	the	सू०	मं०	सू०	मं०	सू०	मं०	सू०	मं०
१	9	२५	११	४९	386	७३	११	९७	२३	१२१	१०	१४५	ξ	१६९	8
२	9	२६	9	40	(४	Jan .	९८	१२	१२२	V	१४६	ξ	१७०	४
æ	9	२७	२४	\$(\& &	35)or	९९	१२	१२३	V	१४७	ч	१७१	४
8	9	२८	१२	७२(૭હ	V	१००	१२	१२४	9	१४८	ц	१७२	४
ч	9	२९	Λς	m J	» «۲	9	V	१०१	१२	१२५	V	१४९	ч	3 9	६
ξ	9	38	25) 3	w	90	V	१०२	१२	१२६	V	१५०	ц	१७४	ч
9	9 4	32/	188	५५	V	99	9	१०३	a e	१२७	V	१५१	ч	१९५	8
۷	35	३२	1 8	इ	9	٥ ٧	9	१०४	११	१२८	9	१५२	५	१९	४
3/	3/	3 33	9	५७	æ	८१	9	१०५	११	१२९	9	१५३	ч	१७७	३

۷	ऋग्वेदभाष्यम्												0	7	
१०	१४	38	१४	40	१२	८२	७	१०६	११	१३०	૭	१५४	4	१७८	Sa Contraction
११	9	३५	१४	५९	१०	८३	9	१०७	११	१३१	O	१५५	ч	2109	₹ 0
१२	9	३६	१४	६०	१२	८४	9	१०८	११	१३२	G	१५६	41	(D)	
१३	ч	३७	१२	६१	२७	८५	४७	१०९	9	१३३	9	१५७	\t\\	१८१	m
१४	१६	३८	ч	६२	११	८६	२३	११०	११	१३४	9	१५८	ч	१६१	æ
१५	१४	३९	१४	६३	१७	८७	२५	१११	१०	१३५	G	Rus	JE.	१८३	3
१६	१४	४०	१४	६४	१७	۷۷	१९	११२	१०	१३६	9	१६०	ع ا	१८४	३
१७	१४	४१	३	६५	१५	८९	१८	११३	१०	१३७	0	१९	ч	१८५	3
१८	१४	४२	११	६६	१५	९०	१६	११४	१०	१३८	ω	१६२	ξ	१८६	æ
१९	۷	४३	११	६७	१२	९१	१५	११५	9 /	१३९	Say J	१६३	κ	१८७	ч
२०	१०	४४	११	६८	१२	९२	१५	११६	\$ C	१४०	16	१६४	ч	१८८	३
२१	۷	४५	१२	६९	१२	९३	१५	११७	\J. (388	ξ	१६५	ч	१८९	æ
२२	१५	४६	१०	90	११	९४	१४	885	8	१४२	۷	१६६	ч	१९०	æ
२३	9	४७	۷	७१	११	९५	१८	१४९	2, 3	१४३	ξ	१६७	8	१९१	8
२४	κ	४८	११	७२	9	९६	Sur Sur	220	९	१४४	ε	१६८	8	_	

अस्मिन्मण्डले सर्वे मन्त्रा मिलित्सा १०५३ मेतु:पञ्चाशत् सप्तदशशतानि सन्ति।

अस्य ऋग्वेदस्य दशसु मण्डलेषु ४५ पञ्चाशीतिरनुवाकाः, १०२८ अष्टादशसहस्रं सूक्तानि, १०५८९ दशसहस्राणि पञ्चस्तानि एकोननवतिश्च मन्त्राः सन्तीति वेद्यम्। स एतैः पूर्वोक्ताष्टाकाध्यायवर्गमण्डलामुग्राकसूक्तमन्त्रीभूषितोऽयमृग्वेदोऽस्तीति वेदितव्यम्॥

भाषार्थ:-आगे मैं सब प्रकार से विद्या के आनन्द को देने वाली चारों वेद की भूमिका को समाप्त और जगदीश्वर को अच्छो प्रकार प्रणाम करके सम्वत् १९३४ मार्ग शुक्ल भौमवार के दिन सम्पूर्ण ज्ञान के देने वाले ऋग्वेद के भाष्य का आरम्भ करता हूं॥१॥

(ऋषिः) इस ऋवेद से सब पदार्थों की स्तुति होती है अर्थात् ईश्वर ने जिसमें सब पदार्थों के गुणों का प्रकृशि किया है, इसलिये विद्वान् लोगों को चाहिये कि ऋग्वेद को प्रथम पढ़के उन मन्त्रों से ईश्वर से लेक पृथिवी-पर्य्यन्त सब पदार्थों को यथावत् जानके संसार में उपकार के लिये प्रयत्न करें। ऋग्वेद शब्द का अर्थ यह है कि जिससे सब पदार्थों के गुणों और स्वभाव का वर्णन किया जाय वह 'ऋक' देद अर्थात् जो यह सत्य सत्य ज्ञान का हेतु है, इन दो शब्दों से 'ऋग्वेद' शब्द बनता है।

मण्डल-१। अनुवाक-१। सूक्त-१

'अग्निमीळे' यहां से लेक 'यथा व: सुसहासित' इस अन्त के मन्त्र-पर्यन्त ऋग्वेद में आठ अष्टक और एक एक अष्टक में आठ आठ अध्याय हैं। सब अध्याय मिलके चौसठ होते हैं एक एक अध्याय की वर्गसंख्या कोष्ठों में पूर्व लिख दी है। और आठों अष्टक के सब वर्ग २०२४ द्रोर हजार चौबीस होते हैं।

तथा इस में दश मण्डल हैं। एक एक मण्डल में जितने जितने सूक्त और मन्त्र है से ऊपर कोष्ठों में लिख दिये हैं। प्रथम मण्डल में २४ चौबीस अनुवाक, और एकसौ इक्नानवे सूक्त, तथा १९७६ एक हजार नौ सौ छहत्तर मन्त्र। दूसरे में ४ चार अनुवाक, ४३ तितालीम सूक्त, और ४२९ चार सौ उन्तीस मन्त्र। तीसरे में ५ पांच अनुवाक, ६२ बासठ सूक्त, और ६१७ छू मी सुद्धेह मन्त्र। चौथे में ५ पांच अनुवाक ५८ अञ्चावन सूक्त, ५८९ पांच सौ नवासी मन्त्र। पांचमें ६ छू अनुवाक ८७ सतासी सूक्त, ७२७ सात सौ सत्ताईस पैंसठ मन्त्र। ६ छठे में छः अनुवाक, ७५ पच्छत्तर सूक्त, ७६५ सात सौ पैंसठ मन्त्र। सातमे में ६ छः अनुवाक, १०४ एकसौ चार सूक्त, ७४१ आठ सौ इकतालीस मन्त्र। आठमे में १० दश अनुवाक, १०३ एकसौ तीन सूक्त, और १७२६ एक हजार सातसौ छब्बीस मन्त्र। नवमे में ७ सात अनुवाक ११४ एकसौ चौदह सूक्त, १०९७ और एक हजार सत्तानवे मन्त्र। और दशम मण्डल में १२ बारह अनुवाक, १९१ एकसौ इक्कानवे सूक्त, कीर १७५४ एक हजार सातसौ चौअन मन्त्र हैं।

तथा दशों मण्डलों में ८५ पचासी अनुवाक, १०२८ एक हजार अठ्ठाईस सूक्त, और १०५८९ दश हजार पांचसौ नवासी मन्त्र हैं। सब सज्जनों को अचित है कि इस बात को ध्यान में करलें कि जिससे किसी प्रकार का गड़बड़ न हो।।

अथादिमस्य नवर्चस्य सूक्तस्य सृष्टुच्छन्ते ऋषिः। अग्निर्देवता। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

तत्राद्ये अभिनेऽग्निःशब्देनेश्वरेणात्मभौतिकावर्थावुपदिश्येते।

यहां प्रथम मन्त्र में अपिन शब्द करके ईश्वर ने अपना और भौतिक अर्थ का उपदेश किया है

अग्निमीळे पुरोहितं युज्ञस्य द्वेवमृत्विजम्।

होतारं रत्नुधातमम् । ११।

अग्निम्। ईुळे। पुर:हितम्। युज्ञस्यं। देवम्। ऋत्विजंम्। होतारम्। रुलुऽधार्तमम्॥ १॥

पदार्थः (अस्मिम्) परमेश्वरं भौतिकं वा-इन्ह्रं मित्रं वर्रणमुग्निमांहुरथों दिव्यः स सुपुणीं गुरुत्मान्। एकं सिह्न्मा बहुधा वंदन्त्यग्नि यमं मांतिरिश्चानमाहुः॥ (ऋ०१.१६४.४६) अनेनैकस्य सतः परब्रह्मण् इन्द्रादीनि बहुधा नामानि सन्तीति वेदितव्यम्। तदेवाग्निस्तदांदित्यस्तद्वायुस्तदुं चन्द्रमाः। तदेव शुक्रं तदे ब्रह्म ता आपः स प्रजापंतिः॥ (य०३२.१) यत्सिच्चिदानन्दादिलक्षणं ब्रह्म तदेवात्रोस्यादिभामवाच्यमिति बोध्यम्। ब्रह्म ह्यग्निः। (श०ब्रा०१.४.२.११) आत्मा वा अग्निः।

(श०ब्रा०१.२.३.२) अत्राग्निर्ब्रह्मात्मनोर्वाचकोऽस्ति। अयं वा अग्निः प्रजाश्च प्रजापितश्ची (श०ब्रा०९.१.२.४२) अत्र प्रजाशब्देन भौतिकः प्रजापितशब्देनेश्वरश्चाग्निर्ग्राह्मः। अग्निर्वे देवानां व्रतपितः। एतद्धः वै देवा व्रतं चरन्ति यत्सत्यम्। (श०ब्रा०१.१.१.२.५) सत्याचारिनयम्पालनं व्रतं तत्पितिरीश्वरः। त्रिभिः प्वित्रैरपुपोद्ध्यर्थकं हृदा मृति ज्योतिरनुं प्रजानन्। विषिष्टं रत्नेमकृत स्वधाभिरादिद् द्यावापृथिवी पर्यपश्यत्॥ (ऋ०३.२६.८) अत्राग्निशब्दस्यानुवृत्तेः प्रजानित्रिति ज्ञानवन्तित् पर्व्वपश्यदिति सर्वज्ञत्वादीश्वरो ग्राह्मः।

यास्कमुनिरत्रोभयार्थकरणायाग्निशब्दपुर:सरमेतन्मन्त्रमेवं व्याचष्टे-अर्द्धिः करेणादग्रणी-भवत्यग्रं यज्ञेषु प्रणीयतेऽङ्गं नयित सन्नममानोऽक्नापनो भवतीति स्थौलष्ठीविनं बन्गेफ्यित न स्नेहयित त्रिभ्य आख्यातेभ्यो जायत इति शाकपूणिरितादक्ताइग्धाद्वा नीतात्स खल्केतेरकारभादते गकारमनक्तेर्वा दहतेर्वा नीः परस्तस्यैषा भवतीति-अग्निमीळेऽग्निं याचामीळेरध्येषण्यकर्मा पूजाकर्मा वा देवो दानाद्वा दीपनाद्वा द्योतनाद्वा द्युस्थानो भवतीति वा यो देवः सा देवता होतारं ह्यातारं जुहोतेहींतारित्यौर्णवाभो रत्नधातमं रमणीयानां धनानां दातृतमम्। (निरु०७.१४-१५)।

अग्रणीः सर्वोत्तमः सर्वेषु यज्ञेषु पूर्वमीश्वरस्याव प्रतिप्रादनात्तस्यात्र ग्रहणम्। दग्धादिति विशेषणाद्भौतिकस्यापि च।

प्रशासितारं सर्वेषामणीयांसमणोरिष। रुक्याभं स्वज्ञ्जीगम्यं विद्यातं पुरुषं परम्॥१॥ एतमेके वदन्त्यिग्नं मनुमन्ये प्रजापितम्। इन्द्रमेकेऽपरे प्रणिमषरे कहा शाश्चतम्॥२॥ (मनु०१२.१२२-१२३) अत्राप्यग्न्यादीनि परमेश्वरस्य नामानि सन्तीवि। इके अग्निं विपश्चितं गृरा युज्ञस्य सार्धनम्। श्रुष्ट्रीवानं धितावानम्॥ (ऋ०३.२७.२) विपश्चितमीक्ये इति विशेषणादिग्निशब्देनात्रेश्वरो गृह्यते, अनन्तविद्यावन्त्वाच्चेतनस्वरूपत्वाच्च

भौतिक्रीर्थग्रहणे(य प्रमाणानि-**यदश्वं** पुरस्ताददश्रयंस्तस्याभयेनाष्टे तं निवातेऽग्निरजायत तस्माद्यत्राग्य मिश्यध्यन्त्रयोत्तदश्चमानेतवै ब्रूयात्। स पूर्वेणोपतिष्ठते वज्रमेवैतदुच्छ्यन्ति तस्याभयेनाष्ट्रे निवातेऽग्निर्जायते। (अ%) १८१८ १६० वृषो अग्नि:। अश्वो ह वा एष भूत्वा देवेभ्यो (श्राव्यावर) ३.३.२९-३० वृषवद्यानानां वहति। वोढत्वाद वषोऽग्नि:। यजं तथाऽयमग्निराश्ग्गमयितृत्वेनिश्वी भूत्वा कलायन्त्रैः प्रेरितः सन् देवेभ्यो विद्वद्भयः शिल्पविद्याविद्भयो मनुष्येभ्यो विमानाद्वियानसधिमसङ्गतं यानं वहति प्रापयतीति। तृर्णिर्हव्यवाडिति। (श०ब्रा०१.३.४.१२) अयमग्निह्रव्यानां यानोत्तां प्रापकत्वेन शीघ्रतया गमकत्वाद्भव्यवाट् तूर्णिश्चेति। अग्निवैं योनिर्यज्ञस्य। इत्याद्यनेकप्रमाणैरश्वनाम्ना भौतिकोऽग्निर्वात्र (श॰ब्रा०१ - ४ ३.१४) आशुगुर्मनेहेतुत्वादश्वोऽग्निर्विज्ञेयः। वृषो अग्निः समिध्यतेऽश्वो न देववाहनः। तं हविष्मन्त ईळते॥ (ऋ०३,२७१४) यदा शिल्पिभरयमग्निर्यन्त्रकलाभिर्यानेषु प्रदीप्यते तदा देववाहनो देवान् यानस्थान्

मण्डल-१। अनुवाक-१। सुक्त-१

विदुषः शीघ्रं देशान्तरेऽश्व इव वृष इव च प्रापयित, ते हिवष्मन्तो मनुष्या वेगादिगुणवन्तमश्वमिग्निमीडते कार्य्यार्थमधीच्छन्तीति वेद्यम्।

(ईळे) स्तुवे याचे अधीच्छामि प्रेरयामि वा (पुरोहितम्) पुरस्तात्स्वी जिल्ह्याति छेदनधारणाकर्षणादिगुणांश्चापि तम्। पुरोहितः पुर एनं दधित होत्राय वृतः कृपार्यमाणोऽन्वध्यायत्। (निरु०२.१२) (यज्ञस्य) इज्यतेऽसौ यज्ञस्तस्य मिहम्नः कर्मणो विदुषां सत्कारस्य सहस्तस्य सत्सङ्गत्योत्पन्नस्य विद्यादिदानस्य शिल्पिक्रयोत्पाद्यस्य वा। यज्ञाः कस्मात्मख्यातं यज्ञति कर्मिति नैरुक्ता याञ्चो भवतीति वा यजुरुन्नो भवतीति वा बहुकृष्णाजिन इत्यौपमन्यवो यजूंच्येनं नयन्तीति वा। (निरु०३.१९) (देवम्) दातारं हर्षकरं विजेतारं द्योतकं वा (ऋत्विजम्) प्रकृतो ऋतौ प्रत्युत्पित्तकालं संसारं सङ्गतं यजित करोति तथा च शिल्पसाधनानि सङ्गमयित सर्वेषु ऋतुषु यज्जीयस्तम्। ऋत्विग्दशृग् (अष्टा०३.२.५९) अनेन कर्त्तीर निपातनम्, तथा कृतो बहुलिमिति कर्मणि ज्ञा (होतारम्) दातारमादातारं वा (रत्नधातमम्) रमणीयानि पृथिव्यादीनि सुर्वणादीनि च रत्निन द्याति धापयतीति रत्नधा, अतिशयेन रत्नधा इति रत्नधातमस्तम्॥१॥

अन्वय:-अहं यज्ञस्यं पुरोहितमृत्विजं होतारं रत्नधातेम् देवामानिमीळे॥१॥

भावार्थः-अत्र श्लेषालङ्कारेणोभयार्थग्रहण्मिस्तीति, बोध्यम्। इतोऽग्रे यत्र यत्र मन्त्रभूमिकायामुपदिश्यत इति क्रियापदं प्रयुज्नितेऽस्य सर्वत्र कर्त्तेश्वर एव बोध्यः। कुतः, वेदानां तेनैवोक्तत्वात् पितृवत्कृपायमाण ईश्वरः सर्विष्द्राप्राप्तयं सर्वजीविहतार्थं वेदोपदेशं चकार। यथा पिताऽध्यापको वा स्वपुत्रं शिष्यं च प्रति त्विभवे वहैथं कुरु सत्यं वद पितरमाचार्य्यं च सेवस्वानृतं मा कुर्वित्युपदिशति, तथैवात्र बोध्यम्। वेद्रश्च सर्वजीवकल्याणार्थमाविर्भूतः। एवमर्थोऽत्रोत्तम- पुरुषप्रयोगः। वेदोपदेशस्य परोपकारार्थत्वात्।

अत्राग्निशब्देन परम्थिव्यवहारिवद्यासिद्धये परमेश्वर भौतिकौ द्वावर्थौ गृह्येते। पुरा आर्य्येर्याऽश्वविद्यानाम्ना शीघ्रगम्नहेतुः शिल्पविद्या सम्पादितेति श्रूयते साग्निविद्येवासीत्। परमेश्वरस्य स्वयंप्रकाशत्वसर्वप्रकाशहत्वाश्योपमन्तज्ञानवत्त्वात् भौतिकस्य रूपदाहप्रकाशवेगछेदनादिगुण-वत्त्वाच्छिल्पविद्यायां मुख्यहेतुल्बाच्च प्रथमं ग्रहणं कृतमस्तीति वेदितव्यम्॥१॥

पदार्थान्वर्यभाषा-(यज्ञस्य) हम लोग विद्वानों के सत्कार सङ्गम महिमा और कर्म के (होतारम्) देने तथा ग्रहण करने आले (पुरोहितम्) उत्पत्ति के समय से पहिले परमाणु आदि सृष्टि के धारण करने और (ऋखिजम्) ब्रांग्वार उत्पत्ति के समय में स्थूल सृष्टि के रचनेवाले तथा ऋतु-ऋतु में उपासना करने योग्य (रत्मातमम्) और निश्चय करके मनोहर पृथिवी वा सुवर्ण आदि रत्नों के धारण करने वा (देवम्) देने तथा सुव पदार्थों के प्रकाश करनेवाले परमेश्वर की (ईळे) स्तुति करते हैं।

तथा उपकार के लिये (यज्ञस्य) हम लोग (विद्यादि) दान और शिल्पक्रियाओं से उत्पन्न करने योग्य पदार्थों के (होतारम्) देनेहारे तथा (पुरोहितम्) उन पदार्थों के उत्पन्न करने के समय से पूर्व भी छेदन धारण और आकर्षण आदि गुणों के धारण करने वाले (ऋत्विजम्) शिल्पविद्या साधनों के हेतु (रत्मधातमम्) अच्छे-अच्छे सुवर्ण आदि रत्नों के धारण कराने तथा (देवम्) युद्धादिक्ते में कलायुक्त शस्त्रों से विजय करानेहारे भौतिक अग्नि की (ईळे) वारंवार इच्छा करते हैं।

यहां 'अग्नि' शब्द के दो अर्थ करने में प्रमाण ये हैं कि-(इन्हं मित्रं०) इस ऋग्वेद के मन्त्र से यह जाना जाता है कि एक सद्ब्रह्म के इन्द्र आदि अनेक नाम हैं। तथा (तहेवाग्नि॰) इस यजुर्वेद के मन्त्र से भी अग्नि आदि नामों करके सिच्चदानन्दादि लक्षणवाले ब्रह्म को जानना चाहिये। (ब्रह्म हा॰) इत्यादि शतपथ ब्राह्मण के प्रमाणों से अग्नि शब्द ब्रह्म और आत्मा इन दो अर्थों का वाची है। (अयं वा॰) इस प्रमाण में अग्नि शब्द से प्रजा शब्द करके भौतिक और प्रजापित शब्द से ईश्वर का ग्रहण होता है। (अग्नि॰) इस प्रमाण से सत्याचरण के नियमों का जो यथावत् पालन करना है सो ही व्रत कहाता है, और इस व्रत का पित परमेश्वर है। (त्रिभि: पिवत्रे:०) इस क्रिंग होता है।

निरुक्तकार यास्कमुनि जी ने भी ईश्वर और भौतिक पक्षों की अग्नि शब्द की भिन्न-भिन्न व्याख्या करके सिद्ध किया है, सो संस्कृत में यथावत् देख मिना चाहिये, परन्तु सुगमता के लिये कुछ संक्षेप से यहां भी कहते हैं। यास्कमुनिजी ने स्थौलाष्ठीवि ऋषि के मृत से अग्नि शब्द का अग्रणी=सब से उत्तम अर्थ किया है अर्थात् जिसका सब यज्ञों में पहिले प्रतिपादन होता है, वह सब से उत्तम ही है। इस कारण अग्नि शब्द से ईश्वर तथा दाहगुणवाला भौतिक अग्नि इन दो ही अर्थों का ग्रहण होता है।

(प्रशासितारं०; एतमे०) मर्नुश्ची के इन दी श्लोकों में भी परमेश्वर के अग्नि आदि नाम प्रसिद्ध हैं। (ईळे०) इस ऋग्वेद के प्रमाण से भी उस अनन्त विद्यावाले और चेतनस्वरूप आदि गुणों से युक्त परमेश्वर का ग्रहण होता है।

अब भौतिक अर्थ के ग्रहण में प्रमाण दिखलाते हैं--(यदशं०) इत्यादि शतपथ ब्राह्मण के प्रमाणों से अग्नि शब्द कर्क भौतिक अग्नि का ग्रहण होता है। यह अग्नि बैल के समान सब देशदेशान्तरों में पहुंचानेवाला होने के कारण वृष और अश्व भी कहाता है, क्योंकि वह कलाओं के द्वारा अश्व अर्थात् शीघ्र क्लानेवाला होने के कारण वृष और अश्व भी कहाता है, क्योंकि वह कलाओं के द्वारा अश्व अर्थात् शीघ्र क्लानेवाला होने के जानने वाले विद्वान् लोगों के विमान आदि यानों को वेग से वाहनों के समान दूर-दूर देशों में पहुंचाता है। (तूर्णि०) इस प्रमाण से भी भौतिक अग्नि का ग्रहण है, क्योंकि बहु उक्त शीघ्रता आदि हेतुओं से हव्यवाट् और तूर्णि भी कहाता है। (अग्निर्व यो०) इत्यादिक और भी अनेक प्रमाणों से अश्व नाम करके भौतिक अग्नि का ग्रहण किया गया है। (वृषो०) जब्न कि इस भौतिक अग्नि को शिल्पविद्यावाले विद्वान् लोग यन्त्रकलाओं से सवारियों में प्रदीप्त करके

मण्डल-१। अनुवाक-१। सूक्त-१

युक्त करते हैं, तब (देववाहनः) उन सवारियों में बैठे हुए विद्वान् लोगों को देशान्तर में बैलों वा घोड़ों के समान शीघ्र पहुंचानेवाला होता है। हे मनुष्यो! तुम लोग (हविष्मन्तम्) वेगादि गुणवाल अक्षर अग्नि के गुणों को (ईळते) खोजो। इस प्रमाण से भी भौतिक अग्नि का ग्रहण है॥१॥

भावार्थभाषा-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार से दो अर्थों का ग्रहण होता है। पिता के समान कृपाकारक परमेश्वर सब जीवों के हित और सब विद्याओं की प्राप्ति के लिये कल्य-कल्प की आदि में वेद का उपदेश करता है। जैसे पिता वा अध्यापक अपने शिष्य वा पुत्र को श्रिक्षा करता है कि तू ऐसा कर वा ऐसा वचन कह, सत्य वचन बोल, इत्यादि शिक्षा को सुनकर बालक वा शिष्य भी कहता है कि सत्य बोलूंगा, पिता और आचार्य्य की सेवा करूंगा, झूठ न कहूंगा, इस प्रकार जैसे प्ररस्पर शिक्षक लोग शिष्य वा लड़कों को उपदेश करते हैं, वैसे ही 'अग्निमीळे॰' इत्यादि वेदमन्त्रों में भी जानना चाहिये। क्योंकि ईश्वर ने वेद सब जीवों के उत्तम सुख के लिये प्रकट किया है। इसी 'अग्निमीळे॰' वेद के उपदेश का परोपकार फल होने से इस मन्त्र में 'ईडे' यह उत्तम पुष्ठ का प्रोपेंग भी है।

(अग्निमीळे०) परमार्थ और व्यवहार विद्या की सिद्धि के लियें अग्नि शब्द करके परमेश्वर और भौतिक ये दोनों अर्थ लियें जाते हैं। जो पहिले समय में आये लोगों ने अश्वविद्या के नाम से शीघ्र गमन का हेतु शिल्पविद्या उत्पन्न की थी, वह अग्निविद्या की ही उन्नित थी। आप ही आप प्रकाशमान सब का प्रकाश और अनन्त ज्ञानवान् आदि हेतुओं से अग्निशब्द करके परमेश्वर, तथा रूप दाह प्रकाश वेग छेदन आदि गुण और शिल्पविद्या के मुख्य साधक आदि हेतुओं से प्रथम मन्त्र में भौतिक अर्थ का ग्रहण किया है।। १।।

सोऽग्निः कैः स्तोतस्रोङ्बेष्टव्यगुणो वास्तीत्युपदिश्यते।

उक्त अग्नि किन के स्तुति अस्वे वो खोजने योग्य है, इसका उपदेश अगले मन्त्र में किया है-

अग्निः पूर्वेभिऋषिभितिङ्यो नूतनेभूत।

स देवाँ एह वंश्वतिं। २॥

अग्नि:। पूर्वेभि: ऋषिभा ईंड्यं:। नूतंनै:। उता सः। देवान्। आ। इह। वृक्षुति॥२॥

पदार्थ:-(अग्निः) परमेश्वरो भौतिको वा (पूर्वेभिः) अधीतिवद्यैर्वर्त्तमानैः प्राक्तनैर्वा विद्वद्भिः (ऋषिभि:) मुन्नार्थेद्रेष्ट्रभिरध्यापकैस्तर्के: कारणस्थै: प्राणैर्वा-ऋषिप्रशंसा चैवमुच्चावचैरभिप्रायैर्ऋषीणां इयमेव ऋषीणां मन्त्रदृष्ट्यो भवन्ति। (निरु०७,३) प्रशंसा यतस्त एवमुच्यावर्चेमहद्स्योभिप्रायैर्मन्त्रार्थेविंदितै: तेषामुषीणां प्रशंसनीया भवन्ति. मन्त्रेष् दृष्टयो⁄६र्थादेरसन्तपुरुषार्थेन मन्त्रार्थानां यथावद्दर्शनानि ज्ञानानि भवन्ति तस्मात्ते पूज्याः सत्कर्त्तव्या आस्त्रित्ति। साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बुभुवस्तेऽवरेभ्योऽसाक्षात्कृतधर्मभ्य उपदेशेन मन्त्रान्त्सम्प्रादुरुपदेशाय

ग्लायन्तोऽवरे बिल्मग्रहणायेमं ग्रन्थं समाम्नासिषुर्वेदं च वेदाङ्गानि च बिल्मं भिल्मं भासनमिति वा। (निरु०१.२०) कीदृशा ऋषयो भवन्तीत्यात्राह-यत: साक्षात्कृतधर्माणो धार्मिका आप्ता यै: सूर्वा विद्या यथावद्विदिता, येऽवरेभ्यो ह्यसाक्षात्कृतवेदेभ्यो मनुष्येभ्य उपदेशेन वेदमन्त्रान् मन्त्रार्थांश्र्य (सम्प्रान्ः) प्रकाशितवन्तस्तस्मात्ते ऋषयो जाता:। तै: कस्मै प्रयोजनाय मन्त्राध्यापनं तदर्थप्रकाशश्च कृत्र इत्यत्रीच्यते-उत्तरोत्तरं वेदार्थप्रचाराय। येऽवरेऽल्पबुद्धयो मनुष्या अध्ययनायोपदेशाय चूर् म्लाबुत्ते वेदार्थविज्ञानायेमं नैघण्टुकं निरुक्ताख्यं च ग्रन्थं समाम्नासिष्: सम्यगभ्यासार्थं स्चितवन्त:। येत सर्वे मनुष्या वेदं वेदाङ्गानि च यथार्थतया विजानीयुरेवं कृपालव ऋषयो गण्यन्त इति। पुरस्तान्मभूष्या वा ऋषिषुत्क्रामत्सु देवानब्रुवन्को न ऋषिर्भविष्यतीति। तेभ्य एतं तर्कमृषिं प्रायच्छन् मत्रार्थचिन्ताभ्यूहमभ्यूढम्। (निरु०१३.१२) अत्र तर्क एव ऋषिरुक्तः। **अविज्ञाततत्त्वेऽर्थे कारुणीपप्रितस्त्रत्वज्ञानार्थमृहस्तर्कः।** (न्याय०१.१.४०) या तत्त्वज्ञानार्थोहा सैव तर्कशब्देन गृह्यते। प्राप्पा ऋषक्षः (श०ब्रा०७.२.१.५) स्तोतव्योऽन्वेष्टव्यश्च प्राणा गृह्यन्ते। (ईड्य:) नित्यं / वेदार्थाध्येतृभिर्ब्रह्मचारिभिस्तर्कै: कार्यस्थैर्विद्यमानै: प्राणैर्वा (उत्) अप्भेव (स:) पूर्वोक्त: (देवान्) दिव्यानीन्द्रियाणि विद्यादिदिव्यगुणान् दिव्यान् ऋतून् दिव्यान् भीगान्वा। ऋतवो वै देवाः) (श॰ब्रा॰७.२.२.२६) अनेनर्तुशब्देन दिव्यगुणविशिष्टा भीगे गृह्यन्ते। (आ) समन्तात् (इह) अस्मिन् वर्त्तमाने संसारे जन्मनि वा (वक्षति) वहत् प्रापयत्॥ 📶

यास्कमुनिरिमं मन्त्रमेवं समाचष्टे-अग्निर्णः पूर्वेर्ऋिप्रिभिरीडितव्यो वन्दितव्योऽस्माभिश्च नवतरै: स देवानिहावहत्विति। स न मन्येतार्थमेबाग्निरित्यप्येते उत्तरे ज्योतिषी अग्नी उच्येते। (निरु०७.१६.२)॥२॥

अन्वय:-योऽयमग्निः पूर्वेभिरुत निर्मुषिभिरीङ्गोऽस्ति, स एह देवान् वक्षति समन्तात्प्रापयतु॥२॥

भावार्थ:-ये सर्वा विद्धाः पठित्वा सेत्योपदेशेन सर्वोपकारका अध्यापका वर्त्तन्ते पूर्वभूताश्च ते पूर्व इति शब्देन ये चाध्येत्रि विद्याप्रहणाभाभ्यासं कुर्वन्ति ते नूतनैरिति पदेन गृह्यन्ते। ये मन्त्रार्थान् विदितवन्तो धर्मविद्ययो भूकारस्यैवानुष्ठातारः सत्योपदेशेन सर्वाननुग्रहीतारो निश्छलाः पुरुषार्थिनो मोक्षधर्मसिध्यर्थमीश्वरस्यैवोपसिकः कामार्थसिध्यर्थं भौतिकाग्नेर्गुणज्ञानेन कार्य्यसिद्धिं सम्पादयन्तो मनुष्यास्ते ऋषिशब्देन गृहानो। पूर्वेषां नृतनानां च ये युक्तिप्रमाणसिद्धास्तत्त्वज्ञानार्थास्तर्काः, ये च जगत्कारणस्थाः कार्य्यजगत्स्थाश्च प्राणाः सन्ति तै: सह भौतिकश्चारिनर्वन्द्योऽध्यन्वेष्टव्यगुणश्चास्ति। सर्वज्ञेनेश्वरेण स्वकीयज्ञानान्मनुष्यज्ञानापेक्षयाऽतीतान वर्त्तमानिश्चर्षीन् विदित्वाऽस्मिन् मन्त्र उपदिष्टे सित नैव कश्चिद्दोषो भवितुमर्हति, वेदस्य सर्वज्ञाक्यत्वात्। सोऽयमेवमुपासितो व्यवहारकार्य्येषु संयोजित: सन् सर्वोत्तमान् गुणान् भोगांश्च प्रापयति। अत्र प्राचीनापेक्षया नवीनत्वं नवीनापेक्षया प्राचीनत्वं च विज्ञायत इति।

मण्डल-१। अनुवाक-१। सूक्त-१

अयमेवार्थो निरुक्तकारेणोक्त:-यस्तु खलु प्राकृतजनैः पाककरणादिषु प्रसिद्धः प्रयोज्यते सोऽस्मिन् मन्त्रे नैव ग्राह्यः, किन्तु सर्वप्रकाशकः परमेश्वरः स्विविद्याहेतुन् विद्युदाख्योऽर्थश्चाऽग्निशब्देनात्रोच्यत इति।

एतन्मन्त्रार्थः सायणाचार्य्यादिभिरन्यथोक्तः। तद्यथा-पुरातनैर्भृग्वङ्गिरःप्रभृतिभिर् र्वूतनैर्द्रोदानींतनै-रस्माभिरिप स्तुत्यः। देवान् हिवर्भुज आवक्षतीत्यन्यथेदं व्याख्यानमस्ति। तद्वद्वरीपखण्डस्थैरेत्रस्थैश्च कृतिमंगलैण्डभाषायं वेदार्थयत्नादिषु च व्याख्यानमप्यसमञ्जसम्। कृतः ईश्वरोक्त्रस्थानादिभृतस्य वेदस्येदृशं व्याख्यानं क्षुद्राशयं निरुक्तशतपथादिग्रन्थविरुद्धं चास्त्यत इति॥२॥

पदार्थान्वयभाषा:-(पूर्वेभि:) वर्तमान वा पहिले समय के विद्वान् (नूलने:) वैदार्थ के पढ़नेवाला ब्रह्मचारी तथा नवीन तर्क और कार्य्यों में ठहरनेवाले प्राण (ऋषिप्रि:) मन्त्रों के अर्थों को देखनेवाले विद्वान्, उन लोगों के तर्क और कारणों में रहनेवाले प्राण, इन समीं को (अम्मि:) वह परमेश्वर (ईड्य:) स्तुति करने योग्य और यह भौतिक अग्नि नित्य खोजने योग्य हैं।

प्राचीन और नवीन ऋषियों में प्रमाण ये हैं कि- (ऋषिप्रशंसा) वे ऋषि लोग गृढ़ और अल्प अभिप्राययुक्त मन्त्रों के अर्थों को यथावत जानने से प्रशंसा के आगेग्य होते हैं, और उन्हीं ऋषियों की मन्त्रों में दृष्टि अर्थात् उनके अर्थों के विचार में पुरुष्पर्थ से स्थुपर्थ ज्ञान और विज्ञान की प्रवृत्ति होती है, इसी से वे सत्कार करने योग्य भी हैं। तथा (साक्षात्कृत्र) जो धर्म और अधर्म की ठीक-ठीक परीक्षा करने वाले धर्मात्मा और यथार्थवक्ता थे, तथा जिन्होंने सुब विद्या यथावत् जान ली थी, वे ही ऋषि हुए और जिन्होंने मन्त्रों के अर्थ ठीक-ठीक (महीं) जाने अर्थ और नहीं जान सकते थे, उन लोगों को अपने उपदेश द्वारा वेदमन्त्रों का अर्थ सिह्नि ज्ञॉन कर्मी हुए चले आये, इस प्रयोजन के लिये कि जिससे उत्तरोत्तर अर्थात् पीढ़ी दर पीढ़ी आरो को भी वेदार्थ का प्रचार उन्नति के साथ बना रहे, तथा जिससे कोई मनुष्य अपने और उक्त ऋषियों के लिये हुए व्याख्यान सुनने के लिये अपने निर्बुद्धिपन से ग्लानि को प्राप्त हो, इस बात के सहायमें उनको सुगर्धना से वेदार्थ का ज्ञान होने के लिये उन ऋषियों ने निघण्ट और निरुक्त आदि ग्रन्थों कि उपदेश्ल किया है, जिससे कि सब मनुष्यों को वेद और वेदाङ्गों का यथार्थ बोध हो जावे। (पुरस्तान्मपुष्या) इस प्रमाण से ऋषि शब्द का अर्थ तर्क ही सिद्ध होता है। (अविज्ञात०) यह र्यायशास्त्र में गोतम मुनिजी ने तर्क का लक्षण कहा है, इससे यही सिद्ध होता है कि जो सिद्धान्त के जाने के लिये विचार किया जाता है उसी का नाम तर्क है। (प्राणा॰) इन शतपथ के प्रमाणों से ऋषि शब्द करके प्राण और देव शब्द करके ऋतुओं का ग्रहण होता है। (स: उत) वहीं परमेश्वर (इह) इस संसार वा इस जन्म में (देवान्) अच्छी-अच्छी इन्द्रियां, विद्या आदि गुण, भौतिक अग्नि और अच्छे-अच्छे भोगने योग्य पदार्थों को (आवश्वति) प्राप्त करता है।

(अग्नि: पूर्वे॰) इस मन्त्र का अर्थ निरुक्तकार ने जैसा कुछ किया है, सो इस मन्त्र के भाष्य में लिख दिया है॥२॥

भावार्थ:-जो मनुष्य सब विद्याओं को पढ़के औरों को पढ़ाते हैं तथा अपने उपदेश से सब क्ष उपकार करनेवाले हैं वा हुए हैं वे पूर्व शब्द से, और जो कि अब पढ़नेवाले विद्या ग्रहण के लिये अभ्यास करते हैं, वे नूतन शब्द से ग्रहण किये जाते हैं। और वे सब पूर्ण विद्वान् श्रुभ मुण सहित होने पर ऋषि कहाते हैं, क्योंकि जो मन्त्रों के अर्थों को जाने हुए धर्म और विद्या के प्रचार, अपने सत्य उपदेश से सब पर कृपा करनेवाले निष्कपट पुरुषार्थी धर्म के सिद्ध होने के लिये ईश्वर की उपासना करनेवाले और कार्यों की सिद्ध के लिये भौतिक अग्नि के गुणों को बानकर अपने कर्मों के सिद्ध करनेवाले होते हैं, तथा प्राचीन और नवीन विद्वानों के तत्त्व जानने के लिये मुक्ति ग्रमाणों से सिद्ध तर्क और कारण वा कार्य्य जगत् में रहनेवाले जो प्राण हैं, इन सब से ईश्वर और मौतिक अग्नि का अपने—अपने गुणों के साथ खोज करना योग्य है। और जो सर्वज्ञ मस्मेश्वर ने पूर्व और वर्तमान अर्थात् त्रिकालस्थ ऋषियों को अपने सर्वज्ञपन से जान के इस मन्त्र में परमार्थ और व्यवहार ये दो विद्या दिखलाई हैं, इससे इसमें भूत वा भविष्य काल की बालों के कहने में कोई भी दोष नहीं आ सकता, क्योंकि वेद सर्वज्ञ परमेश्वर का वचन है। वह परमेश्वर उत्तम एणों को तथा भौतिक अग्नि व्यवहार कार्यों में संयुक्त किया हुआ उत्तम-उत्तम भोग के पदार्थों की देनेवाला होता है। पुराने की अपेक्षा एक पदार्थ से दूसरा नवीन और नवीन की अपेक्षा पहिला पूर्णनी होता है।

देखो, यही अर्थ इस मन्त्र का निरुक्तकार ने भी किया है कि-प्राकृत जन अर्थात् अज्ञानी लोगों ने जो प्रसिद्ध भौतिक अग्नि पाक बनाने अदिकार्थ्यों में लिया है, वह इस मन्त्र में नहीं लेना, किन्तु सब का प्रकाश करनेहारा परमेश्वर और सब्दे विद्याशों का हेतु जिसका नाम विद्युत् है, वही भौतिक अग्नि यहां अग्नि शब्द से लिया है।

(अग्नि: पूर्वे०) इस सन्त्र का अर्थ नवीन भाष्यकारों ने कुछ का कुछ ही कर दिया है, जैसे सायणाचार्य ने लिखा है कि (पुरातनेः०) प्राचीन भृग, अङ्गिरा आदियों और नवीन अर्थात् हम लोगों को अग्नि की स्तुति करना रहिन्त है। यह देवों को हिव अर्थात् होम में चढ़े हुए पदार्थ उनके खाने के लिये पहुंचाता है। ऐसा ही व्याख्यान यूरोप खण्डवासी और आर्यावर्त्त के नवीन लोगों ने अङ्गरेजी भाषा में किया है, तथा कल्पित ग्रन्थों में अब भी होता है। सो यह बड़े आश्चर्य की बात है जो ईश्वर के प्रकाशित अनादि वेद का ऐसा क्याख्यान जिसका क्षुद्र आशय और निरुक्त शतपथ आदि सत्य ग्रन्थों से विरुद्ध वह सत्य कैसे हो सकता है।। २॥

तेनोपासितेनोपकृतेन च किं किं प्राप्तं भवतीत्युपदिश्यते।

अब पुरमेश्वर की उपासना और भौतिक अग्नि के उपकार से क्या-क्या फल प्राप्त होता है, सो

मण्डल-१। अनुवाक-१। सूक्त-१

अगले मन्त्र से उपदेश किया है-

अग्निना र्यिमेश्नवत्पोषेमेव द्विवेदिवे।

युशसं वीरवत्तमम्॥३॥

अग्निनां। रुविम्। अञ्चवत्। पोर्षम्। एव। द्विवेऽदिवे। युशर्सम्। वीरवंत्ऽतमम्॥ ३४।

पदार्थ:-(अग्निना) परमेश्वरेण संसेवितेन भौतिकेन संयोजितिने वा गियम्) विद्यासुवर्णाद्युत्तमधनम्। रियरिति धननामसु पठितम्। (निघं०२.१०) (अश्नवत्) प्राप्नोष्ठि। लेट् प्रयोगः, व्यत्ययेन परस्मैपदम्। (पोषम्) आत्मशरीरयोः पृष्ट्या सुखप्रदम् (एव) निश्चियार्थे (दिवेदिवे) प्रतिदिनम्। दिवेदिवे इत्यहर्नामसु पठितम्। (निघं०१.९) (यशसम्) सर्वोत्तमक्रीतिवधिकम्। (वीरवत्तमम्) वीरा विद्वांसः शूराश्च विद्यन्ते यस्मिन् तदितिशयितं वीरवत्तमम्॥३॥

अन्वय:-मनुष्य: अग्निनैव दिवेदिवे पोषं यशसं वीरवत्तर्म (रिव्यश्नवत् प्राप्नोति॥३॥

भावार्थ:-अत्र श्लेषालङ्कारेणोभयार्थस्य गृहणम् ईश्वराज्ञायां वर्त्तमानेन शिल्पविद्यादिकार्य्यसिध्यर्थमिंनं साधितवता मनुष्येणाक्षयं धनं प्राप्यते, येन नित्यं कीर्त्तिर्वृद्धिर्वीरपुरुषाश्च भवन्ति॥३॥

पदार्थ: -यह मनुष्य (अग्निना एव) अच्छी प्रकार ईश्वर की उपासना और भौतिक अग्नि ही को कलाओं में संयुक्त करने से (दिवेदिवे) प्रतिदिन (पोष्ट्रम्) आत्मा और शरीर की पृष्टि करनेवाला (यशसम्) जो उत्तम कीर्त्ति का बढ़ानेवाला और (वीर्वत्तमम्) जिसको अच्छे-अच्छे विद्वान् वा शूरवीर लोग चाहा करते हैं (रियम्) विद्या और सुम्र्यादि अतम उस धन को सुगमता से (अश्नवत्) प्राप्त होता है॥३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में क्लेक्लङ्कार से दो अर्थों का ग्रहण है। ईश्वर की आज्ञा में रहने तथा शिल्पविद्यासम्बन्धि कार्य्यों की सिद्धि के लिये भौतिक अग्नि को सिद्ध करनेवाले मनुष्यों को अक्षय अर्थात् जिसका कभी नाश्च नहीं होता, सो धन प्राप्त होता है, तथा मनुष्य लोग जिस धन से कीर्त्ति की वृद्धि और जिस धन को पान वौर पुरुषों से युक्त होकर नाना सुखों से युक्त होते हैं। सब को उचित है कि इस धन को अवश्य प्राप्त करें॥३॥

उक्तावर्थों कीदृशौ स्त इत्युपदिश्यते।

सक्त भौतिक अग्नि और परमेश्वर किस प्रकार के हैं, यह भेद अगले मन्त्र में जनाया है-

अग्ने यं युज्ञमध्वरं विश्वतः परिभूरिस।

स इद्देवेषु गच्छति॥४॥

अग्नै। यम्। युज्ञम्। अध्वरम्। विश्वतैः। पुरिऽभूः। असि। सः। इत्। देवेषुं। गुच्छृति॥४॥

पदार्थ:-(अग्ने) परमेश्वरो भौतिको वा (यम्) (यज्ञम्) प्रथममन्त्रोक्तम् (अध्वरम्) हिंसाधर्मादिदोषरिहतम्। ध्वरतिहिंसाकर्मा तत्प्रतिषेधो निपात:। (निरु०१.८) (विश्वत:) सर्वतः सर्वष्णे जलपृथिवीमयानां पदार्थानां विविधाश्रयात्। षष्ट्या व्याश्रये (अष्टा०५.४.४८) इत्यनेन तसिः प्रत्ययः। (पिरभूः) यः परितः सर्वतः पदार्थेषु भवति। परीति सर्वतोभावं प्राह। (निरु०१.३) (असि) अस्ति वा (सः) यज्ञः (इत्) एव (देवेषु) विद्वत्सु दिव्येषु पदार्थेषु वा (गच्छति) प्राप्नोति॥४॥

अन्वय:-हे अग्ने! त्वं यमध्वरं यज्ञं विश्वतः परिभूरसि व्याप्य पालकोऽसि तथाऽयमग्निरपि सम्पाद्यितास्ति, स इद्देवेषु गच्छति॥४॥

भावार्थ:-अत्र श्लेषालङ्कार:। यतोऽयं व्यापक: परमेश्वर: स्वाहत्तेया पूर्वोकृत यज्ञं सर्वत: सततं रक्षति, अत एव स यज्ञो दिव्यगुणप्राप्तिहेतुर्भवित। एवमेव परमेश्वरेण थे। दिव्यगुणसहितोऽग्नी रचितोऽस्ति तस्मादेवायं दिव्यशिल्पविद्यासम्पादकोऽस्ति। यो धार्मिक उद्योगी विद्वान मनुष्योऽस्ति, स एवैतान् गुणान् प्राप्तुमर्हित॥४॥

पदार्थ:-(अग्ने) हे परमेश्वर! आप (विश्वतः) सहीत्र क्याप्त होकर (यम्) जिस (अध्वरम्) हिंसा आदि दोषरहित (यज्ञम्) विद्या आदि पदार्थों के द्वानरूप यज्ञ को (परिभूः) सब प्रकार से पालन करनेवाले हैं, (स इत्) वही यज्ञ (देवेषु) विद्वानों के बीच में (गच्छति) फैलके जगत् को सुख प्राप्त करता है। तथा (अग्ने) जो यह भौतिक अग्नि (विश्वतः) पृथिव्यादि पदार्थों के साथ अनेक दोषों से अलग होकर (यम्) जिस (अध्वरम्) विनाय आदि दोषों से रहित शिल्पविद्यामय यज्ञ को (परिभूः) सब प्रकार से सिद्ध करता है, (स इत्) वही एज्ञ (देवेषु) अच्छे-अच्छे पदार्थों में (गच्छिति) प्राप्त होकर सब को लाभकारी होता है॥४॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में श्र्वेषालङ्कार है। जिस कारण व्यापक परमेश्वर अपनी सत्ता से उक्त यज्ञ की निरन्तर रक्षा करता है, इसीस वह अच्छे अच्छे गुणों को देने का हेतु होता है। इसी प्रकार ईश्वर ने दिव्य गुणयुक्त अग्नि भी रूचा है कि जो उत्तम शिल्पविद्या का उत्पन्न करने वाला है। उन गुणों को केवल धार्मिक उद्योगी और विद्वान मनुष्य ही प्राप्त होने के योग्य होता है॥४॥

पुनस्तौ कीदृशौ स्त इत्युपदिश्यते।

फिर्फ़ भी पूरमेश्वर और भौतिक अग्नि किस प्रकार के हैं, सो अगले मन्त्र में उपदेश किया है-

अस्निहीं कविक्रतः सत्यश्चित्रश्रवस्तमः।

द्वेवो देवेभिरा गंमत्॥५॥१॥

अस्तिः। होतां। कुविऽक्रेतुः। सुत्यः। चित्रश्रेवःऽतमः। देवः। देवेभिः। आ। गुमुत्॥५॥

मण्डल-१। अनुवाक-१। सूक्त-१

पदार्थ:-(अग्निः) परमेश्वरो भौतिको वा (होता) दाता ग्रहीता द्योतको वा (कविक्रतुः) कविः सर्वज्ञः क्रान्तदर्शनो वा। करोति यो येन वा स क्रतुः, कविश्चासौ क्रतुश्च सः। कविः क्रान्तदर्शनो भवित कवतेवी। (निरु०१२.१३) यः सर्वविद्यायुक्तं वेदशास्त्रं कवते उपदिशति स कविरीश्वर् क्रान्तदर्शनं यस्मात्स सर्वज्ञो भौतिको वा क्रान्तदर्शनः। कृञः कतुः (उणा०१.७६) अनेन कृञो हेतुकत्ति कर्त्तरि वा कतु प्रत्ययः। (सत्यः) सन्तीति सन्तः, सद्भ्यो हितः तत्र साधुर्वा। सत्यं कस्मार्द्भत्सु तायते भत्रभवं भवतीति वा। (निरु०३.१३) (चित्रश्रवस्तमः) चित्रमद्भुतं श्रवः श्रवणं यस्त्र्य सोऽतिशयितः (देवः) स्वप्रकाशः प्रकाशकरो वा (देवेभिः) विद्वद्भिर्दिव्यगुणैः सह वा (आ) समन्तात् (गमत्) गच्छतु प्राप्तो भवित वा। लुङ्ग्रयोगोऽडभावश्च॥५॥

अन्वय:-यः सत्यश्चित्रश्रवस्तमः कविक्रतुः होता देवोऽस्निः परमेश्वर भौतिकश्चास्ति, स देवेभिः सहागमत्॥५॥

भावार्थ:-अत्र श्लेषालङ्कार:। अग्निशब्देन परमेश्वरस्य सूर्वाधारसूर्वज्ञसर्वरचकविनाशरिहतानन्त-शक्तिमत्त्वादिगुणै: सर्वप्रकाशकत्वात्, तथा भौतिकस्याकृष्रणगुणादिभिर्मूर्त्तद्रव्याधारकत्वाच्च ग्रहणमस्तीति।

सायणाचार्य्येण गमदिति लोडन्तं व्याख्यातम्, तदेतदस्य भ्रान्तमूलमेव। कुतः? गमदित्यत्र 'छन्दिस लुङ् लङ्गिटः' इति सामान्यकालविधार्यकस्य सूत्रस्य विद्यमानत्वात्॥५॥

इति प्रथमी वर्गः समाप्तः॥

पदार्थान्वयभाषा-जो (सत्यः) अविनासी (देवः) आप से आप प्रकाशमान (कविक्रतुः) सर्वज्ञ है, जिसने परमाणु आदि पदार्थ और इसके उत्तम उत्तम गुण रचके दिखलाये हैं, जो सब विद्यायुक्त वेद का उपदेश करता है, और जिससे परमाणु आदि पदार्थों करके सृष्टि के उत्तम पदार्थों का दर्शन होता है, वहीं किव अर्थात् सर्वज्ञ ईश्वर हैं। तथा भौतिक अग्नि भी स्थूल और सूक्ष्म पदार्थों से कलायुक्त होकर देशदेशान्तर में गमन करानेविला दिखलाया है। (चित्रश्रवस्तमः) जिसका अति आश्चर्यरूपी श्रवण है, वह परमेश्वर (देवेभिः) विद्वामों के साथ समागम करने से (आगमत्) प्राप्त होता है। तथा जो (सत्यः) श्रेष्ठ विद्वानों का हित अर्थात् उनके लिये सुखरूप (देवः) उत्तम गुणों का प्रकाश करनेवाला (कविक्रतुः) सब जगत् को जाने और त्यनेहारा परमात्मा और जो भौतिक अग्नि सब पृथिवी आदि पदार्थों के साथ व्यापक और शिल्पविद्या का मुख्य हेतु (चित्रश्रवस्तमः) जिसको अद्भुत अर्थात् अति आश्चर्यरूप सुनते हैं, वह दिख्य गुणों के साथ (आगमत्) जाना जाता है॥५॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। सब का आधार, सर्वज्ञ, सब का रचनेवाला, विनाशरहित, अनन्त शक्तिमान् और सब का प्रकाशक आदि गुण हेतुओं के पाये जाने से अग्नि शब्द करके परमेश्वर, और आकर्षणादि गुणों से मूर्त्तिमान् पदार्थों का धारण करनेहारादि गुणों के होने से भौतिक अग्नि का भी

ग्रहण होता है। सिवाय इसके मनुष्यों को यह भी जानना उचित है कि विद्वानों के समागम और संसारी पदार्थों को उनके गुणसहित विचारने से परम दयालु परमेश्वर अनन्त सुखदाता और भौतिक अग्नि शिल्पविद्या का सिद्ध करनेवाला होता है।

सायणाचार्य्य ने 'गमत' इस प्रयोग को लोट् लकार का माना है, सो यह उनका व्याख्यान अशुद्ध है, क्योंकि इस प्रयोग में (छन्दिस लुङ्०) यह सामान्यकाल बतानेवाला सुत्र वर्तमान है।।५॥

वह पहला वर्ग समाप्त हुआ॥

अथैक: परमार्थ उपदिश्यते।

अब अग्नि शब्द से ईश्वर का उपदेश अगले मन्त्र में किया है

युदङ्ग दाशुषे त्वमग्ने भुद्रं केरिष्यसि।

तवेत्तत्सृत्यमंङ्गिरः॥६॥

२०

यत्। अङ्गा दाशुषे। त्वम्। अग्ने। भुद्रम्। कुरिष्यिसं। तवं। इत्। तत्। सूर्व्यम्। अङ्गिरः॥६॥

पदार्थ:-(यत्) यस्मात् (अङ्ग) सर्वमित्र (दाशुषे) सर्वस्वे दुर्त्वते (त्वम्) मङ्गलमयः (अग्ने) परमेश्वर (भद्रम्) कल्याणं सर्वैः शिष्टैर्विद्वद्भिः सेक्मीयम् भद्रं भगेन व्याख्यातं भजनीयं भूतानामभिद्रवयतीति वा भाजनवद्वा। (निरु०४.१०) (करिष्यम्) करोषि। अत्र वा छन्दिस सर्वे विधयो भवन्ति इति लड्थें लृट्। (तव इत्) एव (तत्) तस्मात् (सत्यम्) सत्सु पदार्थेषु सुखस्य विस्तारकं सत्प्रभवं सद्भिग्णेरुत्पन्नम् (अङ्गिरः) पृथिव्याद्यीनां अद्वाण्डस्याङ्गानां प्राणरूपेण शरीरावयवानां चान्तर्य्यामिरूपेण रसरूपोऽङ्गिरास्तत्सम्बुद्धाः प्राणो का अङ्गिराः। (श०ब्रा०६.३.७.३) देहेऽङ्गारेष्वङ्गिरा अङ्गारा अङ्गना अञ्चनाः। (निरु०३.१५) अत्राप्युत्तीमानामङ्गानां मध्येऽन्तर्यामी प्राणाख्योऽर्थो गृहाते॥६॥

अन्वय:-हे अङ्गिरोऽअङ्गामो! त्वं यस्मात् दाशुषे भद्रं करिष्यसि करोषि, तस्मात्तवेत्तवैवेदं सत्यं व्रतमस्ति॥६॥

भावार्थ:-यो न्यायकारी सर्वस्य सुहत्सन् दयालुः कल्याणकर्ता सर्वस्य सुखिमच्छुः परमेश्वरोऽस्ति, तस्योपसिने जीव ऐहिक पारमार्थिकं सुखं प्राप्नोति, नेतरस्य। कुतः, परमेश्वरस्यैवैतच्छीलवत्त्वेन सप्र्यत्वात्। योऽभिव्याप्याङ्गान्यङ्गीव सर्वं विश्वं धारयित, येनैवेदं जगद्रक्षितं यथावदवस्थापितं स्र सोऽङ्गिरा भवतीति।

अत्रार्द्धिरःशब्दार्थो विलसनाख्येन भ्रान्त्यान्यथैव व्याख्यात इति बोध्यम्॥६॥

पदार्थ: है (अड्गिर:) ब्रह्माण्ड के अङ्ग पृथिवी आदि पदार्थों को प्राणरूप और शरीर के अङ्गों को अन्तर्यामीरूप से रसरूप होकर रक्षा करनेवाले होने से यहां 'अड्गिर:' (प्राण) शब्द से ईश्वर लिया है। अङ्गों है सब के मित्र (अग्ने) परमेश्वर! (यत्) जिस हेतु से आप (दाशुषे) निर्लोभता से उत्तम-

मण्डल-१। अनुवाक-१। सूक्त-१

उत्तम पदार्थों के दान करनेवाले मनुष्य के लिये (भद्रम्) कल्याण, जो कि शिष्ट विद्वानों के योग्य है, उसको (करिष्यसि) करते हैं, सो यह (तवेत्) आप ही का (सत्यम्) सत्य (व्रतम्) शील है।।

भावार्थ:-जो न्याय, दया, कल्याण और सब का मित्रभाव करनेवाला परमेश्वर है, इसी की उपासना करके जीव इस लोक और मोक्ष के सुख को प्राप्त होता है, क्योंकि इस प्रकार सुख देने का स्वभाव और सामर्थ्य केवल परमेश्वर का है, दूसरे का नहीं। जैसे शरीरधारी अपने श्रीर को धारण करता है, वैसे ही परमेश्वर सब संसार को धारण करता है, और इसी से यह संसार की ख्यावत् ख्या और स्थिति होती है॥६॥

तद् ब्रह्म कथमुपास्यं प्राप्तव्यमित्युपिदश्यते।

उक्त परमेश्वर कैसे उपासना करके प्राप्त होने के योग्य है, इसक्रे विधान असले मन्त्र में किया

है॥

उपं त्वाग्ने द्विवेदिवे दोषांवस्तर्धिया वयम्। नमो भर्रन्त एमंसि॥७॥

उप। त्वा। अग्ने। द्विवेऽदिवे। दोषांऽवस्तः। धिया व्यम् नर्मः। भरन्तः। आ। इमुसि॥७॥

पदार्थ:-(उप) सामीप्ये (त्वा) त्वाम् (अस्ते) संवीपास्येश्वर (दिवेदिवे) विज्ञानस्य प्रकाशाय प्रकाशाय (दोषावस्तः) अहर्निशम्। दोषेति गृतिनाममु प्रिटतम्। (निघं०१.७) रात्रेः प्रसङ्गाद्वस्त इति दिननामात्र ग्राह्मम्। (धिया) प्रज्ञया कर्मणा वा (वयम्) उपासकाः (नमः) नम्रीभावे (भरन्तः) धारयन्तः (आ) समन्तात् (इमिस) प्राप्नुमः॥७॥

अन्वय:-हे अग्ने! वयं धिया दिवेदिवं दोषावस्तस्त्वा त्वां भरन्तो नमस्कुर्वन्तश्चोपैमसि प्राप्नुम:॥७॥

भावार्थ:-हे सर्वद्रष्ट्र सर्वव्यापिन्नुप्रमानाई! वयं सर्वकर्मानुष्ठानेषु प्रतिक्षणं त्वां यतो नैव विस्मरामः, तस्मादस्माक्रम्धर्ममनुष्ठातुमिच्छा कदाचिन्नैव भवति। कुतः? सर्वज्ञः सर्वसाक्षी भवान्सर्वाण्यस्मत्कार्य्याणि सर्वथा पश्यतीति ज्ञानात्॥७॥

पदार्थान्व्यभाषा:-(अर्ग) हे सब के उपासना करने योग्य परमेश्वर! हम लोग (दिवेदिवे) अनेक प्रकार के विज्ञान होने के लिय (धिया) अपनी बुद्धि और कर्मों से आपकी (भरन्त:) उपासना को धारण और (दोषावस्त:) रात्रिदिन में निरन्तर (नम:) नमस्कार आदि करते हुए (उपैमिस) आपके शरण को प्राप्त होते हैं॥ आ

भावार्थ:-हे सब को देखने और सब में व्याप्त होनेवाले उपासना के योग्य परमेश्वर! हम लोग सुक कामों के करने में एक क्षण भी आपको नहीं भूलते, इसी से हम लोगों को अधर्म करने में कभी

22

इच्छा भी नहीं होती, क्योंकि जो सर्वज्ञ सब का साक्षी परमेश्वर है, वह हमारे सब कामों को देखता है इस निश्चय से॥७॥

पुनः स कीदृशोऽस्तीत्युपदिश्यते।

फिर भी वह परमेश्वर किस प्रकार का है, सो अगले मन्त्र में उपदेश किया है॥

राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीर्दिवम्। वर्धमानं स्वे दमे॥८॥

रार्जन्तम्। अध्वराणाम्। गोपाम्। ऋतस्य। दीर्दिविम्। वर्धमानम्। स्वे। दमे। ८॥

पदार्थ:-(राजन्तम्) प्रकाशमानम् (अध्वराणाम्) पूर्वोक्तानां यज्ञानां ध्रामिकाणां मनुष्याणां वा (गोपाम्) गाः पृथिव्यादीन् पाति रक्षति तम् (ऋतस्य) सत्यस्य सर्विवद्यायुक्तस्य वदचतुष्ट्यस्य सनातनस्य जगत्कारणस्य वा। ऋतिमित सत्यनामसु पिठतम्। (निघं०३.१०) ऋत इति पदनामसु च। (निघं०५.४) (दीदिविम्) सर्वप्रकाशकम्। दिवो द्वे दीर्घश्चाभ्यासस्य। (उणाव्यक्ष्य) अनैन क्विन्प्रत्ययः। (वर्धमानम्) हासरिहतम् (स्वे) स्वकीये (दमे) दाम्यन्त्युपशाम्यन्ति दुःखानि यस्मिस्तिस्मिन् परमानन्दे पदे। दमुधातोः हलश्च। (अष्टा०३.३.१२१) अनेनाधिकरणे घञ्प्रत्ययः॥ ।

अन्वय:-वयं स्वे दमे वर्धमानं राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविं परमेश्वरं नित्यमुपैमिस॥८॥ भावार्थ:-परमात्मा स्वस्य सत्तायामान्द च क्षयाज्ञानरिहतोऽन्तर्यामिरूपेण सर्वान् जीवान्सत्यमुपदिशन्नाप्तान् संसारं च रक्षन् सदेव वर्तते। एतस्योपासका वयमप्यानिन्दिता वृद्धियुक्ता विज्ञानवन्तो भूत्वाऽभ्युदयिन:श्रेयसं प्राप्ता सद्देव वृत्तीमह इति॥८॥

पदार्थान्वयभाषा:-(स्वे) अपूने (दमे उमें परम आनन्द पद में कि जिसमें बड़े-बड़े दु:खों से छूट कर मोक्ष सुख को प्राप्त हुए पुरुष रमण करते हैं, (वर्धमानम्) सब से बड़ा (राजन्तम्) प्रकाशस्वरूप (अध्वराणाम्) पूर्वोक्त यज्ञादक अच्छे-अच्छे कर्म धार्मिक मनुष्य तथा (गोपाम्) पृथिव्यादिकों की रक्षा (ऋतस्य) सत्यविद्यायुक्त चारों वेदों और कार्य जगत् के अनादि कारण के (दीदिवम्) प्रकाश करनेशिले एस्सेश्वर को हम लोग उपासना योग से प्राप्त होते हैं॥८॥

भावार्थ:-जैसे विनाश और अज्ञान आदि दोष रहित परमात्मा अपने अन्तर्यामि रूप से सब जीवों को सत्य का उपदेश तथा श्रेष्ठ विद्वान् और सब जगत् की रक्षा करता हुआ अपनी सत्ता और परम आनन्द में प्रवृत्त हो रहा है, वैसे ही परमेश्वर के उपासक भी आनन्दित, वृद्धियुक्त होकर विज्ञान में विहार करते हुए परम आनन्दरूप विशेष फलों को प्राप्त होते हैं॥८॥

स कान् क इव रक्षतीत्युपदिश्यते।

वह परमेश्वर किस के समान किनकी रक्षा करता है, सो अगले मन्त्र में उपदेश किया है–

मण्डल-१। अनुवाक-१। सूक्त-१

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव। सर्चस्वा नः स्वस्तये॥९॥२॥

सः। नुः। पिताऽइवं। सूनवे। अग्ने। सुऽउुणायुनः। भुव। सर्चस्व। नुः। स्वस्तये॥९॥

पदार्थ:-(स:) जगदीश्वर: (न:) अस्मभ्यम् (पितेव) जनकवत् (सूनवे) स्वसन्तानीय (अग्ने) ज्ञानस्वरूप (सूपायन:) सुष्ठु उपगतमयनं ज्ञानं सुखसाधनं पदार्थप्रापणं यस्मात्सः (भव, स्वस्व) समवेतान् कुरु। अन्येषामपि दृश्यते। (अष्टा०६.३.१३७) इति दीर्घ:। (न:) अस्मान् (स्वस्तये) सुखाय कल्याणाय च॥९॥

अन्वय:-हे अग्ने! स त्वं सूनवे पितेव नोऽस्मभ्यं सूपायने भव पूर्व नोऽस्मान् स्वस्तये सचस्व॥९॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। सर्वेरेवं प्रयत्न: कर्तव्य ईश्वर: प्रोर्थनीयश्च-हे भगवन्! भवानस्मान् रक्षयित्वा शुभेषु गुणकर्मसु सदैव नियोजय। यथा पिता स्वसन्तानान्सम्यक् पालियत्वा सुशिक्ष्य शुभगुणकर्म्मयुक्तान् श्रेष्ठकर्मकृर्तॄश्च सम्पादयित, तथैव भवानाप स्वक्रपयाऽस्मान्निष्पादयित्विति॥९॥

प्रथमसूक्ते पञ्चभिर्मन्त्रैः श्लेषालङ्कारेण व्यवहारपरमार्थविद्याद्वयसाधनं प्रकाशितमेवं चतुर्भिर्मन्त्रैरीश्वरस्योपासना स्वभावश्चास्तीति। हदं सक्ते सायणाचार्य्यादिभिर्यूरोपाख्यदेशनिवासिभि-श्चान्यथैव व्याख्यातम्॥९॥

इति प्रथमं भूवतं समाप्तं वर्गञ्च द्वितीय:॥

पदार्थ:-हे (स:) उक्त गुणयुक्त (अग्ने) ज्ञानस्वरूप परमेश्वर! (पितेव) जैसे पिता (सूनवे) अपने पुत्र के लिये उत्तम ज्ञान का देनैकाला होता है, वैसे ही आप (न:) हम लोगों के लिये (सूपायन:) शोभन ज्ञान, जो कि सब सुखों का साधक और उत्तम पदार्थों का प्राप्त करनेवाला है, उसके देनेवाले होकर (न:) हम लोगों को (स्वार्तये) सब सुख के लिये (सचस्व) संयुक्त कीजिये॥९॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालक्क्षार है। सब मनुष्यों को उत्तम प्रयत्न और ईश्वर की प्रार्थना इस प्रकार से करनी चाहिये कि है भगवन्! जैसे पिता अपने पुत्रों को अच्छी प्रकार पालन करके और उत्तम-उत्तम शिक्षा देकर उनको शुभ गुण और श्रेष्ठ कर्म करने योग्य बना देता है, वैसे ही आप हम लोगों को शुभ गुण्र और शुभ कर्मों में युक्त सदैव कीजिये॥९॥

इस प्रथम सूचत में पहिले पाँच मन्त्रों करके श्लेषालङ्कार से व्यवहार और परमार्थ की विद्याओं का प्रकाश किया, और चारो मन्त्रों से ईश्वर की उपासना और स्वभाव वर्णन किया है।

सायणाचार्स्य आदि और यूरोपदेशवासी डाक्टर विलसन आदि ने इस सूक्त की व्याख्या उलटी की हैं। सो भेरे इस भाष्य और उनकी व्याख्या को मिलाकर देखने से सबको विदित हो जायगा॥

यह पहला सुक्त और दूसरा वर्ग समाप्त हुआ॥

अथ नवर्चस्य द्वितीयसूक्तस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। १-३ वायुः; ४-६ इन्द्रवायुः ७-९ मित्रावरुणौ च देवताः। १, २ पिपीलिकामध्यानिचृद्गायत्री; ३-५, ७-९ गायत्री; ६

निचृद्गायत्री च छन्द:। षड्ज: स्वर:॥

तत्र येन सर्वे पदार्थाः शोभिताः सन्ति सोऽर्थ उपदिश्यते।

अब द्वितीय सूक्त का प्रारम्भ है। उसके प्रथम मन्त्र में उन पदार्थों का वर्णन किया है कि जिन्होंने सब पदार्थ शोभित कर रक्खे हैं-

वायुवा याहि दर्शतेमे सोमा अरंकृताः।

तेषां पाहि श्रुधी हर्वम्॥१॥

वायो इति। आ। याहि। दुर्शतु। इमे। सोमाः। अरंऽकृताः। तेषाम्। याहि। श्रुवि हर्वम्॥ १०॥

पदार्थ:-(वायो) अनन्तबल सर्वप्राणान्तर्यामिन्नीश्वर तथा सर्वपूर्तद्रब्याधीरो जीवनहेतुर्भौतिको वा। प्र वावृजे सुप्रया बहिरेषामा विश्वपतीव बीरिट इयाते। विशामिक्तोरुषसः पूर्वहूंतौ वायुः पूषा स्वस्तये नियुत्वान्॥ (यज्०३३.४४) अस्योपिर निरुक्तव्याख्यानग्रेत्वेश्वरभौतिकौ पृष्टिकर्त्तारौ नियन्तारौ द्वावर्थौ वायुशब्देन गृह्येते। तद्यथा-

अथातो मध्यस्थाना देवतास्तासां वायुः प्रथमागामी भवित वायुर्वोतेर्वेत्तर्वा स्याद्गतिकर्मण एतेरिति स्थौलाष्ठीविरनर्थको वकारस्तस्यैषा भवित। (वायवा याहि॰) वायवा याहि दर्भनीयेमे सोम्प्र अरंकृता अलंकृतास्तेषां पिब शृणु नो ह्वानिमिति। (निरु०१०.१-२)

अन्तरिक्षमध्ये ये पदार्थाः सिन् तैषां मध्यं वायुः प्रथमागाम्यस्ति। वाति सोऽयं वायुः सर्वगत्वादीश्वरो गितमत्त्वाद्भौतिकोऽपि गृह्यते विन सर्वं जगत्स वायुः परमेश्वरोऽस्ति, तस्य सर्वज्ञत्वात्। मनुष्यो येन वायुना तित्रयमेन प्राणामामेन वा परमेश्वरं शिल्पविद्यामयं यज्ञं वा वेत्ति जानातीत्यर्थेन भौतिको वायुर्गृह्यते। एवमेवैति प्राप्नोति चराचरं जगदित्यर्थेन परमेश्वरस्यैव ग्रहणम्। तथा एति प्राप्नोति सर्वेषां लोकानां परिधीनित्यर्थेन भौतिकस्यापि। कुतः? अन्तर्यामिरूपेणेश्वरस्य मध्यस्थत्वात्प्राणवायुरूपेण भौतिकस्यापि। मध्यस्थत्व्रदिद्ध द्वयार्थस्य वाचिका वायवा याहीत्युक् प्रवृत्तास्तीति विज्ञेयम्।

वायु: सोमस्य रिक्ता वायुमस्य रिक्षतारमाह साहचर्य्याद्रसहरणाद्वा। (निरु०११.५) वायु: सोमस्य सुतस्योत्प्रज्ञस्यास्य जगतो रक्षकत्वादीश्वरोऽत्र गृह्यते। कस्मात्सर्वेण जगता सह साहचर्य्येण व्याप्तत्वात्। स्रोस्वत्स्यादेरोषधिगणस्य रसहरणात्तथा समुद्रादेर्जलग्रहणाच्च भौतिको वायुरप्यत्र गृह्यते।

वार्युर्वा अस्तिः सुषिमद्वायुर्हि स्वयमात्मानं सिमश्चे स्वयमिदं सर्व यदिदं किंच वायुमेव तदन्तरिक्षलोक आयातयित वायुर्वे प्रण्रीर्पज्ञानाम्। वायुर्वे तूर्णिर्हव्यावड् वायुर्हीदं सर्व सद्यस्तरित यदिदं किंच वायुर्देवेभ्यो हव्यं वहति। (ऐ०२.३४)

विषुभौतिकोऽग्निदीपनस्य सुषिमिदिति ग्राह्यः। वायुसंज्ञोऽहमीश्वरः स्वयमात्मानं यदिदं क्रिंचिञ्जादृत्तीते तदिदं सर्वं स्वयं सिमन्धे प्रकाशयामि। तथा स एवान्तरिक्षलोके भौतिकिममं

मण्डल-१। अनुवाक-१। सूक्त-२

वायुमायातयित विस्तारयित स एव वायुर्भौतिको वा यज्ञानां प्रापकोऽस्तीत्यत्र वायुशब्देनेश्वरश्च। तथा वायुर्वै तूर्णिरित्यादिना भौतिको गृह्यत इति।

(आयाहि) आगच्छागच्छित वा। अत्र पक्षे व्यत्ययः। (दर्शत) ज्ञानदृष्ट्या द्रष्टुं ख्रीप्य येण्यि वा (इमे) प्रत्यक्षाः (सोमाः) सूयन्त उत्पद्यन्ते ये ते पदार्थाः (अरंकृताः) अलंकृता भूषिलाः। सञ्चाछन्दसोर्वा किपिलकादीनामिति वक्तव्यम्। (अष्टा०८.२.१८) इति लत्विवकल्पः। (तेषाम्) व्यस्पदार्थान्। षष्ट्री शेषे। (अष्टा०२.३.५०) इति शेषत्विविवक्षायां षष्टी। (पाहि) रक्षयित वा। (श्रुधि) श्रायवित वा। अत्र बहुलं छन्दिस। (अष्टा०२.४.७३) इति विकरणाभावः। श्रुशृणुपृकृवृभ्यश्छन्दिस। (अष्टा०६.४.१०२) अनेन हेधिः। (हवम्)॥१॥

अन्वय:-हे दर्शत वायो जगदीश्वर! त्वमायाहि येन त्वयेमे स्रोमा अरंकृता अलंकृताः सन्ति तेषां तान् पदार्थान् पाहि अस्माकं हवं श्रुधि योऽयं दर्शत द्रष्टुं योग्यो येनेमे सोमा अरंकृता अलंकृताः सन्ति, स तेषां तान् सर्वानिमान् पदार्थान् पाहि पाति श्रुधि हवं स एव विश्वो वायुः सर्वं शब्दव्यवहारं श्रावयित। आयाहि सर्वान् पदार्थान् स्वगत्या प्राप्नोति॥१॥

भावार्थ:-अत्र श्लेषालङ्कारेणेश्वरभौतिकावर्थौ गृह्येते। ब्रिह्मण स्वसामर्थ्येन सर्वे पदार्थाः सृष्ट्वा नित्यं भूष्यन्ते तथा तदुत्पादितेन वायुना च। नैव तद्भारणेन बिना कस्यापि रक्षणं सम्भवति। प्रेम्णा जीवेन प्रयुक्तां स्तुतिं वाणीं चेश्वरः सर्वगतः प्रतिक्षणं शृणोति। वथा जीवो वायुनिमित्तेनैव शब्दानामुच्चारणां श्रवणं च कर्त्तुं शक्नोतीति॥१॥

पदार्थान्वयभाषा-(दर्शत) हे ज्ञान से देखने थाग्य (वायो) अनन्त बलयुक्त, सब के प्राणरूप अन्तर्यामी परमेश्वर! आप हमारे हृदय में (अपन्ह) प्रकाशित हूजिये। कैसे आप हैं कि जिन्होंने (इमे) इन प्रत्यक्ष (सोमा:) संसारी पदार्शों को (अरंकृता:) अलंकृत अर्थात् सुशोभित कर रक्खा है। (तेषाम्) आप ही उन पदार्थों के रक्षक हैं, इससे उनकी (पाहि) रक्षा भी कीजिये, और (हवम्) हमारी स्तुति को (शुधि) सुनिये। तथा (दर्शत) स्पर्शादि गुणों से देखने योग्य (वायो) सब मूर्तिमान् पदार्थों का आधार और प्राणियों के जीवन का के भौतिक वायु (आयाहि) सब को प्राप्त होता है, फिर जिस भौतिक वायु ने (इमे) प्रत्यक्ष (सोमा:) संसार के पदार्थों को (अरंकृता:) शोभायमान किया है, वही (तेषाम्) उन पदार्थों की (पाहि) रक्षा का केतु है और (हवम्) जिससे सब प्राणी लोग कहने और सुनने रूप व्यवहार को (शुधि) कृति सुनते हैं।

अपि ईश्वर और भौतिक वायु के पक्ष में प्रमाण दिखलाते हैं-(प्रवावृजे०) इस प्रमाण में वायु शब्द से परमेश्वर और भौतिक वायु पुष्टिकारी और जीवों को यथायोग्य कामों में पहुँचाने वाले गुणों से ग्रहण किये परे हैं। (अथातो०) जो-जो पदार्थ अन्तरिक्ष में हैं, उनमें प्रथमागामी वायु अर्थात् उन पदार्थों में रमण करनेवाला कहाता है, तथा सब जगत् को जानने से वायु शब्द करके परमेश्वर का ग्रहण होता

है। तथा मनुष्य लोग वायु से प्राणायाम करके और उनके गुणों के ज्ञान द्वारा परमेश्वर और शिल्पविद्यामय यज्ञ को जान सकता है। इस अर्थ से वायु शब्द करके ईश्वर और भौतिक का ग्रहण होता है। अथवा जो चराचर जगत् में व्याप्त हो रहा है, इस अर्थ से वायु शब्द करके परमेश्वर का तथा जो सक लोकों को परिधिरूप से घेर रहा है, इस अर्थ से भौतिक का ग्रहण होता है, क्योंकि परमेश्वर अन्तर्भामिरूप और भौतिक प्राणरूप से संसार में रहनेवाले हैं। इन्हीं दो अर्थों की कहने वाली वेद की (वायबायाहि॰) यह ऋचा जाननी चाहिये।

इसी प्रकार से इस ऋचा का (वायवा याहि दर्शनीये०) इत्यादि व्याख्यान निरुक्तकार ने भी किया है, सो संस्कृत में देख लेना। वहां भी वायु शब्द से परमेश्वर और भौतिक इन दोनों का ग्रहण है। जैसे-(वायु: सोमस्य०) वायु अर्थात् परमेश्वर उत्पन्न हुए जगत् की रक्षा करनेवाला और उसमें व्याप्त होकर उसके अंश-अंश के साथ भर रहा है। इस अर्थ से ईश्वर का लथा सोमकल्ली आदि ओषधियों के रस हरने और समुद्रादिकों के जल को ग्रहण करने से भौतिक ब्रायु का ग्रहण जानना चाहिये। (वायुर्वा अ०) इत्यादि वाक्यों में वायु को अग्नि के अर्थ में भी लिया है। परमेश्वर का उपदेश है कि मैं वायुरूप होकर इस जगत् को आप ही प्रकाश करता हूं, तथा मैं ही अत्तरिक्ष लोक में भौतिक वायु को अग्नि के तुल्य परिपूर्ण और यज्ञादिकों को वायुमण्डल में पहुँचाने वाला हो। है।

भावार्थ:-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जैसे परमेश्वर के सामर्थ्य से रचे हुए पदार्थ नित्य ही सुशोभित होते हैं, वैसे ही जो ईश्वर का रचा हुआ भौतिक बायु है, उसकी धारणा से भी सब पदार्थों की रक्षा और शोभा तथा जैसे जीव की प्रेमभिक्त से की हुई स्तुति को सर्वगत ईश्वर प्रतिक्षण सुनता है, वैसे ही भौतिक वायु के निमित्त से भी जीव शब्दों के उच्चारण और श्रवण करने को समर्थ होता है॥१॥

कश्मेतौ स्तानव्यावित्यपदिश्यते।

उक्त परमेश्वर और भौतिक वायु किस प्रकार स्तुति करने योग्य हैं, सो अगले मन्त्र में उपदेश किया है-

वार्य उक्थेभिर्जस्ते त्वामच्छा जरितारः।

सुतसीमा अह्विद्र ॥ भा

वायो इत्रिं। उक्थेभिः। जुर्ने। त्वाम्। अच्छं। जुरितारः। सुतऽसोमाः। अहुऽर्विदंः॥२॥

पदार्थ्य: (वास्रो) अनन्तबलेश्वर! (उक्थेभि:) स्तोत्रै:। अत्र बहुलं छन्दसीति भिसः स्थान ऐसभावः। (जरनी स्तुवन्ति। जरा स्तुतिर्जरतेः स्तुतिकर्मणः। (निरु०१०.८) जरत इत्यर्चितिकर्मा। (निघं०३/१४) (त्वाम्) भवन्तम् (अच्छ) साक्षात्। निपातस्य च। (अष्टा०६.३.१३६) इति दीर्घः। (जर्रितारः) स्तोतारोऽर्चकाश्च (सुतसोमाः) सुता उत्पादिताः सोमा ओषध्यादिरसा विद्यार्थं यैस्ते (अहर्विद्यः) य अहर्विज्ञानप्रकाशं विन्दन्ति प्राप्नुवन्ति ते।

मण्डल-१। अनुवाक-१। सूक्त-२

भौतिकवायुग्रहणे ख्ल्वयं विशेष:-(वायो) गमनशीलो विमानादिशिल्पविद्यानिमित्तः पवनः (जिरतारः) स्तोतारोऽर्थाद् वायुगुणस्तावका भवन्ति यतस्तद्विद्याप्रकाशितगुणफला सती सर्वीष्रकाराय स्यात्॥२॥

अन्वय:-हे वायो! अहर्विद: सुतसोमा जरितारो विद्वांस उक्थेभिस्त्वामच्छा जर्रन्ते॥२)

भावार्थ:-अत्र श्लेषालङ्कारः। अनेन मन्त्रेण वेदादिस्थैः स्तुतिसाधनैः स्तोत्रैः परमार्थव्यवहारविद्यासिद्धये वायुशब्देन परमेश्वर भौतिकयोर्गुणप्रकाशेनोभे विश्व साक्षात्कर्त्तव्य इति। अत्रोभयार्थग्रहणे प्रथममन्त्रोक्तानि प्रमाणानि ग्राह्याणि॥२॥

पदार्थ:-(वायो) हे अनन्त बलवान् ईश्वर! जो-जो (अहर्विदः) बिज्ञास्तिषु प्रकाश को प्राप्त होने (सुतसोमा:) ओषधि आदि पदार्थों के रस को उत्पन्न करने (जिरतारः) स्तृति और सत्कार के करनेवाले विद्वान् लोग हैं, वे (उक्थेभि:) वेदोक्त स्तोत्रों से (त्वाम्) अपिको (अच्छ) साक्षात् करने के लिये (जरन्ते) स्तृति करते हैं॥२॥

भावार्थ:-यहां श्लेषालङ्कार है। इस मन्त्र से जो विद्यादि शास्त्रों में कहे हुए स्तुतियों के निमित्त स्तोत्र हैं, उनसे व्यवहार और परमार्थ विद्या की सिद्धि के लिए प्रमिश्वर और भौतिक वायु के गुणों का प्रकाश किया गया है।

इस मन्त्र में वायु शब्द से परमेश्वर और भौतिक बायु के ग्रहण करने के लिये पहिले मन्त्र में कहे हुए प्रमाण ग्रहण करने चाहियें॥२॥

अथ तेषामुक्यानां श्रिवणोट्ट्यारणनिमित्तमुपदिश्यते।

पूर्वीक्त स्तोत्रों का जो श्रवण और उच्चाएण का निमित्त है, उसका प्रकाश अगले मन्त्र में किया

वायो तर्व प्रपृञ्चती वेपी जिगाति द्रोशुषे।

उक्तची सोमपीत्रया ३॥

वायो इति। तर्व। प्रेऽपूञ्चेती। धेना। जिगाति। दाशुषे। उरूची। सोमंऽपीतये॥३॥

पदार्थ: (वायो) वेदवाणीप्रकाशकेश्वर! (तव) जगदीश्वरस्य (प्रपृञ्जती) प्रकृष्टा चासौ पृञ्जती चार्थसम्बन्धेन (सकल्विद्यासम्पर्ककारियत्री (धेना) वेदचतुष्ट्यी वाक्। धेनेति वाङ्नामसु पठितम्। (निघं०१.११) (जिगाति) प्राप्नोति। जिगातीति गतिकर्मसु पठितम्। (निघं०२.१४) तस्मात्प्राप्त्यर्थो गृह्यते। (दाशुषे) निष्कपटेन विद्यां दात्रे पुरुषार्थिने मनुष्याय (उरूची) बह्वीनां पदार्थविद्यानां ज्ञापिका। उर्विति बहुनामसु पठितम्। (निघं०३.१) (सोमपीतये) सूयन्ते ये पदार्थास्तेषां पीतिः पानं यस्य तस्मै विद्षे मनुष्याय। अत्र सह सुपेति समासः।

२८

भौतिकपक्षे त्वयं विशेष:-(वायो) पवनस्य योगेनैव (तव) अस्य (प्रपृञ्जती) शब्दोच्चारणसाधिका (धेना) वाणी (दाशुषे) शब्दोच्चारणकर्त्रे (उरूची) बहुर्थज्ञापिका। अन्यत्पूर्ववत्॥३॥

अन्वय:-हे वायो परमेश्वर! भवत्कृपया या तव प्रपृञ्चत्युरूची धेना सा सोमपीतर्व दाशुषे विदुषे जिगाति। तथा तवास्य वायो प्राणस्य प्रपृञ्चत्युरूची धेना सोमपीतये दाशुषे जीवाय जिग्नाति॥३॥

भावार्थ:-अत्रापि श्लेषालङ्कार:। द्वितीयमन्त्रे यया वेदवाण्या परमेश्वरभौतिकयोर्गुण: प्रकाशितास्तस्या: फलप्राप्ती अस्मिन्मन्त्रे प्रकाशिते स्त:। अर्थात्प्रथमार्थे वेदविद्या द्वितीय वक्तॄणा जीवानां वाङ्निमित्तं च प्रकाश्यत इति॥३॥

पदार्थ:-(वायो) हे वेदविद्या के प्रकाश करनेवाले परमेश्नर कि आपकी (प्रपृञ्जती) सब विद्याओं के सम्बन्ध से विज्ञान का प्रकाश कराने, और (उरूची) अनेक विद्याओं के प्रयोजनों को प्राप्त करानेहारी (धेना) चार वेदों की वाणी है, सो (सोमपीतये) जानने योग्य संसारी पदार्थों के निरन्तर विचार करने, तथा (दाशुषे) निष्कपट से प्रीत के साथ विद्या देनेवाले पुरुषार्थी बिद्वान् को (जिगाति) प्राप्त होती है।

दूसरा अर्थ-(वायो तव) इस भौतिक वायु के योग से जे (प्रपृञ्जती) शब्दोच्चारण श्रवण कराने और (उरूची) अनेक पदार्थों की जाननेवाली (धेना) वाणी है सो (सोमपीतये) संसारी पदार्थों के पान करने योग्य रस को पीने वा (दाशुषे) शब्दोच्चारण श्रवण करनेवाले पुरुषार्थी विद्वान् को (जिगाति) प्राप्त होती है॥३॥

भावार्थ:-यहां भी श्लेषालङ्कार हैं। दूसरे मन्त्र में जिस वेदवाणी से परमेश्वर और भौतिक वायु के गुण प्रकाश किये हैं, उसका फल और प्राप्ति इस मन्त्र में प्रकाशित की है अर्थात् प्रथम अर्थ से वेदविद्या और दूसरे से जीवों की वाणी का फल और उसकी प्राप्ति का निमित्त प्रकाश किया है॥३॥

अर्थाविश्वप्रकाशितपद्मेर्थानां वृद्धिरक्षणनिमित्तमुपदिश्यते।

अब जो स्तोत्रों से प्रकाशित पदार्थ हैं, उनकी वृद्धि और रक्षा के निमित्त का अगले मन्त्र में उपदेश किया है-

इन्द्रवायू इमे सुता उप प्रयोभिरा गंतम्।

इन्देको वामुशन्ति हि॥४॥

इन्द्रेबायू इति। इमे। सुता:। उप। प्रयं:ऽभि:। आ। गृतुम्। इन्द्रेव:। वाुम्। उ्शन्ति। हि॥४॥

पदार्थ:-(इन्द्रवायू) इमौ प्रत्यक्षौ सूर्य्यपवनौ। इन्द्रेण रोचना दिवो दृह्ळानि दृंहितानि च। स्थिपाए के पराणुदे॥(ऋ०८.१४.९) यथेन्द्रेण सूर्य्यलोकेन प्रकाशमानाः किरणा धृताः, एवं च

मण्डल-१। अनुवाक-१। सूक्त-२

स्वाकर्षणशक्त्या पृथिव्यादीनि भूतानि दृढानि पृष्टानि स्थिराणि कृत्वा दृंहितानि धारितानि सन्ति। **न पराणुदे** अतो नैव स्वस्वकक्षां विहायेतस्ततो भ्रमणाय समर्थानि भवन्ति।

ड्रमे चिदिन्द्र रोदंसी अणारे यत्संगृष्णा मेघवन् काशिरिते। (ऋ०३.३०.५) इमे चिदिन्द्र सेर्ट्सी रोधसी द्यावापृथिव्यौ विरोधनाद्रोधः (कूलं निरुणद्धि स्रोतः कूलं) रुजतेर्विपरीताल्लोखेऽविषर्ययेणापारे दूरपारे यत्संगृष्णासि मघवन् काशिस्ते महान्। अहस्तिमन्द्र संपिण्वकुणाद्भे। (ऋ०३.३०.८) अहस्तिमन्द्र कृत्वा संपिण्ढ परिक्वणनं मेघम्। (निरु०६.१)

यतोऽयं सूर्य्यलोको भूमिप्रकाशौ धारितवानस्ति, अत एव पृथिव्याद्वीनां निरोधं कुर्वन् पृथिव्यां मेघस्य च कूलं स्रोतश्चाकर्षणेन निरुणद्धि। यथा बाहुवेगेनाकाशे प्रतिक्षितो लोष्ठो मृत्तिकाखण्डः पुनर्विपर्य्ययेणाकर्षणाद् भूमिमेवागच्छति, एवं दूरे स्थितानिप पृथिव्यादिलोकान् सूर्य्य एव धारयति। सोऽयं सूर्य्यस्य महानाकर्षः प्रकाशश्चास्ति। तथा वृष्टिनिमित्तोऽप्ययमेकस्ति। इन्द्री वै त्वष्टा। (ऐ०६.१०) सूर्य्यो भूम्यादिस्थस्य रसस्य मेघस्य च छेत्तास्ति। एतानि भौतिकवायुद्धिषयाणि 'वायवायाहि॰' इति मन्त्रप्रोक्तानि प्रमाणान्यत्रापि ग्राह्याणि।

(इमे सुता:) प्रत्यक्षभूताः पदार्थाः (उप) समीपम् (प्रयोभिः) तृप्तिकरैरत्रादिभिः पदार्थैः सह। प्रीञ् तर्पणे कान्तौ चेत्यस्मादौणादिकोऽसुन् प्रत्ययः (आगतप्) आगच्छतः। लोट्मध्यमद्विवचनम्। बहुलं छन्दसीति शपो लुक्। अनुदात्तोपदेशेत्यनुनासिक्लीषः। (इन्दवः) जलानि क्रियामया यज्ञाः प्राप्तव्या भोगाश्च। इन्दुरित्युदकनामसु पठितम्। (निघं०१.९२) यज्ञनामसु। (निघं०३.१७) पदनामसु च। (निघं०५.४) (वाम्) तौ (उशन्ति) प्रकाशति (हि) यतः॥४॥

अन्वय:-इमे सुता इन्द्रक्ने हि यती वान्तौ सहचारिणाविन्द्रवायू प्रकाशन्ते तौ चोपागतमुपागच्छतस्ततः प्रयोभिरक्नदिभिः पदार्थैः सह सर्वे प्राणिनः सुखान्युशन्ति कामयन्ते॥४॥

भावार्थ:-अस्मिन्मन्त्रे प्राच्यिप्रापकपदार्श्वानां प्रकाशः कृत इति॥४॥

पदार्थ:-(इमे सुता:) जैसे प्रत्यक्ष जलक्रियामय यज्ञ और प्राप्त होने योग्य भोग (इन्द्रवायू) सूर्य्य और पवन के योग से प्रकाशित होते हैं। यहां 'इन्द्र' शब्द के लिये ऋग्वेद के मन्त्र का प्रमाण दिखलाते हैं-(इन्द्रेण॰) सूर्य्यलोक ने अपनी प्रकाशमान किरण तथा पृथिवी आदि लोक अपने आकर्षण अर्थात् पदार्थ खैचरे के सीमर्थ्य से पृष्टता के साथ स्थिर करके धारण किये हैं कि जिससे वे 'न पराणुदे' अपूर्व-अपने भ्रमणचक्र अर्थात् घूमने के मार्ग को छोड़कर इधर-उधर हटके नहीं जा सकते हैं।

(इमे चिदिन्द्र०) सूर्य्य लोक भूमि आदि लोकों को प्रकाश के धारण करने के हेतु से उनका रोक्ननवाला है अर्थात् वह अपनी खैंचने की शक्ति से पृथिवी के किनारे और मेघ के जल के स्रोत को

रोक रहा है। जैसे आकाश के बीच में फेंका हुआ मिट्टी का डेला पृथिवी की आकर्षण शक्ति से पृथिवी ही पर लौटकर आ पड़ता है, इसी प्रकार दूर भी ठहरे हुए पृथिवी आदि लोकों को सूर्व्य ही ने आकर्षण शक्ति की खैंच से धारण कर रक्खे हैं। इससे यही सूर्व्य बड़ा भारी आकर्षण प्रकाश और क्या की निमत्त है। (इन्द्र:०) यही सूर्व्य भूमि आदि लोकों में ठहरे हुए रस और मेघ को भेदन करनेवाला है। भौतिक वायु के विषय में 'वायवा याहि०' इस मन्त्र की व्याख्या में जो प्रमाण करें हैं, से यहां भी जानना चाहिये।

अथवा जिस प्रकार सूर्य्य और पवन संसार के पदार्थों को प्राप्त होते हैं वैसे उनके साथ इन निमित्तों करके सब प्राणी अत्र आदि तृप्ति करनेवाले पदार्थों के सुखों की किसना कर रहे हैं। (इन्दव:) जो जलक्रियामय यज्ञ और प्राप्त होने योग्य भोग हैं, वे (हि) जिस कारण से पूर्वोक्त सूर्य्य और पवन के संयोग से (उशन्ति) प्रकाशित होते हैं, इसी कारण (प्रयोभि:) अत्रादि पदार्थों के योग से सब प्राणियों को सुख प्राप्त होता है॥४॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में परमेश्वर ने प्राप्त होने योग्य और प्राप्त करानेवाला इन दो पदार्थों का प्रकाश किया है॥४॥

एतन्मन्त्रोक्तौ सूर्य्यपवनावीश्वरेण धारिताबेत्त्कर्मिमियिते भवत इत्युपदिश्यते।

अब पूर्वोक्त सूर्य्य और पवन, जो कि ईश्वर ने श्वारण किये हैं, वे किस-किस कर्म की सिद्धि के निमित्त रचे गये हैं, इस विषय का अपले मन्त्र में उपदेश किया है-

वायविन्द्रंश्च चेतथः सुतानां वाजिनीवसूर तावा यातमुपं द्रवत्॥५॥३॥

वायो इति। इन्ह्रीः। चु। चेतुश्रुः। सुतानाम्। वाजिनीऽवस् इति। तौ। आ। यातुम्। उप। द्रवत्॥५॥

पदार्थ:-(वायो) ज्ञानुब्बरूपश्वर! (इन्द्रः) पूर्वोक्तः (च) अनुक्तसमुच्चयार्थे तेन वायुश्च (चेतथः) चेतयतः प्रकाशयित्वा धार्यित्वा च मज्ञापयतः। अत्र व्यत्ययः योऽन्तर्गतो ण्यर्थश्च। (सुतानाम्) त्वयोत्पादितान् पदार्थान् अत्र शोषे षष्ठी। (वाजिनीवसू) उषोवत्प्रकाशवेगयोर्वसतः। वाजिनीत्युषसो नामसु पठितम्। (निघं०१.८) (सा) इन्द्रवायू (आयातम्) आगच्छतः। अत्रापि व्यत्ययः। (उप) सामीप्ये (द्रवत्) शीघ्रम्। दूवदिति श्विप्रनामसु पठितम्। (निघं०२.१५)॥५॥

अन्वर्यः-हे बायो ईश्वर! यतो भवद्रचितौ वाजिनीवसू च पूर्वोक्ताविन्द्रवायू सुतानां सुतान् भवदुत्पादितीन् पद्मार्थीन् चेतथः संज्ञापयतस्ततस्तान् पदार्थान् द्रवच्छीघ्रमुपायातमुपागच्छतः॥५॥

भावार्थ:-यदि परमेश्वर एतौ न रचयेत्तर्हि कथिममौ स्वकार्य्यकरणे समर्थौ भवत इति॥५॥ इति तृतीयो वर्गः॥

मण्डल-१। अनुवाक-१। सूक्त-२

पदार्थ: -हे (वायो) ज्ञानस्वरूप ईश्वर! आपके धारण किये हुए (वाजिनीवसू) प्रात:काल के तुल्य प्रकाशमान (इन्द्रश्च) पूर्वोक्त सूर्य्यलोक और वायु (सुतानाम्) आपके उत्पन्न किये हुए पवार्थों का (चेतथ:) धारण और प्रकाश करके उनको जीवों के दृष्टिगोचर करते हैं, इसी कारण वे (द्रवत) शीष्रक्र से (आयातमुप) उन पदार्थों के समीप होते रहते हैं॥५॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में परमेश्वर की सत्ता के अवलम्ब से उक्त इन्द्र और वार्ष अपने-अपने कार्य्य करने को समर्थ होते हैं, यह वर्णन किया है॥५॥

यह तीसरा वर्ग समाप्त हुआ॥

अथ तयोर्बहिरन्तः कार्य्यमुपदिश्यते।

पूर्वोक्त इन्द्र और वायु के शरीर के भीतर और बाहरले कार्य्यों का अंगले महुन में उपदेश किया

है-

वायुविन्द्रेश्च सुन्वत आ यातुमुपं निष्कृतम्। मक्ष्विशैत्था धिया नेरा॥६॥

वायो इति। इन्द्रं:। च। सुन्वत:। आ। यातुम्। उपा चि:ऽकृतम्। मुक्षु। इत्था। धिया। नुरा॥६॥

पदार्थ:-(वायो) सर्वान्तर्यामिन्नीश्वर! (इन्द्रश्च) अन्तरिक्षस्थः सूर्य्यप्रकाशो वायुर्वा। इन्द्रियमिन्द्रिलङ्गिमन्द्रदृष्टमिन्द्रसृष्टमिन्द्रसृष्टमिन्द्रसृष्टमिन्द्रसृष्टमिन्द्रसृष्टमिन्द्रसृष्टिमन्द्रसृष्टमिन्द्रसृष्टिमन्द्रस्यस्यः। (अष्टा०५.२.२६) इति थाप्रत्ययः। (धिया) धारणावत्या बुद्ध्या कर्मणा वा। धीरिति प्रमन्द्रस्यक्त्रस्य प्रतिम्। (निघं०३.९) कर्मनामसु च। (निघं०२.१) (नरा) नयनकर्त्तारे। सुपां सुलुप्रिन्द्रयुक्तरादेश्य ।६॥

अन्वयः-हे व्ययो नराविन्द्रवायू मक्ष्वितथा यथा सुन्वतस्तथा तौ धिया निष्कृतमुपायातमुपुर्यातः॥६॥

भावार्थः-यथाऽत्र ब्रह्माण्डस्थाविन्द्रवायू सर्वप्रकाशकपोषकौ स्तः, एवं शरीरे जीवप्राणाविप, परन्तु सर्वत्रेश्वराधेरापेक्षास्तीति॥६॥

पदार्थ:-(वायो) हे सब के अन्तर्य्यामी ईश्वर! जैसे आपके धारण किये हुए (नरा) संसार के सब पदार्थी को प्राप्त करानेवाले (इन्द्रश्च) अन्तरिक्ष में स्थित सूर्य्य का प्रकाश और पवन हैं, वैसे ये-'इन्द्रिये इस व्याकरण के सूत्र करके इन्द्र शब्द से जीव का, और 'प्राणो॰' इस प्रमाण से वायु शब्द

करके प्राण का ग्रहण होता है-(मक्षु) शीघ्र गमन से (इत्था) धारण, पालन, वृद्धि और क्षय हेतु से सीम आदि सब ओषधियों के रस को (सुन्वतः) उत्पन्न करते हैं, उसी प्रकार (नरा) शरीर में रहनेवाले जीव और प्राणवायु उस शरीर में सब धातुओं के रस को उत्पन्न करके (इत्था) धारण, पालन, वृद्धि और क्षये हेतु से (मक्षु) सब अङ्गों को शीघ्र प्राप्त होकर (धिया) धारण करनेवाली बुद्धि और कर्मों से (निष्कृतम्) कर्मों के फलों को (आयातम्प) प्राप्त होते हैं॥६॥

भावार्थ:-ब्रह्माण्डस्थ सूर्य्य और वायु सब संसारी पदार्थों को बाहर से तथा जीव और प्राण शरीर के भीतर के अङ्ग आदि को सब प्रकाश और पृष्ट करनेवाले हैं, परन्तु ईश्वर के आधार की अपेक्षा सब स्थानों में रहती है॥६॥

पुनरेतौ नामान्तरेणोपदिश्यते।

ईश्वर पूर्वीक्त सूर्य्य और वायु को दूसरे नाम से अगले मन्त्र से स्पष्टाकरता है-

मित्रं हुवे पूतदेक्षं वर्रुणं च रिशादसम्। धियं घृताचीं सार्धन्ता॥७॥

मित्रम्। हुवे। पूतऽदक्षम्। वर्रुणम्। च। रिशादंसम्। ध्यिम्। श्रुत्येर्थीम्। सार्धन्ता॥७॥

पदार्थ:-(मित्रम्) सर्वव्यवहारसुखहेतुं ब्रह्माग्डस्थं सूर्व्य शरीरस्थं प्राणं वा। मित्र इति पदनामसु पठितम्। (निघं०५.४) अतः प्राप्त्यर्थः। मित्रो जिन्मन्यातयनि ब्रुवाणो मित्रो दाधार पृथिवीमृत द्याम्। मित्र: कृष्टीरिनिमिषाभिचेष्टे मित्रायं हुव्यं धृतवेज्बुहोते। (ऋ०३.५९.१) अत्र मित्रशब्देन सूर्य्यस्य ग्रहणम्। **प्राणो वै मित्रोऽपानो वरुणः।** (१००००८.२)४.६) अत्र मित्रवरुणशब्दाभ्यां प्राणापानयोर्ग्रहणम्। (हुवे) तित्रमित्तां बाह्याभ्यन्तरपदार्थिविद्यामार्वधाम्। बहुलं छन्दसीति विकरणाभावो व्यत्ययेनात्मनेपदं लिडर्थे लट् च। (पुतदक्षम्) पूत्रं पवित्रं दक्षं बलं यस्मिन् तम्। दक्ष इति बलनामसु पठितम्। (निघं०२.९) **(वरुणं च)** बहिर्स्थ्रं प्राणं सरीरस्थमपानं वा। **(रिशादसम्**) रिशा रोगा: शत्रवो वा हिंसिता येन तम्। (धियम्) कर्म धार्रणावतीं बुद्धि है। (घृताचीम्) घृतं जलमञ्जति प्रापयतीति तां क्रियाम्। (जिघं०१.१२) साधयन्तौ। घृतमित्युदकनामस् पिहतम्। (साधन्ता) सम्यक् अत्र सुलुगित्याकारादेश:॥७।

अन्वयः-खहं शिल्पविद्यां चिकीर्षुर्मनुष्यो यौ घृताचीं धियं साधन्तौ वर्तेते तौ पूतदक्षं मित्रं रिशादसं वरुणं च हुन्।।७॥

भूतिर्थः भत्र लुप्तोपमालङ्कारः। यथा सूर्य्यवायुनिमित्तेन समुद्रादिभ्यो जलमुपरि गत्वा तद्वृष्ट्या सर्वस्य विद्वरक्षणे भवतः, एवं प्राणापानाभ्यां च शरीरस्य। अतः सर्वेर्मनुष्यैराभ्यां निमित्तीकृताभ्यां व्यवहार्सवद्यासिद्धेः सर्वोपकारः सदा निष्पादनीय इति॥७॥

मण्डल-१। अनुवाक-१। सूक्त-२

पदार्थ:-मैं विद्या का चाहने (पूतदक्षम्) पिवत्रबल सब सुखों के देने वा (मित्रम्) ब्रह्माण्ड और शरीर में रहनेवाले सूर्य्य-'मित्रो॰' इस ऋग्वेद के प्रमाण से मित्र शब्द करके सूर्य्य का ग्रहण है- तथा (रिशादसम्) रोग और शत्रुओं के नाश करने वा (वरुणं च) शरीर के बाहर और भीतर रहनेवाला प्राण और अपानरूप वायु को (हुवे) प्राप्त होऊं अर्थात् बाहर और भीतर के पदार्थ जिस-विद्या के लिये रचे गये हैं, उन सबों को उस-उस के लिये उपयोग करूं॥७॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है। जैसे समुद्र आदि जलस्थलों से सूर्क्स के आकर्षण से वायु द्वारा जल आकाश में उड़कर वर्षा होने से सब की वृद्धि और रक्षा होती है, वैसे ही प्राण और अपान आदि ही से शरीर की रक्षा और वृद्धि होती है। इसलिये मनुष्यों को प्राण अपान आदि वायु के निमित्त से व्यवहार विद्या की सिद्धि करके सब के साथ उपकार करना उच्चित है।

केनैतावेतत्कर्म कर्तुं समर्थी भवत इत्युपिदश्यते।

किस हेतु से ये दोनों सामर्थ्यवाले हैं, यह विद्या अगले मन्त्र में कही है-

ऋतेन मित्रावरुणावृतावृधावृतस्पृशा।

क्रतुं बृहन्तमाशाथे॥८॥

ऋतेन। मित्रावरुणौ। ऋतऽवृधौ। ऋतस्पृशा। ऋतुम्। बृहत्त्रम्। आशाथे॥८॥

पदार्थ:-(ऋतेन) सत्यस्वरूपेण ब्रह्मणा। ऋतुर्मित सत्यनामसु पठितम्। (निघं०३.१०) अनेनेश्वरस्य ग्रहणम्। ऋतिमत्युदकनामसु चा (निघं०१.१२) (मित्रावरुणौ) पूर्वोक्तौ। देवताद्वन्द्वे च। (अष्टा०६.३.२६) अनेनानडादेश:। (ऋतावृधौ) ऋते ब्रह्म तेन वर्धियतारौ ज्ञापकौ जलाकर्षणवृष्टिनिमित्ते वा। अत्रान्येषामिप दृश्यत इति दीर्घ:। (ऋतस्पृशा) ऋतस्य ब्रह्मणो वेदस्य स्पर्शियतारौ प्रापकौ जलस्य च (ऋतुम्) सर्व सङ्गतं संसाराख्यं क्जम्। (बृहत्तम्) महान्तम् (आशाथे) व्याप्नुत:। छन्दिस लुङ्लङ्लिट:। (अष्टा०३.४.६) इति वर्त्तमाने/लिट्। वा छन्दिस सर्वे विधयो भवन्तीति नुडभाव:॥८॥

अन्वय:-ऋतेनोत्रमदितावताबुधावृतस्पृशौ मित्रावरुणौ बृहन्तं क्रतुमाशाथे॥८॥

भावार्थ:-ब्रह्मसहिच्र्यियोगे ब्रह्मज्ञाननिमित्ते जलवृष्टिहेतू भूत्वा सर्वमग्न्यादिमूर्त्तामूर्त्तं जगद्व्याप्य वृद्धिक्षयकर्त्तारौ व्यक्तहारविद्यासाधकौ च भवत इति॥८॥

पदार्थ: (ऋतेन) सत्यस्वरूप ब्रह्म के नियम में बंधे हुए (ऋतावृधौ) ब्रह्मज्ञान बढ़ाने, जल के खींचने और वर्षोर्स (ऋतस्पृशा) ब्रह्म की प्राप्ति कराने में निमित्त तथा उचित समय पर जलवृष्टि के करनेवालें (मित्रावरुणो) पूर्वोक्त मित्र और वरुण (बृहन्तम्) अनेक प्रकार के (ऋतुम्) जगत्रूप यज्ञ को (आर्थि) ब्याप्त होते हैं॥८॥

38

भावार्थ:-परमेश्वर के आश्रय से उक्त मित्र और वरुण ब्रह्मज्ञान के निमित्त जल वर्षानेवाले सबि मूर्तिमान् वा अमूर्तिमान् जगत् को व्याप्त होकर उसकी वृद्धि विनाश और व्यवहारों की सिद्धि करने में हेतु होते हैं॥८॥

इमावस्माकं किं किं धारयत इत्युपदिश्यते।

वे हम लोगों के कौन-कौन पदार्थों के धारण कनरेवाले हैं, इस बात का प्रकाश अपनि मन्त्र में किया है-

क्वी नो मित्रावर्रुणा तुविजाता उर्मुक्षया। दक्षं दधाते अपसम्॥ १ । । क्वी अवी। नः। मित्रावर्रुणा। तुविऽजातौ। उर्मुऽक्षया। दक्षम्। दुधाते। अपसम्।

पदार्थ:-(कवी) क्रान्तदर्शनौ सर्वव्यवहारदर्शनहेत्। किषः क्रान्तदर्शनौ भवित कवतेवी। (निरु०१२.१३) एतित्ररुक्ताभिप्रायेण कविशब्देन सुखसाधकौ मित्रावरुणौ गृह्येते। (नः) अस्माकम् (मित्रावरुणौ) पूर्वोक्तौ (तुविजातौ) बहुभ्यः कारणेभ्यो बहुप वोत्पन्नौ प्रसिद्धौ। तुवीति बहुनामसु पिठतम्। (निघं०३.१) (उरुक्षया) बहुषु जगत्पदार्थेषु क्षयो निवासो येभोन्तौ। अत्र सुपां सुलुगित्याकारः। उर्विति बहुनामसु पिठतम्। (निघं०३.१) 'क्षि निवासण्योः' अस्य धातोरिधकरणार्थः क्षयशब्दः। (दक्षम्) बलम् (दधाते) धरतः (अपसम्) कर्म। अप इति कर्मजामसु पिठतम्। (निरु०२.१) व्यत्ययो बहुलिमिति लिङ्गव्यत्ययः। इदमिप सायणाचार्य्येण न बुद्धम्।। श्री

अन्वयः-इमौ तुविजातावुरुक्षयौ कवी मित्रावरुणौ नाऽस्माकं दक्षमपसं च दधाते धरतः॥९॥ भावार्थः-ब्रह्माण्डस्थाभ्यां बलक्रमैिन्सित्ताभूममिताभ्यां सर्वेषां पदार्थानां सर्वचेष्टाविद्ययोः

पृष्टिधारणे भवत इति॥९॥

आदिमसूक्तोक्तेन शिल्पविद्यादिमुख्यनिमित्तेनाग्निनार्थेन सहचिरतानां वाख्विन्द्रमित्रवरुणानां द्वितीय-सूक्तोक्तानामर्थानां सङ्गतिरस्तीति बोध्यम्।

इदमिप सूक्तं सायणाचा व्यद्धिर्भर्यूरोपाख्यद्देशन्वासिभिर्विलसनाख्यादिभिश्चान्यथैव व्याख्यातिमिति बोध्यम्॥ इति द्वितीयं सूक्तं वर्गश्च चतुर्थः समाप्तः॥

पदार्थ:-(तुविजाती) जो बहुत कारणों से उत्पन्न और बहुतों में प्रसिद्ध (उरुक्षया) संसार के बहुत से पदार्थों हैं रहनेवाले (कवी) दर्शनादि व्यवहार के हेतु (मित्रावरुणा) पूर्वोक्त मित्र और वरुण हैं, वे (न:) हुमीरे (दक्षम्) बल तथा सुख वा दु:खयुक्त कर्मों को (दधाते) धारण करते हैं॥९॥

भूतिर्थ:-भो ब्रह्माण्ड में रहनेवाले बल और कर्म के निमित्त पूर्वोक्त मित्र और वरुण हैं, उनसे क्रिया और विद्याओं की पृष्टि तथा धारणा होती है॥९॥

जो प्रथम सूक्त में अग्निशब्दार्थ का कथन किया है, उसके सहायकारी वायु, इन्द्र, मित्र और किया के प्रतिपादन करने से प्रथम सूक्तार्थ के साथ इस दूसरे सूक्तार्थ की सङ्गित समझ लेनी।

मण्डल-१। अनुवाक-१। सूक्त-२

इस सूक्त का अर्थ सायणाचार्य्यादि और विलसन आदि यूरोपदेशवासी लोगों ने अन्यथा कथन

किया है॥



अथास्य द्वादशर्चस्य तृतीयसूक्तस्य मधुच्छन्दा ऋषि:। १-३ अश्विनौ; ४-६ इन्द्र:; ७-९ विश्वेदेवा:; १०-२२ सरस्वती देवता:। १,३, ५-१०, १२ गायत्री; २ निचृद्गायत्री; ४,<u>१</u>१

पिपीलिकामध्यानिचृद्गायत्री च छन्दः। षड्जः स्वरः॥

तत्रादावश्चिनावुपदिश्येते।

अब तृतीय सूक्त का प्रारम्भ करते हैं। इसके आदि के मन्त्र में अग्नि और जल अ<u>र्थि नाम से</u> लिया है-

अर्श्विना यज्वरीरिषो द्रवत्पाणी शुर्भस्पती। पुरुभुजा चनुस्यतम्॥ १॥

अर्थिना। यज्वेरी:। इषं:। द्रवंत्ऽपाणी। शुभं:ऽपृती। पुर्मऽभुजा। वृन्स्यतम्॥शा

पदार्थ:-(अश्वना) जलाग्नी। अत्र सुपामित्याकारादेश:। या सुरथो रुप्रौतंमोभा देवा दिविस्पृशां। अश्विना ता हंवामहे॥ (ऋ०१.२२.२) निह वामस्ति दूरके यत्री एथेन गन्नध्य:। (ऋ०१.२२.४) वयं यो सुरथो शोभना रथा याभ्यां तौ, रथीतमा भूयांसो रथा विद्यन्ते अयोस्तौ रथी, अतिशयेन रथी रथीतमौ देवौ शिल्पविद्यायां दिव्यगुणप्रकाशकौ, दिविस्पृशा विमानादियानेः सूर्य्यप्रकाशयुक्तेऽन्तरिक्षे मनुष्यादीन् स्पर्शयन्तौ, उभा उभौ ता तौ हवामहे गृह्णीमः। यत्र मनुष्या वां तयोरिश्वनोः साधिपित्वाचित्तयोः सम्बन्धयुक्तेन हि यतो गच्छन्ति तत्र गृहं विद्याधिकरणं दूरं नैव्र भवतीति यावत्।

अथातो द्युस्थाना देवतास्तासामश्चिनौ प्रथमागामिनौ भवतोऽश्चिनौ यद्ध्यश्नुवाते सर्वं रसेनान्यो ज्योतिषाऽन्योऽश्वैरश्चिनावित्यौर्णवाभस्तत्कावश्चिनौ द्यालाष्ट्रश्चिष्यावित्यक्रेऽहोरात्रावित्येके सूर्य्याचन्द्रमसावित्येके हि मध्यमो ज्योतिर्भाग आदित्य:। (निरु०१२.१) तथाऽश्चिनौ चापि भर्जारौ जर्भरी भर्त्तारावित्यर्थस्तुर्फरीतु हन्तारौ। (निरु०१३.५) तयो: काल अर्ध्वमर्द्धरात्रात् प्रकाशीभावस्यानुविष्टप्नुमन् तसो भाग:। (निरु०१२.१)

(अथातो०) अत्र द्युस्थानीकतत्वात् प्रकाशस्थाः प्रकाशयुक्ताः सूर्य्याग्निविद्युदादयो गृह्यन्ते, तत्र याविश्वनौ द्वौ द्वौ सम्प्रयुज्येते प्यौ च सर्वेषो पदार्थानां मध्ये गमनशीलौ भवतः। तयोर्मध्यादिस्मन् मन्त्रेऽश्विशब्देनाग्निजले मृह्यते। कृतुः? यद्यस्माज्जलमश्वैः स्वकीयवेगादिगुणै रसेन सर्वं जगद्व्यश्नुते व्याप्तवदिस्त। तथाऽन्योऽग्याः स्वकीयैः प्रकाशवेगादिभिरश्वैः सर्वं जगद्व्यश्नुते तस्मादिग्निजलयोरिश्वसंज्ञा जायते। तथैव स्वकीयस्वकीयगुणैर्द्यावापृथिव्यादीनां द्वन्द्वानामप्यश्विसंज्ञा भवतीति विज्ञेयम्। शिल्पविद्याव्यवहारे स्नादिषु युक्त्या योजितौ सर्वकलायन्त्रयानधारकौ यन्त्रकलाभिस्तािहतौ चेत्तदाहननेन गमियतारौ न्न तुर्फरीशब्देन यानेषु शीघ्रं वेगादिगुणप्रापियतारौ भवतः।

अश्विनाविति पदनामसु पठितम्। (निघं०५.६) अनेनापि गमनप्राप्तिनिमित्ते अश्विनौ गृह्येते। (यज्नपी:) शिल्पविद्यासम्पादनहेतून् (इष:) विद्यासिद्धये या इष्यन्ते ताः क्रियाः (द्रवत्पाणी) द्रवेच्छीश्रविगनिमित्ते पाणी पदार्थविद्याव्यवहारा ययोस्तौ (शुभस्पती) शुभस्य शिल्पकार्य्यप्रकाशस्य

अष्टक-१। अध्याय-१। वर्ग-५-६

मण्डल-१। अनुवाक-१। सूक्त-३

पालकौ। 'शुभ शुंभ दीप्तौ' एतस्य रूपमिदम्। (पुरुभुजा) पुरूणि बहूनि भुञ्जि भोक्तव्यानि वस्तूनि याभ्यां तौ। पुर्विति बहुनामसु पठितम्। (निघं०३.१) भुगिति क्विप्प्रत्ययान्तः प्रयोगः। सप्पदादिश्यः क्विप्। रोगाख्यायां। (अष्टा०३.३.१०८) इत्यस्य व्याख्याने। (चनस्यतम्) अन्नवदेतौ सेव्येत्।म्। चायते।न्न हस्वश्च। (उणा०४.२००) अनेनासुन् प्रत्ययान्ताच्च नस्शब्दात् क्यच्प्रत्ययान्तो नामध्यते।लिहि मध्यमस्य द्विवचनेऽयं प्रयोगः॥१॥

अन्वय:-हे विद्वांसो! युष्माभिर्द्रवत्पाणी शुभस्पती पुरुभुजावश्विनौ यज्वर्रीस्षिश्चे चनस्यतम्।।१॥ भावार्थ:-अत्रेश्वरः शिल्पविद्यासाधनमुपदिशति। यतो मनुष्याः कलाक्च्यरचनेन विमानादियानानि सम्यक् साधियत्वा जगति स्वोपकारपरोपकारनिष्पादनेन सर्वाणि सुखानि प्राप्तुर्यः।।१॥

पदार्थ:-हे विद्या के चाहनेवाले मनुष्यो! तुम लोग (द्रवत्पाणी) श्रीघ्र क्रेम का निमित्त पदार्थविद्या के व्यवहारसिद्धि करने में उत्तम हेतु (शुभस्पती) शुभ गुणों के प्रकाश को प्रलने और (पुरुभुजा) अनेक खाने-पीने के पदार्थों के देने में उत्तम हेतु (अश्विना) अर्थात् जल और अर्गिन तथा (यज्वरी:) शिल्पविद्या का सम्बन्ध करानेवाली (इष:) अपनी चाही हुई अत्र आदि पदार्थों की देने वाली कारीगरी की क्रियाओं को (चनस्यतम्) अत्र के समान अति प्रीति से सेवन किया करे।

अब 'अश्विनी' शब्द के विषय में निरुक्त आदि के प्रमाण दिखलाते हैं-हम लोग अच्छी अच्छी सवारियों को सिद्ध करने के लिये (अश्विना) पूर्विक्त जल और अग्नि को कि जिनके गुणों से अनेक सवारियों की सिद्धि होती है, तथा (देवौ) जो कि शिल्पविद्या में अच्छे-अच्छे गुणों के प्रकाशक और सूर्य्य के प्रकाश से अन्तरिक्ष में विमान आदि सच्छित्यों से मनुष्यों को पहुँचानेवाले होते हैं, (ता) उन दोनों को शिल्पविद्या की सिद्धि के द्विरो ग्रहण करते हैं। मनुष्य लोग जहां-जहां साधे हुए अग्नि और जल के सम्बन्धयुक्त रथों से जाते हैं, वहां सोमविद्यावाले विद्वानों का विद्याप्रकाश निकट ही है।

(अथा०) इस निरुक्त में जो कि द्युस्थान शब्द है, उससे प्रकाश में रहने वाले और प्रकाश से युक्त सूर्य्य अग्नि जल और पृष्ठिची आदि पद्मर्थ ग्रहण किये जाते हैं, उन पदार्थों में दो-दो के योग को 'अश्वि' कहते हैं, वे सब प्रवार्थों में प्राप्त होनेवाले हैं, उनमें से यहां अश्वि शब्द करके अग्नि और जल का ग्रहण करना ठीक है, क्योंकि जल अपने वेगादि गुण और रस से तथा अग्नि अपने प्रकाश और वेगादि अश्वों से सब जगत्को व्याप्त होता है। इसी से अग्नि और जल का अश्वि नाम है। इसी प्रकार अपने-अपने प्रणों से प्रथिवी आदि भी दो-दो पदार्थ मिलकर अश्वि कहाते हैं।

जबिक पूर्बोक्त अश्वि धारण और हनन करने के लिये शिल्पविद्या के व्यवहारों अर्थात् कारीगरियों के निमित्त विमान आदि सवारियों में जोड़े जाते हैं, तब सब कलाओं के साथ उन सवारियों के धारण करमेवाले, तथा जब उक्त कलाओं से ताड़ित अर्थात् चलाये जाते हैं, तब अपने चलने से उन सवारियों को चलाने वाले होते हैं, उन अश्वियों को 'तुर्फरी' भी कहते हैं, क्योंकि तुर्फरी शब्द के अर्थ से

वे सवारियों में वेगादि गुणों के देनेवाले समझे जाते हैं। इस प्रकार वे अश्वि कलाघरों में संयुक्त किये हुए जल से परिपूर्ण देखने योग्य महासागर हैं। उनमें अच्छी प्रकार जाने-आने वाली नौका अर्थात जहाज आदि सवारियों में जो मनुष्य स्थित होते हैं। उनके जाने-आने के लिये होते हैं॥१॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में ईश्वर ने शिल्पविद्या को सिद्ध करने का उपदेश किया है, जिससे मनुष्य लोग कलायुक्त सवारियों को बनाकर संसार में अपना तथा अन्य लोगों के उपकार से सब सुख पावें॥१॥

पुनस्तौ कीदृशावित्युपदिश्यते।

फिर वे अश्वि किस प्रकार के हैं, सो उपदेश अगले मन्त्र में किया है-

अश्विना पुरुदंससा नरा शवीरया धिया।

धिष्णया वर्नतं गिर्रः॥२॥

अर्श्वना। पुरुऽदंससा। नर्रा। श्वीरया। ध्रिया। धिष्णया। वन्तिष्। गिरुः। रा।

पदार्थ:-(अश्वना) अग्निजले (पुरुदंससा) पुरुषि बहुनि द्रंसांसि शिल्पविद्यार्थानि कर्माणि याभ्यां तौ। दंस इति कर्मनामसु पठितम्। (निघं०२.१) (सरा) शिल्पविद्याफलप्रापकौ (धिष्ण्या) यौ यानेषु वेगादीनां तीव्रतासंवपने कर्त्तव्ये धृष्टौ (शवीरया) वेगवत्या शव गतावित्यस्माद्धातो रन्प्रत्यये टापि च शवीरेति सिद्धम्। (धिया) क्रियया प्रज्ञया का धीरिति कर्मप्रज्ञयोर्नामसु वाय्विन्द्रश्चेत्यत्रोक्तम्। (वनतम्) यौ सम्यग्वाणीसेविनौ स्त:। अत्र व्यक्ष्यः (गिर्:) वाच:॥२॥

अन्वय:-हे मनुष्या! यूयं यौ पुरुद्धस्मी मरी धिष्ण्याविश्वनौ शवीरया धिया गिरो वनतं वाणीसेविनौ स्त:, तौ सेवयत॥२॥ 🔥

भावार्थ:-अत्राप्यग्निजलयोर्पुणानो प्रत्यक्षकरणाय मध्यमपुरुषप्रयोगत्वात् सर्वैः शिल्पिभस्तौ तीव्रवेगवत्या मेधया पुरुषार्थेन च शिल्पिष्वद्यासिद्धये सम्यक् सेवनीयौ स्तः। ये शिल्पिवद्यासिद्धिं चिकीर्षन्ति तैस्तिद्विद्या हस्तिक्रयाभ्यां सम्यक् प्रसिद्धीकृत्योक्ताभ्यामिश्वभ्यामुपयोगः कर्त्तव्य इति।

सायणाचार्य्याविभिमेश्यमपुर्णस्य निरुक्तोक्तं विशिष्टनियमाभिप्रायमविदित्वाऽस्य मन्त्रस्यार्थोऽन्यथा वर्णितः। तथेव यूरोपवासिभिर्विलसनाख्यादिभिश्चेति॥२॥

पदार्थ: विद्वानो तुम लोग (पुरुदंससा) जिनसे शिल्पविद्या के लिये अनेक कर्म सिद्ध होते हैं (धिष्ण्या) जो कि सर्वारियों में वेगादिकों की तीव्रता के उत्पन्न करने में प्रबल (नरा) उस विद्या के फल को देनेवालें और (शवीरया) वेग देनेवाली (धिया) क्रिया से कारीगरी में युक्त करने योग्य अग्नि और जल हैं, व (गिर:) शिल्पविद्यागुणों की बतानेवाली वाणियों को (वनतम्) सेवन करनेवाले हैं, इसलिये इनके अकार उपकार लेते रहो॥२॥

अष्टक-१। अध्याय-१। वर्ग-५-६

मण्डल-१। अनुवाक-१। सूक्त-३

भावार्थ:-यहां भी अग्नि और जल के गुणों को प्रत्यक्ष दिखाने के लिये मध्यम पुरुष का प्रयोग है। इससे सब कारीगरों को चाहिये कि तीव्र वेग देनेवाली कारीगरी और अपने पुरुषार्थ से शिल्पिब्झ की सिद्धि के लिये उक्त अश्वियों की अच्छी प्रकार से योजना करें। जो शिल्पिवद्या को सिद्ध करने की इच्छा करते हैं, उन पुरुषों को चाहिये कि विद्या और हस्तक्रिया से उक्त अश्वियों को असिद्ध कर के उन से उपयोग लेवें।

सायणाचार्य्य आदि तथा विलसन आदि साहबों ने मध्यम पुरुष के विष्ट्रिय में सिरुक्तकार के कहे हुए विशेष अभिप्राय को न जान कर इस मन्त्र के अर्थ का वर्णन अन्यथा क्रिया है॥२॥

पुनस्तावश्चिनौ कीदृशावित्युपदिश्यते।

फिर भी वे अश्वि किस प्रकार के हैं, सो अगले मन्त्र में उपदेश किया है-

दस्रा युवाकेवः सुता नासत्या वृक्तबंहिषः।

आ यातं रुद्रवर्तनी॥३॥

दस्रा। युवाकवः। सुताः। नासत्या। वृक्तबर्हिषः। आ युत्तम्। भूद्रवर्तन्ते॥३॥

पदार्थ:-(दस्ना) दुःखानामुपक्षयकर्तारौ। दसु उपक्षये इत्यस्मादौणादिको रक्प्रत्ययः। (युवाकवः) सम्पादितमिश्रितामिश्रितिक्रयाः। यु मिश्रणे अमिश्रणे चेत्यस्माद्धातोरौणादिक आकुः प्रत्ययः। (सुताः) अभिमुख्यतया पदार्थविद्यासारिनष्पाद्धिनः। अत्र बाहुलकात्कर्तृकारक औणादिकः क्तप्रत्ययः। (नासत्या) न विद्यतेऽसत्यं कर्मगुणो वा यश्रोस्तौ। नभ्राप्नपान्नवेदा०। (अष्टा०६.३.७५) नासत्यौ चाश्चिनौ सत्यावेव नासत्यावित्यौर्णवाभः सत्यस्य प्रणेक्तरावित्याग्रायणः। (निरु०६.१३) (वृक्तबर्हिषः) शिल्पफलनिष्पादिन ऋत्विजः। वृक्तबर्हिष इति ऋत्विङ्नामसु पठितम्। (निघं०३.१८) (आ) समन्तात् (यातम्) गच्छतो गमयतः। अत्र व्यक्त्ययः अन्तर्गतो ण्यर्थश्च। (म्रद्रवर्त्तनी) रुद्रस्य प्राणस्य वर्त्तनिर्मार्गो ययोस्तौ॥३॥

अन्वय:-हे सुता युक्सकवे हृक्तबर्हिषो विद्वांसः शिल्पविद्याविदो भवन्तो यौ रुद्रवर्त्तनी दस्रौ नासत्यौ पूर्वोक्ताविश्वनाव्ययाति समन्ताद् यानानि गमयतस्तौ यदा यूयं साधियष्यथ तदोत्तमानि सुखानि प्राप्त्यथ॥३॥

भावार्थः-परमेश्वरो मनुष्यानुपदिशति- युष्माभिः सर्वसुखशिल्पविद्यासिद्ध्या दुःखिवनाशायाग्नि-जलयोर्यथाबदुपयेशः कर्मव्य इति॥३॥

पदार्थ: -हे (युवाकव:) एक दूसरी से मिली वा पृथक् क्रियाओं को सिद्ध करने (सुता:) पदार्श्वविद्या के सार को सिद्ध करके प्रकट करने (वृक्तवर्हिष:) उसके फल को दिखानेवाले विद्वान् लेपि। (क्रूवर्त्तनी) जिनका प्राणमार्ग है, वे (दस्ना) दु:खों के नाश करनेवाले (नासत्या) जिनमें एक भी

80

गुण मिथ्या नहीं (आयातम्) जो अनेक प्रकार के व्यवहारों को प्राप्त करानेवाले हैं, उन पूर्वोक्त अश्वियों को जब विद्या से उपकार में ले आओगे उस समय तुम उत्तम सुखों को प्राप्त होगे॥३॥

भावार्थ:-परमेश्वर मनुष्यों को उपदेश करता है कि-हे मनुष्य लोगो! तुमको सब सुर्खी की सिद्धि से दु:खों के विनाश के लिये शिल्पविद्या में अग्नि और जल का यथावत् उपयोग करना चाहिये॥ शा

इदानीमेतद्विद्योपयोगिनाविन्द्रशब्देनेश्वरसूर्य्यावुपदिश्येते।

परमेश्वर ने अगले मन्त्र में इन्द्र शब्द से अपना और सूर्य्य का उपदेश किया है-

इन्द्रायांहि चित्रभानो सुता इमे त्वायर्वः। अण्वीभिस्तर्ना पूतासः॥४॥

इन्द्रं। आ। याहि। चित्रभानो। सुताः। इमे। त्वायवंः। अण्वीभिः। तुनी। पूतासः। ४॥

पदार्थ:-(इन्द्र) परमेश्वर सूर्य्यों वा। अत्राह यास्काचार्यः इन्द्र इरॉ दृणातीति वेरां ददातीति वेरां दधातीति वेरां दारयत इति वेरां धारयत इति वेन्दवे द्रवतीति वेन्दो र्मत इति वेन्धे भूतानीति वा। तद्यदेनं प्राणै: समैन्धँस्तदिन्द्रस्येन्द्रत्विमिति विज्ञायते। इदं करणादिन्द्रम्यायण इदं दर्शनादित्यौपमन्यव इन्दतेवैश्वर्यकर्मण इदळ्त्रूणां दारियता वा द्रावियता वा द्राविता च यज्वनाम्। (निरु०९०.८) इन्द्राय साम गायत नेन्द्रादृते पवते धाम किंचनेन्द्रस्य नु वीर्य्मीण प्रवोच्निमन्द्रे कामा अयंसत। (निरु०७.२)

इराशब्देनात्रं पृथिव्यादिकमुच्यते। तद्दारणातद्दानात्रद्धारणात्। चन्द्रलोकस्य प्रकाशाय द्रवणात्तत्र रमणादित्यर्थेनेन्द्रशब्दात् सूर्य्यलोको गृह्यते। श्रेश्य सर्वेष्यं भूतानां प्रकाशनात् प्राणेर्जीवस्योपकरणादस्य सर्वस्य जगत उत्पादनाद् दर्शनहेतोश्च सर्वेश्वस्ययेशेगाद्ग्यदुष्टानां शत्रूणां विनाशकाद् दूरे गमकत्वाद् यज्वनां रक्षकत्वाच्चेत्यर्थादिन्द्रशब्देनेश्वरस्य ग्रुह्मणम्। एवं परमेश्वराद्विना किञ्चिदपि वस्तु न पवते। तथा सुर्य्याकर्षणेन विना कश्चिदपि लोको नैव चलति तिष्ठति वा।

प्रतिष्ठिः पुरुष्पायस्य सह्योः॥ (ऋ०६.१८.१२) यस्यायं महाप्रकाशस्य वृद्धस्य सर्वपदार्थानां जगदुत्पत्तौ सङ्घर्षकर्तुः सहनशीलस्य बृद्धस्य प्रमेश्वर्यवतः परमेश्वरस्य सूर्य्यलोकस्य सृष्टेर्मध्ये मिहमा प्रकाशते तस्यास्य न क्रिचच्छत्रः, न किञ्चित्परिमाणसाधनमर्थादुपमानं नैकत्राधिकरणं चास्ति, इत्यनेनोभावर्थौ गृह्यते।

(आष्ट्रीह) समन्तात्प्राप्तो भव भवित वा (चित्रभानो) चित्रा आश्चर्यभूता भानवो दीप्तयो यस्य सः (सुताः) उत्पन्न मूर्तिमन्तः पदार्थाः (इमे) विद्यमानाः (त्वायवः) त्वां तं वोपेताः। छन्दसीणः। (उणार्वः) इत्योणादिके उण्प्रत्यये कृते आयुरिति सिध्यति। त्वदित्यत्र छान्दसो वर्णलोपो वेत्यनेन तक्रस्तिमः। (अण्वीभिः) कारणैः, प्रकाशावयवैः किरणैरङ्गुलिभिर्वा। वोतो गुणवचनात्।

अष्टक-१। अध्याय-१। वर्ग-५-६

मण्डल-१। अनुवाक-१। सूक्त-३

(अष्टा०४.१.४४) अनेन ङीषि प्राप्ते व्यत्ययेन ङीन्। (तना) विस्तृतधनप्रदा:। तनेति धननामसु पठितम्। (निरु०२.१०) अत्र सुपां सुलुगित्यनेनाकारादेश:। (पूतास:) शुद्धा: शोधिताश्च॥४॥

अन्वय:-हे चित्रभानो इन्द्र परमेश्वर! त्वमस्मानायाहि कृपया प्राप्नुहि, येन भवता हमें अण्वीभिस्तना पुष्कलद्रव्यदाः पूतासस्त्वायवः सुता उत्पादिता पदार्थी वर्त्तन्ते तैर्गृहीतोपकारानस्मान्सम्पादय। तथा योऽयमिन्द्रः स्वगुणैः सर्वान् पदार्थानायाति प्रास्त्रीति तेनेम अण्वीभिः किरणकारणावयवैस्तना विस्तृतप्राप्तिहेतवस्त्वायवस्तिन्निमत्तप्राप्तायुषः पूतासः सुनाः सपारस्थाः पदार्थाः प्रकाशयुक्ताः क्रियन्ते तैरिति पूर्ववत्॥४॥

भावार्थ:-अत्र श्लेषालङ्कारेणेश्वरस्य सूर्य्यस्य वा यानि क्रमीणि प्रकाश्यन्ते तानि परमार्थव्यवहारसिद्धये मनुष्यै: समुपयोक्तव्यानि सन्तीति॥४॥

पदार्थ:-(चित्रभानो) हे आश्चर्यप्रकाशयुक्त (इन्द्र) परमिश्वर। आप हमको कृपा करके प्राप्त हूजिये। कैसे आप हैं कि जिन्होंने (अण्वीभिः) कारणों के भागों से (तना) सब संसार में विस्तृत (पूतासः) पवित्र और (त्वायवः) आपके उत्पन्न किये हुए घ्यवहारों से युक्त (सुताः) उत्पन्न हुए मूर्तिमान् पदार्थ उत्पन्न किये हैं, हम लोग जिनसे उपकार लेखिलों होते हैं, इससे हम लोग आप ही के शरणागत हैं।

दूसरा अर्थ-जो सूर्य्य अपने गुणों से सूर्व षदार्थों की प्राप्त होता है, वह (अण्वीभिः) अपनी किरणों से (तना) संसार में विस्तृत (त्वायवः) उसके निमित्त से जीनेवाले (पूतासः) पवित्र (सुताः) संसार के पदार्थ हैं, वही इन उनको प्रकाशियुक्त करता है॥४॥

भावार्थ:-यहां श्लेषालङ्कार स्मिझना जो जो इस मन्त्र में परमेश्वर और सूर्य्य के गुण और कर्म प्रकाशित किये गये हैं, इनसे परमार्थ और व्यवहार की सिद्धि के लिये अच्छी प्रकार उपयोग लेना सब मनुष्यों को योग्य है॥४॥

⁄अथेन्द्रशब्देनेश्वर उपदिश्यते।

ईश्रूर में अगले मन्त्र में अपना प्रकाश किया है-

इन्द्रायाहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः।

उप ब्रह्मीषा वाघतः॥५॥

इन्ना आ याहि। ध्या। इष्तः। विप्रंऽजूतः। सुतऽवंतः। उपं। ब्रह्माणि। वाघतः॥५॥

पदार्थ:-(इन्द्र) परमेश्वर! (आयाहि) प्राप्तो भव (धिया) प्रकृष्टज्ञानयुक्त्या बुद्ध्योत्तमकर्मणा वा (इष्ट्रित:) प्रापयितव्यः (विप्रजूतः) विप्रैर्मेधाविभिर्विद्वद्भिर्ज्ञातः। विप्र इति मेधाविनामसु पठितम्। (क्रियः) (सुतावतः) प्राप्तपदार्थविद्यान् (उप) सामीप्ये (ब्रह्माणि) विज्ञातवेदार्थान् ब्राह्मणान्। ब्रह्म

४२

वै ब्राह्मणः। (श॰ब्रा॰१३.१.५.३) (वाघतः) यज्ञविद्यानुष्ठानेन सुखसम्पादिन ऋत्विजः। वाघत इति ऋत्विङ्नामसु पठितम्। (निघं॰३.१८)॥५॥

अन्वय:-हे इन्द्र! धियेषित: विप्रजूतस्त्वं सुतावतो ब्रह्माणि वाघतो विदुष उपायाहि॥ भी भावार्थ:-मनुष्यैर्मूलकारणस्येश्वरस्य संस्कृतया बुद्ध्या विज्ञानतः साक्षात्प्राप्तिः कार्य्या नैवं विनाऽयं केनचिन्मनुष्येण प्राप्तुं शक्य इति॥५॥

पदार्थ:-(इन्द्र) हे परमेश्वर! (धिया) निरन्तर ज्ञानयुक्त बुद्धि वा उत्तम किमें से (इषित्र) प्राप्त होने और (विप्रजूत:) बुद्धिमान् विद्वान् लोगों के जानने योग्य आप (व्रह्माणि) ब्राह्मणे अर्थात् जिन्होंने वेदों का अर्थ और (सुतावत:) विद्या के पदार्थ जाने हों, तथा (वाघत:) जो बज्जिबद्या के अनुष्ठान से सुख उत्पन्न करनेवाले हों, इन सबों को कृपा से (उपायाहि) प्राप्त हूजिये। पूर्ण

भावार्थ:-सब मनुष्यों को उचित है कि जो सब कार्य्यजगत् की उत्पत्ति करने में आदिकारण परमेश्वर है, उसको शुद्ध बुद्धि विज्ञान से साक्षात् करना चाहिये॥

अथेन्द्रशब्देन वायुरुपद्रिश्यते।

ईश्वर ने अगले मन्त्र में भौतिक वास क्रिके उपदेश किया है-

इन्द्रायाहि तूर्तुजान उप ब्रह्माणि हरिव:।

सुते दंधिष्व नुश्चनः॥६॥५॥

इन्द्री आ। याहि। तूर्तुजानः। उप। ब्रह्माणा हुर्विः। सुते। दुधिष्वः। नः। चर्नः॥६॥

पदार्थ:-(इन्द्र) अयं वायुः। विश्वीमि सोम्प्रे मध्वग्न इन्द्रेण वायुनां। (ऋ०१.१५.१०) अनेन प्रमाणेनेन्द्रशब्देन वायुर्गृह्यते। (आ) स्पन्तात् (यहि) याति समन्तात् प्रापयित (तूतुजानः) त्वरमाणः। तूतुजान इति क्षिप्रनामसु पठितम्। (निशं०२.१५) (उप) सामीप्यम् (ब्रह्माणि) वेदस्थानि स्तोत्राणि (हरिवः) वेगाद्यश्ववान्। हरयो हरणिनिमित्ताः प्रशस्ताः किरणा विद्यन्ते यस्य सः। अत्र प्रशंसायां मतुप्। मतुवसो रुः सम्बुद्धौ छन्दसीत्यनेन रुत्विवसर्जनीयौ। छन्दसीरः इत्यनेन वत्वम्। हरी इन्द्रस्य। (निघं०१.१५) (सुते) आभिपुष्ट्यन्यात्पन्नौ वाग्व्यवहारौ (दिध्व) दधते (नः) अस्मभ्यमस्माकं वा (चनः) अन्नभोजनादिव्यवहारम्। ।।

अन्वयः यो हरिवे त्रेगवान् तूतुजान इन्द्रो वायुः सुते ब्रह्माण्यायाहि समन्तात् प्राप्नोति स एव चनो दिधष्व द्वर्धते। हि

भावार्थः भनुष्यैरयं वायुः शरीरस्थः प्राणः सर्वचेष्टानिमित्तोऽन्नपानादानयाचनविसर्जनधातु – विभागाभिसरणहेतुर्भृत्वा पुष्टिवृद्धिक्षयकरोऽस्तीति बोध्यम्॥६॥

इति पञ्चमो वर्गः॥

अष्टक-१। अध्याय-१। वर्ग-५-६

मण्डल-१। अनुवाक-१। सूक्त-३

पदार्थ:-(हरिव:) जो वेगादिगुणयुक्त (तूतुजान:) शीघ्र चलनेवाला (इन्द्र) भौतिक वायु है, वह (सुते) प्रत्यक्ष उत्पन्न वाणी के व्यवहार में (न:) हमारे लिये (ब्रह्माणि) वेद के स्तोत्रों को (अयोहि) अच्छी प्रकार प्राप्त करता है, तथा वह (न:) हम लोगों के (चन:) अन्नादि व्यवहार को द्विध्य ध्राण करता है।।६॥

भावार्थ:-जो शरीरस्थ प्राण है वह सब क्रिया का निमित्त होकर खाना पीच्च पकाना ग्रहण करना और त्यागना आदि क्रियाओं से कर्म का कराने तथा शरीर में रुधिर आदि धातुओं के क्रिभागों को जगह-जगह में पहुँचानेवाला है, क्योंकि वही शरीर आदि की पृष्टि वृद्धि और नाश का हेतु है।।६।।

यह पाँचवां वर्ग समाप्त हुआ॥

अथेश्वर: प्राणिनां मध्ये ये विद्वांस: सन्ति तेषां कर्तव्यत्स्थ्ये उपिदशति। ईश्वर ने अगले मन्त्र में विद्वानों के लक्षण और आचर्णों का प्रकास किया है-

ओमासश्चर्षणीधृतो विश्वे देवासु आ गत।

दाश्वांसो दाशुष: सुतम्॥७॥

ओर्मासः। चुर्षुणुऽधृतः। विश्वे। देवासः। आ। गृत्। दाश्वांसः दाशुर्षः। सुतम्॥७॥

पदार्थ:-(ओमास:) रक्षका ज्ञानिनो विद्याकामा उपूर्दशप्रीतयो विज्ञानतृप्तयो याथातथ्यावगमाः शुभगुणप्रवेशाः सर्वविद्याश्राविणः परमेश्वरप्राप्त्री व्यवहार ह्म पुरुषार्थिनः शुभविद्यागुणयाचिनः क्रियावन्तः सर्वोपकारमिच्छुका विज्ञाने प्रशस्ता अप्रताः सर्वश्रुभगुणालिङ्गिनो दुष्टगुणिहंसकाः शुभगुणदातारः सौभाग्यवन्तो ज्ञानवृद्धाः। अव रक्षप्रागितविद्यानुप्रमितितृप्त्यवगमप्रवेशश्रवणस्वाम्यर्थयाचनिक्रयेच्छादीत्य-वाप्यालिङ्गनहंसादानभागवृद्धिषु। अविद्याविसिशुष्धियः कित् इत्यनेनौणादिकेन सूत्रेणावधातोरोम् शब्दः सिध्यति। ओमास इति पदनामसु पठितम्। (निघं०४.३) (वर्षणीधृतः) सत्योपदेशेन मनुष्येभ्यः सुखस्य धर्तारः। चर्षणय इति मनुष्यन्तिम् पठितम्। (निघं०२.३) (विश्वेदेवासः) देवा दीव्यन्ति विश्वे सर्वे च ते देवा विद्वांसश्च ते। विश्वेदेवा इति पदनामसु पठितम्। (निघं०५.६) (आ गत) समन्तात् गमयत। इत्यत्र गमधातोर्ज्ञानार्थः प्रयोगः रद्धांसः) सर्वस्याभयदातारः। दाश्चान् साह्वान् मीढ्वांश्च। (अष्टा०६.१.१२) अनेनायं दानार्थाद्द्यारे क्वसुप्रत्ययान्तो निपातितः। (दाशुषः) दातुः (सुतम्) यत्सोमादिकं ग्रहीतुं विज्ञानं प्रकाशियतुं चाभीष्टं वस्तु।

निर्कतकार एनं मन्त्रमेवं समाचष्टे-अवितारो वाऽवनीया वा मनुष्यधृतः सर्वे च देवा इहागच्छूत, दत्तवन्ता दत्तवतः सुतिमिति। तदेतदेकमेव वैश्वदेवं गायत्रं तृचं दशतयीषु विद्यते। यत्तु किंच्रिहृहुदैवतं तद्देश्वदेवानां स्थाने युज्यते, यदेव विश्वलिङ्गमिति शाकपूणिरनत्यन्तगतस्त्वेष उद्देशो भवति कृष्युरक इति दश द्विपदा अलिङ्गभूतांशः काश्यप आश्विनमेकलिङ्गमभितष्टीयं सूक्तमेकलिङ्गम्।

(निरु०१२.४०) अत्र रक्षाकर्त्तारः सर्वे रक्षणीयाश्च सर्वे विद्वांसः सन्ति, ते च सर्वेभ्यो विद्याविज्ञाने दत्तवन्तो भवन्त्वित॥७॥

अन्वय:-हे ओमासश्चर्षणीधृतो दाश्वांसो विश्वेदेवासः सर्वे विद्वांसो दाशुषः समन्तादागच्छत॥७॥

भावार्थ:-ईश्वरो विदुष: प्रत्याज्ञां ददाति-यूयमेकत्र विद्यालये चेतस्ततो व्या भ्रमणे कुर्वन्तः सन्तोऽज्ञानिनो जनान् विदुष: सम्पादयत। यत: सर्वे मनुष्या विद्याधर्मसुशिक्षासित्क्रियावन्तो भूत्वा सदैव सुखिन: स्युरिति॥७॥

पदार्थ:-(ओमास:) जो अपने गुणों से संसार के जीवों की रक्षा करने, ज्ञान से परिपूर्ण, विद्या और उपदेश में प्रीति रखने, विज्ञान से तृप्त, यथार्थ निश्चययुक्त, शुभगुणों को देने और सब विद्याओं को सुनाने, परमेश्वर के जानने के लिये पुरुषार्थी, श्रेष्ठ विद्या के गुणों की इन्छा से दुष्ट गुणों के नाश करने, अत्यन्त ज्ञानवान् (चर्षणीधृत:) सत्य उपदेश से मनुष्यों के सुख के धारण करने और कराने (दाश्वांस:) अपने शुभ गुणों से सबको निर्भय करनेहारे (विश्वदेवास:) सब विद्वान् लोग हैं, वे (दाशुष:) सज्जन मनुष्यों के सामने (सुतम्) सोम आदि पदार्थ और विज्ञान का प्रकाश (आ गत) नित्य करते रहें॥७॥

भावार्थ:-ईश्वर विद्वानों को आज्ञा देता है कि नुम लोग एक जगह पाठशाला में अथवा इधर-उधर देशदेशान्तरों में भ्रमते हुए अज्ञानी पुरुषों की विद्यारूपी ज्ञान देके विद्वान् किया करो, कि जिससे सब मनुष्य लोग विद्या धर्म और श्रेष्ठ शिक्षायुक्त होके अच्छे-अच्छे कर्मों से युक्त होकर सदा सुखी रहें॥७॥

पुनेस्तानेवोपदिशति।

ईश्वर ने फिर्<u>रभी उन्हीं बिद्धा</u>नों का प्रकाश अगले मन्त्र में किया है-

विश्वे देवासी अपनुर्धिस्तमार्गन्त त्रूर्णीयः।

उस्रा इव स्वस्राणाभ्या

विश्वे। देवासं:। अपुरा मुतम्। आ। गुन्तु। तूर्णयः। उस्राःऽईव। स्वसंराणि॥८॥

पदार्थ: (विश्वे) समस्ताः (देवासः) विद्यावन्तः (अजुरः) मनुष्याणामपः प्राणान् तुतुरित विद्यादिबलानि प्राप्नुसन्ति प्रापयन्ति च ते। अयं शीघ्रार्थस्य तुरेः क्विबन्तः प्रयोगः। (सुतम्) अन्तः कर्णृष्मियते विज्ञानं कर्तुम् (आगन्त) आगच्छत। अयं गमेलींटो मध्यमबहुवचने प्रयोगः। बहुलं छन्दिसः (अष्टा०२.४.७३) इत्यनेन शपो लुकि कृते तप्तनप्तनथनाश्च। (अष्टा०७.१.४५) इति तबादेशे पित्ब्रादनुनास्किल्लोपाभावः। (तूर्णयः) सर्वत्र विद्यां प्रकाशियतुं त्वरमाणाः। जित्वरा सम्भ्रमे इत्यस्मात् विद्याश्चिश्वशुगुदुग्लाहात्वरिभ्यो नित्। (उणा०४.५३) अत्र नेरनुवर्तनातूर्णिरिति सिद्धम्। (उस्रा इव)

अष्टक-१। अध्याय-१। वर्ग-५-६

मण्डल-१। अनुवाक-१। सूक्त-३

सूर्य्यकिरणा इव। **उस्रा इति रिश्मनामसु पठितम्।** (निरु०१.५) **(स्वसराणि)** अहानि। स्वसराणीत्यहर्नामसु पठितम्। (निरु०१.९)॥८॥

अन्वय:-हे अप्तुरस्तूर्णयो विश्वेदेवा यूयं स्वसराणि प्रकाशियतुं उस्राः किर्रणा इव सुतं कर्मोपासनाज्ञानरूपं व्यवहारं प्रकाशियतुमागन्त नित्यमागच्छत समन्तात्प्राप्नुत॥८॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। ईश्वरेणैतन्मन्त्रेणेयमाज्ञा दत्ता-हे सर्वे विद्वासो नैव युष्माभि: कदाचिदपि विद्यादिशुभगुणप्रकाशकरणे विलम्बालस्ये कर्त्तव्ये। यथा दिवसे सर्वे यूर्तिमन्त: पदार्था: प्रकाशिता भवन्ति तथैव युष्माभिरपि सर्वे विद्याविषया: सदैव प्रकाशिता कार्र्या इति॥८॥

पदार्थ:-हे (अप्तुर:) मनुष्यों को शरीर और विद्या आदि का बल देने, और (तूर्णय:) उस विद्या आदि के प्रकाश करने में शीघ्रता करनेवाले (विश्वेदेवास:) सब विद्वान लोगों! जैसे (स्वसराणि) दिनों को प्रकाश करने के लिये (उस्रा इव) सूर्य्य की किरण आती-जाती हैं, वैसे ही तुम भी मनुष्यों के समीप (सुतम्) कर्म, उपासना और ज्ञान को प्रकाश करने के लिये (अस्पन्त) नित्र आया-जाया करो॥८॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। ईश्वर ने जि अज्ञा ही है, इसको सब विद्वान् निश्चय करके जान लेवें कि विद्या आदि शुभगुणों के प्रकाश करने पे किसी को कभी थोड़ा भी विलम्ब वा आलस्य करना योग्य नहीं है। जैसे दिन की निकासी में सूर्य्य सब मूर्तिमान् पदार्थों का प्रकाश करता है, वैसे ही विद्वान् लोगों को भी विद्या के विषयों का प्रकाश पदा करना चाहिये॥८॥

एते कीदृशस्वभावा भूत्वा कि सेवेरन्नित्युपदिश्यते।

विद्वान् लोग कैसे स्वभाववाले होकर कैसे कमें की सेवें, इस विषय को ईश्वर ने अगले मन्त्र में दिख्याया है-

विश्वे देवासो असिध् एहिमायासो अदुहै:।

मेधं जुषन्त वह्नयः। रिप

विश्वी देवास:। अस्मिर्धः। एहिंश्रमायास:। अदुहै:। मेर्धम्। जुष्टन्त। वह्नय:॥९॥

पदार्थ:-(विश्वे) सपर्ताः (देवासः) वेदपारगाः (अस्त्रिधः) अक्षयिवज्ञानवन्तः। क्षयार्थस्य नञ्पूर्वकस्य स्त्रिशेः विव्ववन्तस्य रूपम्। (एहिमायासः) आसमन्ताच्चेष्टायां प्रज्ञा येषां ते। चेष्टार्थस्याङ्पूर्वस्य इह्धातोः सर्वधातुभ्य इन्। (उणा०४.११९) इतीन्प्रत्ययान्तं रूपम्। मायेति प्रज्ञानामसु पिठतम्। (निघं०५९) (अदुहः) द्रोहरिहताः (मेधम्) ज्ञानिक्रयामयं शुद्धं यज्ञं सर्वैर्विद्वद्भिः शुभैर्गुणैः कर्मिभिद्धे सह सङ्गमम्। मेध इति यज्ञनामसु पिठतम्। (निघं०३.१७) (जुषन्त) प्रीत्या सेवध्वम्। (वह्नयः) सुख्रस्य वोढारः। अयं वहेर्निप्रत्ययान्तः प्रयोगः वह्नयो वोढारः। (निरु०८.३)॥९॥

४६

अन्वय:-हे एहिमायासोऽस्निधोऽदुहो वह्नयो विश्वेदेवासो भवन्तो ज्ञानक्रियाभ्यां मेधं सेधनीयं यज्ञे जुषन्त॥९॥

भावार्थ:-ईश्वर आज्ञापयति-भो विद्वांसः! परक्षयद्रोहरिहता विशालविद्यया क्रियानितो भूति सर्वेभ्यो मनुष्येभ्यो विद्यासुखयोः सदा दातारो भवन्त्वित॥९॥

पदार्थ:-(एहिमायास:) हे क्रिया में बुद्धि रखनेवाले (अस्निध:) दृढ़ ज्ञान द्वें परिपूर्ण (अदुह:) द्रोहरिहत (वह्नय:) संसार को सुख पहुँचानेवाले (विश्वे) सब (देवास:) विद्वान् लोगो तुम (मेधम) ज्ञान और क्रिया से सिद्ध करने योग्य यज्ञ को प्रीतिपूर्वक यथावत् सेवन किया करो।

भावार्थ:-ईश्वर आज्ञा देता है कि-हे विद्वान् लोगो! तुम दूसरे के विनाश और द्रोह से रहित तथा अच्छी विद्या से क्रियावाले होकर सब मनुष्यों को सदा विद्या से सुख् देने रही।

तै: कीदृशी वाक् प्राप्तमेष्टव्येत्युपदिश्यते।

विद्वानों को किस प्रकार की वाणी की इच्छा करनी चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में ईश्वर ने कहा है-

पावका नः सरम्बती वाजेभिर्वाजिनीवती।

युज्ञं वेष्टु धियावेसु:॥१०॥

पावका। नः। सर्रस्वती। वार्जेभिः। वाजिनी इवसी। युज्ञम्। वृष्टु। ध्रियाऽवसुः॥ १०॥

पदार्थ:-(पावका) पावं पवित्रकारक व्यवहार काययित शब्दयित या सा। 'पूज् पवने' इत्यस्माद्भावार्थे घज्। तस्मिन् सित 'के शब्दे' इत्यस्मात् आतोऽनुपसर्गे कः। (अष्टा०३.२.३) उपपदमित् (अष्टा०२.२.१९) इति समास्। (मः) अस्माकम् (सरस्वती) सरसः प्रशंसिता ज्ञानादयो गुणा विद्यन्ते यस्यां सा सर्वविद्याप्रापिको वाक्। सर्वधातुभ्योऽसुन्। (उणा०४.१८९) अनेन गत्यर्थात् सृधातोरसुन्प्रत्ययः। सरन्ति प्रान्त्रविन्ति सर्वा विद्या येन तत्सरः। अस्मात्प्रशंसायां मतुप्। सरस्वतीति वाङ्नामसु पठितम्। (निघं०४.११) (वाजिषः) सर्वविद्याप्राप्ति-निमित्तैरत्नादिभिः सह। वाज इत्यन्ननामसु पठितम्। (निघं०४.११) (वाजिनोवतो) सर्वविद्यासिद्धक्रियायुक्ता। वाजिनः क्रियाप्राप्तिहेतवो व्यवहारस्तद्वती। वाजिन इति पदनामसु पठितम्। (निघं०५.६) अनेन वाजिनीति गमनार्था प्राप्त्यर्था च क्रिया गृह्यते। (यद्भम्) शिल्पिविद्यामहिमानं कर्म च। यज्ञो वै महिमा। (श०ब्रा०६.२.३.१८) यज्ञो वै कर्म। (श०ब्रा०६.१११) (वष्टु) कामसिद्धिप्रकाशिका भवतु। (धियावसुः) शुद्धकर्मणा सहवासप्रापिका। तत्पुरुषे कृति बहुलाम्। (अष्टा०६.३.१४) अनेन तृतीयातत्पुरुषे विभक्त्यलुक् सायणाचार्य्यस्तु बहुव्रीहिस्सासमङ्गोकृत्य छान्दसोऽलुगिति प्रतिज्ञातवान्। अत एवैतद् भ्रान्त्या व्याख्यातवान्।

इमामूचं निरुक्तकार एवं समाचष्टे-**पावका नः सरस्वत्यन्नैरन्नवती यज्ञं वष्टु धियावसुः** कर्मवसुः (निरु०११.२६) अत्रान्नवतीति विशेष:॥१०॥ अष्टक-१। अध्याय-१। वर्ग-५-६

मण्डल-१। अनुवाक-१। सूक्त-३

अन्वय:-या वाजेभिर्वाजिनीवती धियावसु: पावका सरस्वती वागस्ति सास्माकं शिल्पविद्यामहिमानं कर्म च यज्ञं वष्टु तत्प्रकाशयित्री भवतु॥१०॥

भावार्थ:-ईश्वरोऽभिवदति-सर्वेर्मनुष्यै: सत्याभ्यां विद्याभाषणाभ्यां युक्ता क्रियासुरीला सर्वोपकारिणी स्वकीया वाणी सदैव सम्भावनीयेति॥१०॥

पदार्थ:-(वाजेभि:) जो सब विद्या की प्राप्ति के निमित्त अन्न आदि पदार्थ हैं, और जो उनके साथ (वाजिनीवती) विद्या से सिद्ध की हुई क्रियाओं से युक्त (धियावसु:) शृद्ध कम् के साथ जास देने और (पावका) पवित्र करनेवाले व्यवहारों को चितानेवाली (सरस्वती) जिसमें प्रशंसा योग्य ज्ञान आदि गुण हों ऐसी उत्तम सब विद्याओं को देनेवाली वाणी है, वह हम लोगों के प्राप्तम) शिल्पविद्या के महिमा और कर्मरूप यज्ञ को (वष्टु) प्रकाश करनेवाली हो॥१०॥

भावार्थ:-सब मनुष्यों को चाहिये कि वे ईश्वर की प्रार्थना और अपने चुरुषार्थ से सत्य विद्या और सत्य वचनयुक्त कामों में कुशल और सब के उपकार करनेवाली वाणी को प्राप्त रहें, यह ईश्वर का उपदेश है॥१०॥

पुनः सा कीदृशीत्युपदिश्वते।

ईश्वर ने वह वाणी किस प्रकार की है, इस बात का उन्नदेश अगले मन्त्र में किया है-

चोद्रियत्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाण्।

युज्ञं देधे सरस्वती॥११॥

चोद्रियत्री। सूनृतानाम्। चेतन्ती। सुऽमृत्तीनाम्। युज्ञम्। दुधे। सरस्वती॥ ११॥

पदार्थ:-(चोदियत्री) शुभग्रुणग्रेह्णप्रेरिका (सूनृतानाम्) सुतरामूनयत्यनृतं यत्कर्म तत् सून् तदृतं यथार्थं सत्यं येषां ते सूनृतास्तेषाम्। अत्र 'ऊन परिहाणे' अस्मात् विवप् चेति क्विप्। (चेतन्ती) सम्पादयन्ती सती (सुमतीनाम्) श्रोभना मितृ द्वियेषां ते सुमतयस्तेषां विदुषाम् (यज्ञम्) पूर्वोक्तम्। (दधे) दधाति। छन्दिस लुङ्लङ्क्ट्रिः। अष्टु० ३.४.६) अनेन वर्त्तमाने लिट्॥११॥

अन्वय:-या सूनृतामा सुमतीनां विदुषां चेतन्ती चोदयित्री सरस्वत्यस्ति, सैव वेदविद्या संस्कृता वाक् यज्ञं दधे दध्मति॥११॥

भावार्थः-यो किलाप्तानां सत्यलक्षणा पूर्णविद्यायुक्ता छलादिदोषरिहता यथार्थवाणी वर्त्तते, सा मनुष्याणां सत्यज्ञास्य भवितुमर्हति नेतरेषामिति॥११॥

पदार्थ:-(सूनृतानाम्) जो मिथ्या वचन के नाश करने, सत्य वचन और सत्य कर्म को सदा सेवर्य कस्के (सुमतीनाम्) अत्यन्त उत्तम बुद्धि और विद्यावाले विद्वानों की (चेतन्ती) समझने तथा

(चोदियत्री) शुभगुणों को ग्रहण करानेहारी (सरस्वती) वाणी है, वही सब मनुष्यों के शुभ गुणों के प्रकाश करानेवाले यज्ञ आदि कर्म धारण करनेवाली होती है॥११॥

भावार्थ:-जो आप्त अर्थात् पूर्ण विद्यायुक्त और छल आदि दोषरिहत विद्वान् मनुष्मिं की सत्य उपदेश करानेवाली यथार्थ वाणी है, वहीं सब मनुष्यों के सत्य ज्ञान होने के लिये कार्य होती है, अविद्वानों की नहीं॥११॥

पुनः सा कीदृशीत्युपदिश्यते॥

ईश्वर ने फिर भी वह वाणी कैसी है, इस बात का प्रकाश अगले मन्त्र∕में किया है

मुहो अर्णुः सर्रस्वती प्रचेतयित केतुनी। धियो विश्वा वि राजिति॥१२॥६॥१॥

४८

मुहः। अर्णः। सरस्वती। प्रा चेतुयति। केतुना। धिर्यः। विश्वाः विश्वाः विश्वाः ।

पदार्थ:-(महः) महत्। अत्र सर्वधातुभ्योऽसुन्नित्यपुन्प्रत्यपुरं। (अर्ण:) जलार्णविमव शब्दसमुद्रम्। उदके नुट् च। (उणा०४.१९७) अनेन सूत्रेणार्वरसुन्प्रत्यपुरं। अर्ण इत्युदकनामसु पिठतम्। (निघं०१.१२) (सरस्वती) वाणी (प्र) प्रकृष्टार्थे (चेतयित) सम्यक्ष् ज्ञापयित (केतुना) शोभनकर्मणा प्रज्ञया वा। केतुरिति प्रज्ञानामसु पिठतम्। (निघं०३८) (धियः) मनुष्याणां धारणावतीर्बुद्धीः (विश्वाः) सर्वाः (वि) विशेषार्थे (राजित) प्रकाशयित। अत्रात्तर्भाषितो प्र्यर्थः।

निरुक्तकार एनं मन्त्रमेवं समाचष्टे **महदर्ण: सरस्वती प्रचेतयित प्रज्ञापयित केतुना कर्मणा** प्रज्ञया वेमानि च सर्वाणि प्रज्ञानान्यभिविभज्ञित कागर्थेषु विधीयते तस्मान्माध्यमिकां वाचं मन्यन्ते वाग्वाख्याता। (निरु०११.२७)॥१२॥

अन्वयः-या सरस्वती केतुःशा महोदर्णः खलु जलार्णविमव शब्दसमुद्रं प्रकृष्टतया सम्यग् ज्ञापयित सा प्राणिनां विश्वा धियो विराजिति विविधतयोत्तमा बुद्धीः प्रकाशयित॥१२॥

भावार्थ:-अत्र वाचकोपमेयलप्तोपमालङ्कारः। यथा वायुना चालितः सूर्य्येण प्रकाशितो जलरत्नोर्मिसहितो महान् समुद्रोऽजेकेव्यवहाररत्नप्रदो वर्तते तथैवास्याकाशस्थस्य वेदस्थस्य च महतः शब्दसमुद्रस्य प्रकाशहेतुर्वेद्वाणी विदुषामुपदेशश्चेतरेषां मनुष्याणां यथार्थतया मेधाविज्ञानप्रदो भवतीति॥१२॥ 🛆

सूक्तृद्ध्यसम्बद्धिनोऽर्थस्योपदेशानन्तरमनेन तृतीयसूक्तेन क्रियाहेतुविषयस्याश्चिशब्दार्थमुक्त्वा तित्सिद्धिकर्तूणां विद्वां स्वरूपलक्षणमुक्त्वा विद्वद्भवनहेतुना सरस्वतीशब्देन सर्वविद्याप्राप्तिनिमित्तार्था वाक् प्रकाशितीत वेदितव्यम्। द्वितीयसूक्तोक्तानां वाय्विन्द्रादीनामर्थानां सम्बन्धे तृतीयसूक्तप्रेष्त्पादितानामश्चिवद्वत्सरस्वत्यर्थानामन्वयाद् द्वितीयसूक्तोक्तार्थेन सहास्य कृतीयसूक्तप्रेक्तार्थस्य सङ्गतिरस्तीति बोध्यम्।

अष्टक-१। अध्याय-१। वर्ग-५-६

मण्डल-१। अनुवाक-१। सूक्त-३

अस्य सूक्तस्यार्थः सायणाचार्य्यादिभिरन्यथैव वर्णितः। तत्र प्रथमं तस्यायं भ्रमः-'द्विविधा हि सरस्वती विग्रहवद्देवता नदीरूपा च। तत्र पूर्वाभ्यामृग्भ्यां विग्रहवती प्रतिपादिता। अनया त नदीरूपा प्रतिपाद्यते।' इत्यनेन कपोलकल्पनयाऽयमर्थो लिखित इति बोध्यम्। एवमेव व्यर्था कल्पनाऽध्यापके-विलसनाख्यादीनामप्यस्ति। ये विद्यामप्राप्य व्याख्यातारो भवन्ति तेषामन्ध्यत्यवृद्धिभवतीत्यत्र किमाश्चर्यम्।।

इति प्रथमोऽनुवाकस्तृतीयं सूक्तं षष्ठश्च वर्गः समाप्तः॥ 🖊

पदार्थ:-जो (सरस्वती) वाणी (केतुना) शुभ कर्म अथवा श्रेष्ठ बुद्धि से (महः) अगाध (अर्णः) शब्दरूपी समुद्र को (प्रचेतयित) जनानेवाली है, वहीं मनुष्यों की (विश्वाः) स्म बुद्धियों को विशेष करके प्रकाश करती है॥१२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकोपमेय लुप्तोपमालङ्कार दिख्वताया है। जैसे वायु से तरङ्गयुक्त और सूर्य्य से प्रकाशित समुद्र अपने रत्न और तरङ्गों से युक्त होने के कारण बहुत उत्तम व्यवहार और रत्नादि की प्राप्ति में बड़ा भारी माना जाता है, वैसे ही जो अकाश और वेद का अनेक विद्यादि गुणवाला शब्दरूपी महासागर को प्रकाश करानेवाली वेदवाणी का उपदेश है, वहीं साधारण मनुष्यों की यथार्थ बुद्धि का बढ़ानेवाला होता है॥१२॥

और जो दूसरे सूक्त की विद्या का प्रकाश करके क्रियाओं का हेतु अश्विशब्द का अर्थ और उसके सिद्ध करनेवाले विद्वानों का लक्षण तथा किद्वान् होने का हेतु सरस्वती शब्द से सब विद्याप्राप्ति का निमित्त वाणी के प्रकाश करने से जान लेन चाहिये कि दूसरे सूक्त के अर्थ के साथ तीसरे सूक्त के अर्थ की सङ्गति है।

इस सूक्त का अर्थ सायणीचायों आदि नवीन पण्डितों ने बुरी प्रकार से वर्णन किया है। उनके व्याख्यानों में पहले सायणाचायों का भ्रम दिखलाते हैं। उन्होंने सरस्वती शब्द के दो अर्थ माने हैं। एक अर्थ से देहवाली देवतारूप और दूसरे में नहीरूप सरस्वती मानी है। तथा उनने यह भी कहा है कि इस सूक्त में पहले दो मन्त्र से मारिकाली देवरूप सरस्वती का प्रतिपादन किया है, और अब इस मन्त्र से नदीरूप सरस्वती को वर्णन करते हैं। जैसे यह अर्थ उन्होंने अपनी कपोलकल्पना से विपरीत लिखा है, इसी प्रकार अध्यापिक विलक्ष्म की व्यर्थ कल्पना जाननी चाहिये। क्योंकि जो मनुष्य विद्या के बिना किसी ग्रन्थ की व्याख्या को प्रवृत्त होते हैं, उनकी प्रवृत्ति अन्धों के समान होती है।।

यह प्रथम अनुवाक, तीसरा सूक्त और छठा वर्ग समाप्त हुआ॥

अथास्य दशर्चस्य चतुर्थसूक्तस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। इन्द्रो देवता। १,२, ४-९ गायत्री; ३ विराड्गायत्री; १० निचृहायत्री च छन्दः। षड्जः स्वरः॥

तत्र प्रथममन्त्रेणोक्तविद्याप्रपूर्त्यर्थमिदमुपदिश्यते।

अब चौथे सूक्त का आरम्भ करते हैं। ईश्वर ने इस सूक्त के पहिले मन्त्र में उक्त-विद्या के पूर्ण करनेवाले साधन का प्रकाश किया है-

सुरूपकृलुमूतये सुदुर्घामिव गोदुहे। जुहूमसि द्यविद्यवि॥१॥

सुरूपुऽकृत्नुम्। ऊतये। सुदुर्घाम्ऽइव। गोदुहे। जुहूमिस। द्यविऽद्यवि॥ ﺑ 🗓

पदार्थ:-(सुरूपकृत्नुम्) य इन्द्रः सूर्य्यः सर्वान्यदार्थान् स्वप्रकाशेन स्वरूपान् करोतीति तम्। कृहिनभ्यां कृत्नुः। (उणा०३.२८) अनेन कतनुप्रत्ययः। उपपदसमासः। इन्द्रं दिव इन्द्रं ईशे पृथिव्याः। (ऋ०९०.८९.१०) नेन्द्रांदृते पंवते धाम् किं चना। (ऋ०९.६९.६ निरु०९.२) (निरु०७.२) अहिमन्द्रः परमेश्वरः सूर्य्यं पृथिवीं च ईशे रचितवानस्मीति तेनोपदिश्यते। सस्मोदिन्द्राद्विना किञ्चिदपि धाम न पवते न पवित्रं भवित। (ऊतये) विद्याप्राप्तये। अवधातोः प्रयोगः कितिसूप्ति। (अष्टा०३.३.९७) अस्मिन्द्रं निपातितः। (सुदुधामिव) यथा कश्चिन्मनुष्यो बहुद्रश्वद्राच्या मोः पयो दुग्ध्वा स्वाभीष्टं प्रपूरयित तथा। दुहः कप धश्च। (अष्टा०३.२.७०) इति सुपूर्वाद् दुह्धातोः कप्प्रत्ययो घादेशश्च। (गोदुहे) गोदींग्धे दुग्धादिकिमच्छवे मनुष्याय। सत्सूद्विष०। (अष्टा०३.२.६१) इति सूत्रेण क्विप्प्रत्ययः। (जुहूमिस) स्तुमः। बहुलं छन्दिस। (अष्टा०२.४.७६) अनेन सपः स्थाने श्वः। अभ्यस्तस्य च। (अष्टा०६.१.३३) अनेन सम्प्रसारणम्। सम्प्रसारणाच्च। (अष्टा०६.१.१०८) अनेन पूर्वरूपम्। हलः। (अष्टा०६.१.२) इति दीर्घः। इदन्तो मिस। (अष्टा०७.१.४६) अनेन पूर्वरूपम्। हलः। (विद्यवि) दिने दिने। नित्यवीप्सयोः। (अष्टा०८.१.४) अनेन द्वित्वम्। इतिद्वानित्यदर्तामसु पठितम्। (निघं०१९)॥१॥

अन्वय:-गोदुहे दुग्ध्रादिकमिच्छवे मिनुष्याय दोहनसुलभां गामिव वयं द्यविद्यवि प्रतिदिनं सविद्यानां स्वेषामूतये विक्राप्राप्तये सुक्रपकृत्नुमिन्द्रं परमेश्वरं जुहूमसि स्तुम:॥१॥

भावार्थः-अत्रोपमाल्ङ्कारो। यथा मनुष्या गोर्दुग्धं प्राप्य स्वप्रयोजनानि साधयन्ति तथैव धार्मिका विद्वांसः परमेश्वरोष्ट्रास्तनया श्रेष्ठविद्यादिगुणान् प्राप्य स्वकार्य्याणि प्रपूरयन्तीति॥१॥

पदार्थ: जैसे दूध की इच्छा करनेवाला मनुष्य दूध दोहने के लिये सुलभ दुहानेवाली गौओं को दोहके अपनी कार्मेनाओं को पूर्ण कर लेता है, वैसे हम लोग (द्यविद्यवि) सब दिन अपने निकट स्थित मनुष्यों को (ऊतये) विद्या की प्राप्ति के लिये (सुरूपकृत्नुम्) परमेश्वर जो कि अपने प्रकाश से सब पदार्थी को उत्तम रूपयुक्त करनेवाला है, उसकी (जुहूमिस) स्तुति करते हैं॥१॥

अष्टक-१। अध्याय-१। वर्ग-७-८

मण्डल-१। अनुवाक-२। सूक्त-४

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे मनुष्य गाय के दूध को प्राप्त होके अपने प्रयोजन को सिद्ध करते हैं, वैसे ही विद्वान् धार्मिक पुरुष भी परमेश्वर की उपासना से श्रेष्ठ विद्या आर्दि गुणों को प्राप्त होकर अपने-अपने कार्य्यों को पूर्ण करते हैं॥१॥

अथेन्द्रशब्देन सूर्य्य उपदिश्यते।

अगले मन्त्र में ईश्वर ने इन्द्र शब्द से सूर्य्य के गुणों का वर्णन किया 🎉

उपं नुः सवनागृहि सोम्स्य सोमपाः पिब।

गोदा इद्रेवतो मदः॥२॥

उप। नुः। सर्वना। आ। गृहु। सोर्मस्य। सोमुऽपाः। पिबु। गोऽदाः 🛵 त्। गुनर्तः मर्दः॥२॥

पदार्थ:-(उप) सामीप्ये (नः) अस्माकम् (सवना) ऐश्वर्ययुक्तानि वस्तूनि प्रकाशियतुम्। सु प्रसवैश्वर्ययोः इत्यस्माद्धातोर्ल्युट् प्रत्ययः (अष्टा०३.३.११४) स्रोश्छन्दिस् बहुलिमिति शेर्लुक्। (आगिह) आगच्छिति। शपो लुिक सित वाच्छन्दसीति हेर्स्पत्वादनुद्धानापदेश०। (अष्टा०६.४.३७) इत्यनुनासिकलोपः लड्थे लोट् च। (सोमस्य) उत्पत्स्य कार्य्यभूतस्य जगतो मध्ये (सोमपाः) सर्वपदार्थरक्षकः सन् (पिब) पिबित। अत्र व्यत्ययः लर्ड्थे लोट् च। (गोदाः) चक्षुरिन्द्रियव्यवहारप्रदः। किवप् चेति क्विष् प्रत्ययः। गौरिति पदनामसु पिठतम्। (निघं०५.५) जीवो येन रूपं जानाित तस्माच्चक्षुगौः। (इत्) एव (रेवतः) पदार्थप्रपितमतो जीवस्य। छन्दसीर इति वत्वम्। (मदः) हर्षकरः॥२॥

अन्वय:-यतोऽयं सोमपा गोदा इन्द्र सूजर्मः सोमस्य जगतो मध्ये स्विकरणैः सवना सवनानि प्रकाशियतुमुपागिह उपागच्छित तस्मादेव तोऽस्माक रेवतः पुरुषार्थिनो जीवस्य च हर्षकरो भवति॥२॥

भावार्थ:-सूर्य्यस्यः प्रकारी सर्वे जीवाः स्वस्य स्वस्य कर्मानुष्ठानाय विशेषतः प्रवर्तन्ते नैवं रात्री कश्चित्सुखतः कार्य्याणि कर्त्तुं/शब्तोतीति॥२॥

पदार्थान्वयभाषा (सोमपा:) जो सब पदार्थों का रक्षक और (गोदा:) नेत्र के व्यवहार को देनेवाला सूर्य्य अपने प्रकाश से (सोमस्य) उत्पन्न हुए कार्य्यरूप जगत् में (सवना) ऐश्वर्य्ययुक्त पदार्थों के प्रकाश करने को अपनी किरण द्वारा सन्मुख (आगिह) आता है, इसी से यह (न:) हम लोगों तथा (रेवत:) पुरुषार्श्व से अच्छे-अच्छे पदार्थों को प्राप्त होनेवाले पुरुषों को (मद:) आनन्द बढ़ाता है॥२॥

भाषार्थः जिस प्रकार सब जीव सूर्य्य के प्रकाश में अपने-अपने कर्म करने को प्रवृत्त होते हैं, उस प्रक्रा रात्रि में सुख से नहीं हो सकते॥२॥

येनायं सूर्य्यो रचितस्तं कथं जानीमेत्युपदिश्यते।

जिसने सूर्य्य को बनाया है, उस परमेश्वर ने अपने जानने का उपाय अगले मन्त्र में जनाया है-

42

अर्था ते अन्तमानां विद्यामे सुमतीनाम्। मा नो अतिख्य आगीहा। ३॥

अर्थ। ते। अन्तर्मानाम्। विद्यामं। सुमृतीनाम्। मा। नुः। अर्तिख्युः। आ। गृहि॥३॥

पदार्थ:-(अथ) अनन्तरार्थे। निपातस्य चेति दीर्घः। (ते) तव (अनुमानिष्) अन्तः सामीप्यमेषामस्ति तेऽन्तिका, अतिशयेनान्तिका अन्तमास्तत्समागमेन। अत्रान्तिकशब्दात्तमपि कृते पृषोदरादित्वात्तिकलोपः। अन्तमानािमत्यन्तिकनामसु पठितम्। (निघं०२.१६) (विद्याम) मित्रयाम (सुमतीनाम्) वेदादिशास्त्रे परोपकारे धर्माचरणे च श्रेष्ठा मतिर्येषां मनुष्याणाम्। मतय इति मनुष्यनामसु पठितम्। (निघं०२.३) (मा) निषेधार्थे (नः) अस्मान् (अतिख्यः) उपदेशिल्लाङ्कनं मा कुर्याः (आगिष्ट) आगच्छ।।३॥

अन्वय:-हे परमैश्वर्यवित्रन्द्र परमेश्वर! वयं ते तवान्तमानामर्थात्त्वां ज्ञात्व्या त्वित्रकटे त्वदाज्ञायां च स्थितानां सुमतीनामाप्तानां विदुषां समागमेन त्वां विजानीयाम्/। त्वित्रोऽस्मानागच्छास्मदात्मिन प्रकाशितो भव। अथान्तर्यामितया स्थित: सन्सत्यमुपदेशं मातिख्य: कद्मचिदस्योल्लुङ्क्षनं मा कुर्य्या:॥३॥

भावार्थ:-यदा मनुष्या धार्मिकाणां विद्वत्तमानीं सिकाप्राच्छिक्षाविद्ये प्राप्नुवन्ति तदा नैव पृथिवीमारभ्य परमेश्वरपर्यन्तान् पदार्थान् विदित्वा सुखिनो भूत्वा पुनस्ते कदाचिदन्तर्यामीश्वरोपदेशं विहायेतस्ततो भ्रमन्तीति॥३॥

पदार्थ:-हे परम ऐश्वर्ययुक्त परमेश्वर (त) आपक्के (अन्तमानाम्) निकट अर्थात् आपको जानकर आपके समीप तथा आपकी आज्ञा में रहनेवाले विद्वान् लोग, जिन्हों की (सुमतीनाम्) वेदादिशास्त्र परोपकाररूपी धर्म करने में श्रेष्ठ बुद्धि हो रही है। उनके समागम से हम लोग (विद्याम) आपको जान सकते हैं, और आप (नः) हमको (आगहि) प्राप्त अर्थात् हमारे आत्माओं में प्रकाशित हूजिये, और (अथ) इसके अनन्तर कृपा करके अन्तर्याधिरूप से हमारे आत्माओं में स्थित हुए (मातिख्यः) सत्य उपदेश को मत रोकिये, किन्तु उसकी प्रेरणा सदा किया कीजिये॥३॥

भावार्थ:-जब मनुष्य लोग हुन धार्मिक श्रेष्ठ विद्वानों के समागम से शिक्षा और विद्या को प्राप्त होते हैं, तभी पृथिवी से लेकर प्रमिश्वरपर्य्यन्त पदार्थों के ज्ञान द्वारा नाना प्रकार से सुखी होके फिर वे अन्तर्यामी ईश्वर के उपदेश को छोड़कर कभी इधर-उधर नहीं भ्रमते॥३॥

> तिसमीष स्थित्वा मनुष्येण किं कर्त्तव्यम्, ते च तान् प्रति किं कुर्य्युरित्युपदिश्यते। मनुष्य लेए। विद्वानों के समीप जाकर क्या करें और वे इनके साथ कैसे वर्तें, इस विषय का उपदेश ईश्वर ने अगले मन्त्र में किया है-

प्रसेह्र विग्रमस्तृतिमिन्द्रं पृच्छा विपृश्चितम्।

अष्टक-१। अध्याय-१। वर्ग-७-८

मण्डल-१। अनुवाक-२। सूक्त-४

यस्ते सर्खिभ्य आ वरम्॥४॥

पर्ता <u>इहि</u>। विश्रम्। अस्तृतम्। इन्द्रम्। पृच्छ। वि<u>ष</u>ःऽचितम्। यः। ते। सिखिभ्यः। आ। वरम्। ४। पदार्थः-(परा) पृथक् (इहि) भव (विश्रम्) मेधाविनम्। वेश्रों वक्तव्य इति वेः प्रस्या नासिकायाः स्थाने ग्रः समासान्तादेशः। उपसर्गाच्य। (अष्टा०५.४.११९) इति सूत्रस्योपरि वातिकम्। विश्र इति मेधाविनामसु पठितम्। (निघं०३.१५) (अस्तृतम्) अहिंसकम् (इन्द्रम्) विद्या परमेश्र्ययुक्तं मनुष्यम् (पृच्छ) सन्देहान् दृष्ट्वोत्तराणि गृहाण। द्वयचोऽतस्तिङः। (अष्टा०६.३.१५०) इति दीर्घः। (विपश्चितम्) विद्वांसं य आप्तः सन्नुपदिशति। विपश्चिदिति मेधाविनामसु पठितम्। (निघं०३.१५) पुनरुक्त्याऽऽप्तत्वादिगुणवत्त्वं गृह्यते। (ते) तुभ्यम् (सिखभ्यः) मित्रस्वभावेभः (आ) समन्तात् (वरम्) परमोत्तमं विज्ञानधनम्॥४॥

अन्वय:-हे विद्यां चिकीर्षो मनुष्य! यो विद्वान् तुभ्यं सित्रशालिभ्यश्चासमन्ताद्वरं विज्ञानं ददाति, तं विग्रमस्तृतिमन्द्रं विपश्चितमुपगम्य सन्देहान् पूच्छ, यथार्थतया तदुपदिष्टान्युत्तराणि गृहीत्वाऽन्येभ्यस्त्वमिप वद। यो ह्यविद्वान् ईर्ष्यकः कपटी स्वार्थी मनुष्त्रीऽस्ति तस्मात्सर्वदा परेहि॥४॥

भावार्थ:-सर्वेषां मनुष्याणामियं योग्यतास्ति पूर्वं पर्रोष्क्रिरणं पण्डितं ब्रह्मनिष्ठं श्रोत्रियं पुरुषं विज्ञाय तेनैव सह प्रश्नोत्तरविधानेन सर्वा: शङ्का विवारणीयाः किन्तु ये विद्याहीनाः सन्ति नैव केनापि तत्सङ्गकथनोत्तरविश्वासः कर्त्तव्य इति॥४॥

पदार्थ:-हे विद्या की अपेक्षा करने वाले मेमुख्य लोगो! जो विद्वान् तुझ और (ते) तेरे (सिखभ्य:) मित्रों के लिये (आवरम्) श्रेष्ठ विज्ञान की वैता हो) उस (विग्रम्) जो श्रेष्ठ बुद्धिमान् (अस्तृतम्) हिंसा आदि अधर्मरहित (इन्द्रम्) विद्या परमेश्वर्ययुक्त (विपश्चितम्) यथार्थ सत्य कहनेवाले मनुष्य के समीप जाकर उस विद्वान् से (पृच्छ) अपने सन्देह पूछ, और फिर उनके कहे हुए यथार्थ उत्तरों को ग्रहण करके औरों के लिये तू भी उपदेश कर परन्तु जो मनुष्य अविद्वान् अर्थात् मूर्ख ईर्षा करने वा कपट और स्वार्थ में संयुक्त हो उससे तू (प्रहेह्र) सद्दा दूर रहा। ४॥

भावार्थ:-सब मनुष्यों के मही योग्य है कि प्रथम सत्य का उपदेश करनेहारे वेद पढ़े हुए और परमेश्वर की उपासना करनेवाले विद्वानों को प्राप्त होकर अच्छी प्रकार उनके साथ प्रश्नोत्तर की रीति से अपनी सब शङ्का निवृत्त करें, किन्तु विद्याहीन मूर्ख मनुष्य का सङ्ग वा उनके दिये हुए उत्तरों में विश्वास कभी न करें।

पुनः स एवार्थ उपदिश्यते।

ईश्वर ने फिर भी इसी विषय का उपदेश मन्त्र में किया है-

इत बुवन्तु नो निदो निर्न्यतंश्चिदारत।

दर्धाना इन्द्र इद्दुर्वः॥५॥७॥

48

उता बुवन्तु। नुः। निर्दः। निः। अन्यतः। चित्। आर्तु। दर्धानाः। इन्ह्रे। इत्। दुर्वः॥५॥

पदार्थ:-(उत) अप्येव (बुवन्तु) सर्वा विद्या उपिदशन्तु (नः) अस्मभ्यम्। (निदः) मिदितासः 'णिदि कुत्सायाम्' अस्मात् क्विप्, छान्दसो वर्णलोपो वेति नलोपः। (निः) नितराम्। (अस्पतः) देशात् (चित्) अन्ये (आरत) गच्छन्तु। व्यवहिताश्चेत्युपसर्गव्यवधानम्। अत्र व्यत्ययः। (द्वानाः) धारियतारः (इन्द्रे) परमैश्वर्ययुक्ते परमेश्वरे (इत्) इतः। इयते प्राप्यते। सोऽयमिद् देशः। अत्र कुमीप क्विप्। तत्र सुपां सुलुगिति डसेर्लुक्। (दुवः) परिचर्यायाम्॥५॥

अन्वय:-य इन्द्रे परमेश्वरे दुवः परिचर्या दधानाः सर्वासु विद्यास् पूर्मे पुरुषार्थे च वर्त्तमानाः सिन्त, त उत्तैव नोऽस्मभ्यं सर्वा विद्या ब्रुवन्तूपदिशन्तु। ये चिदन्ये स्नित्ति निर्दा निन्दितारोऽविद्वांसो धूर्ताः सिन्त, ते सर्व इतो देशादस्मन्निवासान्निरारत दूरे गच्छन्त्, उत्तान्यतो देशादिप निःसरन्तु, अर्थादधार्मिकाः पुरुषाः क्वापि मा तिष्ठेयुरिति॥५॥

भावार्थ:-सर्वेर्मनुष्यैराप्तविद्वत्सङ्गेन मूर्खसङ्गत्यागेनेत्थं पुरुष्मर्थः कर्त्तव्यो यतः सर्वत्र विद्यावृद्धिरविद्याहानिश्च मान्यानां सत्कारो दुष्टानां ताडनं विश्वरीपासन्। पापिनां निवृत्तिर्धार्मिकाणां वृद्धिश्च नित्यं भवेदिति॥५॥

इति सप्तमो वर्गः समाजः॥

पदार्थ:- जो कि परमेश्वर की (दुव:) से को धारण किये हुए, सब विद्या धर्म और पुरुषार्थ में वर्त्तमान हैं, वे ही (न:) हम लोगों के लिये सब विद्याओं का उपदेश करें, और जो कि (चित्) नास्तिक (निद:) निन्दक वा धूर्त मनुष्य हैं, वे सब हम लोगों के निवासस्थान से (निरारत) दूर चले जावें, किन्तु (उत) निश्चय करके और देशों से भ्री दूर हो जायें अर्थात् अर्थात् अर्थात् किसी देश में न रहें॥५॥

भावार्थ:-सब मनुष्यों को उचित है कि आप्त धार्मिक विद्वानों का सङ्ग कर और मूर्खों के सङ्ग को सर्वथा छोड़ के ऐसा पुरुषीर्थ करना चाहिये कि जिससे सर्वत्र विद्या की वृद्धि, अविद्या की हानि, मानने योग्य श्रेष्ठ पुरुषों का सत्कार द्वृष्टों को दण्ड, ईश्वर की उपासना आदि शुभ कर्मों की वृद्धि और अशुभ कर्मों का विनाश नित्य होता रहे॥५॥

यह सातवां वर्ग समाप्त हुआ॥

मनुष्यै: कीदृशं शीलं धार्य्यमित्युपदिश्यते।

अब्र मनुष्ये को कैसा स्वभाव धारण करना चाहिये, इस विषय का उपदेश ईश्वर ने अगले मन्त्र में किया है-

उत्ते नः सुभगां अरिर्वोचेयुर्दस्म कृष्टयः

अष्टक-१। अध्याय-१। वर्ग-७-८

मण्डल-१। अनुवाक-२। सूक्त-४

स्यामेदिन्द्रंस्य शर्मीण॥६॥

उता नः। सुभगान्। अिरः। वोचेयुः। दुस्म। कृष्टयः। स्यामं। इत्। इन्द्रस्य। शर्मणि॥६॥ पदार्थः-(उत) अपि (नः) अस्मान् (सुभगान्) शोभनो विद्यैश्वर्ययोगो येषां तास्। भग इति धननामसु पठितम्। (निघं०२.१०) (अरिः) शतुः (वोचेयुः) सम्प्रीत्या सर्वा विद्याः सर्वान्प्रत्युपिद्श्यासुः। वचेराशिषि लिङि प्रथमस्य बहुवचने। लिङ्याशिष्यङ्। (अष्टा०३.१.८६) अनेन विकरणस्थान्यङ् प्रत्ययः। वच उम्। (अष्टा०७.४.२०)अनेनोमागमः। (दस्म) दुष्टस्वभावोपक्षेतः। 'दसु उपक्षचे इत्यस्मात् इषि युधीस्थिदसि०। (उणा०१.४४) अनेन मक् प्रत्ययः। (कृष्टयः) मनुष्यान कृष्ट्य इति मनुष्यनामसु पठितम्। (निघं०२.३) (स्याम) भवेम (इत्) एव (इन्द्रस्य) परमेश्वरस्य (शर्मणि) नित्यसुखे। शर्मित पदनामसु पठितम्। (निघं०५.५)॥६॥

अन्वय:-हे दस्मोपक्षयरित जगदीश्वर! वयं तवेन्द्रस्य शर्माण खुल्वाज्ञापालनाख्यव्यवहारे नित्यं प्रवृत्ताः स्यामेमे कृष्टयः सर्वे मनुष्याः सर्वान् प्रति सर्वा विद्या वोचेयुरुपिदशासुर्य्यतः सत्योपदेशप्राप्तान्नोऽस्मानिरुत शत्रुरिप सुभगान् जानीयाद्वां क्याप्ति

भावार्थः-यदा सर्वे मनुष्या विरोधं विहाय सर्वोपकारणे प्रयतन्ते तदा शत्रवोऽप्यविरोधिनो भवन्ति, यतः सर्वान्मनुष्यानीश्वरानुग्रहनित्यानन्दौ प्राप्नुतः॥६॥

पदार्थ:-हे (दस्म) दुष्टों को दण्ड देनेबाले परमेश्वर ! हम लोग। (इन्द्रस्य) आप के दिये हुए (शर्मणि) नित्य सुख वा आज्ञा पालने में (स्थाम) प्रवृत्त हों, और ये (कृष्ट्य:) सब मनुष्य लोग प्रीति के साथ सब मनुष्यों के लिये सब विद्याओं की (वीच्ये) उपदेश से प्राप्त करें, जिससे सत्य के उपदेश को प्राप्त हुए (न:) हम लोगों को (अरि) (उत्त) शत्रु भी (सुभगान्) श्रेष्ठ विद्या ऐश्वर्ययुक्त जानें वा कहें॥६॥

भावार्थ:-जब सब ममुर्प्य विरोध को छोड़कर सब के उपकार करने में प्रयत्न करते हैं, तब शत्रु भी मित्र हो जाते हैं, जिस्मे सब मेचुप्त्रों को ईश्वर की कृपा वा निरन्तर उत्तम आनन्द प्राप्त होते हैं॥६॥

किंमर्थः स इन्द्रः प्रार्थनीय इत्युपदिश्यते।

परमेश्वर प्रार्थना करने योग्य क्यों है, यह विषय अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है-

एमाश्रुमाशिबे भर यज्ञिश्रयं नृमादेनम्।

पृत्यसम्ह्यत्संखम्॥७॥

अा। ईम्। आशुम्। आशवे। भुर्। यज्ञुऽश्रियेम्। नृऽमादेनम्। पुत्यत्। मुन्दुयत्ऽसेखम्॥७॥

पदार्थ:-(आ) अभितः (ईम्) जलं पृथिवीं च। ईमिति जलनामसु पठितम्। (निघं०१.१२) दनामस् च। (निघं०४.२) (आशृम्) वेगादिगुणवन्तमग्निवाय्वादिपदार्थसमूहम्। आश्वित्यश्चनामस्

पिठतम्। (निघं०१.१४) कृवापा०। (उणा०१.१) अनेनाशूङ्धातोरुण् प्रत्ययः। (आशवे) यनिषु सर्वानन्दस्य वेगादिगुणानां च व्याप्तये (भर) सम्यग्धारय प्रदेहि (यज्ञश्रियम्) चक्रवर्त्तिराज्यादेर्महिम्नः श्रीलिक्ष्मीः शोभा। राष्ट्रं वा अश्वमेधः। (श०ब्रा०१३.१.६.३) अनेन यज्ञशब्दाद्राष्ट्रं गृह्यते। यज्ञो वे महिमा (श०ब्रा०६.२.३.१८) (नृमादनम्) माद्यन्ते हर्ष्यन्तेऽनेन तन्मादनं नृणां मादनं नृमादनम् (यज्ञयत्) यत्पतिं करोतीति पतित्वसम्पादकं तत्। तत् करोति तदाचष्टे इति पतिशब्दाण्णिच्। (मन्दयन्तिः मन्दयन्तो विद्याज्ञापकाः सखायो यस्मिस्तत्॥७॥

अन्वय:-हे इन्द्र परमेश्वर! तव कृपयाऽस्मदर्थमाशव अश्व यहाश्रियं नृमादनं पतयत्स्वामित्वसम्पादकं मन्दयत्सखं विज्ञानादिधनं भर देहि॥७॥

भावार्थ:-ईश्वरः पुरुषार्थिनो मनुष्यस्योपिर कृपां दधाति नालमस्य क्ता रे यावन्मनुष्यः स्वयं पूर्णं पुरुषार्थं न करोति नैव तावदीश्वरकृपाप्राप्तान् पदार्थान् रक्षितुष्मिष् समर्थो भवति। अतो मनुष्यैः पुरुषार्थवद्भिर्भृत्वेश्वरकृपैष्टव्येति॥७॥

पदार्थ:-हे इन्द्र परमेश्वर! आप अपनी कृपा करके हम लोगों के अर्थ (आशवे) यानों में सब सुख वा वेगादि गुणों की शीघ्र प्राप्ति के लिये जो (आशुम्) केंग्र आदि गुणवाले अग्नि वायु आदि पदार्थ (यज्ञश्रियम्) चक्रवर्त्ति राज्य के महिमा की शोभा (ईम्) जल और पृथिवी आदि (नृमादनम्) जो कि मनुष्यों को अत्यन्त आनन्द देनेवाले तथा (पतयत्) स्वामिप्त को करनेवाले वा (मन्दयत्सखम्) जिसमें आनन्द को प्राप्त होने वा विद्या के जनानेवाले मित्र हो, ऐसे (भर) विज्ञान आदि धन को हमारे लिये धारण कीजिये॥७॥

भावार्थ:-ईश्वर पुरुषार्थी मनुष्य पर वृषा कर्गता है, आलस करनेवाले पर नहीं, क्योंकि जब तक मनुष्य ठीक-ठीक पुरुषार्थ नहीं करता एवं तक इश्वर की कृपा और अपने किये हुए कर्मों से प्राप्त हुए पदार्थीं की रक्षा में समर्थ कभी नहीं हो सकता। इसलिये मनुष्यों को पुरुषार्थी होकर ही ईश्वर की कृपा के भागी होना चाहिये॥७॥

पुन्रश्च कथंभूत इन्द्र इत्युपदिश्यते।

फिर भी पुरुमे पर ने प्रूर्यलोक के स्वभाव का प्रकाश अगले मन्त्र में किया है-

अस्य पीत्वा शतकतो घनो वृत्राणांमभवः।

प्रावो वाजेषु वाजिनम्॥८॥

अर्था पीता। श्रेतक्रतो इति शतक्रतो। घनः। वृत्राणाम्। अभवः। प्रावः। वाजेषु। वाजिनेम्॥८॥ पदार्थः-(अस्य) समक्षासमक्षस्य सर्वस्य जगतो जलरसस्य वा (पीत्वा) पानं कृत्वा (शतक्रतो) शतस्यसंख्याताः क्रतवः कर्माणि यस्य शूरवीरस्य सूर्य्यलोकस्य वा सः। शतिमिति बहुनामसु पठितम्। विष्ठं ३१) क्रतुरिति कर्मनामसु पठितम्। (निघं०२.१) (घनः) दृढः काठिन्येन मूर्तिं प्रापितो वा। मूर्तौ

अष्टक-१। अध्याय-१। वर्ग-७-८

मण्डल-१। अनुवाक-२। सूक्त-४

घनः। (अष्टा०३.३.७७) अनेनायं निपातितः। (वृत्राणाम्) वृत्रवत्सुखावरकाणां शत्रूणां मेघानां वा। वृत्र इति मेघनामसु पठितम्। (निघं०१.१०) (अभवः) भूयाः भवति वा। अत्र पक्षे व्यत्ययः। लिङ्गलकेर्ष्णे लङ् च। (प्रावः) रक्ष रक्षति वा। अत्रापि पूर्ववत्। (वाजेषु) युद्धेषु। वाज इति संग्रामन्त्रामसु पठितम्। (निघं०२.१७) (वाजिनम्) धार्मिकं शूरवीरं मनुष्यं प्राप्तिनिमित्तं सूर्य्यलोकं वा। वाजि इति पदनामसु पठितम्। (निघं०५.६) अनेन युद्धेषु प्राप्तवेगहर्षाः शूराः सूर्य्यलोका वा गृह्यन्ते॥८।

अन्वय:-हे शतक्रतो पुरुषव्याघ्र! यथा घनो मूर्तिमानयं सूर्य्यलोकोऽस्य जलस्य रखं पीत्वा वृत्राणां मेघावयवानां हननं कृत्वा सर्वानोषध्यादीन् पदार्थान् प्रावो रक्षति, यथा च स्वप्रकाशेन सर्वान्प्रकाशते, तथैव त्वमपि सर्वेषां रोगाणां दुष्टानां शत्रूणां च निवारको भूत्विऽस्य क्षिकोऽभवो भूया:। एवं वाजेषु दुष्टैः सह युद्धेषु प्रवर्त्तमानं धार्मिकं वाजिनं शूरं प्रावः प्रकृष्ट्रतथा सदैब स्थको भव॥८॥

भावार्थ:-अत्र लुप्तोमालङ्कार:। यथा यो मनुष्यो दुष्टै: सह धर्मेण युध्यति तस्यैव विजयो भवति नेतरस्य, तथा परमेश्वरोऽपि धार्मिकाणां युद्धकर्तृणां मनुष्याणामेह्न सहायकार्ग्नी भवति नेतरेषाम्॥८॥

पदार्थ:-हे पुरुषोत्तम! जैसे यह (घनः) मूर्तिमान होक सूर्यों क्रांक (अस्य) जलरस को (पीत्वा) पीकर (वृत्राणाम्) मेघ के अङ्गरूप जलबिन्दुओं को वर्षाक सब ओपधी आदि पदार्थों को पृष्ट करके सब की रक्षा करता है, वैसे ही हे (शतक्रतों) असंख्यात किर्मों के करनेवाले शूरवीरो! तुम लोग भी सब रोग और धर्म के विरोधी दुष्ट शत्रुओं के नाश करनेहां होकर (अस्य) इस जगत् के रक्षा करनेवाले (अभवः) हूजिये। इसी प्रकार जो (वाजेषु) दुष्टों के साथ युद्ध में प्रवर्त्तमान धार्मिक और (वाजिनम्) शूरवीर पुरुष है, उसकी (प्रावः) अच्छी प्रकार रक्षा सद्ध किरते रिक्टिंग।। ८॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में लुप्तोप्रमालङ्कार है जैसे जो मनुष्य दुष्टों के साथ धर्मपूर्वक युद्ध करता है, उसी का ही विजय होता है और का नहीं। तथा परमेश्वर भी धर्मपूर्वक युद्ध करनेवाले मनुष्यों का ही सहाय करनेवाला होता है, और का नहीं।। ८५।

*मु*नरिन्द्रशब्देनेश्वर उपदिश्यते।

फिर इन्द्रे सर्वेद से अगले मन्त्र में ईश्वर का प्रकाश किया है-

तं त्वा वाजेषु वाजिने वाजयामः शतक्रतो।

धर्नान्मिन्द्रे सात्र्या। ९॥

तम्। त्वा वार्जिम्। वाजिनम्। वाजियामः। शृतकृतो इति शतक्रतो। धर्मानाम्। इन्द्र। सातर्थे॥९॥

पदार्थ:-(तम्) इन्द्रं परमेश्वरम् (त्वा) त्वाम् (वाजेषु) युद्धेषु (वाजिनम्) विजयप्रापकम्। वाजिन इति पदनामस् पठितत्वात्प्राप्त्यर्थोऽत्र गृह्यते। (वाजयामः) विज्ञापयामः। वज गतावित्यन्तर्गतण्यर्थेन ज्ञापनार्थोऽत्र गृह्यते। (शतक्रतो) शतेष्वसंख्यातेषु वस्तुषु क्रतुः प्रज्ञा यस्य तत्सम्बुद्धौ। क्रतुरिति

40

प्रज्ञानामसु पठितम्। (निघं०३.९) (धनानाम्) पूर्णविद्याराज्यादिसाध्यपदार्थानाम् (इन्द्र) परमैश्वर्य्यवन् (सातये) सुखार्थं सम्यक्सेवनाय॥९॥

अन्वय:-हे शतक्रतो इन्द्र जगदीश्वरं! वयं धनानां सातये वाजेषु वाजिनं तं पूर्वोक्तिमिद्धं गरेपेश्वरे त्वामेव सर्वान्मनुष्यान्प्रति वाजयामो विज्ञापयाम:॥९॥

भावार्थ:-यो दुष्टान् युद्धेन निर्बलान् कृत्वा जितेन्द्रियो विद्वान् भूत्वा जगदीश्राज्ञां पोलयित, स एव मनुष्यो धनानि विजयं च प्राप्नोतीति॥९॥

पदार्थ:-हे (शतक्रतो) असंख्यात वस्तुओं में विज्ञान रखनेवाले (इन्द्र) परम ऐश्वर्य्यवान् जगदीश्वर! हम लोग (धनानाम्) पूर्ण विद्या और राज्य को सिद्ध करनेवाले क्यूओं का (सातये) सुखभोग वा अच्छे प्रकार सेवन करने के लिये (वाजेषु) युद्धादि व्यवहारों में (वाजिनम्) विजय करानेवाले और (तम्) उक्त गुणयुक्त (त्वा) आपको ही (वाजयामः) नित्य प्रति जानने और जनाने का प्रयत्न करते हैं॥९॥

भावार्थ:-जो मनुष्य दुष्टों को युद्ध से निर्बल करता तथा जितेन्द्रिय वा विद्वान् होकर जगदीश्वर की आज्ञा का पालन करता है, वही उत्तम धन वा युद्ध में विश्वय को अर्थात् सब शत्रुओं को जीतनेवाला होता है॥९॥

पुनः स कीदृशः किमूर्यं स्तोतव्य इत्युपदिश्यते।

फिर भी वह परमेश्वर कैसा है और क्यों स्नूर्ति करने पूर्ण्य है, इस विषय का प्रकाश अगले मन्त्र में किया है-

यो गुयो रेविनिर्महान्स्पेपारः सुर्वेतः सुर्खा। तस्मा इन्द्रीय गायत॥ १०॥ ८॥ यः। गुयः। अवनिः। महान्। सुरुषुरः। सुन्वतः। सर्खा। तस्मै। इन्द्रीय। गायत॥ १०॥

पदार्थ:-(य:) परमेश्वर करुणाम्यः (रायः) विद्यासुवर्णादिधनस्य। राय इति धननामसु पिठतम्। (निघं०२.१०) (अविनः) रक्षकः प्रापको दाता (महान्) सर्वेभ्यो महत्तमः (सुपारः) सर्वकामानां सुष्ठु पूर्तिकर (सुन्वतः) अभिगतधर्मविद्यस्य मनुष्यस्य (सखा) सौहार्देन सुखप्रदः (तस्मै) तमीश्वरम् (इन्द्राय) परमेश्वर्यवन्तम्। अत्रोभयत्र सुपां सुलुगिति द्वितीयैकवचनस्थाने चतुर्थ्येकवचनम्। (गायत) नित्यमर्चूत्। गायतोद्यर्चितिकर्मसु पिठतम्। (निघं०३.१४)॥१०॥

अन्वर्यः-हे बिद्वांसो मनुष्याः! यो महान्सुपारः सुन्वतः सखा रायोऽविनः करुणामयोऽस्ति यूयं तस्मै तिमन्द्रायेन्द्रं परमेश्वरमेव गायत नित्यमर्चत॥१०॥

स्वार्थः-नैव केनापि केवलं परमेश्वरस्य स्तुतिमात्रकरणेन सन्तोष्टव्यं किन्तु तदाज्ञायां वर्त्तमानेन। स न्रः सर्वत्र पश्यतीत्यधर्मात्रिवर्त्तमानेन तत्सहायेच्छुना मनुष्येण सदैवोद्योगे प्रवृत्तितव्यम्॥१०॥

अष्टक-१। अध्याय-१। वर्ग-७-८

मण्डल-१। अनुवाक-२। सूक्त-४

एतस्य विद्यया परमेश्वरज्ञानात्मशरीरोग्यदृढत्वप्राप्या सदैव दुष्टानां विजयेन पुरुषार्थेन च चक्रवर्त्तिराज्यं धार्मिकै: प्राप्तव्यमिति संक्षेपतोऽस्य चतुर्थसूक्तोक्तार्थस्य तृतीयसूक्तोक्तार्थेन सङ्ग सङ्गतिरस्तीति बोध्यम्।

अस्यापि सूक्तस्यार्थ्यावर्त्तनिवासिभिः सायणाचार्थ्यादिभिर्यूरोपाख्यदेशनिवासिभिरध्यापक-विलसनाख्यादिभिरन्यथैव व्याख्या कृतेति वेदितव्यम्॥

इति चतुर्थं सुक्तमष्टमश्च वर्गः समाप्तः॥

पदार्थ:-हे विद्वान् मनुष्यो! जो बड़ों से बड़ा (सुपार:) अच्छी प्रकार सब कामनाओं की परिपूर्णता करनेहारा (सुन्वतः) प्राप्त हुए सोमविद्यावाले धर्मात्मा पुरुष कर (सखा) मित्रता से सुख देने, तथा (राय:) विद्या सुवर्ण आदि धन का (अविनः) रक्षक और इस स्रेक्सर में उनत पदार्थों में जीवों को पहुँचाने और उनका देनेवाला करुणामय परमेश्वर है, (तस्मै) उसकी तुम लोग (गायत) नित्य पूजा किया करो॥१०॥

भावार्थ:-किसी मनुष्य को केवल परमेश्वर की स्कृतिमात्र हो करने से सन्तोष न करना चाहिये, किन्तु उसकी आज्ञा में रहकर और ऐसा समझ कर कि परमेश्वर मुझको सर्वत्र देखता, है, इसलिये अधर्म से निवृत्त होकर और परमेश्वर के सहाय की इच्छा करके मनुष्य को सदा उद्योग ही में वर्तमान रहना चाहिये॥१०॥

उस तीसरे सूक्त की कही हुई विद्या से, धर्माद्या पुरुषों को परमेश्वर का ज्ञान सिद्ध करना तथा आत्मा और शरीर के स्थिर भाव, आरोग्य की प्राप्ति तथा दुष्टों के विजय और पुरुषार्थ से चक्रवर्ति राज्य को प्राप्त होना, इत्यादि अर्थ करके इस चौथे सुक्त के अर्थ की सङ्गति समझनी चाहिये।

आर्यावर्त्तवासी सायणाचार्य और विद्वान् तथा यूरोपखण्डवासी अध्यापक विलसन आदि साहबों ने इस सुक्त की भी क्रांख्या ऐसी विरुद्ध की है कि यहां उसका लिखना व्यर्थ है॥

यह मौथा भूक्त और आठवां वर्ग समाप हुआ॥

अथ दशर्चस्यास्य पञ्चमसूक्तस्य मधुच्छन्दा ऋषि:। इन्द्रो देवता। १ विराड्गायत्री; २ आर्च्युष्णिक्; ३ पिपीलिकामध्या निचृद्गायत्री; ४, १० गायत्री; ५-७, ९ निचृद्गायत्री;

पादिनचृद्गायत्री च छन्द:। १, ३-१० षड्ज:; २ ऋषभश्च स्वर:॥

अथेन्द्रशब्देनेश्वरभौतिकावर्थावुपदिश्येते।

पाँचवें सूक्त के प्रथम मन्त्र में इन्द्र शब्द से परमेश्वर और स्पर्शगुणवाले वायु का प्रकाश किया है-

आ त्वेता निषीदुतेन्द्रमभि प्र गायत।

सर्खायः स्तोमवाहसः॥ १॥

आ। तु। आ। इत्। नि। सीद्त्। इन्द्रम्। अभि। प्र। गायत्। सखायः स्तोमध्वाहसः॥ १॥

पदार्थ:-(आ) समन्तात् (तु) पुनरर्थे (आ) अभ्यर्थे (इत) प्राप्नुत्ते द्वयचोऽतस्तिङ इति दीर्घः। (निषीदत) शिल्पविद्यायां नितरां तिष्ठत (इन्द्रम्) परमेश्वरं विद्युद्धियुक्तं व्रायुं वा। इन्द्र इति पदनामसु पठितम्। (निघं०५.४) विद्याजीवनप्रापकत्वादिन्द्रशब्देनात्र परमातमा ब्रायुश्च गृह्यते। विश्वेभिः सोम्यं मध्वग्न इन्द्रेण वायुना। (ऋ०१.१४.१०) इन्द्रेण वायुनेति वायोजिन्द्रेसंज्ञा। (अभिप्रगायत) आभिमुख्येन प्रकृष्टया विद्यासिध्यर्थं तद्गुणनुपदिशत शृणुत च (स्थायः) परस्परं सुहदो भूत्वा (स्तोमवाहसः) स्तोमः स्तुतिसमूहो वाहः प्राप्तव्यः प्रापयितव्यो येषां ते॥

अन्वय:-हे स्तोमवाहसः सखायो विद्धांसः सर्वे यूयं मिलित्वा परस्परं प्रीत्या मोक्षशिल्पविद्यासम्पादनोद्योग आनिषीदत तदर्श्वमिन्द्वे परमेश्वरं वायुं चाभिप्रगायत एवं पुनः सर्वाणि सुखान्येत॥१॥

भावार्थ:-यावन्मनुष्या हर्म्छलाभिमानं त्यक्त्वा सम्प्रीत्या परस्परोपकाराय मित्रवन्न प्रयतन्ते, तावन्नैवैतेषां कदाचिद्विद्यासुखोन्निर्मवतौति॥ १०।

पदार्थ:-हे (स्तोमवाहर्स:) प्रशंसनीय गुणयुक्त वा प्रशंसा कराने और (सखाय:) सब से मित्रभाव में वर्त्तनेवाले बिद्धार लोगों। तुम और हम लोग सब मिलके परस्पर प्रीति के साथ मुक्ति और शिल्पविद्या को सिद्ध करने से (आनिषीदत) स्थित हों अर्थात् उसकी निरन्तर अच्छी प्रकार से यत्नपूर्वक साधना करने के लिये (इन्द्रम्) परमेश्वर वा बिजली से जुड़ा हुआ वायु को-'इन्द्रेण वायुना॰' इस ऋग्वेद के प्रमाण से लिल्पविद्या और प्राणियों के जीवन हेतु से इन्द्र शब्द से स्पर्शगुणवाले वायु का भी ग्रहण किया है- (अधिप्रेणयत) अर्थात् उसके गुणों का उपदेश करें और सुनें कि जिससे वह अच्छी रीति से सिद्ध की हुई विद्या सब को प्रकट होजावें, (तु) और उसी से तुम सब लोग सब सुखों को (एत) प्राप्त होओं। १॥

अष्टक-१। अध्याय-१। वर्ग-९-१०

मण्डल-१। अनुवाक-२। सूक्त-५

भावार्थ:-जब तक मनुष्य हठ, छल और अभिमान को छोड़कर सत्य प्रीति के साथ परस्पर मित्रता करके परोपकार करने के लिये तन मन और धन से यत्न नहीं करते, तब तक उनके सुको और विद्या आदि उत्तम गुणों की उन्नति कभी नहीं हो सकती॥१॥

पुनस्तावेवोपदिश्येते।

फिर भी अगले मन्त्र में उन्हीं दोनों के गुणों का प्रकाश किया है-

पुरुतमं पुरुणामीशानं वार्याणाम्। इन्द्रं सोमे सर्चा सुते॥२॥

पुरुऽतर्मम्। पुरुणाम्। ईशानम्। वार्याणाम्। इन्द्रम्। सोमे। सचि सुते।। २।

पदार्थ:-(पुरूतमम्) पुरून् बहून् दुष्टस्वभावान् जीवान् पापकर्मफलदीनेन तमयित ग्लापयित तं परमेश्वरं तत्फलभोगहेतुं वायुं वा। पुरुरिति बहुनामसु पिठतम्। (निषं०३१) अत्र अन्येषामि दृश्यत इति दीर्घ:। (पुरूणाम्) बहूनामाकाशादिपृथिव्यन्तानां पदार्थीनीम् (ईशानम्) रचने समर्थं परमेश्वरं तन्मध्यस्थिवद्यासाधकं वायुं वा (वार्व्याणाम्) वराणां परणीयान्तमित्यन्तोत्तमानां मध्ये स्वीकर्तुमर्हम्। वार्यं वृणोतेरथापि वरतमं तद्वार्यं वृणीमहे वरिष्ठं गोषयत्यय नद्वार्यं वृणीमहे वर्षिष्ठं गोपायितव्यम्। (निरु०५.१) (इन्द्रम्) सकलैश्वर्यप्रदं परमेश्वरमात्मनः प्रविभोगहेतुं वायुं वा (सोमे) सोतव्ये सर्वस्मिन्पदार्थे विमानादियाने वा। (सचा) ये सपवेताः पदार्थाः सन्ति। सचा इति पदनामसु पिठतम्। (निघं०४.२) (सुते) उत्पन्नेऽभिषविवद्याऽभिप्राप्ते।२)

अन्वय:-हे सखायो विद्वांसो वार्य्याण पुरुत्तममीशानं पुरूणामिन्द्रमभिप्रगायत ये सुते सोमे सचाः सन्ति तान् सर्वोपकाराय यथायोग्यम्भिप्रभायता २॥

भावार्थ:-अत्र श्लेषालङ्कार:। पूर्वस्मान्मन्त्रात् 'सखाय:; तु; अभिप्रगायत' इति पदत्रयमनुवर्त्तनीयम्। ईश्वरस्य यथायोग्यव्यवस्था जीवेभ्यस्तत्तत्कर्मफलदातृत्वात् भौतिकस्य वायोः कर्मफलहेतुत्वेन सकलचेष्ट्रविद्यासाधुक्रत्वादस्मादुभयार्थस्य ग्रहणम्॥२॥

पदार्थ: - हे मित्र विद्वाने लोगो! (वार्थ्याणाम्) अत्यन्त उत्तम (पुरूणाम्) आकाश से लेके पृथिवीपर्य्यन्त अमुंख्यात पदार्थों को (ईशानम्) रचने में समर्थ (पुरूतमम्) दुष्टस्वभाववाले जीवों को ग्लानि प्राप्त करानेबाले (इन्द्रम्) और श्रेष्ठ जीवों को सब ऐश्वर्य के देनेवाले परमेश्वर के तथा (वार्थ्यणाम्) अत्यन्त उश्चम (पुरूणाम्) आकाश से लेके पृथिवीपर्य्यन्त बहुत से पदार्थों की विद्याओं के साधक (पुरूतमम्) दुष्ट जीवों वा कर्मों के भोग के निमित्त और (इन्द्रम्) जीवमात्र को सुखदु:ख देनेवाले पदार्थों के हतु भौतिक वायु के गुणों को (अभिप्रगायत) अच्छी प्रकार उपदेश करो। और (तु) जो कि

(सुते) रस खींचने की क्रिया से प्राप्त वा (सोमे) उस विद्या से प्राप्त होने योग्य (सचा) पदार्थों के निमित्त कार्य्य हैं, उनको उक्त विद्याओं से सब के उपकार के लिये यथायोग्य युक्त करो॥२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। पीछे के मन्त्र से इस मन्त्र में 'स्वायः; तुं' अभिप्रगायत' इन तीन शब्दों को अर्थ के लिये लेना चाहिये। इस मन्त्र में यथायोग्य व्यवस्था करके उनके किये हुए कर्मों का फल देने से ईश्वर तथा इन कर्मों के फल भोग कराने के क्रारण वा विद्या और सब क्रियाओं के साधक होने से भौतिक अर्थात् संसारी वायु का ग्रहण किया है॥ रा

तावस्मदर्थं किं कुरुत इत्युपदिश्यते।

वे तुम हम और सब प्राणि लोगों के लिये क्या करते हैं, सो अगले मूल में प्रकाश किया है-

स घा नो योग आर्भवत्स राये स पुरम्ध्याम्। गमुद्वाजेभिरा स नः॥३॥

सः। घा नः। योगे। आ। भुवत्। सः। गुये। सः। पुरस्थाम्। पार्मत्। वार्जेभिः। आ। सः। नः॥३॥

पदार्थ:-(सः) इन्द्र ईश्वरो वायुर्वा (घ) एवार्थे निफतः। ऋचि तुनुघ०। (अष्टा०६.३.१३३) अनेन दीर्घादेशः। (नः) अस्माकम् (योगे) सर्वसुखसाधनप्राप्तिमार्थके (आ भुवत्) समन्ताद् भूयात्। भूधातोराशिषि लिङि प्रथमैकवचने लिङ्गिशिष्यङ् (अष्टा०३.१.८६) इत्यङि सित किदाशिषीत्यागमानित्यत्वे प्रयोगः। (सः) उक्तो र्व्यः। (राये) परमोत्तमधनलाभाय। राय इति धननामसु पठितम्। (निघं०२.१०) (सः) पूर्वोक्तोऽर्थः (पुरस्थाम्) बहुशास्त्रविद्यायुक्तायां बुद्ध्याम्। पुरिस्थिति पदनामसु पठितम्। (निघं०४.३) (गमत्) अज्ञाप्यात्) गमयित वा। अत्र पक्षे वर्त्तमानेऽर्थे लिङ्गे च लुङ्। बहुलं छन्दस्यमाङ्योगेऽपि। (अष्टा०६ ४.७५) इत्युङभावः। (वाजेभिः) उत्तमैरत्रैर्विमानादियानैः सह वा। बहुलं छन्दिस। (अष्टा०७.१.१०) अनेनैसेर्देशाभावः। (आ) सर्वतः (सः) अतीतार्थे (नः) अस्मान्॥३॥

अन्वय:-स होवेन्द्रः प्रमेश्वरो व्यप्तरच नोऽस्माकं योगे सहायकारी व्यवहारिवद्योपयोगाय चाभुवत् समन्ताद् भूयात् भवति वा, तथा स एव राये स पुरन्थ्यां च प्रकाशको भूयाद्भवति वा, एवं स एव वाजेभिः सह नोऽस्मृतनामुमद्भाराम्यात् समन्तात् गमयति वा॥३॥

भावार्थ:-अत्र श्लेपाल्यद्वारः। ईश्वरः पुरुषार्थिनो मनुष्यस्य सहायकारी भवति नेतरस्य, तथा वायुरिप पुरुषार्थेनेष कार्य्यसिद्धध्युपयोगी भवति नैव कस्यचिद्विना पुरुषार्थे न धनवृद्धिलाभो भवति। नैवैताभ्यां विन्र कदासिदुत्तमं सुखं च भवतीत्यतः सर्वेर्मनुष्येरुद्योगिभिराशीर्मद्भिर्भवितव्यम्॥३॥

प्रदर्भ: पूर्वोक्त इन्द्र परमेश्वर और स्पर्शवान् वायु (नः) हम लोगों के (योगे) सब सुखों के सिद्ध करानेवाले वा पदार्थों को प्राप्त करानेवाले योग तथा (सः) वे ही (राये) उत्तम धन के लाभ के लिये और (सः) वे (पुरन्थाम्) अनेक शास्त्रों की विद्याओं से युक्त बुद्धि में (आ भुवत्) प्रकाशित हों। इसी प्रकर्ण (सः) वे (वाजेभिः) उत्तम अन्न और विमान आदि सवारियों के सह वर्तमान (नः) हम लोगों

अष्टक-१। अध्याय-१। वर्ग-९-१०

मण्डल-१। अनुवाक-२। सूक्त-५

को (आगमत्) उत्तम सुख होने का ज्ञान देता तथा यह वायु भी इस विद्या की सिद्धि में हेतु होता है॥३॥

भावार्थ:-इस में भी श्लेषालङ्कार है। ईश्वर पुरुषार्थी मनुष्य का सहायकारी होता है आत्सी का नहीं, तथा स्पर्शवान् वायु भी पुरुषार्थ ही से कार्य्यसिद्धि का निमित्त होता है, क्यों कि किसी प्राणी को पुरुषार्थ के विना धन वा बुद्धि का और इन के विना उत्तम सुख का लाभ कभी नहीं हो सकता। इसलिये सब मनुष्यों को उद्योगी अर्थात् पुरुषार्थी आशावाले अवश्य होना चाहिये॥३॥

पुनरीश्वरसूर्यौ गातव्यावित्युपदिश्यते।

ईश्वर ने अपने आप और सूर्य्यलोक का गुणसहित चौथे मून्त्र से प्रकाश क्रिया है-

यस्य संस्थे न वृण्वते हरी समत्सु शत्रेव:।

तस्मा इन्द्रांय गायत॥४॥

यस्य। सुंऽस्थे। न। वृण्वते। हरी इति। सुमत्ऽसुं। शत्रुवः। तस्मै। इन्ह्राय। गायतु॥४॥

पदार्थ:-(यस्य) परमेश्वरस्य सूर्य्यलोकस्य वा (संस्थे) सम्यक् तिष्ठन्ति यस्मिस्तस्मिन् जगित। यञ्चर्थं किवधानम्। (अष्टा०३.३.५८) इति वार्तिकेमाधिकरणे कः प्रत्ययः। (न) निषेधार्थे (वृण्वते) सम्भजन्ते (हरी) हरणशीलौ बलपराक्रमौ प्रकाशाकर्षणाख्त्रौं च। हरी इन्द्रस्येत्यादिष्टोपयोजननामसु पिठतम्। (निघं०१.१५) (समत्सु) युद्धेषु। समित्वित संग्रामनामसु पिठतम्। (निघं०२.१७) (शत्रवः) अमित्राः (तस्मै) एतद्गुणविशिष्टम् (इन्द्रायः) परमेश्वरं सूर्य्यं वा। अत्रोभयत्रापि सुपां सु० अनेनामः स्थाने ङे। (गायत) गुणस्तवनश्रवणाभ्यां विजानीत्।। (।)

अन्वय:-हे मनुष्या! यूयं यूस्य ह्मी सेंस्थे वर्तेते यस्य सहायेन शत्रवः समत्सु न वृणवते सम्यग् बलं न सेवन्ते तस्मा इन्द्राय तिम्न्हं नित्यं गाएत॥४॥

भावार्थ:-अत्र श्लेषाद्भिङ्कार:। न यात्रन्मानुष्याः परमेश्वरेष्टा बलवन्तश्च भवन्ति, नैव तावद् दुष्टानां शत्रूणां नैर्बल्यङ्कर्तु शक्तिकार्यत् इति॥ ।।

पदार्थ: -हे मनुष्यो तुम लोग (यस्य) जिस परमेश्वर वा सूर्य्य के (हरी) पदार्थी को प्राप्त करानेवाले बल और पराक्रम तथा प्रकाश और आकर्षण (संस्थे) इस संसार में वर्तमान हैं, जिनके सहाय से (समस्स) युद्धों में (शत्रव:) वैरी लोग (न वृण्वते) अच्छी प्रकार बल नहीं कर सकते, (तस्मै) उस (इन्द्राया) परमेश्वर वा सूर्य्यलोक को उनके गुणों की प्रशंसा कह और सुन के यथावत् जानलो॥४॥

भावार्थ:-इसमें श्लेषालङ्कार है। जब तक मनुष्य लोग परमेश्वर को अपने इष्ट देव समझनेवाले और बलवान अर्थात् पुरुषार्थी नहीं होते, तब तक उनको दुष्ट शत्रुओं की निर्बलता करने को सामर्थ्य भी नहीं होता।।।।।

जगत्स्थाः पदार्थाः किमर्थाः कीदृशाः केन पवित्रीकृताश्च सन्तीत्युपदिश्यते।

ये संसारी पदार्थ किसलिये उत्पन्न किये गये और कैसे हैं, ये किससे पवित्र किये जाते हैं, इस

विषय का प्रकाश अगले मन्त्र में किया है-

सुतपाञे सुता इमे शुचयो यन्ति वीतये।

सोमासो दध्याशिरः॥५॥९॥

६४

सुतुपार्ञे। सुताः। इमे। शुर्चयः। युन्ति। वीतर्ये। सोमासः। दर्धिऽआशिरः॥५०।

पदार्थ:-(सुतपाव्ने) सुतानामाभिमुख्येनोत्पादितानां पदार्थानां भाव रक्षको जीवस्तरमे। अत्र आतो मिनन्क्विनिब्बिनिपश्च इति विनिप्प्रत्ययः। (सुताः) उत्पादिताः (इमे) सर्व (शुच्यः) पवित्राः (यन्ति) यान्ति प्राप्नुविन्ति (वीतये) ज्ञानाय भोगाय वा। वी गितव्याप्तिप्रजर्भकान्त्यसम्प्रवादनेषु अस्मात् मन्त्रे वृषेषपचमनभूवीरा उदात्तः अनेन कितन्प्रत्यय उदात्तत्वं च। (सोमासः) अभिसूयन्त उत्पद्यन्त उत्तमा व्यवहारा येषु ते। सोम इति पदनामसु पिठतम्। (निघं०५.५) (दध्याशिस्ः) दधित पुष्णन्तीति दधयस्ते समन्तात् शीर्यन्ते येषु ते। दधातेः प्रयोगः आदृगम० (अष्टा०३.२.१७१) अनेन किन् प्रत्ययः। शृ हिंसार्थः, ततः क्विप्॥५॥

अन्वय:-इन्द्रेण परमेश्वरेण वायुसूर्य्याभ्यां वा क्तः सुनपाञ्ने वीतय इमे दध्याशिरः शुचयः सोमासः सर्वे पदार्था उत्पादिताः पवित्रीकृताः सन्ति तस्मादेतान् सर्वे जीवा यन्ति प्राप्नुवन्ति॥५॥

भावार्थ:-अत्र श्लेषालङ्कारः। ईश्वरेण सर्वैषां जीक्नानामुपरि कृपां कृत्वा कर्मानुसारेण फलदानाय सर्वं कार्य्यं जगद्रच्यते पवित्रीयते चैवं पवित्रकारको सुर्प्यपवनौ च, तेन हेतुना सर्वे जडाः पदार्था जीवाश्च पवित्राः सन्ति। परन्तु ये मनुष्याः प्रवित्रगुपकर्भग्रहणे पुरुषार्थिनो भूत्वैतेभ्यो यथावदुपयोगं गृहीत्वा ग्राहयन्ति, त एव पवित्रा भूत्वा सुख्निनो भूतन्ति॥५॥

इति नवमो वर्गः॥

पदार्थ:-परमेश्वर ने क्रि व्ययुसूर्य से जिस कारण (सुतपाञ्ने) अपने उत्पन्न किये हुए पदार्थों की रक्षा करनेवाले जीव के, तथा (वीत्रे) ज्ञान वा भोग के लिये (दध्याशिर:) जो धारण करनेवाले उत्पन्न होते हैं, तथा (शुचय:) जो प्रित्र (सोमास:) जिनसे अच्छे व्यवहार होते हैं, वे सब पदार्थ जिसने उत्पादन करके पृत्रित्र किये हैं, इसी से सब प्राणि लोग इन को प्राप्त होते हैं॥५॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जब ईश्वर ने सब जीवों पर कृपा करके उनके कर्मों के अनुसार यूथायोग्ये फल देने के लिये सब कार्य्यरूप जगत् को रचा और पवित्र किया है, तथा पवित्र करने क्योतेवाले सूर्य्य और पवन को रचा है, उसी हेतु से सब जड़ पदार्थ वा जीव पवित्र होते हैं। परन्तु जो स्नुष्य पवित्र गुणकर्मों के ग्रहण से पुरुषार्थी होकर संसारी पदार्थों से यथावत् उपयोग लेते तथा सब जीवों को उनके उपयोगी कराते हैं, वे ही मनुष्य पवित्र और सुखी होते हैं॥५॥

अष्टक-१। अध्याय-१। वर्ग-९-१०

मण्डल-१। अनुवाक-२। सूक्त-५

यह नवाँ वर्ग समाप्त हुआ॥

किं कृत्वा जीव: पूर्वोक्तोपयोगग्रहणे समर्थो भवतीत्युपदिश्यते।

ईश्वर ने, जीव जिस करके पूर्वोक्त उपयोग के ग्रहण करने को समर्थ होते हैं, इस विष्य को अगले मन्त्र में कहा है-

त्वं सुतस्यं पीतये सद्यो वृद्धो अजायथाः।

इन्द्र ज्येष्ठ्याय सुक्रतो॥६॥

त्वम्। सुतस्यं। पीतयं। सद्यः। वृद्धः। अजायथाः। इन्द्रं। ज्येष्ठ्याय। सुक्रती हित्तं सुक्रतो॥६॥

पदार्थ:-(त्वम्) जीवः (सुतस्य) उत्पन्नस्यास्य जगत्पदार्थस्म स्वीपकारकी णे च श्रेष्ठः (अजायथाः) पानाय ग्रहणाय वा (सद्यः) शीघ्रम् (वृद्धः) ज्ञानादिसर्वगुणग्रहणेन सर्वीपकारकी णे च श्रेष्ठः (अजायथाः) प्रादुर्भूतो भव (इन्द्र) विद्यादिपरमैश्वर्ययुक्त विद्वन्। इन्द्र इति पदनामस् पठितम्। (निघं०५.४) अनेन गन्ता प्रापको विद्वान् जीवो गृह्यते। (ज्येष्ठ्याय) अत्युत्तमकर्मणामनुष्ठान्नय (सुक्रतो) श्रेष्ठकर्मबुद्धियुक्त मनुष्य॥६॥

अन्वय:-हे इन्द्र सुक्रतो विद्वन् मनुष्य! त्वं सद्यः सुतस्य प्रीतये ज्यैष्ठ्याय वृद्धो अजायथा:॥६॥ भावार्थ:-जीवायेश्वरोपदिशति-हे मनुष्य! यावत्वं ने विद्यावृद्धो भूत्वा सम्यक् पुरुषार्थं परोपकारं च करोषि, नैव तावन्मनुष्यभावं सर्वोत्तमसुखं च प्राप्त्यास्त्र तस्मात्त्वं धार्मिको भूत्वा पुरुषार्थी भव॥६॥

पदार्थ:-हे (इन्द्र) विद्यादिपरमैश्वर्यपुक्त (सुक्रती) श्रेष्ठ कर्म करने और उत्तम बुद्धिवाले विद्वान् मनुष्य! (त्वम्) तू (सद्यः) शीघ्र (सुतस्य) संसारी पदार्थों के रस के (पीतये) पान वा ग्रहण और (ज्यैष्ठ्याय) अत्युत्तम कर्मों के अनुष्ठान करने के लिये (वृद्धः) विद्या आदि शुभ गुणों के ज्ञान के ग्रहण और सब के उपकार करने में श्रेष्ठ (अजान्य्याः) हो॥६॥

भावार्थ:-ईश्वर जीव कि लिये उपदेश करता है कि-हे मनुष्य! तू जबतक विद्या में वृद्ध होकर अच्छी प्रकार परोपकार न करेगा, तब तक तुझको मनुष्यपन और सर्वोत्तम सुख की प्राप्ति कभी न होगी, इससे तू परोपकार करने चाला सद्दा हो॥६॥

क एवमनुष्ठात्रे जीवायाशीर्ददातीत्युपदिश्यते।

उक्त क्रांम के आचरण करने वाले जीव को आशीर्वाद कौन देता है, इस बात का प्रकाश अगले मन्त्र में किया है-

आ त्वां विशन्त्वाुशवु: सोमांस इन्द्र गिर्वण:।

शनी सन्तु प्रचेतसे॥७॥

६६

आ। त्वा। विश्वनु। आशर्वः। सोमासः। इन्द्र। गिर्वणः। शम्। ते। सन्तु। प्रऽचैतसे॥७॥

पदार्थ:-(आ) समन्तात् (त्वा) त्वां जीवम् (विशन्तु) आविष्टा भवन्तु (आशवः) वेगादिगुणसिहताः सर्विक्रियाव्याप्ताः (सोमासः) सर्वे पदार्थाः (इन्द्र) जीव विद्वन् (गिर्वणः) भी विद्यते सम्भज्यते स गिर्वणास्तत्सम्बुद्धौ। गिर्वणा देवो भवित गीभिरेनं वनयन्ति। (निरु०६.१४) देवसञ्द्रेगात्र प्रशस्तैर्गुणैः स्तोतुमर्हो विद्वान् गृह्यते। गिर्वणस इति पदनामसु पठितम्। (निघं०४६) (शम्) सुखम्। शिमित सुखनामसु पठितम्। (निघं०३.६) (ते) तुभ्यम् (सन्तु) (प्रचेतसे) प्रकृष्टं चेतो विज्ञानं यस्य तस्मै॥७॥

अन्वय:-हे धार्मिक गिर्वण इन्द्र विद्वन् मनुष्य! आशवः सोमास्त्रत्वा त्वामाविशन्तु, एवंभूताय प्रचेतसे ते तुभ्यं मदनुग्रहेणैते शंसन्तु सुखकारका भवन्तु॥७॥

भावार्थ:-ईश्वर ईदृशाय जीवायाशीर्वादं ददाति यदा यो विद्वान् प्रारीपकारी भूत्वा मनुष्यो नित्यमुद्योगं करोति तदैव सर्वेभ्यः पदार्थेभ्यः उपकारं सङ्गृह्य सर्वान् प्राणिनः सुखयित, स सर्वं सुखं प्राप्नोति नेतर इति॥७॥

पदार्थ:-हे धार्मिक (गिर्वण:) प्रशंसा के योग्य कर्म करने वालें (इन्द्र) विद्वान् जीव! (आशव:) वेगादि गुण सहित सब क्रियाओं से व्याप्त (सोमास:) सब पदार्थ (त्वा) तुझ को (आविशन्तु) प्राप्त हों, तथा इन पदार्थों को प्राप्त हुए (प्रचेतसे) शुद्ध ज्ञानवाले (ते) हों लिये (शम्) ये सब पदार्थ मेरे अनुग्रह से सुख करनेवाले (सन्तु) हों॥७॥

भावार्थ:-ईश्वर ऐसे मनुष्यों को आर्थीर्वाद देता है कि जो मनुष्य विद्वान् परोपकारी होकर अच्छी प्रकार नित्य उद्योग करके इन सब पदार्थि से उपकार ग्रहण करके सब प्राणियों को सुखयुक्त करता है, वहीं सदा सुख को प्राप्त होता है, अन्य कोई नहीं।।७॥

एतदर्थिपिन्द्रशब्दार्थ उपदिश्यते।

ईश्वर ने उक्त अर्थ ही के प्रकाश करने वीले इन्द्र शब्द का अगले मन्त्र में भी प्रकाश किया है-

त्वां स्तोमा अविवृध्य त्वामुक्था शतक्रतो।

त्वां वर्धनु नो गिर्धारा।

त्वाम्। स्वोपाः। अनिवृध्न्। त्वाम्। उवथा। शृतकतो इति शतकतो। त्वाम्। वर्धन्तु। नः। गिरः॥८॥ पदार्श्वः (त्वाम्) इन्द्रं परमेश्वरम् (स्तोमाः) वेदस्तुतिसमूहाः (अवीवृधन्) वर्धयन्ति। अत्र लडर्थे लुङ्। (त्वाम्) स्वीतव्यम् (उवथा) परिभाषितुमर्हाणि वेदस्थानि सर्वाणि स्तोत्राणि। पातृतुदिवचि०। (उणा०२.७) अनेन वचधातोस्थकप्रत्ययस्तेनोक्थस्य सिद्धिः। शेश्छन्दिस बहुलिमिति शेर्लुक्। (शतक्रतो) उक्तिं स्वाभः (त्वाम्) सर्वज्येष्ठम् (वर्धन्तु) वर्धयन्तु। अत्रान्तर्गतो ण्यर्थः। (नः) अस्माकम् (गिरः) विद्यासन्यभाषणादियुक्ता वाण्यः। गीरिति वाङ्नामस् पठितम्। (निघं०१.११)॥८॥

अष्टक-१। अध्याय-१। वर्ग-९-१०

मण्डल-१। अनुवाक-२। सूक्त-५

अन्वय:-हे शतक्रतो बहुकर्मवन् बहुप्रज्ञेश्वर! यथा स्तोमास्त्वामवीवृधन् अत्यन्तं वर्धयन्ति, यथा च त्वमुक्थानि स्तुतिसाधकानि वर्धितानि कृतवान्, तथैव नो गिरस्त्वां वर्धन्तु सर्वथा प्रकाशयन्ताका

भावार्थ:-अत्र लुप्तोपमालङ्कार:। यथा ये विश्वस्मिन्पृथिवीसूर्य्यादय: सृष्टा: पदार्थाः सन्ति ते भूर्वे सर्वकर्त्तारं परमेश्वरं ज्ञापयित्वा तमेव प्रकाशयन्ति, तथैतानुपकारानीश्वरगुणाँश्च प्रस्था विदित्वा विद्वांसोऽपीदृश एव कर्मणि प्रवर्त्तेरित्रिति॥८॥

पदार्थ:-हे (शतक्रतो) असंख्यात कर्मों के करने और अनन्त विज्ञान के जोरानेवाले परमेश्वर! जैसे (स्तोमा:) वेद के स्तोत्र तथा (उक्था) प्रशंसनीय स्तोत्र आपको (अविव्धन) अत्यन्त प्रसिद्ध करते हैं, वैसे ही (न:) हमारी (गिर:) विद्या और सत्यभाषणयुक्त वाणी भी (त्वाम) आपको (वर्धनु) प्रकाशित करे॥८॥

भावार्थ:-जो विश्व में पृथिवी सूर्य्य आदि प्रत्यक्ष और अपूत्यक्ष रचे हुए पदार्थ हैं, वे सब जगत् की उत्पत्ति करनेवाले तथा धन्यवाद देने के योग्य परमेश्वर ही की प्रसिद्ध करके जनाते हैं, जिससे न्याय और उपकार आदि ईश्वर के गुणों को अच्छी प्रकार जानके विद्वान भी हैंसे ही कर्मों में प्रवृत्त हों॥८॥

स जगदीश्वरोऽस्मदर्थं कि कुर्व्यादिन्युपिदश्यते।

वह जगदीश्वर हमारे लिये क्या करे सी अगले मन्त्र में वर्णन किया है-

अक्षितोतिः सनेद्रिमं वाज्मिन्द्रः सहस्रिणम्।

यस्मिन् विश्वानि पौंस्या॥९॥

अक्षितऽऊतिः। सुनेत्। डुमम्। वार्जम्। इतः। सुहुस्त्रिणम्। यस्मिन्। विश्वानि। पौंस्या॥९॥

पदार्थ:-(अक्षितोति:) क्षय्रहिता ऊतिज्ञानं यस्य सोऽक्षितोतिः (सनेत्) सम्यग् सेवयेत् (इमम्) प्रत्यक्षविषयम् (वाजम्) पदार्थविज्ञानम् (इन्द्रः) सकलैश्वर्ययुक्तः परमात्मा (सहस्रिणम्) सहस्राण्यसंख्यातानि सुखानि यस्मिन्सन्ति तम्। तपःसहस्राभ्यां विनीनी। (अष्टा०५.२.१०२) अनेन सहस्रशब्दादिनिः। (यस्मिन्) व्यवहार्ष (विश्वानि) समस्तानि (पौंस्या) पुंसो बलानि। पौंस्यानीति बलनामसु पठितम्। (निष्के १९) शर्लुगत्रापि॥९॥

अन्वय:-मोऽक्षितोतिरिन्दः परमेश्वरोऽस्ति स यस्मिन् विश्वानि पौंस्यानि बलानि सन्ति तानि सनेत्संसेवयेदस्मुद्धीसमं सहस्रिणं वाजं च, यतो वयं सर्वाणि सुखानि प्राप्नुयाम॥९॥

भाषार्थः चियं यस्य सत्तयेमे पदार्था बलवन्तो भूत्वा स्वस्य स्वस्य व्यवहारे वर्त्तन्ते, तेभ्यो बलादिगुर्णेभ्यो विश्वसुखार्थं पुरुषार्थं कुर्य्याम, सोऽस्मिन्व्यवहारेऽस्माकं सहायं करोत्विति प्रार्थ्यते॥९॥

पदार्थ:-जो (अक्षितोति:) नित्य ज्ञानवाला (इन्द्र:) सब ऐश्वर्य्ययुक्त परमेश्वर है, वह कृपा करके इमिरे लिपे (यस्मिन्) जिस व्यवहार में (विश्वानि) सब (पौंस्या) पुरुषार्थ से युक्त बल हैं (इमम्) इस

(सहिम्रणम्) असंख्यात सुख देनेवाले (वाजम्) पदार्थों के विज्ञान को (सनेत्) सम्यक् सेवन करावे, कि जिससे हम लोग उत्तम-उत्तम सुखों को प्राप्त हों॥९॥

भावार्थ:-जिसकी सत्ता से संसार के पदार्थ बलवान् होकर अपने-अपने व्यवहारों में बत्तीमान् हैं) उन सब बल आदि गुणों से उपकार लेकर विश्व के नाना प्रकार के सुख भोगने के लिखे हम लिए पूर्ण पुरुषार्थ करें, तथा ईश्वर इस प्रयोजन में हमारा सहाय करे, इसलिये हम लोग ऐसी प्रार्थना करते हैं॥९॥

कस्य रक्षणेन पुरुषार्थ: सिद्धो भवतीत्युपदिश्यते।

किसकी रक्षा से पुरुषार्थ सिद्ध होता है, इस विषय का प्रकाश ईश्वर ने अगले पन्त्र में किया है-

मा नो मर्त्ता अभिद्वहन् तनूनामिन्द्र गिर्वणः।

ईशानो यवया व्धम्॥१०॥१०॥

मा। नुः। मर्त्ताः। अभि। दुहुन्। तुनूनाम्। इन्द्र। गिर्वुणुः। ईशान्नः। युवुयः। वधिम्॥ १०॥

पदार्थ:-(मा) निषेधार्थे (नः) अस्माकमस्मान्वा (मृत्तीः) मरण्धर्माणो मनुष्याः। मर्ता इति मनुष्यनामसु पठितम्। (निघं०२.३) (अभिदुहृत्त्व) अभिदुहृत्त्व(भिजिश्रांसन्तु। अत्र व्यत्ययेन शो लोडर्थे लुङ् च। (तनूनाम्) शरीराणां विस्तृतानां पदार्थानां वा (इन्ह्र) सूर्वरक्षकेश्वर! (गिर्वणः) वेदिशिक्षाभ्यां संस्कृताभिर्गीभिर्वन्यते सम्यक् सेव्यते यस्तत्सम्बद्धी (ईश्वरनः) योऽसावीष्टे (यवया) मिश्रय। प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे बहुलिमष्ठवच्चेति यवशब्दाद्धात्वर्थे णिचे। अन्येषामिप दृश्यते। (अष्टा०६.३.१३७) इति दीर्घः। (वधम्) हननम्॥१०॥

अन्वय:-हे गिर्वण: सर्वशक्तिमिन्द्र परमेश्वर्र! ईशानस्त्वं नोऽस्माकं तनूनां वधं मा यवय। इमे मर्ता: सर्वे प्राणिनोऽस्मान् मा अभिदुहन् मा जिद्यांसन्तु॥१०॥

भावार्थ:-नैव कोऽपि मृनुष्योऽस्थायेन कंचिदपि प्राणिनं हिंसितुमिच्छेत्, किन्तु सर्वैः सह मित्रतामाचरेत्। यथेश्वरः कंचिदपि नाभिदुह्यति, तथैव सर्वेर्मनुष्येरनुष्ठातव्यमिति॥१०॥

अनेन पञ्चमेन सूक्तेन मनुष्यैः कथ् पुरुषार्थः कर्त्तव्यः सर्वोपकारश्चेति चतुर्थेन सूक्तेन सह सङ्गतिरस्तीति विज्ञेयम्। दिम्पि सूक्तें सायणाचार्य्यादिभिर्विलसनाख्यादिभिश्चान्यथार्थं वर्णितम्॥

इति पञ्चमं सूक्तं दशमश्च वर्गः समाप्तः॥

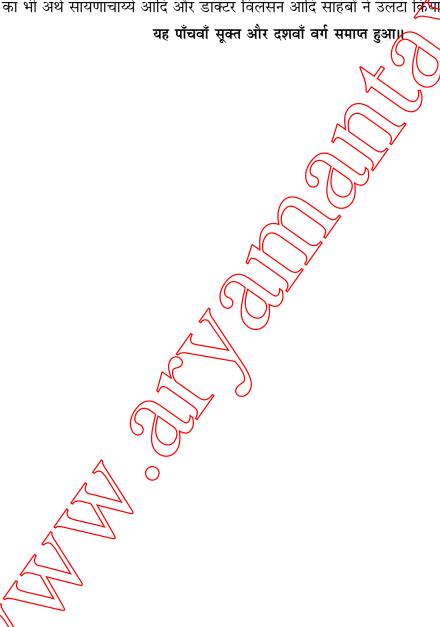
पदार्थ:-द्वें (गिर्वण:) वेद वा उत्तम-उत्तम शिक्षाओं से सिद्ध की हुई वाणियों करके सेवा करने योग्य सर्वशक्तिमान् (इन्द्र) सब के रक्षक (ईशान:) परमेश्वर! आप (न:) हमारे (तनूनाम्) शरीरों के (वधम्) नूशि दोष्यहित (मा) कभी मत (यवय) कीजिये, तथा आपके उपदेश से (मर्त्ता:) ये सब मनुष्य लोग भि (त्र:) हम से (मा) (अभिदुहन्) वैर कभी न करें॥१०॥

अष्टक-१। अध्याय-१। वर्ग-९-१०

मण्डल-१। अनुवाक-२। सूक्त-५

भावार्थ:-कोई मनुष्य अन्याय से किसी प्राणी को मारने की इच्छा न करे, किन्तु परस्पर मित्रभाव से वर्तें, क्योंकि जैसे परमेश्वर विना अपराध से किसी का तिरस्कार नहीं करता, हैंसे हो सब मनुष्यों को भी करना चाहिये॥१०॥

इस पञ्चम सूक्त की विद्या से मनुष्यों को किस प्रकार पुरुषार्थ और सब का उपकार करना चाहिये, इस विषय के कहने से चौथे सूक्त के अर्थ के साथ इसकी सङ्गति जान्द्री चाहिये। इस सूक्त का भी अर्थ सायणाचार्य्य आदि और डाक्टर विलसन आदि साहबों ने उलटा क्रिया है।



अथ दशर्च्चस्य षष्ठस्य सूक्तस्य मधुच्छन्दा ऋषि:। १-३ इन्द्र:; ४,६,८,९ मरुत:; ५.७ मरुत इन्द्रश्च; १० इन्द्रश्च देवता:। १,३, ५-७, ९-१० गायत्री; २ विराड्गायत्री; ४,८

निचृद्गायत्री च छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पन्त्रोक्तविद्यार्थं केऽर्था उपयोक्तव्या इत्युपदिश्यते।

छठे सूक्त के प्रथम मन्त्र में यथायोग्य कार्य्यों में किस प्रकार से किन-किन पदार्थों की संयुक्त करना चाहिये, इस विषय का उपदेश किया है-

युञ्जन्ति ब्रध्नम्रह्षं चरन्तं परि तस्थुषं:।

रोचन्ते रोचना दिवि॥ १॥

युञ्जन्ति। ब्रुध्नम्। अरुषम्। चर्रन्तम्। परि। तुस्थुर्षः। रोचन्ते। रोक्कुम्र्(दिवि। १)

पदार्थ:-(युञ्जन्ति) योजयन्ति (ब्रध्नम्) महान्तं परमेश्वरम्। शिल्फविद्यासिद्धय आदित्यमिंनं प्राणं वा। ब्रध्न इति महन्नामसु पठितम्। (निघं०३.३) अश्वनामसु च्या (निघं०११४) (अरुषम्) सर्वेषु मर्मसु सीदन्तमिहंसकं परमेश्वरं प्राणवायुं तथा बाह्ये देशे रूपप्रकाशकं रक्तमुणविशिष्टमादित्यं वा। अरुषमिति रूपनामसु पठितम्। (निघं०३.७) (चरन्तम्) सर्व जाज्जनिन्ते सर्वत्र व्याप्नुवन्तम् (पिर्र) सर्वतः (तस्थुषः) तिष्ठन्तीति तान् सर्वान् स्थावरान् पदार्थान् मनुष्याप् वा। तस्थुष इति मनुष्यनामसु पठितम्। (निघं०२.३) (रोचन्ते) प्रकाशन्ते रुचिहेतवश्च मचन्ति (प्रचना) प्रकाशिताः प्रकाशकाश्च (दिवि) द्योतनात्मके ब्रह्मणि सूर्य्यादिप्रकाशे वा। अर्थे मन्त्रः शतपथेऽप्येवं व्याख्यातः-युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तमिति। असौ वा आदित्यो ब्रध्नोऽस्रुषोमुपेवाऽस्मा आदित्यं युनिकत स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै। (श०ब्रा०१३.१.१५.१)॥१॥

अन्वय:-ये मनुष्या अरुषं ब्रंध्ने परितस्थुषश्चरन्तं परमात्मानं स्वात्मिन बाह्यदेशे सूर्य्यं वायुं वा युञ्जन्ति ते रोचना सन्तो दिवि प्रक्रांशे रोचन्ते प्रकाशन्ते॥१॥

भावार्थः-ईश्वर उपद्भित्ति-ये खल् विद्यासम्पादने उद्युक्ता भवन्ति तानेव सर्वाणि सुखानि प्राप्नुवन्ति। तस्माद्विद्वांसः पृथिन्याद्विप्रदार्थेभ्य उपयोगं सङ्गृह्योपग्राह्य च सर्वान् प्राणिनः सुखयेयुरिति। यूरोपदेशवासिना भट्टमोक्षमूलराख्येनास्य मन्त्रस्यार्थो रथेऽश्वस्य योजनरूपो गृहीतः; सोऽन्यथास्तीति भूमिकायां लिखितुम्॥१॥

पदार्थ: जो मनुष्य (अरुषम्) अङ्ग-अङ्ग में व्याप्त होनेवाले हिंसारहित सब सुख को करने (चरन्तम्) ख़ब जेस्त को जानने वा सब में व्याप्त (परितस्थुषः) सब मनुष्य वा स्थावर जङ्गम पदार्थ और चग्रुचर जगत् में भरपूर हो रहा है, (ब्रध्मम्) उस महान् परमेश्वर को उपासना योग द्वारा प्राप्त होते हैं, ब्रे (दिक्) प्रकाशरूप परमेश्वर और बाहर सूर्य्य वा पवन के बीच में (रोचना) ज्ञान से प्रकाशमान होके (रोचनों) आनन्द में प्रकाशित होते हैं। तथा जो मनुष्य (अरुषम्) दृष्टिगोचर में रूप का प्रकाश करने

अष्टक-१। अध्याय-१। वर्ग-११-१२

मण्डल-१। अनुवाक-२। सूक्त-६

तथा अग्निरूप होने से लाल गुणयुक्त (चरन्तम्) सर्वत्र गमन करनेवाले (ब्रध्नम्) महान् सूर्य्य और अग्नि को शिल्पविद्या में (परियुञ्जन्ति) सब प्रकार से युक्त करते हैं, वे जैसे (दिवि) सूर्य्यादि के प्रणों के प्रकाश में पदार्थ प्रकाशित होते हैं, वैसे (रोचनाः) तेजस्वी होके (रोचन्ते) नित्य उत्तम-द्वसम अभिज्य से प्रकाशित होते हैं॥१॥

भावार्थ:-जो लोग विद्यासम्पादन में निरन्तर उद्योग करनेवाले होते हैं, वे ह्य सब सुखें को प्राप्त होते हैं। इसलिये विद्वान् को उचित है कि पृथिवी आदि पदार्थों से उपयोग लेक्ट्र सब प्राणियों को लाभ पहुंचावे कि जिससे उनको भी सम्पूर्ण सुख मिलें। जो यूरोपदेशवासी मोक्षमूलर साहब आदि ने इस मन्त्र का अर्थ घोड़े को रथ में जोड़ने का लिया है, सो ठीक नहीं। इसका खण्डन भूमिकों में लिख दिया है, वहां देख लेना चाहिये॥१॥

उक्तार्थस्य कीदृशौ गुणौ क्व योक्तव्यावित्युपदिश्यते।

उक्त सूर्य्य और अग्नि आदि के कैसे गुण हैं, और वे कहा कहा उपभूक्त करने योग्य हैं, सो अगले मन्त्र में उपदेश किया है-

युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे। शोणां धृष्णू नृवाहंसा॥२॥

युञ्जन्ति। अस्य। काम्या। हरी इति। विपक्षामा। रथे। श्राणा। धृष्णू इति। नृऽवाहंसा॥२॥

पदार्थ:-(युञ्जन्ति) युञ्जन्तु। अत्र लोड्रथें लट्ये (अस्य) सूर्य्यस्याग्नेः (काम्या) कामियतव्यौ। अत्र सर्वत्र सुपां सुलुगित्याकारादेशः। (हरी) हाणशिक्षावाकर्षणवेगगुणौ पूर्वपक्षापरपक्षौ वा। इन्द्रस्य हरी ताभ्यामिदः सर्वं हरतीति। (षड्विशिष्रा०प्रपा०१.ख०१) (विपक्षसा) विविधानि यन्त्रकलाजलचक्र- भ्रमणयुक्तानि पक्षांसि पार्श्वे स्थितानि ययोस्तौ (रथे) रमणसाधने भूजलाकाशगमनार्थे याने। यज्ञसंयोगाद्राजा स्तुतिं लभेते, राजसंयोगाद्युद्धोपकरणानि। तेषां रथः प्रथमगामी भवति। रथो रहतेर्गतिकर्मणः स्थिरतेर्वा स्थाद्विपरीतस्य रममाणोऽस्मिँस्तिष्ठतीति वा रपतेर्वा रसतेर्वा। (निरु०९.११) रथ इति पदनामसु पिछतम्। (विधे०५.३) आभ्यां प्रमाणाभ्यां रथशब्देन विशिष्टानि यानानि गृह्यन्ते। (शोणा) वर्णप्रकाशुकौ गमनहेत् च (धृष्णू) दृढौ (नृवाहसौ) सम्यग्योजितौ नृन् वहतस्तौ॥२॥

अन्वयः -हे विद्वांसी उस्य काम्यौ शोणौ धृष्णू विपक्षसौ नृवाहसौ हरी रथे युञ्जन्ति युञ्जन्तु॥२॥ भारतीयै: ईश्वर उपदिशति-न यावन्मनुष्या भूजलाग्न्यादिपदार्थानां गुणज्ञानोपकारग्रहणाभ्यां भूजलाकुशगमनाय यानानि सम्पादयन्ति नैव तावत्तेषां दृढे राज्यश्रियौ सुसुखे भवत:।

शास्मण्यदेशनिवासिनाऽस्य मन्त्रस्य विपरीतं व्याख्यानं कृतमस्ति। तद्यथा-'अस्येति सर्वनाम्नो निर्देशात्र्रास्यष्टं गम्यत इन्द्रस्य ग्रहणम्। कुतः, रक्तगुणविशिष्टावश्चावस्यैव सम्बन्धिनौ भवतोऽतः। नात्र

खलु सूर्य्योषसोर्ग्रहणम्। कुतः, प्रथममन्त्र एकस्याश्वस्याभिधानात्।' इति मोक्षमूलरकृतोऽर्थः सम्यङ् नास्तीति। कुतः, अस्येति पदेन भौतिकपदार्थयोः सूर्य्याग्न्योर्ग्रहणं, न कस्यचिद्देहधारिणः। हरी इति सूर्य्यस्य धारणाकर्षणगुणयोर्ग्रहणम्। शोणेति पदेनाग्ने रक्तज्वालागुणयोर्ग्रहणार्हेण पूर्वमन्त्रेऽश्विभिष्ठान् एकवचनं जात्यभिप्रायेण चास्त्यतः। इदं शब्दप्रयोगः खलु प्रत्यक्षार्थवाचित्वात् संनिहितास्रस्य सूर्य्याद्रस्य ग्रहणाच्च तत्कित्पतोऽर्थोऽन्यथैवास्तीति॥२॥

पदार्थ:-जो विद्वान् (अस्य) सूर्य्य और अग्नि के (काम्या) सब के इच्छा करने योग्य (शोणा) अपने-अपने वर्ण के प्रकाश करनेहारे वा गमन के हेतु (धृष्णू) दृढ (विपक्षस्प) विकिथ कला और जल के चक्र घूमनेवाले पांखरूप यन्त्रों से युक्त (नृवाहसा) अच्छी प्रकार सवास्थों में जुड़े हुए मनुष्यादिकों को देशदेशान्तर में पहुंचानेवाले (हरी) आकर्षण और वेग तथा शुक्लप्रश्न और कृष्णपक्षरूप दो घोड़े जिनसे सब का हरण किया जाता है, इत्यादि श्रेष्ठ गुणों को पृथिवी जल और आकाश में जाने आने के लिये अपने-अपने रथों में (युक्जित) जोड़ें॥२॥

भावार्थ:-ईश्वर उपदेश करता है कि-मनुष्य लोग जब तक भू जल आदि पदार्थों के गुण ज्ञान और उनके उपकार से भू जल और आकाश में जाने आने कि लिये अध्छी सवारियों को नहीं बनाते, तब तक उनको उत्तम राज्य और धन आदि उत्तम सुख नहीं मिल सकता।

जरमन देश के रहनेवाले मोक्षमूलर साहब में इस मन्त्र का विपरीत व्याख्यान किया है। सो यह है कि-'अस्य' सर्वनामवाची इस शब्द के निर्देश (से स्पष्ट मृत्यूम होता है कि इस मन्त्र में इन्द्र देवता का ग्रहण है, क्योंकि लाल रंग के घोड़े इन्द्र ही के हैं। और यहां सूर्य्य तथा उषा का ग्रहण नहीं, क्योंकि प्रथम मन्त्र में एक घोड़े का ही ग्रहण किया है। यह उनका अर्थ ठीक नहीं, क्योंकि 'अस्य' इस पद से भौतिक जो सूर्य्य और अग्नि हैं, इन्हीं दोनों का ग्रहण है, किसी देहधारी का नहीं। 'हरी' इस पद से सूर्य्य के धारण और आकर्षण गुण्णे का ग्रहण तथा 'शोणा' इस शब्द से अग्नि की लाल लपटों के ग्रहण होने से और पूर्व मन्त्र में एक अश्व का ग्रहण जाति के अभिप्राय से अर्थात् एकवचन से अश्व जाति का ग्रहण होता है। और 'अस्य' यह शब्द प्रत्यक्ष अर्थ का वाची होने से सूर्य्यादि प्रत्यक्ष पदार्थों का ग्राहक होता है, इत्यादि हेतुओं (स मोक्षसूल) साहब का अर्थ सच्चा नहीं॥२॥

येचेम पदार्था उत्पादिताः स कीदृश इत्युपदिश्यते।

जिसने मुंसार के सब पदार्थ उत्पन्न किये हैं, वह कैसा है, यह बात अगले मन्त्र में प्रकाशित की

है-

कृतुं कृण्वज्ञकेतवे पेशों मर्या अपेशसे।

संभूषद्धिरजायथा:॥३॥

केतुम्। कृण्वन्। अुकेतवे। पेशः। मुर्व्याः। अुपेशसे। सम्। उुषत्ऽभिः। अुजायुथाः॥३॥

अष्टक-१। अध्याय-१। वर्ग-११-१२

मण्डल-१। अनुवाक-२। सूक्त-६

पदार्थ:-(केतुम्) प्रज्ञानम्। केतुरिति प्रज्ञानामसु पठितम्। (निघं०३.९) (कृण्वन्) कुर्वन्सन्। इदं कृवि हिंसाकरणयोश्चेत्यस्य रूपम्। (अकेतवे) अज्ञानान्धकारिवनाशाय (पेशः) हिरण्यादिधा श्रिष्ठे रूपं वा। पेश इति हिरण्यनामसु पठितम्। (निघं०१.२) रूपनामसु च। (निघं०३.६) (भय्यः) मरणधर्मशीला मनुष्यास्तत्सम्बोधने। मर्या इति मनुष्यनामसु पठितम्। (निघं०३.३) (अपेशसे) निर्धनतादारिद्र्यादिदोषिवनाशाय (सम्) सम्यगर्थे (उषद्धिः) ईश्वरादिपदार्थिवद्याः क्राप्तयमानैर्विद्विद्धिः सह समागमं कृत्वा (अजायथाः) एतिद्वद्याप्राप्त्या प्रकटो भव। अत्र लोडर्थे लङ्॥३॥

अन्वय:-हे मर्य्या:! यो जगदीश्वरोऽकेतवे केतुमपेशसे पेश: कृणवन्सन् वर्तते ते सर्वा विद्याश्च समुषद्भिः समागमं कृत्वा यूयं यथाद्विजानीत। तथा हे जिज्ञासु मनुष्य! त्रिमपि तत्स्रीमागमेनाऽजायथाः, एतद्विद्याप्राप्त्या प्रसिद्धो भव॥३॥

भावार्थ:-मनुष्यै रात्रेश्चतुर्थे प्रहर आलस्यं त्यक्त्वोत्थायाज्ञानदारिद्रसर्विनाशाय नित्यं प्रयत्नवन्तो भूत्वा परमेश्वरस्य ज्ञानं पदार्थेभ्य उपकारग्रहणं च कार्य्यमिति।

'यद्यपि मर्थ्या इति विशेषतयाऽत्र कस्यापि निम् न दृश्यूर्ते, तदप्यत्रेन्द्रस्यैव ग्रहणमस्तीति निश्चीयते। हे इन्द्र! त्वं प्रकाशं जनयसि यत्र पूर्वं प्रकाशो निभूता इति मोक्षमूलरकृतोऽर्थोसङ्गतोऽस्ति। कृतो, मर्थ्या इति मनुष्यनामसु पठितत्वात् (निधि २३), अजायथा इति लोडर्थे लङ्विधानेन मनुष्यकर्त्तृकत्वेन पुरुषव्यत्ययेन प्रथमार्थे मध्यम् विशामादिति। ३॥

पदार्थ:-(मर्थ्या:) हे मनुष्य लोगो! जी षरमात्मा (अकेतवे) अज्ञानरूपी अन्धकार के विनाश के लिये (केतुम्) उत्तम ज्ञान, और (अपेशार्थ) निर्धन्ता दारिद्रच तथा कुरूपता विनाश के लिये (पेश:) सुवर्ण आदि धन और श्रेष्ठ रूप क्री (कृप्यन) उत्पन्न करता है, उसको तथा सब विद्याओं को (समुषद्धि:) जो ईश्वर की आज्ञा के अनुकूल वर्त्तनेवाले हैं, उनसे मिल-मिल कर जान के (अजायथा:) प्रसिद्ध हूजिये। तथा हे जानने की इच्छा करनेवाले मनुष्य! तू भी उस परमेश्वर के समागम से (अजायथा:) इस विद्या को यथावत प्राप्त हो।।३॥

भावार्थ:-मनुष्ये को प्रिति गर्ति के चौथे प्रहर में आलस्य छोड़कर फुरती से उठ कर अज्ञान और दिरद्रिता के विनाश के लिये प्रवत्नवाले होकर तथा परमेश्वर के ज्ञान और संसारी पदार्थों से उपकार लेने के लिये उत्तम उपित्र सदा कुरना चाहिये।

'यद्यपि मर्च्योः इस पद से किसी का नाम नहीं मालूम होता, तो भी यह निश्चय करके जाना जाता है कि इस मन्त्र में इन्द्र का ही ग्रहण है कि-हे इन्द्र तू वहां प्रकाश करनेवाला है कि जहां पहिले प्रकाश नहीं था।' यह मोक्षमूलरजी का अर्थ असङ्गत है, क्योंकि 'मर्च्याः' यह शब्द मनुष्य के नामों में निष्ठण्टु में पढ़ा है, तथा 'अजायथाः' यह प्रयोग पुरुषव्यत्यय से प्रथम पुरुष के स्थान में मध्यम पुरुष का प्रयोग किया है॥३॥

अथ मरुतां कर्मोपदिश्यते।

अगले मन्त्र में वायु के कर्मों का उपदेश किया है-

आदहं स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे। दर्धाना नामं युज्ञियम्।।४॥

आत्। अहं। स्वधाम्। अनुं। पुनं:। गुर्भुत्वम्। आऽईरिरे। दर्धाना:। नामं। युज्ञियम्॥ हाा

पदार्थ:-(आत्) आनन्तर्यार्थे (अह) विनिग्रहार्थे। अह इति विनिग्रहार्थेष:। (निहुं०१.५) (स्वधाम्) उदकम्। स्वधेत्युदकनामसु पठितम्। (निघं०१.१२) (अनु) विप्सायाम् (पुन:) पश्चात् (गर्भत्वम्) गर्भस्याधिकरणा वाक् तस्या भावस्तत् (एिररे) समन्तात् (प्राप्तुबन्तः) ईर गतौ कम्पने चेत्यस्यामन्त्र इति प्रतिषेधादामोऽभावे प्रयोगः। (दधानाः) सर्वधारकाः (नाम) उदकम्। नामेत्युदकनामसु पठितम्। (निघं०१.१२) (यज्ञियम्) यज्ञकर्मार्हतीति यज्ञियो देशस्तम्। तत्कर्मार्हतीत्युपसंख्यानम्। (अष्टा०५.१.७१) इति वार्तिकेन घः प्रत्ययः॥४॥

अन्वय:-यथा मरुतो यज्ञियं नाम दधानाः सन्तो यद्धा स्वधामन्यप्सु पुनर्गर्भत्वमेरिरे, तथा आत् अनन्तरं वृष्टिं कृत्वा पुनर्जलानामहेति विनिग्रहं कुर्वन्ति॥४

भावार्थ:-यज्जलं सूर्य्याग्निभ्यां लघुत्वं प्राप्य क्रणीभूते ज्ययते, तद्धारणं घनाकारं कृत्वा मरुत एव वर्षयन्ति, तेन सर्वपालनं सुखं च जायते।

'तदनन्तरं मरुत: स्वस्वभावानुकूल्येन बालकाकृतयो जाता:। यै: स्वकीयं शुद्धं नाम रक्षितम्।' इति मोक्षमूलरोक्तिः प्रणाय्यास्ति। कस्मत्, न खुल्बत्र बालकाकृतिशुद्धनामरक्षणयोरिवद्यमानत्वेनेन्द्र- संज्ञिकानां मरुतां सकाशादन्यार्थस्य ग्रह्णां सम्भवत्यातः॥४॥

पदार्थ:-जैसे 'मरुत:' वायु (नाप) जल और (यज्ञियम्) यज्ञ के योग्य देश को (दधाना:) सब पदार्थों को धारण किये हुए (पुन्) फिर-फिर (स्वधामनु) जलों में (गर्भत्वम्) उनके समूहरूपी गर्भ को (एरिरे) सब प्रकार से प्राप्त होते कम्पाते, वैसे (आत्) उसके उपरान्त वर्षा करते हैं, ऐसे ही वार-वार जलों को चढाते वर्षाते हैं॥॥

भावार्थ:-जो जल सूर्य्य वा अग्नि के संयोग से छोटा-छोटा होजाता है, उसको धारण कर और मेघ के आकार क्रेंबना के बायु ही उसे फिर-फिर वर्षाता है, उसी से सब का पालन और सब को सुख होता है।

'इसके पीछे वायु अपने स्वभाव के अनुकूल बालक के स्वरूप में बन गये और अपना नाम पिवित्र रख लिया।' देखिये मोक्षमूलर साहब का किया अर्थ मन्त्रार्थ से विरुद्ध है, क्योंकि इस मन्त्र में बालक बनना और अपना पवन नाम रखना, यह बात ही नहीं है। यहां इन्द्र नामवाले वायु का ही ग्रहण हैं अन्य किसी का नहीं॥४॥

अष्टक-१। अध्याय-१। वर्ग-११-१२

मण्डल-१। अनुवाक-२। सूक्त-६

तै: सह सूर्य्य: किं करोतीत्युपदिश्यते।

उन पवनों के साथ सूर्य्य क्या करता है, सो अगले मन्त्र में उपदेश किया है-

वीळु चिंदारुजुलुभिर्गुहा चिदिन्द्र वह्निभि:।

अविन्द उुम्निया अनु॥५॥११॥

वीुळु। चित्। आरुजुलुऽभिः। गुहां। चित्। इन्द्र। वह्निभिः। अविन्दः। उम्नियाः। अर्तु।।५॥

पदार्थ:-(वीळु) दृढं बलम्। वीळु इति बलनामसु पठितम्। (निष्ठं०२.९) (चित्) उपमार्थे। (निरु०१.४) (आरुजलुभि:) समन्ताद् भञ्जद्भिः। आङ्पूर्वाद् रुजो भङ्ग इत्यस्माद्धातोरौणादिकः कलुः प्रत्ययः। (गुहा) गुहायामन्तरिक्षे। सुपां सुलुगिति डेर्लुक्। गुहा गूहतेः (निरु०१३.८) (चित्) एवार्थे। चिदिदं पूजायाम्। (निरु०१.४) (इन्द्रः) सूर्य्यः (विह्निभः) चोठ्धिर्मरुद्धः सह। विहशृ० (उणा०४.५३) इति वहेरौणादिको निः प्रत्ययः। (अविन्दः) लभूत। पूर्वचदन्न पुरुषव्यत्ययः, लडर्थे लोट् च। (उस्त्रियाः) किरणाः। अत्र इयाडियाजीकाराणामुपसंख्यानामित्यनेन प्रसः स्थाने डियाजादेशः। उस्नेति रिश्ननामसु पठितम्। (निघं०१.५) (अनु) पश्चादर्थे॥५।

अन्वय:-चिद्यथा मनुष्याः स्वसमीपस्थान् पदार्थामुपद्यधिशच नयन्ति, तथैवेन्द्रोऽयं सूर्य्यो वीळुबलेनोस्नियाः क्षेपयित्वा पदार्थान् विन्दतेऽन् पश्चान्त् भित्त्वाऽऽरुजत्नुभिर्विह्वभिर्मरुद्धिः सह त्वामेतत्पदार्थसमूहं गुहायामन्तरिक्षे स्थापयित॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। यथा बल्बन्तो मुरुती दृढेन स्ववेगेन दृढानिप वृक्षादीन् भञ्जन्ति तथा सूर्य्यस्तानहर्निशं किरणैश्छिनित मरुतरच तानुपर्यधो नयन्ति, एवमेवेश्वरनियमेन सर्वे पदार्था उत्पत्तिविनाशाविप प्राप्नुवन्ति।

'हे इन्द्र! त्वया तिक्ष्मगतिभवायुभिः सह गूढस्थानस्था गावः प्राप्ता' इति मोक्षमूलरव्याख्याऽसङ्गतास्ति कृतः, उस्रेति रिश्मनामसु निघण्टौ (१.५) पठितत्वेनात्रैतस्यार्थस्यैवार्थस्य योग्यत्वात्। गुहेत्यनेन सर्व्यवरुक्तत्वोद्यन्त्रारक्षस्यैव ग्रहणार्हत्वादिति॥५॥

इत्येकादशो वर्गः समापाः॥

पदार्थ:-(चित्) जैसे मनुष्य लोग अपने पास के पदार्थों को उठाते धरते हैं, (चित्) वैसे ही सूर्य्य भी (वीळू) दृढ बल से (उस्त्रिया:) अपनी किरणों करके संसारी पदार्थों को (अविन्द:) प्राप्त होता है, (अनु) उसके अनन्तर सूर्य्य उनको छेदन करके (आरुजलुभि:) भङ्ग करने और (विह्निभि:) आकाश आदि देशों में पहुंचानेवाले पवन के साथ ऊपर-नीचे करता हुआ (गृहा) अन्तरिक्ष अर्थात् पोल में सदा चढ़ाला गिराज्ञा रहता है॥५॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे बलवान् पवन अपने वेग से भारी-भारी दृढ वृक्षों को तोड़ फोड़ डालते और उनको ऊपर नीचे गिराते रहते हैं, वैसे ही सूर्य्य भी अपनी किरणों से उनका छेदन करता रहता है, इससे वे ऊपर नीचे गिरते रहते हैं। इसी प्रकार ईश्वर के नियम से स्वि पदार्थ उत्पत्ति और विनाश को भी प्राप्त होते रहते हैं।

'हे इन्द्र! तू शीघ्र चलनेवाले वायु के साथ अप्राप्त स्थान में रहनेवाली नौओं को प्राप्त हुआ।' यह भी मोक्षमूलर साहब की व्याख्या असङ्गत है, क्योंकि 'उस्ना' यह शब्द सिघण्टु में रिश्म नाम में पढ़ा है, इससे सूर्य्य की किरणों का ही ग्रहण होना योग्य है। तथा 'गुह्रा' इसे शब्द से सबको ढांपनेवाला होने से अन्तरिक्ष का ग्रहण है॥५॥

यह ग्यारहवाँ वर्ग समाप्त हुआ।।

पुनस्ते कीदृशा भवन्तीत्युपदिश्यते।

फिर वे पवन कैसे हैं, सो अगले मन्त्र में प्रकाश किया है

देवयन्तो यथा मृतिमच्छा विदर्ह्यसुं गिरः।

महामनूषत श्रुतम्।।६॥

देवयन्तः। यथा। मृतिम्। अच्छी। विदत्ऽवसुम्। ग्रिः। मृहाम्। अनूष्तः। श्रुतम्॥६॥

पदार्थ:-(देवयन्तः) प्रकाशयन्त आत्मना देविमच्छेली मनुष्याः (यथा) येन प्रकारेण (मितम्) बुद्धिम् (अच्छ) उत्तमरीत्या। निपातस्य चेति दीर्घः। (विदद्धसुम्) विदद्धिः सुखज्ञापकैर्वसुभिर्युक्ताम् (गिरः) गृणन्ति ये ते गिरो विद्वांसः (महम्) महतीम् (अनूषत) प्रशस्तां कुर्वन्ति। णू स्तवन इत्यस्य लुङ्प्रयोगः। संज्ञापूर्वको विधिर्नित्य इति गुणाभावः, लडर्थे लुङ् च। (श्रुतम्) सर्वशास्त्रश्रवणकथनम्॥६॥

अन्वय:-यथा देवयन्ते गिरो बिद्धांसो मनुष्या विदद्वसुं महां महतीं मितं बुद्धिं श्रुतं वेदशास्त्रार्थयुक्तं श्रवणं कश्चन चानूषत प्रशस्ते कुर्वन्ति, तथैव मरुतः स्ववेगादिगुणयुक्ताः सन्तो वाक्श्रोत्रचेष्टामहच्छिल्पक्रिक् प्रशस्त्रं साधयन्ति॥६॥

भावार्थ:-अत्रोपमाल्ङ्कारो मनुष्यैर्मरुतां सकाशाल्लोकोपकारार्थं विद्याबुद्ध्यर्थं च सदा प्रयत्नः कार्य्यो येन सर्वे व्यवहाराः सिद्धयुरिति।

'धर्मात्मिभिगेर्यनैर्मरुद्धिरिन्द्राय जयजयेति श्राविताः' इति मोक्षमूलरोक्तिरन्यथास्ति। कुतः, देवयन्त इत्यात्मनोदिवं विद्वांसिमच्छन्त इत्यर्थान्मनुष्याणामेव ग्रहणम्॥६॥

पदार्थ:-जैसे (देवयन्तः) सब विज्ञानयुक्त (गिरः) विद्वान् मनुष्य (विदद्वसुम्) सुखकारक पदार्थ विद्या सि युक्त (महाम्) अत्यन्त बड़ी (मितम्) बुद्धि (श्रुतम्) सब शास्त्रों के श्रवण और कथन को

૭૬

अष्टक-१। अध्याय-१। वर्ग-११-१२

मण्डल-१। अनुवाक-२। सूक्त-६

(अच्छ) अच्छी प्रकार (अनूषत) प्रकाश करते हैं, वैसे ही अच्छी प्रकार साधन करने से वायु भी शिल्प अर्थात् सब कारीगरी को (अनूषत) सिद्ध करते हैं॥६॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्यों को वायु के उत्तम गुणों का ज्ञान, द्वान का उपकार और विद्या की वृद्धि के लिये प्रयत्न सदा करना चाहिये, जिससे सब व्यवहार सिद्ध होंगी

'गान करनेवाले धर्मात्मा जो वायु हैं उन्होंने इन्द्र को ऐसी वाणी सुनाई कि तू जीत जीत।' यह भी उनका अर्थ अच्छा नहीं, क्योंकि 'देवयन्तः' इस शब्द का अर्थ यह हैं कि सनुष्य लोग अपने अन्तः करण से विद्वानों के मिलने की इच्छा रखते हैं। इस अर्थ से मनुष्यों क्रू ग्रहण होता है॥६॥

केन सहैते कार्य्यसाधका भवन्तीत्युपदिश्यद्वे।

उक्त पदार्थ किस के सहाय से कार्य्य के सिद्ध करनेवाले होते हैं, सो अगूने मन्त्र में प्रकाश

किया है-

इन्द्रेण सं हि दृक्षसे संजग्मानो अर्बिभ्युषा। मुन्दू समानवर्चसा॥७॥

इन्द्रेण। सम्। हि। दृक्षसे। सुंऽजुग्मानः। अबिभ्युषा पुन्दू इति। सुमानऽवर्चसा॥७॥

पदार्थ:-(इन्द्रेण) परमेश्वरेण सूर्य्येण सह वा (सम्) सम्यक् (हि) निश्चये (दृक्षसे) दृश्यते। अत्र लडर्थे लेट्मध्यमैकवचनप्रयोगः। अनित्यमागप्रशासनमिति वचनप्रामाण्यात् सृजिदृशोरित्यम् न भवति। (संजगमानः) सम्यक् सङ्गतः (अविभ्युषा) भयनिकारणहेतुना किरणसमूहेन वायुगणेन सह वा (मन्दू) आनन्दितावानन्दकारकौ। मन्दू इति पदनापपु पिक्तम्। (निघं०४.१) (समानवर्चसा) समानं तुल्यं वर्चो दीप्तिर्ययोस्तौ। यास्काचार्य्येणायं मन्त्र एसं व्याख्यातः-इन्द्रेण सं हि दृश्यसे संजग्मानो अविभ्युषा गणेन मन्दू मिद्धणू युवास्थोऽपि वा मन्दुना तेनित स्थात्समानवर्चसेत्येतेन व्याख्यातम्। (निरु०४.१२॥७॥

अन्वय:-अयं वायुर्गि पूषेन्द्रेणैव स्रोजिंग्मानः सन् तथा वायुना सह सूर्य्यश्च सङ्गत्य दृश्यसे दृश्यते दृष्टिपथमागच्छति हि यतस्तो समानवर्चसौ वर्तेते तस्मात्सर्वेषां मन्द्र भवतः॥७॥

भावार्थ:-ईश्वरेणाभिस्याप्न स्वसत्तया सूर्य्यवाय्वादयः सर्वे पदार्था उत्पाद्य धारिता वर्त्तन्ते। एतेषां मध्य खलु सूर्य्यवाय्वोधीरणाकर्षणप्रकाशयोगेन सह वर्त्तमानाः सर्वे पदार्थाः शोभन्ते। मनुष्यैरेते विद्योपकारं ग्रहीत्ं योजनीयाः।

'इदम्महद्देश्चर्यं यद्वहुवचनस्यैकवचने प्रयोगः कृतोऽस्तीति। यच्च निरुक्तकारेण द्विवचनस्य स्थान एकवचनप्रयोगः कृतोऽस्त्यतोऽसङ्गतोऽस्ति।' इति च मोक्षमूलरकल्पना सम्यङ् न वर्त्तते। कुतः, व्यत्ययी बहुलम्, सुप्तिङुपग्रह० इति वचनव्यत्ययविधायकस्य शास्त्रस्य विद्यमानत्वात्। तथा

निरुक्तकारस्य व्याख्यानं समञ्जसमस्ति। कुतः, मन्दू इत्यत्र **सुपां सुलुग्॰ इति** पूर्वसवर्णादेशविधायकस्य शास्त्रस्य विद्यमानत्वात्॥७॥

पदार्थ:-यह वायु (अविभ्युषा) भय दूर करनेवाली (इन्द्रेण) परमेश्वर की सार्थ (संजग्मान:) अच्छी प्रकार प्राप्त हुआ, तथा वायु के साथ सूर्य्य (संदृक्षसे) अच्छी प्रकार दृष्टि में आता है, (हि) जिस कारण ये दोनों (समानवर्चसा) पदार्थों के प्रसिद्ध बलवान् हैं, इसी से वे सब जीवों को (मन्दू) आनन्द के देनेवाले होते हैं॥७॥

भावार्थ:-ईश्वर ने जो अपनी व्याप्ति और सत्ता से सूर्य्य और वायु आदि पदार्थ उत्पन्न करके धारण किये हैं, इन सब पदार्थों के बीच में से सूर्य्य और वायु ये दोनों मुख्य हैं, क्योंकि इन्हीं के धारण आकर्षण और प्रकाश के योग से सब पदार्थ सुशोभित होते हैं। मनुष्यों, की सहिम कि उन्हें पदार्थविद्या से उपकार लेने के लिये युक्त करें।

'यह बड़ा आश्चर्य है कि बहुवचन के स्थान में एकवचन का प्रयोग किया गया, तथा निरुक्तकार ने द्विवचन के स्थान में एकवचन का प्रयोग माना है, सो असङ्गत है।' यह भी मोक्षमूलर साहब की कल्पना ठीक नहीं, क्योंकि 'व्यत्ययो ब॰ सिन्दुपप्रह॰' व्याकरण के इस प्रमाण से वचनव्यत्यय होता है। तथा निरुक्तकार का व्याख्यान सत्य है, क्योंकि 'सुणा सु॰' इस सूत्र से 'मन्दू' इस शब्द में द्विवचन को पूर्वसवर्ण दीर्घ एकादेश हो। श्राथा है। श्राथा

कथं पूर्वोक्तो नित्यवर्तिभानो व्यवहारीऽस्तीत्युपदिश्यते।

पूर्वीक्त व्यवहार किस प्रकार से नित्य वर्तमान है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया

अनुवृद्यैर्भिद्युभिर्मुखः सहस्वदर्च्यात्।

गणैरिन्द्रस्य काम्यै:॥ जा

७८

अनुवृद्यैः। अभिऽद्युभित्रि मुखः। सहस्वत्। अर्चुति। गुणैः। इन्द्रस्य। काम्यैः॥८॥

पदार्थ:-(अनवहैं:) निर्देशिः (अभिद्युभि:) अभितः प्रकाशमानैः (मखः) पालनशिल्पाख्यो यज्ञः। मख इति यज्ञनामसु पिलतम्। (निघं०३.१७) (सहस्वत्) सहोऽतिशयितं सहनं विद्यते यस्मिन् तद्यथा स्यात्तथा। अत्रातिशये मतुप्। (अर्चित) सर्वान् पदार्थान् सत्करोति (गणैः) किरणसमूहैर्मरुद्भिव (इन्द्रस्य) सूर्य्यस्य (काम्यैः) कामयितव्यैरुत्तमैः सह मिलित्वा॥८॥

अन्बय:-अय मख इन्द्रस्यानवद्यैरभिद्युभि: काम्यैर्गणै: सह सर्वान्पदार्थान्सहस्वदर्चित॥८॥

स्वार्थ:-अयं सुखरक्षणप्रदो यज्ञ: शुद्धानां द्रव्याणामग्नौ कृतेन होमेन सम्पादितो हि वार्युक्रिसमुद्धारा रोगविनाशनात्सर्वान् प्राणिन: सुखयित्वा बलवत: करोति। अष्टक-१। अध्याय-१। वर्ग-११-१२

मण्डल-१। अनुवाक-२। सूक्त-६

अत्र मोक्षमूलरेण मखशब्देन यज्ञकर्ता गृहीतस्तदन्यथास्ति। कुतो, मखशब्देन यज्ञस्याभिधानत्वेन कमनीयैर्वायुगणैः सूर्य्यकिरणसिहतैः सह हुतद्रव्यवहनेन वायुवृष्टिजलशुद्धिद्वारेष्टसुखसम्पाद्धिन सर्वेषां प्राणिनां सत्कारहेतुत्वात्। यच्चोक्तं 'मखशब्देन देवानां शतुर्गृह्यते' तदप्यन्यथास्ति। कुतस्तित्र मखशब्दस्योपमावाचकत्वात्॥८॥

पदार्थ: - जो यह (मख:) सुख और पालन होने का हेतु यज्ञ है, वह (इन्द्रस्य) सूर्य्य की (अनवद्यै:) निर्दोष (अभिद्युभि:) सब और से प्रकाशमान और (काम्यै:) प्राप्ति की इच्छा करने के योग्य (गणै:) किरणों वा पवनों के साथ मिलकर सब पदार्थों को (सहस्वत) जैसे दृढ़ होते हैं, वैसे ही (अर्चित) श्रेष्ठ गुण करनेवाला होता है॥८॥

भावार्थ:-जो शुद्ध अत्युत्तम होम के योग्य पदार्थों के अग्नि में किये हुए होम से किया हुआ यज्ञ है, वह वायु और सूर्य्य की किरणों की शुद्धि के द्वारा रोगनाश करने के हेतु से सब जीवों को सुख देकर बलवान् करता है।

'यहां मखशब्द से यज्ञ करनेवाले का ग्रहण है, तथा देवों के शत्रु का भी ग्रहण है।' यह भी मोक्षमूलर साहब का कहना ठीक नहीं, क्योंकि जो मखशब्द पज्ञ का वाची है, वह सूर्य्य की किरणों के सिहत अच्छे-अच्छे वायु के गुणों से हवन किये हुए पदार्थी को सर्वत्र पहुंचाता है, तथा वायु और वृष्टिजल की शुद्धि का हेतु होने से सब प्रापियों को सुख देनेवाला होता है। और मख शब्द के उपमावाचक होने से देवों के शत्रु का भी ग्रहण नहीं स्राप्त

अथ गरितां/ ममनशीलत्वमुपदिश्यते।

अगले मन्त्र में रामनस्वभाववाले पवन का प्रकाश किया है॥

अर्तः परिज्मुन्नागंहि दि<u>वी वो रो</u>चनादिं। समस्मिन्नञ्जते गिरं:गिर्हा।

अर्तः। पुरिज्मुन्। आ पहि। द्विः। वा। रोचनात्। अर्धि। सम्। अस्मिन्। ऋञ्जते। गिर्रः॥९॥

पदार्थ:-(अतः) अस्मात्स्थानात् (परिज्मन्) परितः सर्वतो गच्छन् उपर्य्यधः। सर्वान् पदार्थानितस्ततः क्षेप्ता। अयमजधातोः प्रयोगः। श्वनुक्षण० (उणा०१.१५७) इति कनिन्प्रत्ययान्तो मुडागमेनाकारलोपने च निपातितः। (आगिह) गमयत्यागमयित वा। अत्र लडर्थे लोट्, पुरुषव्यत्ययेन गमेर्मध्यमपुरुषस्यक्षच्ये बहुलं छन्दसीति शपो लुक्, हेर्डित्त्वादनुनासिकलोपश्च। (दिवः) प्रकाशात् (वा) पृक्षान्तरे (रोच्यात्) सूर्य्यप्रकाशादुचिकरान्मेघमण्डलाद्वा (अधि) उपरितः (सम्) सम्यक् (अस्मिन्) बहिर्द्रतःस्थ मरुद्गणे (ऋञ्जते) प्रसाध्नुवन्ति। ऋञ्जतिः प्रसाधनकर्मा। (निरु०६.२१) (गिरः)

60

अन्वय:-यत्र गिरः समृञ्जते सोऽयं परिज्मा वायुरतः पृथिवीस्थानाज्जलकणानध्यागह्यपिरे गमयित, स पुनर्दिवो रोचनात् सूर्य्यप्रकाशान्मेघमण्डलाद्वा जलादिपदार्थानागह्यागमयित। अस्मिन् सर्वे पदार्थाः स्थितं लभन्ते॥९॥

भावार्थ:-अयं बलवान् वायुर्गमनागमनशीलत्वात् सर्वपदार्थगमनागमनधारणशब्दोन्वारणश्रवणनां हेतुरस्तीति। सायणाचार्य्येण परिज्मन्शब्दमुणादिप्रसिद्धमविदित्वा मनिन्प्रत्ययान्तो व्याख्यातोऽयमस्य भ्रमोऽस्तीति बोध्यम्।

'हे इतस्ततो भ्रमणशील मनुष्याकृतिदेवदेहधारिन्निन्द्र! व्हें सन्मुखात्पार्श्वतो वोपरिष्टादस्मत्समीपमागच्छ, इयं सर्वेषां गायनानामिच्छास्ति' इति मोक्षमूलस्व्याख्या विपरीतास्ति। कुतः, अस्मिन्मरुद्गण इन्द्रस्य सर्वा गिर ऋञ्जते इत्यनेन शब्दोच्चारणत्यवहारप्रमाधकत्वेनात्र प्राणवायोरेव ग्रहणात्॥९॥

पदार्थ:-जिस वाणी में वायु का सब व्यवहार सिद्ध होता है, वह (परिज्मन्) सर्वत्र गमन करता हुआ सब पदार्थों को तले ऊपर पहुँचानेवाला पवन (अतः) इस पृथिवी स्थान से जलकणों का ग्रहण करके (अध्यागिह) ऊपर पहुँचता और फिर (दिवः) सूर्यों के प्रकाश से (वा) अथवा (रोचनात्) जो कि रुचि को बढ़ानेवाला मेघमण्डल है, उससे जल को ग्रिस्ता हुआ मेले पहुँचाता है। (अस्मिन्) इसी बाहर और भीतर रहनेवाले पवन में सब पदार्थ स्थिति को ग्राप्त होते हैं॥९॥

भावार्थ:-यह बलवान् वायु अपने गम्न आमपन गुण से सब पदार्थों के गमन आगमन धारण तथा शब्दों के उच्चारण और श्रवण का हेतु है। इस मन्त्र में सायणाचार्य्य ने जो उणादिगण में सिद्ध 'परिज्मन्' शब्द था, उसे छोड़कर मनिन्प्रस्थान्त क्रियना किया है, सो केवल उनकी भूल है।

'हे इधर-उधर विचरनेवाले प्रमुख्यदेहधारी इन्द्र! तू आगे पीछे और ऊपर से हमारे समीप आ, यह सब गानेवालों की इच्छा है। यह भी उन (मोक्षमूलर साहब) का अर्थ अत्यन्त विपरीत है, क्योंकि इस वायुसमूह में मनुष्यों की काणी शब्दों के उच्चारणव्यवहार से प्रसिद्ध होने से प्राणरूप वायु का ग्रहण है॥९॥

इदानीं सूर्य्यकर्मोपदिश्यते।

अमले मन्त्र में सूर्य्य के कर्म का उपदेश किया है-

इतो व्या समितिमीमिहे दिवो वा पार्थिवादिध।

इन्द्रं मही वा रजसः॥१०॥

🕰 तः। वा। सोतिम्। ईमेहे। दिवः। वा। पार्थिवात्। अर्धि। इन्द्रम्। मुहः। वा। रजेसः॥१०॥

पदार्थ:-(इत:) अस्मात् (वा) चार्थे (सातिम्) संविभागं कुर्वन्तम्। अत्र ऊतियूतिजूतिसातिहेति० अष्टाक्के ३.९७) अनेनायं शब्दो निपातित:। (ईमहे) विजानीम:। अत्र ईङ् गतौ, बहुलं छन्दसीति शपो अष्टक-१। अध्याय-१। वर्ग-११-१२

मण्डल-१। अनुवाक-२। सूक्त-६

लुकि श्यनभाव:। (दिव:) प्रत्यक्षाग्ने: प्रकाशात् (वा) पक्षान्तरे लोकलोकान्तरेभ्योऽपि (पार्थिवात्) पृथिवीसंयोगात्। सर्वभूमिपृथिवीभ्यामणजौ। (अष्टा०५.१.४१) इति सूत्रेण पृथिवीशब्दाद्ध प्रत्ययः। (अधि) अधिकार्थे (इन्द्रम्) सूर्य्यम् (महः) महान्तमित विस्तीर्णम् (वा) पक्षाम्सरे (रज्यः) पृथिव्यादिलोकेभ्य:। लोका रजांस्युच्यन्ते। (निरु०४.१९)॥१०॥

अन्वय:-वयमित: पार्थिवाद्वा दिवो वा सातिं कुर्वन्तं रजसोऽधि महान्तं वेद्रमीमहे विजानीम:॥१०॥

भावार्थ:-सूर्य्यकिरणाः पृथिवीस्थान् जलादिपदार्थान् छित्वा लघून् सम्पादयन्ति। अतस्ते वायुना सहोपरि गच्छन्ति। किन्तु स सूर्य्यलोकः सर्वेभ्यो लोकेभ्यो महत्तमोऽस्तीति

'वयमाकाशात् पृथिव्या उपिर वा महदाकाशात्महारार्थिएन्द्रे प्रार्थयामहे' इति मोक्षमूलरव्याख्याऽशुद्धास्ति। कुतोऽत्र परिमाणे सर्वेभ्यो महत्त्रमस्य सूर्व्यलाकस्यैवाभिधानेनेन्द्रमीमहे विजानीम इत्युक्तप्रामाण्यात्॥१०॥

इन्द्रमरुद्भ्यो यथा पुरुषार्थसिद्धिः कार्य्या, ते जगति कथं वर्त्तर्ते कथं च तैरुपकारसिद्धिर्भवेदिति पञ्चमसुक्तेन सह षष्ठस्य सङ्गतिरस्तीति बोध्यम्।

अस्यापि सूक्तस्य मन्त्रार्थाः साधणाचार्य्यादिभर्यूरोपाख्यदेशनिवासिभिर्विलसनाख्य-मोक्षमूलरादिभिश्चान्यथैव वर्णिता इति वेदितव्यम्।।

इति षष्ठं सुक्तं द्वादशृष्ट्य वर्गः समापाः॥

पदार्थ:-हम लोग (इत:) इस (पार्थिवात) गृथिवी के संयोग (वा) और (दिव:) इस अग्नि के प्रकाश (वा) लोकलोकान्तरों अर्थात् कर्द्ध और नक्षत्रादि लोकों से भी (सातिम्) अच्छी प्रकार पदार्थों के विभाग करते हुए (वा) अथवा (रजस:) पृथिवी आदि लोकों से (मह:) अति विस्तारयुक्त (इन्द्रम्) सूर्य्य को (ईमहे) जानते हैं॥ १०॥

भावार्थ:-सूर्य्य की किरण पृथिवों में स्थित हुए जलादि पदार्थों को भिन्न-भिन्न करके बहुत छोटे-छोटे कर देती हैं, इसी से वै पदार्थ पवन के साथ ऊपर को चढ़ जाते हैं, क्योंकि वह सूर्य्य सब लोकों से बड़ा है।

'हम लोग आकाश पृथिवी तथा बड़े आकाश से सहाय के लिये इन्द्र की प्रार्थना करते हैं, यह भी डाक्टर मोक्सपूलर पाहब की व्याख्या अशुद्ध है, क्योंकि सूर्य्यलोक सब से बड़ा है, और उसका आना-जान अपने स्थान को छोड़ के नहीं होता, ऐसा हम लोग जानते हैं॥१०॥

सूर्य्य और पवन से जैसे पुरुषार्थ की सिद्धि करनी चाहिये तथा वे लोक जगत् में किस प्रकार से वर्त्तते रहते हैं और कैसे उनसे उपकार सिद्धि होती है, इन प्रयोजनों से पांचवें सूक्त के अर्थ के साथ छठे सूक्तार्थ की सङ्गित जाननी चाहिये।

और सायणाचार्य्य आदि तथा यूरोपदेशवासी अङ्गरेज विलसन आदि लोगों ने भी इस सूक्त के मन्त्रों के अर्थ बुरी चाल से वर्णन किये हैं।

यह छठा सूक्त और बाहरहवाँ वर्ग समाप्त हुआ॥

अथ दशर्चस्य सप्तमस्य सूक्तस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। इन्द्रो देवता। १,३, ५-७ गायत्री। २,४ निचृद्गायत्री। ८,१० पिपीलिकामध्यानिचृद्गायत्री। ९ पादिनचृद्गायत्री च छन्दः। षड्जः स्वरः॥ अथेन्द्रशब्देनार्थत्रयम्पदिश्यते।

अब सातवें सूक्त का आरम्भ है। इस में प्रथम मन्त्र में करके इन्द्र शब्द से तीन अर्थों कर्त्र प्रकाश

किया है-

इन्द्रमिद् गाथिनो बृहदिन्द्रमुर्केभिर्किणः।

इन्द्रं वाणीरनूषत॥ १॥

इन्द्रम्। इत्। गाथिनः। बृहत्। इन्द्रम्। अर्केभिः। अर्किणः। इन्द्रम्। वार्णाः। <u>अनुष्</u>कु। १॥

पदार्थ:-(इन्द्रम्) परमेश्वरम् (इत्) एव (गाथिन:) गानकर्तार्थः (वृहत्) महान्तम्। अत्र सुपां सुलुगित्यमो लुक्। (इन्द्रम्) सूर्य्यम्। (अर्केभिः) अर्चनसाधकैः सत्यभाषेणादिभिः शिल्पविद्यासाधकैः कर्मिभिर्मन्त्रैश्च। अर्क इति पदनामसु पठितम्। (निघं०४.२) अपनि प्राप्तिसाधनानि गृह्यन्ते। अर्को मन्त्रो भवित यदेनानार्चन्ति। (निरु०५.४) अत्र बहुलं छन्दसीति भिस ऐसादेशाभावः। (अर्किणः) विद्वांसः (इन्द्रम्) महाबलवन्तं वायुम् (वाणीः) वेदचतुष्टयीः (अतुषत् स्तृष्टीन्तु। अत्र लोडर्थे लुङ्। संज्ञापूर्वको विधिरनित्य इति गुणादेशाभावः॥१॥

अन्वय:-ये गाथिनोऽर्किणो विद्वांसस्ते अकैभिर्बृहत् महान्तमिन्द्रं परमेश्वरमिन्द्रं सूर्य्यमिन्द्रं वायुं वाणीश्चेदेवानूषत यथावतस्तुवन्तु॥१॥

भावार्थ:-ईश्वर उपदिशति-मनुष्येर्वेदमन्त्राणों विचारेणेश्वरसूर्य्यवाय्वादिपदार्थगुणान् सम्यग्विदित्वा सर्वसुखाय प्रयत्नत उपकारो नित्यं ग्राह्म इति। १॥)

पदार्थ:-जो (गाथिन:) गृप्त करनेवाल और (अर्किण:) विचारशील विद्वान् हैं, वे (अर्किभि:) सत्कार करने के पदार्थ सत्यभाषण शिल्पिबद्या से सिद्ध किये हुए कर्म मन्त्र और विचार से (वाणी:) चारों वेद की वाणियों को प्राप्त होने के लिसे (बृहत्) सब से बड़े (इन्द्रम्) परमेश्वर (इन्द्रम्) सूर्य्य और (इन्द्रम्) वायु के गुणों के जिन्ने से (अनूपत) यथावत् स्तुति करें॥१॥

भावार्थ:-ईश्वर उपदेश करता है कि मनुष्यों को वेदमन्त्रों के विचार से परमेश्वर सूर्य्य और वायु आदि पदार्थों के ग्रूणों को अच्छी प्रकार जानकर सब के सुख के लिये उनसे प्रयत्न के साथ उपकार लेना चाहिये॥१॥

उक्तेषु त्रिषु प्रथमतो वायुसूर्य्यावुपदिश्येते।

र्क्व मन्त्र में इन्द्र शब्द से कहे हुए तीन अर्थों में से वायु और सूर्य्य का प्रकाश अगले मन्त्र में

किया है-

इद्ध इद्धर्य्योः सचा सम्मिश्ल आ वेचोयुर्जा।

८४

इन्द्री वुज्री हिर्ण्ययः॥२॥

इन्द्रे:। इत्। हर्य्योः। सर्चा। संऽमिश्लः। आ। वृद्यःऽयुजा। इन्द्रेः। वृज्री। हिरुण्यर्यः॥२॥

पदार्थः-(इन्द्रः) वायुः (इत्) एव (हर्च्योः) हरणाहरणगुणयोः (सचा) समवेतयोः (संगिर्द्रः) पदार्थेषु सम्यक् मिश्रो मिलितः सन्। संज्ञाछन्दसोर्वा किपलकादीनामिति वक्तव्यम्। (अष्ठा०८.२.१८) अनेन वार्तिकेन रेफस्य लत्वादेशः। (आ) समन्तात् (वचोयुजा) वाणीर्योजयितोः। अत्र सुणा सुलुगिति षष्ठीद्विवचनस्याकारादेशः। (इन्द्रः) सूर्य्यः (वज्री) वज्रः सम्वत्सरस्तापो वास्यास्तीति सः। संवत्सरो हि वज्रः। (श०न्ना०३.३.५.१५) (हरण्ययः) ज्योतिर्मयः। ऋत्व्यवास्त्व्य० (अष्टा०६ ४.१७५) अनेन हिरण्यमयशब्दस्य मलोपो निपात्यते। ज्योतिर्हि हरण्यम्। (श०न्ना०४.३.१ (११)। २॥

अन्वय:-यथाऽयं संमिश्ल इन्द्रो वायु: सचा सचयोर्षच्येयुजा वच्येसि योजयतोर्हर्य्योर्यो गमनागमनानि युनिक्त तथा इत् एव वज्री हिरण्यय इन्द्र: सूर्य्यलोकश्चा २०००

भावार्थ:-अत्र लुप्तोपमालङ्कार:। यथा वायुयोगेनैव विचनश्रवेषम्यवहारसर्वपदार्थगमनागमन-धारणस्पर्शा: सम्भवन्ति तथैव सूर्य्ययोगेन पदार्थप्रकाशनछेदने च भ्यंपिश्लः' इत्यत्र सायणाचार्य्येण लत्वं छान्दसमिति वार्तिकमविदित्वा व्याख्यातम्, तदशुद्धम् प्रा

पदार्थ:-जिस प्रकार यह (संमिश्ल:) पदार्थों में मिलने तथा (इन्द्र:) ऐश्वर्य्य का हेतु स्पर्शगुणवाला वायु, अपने (सचा) सब में मिलनेवाल और (क्रचीयुजा) वाणी के व्यवहार को वर्तानेवाल (हर्य्यो:) हरने और प्राप्त करनेवाले गुणों को (आ) स्कू पदार्थों में युक्त करता है, वैसे ही (वज्री) संवत्सर वा तापवाला (हरण्यय:) प्रकाशस्वरूप (इन्द्र:) सूर्य्य भी अपने हरण और आहरण गुणों को सब पदार्थों में युक्त करता है॥२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है। जैसे वायु के संयोग से वचन, श्रवण आदि व्यवहार तथा सब पदार्थों के गमन, आर्म्पन, धारण और स्पर्श होते हैं, वैसे ही सूर्य्य के योग से पदार्थों के प्रकाश और छेदन भी होते हैं। संमिश्त:' इस शब्द में सायणाचार्य्य ने लकार का होना छान्दस माना है, सो उनकी भूल है, क्य्नेंकि 'संज्ञाद्धन्द ' इस वार्तिक से लकारादेश सिद्ध ही है॥२॥

अथ केन किमर्थ: सूर्य्यलोको रचित इत्युपदिश्यते।

इसके अनुन्तर किसूने किसलिये सूर्य्यलोक बनाया है, सो अगले मन्त्र में प्रकाश किया है-

इन्द्री दीघी चक्षम् आ सूर्यां रोहयद्विव।

र्वि गोधिरद्रिमेरयत्॥ ३॥

इन्ह्रं:। दीर्घाय। चक्षंसे। आ। सूर्य्यम्। ग्रेह्यत्। द्विव। वि। गोर्भि:। अर्द्रिम्। ऐर्युत्॥३॥

अष्टक-१। अध्याय-१। वर्ग-१३-१४

मण्डल-१। अनुवाक-२। सूक्त-७

पदार्थ:-(इन्द्र:) सर्वजगत्स्रष्टेश्वरः (दीर्घाय) महते निरन्तराय (चक्षसे) दर्शनाय (आ) क्रियार्थे (सूर्य्यम्) प्रत्यक्षं सूर्य्यलोकम् (रोहयत्) उपिर स्थापितवान् (दिवि) प्रकाशनिमित्ते (वि) विविधार्थे (गोभि:) रिश्मिभि:। गाव इति रिश्मिनामसु पठितम्। (निघं०१.५) (अद्रिम्) मेघम्। अद्विरिति मेधनामसु पठितम्। (निघं०१.५०) (ऐरयत्) वीरयत् वीरयत्यूर्ध्वमधो गमयति। अत्र लड्थे लुङ्ग्रिशा

अन्वय:-इन्द्रः सृष्टिकर्त्ता जगदीश्वरो दीर्घाय चक्षसे यं सूर्य्यलोकं दिव्यारोह्ध्यत् सोऽयं शोभिरद्रि व्यैरयत् वीरयति॥३॥

भावार्थ:-सृष्टिमिच्छतेश्वरेण सर्वेषां लोकानां मध्ये दर्शनधारणाकर्षणप्रकाशप्रयोजनाय प्रकाशरूप: सूर्य्यलोक: स्थापित:, एवमेवायं प्रतिब्रह्माण्डं नियमो वेदितव्य:। ए प्रतिक्षणे जलमूर्ध्वमाकृष्य वायुद्वारोपिर स्थापियत्वा पुन: पुनरध: प्रापयतीदमेव वृष्टेर्निमित्तमिति।

पदार्थ:-(इन्द्र:) जो सब संसार का बनानेवाला परमेश्वर है, उसने (दीर्घाय) निरन्तर अच्छी प्रकार (चक्षसे) दर्शन के लिये (दिवि) सब पदार्थों के प्रकार होने के निमत्त जिस (सूर्य्यम्) प्रसिद्ध सूर्य्यलोक को (आरोहयत्) लोकों के बीच में स्थापित किन्ति के लिये अपर चढ़ाकर वारंवार वर्षाता है॥३॥ (अद्रिम्) मेघ को (व्यैरयत्) अनेक प्रकार से वर्षा होने के लिये अपर चढ़ाकर वारंवार वर्षाता है॥३॥

भावार्थ:-रचने की इच्छा करनेवाले ईश्वर में सब लोकों में दर्शन, धारण और आकर्षण आदि प्रयोजनों के लिये प्रकाशरूप सूर्य्यलोक को सब लोकों के बीच में स्थापित किया है, इसी प्रकार यह हर एक ब्रह्माण्ड का नियम है कि वह क्षण-क्षण में जल को ऊपर खींच करके पवन के द्वारा ऊपर स्थापन करके वार-वार संसार में वर्षाता है, इसी से कह कर्षण का कारण है॥३॥

इन्द्रशब्देन व्यावहारिकमर्थमुक्त्वाऽथेश्वरार्थमुपदिश्यते।

इन्द्र शब्द से व्यवहार को दिखलाको अब प्रार्थनारूप से अगले मन्त्र में परमेश्वरार्थ का प्रकाश किया है-

इन्द्र वाजेषु नोऽव सहस्रप्रधनेषु चा

उत्र उत्राभिंकृतिर्भि ॥ ४॥

इन्द्रं। वार्जेष्ठु। नु:। अवा सहस्रंऽप्रधनेषु। चु। उुग्रः। उुग्राभि:। ऊतिर्भि:॥४॥

पदार्थः (इन्हें) परमेश्वर्यप्रदेश्वर! (वाजेषु) संग्रामेषु। वाज इति संग्रामनामसु पठितम्। (निघं०२.१७) (नः) अस्मान् (अव) रक्ष (सहस्रप्रधनेषु) सहस्राण्यसंख्यातानि प्रकृष्टानि धनानि प्राप्नुवित्ति येषु तेषु चेक्रवर्त्तिराज्यसाधकेषु महायुद्धेषु। सहस्रमिति बहुनामसु पठितम्। (निघं०३.१) (च) आवृत्थर्थे (उगः) सर्वोत्कृष्टः। ऋग्रेन्द्राग्र० (उणा०२.२९) निपातनम्। (उग्राभिः) अत्यन्तोत्कृष्टाभिः (अतिभिः) रक्षाप्राप्तिविज्ञानसुखप्रवेशनैः॥४॥

अन्वयः-हे जगदीश्वर! उग्रो भवान् सहस्रप्रधनेषु वाजेषूग्राभिरूतिभिर्नो रक्ष सततं विजयं च प्रापय॥४॥

भावार्थ:-परमेश्वरो धार्मिकेषु योद्धृषु कृपां धत्ते नेतरेषु। ये मनुष्या जितेन्द्रिस विद्वास) पक्षपातरिहताः शरीरात्मबलोत्कृष्टा अनलसाः सन्तो धर्मेण महायुद्धानि विजित्य राज्यं नित्र स्थिनित त एव महाभाग्यशालिनो भूत्वा सुखिनो भवन्ति॥४॥

पदार्थ: - हे जगदीश्वर! (इन्द्र) परमैश्वर्य देने तथा (उग्र:) सब प्रकार से अनुस्त पराक्रमवीन आप (सहस्रप्रधनेषु) असंख्यात धन को देनेवाले चक्रवर्ति राज्य को सिद्ध करनेवाले (वाजपु) महायुद्धों में (उग्राभि:) अत्यन्त सुख देनेवाली (ऊतिभि:) उत्तम-उत्तम पदार्थों की प्राप्ति तथा पदार्थों के विज्ञान और आनन्द में प्रवेश कराने से हम लोगों की (अव) रक्षा कीजिये॥४॥

भावार्थ:-परमेश्वर का यह स्वभाव है कि युद्ध करनेवाले धर्मात्मा पुरुषों पर अपनी कृपा करता है और आलिसयों पर नहीं। इसी से जो मनुष्य जितेन्द्रिय विद्वान् पक्षपात को छोड़नेवाले शरीर और आत्मा के बल से अत्यन्त पुरुषार्थी तथा आलस्य को छोड़े हुए धर्म से बेड़-बड़े युद्धों को जीत के प्रजा को निरन्तर पालन करते हैं, वे ही महाभाग्य को प्राप्त होके सुखों रहने हैं॥४॥

पुनरीश्वरसूर्य्यवायुगुणा उपदिश्यती।

फिर भी उक्त अर्थ और सूर्य्य तथा वायु के गुणों को प्रकाश अगले मन्त्र में किया है-

इन्द्रं वयं महाधुन इन्द्रमभे हवामहे।

युजं वृत्रेषु वृज्रिणम्।।५॥१३॥

इन्द्रम्। व्यम्। महाध्ने। इन्द्रम्। अभी ह्वामहो। युर्जम्। वृत्रेषुं। वृत्रिणम्।॥५॥

पदार्थ:-(इन्द्रम्) सर्वज्ञं सर्वशिक्तमन्तमीश्वरम् (वयम्) मनुष्याः (महाधने) महान्ति धनानि यस्मात्तस्मिन्संग्रामे। महाधन इति संग्रामनामसु पठितम्। (निघं०२.१७) (इन्द्रम्) सूर्य्यं वायुं वा (अर्भे) स्वल्पे युद्धे (हवामहे) अन्त्रसारप्राम्। स्पधीमहे वा। ह्वेज्धातोरिदं लेटो रूपम्। बहुलं छन्दिस। (अष्टा०६.१.३४) अनेन सम्प्रसारप्राम्। (युजम्) युनक्तीति युक् तम् (वृत्रेषु) मेघावयवेषु। वृत्र इति मेघनामसु पठितम्। (निष्०१.१०) (विज्ञणम्) किरणवन्तं जलवन्तं वा। वज्रो वै भानः। (श०ज्ञा०८.२.४.१०) अनेन प्रकाशरूपाः किरणा गृह्यन्ते। वज्रो वा आपः। (श०ज्ञा०७.४.२.४१)॥५॥

अन्वर्यः वये महाधने इन्द्रं परमेश्वरं हवामहे अर्भेऽल्पे चाप्येवं विज्ञणं वृत्रेषु युजिमन्द्रं सूर्य्यं वायुं च हवामहे स्पर्धामहे ॥५॥

भावार्थ:-अत्र श्लेषालङ्कार:। यद्यन्महदल्पं वा युद्धं प्रवर्त्तते तत्र तत्र सर्वत: स्थितं परमेश्वरं रक्षकं मत्त्र दुष्टेः सह धर्मेणोत्साहेन च युद्ध आचरिते सति मनुष्याणां ध्रुवो विजयो जायते, तथा अष्टक-१। अध्याय-१। वर्ग-१३-१४

मण्डल-१। अनुवाक-२। सूक्त-७

सूर्य्यवायुनिमित्तेनापि खल्वेतित्सिद्धिर्जायते। यथेश्वरेणौताभ्यां निमित्तीकृताभ्यां वृष्टिद्वारा संसारस्य महत्सुखं साध्यत एवं मनुष्यैरेतन्निमित्तैरेव कार्य्यसिद्धिः सम्पादनीयेति॥५॥

इति त्रयोदशो वर्गः॥

पदार्थ:-हम लोग (महाधने) बड़े-बड़े भारी संग्रामों में (इन्द्रम्) परमेश्वर का (हवामहे) अधिक स्मरण करते रहते हैं और (अर्भे) छोटे-छोटे संग्रामों में भी इसी प्रकार (विज्ञणम्) किरणवाल (इन्द्रम्) सूर्य्य वा जलवाले वायु का जो कि (वृत्रेषु) मेघ के अङ्गों में (युजम्) युक्त होर्नेकाले इस के प्रकाश और सब में गमनागमनादि गुणों के समान विद्या, न्याय, प्रकाश और दूतों के द्वारा सब राज्य का वर्त्तमान विदित करना आदि गुणों का धारण सब दिन करते रहें॥५॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जो बड़े-बड़े भारी और छोटे-छोटे संग्रामों में ईश्वर को सर्वव्यापक और रक्षा करनेवाला मान के धर्म और उत्साह के साथ दुष्टों से युद्ध करें तो मनुष्य का अचल विजय होता है। तथा जैसे ईश्वर भी सूर्य्य और पवन के निमित्त से वर्षा आदि के द्वारा संसार का अत्यन्त सुख सिद्ध किया करता है, वैसे मनुष्य लोगों को भी पद्मार्थों को निमित्त करके कार्य्यसिद्धि करनी चाहिये॥५॥

यह तेरहवां वर्ग समाप्त हुआ।।

मनुष्यै: सः ईश्वरः किमर्थः प्रार्थनीयः सूर्च्यप्रच किनिमित्त इत्युपिदश्यते। मनुष्यों को परमेश्वर की प्रार्थना किस प्रयोजन के लिये करनी चाहिये, वा सूर्य्य किसका निमित्त है, इस विषयाको अमुले मन्त्र में कहा है-

स नो वृषन्त्रमुं चुरुं सत्रादाद्वान्त्रपावृधिन

अस्मभ्यमप्रतिष्कुत:॥ ध्रा

सः। नुः। वृषुन्। अमुमूर्भे चुरुम्। सत्रांऽद्रोवन्। अर्प। वृध्वि। अस्मभ्यंम्। अप्रतिऽष्कुतः॥६॥

पदार्थ:-(स:) ईश्वरः सूर्यों वा (न:) अस्माकम् (वृषन्) वर्षति सुखानि तत्सम्बुद्धौ, वर्षयति जलं वा स वा। किन्युवृष्टि (उणा०१.१५४) अनेन 'वृष' धातोः किनन्प्रत्ययः। (अमुम्) मोक्षद्वारमागाम्यानन्दं चान्तरिक्षस्थम् (चरुम्) ज्ञानलाभं मेघं वा। चरुरिति मेघनामसु पठितम्। (निघं०१.१०) (सन्नाद्वातीति सत्यामसु पठितम्। (निघं०१.१०) अत्र आतो मिनन्क्विनिष्विनिपश्च। (अष्टा०३.२०) अनेन विनिप्प्रत्ययः। (अप्रो निवारणे। निपातस्य च। (अष्टा०६.३.१३६) इति दीर्घः। (वृष्टि) उद्घाटयोद्घाटयित वा। 'वृज् धातोः प्रयोगः। बहुलं छन्दिस (अष्टा०२.४.७३) अनेन श्नोर्लुक्। श्रुशृणुपृकृवृभ्यश्छन्दिस (अष्टा०६.४.९२) अनेन हेर्धः। (असमभ्यम्) त्वदाज्ञायां पुरुषार्थे च वर्त्तमानेभ्यः (अप्रतिष्कृतः)

असञ्चलितोऽविस्मृतो वा। यास्काचार्य्योऽस्यार्थमेवमाह-**अप्रतिष्कुतोऽप्रतिस्कृतोऽप्रतिस्खलितो वेति।** (निरु०६.१६)॥६॥

अन्वयः-हे वृषन् सत्रादावन् परमेश्वर! स त्वमस्मभ्यमप्रतिष्कुतः सत्रोऽस्माक्रमा वर्षे मोक्षद्वारमपावृधि उद्घाटय इत्याद्यः। तथा भवद्रचितोऽयं सत्रादावा वृषाऽप्रतिष्कुतः सूर्य्योऽसम्भयमम् यरु मेघमपावृणोत्युद्- घाटयतीत्यपरः॥६॥

भावार्थ:-यो मनुष्यो दृढतया सत्यं विद्यां चेश्वराज्ञामुपतिष्ठति तस्यात्मन्यन्तयां भीश्वरोऽविद्याप्थकारं नाशयति। यतो नैव स पुरुषार्थाद्धर्माच्च कदाचिद्विचलित॥६॥

पदार्थ:-हे (वृषन्) सुखों के वर्षाने और (सत्रादावन्) सत्यज्ञान की देनेवाले (सः) परमेश्वर! आप (अस्मभ्यम्) जो कि हम लोग आपकी आज्ञा वा अपने पुरुष्प्रथ में वर्जमान हैं, उनके लिये (अप्रतिष्कुतः) निश्चय करानेहारे (नः) हमारे (अमुम्) उस आनष्द करनेह्नारे प्रत्यक्ष मोक्ष का द्वार (चरुम्) ज्ञानलाभ को (अपावृधि) खोल दीजिये।

तथा हे परमेश्वर! जो यह आपका बनाया हुआ (वृष्क्) जल को वर्षाने और (सत्रादावन्) उत्तम-उत्तम पदार्थों को प्राप्त करनेवाला (अप्रतिष्कुतः) अन्ते कक्षा ही में स्थिर रहता हुआ सूर्य्य (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिये (अमुम्) आकाश में स्हनेवाले इस (चरुम्) मेघ को (अपावृधि) भूमि में गिरा देता है॥६॥

भावार्थ:-जो मनुष्य अपनी दृढ़ता से स्वस्थिविद्या का अनुष्ठान और नियम से ईश्वर की आज्ञा का पालन करता है, उसके आत्मा में से अविद्यारूपी अन्ध्रकार का नाश अन्तर्य्यामी परमेश्वर कर देता है, जिससे वह पुरुष धर्म और पुरुषार्थ को कभी निहीं छीड़ता॥६॥

पुरुरिन्द्रशब्देनश्चर उपदिश्यते।

फिर भी अगूर्व मन्त्र में इन्द्र शब्द से परमेश्वर का प्रकाश किया है-

तुञ्जेतुञ्जे य उत्तरे स्तिम् इन्द्रस्य वृज्रिणीः।

न विस्थे अस्य सुष्ठुतिस्॥ 🕬।

22

तुञ्जेऽतुञ्जे। ये। उत्र्रितेरो/स्तोमाः। इन्द्रस्य। वृज्जिणः। न। विस्रे। अस्य। सुऽस्तुतिम्॥७॥

पदार्थ: तुंजेतुंजे) दातव्ये दातव्ये (ये) (उत्तरे) सिद्धान्तसिद्धाः (स्तोमाः) स्तुतिसमूहाः (इन्द्रस्य) सर्वृद्धः खित्राशकस्य (विज्ञणः) वज्रोऽनन्तं प्रशस्तं वीर्य्यमस्यास्तीति तस्य। अत्र भूमार्थे प्रशंसार्थे व्य पतुष् वोर्यं वे वज्रः। (श०ब्रा०७.४.२.२४) (न) निषेधार्थे (विन्धे) विन्दामि। अत्र वर्णव्यत्यस्त दकारस्य धकारः। (अस्य) परमेश्वरस्य (सुष्टुतिम्) शोभनां स्तुतिम्। यास्कमुनिरिमं मन्त्रमेव व्याख्यात्वाम् तुज्ञस्तुज्ञतेर्दानकर्मणः। दाने दाने य उत्तरे स्तोमा इन्द्रस्य विज्ञणो नास्य तैर्विन्दामि समितिः। (निरु०६.१८)॥७॥

अष्टक-१। अध्याय-१। वर्ग-१३-१४

मण्डल-१। अनुवाक-२। सूक्त-७

अन्वय:-नाहं ये तुञ्जेतुञ्जे उत्तरे स्तोमा: सन्ति तैर्विज्ञिण इन्द्रस्य परमेश्वरस्य सुष्टुतिं विन्धे विन्दामि॥७॥

भावार्थ:-ईश्वरेणास्मिन् जगित जीवानां सुखायैतेषु पदार्थेषु स्वशक्तेर्यावन्तो दृष्टान्ता यादृशं रमनं यादृशा गुणा उपकारार्थं रिक्षता वर्त्तन्ते तावतः सम्पूर्णान् वेत्तुं नाहं समर्थोऽस्मि। नैव किश्चिष्टीश्वरगुणानां समाप्तिं वेत्तुमर्हति। कुतः, तस्यैतषामनन्तत्वात्। परन्तु मनुष्यैरेतेभ्यः पदार्थेभ्यो यावानुपकार ग्रहीतुं शक्योऽस्ति तावान्प्रयत्नेन ग्राह्य इति॥७॥

पदार्थ:-(न) नहीं मैं (ये) जो (विज्ञण:) अनन्त पराक्रमवान् (इन्ह्रस्य) सब दु:खों के विनाश करनेहारे (अस्य) इस परमेश्वर के (तुन्नेतुन्ने) पदार्थ-पदार्थ के देने में (उत्तरे) सिद्धान्त से निश्चित किये हुए (स्तोमा:) स्तुतियों के समूह हैं, उनसे भी (अस्य) परमेश्वर की (सुष्टुतिम) स्नेभायमान स्तुति का पार मैं जीव (न) नहीं (विन्धे) पा सकता हूं॥७॥

भावार्थ:-ईश्वर ने इस संसार में प्राणियों के सुख के लिये इन पद्भार्थों में अपनी शक्ति से जितने दृष्टान्त वा उनमें जिस प्रकार की रचना और अलग-अलग उनके गुण्र तथा उनसे उपकार लेने के लिये रक्खे हैं, उन सबके जानने को मैं अल्पबृद्धि पुरुष होने से समर्थ कभी नहीं हो सकता और न कोई मनुष्य ईश्वर के गुणों की समाप्ति जानने को समर्थ है, क्योंकि जगदीश्वर अनन्त गुण और अनन्त सामर्थ्यवाला है, परन्तु मनुष्य उन पदार्थों से जितना उपकार लेने को समर्थ हों, उतना सब प्रकार से लेना चाहिये॥७॥

ईश्वरो मनुष्याम् कथं प्राप्नोतीत्युपदिश्यते।

परमेश्वर मनुष्यों को कैसे प्राप्त होता है, सो अर्थ अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है-

वृषां यूथेव वंसंगः कृष्ट्रीस्यूर्त्योगसा।

ईशानो अप्रतिष्कुतः गर्भः

वृषां। यूथाऽईव। वंस्पाः। कृष्टीः। इयर्ति। ओर्जसा। ईशानः। अप्रतिष्कुतः॥८॥

पदार्थ:-(वृषा) शुभ्गुणुक्षणकर्ता (यूथेव) गोसमूहान् वृषभ इव। तिथ्यपृष्ठ० (उणा०२.१२) (वंसगः) वंसं धर्मसेविनं संविभक्तपदार्थान् गच्छतीति। (कृष्टीः) मनुष्यानाकर्षणादिव्यवहारान्वा (इयर्ति) प्राप्नोति (ओज्रासा) बलेन (ईशानः) ऐश्वर्यवान् ऐश्वर्यहेतुः सृष्टेः कर्त्ता प्रकाशको वा (अप्रतिष्कुतः) सत्यभावनिष्ठचयाश्वां याचितोऽनुग्रहीतां स्वकक्षां विहायेतस्ततो ह्यचिलतो वा॥८॥

अन्वय:-चंसगो वृषा यूथानीवाप्रतिष्कुत ईशानो वृषेश्वर: सूर्य्यश्चौजसा बलेन कृष्टीर्धर्मात्मनो मनुष्ट्रान् अकूर्षणादिव्यवहारान् वेयर्ति प्राप्नोति॥८॥

भावार्थः-अत्र श्लेषालङ्कारः। मनुष्या एवेश्वरं प्राप्तुं समर्थास्तेषां ज्ञानोत्रतिकरणस्वभाववत्त्वित्। धर्मात्मनो मनुष्यानेव प्राप्तुमीश्वरस्य स्वभाववत्त्वाद्यथैतं प्राप्नुवन्ति तथेश्वरेण नियोजितत्वादयं सूर्य्योऽपि स्वसंनिहितान् लोकानाकर्षितुं समर्थोऽस्तीति॥८॥

पदार्थ:-जैसे (वृषा) वीर्य्यदाता रक्षा करनेहारा (वंसग:) यथायोग्य गाय के विभागों की सेवन करनेहारा बैल (ओजसा) अपने बल से (यूथेव) गाय के समूहों को प्राप्त होता है, विसे ही (वंसग:) धर्म के सेवन करनेवाले पुरुष को प्राप्त होने और (वृषा) शुभगुणों की वर्षा करनेवाला (इंशान:) ऐश्वर्यवान् जगत् का रचनेवाला परमेश्वर अपने (ओजसा) बल से (कृष्टी:) धर्मात्मा मनुष्यों को तथा (वंसग:) अलग-अलग पदार्थों को पहुंचाने और (वृषा) जल वर्षानेवाला सूर्य्य (ओजसा) अपने बल से (कृष्टी:) आकर्षण आदि व्यवहारों को (इयर्ति) प्राप्त होता है॥८॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमा और श्लेषालङ्कार है। मनुष्य ही परमेश्वर की प्राप्त हो सकते हैं, क्योंकि वे ज्ञान की वृद्धि करने के स्वभाव वाले होते हैं। और धर्मात्मी ज्ञानवाल मनुष्यों का परमेश्वर को प्राप्त होने का स्वभाव है। तथा जो ईश्वर ने रचकर कक्षा में स्थापन किया हुआ सूर्य्य है, वह अपने सामने अर्थात् समीप के लोकों को चुम्बक पत्थर और लोहें के स्पान श्वींचने को समर्थ रहता है॥८॥

ईश्वर एव सर्वथा सहायकार्स्यस्तीत्युपदिश्यते

सब प्रकार से सब का सहायकारी परमेश्वर ही है (इस बिष्य को अगले मन्त्र में प्रकाश किया है-

य एकश्चर्षणोनां वसूनामिर्ज्यति।

इन्द्रः पञ्चं क्षितोनाम्॥९॥

यः। एकः। चुर्षुणीनाम्। वसूनाम्। इर्ज्यति) इन्द्रः। पञ्च। क्षितीनाम्॥९॥

पदार्थ:-(य:) परमेश्वरः (एक:) अद्वितीयः (चर्षणीनाम्) मनुष्याणाम्। चर्षणय इति मनुष्यनामसु पठितम्। (निघं०२:३) (वसूनाम्) अग्न्याद्यष्टानां वासहेतूनां लोकानाम् (इरज्यित) ऐश्वर्यं दातुं सेवितुं च योग्योऽस्ति इरज्यतीत्यैश्वर्यंकर्मसु पठितम्। (निघं०२.२१) परिचरणकर्मसु च। (निघं०३.५) (इन्द्रः) दुष्टानां अञ्चणो विनाशकः (पञ्च) निकृष्टमध्यमोत्तमोत्तमतरोत्तमतमानां पञ्चविधानाम् (श्वितीनाम्) पृथिवीलोकानां मध्ये। श्वितिरिति पृथिवीनामसु पठितम्। (निघं०१.१)॥९॥

अन्वय:-यू इन्द्रश्चर्ष्णीनां वसूनां पञ्चानां क्षितीनामिरज्यति स एकोऽस्ति॥९॥

भावार्षः यः सर्वोधिष्ठाता सर्वान्तर्यामी व्यापकः सर्वेश्वर्यप्रदोऽद्वितीयोऽसहायो जगदीश्वरः सर्वजगतो स्वको धारक आकर्षणकर्त्तास्ति, स एव सर्वेमंनुष्यैरिष्टत्वेन सेवनीयोऽस्ति। यः किश्चत्तं विहायास्यभीश्वरभावेनेष्टं मन्यते स भाग्यहीनः सदा दुःखमेव प्राप्नोति॥९॥

पदार्थ:-(य:) जो (इन्द्र:) दुष्ट शत्रुओं का विनाश करनेवाला परमेश्वर (चर्षणीनाम्) मनुष्य वसूनाम्) अग्नि आदि आठ निवास के स्थान, और (पञ्च) जो नीच, मध्यम, उत्तम, उत्तमतर और अष्टक-१। अध्याय-१। वर्ग-१३-१४

मण्डल-१। अनुवाक-२। सूक्त-७

उत्तमतम गुणवाले पांच प्रकार के (क्षितीनाम्) पृथिवी लोक हैं, उन्हीं के बीच (इरज्यित) ऐश्वर्य के देने और सब के सेवा करने योग्य परमेश्वर है, वह (एक:) अद्वितीय और सब का सहाय करनेवाली हैं। ९००

भावार्थ:-जो सब का स्वामी अन्तर्यामी व्यापक और सब ऐश्वर्य का देनेवाला जिसमें कीई दूसरा ईश्वर और जिसको किसी दूसरे की सहाय की इच्छा नहीं हैं, वही सब मनुष्ट्रों को दूष्ट बुद्धि से सेवा करने योग्य है। जो मनुष्य उस परमेश्वर को छोड़ के दूसरे को इष्ट देव मार्ज्ञता है, वह भाग्यहीन बड़े-बड़े घोर दु:खों को सदा प्राप्त होता है॥९॥

अयमेव सर्वोपरि वर्त्तत इत्युपदिश्यते।

उक्त परमेश्वर सर्वोपरि विराजमान है, इस विषय का प्रकाश् अगुले महा में किया है-

इन्द्रं वो विश्वतस्परि हर्वामहे जनेभ्यः।

अस्मार्कमस्तु केवेल:॥१०॥१४॥

इन्ह्रम्। वु:। विश्वतः। परि। हवामहे। जनेभ्यः। अस्मार्कम्। अस्तु। केर्वलः॥ १०॥

पदार्थ:-(इन्द्रम्) पृथिव्यां राज्यप्रदम् (वः) युष्मिक्तम् (विधेतः) सर्वेभ्यः (परि) सर्वतोभावे। परीति सर्वतोभावं प्राह। (निरु०१.३) (हवामहे) स्तुवीमः (जनेभ्यः) प्रादुर्भूतेभ्यः (अस्माकम्) मनुष्याणाम् (अस्तु) भवतु (केवलः) एकश्चेतनमृत्रस्वरूपं पूर्वेष्टदेवः॥१०॥

अन्वय:-हे मनुष्या! यं वयं विश्वतो विनिष्यः सर्त्नुगुणैरुत्कृष्टमिन्द्रं परमेश्वरं परि हवामहे, स एव वो युष्पाकमस्माकं च केवलः पूज्य इष्टोऽस्त्रा१०॥

भावार्थ:-ईश्वरोऽस्मिन्मन्त्रे सर्वजनिहित्तायोग्रिदेशति-हे मनुष्या! युष्माभिनैंव कदाचिन्मां विहायान्य उपास्यदेवो मन्तव्यः। कुतः, नैव मत्तोऽन्यः कश्चिदीश्वरो वर्त्तते। एवं सित यः कश्चिदीश्वरत्वेऽनेकत्वमाश्रयित समूह एवं मन्तव्य इति॥१०॥

अत्र सप्तमे सूक्ते येनिक्षरेण रचयित्वीऽन्तरिक्षे कार्य्योपकरणार्थौ वायुसूर्य्यौ स्थापितौ स एवैकः सर्वशक्तिमान्सर्वदोषरिहतः सर्वमनुष्ट्रपूज्योऽस्तीति व्याख्यातिमत्येत्सूक्तार्थेन सहास्य षष्ठसूक्तार्थस्य सङ्गतिरिति बोध्यम्।

इदमपि स्रूक्तं सायणाचार्य्यादिभिर्यूरोपाख्यदेशनिवासिभिश्चासदर्थं व्याख्यातिमति सर्वैर्मन्तव्यम्॥ इति द्वितीयोऽनुवाकस्सप्तमं सूक्तं वर्गश्च चतुर्दशः समाप्तः॥

पदीर्थ:- हम लोग जिस (विश्वतः) सब पदार्थों वा (जनेभ्यः) सब प्राणियों से (पिर) उत्तम-उत्तम गुणीं करके श्रेष्ठतर (इन्द्रम्) पृथिवी में राज्य देनेवाले परमेश्वर का (हवामहे) वार-वार अपने हृदय में स्मिरण करते हैं, वही परमेश्वर (वः) हे मित्र लोगो! तुम्हारे और हमारे पूजा करने योग्य इष्टदेव किंवलः चेतनमात्र स्वरूप एक ही है॥१०॥

भावार्थ:-ईश्वर इस मन्त्र में सब मनुष्यों के हित के लिये उपदेश करता है – हे मनुष्यो! तुमकी अत्यन्त उचित है कि मुझे छोड़कर उपासना करने योग्य किसी दूसरे देव को कभी मत मानो, क्योंकि एक मुझ को छोड़कर कोई दूसरा ईश्वर नहीं है। जब वेद में ऐसा उपदेश है तो जो मनुष्य अनेक उसके अवतार मानता है, वह सब से बड़ा मूढ़ है॥१०॥

इस सप्तम सूक्त में जिस ईश्वर ने अपनी रचना के सिद्ध रहने के लिये अन्तरिक्ष में भूर्य और वायु स्थापन किये हैं, वही एक सर्वशक्तिमान् सर्वदोषरिहत और सब मनुष्यों का पूज्य है। इस व्याख्या से इस सप्तम सूक्त के अर्थ के साथ छठे सूक्त के अर्थ की सङ्गति जाननी चार्दिया

इस सूक्त के मन्त्रों के अर्थ सायणाचार्य्य आदि आर्य्यावर्त्तवासियों और विलसन आदि अङ्गरेज लोगों ने भी उलटे किये हैं।।

यह दूसरा अनुवाक, सातवां सूक्त और चौदहवां की समाप्ताहुआ॥

अथास्य दशर्चस्याष्टमसूक्तस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। इन्द्रो देवता। १,५, ८ निचृद्गायत्री। २ प्रतिष्ठागायत्री। ३,४, ६,७,९ गायत्री। १० वर्धमाना गायत्री च छन्दः। षड्जः स्वरः॥ तत्र कीदृशं धनमीश्चरानुग्रहेण स्वपुरुषार्थेन च प्रापणीयमित्युपदिश्यते।

अब अष्टमसूक्त के प्रथम मन्त्र में यह उपदेश है कि ईश्वर के अनुग्रह और अपने पुरुषार्थ से कैसा धन प्राप्त करना चाहिये-

ऐन्द्रं सानुसिं रृयिं सुजित्वानं सदासहम। वर्षिष्ठमूतये भर॥ १॥

आ। इन्द्र। सानुसिम्। रृयिम्। सुऽजित्वानम्। सुदाुऽसहंम्। वर्षिष्ठम्। अत्यो<u>/भर्</u>भशा

पदार्थ:-(आ) समन्तात् (इन्द्र) परमधनप्रदेश्वर! (सानसिमें) सम्भानीयम्। सानसि वर्णसि॰ (उणा०४.११०) अनेनायं 'सन' धातोरसिप्रत्ययान्तो निपातितः। (स्थिम्) ध्रेन्यं (सिजित्वानाम्) समानानां शत्रूणां विजयकारकम्। अत्र अन्येभ्योऽपि दृश्यते। (अष्टा०३.२५५५) अनेन्यः 'जि' धातोः क्वनिप्प्रत्ययः। (सदासहम्) सर्वदा दुष्टानां शत्रूणां हानिकारकदुःखानां च सहन्हेत्रुम् (विधिष्ठम्) अतिशयेन वृद्धं वृद्धिकारकम्। अत्र वृद्धशब्दादिष्ठन् विधिरादेशश्च। (ऊतये) पश्चिणाद्याये पृष्टये (भर) धारय॥१॥

अन्वय:-हे इन्द्र! कृपयाऽस्मदूतये वर्षिष्ठं सामूसि सदोसई सजित्वानं रियमाभर॥१॥

भावार्थ:-मनुष्यै: सर्वशक्तिमन्तमन्तर्यामिनमिश्चरमाश्चित्य परमपुरुषार्थेन च सर्वोपकाराय चक्रवर्त्तिराज्यानन्दकारकं विद्याबलं सर्वोत्कृष्टं सुवर्णसेनाष्ट्रिकं बलं च सर्वथा सम्पादनीयम्। यत: स्वस्य सर्वेषां च सुखं स्यादिति॥१॥

पदार्थ:-हे (इन्द्र) परमेश्वर! आप कपा करके हमारी (ऊतये) रक्षा पृष्टि और सब सुखों की प्राप्ति के लिये (वर्षिष्ठम्) जो अल्छी प्रकार वृद्धि करनेवाला (सानसिम्) निरन्तर सेवने के योग्य (सदासहम्) दुष्ट शत्रु तथा हानि जा दुःखों के सहने का मुख्य हेतु (सजित्वानम्) और तुल्य शत्रुओं का जितानेवाला (रियम्) धन है, उसे को (आभर) अच्छी प्रकार दीजिये॥१॥

भावार्थ:-सब मनुष्यों को सर्वशक्तिमान् अन्तर्यामी ईश्वर का आश्रय लेकर अपने पूर्ण पुरुषार्थ के साथ चक्रवर्त्ति राज्य के आजन्द को बढ़ानेवाली विद्या की उन्नति सुवर्ण आदि धन और सेना आदि बल सब प्रकार स्ट्रेएखना चृहिये, जिससे अपने आप को और सब प्राणियों को सुख हो॥१॥

कीदृशेन धनेनेत्युपदिश्यते।

केसे धन से परमसुख होता है, सो अगले मन्त्र में प्रकाश किया है-

मि येन मुष्टिहृत्यया नि वृत्रा रुणधामहै।

न्वोतासो न्यर्वता॥२॥

नि। येने। मुष्ट्रिऽहुत्ययो। नि। वृत्रा। रुणधामहै। त्वाऽर्ऊतासः। नि। अर्वता॥२॥

९४

पदार्थ:-(नि) नितरां क्रियायोगे (येन) पूर्वोक्तेन धनेन (मृष्टिहत्यया) हननं हत्या मृष्टिभिर्हत्या मृष्टिभिर्हत्या मृष्टिभिर्हत्या तया (नि) निश्चयार्थे (वृत्रा) मेघवत्सुखावरकान् शत्रून्। अत्र सुपां सुलुगिति स्त्रिम् स्थाने आजादेश:। (रुणधामहै) निरुन्ध्याम (त्वोतास:) त्वया जगदीश्वरेण रक्षिताः सन्तः (नि) निश्चयार्थे (अर्वता) अश्वादिभिः सेनाङ्गैः। अर्वेत्यश्चनामसु पठितम्। (निघं०१.१४)॥२॥

अन्वय:-हे जगदीश्वर! त्वं त्वोतासस्त्वया रिक्षता सन्तो वयं येन धनिस मुष्टिहत्ये प्राऽर्वता निवृत्रात्रिश्चितान् शत्रून् निरुणधामहै, तेषां सर्वदा निरोधं करवामहै, तदस्मभ्यं स्हिमारा

भावार्थ:-ईश्वरेष्टैर्मनुष्यैः शरीरात्मबलैः सर्वसामर्थ्येन श्रेष्ठानां पालनं दुष्टानां निग्रहः सर्वदा कार्य्यः, यतो मुष्टिप्रहारमसहमानाः शत्रवो विलीयेरन्॥२॥

पदार्थ:-हे जगदीश्वर! (त्वोतासः) आप के सकाश से रक्षा की प्राप्त हुए हम लोग (येन) जिस पूर्वोक्त धन से (मृष्टिहत्यया) बाहुयुद्ध और (अर्वता) अश्व आदि सना की सामग्री से (निवृत्रा) निश्चित शत्रुओं को (निरुणधामहै) रोकें अर्थात् उनको निर्बल कर सर्वे, ऐसे उत्तम धन का दान हम लोगों के लिये कृपा से कीजिये॥२॥

भावार्थ:-ईश्वर के सेवक मनुष्यों को उचित है कि अपने शरीर और बुद्धिबल को बहुत बढ़ावें, जिससे श्रेष्ठों का पालन और दुष्टों का अपमान सदा होता रहे, और जिससे शत्रुजन उनके मुष्टिप्रहार को न सह सकें, इधर-उधर छिपते-भागते फिरें॥२॥

मनुष्याः कि शूत्वा शत्रूम् जयन्तीत्युपदिश्यते।

मनुष्य किसको धारण करने से शुत्रुओं की जीव सकते हैं, सो अगले मन्त्र में प्रकाश किया है-

इन्द्र त्वोतांस आ वयं वर्ज्न घुना ददीमहि।

जयेम सं युधि स्पृधः 📭 ३॥

इन्द्री त्वाऽर्ऊतासः। आच्चियम्। व्रत्रम्। युना। दुदीमहि। जयेम। सम्। युधि। स्पृर्धः॥३॥

पदार्थ:-(इन्द्र) अनेत्वलेखेर! (त्वोतासः) त्वया बलं प्रापिताः (आ) क्रियार्थे (वयम्) बलवन्तो धार्मिका शूराः (वज्रम्) शत्रूणां बलच्छेदकमाग्नेयादिशस्त्रास्त्रसमूहम् (घना) शतघ्नीभुसुण्डचस्त्रियापबाण्दिनि दृढानि युद्धसाधनानि। शेश्छन्दिस बहुलिमिति लुक्। (ददीमिह) गृह्णीमः। अत्र लडथें लिङ्। (ज्येम) (सं) क्रियार्थे (युधि) संग्रामे (स्पृधः) स्पर्धमानान् शत्रून्। 'स्पर्ध सङ्घर्षे' इत्यस्य क्रियन्तस्य रूपम्। बहुलं छन्दिस। (अष्टा०६.१.३४) अनेन सम्प्रसारणमल्लोपश्च॥३॥

अन्वय:-हे इन्द्र! त्वोतासो वयं स्वविजायार्थं घना आददीमिह, यतो वयं युधि स्पृधो जयेम॥३॥ भावार्थ:-मनुष्यैर्धर्मेश्वरावाश्रित्य शरीरपुष्टिं विद्ययात्मबलं पूर्णां युद्धसामग्रीं रस्परमुक्तिोधमुत्साहमित्यादि सद्गुणान् गृहीत्वा सदैव दुष्टानां शत्रूणां पराजयकरणेन सुखयितव्यम्॥३॥ अष्टक-१। अध्याय-१। वर्ग-१५-१६

मण्डल-१। अनुवाक-३। सूक्त-८

पदार्थ: - हे (इन्द्र) अनन्तबलवान् ईश्वर! (त्वोतासः) आपके सकाश से रक्षा आदि और बल को प्राप्त हुए (वयम्) हम लोग धार्मिक और शूरवीर होकर अपने विजय के लिये (वज्रम्) शत्रुओं के बल का नाश करने का हेतु आग्नेयास्त्रादि अस्त्र और (घना) श्रेष्ठ शस्त्रों का समूह, जिनको क्रि भाषा पें मीप बन्दूक तलवार और धनुष बाण आदि करके प्रसिद्ध कहते हैं, जो युद्ध की सिद्धि में हेतु हैं, उनको (आददीमिह) ग्रहण करते हैं। जिस प्रकार हम लोग आपके बल का आश्रय और सना की पूर्ण सामग्री करके (स्पृधः) ईर्षा करनेवाले शत्रुओं को (युधि) संग्राम में (जयेम) जीतें॥३॥

भावार्थ:-मनुष्यों को उचित है कि धर्म और ईश्वर के आश्रय से शरीर की पृष्टि और विद्या करके आत्मा का बल तथा युद्ध की पूर्ण सामग्री परस्पर अविरोध और उत्साह आदि श्रेष्ठ गुणों का ग्रहण करके दुष्ट शत्रुओं के पराजय करने से अपने और सब प्राणियों के लिये सुख सदा बढ़ाते रहें॥३॥

कस्य कस्य सहायेनैतत् सिध्यतीत्युष्टिस्थते।

किस-किस के सहाय से उक्त सुख सिद्ध होता है, सो अगले मन्त्र में प्रकाश किया है-

वयं शूरेभिरस्तृभिरिन्द्र त्वया युजा वयम्।

सासह्यामं पृतन्यतः॥४॥

वयम्। शूरेभिः। अस्तृभिः। इन्द्री त्वया। युज्जा व्यम्। सुर्मह्यामी पृतन्यतः॥४॥

पदार्थ:-(वयम्) सभाध्यक्षाः सेनापतिवर्षः (शूरेप्रि:) सर्वोत्कृष्टशूरवीरै:। अत्र बहुलं छन्दसीति भिस ऐसादेशो न। (अस्तृभिः) सर्वशृष्ट्रभस्त्रप्रक्षेप्प्रदक्षेः सह (इन्द्र) युद्धोत्साहप्रदेश्वर (त्वया) अन्तर्यामिणेष्टेन (युजा) कृपया धार्मिकेषु स्वामाभूयसंयोजकेन (वयम्) योद्धारः (सासह्याम) पुनः पुनः सहेमहि। अत्र व्यत्ययेन परस्मैपदं लिङ्क्षें लोट्च। (पृतन्यतः) आत्मनः पृतनामिच्छतः शत्रून् ससेनान्। पृतनाशब्दात् क्यच्। कव्यध्यस्पृतनस्यर्धिलोपः। (अष्टा०७.४.३९) अनेन ऋचि ऋग्वेद एवाकारलोपः॥४॥

अन्वय:-हे इन्द्री युजा त्वया वयमस्तृभिः शूरेभिर्योद्धृभिः सह पृतन्यतः शत्रून् सासह्यामैवंप्रकारेण चक्रकर्तिंगजाने भूत्वा नित्यं प्रजाः पालयेम॥४॥

भावार्थ:-शौर्य्यं द्विविधं पुष्टिजन्यं शरीरस्थं विद्याधर्मजन्यमात्मस्थं च। एताभ्यां सह वर्त्तमानैर्मनुष्यै: परमश्चरस्य सृष्टिरचनाक्रमान् ज्ञात्वा न्यायधैर्य्यसौजन्योद्योगादीन् सद्गुणान् समाश्रित्य सभाप्रबन्धेन राज्यपालन्ये दृष्टशत्रुनिरोधश्च सदा कर्त्तव्य इति॥४॥

पदार्थ: -हे (इन्द्र) युद्ध में उत्साह के देनेवाले परमेश्वर! (त्वया) आपको अन्तर्यामी इष्टदेव मानक्रीए आपको कृपा से धर्मयुक्त व्यवहारों में अपने सामर्थ्य के (युजा) योग करानेवाले के योग से (व्यम) युद्ध के करनेवाले हम लोग (अस्तृभि:) सब शस्त्र-अस्त्र के चलाने में चतुर (शूरभि:) उत्तमों

९६

में उत्तम शूरवीरों के साथ होकर (पृतन्यत:) सेना आदि बल से युक्त होकर लड़नेवाले शत्रुओं की (सासह्याम) वार-वार सहें अर्थात् उनको निर्बल करें, इस प्रकार शत्रुओं को जीतकर न्याय के साथ चक्रवर्त्ति राज्य का पालन करें॥४॥

भावार्थ:-शूरता दो प्रकार की होती है, एक तो शरीर की पृष्टि और दूसरी विद्वा तथा धर्म से संयुक्त आत्मा की पृष्टि। इन दोनों से परमेश्वर की रचना के कर्मों को जानकर न्याष्ट्र, धीरजपन, उत्तम स्वभाव और उद्योग आदि से उत्तम-उत्तम गुणों से युक्त होकर सभाप्रबन्ध के साथ राज्य का पालन और दुष्ट शत्रुओं का निरोध अर्थात् उनको सदा कायर करना चाहिये॥४॥

पुनः स कीदृशोऽस्तीत्युपदिश्यते।

उक्त कार्य्यसहाय करनेहारा जगदीश्वर किस प्रकार का है, सो अगुले मेन्त्र में प्रकार किया है-

महाँ इन्द्रीः पुरश्च नु महित्वमस्तु वृज्रिणी।

द्यौर्न प्रथिना शर्वः॥५॥१५॥

महान्। इन्द्रं:। पर्:। च। नु। मृह्रिऽत्वम्। अस्तु। वृज्रिणें। द्यौ:। म। प्रर्थिना। शर्वः॥५॥

पदार्थ:-(महान्) सर्वथाऽनन्तगुणस्वभावसामध्येत्र युवतः (इन्द्रः) सर्वजगद्राजः (परः) अत्यन्तोत्कृष्टः (च) पुनरर्थे (नु) हेत्वपदेशे। (निरूर्शः (महित्वम्) महाते पूज्यते सर्वेजनैरिति महिस्तस्य भावः। अत्रौणादिकः सर्वधातुभ्य इत्रितिन् प्रत्ययः (अस्तु) भवतु (विज्ञणे) वज्रो न्यायाख्यो दण्डोऽस्यास्तीति तस्मै। वज्रो वै दण्डः। (अर्ज्जा०३ः १/५.३२) (द्यौः) विशालः सूर्य्यप्रकाशः (न) उपमार्थे। उपसृष्टादुपचारस्तस्य येनोपिम्पित्। (निकृ०१.४) यत्र कारकात्पूर्वं नकारस्य प्रयोगस्तत्र प्रतिषेधार्थीयः, यत्र च परस्तत्रोपमार्थीयः। (प्राधना) पृथोर्भावस्तेन। पृथुशब्दादिमनिच्। छान्दसो वर्णलापो वेति मकारलोपः। (शवः) बलम्। श्रव इति बलनामसु पठितम्। (निघं०२.९)॥५॥

अन्वय:-यो मूर्तिमतः समारस्य द्यौ सूर्य्यः प्रथिना न सुविस्तृतेन स्वप्रकाशेनेव महान् पर इन्द्रः परमेश्वरोऽस्ति, तस्मै वज्रिणे इन्द्रोयेश्वराय् न्वस्मात्कृतस्य विजयस्य महित्वं शवश्चास्तु॥५॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारोऽस्ति। धार्मिकैर्युद्धशीलैः। शूरैर्योद्धृभिर्मनुष्यैः स्वनिष्पादितस्य दुष्टशत्रुविजयस्य धन्यवादा अनेन्तशक्तिमते जगदीश्वरायैव देयाः। यतो मनुष्याणां निरभिमानतया राज्योन्नतिः सदैव वर्धेतेति॥।।।

इति पञ्चदशो वर्गः समाप्तः॥

प्रदर्श: (म) जैसे मूर्तिमान् संसार को प्रकाशयुक्त करने के लिये (द्यौ:) सूर्य्यप्रकाश (प्रथिना) विस्तार से प्राप्त होता है, वैसे ही जो (महान्) सब प्रकार से अनन्तगुण अत्युत्तम स्वभाव अतुल सामूर्थ्ययुक्त और (पर:) अत्यन्त श्रेष्ठ (इन्द्र:) सब जगत् की रक्षा करनेवाला परमेश्वर है, और (विच्रिणे)

अष्टक-१। अध्याय-१। वर्ग-१५-१६

मण्डल-१। अनुवाक-३। सूक्त-८

न्याय की रीति से दण्ड देनेवाले परमेश्वर (नु) जो कि अपने सहायरूपी हेतु से हमको विजय देता है, उसी की यह (महित्वम्) महिमा (च) तथा बल है॥५॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। धार्मिक युद्ध करनेवाले मनुष्यों को उद्धित है कि जो शूरवीर युद्ध में अति धीर मनुष्यों के साथ होकर दुष्ट शत्रुओं पर अपना विजय हुआ है, उसका धन्यवाद अनन्त शक्तिमान् जगदीश्वर को देना चाहिये कि जिससे निरिभमान होकर मनुष्यों के राज्य की सदैव बढ़ती होती रहे॥५॥

यह पन्द्रहवां वर्ग समाप्त हुआ॥

मनुष्यै: कीदृशा भूत्वा युद्धं कर्त्तव्यमित्युप्दिश्यकी

मनुष्यों को कैसे होकर युद्ध करना चाहिये, यह विषय अगले मिन्त्र में प्रकार किया है-

सुमोहे वा य आशित नर्रस्तोकस्य सर्नितौ। विप्रांसो वा धियायवः॥६॥

सुम्ऽओहे। वा। ये। आर्शता नर्रः। तोकस्यं। सनितौ विक्रासः। वा। ध्याऽयर्वः॥६॥

पदार्थ:-(समोहे) संग्रामे। समोहे इति संग्रामनामसु पठितम्। (निघं०२.१७) (वा) पक्षान्तरे (ये) योद्धारो युद्धम् (आशत) व्याप्तवन्तो भवेयः। 'अशूड्कं व्याप्तौ' इत्यस्माल्लिङ्थें लुङ्प्रयोगः। वा छन्दिस सर्वे विधयो भवन्तीति च्लेरभावः। (नरः) मनुष्याः (तोकस्य) संतानस्य (सनितौ) भोगसंविभागलाभे। तितुत्र० (अष्टा०७२:९) आर्गहादीनामिति वक्तव्यमिति वार्त्तिकेनेडागमः। (विप्रासः) मेधाविनः। विप्र इति मेधाविनामसु पठितम्। (निघं०३.१५) आज्जसेरसुक्। (अष्टा०७.१.५०) अनेन जसोऽसुगागमः। (वा) व्यवहारान्तरे (धियायवः) ये धियं विज्ञानिमच्छन्तः, धीयते धार्य्यते श्रुतमनया सा धिया, तामात्मन इच्छन्ति ते, 'धि धारणे' इत्यस्य कप्रत्ययान्तः प्रयोगः।।६॥

अन्वय:-ये विप्रास्त्रो नरस्ते समिहि शत्रूनाशत वा ये धियायवस्ते तोकस्य सनितावाशत॥६॥

भावार्थ:-इन्द्रेश्वरः सिवान्मनुष्यानाज्ञापयित-संसारेऽस्मिन्मनुष्यै:। कार्य्यद्वयं कर्त्तव्यम्। ये विद्वांसस्तैर्विद्याशरीर् बले सम्पाद्येताभ्यां शत्रूणां बलान्यभिव्याप्य सदैव तिरस्कर्त्तव्यानि। मनुष्यैर्यदा यदा शत्रुभि: सह युमुत्सो भवेतदा तदा सावधानतया शत्रूणां बलान्न्यूनान्न्यूनं द्विगुणं स्वबलं सम्पाद्येव तेषां कृतेनापराज्येन प्रजाः स्ततः रक्षणीयाः। ये च विद्यादानं चिकीर्षवस्ते कन्यानां पुत्राणां च विद्याशिक्षाकरणे प्रयतेरन् । यतः। सत्रूणां पराभवेन सुराज्यविद्यावृद्धी सदैव भवेताम्॥६॥

पदार्थ:-(विप्रास:) जो अत्यन्त बुद्धिमान् (नर:) मनुष्य हैं, वे (समोहे) संग्राम के निर्मित्त शत्रुओं को जीतने के लिये (आशत) तत्पर हैं, (वा) अथवा (धियायव:) जो कि विज्ञान देने की इच्छा करनेवाले हैं, वे (तोकस्य) सन्तानों के (सनितौ) विद्या की शिक्षा में (आशत) उद्योग करते गहें। (१)।

भावार्थ:-ईश्वर सब मनुष्यों को आज्ञा देता है कि-इस संसार में मनुष्यों को दो प्रकार की जाम करना चाहिये। इनमें से जो विद्वान् हैं वे अपने शरीर और सेना का बल बढ़ाते और दूसर उत्तम विद्या की वृद्धि करके शत्रुओं के बल का सदैव तिरस्कार करते रहें। मनुष्यों को जब-जब रात्रुओं के साथ युद्ध करने की इच्छा हो तब-तब सावधान होके प्रथम उनकी सेना आदि पदार्थों से कम से कम अपना दोगुना बल करके उनके पराजय से प्रजा की रक्षा करनी चाहिये। तथा जो विद्याओं के पढ़ाने की इच्छा करनेवाले हैं, वे शिक्षा देने योग्य पुत्र वा कन्याओं को यथायोग्य विद्वान करने में अच्छे प्रकार यत्न करें, जिससे शत्रुओं के पराजय और अज्ञान के विनाश से चक्रवर्ति राज्य और विद्या की वृद्धि सदैव बनी रहे॥६॥

अथेन्द्रशब्देन सूर्य्यलोकगुणा उपदिश्यन्ते।

अगले मन्त्र में इन्द्र शब्द से सूर्य्यलोक के गुणों का व्याख्यान किया है-

यः कुक्षिः सोमुपातमः समुद्रईव पिन्वते।

उर्वीरापो न काकुद्ः॥७॥

यः। कुक्षिः। सोमुऽपार्तमः। सुमुद्रःऽईव र्यपन्वते। कुर्तः। आर्पः। न। कुाकुर्दः॥७॥

पदार्थ:-(यः) सूर्य्यलोकः (कृष्टिः) कुष्मति निष्कर्षति सर्वपदार्थेभ्यो रसं यः। अत्र प्लुषिकुषिशुषिभ्यः क्सिः। (उणा०३,१५३) अमेन 'कुष' धातोः क्सिः प्रत्ययः। (सोमपातमः) यः सोमान्पदार्थान् किरणैः पाति सोऽतिशिष्ट्रिः। (समुद्र इव) समुद्रवन्त्यापो यस्मिस्तद्वत् (पिन्वते) सिंचित सेवते वा (उवीः) बह्वीः पृथिवीः। उवीति पृथिवीनामसु पिठतम्। (निघं०१.१) (आपः) जलानि, वाऽऽप्नुवन्ति शब्दोच्चारणादिव्यवहारान् व्याभिस्ता आपः प्राणः। आप इत्युदकनामसु पिठतम्। (निघं०१.१२) आप इति पदनामसु पिठतम्। (निघं०५.३) आभ्यां प्रमाणाभ्यामप्शब्देनात्रोदकानि सर्वचेष्टाप्राप्तिनिमित्तत्वात् प्राणाभ्य गृह्यन्ते। (न) उपमार्थे (काकुदः) वाचः शब्दसमूहः। काकुदिति वाइनामसु पिठतम्। (निघं०१.११)॥७॥

अन्वग्रद-यः कृक्षिः सोमपातमः सूर्य्यलोकः समुद्रं जलानीवापः काकुदो न प्राणा वायवो वाचः शब्दसमूहम्मिवोवी पृथिबीः पिन्वते॥७॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कारौ स्तः। इन्द्रेणेश्वरेण यथा जलस्थितिवृष्टिहेतुः समुद्रो वाग्व्यवहारहेतुः प्राणूर्ध्य रिवतस्तथैव पृथिव्याः प्रकाशाकर्षणादे रसविभागस्य च हेतुः सूर्य्यलोको निर्मितः। एताभ्यां सर्वप्राणिश्वामनेक व्यवहाराः सिध्यन्तीति॥७॥

अष्टक-१। अध्याय-१। वर्ग-१५-१६

मण्डल-१। अनुवाक-३। सूक्त-८

पदार्थ:-(समुद्र इव) जैसे समुद्र को जल (आपो न काकुदः) शब्दों के उच्चारण आदि व्यवहारों के करानेवाले प्राण वाणी का सेवन करते हैं, वैसे (कुक्षिः) सब पदार्थों से रस को विकित्ताला तथा (सोमपातमः) सोम अर्थात् संसार के पदार्थों का रक्षक जो सूर्य्य है, वह (उर्वीः) सब पृथिची को सेवन वा सेचन करता है॥७॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में दो उपमालङ्कार हैं। ईश्वर ने जैसे जल की स्थिति और वृष्टि का हैतु समुद्र तथा वाणी के व्यवहार का हेतु प्राण बनाया है, वैसे ही सूर्य्यलोक वर्षा होने, पृथिवी के खींचरे, प्रकाश और रसविभाग करने का हेतु बनाया है, इसी से सब प्राणियों के अनेक व्यवहार सिद्ध होते हैं॥७॥

पुनस्तन्निमित्तकार्थ्यमुपदिश्यते।

उक्त अर्थों के निमित्त और कार्य्य का प्रकाश अगले प्रत्ने में किया है

एवा ह्यस्य सूनृतां विरुष्शी गोमंती मही। पुक्वा शाखा न दाशुषे॥८॥

एव। हि। अस्य। सूनृतां। विऽरुष्शी। गोमंती। मुही। एक्वा। शुन्खां। न। दाशुषे॥८॥

पदार्थ:-(एव) अवधारणार्थे (हि) हीत्यनेककमी (निरु०१.५) (अस्य) परमेश्वरस्य सूर्य्यलोकस्य वा प्रकाशनात् (सूनता) प्रियसत्यप्रकृशिका युक्, अन्नादिपदार्थवती वा। सूनतेत्यन्ननामसु पिठतम्। (निघं०२.७) सुष्ठु ऋतं यथार्थं ज्ञानं यस्यां साध्न्यवती वा। (विरष्णी) महाविद्यायुक्ता। विरष्णी इति महन्नामसु पिठतम्। (निघं०३.३ (प्रोमती) मज्ञे भूयांसः स्तोतारो विद्यन्ते यस्यां सा। गौरिति स्तोतृनामसु पिठतम्। (निघं०३.१६) प्रति प्रवीप्र्या वाङ्मयी वेदचतुष्ट्रयी पृथिवी वा। महीति वाङ्नामसु पिठतम्। (निघं०१.११) पृश्विवीनामसु च। (निघं०१.१) (पक्वा) पक्वफलयुक्ता (शाखा) वृक्षावयवाः। शाखाः खशयाः श्वनोतेवा। (निरु०१.४) (न) इव (दाशुषे) अध्ययनार्थं तद्राज्यप्राप्त्यर्थं च ध्यानं दत्तवते मनुष्याय॥८॥

अन्वय:-हि पक्कू शुखा न इवास्य गोमती सूनृता विरप्शी मही दाशुषे सुखं पिन्वते॥८॥

भावार्थ:-अत्रोपमोल्ड्सिंग्ने यथा विविधपुष्पफलवन्त आम्रपनसादयो वृक्षा विविधफलप्रदाः सन्ति, तथैवेश्वरेण्, प्रकाशिता विविधविद्यानन्दप्रदा वेदा अनेकसुखभोगप्रदाः पृथिव्यादयश्च प्रसिद्धीकृताः सन्ति। एतेषां प्रकाशी राज्यं च विद्वद्भिरेव कर्त्तुं शक्यते॥८॥

प्रतर्थ:- (पक्क शाखा न) जैसे आम और कटहर आदि वृक्ष, पकी डाली और फलयुक्त होने से प्राण्यि को सुख देनेहारे होते हैं (अस्य हि) वैसे ही इस परमेश्वर की (गोमती) जिसको बहुत से विद्वान सेवन करनेवाले हैं, जो (सूनृता) प्रिय और सत्यवचन प्रकाश करनेवाली (विराणी)

महाविद्यायुक्त और (मही) सबको सत्कार करने योग्य चारों वेद की वाणी है, सो (दाशुषे) पढ़ने में मने लगानेवालों को सब विद्याओं का प्रकाश करनेवाली है।

तथा (अस्य हि) जैसे इस सूर्य्यलोक की (गोमती) उत्तम मनुष्यों के सेवन करने योष (सून्नता) प्रीति के उत्पादन करनेवाले पदार्थों का प्रकाश करनेवाली (विर्ष्णी) बड़ी से बड़ी (मही) बड़े - बड़े गुणयुक्त दीप्ति है, वैसे वेदवाणी (दाशुषे) राज्य की प्राप्ति के लिये राज्यकर्मों में चिन्न देनेवाली को सुख देनेवाली होती है॥८॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे विविध प्रकार से फलफूलों से पुक्त आम और कटहर आदि वृक्ष नाना प्रकार के फलों के देनेवाले होके सुख देनेहारे होते हैं, वैसे ही ईश्वर से प्रकाश की हुई वेदवाणी बहुत प्रकार की विद्याओं को देनेहारी होकर सब सनुष्ट्रों के परम आनन्द देनेवाली है। जो विद्वान् लोग इसको पढ़ के धर्मात्मा होते हैं, वे ही वेदों का प्रकाश और सूर्थिवी में राज्य करने को समर्थ होते हैं॥८॥

य एवं कुर्वन्ति तेषां किं भवतीत्युपिद्दश्यते।

जो मनुष्य ऐसा करते हैं, उनको क्या सिद्ध होता हैं. से अपले मन्त्र में प्रकाश किया है-

एवा हि ते विभूतय ऊतर्य इन्द्र मार्वते।

सद्यश्चित्सन्ति दाशुषे॥ १॥

एव। हि। ते। विऽभूतयः। ऊर्तयः। इन्द्रा मार्ठवते। सुद्धः। चित्। सन्ति। दाशुषे॥९॥

पदार्थ:-(एव) निश्चयार्थे (हि) हेन्त्र्य (ते) हुव (विभूतयः) विविधा भूतय ऐश्वर्याणि यासु ताः (ऊतयः) रक्षाविज्ञानसुखप्राप्त्यादयः (इन्द्र) पर्वति रक्षयितरीश्वर! (मावते) मत्सदृशाय। वतुष्रकारेण युष्मदस्मद्भ्यां छन्दिस सादृश्यं उपसंख्यातम्। (अष्टा०५.२.३९) अनेनास्मच्छब्दात् सादृश्यार्थे वतुप्। आ सर्वनाम्नः। (अष्टा०६.३.९१) इत्याकारदेशश्च। (सद्यः) शीघ्रमेव। सद्यः परुत्परार्थेषमः। (अष्टा०५.३.२२) समाने अहनि इति सद्यः इति भाष्यवचनात्समाने अहन्येतस्मिन्नर्थे सद्य इति शब्दो निपातितः। (चित्) पूजार्थे चिदिति पूजायाम्। (निरु०१.४) (सन्ति) भवन्तु। अत्र लोडर्थे लट् वा। (दाशुषे) सर्वोपकारधर्म आत्रानं इत्तवते॥९॥

अन्वय:-हे इन्द्र ज्यदिश्वर! भवत्कृपया यथा ते तव विभूतय ऊतयो मह्यं प्राप्ताः सन्ति भवन्ति, तथैवैता मावते दाशुषे चिदेव हि सद्यः प्राप्नुवन्तु॥९॥

भृतिर्थः-भूत्र लुप्तोपमालङ्कारः। ईश्वरस्याज्ञास्ति-ये जनाः पुरुषार्थिनो भूत्वा धार्मिकाः परोपकारिणो भवन्ति त एव पूर्णमैश्वर्य्यरक्षणं कृत्वा सर्वत्र सत्कृता जायन्ते॥९॥ अष्टक-१। अध्याय-१। वर्ग-१५-१६

मण्डल-१। अनुवाक-३। सूक्त-८

पदार्थ:-हे (इन्द्र) जगदीश्वर! आपकी कृपा से जैसे (ते) आपके (विभूतय:) जो-जो उत्तम ऐश्वर्य्य और (ऊतय:) रक्षा विज्ञान आदि गुण मुझको प्राप्त (सन्ति) हैं, वैसे (मावते) मेरे तृत्य दाशुषे चित्) सब के उपकार और धर्म में मन को देनेवाले पुरुष को (सद्य एव) शीघ्र ही प्राप्त हूं।। ९॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है। ईश्वर की आज्ञा का प्रकाश इस रीलिप्से किया है कि-जब मनुष्य पुरुषार्थी होके सब को उपकार करनेवाले और धार्मिक होते हैं, तभी वे पूर्ण ऐश्वर्य और ईश्वर की यथायोग्य रक्षा आदि को प्राप्त होके सर्वत्र सत्कार के योग्य होते हैं॥ १ कि

इयं सर्वा प्रशंसा कस्यास्तीत्युपदिश्यते।

उक्त सब प्रशंसा किस की है, सो अगले मन्त्रू में किया

एवा ह्यस्य काम्या स्तोमे उक्थं च शंस्या। इन्द्राय सोमेपीतये॥ १०॥ १६॥

एव। हि। अस्य। काम्या। स्तोमी:। उक्थम्। च। शंस्या। इन्ह्रीय। सोमी पीतये॥ १०॥

पदार्थ:-(एव) अवधारणार्थे (हि) हेत्वपदेशे (अस्य) वेद्ध्यतुष्टयस्य (काम्या) कमनीये। अत्र सुपां सुलुगिति द्विवचनस्याकारादेशः। (स्तोमः) सामगानविशेषः स्तृतिसमूहः (उक्थम्) उच्यन्त ईश्वरगुणा येन तादृक्समूहम् (च) समुच्चयार्थे। अनेन यजुरथर्वणार्यहणेम्, (शंस्या) प्रशंसनीये कर्मणी। अत्रापि सुपां सुलुगित्याकारादेशः। (इन्द्राय) परमैश्वर्य्यवते। परमात्मने (सोमपीतये) सोमानां सर्वेषां पदार्थानां पीतिः पानं यस्य तस्मै। सह सुपा। (अष्टा०२.१.४) इति सामार्थतः समासः॥१०॥

अन्वय:-ये अस्य वेदचतुष्ट्रयस्य काम्ये अस्य स्तोम उक्थं च स्तस्ते सोमपीतये इन्द्राय हि भजत:॥१०॥

भावार्थ:-यथास्मिन् जम्मित केनिचेहिर्मितान् पदार्थान् दृष्ट्वा तद्रचियतुः प्रशंसा भवति, तथैव सर्वैः प्रत्यक्षाप्रत्यक्षेर्जगत्स्थैः स्पर्यादिभिरुत्तमैः पदार्थेस्तद्रचनया च वेदेष्वीश्वरस्यैव धन्यवादाः सन्ति। नैतस्य समाधिका वा कस्क्रचित्स्तुतिभूवितुमर्हतीति॥१०॥

एवं य ईश्वरस्थीपसानाः क्रियावन्तस्तदाश्रिता विद्ययात्मसुखं क्रियया च शरीरसुखं प्राप्य तेऽस्यैव सदा प्रशंसा कुर्य्युरित्यस्याष्टमस्य सूक्तोक्तार्थस्य सप्तमसूक्तोक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति विज्ञेयम्।

अस्यापि सून्तस्य मन्त्रार्थाः सायणचार्य्यादिभिर्यूरोपाख्यदेशस्थैर्विलसनाख्यादिभिश्चा-यथावद्व**्रि**ता इति वेदितव्यम्॥

इत्यष्टमं सुक्तं षोडशश्च वर्गः समाप्तः॥

पदार्थ:-(अस्य) जो-जो इन चार वेदों के (काम्ये) अत्यन्त मनोहर (शंस्ये) प्रशंसा करने येग्ये कर्म वा (स्तोम:) स्तोत्र हैं, (च) तथा (उक्थम्) जिनमें परमेश्वर के गुणों का कीर्तन है, वे (इन्द्राय) परमेश्वर की प्रशंसा के लिये हैं। कैसा वह परमेश्वर है कि जो (सोमपीतये) अपनी व्याप्ति से प्रव पदार्थों के अंश-अंश में रम रहा है॥१०॥

भावार्थ:-जैसे इस संसार में अच्छे-अच्छे पदार्थों की रचना विशेष देखकर उस स्वेभवाले की प्रशंसा होती है, वैसे ही संसार के प्रसिद्ध और अप्रसिद्ध अत्युत्तम पदार्थों तथा विशेष रचना को देखकर ईश्वर को ही धन्यवाद दिये जाते हैं। इस कारण से परमेश्वर की स्तुति के समान वा उस से अधिक किसी की स्तुति नहीं हो सकती॥१०॥

इस प्रकार जो मनुष्य ईश्वर की उपासना और वेदोक्त कर्मों के करने ले हैं, वे ईश्वर के आश्रित होके वेदविद्या से आत्मा के सुख और उत्तम क्रियाओं से शरीर के सुख को प्राप्त होते हैं, वे परमेश्वर ही की प्रशंसाा करते रहें। इस अभिप्राय से इस आठवें सूक्त के अर्थ को पूर्वोक्त सातवें सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये।

इस सूक्त के मन्त्रों के भी अर्थ सायणाचार्य आहि और स्यूरोपदेशवासी अध्यापक विलसन आदि अङ्गरेज लोगों ने उलटे वर्णन किये हैं॥

यह आठवां सूक्त और स्मेलहवां वर्ग समाप्त हुआ॥

अथ नवमस्य दशर्चस्य सूक्तस्य मधुच्छन्दा ऋषि:। इन्द्रो देवता:। १,३,७,१० निचृद्गायत्री;

२,४,८,९ गायत्री; ५,६ पिपीलिकामध्यानिचृद्गायत्री च छन्दः। षड्जः स्वरः॥ तत्रेन्द्रशब्देनोभावर्थावृपदिश्येते।

अब नवम सुक्त के आरम्भ के मन्त्र में इन्द्र शब्द से परमेश्वर और सूर्य्य का प्रकाश किया है-

इन्द्रेहि मत्स्यर्थंसो विश्वेभिः सोमुपर्वभिः।

महाँ अभिष्टिरोजसा॥ १॥

इंन्द्र। आ। इहि। मित्सी। अर्थसः। विश्वेभिः। सोमुपर्वऽभिः। मुहान्। अभिष्टिः। ओर्जस्प्रे॥ १॥

पदार्थ:-(इन्द्र) सर्वव्यापकेश्वर सूर्य्यलोको वा (आ) क्रियार्थे (इहि) प्राप्नुष्ठि प्रापयित वा। अत्र पुरुषव्यत्ययः लडथें लोट् च। (मित्स) हर्षयितासि भवित वा। अत्र वहुलं छन्द्रमीति श्यनो लुक्, पक्षे पुरुषव्यत्ययश्च। (अन्यसः) अन्नानि पृथिव्यादीनि। अन्य इत्यन्ननामस् पठितम्। (निघं०२.७) (विश्वेभिः) सर्वैः। अत्र बहुलं छन्द्रसीति भिस ऐसादेशाभावः। (सोमपर्विभिः) सोपान् पदार्थानां पर्वाण्यवयवास्तैः सह (महान्) सर्वोत्कृष्ट ईश्वरः सूर्य्यलोको वा परिमाणेन महत्तमः (अभिष्टिः) अभितः सर्वतो ज्ञाता ज्ञापयिता मूर्तद्रव्यप्रकाशको वा। अत्राभिपूर्वादिष गतावित्यसम् द्वान्तमित्रे वृषेष० (अष्टा०३.३.९६) अनेन क्तिन्। एवमन्नादिषु छन्दिस पररूपं वक्तव्यम्। एङ पर्यक्रपमित्यस्योपरिस्थवार्तिकेनाभेरिकारस्य पररूपेणेदं सिध्यति। (ओजसा) बलेन। ओज इति बलनामसु पठितम्। (निघं०२.९)॥१॥

अन्वय:-यथाऽयिमन्द्रः सूर्य्यलोक अजिसा मेहुनिभिष्टिर्विश्वेभिः सोमपर्विभिः सहान्धसोऽन्नानां पृथिव्यादीनां प्रकाशेनेहि मिस हर्षहेतुर्भवृति, तथेव हे इन्द्र त्वं महानिभिष्टिर्विश्वेभिः सोमपर्विभिः सह वर्त्तमानः सन् ओजसोऽन्धस एहि प्राप्यसि मिस हर्षियतासि॥१॥

भावार्थ:-अत्र श्लेषलुप्तोम्गपलङ्कारौ। यथश्वरोऽस्मिन् जगित प्रतिपरमाण्वभिव्याप्य सततं सर्वान् लोकान् नियतान् रक्षिति, तथा सर्व्योऽिष सर्वेभ्यो लोकेभ्यो महत्त्वादाभिमुख्यस्थान् पदार्थानाकृष्य प्रकाश्य व्यवस्थापयित॥१॥

पदार्थ:-जिस प्रकार से (अप्रिष्टि:) प्रकाशमान (महान्) पृथिवी आदि से बहुत बड़ा (इन्द्र) यह सूर्य्यलोक है, वह (ओजसा) बल वा (विश्वेभि:) सब (सोमपर्विभि:) पदार्थों के अङ्गों के साथ (अश्वस:) पृथिवी आदि अञ्जादि पदार्थों के प्रकाश से (एहि) प्राप्त होता और (मित्स) प्राणियों को आनन्द देता है, (वैसे ही हे (इन्द्र) सर्वव्यापक ईश्वर! आप (महान्) उत्तमों में उत्तम (अभिष्टि:) सर्वज्ञ और सब ज्ञान के दैनेक्सले (ओजसा) बल वा (विश्वेभि: सोमपर्विभि:) सब पदार्थों के अंशों के साथ वर्त्तमान होकर (एहि) प्राप्त होते और (अश्वस:) भूमि आदि अञ्जादि उत्तम पदार्थों को देकर हमको (मित्सी) सुख देता है॥१॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में श्लेष और लुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे ईश्वर इस संसार के परमाणु-परमाणुं में व्याप्त होकर सब की रक्षा निरन्तर करता है, वैसे ही सूर्य्य भी सब लोकों से बड़ा होने से अपने सन्मुख हुए पदार्थों को आकर्षण वा प्रकाश करके अच्छे प्रकार स्थापन करता है॥१॥

अथ शिल्पविद्यानुसङ्गिनी अग्निजले उपदिश्येते।

शिल्पविद्या के उत्तम साधन जल और अग्नि का वर्णन अगले मन्त्र में कियार है

एमेनं सृजता सुते मुन्दिमिन्द्राय मुन्दिने। चिक्कं विश्वानि चक्रये॥२॥

आ। ईम्। एनम्। सृज्तः। सुते। मुन्दिम्। इन्द्रायः। मुन्दिने। चक्रिम्। विश्वापि। चक्रिये। २॥

पदार्थ:-(आ) क्रियार्थे (ईम्) जलमिन वा। ईमित्युदकनामस् पठितम्। निघं०१.१२) ईमिति पदनामसु च। (निघं०४.२) अनेन शिल्पविद्यासाधकतमावेतौ मृद्धोते। (एमम्) अर्थद्वयम् (सृजत) विविधतया प्रकाशयत सम्पादयत वा (सुते) उत्पन्नेऽस्मिन्यदार्थसमूहे जगित (मन्दिम्) मन्दिन्त हर्षन्त्यस्मिंस्तम् (इन्द्राय) ऐश्वर्य्यमिच्छवे जीवाय (मन्द्रिने) मेन्दितं मन्दियतुं शीलवते (चिक्रम्) शिल्पविद्याक्रियासाधनेषु यानानां शीघ्रचालनस्वभावम् (विश्वामि) स्वीणि वस्तूनि निष्पादियतुम् (चक्रये) पुरुषार्थकरणशीलाय॥२॥

अन्वय:-हे विद्वांस:! सुत उत्पन्नेऽस्मिन्यद्मर्थसमूहे ज्ञेगिति विश्वानि कार्य्याणि कर्त्तुं मन्दिन इन्द्राय जीवाय मन्दिं चक्रये चक्रिमासृजत॥२॥

भावार्थ:-विद्वद्भिरस्मिन् जगति पृथिकीमार्भ्येश्वरपर्य्यन्तानां पदार्थानां विज्ञानप्रचारेण सर्वान् मनुष्यान् विद्यया क्रियावतः सम्पाद्य सूर्वाणि सुखानि सदा सम्पादनीयानि॥२॥

पदार्थ: -हे विद्वानो! (सुते) उत्पन्न हुए इस संसार में (विश्वानि) सब सुखों के उत्पन्न होने के अर्थ (मन्दिने) ऐश्वर्यप्राप्ति की इच्छा करने तथा (मन्दिम्) आनन्द बढ़ानेवाला (चक्रये) पुरुषार्थ करने के स्वभाव और (इन्द्राय) परम स्थर्थ होने वाल मनुष्य के लिये (चिक्रम्) शिल्पविद्या से सिद्ध किये हुए साधनों में (एनम्) इन (ईम्) जल और अग्नि को (आसृजत) अति प्रकाशित करो॥२॥

भावार्थ:-विद्वानों की उचित है कि इस संसार में पृथिवी से लेके ईश्वरपर्य्यन्त पदार्थों के विशेषज्ञान उत्तम शिल्प विद्या से सब मनुष्यों को उत्तम-उत्तम क्रिया सिखाकर सब सुखों का प्रकाश करना चाहिये।

अथेन्द्रशब्देनेश्वर उपदिश्यते।

अगले मन्त्र में इन्द्रशब्द से परमेश्वर का प्रकाश किया है-

मुत्स्व सुशिप्र मुन्दिभिः स्तोमेभिर्विश्वचर्षणे।

अष्टक-१। अध्याय-१। वर्ग-१७-१८

मण्डल-१। अनुवाक-३। सूक्त-९

सचैषु सर्वनेष्वा॥३॥

मत्स्वं। सुऽश्<u>रिप्र</u>। मुन्दिऽभिः। स्तोमेभिः। विश्वऽचुर्षुणे। सर्चा। एषु। सर्वनेषु। आ॥३॥

पदार्थ:-(मत्स्व) अस्माभिः स्तुतः सन् सदा हर्षय। द्व्यचोऽतस्तिङ इति दीर्घः। बहुलं छन्द्रस्रीति श्यनो लुक् च। (सुशिप्र) शोभनं शिप्रं ज्ञानं प्रापणं वा यस्य तत्सम्बुद्धौ (मन्दिभिः) वज्ञापकेई र्षकरैश्च गुणैः। (स्तोमेभिः) वेदस्थैः स्तुतियुक्तैस्त्वद्गुणप्रकाशकैः स्तोत्रैः। बहुलं छन्दसीति भिस एस् न। (विश्वचर्षणे) विश्वस्य सर्वस्य जगतश्चर्षणिर्द्रष्टा तत्संबुद्धौ। विश्वचर्षणिरिति पश्चितिकर्मसु पठितम्। निघं०३.११) (सचा) सचन्ति ये ते सचास्तान् सचानस्मान् विदुष् अत्र शसः स्थाने सुणं सुलुगित्याकारादेशः। सचेति पदनामसु पठितम्। (निघं०४.२) अनेन ज्ञानप्रोप्त्यर्थो गृह्यते। (एषु) प्रत्यक्षेषु (सवनेषु) ऐश्वर्य्येषु। सु प्रसवैश्वर्ययोरित्यस्य रूपम्। (आ) समन्तात्॥हा।

अन्वय:-हे विश्वचर्षणे सुशिप्रेन्द्र भगवन्! त्वं मन्दिभः स्तोमेभिः स्तुतः सन्नेषु सवनेषु सचानस्मानामत्स्व समन्ताद्भर्षय॥३॥

भावार्थ:-येन विश्वप्रकाशकः सूर्य्य उत्पादितस्तत्स्तुती ये मनुष्याः कृतिनष्ठा धार्मिकाः पुरुषार्थिनो भूत्वा सर्वथा सर्वद्रष्टारं परमेश्वरं ज्ञात्वा सर्वेश्वर्यस्योत्पादने सद्भाणे च समवेता भूत्वा सुखकारिणो भवन्तीति॥३॥

पदार्थ:-हे (विश्वचर्षणे) सब संसार के देखने तथा (सुशिप्र) श्रेष्ठज्ञानयुक्त परमेश्वर! आप (मन्दिभि:) जो विज्ञान वा आनन्द के करनेवाले (स्तोमेशि:) वेदोक्त स्तुतिरूप गुणप्रकाश करनेहारे स्तोत्र हैं, उनसे स्तुति को प्राप्त होकर (एषु) हम (त्यक्ष (सवनेषु) ऐश्वर्य देनेवाले पदार्थों में हम लोगों को (सचा) युक्त करके (मत्स्व) अच्छे प्रकार आपन्तित कीजिये॥३॥

भावार्थ:-जिसने संसार के प्रकाश करनेवाले सूर्य्य को उत्पन्न किया है, उसकी स्तुति करने में जो श्रेष्ठ पुरुष एकाग्रचित्त हैं, अपूर्ण सबको देखनेवाले परमेश्वर को जानकर सब प्रकार से धार्मिक और पुरुषार्थी होकर सब ऐश्वर्य्य को उत्पन्न और उस की रक्षा करने में मिलकर रहते हैं, वे ही सब सुखों को प्राप्त होने के योग्य वा आरों की भी उत्तम-उत्तम सुखों के देनेवाले हो सकते हैं॥३॥

पुनस्सोऽर्थ उपदिश्यते।

े फिर भी अगले मन्त्र में ईश्वर का प्रकाश किया है-

असूत्रिमिन्ह ते गिर्ः प्रति त्वामुदंहासत।

अजीषा वृष्भं पतिम्॥४॥

अर्थुप्रम्। इन्द्र। ते। गिर्रः। प्रति। त्वाम्। उत्। अहासुत्। अजीषा:। वृष्धभम्। पर्तिम्॥४॥

पदार्थ:-(असृत्रम्) सृजामि विविधतया वर्णयामि। बहुलं छन्दिस। (अष्टा०७.१.८) अनेन 'सृज' धातोरुडागमः। वर्णव्यत्ययेन जकारस्थाने गकारः, लडर्थे लङ् च। (इन्द्र) सर्वथा स्तोतव्य! (ते) तव (गिरः) वेदवाण्यः (प्रति) इन्द्रियागोचरेऽर्थे। प्रतीत्यैतस्य प्रातिलोम्यं प्राह। (निरु०१.३) (त्वाम्) वेदवक्तारं परमेश्वरम् (उदहासत) उत्कृष्टतया ज्ञापयन्ति। अत्र ओहाङ् गतावित्यस्मिरेलडर्थे लुङ्। (अजोषाः) जुषसे। अत्र छन्दस्युभयथेत्यार्धधातुकसंज्ञाश्रयाल्लघूपधगुणः। छान्दस्रे वर्णाकोपो वेति थासस्थकारस्य लोपेनेदं सिध्यति। (वृषभम्) सर्वाभीष्टवर्षकम् (पितम्) पालकम्॥ अर्

अन्वय:-हे इन्द्र परमेश्वर! यास्ते तव गिरो वृषभं पतिं त्वामुदहासत व्यस्त्वमेजोषाः सर्वां विद्या जुषसे ताभिरहमपि प्रतीत्थंभूतं वृषभं पतिं त्वामसृग्रं सृजामि॥४॥

भावार्थः-येनेश्वरेण स्वप्रकाशितेन वेदेन यादृशानि स्वस्वभावगुणकर्माणि प्रकाशितानि तान्यस्मिभस्तथैव वेद्यानि सन्ति। कुतः, ईश्वरस्यानन्तसत्यस्वभावगुणकर्मवित्त्वादल्पज्ञैरस्माभिर्जीवैः स्वसामर्थ्येन तानि ज्ञातुमशक्यत्वात्। यथा स्वयं स्वस्वभावगुणकर्माणि जानाति तथाऽन्यैर्यथावज्ज्ञातुमज्ञक्यानि भवन्ति। अतः सर्वैविद्विद्धिवेदवाण्येवश्वराद्धः पदार्थाः सम्प्रीत्या पुरुषार्थेन च वेदितव्याः सन्ति, तेभ्य उपकारग्रहणं चेति। स एवेश्वर ह्रष्टः ग्राह्मकृष्ट्यं मन्तव्य इति॥४॥

पदार्थ:-(इन्द्र) हे परमेश्वर! जो (ते) आपकी (गिर:) बेह्नवाणी हैं, वे (वृषभम्) सब से उत्तम सब की इच्छा पूर्ण करनेवाले (पतिम्) सब के पालन करनेहारे (त्वाम्) वेदों के वक्ता आप को (उदहासत) उत्तमता के साथ जनाती हैं, और जिन घेद्राभूणयों को आप (अजोषा:) सेवन करते हो, उन्हीं से मैं भी (प्रति) उक्त गुणयुक्त आपको (असूर्यम्) अनेक प्रकार से वर्णन करता हूँ॥४॥

भावार्थ:-जिस ईश्वर ने प्रकाश किये हुए वैद्यों से जैसे अपने-अपने स्वभाव गुण और कर्म प्रकट किये हैं, वैसे ही वे सब लोगों को जानने योग्य हैं, क्योंकि ईश्वर के सत्य स्वभाव के साथ अनन्तगुण और कर्म हैं, उनको हम अल्पज्ञ लोग अपने सामर्थ्य से जानने को समर्थ नहीं हो सकते। तथा जैसे हम लोग अपने-अपने स्वभाव गुम्म और कर्मों को जानते हैं, वैसे औरों को उनका यथावत् जानना कठिन होता है, इसी प्रकार सब विद्वान् पनुष्ट्रों को वेदवाणी के विना ईश्वर आदि पदार्थों को यथावत् जानना कठिन है। इसलिये प्रयत्न से विद्वां की जान के उन के द्वारा सब पदार्थों से उपकार लेना तथा उसी ईश्वर को अपना इष्टदेव और पालन करनेहारा मानना चाहिये॥४॥

तस्योपासनेन किं लभ्यते, इत्युपदिश्यते।

इशर की उपासना से क्या लाभ होता है, सो अगले मन्त्र में प्रकाश किया है-

र्ग चोंद्रय चित्रमुर्वाग्रार्ध इन्द्र वरेण्यम्।

असुदित्ते विभु प्रभु॥५॥१७॥

सम्। चोद्रयः। चित्रम्। अर्वाक्। रार्धः। इन्द्रः। वरेण्यम्। असेत्। इत्। ते। विऽभु। प्रऽभु॥५॥

अष्टक-१। अध्याय-१। वर्ग-१७-१८

मण्डल-१। अनुवाक-३। सूक्त-९

अन्वय:-हे इन्द्र! ते तव सृष्टौ यद्यद्वरेण्यं विभु प्रभु चित्रं राधोऽसत् तत्तत्कृपयाऽर्वागस्मदाभिमुख्याय सञ्चोदय॥५॥

भावार्थ:-मनुष्यैरीश्वरानुग्रहेण स्वपुरुषार्थेन च सर्वस्थात्मशरीरसुखाय विद्येश्वर्ययोः प्राप्तिरक्षणोन्नतिसन्मार्गदानानि सदैव संसेव्यानि, यतो दारिद्रचालस्यप्रभावदुःखाभावेन दिव्या भोगाः सततं वर्धेरन्निति॥५॥

सप्तदशो वर्गः समृत्वः।

पदार्थ: -हे (इन्द्र) करुणामय सब सुखों के देनेबाल प्रामेश्वर! (ते) आपकी सृष्टि में जो-जो (वरेण्यम्) अतिश्रेष्ठ (विभु) उत्तम-उत्तम पदार्थों हि पूर्ण (प्रभु) बड़े-बड़े प्रभावों का हेतु (चित्रम्) जिससे श्रेष्ठ विद्या चक्रवर्ति राज्य से सिद्ध होने हिला मिण सुवर्ण और हाथी आदि अच्छे-अच्छे अद्भुत पदार्थ होते हैं, ऐसा (राध:) धन (असत्) हो, सो-सो कृपा करके हम लोगों के लिये (सञ्चोदय) प्रेरणा करके प्राप्त कीजिये॥५॥

भावार्थ:-मनुष्यों को ईश्वर के अनुग्रह और अपने पुरुषार्थ से आत्मा और शरीर के सुख के लिये विद्या और ऐश्वर्य्य की प्राप्ति वा उनकी रक्षा और उन्नित तथा सत्यमार्ग वा उत्तम दानादि धर्म अच्छी प्रकार से सदैव सेवन करना चहिये, जिससे दारिद्र्य और आलस्य से उत्पन्न होनेवाले दु:खों का नाश होकर अच्छे-अच्छे भोग करमें बोग्य प्रदार्थों की वृद्धि होती रहे॥५॥

¹यह सत्रहवां वर्ग समाप्त हुआ॥ कथंभुतानस्मान्कुर्वित्युपदिश्यते।

अन्तर्यार्मी ईश्वर हम् जोगों को कैसे-कैसे कामों में प्रेरणा करे, इस विषय का अगले मन्त्र में

प्रकाश किया है-

अस्मान्सु तत्र चोद्येन्द्रं गुये रभस्वतः।

तुर्विद्युम्न यशस्वतः॥६॥

ञुस्मान्। सु। तत्रं। चोदुय्। इन्द्रं। गुये। रभस्वत:। तुर्विऽद्युम्न। यशस्वत:॥६॥

पदार्थ:-(अस्मान्) विदुषो धार्मिकान् मनुष्यान् (सु) शोभनार्थे क्रियायोगे च (तत्र) पूर्वोक्ते पुरुषार्थे (चोदय) प्रेरय (इन्द्र) अन्तर्यामिन्नीश्वर! (राये) धनाय (रभस्वतः) कार्य्यारम्भं कुर्वत् आलस्यरहितान् पुरुषार्थिनः (तुविद्युम्न) बहुविधं द्युम्नं विद्याद्यनन्तं धनं यस्य तत्सम्बुद्धौ द्युम्मिनि धननामसु पठितम्। (निघं०२.१०) तुवीति बहुनामसु च। (निघं०३.१) (यशस्वनः) यशोविद्याधर्मसर्वोपकाराख्या प्रशंसा विद्यते येषां तान्। अत्र प्रशंसार्थे मतुप्॥६॥

अन्वयः-हे तुविद्युम्नेन्द्र परात्मँस्त्वं रभस्वतो यशस्वतोऽस्मान् तम् पुरुषार्थे राये उत्कृष्टधनप्राप्त्यर्थे सुचोदय॥६॥

भावार्थ:-अस्यां सृष्टौ परमेश्वराज्ञायां च वर्तमात्रैः पुरुषार्थिभिर्यशस्विभिः सर्वेर्मनुष्यैर्विद्याराज्यश्रीप्राप्त्यर्थे सदैव प्रयत्नः कर्त्तव्य नैतादृशैर्विनैताः श्रियो लक्ष्युं मक्याः। कृतः, ईश्वरेण पुरुषार्थिभ्य एव सर्वसुखप्राप्तेर्निर्मत्तत्वात्॥६॥

पदार्थ: -हे (तुविद्युम्न) अत्यन्त विद्यादिधनयुक्त (इन्ह्र) अन्त्योमी ईश्वर! (रभस्वतः) जो आलस्य को छोड़ के कार्थ्यों के आरम्भ करने (यशस्वतः) सिकीर्तिपहिल (अस्मान्) हम लोग पुरुषार्थी विद्या धर्म और सर्वोपकार से नित्य प्रयत्न करनेवाले मनुर्ध्यों को (त्रश्र) श्रेष्ठ पुरुषार्थ में (राये) उत्तम- उत्तम धन की प्राप्ति के लिये (सुचोदय) अच्छी प्रकार युक्त किजिये॥६॥

भावार्थ:-सब मनुष्यों को उचित है कि इस्म पृष्टि में पर्मेश्वर की आज्ञा के अनुकूल वर्तमान तथा पुरुषार्थी और यशस्वी होकर विद्या तथा राज्यलामी की प्रार्थित के लिये सदैव उपाय करें। इसी से उक्त गुणवाले पुरुषों ही को लक्ष्मी से सब प्रकार का सुख मिलता है, क्योंकि ईश्वर ने पुरुषार्थी सज्जनों ही के लिये सुख रचे हैं॥६॥

पुने कीदृशं तद्धनमित्युपदिश्यते।

फिर भी उक्त धू<mark>र कैसा है, इ</mark>स विषय को अगले मन्त्र में प्रकाश किया है-

सं गोमंदिन्द्र वाजंबद्दस्स पृथु श्रवो बृहत्।

विश्वायुर्धेहाक्षित्रम्भूष्ण

सम्। गोऽमत्। इन्द्र। बाजे वत्। अस्मेऽइति। पृथु। श्रवी:। बृहत्। विश्वऽआयु:। धेहि। अक्षितम्॥७॥

पदार्थ: (मम्) सप्यगर्थे क्रियायोगे। सिमत्येकीभावं प्राह। (निरु०१.३) (गोमत्) गौः प्रशस्ता वाक् गावः स्त्रीतारश्च विद्यन्ते यस्मिस्तत्। अत्र प्रशंसार्थे मतुप्। (इन्द्र) अनन्तविद्येश्वर! (वाजवत्) वाजो बहुविधं भ्रोधतव्यभित्रमस्त्यस्मिन् तत्। वाज इत्यन्नामसु पठितम्। (निघं०२.७) अत्र भूम्न्यर्थे मतुप्। (अस्मे) अस्यभ्यम्। अत्र सुपां सुलुगिति शेआदेशः। (पृथु) नानाविद्यासु विस्तीर्णम्। (श्रवः) शृण्वन्त्येका विद्याः सुवर्णादि च धनं यस्मिस्तत्। श्रव इति धननामसु पठितम्। (निघं०२.१०) (वृहत्) अनेकैः

अष्टक-१। अध्याय-१। वर्ग-१७-१८

मण्डल-१। अनुवाक-३। सूक्त-९

शुभगुणैभींगैश्च महत् (विश्वायु:) विश्वं शतवार्षिकमधिकं वा आयुर्यस्मात्तत् (धेहि) संयोजय (अक्षितम्) यत्र कदाचित् क्षीयते सदैव वर्धमानं तत्॥७॥

अन्वय:-हे इन्द्र जगदीश्वर! त्वमस्मे अस्मभ्यं गोमत् वाजवत् पृथु बृहत् विश्वासूरक्षिति श्रवः संधेहि॥७॥

भावार्थ:-मनुष्यैर्ब्रह्मचर्य्येण विषयलोलुपतात्यागेन भोजनिक्शदनादिसुनियमैश्च विद्याचक्रवर्त्तिश्रीयोगेन समग्रस्यायुषो भोगार्थं संधेयम्। यत ऐहिकं पारमार्थिकं व्यक्तिः। न ह्येतत् केवलमीश्वरस्य प्रार्थनयैव भवितुमर्हति, किन्तु विविधपुरुषार्श्वमेश्चं वर्त्तत एतत्॥७॥

पदार्थ:-हे (इन्द्र) अनन्त विद्यायुक्त सब को धारण करनेहारे ईखर आप अस्मे) हमारे लिये (गोमत्) जो धन श्रेष्ठ वाणी और अच्छे-अच्छे उत्तम पुरुषों को प्राप्त कराने (वाजवत्) नाना प्रकार के अन्न आदि पदार्थों को प्राप्त कराने वा (विश्वायु:) पूर्ण सौ वर्ष मा अधिक आयु को बढ़ाने (पृथु) अति विस्तृत (वृहत्) अनेक शुभगुणों से प्रसिद्ध अत्यन्त बड़ा (अश्वितम्) प्रतिदिन बढ़नेवाला (श्रव:) जिसमें अनेक प्रकार की विद्या वा सुवर्ण आदि धन सुनने में आता है उस धन को (संधेहि) अच्छे प्रकार नित्य के लिये दीजिये॥७॥

भावार्थ:-मनुष्यों को चाहिये कि ब्रह्मचर्य्य की धारण, विषयों की लंपटता का त्याग, भोजन आदि व्यवहारों के श्रेष्ठ नियमों से विद्या और स्क्रिकित राज्य की लक्ष्मी को सिद्ध करके सम्पूर्ण आयु भोगने के लिये पूर्वोक्त धन के जोड़ने की इच्छा अपने पुरुषार्थ द्वारा करें कि जिससे इस संसार का वा परमार्थ का दृढ़ और विशाल अर्थात् अतिश्वष्ठ सुख मदेव बना रहे, परन्तु यह उक्त सुख केवल ईश्वर की प्रार्थना से ही नहीं मिल सकता, किन्तु उसकी प्राप्ति के लिये पूर्ण पुरुषार्थ भी करना अवश्य उचित है॥७॥

पुनः के दृशं तदित्युपदिश्यते।

फिर भी पूर्वोक्त धन कैसा होना चाहिये, इस विषय का प्रकाश अगले मन्त्र में किया है-

अस्मे धेहि श्रवी बृहद् द्युम्नं सहस्रसार्तमम्।

इन्द्र ता रूथिनीरिषः ॥ ८॥

अस्मे इति। श्रेहि। श्रवः। बृहत्। द्युम्नम्। सहस्रुऽसार्तमम्। इन्द्रं। ताः। र्थिनीः। इषः॥८॥

पत्रर्थ:-(अस्म) अस्मभ्यम्। अत्र सुपां सुलुगिति शेआदेश:। (धेहि) प्रयच्छ (श्रव:) पूर्वोक्तम् (बृहत्) उपबृहितम् (द्युम्नम्) प्रकाशमयं ज्ञानम् (सहस्रसातमम्) सहस्रमसंख्यातं सुखं सनुते ददाति येन तद्विशियतस्। जनसनखनक्रमगमो विट्। (अष्टा०३.२.६७) अनेन सहस्रोपपदात्सनोतेर्विट्। बिद्वनोस्नुनासिकस्यात्। (अष्टा०६.४.४१) अनेन नकारस्याकारादेश:, ततस्तमप्। (इन्द्र)

महाबलयुक्तेश्वर! (ता:) पूर्वोक्ताः (रिश्वनी:) बहवो रमणसाधका रथा विद्यन्ते यासु ता:। अत्र भूम्न्यर्थे इनिः, सुपां सुलुगिति पूर्वसवर्णादेशश्च। (इषः) इष्यन्ते यास्ताः सेनाः। अत्र कृतो बहुलिमिति वार्तिकेन् कर्मणि क्विप्॥८॥

अन्वय:-हे इन्द्र! त्वमस्मे सहस्रसातमं बृहद् द्युम्नं श्रवो रथिनीरिषश्च धेहि॥८॥

भावार्थ:-हे जगदीश्वर! भवत्कृपयात्यन्तपुरुषार्थेन च येन धनेन बहुसुखसाधिकाः पृतने प्राप्यन्ते तदस्मासु नित्यं स्थापय॥८॥

पदार्थ: -हे (इन्द्र) अत्यन्तबलयुक्त ईश्वर! आप (अस्मे) हमारे लिये (सहस्रसातमम्) असंख्यात सुखों का मूल (बृहत्) नित्य वृद्धि को प्राप्त होने योग्य (द्युम्नम्) प्रकाशास्त्र ज्ञान तथा (श्रवः) पूर्वोक्त धन और (रिथनीरिषः) अनेक रथ आदि साधनसिहत सेनाओं को (बेहि) अच्छे प्रकार दीजिये॥८॥

भावार्थ:-हे जगदीश्वर! आप कृपा करके जो अत्यन्त पुरुषार्थ के साधार्जिस धन कर के बहुत से सुखों को सिद्ध करनेवाली सेना प्राप्त होती है, उसको हम लोगों मिन्य स्थापन कीजिये॥८॥

अथायिमन्द्र: कीदृश इन्द्र इत्युपिदिश्यते। फिर भी यह इन्द्र कैसा है, सो अगले पन्त्री में प्रकाश किया है-

वसोरिन्द्रं वसुपति गीर्भिर्गृणन्ते ऋग्मियम्

होम् गन्तरिमूतये॥९॥

वसो:। इन्द्रम्। वसुंऽपतिम्। गीःऽभिः। गृष्यन्तः। ऋग्मियम्। होमं। गन्तरिम्। कृतये॥९॥

अन्वय:-भीभिगणन्तो वयं वसुपतिमृग्मियं गन्तारमिन्द्रं वसोरूतये होम॥९॥

भावार्थ:-सर्वेर्मनुष्यै: सर्वजगत्स्वामिनो वेदप्रकाशकस्य सर्वत्र व्यापकस्येन्द्रस्य परस्थिरस्यैन्धरत्वेन स्तुति: कार्य्या। तथेश्वरस्य न्यायकरणत्वादिगुणानां स्पर्धा पुरुषार्थेन सर्वथोत्कृष्टान् विद्याराज्यश्चियादिपदार्थान् प्राप्य रक्षोन्नती च सदैव कार्य्ये इति॥९॥

अष्टक-१। अध्याय-१। वर्ग-१७-१८

मण्डल-१। अनुवाक-३। सूक्त-९

पदार्थ:-(गीर्भि:) वेदवाणी से (गृणन्त:) स्तुति करते हुए हम लोग (वसुपितम्) अग्नि, पृथिवी, वायु, अन्तिरक्ष, आदित्यलोक, द्यौ अर्थात् प्रकाशमान लोक, चन्द्रलोक और नक्षत्र अर्थात् जिन्ते तारे दीखते हैं, इन सब का नाम वसु है, क्योंकि ये ही निवास के स्थान हैं, इनका पित स्व्यूमी और रक्षक (ऋग्मियम्) वेद मन्त्रों के प्रकाश करनेहारे (गन्तारम्) सब का अन्तर्यामी अर्थात् अपूर्वा व्यूपित से सब जगह प्राप्त होने तथा (इन्द्रम्) सब के धारण करनेवाले परमेश्वर को (वसो:) संस्थार में सुख के साथ वास कराने का हेतु जो विद्या आदि धन है, उसकी (ऊतये) प्राप्ति और रक्ष्म के लिये (होम) प्रार्थना करते हैं॥९॥

भावार्थ:-सब मनुष्यों को उचित है कि जो ईश्वरपन का निम्ति, सिंसार का स्वामी, सर्वत्र व्यापक इन्द्र परमेश्वर है, उसकी प्रार्थना और ईश्वर के न्याय आदि गुण्नों की प्रशंस्त्र पुरुषार्थ के साथ सब प्रकार से अतिश्रेष्ठ विद्या राज्यलक्ष्मी आदि पदार्थों को प्राप्त होकर उनकी उन्नित और रक्षा सदा करें॥९॥

पुन: कस्मै प्रयोजनायेत्युपिक्श्यते।

किस प्रयोजन के लिये परमेश्वर की प्रार्थना करनी चाहिन, सो अगुले मन्त्र में प्रकाश किया है-

सुतेसुते न्योंकसे बृहद् बृहत एद्रिः। इन्द्राय श्रूषिचिति। १०॥ १८॥

सुतेऽसुते। निऽओकसे। बृहत्। बृहते। आ। इत्। अरिः। इन्ह्राय। शूषम्। अर्चृति॥ १०॥

पदार्थ:-(सुतेसुते) उत्पन्न उत्पन्ने (न्योक्से) निष्ट्वितानि ओकांसि स्थानानि येन तस्मै। ओक इति निवासनामोच्यते। (निरु०३.३) (बृहत्) सर्विश्व कृद्धम् (बृहते) सर्वीत्कृष्टगुणैर्महते व्यापकाय (आ) समन्तात् (इत्) अपि (अरि:) ऋच्छिति गृह्वीत्यन्योयन सुखानि च यः। अच इः। (उणा०४.१३९) इत्येनन ऋधातोरौणादिक इः प्रत्ययः (इन्द्राय) प्रमेश्वराय (श्रूषम्) बलं सुखं च। श्रूषमिति बलनामसु पठितम्। (निघं०२.९) सुखनामसु चा (मिघं०३.६) (अर्चित) समर्पयित॥१०॥

अन्वय:-योऽरिरिदिपि मन्ष्य: सुतेसुते बृहते न्योकस इन्द्राय स्वकीयं बृहत् शूषमार्चित समर्प्पयति भाग्यशाली भवति॥१०॥

भावार्थ:-यदिमं प्रतिवस्तुत्रीपकं मङ्गलमयमनुपमं परमेश्वरं प्रति कश्चित्कस्यचिच्छुत्रुरिप मनुष्यः स्वाभिमानं त्यक्त्वा नम्रो भक्ति, तिर्हं ये तदाज्ञाख्यं धर्मं तदुपासनानुष्ठं चाचरन्ति त एव महागुणैर्महान्तो भूत्वा सर्वैः पूज्या नम्राः कथं न भवेयुः ? य ईश्वरोपासका धार्मिका पुरुषार्थिनः सर्वोपकारका विद्वांसो मनुष्या भवन्ति, त एव विद्यासुखं चक्रवर्त्तिराज्यानन्दं प्राप्नुवन्ति, नातो विपरीता इति॥१०॥

अत्रेन्द्रशब्दोर्धवर्णनेनोत्कृष्टधनादिप्राप्त्यर्थमीश्वरप्रार्थनापुरुषार्थकरणाज्ञाप्रतिपादनं चास्त्यत एतस्य नवम्भूक्तार्शस्याष्ट्रमसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति बोध्यम्।

इदमपि सूक्तं सायणाचार्य्यादिभिरार्य्यावर्त्तवासिभिर्यूरोपवासिभिरध्यापकविलसनाख्यादिभिरचे मिथ्यैव व्याख्यातम्॥

इति नवमं सूक्तमष्टादशश्च वर्गः समाप्तः॥

पदार्थ:-जो (अरि:) सब श्रेष्ठ गुण और उत्तम सुखों को प्राप्त होनेवाला बिद्धान् मृतुष्य (सुतेसुते) उत्पन्न-उत्पन्न हुए सब पदार्थों में (बृहते) सम्पूर्ण श्रेष्ठ गुणों में महान् सब में व्याप्त (न्योकसे) निश्चित जिसके निवासस्थान हैं, (इत्) उसी (इन्द्राय) परमेश्वर के लिये अपने (बृहत्) सब प्रकार से बढ़े हुए (श्रूषम्) बल और सुख को (आ) अच्छी प्रकार (अर्चित) समर्पण करता है, बही बलवान् होता है॥१०॥

भावार्थ:-जब शत्रु भी मनुष्य सब में व्यापक मङ्गलमय उपमारित परमेश्वर के प्रति नम्र होता है, तो जो ईश्वर की आज्ञा और उसकी उपासना में वर्तमान मनुष्य है, वे ईश्वर के लिये नम्र क्यों न हों? जो ऐसे हैं वे ही बड़े-बड़े गुणों से महात्मा होकर सब से सत्कार किये जाने के योग्य होते, और वे ही विद्या और चक्रवर्ति राज्य के आनन्द को प्राप्त होते हैं। जो कि उनसे विपरीत हैं, वे उस आनन्द को कभी नहीं प्राप्त हो सकते॥१०॥

इस सूक्त में इन्द्र शब्द के अर्थ के वर्णन, उत्तम धन आदि की प्राप्ति के अर्थ ईश्वर की प्रार्थना और अपने पुरुषार्थ करने की आज्ञा के प्रविशादन करने से इस नवमे सूक्त के अर्थ की सङ्गिति आठवें सूक्त के अर्थ के साथ मिलती है, ऐसा समझना चाहिये।

इस सूक्त का भी अर्थ सायणाचार्य्य आदि अर्ज्यूवर्तवासियों तथा विलसन आदि अङ्गरेज लोगों ने सर्वथा मूल से विरुद्ध वर्णन किया है॥

यह नवमा सुक्त और अठारहवां वर्ग पूरा हुआ॥

अथ द्वादशर्चस्य दशमस्य सूक्तस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। इन्द्रो देवता। १-३, ५-६ विराडनुष्टुप्; ४ भुरिगुष्णिक्; ७, ९-१२ अनुष्टुप्; ८ निचृदनुष्टुप् छन्दः। १-३, ५-१२ गास्थारः; ४

ऋषभ: स्वर:॥

तत्र के कथं तिमन्द्रं पूजयन्तीत्युपदिश्यते।

अब दशम सूक्त का आरम्भ किया जाता है। इस सूक्त के प्रथम मन्त्र में इस बात का प्रकाश किया है कि कौन-कौन पुरुष किस-किस प्रकार से इन्द्रसंज्ञक परमेश्वर का पूर्व करते हैं-

गायन्ति त्वा गायत्रिणोऽर्चन्त्युर्कमुर्किणः।

ब्रह्मार्णस्त्वा शतक्रत उद्वंशर्मिव येमिरे॥ १॥

गार्यन्ति। त्वा। गायत्रिणः। अर्चन्ति। अर्कम्। अर्किणः। ब्रह्माणेश त्वा। श्रुत्कृतोइति शतक्रतो। उत्। वंशंऽइंव। ये<u>पिरे</u>॥ १॥

पदार्थ:-(गायन्ति) सामवेदादिगानेन प्रशंसन्ति (त्वा) त्वां गेये अगदीश्वरमिन्द्रम् (गायत्रिणः) गायत्राणि प्रशस्तानि छन्दांस्यधीतानि विद्यन्ते येषां ते धार्मिका ईश्वरेपासकाः। अत्र प्रशंसायामिनिः। (अर्चन्ति) नित्यं पूजयन्ति (अर्कम्) अर्च्यते पूज्यते सर्वेजियस्तिप् (अर्किणः) अर्का मन्त्रा ज्ञानसाधना येषां ते (ब्रह्माणः) वेदान् विदित्वा क्रियावन्तः (व्या) जगल्यष्टारम् (शतक्रतो) शतं बहूनि कर्माणि प्रज्ञानानि वा यस्य तत्सम्बुद्धौ (तत्) उत्कृष्टार्थे। इदित्यत्योः प्रातिलोम्यं प्राह। (निरु०१.३) (वंशमिव) यथोत्कृष्टैर्गुणैः शिक्षणैश्च स्वकीयं वंशमुद्यमवन्ति कुर्वन्ति प्रथा (येमिरे) उद्युञ्जन्ति॥१॥

निरुक्तकार इमं मन्त्रमेवं व्याख्यातवान-ग्रायन्ति त्वा गायत्रिणः प्रार्चन्ति तेऽर्कमर्किणो ब्रह्माणस्त्वा शतक्रत उद्योमिरे वंशमिव्य (निरु०५) अन्यच्च। अर्को देवो भवति यदेनमर्चन्त्यर्को मन्त्रो भवति यदेनमर्चन्त्यर्को मृतो भवति यदेनमर्चन्त्यर्को पृतो स्वृतः कटुकिम्ना। (निरु०५.४)॥१॥

अन्वय:-हे शतक्रतोः क्रह्माणः स्वकीयं वंशमुद्येमिरे इव गायत्रिणस्त्वां गायन्ति, अर्किणोऽर्कं त्वामर्चन्ति॥१॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार: प्रियं सर्वेर्मनुष्यैः परमेश्वरस्यैव पूजा कार्य्या, अर्थात्तदाज्ञायां सदा वर्त्तितव्यम्, वेदविद्यामप्यधीत्य सम्यग्विदित्वोपदेशेनोत्कृष्टैर्गुणैः सह मनुष्यवंश उद्यमवान् क्रियते, तथैव स्वैरिप भवितव्यम्। नेदं फलं परमेश्वरं विहायान्यपूजकः प्राप्तुमर्हित। कुतः, ईश्वरस्याज्ञाभावेन तत्सदृशस्यान्यवस्तुनो ह्यविद्यामानत्वात्, तस्मात् तस्यैव गानमर्चनं च कर्त्तव्यमिति॥१॥

पद्रार्थ:-हे (शतक्रतो) असंख्यात कर्म और उत्तम ज्ञानयुक्त परमेश्वर! (ब्रह्माण:) जैसे वेदों को पढ़कर उत्तम-उत्तम क्रिया करनेवाले मनुष्य श्रेष्ठ उपदेश, गुण और अच्छी-अच्छी शिक्षाओं से (वंशम्) अपूर्व वंश को (उद्योमिरे) प्रशस्त गुणयुक्त करके उद्यमवान् करते हैं, वैसे ही (गायत्रिण:) जिन्हों के प्रायत्र अर्थात् प्रशंसा करने योग्य छन्दराग आदि पढ़े हुए धार्मिक और ईश्वर की उपासना करनेवाले हैं, वे

पुरुष (त्वा) आपकी (गायन्ति) सामवेदादि के गानों से प्रशंसा करते हैं, तथा (अर्किण:) अर्क अर्थात् जी कि वेद के मन्त्र पढ़ने के नित्य अभ्यासी हैं, वे (अर्कम्) सब मनुष्यों को पूजने योग्य (त्वा) आपका (अर्चन्ति) नित्य पूजन करते हैं॥१॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे सब मनुष्यों को परमेश्वर ही की पूजी करनी चाहिये अर्थात् उसकी आज्ञा के अनुकूल वेदविद्या को पढ़कर अच्छे-अच्छे गुणों के साथ अपने और अन्यों के वंश को भी पुरुषार्थी करते हैं, वैसे ही अपने आप को भी होना चाहिये। और जी परमेश्वर के सिवाय दूसरे का पूजन करनेवाला पुरुष है, वह कभी उत्तम फल को प्राप्त होने योग्य वहीं हो सकता, क्योंकि न तो ईश्वर की ऐसी आज्ञा ही है, और न ईश्वर के समान कोई दूसरा पदार्थ है कि जिसका उसके स्थान में पूजन किया जावे। इससे सब मनुष्यों को उचित है कि परमेश्वर ही का ग्राम और पूजन करें॥१॥

पुन: स कथं वेदितव्य इत्युपदिश्यते

फिर भी ईश्वर को कैसे जाने, सो अगले मन्त्र 🛉 प्रकाश किया है-

यत्सानोः सानुमार्रुहद् भूर्यस्पष्ट् कर्त्वम्। तदिन्द्रो अर्थं चेतति यूथेनं वृष्णिरेजित॥२॥

यत्। सानोः। सानुम्। आ। अर्रुहत्। भूरि। अस्पष्ट। कर्त्वम्। तत्। इन्द्रः। अर्थम्। चेतुति। यूथेने। वृष्णिः। एजुति॥२॥

पदार्थ:-(यत्) यस्मात् (सानोः) पर्यतस्य शिख्यरात् संविभागात्कर्मणः सिद्धेर्वा। दृसनिजनि० (उणा०१.३) अनेन सनेर्जुण्प्रत्ययः। अथवा 'षोऽनुक्रमिणि' इत्यस्माद् बाहुलकान्नुः। (सानुम्) यथोक्तं त्रिविधमर्थम् (आ) धात्वर्थे (अरुहत्) रहिति। अत्र लड्थें लङ्। विकरणव्यत्ययेन शपः स्थाने शः। (भूरि) बहु। भूरीति बहुनामसु प्रतिम् (निघ०३.१) अदिसदिभू० (उणा०४.६६) अनेन भूधातोः कितन् प्रत्ययः। (अस्पष्ट) स्पश्ते। अत्र लर्ड्थें लङ् बहुलं छन्दसीति शपो लुक्। (कर्त्वम्) कर्तुं योग्यं कार्य्यम्। अत्र करोतेस्त्वन् प्रत्ययः। (तत्) तस्मात् (इन्द्रः) सर्वज्ञ ईश्वरः (अर्थम्) अर्तुं ज्ञातुं प्राप्तुं गुणं द्रव्यं वा। उषिकुषिगार्तिश्वः स्थन्। (उणा०२.४) अनेनार्तेः स्थन् प्रत्ययः। (चेतित) संज्ञापयित प्रकाशयित वा। अत्रान्तातो ण्यर्थः। (यूथेन) सुखप्रापकपदार्थसमूहेनाथवा वायुगणेन सह। तिथपृष्ठगूथयूथप्रोध्यः। (उणा०२.१२) अनेन यूथशब्दो निपातितः। (वृष्णिः) वर्षति सुखानि वर्षयित वा। सृवृष्णिश्वां कित्राः (उणा०४.५१) अनेन वृषधातोर्तिः प्रत्ययः स च कित्। (एजित) कम्पते॥२॥

अन्वय:-सूथेन वायुगणेन सह वृष्णिः सूर्य्यिकरणसमूहः सानोः सानुं भूर्यारुहत् स्पशते राजित चलित व्यालयितं वा, यो मनुष्यो यत्सानोः सानुं कर्मणः कर्मत्वं भूर्यारुहत्, अस्पष्टैजित तस्मै इन्द्रः परमृतिमा तत्त्रस्मात् सानोः सानुमर्थं भूरि चेतित ज्ञापयित॥२॥ अष्टक-१। अध्याय-१। वर्ग-१९-२०

मण्डल-१। अनुवाक-३। सूक्त-१०

भावार्थः-इवशब्दानुवृत्त्याऽत्राप्युपमालङ्कारः। यथा सूर्य्यः सन्मुखस्थान् वायुना सह पुनः पुनः क्रमेणात्यन्तमाक्रम्याकर्ष्य प्रकाश्य भ्रामयित, तथैव यो मनुष्यो विद्यया कर्त्तव्यानि बहूनि कर्माण निरन्तां सम्पादियतुं प्रवर्त्तते, स एव साधनसमूहेन सर्वाणि कार्य्याणि साधितुं शक्नोति। अस्यामी सर्मृष्टावेवंभूतो मनुष्यः सुखानि प्राप्नोति। ईश्वरोऽपि तमेवानुगृह्णति॥२॥

पदार्थ:-जैसे (यूथेन) वायुगण अथवा सुख के साधन हेतु पदार्थों के साथ (वृष्णिर) वर्षा करनेवाला सूर्य्य अपने प्रकाश करके (सानोः) पर्वत के एक शिखर से (सानुमू/ दूसरे शिखर की (भूरि) बहुधा (आरुहत्) प्राप्त होता (अस्पष्ट) स्पर्श करता हुआ (एजित) क्रम से अपनी कक्षा में घूमता और घुमाता है, वैसे ही जो मनुष्य क्रम से एक कर्म को सिद्ध करके दूसरे की (कर्न्स्म) करने को (भूरि) बहुधा (आरुहत्) आरम्भ तथा (अस्पष्ट) स्पर्श करता हुआ (एजित) प्रप्त होता है, उस पुरुष के लिये (इन्द्रः) सर्वज्ञ ईश्वर उन कर्मों के करने को (सानोः) अनुक्रम से (अर्थम) प्रयोजन के विभाग के साथ (भूरि) अच्छी प्रकार (चेतित) प्रकाश करता है॥२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में भी 'इव' शब्द की अनुवृद्धि उपमानु द्वार समझना चाहिये। जैसे सूर्य अपने सम्मुख के पदार्थों को वायु के साथ वारंवार क्रम से अच्छी प्रकार आक्रमण, आकर्षण और प्रकाश करके सब पृथिवी लोकों को घुमाता है, वैसे ही जो सनुष्य विद्या से करने योग्य अनेक कर्मों को सिद्ध करने के लिये प्रवृत्त होता है, वही अनेक क्रियाओं से सब कार्य्यों के करने को समर्थ हो सकता तथा ईश्वर की सृष्टि में अनेक सुखों को प्राप्त होता, और उसी मनुष्य को ईश्वर भी अपनी कृपादृष्टि से देखता है, आलसी को नहीं॥२॥

अथिन्द्रशब्दिनेश्वरसूर्य्यावपुदिश्यते।

अगले मन्त्र में इन्द्र शब्द से ईश्वर और सूर्य्यलोक का प्रकाश किया है-

युक्ष्वा हि केशिना हरी वृषणा केश्यप्रा। अर्था न इन्द्र सोमणा निरोमुर्थश्रुति चर॥३॥

युक्ष्वा हि। क्रेशिना हिसे इति। वृषेणा। क्रक्ष्यऽप्रा। अर्थ। नः। इन्द्र। सोमणः। गिराम्। उपश्रुतिम्। चुरु॥३॥

पदार्थः (युद्ध्व) युद्ध्व योजय। छान्दसो वर्णलोपो वेति नलोपः, द्वयचोऽतस्तिङ इति दीर्घश्च। (हि) हेत्वपूर्दशे (केश्निज) प्रकाशयुक्ते आकर्षणबले। अत्र सर्वत्र सुपां सुलुगिति द्विवचनस्याकारादेशः। (हरी) व्याप्तिहरूपशीलावश्वौ (वृषणा) वृष्टिहेतू (कक्ष्यप्रा) कक्षासु भवाः कक्ष्याः सर्वपदार्थावयवास्ताम् प्रातः (प्रपूरशतस्तौ (अथ) आनन्तर्ये। अत्र निपातस्य चेति दीर्घः। (नः) अस्मानस्माकं वा (इन्द्र) सुर्वश्रोतीष्ट्यापित्रीश्वर प्रकाशमानः सूर्य्यलोको वा (सोमपाः) सोमानुत्तमान् पदार्थान् पाति रक्षति

तत्सम्बुद्धौ, पदार्थानां रक्षणहेतुः सूर्य्यो वा (गिराम्) प्रवर्त्तमानानां वाचम् (उपश्रुतिम्) उपयुक्तां श्रुति श्रवणम् (चर) प्राप्नुहि प्राप्नोति वा॥३॥

अन्वय:-हे सोमपा इन्द्र! यथा भवद्रचितस्य सूर्य्यलोकस्य केशिनौ वृषणा कक्ष्यप्र हो अश्वी युक्त:, तथैव त्वं नोऽस्मान् सर्वविद्याप्रकाशाय युड्क्ष्व। अथ हि नो गिरामुपश्रुतिं चर॥३॥

भावार्थ:-अत्र लुप्तोपमालङ्कार:। सर्वैर्मनुष्यै: सर्वविद्यापठनानन्तरं क्रियाकौशले प्रविर्तितव्यम्। यथाऽस्मिन् जगति सूर्य्यस्य विशाल: प्रकाशो वर्त्तते, तथैवेश्वरगुणानां विद्यायाश्च प्रकाश: सर्वत्रोपयोजनीय:॥३॥

पदार्थ:-हे (सोमपा:) उत्तम पदार्थों के रक्षक (इन्द्र) सब में व्याप्त होनेवाले ईश्वर! जैसे आपका रचा हुआ सूर्य्यलोक जो अपने (केशिना) प्रकाशयुक्त बल और अकिर्ण अर्थात् पदार्थों के खीचनें का सामर्थ्य जो कि (वृषणा) वर्षा के हेतु और (कक्ष्यप्रा) अपने अपनी अपनी कक्षाओं में उत्पन्न हुए पदार्थों को पूरण करने अथवा (हरी) हरण और व्याप्ति स्वभावकाले घोड़ों के समान और आकर्षण गुण हैं, उनको अपने-अपने कार्यों में जोड़ता है, वैसे ही आप (न?) हम लोगों को भी सब विद्या के प्रकाश के लिये उन विद्याओं में (युक्ष्व) युक्त कीजिये। (अथ) इसके अनुजर आपकी स्तुति में प्रवृत्त जो (न:) हमारी (गिराम्) वाणी हैं, उनका (उपश्रुतिम्) श्रवण (चर) स्वीका वा प्राप्त कीजिये।।३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है। सब पनुष्यों को सब विद्या पढ़ने के पीछे उत्तम क्रियाओं की कुशलता में प्रवृत्त होना चाहिये। बैसे सूर्व्य का उत्तम प्रकाश संसार में वर्त्तमान है, वैसे ही ईश्वर के गुण और विद्या के प्रकाश का सब में उपयोग करना चाहिये॥३॥

मनुष्यै: पर्मेश्वरात् कि कि याचनीयमित्युपदिश्यते।

मनुष्यों को परमेश्वर से क्या-क्या मांग्रज चाहिये, सो अगले मन्त्र में प्रकाश किया है-

एहि स्तोमाँ अभि स्वयमि गृणोह्यास्व।

ब्रह्म च नो वसो स्चिन्द्र युज्ञं च वर्धिय॥४॥

आ। इहि। स्तोमिन्। अभि। प्र्वर्। अभि। गृणीहि। आरुवः। ब्रह्मं। चः। वसो इति। सर्चा। इन्द्रं। युज्ञम्। चः। वर्धयः॥ ४॥

पदार्थ: आ इहि आगच्छ (स्तोमान्) स्तुतिसमूहान् (अभि) धात्वर्थे (स्वर) जानीहि प्राप्नुहि। स्वरतीति गितृकर्मसु पठितम्। (निघं०२.१४) (अभि) आभिमुख्ये। अभीत्याभिमुख्यं प्राह। (निरु०१.३) (गृणीहि) उपदिशे (आ) समन्तात् (रुव) शब्दविद्यां प्रकाशय (ब्रह्म) वेदविद्याम् (च) समुच्चये (नः) अस्मान् अस्माकं वा (वसो) वसन्ति सर्वाणि भूतानि यस्मिन् वा वसित सर्वेषु भूतेषु यस्तत्सम्बुद्धौ (सद्धा) जानेष सत्कर्मसु समवायेन वा (इन्द्र) स्तोतुमर्ह दातः (यज्ञम्) क्रियाकौशलम् (च) पुनरर्थे (वर्ध्य) अत्कृष्टं सम्पादय॥४॥

अष्टक-१। अध्याय-१। वर्ग-१९-२०

मण्डल-१। अनुवाक-३। सूक्त-१०

अन्वय:-हे इन्द्र जगदीश्वर! यथा कश्चित् सर्वविद्याऽभिज्ञो विद्वान् स्तोमानभिस्वरित यथाविद्वज्ञानं गृणात्यारौति तथैव नोऽस्मानेहि। हे वसो! कृपयैवमेत्य नोऽस्माकं स्तोमान् वेदस्तुर्लिसमृहार्थान् सचाभिस्वरब्रह्म- वेदार्थानभिगृणीहि यज्ञं च वर्धय॥४॥

भावार्थ:-अत्र लुप्तोपमालङ्कार:। ये सत्येन वेदविद्यायोगेन परमेश्वरं स्तुवर्ति प्राथिपन्त्युपासते तेभ्य ईश्वरोऽन्तर्यामितया मन्त्राणामर्थान् यथावत्प्रकाशियत्वा सततं सुखं प्रकाश्यिति। अतो नेव तेषु कदाचिद्विद्यापुरुषार्थी हसत:॥४॥

पदार्थ:-हे (इन्द्र) स्तुति करने के योग्य परमेश्वर! जैसे कोई सब्द बिद्याओं से परिपूर्ण विद्वान् (स्तोमान्) आपकी स्तुतियों के अर्थों को (अभिस्वर) यथावत् स्वीकार करता कराता वा गाता है, वैसे ही (न:) हम लोगों को प्राप्त कीजिये। तथा हे (वसो) सब प्राणियों को वस्ति वा उनमें वसनेवाले! कृपा से इस प्रकार प्राप्त होके (न:) हम लोगों के (स्तोमान्) वेदस्तुति के अर्थों को (सचा) विज्ञान और उत्तम कर्मों का संयोग कराके (अभिस्वर) अच्छी प्रकार उपदेश कीजिये (ब्रह्म च) और वेदार्थ को (अभिगृणीहि) प्रकाशित कीजिये। (यज्ञं च) हमारे लिये होम ज्ञाने और शिल्पविद्यारूप क्रियाओं को (वर्धय) नित्य बढ़ाइये॥४॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है। जि पुरुष वेद्रविद्या वा सत्य के संयोग से परमेश्वर की स्तुति प्रार्थना और उपासना करते हैं, उनके ह्यूय में ईश्वर अन्तर्यामि रूप से वेदमन्त्रों के अर्थों को यथावत् प्रकाश करके निरन्तर उनके लिये सुख का प्रकाश करता है, इससे उन पुरुषों में विद्या और पुरुषार्थ कभी नष्ट नहीं होते॥४॥

पुनः स कोदृशीऽस्तीत्युपदिश्यते।

फिर भी ईश्वर किस प्रकार को है, इस विषय का अगले मन्त्र में प्रकाश किया है-

उक्थिमन्द्रीय शंस्यं वर्धनं पुरुनिषिधे।

शको यथा सुतेष्ट्र णो रारणस्मख्येषु च॥५॥

उक्थम्। इन्द्रीय शिस्यम्। वर्धनम्। पुरुत्तिःऽष्टिधे। शृक्रः। यथां। सुतेषुं। नः। रारणेत्। सुख्येषुं। चु॥५॥

पदार्थः (उक्थम्) वक्तुं योग्यं स्तोत्रम्। अत्र पातृतुदि० (उणा०२.७) अनेन 'वच' धातोः स्थक् प्रत्यसः। (इन्द्रम्य) सर्विमित्रायैश्वर्य्यमिच्छुकाय जीवाय (शंस्यम्) शंसितुं योग्यम् (वर्धनम्) विद्यादिग्रुणानां वर्धकम् (पुरुनिष्पिधे) पुरूणि बहूनि शास्त्राणि मङ्गलानि च नितरां सेधतीति तस्मै (शक्रः) समर्थः शिक्तमान् (यथा) येन प्रकारेण (सृतेष्) उत्पादितेषु स्वकीयसंतानेषु (नः) अस्माकम् (रारणत्)

११८

अतिशयेनोपदिशति। यङ्लुङन्तस्य 'रण'धातोर्लेट्प्रयोगः। (सख्येषु) सखीनां कर्मसु भविषु पुत्रस्त्रीभृत्यवर्गादिषु वा (च) समुच्चयार्थे॥५॥

अन्वय:-यथा कश्चिन्मनुष्यः सुतेषु सख्येषु चोपकारी वर्त्तते तथैव शक्रः सर्वशाकितमान् जगदीश्वरः कृपायमाणः सन् पुरुनिष्षिध इन्द्राय जीवाय वर्धनं शंस्यमुक्थं च रारणत् यथावदुपदिशति॥५॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। अस्मिन् जगित या या शोभा प्रशंसा ये च धन्यवादास्त्र सर्वे परमेश्वरमेव प्रकाशयन्ते। कुत:, यत्र यत्र निर्मितेषु पदार्थेषु प्रशंसिता रचनागुणस्च भवस्ति ते ते निर्मातारं प्रशसन्ति। तथैवेश्वरस्यानन्ता प्रशंसा प्रार्थना च पदार्थप्राप्तये क्रियते। परन्तु यद्यदीश्वरात्प्रार्थ्यते तत्तदत्यन्तस्वपुरुषार्थेनैव प्राप्तुमर्हित॥५॥

पदार्थ:-(यथा) जैसे कोई मनुष्य अपने (सुतेषु) सन्तानों और (सखाषु) मित्रों के (उपकार) करने को प्रवृत्त होके सुखी होता है, वैसे ही (शक्र:) सर्वशिक्तमान जगदाश्वर (पुरुनिष्पिधे) पुष्कल शास्त्रों को पढ़ने-पढ़ाने और धर्मयुक्त कामों में विचरने वाल (इन्द्राय) सब के मित्र और ऐश्वर्य की इच्छा करने वाले धार्मिक जीव के लिये (वर्धनम्) विद्या अपि गुणों के बढ़ानेवाले (शंस्यम्) प्रशंसा (च) और (उक्थम्) उपदेश करने योग्य वेदोक्त स्तोत्रों के अर्थों का (रारणत्) अच्छी प्रकार प्रकाश करके सुखी बना रहे॥५॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। इस स्रेस्तर में जो-जो शोभायुक्त रचना प्रशंसा और धन्यवाद हैं, वे सब परमेश्वर ही की अनन्त्र शिक्त कर प्रकाश करते हैं, क्योंकि जैसे सिद्ध किये हुए पदार्थों में प्रशंसायुक्त रचना के अनेक गुण हैन पदीर्थों के रचनेवाले की ही प्रशंसा के हेतु हैं, वैसे ही परमेश्वर की प्रशंसा जनाने वा प्रार्थना के लिये हैं। इस कारण जो-जो पदार्थ हम ईश्वर से प्रार्थना के साथ चाहते हैं, सो-सो हमारे अत्यन्त प्रकार्थ के द्वारा ही प्राप्त होने योग्य हैं, केवल प्रार्थनामात्र से नहीं॥५॥

क्व क्व मे प्रार्थनीय इत्युपदिश्यते।

किस-किस पदार्थ की प्राप्ति के लिये ईश्वर की प्रार्थना करनी चाहिये, सो अगले मन्त्र में प्रकाश किया है-

तमित्संख्रित्व ईमहे तं राये तं सुवीर्घ्ये।

स शुक्र उत् नैः शक्दिन्द्रो वसु दर्यमानः॥६॥१९॥

तम्। इत्। सिख्डिऽत्वे। ईम्हे। तम्। ग्ये। तम्। सुऽवीर्ये। सः। शकः। उत। नः। शक्त्। इन्द्रेः। वस्। दर्यमान क्रीहा।

पदार्थ:-(तम्) परमेश्वरम् (इत्) एव (सिखत्वे) सखीनां सुखायानुकूलं वर्त्तमानानां कर्मणां भ्रावस्तम्भिन् (ईमहे) याचामहे। ईमह इति याञ्चाकर्मसु पठितम्। (निघं०३.१९) (तम्) परमैश्वर्य्यवन्तम् अष्टक-१। अध्याय-१। वर्ग-१९-२०

मण्डल-१। अनुवाक-३। सुक्त-१०

(राये) विद्यासुवर्णादिधनाय (तम्) अनन्तबलपराक्रमवन्तम् (सुवीर्ये) शोभनैर्गुणैर्युक्तं वीर्य्यं पराक्रमो यस्मिस्तस्मिन् (सः) पूर्वोक्तः (शकः) दातुं समर्थः (उत) अपि (नः) अस्मभ्यम् (शकत् शक्तित्रि अत्र लडर्थे लुङ्डभावश्च। (इन्द्रः) दुःखानां विदारियता (वसु) सुखेषु वसित्रि यन कर्द्रनं विद्याऽऽरोग्यादिसुवर्णादि वा। विस्विति धननामसु पठितम्। (निघं०२.१०) (दयमानः) दातुं विद्यादिगुणान् प्रकाशितुं सततं रक्षितुं दुःखानि दोषान् शत्रूंश्च सर्वथा विनाशितुं धार्मिकान् स्वभक्तानादातुं समर्थः। दय दानगितरक्षणिहंसादानेषु इत्यस्य रूपम्॥६॥

अन्वय:-यो नो दयमानः शक्र इन्द्रः परमात्मा वसु दातुं शक्नोति तमिदेव वयं सर्खित्वे तं राये तं सुवीर्य्यं ईमहे॥६॥

भावार्थ:-सर्वेर्मनुष्यै: सर्वशुभगुणप्राप्तये परमेश्वरो याचित्रीयो नेतरः, कुतस्तस्याद्वितीयस्य सर्वमित्रस्य परमैश्वर्य्यवतोऽनन्तशक्तिमत एवैतद्दातुं सामर्थ्यवत्त्वात् रहिभ

इत्येकोनविंशो वर्ग: समाप्रः।

पदार्थ:-जो (नः) हमारे लिये (दयमानः) सुखपूर्वक स्मण क्ररने योग्य विद्या, आरोग्यता और सुवर्णीद धन का देनेवाला, विद्यादि गुणों का प्रकाशक और निरन्तार रक्षक तथा दुःख दोष वा शत्रुओं के विनाश और अपने धार्मिक सज्जन भक्तों के ग्रहण करने (शक्तः) अनन्त सामर्थ्ययुक्त (इन्द्रः) दुःखों का विनाश करनेवाला जगदीश्वर है, वही (वसु) विद्या और जक्रवर्त्ति राज्यादि परमधन देने को (शक्त्) समर्थ है, (तिमत्) उसी को हम लोग (उत) विद्याद शास्त्र सब विद्वान् प्रत्यक्षादि प्रमाण और अपने भी निश्चय से (सिखत्वे) मित्रों और अच्छे कि के होने के निमित्त (तम्) उसको (राये) पूर्वोक्त विद्यादि धन के अर्थ और (तम्) उसी को (सुद्धीर्य) श्रष्ट गुणों से युक्त उत्तम पराक्रम की प्राप्ति के लिये (ईमहे) याचते हैं॥६॥

भावार्थ:-सब मनुष्यों की उचित है कि सब सुख और शुभगुणों की प्राप्ति के लिये परमेश्वर ही की प्रार्थना करें, क्योंकि वह अद्वितीय प्रविभिन्न परमैश्वर्यवाला अनन्त शक्तिमान् ही का उक्त पदार्थों के देने में सामर्थ्य है॥६॥

यह उन्नीसवां वर्ग समाप्त हुआ॥

अथेन्द्रशब्देनेश्वरसूर्व्यलोकावुपदिश्येते।

अपेले मन्त्र में इन्द्र शब्द से ईश्वर और सूर्य्यलोक का प्रकाश किया है-

सुविवृतं सुनिरजमिन्द्र त्वादांतुमिद्यशं:।

गेब्गमापं व्रजं वृधि कृणुष्व राधौ अद्रिव:॥७॥

सुऽविवृत्तम्। सुनिःऽअर्जम्। इन्द्री त्वाऽदातम्। इत्। यशः। गर्वाम्। अर्प। व्रूजम्। वृधि। कृणुष्व। राधः। अद्रिवः॥७॥

पदार्थ:-(सुविवृतम्) सुष्ठु विकाशितम् (सुनिरजम्) सुखेन नितरां क्षेप्तुं योग्यम् (इन्द्रे) पहायशे सर्वविभागकारकेश्वरः सर्वविभक्तरूपदर्शकः सूर्य्यलोको वा (त्वादातम्) त्वया शोधितं, तेन सूर्य्येण वा (इत्) एव (यशः) परमकीर्त्तिसाधकं जलं वा। यश इत्युदकनामसु पठितम्। (निघं०१११) स्वस्वविषयप्रकाशकानां मनआदीन्द्रियाणां किरणानां पशूनां वा। गौरिति पदनामसु पठितम्। (निघं०१९१) इतीन्द्रियाणां पशूनां च ग्रहणम्। गाव इति रिश्मनामसु पठितम्। (निघं०१५) (अप) आत्वर्थे। (व्रजम्) समूहं ज्ञानं वा (वृधि) वृणु वृणोति वा। अत्र पक्षान्तरे सूर्य्यस्य प्रत्यक्षत्वात्प्रथमार्थे मध्यमः। शुशृणुप्कृवृभ्यश्चन्दिस। (अष्टा०६.४.१०२) अनेन हेधिः। (कृणुष्व) करोति कुर्य्योद्धा। अत्र लडर्थे लोड् व्यत्येनात्मनेपदं च (राधः) राध्नुवन्ति सुखानि येन तिद्वद्यासुवर्णादि धन्नम्। राष्ट्र इति धननामसु पठितम्। (निघं०२.१०) (अद्रिवः) अद्रिमेघः प्रशंसा धनं भूयान् वा विद्यते यस्मन् तत्सम्बुद्धावीश्वर, मेघवान् सूर्य्यो वा। अद्रिरिति मेघनामसु पठितम्। (निघं०१.१०) अत्र भूम्युर्थे मृतुप्॥७॥

अन्वय:-यथाऽयमद्रिवो मेघवान् सूर्य्यलोकः सुनिर्जि विकार्शतं सैन शोधितं यशोजलं सुविवृतं सुष्ठु विकाशितं राधो धनं च कृणुष्व करोति गवां किरणानां वर्जं समूहं मापवृध्युद्धाटयित, तथैव हे अद्रिव इन्द्र जगदीश्वर! त्वं सुविवृतं सुनिरजं त्वादातं यशो सधी धनं च कृणुष्व कृपया कुरु, तथा हे अद्रिवो मेघादिरचकत्वात् प्रशंसनीय त्वं गवां व्रजमपवृश्विज्ञानद्वरमुद्धाटय॥७॥

भावार्थ:-अत्र (श्लेष)लुप्तोपमालङ्क्यौ। हे परमेश्वर! यथा भवता सूर्य्यादिजगदुत्पाद्य स्वकीर्तिः सर्वप्राणिभ्यः सुखं च प्रसिद्धीकृतं तथे भवित्कृपया वयमपि मन आदीनीन्द्रियाणि शुद्धानि विद्याधर्मप्रकाशयुक्तानि सुखेन संसाध्य स्वक्रीर्तिं विद्याधनं चक्रवर्त्तिराज्यं च सततं प्रकाश्य सर्वान्मनुष्यान्सुखिनः कीर्तिमतश्च कार्यमेति॥७॥

पदार्थ:-जैसे यह (अद्भिवः) उत्तम प्रकाशादि धनवाला (इन्द्रः) सूर्य्यलोकः (सुनिरजम्) सुख से प्राप्त होने योग्य (त्वादातमः) उसी से सिद्ध होनेवाले (यशः) जल को (सुविवृतम्) अच्छी प्रकार विस्तार को प्राप्त (गवाम्) किरणों वे (वज्रम्) समूह को संसार में प्रकाश होने के लिये (अपवृधि) फैलाता तथा (राधः) धन को प्रकाशित (कृणुष्व) करता है, वैसे हे (अद्रिवः) प्रशंसा करने योग्य (इन्द्र) महायशस्वी सब पदार्थों के यथायोग्य बांटेनेवाले परमेश्वर! आप हम लोगों के लिये (गवाम्) अपने विषय को प्राप्त होनेवाली मून आदि इन्द्रियों के ज्ञान और उत्तम-उत्तम सुख देनेवाले पशुओं के (व्रजम्) समूह को (अपावृधि) प्राप्त करके उनके सुख के दरवाजे को खोल तथा (सुविवृतम्) देश-देशान्तर में प्रसिद्ध और (सुनिर्जम्) सुख से करने और व्यवहारों में यथायोग्य प्रतीत होने के योग्य (यशः) कीर्ति को

अष्टक-१। अध्याय-१। वर्ग-१९-२०

मण्डल-१। अनुवाक-३। सुक्त-१०

बढ़ानेवाले अत्युत्तम (त्वादातम्) आपके ज्ञान से शुद्ध किया हुआ (राधः) जिससे कि अनेक सुख सिद्ध हों, ऐसे विद्या सुवर्णीदि धन को हमारे लिये (कृणुश्व) कृपा करके प्राप्त कीजिये॥७॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में श्लेष और लुप्तोपमालङ्कार हैं। हे परमेश्वर! जैसे आपने सूर्ट्याद जैनल की उत्पन्न करके अपना यश और संसार का सुख प्रसिद्ध किया है, वैसे ही आप की कृषी से हम लोग भी अपने मन आदि इन्द्रियों को शुद्धि के साथ विद्या और धर्म के प्रकाश से युक्त हथा सुख पूर्वक सिद्ध और अपनी कीर्ति, विद्याधन और चक्रवर्ति राज्य का प्रकाश करके सब मनुष्टीं को निरन्तर ध्यानन्दित और कीर्तिमान् करें॥७॥

पुनरीश्वर उपदिश्यते।

फिर अगले मन्त्र में ईश्वर का प्रकाश किया है

नृहि त्वा रोदंसी उभे ऋघायमाणुमिन्वतः।

जेषु: स्वर्वतीरुप: सं गा अस्मभ्यं धूनुहि॥८॥

नुहि। त्वा। रोर्दसी। इति। उभे इति। ऋघायमाणम् इस्तिः। अर्षः। स्वःऽवतीः। अपः। सम्। गाः। अस्मभ्यम्। धूनुहि॥८॥

पदार्थ:-(निह) निषेधार्थे (त्वा) सर्वत्र व्यक्तिमन्ते जगदीश्वरम् (रोदसी) द्यावापृथिव्यौ। रोदसी इति द्यावापृथिव्योनांमसु पठितम्। (निघं०३ ६०) (उभे) द्वे (ऋघायमाणम्) परिचरितुमर्हम्। ऋध्यते पूज्यते इति ऋघः। बाहुलकात् कः, तत् आचारे क्यङ्। ऋध्नोतीति परिचरणकर्मसु पठितम्। (निघं०३.५) (इन्वतः) व्याप्नुतः। इन्वतोति व्यक्तिकर्मसु पठितम्। (निघं०२.१८) (जेषः) विजयं प्राप्नोषि। 'जि जये' इत्यस्माल्लोटि मेध्यमैकवचने प्रयोगः। (स्वर्वतीः) स्वः सुखं विद्यते यासु ताः (अपः) कर्माणि कर्तुम्। अप इति कर्मनामसु पठितम्। (निघं०२.१) (सम्) सम्यगर्थे क्रियायोगे (गाः) इन्द्रियाणि (अस्मभ्यम्) (धूनुह्य) प्रेरय॥८॥

अन्वय:-हे परमेश्वर! इमे उभे रोदसी यमृघायमाणं त्वां न हीन्वतः, स त्वमस्मभ्यं स्वर्वतीरपो जेषो गाश्च संधूनुहि॥८॥

भावार्थ:-सदा कश्चित्पृच्छेदीश्वरः कियानस्तीति, तत्रेदमुत्तरं येन सर्वमाकाशादिकं व्याप्तं नैव तमनन्तं कश्चिद्प्यर्थे व्याप्तुमर्हति। अतोऽयमेव सर्वेर्मनुष्यैः सेवनीयः, उत्तमानि कर्माणि कर्त्तुं वस्तूनि च प्राप्तुं प्रार्थनीयः। सस्य पुणाः कर्माणि चेयत्ता रहितानि सन्ति तस्यान्तं ग्रहीतुं कः समर्थो भवेत्॥८॥

्पदार्थ: - हे परमेश्वर! ये (उभे) दोनों (रोदसी) सूर्य्य और पृथिवी जिस (ऋघायमाणम्) पूजा करने प्योग्य आपको (निह) नहीं (इन्वतः) व्याप्त हो सकते, सो आप हम लोगों के लिये (स्वर्वतीः)

जिनसे हमको अत्यन्त सुख मिले ऐसे (अप:) कर्मों को (जेष:) विजयपूर्वक प्राप्त करने के लिये हमारे (गा:) इन्द्रियों को (संधूनुहि) अच्छी प्रकार पूर्वोक्त कार्य्यों में संयुक्त कीजिये॥८॥

भावार्थ:-जब कोई पूछे कि ईश्वर कितना बड़ा है, तो उत्तर यह है कि जिसको सब आकार आदि बड़े-बड़े पदार्थ भी घेर में नहीं ला सकते, क्योंकि वह अनन्त है। इससे सब मनुष्या को उचित है कि उसी परमात्मा का सेवन उत्तम-उत्तम कर्म करने और श्रेष्ठ पदार्थों की प्राप्त के लिये उसी की प्रार्थना करते रहें। जब जिसके गुण और कर्मों की गणना कोई नहीं कर सकता, तो कोई उसके अन्त पाने को समर्थ कैसे हो सकता है?॥८॥

पुनः स एवोपदिश्यते।

फिर भी परमेश्वर का निरूपण अगले मन्त्र में किया है

आश्रुंत्कर्ण श्रुधी हवं नू चिंद्दधिष्व मे गिर्रः।

इन्द्र स्तोमीमुमं ममे कृष्वा युजश्चिदन्तरम्॥९॥

आश्रुंत्ऽकर्ण। श्रुधि। हर्वम्। नु। चित्। दुधिष्व। मे। मिर्रः। इन्द्री स्तीमेम्। इमम्। ममे। कृष्व। युजः। चित्। अन्तरम्॥९॥

पदार्थ:-(आश्रुत्कर्ण) श्रुतौ विज्ञानमयौ श्रवणहेत् कर्णो यस्य तत्सम्बुद्धौ। अत्र सम्पदादित्वात् करणे क्विप्। (श्रुधि) शृणु। अत्र बहुलं छन्दसीकि श्तेर्जुक्। श्रुशृणुपृकृवृभ्य० (अष्टा०६.४.१०२) इति हेर्ध्यादेश:। (हवम्) आदातव्यं सत्यं वचनम्। (नु) क्षिप्रार्थे। नु इति क्षिप्रनामसु पठितम्। (निघं०२.१५) ऋचि तुनुघेति दीर्घ:। (चित्) पूजार्थे। चिद्दं क्यादिति पूजायाम्। (निरु०१.४) (दिधच्व) धारय। 'दध धारणे' इत्यस्माल्लोट्, छन्दस्युभयथेत्य्राद्धधातुकाश्रयेणेडागमः। (मे) मम स्तोतुः (गिरः) वाणीः (इन्द्र) सर्वान्तर्यामिन्सर्वतः श्रोतः (स्तोमम्) स्तूयते येनासौ स्तोमस्तं स्तुतिसमूहम् (इमम्) प्रत्यक्षम् (मम) स्तोतुः (कृष्व) कुरु। 'कृज्' इत्यस्माल्लोद् विकरणाभावः। (युजः) यो युनक्ति स युक् सखा तस्य सख्युः। 'युजिर् योगे' इत्यस्माद्वियदधृगिति क्विन्। (चित्) इव। चिदित्युपमार्थे। (निरु०१.४) (अन्तरम्) अन्तःशोधनमात्र्वत्रं वाण्याः।

अन्वय:-हे आश्रुत्वर्ण इन्द्र जगदीश्वर! चिद्यथा प्रियः सखा युजः प्रियस्य सख्युर्गिरः प्रेम्णा शृणोति, तथैव त्व्रं नु मे प्रिरो हवं श्रुधि ममेमं स्तोममन्तरं दिधष्व युजो मामन्तःकरणं शुद्धं कृष्व कुरु॥९॥

भृत्वार्थ:-भूत्रोपमालङ्कार:। मनुष्यैरीश्वरस्य सर्वज्ञत्वेन जीवेन प्रयुक्तस्य वाग्व्यवहारस्य यथावत् श्रोतृत्वे सर्वाधारत्वेनान्तर्यामितया जीवान्त:करणयोर्यथावच्छोधकत्वेन सर्वस्य मित्रत्वाच्चायमेवैक: सदै ज्ञातव्यः प्रार्थनीयश्चेति॥९॥

अष्टक-१। अध्याय-१। वर्ग-१९-२०

मण्डल-१। अनुवाक-३। सूक्त-१०

पदार्थ:-(आश्रुत्कर्ण) हे निरन्तर श्रवणशिक्तरूप कर्णवाले (इन्द्र) सर्वान्तर्यामि परमेश्वर! (चित्) जैसे प्रीति बढ़ानेवाले मित्र अपनी (युजः) सत्यविद्या और उत्तम-उत्तम गुणों में युक्त होनेवाले पित्र की (गिरः) वाणियों को प्रीति के साथ सुनता है, वैसे ही आप (नु) शीघ्र ही (मे) मेरी (गिरः) स्तुति तथा (हवम्) ग्रहण करने योग्य सत्य वचनों को (श्रुधि) सुनिये। तथा (मम) अर्थात् मेरी (स्तोमम) स्तुतियों के समूह को (अन्तरम्) अपने ज्ञान के बीच (दिधिष्व) धारण करके (युजः) अर्थात् प्रूष्ट्रीक्त कामों भें उक्त प्रकार से युक्त हुए हम लोगों को (अन्तरम्) भीतर की शुद्धि को (कृष्व) कीजियेश रा

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्यों को उचित है कि जो सर्वज्ञ जीवों के किये हुए वाणी के व्यवहारों का यथावत् श्रवण करनेहारा सर्वाधार अन्तर्यामि जीव और अन्ते:करण का यथावत् शुद्धि हेतु तथा सब का मित्र ईश्वर है, वही एक जानने वा प्रार्थना कर्जे पोग्य है।। १।।

मनुष्याः पुनस्तं कथंभूतं जानीयुरित्युपिदश्यते।

फिर भी मनुष्य लोग परमेश्वर को कैसा जानें, इस विषय क्री अगले मुन्त्र में प्रकाश किया है-

विद्या हि त्वा वृषेन्तम्ं वाजेषु हवनुश्रुतंम्। वृषेन्तमस्य हूमह ऊतिं सहस्रुसांतमाम्॥ १०॥

विद्या हि। त्वा। वृषेन्ऽतमम्। वाजेषु। हुव्नुॐश्रुतंम्। वृषेन्ऽतमस्य। हुम्हे। ऊतिम्। सहस्रऽसातंमाम्॥१०॥

पदार्थ:-(विदा) विजानीमः। ह्र्यचोऽतस्तिङ इति दीर्घः। (हि) एवार्थे (त्वा) त्वाम् (वृषन्तमम्) सर्वानभीष्टान्कामान् वर्षतीति वृषा सोऽतिश्राधास्तिम्। किनन्युवृषि (उणा०१.१५४) अनेन 'वृष' धातोः किनन्यत्ययः। अयस्मयादीनि छन्द्रिम्। अष्टा०१.४.२०) अनेन भसंज्ञया नलोपाभावः। उभयसंज्ञान्यिप छन्दांसि दृश्यन्त इति पदसंज्ञाश्रयणाहित्वाणभावः। (वाजेषु) संग्रामेषु। वाज इति संग्रामनामसु पठितम्। (निघं०२.१७) (हवनश्रुतम्) हवनमाह्यां शृणोतीति तम् (वृषन्तमस्य) अतिशयेनोत्तमानां कामानामभिवर्षयितुस्तव (दृष्टे) स्पर्धयामहे। अत्र 'ह्वेत्र्' इत्यस्माल्लिट बहुलं छन्दसीति शपो लुक्। बहुलं छन्दसीति शपो लुक्। (अष्टा०६.४.२) इति दीर्घत्वम्। (ऊतिम्) रक्षां प्राप्तिमवगमं च (सहस्रसातमाम्) सहस्राणि बहूनि धनानि सुखानि वा सन्नोति प्या साऽतिशयिता ताम्। अत्र सहस्रोपपदात् 'षणु दाने' इत्यस्माद्धातोः जनसन० इत्यनेन विद्य विद्यवनारम्नासिकस्यादिति नकारस्याकारादेशः। कृतो बहुलमिति करणे च॥१०॥

अन्वयः-हें इन्द्र! वयं वाजेषु हवनश्रुतं वृषन्तमं त्वां विद्या हि यतो वृषन्तमस्य तव सहस्रसातमासूर्तिं हूमहे॥१०॥

भावार्थ:-मनुष्या सर्वकामसिद्धिप्रदं शत्रूणां युद्धेषु विजयहेतुं परमेश्वरमेव जानीयु:। येनास्मिन् जगित सर्वप्राणिसुखायासंख्याताः पदार्था उत्पाद्य रक्ष्यन्ते तं तदाज्ञां चाश्रित्य सर्वथा प्रयत्नेन स्वस्य सर्वेषां च सुखं संसाध्यम्॥१०॥

पदार्थ:-हे परमेश्वर! हम लोग (वाजेषु) संग्रामों में (हवनुश्रुतम्) प्रार्थना को सुनित्र योख्य और (वृषन्तमम्) अभीष्ट कामों के अच्छी प्रकार देने और जाननेवाले (त्वा) आपको (विद्या) जानक हैं, (हि) जिस कारण हम लोग (वृषन्तमस्य) अतिशय करके श्रेष्ठ कामों को मेघ के समान वर्षानेवाले (तव) आपकी (सहस्रसातमाम्) अच्छी प्रकार अनेक सुखों की देनेवाली जो (ऊतिम्) रक्षाप्राप्त और विज्ञान हैं, उनको (हुमहे) अधिक से अधिक मानते हैं॥१०॥

भावार्थ:-मनुष्यों को सब कामों की सिद्धि देने और युद्ध में शत्रुओं के विजय के हेतु परमेश्वर ही देनेवाला है, जिसने इस संसार में सब प्राणियों के सुख के लिये असंख्यात पदार्थ उत्पन्न वा रक्षित किये हैं, तथा उस परमेश्वर वा उस की आज्ञा का आश्रय करके सर्वथ उपाय के साथ अपना वा सब मनुष्यों का सब प्रकार से सुख सिद्ध करना चाहिये॥१०॥

पुनः स कीदृशः करोती स्प्रपदिश्वते।

फिर परमेश्वर कैसा और मनुष्यों के लिये क्या कृरता हैं, इस्मिविषय को अगले मन्त्र में प्रकाश

किया(है-

आ तू न इन्द्र कौशिक मन्दसानः सुन् पिंब।

नव्यमायुः प्र सू तिर कृधी सहस्राम्पिषु॥ ११॥

आ। तु। नः। इन्द्र। कौशिक्। मन्द्रसानः। सुतम्। पिब्। नव्यम्। आर्युः। प्र। सु। तिर्। कृधि। सहस्रुसाम्। ऋषिम्॥११॥

पदार्थ:-(आ) समन्तात (तु) पुनर्श्ये अत्र ऋचि तुनुघमक्षु० इति दीर्घः। (नः) अस्माकम् (इन्द्र) सर्वानन्दस्वरूपेश्वर (कौशिक) सर्वासां विद्यान मुपदेशे प्रकाशे च भवस्तत्सम्बुद्धौ, अर्थानां साधूपदेष्ट्वां। क्रोशतेः शब्दकर्मणः क्रंसतेचां स्यास्त्रकाशयितकर्मणः साधु विक्रोशयिताऽर्थानामिति वा नद्यः प्रत्यूचुः। (निरु०२.२५) अनेन कौशिकशब्द उक्तार्थो गृह्यते। (मन्दसानः) स्तुतः सर्वस्य ज्ञाता सन्। ऋज्ञिवृधिमन्दि० (उणा०२८४) अनेन मन्देरसानच् प्रत्ययः। (सुतम्) प्रयत्नेनोत्पादितं प्रियशब्दं स्तवनं वा (पित्र) श्रृवण्शकस्या गृहाण (नव्यम्) नवीनम्। नवसूरमर्तयिवष्ठेभ्यो यत्। (अष्टा०५.४.३६) अनेन वार्तिकेन नुषशब्दित् स्वार्थे यत्। नव्यमिति नवनामसु पठितम्। (निघं०३.२८) (आयुः) जीवनम् (प्र) प्रकृष्टार्थे क्रियायोगे (सु) शोभार्थे क्रियायोगे। अत्र निपातस्य चेति दीर्घः। (तिर) संतारय। तरत्रिकिरणस्थत्ययेन शः। ऋत इद्धातोरितीकारः। (कृधि) कुरु। अत्र श्रृशुणुपृकृवृभ्यश्चन्दसीति

अष्टक-१। अध्याय-१। वर्ग-१९-२०

मण्डल-१। अनुवाक-३। सुक्त-१०

हेधिर्विकरणाभावः। (सहस्रसाम्) सहस्रं बह्वीर्विद्याः सनोति तम् (ऋषिम्) वेदमन्त्रार्थद्रष्टारं जितेन्द्रियतया शुभगुणानां सदैवोपदेष्टारं सकलविद्याप्रत्यक्षकारिणम्॥११॥

अन्वय:-हे कौशिकेन्द्रेश्वर! मन्दसानः संस्त्वं नः सुतमापिब तु पुनः कृपया नो नद्भमायुः प्रस्तिर तथा नोऽस्माकं मध्ये सहस्रसामृषिं कृधि सम्पादय॥११॥

भावार्थ:-ये मनुष्याः प्रेम्णा विद्योपदेष्टारं जीवेभ्यः सत्यविद्याप्रकाशकं सब्सं शुद्धमीश्वरं स्तुत्वा श्रावयन्ति, ते सुखपूर्णं विद्यायुक्तमायुः प्राप्यर्षयो भूत्वा पुनः सर्वान् विद्यायुक्तार्म् मनुष्यान् विदुषः प्रीत्या सम्पादयन्ति॥११॥

पदार्थ:-हे (कौशिक) सब विद्याओं के उपदेशक और उनके अथी के निस्नर प्रकाश करनेवाले (इन्द्र) सर्वानन्दस्वरूप परमेश्वर! (मन्दसानः) आप उत्तम-उत्तम स्मृतियों का प्राप्त हुए और सब को यथायोग्य जानते हुए (नः) हम लोगों के (सुतम्) यत्न से उत्पन्न किये हुए सोमादि रस वा प्रिय शब्दों से की हुई स्तुतियों का (आ) अच्छी प्रकार (पिंब) पान कराइये (तु.) और कृपा करके हमारे लिये (नव्यम्) नवीन (आयु:) अर्थात् निरन्तर जीवन को (प्रसूतिर) दी जिये, तथा (नः) हम लोगों में (सहस्रसाम्) अनेक विद्याओं के प्रकट करनेवाले (ऋषिम्) वेदवक्ता पुरुष को भी (कृष्टि) की जिये॥११॥

भावार्थ:-जो मनुष्य अपने प्रेम से विद्या का उपदेश करनेवाला होकर अर्थात् जीवों के लिये सब विद्याओं का प्रकाश सर्वदा शुद्ध परमेश्वर की स्तुति के साथ आश्रय करते हैं, वे सुख और विद्यायुक्त पूर्ण आयु तथा ऋषि भाव को प्राप्त होकर सब विद्या चाहनेवाले मनुष्यों को प्रेम के साथ उत्तम-उत्तम विद्या से विद्वान् करते हैं॥११॥

इमाः सर्वी स्तुत्य ईश्वरमेव स्तुवन्तीत्युपदिश्यते।

उक्त सब स्तुति ईश्वर ही क्रिपुणों का कीर्त्तन करती हैं, इस विषय का अगले मन्त्र में प्रकाश

किया है-

परि त्वा गिर्वणो गिर इमा भवन्तु विश्वतः।

वृद्धायुमनु वृद्धेयो जिष्ठो भैवनु जुष्टेयः॥ १२॥ २०॥

परि। त्वा। गिर्वणः। गिरैः। इमाः। भवन्तु। विश्वतः। वृद्धऽआयुम्। अनु। वृद्धयः। जुष्टाः। भवन्तु। जुष्टयः॥१२॥

पदार्थ:-(परि) परित:। परीति सर्वतोभावं प्राह। (निरु०१.३) (त्वा) त्वां सर्वस्तुत्विभाजनमिन्द्रमीश्वरम् (गिर्वण:) गीर्भिर्वेदानां विदुषां च वाणीभिर्वन्यते संसेव्यते यस्तत्सम्बुद्धौ (गिर्:) स्तुत्यः (इमा:) वेदस्थाः प्रत्यक्षा विद्वत्प्रयुक्ताः (भवन्तु) (विश्वतः) विश्वस्य मध्ये (वृद्धायुम्)

आत्मनो वृद्धमिच्छतीति तम् (**अनु**) क्रियार्थे (**वृद्धयः**) वर्ध्यन्ते यास्ताः (**जुष्टाः**) याः प्रीणन्ति सेवन्ते <mark>ताः</mark> (भवन्तु) (जुष्टयः) जुष्यन्ते यास्ताः॥१२॥

अन्वय:-हे गिर्वण इन्द्र! विश्वतो या इमा गिरः सन्ति ताः परि सर्वतस्त्वां भवन्तु त्रशा चेम्रो वृद्धयो जुष्टयो जुष्टा वृद्धायुं त्वामनुभवन्तु॥१२॥

भावार्थ:-हे भगवन्! या योत्कृष्टा। प्रशंसा सा सा तवैवास्ति, या या सुखार्य-देवृद्धिरेच सा सा त्वामेव संसेवते। य एवमीश्वरस्य गुणान् तत्सृष्टिगुणांश्चानुभवन्ति त एव प्रसंत्रा विद्यावृद्धा भूत्वा विश्वस्मिन् पूज्या जायन्ते॥१२॥

अत्र सायणाचार्थ्येण '**परिभवन्तु सर्वतः प्राप्नुवन्तु**' इत्यशुद्धमुक्तम् कृतः, परौ भुवोऽवज्ञाने इति परिपूर्वकस्य 'भू' धातोस्तिरस्कारार्थे निपातितत्वात्। इदं सुभामार्थ्यावर्त्तनिवासिभिः सायणाचार्थ्यादिभिस्तथा यूरोपाख्यदेशनिवासिभिर्विलसनाख्यादिभिश्चास्यशैष व्याख्यातम्।

अत्र ये क्रमेण विद्यादिशुभगुणान् गृहीत्वेश्वरं च प्रार्थित्वा सम्यक् पुरुषार्थमाश्रित्य धन्यवादैः परमेश्वरं प्रशंसन्ति त एवाविद्यादिदुष्टगुणान्निवार्य्य शत्रून् विजित्य दीर्घ्नायुषो विद्वांसो भूत्वा सर्वेभ्यः सुखसम्पादनेन सदानन्दयन्त इत्यस्य दशमस्य सूक्तार्थस्य (विश्वसूक्तार्थन सह सङ्गतिरस्तीति बोध्यम्॥

इति दशमं सूक्तं विंश्रो वर्गश्च समाप्त:॥

पदार्थ:-हे (गिर्वण:) वेदों तथा विद्वानों की वाणियों से स्तुति को प्राप्त होने योग्य परमेश्वर! (विश्वत:) इस संसार में (इमा:) जो वेदोक्त का विद्वान पुरुषों की कही हुई (गिर:) स्तुति हैं, वे (पिर) सब प्रकार से सब की स्तुतियों से सेवन करने योग्य जो आप हैं, उनको (भवन्तु) प्रकाश करनेहारी हों, और इसी प्रकार (वृद्धय:) वृद्धि को प्राप्त होने योग्य (जुष्टा:) प्रीति को देनेवाली स्तुतियां (जुष्टय:) जिनसे सेवन करते हैं, वे (वृद्धायुम्) जो कि चिस्तर सब कार्य्यों में अपनी उन्नति को आप ही बढ़ानेवाले आप का (अनुभवन्तु) अनुभव क्रें।। १२ गा

भावार्थ:-हे भगवन् परिपश्चर! जो-जो अत्युत्तम प्रशंसा है, सो-सो आपकी ही है, तथा जो-जो सुख और आनन्द की वृद्धि होती है सो-सो आप ही का सेवन करके विशेष वृद्धि को प्राप्त होती है। इस कारण जो मनुष्य ईश्वर तथा सिष्ट के गुणों का अनुभव करते हैं, वे ही प्रसन्न और विद्या की वृद्धि को प्राप्त होकर संसार में पूज्य होते हैं॥१२॥

इस मन्त्र में सायणाचार्या ने 'परिभवन्तु' इस पद का अर्थ यह किया है कि - 'सब जगह से प्राप्त हों,' यह ब्याकरण आदि शास्त्रों से अशुद्ध है, क्योंकि परौ भुवोऽवज्ञाने व्याकरण के इस सूत्र से परिपूर्वक 'भू' धार्तु का अर्थ तिरस्कार अर्थात् अपमान करना होता है। आर्य्यावर्त्तवासी सायणाचार्य्य आदि तथा भूरोपखण्ड देशवासी साहबों ने इस दशवें सूक्त के अर्थ का अनर्थ किया है।

अष्टक-१। अध्याय-१। वर्ग-१९-२०

मण्डल-१। अनुवाक-३। सूक्त-१०

जो लोग क्रम से विद्या आदि शुभगुणों को ग्रहण और ईश्वर की प्रार्थना करके अपने उत्तम पुरुषार्थ का आश्रय लेकर परमेश्वर की प्रशंसा और धन्यवाद करते हैं, वे ही अविद्या आदि दुर्श गुणों की निवृत्ति से शत्रुओं को जीत कर तथा अधिक अवस्थावाले और विद्वान् होकर सब मनुष्यों को सुख उद्भन्न करके सदा आनन्द में रहते हैं। इस अर्थ से इस दशम सूक्त की सङ्गृति नवम सूक्त के साथ जाननी चाहिये॥

यह दशम सूक्त और बीसवां वर्ग पूरा हुआ॥

अथास्याष्टर्चस्यैकादश सूक्तस्य जेता माधुच्छन्दस ऋषि:। इन्द्रो देवता। अनुष्टुप् छन्द: गान्धार:

स्वर:॥

अथेन्द्रशब्देनेश्वरविजेतारावुपदिश्येते।

अब ग्यारहवें सूक्त का आरम्भ किया जाता है। तथा पहले मन्त्र में इन्द्र शब्द से ईश्वर के विजय करनेवाले पुरुष का उपदेश किया है-

इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचस् गिर्रः। रुथीतमं रुथीनां वार्जानां सत्पतिम्पतिम्॥ १॥

इन्द्रम्। विश्वाः। अवीवृधन्। समुद्रऽव्यंचसम्। गिर्रः। रृथिऽतमम्। स्थानम्। चार्जानाम्। सत्ऽपंतिम्। पतिम्॥ १॥

पदार्थ:-(इन्द्रम्) विजयप्रदमीश्वरम, शत्रूणां विजेतारं भूतं वा (विश्वा:) सर्वाः (अवीवृधन्) अत्यन्तं वर्धयन्तु। अत्र लोडर्थे लुङ्। (समुद्रव्यचसम्) समुद्रेऽन्तिश्वे व्यचा व्याप्तिर्यस्य तं सर्वव्यापिनमीश्वरम्। समुद्रे नौकादिविजयगुणसाधनव्यापिनं भूस्वीरं वा (गरः) स्तुतयः (रथीतमम्) बहवो रथा रमणाधिकरणः पृथिवीसूर्यादयो लोका विद्यन्ते यस्मित्म (रथीश्वर्यः सोऽतिशयितस्तम्। रथाः प्रशस्ता रणविजयहेतवो विमानादयो विद्यन्ते यस्य सोऽतिशयितः भूरस्तम् रथिन ईद्वक्तव्यः। (अष्टा०८.२.१७) इति वार्तिकेनेकारादेशः। (रथीनाम्) नित्ययुक्ता या विद्यन्ते येषां योद्धृणां तेषाम्। अन्येषामिप दृश्यते। (अष्टा०६.३.१३७) अनेन दीर्घः। (वाजानाम्) वजिन्तु प्राप्नुवन्ति जयपराजयौ येषु युद्धेषु तेषाम् (सत्पतिम्) यः सतां नाशरहितानां प्रकृत्यदिकार्णद्वयाणां पतिः स्वामी तमीश्वरम्। यः सतां सद्वयवहाराणां सत्पुरुषाणां वा पतिः प्रारम्भति स्थाधीशं राजानम् (पतिम्) यः पाति रक्षिते चराचरं जगत्तमीश्वरम्, यः पाति रक्षिते सज्जुनास्तम्॥१॥

अन्वय:-अस्माकिममा जिश्वा मिसे यं समुद्रव्यचसं रथीनां रथीतमं वाजनां सत्पतिं पतिमिन्द्रं परमात्मानं वीरपुरुषं वाऽवीवृध्नने नित्यं वर्द्धयन्ति तं सर्वे मनुष्या वर्द्धयन्तु॥१॥

भावार्थ:-अत्र श्रीमालङ्कार:) सर्वा वेदवाण्यः परमैश्वर्य्यवन्तं सर्वगतं सर्वत्र रममाणं सत्यस्वभावं धार्मिकाणां विजयप्रदं परमेश्वरं प्रकाशयन्ति। धर्मेण बलेन दुष्टमनुष्याणां विजेतारं धार्मिकाणां पालकं वेतीश्वरो वेदवचस्म सर्वान् विज्ञापयित॥१॥

पदार्थ्य: हमेरी ये (विश्वा:) सब (गिर:) स्तुतियां (समुद्रव्यचसम्) जो आकाश में अपनी व्यापकता से परिष्र ईश्वर, वा जो नौका आदि पूरण सामग्री से शत्रुओं को जीतनेवाले मनुष्य (रथीनाम्) जो बड़ें चड़े युद्धों में विजय कराने वा करनेवाले (रथीतमम्) जिसमें पृथिवी आदि रथ अर्थात् सब क्रीड्डाओं के साधन, तथा जिसके युद्ध के साधन बड़े-बड़े रथ हैं, (वाजानाम्) अच्छी प्रकार जिनमें जय और पराजय प्राप्त होते हैं, उनके बीच (सत्पतिम्) जो विनाशरहित प्रकृति आदि द्रव्यों का पालन

अष्टक-१। अध्याय-१। वर्ग-२१

मण्डल-१। अनुवाक-३। सूक्त-११

करनेवाला ईश्वर, वा सत्पुरुषों की रक्षा करनेहारा मनुष्य (पितम्) जो चराचर जगत् और प्रजा के स्वामी, वा सज्जनों की रक्षा करनेवाले और (इन्द्रम्) विजय के देनेवाले परमेश्वर के, वा शत्रुओं को जीवनेवाले धर्मात्मा मनुष्य के (अवीवृधन) गुणानुवादों को नित्य बढ़ाती रहें॥१॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। सब वेदवाणी परमैश्वयर्युक्त सब में रहूने सब जगह रमण करने सत्य स्वभाव तथा धर्मात्मा सज्जनों को विजय देनेवाले परमेश्वर और धर्म ब्री बल से दुष्ट मनुष्यों को जीतने तथा धर्मात्मा वा सज्जन पुरुषों की रक्षा करनेवाले मनुष्य का प्रकृशि करती हैं। इस प्रकार परमेश्वर वेदवाणी से सब मनुष्यों को आज्ञा देता है॥१॥

पुनस्तावेवोपदिश्येते।

फिर भी अगले मन्त्र में इन्हीं दोनों का प्रकाश किया है

सुख्ये ते इन्द्र वाजिनो मा भैम शवसस्पते। त्वामुभि प्र णोनुमो जेतारुमपराजितम्॥२॥

सुख्ये। ते। इन्द्रा वाजिने:। मा। भेम। शवस् । प्रते। त्याम्। अभि। प्रा नोनुम:। जेतारम्। अर्पऽराजितम्॥२॥

पदार्थ:-(सख्ये) मित्रभावे कृते (ते) तबेश्वरस्य न्यायशीलस्य सभाध्यक्षस्य वा (इन्द्र) सर्वस्वामित्रीश्वर सभाध्यक्ष राजन् वा (वाजिन्नः) वाजः प्ररमोत्कृष्टविद्याबलाभ्यामात्मनो देहस्य प्रशस्तो बलसमूहो येषामस्ति ते (मा) निषेधार्थे, क्रियायोग (प्रेम) बिभयाम भयं करवाम। अत्र लोडथें लुङ्। बहुलं छन्दसीति च्लेर्लुक्। छन्दस्युभय्येति लुङ्) आर्धधातुकसंज्ञामाश्रित्य मसो ङित्वाभावाद् गुणश्च। (शवसः) अनन्तबलस्य प्रमितबलस्य वा। शव इति बलनामसु पठितम्। (निघं०२.९) (पते) सर्वस्वामित्रीश्वर सभाध्यक्ष राजन्य (वाम्) जगदीश्वरं सभाध्यक्षं वा (अभि) आभिमुख्यार्थे (प्र) प्रकृष्टार्थे (नोनुमः) अतिशयेन स्तुमः। अयं 'णु स्तुतौ' इत्यस्य यङ्लुिक प्रयोगः। उपसर्गादसमासेऽपि णोपदेशस्य। (अष्टा०८. १९४) इति णकारादेशश्च। (जेतारम्) शत्रून् जापयित जयित वा तम् (अपराजितम्) यो न केन्प्रिप पराजेतु शक्यते तम्॥२॥

अन्वय:-हे शवसस्पते जगदीश्वर सेनाध्यक्ष वा! अभिजेतारमपराजितं त्वां वाजिनो विजानन्तो वयं प्रणोनुमः पुनः प्रुनने स्कुर्मः, तथा हे इन्द्र! ते तव सख्ये कृते शत्रुभ्यः कदाचिन्मा भेम भयं मा करवाम॥२॥

भावार्थ:-अत्र श्लेषालङ्कार:। ये मनुष्या परमेश्वरे तदाज्ञाचरणे तथा शूरादिमनुष्येषु नित्यं मित्रत्नामाचर्यन्त, ते बलवन्तो भूत्वा नैव शत्रुभ्यो भयपराभवौ प्राप्नुवन्तीति॥२॥

पदार्थ:-हे (शवस:) अनन्तबल वा सेनाबल के (पते) पालन करनेहारे ईश्वर वा अध्यक्ष! (अभिजेतारम्) प्रत्यक्ष शत्रुओं को जिताने वा जीतनेवाले (अपराजितम्) जिसका पराजय कोई भी न कर सके (त्वा) उस आप को (वाजिन:) उत्तम विद्या वा बल से अपने शरीर के उत्तम बल वा (समुहाय क) जानते हुए हम लोग (प्रणोनुम:) अच्छी प्रकार आप की वार-वार स्तुति करते हैं, जिसके (इन्द्र) हे सब प्रजा वा सेना के स्वामी! (ते) आप जगदीश्वर वा सभाध्यक्ष के साथ (सख्ये) हम लोग पिक्रभाव करके शत्रुओं वा दुष्टों से कभी (मा भेम) भय न करें॥२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जो मनुष्य परमेश्वर की अब्रिज़ के पालने वा अपने धर्मानुष्ठान से परमात्मा तथा शूरवीर आदि मनुष्यों में मित्रभाव अर्थात् प्रीवि रखते हैं, वे बलवाले होकर किसी मनुष्य से पराजय वा भय को प्राप्त कभी नहीं होते॥२॥

पुनस्तावेवोपदिश्येते।

फिर भी अगले मन्त्र में इन्हीं दोनों का उपदिश किया है

पूर्वीरिन्द्रस्य गुतयो न विद्स्यन्त्यूतयः।

यदि वार्जस्य गोमतः स्तोतृभ्यो मंहते मुघम्।।

पूर्वीः। इन्द्रस्य। रातयः। न। वि। दुस्यन्ति। इत्रयः। यदि। वार्जस्य। गोऽर्मतः। स्तोऽतृभ्यः। मंहते। मुघम्॥३॥

पदार्थ:-(पूर्वी:) पूर्व्यः सनातन्यः। पूर्णां मुलुगिति पूर्वसवर्णादेशः। (इन्द्रस्य) परमेश्वरस्य सभासेनाध्यक्षस्य वा (रातयः) दानानि (म) निषेधार्थ (वि) क्रियायोगे (दस्यन्ति) उपक्षयन्ति (ऊतयः) रक्षणानि (यदि) आकांक्षार्थे (वाजस्य) वजित्ते प्राप्नुवन्ति सुखानि यस्मिन् व्यवहारे तस्य (गोमतः) प्रशस्ताः पृथिवी गावः पशवो वागादीनीष्ट्रियाणि च विद्यन्ते यस्मिन् तस्य (स्तोतृभ्यः) स्तुवन्ति जगदीश्वरं सृष्टिगुणाँश्च ये तेभ्यो धार्मिकेभ्यो विद्वरुषः (मंहते) ददाति। मंहत इति दानकर्मसु पठितम्। (निघं०३.२०) (मघम्) प्रकृष्टं विद्यासुवर्णादिधानम्॥३॥

अन्वय:-यदीन्द्रः स्त्रातृश्यो वाजस्य गोमतो मघं मंहते तर्ह्यस्यैताः पूर्व्यो रातय ऊतयो न विदस्यन्ति नैवोपक्षयन्ति।।३

भावार्थः अत्रापि श्लेषालङ्कारः। यथेश्वरस्य जगित दानरक्षणानि नित्यानि न्याययुक्तानि कर्माणि सन्ति, तथैव मनुष्यैरपि प्रजायां विद्याऽभयदानानि नित्यं कार्य्याणि। यदीश्वरो न स्यात्तर्हीदं जगत्कथमुत्पेद्येत सदीश्वरः सर्वमुत्पाद्य न दद्यात्तर्हि मनुष्याः कथं जीवेयुस्तस्मात्सकलकार्य्योत्पादकः सर्वसुखद्देतेश्वरोऽस्ति, नेतर इति मन्तव्यम्॥३॥

पदार्थ:-(यदि) जो परमेश्वर वा सभा और सेना का स्वामी (स्तोतृभ्य:) जो जगदीश्वर वा सृष्टि के गुणों की स्तुति करनेवाले धर्मात्मा विद्वान् मनुष्य हैं, उनके लिये (वाजस्य) जिसमें सब सुख प्राप्त अष्टक-१। अध्याय-१। वर्ग-२१

मण्डल-१। अनुवाक-३। सुक्त-११

होते हैं उस व्यवहार, तथा (गोमत:) जिसमें उत्तम पृथिवी, गौ आदि पशु और वाणी आदि इन्द्रियां वर्त्तमान हैं, उसके सम्बन्धी (मघम्) विद्या और सुवर्णादि धन को (मंहते) देता है, तो इस (इन्द्रस्य) परमेश्वर तथा सभा सेना के स्वामी की (पूर्व्य:) सनातन प्राचीन (रातय:) दानशक्ति तथा (ऊतय:) की हैं, वे कभी (न) नहीं (विदस्यन्ति) नाश को प्राप्त होतीं, किन्तु नित्य प्रति वृद्धि हो को प्राप्त रहती हैं॥३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में भी श्लेषालङ्कार है। जैसे ईश्वर वा राजा की इस्र संसार में दान और रक्षा निश्चल न्याययुक्त होती हैं, वैसे अन्य मनुष्यों को भी प्रजा के बीच में विद्या और निर्भयता का निरन्तर विस्तार करना चाहिये। जो ईश्वर न होता तो यह जगत् कैसे उत्पन्न होता जथा जो ईश्वर सब पदार्थों को उत्पन्न करके सब मनुष्यों के लिये नहीं देता तो मनुष्य लोग कैसे ज़ सकते इससे सब कार्य्यों का उत्पन्न करने और सब सुखों का देनेवाला ईश्वर ही है, अन्य कोई नहीं, यह बात सब को माननी चाहिये॥३॥

पुनरिन्द्रशब्देन सूर्व्यसेनापतिभूणा उषदिश्यन्ते।

फिर अगले मन्त्र में इन्द्र शब्द से सूर्य्य और सेनायित के)गुणों का उपदेश किया है-

पुराम्भिन्दुर्युवां कविरमितौजा अजायत। इन्द्रों विश्वस्य कर्मणों धुर्ता वुन्नी पुरुष्ट्वतः।।४॥

पुराम्। भिन्दुः। युवां। कृविः। अम्तिर्अजाः। अजायतः। इन्द्रंः। विश्वंस्य। कर्मणः। धृर्ता। वृज्री। पुरुरस्तुतः॥४॥

पदार्थ:-(पुराम्) सङ्घातानी शत्रुभमराणां द्रव्याणां वा (भिन्दुः) भेदकः (युवा) मिश्रणामिश्रणकर्त्ता (किवः) न्याधिवद्याया दर्शनिवषयस्य वा क्रमकः (अमितौजाः) अमितं प्रमाणरिहतं बलमुदकं वा यस्य यस्माद्वा सः (अजायत) उत्पन्नोऽस्ति (इन्द्रः) विद्वान्सूर्य्यो वा (विश्वस्य) सर्वस्य जगतः (कर्मणः) चेष्टितस्य (धर्ता) प्राक्रमेणाकर्षणेन वा धारकः (वज्री) वज्राः प्राप्तिच्छेदनहेतवो बहवः शस्त्रसमूहाः किरणा वा विद्याने यस्य सः। अत्र भूम्न्यर्थे इनिः (पुरुष्टुतः) बहुभिर्विद्वद्भिर्गुणैर्वा स्तोतुमर्हः॥४॥

अन्वयः-अप्रममितीजा वज्री पुरां भिन्दुर्युवा कविः पुरुष्टुत इन्द्रः सेनापितः सूर्य्यलोको वा विश्वस्य कर्मणो धर्त्तारुजायतोत्पञ्चोऽस्ति॥४॥

भावार्थ:-अत्र श्लेषालङ्कारः। यथेश्वरेण सृष्ट्वा धारितोऽयं सूर्य्यलोकः स्वकीयैर्वज्रभूतैश्छेदकैः किर्णेः सर्वेषां मूर्तद्रव्याणां भेत्ता बहुगुणहेतुराकर्षणेन पृथिव्यादिलोकस्य धाताऽस्ति, तथैव सेनापितना

स्वबलेन शत्रुबलं छित्त्वा सामदानादिभिर्दुष्टान् मनुष्यान् भित्त्वाऽनेकशुभगुणाकर्षको भूत्वा भूर्ग स्वराज्यपालनं सततं कार्य्यमिति वेद्यम्॥४॥

पदार्थ:-जो यह (अमितौजा:) अनन्त बल वा जलवाला (वज्री) जिसके सब पदार्थी की प्राप्त करानेवाले शस्त्रसमूह वा किरण हैं, और (पुराम्) मिले हुए शत्रुओं के नगरों वा पदार्थी का (भिन्दु:) अपने प्रताप वा ताप से नाश वा अलग-अलग करने (युवा) अपने गुणों से पदार्थों का मेल करने वा कराने तथा (किव:) राजनीति विद्या वा दृश्य पदार्थों का अपने किरणों से प्रकाश करनेवाला (पुष्कृष्टत:) बहुत विद्वान् वा गुणों से स्तुति करने योग्य (इन्द्र:) सेनापित और सूर्य्यलोक (विश्वस्प) सब जगत् के (कर्मण:) कार्यों को (धर्ता) अपने बल और आकर्षण गुण से धारण करनेवाला (अजायत) उत्पन्न होता और हुआ है, वह सदा जगत् के व्यवहारों की सिद्धि का हेतु है॥४॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जैसे ईश्वर का रचा और धारण किया हुआ यह सूर्य्यलोक अपने वज्ररूपी किरणों से सब मूर्तिमान् पदार्थों को अलग-अलग करने तथा बहुत से गुणों का हेतु और अपने आकर्षणरूप गुण से पृथिवी आदि लोकों का धारण करनेवाला है, वैसे ही सेनापित को उचित है कि शत्रुओं के बल का छेदन साम, दाम और दण्ड से शत्रुओं को छिन्न-भिन्न करके बहुत उत्तम गुणों को ग्रहण करता हुआ भूमि में अपने राज्य का पालन करे॥४॥

पुनरपि तस्य मुणा उपदिश्र्यन्ते।

फिर भी अगले मन्त्र में सूर्यि के गुणों/का उपदेश किया है-

त्वं बुलस्य गोमुतोऽपावरद्रिवो बिल्पम्।

त्वां देवा अबिभ्युषस्तुज्यमानास् आविषुः।।५॥

त्वम्। बुलस्यं। गोऽमतः। अपी अवः। अद्भिवः। बिलम्। त्वाम्। देवाः। अबिभ्युषः। तुज्यमानासः। आविषुः॥५॥

पदार्थ:-(त्वम्) असम् (बलस्य) मेघस्य। बल इति मेघनामसु पठितम्। (निघं०१.१०) (गोमतः) गावः संबद्धा रश्मयो विद्यन्ते यस्य तस्य। अत्र सम्बन्धे मतुप्। (अप) क्रियायोगे (अवः) दूरीकरोत्युद्धाटयित। अत्र पुरुष्ट्यात्यः, लडर्थे लङ्। बहुलं छन्दसीत्याङभावश्च। (अद्रिवः) बहवोऽद्रयो मेघा विद्यन्ते यस्मित्सः। अत्र भूम्न्यर्थे मतुप्। छन्दसीर इति मतुपो मकारस्य वत्त्वम्। मतुवसो रु सम्बुद्धौ छन्दिस। (अष्ट्रा०८.३१) इति नकारस्थाने रुरादेशश्च। अद्रिरित मेघनामसु पठितम्। (निघं०१.१०) (बिलम्) जलसमूहम्। बिलं भरं भवित बिभर्तेः। (निरु०२.१७) (त्वाम्) तिममम् (देवाः) दिव्यगुणाः पृथिव्यादेषः (अविभ्युषः) बिभेति यस्मात् स बिभीवात्र बिभीवानिबभीवान् तस्य (तुज्यमानासः) कम्पूर्मानाः स्वां स्वां वसितमाददानाः (आविषुः) अभितः स्वस्वकक्षां व्याप्नुवन्ति। अत्र लडर्थे लुङ्। अयं व्याप्नुवित्ताः प्रयोगः॥५॥

अष्टक-१। अध्याय-१। वर्ग-२१

मण्डल-१। अनुवाक-३। सूक्त-११

अन्वय:-योऽद्रिवो मेघवानिन्द्रः सूर्य्यलोको गोमतोऽबिभ्युषो बलस्य मेघस्य बिलमपावोऽपवृणोति त्वा तिममं तुज्यमानासो देवा दिव्यगुणा भ्रमन्तः पृथिव्याद्यी लोका आविषुर्व्याप्नुवन्ति॥५॥

भावार्थ:-यथा सूर्य्य: स्विकरणैर्घनाकारं मेघं छित्वा भूमौ निपातयित, यस्य क्रिएणेषु भेघस्तिष्ठति, यस्याभित आकर्षणेन पृथिव्यादयो लोका: स्वस्वकक्षायां सुनियमेन भ्रमन्ति, द्वितोऽयनर्त्वेहीसत्रादयो जायन्ते, तथैव सेनापितना भवितव्यमिति॥५॥

पदार्थ:-(अद्रिव:) जिसमें मेघ विद्यमान है ऐसा जो सूर्य्यलोक है वह (गोमत:) जिसमें अपने किरण विद्यमान हैं उस (अविभ्युष:) भयरहित (बलस्य) मेघ के (बिलम्) जन्मे मूह को (अपाव:) अलग-अलग कर देता है, (त्वाम्) इस सूर्य्य को (तुज्यमानास:) अपनी अपनी कक्षाओं में भ्रमण करते हुए (देवा:) पृथिवी आदिलोक (आविषु:) विशेष करके प्राप्त होते हैं।।।

भावार्थ:-जैसे सूर्य्यलोक अपनी किरणों से मेघ के किर्न कठिल बद्दलों को छिन्न-भिन्न करके भूमि पर गिराता हुआ जल की वर्षा करता है, क्योंकि यह मेघ उसकी किरणों में ही स्थित रहता, तथा इसके चारों ओर आकर्षण अर्थात् खींचने के गुणों से पृथिवी आदि लोक अपनी-अपनी कक्षा में उत्तम-उत्तम नियम से घूमते हैं, इसी से समय के विभाग जि उत्तरमण, दक्षिणायन तथा ऋतु, मास, पक्ष, दिन, घड़ी, पल आदि हो जाते हैं, वैसे ही गुणवाला स्नापित होना उचित है॥५॥

अथेन्द्रशब्देन शुरुबीरुपुणी उपदिश्यन्ते।

अब अगले मन्त्र में इन्द्र शब्त से शूर्णीर के गुणों का उपदेश किया है-

तवाहं शूर रातिभिः प्रत्यां सम्बुपावदेन्।

उपातिष्ठन्त गिर्वणो विद्धुष्ट्र तस्य कारवः॥६॥

तर्व। अहम्। श्रूर्। रातिऽभिः। प्रति। अग्रुम्। सिन्धुम्। आऽवर्दन्। उप। अतिष्ठन्तः। गिर्वेणः। विदुः। ते। तस्य। कारवः॥६॥

पदार्थ:-(तव) बिर्मपराक्रमयुक्तस्य (अहम्) सर्वो जनः (शूर) धार्मिक दुष्टिनवारक विद्याबलपराक्रमवन् सभाध्यक्ष! (रातिभिः) अभयादिदानैः (प्रति) प्रतीतार्थे क्रियायोगे (आयम्) प्राप्नुयाम्। अत्र लिर्झ्ये लङ्। (सिन्धुम्) स्यन्दते प्रस्रवित सुखानि समुद्र इव गम्भीरस्तम् (आवदन्) समन्तात् ब्रुबन्सन् (उप) सामीप्यार्थे (अतिष्ठन्त) स्थिरा भवेयुः। अत् लिर्झ्ये लङ्। (गिर्वणः) गीर्भिर्वन्द्यते सेव्यते क्रनस्तत्सम्बुद्धौ (विदुः) जानन्ति (ते) तव (तस्य) राज्यस्य युद्धस्य शिल्पस्य वा (कारवः) ये कार्य्याणि कर्जन्ति ते॥६॥

अन्वय:-हे शूर! ये तव रातिभिस्त्वां सिन्धुमिवावदन् सन्नहं प्रत्यायम्। हे गिर्वणस्तव तस्य च कारवस्त्वां शूरं विदुरुपातिष्ठन्त ते सदा सुखिनो भवन्ति॥६॥

भावार्थ:-अत्र लुप्तोपमालङ्कारौ स्तः। ईश्वरः सर्वानाज्ञापयति-मनुष्यैर्धार्मिकस्य शूरस्य प्रशेक्तिस्य सभाध्यक्षस्य वा सेनाध्यक्षस्य मनुष्याभयदानेन समुद्रस्य जन्तव इवाश्रयेण राज्यकार्य्याणि सम्यग् विद्वित्वा संसाधनीयानि दुःखनिवारणेन सुखाय परस्परमुपस्थितिश्च कार्य्येति॥६॥

पदार्थ:-हे (शूर) धार्मिक घोर युद्ध से दुष्टों की निवृत्ति करने तथा विद्या कर पराक्रमकाने वीर पुरुष! जो (तव) आपके निर्भयता आदि दानों से मैं (सिन्धुम्) समुद्र के समान गर्भिर हा सुख देनेवाले आपको (आवदन्) निरन्तर कहता हुआ (प्रत्यायम्) प्रतीत करके प्राप्त होकी हे (गिर्वणः) मनुष्यों की स्तुतियों से सेवन करने योग्य! जो (ते) आपके (तस्य) युद्ध राज्य वा शिल्यिद्या के सहायक (कारवः) कारीगर हैं, वे भी आप को शूरवीर (विदुः) जानते तथा (उपातिष्ठन्त) समीपस्थ होकर उत्तम काम करते हैं, वे सब दिन सुखी रहते हैं॥६॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार हैं। ईश्वर सब मनुष्यों को आज्ञा देता है कि-जैसे मनुष्यों को धार्मिक शूर प्रशंसनीय सभाध्यक्ष वा सेनापित मनुष्यों के अभेषद्धान से निर्भियता को प्राप्त होकर जैसे समुद्र के गुणों को जानते हैं, वैसे ही उक्त पुरुष के आश्रय से अच्छी प्रकार जानकर उनको प्रसिद्ध करना चाहिये तथा दु:खों के निवारण से सब सुखों के लिये प्रस्पर विचार भी करना चाहिये॥६॥

पुनस्तद्भुणा उपदिश्यन्ते।

फिर भी अगले मन्त्र में सूर्य्य के गूणों का उपदेश किया है-

मायाभिरिन्द्र मायिनं त्वं शुष्णमञ्जातिरः। विदुष्टे तस्य मेधिरास्तेषां श्रवास्यतिरा ७॥

मायाभिः। इन्द्रः। मायिनम्। त्वम्। शुष्णाम्। अवं। अतिरः। विदुः। ते। तस्यं। मेधिराः। तेषाम्। श्रवांसि। उत्। तिर्॥७॥

पदार्थ:-(मायार्भ:) प्रज्ञातिशंषव्यवहारै:। मायेति प्रज्ञानामसु पठितम्। (निघं०३.९) (इन्द्र) परमैश्वर्यप्रापक शत्रुनिवारक प्रश्निसनयो: परमाध्यक्ष! (मायिनम्) माया निन्दिता प्रज्ञा विद्यते यस्य तम्। अत्र निन्दार्थ इनिद्रा (त्वम्) प्रज्ञासेनाशरीरबलयुक्तः (शुष्णम्) शोषयित धार्मिकान् जनान् तं दुष्टस्वभावं प्राणिनम्। अत्र 'शुष्ण् शोषणे' इत्यस्मात् तृषिशुषि० (उणा०३.१२) अनेन नः प्रत्ययः। (अव) विनिग्रहार्थे/अवेति विनिग्रहार्थीयः। (निरु०१.३) (अतिरः) शत्रुबलं प्लावयित। अत्र लड्थें लुङ् विकरण्ड्यत्ययेन शपः स्थाने शश्च। (विदुः) जानन्ति (ते) तव (तस्य) राज्यादिव्यवहारस्य मध्ये (मेथितः) ये मेधन्ते शास्त्राणि ज्ञात्वा दुष्टान् हिंसन्ति ते। अत्र 'मिधृमेधृ मेथितः स्थाने शिक्तिः इरन् प्रत्ययः। (तेषाम्) धार्मिकाणां प्राणिनाम् (श्रवांसि)

अष्टक-१। अध्याय-१। वर्ग-२१

मण्डल-१। अनुवाक-३। सूक्त-११

अन्नादीनि वस्तूनि। श्रव इत्यन्ननामसु पठितम्। (निघं०२.७) श्रव इत्यन्ननाम श्रूयत इति सतः। (निरु०१०.३) अनेन विद्यमानादीनामन्नादिपदार्थानां ग्रहणम्। (उत्) उत्कृष्टार्थे (तिर) विस्तारयाणि

अन्वय:-हे इन्द्र शूरवीर! त्वं मायाभि: शुष्णं मायिनं शत्रुमवितरस्तस्य हनने ये पिधरस्ति नव सङ्गमेन सुखिनो भूत्वा श्रवांसि प्राप्नुवन्तु, त्वं तेषां सहायेनारीणां बलान्युत्तिरोत्कृष्टतया विवारया ७॥

भावार्थ:-ईश्वर आज्ञापयित-मेधाविभिर्मनुष्यैः सामदानदण्डभेदयुक्स्प दुष्टशत्रुव्विवार्य्य विद्याचक्रवर्त्तिराज्यस्य विस्तारः सम्भावनीयः। यथाऽस्मिन् जगित कपिटनो मृत्रुष्या चेवुर्द्धेरंस्तथा नित्यं प्रयत्नः कार्य्य इति॥७॥

पदार्थ:-हे परमैश्वर्य को प्राप्त कराने तथा शत्रुओं की निवृत्ति कर्जवित भूरवीर मनुष्य! (त्वम्) तू उत्तम बुद्धि सेना तथा शरीर के बल से युक्त हो के (मायाभिः) विशेष बुद्धि के व्यवहारों से (शुष्णम्) जो धर्मात्मा सज्जनों का चित्त व्याकुल करने (मायाभिः) दुर्बुद्धि दुःख देनेवाला सब का शत्रु मनुष्य है, उसका (अवातिर) पराजय किया कर, (तस्य) उसके मारने में (मधिराः) जो शस्त्रों को जानने तथा दुष्टों को मारने में अति निपुण मनुष्य हैं, वे (ते) तेरे संगम से सुखी और अन्नादि पदार्थों को प्राप्त हों, (तेषाम्) उन धर्मात्मा पुरुषों के सहाय से शत्रुओं के बलों को (उत्तिर) अच्छी प्रकार निवारण कर॥७॥

भावार्थ:-बुद्धिमान् मनुष्यों को ईश्वर आहाँ देता है कि-साम, दाम, दण्ड और भेद की युक्ति से दुष्ट और शत्रुजनों की निवृत्ति करके विद्या और चक्रवित्त राज्य की यथावत् उन्नति करनी चाहिये। तथा जैसे इस संसार में कपटी, छली और दुष्ट पुरुष वृद्धि को प्राप्त न हों, वैसा उपाय निरन्तर करना चाहिये॥७॥

अथेश्वरगुणा उपदिश्यन्ते।

अपुलि मन्त्र में ईश्वर के गुणों का उपदेश किया है-

इन्द्रमीशानुमोर्जस्मुधि स्तामा अनुषत।

सहस्रं यस्य रात्य उत्नर्वा सन्ति भूयसी:॥८॥२१॥३॥

इन्द्रम्। ईशानम्। ओजसा। अभि। स्तोमाः। अनुष्ठतः। सहस्रम्। यस्यं। गृतयः। उतः। वाः। सन्ति। भूयसीः॥८॥ 🗸

पदार्थ: (इन्द्रम्) सकलैश्वर्य्ययुक्तम् (ईशानम्) ईष्टे कारणात् सकलस्य जगतस्तम् (ओजसा) अनन्तब्द्रोत्। औज इति बलनामसु पठितम्। (निघं०२.९) (अभि) सर्वतोभावे। अभीत्याभिमुख्यं प्राह। (निष्ट्रिश्च्य) (स्तोमाः) स्तुवन्ति यैस्ते स्तुतिसमूहाः (अनूषत) स्तुवन्ति। अत्र लडर्थे लुङ्। (सहस्रम्)

असंख्याताः (यस्य) जगदीश्वरस्य (रातयः) दानानि (उत) वितर्के (वा) पक्षान्तरे (सन्ति) भवन्ति (भूयसीः) अधिकाः। अत्र वा छन्दसीति जसः पूर्वसवर्णत्वम्॥८॥

अन्वय:-यस्य सर्वे स्तोमाः स्तुतयः सहस्रमुत वा भूयसीरिधका रातयश्च सन्ति ता यभिजेसा सह वर्त्तमानमीशानिमन्द्रं जगदीश्वरमभ्यनूषत सर्वतः स्तुवन्ति, स एव सर्वेर्मनुष्यैः स्तोतव्यः॥८५०

भावार्थ:-येन दयालुनेश्वरेण प्राणिनां सुखायानेके पदार्था जगित स्वौजसोत्पाद्य दत्ता, यस्य ब्रह्मणः सर्व इमे धन्यवादा भवन्ति, तस्यैवाश्रयो मनुष्यैर्प्राह्य इति॥८॥

अत्रैकादशसूक्तै हीन्द्रशब्देनेश्वरस्य स्तुतिर्निर्भयसम्पादनं सूर्य्यलेककृत्यं शूरवीरगुणवर्णनं दुष्टशत्रुनिवारणं प्रजारक्षणमीश्वरस्यानन्तसामर्थ्याज्जगदुत्पादनादिविधानमुक्तक्ते अस्य दशमसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति बोध्यम्।

इदमपि सूक्तं सायणाचार्य्यादिभिर्यूरोपदेशनिवासिभिर्विलसना ख्यादिभिर्य्यान्यथैव व्याख्यातम्॥

इति प्रथममण्डले तृतीयोऽनुवाक एकादशसूक्तमेक्वविंशो वर्मध्य समाजः॥

पदार्थ:-(यस्य) जिस जगदीश्वर के ये सब (स्तोमा:) स्तुतिश्वों के समूह (सहस्रम्) हजारों (उत वा) अथवा (भूयसी:) अधिक (रातय:) दान (सन्ति) हैं, उन (ओज़ंसा) अनन्त बल के साथ वर्त्तमान (ईशानम्) कारण से सब जगत् को रचनेवाले तथा (इन्ह्रम्) सकल ऐश्वर्य्ययुक्त जगदीश्वर के (अभ्यनुषत) सब प्रकार से गुणकीर्तन करते हैं॥८म

भावार्थ:-जिस दयालु ईश्वर ने प्राणियों के सुख के लिये जगत् में अनेक उत्तम-उत्तम पदार्थ अपने पराक्रम से उत्पन्न करके जीवों को दिये हैं, उसी ब्रह्म के स्तुतिविधायक सब धन्यवाद होते हैं, इसलिये सब मनुष्यों को उसी का आश्रय लेन चाहिये॥८॥

इस सूक्त में इन्द्र शब्द से ईश्वर की स्तुर्ति, निर्भयता-सम्पादन, सूर्य्यलोक के कार्य्य, शूरवीर के गुणों का वर्णन, दुष्ट शत्रुओं का निवास्ण, प्रजा की रक्षा तथा ईश्वर के अनन्त सामर्थ्य से कारण करके जगत् की उत्पत्ति आदि के विधाप से इस ग्यारहवें सूक्त की सङ्गति दशवें सूक्त के अर्थ के साथ जाननी चाहिये।

यह भी सूक्त सायाचार्य आदि आर्य्यावर्त्तवासी तथा यूरोपदेशवासी विलसन साहब आदि ने विपरीत अर्थ के साथ वर्णन किया है॥

यह प्रथम भण्डल में तीसरा अनुवाक, ग्यारहवां सूक्त, और इक्कीसवां वर्ग पूरा हुआ॥

अथ द्वादशर्च्चस्य द्वादशसूक्तस्य काण्वो मेधातिथिर्ऋषि:। अग्निर्देवता। गायत्री छन्द:। षड्ज:

स्वर:॥

तत्रादौ भौतिकगुणा उपदिश्यन्ते।

अब बारहवें सुक्त के प्रथम मन्त्र में भौतिक अग्नि के गुणों का उपदेश किया है

अ्गिं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम्। अस्य यज्ञस्यं सुक्रतुम्॥१॥

अग्निम्। दूतम्। वृणीमुहे। होतारम्। विश्वऽवैदसम्। अस्य। युज्ञस्य। सुऽक्रतुम्।। शा

पदार्थ:-(अग्निम्) सर्वपदार्थच्छेदकम् (दूतम्) यो दावयित देशान्तरं प्रदार्थाम् गमयत्युपतापयित वा तम्। अत्र दुतिभ्यां दीर्घश्च। (उणा०३.८८) इति क्तः प्रत्येशे दीर्घश्च। (वृणीमहे) स्वीकुर्महे (होतारम्) यानेषु वेगादिगुणदातारम् (विश्ववेदसम्) शिल्पिनो विश्वविद्यामयस्य (सुक्रतुम्) सुष्ठु शोभनाः क्रतवः प्रज्ञाः क्रिया वा भवन्ति यस्मात्तम्॥१॥

अन्वय:-वयं क्रियाचिकीर्षवो मनुष्या अस्य अन्य प्रक्रिंतुं विश्ववेदसं होतारं दूतमग्निं वृणीमहे॥१॥

भावार्थ:-ईश्वर आज्ञापयित-मनुष्यैरयं प्रत्यक्षाप्रकृषक्षेण प्रसिद्धाप्रसिद्धगुणद्रव्याणामुपर्य्यधो गमकत्वेन दूतस्वभावः शिल्पविद्यासम्भावितकत्वियन्त्राणा) प्रेरणहेतुर्यानेषु वेगादिक्रियानिमित्तमिनः सम्यग् विद्यया सर्वोपकाराय संग्राह्यो यतः सर्वाण्युत्तम्नि सुखुर्गनं सम्भवेयुरिति॥१॥

पदार्थ:-क्रिया करने की इच्छा कर्मवाले हम मनुष्य लोग (अस्य) प्रत्यक्ष सिद्ध करने योग्य (यज्ञस्य) शिल्पविद्यारूप यज्ञ के (सुक्रनुम्) जिससे उत्तम-उत्तम क्रिया सिद्ध होती हैं, तथा (विश्ववेदसम्) जिससे कारीगरों की सब शिल्प आदि साधनों का लाभ होता है, (होतारम्) यानों में वेग आदि को देने (दूतम्) पदार्थों को एक देश से दूसरे देश को प्राप्त करने (अग्निम्) सब पदार्थों को अपने तेज से छिन्न-भिन्न करने क्रिक्त भौतिक अग्नि को (वृणीमहे) स्वीकार करते हैं॥१॥

भावार्थ:-ईश्वर सब पनुष्माँ को आज्ञा देता है कि-यह प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष से विद्वानों ने जिसके गुण प्रसिद्ध किये हैं, तथा पदार्थों को ऊपर नीचे पहुंचाने से दूत स्वभाव तथा शिल्पविद्या से जो कलायन्त्र बन्ते हैं, इतके चलाने में हेतु और विमान आदि यानों में वेग आदि क्रियाओं का देनेवाला भौतिक अन्ति अस्त्री प्रकार विद्या से सब सज्जनों के उपकार के लिये निरन्तर ग्रहण करना चाहिये, जिससे सब उत्तम-उत्तम सुख हों॥१॥

अथ द्विविधोऽग्निरुपदिश्यते।

अब अगले मन्त्र में दो प्रकार के अग्नि का उपदेश किया है-

अग्निमंग्निं हवींमभिः सदां हवन्त विश्पतिम्। हव्यवाहं पुरुष्रियम्॥२॥

अग्निऽअग्निम्। हवीमभिः। सदौ। हुवन्तु। विश्पतिम्। हुव्यवाह्मम्। पुरुप्रियम्॥२॥

पदार्थ:-(अग्निम्) परमेश्वरम् (अग्निम्) विद्युदूपम् (हवीमिभः) ग्रहीतुं योग्येरुपासनादिभिः शिल्पसाधनैर्वा। 'हु दानादानयो'रित्यस्मात् अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते। (अष्टा०३.२.७५) इति मनिस्, बहुलं छन्दसीतीडागमश्च। (सदा) सर्वस्मिन्काले (हवन्त) गृह्णीत (विश्पतिम्) विश्वः प्रजास्तासां स्वामिनं पालनहेतुं वा (हव्यवाहम्) होतुं दातुमत्तुमादातुं च योग्यानि ददाति वा यानादीनि वस्तूभीतस्ततो वहित प्रापयित तम् (पुरुप्रियम्) बहूनां विदुषां प्रीतिजनको वा पुरूणि बहूनि प्रियम्णि सुखानि भवन्ति यस्मात्तम्॥२॥

अन्वय:-यथा वयं हवीमभि: पुरुप्रियं विश्पतिं हव्यवाहम्पिनमिप्ते शृणीमहे, तथैवैतं यूयमपि सदा हवन्त गृह्णीत॥२॥

भावार्थ:-अत्र लुप्तोपमालङ्कार:। पूर्वस्मान्मन्त्राद 'वृणोमहें' इति पदमनुवर्तते। ईश्वर: सर्वान्प्रत्युपदिशति-हे मनुष्या युष्माभिर्विद्युदाख्यस्य प्रिपद्धियोगनेश्च सकाशात् कलाकौशलादिसिद्धिं कृत्वाऽभीष्टानि सुखानि सदैव भोक्तव्यानि भोजयितव्यानि चेति॥२॥

पदार्थ:-जैसे हम लोग (हवीमिभ:) प्रहण करने योग्य उपासनादिकों तथा शिल्पविद्या के साधनों से (पुरुप्रियम्) बहुत सुख करानेवाले (विष्ठप्रितम्) प्रजाओं के पालन हेतु और (हव्यवाहम्) देने-लेने योग्य पदार्थों को देने और इधर-उध्र पहुंचानेवाले (अग्निम्) परमेश्वर प्रसिद्ध अग्नि और बिजुली को (वृणीमहे) स्वीकार करतें हैं, वैसे ही तुम लोग भी सदा (हवन्त) उस का ग्रहण करो॥२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में लुफ्रोपमालङ्कार हैं। और पिछले मन्त्र से 'वृणीमहें' इस पद की अनुवृत्ति आती है। ईश्वर सब मनुष्यों के लिये उपदेश करता है कि-हे मनुष्यो! तुम लोगों को विद्युत् अर्थात् बिजुलीरूप तथा प्रत्यक्ष भौकिक अग्नि से कलाकौशल आदि सिद्ध करके इष्ट सुख सदैव भोगने और भुगवाने चाहियें॥२॥

अथेश्वरभौतिकावुपदिश्येते।

अगले येन्त्र में अन्नि शब्द से ईश्वर और भौतिक (अग्नि) के गुणों का उपदेश किया है॥

अग्ने देवाँ देहावह जज्ञानो वृक्तवहिषे।

असि होता न ईड्य:॥३॥

अप्ते। देवान्। इह। आ। वृह्। जुज्ञानः। वृक्तऽर्बर्हिषे। असि। होता। नुः। ईड्यः॥३॥

अष्टक-१। अध्याय-१। वर्ग-२२-२३

मण्डल-१। अनुवाक-४। सूक्त-१२

पदार्थ:-(अग्ने) स्तोतुमर्हेश्वर भौतिकोऽग्निर्वा (देवान्) दिव्यगुणसिहतान् पदार्थान् (इह) अस्मिन् स्थाने (आ) अभितः (वह) वहति वा (जज्ञानः) प्रादुर्भावयिता (वृक्तबर्हिषे) वृद्धते त्यक्तं हिवर्बिहिष्यन्तरिक्षे येन तस्मा ऋत्विजे। वृक्तबर्हिष इति ऋत्विङ्नामसु पठितम्। (निघं०३४१७) (असि) भवति (होता) हुतस्य पदार्थस्य दाता (नः) अस्मभ्यमस्माकं वा (ईड्यः) अध्येष्टव्यः।।

अन्वय:-हे अग्ने वन्दनीयेश्वर! त्विमह जज्ञानो होतेऽडचोऽिस नोऽस्मिश्यं वृक्तबर्हिषे च देवानावह समन्तात् प्रापयेत्येक:। अयं होता जज्ञानोऽग्निर्वृक्तबर्हिषे नोऽस्मभ्यं च देवानावह समन्तात् प्रापयित, अतोऽस्माकं स ईडचो भवित (इति द्विताय:)॥३॥

भावार्थ:-अत्र श्लेषालङ्कार:। मनुष्यैर्यस्मिन् प्रादुर्भूतेऽग्नौ सुगन्ध्यादिशणयुक्तानां द्रव्याणां होम: क्रियते, स तद्द्रव्यसहित आकाशे वायुं मेघमण्डलं च, शुद्धे ह्यस्मिन्न संसारे दिव्यानि सुखानि जनयित, तस्मादयमस्माभिर्नित्यमन्वेष्टव्यगुणोऽस्तीतीश्वराज्ञा मन्तव्या॥३॥

पदार्थ:-हे (अग्ने) स्तुति करने योग्य जगदीश्वर! जो आप (इह) इस स्थान में (जज्ञान:) प्रकट कराने वा (होता) हवन किये हुए पदार्थों को ग्रहण करने तथा (ईड्यू:) खोज करने योग्य (असि) हैं, सो (न:) हम लोग और (वृक्तबर्हिषे) अन्तरिक्ष में होम के पदार्थों को प्राप्त करनेवाले विद्वान् के लिये (देवान्) दिव्यगुणयुक्त पदार्थों को (आवह) अच्छे प्रकार प्राप्त क्रांजिये॥१॥३॥

जो (होता) हवन किये हुए पदार्थों का ग्रिहण करने तथा (जज्ञानः) उनकी उत्पत्ति करानेवाला (अग्ने) भौतिक अग्नि (वृक्तवर्हिषे) जिसके द्वीरा होप करने योग्य पदार्थ अन्तरिक्ष में पहुंचाये जाते हैं, वह उस ऋत्विज् के लिये (इह) इस स्थानि (देवान) दिव्यगुणयुक्त पदार्थों को (आवह) सब प्रकार से प्राप्त करता है। इस कारण (नः) कम लोगों को वह (ईड्यः) खोज करने योग्य (असि) होता है॥२॥३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में लिषालङ्कार है। हे मनुष्य लोगो! जिस प्रत्यक्ष अग्नि में सुगन्धि आदि गुणयुक्त पदार्थों का होम किया करते हैं, जो उन पदार्थों के साथ अन्तरिक्ष में ठहरनेवाले वायु और मेघ के जल को शुद्ध करके हैंसे मंस्रोर में दिव्य सुख उत्पन्न करता है, इस कारण हम लोगों को इस अग्नि के गुणों का खोज करना चाहिये, यह ईश्वर की आज्ञा सब को अवश्य माननी योग्य है॥३॥

अथाग्निगुणा उपदिश्यन्ते।

अगले मन्त्र में भौतिक अग्नि के गुणों का उपदेश किया है-

ता उंशतो वि बोधय यदम्ने यासि दूर्त्यम्।

देवरा संत्सि बुर्हिषि॥४॥

पदार्थ:-(तान्) दिव्यान् गुणान् (उशतः) कामितान्। अत्र कृतो बहुलिमिति कर्मणि लटः स्थाने शतृप्रत्ययः। (वि) विविधार्थे। व्यपेत्येतस्य प्रातिलोम्यं प्राह। (निरु०१.३) (बोधय) बोधयित्। अत्र व्यत्ययः। (यत्) यस्मात् (अग्ने) अग्निः (यासि) याति। अत्र पुरुषव्यत्ययः। (दूत्यम्) दूतस्य भागकर्मणी। (अष्टा०४.४.१२१) अनेन दूतशब्दाद्यत्प्रत्ययः। (देवैः) दिव्यैः पद्धर्थः सह (आ) समन्तात् (सित्स) दोषान् हिनस्ति। अयं 'विशरणार्थे षद्लृधातोः' प्रयोगः पुरुषव्यत्यस्य (बिहिषि) अन्तिरिक्षे॥४॥

अन्वय:-योऽग्निर्यद्यस्माद् बर्हिषि देवै: सह दूत्यमायासि समन्ताद्वाति, तोनुशतो विबोधय विबोधयित, तेषां दोषान्सित्स हन्ति, तस्मादेतैरयं विद्यासिद्धये सर्वथा सर्वदा परीक्ष्य सम्प्रयोजनीयोऽस्ति॥४॥

भावार्थ:-जगदीश्वर आज्ञापयित-अयमिनर्युष्माकं दूतो प्रस्ता कृतः ? हुतान् दिव्यान् परमाणुरूपान् पदार्थानन्तिरक्षे गमयतीत्यतः, उत्तमानां भोगानां प्रापकत्वात्। तस्मात्सर्वेर्मनुष्येः प्रसिद्धाः प्रसिद्धस्याग्नेर्गुणाः कार्य्यार्थे नित्यं प्रकाशनीया इति॥४॥

पदार्थ:-यह (अग्ने) अग्नि (यत्) जिस कारण (विकिष) अग्निरिक्ष में (देवै:) दिव्य पदार्थों के संयोग से (दूत्यम्) दूत भाव को (आयासि) सब प्रकार से प्रप्नि होता है, (तान्) उन दिव्य गुणों को (विबोधय) विदित करानेवाला होता और उन पदार्थी के (सिन्सि) दोषों का विनाश करता है, इससे सब मनुष्यों को विद्या सिद्धि के लिये इस अग्नि की विकास करके प्रयोग करना चाहिये॥४॥

भावार्थ:-परमेश्वर आज्ञा देता है कि है मनुष्यों! यह अग्नि तुम्हारा दूत है, क्योंकि हवन किये हुए परमाणुरूप पदार्थों को अन्तरिक्ष में पहुंचीता और उत्तम-उत्तम भोगों की प्राप्ति का हेतु है। इससे सब मनुष्यों को अग्नि के जो प्रसिद्ध गुण हैं, उनको संसार में अपने कार्य्यों की सिद्धि के किये अवश्य प्रकाशित करना चाहिये॥४॥

पुनः स किं करोतीत्युपदिश्यते।

उक्त अम्नि फिर भी क्या करता है, सो अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है-

घृताहवन दीदिकः प्रिति प्रमें रिषतो दह।

अग्ने त्वं रक्ष्मस्वनः॥५॥

घृतंऽआह्वने। द्रीदिऽवः। प्रति। स्मा रिषंतः। दृह्। अग्ने। त्वम्। रृक्षुस्विनः॥५॥

प्दार्थ:- प्रताहवन) घृतमाज्यादिकं जलं चासमन्ताज्जुह्वति यस्मिन् सः (दीदिवः) यो दीव्यति शुभैर्गुणैद्भव्याणि प्रकाशयति सः। अयं 'दिवु' धातोः क्वसुप्रत्ययान्तः प्रयोगः (प्रति) वीप्सार्थे (स्म) प्रकार्थर्थे (रिपतः) हिंसाहेतुदोषान् (दह) दहति। अत्र व्यत्ययः। (अग्ने) अग्निभौतिकः (त्वम्) सः (क्षितिकः) रक्षांसि दुष्टस्वभावा निन्दिता मनुष्या विद्यन्ते येषु सङ्घातेषु तान्॥५॥

अष्टक-१। अध्याय-१। वर्ग-२२-२३

मण्डल-१। अनुवाक-४। सूक्त-१२

अन्वय:-घृताहवनो दीदिवानग्ने योऽग्नी रक्षस्विनो रिषतो दोषान् शत्रुंश्च प्रति पुन:पुनर्दहति स्म सोऽस्माभि: स्वकार्य्येषु नित्यं सम्प्रयोज्योऽस्ति॥५॥

भावार्थ:-एवं सुगन्ध्यादिगुणयुक्तेन द्रव्येण संयुक्तोऽयमग्निः सर्वान् दुर्गन्धादिद्वीषान् मिर्वार्थ्य सर्वेभ्यः सुखकारी भवतीतीश्वर आह॥५॥

पदार्थ:-(घृताहवन) जिसमें घी तथा जल क्रियासिद्ध होने के लिये छोड़र जाता और जो अपने (दीदव:) शुभ गुणों से पदार्थों को प्रकाश करने वाला है, (त्वम्) वह (अग्ने) अपने (रक्षस्वमः) जिन समूहों में राक्षस अर्थात् दुष्टस्वभाववाले और निन्दा के भरे हुए मनुष्य विद्यमान हैं, तथा जो कि (रिषत:) हिंसा के हेतु दोष और शत्रु हैं, उनका (प्रति दह स्म) अनेक प्रकार से विभाग करना है, हम लोगों को चाहिये कि उस अग्नि को कार्यों में नित्य संयुक्त करें॥५॥

भावार्थ:-जो अग्नि इस प्रकार सुगन्ध्यादि गुणवाले पदार्थी से संयुक्त होकर सब दुर्गन्ध आदि दोषों को निवारण करके सब के लिये सुखदायक होता है, वह अच्छे प्रकार काम में लाना चाहिये। ईश्वर का यह वचन सब मनुष्यों को मानना उचित है॥५॥

स कथं प्रदीप्तो भवति कीद्शश्यीत्युपदिश्यते।

वह अग्नि कैसे प्रकाशित होता और किस प्रकार का है, स्में अगले मन्त्र में उपदेश किया है-

अग्निनाग्निः समिध्यते कविर्गृहपेतिर्मुह्या।

हुव्युवाड् जुह्वांस्य:॥६॥२२॥

अग्निना। अग्निः। सम्। इध्यते। कुविः (गृह्यपतिः। युवा। हृव्युऽवाट्। जुहुऽआस्यः॥६॥

पदार्थ:-(अग्निना) व्यापकेन सिद्युदाख्येन (अग्निः) प्रसिद्धो रूपवान् दहनशीलः पृथिवीस्थः सूर्य्यलोकस्थश्च (सम्) सम्यगर्भम् (इध्यते) प्रदीप्यते (कविः) क्रान्तदर्शनः (गृहपतिः) गृहस्य स्थानस्य तत्स्थस्य वा पितः पालनहेतुः/(युवा) यौति मिश्रयित पदार्थैः सह पदार्थान् वियोजयित वा (हव्यवाट्) यो हुतं द्रव्यं देशान्तरं वहित्र प्राप्यति सः (जुह्लास्यः) जुहोत्यस्यां सा जुहूर्ज्वाला साऽस्यं मुखं यस्य सः॥६॥

अन्वयः-प्रनुष्यैर्यो जुह्णस्यो युवा हव्यवाट् कविर्गृहपतिरग्निरग्निना सिमध्यते स कार्य्यसिद्धये सदा सम्प्रयोज्युताह्य

भूग्वार्थः पीठके सर्वपदार्थिमिश्रो विद्युदाख्योऽग्निरस्ति तेनैव प्रसिद्धौ सूर्य्याग्नी प्रकाश्येते पुनरदृष्टौ सन्तौ द्वरुपावेव भवतः। मनुष्यैर्यद्यनयोर्गुणविद्याः सम्यग्गृहीत्वोपकारः क्रियेत तर्ह्यनेके व्यवहाराः सिद्ध्यैयुस्ते संख्यातानन्दप्राप्तिः सर्वेभ्यो नित्यं भवतीत्याह जगदीश्वरः॥६॥

इति द्वाविंशो वर्ग समाप्त:॥

पदार्थ:-मनुष्यों को उचित है कि जो (जुह्वास्य:) जिसका मुख तेज ज्वाला और (कवि:) क्रान्तदर्शन अर्थात् जिसमें स्थिरता के साथ दृष्टि नहीं पड़ती, तथा जो (युवा) पदार्थों के साथ मिलने और उनको पृथक्-पृथक् करने (हव्यवाट्) होम किये हुए पदार्थों को देशान्तरों में पहुंचाने और (गृहपति:) स्थान तथा उनमें रहने वालों का पालन करनेवाला है, उस से (अग्नि:) यह प्रत्यक्ष रूपवान् पदार्थों को जलाने, पृथिवी और सूर्य्यलोक में ठहरनेवाला अग्नि (अग्निना) बिजुली से (सिमध्यते) अच्छी प्रकार प्रकाशित होता है, वह बहुत कामों को सिद्ध करने के लिये प्रयुक्त करेंगा चाहिये॥ ।।

भावार्थ:-जो यह सब पदार्थों में मिला हुआ विद्युद्रूप अग्नि कहा<mark>ता है, उसी</mark> में प्रत्यक्ष यह सूर्य्यलोक और भौतिक अग्नि प्रकाशित होते हैं, और फिर जिसमें छिपे हुए विद्युद्रूरूप हो के रहते हैं, जो इन के गुण और विद्या को ग्रहण करके मनुष्य लोग उपकार करें, तो उन से अनेक व्यवहार सिद्ध होकर उनको अत्यन्त आनन्द की प्राप्ति होती है, यह जगदीश्वर का वचन है। है।

यह बाईसवां वर्ग समाप्त हुआ। अथाग्निशब्देनेश्वरभौतिकार्थावृषदिश्येते।

अगले मन्त्र में अग्नि शब्द से ईश्वर और भौतिक अप्ति क्रा/ उपदेश किया है-

क्विमुग्निमुप्स्तुहि सत्यर्धमाणमध्वरे। देवम्मीव्यातनम्॥७॥

कुविम्। अग्निम्। उप। स्तुहि। सुत्यऽर्धम्णिम्। अध्वरेग देवम्। अमीवऽचार्तनम्॥७॥

पदार्थ:-(किवम्) सर्वेषां बुद्धीनां सर्वज्ञतया क्रिमितारमीश्वरं सर्वेषां दृश्यानां दर्शयितारं भौतिकं वा (अग्निम्) ज्ञातारं दाहकं वा (उप) सामीये के (स्तुहि) प्रकाशय (सत्यधर्माणम्) सत्या नाशरिहता धर्मा यस्य तम् (अध्वरे) उपासनीय कर्तव्यं वा यज्ञे (देवम्) सुखदातारम् (अमीवचातनम्) अमीवानज्ञानादीन् ज्वरादींश्च रोमान् चात्यात् हिनस्ति तम्॥७॥

अन्वय:-हे मनुष्य त्वमध्वरे स्त्युधर्माणममीवचातनं कविं देवमग्निं परमेश्वरं भौतिकं चोपस्तुहि॥७॥

भावार्थ:-अत्र श्लेषिजञ्जोरः। मनुष्यैः सत्यविद्यया धर्मप्राप्तये सत्यशिल्पविद्यासिद्धये चाग्निरीश्वरो भौतिको वा तत्तद्भुणैः प्रकाश्चितव्यो यतः प्राणिनां रोगनिवारणेन सुखान्युपगतानि स्युः॥७॥

पदार्थः है मनुष्य! तू (अध्वरे) उपासना करने योग्य व्यवहार में (सत्यधर्माणम्) जिसके धर्म नित्य और स्वातने हैं, जो (अमीवचातनम्) अज्ञान आदि दोषों का विनाश करने तथा (कविम्) सब की बुद्धियों को अपने सर्वज्ञपन से प्राप्त होकर (देवम्) सब सुखों का देनेवाला (अग्निम्) सर्वज्ञ ईश्वर है, उसक्री (उपस्तृहि) मनुष्यों के समीप प्रकाशित कर॥१॥७॥ अष्टक-१। अध्याय-१। वर्ग-२२-२३

मण्डल-१। अनुवाक-४। सुक्त-१२

हे मनुष्य! तू (अध्वरे) करने योग्य यज्ञ में (सत्यधर्माणम्) जो कि अविनाशी गुण और (अमीवचातनम्) ज्वरादि रोगों का विनाश करने तथा (किवम्) सब स्थूल पदार्थों को दिखाने वाला और (देवम्) सब सुखों का दाता (अग्निम्) भौतिक अग्नि है, उसको (उपस्तुहि) सब हो समीप पदा प्रकाशित करें॥२॥७॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों को सत्यविद्या से धर्म की प्राप्ति तथा शिल्पविद्या की सिद्धि के लिये ईश्वर और भौतिक अग्नि के गुण अलग-अलग प्रकाशित करमे चाहियें। जिससे प्राणियों को रोग आदि के विनाश पूर्वक सब सुखों की प्राप्ति यथावत् हो॥ भा

पुनस्तावेवोपदिश्येते।

फिर भी अगले मन्त्र में ईश्वर और भौतिक अग्नि का उपदेश किया है-

यस्त्वामंग्ने हिविष्पतिर्दूतं देव सपुर्य्यति। तस्य स्म प्राविता भवं॥८॥

यः। त्वाम्। अग्ने। हुविःऽपितः। दूतम्। देवः। सपुर्व्यात्। सस्यो स्पः। प्रऽअविता। भवः॥८॥

पदार्थ:-(य:) मनुष्यः (त्वाम्) तं वा (अग्ने) विज्ञानस्वरूप अग्निर्वा। अत्र सर्वत्रार्थाद्विभक्तेर्विपरिणाम इति परिभाषया साधुत्वं विज्ञेयम्। (हिवष्पतिः) हिवषां दातुं ग्रहीतुं योग्यानां द्रव्याणां गुणानां वा पितः पालकः कर्मानुष्रति (दूतम्) दवित प्रापयित सुखज्ञाने येन तम् (देव) सर्वप्रकाशकेश्वर प्रकाशदाहयुक्तमिनं वा (सपर्य्यति) सेवते। सपर्य्यतीति परिचरणकर्मसु पठितम्। (निघं०३.५) (तस्य) सेवकस्य (स्म) स्पष्टार्थ (प्राविता) प्रकृष्टतया ज्ञाता सुखप्रापको वा (भव) भवित वा॥८॥

अन्वय:-हे देवाग्ने! का हिक्पितिर्मनुष्यो दूतं त्वां सपर्य्यति तस्य त्वं प्राविता भव स्मेत्येकोऽन्वय:। यो हिक्पितिर्मनुष्यस्त्वां तं देवं दूतमिनं सपर्य्यति तस्यायं प्राविता भवित स्म (इति द्वितीय:)॥८॥

भावार्थ:-अत्र श्लेषल्ङ्कारं:। दूतशब्देन ज्ञानप्रापकत्वमीश्वरे देशान्तरे द्रव्ययानप्रापणं च भौतिके मत्वाऽस्य प्रयोगः कृतोऽस्ति। ये मनुष्या आस्तिका भूत्वा हृदये सर्वसाक्षिणं परमेश्वरं ध्यायन्ति त एवेश्वरेण रिक्षताः पापानि त्यक्त्वा धर्मात्मानः सन्तः सुखं प्राप्नुवन्ति। ये युक्त्या यानयन्त्रादिष्विग्नं प्रयुञ्जते तेऽपि युद्धादिषु कृत्येषु रिक्षता रक्षकाश्च भवन्तीति॥८॥

पदार्थ: हे (देव) सब के प्रकाश करनेवाले (अग्ने) विज्ञानस्वरूप जगदीश्वर! जो मनुष्य (हिव्वर्धातः) देने-लेने योग्य वस्तुओं का पालन करनेवाला (यः) जो मनुष्य (दूतम्) ज्ञान देनेवाले

आपका (सपर्य्यति) सेवन करता है, (तस्य) उस सेवक मनुष्य के आप (प्राविता) अच्छी प्रकीर जनानेवाले (भव) हों॥१॥८॥

(य:) जो (हविष्पति:) देने-लेने योग्य पदार्थों की रक्षा करनेवाला मनुष्य (देव) प्रकाश और दाहगुणवाले (अग्ने) भौतिक अग्नि का (सपर्च्यति) सेवन करता है, (तस्य) उस मनुष्य का वह अग्नि (प्राविता) नाना प्रकार के सुखों से रक्षा करनेवाला (भव) होता है॥२॥८॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। दूत शब्द का अर्थ दो पक्ष में समझना चाहिये अर्थात् एक इस प्रकार से कि सब मनुष्यों में ज्ञान का पहुंचाना ईश्वर पक्ष, तथा एकदेश से दूसरे देश में पदार्थों का पहुंचाना भौतिक पक्ष में ग्रहण किया गया है। जो आस्तिक अर्थात् परमेश्वर में विश्वास रखनेवाले मनुष्य अपने हृदय में सर्वसाक्षी का ध्यान करते हैं, वे पुरुष ईश्वर से रक्षा को प्राप्त होकर पापों से बचकर धर्मात्मा हुए अत्यन्त सुख को प्राप्त होते हैं, तथा जो युक्ति से विमान आदि रथों में भौतिक अग्नि को संयुक्त करते हैं, वे भी युद्धादिकों में रक्षा को प्राप्त होकर औरों की रक्षा करनेवाले होते हैं॥८॥

पुनस्तावेवोपदिश्येते।

फिर भी उक्त अर्थों ही का किया है

यो अग्नि देववीतये हुविष्मा आविवासित्र। तस्मै पावक मळय॥ ९॥

यः। अग्निम्। देवऽवीतये। ह्विष्मान्। अर्ध्वेषवासति। तस्मै। पावक मृळ्या। ९॥

पदार्थ:-(य:) मनुष्य: (अग्निम्) सर्वसुखप्राप्तकमीश्वरं सुखहेतुं भौतिकं वा (देववीतये) देवानां दिव्यानां गुणानां भोगानां च वीतिर्व्यापितस्तस्य (हिविष्मान्) हवींष्युत्तमानि द्रव्याणि कर्माणि वा विद्यन्ते यस्य सः। अत्र प्रशंसार्थे मतुप्। (आविष्यसति) समन्तात्सेवते। विवासतीति परिचरणकर्मसु पठितम्। (निघं०३.५) (तस्मै) सेवकम् अत्र कर्मणि चतुर्थी। (पावक) पुनाति पवित्रतां करोति तत्सम्बुद्धावीश्वर पवित्रहेतुरग्निर्वा (मृळय) सुख्य सुख्यित वा।। ।।

अन्वय:-हे पावक : यो हिक्मान् मनुष्यो देववीतये त्वामग्निमाविवासित तस्मै त्वं मृडयेत्येक:। यो हिक्मान् मनुष्यो देववीत्य इम्मिग्निमाविवासित तस्मा अयं पावकोऽग्निर्मृडयतीति द्वितीय:॥९॥

भावार्थः अत्र श्लेष्मलङ्कारः। ये मनुष्याः सत्येन भावेन कर्मणा विज्ञानेन च परमेश्वरं सेवन्ते, ते दिव्यगुणान् श्रवित्राणि कर्माणि कृत्वा सुखानि च प्राप्नुवन्ति, येनायं दिव्यगुणप्रकाशकोऽग्नी रचितस्तस्म्रान्यदिवया उपकारा ग्राह्या इतीश्वरोपदेशः॥९॥

पदार्थ: -हे (पावक:) पवित्र करनेवाले ईश्वर! (य:) जो (हविष्पान्) उत्तम-उत्तम पदार्थ वा कर्म करनेवाला मनुष्य (देववीतये) उत्तम-उत्तम गुण और भोगों की परिपूर्णता के लिये (अग्निम्) सब

अष्टक-१। अध्याय-१। वर्ग-२२-२३

मण्डल-१। अनुवाक-४। सूक्त-१२

सुखों के देनेवाले आपको (आविवासित) अच्छी प्रकार सेवन करता है, (तस्मै) उस सेवन करनेवाले मनुष्य को आप (मृळय) सब प्रकार सुखी कीजिये॥१॥९॥

यह जो (हिवष्मान्) उत्तम पदार्थवाला मनुष्य (देववीतये) उत्तम भोगों की क्रीप्त कि लिये (अग्निम्) सुख करानेवाले भौतिक अग्नि का (आविवासित) अच्छी प्रकार सेवन कर्वे (तस्मै) उसको यह अग्नि (पावक) पवित्र करनेवाला होकर (मृळय) सुखयुक्त करता है।। र्रे ॥ ९॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जो मनुष्य अपने सत्यभाव कर्म और बिजान से परमेश्वर का सेवन करते हैं, वे दिव्यगुण पवित्रकर्म और उत्तम-उत्तम सुखों को प्राप्त होते हैं तथा जिससे यह दिव्य गुणों का प्रकाश करनेवाला अग्नि रचा है, उस अग्नि से मनुष्यों को उत्तम उपकार लेने चाहिये, इस प्रकार ईश्वर का उपदेश है॥९॥

पुनरेतावुपदिश्येते।

फिर भी अगले मन्त्र में इन्हीं दोनों का रूपदेश किया है-

स नी: पावक दीदिवोऽग्ने देवाँ इहार्वह। उप यज्ञं हविश्चे नः॥१०॥

सः। नुः। पावुक्। दीदिवुः। अग्ने। देवान्। इह आ। वृहुः। उप। युज्ञम्। हुविः। च। नुः॥१०॥

पदार्थ:-(स:) जगदीश्वरो भौतिको वि (न:) अस्मभ्यम् (पावक) पवित्रकर्त्तः शुद्धिहेतुर्वा (दीदिव:) स्वसामर्थ्येन देदीप्यमान दीप्तिमान् वो अग्ने) सर्वप्रापक प्राप्तिहेतुर्वा (देवान्) विदुषो दिव्यगुणान् वा। (इह) अस्मिन् संसारेऽस्परम्पनिधौ (आ) समन्तात् (वह) प्रापय प्रापयित वा। अत्र पक्षे व्यत्यय:। (उप) सामीप्ये (यज्ञम्) पूर्वेक्तं त्रिविधम् (हिव:) दातुमादातुमर्हं (च) समुच्चये (न:) अस्माकम्॥१०॥

अन्वय:-हे दीदिव पावकाग्ने स त्वमस्मभ्यमिह देवानावह, नोऽस्माकं यज्ञं हिवश्चोपावहेत्येक:॥

अतोऽग्रे (१) प्रथमाङ्कृताद्यान्वयार्थो (२) द्वितीयेन द्वितीयार्थश्च सर्वत्र वेद्यः। यो दीदिवान् पावकोऽग्निः सम्प्रक् प्रयुक्तः सन्नोऽस्मभ्यमिह देवानावहित, स नोऽस्माकं यज्ञं हिवश्च प्राप्य सुखान्युपावहित्रीति द्वित्तीयः॥१०॥

भाषार्थः अत्र श्लेषालङ्कारः। यस्य प्राणिनः कस्यचित्पदार्थस्य प्राप्तीच्छा जायते तत्सिद्धये परमेश्वर प्रार्थिते पुरुषार्थश्च क्रियते। यादृशा अस्मिन् वेदे जगदीश्वरस्य गुणस्वभावा अन्येषां च प्रतिप्रादिता दृश्यन्ते मनुष्येस्तदनुकूलकर्मानुष्ठानेनाग्न्यादिपदार्थगुणान् विदित्वाऽनेकविधा व्यवहारसिद्धिः क्रिय्येति॥१०॥

पदार्थ: -हे (दीदिव:) अपने सामर्थ्य से प्रकाशवान् (पावक) पवित्र करने तथा (अग्ने) सबि पदार्थों को प्राप्त करानेवाले (स:) जगदीश्वर! आप (न:) हम लोगों के सुख के लिये (इह) इस संसार में (देवान्) विद्वानों को (आवह) प्राप्त कीजिये, तथा (न:) हमारे (यज्ञम्) उक्त तीन प्रकार के युज्ञ और (हवि:) देनेलेने योग्य पदार्थों को (उपावह) हमारे समीप प्राप्त कीजिये॥१॥१०॥

(य:) जो (दीदिव:) प्रकाशमान तथा (पावक) शुद्धि का हेतु (अग्ने) भौतिक अपन अच्छी प्रकार कलायन्त्रों में युक्त किया हुआ (न:) हम लोगों के सुख के लिये (इह) हमारे समीप (देवान्) दिव्यगुणों को (आवह) प्राप्त करता है, वह (न:) हमारे तीन प्रकार के उद्भव (यज्ञम्) यज्ञ को तथा (हिव:) उक्त पदार्थों को प्राप्त होकर सुखों को (उपावह) हमारे समीप प्राप्त करता रहता है॥२॥१०॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जिस प्राणी को किसी प्रसर्थ की इच्छा उत्पन्न हो, वह अपनी कामसिद्धि के लिये परमेश्वर की प्रार्थना और पुरुषार्थ करे। कैसे इस वेद में जगदीश्वर के गुण, स्वभाव तथा औरों के उत्पन्न किये हुए दृष्टिगोचर होते हैं, वैसे पनुष्यों को उनके अनुकूल कर्म के अनुष्ठान से अग्नि आदि पदार्थों के गुणों को ग्रहण करके अनेक प्रकार व्यवहार की सिद्धि करना चाहिये॥१०॥

पुनरेतावुपद्दिश्येते।

फिर भी अगले मन्त्र में उन्हीं देवों का उपदेश किया है-

स नः स्तर्वान आ भर गायत्रेण नकीयसा। र्यि वीरवतीमिष्म्॥ ११॥

सः। नुः। स्तर्वानः। आ। भुरु। ग्रायुत्रेण निवायसा। रुचिम्। वीरऽवंतीम्। इर्षम्॥ ११॥

पदार्थ:-(स:) पूर्वोक्तं (न:) अस्मभ्यम् (स्तवान:) स्तूयमानः गृहीतगुणो वा। अत्र सम्यानच् स्तुवः। (उणा०२.८६) इति बाहुलकात्समुपपदाभवेऽपि कर्मण्यौणादिक आनच् प्रत्ययः। अत्र सायणाचार्येण लटः स्थाने शन्तिचपाश्चित्य स्तूयमानमिति व्याख्यानं कृतमत इदमशुद्धम्। (आ) समन्तात् (भर) धारय धारयित व (गायत्रेण) गायत्री छन्द आदिर्यस्य प्रगाथस्य तेन। सोऽस्यादिरिति च्छन्दसः प्रगाथेषु। (अष्टा०४.२.५५) इति गायत्रीशब्दादण्। (नवीयसा) अतिशयितेन नवीनेन मन्त्रपाठगानयुक्तेन स्तवनेन (रियम्) विद्याचक्रवर्तिराज्यजन्यं धनम् (वीरवतीम्) प्रशस्ता वीरा विद्यन्ते यस्याः ताम्। अत्र प्रशंसायां मतुपूर (इषम्) इष्यते या सित्क्रिया ताम्। अत्र कृतो बहुलिमिति कर्मणि क्विप्॥११॥

अर्ष्वय:-है भगवन्! स त्वं नवीयसा गायत्रेण स्तवानः सन् नो रियं वीरवतीमिषं चाभरेत्येकः। स भौतिकोऽस्निर्नवीयसा गायत्रेणास्माभिः स्तवानो गृहीतगुणो रियं वीरवतीमिषं चाभरतीति द्वितीयः॥११॥

भावार्थः-अत्र श्लेषालङ्कारः। पूर्वस्मान्मन्त्राच्चकारोऽनुकृष्यते। तथा प्रतिजनं नवीनं नवीनं ब्रेट्सध्ययम् तज्जन्योच्चारणक्रिया च प्रवर्तते तस्मान्नवीयसेत्युक्तम्। यैर्धर्मात्मभिर्मनुष्यैर्यथावच्छब्दार्थ- अष्टक-१। अध्याय-१। वर्ग-२२-२३

मण्डल-१। अनुवाक-४। सूक्त-१२

सम्बन्धपुर:सरेण वेदस्याध्ययेन तदुक्तकर्मणा च प्रीतः सम्पादितो जगदीश्वर उत्तमानि विद्यादिधनानि शूरत्वादिगुणान् सतीमिच्छां च ददाति॥११॥

पदार्थ:-हे भगवन्! (स:) जगदीश्वर आप! (नवीयसा) अच्छी प्रकार मन्त्रों के नवित्र गानयुक्त (गायत्रेण) छन्दवाले प्रगाथों से (स्तवानः) स्तुति को प्राप्त किये हुए (नः) हमारे लिये (रियम्) विद्या और चक्रवर्ति राज्य से उत्पन्न होनेवाले धन तथा जिसमें (वीरवतीर्म) अच्छि-अच्छे वीर तथा विद्वान् हों, उस (इषम्) सज्जनों के इच्छा करने योग्य उत्तम क्रिया कृ (आपर) अच्छी प्रकार धारण कीजिये॥१॥१॥॥१॥

(स:) उक्त भौतिक अग्नि (नवीयसा) अच्छी प्रकार मन्त्रों के नचीन (नवीच पाठ तथा गानयुक्त स्तुति और (गायत्रेण) गायत्री छन्दवाले प्रगाथों से (स्तवान:) गुणों के साथ प्रहण किया हुआ (रियम्) उक्त प्रकार का धन (च) और (वीरवतीम् इषम्) उक्त गुणवाली उत्तम क्रिया को (आभर) अच्छी प्रकार धारण करता है॥२॥११॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। तथा पहिले मन्त्र से भ्वकार' की अनुवित्त की है। हर एक मनुष्य को वेद आदि के नवीन-नवीन अध्ययन से वेद की उच्चारणिक्रिया प्राप्त होती है, इस कारण 'नवीयसा' इस पद का उच्चारण किया है। जिन ध्यातिमा मनुष्यों ने यथावत् शब्दार्थपूर्वक वेद के पढ़ने और वेदोक्त कर्मों के अनुष्ठान से जगदीश्वर को प्रसन्न किया है, उन मनुष्यों को वह उत्तम-उत्तम विद्या आदि धन तथा शूरता आदि गुणों को उत्पन्न करनेवाली श्रेष्ठ कामना को देता है, क्योंकि जो वेद के पढ़ने और परमेश्वर के सेवन से युक्त मनुष्य हैं वि अनेक सुखां का प्रकाश करते हैं॥११॥

पुनरेतदुगुणा उपदिश्यन्ते।

फिर भी अर्गेले मुद्रा में इन्हीं के गुणों का उपदेश किया है-

अग्ने शुक्रेण शोचिष्य विश्वाभिद्वेबह्वतिभिः।

ड्रमं स्तोमं जुषस्य नः॥ १२ ॥ २३॥

अग्नै। शुक्रेणी श्रुपिषा। विश्वाभिः। देवऽहूतिभिः। इमम्। स्तोमम्। जुषुस्व। नुः॥ १२॥

पदार्थ:-(अग्ने) प्रकाशमयेश्वर भौतिको वा (शुक्रेण) अनन्तवीर्य्येण सह भास्वरेण वा (शोचिषा) शुद्धिकारकेण प्रकाशन (विश्वाभि:) सर्वाभि: (देवहूर्तिभि:) विदुषां वेदानां वा वाग्भिराह्वान्मन्याहूल्यस्तिभि: (इमम्) प्रत्यक्षम् (स्तोमम्) स्तुतिसमूहं प्रशंसनीयकलाकौशलं वा (जुषस्व) प्रीत्या सेवस्व, जुषते वा (न:) अस्माकम्॥१२॥

अन्वय:-हे अग्ने जगदीश्वर! त्वं कृपया शुक्रेण शोचिषा विश्वाभिर्देवहूतिभिर्न इमं स्तीमें जुषस्वेत्याद्य:॥ अयमग्निविश्वाभिर्देवहूतिभिः सम्यक् साधितः सन् शुक्रेण शोचिषा न इमं स्तोमं जुषत इति द्वितीय:॥१२॥

भावार्थ:-अत्र श्लेषालङ्कारः। दिव्यानां विद्यानां प्रकाशकत्वाद् देवशब्देन वेद गृह्यन्ते। यदा मनुष्यै: सत्यभावेन वेदवाण्या जगदीश्वर: स्तूयते तदाऽयं प्रीत: संस्तान् विद्यादानेन प्रीप्य्यति। अयं भौतिकोऽग्निरपि विद्यया कलाकौशलेन सम्प्रयोजित इन्धनादिस्थ: सन् सर्व क्रियाकण्डं सेवते॥१९॥

अस्य द्वादशसूक्तार्थस्याग्न्यर्थयोजनैकादशसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीद्धि बोध्यम्। इदमपि सूक्तं सायणाचार्य्यादिभिर्यूरोपवासिभिर्विलसनादिभिश्चान्यर्थेच्यु व्याख्यातम्॥

इत्याद्ये मण्डले द्वादशं सूक्तं त्रयोविंशो वर्गश्च समाप्तः।

पदार्थ:-हे (अग्ने) प्रकाशमय ईश्वर! आप कृपा करके (शृक्तेण) अनुनवीर्य के साथ (शोचिषा) शुद्धि करने वाले प्रकाश तथा (विश्वाभि:) विद्वान् और वेदों की विणियों से सब प्राणियों के लिये (न:) हमारे (इमम्) इस प्रत्यक्ष (स्तोमम्) स्तुतिसमूह को (जुषस्व) प्रीति के स्मर्थ सेवन कीजिये॥१॥

यह (अग्ने) भौतिक अग्नि (विश्वाभिः) सब (विश्वाभिः) विद्वान् तथा वेदों की वाणियों से अच्छी प्रकार सिद्ध किया हुआ (शुक्रेण) अपनी कान्ति वा (शोजिषा) पवित्र करनेवाले प्रकाश से (नः) हमारे (इमम्) इस (स्तोमम्) प्रशंसा करने योग्य कला की कुशलता को (जुषस्व) सेवन करता है॥२॥१२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। दिव्यक्तिद्याओं के प्रकाश होने से देव शब्द से वेदों का ग्रहण किया है। जब मनुष्य लोग सत्य प्रेम के साथ वेदवाणी से जगदीश्वर की स्तुति करते हैं, तब वह परमेश्वर उन मनुष्यों को विद्यादान से प्रसन्न करता है। वैसे ही यह भौतिक अग्नि भी विद्या से कलाकुशलता में युक्त किया हुआ इन्धन आदि पदार्थों में ठहर कर सब क्रियाकाण्ड का सेवन करता है।।१२॥

इस बारहवें सूक्त के अर्थ की अग्निशब्द के अर्थ के योग से ग्यारहवें सूक्त के अर्थ से सङ्गिति जाननी चाहिये।

यह भी सूक्त सायणाचार्य्य आदि आर्य्यावर्तवासी तथा यूरोपदेशवासी विलसन आदि ने विपरीतता से क्र्यान किया है।।

यह बारहवां सूक्त और तेईसवां वर्ग समाप्त हुआ॥

अथास्य द्वादशर्च्चस्य त्रयोदशसूक्तस्य मेधातिथिः कण्व ऋषिः। इध्मः सिमद्धोऽग्निः; तनूनपात्; नराशंसः, इंडः; बिर्हिः; देवीद्वरः; उषासानक्ता; दैव्यौ होतारौ प्रचेतसौ; सरस्वतीडा भारत्यस्तिस्रो देव्यः; त्वष्टा; वनस्पितः; स्वाद्वाकृतयश्च द्वादश देवताः। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

तत्र तावत्परमेश्वरभौतिकाग्न्योर्गुणा उपदिश्यन्ते।

अब तेरहवें सूक्त के अर्थ का आरम्भ करते हैं। इसके प्रथम मन्त्र में परमेश्वर और भौतिक अरिन के गुणों का उपदेश किया है-

सुसंमिद्धो नु आ वह देवाँ अंग्ने हुविष्मंते।

होत: पावकु यक्षि च॥ १॥

सुऽसीमद्धः। नः। आ। वृह्। देवान्। अग्ने। हुविष्मते। होत्रिति पूर्विकः। स्किं/चा। १॥

पदार्थ: (सुसिमद्ध:) सम्यक् प्रदीपित: (न:) अस्मभ्यम् (आ) समन्तीत् (वह) वहिस प्रापयिस वहित प्रापयित वा। अत्र पक्षान्तरे पुरुषव्यत्यय:। (देवान्) विष्यपदार्थान् (अग्ने) विश्वेश्वर भौतिको वा (हिविष्मते) बहूनि हवींषि विद्यन्ते यस्य तस्मै विदुषे। अत्र भूम्प्यर्थे मतुप्। (होतः) दातरादाता वा (पावक) पवित्रकारक पवित्रताहेतुर्वा (यिश्व) यजामि। अज्ञाडमीयो क्रिङ आत्मनेपद उत्तमपुरुषस्यैकवचने प्रयोगो लडर्थे लुङ्च। (च) समुच्चये॥१॥

अन्वय:-हे होतः पावकाग्ने विश्वेश्वर यतः सुसूर्मिद्धस्त्वं कृपया नोऽस्मभ्यं हिवष्मते च देवानावहिस प्रापयस्यतोऽहं भवन्तं निद्ध्य यक्षि यजामीत्येकः। यतोऽयं पावको होता सुसमिद्धोऽग्निर्नोऽस्मभ्यं हिवष्मते च देवानावहित सुमन्तात् प्रापयित तस्मादेतमहं नित्यं यक्षि यजामि सङ्गतं करोमीति द्वितीयः॥१॥

भावार्थ:-अत्र श्लेषालङ्कारः। यो मनुष्यो बहुविधां सामग्रीं सङ्गृह्य यानादीनां वोढारमग्निं प्रयुङ्क्ते तस्मै स विविधसुखसम्भदनहेतुर्भवतीति॥१॥

पदार्थ:-हे (होत:) पदीर्थों को देने और (पावक) शुद्ध करनेवाले (अग्ने) विश्व के ईश्वर! जिस हेतु से (सुसिपद्ध:) अच्छी प्रकार प्रक्रांशवान् आप कृपा करके (न:) हमारे (च) तथा (हिवष्मते) जिसके बहुत हिव अर्थात् पदार्थ विद्यमान हैं, उस विद्वान् के लिये (देवान्) दिव्यपदार्थों को (आवह) अच्छी प्रकार प्राप्त करते हैं, इससे मैं आपका निरन्तर (यक्षि) सत्कार करता हूं॥१॥१॥

जिस्म्ने यह (पावक) पवित्रता का हेतु (होता) पदार्थों का ग्रहण करने तथा (सुसिमद्धः) अच्छी प्रकार प्रकार प्रकार विद्वान (अन्न) भौतिक अग्नि (नः) हमारे (च) तथा (हिवध्मते) उक्त पदार्थवाले विद्वान् के लिये (देवान्) दिव्यपदार्थों को (आवह) अच्छी प्रकार प्राप्त करता है, इससे मैं उक्त अग्नि को (यिक्ष) कार्युंसिद्धि के लिये अपने समीपवर्ती करता हुँ॥२॥१॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जो मनुष्य बहुत प्रकार की सामग्री को ग्रहण करके विमान आदि यानों में सब पदार्थों के प्राप्त करानेवाले अग्नि की अच्छी प्रकार योजना करता है, उस मनुष्य के लिये वह अग्नि नाना प्रकार के सुखों को सिद्धि करानेवाला होता है॥१॥

पुन: शरीरादिसंरक्षकाग्नेर्गुणा उपदिश्यन्ते।

फिर भी अगले मन्त्र में शरीर आदि की रक्षा करनेवाले भौतिक अग्नि के गुण वर्ण<mark>म किये है</mark>

मधुमन्तं तनूनपाद्यज्ञं देवेषु नः कवे।

अद्या कृणुहि वीतये॥२॥

मधुंऽमन्तम्। तुनूऽनुपात्। युज्ञम्। देवेषुं। नुः। कुवे। अद्यः। कृणुद्धिः। वीत्र्यः। अ

पदार्थ:-(मधुमन्तम्) मधवः प्रशस्ता रसा विद्यन्ते सस्य तम् (तनूनपात्) तनूनां शरीरौषध्यादीनामूनानि न्यूनान्युपाङ्गानि पाति रक्षति सः। इमं अब्दं यास्क्रमुनिरेवं समाचष्टे-तनूनपात् आज्यिमिति कात्यक्यः। नपादित्यननन्तरायाः प्रजाया नामधेयम् निर्णत्तमा भवति। गौरत्र तनूरुच्यते। तता अस्यां भोगाः। तस्याः पयो जायते। पयस आज्यं जायते। अपिनिरिति शाकपूणिः। आपोऽत्र तन्व उच्यन्ते। तता अन्तरिक्षे। ताभ्य ओषधिवनस्पतयो जायन्ते। ओपिष्वनिस्पतिभ्य एष जायते। (निरु०८.५) (निरु०८.५) (यज्ञम्) यजनीयम् (देवेषु) विद्वत्सु दिन्येषु पद्यक्षेषु वा (नः) अस्माकम् (कवे) कविः क्रान्तदर्शनः (अद्य) अस्मिन् दिने। अत्र निपातस्य च। (अष्ट्रा०६.३.१३६) इति सूत्रेण दीर्घः। (कृणुहि) करोति। अत्र व्यत्ययः, कृवि हिंसाकरणयोश्रवेत्वस्माल्लुईर्थे लोट्। उत्तश्च प्रत्ययाच्छन्दो वा वचनम्। (अष्टा०६.४.१०६) इति वार्त्तिकेन हेर्लुगभूवः। (वीत्षु) प्राप्तये॥२॥

अन्वय:-यस्तूनपात्कविरग्निर्देवेषु सुर्यस्य वितयेऽद्य नो मधुमन्तं यज्ञं कुणुहि कृणोति॥२॥

भावार्थ:-यदाऽग्नौ हिक्ह्यते तदैवायं वाय्वादीन् शुद्धान् कृत्वा शरीरौषध्यादीन् रक्षयित्वाऽनेकविधान् रसान् जन्यति, तैः सुद्धैर्भुक्तैश्च प्राणिनां विद्याज्ञानबलवृद्धिरपि जायत इति॥२॥

पदार्थ:-जो (तनूनपात्) शरीर तथा अषधि आदि पदार्थों के छोटे-छोटे अंशों का भी रक्षा करने और (कवे) सब पदार्थों का दिखलानेवाला अग्नि है, वह (देवेषु) विद्वानों तथा दिव्यपदार्थों में (वीतये) सुख प्राप्त होने के लिये (अद्यो) आज (न:) हमारे (मधुमन्तम्) उत्तम-उत्तम रसयुक्त (यज्ञम्) यज्ञ को (कृणुहि) निश्चत्र करता है॥२॥

भावार्थः जब अग्नि में सुगन्धि आदि पदार्थों का हवन होता है, तभी वह यज्ञ वायु आदि पदार्थों को शुद्ध तृथा शरीर और ओषधि आदि पदार्थों की रक्षा करके अनेक प्रकार के रसों को उत्पन्न करता है, तथा वह एज उन शुद्ध पदार्थों के भोग से प्राणियों के विद्या ज्ञान और बल की वृद्धि भी होती है॥२॥

नरै: प्रशंसनीयस्य भौतिकाग्नेर्गुणा उपदिश्यन्ते।

क्र अगले मन्त्र में मनुष्यों के प्रशंसा करने योग्य भौतिक अग्नि के गुणों का उपदेश किया है–

अष्टक-१। अध्याय-१। वर्ग-२४-२५

मण्डल-१। अनुवाक-४। सूक्त-१३

नराशंसीमह प्रियमस्मिन् यज्ञ उप ह्वये। मधुजिह्वं हिव्षकृतम्॥३॥

नगुऽशंस्मम्। इह। प्रियम्। अस्मिन्। युज्ञे। उप। ह्वये। मधुंऽजिह्नम्। हुवि:ऽकृतंम्॥३॥

पदार्थ:-(नराशंसम्) नरैरिभितः शस्यते प्रशस्यते तं सुखसमूहकारकम्। नराशंसी यज्ञ इति कात्यक्यो नरा अस्मिन्नासीनाः शंसन्यग्निमिति शाकपूणिनेरैः प्रशस्यो भवति। (नरु०८.६) (इह) अस्मद्भोगविषये संसारे (प्रियम्) प्रीणित सर्वान् प्राणिनस्तम् (अस्मिन्) प्रत्यक्षे (यज्ञे) यष्टव्ये (उप) उपगतभोगद्योतने (ह्वये) उपतापये (मधुजिह्नम्) मधुरगुणसम्पादिका जिह्ना काला यस्य तम्। जिह्ना जोहुवा। (निरु०५.२६) काली कराली च मनोजवा च सुलोहिता या च सुधूप्रवर्णा। स्फुलिङ्गिनी विश्वरूपी च देवी लेलायमाना इति सप्त जिह्नाः॥ इति मुण्डकोपनि० (मुण्डक १.२.४) (हविष्कृतम्) हिविभिः क्रियते तम्। अत्र वर्त्तमानकाले कर्मण्यौणादिकः क्तः प्रत्ययः। इति

अन्वय:-अहमस्मिन् यज्ञे इह संसारे च हिवष्कृते मधुनिह्नं प्रियं नराशंसमग्निमुपह्नय उपगम्योपतापये॥३॥

भावार्थ:-योऽयं भौतिकोऽग्निरस्मिन् जगित युक्त्या सेवितः प्राणिनां प्रियकारी भवित, तस्याऽग्नेः सप्त जिह्वाः सन्ति। काली=शुक्लादिवर्णप्रकारिका, क्रिराली=दुःसहा, मनोजवा=मनोवद्वेगवती, सुलोहिता=शोभनो लोहितो रक्तो वर्णो यस्याः सा, स्रुधूम्रवर्णा=शोभनो धूम्रो वर्णो यस्याः सा, स्पुल्लिङ्गिनी=बहवः स्पुल्लिङ्गाः कणा विद्यन्ते यस्यां सा। अत्र भूम्न्यर्थ इनिः। विश्वरूपी=विश्वं सर्वं रूपं यस्याः सा। इति सप्तविधा। पुनः सा किं भूत देवो देदीप्यमाना, लेलायमाना लेलायित सर्वत्र प्रकाशयित या सा। अत्र लेला दीपावित्यस्मात् केप्डवादिल्लाद्यक्। व्यत्ययेनात्मनेपदं च। सा जिह्वाऽर्थाज्जोहुवा पुनः पुनः सर्वान् पदार्थान् जुहोत्यादने साविता ।।

पदार्थ:-मैं (अस्मिन्) इस (यज्ञे) अनुष्ठान करने योग्य यज्ञ तथा (इह) संसार में (हिविष्कृतम्) जो कि होम करने योग्य पदार्थों से प्रदीप्त किया जाता है और (मधुजिह्नम्) जिसकी काली, कराली, मनोजवा, सुलोहिता, सुधूप्रवर्णों स्फुल्लिङ्गिनी और विश्वरूपी ये अति प्रकाशमान चपल ज्वालारूपी जीभें हैं (प्रियम्) जो सब जीमें को प्रीति देने और (नराशंसम्) जिस सुख की मनुष्य प्रशंसा करते हैं, उसके प्रकाश करनेवाले अन्ति को (उपह्वये) समीप प्रज्वलित करता हुं॥३॥

भावार्थ: जो भौतिक अग्नि इस संसार में होम के निमित्त युक्ति से ग्रहण किया हुआ प्राणियों की प्रसन्नता करानेवाला है, उस अग्नि की सात जीभें हैं अर्थात् काली जो कि सुपेद आदि रंग का प्रकाश करनेवाली, कराली-सहने में कठिन, मनोजवा-मन के समान वेगवाली, सुलोहिता-जिसका उत्तम सुन्तवर्ण है, सुधूम्रवर्णा-जिसका सुन्दर धुमलासा वर्ण है, स्फुल्लिंगिनी-जिससे बहुत से चिनगे उठतें हों

तथा विश्वरूपी-जिसका सब रूप हैं। ये देवी अर्थात् अतिशय करके प्रकाशमान और लेलायमाना-प्रकाश से सब जगह जानेवाली सात प्रकार की जिह्वा हैं अर्थात् सब पदार्थों को ग्रहण करनेवाली होती हैं। इस उक्त सात प्रकार की अग्नि की जीभों से सब पदार्थों में उपकार लेना मनुष्यों को चाहिये॥ ३॥

स एवमुपकृतः किंहेतुको भवतीत्युपदिश्यते।

उक्त अग्नि इस प्रकार उपकार में लिया हुआ किसका हेतु होता है, सो उपदेश अ<mark>गले मन्त्रीयें</mark> किया है-

अग्ने सुखर्तमे स्थे देवाँ ईडित आ वह।

असि होता मर्नुर्हित:॥४॥

अग्ने। सुखऽतमे। रथे। देवान्। ईडितः। आ। वृह् । असि। होता मर्सुः। हितः॥ ।।

पदार्थ:-(अग्ने) भौतिकोऽयमग्निः (सुखतमे) अतिशयितार्वि सुखानि यस्मिन् (रथे) गमनहेतौ रमणसाधने विमानादौ (देवान्) विदुषो भोगान्वा (ईडितः) मिपुष्यैरध्येषितोऽधिष्ठितः (आ) समन्तात् (वह) वहति प्रापयति। अत्र सर्वत्र व्यत्ययः। (असि) अस्ति (होता) सुखदाता (मनुः) विद्वद्भिः क्रियासिध्यर्थं यो मन्यते (हितः) धृतः सन् हितकारी॥४॥

अन्वय:-मनुष्यैर्योऽग्निर्मनुर्होतेडितोऽस्ति स् सुखतमे स्थै हितः स्थापितः सन् देवानावहय समन्ताद्वहति देशान्तरं प्रापयति॥४॥

भावार्थ:-मनुष्यैर्बहुकलासमन्वितो भू जिल्लान्त्रिक्षेश्यमनहेतुरग्निर्जलादिना सह सम्प्रयोजितस्त्रिविधे रथे हितकारी सुखतमो भूत्वा बहुकार्य्यसिद्धिप्रापुको भूजतीति बोध्यम्॥४॥

पदार्थ:-जो (अग्ने) भौतिक अग्नि (मनुः) विद्वान् लोग जिसको मानते हैं तथा (होता) सब सुखों का देने और (ईडित:) मनुष्यों को स्तृति करने योग्य (असि) है, वह (सुखतमे) अत्यन्त सुख देने तथा (रथे) गमन और विहार करानेवाले विमान आदि सवारियों में (हित:) स्थापित किया हुआ (देवान्) दिव्य भोगों को (आवह) अच्छे पुष्कार देशान्तर में प्राप्त करता है॥४॥

भावार्थ:-मनुष्यों के बहुत कलाओं से संयुक्त पृथिवी जल और अन्तरिक्ष में गमन का हेतु तथा अग्नि वा जल आदि पदार्थों से संयुक्त तीन प्रकार का रथ कल्याणकारक तथा अत्यन्त सुख देनेवाला होकर बहुत उत्तमू उत्तम कर्स्यों की सिद्धि को प्राप्त करानेवाला होता है॥४॥

पुनः स एवं सम्प्रयुक्तः किं करोतीत्युपदिश्यते।

फिर्र घह भौतिक अग्नि उक्त प्रकार से क्रिया में युक्त किया हुआ क्या करता है, सो अगले मन्त्र में उपदेश किया है-

स्तुणीत बहिरानुषग्धृतपृष्ठं मनीषिण:।

अष्टक-१। अध्याय-१। वर्ग-२४-२५

मण्डल-१। अनुवाक-४। सूक्त-१३

यत्रामृतंस्य चक्षंणम्।।५॥

स्तृणीता बहिः। आनुषक्। घृतपृष्ठम्। मुनीषिणः। यत्री अमृतस्य। चक्षीणम्॥५॥

पदार्थ:-(स्तृणीत) आच्छादयत (बर्हि:) अन्तरिक्षम् (आनुषक्) अभितो यहनुषङ्गि तत् (घृतपृष्ठम्) घृतमुदकं पृष्ठे यस्मिँस्तत् (मनीषिण:) मेधाविनो विद्वांसः। मनीषीति मेधाविनाममु पठितम्। (निघं०३.१५) (यत्र) यस्मित्रन्तरिक्षे (अमृतस्य) उदकसमूहस्य। अमृतमित्युदकनामसु पठितम्। (निघं०१.१२) (चक्षणम्) दर्शनम्। 'चक्षिङ् दर्शने' इत्यस्माल्ल्युटि अत्यये परे असनयोश्च। (अष्टा०२.४.५४) इति वार्तिकेन ख्याञादेशाभावः॥५॥

अन्वय:-हे मनीषिणो यत्रामृतस्य चक्षणं वर्तते तदानुषग्घृतपूष्ठं ब्रिहीः स्तृणीताच्छादयत॥५॥

भावार्थ:-विद्विद्धरग्नौ यद् घृतादिकं प्रक्षिप्यते तदन्तिरक्षानुगतं भूत्वा तत्रस्थस्य जलसमूहस्य शोधकं जायते, तच्च सुगन्ध्यादिगुणैः सर्वान् पदार्थानाच्छान् सर्वान् प्राणिनः सुखयुक्तान् सद्यः सम्पादयतीति॥५॥

पदार्थ:-हे (मनीषिण:) बुद्धिमान् विद्वानो! (यत्र) जिस्स अप्रतिरक्ष में (अमृतस्य) जलसमूह का (चक्षणम्) दर्शन होता है, उस (आनुषक्) चारों ओर से घिरे और (घृतपृष्ठम्) जल से भरे हुए (बर्हि:) अन्तिरक्ष को (स्तृणीत) होम के धूम से आच्छाद्रम करो, इसी अन्तिरक्ष में अन्य भी बहुत पदार्थ जल आदि को जानो॥५॥

भावार्थ:-विद्वान् लोग अग्नि में जो मूर्त ओदि प्रदार्थ छोड़ते हैं, वे अन्तरिक्ष को प्राप्त होकर वहां के ठहरे हुए जल को शुद्ध करते हैं, और वह शुद्ध हुआ जल सुगन्धि आदि गुणों से सब पदार्थों को आच्छादन करके सब प्राणियों को सुख्युक्त करता है॥५॥

अथ गृहयुन्भालायाचाति चानेकद्वाराणि रचनीयानीत्युपदिश्यते।

अब अगले मन्त्र में घर प्रज्ञशाला और विमान आदि रथ अनेक द्वारों के सहित बनाने चाहियें, इस विषय का उपदेश किया है-

वि श्रयन्तामृताचुधा द्वार्गे देवीरसश्चतः।

अद्या नूनं च यष्ट्रवे॥६॥२४॥

वि। अधुन्ताम् ऋतुऽवृष्टीः। द्वारीः। देवीः। असुरुचतीः। अद्या नूनम्। च। यष्टवे॥६॥

प्रदर्शः (ति) विविधार्थे (श्रयन्ताम्) सेवन्ताम् (ऋतावृधः) या ऋतं सत्यं सुखं जलं वा वर्धयन्ति सः। अत्र अन्येषामिष् इति दीर्घः। (द्वारः) द्वाराणि (देवीः) द्योतमानाः। अत्र वा च्छन्दिस इति जस् पूर्वसवर्णत्वम्। (असञ्चतः) विभागं प्राप्ताः। अत्र सस्ज गतौ इत्यस्य व्यत्ययेन जकारस्य चकारः।

(अद्य) अस्मित्रहिन। अत्र निपातस्य च इति दीर्घः। (नूनम्) निश्चये (च) समुच्चये (यष्ट्वे) यष्टुम्। अत्रे 'यज' धातोस्तवेन् प्रत्ययः॥६॥

अन्वय:-हे मनीषिणोऽद्य यष्टवे गृहादेरसश्चत ऋतावृधो देवीर्द्वारो नूनं विश्रयन्ताम्॥६ भावार्थ:-मनुष्यैरनेकद्वाराणि गृहयज्ञशालायानानि रचयित्वा तत्र स्थितिं हवनं गमनागपने च कर्त्तव्ये॥६॥

इति चतुर्विंशो वर्गः समाप्तः॥

पदार्थ:-हे (मनीषिण:) बुद्धिमान् विद्वानो! (अद्य) आज (यष्टवे) यह करने के लिये घर आदि के (असश्चत:) अलग-अलग (ऋतावृध:) सत्य सुख और जल के कि करनेवाले (देवी:) तथा प्रकाशित (द्वार:) दरवाजों का (नूनम्) निश्चय से (विश्रयन्ताम्) सेक्न करा अर्थात् अच्छी रचना से उनको बनाओ॥६॥

भावार्थ:-मनुष्यों को अनेक प्रकार के द्वारों के घर, श्राज्ञाला और विमान आदि यानों को बनाकर उनमें स्थिति होम और देशान्तरों में जाना-आना करना चाहिश्रेगद्वा।

यह चौबीसवां वर्ग सम्प्रित हुआ।

तत्रैतेनाहोरात्रे सुखं भवतीत्युपिद्ध्यते।

उक्त कर्म से दिनरात सुख होता है, सी अगेले मुन्त्र में प्रकाशित किया है–

नक्तोषसा सुपेशंसास्मिन् युज्ञ उपं हिया

इदं नी बहिरासदे॥७॥

नक्तोषसा। सुऽपेश्रीसा। अस्मिन्ना येजे। रिए) ह्विये। इदम्। नुः। बुर्हिः। आऽसदे॥७॥

पदार्थ:-(नक्तोषसा) नक्तं चोषश्चाहश्च रात्रिश्च ते। अत्र सुपां सुलुग्० इति औकारस्थाने आकारादेश:। नक्तिमित रात्रिनामिस पठितम्। (निघं०१.७) उषा सा नक्तोषाश्च नक्ता चोषा व्याख्याता नक्तेति रात्रिनामानक्ति भूताव्यवश्यायेनापि वा नक्ता व्यक्तवर्णा। (निरु०८.१०) (सुपेशसा) शोभनं सुखदं पेशो रूपं ययोस्ते अत्र पूर्वव्रह्मकारादेश:। पेश इति रूपनामसु पठितम्। (निघं०३.७) (अस्मिन्) प्रत्यक्षे गृहे (यज्ञे) सङ्गते कर्त्वव्ये (उप) सामीप्ये (ह्वये) स्पर्द्धे (इदम्) प्रत्यक्षम् (नः) अस्माकम् (बर्हिः) निवासप्रापकं स्थानम्। बर्हिरिति पदनामसु पठितम्। (निघं०५.२) अतः प्राप्त्यर्थो गृह्यते। (आसदे) समन्तात् सीदन्धि प्राप्तवन्ति सुखानि यस्यां साऽऽसत्तस्यै॥७॥

अन्वय:-अहमस्मिन् गृहे यज्ञे सुपेशसौ नक्तोषसावुपह्वय उपस्पर्द्धे, यतो नोऽस्माकिमदं बर्हिरासदे भवेत॥

भावार्थः-मनुष्यैरत्र विद्ययोपकृतेऽरात्रे सर्वप्राणिनां सुखहेतू भवत इति बोध्यम्॥७॥

अष्टक-१। अध्याय-१। वर्ग-२४-२५

मण्डल-१। अनुवाक-४। सूक्त-१३

पदार्थ:-मैं (अस्मिन्) इस घर तथा (यज्ञे) सङ्गत करने के कामों में (सुपेशसा) अच्छे रूपवाले (नक्तोषसा) रात्रिदिन को (उपह्वये) उपकार में लाता हूं, जिस कारण (नः) हमारा (बर्हिः) निवासस्थान (आसदे) सुख की प्राप्ति के लिये हो॥७॥

भावार्थ:-मनुष्यों को उचित है कि इस संसार में विद्या से सदैव उपकार लेक्नें, क्योंकि रात्रिदिन सब प्राणियों के सुख का हेतु होता है॥७॥

तत्र शोधकौ प्रसिद्धाप्रसिद्धावग्नी उपदिश्येते।

अब अगले मन्त्र में उन अग्नियों का उपदेश किया है कि जो शुद्ध करनेवाले विद्युत्रूप से अप्रसिद्ध और प्रत्यक्ष स्थूलरूप से प्रसिद्ध हैं-

ता सुंजिह्वा उप ह्वये होतारा दैव्या कवी।

युज्ञं नो यक्षतामिमम्॥८॥

ता। सुऽजि्ह्वौ। उप। हुये। होतारा। दैव्या। कुवी। युज्ञम्। नः। यक्षुनुप्र्म्। इमम्॥८॥

पदार्थ:-(ता) तौ। अत्र सर्वत्र द्वितायाया द्विवासिक्ष स्थाने सुपां सुलुग्० इत्याच् आदेश:। (सुजिह्नौ) शोभनाः पूर्वोक्ताः सप्त जिह्ना ययोस्तौ (उप) समीपग्रमनार्थे (ह्वये) स्पर्छे (होतारा) आदातारौ (दैव्या) दिव्येषु पदार्थेषु भवौ। देवाद्यञ्जौ। (अष्टा ४.१.८५) इति वार्त्तिकेन प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेषु यञ् प्रत्ययः। (कवी) क्रान्तदर्शनौ (यज्ञम्) हव्मिशिल्पविद्यामयम् (नः) अस्माकम् (यक्षताम्) यजतः सङ्गमयतः। अत्र सिब्बहुलं लेटि इति बहुलग्रहणाल्लोटि प्रथमपुरुषस्य द्विवचने शपः पूर्वं सिप्। (इमम्) प्रत्यक्षम्॥८॥

अन्वय:-अहं क्रियाकाण्डाऽनुष्ठाताऽस्मिन् गृहे यौ नोऽस्माकिममं यज्ञं यक्षतां सङ्गमयस्तौ सुजिह्नौ होतारौ कवी दैव्यावुपह्नये सामीप्र्ये स्पद्धे॥८॥

भावार्थ:-यथैका विद्युद्वेगाद्यनेकविव्यगुणयुक्ताऽस्त्येवं प्रसिद्धोऽप्यग्निर्वर्त्तते। एतौ सकलपदार्थदर्शनहेतू अपनी सम्यङ्ग्र नियुक्तौ शिल्पाद्यनेककार्य्यसिद्धिहेतू भवतस्तस्मादेताभ्यां मनुष्यै: सर्वोपकारा ग्राह्या इति॥४भ

पदार्थ:-में क्रियाकाण्ड का अनुष्ठान करनेवाला इस घर में जो (न:) हमारे (इमम्) प्रत्यक्ष (यज्ञम्) हवन हा शिल्पविद्यामय यज्ञ को (यक्षताम्) प्राप्त करते हैं, उन (सुजिह्बौ) सुन्दर पूर्वोक्त सात जीभ (होतारा) पहार्थों का ग्रहण करने (कवी) तीव्र दर्शन देने और (दैव्या) दिव्य पदार्थों में रहनेवाले प्रसिद्ध और अप्रसिद्ध अग्नियों को (उपह्वये) उपकार में लाता हूं॥८॥

भावार्थ:-जैसे एक बिजुली वेग आदि अनेक गुणवाला अग्नि है, इसी प्रकार प्रसिद्ध अग्नि भी है। तथा ये दोनों सकल पदार्थों के देखने में और अच्छे प्रकार क्रियाओं में नियुक्त किये हुए शिल्प आदि अनेक कार्य्यों की सिद्धि के हेतु होते हैं। इसलिये इन्हों से मनुष्यों को सब उपकार लेने चाहि साथा।

तत्र त्रिधा क्रिया प्रयोज्येत्युपदिश्यते।

वहां तीन प्रकार की क्रिया का प्रयोग करना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले प्रन्त्र में किशा

है–

इळा सरस्वती मही तिस्रो देवीर्मयोभुवः।

बहि: सीदन्तु अस्त्रिध:॥९॥

इळा। सरस्वती। मही। तिस्रः। देवीः। मयःऽभुवः। बर्हिः। सीदेनुर् असिर्धः। रे॥

पदार्थ:-(इडा) ईडचते स्तूयतेऽनया सा वाणी। इडेति वाड्नामसु पिटतम्। (निघं०१.११) अत्र 'इड' धातोः कर्मणि बाहुलकादौणादिकोऽन्प्रत्ययो हस्वत्वं चा वा छन्द्रसि सर्वे विधयो भवन्ति इति गुणादेशाभावश्च। अत्र सायणाचार्य्यण टापं चैव हलन्तानामित्यशस्त्रीयवचनस्वीकारादशुद्धमेवोक्तम्। (सरस्वती) सरो बहुविधं विज्ञानं विद्यते यस्याः सा अत्र भूम्पर्थे मतुप्। (मही) महती पूज्या नीतिर्भूमिर्वा (तिम्नः) त्रिप्रकारकाः (देवीः) देदीप्यमन् दिव्यपुणहेतवः। अत्र वा छन्द्रसि इति जसः पूर्वसवर्णत्वम्। (मयोभुवः) या मयः सुखं भावयन्ति ताः। मूर्य इति सुखनामसु पिठतम्। (निघं०३.६) (बर्हिः) प्रतिगृहादिकम्। बर्हिरिति पदनामसु पिठतम्। (निघं०५.२) तस्मादत्र ज्ञानार्थो गृह्यते। (सीदनु) सादयन्तु। अत्रान्तर्गतो ण्यर्थः। (अस्त्रिधः) अहिंसनीयः। भूर्थः।

अन्वय:-हे विद्वांसो भवन्त इड सिस्त्रुमी महास्रिधो मयोभुवस्तिस्रो देवीर्बिर्हिः प्रतिगृहादिकम् सीदन्तु सादयन्तु॥९॥

भावार्थ:-मनुष्यैरिडापठनप्राठनप्रेरिका सरस्वती ज्ञानप्रकाशिकोपदेशाख्या मही सर्वथा पूज्या कुतर्केण ह्यखण्डनीया सर्वसुख्य नीतिश्चेति त्रिविधा सदा स्वीकार्य्या, यत: खल्वविद्यानाशो विद्याप्रकाशश्च भवेत्॥ १०

पदार्थ:-हे विद्वानी तुम लोग एक (इडा) जिससे स्तुति होती, दूसरी (सरस्वती) जो अनेक प्रकार विज्ञान का होतू, और वीसरी (मही) बड़ो में बड़ी पूजनीय नीति है, वह (अस्त्रिध:) हिंसारहित और (मयोभुव:) सुखों को सम्पादन करानेवाली (देवी) प्रकाशवान् तथा दिव्य गुणों को सिद्ध कराने में हेतु जो (तिस्त्र:) तीन प्रकार की वाणी है, उसको (बर्हि:) घर-घर के प्रति (सीदन्तु) यथावत् प्रकाशित करो॥ १४

भावार्थ:-मनुष्यों को 'इडा' जो कि पठनपाठन की प्रेरणा देनेहारी, 'सरस्वती' जो उपदेशरूप इति का प्रकाश करने, और 'मही' जो सब प्रकार से प्रशंसा करने योग्य है, ये तीनों वाणी कुतर्क से अष्टक-१। अध्याय-१। वर्ग-२४-२५

मण्डल-१। अनुवाक-४। सूक्त-१३

खण्डन करने योग्य नहीं हैं, तथा सब सुख के लिये तीनों प्रकार की वाणी सदैव स्वीकार करनी चाहिये, जिससे निश्चलता से अविद्या का नाश हो॥९॥

पुनस्तत्र किं किं कार्व्यमित्युपदिश्यते।

फिर वहां क्या-क्या करना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है

इह त्वष्टारमिययं विश्वरूपमुपं ह्वये।

अस्मार्कमस्तु केवलः॥१०॥

डुह। त्वष्टारम्। अप्रियम्। विश्वऽरूपम्। उप। ह्वये। अस्माक्षम्। अस्तु। क्रिवेलः ॥१९॥

पदार्थ:-(इह) अस्यां शिल्पविद्यायामस्मिन् गृहे वा (त्वधारम्) दु: खार्ज छेदकं सर्वपदार्थानां विभाजितारं वा (अग्नियम्) सर्वेषां वस्तूनां साधनानां वा अग्ने भवम्। घच्छे च्ये (अष्टा०४.४.११८) इति सूत्रेण भवार्थे घः प्रत्ययः। (विश्वरूपम्) विश्वस्य रूपं यस्मिन् प्रमातमि वा विश्वः सर्वो रूपगुणो यस्य तम् (उप) सामीप्ये (ह्वये) स्पर्द्धे (अस्माकम्) उपासकानां हवनिश्लिपविद्यासाधकानां वा (अस्तु) भवतु भवति। अत्र पक्षे व्यत्ययः। (केवलः) एक एवेष्टोऽसाधरणसाभ्रामो क्यो।१०॥

अन्वय:-अहं यं विश्वरूपमग्रियं त्वष्टारमिनं परमात्मानिमहोपह्नये सम्यक् स्पर्द्धे स एवास्माकं केवल इष्टोऽस्त्वित्येक:। अहं यं विश्वरूपमग्रियं त्वृष्टारं भौतिकमग्निमहोपह्नये सोऽस्माकं केवलोऽसाधारणसाधनोऽस्तु भवतीति द्वितीय:॥१०॥

भावार्थ:-अत्र श्लेषालङ्कार:। मनुष्यैरनन्त्रानुन्दप्रद ईश्वर एवोपास्योऽस्ति। तथाऽयमग्नि: सर्वपदार्थच्छेदको रूपगुण: सर्वद्रव्यप्रवाशकोऽनुत्तम: शिल्पविद्याया अद्वितीयसाधनोऽस्माकं यथावदुपयोक्तव्योऽस्तीति मन्तव्यम्॥१०॥

पदार्थ:-मैं जिस (विश्वरूपम्) सर्वव्यापक (अग्नियम्) सब वस्तुओं के आगे होने तथा (त्वष्टारम्) सब दु:खों के नाश्च करनेवाले प्रमात्मा को (इह) इस घर में (उपह्वये) अच्छी प्रकार आह्वान करता हूं, वही (अस्माक्स्) उपासेन् करनेवाला हम लोगों का (केवल:) इष्ट और स्तुति करने योग्य (अस्तु) हो॥१॥१०॥

और मैं (विश्वरूपम्) जिसमें सब गुण हैं, (अग्रियम्) सब साधनों के आगे होने तथा (त्वष्टारम्) सब पदार्थों को अपने तेज से अलग-अलग करनेवाले भौतिक अग्नि के (इह) इस शिल्पविद्या में (उपह्रये) जिसको सुक्त करता हूं, वह (अस्माकम्) हवन तथा शिल्पविद्या के सिद्ध करनेवाले हम लोगों का (केव्रल:) अत्युक्त साधन (अस्तु) होता है॥२॥१०॥

भोतार्थ:-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों को अनन्त सुख देनेवाले ईश्वर ही की उपासना क्रस्नी चेहिये तथा जो यह भौतिक अग्नि सब पदार्थों का छेदन करने, सब रूप गुण और पदार्थों का

प्रकाश करने, सब से उत्तम और हम लोगों की शिल्पविद्या का अद्वितीय साधन है, उसका उपयोग शिल्पविद्या में यथावत् करना चाहिये॥१०॥

सोऽग्निः केन प्रदीप्तः सन्नेत्कार्य्यं साधयतीत्युपदिश्यते।

वह अग्नि किससे प्रज्वलित हुआ इन कार्य्यों को सिद्ध करता है, इसका उपदेश अगले किस में

किया है-

अवं सृजा वनस्पते देवं देवेभ्यों हुवि:।

प्र दातुरमस्तु चेतनम्॥ ११॥

अर्व। सुजा वनस्पते। देवं। देवेभ्यं:। हृवि:। प्रा दातु:। अस्तु। चेतेनम्(१११०)

पदार्थ:-(अव) विनिग्रहार्थीयः (सृज) सृजित। अत्र व्यत्ययः। द्वाचाँऽतस्तिङ इति दीर्घः। (वनस्पते) यो वनानां वृक्षौषध्यादिसमूहानामधिकवृष्टिहेतुत्वेन पालियतास्ति सीऽपुष्पफलवान्। अपुष्पाः फलवन्तो ये ते वनस्पतयः स्मृताः। (मनु०१.४७) (देव) देवा फलादीचाँ दाता (देवभ्यः) दिव्यगुणेभ्यः (हिवः) हवनीयम्। (प्र) प्रकृष्टार्थे (दातुः) शोधयतुः। 'दैप शोधने' इत्यस्य रूपम्। (अस्तु) भवित। अत्र लडर्थे लोट्। (चेतनम्) चेतयित येन तत्॥११॥

अन्वय:-अयं देवो वनस्पतिर्देवेभ्यस्तद्भविरवस्पति यत्प्रदातुः सर्वपदार्थशोधियतु-र्विदुषश्चेतनमस्तु भवति॥११॥

भावार्थ:-मनुष्यै: पृथिवीजलमयाः स्वे पदार्थो युक्त्या सम्प्रयोजिता अग्ने: प्रदीपका भूत्वा रोगाणां विनिग्रहेण बुद्धिबलप्रदत्वाद्विज्ञानवृद्धिहेतुचो भूत्र्या दिव्यगुणान् प्रकाशयन्तीति॥११॥

पदार्थ:-जो (देव) फल आद्रिएपदार्थी को दैनवाला (वनस्पति:) वनों के वृक्ष और ओषधि आदि पदार्थों को अधिक वृष्टि के हेतु से एपलिन करनेवाला (देवेभ्य:) दिव्यगुणों के लिये (हिव:) हवन करने योग्य पदार्थों को (अवसृज) उत्पन्न करता है वह (प्रदातु:) सब पदार्थों की शुद्धि चाहने वाले विद्वान् जन के (चेतनम्) विज्ञान को उत्पन्न कर्गनेवाला (अस्तु) होता है।।

भावार्थ:-मनुष्यों ने मूर्थिवी म्रंथा सब पदार्थ जलमय युक्ति से क्रियाओं में युक्त किये हुए अग्नि से प्रदीप्त होकर रोगों को सिर्मूलींग से बुद्धि और बल को देने के कारण ज्ञान के बढ़ाने के हेतु होकर दिव्यगुणों का प्रकाश करते हैं।।११।।

एतं क्रियाकाण्डं मनुष्याः कथं कुर्व्युरित्युपदिश्यते।

इस क्रियोकाण्ड को मनुष्य लोग किस प्रकार से करें, सो उपदेश अगले मन्त्र में किया है-

स्वाहा युज्ञं कृणोतुनेन्द्राय यज्वनो गृहे।

त्त्र्व द्वेवाँ उप ह्वये॥ १२॥ २५॥

अष्टक-१। अध्याय-१। वर्ग-२४-२५

मण्डल-१। अनुवाक-४। सुक्त-१३

स्वाहां। युज्ञम्। कृणोतन्। इन्द्राय। यज्वनः। गृहे। तत्रं। देवान्। उपं। ह्वये॥१२॥

पदार्थ:-(स्वाहा) या सित्क्रियासमूहास्ति तया (यज्ञम्) त्रिविधम् (कृणोतन) हुरुवा अत्र तकारस्थाने तनबादेश:। (इन्द्राय) परमैश्वर्य्यकरणाय (यज्वनः) यज्ञाऽनुष्ठातु:। अत्र सूयजाहूर्चिम्प्। (अष्टा॰३.२.१०३) अनेन 'यज' धातोर्ङ्विनप् प्रत्यय:। (गृहे) निवासस्थाने यज्ञशालायां कलाकौशलसिद्धविमानादियानसमूहे वा (तत्र) तेषु कर्मसु (देवान्) परमविदुष: (अप) निकादार्थे (ह्वये) आह्वये॥१२॥

अन्वय:-हे शिल्पकारिण ऋत्विजो! यथा यूयं यत्र यज्वनो गृह इन्द्राय देवानीहूय स्वाहा यज्ञं कृणोतन तथा तत्राऽहं तानुपह्लये॥१२॥

भावार्थ:-अत्र लुप्तोपमालङ्कार:। मनुष्या विद्याक्रियावन्तो भूत्व्र सम्बिग्विगरेण क्रियासमूहजन्यं कर्मकाण्डं गृहे गृहे नित्यं कुर्वन् तत्र च विदुषामाह्वानं कृत्वा स्वयं वा तत्समीपं गत्वा तद्विद्याक्रियाकौशले स्वीकुर्वन्तु। नैव कदाचिद्युष्माभिरालस्येनैते उपेक्षणीये इति परमेश्वर उपेद्दिशति॥१२॥

अस्य त्रयोदशसूक्तार्थस्याग्न्यादिदिव्यपदार्थोपकारग्रहणार्थोक्तेश्वेत्या द्वादशसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति बोध्यम्।

इदमपि सूक्तं सायणाचार्य्यादिभियूरोपदेशवासिभिर्वित्सन्तिस्भिशचान्यथैव व्याख्यातम्॥

इति त्रयोदशं सूक्तं पञ्जविंशो वर्राश्च समापाः॥

पदार्थ:-हे शिल्पविद्या के सिद्ध यज्ञ करने और करानेवाले विद्वानों! तुम लोग जैसे जहां (यज्वन:) यज्ञकर्ता के (गृहे) घर यज्ञशाला केलाकुशलूता से सिद्ध किये हुए विमान आदि यानों में (इन्द्राय) परमैश्वर्य्य की प्राप्ति के लिये पूरम विद्वानों की बुलाके (स्वाहा) उत्तम क्रियासमूह के साथ (यज्ञम्) जिस तीनों प्रकार के यज्ञ को (कृणोतन) सिद्ध करनेवाले हों, वैसे वहां मैं (देवान्) उन उक्त चतुर श्रेष्ठ विद्वानों को (उपह्वये) प्रार्थना के साथ बुलाता रहूं॥१२॥

भावार्थ:-मनुष्य लोग विद्या तथा क्रियावान् होकर यथायोग्य बने हुए स्थानों में उत्तम विचार से क्रियासमूह से सिद्ध होनेवाले क्रिमें काण्ड को नित्य करते हुए और वहां विद्वानों को बुलाकर वा आप ही उनके समीप जाकर उनकी विद्या और क्रिया की चतुराई को ग्रहण करें। हे सज्जन लोगो! तुमको विद्या और क्रिया की कुशलता आत्रस्था में कभी नहीं छोड़नी चाहिये, क्योंकि ऐसी ही ईश्वर की आज्ञा सब मनुष्यों के लिये हैं॥१२॥

इस तेरहवें सूक्त के अर्थ की अग्नि आदि दिव्य पदार्थों के उपकार लेने के विधान से बारहवें सूक्त के अभिष्राय के साथ सङ्गति जाननी चाहिये।

यह भी सुक्त सायणाचार्य्य आदि तथा यूरोपदेशवासी विलसन आदि साहबों ने विपरीत ही वर्णन किसा है।

यह तेरहवां सूक्त और पच्चीसवां वर्ग पूरा हुआ॥

अथास्य द्वादशर्च्चस्य चतुर्दशसूक्तस्य कण्वो मेधातिथिर्ऋषि:। विश्वेदेवा देवता:। गायत्री छन्द:।

षड्जः स्वरः॥

तत्रादितो बहुभिः पदार्थैः सह संयोगीश्वरभौतिकावग्नी उपदिश्येते।

अब चौदहवें सूक्त का आरम्भ है। उसके पहिले मन्त्र में बहुत पदार्थों के साथ संयोग करिवाले

ईश्वर और भौतिक अग्नि का उपदेश किया है-

ऐभिरग्ने दुवो गिरो विश्वेभि: सोमपीतये।

देवेभिर्याहि यक्षि च॥ १॥

आ। पुभु:। अग्ने। दुर्व:। गिर्र:। विश्वेभि:। सोर्मऽपीतये। देवेभि:। याहि। सक्कि। हा। १॥

पदार्थ:-(आ) समन्तात् (एभि:) प्रत्यक्षैः। अत्र एमन्नोर्दिषु छन्दिस पररूपं वक्तव्यम्। (अष्टा०६.१.९४) अनेन पररूपम्। (अग्ने) सर्वत्र व्याप्तेश्वर भौतिको वार्ष अत्रीन्त्यपक्षे सर्वत्र व्यत्ययः। (दुवः) परिचर्य्याम् (गिरः) वेदवाणीः (विश्वेभिः) सर्वैः। अत्र खहुलं छन्द्रसि इति भिस ऐस् भवति। (सोमपीतये) सोमानां सुखकारकाणां पीतिः पानं यस्माद्यज्ञान्नस्मै। अत्र सह सुपा इति समासः। (देवेभिः) दिव्येर्गुणैः पदार्थैविद्वद्भिर्द्वां सह (याहि) प्राप्तो भव भवति वा (यश्वि) यजामि सङ्गमयामि वा। अत्र लडर्थे लुङ्डभावश्च। (च) पूर्वार्थाकर्षणे॥१॥

अन्वय:-हे अग्ने जगदीश्वर! त्वमेभिर्विश्विभिर्द्ध्वेभिः, सह सोमपीतये दुवो गिरो वेदवाणीर्याहि प्राप्तो भवेत्येक:। यमग्निमेभिर्विश्वेभिर्देवेभिः सूह समागभ्रेम सोमपीतयेऽहं यक्षि यजामि, ईश्वरस्य दुवः परिचर्य्या गिरो वेदवाणीश्च यक्षि सङ्गमयामिति द्वितीयः, १॥

भावार्थ:-अत्र श्लेषालङ्कार: भनुष्याणां या या व्यावहारिकपारमार्थिकसुखेच्छा भवेत्, यैर्वायुजलपृथिवीमयादिभिर्यन्त्रयानै: सङ्गतं कृत्वा क्रिया: क्रियन्त ईश्वरस्याज्ञासेवनं वेदानामध्ययनाध्यापने तदुक्तानुष्टानं चत्त एक्सभित आनन्दं प्राप्नुवन्ति॥१॥

पदार्थ:-हे (अग्ने) जिएक्षिश्वर! आष्ट्र (एभि:) इन (विश्वेभि:) सब (देवेभि:) दिव्यगुण और विद्वानों के साथ (सोमप्रेतके) सुखु क्ररनेवाले पदार्थों के पीने के लिये (दुव:) सत्कारादि व्यवहार तथा (गिर:) वेदवाणियों को (चाहि) प्राप्त हूजिये॥१॥

जो यह (अग्ने) भौतिक अग्नि (एभि:) इन (विश्वेभि:) सब (देवेभि:) दिव्यगुण और पदार्थों के साथ (सोमपीतरें) जिससे सुखकारक पदार्थों का पीना हो, उस यज्ञ के लिये (दुव:) सत्कारादि व्यवहार तथा (गिर:) वेदेशणियों को (याहि) प्राप्त करता है, उसको (एभि:) इन (विश्वेभि:) सब (देवेभि:) विद्वानों के साथ (सोमपीतये) उक्त सोम के पीने के लिये (यक्षि) स्वीकार करता हूं, तथा ईश्वर के (दुव:) सत्कारादि व्यवहार और वेदवाणियों को (यक्षि) सङ्गत अर्थात् अपने मन और कामों में अच्छी प्रकार सद्विव यथाशिक्त धारण करता हूं॥२॥१॥

अष्टक-१। अध्याय-१। वर्ग-२६-२७

मण्डल-१। अनुवाक-४। सूक्त-१४

भावार्थ:-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जिन मनुष्यों को व्यवहार और परमार्थ के सुख की इच्छा हो, वे वायु जल और पृथिवीमयादि यन्त्र तथा विमान आदि रथों के साथ अग्नि को स्वीकार करके उत्तम क्रियाओं को सिद्ध करते और ईश्वर की आज्ञा का सेवन, वेदों का पढ़ना-पढ़ाना और वेदों का अनुष्ठान करते रहते हैं, वे ही सब प्रकार से आनन्द भोगते हैं॥१॥

अथाग्निशब्देनोभावर्थावुपदिश्येते।

अब अगले मन्त्र में अग्निशब्द से दो अर्थों का उपदेश किया 🥕

आ त्वा कण्वां अहूषत गृणन्ति विप्र ते धिर्यः। देवेभिरग्न आ गीह॥२॥

आ। त्वा। कण्वाः। अहूषुत्। गृणन्ति। विष्रा। ते। धर्यः। देवेभिः। अप्ते। आ गृहि॥२॥

पदार्थ:-(आ) आभिमुख्ये (त्वा) त्वां जगदीश्वरं तं भौतिक वा (क्रण्वाः) मेधाविनो विद्वांसः। कण्व इति मेधाविनामसु पठितम्। (निघं०३.१५) (अहूषत्) आह्रसञ्ज्ञ शिल्पार्थं स्पर्धयन्ति वा। अत्र लड्थें लुङ् बहुलं छन्दिस इति सम्प्रसारणञ्च। (गृणानि) अर्वनि शब्दयन्ति वा। गृणातीत्यर्चितिकर्मसु पठितम्। (निघं०३.१४) गृ शब्दे इति पक्षे शब्दार्थः। (विप्र) विविधज्ञानेन पदार्थान् प्राति पूरयित स विद्वान् तत्संबुद्धौ। (ते) तव तस्य वा (अग्ने) विज्ञापस्वरूप् प्राप्तिहेतुर्भौतिकोऽग्निर्वा। (आ) क्रियायोगे (गिह) प्राप्नुहि प्रापयित वा। अत्र पक्षे व्यत्पयः। बहुलं छन्दिस इति शपो लुक्। वा छन्दिस। (अष्टा०३.४.८८) इति हेरिपत्त्वात्, अनुदानुभेदरेश० (अष्टा०६.४.३७) अनेनानुनासिकलोपश्च॥२॥

अन्वय:-हे अग्ने ईश्वर! यथा कण्या मध्यविनस्त्वा त्वां गृणन्त्यहूषताह्वयन्ति तथैव वयमिप गृणीमः आह्वयामः। हे विप्र मेधाविन ! तथा ते तब धियो यं गृणन्त्याह्वयन्ति तथा सर्वे वयं मिलित्वा तमेव नित्यमुपास्महे। हे मङ्गलमय परम्पत्पस्त्वं कप्तया देवेभिः सहागहि समन्तात् प्राप्तो भवेत्येकः॥१॥२॥

हे विप्र विद्वन्! यथा केण्वा अन्ये बिद्धांसोऽग्निं गृणन्त्यहूषताह्वयन्ति तथैव त्वमिप गृणीह्याह्वय। यथा देवेभिः सहाग्न अध्याह्मयं भौतिकोऽग्निः समन्ताद्विदितगुणो भूत्वा दिव्यगुणसुखप्रापको भविति, यमग्निं ते तव धियो बुद्धयो गूर्णनि स्पर्धन्ते तेन त्वं बहूनि कार्य्याणि साधयेति द्वितीयः॥२॥२॥

भावार्थ:-अत्र श्लेषोलङ्कारः। मनुष्यैरस्यां सृष्टावीश्वररचितान् पदार्थान् दृष्ट्वेदं वाच्यमिमे सर्वे धन्यवादाः स्तुत्र्यश्चेर्पेश्वरायेव सङ्गच्छन्त इति॥२॥

पदार्थ: है (अम्ने) जगदीश्वर! जैसे (कण्वाः) मेधावी विद्वान् लोग (त्वा) आपका (गृणन्ति) पूजन तथा (अहूक्त) प्रार्थना करते हैं, वैसे ही हम लोग भी आपका पूजन और प्रार्थना करें। हे (विप्र) मेधार्विच् विद्वन्! जैसे (ते) तेरी (धियः) बुद्धि जिस ईश्वर के (गृणन्ति) गुणों का कथन और प्रार्थना करती है विसे हम सब लोग परस्पर मिलकर उसी की उपासना करते रहें। हे मङ्गलमय परमात्मन्! आप

कृपा करके (देवेभि:) उत्तम गुणों के प्रकाश और भोगों के देने के लिये हम लोगों को (आगहि) अच्छी प्रकार प्राप्त हूजिये॥१॥२॥

हे (विप्र) मेधावी विद्वान् मनुष्य! जैसे (कण्वा:) अन्य विद्वान् लोग (अग्ने) अग्नि (ग्रिणान्त) गुणप्रकाश और (अहूपत) शिल्पविद्या के लिये युक्त करते हैं, वैसे तुम भी करो। जैसे (अपे) यह अग्नि (देवेभि:) दिव्यगुणों के साथ (आगिह) अच्छी प्रकार अपने गुणों को विदित करता है और जिस अग्नि के (ते) तेरी (धिय:) बुद्धि (गृणन्ति) गुणों का कथन तथा (अहूपत) अधिक से अधिक मानती है, उससे तुम बहुत से कार्य्यों को सिद्ध करो॥२॥२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों को इस संसार में इश्वर के रचे हुए पदार्थों को देखकर यह कहना चाहिये कि ये सब धन्यवाद और स्तुति ईश्वर ही में प्रदेशी हैं।। भा

अथ विश्वेषां देवानां मध्यात्काँश्चिदुपदिशति।

अब अगले मन्त्र में सब देवों में से कई एक देवों का उपदेश किया है-

ड्रन्द्रवायू बृहस्पतिं मित्राग्निं पूषणुं भर्गम्। आदित्यान् मार्रुतं गुणम्॥३॥

इन्द्रवायू इति। बृह्स्पतिम्। मित्रा। अग्निम्। पूष्प्रम्। अग्निम्। आदित्यान्। मार्म्तम्। गुणम्॥३॥

पदार्थ:-(इन्द्रवायू) इन्द्रश्च वायुश्च तो विद्युत्पवनौ (बृहस्पतिम्) बृहतां पालनहेतुं सूर्य्यप्रकाशम्। तद्बृहतोः करपत्योश्चोरदेवतयोः पुट् तत्नीपश्च। (अष्टा०६.१.१५७) अनेन वार्तिकेन बृहस्पतिः सिद्धः। पातेर्डतिः। (उणा०४ विठ) अनेभ पतिशब्दश्च (पित्रा) मित्रं प्राणम्। अत्र सुपां सुलुग्० इत्यमः स्थान आकारादेशः। (अग्निम्) भौतिकम् (पूषणम्) पृष्ट्यौषध्यादिसमूहप्रापकं चन्द्रलोकम्। पूषेति पदनामसु पित्रतम्। (निघ०५.६) अनेन पृष्टिप्राप्त्यर्थश्चन्द्रो गृह्यते। (भगम्) भजते सुखानि येन तच्चक्रवर्त्यादिराज्यभनम्। भग इति धननामसु पिठतम्। (निघ०२.१०) अत्र 'भज'धातोः पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण। अष्टा०३.३.१४८) अनेन घः प्रत्ययः। भगो भजतेः। (निरु०१.७) (आदित्यान्) द्वादशमासान् (पास्तम्) मरुतामिमम् (गणम्) वायुसमूहम्॥३॥

अन्वयः-हे केण्वा भावन्तं क्रियानन्दसिद्धय इन्द्रवायू बृहस्पतिं मित्रमिनं पूषणं भगमादित्यान्मारुत्रं राणमहृषुत् स्पर्धध्वं गृणीत॥३॥

भावार्षः अत्रे पूर्वस्मान्मन्त्रात् 'कण्वा अहूषत गृणन्ति' इति पदत्रयमनुवर्तते। ये मनुष्या एतानिन्द्राद्विषदार्थाभिश्वररिचतान् विदितगुणान् कृत्वा क्रियासु सम्प्रयुज्यन्ते ते सुखिनो भूत्वा सर्वान् प्राणिनो स्ट्रियन्ति॥३॥

पदार्थ:-हे (कण्व:) बुद्धिमान् विद्वान् लोगो! आप क्रिया तथा आनन्द की सिद्धि के लिये (इन्द्रवायू) बिजुली और पवन (बृहस्पतिम्) बड़े से बड़े पदार्थों के पालनहेतु सूर्य्यलोक (मित्रा) प्राण अष्टक-१। अध्याय-१। वर्ग-२६-२७

मण्डल-१। अनुवाक-४। सूक्त-१४

(अग्निम्) प्रसिद्ध अग्नि (पूषणम्) ओषिधयों के समूह के पृष्टि करनेवाले चन्द्रलोक (भगम्) सुखों के प्राप्त करानेवाले चक्रवर्त्ति आदि राज्य के धन (आदित्यान्) बारहों महीने और (मारुतम्) पगनों के (गणम्) समूह को (अहूषत) ग्रहण तथा (गृणन्ति) अच्छी प्रकार जान के संयुक्त करो॥ अ

भावार्थ:-इस मन्त्र में पूर्व मन्त्र से 'कण्वा:' 'अहूषत' और 'गृणन्ति' ईन तीर पदों की अनुवृत्ति आती है। जो मनुष्य ईश्वर के रचे हुए उक्त इन्द्र आदि पदार्थों और उद्गक गुणों को जानकर क्रियाओं में संयुक्त करते हैं, वे आप सुखी होकर सब प्राणियों को सुखयुक्त स्रुदैव करते हैं॥३॥

एवं सम्प्रयोजिता एते किंहेतुका भवन्तीत्युपदिश्यके

उक्त पदार्थ इस प्रकार संयुक्त किये हुए किस-किस कार्य को सिद्ध करते हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है-

प्र वो भ्रियन्त इन्देवो मत्सुरा मोदयिष्णवै:।

द्रप्सा मध्वंश्चमूषंद:॥४॥

प्रा वः। भ्रियन्ते। इन्देवः। मृत्सराः। माद्रियष्णर्वः। दूप्मा/। मुख्ये) चमूषदेः॥४॥

पदार्थ:-(प्र) प्रकृष्टार्थे (व:) युष्मभ्यम् (भ्रियन्ते) ध्रियन्ते (इन्दवः) रसवन्तः सोमाद्यौषधिगणाः (मत्सराः) माद्यन्ति हर्षन्ति यैस्ते। अत्र कृष्यमदिश्यः कित्। (उणा०३.७१) अनेन मदेः सरन् प्रत्ययः। (मादियष्णवः) हर्षनिमित्ताः। अत्र णश्छन्दिस्। (अष्टा०३.२.१३७) अनेन ण्यन्तान्मदेरिष्णुच् प्रत्ययः। (द्रप्साः) दृप्यन्ति संहृष्यन्ते बलानि सैन्यानि वा यैस्ते। अत्र दृप हर्षणमोहनयोः इत्यस्माद्वाहुलकात्करणकारक औणादिकः स् प्रत्ययः। (मध्वः) मधुरगुणवन्तः (चमूषदः) ये चमूषु सेनासु सीदन्ति ते अत्र कृतो बहुलम् इति वार्सिकमाश्रित्य सत्सूद्विष० (अष्टा०३.२.६१) अनेन करणे किवप्। कृषिचिमतनि० (उणा०१ ८२) अनेन चमूशब्दश्च सिद्धः। चमन्त्यदन्ति विनाशयन्ति शत्रुबलानि याभिस्ताश्चम्वः॥४॥

अन्वयः-हे मनुष्या स्था मूर्णा वो युष्मभ्यं पूर्वमन्त्रोक्तैरिन्द्राभिरेव मध्वो मत्सरा मादियष्णवो द्रप्साश्चमूषद इन्दवः प्रिप्रयन्ति प्रकृष्टतया ध्रियन्ते तथा युष्माभिरिप मदर्थमेते सम्यग्धार्य्याः॥४॥

भावार्थ:-ईश्वरोऽभिवदत्ति-मया धारितैर्मद्रचितैः पूर्वमन्त्रप्रतिपादितैर्विद्युदादिभिर्ये सर्व पदार्थाः पोष्यन्ते ये व्रेभ्यो वैद्यकशिल्पशास्त्ररीत्या प्रकृष्टरसोत्पादनेन शिल्पकार्य्यसिद्ध्योत्तमसेनासम्पादनाद् रोगनाशविज्यप्राप्तिं कुर्वन्ति तैर्विविध आनन्दं भुञ्जते इति॥४॥

पदार्थ: -हे भनुष्यो! जैसे मैंने धारण किये, पूर्व मन्त्र में इन्द्र आदि पदार्थ कह आये हैं, उन्हीं से (मध्यः) मधुर गुणवाले (मत्सरा:) जिनसे उत्तम आनन्द को प्राप्त होते हैं (मादियष्णव:) आनन्द के जिस्ति (इप्सा:) जिन से बल अर्थात् सेना के लोग अच्छी प्रकार आनन्द को प्राप्त होते और (चमूषद:)

जिनसे विकट शत्रुओं की सेनाओं से स्थिर होते हैं, उन (इन्दव:) रसवाले सोम आदि ओषधियों के समूह के समूहों को (व:) तुम लोगों के लिये (भ्रियन्ते) अच्छी प्रकार धारण कर रक्खे हैं, वैसे तुम लोग भी मेरे लिये इन पदार्थों को धारण करो॥४॥

भावार्थ:-ईश्वर सब मनुष्यों के प्रति कहता है कि जो मेरे रचे हुए पहिले मन्त्र में प्रकाशित किये बिजुली आदि पदार्थों से ये सब पदार्थ धारण करके मैंने पुष्ट किये हैं, तथा जो मनुष्य इनसे वैद्यक वा शिल्पशास्त्रों की रीति से उत्तम रस के उत्पादन और शिल्प कार्य्यों की सिद्धि के साथ उत्तम सेना के सम्पादन होने से रोगों का नाश तथा विजय की प्राप्ति करते हैं, वे लोग नाम प्रकार के सुख भोगते हैं॥४॥

अथाग्निशब्देनेश्वर उपदिश्यते।

अब अगले मन्त्र में अग्निशब्द से ईश्वर का उपदेश किया है

ईळते त्वामेवस्यवः कण्वांसो वृक्तबर्हिषः। ह्विष्मेना अर्कृतः॥५॥ ईळते। त्वाम्। अवस्यवः। कण्वांसः। वृक्तऽबर्हिषः। ह्विष्मेनः। अर्हेऽकृतः॥५॥

पदार्थ:-(ईळते) स्तुवन्ति (त्वाम्) सर्वस्य जगित् हित्पादके धारकं जगदीश्वरम् (अवस्यवः) आत्मनोऽवो रक्षणादिकमिच्छन्तस्तच्छीलाः। अत्र 'अव' धातोः सर्वधातुभ्योऽसुन्। (उणा०४.१९६) इति भावेऽसुन्, ततः सुप आत्मनः क्यच् इति वयस्, ततः क्याच्छन्दिस। (अष्टा०३.२.१७०) अनेन ताच्छील्य उः प्रत्ययः। (कण्वासः) मेधाविन्। विद्वांसः (वृक्तबर्हिषः) ऋत्विजः (हविष्मन्तः) हवींषि दातुमादातुमत्तुं योग्यान्यतिशयितानि वस्तूनि विद्यन्ते येषान्ते। अत्रातिशायने मतुप्। (अरंकृतः) सर्वान् पदार्थानलं कर्त्तुं शीलं येषां ते। अत्र अन्योधीऽपि दृश्यन्ते। (अष्टा०३.२.१७८) अनेन ताच्छील्येऽर्थे क्विप्॥५॥

अन्वय:-हे जगदीश्वर। वयं हविष्मन्तोऽरंकृतोऽवस्यव: कण्वासो वृक्तबर्हिषो विद्वांसो यं त्वामीळते तमीडीमहि॥५॥

भावार्थ:-हे सर्वसृष्ट्युत्पादुक्रं! यतो भवता सर्वप्राणिसुखार्थं सर्वे पदार्था रचयित्वा धारितास्तस्मात्त्वामेव स्तुबन्त सर्वस्य रक्षणमिच्छन्तः शिक्षाविद्याभ्यां सर्वान्मनुष्यान् भूषयन्तो वयं नित्यं प्रयतामह इति॥५॥

पदार्थ्य-हे भगदीश्वर! हम लोग जिनके (हिवष्मन्तः) देने-लेने और भोजन करने योग्य पदार्थ विद्यमान हैं, तथा (अस्कृतः) जो सब पदार्थों को सुशोभित करनेवाले हैं, (अवस्थवः) जिनका अपनी रक्षा चाहरे का स्वभाव है, वे (कण्वासः) बुद्धिमान् और (वृक्तबर्हिषः) यथाकाल यज्ञ करनेवाले विद्वान् लोग जिस (वाम्) सब जगत् के उत्पन्न करनेवाले आपकी (ईडते) स्तुति करते हैं, उसी आपकी स्तुति करें॥५)।

अष्टक-१। अध्याय-१। वर्ग-२६-२७

मण्डल-१। अनुवाक-४। सूक्त-१४

भावार्थ:-हे सृष्टि के उत्पन्न करनेवाले परमेश्वर! जिस आपने सब प्राणियों के सुख के लिये सब पदार्थों को रचकर धारण किये हैं, इससे हम लोग आप ही की स्तुति, सब की रक्षा की क्ला शिक्षा और विद्या से सब मनुष्यों को भूषित करते हुए उत्तम क्रियाओं के लिये निरन्तर अच्छी प्रकार यह करते हैं॥५॥

ईश्वररचिता विद्युदादयः कीदृग्गुणाः सन्तीत्युपदिश्यते।

ईश्वर के रचे हुए बिजुली आदि पदार्थ कैसे गुणवाले हैं, सो अगले मन्त्र में अपदेश किया है-

घृतपृष्ठा मनोयुजो ये त्वा वहन्ति वह्नयः।

आ देवान्सोर्मपीतये॥६॥२६॥

घृतऽपृष्ठाः। मुनःऽयुर्जः। ये। त्वा। वहन्ति। वह्नयः। आ। देवान्। सीम्प्रभीत्रे॥६॥

पदार्थ:-(घृतपृष्ठा:) घृतमुदकं पृष्ठ आधारे येषां ते (मन्तियुज:) मन्सा विज्ञानेन युज्यन्ते ते। अत्र सत्सूद्विष० (अष्टा०३.२.६१) अनेन कृतो बहुलम् इति कर्मणि किव्प्। ये) विद्युदादयश्चतुर्थमन्त्रोक्ताः (त्वा) तमलं कर्त्तुं योग्यं यज्ञम् (वहन्ति) प्रापयन्ति। अत्रान्तियते प्यर्थः) (वह्नयः) वहन्ति प्रापयन्ति वार्ताः पदार्थान् यानानि च येस्ते। अत्र विहिश्रश्रुयु०। (उणा०४.५३) अत्रन करणे निः प्रत्ययः। (आ) समन्तात् क्रियायोगे (देवान्) दिव्यगुणान् भोगानृतून्वा। ऋतियो वे देवाः। (श०ब्रा०७.२.२.२६) (सोमपीतये) सोमानां पदार्थानां पीतिः पानं यस्मिस्तस्मै यज्ञास्त्राह्म।

अन्वय:-हे विद्वांसो! य इमे युक्त्या सम्प्रयोजिती घृतपृष्ठा मनोयुजो वह्नयो विद्युदादयः सोमपीतये त्वा तमेतं यज्ञं देवाँश्चावहन्ति, ते सर्वेर्मृनुष्टेर्यया ब्राह्मिदत्वा कार्य्यसिद्धये सम्प्रयोज्याः॥६॥

भावार्थ:-ये स्तनयित्न्वाद्यस्ते एवं जलमुपरि गमयन्त्यागगमयन्ति वा ताराख्येन यन्त्रेण सञ्चालिता विद्युन्मनोवेगवद्वार्ता देशान्तरं प्रोपयित। एवं सर्वेषां पदार्थानां सुखानां च प्रापका एत एव सन्तीतीश्वराज्ञापनम्॥६॥

इति षड्विंशो वर्गः समाप्तः॥

पदार्थ:-हे विद्वाना जो सुक्ति से संयुक्त किये हुए (घृतपृष्ठा:) जिनके पृष्ठ अर्थात् आधार में जल है (मनोयुज:) तथा जो उत्तम ज्ञान से रथों में युक्त किये जाते (वह्नय:) वार्त्ता पदार्थ वा यानों को दूर देश में पहुंचानेवाले अग्न आदि पदार्थ हैं, जो (सोमपीतये) जिसमें सोम आदि पदार्थों का पीना होता है, उस युज्ज के लिये (त्वा) उस भूषित करने योग्य यज्ञ को और (देवान्) दिव्यगुण दिव्यभोग और वसन्त आदि ऋतुओं को (आवहन्ति) अच्छी प्रकार प्राप्त करते हैं, उनको सब मनुष्य यथार्थ जानके अनेक्र (कार्यों को सिद्ध करने के लिये ठीक-ठीक प्रयुक्त करना चाहिये॥६॥

भावार्थ:-जो मेघ आदि पदार्थ हैं, वे ही जल को ऊपर नीचे अर्थात् अन्तरिक्ष को पहुंचाते और वहां से वर्षाते हैं, और ताराख्य यन्त्र से चलाई हुई बिजुली मन के वेग के समान वार्ताओं को एकदेश से दूसरे देश में प्राप्त करती है। इसी प्रकार सब सुखों को प्राप्त करानेवाले ये ही पदार्थ हैं, ऐसी क्षेत्र भी आजा है।।६।।

यह छब्बीसवां वर्ग समाप्त हुआ॥ अथाग्निशब्देनेश्वरभौतिकावुपदिश्येते।

अब अगले मन्त्र में अग्निशब्द से ईश्वर और भौतिक अग्नि का उपदेश किया

तान् यज्ञाँ ऋतावृधोऽग्ने पत्नीवतस्कृधि।

मध्वं: सुजिह्व पायय॥७॥

तान्। यजेत्रान्। ऋतुऽवृर्धः। अग्ने। पत्नीऽवतः। कृष्टि। मध्वेः। सुर्ऽजिह्वा पार्थृया।७॥

पदार्थ:-(तान्) विद्युदादीन् (यजत्रान्) यष्टुं सङ्गुम्मियतुमहोन्। अत्र अमिनक्षियजिवधि० (उणा०३.१०३) अनेन यजधातोरत्रन् प्रत्ययः। (ऋतावृधः) ऋतमुदक् सत्यं यज्ञं च वर्धयन्ति तान्। अत्र अन्येषामिप दृश्यते इति दीर्घः। (अग्ने) जगदीश्वर भौतिक व (पत्नीवतः) प्रशस्ताः पत्न्यो विद्यन्ते येषां तानस्मान्। अत्र प्रशंसार्थे मतुप्। (कृधि) करोषि करोति वा अत्र लड्थें लोट्, पक्षे व्यत्ययः, विकरणाभावः, श्रुशृणुप्कृ० (अष्टा०६.४.१०२) अभून हेर्ध्यादेशश्च। (मध्वः) उत्पत्रस्य मधुरादिगुणयुक्तस्य पदार्थसमूहस्य रसभोगम्/ सुजिह्न) सुष्ठु जोहूयन्ते धार्य्यन्ते यया जिह्नया शक्त्या तत्सिहित; सुष्ठु हूयन्ते जिह्नायां ज्वालायां याद्य सोऽग्निः। (पायय) पाययित वा॥७॥

अन्वय:-हे अग्ने! त्वं तान् यज्ञत्रानृतिवृधी देवान् करोषि तैर्नः पत्नीवतः कृधि। हे सुजिह्न! मध्वो रसभोगं कृपया पाययस्वेत्येकः।

अयमग्निः सुजिह्नस्तानुतिवृधो यज्ञान् देवान् करोति, स सम्यक् प्रयुक्तः सन्नस्मान् पत्नीवतः सुगृहस्थान् करोति मध्वो रसं प्राययते तत्पाने हेतुरस्तीति द्वितीयः॥७॥

भावार्थ:-अत्र श्लेषालङ्कारः। मनुष्यैरीश्वराराधनेन सम्यगग्निप्रयोगेण च रससारादीन् रचयित्वोपकृत्य गृहाश्रमे सर्वाणि कार्य्याणि निर्वत्तयितव्यानीति॥७॥

पदार्थ: हे (अग्ने) जगदीश्वर! आप (यजत्रान्) जो कला आदि पदार्थों में संयुक्त करने योग्य तथा (ऋतावृष्ट्रः) सत्यता और यज्ञादि उत्तम कर्मों की वृद्धि करने वाले हैं, (तान्) उन विद्युत् आदि पदार्थों को श्रेष्ठ करते हो, उन्हीं से हम लोगों को (पत्नीवतः) प्रशंसायुक्त स्त्रीवाले (कृष्टि) कीजिये। हे (सुजिह्न) श्रेष्ठता से पदार्थों की धारणाशक्तिवाले ईश्वर! आप (मध्वः) मधुर पदार्थों के रस को कृपा करक्रे (पायस्) पिलाइये॥१॥

अष्टक-१। अध्याय-१। वर्ग-२६-२७

मण्डल-१। अनुवाक-४। सूक्त-१४

(सुजिह्व) जिसकी लपट में अच्छी प्रकार होम करते हैं, सो यह (अग्ने) भौतिक अग्नि (ऋतावृध:) उन जल की वृद्धि करानेवाले (यजत्रान्) कलाओं में संयुक्त करने योग्य (तान्) विद्युत्त आदि पदार्थों को उत्तम (कृधि) करता है, और वह अच्छी प्रकार कला यन्त्रों में संयुक्त किया हुआ हम लोगों को (पत्नीवत:) पत्नीवान् अर्थात् श्रेष्ठ गृहस्थ (कृधि) कर देता, तथा (मध्व:) मीठे-गौठे पदार्थों के रस को (पायय) पिलाने का हेतु होता है॥२॥७॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों को अच्छी प्रकार ईश्वर के आराधन और अग्नि की क्रियाकुशलता से रससारादि को रचकर तथा उपकार में लाकर गृहस्थ आश्रम में सब कार्यों को सिद्ध करने चाहियें॥७॥

पुनस्ते कीदृशाः सन्तीत्युपदिश्यते।

फिर उक्त पदार्थ किस प्रकार के हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है-

ये यजेत्रा य ईड्यास्ते ते पिबन्तु जिह्वया। मधौरग्ने वर्षट्कृति॥८॥

ये। यजत्राः। ये। ईड्याः। ते। ते। पिबन्तु। जिह्नमा मधीः। अनि। वर्षट्ऽकृति॥८॥

पदार्थ:-(ये) विद्युदादयः (यजत्राः) सङ्गमिषतुं योग्याः। पूर्ववदस्य सिद्धिः। (ईड्यः) अध्येषितुं योग्याः (ते) पूर्वोक्ता जगतीश्वरेणोत्पादिताः (ते) वर्तमानाः (पिबन्तु) पिबन्ति। अत्र लडर्थे लोट्। (जिह्न्या) ज्वालाशक्त्या (मधोः) मधुरगृष्णांसान्। (अनि) अग्नौ। अत्र व्यत्ययः। (वषट्कृति) वषट् करोति येन यज्ञेन तस्मिन्। अत्र कृतो बहुलम् हिति व्यक्तिकमाश्चित्य करणे क्विप्॥८॥

अन्वय:-ये मनुष्या यजत्रास्ते तथा य ईंड्यास्ते जिह्नयाऽग्नेऽग्नौ वषट्कृति मधोर्मधुरगुणांशान् पिबन्तु यथावत् पिबन्ति॥८॥

भावार्थ:-मनुष्येरस्मित् जगित सर्वेषु पदार्थेषु द्विविधं कर्म योजनीयमेकं गुणज्ञानं द्वितीयं तेभ्यः कार्य्यसिद्धिकरणम्। ये विद्युदादयः सर्वेभ्यो मूर्तद्रव्येभ्यो रसं सङ्गृह्य पुनर्विमुञ्चन्ति तेषां शुद्ध्यर्थं सुगन्ध्यादिपदार्थानां अग्ने प्रसिपणुं नित्यं कार्य्यं यतस्ते सुखसाधिनो भवेयु:॥८॥

पदार्थ:-(रो) जो मनुष्य विद्युत् आदि पदार्थ (यजत्राः) कलादिकों में संयुक्त करते हैं (ते) वे, वा (रो) जो गुण्वाले (ईड्याः) सब प्रकार से खोजने योग्य हैं (ते) वे (जिह्नया) ज्वालारूपी शक्ति से (अग्ने) अर्फि में (वष्ट्कृति) यज्ञ के विशेष-विशेष काम करने से (मधोः) मधुरगुणों के अंशो को (पिबन्तु) यथावत् पीते हैं॥८॥

भोतार्थ:-मनुष्यों को इस जगत् में सब संयुक्त पदार्थों से दो प्रकार का कर्म करना चाहिये अर्थात् एक तो उनके गुणों का जानना, दूसरा उनसे कार्य्य की सिद्धि करना। जो विद्युत् आदि पदार्थ सब

मूर्त्तिमान् पदार्थों से रस को ग्रहण करके फिर छोड़ देते हैं, इससे उनकी शुद्धि के लिये सुगन्धि अदि पदार्थों का होम निरन्तर करना चाहिये, जिससे वे सब प्राणियों को सुख सिद्ध करनेवाले हों॥८॥

कीदृशा मनुष्यास्तद्गुणान् ग्रहीतुं योग्या भवन्तीत्युपदिश्यते।

किस प्रकार के मनुष्य उन गुणों को ग्रहण कर सकते हैं, इस विषय का उपदेश अगले किस में

किया है-

आर्की सूर्य्यस्य रोचनाद्विश्वान् देवाँ उषुर्बुर्धः।

विप्रो होतेह वंक्षति॥९॥

आकीम्। सूर्व्यस्य। ग्रेचनात्। विश्वान्। देवान्। उषःऽबुर्धः। विप्रः। होत्राः। द्वेहात्। दुश

पदार्थ:-(आकीम्) समन्तात् (सूर्य्यस्य) चराचरस्यात्मनः परिमेश्वरस्य सूर्यं तोकस्य वा (रोचनात्) प्रकाशनात् (विश्वान्) सर्वान् (देवान्) दिव्यभोगान् (उषर्बुधः) इषः सम्प्राच्ये बोधयन्ति तान् (विप्रः) मेधावी होता हवनस्य दाताऽऽदाता वा (इह) अस्मिन् जन्मिन् सिके वा (व्रक्षिति) प्राप्नोति प्रापयित वा। अत्र लडर्थे लेट्॥९॥

अन्वय:-यो होता विष्रो विद्वान् सूर्य्यस्य राचनादिहीष्युधी विश्वान् देवान् वक्षति प्राप्नोति स सर्वा विद्याः प्राप्यानन्दी भवति॥९॥

भावार्थ:-अत्र श्लेषालङ्कार:। यदीश्वर हमाने पदार्थात्रीतपादयेत् तर्हि कश्चिदपि जन उपकारं ग्रहीतुं कथं शक्नुयात् यदा मनुष्या निद्रास्था भवन्ति तदार्ग किमपि भोक्तव्यं द्रव्यं प्राप्तुमर्हन्ति। किञ्च जागरणं प्राप्य भोगकरणे समर्था भवन्त्येतस्मादुषर्बुधे इत्युक्तम्। एतेभ्य: पदार्थेभ्यो धीमान् पुरुष एव क्रियासिद्धिं कर्त्तुं शक्नोति नेतर इति॥ ॥।

पदार्थ:-जो (होता) होम में छोड़्ने योग्य वस्तुओं का देने-लेने वाला (विप्र:) बुद्धिमान् विद्वान् पुरुष है, वही (सूर्य्यस्य) चरासूर के आत्म परमेश्वर वा सूर्य्यलोक के (रोचनात्) प्रकाश से (इह) इस जन्म वा लोक में (उपर्बुध:) फ्रात:काल को प्राप्त होकर सुखों को चितानेवालों (विश्वान्) जो कि समस्त (देवान्) श्रेष्ठ भोगों को (वश्वान्) प्राप्त होता वा कराता है, वही सब विद्याओं को प्राप्त होके आनन्दयुक्त होता है॥९॥

भावार्थ: इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जो ईश्वर इन पदार्थों को उत्पन्न नहीं करता, तो कोई पुरुष उपकार लेने क्री समर्थ भी नहीं हो सकता, और जब मनुष्य निद्रा में स्थित होते हैं, तब कोई मनुष्य किसी भोग करने फोग्य पदार्थ को प्राप्त नहीं हो सकता किन्तु जाग्रत अवस्था को प्राप्त होकर उनके भोग करने क्री समर्थ होता है। इससे इस मन्त्र में 'उषर्बुध:' इस पद का उच्चारण किया है। संसार के इन पदार्थी से बुद्धिमान् मनुष्य ही क्रिया की सिद्धि को कर सकता है, अन्य कोई नहीं॥९॥

केन सहैतत् क्रियाहेतुर्भवतीत्युपदिश्यते।

अष्टक-१। अध्याय-१। वर्ग-२६-२७

मण्डल-१। अनुवाक-४। सूक्त-१४

किसके साथ में यह विद्युत् अग्नि क्रियाओं की सिद्धि करानेवाला होता है, सो अगले मन्त्र में कहा है-

विश्वेभि: सोम्यं मध्वग्न इन्द्रेण वायुनां।

पिर्वा मित्रस्य धार्मभि:॥१०॥

विश्वेभिः। सोम्यम्। मधु। अग्ने। इन्द्रेण। वायुना। पिर्ब। मित्रस्य। धार्मऽभिः॥ १०००

पदार्थ:-(विश्वेभि:) सर्वै:। अत्र बहुलं छन्दिस इत्यैसभाव:। (स्राम्यम्) सीमसम्पादनार्हम्। सोममर्हित य:। (अष्टा०४.४.१३८) इति य: प्रत्ययः (मधु) मधुरादिगुण्युक्तम् (अग्ने) अग्निः प्रत्यक्षाप्रत्यक्षः (इन्द्रेण) परमैश्वर्य्यहेतुना (वायुना) स्पर्शवत गतिमता प्रवनेन सह गिंब) पिबति गृह्णाति। अत्र पुरुषव्यत्ययो लडर्थे लोट् द्वयचोऽतिस्तङ इति दीर्घश्च। (मित्रस्य) भवंगतस्य सर्वप्राणभूतस्य (धामिभः) स्थानैः॥१०॥

अन्वय:-अयमग्निरिन्द्रेण वायुना सह मित्रस्य विश्वेभिध्मिभः स्प्रेम्यं मधु पिबति॥१०॥

भावार्थ:-अयं विद्युदाख्योऽग्निर्ब्रह्माण्डस्थेन वायुन्। गिरीरस्थै: प्राणै: सह वर्त्तमान: सन् सर्वेषां पदार्थानां सकाशाद् रसं गृहीत्वोद्गिरति, तस्मादयं मुख्यं शिल्पसाधनमस्तीति॥१०॥

पदार्थ:-(अग्ने) यह अग्नि (इन्द्रेण) परम एश्वर्य केप्रानिवाले (वायुना) स्पर्श वा गमन करनेहारे पवन के और (मित्रस्य) सब में रहने तथा सब के प्राणक्ष्य होकर वर्त्तनेवाले वायु के साथ (विश्वेभि:) सब (धामिभ:) स्थानों से (सोम्यम्) सोमसम्पादने के योग्य (मधु) मधुर आदि गुणयुक्त पदार्थ को (पिब) ग्रहण करता है॥१०॥

भावार्थ:-यह विद्युत्रूप अग्नि ब्रह्माण्ड में रहनेवाले पवन तथा शरीर में रहनेवाले प्राणों के साथ वर्तमान होकर सब पदार्थों से रस को ग्रहण करके उगलता है, इससे यह मुख्य शिल्पविद्या का साधन है॥१०॥

अथाग्निशब्देनेश्वर उपदिश्यते।

अब अगरे मन्त्र में अग्निशब्द से ईश्वर का उपदेश किया है-

त्वं होता मर्नुर्हितोऽग्ने युज्ञेषु सीदिस।

सेमं नी अध्युरं यंज॥ ११॥

त्वमा होतो। मनुःऽहितः। अग्नै। युज्ञेषु। सीदुसि। सः। इमम्। नः। अध्वरम्। युजा। ११॥

पहार्थ:-(त्वम्) जगदीश्वरः (होता) सर्वस्य दाता (मनुर्हितः) मनुषो मननकर्त्तारो मनुष्यादयो हुता थुता यन सः (अग्ने) पूजनीयतम (यज्ञेषु) क्रियाकाण्डादिविज्ञानान्तेषु सङ्गमनीयेषु (सीदिसि)

अवस्थितोऽसि (सः) जगत्स्रष्टा धर्ता च (इमम्) अस्मदनुष्ठीयमानम्। अत्र सोऽचि लोपे चेत्पादपूरणम्। (अष्टा॰६.१.१३४) अनेन सोर्लोपः। (नः) अस्माकम् (अध्वरम्) अहिंसनीयं सुखहेतुम् (यज) सङ्गमयास्य सिद्धिं सम्पादय॥११॥

अन्वय:-हे अग्ने! यस्त्वं मनुर्हितो होता यज्ञेषु सीदिस स त्वं नोऽस्माकिम्पमध्यरे यज सङ्गमय॥११॥

भावार्थ:-येनेश्वरेण सर्वे मनुष्यव्यक्त्यादय उत्पाद्य धारिता, यस्मादयं सर्वेषु कर्मोपासनाज्ञानकाण्डेषु पूज्यतमोऽस्ति, तस्मात्स एवेदं जगदाख्यं यज्ञे सङ्ग्रमियत्वाऽस्मान् सुखयतीति॥११॥

पदार्थ:-हे (अग्ने) जो आप अतिशय करके पूजन करने योग्य जिल्ली हैं (मनुर्हित:) मनुष्य आदि पदार्थों के धारण करने और (होता) सब पदार्थों के देनेवाले हैं (त्वम्) जो (यज्ञेषु) क्रियाकाण्ड को आदि लेकर ज्ञान होने पर्य्यन्त ग्रहण करने योग्य यज्ञों में (मिद्रिस) स्थित हो रहे हो, (स:) सो आप (न:) हमारे (इमम्) इस (अध्वरम्) ग्रहण करने योग्य सुख के हेतु यज्ञ की (यज) सङ्गत अर्थात् इसकी सिद्धि को दीजिये॥११॥

भावार्थ:-जिस ईश्वर ने सब मनुष्यों आदि प्राण्यिं के असी आदि पदार्थों को उत्पन्न करके धारण किये हैं, तथा जो यह सब कर्म उपासना तथा ज्ञानकाण्ड में अतिशय से पूजने के योग्य है, वहीं इस जगत्रूपी यज्ञ को सिद्ध करके हम लोगों को सुर्ध्युक्त करता है॥११॥

पुनरेकस्य श्रीतिकस्यारनगुणा उपदिश्यन्ते।

फिर अगले मन्त्र में भीतिक अंगि के गुणों का उपदेश किया है-

युक्ष्वा हार्रुषी रथे हिरती देव रोहितः। ताभिर्देवाँ इहार्वह॥ १२॥ २७॥

युक्ष्व। हि। अर्रुषी:। र्र्ष्टी हुरितं:। देव् रोहितं:। तार्भि:। देवान्। इह। आ। वृहु॥१२॥

पदार्थ:-(युक्ष्व) योजये। अब बहुलं छन्दिस इति शपो लुिक श्नमभाव:। (हि) यत: (अरुषी:) रक्तगुणा अरुष्यो गमनहेतव: अत्र बाहुलकादुषन् प्रत्यय:। अन्यतो डीष्। (अष्टा०४.१.४०) अनेन डीष् प्रत्यय:। वा च्छन्दिस। (अष्टा०६.१.१०६) अनेन जस: पूर्वसवर्णम्। (रथे) भूसमुद्रान्तिरक्षेषु गमनार्थे याने (हिरत:) हिरित यास्ता ज्वाला: (देव) विद्वन् (रोहित:) रोहयन्त्यारोहयन्ति यानािन यास्ता:। अत्र हसृरुहियुष्टिंग्य इति:। (उणा०१.९७) अनेन 'रुह'धातोरिति: प्रत्यय:। (तािभ:) एतािभ: (देवान्) दिव्यान् देश्वयासिद्धान् व्यवहारान् (इह) अस्मिन् संसारे (आ) समन्तात् (वह) प्रापय॥१२॥

अन्वयः-हे देव विद्वँस्त्वं रथे रोहितो हरितोऽरुषीर्युक्ष्व ताभिरिह देवानावह प्रापय॥१२॥

अष्टक-१। अध्याय-१। वर्ग-२६-२७

मण्डल-१। अनुवाक-४। सूक्त-१४

भावार्थः-विद्वद्भिरग्न्यादिपदार्थान् कलायन्त्रयानेषु संयोज्य तैरिहास्मिन्संसारे मनुष्याणां सुखाय दिव्याः पदार्थाः प्रकाशनीया इति॥१२॥

अथ चतुर्दशस्यास्य सूक्तस्य विश्वेषां देवानां गुणप्रकाशनेन क्रियार्थसमुच्चयात् ऋषेदशसूक्तार्थन सह सङ्गतिरस्तीति बोध्यम्।

इदमपि सुक्तं सायणाचार्य्यादिभिर्यूरोपदेशनिवासिभिर्विलसनादिभिश्चान्यथे व्याख्यातम्

इति चतुर्दशं सुक्तं सप्तविशो वर्गश्च समापा:॥

पदार्थ:-हे (देव) विद्वान् मनुष्य! तू (रथे) पृथिवी समुद्र और अन्तरिक्ष में जाने आने के लिये विमान आदि रथ में (रोहित:) नीची ऊँची जगह उतारने चढ़ाने (हरितः) (दार्थों को हरने (अरुषी:) लाल रंगयुक्त तथा गमन करानेवाली ज्वाला अर्थात् लपटों को (युक्त) युक्त कर और (तािभ:) इनसे (इह) इस संसार में (देवान्) दिव्यक्रियासिद्ध व्यवहारों को (आवृह) अच्छी प्रकार प्राप्त कर॥१२॥

भावार्थ:-विद्वानों को कला और विमान आदि यानों में अपनि आदि पदार्थों को संयुक्त करके इनसे संसार में मनुष्यों के सुख के लिये दिव्य पदार्थों का क्रिकार करना चाहिये॥१२॥

सब देवों के गुणों के प्रकाश तथा क्रियाओं के समुद्रीय से इस चौदहवें सूक्त की सङ्गिति पूर्वीक्त तेरहवें सूक्त के अर्थ के साथ जाननी चाहिये।

इस सूक्त का अर्थ सायणाचार्य्य आह्नि विद्वान् तथा यूरोपदेशनिवासी विलसन आदि ने विपरीत ही वर्णन किया है।।

यह चौदहवां सूच्त और सेनाईसवां वर्ग पूरा हुआ॥

अथ द्वादशर्च्चस्य पञ्चदशसूक्तस्य कण्वो मेधातिथिर्ऋषि:। ऋतव:; इन्द्र:; मरुत:; त्वष्टा;

अग्नि:; इन्द्र:; मित्रावरुणौ; द्रविणोदा:; अश्विनौ; अग्निश्च देवता:। गायत्री छन्द:। षड्ज

स्वर:॥

तत्र प्रत्यृतुं रसोत्पत्तिर्गमनं च भवतीत्युपदिश्यते।

अब पंद्रहवें सूक्त का आरम्भ है। उसके प्रथम मन्त्र में ऋतु-ऋतु में रस की उत्पृत्ति और ग्रीत् का वर्णन किया है-

इन्द्र सोमं पिब ऋतुना त्वा विश्नन्विन्दवः।

मत्सरासस्तदोकसः॥ १॥

इन्द्रं। सोर्मम्। पिर्व। ऋतुनां। आ। त्वा। विशन्तु। इन्देव:। मृत्सरीसंश तत्ऽओकसः॥ १॥

पदार्थ:-(इन्द्र) कालविभागकर्ता सूर्यलोकः (सोमम्) ओषध्यादिस्स्म् (पिब) पिबति। अत्र व्यत्ययः, लडर्थे लोट् च। (ऋतुना) वसन्तादिभिः सह। अत्र जात्याख्यायामेकिस्मिन् बहुवचनमन्यतरस्याम्। (अष्टा०१.२.५८) अनेन जात्यभिप्रायणेकत्वम्। (आ) समन्तात् (त्वा) त्वां प्राणिनिमममप्राणिनं पदार्थं सूर्य्यस्य किरणसमूहं वा (विश्वन्) विश्वन्ति। अत्र लडर्थे लोट्। (इन्दवः) जलानि उन्दन्ति आर्द्रीकुर्वन्ति पदार्थास्ते। अत्र उन्हेरिच्यादः। (उणा०१.१२) इत्युः प्रत्ययः, आदेरिकारादेशश्च। इन्दव इत्युदकनामसु पठितमा (निघं०१ १२) (मत्सरासः) हर्षहेतवः (तदोकसः) तान्यन्तरिक्षवाय्वादीन्योकांसि येषां ते॥१॥

अन्वय:-हे मनुष्या! यमिन्द्र ऋतुमा सोमं षिज्ञ पिबति इमे तदोकसो मत्सरास इन्दवो जलरसा ऋतुना सह त्वा त्वां तं वा प्रतिक्षणमाविशन्ति॥१॥

भावार्थ:-अयं सूर्यः संवत्से स्वनिष्क्षाहोरात्रमुहूर्तकलाकाष्ठानिमेषादिकालविभागान् करोति। अत्राह मनुः- निमेषा दश चार्छ च कार्ष त्रिंशनु ताः कलाः। त्रिंशत्कला मुहूर्तः स्यादहोरात्रं तु तावतः॥ (मनु०५.६४) इति तिस्सह सर्वोष्ट्राध्रभ्यो रसान् सर्वस्थानेभ्य उदकानि चाकर्षति तानि किरणैः सहान्तरिक्षे निवसन्ति। वास्तुन्त सह गुल्छन्त्यागच्छन्ति च॥१॥

पदार्थ: -हे मनुष्य! पह (इन्द्र) समय का विभाग करनेवाला सूर्य्य (ऋतुना) वसन्त आदि ऋतुओं के साथ (सोमम्) ओषधि आदि पदार्थों के रस को (पिब) पीता है, और ये (तदोकसः) जिनके अन्तरिक्ष वायु आदि निवास के स्थान तथा (मत्सरासः) आनन्द के उत्पन्न करनेवाले हैं, वे (इन्दवः) जलों के रस (ऋतुना) वसन्त आदि ऋतुओं के साथ (त्वा) इस प्राणी वा अप्राणी को क्षण-क्षण (आविशन्तु) आवेश करते हैं 🕂 ।।

भादार्थ:-यह सूर्य्य वर्ष, उत्तरायण दक्षिणायन, वसन्त आदि ऋतु, चैत्र आदि बारहों महीने, शुक्त और कृष्णपक्ष, दिन–रात, मुहूर्त जो कि तीस कलाओं का संयोग कला जो ३० (तीस) काष्ठा का अष्टक-१। अध्याय-१। वर्ग-२८-२९

मण्डल-१। अनुवाक-४। सूक्त-१५

संयोग, काष्ठा जो कि अठारह निमेष का संयोग तथा निमेष आदि समय के विभागों को प्रकाशित करता है। जैसे कि मनुजी ने कहा है, और उन्हीं के साथ सब ओषिधयों के रस और सब स्थानों के खींचता है, वे किरणों के साथ अन्तरिक्ष में स्थित होते हैं, तथा वायु के साथ आते-जाते हैं॥१॥

अथ ऋतुभिः सह मरुतः पदार्थानाकर्षन्ति पुनन्ति चेत्युपदिश्यते।

अब ऋतुओं के साथ पवन आदि पदार्थ सब को खींचते और पवित्र करते हैं, इस विषय का

उपदेश अगले मन्त्र में किया है-

मरुत: पिर्बंत ऋतुनां पोत्राद्यज्ञं पुनीतन।

यूयं हि ष्ठा सुदानवः॥२॥

मर्रतः। पिर्वतः ऋतुना पोत्रात्। युज्ञम्। पुनीतन्। यूयम्। हि। स्थि सुरुक्तुनुबः॥२॥

पदार्थ:-(मस्तः) वायवः। मृत्रोस्तिः। (उणा०१.९४) इति 'पूङ्'धातोरुतिः प्रत्ययः। मस्त इति पदनामसु पठितम्। (निघं०५.५) अनेन गमनागमनक्रियाप्रापको क्रायको गृह्यन्ते। (पिबत) पिबन्ति। अत्र व्यत्ययो लडर्थे लोट् च। (ऋतुना) ऋतुभिः सह (पोत्रात्) पुनिति येन गुणेन तस्मात्। अत्र सर्वधातुभ्यः पृन्। (उणा०४.१६३) इति पूज्धातोः पून् प्रत्ययः स्वरूच्यत्यपश्च। (यज्ञम्) त्रिविधं पूर्वोक्तम् (पुनीतन) पुनन्ति पवित्रीकुर्वन्ति। अत्र व्यत्ययो लडर्थे लोट् तस्त्रारस्य नुन्धादेशश्च। (यूयम्) एते (हि) यतः (स्थ) सन्ति। अत्र पुरुषव्यत्ययो लडर्थे लोट्, अन्येषापि दृश्यते इति दीर्घश्च। (सुदानवः) सुष्ठु दानहेतवः। दाभाभ्यां नुः। (उणा०३.३१) इति सूत्रेण द्वरूपयः। रूप

अन्वय:-इमे मरुत ऋतुना सर्वान् प्रिवित प्रिविन्त त एव पोत्राद्यज्ञं पुनीतन पुनन्ति हि यतो यूयमेते सुदानव: स्थ सन्ति तस्माद्यक्त्या योजिता कार्य्यसाधका भवन्तीति॥२॥

भावार्थ:-ऋतुपर्य्यायेण वायुष्विप् गुणा यथाक्रममुत्पद्यन्ते तिद्विशिष्टः सर्वेषां त्रसरेण्वादीनां चेष्टानां च हेतवः सन्त्यग्नौ सुगन्ध्यादिश्लोमद्वारा पवित्रीभूत्वा सर्वान् सुखयुक्तान् कृत्वा त एव दानादानहेतवो भवन्ति॥२॥

पदार्थ:-ये (मरुत: प्रेन्न (ऋतुना) वसन्त आदि ऋतुओं के साथ सब रसों को (पिबत) पीते हैं, वे ही (पोत्रात्) अपने पवित्रकारक गुण से (यज्ञम्) उक्त तीन प्रकार के यज्ञ को (पुनीतन) पवित्र करते हैं, तथा (ह) जिस कारण (यूयम्) वे (सुदानवः) पदार्थों के अच्छी प्रकार दिलानेवाले (स्थ) हैं, इससे वे युक्ति के साथ क्रियाओं में युक्त हुए कार्य्यों को सिद्ध करते हैं॥२॥

भावार्थ:-ऋनुओं के अनुक्रम से पवनों में भी यथायोग्य गुण उत्पन्न होते हैं, इसीसे वे त्रसरेणु आद्गि पदार्थों वा क्रियाओं के हेतु होते हैं तथा अग्नि के बीच में सुगन्धित पदार्थों के होमद्वारा वे पवित्र होकर प्रशामात्र को सुखसंयुक्त करते हैं और वे ही पदार्थों के देने-लेने में हेतु होते हैं॥२॥

अथर्तुना सह विद्युत् किं करोतीत्युपदिश्यते।

अब ऋतुओं के साथ विद्युत् अग्नि क्या करता है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया

है–

अभि युज्ञं गृंणीहि नो ग्नावो नेष्टुः पिब ऋतुनां। त्वं हि रत्नुधा असि॥३॥

अभि। युज्ञम्। गृणीुहु। नुः। ग्नार्वः। नेष्टुरिति। पिर्ब। ऋतुर्ना। त्वम्। हि। रुलुर्द्धाः। असि॥३॥

पदार्थ:-(अभि) आभिमुख्ये (यज्ञम्) सङ्गम्यमानं पूर्वोक्तम् (गृणोहि) गृणाति स्तुतिहेतुर्भवित। अत्र व्यत्ययो लडर्थे लोट् च। (नः) अस्माकम् (ग्नावः) सर्वपदार्थप्राप्तिके प्रयवहारे। गा इति उत्तरपदनामसु पठितम्। (निघं०३.२९) (नेष्टः) विद्युत् पदार्थशोधिकत्वात्पोषकत्वाच्च नेनेक्ति सर्वान् पदार्थानिति। नजृनेष्ट् (उणा०२.९१) अनेन निपातनम् (पिब) पिबति। अत्र व्यत्ययो लडर्थे लोट् च। (ऋतुना) ऋतुभिः सह (त्वम्) सोऽयम् (हि) यतः (रत्नधाः) रत्नानि रमणार्थानि पृथिव्यादीनि वस्तूनि दधातीति सः (असि) अत्र व्यत्ययः॥३॥

अन्वय:-हे विद्वन्! यत इयं नेष्टर्नेष्ट्रीविद्युदृतुना सह रसीन् पूर्व पिबति रत्नधा अस्यस्ति स ग्नावो ग्नावान् न इमं यज्ञमभिगृणीहि गृणाति तस्मात्त्वमेतया क्रार्थ्याण साध्य॥३॥

भावार्थ:-इयं विद्युदग्नेः सूक्ष्मावस्था वृह्मते सा सूर्वीन् मूर्तद्रव्यसमूहावयवानभिव्याप्य धरित छिनत्ति वाऽतएव चाक्षुषोऽग्निः प्रादुर्भवत्यत्रैवान्तिर्धाति चेति॥३॥

पदार्थ: -यह (नेष्ट:) शुद्धि और कृष्टि आदि हेन्नुओं से सब पदार्थों का प्रकाश करनेवाली बिजुली (ऋतुना) ऋतुओं के साथ रसों को (णिव) पीती है तथा (हि) जिस कारण (रत्नधाः) उत्तम पदार्थों की धारण करनेवाली (असि) है, (त्वम्न) सो यह (ग्नावः) सब पदार्थों की प्राप्ति करानेहारी (नः) हमारे इस (यज्ञम्) यज्ञ को (अभिगृणीहि) अब प्रकार से ग्रहण करती है, इसलिये तुम लोग इससे सब कार्य्यों को सिद्ध करो॥३॥

भावार्थ:-यह जूँ बिजूली ऑन्न की सूक्ष्म अवस्था है, सो सब स्थूल पदार्थों के अवयवों में व्याप्त होकर उनको धारण और छेंदन करती है, इसी से यह प्रत्यक्ष अग्नि उत्पन्न होके उसी में विलाय जाता है॥३॥

अग्निरपि ऋतुयोजको भवतीत्युपदिश्यते।

अग्नि भी ऋतुओं का संयोजक होता है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है-

अग्ने देवाँ इहावह सादया योनिषु त्रिषु।

परि भूष पिर्ब ऋतुनां॥४॥

अष्टक-१। अध्याय-१। वर्ग-२८-२९

मण्डल-१। अनुवाक-४। सूक्त-१५

अग्ने। देवान्। इह। आ। वृह्। सादयं। योनिषु। त्रिषु। परि। भूष। पिर्ब। ऋतुनां॥४॥

पदार्थ:-(अग्ने) अग्निभौतिको विद्युत्प्रसिद्धो वा (देवान्) दिव्यगुणसिहतान् पदार्थान् (इह) अस्मिन् संसारे (आ) समन्तात् (वह) वहित प्रापयित (सादय) हिन्त। अत्रोभयत्र व्यत्ययीः अन्येषप्रपि दृश्यते इति दीर्घश्च। (योनिषु) युवन्ति मिश्रीभवन्ति येषु कार्य्येषु कारणेषु वा तेषु अत्र विहिश्रश्रयु० (उणा०४.५३) अनेन 'यु'धातोर्निः प्रत्ययो निच्च। (त्रिषु) नामजन्मस्थानेषु ऋतिधेषु लोकेषु (पिर) सर्वतोभावे (भूष) भूषत्यलङ्करोति (पिब) पिबति। अत्रापि व्यत्ययः। (ऋतुना) ऋतुभिः भूह॥४॥

अन्वय:-भौतिकोऽयमग्निरिहर्तुना त्रिषु योनिषु देवान् दिव्यान् सर्वान् पदार्थानावह समन्तात् प्रापयति सादय स्थापयति परिभूष सर्वतो भूषत्यलङ्करोति सर्वेभ्यो रस्ं प्रिबर्णिक्ताः

भावार्थ:-अयमग्निर्दाहगुणयुक्तो रूपप्रकाशेन सर्वान् पदार्थानुपर्याचीमध्यस्थान् शोभितान् करोति। हवने शिल्पविद्यायां च संयोजितः सन् दिव्यानि सुखानि प्रकाशम्यतीति॥ ४॥

पदार्थ: -यह (अग्ने) प्रसिद्ध वा अप्रसिद्ध भौतिक अग्ने (इह) इस संसार में (ऋतुना) ऋतुओं के साथ (त्रिषु) तीन प्रकार के (योनिषु) जन्म, नाम और स्थानकर्यी (योनिषु) सब ओर से भूषित करता पदार्थों को (आ वह) अच्छी प्रकार प्राप्त करता (सादय) हननकर्यी (परिभूष) सब ओर से भूषित करता और सब पदार्थों के रसों को (पिब) पीता है॥४॥

भावार्थ:-दाहगुणयुक्त यह अग्नि अपने कि प्रकाश से सब ऊपर नीचे वा मध्य में रहनेवाले पदार्थों को अच्छी प्रकार सुशोभित करता, होम और शिक्पविद्या में संयुक्त किया हुआ दिव्य-दिव्य सुखों का प्रकाश करता है॥४॥

ऋतुनी सह वायुः किं करोतीत्युपदिश्यते।

ऋतुओं के साथ वायु क्या-क्या कार्य करता है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है-

ब्राह्मणादिन्द्र रार्धस् एवा सोममूर्त्रानुं।

तवेद्धि सुख्यम्स्तृतुम्।। ५॥

ब्राह्मणात्। इन्द्र। रोधसः।)पिब। सोर्मम्। ऋतून्। अनु। तर्व। इत्। हि। सुख्यम्। अस्तृतम्॥५॥

पदार्थ:-(बाह्मणात्) ब्राह्मणो बृहतोऽवयवात्। अत्र अनुदात्तादेश्च। (अष्टा०४.३.१४०) इत्यवयवार्थेऽत्र् प्रत्ययः। (इन्द्र) ऐश्वर्य्यजीवनहेतुत्वाद्वायुः। (राधसः) पृथिव्यादिधनात्। अत्र सर्वधातुभ्योऽसुन् इत्यसुन् प्रत्ययः। (पिब) पिबति गृह्णाति। अत्र व्यत्ययो लड्थें लोट्, द्वयचोऽतस्तिङ इति दीर्घश्च (सोमम्) चदार्थरसम् (ऋतून्) रसाहरणसाधकान् (अनु) पश्चात् (तव) तस्य प्राणरूपस्य (इत्) एव हि) खेलु (सख्यम्) मित्रस्य भाव इव (अस्तृतम्) हिंसारहितम्॥५॥

अन्वय:-य इन्द्रो वायुर्ब्राह्मणाद्राधसोऽन्वृतून् सोमं पिब पिबति गृह्णाति हि खलु तस्य वायोरस्तृते सख्यमस्ति॥५॥

भावार्थ:-मनुष्यैर्जगत्स्रष्ट्रेश्वरेण ये ये यस्य यस्य वाय्वा पदार्थस्य मध्ये नियमा स्थापितास्तान् विदित्वा कार्य्याणि साधनीयानि, तिसिद्ध्या सर्वर्तुषु सर्वप्राण्यनुकूलं हितसम्पादनं कार्य्यम् सुक्त्या सेविता एते मित्रवद्भवन्त्ययुक्त्या च शत्रुविदिति वेद्यम्॥५॥

पदार्थ: - जो (इन्द्र) ऐश्वर्य्य वा जीवन का हेतु वायु (ब्राह्मणा) बड़े का अवयेष (राधसः) पृथिवी आदि लोकों के धन से (अनुऋतून्) अपने-अपने प्रभाव से पदार्थों के रस की हरनेवाले वसन्त आदि ऋतुओं के अनुक्रम से (सोमम्) सब पदार्थों के रस को (पिब) ग्रहण करता है, इससे (हि) निश्चय से (तव) उस वायु का पदार्थों के साथ (अस्तृतम्) अविनाशी (सख्यम्) मित्रभन है। भा

भावार्थ:-मनुष्यों को योग्य है कि जगत् के रचनेवाले परमेश्वर ने जो-जो जिस-जिस वायु आदि पदार्थों में नियम स्थापन किये हैं उन-उनको जान कर कार्य्यों को सिद्ध करना चाहिये। और उन से सिद्ध किये हुए धन से सब ऋतुओं में सब प्राणियों के अनुकूल हित्त सम्पादन करना चाहिये, तथा युक्ति के साथ सेवन किये हुए पदार्थ मित्र के समान होते और इस्पर्ध किपरीत शत्रु के समान होते हैं, ऐसा जानना चाहिये॥५॥

इदानीं वायुविशेषौ प्राणोदानावृतुं प् सह किं कुरुत इत्युपदिश्यते।

अब वायुविशेष प्राण वा उदान ऋतुओं के स्थाथ क्या-क्या प्रकाश करते हैं, इस बात का उपदेश अग्रत्वे मन्त्र में क्रिया है-

युवं दक्षं धृतव्रत मित्रावरुण दूळभेगा ऋतुनां युज्ञमांशाथे॥६॥२८॥

युवम्। दक्षम्। धृतुऽबृता। मित्रोऽवरुम्भ। दुःदर्भम्। ऋतुना। युज्ञम्। आुशाथे इति॥६॥

पदार्थ:-(युवम्) ताकिमो अत्र व्यत्येः प्रथमायाश्च द्विवचने भाषायाम्। (अष्टा०७.२.८८) इति भाषायामाकारस्य विधानद्वित्रकारादेशे न। (दक्षम्) बलम् (धृतव्रता) धृतानि व्रतानि बलानि याभ्यां तौ (मित्रावरुणा) मित्रश्च वरुणश्च मा प्राणोदाणौ। अत्रोभयत्र सुपां सुलुग्० इति विभक्तेकारादेशो व्यत्ययेन हस्वत्वं च। (दूडभूम्) शत्रुभिर्दुःखेन दम्भितुमर्हम्। दुरो दाशनाशदमध्येषूत्वं वक्तव्यमुत्तरपदादेश्च ष्टुत्वम्। (अष्टा०६.३.१८९) इति वार्तिकेन दुर इत्यस्य रेफस्योकारः सवर्णदीर्घादेशो धातोर्दकारस्य डकारश्च, खलन्तं रूपम्। सर्यणाचार्य्येण दूडभपदस्य 'दह' धातो रूपमिति साधितं तन्महाभाष्यकारव्याख्यानिवरुद्धत्वीदशुद्धमेव। (ऋतुना) ऋतुभिः सह (यज्ञम्) पूर्वोक्तं त्रिविधं क्रियाजन्यम् (आशाथे) व्याप्तवन्तौ स्तः अत्र व्यत्ययः॥६॥

अन्वयः-युवमिमौ धृतव्रता मित्रावरुणावृतुना दूडभं दक्षं यज्ञमाशाथे व्याप्तवन्तौ स्त:॥६॥

अष्टक-१। अध्याय-१। वर्ग-२८-२९

मण्डल-१। अनुवाक-४। सूक्त-१५

भावार्थ:-सर्विमित्रो बाह्यगितः प्राण आभ्यन्तरगितर्बलसाधको वरुण उदानः, एताभ्यामेव प्राणिभिः सर्वजगदाख्यो यज्ञो बलं चतुर्योगेन धृत्वा व्याप्यते, येन सर्वे व्यवहाराः सिध्यन्तीति।

इत्यष्टाविंशो वर्गः समापाः॥

पदार्थ:-(युवम्) ये (धृतव्रतौ) बलों को धारण करनेवाले (मित्रावरुणौ) प्राण और अपान (ऋतुना) ऋतुओं के साथ (दूडभम्) जो कि शत्रुओं को दु:ख के साथ धर्षण कराने योग्य (दक्षम्) बल तथा (यज्ञम्) उक्त तीन प्रकार के यज्ञ को (आशाथे) व्याप्त होते हैं॥६॥

भावार्थ:-जो सबका मित्र बाहर आनेवाला प्राण तथा शरीर के भीतर रहनेवाला उदान है, इन्हीं से प्राणि ऋतुओं के साथ सब संसाररूपी यज्ञ और बल को धारण करके साप्त होते हैं, जिससे सब व्यवहार सिद्ध होते हैं॥६॥

यह अट्ठाईसवां वर्ग पूरा हुआ। पुनरीश्वरभौतिकगुणा उपदिश्वना

फिर अगले मन्त्र में ईश्वर और भौतिक अग्निक गुणों का उपदेश किया है-

द्रविणोदा द्रविणसो ग्रावहस्तासो अध्वरे।

युज्ञेषु देवमीळते॥७॥

द्रविणः ऽदाः। द्रविणसः। ग्रावहस्तासः। अव्वरे। युनेषु देवम्। ईळ्ते॥७॥

पदार्थः-(द्रविणोदाः) द्रविणांसि विद्याबलगुज्यधनानि ददातीति स परमेश्वरो भौतिको वा। द्रविणमिति बलनामसु पठितम्। (निघं० ८९) द्रविणोदा इति पदनामसु पठितम्। (निघं० ५.२) द्रविणं करोति द्रविणति, अस्मात् सर्वधातुभ्योऽसुन् इत्युसुन्प्रत्ययः। तद्ददातीति निरुक्त्या पदनामसु पठितत्वाज्ज्ञानस्वरूपत्वादीश्वरो ज्ञानक्रियाहेतुत्वादग्न्यादयश्च गृह्यन्ते। द्र्यन्ते प्राप्यन्ते यानि तानि द्रविणानि। द्रुदक्षिभ्यामिनन्। (प्रणा०२.४९)) अनेन 'द्रु'धातोरिनन् प्रत्ययः। (द्रविणसः) यज्ञकर्त्तारः द्रविणसम्पादकाः। (प्रावहस्तासः) ग्रावा स्तुतिसमूहो ग्रहणं हननं वा ग्रावाणः पाषाणादयो यज्ञशिल्पविद्यासिद्धिहेतके हत्तेषु येषां ते। ग्रावाणो हन्तेर्वा गृणातेर्वा गृह्यातेर्वा। (निरु०९.८) (अध्वरे) अनुष्ठातव्ये क्रियासाध्ये यज्ञे (प्रज्ञेषु) अग्निहोत्राद्यश्वमेधान्तेषु शिल्पविद्यामयेषु वा (देवम्) दिव्यगुणवन्तम् (ईळते) स्तुवन्त्रि अध्येषन्ति वा।

एक्ट्रिषयान मेन्त्रान् यास्कम्निरेवं व्याख्यातवान्-द्रविणोदाः कस्मात्? धनं द्रविणमुच्यते यदेनदिभूद्विन बर्ले वा द्रविणं यदेनेनाभिद्रविन तस्य दाता द्रविणोदास्तस्यैषा भवति-द्रविणोदा द्रवि० द्रविणोदा यस्त्वं द्रविणस इति द्रविणसादिन इति वा द्रविणसानिन इति वा द्रविणसस्तस्मात् पिबत्विति व्या यज्ञेषु देवमीडते। याचिन स्तुविन वर्धयिन पूज्यन्तीति वा। तत्को द्रविणोदा? इन्द्र इति क्रोष्टुिकः,

स बलधनयोदांतृतमस्तस्य च सर्वा बलकृतिरोजसो जातमुतमन्य एनमिति चाहाऽथाप्यिन द्राविणोदसमाहैष पुनरेतस्माज्जायते। यो अश्मनोरन्तरिंनं जजानेत्यिप निगमो भवत्यथाप्यत्याजेषु द्राविणोदसाः प्रवादा भवन्ति तेषां पुनः पात्रस्येन्द्रपानमिति भवत्यथाप्येनं सोमपानेन स्तित्यथाप्याहा द्रविणोदाः पिबतु द्राविणोदस इत्ययमेवाग्निर्द्रविणोदा इति शाकपूणिराग्नेयेष्वेक हि सुक्तेषु द्राविणोदसाः प्रवादा भवन्ति। देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदामित्यिप निगमो भविति यथो एतत्स बलधनयोदांतृतम इति सर्वासु देवतास्वैश्चर्यं विद्यते यथो एतदोजसो कामुतमन्य प्रनिति चाहेत्ययमप्यग्निरोजसा बलेन मध्यमानो जायते तस्मादेनमाह सहसस्पुत्रं सहसः सुने महसो यहु यथो एतद्गिनं द्राविणोदसमाहेत्यृत्विजोऽत्र द्रविणोदस उच्यन्ते हविषो दातारस्ते चैनं जनयन्ति। ऋषीणां पुत्रो अधिराज एष इत्यपि निगमो भवित। यथो एतत्तेषां पुनः पात्रस्येन्द्रप्रमिति भवतीति भिक्तमात्रं तद्भवति। यथा वायव्यानीति। सर्वेषां सोमपात्राणां यथो एतदस्विणोदाः पिबतु द्रविणोदस इत्यस्यैव तद्भवति। निरु०८.१-२) अनेन निरुक्तेनैवमेव द्रविणोदरशब्दिस्य यथायायां सर्वत्रार्थान्वयो विज्ञेयः। सायणाचार्य्येण द्रविणोदा इति पदं क्वबन्तं साधितं तद्भवत्रश्चाद्वार्थे एवतः, निरुक्तकारस्य द्रविणोदसामित्यादिव्याख्यानिवरोधात्। स्वरस्तु गितकारकोषदात् । हति सिद्ध एव॥।।।

अन्वय:-यो द्रविणोदा देव: परमेश्वरो भितिको ज्ञास्ति यं देवं ग्रावहस्तासो द्रविणस ऋत्विजोऽध्वरे यज्ञेष्वीळते पूजयन्त्यध्येष्य योज्यन्ति वो तमुपास्योपयुज्य मनुष्या: एव सदा आनन्दिता भवन्ति॥७॥

भावार्थ:-अत्र श्लेषालङ्कार:। स्कूलिभूनुष्यैः सर्वेषु कर्मोपासनाज्ञानकाण्डसाध्येषु यज्ञेषु परमेश्वर: पूज्य:। होमशिल्पादिषु यज्ञेषु भौतिकोद्धीन: सुयोजनीयश्चेति॥७॥

पदार्थ:-(द्रविणोदा:) जो विद्या बल राज्य और धनादि पदार्थों का देने और दिव्य गुणवाला परमेश्वर तथा उत्तम धन आदि पदार्थ देने और दिव्यगुणवाला भौतिक अग्नि है, जिस (देवम्) देव को (ग्रावहस्तास:) स्तुति समृद्ध गृहण का हनन और पत्थर आदि यज्ञ सिद्ध करनेहारे शिल्पविद्या के पदार्थ हाथ में हैं, जिनके ऐसे की (दिवण्स:) यज्ञ करने वा द्रव्यसम्पादक विद्वान् हैं, वे (अध्वरे) अनुष्ठान करने योग्य क्रियासाध्य हिंसा के अयोग्य और (यज्ञेषु) अग्निहोत्र आदि अश्वमेधपर्य्यन्त वा शिल्पविद्यामय यज्ञों में (ईळते) पूजन वा उसके गुणों की खोज करके संयुक्त करते हैं, वही मनुष्य सदा आनन्दयुक्त रहते हैं॥७॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। सब मनुष्यों को सब कर्म, उपासना तथा ज्ञानकाण्ड यज्ञों में परमेश्वर ही की पूजा तथा भौतिक अग्नि होम वा शिल्पादि कामों में अच्छी प्रकार संयुक्त करने योग्य है।।जार अष्टक-१। अध्याय-१। वर्ग-२८-२९

मण्डल-१। अनुवाक-४। सूक्त-१५

स एव सर्वेषां पदार्थानां प्रदातेत्युपदिश्यते।

उक्त अग्नि ही सब पदार्थों का देने वा उनका दिलानेवाला है, इस विषय का उपदेश अगले मिन्हें में किया है-

द्रविणोदा दंदातु नो वसूनि यानि शृण्विरे। देवेषु ता वनामहे॥८॥

द्रविणःऽदाः। दुदातु। नः। वसूनि। यानि। शृण्विरे। देवेषु। ता। वनामहे॥ 📶

पदार्थ:-(द्रविणोदाः) सुष्ट्रपासितो जगदीश्वरः सम्यग्योजितो भौतिको का (ददातु) ददाति वा। अत्र पक्षे लर्ड्थे लोट्। (नः) अस्मभ्यम् (वसूनि) विद्याचक्रवर्त्तिसञ्ज्रप्राप्याप्युत्रमानि धनानि (यानि) परोक्षाणि (शृण्विरे) श्रूयन्ते। अत्र 'शु' धातोः छन्दिस लुङ्लङ्लिट इति लर्ड्थे लिट्, छन्दस्युभयथा इति सार्वधातुकत्वेन श्नुविकरण आर्द्धधातुकत्वाद्यगभावः, विकरणव्यक्षिहित्तत्वाद्व, द्वित्वं च न भवति। (देवेषु) विद्वत्सु दिव्येषु सूर्य्यादिपदार्थेषु वा (ता) तानि। अत्र श्रेष्ठिन्दिस बहुलम् इति लोपः। (वनामहे) सम्भजामहे। अत्र व्यत्ययेनात्मनेपदम्॥८॥

अन्वय:-अस्माभिर्यानि देवेषु दिव्येषु कर्मामु राज्येषु व शिल्पविद्यासिद्धेषु विमानादिषु सत्सु वसूनि शृण्विरे श्रूयन्ते ता तानि वयं वनामह एतानि च द्रविणादा जगदीश्वरो नोऽस्मभ्यं ददातु भौतिकश्च ददाति॥८॥

भावार्थ:-परमेश्वरणास्मिन् जगति प्राणिभ्यो ये पदार्था दत्तास्तेभ्य उपकारे संयोजितेभ्यो यावन्ति प्रत्यक्षाप्रत्यक्षाणि वस्तुजातानि वर्त्तन्ते तानि देवेषु ब्रिट्टत्स् स्थित्वैव सुखप्रदानि भवन्तीति॥८॥

पदार्थ:-हम लोगों के (यानि) जिन (देवपु) विद्वान् वा दिव्य सूर्य्य आदि अर्थात् शिल्पविद्या से सिद्ध विमान आदि पदार्थों में (वसूनि) जो विद्या, चक्रवर्ति राज्य और प्राप्त होने योग्य उत्तम धन (शृण्विरे) सुनने में आते तथा हम लोग (वमामहे) जिनका सेवन करते हैं, (ता) उनको (द्रविणोदाः) जगदीश्वर (नः) हम लोगों के लिये (द्रदातु) देवे तथा अच्छी प्रकार सिद्ध किया हुआ भौतिक अग्नि भी देता है॥८॥

भावार्थ:-प्ररमेश्वर ने इस संसार में जीवों के लिये जो पदार्थ उत्पन्न किये हैं, उपकार में संयुक्त किये हैं, उन प्रतार्थों में जितने प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष वस्तु से सुख उत्पन्न होते हैं, वे विद्वानों ही के संग से सुख देनेवाने होते हैं। अ।

यज्ञकर्त्तृणामृतुषु कर्त्तव्यान्युपदिश्यन्ते।

यं करनेवाले मनुष्यों को ऋतुओं में करने योग्य कार्य्यों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है-

द्विणोदाः पिपीषति जुहोत् प्र च तिष्ठत।

१८०

नेष्ट्रादृतुभिरिष्यत॥ ९॥

द्रविणः ऽदाः। पिपीषति। जुहोतं। प्रा च। तिष्ठुत्। नेष्ट्रात्। ऋतुभिः। इष्यत्॥ ९॥

पदार्थ:-(द्रविणोदाः) यज्ञानुष्ठाता मनुष्यः (पिपोषिति) सोमादिरसान् पातुमिच्छित्। अत्र पीइर्थं धातोः सन् व्यत्ययेन परस्मैपदं च। (जुहोत) दत्तादत्त वा। अत्र तित्पबित तम्। (प्र) प्रकृष्टार्थं (च) समुच्चयार्थे (तिष्ठत) प्रतिष्ठां प्राप्नुत। अत्र वा च्छन्दिस सर्वे विधयो भवन्ति इति नियमान् समवप्रविभ्यः स्थः। (अष्टा०१.३.२२) इत्यात्मनेपदं न भवित। (नेष्ट्रात्) विज्ञानहेतोः। अत्र णेष्ट्र गतौ इत्यस्मात् सर्वधातुभ्यः ष्ट्रन्। (उणा०४.१६३) इति बाहुलकात् ष्ट्रन् प्रत्ययः। (ऋतुभिः) वसन्तादिभियोंगे (इध्यत) विजानीत॥९॥

अन्वय:-हे मनुष्या! यथा द्रविणोदा यज्ञानुष्ठाता विद्वान् मनुष्यो/यज्ञेषु सोम्मिदिरसं पिपीषित तथैव यूयमि तान् यज्ञान् नेष्ट्रात् जुहोत। तत्कृत्वर्त्तुभिर्योगे सुखै: प्रकृष्ट्रतया तिष्ट्रते प्रतिष्ठध्वं तिद्वद्यामिष्यत च॥९॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। मनुष्यैः स्टब्कमणोऽनुकरणमेव कर्त्तव्यं, नासत्कर्मणः। सर्वेष्वृतुषु यथायोग्यानि कर्म्माणि कर्त्तव्यानि यस्मिन्नृतौ यो देशः स्थ्रात् गन्तुं योग्यस्तत्र स्थातव्यं गन्तव्यं च तत्तद्देशानुसारेण भोजनाच्छादनविहाराः कर्त्तव्याः। हत्यादिभिन्यवहारैः सुखानि सततं सेव्यानीति॥९॥

पदार्थ: -हे मनुष्यो! जैसे (द्रविणोदा:) यह का अनुष्टान करनेवाला विद्वान् मनुष्य यहां में सोम आदि ओषिधयों के रस को (पिपीषित) पीने की इच्छा करता है, वैसे ही तुम भी उन यहां को (नेष्ट्रात्) विज्ञान से (जुहोत) देने-लेने का व्यवहार करो तथा उन यहां को विधि के साथ सिद्ध करके (ऋतुभि:) ऋतु-ऋतु के संयोग से सुखों के साथ (प्रविष्ठत) प्रतिष्ठा को प्राप्त हो और उनकी विद्या को सदा (इष्यत) जानो॥९॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में क्रिक्लुप्तोंपुपालङ्कार है। मनुष्यों को अच्छे ही काम सीखने चाहियें, दुष्ट नहीं, और सब ऋतुओं में सब सुखों के लिये प्रथायोग्य कम्म करना चाहिये, तथा जिस ऋतु में जो देश स्थिति करने वा जाने-अने योग्य हो, उसमें उसी समय स्थिति वा जाना तथा उस देश के अनुसार खाना-पीना वस्त्रधारणाहि व्यवहार करके सब व्यवहार में सुखों को निरन्तर सेवन करना चाहिये॥९॥

पुनः प्रत्यृतुमीश्वरध्यानमुपदिश्यते।

फिर ऋतु-ऋतु\में ईश्वर का ध्यान करना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है-

युक्वा तुर्पयमृतुभिर्द्रविणोदो यजामहे।

अर्घ स्मा नौ दुदिर्भव॥ १०॥

बतो त्वा। तुरीर्यम्। ऋतुभिः। द्रविणःऽदः। यजोमहे। अर्ध। स्मृ। नुः। दुदिः। भुवु॥१०॥

अष्टक-१। अध्याय-१। वर्ग-२८-२९

मण्डल-१। अनुवाक-४। सूक्त-१५

पदार्थ:-(यत्) यम् (त्वा) त्वां जगदीश्वरम् (तुरीयम्) चतुर्णां स्थूलसूक्ष्मकारणपरमकारणानां संख्यापूरकम्। अत्र चतुरश्ख्यतावाद्यक्षरलोपश्च। (अष्टा०५.२.५१) इति वार्त्तिकेनास्य सिद्धिः (ऋतुभिः) ऋच्छन्ति प्राप्नुवन्ति यैस्तैः। अत्र अर्त्तेश्च तुः। (उणा०१.७३) इति 'ऋ'धातोस्तुः प्रत्ययः किन्व। (द्रविणोदः) ददतीति दाः, द्रविणस्यात्मशुद्धिकरस्य विद्यादेर्धनस्य दास्तत्सम्बुद्धौ (य्रवामहे) पूजयामहे (अध) निश्चयार्थे (स्म) सुखार्थे। निपातस्य च इति दीर्घः। (नः) अस्मभ्यम् (दिदः) दात्। अत्र आदृगम० (अष्टा०३.२.१७१) इति 'डुदाञ्'धातोः किः प्रत्ययः। (भव)॥१०॥

अन्वय:-हे द्रविणोदो जगदीश्वर! वयं यद्यं तुरीयं त्वा त्वामृतुभिर्योगे यजामहे स्म स त्वं नोऽस्मभ्यमृत्तमानां विद्यादिधनानां ददिरध भव॥१०॥

भावार्थ:-परमेश्वरस्त्रिविधस्य स्थूलसूक्ष्मकारणाख्यस्य जेप्रतः स्कार्शात्पृथग्वस्तुत्वाच्चतुर्थो वर्तते। यश्च सकलैर्मनुष्यैः सर्वाभिव्यापी सर्वान्तर्यामी सर्वाधारो नित्य पूजनीयोऽस्ति, नैतं विहाय केनचिदन्यस्येश्वरबुद्ध्योपासना कार्य्या। नैवैतस्माद्भिन्नः कप्निचत्कर्मानुसारेण जीवेभ्यः फलप्रदाताऽस्ति॥१०॥

पदार्थ: - हे (द्रविणोदा:) आत्मा की शुद्धि करनेवाल विद्या आदि धनदायक ईश्वर! हम लोग (यत्) जिस (तुरीयम्) स्थूल-सूक्ष्म-कारण और परिम कारण आदि पदार्थों में चौथी संख्या पूरण करनेवाले (त्वा) आपको (ऋतुभि:) पदार्थों को प्राप्त करनेवाले ऋतुओं के योग में (यजामहे स्म) सुखपूर्वक पूजते हैं, सो आप (न:) हमारे लिये धनादि पदार्थों को (अध) निश्चय करके (दिद:) देनेवाले (भव) हूजिये॥१०॥

भावार्थ:-परमेश्वर तीन प्रकार के अर्थीन स्थूल, सूक्ष्म और कारणरूप जगत् से अलग होने के कारण चौथा है, जो कि सब मनुष्पों को सर्वव्यापी सब का अन्तर्यामी और आधार नित्य पूजन करने योग्य है, उसको छोड़कर ईश्वलुद्धि करके किसी दूसरे पदार्थ की उपासना न करनी चाहिये, क्योंकि इससे भिन्न कोई कर्म के अनुसार जीवों को फल देनेवाला नहीं है॥१०॥

षुनः भूर्व्याचन्द्रमसोर्ऋतुयोगे गुणा उपदिश्यन्ते।

फिर ऋतुओं के स्थि में सूर्य्य और चन्द्रमा के गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।

अर्थिना रिवृतं मधु दीर्द्यंनी शुचिव्रता।

ऋ्द्भुनां सज्जवाहसा॥ ११॥

अर्थिना। पिबेतम्। मधुं। दीद्यंग्नीइति दीदिंऽअग्नी। शुचिऽवृता। ऋतुना। यज्ञुऽवाहुसा॥ ११॥

पदार्थ:-(अश्विना) सूर्य्याचन्द्रमसौ। **सुपां सुलुग्०** इत्याकारादेश: सर्वत्र। (**पिबतम्**) पिबत:। अत्र व्यक्षियो लडर्थे लोट् च। (मधु) मधुरं रसम् (दीद्यग्नी) दीदिर्दीप्तिहेतुरग्निर्ययोस्तौ (शुचिव्रता) शुचि:

पवित्रकरं व्रतं शीलं ययोस्तौ (ऋतुना) ऋतुभिः सह (यज्ञवाहसा) यज्ञान् हुतद्रव्यान् वहतः प्रापयतस्तौ॥११॥

अन्वय:-हे विद्वांसो! यूयं यौ शुचिव्रता यज्ञवाहसा दीद्यग्नी अश्विनौ मधु पिबतं खित्र ऋतुनी ऋतुभि: सह रसान् गमयतस्तौ विजानीत॥११॥

भावार्थ:-ईश्वर उपदिशति-मया यौ सूर्य्याचन्द्रमसावित्यादिसंयुक्तौ द्वी द्वी पदार्थौं कार्य्यसिद्ध्यर्थमीश्वरेण संयोजितौ, हे मनुष्या! युष्माभिस्तौ सम्यक् सर्वर्तुकं सुखं व्यवहारिषद्धिं च प्रापयत इति बोध्यम्॥११॥

पदार्थ: -हे विद्वान् लोगो! तुमको जो (शुचिव्रता) पदार्थों की शुद्धि करने (यज्ञवाहसा) होम किये हुए पदार्थों को प्राप्त कराने तथा (दीद्यग्नी) प्रकाशहेतुरूप अस्तिकाल (अश्विमा) सूर्य्य और चन्द्रमा (मधु) मधुर रस को (पिबतम्) पीते हैं, जो (ऋतुना) ऋतुओं के साथ रसों को प्राप्त करते हैं, उनको यथावत् जानो॥११॥

भावार्थ:-ईश्वर उपदेश करता है कि मैंने जो सूर्य्य चन्द्रमा तथा इस प्रकार मिले हुए अन्य भी दो-दो पदार्थ कार्यों की सिद्धि के लिये संयुक्त किये हैं, हि निचुष्यों। तुम अच्छी प्रकार सब ऋतुओं के सुख तथा व्यवहार की सिद्धि को प्राप्त करते हो, इनको सब लिए समझें॥११॥

पुनरपि भौतिकारिनपुणा उपदिश्यन्ते।

फिर भी भौतिक अग्नि के गुण्गे का उपद्रश्र अगले मन्त्र में किया है-

गार्हपत्येन सन्त्य ऋतुना यज्ञनीर्यस्म

देवान् देवयुते यंजा। १२॥ ऋ९भ

गार्ह्यं पत्येन। सुन्त्य। ऋतुनां (यज्ञुं अस्:। असि। देवान्। देव्यते। यज्ञा। १२॥

पदार्थ:-(गार्हपत्चेन) गृहपतिना संयुक्तेन व्यवहारेण। गृहपतिना संयुक्ते व्यः। (अष्टा०४.४.९१) अनेन व्यः प्रत्ययः। (सन्य) सन्तौ सनने क्रियासंविभागे भवः स सन्त्योऽग्निः। अत्र 'सन्' धातोर्बाहुलकादौण्(दिक्सिः प्रत्ययः, ततो भवे छन्दिस इति यत्। (ऋतुना) ऋतुभिः सह (यज्ञनीः) यज्ञं त्रिविधं नयित प्रापयतीति यः। सत्सृद्विषद्वह० इति क्विप्। (असि) भवित। अत्र सर्वत्र व्यत्ययः। (देवान्) दिव्यव्यव्यवहारान् (देवयते) कुर्वते शिल्पिने (यज्ञ) यजित शिल्पिवद्यायां सङ्गमयित। अत्र लडर्थे लोट्॥१२॥

अन्वयः-पो सन्त्योऽग्निर्गार्हपत्येनर्तुना सह यज्ञनीरसि भवति, स देवयते शिल्पिने देवान् यज यजित सङ्करमयति॥१२॥

भावार्थ:-यो विद्वद्भि: सर्वेषु व्यवहारकृत्येषु प्रत्यृतुं विद्ययां सम्यक् सम्प्रयोजितोऽयमग्निरस्ति स मनुष्यादिप्रणिभ्यो दिव्यानि सुखानि प्रापयति॥१२॥ अष्टक-१। अध्याय-१। वर्ग-२८-२९

मण्डल-१। अनुवाक-४। सूक्त-१५

चतुर्दशसूक्तार्थेनास्य पञ्चदशसूक्तार्थस्य विश्वेदेवानुयोग्यत्वादीनां यथाक्रमं प्रतिपादनेन सङ्गतिरस्तीति बोध्यम्।

इदमपि सुक्तं सायणाचार्य्यादिभिरध्यापकविलसनादिभिश्चान्यथैव व्याख्यातम्॥ 🚧।

इति पञ्चदशं सुक्तमेकोनत्रिंशो वर्गश्च समाप्तः॥

पदार्थ:-जो (सन्त्य) क्रियाओं के विभाग में अच्छी प्रकार प्रकाशित होने बाला भौतिक अग्नि (गार्हपत्येन) गृहस्थों के व्यवहार से (ऋतुना) ऋतुओं के साथ (यज्ञनी:) तीन प्रकार के यज्ञ को प्राप्त करानेवाला (असि) है, सो (देवयते) यज्ञ करनेवाले विद्वान् के लिये फ्रिल्पविद्या में (देवान्) दिव्य व्यवहारों का (यज) संगम करता है॥१२॥

भावार्थ:-जो विद्वानों से सब व्यवहाररूप कामों में ऋतु-ऋतु के प्रति विद्या के साथ अच्छी प्रकार प्रयोग किया हुआ अग्नि है, सो मनुष्य आदि प्राणियों के लिये दिच्य सुखों को प्राप्त कराता है॥१२॥

जो सब देवों के अनुयोगी वसन्त आदि ऋतु हैं, हनके क्थायार्ग्य गुणप्रतिपादन से चौदहवें सूक्त के अर्थ के साथ इस पन्द्रहवें सूक्त के अर्थ की सङ्गृति जाननी चाहिय।

इस सूक्त का भी अर्थ सायणाचार्य्य आदि तथा यूरोपदेशवासी विलसन आदि लोगों ने कुछ का कुछ वर्णन किया है।।

यह पन्द्रहवां सूक्त और उनक्तीर्सवां वर्ग पूरा हुआ॥

अथ नवर्च्चस्य षोडशसूक्तस्य काण्वो मेधातिथिर्ऋषि:। इन्द्रो देवता। गायत्री छन्द:। षड्ज:

स्वर:॥

तत्रेन्द्रगुणा उपदिश्यन्ते।

अब सोलहवें सूक्त का आरम्भ है। उसके प्रथम मन्त्र में सूर्य्य के गुणों का उपदेश किया है-

आ त्वा वहन्तु हरयो वृषेणं सोमेपीतये।

इन्द्रं त्वा सूर्रचक्षसः॥१॥

आ। त्वा। वहुनु। हर्रयः। वृषणम्। सोर्मऽपीतये। इन्द्री त्वा। सूरऽचक्षसः॥ शा

पदार्थ:-(आ) समन्तात् (त्वा) तं सूर्य्यलोकम् (वहन्तु) प्रापयन्तु (हर्ग्यः) ह्यन्ति ये ते किरणाः। हिपिषरुहि० (उणा०४.१२४) इति 'हृ'धातोरिन् प्रत्ययः (वृषणेपूर्भ यो पर्षित् जलं स वृषा तम्। किनन्युवृषि० (उणा०१.१५४) इति किनन् प्रत्ययः। वा पपूर्वस्य निगमे। (अष्टा०६.४.९) इति विकल्पाद् दीर्घाभावः। (सोमपीतये) सोमानां सुतानां पदार्थानां पीतिः पानं यस्मिन् व्यवहारे तस्मै। अत्र सह सुणा इति समासः। (इन्द्र) विद्वन् (त्वा) तं पूर्वोक्तम् (सूरचक्षेसः) सूरे सूर्य्ये चक्षांसि दर्शनानि येषां ते॥१॥

अन्वय:-हे इन्द्र! यं वृषणं सोमपीतये सूरच्यासो हर्यः सर्वतो वहन्ति त्वा तं त्वमपि वह, यं सर्वे शिल्पिनो वहन्ति तं सर्वे वहन्तु, हे मनुष्या! यं वश्रं विजातीमस्त्वा तं यूयमपि विजानीत॥१॥

भावार्थ:-याः सूर्य्यस्य दीप्तयस्ताः सिर्वस्माहोष्ट्रनाः सर्वस्य प्रकाशिका वृष्टिकराः सन्ति ता यथायोग्यमानुकूल्येन मनुष्यैः सेविता उत्तम्भन्ति सुखानि जनयन्तीति॥१॥

पदार्थ:-हे विद्वन्! जिस (वृष्णाम्) वर्षों करनेहारे सूर्य्यलोक को (सोमपीतये) जिस व्यवहार में सोम अर्थात् ओषिथों के अर्क म्हिंचे हुए पदार्थों का पान किया जाता है, उसके लिये (सूरचक्षसः) जिनका सूर्य्य में दर्शन होता है, (हरयः) हरण करनेहारे किरण प्राप्त करते हैं, (त्वा) उसको तू भी प्राप्त हो, जिसको सब कारीगर लीग प्राप्त होते हैं, उसको सब मनुष्य (आवहन्तु) प्राप्त हों। हे मनुष्यो! जिसको हम लोग जानते हैं (त्वा) उसको तुम भी जानो॥१॥

भावार्थ:-जो सूर्य्य की प्रत्यक्ष दीप्ति सब रसों के हरने सबका प्रकाश करने तथा वर्षा करानेवाली हैं, व्रे यथायोग्य अनुकूलता के साथ सेवन करने से मनुष्यों को उत्तम-उत्तम सुख देती हैं॥१॥

पुनस्तद्गुणा उपदिश्यन्ते।

फिर भी अगले मन्त्र में सूर्य्यलोक के गुणों का ही उपदेश किया है–

डुम्मे धाना घृतसनुवो हरी डुहोपंवक्षतः।

अष्टक-१। अध्याय-१। वर्ग-३०-३१

मण्डल-१। अनुवाक-४। सूक्त-१६

इन्द्रं सुखर्तमे खें॥२॥

डुमा:। धाना:। घृतऽस्नुवं:। हरी इति। डुह। उपं। वृक्षृत:। इन्द्रम्। सुखऽतमे। रथे॥२॥
पदार्थ:-(इमा:) प्रत्यक्षाः (धानाः) धीयन्ते यासु ता दीप्तयः। धापृवस्य० (उणाठ ६) इति नः
प्रत्ययः। (घृतस्नुवः) घृतमुदकं स्नुवन्ति प्रस्रवन्ति यास्ताः (हरी) हरित याभ्यां तौ। कृष्णशुक्तपक्षौ वा
पूर्वपक्षापरपक्षौ वा इन्द्रस्य हरी ताभ्यां हीदं सर्वं हरित (षड्विंश ब्रा०.१.१) (इह) अस्मिन्संसो (उप)
सामीप्ये (वक्षतः) वहतः। अत्र लडर्थे लेट्। (इन्द्रम्) सूर्य्यलोकम् (सुखतमे) अतिश्वमे सुखहेतौ (रथे)
रमयित येन तस्मिन्। हनिकुषिनीरिम० (उणा०२.२) इति कथन् प्रत्ययः॥ न

अन्वयः-हरी कृष्णशुक्लपक्षाविहेमा घृतस्नुवो धाना इन्द्रं सुख्नामे रथ अनवक्षत उपगतं वहतः प्रापयतः॥१२॥

भावार्थ:-यावस्मिन्संसारे रात्रिदिवसौ शुक्लकृष्णपक्षौ सक्षिषायनोत्तरायणौ हरीसंज्ञौ स्तस्ताभ्यां सूर्य्य: सर्वानन्दव्यवहारान् प्रापयति॥२॥

पदार्थ:-(हरी) जो पदार्थों को हरनेवाले सूर्य्य के किए का शुक्ल पक्ष हैं, वे (इह) इस लोक में (इमा:) इन (धाना:) दीप्तियों को तथा (इन्द्रम्) सूर्य्यलोक की (सुखतमे) जो बहुत अच्छी प्रकार सुखहेतु (रथे) रमण करने योग्य विमान आदि रथों के (उप) स्मीप (वक्षत:) प्राप्त करते हैं॥२॥

भावार्थ:-जो इस संसार में रात्रि और दिप शुक्त तथा कृष्णपक्ष दक्षिणायन और उत्तरायण हरण करने वाले कहलाते हैं, उनसे सूर्य्यलोक अन्दरूप व्यवहारों को प्राप्त करता है॥२॥

अथ्रेन्द्रशब्देन त्रुघोऽर्था उपदिश्यन्ते।

अब अगले मन्त्र में इन्द्र शब्द से तीन अर्थों का उपदेश किया है-

इन्द्रं प्रातहेवामह इन्द्रं प्रयत्येख्वरी। इन्द्रं सोर्मस्य पीतयेत्र रूप

इन्द्रम्। प्रातः। हुन् मुक्के इन्द्रम्। प्रुऽयति। अध्वरे। इन्द्रम्। सोर्मस्य। पीतये॥३॥

पदार्थ:-(इन्द्रम्) एरमेश्वरम् (प्रातः) प्रतिदिनम् (हवामहे) आह्नयेम। बहुलं छन्दिस इति सम्प्रसारणम्। (इन्द्रम्) परमेश्वर्यसाधकं भौतिकमग्निम्। (प्रयति) प्रैति प्रकृष्टं ज्ञानं ददातीति प्रयत् तस्मिन्। इण गतौ इत्य्रस्माल्लदः स्थाने शतृप्रत्ययः। (अध्वरे) उपासनाक्रियासाध्ये यज्ञे (इन्द्रम्) बाह्याभ्यन्तरस्थं वायुम् (प्रोमस्य) सूयते सर्वेभ्यः पदार्थेभ्यो रसस्तस्य (पीतये) पानाय। अत्र 'पा'धातोर्बाहुलकात्तिः प्रत्ययः।

अन्वय:-वयं प्रातः प्रतिदिनिमन्द्रं परमैश्वर्य्यप्रदातारमीश्वरं प्रयत्यध्वरे हवामहे। वयं प्रयत्यध्वरे प्रातः प्रतिदिनिमन्द्रं विद्युदाख्यमिनं हवामहे। वयं प्रयत्यध्वरे सोमस्य पीतये प्रातः प्रतिदिनिमन्द्रं वायुं, हवामहे॥३॥

भावार्थ:-मनुष्यै: परमेश्वर: प्रतिदिनमुपासनीयस्तदाज्ञायां वर्त्तितव्यं प्रितियज्ञ विद्युदाख्योऽग्निर्योजनीय: प्राणविद्यया पदार्थभोगश्च कार्य्य इति॥३॥

पदार्थ:-हम लोग (प्रात:) नित्यप्रति (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य देनेवाले ईश्वर का (प्रयाध्वरे) बुद्धिप्रद उपासना यज्ञ में (हवामहे) आह्वान करें। हम लोग (प्रयति) उत्तम ज्ञाम देनेवाले (अध्वरे) क्रिया से सिद्ध होने योग्य यज्ञ में (प्रात:) प्रतिदिन (इन्द्रम्) उत्तम ऐश्वर्य्यसाधक विद्युत् अग्नि को (हवामहे) क्रियाओं में उपदेश कह सुनके संयुक्त करें, तथा हम लोग (सोमस्य) स्व प्रवार्थों के सार रस को (पीतये) पीने के लिये (प्रात:) प्रतिदिन यज्ञ में (इन्द्रम्) बाहरले वा श्वरीर के भीतरले प्राण को (हवामहे) विचार में लावें और उसके सिद्ध करने का विचार करें॥३॥

भावार्थ:-मनुष्यों को परमेश्वर प्रतिदिन उपासना करने योग्य है और उसकी आज्ञा के अनुकूल वर्त्तना चाहिये। बिजुली तथा जो प्राणरूप वायु है, उसकी विद्या से प्रत्रार्थीं का भोग करना चाहिये॥३॥

अथेन्द्रशब्देन वायुमुणा उपदिश्युनी।

अब अगले मन्त्र में इन्द्र शब्द से बायु के गुण्ने का उपदेश किया है-

उप नः सुतमा गृहि हरिभिरिन्द्र के शिर्भाः।

सुते हि त्वा हर्वामहे॥४॥

उपं। नुः। सुतमा आ। गृहि। हर्ि भिः। इन्द्र) केशिभिः। सुते। हि। त्वा। हर्वामहे॥४॥

पदार्थ:-(उप) निकटार्थे (त:) अस्माकम् (सुतम्) उत्पादितम् (आ) समन्तात् (गिह्र) गच्छित। अत्र व्यत्ययो लड्थें लोट्। बहुल छन्दिस इति शपो लुक्। वा छन्दिस इति हेरिपत्वादनुनासिकलोपश्च। (हिरिभि:) हरणाहरणशीलैवेंग्विद्धः किरणे (इन्द्र) वायुः (केशिभिः) केशा बह्वयो रश्मयो विद्यन्ते येषामग्निविद्युत्सूर्थ्याणां तैः सह। किल्रशरन् लोलोपश्च। (उणा०५.३३) अनेन 'क्लिश' धातोरन् प्रत्ययो लकारलोपश्च। ततो भूम्प्यर्थ इतिः। केशी केशा रश्मयस्तैस्तद्वान् भवित काशनाद्वा प्रकाशनाद्वा केशीदं ज्योतिरुच्यते। (निरु०१२.२५) (सुते) उत्पादिते होमशिल्पादिव्यवहारे (हि) यतः (त्वा) तम् (हवामहे) आदद्यः।।४॥

अन्बय:-हि यतोऽयमिन्द्रो वायुः केशिभिर्हिरिभिः सह नोऽस्माकं सुतमुपागह्युपागच्छिति तस्मात्त्वा तं सुते असं हवामहो। ४॥

भावार्थः-येऽस्माभिः शिल्पव्यवहारादिषूपकर्त्तव्याः पदार्थाः सन्ति, तेऽग्निविद्युत्सूर्य्या व्ययुनिपित्तेनेव प्रज्वलन्ति गच्छन्त्यागच्छन्ति च॥४॥ अष्टक-१। अध्याय-१। वर्ग-३०-३१

मण्डल-१। अनुवाक-४। सूक्त-१६

पदार्थ:-(हि) जिस कारण यह (इन्द्र) वायु (केशिभि:) जिनके बहुत से केश अर्थात् किरण विद्यमान हैं, वे (हिरिभि:) पदार्थों के हरने वा स्वीकार करने वाले अग्नि, विद्युत् और सूर्य के साथ (न:) हमारे (सुतम्) उत्पन्न किये हुए होम वा शिल्प आदि व्यवहार के (उपागिह) निकद्ध प्राप्त होदा है, इससे (त्वा) उसको (सुते) उत्पन्न किये हुए होम वा शिल्प आदि व्यवहारों में हम लोगे (ह्वापहे) ग्रहण करते हैं॥४॥

भावार्थ:-जो पदार्थ हम लोगों को शिल्प आदि व्यवहारों में उपकारयुक्त करने चाहियें, व अग्नि विद्युत् और सूर्य वायु ही के निमित्त से प्रकाशित होते तथा जाते आते हैं॥ ४॥

पुनरिन्द्रगुणा उपदिश्यन्ते।

फिर भी अगले मन्त्र में इन्द्र के गुणों का उपदेश किया है

सेमं नः स्तोममा गृह्युपेदं सर्वनं सुतम्।

गौरो न तृषित: पिंब।।५॥३०॥

सः। ड्रमम्। नुः। स्तोर्मम्। आ। गृहि। उपं। ड्रदम्। स्वतम्। सुतम्। गौरः। न। तृषितः। पिब्रा। ५॥

पदार्थ:-(सः) इन्द्रः (इमम्) अनुष्ठीयमानम् (नः) अस्माकम् (स्तोमम्) स्तूयते गुणसमूहो यस्तं यज्ञम् (आ) समन्तात् (गिह्र) गच्छिति । अत्र व्यत्ययो लड्क्ष्रे लोट् बहुलं छन्दिस इति शपो लुक् च। (उप) सामीप्ये (इदम्) प्रत्यक्षम् (सवनम्) सुबन्त्यैश्वर्ष्ये प्राप्नुवन्ति येन तत् क्रियाकाण्डम् (सुतम्) ओषध्यादिरसम् (गौरः) गौरगुणविशिष्टो प्रयः (न) जुलाशयं प्राप्य जलं पिबतीव (तृषितः) यस्तृष्यिति पिपासित सः (पिब) पिबति। अत्र व्यत्ययो लड्क्षे लीट् च॥५॥

अन्वय:-य इन्द्रो नोऽस्माक्रमिम् स्तोमं सवनं तृषितो गौरो मृगो न इवोपागह्युपागच्छति, स इदं स्तुतमुत्पन्नमोषध्यादिरसं पिब पिक्रति॥५॥

भावार्थ:-अत्रोपमाल द्वीरः। यथाऽत्यन्तं तृषिता मृगादयः पशुपक्षिणो वेगेन धावनं कृत्वोदकाशयं प्राप्य जलं पिबति तथैकेष इन्द्रो वेग्ग्वद्भिः किरणैरोषध्यादिकं प्राप्यैतेषां रसं पिबति, मनुष्यैः सोऽयं विद्यावृद्धये यथावदुपयोक्तव्यः॥भा

इति त्रिंशत्तमो वर्गः समाप्तः॥

पदार्थः नो उक्त सूर्य (नः) हमारे (इमम्) अनुष्ठान किये हुए (स्तोमम्) प्रशंसनीय यज्ञ वा (सवनम्) ऐश्वर्य प्राप्त करानेवाले क्रियाकाण्ड को (न) जैसे (तृषितः) प्यासा (गौरः) गौरगुणाविशिष्ट हिरन (इपागिह) समीप प्राप्त होता है, वैसे (सः) वह (इदम्) इस (सुतम्) उत्पन्न किये ओषि आदि रस को (पिक्) पीता है॥५॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे अत्यन्त प्यासे मृग आदि पशु और पक्षी वेग से दौड़कर नदी तालाब आदि स्थान को प्राप्त होके जल को पीते हैं, वैसे ही यह सूर्य्यलाक अपनी वेगवती किरणों से ओषिध आदि को प्राप्त होकर उसके रस को पीता है। सो यह विद्या की वृद्धि के लिये मनुष्यों को यथावत् उपयुक्त करना चाहिये॥५॥

यह तीसवां वर्ग पूरा हुआ॥

अथ वायुः कस्मै कस्मिन् कान् पिबतीत्युपदिश्यते।

अब वायु किसलिये किसमें किन पदार्थों के रस को पीता है, इस विषय का उपदेश अराले मन्त्र

में किया है-

इमे सोमांस इन्दंबः सुतासो अर्घ बहिषि। ताँ ईन्द्र सहसे पिब।। ६।।

डुमे। सोमास:। इन्दंव:। सुतार्स:। अधि। बुर्हिषि। तान्। डुन्ह्र सहस्रो प्रृत्व॥६॥

पदार्थ:-(इमे) प्रत्यक्षाः (सोमासः) सूयन्त उत्पद्धन्ते सुख्यानं येभ्यस्ते (इन्दवः) उन्दन्ति स्नेहयन्ति सर्वान् पदार्थान् ये ते रसाः। उन्देरिच्चादेः। (उणाविः १३२) इत्युः प्रत्ययः, आदेरिकारादेशश्च। (सृतासः) ईश्वरेणोत्पादिताः (अधि) उपरिभावे (व्हिषि) बृंहान्त वर्धन्ते सर्वे पदार्था यस्मिन्नन्तरिक्षे तस्मिन्। बृंहर्नलोपश्च। (उणा०२.१०५) अनेन इसः प्रत्ययो नकारलोपश्च। (तान्) उक्तान् (इन्द्र) वायुः (सहसे) बलाय। सह इति बलनामसु पठितम्। (निघं०३४) (पिब) पिबति। अत्र व्यत्ययो लडर्थे लोट् च॥६॥

अन्वय:-येऽधिबर्हिषीश्वरेणेमे सोमास इन्द्रवः सहसे सुतास उत्पादितास्तानिन्द्रो वायुः प्रतिक्षणे पिबति॥६॥

भावार्थ:-ईश्वरेणास्मिन् जगिति प्राणिनां बलादिवृद्धये यावन्तो मूर्ताः पदार्था उत्पादितास्तान् सूर्य्येण छेदितान् वायुः स्वसमीपस्थान् कृत्वा धरित तस्य संयोगेन प्राण्यप्राणिनो बलयन्ति॥६॥

पदार्थ:-जो (अधि वहिषि) जिसमें सब पदार्थ वृद्धि को प्राप्त होते हैं, उस अन्तिरक्ष में (इमे) ये (सोमास:) जिनसे सुख उत्पन्न होते हैं, (इन्दव:) और सब पदार्थों को गीला करनेवाले रस हैं वे (सहसे) बल आब्रि गुणों के लिये ईश्वर ने (सुतास:) उत्पन्न किये हैं, (तान्) उन्हीं को (इन्द्र) वायु क्षण-क्षण में (पिब) पिया करता है।।६।।

भाषार्थ:-इश्वर ने इस संसार में प्राणियों के बल आदि वृद्धि के लिये जितने मूर्तिमान् पदार्थ उत्पन्न किसे हैं, सूर्य्य से छिन्न-भिन्न किये हुए उनको पवन अपने निकट करके धारण करता है, उसके संयोग से प्राणी और अप्राणी बल पराक्रमवाले होते हैं॥६॥

स कीदृग्गुणोऽस्तीत्युपदिश्यते।

अष्टक-१। अध्याय-१। वर्ग-३०-३१

मण्डल-१। अनुवाक-४। सूक्त-१६

उक्त वायु कैसे गुणवाला है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है-

अयं ते स्तोमों अग्रियो हिद्स्पृर्गस्तु शन्तमः।

अथा सोमं सुतं पिबा।७॥

अयम्। ते। स्तोर्मः। अृप्रियः। हृद्धिऽस्पृक्। अस्तु। शम्ऽतमः। अर्थ। सोर्मम्। सुतम् पि<u>बार्ण</u>।

पदार्थ:-(अयम्) अस्माभिरनुष्ठितः (ते) तस्यास्य (स्तोमः) गुणप्रकाशसमूहिक्रियः (अग्रियः) अग्रे भवोऽत्युत्तमः। घच्छौ च। (अष्टा०४.४.११७) अनेनाग्रशब्दाद् घः प्रत्ययः। (हृदिस्पृक्) यो हृद्यन्तः करणे सुखं स्पर्शयित सः (अस्तु) भवेत्। अत्र लडर्थे लोट्। (शन्तमः) शं सुखमितशियतं यस्मिन्सः। शिमित सुखनामसु पठितम्। (निघं०३.६) (अथ) आकृत्तर्थे निप्रतस्य च इति दीर्घः। (सोमम्) सर्वपदार्थाभिषवम् (सुतम्) उत्पन्नम् (पिंब) पिंबति। अत्र व्यत्ययो लक्ष्ये लोट् च॥७॥

अन्वय:-मनुष्यैर्यथाऽयं वायुः पूर्वं सुतं सोमं पिबाथेत्वनिन्तरं ते तस्याग्रियो हृदिस्पृक् शंतमः स्तोमो भवेत् तथाऽनुष्ठातव्यम्॥७॥

भावार्थ:-मनुष्यै: शोधित उत्कृष्टगुणोऽयं पवनोऽत्यन्तिसुखकार्री भवतीति बोध्यम्॥७॥

पदार्थ:-मनुष्यों को जैसे यह वायु प्रथम (सूत्रम्) उत्पन्न किये हुए (सोमम्) सब पदार्थों के रस को (पिब) पीता है, (अथ) उसके अनन्तर (ते) जो उसे वायु का (अग्नियः) अत्युत्तम (हृदिस्पृक्) अन्तः करण में सुख का स्पर्श करानेवाला (स्त्रोमः) उसके गुणों से प्रकाशित होकर क्रियाओं का समूह विदित (अस्तु) हो, वैसे काम करने चाहियुंगाज्य

भावार्थ:-मनुष्यों के लिये उत्तममुण तथा शुद्ध किया हुआ यह पवन अत्यन्त सुखकारी होता है॥७॥

पुनस्तद्गुणा उपदिश्यन्ते।

फिर अपले मन्त्र में उसी के गुणों का उपदेश किया है-

विश्वमित् सर्वनं सुत्रिमन्द्रो भदाय गच्छति।

वृत्रहा सोमंपीतये॥ ४१)

विश्वम्। इत्। सर्वनम्। सुतम्। इन्द्रः। मदाय। गुच्छृति। वृत्रऽहा। सोमंऽपीतये॥८॥

पदार्थ: (विश्वेष) जगत् (इत्) एव (सवनम्) सर्वसुखसाधनम् (सुतम्) उत्पन्नम् (इन्द्रः) वायुः (मदाय) आनन्दार्थ (गच्छति) प्राप्नोति (वृत्रहा) यो वृत्रं मेघं हन्ति सः। ब्रह्मभूणवृत्रेषु विवप्। (अष्टा०३.२.८७) अनेन 'हन'धातोः क्विप्। (सोमपीतये) सोमानां पीतिः पानं यस्मिन्नानन्दे तस्मै। अत्र सह सुपा इति समासः॥८॥

अन्वय:-अयं वृत्रहेन्द्रः सोमपीतये मदायेदेव सवनं सुतं विश्वं गच्छति प्राप्नोति॥८॥

भावार्थ:-वायुः स्वर्गमनागमनैः सकलं जगत्प्राप्य वेगवान् मेघहन्ता सन् सर्वान् प्राणिनः सुखयित, नैवैतेन विना कश्चित्कंचिदिप व्यवहारं साधितुमलं भवतीति॥८॥

पदार्थ:-यह (वृत्रहा) मेघ को हनन करनेवाला (इन्द्र:) वायु (सोमपीतये) उत्तम उत्तम पदार्थों का पिलानेवाला तथा (मदाय) आनन्द के लिये (इत्) निश्चय करके (सवनम्) जिससे सके सुखों को सिद्ध करते हैं, जिससे (सुतम्) उत्पन्न हुए (विश्वम्) जगत् को (गच्छित) प्राप्त होते हैं।।८॥

भावार्थ:-वायु आकाश में अपने गमनागमन से सब संसार को प्राप्त होकर मेथ की वृष्टि करने वा सब से वेगवाला होकर सब प्राणियों को सुख युक्त करता है। इसके किना कोई प्राणी किसी व्यवहार को सिद्धि करने को समर्थ नहीं हो सकता॥८॥

अथेन्द्रशब्देनेश्वरगुणा उपदिश्यन्ते।

अब अगले मन्त्र में इन्द्र शब्द से ईश्वर के गुणों का उपदेश किया है-

सेमं नः काममा पृणा गोभिरश्वैः शतक्रतो। स्तर्वाम त्वा स्वाध्यः॥९॥३१॥

सः। इमम्। नः। कार्मम्। आ। पृणा। गोर्भिः। अश्वैः। शृतुक्रतो इर्ति शतक्रतो। स्तर्वाम। त्वा। सुऽआुर्ध्यः॥९॥

पदार्थ:-(स:) जगदीश्वर: (इमम्) धरमन्त्रै: प्रम्णा सत्यभावेनानुष्ठीयमानम् (न:) अस्माकम् (कामम्) काम्यत इष्यते सर्वेर्जर्मस्त्रम् (आ) अभितः (पृण) पूरय (गोभिः) इन्द्रियपृथिवीविद्याप्रकाशपशुभिः (अश्रीः) आश्रीमनहेतुभिरग्न्यादिभिस्तुरङ्गहस्त्यादिभिर्वा (शतक्रतो) शतमसंख्यातानि क्रतवः कर्माण्यनन्ता प्रज्ञा वा यस्य तत्सम्बुद्धौ सर्वकामप्रदेश्वर (स्तवाम) नित्यं स्तुवेम (त्वा) त्वाम् (स्वाध्यः) ये स्वाध्यायन्ति ते। अत्र स्वाङ् पूर्वाद् ध्यै चिन्तायाम् इत्यस्मात् ध्यायतेः सम्प्रसारणं च। (अष्टा॰३.२.१०८) अनेन विवय सम्प्रसारणं च॥९॥

अन्वय:-हे शाकिको जादीश्वर! यं त्वा स्वाध्यो वयं त्वां स्तवामः स्तुवेम स त्वं गोभिरश्वेर्नोऽस्माकं काममापृण स्मान्तात्प्रपूरय॥९॥

भावार्थः देश्वरस्यैतत्सामर्थ्यं वर्तते यत् पुरुषार्थिनो धार्मिकाणां मनुष्याणां स्वस्वकर्मानुसारेण सर्वेषां कामानूर्यं पतिं बरोति। यः सृष्टौ परमोत्तमपदार्थोत्पादनधारणाभ्यां सर्वान् प्राणिनः सुखयित तस्मात्स एव सर्वेनित्यमुपासभीयो नेतरः॥९॥

अस्य षोडशसूक्तार्थस्यर्तुसम्पादकानां सूर्य्यवाय्वादीनां यथायोग्यं प्रतिपादनात् पञ्चदशसूक्तार्थेन सह सङ्गतिस्स्तीति बोध्यम्। अष्टक-१। अध्याय-१। वर्ग-३०-३१

मण्डल-१। अनुवाक-४। सूक्त-१६

इदमपि सूक्तं सायणाचार्य्यादिभिर्यूरोपदेशवासिभिरध्यापकविलसनादिभिश्च व्याख्यातिमति॥९॥

विपरीताथे

इति षोडशं सूक्तमेकत्रिंशो वर्गश्च समाप्तः॥

पदार्थ: - हे (शतक्रतो) असंख्यात कामों को सिद्ध करनेवाले अनन्तविज्ञानयुक्त जगदीक्षर! जिस (त्वा) आपकी (स्वाध्य:) अच्छे प्रकार ध्यान करनेवाले हम लोग (स्तवाम) नित्य स्तृति करें, (स:) सो आप (गोभि:) इन्द्रिय, पृथिवी, विद्या का प्रकाश और पशु तथा (अश्वे:) शीघ्र चल्वने और चल्याने वाले अग्नि आदि पदार्थ वा घोड़े हाथी आदि से (न:) हमारी (कामम्) कामनाओं को (आपृण) सब ओर से पूरण कीजिये॥९॥

भावार्थ:-ईश्वर में यह सामर्थ्य सदैव रहता है कि पुरुषार्थी धर्मीत्मा मनुष्यों का उन के कर्मों के अनुसार सब कामनाओं से पूरण करना तथा जो संसार में परम उत्तम-उत्तम पदार्थों का उत्पादन तथा धारण करके सब प्राणियों को सुखयुक्त करता है, इससे सब मनुष्यों को उसी परमेश्वर की नित्य उपासना करनी चाहिये॥९॥

ऋतुओं के सम्पादक जो कि सूर्य्य और वायु आदि पदार्थीहै, उन के यथायोग्य प्रतिपादन से इस पन्द्रहवें सूक्त के अर्थ के साथ पूर्व सोलहवें सूक्त के अर्थ की सङ्गति समझनी चाहिये।

इस सूक्त का भी अर्थ सायणाचार्य्य आदि तथा यूरोपदेशवासी अध्यापक विलसन आदि ने विपरीत वर्णन किया है।।

यह सोहलहवां सूक्त और इकत्तीसवां वर्ग पूरा हुआ॥

अथास्य नवर्च्चस्य सप्तदशसूक्तस्य काण्वो मेधातिथिर्ऋषि:। इन्द्रावरुणौ देवते। १, ३, ७,९ गायत्री:; २ यवमध्याविराड्गायत्री; ४ पादिनचृद्गायत्री; ५ भुरिगार्च्ची गायत्री; ६

निचृद्गायत्री; ८ पिपीलिकामध्यानिचृद्गायत्री च छन्द:। षड्ज: स्वर:॥

तत्रेन्द्रावरुणगुणा उपदिश्यन्ते।

अब सत्रहवें सूक्त का आरम्भ है। इसके पहिले मन्त्र में इन्द्र और वरुण के गुणों की उपदेश किया है-

इन्द्रावर्रणयोर्हं सम्राजोरव आ वृणे। ता नो मृळात ईदृशे॥ १॥

इन्द्रावर्रुणयोः। अहम्। सम्ऽराजोः। अवः। आ। वृणे। ता। नः पूळातः। ईदृष्टे।। १॥

पदार्थ:-(इन्द्रावरुणयो:) इन्द्रश्च वरुणश्च तयो: सूर्य्याचन्द्रमसी:। इन्द्रे इति पदनामसु पठितम्। (निघं०५.४) वरुण इति च। (निघं०५.४) अनेन व्यवहान्द्रप्रापकौ गृह्येते। (अहम्) होमशिल्पादिकर्मानुष्ठाता (सम्राजो:) यौ सम्यग्राजेते दीप्येते तथो: (अव:) अवनं रक्षणम्। अत्र भावेऽसुन्। (आ) समन्तात् (वृणे) स्वीकुर्वे (ता) तौ। अश्रीसूर्ण सुलुग् इत्याकारादेश:। (न:) अस्मान् (मृळात:) सुखयत:। अत्र लड्थें लेट्। (ईदृशे) चक्रवृत्तिं सञ्चसुखस्वरूपे व्यवहारे॥१॥

अन्वय:-अहं ययो: सम्राजोरिन्द्रावरुणयोः स्काशादेव आवृणे तावीदृशे नोऽस्मान् मृडात:॥१॥ भावार्थ:-यथा प्रकाशमानौ जगदुपकारकौ सर्वसुखव्यवहारहेतु चक्रवर्त्तराज्यवद्रक्षकौ सूर्य्याचन्द्रमसौ वर्तेते तथैवाऽस्माभिरपि भृक्तित्यम्॥१/।

पदार्थ:-मैं जिन (सम्राजो:) अच्छी प्रकार प्रकाशमान (इन्द्रावरुणयो:) सूर्य्य और चन्द्रमा के गुणों से (अव:) रक्षा को (आवृणे) अच्छी प्रकार स्वीकार करता हूं, और (ता) वे (ईदृशे) चक्रवर्ति राज्य सुखस्वरूप व्यवहार में (न) हम लोगों को (मृळात:) सुखयुक्त करते हैं॥१॥

भावार्थ:-जैसे प्रकाशमान, संसार के उपकार करने, सब सुखों के देने, व्यवहारों के हेतु और चक्रवर्त्ति राजा के समान सब की उक्षा करनेवाले सूर्य्य और चन्द्रमा हैं, वैसे ही हम लोगों को भी होना चाहिये॥१॥

अथुन्त्रवरुणाभ्यां सह सम्प्रयुक्ता अग्निजलगुणा उपदिश्यने।

अब हुन्द्र और वरुण से संयुक्त किये हुए अग्नि और जल के गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है-

प्तारा हि स्थोऽवसे हवं विप्रस्य मार्वतः।

ध्वनीरां चर्षणीनाम्॥२॥

अष्टक-१। अध्याय-१। वर्ग-३२-३३

मण्डल-१। अनुवाक-४। सूक्त-१७

गनारा। हि। स्थः। अवसे। हर्वम्। विप्रस्य। माऽवतः। धुर्तारा। चुर्षुणीनाम्॥२॥

पदार्थ:-(गन्तारा) गच्छत इति गमनशीलौ। अत्र सुपां सुलुग्० इत्याकारादेश:। (हि) यद्धे (स्थ:) स्त:। अत्र व्यत्यय:। (अवसे) क्रियासिद्धचेषणायै (हवम्) जुहोति ददात्यादद्धित् यस्मिन् तं होमशिल्पव्यवहारम् (विप्रस्य) मेधाविन: (मावत:) मद्विधस्य पण्डितस्य। अत्र वतुष्पृक्रस्णे युष्पदस्मद्ध्यां छन्दिस सादृश्य उपसंख्यानम्। (अष्टा०५.२.३९) अनेन वार्तिकेनास्मच्छब्दात्सादृश्ये वतुप् प्रत्येयः। आ सर्वनामः। (अष्टा०६.३.९१) इत्याकारादेशश्च। (धर्तारा) कलाकौशलयन्त्रेषु योजितो होमरक्षणशिल्प-व्यवहारान् धरतस्तौ (चर्षणीनाम्) मनुष्यादिप्राणिनाम्। कृषेरादेश्च इत्र (उणा०२.१००) अनेन 'कृष'धातोरनि: प्रत्यय आदेश्चकारादेशश्च॥२॥

अन्वय:-यौ ये हि खल्विमे अग्निजले सम्प्रयुक्ते मावतो विप्रस्य हवं मन्तारौ स्थः स्तश्चर्षणीनां धर्तारा धारणशीले चात अहमेतौ स्वस्य सर्वेषां चावसे आवृणे॥ २०

भावार्थ:-पूर्वस्मान्मन्त्रात् 'आवृणे' इति क्रियापदस्यानुवर्त्तनम्। विद्विद्भिर्यदा कलायन्त्रेषु युक्त्या संयोजिते अग्निजले प्रेय्येते तदा यानानां शीघ्रगमनकारके क्ष्रि स्थितान्नों मनुष्यादिप्राणिनां पदार्थभाराणां च धारणहेत् सुखदायके च भवत इति॥२॥

पदार्थ:-जो (हि) निश्चय करके ये सम्प्रयाग किये हुए अग्नि और जल (मावतः) मेरे समान पण्डित तथा (विप्रस्य) बुद्धिमान् विद्वान् के (हिम्) पदार्थों का लेना-देना करानेवाले होम वा शिल्प व्यवहार को (गन्तारा) प्राप्त होते तथा (चिणिनाम्) पदार्थों के उठानेवाले मनुष्य आदि जीवों के (धर्तारा) धारण करनेवाले (स्थः) होते हैं, इससे में इनको अपने सब कामों की (अवसे) क्रिया की सिद्धि के लिये (आवणे) स्वीकार कर्षी हैं। शार्

भावार्थ:-पूर्वमन्त्र से इस्मान्त्र में 'आवृणे' इस पद का ग्रहण किया है। विद्वानों से युक्ति के साथ कलायन्त्रों में युक्त किये हुए अग्नि-जल जब कलाओं से बल में आते हैं, तब रथों को शीघ्र चलाने उनमें बैठे हुए मनुष्य आदि प्राणी पदार्थों के धारण कराने और सबको सुख देनेवाले होते हैं॥२॥

एवं माधितावेतौ किंहेतुकौ भवत इत्युपदिश्यते।

इस प्रकार साधे हुए थे द्वानों किस किसके हेतु होते हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है-

अनुकार्पे तर्पयेथामिन्द्रावरुण राय आ।

ता वां नेदिष्ठमीमहे॥ ३॥

<u>अप</u>ुरकामम्। तुर्पयेथाम्। इन्द्रावरुणा। रायः। आ। ता। वाम्। नेदिष्ठम्। <u>ईमहे</u>॥३॥

पदार्थ:-(अनुकामम्) कामं काममनु (तर्पयेथाम्) तर्पयेते। अत्र व्यत्ययो लडर्थे लोट् चि। (इन्द्रावरुणा) अग्निजले। अत्र सुपां सुलुग्॰ इत्याकारादेशो वर्णव्यत्ययेन हस्वत्वं च। (रायः) धनानि (आ) समन्तात् (ता) तौ। अत्रापि सुपां सुलुग्॰ इत्याकारादेशः। (वाम्) द्वावेतौ। अत्र व्यत्यकः) (नेदिष्ठम्) अतिशयेनान्तिकं समीपस्थम्। अत्र अन्तिकबाढयोर्नेदसाधौ। (अष्टा॰५.३.६३) अनेनान्तिकशब्दस्य नेदादेशः। (ईमहे) जानीमः प्राप्नुमः। ईङ् गतौ इत्यस्माद् बहुलं छन्दिसः इति शपो लुकि श्यनभावः॥३॥

अन्वय:-याविमाविन्द्रावरुणावनुकामं रायो धनानि तर्पयेथां तर्पयेते ता तौ वां द्वावतौ वयं नेदिष्ठमीमहे॥३॥

भावार्थ:-मनुष्येरेवं यो मित्रावरुणयोर्गुणान् विदित्वा क्रियायां संयोजिती बहूनि सुखानि प्रापयतस्तौ युक्त्या कार्य्येषु सम्प्रयोजनीया इति॥३॥

पदार्थ:-जो (इन्द्रावरुण) अग्नि और जल (अनुकामम्) हर एक कार्य्य में (राय:) धनों को देकर (तर्णयेथाम्) तृप्ति करते हैं, (ता) उन (वाम्) दोनों को हम लोग (नेदिष्ठम्) अच्छी प्रकार अपने निकट जैसे हो, वैसे (ईमहे) प्राप्त करते हैं॥३॥

भावार्थ:-मनुष्यों को योग्य है कि जिस प्रकार अभि और जल के गुणों को जानकर क्रियाकुशलता में संयुक्त किये हुए ये दोनों बहुत उत्तम-उत्तम सुखों को प्राप्त करें, उस युक्ति के साथ कार्य्यों में अच्छी प्रकार इनका प्रयोग करना चाहिसा ३॥

तदेतत्करणेन कि भवतीत्युपदिश्यते।

उक्त कार्य्य के करने से क्या होता है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है-

युवाकु हि शचीनां युवाकु सुपतीनाम्। भूयाम वाजदाव्याम्॥ हा।

युवाकु। हि। शचीनाम्। युवाकुं। सुऽम्तीनाम्। भूयामं। वाजुऽदाव्नाम्॥४॥

पदार्थ:-(युवाक्) मिश्रीभावम्। अत्र बाहुलकादौणादिकः काकुः प्रत्ययः। (हि) यतः (शचीनाम्) वाणीनां सत्कर्मणां वा। शचीति वाङ्नामसु पठितम्। निघं० १.११) कर्मनामसु च। (निघं०२.१) (युवाकु) पृथ्रमभावम्। अत्रोभयत्र सुपां सुलुग्० इति विभक्तेर्लुक। (सुमतीनाम्) शोभना मितर्येषां तेषां बिदुषास्। (भूयाम) समर्था भवेम। शिक लिङ् च। (अष्टा०३.३.१७२) इति लिङ्, बहुलं छन्दिस इत्रिप्रापो सुक् च। (वाजदाञाम्) वाजस्य विज्ञानस्यात्रस्य दातृणामुपदेशकानां वा॥४॥

अन्वय:-वर्य हि शचीनां युवाकु वाजदाव्नां सुमतीनां युवाकु भूयाम् समर्था भवेमात एतौ साध्यमारका अष्टक-१। अध्याय-१। वर्ग-३२-३३

मण्डल-१। अनुवाक-४। सूक्त-१७

भावार्थ:-मनुष्यै: सदाऽऽलस्यं त्यक्त्वा सत्कर्माणि सेवित्वा विद्वत्समागमो नित्यं कर्त्तव्यः। यतोऽविद्यादारिद्रये मूलतो नष्टे भवेताम्॥४॥

पदार्थ:-हम लोग (हि) जिस कारण (शचीनाम्) उत्तम वाणी वा श्रेष्ठ कर्मों के (युवाक्) मेल तथा (वाजदाव्नाम) विद्या वा अन्न के उपदेश करने वा देने और (सुमतीनाम्) श्रेष्ठ ब्रुद्धिवाले विद्वानों के (युवाकु) पृथग्भाव करने को (भूयाम) समर्थ होवें, इस कारण से इनको साधें॥४।

भावार्थ:-मनुष्यों को सदा आलस्य छोड़कर अच्छे कामों का सेवन तथा विद्वानों का समागम नित्य करना चाहिये, जिससे अविद्या और दिरद्रपन जड़-मूल से नष्ट हों॥४॥

पुन: कथंभूताविन्द्रावरुणावित्युपदिश्यते।

फिर इन्द्र और वरुण किस प्रकार के हैं, इस विषय का उपदेश असले महत्र में किया है-

इन्द्री: सहस्रदाञां वर्रुण: शंस्यानाम्।

क्रतुर्भवत्युक्थ्यः॥५॥३२॥

इन्द्रेः। सहस्रुऽदाव्याम्। वर्रुणः। शंस्यानाम्। क्रतुः। भवाति। उक्थ्र्यः॥५॥

पदार्थ:-(इन्द्र:) अग्निर्विद्युत् सूर्य्यो वा (सहस्रद्यान्त्राम्) यः सहस्रस्यासंख्यातस्य धनस्य दातॄणां मध्ये साधकतमः। अत्र आतो मनिन्० (अष्टा०३ १ %) अनेन विनिप्प्रत्ययः। (वरुणः) जलं वायुश्चन्द्रो वा (शंस्यानाम्) प्रशंसितुमर्हाणां पदार्थानां मध्ये स्तोतुम्हर्ः (क्रतुः) करोति कार्य्याणि येन सः। कृञः कतुः। (उणा०१.७७) अनेन 'कृञ'धातोः कतुः प्रत्युयः। (भवति) वर्तते (उक्थ्यः) यानि विद्यासिद्ध्यर्थे वक्तुं वाचियतुं वार्हाणि ते साधुः॥५॥

अन्वय:-मनुष्यैर्य इन्द्रो हि सहस्रदाञ्नां मध्ये क्रतुर्भवति वरुणश्च शंस्यानां मध्ये क्रतुर्भवति तस्मादयमुक्थ्योऽस्तीति बोध्यम् प्रा

भावार्थ:-अत्र पूर्वस्मिन्त्राद्धेरनुवृत्तिः। यतो यावन्ति पृथिव्यादीन्यन्नादिदानसाधननिमित्तानि सन्ति तेषां मध्येऽग्निविद्युत्सूर्य्या पुष्ट्या वृत्तन्ते, ये चैतेषां मध्ये जलवायुचन्द्रास्तत्तद्गुणैः प्रशस्या ज्ञातव्याः सन्तीति विदित्वा कर्मस् सम्प्रशोपिताः सन्तः क्रियासिद्धिहेतवो भवन्तीति॥५॥

इति द्वात्रिंशो वर्गः समाप्तः॥

पदार्थ: सब मनुष्यों को योग्य है कि जो (इन्द्र) अग्नि बिजुली और सूर्य्य (हि) जिस कारण (सहस्रदाव्याम) असंख्यात धन के देनेवालों के मध्य में (क्रतु:) उत्तमता से कार्य्यों को सिद्ध करनेवाले (भविति) होते हैं, तथा जो (वरुण:) जल, पवन और चन्द्रमा भी (शंस्यानाम्) प्रशंसनीय पदार्थों में उत्तम्ता से कार्य्यों के साधक हैं, इससे जानना चाहिये कि उक्त बिजुली आदि पदार्थ (उक्थ्य:) साधुता के सिद्धि करने में उत्तम हैं॥५॥

भावार्थ:-पहिले मन्त्र से इस मन्त्र में 'हि' इस पद की अनुवृत्ति है। जितने पृथिवी आदि वा अन्न आदि पदार्थ दान आदि के साधक हैं, उनमें अग्नि विद्युत् और सूर्य्य मुख्य हैं, इससे सबको चाहिये कि उनके गुणों का उपदेश करके उनकी स्तुति वा उनका उपदेश सुनें और करें, क्योंकि जो पृथिवी अनि पदार्थों में जल वायु और चन्द्रमा अपने-अपने गुणों के साथ प्रशंसा करने और जानने योग्य है वे क्रियाकुशलता में संयुक्त किये हुए उन क्रियाओं की सिद्धि करानेवाले होते हैं॥५॥

यह बत्तीसवां वर्ग समाप्त हुआ॥

पुनस्ताभ्यां मनुष्यै: किं कर्त्तव्यमित्युपदिश्यते।

फिर उन दोनों से मनुष्यों को क्या-क्या करना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में

किया है-

तयोरिदर्वसा वयं सनेम नि च धीमहि। स्यादुत प्ररेचनम्॥६॥

तयो:। इत्। अवसा। वयम्। सुनेमी नि। च। धीमहि। स्यात्। उत्। पुरुरेचेनम्॥६॥

पदार्थ:-(तयोः) इन्द्रावरुणयोर्गुणानाम् (इत्) एव (अवस्रा) विज्ञानेन तदुपकारकरणेन वा (वयम्) विद्वांसो मनुष्याः (सनेम) सुखानि भजेम (द्वि) नितर्प क्रियायोगे (च) समुच्चये (धीमिह) तां धारयेमिहि। अत्र बहुलं छन्दिस इति शपो लुक्। (स्थात) भक्ते (उत्) उत्प्रेक्षायाम् (प्ररेचनम्) प्रकृष्टतया रेचनं पुष्कलं व्ययार्थम्॥६॥

अन्वय:-वयं ययोर्गुणानामवसैव मानि सुखानि धनानि च सनेम तयोः सकाशात्तानि पुष्कलानि धनानि च निधीमहि तैः कोशान् प्रपूरयेम् यभ्योऽस्माकं प्ररेचनम्त स्यात्॥६॥

भावार्थ:-मनुष्यैरग्न्यादिपदार्थानासुपयोगैन पूर्णानि धनानि सम्पाद्य रक्षित्वा वर्द्धित्वा च तेषां यथायोग्येन व्ययेन राज्यवृद्ध्या क्विंहितमुत्रेयस्॥६॥

पदार्थ:-हम लोग जिन इन्द् और वर्लण के (अवसा) गुणज्ञान वा उनके उपकार करने से (इत्) ही जिन सुख और उत्तम धनों को (सनेम) सेवन करें (तयो:) उनके निमित्त से (च) और उनसे पाये हुए असंख्यात धन को (निधासिह) स्थापित करें अर्थात् कोश आदि उत्तम स्थानों में भरें, और जिन धनों से हमारा (प्रचेरनम्) अच्छी प्रकार अत्यन्त खरच (उत) भी (स्यात्) सिद्ध हो॥६॥

भावार्थ:-मनुष्यों को उचित है कि अन्न आदि पदार्थों के उपयोग से पूरण धन को सम्पादन और उसकी रक्षा वा उन्नित करके यथायोग्य खर्च करने से विद्या और राज्य की वृद्धि से सबके हित की उन्नित करनी चिह्निये॥६॥

कीदृशाय धनायेत्युपदिश्यते।

कैसे धन के लिये उपाय करना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है-

अष्टक-१। अध्याय-१। वर्ग-३२-३३

मण्डल-१। अनुवाक-४। सूक्त-१७

इन्द्रावरुण वाम्हं हुवे चित्राय राधंसे। अस्मान्सु जिग्युषंस्कृतम्॥७॥

इन्द्रावरुणा। वाम्। अहम्। हुवे। चित्राये। राधंसे। अस्मान्। सु। जि्ग्युषं:। कृतुम्॥७॥

पदार्थ:-(इन्द्रावरुणा) पूर्वोक्तौ। अत्र सुपां सुलुग्० इत्याकारादेशो वर्णव्यत्ययेन इस्वश्च। (वाम्) तौ। अत्र व्यत्ययः। (अहम्) (हुवे) आददे। अत्र व्यत्ययेनात्मनेपदं बहुलं छन्दिस इति श्रेपो लुक् लडुत्तमस्यैकवचने रूपम्। (चित्राय) अद्धुताय राज्यसेनाभृत्यपुत्रमित्रसुवर्णरत्नहस्त्यश्चादियुक्ताय (राधसे) राध्नुवन्ति संसेधयन्ति सुखानि येन तस्मै धनाय। राध इति धननामसु पठित्रम्। (निघं०२.१०) (अस्मान्) धार्मिकान् मनुष्यान् (सु) सुष्ठु (जिग्युषः) विजययुक्तान् (कृतम्) कुरुतः। अत्र लिड्थें लोट्, मध्यमस्य द्विवचने बहुलं छन्दिस इति शपो लुक् च॥७॥

अन्वय:-यौ सम्यक् प्रयुक्तावस्मान् सुजिग्युषः कृतं कुर्वती वा ताबिन्द्रावरुणौ चित्राय राधसेऽहं हुव आददे॥७॥

भावार्थः-ये मनुष्याः सुसाधितौ मित्रावरुणौ कार्स्सिषु योज्ञेषान्त ते विविधानि धनानि विजयं च प्राप्य सुखिनः सन्तः सर्वान् प्राणिनः सुखयन्ति॥७॥

पदार्थ:-जो अच्छी प्रकार क्रिया कुशलता में प्रभूग किये हुए (अस्मान्) हम लोगों को (सुजिग्युष:) उत्तम विजययुक्त (कृतम्) कर्ले हैं, (वामू) उन इन्द्र और वरुण को (चित्राय) जो कि आश्चर्य्यरूप राज्य, सेना, नौकर, पुत्र, मित्र, सोना, रुज़, हाथी, घोड़े आदि पदार्थों से भरा हुआ (राधसे) जिससे उत्तम-उत्तम सुखों को सिद्ध करते हैं उस सुख के लिये (अहम्) मैं मनुष्य (हुवे) ग्रहण करता हूं॥७॥

भावार्थ:-जो मनुष्य अच्छी प्रकार साधन किये हुए मित्र और वरुण को कामों में युक्त करते हैं, वे नाना प्रकार के धन आदि प्रदार्थ वा विजय आदि सुखों को प्राप्त होकर आप सुखसंयुक्त होते तथा औरों को भी सुखसंयुक्त करते हैं॥ ५॥

पुनस्ताभ्यां किं भवतीत्युपदिश्यते।

फिर उत्त से क्या-क्या सिद्ध होता है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है-

इन्द्रांबरुण रू नु वॉं सिषांसन्तीषु धीष्वा।

असम्भयं प्रामे यच्छतम्॥८॥

इन्ह्रावरुणा। नु। नु। वाम्। सिर्षासन्तीषु। धीषु। आ। अस्मभ्यंम्। शर्म। युच्छुतुम्॥८॥

पदार्थ:-(इन्द्रावरुणा) वायुजले सम्यक् प्रयुक्ते। पूर्ववदत्राकारादेशहस्वत्वे। (नु) क्षिप्रम्। न्विति क्षिप्रनामसु पठितम्। (निघं०२.१५) ऋचि तुनुघ० इति दीर्घः (नु) हेत्वपदेशे। (निरु०१.४) अनेन हेत्वर्थे नुः। (वाम्) तौ। अत्र व्यत्ययः। (सिषासन्तीषु) सनितुं सम्भक्तुमिच्छन्तीषु। जनसन्खनं (अष्टा०६.४.४२) अनेनानुनासिकस्याकारादेशः। (धीषु) दधित जना याभिस्तासु प्रजासु। धीरिति प्रज्ञानामसु पठितम्। (निघं०३.९) (आ) समन्तात् क्रियायोगे (अस्मभ्यम्) पुरुषार्थिभूमें विद्वद्भाः (शर्म) सर्वदुःखरितं सुखम्, शृणाति हिनस्ति दुःखानि यत्तत् (यच्छतम्) विस्तारयतः। अत्र पुरुषव्यत्ययो लडथें लोट् च॥८॥

अन्वय:-यौ सिषासन्तीषु धीषु नु शीघ्रं नु यतोऽस्मभ्यं शर्म अवच्छतमातनुतस्तस्माद्वां तौ मित्रावरुणौ कार्य्यसिद्धयर्थं नित्यमहं हुवे॥८॥

भावार्थ:-अत्र पूर्वस्मान्मन्त्राद् 'हुवे' इति पदम्मुवर्नते। ये मनुष्याः शास्त्रसंस्कारपुरुषार्थयुक्ताभिर्बुद्धिभिः सर्वेषु शिल्पाद्युत्तमेषु व्यवहारेषु मित्रावरुणौ सम्प्रयोज्यते त एवेह सुखानि विस्तारयन्तीति॥८॥

पदार्थ:-जो (सिषासन्तीषु) उत्तम कर्म करने को चिह्नि और (धीषु) शुभ अशुभ वृत्तान्त धारण करनेवाली बुद्धियों में (नु) शीघ्र (नु) जिस कारण (अस्पेश्यम्) पुरुषार्थी विद्वानों के लिये (शर्म) दु:खिवनाश करनेवाले उत्तम सुख का (आयच्छतम्। अच्छी प्रकार विस्तार करते हैं, इससे (वाम्) उन (इन्द्रावरुणा) इन्द्र और वरुण को कार्य्यों की मिद्धि के लिये में निरन्तर (हुवे) ग्रहण करता हूं॥८॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में पूर्व मन्त्र से 'हुवे' इस्म पद का ग्रहण किया है। जो मनुष्य शास्त्र से उत्तमता को प्राप्त हुई बुद्धियों से शिल्प अवि उत्तम व्यवहारों में उक्त इन्द्र और वरुण को अच्छी रीति से युक्त करते हैं, वे ही इस संसार में सुखों को फैलाते हैं॥८॥

एत्र्वीर्यथायोग्येगुणस्तवनं कर्त्तव्यमित्युपदिश्यते।

उक्त इन्द्र और वरुण के खायोग्य गुणकीर्तन करने की योग्यता का अगले मन्त्र में प्रकाश किया

प्र वामञ्जात सुष्टु तिरिद्धिकण् यां हुवे। यामृधार्थे सुधस्तुतिम्।। ९॥ ३३॥ ४॥

प्रा वार्षा अश्नोतु। सुऽस्तुति:। इन्द्रावरुणा। याम्। हुवे। याम्। ऋधार्थे इति। सुधऽस्तुतिम्॥९॥

प्रदर्शः - (प्र) प्रकृष्टार्थे क्रियायोगे (वाम्) यौ तौ वा। अत्र व्यत्ययः। (अश्नोतु) व्याप्नोतु (सुष्टुति शोभना चासौ गुणस्तुतिश्च सा (इन्द्रावरुणा) पूर्वोक्तौ। अत्रापि सुणां सुलुग्० इत्याकारादेशो वर्णव्यत्यये हस्वत्वं च। (याम्) स्तुतिम् (हुवे) आददे। अत्र व्यत्ययेनात्मनेपदं बहुलं छन्दिस इति शपो

अष्टक-१। अध्याय-१। वर्ग-३२-३३

मण्डल-१। अनुवाक-४। सुक्त-१७

लुक् च। (याम्) शिल्पक्रियाम् (ऋधाये) वर्धयतः। अत्र व्यत्ययो **बहुलं छन्दिस** इति विकरणाभावश्च (सधस्तुतिम्) स्तुत्या सह वर्त्तते ताम्। अत्र वर्णव्यत्ययेन हकारस्य धकारः॥९॥

अन्वय:-अहं यथात्रेयं सुष्टुतिः प्राश्नोतु प्रकृष्टतया व्याप्नोतु तथा हुवे वां यौ असूत्रावरुषौ यां सधस्तुतिमृधाथे वर्धयतस्तां चाहं हुवे॥९॥

भावार्थ:-मनुष्यैर्यस्य पदार्थस्य यादृशा गुणाः सन्ति तादृशान् सुविचारेण विदित्वा तेषुपकारः सदैव ग्राह्य इतीश्वरोपदेश:॥९॥

पूर्वस्य षोडशसूक्तस्यार्थानुयोगिनोर्मित्रावरुणार्थयोरत्र प्रतिपादनात्सस्वदशसूक्तार्थेन सह तदर्थस्य सङ्गतिरस्तीति बोध्यम्।

इदमपि सूक्तं सायणाचार्य्यादिभिर्यूरोपदेशवासिभिर्ध्यापकविलसनाख्यादिभिश्चान्यथैव व्याख्यातम्॥

इति चतुर्थोऽनुवाकः सप्तदशं सूक्तं त्रयस्त्रिंशो वर्पश्च समाप्तः॥

पदार्थ:-मैं जिस प्रकार से इस संसार में जिन इन्ह् और वरुण के गुणों की यह (सुष्टुति:) अच्छी स्तुति (प्राश्नोतु) अच्छी प्रकार व्याप्त होवे, उसको (हुके) ग्रहण करता हूं, और (याम्) जिस (सधस्तुतिम्) कीर्ति के साथ शिल्पविद्या को (वाम्) जो (इन्द्रम्बरुणों) इन्द्र और वरुण (ऋधाथे) बढ़ाते हैं, उस शिल्पविद्या को (हुवे) ग्रहण करता हूं॥॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को जिस पदार्थ के जैसे गुण हैं, उनको वैसे ही जानकर और उनसे सदैव उपकार प्रह्मि कुस्मी चाहिये, इस प्रकार ईश्वर का उपदेश है॥९॥

पूर्वीक्त सोलहवें सूक्त के अनुशोगी मित्र और वरुण के अर्थ का इस सूक्त में प्रतिपादन करने से इस सत्रहवें सूक्त के अर्थ सोलहवें सूक्त के अर्थ की सङ्गति करनी चाहिये।

इस सूक्त का भी अर्थ सायणाचार्य आदि तथा यूरोपदेशवासी विलसन आदि ने कुछ का कुछ ही वर्णन किया है।।

यह चौंशा/अनुवार्क, सत्रहवां सूक्त और तेतीसवां वर्ग समाप्त हुआ॥



अथाष्टादशस्य [नवर्चस्य] सूक्तस्य काण्वो मेधातिथिर्ऋषिः। १-३ ब्रह्मणस्पतिः; ४ बृहस्पतीन्द्रसोमाः; ५ बृहस्पतिदक्षिणे; ६-८ सदसस्पतिः; ९ सदसस्पतिनाराशंसौ च देवताः। १ विराड्गायत्री; २,७,९ गायत्री; ३,६,८ पिपीलिकामध्यानिचृद्गायत्री; ४ निचृद्गायत्री;

५ पादनिचृद्गायत्री च छन्दः। षड्जः स्वरः॥ तत्रादौ यजमानेनेश्वरप्रार्थना कीदृशी कार्य्येत्युपदिश्यते।

अब अठारहवें सूक्त का आरम्भ है। उसके पहले मन्त्र में यजमान ईश्वर की प्रार्थना कैसी करें, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है-

सोमानं स्वरंणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते।

कक्षीवन्तं य औशिजः॥ १॥

सोमार्नम्। स्वरंणम्। कृणुहि। ब्रह्मणुः। पुते। कुक्षीवन्तम्। यः। औष्ट्रिज्ः।।१॥

पदार्थ:-(सोमानम्) यः सवत्यैश्वर्यं करोतीति तं प्रज्ञानुष्ठातारम् (स्वरणम्) यः स्वरति शब्दार्थसम्बन्धानुपदिशति तम् (कृणुिह) सम्पादय। उतश्च प्रत्ययाच्छन्दो वा वचनम्। (अष्टा०६.४.१०६) इति विकल्पाद्धेलींपो न भवित। (ब्रह्मणः) वेदस्य (पते) स्वामिन्नीश्वर। षष्ट्याः पितपुत्रपृष्ठपरपदपयस्पोषेषु। (अष्टा०८.३.५३) इति स्त्रेण षष्ट्या विसर्जनीयस्य सकारादेशः। (कक्षीवन्तम्) याः कक्षासु कराङ्गुलिक्रियासु भवाः शिल्पिच्छास्ताः प्रशस्ता विद्यन्ते यस्य तम्। कक्षा इत्यङ्गुलिनामसु पिठतम्। (निघं०२.५) अत्र कक्षाशब्दाद्भ भवे छन्दिस इति यत्, ततः प्रशंसायां मतुप्। कक्ष्यायाः संज्ञायां मतौ सम्प्रसारणं कर्वव्यम्। अष्टा०६.१.३७) अनेन वार्त्तिकेन सम्प्रसारणम्। आसंदीवद० (अष्टा०८.२.१२) इति निपादम मिक्रास्य वकारादेशः। (यः) अहम् (औशिजः) य उशिजि प्रकाशे जातः स उशिक् तस्य विद्यावृतः पुत्र इष्ट।

इमं मन्त्रं निरुक्तकार एवं व्याख्यातवान्-सोमानं सोतारं प्रकाशनवन्तं कुरु ब्रह्मणस्पते कक्षीवन्तमिव य औशिजः। कक्षीवान् कक्ष्यावान्। औशिज उशिजः पुत्रः। उशिग्वष्टेः कान्तिकर्मणः। अऽपि त्वयं मनुष्यकक्ष स्वाभिप्रतः स्यात्। तं सोमानं सोतारं मां प्रकाशनवन्तं कुरु ब्रह्मणस्पते। (निरु०६.१०)॥१॥

अन्वय:-हे ब्रह्मणस्पते! योऽहमौशिजोऽस्मि तं मां सोमानं स्वरणं कक्षीवन्तं कृणुहि॥१॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। इह कश्चिद्विद्याप्रकाशे प्रादुर्भूतोमनुष्योऽस्ति स एवाध्यापकृरः सर्वेशिल्यविद्यासम्पादको भवितुमर्हति। ईश्वरोऽपीदृशमेवानुगृह्णाति।

🕰 मं मन्त्रं सोयणाचार्य्यः कल्पितपुराणेतिहासभ्रान्त्याऽन्यथैव व्याख्यातवान्॥१॥

पदार्थ:-(ब्रह्मणस्पते) वेद के स्वामी ईश्वर! (य:) जो मैं (औशिज:) विद्या के प्रकाश में संसार क्री किंदित होनेवाला और विद्वानों के पुत्र के समान् हूं, उस मुझको (सोमानम्) ऐश्वर्य्य सिद्ध करनेवाले अष्टक-१। अध्याय-१। वर्ग-३४-३५

मण्डल-१। अनुवाक-५। सुक्त-१८

यज्ञ का कर्ता (स्वरणम्) शब्द अर्थ के सम्बन्ध का उपदेशक और (कक्षीवन्तम्) कक्षा अर्थात् हाथ वा अङ्गुलियों की क्रियाओं में होनेवाली प्रशंसनीय शिल्पविद्या का कृपा से सम्पादन करनेवाल (क्रणहि) कीजिये॥१॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो कोई विद्या के प्रकाश में प्रसिद्ध मनुष्य है, वही पढ़ानेवाला और सम्पूर्ण शिल्पविद्या के प्रसिद्ध करने योग्य है। क्योंकि ईश्वर भी ऐसे ही मनुष्य को अपने अनुग्रह से चाहता है। इस मन्त्र का अर्थ सायणाचार्य्य ने किल्पत पुराण्/प्रन्थ प्रान्ति से कुछ का कुछ ही वर्णन किया है॥१॥

पुन: स कीदृश इत्युपदिश्यते।

फिर वह ईश्वर कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मिन्त्र में किया है-

यो रेवान् यो अमीवृहा वसुवित्पृष्टिवर्धनः।

स नै: सिषक्तु यस्तुर:॥२॥

यः। रेवान्। यः। अमीवहा। वसुऽवित्। पृष्टिऽवर्धनः सार्गान्तः। सुरः।। तुरः॥२॥

पदार्थ:-(य:) जगदीश्वरः (रेवान्) विद्याद्यन्तधनवान्। अत्र भूम्न्यर्थे मतुप्। रयेर्मतौ बहुलं सम्प्रसारणम्। (अष्टा॰६.१.३७) इति वार्तिकेन सम्प्रसारणम्। छन्दसीरः। (अष्टा॰८.२.१५) इति मकारस्य वकारः। (य:) सर्वरोगरहितः (अमीवृहाः) अविद्यादिरोगाणां हन्ता (वसुवित्) यो वसूनि सर्वाणि वस्तूनि वेति (पृष्टिवर्धनः) यः शरीरात्मनोः पृष्टिं बध्यतीति (सः) ईश्वरः (नः) अस्मान् (सिषक्तु) अतिशयेन सचयतु। अत्र 'सच'धातोः बहुलं छन्दिस इति शपः श्लुः। (यः) शीघ्रं सुखकारी (तुरः) तुरतीति। तुर त्वरणे इत्यस्मादृगुपधृत्वतिषः॥ २॥

अन्वय:-यो रेवान् यः पृष्टिवर्धनी यो वसुविदमीवहा यस्तुरो ब्रह्मणस्पतिर्जगदीश्वरोऽस्ति, स नोऽस्मान् विद्यादिधनै: सह स्थिन्तु अतिशयेन संयोजयतु॥२॥

भावार्थ:-ये मनुष्याः सत्यभाषणादिलक्षणामीश्वराज्ञामनुतिष्ठन्ति तेऽविद्यादिरोगरिहताः शरीरात्मपृष्टिमन्तः सन्तरचन्नवित्तिसन्यादिधनानि सर्वरोगहराण्यौषधानि च प्राप्नुवन्तीति॥२॥

पदार्थ:-(य:) जो जगदीश्वर (रेवान्) विद्या आदि अनन्त धनवाला, (य:) जो (पृष्टिवर्धनः) शरीर और आल्मा की पृष्टि बढ़ाने तथा (वसुवित्) सब पदार्थों का जानने (अमीवहा) अविद्या आदि रोगों का नाश करने तथा (यः) जो (तुरः) शीघ्र सुख करनेवाला वेद का स्वामी जगदीश्वर है, (सः) सो (नः) हम लोगूों को विद्या-आदि धनों के साथ (सिषक्तु) अच्छी प्रकार संयुक्त करे॥२॥

भावार्थ:-जो मनुष्य सत्यभाषण आदि नियमों से संयुक्त ईश्वर की आज्ञा का अनुष्ठान करते हैं, वे अविद्या आदि रोगों से रहित और शरीर वा आत्मा की पृष्टिवाले होकर चक्रवर्ति राज्य आदि धन तथा सब रोगों की हरनेवाली ओषिधयों को प्राप्त होते हैं॥२॥

अथेश्वरप्रार्थनोपदिश्यते।

अगले मन्त्र में ईश्वर की प्रार्थना का प्रकाश किया है-

मा नः शंसो अर्रम्हो धूर्तिः प्रणुङ् मर्त्यस्य। रक्षा णो ब्रह्मणस्पते॥३॥

मा। नु:। शंस्री:। अर्रकष:। धूर्ति:। प्रणीक्। मर्त्त्यीस्य। रक्षी नु:। ब्रह्मणुस्पते॥ ३००

पदार्थ:-(मा) निषेधार्थे (न:) अस्माकम् (शंसः) शंसन्ति पूत्र सः (शर्माः) अदातुः। रा दाने इत्यस्मात्कवसुस्ततः षष्ट्येकवचनम्। (धूर्त्तः) हिंसकः (प्रणक्) नश्यतुः अत्र लोडर्थे लुङ्। मन्त्रे घसह्वरणश० (अष्टा०२.४.८०) अनेन सूत्रेण च्लेर्लुक्। (मत्येस्य) मनुष्यस्य (रक्ष) पालय। द्वयचोऽतिस्तङ इति दीर्घः। (नः) अस्मानस्माकं वा (ब्रह्मणः) वेदस्य ब्रह्माण्डस्य वा (पते) स्वामिन्। षष्ट्याः पति० विसर्जनीयस्य सत्वम्॥३॥

अन्वयः-हे ब्रह्मणस्पते जगदीश्वर! त्वमररुषे मर्त्त्र्यस्य सकाशान्नोऽस्मान् रक्ष, यतः स नोऽस्माकं मध्ये कश्चिद्धूर्त्तिर्मनुष्यो न भवेत्, भवत्कृपयाऽस्मृत्विं शंसो मृष्रप्रणक् कदाचिन्मा नश्यतु॥३॥

भावार्थ:-नैव केनचिन्मनुष्येण धूर्तस्य पनुष्यास्य कदाचित्सङ्गः कर्त्तव्यः। न चैवान्यायेन कस्यचिद्धिंसनं कर्त्तव्यम्, किन्तु सर्वैः सर्वस्य न्यायेनैव रक्षा विधेयेति॥३॥

पदार्थ: - हे (ब्रह्मणस्पते) वेद्र हा ब्रह्मण्ड के स्वामी जगदीश्वर! आप (अररुष:) जो दान आदि धर्मरहित मनुष्य है, उस (मर्त्यस्य)(मनुष्य के सम्बन्ध से (न:) हमारी (रक्ष) रक्षा कीजिये, जिससे कि वह (न:) हम लोगों के बीच में कोई मनुष्य (धूर्ति:) विनाश करनेवाला न हो और आपकी कृपा से जो (न:) हमारा (शंस:) प्रशंसनीय यज्ञ अर्थात् ल्यवहार है, वह (मा पृणक्) कभी नष्ट न होवे॥३॥

भावार्थ:-किसी मिनुत्य को धूर्त अर्थात् छल कपट करनेवाले मनुष्य का संग न करना तथा अन्याय से किसी की हिसा ज करनी चाहिये, किन्तु सब को सब की न्याय ही से रक्षा करनी चाहिये॥३॥ 🛆

अथेन्द्रादिकृत्यान्युपदिश्यन्ते।

अगले मन्त्र में इन्द्रादिकों के कार्य्यों का उपदेश किया है–

स घा वीरो न रिष्यति यमिन्द्रो ब्रह्मणस्पतिः।

सोमी हिनोति मर्त्यम्॥४॥

अष्टक-१। अध्याय-१। वर्ग-३४-३५

मण्डल-१। अनुवाक-५। सुक्त-१८

सः। घु। वीरः। न। रिष्युति। यम्। इन्द्रीः। ब्रह्मणः। पतिः। सोमीः। हिनोति। मर्त्यम्॥४॥

पदार्थ:-(स:) इन्द्रो बृहस्पितः सोमश्च (घ) एव। ऋचि तुनुघ० इति दीर्घः। (विरः) अजिल व्याप्नोति शत्रुबलानि यः (न) निषेधार्थे (रिष्यति) नश्यति (यम्) प्राणिनम् (इन्द्रः) व्ययुः (बृह्मणः) ब्रह्माण्डस्य (पितः) पालियता परमेश्वरः (सोमः) सोमलतादिसमूहरसः (हिनोति) वर्धयि (मर्त्यम्) मनुष्यम्॥४॥

अन्वय:-इन्द्रो ब्रह्मणस्पितः सोमश्च यं मर्त्यं हिनोति स वीरो न घ रिष्ट्रिति नैवर्धेतनश्यिति। ४॥ भावार्थः-ये वायुविद्युत्सूर्य्यसोमौषधगुणान् सङ्गृह्य कार्य्याणि सम्बयन्ति न ते खलु नष्टसुखा भवन्तीति॥४॥

पदार्थ: - उक्त इन्द्र (ब्रह्मणस्पित:) ब्रह्माण्ड का पालन करनेवाला जगदीश्वर और (सोम:) सोमलता आदि ओषधियों का रससमूह (यम्) जिस (मर्त्यम्) सेनुष्य आदि प्राणी को (हिनोति) उन्नतियुक्त करते हैं, (स:) वह (वीर:) शत्रुओं का जीतनेवाला बीर पुरुष (न घ रिष्यिति) निश्चय है कि वह विनाश को प्राप्त कभी नहीं होता॥४॥

भावार्थ:-जो मनुष्य वायु, विद्युत्, सूर्य्य और साम आदि ओषधियों के गुणों को ग्रहण करके अपने कार्य्यों को सिद्ध करते हैं, वे कभी दुखी नहीं होते। हो

कथं ते रक्षका भवन्तीत्युपदिश्यते।

कैसे वे रक्षा करनेवाले होते हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है-

त्वं तं ब्रह्मणस्पते सोम् इन्द्रेश्च मार्थम्।

दक्षिणा पात्वंहंसः॥५॥३४०

त्वम्। तम्। ब्रह्मणुः। पुते। सोमः। इन्द्रेः। च। मर्त्यम्। दक्षिणा। पातु। अंहंसः॥५॥

पदार्थ:-(त्वम्) जग्दीशः (तम्) यज्ञानुष्ठातारम् (व्रह्मणः) ब्रह्माण्डस्य (पते) पालकेश्वर (सोमः) सोमलताद्योषिक्समृहः (इत्तः) वायुः (च) समुच्चये (मर्त्यम्) विद्वांसं मनुष्यम् (दक्षिणा) दक्षन्ते वर्धन्ते यया सा। अत्र दुदक्षिण्यामिनन्। (उणा०२.४९) इतीनन्प्रत्ययः। (पातु) पाति। अत्र लडर्थे लोट्। (अंहसः) पापातूरा अत्र अम रोगे इत्यस्मात् अमेर्हुक् च। (उणा०४.२२०) अनेनासुन्प्रत्ययो हुगागमश्च॥५/।

अन्वय:-हे ब्रह्मणस्पते! त्वमंहसो यं पासि तं मर्त्यं सोम इन्द्रो दक्षिणा च पातु पाति॥१५॥ पावार्थ:-ये मनुष्या अधर्माद् दूरे स्थित्वा स्वेषां सुखवृद्धिमिच्छन्ति ते परमेश्वरमुपास्य सोमिमन्द्रं दक्षिणां च युष्त्या सेवयन्तु॥५॥

इति चतुस्त्रिशो वर्गः सम्पूर्णः॥

पदार्थ:-हे (ब्रह्मणस्पते) ब्रह्माण्ड के पालन करनेवाले जगदीश्वर! (त्वम्) आप (अहंसः) पीपों से जिसको (पातु) रक्षा करते हैं, (तम्) उस धर्मात्मा यज्ञ करनेवाले (मर्त्यम्) विद्वान् मनुष्य की (सोमः) सोमलता आदि ओषधियों के रस (इन्द्रः) वायु और (दक्षिणा) जिससे वृद्धि को प्राप्त होते हैं, के सब (पातु) रक्षा करते हैं॥५॥

भावार्थ:-जो मनुष्य अधर्म से दूर रहकर अपने सुखों के बढ़ाने की इच्छू करते हैं, वे ही परमेश्वर के सेवक और उक्त सोम, इन्द्र और दक्षिणा इन पदार्थों को युक्ति के साथ सेवन कर सकते हैं॥५॥

यह चौंतीसवां वर्ग पूरा हुआ॥

अथेन्द्रशब्देन परमेश्वरगुणा उपदिश्याते।

अगले मन्त्र में इन्द्र शब्द से परमेश्वर के गुणों का उपदेश किया है

सर्दस्पित्पद्धतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम्।

सुनिं मेधामयासिषम्॥६॥

सर्दसः। पतिम्। अद्धुतम्। प्रियम्। इन्द्रस्य। काम्यम्। सुनिम्। मुखीम्। अयासिष्पम्॥६॥

पदार्थ:-(सदसः) सीदन्ति विद्वांसो धार्मिका स्याम्धीशा यस्मिँस्तत्सदः सभा तस्य। अत्राधिकरणेऽसुन्। (पतिम्) स्वामिनम् (अद्भुतम्) आश्चर्य्यगुणस्वभावस्वरूपम्। अदिभुवो डुतच्। (उणा०५.१) अनेन 'भू'धातोरद्यपपदे डुतच् प्रत्ययः। (प्रियम्) प्रीणाति सर्वान् प्राणिनस्तम् (इन्द्रस्य) जीवस्य (काम्यम्) कमनीयम् (सिनम्) प्राप्पुण्यामां विभागेन फलप्रदातारम्। खनिकष्यज्यसि० (उणा०४.१४५) अनेन 'सन'धातोरिः प्रत्ययं (मेक्सम्) धारणावतीं बुद्धिम् (अयासिषम्) प्राप्नुयाम्॥६॥

अन्वय:-अहमिन्द्रस्य काम्यं सूनिं प्रियमद्भुतं सदसस्पतिं परमेश्वरमुपास्य सभाध्यक्षं प्राप्य मेधामयासिषं बुद्धिं प्राप्नुयाम्॥६०

भावार्थ:-ये मनुष्याः सर्वशक्तिम्न सर्वाधिष्ठातारं सर्वानन्दप्रदं परमेश्वरसुपासते, ये च सर्वोत्कृष्टगुणस्वभावपरोपकारिणं सुभापतिं प्राप्नवन्ति त एव सर्वशास्त्रबोधिक्रयायुक्तां धियं प्राप्य पुरुषार्थिनो विद्वांसश्च भूत्वा सुर्खिनो भवन्तीति॥६॥

पदार्थ: में (इन्द्रस्य) जो सब प्राणियों को ऐश्वर्य देने (काम्यम्) उत्तम (सिनम्) पाप-पुण्य कर्मों के यथायाय फूल देने और (प्रियम्) प्राणियों को प्रसन्न करानेवाले (अद्भुतम्) आश्चर्य्यमय गुण और स्वभाव स्वर्भेष (सदसस्पितम्) और जिसमें विद्वान् धार्मिक न्याय करनेवाले स्थित हों, उस सभा के स्वामी यरमेश्वर की उपासना और सब उत्तम गुण स्वभाव परोपकारी सभापित को प्राप्त होके (मेधाम्) उत्तम को धारण करनेवाली बुद्धि को (अयासिषम्) प्राप्त होऊं॥६॥

अष्टक-१। अध्याय-१। वर्ग-३४-३५

मण्डल-१। अनुवाक-५। सूक्त-१८

भावार्थ:-जो मनुष्य सर्वशक्तिमान् सबके अधिष्ठाता और सब आनन्द के देनेवाले परमेश्वर की उपासना करते और उत्कृष्ट न्यायाधीश को प्राप्त होते हैं, वे ही सब शास्त्रों के बोध से प्रसिद्ध कियाओं से युक्त बुद्धियों को प्राप्त और पुरुषार्थी होकर विद्वान् होते हैं॥६॥

स एव सर्वं जगद्रचयतीत्युपदिश्यते।

वहीं सब जगत् को रचता है, इसका उपदेश अगले मन्त्र में किया 🎉

यस्मादृते न सिध्यति युज्ञो विपृश्चितश्चन। स धीनां योगीमन्वति॥७॥

यस्मात्। ऋते। ना सिर्ध्यति। युज्ञः। विषु:ऽचितः। चुन। सः। धीनाम्। योगम्। ब्रुन्वित्॥७॥

पदार्थ:-(यस्मात्) परमेश्वरात् (ऋते) विना (न) निषेधे (सिध्यति) निष्पद्यते (यज्ञः) सङ्गतः संसारः (विपश्चितः) अनन्तविद्यावतः (चन) कदाचित् (सः) भगदिश्वरः (धीनाम्) प्रज्ञानां कर्मणां वा (योगम्) संयोजनम् (इन्वति) व्याप्नोति जानाति वा। इन्वतीति व्याप्तिकर्मसु पठितम्। (निघं०२.१८) गतिकर्मसु च। (निघं०२.१४)॥७॥

अन्वयः-हे मनुष्या! यस्माद्विपश्चितः सर्वशक्तिमतो जगदीश्वरादृते यज्ञश्चन न सिध्यति स सर्वप्राणिमनुष्याणां धीनां योगमिन्वति॥७॥

भावार्थ:-व्यापकस्येश्वरस्य व्याप्यस्य सर्वस्य जुगतश्च द्वयोर्नित्यसम्बन्धोऽस्ति। स एव सर्वं जगद्रचियत्वा धृत्वा सर्वेषां बुद्धीनां वेष्ट्राया बिज्ञाता सन् सर्वेभ्यः प्राणिभ्यस्तत्तत्कर्मानुसारेण सुखदु:खात्मकं फलं प्रददाति। नैव कृष्ट्रियत्नीश्वरं स्वभावसिद्धमनिधिष्ठातृकं जगद्भवितुमर्हित, जडानां विज्ञानाभावेन यथायोग्यनियमेनोत्पत्तुमनिहत्वातु॥७॥

पदार्थ: - हे मनुष्यो! (यस्मात्) जिस् (विपश्चित:) अनन्त विद्या वाले सर्वशिक्तिमान् जगदीश्वर के (ऋते) विना (यज्ञ:) जो कि कृष्टिगोचर संस्रोर है, सो (चन) कभी (न सिध्यित) सिद्ध नहीं हो सकता, (स:) वह जगदीश्वर सब मनुष्यों की (धीनाम्) बुद्धि और कर्मों को (योगम्) संयोग को (इन्वित) व्याप्त होता वा जानता है॥७॥

भावार्थ: न्यापक ईश्वर सब में रहने वाले और व्याप्य जगत् का नित्य सम्बन्ध है। वहीं सब संसार को रचकर तथा धारण करके सब की बुद्धि और कर्मों को अच्छी प्रकार जानकर सब प्राणियों के लिये उनके शुभ कर्मों के अनुसार सुख दु:खरूप फल को देता है। कभी ईश्वर को छोड़ के अपने आप स्त्रभावमात्र से सिद्ध होनेवाला अर्थात् जिसका कोई स्वामी न हो ऐसा संसार नहीं हो सकता, क्योंकि जड़ पदार्थों के अचेतन होने से यथायोग्य नियम के साथ उत्पन्न होने की योग्यता कभी नहीं होती॥ औ

२०६

ऋग्वेदभाष्यम्

पुनः कीदृशः स यज्ञ इत्युच्यते।

फिर वह यज्ञ कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है-

आर्द्ध्नोति हुविष्कृतिं प्राञ्चं कृणोत्यध्वरम्।

होत्रा देवेषु गच्छति॥८॥

आत्। ऋध्नोति। हुवि:ऽकृतिम्। प्राञ्चम्। कृणोति। अध्वरम्। होत्रां। देवेषुं। गुच्छुत्। टा।

पदार्थ:-(आत्) समन्तात् (ऋध्नोति) वर्धयति (हविष्कृतिम्) हविषां कृतिः करणं यस्य तम्। अत्र सह सुपा इति समासः। (प्राञ्चम्) यः प्रकृष्टमञ्चित प्राप्नोति तम् (कृणोति) करोति (अध्वरम्) क्रियाजन्यं जगत् (होत्रा) जुह्वति येषु यानि तानि। अत्र शेश्छन्दिस बहुला इति) लोपः। हुयामाश्रु० (उणा०४.१७२) अनेन 'हु'धातोस्त्रन् प्रत्ययः। (देवेषु) दिव्यगुणेषु (गर्न्छति) प्राप्नोति॥८॥

अन्वय:-सर्वज्ञः सदसस्पतिर्देवोऽयं प्राञ्चं हिवष्कृतिमध्वरं होत्रोषि हुवनानि कृणोत्यादृध्नोति स पुनर्देवेषु दिव्यगुणेषु गच्छति॥८॥

भावार्थ:-यतः परमेश्वरः सकलं जगद्रचयित तस्मत्सर्वे पदार्श्वाः परस्परं योजनेन वर्धन्त एते क्रियामये शिल्पविद्यायां च सम्यक् प्रयोजिता महान्ति सुख्याम् जनभूजीति॥८॥

पदार्थ:-जो उक्त सर्वज्ञ सभापित देव परमेश्वर (प्राञ्चम्) सब में व्याप्त और जिस को प्राणी अच्छी प्रकार प्राप्त होते हैं, (हिविष्कृतिम्) होम करने योग्य प्रदार्थों का जिसमें व्यवहार और (अध्वरम्) क्रियाजन्य अर्थात् क्रिया से उत्पन्न होने वाले जमत्रूप्य यज्ञ में (होत्राणि) होम से सिद्ध करानेवाली क्रियाओं को (कृणोति) उत्पन्न करता तथ्य (आदृष्ट्मोक्नि) अच्छी प्रकार बढ़ाता है, फिर वही यज्ञ (देवेषु) दिव्य गुणों में (गच्छति) प्राप्त होता है, दिर्ग

भावार्थ:-जिस कारण परमेश्वर एकल संसार को रचता है, इससे सब पदार्थ परस्पर अपने-अपने संयोग में बढ़ते और ये पदार्थ क्रियास्ययज्ञ और शिल्पविद्या में अच्छी प्रकार संयुक्त किये हुए बड़े-बड़े सुखों को उत्पन्न करते हैं।।८॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते।

फिर वह केमा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है-

नराशंसं सुधृष्टुम्मपुष्यं सप्रथस्तमम्।

दिवो न सद्भीपखसम्॥९॥३५॥

नुतुशंसम्। पुऽधृष्टेमम्। अपेश्यम्। सुप्रर्थःऽतमम्। द्विवः। न। सद्गंऽमखसम्॥९॥

पदार्थ:-(नराशंसम्) नरैरवश्यं स्तोतव्यस्तम्। नराशंसो यज्ञ इति कात्थक्यो नरा अस्मिन्नाभीनाः शंसन्त्यग्निरिति शाकपूणिर्नरै: प्रशस्यो भवति। (निरु०८.६) (सुधृष्टमम्) सुष्टु सकलं अष्टक-१। अध्याय-१। वर्ग-३४-३५

मण्डल-१। अनुवाक-५। सूक्त-१८

जगद्धारयित सोऽतिशयितस्तम् (अपश्यम्) पश्यामि। अत्र लडर्थे लङ्। (सप्रथस्तमम्) यः प्रथोभिर्विस्तृतैराकाशादिभिस्सहाभिव्याप्तो वर्तते सोऽतिशयितस्तम् (दिवः) सूर्य्यादिप्रकाशास्त्र (सद्ममखसम्) सीदन्ति यस्मिन् तत्सद्म जगत् तन्मखः प्राप्तं यस्मिन्निति॥९॥

अन्वय:-अहं सूर्य्यादिप्रकाशान् सद्ममखसिमव सप्रथस्तमं सुधृष्टमं नूर्राश्रंसं सदसस्पतिं परमेश्वरमपश्यं पश्यामि तथैव यूयमपि कुरुत॥९॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। यथा मनुष्य: सर्वतो विस्तृतं सूर्य्यादिष्ट्रकारो पश्यित, तथैव सर्वतोऽभिव्याप्तं ज्ञानप्रकाशं परमेश्वर ज्ञात्वा विस्तृतसुखो भवतीति। अत्र स्प्त्रम्मन्त्रात् 'सदसस्पित'रिति पदमनुवर्तते॥९॥

पूर्वेण सप्तदशसूक्तार्थेन मित्रावरुणाभ्यां सहिनुयोगित्वास्त्र बृहस्पत्याद्यर्थानां प्रतिपादनादष्टादशसूक्तार्थस्य सङ्गतिरस्तीति बोध्यम्।

इदमपि सूक्तं सायणाचार्य्यादिभिर्यूरोपदेशनिवासिभिर्विलस्मादिभिरचान्यथैव व्याख्यातम्॥

इत्यष्टादशं सूक्तं पञ्चित्रंशो वर्ग्श्च समाप्त्रः १॥

पदार्थ:-मैं (न) जैसे आकाशमय सूर्व्यादिकों के प्रकाश में (सद्ममखसम्) जिसमें प्राणी स्थिर होते और जिसमें जगत् प्राप्त होता है, (सप्रथस्तमम्) जो बड़े बड़े आकाश आदि पदार्थों के साथ अच्छी प्रकार व्याप्त (सुधृष्टमम्) उत्तमता से सब संस्पर्ध को धारण करने (नराशंसम्) सब मनुष्यों को अवश्य स्तुति करने योग्य पूर्वोक्त (सदसस्पतिम्) सभापित् परमेश्वर को (अपश्यम्) ज्ञानदृष्टि से देखता हूं, वैसे तुम भी सभाओं के पित को प्राप्त होके नस्य कि सक्ष्णेप्रजा का पालन करके नित्य दर्शन करो॥९॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालक्कार है। जैसे मनुष्य सब जगह विस्तृत हुए सूर्य्यादि के प्रकाश को देखता है, वैसे ही सब जगह व्याप्त जासे प्रकाशरूप परमेश्वर को जानकर सुख के विस्तार को प्राप्त होता है। इस मन्त्र में सातवें मुख से 'सदसस्प्रतिम्' इस पद की अनुवृत्ति जाननी चाहिये॥९॥

पूर्व सत्रहवें सूक्त के अर्थ के साथ मित्र और वरुण के साथ अनुयोगि बृहस्पति आदि अर्थों के प्रतिपादन से इस अठारहवें सूक्त के अर्थ की सङ्गति जाननी चाहिये।

यह भी सूक्त सायणाज्यर्थ्य आदि और यूरोपदेशवासी विलसन आदि ने कुछ का कुछ ही वर्णन

यह अठारहवां सूक्त और पैंतीसवां वर्ग पूरा हुआ॥

अथ नवर्च्चस्यैकोनविंशस्य सूक्तस्य काण्वो मेधातिथिर्ऋषिः। अग्निर्मरुतश्च देवताः। १, ३-८

गायत्री; २ निचृद्गायत्री; ९ पिपीलिकामध्यानिचृद्गायत्री च छन्दः। षड्जः स्वरः॥ तत्रादौ भौतिकाग्निगुणा उपदिश्यन्ते।

अब उन्नीसवें सूक्त का आरम्भ है। उसके पहले मन्त्र में अग्नि के गुणों का उपदेश किया है-

प्रति त्यं चारुमध्वरं गोपीथाय प्र हूयसे।

मुरुद्धिरम्न आ गीहि॥ १॥

प्रति। त्यम्। चार्रुम्। अध्वरम्। गोऽपीथार्य। प्र। ह्र्यसे। मुरुत्ऽभिः। अग्ने। आ। गुह्नि। ।।

पदार्थ:-(प्रति) वीप्सायाम् (त्यम्) तम् (चारुम्) श्रेष्ठम् (अध्यारम्) यज्ञम् (गोपीथाय) पृथिवीन्द्रियादीनां रक्षणाय। निशीथगोपीथावगथा:। (उणा०२.९) असैनायं निर्णितित:। (प्र) प्रकृष्टार्थे (हूयसे) अध्वरसिद्ध्यर्थं शब्द्यते। अत्र व्यत्यय:। (मरुद्धि:) वायुविशेषे: सह (अग्ने) भौतिक: (आ) समन्तात् (गिह्) गच्छति। अत्र व्यत्ययो लड्थें लोट्। बहुलं छन्द्रीस् इति श्रेष्ठो लुक् च॥१॥

अन्वय:-योऽग्निर्मरुद्धिः सहागिह समन्तात्प्राप्नोति स्विद्विद्धिस्यं तं चारुमध्वरं प्रति गोपीथाय प्रहूयसे प्रकृष्टतया शब्द्यते॥१॥

भावार्थ:-यो भौतिकोऽग्निः प्रसिद्धविद्युदूपेण वासुभ्यः प्रदीप्यते सोऽयं विद्वद्भिः प्रशस्तबुद्ध्या प्रतिक्रियासिद्धिः सर्वस्य रक्षणाय तद्गुणज्ञानपुरः सम्पुष्टेष्ट्रव्यो श्रोतव्यश्चेति॥१॥

पदार्थ:-जो (अग्ने) भौतिक अग्नि (क्ष्मिह्दः) ब्रिशेष पवनों के साथ (आगिह) सब प्रकार से प्राप्त होता है, वह विद्वानों की क्रियाओं से (त्यम्) अक्त (चारुम् अध्वरम् प्रति) प्रत्येक उत्तम-उत्तम यज्ञ में उनकी सिद्धि वा (गोपीथाय) अनेक प्रकार की रक्षा के लिये (प्रहूयसे) अच्छी प्रकार क्रिया में युक्त किया जाता है॥१॥

भावार्थ:-जो यह भौतिक अग्नि प्रसिद्ध सूर्य्य और विद्युत्रूप करके पवनों के साथ प्रदीप्त होता है, वह विद्वानों की प्रशंसनीय बुद्धि से हर एक क्रिया की सिद्धि वा सबकी रक्षा के लिये गुणों के विज्ञानपूर्वक उपदेश करना वा सुननार्णाहिये॥१॥

अथाग्निशब्देनेश्वरभौतिकगुणा उपदिश्यन्ते।

अगले पन्त्र में अरिन शब्द से ईश्वर और भौतिक अग्नि के गुणों का उपदेश किया है-

नुहि दुवा ने मत्यों महस्तव क्रतुं परः।

मुरुद्धिरम् आ गीह॥२॥

नेहि। देवः। न। मर्त्यः। महः। तर्व। क्रतुंम्। पुरः। मुरुत्ऽर्भिः। अग्ने। आ। गृहि॥२॥

अष्टक-१। अध्याय-१। वर्ग-३६-३७

मण्डल-१। अनुवाक-५। सुक्त-१९

पदार्थ:-(निह) प्रतिषेधार्थे (देव:) विद्वान् (न) निषेधार्थे (मर्त्य:) अविद्वान् मनुष्यः (महः) मिहमा (तव) परमात्मनस्तस्याग्नेर्वा (क्रतुम्) कर्म (परः) प्रकृष्टगुणः (मरुद्धिः) गणैः सहि अपने) विज्ञानस्वरूपेश्वर भौतिकस्य वा (आ) समन्तात् (गिह) गच्छ गच्छित वा। अत्र बहुलं छ्रस्रीम इति श्रेपो लुक्। अनुदात्तोपदेश० इत्यनुनासिकलोपः॥२॥

अन्वय:-हे अग्ने! त्वं कृपया मरुद्धिः सहागिह विज्ञातो भव यस्य तव प्ररी महो महिम्मस्ति तं क्रतुं तव कर्म सम्पूर्णिमयत्तया निह कश्चिद्देवो न च मनुष्यो वेत्तुमर्हतीत्येकः।

यस्य भौतिकाग्नेः परो महो महिमा क्रतुं कर्म प्रज्ञां वा प्रापयित यं न देवो न मर्त्यो गुणेयत्तया परिच्छेतुमर्हित सोऽग्निर्मरुद्धिः सहागिह समन्तात्प्राप्नोतीति द्वितीयः॥२॥

भावार्थ:-नैव परमेश्वरस्य सर्वोत्तमस्य महिम्नः कर्मणश्रम्भानन्तत्वात् कश्चिदेतस्यान्तं गन्तुं शक्नोति, किन्तु यावत्यौ यस्य बुद्धिविद्ये तावन्तं समाधियोगयुक्तेन प्राणाचामेनान्तर्य्यामिरूपेण स्थितं वेदेषु सृष्ट्यां भौतिकं च मरुतः स्वस्वरूपगुणा यावन्तः प्रकाश्वितास्तावन्त्र एव ते वेदितुमर्हन्ति नाधिकं चेति॥२॥

पदार्थ:-हे (अग्ने) विज्ञानस्वरूप परमेश्वर! आप कुणी करके (मरुद्धिः) प्राणों के साथ (आगिह) प्राप्त हूजिये अर्थात् विदित हूजिये। आप किस है कि जिनकी (परः) अत्युत्तम (महः) मिहमा है, (तव) आपके (क्रतुम्) कर्मों की पूर्णता से अति जानमे को (निह) न कोई (देवः) विद्वान् (न) और न कोई (मर्त्यः) अज्ञानी मनुष्य योग्य है, तथा जे (अग्ने) अस भौतिक अग्नि का (परः) अति श्रेष्ठ (महः) मिहमा है, वह (क्रतुम्) कर्म और बुद्धि कि प्राप्त मरता है, (तव) उसके सब गुणों को (न देवः) न कोई विद्वान् और (न मर्त्यः) न कोई अज्ञानी मनुष्य जान सकता है, वह अग्नि (मरुद्धिः) प्राणों के साथ (आगिह) सब प्रकार से प्राप्त होता है।

भावार्थ:-परमेश्वर की सर्वोत्तमता से उत्तम महिमा वा कर्म अपार है, इससे उनका पार कोई नहीं पा सकता, किन्तु जितनी जिसकी बुद्धि वा बिद्या है, उसके अनुसार समाधियोगयुक्त प्राणायाम से जो कि अन्तर्यामीरूप करके वेद और संसार में परमेश्वर ने अपनी रचना स्वरूप वा गुण वा जितने अग्नि आदि पदार्थ प्रकाशित किये हैं, उत्ते हैं जान सकता है, अधिक नहीं॥२॥

अथाग्निशब्देनैतयोर्गुणा उपदिश्यन्ते।

अपिते मध्य में अग्निशब्द से ईश्वर और भौतिक अग्नि के गुणों का उपदेश किया है-

वे महो रजसो विदुर्विश्वे देवासो अदुहै:।

मुरुद्धिरम् आ गीहि॥३॥

रो। मुहः। रजसः। विदुः। विश्वे। देवासेः। अुदुर्हः। मुरुत्ऽभिः। अुग्ने। आ। गृहि॥३॥

पदार्थ:-(ये) मनुष्याः (महः) महसः। अत्र सुपां सुलुग्० इति शसो लुक्। (रजसः) लोकिन् यास्कमुनी रजःशब्दमेवं व्याख्यातवान्-रजो रजतेज्येती रज उच्यत उदकं रज उच्यते लोका रजांस्युच्यन्तेऽसृगहनी रजसी उच्येते। (निरु०४.१.९) (विदुः) जानित्त (विश्वे) सर्वे (देवासः) विद्वासः) अत्र आज्जसेरसुग्० इत्यसुगागमः। (अदुहः) द्रोहरिहताः (मरुद्धिः) वायुभिः सह (अम्ते) स्वरप्रकाश सर्वलोकप्रकाशकोऽग्निर्वा (आ) समन्तात् (गिह्) गच्छ गच्छिति वा॥३॥

अन्वय:-येऽदुहो विश्वेदेवासो विद्वांसो मरुद्धिरग्निना च संयुगे महो रजसो विदुस्त एव सुखिन: स्यु:। हे अग्ने! यस्त्वं मरुद्धि: सहागिह विदितो भविस तेन त्वया योऽग्निर्मिर्मित: मरुद्धिरेव कार्य्यार्थमागच्छित प्राप्तो भवित॥३॥

भावार्थः-ये विद्वांसोऽग्निनाकृष्य प्रकाश्य मरुद्धिश्चेष्टयित्वा धारिता लोकाः सन्ति तान् सर्वान् विदित्वा कार्य्येषुपयोक्तुं जानन्ति ते सुखिनो भवन्तीति॥३॥

पदार्थ:-(ये) जो (अदुह:) किसी से द्रोह न रखनेवाले (विश्व) सब (देवास:) विद्वान् लोग हैं, जो कि (मरुद्धि:) पवन और अग्नि के साथ संयोग में (मह:) बड़े-बड़ें (रजस:) लोकों को (विदु:) जानते हैं, वे ही सुखी होते हैं। हे (अग्ने) स्वयंप्रकाश होनेविले परमेश्वर! आप (मरुद्धि:) पवनों के साथ (आगिह) विदित हूजिये, और जो आपका बनाया हुआ (अग्ने) स्व लोकों का प्रकाश करनेवाला भौतिक अग्नि है, सो भी आपकी कृपा से (मरुद्धि:) पवनों के साथ कार्य्यसिद्धि के लिये (आगिह) प्राप्त होता है॥३॥

भावार्थ:-जो विद्वान् लोग अग्नि से आकर्षण कर्ण प्रकाश करके तथा पवनों से चेष्टा करके धारण किये हुए लोक हैं, उनको जानकर उनसे कार्यों में अपयोग लेने को जानते हैं, वे ही अत्यन्त सुखी होते हैं॥३॥

पुनः कीदृशास्ते मरुत इत्युपदिश्यते।

फिर उक्त पवन किस प्रकार के हैं। इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है-

य उत्रा अर्कमानुचुरनिष्ट्रास् ओर्जसा। मरुद्धिरम् आ गीहा। भा

ये। उत्राः শुक्कम्। अनुनृचुः। अनाधृष्टासः। ओर्जमा। मुरुद्धिः। अग्ने। आ। गृहि॥४॥

पदार्थः (ये) वायवः (उग्राः) तीव्रवेगादिगुणाः (अर्कम्) सूर्य्यादिलोकम् (आनृचुः) स्तावयन्ति तद्गुणान् प्रकाशयन्ति। अपस्पृधेथामानृचु० (अष्टा०६.१.३६) अनेनार्चधातोर्लिट्युसि सम्प्रसार्यमकारलापश्च निपातितः। (अनाधृष्टाः) धर्षितुं निवारयितुमनर्हाः (ओजसा) बलादिगुणसमूहेन सह वर्तमाष्ट्राः (मरुद्धिः) एतैर्वायुभिः सह (अग्ने) विद्युत् प्रसिद्धो वा (आ) समन्तात् (गिर्ह) प्रामिति। ४॥

अष्टक-१। अध्याय-१। वर्ग-३६-३७

मण्डल-१। अनुवाक-५। सुक्त-१९

अन्वय:-य उग्रा अनाधृष्टासो वायव ओजसाऽर्कमानृचुरेतैर्मरुद्धिः सहाग्ने अयमग्निरागह्यागच्छति समन्तात् कार्य्ये सहायकारी भवति॥४॥

भावार्थ:-यावद्वलं वर्त्तते तावद्वायुविद्युद्ध्यां जायते, इमे वायवः सर्वलोकधारकाः भानत तद्योगिन विद्युत्सूर्य्यादयः प्रकाश्य ध्रियन्ते तस्माद्वायुगुणज्ञानोपकारग्रहणाभ्यां बहूनि कार्य्याणि सिध्यन्तीरिपार।।

पदार्थ:-(ये) जो (उग्रा:) तीव्र वेग आदि गुणवाले (अनाधृष्टास:) किसी के रोकने में न आ सकें, वे पवन (ओजसा) अपने बल आदि गुणों से संयुक्त हुए (अर्कम्) सूय्य्रीहि लोकों को (आनृचु:) गुणों को प्रकाशित करत हैं, इन (मरुद्धि:) पवनों के साथ (अग्ने) यह विद्युत् और प्रसिद्ध अग्नि (आगिह) कार्य्य में सहाय करनेवाला होता है॥४॥

भावार्थ:-जितना बल वर्त्तमान है उतना वायु और विद्युत् के सकाश के उत्पन्न होता है, ये वायु सब लोकों के धारण करनेवाले हैं, इनके संयोग से बिजुली वा सूर्य्य ओदि लोक प्रकाशित होते तथा धारण किये जाते हैं, इससे वायु के गुणों का जानना वा उनसे उपकार ग्रहण करने से अनेक प्रकार के कार्य्य सिद्ध होते हैं॥४॥

पुनस्ते कीदृशा इत्युपदिश्यते।

फिर भी उक्त वायु कैसे हैं, इस विष्यु को उपदेश अगले मन्त्र में किया है-

ये शुभा घोरवर्षसः सुक्षुत्रासी रिशादसः।

मुरुद्धिरग्ने आ गहि॥५॥३६॥

ये। शुभाः। घोरऽवर्षसः। सुऽक्षुत्रास्रे। रिशार्ट्सः। मुरुत्ऽभिः। अग्ने। आ। गृहि॥५॥

पदार्थ:-(ये) वायवः (शुभाः) स्वगुणैः शोभमानाः (घोरवर्षसः) घोरं हननशीलं वर्षो रूपं स्वरूपं येषां ते। वर्ष इति रूपनामसु पढितप्। (निघं०३.७) (सुक्षत्रासः) शोभनं क्षत्रमन्तरिक्षस्थं राज्यं येषां ते (रिशादसः) रिशा रोगा अदसोऽत्तारो यैस्ते (मरुद्धिः) प्राप्तिहेतुभिः सह। मरुत इति पदनामसु पठितम्। (निघं०५.५) अनेनात्र प्राप्त्यर्थो गृह्यते। (अग्ने) भौतिकः (आ) आभिमुख्ये (गिह) प्रापयित॥५॥

अन्वयः-मे घोरवर्पसौ रिशादसः सुक्षत्रासः शुभ्रा वायवः सन्ति तैर्मरुद्धिः सहाग्नेऽग्निरागिह कार्य्याणि प्राप्यति॥ ॥

भाषार्थः ये क्जन शोधिता वायवः सुराज्यकारिणो भूत्वा रोगान् घ्नन्ति ये चाशुद्धास्ते सुखानि नाशयन्त्रि तस्मात्सवैर्मनुष्यैरग्निना वायोः शोधनेन सुखानि संसाधनीयानीति॥५॥

इति षट्त्रिंशो वर्गः समाप्तः॥

पदार्थ:-(ये) जो (घोरपर्वसः) घोर अर्थात् जिनका पदार्थों को छिन्न-भिन्न करनेवाला रूप जो और (रिशादसः) रोगों को नष्ट करनेवाला (सुक्षत्रासः) तथा अन्तरिक्ष में निर्भय राज्य करनेहारे और (शुभाः) अपने गुणों से सुशोभित पवन हैं, उनके साथ (अग्ने) भौतिक अग्नि (आगिह) प्रकृष्ट होता अर्थात् कार्य्यसिद्धि को देता है॥५॥

भावार्थ:-जो यज्ञ के धूम से शोधे हुए पवन हैं, वे अच्छे राज्य के करानेवार्ल होकरे रोग आदि दोषों का नाश करते हैं और जो अशुद्ध अर्थात् दुर्गन्ध आदि दोषों से भरे हुए हैं, वे सुखों का नाश करते हैं। इससे मनुष्यों को चाहिये कि अग्नि में होम द्वारा वायु की शुद्धि से अनेक प्रकार के सुखों का सिद्ध करें॥५॥

यह छत्तीसवां वर्ग पूरा हुआ॥ पनस्ते कीदृशा इत्युपदिश्यते।

फिर भी उक्त पवन कैसे हैं, इस विषय का उपदेश अनन्त्र में किया है-

ये नाकस्यार्घि रोचने दिवि देवास आसंते। मुरुद्धिरग्नु आ गीहा। ६॥

ये। नार्कस्य। अर्धि। रोचने। द्विव। देवासं:। अस्ति। मुरुद्धर्भः। अन्ते। आ। गृहि॥६॥

पदार्थ:-(ये) पृथिव्यादयो लोकाः (नाकस्य) पुखहेताः सूर्य्यलोकस्य (अधि) उपरिभागे (रोचने) रुचिनिमित्ते (दिवि) द्योतनात्मके सूर्य्यप्रकाशे (देवापः) द्वित्यगुणाः पृथिवीचन्द्रादयः प्रकाशिताः (आसते) सन्ति (मरुद्धः) दिव्यगुणैर्देवैः सह (अर्ने) अर्गिः प्रसिद्धः (आ) समन्तात् (गिह्र) सुखानि गमयित॥६॥

अन्वय:-ये देवासो नाकस्य रोचेरे दिव्यध्यासते तद्धारकै: प्रकाशकैर्मरुद्धि सहाग्नेऽयमग्निरागिह सुखानि प्रापयति॥६॥

भावार्थ:-सर्वे लोक हैश्वरस्यैव प्रकाशिन प्रकाशिताः सन्ति, परन्तु तद्रचितस्य सूर्य्यलोकस्य दीप्त्या पृथिवीचन्द्रादयो लोका दीप्र्यन्ते तैर्दिव्यगुणैः सह वर्त्तमानोऽयमग्निः सर्वकार्य्येषु योजनीय इति॥६॥

पदार्थ: (ये) जो (देवास:) प्रकाशमान और अच्छे-अच्छे गुणों वाले पृथिवी वा चन्द्र आदि लोक (नाकस्य) सुख की सिद्धि करनेवाले सूर्य्य लोक के (रोचने) रुचिकारक (दिवि) प्रकाश में (अध्यासते) उन के धारण और प्रकाश करने वाले हैं, उन पवनों के साथ (अग्ने) यह अग्नि (आगिह) सुखों की प्राप्ति कराता है॥६॥

अष्टक-१। अध्याय-१। वर्ग-३६-३७

मण्डल-१। अनुवाक-५। सूक्त-१९

भावार्थ:-सब लोक परमेश्वर के प्रकाश से प्रकाशवान् है, परन्तु उसके रचे हुए सूर्य्यलोक की दीप्ति अर्थात् प्रकाश से पृथिवी और चन्द्रलोक प्रकाशित होते हैं, उन अच्छे-अच्छे गुणवाली के साथ रहने वाले अग्नि को सब कार्य्यों में संयुक्त करना चाहिये॥६॥

पुनस्ते किंकर्महेतव: सन्तीत्युपदिश्यते।

फिर उक्त पवन किस कार्य्यों के हेतु होते हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्द्र में किया है-

य ई्ङ्खयन्ति पर्वतान् तिरः समुद्रमण्विम्।

मुरुद्धिरम् आ गीह॥७॥

ये। ई्ड्खर्यन्ति। पर्वतान्। तिरः। सुमुद्रम्। अर्ण्वम्। मुरुत्ऽभिः। अर्र्म्। अर्र्म्। अर्र्मः। अर्र्मः। अर्र्मः।

पदार्थ:-(ये) वायवः (ईङ्खयन्ति) छेदयन्ति निपातयन्ति (पर्वत्रोन्) मेघान्। पर्वत इति मेघनामसु पठितम्। (निघं०१.१०) (तिरः) तिरस्करणे (समुद्रम्) सम्यगुद्द्रवन्त्यापो यस्मिन् तदन्तिरक्षम्। समुद्र इत्यन्तिरक्षनामसु पठितम्। (निघं०१.३) (अर्णवम्) पृथिवीस्थं सागरम् (मरुद्धिः) उपर्य्यधोगमनशीलैर्वायुभिः (अग्ने) अग्निर्विद्युदाख्यः (आ) अभितः (गिहि) प्राप्नोति। अत्र व्यत्ययो लडर्थे लोट् च॥७॥

अन्वय:-ये वायवः पर्वतादीनीङ्खयन्ति अर्णवें र्तिरस्कुर्वन्ति समुद्रं प्रपूरयन्ति तैर्मरुद्धिः सहाग्नेऽयमग्निर्विद्युदागह्यागच्छति॥७॥

भावार्थ:-वायुयोगेनैव वृष्टिर्भवित जलं रेणवर्श्यीपिर गत्वाऽऽगच्छन्ति, तैः सह तिन्निमित्तेन वा विद्युदुत्पद्य गृह्यते॥७॥

पदार्थ:-(ये) जो वायु (प्रवितास) मेघों को (ईड्खयन्ति) छिन्न-भिन्न करते और वर्षाते हैं, (अर्णवम्) समुद्र का (तिर:) तिरस्कार करते वा (समुद्रम्) अन्तरिक्ष को जल से पूर्ण करते हैं, उन (मरुद्धि:) पवनों के साथ (अर्ग) अग्नि अर्थात् बिजुली (आगिह) प्राप्त होती अर्थात् सन्मुख आती जाती है॥७॥

भावार्थ:-वायु के स्थाग से ही वर्षा होती है और जल के कण वा रेणु अर्थात् सब पदार्थों के अत्यन्त छोटे-छोट्टे कण पृथिवी से अन्तरिक्ष को जाते तथा वहां से पृथिवी को आते हैं, उनके साथ वा उनके निमित्त से बिजुली उत्पन्न होती और बद्दलों में छिप जाती है॥७॥

एत एव प्रकाशादिकं विस्तारयन्तीत्युपदिश्यते।

🏿 ही प्रकाश आदि गुणों का विस्तार करते हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है–

अर्थे ये तुन्वन्ति रुश्मिभिस्तिरः समुद्रमोजसा। मुरुद्धिरग्नु आ गीह॥८॥

आ। ये। तुन्वन्ति। रृश्मिऽभिः। तिरः। सुमुद्रम्। ओर्जसा। मुरुत्ऽभिः। अुग्ने। आ। गृहि॥

२१४

ऋग्वेदभाष्यम्

पदार्थ:-(आ) अनुगतार्थे क्रियायोगे (ये) वायवः (तन्वन्ति) विस्तारयन्ति (रिश्मिभि:) सूर्य्यकिरणैः सह (तिरः) तिरस्करणे (समुद्रम्) अन्तरिक्षं जलमयं वा (ओजसा) बलेन वेगेन वा (मरुद्धः) तैर्धनञ्जयाख्यैः सूक्ष्मैः सह (अग्ने) अग्निः (आ) सर्वतः (गिह्र) प्राप्नोति। अपि क्रिक्ट्ये लड्थें लोट् च॥८॥

अन्वय:-ये वायव ओजसा समुद्रमन्तरिक्षमागच्छन्ति जलमयं सागरं तिरस्कुर्वन्ति ये व रश्मिभि: सह तन्वन्ति तैर्मरुद्धि: सहाग्ने अग्निरागहि प्राप्तोऽस्ति॥८॥

भावार्थ:-एतेषां वायूनां प्राप्त्या सर्वे पदार्था वर्धित्वा बलहेत्वो भवन्ति, तस्मान्मनुष्यैर्वाय्वग्नियोगेनानेका कार्य्यसिद्धिर्विभावनीयेति॥८॥

पदार्थ:-(ये) जो वायु अपने (ओजसा) बल वा वेग से (समुद्रम्) अन्तिरिक्ष को प्राप्त होते तथा जलमय समुद्र का (तिर:) तिरस्कार करते हैं, तथा जो (रिश्मिभ:) सून्य की किरणों के साथ (आतन्विन्त) विस्तार को प्राप्त होते हैं, उन (मरुद्धि:) पवनों के साथ (अग्ने) भौतिक अग्नि (आगिह) कार्य्य की सिद्धि को देता है॥८॥

भावार्थ:-इन पवनों की व्याप्ति से सब पदार्थ बहुना बहुन देनवाले होते हैं, इससे मनुष्यों को वायु और अग्नि के योग से अनेक प्रकार कार्य्यों की सिद्धि कर्मी माहिये॥८॥

पुनस्तै: किं सम्बनीयमित्युप्रिदेश्यते

फिर उनसे क्या सिद्ध करना चाहिये, इस विषय औ उपदेश अगले मन्त्र में किया है-

अभि त्वां पूर्वपीतये सृजामि सोच्यं मधी। मरुद्धिरम्न आ गीह॥९॥३/०॥११॥

अभि। त्वा। पूर्वऽपीतये। सुनामि। सोम्यम्। मधुं। मुरुत्ऽभिः। अन्ने। आ। गृहि॥९॥

पदार्थ:-(अभि) आभिर्मुख्ये (त्वा) तत् (पूर्वपीतये) पूर्वं पीतिः पानं सुखभोगो यस्मिन् तस्मा आनन्दाय (सृजािम) रचयािम (सोप्यम्) सोधि प्रसवं सुखानां समूहो रसादानमहित तत्। अत्र सोममहिति यः। (अष्टा०४.४.१३८) अनेत यः प्रत्ययः। (मधु) मन्यन्ते प्राप्नुवन्ति सुखािन येन तत् मधुरसुखकारकम् (मरुद्धिः) अनेकविधैनिमित्तभूवैश्वीयुभिः (अग्ने) अग्निर्व्यावहारिकः (आ) अभितः (गिह्न) साधको भवति॥९॥

अन्वर्यः येम्रेद्धिरग्नेऽग्निरागहि साधको भवति तैः पूर्वपीतये त्वा तत्सोम्यं मध्वहमभिर्मुजामि ॥

भावार्थ:-विद्वांसो येषां वाय्वग्न्यादिपदार्थानां सकाशात् सर्वं शिल्पक्रियामयं यज्ञं निर्मिमते तैरेव सर्वेमनुष्ये: सर्वाणि कार्य्याणि साधनीयानीति॥९॥ अष्टक-१। अध्याय-१। वर्ग-३६-३७

मण्डल-१। अनुवाक-५। सूक्त-१९

अथाष्टादशसूक्तप्रतिपादितबृहस्पत्यादिभिः पदार्थैः सहैतेनोक्तानामग्निमरुत विद्यासाधनशेषत्वादस्यैकोनविंशस्य सूक्तस्य सङ्गतिरस्तीति बोध्यम्।

अस्मिन्नध्यायेऽग्निमेतस्य वाय्वादीनां च परस्परं विद्योपयोगाय व्यतिपाद्यज्ञीश्वरो वायुसहकारिणमग्निमन्ते प्रकाशयन्नध्यायसमाप्तिं द्योतयतीति।

इदमपि सूक्तं सायणाचार्य्यादिभिर्यूरोपदेशनिवासिभिर्विलसनादिभिश्चान्यथैब व्याख्यातम्। इति श्रीमत्परिव्राजकाचार्य्येण दयान्दसरस्वतीस्वामिना विरचिते संस्कृतभाषार्य्यभाषार्थ्यां विश्लूषिते सुप्रमणयुक्ते वेदभाष्ये प्रथमाष्टके प्रथमोऽध्याय एकोनविंशं सूक्तं सप्तत्रिंशो वृक्त्र्च समाप्तः॥

पदार्थ:-जिन (मरुद्धि:) पवनों से (अग्ने) भौतिक अग्नि (आगृहि) किर्युसाधक होता है, उनमें (पूर्वपीतये) पहिले जिसमें पीति अर्थात् सुख का भोग है, उस उत्तम आनन्द के लिये (सोम्यम्) जो कि सुखों के उत्पन्न करने योग्य है, (त्वा) उस (मधु) मधुर अनिन्द देनेक्सले पदार्थों के रस को मैं (अभिसृजािम) सब प्रकार से उत्पन्न करता हूं॥९॥

भावार्थ:-विद्वान् लोग जिन वायु अग्नि आदि प्रतिष्ठें के अनुयोग से सब शिल्पक्रियारूपी यज्ञ को सिद्ध करते हैं, उन्हीं पदार्थों से सब मनुष्यों को सब काय्य सिद्ध करने चाहियें॥९॥

अठाहरवें सूक्त में कहे हुए बृहस्पित आदि पदार्थों के साथ इस सूक्त से जिन अग्नि वा वायु का प्रतिपादन है, उनकी विद्या की एकता होने स्रोइस उन्नीस्क्री सूक्त की सङ्गति जाननी चाहिये।

इस अध्याय में अग्नि और वायु आदि पदार्थों की विद्या के उपयोग के लिये प्रतिपादन और पवनों के साथ रहनेवाले अग्नि का प्रकाश कारता है।

यह भी सूक्त सायणाचा<mark>र्य आदि त</mark>था यूरोपदेशवासी विलसन आदि ने कुछ का कुछ का वर्णन किया है।।

यह प्रथम अष्टक-पें प्रथम अध्याय, उन्नीसवां सूक्त और सेंतीसवां वर्ग समाप्त हुआ॥

अथ द्वितीयोऽध्याय:

विश्वानि देव सिवतर्दुरितानि पर्रा सुव। यद्धद्रं तन्नऽआ सुव।। ऋ०५.८२.५॥ अथाष्टर्चस्य विंशस्य सूक्तस्य काण्वो मेधातिथिर्ऋषिः। ऋभवो देवताः। १, २, ६०७ गायत्री; ३ विराड्गायत्री; ४ निचृद्गायत्री; ५, ८ पिपीलिकामध्यानिचृद्गायत्री क छन्द्रे

षड्जः स्वरः॥ *तत्र पूर्वमृभुस्तुतिः प्रकाश्यते।*

अब दूसरे अध्याय का प्रारम्भ है। उसके पहिले मन्त्र में ऋभु की स्तुति का प्रकाश किया है-

अयं देवाय जन्मेने स्तोमो विप्रेभिरासया। अर्कारि रत्नुधार्तमः॥ १॥

अयम्। देवार्य। जन्मने। स्तोमः। विप्रेभिः। आसुया। अर्कार्रा रुलुर्धातुमः॥ १॥

पदार्थ:-(अयम्) विद्याविचारेण प्रत्यक्षमनुष्ठीयमानः (देवाषः) दिव्यगुणभोगयुक्ताय (जन्मने) वर्त्तमानदेहोपयोगाय पुनः शरीरधारणेन प्रादुर्भावाय वा (स्तिमः) स्तुनिसमूहः (विप्रेभिः) मेधाविभिः। अत्र बहुलं छन्दिस इति भिसः स्थान ऐसभावः। (आसया) मुखेन। अत्र छान्दसो वर्णलोपो वा इत्यास्यशब्दस्य यलोपः। सुपां सुलुग्० इति विभन्धिर्याजोदेशश्च। (अकारि) क्रियते। अत्र लडर्थे लुङ्। (रत्नधातमः) रत्नानि रमणीयानि सुखानि दधावि सन सोडिंग्रिशियतः॥१॥

अन्वय:-ऋभुभिर्विप्रेभिरासया देवास जनमे यादृशो रत्नधातमोऽयँ स्तोमोऽकारि क्रियते स तादृशजन्मभोगकारी जायते॥१॥

भावार्थः-अत्र पुनर्जन्मविधाने विज्ञेयम्। मनुष्यैर्यादृशानि कर्माणि क्रियन्ते तादृशानि जन्मानि भोगाश्च प्राप्यन्ते॥१॥

पदार्थ:-(विप्रेभि:) हिं भु अर्थात् बुद्धिमान् विद्वान् लोग (आसया) अपने मुख से (देवाय) अच्छे-अच्छे गुणों के भ्रोगों से युक्त (जन्मने) दूसरे जन्म के लिये (रत्नधातमः) रमणीय अर्थात् अतिसुन्दरता से सुखों की हिलाभेबोली जैसी (अयम्) विद्या के विचार से प्रत्यक्ष की हुई परमेश्वर की (स्तोमः) स्तुति है, वह वैसे जन्म के भोग करनेवाली होती है॥१॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में पुनर्जन्म का विधान जानना चाहिये। मनुष्य जैसे कर्म किया करते हैं, वैसे ही जन्म और भोग उनको प्राप्त होते हैं॥१॥

पुनस्ते ऋभवः कीदृशा इत्युपदिश्यते।

फिर वे विद्वान् कैसे हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है-

ष इन्द्रीय वचो्युजा तत्रक्षुर्मनेसा हरी।

मण्डल-१। अनुवाक-५। सूक्त-२०

शमीभिर्युज्ञमाशत॥ २॥

ये। इन्द्राया व्चःऽयुजां। तृतक्षुः। मनसा। हरी इति। शमीभिः। युज्ञम्। आृश्तु।। २॥

पदार्थ:-(ये) ऋभवो मेधाविनः (इन्द्राय) ऐश्वर्य्यप्राप्तये (वचोयुजा) वचोभिर्युक्तः। अत्र सुपां सुलुग्० इत्याकारादेशः। (ततक्षुः) तनूकुर्वन्ति। अत्र लडर्थे लिट्। (मनसा) विज्ञानेष (हरी) गमनधारणगुणौ (शमीभिः) कर्मभिः। शमी इति कर्मनामसु पठितम्। (निघं०२.१) (यज्ञम्) पुरुषार्थसाध्यम् (आशत) प्राप्नुवन्ति। अत्र व्यत्ययो लडर्थे लङ् बहुलं क्रन्दिस इति शपो लुकि श्नोरभावश्च॥२॥

अन्वय:-ये मेधाविनो मनसा वचोयुजा हरी ततक्षुः शमीभिरिन्द्रोव यम्माशत प्राप्नुवन्ति ते सुखमेधन्ते॥२॥

भावार्थ:-ये विद्वांसः पदार्थानां संयोगविभागाभ्यां धारणकर्षणवेगादिगुणान् विदित्वा यन्त्रयष्टीभ्रामणक्रियाभिः शिल्पादियज्ञं निष्पादयन्ति त एव परमैश्वर्य्य प्राप्नुवन्ति॥२॥

पदार्थ:-(ये) जो ऋभु अर्थात् उत्तम बुद्धिवासी विद्वान्य लोग (मनसा) अपने विज्ञान से (वचोयुजा) वाणियों से सिद्ध किये हुए (हरी) गमन और धारण गुणों को (ततश्च:) अतिसूक्ष्म करते और उनको (शमीभि:) दण्डों से कलायन्त्रों को घुमाके (इन्द्राय) एश्वर्यप्राप्ति के लिये (यज्ञम्) पुरुषार्थ से सिद्ध करनेयोग्य यज्ञ को (आशत) परिपूर्ण करते हैं, व सुखें बढ़ा सकते हैं॥२॥

भावार्थ:-जो विद्वान् पदार्थों के मंत्रोग वा विर्योग से धारण आकर्षण वा वेगादि गुणों को जानकर क्रियाओं से शिल्पव्यवहार आदि प्रश्न को सिद्ध करते हैं, वे ही उत्तम-उत्तम ऐश्वर्य्य को प्राप्त होते हैं॥२॥

ते केने किं साधयेयुरित्युपदिश्यते।

वे उक्त विद्वान् किससे क्या-क्या सिद्धे करें, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है-

तक्षुन्नासंत्याभ्यां परिज्यानं मुखं रथम्।

तक्षन् धेनुं संबुद्धिप्।।।।

तक्षेन्। नास्त्याभ्याम्। परिर्ऽज्मानम्। सुऽखम्। रथम्। तक्षेन्। धेनुम्। सुबःऽदुर्घाम्॥३॥

पदार्ष्ट्र: (तक्क्षम्) छेदनादिना रचयन्ति। अत्र लडर्थे लङ्डभावश्च। (नासत्याभ्याम्) नित्याभ्याम् निजल्याभ्याम् (परिज्मानम्) परितः सर्वतोऽजन्ति मार्गं येन तम्। अयं परिपूर्वकाद् 'अज'क्षात्रेः श्वनुक्षन् इत्यादिना निपातितः (सुखम्) शोभनं खं विस्तृतमन्तरिक्षं स्थित्यर्थं यस्मिस्तम् (स्थम्) रमन्ते क्रीडन्ति येन तं विमानादियानसमूहम् (तक्षन्) सूक्ष्मं कुर्वन्ति। अत्र लडर्थे लङ्डभावश्च। (धनुम्) अपदेशश्रवणलक्षणां वाचम्। धेनुरिति वाङ्नामसु पठितम्। (निघं०१.११) (सवर्दुघाम्) बर्बति

येन ज्ञानेन तद्वः, समानं बर्दोग्धि प्रपूरयित यया ताम्। अत्र बर्ब गतौ इत्यस्माद्धातोः कृतो बहुलम् ईति करणे क्विप्। राल्लोप इति बकारलोपः। समानस्य छन्दः अनेन समानस्य सकारादेशः। ततः दुहः कप् घश्च। (अष्टा०३.२.७०) इति दुहः कप् प्रत्ययो हस्य स्थाने घादेशश्च॥३॥

अन्वय:-ये मेधाविनो नासत्याभ्याम्परिज्मानं सुखं रथं तक्षन् रचयन्ति ते सबर्दुश्लं धेर्मुं तक्षन् विकाशयन्ति॥३॥

भावार्थ:-यैर्मनुष्यै: सोपवेदान् वेदानधीत्य तज्जन्यविज्ञानेनाग्न्यादिपदार्थीम् गुणान् बिदित्वा कलायन्त्रयुक्तेषु यानेषु तान् याजयित्वा विमानादीनि साध्यन्ते ते नैव कदानिष् दु:खदारिद्रचे प्रपश्यन्तीति॥३॥

पदार्थ:-जो बुद्धिमान् विद्वान् लोग (नासत्याभ्याम्) अग्नि और जैले से (परिज्यानम्) जिससे सब जगह में जाना-आना बने उस (सुखम्) सुशोभित विस्तारक्ले (रथम्) विमान आदि रथ को (तक्षन्) क्रिया से बनाते हैं, वे (सबर्दुघाम्) सब ज्ञान को पूर्ण करने बाली (धेनुम्) वाणी को (तक्षन्) सूक्ष्म करते हुए धीरज से प्रकाशित करते हैं॥३॥

भावार्थ:-जो मनुष्य अङ्ग, उपाङ्ग और उपवेदों के साथ वेदों की पढ़कर उनसे प्राप्त हुए विज्ञान से अग्नि आदि पदार्थों के गुणों को जानकर कलायन्त्रों से सिद्ध होनेवाले विमान आदि रथों में संयुक्त करके उनको सिद्ध किया करते हैं, वे कभी दु:ख और दिख्ता आदि दोषों को नहीं देखते॥३॥

पुनस्ते कीदृशा इत्युप्दिश्यते।

फिर वे विद्वान् कैसे हैं, इस विषय को उपदेश अगले मन्त्र में किया है-

युवाना पितरा पुनः सत्यमन्त्रा ऋषूयवः

ऋभवो विष्ट्यंक्रत॥४॥

युवाना। पितरा। पुन्रिति सत्यऽमन्त्राः। ऋजूऽयवः। ऋभवः। विष्टी। अक्रुत्।।४॥

पदार्थ:-(युवाना) मिश्रामिश्रगुणस्वभावौ। अत्रोभयत्र सुपां सुलुग्० इत्याकारादेश:। (पितरा) शरीरात्मपालनहेतू (सत्यमित्रा:) स्रत्यो यथार्थो मन्त्रो विचारो येषां ते (ऋजूयव:) कर्मभिरात्मन ऋजुत्विमच्छन्तस्तच्छीला:। अत्र क्याच्छन्दिस इत्युः प्रत्ययः। (ऋभवः) मेधाविनः। ऋभव इति मेधाविनामसु पिंड्रिंग्। (निघं०३.१५) (विष्टी) व्यापनशीलाविश्वनौ। अत्र क्तिच् क्तौ च संज्ञायाम्। (अष्टा०३.१७०) अत्रेत क्तिच् प्रत्ययः। (अक्रत) कुर्वन्ति। अत्र लडर्थे लुङ्। मन्त्रे घसह्वरणश० (अष्टा०२.४५०) इति चेलेर्लुक् च॥४॥

अन्वय:-य ऋजूयव: सत्यमन्त्रा ऋभवस्ते हि विष्टी युवाना पितराऽश्विनौ क्रियासिद्ध्यर्थं पुन: पुनः कृत् सम्भयुक्तौ कुर्वन्ति॥४॥

मण्डल-१। अनुवाक-५। सूक्त-२०

भावार्थः-येऽनलसाः सन्तः सत्यप्रिया आर्जवयुक्ता मनुष्याः सन्ति त एवाग्निजलादिपदार्थेभ्य उपकारं ग्रहीतुं शक्नुवन्तीति॥४॥

पदार्थ:-जो (ऋजूयव:) कर्मों से अपनी सरलता को चाहने और (सत्यमन्त्राः) सत्य अर्थित् यथार्थ विचार के करनेवाले (ऋभव:) बुद्धिमान् सज्जन पुरुष हैं, वे (विष्टी) व्याप्त हींचे (युवाना) मेल अमेल स्वभाव वाले तथा (पितरा) पालनहेतु पूर्वोक्त अग्नि और जल को क्रिय्रा की सिद्धि के लिये वारम्वार (अक्रत) अच्छी प्रकार प्रयुक्त करते हैं॥४॥

भावार्थ:-जो आलस्य को छोड़े हुए सत्य में प्रीति रखने और सरन बुद्धिवाले मनुष्य हैं, वे ही अग्नि और जल आदि पदार्थों से उपकार लेने को समर्थ हो सकते हैं॥४॥

पुनरिमे केन किं कुर्व्युरित्युपदिश्यते

फिर ये किससे क्या करें, इस विषय का उपदेश अपन्ते मन्त्र में किया है-

सं वो मदासो अग्मतेन्द्रेण च मुरुत्वता।

आदित्येभिश्च राजंभि:॥५॥१॥

सम्। वः। मदासः। अग्मत्। इन्ह्रेण। च। मुरुत्वेता आदित्येष्टिः। च। राजंऽभिः॥५॥

पदार्थ:-(सम्) सम्यगर्थे (वः) युष्मान पेधाविज्ञः (मदासः) विद्यानन्दाः। आज्जसेरसुग् इत्यसुक्। (अग्मत) प्राप्नुवन्ति। अत्र लडर्थे सिङ्का मन्त्रे धसह्वरणश्र० इति च्लेर्लुक्, गमहनजनखन० (अष्टा०६.४.३८) इत्युपधालोपः, समो प्राप्नुच्छिभ्याम् (अष्टा०१.३.२९) इत्यात्मनेपदं च। (इन्द्रेण) विद्युता (च) समुच्चये (मरुत्वता) मध्यः समुबन्धिनो विद्यन्ते यस्य तेन। अत्र सम्बन्धे मतुप्। (आदित्येभिः) किरणैः सह। बहुलं छन्दिस इति भिसः स्थान ऐसभावः । (च) पुनरर्थे (राजिभः) राजयन्ते दीपयन्ते तैः॥५॥

अन्वय:-हे मेधाविन् येन मरुत्वतीन्द्रेण राजभिरादित्येभिश्च सह मदसो वो युष्मानग्मत प्राप्नुवन्ति भवन्तश्च तै: अपन्तो भवन्त्॥५॥

भावार्थः-ये विद्वासी येव वायुविद्युद्विद्यामाश्रित्य सूर्य्यिकरणैराग्नेयास्त्रादीनि शस्त्राणि यानानि च निष्पादयन्ति तदा त्रे शत्रून् जित्वा राजानः सन्तः सुखिनो भवन्तीति॥५॥

इति प्रथमो वर्गः॥

पदार्थ: है मेध्निव विद्वानो! तुम लोग जिन (मरुत्वता) जिसके सम्बन्धी पवन हैं, उस (इन्द्रेण) बिजुली वा (राजिभः) प्रकाशमान् (आदित्येभिः) सूर्य्य की किरणों के साथ युक्त करते हो, इससे (मद्रासः) बिद्या के आनन्द (वः) तुम लोगों को (अग्मत) प्राप्त होते हैं, इससे तुम लोग उनसे प्रेश्वर्यवात हुजिये॥५॥

भावार्थ:-जो विद्वान् लोग जब वायु और विद्युत् का आलम्ब लेकर सूर्य्य की किरणों के समान आग्नेयादि अस्त्र, असि आदि शस्त्र और विमान आदि यानों को सिद्ध करते हैं, तब वे शत्रुओं को जीत राजा होकर सुखी होते हैं॥५॥

यह पहला वर्ग समाप्त हुआ॥

कस्यैतत्करणे सामर्थ्यं भवतीत्युपदिश्यते।

उक्त कार्य्य के करने में किसका सामर्थ्य होता है, इस विषय का उपदेश अगले पत्त्र में किया

है।

उत त्यं चम्मसं नवं त्वष्टुर्देवस्य निष्कृतम्।

अकर्त्त चुतुरः पुनः॥६॥

उता त्यम्। चुमुसम्। नर्वम्। त्वष्टुः। देवस्य। निःऽकृतम्। अकर्ना चुतुरः। पुरिति॥६॥

पदार्थ:-(उत) अपि (त्यम्) तम् (चमसम्) चमन्ति भुजति स्रुखानि येन व्यवहारेण तम्। (नवम्) नवीनम् (त्वष्टुः) शिल्पिनः (देवस्य) विदुषः (निष्कृतम्) नित्रं सम्पादितम् (अकर्त्त) कुर्वन्ति। अत्र लडर्थे लुङ्, मन्त्रे घसह्वरणश० इति च्लेर्लुक्, बचन्यत्ययम झस्य स्थाने तः, छन्दस्युभयथा इत्यार्धधातुकं मत्वा गुणादेशश्च। (चतुरः) चतुर्विधानि भूजलाग्निवायुभिः सिद्धानि शिल्पकर्माणि (पुनः) पश्चादर्थे॥६॥

अन्वय:-यदा विद्वांसस्त्वष्टुर्देवस्य र्यं तं निष्कृतं नवं चमसमिदानींतनं प्रत्यक्षं दृष्ट्वोत पुनश्चतुरोऽकर्त्त कुर्वन्ति तदानन्दिता जायन्त्रेसह्म

भावार्थ:-मनुष्याः कस्यचित् क्रियाहुरामस्य शिल्पिनः समीपे स्थित्वा तत्कृतिं प्रत्यक्षीकृत्य सुखेनैव शिल्पसाध्यानि कार्य्याणि कुर्तुं शक्नुवन्तीति॥६॥

पदार्थ: -जब विद्वान् लोग जो (त्वष्टुः) शिल्पी अर्थात् कारीगर (देवस्य) विद्वान् का (निष्कृतम्) सिद्ध किया हुआ काम सुख का देनेवाला है (त्यम्) उस (नवम्) नवीन दृष्टिगोचर कर्म को देखकर (उत) निश्चय से (पुनः) उसके अनुसार पिर्ध (चतुरः) भू, जल, अग्नि और वायु से सिद्ध होनेवाले शिल्पकामों को (अकर्त) अच्छी प्रकार सिद्ध करते हैं, तब आनन्दयुक्त होते हैं॥६॥

भावार्थ: भूनुष्य लोग किसी क्रियाकुशल कारीगर के निकट बैठकर उसकी चतुराई को दृष्टिगोचर करके फिर पुख के साथ कारीगरी काम करने को समर्थ हो सकते हैं॥६॥

एवं साधितैरेतै: किं फलं जायत इत्युपदिश्यते।

इस प्रकार से सिद्ध किये हुए इन पदार्थों से क्या फल सिद्ध होता है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है-

ते <u>नो</u> रत्नांनि धत्तनु त्रिरासाप्तांनि सुन्<u>व</u>ते।

मण्डल-१। अनुवाक-५। सूक्त-२०

एकंमेकं सुशृस्तिभिः॥७॥

ते। नः। रत्नोनि। धत्तन्। त्रिः। आ। साप्तोनि। सुन्वते। एकंम्ऽएकम्। सुश्सिऽभिः॥७॥

पदार्थ:-(ते) मेधाविनः (नः) अस्मभ्यम् (रत्नानि) विद्यासुवर्णादीनि (धत्तनि) दधतु। अत्र व्यत्ययः। तप्तनप्॰ इति तनबादेशश्च। (त्रिः) पुनः पुनः संख्यातव्ये (आ) समन्तात् (साप्तानि) सप्तवर्गाज्जातानि ब्रह्मचारिगृहस्थवानप्रस्थसंन्यासिनां यानि विशिष्टानि कर्माणि पूर्वास्तस्य यज्ञस्यानुष्ठानं विद्वत्सत्कारसङ्गतिकरणे दानमर्थात्सर्वोपकरणाय विद्यादानमिति सप्त। (सुन्वतः) निष्पाद्यन्ते (एकमकम्) कर्मकर्म। अत्र वीप्सायां द्वित्वम्। (सुशस्तिभः) शोभनाः शस्तयः यासां क्रिक्सणां ताभिः॥७॥

अन्वय:-ये मेधाविनः सुशस्तिभिः साप्तान्येकमेकं कर्म कृत्या सुखानि त्रि। सुन्वते ते नोऽस्मभ्यं रत्नानि धत्तन॥७॥

भावार्थ:-सर्वेर्मनुष्येश्चतुराश्रमाणां यानि चतुर्धा कर्माणि यानि च यज्ञानुष्ठानादीनि त्रीणि तानि मनोवाक्शरीरै: कर्त्तव्यानि एवं मिलित्वा सप्त जायन्ते। यैर्मनुष्येरेतानि क्रियन्ते तेषां संयोगोपदेशप्राप्त्या विद्यया रत्नलाभेन सुखानि भवन्ति। परं त्वेकैकं कर्म संक्षेत्र्य समाप्य द्वितीयमिति क्रमेण शान्तिपुरुषार्थाभ्यां सेवनीयानीति॥७॥

पदार्थ:-जो विद्वान् (सुशस्तिभि:) अच्छी प्रशंसी वाली क्रियाओं से (साप्तािन) जो सात संख्या के वर्ग अर्थात् ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानुप्रस्थ, सन्यासियों के कर्म, यज्ञ का करना विद्वानों का सत्कार तथा उनसे मिलाप और दान अर्थात् सबके उपकार के लिये विद्या का देना है, इनसे (एकमेकम्) एक-एक कर्म करके (त्रि:) त्रिगुणित सुखों को (सुन्वते) प्राप्त करते हैं (ते) वे बुद्धिमान् लोग (न:) हमारे लिये (रत्नािन) विद्या और सुवणिद्ध धनें को (धन्तन) अच्छी प्रकार धारण करें॥७॥

भावार्थ:-सब मनुष्यों को उचित है कि जो ब्रह्मचारी आदि चार आश्रमों के कर्म तथा यज्ञ के अनुष्ठान आदि तीन प्रकार के हैं, उनको मन, वाणी और शरीर से यथावत् करें। इस प्रकार मिलकर सात कर्म होते हैं, जो मनुष्य इनको किया करते हैं, उनके संग उपदेश और विद्या से रत्नों को प्राप्त होकर सुखी होते हैं, वे एक-एक किम् की सिद्ध वा समाप्त करके दूसरे का आरम्भ करें, इस क्रम से शान्ति और पुरुषार्थ से सब कर्मों का स्वन करते रहें॥७॥

त एतत्कृत्वा किं प्राप्नुवन्तीत्युपदिश्यते।

वे उक्त कर्म की करके किसको प्राप्त होते हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है-

अधारकने बहुयोऽभजनत सुकृत्ययां।

भारां देवेषु यज्ञियम्॥८॥२॥

अर्धारयन्त। वह्नयः। अर्भजन्त। सुऽकृत्ययां। भागम्। देवेषुं। युज्ञियम्॥८॥

पदार्थ:-(अधारयन्त) धारयन्ति। अत्र लडर्थे लङ्। (वह्नयः) शुभकर्मगुणानां वोढारः। अत्र विहिश्रिश्रु॰ इति निः प्रत्ययः। (अभजन्त) सेवन्ते। अत्र लडर्थे लङ्। (सुकृत्यया) श्रेष्ठेन कर्मणा (भागम्) सेवनीयमानन्दम् (देवेषु) विद्वत्सु (यज्ञियम्) यज्ञनिष्पत्रम्॥८॥

अन्वय:-ये वह्नयो वोढारो मेधाविनः सुकृत्यया देवेषु स्थित्वा यज्ञियमधारयन्त ते भागम्भजन्त नित्यमानन्दं सेवन्ते॥८॥

भावार्थ:-मनुष्यै: सुकर्मणा विद्वत्सङ्गत्या पूर्वोक्तस्य यज्ञस्यानुष्ठानाद् व्यवहारसुख्यमारभ्य मोक्षपर्य्यन्तं सुखं प्राप्तव्यम्॥८॥

एकोनविंशसूक्तोक्तानां सकाशादुपकारं ग्रहीतुं मेधाविन एव क्षिर्था भवन्तीत्यस्य विंशस्य सूक्तस्यार्थस्य पूर्वेण सह सङ्गतिरस्तीति बोध्यम्।

इदमपि सूक्तं सायणाचार्य्यादिभिर्यूरोपाख्यदेशनिवासिभिर्विलसनादिभिश्चान्यथार्थमेव व्याख्यातमिति॥

इति विशं सूक्तं द्वितीयो वर्गश्च समाप्तः॥८॥

पदार्थ:-जो (वह्नयः) संसार में शुभकर्म वा उत्ति गुणों को प्राप्त करानेवाले बुद्धिमान् सज्जन पुरुष (सुकृत्यया) श्रेष्ठकर्म से (देवेषु) विद्वानों में रहकर (यज्ञियप्र) यज्ञ से सिद्ध कर्म को (अधारयन्त) धारण करते हैं, वे (भागम्) आनन्द को निरन्तर (अभजन्त) सूर्वन करते हैं॥८॥

भावार्थ:-मनुष्यों को योग्य है कि अस्ट्रिक कर्म वा विद्वानों की सङ्गति तथा पूर्वोक्त यज्ञ के अनुष्ठान से व्यवहार सुख से लेकर मोक्षपर्य्यन्त सुख की प्राप्ति करनी चाहिये॥८॥

उन्नीसवें सूक्त में कहे हुए पदार्थी से उपकार लेने को बुद्धिमान् ही समर्थ होते हैं। इस अभिप्राय से इस बीसवें सूक्त के अर्थ का मेल्ल फिक्सले उन्नीसवें सूक्त के साथ जानना चाहिये।

इस सूक्त का भी अर्थ पायणाचार्थ्य आदि तथा यूरोपदेशवासी विलसन आदि ने विपरीत वर्णन किया है॥

यह बीस्प्रवां सूक्त और दूसरा वर्ग पूरा हुआ॥

अथैकविंशस्य षडर्च्चस्य सूक्तस्य कण्वो मेधातिथिर्ऋषि:। इन्द्राग्नी देवते। १,३,४,६ गायत्री; २ पिपीलिकामध्यानिचृद्गायत्री; ५ निचृद्गायत्रीच्छन्द:। षड्ज: स्वर:॥

तत्रेन्द्राग्निगुणा उपदिश्यन्ते।

अब इक्कीसवें सूक्त का आरम्भ है। उसके पहिले मन्त्र में इन्द्र और अग्नि के गुण प्रकाशित किये हैं-

ड्डहेन्द्राग्नी उप ह्वये तयोरित्स्तोममुश्मिस। ता सोमं सोमुपार्तमा॥ १॥

डुह। डुन्द्राग्नी इति। उप। ह्वये। तयी:। इत्। स्तोमम्। उश्मस्यि। ता। सोम्प्म्/स्येमुङ्गार्तमा॥ १॥

पदार्थ:-(इह) अस्मिन् हवनशिल्पविद्यादिकर्मणि (इन्द्राग्नी) वियुवही यो वै वायुः स इन्द्रो य इन्द्रः स वायुः। (श०ब्रा०४.१.३.१९) (उप) सामीप्ये (ह्वये) स्वीकुर्वे (त्रयोः) इन्द्राग्न्योः (इत्) चार्थे (स्तोमम्) गुणप्रकाशम् (उश्मिस) कामयामहे। अत्र इदन्तो मिस इति मसेरिदन्त आदेशः (ता) तौ। अत्रोभयत्र सुपां सुलुग्० इत्याकारादेशः। (सोमम्) उत्कृतं पदार्थसमूहम् (सोमपातमा) सोमानां पदार्थानामतिशयेन पालकौ॥१॥

अन्वय:-इह यौ सोमपातमाविन्द्राग्नी सोमं स्थातस्तावहमुर्यह्वये तयोरिच्च स्तोमं वयमुश्मिस॥१॥ भावार्थ:-मनुष्यैरिह वाय्वग्न्योर्गुणा जिज्ञासित्रव्या:। ये चैतर्योर्गुणानामुपदेशश्रवणाभ्यां विनोपकारो ग्रहीतुं शक्योऽस्ति॥१॥

पदार्थ:-(इह) इस संसार होमाहि शिल्प में जो (सोमपातमा) पदार्थों की अत्यन्त पालन के निमित्त और (सोमम्) संसारी पदार्थों की निरुद्ध रक्षा करनेवाले (इन्द्राग्नी) वायु और अग्नि हैं (ता) उनको मैं (उपह्वये) अपने समीप काम की सिद्धि के लिये वश में लाता हूं, और (तयो:) उनके (इत्) और (स्तोमम्) गुणों के प्रकाश् किरने को हम लोग (उश्मिस) इच्छा करते हैं॥१॥

भावार्थ:-मनुष्यों को कार्यु और अर्चि के गुण जानने की इच्छा करनी चाहिये, क्योंकि कोई भी मनुष्य उनके गुणों के उपदिश्वा श्रानण के विना उपकार लेने को समर्थ नहीं हो सकते हैं॥१॥

पुनस्तौ कीदृशावित्युपदिश्यते।

फिर 📵 कैसे हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है-

ता बुज़ेषु प्र शंसतेन्द्राग्नी श्रुम्भता नरः।

ता गयित्रेष्ठे गायत॥२॥

तो युजेर्षु। प्रा शंसुता इन्द्राग्नी इति। शुम्भुत्। नुरुः। ता। गायुत्रेर्षु। गायुत्।। २॥

पदार्थ:-(ता) तौ। अत्रोभयत्र सुपां सुलुग्० इत्याकारादेश:। (यज्ञेषु) पठनपाठनेषु शिल्पमयादिषु यज्ञेषु वा (प्र) क्रियायोगे (शंसत) स्तुवीत तद्गुणान् प्रकाशयत। अत्रान्तर्गतो ण्यर्थ:। (इन्द्राग्नी) वाय्वग्नी (शुम्भत) सर्वत्र यानादिकृत्येषु प्रदीप्यत। अत्र अन्येषामिप दृश्यते इति दीर्घ:। (नरः) नेतार्ष प्रनुष्याः) नयतेर्डिच्च। (उणा०२.९६) अनेन णीञ् धातोर्ऋः प्रत्ययो डिच्च। (ता) तौ (कार्यत्रेषु) यानि गायत्रीछन्दस्कानीमानि वेदोक्तानि स्तोत्राणि तेषु (गायत) षड्जादिस्वरैर्गानं कुरुत॥२॥

अन्वय:-हे नरो यूयं याविन्द्राग्नी यज्ञेषु प्रशंसत शुम्भत च ता तौ गायत्रेषु मञ्जत॥२॥

भावार्थ:-नैव मनुष्या अभ्यासेन विना वायोरग्नेश्च गुणज्ञानं कृत्वा तयाः सक्तेशादुपकारं ग्रहीतुं शक्नुवन्ति॥२॥

पदार्थ:-हे (नर:) यज्ञ करनेवाले मनुष्यो! तुम जिस पूर्वोक्त (इन्द्राप्नी) वायु और अग्नि के (प्रशंसत) गुणों को प्रकाशित तथा (शुम्भत) सब जगह कामों में प्रदीप्त करते हो (ता) उनको (गायत्रेषु) गायत्री छन्दवाले वेद के स्तोत्रों में (गायत) षड्ज आदि स्वरों से गाओं १२॥

भावार्थ:-कोई भी मनुष्य अभ्यास के विना वायु और अप्ति के ग्रुणों के जानने वा उनसे उपकार लेने को समर्थ नहीं हो सकते॥२॥

तौ किमुपकारकौ भूवत इत्युपदिश्यते।

वे किस उपकार के करनेवाले होते हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है-

ता मित्रस्य प्रशस्तय इन्द्राग्नी ता ह्यामहे।

सोमुपा सोमपीतये॥३॥

ता। मित्रस्य। प्रऽशस्तये। इन्ह्यान्त्री इति तार्मह्वामहे। सोमुऽपा। सोर्मऽपीतये॥३॥

पदार्थ:-(ता) तौ। अत्र विषु सुपां सुलुग्० इत्याकारादेश:। (मित्रस्य) सर्वोपकारकस्य सर्वसृहदः (प्रशस्तये) प्रशंसनी सुखाय (इन्द्रारनी) वाय्वग्नी (ता) तौ (हवामहे) स्वीकुर्महे। अत्र 'हेज्' धातोर्बहुलं छन्दिस इति सम्प्रसारणम्। (स्रोमपा) यौ सोमान् पदार्थसमूहान् रक्षतस्तौ (सोमपीतये) सोमानां पदार्थानां पीती रक्षणे यस्मिन् व्यवहारे तस्मै॥३॥

अन्वय:-यथा विद्वांसी याविन्द्राग्नी मित्रस्य प्रशस्तय आह्वयन्ति तथैव ता तौ वयमपि हवामहे यौ च सोमपौ सोमपीर्द्धिय आह्वयन्ति ता ताविप वयं हवामहे॥३॥

भावार्थः अत्रे लुप्तोपमालङ्कारः। यदा मनुष्या मित्रभावमाश्रित्य परस्परोपकाराय विद्यया वाय्वग्न्योः कार्च्येषु योजनरक्षणे कृत्वा पदार्थव्यवहारानुत्रयन्ति तदैव सुखिनो भवन्ति॥३॥

पदार्थ:-जैसे विद्वान् लोग वायु और अग्नि के गुणों को जानकर उपकार लेते हैं, वैसे हम लोग भी (ता) उन पूर्वोक्त (मित्रस्य) सबके उपकार करनेहारे और सब के मित्र के (प्रशस्तये) प्रशंसनीय सुख

मण्डल-१। अनुवाक-५। सुक्त-२१

के लिये तथा (सोमपीतये) सोम अर्थात् जिस व्यवहार में संसारी पदार्थों की अच्छी प्रकार रक्षा होती है, उसके लिये (ता) उन (सोमपा) सब पदार्थों की रक्षा करनेवाले (इन्द्राग्नी) वायु और अनि को (हवामहे) स्वीकार करते हैं॥३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है। जब मनुष्य मित्रपन का आश्रय लेकर एक दूसरे के उपकार के लिये विद्या से वायु और अग्नि को कार्य्यों में संयुक्त करके रक्षा के साथ पदार्थ और व्यवहारों की उन्नति करते हैं, तभी वे सुखी होते हैं॥३॥

पुनस्तौ कीदृशावित्युपदिश्यते।

फिर वे कैसे हैं, इस विषय का उपदेश अगले मनूत्र में किया है-

उ्त्रा सन्ता हवामह उपेदं सर्वनं सुतम्।

इन्द्राग्नी एह गंच्छताम्॥४॥

उुगा। सन्ता। हुवामुहे। उप। इुदम्। सर्वनम्। सुतम्। इुन्द्रार्ग्नी इति। अग। इुह। गुच्छुताम्॥४॥

पदार्थ:-(उग्रा) तीव्रौ (सन्ता) वर्त्तमानौ। अत्रौभयत्र सुर्ण सुलुग्० इत्याकारः। (हवामहे) विद्यासिध्यर्थमुपदिशामः शृणुमश्च (उप) उपगमार्थे (इद्दम्) प्रव्यक्षम् (सवनम्) सुन्वन्ति निष्पादयन्ति पदार्थान् येन तत् (सुतम्) क्रियया निष्पादितं व्यवहारम् (इन्द्राग्नी) पूर्वोक्तौ (आ) समन्तात् (इह) शिल्पक्रियाव्यवहारे (गच्छताम्) गमयतः। अत्र लिड्थें लोइन्तर्गतो एयर्थश्च॥४॥

अन्वय:-वयं याविदं सुतं स्वन्सुपागच्छुत्रामुपागमयतस्तावुग्रोग्रौ सन्तासन्ताविन्द्राग्नी इह हवामहे॥४॥

भावार्थ:-मनुष्यैर्यत इमौ प्रत्यक्षीभूतौ तीव्रवेगादिगुणौ शिल्पक्रियाव्यवहारे सर्वकार्य्योपयोगिनौ स्तस्तस्मादेतौ विद्यासिद्धये कार्य्योषु सदोषयोज्ञनीयाविति॥४॥

पदार्थ:-हम लोग विद्या की सिद्धि के लिये जिन (उग्रा) तीव्र (सन्ता) वर्त्तमान (इन्द्राग्नी) वायु और अग्नि का (हवामहें) उपदेश वा श्रवण करते हैं, वे (इदम्) इस प्रत्यक्ष (सवनम्) अर्थात् जिससे पदार्थों को उत्पन्न और (सुतम्) इत्तम शिल्पक्रिया से सिद्ध किये हुए व्यवहार को (उपागच्छताम्) हमारे निकटवर्ती करते हैं।।४॥

भावार्थ:-मनुष्यों को जिस कारण ये दृष्टिगोचर हुए तीव्र वेग आदि गुणवाले वायु और अग्नि शिल्पक्रियार्थुक्त क्षेत्रवहार में सम्पूर्ण कार्य्यों के उपयोगी होते हैं, इससे इनको विद्या की सिद्धि के लिये कार्यों में सदा संयुक्त करने चाहियें॥४॥

पुनस्तौ कीदृशावित्युपदिश्यते।

फिर वे किस प्रकार के हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है-

ता महान्ता सदस्यती इन्द्रांग्नी रक्षं उब्जतम्।

अप्रजाः सन्त्वत्रिणः॥५॥

२२६

ता। मुहान्ता। सदुस्पती इति। इन्द्रांग्नी इति। रक्षः। उब्जुतुम्। अप्रजाः। सुन्तु। अत्रिणः।।।।

पदार्थ:-(ता) तौ (महान्ता) महागुणौ। अत्रोभयत्र सुपां सुलुग्० इत्याकाराहेशः (सदस्पती) सीदन्ति गुणा येषु द्रव्येषु तानि सदांसि तेषां यौ पालयितारौ तौ (इन्द्राग्नी) तावेव (खः) दुष्टव्यवहारान्। अत्र व्यत्ययेनैकवचनम्। (उब्जतम्) कुटिलमपहतः। अत्र व्यत्ययो लडर्थे लौहे च। (अप्रजाः) अविद्यमानाः प्रजा येषां ते (सन्तु) भवेयुः। अत्र लडर्थे लोट्। (अत्रिणः) शत्रवः।।५॥

अन्वय:-मनुष्यैर्यो सम्यक् प्रयुक्तौ महान्ता महान्तौ सदस्पती इस्प्रानी रक्ष डब्जतं कुटिलं रक्षो दूरीकुरुतो याभ्यामत्रिणः शत्रवोऽप्रजाः सन्तु भवेयुरेतौ सर्वैर्मनुष्यैः कथ्रेंस सूपराजनीयौ॥५॥

भावार्थ:-विद्वद्भिः सर्वेषु पदार्थेषु स्वरूपेण गुणैरधिकौ व्यस्वग्नी सम्यग्विदित्वा सम्प्रयोजितौ दु:खनिवारणेन रक्षणहेतू भवत इति॥५॥

पदार्थ:-मनुष्यों ने जो अच्छी प्रकार क्रिया की क्रुशलता में प्रयुक्त किये हुए (महान्ता) बड़े-बड़े उत्तम गुणवाले (ता) पूर्वोक्त (सदस्पती) सभाओं के पालन के निमित्त (इन्द्राग्नी) वायु और अग्नि हैं, जो (रक्ष:) दुष्ट व्यवहारों को (उब्जतम्) नाश करते और उनसे (अत्रिण:) शत्रु जन (अप्रजा:) पुत्रादिरहित (सन्तु) हों, उनका उपयोग सब लोग करते जोर करें प्रा

भावार्थ:-विद्वानों को योग्य है कि जो सब पदार्थीं के स्वरूप वा गुणों से अधिक वायु और अग्नि हैं, उनको अच्छी प्रकार जानकर कियाव्यवहार में संयुक्त करें तो वे दु:खों को निवारण करके अनेक प्रकार की रक्षा करनेवाले होते हैं।। पा

पुनस्तौ कीदृशावित्युपदिश्यते।

फिर भी वे किस्प्रिकार के हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है-

तेन सत्येन जागृत्मधि प्रचेतुने पर्देर

इन्द्रांग्नी शर्म युद्धतम्। दे॥ ३॥

तेनं। सुत्येनं। जागृतम्। अधि। प्रऽचेतुने। पदे। इन्द्रांग्नी इति। शर्मः। युच्छृतम्॥६॥

पदार्थः (तेनः) गुणसमूहाधारेण (सत्येन) अविनाशिस्वभावेन कारणेन (जागृतम्) प्रसिद्धगुणौ स्तः। अत्र व्यत्ययो लर्ड्थे लोट् च (अधि) उपरिभावे (प्रचेतुने) प्रचेतयन्त्यानन्देन यस्मिँस्तस्मिन्। (पदे) प्राप्तुं योग्र्ये (इन्द्राप्नी) प्राणविद्युतौ (शर्म) सुखम् (यच्छतम्) दत्तः। अत्र व्यत्ययो लर्ड्थे लोट् च॥६॥

अस्त्रयः-याविन्द्राग्नी तेन सत्येन प्रचेतुने पदेऽधिजागृतं तौ शर्म यच्छतं दत्त:॥६॥

मण्डल-१। अनुवाक-५। सूक्त-२१

भावार्थ:-ये नित्याः पदार्थाः सन्ति तेषां गुणा अपि नित्या भवितुमर्हन्ति, ये शरीरस्था बहिस्थाः प्राणा विद्युच्च सम्यक् सेविताश्चेतनत्वहेतवो भूत्वा सुखप्रदा भवन्ति ते कथं न सम्प्रयोक्तव्यौ (६)

विंशसूक्तोक्ता मेधाविनः पदार्थविद्यासिद्धेरिन्द्राग्नी मुख्यौ हेतू भवत इति जातिस्यीन पूर्वसूक्तार्थेन सहैकविंशसूक्तार्थस्य सङ्गतिरस्तीति बोध्यम्।

इदमपि सूक्तं सायणाचार्य्यादिभिर्यूरोपाख्यदेशनिवासिभिर्विलसनार्दिभिश्च व्याख्यातम्॥

इत्येकविंशं सूक्तं तृतीयो वर्गश्च समाप्त:॥

पदार्थ:-जो (इन्द्राग्नी) प्राण और बिजुली हैं वे (तेन) उस (सत्येम) स्विनाशी गुणों के समूह से (प्रचेतुने) जिसमें आनन्द से चित्त प्रफुल्लित होता है (पदे) उस सुख्यापक व्यवहार में (अधिजागृतम्) प्रसिद्ध गुणवाले होते और (शर्म) उत्तम सुख को भी (यच्छतम्) देते हैं, उनको क्यों उपयुक्त न करना चाहिये॥६॥

भावार्थ:-जो नित्य पदार्थ हैं उनके गुण भी नित्य होते हैं, जो शरीर में वा बाहर रहने वाले प्राणवायु तथा बिजुली हैं, वे अच्छी प्रकार सेवन किये हुए चेत्रज्ञा करानेवाले होकर सुख देनेवाले होते हैं॥६॥

बीसवें सूक्त में कहे हुए बुद्धिमानों की पदार्थिक्या की सिद्धि के वायु और अग्नि मुख्य हेतु होते हैं, इस अभिप्राय के जानने से पूर्वोक्त बीसकें सूक्त के अर्थ के साथ इस इक्कीसवें सूक्त के अर्थ का मेल जानना चाहिये।

यह भी सूक्त सायणाचार्य अदि तथा यूरोपदेशवासी विलसन आदि ने विरुद्ध अर्थ से वर्णन

यह इक्कीसवां सूक्रेत और तीसरा वर्ग पूरा हुआ॥

अथास्यैकविंशत्यृचस्य द्वाविंशस्य सूक्तस्य काण्वो मेधातिथिर्ऋषिः। १-४ अश्विनौ; ५-८ सिवता; ९,१० अग्निः; ११ देव्यः; १२ इन्द्राणीवरुणान्यग्नाच्यः; १३, १४ द्वावापृथिव्यौः, १५ पृथिवी; १६ विष्णुर्देवो वा; १७-२१ विष्णुश्च देवताः। १-३, ८,१२,१७,१८

पिपीलिकामध्यानिचृद्गायत्री; ४,५,७,९-११,१३-१४,१६,२०-२१ गायत्री; ६,३९

निचृद्गायत्री; १५ विराड् गायत्री च छन्दः। षड्जः स्वरः॥ तत्रादावश्चिगुणा उपदिश्यन्ते।

अब बाईसवें सूक्त का आरम्भ है। इसके पहिले मन्त्र में अश्वि के गुणों का उपदेश किया है-

प्रातुर्युजा वि बौधयाश्विनावेह गैच्छताम्। अस्य सोमेस्य पीत्रये॥ १॥

प्रातःऽयुजां। वि। बोध्या अश्विनौ। आ। इह। गुच्छताम्। अस्या सोमस्या प्रीतये॥ १॥

पदार्थ:-(प्रातर्युजा) प्रातः प्रथमं युङ्क्तस्तौ। अत्र सुपा सुलुग् इत्याकारादेशः। (वि) विशिष्टार्थे (बोधय) अवगमय (अश्विनौ) द्यावापृथिव्यौ (आ) समन्तात् (इह) शित्यव्यवहारे (गच्छताम्) प्राप्नुतः। अत्र लडर्थे लोट् (अस्य) प्रत्यक्षस्य (सोमस्य) स्तोतव्यस्य सुवस्य (पीतये) प्राप्तये॥१॥

अन्वय:-हे विद्वन्! यौ प्रातर्युजावश्विनाविह्न गच्छतां प्राप्नुतस्तावस्य सोमस्य पीतये सर्वसुखप्राप्तयेऽस्मान् विबोधयावगमय॥१॥

भावार्थ:-शिल्पकार्य्याणि चिकीर्षुभिर्मनुष्यैर्भूम्यग्नी प्रथमं संग्राह्यौ नैताभ्यां विना यानादिसिद्धिगमने सम्भवत इतीश्वरस्योपदेशः। ১

पदार्थ: -हे विद्वन् मनुष्य! जो (प्रातर्युजा) शिल्पविद्या सिद्ध यन्त्रकलाओं में पहिले बल देनेवाले (अश्विनौ) अग्नि और पृथिवी (इह) इस शिल्प व्यवहार में (गच्छताम्) प्राप्त होते हैं, इससे उनको (अस्य) इस (सोमस्य) उत्पन्न करेनेयोग्य सुख समूह को (पीतये) प्राप्ति के लिये तुम हमको (विबोधय) अच्छी प्रकार विदित कराइये। १२॥

भावार्थ:-शिल्प कि भी कि सिद्धि करने की इच्छा करनेवाले मनुष्यों को चाहिये कि उसमें भूमि और अग्नि का पहिले ग्रहण करें, क्योंकि इनके विना विमान आदि यानों की सिद्धि वा गमन सम्भव नहीं हो सकता॥१॥ 🛆

पुनस्तौ कीदृशावित्युपदिश्यते।

फिर वे किस प्रकार के हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है-

या सुरर्था रथीतमोभा देवा दिविस्पृशी। अश्विना ता हेवामहे॥२॥ का सुऽरर्था। रथिऽतमा। उभा। देवा। दिविऽस्पृशी। अश्विनी। ता। हुवामुहे॥२॥

मण्डल-१। अनुवाक-५। सूक्त-२२

पदार्थ:-(या) यौ। अत्र षट्सु प्रयोगेषु सुपां सुलुग्० इत्याकारादेश:। (सुरथा) शोभना रथा याभ्यां तौ (रथीतमा) प्रशस्ता रथा विद्यन्ते ययो: सकाशात् तावतिशयितौ। रथिन इतिक्याः (अष्टा०वा०८.२.१७) इतीकारादेश:। (उभा) द्वौ परस्परमाकांक्ष्यौ (देवा) देदीप्यमानौ (दिवस्पृशाः) यौ दिव्यन्तरिक्षे यानानि स्पर्शयतस्तौ। अत्रान्तर्गतो एयर्थ:। (अश्विना) व्याप्तिगुणशीलौ (ता) तो (हवामहे) आदद्य:। अत्र बहुलं छन्दिस इति शपो लुकि श्लोरभाव:॥२॥

अन्वय:-वयं यौ दिविस्पृशा रथीतमा सुरथा देवाऽश्विनौ स्तस्तावुभौ हवूर्गमहे स्वीकुर्मः॥ स

भावार्थ:-मनुष्यैर्यौ शिल्पानां साधकतमावग्निजले स्तस्तौ सम्प्रयोजितौ कार्य्यसिद्धिहेतू भवत इति॥२॥

पदार्थ:-हम लोग (या) जो (दिविस्पृशा) आकाशमार्ग से क्रिमान अदियानों को एक स्थान से दूसरे स्थान में शीघ्र पहुंचाने (रथीतमा) निरन्तर प्रशंसनीय रथों को सिद्ध करनेवाले (सुरथा) जिनके योग से उत्तम-उत्तम रथ सिद्ध होते हैं (देवा) प्रकाशादि गुणवाले (अधिनी) व्याप्ति स्वभाववाले पूर्वीक्त अग्नि और जल हैं, (ता) उन (उभा) एक-दूसरे के साथ सियान करने योग्यों को (हवामहे) ग्रहण करते हैं॥२॥

भावार्थ:-जो मनुष्यों के लिये अत्यन्त सिद्धि करानेवाले अग्नि और जल हैं, वे शिल्पविद्या में संयुक्त किये हुए कार्य्यसिद्ध के हेतु होते हैं॥ २॥

काभ्यामेतौ सम्प्रयोजितुं शृक्यावित्युपदिश्यते।

वे क्रिया में किनसे संयुक्त हो स्किते हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है-

या वां कशा मधुमत्यश्चिना सून्तावती।

तया युज्ञं मिमिक्षतम्॥ 🖘 ॥

या। वाम्। कर्शा। मधुर्रमेती। अर्थिना। सूनृतांऽवती। तयां। युज्ञम्। मिमिक्षुतम्॥३॥

पदार्थ:-(या) विम्) युव्योर्युवां वा (कशा) वाक्। कशेति वाङ्नामसु पठितम्। (निघं०१.११) (मधुमती) मुभूरगुणा (अश्विना) प्रकाशितगुणयोरध्वर्य्योः। अत्र सुपां सुलुग्० इत्याकारादेश:। (सूनृतावती) सूनृता प्रशस्ता बुद्धिर्विद्यते यस्यां सा। सूनृतेति वाङ्नामसु पठितम्। (निघं०१.११) अत्र प्रशंसार्थे मतुप्। (तया) कशया (यज्ञम्) सुशिक्षोपदेशाख्यम् (मिमिक्षतम्) सेक्तुमिच्छ्रतम्॥ ३॥

्रभन्वयः-हे उपदेष्ट्रपदेश्यावध्यापकशिष्यौ वां युवयोरिश्वनोर्या सूनृतावती मधुमती कशाऽस्ति तया युवां अज्ञं मिसिक्षतं सेक्तुमिच्छतम्॥३॥

भावार्थः-नैवोपदेशमन्तरा कस्यचित् किञ्चिदपि विज्ञानं तस्मात्सर्वेविद्वज्जिज्ञासुभिर्मनुष्यैर्नित्यमुपदेशः श्रवणं च कार्य्यमिति॥३॥

पदार्थ:-हे उपदेश करने वा सुनने तथा पढ़ने-पढ़ानेवाले मनुष्यो! (वाम्) तुम्हार् (अश्विना) गुणप्रकाश करनेवालों की (या) जो (सूनृतावती) प्रशंसनीय बुद्धि से सिहत (मधुमती) सधुरगुणयुक्त (कशा) वाणी है, (तया) उससे तुम (यज्ञम्) श्रेष्ठ शिक्षारूप यज्ञ को (मिमिक्षतम्) प्रकाश करने की इच्छा नित्य किया करो॥३॥

भावार्थ:-उपदेश के विना किसी मनुष्य को ज्ञान की वृद्धि कुछ भी बही हो सेकती, इससे सब मनुष्यों को उत्तम विद्या का उपदेश तथा श्रवण निरन्तर करना चाहिये॥३॥

एतं कृत्वाऽश्विनोर्योगेन किं भवतीत्युपिद्शयने।

इसको करके अश्वियों के योग से क्या होता है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है-

नुहि वामस्ति दूरके यत्रा रथेन गच्छ्यः।

अश्विना सोमिनो गृहम्॥४॥

नुहि। वाम्। अस्ति। दूर्के। यत्री रथैन। गच्छेथः। अधिना सोमिनैः। गृहम्॥४॥

पदार्थ:-(निह) प्रतिषेधार्थे (वाम्) युवयोः (अस्ति) भूवति (दूरके) दूर एव दूरके। स्वार्थे कन्। (यत्र) यस्मिन्। ऋचि तुनुघ० (अष्टा०६.३.१३३) इति दीर्घृः। (रथेन) विमानादियानेन (गच्छथः) गमनं कुरुतम्। लट् प्रयोगोऽयम्। (अश्विना) अश्विभ्यां युक्तेन (सीमिनः) सोमाः प्रशस्ताः पदार्थाः सन्ति यस्य तस्य। अत्र प्रशंसार्थ इतिः। (गृहम्) गृह्णावि यस्मिस्तु। ४॥

अन्वयः-हे रथानां रचयितृचातियतारी युवां यत्राश्विना रथेन सोमिनो गृहं गच्छथस्तत्र दूरस्थमपि स्थानं वा युवयोर्दूरके नह्यस्ति॥४॥४

भावार्थ:-हे मनुष्या यतोऽश्वित्रेगयुक्तं यानमतिदूरमपि स्थानं शीघ्रं गच्छति तस्मादेताभिरेतन्नित्यमनुष्ठेयम्। ।

पदार्थ: -हे रथों कि किने का चलानेहारे सज्जन लोगो! तुम (यत्र) जहाँ उक्त (अश्विना) अश्वियों से संयुक्त (रथेन) विमान आदि यान से (सोमिन:) जिसके प्रशंसनीय पदार्थ विद्यमान हैं, उस पदार्थविद्या वाले के (गृहम्) घर को (गच्छथ:) जाते हो, वह दूरस्थान भी (वाम्) तुमको (दूरके) दूर (निह) नहीं है। अ

भावार्थ: मनुष्यो! जिस कारण अग्नि और जल के वेग से युक्त किया हुआ रथ अति दूर भी स्थानों को शीघ्र पहुंचाता है, इससे तुम लोगों को भी यह शिल्पविद्या का अनुष्ठान निरन्तर करना चाहिया हो।

मण्डल-१। अनुवाक-५। सूक्त-२२

अथैश्वर्य्यहेतुरुपदिश्यते

अगले मन्त्र में परम ऐश्वर्य्य करानेवाले परमेश्वर का प्रकाश किया है-

हिरंण्यपाणिमूतये सिव्तार्मुपं ह्वये।

स चेत्ता देवता पुदम्॥५॥४॥

हिरंण्यऽपाणिम्। ऊतर्थे। सुवितारंम्। उप। ह्वये। सः। चेत्तां। देवतां। पुदम्॥५॥

पदार्थ:-(हिरण्यपाणिम्) हिरण्यानि सुवर्णादीनि रत्नानि पाणौ व्यवहारे लेभन्ते यस्मात्तम् (ऊतये) प्रीतये (सवितारम्) सर्वजगदन्तर्यामिणमीश्वरम् (उप) उपगमार्थे (ह्वये) स्त्रीकुर्वे (सः) जगदीश्वरः (चेत्ता) ज्ञानस्वरूपः (देवता) देव एवेति देवता पूज्यतमा। देवात्तल्य (अष्टाव्य १५७) इति स्वार्थे तल् प्रत्ययः। (पदम्) पद्यते प्राप्तोऽस्ति चराचरं जगत् तम्॥५॥

अन्वय:-अहमूतये यं पदं हिरण्यपाणिं सवितारं परमात्मानमुपहृये स्म चेत्ता देवतास्ति॥५॥

भावार्थ:-मनुष्यैर्यश्चिन्मयः सर्वत्र व्यापकः पूज्यतमः प्रीतिविष्ट्यः सर्वेश्वर्यप्रदः परमेश्वरोऽस्ति, स एव नित्यमुपास्यः। नैव तद्विषयेऽस्मादन्यः कश्चित्पदार्थः उपासितुमहीऽस्तीति मन्तव्यम्॥५॥

इति चतुर्थीं वर्गः सम्पूर्णः॥

पदार्थ:-मैं (ऊतये) प्रीति के लिये जें (पदम्) सब चराचर जगत् को प्राप्त और (हिरण्यपाणिम्) जिससे व्यवहार में सुवर्ण अदि रत्ने मिलते हैं, उस (सवितारम्) सब जगत् के अन्तर्यामी ईश्वर को (उपहृये) अच्छी प्रकृष्ट स्वीकार् करता हूं (स:) वह परमेश्वर (चेत्ता) ज्ञानस्वरूप और (देवता) पूज्यतम देव है॥५॥

भावार्थ:-मनुष्यों को जो चेतनमेश सब जगह प्राप्त होने और निरन्तर पूजन करने योग्य प्रीति का एक पुंज और ऐश्वर्यों का देनेवाला परमेश्वर है, वही निरन्तर उपासना के योग्य है। इस विषय में इसके विना कोई दूसरा पदार्थ उपासना के योग्य नहीं)है॥५॥

यह चौथा वर्ग पूरा हुआ॥

पुनः स स्तोतव्य इत्युपदिश्यते।

फिर उस्र परमेश्वर क्री स्तुति करनी चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है-

अपां भर्पातुस्वसे सवितारुमुपं स्तुहि।

तस्य व्रतास्यश्मिसा ६॥

ञ्रेपाम्। नर्पातम्। अवसे। सुवितारम्। उपे। स्तुहुि। तस्ये। वृतानि। उुश्मुसि।।६॥

पदार्थ:-(अपाम्) ये व्याप्नुवन्ति सर्वान् पदार्थानन्तिरिक्षादयस्तेषां प्रणेतारम् (नपातम्) न विद्यते पातो विनाशो यस्येति तम्। नभ्राण्नपान्नवेदा० (अष्टा०६.३.७५) अनेनाऽयं निपातितः। (अवसे) रक्षणाद्याय (सवितारम्) सकलैश्वर्यप्रदम् (उप) सामीप्ये (स्तुहि) प्रशंसय (तस्य) जगदीश्वरस्य (वत्ताम्) नियतधर्मयुक्तानि कर्माणि गुणस्वभावाँश्च (उश्मिस) प्राप्तुं कामयामहे॥६॥

अन्वय:-हे विद्वन्! यथाहमवसे यमपां नपातं सवितारं परमात्मानमूर्पस्तौिमि तथा तं त्वमप्युपस्तुहि प्रशंसय यथा वयं यस्य व्रतान्युश्मिस प्रकाशितुं कामयामहे तथा तस्येतानि यूयमेषि प्राप्तुं कामयध्वम्॥६॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा विद्वान् परमेश्वरं स्तृत्वा तस्याज्ञामाचरन्ति। तथैव युष्माभिरप्यनुष्ठाय तद्रचितायामस्यां सृष्टावुपकाराः संग्राह्या इति॥६॥

पदार्थ:-हे धार्मिक विद्वान् मनुष्य! जैसे मैं (अवसे) रक्षा आदि के लिये (अपाम्) जो सब पदार्थों को व्याप्त होने अन्त आदि पदार्थों के वर्ताने तथा (नपातृष्) अविनाशों और (सवितारम्) सकल ऐश्वर्य्य के देनेवाले परमेश्वर की स्तुति करता हूँ, वैसे तू भी उसकी (उपस्तृहि) निरन्तर प्रशंसा कर। हे मनुष्यो! जैसे हम लोग जिसके (व्रतानि) निरन्तर धर्मयुक्त कर्मों को (उश्मिस) प्राप्त होने की कामना करते हैं, वैसे (तस्य) उसके गुण कर्म्म और स्वभाव को प्राप्त होने की कामना तुम भी करो॥६॥

भावार्थ:-जैसे विद्वान् मनुष्य परमेश्वर की स्मृति करके उसकी आज्ञा का आचरण करता है, वैसे तुम लोगों को भी उचित है कि उस परमेश्वर कि रचे हुए संसार में अनेक प्रकार के उपकार ग्रहण करो॥६॥

अथ स्वित्राद्भिनेश्वरमूर्यगुणा उपदिश्यन्ते।

अगले मन्त्र में सविता शब्द से ईश्वर और सूर्य्य के गुणों का उपदेश किया है-

विभक्तारं हवामहे वस्त्रेश्चित्रस्य राधंस:।

सुवितारं नृचक्षंसम्मध्य

विऽभुक्तारम्। हुक्मिह्रे। बसौर्य चित्रस्य। राधसः। सुवितारम्। नृऽचक्षसम्॥७॥

पदार्थ:-(विभक्तारम्) मिवेभ्यस्तत्तत्कर्मानुकूलफलविभाजितारम्। विविधपदार्थानां पृथक् पृथक् कर्त्तारं वा (हवापहे) आदहाः। अत्र बहुलं छन्दिस इति शपः स्थाने श्लोरभावः। (वसोः) वस्तुजातस्य (चित्रस्य) अद्भीस्य (पधसः) विद्यासुवर्णचक्रवर्तिराज्यादिधनस्य च (सिवतारम्) उत्पादकमैश्वर्य्यहेतुं वा (नृचक्षसम्) नृषु चेक्षा अन्तर्य्यामिरूपेण विज्ञानप्रकाशो वा यस्य तम्॥७॥

अन्वय:-हे मनुष्या! यथा वयं नृचक्षसं वसोश्चित्रस्य राधसो विभक्तारं सवितारं परमेश्वरं सूर्यं वा ह्वामुहे आददीमहि तथैव यूयमप्यादत्त॥७॥

मण्डल-१। अनुवाक-५। सूक्त-२२

भावार्थ:-अत्र श्लेषोपमालङ्कारौ। मनुष्यैर्यतः परमेश्वरः सर्वशक्तिमत्त्वसर्वज्ञत्वाभ्यां सर्वजगद्रचनं कृत्वा सर्वेभ्यः कर्मफलप्रदानं करोति। सूर्य्योऽग्निमयत्वछेदकत्वाभ्यां मूर्त्तद्रव्याणां विभागप्रकाशो करोति तस्मादेतौ सर्वदा युक्त्योपचर्य्यो॥७॥

पदार्थ:-हे मनुष्य लोगो! जैसे हम लोग (नृचक्षसम्) मनुष्यों में अन्तर्यामिरूप्र से किशान प्रकाश करने (वसो:) पदार्थों से उत्पन्न हुए (चित्रस्य) अद्भुत (राधस:) विद्या सुवर्ण वा स्क्रवर्ति राज्य आदि धन के यथायोग्य (विभक्तारम्) जीवों के कर्म के अनुकूल विभाग से फल ट्रेनें वा (मवितारम्) जगत् के उत्पन्न करने वाले परमेश्वर और (नृचक्षसम्) जो मूर्तिमान् द्रव्यों का प्रकास करने (वसो:) (चित्रस्य) (राधस:) उक्त धनसम्बन्धी पदार्थों को (विभक्तारम्) अलग-अलग् व्यवहारीं में वर्ताने और (सवितारम्) ऐश्वर्य्य हेतु सूर्य्यलोक को (हवामहे) स्वीकार करें, वैसे तूम भी उनका ग्रहण करो॥७॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में श्लेष और उपमालङ्कार हैं। मनुष्यों को उचित है कि जिससे परमेश्वर सर्वशक्तिपन वा सर्वज्ञता से सब जगत् की रचना करके सब जीवों को उसके कर्मों के अनुसार सुख दु:खरूप फल को देता और जैसे सूर्य्यलोक अपने ताप कि छेदनशक्ति से मूर्त्तिमान् द्रव्यों का विभाग और प्रकाश करता है, इससे तुम भी सबको न्यायपूर्वक स्पेड वा सुख और यथायोग्य व्यवहार में चला के विद्यादि शुभ गुणों को प्राप्त कराया करो॥७॥

कथमयुमपकारो यहीतु शक्य इत्युपदिश्यते।

कैसे मनुष्य इस उपकार को ग्रहण कर सकें, सो अगले मन्त्र में उपदेश किया-

सर्खाय आ नि षीदत सिवता पत्राभ्यो मुर्निः।

दाता राधांसि शुम्भति॥८

सर्खायः। आ। नि। सी<u>द्रह्म सर्विता। स्</u>तोम्यः। नु। नुः। दार्ता। राधांसि। शुम्भृति॥८॥

पदार्थ:-(सखाय:) प्रिस्परं सुहृदः प्रोपकारका भूत्वा (आ) अभितः (नि) निश्चयार्थे (सीदत) वर्त्तध्वम् (सिवता) सङ्गलेश्वर्ययेषुत्रतः। ऐश्वर्य्यहेतुर्वा (स्तोम्यः) प्रशंसनीयः (नु) क्षिप्रम्। न्विति क्षिप्रनामसु पठितम्। भिष्ठिः १५) (नः) अस्मभ्यम् (दाता) दानशीलो दानहेतुर्वा (राधांसि) नानाविधान्युत्तमानि धनानि (शुक्मिति) शोभयित॥८॥

अन्वयः-हे सनुष्या यूयं सदा सखायः सन्त आनिषीदत यः स्तोम्यो नोऽस्मभ्यं राधांसि दाता सविता जगृतीश्वरः सूच्यो वा शुम्भित तं नु नित्यं प्रशंसत॥८॥

भावार्थ:-अत्र श्लेषालङ्कार:। नैव मनुष्याणां मित्रभावेन विना परस्परं सुखं सम्भवति। अतः सर्वैः परस्पर्र मिलित्वा जगदीश्वरस्याग्निमयस्य सूर्य्यादेवां गुणानुपदिश्य श्रुत्वा च तेभ्यः सुखाय सदोपकारो ग्राह्म इति॥८॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! तुम लोग सदा (सखाय:) आपस में मित्र सुख वा उपकार करने विले होकर (आनिषीदत) सब प्रकार स्थित रहो और जो (स्तोम्य:) प्रशंसनीय (न:) हमारे लिये (राधांसि) अनेक प्रकार के उत्तम धनों को (दाता) देनेवाला (सिवता) सकल ऐश्वर्य्ययुक्त जगदीश्वर (श्वाम्पति) सबको सुशोभित करता है उसकी (नु) शीघ्रता के साथ नित्य प्रशंसा करो। तथा है मनुष्या! जो (स्तोम्य:) प्रशंसनीय (न:) हमारे लिये (राधांसि) उक्त धनों को (शुम्भिति) सुशोभित कराता वा उनके (दाता) देने का हेतु (सिवता) ऐश्वर्य देने का निमित्त सूर्य्य है उसकी (नु) नित्य शिव्रता के साथ प्रशंसा करो॥८॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों को परस्पर मित्रभाव के विना कभी सुख नहीं हो सकता। इससे सब मनुष्यों को योग्य है कि एक-दूसरे के साथ होकर अगरीश्वर के अग्निमय सूर्यादि का उपदेश कर वा सुनकर उनसे सुखों के लिये सदा उपकार ग्रहण करें। दा।

पुनरग्निगुणा उपदिश्यन्ते।

फिर अगले मन्त्र में अग्नि के गुणों का उपदेश किया है-

अग्ने पत्नीरिहा वह देवानामुश्तिरुपे। त्वष्टारं सोमपीतये॥९॥

अग्नै। पत्नी:। इह। आ। वहा देवानाम्। उष्ट्रिती:। उप। ब्रह्मारम्। सोमंऽपीतये॥९॥

पदार्थ:-(अग्ने) अग्निभौतिकः (पत्नीः) पत्युन्ने यज्ञसंयोगे। (अष्टा०४.१.३३) अनेन डीप् प्रत्ययो नकारादेशश्च। इयं वै पृथिव्यद्भितः सेयं द्वेवानां पत्नी। (श०ब्रा०५.२.५.४) देवानां पत्य उशत्योऽवन्तु नः। प्रावन्तु नस्तुजयेऽप्रस्थानन्तय व्यान्नसंसननाय च। याः पार्थिवासो या अपामिष व्रते कर्मणि ता नो देव्यः सुहवाः अर्भ यद्यन्तु शरणम्। अपि च ग्नाः व्यन्तु देवपत्य इन्द्राणीन्द्रस्य पत्यग्ययग्नेः पत्यश्चिन्यश्चिनोः पत्नी सङ्गराजते रोदसी रुद्रस्य पत्नी वरुणाने च वरुणस्य पत्नी व्यन्तु देव्यः कामयन्तां स्व सृतुः काली जायानाम्। (निरु०१२.४५-४६) देवानां विदुषां पालनयोग्याऽग्न्यादीनां स्थित्यर्थयं प्रत्यिव वर्तते तस्माद् दैवपत्नीत्युच्यते यस्मिन् यस्मिन् द्रव्ये या याः शक्तयः सन्ति तास्तास्तेषा व्यग्रणा पत्न्य इवेत्युच्यन्ते (इह) अस्मिन् शिल्पयज्ञे (आ) समन्तात् (वह) वहति प्रापयित। अत्र व्यत्यया लडर्थे लोट् च। (देवानाम्) पृथिव्यादीनामेकत्रिंशतः (उशतीः) स्वस्वाधारगुण्यकाश्चरन्तीः (उप) सामीप्ये (त्वष्टारम्) छेदन कर्त्तारं सूर्य्यं शिल्पिनं वा (सोमपीतये) सोमानां पद्मर्थानो प्रीतिम्रेहणं यस्मिन् व्यवहारे तस्मै॥९॥

अन्वयः-योऽयमग्निः सोमपीतये देवानामुशतीः पत्नीस्त्वष्टारं चोपावह समीपे प्रापयति तस्य प्रयो<u>गी</u> यथाक्तकर्त्तव्यः॥९॥

मण्डल-१। अनुवाक-५। सूक्त-२२

भावार्थः-विद्वद्भिर्योऽग्निभौतिको विद्युत्पृथिवीस्थसूर्य्यरूपेण त्रिधा वर्त्तमानः शिल्पविद्यासिद्धये पृथिव्यादीनां सामर्थ्यप्रकाशको मुख्यहेतुरस्ति स स्वीकार्य्यः। अत्र शिल्पविद्यायज्ञे पृथिव्यादीनां संयोजनार्थत्वात् तत्तत्सामर्थ्यस्य पत्नीति संज्ञा विहिता॥९॥

पदार्थ:-(अग्ने) जो यह भौतिक अग्नि (सोमपीतये) जिस व्यवहार में सोम्र आदि पदार्थों का ग्रहण होता है उसके लिये (देवानाम्) इकत्तीस जो कि पृथिवी आदि लोक हैं उनकी (उशतीः) अपने-अपने आधार के गुणों का प्रकाश करने वाला (पत्नीः) स्त्रीवत् वर्त्तमान अदिति आदि पद्मी और (त्वष्टारम्) छेदन करनेवाले सूर्य्य वा कारीगर को (उपावह) अपने सामने प्राप्त करता है, उसका प्रयोग ठीक-ठीक करें॥९॥

भावार्थ:-विद्वानों को उचित है कि जो बिजुली प्रसिद्ध और सूर्व्यरूप से तीन प्रकार का भौतिक अग्नि शिल्पविद्या की सिद्धि के लिये पृथिवी आदि पदार्थों के सामर्थ्य प्रकाश करने में मुख्य हेतु है, उसी का स्वीकार करें और यह इस शिल्पविद्यारूपी यज्ञ में पृथिवी आदि पदार्थों के सामर्थ्य का पत्नी नाम विधान किया है, उसको जानें॥९॥

का का सा देवपत्नीत्युपिद्धस्यमे

वे कौन-कौन देवपत्नी हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है-

आ ग्ना अंग्न इहार्वसे होत्रां यिवष्ट्र भारतीम्। वर्स्नत्रीं धिषणां वह॥ १०॥ ५॥

आ। ग्ना:। अुग्ने। इह। अवसे। होत्रीम् (युक्किट्ट) भारतीम्। वर्स्त्रीम्। धिषणाम्। वहा। १०॥

पदार्थ:-(आ) क्रियायोगे (ग्नाः) पृथिव्याः। ग्ना इत्युत्तरपदनामसु पठितम्। (निघं०३.२९) (अग्ने) पदार्थविद्यावेत्तर्विद्वन् (इह) सिल्पकार्थ्येषु (अवसे) प्रवेशाय (होत्राम्) हुतद्रव्यगतिम् (यिवष्ठ) यौति मिश्रयति विविनिक्तं वा सोऽतिशियतस्तत्सम्बुद्धौ। (भारतीम्) यो ययाशुभैर्गुणैर्बिभित्तिं पृथिव्यादिस्थान् प्राणिनः स भरतस्त्रस्येमां भाम्। भरत आदित्यस्तस्य भा इळा। (निरु०८.१३) (वस्त्रीम्) वित्तुं स्वीकर्मुमर्ह्याम्) अहोरात्राणि वै वस्त्रयः। (श०ब्रा०६.४.२.६) (धिषणाम्) धृष्णोति कार्य्येषु यया तामग्नेर्ज्वालाप्रेरितां वाचम्। धिषणेति वाइनामसु पठितम्। (निघं०१.११) धृषेर्धिषच् संज्ञायाम्। (उप्रा०२८०) इति क्युः प्रत्ययो धिषजादेशश्च। (वह) प्राप्नुहि। अत्र व्यत्ययो लडर्थे लोट् च॥१०॥

अन्वयः-हे यविष्ठाग्ने विद्वँस्त्विमहावसे ग्ना होत्रां भारतीं वरूत्रीं धिषणामा वह समन्तात् प्राप्नुहिं॥१९०।

भावार्थः-विद्वद्भिरस्मिन् संसारे मनुष्यजन्म प्राप्य वेदादिद्वारा सर्वा विद्याः प्रत्यक्षीकार्य्याः। निव कस्यचिद् द्रव्यस्य गुणकर्मस्वभावानां प्रत्यक्षीकरणेन विना विद्या सफला भवतीति वेदितव्यम्॥१०॥

इति पञ्चमो वर्गः सम्पूर्णः॥

पदार्थ:-हे (यविष्ठ) पदार्थों को मिलाने वा उनमें मिलने वाले (अग्ने) क्रियाकुशल विद्वान! तू (इह) शिल्पकार्थ्यों में (अवसे) प्रवेश करने के लिये (ग्नाः) पृथिवी आदि पदार्थ (होन्नाम) होम किये हुए पदार्थों को बहाने (भारतीम्) सूर्य्य की प्रभा (वरूत्रीम्) स्वीकार करने योग्य दिन रात्रि और (धिषणाम्) जिससे पदार्थों को ग्रहण करते हैं, उस वाणी को (आवह) प्राप्त हो॥१०॥

भावार्थ:-विद्वानों को इस संसार में मनुष्य जन्म पाकर वेद द्वास सब विद्या प्रत्यक्ष करनी चाहिये, क्योंकि कोई भी विद्या पदार्थों के गुण और स्वभाव को प्रत्यक्ष किये विना सफल नहीं हो सकती॥१०॥

यह पांचवा वर्ग पूरा हुआू।

अथ विद्वत्स्त्रियोऽप्येतानि कार्य्याणि कुर्य्युस्त्युपद्विश्यते।

अब विद्वानों की स्त्रियां भी उक्त कार्य्यों को करें, इस विष्णा का अपेदश अगले मन्त्र में कहा है-

अभि नो देवीरवंसा महः शर्म्मणा नृपत्नी

अच्छिन्नपत्राः सचन्ताम्॥ ११॥

अभि। नुः। देवीः। अवसा। महः। शर्माकाः कृऽपत्तेः। अच्छिन्नऽपत्राः। सुचन्ताम्॥ ११॥

पदार्थ:-(अभि) आभिमुख्ये (नः) अस्मान् (देवीः) देवानां विदुषामिमाः स्त्रियो देव्यः। अत्रोभयत्र सुपां सुलुग्॰ इति पूर्वसवर्णः (अवस्य) रक्षाविद्या प्रवेशादि कर्म्मणा सह (महः) महता। अत्र सुपां सुलुग्॰ इति विभक्तेर्लुक्। (अर्मणाः) गृहसंबन्धिसुखेन। शर्मिति गृहनामसु पठितम्। (निघं॰३.४) (नृपत्नीः) याः क्रियाकुशलानां विदुषां नृणां स्वसदृश्यः पत्न्यः (अच्छिन्नपत्रा) अविच्छिन्नानि पत्राणि कर्मसाधनानि यासां ताः। (सक्ताम्) संयुक्षत्। ११॥

अन्वय:-इमा क्रिक्श पद्मार्थित देवीर्नृपत्नीर्महः शर्म्मणावसा सह नोऽस्मानिषसचन्तां संयुक्ता भवन्तु॥११॥

भावार्थः त्यादृशविद्यागुणस्वभावाः पुरुषास्तेषां तादृशीभिः स्त्रीभिरेव भवितव्यम्। यतस्तुल्यविद्यागुणस्वभावानां सम्बन्धे सुखं सम्भवित नेतरेषाम्। तस्मात्स्वसदृशैः सह स्त्रियः स्वसदृशीभिः स्वीभिः सह पुरुषाश्च स्वयंवरिवधानेन विवाहं कृत्वा सर्वाणि गृहकार्य्याणि निष्पाद्य सदानन्दित्यमिति॥११॥

मण्डल-१। अनुवाक-५। सूक्त-२२

पदार्थ:-(अच्छिन्नपत्रा:) जिन के अविनष्ट कर्मसाधन और (देवी:) (नृपत्नी:) जो क्रियाकुशलता में चतुर विद्वान् पुरुषों की स्त्रियां हैं, वे (महः) बड़े (शर्मणा) सुखसम्बन्धी घर (अवसा) एवा बिद्या में प्रवेश आदि कर्मों के साथ (नः) हम लोगों को (अभिसचन्ताम्) अच्छी प्रकार मिलें॥११॥

भावार्थ:-जैसी विद्या, गुण, कर्म और स्वभाव वाले पुरुष हों, उनकी स्त्री भी बैसे हो होनी ठीक हैं, क्योंकि जैसा तुल्य रूप विद्या गुण कर्म स्वभाव वालों को सुख का सम्भव होता है, वैसा अन्य को कभी नहीं हो सकता। इससे स्त्री अपने समान पुरुष वा पुरुष अपने समान सित्रयों के साथ ध्रापस में प्रसन्न होकर स्वयंवर विधान से विवाह करके सब कर्मों को सिद्ध करें॥११॥

पुनस्ताः कीदृश्यो देवपत्य इत्युपदिश्यते।

फिर वे कैसी देवपत्नी हैं, इस विषय का उपदेश अगले सेन्त्र में क्लिया है-

ड्रहेन्द्राणीमुपं ह्वये वरुणानीं स्वस्तर्थे। अग्नायीं सोमंपीतये॥ १२॥

डुह। डुन्द्राणीम्। उपं। ह्वये। वुरुणानीम्। स्वस्तये। अस्मायीम्। स्रोमेऽपीतये॥ १२॥

पदार्थ:-(इह) एतस्मिन् व्यवहारे। (इन्द्राणीम्) इन्द्रस्य सूर्य्यस्य वायोर्वा शक्तिं सामर्थ्यमिव (वर्जुणानीम्) उपयोगे (ह्रये) स्वीकुर्व यथा शक्तिस्तथाभूतम्/ (स्वस्त्र्य) शान्तिमाधुर्य्यादिगुणयुक्ता अविनष्टा याभिपुजिताय सुखाय। स्वस्तीत्यविनाशिनामास्तिरभिपृजित:। (त्रिरुक्, २१) (अग्नायीम्) यथाग्नेरियं ज्वालास्ति तादृशीम्। वृषाकप्यग्नि (अष्टा०४.१.३७) अन्नेन अपूर्णपूर्ण ऐकारादेशश्च। (सोमपीतये) सोमानामैश्वर्य्याणां पीतिर्भोगो यस्मिन् तस्मै। सह भूपो इति समासः। अग्नाय्यग्नेः पत्नी तस्या एषा भवति। इहेन्द्राणीमुपह्वये० सा निगदव्याख्याता। (निरु०८.३४)॥१२॥

अन्वय:-मनुष्या यथ्रिहिमिह स्वस्तये भोमपीतय इन्द्राणीं वरुणानीमग्नायीमिव स्त्रियमुपह्वये तथा भवद्भिरपि सर्वैरनुष्ठेयम्॥ १२०१

भावार्थः-अत्र व्यक्तिनुत्तीपमालङ्कारः। मनुष्यैरीश्वररचितानां पदार्थानां सकाशादिवनश्वरसुख-प्राप्तयेऽत्युत्तमाः स्त्रियः प्राप्तव्याः। नित्यमुद्योगेनान्योऽन्यं प्रीता विवाहं कुर्य्युः। नैव सदृशस्त्रीः पुरुषार्थं चान्तरा कस्यन्तित् किचिदपि यथावत् सुखं सम्भवति॥१२॥

पद्धार्थ: है मनुष्य लोगो! जैसे हम लोग (इह) इस व्यवहार में (स्वस्तये) अविनाशी प्रशंसनीय सुख वा/(सोमपीतये) ऐश्वर्यों का जिसमें भोग होता है, उस कर्म के लिये जैसा (इन्द्राणीम्) सूर्य्य (वम्र्णीनीम्) वायु वा जल और (अग्नायीम्) अग्नि की शक्ति हैं, वैसी स्त्रियों को पुरुष और पुरुषों को प्री लोग (उपह्वये) उपयोग के लिये स्वीकार करें, वैसे तुम भी ग्रहण करो॥१२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा और उपमालङ्कार हैं। मनुष्यों को उचित है कि ईश्वर के बनाये हुए पदार्थों के आश्रय से अविनाशी निरन्तर सुख की प्राप्ति के लिये उद्योग करके परस्पर प्रसन्नता युक्त स्त्री और पुरुष का विवाह करें, क्योंकि तुल्य स्त्री पुरुष और पुरुषार्थ के विना किसी मनुष्य को कुछ भी ठीक-ठीक सुख का सम्भव नहीं हो सकता॥१२॥

अत्र भूम्यग्नी मुख्ये साधने स्त इत्युपदिश्यते।

शिल्पविद्या में भूमि और अग्नि मुख्य साधन हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्रे में किया है-

मुही द्यौ: पृथिवी च न इमं युज्ञं मिमिक्षताम्।

पिपृतां नो भरीमभि:॥१३॥

मही। द्यौः। पृथिवी। च। नः। इमम्। यज्ञम्। मिमिक्षुताम्। पिपृत्तेम्(नः। भरीमे भिः॥ १३॥

पदार्थ:-(मही) महागुणविशिष्टा (द्यौ:) प्रकाशमयो विद्युत् सूर्व्यदिलोकसमूहः (पृथिवी) अप्रकाशगुणानां पृथिव्यादीनां समूहः (च) समुच्चये (नः) अस्मभ्यम् (इमम्) प्रत्यक्षम् (यज्ञम्) शिल्पविद्यामयम् (मिमिक्षताम्) सेक्तुमिच्छताम् (पिपृताम्) प्रिपूर्तः। अत्र लडथें लोट्। (नः) अस्मान् (भरीमिभः) धारणपोषणकरैर्गुणैः। 'भृत्र्'धातोर्मनिन् प्रत्ययो बहुले छन्दिस इतीडागमः॥१३॥

अन्वय:-हे उपदेश्योपदेष्टारौ युवां ये मही हो: पृष्टिची च भरीमभिर्न इमं यज्ञं नोऽस्मांश्च पिपृतामङ्गै: सुखेन प्रपिपूर्तस्ताभ्यामिमं यज्ञं मिमिक्क्तां पिपृतां स्था।१३॥

भावार्थ:-द्यौरिति प्रकाशवतां लोकानामुपलक्षणं मृथिवीत्यप्रकाशवतां च। मनुष्यैरेताभ्यां प्रयत्नेन सर्वानुपकारान् गृहीत्वा पूर्णानि सुखानि सम्पादनीयान्। १३॥

पदार्थ:-हे उपदेश के करने और सुनि बोल मनुष्यो! तुम दोनों जो (मही) बड़े-बड़े गुण वाले (द्यो:) प्रकाशमय बिजुली, सूर्य्य धादि और (पृथिवी) अप्रकाश वाले पृथिवी आदि लोकों का समूह (भरीमिभ:) धारण और पृष्टि करने वाले गुणों से (न:) हमारे (इमम्) इस (यज्ञम्) शिल्पविद्यामय यज्ञ (च) और (न:) हम लोगों को (पिपृताम्) सुख के साथ अङ्गों से अच्छी प्रकार पूर्ण करते हैं, वे (इमम्) इस (यज्ञम्) शिल्पविद्याम्य यज्ञ को (मिमिक्षताम्) सिद्ध करने की इच्छा करो तथा (पिपृताम्) उन्हीं से अच्छी प्रकार सुखों को परिपूर्ण करो॥१३॥

भावार्थ: यह नाम प्रकाशमान लोकों का उपलक्षण अर्थात् जो जिसका नाम उच्चारण किया हो वह उसके समतुल्य सब पदार्थों के ग्रहण करने में होता है तथा 'पृथिवी' यह विना प्रकाश वाले लोकों का है मनुष्यों को इन से प्रयत्न के साथ सब उपकारों को ग्रहण करके उत्तम-उत्तम सुखों को सिद्ध करना चाहिये॥१३॥

एताभ्यां कि कार्व्यमित्युपदिश्यते।

ुक्त दो प्रकार के लोकों से क्या-क्या करना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में

मण्डल-१। अनुवाक-५। सूक्त-२२

किया है-

तयोरिद् घृतवृत्पयो विप्रा रिहन्ति धीतिभिः। गुन्धर्वस्य ध्रुवे पुदे॥१४॥

तयोः। इत्। घृतऽवेत्। पर्यः। विप्राः। रिहुन्ति। धीतिभिः। गुन्धर्वस्या ध्रुवे। पदे॥ १४४॥

पदार्थ:-(तयो:) द्यावापृथिव्यो: (इत्) एव (घृतवत्) घृतं प्रशस्तं जलं विद्येते यस्मिस्ति। अत्र प्रशंसार्थे मतुप्। (पय:) रसादिकम् (विप्रा:) मेधाविन: (रिहन्ति) आददते श्लाघन्ते वा (धीतिभि:) धारणाकर्षणादिभिर्गुणै: (गन्धर्वस्य) यो गां पृथिवीं धरित स:। गन्धर्वो व्ययुस्तस्य वातो गन्धर्वस्तस्यापो अप्सरस:। (श०ब्रा०९.३.३.१०) (ध्रुवे) निश्चले (पदे) सर्वत्र प्राप्तेऽन्त्र्रिक्ष।। १४)

अन्वय:-ये विप्रा याभ्यां श्लाघन्ते तयोधींतिभिर्गन्धर्वस्य ध्रुवे पेदे विम्मीनादीनि यानानि रिहन्ति ते श्लाघन्ते घृतवत्पय आददते॥१४॥

भावार्थ:-विद्वद्भिः पृथिव्यादिपदार्थैर्यानानि रच्चित्वो सूत्र कलासु जलाग्निप्रयोगेण भूसमुद्रान्तरिक्षेषु गन्तव्यमागन्तव्यं चेति॥१४॥

पदार्थ:-जो (विप्रा:) बुद्धिमान् पुरुष जिनसे प्रशंसपीय होते हैं (तयो:) उन प्रकाशमय और अप्रकाशमय लोकों के (धीतिभि:) धारण और आकर्षण अदि गुणों से (गन्धर्वस्य) पृथिवी को धारण करने वाले वायु का (धुवे) जो सब जगह भर्रा चिश्चले (पदे) अन्तरिक्ष स्थान है, उसमें विमान आदि यानों को (रिहन्ति) गमनागमन करते हैं वे प्रशंसिन होके, उक्त लोकों ही के आश्रय से (धृतवत्) प्रशंसनीय जल वाले (पय:) रस आदि पदार्थों को सहण करते हैं॥१४॥

भावार्थ:-विद्वानों को पृथिवी ओदि पदार्थीं से विमान आदि यान बनाकर उनकी कलाओं में जल और अग्नि के प्रयोग से भूमि, समुद्र और आकाश में जाना आना चाहिये॥१४॥

इयं भूमि: क्रिप्रर्था कीदृशी चेत्युपदिश्यते।

यह भूमि क्रिसित्तिये और कैसी है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है-

स्योना पृथिवि भवानृक्षुरा निवेशनी।

यच्छा 🚓 शर्म सुप्रर्थः॥ १५॥ ६॥

स्योगा पूर्विवे। भुवा अनुक्षुरा। निऽवेशनी। यच्छी नः। शमी सुऽप्रर्थः॥ १५॥

पदार्थः (स्योना) सुखहेतु:। इदं 'सिवु'धातो रूपम् सिवेष्टेर्यू च। (उ०३.९) अनेन नः प्रत्यय्येथ्येरिदेश्च। स्योनिमिति सुखनामसु पठितम्। (निघं०३.६) (पृथिवि) विस्तीर्णा सती विशालसुखदात्री भूमि:। अत्र पुरुषव्यत्यय:। (भव) भवति। अत्र व्यत्ययो लडर्थे लोट् च। (अनृक्षरा)

२४०

अविद्यमाना ऋक्षरा दुःखप्रदाः कण्टकादयो यस्यां सा (निवेशनी) निविशन्ति प्रविशन्ति यस्यां सा (यच्छ) यच्छित फलादिभिर्ददित। अत्र व्यत्ययो लडर्थे लोट्। द्व्यचोऽतस्तिङ इति दीर्घश्च। (नः) अस्मभ्यम् (शर्म) सुखम् (सप्रथः) यत् प्रथोभिर्विस्तृतैः पदार्थैः सह वर्तते तत्। यास्कमुनिरिम् मन्त्रमेशं व्याख्यातवान्-सुखा नः पृथिवि भवानृक्षरा निवेशन्युक्षरः कण्टक ऋच्छतेः। कण्टकः कन्त्रपो कृत्तवर्वा कण्टतेर्वा स्याद् गतिकर्म्मण उद्गततमो भवित। यच्छ नः शर्म यच्छन्तु शर्णं सर्वतः पृथु। (निरु०९.३२)॥१५॥

अन्वय:-येयं पृथिवी स्योनाऽनृक्षरा निवेशनी भवति सा नोऽस्मृध्य सप्रेश: शर्मी यच्छ प्रयच्छति॥१५॥

भावार्थः-मनुष्यैर्भूगर्भविद्यया गुणैर्विदितेयं भूमिरेव मूर्त्तिमतां निवासस्थानमनेकसुखहेतुः सती बहुरत्नप्रदा भवतीति वेद्यम्॥१५॥

इति षष्ठो वर्गः समाप्तः॥

पदार्थ:-जो यह (पृथिवी) अति विस्तारयुक्त (स्योना) अत्यन्त सुख देने तथा (अनृक्षरा) जिसमें दु:ख देने वाले कण्टक आदि न हों (निवेशनी) और जिसमें मुख्य के प्रवेश कर सकें, वैसी (भव) होती है, सो (न:) हमारे लिये (सप्रथ:) विस्तारयुक्त सुखकारक पदार्थ वालों के साथ (शर्मा) उत्तम सुख को (यच्छ) देती है॥१५॥

भावार्थ:-मनुष्यों को योग्य है, कि यह भूमि हो सब मूर्त्तिमान् पदार्थों के रहने की जगह और अनेक प्रकार के सुखों की कराने वाली और बहुत सनों को प्राप्त कराने वाली होती है, ऐसा ज्ञान करें॥१५॥

सह षष्ट वर्ग समाप्त हुआ॥

अथ पृष्षिच्यादीनो रचको धारकश्च कोऽस्तीत्युपदिश्यते।

अब पृथिवी आदि पद्मार्थी का रचने और धारण करने वाला कौन है, इस विषय का उपदेश

अतो देवा अवन्तु हो कती विष्णुर्विचक्रमे।

पृथिव्यार्∖सप्त धार्मभिः॥१६॥

अर्तः द्वाः अवन्तु। नः। यर्तः। विष्णुः। विऽचक्रमे। पृथिव्याः। सप्ता धार्मऽभिः॥ १६॥

प्रदर्शः (अतः) अस्मात् कारणात् (देवाः) विद्वांसोऽग्न्यादयो वा (अवन्तु) अवगमयन्तु प्रापयन्ति वा पक्षे लडर्थे लोट्। (नः) अस्मान् (यतः) यस्मादनादिकारणात् (विष्णुः) वेवेष्टि व्याप्नोति चराव्यर जप्ति स परमेश्वरः। विषे: किच्च। (उणा०३.३८) अनेन 'विष्लृ'धातोर्नुः प्रत्ययः किच्च। (विष्कृमे) विविधतया रचितवान् (पृथिव्याः) पृथिवीमारभ्य। पञ्चमीविधाने ल्यव्लोपे

मण्डल-१। अनुवाक-५। सूक्त-२२

कर्म्मण्युपसंख्यानम्। (अष्टा॰२.३.२८) अनेन पञ्चमी। (सप्त) पृथिवीजलाग्निवायुविराट्परमाणु-प्रकृत्याख्यैः सप्तिभिः पदार्थैः। अत्र सुपां सुलुग्॰ इति विभक्तेर्लुक्। (धामिभः) दधित सर्वाणि वस्तूनि येषु तैः सह॥१६॥

अन्वय:-यतोऽयं विष्णुर्जगदीश्वरः पृथिवीमारभ्य प्रकृतिपर्य्यन्तैः सप्त्रिधिम्भिः सह वर्त्तमानाँल्लोकान् विचक्रमे रचितवानत एतेभ्यो देवा विद्वांसो नोऽस्मानवन्त्वेतद्विद्यार्स्वगमयन्तु॥ १६॥

भावार्थ:-नैव विदुषामुपदेशेन विना कस्यचिन्मनुष्यस्य यथूर्वत्सृष्टिविद्या सम्भवति नैवेश्वरोत्पादनेन विना कस्यचिद् द्रव्यस्य स्वतो महत्त्वपरिमाणेन मूर्त्तिमत्त्वं जास्रते नैवैताभ्यां विना मनुष्या उपकारान् ग्रहीतुं शक्नुवन्तीति बोध्यम्।

विलसनाख्येनास्य मन्त्रस्य **'पृथिव्यास्तस्मात्खण्डादवयवाद्विष्ट्रणोः सहासेन देवा अस्मान् रक्षन्तु'** इति मिथ्यात्वेनार्थो वर्णित इति विज्ञयेम्॥१६॥

पदार्थ:-(यत:) जिस सदा वर्तमान नित्य कारण सि (विष्णुः) चराचर संसार में व्यापक जगदीश्वर (पृथिव्या:) पृथिवी को लेकर (सप्त) सात अर्थात् पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, विराट्, परमाणु और प्रकृति पर्य्यन्त लोकों को (धामिभः) जो सब पदार्थी की श्रीरण करते हैं उनके साथ (विचक्रमे) रचता है (अतः) उसी से (देवाः) विद्वान् लोग (नः) हम लोगों को (अवन्तु) उक्त लोकों की विद्या को समझते वा प्राप्त कराते हुए हमारी रक्षा करते रहें। १६।

भावार्थ:-विद्वानों के उपदेश के विना किसी मनुष्य को यथावत् सृष्टिविद्या का बोध कभी नहीं हो सकता। ईश्वर के उत्पादन करने के विना किसी पदार्थ का साकार होना नहीं बन सकता और इन दोनों कारणों के जाने विना कोई मनुष्य पदार्थी से उपकार लेने को समर्थ नहीं हो सकता।

और जो यूरोपदेश वाले विलसने साहिब ने 'पृथिवी उस खण्ड के अवयव से तथा विष्णु की सहायता से देवता हमारी रक्षा करें' यह इस मन्त्र का अर्थ अपनी झूंठी कल्पना से वर्णन किया है, सो समझना चाहिये॥१६॥

हिश्चरेणैविज्जगत् कियत्प्रकारकं रचितमित्युपदिश्यते।

ईश्वर ने इस संसार को किन प्रकार का रचा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है-

इदं विष्णुर्धि चक्रमे त्रेधा नि देधे पुदम्।

समूळहमस्य पांसुरे॥ १७॥

दुदम्। विष्णुः। वि। चुक्रुमे। त्रेधा। नि। दुधे। पुदम्। सम्। ऊळहम्। अस्य। पांसुरे॥१७॥

पदोर्थः-(इदम्) प्रत्यक्षाप्रत्यक्षं जगत् (विष्णुः) व्यापकेश्वरः (वि) विविधार्थे (चक्रमे) यथायोग्यं प्रकृतिपरभाण्वादिपादानंशान् विक्षिप्य सावयवं कृतवान् (त्रेधा) त्रिःप्रकारकम् (नि) नितराम् (दधे)

धृतवान् (पदम्) यत्पद्यते प्राप्यते तत् (समूढम्) यत्सम्यक् तर्क्यते तर्केण यद्विज्ञायते तत् (अस्य) जर्गतः (पांसुरे) प्रशस्ताः पांसवो रेणवो विद्यन्ते यस्मिन्नन्तरिक्षे तस्मिन्। नगपांसुपाण्डुभ्यश्चेति वक्तव्यम्। (अष्टा०५.२.१०७) अनेन प्रशंसार्थे रः प्रत्ययः॥

यास्कमुनिरिमं मन्त्रमेवं व्याचष्टे-विष्णुर्विशतेव्यश्नोतेर्वा यदिदं कि च तिहुक्रमेते विष्णुस्त्रिधा निधते पदं त्रेधाभावाय पृथिव्यामन्तरिक्षे दिवीति शाकपूणिः। सम्प्रीहणं विष्णुपदे गयशिरसीत्यौणंवाभः। समूढमस्य पांसुरेऽप्यायनेऽन्तरिक्षे पदं न दृश्यतेऽपि वोपमार्थे समूढमस्य पांसुरे प्रवायनेऽन्तरिक्षे पदं न दृश्यतेऽपि वोपमार्थे समूढमस्य पांसुर इव पदं न दृश्यत इति पांसवः पादैः सूयन्त इति वा पन्नाः शेरत इति वा पन्नाः भन्तीति वा। (निरु०१२.१९) गयशिरसीत्यत्र गय इत्यपत्यनामसु पठितम्। (निर्घ०२.१०) गय इति धननामसु च। (निर्घ०२.१०) प्राणा वै गयाः। (श०ब्रा०१४.७.१.७) प्रजायाः शिर् उन्नम्भागे यत्कारणं तिद्वष्णुपदं गयानां विद्यादिधनानां यच्छिरः फलमानन्दः सोऽपि विष्णुपदाख्यः। गयानां प्राणानां शिरः प्रीतिजनकं सुखं तदिप विष्णुपदिमत्यौर्णवाभाचार्यस्य मतम्। पादैः सूयन्ते वाऽनेन कारणांशेः कार्य्यमुत्पद्यत इति बोध्यम्। पदं न दृश्यतेऽनेनातीन्द्रियाः परमाण्वादयोऽन्तरिक्षे विद्यमाना अपि चक्षुषा म दृश्यन्त इति वेदितव्यम्। इदं त्रेधाभावायेति। एकं प्रत्यक्षं प्रकाशरिहतं पृथिवीमयं द्वितीयं कारणाख्यप्रदृश्यं तृतीयं प्रकाशमयं सूर्य्यादिकं च जगदस्तीति बोध्यम्। विष्णुशब्देनात्र व्यापकेश्वरो ग्राह्य इति। १९७॥

अन्वय:-मनुष्यैर्यो विष्णुस्त्रेधेदं पदं विविक्रमेऽस्य त्रिविधस्य जगतः समूढं मध्यस्थं जगत्पांसुरेऽन्तरिक्षे विदधे विहितवानस्ति स एवोशिस्यो वर्त्तवे इति बोध्यम्॥१७॥

भावार्थ:-परमेश्वरेणास्मिन् संसारे त्रिविधं जगद्रचितमेकं पृथिवीमयं द्वितीयमन्तरिक्षस्थं त्रसरेण्वादिमयं तृतीयं प्रकाशमयं च। एतेषां त्र्यभूगमितानि त्रीण्येवाधारभूतानि यच्चान्तरिक्षस्थं तदेव पृथिव्याः सूर्य्यादेश्च वर्धकं नैवैतदीश्वरेण विना करिचज्जीवो विधातुं शक्नोति। सामर्थ्याभावात्।

सायणाचार्य्यादिभिर्विलसूनाख्येन चास्य मन्त्रस्यार्थस्य वामनाभिप्रायेण वर्णितत्वात्स पूर्वपश्चिमपर्वतस्थो विष्णुरस्तीर्मा मिथ्यार्थोऽस्तीति वेद्यम्॥१७॥

पदार्थ:-मनुष्य लोग जो (विष्णु:) व्यापक ईश्वर (त्रेघा) तीन प्रकार का (इदम्) यह प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष (पदम्) प्राप्त होने वाला जगत् है, उसको (विचक्रमे) यथायोग्य प्रकृति और परमाणु आदि के पद वा अंशो को ग्रहण कर सावयव अर्थात् शरीर वाला करता और जिसने (अस्य) इस तीन प्रकार के जगत् का (समूद्धम्) अच्छी प्रकार तर्क से जानने योग्य और आकाश के बीच में रहने वाला परमाणुमय जगत् है, उसको (पासुरे) जिसमें उत्तम-उत्तम मिट्टी आदि पदार्थों के अति सूक्ष्म कण रहते हैं, उनको आकाश में (विद्धे) धारण किया है। जो प्रजा का शिर अर्थात् उत्तम भाग कारण रूप और जो विद्या आदि धनो का शिर अर्थात् उत्तम फल आनन्दरूप तथा जो प्राणों का शिर अर्थात् प्रीति उत्पादन करने वाला सुख है, ये सब 'विष्णुपद' कहाते हैं, यह और्णवाभ आचार्य्य का मत है। 'पादै: सूयन्त इति वा'

मण्डल-१। अनुवाक-५। सूक्त-२२

इसके कहने से कारणों से कार्य्य की उत्पत्ति की है, ऐसा जानना चाहिये। 'पदं न दृश्यते' जो इन्द्रियों से ग्रहण नहीं होते वे परमाणु आदि पदार्थ अन्तरिक्ष में रहते भी हैं, परन्तु आंखों से नहीं दिखा। 'इतं त्रेधाभावाय' इस तीन प्रकार के जगत् को जानना चाहिये अर्थात् एक प्रकाशरिहत पृथ्विवीरूप, दूर्णरा कारणरूप जो कि देखने में नहीं आता, और तीसरा प्रकाशमय सूर्य्य आदि लोक हैं। इस मन्त्र में विष्णु शब्द से व्यापक ईश्वर का ग्रहण है॥१७॥

भावार्थ:-परमेश्वर ने इस संसार में तीन प्रकार का जगत् रचा है अर्थार्ट् एक पृथिवीरूप, दूसरा अन्तरिक्ष आकाश में रहने वाला प्रकृति परमाणुरूप और तीसरा प्रकाशमय सूर्य्य आदि लोक तीन आधाररूप हैं, इनमें से आकाश में वायु के आधार से रहने वाला जो कार्ण्यू हैं, वहीं पृथिवी और सूर्य्य आदि लोकों का बढ़ाने वाला है और इस जगत् को ईश्वर के विन्य कोई बनाने को समर्थ नहीं हो सकता, क्योंकि किसी का ऐसा सामर्थ्य ही नहीं॥१७॥

पुनर्विष्णुर्जगदीश्वरः किं कृतवानिक्षुप्रिश्यते।

फिर वह सर्वव्यापक जगदीश्वर क्या-क्या करता है, इस विषय को उपदेश अगले मन्त्र में किया

त्रीणि पदा विचेक्रमे विष्णुंगोंपा अद्यंभ्या(। अतो धर्माणि धारयेन्॥ १८॥

त्रीणि। पुदा। वि। चुक्रुमे। विष्णुः। ग्रोकः। अद्युष्टः। अतः। धर्माणि। धारयन्॥ १८॥

पदार्थ:-(त्रीणि) त्रिविधानि (पदा) पदािष्ट विद्यानि प्राप्तव्यानि वा। अत्र शेश्छन्दिस बहुलम् इति लोप:। (वि) विविधार्थे (चक्रमे) विहित्तवान् (विष्णु:) विश्वान्तर्यामी (गोपा:) रक्षक:। (अदाभ्य:) अविनाशित्वात्रैव केनापि हिंसितुं सक्यः (अतः) कारणादुत्पद्य (धर्माणि) स्वस्वभावजन्यान् धर्मान् (धारयन्) धारणां कुर्वन्॥१८॥

अन्वय:-यतोऽयमदाभ्यो गोप्रा विष्णुरीश्वरः सर्व जगद्धारयन् संस्त्रीणि पदानि विचक्रमेऽतः कारणादुत्पद्य सर्वे पदार्थाः स्वानि।स्वानि धर्माणि धरन्ति॥१८॥

भावार्थः सन्पर्येनैवेश्वरस्य धारणेन विना कस्यचिद् वस्तुनः स्थितिः सम्भवति। न चैतस्य रक्षणेन विना कस्यचिद्रुख्यक्हारः सिध्यतीति वेदितव्यम्॥१८॥

पदार्थ: जिस कारण यह (अदाभ्य:) अपने अविनाशीपन से किसी की हिंसा में नहीं आ सकता (गोपा:) और सब संसार की रक्षा करने वाला, सब जगत् को (धारयन्) धारण करने वाला (विष्णु:) संसार का अन्तर्यामी परमेश्वर (त्रीणि) तीन प्रकार के (पदानि) जाने, जानने और प्राप्त होने योग्य पदार्थीं

और व्यवहारों को (विचक्रमे) विधान करता है, इसी कारण से सब पदार्थ उत्पन्न होकर अपने-अपने (धर्माणि) धर्मों को धारण कर सकते हैं॥१८॥

भावार्थ:-ईश्वर के धारण के विना किसी पदार्थ की स्थिति होने का सम्भव नहीं हो सकता उसकी रक्षा के विना किसी के व्यवहार की सिद्धि भी नहीं हो सकती॥१८॥

पुनस्तत्कृतानि कर्म्माणि मनुष्येण नित्यं द्रष्टव्यानीत्युपदिश्यते।

फिर व्यापक परमेश्वर के किये हुए कर्म मनुष्य नित्य देखे, इस विषय का उपदेश अराले मन्त्र मे

किया है-

विष्णोः कर्माणि पश्यत् यतौ वृतानि पस्पृशे।

इन्द्रस्य युज्यः सर्खा॥१९॥

विष्णोः। कर्म्माणि। पुश्यत्। यतः। व्रतानि। पुस्पुशे। इन्द्रस्य। युज्यः। सर्खा। १९॥

पदार्थ:-(विष्णो:) सर्वत्र व्यापकस्य शुद्धस्य स्वृभिविकोक्त्वसामर्थ्यस्येश्वरस्य (कर्माण) जगद्रचनपालनन्यायकरणप्रलयत्वादीनि (पश्यत) सम्यग्विज्यनीत (यतः) कर्मबोधस्य सकाशात् (व्रतानि) सत्यभाषणन्यायकरणादीनि (पस्पशे) स्पृशति कर्त्तुं शक्योति। अत्र लडर्थे लिट्। (इन्द्रस्य) जीवस्य (युज्यः) युज्जन्ति व्याप्त्या सर्वान् पदार्थान् ते युजो दिक्कालाकाशादयस्तत्र भवः (सखा) सर्वस्य मित्रः सर्वसुखसम्पादकत्वात्॥१९॥

अन्वय:-हे मनुष्या यूयं य इन्द्रस्य युज्य: सख्यास्ति, यतो जीवो व्रतानि पस्पशे स्पृशति, तस्य विष्णो: कर्माणि पश्यत॥१९॥

भावार्थ:-यस्मात् सर्विमित्रेण भगदी शिष्ण जीवानां पृथिव्यादीनि ससाधनानि शरीराणि रचितानि तस्मादेवं सर्वे प्राणिनः स्वानि स्वानि कमीणि कर्त्तुं शक्नुवन्तीति॥१९॥

पदार्थ:-हे मनुष्य लोगि! तुम जो (इन्द्रस्य) जीव का (युज्य:) अर्थात् जो अपनी व्याप्ति से पदार्थों में संयोग करने वाले दिशा, काल धीर आकाश हैं, उनमें व्यापक होके रमने वा (सखा) सर्व सुखों के सम्पादन करने सि पित्र है (यत:) जिससे जीव (व्रतानि) सत्य बोलने और न्याय करने आदि उत्तम कर्मों को (परपशे) प्रप्त होता है उस (विष्णो:) सर्वत्र व्यापक शुद्ध और स्वभावसिद्ध अनन्त सामर्थ्य वाले परस्थिश के (कर्माणि) जो कि जगत् की रचना पालना न्याय और प्रयत्न करना आदि कर्म हैं, उनको तुम् लीय (पर्थत) अच्छे प्रकार विदित करो॥१९॥

भावार्थः जिस कारण सब के मित्र जगदीश्वर ने पृथिवी आदि लोक तथा जीवों के साधन सहित शरीर रुचे हैं। इसी से सब प्राणी अपने-अपने कार्यों के करने को समर्थ होते हैं॥१९॥

तद् ब्रह्म कीदृशमित्युपदिश्यते।

मण्डल-१। अनुवाक-५। सूक्त-२२

वह ब्रह्म कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है-

तद्विष्णोः पर्मं प्दं सदा पश्यन्ति सूरयः।

द्विवीव चक्षुरातंतम्॥२०॥

तत्। विष्णोः। पुरुमम्। पुदम्। सदो। पुश्यन्ति। सूरयः। दिविऽईव। चक्षुः। आऽत्रेतम्॥२०॥

पदार्थ:-(तत्) उक्तं वक्ष्यमाणं वा (विष्णोः) व्यापकस्यानन्दस्वरूपस्य (परमम्) सर्वोत्कृष्टम् (पदम्) अन्वेष्यं ज्ञातव्यं प्राप्तव्यं वा (सदा) सर्वस्मिन् काले (पश्यन्ति) सम्प्रक्षन्ते (सूरयः) धार्मिका मेधाविनः पुरुषार्थयुक्ता विद्वांसः। सूरिरिति स्तोतृनामसु पठितम्। (निर्विक् १६) अत्र सूङः क्रिः। (उणा०४.६४) अनेन 'सूङ' धातोः क्रिः प्रत्ययः। (दिवीव) स्थार सूर्योदिप्रकाश विमलेन ज्ञानेन। स्वात्मिन वा (चक्षुः) चष्टे येन तन्नेत्रम्। चक्षेः शिच्च। (उणा०२.११९) अनेन चक्षे' रुसिप्रत्ययः शिच्च। (आततम्) समन्तात् ततं विस्तृतम्॥२०॥

अन्वय:-सूरयो विद्वांसो दिव्याततं चक्षुरिव यद्विष्णोराततं परमं पदमस्ति तत् स्वात्मनि सदा पश्यन्ति॥२०॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। यथा प्राणिन: सूर्यप्रकाशे शुद्धेन चक्षुषा मूर्तद्रव्याणि पश्यन्ति, तथैव विद्वांसो विमलेन ज्ञानेन विद्यासुविचारयुक्ते शुद्धे स्वान्मिन जगदीश्वरस्य सर्वानन्दयुक्तं प्राप्तुमर्हं मोक्षाख्यं पदं दृष्ट्वा प्राप्नुवन्ति। नैतत्प्राप्त्यया विना कश्चिरसर्वाणि सूर्खानि प्राप्तुमर्हति तस्मादेतत्प्राप्तौ सर्वै: सर्वदा प्रयत्नोऽनुविधेय इति।

विलसनाख्येन 'परमं पदम्' इत्यस्यार्थो हि स्वर्गो भवितुमशक्य इति भ्रान्त्योक्तत्वान्मिथ्यार्थोऽस्ति। कृतः , परमस्य पदस्य स्वर्गवाचकत्वादिति॥२०॥

पदार्थ:-(सूरय:) धार्मिक बुद्धिमास पुरुषार्थी विद्वान् लोग (दिवि) सूर्य आदि के प्रकाश में (आततम्) फैले हुए (चक्कुरिव्) मेत्रों के समान जो (विष्णो:) व्यापक आनन्दस्वरूप परमेश्वर का विस्तृत (परमम्) उत्तम से उत्तम (पदम्) बाह्रने जानने और प्राप्त होने योग्य उक्त वा वक्ष्यमाण पद हैं (तत्) उस को (सदा) सब काल में विभूल शुद्ध ज्ञान के द्वारा अपने आत्मा में (पश्यन्ति) देखते हैं॥२०॥

भावार्थ: इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे प्राणी सूर्य्य के प्रकाश में शुद्ध नेत्रों से मूर्तिमान् पदार्थों को देखते हैं। वैसे हो विद्वान् लोग निर्मल विज्ञान से विद्या वा श्रेष्ठ विचारयुक्त शुद्ध अपने आत्मा में जगदीश्वर को सून आनन्दों से युक्त और प्राप्त होने योग्य मोक्ष पद को देखकर प्राप्त होते हैं। इस की प्राप्ति के विना कोई मनुष्य सब सुखों को प्राप्त होने में समर्थ नहीं हो सकता। इस से इसकी प्राप्ति के निमित्त सब मनुष्यों को निरन्तर यत्न करना चाहिये।

इस मन्त्र में '**परमम्' 'पदम्'** इन पदों के अर्थ में यूरोपियन विलसन साहब ने कहा है कि इन का अर्थ स्वर्ग नहीं हो सकता, यह उनकी भ्रान्ति है, क्योंकि परमपद का अर्थ स्वर्ग ही है॥२०॥

कीदृशा एतत्प्राप्तुमर्हन्तीत्युपदिश्यते।

कैसे मनुष्य उक्त पद को प्राप्त होने योग्य हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है-

तद्विप्रांसो विपुन्यवों जागृवांसुः सिमन्धते।

विष्णोर्यत्पर्मं पुदम्॥२१॥७॥५॥

तत्। विप्रांसः। विपुन्यवः। जागुऽवांसः। सम्। डुन्थुते। विष्णोः। यत्। पुरुमम्। पुदम्॥ २ १॥

पदार्थ:-(तत्) पूर्वोक्तम् (विप्रासः) मेधाविनः (विपन्यवः) विविधं जगेदीश्वरस्य गुणसमूहं पनायन्ति स्तुवन्ति ये ते। अत्र बाहुलकादौणादिको युच् प्रत्ययो (जाग्वांपः) जागरूकाः। अत्र जागर्तेर्लिटः स्थाने क्वसुः। द्विवंचनप्रकरणे छन्दिस वेति वक्तव्यम्। अष्टा०वा०६.१.८) अनेन द्विवंचनाभावश्च। (सम्) सम्यगर्थे (इन्धते) प्रकाशयन्ते (विष्णूोः) व्योषकस्य (यत्) कथितम् (परमम्) सर्वोत्तमगुणप्रकाशम् (पदम्) प्रापणीयम्॥२१॥

अन्वयः-विष्णोर्जगदीश्वरस्य यत्परमं पदमस्ति तद्विपन्मवी जागृवांसो विप्रासः सिमन्धते प्राप्नुवन्ति॥२१॥

भावार्थ:-ये मनुष्या अविद्याधर्माचरणाख्यां निद्धां त्युष्त्वा विद्याधर्माचरणे जागृताः सन्ति त एव सिच्चदाननन्दस्वरूपं सर्वोत्तमं सर्वैः प्राप्तुमर्हं गैरन्तर्श्रेण सूर्यव्यापिनं विष्णुं जगदीश्वरं प्राप्नुवन्ति॥२१॥

पूर्वेसूक्तोक्ताभ्यां पदार्थाभ्यां सहन्त्रारिणार्गश्चिसवित्रग्निदेवीन्द्राणीवरुणान्यग्नायीद्यावापृथिवी-भूमिविष्णूनामर्थानामत्रप्रकाशितत्वात् पूर्वसूक्तेन सहास्य सङ्गतिरस्तीतिबोध्यम्॥

इति प्रथमाष्ट्रके द्वितीयाध्याये सप्तमो वर्गः॥७॥ प्रथमे मण्डले पञ्चमेऽनुबाके द्वाविशं सूक्तं च समाप्तम्॥२२॥

पदार्थ:-(विष्णो:) व्यापक जगदीश्वर का (यत्) जो उक्त (परमम्) सब उत्तम गुणों से प्रकाशित (पदम्) प्राप्त होने योग्य पदाहै (तत्) उसको (विपन्यव:) अनेक प्रकार के जगदीश्वर के गुणों की प्रशंसा करनेवाले (जागृवांस:) सत्कर्म में जागृत (विप्रास:) बुद्धिमान् सज्जन पुरुष हैं, वे ही (सिमिश्वते) अच्छे प्रकार प्रकाशित क्रूक्ते प्राप्त होते हैं॥२१॥

भावार्थ: जो पनुष्य अविद्या और अधर्माचरणरूप नींद को छोड़कर विद्या धर्माचरण में जाग रहे हैं, वे ही सिन्चदापन्दस्वरूप सब प्रकार से उत्तम सबको प्राप्त होने योग्य निरन्तर सर्वव्यापी विष्णु अर्थात् जोदीश्वर को प्राप्त होते हैं॥२१॥

मण्डल-१। अनुवाक-५। सूक्त-२२

पहिले सूक्त में जो दो पदों के अर्थ कहे थे उनके सहचारि अश्वि, सविता, अग्नि, देवी, इन्द्राणी, वरुणानी, अग्नायी, द्यावापृथिवी, भूमि, विष्णु और इनके अर्थों का प्रकाश इस सूक्त में किस् है इससे पहिले सूक्त के साथ इस सूक्त की सङ्गिति जाननी चाहिये।

इसके आगे सायण और विलसन आदि विषय में जो यह सूक्त के अन्त में खुण्डन द्योतक पड़िक्त लिखते हैं, सो न लिखी जायेगी, क्योंकि जो सर्वथा अशुद्ध है, उसको बार्रवार लिखना पुनरुक्त और निरर्थक है, जहाँ कहीं लिखने योग्य होगा, वहाँ तो लिखा ही जायेगा, पस्चु इतने लेख से यह अवश्य जानना कि ये टीका वेदों की व्याख्या तो नहीं हैं, किन्तु इनको व्यर्थ दृष्टित करनेहारी हैं॥

इति १.२ सप्तमो वर्गः॥

प्रथमे मण्डले पञ्चमेऽनुवाके द्वाविंशं सूक्तं च समाप्तम्।

अथास्य चतुर्विंशत्यृचस्य त्रयोविंशस्य सूक्तस्य काण्वो मेधातिथिर्ऋषि:। १ वायु:; २,३

इन्द्रवायू; ४-६ मित्रावरुणौ, ७-९ इन्द्रोमरुत्वान्; १०-१२ विश्वेदेवा:, १३-१५ पूषा; १६-

२२ आप:; २३,२४ अग्निश्च देवता:। १-१८ गायत्री; १९ पुर उष्णिक्; २० अनुष्टुप्

प्रतिष्ठाः; २२-२४ अनुष्ठुप् च छन्दांसि। १-१८ षड्जः; १९ ऋषभः; २० गान्धारः ११

षड्जः; २२-२४ गान्धारश्च स्वरः॥

तत्रादिमेन वायुगुणा उपदिश्यन्ते।

अब तेईसवें सूक्त का आरम्भ है, इसके पहिले मन्त्र में वायु के गुण प्रकाशित किये हैं-

तीवाः सोमास आ गृह्याशीर्वन्तः सुता इमे।

वायो तान् प्रस्थितान् पिब।। १।।

तीवाः। सोमासः। आ। गृहि। आशीःऽवन्तः। सुताः। इमे। वार्यो इति। तानी। प्रऽस्थितान्। पि्बा। १॥

पदार्थ:-(तीव्रा:) तीक्ष्णवेगाः (सोमासः) सूयन्त उत्पृष्ठति ये ते प्रदार्थाः। अत्र अर्तिस्तुसुहुसृ० (उणा०१.१४०) अनेन षु धातोर्मन् प्रत्ययः। आज्जसरेसुम् इत्यसुक् च। (आ) सर्वतोऽर्थे (गिह) प्राप्नोति। अत्र व्यत्ययो लड्थें लोट्। बहुलं छन्दिस इति शुपो लुक् य। (आशीर्वन्तः) आशिषः प्रशस्ताः कामना भवन्ति येषां ते। अत्र शासइत्वे आशासः क्वावुषसंख्यानम्। (अष्टा०वा०६.४.३४) अनेन वार्त्तिकेनाशीरिति सिद्धम्। ततः प्रशंसार्थे मतुप् छन्दसीर इति वत्वञ्च। सायणाचार्येण 'श्रीञ् पाके' इत्यस्मादिदं पदं साधितं तदिदं भाष्यविरोधादृशुद्धमस्तिति बोध्यम्। (सुताः) उत्पन्नाः (इमे) प्रत्यक्षा अप्रत्यक्षाः (वायो) पवनः (तान्) सर्वान् (ग्रिस्थतान्) इतस्ततश्चिलतान् (पिब) पिबत्यन्तःकरोति। अत्र व्यत्ययो लड्थें लोट् च॥१॥

अन्वय:-य इमे तीव्रा आश्रीर्वेन्तर सुताः सोमासः सन्ति तान् वायुरागिह समन्तात् प्राप्नोत्ययमेव तान् प्रस्थितान् पिबान्त:करोति॥

भावार्थ:-प्राणिनो याम् प्राप्तुमिच्छिन्ति यान् प्राप्ता सन्त आशीर्वन्तो भवन्ति, तान् सर्वान् वायुरेव प्रापप्य स्वस्थान् करोति खेषु पदार्शेषु तीक्ष्णाः कोमलाश्च गुणाः सन्ति, तान् यथाविद्वज्ञाय मनुष्या उपयोगं गृह्णीयुरिति॥१॥

पदार्थ: नो (इमे) (तींब्रा:) तीक्ष्णवेगयुक्त (आशीर्वन्त:) जिनकी कामना प्रशंसनीय होती है (सुता:) उत्पन्न (हो चुके वा (सोमास:) प्रत्यक्ष में होते हैं (तान्) उन सबों को (वायो) पवन (आगिह) सर्वथा प्राप्त होतो है तथा यही उन (प्रस्थितान्) इधर-उधर अति सूक्ष्मरूप से चलायमानों को (पिब) अपने भींकर कर लेता है, जो इस मन्त्र में 'आशीर्वन्त:' इस पद को सायणाचार्य ने 'श्रीज् पाके' इस धात् के सिद्ध किया है, सो भाष्यकार की व्याख्या से विरुद्ध होने से अशुद्ध ही है।

मण्डल-१। अनुवाक-५। सूक्त-२३

भावार्थ:-प्राणी जिनको प्राप्त होने की इच्छा करते और जिनके मिलने में श्रद्धालु होते हैं, उन सबों को पवन ही प्राप्त करके यथावत् स्थिर करता है, इससे जिन पदार्थों के तीक्ष्ण वा को स्लिप्रिण हैं, उन को यथावत् जानके मनुष्य लोग उन से उपकार लेवें॥१॥

अथ परस्परानुषङ्गिणावुपदिश्येते।

अब अगले मन्त्र में परस्पर संयोग करने वाले पदार्थों का प्रकाश किया है

उभा देवा दिविस्पृशेन्द्रवायू हेवामहे। अस्य सोमस्य पीत्रये॥२॥

ुआ। देवा। दिविस्पृशां। इन्द्रवायू इति। हुवामुहे। अस्य। सोमंस्वर∕पीतये। २०००

पदार्थ:-(उभा) द्वौ। अत्र त्रिषु प्रयोगेषु सुपां सुलुग्० इत्याकारीदेश:। (देवा) दिव्यगुणै (दिविस्पृशा) यौ प्रकाशयुक्त आकाशे यानानि स्पर्शयतस्तौ। अधान्तर्गतो प्र्यर्थ: (इन्द्रवायू) अग्निपवनौ (हवामहे) स्पर्द्धामहे। अत्र बहुलं छन्दिस इति सम्प्रसारणम्। (अस्य) प्रत्यक्षाप्रत्यक्षस्य (सोमस्य) सूयन्ते पदार्था यस्मिन् जगित तस्य (पीतये) भोगाय॥२॥

अन्वय:-वयमस्य सोमस्य पीतये दिविस्पृशा देवोभेन्द्रचायू हवामहे॥२॥

भावार्थः-योऽग्निर्वायुना प्रदीप्यते वायुरम्निनी चेति प्रस्परमाकांक्षितौ सहायकारिणौ स्तो मनुष्या युक्त्या सदैव सम्प्रयोज्य साधयित्वा पुष्कलानि सुखानि प्राप्नुवन्ति तौ कुतो न जिज्ञासितव्यौ॥२॥

पदार्थ:-हम लोग (अस्य) इस प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष (सोमस्य) उत्पन्न करने वाले संसार के सुख के (पीतये) भोगने के लिये (दिविस्पूर्शा) जी प्रकाशयुक्त आकाश में विमान आदि यानों को पहुंचाने और (देवा) दिव्यगुण वाले (उभा) दोनों (इन्द्रवायू) अग्नि और पवन हैं, उनको (हवामहे) साधने की इच्छा करते हैं॥२॥

भावार्थ:-जो अग्नि प्रवेत और जो बायु अग्नि से प्रकाशित होता है, जो ये दोनों परस्पर आकांक्षायुक्त अर्थात् सहायकारी हैं। जिनसे सूर्य्य प्रकाशित होता है, मनुष्य लोग जिनको साध और युक्ति के साथ नित्य क्रियाकुशलेता में सम्प्रयोग करते हैं, जिनके सिद्ध करने से मनुष्य बहुत से सुखों को प्राप्त होते हैं, उनके जानने की इच्छा क्यों न करनी चाहिये॥२॥

पुनस्तौ कीदृशावित्युपदिश्यते।

किर वै किस प्रकार के हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है-

इत्द्रवायू मनोजुवा विप्रा हवन ऊतरी।

सहस्राक्षा धियस्पती।।३॥

डुन्ह्रावायू इति। मुनु:ऽजुर्वा। विप्राः। हुवन्ते। ऊतये। सहस्रुऽअक्षा। धिय:। पती इति॥३॥

पदार्थ:-(इन्द्रवायू) विद्युत्पवनौ (मनोजुवा) यौ मनोवद्वेगेन जवेते। तौ अत्र सर्वत्र सुणां-सुलुग्० इत्याकारादेश: क्विण् च इति क्विण् प्रत्यय:। (विप्रा:) विद्वांस: (हवन्ते) गृह्णन्ति। व्यत्ययेनात्मभूप बहुले छन्दिस इति शपः श्लुर्न। (ऊतये) क्रियासिद्धीच्छायै (सहस्राक्षा) सहस्राण्यसंख्यातान्यक्षीण साधनानि याभ्यां तौ (धियः) शिल्पकर्मणः (पती) पालयितारौ। अत्र षष्ट्याः पति पु० (अष्टा०८.इ.५३) अनेन विसर्जनीयस्य सकारादेशः॥३॥

अन्वय:-विप्रा ऊतये यौ सहस्राक्षौ धियस्पती मनोजुवान्द्रिवायू हवन्ते, तौ कथं नान्यैरिप जिज्ञासितव्यौ॥३॥

भावार्थः-विद्वद्भिः शिल्पविद्यासिद्धये असंख्यातव्यवहारहेत्रू वैपादिगुणयुक्तौ विद्युद्वायू संसाध्याविति॥३॥

पदार्थ:-(विप्रा:) विद्वान् लोग (ऊतये) क्रियासिद्धि की हिच्छा के लिये जो (सहस्राक्षा) जिन से असंख्यात अक्ष अर्थात् इन्द्रियवत् साधन सिद्ध होते (धिर्य:) शिल्प कर्म के (पती) पालने और (मनोजुवा) मन के समान वेगवाले हैं उन (इन्द्रवायू) विद्युत और) पवन को (हवन्ते) ग्रहण करते हैं, उनके जानने की इच्छा अन्य लोग भी क्यों न करें॥ ३॥

भावार्थ:-विद्वानों को उचित है कि शिल्पविद्या की सिद्ध के लिये असंख्यात व्यवहारों को सिद्ध कराने वाले वेग आदि गुणयुक्त बिजुली और व्याप्त के मुण्णें की क्रियासिद्धि के लिये अच्छे प्रकार सिद्धि करनी चाहिये॥३॥

एतद्विद्याप्रापकौ प्राप्नौदानौ स्त इत्युपदिश्यते।

इस विद्या के प्राप्त कराने वाले प्राप् और उदान हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है-

मित्रं वयं हैवामहे क्रिक्यं सोम्पीत्रथे।

जज्ञाना पूतदक्षाम् ४॥

मित्रम्। वयम्। हुवामहु। वर्रुणम्। सोमंऽपीतये। जुज्ञाना। पूतऽदंक्षसा॥४॥

पदार्थ: (पत्रम्) ब्राह्माभ्यन्तरस्थं जीवनहेतुं प्राणम् (वयम्) पुरुषार्थिनो मनुष्याः (हवामहे) गृह्णीमः। अत्र व्यत्ययेष्ट्रपनेपदं बहुलं छन्दिस इति शपः श्लुर्न। (वरुणम्) ऊर्ध्वगमनबलहेतुमुदानं वायुम् (सोमपीत्रये) सोमप्रामनुकूलानां सुखादिरसयुक्तानां पदार्थानां पीतिः पानं यस्मिन् व्यवहारे तस्मै। अत्र सहसुपेति समासः (जज्ञाना) अवबोधहेतू (पूतदक्षसा) पूतं पिवत्रं दक्षोबलं याभ्यां तौ। अत्रोभयत्र सुपां सुलुम् इत्याकारादेशः॥४॥

मण्डल-१। अनुवाक-५। सूक्त-२३

अन्वय:-वयं यौ सोमपीतये पूतदक्षसौ जज्ञानौ मित्रं वरुणं च हवामहे, तौ युष्माभिरिप कुतो न वेदितव्यौ॥४॥

भावार्थ:-नैव मनुष्याणां प्राणोदानाभ्यां विना कदापि सुखभोगो बलं च सम्भवित् तस्मिद्धत्रियोः सेवनविद्या यथावद्वेद्यास्ति॥४॥

पदार्थ:-(वयम्) हम पुरुषार्थी लोग जो (सोमपीतये) जिसमें सोम अर्थात् अपने अनुकूल सुखों को देने वाले रसयुक्त पदार्थी का पान होता है, उस व्यवहार के लिये (पूतृदक्षसा) पवित्र बल करने वाले (जज्ञाना) विज्ञान के हेतु (मित्रम्) जीवन के निमित्त बाहर वा भीतर रहने वाले प्राण और (वरुणम्) जो श्वासरूप ऊपर को आता है, उस बल करने वाले उदान बाग्नु को (हवामहे) ग्रहण करते हैं; उनको तुम लोगों को भी क्यों न जानना चाहिये॥४॥

भावार्थ:-मनुष्यों को प्राण और उदान वायु के विना सुर्खी का भोग और बल का सम्भव कभी नहीं हो सकता, इस हेतु से इनके सेवन की विद्या को ठीक-ठीक आनना ल्लाहिये॥४॥

पुनस्तौ कीदृशावित्युपदिश्यते।

फिर वे किस प्रकार के हैं, इस विषय का उपदेश आले मन्त्र में किया है-

ऋतेन यावृतावृधांवृतस्य ज्योतिषस्पती। ता मित्रावर्रुणा हुवे॥५॥८॥ ऋतेन। यौ। ऋतऽवृधौ। ऋतस्य। ज्योतिष्ण पती इति। ता। मित्रावर्रुणा। हुवे॥५॥

पदार्थ:-(ऋतेन) सत्यरूपेण ब्रह्मणा निर्मितो सन्तौ (यौ) (ऋतावृधौ) ऋतं सत्यं कारणं जलं वा वर्द्धयतस्तौ। अत्रान्तर्गतो ण्यर्थ:। अन्यष्ठाणि दृश्यते इति दीर्घश्च। (ऋतस्य) यथार्थस्वरूपस्य (ज्योतिष:) प्रकाशस्य (पती) पालियत्तरौ। अत्र षष्ट्याः पतिपुत्रपृष्टपार० (अष्टा०८.३.५३) अनेन विसर्जनीयस्य सकारादेश:। (ता) तौ (पित्रावरुणा) मित्रश्च वरुणश्च द्वौ सूर्यवायू। अत्र देवताद्वन्द्वे च। (अष्टा०६.३.२६) अनेन पूर्वपृद्धस्यानङादेशः। अत्रोभयत्र सुणां सुलुग्० इत्याकारादेश:। (हुवे) आददे। अत्र व्यत्ययेनात्मनेपदं बहुतं छन्दिस इति शपां लुक् च॥५॥

अन्वय:-अहं यावृतेन जुमदीश्वरेणोत्पाद्य धारितावृतावृधावृतस्य ज्योतिषस्पती मित्रावरुणौ स्तस्तौ हुवे॥५॥

भावार्थः-नैव सूर्यवायुभ्यां विना जलज्योतिषोरुत्पत्तेः सम्भवोऽस्ति नैव चेश्वरोत्पादनेन विना सूर्य्यवाय्वोद्भत्पत्तिर्भवितु शक्या, न चैताभ्यां विना मनुष्याणां व्यवहारसिद्धिर्भवितुमर्हतीति॥५॥

इति प्रथमाष्टके द्वितीयोऽध्यायेऽष्टमो वर्गः॥८॥

पदार्थ:-मैं (यौ) जो (ऋतेन) परमेश्वर ने उत्पन्न करके धारण किये हुए (ऋतावृधौ) जल की बढ़ाने और (ऋतस्य) यथार्थ स्वरूप (ज्योतिष:) प्रकाश के (पती) पालन करने वाले (मित्रावरुणौ) सूर्य और वायु हैं, उनको (हुवे) ग्रहण करता हूं॥५॥

भावार्थ:-न सूर्य और वायु के विना जल और ज्योति अर्थात् प्रकाश की योग्यता न इश्वर के उत्पादन किये विना सूर्य्य और वायु की उत्पत्ति का सम्भव और न इनके विना मनुष्यों के ब्यवहारों की सिद्धि हो सकती है॥५॥

इति प्रथमाष्ट्रके द्वितीयाध्यायेऽष्ट्रमो वर्गः समाप्तः॥६॥

पुनस्तौ किं कुरुत इत्युपदिश्यते।

फिर वे क्या करते हैं, इस विषय का उपदेश अगले पन्न में किया है

वर्रणः प्राविता भुविन्मित्रो विश्वाभिरूतिभिः।

करतां नः सुराधंसः॥६॥

वर्रुणः। प्रुऽअविता। भुवत्। मित्रः। विश्वाभिः। ऊतिऽभिः। करताम्। नः। सुऽरार्धसः॥६॥

पदार्थ:-(वरुण:) बाह्याभ्यन्तरस्थो वायुः (प्रावित) सुम्म्रीपकः (भुवत्) भवति। अत्र लडर्थे लेट् बहुलं छन्दिस इति शपो लुक्। भूसुवोस्तिङ। (अष्ट्रा०७३,८८) अनेन गुणनिषेधः। (मित्रः) सूर्य्यः। अत्र अमिचिमिश० (उणा०४.१६४) अनेन कत्रः प्रत्येषः। (विश्वाभिः) सर्वाभिः (ऊतिभिः) रक्षणादिभिः कर्मभिः (करताम्) कुरुतः। अत्रापि लडर्थे लोट्। विकरणव्यत्ययश्च। (नः) अस्मान् (सुराधसः) शोभनानि विद्याचक्रवर्त्तराज्यसंम्बन्धीनि सूर्धांसू धनामि येषां तानेवं भूतान्॥६॥

अन्वय:-यथायं सुयुक्त्या स्रेतितो विष्णो विश्वाभिरूतिभिः सर्वैः पदार्थैः प्राविता भुवत् भवति मित्रश्च यौ नोस्मान् सुराधसः करत्राम् कुरुतस्तमादेतावस्माभिरप्येवं कथं न परिचर्य्यौ वर्तेते॥६॥

भावार्थः-यस्मादेतयोः सिकाशेन सर्वेषां पदार्थानां क्षणादयो व्यवहारास्सम्भवन्त्यस्माद्विद्वांस एनाभ्यां बहुनि कार्याणि संसाध्योत्तमानि, धनानि प्राप्नुवन्तीति॥६॥

पदार्थ:-जैसे यह अच्छे प्रकार सेवन किया हुआ (वरुण:) बाहर वा भीतर रहनेवाला वायु (विश्वाभि:) सब (ऊतिभि:) रक्षा आदि निमित्तों से सब प्राणि या पदार्थों को करके (प्राविता) सुख प्राप्त करने वाला (भुवर्द्ध) होता है (मित्रश्च) और सूर्य्य भी जो (न:) हम लोगों को (सुराधसः) सुन्दर विद्या और चक्रवर्त्ति सञ्चर्यस्वन्धी धनयुक्त (करताम्) करते हैं, जैसे विद्वान् लोग इन से बहुत कार्य्यों को सिद्ध करते हैं, वैसे हम लोग भी इसी प्रकार इन का सेवन क्यों न करें॥६॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जिसलिये इन उक्त वायु और सूर्य के आश्रय करके सब पदार्थों के रक्षा आदि व्यवहार सिद्ध होते हैं, इसलिये विद्वान् लोग भी इनसे बहुत कार्य्यों को सिद्ध करके उत्तम-उत्तम धनों को प्राप्त होते हैं॥६॥

मण्डल-१। अनुवाक-५। सूक्त-२३

अथ वायुसहचारीन्द्रगुणा उपदिश्यन्ते।

अब अगले मन्त्र में वायु के सहचारी इन्द्र के गुण उपदेश किये हैं-

मुरुत्वन्तं हवामहु इन्द्रमा सोमपीतये।

सुजूर्गुणेन तृम्पतु॥७॥

मुरुत्वन्तम्। हुवामुहे। इन्द्रम्। आ। सोमेऽपीतये। सुऽजू:। गुणेने। तृम्पुतु॥७॥

पदार्थ:-(मरुत्वन्तम्) मरुतः सम्बन्धिनो विद्यन्ते यस्य तम्। अत्र सम्बन्धेऽर्थे मतुप्। तसौ मत्वर्थे। (अष्टा॰१.४.१९) इति भत्वाज्जस्त्वाभावः। (हवामहे) गृह्णीमः अत्र ब्युत्ययेनात्मनेपदं बहुलं छन्दिस इति शपः श्लुर्न। (इन्द्रम्) विद्युतम् (आ) समन्तात् (सोपप्रीतये) प्रश्नस्तपदार्थभोगनिमित्ताय (सजूः) समानं सेवनं यस्य सः। इदं जुषी इत्यस्य क्विबन्तं रूपं, समानस्य छन्दस्य इति समानस्य सकारादेशश्च। (गणेन) वायुसमूहेन (तृम्पतु) प्रीणयित। अत्र लुद्ध्ये लोङ्न्तर्गतो ण्यर्थश्च॥७॥

अन्वय:-हे मनुष्या यथाऽस्मिन् संसारे वयं सोर्मपीतये यं मरुत्वन्तमिन्द्रं हवामहे, यः सजूर्गणेनास्मानातृम्पतु समन्तात् तर्पयति तथा तं यूयमिप स्विभ्वम् ॥ ।

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। मनुष्यैर्नेव कदान्विदपि सहकारिणा वायुना विनाऽग्निः प्रदीपयितुं शक्यते, न चैवंभूतया विद्युता विना कस्यूषित पदार्श्वस्य वृद्धिः सम्भवतीति वेद्यम्॥७॥

पदार्थ:-हे मनुष्य लोगो! जैसे इस सृंसिए में हम्म लोग (सोमपीतये) पदार्थों के भोगने के लिये जिस (मरुत्वन्तम्) पवनों के सम्बन्ध से प्रसिद्ध होने बाली (इन्द्रम्) बिजुली को (हवामहे) ग्रहण करते हैं (सजू:) जो सब पदार्थों में एकसी वर्तने बाली (मणेन) पवनों के समूह के साथ (न:) हम लोगों को (आतृम्पतु) अच्छे प्रकार तृप्त करती है, बैसे उसकी तुम लोग भी सेवन करो॥७॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में क्वकलुप्तोप्पालङ्कार है। मनुष्यों को योग्य है कि जिस सहायकारी पवन के विना अग्नि कभी प्रज्वलित होने को समक्षे और उक्त प्रकार बिजुली रूप अग्नि के विना किसी पदार्थ की बढ़ती का सम्भव नहीं हो सकता, ऐसा जानें॥७॥

अथ कीदृशा मरुद्गणा इत्युपदिश्यते।

अब वे प्रवनों के समूह किस प्रकार के हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है-

इन्द्रेज्येष्टा मर्ह्रद्गुणा देवासः पूर्वरातयः।

विशे ममे श्रुता हवम्॥८॥

इद्गेऽज्येष्ठाः। मरुत्ऽगणाः। देवासः। पूर्षऽरातयः। विश्वे। मर्म। श्रुतः। हर्वम्॥८॥

२५४

ऋग्वेदभाष्यम्

पदार्थ:-(इन्द्रज्येष्ठा:) इन्द्रः सूर्य्यो ज्येष्ठः प्रशंस्यो येषां ते (मरुद्गणाः) मरुतां समूहाः (देवासः) दिव्यगुणविशिष्टाः (पूषरातयः) पूष्णः सूर्याद् रातिर्दानं येषां ते (विश्वे) सर्वे (मम्) (श्रुत) श्रावयन्ति। अत्र व्यत्ययो लडर्थे लोडन्तर्गतो ण्यर्थो बहुलं छन्दिस इति शपो लुग् द्वयचोऽतिस्ति इति दीर्घश्च। (हवम्) कर्तव्यं शब्दव्यवहारम्॥८॥

अन्वयः-ये पूषरातय इन्द्रज्येष्ठा देवासो विश्वे मरुद्गणा मम हवं श्रुत श्रीव्यन्ति ते युष्माकमपि॥८॥

भावार्थ:-नैव कश्चिदपि वायुगणेन विना कथनं श्रवणं पुष्टिं च प्राप्तुं श्रव्नोति। श्रोऽयं सूर्य्यलोको महान् वर्त्तते यस्य य एव प्रदीपनहेतवः सन्ति, योऽग्निरूप एवास्ति नैतैर्विद्धृत्या च विना कश्चिद्वाचमपि चालियतुं शक्नोतीति॥८॥

पदार्थ:-जो (पूषरातयः) सूर्य्य के सम्बन्ध से पदार्थों को देने (इन्क्रज्येष्ठाः) जिनके बीच में सूर्य्य बड़ा प्रशंसनीय हो रहा है और (देवासः) दिव्य गुण वाले (विश्व) सब (मक्द्गणाः) पवनों के समूह (मम) मेरे (हवम्) कार्य्य करने योग्य शब्द व्यवहार को (श्रुत) सुनाते हैं, वे ही आप लोगों को भी॥८॥

भावार्थ:-कोई भी मनुष्य जिन पवनों के विना कहान, पुनर्पा और पुष्ट होनादि व्यवहारों को प्राप्त होने को समर्थ नहीं हो सकता। जिन के मध्य में सूर्य्य लीक सब से बड़ा विद्यमान, जो इसके प्रदीपन करानेवाले हैं, जो यह सूर्य्य लोक अग्निक्र्य ही है, जिन और जिस बिजुली के विना कोई भी प्राणी अपनी वाणी के व्यवहार करने को भी समर्थ नहीं हो सकता, इत्यादि इन सब पदार्थों की विद्या को जान के मनुष्यों को सदा सुखी होना चाहिये॥ ८॥

पुनस्ते कीदृशा इत्युपदिश्यते।

फिर वे किस प्रकार के हैं इस किया का उपदेश अगले मन्त्र में किया है-

हृत वृत्रं सुदानव इन्ह्रेष्य सहसा युजा। मा नो दुःशंस ईशक्ता १॥

हुत। वृत्रम्। सुऽव्यन्तिद्धाः इन्द्रीया सहसा। युजा। मा। नः। दुःऽशंसः। ईशृत्॥९॥

पदार्थ:-(हत) व्यक्ति। अत्र व्यत्ययो लडर्थे लोट् च। (वृत्रम्) मेघम् (सुदानवः) शोभनं दानं येभ्यो मरुद्भ्यस्ते अत्र दाष्ट्रभ्यां नुः। (उणा०३.३१) अनेन नुः प्रत्ययः। (इन्द्रेण) सूर्य्येण विद्युता वा (सहसा) ब्रूलैन। सह इति बलनामसु पठितम्। (निघं०२.९) (युजा) यो युनिकत मुहूर्तादिक्रालीवयवपदार्थः सह तेन संयुक्ताः सन्तः (मा) निषेधार्थे (नः) अस्मान् (दुःशंसः) दुःखेन शंसितुं विद्यास्तान् (ईशत) समर्थयत। अत्र लडर्थे लोडन्तर्गतो ण्यर्थश्च॥९॥

अन्वयः-हे विद्वांसो यूयं ये सुदानवो वायवः सहसा बलेन युजेन्द्रेण संयुक्ता सन्तो वृत्रं हत व्यक्ति, तेर्भीऽस्मान् दुःशंसो मेशत दुःखकारिणः कदापि मा भवत॥९॥

मण्डल-१। अनुवाक-५। सूक्त-२३

भावार्थ:-वयं यथावत्पुरुषार्थं कृत्वेश्वरमुपास्याचार्य्यान् प्रार्थयामो ये वायवः सूर्य्यस्य किरणैर्वा विद्युता सह मेघमण्डलस्थं जलं छित्वा निपात्य पुनः पृथिव्या सकाशादुत्थाप्योपिर नयन्ति, तिक्वामनुष्ये, प्रयत्नेन विज्ञातव्येति॥९॥

पदार्थ:-हे विद्वान् लोगो! आप जो (सुदानवः) उत्तम पदार्थों को प्राप्त कराने (सहसा) बल और (युजा) अपने आनुषङ्गी (इन्द्रेण) सूर्य्य वा बिजुली के साथी होकर (वृत्रम्) मेघ को (हत) छिन्न-भिन्न करते हैं, उनसे (नः) हम लोगों के (दुःशंसः) दुःख कराने वाले (मा) (ईशत) कभी मेत् हूजिये। १॥

भावार्थ:-हम लोग ठीक पुरुषार्थ और ईश्वर की उपासना करके विद्वानों की प्रार्थना करते हैं कि जिससे हम लोगों को जो पवन, सूर्य्य की किरण वा बिजुली के साथ में अपुरुष्ट में रहने वाले जल को छिन्न-भिन्न और वर्षा करके और फिर पृथिवी से जल समूह को उठाकर ऊपर के प्राप्त करते हैं, उनकी विद्या मनुष्यों को प्रयत्न से अवश्य जाननी चाहिये॥९॥

पुनस्ते कीदृशा इत्युपदिश्वते

फिर वे किस प्रकार के हैं, इस विषय का अपदेश अराली मन्त्र में किया है-

विश्वान् देवान् हैवामहे मुरुतः सोम्पीतये।

उत्रा ही पृश्निमातरः॥ १०॥ ९॥

विश्वान्। देवान्। हुवामुहे। मुरुतः। सोम्प्रीतये। उन्नारं हि। पृश्निंऽमातरः॥ १०॥

पदार्थ:-(विश्वान्) सर्वान् (देवान्) दिच्यगुणभूगहित्येनोत्तमगुणप्रकाशकान् (हवामहे) विद्यासिद्धये स्पर्द्धामहे। अत्र बहुलं छन्दिस इति सम्प्रसारणम्। (मरुतः) ज्ञानिक्रयानिमित्तेन शिल्पव्यवहारप्रापकान्। मरुत इति पदनामसु पठितम्। (निघं०५५) अनेन प्राप्त्यर्थो गृह्यते (सोमपीतये) पदार्थानां यथावद्धोगाय (उग्राः) तीव्रसंवेगादिगुणसिहतः (हि) हेत्वर्थे (पृश्निमातरः) पृश्निराकाशमन्तरिक्षं मातोत्पत्तिनिमित्तं येषां ते। पृश्निरिति साधारणनामसु/पिठतम्। (निघं०१.४)॥१०॥

अन्वय:-हि यते विद्यां चिक्कीर्षवो वयं य उग्राः पृश्निमातरः सन्ति, तस्मादेतान् विश्वान् देवान् मरुतो हवामहे॥१०॥

भावार्थः न्यत एत आकाशादुत्पन्ना वायवो यत्र तत्र गमनागमनकर्त्तारस्तीक्ष्णस्वभावास्सन्त्यत एव विद्वांसः कार्य्यार्थं ताम स्वीकुर्वन्ति॥१०॥

इति प्रथमाष्टके द्वितीयाध्याये नवमो वर्ग:॥

पदार्थ:-विद्या की इच्छा करने वाले हम लोग (हि) जिस कारण से जो ज्ञान क्रिया के निमित्त से शिल्य च्यवहारों को प्राप्त कराने वाले (उग्रा:) तीक्ष्णता वा श्रेष्ठ वेग के सहित और (पृश्निमातर:) विभक्ते अत्पत्ति का निमित्त आकाश वा अन्तरिक्ष है, इससे उन (विश्वान्) सब (देवान्) दिव्यगुणों के

सहित उत्तम गुणों के प्रकाश कराने वाले वायुओं को (हवामहे) उत्तम विद्या की सिद्धि के लिये जानने चाहते हैं॥१०॥

भावार्थ:-जिससे यह वायु आकाश ही से उत्पन्न आकाश में आने-जाने और तेज स्वभाव जाले हैं, इसी से विद्वान् लोग कार्य्य के अर्थ इनका स्वीकार करते हैं॥१०॥

> इति प्रथमाष्टक द्वितीयाध्याये नवमो वर्गः॥ अथाप्रिमे मन्त्रे वायुविद्युद्गुणा उपदिश्यन्ते।

अब अगले मन्त्र में पवन और बिजुली के गुण उपदेश किये है

जयंतामिव तन्युतुर्मरुतांमेति धृष्णुया।

यच्छुभं याथनां नरः॥ ११॥

२५६

जर्यताम्ऽइव। तुन्यतुः। मुरुताम्। एति। धृष्णुऽया। यत्। शुर्भम्। याथना नुरु।। ११॥

पदार्थ:-(जयतामिव) विजयकारिणां शूराणामिव (तृत्येषु:) बिर्ग्तृतवेगस्वभावा विद्युत्। अत्र ऋतन्यञ्जिवन्यञ्ज्यर्पि० (उणा०४.२) अनेन 'तन' धातोर्यसुच प्रत्यक्षः (मरुताम्) वायूनां सङ्गेन (एति) गच्छति (धृष्णुया) दृढत्वादिगुणयुक्ता। अत्र सुपां सुलुग्० इति स्नोः स्थाने याच् आदेशः (यत्) यावत् (शुभम्) कल्याणयुक्तं सुखं तावत्सर्वं (याथन) प्राप्ति। अत्र तुकारस्य स्थाने थनादेशोऽन्येषामिप दृश्यते इति दीर्घश्च। (नरः) ये नयन्ति धर्म्यं शिल्पसमूहं चे ते नरस्तत्सम्बोधने। अत्र नयतेर्डिच्च। (उणा०२.१००) अनेन ऋः प्रत्ययष्टिलोश्च॥ १९००

अन्वय:-हे नरा! यूयं या जयतां किञ्चणां सङ्गेर्भ राजा शत्रुविजयमेतीव मरुतां सम्प्रयोगेण धृष्णुया तन्यतुर्वेगमेत्य मेघं तपित तत्सम्प्रयोगेषु यच्छुभं वस्तर्वं याथन प्राप्नुत॥११॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार: र हे भनुष्या! यतो विद्वांसो शूरवीरसेनया शत्रुविजयं यथा च वायुघर्षणविद्यया विद्युद्यन्त्रचाल्निन दूरस्थान् देशान् गत्वाऽग्नेयास्त्रादिसिद्धिं च कृत्वा सुखानि प्राप्नुवन्ति, तथैव युष्माभिरपि विज्ञानपुरुषाश्रम्भामेत्रैर्व्याद्वह्णारिकपारमार्थिकं सुखे नित्ये वर्द्धितव्ये॥११॥

पदार्थ: -हे (नर्) अर्पेयुक्त शिल्पविद्या के व्यवहारों को प्राप्त करने वाले मनुष्यो! आप लोग भी (जयतामिव) जैसे विजय कोने वाले योद्धाओं के सहाय से राजा विजय को प्राप्त होता और जैसे (मरुताम्) पवनों के संग से (धृष्णुया) दृढ़ता आदि गुणयुक्त (तन्यतु:) अपने वेग को अति शीघ्र विस्तार करने वाली क्रिज़्बी मेश को जीतती है, वैसे (यत्) जितना (शुभम्) कल्याणयुक्त सुख है, उस सबको प्राप्त हुज़्बि स्था

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! जैसे विद्वान् लोग शूरवीरों को सेना से शत्रुओं के किजय वो जैसे पवनों के घिसने से बिजुली के यन्त्र को चलाकर दूरस्थ देशों को जा वा आग्नेयादि

मण्डल-१। अनुवाक-५। सूक्त-२३

अस्त्रों की सिद्धि को करके सुखों को प्राप्त होते हैं, वैसे ही तुमको भी विज्ञान वा पुरुषार्थ करके इनसे व्यावहारिक और पारमार्थिक सुखों को निरन्तर बढ़ाना चाहिये॥११॥

पुनः कीदृशा मरुत इत्युपदिश्यते।

फिर वे पवन किस प्रकार के हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया⁄री

हुस्काराद् विद्युतस्पर्ध्यती जाता अवन्तु नः।

मुरुतो मृळयन्तु नः॥१२॥

हुस्कारात्। विऽद्युर्तः। परिं। अर्तः। जाताः। अवन्तु। नः। मुरुर्तः मृळ्युन्तु। नः॥ १२॥

पदार्थ:-(हस्कारात्) हसनं हस्तत्करोति येन तस्मात् (विद्वृतः) विविश्वतया द्योतयन्ते यास्ताः (पिरि) सर्वतोभावे (अतः) हेत्वर्थे (जाता) प्रकटत्वं प्राप्ताः (अवन्तु) प्रापेश्वन्तिः अत्र 'अव' धातोर्गत्यर्थात् प्राप्त्यर्थो गृह्यते, लडर्थे लोडन्तर्गतो ण्यर्थश्च। (नः) अस्मान् (मस्तः) अयवः (मृळयन्तु) सुखयन्ति। अत्रापि लडर्थे लोट्। (नः) अस्मान्॥१२॥

अन्वय:-वयं यतो हस्काराज्जाता विद्युतो नोस्मिन् स्थित्यक्रिन्तु प्रापयन्त्यतस्ताः परितः सर्वतः संसाधयेम। यतो मरुतो नोस्मान् मृडयन्तु सुखयन्त्यतस्तात्रप्ति कार्येषु सम्प्रयोजयेम॥१२॥

भावार्थ:-मनुष्यैर्यदा पूर्वं वायुविद्या ततो बिद्युद्विद्या तदनन्तरं जलपृथिव्योषधि विद्याश्चैता विज्ञायन्ते तदा सम्यक् सुखानि प्रापयन्त इति॥

पदार्थ:-हम लोग जिस कारण (हस्कारात) अति प्रकाश से (जाता:) प्रकट हुई (विद्युत:) जो कि चपलता के साथ प्रकाशित होती हूँ, वे बिजली (न:) हम लोगों के सुखों को (अवन्तु) प्राप्त करती हैं। जिसने उन को (परि) सब प्रकार से साधते और जिससे (मरुत:) पवन (न:) हम लोगों को (मृळयन्तु) सुखयुक्त करते हैं (जत:) इससे उनको भी शिल्प आदि कार्यों में (परि) अच्छे प्रकार से साधें॥१२॥

भावार्थ:-मनुष्य लोग जब प्रहिले वायु फिर बिजुली के अनन्तर जल पृथिवी और ओषधी की विद्या को जानते हैं, तब अच्छे प्रकार सुखों को प्राप्त होते हैं॥१२॥

अथ सूर्यलोकगुणा उपदिश्यन्ते।

अब अगले मन्त्र में सूर्य्यलोक के गुण प्रकाशित किये हैं-

आ पृषाञ्चित्रवाहिषमाघृणे धरुणं दिव:॥

आजो नुष्टं यथो पुशुम्॥ १३॥

आ पूष्टन्। चित्रऽबंहिषम्। आघृणे। धुरुणम्। दिवः। आ। अजः। नृष्टम्। यथा। पुशुम्॥ १३॥

पदार्थ:-(आ) समन्तात् (पूषन्) पोषयतीति पूषा सूर्यलोकः। अत्रान्तर्गतो णिच श्वनुक्षन्यूषन्प्लीहन्। (उणा०१.१५९) अनेनायं निपातितः। (चित्रबर्हिषम्) चित्रमाश्चर्यं बर्हिरन्तरिक्षं भवति यस्मात्तत् (आघृणे) समन्तात् घृणयः किरणा दीप्तयो यस्य सः (धरुणम्) धारणकर्त्री पृथिषी (दिवः) स्वप्रकाशात् (आ) समन्तात् (अज) अजित प्रकाशं प्रक्षिप्य द्योतयित। अत्र व्यत्ययो लहर्शे लोडन्तर्गतो एयर्थश्च। (नष्टम्) अदृश्यम् (यथा) येन प्रकारेण (पश्म्) गवादिकम्॥१३॥

अन्वय:-यथा कश्चित्पशुपालो नष्टं पशुं प्राप्य प्रकाशयित तथाऽयमाघृण आघृणिः पूषन्पूषा सूर्यलोको दिवश्चित्रबर्हिषं धरुणमन्तरिक्षं प्राप्याज समतात् प्रकाशयित॥१३॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। यथा पशुपाला अनेकै: कर्म्मभि: पशून मिष्ट्वा दुग्धादिभिर्मनुष्यादीन् सुखयित तथैवायं सूर्यलोको विचित्रैलेंकिर्युक्तामाकाशं तत्स्थान् पद्मार्थिश्च क्रस्य किरणैराकर्षणेन पोषित्वा सर्वान् प्राणिन: सुखयतीति॥१३॥

पदार्थ:-जैसे कोई पशुओं का पालने वाला मनुष्य (नष्ट्रम्) खोमये (पशुम्) गौ आदि पशुओं को प्राप्त होकर प्रकाशित करता है, वैसे यह (आघृणे) परिपूर्ण किस्णों (पृष्ट्रम्) पदार्थों को पुष्ट करने वाला सूर्यलोक (दिव:) अपने प्रकाश से (चित्रविहिषम्) जिससे विचित्र आस्चर्यरूप अन्तरिक्ष विदित होता है (धरुणम्) धारण करनेहारे भूगोलों को (आज) अच्छे प्रकार प्रकाश करता है॥१३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे पशुओं को पालने वाले अनेक काम करके, गो आदि पशुओं को पृष्ट करके, उनके दुग्ध आदि पदार्श्नों से मचुष्यों को सुखी करते हैं, वैसे ही यह सूर्य्यलोक चित्र-विचित्र लोकों से युक्त आकाश वा आकाश में महने वाले पदार्थों को, अपनी किरण वा आकर्षण शिक्त से पृष्ट करके प्रकाशित करता है॥ १३॥

अथ पूष्ट् शब्देनेश्वरस्य सर्वज्ञताप्रकाशः क्रियते॥

अब अगले मन्त्र में पूषन शब्द से ईश्वर की सर्वज्ञता का प्रकाश किया है-

पूषा राजानमार्घणिरपेपूढ्ं गुहां हिताम्।

अविन्दिच्चित्रबर्हिषम्॥१४॥

पूषा। राजानम्। आधूरिपा अपेऽगूढम्। गुहां। हितम्। अविन्दत्। चित्रऽबंहिषम्॥ १४॥

पदार्थ: (प्राण) यो जगदीश्वरः स्वाभिव्याप्त्या सर्वान् पदार्थान् पोषयित सः (राजानम्) प्राणं जीवं वा (आघृणि) समेन्द्राद् घृणयो दीप्तयो यस्य सः (अपगूढम्) अपगतश्चासौ गूढश्च तम् (गुहा) गुहायामन्त्रिशे बुद्धौ वा। अत्र सुपां सुलुग्० इति डेराकारादेशः। (हितम्) स्थापितं वा (अविन्दत्) जानाति अत्र लड्थै लङ् (चित्रबर्हिषम्) चित्रमनेकविधं बर्हिरुत्तमं कर्म क्रियते येन तम्॥१४॥

अन्वयः-यतोऽयमाघृणिः पूषा परमेश्वरो गुहाहितं चित्रबर्हिषमपगूढं राजानमविन्दत्, जानाति वस्मात् सर्चशक्तिमान् वर्त्तते॥१४॥

मण्डल-१। अनुवाक-५। सूक्त-२३

भावार्थ:-यतो जगत्स्रष्टेश्वरः प्रकाशमानं सर्वस्य पुष्टिहेतुं हृदयस्थं प्राणं जीवं चापि जानाति तस्मात् सर्वज्ञोऽस्ति॥१४॥

पदार्थ:-जिससे यह (आघृणि:) पूर्ण प्रकाश वा (पूषा) जो अपनी व्याप्ति से सून पदार्थों को पृष्ट करता है, वह जगदीश्वर (गृहा) (हितम्) आकाश वा बुद्धि में यथायोग्य स्थापन किये हुए वा स्थित (चित्रबर्हिषम्) जो अनेक प्रकार के कार्य्य को करता (अपगूढम्) अत्यन्त गुप्त (राजानम्) प्रकाशमान प्राणवायु और जीव को (अविन्दत्) जानता है, इससे वह सर्वशक्तिमान् है॥१४/

भावार्थ:-जिस कारण जगत् का रचने वाला ईश्वर सबको पुष्ट करने हारे हृदस्यस्थ प्राण और जीव को जानता है, इससे सबका जानने वाला है॥१४॥

पुनस्तस्यैव गुणा उपदिश्यन्ते।

फिर अगले मन्त्र में उस ईश्वर ही के गुणों का उपदेश किया है-

उतो स महामिन्दुंभिः षड्युक्ताँ अनुसेर्षिधत्। गोभिर्यवं न चर्कृषत्॥ १५॥ १०॥

उतो इति। सः। महाम्। इन्दुंऽभिः। षट्। युक्तान्। अनुऽसेषिधत्। गोभिः। यवम्। न। चुर्कृषत्॥ १५॥

पदार्थ:-(उतो) पक्षान्तरे (सः) जगदीवरः (महाम्) धर्मात्मने पुरुषार्थिने (इन्दुभिः) स्निग्धैः पदार्थेः सह (षट्) वसन्तादीनृतृन् (युक्तान्) सिख्यम्पादुकान् (अनुसेषिधत्) पुनःपुनरनुकूलान् प्रापयेत्। अत्र यङलुगन्ताल्लेट् सेधतेर्गतौ। (अष्टा० कि ११३) इत्यभ्यासस्य षत्वप्रतिषेधः। उपसर्गादिति वक्तव्यं कि प्रयोजनम्। उपसर्गाद् या प्राप्तिस्तस्याः प्रतिषेधो यथा स्याद्, अभ्यासाद्या प्राप्तिस्तस्याः प्रतिषेधो मा भूदिति। स्नुम्भुसिवु० (अष्टा०वा०८.३११६) अत्र महाभाष्यकारेणोक्तम्। सायणाचार्येणेदमज्ञानात्र बुद्धमिति (गोभिः) गो हस्त्यक्षद्भिः सह (यवम्) यवादिकमत्रम् (न) इव (चकृषत्) पुनः पुनर्भूमिं कर्षेत्। अत्र यङ्लुगन्ताल्लेट्। ११५।

अन्वय:-कृषीवलें भूमि चर्कृषद्धान्यादिप्राप्त्यर्थं पुनः पुर्नभूमिं कर्षतो वायमीश्वरो मह्यमिन्दुभिस्सह वसन्ताक्षन् युक्तान् गोभिः सह यवमनुसेषिधत् पुनः पुनरनुगतं प्रापयेत् तस्मादहं तमेवेष्टं मन्ये॥१५॥

भावार्थ:-अञ्चोपमालङ्कारः। यथा सूर्य्यः कृषीवलो वा किरणैर्हलादिभिर्वा पुनः पुनर्भूमिमाकृष्य कर्षित्वा स्मपुप्य धान्यादीनि प्राप्य वसन्तादीन् षड्ऋतून् सुखसंयुक्तान् करोति, तथेश्वरोऽप्यनुसमयं सर्वेभ्यो अविभ्यः कर्मानुसारेण रसोत्पादनविभजनेनर्तृन् सुखसंपादकान् करोति॥१५॥

इति प्रथमाष्टके द्वितीयाध्याये दशमो वर्ग॥ १०॥

पदार्थ:-जैसे खेती करने वाला मनुष्य हर एक अन्न की सिद्धि के लिये भूमि को (चर्कृषत्) वारंवार जोतता है (न) वैसे (स:) वह ईश्वर (मह्यम्) जो मैं धर्मात्मा पुरुषार्थी हूं, उसके लिये (इन्दुभि:) स्निग्ध मनोहर पदार्थी और वसन्त आदि (षट्) छ: (ऋतून्) ऋतुओं को (युक्तान्) (गोभि: गो, हाथी और घोड़े आदि पशुओं के साथ सुखसंयुक्त और (यवम्) यव आदि अन्न को (अनुसेरिधत्) वार्यार हमारे अनुकूल प्राप्त करे, इससे मैं उसी को इष्टदेव मानता हूँ॥१५॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे सूर्य्य वा खेती करने वाला किए। वा हल आदि से वारंवार भूमि को आकर्षित वा खन, बो और धान्य आदि की प्राप्ति कर सिच्चिकनकर पदार्थों के सेवन के साथ वसन्त आदि छ: ऋतुओं को सुखों से संयुक्त करता है, वैसे ईश्र्य भी समय के अनुकूल सब जीवों को कर्मों के अनुसार रस को उत्पन्न वा ऋतुओं के विभाग से उन्ने ऋतुओं को सुख देने वाली करता है॥१५॥

इति दशमो वर्गः॥

अथ जलगुणा उपदिश्यनी।

अब अगले मन्त्र में जल के गुण्पिकाशित किये हैं-

अम्बयो युन्त्यध्वंभिर्जामयो अध्वरीयुताम्।

पृञ्चतीर्मधुना पर्यः॥ १६॥

अम्बर्यः। युन्ति। अध्वर्रभिः। जामर्यः। अध्वर्षिऽयुताम् पृञ्चतीः। मधुना। पर्यः॥ १६॥

पदार्थ:-(अम्बय:) रक्षणहेतव अप: (यनि) गच्छन्ति (अध्विभि:) मार्गैः (जामयः) बन्धव इव (अध्वरीयताम्) आत्मनोऽध्वरिमच्छूतामस्माकम्। अत्र न छन्दस्यपुत्रस्य। (अष्टा०७.४.३५) अपुत्रादीनामिति वक्तव्यम् (अष्टा०७.४.३५) इति वचनादीकारिनषेधो न भवित वा छन्दिस सर्वे विधयो भवन्ति इति नियमात् कृष्यध्वरपृतनस्यचि लोपः। (अष्टा०७.४.३९) इत्यकारलोपोऽपि न भवित (पृञ्चतीः) स्पर्शयन्त्यः। अत्र सुपां सुलुग्० इति पूर्वसवर्णादेशोऽन्तर्गतो ण्यर्थश्च। (मधुना) मधुरगुणेन सह (पयः) सुखकारकं सम्मारहा।

अन्वय:-यथा बर्म्ध्यामयो बन्धवोऽनुकूलाचरणैः सुखानि सम्पादयन्ति, तथैवेमा अम्बय आपो अध्वरीयतामस्माक्रमध्वभिर्मधुना पयः पृञ्जतीः स्पर्शयन्त्यो यन्ति॥१६॥

भावार्थः-अत्रे वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा बन्धवः स्वबन्धून् सम्पोष्य सुखयन्ति, तथेमा आप उपर्य्यधो पच्छन्त्यः सत्यो मित्रवत् प्राणिनां सुखानि सम्पादयन्ति, नैताभिर्विना केषांचित् प्राण्यप्राम्पितामुन्नतिः सम्भवति तस्मादेताः सम्यगुपयोजनीयाः॥१६॥

पदार्थ:-जैसे भाइयों को (जामय:) भाई लोग अनुकूल आचरण सुख सम्पादन करते हैं, वैसे ये अम्बयः) रक्षा करने वाले जल (अध्वरीयताम्) जो कि हम लोग अपने आप को यज्ञ करने की इच्छा

मण्डल-१। अनुवाक-५। सूक्त-२३

करते हैं, उनको (मधुना) मधुरगुण के साथ (पय:) सुखकारक रस को (अध्विभ:) मार्गों से (पृञ्जती:) पहुंचाने वाले (यन्ति) प्राप्त होते हैं॥१६॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे बन्धुजन अपने भाई को अच्छी प्रकार पृष्ट करके सुख करते हैं, वैसे ये जल ऊपर-नीचे जाते-आते हुए मित्र के समान प्राणियों के सुखों को सम्पादन करते हैं और इनके विना किसी प्राणी वा अप्राणी की उन्नति नहीं हो सक्की। इससे ये रस को उत्पत्ति के द्वारा सब प्राणियों को माता पिता के तुल्य पालन करते हैं।।१६॥

पुनस्ताः कीदृश्य इत्युपदिश्यते।

फिर वे जल कैसे हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है

अमूर्या उप सूर्ये याभिर्वा सूर्यः सह।

ता नो हिन्वन्त्वध्वरम्॥ १७॥

अमू:। या:। उपं। सूर्व्ये। याभि:। वा। सूर्व्यः। सह। ता:। नः। हिम्कुर्तु। अध्वरम्॥१७॥

पदार्थ:-(अमू:) परोक्षाः (या:) आप (उप) सामित्रे (सूर्ये) सूर्य्ये तत्प्रकाशमध्ये वा (याभि:) अद्भिः (वा) पक्षान्तरे (सूर्यः) सिवतृलोकस्तत्प्रकाशो वा (सह) सङ्गे (ताः) आपः (नः) अस्माकम् (हिन्वन्तु) प्रीणयन्ति सेधयन्ति। अत्र लडर्थे लोडन्तर्गतो पूर्यर्थश्च। (अध्वरम्) अहिंसनीयं सुखरूपं यज्ञम्॥१७॥

अन्वय:-या अमूराप: सूर्य्ये निरम्भाशे वर्तते, याभि: सह सूर्य्यो वर्तते, ता नोऽस्माकमध्वरम्पहिन्वन्तुपसेधयन्ति॥ अभी

भावार्थ:-यज्जलं पृथिव्याद्व्यो भूर्तिमतो द्रव्यात् सूर्यिकरणैंश्छन्नं संल्लघुत्वं प्राप्य सूर्याभिमुखं गच्छति, तदेवोपरिष्टाद् वृष्टिद्वाराऽज्ञतं यानादिव्यवहारे यानेषु वा सुयोजितं सुखं वर्द्धयतीति॥१७॥

पदार्थ:-(या:) जो (अपू:) जल दृष्टिगोचर नहीं होते (सूर्य्ये) सूर्य वा इसके प्रकाश के मध्य में वर्तमान हैं (वा) अथवा (याभि:) जिन जलों के (सह) साथ (सूर्य:) सूर्यलोक वर्तमान है (ता:) वे (न:) हमारे (अध्वरम्) हिंस एहिंग सुखरूप यज्ञ को (उपहिन्वन्तु) प्रत्यक्ष सिद्ध करते हैं॥१७॥

भावार्थ: भा जल पृथिवी आदि मूर्तिमान् पदार्थों से सूर्य्य की किरणों करके छिन्न-भिन्न अर्थात् कण-कण होत्र हुआ सूर्य के सामने ऊपर को जाता है, वही ऊपर से वृष्टि के द्वारा गिरा हुआ पान आदि व्यवहार वृ विमान आदि यानों में अच्छे प्रकार संयुक्त किया हुआ सुख बढ़ाता है।।१७।।

पुनस्ताः कीदृश्य इत्युपदिश्यते।

पिंफर भी वे जल किस प्रकार के हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है–

अपो देवीरुपं ह्वये यत्र गाव: पिर्बन्ति न:।

२६२

ऋग्वेदभाष्यम्

सिस्युभ्यः कर्त्वं हुविः॥ १८॥

अपः। देवीः। उपं। ह्वये। यत्रं। गार्वः। पिर्वन्ति। नुः। सिर्स्युऽभ्यः। कर्त्वम्। हृविः॥१८॥

पदार्थ:-(अप:) या आप्नुवन्ति सर्वान् पदार्थान् ताः (देवीः) दिव्यगुणवन्त्वेन दिव्यपुणापिकाः (उप) उपगमार्थे (ह्वये) स्वीकुर्वे (यत्र) (गावः) किरणाः (पिबन्ति) स्पृशन्ति (नः) अस्माकम् (सिन्धुभ्यः) समुद्रेभ्यो नदीभ्यो वा (कर्त्वम्) कर्तुम्। अत्र कृत्यार्थे तवै० इति विन्प्रत्ययः (हविः) हवनीयम्॥१८॥

अन्वय:-यस्मिन् व्यवहारे गाव: सिन्धुभ्यो देवीरप: पिबन्ति, ता चौँऽस्माकं हवि: कर्त्वमहमुपह्नये॥१८॥

भावार्थ:-सूर्य्यस्य किरणा यावज्जलं छित्त्वा वायुनाभिते आकर्षति, तावदेव तस्मान्निवृत्य भूम्योषधी: प्राप्नोति, विद्विद्धिस्तावज्जलं पानस्नानशिल्पकार्योदिषु संयोज्ये नानाविधानि सुखानि सम्पादनीयानि॥१८॥

पदार्थ:-(यत्र) जिस व्यवहार में (गाव:) सूर्य की किरणें (सिन्धुभ्य:) समुद्र और निदयों से (देवी:) दिव्यगुणों को प्राप्त करने वाले (अप:) जलों की (पिक्ति) पीती हैं, उन जलों को (न:) हम लोगों के (हिव:) हवन करने योग्य पदार्थों के (कर्लम्) उत्पन्न करने के लिये मैं (उपह्वये) अच्छे प्रकार स्वीकार करता हूं॥१८॥

भावार्थ:-सूर्य की किरणें जितना जल्ल छिन्न-भिन्न अर्थात् कण-कण कर वायु के संयोग से खैंचती हैं, उतना ही वहाँ से निवृत्त होकर भूमि और आषिधयों को प्राप्त होता है। विद्वान् लोगों को वह जल, पान, स्नान और शिल्पकार्य आदि में संयुक्त कर नाना प्रकार के सुख सम्पादन करने चाहिये॥१८॥

पुनस्ता कीदृश्य इत्युपदिश्यते।

फिर वे केस हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है-

अप्स्वः र्रन्तर्मृतम्पुमु भेषुज्ञम्पपामुत प्रशस्तिये।

देवा भवत वाजिन गरिए॥

अप्रमु। अप्राम्। अप्रमु। भुष्जम्। अप्रमु। भुष्जम्। अपाम्। उत। प्रऽश्नस्तये। देवाः। भवत। वाजिनः॥१९॥ पदार्थः (अप्रु) जलेषु (अन्तः) मध्ये (अमृतम्) मृत्युकारकरोगनिवारकं रसम् (अप्रमु) जलेषु (भेषजम्) औषधम् (अपाम्) जलानाम् (उत) अप्यर्थे (प्रशस्तये) उत्कर्षाय (देवाः) विद्वांसः (भवत) स्तः (वाजिनः) प्रशस्तो बाधो येषामस्ति ते। अत्र प्रशंसार्थ इनिः। गत्यर्थाद्विज्ञानं गृह्यते॥१९॥

मण्डल-१। अनुवाक-५। सूक्त-२३

अन्वय:-हे देवा विद्वांसो यूयं प्रशस्तयेऽप्स्वन्तरमृतमुताऽप्सु भेषजम् विदित्वाऽपां प्रयोगेण वाजिनो भवत॥१४॥

भावार्थ:-हे मनुष्या! यूयममृतरसाभ्य ओषधिगर्भाभ्योऽद्भ्यः शिल्पवैद्यकद्भिभ्यां पुणान् विदित्वा शिल्पकार्य्यसिद्धिं रोगनिवारणं च नित्यं कुरुतेति॥१९॥

पदार्थ: - हे (देवा:) विद्वानो! तुम (प्रशस्तये) अपनी उत्तमता के लिये (अपने) जलों के अन्त:) भीतर जो (अमृतम्) मार डालने वाले रोग का निवारण करने वाला अमृतरूप्र एस (उत्त) तथा (अपने) जलों में (भेषजम्) औषध हैं, उनको जानकर (अपाम्) उन जलों की क्रियाक्नुशलता से (वाजिन:) उत्तम श्रेष्ठ ज्ञान वाले (भवत) हो जाओ॥१९॥

भावार्थ:-हे मनुष्यो तुम अमृतरूपी रस वा ओषि वाले जेली से शिल्य और वैद्यकशास्त्र की विद्या से उनके गुणों को जानकर कार्य्य की सिद्धि वा सब रोगों की निकृति नित्य करो॥१९॥

पुनस्ता कीदृश्य इत्युपदिश्यते।

फिर वे जल किस प्रकार के हैं, इस विषय का उपहेश अपने मन्त्र में किया है।।

अप्सु में सोमों अब्रवीदुन्तर्विश्वानि भेषुजा।

अ्गिं च विश्वशंभुवुमापंश्च विश्वभेषजीः॥२०॥११॥

अप्रसु। मे। सोम:। अबवीत्। अन्तः। विश्वानि। श्रेषुजा। अग्निम्। च। विश्वरशंभुवम्। आपः। च। विश्वरशंभुवम्। आपः। च। विश्वरशंभुवम्। आपः। च।

पदार्थ:-(अप्सु) जलेषु (मे) महाम (सीमः) ओषधिराजश्चन्द्रमाः सोमलताख्यरसो वा (अब्रवीत्) ज्ञापयित। अत्र लडर्थे लुडन्तर्पतो ण्यर्थः प्रसिद्धीकरणं धात्वर्थश्च। (अन्तः) मध्ये (विश्वानि) सर्वाणि (भेषजा) औषधानि। अत्र शेष्ट्यन्दिस् बहुलम् इति लोपः (अग्निम्) विद्युदाख्यम् (च) समुच्चये (विश्वशंभुवम्) यः सर्वस्मै अगते शं सुखं भावयित प्रकटयित तम्। अत्रान्तर्गतो ण्यर्थः विवप् च इति विवप्। (आपः) जलानि (च) समुच्चये (विश्वभेषजीः) विश्वाः सर्वा भेषज्य ओषध्यो यासु ताः। अत्र केवलमाम० (अष्टा०४.१:३०) अनेन भेषजशब्दान्छीप् प्रत्ययः॥२०॥

अन्वय:-यथाऽयं स्रोमों मे महामप्स्वन्तर्विश्वानि भेषजौषधानि विश्वशंभुवमग्निं चाब्रवीज्ज्ञापयत्येवं विश्वभेषजीराप्र/स्वासुं सोमाद्यानि विश्वानि भेषजौषधानि विश्वशंभुवमग्निं चाब्रुवन् ज्ञापयन्ति॥२०॥

भृतिर्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा सर्वे पदार्थाः स्वगुणैः स्वान् प्रकाशयन्ति तथौषिभ्रिणपृष्टिकारकश्चन्द्रमा ओषिधगणग्राह्याणीति प्रकाशयन्त्यः सर्वोषिधहेतव आपः स्वान्तर्गतं समस्तिकल्याणहेतुं स्तनयित्नुं प्रकाशयन्त्यर्थात् जलगतमौषधनिमित्तजलगतमग्निनिमत्तं चास्तीति ब्रेट्टाम्॥ २०॥

इति प्रथमाष्ट्रके द्वितीयाध्याय एकादशो वर्गः॥२०॥

पदार्थ:-जैसे यह (सोम:) ओषधियों का राजा चन्द्रमा वा सोमलता (मे) मेरे लिये (अप्सु) जलों के (अन्त:) बीच में (विश्वानि) सब (भेषजा) ओषधि (च) तथा (विश्वशंभुवम्) सब जे लिये सुख करने वाले (अग्निम्) बिजुली को (अब्रवीत्) प्रसिद्ध करता है, इसी प्रकार (विश्वभेषजी:) जिनके निमित्त से सब ओषधियाँ होती हैं, वे (आप:) जल भी अपने में उक्त सब ऑपधियाँ और उक्त गुण वाले अग्नि को जानते हैं॥२०॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सब पदार्थ अपने गुणो से अपने-अपने स्वभावों और उनमें ओषधियों की पृष्टि कराने वाला चन्द्रमा और जो ओषधियों में मुख्य सोमलता है, ये दोनों जल के निमित्त और ग्रहण करने योग्य सब ओषधियों का प्रकाश करते हैं, जैसे सब ओषधियों के हेतु जल अपने अन्तर्गत समस्त सुखों का हेतु मेघ का प्रकाश और जो जलों में ओषधियों का निमित्त और जो जल में अग्नि का निमित्त है, ऐसा जानना चाहिये॥२०॥

इति प्रथमाष्ट्रके द्वितीयाध्याय एक दश्रो वर्गः।

पुनस्ताः कीदृशा इत्युपदिश्यते।

फिर वे जल कैसे हैं, इस विषय का उपदेश अपले मन्त्र में किया है-

आर्पः पृणीत भेषुजं वर्र्स्थं तुन्वे र्रे मम्

ज्योक् च सूर्यं दृशे॥ २१॥

आर्पः। पृणीता भेषुजम्। वर्र्स्थम्। क्वी मर्म। ज्ञाकः। च। सूर्य्यम्। दुशे॥२१॥

पदार्थ:-(आप:) आप्नुवन्ति व्याप्नुविन्ने सर्वान् पदार्थास्ते प्राणाः (पृणीत) पूरयन्ति। अत्र व्यत्ययो लडर्थे लोडन्तर्गतो ण्यर्श्रश्च। (भेषजम्) रोगनाशकव्यवहारम् (वरूथम्) वरं श्रेष्ठम्। अत्र ज्वृभ्यामूथन्। (उणा०२.६) अनेम 'वृञ्' शातोरूथन्प्रत्ययः। (तन्वे) शरीराय (मम) जीवस्य (ज्योक्) चिरार्थे (च) समुच्चये (सूर्य्यम्) स्वितृलोकम् (दृशे) दृष्टुम्। दृशे विख्ये च। (अष्टा०३.४.११) अनेनायं निपातितः॥२१॥

अन्वय:-मनुष्येया प्राणाः सूर्य्यं दृशे द्रष्टुं ज्योक् चिरं जीवनाय मम तन्वे वरूथं भेषजं वृणीत प्रपूरयन्ति ह्या यथावद्वपयोजनीयाः॥ २१॥

भावार्थः नैव प्राणैर्विना कश्चित्प्राणी वृक्षादयश्च शरीरं धारियतुं शक्नुवन्ति, तस्मात् क्षुतृषादिरोगनिवारपार्थं परममौषधं युक्त्या प्राणसेवनमेवास्तीति बोध्यम्॥११॥

पदार्थ:-मनुष्यों को योग्य है कि सब पदार्थों को व्याप्त होने वाले प्राण (सूर्य्यम्) सूर्यलोक के (दृष्ट्री) दिख्याने वा (ज्योक्) बहुत काल जिवाने के लिये (मम) मेरे (तन्वे) शरीर के लिये (वरूथम्)

मण्डल-१। अनुवाक-५। सूक्त-२३

श्रेष्ठ (भेषजम्) रोगनाश करने वाले व्यवहार को (पृणीत) परिपूर्णता से प्रकट कर देते हैं, उनका सेवन युक्ति ही से करना चाहिये॥२१॥

भावार्थ:-प्राणों के विना कोई प्राणी वा वृक्ष आदि पदार्थ बहुत काल शरीर ध्रीरण करने की समर्थ नहीं हो सकते, इससे क्षुधा और प्यास आदि रोगों के निवारण के लिये पर्म अर्थात उत्तम से उत्तम औषधों को सेवने से योगयुक्ति से प्राणों का सेवन ही परम उत्तम है, ऐसा ज्रीना चाहिये।

पुनस्ताः कीदृश्य इत्युपदिश्यते।

फिर वे जल किस प्रकार के हैं, इस विषय का उपदेश अगले मृत्र में किया है

इदमापः प्र वहत् यत्किञ्च दुरितं मिय। यद्ग्राहमंभिदुद्रोह् यद्ग्यं शेष उतानृतम्॥२२॥

ट्टदम्। आपा प्रा वहता यत्। किञ्चा दुरितम्। मर्यि। यत्। वा। श्रेषे। यत्। वा। श्रेषे। उता अर्नृतम्॥२२॥

पदार्थ:-(इदम्) आचिरतम् (आपः) प्राणः (प्र) प्रकृष्टिभे (ब्रह्त) वहन्ति। अत्र व्यत्ययो लडर्थे लोट् च। (यत्) यादृशम् (किञ्च) किंचिदपि (दुरितम्) दुष्टस्वभावानुष्ठानजनितं पापम् (मिय) कर्तरि जीवे (यत्) ईर्ष्याप्रचुरम् (वा) पक्षान्तरे (अहम्) कर्मकृतिजिवः (अभिदुद्रोह) आभिमुख्येन द्रोहं कृतवान् (यत्) क्रोधप्रचुरम् (वा) पक्षान्तरे (श्रेपे) कचित्साभ्रुजनमाक्रुष्टवान् (उत) अपि (अनृतम्) असत्यमाचरणमानभाषणं कृतवान्॥२२॥

अन्वय:-अहं यत्किंच मिय दुर्गतिमस्ति यद्धा पुण्यमस्ति यच्चाहमभिदुद्रोह या मित्रत्वमाचिरतवान् यद्धा कञ्चिच्छेपे वाऽनुगृहीतवान् यद्भनृतं स्रोत सत्यं चाचिरतवानस्मि तत्सर्विमिदमापो मम प्राणा मया सह प्रवहत प्राप्नुवन्ति॥२२॥

भावार्थः-मनुष्यैर्यादृश्र पापं पुण्यं चार्चर्य्यते तत्तदेवेश्वरव्यवस्थया प्राप्यत इति निश्चयः॥२२॥

पदार्थ:-मैं (यत) जैसा (किम्) कुछ (मिय) कर्म का अनुष्ठान करने वाले मुझमें (दुरितम्) दुष्ट स्वभाव के अनुष्ठान से उत्पन्न हुओं पाप (च) वा श्रेष्ठता से उत्पन्न हुआ पुण्य (वा) अथवा (यत्) अत्यन्त क्रोध से (अभिदुद्गेह) प्रत्यक्ष किसी से द्रोह करता वा मित्रता करता (वा) अथवा (यत) जो कुछ अत्यन्त ईर्घ्या से किसी/सज्जेस को (श्रोप) शाप देता वा किसी को कृपादृष्टि से चाहता हुआ जो (अनृतम्) झूंठ (उत) वा स्रत्य कीस करता हूं (इदम्) सो यह सब आचरण किये हुए को (आप:) मेरे प्राण मेरे साथ होके (प्रवहत) अच्छे प्रकार प्राप्त होते हैं॥२२॥

भाषार्थ:-मनुष्य लोग जैसा कुछ पाप वा पुण्य करते हैं, सो सो ईश्वर अपनी न्याय व्यवस्था से इनको प्राप्त कराता ही है॥२२॥

२६६

ऋग्वेदभाष्यम्

पुनस्ताः कीदृश्य इत्युपदिश्यते।

फिर वे जल किस प्रकार के हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है-

आपौ अद्यान्वचारिष् रसेन समेगस्महि।

पर्यस्वानग्नु आ गीहु तं मा सं सृजु वर्चसा॥२३॥

आर्पः। अद्या अर्नु। अचारिष्यम्। रसेन। सम्। अगुस्मिह्। पर्यस्वान्। अग्ने। आर्थिः। तम्। सम्। सुज्। वर्चसा॥२३॥

पदार्थ:-(आप:) जलानि (अद्य) अस्मिन् दिने। अत्र सद्यः परुत्परार्थे० (अष्टा०५.३.२२) अनेनायं निपातितः। (अनु) पश्चादर्थे (अचारिषम्) अनुतिष्ठामि। अत्र लर्ड्थे हुइः (रसेन) स्वाभाविकेन रसगुणेन सह वर्त्तमानाः (सम्) सम्यगर्थे (अगस्मिह्) सङ्गच्छामहे। अत्र लर्ड्थे हुइः मन्त्रे घसह्वरणश० इति च्लेर्लुक् वर्णव्यत्ययेन मकारस्थाने सकारादेशश्च। (पयस्वान्) रसवच्छेरीरयुक्तो भूत्वा (अग्ने) अग्निभौतिकः (आ) समन्तात् (गिह्) प्राप्नोति। अत्र व्यत्ययो हुईं लोट् बहुलं छन्दिस इति शपो लुक् च। (तम्) कर्मानुष्ठातारम् (मा) माम् (सम्) एकीभावे (सूज) सृज्यिता अत्र व्यत्ययो लर्ड्थे लोट् च। (वर्चसा) दीप्त्या॥२३॥

अन्वय:-वयं या रसेन युक्ता आप: सन्ति क्ष: समगस्मिह, याभिरहं पयस्वान् यित्कंचिदन्वचारिषं कर्मानुचरामि, तदेव प्राप्नोमि योऽप्निर्जन्मन्तर आगिह प्राप्नोति, स पूर्वजन्मिन तमेव कर्मानुष्ठातारं मा मामद्य वर्चसा संसृज सम्यक् सृजिति ताः स च युक्त्या समुपयोजनीय:॥२३॥

भावार्थः-सर्वान् प्राणिनः पूर्वास्तिषत् वा यायुजलाग्न्यादिद्वाराऽस्मिञ्जन्मनि पुनर्जन्मनि वा प्राप्नोत्येवेति॥२३॥

पदार्थ:-हम लोग जो (रसेन) स्वाभाविक रसगुण संयुक्त (आप:) जल हैं, उनको (समगस्मिह) अच्छे प्रकार प्राप्त होते हैं, जिनसे मैं (पयस्वान्) रसयुक्त शरीर वाला होकर जो कुछ (अन्वचारिषम्) विद्वानों के अनुचरण अर्थात् अनुकूल उत्तम काम करके उसको प्राप्त होता और जो यह (अग्ने) भौतिक अग्नि (मा) सुझको इस जन्म और जन्मान्तर अर्थात एक जन्म से दूसरे जन्म में (आगिह) प्राप्त होता है अर्थात मही पिछले जन्म में (तम्) उसी कर्मों के नियम से पालने वाले (मा) मुझे (अद्य) आज्यत्तमान भी (वर्चसा) दीप्ति (संसृज) सम्बन्ध कराता है, उन और उसको युक्ति से सेवन करना चाहियो। २३॥

भार्कार्थ:-सूब प्राणियों को पिछले जन्म में किये हुए पुण्य वा पाप का फल वायु जल और अग्नि आदि पदार्थों के द्वारा इस जन्म वा अगले जन्म में प्राप्त होता ही है॥२३॥

सोऽग्निः कीदृश इत्युपदिश्यते।

वह अग्नि किस प्रकार का है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है-

मण्डल-१। अनुवाक-५। सूक्त-२३

सं माग्ने वर्चीसा सृजु सं प्रजया समायुषा।

विद्युर्मे अस्य देवा इन्द्रों विद्यात् सह ऋषिभि:॥२४॥१२॥५॥

सम्। मा। अग्ने। वर्चसा। सृजा सम्। प्रजयां। सम्। आयुंषा। विद्यः। मे। अस्य। देवाः। इन्द्रः। विद्यात्। सह। ऋषिऽभिः॥२४॥

पदार्थ:-(सम्) योगार्थे (मा) माम् (अग्ने) विद्युदाख्यः (वर्चसा) दीप्त्या (सृज्) सृज्ति। अत्र व्यत्ययो लड्थें लोट् च। (सम्) मेलनार्थे (प्रजया) सन्तानादिना (सम्) एकीभावे (आयुषा) जीवनेन (विद्युः) विदन्ति। अत्र लर्ड्थें लिङ्। (मे) मम जीवस्य (अस्य) मनुष्यपशुकृश्चिद्स्थस्य (देवाः) विद्वांसः (इन्द्रः) परमेश्वरः (विद्यात्) वेत्ति। अत्र लर्ड्थे लिङ्। सहा सङ्गार्थे (ऋषिभः) विचारशीलैर्मन्त्रार्थदृष्टिभिः॥२४॥

अन्वय:-मनुष्यैर्ऋषिभिः सह देवाः विद्वांसः परमात्मा च यहरने अप्निर्वर्चसा प्रजयाऽऽयुषा मा मां सृजित संयुनिक्त, यन्मे मम पापपुण्यात्मकं कर्म जन्ममः कारणं विद्युर्विदन्ति विद्यात् वेत्ति च तस्मान्मया तत्सङ्गस्तदुपासना च नित्यं कार्य्या॥२४॥

भावार्थ:-यदा जीव: पूर्व शरीरं त्यक्त्वोत्तरं प्रानिति तदा तेन सह य: स्वाभाविको मानसोऽग्निर्गच्छिति स एव पुन: शरीरादिकं प्रकाशयित जीवार्गं यत्पापं पुण्यं च जन्मकारणमस्ति तदृषिसहिता विद्वांसो जानन्ति नेतरे, परमेश्वरस्तु खलु यथार्थन्य सर्वं विदित्वा स्वस्वकर्मानुसारेण जीवान् शरीरसंयुक्तान् कृत्वा फलं भोजयतीति॥२४॥

पूर्वसूक्तेनोक्तैरश्व्यादिभिर्वाय्वादीनाम्नुषङ्गीणाम्ज्ञीक्तत्वाद् द्वाविंशेनातीतेन सूक्तार्थेन सहास्य त्रयोविंशस्य सूक्तोक्तार्थस्य सङ्गतिरस्तीति बोध्यम्॥)

इति प्रथमाष्ट्रके द्वितीयध्याये द्वादक्षे वर्गः प्रथमपण्डले त्रयोविशं सूक्तं पञ्चमोऽनुवाकश्च समाजः॥

पदार्थ:-मनुष्यों को योग्न है कि जो (ऋषिभि:) वेदार्थ जानने वालों के (सह) साथ (देवा:) विद्वान् लोग और (इन्द्र:) परमात्मा (अग्ने) भौतिक अग्नि (वर्चसा) दीप्ति (प्रजया) सन्तान आदि पदार्थ और (आयुषा) जीवन से (मा) सुझे (संयुक्त करता है उस और (मे) मेरे (अस्य) इस जन्म के कारण को जानते और (विद्यात) जानता है, इससे उनका संग और उसकी उपासना नित्य करें॥ २४॥

भावार्थ:-जब जीव पिछले शरीर को छोड़कर अगले शरीर को प्राप्त होता है, तब उसके साथ जो स्वाभाविक मानस अग्नि जाता है, वहीं फिर शरीर आदि पदार्थों को प्रकाशित करता है, जो जीवों के पाप-पुण्य और जन्म का कारण है, उसको वे (ऋषि और विद्वान्) ही परमेश्वर के सिवाय जानते हैं, किन्तु परमेश्वर तो निश्चेय के साथ यथायोग्य जीवों के पाप वा पुण्य को जानकर, उनके कर्म के अनुसार शरीर देकूर, सुख दु:ख का भोग कराता ही है॥२४॥

पूर्व सूक्त से कहे हुए अश्वि आदि पदार्थों के अनुषङ्गी जो वायु आदि पदार्थ हैं, उनके वर्णन से पिछले बाईसवें सूक्त के अर्थ के साथ इस तेईसवें सूक्त के अर्थ की सङ्गति जाननी चाहिये॥

🔋 मण्डले दूसरे २ अध्याय में १२ बारहवां वर्ग ५ पांचवां अनुवाक और यह तेईसवां सूक्त समाप्त हुआ॥

अथास्य पञ्चदशर्चस्य चतुर्विंशस्य सूक्तस्य आजीगर्तिः शुनःशेपः कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरातिर्ऋषिः। १ प्रजापितः। २ अग्निः। ३-५ सिवता भगो वा। ६-१५ वरुणश्च देवताः। १,२, ६-१५ विवतः। ३-५ षड्जश्च स्वरौ तत्रादिमेन प्रजापितरुपदिश्यते।

अब चौबीसवें सुक्त का प्रारम्भ है। उसके पहिले मन्त्र में प्रजापति का प्रकाश <mark>क्रिया है</mark>

कस्यं नूनं केत्मस्यामृतानां मनामहे चार्र देवस्य नाम। को नो मुद्या अदितये पुनर्दात्पितरं च दृशेयं मातरं च॥ १॥

कस्य। नूनम्। कृतमस्य। अमृतानाम्। मनामहे। चार्रः। देवस्य। नाम। किः। नः। भूहौ। अर्दितये। पुनः। दुात्। पुतर्रम्। चु। दृशेर्यम्। मातर्रम्। चु॥ १॥

पदार्थ:-(कस्य) कीदृशगुणस्य (नूनम्) निश्चमार्थ (कर्णमस्य) बहूनां मध्ये व्यापकस्यामृतस्याऽनादेरेकस्य (अमृतानाम्) उत्पत्तिविनाशरिहृतानां प्राप्तमोक्षाणां जीवानां (मनामहे) विजानीयाम्। अत्र प्रश्नार्थे लेट् व्यत्ययेन श्यनः स्थाने शप च। (चार) सुन्दरम् (देवस्य) प्रकाशमानस्य दातुः (नाम) प्रसिद्धार्थे (कः) सुखस्वरूपो देवः (नः) अस्मान् (मूंड्ये) महत्याम् (अदितये) कारणरूपेण नाशरिहतायां पृथिव्याम्। अदितिरिति पृथिवीनाममु पिउतम्। (नर्धं०१.१) अत्रोभयत्र सप्तम्यर्थे चतुर्थी। (पुनः) पश्चात् (दात्) ददाति। अत्र लर्डथे लङ्क्श्माकश्च। (पितरम्) जनकम् (च) समुच्चये (दृशेयम्) दृश्यासम् इच्छां कुर्याम्। अत्र दृशेरग्वक्तव्यः। अष्टा०३.१.८६) अनेन वार्तिकेनाशीर्लिङ दृशेरग्विकरणेन रूपम्। (मातरम्) गर्भस्य विशेष्ट्यः (च) पुनरर्थे॥१॥

अन्वय:-वयं कस्य कतमस्त्र बहुगाम्मृतानामनादीनां प्राप्तमोक्षाणां जीवानां जगत्कारणानां नित्यानां मध्ये व्यापकस्यामृतस्यानादेरेकस्य पदार्थस्य देवस्य चारु नाम नूनं मनामहे कश्च देवो नः प्राप्तमोक्षानप्यस्मान् मह्या अदित्ये पुनर्दातु दहाति येनाहं पितरं मातरं च दृशेयम्॥१॥

भावार्थ:-अत्र प्रश्नः कोऽस्तीदृशः प्रनातनानां पदार्थानां मध्ये सनातनस्याविनाशिनोऽर्थोऽस्ति यस्यात्युत्कृष्टं नाम्नः स्पर्रम् जानीयाम् ? कश्चास्मिन् संसारेऽस्मभ्यं केन हेतुना मोक्षसुखभोगानन्तरं जन्मान्तरं सम्पादयति ? कथं च वयमानन्दप्रदां मुक्तिं प्राप्य पुनर्मातापित्रोः सकाशात् पुनर्जन्मिन शरीरं धारयेमेति॥१॥ 🔨

पदार्थ: हमें लोग (कस्य) कैसे गुण कर्म स्वभाव युक्त (कतमस्य) किस बहुतों (अमृतानाम्) उत्पत्ति विस्तिशरिक्ष अनादि मोक्षप्राप्त जीवों और जो जगत् के कारण नित्य के मध्य में व्यापक अमृतस्वरूप अनादि तथा एक पदार्थ (देवस्य) प्रकाशमान सर्वोत्तम सुखों को देने वाले देव का निश्चय के हाथ (चारू) सुन्दर (नाम) प्रसिद्ध नाम को (मनामहे) जानें कि जो (नूनम्) निश्चय करके (क:) क्रीन सुख्यस्वरूप देव (न:) मोक्ष को प्राप्त हुए भी हम लोगों को (महो) बड़ी कारणरूप नाशरहित

मण्डल-१। अनुवाक-६। सूक्त-२४

(अदितये) पृथिवी के बीच में (पुन:) पुनर्जन्म (दात) देता है। जिससे कि हम लोग (पितरम्) पिता (च) और (मातरम्) माता (च) और स्त्री पुत्र बन्धु आदि को (दृशेयम्) देखने की इच्छा करें॥१॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में प्रश्न का विषय है कौन ऐसा पदार्थ है जो सनातन अर्थात् अधिनाशी पदार्थों में भी सनातन अविनाशी है कि जिसका अत्यन्त उत्कर्ष युक्त नाम का स्मरण करें वा जानें? और कौन देव हम लोगों के लिये किस-किस हेतु से एक जन्म से दूसरे जन्म का सम्पादन करता? और अमृत वा आनन्द के कराने वाली मुक्ति को प्राप्त होकर भी फिर हम लोगों को माला-पिता से दूसरे जन्म में शरीर को धारण करता है॥१॥

एतयो: प्रश्नयोरुत्तरे उपदिश्येते।

इन प्रश्नों के उत्तर अगले मन्त्र में प्रकाशित क्रिये हैं

अग्नेर्व्यं प्रथमस्यामृतानां मनामहे चार्र देवस्य नामा स नो मुह्या अदितये पुनर्दात्पितरं च दृशेयं मातरं चिभरा

अग्नेः। वयम्। प्रथमस्य। अमृतानाम्। मनामहे। चार्का विषया और्म। सः। नः। मुह्यै। अर्दितये। पुनेः। दात्। पितर्रम्। च। दृशेर्यम्। मातरम्। च॥ २॥

पदार्थ:-(अग्ने:) यस्य ज्ञानस्वरूपस्य (वयम्) विद्वांसः सनातना जीवाः (प्रथमस्य) अनादिस्वरूपस्यैवाद्वितीयस्य परमेश्वरस्य (अमृह्यानम्) किन्नशधर्मरिहतानां जगत्कारणानां वा प्राप्तमोक्षानां जीवनां मध्ये (मनामहे) विजानीयाम् (चाह्र) पवित्रम् (देवस्य) सर्वजगत्प्रकाशकस्य सृष्टौ सकलपदार्थानां दातुः (नाम) आह्वानम् (सः) जगदीश्वरः (नः) अस्मभ्यम् (मह्यौ) महागुणविशिष्टायाम् (अदितये) पृथिव्याम् (पुनः०) इत्यारभ्य निरूप्नितपूर्त्रार्थानि पदानि विज्ञेयानि॥२॥

अन्वय:-वयं यस्याग्नेतिस्वरूपस्यामृतानां प्रथमस्यानादेर्देवस्य चारु नाम मनामहे, स एव नोऽस्मभ्यं मह्या अदितये पुन्रविन्य दात् ददाति यतश्चाहं पुनः पितरं मातरं च स्त्रीपुत्रबन्ध्वादीनिप दृशेयं पश्येयम॥२॥

भावार्थ:-हे मनुष्य विधं यमनादिममृतं सर्वेषामस्माकं पापपुण्यानुसारेण फलव्यवस्थापकं जगदीश्वरं देवं निश्चिनुमः। यस्य न्यायव्यवस्थया पुनर्जन्मानि प्राप्नुमो यूयप्येतमेव देवं पुनर्जन्मदातारं विजानीत, न न्रैतस्माद्गन्यः कश्चिदर्थ एतत्कर्म कर्तुं शक्नोति। अयमेव मुक्तानामिप जीवानां महाकल्पान्ते पुनः पापपुण्यतुल्यात्या पितिर मातिर च मनुष्यजन्म कारयतीति च॥२॥

पदार्थ:-हम लोग जिस (अग्ने) ज्ञानस्वरूप (अमृतानाम्) विनाश धर्मरहित पदार्थ वा मोक्ष प्राप्त जीक्नें में (प्रथमस्य) अनादि विस्तृत अद्वितीय स्वरूप (देवस्य) सब जगत् के प्रकाश करने वा संसार में सूर्व पदार्थों के देने वाले परमेश्वर का (चारु) पवित्र (नाम) गुणों का गान करना (मनामहे) जानते हैं,

(स:) वही (न:) हमको (मह्यै) बड़े-बड़े गुण वाली (अदितये) पृथिवी के बीच में (पुन:) फिर जैन्में (दात्) देता है, जिससे हम लोग (पुन:) फिर (पितरम्) पिता (च) और (मातरम्) माता (च) और स्त्री-पुत्र-बन्धु आदि को (दृशेयम्) देखते हैं॥२॥

भावार्थ:-हे मनुष्यो! हम लोग जिस अनादि स्वरूप सदा अमर रहने वा जो हम सब लोगों के किये हुए पाप और पुण्यों के अनुसार यथायोग्य सुख-दु:ख फल देने वाले जगदी हर देन को निश्चय करते और जिसकी न्याययुक्त व्यवस्था से पुनर्जन्म को प्राप्त होते हैं, तुम लोग भी उसी देव को जानो, किन्तु इससे और कोई उक्त कर्म करने वाला नहीं है, ऐसा निश्चय हम लोगों को है कि वहीं मीक्षपदवी को पहुंचे हुए जीवों का भी महाकल्प के अन्त में फिर पाप-पुण्य की तुल्यता से पिता-माता और स्त्री आदि के बीच में मनुष्यजन्म धारण करता है॥२॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते।

फिर वह जगदीश्वर कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है-

अभि त्वां देव सवित्रीशांनुं वार्याणाम्। सदावन्भागमींमहे॥ ३॥

अभि। त्वा। देव। सुवितः। ईशानम्। वार्घ्याणाम्। सुद्धाः अबुन्। भागम्। ईमहे॥३॥

पदार्थ:-(अभि) आभिमुख्ये (त्वा) त्वाम् (देव) सर्वानन्दप्रदेश्वर (सवितः) पृथिव्याद्युत्पादक (ईशानम्) विविधस्य जगत ईक्षणशीलम् (वार्य्मणाम्) स्त्रीकर्त्तुमर्हाणां पृथिव्यादिपदार्थानां (सदा) सर्वदा (अवन्) रक्षन् (भागम्) भजनीयम् (ईमहे) क्रान्यूस्हे। ।

अन्वय:-हे सवितरवन् देव जूग्दीश्वर! वय वार्य्याणामीशानं भागं त्वा त्वां सदाऽभीमहे॥३॥

भावार्थः-मनुष्यैर्यः सर्वप्रवाशकः सकलजगदुत्पादकः सर्वरक्षको जगदीश्वरो देवोऽस्ति, स एव सर्वदोपासनीयः। नैवास्माद्भिन्नं कंचिदर्थमुष्यस्येश्वरोपासनाफलं प्राप्तुमर्हति, तस्मान्नैतस्येश्वरस्योपासना-विषये केनापि मनुष्येण कदाश्विद्योऽर्थों, व्यस्थापनीय इति॥३॥

पदार्थ: -हे (सर्वितः) पृथिने आदि पदार्थों की उत्पत्ति वा (अवन्) रक्षा करने और (देव) सब आनन्द के देने वाले जगदीक्षर हम लोग (वार्च्याणाम्) स्वीकार करने योग्य पृथिवी आदि पदार्थों की (ईशानम्) यथायोप् व्यवस्था करने (भागम्) सब के सेवा करने योग्य (त्वा) आपको (सदा) सब काल में (अभि) (ईम्हे) प्रत्यक्ष याचते हैं अर्थात् आप ही से सब पदार्थों को प्राप्त होते हैं॥३॥

भावार्थ:- प्रनुष्यों को योग्य है कि जो सब का प्रकाशक सकल जगत् को उत्पन्न वा सब की रक्षा करने वाल जगदीश्वर है, वहीं सब समय में उपासना करने योग्य है, क्योंकि इसको छोड़ के अन्य किसी की उपासना करके ईश्वर की उपासना का फल चाहे तो कभी नहीं हो सकता, इससे इसकी उपासना के विषय में कोई भी मनुष्य किसी दूसरे पदार्थ का स्थापन कभी न करे॥३॥

मण्डल-१। अनुवाक-६। सूक्त-२४

पुनः स एवार्थ उपदिश्यते।

फिर भी अगले मन्त्र में परमेश्वर ने अपना ही प्रकाश किया है-

यश्चिद्धि तं इत्था भर्गः शशमानः पुरा निदः।

अद्वेषो हस्तयोर्द्धे॥४॥

यः। चित्। हि। ते। इत्था। भर्गः। शृशृमानः। पुरा। निदः। अद्वेषः। हस्तयोः। दुधी। ।

पदार्थ:-(य:) धनसमूहः (चित्) सत्कारार्थे अप्यर्थे वा (हि) खलु (ते) तक (इत्था) अनेन हेतुना (भगः) सेवितुमर्हो धनसमूहः (शशमानः) स्तोतुमर्हः (पुरा) पूर्वम् (निद्ः) निन्दकः। अत्र वा छन्दिस सर्वे विधयो भवन्ति इति नकारलोपः। (अद्वेषः) अविद्यमास्रो द्वेषा परिमन् सः (हस्तयोः) करयोरामलकमिव कर्मफलम् (दधे) धारये॥४॥

अन्वय:-हे जीव! यथाऽद्वेषोहमीश्वर इत्था सुखहेतुना यः शशमानो भगोऽस्ति, तं सुकर्मणस्ते हस्तयोरामलकमिव दधे, यश्च निदोऽस्ति तस्य हस्तयोः सकुशिदिबैतन्सूर्वं च विनाशये॥४॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार। यथाऽहर्मीश्वरो मिन्दुकौय मनुष्याय दुःखं यः कश्चित्सृष्टौ धर्मानुसारेण वर्त्तते, तस्मै सुखविज्ञाने प्रयच्छामि, तथैव सर्वेर्युष्पाप्रिरपि कर्त्तव्यमिति॥४॥

पदार्थ: -हे जीव जैसे (अद्वेष:) सब से मिन्नतापूर्वक्र वर्तने वाला द्वेषादि दोषरहित मैं ईश्वर (इत्था) इस प्रकार सुख के लिये (य:) जो (श्रृष्टामान:) स्त्रुति (भग:) और स्वीकार करने योग्य धन है, उसको (ते) तेरे धर्मात्मा के लिये (हि) निश्चिष करके (हस्तयो:) हाथों में आमले का फल वैसे धर्म के साथ प्रशंसनीय धन को (दधे) धारण करता है और जो (निदः) सब की निन्दा करनेहारा है, उसके लिये उस धन समूह का विनाश कर देता हू, हैसे तुम लोग भी किया करो॥४॥

भावार्थ:-यहाँ वाचकलुक्तापमालङ्कार है। जैसे मैं ईश्वर सब के निन्दक मनुष्य के लिये दु:ख और स्तुति करने वाले के लिये सुख देता हूं, वीसे तुम भी सदा किया करो॥४॥

पुनः स एवार्थ उपदिश्यते।

पिर भी अगले मन्त्र में परमेश्वर ही का प्रकाश किया है-

भगभक्तस्य ते वसमुद्देशम् तवावसा।

मूर्द्धानं स्य आरभे॥५॥१३॥

भर्गऽभक्तरेयः। ते। वयम्। उत्। अशेमः। तर्व। अर्वसा। मूर्द्धार्नम्। रायः। आऽरभे॥५॥

पदार्थ:-(भगभक्तस्य) भगाः सर्वैः सेवनीया भक्ता येन तस्य (ते) तव जगदीश्वरस्य (वयम्)

ऐश्वर्यिपिच्छुकाः (उत्) उत्कृष्टार्थे (अशेम) व्याप्नुयाम। वा छन्दिस सर्वे विधयो भवन्ति इति

नियमाच्छपः स्थाने श्नुर्न। (तव) (अवसा) रक्षणेन (मूर्द्धानम्) उत्कृष्टभागम् (रायः) धनसमूहस्य (आरभे) आरब्धव्ये व्यवहारे। अत्र कृत्यार्थे तवैकेन्केन्यत्वनः (अष्टा०३.४.१४) अनेन 'रभ' धातोः केन् प्रत्ययः॥५॥

अन्वय:-हे परात्मन्! भगभक्तस्य ते तव कीर्त्तिं यतो वयमुदशेम तस्मात्तवावका रायो मूर्द्धानं प्राप्यारभ आरब्धव्ये व्यवहारे नित्यं प्रवर्त्तामहे॥५॥

भावार्थ:-येऽनुष्ठानेनेश्वराज्ञां व्याप्नुवन्ति त एवेश्वरात् सर्वतो रक्षणं प्राप्य सर्वेषां मनुष्याणे मध्य उत्तमैश्वर्या भूत्वा प्रशसां प्राप्नुवन्ति, कुतः? स एवेश्वरः स्वस्वकर्मानुसारेण जीवेभ्यः फलं विभज्य ददात्यतः॥५॥

पदार्थ: - हे जगदीश्वर जिससे हम लोग (भगभक्तस्य) जो सक के सेवने योग्य पदार्थों का यथा योग्य विभाग करने वाले (ते) आपकी कीर्त्ति को (उदशेम) अत्यन्त उन्नित के साथ व्याप्त हों कि उसमें (तव) आपकी (अवसा) रक्षणादि कृपादृष्टि से (राय:) अत्यन्त अन के (मृद्धीनम्) उत्तम से उत्तम भाग को प्राप्त होकर (आरभे) आरम्भ करने योग्य व्यवहारों में नित्य प्रवृत्त हों अर्थात् उसकी प्राप्ति के लिये नित्य प्रयत्न कर सकें॥५॥

भावार्थ:-जो मनुष्य अपने क्रिया कर्म से ईश्वर की भाजा में प्राप्त होते हैं, वही उससे रक्षा को सब प्रकार से प्राप्त और सब मनुष्यों में उत्तम ऐश्वर्य वाले होकर प्रशंसा को प्राप्त होते हैं, क्योंकि वही ईश्वर जीवों को उनके कर्मों के अनुसार न्याय क्रिक्सिश से क्रिभाग कर फल देता है इससे॥५॥

पुनम्स कीदृश इत्युपदिश्यते।

पुन: वह ईश्वर कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है-

नृहि ते क्षुत्रं न सहो न मुन्युं सूर्यश्चनामी पृतयन्त आपुः।

नेमा आपो अनिमिषं चरन्तीर्न से वार्तस्य प्रमिनन्यभ्वम्॥६॥

नुहि। ते। क्षुत्रम्। न। सहै: ता मृन्युम्। वर्यः। चना अमी इति। पुतर्यन्तः। आपुः। न। इमाः। आपैः। अनिऽमिषम्। चर्यन्तीः। न। वि। क्रातस्या प्रऽमिनन्ति। अभ्वम्॥६॥

पदार्थ:-(निह) निषेधे (ते) तव सर्वेश्वरस्य (क्षत्रम्) अखण्डं राज्यम् (न) निषेधार्थे (सहः) बलम् (न) निषेधार्थे (मन्तुम्) दुष्टान् प्राणिनः प्रति यः क्रोधस्तम् (वयः) पक्षिणः (चन) कदाचित् (अमी) पिक्षप्रमूक्त दुश्यादृश्याः सर्वे लोका वा (पतयन्तः) इतस्ततश्चलन्तः सन्तः (आपुः) प्राप्नुवन्ति अत्र वर्तम् विद्यर्थे लिट्। (न) निषेधार्थे (इमाः) प्रत्यक्षाप्रत्यक्षाः (आपः) जलानि प्राणा वा (अनिमिषम्) निरन्तरम् (चरन्तीः) चरन्त्यः (न) निषेधे (ये) वेगाः (वातस्य) वायोः (प्रमिनन्ति) परिमातुं शक्यवित्त (अभ्वम्) सत्तानिषेधम्। अत्र 'भू' धातोः क्विप् ततश्चन्दस्युभयथा। (अष्टा॰६.४.८६ स्त्यिभिष्यं प्रणादेशः॥६॥

मण्डल-१। अनुवाक-६। सुक्त-२४

अन्वय:-हे जगदीश्वर ते तव क्षत्रं पतयन्तः सन्तोऽमी लोका लोकान्तरानापुर्न व्याप्नुवन्ति न वयश्च न सहो न मन्युं च व्याप्नुवन्ति नेमा अनिमिषं चरन्त्य आपस्तव सामर्थ्यं प्रमिनन्ति यो बातस्य वेगास्तेऽपि तव सत्तां न प्रमिनन्त्यर्थान्नेमे सर्वे पदार्थास्तवाभ्वम्-सत्तानिषेधं च कर्त्तुं शक्नुव्यस्ति॥६॥

भावार्थ:-ईश्वरस्यानन्तसामर्थ्यवत्त्वान्नैतं कश्चिदपि परिमातुं हिंसितुं वा शृक्वोति इमे सर्वे लोकाश्चरन्ति नैतेषु चलत्सु जगदीश्वरश्चलित तस्य पूर्णत्वात् नैतस्माद्भिन्नेनोपासितेन्नर्थिन कस्यचिञ्जीवस्य पूर्णमखण्डितं राज्यं भवितुमर्हित। तस्मात् सर्वे र्मनुष्यैरयं जगदीश्वरोऽप्रमेयोऽ्विनाशी सदोपास्या वर्त्तते इति बोध्यम्॥६॥

पदार्थ: -हे जगदीश्वर (क्षत्रम्) अखण्ड राज्य को (पतयन्तः) इध्ये उध्य जेलायमान होते हुए (अमी) ये लोक-लोकान्तर (न) नहीं (आपुः) व्याप्त होते हैं और ने (बयः) पश्नी भी (न) नहीं (सहः) बल को (न) नहीं (मन्युम्) जो कि दुष्टों पर क्रोध है, उसको भी (न) नहीं व्याप्त होते हैं (न) नहीं ये (अनिमिषम्) निरन्तर (चरन्तीः) बहने वाले (आपः) जल क्रा प्राण आपके सामर्थ्य को (प्रिमनिन्त) परिमाण कर सकते और (ये) जो (वातस्य) वायु के वेग हैं, के भी आपकी सत्ता का परिमाण (न) नहीं कर सकते। इसी प्रकार और भी सब पदार्थ आपकी (अभ्वम्) सत्ता का निषेध भी नहीं कर सकते। इस

भावार्थ:-ईश्वर के अनन्त सामर्थ्य होने से उसका परिमाण वा उसकी बराबरी कोई भी नहीं कर सकता है। ये सब लोक चलते हैं, परन्तु लोकों के चलने में उनमें व्याप्त ईश्वर नहीं चलता, क्योंकि जो सब जगह पूर्ण है, वह कभी चलेगा? इस ईश्वर की उपासना को छोड़ कर किसी जीव का पूर्ण अखिण्डत राज्य वा सुख कभी नहीं हो सकिया। इससे सब मनुष्यों को प्रमेय वा विनाश रहित परमेश्वर की सदा उपासना करनी योग्य है॥५॥८

अथ बायुसवितृगुणा उपदिश्यन्ते।

अब अगुर्ले मन्त्र में वायु और सविता के गुण प्रकाशित करते हैं-

अबुध्ने राजा वर्ष्ट्रणी वर्षस्योध्वं स्तूपं ददते पूतदक्षः।

नोचीनाः स्थुस्परि बुध्न रिषामस्मे अन्तर्निहिताः केतर्वः स्युः॥७॥

अबुध्ने। गुजा। वर्मणः। वर्नस्य। ऊर्ध्वम्। स्तूर्पम्। दुद्ते। पूतऽदेक्षः। नीचीनाः। स्थुः। उपरि। बुध्नः। एषाम्। अस्मे इति। अतः। निऽहिताः। केतर्वः। स्युरिति स्युः॥७॥

पदार्थ:-(अनुझे) अन्तरिक्षासादृश्ये स्थूलपदार्थे। बुध्नमन्तरिक्षं बद्धा अस्मिन् धृता आप इति। (निरु०१६.४४) (राजा) यो राजते प्रकाशते। अत्र किनन्युवृषितिक्षि० (उणा०१.१५४) अनेन किन्द्रिय्यः (वरुणः) श्रेष्ठः (वनस्य) वननीयस्य संसारस्य (अर्ध्वम्) उपरि (स्तूपम्) किरणसमूहम्। स्तूपः संघातः। (निरु०१०.३३) (ददते) ददाति (पूतदक्षः) पूतं पवित्रं दक्षो बलं यस्य सः

(नीचीना:) अर्वाचीना अधस्था: (स्थु:) तिष्ठन्ति। अत्र लडर्थे लुङ्डभावश्च। (उपिर) ऊर्ध्वम् (बुर्ध्न:) बद्धा आपो यस्मिन् स बुध्नो मेघ:। बुध्न इति मेघनामसु पठितम्। (निघं०१.१२) (एषाम्) जगत्स्थानां पदार्थानाम् (अस्मे) अस्मासु। अत्र सुपां सुलुग्० इति सप्तमीस्थाने शे आदेश: (अन्तः) मध्ये (निहिताः) स्थिता: (केतवः) किरणाः प्रज्ञानानि वा (स्यु:) सन्ति। अत्र लडर्थे लिङ्॥७॥

अन्वय:-हे मनुष्या! यूयं यः पूतदक्षो राजा वरुणो जलसमूहस्सविता वा बुध्ने कनस्योध्वं स्तूपं ददते यस्य नीचीनाः केतव एषामुपिर स्थुस्तिष्ठन्ति पदान्तर्निहिता आप स्युस्सन्ति क्यन्तःस्थो बुध्नेश्च ते केतवोऽस्मेऽस्मास्वन्तर्निहिताश्च भवन्तीति विजानीत॥७॥

भावार्थ:-न चैवायं सूर्य्यो रूपरिहतेनान्तरिक्षं प्रकाशियतुं शक्नोति तस्माद्यान्यस्योपर्य्यध:स्थानि ज्योतींषि सन्ति, तान्येव मेघस्य निमित्तानि ये जलपरमाणवः किरणस्थाः सन्ति, यभा नैव तेऽतीन्द्रियत्वाद् दृश्यन्त एवं वाय्विग्नपृथिव्यादीनामिप सूक्ष्मा अवयवा अन्तरिक्षस्था वर्त्तमाना अपि न दृश्यन्त इति॥७॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो तुम जो (पूतदक्ष:) पवित्र बल वाला (राजा) प्रकाशमान (वरुण:) श्रेष्ठ जलसमूह वा सूर्य्यलोक (अबुध्ने) अन्तरिक्ष से पृथक् असदृश्य बड़े आकाश में (वनस्य) जो कि व्यवहारों के सेवने योग्य संसार है, जो (अर्ध्वम्) उस पर (स्तूप्रम्) अपनी किरणों को (ददते) छोड़ता है, जिसकी (नीचीना:) नीचे को गिरते हुए (केतव:) किरणे (एप्प्रम्) इन संसार के पदार्थों (उपिर) पर (स्यु:) ठहरती हैं (अन्तर्हिता:) जो उनके बीच में मिल और (बुध्न:) मेघादि पदार्थ (स्यु:) हैं और जो (केतव:) किरणें वा प्रज्ञान (अस्मे) हम लोगों में (निह्ना:) स्थिर (स्यु:) होते हैं, उनको यथावत् जानो॥७॥

भावार्थ:-जिससे यह सूर्य्य रूप के होने में अन्तरिक्ष का प्रकाश नहीं कर सकता, इससे जो ऊपरली वा बिचली किरणें हैं, वे ही क्य की निर्मित्त हैं, जो उनमें जल के परमाणु रहते तो हैं, परन्तु वे अतिसूक्ष्मता के कारण दृष्टिगोचर नहीं होते। इसी प्रकार वायु अग्नि और पृथिवी आदि के भी अतिसूक्ष्म अवयव अन्तरिक्ष में रहते तो अवश्य हैं, परन्तु वे भी दृष्टिगोचर नहीं होते॥७॥

इदानीं वर्रणशब्देनात्मवाय्वोर्गुणोपदेश: क्रियते।

अब अगले मन्त्र में वर्मण शब्द से आत्मा और वायु के गुणों का प्रकाश करते हैं-

उहं हि ग्रजा वर्मणश्चकार सूर्यीय पन्थामन्वेतवा उ।

अपद्रे पाद्रो प्रतिधातवेऽकरुतापेवुक्ता हिदयाविधिश्चित्॥८॥

कुर्म्। हि। राजी। वर्मणः। चुकारी सूर्व्याय। पन्थाम्। अनी। एत्वै। कुम्। इति। अपदे। पादी। प्रतिऽधार्त्वे। अकुः उत। अपुऽवुक्ता। हृदुयाऽविधः। चित्॥८॥

पदार्थ:-(उरुम्) विस्तीर्णम् (हि) चार्थे (राजा) प्रकाशमानः परमेश्वरः प्रकाशहेतुर्वा (वरुणः) रः श्रेष्टतमो जगदीश्वरो वरत्वहेतुर्वायुर्वा (चकार) कृतवान् (सूर्याय) सूर्यस्य। अत्र चतुर्थ्यथे बहुलं

मण्डल-१। अनुवाक-६। सूक्त-२४

छन्दिस। (अष्टा०२.३.६२) अनेन षष्टीस्थाने चतुर्थी। (पन्थाम्) मार्गम्। अत्र छान्दसो वर्णलोपो वेति नकारलोपः। (अनु) अनुकूलार्थे (एतवै) एतुं गन्तुम्। अत्रेणधातोः कृत्यार्थे तवैके० अनेन तवि प्रत्यरम् (उ) वितर्के (अपदे) न विद्यन्ते पदानि चिह्नानि यस्मिन् तस्मिन्नन्तिरक्षे (पादा) पद्यन्ते यार्थ्यां गमनागमनाभ्यां तौ। अत्र सुपां सुलुग्० इत्याकारादेशः। (प्रतिधातवे) प्रतिधातुम्। अत्र तुमर्थे सेसेन० अनेन तवेन्प्रत्ययः। (अकः) कृतवान्। अत्र मन्त्रे घसह्वरण० इति च्लेर्लुक्। (उत्रे) अपि (अपवक्ता) विरुद्धवक्ता वाचियता वाऽस्ति तस्य (हृदयाविधः) हृदयं विध्यति तस्याधर्मस्युष्धार्मिकस्य शत्रोखी। अत्र निहृवृतिवृषिव्यधिरुचिसहितनिषु क्वौ। (अष्टा०६.६.११६) अनेन दीर्घः। (च्रित्) इव॥८॥

अन्वय:-हृदयाविधोऽपवक्ताऽपवाचियता शत्रुरस्ति तस्य चिदित्र भी वर्रणो राजा जगद्धाता जगदीश्वरो वायुर्वा सूर्याय सूर्यस्यान्वेतव उरुं पन्थां चकारोताप्यपदे पदा प्रतिधातवे सूर्य्यमक उ इति वितर्के सर्वस्थैतद्विधत्ते स सर्वेरुपासनीय उपयोजनीयो वास्तीति निष्ट्येक्ट्यम्॥

भावार्थ:-अत्र श्लेषोपमालङ्कारौ। यः परमेश्वरः खलु यस्य महत्रः सूर्यलोकस्य भ्रमणार्थं महतीं कक्षां निर्मितवान् यो वायुनेन्धनेन प्रदीप्यते, य इमे सर्वे लोका अन्तरिक्षपरिधयः सन्ति, न च कस्याचिल्लोकस्य केनचिल्लोकान्तरेण सह सङ्गोऽस्ति, किन्तु सर्वे न्तरिक्षस्थाः सन्तः स्वं स्वं परिधिं प्रति परिभ्रमन्त्येते सर्वे यस्येश्वरस्य वायोर्वाकर्षणभारणाभ्यां स्वं स्वं परिधिं विहायेतस्ततश्चिलतुं न शक्नुवन्ति, नैव यस्मात् कश्चिदन्य एषां धर्तार्थोऽस्ति, यथा परमेश्वरोऽधार्मिकस्य वक्तुर्हदयस्य विदारकोऽस्ति तथा प्राणोऽपि रोगाविष्टो हस्यस्य विदारकोऽस्ति, स सर्वेर्मनुष्यैः कथं नोपासनीय उपयोजनीयो भवेदिति बोध्यम्॥८॥

पदार्थ:-(चित्) जैसे (अपवद्भा) मिध्यानादी छली दुष्ट स्वभावयुक्त पराये पदार्थ (हृदयाविधः) अन्याय से परपीड़ा करने हारे शृत्रुं को हुढ़ बन्धनों से वश में रखते हैं, वैसे जो (वरुणः) (राजा) अतिश्रेष्ठ और प्रकाशमान परमेश्वर वा श्रेष्ठता और प्रकाश का हेतु वायु (सूर्याय) सूर्य के (अन्वेतवै) गमनागमन के लिये (उरुम्) किस्तारयुक्त (प्रत्याम्) मार्ग को (चकार) सिद्ध करते (उत्त) और (अपदे) जिसके कुछ भी चाक्षुष विह्न नहीं हैं) उस अन्तरिक्ष में (प्रतिधातवे) धारण करने के लिये सूर्य के (पादा) जिनसे जाना-आना बने, उन प्रमा और आगमन गुणों को (अकः) सिद्ध करते हैं (उ) और जो परमात्मा सब का धर्ता (हि) और कायु इस काम के सिद्ध कराने का हेतु है, उसकी सब मनुष्य उपासना और प्राण का उपयोग करों।।८॥

भूतिर्थ: इस मन्त्र में श्लेष और उपमालङ्कार हैं। जिस परमेश्वर ने निश्चय के साथ जिस सब से बड़े सूर्य लोक के लिये बड़ी-सी कक्षा अर्थात् उसके घूमने का मार्ग बनाया है, जो इसको वायुरूपी ईंधन से प्रदौत करता और जो सब लोक अन्तरिक्ष में अपनी-अपनी परिधियुक्त हैं कि किसी लोक का किसी लोकान्तर के साथ संग नहीं है, किन्तु सब अन्तरिक्ष में ठहरे हुए अपनी-अपनी परिधि पर चारों

और घूमा करते हैं और को आपस में जिस ईश्वर और वायु के आकर्षण और धारणशक्ति से अपनी अपनी परिधि को छोड़कर इधर-उधर चलने को समर्थ नहीं हो सकते तथा जिस परमेश्वर और वायु के विना अन्य कोई भी इनका धारण करने वाला नहीं है, जैसे परमेश्वर मिथ्यावादी अधर्म करने पृथक् है, वैसे प्राण भी हृदय के विदीर्ण करने वाले रोग से अलग है, उसकी उपासन वा कार्यों में योजना सब मनुष्य क्यों न करें॥८॥

अथ यौ राजप्रजापुरुषौ स्तस्तौ कीदृशौ भवेतामित्युपदिश्यते।

अब जो राजा और प्रजा के मनुष्य हैं, वे किस प्रकार के हों, इस विषय का उपदेश अपले मन्त्र

में किया है-

शृतं ते राजन् भिषजः सहस्रमुर्वी गंभीरा सुमृतिष्टे अस्तु। १। बार्धस्व दूरे निर्ऋतिं पराचैः कृतं चिदेनः प्र मुमुख्यस्पत्॥ १॥

शृतम्। ते। राजन्। भिषजः। सहस्रम्। उर्वी। गुभीरा। सुऽमुर्विः। ते। अस्तु। बार्धस्व। दूरे। निःऽर्ऋतिम्। पुराचैः। कृतम्। चित्। एनैः। प्रा मुमुम्धि। अस्मत्॥९॥

पदार्थ:-(शतम्) असंख्यातान्यौषधानि (ते) तक राज्ञः प्रजापुरुषस्य वा (राजन्) प्रकाशमान (भिषजः) सर्वरोगनिवारकस्य वैद्यस्य (सहस्रम्) अलंख्याता (उर्वी) विस्तीर्णा भूमिः (गभीराः) अगाधा (सुमितः) शोभना चासौ मितिर्विज्ञानं यस्य सः (ते) तब। अत्र युष्मतत्ततक्षु० (अष्टा०८.३.१०३) अनेन मूर्द्धन्यादेशः (अस्तु) भवतु (बाधस्व) दुष्टशत्रूम् दोषान् स्न निवारय (दूरे) विप्रकृष्टे (निर्ऋतिम्) भूमिम्। निर्ऋतिरिति पृथिवीनामसु पठितम्। (निघंठ १) (प्राप्तचैः) धर्मात् पराङ्मुखैः। अत्र बहुलं छन्दिस इति भिस ऐस्भावः कृतः (कृतम्) आचिर्त्रम् (चित्र) एवं (एनः) पापम् (प्र) प्रकृष्टार्थे (मुमुग्धि) त्यज मोचय वा। अत्र बहुलं छन्दिस इति शपःश्रुष्ता। अस्मात् अस्मातं सकाशात्॥९॥

अन्वय:-हे राजन् प्रजाजन वा! यस्य भिषजस्ते तव शतमोषधानि सहस्रसंख्याता गम्भीरोवीं भूमिरस्ति, तां त्वं सुमितभूत्वा निर्कृतिं भूमि रक्ष, दुष्टस्वभावं प्राणिनं दुष्कर्मणः प्रमुमुग्धि, यत्पराचैः कृतमेनोऽस्ति तदस्मह्रे रक्षेतान पराचो दुष्टान् स्वस्वकर्मानुसारफलदानेन बाधस्वास्मान् शत्रुचोरदस्युभयाख्यात् पापात् प्रमुमुग्ध सम्यग् विमोचय॥९॥

भावार्थः अत्र ्रिलालङ्कारः। मनुष्यैयौँ राजप्रजाजनौ पापसर्वरोगनिवारकौ पृथिव्याधारकार्षुत्कृष्टकुष्टिप्रदातारौ धार्मिकेभ्यो बलप्रदानेन दुष्टानां बाधनहेतूभवतस्तावेव नित्यं सङ्गन्तव्यौ नैव कस्यवित् पाएं भोगेन विना निवर्त्तते, किन्तु यद्भूतवर्त्तमानभविष्यत्काले च पापं कृतवान् करोति करिष्यिति ता तिन्नवारणार्थाः खलु प्रार्थनोपदेशपुरुशषार्था भवन्तीति वेदितव्यम्॥९॥

पदोर्थ:-(राजन्) हे प्रकाशमान प्रजाध्यक्ष प्रजाजन वा जिस (भिषजः) सर्व रोग निवारण करने व्यक्ति (ते) आपकी (शतम्) असंख्यात औषधि और (सहस्रम्) असंख्यात (गभीरा) गहरी (उर्वी)

मण्डल-१। अनुवाक-६। सूक्त-२४

विस्तारयुक्त भूमि है, उस (निर्ऋतिम्) भूमि की (त्वम्) आप (सुमितः) उत्तम बुद्धिमान् होके रक्षा करो, जो दुष्ट स्वभावयुक्त प्राणी को (प्रमुमुम्धि) दुष्ट कर्मों को छुड़ादे और जो (पराचैः) धर्म से अलग होने वालों ने (कृतम्) किया हुआ (एनः) पाप है, उसको (अस्मत्) हम लोगों से (दूरे) दूर रिवय और हन दुष्टों को उनके कर्म के अनुकूल फल देकर आप (बाधस्व) उनकी ताड़ना और हम खोगों के दोषों को भी निवारण किया कीजिये॥९॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों को जानना चाहिये कि ज्ञाँ सभाष्यक्ष और प्रजा के उत्तम मनुष्य पाप वा सर्वरोग निवारण और पृथिवी के धारण करने, अत्यन्त बुद्धि बल देकर दुष्टों को दण्ड दिलवाने वाले होते हैं, वे ही सेवा के योग्य हैं और यह भी जानना कि किसी का किया हुआ पाप भोग के विना निवृत्त नहीं होता और इसके निवारण के लिये कुछ पर्मिश्वर की प्रार्थना वा अपना पुरुषार्थ करना भी योग्य ही है, किन्तु यह तो है जो कर्म जीव वर्तमान में करता वा करेगा, उसकी निवृत्ति के लिये तो परमेश्वर की प्रार्थना वा उपदेश भी होता है॥९॥

य उपरि लोका दृश्यन्ते ते कस्योपरि सिन्ति केने धार्यन्त इत्युपदिश्यते॥

जो लोक अन्तरिक्ष में दिखाई पड़ते हैं, वे किस के ऊपर घा किसने धारण किये हैं, इस विषय का उपदेश अगले मिन्त्र में किया है।।

अमी य ऋक्षा निर्हितास उच्चा नक्तं दिदृश्चे कुह्रे चिहिवेयु:। अदंब्यानि वर्रुणस्य वृतानि विचार्कशच्चेद्रमा नक्तंमेति॥१०॥१४॥

अमी इति। ये। ऋक्षाः। निऽहितासः। उच्चाः। नक्तम्। दर्वश्रे। कुहै। चित्। दिवां। ईयुः। अदेब्धानि। वर्रुणस्य। वृतानि। विऽचार्कशत्। चुन्द्रमाः। तक्तम्। पुति॥ १०॥

पदार्थ:-(अमी) दृश्याहुश्या: (ऋका:) सूर्याचन्द्रनक्षत्रादिलोका:। ऋक्षास्त्रिभिरिति नक्षत्राणाम्। (निरु०३.२०) (निहितास:) इश्वरेण स्थापिता)। अत्र आज्जसरेसुग् इत्यसुक्। (उच्चा:) ऊर्ध्व स्थिता: (नक्तम्) रात्रौ (ददृशे) हृश्यन्ते। अत्र दृशेलिंटि। इरयो रे (अष्टा०६.४.७६) इति सूत्रेणस्य सिद्धिः। (कुह) क्व। अत्र वा ह च छन्दिस। (अष्टा०५.३.१३) अनेन किमो हः प्रत्ययः। कुतिहोः। (अष्टा०७.२.१०४) इति कुरोदेशश्च। (चित्) वितर्के (दिवा) दिवसे (ईयुः) यान्ति। अत्र लडर्थे लिट्। (अद्यानि) अहिंसभीयानि (वरुणस्य) जगदीश्वरस्य सूर्यस्य वा (व्रतानि) कर्माणि नियमा वा (विचाकशतः) विशिष्टवया प्रकाशमानः (चन्द्रमाः) चन्द्रलोकः (नक्तम्) रात्रौ (एति) प्रकाशं प्राप्नोति।। १०००

अन्वय:-वयं पृच्छामोऽमी य उच्चा केन निहितास ऋक्षा नक्तं न ददृश्रे ते दिवा कुह चिदीयुरिति। यानि वरुणस्य परमेश्वरस्य सूर्यस्य वा अदब्धानि व्रतानि यैर्नक्तं विचाकशत् संश्चन्द्रमा:-चन्द्रादिनक्षत्रसमूह एति प्रकाशं प्राप्नोति, स रचियता स च प्रकाशियतास्तीत्युत्तरम्॥१०॥

भावार्थ:-अत्र श्लेषालङ्कार:। अत्र पूर्वार्द्धेन प्रश्न उत्तरार्द्धेन समाधानं कृतमस्ति, यदा किश्चित् कंचित् प्रति पृच्छेदिमे नक्षत्रलोका: केन रचिता: केन धारिता रात्रौ दृश्यन्ते दिवसे व दृश्यन्त एते क्व गच्छिन्त तदैतस्यौत्तरमेवं दद्यात्, येनेमे सर्वे लोका वरुणेनेश्वरेण रचिता धारिता: सन्ति एतेषां मध्य स्वतः प्रकाशो नास्ति, किन्तु सूर्यस्यैव प्रकाशेन प्रकाशिता भवन्ति, नैवैते क्वाप्रि गच्छिन्ति, किन्तु दिवस आव्रियमाणा न दृश्यन्ते, रात्रौ च सूर्यिकरणै: प्रकाशमाना दृश्यन्ते, तान्येत्ति धन्यवादार्हाणि कर्माणि परमेश्वरस्यैव सन्तीति वेद्यम्॥१०॥

इति १४ वर्ग:॥

पदार्थ:-हम पूछते हैं कि जो ये (अमी) प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष (ऋक्षाः) सूर्य्यचन्द्रतारकादि नक्षत्र लोक किसने (उच्चाः) ऊपर को ठहरे हुए (निहितासः) यथायोग्य अपनी-अपनी कक्षा में ठहराये हैं, क्यों ये (नक्तम्) रात्रि में (दृदृश्रे) देख पड़ते हैं और (दिवा) दिन में (कुहचित्) कहाँ (ईयुः) जाते हैं। इन प्रश्नों के उत्तर-जो (वरुणस्य) परमेश्वर वा सूर्य के (अद्भानि) हिंसारहित (वृतानि) नियम वा कर्म हैं कि जिनसे ये ऊपर ठहरे हैं (नक्तम्) रात्रि में (विचाकशत्) अच्छे प्रकार प्रकाशमान होते हैं, ये कहीं नहीं जाते न आते हैं, किन्तु आकाश के बीच में रहते हैं (चन्द्रमाः) चन्द्र आदि लोक (एति) अपनी-अपनी दृष्टि के सामने आते और दिन में सूर्य्य के प्रकाश वा किसी लोक की आड़ से नहीं दीखते हैं, ये प्रश्नों के उत्तर हैं॥१०॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में श्लेषाल्ड्सार है तथा इस मन्त्र के पहिले भाग से प्रश्न और पिछले भाग से उनका उत्तर जानना चाहिये कि जूब कोई किसी से पूछे कि ये नक्षत्र लोक अर्थात् तारागण किसने बनाये और किसने धारण किये हैं और रात्रि में दीखते तथा दिन में कहाँ जाते हैं, इनके उत्तर ये हैं कि ये सब ईश्वर ने बनाये और धारण किये हैं, इनमें आपही प्रकाश नहीं किन्तु सूर्य्य के ही प्रकाश से प्रकाशमान होते हैं और ये कहीं नहीं जाते, किन्तु दिन में ढपे हुए दीखते नहीं और रात्रि में सूर्य की किरणों से प्रकाशमान होकर दीखते हैं, ये सब धन्यवाद देने योग्य ईश्वर के ही कर्म हैं, ऐसा सब सज्जनों को जानना चाहिये॥ रा

पुनः स वरुणः कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह वरुण कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

तेस्त्रा यामि ब्रह्मणा वन्दंमानुस्तदा शास्ति यर्जमानो हुविर्भिः।

अहेळमानो वरुणेह बोध्युर्रुशंस मा नु आयु: प्र मीषी:॥११॥

मण्डल-१। अनुवाक-६। सूक्त-२४

तत्। त्वा। यामि। ब्रह्मणा। वन्द्रमानः। तत्। आ। शास्ते। यर्जमानः। हृविःऽभिः। अहेळमानः। वुरुणः। इह। बोधि। उर्मुऽशंस। मा। नः। आर्युः। प्र। मोषीः॥ ११॥

पदार्थ:-(तत्) सुखम् (त्वा) त्वां वरुणं प्राप्तुं तं सूर्यं वा (यामि) प्राप्नोमि (ब्रह्मणा) वृदेन (वन्दमानः) स्तुवन्नभिगायन् (तत्) सुखम् (आ) अभितः (शास्ते) इच्छति (यनमानः) त्रिविधस्य यज्ञस्यानुष्ठाता (हिविभिः) हवनादिभिः साधनैः (अहेळमानः) अनादरमकुर्वाणः (वरुण) जगदीश्वर वायुर्वा। (इह) अस्मिन् संसारे (बोधि) विदितो भव विदितगुणो वा भवित् अत्र सोडर्थे स्टर्थे च लुङ्डभावश्च। (उरुशंस) बहुभिः शस्यते यस्तत्सम्बुद्धौ पक्षे सूर्यो वा (मा) निषेधार्थे (नः) अस्माकम् (आयुः) वयः (प्र) प्रकृष्टार्थे (मोषीः) नाशय विनाशयेद्वा। अत्र लोडर्थे क्रिक्थे च लुङ्डभावोऽन्तर्गतो एयर्थश्च॥११॥

अन्वय:-हे उरुशंस वरुण! यं त्वामाश्रित्य यजमाने हिबिभिस्तदाशास्ते, तं त्वा ब्रह्मणा वन्दमानोऽहेळमानोऽहं यामि कृपया त्वं महामिह बोधि विक्रिता भव, नोऽस्माकमायुर्मा प्रमोषीरित्येक:॥१॥११॥

तत्सुखिमच्छन् यजमानो यमुरुशंसं वरुणमाश्रास्ते, यं ब्रह्मणा वन्दमानोऽहेडमान-स्तत्सुखिमच्छन्नहं यामि प्राप्नोमि, स उरुशंसी वरुणोऽस्माभिर्बोधि विदितो भवतु, यतोऽयं नोऽस्माकमायुर्मा प्रमोषीर्मा विनाशयेदिति द्वितीयः। ११॥

भावार्थ:-मनुष्यैर्वेदोक्तरीत्या परमेश्वर सूर्यं विज्ञाय सुखं प्राप्तव्यम्। नैव केनचित् परमेश्वरोऽनादरणीय: सूर्यविद्या च स्विवेश्वराज्ञामालनं तत्सृष्टपदार्थानां गुणान् विदित्वोपस्कृत्य चायुषोवृद्धिर्नित्यं कर्तव्येति॥२॥११॥

पदार्थ:-हे (उरुशंस) सर्विथा प्रश्लेपनीय (वरुण) जगदीश्वर जिस (त्वा) आपका आश्रय लेके (यजमान:) उक्त तीन प्रकार यूज करने वाला विद्वान् (हिविभि:) होम आदि साधनों से (तत्) अत्यन्त सुख की (आशास्ते) आशा करता है उन आप को (ब्रह्मणा) वेद से स्मरण और अभिवादन तथा (अहेळमान:) आपका अनुवर अर्थात् अपमान नहीं करता हुआ मैं (यामि) आपको प्राप्त होता हूं, आप कृपा करके मुझे (इह) इस सस्पर में (बोधि) बोधयुक्त कीजिये और (न:) हमारी (आयु:) उमर (मा) (प्रमोषी:) मत व्यर्थ खोइये अर्थात् अति शीघ्र मेरे आत्मा को प्रकाशित कीजिये॥१॥१॥

(तत) सूख की इच्छा करता हुआ (यजमान:) तीन प्रकार के यज्ञ का अनुष्ठान करने वाला जिस (उरुशंस) अत्यन्त प्रशंसनीय (वरुण) सूर्य को (आशास्ते) चाहता है (त्वा) उस सूर्य्य को (ब्रह्मणा) वेदोक्त ब्रिसाकुशलता से (वन्दमान:) स्मरण करता हुआ (अहेळमान:) किन्तु उसके गुणों को न भूलता और (इह) इस संसार में (तत्) उक्त सुख की इच्छा करता हुआ मैं (यामि) प्राप्त होता हूं कि जिससे

२८०

यह (उफ्णंस) अत्यन्त प्रशंसनीय सूर्य्य हमको (बोधि) विदित होकर (न:) हम लोगों की (आयु:) उमरे (मा) (प्रमोषी:) न नष्ट करे अर्थात् अच्छे प्रकार बढ़ावे॥२॥११॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों को वेदोक्त रीति से परमेश्वर और को जानकर सुखों को प्राप्त होना चाहिये और किसी मनुष्य को परमेश्वर वा सूर्य विद्या का अस्पदर में करना चाहिये, सर्वदा ईश्वर की आज्ञा का पालन और उसके रचे हुए जो कि सूर्यादिक पदार्थ हैं; उनके गुणों को जानकर उनसे उपकार लेके अपनी उमर निरन्तर बढ़ानी चाहिये॥११॥

पुन: स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह वरुण कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।

तदित्रक्तं तिहवा महामाहुस्तद्यं केती हृद आ वि चष्टे।

शुनु:शेषो यमह्रद् गृभीतः सो अस्मान् राजा वर्मणो मुमोक्तु।। १० ॥

तत्। इत्। नक्तंम्। तत्। दिवां। महाम्। आहुः। तत्। अयमू। किर्तः। हुद्रः। आ। वि। चृष्टे। शुनुःऽशेर्पः। यम्। अह्वत्। गृभीतः। सः। अस्मान्। राजां। वर्रुणः। मुमोक्तु। १२२॥

पदार्थ:-(तत्) वेदबोधसहितं विज्ञानम् (इत्) एव (नेक्तम्) रात्रौ (तत्) शास्त्रबोधयुक्तम् (दिवा) दिवसे (मह्मम्) विद्याधनिमच्छवे (आहुः) कथ्यन्ति (तत्) गुणदोषविवेचकः। अत्र सुणां सुलुग्० इति विभक्तेर्लुक्। (अयम्) प्रत्यक्षः (केतः) प्रज्ञाविशेषो बोधः। केत इति प्रज्ञानामसु पठितम्। (निघं०३.४) (हदः) मनसा महात्मनो मध्य (आ) सर्वतः (वि) विविधार्थे (चष्टे) प्रकाशयति। अत्रान्तर्गतो ण्यर्थः। (शुनःश्रेपः) शुनो विज्ञान्वतः इत्र शपो विद्यास्पर्शो यस्य सः। श्रा शुयायी शवतेर्वा स्याद् गतिकर्मणः। (निरु०३.१८) श्रेषः शषते स्पृशतिकर्मणः। (निरु०३.२१) (यम्) परमेश्वरं सूर्यं वा (अह्वत्) आह्वयति। अत्र लड्शें लुङ्गे (गृभातः) गृहीतः। हग्रहोर्भश्छन्दिस हस्य भत्वम्। अनेनात्रः हस्य भः (सः) पूर्वोक्तो बेदविद्याभ्यास्तरपन्नो बोधः (अस्मान्) पुरुषार्थिनो धार्मिकान् (राजा) प्रकाशमानः (वरुणः) वरः (मुपाक्तु) मोचयिति वा। अत्रान्त्यपक्षे लड्शें लोट् बहुलं छन्दिस इति शपः श्लुरन्तर्गतो ण्यर्थश्च॥११०००

अन्वय:-विद्वांसों येत्रक्ते दिवाऽहर्निशं ज्ञानमाहुर्यश्च मह्यं हृदः केत आविचष्टे तत्तमहं मन्ये वदामि करोमि वर्षा यं शुनःश्रेपो विद्वानहृत् येन वरुणो राजाऽस्मान् पापादुःखाच्च मुमोक्तु मोचयित वा सम्यग्विदितः उपयुक्तः सन्नीश्वरः सूर्य्योऽपि तदा दारिद्र्यं नाशयित योऽस्माभिर्गृहीत उपास्य उपकृतश्च/(६२॥)

भावार्थ:-अत्र श्लेषालङ्कार:। सर्वैर्मनुष्यैरेवमुपदेष्टव्यं मन्तव्यं च विद्वांसो वेदा ईश्वरश्च मह्यं यं बोध्यमुपदिशक्ति, य चाहं शुद्धया प्रज्ञया निश्चिनोमि तमेव मया सर्वैर्युष्माभिश्च स्वीकृत्य पापाचरणादूरे स्थातन्त्रम्भा १२॥

मण्डल-१। अनुवाक-६। सूक्त-२४

पदार्थ:-विद्वान् लोग (नक्तम्) रात (दिवा) दिन जिस ज्ञान का (आहु:) उपदेश करते हैं (तत्) उस और जो (महाम्) विद्या धन की इच्छा करने वाले मेरे लिये (हृद:) मन के साथ आत्मा के बीच में (केत:) उत्तम बोध (आविचष्टे) सब प्रकार से सत्य प्रकाशित होता है (तिदत्) उसी क्रेंस् बाध अर्थात् विज्ञान को मैं मानता कहता और करता हूं (यम्) जिस को (शुन:श्रेप:) अत्यन्त (ज्ञान चाले विद्या व्यवहार के लिये प्राप्त और परमेश्वर वा सूर्य्य का (अहुत्) उपदेश करते हैं, विससे (वरुप:) श्रेष्ठ (राजा) प्रकाशमान परमेश्वर हमारी उपासना को प्राप्त होकर छुड़ावे और उक्त सूर्य्य भी अच्छे प्रकार जाना और क्रिया कुशलता में युक्त किया हुआ बोध (महाम्) विद्या धन की इच्छा करने वाले मुझ को प्राप्त होता है (स:) हम लोगों को योग्य है कि उस ईश्वर की उपासना और सूर्य्य का उपयोग यथावत् किया करें॥१२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। सब मनुष्यों को इस प्रकार उपदेश करना तथा मानना चाहिये कि विद्वान् वेद और ईश्वर हमारे लिये जिस ज्ञान का हिपदेश करते हैं तथा हम जो अपनी शुद्ध बुद्धि से निश्चय करते हैं, वही मुझ को और हे मनुष्य! हुम सब लोगी को स्वीकार करके पाप अधर्म करने से दूर रक्खा करे॥१२॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह वरुण कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

शुनःशेपो हार्ह्वद् गृभीतस्त्रिष्वद्वित्यं द्वेषदेषु ब्रद्धः।

अवैनं राजा वर्रणः ससृज्याद् विहाँ अदेखी वि मुमोक्तु पाशान्॥१३॥

शुनःशेर्पः। हि। अह्वत्। गृभीतः त्रिषु। आदित्यम्। दुऽपदेषुं। बद्धः। अर्व। एन्म्। राजां। वरुणः। सस्ज्यात्। विद्वान्। अर्देब्धः। वि। सुमोक्तु पार्शन्॥ १३॥

पदार्थ:-(शुन:शेप:) उक्तार्थो विद्वान (हि) निश्चयार्थे (अह्नत्) आह्नयति। अत्र लड्थें लङ्। (गृभीत:) स्वीकृतः हृग्रहोः इति हुम्यं भः (त्रिषु) कर्मोपासनाज्ञानेषु (आदित्यम्) विनाशरिहतं परमेश्वरं प्रकाशमयं व्यवहारहेतुं प्राणं चा (द्धुपदेषु) दूणां वृक्षादीनां पदानि फलादिप्राप्तिनिमित्तानि येषु तेषु (बद्धः) नियमेन नियोजितः (अव) पृथक्करणे (एनम्) पूर्वप्रतिपादितं विद्वांसम् (राजा) प्रकाशमानः (वरुणः) श्रेष्ठतमः। उत्तमृत्यवद्यारहेतुर्वा (समुज्यात्) पुनः पुनर्निष्पद्येत निष्पादयेद्वा। अत्र वा छन्दिस सर्वे विधयो भवन्ति इति निष्मात् । रुग्निकौ च लुिक। (अष्टा०७.४.९१) इत्यभ्यासस्य रुग्निगागमौ न भवतः। दीर्घोऽकृतः। (अष्टा०७.४.८३) इति दीर्घादेशश्च न भवति। (विद्वान्) ज्ञानवान् (अद्बद्धः) हिंसितुमनर्हः (वि) विशिष्टार्थे (मुमोक्तु) मुञ्चतु मोचयतु वा। अत्र बहुलं छन्दिस इति शपःश्लुरन्तर्गतो ण्यर्थो वा (ग्राणान्) अधर्माचरणजन्यबन्धान्॥१३॥

अन्वय:-हे मनुष्या यूयं शुनःशेपो विद्वान् त्रिषु यमादित्यमहृत् सोऽस्माभिर्हि गृभीतः संस्त्रीणि कर्मोपासनाज्ञानानि प्रकाशयित, यश्च विद्विद्भिर्दुपदेषु बद्धो वायुलोको गृह्यते तथा सोऽस्माभिरिष् ग्राह्यो यादृशगुणपदार्थादब्धो विद्वान् वरुणो राजा परमेश्वरोऽवससृज्यात् सोऽस्माभिस्तादृशगुण एवोप्योक्त्रव्यः हे भगवन्! भवानस्माकं पाशान् विमुमोक्तु। एवमस्माभिस्संसारस्थः सूर्यादिपदार्थसमूहः सस्यगुपशोजितः सन् पाशान् सर्वान् दारिद्रचबन्धान् पुनः पुनर्विमोचयित तथैतत्सर्वं कुरुत॥१३॥

भावार्थ:-अत्रापि श्लेषोऽलङ्कारः लुप्तोपमा च। मनुष्यैर्यथेश्वरो य पदार्थं योदृशगुणं निर्मितवांस्तथैव तद्गुणान् बुद्धवा कर्मोपासनाज्ञानानि तेषु नियोजितव्यानि यथा परमेश्वरो न्याच्यं कर्म करोति, तथैवास्माभिरप्यनुष्ठातव्यम्। यानि पापात्मकानि बन्धकराणि कर्माणि सन्ति, तानि दूरतस्त्यक्त्वा पुण्यात्मकानि सदा सेवनीयानि चेति॥१३॥

पदार्थ:-जैसे (शुन:श्रोप:) उक्त गुणवाला विद्वान् (त्रिषु) कर्म उपासना और ज्ञान में (आदित्यम्) अविनाशी परमेश्वर का (अह्वत्) आह्वान करता है कह हम लोगों ने (गृभीत:) स्वीकार किया हुआ उक्त तीनों कर्म उपासना और ज्ञान को प्रकाशित करता है और जो (द्रुपदेषु) क्रिया कुशलता की सिद्धि के लिये विमान आदि यानों के खंभों में (बद्ध:) नियम से शुक्त किया हुआ वायु ग्रहण किया है, वैसे वह लोगों को भी ग्रहण करना चाहिये जैसे-जैसे गुणवाले पदार्थ को (अदब्ध:) अति प्रशंसनीय (वरुण:) अत्यन्त श्रेष्ठ (राजा) और प्रकाशमान प्रमिश्वर (अवसमृज्यात्) पृथक्-पृथक् बनाकर सिद्ध करे, वह हम लोगों को भी वैसे ही गुणवाले कामों में संयुक्त करे। हे भगवन्! परमेश्वर आप हमारे (पाशान्) बन्धनों को (विमुमोक्तु) बार-बार छुड़काइये। इसी प्रकार हम लोगों की क्रियाकुशलता में संयुक्त किये हुए प्राण आदि पदार्थ (पाशान्) स्कल्त दिरद्ररूपी बन्धनों को (विमुमोक्तु) बार-बार छुड़वा देवें वा देते हैं॥१३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में भी लुप्तोपमा और श्लेषालङ्कार है। परमेश्वर ने जिस-जिस गुण वाले जो-जो पदार्थ बनाये हैं, उन-उन पदार्थों के गुणों को यथावत् जानकर इन-इन को कर्म, उपासना और ज्ञान में नियुक्त करे, जैसे परमेश्वर न्याय अर्थात् न्याययुक्त कर्म करता है, वैसे ही हम लोगों को भी कर्म नियम के साथ नियुक्त कर जो बोधनों के करने वाले पापात्मक कर्म हैं, उनको दूर ही से छोड़कर पुण्यरूप कर्मों का सदा सेवस करना चाहिये॥१३॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते।

फिर वह वरुण कैसा है, इस का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अव तु हेळो वरुण नमोभिरव युज्ञेभिरीमहे हुविभिः।

क्षर्यत्रसमर्थ्यमसुर प्रचेता राजुन्नेनांसि शिश्रथः कृतानि॥१४॥

मण्डल-१। अनुवाक-६। सुक्त-२४

अर्व। ते। हेळ:। वुरुण्। नर्मःऽभिः। अर्व। युज्ञेभिः। ईमहे। हुविःऽभिः। क्षर्यन्। अस्मभ्यम्। असुरः। प्रचेत इति प्रऽचेतः। राजन्। एनांसि। शिश्रयः। कृतानि॥ १४॥

पदार्थ:-(अव) क्रियार्थे (ते) तव (हेळ:) हिडचते विज्ञायते प्राप्यते यः सः (नमिष्रिः) नमस्कारैरत्रैर्जलैर्वा। नम इत्यन्ननामसु पठितम्। (निघं०२.७) जलनामसु वा। (निर्घं०२.१२) (अव) पृथगर्थे (यज्ञेषिः) कर्मोपासनाज्ञाननिष्पादकैः कर्मिषः। अत्र बहुलं छन्दिस इति स्पूर्स ऐस् न। (ईमहे) बुध्यामहे (हिविधिः) दातुं ग्रहीतुमहैंः। अत्र अर्चिशुचिहुसृपि० (उणा०२.१०४) असेन हु धन्तौरिसिः प्रत्ययः। (क्षयन्) विनाशयन् (अस्मभ्यम्) विद्यानुष्ठातृभ्यः (असुर) असुषु रमते तत्सम्बुद्धौ स वा (ग्रचेतः) प्रकृष्टं चेतो विज्ञानं यस्य तत्सम्बुद्धौ स वा (ग्रजन्) प्रकाशमान् (ग्रनोष्रिः) पापानि (शिश्रथः) विज्ञानदानेन शिथिलानि करोतु (कृतानि) अनुचिरतानि॥१४॥

अन्वय:-हे राजन् प्रचेतोऽसुर वरुणास्मभ्यं विज्ञानप्रदातो भूपवन् यतस्त्वमस्मत्कृतान्येनांसि क्षयन् सन्नविशिश्रथस्तस्माद्वयं नमोभिर्यज्ञेभिस्ते तव हेळोऽवेमहे मुख्यप्रमणस्य वा॥१४॥

भावार्थ:-यैर्मनुष्यैर्यथा परमेश्वररचितसृष्टौ विज्ञापिते बोधेन कृतानि पापकर्माणि फलै: शिथिलायन्ते तथानुष्ठातव्यम्। यथा ज्ञानरहितं पुरुषं कर्मफलापि पीडयन्ति तथा नैव ज्ञानसहितं पीडियतुं समर्थानि भवन्तीति वेद्यम्॥१४॥

पदार्थ:-हे (राजन्) प्रकाशमान (प्रचेत) अत्युत्तम विज्ञान (असुर) प्राणों में रमने (वरुण) अत्यन्त प्रशंसनीय (अस्मभ्यम्) हमको विज्ञान देनेह्म भगवन् जगदीश्वर जिसलिये हम लोगों के (कृतानि) किये हुए (एनांसि) पापों को (श्वयन्) बिमाश करते हुए (अविशिश्रयः) विज्ञान आदि दान से उनके फलों को शिथिल अच्छे प्रकार करते हैं; इसलिये हम लोग (नमोभिः) नमस्कार वा (यज्ञेभिः) कर्म उपासना और ज्ञान और (हर्विभिः) होम करने योग्य अच्छे-अच्छे पदार्थों से (ते) आपका (हेळः) निरादर (अव) न कभी (ईमहे) करना जानते और मुख्य प्राण की भी विद्या को चाहते हैं॥१४॥

भावार्थ:-जिन मनुष्यों ने प्रमेश्वर के रचे हुए संसार में पदार्थ करके प्रकट किये हुए बोध से किये पाप कर्मों को फलों से शिथिले कर दिया वैसा अनुष्ठान करें। जैसे अज्ञानी पुरुष को पापफल दु:खी करते हैं, वैसे ज्ञानी पुरुष को दु:ख नहीं दे सकते॥१४॥

पुनः स एवार्थ उपदिश्यते।

फिर भी अगले मन्त्र में वरुण शब्द ही का प्रकाश किया है॥

रदुत्तमं वेक्रण पार्शमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय।

अथा वयमादित्य वृते तवानागसो अदितये स्याम॥१५॥१५॥

उत्। उत्ऽतमम्। वृरुण्। पार्शम्। अस्मत्। अवं। अधुमम्। वि। मुध्यमम्। श्रृथायः। अर्थ। वयम्। आर्द्वित्य व्रते। तवं। अनोगसः। अर्दितये। स्याम॥१५॥

पदार्थ:-(उत्) अपि (उत्तमम्) उत्कृष्टं दृढम् (वरुण) स्वीकर्तुमर्हेश्वर (पाशम्) विश्वतम् (अस्मत्) अस्माकं सकाशात् (अव) क्रियार्थे (अधमम्) निकृष्टम् (वि) विशेषार्थे (मध्यमम्) उत्तमाधमयोर्मध्यस्थम् (श्रथाय) शिथिली कुरु। अत्र छन्दिस शायजिप। (अध्य १.८४) अनेन शायजादेश:। (अथ) अनन्तरार्थे। अत्र निपातस्य च इति दीर्घ:। (वयम्) मनुष्याद्यः प्राणिनः (आदित्य) विनाशरिहत (वृते) सत्याचरणादावचिरते सित (तव) सत्योपदेष्टुस्सर्वगुरोः (अनगमः) आवद्यमान आगोऽपराधो येषां ते (अदितये) अखिण्डतसुखाय (स्याम) भवेम॥१५॥

अन्वय:-हे वरुण! त्वमस्मदधमं मध्यममुदुत्तमं पाशं व्यवश्रश्राय दूरतो विनाशयाथेत्यनन्तरं हे आदित्य! तव व्रत आचरिते सत्यनागसः सन्तो वयमदितये स्याम भवेभारुष्या

भावार्थ:-य ईश्वराज्ञां यथावत्पालयन्ति ते पवित्रास्सन्तः सर्विभ्यो दुःखबन्धनेभ्यः पृथग्भूत्वा नित्यं सुखं प्राप्नुवन्ति नेतर इति॥१५॥

त्रयोविंशसूक्तोक्तार्थानां वाय्वादीनामनुयोगिन् प्राजायेत्यादीनामर्थानामत्र कथनादेतस्य चतुर्विंशस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गति रस्तीति बोध्यमृत्त

इति प्रथमाष्ट्रके द्वितीयाध्याये पञ्चदशो वर्ग:॥ प्रथम मण्डले षष्ठेऽनुवाके चतुर्विशं सूर्वतं च समाप्तिमगमत्॥

पदार्थ:-हे (वरुण) स्वीकार करने चोरय ईश्वर! आप (अस्मत्) हम लोगों से (अधमम्) निकृष्ट (मध्यमम्) अर्थात् निकृष्ट से कुछ विशेष्ठ (उत्त) और (उत्तमम्) अति दृढ़ अत्यन्त दुःख देने वाले (पाशम्) बन्धन को (व्यवश्रथाय) अच्छे प्रकार नष्ट कीजिये (अथ) इसके अनन्तर हे (आदित्य) विनाशरहित जगदीश्वर (तव) उपहर्श करने वाले सब के गुरु आपके (व्रते) सत्याचरणरूपी व्रत को करके (अनागसः) निरपराधी स्रोके हम लोगे (अदितये) अखण्ड अर्थात् विनाशरहित सुख के लिये (स्थाम) नियत होवें॥१५॥

भावार्थ:-जो ईश्वर की आईं। को यथावत् नित्य पालन करते हैं, वे ही पवित्र और सब दु:ख बन्धनों से अलग द्वोकर सुखों को निरन्तर प्राप्त होते हैं॥१५॥

तेईसकें सूक्त के कहे हुए वायु आदि अर्थों के अनुकूल प्रजापित आदि अर्थों के कहने से इस चौबीसवें सूक्त को उक्त सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये॥

प्रथमाष्ट्रक के प्रथमाध्याय में यह १५ पन्द्रहवां वर्ग तथा प्रथम मण्डल के षष्ठानुवाक में चौबीसवां सूक्त समाप्त हुआ॥ २४॥ अथैकविंशत्यृचस्य पञ्चविंशस्य सूक्तस्याजीगर्तिः शुनःशेप ऋषिः। वरुणो देवता। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

तत्रादौ प्रथममन्त्रे दृष्टान्तेन जगदीश्वरस्य प्रार्थना प्रकाश्यते॥

अब पच्चीसवें सूक्त का प्रारम्भ है। उसके पहिले मन्त्र में परमेश्वर ने दृष्टान्त के साथ अपनी

प्रार्थना का प्रकाश किया है।।

यिच्चिद्धि ते विशो यथा प्र देव वरुण वृतम्। मिनीमसि द्यविद्यवि॥ १॥

यत्। चित्। हि। ते। विशः। यथा। प्र। देव। वुरुण। वृतम्। मिनीमसि। विकिऽद्यकि। १॥

पदार्थ:-(यत्) स्पष्टार्थ: (चित्) अपि (हि) कदाचिदर्थे (ते) तव (विश्रः) प्रजाः (यथा) येन प्रकारेण (प्र) क्रियायोगे (देव) सुखप्रद (वरुण) सर्वोत्कृष्ट जगदीश्वर (व्रतम्) सत्याचरणम् (मिनीमिस) हिंस्मः। अत्र इदन्तो मिस इति मसेरिदागमः। (द्यविद्यवि) प्रतिदिनम् अत्र वीप्सायां द्विर्वचनम्। द्यविद्यवीत्यहर्नामसु पठितम्। (निघं०१.९)॥१॥

अन्वय:-हे देव वरुण जगदीश्वर! त्वं यथाऽज्ञामाकस्यायदाज्ञो मनुष्यस्य वा विशः प्रजाः सन्तानादयो वा द्यविद्यव्यपराध्यन्ति कदाचित्कार्याणि हिस्सित् सन्तन्यायं करुणां च करोति, तथैव वयं ते तव यद्व्रतं हि प्रमिणीमस्यस्मभ्यं तन्त्यायं करुणां चित्करोषि॥१॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। हे भग्निन् यथा पित्रादयो विद्वांसो राजानश्च क्षुद्राणां बालबुद्धीनामुन्मत्तानां वा बालकानामुपरि करुणां त्यायाश्रीक्षां च विद्वधित, तथैव भवानिप प्रतिदिनमस्माकं न्यायाधीश: करुणांकर: शिक्षको भवन्त्रितिता १॥

पदार्थ:-हे (देव) सुख देते (करण) उत्तमों में उत्तम जगदीश्वर आप (यथा) जैसे अज्ञान से किसी राजा वा मनुष्य के (विश्वः) प्रजा वा पन्तान आदि (द्यविद्यवि) प्रतिदिन अपराध करते हैं, किन्हीं कामों को नष्ट कर देते हैं, कह उन पर न्यायमुक्त दण्ड और करुणा करता है, वैसे ही हम लोग (ते) आपका (यत्) जो (वृत्म) सत्य आचरण आदि नियम हैं (हि) उन को कदाचित् (प्रमिणीमिस) अज्ञानपन से छोड़ देते हैं, उसकी यथायोग्य न्याय (चित्) और हमारे लिये करुणा करते हैं॥१॥

भावार्थः इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे भगवन् जगदीश्वर! जैसे पिता आदि विद्वान् और राजा छोटे-छोटे अल्पबुद्धि उन्मत्त बालकों पर करुणा, न्याय और शिक्षा करते हैं, वैसे ही आप भी प्रतिदिन हमारे न्याय करुणा और शिक्षा करने वाले हों॥१॥

पुनः स एवार्थ उपदिश्यते॥

फिर भी अगले मन्त्र में उक्त अर्थ ही का प्रकाश किया है॥

२८६

ऋग्वेदभाष्यम्

मा नो वृधार्य हुलवे जिहीळानस्य रीरधः। मा ह्रणानस्य मुन्यवे॥२॥

मा। नुः। वृधार्य। हुत्तवे। जिहीळानस्ये। रीर्धः। मा। हुणानस्ये। मुन्यवे॥२॥

पदार्थ:-(मा) निषेधार्थे (नः) अस्मान् (वधाय) (हत्नवे) हननकरणाय। अत्र कृहिष्यां वत्तुः। (उणा०३.२९) अनेन हनधातोः कत्नुः प्रत्ययः। (जिहीळानस्य) अज्ञानादस्माकमन्त्रदरं कृतवता जनस्य। अत्र पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम्। इत्यकारस्येकारः। (रीरधः) संग्रधयः अत्र 'रध' हिंसासंराध्योरस्माण्णिजन्ताल्लोडर्थे लुङ। (मा) निषेधे (हणानस्य) लिज्जितस्योपिर (मन्यवे) क्रोधाय। अत्र यजिमनि० इति युच् प्रत्ययः॥२॥

अन्वय:-हे वरुण जगदीश्वर! त्वं जिहीडानस्य हत्नवे विध्यय चारमान्कदाचिन्मा रीरधो मा संराधयैवं हृणानस्यास्माकं समीपे लज्जितस्योपरि मन्यवे मा रीरधः ॥२॥

भावार्थ:-ईश्वर उपदिशति हे मनुष्या! यूयं बलबुद्धिभिरज्ञानोदपराधे कृते हननाय मा प्रवर्त्तध्वं कश्चिदपराधं कृत्वा लज्जां कुर्यात्तस्योपरि क्रोधं मा निपातग्रवेति॥२॥

पदार्थ:-हे वरुण जगदीश्वर! आप जो (जिहीळागरेश) अज्ञान से हमारा अनादर करे उसके (हत्नवे) मारने के लिये (न:) हम लोगों को कभी (मा रिर्ध:) प्रेरित और इसी प्रकार (हणानस्य) जो कि हमारे सामने लिज्जित हो रहा है, उस पर (मन्यवे) कोधे करने को हम लोगों को (मा रीरध:) कभी मत प्रवृत्त कीजिये॥२॥

भावार्थ:-ईश्वर उपदेश करता है कि है मनुष्ट्रां! जो अल्पबुद्धि अज्ञानीजन अपनी अज्ञानता से तुम्हारा अपराध करें, तुम उसको दण्ड्र्ला देने को मत प्रवृत्त और वैसे ही जो अपराध करके लिज्जित हो अर्थात् तुम से क्षमा करवावे तो हस पर क्रोध मत छोड़ो, किन्तु उसका अपराध सहो और उसको यथावत् दण्ड भी दो॥२॥

प्रुनः स्म^रएवार्थ उपदिश्यते॥

फिर भी उक्के अर्थ ही का प्रकाश अगले मन्त्र में किया है॥

वि मृळीकार्य ते मनो पृथीरश्चं न संदितम्।

गोिर्भिर्वृरुष् सीमहि॥३॥

वि। मृळीकायो ते। मनः। रथीः। अश्वम्। न। सम्ऽदितम्। गीःऽभिः। वुरुण्। सीमहि॥३॥

पदार्थ: (वि) क्रियार्थे (मृळीकाय) उत्तमसुखाय अत्र मृड: कीकच्कङ्कणौ। (उणा०४.२५) अनेन्/कीकस्प्रत्यय:। (ते) तव (मन:) ज्ञानम् (रथी:) रथस्वामी अत्र वा छन्दिस सर्वे विधयो भवन्ति इति सोर्सीपो म। (अश्वम्) रथवोढारं वाजिनम् (न) इव (संदितम्) सम्यग्बलावखण्डितम् (गीर्भि:)

मण्डल-१। अनुवाक-६। सूक्त-२५

संस्कृताभिर्वाणीभि: (वरुण) जगदीश्वर (सीमिहि) हृदये प्रेम वा कारागृहे चोरादिकं बन्धयाम:। अत्र **बहुलं** छन्दिस इति श्नोर्लुक वर्णव्यत्ययेन दीर्घश्च॥३॥

अन्वय:-हे वरुण! वयं रथी: संदितमश्चं न=इव मृळीकाय ते तव गीर्भिर्मनो विषीयिहा। ३००

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। हे भगवन्! यथा रथपतेर्भृत्योऽश्वं सर्वतो बध्नार्ति, तथेष वयं तव वेदस्थं विज्ञानं हृदये निश्चलीकुर्म:॥३॥

पदार्थ:-हे (वरुण) जगदीश्वर! हम लोग (रथी:) रथवाले के (स्रंदितम्) रथ में जीड़े हुए (अश्वम्) घोड़े के (न) समान (मृळीकाय) उत्तम सुख के लिये (ते) आपके सम्बन्ध में (गीर्भि:) पवित्र वाणियों द्वारा (मन:) ज्ञान (विषीमिह) बांधते हैं॥३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे भगवन् जगदीश्वर जैसे रथ के स्वामी का भृत्य घोड़े को चारों ओर से बांधता है, वैसे ही हम लोग आपका जो वेदिकत ज्ञान है, उसको अपनी बुद्धि के अनुसार मन में दृढ़ करते हैं॥३॥

पुनः स एवार्थो दृष्टान्ते साध्यते।।।

फिर भी उसी अर्थ को दृष्टान्त से अगले मन्त्र में सिद्ध किया है।।

परा हि में विमन्यवः पर्तन्ति वस्यइष्ट्रिये

वयो न वसतीरुपं॥४॥

पर्रा। हि। मे। विऽमन्यवः। पर्तन्ति। क्स्यू इष्ट्ये। वर्यः। न। वस्तिः। उप।। ४॥

पदार्थ:-(परा) उपरिभावे। प्र्रापरियोतस्य प्रातिलोम्यं प्राह। (निरु०१.३) (हि) खलु (मे) मम (विमन्यवः) विविधो मन्युर्येषां ते (यतित्र) पतन्तु गच्छन्तु। अत्र लोडर्थे लट्। (वस्यइष्ट्ये) वसीयत इष्ट्ये सङ्गतये। अत्र वसुशब्दान्मतुप् वर्ते।ऽतिशय ईप्रसुनि। विन्मतोर्लुक्। (अष्टा०५.३.६५) इति मतोर्लुक्। टे:। (अष्टा०६.४.१५५) इति टेल्गिप्सत्तर्छान्दस्ये वर्णलोपो वा इतीकारस्य लोपश्च। (वयः) पक्षिणः (न) इव (वसतीः) वसन्ति यास्तुन् विह्याः (उप) सामीप्ये॥४॥

अन्वय:-हे जगदीश्वर क्रित्कृपया वयो वसतीर्विहाय दूरस्थानान्युपपतन्ति न इव। मे मम वासात् वस्यइष्टये विमन्यक्र परा प्रवन्ति हि खलु दूरे गच्छन्तु॥४॥

भावार्षः अभ्रोपमालङ्कारः। यथा ताडिताः पक्षिणो दूरं गत्वा वसन्ति, तथैव क्रोधयुक्ताः प्राणिनो मत्तो दूरे वस्यन्तिहमपि तेभ्यो दूरे वसेयम्। यस्मादस्माकं स्वभावविपर्यासो धनहानिश्च कदाचित्र स्यातामिति॥४॥

पदार्थ:-हे जगदीश्वर जैसे (वय:) पक्षी (वसती:) अपने रहने के स्थानों को छोड़-छोड़ दूर देश को (उपपतिन्त) उड़ जाते हैं (न) वैसे (मे) मेरे निवास स्थान से (वस्यइष्ट्रये) अत्यन्त धन होने के लिये (विमन्यव:) अनेक प्रकार के क्रोध करने वाले दुष्ट जन (परापतिन्त) (हि) दूर ही चले जावें।

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे उड़ाये हुए पक्षी दूर जाके बसते हैं; हैसे ही क्रीधी मुझ से दूर बसें और मैं भी उनसे दूर बसूं, जिससे हमारा उलटा स्वभाव और धर्म की होवे॥४॥

पुनः स वरुणः कीदृशोऽस्तीत्युपदिश्यते॥

फिर वह वरुण कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मिक्स्य है।

कुदा क्षेत्रश्रियं नरमा वर्रुणं करामहे। मृळीकायोरुचक्षेसम्॥५॥१६॥

कुदा। क्षुत्रुऽश्रियम्। नर्रम्। आ। वर्र्णम्। कुरामुहे। मृळीकार्ये। उर्हुऽच्क्रुस्सम्॥५॥

पदार्थ:-(कदा) कस्मिन्काले (क्षत्रश्रियम्) चक्रवर्तिराजलेक्म्मेंम् (नरम्) नयनकर्तारम् (आ) समन्तात् (वरुणम्) परमेश्वरम् (करामहे) कुर्य्याम (मृळीकार्य) मुखाय (उरुचक्षसम्) बहुविधं वेदद्वारा चक्ष आख्यानं यस्य तम्॥५॥

अन्वय:-वयं कदा मृळीकायोरुचक्षसं न्रं वरूणं परमेश्वरं संसेव्य क्षत्रश्रियं करामहे॥५॥

भावार्थ:-मनुष्यै: परमेश्वराज्ञां यथार्षत् पालियत्वा सर्वसुखं चक्रवर्त्तिराज्यं न्यायेन सदा सेवनीयमिति॥५॥

इति षोडशो वर्गः॥

पदार्थ:-हम लोग (कदा) कब (मृळीकाय) अत्यन्त सुख के लिये (उरुचक्षसम्) जिसको वेद अनेक प्रकार से वर्णन करते हैं और (नरम्) सबको सन्मार्ग पर चलाने वाले उस (वरुणम्) परमेश्वर को सेवन करके (क्षत्रश्रियम्) चुळवर्ति राज्य की लक्ष्मी को (करामहे) अच्छे प्रकार सिद्ध करें॥५॥

भावार्थ:-मनुष्यं को परमेश्वर की आज्ञा का यथावत् पालन करके सब सुख और चक्रवर्ति राज्य न्याय के साथ सदा सेवन करने ग्राहियें॥५॥

यह सोलहवां वर्ग पूरा हुआ॥

अथ वायुसुर्यावुपदिश्यते॥

अब अगले मन्त्र में सूर्य्य और वायु का प्रकाश किया है।।

तिद्वत्समानमाशाते वेनन्ता न प्र युच्छतः।

धृतव्रताय दाशृषे॥६॥

अष्टक-१। अध्याय-२। वर्ग-१६-१९

मण्डल-१। अनुवाक-६। सूक्त-२५

तत्। इत्। समानम्। आशाते इति। वेनन्ता। न। प्र। युच्छतः। धृतऽव्रताय। दाशुषे॥६॥

पदार्थ:-(तत्) हुतं हिवः। विमानादिरचनिवधानं वा (इत्) एव (समानम्) तुल्यम् (आशाते) व्याप्नुतः (वेनन्ता) वादित्रवादकौ। अत्र 'वेनृ' धातोर्वादित्राद्यर्थो गृह्यते। सुपां सुलुग् इस्राकारादेशक्ष्य। (न) इव। निरुक्तकारिनयमेन परः प्रयुज्यमानो नकार उपमार्थे भवतीति हेतृं! सायेषाचार्य्यस्य निषेधार्थव्याख्यानमशुद्धमेव। (प्र) प्रकृष्टार्थे (युच्छतः) हर्षं कुरुतः (धृतव्रतायः) धृतं धारितं व्रतं सत्यभाषणादिकं क्रियामयं वा येन तस्मै (दाशुषे) दानकर्त्रे॥६॥

अन्वय:-एतौ वेनन्ता प्रयुच्छतो न=इव मित्रावरुणौ धृतव्रताय द्वारुषे तिदद्यानं समानमाशाते व्याप्नुत:॥६॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। यथा हर्षवन्तौ वादित्रवादनकुशन्तौ चादित्राणि गृहीत्वा चालियत्वा शब्दयतस्तथैव साधितं धृतविद्येन मनुष्येण हुतं हिवर्विमानादियनं च कलायन्त्रेयषु यथावत् प्रयोजितौ वायुसूर्य्यो धृत्वा चालियत्वा शब्दयत:॥६॥

पदार्थ:-ये (प्रयुच्छत:) आनन्द करते हुए (वेनन्त्र) काज कुमनि वालों के (न) समान सूर्य और वायु (धृतव्रताय) जिसने सत्यभाषण आदि नियम वा क्रियाम्स यहां धारण किया है, उस (दाशुषे) उत्तम दान आदि धर्म करने वाले पुरुष के लिये (तत्) जो इसका होज़ में चढ़ाया हुआ पदार्थ वा विमान आदि रथों की रचना (इत्) उसी को (समानम्) बराबर (आश्राते) व्याप्त होते हैं॥६॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे अबि हर्ष करने वाले बाजे बजाने में अति कुशल दो पुरुष बाजों को लेकर चलाकर बजाते हैं, वैसे ही सिद्ध किये विद्या के धारण करने वाले मनुष्य से होम हुए पदार्थों को सूर्य और वायु चालन करके धारण करते हैं॥६॥

एतद्यथावत्को वेदेत्युपदिश्यते॥

उक्त विद्या को यथाकर कौन जानता है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

वेदा यो वीनां प्रदम्निरिक्षेण पर्तताम्।

वेदं नावः संमुद्धियः॥ ।।।

वेदं। यः प्र्वीनाम्। प्रदम्। अन्तरिक्षेण। पर्तताम्। वेदं। नावः। समुद्रियः॥७॥

पदार्थः (वेद) जानाति। द्वयचोऽतिस्तङ इति दीर्घः। (यः) विद्वान् मनुष्यः (वीनाम्) विमानानां सर्वलोकान्नं पक्षिणां वा (पदम्) पदनीयं गन्तव्यमार्गम् (अन्तिरक्षेण) आकाशमार्गेण। अत्र अपवर्गे तृतीया। अष्टा०२.३.६) इति तृतीया विभिक्तः। (पतताम्) गच्छताम् (वेद) जानाति (नावः) नौकायाः (समुद्रियः) समुद्रेऽन्तिरक्षे जलमये वा भवः। अत्र समुद्राभ्राद् घः। (अष्टा०४.४.११८) अनेन स्मुद्रभव्यद् घः प्रत्ययः॥७॥

अन्वय:-यः समुद्रियो मनुष्योऽन्तरिक्षेण पततां वीनां पदं वेद समुद्रे गच्छन्त्या नावश्च पदं विदे स शिल्प विद्यासिद्धिं कर्त्तुं शक्नोति नेतरः॥७॥

भावार्थ:-या ईश्वरेण वेदेष्वन्तरिक्षभूसमुद्रेषु गमनाय यानानां विद्या उपदिष्टाः सन्ति (मः साधित) यः पूर्णविद्याशिक्षाहस्तिक्रयाकौशलेषु विचक्षण इच्छति स एवैतत्कार्यकरणे समर्थो भवतीर्ति (७॥

पदार्थ:-(य:) जो (समुद्रिय:) समुद्र अर्थात् अन्तरिक्ष वा जलमय प्रसिद्ध समुद्रे में अपने पुरुषार्थ से युक्त विद्वान् मनुष्य (अन्तरिक्षेण) आकाश मार्ग से (पतताम्) जाने-आने वाले (वीनाम्) विमान सब लोक वा पिक्षयों के और समुद्र में जाने वाली (नाव:) नौकाओं के (पटम्) रचन, चालन, ज्ञान और मार्ग को (वेद) जानता है, वह शिल्पविद्या की सिद्धि के करने की समर्थ हो सकता है, अन्य नहीं॥७॥

भावार्थ:-जो ईश्वर ने वेदों में अन्तरिक्ष भू और समुद्र में जाने आने वाले यानों की विद्या का उपदेश किया है, उन को सिद्ध करने को जो पूर्ण विद्या शिक्षा और हस्त क्रियाओं के कलाकौशल में कुशल मनुष्य होता है, वहीं बनाने में समर्थ हो सकता है॥७॥

पुन: स किं जानातीत्युपदिश्यते॥)

फिर वह क्या जानता है, इस विषय क्रा उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

वेद मासो धृतव्रतो द्वादेश प्रजावतः।

वेदा य उपुजायते॥८॥

वेदं। मासः। धृतऽवृतः। द्वादंश। प्रमाऽवृतः। वेदं यः। उपजायते॥८॥

पदार्थ:-(वेद) जानाति (मामूः) चैत्रदिनि (धृतव्रतः) धृतं व्रतं सत्यं विद्याबलं येन सः (द्वादश) मासान् (प्रजावतः) बह्वयः प्रजा व्रद्यात्रा विद्यन्ते येषु मासेषु तान्। अत्र भूमार्थे मतुप्। (वेद) जानाति। अत्रापि द्वयचोऽतस्तिङ इति दीर्थः। (यः) बिद्धान् मनुष्यः (उपजायते) यित्कंचिदुत्पद्यते तत्सर्वं त्रयोदशो मासो वा॥८॥

अन्वय:-यो धृतविते मेनुष्यः प्रजावतो द्वादश मासान् वेद तथा योऽत्र त्रयोदश मास उपजायते तमपि वेद स सर्वकालावयवाम् विदित्वोपकारी भवति॥८॥

भावार्थः सर्वज्ञत्वात् परमेश्वरः सर्वाधिष्ठानं कालचक्रं विजानाति, तथा लोकानां कालस्य च महिमानं विद्वित्वा नैव कदाचिदस्यैककणः क्षणोऽपि व्यर्थो नेय इति॥८॥

पद्धि: (अ:) जो (धृतव्रत:) सत्य नियम, विद्या और बल को धारण करने वाला विद्वान् मनुष्य (प्रजावत:) जिनमें नाना प्रकार के संसारी पदार्थ उत्पन्न होते हैं (द्वादश) बारह (मास:) महीनों और जो कि (उपजावत) उनमें अधिक मास अर्थात् तेरहवां महीना उत्पन्न होता है, उस को (वेद) जानता है, वह कर्म अवयवों को जानकर उपकार करने वाला होता है॥८॥

अष्टक-१। अध्याय-२। वर्ग-१६-१९

मण्डल-१। अनुवाक-६। सूक्त-२५

भावार्थ:-जैसे परमेश्वर सर्वज्ञ होने से सब लोक वा काल की व्यवस्था को जानता है, वैसे मनुष्यों को सब लोक तथा काल के महिमा की व्यवस्था को जानकर इस को एक क्षण भी व्यर्थ चहीं खोना चाहिये॥८॥

पुन: स किं किं जानातीत्युपदिश्यते

फिर वह क्या-क्या जानता है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

वेद वार्तस्य वर्तनिमुरोर्ऋष्वस्यं बृहुतः।

वेदा ये अध्यासते॥ ९॥

वेदं। वार्तस्य। वर्तुनिम्। उरोः। ऋष्वस्यं। बृहतुः। वेदं। ये। अधि्रभासते॥ रा

पदार्थ:-(वेद) जानाति (वातस्य) वायोः (वर्त्तनिम्) वर्तन्ते येस्मिस्तं मार्गम् (उरोः) बहुगुणयुक्तस्य (ऋष्वस्य) सर्वत्रागमनशीलस्य। अत्र 'ऋषी पतीं' अस्माद् बाहुलकादौणादिको वन् प्रत्ययः (बृहतः) महतो महाबलविशिष्टस्य (वेद) जानाति (ये) पदार्थोः (अध्यासते) तिष्ठन्ति ते॥९॥

अन्वय:-यो मनुष्य ऋष्वस्योरोर्बृहतो वातस्य वर्त्ति विद्यार्जीयात्, येऽत्र पदार्था अध्यासते तेषां च वर्त्तिनं वेद, स खलु भूखगोलगुणविज्जायते॥९॥

भावार्थ:-यो मनुष्योऽग्न्यादीनां पदार्थानां मध्ये परिभूगणतो गुणतश्च महान् सर्वाधारो वायुर्वर्त्तते तस्य कारणमुत्पत्तिं गमनागमनयोगर्मार्गं ये ति स्थूलुसूक्ष्माः पदार्थाः वर्त्तन्ते, तानिप यथार्थतया विदित्वैतेभ्य उपकारं गृहीत्वा ग्राहियत्वा कुन्कुत्यो भेषेत्र, स इह गण्यो विद्वान् भवतीति वेद्यम्॥९॥

पदार्थ:-जो मनुष्य (ऋष्वस्य) सर्व जिंगह जाने-आने (उरो:) अत्यन्त गुणवान् (बृहतः) बड़े अत्यन्त बलयुक्त (वातस्य) वायु के (वर्जनिम्) मार्ग को (वेद) जानता है (ये) और जो पदार्थ इस में (अध्यासते) इस वायु के आधार में स्थित हैं, उनके भी (वर्जनिम्) मार्ग को (वेद) जाने, वह भूगोल वा खगोल के गुणों का जानने वात्री होता है॥९॥

भावार्थ:-जो मनुष्य अपने आदि पदार्थों में परिमाण वा गुणों से बड़ा सब मूर्ति वाले पदार्थों का धारण करने वाला वायु है, उसका कारण अर्थात् उत्पत्ति और जाने-आने के मार्ग और जो उसमें स्थूल वा सूक्ष्म पदार्थ दूहरे हैं, उनकों भी यथार्थता से जान इनसे अनेक कार्य सिद्ध कर करा के सब प्रयोजनों को सिद्ध कर लेता है वह विद्वानों में गणनीय विद्वान् होता है॥९॥

य एतं जानाति स किं प्राप्नोतीत्युपदिश्यते

मनुष्य इस वायु को ठीक-ठीक जानता है, वह किसको प्राप्त होता है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।

मि पैसाद धृतव्रतो वरुणः पुस्त्या ३ स्वा।

२९२

साम्राज्याय सुक्रतुं:॥ १०॥ १७॥

नि। सुसाद। धृतऽव्रतः। वर्रुणः। पुस्त्यासु। आ। साम्ऽराज्याय। सुक्रतुः॥ १०॥

पदार्थ:-(नि) नित्यार्थे (ससाद) तिष्ठति। अत्र लडर्थे लिट्। सदे: प्रस्य लिट्टि (अष्टा॰८.३.१०७) अनेन परसकारस्य मूर्द्धन्यादेशनिषेध:। (धृतव्रतः) सत्याचारशीलः (वस्णः) उत्तमो विद्वान् (पस्त्यासु) पस्त्येभ्यो गृहेभ्यो हितास्तासु प्रजासु। पस्त्यिमिति गृहनामसु प्रितिम्। (निघं०३.४) (आ) समन्तात् (साम्राज्याय) यद्राष्ट्रं सर्वत्र भूगोले सम्यक् राजते प्रकाशते तस्य भावाय (सुक्रतुः) शोभनाः क्रतवः कर्माणि प्रजा वः यस्य सः॥१०॥

अन्वय:-यथा यो धृतव्रतः सुक्रतुर्वरुणो विद्वान् मनुष्यः पस्त्यास् प्रजासु साम्राज्यायानिषसाद तथाऽस्माभिरपि भवितव्यम्॥१०॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। यथा परमेश्वर: सर्वीसां प्रचलीं सम्राड् वर्त्तते तथा य ईश्वराज्ञायां वर्त्तमानो विद्वान् धार्मिक: शरीरबुद्धिबलसंयुक्तो मेनुष्यो भवति स एव साम्राज्यं कर्तुमर्हतीति॥१०॥

पदार्थ:-जैसे जो (धृतव्रत:) सत्य नियम पार्ली (सुकर्तु:) अच्छे-अच्छे कर्म वा उत्तम बुद्धियुक्त (वरुण:) अति श्रेष्ठ सभा सेना का स्वामी (प्रस्थामु) अत्युत्तम घर आदि पदार्थों से युक्त प्रजाओं में (साम्राज्याय) चक्रवर्ती राज्य को करने की योष्ट्राता से युक्त मनुष्य (आनिषसाद) अच्छे प्रकार स्थित होता है, वैसे ही हम लोगों को भी होता चोह्नियं॥१०॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्लेप्सालङ्कार हैं। जैसे परमेश्वर सब प्राणियों का उत्तम राजा है, वैसे जो ईश्वर की आज्ञा में वर्त्तमान धार्मिक प्ररीर और बुद्धि बलयुक्त मनुष्य हैं, वे ही उत्तम राज्य करने योग्य होते हैं॥१०॥

पुन: स एवार्थ उपदिश्यते॥

फिर्स्थिगले मन्त्र में उस्त अर्थ का ही प्रकाश किया है॥

अतो विश्वान्य हुता चिक्तिवाँ अभि पंश्यति।

कृतानि या च कत्वी। ११॥

अर्तः। विश्वानि। अद्भा। चिकित्वान्। अभि। पुश्यति। कृतानि। या। च। कर्त्वा। ११॥

पदार्थ: (अतः) पूर्वोक्तात्कारणात् (विश्वानि) सर्वाणि (अद्भुता) आश्चर्यरूपाणि। अत्र सर्वत्र शेश्छन्द्रम् इति लोपः। (चिकित्वान्) केतयित जानातीति चिकित्वान्। अत्र 'कित ज्ञाने' अस्माद् वेदोक्ताद् भातोः क्वसुः प्रत्ययः। चिकित्वान् चेतनावान्। (निरु०२.११) (अभि) सर्वतः (पश्यित) प्रेक्षते

अष्टक-१। अध्याय-२। वर्ग-१६-१९

मण्डल-१। अनुवाक-६। सूक्त-२५

(कृतानि) अनुष्ठितानि (या) यानि (च) समुच्चये (कर्त्वा) कर्त्तव्यानि। अत्र कृत्यार्थे तवैकेन्केन्यत्वन इति त्वन् प्रत्यय:॥११॥

अन्वय:-यतो यश्चिकित्वान् वरुणो धार्मिकोऽखिलविद्यो न्यायकारी मनुष्यो वा सानि विश्वीनि सर्वाणि कृतानि यानि च कर्त्त्वां कर्त्तव्यान्यद्भुतानि कर्माण्यभिपश्यत्यतः स न्यायाधिशो भिवतुं योग्यो जायते॥११॥

भावार्थ:-यथेश्वर: सर्वत्राभिव्याप्त: सर्वशिक्तिमान् सन् सृष्टिरचनाद्वीन्याश्चेर्क्यरूपाणि कृत्वा वस्तूनि विधाय जीवनां त्रिकालस्थानि कम्माणि च विदित्वेतेभ्यस्तत्तत्कर्माश्चितं फलं दातुमर्हित। एवं यो विद्वान् मनुष्यो भूतपूर्वाणां विदुषां कर्माणि विदित्त्वाऽनुष्ठातव्यानि कर्माण्येव कर्ममुद्युङ्क्ते स एव सर्वाभिद्रष्टा सन् सर्वोपकारकाण्यनुत्तमानि कर्माणि कृत्वा सर्वेषां न्याये कर्त्तुं शक्भोक्तीत॥११॥

पदार्थ:-जिस कारण जो (चिकित्वान्) सबको चेताने वृत्य धार्मिक सकल विद्याओं को जानने न्याय करने वाला मनुष्य (या) जो (विश्वानि) सब (कृतानि) अपने किले हुए (च) और (कर्त्वा) जो आगे करने योग्य कर्मों और (अद्भुतानि) आश्चर्य्यरूप वृद्धां को (अभिपश्यित) सब प्रकार से देखता है (अतः) इसी कारण वह न्यायाधीश होने को समर्थ होता है। १श्वा

भावार्थ:-जिस प्रकार ईश्वर सब जगह व्यात और स्वेशक्तिमान् होने से सृष्टि रचनादि रूपी कर्म और जीवों के तीनों कालों के कर्मों को जानकर इनको इन-उन कर्मों के अनुसार फल देने को योग्य है। इसी प्रकार जो विद्वान् मनुष्य पहिले हो गिये उनके कर्मों और आगे अनुष्टान करने योग्य कर्मों के करने में युक्त होता है, वहीं सबको देखा हुआ सब के उपकार करने वाले उत्तम से उत्तम कर्मों को कर सब का न्याय करने को योग्य होता है। २१॥

पुनर्सप् स एवार्थ उपदिश्यते॥

फिर भी अगले मन्त्रे में उसी अर्थ का प्रकाश किया है।।

स नो विश्वाहा सुकर्तुरादित्यः सुपर्धा करत्।

प्र णु आयूंषि सोरिषत्। १२॥

सः। नः। विश्वाहां। सुऽक्रतुंः। आदित्यः। सुऽपथा। कुरुत्। प्रा नः। आयूंषि। तारिष्कत्॥ १२॥

पदार्थः (सं) वक्ष्यमाणः (नः) अस्मान् (विश्वाहा) विश्वानि चाहानि च तेषु। अत्र सुपां सुलुग्० इति संजन्या बहुवचनस्याकारादेशः। (सुक्रतुः) शोभनानि प्रज्ञानानि कर्माणि वा यस्य सः (आदित्यः) विनाशरुहितः परमेश्वरो जीवः कारणरूपेण प्राणो वा (सुपथा) शोभनश्चासौ पन्थाश्च सुप्रश्रस्तेच (करत्) कुर्यात्। लेट् प्रयोगोऽयम्। (प्र) प्रकृष्टार्थे क्रियायोगे (नः) अस्माकम् (आयूंषि) जीबनानि (तारिषत्) सन्तारयेत्। अत्रान्तर्गतो ण्यर्थः॥१२॥

अन्वय:-यथादित्यः परमेश्वरः प्राणः सूर्यो वा विश्वाहा सर्वेषु दिनेषु नोऽस्मान् सुपथा करत् नोऽस्माकमायूंषि प्रतारिषत् तथा सुक्रतुरादित्यो न्यायकारी मनुष्यो विश्वाहेषु नः सुपथा करत् नोऽस्माकमायूंषि प्रतारिषत् सन्तारयेत्॥१२॥

भावार्थ:-अत्र श्लेषवाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। ये मनुष्या ब्रह्मचर्य्येण जितेन्द्रिक्त्वादिन्दिऽयु-र्वर्द्धियत्वा धर्ममार्गे विचरन्ति, तान् जगदीश्वरोऽनुगृह्यानन्दयुक्तान् करोति। यथाऽष्ट्रं प्राणः-सूर्य्यो वा स्वबलतेजोभ्यामुच्चावचानि स्थलानि प्रकाश्य प्राणिनः सुखियत्वा सर्वानहोरात्राद्दीन् कालोबभागान् विभजतस्तथैव स्वात्मशरीरसेनाबलेन धर्म्याणि किनष्ठमध्यमोत्तमानि क्रमाणि प्रचार्य्याधर्म्याणि निवर्त्योत्तमनीचजनसमूहौ सदा विभजेत॥१२॥

पदार्थ:-जैसे (आदित्य:) अविनाशी परमेश्वर, प्राण वा सूर्य्य (विश्वाहा) सब दिन (न:) हम लोगों को (सुपथा) अच्छे मार्ग में चलाने और (न:) हमारी (आयूंषि) उसर (प्रतारिषत्) सुख के साथ परिपूर्ण (करत्) करते हैं, वैसे ही (सुक्रतु:) श्रेष्ठ कर्म और उत्तम उत्तम जिससे ज्ञान हो वह (आदित्य:) विद्या धर्म प्रकाशित न्यायकारी मनुष्य (विश्वाहा) सब दिनो में (न:) हम लोगों को (सुपथा) अच्छे मार्ग में (करत्) करे। और (न:) हम लोगों की (आयूंषि) उमरें कि (प्रतारिषत्) सुख से परिपूर्ण करे॥१२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में श्लेष और उपमालङ्कार हैं। जो मनुष्य ब्रह्मचर्य और जितेन्द्रियता आदि से आयु बढ़ाकर धर्ममार्ग में विचरते हैं, उन्हीं को जगदिश्वर अनुभूहीत कर आनन्द्युक्त करता है। जैसे प्राण और सूर्य्य अपने बल और तेज से ऊंचे नीचे स्थानीं को प्रकाशित कर प्राणियों को सुख के मार्ग से युक्त करके उचित समय पर दिन-रात आदि सब कालिंचभागों को अच्छे प्रकार सिद्ध करते हैं, वैसे ही अपने आत्मा, शरीर और सेना के बल से न्यायाधीश पनुष्य धर्मयुक्त छोटे मध्यम और बड़े कर्मों के प्रचार से अधर्म युक्त को छुड़ा उत्तम और नीच सनुष्यों का विभाग सदा किया करे॥१२॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह किस/प्रकार का है, इसे विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

बिभ्रद्द्वापिं हिंगुप्युयं वरुए। वस्त निर्णिजम्।

परि स्पशो नि वैदिरे।) १३॥

बिभ्रंत्। द्रुपिम्। हिरुप्यर्यम्। वर्रुण:। वुस्तु। नि:ऽनिर्जम्। परि। स्पर्श:। नि। से<u>दिरे</u>॥१३॥

पदार्थः (विभूत) धारयन् (द्रापिम्) कवचं निद्रां वा। अत्र 'द्रै स्वप्ने' अस्माद् इञ्वपादिभ्य इतीञ् (ह्रिरण्ययम्) ज्योतिर्मयम्। ऋत्व्यवास्त्व्य० (अष्टा०६.४.१७५) अनेनायं निपातितः 'ज्योतिर्वे हिरण्यम्' इति पूर्ववतप्रमाणं विज्ञेयम्। (वरुणः) विविधपाशैः शत्रूणां बन्धकः (वस्त) वस्ते आच्छान्यति। अत्र वर्तमाने लङ्डभावश्च। (निर्णिजम्) शुद्धम् (पिर्) सर्वतोभावे (स्पशः) स्पर्शवन्तः प्रदीर्थः (नि) नितराम् (सेदिरे) सीदन्ति। अत्र लडथें लिट्॥१३॥

अष्टक-१। अध्याय-२। वर्ग-१६-१९

मण्डल-१। अनुवाक-६। सूक्त-२५

अन्वय:-यथाऽस्मिन् वरुणे सूर्य्ये वा स्पर्शवन्तः सर्वे पदार्था निषेदिरे एतौ निर्णिजं हिरण्ययं ज्योतिर्मयं द्रापिं बिभ्रत एतान् सर्वान् पदार्थान् सर्वतोऽभिव्याप्याच्छादयतस्तथा विद्यान्यायप्रकृषि सर्वान् स्पर्शवन्तः पदार्थान् निषाद्य निर्णिजं हिरण्ययं ज्योतिर्मयं द्रापिं बिभ्रत् सन् वरुण विद्वान् परिवस्त बस्ते सर्वान् शत्रून् स्वतेजसाऽऽच्छादयेत्॥१३॥

भावार्थ:-अत्र श्लेषालङ्कार:। सर्वे मनुष्या यथा वायुर्बलकारित्वात् सर्वमग्र्यादिकं मूर्तामूर्तं वस्तु धृत्वाऽऽकाशे गमनागमने कुर्वन् गमयित। यथा सूर्य्यलोको प्रकाशस्वरूपत्व्राद् राञ्चन्धकारं मिवार्य्य स्वतेजसा प्रकाशते, तथैव सुशिक्षाबलेन सर्वान् मनुष्यान् धृत्वा धर्मे गमनागमने कृत्वा कार्यरन्॥१३॥

पदार्थ:-जैसे इस वायु वा सूर्य्य के तेज में (स्पश:) स्पर्शवान श्रेमी स्थूल-सूक्ष्म सब पदार्थ (निषेदिरे) स्थिर होते हैं और वे दोनों (वरुण:) वायु और सूर्य (निर्णजम्) शुद्ध (हिरण्ययम्) अग्न्यादिरूप पदार्थों को (विभ्रत) धारण करते हुए (द्रापिम्) बल तेज और निद्रा को (परिवस्त) सब प्रकार से प्राप्त कर जीवों के ज्ञान को ढांप देते हैं, वैसे (निर्णजम्) शुद्ध (हिरण्ययम्) ज्योतिर्मय प्रकाशयुक्त को (विभ्रत्) धारण करता हुआ (द्रायिम्) निद्रादि के हेतु रात्रि को (परिवस्त) निवारण कर अपने तेज से सबको ढांप लेता है॥१३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जैसे वासु बल का करने हारा होने से सब अग्नि आदि स्थूल और सूक्ष्म पदार्थों को धरके आकाश में गमन और आगमन करता हुआ चलता और जैसे सूर्य्यलोक भी स्वयं प्रकाशरूप होने से रात्रि की निवारण कर अपने प्रकाश से सबको प्रकाशता है, वैसे विद्वान् लोग भी विद्या और उत्तम शिक्षा कि बल से सब मनुष्यों को धारण कर धर्म में चल सब अन्य मनुष्यों को चलाया करें॥१३॥

पुनर्भ कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह वरुण किस प्रकार का है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

न यं दिप्सन्ति द्विप्सवो ने दुह्माणी जनानाम्।

न देवमुभिमात्यः। १४॥

न। यम्। द्विप्सन्ति। द्विप्सर्वः। न। दुह्वाणः। जर्नानाम्। न। देवम्। अभिऽमातयः॥ १४॥

पदार्थः (ने निषेधे (यम्) वरुणं परमेश्वरं विद्वांसं वा (दिप्सन्ति) विरोद्धिमच्छन्ति। (दिप्सवः) मिथ्याभिमानव्यवेह्यरमञ्छवः शत्रवः। अत्रोभयत्र वर्णव्यत्ययेन धकारस्य दकारः। (न) प्रतिषेधे (दुह्वाणः) द्रोहकर्त्तारः (न) निवारणे (देवम्) दिव्यगुणं (अभिमातयः) अभिमानिनः। 'मा माने इत्यस्य रूपम्। १४४।

अन्वय:-हे मनुष्या! यूयं जनानां दिप्सवो यं न दिप्सन्ति दुह्वाणो यं न द्रह्यन्त्यिभमातयो यें नाभिमन्यन्ते तं परमेश्वरं देवमुपास्यं कार्य्यहेतुं विद्वांसं वा सर्वे जानीत॥१४॥

भावार्थ:-अत्र श्लेषालङ्कार:। ये हिंसका परद्रोहयुक्ता अभिमानसहिता जना जित्ते, रे विद्याहीनत्वात् परमेश्वरस्य विदुषां वा गुणान् ज्ञात्वा नैवोपकर्त्तुमर्हन्ति, तस्मात् सर्वेरेतेषां गुणकर्मस्वभावै: सह सदा भवितव्यम्॥१४॥

पदार्थ: - हे मनुष्यो! तुम सब लोग (जनानाम्) विद्वान् धार्मिक वा मनुष्य आदि प्राणियों से (दिप्सव:) झूठे अभिमान और झूठे व्यवहार को चाहने वाले शत्रुजन (यम्) जिस (देवम्) दिव्य गुणवाले परमेश्वर वा विद्वान् को (न) (दिप्सन्ति) विरोध से न चाहें (दुह्वाण:) द्रोह बरने वाले जिस को द्रोह से (न) चाहें। तथा जिसके साथ (अभिमातय:) अभिमानी पुरुष (न) अभिमान से न वर्तें, उन उपासना करने योग्य परमेश्वर वा विद्वानों को जानो॥१४॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जो हिंसक परद्रोहीं अभिमानयुक्त जन हैं, वे अज्ञानपन से परमेश्वर वा विद्वानों के गुणों को जान कर उनसे उपकार लेने को समर्थ नहीं हो सकते। इसलिये सब मनुष्यों को योग्य है कि उनके गुण, कर्म और स्वभाव का सिक्रेन ग्रहण करें॥१४॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते

फिर वह वरुण किस प्रकार का है, इस विषय का उप्रदेश अगले मन्त्र में किया है।।

उत यो मानुषेष्वा यशश्चक्रे असाम्भ्रा अस्माक्रमुदरेष्वा॥१५॥१८॥

उता यः। मार्नुषेषु। आ। यर्शः। चुक्रे अस्मिम्। आ। अस्मार्कम्। उदरेषु। आ॥ १५॥

पदार्थ:-(उत) अपि (य:) नग्हीश्रेषो भायुर्वा (मानुषेषु) नृव्यक्तिषु (आ) अभितः (यश:) कीर्त्तिमत्रं वा। यश इत्यन्ननामसु प्रितिष्। (निघं०२.७) (चक्रे) कृतवान् (असामि) समस्तम् (आ) समन्तात् (अस्माकम्) मनुष्यादिक्षणिनम् (उद्गेषु) अन्तर्देशेषु (आ) अभितोऽर्थे॥१५॥

अन्वय:-योऽस्माकमुद्धेषृतापि बहिस्सामि यश आचक्रे यो मानुषेषु जीवेषूतापि जडेषु पदार्थेष्वाकीर्त्तिं प्रकाशितवानस्ति, स वरुणो जगदीश्वरो विद्वान् वा सकलैर्मानवै: कुतो नोपासनीयो जायेत॥१५॥

भावार्थः येन सृष्टिकर्त्तान्तर्यामिणा जगदीश्वरेण परोपकाराय जीवानां तत्तकर्मफलभोगाय समस्तं जगत्प्रतिकल्पं विरच्यते, यस्य सृष्टो बाह्याभ्यन्तरस्थो वायुः सर्वचेष्टा हेतुरस्ति, विद्वांसो विद्याप्रकाशका अविद्याहन्त्रारश्च प्रायतन्ते, तदिदं धन्यवादार्हं कर्म परमेश्वरस्यैवाखिलैर्मनुष्यैर्विज्ञेयम्॥१५॥

पदार्थ:-(यः) जो हमारे (उदरेषु) अर्थात् भीतर (उत) और बाहर भी (असामि) पूर्ण (यशः) प्रशंह्या के यार्य कर्म को (आचक्रे) सब प्रकार से करता है, जो (मानुषेषु) जीवों और जड़ पदार्थों में

अष्टक-१। अध्याय-२। वर्ग-१६-१९

मण्डल-१। अनुवाक-६। सूक्त-२५

सर्वथा कीर्त्ति को किया करता है, सो वरुण अर्थात् परमात्मा वा विद्वान् सब मनुष्यों को उपासनीय और सेवनीय क्यों न होवे॥१५॥

भावार्थ:-जिस सृष्टि करने वाले अन्तर्यामी जगदीश्वर ने परोपकार वा जीवों को इनके कर्म के अनुसार भोग कराने के लिये सम्पूर्ण जगत् कल्प-कल्प में रचा है, जिसकी सृष्टि में पदार्थों के बाहर-भीतर चलने वाला वायु सब कर्मों का हेतु है और विद्वान् लोग विद्या का प्रकाश और अविद्या का हनन करने वाले प्रयत्न कर रहे हैं, इसलिये इस परमेश्वर के धन्यवाद के योग्य कर्म स्व प्रनुष्यों को जानना चाहिये॥ १५॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते।

फिर वह कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।

पर्रा मे यन्ति धीतयो गावो न गव्यूतीरनु।

इच्छन्तीरुम्चक्षंसम्॥ १६॥

पर्रा। मे। युन्ति। धीतर्यः। गार्वः। न। गर्व्यूतीः। अनु। इच्युन्तीः। प्रृहुऽचक्षसम्॥ १६॥

पदार्थ:-(परा) प्रकृष्टार्थे (मे) मम (यन्ति) प्राप्नुवन्ति (धीतयः) दधात्यर्थान् याभिः कर्मवृत्तिभिस्ताः (गावः) पशुजातयः (न) इव (गव्यूर्तीः) गवां यूतयः स्थानानि। गोर्यूतौ छन्दस्युपसंख्यानम्। (अष्टा॰वा॰६.१.७९) (अनु) अनुगमार्थे (इच्छन्तीः) इच्छन्त्यः। अत्र सुपां सुलुग्॰ इति पूर्वसवर्णः। (उरुचक्षसम्) उरुषु चक्षो विज्ञानं प्रकाशनं वा यस्य तं कर्मकर्तारं जीवं माम्॥१६॥

अन्वय:-यथा गव्यूतीरिन्विच्छन्त्यो गावो न इव मे ममेमा धीयत उरुचक्षसं मां परायन्ति तथा सर्वान् कर्त्तृन् प्रति स्वानि स्वानि कर्माणि प्राप्तुवन्त्येवेति विज्ञेयम्॥१६॥

भावार्थ:-अत्रोपमालद्भीरः। मनुष्यैरेतं निश्चतेव्यं यथा गावः स्व-स्ववेगानुसारेण धावन्त्योऽभीष्टं स्थानं गत्वा परिश्रान्ता भक्तित्, तथैव मनुष्याः स्व-स्वबुद्धिबलानुसारेण परमेश्वरस्य सूर्यादेवीं गुणानन्विष्य यथाबुद्धि विदित्वो परिश्रान्ता भवन्ति, नैव कस्यापि जनस्य बुद्धिशरीरवेगोऽपरिमितो भवितुमर्हति। यथ्य पक्षिणः स्व-स्वबलानुसारेणाकाशं गच्छन्तो नैतस्यान्तं कश्चिदपि प्राप्नोति, तथैव कश्चिदपि मनुष्यो विद्या विषयस्यान्तं गन्तुं नार्हति॥१६॥

पद्धार्थ: प्रेंसे (गव्यूती:) अपने स्थानों को (इच्छन्ती:) जाने की इच्छा करती हुई (गाव:) गो आदि पृष्ठी जाति के (न) समान (मे) मेरी (धीतय:) कर्म की वृत्तियां (उरुचक्षसम्) बहुत विज्ञान वाले मुझ की (प्रायन्ति) अच्छे प्रकार प्राप्त होती हैं, वैसे सब कर्त्ताओं को अपने-अपने किये हुए कर्म प्राप्त होती ही हैं ऐसा जानना योग्य है॥१६॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्यों को ऐसा निश्चय करना चाहिये कि जैसे गौ आदि पशु अपने-अपने वेग के अनुसार दौड़ते हुए चाहे हुए स्थान को पहुंच कर थक जाते हैं, वैसे ही मनुष्य अपनी-अपनी बुद्धि बल के अनुसार परमेश्वर वायु और सूर्य्य आदि पदार्थों के गुणों को जानकर थक जाते हैं। किसी मनुष्य की बुद्धि वा शरीर का वेग ऐसा नहीं हो सकता कि जिस का अन्त न हो सक, जैसे पक्षी अपने-अपने बल के अनुसार आकाश को जाते हुए आकाश का पार कोई भी नहीं पाता, इसी प्रकार कोई मनुष्य विद्या विषय के अन्त को प्राप्त होने को समर्थ नहीं हो सकता है प्रहा

मनुष्यैर्यथायोग्या विद्या कथं प्राप्तव्या इत्युपदिश्यते। 4

मनुष्यों को यथायोग्य विद्या किस प्रकार प्राप्त होनी चाहिये, इस विषय के उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

सं नु वोचावहै पुनर्यतो मे मध्वाभृतम्। होतेव क्षदंसे प्रियम्॥ १७॥

सम्। नु। वोचावहै। पुनः। यतः। मे। मधुं। आऽभृतम्। होत्।ऽइवा क्षर्दसे। प्रियम्॥ १७॥

पदार्थ:-(सम्) सम्यगर्थे (नु) अनुपृष्टे (जिल्हें) (वोचावहै) परस्परमुपदिशेव। लेट्प्रयोगोऽयम्। (पुन:) पश्चाद्धावे (यत:) हेत्वर्थे (में) मप् (मधु) मधुरगुणविशिष्टं विज्ञानम् (आभृतम्) विद्वद्भिर्यत्समन्ताद् ध्रियते धार्यते तत् (होतेव) विज्ञसम्पादकावत् (क्षदसे) अविद्यारोगान्धकारिवनाशकाय बलाय (प्रियम्) यत् प्रीणाति तत्॥१७॥

अन्वय:-यत आवामुपदेशोपदेष्टारे होतेबानुक्षद्भस आभृतं यजमानप्रियं मधुमधुरगुणविशिष्टं विज्ञानं संवोचावहै, यतो मे मम तव च विद्यावृद्धिभवेष्॥ १७॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कारः ग्रायथा होतृयजमानौ प्रीत्या परस्परं मिलित्वा हवनादिकं कर्म प्रपूर्तस्तथैवाध्यापकाध्येतारौ सम्प्राम्य सर्वा विद्याः प्रकाशयेतामेवं समस्तैर्मनुष्येरस्माकं विद्यावृद्धिर्भूत्वा वयं सुखानि प्राप्नुयामेति नित्य प्रयतितव्यम्। १९७॥

पदार्थ:-(यत:) जिससे हमें आचार्य और शिष्य दोनों (होतेव) जैसे यज्ञ कराने वाला विद्वान् (नु) परस्पर (क्षदसे) अविद्या और रोगजन्य दु:खान्धकार विनाश के लिये (आभृतम्) विद्वानों के उपदेश से जो धारण किष्ट्या जाता है, उस यजमान के (प्रियम्) प्रियसम्पादन करने के समान (मधु) मधुर गुण विशिष्ट विज्ञान का (क्षेचावहै) उपदेश नित्य करें कि उससे (मे) हमारी और तुम्हारी (पुन:) बार-बार विद्यावृद्धि होंचे॥ १६॥

स्प्रवार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे यज्ञ कराने और करने वाले प्रीति के साथ मिलकर यज्ञकी सिद्ध कर पूरण करते हैं, वैसे ही गुरु शिष्य मिलकर सब विद्याओं का प्रकाश करें। सब मनुष्यों अष्टक-१। अध्याय-२। वर्ग-१६-१९

मण्डल-१। अनुवाक-६। सूक्त-२५

को इस बात की चाहना निरन्तर रखनी चाहिये कि जिससे हमारी विद्या की वृद्धि प्रतिदिन होती रहे॥१७॥

पुनस्ते किं किं कुर्युरित्युपदिश्यते।

फिर भी वे क्या-क्या करें, इस विषय का प्रकाश अगले मन्त्र में किया है

दर्शं नु विश्वदेशतं दर्शं रथमि क्षमि। एता जुषत मे गिर्रः॥१८॥

दर्शम्। नु। विश्वऽद्र्यर्शतम्। दर्शम्। रथम्। अधि। क्षमि। एताः। जुष्तु। मा क्रिरेः ॥ अ८।।

पदार्थ:-(दर्शम्) पुनः पुनर्द्रष्टम् (नु) अनुपृष्टे (विश्वदर्शतम्) समिविद्विद्धिर्द्धप्रव्यं जगदीश्वरम् (दर्शम्) पुनः पुनः सम्प्रेक्षितुम् (रथम्) रमणीयं विमानादियानम् (अधि) स्प्रेरिभावे (क्षिम्) क्षाम्यन्ति सहन्ते जना यस्मिन् व्यवहारे तस्मिन् स्थित्वा। अत्र कृतो बहुन्तम् इत्यधिकरणे क्विप्। वा छन्दिस सर्वे विधयो भवन्ति इति अनुनासिकस्य क्विझलोः क्डिति। (अष्टा०६:४.१५) इति दीर्घो न भवति (एताः) वेदविद्यासुशिक्षासंस्कृताः (जुषत) सेवध्वम् (मे) मम (गिर्ः) वार्षोः) १८॥

अन्वय:-हे मनुष्या! यूयमिध क्षमि स्थित्वा विश्वदर्शते बरुणं परेशं दर्शं रथं नु दर्शं मे ममैता गिरो वाणीर्जुषत नित्यं सेवध्वम्॥१८॥

भावार्थ:-यस्मात् क्षमादिगुणसिंहतैर्मनुद्धिः प्रश्नोत्तुरव्यवहारेणानुष्ठानेन विनेश्वरं शिल्पविद्यासिद्धानि यानानि च वेदितुं न शक्यानि, तत्र ये गुणाह्न्तेऽपि चासमुदितेषां विज्ञानाय सर्वदा प्रयतितव्यम्॥१८॥

पदार्थ: - हे मनुष्यो! तुम (अधिक्षिम) जिन व्यवहारों में उत्तम और निकृष्ट बातों का सहना होता है, उनमें ठहर कर (विश्वदर्शतम्) जो कि विद्वानों की ज्ञानदृष्टि से देखने के योग्य परमेश्वर है उसको (दर्शम्) बारंबार देखने (रथम्) जिमान आदि यानों को (नु) भी (दर्शम्) पुनः - पुनः देख के सिद्ध करने के लिये (मे) मेरी (गिरः) वाणियों को (जुषत) सदा सेवन करो॥१८॥

भावार्थ:-जिससे क्षमा आदि गुणों से युक्त मनुष्यों को यह जानना योग्य है कि प्रश्न और उत्तर के व्यवहार के किये विना परमेश्वर को जानने और शिल्पविद्या सिद्ध विमानादि रथों को कभी बनाने को शक्य नहीं और जो उनमें गुण हैं, वे भी इससे इनके विज्ञान होने के लिये सदैव प्रयत्न करना चाहिये॥१८॥४

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते।

फिर वह कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

इसे में वरुण श्रुधो हर्वमुद्या च पृळय।

300

ऋग्वेदभाष्यम्

त्वामेवस्युरा चेके॥१९॥

ड्रमम्। मे। वुरुण्। श्रुध्। हर्वम्। अद्य। च। मृळ्य। त्वाम्। अवस्युः। आ। चुके॥१९॥

पदार्थ:-(इमम्) प्रत्यक्षमनुष्ठितम् (मे) मम (वरुण) सर्वोत्कृष्टजगदीश्वर विद्वन् वा (श्रुधी) श्रृष्ण् अत्र बहुलं छन्दिस श्नोर्लुक् श्रृशृणुपृकृवृभ्यश्छन्दिस (अष्टा०६.४.१०२) इति हेर्द्ध्यादेशो अस्वेषामिष इति दीर्घश्च। (हवम्) आदातुमर्हं स्तुतिसमूहम् (अद्य) अस्मिन् दिने (च) समुच्चये (मृक्क्य) सुख्ये (त्वाम्) विद्वांसम् (अवस्यु:) आत्मनो रक्षणं विज्ञानं चेच्छुः (आ) समन्तात् (चके) प्रशंस्नुमि। १९॥

अन्वय:-हे वरुण विद्वन्! अद्यावस्युरहं त्वामाचके प्रशंसामि त्वं मे मिम हवं श्रुधि शृणु, मां च मृळय॥१९॥

भावार्थ:-यथेश्वर: खलूपासकै: सत्यप्रेम्णा यां प्रयुक्तीं स्तुर्ति सर्वज्ञतया यथावच्छुत्त्वा तदनुकूलतया स्तावकेभ्य: सुखं प्रयच्छति, तथैव विद्वद्भिरिप भवितृत्यम्।।१९५।/)

पदार्थ: -हे (वरुण) सब से उत्तम विपश्चित्! (अद्य) साज (अवस्यु:) अपनी रक्षा वा विज्ञान को चाहता हुआ मैं (त्वाम्) आपकी (आ चके) अच्छी प्रक्रार प्रशंसा करता हूं, आप (मे) मेरी की हुई (हवम्) ग्रहण करने योग्य स्तुति को (श्रुधि) श्रवण कीजिये तथा मुझको (मृळय) विद्यादान से सुख दीजिये॥१९॥

भावार्थ:-जैसे परमात्मा जो उपासकों द्वारा किएचय क्रारंके सत्य भाव और प्रेम के साथ की हुई स्तुतियों को अपने सर्वज्ञपन से यथावत् सुन क्रारं उनके अनुकूल स्तुति करने वालों को सुख देता है, वैसे विद्वान् लोग भी धार्मिक मनुष्यों की योग्य क्रारंसा को प्रुन सुखयुक्त किया करें॥१९॥

पुन्र से ईश्वर: काँदृश इत्युपदिश्यते।

फिर वह परमात्मा कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

त्वं विश्वस्य मेधिर द्विश्च ग्मश्चे राजसि।

स यामंनि प्रति श्रुधि। २०॥

त्वम्। विश्वस्य। मुध्या द्विया चा गमः। चा गुजुसा सः। यामनि। प्रति। श्रुधा।२०॥

पदार्थ:-(त्वम्) यो बङ्णी जगदीश्वरः (विश्वस्य) सर्वस्य जगतो मध्ये (मेधिर) मेधाविन् (दिवः) प्रकाशसिंहतस्य सूर्स्यादेः (च) अन्येषां लोकलोकान्तराणां समुच्चये (ग्मः) पृथिव्यादेः। गमेति पृथिवीनामस् पदितमा (निघं०१.१) (च) अनुकर्षणे (राजिस) प्रकाशसे (सः) (यामिन) यान्ति गच्छन्ति यस्मिन् कालावयवे प्रहरे तस्मिन् (प्रति) प्रतीतार्थे (श्रुधि) शृणु। अत्र बहुलं छन्दिस इति श्नोर्लुक्। श्रुशृणुप्यकृष्य- श्रुव्यदिस (अष्टा०६.४.१०२) इति हेधिश्च॥२०॥

अष्टक-१। अध्याय-२। वर्ग-१६-१९

मण्डल-१। अनुवाक-६। सूक्त-२५

अन्वय:-हे मेधिर वरुण! त्वं यथा यो जगदीश्वरो दिवश्च ग्मश्च विश्वस्य यामिन राजित, सोऽस्माकं स्तुतिं प्रतिशृणोति तथैतन्मध्ये राजिस राजे: स्तुतिं प्रतिश्रुधि शृणु॥२०॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथेश्वरेण सर्वस्य जगतो द्विधाभेदः कृतीऽस्ति एकः प्रकाशसिहतः सूर्य्यादिर्द्वितीयः प्रकाशरिहतः पृथिव्यादिश्च यस्तयोरुत्पत्तिर्विनाशनिर्मिचः कालोऽस्ति, तत्राभिव्याप्तः सर्वेषां प्राणिनां संकल्पोत्पन्ना अपि वार्त्ताः शृणोति, तस्मान्नेव केनापि कदाचिदधर्मानुष्ठानकल्पना कर्त्तव्याऽस्ति, तथैव सकलैर्मानवैर्विज्ञायानुचरितव्यमिति। २०॥

पदार्थ: - हे (मेधिर) अत्यन्त विज्ञानयुक्त वरुण विद्वन्! (त्वम्) आप जैसे जो ईश्वर (दिवः) प्रकाशवान् सूर्य्य आदि (च) वा अन्य सब लोक (गमः) प्रकाशरहित पृथिवी आदि (विश्वास्य) सब लोकों के (यामिन) जिस-जिस काल में जीवों का आना-जाना होता है, उस-उसमें प्रकाश हो रहे हैं (सः) सो हमारी स्तुतियों को सुनकर आनन्द देते हैं, वैसे होकर इस राज्य के मध्य में (राजिस) प्रकाशित हूजिये और हमारी स्तुतियों को (प्रतिश्विध) सुनिये॥२०॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमालङ्कार है जैसे परब्रह्म ने इस सब संसार के दो भेद किये हैं-एक प्रकाश वाला सूर्य्य आदि और दूसरा प्रकाश रहित भूथिवी आदि लोक। जो इनकी उत्पत्ति वा विनाश का निमित्त कारण काल है, उसमें सदा एक-सा रहने वाला परमेश्वर सब प्राणियों के संकल्प से उत्पन्न हुई बातों का भी श्रवण करता है, इससे कभी अधर्म के अनुष्ठान की कल्पना भी मनुष्यों को नहीं करनी चाहिये, वैसे इस सृष्टिक्रम को जानकर मनुष्यों को ठीक-ठीक वर्त्तना चाहिये॥२०॥

पुन स् कीदृश इत्युपदिश्यते।

फिर वह परमेश्वर कैस्म है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

उदुंत्तमं मुंमुग्धि नो वि योशं मध्यमं चृत। अवधिमानि जीवसे (१९॥१९॥

उत्। उत्ऽतमम्। म्रुमुस्थि। नुःभवि। पाशम्। मध्यमम्। चृत्। अवं। अधुमानि। जीवसे॥२१॥

पदार्थ:-(उत्) उत्कृष्टार्थे क्रियायोगे वा (उत्तमम्) उत्कृष्टम् (मुमुम्धि) मोचय। अत्र बहुलं छन्दिस् इति श्लुः। (नः) अस्माकम् (वि) विविधार्थे (पाशम्) बन्धनम् (मध्यमम्) उत्कृष्टानुकृष्टयोरन्तर्भवम् (चृत) नाशय। अत्रोत्तर्गतो ण्यर्थः। (अव) क्रियायोगे (अधमानि) निकृष्टानि बन्धनानि (जीवसे) चिरं जीवितुम्। अत्र तुम्र्थे से इत्यसेन्प्रत्ययः॥२१॥

भन्वयः-हे वरुणाविद्यान्धकारविदारकेश्वर! त्वं करुणया नोऽस्माकं जीवस उत्तमं मध्यमं पाश्रमुन्युमुग्न्यधमानि बन्धनानि च व्यवचृत॥२१॥

भावार्थ:-यथा धार्मिकाः परोपकारिणो विद्वांसो भूत्वेश्वरं प्रार्थयन्ते तेषां जगदीश्वरः सर्वाणि दु:खबन्धनादीनि निवार्य्वेतान् सुखयित, तथास्माभिः कथं नानुचरणीयानि॥२१॥

चतुर्विंशसूक्तोक्तानां प्राजापत्यादीनामर्थानां मध्यस्थस्य वरुणार्थस्योक्तात्वाच्यातीत्र सूक्तार्थेनास्य पञ्चविंशसूक्तार्थस्य सङ्गतिरस्तीति बोध्यम्॥

इति प्रथमस्य द्वितीय एकोनविंशो वर्गः।श६॥ पञ्जविंशं सूक्तं च समाप्तम्॥२५॥

पदार्थ:-हे अविद्यान्धकार के नाश करने वाले जगदीश्वर! आप (नः) हम लोगों के (जीवसे) बहुत जीने के लिये हमारे (उत्तमम्) श्रेष्ठ (मध्यमम्) मध्यम दु:खरूपी (प्रश्नम्) बन्धनों को (उन्मुमुम्धि) अच्छे प्रकार छुड़ाइये तथा (अधमानि) जो कि हमारे दोषरूपी निकृष्ट बन्धन हैं, उनका भी (व्यवचृत) विनाश कीजिये॥ २१॥

भावार्थ:-जैसे धार्मिक परोपकारी विद्वान् होकर ईश्वर क्षिण्यां करते हैं जगदीश्वर उनके सब दु:ख बन्धनों को छुड़ाकर सुख युक्त करता है, वैसे कर्म हम लोगों को क्या न करना चाहिये॥२१॥

चौबीसवें सूक्त में कहे हुए प्रजापित आदि अर्थों कि बोचे जो वरुण शब्द है, उसके अर्थ को इस पच्चीसवें सूक्त में कहने से सूक्त के अर्थ की सङ्गित पहिले सूक्त के अर्थ के साथ जाननी चाहिये॥

यह पहिले अष्टक और दूसरे अध्याय में उन्नीसवां वर्ष और पहिले मण्डल में छठे अनुवाक में पच्चीसवां सूक्त संपाप हुआ। १२५॥ अथास्य दशर्चस्य षड्विंशस्य सूक्तस्याजीगर्त्तिः शुनःशेप ऋषिः। अग्निर्देवता। १,८,९ आर्ची उष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः। २,६। निचृद्गायत्री। ३ प्रतिष्ठागायत्री। ४,१० गायत्री। ५,७-

विराड्गायत्री च छन्द:। षड्ज: स्वर:॥

तत्रादिमे मन्त्रे होतृयजमानगुणा उपदिश्यन्ते॥

अब छब्बीसवें सूक्त का प्रारम्भ है। उसके पहिले मन्त्र में यज्ञ कराने और करने क<mark>्रांटों के मु</mark>ण् प्रकाशित किये हैं॥

विसिष्वा हि मियेध्य वस्त्रीण्यूर्जां पते। सेमं नी अध्वरं येजा। १॥ विसिष्वा हि। मियेध्या वस्त्रीणा ऊर्जाम्। पते। सः। इमम्। नः। अध्यरम्। स्टार्थाः ॥।

पदार्थ:-(विसिष्व) धर। अत्र छन्दस्युभयथा (अष्टा०३ ४११७) इत्यार्द्धधातुकत्वमाश्रित्य लोट्यपि वलादिलक्षण इट्। (हि) खलु (मियेध्य) मिनोति प्रक्षिपत्यन्तिरक्षं प्रत्यग्निद्वारा पदार्थांस्तत्सम्बुद्धौ। अत्र 'डुमिञ्' धातोरौणादिको बाहुलकात् केथ्यच् प्रत्ययः। (वस्त्राणि) कार्पासौर्णकौशेयकादीनि (ऊर्जाम्) बलपराक्रमान्नानाम् (पते) पालिषतः (सः) होता यजमानो वा (इमम्) प्रत्यक्षमनुष्ठीयमानम् (नः) अस्माकम् (अध्वरम्) त्रिविधं सञ्जम् (पज्नः) सङ्गच्छस्व॥१॥

अन्वय:-हे ऊर्जा पते! मियेध्य होतर्यजमान वा त्वमेतानि वस्त्राणि वसिष्व हि नोऽस्माकमध्वरं यज सङ्गमय॥१॥

भावार्थ:-अत्र श्लेषालङ्कार:। यद्भीनो ब्रहून् हस्तक्रियाप्रत्यक्षान् विदुषोविरत्वैतान् सत्कृत्यानेकानि कार्य्याणि संसेध्य सुखं प्रानुस्यत् प्रापृत्रच्च। निह किश्चित् खलूत्तमपुरुषसंप्रयोगेण विना किञ्चिदपि व्यवहारपरमार्थकृत्यं साद्धं ग्रावनाति। १)।

पदार्थ: -हे (ऊर्जाम्) बल पराक्रम और अन्न आदि पदार्थों का (पते) पालन करने और कराने वाले तथा (मियेध्य) अग्नि द्वार पदार्थों को फैलाने वाले विद्वान्! तू (वस्त्राणि) वस्त्रों को (वसिष्व) धारण कर (स:) (हि) ही (न:) हम लोगों के (इमम्) इस प्रत्यक्ष (अध्वरम्) तीन प्रकार के यज्ञ को (यज) सिद्ध कर॥१॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में श्रीपालङ्कार है। यज्ञ करने वाला विद्वान् हस्तक्रियाओं से बहुत पदार्थों को सिद्ध करने वाले बिद्धानों को स्वीकार और उनका सत्कार कर अनेक कार्य्यों को सिद्ध कर सुख को प्राप्त करे वा करावें। कोई भी मनुष्य उत्तम विद्वान् पुरुषों के प्रसङ्ग किये विना कुछ भी व्यवहार वा परमार्थरूपी को सिद्ध करने को समर्थ नहीं हो सकता है॥१॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते।

फिर वह किस प्रकार का है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

मि नो होता वरेण्यः सदा यविष्ठु मन्मिभः।

308

ऋग्वेदभाष्यम्

अग्ने द्विवित्मता वर्चः॥२॥

नि। नुः। होता। वरेण्यः। सदा। युविष्ठु। मन्मेऽभिः। अग्ने। दुवित्मेता। वर्चः॥२॥

पदार्थ:-(नि) नितराम् (नः) अस्माकम् (होता) सुखदाता (वरेण्यः) विरितुमर्हः। वृत्र एण्यः (उणा०३.२६) अनेनैण्यप्रत्ययः। (सदा) सर्वस्मिन् काले (यिवष्ठ) अतिशयेन बलकान् कनमान (मन्मिभः) मन्यन्ते जानन्ति जना यैः पुरुषार्थेस्तैः। अत्र कृतो बहुलम् इति वार्तिकेनः अन्यभ्योऽिष दृश्यन्ते। (अष्टा०३.२.७५) अनेन करणे मिनन् प्रत्ययः। (अग्ने) विज्ञानादिप्रसिद्धस्करूप। (दिवित्मता) दिवं प्रकाशिमन्धते यैः प्रशस्तैः स्वगुणैस्तद्वता। अत्र दिव्शब्दोपपदादिन्धवातोः कृतो बहुलम् इति करणकारके (अन्यभ्योऽिष दृश्यन्ते। अनेन सूत्रेण) क्विप्। ततः प्रशंसास्ति भूतप्। (वचः) उच्यते यत् तत्॥२॥

अन्वय:-हे यविष्ठाग्ने यजमान! यो मन्मिभ: सह वर्त्तमानो वरेएको हीता नोऽस्माकं दिवित्मता वच: सङ्गमयित स त्वया सदा सङ्गन्तव्य:॥२॥

भावार्थ:-अत्र पूर्वस्मान्मन्त्रात् (यज) इत्यस्यार्ऽनुकृति: म् मनुष्यैः सज्जनजनसाहित्येन सकलकामनासिद्धिः कार्य्या। नैतेन विना कश्चित्सुखी भविषुम्हितीति। २॥

पदार्थ:-हे (यिवष्ठ) अत्यन्त बल वाले (अस्ते) यजमान जो (मन्मिभः) जिनसे पदार्थ जाने जाते हैं, उन पुरुषार्थों के साथ वर्त्तमान (वरेण्यः) स्वीकार करेंग्ने योग्य (होता) सुख देने वाला (नः) हम लोगों के (दिवित्मता) जिनसे अत्यन्त प्रकाश होता है, इससे प्रसिद्ध (वचः) वाणी को (यज) सिद्ध करता है, उसी का (सदा) सब काल में संग्र करना चाहिय॥२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में पूर्व मन्त्र से (यज) इस पद की अनुवृत्ति आती है। मनुष्यों को योग्य है कि सज्जन मनुष्यों के सङ्ग से सकल कामनाओं की सिद्धि करें। इसके विना कोई भी मनुष्य सुखी रहने को समर्थ नहीं हो सकता॥२॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते।

फिर वह किस प्रकार का है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

आ हि ष्मां सूनवे पिनोपिर्यजन्यापये।

सखा संख्ये वरेखः॥३॥

आ। है। स्मा भूनवै। पिता। आपि:। यर्जित। आपये। सर्खा। संख्ये। वरेण्य:॥३॥

अष्टक-१। अध्याय-२। वर्ग-२०-२१

मण्डल-१। अनुवाक-६। सूक्त-२६

पदार्थ:-(आ) अभितः (हि) निश्चये (स्म) स्पष्टार्थे। अत्र निपातस्य च इति दीर्घः। (सूनवे) अपत्याय (पिता) पालकः (आपिः) सुखप्रापकः। अत्र 'आप्तृ व्याप्तौ' अस्मात्। इस्जिदिभ्यः (अष्टा०वा०३.३.१०८) इति वार्त्तिकेन 'इञ्' प्रत्ययः। (यजित) सङ्गच्छते (आपये) सद्गुणध्यापिने (सखा) सुहृत् (सख्ये) सुहृदे (वरेण्यः) सर्वत उत्कृष्टतमः॥३॥

अन्वय:-हे मनुष्या! यथा पिता सूनवे सखा सख्य आपिरापय आयजित, द्विधेवान्योऽय सम्प्रीत्या कार्याणि संसाध्य हिष्म सर्वोपकाराय यूयं सङ्गच्छध्वम्॥३॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। यथा सन्तानसुखसम्पादक कृपायमाणः पिता मित्राणां सुखप्रदः सखा विद्यार्थिने विद्याप्रदो विद्वाननुकूलो वर्त्तते, तथैव सर्वे मार्पियाः सर्वोपकाराय सततं प्रयतेरत्रितीश्वरोपदेश:॥३॥

पदार्थ: - हे मनुष्यो! जैसे (पिता) पालन करने वाला (सून्बे) पुत्र के (सखा) मित्र (सख्ये) मित्र के और (आपि:) सुख देने वाला विद्वान् (आपये) उत्तम गुण्याप्त होने विद्यार्थी के लिये (आयजित) अच्छे प्रकार यत्न करता है, वैसे परस्पर प्रीति के साथ कार्यों को प्रिद्धकर (हि) निश्चय करके (स्म) वर्त्तमान में उपकार के लिये तुम सङ्गत हो॥३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे अपने लड़कों को सुख सम्पादक उन पर कृपा करने वाला पिता, स्विमत्रों को सुख देने बाला मित्र और विद्यार्थियों को विद्या देने वाला विद्वान् अनुकूल वर्त्तता है, वैसे ही सब मनुष्य सबके उपकार के लिये अच्छे प्रकार निरन्तर यत्न करें, ऐसा ईश्वर का उपदेश है॥३॥

पुरस्ते कथे वर्तरित्रत्युपदिश्यते॥

फिर वे कैसे वर्तिं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

आ नो बुर्ही रिशादमा वरुणो मिक्री अर्युमा।

सीदंनु मनुषो स्थाप्त ४॥

आ। नुः। बुहिः। रिशादसुः। वर्रुणः। मित्रः। अर्युमा। सीर्दन्तु। मर्नुषः। युथा॥४॥

पदार्थ:-(आ) समन्तात् (नः) अस्माकं (बर्हिः) सर्वसुखप्रापकमासनम्। बर्हिरिति पदनामसु पठितम्। (निष्रं०५.२) (रिशादसः) रिशानां हिंसकानां रोगाणां वा अदस उपक्षयितारः (वरुणः)

. (आ) इत्यारभ्य, दीर्घ: इति पर्यन्तं मुद्रितपुस्तके पाठो नास्ति, हस्तलिखितप्रेसपुस्तके तु वर्तते। सं०

सकलविद्यासु वरः (मित्रः) सर्वसुहृत् (अर्यमा) न्यायाधीशः (सीदन्तु) समासताम् (मनुषः) जानन्ति य सभ्या मर्त्यास्ते। अत्र मनधातार्बाहुलकादौणादिक उसिः प्रत्ययः। (यथा) येन प्रकारेण॥४॥

अन्वय:-हे मनुष्या! यथा रिशादसो दुष्टहिंसकाः सभ्या वरुणो मित्रोऽर्यमा मनुष् ने बहिंश सीदन्ति तथा भवन्तोऽपि सीदन्तु॥४॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। यथा सभ्यतया सभाचतुराः सभायां वर्त्तेरंस्तथा सर्वेमेर्गुस्यैः सदा वर्त्तितव्यमिति॥४॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो (यथा) जैसे (रिशादसः) दुष्टों के मारनेवाले (वस्मः) सब विद्याओं में श्रेष्ठ (मित्रः) सबका सुहृद् (अर्यमा) न्यायकारी (मनुषः) सभ्य मनुष्य (नः) हम लोगों के (बर्हिः) सब सुख के देने वाले आसन में बैठते हैं, वैसे आप भी बैठिये॥४॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे सभ्यतापूर्वक सभीचतुर मुगुष्य सभा में वर्तें, वैसे ही सब मनुष्यों को सब दिन वर्त्तना चाहिये॥४॥

पुनः स कथं वर्त्तेत इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसे वर्ते, इस विषय का उपवेश अगले मीन में किया है।।

पूर्व्यं होतर्स्य नो मन्दंस्व सुख्यस्यं च।

इमा उ षु श्रुंधी गिरः॥५॥२०॥

पूर्व्या होतुः। अस्या नुः। मन्दंस्वा सुख्यस्या चा हुमाः। ऊम् इति। सु। श्रुधा गिर्रः॥५॥

पदार्थ:-(पूर्व्य) पूर्वैर्विद्वद्भिः कृति मित्रः। अत्र पूर्वैः कृतिमित्रौ च। (अष्टा०४.४.१३३) अनेन पूर्वशब्दाद्यः प्रत्ययः (होतः) यज्ञसम्बद्धिक (अस्म) वक्ष्यमाणस्य (नः) अस्माकम् (मन्दस्व) मोदस्व (सख्यस्य) सखीनां कर्मणः (च) पुत्राद्धेतां समुच्चये (इमाः) प्रत्यक्षमनुष्ठीयमानाः (उ) वितर्के (सु) शोभनार्थे (श्रुधि) शृणु श्रावय विशे अत्रेकपक्षेत्रन्तर्गतो ण्यर्थो बहुलं छन्दिस इति श्नोर्लुक् श्रुशृणुपॄकृवृभ्यः इति हेर्ध्यादेशश्च। (गिरः) वेदिविद्यासंस्कृता व्यचः॥५॥

अन्वयः-हे पूर्व्य होन्यज्ञमान वा त्वं नोऽस्माकमस्य सख्यस्य मन्दस्व कामयस्व, उ इति वितर्के नोऽस्माकमिमा वेदविद्या संस्कृता गिरः सुश्रुधि सुष्ठु शृणु श्रावय वा॥५॥

भावार्थः चेतुष्यैः स्वेषु मनुष्येषु मैत्रीं कृत्वा सुशिक्षाविद्ये श्रुत्वा विद्वद्भिर्भवितव्यम्॥५॥

इति विंशो वर्गः॥२०॥

पदार्थ: है (पूर्व्य) पूर्व विद्वानों ने किये हुए मित्र (होत:) यज्ञ करने वा कराने वाले विद्वान् तू (न:) हमार (अस्य) इस (सख्यस्य) मित्रकर्म की (मन्दस्व) इच्छा कर (3) निश्चय है कि हम लोगों अष्टक-१। अध्याय-२। वर्ग-२०-२१

मण्डल-१। अनुवाक-६। सूक्त-२६

को (इमा:) ये जो प्रत्यक्ष (गिर:) वेदविद्या से संस्कार की हुई वाणी हैं, उनको (सुश्रुधि) अच्छे प्रकार सुन और सुनाया कर॥५॥

भावार्थ:-मनुष्यों को उचित है कि सब मनुष्यों में मित्रता रखकर उत्तम शिक्षा और विद्या की पढ़ सुन और विचार के विद्वान् होवें॥५॥

यह बीसवां वर्ग पूरा हुआ॥२०॥

पुनर्होत्रादिभिरस्माभिः किं कर्त्तव्यमित्युपदिश्यते॥

फिर यज्ञ करने-कराने वाले आदि हम लोगों को क्या करना चाहिये, इस बिषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

यच्चिद्धि शर्श्वता तर्ना देवंदेवं यर्जामहे।

त्वे इद् धूयते हुवि:॥६॥

यत्। चित्। हि। शर्थता। तना। देवम्ऽदैवम्। यजामहे। त्वे इति। इत्। हूयते। हुवि:॥६॥

पदार्थ:-(यत्) वक्ष्यमाणम् (चित्) अपि (हि) खेलु (प्राश्वता) अनादिना कारणेन (तना) विस्तृतेन (देवंदेवम्) विद्वांसं विद्वांसं पृथिव्यादिदिव्याण्णं पदार्थं पदार्थं वा। अत्र वचनव्यत्ययो वीप्सा च। (यजामहे) सङ्गच्छामहे (त्वे) तस्मिन् (इत्) एव (ह्यते) प्रक्षिप्यते (हविः) होतव्यं द्रव्यम्॥६॥

अन्वय:-हे नरो! यथा वयं शश्वता द्विन कारणेलेंदेव सहितमुत्पन्नं यं देवंदेवं चिदिप यजामहे सङ्गच्छामहे त्वे हि खलु हिवर्दूयते तथा यूक्सिफ जुहोत्ता ६॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपुमालङ्कार:।) मनुष्यैर्विद्वत्सङ्गं कृत्वा अस्मिन् जगित यावन्तो दृश्यादृश्या: पदार्था: सन्ति, ते सर्व अनादिना विस्तृतेन कारणेनोत्पद्यन्त इति बोध्यम्॥६॥

पदार्थ: -हे मनुष्य लोगों जैसे हम लोग (यत्) जिससे ये (शश्वता) अनादि (तना) विस्तारयुक्त कारण से (इत्) ही उत्पन्न हैं, इससे उन (देवंदेवम्) विद्वान् विद्वान् और सब पृथिवी आदि दिव्यगुण वाले पदार्थ पदार्थ को (चित्) भी (यजापह) सङ्गत अर्थात् सिद्ध करते हैं (त्वे) उसमें (हि) ही (हवि:) हवन करने योग्य वस्तु (ह्यते) छोइते हैं, वैसे तुम भी किया करो॥६॥

भावार्थ: यहाँ वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। इस संसार में जितने प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष पदार्थ हैं, वे सब अनादि अधि विस्तार वाले कारण से उत्पन्न हैं, ऐसा जानना चाहिये॥६॥

पुनरस्माभिः परस्परं कथं वर्त्तिव्यमित्युपदिश्यते॥

फिर हम लोगों को परस्पर किस प्रकार वर्त्तना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

३०८

प्रियो नो अस्तु विश्पतिर्होता मन्द्रो वरेण्यः।

प्रिया: स्वग्नयो वयम्॥७॥

प्रियः। नुः। अस्तु। विश्पतिः। होतां। मुन्द्रः। वरेण्यः। प्रियाः। सुऽअग्नर्यः। वयम्॥७॥

पदार्थ:-(प्रिय:) प्रीतिविषयः (नः) अस्माकम् (अस्तु) भवतु (विश्पितः) विश्नां प्रजातां पालकः सभापती राजा। अत्र वा छन्दिस सर्वे विधयो भवन्ति इति नियमात् वृश्चिमस्जस्जस्जयज्ञ (अष्टा०८.२.३६) इति षत्वं न भवति (होता) यज्ञसम्पादकः (मन्द्रः) स्त्रोतुमहीं धार्मिकः। अत्र स्फायितञ्चिवञ्चि (उणा०२.१३) इति रक्प्रत्ययः। (वरेण्यः) स्वीकर्ते योग्यः (प्रियाः) राज्ञः प्रीतिविषयाः। (स्वग्नयः) शोभनः सुखकारकोऽग्निः सम्पादितो यैस्ते (वय्पि) प्रजास्था मनुष्याः॥७॥

अन्वय:-हे मानवा! यथा स्वग्नयो वयं राजप्रियाः स्मो यथा होता मन्द्री वरेण्यो विश्पतिर्नः प्रियोऽस्ति तथाऽन्योऽपि प्रियोऽस्तु॥७॥

भावार्थ:-यथा वयं सर्वे: सह सौहार्देन वर्त्तामहे प्रस्माभि: सह सर्वे वर्त्तरंस्तथा यूयमिप वर्त्तध्वम्॥७॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! जैसे (स्वग्नय:) जिन्होंने अगि को सुखकारक किया है, वे हम लोग (प्रिया:) राजा को प्रिय हैं, जैसे (होता) यज्ञ का कर्ये कराने (मन्द्र:) स्तुति के योग्य धर्मात्मा (वरेण्य:) स्वीकार करने योग्य विद्वान् (विश्पित:) प्रजा का स्वामी सभाध्यक्ष (न:) हम को प्रिय है, वैसे अन्य भी मनुष्य हों॥७॥

भावार्थ:-जैसे हम लोग सब के साथ भित्रभाव से वर्तते और ये सब लोग हम लोगों के साथ मित्रभाव और प्रीति से सब लोग वर्तत्र हैं, वैस औप लोग भी होवें॥७॥

पुनस्ते कथं वर्त्तरिन्नत्युपदिश्यते॥

फिर वे कैसे वर्तें, इस किएय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

स्वग्नयो हि वार्यं देवासी दिधरे चे नः।

स्वग्नयो मनामहा। ८ ॥

सुऽञ्गनर्यः। हि। वार्यम्। देवासः। दुधिरे। च। नः। सुऽञ्गनर्यः। मुनामहे॥८॥

पदार्थः (स्वानयः) शोभनोऽग्निर्येषां ते मनुष्याः पृथिव्यादयो वा (हि) खलु (वार्यम्) विरितुमर्हं पदार्थसमूहम् (देवासः) दिव्यगुणयुक्ता विद्वांसः। अत्र आज्जसेरसुक् (अष्टा०७.१.५०) इत्यसुगागमः। (दिधरे) हितवन्तः (च) समुच्चये (नः) अस्मभ्यम् (स्वग्नयः) ये शोभनानुष्ठानतेजोयुक्ताः (मनामहे) विजानीयाम्। अत्र विकरणव्यत्ययेन शप्॥८॥

अष्टक-१। अध्याय-२। वर्ग-२०-२१

मण्डल-१। अनुवाक-६। सुक्त-२६

अन्वय:-यथा स्वग्नयो देवास: पृथिव्यादयो वा नोऽस्मभ्यं वार्यं दिधरे हितवन्तस्तथा वयमिप स्वग्नयो भूत्वैतेभ्यो विद्यासमूहं मनामहे विजानीयाम॥८॥

भावार्थ:-अत्र लुप्तोपमालङ्कार:। मनुष्यैरस्मिन् जगित यावन्त: पदार्था ईश्वरेषीत्पार्वितास्तेषां विज्ञानाय विद्यां सम्पाद्य कार्यसिद्धि: कार्येति॥८॥

पदार्थ:-जैसे (स्वग्नय:) उत्तम अग्नियुक्त (देवास:) दिव्यगुण वाले किहान (च) वो पृथिवी आदि पदार्थ (न:) हम लोगों के लिये (वार्यम्) स्वीकार करने योग्य पदार्थों को (स्थिर) धारण करते हैं, वैसे हम लोग (स्वग्नय:) अग्नि के उत्तम अनुष्ठान युक्त होकर इन्हों से बिद्या समूह को (मनामहे) जानते हैं, वैसे तुम भी जानो॥८॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को योग्याहें कि ईश्वर ने इस संसार में जितने पदार्थ उत्पन्न किये हैं, उनके जानने के लिये विद्याओं का सम्पादन करके कार्यों की सिद्धि करें॥८॥

पुनः स किमर्थं याचनीयो मनुष्यैश्च परस्परं कथं चर्तित्व्यूमित्युपदिश्यते॥

फिर किसलिये उस ईश्वर की प्रार्थना करना और मनुर्धी को परस्पर कैसे वर्त्तना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में क्रिया है।।

अर्था न उभयेषाममृत मर्त्यानाम्।

मिथः संन्तु प्रशंस्तयः॥९॥

अर्थ। नु:। उभर्येषाम्। अर्मृत। मर्त्यानम्मा स्थिः। मून्तु। प्रशस्तयः॥९॥

पदार्थ:-(अथ) अनन्तरे (तः) अस्माकम् (उभयेषाम्) पण्डितापण्डितानाम् (अमृत) अविनाशिस्वरूपेश्वर (मर्त्यानाम्) मनुष्पणाम् (मिथः) अन्योन्यार्थे (सन्तु) भवन्तु (प्रशस्तयः) उत्तमगुणकर्मग्रहणप्रशंसाः॥९॥

अन्वय:-हे अमृत ज्यदेश्वर! भवत्कृपया यथोत्तमगुणकर्मग्रहणोनाथ नोऽस्माकमुभयेषां मर्त्यानां मिथः प्रशस्तयः सन्तु, त्रशा सूर्वेषां भूवन्त्वित प्रार्थयामः॥९॥

भावार्थ:-यावन्मनुष्पि योद्विषौ विहाय परस्परोपकाराय विद्याशिक्षापुरुषार्थैः प्रशस्तानि कर्माणि न कुर्वन्ति नैव तावन्नेषु सुखानि सम्पत्तुं शक्नुवन्ति। अथेत्यनन्तरं सर्वैर्मनुष्यैः परमेश्वराज्ञायां वर्त्तित्वा सर्विहतं नित्यं साधनीय्यिति। १॥

पदीर्थ: है (अमृत) अविनाशिस्वरूप जगदीश्वर! आप की कृपा से जैसे उत्तम गुण कर्मों के ग्रहण से (अथ) अनन्तर (न:) हम लोग जो कि विद्वान् वा मूर्ख हैं (उभयेषाम्) उन दोनों प्रकार के (मल्यीनम्) पनुष्यों की (मिथ:) परस्पर संसार में (प्रशस्तय:) प्रशंसा (सन्तु) हों, वैसे सब मनुष्यों की हों ऐसी प्रार्थना करते हैं॥९॥

भावार्थ:-जब तक मनुष्य लोग राग वा द्वेष को छोड़कर परस्पर उपकार के लिये विद्या शिक्षा और पुरुषार्थ से उत्तम-उत्तम कर्म नहीं करते, तब तक वे सुखों के सम्पादन करने को समर्थ नहीं हो सकते। इसलिये सबको योग्य है कि परमेश्वर की आज्ञा में वर्त्तमान होकर सब का कल्याण करें।

पुनस्ते कथं वर्त्तरिन्नत्युपदिश्यते॥

फिर वे कैसे वर्तें, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

विश्वेभिरग्ने अग्निभिरिमं युज्ञमिदं वर्चः।

चनो धाः सहसो यहो॥ १०॥ २१॥

विश्वेभिः। अन्ने। अग्निऽभिः। इमम्। युज्ञम्। इदम्। वर्चः। चर्नः। धाः। सहसः युहो इति॥ १०॥

पदार्थ:-(विश्वेभि:) सर्वै:। अत्र बहुलं छन्दिस इति भिस ऐस्रादेशाभाव:। (अग्ने) विद्यासुशिक्षायुक्तविद्वन् (अग्निभि:) विद्युत्सूर्यप्रसिद्धैः कार्यरूपैस्त्रिभः (इपम्) प्रत्यक्षाप्रत्यक्षम् (यज्ञम्) सङ्गन्तव्यम् (इदम्) अस्माभिः प्रयुक्तम् (वचः) विद्यायुक्तं स्तुतिसम्पादकं वचनम् (चनः) भक्ष्यभोज्यलेह्यचृष्याख्यमत्रम्। अत्र चायतेरत्रे हस्वश्च। (उणा०४.२०५) अनेनासुन् प्रत्ययो नुडागमश्च। (धाः) हितवान्। अत्राडभावश्च। (सहसः) सहते सह्ये गियुस्तस्य बलस्वरूपस्य (यहो) क्रिया-कौशलयुक्तस्यापत्यं तत्सम्बुद्धौ। यहुरित्यपत्यनामसु प्रदित्मू। (निषं०२.२)॥१०॥

अन्वय:-हे अग्ने! यहो त्वं यथा दयासुनिद्वान् सर्वसुखार्थं सहसो बलाद् विष्वेभिरग्निभिरिमं यज्ञमिदं वचश्चनश्च धा हितवांस्तथा त्वमिप स्ततं धेहि।। १०॥

भावार्थ:-अत्रवाचकलुप्तोपमालङ्कारः। मतुर्ध्यरेवं स्वसन्तानानि नित्यं योज्यानि यः कारणरूपोऽग्निर्नित्योऽस्ति तस्मादीश्वररचन्या विद्युदादिरूपाणि कार्य्याणि जायन्ते पुनस्तेभ्यो जाठरादिरूपाण्यनेकानि च तान् सूर्वानग्नीत् कारणरूप एव धरित, यावन्त्यग्निकार्य्याणि सन्ति तावन्ति वायुनिमित्तेनैव जायन्ते, सर्वं जगृत् तत्रस्थानि वस्तूनि च धरिन्त नैवाग्निवायुभ्यां विना कदाचित्कस्यापि वस्तुनो धारणं सम्भवतीति॥ १००।

पूर्वसूक्तोक्तेन क्रणार्थेनात्रीक्तस्याग्नेरनुषङ्गित्वात् पूर्वसूक्तार्थेनास्य षड्विंशसूक्तार्थस्य सङ्गतिरस्तीति बोध्यम्॥

> द्भित प्रथमाष्टके द्वितीयध्याय एकविंशो वर्गः॥२१॥ प्रथममण्डले षष्ठेऽनुवाके षड्विंशं सूक्तं च समाप्तम्॥२६॥

प्रदर्श:-है (यहा) शिल्पकर्म में चतुर के अपत्य कार्य्यरूप अग्नि के उत्पन्न करने वाले (अग्ने) विद्वान् कैंसे आप सब सुखों के लिये (सहसः) अपने बल स्वरूप से (विश्वेभिः) सब (अग्निभिः) विद्युत् सूर्य्य और प्रसिद्ध कार्य्यरूप अग्नियों से (इमम्) इस प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष (यज्ञम्) संसार के व्यवहाररूप

अष्टक-१। अध्याय-२। वर्ग-२०-२१

मण्डल-१। अनुवाक-६। सुक्त-२६

यज्ञ और (इदम्) हम लोगों ने कहा हुआ (वच:) विद्यायुक्त प्रशंसा का वाक्य (चन:) और खाने स्वाद लेने चाटने और चूसने योग्य पदार्थों को (धा:) धारण कर चुका हो, वैसे तू भी सदा धारण करि।

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को योग्य है कि अपूर्त सन्तिमों की निम्नलिखित ज्ञान कार्य्य में युक्त करें। जो कारणरूप नित्य अग्नि है, उससे ईश्वर क्रीरचना में बिजुली आदि कार्य्यरूप पदार्थ सिद्ध होते हैं, फिर उनसे जो सब जीवों के अन्न को पचाने वाले अग्नि के समान अनेक पदार्थ उत्पन्न होते हैं, उन सब अग्नियों को कारण रूप ही अग्नि धारण करते हैं, जितने अग्नि के कार्य हैं, वे वायु के निमित्त ही प्रसिद्ध होते हैं, उन सबको पदार्थ धारण करते हैं, अग्नि और वायु के विना कभी किसी पदार्थ का धारण नहीं हो सकता है इत्यादि॥१०॥

पहिले सूक्त में वरुण के अर्थ के अनुषङ्गी अर्थात् सहायक अग्नि शब्द के इस सूक्त में प्रतिपादन करने से पिछले सूक्त के अर्थ के साथ इस छब्बीसवें सूक्त के अर्थ की सङ्गित जाननी चाहिये॥

यह पहिले अष्टक में दूसरे अध्याय में इक्कीसवां वर्ग तथा पहिले मण्डूल में छठे अनुवाक में छब्बीसवां सूक्त समाप्त हुआ। २६॥)

अथ त्रयोदशर्चस्य सप्तविंशस्य सूक्तस्याजीगर्त्तः शुनःशेप ऋषिः। १-१२ अग्निः। १३ विश्वेदेवा देवताः। १-१२ गायत्री। १३ त्रिष्टुप् छन्दः। १-१२ षड्जः। १३ धैवतः स्वरश्च॥

तत्रादिमेनग्निरुपदिश्यते॥

अब सत्ताईसवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके पहिले मन्त्र में अग्नि का प्रकाश किया 🕏 🕻

अश्वं न त्वा वार्यवन्तं वृन्दध्यो अग्निं नमोभिः। सम्राजन्तमध्वराणाम्॥१॥

अर्थम्। न। त्वा। वारंऽवन्तम्। वृन्दध्यै। अग्निम्। नर्मःऽभिः। सुम्ऽराजन्तम्। अध्वराणाम्॥ १॥

पदार्थ:-(अश्वम्) वेगवन्तं वाजिनम् (न) (त्वा) त्वां तं वा (वाप्ताम्) गालवन्तम् (वन्दध्यै) विन्तुत्तम्। अत्र तुमर्थे सेसे॰ इति कध्यै प्रत्ययः। (अग्निम्) विद्वांसं वा भौतिकम् (नमोभिः) नमस्कारैरत्नादिभिः सह (सम्राजन्तम्) सम्यक् प्रकाशमीनम् (अध्वराणाम्) राज्यपालनाग्निहोत्रादिशिल्पान्तानां यज्ञानां मध्ये (अश्वम्) मार्ग व्यापिन्नम् (न) इव (त्वा) त्वाम् (वारवन्तम्)। एतद्यास्कमुनिरेवं व्याचष्टे। अश्वमिव त्वा वाल्वन्ते वाला दंशवारणार्था भवन्ति दंशो दशतेः। (निरु०१.२०)॥१॥

अन्वय:-वयं नमोभिर्वारवन्तमश्वं न इवाध्वस्राणां सम्मजन्तं त्वामग्निं वन्दध्यै वन्दितुं प्रवृत्ताः सेवामहे॥१॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कारः। यथा विष्यस्चित्स्विष्णद्यादिगुणैः स्वराज्ये राजते तथैव परमेश्वरः सर्वज्ञत्वादिभिर्गुणैः सर्वत्र प्रकाशते चेति॥ राष्ट्र

पदार्थ:-हम लोग (नमोभि:) नमस्त्रार स्तुति और अन्न आदि पदार्थों के साथ (वारवन्तम्) उत्तम केशवाले (अश्वम्) वेगवान होड़े के (न) समान। (अध्वराणाम्) राज्य के पालन अग्निहोत्र से लेकर शिल्प पर्य्यन्त यज्ञों में (स्प्राजन्तम्) प्रकाशयुक्त (त्वा) आप विद्वान् को (वन्दध्यै) स्तुति करने को प्रवृत्त हुए भये सेवा करते हैं। श्री

भावार्थ:-इस महित्र में उपमालङ्कार है। जैसे विद्वान् स्वविद्या के प्रकाश आदि गुणों से अपने राज्य में अविद्या अन्धकार के जित्रारण कर प्रकाशित होते हैं, वैसे परमेश्वर सर्वज्ञपन आदि से प्रकाशमान है॥१॥

अथाऽपत्यगुणा उपदिश्यन्ते॥

अब अगले मन्त्र में सन्तान के गुण प्रकाशित किये हैं॥

से घा नः सूनुः शर्वसा पृथुप्रगामा सुशेर्वः।

मीढ्वाँ अस्माकं बभूयात्॥२॥

अष्टक-१। अध्याय-२। वर्ग-२२-२४

मण्डल-१। अनुवाक-६। सुक्त-२७

सः। घः। नः। सूनः। शर्वसा। पृथुऽप्रेगामा। सुऽशेर्वः। मी॒ढ्वान्। अस्मार्कम्। बुभूयात्॥२॥

पदार्थ:-(स:) वक्ष्यमाणः (घ) एव। अत्र ऋचि तुनुघमक्षु० (अष्टा०६.३.१३३) विनादीकी (नः) अस्माकम् (सूनुः) कार्यकारी सन्तानः। सूनुरित्यपत्यनामसु पठितम्। (निघं०२३) (शवसा) बलादिगुणेन सह (पृथुप्रगामा) पृथुभिः विस्तृतैर्यानैः प्रकृष्टो गामो गमनं यस्य सः। अत्र सुषां सुलुग्० इति विभक्तेराकारादेशः। (सुशेवः) शोभनं शेवं सुखं यस्मात् सः। शेविमिति सुखनामसु पठितम्। (निघं०३.६) अत्र। इण्शीभ्यां वन्। (उणा०१.१५०) अनेन शीङ्धातोर्वन् प्रत्यवः। (मिद्धवान्) वृष्टिद्वारा सेचकः। अत्र दाश्चान् साह्वान्० (अष्टा०६.१.१२) इति निपाताद् द्वित्वं न (अस्माकम्) पुरुषार्थिनां सुक्रियया (बभूयात्) भवेत्। अत्र वा च्छन्दिस सर्वे विधयो भवन्तीति नियमात् लिटः स्थाने लिङ् तद्वत्कार्यं च। अत्र सायणाचार्य्येण लिटः स्थाने लिङित्युच्चार्य्य तिष्ठां तिष्ठो भवन्तीत्यशुद्धं व्याख्यातम्॥२॥

अन्वय:-यः सूनुः सुपुत्रः शवसा पृथुप्रगामा मीढ्वानस्ति, स्रोमीऽस्माकं पुरुषार्थिना घ एव कार्य्यकारी बभुयात् भवेत्॥२॥

भावार्थ:-यथा विद्यासुशिक्षया धार्मिका विद्वांसः पुत्रो अनेकान्यनुकूलानि कर्माणि संसेव्य पित्रादीनां सुखानि नित्यं सम्पादयन्ति, तथैव बहुगुणकुक्तोऽयमग्निर्विद्यानुकूलरीत्या सम्प्रयोजितः सन्नस्माकं सर्वाणि सुखानि साधयति॥२॥

पदार्थ:-जो (सूनु:) धर्मात्मा पुत्र (शिवसा) अपने पुरुषार्थ बल आदि गुण से (पृथुप्रगामा) अत्यन्त विस्तारयुक्त विमानादि रथों से उत्तम किया से धर्म और शिल्प कार्यों को करने वाला (बभूयात्) हो। इस मन्त्र में सायणाचार्य्य ने लिस् के स्थान में लिङ् लकार कहकर तिङ् को तिङ् होना यह अशुद्धता से व्याख्यान किया है, क्योंकि (तिंडां तिंडां भवन्तीति वक्तव्यम्) इस वार्तिक से तिड़ों का व्यत्यय होता है, कुछ लकारों का व्यत्यय नहीं होता है।। रभा

भावार्थ:-इस मिन्न मिं वार्चकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे विद्या सुशिक्षा से धार्म्मिक सुशील पुत्र अनेक अपने कहे के अनुकूल कामों को करके पिता माता आदि के सुखों को नित्य सिद्ध करता है, वैसे ही बहुत गुण वाला यह भौतिक अग्नि विद्या के अनुकूल रीति से सम्प्रयुक्त किया हुआ हम लोगों के सब सुखों को सिद्ध करता है॥२॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते।

फिर वह कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

स नो दूराच्चासाच्च नि मर्त्यादघायोः। पाहि सदुमिद् विश्वायुः॥३॥

सः। नः। दूरात्। च। आसात्। च। नि। मर्त्यात्। अघुऽयोः। पाहि। सर्दम्। इत्। विश्वऽआयुः॥३॥

पदार्थः-(सः) जगदीश्वरो विद्वान् वा (नः) अस्मानस्माकं वा (दूरात्) विप्रकृष्टात् (च) समुच्चये
(आसात्) समीपात् (च) पुनरर्थे (नि) नितराम् (मर्त्यात्) मनुष्यात् (अघायोः) आत्मनोऽघिमिष्ठत् (सत्रो)
(पाहि) रक्ष (सदम्) सीदन्ति सुखानि यस्मिस्तं शिल्पव्यवहारं देहादिकं वा (इत्) एव (विश्वायुः) विश्वं सम्पूर्णमायुर्यस्मात् सः॥३॥

अन्वयः-स विश्वायुरघायोः शत्रोर्मर्त्याद् दूरादासाच्च नोऽस्मानस्माकं सदौ च निपािह्य सततं रक्षति॥३॥

भावार्थ:-अत्र श्लेषालङ्कार:। मनुष्यैरुपासित ईश्वर: संसेवितो विक्रान् वा युद्धे शत्रूणां सकाशाद् रक्षको रक्षाहेतुर्भूत्वा शरीरादिकं विमानादिकं च संरक्ष्यास्मभ्यं सर्वमासु: सम्पादपति।।३॥

पदार्थ:-(विश्वायु:) जिससे कि समस्त आयु सुख से प्राप्त होती हैं (स:) वह जगदीश्वर वा भौतिक अग्नि (अघायो:) जो पाप करना चाहते हैं, उन (मर्त्याता शित्रुजनों से (दूरात्) दूर वा (आसात्) समीप से (न:) हम लोगों की वा हम लोगों के (सद:) सब सुख रहने जाले शिल्पव्यवहार वा देहादिकों की (नि) (पाहि) निरन्तर रक्षा करता है॥३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों से उपासना किया हुआ ईश्वर वा सम्यक् सेवित विद्वान् युद्ध में शत्रुओं से रक्षा करने वाला वा रक्षा का हैतु ही कर शरीर आदि वा विमानादि की रक्षा करके हम लोगों के लिये सब आयु देता है॥ ३०००

अथाम्निशब्देनेश्वर उपदिश्यते॥

अब अगले मन्त्र में आपि शुब्द से ईश्वर का प्रकाश किया है।।

ड्रममू षु त्वमस्माकं सुनि गायुत्रं नव्यसिम्।

अग्ने देवेषु प्र वीचः

ड्रमम्। ऊम् इति। सु। त्वम्। अस्प्राक्षम्। सुनिम्। गायुत्रम्। नव्यांसम्। अग्ने। देवेषुं। प्र। वोचः॥४॥

पदार्थ:-(इमम्) विश्वमाणम् (ऊ) वितर्के अत्र निपातस्य च इति दीर्घः। (सु) शोभने (त्वम्) सर्वमङ्गलप्रदातेश्वरः (अस्माकम्) मनुष्याणाम् (सनिम्) सनन्ति सम्भजन्ति सुखानि यस्मिन् व्यवहारे तम्। अत्र 'सन' धातोः खिनकृष्यज्यसिवसिवनिसिन् (उणा०४.१४५) अनेनाऽधिकरण 'इः' प्रत्ययः। (गायत्रम्) गृथित्रीप्रमाश्य येषु चतुर्षु वेदेषु तं वेदचतुष्टयम् (नव्यांसम्) अतिशयेन नवो नवीनो बोधो यस्मात्तम् अत्र खोदसो वर्णलोपो वा इत्यनेनेकारलोपश्च। (अग्ने) अनन्तविद्यामय जगदीश्वर (देवेषु) सुष्ट्यादौ प्रण्यात्मसु जातेष्वगिनवाय्वादित्याङ्गिरस्सु मनुष्येषु (प्र) प्रकृष्टार्थे क्रियायोगे (वोचः) प्रोक्तवान्। अत्र 'बच्चे भातोर्वर्तमाने लुङ्डभावश्च॥४॥

अष्टक-१। अध्याय-२। वर्ग-२२-२४

मण्डल-१। अनुवाक-६। सुक्त-२७

अन्वय:-हे अग्ने! त्वं यथा देवेषु नव्यांसं गायत्रं सुसिनं प्रवोचस्तथेममु इति वितर्केऽस्माकमात्मसु प्रविग्धा।४॥

भावार्थ:-हे जगदीश्वर! भवान् यथा ब्रह्मादीनां महर्षीणां धार्मिकाणां विदुषामाद्धीपु सत्यं बीधं प्रकाश्य परमं सुखं दत्तवान्, तथैवास्माकमात्मसु तादृशमेव प्रकाशय यतो वयं विद्वां भेरता श्रेष्ठानि धर्म्मकार्य्याणि सदैव कुर्य्यामेति॥४॥

पदार्थ:-हे (अग्ने) अनन्त विद्यामय जगदीश्वर (त्वम्) सब विद्याओं क्रिन्यदेश करने और सब मङ्गलों के देने वाले आप जैसे सृष्टि की आदि में (देवेषु) पुण्यात्मा अग्नि क्यू आदित्य अङ्गरा नामक मनुष्यों के आत्माओं में (नव्यांसम्) नवीन-नवीन बोध कराने वाला (गण्यत्रम्) गण्यत्री आदि छन्दों से युक्त (सुसिनम्) जिन में सब प्राणी सुखों का सेवन करते हैं, उन चार्रो बेदों का (प्रवोच:) उपदेश किया और अगले कल्प-कल्पादि में फिर भी करोगे, वैसे उसको (अ विविध प्रकार से (अस्माकम्) हमारे आत्माओं में (सु) अच्छे प्रकार कीजिये॥४॥

भावार्थ:-हे जगदीश्वर! आप ने जैसे ब्रह्मा आदि महिष् धार्मिक विद्वानों के आत्माओं में वेद द्वारा सत्य बोध का प्रकाश कर उनको उत्तम सुख दिया वैसे ही हम्मालीगों के आत्माओं में बोध प्रकाशित कीजिये, जिससे हम लोग विद्वान् होकर उत्तम-उत्तम धर्मकार्यों का सदा सेवन करते रहें॥

पुनर्मनुष्यान् प्रति विदुष् कथं वर्त्तिव्यमित्युपदिश्यते॥

फिर मनुष्यों के प्रति विद्वानों को कैसे वर्तना ऋहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया

आ नो भज पर्मेष्वा वाजेषु पध्यमेषु

शिक्षा वस्वो अन्तं मस्यापा २२।।

आ। नुः। भुजु। पुरमेषु आ। वाजेषु। मध्यमेषु। शिक्षी वस्वैः। अन्तमस्य॥५॥

पदार्थ:-(आ) सम्तात् (ने) अस्मान् (भज) सेवस्व (परमेषु) उत्कृष्टेषु (आ) अभ्यर्थे (वाजेषु) सुखप्राप्तिमयेषु युद्धेषूत्तमेष्वपदिषु वा (मध्यमेषु) मध्यमसुखिविशिष्टेषु (शिक्ष) सर्वा विद्या उपिदशे:। अत्र द्वय्योऽतिस्तिङ इति दीर्घ:। (वस्व:) सुखपूर्वकं वसन्ति यैस्तानि वसूनि द्रव्याणि (अन्तमस्य) सर्वेषां दु:खानामन्तं मि्रीते येन युद्धेन तस्य मध्ये॥५॥

अन्वयः-है विद्वेंस्त्वं परमेषु मध्यमेषु वाजेषु वान्तमस्य मध्ये नोऽस्मान् सर्वा विद्या आशिक्षेवं नोऽस्मात् वस्वो वसून्याभज समन्तात्सेवस्व॥५॥

भावार्थ:-एवं यैर्धामिकै: पुरुषार्थिभिर्मनुष्यै: सेवित: सन् विद्वान् सर्वा विद्याः प्राप्य तान् सुर्खिनः कुर्य्यात्। अस्मिन् जगत्युत्तममध्यमिनकृष्टभेदेन त्रिविधा भोगालोका मनुष्याश्च सन्त्येतेषु यथाबुद्धि जनान् विद्यां दद्यात्॥५॥

पदार्थ: - हे विद्वान् मनुष्य (परमेषु) उत्तम (मध्यमेषु) मध्यम आनन्द के देने वाले वा (वाज्रेषु) सुख प्राप्तिमय युद्धों वा उत्तम अन्नादि में (अन्तमस्य) जिस प्रत्यक्ष सुख मिलने वाले संग्राम के बीच में (न:) हम लोगों को (आशिक्ष) सब विद्याओं की शिक्षा कीजिये इसी प्रकार हम लोगों के (वस्व) धन आदि उत्तम-उत्तम पदार्थों का (आभज) अच्छे प्रकार स्वीकार कीजिये॥५॥

भावार्थ:-इस प्रकार जिन धार्मिक पुरुषार्थी पुरुषों से सेवन किया हुआ विद्वान सब विद्याओं को प्राप्त कराके उनको सुख युक्त करे तथा इस जगत् में उत्तम, मध्यम और निकृष्ट भेद से तीन प्रकार के भोगलोक और मनुष्य हैं, इन को यथा बुद्धि विद्या देता रहे॥५॥

पुन: स कीदृश इत्युपदिश्यते।

फिर वह कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

विभक्तासि चित्रभानो सिन्धोरूर्मा उपाक आ

सुद्यो दाशुषे क्षुरुसि॥६॥

विऽभक्ता। असि। चित्रभानो इति चित्रभानो। सिम्धीः। ऊम्मौ। उपाके। आ। सद्यः। दाशुषे। क्षुरुसि॥६॥

पदार्थ:-(विभक्ता) विविधानां पदीश्रानां सुर्थमागकर्ता (असि) वर्तसे (चित्रभानो) यथा चित्रा अद्भुता भानवो विज्ञानादिदीप्तयो यस्य विदुषस्त्रसम्बुद्धौ तथा (सिन्धोः) समुद्रस्य (ऊमौँ) तरङ्ग इव (उपाके) समीपे (आ) सर्वतः (अदः) श्लीघ्रम् (दाशुषे) विद्याग्रहणाऽनुष्ठानकृतवते मनुष्याय (क्षरिस) वर्षसि॥६॥

अन्वय:-यथा हे चित्रभाने विविधविद्यायुक्त विद्वस्तवं सिन्धोरूमीं जलकणविभाग इव सर्वेषां पदार्थानां विद्यानां विभवतामि, दाशुष उपाके सत्योपदेशेन बोधान् सद्य आक्षरिस समन्ताद्वर्षिस तथा त्वं भाग्यशाली विद्वानस्माभि: सत्कर्तव्योऽसि॥६॥

भावार्थः भाव वाकुलुप्तोपमालङ्कारः। यथा समुद्रस्य जलकणाः पृथक् भूत्वा आकाशं प्राप्यैकीभूत्वा अभिवर्णन्त यथा विद्वान् विद्याभिः सर्वान् पदार्थान् विभज्यैतान् पुनः पुनर्मनुष्यात्मसु प्रकाशयेत् तथा अभ्यक्षेतान् पुनः पुनर्मनुष्यात्मसु प्रकाशयेत् तथा अभिवर्णभाः कथं नानुष्ठातव्यम्॥६॥

पदार्थ:-जैसे हे (चित्रभानो) विविधविद्यायुक्त विद्वान्! मनुष्य आप (सिन्धोः) समुद्र की (ऊर्मी) तरंशों में जर्ल के बिन्दु कणों के समान सब पदार्थ विद्या के (विभक्ता) अलग-अलग करने वाले अस्मि) है और (दाशुषे) विद्या का ग्रहण वा अनुष्ठान करने वाले मनुष्य के लिये (उपाके) समीप सत्य

अष्टक-१। अध्याय-२। वर्ग-२२-२४

मण्डल-१। अनुवाक-६। सूक्त-२७

बोध उपदेश को (सद्य:) शीघ्र (आक्षरिस) अच्छे प्रकार वर्षाते हो, वैसे भाग्यशाली विद्वान् आप हम सब लोगों के सत्कार के योग्य हैं॥६॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे समुद्र के जलकण अलग हुए आकार की प्राप्त होकर वहाँ इकट्ठे होके वर्षते हैं, वैसे ही विद्वान् अपनी विद्या से सब पदार्थों का विभाग करके उनका बार-बार मनुष्यों के आत्माओं में प्रवेश किया करते हैं।।६।।

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में क्रिया है।।

यमंग्ने पृत्सु मर्त्यमवा वाजेषु यं जुनाः।

स यन्ता शर्श्वतीरिषं:॥७॥

यम्। अग्ने। पृऽत्सु। मर्त्यम्। अवाः। वाजेषु। यम्। जुनाः। सः। यन्तो प्रश्नेतीः। इषः॥७॥

पदार्थ:-(यम्) धार्मिकं शूरवीरम् (अग्ने) स्वबल्वेज्सा प्रकाशमान (पृत्सु) पृतनासु। पदादिषु मांस्पृत्स्नूनामुपसंख्यानम्। (अष्टा॰वा॰६.१.६३) इति अभिकेच पृतनाशब्दस्य पृदादेश:। (मर्त्यम्) मनुष्यम् (अवाः) रक्षेः। अयं लेट्प्रयोगः। (वाजेषु) संग्रामेषु (यम्) योद्धारम् (जुनाः) प्रेरयेः। अयं 'जुन गतौ' इत्यस्य लेट्प्रयोगः। (सः) मनुष्यः (यन्ता) शत्रूणां निर्ग्रहीता (शश्चतीः) अनादिस्वरूपाः (इषः) इष्यन्ते यास्ताः प्रजाः। अत्र कृतो बहुलम् इति क्रिमिण किष्णू॥७॥

अन्वय:-हे जगदीश्वर! त्वं यं मर्ल्य पुरस्ववा पूर्सियं च वाजेषु जुनाः प्रेरयेर्य इमाः शश्वतीः प्रजाः सततमवरक्षेरस्मात् कारणात् स भवानस्मान्ने सदा भन्ता भवत्विति वयं प्रतिजानीमः॥७॥

भावार्थ:-यथा यो जगदीश्वर एवोपादिकालाद् वर्तमानायाः प्रजाया रक्षारचनाव्यवस्थाकारकोऽस्ति, तथा यो मनुष्य एतं सर्वव्यापिनं सर्वतोऽभिरक्षकं परमेश्वरमुपास्यैवं विदधाति तस्य नैव कदाचित्पीडापराजयौ भवत इति।।७॥

पदार्थ:-हे (अम्) सेनाध्यक्ष! आप (यम्) जिस युद्ध करने वाले (मर्त्यम्) मनुष्य को (पृत्सु) सेनाओं के बीच (अवा:) रक्षा को (यम्) जिस धार्मिक शूरवीर को (वाजेषु) संग्रामों में (जुना:) प्रेरें जो इस (शश्वती:) अन्गदि काल से वर्त्तमान (इष:) प्रजा की निरन्तर रक्षा करें, इस कारण से (स:) सो आप हमारा (यन्ता) नियमों में चलाने वाला नायक हूजिये, इस प्रकार हम प्रतिज्ञा करते हैं॥७॥

भाषार्थ: जैसे जगदीश्वर जो अनादि काल से वर्त्तमान प्रजा की रक्षा, रचना और व्यवस्था करने वाला है, वैसे जो मनुष्य इस सर्वव्यापी सब प्रकार की रक्षा करने वाले परमेश्वर की उपासना कर यथोकी काम करता है, उसको न कभी पीड़ा वा पराजय होता है॥७॥

पुन: सः कीदृश इत्युपदिश्यते॥

३१८

ऋग्वेदभाष्यम्

फिर वह कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

निकरस्य सहन्त्य पर्येता कर्यस्य चित्।

वाजो अस्ति श्रुवाय्यः॥८॥

नर्कि:। अस्य। सहन्त्य। पुरिऽएता। कर्यस्य। चित्। वार्जः। अस्ति। श्रुवार्यः॥८॥

पदार्थ:-(निकः) धर्ममर्यादा या नाक्रमिता। निकरिति सर्वसमानीयेषु पद्धितम्। (निषं ३.१२) अनेन क्रमणनिषेधार्थो गृह्यते (अस्य) सेनाध्यक्षस्य (सहन्त्य) सहनशील विद्वन् (पर्यतेष) सर्वतो अनुग्रहीता (कयस्य) चिकेति जानाति योद्धं शत्रून् पराजेतुं यः स कयस्तस्य। अत्र सायणाचार्येण यकारोपजनश्छान्दस इति भ्रमादेवोक्तम्। (चित्) एव (वाजः) संग्रामः (अस्ति) भवति (श्रवाय्यः) श्रोतुमर्हः। अत्र श्रुदक्षिस्पृहि० (उणा०३.९४) अनेनाय्य प्रत्ययः॥८।

अन्वय:-हे सहन्त्य सहनशील विद्वन्निकः पर्येता त्वं यस्यास्य कन्नस्य धर्मात्मनो वीरस्य श्रवाययो वाजोऽस्ति, तस्मै सर्वमभीष्टं पदार्थं दद्या इति नियोज्यते भवानस्माभिः॥४॥

भावार्थ:-यथा नैव कश्चिद् विद्वानप्यनन्तशुभगुणस्याप्रमेयस्यार्क्रमितव्यस्य परमेश्वरस्य क्रमणं परिमाणं कर्त्तुमर्हति यस्य सर्वं विज्ञानं निर्भान्तमस्ति, तथेव येनैवं प्रवृत्त्यते स एव सर्वेर्मनुष्ये राजकार्य्याधिपतिः स्थापनीयः॥८॥

पदार्थ:-हे (सहन्त्य) सहनशील विद्वान (चिक्क:) औं धर्म की मर्यादा उल्लङ्घन न करने और (पर्येता) सब पर पूर्ण कृपा करने वाले आप (यस्य) जिस्न (कयस्य) युद्ध करने और शत्रुओं को जीतने वाले शूरवीर पुरुष का (श्रवाय्य:) श्रवण करने योग्य) (वाज:) युद्ध करना (अस्ति) होता है, उसको सब उत्तम पदार्थ सदा दिया कीजिये, इस प्रकार आप का नियोग हम लोग करते हैं॥८॥

भावार्थ:-जैसे कोई भी जीव जिस अनन्त शुभ गुणयुक्त परिमाण सहित सब से उत्तम परमेश्वर के गुणों की न्यूनता वा उसका प्रिमाण करने को योग्य नहीं हो सकता, जिसका सब ज्ञान निर्भ्रम है, वैसे जो मनुष्य वर्त्तता है, वही सब राजकार्यों का स्थामी नियत करना चाहिये॥८॥

^Vपुन: स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

स वाजं विश्वचर्षिण्यर्विद्धरस्तु तरुता।

विष्ट्रेभिरस्त सनिता॥ ९॥

सः। व्यज्मे विश्वऽचेर्षणिः। अर्वत्ऽभिः। अस्तु। तस्ता। विप्रेभिः। अस्तु। सर्निता॥९॥

पदार्थ:-(सः) सेनाध्यक्षः (वाजम्) संग्रामम् (विश्वचर्षणिः) विश्वे सर्वे चर्षणयो मनुष्या रक्ष्या स्य सेर्रा अत्र कृषेरादेश्च चः। (उणा०२.१००) अनेनानि प्रत्यय आदेश्चकारादेशश्च। (अर्वद्धिः) अष्टक-१। अध्याय-२। वर्ग-२२-२४

मण्डल-१। अनुवाक-६। सुक्त-२७

सेनास्थैरश्वादिभिः सेनाङ्गैः। अर्वा इत्यश्चनामसु पठितम्। (निघं०१.१४) (अस्तु) भवतु (तरुता) तर्ता तारियता पारंगमियता। ग्रिसितस्किभितस्तिभि० (अष्टा०७.२.३४) अनेनायं निपातितः। (विग्रिभिः) मेधाविभिः सह। अत्र बहुलं छन्दिस इति भिस ऐस् न। (अस्तु) भवतु (सिनता) ज्ञानस्य सुख्यस्य विभक्ता॥९॥

अन्वय:-यो विश्वचर्षणिस्तरुता सेनाध्यक्षोऽस्माकं सेनायां विप्रेभिनीरैरर्वद्भिर्द्धभिः सिह्नाः सन्नो वाजं विजयप्रदः शत्रूणां पराजयकृदस्तु भवेत्, स एवास्माकं मध्ये सेनापितरस्तु॥९॥

भावार्थ:-मनुष्यैर्य: सर्वदु:खेभ्य: पारं गमयिता युद्धे विजयप्रापको युद्धकुशलो धार्मिको विद्वान् भवेत्, स एव न: सेनास्वामी भवतु॥९॥

पदार्थ:-जो (विश्वचर्षणि:) जिसके सब मनुष्य रक्षा के योग्य (तस्तु) शत्रुनिमित्तक दु:खों के पार पहुंचने-पहुंचाने वाला (सिनता) ज्ञान और सुख का विभाग करके देनेहारा सेनापित हमारी सेना में (विप्रेभि:) बुद्धिचातुर्ययुक्त पुरुष (अर्वद्धि:) घोड़े आदि से सिहत हो हमको (वाजम्) युद्ध में विजय की प्राप्ति और शत्रुओं का पराजय करने हारा सेनापित हैं, वही हम्मारे बीच में सेना स्वामी (अस्तु) हो॥९॥

भावार्थ:-जो मनुष्यों को सब दु:खरूपी स्गिर से पुर करने और युद्ध में विजय देने वाला विद्वान् है, वही अच्छे विद्वानों के समागम से सेन् का अधिप्रति होने योग्य है॥९॥

पुनः म कीदृश् इन्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा है, इस विश्विक के प्रपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

जराबोध तद्विविड्ढि विशेविशे युज्ञियाय।

स्तोमं कुद्राय दृशीकम् १०॥२३॥

जरांऽबोध। तत्। विविद्धिः विशेऽविशे। युज्ञियाय। स्तोमंम्। रुद्रायं। दृशींकम्॥ १०॥

पदार्थ:-(जराबोध) जरेषा गुणस्तुत्या बोधो यस्य सैन्यनायकस्य तत्सम्बुद्धौ (तत्) तस्मात् (विविड्ढि) व्याप्नुहि। अत्र वा छन्दिस सर्वे विधयो भवन्ति इति नियमात्। निजां त्रयाणां गुण:० (अष्टा०७.४.७५) अनेनाभ्यासस्य गुणूतिषेधः । (विशिविशे) प्रजायै प्रजायै (यिज्ञयाय) यज्ञकर्मार्हतीति यिज्ञयो योद्धा तस्मै। अत्र तत्कर्मार्हतीत्युपसंख्यानस्। (अष्टा०वा०५.१.७१) अनेन वार्त्तिकेन यज्ञशब्दाद् घः प्रत्ययः (स्तोमम्) स्तुतिसमूहम् (फद्राय) रोद्रकाय (दृशीकम्) द्रष्टुमर्हम्। अत्र बाहुलकादौणादिक ईकन् प्रत्ययः। किच्च। यास्कमुनिरिमं मन्त्रमेवं

. <mark>'न'</mark> इत्यर्थ:। सं०

समाचष्टे। जरा स्तुतिर्जरते: स्तुतिकर्मणस्तां बोधय तया बोधियतरिति वा। तिद्वविट्टि तत्कुरु। मनुष्यस्य मनुष्यस्य वा यज्ञियाय^३ स्तोमं रुद्राय दर्शनीयम्। (निरु०१०.८)॥१०॥

अन्वय:-हे जराबोध सेनाधिपते! त्वं यस्माद् विशेविशे यज्ञियाय रुद्राय दृशीकं स्तोसिविहिष्टि तत्तस्मान्मानार्होऽसि॥१०॥

भावार्थ:-अत्र पूर्णोपमालङ्कार:। नैव धनुर्वेदविदो गुणश्रवणेन विनाऽस्य ब्रोध: सम्भविति, यः प्रजासुखाय तीक्ष्णस्वभावान् शत्रुबलहद्भृत्यान् सुशिक्ष्य रक्षति, स एव प्रजापालो भवितुसर्हति॥१०)

पदार्थ:-हे (जराबोध) गुण कीर्त्तन से प्रकाशित होने वाले सेनापित आप जिस्से (विशिविशे) प्राणी-प्राणी के सुख के लिये (यज्ञियाय) यज्ञकर्म के योग्य (क्द्राय) दुष्टों के रूलाने वाले के लिये सब पदार्थों को प्रकाशित करने वाले (दृशीकम्) देखने योग्य (स्तोप्रम्) स्तुतिसमूह गुणकीर्त्तन को (विविड्ढि) व्याप्त करते हो, (तत्) इससे माननीय हो॥१०॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में पूर्णोपमालङ्कार है। युद्धविद्या के जानने वाले के गुणों को श्रवण करे विना इस का ज्ञान नहीं होता और जो प्रजा के सुख के लिये अतितीक्ष्ण स्वभाव वाले शत्रुओं के बल के नाश करनेहारे भृत्यों को अच्छी शिक्षा दे कर रखता है, वहीं प्रणापालन में योग्य होता है॥१०॥

पुनभौतिकगुणा उपदिश्यन्ता।

फिर अगले मन्त्र में भौतिक अपि के गुण प्रकाशित किये हैं॥

स नौ महाँ अनिमानो धूमकेतुः पुरुष्टिन्दः। धिये वार्जाय हिन्वतु॥ ११॥

सः। नः। महान्। अनिऽमानः। धूमऽकेतुः। पुरुऽचन्द्रः। धिये। वार्जायः। हिन्वुतुः॥ ११॥

पदार्थ:-(सः) भौतिकोऽनिः (मः) अस्मान् (महान्) महागुणविशिष्ट (अनिमानः) अविद्यमानं निमानं परिमाणं यस्य सः (धूमकेतुः) धूमः केतुर्ध्वजावद्यस्य सः (पुरुश्चन्द्रः) पुरूणां बहूनां चन्द्र आह्णादकः। अत्र हस्वाच्चन्द्रासरपदे मन्त्रे (अष्टा॰६.१.१५१) अनेन सुडागमः। (धिये) कर्मणे (वाजाय) वेगाय (हिन्वत् प्रिणक्तुम् अत्र लडर्थे लोडन्तर्गतो ण्यर्थः॥११॥

अन्वय:-मनुष्यैर्यतो वं भूमकेतुः पुरुश्चन्द्रोऽनिमानो महानग्निरस्ति, स धिये वाजाय नोऽस्मान् हिन्वतु प्रीणयेत्, तस्मादेतस्त्रासाधनं कार्यम्॥११॥

३. <mark>वॅ० चन्मालये पु</mark>द्रित निरुक्तस्य तृतीयावृत्तौ <mark>'बोधय'</mark> इत्यस्य स्थाने <mark>'बोध' 'यज्ञियाय'</mark> इत्यस्यस्थाने च <mark>'यजनाय'</mark> इति पाठो चर्तते। स्रे। अष्टक-१। अध्याय-२। वर्ग-२२-२४

मण्डल-१। अनुवाक-६। सूक्त-२७

भावार्थ:-यः सर्वथोत्कृष्टः केनापि परीच्छेत्तुमनर्हः सर्वाधारः सर्वानन्दप्रदः विज्ञानधनो जगदीश्वरोऽस्ति, येन महागुणयुक्तोऽयमग्निर्निर्मितः स एव शुभे कर्मणि शुद्धे विज्ञान प्रेरयत्विति॥११॥

पदार्थ:-मनुष्यों को योग्य है कि जो (धूमकेतु:) जिसका धूम ध्वजा के स्रापान (पुरुश्चन्द्र:) बहुतों को आनन्द देने (अनिमान:) जिसका निमान अर्थात् परिमाण नहीं है (महार्द्ध) अत्यन्त पुणयुक्त भौतिक अग्नि है (स:) वह (धिये) उत्तम कर्म वा (वाजाय) विज्ञानरूप वेग के लिये (न:) हम लोगों को (हिन्वतु) तृप्त करता है॥११॥

भावार्थ:-जो सब प्रकार श्रेष्ठ किसी के छिन्न-भिन्न करने में नहीं अता, सब आधार, सब आनन्द का देने वा विज्ञानसमूह परमेश्वर है और जिसने महागुण युक्त भौतिक अग्न रची है, वही उत्तम कर्म वा शुद्ध विज्ञान में हम लोगों को सदा प्रेरणा करे॥११॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते।।

फिर वह कैसा है, इस विषय का उपदेश अपूले मुद्रा में किया है॥

स रेवाँ ईव विश्पित्देव्यः केतुः शृणोतु नः।

उक्थैर्ग्निर्वृहद्भानु:॥ १२॥

सः। रेवान्ऽईव। विश्पतिः। दैव्यः। केतुः। श्रूणोतु। त्रः। उक्थः। अग्निः। बृहत्ऽभानुः॥१२॥

पदार्थ:-(स:) श्रीमान् (रेवान्ड्व) महाधेनाढ्य इव। अत्र रैशब्दान्मतुप्। रयेर्मतौ बहुलम्। (अष्टा०वा०६.१.३७) इति वार्त्तिकेन सम्प्रसारणं छन्दसीरः (अष्टा०८.२.१५) इति वत्वम्। (विश्पितः) विशां प्रजानां पितः पालनहेतुः। अत्र वा छन्दिस सर्वे विधयो भवन्ति इति व्रश्चभ्रस्जसृज० (अष्टा०८.२.३६) अनेन षकारादेशो न। (देव्यः) देवेषु कुशलः। अत्र देवाद्यवजौ। (अष्टा०वा०४.१.८५) अनेन प्राग्दीव्यतीयकुशलेऽर्थे (देवशब्दाद्यञ् प्रत्ययः। (केतुः) रोगदूरकरणे हेतुः (शृणोतु) श्रावयतु वा। अत्र पक्षेऽन्तर्गतो ण्यर्थः (वः) अस्मान्यम् (उक्थैः) वेदस्तोत्रैः सुखप्रापकः (बृहद्धानुः) बृहन्तो भानवः प्रकाशा यस्य सः॥१२॥

अन्वयः-त्रे विद्वँस्त्व यो दैव्यः केतुर्विश्पतिर्बृहद्भानू रेवान् इवाग्निरस्ति तमुक्थैः शृणोतु नोऽस्मभ्यं श्राकृषतु। १२॥

भाषार्थः अत्रोपमालङ्कारः। यथा पूर्णधनो विद्वान् मनुष्यो धनभोगैः सर्वान् मनुष्यान् सुखयित, सर्वेषां वार्ताः प्रीत्या शृणोति, तथैव जगदीश्वरोऽपि प्रीत्या सम्पादितां स्तुतिं श्रुत्वा तान् सदैव सुख्यत्वीति १२॥

पदार्थ:-हे विद्वान् मनुष्य! तुम जो (दैव्यः) देवों में कुशल (केतुः) रोग को दूर करने में हितु (विश्पितः) प्रजा को पालने वाला (वृहद्धानुः) बहुत प्रकाशयुक्त (रेवान् इव) अत्यन्त धन वाले के समान (अग्निः) सबको सुख प्राप्त करने वाला अग्नि है (उक्थैः) वेदोक्त स्तोत्रों के साथ सुना जाता है। उसको (शृणोतु) सुन और (नः) हम लोगों के लिये सुनाइये॥१२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे पूर्ण धन वाला विद्वान् मनुष्य धन भोगने योग्य पदार्थों से सब मनुष्यों को सुख संयुक्त करता और सब की वार्त्ताओं को सुनता है, वैसे ही जगदीश्वर सबकी की हुई स्तुति को सुनकर उनको सुखसंयुक्त करता है॥१२॥

अथ सर्वेषां सत्कार: कर्त्तव्य इत्युपदिश्यते॥

अब अगले मन्त्र में सब का सत्कार करना अवश्य है, इस बात्र को प्रकाश किया है।।

नमी मुहद्भ्यो नमी अर्भकेभ्यो नमो युर्वभ्यो नमी आश्रानेभ्येरी

यजाम देवान् यदि शुक्नवामु मा ज्यायसुः शंसुमा बृक्षि देवारा। १३॥ २४॥

नर्मः। महत्रभ्यः। नर्मः। अर्भकेभ्यः। नर्मः। युर्वऽभ्यः। नर्मः। आर्थिग्रेभ्यः। यजीम। देवान्। यदि। शुक्नवीम। मा। ज्यार्यसः। शंसम्। आ। वृक्षि। देवाः॥१३॥

पदार्थ:-(नमः) सत्करणमत्रं वा। नम इत्यन्नसम्सु पठितम्। (निघं०२.७) (महद्भ्यः) पूर्णिवद्यायुक्तेभ्यो विद्वद्भ्यः (नमः) प्रीणनाय (अर्थक्रभ्यः) अल्पगुणेभ्यो विद्यार्थिभ्यः (नमः) सत्काराय (युवभ्यः) युवावस्थया बिलिष्ठभ्यो विद्वद्भयः (नपः) सेवायै (आशिनेभ्यः) सकलविद्याव्यापकेभ्यः स्थिविरेभ्यः (यजाम) दद्याम (देवान्) विद्वष्यः (चिद्वः) सामर्थ्याऽनुकूलविचारे (शक्नवाम) समर्था भवेम (मा) निषेधार्थे (ज्यायसः) विद्याशुभृगुणेज्येष्ठान् (शसम्) शंसन्ति येन तं स्तुतिसमूहम् (आ) समन्तात् (वृक्षि) वर्जयेयम्। अत्र 'वृजी वर्जन' इत्यस्माल्लिडर्थे लुङ् छन्दस्युभयथा इति सार्वधातुकाश्रयणादिण् न। वृजीत्यस्य सिद्धे सित सायणाचार्यण ओवश्चू इत्यस्य व्यत्ययं मत्त्वा प्रमादादेवोक्तिमिति (देवाः) देवयन्ति प्रकाशयन्ति विद्यास्त्रसम्बोधने॥१३॥

अन्वय:-हे देव बिहांसो वयं महद्भयोऽत्रं यजाम दद्यामैवमर्भकेभ्यो नमो युवभ्यो नम आशिनेभ्यश्च नमो ददन्ती बयं यदि शक्नवाम ज्यायसो देवानायजाम समन्ताद् विद्यादानं कुर्यामैवं प्रतिजनोऽहमेतेषां श्रांसम्मावृश्चि कदाचिन्मा वर्जयेयम्॥१३॥

भावार्थः अत्रे मनुष्यैर्निरिभमानत्वं प्राप्यान्नादिभिः सर्वे सत्कर्त्तव्या इतीश्वर उपदिशति यावत्स्वसार्मर्थ्यं ताष्ट्रद्विषां सङ्गसत्कारौ नित्यं कर्त्तव्यौ नैव कदाचित्तेषां निन्दा कर्त्तव्येति॥१३॥

पूर्वेणाग्न्यर्थप्रतिपादनस्य बोद्धारो विद्वांस एव भवन्तीत्यस्मिन् सूक्ते प्रतिपादनात् षड्विशसुक्तार्थेन सहास्य सप्तविंशसूक्तार्थस्य सङ्गतिरस्तीति बोध्यम्।

इति प्रथमस्य द्वितीये चतुर्विंशो वर्गः।

अष्टक-१। अध्याय-२। वर्ग-२२-२४

मण्डल-१। अनुवाक-६। सुक्त-२७

प्रथममण्डले षष्ठेऽनुवाके सप्तविंशं सूक्तं च समाप्तम्॥

पदार्थ:-हे (देवा:) सब विद्याओं को प्रकाशित करने वाले विद्वानो! हम लोग (महद्भार) पूर्ण विद्यायुक्त विद्वानों के लिये (नम:) सत्कार अन्न (यजाम) करें और दें (अर्भकेभ्य:) थोड़े पूर्ण लें विद्यार्थियों के (नम:) तृप्ति (युवभ्य:) युवावस्था से जो बल वाले विद्वान् हैं उनके लिये (नम:) सत्कार (आशिनेभ्य:) समस्त विद्याओं में व्याप्त जो बुड्ढे विद्वान् हैं, उनके लिये (नम:) सेवापूर्वक रेते हुए (यदि) जो सामर्थ्य के अनुकूल विचार में (शक्नवाम) समर्थ हों तो (ज्यायस्) विद्या आदि उत्तम गुणों से अति प्रशंसनीय (देवान्) विद्वानों को (आयजाम) अच्छे प्रकार विद्या गृहण करें, इसी प्रकार हम सब जने (शंसम्) इनकी स्तुति प्रशंसा को (मा वृक्षि) कभी न काटें॥१३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में ईश्वर का यह उपदेश है कि मनुष्यों की चोहिये अभिमान छोड़कर अन्नादि से सब उत्तम जनों का सत्कार करें अर्थात् जितना धन पदार्थ भादि उत्तम, बातों से अपना सामर्थ्य हो उतना उनका संग करके विद्या प्राप्त करें, किन्तु उनकी कभी निन्दा ने करें।।१३॥

पिछले सूक्त में अग्नि का वर्णन है उसको अच्छे प्रकार जोनेन वाले विद्वान् ही होते हैं, उनका यहाँ वर्णन करने से छब्बीसवें सूक्तार्थ के साथ इस स्नाईसवें सूक्त की सङ्गति जाननी चाहिये।

यह पहले अष्टक में दूसरे अध्याय में चौबीसवां वर्ग और पहिल मण्डल में छठे अनुवाक में सत्ताईसवां सूक्त समान्त हुआ। २७॥ अथ नवर्चस्याष्टाविंशस्य सूक्तस्याजीगर्तिः शुनःशेप ऋषिः। इन्द्रयज्ञसोमा देवताः। १-६ अनुष्टुप् ७-९ गायत्री च छन्दसी। १-६ गान्धारः ७-९ षड्जश्च स्वरौ॥

कर्मानुष्ठात्रा जीवेन यद्यत्कर्त्तव्यं तदुपदिश्यते॥

अब अट्ठाईसवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके पहिले मन्त्र में कर्म के अनुष्ठान करने वाले जीव को जो-जो करना चाहिये, इस विषय का उपदेश किया है।।

यत्र ग्रावां पृथुबुध्न ऊर्ध्वो भवति सोतेवे। उलुर्खलसुतानामवेद्विन्द्र जल्गुलः॥ १॥

यत्रं। ग्रावां। पृथुऽबुंध्नः। ऊर्ध्वः। भवति। सोतेवे। उलूखंलऽसुतानाम्। अवे। इत्। ऊम् इतिं। इन्द्रः। जुल्गुलुः॥ १॥

पदार्थ:-(यत्र) यस्मिन् यज्ञव्यवहारे (ग्रावा) पाषाणः (पृथुकुद्धः) पृथुमहद् बुध्नं मूलं यस्य सः (अर्धः) पृथिव्याः सकाशात् किंचिदुत्रतः (भवित्) (स्रोतवे) युविद्योषधीन् सारं निष्पादयित्। अत्र तुमर्थे सेसेनसे॰ इति सुञ् धातोस्तवेन् प्रत्ययः। (उल्रूखलसुतानाम्) बल्खन् स्ता निष्पादिताः पदार्थास्तेषाम् (अव) रक्ष (इत्) एव (उ) वितर्के (इन्द्र) ऐश्वर्यप्राप्तिणे तिकामीनुष्ठातर्मनुष्य (जल्गुलः) अतिशयेन गृणीहि। अत्र 'गृ शब्दे' इत्यस्माद्यङ्लुगन्ताल्लेट्। बहुलं कुन्दिसः इत्युपधाया उत्वं च॥१॥

अन्वयः-हे इन्द्र यज्ञकर्मानुष्ठातर्मनुष्य त्व यत्र पूथुनुध्न ऊर्ध्वो ग्रावा धान्यानि सोतवे अभिषोतुं भवति, तत्रोलूखलसुतानां पदार्थानां ग्रहणं कृत्वा तान् सदाऽव उ इति वितर्के तमुलूखलं युक्त्या धान्यसिद्धये जल्गुलः पुनः पुनः शब्दय॥ ग्रा

भावार्थ:-ईश्वर उपदिशति हे मनुष्या यूर्य यवाद्योषधीनामसारत्यागाय सारग्रहणाय स्थूलं पाषाणं यथायोग्यं मध्यगर्तं कृत्वा निवेशम्बत् से च भूमितलात् किञ्चिद्ध्वं स्थापनीयो येन धान्यसारिनस्सरण यथावत् स्यात्, तत्र यवादिकं स्थ्रापयित्वा मुस्लेन हत्वा शब्दयतेति॥१॥

पदार्थ:-हे (इन्द्र) ऐश्वर्षयुक्त कर्म के करने वाले मनुष्य! तुम (यत्र) जिन यज्ञ आदि व्यवहारों में (पृथुबुध्न:) बड़ी जड़ कि (अर्ब्ध) जो कि भूमि से कुछ ऊंचे रहने वाले (ग्रावा) पत्थर और मुसल को (सोतवे) अन्न आदि कूटने के लिये (भवित) युक्त करते हो, उनमें (उलूखलसुतानाम्) उखली मुशल के कूटे हुए पदार्थ्वों को ग्रहण करके उनकी सदा उत्तमता के साथ रक्षा करो (3) और अच्छे विचारों से युक्ति के साथू पदार्थ सिद्ध होने के लिये (जल्गुल:) इस को नित्य ही चलाया करो॥१॥

भ्रावार्धः ईश्वर उपदेश करता है कि हे मनुष्यो! तुम यव आदि ओषधियों के असार निकालने और सार लेने के लिये भारी से पत्थर में जैसा चाहिये, वैसा गड्ढा करके उसको भूमि में गाड़ो और वह भूमि से कुछ ऊंचा रहे, जिससे कि अनाज के सार वा असार का निकालना अच्छे प्रकार बने, उसमें यव आदि अने स्थापन करके मुसल से उसको कूटो॥१॥

मण्डल-१। अनुवाक-६। सूक्त-२८

पुनस्ते कीदृशा इत्युपदिश्यते॥

फिर वे कैसे हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

यत्र द्वाविव जुघनधिषवुण्या कृता।

उलूर्खलसुतानामवेद्विन्द्र जल्गुलः॥२॥

यत्रं। द्वौऽइंव। ज्ञघनां। अधिऽसवन्यां। कृता। उलूर्खलऽसुतानाम्। अवं। इत्। ऊम् इति। इन्द्र। जुल्गुलुः॥२॥

पदार्थ:-(यत्र) यस्मिन् व्यवहारे (द्वाविव) उभे यथा (जघन्) हरूणी जघनं जङ्गन्यते:। (निरु०९.२०) अत्र हन्तेः शरीरावयवे द्वे च। (उणा०५.३२) अनेमच्य प्रत्यया द्वित्वं सुपां सुलुग्० इति त्रिषु विभक्तेराकारादेशश्च। (अधिषवण्या) अधिगतं सुन्वन्ति याभ्या ते अधिषवणी तयोर्भवे। अत्र भवे छन्दिस (अष्टा०४.४.११०) इति यत् (कृता) कृते (उलूखलसुनानाम्) उल्लूखलेन शोधितानाम् (अव) प्राप्नुहि (इत्) एव (उ) वितर्के (इन्द्र) अन्तःकरणबहिष्करणशरीरादिसाधनेऽश्वर्यवन् मनुष्य (जल्गुलः) अतिशयेन शब्दय। सिद्धिः पूर्ववत्॥२॥

अन्वय:-हे इन्द्र! विद्वंस्त्वं यत्र द्वे जङ्घे इब अधिप्रवण्ये फलके कृते भवतस्ते सम्यक् कृत्वोलूखलसुतानां पदार्थानां सकाशात् सारमव प्रप्नुहि उ वितर्के इत् तदेव जल्गुलः पुनः पुनः शब्दय॥२॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। मनुष्ट्रेर्यथा द्वाप्यामुरुभ्यां गमनादिका क्रिया निष्पाद्यते, तथैव पाषाणस्याध एका स्थूला शिला स्थापनार्था द्वितीया हस्तेनोपरि पेषणार्था कार्ये ताभ्यामोषधीनां पेषणं कृत्वा यथावद्भक्षणादि संसाध्य भक्षुणीयसिदमिष-मुसलोलूखलवद् द्वितीयं साधनं रचनीयमिति॥२॥

पदार्थ: - हे (इन्द्र) भीतन बाहर के शरीर साधनों से ऐश्वर्य वाले विद्वान् मनुष्य! तुम (द्वाविव) (जधना) दो जंघाओं के समाम (यत्र) जिस अवहार में (अधिषवण्या) अच्छे प्रकार वा असार अलग-अलग करने के पात्र अर्थात् शिलबट्टे होते हैं, उनको (कृता) अच्छे प्रकार सिद्ध करके (उलूखलसुतानाम्) शिलबट्टे से मुद्ध किये हुए पदार्थों के सकाश से सार को (अव) प्राप्त हो (उ) और उत्तम विचार से (इत्) उसी को (जल्गुल:) बार-बार पदार्थों पर चला॥२॥

भावार्ष:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्यों को योग्य है कि जैसे दोनों जांघों के सहाय से मार्ग का चलना-सलाना सिद्ध होता है, वैसे ही एक तो पत्थर की शिला नीचे रक्खें और दूसरा ऊपर से पीसने क्रे लिये बहुन जिसको हाथ में लेकर पदार्थ पीसे जायें, इनसे औषि आदि पदार्थों को पीसकर यथावित भस्य आदि पदार्थों को सिद्ध करके खावें। यह भी दूसरा साधन उखली मुसल के समान बनाना च्याहिये। रा

३२६

ऋग्वेदभाष्यम्

अथेयं विद्या कथं ग्राह्येत्युपदिश्यते॥

अब अगले मन्त्र में यह विद्या कैसे ग्रहण करनी चाहिये, इस विषय का उपदेश किया है।।

यत्र नार्यपच्यवमुपच्यवं च शिक्षते।

उलुखंलसुतानामवेद्विन्द्र जलाुल:॥३॥

यत्रं। नारीं। अपुऽच्यवम्। उपुऽच्यवम्। च। शिक्षंते। उलूर्खलसुतानाम्। अवं। इत्। कुम् इति। इन्द्र। जुल्गुलुः॥३॥

पदार्थ:-(यत्र) यस्मिन् कर्मणि (नारी) नरस्य पत्नी गृहमध्ये (अपच्यवम्) त्यामम् (उपच्यवम्) प्रापणम्। च्युङ् गतावित्यस्य प्रयोगौ (च) तत् क्रियाकरणशिक्षादेः (प्रमुख्ये (शिक्षते) ग्राहयति (उलूखलमुतानाम्) उलूखलेनोत्पादितानाम् (अव) जानीहि (इत् एवं उ) जिज्ञासने (इन्द्र) इन्द्रियाधिष्ठातर्जीव (जल्गुलः) शृणूपदिश च। सिद्धिः पूर्ववत्॥३॥

अन्वय:-हे इन्द्र! त्वं यत्र नारीकर्मकारीभ्य उल्लुखलसुतानार्मपच्यवमुपच्यवं च शिक्षते तिद्वद्यामुपादत्ते, तत्र तदेतत्सर्वमु इदेव जल्गुल: शृण्वेता उपृद्धिस च॥३॥

भावार्थ:-उलूखलादिविद्याया भोजनादिसाधिकाया गृहभूम्बन्धिकार्यकारित्वादेषा स्त्रीभिर्नित्यं ग्राह्याऽन्याभ्यो ग्राहयितव्या च। यत्र पाकक्रिया साध्यते तत्रैतानि स्थापनीयानि नैतैर्विना कुट्टनपेषणादिक्रियाः सिध्यन्तीति॥३॥

पदार्थ:-हे (इन्द्र) इन्द्रियों के स्वामी जीवे! तू (यत्र) जिस कर्म में घर के बीच (नारी) स्त्रियां काम करने वाली अपनी संगि स्त्रियों के लिये (उल्लुखल सुतानाम्) उक्त उलूखलों से सिद्ध की हुई विद्या को (अपच्यवम्) (उपच्यवम्) (च) अर्थात् असे डालना निकालनादि क्रिया करनी होती है, वैसे उस विद्या को (शिक्षते) शिक्षा से ग्रहण (करती और कराती हैं, उसको (उ) अनेक तर्कों के साथ (जल्गुल:) सुनो और इस विद्या का उपदेश करो॥ ३॥

भावार्थ:-यह उल्ख्लिक्स जो कि भोजनादि के पदार्थ सिद्ध करने वाली है, गृहसम्बन्धि कार्य करने वाली होने से यह विद्या स्त्रिमों को नित्य ग्रहण करनी और अन्य स्त्रियों को सिखाना भी चाहिये। जहाँ पाक सिद्ध किये जाते हों वहाँ ये सब उल्खल आदि साधन स्थापन करने चाहिये, क्योंकि इनके विना कूटना-पीस्त्र आदि क्रिया सिद्ध नहीं हो सकती॥३॥

एतत्सम्बन्ध्यन्यदपि साधनमुपदिश्यते॥

इसके सम्बन्धी और भी साधन का अगले मन्त्र में उपदेश किया है॥

येत्र मन्थां विबुध्नते रुश्मीन् युर्मितवा ईव।

उल्खलसुतानामवेद्विन्द्र जलालः॥४॥

मण्डल-१। अनुवाक-६। सूक्त-२८

यत्री। मन्थाम्। विऽब्धन्ते। रुश्मीन्। यमित्वैऽईव। उलूर्खलऽसुतानाम्। अवी। इत्। ऊम् इति। इन्द्र। जुल्गुलुः॥४॥

पदार्थ:-(यत्र) यस्मिन् क्रियासाध्ये व्यवहारे (मन्थाम्) घृतादिनिस्सारणं मन्थानम् अत्र छान्द्रसो वर्णलोपो वा इति नकारलोपः। (विबध्नते) विशिष्टतया बध्नन्ति। अत्र व्यत्ययेनात्मनेपदम्भ (रश्मीन्) रज्जूः (यिमतवाइव) निग्रहीतुमर्ह इव। अत्र यम धातोस्तवै प्रत्ययः। वा छन्दिस सर्वे विधयो भवित्त इति इडागमः। (उलूखलसुतानाम्) उलूखलेन सम्पादितानां प्राप्तिम्। उलूखलशब्दार्थं चास्कपुनिरेवं समाचष्टे। उलूखलमुरुकरं वोर्ध्वखं वोर्क्करं वा। उरु मे कुर्वित्यब्रवीत् तद्वलूखलमभवत्। उरुकरं वै तदुलूखलमित्याचक्षते (निरु०९.२०)। (अव) इच्छ (इत्) निश्चये (३) बिजर्वे (इत्) रसाभिसिंचन् जीव (जल्गुलः) शब्दय। सिद्धिः पूर्ववत्॥४॥

अन्वय:-हे इन्द्र! सुखाभिलाषिन् विद्वंस्त्वं रश्मीन् यम्तिवे सूर्यो वा सारिथरिव यत्र मन्थां विबध्नते, तत्रोलूखलसुतानां प्राप्तिमवेच्छ। एतामिदुविद्यां युक्त्य जल्युलः श्रब्दयोपदिश॥४॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। ईश्वर उपदिशति हे विद्वासो! प्रथा सूर्यो रश्मिभिर्भूमिमाकर्षणेन बध्नाति यथा सारथी रज्जुभिरश्वान् नियच्छति, तथैव मन्थनबाधनुमालनविद्यया दुग्धादिभ्य ओषधिभ्यश्च नवनीतादिसारान् युक्त्या निष्पादयतेति॥४॥

पदार्थ:-हे (इन्द्र) सुख की इच्छा करने विलि विद्वान मनुष्य! तू (रश्मीन्) (इव) जैसे (यिमतवै) सूर्य अपनी किरणों को वा सारथी जैसे घोड़े ओदि पशुओं की रिस्सियों को (यत्र) जिस क्रिया से सिद्ध होने वाले व्यवहार में (मन्थाम्) घृत आदि पहार्थों के निकालने के लिये मन्थिनयों को (विवधनते) अच्छे प्रकार बांधते हैं, वहाँ (उलूखलसुतानास) उलूखल से सिद्ध हुए पदार्थों को (अव) वैसे ही सिद्ध करने की इच्छा कर (3) और (इत्) उर्सी विद्या को (जल्गुल:) युक्ति के साथ उपदेश कर॥४॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में रूपमालङ्कार है। ईश्वर उपदेश करता है कि हे विद्वानो! जैसे सूर्य्य अपनी किरणों के साथ भूमि को अंकर्षण सक्ति से बांधता और जैसे सारथी रिष्मयों से घोड़ों को नियम में रखता है, वैसे ही मथने बांधन और चलाने की विद्या से दूध आदि वा औषि आदि पदार्थों से मक्खन आदि पदार्थों को युक्ति के साथ सिद्ध करो॥४॥

तेनोलूखलेन किं कर्त्तव्यमित्युपदिश्यते॥

उक्त इलुखेल से क्या करना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

यच्चिद्धि खं गृहेगृहु उलूखलक युज्यसे।

इहे ह्यमत्तेमं वद् जर्यतामिव दुन्दुभिः॥५॥२५॥

यत्। चित्। हि। त्वम्। गृहेगृहे। उलूंखलका युज्यसे। इहा द्युमत्रंतमम्। वृद्। जर्यताम्। ईव। दुन्दुभि:॥५॥

पदार्थ:-(यत्) यस्मात् (चित्) चार्थे (हि) प्रसिद्धौ (गृहेगृहे) प्रतिगृहम् वीप्साया हित्वै (उलूखलक) उलूखलं कायित शब्दयित यस्तत्सम्बुद्धौ विद्वन् (युज्यसे) समादधासि (इह) अस्मिन्यसारे गृहे स्थाने वा (द्युमत्तमम्) प्रशस्तः प्रकाशो विद्यते यस्मिन् स शब्दो द्युमान् अतिशयेष द्युमान् द्युमत्तमस्तम्। अत्र प्रशंसार्थे मतुप्। (वद) वादय वा। अत्र पक्षेऽन्तर्गतो प्यर्थः। (जयामिव) विजयकरणशीलानां वीराणामिव (दुन्दुभिः) वादित्रविशेषैः॥५॥

अन्वय:-हे उलूखलक! विद्वँस्त्वं यद्धि गृहेगृहे युज्यसे तिद्वद्यां समाद्रभसि, स त्विमह जयतां दुन्दुभिरिव द्युमत्तममुलूखलं वादयैतिद्वद्यां (चित्) वदोपिदश॥५॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। सर्वेषु गृहेषूलूखलक्रिया योजनीया यथा) भवति शत्रूणां विजेतार: सेनास्था: शूरा दुन्दुभि: वादियत्वा युध्यन्ते, यथैव रससम्पादकेन मेनुष्येणोलूखले यवाद्योषधीर्योजियत्वा मुसलेन हत्वा तुषादिकं निवार्य्य सारांश: संग्राह्य इति॥५॥

पदार्थ:-हे (उलूखलक) उलूखल से व्यवहार स्ति काल किंद्वान्! तू (यत्) जिस कारण (हि) प्रसिद्ध (गृहेगृहे) घर-घर में (युज्यसे) उक्त विद्या का व्यवहार वर्तता है (इह) इस संसार गृह वा स्थान में (जयताम्) शत्रुओं को जीतने वालों के (दुन्दुभिः) नगाड़ों के (इव) समान (द्युमत्तमम्) जिसमें अच्छे शब्द निकले, वैसे उलूखल के व्यवहार की (वद) विद्या के उपदेश करें॥५॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। सेन वर्रों में उलूखल और मुसल को स्थापन करना चाहिये, जैसे शत्रुओं के जीतने वाले शूर्विश्र मनुष्य अपने नगाड़ों को बजा कर युद्ध करते हैं, वैसे ही रस चाहने वाले मनुष्यों को उलूखल में येव आदि ओषधियों को डालकर मुसल से कूटकर भूसा आदि दूर करके सार-सार लेना चाहिये॥५

पुनस्तत्क्रिमेर्थं ग्राह्यमित्युपदिश्यते।

फिर वह किस्तिस् ग्रहण कुरना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

उत स्म ते वनस्पेत् वालों वि वात्यग्रमित्।

अथो इद्वाय पात्वे सुनु सोममुलूखल॥६॥

उता स्मा हो। वनस्पते। वार्तः। वि। वाति। अर्यम्। इत्। अथो इति। इन्द्रीय। पार्तवे। सुनु। सोर्मम्। उलुखुलु॥हम

पेहार्थ:-(उत) अपि (स्म) अतीतार्थे क्रियायोगे (ते) तस्य (वनस्पते) वृक्षादे: (वात:) वायु: (व्रि) विचिधेर्थे क्रियायोगे (वाति) गच्छति (अग्रम्) उपरिभागम् (इत्) एव (अथो) अनन्तरे (इन्द्राय)

मण्डल-१। अनुवाक-६। सुक्त-२८

जीवाय (पातवे) पातुं पानं कर्तुम्। अत्र तुमर्थे सेसेनसे॰ इति तवेन्प्रत्ययः। (सुनु) सेधय (सोमम्) सर्वोषधं सारम् (उलूखल) उलूखलेन बहुकार्यकरेण साधनेन। अत्र सुपां सुलुग्॰ इति तृतीर्वेकिक्चेनस्य लुक्॥६॥

अन्वय:-हे विद्वन्! यथा वात इत्तस्यास्य वनस्पतेरग्रमुत विवाति स्माथो इत्यन्त्रस्यमिन्द्राय जीवाय सोमं पातवे पातुं सुनोति निष्पादयति तथोलूखलेन यवाद्यमोषधिसमुदायं सुनु॥६॥ 🗸

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। यदा पवनेन सर्वे वनस्पत्योर्षध्यादशे वर्ध्यन्तं, तदैव प्राणिनस्तेषां पुष्टानामुलूखले स्थापनं कृत्वा सारं गृहीत्वा भुञ्जते, रस्मापि पिबन्ति, नैतेन विना कस्यचित्पदार्थस्य वृद्धिपुष्टी सम्भवत:॥६॥

पदार्थ: -हे विद्वन्! जैसे (वात:) वायु (इत्) ही (वनस्पत) बूक्ष आदि पदार्थों के (अग्रम्) ऊपरले भाग को (उत) भी (वि वाति) अच्छे प्रकार पहुंचाता (स्म) पहुंचा वा पहुंचेगा (अथो) इसके अनन्तर (इन्द्राय) प्राणियों के लिये (सोमम्) सब ओषिथयों के सार को (पातवे) पान करने को सिद्ध करता है, वैसे (उलुखल) उखरी में यव आदि ओषिथयों के समुद्दाय के सार को (सुनु) सिद्ध कर॥६॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जिल्पान सब वनस्पति ओषिधयों को अपने वेग से स्पर्श कर बढ़ाता है, तभी प्राणी उनको उलुकुल में स्थापन करके उनका सार ले सकते और रस भी पीते हैं। इस वायु के विना किसी पदार्थ की अदि वा पुष्टि होने का सम्भव नहीं हो सकता है।।६॥

पुनर्मुसलोलूखले कीद्शमाँ इत्युपदिश्यते॥

फिर मुसल और उलूखल कैस् हैं, इस चिप्रय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

आयुजी वाजसातमा ता ह्यु ख्या विजर्भृत:।

हरी ड्वान्धांसि बप्संत्रहाणा

आयुजीइत्यांऽयुजी। ब्राजुंऽसार्तमा। त्या) हि। उच्चा। विऽजुर्भृतः। हरी इवेति हरीऽइव। अन्धांसि। बप्संता॥७॥

पदार्थ:-(आयजो) समन्ताद् यज्यन्ते सङ्गम्यन्ते पदार्था याभ्यां तौ स्त्रीपुरुषौ। अत्र बाहुलकादौणादिकृः करणाकारक इः प्रत्ययः। (वाजसातमा) वाजान् युद्धसमूहान् सनन्ति सम्भज्य विजयन्ते याभ्यां तावितिशायितौ। अत्र सर्वत्र सुपां सुलुग्० इत्याकारादेशः। (ता) तौ (हि) खलु (उच्चा) उत्कृष्टानि कार्याणि अत्र शेष्ठज्दिस इति शेर्लोपः। (विजर्भृतः) विविधं धरतः (हरीइव) यथाऽश्वौ तथा (अस्याद्धी) अत्रानि। अस्य इत्यन्ननामसु पठितम्। (निघं०२.७) (बप्सता) बप्सन्तौ। अत्र भस्भित्रदीस्योरित्यस्माल्लटः शत्रादेशः। घिसभसोर्हिल च। (अष्टा०६.४.१००) अनेनोपधालोपः स्रुग्नममन्त्रत्। भस धातोर्भर्त्सन इत्यर्थो नवीनो भक्षण इति प्राचीनोऽर्थः॥७॥

330

अन्वय:-यावायजी वाजसातमौ स्तस्तौ स्त्रीपुरुषावन्धांसि बप्सन्तौ भक्षयस्तौ हरीईव मुसलोलूखलादिभ्य उच्चा उत्कृष्टानि कार्याणि विजर्भृत:॥७॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। यथा भक्षणकर्त्तारावश्वौ यानादीनि वहतस्तथैव मुसलोलूखले बहुनि विभागकरणादीनि कार्याणि प्रापयत इति॥७॥

पदार्थ:-(आयजी) जो अच्छे प्रकार पदार्थों को प्राप्त होने वाले (वाजसातमा) संग्रामों को जीतते हैं (ता) वे स्त्री पुरुष (अन्धांसि) अन्नों को (वप्सता) खाते हुए (हरी) घाडों के (इव) समान उलूखल आदि से (उच्चा) जो अति उत्तम काम हैं, उनको (विजर्भृत:) अनेक प्रकार से सिद्धकर धारण करते रहें॥७॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे खाने वाले घोड़े रूथ अदि को वहते हैं, वैसे ही मुसल और ऊखरी से पदार्थों को अलग-अलग करने आदि अनेक कार्यों को मुद्ध करते हैं॥७॥

पुनस्ते कथंभूते कार्ये इत्युपदिश्यते॥

फिर वे कैसे करने चाहिये, इस विषय का उपदेश अपले मन्त्र में किया है।।

ता नो अद्य वनस्पती ऋष्वावृष्वेभिः सोतृभिः

इन्द्रांय मधुंमत्सुतम्॥८॥

ता। नः। अद्य। वनस्पती इति। ऋष्वी। ऋष्विभिः। स्रोतुर्श्भः। इन्द्राय। मधुंऽमत्। सुतम्॥८॥

पदार्थ:-(ता) तौ मुसलोलूखलाख्यौ अत्र सूर्षा सुलुग्० इत्याकारादेश:। (नः) अस्माकम् (अद्य) अस्मिन् दिने (वनस्पती) कार्रमयौ (ऋष्वौ) महान्तौ। ऋष्व इति महन्नामसु पठितम्। (निघं०३.३) (ऋष्वेभिः) महद्भिद्धिद्धः बहुलं छन्दिस इति भिस ऐस् न। (सोतृभिः) अभिषवकरणकुशलैः (इन्द्राय) ऐश्वर्यप्रापकाय व्यवहाराय (मधुमत्) मधवो मधुरादयः प्रशस्ता गुणा विद्यते यस्मिन् तत्। अत्र प्रशंसाय मतुप्। (सुतम्) सम्पादितुं वस्तु॥८॥

अन्वय:-यौ सोतृभिर्ऋष्वौ वनस्पर्ती सम्पादितौ स्तो यौ नोऽस्माकमिन्द्रायाद्य मधुमद्वस्तु सुतं सम्पादनहेतुभवतस्तौ सर्वै सम्पादनीयौ॥८॥

भावार्थ:-यथा पाष्णिस्य मुसलोलूखलानि भवन्ति, तथैव काष्ठायः पित्तलरजतसुवर्णादीनामपि क्रियन्ते, तैः श्रेष्ठैस्रेप्शाभिष्ताद्वीन् साधयेयुरिति॥८॥

पदार्थ: जो सोतृभि:) रस खींचने में चतुर (ऋष्वेभि:) बड़े विद्वानों ने (ऋष्वौ) अतिस्थूल (वनस्पती) काठ के उखली-मुसल सिद्ध किये हों, जो (न:) हमारे (इन्द्राय) ऐश्वर्य प्राप्त कराने वाले व्यवहार के लिये (अद्य) आज (मधुमत्) मधुर आदि प्रशंसनीय गुण वाले पदार्थों को (सुतम्) सिद्ध कर्मे के हेत् होते हों (ता) वे सब मनुष्यों को साधने योग्य हैं॥८॥

मण्डल-१। अनुवाक-६। सूक्त-२८

भावार्थ:-जैसे पत्थर के मूसल और उखली होते हैं, वैसे ही काष्ठ, लोहा, पीतल, चाँदी, सोना तथा औरों के भी किये जाते हैं, उन उत्तम उलूखल मुसलों से मनुष्य औषध आदि पदार्थी के अर्थात् रस आदि खींचने के व्यवहार करें॥८॥

पुनस्ताभ्यां किं किं साधनीयमित्युपदिश्यते॥

फिर उन से क्या-क्या सिद्ध करना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्रमें किया है।।

उच्छिष्टं चुम्वोर्भर् सोमं पुवित्र आ सृज।

नि धेहि गोरधि त्वचि॥९॥२६॥

उत्। शिष्टम्। चम्वो। भुर्। सोमम्। पुवित्रे। आ। सुजु। नि। धेहि। ग्रे:। अधि। सूचि॥९॥

पदार्थ:-(उत्) उत्कृष्टार्थे क्रियायोगे (शिष्टम्) शिष्यते यस्तम् (यस्त्रेः) पदातिहस्त्यश्वादिरूढयोः सेनयोरिव (भर) धर (सोमम्) सर्वरोगनाशकबलपृष्टिबुद्धिवर्द्धकर्म्तमीषध्यभिषवम् (पवित्रे) शुद्धे सेविते (आ) समन्तात् (सृज) निष्पादय (नि) नितराम् (धेहि) संस्थाप्य (गोः) पृथिव्याः। गौरिति पृथिवीनामसु पठितम्। (निघं०१.१) (अधि) उपरि (त्विच) पृष्ठे॥९॥

अन्वय:-हे विद्वँस्त्वं चम्बोरिव शिष्टं सोममुद्धर तेनीचे सेने पवित्रे आसृज गोः पृथिव्या अधि त्वचि ते निधेहि नितरां संस्थापय॥९॥

भावार्थ:-राजपुरुषादिभिर्द्धिविधे सेने सम्पदनीय प्रका यानारूढा द्वितीया पदातिरूपा तदर्थमुत्तमा रसा: शस्त्रादिसामग्रचश्च सम्पादनीया: सुक्षिक्षयौषधाद्भिदानेन च शुद्धबले सर्वरोगरिहते सङ्गृह्य पृथिव्या उपिर चक्रवर्त्तिराज्यं नित्यं सेवनीयमिति॥१॥

सप्तविशेन सूक्तेनाग्निर्विद्वीसश्चोक्तास्तर्मुसलोलूखलादीनि साधनानि गृहीत्वौषध्यादिभ्यो जगत्स्थपदार्थेभ्यो बहुविधा उत्तमाः पदार्थाः सम्पादनीया इत्यस्मिन्सूक्ते प्रतिपादनात् सप्तविशसुक्तोक्तार्थेन सहास्यार्थविशसुक्तार्थस्य सङ्गतिरस्तीति बोध्यम्॥९॥

> इति प्रथमाष्ट्रके द्वितीयाध्याये षड्विंशो वर्गः॥ प्रथमण्डल् पष्टेऽनुवाकेऽष्टाविंशं सूक्तं च समाप्तम्॥२८॥

पदार्थ: -हे विद्वान् तुप (चम्वो:) पैदल और सवारों की सेनाओं के समान (शिष्टम्) शिक्षा करने योग्य (सोमम्) सर्व रोगविचाशक बलपृष्टि और बुद्धि को बढ़ाने वाले उत्तम ओषधि के रस को (उद्धर) उत्कृष्टता से आर्ण कर उस से दो सेनाओं को (पवित्रे) उत्तम (आसृज) कीजिये (गो:) पृथिवी के (अधि) उत्पर अर्थात् (त्वचि) उस की पीठ पर सेनाओं को (निधेहि) स्थापन करो॥९॥

भावार्थ:-राजपुरुषों को चाहिये कि दो प्रकार की सेना रक्खें अर्थात् एक तो सवारों की दूसरी पैदलों की, उनके लिये उत्तम रस और शस्त्र आदि सामग्री इकट्ठी करें अच्छी शिक्षा और औषधि देकर शुद्ध बलयुक्त और नीरोग कर पृथिवी पर एक चक्रराज्य नित्य करें॥९॥

सत्ताईसवें सूक्त से अग्नि और विद्वान् जिस-जिस गुण को कहे हैं, वे मूसल और रुखली अदि साधनों को ग्रहण कर औषध्यादि पदार्थों से संसार के पदार्थों से अनेक प्रकार के उत्तम असम पदार्थ उत्पन्न करें, इस अर्थ का इस सूक्त में सम्पादन करने से सत्ताईसवें सूक्त के कहे हुए अर्थ के साथ अट्ठाईसवें सूक्त की सङ्गति है, यह जानना चाहिये॥९॥

इति प्रथमाष्टके द्वितीयाध्याये षड्विशो वर्गः ॥२६॥ प्रथमण्डले षष्ठेऽनुवाकेऽष्टाविश्य सूक्तं च समाप्तम्॥२८॥ [प्रथम अष्टक के द्वितीय अध्याय में छब्बीसवाँ वर्ग समाप्त हुआ तथा प्रथम मण्डल में छठे अनुवाक में अट्ठाईसवाँ सुक्त समाप्त हुआ।]

अथ सप्तर्चस्यैकोनत्रिंशस्य सूक्तस्याजीगर्त्तिः शुनःशेप ऋषिः। इन्द्रो देवता। पङ्क्तिश्छन्दः।

पञ्चम: स्वर:॥

अथेन्द्रशब्देन न्यायाधीशगुणा उपदिश्यन्ते॥

अब उनतीसवें सूक्त का प्रारम्भ है, उस के पहिले मन्त्र में इन्द्र शब्द से न्यायाधीश के नुणों का

प्रकाश किया है॥

यच्चिद्धि संत्य सोमपा अनाशस्ताईव स्मिसी।

आ तू ने इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषुं सहस्रेषु तुवीमघ॥ १॥

यत्। चित्। हि। सुत्यः। सोमुऽपाः। अनाशस्ताऽईव। स्मिसी आ। तु। वः प्राह्नस्याः गोषुं। अश्चेषु। शुभ्रिषुं। सुहस्रेषु। तुविऽमुघा। १॥

पदार्थ:-(यत्) येषु (चित्) अपि (हि) खलु (सत्य) अविनाशिस्वरूप सत्सु साधो (सोमपाः) सोमानुत्पन्नान् सर्वान् पदार्थान् पाति रक्षति तत्सम्बुद्धौ (अनाशम्ताद्भव) अपूर्णस्तगुणसामर्थ्या इव (स्मिस्) भवामः। इदन्तो मिस इति इदागमः। (आ) समन्तात् (तु) प्रन्तर्थे। ऋचि तुनु इति दीर्घः। (नः) अस्मान् (इन्द्र) प्रशस्तैश्वर्यप्राप्त (शंसय) प्रशस्तान् कुरु (गोषु) पश्चित्वयपृथ्विषु (अश्चेषु) वेगाग्निहयेषु (शृभ्रिषु) शोभनसुखप्रदेषु (सहस्रेषु) असंख्यातेषु (तुविमघ) नुिक बहुविधं मघं पूज्यतमं धनं विद्यते यस्य तत्सम्बुद्धौ अन्येषामिप दृश्यत इति पूर्वपदस्य दीर्श्वनार्थ।

अन्वय:-हे सोमपास्तुविमघ सत्येन्द्रस्यायाधीशत्त्रमनाशस्ताइव वयं यच्चित् स्मसि तू (नः) तानस्माँश्चतुःसहस्रेषु शुभ्रिषु गोष्वश्चेषु हि विल्लाशंस्या १॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। यूशाऽउत्तरयेमाश्रष्ठामनुष्या भवन्ति, तद्वद्वयमपि यदि कदाचिदलसा भवेम तानस्मान् प्रशस्तपुरुषार्श्रगुणान् सम्पादयतु, यतो वयं पृथिव्यादिराज्यं बहूनुत्तमान् हस्त्यश्वगवादिपशून् प्राप्य पालित्वा वर्द्धिवा तेश्य उपकारेण प्रशस्ता भवेमेति॥१॥

पदार्थ:-हे (सोमपा) उत्तम पदार्थों की रक्षा करने वाले (तुविमघ) अनेक प्रकार के प्रशंसनीय धनयुक्त (सत्य) अविनार्शिस्तरूप (इन्द्र) उत्तम ऐश्वर्य प्रापक न्यायाधीश! आप (यच्चित्) जो कभी हम लोग (अनाशस्ताइव) अप्रशंसचीय गुण सामर्थ्य वालों के समान (स्मिस्त) हों (तु) तो (नः) हम लोगों को (सहस्रेषु) असंख्यात (सृप्रिषु) अच्छे सुख देने वाले (गोषु) पृथिवी इन्द्रियाँ वा गो बैल (अश्रेषु) घोड़े आदि पश्रुधों में (हि) ही (आशंसय) प्रशंसा वाले कीजिये॥१॥

भूतिर्थः इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे आलस्य के मारे अश्रेष्ठ अर्थात् कीर्त्तिरहित मनुष्य होते हैं, वैसे हम लोग भी जो कभी हों तो यह न्यायाधीश हम लोगों को प्रशंसनीय पुरुषार्थ और गुण्युक्त कीजिये, जिससे हम लोग पृथिवी आदि राज्य और बहुत उत्तम-उत्तम हाथी, घोड़े, गौ, बैल

आदि पशुओं को प्राप्त होकर उनका पालन वा उनकी वृद्धि करके उनके उपकार से प्रशंसा वीले हों॥१॥

पुनः स ऐश्वर्ययुक्तः कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह विभूतियुक्त सभाध्यक्ष कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।

शिप्रिन् वाजानां पते शचीवस्तवं दंसना।

आ तू ने इन्द्र शंसय गोष्वश्चेषु शुभ्रिषुं सहस्रेषु तुवीमघ॥२॥

शिप्रिन्। वाजानाम्। पते। शचीऽवः। तवं। दंसनां। आ। तु। नः। इन्द्र। श्रृंस्या गोषुं। अश्रेषु। श्रृभिषुं। सहस्रेषु। तुविऽम्घ॥२॥

पदार्थ:-(शिप्रिन्) शिप्रे प्राप्तुमर्हे प्रशस्ते व्यावहारिकपारम् थिक सुखे विद्येते यस्य सभापते-स्तत्सम्बुद्धौ। अत्र प्रशंसार्थ इनिः। शिग्रे इति पदनामसु पठितम्। (निघं०४१) (वाजानाम्) संग्रामाणां मध्ये (पते) पालक (शचीवः) शची बहुविधं कर्म बह्बी प्रश्ली वा किंद्वर्ते यस्य तत्सम्बुद्धौ। शचीति प्रजानामसु पठितम्। (निघं०३.९) कर्मनामसु च (निघं०३.१) अत्र इन्दसीरः। (अष्टा०८.२.१५) इति मतुपो मस्य वः। मतुवसोरुक (अष्टा०८.३.१) इति रुत्व । (नव) न्यायाधीशस्य (दंसना) दंसयित भाषयत्यनया क्रियया सा। ण्यासश्रस्थो युच्। (अष्टा०३.३.९०) अनेन दंसिभाषार्थ इत्यस्माद्युच् प्रत्ययः। (आ) अभ्यर्थे क्रियायोगे (तु) पुनरर्थे। पूर्ववद्यिः (नः) अस्माँस्त्वदाज्ञायां वर्त्तमानान् विदुषः (इन्द्र) सर्वराज्येश्वर्यधारक (शंसय) प्रकृष्टगुणवतः कुरू (गोपु) सत्यभाषणशास्त्रशिक्षासिहतेषु वागादीन्द्रियेषु। गौरिति वाइनामसु पठितम्। (निघं०१.११) (अश्रेषु) वेगादिगुणवत्सु अग्न्यादिषु (शुभ्रिषु) शोभनेषु विमानादियानेषु तत् साधकतमेषु वा (सहस्रेषु) बहुषु (तुविमघ) बहुविधं मघं पूज्यं विद्याधनं यस्य तत्सम्बुद्धौ। मघिमिति धननामसु पठितम्। (निघं०२.१०) मघिमिति धननामधेयम्। महतेर्दानकर्मणः। (निरु०१.७) अन्येषामिप दृश्यक् इति दीर्घः। २॥

अन्वय:-हे शिप्रिन् भनीको वाजानां प्रते तुवीमघेद्र न्यायाधीश! या तव दंसनास्ति तया सहस्रेषु शुभ्रिषु गोष्वश्चेषु नोऽस्मानाशंस्य प्रकृष्टगुणवत: सम्पादय॥२॥

भावार्थ:-मनुष्यैरित्थं ज्यादीश्वरं प्रार्थनीय:। हे भगवन्! त्वया कृपया यथा न्यायाधीशत्वमुत्तमं राज्यादिकं च सम्प्राद्यते तथास्मान् पृथिवीराज्यवतः सत्यभाषणयुक्तान् ब्रह्मशिल्पविद्यादिसिद्धिकारकान् बुद्धिमतो नित्यं प्रम्पाद्वयेति॥२॥

प्रदर्शः है (शिप्रिन्) प्राप्त होने योग्य प्रशंसनीय ऐहिक पारमार्थिक वा सुखों को देने हारे (शचीकः) बहुविध प्रजा वा कर्मयुक्त (वाजानाम्) बड़े-बड़े युद्धों के (पते) पालन करने और (तृद्धिम्ब) अनेक प्रकार के प्रशंसनीय विद्याधन युक्त (इन्द्र) परमैश्वर्य सहित सभाध्यक्ष जो (तव) अपकी (दंसना) वेद विद्यायुक्त वाणी सहित क्रिया है, उससे आप (सहस्रेषु) हजारह (शृप्रिषु) शोभन

मण्डल-१। अनुवाक-६। सुक्त-२९

विमान आदि रथ वा उनके उत्तम साधन (गोषु) सत्यभाषण और शास्त्र की शिक्षा सहित वाक् आदि इन्द्रियाँ (अश्चेषु) तथा वेग आदि गुण वाले अग्नि आदि पदार्थों से युक्त घोड़े आदि व्यवहारि में (नः) हम लोगों को (आशंसय) अच्छे गुणयुक्त कीजिये॥२॥

भावार्थ:-मनुष्यों को इस प्रकार जगदीश्वर की प्रार्थना करनी चाहिये कि हे भूगवन रिकृपा करके जैसे न्यायाधीश अत्युत्तम राज्य आदि को प्राप्त कराता है, वैसे हम लोगों को प्रृ्थिवी के राष्य सत्य बोलने और शिल्पविद्या आदि व्यवहारों की सिद्धि करने में बुद्धिमान् नित्य की निष्मार स्रो

पुनः स किं कुर्यादित्युपदिश्यते॥

फिर वह क्या-क्या करे, इस विषय का उपदेश अगले मृत्र्र में किया हैं।

नि र्घापया मिथूदृशां सस्तामबुध्यमाने।

आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्चेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीम्घा रा

नि। स्वापया मिथूऽदृशां। सस्ताम्। अबुध्यमाने इति। आ। तु। नः। इन्द्रं। शंसया गोषुं। अश्वेषु। शुभिषुं। सहस्रेषु। तुविऽम्घा।३॥

पदार्थ:-(नि) नितरां क्रियायोगे (स्वापय) निकारये। अत्र अन्तर्गतो णिज् अन्येषामिप इति हिंसनं च मिथुविषयाशक्तिप्रमाद्धे 🛴 दर्शयतस्तौ। मेधाहिसनयोरित्यस्मादौणादिक: कु: प्रत्ययुस्तद्रुपपदाद्व दृशेः कर्त्तरि क्विप् सुपां इत्याकारादेशोऽन्येषामि दृश्यत इति द्विर्घृश्च। (अष्ट्रस्ताम्) शयाताम् (अबुध्यमाने) बोधनिवारके शरीरमनसी आलस्ये कर्मणि (आ) अस्रिप्थि (तु) पश्चादर्थे। पूर्ववदीर्घः। (न:) अस्मान् (इन्द्र) (श्रंसये) (गोषु) अविद्यानिद्रादोषनिवारकविद्वन् प्रेकृष्टज्ञानवतः पृथिव्यादिष् क्र व्याप्तिशीलेशष्वग्न्यादिषु (शुभ्रिषु) शुभाः प्रेशस्ता गुणा विद्यन्ते येषु तेषु (सहस्रेषु) अनेकेषु (तुविमघ) तुविबहुविधं धनमस्ति यस्य तृत्सेष्बुद्धौ। अन्येषोमपि दृश्यत इति पूर्वपदस्य दीर्घः॥३॥

अन्वय:-हे तुविस्विन्द्रविद्वन्। ये मिथूदृशाबुध्यमाने शरीरमनसी आलस्ये वर्त्तमाने सस्तां शयातां पुरुषार्थनाशं प्रापयतस्ते त्वं निष्वामय निवारय पुनः सहस्रेषु शुभ्रिषु गोष्वश्वेषु नोऽस्मानाशंसय॥३॥

भावार्थः सुनुष्यैः शूरीरात्मनोरालस्ये दूरतस्त्यक्त्वा सत्कर्मसु नित्यं प्रयत्नोऽनुसंधेय इति॥३॥

पदार्थः है (जुविमघ) अनेक प्रकार के धनयुक्त (इन्द्र) अविद्यारूपी निद्रा और दोषों को दूर करने वाले (विद्वाने! जो-जो (मिथूदृशा) विषयाशक्ति अर्थात् खोटे काम वा प्रमाद अच्छे कामों के विनाश की दिखाने वाले वा (अबुध्यमाने) बोधनिवारक शरीर और मन (सस्ताम्) शयन और पुरुषार्थ का नाश्र कस्ते हैं उनको आप (निष्वापय) अच्छे प्रकार निवारण कर दीजिये (तु) फिर (सहस्रेषु) हजारहों

(शुभ्रिषु) प्रशंसनीय गुण वाले (गोषु) पृथिवी आदि पदार्थ वा (अश्वेषु) वस्तु-वस्तु में रहने वाले अग्नि आदि पदार्थों में (न:) हम लोगों को (आशंसय) अच्छे गुण वाले कीजिये॥३॥

भावार्थ:-मनुष्यों को शरीर और आत्मा से आलस्य को दूर छोड़ के उत्तम कर्मों में मित्र प्रयत्ने करना चाहिये॥३॥

मनुष्यै: कीदृशान् वीरान् सङ्गृह्य शत्रवो निवारणीया इत्युपदिश्यते॥

मनुष्यों को कैसे वीरों को ग्रहण करके शत्रु-निवारण करना चाहिये, इस विषय की सपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

ससन्तु त्या अरातयो बोधन्तु शूर रातयः।

आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्चेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघीर्ध।

स्सन्तुं। त्याः। अरातयः। बोर्धन्तु। श्रूर्। रातयः। आ। तु। तः। इन्द्रे। श्रुंसेयः। गोर्षु। अश्रेषु। श्रुभिर्षु। सहस्रेषु। तुविऽम्घः॥४॥

पदार्थ:-(ससन्तु) निद्रां प्राप्नुवन्तु (त्याः) वक्ष्यमाणाः (अप्रतयः) अविद्यमानारातिर्दानं येषां शत्रूणां ते (बोधन्तु) जानन्तु (श्रूर) शृणाति हिनस्ति शत्रुबलास्याक्रमति। अत्र 'शॄ हिंसायाम्' इत्यस्माद् बाहुलकाङ्डूरन्प्रत्ययः। (रातयः) दातारः (आ) समन्तात् (तु) पुनरर्थे। ऋचि तुनु० इति दीर्घः। (नः) अस्मान् (इन्द्र) उत्कृष्टेश्वर्य्यसभाध्यक्ष सेनापते (शंसक्) शत्रूणां विजयेन प्रशंसायुक्तान् कुरु (गोषु) सूर्य्यादिषु (अश्रेषु) (शृभ्रिषु) (सहस्रेषु) उक्तार्थेषु (तुविम्ध्य) अस्यार्थसाधुत्वे पूर्ववत्॥४॥

अन्वय:-हे तुवीमघ शूर सेनापते तिकारात्यः स्सन्तु ये रातयश्च ते सर्वे बोधन्तु तु पुनः हे इन्द्र वीरपुरुष! त्वं सहस्रेषु शुभ्रिषु गोष्वश्रेष्ट्र(नोऽस्मान्यश्रीसय॥४॥

भावार्थ:-अस्माभिः स्वसेनीस्म शुरु मनुष्या रक्षित्वा हर्षणीया येषां भयाद् दुष्टाः शत्रवः शयीरन् कदाचिन्मा जाग्रतु, येन वयं निष्कण्टकं चक्रवर्त्तिराज्यं नित्यं सेवेमहीति॥४॥

पदार्थ:-हे (तुविमघ) विद्या सुवर्ण सेना आदि धनयुक्त (शूर) शत्रुओं के बल को नष्ट करने वाले सेनापित! आप के (अत्तव्यः) जो दान आदि धर्म से रहित शत्रुजन हैं, वे (ससन्तु) सो जावें और जो (रातयः) दान आदि धर्म के कर्ता हैं (त्याः) वे (बोधन्तु) जाग्रत होकर शत्रु और मित्रों को जानें (तु) फिर हे (इन्द्र) अत्युत्तम ऐश्वर्ययुक्त सभाध्यक्ष सेनापते वीरपुरुष! तू (सहस्रेषु) हजारह (शृभ्रिषु) अच्छे-अच्छे गुण वार्त (गोषु) गौ वा (अश्वेषु) घोड़े हाथी सुवर्ण आदि धनों में (नः) हम लोगों को (आशंसय) शत्रुओं के विजय से प्रशंसा वाले करो॥४॥

भावार्थ:-हम लोगों को अपनी सेना में शूर ही मनुष्य रखकर आनन्दित करने चाहिये, जिससे भय के मारे दुष्ट और शत्रुजन जैसे निद्रा में शान्त होते हैं, वैसे सर्वदा हों, जिससे हम लोग निष्कंटक अर्थात् बेखटके चक्रवर्त्ति राज्य का सेवन नित्य करें॥४॥

मण्डल-१। अनुवाक-६। सूक्त-२९

पुनः स वीरः कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह वीर कैसा हो, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

सिमन्द्र गर्दभं मृण नुवन्तं पापयामुया।

आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्चेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ॥५॥

सम्। इन्द्रः। गुर्देभम्। मृण्। नुवन्तम्। पापर्या। अमुया। आ। तु। नः। इन्द्रः। श्रेस्यः। गोषुः। अश्रेषुः। शुभ्रिषुं। सहस्रेषुः। तुविऽम्घः॥५॥

पदार्थ:-(सम्) सम्यगर्थे (इन्द्र) सेनाध्यक्ष (गर्दभम्) गर्दभस्य (वभावसुक्तमिव (मृण) हिंस। अत्रान्तर्गतो ण्यर्थ:। (नुवन्तम्) स्तुवन्तम् (पापया) अधर्मरूपया (अपुया) प्रत्यक्षतया वाचा। (आ) समन्तात् (तु) पुनरर्थे। पूर्ववद्दीर्घ:। (नः) अस्मान् धर्मकारिणः (इन्द्रे) न्यायाधीश (शंसय) सत्याननपराधान् संपादय (गोषु) स्वकीयेषु पृथिव्यादिपदार्थेषु (अश्वेषु) इस्त्यश्वादिषु पशुषु (शुभ्रिषु) शुद्धभावेन धर्मव्यवहारेण गृहीतेषु (सहस्रेषु) बहुषु (तुविमघ) सुक्रि बहुविधं विद्याधर्मधनं यस्य तत्सम्बुद्धौ। अत्र अन्येषामिप दृश्यत इति दीर्घः॥५॥

अन्वय:-हे इन्द्र! त्वं गर्दभं तत् स्वभाविमवामुया प्राप्या मिथ्याभाषणान्वितया भाषयाऽस्मान्नुवन्तं कपटेन स्तुवन्तं शत्रुं सम्मृण। हे तुविमघेन्द्र सभाध्यक्षन्यायाधीराः! त्वं स्वक्रीयषु सहस्रेषु शुभ्रिषु गोष्वश्चेषु नोस्मानाशंसय प्राप्तन्यायान् कुरु॥५॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यः सम्मध्यक्षो न्यायासने स्थित्वा यथा गर्दभतुल्यस्वभावं मूर्खं व्यभिचारिणं पुरुषं कुत्सितं शब्दमुन्तरन्तं तथाऽन्यायमिथ्याभाषणरूपेण साक्ष्येण तिरस्कुर्वन्तं यथायोग्यं दण्डयेत्। ये च सत्यवादिनां भार्मिकास्त्रेषां सत्कारं च कुर्यात्। यैरन्यायेन परपदार्था गृह्यन्ते तान् दण्डियत्वा ये यस्य पदार्थास्तान् वेथ्यो दाषयेत्। एषां सनातनं न्यायाधीशानां धर्मं सदैव समाश्रयेत् तं वयं सततं सत्कुर्याम॥५॥

पदार्थ:-हे (इन्द्र) संभाध्यक्षा तू (गर्दभम्) गदहे के समान (अमुया) हमारे पीछे (पापया) पापरूप मिथ्याभाषण से युक्त मुबाही और भाषण आदि कपट से हम लोगों की (नुवन्तम्) स्तुति करते हुए शत्रु को (सम्मूण) अच्छे प्रकार दण्ड दे (तु) फिर (तुविमघ) हे बहुत से विद्या वा धर्मरूपी धनवाले (इन्द्र) न्यायाधीश तू (सहस्रेषु) हजारह (शुभ्रिषु) शुद्धभाव वा धर्मयुक्त व्यवहारों से ग्रहण किये हुए (गोषु) पृथिवी अदि पदार्थ वा (अश्वेषु) हाथी घोड़ा आदि पशुओं के निमित्त (न:) हम लोगों को (आशंसग्र) सच्चे व्यवहार वर्तने वाले अपराधरहित कीजिए॥५॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो सभा स्वामी न्याय से अपने सिंहासन पर बैठकर भैसे गद्दहा रूखे और खोटे शब्द को उच्चारण से औरों की निन्दा करते हुए जन को दण्ड दे और

जो सत्यवादी धार्मिक जन का सत्कार करे जो अन्याय के साथ औरों के पदार्थ को लेते हैं, उनको दण्डे दे के जिसका जो पदार्थ हो, वह उसको दिला देवे, इस प्रकार सनातन न्याय करने वालों के धर्म में जो प्रवृत्त पुरुष का सत्कार हम लोग निरन्तर करें॥५॥

इदानीमशुद्धवायोर्निवारणमुपदिश्यते॥

अब अगले मन्त्र में अशुद्ध वायु के निवारण का विधान किया है।।।

पर्ताति कुण्डृणाच्यां दूरं वातो वनादिध।

आ तू नं इन्द्र शंसय गोष्वश्चेषु शुभ्रिषुं सहस्रेषु तुवीमघ॥६॥

पर्ताति। कुण्डृणाच्यां। दूरम्। वार्तः। वर्नात्। अर्धि। आ। तु। नः। इन्ह्र्यः श्रेसयो गोषुं। अश्रेषु। शुभिषुं। सहस्रेषु। तुविऽमुघु॥६॥

पदार्थ:-(पताति) गच्छेत् (कुण्डणाच्या) यया कुटिलां मितमञ्चाते प्राप्नोति तया (दूरम्) विप्रकृष्टदेशम् (वातः) वायुः (वनात्) वन्यते सेव्यते तद्वन् जगत् तुर्मात्करणेभ्यो वा। वनमिति रिश्मनामसु पठितम्। (निघं०१.५) (अधि) उपिरभावे (अप) समन्तात् (तु) पुनरर्थे। पूर्ववद्दीर्घः। (नः) अस्मान् (इन्द्र) परमविद्वन् (शंसय) (गोषु) पृथिवीन्द्रियिकरण्चितुष्णत्सु (अश्वेषु) वेगादिगणेषु (शुभ्रिषु) शुद्धेषु व्यवहारेषु (सहस्रेषु) बहुषु (तुविमध) तुवि बहुविधं धनं साध्यते येन तत्सम्बुद्धौ। अत्र पूर्ववद्दीर्घः॥६॥

अन्वय:-हे तुविमघेन्द्र! त्वं यथा कतः कुण्डुणाच्यागत्यावनाञ्जगतः किरणेभ्यो वाधिपताति उपर्यधो गच्छेत् तथानुतिष्ठ सहस्रेषु गोष्वश्लेषु भूभिषु त्रोठस्मानाशंसय॥६॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोष्ट्रमालङ्करः मनुष्यैरेवं वेदितव्यं योऽयं वायुः स एव सर्वतोऽभिगच्छत्रग्न्यादिभ्योऽधिकः (कुटिल्पतिर्बद्धैश्वर्यप्राप्तिः पशुवृक्षादीनां चेष्टावृद्धिभञ्जनकारकः सर्वस्य व्यवहारस्य च हेतुस्तीति बोध्यम्भिद्।।

पदार्थ:-हे (तुविमघ) अनेकविध धर्म को सिद्ध करने हारे (इन्द्र) सर्वोत्कृष्ट विद्वान्! आप जैसे (वात:) पवन (कुण्डणाच्या) कुटिल्गिति से (वनात्) जगत् और सूर्य की किरणों से (अधि) ऊपर वा इनके नीचे से प्राप्त होकर आनम्द करता है, वैसे (तु) बारम्बार (सहस्रेषु) हजारह (अश्चेषु) वेग आदि गुण वाले घोड़े अदि (गोषु) पृथिवी, इन्द्रिय, किरण और चौपाए (शुभिषु) शुद्ध व्यवहारों में सब प्राणियों और अप्रिणियों को सुशोभित करता है, वैसे (न:) हम को (आशंसय) प्रशंसित कीजिये॥६॥

भावार्थ: इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को ऐसा जानना चाहिये कि जो यह पवन है बही सब जगह जाता हुआ अग्नि आदि पदार्थों से अधिक कुटिलता से गमन करने हारा और बहुत से ऐक्य की प्राप्ति तथा पशु वृक्षादि पदार्थों के व्यवहार उनके बढ़ने-घटने और समस्त वाणी के व्यवहार का हेतु है॥६॥

मण्डल-१। अनुवाक-६। सूक्त-२९

पुन: स किं कुर्य्यादित्युपदिश्यते॥

फिर वह क्या करे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

सर्वं परिक्रोशं जीह जम्भया कृकदा्रथम्।

आ तू नं इन्द्र शंसय गोष्वश्चेषु शुभ्रिषुं सहस्रेषु तुवीमघ॥७॥२७॥

सर्वम्। परिऽक्रोशम्। जहि। जम्भयं। कृकदाश्चम्। आ। तु। नः। इन्द्र। शंस्या मेर्षु। अश्चेषु। शृभिषुं। सहस्रेषु। तुविऽम्घ॥७॥

पदार्थ:-(सर्वम्) समस्तम् (परिक्रोशम्) परितः सर्वतः क्रोशन्ति हिद्दित् यस्मिन् दुःखसमूहे तम् (जिह्न) हिंधि (जम्भय) विनाशय अदर्शनं प्रापय। अन्येषामि दृश्यतः इति सिर्धः। (कृकदाश्चम्) कृकं हिसनं दाशित ददाति तं शत्रुम्। अत्र दाशृ धातोर्बाहुकादौणादिक उण् प्रत्यायस्ततोऽिमपूर्व इत्यत्र वा छन्दिस इत्यनुवृत्तौ पूर्वसवर्णविकल्पेन यणादेशः। (आ) समस्तात् (तु) पुनरर्थे। पूर्ववदीर्घः। (नः) अस्माकमस्मान् वा (इन्द्र) सर्वशत्रुनिवारकसेनाध्यक्ष (शंसय) सृष्यनः सम्पादय (गोषु) पृथिव्या राज्यव्यवहारेषु (अश्चेषु) हस्त्यश्वसेनाङ्गेषु (शुभ्रिषु) शुद्धेषु धार्थेषु च्यवहारेषु (सहस्रेषु) बहुषु (तुविमघ) अधिकं मघं वलाख्यं धनं यस्य तत्सम्बुद्धौ। अत्रापि पूर्ववदीर्घः। ।

अन्वय:-हे तुवीमघेन्द्रसेनाध्यक्षस्त्वं यो नोउस्माकं सृहस्तेषु शुभिषु गोष्वश्चेषु सर्वं परिक्रोशं जिह कृकदाश्चं च जम्भयानेन तु पुनर्नोऽस्मानाशंसय।

भावार्थ:-मनुष्यैरित्थं जगदीश्वरं प्रार्थनीयः। हे परमात्मन्! भवान् येऽस्मासु दृष्टव्यवहाराश्शत्रवः सन्ति तान् सर्वान् निवार्य्यास्मभ्यं सकलैश्वर्य्यं हिहोति। ७॥

पूर्वेण पदार्थविद्यासाधनान्युक्तानि तदुपादानं जगत्पदार्थाः सन्ति ते जगदीश्वरेणोत्पादिता इत्युक्त्वात्र तेषां सकाशादुपक्रमग्रहणसम्पर्धाः स सभाध्यक्षः सभ्याजना भवन्तीत्युक्तत्वादष्टाविंश-सूक्तोक्तार्थेन सहास्यैकोनत्रिंश्रस्कृतार्थस्य सङ्गीतरस्तीतिबोध्यम्॥

इति प्रश्नमाष्टके द्वितीयाध्याये सप्तविंशो वर्गः॥ प्रथममण्डले मुष्टेऽनुवाक एकोनत्रिंशत्तमं सूक्तं च समाप्तम्॥२९॥

पदार्थ:-क्रे (तुविमघ) अनन्त बलरूप धनयुक्त (इन्द्र) सब शत्रुओं के विनाश करने वाले जगदीश्वर आप जो (पः) हमारे (सहस्रेषु) अनेक (शुभ्रिषु) शुद्ध कर्मयुक्त व्यवहार वा (गोषु) पृथिवी के राज्य आदि व्यवहार तथा (अश्रेषु) घोड़े आदि सेना के अङ्गों में विनाश का कराने वाला व्यवहार हो उस (परिक्रोधीम) सब प्रकार से रुलाने वाले व्यवहार को (जिह्न) विनष्ट कीजिये तथा जो (नः) हमारा शत्रु हो (क्रैकदाश्वम्) उस दुःख देने वाले को भी (जम्भय) विनाश को प्राप्त कीजिये। इस रीति से (तु) फिर (नः) हम लोगों को (आशंसय) शत्रुओं से पृथक् कर सुखयुक्त कीजिये॥७॥

भावार्थ:-मनुष्यों को इस प्रकार जगदीश्वर की प्रार्थना करनी चाहिये कि हे परमात्मन्! आप हमें लोगों में जो दुष्ट व्यवहार अर्थात् खोटे चलन तथा जो हमारे शत्रु हैं, उनको दूर कर हम लोगों के लिये सकल ऐश्वर्य दीजिये॥७॥

पिछले सूक्त में पदार्थ विद्या और उसके साधन कहे हैं, उनके उपादान अत्यन्त प्रसिद्ध कराने हारे संसार के पदार्थ हैं जो कि परमेश्वर ने उत्पन्न किये हैं, इस सूक्त में उन पदार्थों हूँ उपकार ले सकने वाली सभाध्यक्ष सहित सभा होती है, उसके वर्णन करने से पूर्वोक्त अट्टाईसवें सूक्त के अर्थ के साथ इस उनतीसवें सूक्त के अर्थ की सङ्गित जाननी चाहिये।

यह प्रथम अष्टक में दूसरे अध्याय में सत्ताईसवां वर्ग वा प्रथम मण्डल में छक्ने अनुबाक में उनतीसवां सूक्त समाप्त हुआ॥२९॥ अथ द्वाविंशत्यृचस्य त्रिंशत्तमस्य सूक्तस्याजीगर्त्ति शुनःशेप ऋषिः। १-१६ इन्द्रः। १७-१९ अश्विनौ। २०-२२ उषादेवताः। १-१०, १२-१५, १७-२२ गायत्री। ११ पादनिचृद्गायत्री,

त्रिष्टुप् च छन्दांसि। १-२२ षड्जः। १६ धैवतश्च स्वरः॥ तत्रादिमे इन्द्रशब्देन शूरवीरगुणा उपदिश्यन्ते।

इसके पहले मन्त्र में इन्द्र शब्द से शूरवीरों के गुणों का प्रकाश किया है।

आ व इन्द्रं क्रिविं यथा वाज्यन्तः शृतक्रेतुम्।

मंहिष्ठं सिञ्च इन्दुंभि:॥१॥

आ। वः। इन्द्रम्। क्रिविम्। यथा। वाजुऽयन्तेः। शृतऽक्रेतुम्। मंहिष्ठम्। स्युक्राः इन्द्रेऽभिः॥ १॥

पदार्थ:-(आ) सर्वतः (वः) युष्माकम् (इन्द्रम्) परमेश्वर्यहेतुप्रापकम् (क्रिविम्) कूपम्। क्रिविरिति कूपनामसु पठितम्। (निघं०३.२३) (यथा) येन प्रकारेण (वाजयन्तः) जलं चालयन्तो वायवः (शतक्रतुम्) शतमसंख्याताः क्रतवः कम्माणि यस्मात्तम् (महिष्ठम्) अतिशयेन महान्तम् (सिञ्च) (इन्दुभिः) जलैः॥१॥

अन्वय:-हे सभाध्यक्ष! मनुष्या यथा कृषीवलाः किर्षि कृषे सम्प्राप्य तज्जलेन क्षेत्राणि सिंचन्ति यथा वाजयन्तो वायव इन्दुभिः शतक्रतुं मंहिष्ठमिन्द्रं च्रत्या त्वम्पि प्रजाः सुखैः सिंच संयोजय॥१॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। यथा मनुष्याः पूर्वं कृपे खिनत्वा तज्जलेन स्नानपानक्षेत्रवाटिकादि सिंचनादि व्यवहारं कृत्वा सुखिनो भवन्ति तथेव क्रिद्धांसो यथावत् कलायन्त्रेष्वऽग्नि योजयित्वा तत्सम्बन्धेन जलं स्थापयित्वा चालनेन बहुन्ति क्रार्स्याणि कृत्वा सुखिनो भवन्ति॥१॥

पदार्थ:-हे सभाध्यक्ष मनुष्य (यथा और खेती करने वाले किसान (क्रिविम्) कुएँ को खोद कर उसके जल से खेतों को (सिञ्च) सीचते हैं और जैसे (वाजयन्त:) वेगयुक्त वायु (इन्दुभि:) जलों से (शतक्रतुम्) जिससे अनेक कर्म होते हैं (मंहिष्टम्) बड़े (इन्द्रम्) सूर्य को सींचते, वैसे तू भी प्रजाओं को सुखों से अभिषिक्त कर॥१॥

भावार्थ:-इस मूत्र में उपमालङ्कार है। जैसे मनुष्य पहिले कुएँ को खोद कर उसके जल से स्नान-पान और खेत बर्गीचे आदि स्थानों के सींचने से सुखी होते हैं, वैसे ही विद्वान् लोग यथायोग्य कलायन्त्रों में अस्त्रि को जोड़ के उसकी सहायता से कलों में जल को स्थापन करके उनको चलाने से बहुत कार्य्यों औं सिद्ध करके सुखी होते हैं॥१॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

शत वा यः शुचीनां सहस्रं वा समाशिराम्।

एदुं निम्नं न रीयते॥२॥

शृतम्। वा। य:। शुचीनाम्। सहस्रम्। वा। सम्ऽआंशिराम्। आ। इत्। ऊम् इति। निम्नम्। नार् रीयते॥२॥

पदार्थ:-(शतम्) असंख्यातम् (वा) पक्षान्तरे (यः) बहुशुभगुणयुक्तो जनः (श्रुचीमेप्) शुद्धानां पिवत्रकारकाणां मध्ये। श्रुचिश्शोचतेर्ज्वलितिकर्म्मणः। (निरु०६.१) (सहस्रम्) बहुर्थे (वा) पक्षान्तरे (समाशिराम्) सम्यगिभतः श्रीयन्ते सेव्यन्ते सद्गुणैर्ये तेषाम्। अत्र श्रयतेः, स्वाहे शिरः किच्च। (उणा०४.२००) अनेनासुन् प्रत्ययः शिर आदेशश्चासुनि। (आ) आधारार्थे (इत्) एव (उ) वितर्के (निम्नम्) अधःस्थानम् (न) इव (रीयते) विजानाति। रीयतीति गतिकर्मसु (विक्रम्। (निघं०२.१४)॥२॥

अन्वय:-पवित्रश्चोपचितो विद्वान् योऽग्निभौतिकोऽस्ति भोर्थयं निष्मार्थः स्थानं गच्छतीव शुचीनां शतं शतगुणो वा समाशिरां सहस्रं वैद्वाधारभूतो दाहको वा रीयते विजानीत॥२॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। अयमिन: सूर्यविद्युत्प्रसिद्धस्त्रिण स्रतस्त्रः शुद्धीः करोति पच्यमानानां पदार्थानां मध्ये वेगैस्सहस्त्रशः पदार्थान् प्रचित्, प्रथा जलमधःस्थानमभिद्रवित तथैवायमिनरूर्ध्वमभिगच्छत्यनयोर्विपर्यासकरणेनाग्निमधः शिप्पित्रेत्वा तदुपिर जलस्य स्थापनेन द्वयोर्योगाद् वाष्पैर्वेगादयो गुणा जायन्त इति॥२॥

पदार्थ:-जो शुद्धगुण, कर्म, स्वभावयुक्त विद्वान् हैं, उसी से यह जो भौतिक अग्नि है वह (निम्नम्) (न) जैसे नीचे स्थान को जाते हैं, वैसे (शुचीनुम्) शुद्ध कलायन्त्र वा प्रकाश वाले पदार्थों का (शतम्) (वा) सौ गुना अथवा (समाशिएम्) जो सेब प्रकार से पकाए जावें, उन पदार्थों का (सहस्रम्) (वा) हजार गुना (आ) (इत्) (उ) आधार और दोह गुणवाला (रीयते) जानता है॥२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालक्क्षर है। यह अग्नि सूर्य और बिजली जो इसके प्रसिद्ध रूप हैं, सैकड़ों पदार्थों की शुद्धि करता है और पक्के योग्य पदार्थों में हजारों पदार्थों को अपने वेग से पकाता है, जैसे जल नीची जगह को जाता है, वैसे ही यह अग्नि ऊपर को जाता है। इन अग्नि और जल को लौट-पौट करने अर्थात् अग्नि की नीचे और जल को ऊपर स्थापन करने से वा दोनों के संयोग से वेग आदि गुण उत्पन्न होते हैं॥२॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह किस प्रकार का है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

स्ं यनदीय शुष्मिण एना हास्योदरे।

सुमुद्रो न व्यची दुधे॥३॥

सम्। यत्। मदाया शुष्मिणी। एना। हि। अस्य। उदरी। सुमुद्रः। न। व्यर्चः। दुधे॥३॥

मण्डल-१। अनुवाक-६। सूक्त-३०

पदार्थ:-(सम्) सम्यगर्थे (यत्) याः (मदाय) हर्षाय (शुष्मिणे) शुष्मं प्रशस्तं बलं विद्यते यस्मिन् व्यवहारे तस्मै। शुष्मिमिति बलनामसु पठितम्। (निघं०२.९) अत्र प्रशंसार्थ इनिः। (एना) एनेन शतेन सहस्रेण वा। अत्र सुपां सुलुग्० इत्याकारादेशः। (हि) खलु (अस्य) इन्द्राख्यस्याग्ने (उदरे मध्ये (समुद्रः) जलाधिकरणः (न) इव (व्यचः) विविधं जलादिवस्त्वञ्चन्ति ताः। अत्र व्युपपदादऽचे किन् ततो जस्। (दधे) धरेयम्॥३॥

अन्वय:-अहं कि खलु मदाय शुष्मिणे समुद्रो व्यचो नो वाऽस्येन्द्रार्ष्ट्रेयस्यापेरुदर एवा एनेन शतेन सहस्रेण च गुणै: सह वर्त्तमाना यत् या: क्रिया: सन्ति ता: सन्दधे॥३॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। यथा समुद्रस्योदरेऽनेके गुणा रत्यानि सन्द्येगाधं जलं वास्ति तथैवाग्नेर्मध्येऽनेके गुणा अनेका: क्रिया वसन्ति। तस्मान्मनुष्यैरग्निजलयो: स्काशात् प्रयत्नेन बहुविध उपकारो ग्रहीतुं शक्य इति॥३॥

पदार्थ:-मैं (हि) अपने निश्चय से (मदाय) आनन्द और (शुष्मिण) प्रशंसनीय बल और ऊर्जा जिस व्यवहार में हो, उसके लिये (समुद्र:) (न) जैसे समुद्र (व्यचः) अनेक व्यवहार (न) सैकड़ह हजार गुणों सहित (यत्) जो क्रिया हैं, उन क्रियाओं को (सन्दर्ध) अच्छे प्रकार धारण करूं॥३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे समुद्र के मध्य में अनेक गुण, रत्न और जीव-जन्तु और अगाध जल है, वैसे ही अग्नि और जल के सिकाश से प्रयत्न के साथ बहुत प्रकार का उपकार लेना चाहिये॥३॥

पुनः स एवीपदिश्यते।

फिर भी उसी बिषय को अगले मन्त्र में प्रकाश किया है॥

अयमुं ते समंतिस क्रुपोर्त इव गर्भधिम्। वचस्तिच्चिन्न ओहस्रो ४॥

अयम्। ऊम् इति ते। सम्। अतिसः। कपोर्तिऽइव। गुर्भुधिम्। वर्चः। तत्। चित्। नः। ओहुसे॥४॥

पदार्थ:-(अयम्) इद्राक्ट्याँऽग्निः (उ) वितर्के (ते) तव (सम्) सम्यगर्थे (अतिस्) निरन्तरं गच्छिति प्रापयिति। अत्र व्यत्ययः (कपोत इव) पारावत इव (गर्भिष्टम्) गर्भो धीयतेऽस्यां ताम् (वचः) वर्त्तनम् (तत्) तस्मे पूर्वोक्ताय बलादिगुणवर्द्धकायानन्दाय (चित्) पुनरर्थे (नः) अस्माकम् (ओहसे) आप्नोति॥ अप

अन्वयः-अविमिन्द्राख्योऽग्निरु गर्भीधं कपोत इव नो वचः समोहसे चिन्नस्तत् अतिस॥४॥
भाषार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। यथा कपोतो वेगेन कपोतीमनुगच्छति, तथैव शिल्पविद्यया साधितो पनिरनुकूलां गितं गच्छति, मनुष्या एनां विद्यामुपदेशश्रवणाभ्यां प्राप्तुं शक्नुवन्तीति॥४॥

पदार्थ:-(अयम्) यह इन्द्र अग्नि जो कि परमेश्वर का रचा है (3) हम जानते हैं कि जैसे (गर्भिधम्) कबूतरी को (कपोत इव) कबूतर प्राप्त हो, वैसे (न:) हमारी (वच:) वाणी को (समोहसे) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है और (चित्) वही सिद्ध किया हुआ (न:) हम लोगों को (तत्) पूर्व कहे हुये बल आदि गुण बढ़ाने वाले आनन्द के लिये (अतिस) निरन्तर प्राप्त करता है॥४॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे कबूतर अपने वेग से कबूतरी को प्राप्त होता है, वैसे ही शिल्पविद्या से सिद्ध किया हुआ अग्नि अनुकूल अर्थात् जैसे चाहिये वैसे गति को प्राप्त होता है। मनुष्य इस विद्या को उपदेश वा श्रवण से पा सकते हैं॥४॥

अथेन्द्रशब्देन सभासेनाध्यक्ष उपदिश्यते॥

अब अगले मन्त्र में इन्द्र शब्द से सभा वा सेना के स्वामी का उपदेश किया है।।

स्तोत्रं राधानां पते गिर्वाहो वीर् यस्य ते। विभूतिरस्तु सूनृतां॥५॥२८॥

स्तोत्रम्। राधानाम्। पते। गिर्वाहः। वीर्। यस्य। ते। व्रिड्भूतिः। अस्तुं। सूनृता।। ५॥

पदार्थ:-(स्तोत्रम्) स्तुवन्ति येन तत् (राधानाम्) प्रध्नुविन्ति सुखानि येषु पृथिव्यादि धनेषु तेषाम्। राध इति धननामसु पठितम्। (निघं०२.१०) अत्र हत्त्रश्चा (अष्टा०३.३.१२१) इति घञ्। अत्र सायणाचार्येण राध्नुवन्ति एभिरिति राधनानि धनानीत्यशुद्धमुक्तं घञन्तस्य नियतपुल्लिङ्गत्वात् (पते) पालियतः (गिर्वाहः) गीर्भिर्वेदस्थवाग्भिरुह्यते प्राप्यते यस्तत्सम्बुद्धौ। अत्र कारकोपपदाद्वहधातोः सर्वधातुभ्योऽसुन्। (उणा०४.१९६) अनेन्स्सुन् प्रत्ययो वा छन्दिस सर्वे विधयो भवन्ति इति पूर्वपदस्य दीर्घादेशो न। (वीर) अजित वेद्यं जानूमित प्रस्पिति विनाशयित सर्वाणि दुःखानि वा यस्तत्सम्बुद्धौ। अत्र स्मायितिञ्चवञ्चि (उणा०२.१२) अम्ताजेरक् प्रत्ययः। (यस्य) स्पष्टार्थः (ते) तव (विभूतिः) विविधमैश्वर्यम् (अस्तु) भवतु (सृजृता) सुष्टु ऋतं यस्यां सा। पृषोदरादी इति दीर्घत्वं नुडागमश्च॥५॥

अन्वय:-हे गिर्वाहो कीर सधानां पते सभासेनाध्यक्ष विद्वन्! यस्य ते तव सूनृता विभूतिरस्ति तस्य तव सकाशादस्माभिर्गृहीनं स्त्रोत्रं नोऽस्माकं प्रदाय शुष्मिणेऽस्तु॥५॥

भावार्थ:-अत्र पूर्वस्मान्नेत्रात् (मदाय) (शुष्मिणे) (नः) इति पदत्रयमनुवर्तते। मनुष्यैर्यः सर्वस्य स्वामी वेदोक्तगुण्राधिष्ठानो विज्ञानरतः सत्यैश्वर्यः यथायोग्यन्यायकारी सभाध्यक्षः सेनापितर्वा विद्वानिस्त स एवास्माभिर्ग्याधीशो मन्तव्य इति॥५॥

पृदीर्थ: है (गिर्वाह:) जानने योग्य पदार्थों के जानने और सुख-दु:खों के नाश करने वाले तथा (राधानाम) जिन पृथिवी आदि पदार्थों में सुख सिद्ध होते हैं, उनके (पते) पालन करने वाले सभा वा सेना के स्वामी विद्वान् (यस्य) जिन (ते) आपका (सूनृता) श्रेष्ठता से सब गुण का प्रकाश करने वाला

मण्डल-१। अनुवाक-६। सुक्त-३०

(विभूति:) अनेक प्रकार का ऐश्वर्य है, सो आप के सकाश से हम लोगों के लिये (स्तोत्रम्) स्तुति (न:) हमारे पूर्वोक्त (मदाय) आनन्द और (शुष्मिणे) बल के लिये (अस्तु) हो॥५॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में पिछले तीसरे मन्त्र से (मदाय) (शुष्मिणे) (नः) इन तीत्र पर्दे अनुवृत्ति है। हम लोगों को सब का स्वामी जो कि वेदों से परिपूर्ण विज्ञानरत ऐश्वर्य्ययुक्त और यथारोग्य न्याय करने वाला सभाध्यक्ष वा सेनापित विद्वान् है, उसी को न्यायाधीश मानना चाहिये।

पुनरयं कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर यह सभाध्यक्ष वा सेनापित कैसा है, इस विषय का उपदेश अगृह्ये मञ्जू में किया है॥

ऊर्ध्वस्तिष्ठा न ऊतयेऽस्मिन्वाजे शतक्रतो। समुन्येषु ब्रवावहै॥६॥

ऊर्ध्वः। तिष्ठः। नुः। ऊतर्थे। अस्मिन्। वाजे। शृतक्रतो इति अस्कितो। सम्रः अन्येषु। ब्रुवावहै॥६॥

पदार्थ:-(ऊर्ध्व:) सर्वोपिर विराजमान: (तिष्ठ) स्थिरो भवा अत्र द्वाचोऽतिस्तङ इति दीर्घ:। (न:) अस्माकम् (ऊतये) रक्षणाद्याय (अस्मिन्) वर्त्तमार्ग (बाजे) मुद्धे (शतक्रतो) शतानि बहुविधानि कर्माणि वा बहुविधाप्रज्ञा यस्य तत्सम्बद्धौ। सभासेनाध्यक्ष (सम्) सम्यगर्थे (अन्येषु) युद्धेतरेषु साधनीयेषु कार्येषु (ब्रवावहै) परस्परमुपदेशश्रवणे नित्यं कुर्य्यावहै॥६॥

अन्वय:-हे शतक्रतो! नोऽस्माकमूत्र अर्ध्विस्त्रिष्टैंवं सित वाजेऽन्येषु साधनीयेषु कर्मसु त्वं प्रतिजनोऽहं च द्वौ द्वौ सम्ब्रवावहै॥६॥

भावार्थ:-सत्याचारैर्ध्यानावस्थितमेनुष्यरात्मस्थानान्तर्यामि जगदीश्वरस्याज्ञया सेनाधिष्ठात्रा सभाध्यक्षेण च सत्यासत्ययोः कर्तव्याकर्तव्ययोश्च सम्यङ्निश्चयः कार्यो नैतेन विना कदाचित् कस्यचिद्विजयसत्यबोधौ भवतः स सर्वव्यापिनं जगदीश्वरं न्यायाधीशं मत्वा धार्मिकं शूरवीरं च सेनापितं कृत्वा शत्रुभिः सह युध्यन्ति वेषा भ्रुवो विजयो नेतरेषामिति॥६॥

पदार्थ:-हे (शतकता) अनेक प्रकार के कर्म वा अनेक प्रकार की बुद्धियुक्त सभा वा सेना के स्वामी! जो आप के सहाय के योग्य हैं, उन सब कार्यों में हम (सम्ब्रवावहै) परस्पर कह सुन सम्मित से चलें और तू (न:) हम लोगों की (ऊतये) रक्षा करने के लिये (ऊर्ध्व:) सभों से ऊँचे (तिष्ठ) बैठ। इस प्रकार आप और हम सभों में प्रतिजन अर्थात् दो-दो होकर (वाजे) युद्ध तथा (अन्येषु) अन्य कर्त्तव्य जो कि उपदेश वा श्रेक्श है, उस को नित्य करें॥६॥

भावार्थ:-सत्य प्रचार के विचारशील पुरुषों को योग्य है कि जो अपने आत्मा में अन्तर्यामी जगहूरी है उसकी आज्ञा से सभापित वा सेनापित के साथ सत्य और मिथ्या वा करने और न करने स्रोम्य कार्मों का निश्चय करना चाहिये। इसके विना कभी किसी को विजय या सत्य बोध नहीं हो

सकता। जो सर्वव्यापी जगदीश्वर न्यायाधीश को मानकर वा धार्मिक शूरवीर को सेनापित करके शर्त्रुओं के साथ युद्ध करते हैं, उन्हीं का निश्चय से विजय होता है, औरों का नहीं॥६॥

पुनरीश्वरसेनाध्यक्षौ कीदृशौ स्त इत्युपदिश्यते॥

फिर ईश्वर वा सेनाध्यक्ष कैसे हैं, इस का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

योगेयोगे त्वस्तरं वाजेवाजे हवामहे। सर्खाय इन्द्रमृतये॥७॥

योगेंऽयोगे। तुवःऽतरम्। वाजेंऽवाजे। हुवामहे। सखायः। इन्ह्रम्। ऊतये।।७॥

पदार्थ:-(योगेयोगे) अनुपात्तस्योपात्तलक्षणो योगस्तस्मिन् प्रतियोम् (तेयस्तरेम्) तूयते विज्ञायत इति तवाः सोऽतिशयितस्तम्। सायणाचार्येणात्र विन्प्रत्ययस्य छन्दिसो लोप इति यदुक्तं तदशुद्धं प्रमाणाभावात् (वाजेवाजे) युद्धं युद्धं प्रति (हवामहे) आह्वयामिहा अत्र खेटे स्मद्बहुवचने लेटोऽडाटौ। (अष्टा०३.४.९४) अनेनाडागमे कृते। बहुलं छन्दिस। (अष्टा०६.१.३४) इति सम्प्रसारणम्। (सखायः) सुहृदो भूत्वा (इन्द्रम्) सर्वविजयप्रदं जगदीश्वरं वा दुष्ट्रसञ्जितवारकप्रतितमशरीरबलवन्तं धार्म्मिकं वीरं सेनापतिम् (ऊतये) रक्षणाद्याय विजयसुखप्राप्तये वा॥७॥

अन्वय:-वयं सखायो भूत्वा स्वोतये योगेयाने वाजेवाजे तवस्तरमिन्द्रं परमात्मानं सभाध्यक्षं वा हवामहे॥७॥

भावार्थ:-अत्र श्लेषालङ्कार:। मनुष्यैर्मित्रतां सम्पद्ध प्राप्तानां पदार्थानां रक्षणं सर्वत्र विजयश्च कार्य:। परमेश्वर: सेनापतिश्च नित्यमाश्रयणीय: प्रैवैतावन्मात्रेणैवैतित्सिद्धिर्भवितुमर्हित। किं तर्हि? विद्यापुरुषार्थाभ्यामेतस्य सिद्धिर्जायत झूत्।।७।

पदार्थ:-हम लोग (सखार्थ:) प्रस्पर मित्र होकर अपनी (ऊतर्थ) उन्नित वा रक्षा के लिये (योगेयोगे) अति कठिनता से प्राप्त होने वाल पदार्थ-पदार्थ में वा (वाजेवाजे) युद्ध-युद्ध में (तवस्तरम्) जो अच्छे प्रकार वेदों से जाना जाता है, उस (इन्द्रम्) सब से विजय देने वाले जगदीश्वर वा दुष्ट शत्रुओं को दूर करने और आत्म वा श्रीर के बल वाले धार्मिक सभाध्यक्ष को (हवामहे) बुलावें अर्थात् बार वार उसकी विज्ञप्ति करते रहे।

भावार्थ: इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों को परस्पर मित्रता सिद्ध कर अलभ्य पदार्थों की रक्षा और सब्धू अपह विजय करना चाहिये तथा परमेश्वर और सेनापित का नित्य आश्रय करना चाहिये और यह श्री स्मरण रखना चाहिये कि उक्त आश्रय से ही उत्तम कार्यसिद्धि होने के योग्य हो, सो ही नहीं, किन्तु विद्या और पुरुषार्थ भी उनके लिये करने चाहिये॥७॥

स केन सहागच्छदित्युपदिश्यते॥

वह किसके साथ प्राप्त हो, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

मण्डल-१। अनुवाक-६। सूक्त-३०

आ घा गम्हादि श्रवंत्सहुस्त्रिणीभिक्तिभिः। वाजेभिक्तपं नो हवंम्॥८॥

आ। घु। गुमुत्। यदि। श्रर्वत्। सुहुम्निणीभिः। ऊतिऽभिः। वाजेभिः। उर्प। नुः। हर्वम्॥ ঠा

पदार्थ:-(आ) समन्तात् (घ) एव। ऋचि तुनुघ० इति दीर्घः। (गमत्) प्राप्नुसन्। अत्र लिङ्थें लुङ्डभावश्च। (यदि) चेत् (श्रवत्) शृणुयात्। अत्र श्रुधातोर्लेट् बहुलं छन्दोस् इति प्रमीर्लुक्। (सहस्रिणीभिः) सहस्राणि प्रशस्तानि पदार्थप्रापणानि विद्यन्ते यासु ताभिः। अत्र प्रशंसार्थ इनिः। (ऊतिभिः) रक्षणादिभिः सह (वाजेभिः) अन्नज्ञानयुद्धादिभिः सह। अत्र बहुलं छन्दिम् इति भिस ऐस् न (उप) सामीप्ये (नः) अस्माकम् (हवम्) प्रार्थनादिकं कर्म॥८॥

अन्वय:-यदि स इन्द्रः सभासेनाध्यक्षो नोऽस्माकमाहवमाह्वाने श्रेष्ठत्। शृणुयात्तर्हि सद्य स एव सहस्रिणीभिरूतिभिर्वाजेभिः सह नोऽस्माकं हवमाह्वानमुपागमदुप्राच्छित्। ८॥

भावार्थ:-यत्र मनुष्यै: सत्यभावेन यस्य सभासेनाध्यक्षस्य सैवनं क्रियते, तत्र संरक्षणाय ससेनाङ्गै रत्नादिभिस्सह तानुपतिष्ठते नैतस्य सहायेन विना क्रियचित्सत्यौ सुखविजयौ सम्भवत इति॥८॥

पदार्थ:-(यदि) जो वह सभा वा सेना का स्वामी (मृर) हम लोगों की (आ) (हवम्) प्रार्थना को (श्रवत्) श्रवण करे (घ) वही (सहस्रिणीभिर) हजारों प्रशंसनीय पदार्थ प्राप्त होते हैं, जिनमें उन (ऊतिभिः) रक्षा आदि व्यवहार वा (वाजेभिरः) अन्न ज्ञान और युद्ध निमित्तक विजय के साथ प्रार्थना को (उपागमत्) अच्छे प्रकार प्राप्त हो॥८॥

भावार्थ:-जहाँ मनुष्य सभा वो सेना के स्वामी का सेवन करते हैं, वहाँ वह सभाध्यक्ष अपनी सेना के अङ्ग वा अन्नादि पदार्थों के साथ उपके समीप स्थिर होता है। इस की सहायता के विना किसी को सत्य-सत्य सुख वा विजय नहीं होते हैं। ।।

अर्थभ्रम्सभाष्ट्रस्थाः प्रार्थना सर्वमनुष्यैः कार्येत्युपदिश्यते॥

अब ईश्वर और सभाध्यक्ष की प्रार्थना सब मनुष्यों को करनी चाहिये, इस विषय का उपदेश
अगले मन्त्र में किया है।।

अनु प्रवस्योकसो हुवे तुविप्रतिं नरम्।

यं ते पूर्व पिता हुवे॥९॥

अर्पु। प्रत्नस्य। ओर्कसः। हुवे। तुविऽप्रतिम्। नर्रम्। यम्। ते। पूर्वम्। पिता। हुवे॥९॥

पदार्थ:-(अनु) पश्चादर्थे (प्रत्नस्य) सनातनस्य कारणस्य। प्रत्मिति पुराणनामसु पठितम्। (निघं०३.२७) अत्र त्नप् प्रगस्य छन्दिस गलोपश्च। (अष्टा०वा०४.३.२३) अनेन प्रशब्दात्तनप् प्रत्ययः। (ओकसः) सर्वनिवासार्थस्याकाशस्य (हुवे) स्तौमि (तुविप्रतिम्) तुवीनां बहूनां पदार्थानां प्रतिमात्रम्) अत्रैकदेशेन प्रतिशब्देन प्रतिमातृशब्दार्थो गृह्यते। (नरम्) सर्वस्य जगतो नेतारम् (क्स्) जगदीश्वरं सभासेनाध्यक्षं वा (ते) तव (पूर्वम्) प्रथमम् (पिता) जनक आचार्यो वा (हुवे) गृह्णात्मित्रिक्रिति अत्र बहुलं छन्दिस इति शपो लुगात्मनेपदं च॥९॥

अन्वय:-हे मनुष्य! ते पिता यं प्रत्नस्यौकसः सनातनस्य कार्यास्य सेकाशात् तुविप्रतिं बहुकार्यप्रतिमातारं नरं परमेश्वरं सभासेनाध्यक्षं वा पूर्वं हुवे तमेवाहमनुकूलं हुवे स्तौम्॥९॥

भावार्थ:-ईश्वरो मनुष्यानुपदिशति। हे मनुष्या! युष्माभिरेवमन्यान् प्रत्युपदेष्ट्रच्यं योऽनादिकारणस्य सकाशादनेकविधानि कार्याण्युत्पादयति। किञ्च यस्योपासनं पूर्वे कृत्वन्तः कुर्वन्ति करिष्यन्ति च तस्यैवोपासनं नित्यं कर्त्तव्यमिति। अत्र कञ्चित्प्रति कश्चित् पृच्कृत्वं कस्योपासनं करोषीति तस्मा उत्तरं दद्यात् यस्योपासनं तव पिता करोति यस्य च सर्वे बिद्धांसः। ये वेदा निराकारं सर्वव्यापिनं सर्वशक्तिमन्तमजमनादिस्वरूपं जगदीश्वरं प्रतिपादयन्ति तभ्वाहं नित्यस्यासे॥९॥

पदार्थ: - हे मनुष्य! (ते) तेरा (पिता) जनक वा आचिर्प्य (यम्) जिस (प्रत्नस्य) सनातन कारण वा (ओकसः) सबके ठहरने योग्य आकाश के सर्वाश से (कृविप्रतिम्) बहुत पदार्थों को प्रसिद्ध करने और (नरम्) सबको यथायोग्य कार्य्यों में लगाने वाले परमेश्वर वा सभाध्यक्ष का (पूर्वम्) पहिले (हुवे) आह्वान करता रहा उन का मैं भी (अनुहुवे) तदनुकूल अम्ह्वान वा स्तवन करता हूं॥९॥

भावार्थ:-ईश्वर मनुष्यों को उपदेश करता है कि हे मनुष्यो! तुम को औरों के लिये ऐसा उपदेश करना चाहिये कि जो अनादि कारण से असक प्रकार के कार्य्यों को उत्पन्न करता है तथा जिस की उपासना पहिले विद्वानों ने की ब्रा अब के करते और अगले करेंगे, उसी की उपासना नित्य करनी चाहिये। इस मन्त्र में ऐसा विषय है कि कोई किसी से पूछे कि तुम किस की उपासना करते हो ? उसके लिये ऐसा उत्तर देवे कि जिसकी सुम्हारे पिता वा सब विद्वान् जन करते तथा वेद जिस निराकर, सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमास अज और अनादि स्वरूप जगदीश्वर का प्रतिपादन करते हैं, उसी की उपासना मैं निरन्तर करता हं॥९॥

🔾 अथोक्तस्येश्वरस्य प्रार्थनाविषय उपदिश्यते॥

अब ईश्वर की प्रार्थना के विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

त्वा वये विश्ववारा शास्महे पुरुहूत।

संखें वसो जि्तृभ्यः॥१०॥२९॥

तुम्। त्वा। वयम्। विश्वऽवार्। आ। शास्महे। पुरुऽहृत्। सखे। वसो इति। जुरितृऽभ्ये:॥१०॥

मण्डल-१। अनुवाक-६। सूक्त-३०

पदार्थ:-(तम्) पूर्वोक्तं परमेश्वरम् (त्वा) त्वाम् (यम्) उपासनामभीप्सवः (विश्ववार) विश्वं वृणीते सम्भाजयित तत्सम्बुद्धौ (आ) समन्तात् (शास्महे) इच्छामः (पुरुहूत) पुरुभिर्बहुभिराहूयते स्तूयने यस्तत् सम्बुद्धौ (सखे) मित्र (वसो) वसन्ति सर्वाणि भूतानि यस्मिन् यो वा सर्वेष्ट्र(भूतेषु वसित तत्सम्बुद्धौ (जिरतृभ्यः) स्तावकेभ्यो धार्मिकेभ्यो विद्वद्भयो मनुष्येभ्यः॥१०॥

अन्वय:-हे विश्ववार पुरुहूत वसो सखे जगदीश्वर! पूर्वप्रतिपादितं त्वां वय्रं जिरतृभ्य अशास्महे भवद्विज्ञानप्रकाशमिच्छाम इति यावत्॥१०॥

भावार्थ:-मनुष्यैर्विदुषां सङ्गमेनैवास्य सर्वरचकस्य सर्वपूज्यस्य सर्वमित्रस्य सर्वाधारस्य पूर्वमन्त्रप्रतिपादितस्य परमेश्वरस्य विज्ञानमुपासनं नित्यमन्वेष्टव्यम्, कृती विदुषामुपदेशेन विना कस्यापि यथार्थतया विज्ञानं भवितुमर्हति॥१०॥

पदार्थ:-हे (विश्ववार) संसार को अनेक प्रकार सिद्ध करने (पुरुद्देत) सब से स्तुति को प्राप्त होने (वसो) सब में रहने वा सबको अपने में बसाने वाले (सिद्धे) सबके मित्र जगदीश्वर! (तम्) पूर्वोक्त (त्वा) आपकी (वयम्) हम लोग (जिरतृभ्यः) स्तुति करने व्यले धार्मिक विद्वानों से (आ) सब प्रकार से (शास्महे) आशा करते हैं अर्थात् आपके विशेष ज्ञान प्रकाश की इन्छा करते हैं॥१०॥

भावार्थ:-मनुष्यों को विद्वानों के समागम ही सि सब जगत् के रचने, सबके पूजने योग्य, सबके मित्र, सबके आधार, पिछले मन्त्र से प्रतिपादिल किये हुए, परमेश्वर के विज्ञान वा उपासना की नित्य इच्छा करनी चाहिये, क्योंकि विद्वानों के उपदेश के बिना, किसी को यथायोग्य विशेष ज्ञान नहीं हो सकता है॥१०॥

पुनः समासेनाध्यक्षप्राप्तीच्छाकरणमुपदिश्यते॥

फिर सभा सेनाध्यक्ष के प्राप्त होये की इच्छा करने का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अस्मार्कं शिप्रिणीनुं सीमेपाः सोमेपाञाम्।

सखें वजिन्सखीनाए॥ १९॥

अस्मार्कम्। शिष्टिणीनाम्)।सोर्मऽपाः। सोमुऽपाञाम्। सखे। वृज्जिन्। सखीनाम्॥ ११॥

पदार्थ:-(अस्माकम्) विदुषां सकाशाद् गृहीतोपदेशानाम् (शिप्रिणीनाम्) शिप्रे ऐहिकपारमार्थिकव्यवहारज्ञानं विद्येते यासां ता विदुष्यः स्त्रियस्तासाम्। शिप्रे इति पदनामसु पठितम्। (निघं०४.३%। अस्तित्र ज्ञानार्थो गृह्यते। (सोमपाः) सोमान् उत्पादितान् कार्याख्यान् पदार्थान् पाति रक्षति तत्संबुद्धौ (सोमपाञाम्) सोमानां पावनो रक्षकास्तेषाम् (सखे) सर्वसुखप्रद (विज्ञन्) वज्रोऽविद्यासिवारकः प्रशस्तो बोधो विद्यते यस्य तत्संबुद्धौ। अत्र व्रजेर्गत्यर्थाज्ज्ञानार्थे प्रशंसायां मतुप्। (सखीनाम्) सर्वमित्राणां पुरुषाणां सखीनां स्त्रीणां वा॥११॥

अन्वय:-हे सोमपा विज्ञन्! सोमपाव्नां सखीनामस्माकं सखीनां शिप्रिणीनां स्त्रीणां च सर्वप्रधाने त्वा त्वां वयमाशास्महे प्राप्तुमिच्छाम:॥११॥

भावार्थ:-अत्र श्लेषालङ्कार:। पूर्वस्मान्मन्त्रात् (त्वा) (वयम्) (आ) (शास्महे) इति पदचतुष्टयाऽनुवृत्ति:। सर्वै: पुरुषै: सर्वाभि: स्त्रीभिश्च परस्परं मित्रतामासाद्य परमेश्वरोपासमाऽऽयराजिद्या धर्मसभा सर्वव्यवहारसिद्धिश्च प्रयत्नेन सदैव सम्पादनीया॥११॥

पदार्थ:-हे (सोमपा:) उत्पन्न किये हुए पदार्थ की रक्षा करने वाले (विजिन) सब अविद्यारूपी अन्धकार के विनाशक उत्तम ज्ञानयुक्त (सखे) समस्त सुख देने और (सोमपाज्ञाम) सांसारिक पदार्थों की रक्षा करने वाले (सखीनाम्) सबके मित्र हम लोगों के तथा (सखीनाम्) सबका हित चाहनेहारी वा (शिप्रिणीनाम्) इस लोक और परलोक के व्यवहार ज्ञानवाली हमारी स्त्रियों को सब प्रकार से प्रधान (त्वा) आप को (वयम्) करने वाले हम लोग (आशास्महे) प्राप्त होने को इच्छा करते हैं॥११॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है और पूर्व मन्त्र से (त्वा) (वयम्) (आ) (शास्महे) इन चार पदों की अनुवृत्ति है। सब पुरुष वा सब स्त्रियों को परस्पर मित्रभाव का वर्ताव कर व्यवहार की सिद्धि के लिये परमेश्वर की प्रार्थना वा आर्थ्य राजविद्या और धर्म सभा प्रयत्न के साथ सदा सम्पादन करनी चाहिये॥११॥

अथ सभाध्यक्षाय कि किमुपदेशनीयर्मित्युपदिश्यते॥

अब उस सभाध्यक्ष को क्या-क्या उपदेश करने के औरय है, यह अगले मन्त्र में कहा है॥

तथा तदंस्तु सोमणाः सखे वज्रित् तथा कृणु।
यथा त उश्मसीष्ट्रये॥ १२॥

तथा। तत्। अस्तु। सोमुपाः। सखे वृजिन्। तथा। कृणु। यथा। ते। उश्मिसी इष्टयी। १२॥

पदार्थ:-(तथा) तेन प्रकृषिण (तत्) भित्राचरणम् (अस्तु) भवतु (सोमपा:) यः सोमैर्जगत्युत्पन्नैः पदार्थैः सर्वान् पाति रक्षति तत्संबुद्धौ (सखे) सर्वेषां सुखदातः (वित्रन्) वजः सर्वदुःखनाशनो बहुविधो दृढो बोधो यस्यास्तीति तत्संबुद्धौ। अत्र भूम्न्यर्थे मतुप्। (तथा) प्रकारार्थे (कृणु) कुरु (यथा) येन प्रकारेण (ते) तव (उश्मिस) कामयाम्ह्रो अत्र इदन्तो मिस इति मिसरादेशः। (इष्ट्ये) इष्टसुखिसिद्धये॥१२॥

अन्वयः है सोमप्त वज्रिन्सखे सभाध्यक्ष! यथा वयिमष्टये ते तवाऽनुकूलं यन्मित्राचरणं कर्त्तुमुश्मिस क्रुमियामहे कुर्म्मश्च तथा तदस्तु तथा तत् त्वमिप कृणु कुरु॥१२॥

भावार्थः प्रया सर्वेषां हितैषी सकलविद्यान्वितः सभासेनाध्यक्षः प्रजाः सततं रक्षेत्, तथैव प्रजासेनस्थैरपि मनुष्येस्तदवनं सदा सम्भावनीयमिति॥१२॥

पदर्थि:-हे (सोमपा:) सांसारिक पदार्थों से जीवों की रक्षा करने वाले (विज्रिन्) सभाध्यक्ष! जैसे हम लोग (इष्ट्रये) अपने सुख के लिये (ते) आप शस्त्रास्त्रवित् (सखे) मित्र की मित्रता के अनुकूल जिस

मण्डल-१। अनुवाक-६। सूक्त-३०

मित्राचरण के करने को (उश्मिस) चाहते और करते हैं (तथा) उसी प्रकार से आपकी (तत्) मित्रता हमारे में (अस्तु) हो आप (तथा) वैसे (कृणु) कीजिये॥१२॥

भावार्थ:-जैसे सब का हित चाहनेवाला और सकल विद्यायुक्त सभा सेनाध्यक्ष द्विपन्तर प्रजा की रक्षा करे, वैसे ही प्रजा सेना के मनुष्यों को भी उसकी रक्षा की सम्भावना करनी चाहिस्री॥१२५०

तस्मिन्किं किं स्थापयित्वा सर्वै: सुखियतव्यमित्युपदिश्यते॥ 🗸

उसमें क्या-क्या स्थापन करके सब मनुष्यों को सुखयुक्त होना चाहिये, इस्र विषय का उपदेश

अगले मन्त्र में किया है॥

रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः।

क्षुमन्तो याभिर्मदेम॥ १३॥

रेवती:। नु:। सुधुऽमादे। इन्ह्रे। सुन्तु। तुविऽवाजा:। क्षुऽमन्त्रे याभि:। प्रदेम॥ १३॥

पदार्थ:-(रेवती:) रियः शोभा धनं प्रशस्तं विद्यवे यासु ताः (प्रजाः)। अत्र प्रशंसार्थे मतुप्। रयेर्मतौ बहुलम्। (अष्टा॰वा॰६.१.३७) अनेन सम्प्रसारणम्। इन्हर्सीर इति मस्य वत्वम्। सुपां सुलुग्॰ इति पूर्वसवर्णादेशश्च। (नः) अस्माकम् (स्थमादे) मादनान्देन सह वर्त्तमाने। अत्र सध मादस्थयोश्छन्दिस्। (अष्टा॰६.३.९६) इति सहस्य सध्यदेशः। (इन्द्रे) परमैश्वर्ये (सन्तु) भवन्तु (तुविवाजाः) तुवि बहुविधो वाजो विद्याबोधो यास्तं ताः (श्चुमन्तः) बहुविधं क्ष्वत्रं विद्यते येषां ते। अत्र भूम्न्यर्थे मतुप्। क्ष्वित्यन्ननामसुपिठतम्। (निर्घे०२.७) (याभिः) प्रजाभिः (मदेम) आनन्दं प्राप्नुयाम॥१३॥

अन्वय:-यथा क्षुमन्तो वयं, याभि: प्रजाभि: सधमादे मदेम तुविवाजा रेवती: रेवत्य: प्रजा इन्द्रे परमैश्वर्ये नियुक्ता: सन्तु॥१३॥

भावार्थ:-अत्र वाच्नेत्पुरतोपमालङ्क्षाः:। मनुष्यैः ससभासेनाध्यक्षेषु सभासत्सु सर्वाणि राज्यविद्याधर्मप्रचारकराणि कार्याष्त्रि संस्थाप्य प्रशस्तं सुखं भोज्यं भोजयितव्यं च वेदाज्ञया समानविद्यारूपस्वभावानां युवाविस्थानां स्त्रीपुरुषाणां परस्परानुमत्या स्वयंवरो विवाहो भवितुं योग्यस्ते खलु गृहकृत्ये परस्परसत्कारे नित्यं प्रयतेरन् सर्व एते परमेश्वरस्योपासने तदाज्ञायां सत्पुरुषसभाज्ञायां च सदा वर्तेरन् सैतिद्वित्रे व्यवहारे कदाचित् केनचित्पुरुषेण कयाचित् स्त्रिया च क्षणमिप स्थातुं योग्यमस्तीति॥१३॥

पदार्थ:-(क्षुमन्त:) जिनके अनेक प्रकार के अन्न विद्यमान हैं, वे हम लोग (याभि:) जिन प्रजाओं के स्निथ (स्थमादे) आनन्दयुक्त एक स्थान में जैसे आनन्दित होवें, वैसे (तुविवाजा:) बहुत प्रकार के विद्याबोधनाली (रेवती:) जिनके प्रशंसनीय धन है, वे प्रजा (इन्द्रे) परमैश्वर्य के निमित्त (सन्तु) हों॥१३॥

भावार्थ:-यहाँ वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को सभाध्यक्ष सेनाध्यक्ष सिहत सभाओं में सब राज्य विद्या और धर्म के प्रचार करने वाले कार्य स्थापन करके सब सुख भोगना वा भोगाना चाहिये और वेद की आज्ञा से एक से रूप स्वभाव और एकसी विद्या तथा युवा अवस्था वाले स्त्री और पुरुषों भी परस्पर इच्छा से स्वयंवर विधान से विवाह होने योग्य हैं और वे अपने घर के कामों में तथा एक दूसरे के सत्कार में नित्य यत्न करें और वे ईश्वर की उपासना वा उस की आज्ञा तथा सत्युरुषों की आज्ञा में सदा चित्त देवें, किन्तु उक्त व्यवहार से विरुद्ध व्यवहार में कभी किसी पुरुष वर्ष स्त्री को क्षणभर भी रहना न चाहिये॥१३॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मुन्त्र में किया है)

आ घु त्वावान्त्मनापाः स्तोतृभ्यो धृष्णवियानः।

ऋणोरक्षं न चक्रचो:॥१४॥

आ। घ। त्वाऽवान्। त्मनां। आपाः। स्तोतृऽभ्यः। धृष्णो इति। इयानः। ऋणोः। अक्षम्। न। चुक्रयोः॥१४॥

पदार्थ:-(आ) अभ्यर्थे (घ) एव (त्वावान्) त्वाहुशः। अत्र वतुप् प्रकरणे युष्मदस्मद्भ्यां छन्दिस् सादृश्य उपसंख्यानम्। (अष्टा॰वा॰५.२.३९) इति सादृश्यार्थे वतुप्। (त्मना) आत्मना। मन्त्रेष्वाड्योदरात्मनः। (अष्टा॰६.४.१४१) इत्याकारक्षोपः। (आप्तः) सर्वविद्यादिसद्गुणव्याप्तः सत्योपदेष्टा (स्तोतृभ्यः) स्तावकेभ्यो जनभ्यः। गत्यर्थकर्म्मणि द्वितीयाचतुर्थ्यौ चेष्टायामनध्वनि। (अष्टा॰२.३.१२) इति चतुर्थी (इग्नानः) सर्वीभीष्टाभिज्ञाता। अत्रेङ्गतावित्यस्मात्। छन्दिस लिट्। (अष्टा॰३.२.१०५) इति लिट्। लिटः कानज्वा। (अष्टा॰३.२.१०६) इति कानच्। (ऋणोः) प्राप्नोति। अत्र लर्ड्थे लङ्। बहुलं छन्दिस इत्यडभावश्च। (अक्षम्) धृः (न) इव (चक्रयोः) रथाङ्गयोः। अत्र कृञ् धातोः आदृगमहनजनः (अष्टा॰३.२.१७१) इति किप्रत्ययः॥१४॥

अन्वय:-हे धृष्णा अति प्रग्रत्भ सभाध्यक्ष! त्मनाप्त इयानस्त्वावान् त्वं घ त्वमेवासि यस्त्वं चक्रचोरक्षं न इव स्तोतृभ्यः स्तावकभ्य आऋणोः स्तावकान् आप्नोसीति यावत्॥१४॥

भावार्थः अत्रोपमालङ्कारः प्रतीपालङ्कारश्च। यथा चक्रचार्धू रथधारिका सती परिभ्रमणेनापि स्वस्मिन्नैव स्थापनी रथस्य देशान्तरप्रापिका भवति। तथैव सकलगुणकर्मस्वभावाभिव्याप्त-स्त्वमेतत्स्ववियच्छ्यसीति॥१४॥

पदार्थ: - हे (धृष्णो) अति धृष्ट (त्मना) अपनी कुशलता से (आप्तः) सर्व विद्यायुक्त सत्य के उपद्रेश करने और (इयानः) राज्य को जानने वाले राजन्! (त्वावान्) आप से (घ) आप ही हो जो आप

मण्डल-१। अनुवाक-६। सुक्त-३०

(चक्रयो:) रथ के पहियों की (अक्षम्) धुरी के (न) समान (स्तोतृभ्य:) स्तुति करने वालों को (आऋणो:) प्राप्त होते हो॥१४॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार और प्रतीपालङ्कार हैं। जैसे पहियों की धुरी रिथ की भाण करने वाली घूमती भी अपने ही में ठहरी सी रहती है और रथ को देशान्तर में प्राप्त करने वाली होती है, वैसे ही आप राज्य को व्याप्त होकर यथायोग्य नियम में रखते हो॥१४॥

पुनस्तत्सेवनात् किं फलमित्युपदिश्यते॥

फिर उसके सेवन से क्या फल होता है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

आ यद्दुर्वः शतक्रत्वा कामं जरितॄणाम्।

ऋणोरक्षुं न शचीभि:॥१५॥३०॥

आ। यत्। दुर्वः। <u>शतक</u>ृतो इति शतऽक्रतो। आ। क्रा<mark>म्म्। जुस्त्र</mark>ुणाम्। ऋणोः। अक्षेम्। न। शचीभिः॥१५॥

पदार्थ:-(आ) समन्तात् (यत्) वक्ष्यमाणम् (दुवः) परिचरणम् (शतक्रतो) शतविधप्रज्ञाकर्मयुक्त सभेश राजन् (आ) अभितः पूर्त्यर्थे (कामम्) कम्प्यते यस्त्रम्। (जिरतृणाम्) गुणकर्मस्तावकानाम् (ऋणोः) प्रापयसि। अस्यापि सिद्धिः पूर्ववत् (अध्यम्) अश्यक्ते व्याप्यन्ते प्रशस्ता व्यवहारा येन तम् (न) इव (शचीभिः) कर्मभिः॥१५॥

अन्वय:-हे शतक्रतो सभापते! त्व जरितृत्रिः यत्तव दुवः परिचरणं तत् प्राप्य शचीभिः शकटार्हकर्मभिरक्षं न इव तेषां जरितॄणां कार्यं आत्राणाः तदनुकूलं प्रापयसि॥१५॥

भावार्थ:- अत्रोपमालङ्कारः यथा सभास्वामी राजा विद्वत्सेवनं विद्यार्थिनामभीष्टं पूरयित तथा परमेश्वरस्य सेवनं धार्मिकाणां जनानां सर्वमभीष्टं प्रापयित तस्मात्सर्वेर्मनुष्येस्तत् सेवनीयमिति॥१५॥

पदार्थ:-हे (शतक्रतों) अनेकविध विद्वा बुद्धि वा कर्मयुक्त राजसभा स्वामिन्! आप स्तुति करने वाले धार्मिक जनों से (त्त्रा) जो आप्र का (दुव:) सेवन है, उस को प्राप्त होकर (शचीभि:) रथ के योग्य कर्मों से (अक्षम्) उसकी धुरी के (न) समान उन (जिरतृणाम्) स्तुति करने वाले धार्मिक जनों की (कामम्) कामनाओं को (अप्र) (ऋणोः) अच्छी प्रकार पूरी करते हो॥१५॥

भावार्षः इसे मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे विद्वानों का सेवन विद्यार्थियों का अभीष्ट अर्थात् उनकी इच्छी के अनुकूल कामों को पूरा करता है, वैसे परमेश्वर का सेवन धार्मिक सज्जन मनुष्यों का अभीष्ट पूरा करता है। इसलिये उनको चाहिये कि परमेश्वर की सेवा नित्य करें॥१५॥

पुन: स सभाध्यक्ष: कीदृश: किं करोतीत्युपदिश्यते॥

क्तर वह सभाध्यक्ष कैसा और क्या करता है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

शश्चिदिन्द्रः पोप्नुंथद्धिर्जिगाय नानंदद्धिः शाश्चेसद्धिर्धननि। स नौ हिरण्यर्थं दुंसनावान्त्स नैः सिनुता सुनये स नौऽदात्॥१६॥

शृश्चेत्। इन्द्रेः। पोप्नुंथत्ऽभिः। जिगायः। नानंदत्ऽभिः। शाश्चंसत्ऽभिः। धर्नानि। सः। नः हिर्ण्युऽरुश्रम्। दुंसनांऽवान्। सः। नः। सुनिता। सुनये। सः। नः। अदात्॥ १६॥

पदार्थ:-(शश्चत्) अनादिस्वरूपाज्जगत्कारणात् (इन्द्रः) सृष्टिकर्तेश्वरः राज्यशास्ता (पोप्रथद्धिः) अतिशयेन स्थूलैरचरैः कार्यैः। अत्र प्रोधृ पर्यापावित्यस्माद् यङ्लुगन्ताच्छतुप्रत्यय रुपधाया उत्वं च वर्णव्यत्ययेन (जिगाय) जयित प्रकर्षतां प्रापयित। अत्र लर्डथें लिट्। (नानदृद्धः) अतिशयेनाव्यक्तरशब्दं कुर्वद्धिजीवैविद्युदादिभिर्वा (शाश्चसद्धः) अतिशयेन प्राणविद्धश्चरैः (धनाति) पृथिवीसुवर्णविद्यादीनि (सः) उक्तार्थः (नः) अस्मभ्यम् (हिरण्यरथम्) हिरण्यानां ज्योतिमेयार्थं सूयदिन् लोकानां सुवर्णादीनां वा रथो देशान्तरप्रापणो यानसमूहः। अत्र रथ इति रमु क्रीझ्म्यामित्यस्य रूपं रमधातो रूपं वा। (दंसनावान्) दंसः कर्म आचष्टेऽनया सा दंसना। सा बह्वी विद्युते पस्य सः दंस इति कर्मनामसु पठितम्। (निघं०२.१) अस्मात् तत्करोति तदाचष्टे इति णिच् ततो प्रमस्थ्रस्थे युध् इति युच् ततो भूम्न्यर्थे मतुप्। (सः) सर्वेषां जीवानां पापपुण्यफलानां विभागदाता (नः) अस्मभ्यम् (अदात्) दत्तवान्। ददाति दास्यित वा। अत्र छन्दिस लुङ्लङ्किटः इति सामान्यकाले लुङ्गा।१६॥

अन्वय:-इन्द्रो जगदीश्वर: शश्वत् श्रश्वतिऽनादेः कारणात् नानदद्भिः शाश्वसद्भिः पोप्रथिद्भिः कार्येर्द्रव्यैर्जिगाय जयित स दंसनावानीश्वरो निऽस्पभ्यं हिरण्यरथमदाद् ददाति दास्यित स नोऽस्माकं सनये सुखानां सिनता सर्वाणि सुखान्यदादिव सभासेशापितवर्तेत॥१६॥

भावार्थ:-यथा जगदीश्वरः सनातनाज्जगत्कारणाच्चराचराणि कार्याण्युत्पाद्यैतेः सर्वेभ्यो जीवेभ्यस्सर्वाणि सुखानि ददाति तथा सभासेनापितन्यायाधीशाः सर्वाणि सभासेनान्यायाङ्गानि निष्पाद्य सर्वाः प्रजा निरन्तरमानन्दयेशः यथा नैतस्नाद्भित्रः कश्चिज्जगत्स्रष्टा कर्मफलप्रदाता राज्यप्रशास्ता च भवितुमर्हित तथैव सर्वमे द्वृतिष्ठेरन्॥१६॥

पदार्थ:-(इन्द्र:) जाति का रचने वाला ईश्वर (श्रश्चत्) अनादि सनातन कारण से (नानदिद्धः) तड़फ और गर्जना आदि शब्दों को करती हुई बिजली और नदी अचेतन और जीव तथा (श्राश्चसिद्धः) अति प्रशंसनी प्राण वाले चर वा (पोप्रथिद्धः) स्थूल जो कि अचर हैं, उन कार्य्यरूपी पदार्थों से (धनानि) पृथिवी सूवर्ण और विद्या आदि धनों को (जिगाय) प्रकर्षता अर्थात् उन्नति को प्राप्त करता है (सः) ब्रह्म (दंसनावान्) कर्मों का फल देने हारा के और साधनों से संयुक्त ईश्वर (नः) हमारे लिये (हिंग्र्णप्रथम्) ज्योति वाले सूर्य आदि लोक वा सुवर्ण आदि पदार्थों के प्राप्त कराने वाले पदार्थों को और विमान आदि रथों को (अदात्) प्रत्यक्ष करता है (सः) (नः) हम को सुखों के (सनये) भोग के लिये

मण्डल-१। अनुवाक-६। सूक्त-३०

(सनिता) विद्या, कर्म और उपदेश से विभाग करने वाला होकर सब सुखों को (अदात्) देता है, वैसा सभा, सेनापित और न्यायाधीश भी वर्ते॥१६॥

भावार्थ:-जैसे जगदीश्वर सनातन कारण से चर और अचर कार्यों को उत्पन्न करके इन्हीं से मूब जीवों को सुख देता है, वैसे सभा, सेनापित, न्यायाधीश लोग सब सभा, सेना और स्थाय के अङ्गों को सिद्ध कर सब प्रजा को निरन्तर आनन्दयुक्त करते हैं, जैसे इससे और कोई संसार के रचने वा कर्म फल का देने और ठीक न्याय से राज्य का पालन करने वाला नहीं हो सकता बिसे के भी सब कार्य्य करें॥१६॥

पुनस्तौ कीदृशौ स्त इत्युपदिश्यते॥

फिर वे कैसे हों, इसका अगले मन्त्र में प्रकाश किया है।।

आश्विनावश्चीवत्येषा यातुं शवीरया। गोर्मद् दस्रा हिर्रण्यवत्॥१७॥

आ। अश्विनौ। अश्वेऽवत्या। इषा। यातुम्। शवीरया। भिऽभेत्। दुर्सू। हिर्रण्यऽवत्॥ १७॥

पदार्थ:-(आ) समन्तात् (अश्विनौ) यथा धावापृथिव्यादिकद्वन्द्वं तथा विद्याक्रियाकुशलौ (अश्वावत्या) वेगादिगुणसहितया। अत्र मन्त्रे सोमाश्विन्द्रियिश्व (अष्टा०६.३.१३१) अनेन पूर्वपदस्य दीर्घ:। (इषा:) इष्यते यया। अत्र कृतो बहुलम् इति क्ररणे क्विप्। (यातम्) प्रापयतम् (श्वीरया) देशान्तरप्रापिकया गत्या शु गतावित्यसम्बद्धातोबोहुलकादौणादिक ईरन् प्रत्ययः। (गोमत्) गावः सुखप्रापिका बह्वयो विद्यन्ते यस्मिस्तत्। गोरिति पद्मामसु पठितम्। (निघं०५.५) अनेन प्राप्त्यर्थो गृह्यते। अत्र भूम्न्यर्थे मतुप्। (दस्ना) दारिद्रयोपक्ष्महेत्। अत्र सुपां सुलुग्० इति आकारादेशः (हिरण्यवत्) हिरण्यं सुवर्णादिकं बहुविधं साधने यस्य तत्। अत्र भूम्न्यर्थे मतुप्॥१७॥

अन्वय:-हे विद्याक्रियाकुशलौ विद्वांसौ शिल्पिनौ दस्राविश्वनौ सभासेनास्वािमनौ द्यावापृथिव्यािववेषाभीष्ट्रयाञ्चवत्या प्रवीरया गत्या हिरण्यवद् गोमद् यानमायातं समन्ताद्देशान्तरं प्रापयतम्॥१७॥

भावार्थः- पूर्वोक्ताभ्यामिश्वभ्यां चालितं यानं शीघ्रगत्या भूमौ जलेऽन्तरिक्षे च गच्छति तस्मादेतत्सद्यः साध्यस्॥ १७॥

पद्धार्थ:-हें (दस्ना) दारिद्रच किनाश कराने वाले (अश्विनौ) बिजली और पृथिवी के समान विद्या और क्रिशाकुशल शिल्पी लोगो! तुम (इषा) चाही हुई (अश्वावत्या) वेग आदि गुणयुक्त (शवीरया) देशात्रीर को प्राप्त कराने वाली गति के साथ (हिरण्यवत्) जिसके सुवर्ण आदि साधन हैं और (गोमत्)

३५६ जिसमें सिद्ध किये हुए धन से सुख प्राप्त कराने वाली बहुत सी क्रिया हैं, उस रथ को (आयातम्) अच्हे

प्रकार देशान्तर को पहुंचाइये॥१७॥

भावार्थ:-पूर्वोक्त अश्व अर्थात् सूर्य्य और पृथिवी के गुणों से चलाया हुआ रथ शींघ्र गीन भूमि, जल और अन्तरिक्ष में पदार्थों को प्राप्त करता है, इसलिये इसको शीघ्र साधना चाहिसा १७५०

पुनस्तौ कीदृशावित्युपदिश्यते॥

फिर वे किस प्रकार के हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।

सुमानयोजनो हि वाँ रथो दस्रावमर्त्यः।

सुमुद्रे अश्विनेयते॥ १८॥

सुमानऽयोजनः। हि। वाम्। रथः। दुस्रौ। अमर्त्यः। सुमुद्रे। अधिमार्द्धर्यते। १८०।

पदार्थ:-(समानयोजन:) समानं तुल्यं योजनं संयोगकरणं यस्पिन् सः (हि) खल् (वाम्) युवयो: (रथ:) नौकादियानम् (दस्नौ) गमनकर्त्तारौ (अमर्त्यः) भिब्ह्यमान्त्र आकर्षका मनुष्यादयः प्राणिनो यस्मिन् सः (समुद्रे) जलेन सम्पूर्णे समुद्रेऽन्तरिक्षे वा (अश्विन्त) अश्विन्ते क्रियाकौशलव्यापिनौ। अत्र सूपां सुलुग्० इत्याकारादेश:। (**ईयते**) गच्छति॥१८॥

अन्वय:-हे दस्रौ मार्गगमनपीडोपक्षेतारावश्विमा अश्विनौ विद्वांसौ! यो वां युवयोर्हि खलु समानयोजनोऽमर्त्यो रथः समुद्र ईयते यस्य वेग्रेशिश्वावेत्या अवीरया गत्या समुद्रस्य पारावारौ गन्तुं युवां शक्नुतस्तं निष्पादयतम्॥१८॥

भावार्थ:-अत्र पूर्वस्मान्मन्त्रात् (अश्वानत्या) रशवीरया) इति द्वयोः पदयोरनुवृत्तिः। मनुष्यैर्यानि महान्त्यग्निवाष्पजलकलायन्त्रै: सम्यक्क्षे चालित्यामि नौकायानानि तानि निर्विघ्नतया समुद्रान्तं शीघ्रं गमयन्ति। नैवेदृशैर्विना नियतेन कालेनाभीक्ष्रं स्थानान्तरं गन्तुं शक्यत इति॥१८॥

पदार्थ:-हे (दस्त्री) मूर्गि चलने की पीड़ा को हरने वाले (अश्विना) उक्त अश्वि के समान शिल्पकारी विद्वानो! (वाम्) तुम्हास जो सिद्ध किया हुआ (समानयोजन:) जिसमें तुल्य गुण से अश्व लगाये हों (अमर्त्य:) जिसके खेंचिके में मनुष्य आदि प्राणि न लगे हों, वह (ख:) नाव आदि रथसमूह (समुद्रे) जल से पूर्ण सागर व अन्तरिक्ष में (ईयते) (अश्वावत्या) वेग आदि गुणयुक्त (शवीरया) देशान्तर को प्राप्द्रिक्रराने क्लानी गित के साथ समुद्र के पार और वार को प्राप्त कराने वाला होता है, उसको सिद्ध क्रीजिये। १८॥

भावार्थः इस मन्त्र में पूर्व मन्त्र से (अश्वावत्या) (शवीरया) इन दो पदों की अनुवृत्ति है। मनुष्यों की जो अरिन, वायु और जलयुक्त कलायन्त्रों से सिद्ध की हुई नाव हैं, वे निस्सन्देह समुद्र के अन्त को जल्दी पहुंचाती हैं, ऐसी-ऐसी नावों के विना अभीष्ट समय में चाहे हुए एक स्थान से दूसरे स्थान को बाना नहीं हो सकता है॥१८॥

मण्डल-१। अनुवाक-६। सूक्त-३०

पुनस्तौ कीदृशावित्युपदिश्यते॥

फिर वे कैसे हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

न्यर्थघ्यस्यं मूर्धिनं चक्रं रथस्य येमथुः।

परि द्यामुन्यदीयते॥ १९॥

नि। अघ्न्यस्यं। मूर्धनि। चुक्रम्। रथस्य। येमुथुः। परिं। द्याम्। अन्यत्। ई्यते॥ १९००

पदार्थ:-(नि) क्रियायोगे (अध्यस्य) हन्तुं विनाशयितुमनर्हस्य यानस्य (मूर्धनि) उत्तमाङ्गेऽग्रभागे (चक्रम्) एकं यन्त्रकलासमूहम् (रथस्य) विमानादियानस्य (येमथु:) देशान्तर भूच्छथः। अत्र लडर्थे लिट्। (पिर) सर्वतः (द्याम्) दिवमुपर्य्याकाशम् (अन्यत्) द्वितीयं चक्रम (ईश्वते) गम्यविपे १९॥

अन्वय:-हे अश्विनौ! विद्याव्याप्तौ युवां यद्येकमघ्न्यस्य रथस्य मुर्द्धन्भपरं द्वितीयं च चक्रमधो रचयेतां तर्ह्येते समुद्रमाकाशं वा नियेमथुर्नियच्छथ एताभ्यां द्विभ्यां युक्तं यानं यथेष्टे मार्गे ईयते प्रापयित॥१९॥

भावार्थ:-शिल्पिभः शीघ्रगमनार्थं यद्यद्यानं चिकीप्यति तस्य तस्याग्रभाग एकं कलायन्त्रचक्रं सर्वकलाभ्रमणार्थं द्वितीयमपरभागे च रचनीयं तद्रचने जलाग्न्यादे प्रयोज्येतेन यानेन ससम्भाराः शिल्पिनो भूमिसमुद्रान्तरिक्षमार्गेण सुखेन गन्तुं शक्नुवन्तीति निरुच्यः॥ १९९॥

पदार्थ:-हे अश्विनौ विद्यायुक्त शिल्पि लेगो! तुम् दोनों (अघ्यस्य) जो कि विनाश करने योग्य नहीं है, उस (रथस्य) विमान आदि यान के (मधीत) उत्तम अङ्ग अग्रभाग में जो एक और (अन्यत्) दूसरा नीचे की ओर कलायन्त्र बनाओं तो वे वी चुक्क समुद्र वा (द्याम्) आकाश पर भी (नियेमथु:) देश-देशान्तर में जाने के वास्ते बहुत अच्छे हों, इन दोनों चक्रों से जुड़ा हुआ रथ जहाँ चाहो वहाँ (ईयते) पहुंचाने वाला होता है॥१९॥

भावार्थ:-शिल्पि विद्वानी को योग्य है कि जो शीघ्र जाने आने के लिये रथ बनाना चाहें तो उसके आगे एक-एक कलायन्त्रमुक्त चक्र तथा सब कलाओं के घूमने के लिये दूसरा चक्र नीचे भाग में रच के उसमें यन्त्र के साथ जल और अनिन आदि पदार्थों का प्रयोग करें। इस प्रकार रचे हुए यान भारसिहत शिल्पि विद्वान् लोगों को भूमि, समुद्र और अन्तरिक्ष मार्ग से सुखपूर्वक देशान्तर को प्राप्त करता है॥१९॥

अथैतद्विद्योपयोग्योषसः काल उपदिश्यते॥

अब इस विद्या के उपयोग करने वाले प्रात:काल का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

करेत उष: कधप्रिये भुजे मर्तो अमर्त्ये।

कं नक्षसे विभावरि॥२०॥

कः। ते। उषः। कुधुऽप्रिये। भुजे। मर्तः। अमुर्त्ये। कम्। नुक्षुसे। विभाऽवृरि॥२०॥

पदार्थ:-(कः) वक्ष्यमाणः (ते) तव विदुषः (उषः) उषाः (कधप्रिये) कथनं कथा प्रिया यस्यां सा। अत्र वर्णव्यत्ययेन थकारस्य स्थाने धकारः। (भुजे) भुज्यते यः स भुक् तस्मै। अत्र कृतो वहुलीम् इति कर्मणि विवप्। (मर्तः) मनुष्यः (अमर्त्यः) कारणप्रवाहरूपेण नाशरहिता (कम्) मनुष्यम् (नक्ष्में) प्राप्नोसि (विभाविर) विविधं जगत् भाति दीपयित सा विभाविर। अत्र वनो र च। (अष्टाठ इ.१.७) अनेन डीप् रेफादेशश्च॥२०॥

अन्वय:-हे विद्वन्! येयममर्त्ये कधप्रिये विभावर्युषरुषा भुजे सुखभ्रेमाय प्रत्यहं प्राप्नाति, तां प्राप्य त्वं कं मनुष्यं न नक्षसे प्राप्नोसि, को मर्तो भुजे ते तव सनीडं न प्राप्नोति, २०॥

भावार्थ:-अत्र काक्वर्थ:। को मनुष्य: कालस्य सूक्ष्मां व्यर्थामनानिहाँ गतिं वेद, निह सर्वो मनुष्य: पुरुषार्थारम्भस्य सुखाख्यामुषसं यथावज्जानाति, तस्मात्सर्वे) मनुष्या: प्रातरुत्थाय यावन्नसुषुपुस्तावदेकं क्षणमिप कालस्य व्यर्थं न नयेयु:, एवं जिम्स्तो जनाः सर्वकालं सुखं भोक्तुं शक्नुवन्ति नेतरेऽलसाः॥२०॥

पदार्थ:-हे विद्याप्रियजन! जो यह (अमर्त्य) किएण प्रवाह रूप से नाशरहित (कधप्रिये) कथनप्रिय (विभाविरे) और विविध जगत् को प्रकाश करने वाली (उषा) प्रातःकाल की वेला (भुजे) सुख भोग कराने के लिये प्राप्त होती है, उसको प्राप्त होंकर तू (कम्) किस मनुष्य को (नक्षसे) प्राप्त नहीं होता और (कः) कौन (मर्त्तः) मनुष्य (भुजे) सुख भोगने के लिये (ते) तेरे आश्रय को नहीं प्राप्त होता॥२०॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में काक्वर्थ है। कीन मेनुष्य इस काल की सूक्ष्म गित जो व्यर्थ खोने के अयोग्य है, उसको जाने जो पुरुषार्थ के अरम्भ का आदि समय प्रात:काल है, उसके निश्चय से प्रात:काल उठ कर जब तक सोमें का समय न हो, एक भी क्षण व्यर्थ न खोवे। इस प्रकार समय के सार्थपन को जानते हुए मनुष्य/भूब काल सुखे भोग सकते हैं, किन्तु आलस्य करने वाले नहीं॥२०॥

पुन्रं सा कीदृशी ज्ञातव्येत्युपदिश्यते॥

फिर उस वेला को किसी जाननी चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

वयं हि ते अमन्मुह्यान्तादा पराकात्।

अश्वे न चित्रे अरुषि॥ २१॥

वृर्यम्। हिं ते। अर्मन्महि। आ। अन्तात्। आ। पुराकात्। अर्थ्वे। न। चित्रे। अुरुषि॥२१॥

मण्डल-१। अनुवाक-६। सूक्त-३०

पदार्थ:-(वयम्) कालमिहम्नो वेदितारः (हि) निश्चये (ते) तव (अमन्मिह) विजानीयाम। अत्र वहुलं छन्दिस इति श्यनोर्लुक्। (आ) मर्यादायाम् (पराकात्) दूरदेशात् (अश्वे) प्रतिक्षणं शिक्षिते तुरंभे (न) इव (चित्रे) आश्चर्य्यव्यवहारे (अरुषि) रक्तगुणप्रकाशयुक्ता॥२१॥

अन्वय:-हे विद्वन्! यथा वयं या चित्रेऽरुष्यद्भुतता रक्तगुणाढ्यास्ति व्यापनाद्धिभमुख्यात् समीपस्थाद् देशादापराकाद् दूरदेशाच्चाश्वेनामन्महि तथा त्वमिप विजानीहि॥२१॥ 🗸

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। ये मनुष्या भूतभविष्यद्वर्त्तमानकालान् यथाव्यद्भपयोजितुं जानन्ति, तेषां पुरुषार्थेन दूरस्थ समीपस्थानि सर्वाणि कार्याणि सिध्यन्ति। अतो नैव केनापि मनुष्येण क्षणमात्रोऽपि व्यर्थ: काल: कदाचित्रेय इति॥२१॥

पदार्थ: – हे कालविद्यावित् जन! जैसे (वयम्) समय के प्रभाव को जानने वाले हम लोग जो (चित्रे) आश्चर्यरूप (अरुषि) कुछ एक लाल गुणयुक्त उषा है, उस को (आ अन्तात्) प्रत्यक्ष समीप वा (आपराकात्) एक नियम किये हुए दूर देश से (अश्वे) नित्य सिक्षा के योग्य घोड़े पर बैठ के जाने आने वाले के (न) समान (अमन्मिह) जानें, वैसे इस को तू भी निस्तारिश्वी)

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो मनुष्य भूते, भविष्यत् और वर्तमान काल का यथायोग्य उपयोग लेने को जानते हैं, उनके पुरुषार्थ सि समीप्रवा दूर के सब कार्य सिद्ध होते हैं। इससे किसी मनुष्य को कभी क्षण भर भी व्यर्थ काल, खूनि। न चाहिय॥ २१॥

पुन: मः कोदृशीत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसी है, इस विश्विक के अपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

त्वं त्येभिरा गृहि वाजेभिदुहित्रर्दिवः।

असमे र्यिं नि धारय। १२ भा ३१ । ६॥

त्वम्। त्येभिः। आ। गुह्रिं। वार्जेभिः। दुहिनः। दुवः। अस्मे इति। र्यिम्। नि। धार्या। २२॥

पदार्थ:-(त्वम्) कालकृत्यम्रित् (त्येभि:) शोभनैः कालावयवैः सह। अत्र बहुलं छन्दिस इति भिस ऐस् न। (आ) समन्तात् (गिह) प्राप्नुहि। अत्र बहुलं छन्दिस इति शपो लुक्। (वाजेभिः) अन्नादिभिः पदार्थैः। अत्रापि पूर्ववद् भिस ऐस न। (दुहितः) दुहिता पुत्रीव। दुहिता दुर्हिता दूरे हिता दोग्धेर्वा। (निरु०३.४) (दिवः) दिवो द्योतनकर्मणामादित्यरश्मीनाम्। (निरु०१३.२५) अनेन सूर्यप्रकाशस्य दिव

इ. (आ) प्रेत्पक्षम् (अन्तात्) समीपे इति स्खलितः पाठः। सं०

इति नामास्ति। (**अस्मे**) अस्मभ्यम् (**रियम्**) विद्यासुवर्णादिधनम् (**नि**) नितरां क्रियायोगे (**धारये**) सम्पादय॥२२॥

अन्वय:-हे कालमाहात्म्यवित् विद्वंस्त्वं या दिवो दुहितर्दुहितोषाः संसाधिता स्ति त्यिभिः कालावयवैरस्मे अस्मान् वाजेभिरन्नादिभिश्च सहानन्दाय समन्तात् प्राप्नोति तथाऽस्मध्य रियर्निधारय धारय नित्यं सम्पादयैवमागहि सर्वथा तिद्वद्यां ज्ञापय यतो वयमपि कालं व्यर्थं न नयेम्

भावार्थ:-ये मनुष्याः कालं व्यर्थं न नयन्ति तेषां सर्वः कालः सर्वकार्यसिद्धिप्रदो भवति नेतरेषामिति॥२२॥

अत्र पूर्वसूक्तोक्तविद्यानुषङ्गिणामिन्द्राश्व्युषसामर्थानां प्रतिपादनात् पूर्वसूक्तार्थेनैतत् सूक्तार्थस्य सङ्गतिरस्तीति बोध्यम्॥

इति प्रथमाष्ट्रके द्वितीयाध्याय एकत्रिंशो वर्गः प्रथममण्डले षष्टोऽनुवाकस्विशं सुक्तं च समाप्तम्॥३०॥

पदार्थ: -हे काल के माहात्म्य को जानने वाले विद्वान (त्वम्) तू जो (दिवः) सूर्य किरणों से उत्पन्न हुई उनकी (दुहितः) लड़की के समान प्रातःकाल की वेला (त्येष्पिः) उसके उत्तम अवयव अर्थात् दिन महीना आदि विभागों से वह हम लोगों को (वाजेषिः) अब आदि पदार्थों के साथ प्राप्त होती और धनादि पदार्थों की प्राप्त का निमित्त होती है, उससे (असमें) हम लोगों के लिये (रियम्) विद्या, सुवर्णादि धनों को (निधारय) निरन्तर ग्रहण कराओं और (आगिह) इस प्रकार इस विद्या की प्राप्त कराने के लिये प्राप्त हुआ कीजिये कि जिससे हम लोगभी समय को निरर्थक न खोवें॥ २२॥

भावार्थ:-जो मनुष्य कुछ भी व्यर्थ काल नहीं खीते उन का सब काल सब कामों की सिद्धि का करने वाला होता है॥२२॥

इस मन्त्र में पिछले सूक्त के अनुषङ्गी (इन्द्र) (अश्वि) और (उषा) समय के वर्णन से पिछले सूक्त के अनुषङ्गी अर्थों के साथ इस सूक्त के अर्थ की संगति जाननी चाहिये।

यह पहिले अष्टक में दूसरे अध्याय में इकती मेवां वर्ग तथा पहिले मण्डल में छठा अनुवाक और तीसवां स्वतः समाप्त हुआ॥३०॥

अथाष्टादशर्चस्यैकत्रिंशत्तमस्य सूक्तस्याङ्गिरसो हिरण्यस्तूप ऋषिः। अग्निर्देवता १-७९-१५। १७ जगतीछन्दो निषादः स्वरः ८,१६,१८ त्रिष्टुप् च छन्दः। धैवतः स्वरः॥

तत्रादिमेनेश्वर उपदिश्यते॥

अब इकतीसवें सुक्त का प्रारम्भ है, उस के पहिले मन्त्र में ईश्वर का प्रकाश किया 🐔

त्वर्मग्ने प्रथमो अङ्गिरा ऋषिर्देवो देवानामभवः शिवः सर्खा। तर्व वृते कुवयो विद्यनापुसोऽजायन्त मुरुतो भ्राजदृष्टयः॥ १॥

त्वम्। अग्ने। प्रथमः। अङ्गिराः। ऋषिः। देवः। देवानाम्। अभवः। शिवः। सखाः तर्वे। वृते। कुवर्यः। विद्यनाऽअपसः। अजीयन्त। मुरुतः। भ्राजेत्ऽऋष्टयः॥ १॥

पदार्थ:-(त्वम्) जगदीश्वरः (अग्ने) स्वप्रकाशविज्ञानस्वरूपेश्वर (प्रथमः) अनादिस्वरूपो जगतः कल्पादौ सदा वर्त्तमानः (अङ्ग्रिराः) पृथिव्यादीनां ब्रह्माण्डस्य सिरआदीनां शरीरस्य रसोऽन्तर्यामि-रूपेणावस्थितः। आङ्ग्रिरसो अङ्ग्रनाथ्धं हि रसः। (श०ब्रा०१४/३,१.२१) (ऋषिः) सर्वविद्याविद्वेदोपदेष्टा (देवः) आनन्दोत्पादकः (देवानाम्) विदुषाम् (अभवः) भवस्। अत्र लेडथें लङ्। (शिवः) मङ्गलमयो जीवानां मङ्गलकारी च (सखा) सर्वदुःखविनाशनेस सहायकारी (तव) जगदीश्वरस्य (व्रते) धर्माचारपालनाज्ञानियमे (कवयः) विद्वांसः (विद्यनापसः) वेदनं विद्य तद्विद्यते येषु तानि विज्ञाननिमित्तानि समन्तादपांसि कर्माणि येषां ते (अजायन्त) जायन्ते। अत्र लड्शे लङ्। (मस्तः) धर्मप्राप्ता मनुष्याः। मस्त इति पदनामसु पठितम्। (निघं०५.५) (भ्राजदृष्ट्यः) भ्राजूत् प्रकाशमाना विद्या ऋष्टिर्ज्ञानं येषान्ते॥१॥

अन्वयः-हे अग्ने! यतस्त्वं प्रथमाऽह्यिरा ऋषिर्देवानां देवः शिवः सखाऽभवो भवसि ये विद्मनापसो मनुष्यास्तव व्रते वर्त्तन्ते तस्मात एव भाजदृष्टयः कवयोऽजायन्त जायन्ते॥१॥

भावार्थ:-य ईश्वराज्ञाधर्मविद्धत्सङ्गान् विहाय किमपि न कुर्वन्ति, तेषां जगदीश्वरेण सह मित्रता भवित, पुनस्तिन्मित्रतया तेषामाल्मेसु सत्यविद्याप्रकाशो जायते, पुनस्ते विद्वांसो भूत्वोत्तमानि कर्माण्यनुष्ठाय सर्वेषां प्राणिनां सुखप्रापकत्वेन प्रसिद्धा भवन्तीति॥१॥

पदार्थ:-हे (अर्स) आप ही प्रकाशित और विज्ञान स्वरूप युक्त जगदीश्वर जिसका कारण (त्वम्) आप (प्रथम:) अनाहि स्कूरूप अर्थात् जगत् कल्प की आदि में सदा वर्त्तमान (अङ्गिरा:) ब्रह्माण्ड के पृथिवी आदि श्रारीर के हस्त पाद आदि अङ्गों के रस रूप अर्थात् अन्तर्यामी (ऋषि:) सर्व विद्या से परिपूर्ण वेद के उपदेश करने और (देवानाम्) विद्वानों के (देव:) आनन्द उत्पन्न करने (शिव:) मङ्गलमय तथा प्राणिश्वा को पङ्गल देने तथा (सखा) उनके दु:ख दूर करने से सहायकारी (अभव:) होते हो और

३६२

जो (विदानापसः) ज्ञान के हेतु काम युक्त (मरुतः) धर्म को प्राप्त मनुष्य (तव) आप की (व्रते) अज्ञा नियम में रहते हैं, इससे वही (भ्राजदृष्टयः) प्रकाशित अर्थात् ज्ञान वाले (कवयः) कवि विद्वान् (अजायन्त) होते हैं॥१॥

भावार्थ:-जो ईश्वर की आज्ञा पालन धर्म और विद्वानों के संग के सिवाय और कुछ काम नहीं करते हैं, उनकी परमेश्वर के साथ मित्रता होती है, फिर उस मित्रता से उनके आत्मा में सक् विद्वा का प्रकाश होता है और वे विद्वान् होकर उत्तम काम का अनुष्ठान करके सब प्राणियों के सुख करने के लिये प्रसिद्ध होते हैं॥१॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मुन्त्र में किया है।

त्वमंग्ने प्रथमो अङ्गिरस्तमः कुविर्देवानां परि भूषिस वृतम्। विभुविश्वस्मै भुवनाय मेधिरो द्विमाता शयुः केतिधा चिदासवैभः २॥

त्वम्। अग्ने। प्रथमः। अङ्गिरःऽतमः। कुविः। देवानाम्। परिः प्रूपेसि। वृतम्। विऽभुः। विश्वस्मै। भुवनायः। मेधिरः। द्विऽमाताः शुयुः कुतिधाः। चित्। आयवे॥ २॥

पदार्थ:-(त्वम्) सर्वस्यालङ्करिष्णुः (अग्ने सर्वेदुःखप्रणाशक सर्वशत्रुप्रदाहक वा (प्रथमः) अनादिस्वरूपः पूर्वं मान्यो वा (अङ्गिरस्तमः) अतिशयेगङ्गिरा अङ्गिरस्तमः। जीवात् प्राणादन्य-मनुष्यादत्यन्तोत्कृष्टः (किवः) सर्वज्ञः (देवानग्नः) विदुष्णं सूर्यपृथिव्यादीनां लोकानां वा (पिरः) सर्वतः (भूषिः) अलङ्करोषि (वृतम्) तत्तद्धर्म्यनियम् (विभुः) सर्वव्यापकः सर्वसभासेनाङ्गैः शत्रुबलेषु व्यापनशीलो वा (विश्वरमे) सर्वस्मे (भूवनाय) भूवन्ति भूतानि यस्मिंस्तद्भवनं तस्मे (मेधिरः) सङ्गमकः (द्विमाता) द्वयोः प्रकाशाप्रकाशवतोक्तिकसंसूहयोमीता निर्माता (शयुः) यः प्रलये सर्वाणि भूतानि शाययित सः (कितिधा) कितिभः प्रकारे (चित्) एव (आयवे) मनुष्याय। आयव इति मनुष्यनामसु पिठतम्। (निघं०२.३)॥२॥

अन्वय:-हे अत्ने यतुम्त्वं प्रथमं शयुर्मेधिरो द्विमाताऽङ्गिरस्तमो विभुः कविरिस, तस्माच्चिदेवायवे मनुष्याय विश्वस्म भुवनाय च देवानां व्रतं परिभूषसि॥२॥

भावार्थः अत्र श्लेषालङ्कारः। परमेश्वरो वेदद्वारा तदध्यापनेन विद्वांश्च मनुष्याणां विद्याधर्माख्यं व्रतं लोकानां विद्याभाख्यं च सुशोभयित, येन सूर्य्यादिः प्रकाशवान् वायुपृथिव्यादिरप्रकाशवांश्च लोकसमूह्र पृष्टः स सर्वव्याप्यस्ति यैरीश्वरस्यैतत्कृतसृष्टेविद्या प्रकाश्यते ते विद्वांसो भवितुमर्हन्ति, नैव

५. धर्माचरणेरूपी। सं०

मण्डल-१। अनुवाक-७। सूक्त-३१

विभुना विद्वद्भिर्वा विना कश्चिद् यथार्थां विद्यां कारणात् कार्यरूपान् सर्वान् लोकान् स्रष्टुं धारयितुं विज्ञापयितुं च शक्नोतीति॥२॥

पदार्थ: -हे (अग्ने) सब दु:खों के नाश करने और सब दुष्ट शत्रुओं के दाह करने आले जगदी हर वा सभासेनाध्यक्ष! जिस कारण (त्वम्) आप (प्रथम:) अनादिस्वरूप वा पहिले मृतिने योप (श्रयु:) प्रलय में सब प्राणियों को सुलाने (मेधिर:) सृष्टि समय में सबको चिताने (द्विमता) प्रकाशचान् वा अप्रकाशवान् लोकों के निर्माण अर्थात् सिद्ध करने वा तद्विद्या जनाने वाले (अद्विरस्तमः) जीव, प्राण और मनुष्यों में अत्यन्त उत्तम (विभु:) सर्वव्यापक वा सभा सेना के अङ्गों से सब्बु बलों में व्याप्त स्वभाव (कवि:) और सबको जानने वाले हैं (चित्) उसी कारण से (आयवे) निष्य वा (विश्वस्मे) सब (भुवनाय) संसार के लिये (देवानाम्) विद्वान् वा सूर्य और पृथिवी अदि लोकों के (वृतम्) धर्मयुक्त नियमों को (कितिधा) कई प्रकार से (पिरभूषिस) सुशोभित करते हो।। र।।

भावार्थ:-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। परमेश्वर वेद द्वारी वा उसूके पढ़ाने से विद्वान् मनुष्य के विद्या धर्मरूपी व्रत वा लोकों के नियमरूपी व्रत को सुर्शाभित करता है, जिस ईश्वर ने सूर्य आदि प्रकाशवान् वा वायु पृथिवी आदि अप्रकाशवान् लोकसमूह रहा है वह सर्वव्यापी है और ईश्वर की रची हुई सृष्टि से विद्या को प्रकाशित करता है, वह विद्वान् होता है, उस ईश्वर वा विद्वान् के विना कोई पदार्थ विद्या वा कारण से कार्यरूप सब लोकों के रचने श्वारप और जानने को समर्थ नहीं हो सकता॥२॥

पुनस्तौ कीदृशाबित्युपदिश्यते॥

फिर वह दोनों कैस् हैं, यह उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

त्वमंग्ने प्रथमो मात्तिरिश्चन अतिभीव सुक्रतूया विवस्वते। अरेजेतां रोदंसी होतुवूर्येऽस<u>ध्नोर्भा</u>रमयंजो महो वसो॥३॥

त्वम्। अग्ने। प्रथमः। मात्रिश्चने। अभिनः। भवः। सुक्रुतुऽया। विवस्वते। अरेजेताम्। रोदंसी इति। होतृऽवूर्ये। अस्प्रमाः। भारम्भ अर्पजः। मुहः। वसो इति॥३॥

पदार्थ:-(त्वम्) ईश्वर: सभाध्यक्षो वा (अग्ने) विज्ञापक (प्रथम:) कारणरूपेणाऽनादिर्वा कार्य्येष्वादिमः (मातिरश्चने) यो मातर्याकाशे श्वसिति सोऽयं मातिरश्चा वायुस्तत्प्रकाशाय (आविः) प्रसिद्धार्थे (भव) भावय (सुक्रतूया) शोभनः क्रतुः प्रज्ञाकर्म वा यस्मात् तेन। अत्र सुपां सुलुग्० इति याडादेशः। (विवस्त्रको) सूर्यलोकाय (अरेजेताम्) चलतः। भ्यसते रेजत इति भयवेपनयोः। (निरु०३१२) (सदसी) द्यावापृथिव्यौ। रोदसी इति द्यावापृथिवीनामसु पठितम्। (निघं०३.३०) (होतृर्वूर्ये) होतॄणां स्वीकर्त्तव्ये। अत्र वृ वरणे इत्यस्माद्वाहुलकादौणादिकः क्यथ् प्रत्ययः। उदोष्ठ्यपूर्वस्य।

(अष्टा०७.१.१०२) इत्यॄकारस्योकारः। **हिल च** इति दीर्घश्च। (असघ्नोः) हिंस्याः (भारम्) (अयर्जः) सङ्गमयसि (महः) महान्तम् (वसो) वासयति सर्वान् यस्तत्सम्बुद्धौ॥३॥

अन्वय:-हे अग्ने जगदीश्वर विद्वन् वा! प्रथमस्त्वं येन सुक्रतूया मातिरश्वना होत् पूर्वे रिद्वर्सी द्यावापृथिव्यावरेजेतां तस्मै मातिरश्वने विवस्वते चाविर्भवैतौ प्रकटीभावय। हे वसो! याभ्यां महो भारमग्रजो यजिस तौ नो बोधय॥३॥

भावार्थ:-कारणरूपोऽग्नि: स्वकारणाद् वायुनिमित्तेन सूर्याकृतिर्भूत्वा तमो हत्त्वा पृथिवीप्रकाशौ धरति, स यज्ञशिल्पहेतुर्भूत्वा कलायन्त्रेषु प्रयोजित: सन् महाभारयुक्तान्यपि याज्ञीन सन्धारामयतीति॥३॥

पदार्थ: – हे (अग्ने) परमात्मन् वा विद्वन्! (प्रथमः) अनादि स्वरूप का समस्त कार्यों में अग्रगन्ता (त्वम्) आप जिस (सुक्रतूया) श्रेष्ठ बुद्धि और कर्मों को सिद्ध कराने वाले पवन से (हें तृवूर्ये) होताओं को ग्रहण करने योग्य (रोदसी) विद्युत् और पृथिवी (अरेजेताम्) अपनी कक्षा में घूमा करते हैं, उस (मातिरश्चने) अपनी आकाश रूपी माता में सोने वाले पवन वा (चिवस्वते) सूर्यलोक के लिये उनको (आवि: भव) प्रकट कराइये। हे (वसो) सबको निवास करानेहारे! आप शत्रुओं का (असघ्नोः) विनाश कीजिये, जिनसे (महः) बड़े-बड़े (भारम्) भारयुक्त यात को (अवसः) देश-देशान्तर में पहुंचाते हो, उनका बोध हमको कराइये॥३॥

भावार्थ:-कारणरूप अग्नि अपने कारण और वायु के निमित्त से सूर्य रूप से प्रसिद्ध तथा अन्धकार विनाश करके पृथिवी वा प्रकाश का भारण करना है, वह यज्ञ वा शिल्पविद्या के निमित्त से कला यन्त्रों में संयुक्त किया हुआ बड़े-बड़े भारयुक्त विमान आदि यानों को शीघ्र ही देश-देशान्तर में पहुंचाता है॥३॥

पुर्नः स ईश्वरः कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह ईश्वर कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

त्वर्मग्ने मनवे द्यामेबाश्यः पुरूरवेशे सुकृते सुकृत्तरः।

श्रात्रेण यत्पत्रोतिस्यसि पर्या त्वा पूर्वमनयन्नापरं पुनः॥४॥

त्वम्। अग्ने। मनेव द्याम्। अवाशयः। पुरूरवंसे। सुऽकृते। सुकृत्ऽतरः। श्रात्रेणं। यत्। पित्रोः। मुर्च्यसे। परिं। आर्द्वा। पूर्वमा अनुयन्। आ। अपरम्। पुन्रिति॥४॥

पदार्थः (त्वस्) सर्वप्रकाशकः (अग्ने) परमेश्वर (मनवे) मन्यते जानाति विद्याप्रकाशेन सर्वव्यवहार तस्मै ज्ञानवते मनुष्याय (द्याम्) सूर्य्यलोकम् (अवाशयः) प्रकाशितवान् (पुरूरवसे) पुरवो बहवो रवा शब्दा यस्य विदुषस्तस्मै। पुरूरवा बहुधा रोरूयते। (निरु०१०.४६) पुरूरवा इति पदनामसु पिक्तम्। (मिघं०५.४) अनेन ज्ञानवान् मनुष्यो गृह्यते। अत्र पुरूपदाद् रु शब्द इत्यस्मात् पुरूरवाः। (उणाठके २३७) इत्यसुन् प्रत्ययान्तो निपातितः। (सुकृते) यः शोभनानि कर्माणि करोति तस्मै (सुकृत्तरः)

मण्डल-१। अनुवाक-७। सुक्त-३१

योऽतिशयेन शोभनानि करोतीति सः (श्वात्रेण) धनेन विज्ञानेन वा। श्वात्रामिति धननामसु पठितम्। (निघं०२.१०) पदनामसु च। (निघं०४.२) (यत्) यं यस्य वा (पित्रोः) मातुः पितुश्च सकाशात्र (मुच्यसे) मुक्तो भवसि (पिरे) सर्वतः (आ) अभितः (त्वा) त्वां जीवम् (पूर्वम्) पूर्वकल्प्रे पूर्वजनिम् वा वर्त्तमानं देहम् (पुनः) पश्चादर्थे॥४॥

अन्वय:-हे अग्ने जगदीश्वर! सुकृत्तरस्त्वं पुरूरवसे सुकृते मनवे द्यामवाशयः श्वात्रेण सह वर्तमानं त्वां विद्वांस: पूर्वं पुनरपरं चानयन् प्राप्नुवन्ति। हे जीव! ये त्वां श्वात्रेण सह वर्तमाने पूर्वमप्प च देहं विज्ञापयन्ति यद्यत: समन्ताद् दु:खान्मुक्तो भविस, यस्य च नियमेन त्वं पित्रो: सकाशान्महाकल्पान्ते पुनरागच्छिस, तस्य सेवनं ज्ञानं च कुरु॥४॥

भावार्थ:-येन जगदीश्वरेण सूर्य्यादिकं जगद्रचितं येन विदुषा स्विश्वास्त्रीत्राह्यते तस्य प्राप्तिः सुकृतैः कर्मभिर्भवति चक्रवर्त्तिराज्यादिधनस्य चेति॥४॥

पदार्थ:-हे (अग्ने) जगदीश्वर! (सुकृत्तरः) अत्यन्त सुकृत कर्म करने वाले (त्वम्) सर्व प्रकाशक आप (पुरूरवसे) जिसके बहुत से उत्तम-उत्तम विद्यायुक्त वस्त हैं) और (सुकृते) अच्छे-अच्छे कामों को करने वाला है, उस (मनवे) ज्ञानवान् विद्वान् के लिये (द्याम्) उत्तम सूर्यलोक को (अवाशयः) प्रकाशित किये हुए हैं। विद्वान् लोग (श्वात्रेण) धन और विज्ञान के साथ वर्तमान (पूर्वम्) पूर्वकल्प वा पूर्वजन्म में प्राप्त होने योग्य और (अपरम्) इसके आपे जम्म-मरण आदि से अलग प्रतीत होने वाले आपको (पुनः) बार-बार (अनयन्) प्राप्त होते हैं। हे जीव! तू जिस परमेश्वर को वेद और विद्वान् लोग उपदेश से प्रतीत कराते हैं, जो (त्वा) तुर्ह (अपत्रेण) धन और विज्ञान के साथ वर्तमान (पूर्वम्) पिछले (अपरम्) अगले देह को प्राप्त कराता है और जिसके उत्तम ज्ञान से मुक्त दशा में (पित्रोः) माता और पिता से तू (पर्यामुच्यसे) सब प्रकृत के दुख से छूट जाता तथा जिसके नियम से मुक्ति से महाकल्प के अन्त में फिर संसार में आता है उसका विज्ञान वा सेवन तू (आ) अच्छे प्रकार कर॥४॥

भावार्थ:-जिस जगदेश्विर ने सूर्य अदि जगत् रचा वा जिस विद्वान् से सुशिक्षा का ग्रहण किया जाता है उस परमेश्वर व विद्वान् की प्राप्ति अच्छे कर्मों से होती है तथा चक्रवर्ति राज्य आदि धन का सुख भी वैसे ही होता है॥४॥

पुन: स उपदिश्यते॥ फिर अगले मन्त्र में उसी का प्रकाश किया है॥

<mark>(अन्यन)</mark> प्राप्नुवन्ति। <mark>(आ)</mark> सम्यग् रूपेण <mark>(अपरम्)</mark> आगमिनं देहम्॥ इति स्खलित: पाठ:॥ सं०

त्वमंग्ने वृष्भः पुष्टिवर्धन् उद्यंतस्रुचे भवसि श्रवाय्यः। य आहुतिं परि वेदा वर्षट्कृतिमेकायुरग्रे विश्र आविवासिस॥५॥३२॥

त्वम्। अग्ने। वृष्भः। पुष्टिऽवर्धनः। उद्यंतऽस्रुचे। भुवृष्पि। श्रुवार्यः। यः। आऽहुंतिम्। परि। बेदे। वर्षट्ऽकृतिम्। एकंऽआयुः। अग्रे। विशः। आऽविवासिसि॥५॥

पदार्थ:-(त्वम्) (अग्ने) प्रज्ञेश्वर (वृषभः) यो वर्षति सुखानि सः (पृष्टिक्र्यनः) पृष्टिं चर्धयतीति (उद्यतसुचे) उद्यता उत्कृष्टतया गृहीता सुग् येन तस्मै यज्ञानुष्ठात्रे (भविस) (श्रवाय्यः) श्रोतुं श्रावियतुं योग्यः। (यः) (आहुतिम्) समन्ताद्भ्यन्ते गृह्यन्ते शुभानि यया ताम् (पिर्) सर्वतः (वेदः) जानासि। अत्र ह्यचोऽतिस्तङ इति दीर्घः। (वषट्कृतिम्) वषट् क्रिया क्रियते यया तिका ताम् (एकायुः) एकं सत्यगुणस्वभावमायुर्यस्य सः (अग्रे) वेदविद्याभिज्ञापक (विशः) प्रजाः (आविवासित) समन्तात् परिचरित। विवासतीति परिचरणकर्मसु पठितम्। (निघं०३.५)॥५॥

अन्वय:-हे अग्ने जगदीश्वर! यस्त्वमग्रे उद्यतस्रुचे श्रृवस्यो कृष्म एकायुः पुष्टिवर्धनो भवसि यस्त्वं वषट्कृतिमाहुतिं परिवेद विज्ञापयसि, विशः सर्वाः प्रजा प्रष्टिवृद्ध्या तं त्वां सुखानि च पर्याविवासित॥५॥

भावार्थ:-मनुष्यैरादौ जगत्कारणं ब्रह्म ज्ञानं यज्ञिवद्यायां च याः क्रिया यादृशानि होतुं योग्यानि द्रव्याणि सन्ति तानि सम्यग्विदित्वैतेषां प्रयोगविज्ञानिन शुद्धाना वायुवृष्टिजलशोधनहेतूनां द्रव्याणामग्नौ होमे कृते सेविते चास्मिन् जगित महान्ति सुखानि वर्धन्ते, तैः सर्वाः प्रजा आनन्दिता भवन्तीति॥५॥

पदार्थ:-हे (अग्ने) यज्ञ क्रिया फल्लिक्त अगद्गुरो परेश! जो (त्वम्) आप (अग्रे) प्रथम (उद्यतसुचे) सुक् अर्थात् होम कराने के पात्र का अच्छे प्रकार ग्रहण करने वाले मनुष्य के लिये (श्रवाय्य:) सुनने-सुनाने योग्य (वृष्भ:) और सुख वर्षाने वाले (एकायु:) एक सत्य गुण, कर्म, स्वभाव रूप समान युक्त तथा (पृष्टिवर्द्धन:) पृष्टि वृद्धि करने वाले (भविस्) होते हैं और (य:) जो आप (वषट्कृतिम्) जिसमें कि उत्तम उत्तम क्रिया की जायें (आहुतिम्) तथा जिससे धर्मयुक्त आचरण किये जायें उसका विज्ञान करते हैं (विशः) प्रजा लोग पृष्टि वृद्धि के साथ उन आप और सुखों को (पर्याविवासित) अच्छे प्रकार से सेवन करते हैं॥५॥

भावार्थ: भनुष्यों को उचित है कि पहिले जगत् का कारण ब्रह्मज्ञान और यज्ञ की विद्या में जो क्रिया जिस-ब्रिस प्रकार के होम करने योग्य पदार्थ हैं, उनको अच्छे प्रकार जानकर उनकी यथायोग्य

र्मुलमन्त्रे आविवाससि ' इति पाठ: । सं०

मण्डल-१। अनुवाक-७। सुक्त-३१

क्रिया जानने से शुद्ध वायु और वर्षा जल की शुद्धि के निमित्त जो पदार्थ हैं, उनका होम अग्नि में करने से इस जगत् में बड़े-बड़े उत्तम-उत्तम सुख बढ़ते हैं और उनसे सब प्रजा आनन्द युक्त होती हैं।

अथेश्वरोपासकः प्रजारक्षकाः किं कुर्यादित्युपदिश्यते।

अब ईश्वर का उपासक वा प्रजा पालनेहारा पुरुष क्या-क्या कृत्य करे, इस विषय कि उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

त्वमंग्ने वृजिनवर्तनिं नरं सक्मन् पिपर्षि विद्धे विचर्षणे।

यः शूर्रसाता परितक्म्ये धर्ने दुभ्रेभिश्चित्समृता हंसि भूर्यसः। (६)

त्वम्। अग्ने। वृजिनऽवर्तनिम्। नर्रम्। सक्मेन्। पिपुर्षि। बिद्धे। ब्रिऽच्युणि। यः। शूर्रऽसाता। परिऽतक्म्ये। धने। दुभ्रेभिः। चित्। सम्ऽॠता। हंसि। भूयसः॥६॥

पदार्थ:-(त्वम्) प्रजापालनेऽधिकृतः (अग्ने) सर्वतोऽभिष्कि (वृज्जिनवर्त्तनिम्) वृजिनस्य बलस्य वर्त्तनिर्मार्गो यस्य तम्। अत्र सह सुपेति समासः। वृजिनमिति बलनाममु पठितम्। (निघं०२.९) (नरम्) मनुष्यम् (सक्मन्) यः सचित तत्सम्बुद्धौ (पिपिष्) पाल्यपि (विदेश) धर्म्ये युद्धे यज्ञे। विदश्च इति संग्रामनामसु पठितम्। (निघं०३.१७) (विचर्षणे) बिविधपुद्धार्थानां यथार्थद्रष्टा तत्सम्बुद्धौ (यः) (शूरसाता) शूराणां सातिः सम्भजनं यस्मिन् तस्मिन् संग्रामे। शूरसाताविति संग्रामनामसु पठितम्। (निघं०२.१७) अत्र सुपां सुलुग्० इति ङेः स्थ्रामे डादेशः (पितकम्ये) परितः सर्वतो हर्षनिमित्ते (धने) सुवर्णविद्या चक्रवर्त्तिराज्यादियुक्तद्रव्ये (दश्चेषिः) अनुपर्युद्धसाधनैः सह। दश्चिमिति हस्वनामसु पठितम्। (निघं०३.२) दश्चमर्भकमित्यल्पस्य दशुं दश्नितः) सुदम्भं भवित। अर्भकमवहतं भवित। (निरु०३.२०) अत्र बहुलं छन्दिस इति भिस ऐस् न्। (चित्) अप (समृता) सम्यक् ऋतं सत्यं येषु तानि। अत्र शे स्थाने डादेशः। (हंसि) (भूयसः) बहुनुस्ह।।

अन्वय:-हे सक्मन् विवर्षणेऽग्नेसेन्ग्यते! यो न्यायविद्यया प्रकाशमानस्त्वं विदथे शूरसातौ युद्धे दभ्रेभिरल्पैरिप साधनैवृज्ञिन्वर्त्तानं नरं भूयसः शत्रूंश्च हंसिसमृता समृतानि कर्माणि पिपिष स त्वं नः सेनाध्यक्षो भव॥६॥

भावार्थ:-प्रमेश्वरस्यायं स्वभावोऽस्ति ये ह्यधर्मं त्युक्तुं धर्मं च सेवितुमिच्छति, तान् कृपया धर्मस्थान् करोति, ये च धर्म्यं युद्धं धर्मसाध्यं धनं चिकीर्षन्ति तान् रक्षित्वा तत्तत्कर्मानुसारेण तेभ्यो धनमपि प्रमच्छिति, च च दुष्टाचारिणस्तान् तत्तत्कर्मानुकूलफलदानेन ताडयित य ईश्वराज्ञयां वर्त्तमाना धर्मात्मानुरुत्परिष युद्धसाधनैर्युद्धं कर्त्तुं प्रवर्त्तन्ते तेभ्यो विजयं ददाति नेतरेषामिति॥६॥

पदार्थ:-हे (सक्मन्) सब पदार्थों का सम्बन्ध कराने (विचर्षणे) अनेक प्रकार के पदार्थों को अध्ये प्रकार देखने वाले (अग्ने) राजनीतिविद्या से शोभायमान सेनापित! (य:) जो तू (विदर्थे) धर्मयुक्त

यज्ञरूपी (शूरसातौ) संग्राम में (दभ्रेभिः) थोड़े ही साधनों से (वृजिनवर्त्तिम्) अधर्म मार्ग में चलने विलि (नरम्) मनुष्य और (भूयसः) बहुत शत्रुओं का (हंसि) हननकर्ता है और (समृता) अच्छे प्रकार सत्य कर्मों को (पिपिष्ण) पालनकर्ता है। जो चोर पराये पदार्थों के हरने की इच्छा से (पिरतक्म्ये) सब ओर से देखने योग्य (धने) सुवर्ण विद्या और चक्रवर्ति राज्य आदि धन की रक्षा करने के निर्मित्त आप हमारे सेनापित हुजिये॥६॥

भावार्थ:-परमेश्वर का यह स्वभाव है कि जो पुरुष अधर्म छोड़ धर्म करने की इच्छा करते हैं, उनको अपनी कृपा से शीघ्र ही धर्म में स्थिर करता है जो धर्म से युद्ध वा धर्म को सिद्ध कराना चाहते हैं, उनकी रक्षा कर उनके कर्मों के अनुसार उनके लिये धन देता और जो खोटे आचरण करते हैं, उनको उनके कर्मों के अनुसार दण्ड देता है, जो ईश्वर की आज्ञा में वर्तमान धर्मास्मा शोड़े भी युद्ध के पदार्थों से युद्ध करने को प्रवृत्त होते हैं, ईश्वर उन्हीं को विजय देता है, औरों को नहीं। ६।

पुनरीश्वरो जीवेभ्यः किं करोतीत्युपदिश्वती

फिर वह ईश्वर जीवों के लिये क्या करता है, इस विषय की उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

त्वं तमंग्ने अमृत्त्व उत्तमे मर्तं दधासि श्रवंसे दिवेदिवे। यस्तांतृषाण उभयाय जन्मने मर्यः कृणोष्ट्रिष्य अर्घ सूरये॥७॥

त्वम्। तम्। अग्ने। अमृतुऽत्वे। उत्ऽतमे। महीम्। दुधासि। श्रवंसे। दिवेऽदिवे। यः। तुतृषाणः। उभयाय। जन्मने। मर्यः। कृणोषि। प्रयः। आ। चु। सूरये॥ औ

पदार्थ:-(त्वम्) जगदीश्वरः (तम् पूर्वेक्तं अर्मात्मानम् (अग्ने) मोक्षादिसुखप्रदेश्वर (अमृतत्वे) अमृतस्य मोक्षस्य भावे (उत्तमे) सूर्वथात्वृष्ट (मर्तम्) मनुष्यम्। मर्ता इति मनुष्यनामसु पठितम्। (निघं०२.३) (दधासि) धरिस (श्रवसे) श्रोतुमर्हाय भवते (दिवेदिवे) प्रतिदिनम् (यः) मनुष्यः (तातृषाणः) पुनः पुनर्जन्मिन तृष्यिति। अत्र कन्दिस लिट् इति लडर्थे लिट्, लिटः कानज्वा इति कानच् वर्णव्यत्ययेन दीर्घत्वं च। (उथवायः) पूर्वपराष्ट्र (जन्मने) शरीरधारणेन प्रसिद्धाय (मयः) सुखम्। मय इति सुखनामसु पठितम्। (निष्ठं ३६) (कृणोषि) करोषि (प्रयः) प्रीयते काम्यते यत् तत्सुखम् (आ) समन्तात् (च) समुच्चये (सूर्ये) मधाविने। सूरिरिति मेधाविनामसु पठितम्। (निघं०३.१५)॥७॥

अन्वयः ते अग्ने जगदीश्वर! त्वं यः सूरिर्मेधावी दिवेदिवे श्रवसे सन्मोक्षमिच्छिति तं मर्तं मनुष्यमुत्तमेऽ पृतित्वे मोक्षपदे दधासि, यश्च सूरिर्मेधावी मोक्षसुखमनुभूय पुनरुभयाय जन्मने तातृषाणः सँस्तस्मात् पदानिष्तिते तस्मै सूरये मयः प्रयश्चाकृणोषि॥७॥

पावार्थः-य ज्ञानिनो धर्मात्मानो मनुष्या मोक्षपदं प्राप्नुवन्ति तदानीं तेषामाधार ईश्वर एवास्ति। यज्ञन्मातीने तत्प्रथमं यच्चागामि तद्द्वितीयं यद्वर्तते तत्तृतीयं यच्च विद्याचार्य्याभ्यां जायते तच्चतुर्थम्।

मण्डल-१। अनुवाक-७। सूक्त-३१

एतच्चतुष्टयं मिलित्वैकं जन्म यत्र मुक्तिं प्राप्य मुक्ता पुनर्जायते तद्द्वितीयजन्मैतदुभयस्य धारणाय सर्वे जीवा: प्रवर्त्तन्त इतीयं व्यवस्थेश्वराधीनास्तीति वेद्यम्॥७॥

पदार्थ:-हे (अग्ने) जगदीश्वर! आप (य:) जो (सूरि:) बुद्धिमान् मनुष्य (दिब्रेदिवें) प्रिलिदिन (श्रवसे) सुनने के योग्य अपने लिये मोक्ष को चाहता है उस (मर्त्तम्) मनुष्य को (उत्तमें) अत्युत्तम (अमृतत्वे) मोक्षपद में स्थापन करते हो और जो बुद्धिमान् अत्यन्त सुख भोग कर फिर (उभयाय) पूर्व और पर (जन्मने) जन्म के लिये चाहना करता हुआ उस मोक्षपद से निवृत्त होता है, उस (सूरये) बुद्धिमान् सज्जन के लिये (मय:) सुख और (प्रय:) प्रसन्नता को (आ कृणोकि) सिद्ध करते हो॥७॥

भावार्थ:-जो ज्ञानी धर्मात्मा मनुष्य मोक्षपद को प्राप्त होते हैं, उनका हिस समय ईश्वर ही आधार है जो जन्म हो गया वह पहिला और जो मृत्यु वा मोक्ष होके होगा वह दूसरा, जो है वह तीसरा और जो विद्या वा आचार्य से होता है वह चौथा जन्म है। ये चार जन्म मिल्ल के जो मोक्ष के पश्चात् होता है वह दूसरा जन्म है इन दोनों जन्मों के धारण करने के लिये सब जीव प्रवृत्त हो रहे हैं। मोक्षपद से छूट कर संसार की प्राप्त होती है, यह भी व्यवस्था ईश्वर के आधीन है। अ

पुनस्तदुपासकः प्रजायै कीदृश इत्युपद्भिश्यते॥

फिर परमात्मा का उपासक प्रजा के वास्ते कैसाहि इस चिष्ठ्य का उपदेश अगले मन्त्र में किया

त्वं नो अग्ने सुनये धनानां युशसं कारुं कृण्यहि स्तवानः। ऋध्याम् कर्मापसा नवेन देवैद्यावा यिवो प्रावतं नः॥८॥

त्वम्। नः। अग्ने। सनये। धर्ननिष्। यशस्मि। कारुम्। कृणुहि। स्तर्वानः। ऋध्यामे। कर्म। अपसी। नर्वेन। देवैः। द्यावापृथिवी इति। प्र<u>अक्तम्। न</u>ः॥८॥

पदार्थ:-(त्वम्) जादिश्यरोपासकः (नः) अस्माकम् (अग्ने) कीर्त्युत्साहप्रापक (सनये) संविभागाय (धनानाम्) विद्यासुवर्णं मुक्रवर्तिराज्यप्रसिद्धानाम् (यशसम्) यशांसि कीर्त्तियुक्तानि कर्माणि विद्यन्ते यस्य तम् (कारुम्) य उत्साहेनोत्तमानि कर्माणि करोति तम् (कृणुहि) कुरु। अत्र उतश्च प्रत्ययाच्छन्दो वा वचनम्। (अष्टा॰६.४.१०६) अनेन वार्तिकेन हेर्लुक् न। (स्तवानः) यः स्तौति सः (ऋध्याम) वर्द्धेम् (कर्म) क्रियमाणमीप्सितम् (अपसा) पुरुषार्थयुक्तेन कर्मणा सह। अप इति कर्मनामसु पठितम्। (निर्घ॰५१) (नवेन) नूतनेन। नवेति नवनामसु पठितम्। (निर्घ॰३.२८) (देवैः) विद्वद्धिः सह (द्यावापृथिवी) भूमिसूर्यप्रकाशौ (प्र) प्रकृष्टार्थे (प्रावतम्) अवतो रक्षतम् (नः) अस्मान्॥८॥

अन्वय:-हे अग्ने! त्वं स्तवानः सन् नोऽस्माकं धनानां सनये संविभागाय यशसं कारुं कृणुहि सम्पादय, यतो वयं पुरुषार्थिनो भूत्वा नवेनापसा सह कर्म कृत्वा ऋध्याम नित्यं वर्द्धेम विद्याप्राप्तये देवै: सह युवां नोऽस्मान् द्यावापृथिवी च प्रावतं नित्यं रक्षतम्॥८॥

भावार्थ:-मनुष्यैरतेदर्थं परमात्मा प्रार्थनीय:। हे जगदीश्वर! भवान् कृपयार्थभाकं मध्ये सर्वासामुत्तमधनप्रापिकानां शिल्पादिविद्यानां वेदितॄनुत्तमान् विदुषो निर्वर्तय, यतो व्र्य तै: सह नवीनं पुरुषार्थं कृत्वा पृथिवीराज्यं सर्वेभ्य: पदार्थेभ्य उपकारांश्च गृह्णीयामेति॥८॥

पदार्थ:-हे (अग्ने) कीर्ति और उत्साह के प्राप्त कराने वाले जग्रदिश्वर की परमेश्वरीपासक (स्तवान:) आप स्तुति को प्राप्त होते हुए (न:) हम लोगों के (धनानाम) विद्या सुवर्ण चक्रवर्ति राज्य प्रसिद्ध धनों के (सनये) यथायोग्य कार्य्यों में व्यय करने के लिये (यश्राप्तम्) कीर्तिष्ठकत (कारुम्) उत्साह से उत्तम कर्म करने वाले उद्योगी मनुष्य को नियुक्त (कृणुहि) किष्यि, जिससे हम लोग नवीन (अपसा) पुरुषार्थ से (नित्य) नित्य बुद्धियुक्त होते रहें और आप दोनों विद्या की प्राप्ति के लिये (देवै:) विद्वानों के साथ करते हुए (न:) हम लोगों की और (द्यावापृधिकी) सूर्य प्रकाश और भूमि को (प्रावतम्) रक्षा कीजिये॥८॥

भावार्थ:-मनुष्यों को परमेश्वर की इस प्रकार प्रार्थेना करनी चाहिये कि हे परमेश्वर! आप कृपा करके हम लोगों में उत्तम धन देने वाली सब शिल्पिक्स के जानने वाले उत्तम विद्वानों को सिद्ध कीजिये, जिससे हम लोग उनके साथ नवीन-न्यीन पुरुषार्श्व करके पृथिवी के राज्य और सब पदार्थों से यथायोग्य उपकार ग्रहण करें॥८॥

पुन प्र कीद्श ईत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

त्वं नो अग्ने पित्रोरुप्रस्<mark>य आ देवी</mark> देवेष्वनवद्य जागृविः

त्नूकृद्वीधि प्रमितिश्च कार्वे त्वं क्लियाण वसु विश्वमोपिषे॥ ९॥

त्वम्। नः। अग्ने पिनाः। उग्रुप्स्ये। आ। देवः। देवेषुं। अनुवद्या जागृविः। तुनूऽकृत्। बोधि। प्रऽमितिः। च। कारवे। त्वम्। कुल्याणा। वसुं। विश्वम्। आ। ऊपिषे॥९॥

पदार्थ: त्वम्) सर्वमङ्गलकारकः सभाध्यक्षः (नः) अस्मान् (अग्ने) विज्ञानस्वरूप (पित्रोः) जनकयोः (उपस्थे) प्रपतिष्ठन्ति यस्मिन् तस्मिन्। अत्र घजर्थे कविधानं स्थास्नापाव्यधिहनियुध्यर्थम्। (अष्टा॰वा॰ ३.३५४) अनेनाधिकरणे कः। (आ) अभितः (देवः) सर्वस्य न्यायविनयस्य द्योतकः (देवेषु) विद्वत्सु अन्यादिषु त्रयस्त्रिंशद्विव्यगुणेषु वा (अनवद्य) न विद्यते वद्यं निन्द्यं कम्मं यस्मिन् तत्सम्बुद्धौ अवद्यपण्यवद्यां (अष्टा॰३.१.१०१) अनेन गर्होऽवद्यशब्दो निपातितः। (जागृविः) यो नित्यं धर्म्य प्रस्तानुषु पृथिव्यादिविस्तृतेषु लोकेषु विद्यां करोति सः (वोधि) बोधय। अत्र

मण्डल-१। अनुवाक-७। सुक्त-३१

लोडर्थे लङ्डभावोऽन्तर्गतो ण्यर्थश्च। (प्रमितः) प्रकृष्टा मित्ज्ञांनं यस्य सः (च) समुच्चये (कारवे) शिल्पकार्यसम्पादनाय (त्वम्) सर्वविद्यावित् (कल्याण) कल्याणकारक (वसु) विद्याचक्रवल्याचिराञ्य साध्यधनम् (विश्वम्) सर्वम् (आ) समन्तात् (ऊपिषे) वपिस। अत्र लडर्थे लिट्॥९॥

अन्वय:-अनवद्याग्ने सभास्वामिन्! जागृविर्देवस्तनूकृत्त्वं देवेषु पित्रोरुपस्थे नृश्रिस्मानीपिषे वपसि सर्वत: प्रादुर्भावयसि। हे कल्याणप्रमतिस्त्वं कारवे मह्यं विश्वमाबोधि समन्ताद्वोधय। स्रि।

भावार्थ:-पुनिरत्थं जगदीश्वर: प्रार्थनीय:। हे भगवन्! यदा यदास्मार्क जन्म दद्यास्तदा तदा विद्वत्तमानां सम्पर्के जन्म दद्यास्तत्रास्मान् सर्वविद्यायुक्तान् कुरु, यतो वयं सर्वाणि धनानि प्राप्य सदा सुखिनो भवेमेति॥९॥

पदार्थ:-हे (अनवद्य) उत्तम कर्मयुक्त (अग्ने) सब पदार्थों के जानने वाले सभापते! (जागृवि:) धर्मयुक्त पुरुषार्थ में जागने (देव:) सब प्रकाश करने (तनूकृत्) और बड़े-बड़े पृथिवी आदि बड़े लोकों में टहरने हारे आप (देवेषु) विद्वान् वा अग्नि आदि तेजस्वी दिळा गुणयुक्त लोकों में (पित्रो:) माता-पिता के (उपस्थे) समीपस्थ व्यवहार में (न:) हम लोगों को (अपिषे) वार-वार नियुक्त कीजिये। (कल्याण) हे अत्यन्त सुख देने वाले राजन्! (प्रमितः) उत्तम ज्ञान देते हुए आप (कारवे) कारीगरी के चाहने वाले मुझ को (वसु) विद्या, चक्रवर्ति राज्य आदि पदार्थों से सिद्ध होने वाले (विश्वम्) समस्त धन का (आबोध) अच्छे प्रकार बोध कराइये॥ श्रा

भावार्थ:-फिर भी ईश्वर की इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये कि हे भगवन्! जब-जब आप जन्म दें, तब-तब श्रेष्ठ विद्वानों के सम्बन्ध में जन्म है और वहाँ हम लोगों को सर्व विद्वायुक्त कीजिये, जिससे हम लोग सब धनों को प्राप्त हों कर सदा-सुखी हों॥९॥

पुन सः कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह हैसा है, इस विभय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

त्वमंग्ने प्रमित्स्त्वं पितासि नस्त्वं वयस्कृत्तवं जामयो वयम्।

सं त्वा रार्यः श्रातिनः सं सहस्रिणः सुवीरं यन्ति व्रतपार्मदाभ्य॥ १०॥ ३३॥

त्वम्। अुग्ने। प्रऽमितिः। त्वम्। पिता। असि। नः। त्वम्। वृयःऽकृत्। तर्व। जामर्यः। वृयम्। सम्। त्वा। रार्यः। शृतिनेः। सम्। सहस्रिणः। सुवीरम्। यन्ति। वृतऽपाम्। अदाभ्यः॥१०॥

पदार्थ: (त्वम्) सर्वस्य सुखस्य प्रादुर्भाविता (अग्ने) यथायोग्यरचनस्य वेदितः (प्रमितः) प्रकृष्टा मित्मिन्ं यस्य सः (त्वम्) दयालुः (पिता) पालकः (असि) (नः) अस्माकम् (त्वम्) आयुऽप्रद (वयूर्यकृत्) यो वयो वृद्धावस्थापर्यन्तं विद्यासुखयुक्तमायुः करोति सः (तव) सुखजनकस्य (जामयः) ज्ञाभवन्त्यपत्यानि। जमतीति गतिकर्मसु पठितम्। (निघं०२.१४) अत्र जमुधातोः। इण्जादिभ्यः।

(अष्टा०३.३.१०८) अनेनेण् प्रत्ययः। जमतेर्वा स्याद् गतिकर्मणः। (निरु०३.६) (वयम्) मनुष्याः (सम्) एकीभावे (त्वा) त्वाम् सर्वपालकम् (रायः) धनानि। राय इति धननामसु पठितम्। (निघं०२.१०) (शितनः) शतमसंख्याताः प्रशंसिता विद्याकर्माणि वा विद्यन्ते येषां ते। (सहस्रिणः) अत्र उभस्त्र प्रशंसार्थ इनिः। (सुवीरम्) शोभना वीरा यस्मिन् येन वा तत् (यन्ति) प्राप्नुवन्ति (व्रतपाम्) यो व्रतं सत्य पति तम् (अदाभ्य) दिभतुं हिंसितुं योग्यानि दाभ्यानि तान्यविद्यमानानि यस्य तत्सम्बुद्धौ। अत्र दूर्भेश्चेति चक्तव्यम्। (अष्टा०३.१.१२४) अनेन वार्त्तिकेन दभ इति सौत्राद्धातोण्यत्॥१०॥

अन्वय:-हे अदाभ्याग्ने सभाध्यक्ष प्रमितस्त्वं नोऽस्माकं पिता प्रत्वकोऽसि त्वं नीऽस्माकं वय:कृदिस तव कृपया वयं जामयो यथा भवेम तथा कुरु यथा च शितृहः सहिन्नणो विद्वांसो मनुष्या व्रतपां सुवीरं त्वामासाद्य रायो धनानि संयन्ति, तथा त्वामाश्रित्य वयस्पि तस्त्रि सनीनि सिममः॥१०॥

भावार्थ:-यथा पिता सन्तानैर्माननीय: पूजनीयश्चास्ति, तथा प्रजाजनैस्सुभापती राजास्ति॥१०॥

पदार्थ:-हे (अदाभ्य) उत्तम कर्मयुक्त (अग्ने) यथायोग रचना कर्म जानने वाले सभाध्यक्ष! (प्रमितः) अत्यन्त मान को प्राप्त हुए (त्वम्) समस्त सुख से प्रकट करने वाले आप (नः) हम लोगों के (पिता) पालने वाले तथा (त्वम्) आयुर्दा के बढ़वाने हारे तथा आप हम लोगों को (वयःकृत्) बुढ़ापे तक विद्या सुख में आयुर्दा व्यतीत कराने हारे हैं (तव) सुख हम्पन्न करने वाले आपकी कृपा से हम लोग (जामयः) ज्ञानवान् सन्तान युक्त हों, दयायुक्त (त्वम्) आप वैसा प्रबन्ध कीजिये और जैसे (शितनः) सैकड़ों वा (सहस्रिणः) हजारों प्रशंसित पदार्थिश्वा वा कर्म युक्त विद्वान् लोग (वृतपाम्) सत्य पालने वाले (सुवीरम्) अच्छे-अच्छे वीर युक्त आपको प्राप्तः होकर (रायः) धन को (सम्) (यन्ति) अच्छी प्रकार प्राप्त होते हैं, वैसे आपका आश्रय किये हुए हो लोग भी उन धनों को प्राप्त होवें॥१०॥

भावार्थ:-जैसे पिता सन्तानों की मान और सत्कार करने के योग्य है, वैसे प्रजाजनों को सभापति राजा है॥१०॥

पुनः स कीदृष्ट्रा किं कुर्यादित्युपदिश्यते॥

फिर वह कै मा है और क्या करे, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

त्वामंग्ने प्रथममायुगायके देवा अंकृण्वन्नहुंषस्य विश्पतिम्।

इळामकृष्वन् मनुषस्य शासनीं पितुर्यत्पुत्रो ममकस्य जायते॥ ११॥

त्वाम्। <u>अग्ने। प्रथ</u>मम्। आयुम्। आयवे। देवाः। अकृण्वन्। नहुंषस्य। विश्पतिम्। इळाम्। अकृण्वन्। मनुंषस्य। प्रासिनीमा पितुः। यत्। पुत्रः। मर्मकस्य। जायते॥ ११॥

पदार्थ:-(त्वाम्) प्रजापतिम् (अग्ने) विज्ञानान्वित (प्रथमम्) सर्वेष्वग्रगन्तारम् (आयुम्) य एति न्यायेन प्रजो तं (आयवे) यथा विज्ञानाय (देवाः) विद्वांसः (अकृण्वन्) कुर्युः। अत्र लिङ्थे लङ्। विद्वास्य) मनुषस्य। नहुष इति मनुष्यनामसु पठितम्। (निघं०२.३) नहुषस्येत्यत्र सायणाचार्य्येण

मण्डल-१। अनुवाक-७। सूक्त-३१

नहुषनामकराजिवशेषो गृहीतस्तस्तदसत्। कस्यचित्रहुषस्येदानींतनत्वाद् वेदानां सनातनत्वात् तस्य गाथात्र न सम्भवित निघण्टौ नहुषस्येति मनुष्यनाम्नः प्रसिद्धेश्च। (विश्पितम्) विशां प्रजानां पितं पालकं सर्वोत्तम् राजानम् (इळाम्) वेदचतुष्ट्यौं वाचम्। इळेति वाङ्नामसु पिठतम्। (निघं०१.१९) (अकण्वन्) क्रियुः (मनुषस्य) मनुष्यस्य। अत्र मन् धातोर्बाहुलकादुषन् प्रत्ययः। (शासनीम्) शास्ति सर्वान् विद्याधर्माचरण-शीलान् यया सत्यनीत्या ताम्। अत्रापि सायणाचार्य्येण मनोः पुत्री गृहीता तद्भियशुद्धमेव। (पितुः) जनकस्य सकाशात् (यत्) यथा सुपां सुलुग्० इति तृतीयैकवचनस्य लुक्। (प्रृष्तः) यः पितृपाद्यनशीलः (ममकस्य) मादृशस्य। अत्र बाहलुकान् मनुधातोर्दमकन् प्रत्ययः। (जायते) उत्पद्धते॥११॥

अन्वय:-हे अग्ने विज्ञानान्वितसभाध्यक्ष! देवा नहुषस्यायव इम्प्रिम्श्रीमक्ष्मेवन् विशदीमकुर्वन् मनुष्यस्य शासनीं सत्यशिक्षां चाकृण्वन्। प्रजा च यत्-यथा मूर्मेकस्य प्रजुः पुत्रो जायते तथा भवति॥११॥८

भावार्थ:-नैवेश्वरप्रणीतेन व्यवस्थापकेन वेदशास्त्रेण राष्ट्रीत्या चे विना प्रजापालक प्रजां पालियतुं शक्नोति, प्रजाजनश्च राज्ञोऽज्ञसन्तानवद्भवत्यतः सभापती क्रुन्जिङ्गपुत्रिम्ब्र प्रजां शिष्यात्॥११॥

पदार्थ:-हे (अग्ने) विज्ञानयुक्त सभाध्यक्ष! (देवा:) विद्वानों ने (नहुषस्य) मनुष्य की (आयवे) विज्ञान वृद्धि के लिये इस (इळाम्) वेद वाणी की (अकुण्वन्) प्रकाशित किया तथा (मनुष्यस्य) मनुष्यमात्र की (शासनीम्) सत्य शिक्षा को (अकुण्वन्) प्रकाशित किया और (यत्) जैसे (ममकस्य) हम लोग (पितु:) पिता होते हैं, उनका (पुत्र:) पुत्र अपने शील से पितृवर्ग को पवित्र करने वाला (जायते) उत्पन्न होता है, वैसे राजवर्गों के प्रजाजन हित्तिहो। १३००

८. अन्वये: - त्वाम्, प्रथमम्, आयुम्, विश्पितम् इत्येते चत्वारश्शब्दास्तेषामर्थाश्च स्खिलता सन्ति। ह० लि० प्रेस पुस्तके तु 'त्वां' विहाय नैतेषां स्खलनमभूत् प्रयम्ब्यये पाठ भूदी वर्तते, तच्चेत्थम्। सं० 'हे अग्ने! यथा देवा विद्वांसो नहुषस्य शासनीमिलामकृण्वन् ममकस्य निष्यास्य प्रथमायुं विश्पितं न्यायाधीशं सभापितं राजानमकृण्वन् तथा पितुः पुत्रो जायते तथा धार्मिकेण राज्ञा प्रजा पालनीयाः। अस्मिन् पाठे 'आयवे' शब्दस्य पाठो न वर्तते। सं०

९. हिन्दी पदार्थ में भी (ज्ञ्यम्) (प्रथमम्) (आयुम्) (विश्पितम्) यह चार शब्द तथा उनका अर्थ छूट गया है। ह० लि० प्रेस कापी के हिन्दी पदार्थ में उपयुक्त चारों शब्द तथा उसके अर्थ तो नहीं छूटे, परन्तु मुद्रित हि० पदार्थ से पाठ भेद अवश्य है – जो कि निम्न प्रकार है। संगे हे (अग्ने) अमृतस्वरूप सभापते! तू जैसे (देवा:) विद्वान् लोग (शासनीम्) सत्यासत्य के निर्णय का निम्तित (इंछाम्) चार वेदों की वाणी को (अकृण्वन्) करें। (नहुषस्य) मनुष्य के (आयवे) विशेष ज्ञान के लिये (शासनीम्) जिससे सब् विद्या और धर्माचार युक्तनीति से उसको ग्रहण करके (प्रथमम्) अनादि स्वरूप जिस न्याय से प्रजा योग्य (आयुम्) प्राम् होने (विश्पितम्) प्रजा-पुत्र आदिकों के रक्षा करने वाले सभापित राजा को चारों वेदों की वाणी व सत्य व्यवस्था को

भावार्थ:-ईश्वरोक्त व्यवस्था करने वाले वेद शास्त्र और राजनीति के विना प्रजा पालनेहीरी सभापित राजा प्रजा नहीं पाल सकता है और प्रजा राजा के अज्ञ सन्तान के तुल्य होती है, इससे सभापित राजा पुत्र के समान प्रजा को शिक्षा देवे॥११॥

पुनः स एवोपदिश्यते॥

अगले मन्त्र में भी सभापति का उपदेश किया है॥

त्वं नो अग्ने तर्व देव पायुभिर्मघोनो रक्ष तन्वेश्च वन्द्य। त्राता तोकस्य तनेये गर्वामुस्य निमेषं रक्षीमाणुस्तर्व वृते॥१२॥

त्वम्। नः। अग्ने। तर्व। देव। पायुऽभिः। मुघोनः। रृक्ष्म। तन्वः। च् विद्यः। त्रुता। तोकस्य। तनेये। गर्वाम्। असि। अनिऽमेषम्। रक्षेमाणः। तर्व। वृते॥ १२॥

पदार्थ:-(त्वम्) सभेशः (नः) अस्माकमस्मान् वा (अग्ने) सर्वाधिग्रिक्षक (तव) सर्वाधिग्रितः (देव) सर्वसुखदातः (पायुभिः) रक्षादिव्यवहारैः (मघोनः) मूर्घ प्रशस्तं धनं विद्यते येषां तान्। अत्र प्रशंसार्थे मतुप्। मघिमिति धननामधेयम्। (निघं०२.१०) (रक्षः) पालुम् (तन्वः) शरीराणि। अत्र सुपां सुलुग्० इति शसः स्थाने जस्। (वन्द्य) स्तोतुम्ह् (त्रातः) रक्षक (तोकस्य) अपत्यस्य। तोकिमित्यपत्यनामसु पठितम्। (निघं०२.२) (तन्यः) चिद्याशरीरबलवर्धनाय प्रवर्त्तमाने पुत्रे। तनयमित्यपत्यनामसु पठितम्। (निघं०२.२) (गवास्) मनआदीन्द्रियाणां चतुष्पदां वा (अस्य) प्रत्यक्षाप्रत्यक्षस्य संसारस्य (अनिमेषम्) प्रतिक्षणम् (रक्षमाणः) रक्षन् सन्। अत्र व्यत्ययेन शानच् (तव) प्रजेश्वरस्य (वृते) सत्यपालनादिनियमे॥१२/त

अन्वय:-हे देव वन्द्याग्ने सभेश्वर! तेव ब्रिंग वर्तमानान् मघोनो नोस्मान् अस्माकं वा तन्वस्तनूँश्च पायुभिस्त्वमिनमेषं रक्ष तथा रक्षमाणस्त्वं तव ब्रत वर्त्तमानस्य तोकस्य गवामस्य संसारस्य चानिमेषं च तनये त्राता भव॥१२॥

भावार्थ:-सभापती राज्यिनयमप्रवृत्ताञ्जनान् सततं रक्षेत्॥१२॥

पदार्थ:-हे (देव) स्व सूख देने और (वन्द्य) स्तुति करने योग्य (अग्ने) तथा यथोचित सबकी रक्षा करने वाले सभेश्वर! (तव) सर्वाधिपति आपके (व्रते) सत्य पालन आदि नियम में प्रवृत्त और (मघोन:) प्रश्नृंसनीय धनयुक्त (न:) हम लोगों को और हमारे (तन्व:) शरीरों को (पायुभि:) उत्तम

(<mark>अकृण्बन्)</mark> प्रकाशित करते हैं, वैसे ही <mark>(ममकस्य)</mark> ज्ञानवान् <mark>(नहुषस्य)</mark> मनुष्य की जो वेदवाणी है उसको आप प्रकाशित कीजियो।

मण्डल-१। अनुवाक-७। सुक्त-३१

रक्षादि व्यवहारों से (अनिमेषम्) प्रतिक्षण (रक्ष) पालिये (रक्षमाणः) रक्षा करते हुए आप जो कि आपके उक्त नियम में वर्तमान (तोकस्य) छोटे-छोटे बालक वा (गवाम्) प्राणियों की मन आदि हिन्दुमाँ और गाय बैल आदि पशु हैं उनके तथा (अस्य) सब चराचर जगत् के प्रतिक्षण (त्राता) रक्षक अर्थात् अव्यन्त आनन्द देने वाले हूजिये॥१२॥

भावार्थ:-सभापति राजा ईश्वर के जो संसार की धारणा और पालना आदि गुण हैं उनके तुल्य उत्तम गुणों से अपने राज्य के नियम में प्रवृत्तजनों को निरन्तर रक्षा करे॥१२॥

पुनरग्निगुणः सभापतिरुपदिश्यते॥

अब अगले मन्त्र में भौतिक अग्नि गुणयुक्त सभा स्वामी का उपदेश किया है।।

त्वमंग्ने यज्यवे पायुरन्तरोऽनिष्ङ्गार्यं चतुर्क्ष इध्यसे।

यो रातहं व्योऽवृकाय धार्यसे कीरेश्चिन्मन्त्रं मनसा वृतीिष् तम्॥ १३॥

त्वम्। अग्ने। यज्येवे। पायुः। अन्तरः। अनिषङ्गाये। चृतुःऽअक्षः। द्रुध्यसे। यः। रातऽहेव्यः। अवृकाये। धार्यसे। कीरेः। चित्। मन्त्रम्। मनसा। वनोषि। तम्॥ १३॥

अन्वयः हे सभापते! मनसा चिदिव रातहव्योऽन्तरश्चतुरक्षस्त्वमनिषङ्गायावृकाय धायसे यज्यवे यज्ञकर्त्रे हथ्यसे सैण्यसे। किञ्च यं वनोषि सम्भजसि तस्य कीरेः सकाशाद् विनयमधिगम्य प्रजाः पालुमेशार्थः।

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। यथाध्यापकाद्विद्यार्थिनो मनसा विद्या सेवन्ते, तथैव त्वमाप्तोपदेशानुसारेण राजधर्मं सेवस्व॥१३॥

पदार्थ:-हे (त्वम्) सभापति! तू (मनसा) विज्ञान से (मन्त्रम्) विचार वा वेदमन्त्र को सिविन वालें के (चित्) सदृश (रातहव्यः) रातहव्य अर्थात् होम में लेने-देने के योग्य पदार्थों का दाता (पात्रः) पालना का हेतु (अन्तरः) मध्य में रहने वाला और (चतुरक्षः) सेना के अङ्ग अर्थात् होश्री भोड़े और रथ के आश्रय से युद्ध करने वाले और पैदल योद्धाओं में अच्छी प्रकार चित्त देता हुआ (अनिषड़ाय) जिस पक्षपातरहित न्याययुक्त (अवृकाय) चोरी आदि दोष के सर्वथा त्याग और (धायसे) उत्तम गुणों के धारण तथा (यज्यवे) यज्ञ वा शिल्प विद्या सिद्ध करने वाले मनुष्य के लिये (इध्यसे) तेजस्वी होकर अपना प्रताप दिखाता है, या कि जिसको (वनोषि) सेवन करता है, उस्र (कीरः) भरासनीय वचन कहने वाले विद्वान् से विनय को प्राप्त होके प्रजा का पालन किया कर॥१३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे विद्यार्थी क्रिन अध्यापक अर्थात् पढ़ाने वालों से उत्तम विचार के साथ उत्तम-उत्तम विद्यार्थियों का सेवन करते हैं, वैसे तू भी धार्मिक विद्वानों के उपदेश के अनुकूल होके राजधर्म का सेवन करता रह॥१३॥

पुनः स एकोपदिश्यते।

अगले मन्त्र में भी उसी अर्थ का प्रकाश किया है॥

त्वमंग्न उरुशंसाय वाघते स्पार्हं यद्रेक्णः पर्मे व्नोषि तत्।

आध्रस्यं चित् प्रमंतिरुच्यसे पिक्र प्र पाके शास्सि प्र दिशों विदुष्टंरः॥१४॥

त्वम्। अग्ने। उ्रुऽशंसाया वृष्ट्यते। स्पार्हमा यत्। रेक्णः। प्रमम्। वनोषि। तत्। आधस्ये। चित्। प्रऽमितः। उच्यसे। पिता। प्रा पार्कम्। शास्सि। प्रा दिशः। विदुःऽतरः॥ १४॥

पदार्थ:-(त्वम्) प्रजाप्रश्मिता (अम्) विज्ञानस्वरूप (उरुशंसाय) उरुर्बहुविधः शंसः स्तुतिर्यस्य तस्मै (वाघते) वाक् हन्यते आयते येन तस्मै विदुष ऋत्विजे मनुष्याय। वाघत इत्यृत्विङ्नामसु पठितम्। (निघं०३.१८) (स्पार्हम्) स्मृहा क्रुळा तस्या इदं स्पार्हम् (यत्) यस्मात् (रेक्णः) धनम्। रेक्ण इति धननामसु पठितम्। (निघं०२०) रिचेधने घिच्च। (उणा०४.१९९) अनेन रिच्धातोर्धनेऽर्थेऽसुन् प्रत्ययः स च घ्रितुडागमश्च। (परमम्) अत्युत्तमम् (वनोषि) याचसे (तत्) धनम् (आध्रस्य) समन्ताद् धियमाणस्य ग्रुज्यस्यो अत्र आङपूर्वाद्धाञ् धातोर्बाहुलकादौणादिको रक् प्रत्यय आकारलोपश्च। (चित्) इव (प्रमितृः) प्रकृष्टा मतिर्ज्ञानं यस्य सः (उच्यसे) परिभाष्यसे (पिता) पालकः (प्र) प्रकृष्टार्थे (पाकम्) पचन्ति विद्वाने कुर्वन्ति यस्मिन् धर्म्ये व्यवहारे तम् (शास्सि) उपदिशसि (प्र) प्रशंसायाम् (दिशः) ये द्विशन्त्यपुरस्यजन्ति सदाचारं तानाप्तान् (विदुष्टरः) यो विविधानि दुरिष्टानि तारयित प्लावयित सः॥१४॥

मण्डल-१। अनुवाक-७। सुक्त-३१

अन्वय:-हे अग्ने विज्ञानयुक्त न्यायधीश! यद् यतः प्रमितिर्विदुष्टरस्त्वमुरुशंसाय वाघते स्पार्हं परमं रेक्णो धनं पाकं दिश उपदेशकाँश्च वनोषि धर्मेणाध्रस्य सर्वान् पिता चिदिव प्रशास्मि तस्मान् सर्वैर्मान्यार्होऽसि॥१४॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। यथा पिता स्वसन्तानस्य पालन-धनदान-^१ धार्रण-शिक्षां करोति, तथैव राजा सर्वस्याः प्रजाया पालकत्वाज्जीवेभ्यः सर्वेषां धनानां सम्यग्विभागेर्वे तेषां कर्मापुसारात् सुखदु:खानि प्रदद्यात्॥१४॥

पदार्थ:-हे (अग्ने) विज्ञानप्रिय न्यायकारिन्! (यत्) जिस कारण (प्रमितः) उत्तमज्ञानयुकत (विदुष्टरः) नाना प्रकार के दुःखों से तारने वाले आप (उक्रशंसाय) बहुत्त प्रकार की स्तुति करने वाले (वाघते) ऋत्विक् मनुष्य के लिये (स्पार्हम्) चाहने योग्य (परमम्) अत्युत्तम् (रक्णः) धन (पाकम्) पवित्रधर्म और (दिशः) उत्तम विद्वानों को (वनोषि) अच्छे प्रकार चाहते हैं और राज्य को धर्म से (आध्रस्य) धारण किये हुए (पिता) पिता के (चित्) तुल्य स्वको (प्र श्रास्सि) शिक्षा करते हैं, (तत्) इसी से आप सब के माननीय है॥१४॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे पिता अपने मन्तानों की पालना वा उनको धन देता वा शिक्षा आदि करता है, वैसे राजा सब प्रजा के धारण करने और सब जीवों को धन के यथायोग्य देने से उनके कर्मों के अनुसार सुख दु:ख देता है। १९६०

पुन: स कि करोत्तीक्र्यपदिश्यते॥

फिर वह क्या करता है, इस किएय को उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

त्वमंग्ने प्रयंतदक्षिणुं नरुं वर्षेत्र स्यूते परि पासि विश्वतः।

स्वादुक्षद्मा यो वसतौ स्योनकुज्जीवयाजं यजते सोम्पा दिवः॥१५॥३४॥

त्वम्। अग्ने। प्रयंतऽद्क्षिणम्। नरम्। वर्मंऽइव। स्यूतम्। परि। पासि। विश्वतः। स्वादुऽक्षद्मां। यः। वसतौ। स्योनऽकृत्। जीव्रकृत्वम्। यज्ति। सः। उप्ऽमा। दिवः॥ १५॥

१०. 'शुभ गुण्' इत्यक्षिक: पाठो ह० लि० प्रेस पुस्तके। सं० 'जीवेभ्य' इत्यस्मादग्रे 'सर्वाणि धनानि प्रदद्यात्' इति ह० लि० प्रेस पुस्तके पाठः। स० 'पालना' के आगे ह० लि० प्रेस कापी में निम्न पाठ है–धन देने और शुभ गुण धारण करने आदि की शिक्षा देता, है।

११, के, के आगे निम्न पाठ ह० लि० प्रेस कापी में है-पिता होने से सब जीवों के लिये अच्छी प्रकार विभाग द्वारा सब धन तथा।

पदार्थ:-(त्वम्) सर्वाभिरक्षकः (अग्ने) सत्यन्यायप्रकाशमान (प्रयतदक्षिणम्) प्रयताः प्रकृष्टतया यता विद्याधर्मोपदेशाख्या दक्षिणा येन तम् (नरम्) विनयाभियुक्तं मनुष्यम् (वर्म्मव) यथा कवचं देहरक्षकम् (स्यूतम्) विविधसाधनैः कारुभिर्निष्पादितम् (पिर्) अभ्यर्थे (पिर्स) रक्षसि (विश्वतः) सर्वतः (स्वादुक्षदा) स्वादूनि क्षद्मानि जलान्यन्नानि यस्य सः। क्षद्मेत्युदकनामसु पिठतम्। (निघं०१.१) अन्ननामसु च। (निघं०२.७) इदं पदं सायणाचार्येणान्यथैव व्याख्यातं तदसङ्गतम्। (यः) मनुष्य (वसतौ) निवासस्थाने (स्योनकृत्) यः स्योनं सुखं करोति सः (जीवयाजम्) जीवान् याजयति धर्मं च सङ्गमयित तम् (यजते) यो यज्ञं करोति (सः) धर्मात्मा परोपकारी विद्वान्। अत्र सोश्चि लोषे चेत्पादपूरणम्। (अष्टा०६.१.१३४) अनेन सोर्लोपः। (उपमा) उपमीयतेऽनयेति दृष्टान्तः (द्विदः) सूर्यप्रकाशस्य॥१५॥

अन्वय:-हे अग्ने राजधर्मराजमान! त्वं वर्म्मे वयः स्वादुध्या स्मिनकृन्मनुष्यो वसतौ विविधैर्यज्ञैर्यजते तं प्रयतदक्षिणं जीवयाजं स्यूतं नरं विश्वतः परिपासि, स भवान् दिव उपमा भवति॥१५॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। ये सर्वेषां सुखकर्त्तार: पुरुषार्शिनो मनुष्याः प्रयत्नेन यज्ञान् कुर्वन्ति, ते यथा सूर्य: सर्वान् प्रकाश्य सुखयित तथा भवन्ति यथा युद्धे प्रवर्त्तमानाम् वीरान् शस्त्रघातेभ्य: कवचं रक्षिति, तथैव राजादयो राजसभा जना धार्मिकान्नरान् सर्वेभ्यो द्वस्थिभ्यो प्रक्षेयुरिति॥१५॥

इति प्रथम द्वितीये चतु स्विंशों वर्षः । ३४॥

पदार्थ:-हे (अग्ने) सबको अच्छे प्रकार जानिने काले सभापति आप (वर्म्मव) कवच के समान (य:) जो (स्वादुक्षदा) शुद्ध अत्र जल का भीक्ता (स्थ्रोनकृत्) सबको सुखकारी मनुष्य (वसतौ) निवासदेश में नाना साधनयुक्त यज्ञों से (यज्ञते) यज्ञ करता है, उस (प्रयतदक्षिणम्) अच्छे प्रकार विद्या धर्म के उपदेश करने (जीवयाजम्) और जीवी को यज्ञ कराने वाले (स्यूतम्) अनेक साधनों से कारीगरी में चतुर (नरम्) नम्र मनुष्य को (विश्वतः) सब प्रकार से (परिपासि) पालते हो (स:) ऐसे धर्मात्मा परोपकारी विद्वान् आप (दिवः) सूर्य के प्रकाश की (उपमा) उपमा पाते हो॥१५॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में हिपमालङ्कार है। जो सब के सुख करने वाले पुरुषार्थी मनुष्य यत्न के साथ यज्ञों को करते हैं, वे जैसे सूर्य सबका प्रकाशित करके सुख देता है, वैसे सबको सुख देने वाले होते हैं। जैसे युद्ध में प्रवृत्त हिए वीरों को शस्त्रों के घाओं से बख्तर बचाता है, वैसे ही सभापित राजा और राजजन सब धार्मिक सज्जन को सब दु:खों से रक्षा करते रहें॥१५॥

यह पहिले अष्टक में दूसरे अध्याय में चौतीसवां वर्ग समाप्त हुआ॥३४॥

पुनः स एवार्थः प्रकाश्यते॥

अगले मन्त्र में भी उसी अर्थ का प्रकाश किया है।।

ड्रुभामंग्ने शररिणं मीमृषो न ड्रममध्वनिं यमगाम द्रुरात्।

आपिः पिता प्रमंतिः सोम्यानां भूमिरस्यृषिकृन्मर्त्यानाम्॥ १६॥

मण्डल-१। अनुवाक-७। सुक्त-३१

डुमाम्। अग्ने। शृरणिम्। मीुमृषः। नः। डुमम्। अध्वानम्। यम्। अगीम। दूरात्। आपिः। पिता। प्रऽमितः। सोुम्यानीम्। भृमिः। असि। ऋषिुऽकृत्। मर्त्यानाम्॥ १६॥

पदार्थ:-(इमाम्) वक्ष्यमाणाम् (अग्ने) सर्वंसहानुत्तमिवद्वन्! (शरणिम्) अविद्यादिदोषहिनिकां विद्याम्। अत्र शृधातोर्बाहुलकादौणादिकोऽिनः प्रत्ययः। (मीमृषः) अस्यन्तं निवास्यस्मि। अत्र लडर्थे लुङ्डभावश्च। (नः) अस्माकम् (इमम्) वक्ष्यमाणम् (अध्वानम्) धर्ममार्गम् (यस्) मार्गम् (अगाम) जानीयाम प्राप्नुयाम वा। अत्र इण्धातोर्लिङ्थे लुङ्। (दूरात्) विकृष्टात् (आप्रिः) सः प्रोत्या प्राप्निति सः (पिता) पालकः (प्रमितः) प्रकृष्टा मितर्यस्य (सोम्यानाम्) ये सोमे साधवः सोमानर्हन्ति तेषां पदार्थानाम् (भृमिः) यो नित्यं भ्रमित। भ्रमेः सम्प्रसारणं च। (उणा०४.१२६) अनेन् भ्रमुभातोत्नि प्रत्ययः सम्प्रसारणं च स च कित्। (असि) (ऋषिकृत्) ऋषीन् ज्ञानवतो मन्त्रार्थद्रष्टून् कृत्येश ध्यानोपदेशाभ्यां करोति। अत्र कृतो बहुलम् इति करणे क्विप्। (मर्त्यानाम्) मनुष्याणाम्॥१६॥

अन्वय:-हे अग्ने विद्वंस्त्वं सोम्यानां मर्त्यानामापिः पिता प्रमृतिर्भृमिर्ऋषिकृदसि न इमां शरिणम् मीमृषो वयं दूरादध्वानमतीत्यागाम नित्यमिभगच्छेम तं त्वं विद्यं स्त्रेमहि॥१६॥१२

भावार्थः-यदा मनुष्याः सत्यभावेन सन्मार्गं प्राप्तुमिष्ठिम् तदा जगदीश्वरस्तेषां सत्पुरुषसङ्गाय प्रीतिजिज्ञासे जनयित, ततस्ते श्रद्धालवः सन्तोऽतिद्धिऽपि वस्त्रः आप्तान् योगिनो विदुष उपसगम्याभीष्टं बोधं प्राप्य धार्मिका जायन्ते॥१६॥

पदार्थ:-हे (अग्ने) सबको सहने वाल सर्वोज्ञम विद्वान्! जो आप (सोम्यानाम्) शान्त्यादि गुणयुक्त (मर्त्यानाम्) मनुष्यों को (आणिः) प्रीति भे प्राप्त (पिता) और सर्व पालक (प्रमितः) उत्तम विद्यायुक्त (भृमिः) नित्य भ्रमण करने और (ऋणिकृत्) वेदार्थ को बोध कराने वाले हैं तथा (नः) हमारी (इमाम्) इस (शरणिम्) विद्यानाश्रक अविद्या को (मीमृषः) अत्यन्त दूर करने हारे हैं, वे आप और हम (यम्) जिसको हम लोग (दूरात्) दूर से उल्लङ्घन करके (इमम्) वक्ष्यमाण (अध्वानाम्) धर्ममार्ग के (अगाम) सन्मुख आवें, उसकी सेवो करें॥१६॥१३

भावार्थ:-जब मिनुष्य सत्यभाव से अच्छे मार्ग को प्राप्त होना चाहते हैं, तब जगदीश्वर उनको उत्तम ज्ञान का प्रकाश करने चाले विद्वानों का संग होने के लिये प्रीति और जिज्ञासा अर्थात् उनके उपदेश

१२, अन्वर<mark>े 'इमम्'</mark> शब्द: स्खलित:। सं०

इ. हिन्दी पदार्थ में <mark>'इमम्'</mark> शब्द तथा उसका अर्थ छूट गया है। सं०

के जानने की इच्छा उत्पन्न करता है। इससे वे श्रद्धालु हुए अत्यन्त दूर भी बसने वाले सत्यवादी यौगी विद्वानों के समीप जाय, उनका संग कर अभीष्ट बोध को प्राप्त होकर धर्मात्मा होते हैं॥१६॥

पुनः स एवोपदिश्यते॥

फिर उसी का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

म्नुष्वदंग्ने अङ्गिर्स्वदंङ्गिरो ययातिवत्सदंने पूर्ववच्छुंचे। अच्छं याह्या वहा दैव्यं जनमा सादय बहिष् यक्षं च प्रियम्॥ १७॥

मनुष्वत्। अन्ने। अङ्गिर्स्वत्। अङ्गिरः। ययातिऽवत्। सदेने। पूर्वऽवत्। श्रुचे। अच्छे। याहि। आ। वह। दैर्व्यम्। जर्नम्। आ। साद्वयः। बुर्हिषि। यक्षि। च। प्रियम्॥ १७॥

पदार्थ:-(मनुष्वत्) यथा मनुष्या गच्छन्ति तद्वत् (अग्ने) सवाभिगन्तः संभेश (अङ्गिरस्वत्) यथा शरीरे प्राणा गच्छन्त्यागच्छन्ति तद्वत् (अङ्गिरः) पृथिव्यादीनामङ्गानां प्राण्यवद्धारक (ययातिवत्) यथा प्रयत्नवन्तः पुरुषाः कर्माणि प्राप्नुवन्ति प्रापयन्ति च तद्वत्। अत्र्र्यत्ति प्रयन्ते इत्यस्मादौणादिक इन् प्रत्ययः स च बाहुलकाण्णित् सन्वच्च। इदं सायणाचार्य्येण भूतपूर्वस्य कर्म्यचिद् ययाते राज्ञः कथासम्बन्धे व्याख्यातं तदनजर्यम् (सदने) सीदन्ति जना यस्मिस्तिस्पर्म् (पूर्ववत्) यथा पूर्वे विद्वांसो विद्यादानार्थं गच्छन्त्यागच्छन्ति तद्वत् (शुचे) पवित्रकारक (अच्छ) श्रेष्ठार्थं (याहि) प्राप्नुहि (आ) समन्तात् (वह) प्राप्य। अत्र द्वयचोऽतस्तिङ इति दीर्घः। (दैव्यम्) देषेषु बिद्वत्सु कुशलस्तम् (जनम्) मनुष्यम् (आ) आभिमुख्ये (सादय) अवस्थापय (बर्हिष्) उत्तमे मोक्षपदेऽन्तिरक्षे वा (यक्षि) याजय वा। अत्र सामान्यकाले लुङ्डभावश्च। (च) (प्रियम्) सूर्वाञ्चलान् प्रीणन्तम्॥१७॥

अन्वय:-हे शुचेऽङ्गिरोऽग्ने सूभापते ! त्वं विनयायाभ्यां मनुष्वदङ्गिरस्वद्ययातिवत्पूर्ववत् प्रियं दैव्यं जनमच्छायाहि तं च विद्याधर्मं प्रति वह प्रसूय बर्हिष्यासादय सदने यक्षि याजय च॥१७॥

भावार्थ:-यैर्मनुष्यैर्विद्यया धर्मानुष्ठाने प्रेम्णा सेवित: सभापति: स तानुत्तमेषु धर्म्येषु व्यवहारेषु प्रेरयति॥१७॥

पदार्थ:-हे (शुर्च) प्रवित्र (अद्भिर:) प्राण के समान धारण करने वाले (अग्ने) विद्याओं से सर्वत्र व्याप्त सभाध्यक्ष! आप (मनुष्यंत्) मनुष्यों के जाने-आने के समान वा (अद्भिरस्वत्) शरीरव्याप्त प्राणवायु के सदृश्च राज्यकर्म व्याप्त पुरुष के तुल्य वा (ययातिवत्) जैसे पुरुष यत्न के साथ कामों को सिद्ध करते क्रिंग्से हो वा (पूर्ववत्) जैसे उत्तम प्रतिष्ठा वाले विद्वान् विद्या देने वाले हैं, वैसे (प्रियम्) सबको प्रस्क कर्मेहार (दैव्यम्) विद्वानों में अति चतुर (जनम्) मनुष्य को (अच्छ) अच्छे प्रकार

र रह. <mark>'यक्कि'</mark> इति लोटो रूपं लुङि तु <mark>'यक्की:'</mark> इति भाव्यमर्थोऽपि महर्षिणा लोट एव कृत:। सं०

मण्डल-१। अनुवाक-७। सूक्त-३१

(आयाहि) प्राप्त हूजिये, उस मनुष्य को विद्या और धर्म की ओर (वह) प्राप्त कीजिये तथा (बर्हिष) (सदने) उत्तम मोक्ष के साधन में (आसादय) स्थित और (यक्षि) वहाँ उसको प्रतिष्ठित कीजिशेषा क्रिक्त क्रि

भावार्थ:-जिन मनुष्यों ने विद्या धर्मानुष्ठान और प्रेम से सभापित की सेवा की है, वह उनके उत्तम-उत्तम धर्म के कामों में लगाता है॥१७॥

पुन: स कीदृशो भवेदित्याह॥

फिर वह कैसा हो, इसका प्रकाश अगले मन्त्र में किया है

एतेनांग्ने ब्रह्मणा वावृधस्व शक्तीं वा यत्ते चकुमा विदा वा। उत प्र णेष्यभि वस्यों अस्मान्त्सं नेः सृज सुमृत्या वाजंबत्स्मा। १६॥३५॥

एतेर्न। अग्ने। ब्रह्मणा। वावृधस्व। शक्ती। वा। यत्। ते। चुकूमा विद्यारीवा। उत। प्र। नेषि। अभि। वस्यः। अस्मान्। सम्। नः। सृज्। सुऽमृत्या। वार्जंऽवत्या॥१८॥

पदार्थ:-(एतेन) वक्ष्यमाणेन (अग्ने) पाठशालाध्यापेक (ब्रह्मणा) वेदेन (वावृधस्व) भृशमेधस्वैधय वा। अत्र वृधुधातोलींटिमध्यमैकवचने विक्रिप्रिक्ययेन श्लुरोरत्त्वम्, अन्येषामिप दृश्यत इति दीर्घ:। (शक्ती) आत्मसामर्थ्येन। अत्र सुपां सुनुग् इति तृतीयैकवचनस्य पूर्वसवर्णादेश:। (वा) शरीरबलेन (यत्) आज्ञापालनाख्यं कर्म (ते) तव (चक्रम) कुमहे। अत्र लड्थें लिट्। अन्येषामिप दृश्यत इति दीर्घ:। (विदा) विदन्ति येन ज्ञानेन। अत्र कृतो बहुलुम् इति करणे क्विप्। (वा) योगिक्रियया (उत) अपि (प्र) प्रकृष्टार्थे (नेषि) नयसि। अत्र कहुलं छन्दम् इति शपो लुक्। (अभि) आभिमुख्ये (वस्यः) अतिशयेन धनम्। अत्र वसुशब्दादीयमुन् प्राययान छान्दसो वर्णलोपो वा इत्यकारलोपः। (अस्मान्) विद्याधर्माचरणयुक्तान् विदुषो धार्मिकान् मनुष्यान् (सम्) एकीभावे (नः) अस्मभ्यम् (सृज) निष्पादय (सुमत्या) शोभना चासौ मतिर्विद्यारो यस्यो तया (वाजवत्या) वाजः प्रशस्तमन्नं युद्धं विज्ञानं वा विद्यते यस्यां तया। १८॥

अन्वय:-हे अग्ने चिद्वहर्य! तुरं ब्रह्मणा वाजवत्या सुमत्या शक्ती शक्त्या नो वस्योऽभिसृज त्वमुत विदा वावृधस्व ते तव यत् प्रियान्नरण तद्वयं चकुम, त्वं चास्मान् प्रणेषि सद्बोधं प्रापयसि॥१८॥

भावार्थ: न्ये मनुष्या वेदरीत्या धर्म्यं व्यवहारं कुर्वन्ति, ते ज्ञानवन्तः सुमतयो धार्मिका भूत्वा यं धार्मिकमुत्तमं विपश्चितं सेवन्ते स तान् श्रेष्ठ सामर्थ्यसिद्धद्यायुक्तान् सम्पादयतीति॥१८॥

अत्र स्कृत इन्द्रानुयोगिनः खलु प्राधान्येनेश्वरस्य गोण्यावृत्या भौतिकस्यार्थस्य प्रकाशनात् पूर्वसूक्वर्थिन सहैतस्य सङ्गतिरस्तीति बोध्यम्।

> इति प्रथमस्य द्वितीये पञ्चित्रंशो (३५) वर्गः॥ प्रथम मण्डले सप्तमेऽनुवाक एकत्रिंशं सूक्तं च समाप्तम्॥ ३१॥

पदार्थ:-हे (अग्ने) सर्वोत्कृष्ट विद्वन्! आप (ब्रह्मणा) वेदविद्या (वाजवत्या) उत्तम अन्न युद्धे और विज्ञान वा (सुमत्या) श्रेष्ठ विचारयुक्त^{१५} से (नः) हमारे लिये (वस्यः) अत्यन्त धन (अभिमूज) सब प्रकार से प्रगट कीजिये (उत) और आप (विदा) अपने उत्तम ज्ञान से (वावृधस्व) नित्य-नित्य उन्नित्त को प्राप्त हूजिये (ते) आपका (यत्) जो प्रेम है वह हम लोग (चकृम) करें और आप (अस्मिन्) हम लोगों को (प्रणेषि) श्रेष्ठ बोध को प्राप्त कीजिये॥१८॥

भावार्थ:-जो मनुष्य वेद की रीति से धर्मयुक्त व्यवहार को करते हैं, वे ज्ञानवान् और अष्ठमित वाले होकर उत्तम विद्वान् की सेवा करते हैं, वह उनको श्रेष्ठ सामर्थ्य और उन्नम विद्वान् से संयुक्त करता है॥१८॥

इस सूक्त में सभा, सेनापित आदि के अनुयोगी अर्थों के प्रकार से पिछाने सूक्त के साथ इस सूक्त की सङ्गति जाननी चाहिये।

यह पहिले अष्टक में दूसरे अध्याय में पैंतीसवां ३५ वर्ग वा पहिले मण्डल में सातवे अनुवाक में इकतीसवां सूक्त समाप्त हुआ॥३१॥

प्त. इसके आगे 'और (शक्ती) शक्ति से' ऐसा पाठ और होना चाहिये, जो भूल से छूट गया है। सं०

अथ पञ्चदशर्चस्य द्वात्रिंशस्य सूक्तस्याङ्गिरसो हिरण्यस्तूप ऋषि:। इन्द्रो। देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवत: स्वरः।

तत्रादाविन्द्रशब्देन सूर्यलोकदृष्टान्तेन राजगुणा उपदिश्यन्ते॥

अब बत्तीसवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके पहिले मन्त्र में इन्द्र शब्द से सूर्यलोक की उपना करके

राजा के गुणों का प्रकाश किया है।।

इन्द्रंस्य नु वीर्याणि प्र वोचं यानि चकार प्रथमानि वज्री। अहुन्नहिमन्वपस्तंतर्दे प्र वृक्षणां अभिनृत् पर्वतानाम्॥ १॥

इन्ह्रंस्य। नु। वीर्याणि। प्र। वोच्म्। यानि। चकार्र। प्रथमानि। वजी। अहिम्। अनुं। अपः। तत्रर्द्र। प्र। वक्षणां:। अभिनृत्। पर्वतानाम्॥ १॥

पदार्थ:-(इन्द्रस्य) सर्वपदार्थविदारकस्य सूर्यलोकस्येव सभापते सज्ञः (नु) क्षिप्रम् (वीर्थ्याणि) आकर्षणप्रकाशयुक्तादिवत् कर्माणि (प्र) प्रकृष्टार्थे (वोचम्) हुपदिशेयप् अत्र लिङ्थे लुङ्डभावश्च। (यानि) (चकार) कृतवान् करोति करिष्यति वा। अत्र सामान्यकाले लिट्ट। (प्रथमानि) प्रख्यातानि (वज्री) सर्वपदार्थविच्छेदक किरणवानिव शत्रूच्छेदी (अहन्) हन्ति। अत्र लुङ्थे लङ्। (अहिम्) मेघम्। अहिरिति मेघनामसु पठितम्। (निघं १.१०) (अनु) पश्चादर्थे (अपः) अलानि (ततर्द) तर्दति हिनस्ति। अत्र लुङ्थे लिट्। (प्रवक्षणाः) वहन्ति जलानि यास्ता नद्यः (अभिनत्) क्रिदारयति। अत्र लुङ्थे लङ्न्तर्गतो ण्यर्थश्च। (पर्वतानाम्) मेघानां गिरीणां वा। पर्वत इति मेधनामसु पढितम्। (निघं०१.१०)॥१॥

अन्वय:-हे विद्वांसो मनुष्या! यूयं व्या यस्याद्रस्य सूर्य्यस्य यानि प्रथमानि वीर्थ्याणि पराक्रमान् प्रवक्ततान्यहं नु प्रवोचम्। यथा स वज्रविसहो तदवयवा अपोऽध ऊर्ध्वं चकार तं ततर्द पर्वतानां सकाशात्प्रवक्षणा अभिनत् तथाऽहं शत्रून् हन्याम् तानऽध ऊर्ध्वमनुतर्देयम् दुर्गादीनां सकाशाद्युद्धायागताः सेना भिन्द्याम्॥१॥

भावार्थ:-अत्रोपमालक्कर:। ईश्वरेणात्पादितोऽयमग्निमय: सूर्य्यलोको यथा स्वकीयानि स्वाभाविकगुण-युक्तान्यत्वादीनि प्रकाशाकर्षणदाहछेदनवर्षोत्पत्तिनिमित्तानि कर्माण्यहर्निशं करोति, तथैव प्रजापालनतत्परै राजपुरुषरिप भवितव्यम्॥१॥

पदार्थ: हे विद्वान मनुष्यो! तुम लोग जैसे (इन्द्रस्य) सूर्य्य के (यानि) जिन (प्रथमानि) प्रसिद्ध (वीर्च्याणि) प्राक्रिमों को कहो, उनकों मैं भी (नु) (प्रवोचम्) शीघ्र कहूं, जैसे वह (वज्री) सब पदार्थों के छेदन करने वाले किरणों से युक्त सूर्य्य (अहिम्) मेघ को (अहन्) हनन करके वर्षाता उस मेघ के अवयव प्रप (अपः) जलों को नीचे-ऊपर (चकार) करता, उसको (ततर्द) पृथिवी पर गिराता और (पर्वृतानाम्) उन मेघों उन मेघों के सकाश से (प्रवक्षणाः) निदयों को छिन्न-भिन्न करके बहाता है। वैसे

328

मैं शत्रुओं को मारूं उनको इधर-उधर फेंकूं और उनको तथा किला आदि स्थानों से युद्ध करने के लिये आई सेनाओं को छिन्न-भिन्न करूं॥१॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। ईश्वर का उत्पन्न किया हुआ यह अग्निमय सूर्यलोक जैसे अपने स्वाभाविक गुणों से युक्त अन्नादि, प्रकाश, आकर्षण, दाह, छेदन और वर्षा की उत्पत्ति के निर्मत्त कामों को दिन-रात करता है, वैसे जो प्रजा के पालन में तत्पर राजपुरुष हैं, उन्क्री भी मित्य करना चाहिये॥१॥

पुनः स किं करोतीत्युपदिश्यते॥

फिर वह सूर्य्य तथा सभापति क्या करता है, इस विषय का उपदेश अनिक मन्त्र में किया है।।

अहन्निहं पर्वते शिश्रियाणं त्वष्टांस्मै वज्रं स्वर्यं ततक्ष। वाश्राईव धेनवः स्यन्दंमाना अञ्जः समुद्रमवं जग्मुराप्राधारा

अहंन्। अहंिम्। पर्वते। शिश्रियाणम्। त्वष्टां। अस्मै। वृज्जैप्। स्वर्येम्। तृतक्ष्। वाश्राऽइंव। धेनवंः। स्यन्दंमानाः। अञ्जः। सुमुद्रम्। अवं। जुग्मुः। आपंः॥२॥

पदार्थ:-(अहन्) हतवान् हन्ति हनिष्यित वा (अहिन्) मैधामव शत्रुम् (पर्वते) मेधमण्डले इव गिरौ। पर्वत इति मेधनामसु पठितम्। (निघं०१.१०) (शिश्रियाणम्) विविधाश्रयम् (त्वष्टा) स्विकरणैः छेदनसूक्ष्मकर्त्ता स्वतेजोभिः शत्रुविदारको वा (अभि) मेधाय दृष्टाय वा (वज्रम्) छेदनस्वभावं किरणसमूहं शस्त्रवृन्दं वा (स्वर्यम्) स्वरे गर्जने वाचि वा साधुस्तम्। स्वर इति वाङ्नामसु पठितम्। (निघं०१.११)। इदं पदं सायणाचार्येण मिथ्यैव व्याख्यातम्। (तत्रक्ष) छिनत्ति (वाश्राइव) वत्सप्राप्तिमुत्कण्ठिताः शब्दायमाना इव (धेनवः) गावः (स्यन्दमानाः) प्रस्रवन्त्यः (अञ्चः) व्यक्तागमनशीला वा। अञ्च व्यक्तिकरण इत्यस्य प्रयोगः। (समुद्रम्) जलेन पूर्णं सागरमन्तिरक्षं वा (अव) नीचार्थे (जग्मुः) गच्छन्ति (आपः) जलानि शत्रुप्राणा वा॥ ।

अन्वय:-यथाऽयं त्वष्टा सूर्यालोकः प्रविते शिश्रियाणं स्वर्य्यमिहमहन् हन्ति। अस्मै मेघाय वज्रं ततक्ष तक्षति। एतेन कर्मणा वाश्चा भेनव इव स्यन्दमाना अञ्ज आपः समुद्रमवजग्मुरवगच्छन्ति। तथैव सभाध्यक्षो राजा दुर्गमाश्रितं शञ्चं हन्यादस्मै शत्रवे वज्रं तक्षेत् तेन वाश्रा धेनव इव स्यन्दमाना अञ्ज आपः समुद्रमवगमयेत्। स्था

भावार्थः अत्रीपमालङ्कारः। यथा सूर्यः स्विकरणैरन्तरिक्षस्थं मेघं भूमौ निपात्य जगज्जीवयित, तथा सेनेश्गे दुर्गपर्यताद्याश्रितमपि शत्रुं पृथिव्या सम्पात्य प्रजाः सततं सुखयित॥२॥

पदार्थ:-जैसे यह (त्वष्टा) सूर्य्यलोक (पर्वते) मेघमण्डल में (शिश्रियाणम्) रहने वाले (स्वय्यम्) पर्जनशील (अहिम्) मेघ को (अहन्) मारता है (अस्मै) इस मेघ के लिये (वज्रम्) काटने के स्वभाव अले किरणों को (ततक्ष) छोड़ता है। इस कर्म से (वाश्रा धेनव इव) बछड़ों को प्रीतिपूर्वक

मण्डल-१। अनुवाक-७। सूक्त-३२

चाहती हुई गौओं के समान (स्यन्दमाना:) चलते हुए (अञ्चः) प्रकट (आप:) जल (समुद्रम्) जल से पूर्ण समुद्र को (अवजग्मु:) निदयों के द्वारा जाते हैं। वैसे ही सभाध्यक्ष राजा को चाहिये कि किला में रहने वाले दुष्ट शत्रु को मारे, इस शत्रु के लिये उत्तम शस्त्र छोड़े। इस प्रकार उसके बहुड़ों को चाहिन वाली गौओं के समान चलते हुए प्रसिद्ध प्राणों को अन्तरिक्ष में प्राप्त करे, उन कण्टक राजुओं को मार के प्रजा को सुख देवे॥२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे सूर्य्य अपनी किरणों से अनिस्क्षि में रहने वाले मेघ को भूमि पर गिराकर जगत् को जिलाता है, वैसे ही सेनापित किला पर्वत आदि में रहने वाले भी शत्रु को पृथिवी में गिरा के प्रजा को निरन्तर सुखी करता है॥२॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

वृषायमाणोऽवृणीत सोमं त्रिकंदुकेष्विपबत्सुतस्य।

आ सार्यंकं मुघवादत्त् वज्रमहिन्नेनं प्रथम्जामहीपामा ३५०

वृष्ऽयमाणः। अवृणीत्। सोर्मम्। त्रिऽकंद्रुकेषु। अपिबृत्। स्रुतस्यं। आ। सार्यकम्। मघऽवां। अद्तः। वर्ज्रम्। अर्हन्। एनम्। प्रथमऽजाम्। अर्हानाम्॥३॥

पदार्थ:-(वृषायमाण:) वृष इवाचरन्/(अवृणीते) स्वीकरोति। अत्र लडर्थे लङ् (सोमम्) सूयत उत्पद्यते यस्तं रसम्। (त्रिकदुकेषु) त्रष्ट अत्पत्तिस्थितिप्रलयाख्याः कद्रवो विविधकला येषां तेषु कार्यपदार्थेषु। अत्र किदधातोरौणादिकः कुम्प्रत्ययाः पुनः समासान्तः कप् च। (अपिबत्) स्वप्रकाशेन पिबति। अत्र लडर्थे लङ् (सुतस्य) उत्पन्नस्य जगतो मध्ये (आ) क्रियायोगे (सायकम्) शस्त्रविशेषम् (मघवा) मघं बहुविधं पूज्यं धनं यस्य सः। अत्र भूम्न्थ्ये मतुप्। (अदत्त) ददाति वा। अत्र वर्त्तमाने लङ्। (वज्रम्) किरणसमूहमिवास्त्रभू (अहन्) हिन्ता। अत्र वर्त्तमाने लङ्। (एनम्) मेघम् (प्रथमजाम्) प्रथमं जायते तम्। अत्र जनसन् (अष्टा० हुन्ते। अनेन जनधातोविंट् प्रत्ययः। (अहीनाम्) मेघानाम्॥३॥

अन्वय:-यथा वृषापमाण इन्द्रः सूर्य्यलोको मेघ इव सुतस्य त्रिकदुकेषु सोमं रसमवृणीत स्वीकरोति अपिबत् पिबति मघवा सायकं वज्रमादत्तेवाहिनां प्रथमजामेनं मेघमहन् हन्ति। एतादृशगुणकर्मस्वभारपुरुषः सैनापत्यमर्हति॥३॥

भाषार्थः अत्रोपमालङ्कारः। यथा वृषभो वीर्य्यवृद्धिं कृत्वा बलिष्ठो भूत्वा सुखी जायते, तथैवायं सेनापित्रः रसं पीत्वा बलीभूत्वा सुखी जायेत। यथा सूर्यः स्विकरणैर्जलमाकृष्यान्तिरक्षे स्थापियत्वा वर्षप्रति तथा शत्रुबलान्याकृष्य स्वबलमुत्रीय प्रजासुखान्यभिवर्षयेत्॥३॥

पदार्थ:-जो (वृषायमाण:) वीर्य्यवृद्धि का आचरण करता हुआ सूर्य्यलोक मेघ के समान (सुतस्य) इस उत्पन्न हुए जगत् के (त्रिकदुकेषु) जिनकी उत्पत्ति, स्थिरता और विनाश ये तीन कला व्यवहार में वर्ताने वाले हैं, उन पदार्थों में (सोमम्) उत्पन्न हुए रस को (अवृणीत) स्वीकार करता (अपिबत्) उसको अपने ताप में भर लेता और (मघवा) यह बहुत सा धन दिलाने वाला सूर्य (सप्यक्रम्) शस्त्ररूप (वज्रम्) किरण समूह को (आदत्त) लेते हुए के समान (अहीनाम्) मेघों में (प्रथमजाम्) प्रथम प्रकट हुए (एनम्) इस मेघ को (अहन्) मारता है, वैसे गुण-कर्म-स्वभावयुक्त पुरुष सेनापति का अधिकार पाने योग्य होता है॥३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे बैल वीर्य को बढ़ा बुक्वान हो सुखी होता है, वैसे सेनापित दूध आदि पीकर बलवान होके सुखी होवे और जैसे सूर्य्य रस को पी अन्छ प्रकार बरसाता है, वैसे शत्रुओं के बल को खींच अपना बल बढ़ाके प्रजा में सुखों की वृष्टि करे।। द्वार

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह किस प्रकार का है, इस विषय का उपदेश आले मुम्त्र में किया है।।

यदिन्द्राहन्प्रथम्जामहीनामान्मायिनामिनाः प्रोति मास्याः

आत्सूर्यं जनयुन्द्यामुषासं तादीला शत्रुं न किला बिक्तिसे॥४॥

यत्। इन्द्र्। अर्हन्। प्रथम्ऽजाम्। अर्होनाम्। अर्ति मायित्रम्। अर्मिनाः। प्र। उत्त। मायाः। आत्। सूर्यम्। जुनर्यन्। द्याम्। उषस्मेम्। तादीत्नां। शत्रुम्। न। किल्लाः विवित्से। ४॥

पदार्थ:-(यत्) यम्। मुपाम्० इत्यम् लुकु। (इन्द्र) पदार्थविदारियतः सूर्यलोकसदृश (अहन्) जिह (प्रथमजाम्) सृष्टिकालयुगपदुत्पृत्रं मेघम (अहोनाम्) सर्पस्येव मेघावयवानाम् (आत्) अनन्तरम् (मायिनाम्) येषां मायानिर्माणं घनाकारं सूर्यप्रकाशाच्छादकं वा बहुविधं कर्म विद्यते तेषाम्। अत्र भूम्न्यर्थ इनिः। (अमिनाः) निवारयेद्वा। मानातर्निगमे। (अष्टा०७.३.८१) इति हस्वादेशश्च। (प्र) प्रकृष्टार्थे (उत) अपि (मायाः) अन्धकाराद्या इव (आत्) अद्भृते (सूर्य्यम्) किरणसमूहम् (जनयन्) प्रकटयन् सन् (द्याम्) प्रकाशमयं दिनम् (उष्प्रम्) प्रातःसम्यम्। अत्र वर्णव्यत्ययेन दीर्घत्वम्। (तादीत्ना) तदानीम्। अत्र पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम्। (अष्टा०६.३.१०९) अनेन वर्णविपर्यासेनाकारस्थान ईकार ईकारस्थान आकारस्तुडागमः पूर्वस्य दीर्घश्च। (शत्रुम्) वैरिणम् (न) इव (किल्) निश्चयार्थे। अत्र निपातस्य च इति दीर्घः। (विवित्रसे) अत्र व्यत्ययेनात्मनेपदम्॥४॥

अन्बय:- हे सेनाराजँस्त्विमन्द्रः सूर्य्योऽहीनां प्रथमजां मेघमहन् तेषां मायिनामहीनां मायादीन् प्रामिणाः तादीत्ना यद्यं सूर्यिकरणसमूहमुषसं द्यां च प्रजनयन् दिनं करोति नेव शत्रून्विवित्से तेषां माया हन्यूस्तद्मनी त्यायर्कं प्रकटयन् सत्यविद्याचाराख्यं सिवतारं जनय॥४॥

मण्डल-१। अनुवाक-७। सूक्त-३२

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। यथा कश्चिच्छत्रोर्बलछले निवार्य तं जित्वा स्वराज्ये सुखन्यायप्रकाशौ विस्तारयति, तथैव सूर्योऽपि मेघस्य घनाकारं प्रकाशावरणं निवार्य स्विकरण्ति विस्तार्थ मेघं छित्त्वा तमो हत्वा स्वदीप्तिं प्रसिद्धीकरोति॥४॥

पदार्थ: - हे सेनापते! जैसे (इन्द्र) सब पदार्थों को विदीर्ण अर्थात् छिन्न भिन्न करने वाला सूर्य्यलोक (अहीनाम्) छोटे-छोटे मेघों के मध्य में (प्रथमजाम्) संसार के उत्पन्न होने समय में उत्पन्न हुए मेघ को (अहन्) हनन करता है। जिनकी (मायिनाम्) सूर्य्य के प्रकाश की आवरण कर्ज वाली बड़ी-बड़ी घटा उठती हैं, उन मेघों की (मायाः) उक्त अन्धकाररूप घटाओं को (प्रामिणाः) अच्छे प्रकार हरता है (तादीत्ना) तब (यत्) जिस (सूर्य्यम्) किरणसमृह (उपसम्) प्रातीकाल और (द्याम्) अपने प्रकाश को (प्रजनयन्) प्रगट करता हुआ दिन उत्पन्न करता है (न) बैसे ही तू शत्रुओं को (विवित्से) प्राप्त होता हुआ उनकी छल-कपट आदि मायाओं को हनन कर और उस समय सूर्य्यरूप न्याय को प्रसिद्ध करके सत्य विद्या के व्यवहाररूप सूर्य्य का प्रकाश किया कर।।।।

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे कोई सज्ज्युरुष अर्पने वैरियों के बल और छल का निवारण कर और उनको जीत के अपने राज्य में सुख तथा सायाका प्रकाश करता है, वैसे ही सूर्य भी मेघ की घटाओं की घनता और अपने प्रकाश के दूर कर अपनी को मेघ को निवारण कर अपनी किरणों को फैला मेघ को छिन्न-भिन्न और अन्धकार को दूर कर अपनी क्रीपित को प्रसिद्ध करता है॥४॥

पुनः स तं कींदृशं करोतीत्युपदिश्यते॥

फिर वह सूर्य्य उस मेघ को कैसा करता है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अहंन्वृत्रं वृत्रुतर् व्यंसमिन्द्रो वर्जेण महता वधेन।

स्कन्धांसीव कुर्लिशेना विवृक्णोहिः शयत उपुग्क् पृथिव्याः॥५॥३६॥

अहंन्। वृत्रम्। वृत्रऽत्रिम्। विऽअंसम्। इन्द्रं:। वन्नेण। महता। वधेनं। स्कन्धांसिऽइव। कुलिशेन। विवृत्रमणा अहिं:। शृयुते। द्रुपुरुष्क्। पृष्ट्रिच्याः॥५॥

पदार्थ:-(अहन्) इत्वोन् (वृत्रम्) मेघम्। वृत्रो मेघ इति नैरुक्ताः। (निरु०२.१६) वृत्रं जिन्नवानपववार तद्वृत्रो वृणोतर्वा वर्ततेर्वा वधतेर्वा। यदवृणोत् तद्वृत्रस्य वृत्रत्विमिति विज्ञायते, यदवर्ज्ञत तद्वृत्रस्य वृत्रत्विमिति विज्ञायते, यदवर्ज्ञत तद्वृत्रस्य वृत्रत्विमिति विज्ञायते। (निरु०२.१७) वृत्रो ह वा इद्ध्यार्थं पूर्वे वृत्वा शिष्ये। यदिदमन्तरेण द्यावापृथिवी स यदिद्ध्यं सर्वं वृत्वा शिष्ये तस्माद् वृत्रो नृप्प॥४॥ तिमन्द्रो जघान सहतः पूतिः सर्वत एवापोऽभि सुस्राव सर्वत इव ह्ययथं समुद्रश्वरमाद्वहेका आपो बीभत्सां चिक्ररे ता उपय्युपर्य्यतिपुप्रुविरे॥ (श०ब्रा०१.१.३.४-५) प्रतिपृणीयुक्तत्वान् मेघस्य वृत्र इति संज्ञा। (वृत्रतरम्) अतिशयेनावरकम् (व्यंसम्) विगता अंसाः

सूर्यलोकाख्य सेनाधिपति: स्कन्धवदवयवा यस्य तम् (इन्द्र:) विद्युत् इव (वज्रेण) छेदकेनोष्मिकरणसमृहेन विस्तृतेन (वधेन) (महता) हन्यते येन तेन (स्क्र्यांसीव) शरीरावयवाबाहुमूलादीनीव। अत्र **स्कन्देश्च स्वाङ्गेः।** (उणा०४.२०७) अनेनासून् प्रत्ययो ध**र्श्वराद्धेशर**ेष् (कुलिशेन) अतिशितधारेण खड्गेन। अत्र अन्येषामिप दृश्यत इति दीर्घः। (विवृक्णी) विविध्नया छिन्नानि। अत्र **ओव्रश्चू छेदन** इत्यस्मात्कर्मणि निष्ठा। **ओदितश्च**। (अष्टा॰८.२) इत<u>ि</u> नत्वम्<mark>भे निष्ठादेश:</mark> षत्वस्वरप्रत्ययविधीइविधिषु सिद्धो वक्तव्य:। (अष्टा०वा०६.१.१६, ८.२.३) इति बार्तिकेन झित्त षत्वे कर्त्तव्ये झल्परत्वाभावात् षत्वं न भवति। चो कुरिति कुत्वं शेश्छन्दिस इति शिलीपे (अहि:) मेघः (शयते) शेते। अत्र बहुलं छन्दिस इति शपो लुङ् न। (उपपृक्) उपसाम्रीप्यं पृङ्कते स्पृशति यः सः (पृथिव्या:) भूमे:॥५॥

अन्वय:-हे सेनापतेऽतिरथस्त्वं यथेन्द्रो महता वज्रेण कुलिशेन विवृक्ष्ण विच्छिन्नानि स्कन्धांसीव व्यंसं यथा स्यात्तथा वृत्रतरं वृत्रमहन् वधेन हतोऽहिर्मेघः पृथिव्या उपपृक् सन् शयते शेत इव सर्वारीन् हन्याः॥५॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमोपमालङ्कारौ। यूथा कश्चिम्महता शितेन शस्त्रेण शत्रोः शरीरावयवान् छित्वा भूमौ निपातयित, स हतः पृथिव्यां शते तथैब्रीयं सूर्य्यो विद्युच्च मेघावयवान् छित्वा भूमौ निपातयित, स भूमौ निहतः शयान इव भासते।

पदार्थ:-हे महावीर सेनापते! आप जैसे (इन्द्र:) सूर्य वा बिजुली (महता) अति विस्तारयुक्त (कुलिशेन) अत्यन्त धारवाली तलवाररूप (वज्रेण) पदार्थों के छिन्न-भिन्न करने वाले अति तापयुक्त किरणसमूह से (विवृक्णा) कटे हुए (स्कृष्यांसीव) कधों के समान (व्यंसम्) छिन्न-भिन्न अङ्ग जैसे हों वैसे (वृत्रतरम्) अत्यन्त सघन (वृत्रम्) मेघ को (अहन्) मारता है अर्थात् छिन्न-भिन्न कर पृथिवी पर बरसाता है और वह (वधेन) सूर्य के गुणों से मृतकवत् होकर (अहि:) मेघ (पृथिव्या:) पृथिवी के (उपपृक्) ऊपर (शयते) सोता है, वैसे ही वैष्यों का हनन कीजिये॥५॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा और उपमालङ्कार हैं। जैसे कोई अतितीक्ष्ण तलवार आदि शस्त्रों से शत्रुओं के शरीर को छेदन कर भूमि में गिरा देता है और वह मरा हुआ शत्रु पृथिवी पर निरन्तर सो जाता है, वैसे ही सूर्य्य और बिजुली मेघ के अङ्गों को छेदन कर भूमि में गिरा देती और वह भूमि में गिरा हुआ होने के समान देखि पड़ता है॥५॥

पुनस्तौ कथं युध्येते इत्युपदिश्यते॥

फिर वे कैसे युद्ध करते हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अयोद्धेव दुर्मद आ हि जुह्वे महावीरं तुविबाधमृजीषम्।

नातौरीदस्य समृतिं वधानां सं रुजानाः पिपिषु इन्द्रेशत्रुः॥६॥

मण्डल-१। अनुवाक-७। सुक्त-३२

अयोद्धाऽईव। दुःऽमर्दः। आ। हि। जुह्वे। मृहाऽवीरम्। तुविऽबाधम्। ऋजीषम्। न। अतारीत्। अस्य। सम्ऽऋतिम्। वधानाम्। सम्। कृजानाः। पिपिषे। इन्द्रंऽशत्रुः॥६॥

पदार्थ:-(अयोद्धेव) न योद्धा अयोद्धा तद्वत् (दुर्मदः) दुष्टो मदो यस्य सः (आ) समन्तत् (हि) खलु (जुह्ने) आहूतवानस्मि। वा छन्दिस सर्वे विधयो भवन्ति इत्युवङादेशो न। (महावीस्म्) महांश्चासौ वीरश्च तिमव महाकर्षणप्रकाशादिगुणयुक्तं सूर्यलोकम् (तुविबाधम्) यो बहूम् शत्रून् बाधते तम् (ऋजीषम्) उपार्जकम्। अत्र अर्जेर्ऋज च। (उणा०४.२९) इत्यर्जधातोरीषन् प्रत्यय ऋजादेशस्च। (न) निषेधार्थे (अतारीत्) तरत्युल्लङ्घयित वा। अत्र वर्तमाने लुङ्। (अस्य) सूर्यलोकस्य (समृतिम्) सङ्गितम् (वधानाम्) हननानाम् (सम्) सम्यगर्थे (रुजानाः) नद्यः। रुजानाः इति नदीनामसु पठितम्। (निघं०१.१३) (पिपिषे) पिष्टः। अत्र व्यत्ययेनात्मनेपदं च। (इन्द्रशत्रुः) इन्दः शत्रुवस्य वृत्रस्य सः॥६॥

अन्वय:-यथा दुर्मदोऽयोद्धेवायं मेघ ऋजीषन्तु विबाधं महावीस्मिन्द्रं सूर्यलोकमाजुह्ने यदा सर्वतो रुतवानिव हतोऽयमिन्द्रशत्रुः संपिपिषे स मेघोऽस्य इन्द्रस्य वधाना समृति, मातारीत् समन्तान्नोल्लिङ्घतवान् हि खल्वस्य वृत्रस्य शरीरादुत्पन्ना रुजानाः नद्यः पर्वतपृथिव्यादिकुलाम् छिन्दन्त्यश्चलिन्त तथा सेनासु विराजमानोऽध्यक्षः शत्रुषु चेष्टेत॥६॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। यथा मेशी जम्मत्प्रकाशाय प्रवर्त्तमानस्य सूर्य्यस्य प्रकाशमकस्मादुत्थायावृत्य च तेन सह युद्धचत् हव प्रवर्त्तवे पितु सूर्य्यस्य सामर्थ्यं नालं भवति। यदायं सूर्येण हतो भूमौ निपतित तदा तच्छरीरावयवेन जलेन नद्यः पूर्णा भूत्वा समुद्रं गच्छन्ति तथा राजा शत्रून् हत्वाऽस्तं नयेत्॥६॥

पदार्थ:-(दुर्मदः) दुष्ट अभिमानी (अयोद्धेव) युद्ध की इच्छा न करने वाले पुरुष के समान मेघ (ऋजीषम्) पदार्थों के रस को इकट्ठे करने और (तुविबाधम्) बहुत शत्रुओं को मारनेहारे के तुल्य (महावीरम्) अत्यन्त बलयुक्त श्रूरवीर के समान सूर्य्यलोक को (आजुह्ने) ईर्ष्या से पुकारते हुए के सदृश वर्त्तता है, जब उसको रोते हुए के सदृश सूर्य ने मारा तब वह मारा हुआ (इन्द्रशत्रुः) सूर्य्य का शत्रु मेघ (पिपिषे) सूर्य से पिस जीता है और) वह (अस्य) इस सूर्य की (वधानाम्) ताड़नाओं के (समृतिम्) समूह को (नातारीत्) सह नहीं सकता और (हि) निश्चय है कि इस मेघ के शरीर से उत्पन्न हुई (रुजानाः) नदियाँ पर्वत और पृथिवी के बड़े-बड़े टीलों को छिन्न-भिन्न करती हुई बहती हैं, वैसे ही सेनाओं में प्रकाशमान सेवाध्यक्ष शत्रुओं में चेष्टा किया करे॥६॥

भावार्थ: इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे मेघ संसार के प्रकाश के लिये वर्त्तमान सूर्य के प्रकाश की अकस्मात् पृथिवी से उठा और रोककर उस के साथ युद्ध करते हुए के समान वर्त्तता है तो भी वह सूर्य के सामर्थ्य का पार नहीं पाता, जब यह सूर्य मेघ को मारकर भूमि में गिरा देता है, तब

उसके शरीर के अवयवों से निकले हुए जलों से नदी पूर्ण होकर समुद्र में जा मिलती है। वैसे राजा के उचित है कि शत्रुओं को मार के निर्मूल करता रहे॥६॥

पुनः स कीदृशो भूत्वा भूमौ पततीत्युपदिश्यते॥

फिर वह मेघ कैसा होकर पृथिवी पर गिरता है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।

अपार्दहस्तो अपृतन्यदिन्द्रमास्य वज्रमधि सानौ[।] जघान।

वृष्णो वध्निः प्रतिमानं बुभूषन् पुरुत्रा वृत्रो अशयुद् व्यस्तः॥७॥

अपात्। अहस्तः। अपृतन्यत्। इन्द्रम्। आ। अस्य। वर्त्रम्। अधि। सानी ज्याना वृष्णैः। वर्धिः। प्रतिऽमानम्। बुभूषन्। पुरुऽत्रा। वृत्रः। अश्युत्। विऽअस्तः॥७॥

पदार्थ:-(अपात्) अविद्यमानौ पादौ यस्य सः (अहस्तः) अविद्यमानौ हस्तौ यस्य सः (अपृतन्यत्) आत्मनः पृतनां युद्धमिच्छतीति। अत्र कव्यध्वरपृतनस्या (अष्ट्राष्ट्यम् (अधि) उपिर (सानौ) अवयवे (जधान) हतवान् (वृष्णः) वीर्यसेक्तुः पुरुषस्य (वृष्णः) विष्यते स विधः। निर्वीर्यो नपुंसकिमव। अत्र बन्धधातोर्बाहुलकादौणादिकः क्रिन् प्रत्ययः। (प्रतिगानम्) सादृश्यं परिमाणं वा (बुभूषन्) भवितुमिच्छन् (पुरुत्रा) बहुषु देशेषु पतितः सन्। अत्र देवमनुष्यपुरुष (अष्टा०५.४.५६) इति त्रा प्रत्ययः। (वृत्रः) मेघः (अश्यत्) शियतवान्। वृत्र्ययेन पर्म्भैपदम्। बहुलं छन्दिस इति शपो लुङ् न। (व्यस्तः) विविधतया प्रक्षिपः॥७॥

अन्वय:-हे सर्वसेनास्वामिँस्त्वं यथा तुर्जा वृष्णः प्रतिमानं बुभूषन् विधिरिवयमिन्द्रं प्रत्यपृतन्यदात्मनः पृतनामिच्छँस्तस्यास्य बृत्रस्य सानाविध शिखराकारघनानामुपरीन्द्रस्सूर्य्यलोको वज्रमाजघानेतेन हतः सन् वृत्रोऽपावहस्तो व्यस्तः पुरुत्राशयद् बहुषु भूमिदेशेषु शयान इव भवति तथैवैवं भूतान् शत्रून् भित्त्वा छित्त्वा सत्ति विजयस्व।।

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तेपमालङ्कार्रः। यथा कश्चित्रिर्बलो बलवता सह युद्धं कर्तुं प्रवर्तेत, तथैव वृत्रो मेघ: सूर्येण हियुद्धकारीव प्रवर्तते। यथान्ते सूर्येण छिन्नो भिन्न: सन् पराजित: पृथिव्यां पतित, तथैव यो धार्मिकेण राज्ञा सह योद्धुं प्रवर्तेत तस्यापीदृश्येव गित: स्यात्॥७॥

पदार्थ: हैं सब सेताओं के स्वामी! आप (वृत्र:) जैसे मेघ (वृष्ण:) वीर्य सींचने वाले पुरुष की (प्रतिमानम्) स्पानता को (बुभूषन्) चाहते हुए (विध्र:) निर्बल नपुंसक के समान जिस (इन्द्रम्) सूर्यलोक के प्रति अपृतन्यत्) युद्ध के लिये इच्छा करने वाले के समान (अस्य) इस मेघ के (सानौ) (अधि) पूर्वत के शिखरों के समान बादलों पर सूर्य्यलोक (वज्रम्) अपने किरण रूपी वज्र को (आ ज्यान) छोड़ता है, उससे मरा हुआ मेघ (अपादहस्तः) पैर-हाथ कटे हुए मनुष्य के तुल्य (व्यस्तः)

मण्डल-१। अनुवाक-७। सूक्त-३२

अनेक प्रकार फैला पड़ा हुआ (**पुरुत्रा)** अनेक स्थानों में (**अशयत्**) सोता सा मालूम देता है, वैसे इस प्रकार के शत्रुओं को छिन्न-भिन्न कर सदा जीता कीजिये॥७॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे कोई निर्बल पुरुष बड़े ब्रह्मवान् कि याथ युद्ध चाहे, वैसे ही वृत्र मेघ सूर्य के साथ प्रवृत्त होता है और जैसे अन्त में वह मेघ सूर्य से छिन्न-भिन्न होकर पराजित हुए के समान पृथिवी पर गिर पड़ता है, वैसे जो धर्मात्मा बलवान पुरुष क संग लड़ाई को प्रवृत्त होता है, उसकी भी ऐसी ही दशा होती है॥७॥

पुनस्तौ परस्परं किं कुरुत इत्युपदिश्यते॥

फिर वे दोनों परस्पर क्या करते हैं, इस विषय का उपदेश अगुले 🖳 मैं किया है।।

नदं न भिन्नमंपुया शयानं मनो रुहाणा अति यन्त्यापः।

याश्चिद्वृत्रो महिना पर्यतिष्ठत् तासामहिः पत्सुतः श्रीविभूचा। ८।।

नुदम्। न। भिन्नम्। अमुया। शर्यानम्। मर्नः। रुह्णणाः। अति। युन्ति। आर्षः। याः। चित्। वृत्रः। मृहिना। पुरिऽअतिष्ठत्। तास्रोम्। अहिः। पुत्सुतःऽशीः। बुभूवः॥८॥

पदार्थ:-(नदम्) महाप्रवाहयुक्तम् (न) इव (भिन्नम्) विदीर्णतटम् (अमुया) पृथिव्या सह (शयानम्) कृतशयनम् (मनः) अन्तःकरणित्व (कृहाणाः) प्रादुर्भवन्त्यश्चलन्त्यो नद्यः (अति) अतिशयार्थे (यन्ति) गच्छन्ति (आपः) जलाह्मि आप इत्युदकनामसु पठितम्। (निघं०१.१२) (याः) मेघमण्डलस्थाः (चित्) एव (वृत्रः) मेघः (मिह्नम्) महिम्ना। अत्र छान्दसो वर्णलोपो वा इति मकारलोपः। (पर्यतिष्ठत्) सर्वत आवृत्य स्थितः (मासाम्) अपां समूहः (अहिः) मेघः (पत्सुतःशीः) यः पादेष्वधः शेते सः। अत्र सप्तम्यन्तात् पदशब्दात् इतराभ्योऽपि दृश्यन्ते। (अष्टा०५.३.१४) इति तसिल्। वा छन्दिस सर्वे विधयो भवन्ति इति विभक्तयलुक् शीङ्धातोः क्विप् च। (बभूव) भवति। अत्र लडथें लिट्॥८॥

अन्वय:-भो महर्सन् ! त्वं भ्रथायं वृत्रो मेघो महिना स्वमहिम्ना पर्यतिष्ठन्निरोधको भूत्वा सर्वतः स्थितोऽहिर्हतः सन् तास्त्रीपा मध्ये स्थितः पत्सुतःशीर्बभूव भवति, तस्य शरीरं मनो रुहाणा याश्चिदेवान्तरिक्षस्था आपो भिन्नशयानं यन्ति गच्छन्ति नदं नेवामुया भूम्या सह वर्तन्ते, तथैव सर्वान् शत्रुन् बद्ध्वा क्शं नेस्॥८॥

भाषार्थः अत्रोपभावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। यावज्जलं सूर्येण छेदितं वायुना सह मेघमण्डलं गच्छिति तावत्सर्वं मेघ एव जायते, यदा जलाशयोऽतीव वर्द्धते तदा सघनपृतनः सन् स्वविस्तारेण सूर्यज्याविनिरुणिद्ध तं यदा सूर्यः स्विकरणैश्छिनित्त तदायिमतस्ततो जलानि महानदं तडागं समुद्रं वा

प्राप्य शेरते, सोऽपि पृथिव्यां यत्र तत्र शयानः सन् मनुष्यादीनां पादाध इव भवत्येवमधार्मिकोऽप्येधित्वो सद्यो नश्यति॥८॥

पदार्थ:-भो राजाधिराज! आप जैसे यह (वृत्रः) मेघ (मिहना) अपनी मिहमा से (प्रवितिष्ठत्र) सब ओर से एकता को प्राप्त और (अहिः) सूर्य के ताप से मारा हुआ (तासाम्) उन जलों के बीच में स्थित (पत्सुतःशीः) पादों के तले सोनेवाला सा (वभूव) होता है, उस मेघ का शरीर (मनः) सननशील अन्तःकरण के सदृश (फहाणाः) उत्पन्न होकर चलने वाली नदी जो अन्तरिक्ष में रहने वाले (चित्) ही (याः) जो अन्तरिक्ष में वा भूमि में रहने वाले (आपः) जल (भिन्नम्) विदीर्ण तट वाले (शयानम्) सोते हुए के (न) तुल्य (नदम्) महाप्रवाहयुक्त नद को (यिन्त) जाते और वे जला (अमुया) इस पृथिवी के साथ प्राप्त होते हैं, वैसे सब शतुओं को बाँध के वश में कीजिये॥८॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा और उपमालङ्कार हैं। जितना जल सूर्य से छिन्न-भिन्न होकर पवन के साथ मेघमण्डल को जाता है, वह सब जल मेचूल्प ही हो जाता है। जब मेघ के जल का समूह अत्यन्त बढ़ता है, तब मेघ घनी-घनी घटाओं से अमुङ् घुमुंहि के सूर्य के प्रकाश को ढांप लेता है, उसको सूर्य अपनी किरणों से जब छिन्न-भिन्न बरता है, तब इधर-उधर आए हुए जल बड़े-बड़े नद ताल और समुद्र आदि स्थानों को प्राप्त होकर सोते हैं, वह मेघ भी पृथिवी को प्राप्त होकर जहाँ तहां सोता है अर्थात् मनुष्य आदि प्राणियों के पैरों में सोता सा मालूम होता है, वैसे अधार्मिक मनुष्य भी प्रथम बढ़ के शीघ्र नष्ट हो जाता है॥८॥

पुनः स कींद्शो भवनीत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा होता है, इस विषय की उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

नीचार्वया अभवद् वृत्रपुत्रेन्द्रा अस्या अव वर्धर्जभार।

उत्तरा सूरधरः पुत्र अभाहित्तुः श्रेये सहवत्सा न धेनुः॥९॥

नीचाऽवयाः। अभवत् विष्ठपुत्रा। इन्हः) अस्याः। अवं। वर्धः। जुभार्। उत्ऽतंरा। सूः। अर्धरः। पुत्रः। आसीत्। दानुः। शुये। सहस्रतसा पा ध्रेष्ठः॥९॥

पदार्थ:-(नीचावया:) नीचानि वयांसि यस्य मेघस्य सः (अभवत्) भवति। अत्र वर्त्तमाने लङ्। (वृत्रपुत्रा) वृत्रः पुत्र इव यस्याः सा (इन्द्रः) सूर्य्यः (अस्याः) वृत्रमातुः (अव) क्रियायोगे (वधः) वधम्। अत्र हन्तेर्बाहुत्रकादौणदिकेऽसुनिवधादेशः। (जभार) हरति। अत्र वर्त्तमाने लिट्। ह्यहोर्हस्य भश्छन्दिस वक्तव्यम् इति भोदेशः। (उत्तरा) उपरिस्थाऽन्तरिक्षाख्या (सूः) सूयत उत्पादयित या सा माता। अत्र षूङ्धातोः विष्ण्। (अधरः) अधस्थः (पुत्रः) (आसीत्) अस्ति। अत्र वर्त्तमाने लङ्। (दानुः) ददाित या सा। अत्र दाभाक्यां नुः। (उणा०३.३१) इति नुः प्रत्ययः। (शये) शेते। अत्र लोपस्त आत्मनेपदेषु।

मण्डल-१। अनुवाक-७। सुक्त-३२

(अष्टा०७.१.४१) इति लोप:। **(सहवत्सा)** या वत्सेन सह वर्त्तमाना **(न)** इव **(धेनु:)** यथा दुग्धदात्री गौ:॥९॥

अन्वय:-हे सभाध्यक्ष! त्वं यथा वृत्रपुत्रा सूर्भूमिरुत्तरान्तिरक्षं वाऽभवदस्याः पुत्रस्य वर्धा वधिमन्द्रोऽवजभारानेनास्याः पुत्रो नीचावया अधर आसीत्। दानुः सहवत्सा धेनुः स्वपुत्रीण सह माता नेव च शये शेते तथा स्वशत्रून् पृथिव्या सह शयानान् कुरु॥९॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। वृत्रस्य द्वे मातरौ वर्तेते एका पृथिवी द्वितीयाऽ केरिक्षं चैक्योर्द्वयोः सकाशादेव वृत्रस्योत्पत्ते:। यथा काचिद्रौ: स्ववत्सेन सह वर्तते तथैव यदा जलसमूहो मेघ उपिर गच्छित तदाऽन्तिरक्षाख्या माता स्वपुत्रेण सह शयाना इव दृश्यते। यदा च स वृष्टिद्वाप भूमिमागच्छित तदा भूमिस्तेन स्वपुत्रेण सह शयानेव दृश्यते। अस्य मेघस्य पितृस्थानी सूर्ट्योऽस्ति वस्योत्पादकत्वात्। अस्य हि भूम्यन्तिरक्षे द्वे स्त्रियाविव वर्तेते, यदा स जलमाकृष्य वायुद्धारान्तिरक्षे स्रक्षपित, तदा स पुत्रो मेघो वृद्धिं प्राप्य प्रमत्त इवोन्नतो भवित, सूर्यस्तमाहत्य भूमौ निष्तित्यत्येत्रमयं वृत्रः कदाचिदुपिरस्थः कदाचिद्धःस्थो भवित, तथैव राज्यपुरुषै: प्रजाकण्टकान् भूत्रीतृतस्तिः प्रक्षिप्य प्रजाः पालनीयाः॥९॥

पदार्थ:-हे सभापते! (वृत्रपुत्रा) जिसका मेघ लड़िकों के समान है, वह मेघ की माता (नीचावया:) निकृष्ट उमर को प्राप्त हुई। (सू:) पृथिबों और (उत्तरा) ऊपरली अन्तरिक्ष नामवाली (अभवत्) है (अस्या:) इसके पुत्र मेघ के (वध्:) वध् अर्थात् ताड़न को (इन्द्र:) सूर्य (अव जभार) करता है, इससे इसका (नीचावया:) निकृष्ट उमर को प्राप्त हुआ (पुत्र:) पुत्र मेघ (अधर:) नीचे (आसीत्) गिर पड़ता है और जो (दानु:) सूर्य पदार्थी की देने वाली भूमि जैसे (सहवत्सा) बछड़े के साथ (धेनु:) गाय हो (न) वैसे अपने पूत्र के साथ (श्राये) सोती सी दीखती है, वैसे आप अपने शत्रुओं को भूमि के साथ सोते के सदृश किया करिजये॥९॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में स्प्रमालङ्कार है। मेघ की दो माता हैं- एक पृथिवी दूसरी अन्तरिक्ष अर्थात् इन्हीं दोनों से मेघ उत्पन्न होता है। जैसे कोई गाय अपने बछड़े के साथ रहती है, वैसे ही जब जल का समृह मेघ अन्तरिक्ष में शाका ठहाला है, तब उसकी माता अन्तरिक्ष अपने पुत्र मेघ के साथ और जब वह वर्षा से भूमि को आता है, तब भूमि उस अपने पुत्र मेघ के साथ सोती सी दीखती है। इस मेघ का उत्पन्न करने वाला सूर्य है, इसलिये वह पिता के स्थान में समझा जाता है। उस सूर्य की भूमि वा अन्तरिक्ष दो स्त्री के समान हैं, वह पदार्थों से जल को वायु के द्वारा खींचकर जब अन्तरिक्ष में चढ़ाता है, जब वह पुत्र मेघ प्रमत्त के सदृश बढ़कर उठता और सूर्य के प्रकाश को ढक लता है, तब सूर्य उसको मार कर भूमि में गिरा देता अर्थात् भूमि में वीर्य छोड़ने के समान जल पहुंचाता है। इसी प्रकार यह मेघ कभी जमर कभी नीचे होता है, वैसे ही राजपुरुषों को उचित है कि कण्टकरूप शत्रुओं को इधर-उधर विक्वी करके प्रजा का पालन करें॥९॥

पुनस्तस्य शरीरं कीदृशं क्व तिष्ठतीत्युपदिश्यते॥

फिर उस मेघ का शरीर कैसा और कहाँ स्थित होता है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में

किया है॥

अतिष्ठन्तीनामनिवेशनानां काष्ठानां मध्ये निहितं शरीरम्।

वृत्रस्य निण्यं वि चर्नन्यापी दीर्घं तम् आश्रयदिन्द्रशत्रुः॥ १०॥ ३७॥

अर्तिष्ठन्तीनाम्। अनिऽवेशनानाम्। काष्ठानाम्। मध्ये। निऽहितम्। शरीरम्। वृत्रस्यं। निण्यम्। वि। चुरन्ति। आर्पः। दीर्घम्। तमः। आ। अशयुत्। इन्द्रंऽशत्रुः॥ १०॥

पदार्थः-(अतिष्ठन्तीनाम्) चलन्तीनामपाम् (अनिवेशनानाम्) पविष्यानं निवेशनमेकत्रस्थानं यासां तासाम् (काष्ठानाम्) काश्यन्ते प्रकाश्यन्ते यासु ता दिशः काष्ठा इति दिङ्नामसु पठितम्। (निघं०१.६) अत्र हिनकुषिनी० (उणा०२.२) इति कथन् प्रत्ययः (मध्ये) अतः (निहतम्) स्थापितम् (शरीरम्) शीर्यते हिंस्यते यत्तत् (वृत्रस्य) मेघस्य (मिण्यम्) निश्चतान्तर्हितम्। निण्यमिति निणीतान्तर्हितनामसु पठितम्। (निघं०३.२५) (वि) (चरन्ति) किविश्रतया गच्छन्त्यागच्छन्ति (अपः) जलानि (दीर्घम्) महान्तम् (तमः) अन्धकारम् (आ) समन्तान् (अष्रायत्) शेते। बहुलं छन्दिस इति शपो लुङ् न। (इन्द्रशत्रुः) इन्द्रः शत्रुर्यस्य स्प्रोधः। यास्कमुनिरेविममं मन्त्रं व्याचष्टे। अतिष्ठन्तीनामनिविशमानानामित्य-स्थावरणां काष्ट्रान् विज्ञानन्त्याप इति। दीर्घं द्राघतेः। तमस्तनोतेः। आशयदाशेतेः। इन्द्रशत्रुरिन्द्रोऽस्य शमयित्व वा शातिर्वता वा। तस्मादिन्द्रशत्रुः। तत्को वृत्रः? मेघ इति नैरुक्ताः। (निरु०२.१६)॥१०॥

अन्वय:-भोः सभेश! त्वया यथा यस्य मेघस्य निवेशनानामितष्ठन्तीनामपां निण्यं शरीरं काष्ठानां दिशां मध्ये निहितमस्ति, यस्य व शरीसख्या आपो दीर्घं तमो विचरन्ति, स इन्द्रशत्रुर्मेघस्तासामपां मध्ये समुदायावयिवरूपेणाशयत् समन्ताच्छेते तथा प्रजायाः द्रोग्धारः ससहायाश्शत्रवो बद्ध्वा काष्ठानां मध्ये शाययितव्याः॥१०॥

भावार्थ:-अत्र विकल्लुप्तींपमालङ्कारः। सभापतेर्योग्यमस्ति यथाऽयं मेघोऽन्तरिक्षस्थास्वप्सु सूक्ष्मत्वात्र दृश्यते सूर्नर्यदा घनाकारो वृष्टिद्वारा जलसमुदायरूपो भवति, तदा दृष्टिपथमागच्छति। परन्तु या इमा आप एकं क्षणेषपि स्थितिं न लभन्ते, किन्तु सर्वदैवोपर्यधो गच्छन्त्यागच्छन्ति च, याश्च वृत्रस्य शरीरं वर्त्तन्ते ता अन्तिस्थि स्थिता अतिसूक्ष्मा नैव दृश्यन्ते। तथा महाबलान् शत्रून् सूक्ष्मबलान् कृत्वा वशं नयेत्॥ १६॥

पदार्थ:-हे सभा स्वामिन्! तुम को चाहिये कि जिस (वृत्रस्य) मेघ के (अनिवेशनानाम्) जिनको स्थिस्ता पहीं होती (अतिष्ठन्तीनाम्) जो सदा बहने वाले हैं, उन जलों के बीच (निण्यम्) निश्चय करके

मण्डल-१। अनुवाक-७। सूक्त-३२

स्थिर (शरीरम्) जिसका छेदन होता है, ऐसा शरीर है वह (काष्ठानाम्) सब दिशाओं के बीच (निहितम्) स्थित होता है। तथा जिसके शरीररूप (अपः) जल (दीर्घम्) बड़े (तमः) अन्धकार रूप घराओं में (विचरन्ति) इधर-उधर जाते आते हैं, वह (इन्द्रशत्रुः) मेघ उन जलों में इक्ट्ठा वा अलग् अलग् छोटा-छोटा बद्दल रूप होके (अशयत्) सोता है, वैसे ही प्रजा के द्रोही शत्रुओं को उनके सहायियों के सहित बाँध के सब दिशाओं में सुलाना चाहिये॥१०॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। सभापित को योग्य है कि जैसे यह मेघ अन्तरिक्ष में ठहराने वाले जलों में सूक्ष्मपन से नहीं दीखता, फिर जब घन के आकार वर्षा के द्वारा जल का समुदाय रूप होता है, तब वह देखने में आता है और जैसे ये जल एक सिणभूर भी स्थिति को नहीं पाते हैं, किन्तु सब काल में ऊपर जाना वा नीचे आना इस प्रकार धूमते ही रहते हैं और जो मेघ के शरीर रूप हैं वे अन्तरिक्ष में रहते हुए अति सूक्ष्म होने से नहीं दीख पड़ते, वैसे बड़े-बड़े बल वाले शत्रुओं को भी अल्प बल वाले करके वशीभूत किया करे॥१०

पुन: सूर्यस्तं प्रति किं करोतित्युपेदिश्यते।

फिर सूर्य उस मेघ के प्रति क्या करता है, इस विषय की उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

दासपत्नीरहिंगोपा अतिष्ठन्निर्मद्धा आपः पणिनेव पावः।

अ्पां बिल्मपिहितं यदासीद् वृत्रं जुर्घुन्वा अपू तद्ववार॥११॥

दासपंऽत्नीः। अहिंऽगोपाः। अतिष्ठना निऽकेद्धार्गं आपंः। पुणिनांऽइव। गार्वः। अपाम्। बिलंम्। अपिंऽहितम्। यत्। आसीत्। वृत्रम्। जुघुन्वान्। अपि। तृत्। वृवार्॥ ११॥

पदार्थ:-(दासपत्नी:) दास् अश्रेयदाता पतिर्यासां ता:। अत्र सुपां सुलुग्० इति पूर्वसवर्णादेश:। (अहिगोपा:) अहिना मेघेन गोप्परगुप्ता आंक्श्रादिताः (अतिष्ठन्) तिष्ठन्ति। अत्र वर्तमाने लङ्। (निरुद्धाः) संरोधं प्रापिताः (आपः) जल्मि (पणिनेव) गोपालेन विणग्जनेनेव (गावः) पशवः (अपाम्) जलानाम् (बिलम्) गर्तम् (अपिहृतम्) आंक्श्रादितम् (यत्) पूर्वोक्तम् (आसीत्) अस्ति। अत्र वर्तमाने लङ्। (वृत्रम्) सूर्यप्रकाशावरके मेथम् (जघन्वान्) हन्ति। अत्र वर्तमाने लिट्। (अप) दूरीकरणे (तत्) द्वारम् (ववार) वृणोत्युद्धाटयित। अत्र वर्तमाने लिट्। यास्कमुनिरिमं मन्त्रमेवं व्याचष्टे-दासपत्नीर्दासाधिपत्यः। दासो दस्यतेः उपदासयित कर्माणि। अहिगोपा अतिष्ठन्। अहिना गुप्ताः। अहिरयनात्। एत्यन्तरिक्षे। अयमपीतरोऽहिरेतसमदेव। निर्हिसतोपसर्गः। आहन्तीति। निरुद्धा आपः पणिनेव गावः। पणिर्वण्णिभवित। पणः पणनात्। विणक् पण्यं नेनिक्त। अपां बिलमपिहितं यदासीत्। बिलं भरं भवित बिभर्तेः। वृद्धं जिन्वान्। अपववार। (निरु०२.१७)।।११॥

अन्वय:-हे सभापते! यथा पणिनेव गावो दासपत्न्योऽहिगोपा येन वृत्रेण निरुद्धा आपोऽतिष्ठन् तिष्ठन्ति तासामपां यद्बिलमपिहितमासीदस्ति तं सविता जघन्वान् हन्ति हत्वा तज्जलगमनद्वारमपववारापवृणोत्युद्धाटयति तथैव दुष्टाचाराञ्छत्रृन्निरुध्य न्यायद्वारं प्रकाशितं रक्षा

भावार्थ:-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। यथा गोपाल: स्वकीया गा: स्वाभीष्टे स्थाने मिरुणुद्धि पुनर्द्वारं चोद्घाट्य मोचयित, यथा वृत्रेण मेघेन स्वकीयमण्डलेऽपां द्वारमावृत्य ता वशं नीयन्ते, यथा सूर्यस्तं मेघं ताडयित तज्जलद्वारमपावृत्यापो विमोचयित तथैव राजपुरुषे शत्रूचिरुध्य सतते प्रजा: पालनीया:॥२१॥

पदार्थ:-हे सभापते! (पाणिनेव) गाय आदि पशुओं के पालने और (गाव:) गौऔं को यथायोग्य स्थानों में रोकने वाले के समान (दासपत्नी:) अति बल देने वाला मेघ जिनका पति के समान और (अहिगोपा:) रक्षा करने वाले हैं वे (निरुद्धा:) रोके हुए (आप:) जल (अतिष्ठन्) स्थित होते हैं, उन (अपाम्) जलों का (यत्) जो (बिलम्) गर्त अर्थात् एक गाढ़े के समान स्थान (अपिहितम्) ढांप सा रक्खा (आसीत्) है, उस (वृत्रम्) मेघ को सूर्य (जघन्वान्) मारता है। मारकर (तत्) उस जल की (अपववार) रुकावट तोड़ देता है, वैसे आप शत्रुओं को दृष्टाचार से शिक के न्याय अर्थात् धर्ममार्ग को प्रकाशित रिखये॥११॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु भीपमाल क्रुपर हैं। जैसे गोपाल अपनी गौओं को अपने अनुकूल स्थान में रोक रखता और फिर उस स्थान का दस्त्राजा खोल के निकाल देता है और जैसे मेघ अपने मण्डल में जलों का द्वार रोक के उन जलों को ज्ञार में रखता है, वैसे सूर्य उस मेघ को ताड़ना देता और उस जल की रुकावट को तोड़ कि भाके भुकार उसे बरसाता है, वैसे ही राजपुरुषों को चाहिये कि शत्रुओं को रोककर प्रजा का यथा सिर्य पालन किया करें॥११॥

युनस्तो परस्परं किं कुरुत इत्युपदिश्यते॥

फिर वे दोनों परस्कर क्या करते हैं) इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अश्व्यो वारो अभवस्तिहरू सके यत्त्वा प्रत्यहन्देव एकः।

अर्जयो गा अर्जय श्रा सोमुमवासूजः सर्तवे सुप्त सिन्धून्॥१२॥

अश्रव्यः। वारः। अभ्यवः। तत्। इन्द्रः। सृके। यत्। त्वाः। प्रतिऽअहेन्। देवः। एकेः। अर्जयः। गाः। अर्जयः। शूरः। सौर्ममा अर्व। असृजः। सर्तवे। सुप्ता सिर्स्यून्॥१२॥

प्रदर्शः (अभवः) योऽश्वेषु वेगादिगुणेषु साधुः (वारः) वरीतुमर्हः (अभवः) भवति। अत्र सर्वत्र वर्त्तमाने सङ् व्यत्ययश्च। (तत्) तस्मात् (इन्द्र) शत्रुविदारक (सृके) वज्र इव किरणसमूहे। सृक इति वज्रुवाम्सु पठितम्। (निघं०२.२०) (यत्) यः। अत्र सुपाम् इति सोर्लुक्। (त्वा) त्वां सभेशं राजानम् प्रितहन्। प्रति हन्ति (देवः) दानादिगुणयुक्तः (एकः) असहायः (अजयः) जयति (गाः) पृथिवीः

मण्डल-१। अनुवाक-७। सूक्त-३२

(अजयः) जयित (शूर) वीरवित्रभीय (सोमम्) पदार्थरससमूहम् (अव) अधोऽर्थे (असृजः) सृजिति (सर्त्तवे) सर्त्तुं गन्तुम्। अत्र तुमऽर्थे से॰ इति तुमर्थे तवेन् प्रत्ययः। (सप्त) (सिर्ध्न्न) भूमौ महाजलाशयसमुद्रनदीकूपतडागस्थांश्चतुरोऽन्तिरक्षे निकटमध्यदूरदेशस्थाँ स्त्रींश्चेति पप्त जलाशयान्॥१२॥

अन्वय:-हे शूरसेनेशन्द्र! त्वं यथा यद् योऽश्व्यो वार एको देवो मेघः सूर्श्रण सह योद्धाऽभवो भवित सृके स्वधनदलं प्रत्यहन् किरणान् प्रति हन्ति सूर्यस्तं मेघं जित्वा गा अन्यो जयित सीममजयो जयित एवं कुर्वन् सूर्यो जलानि सर्त्तवे सर्त्तुमुपर्यधो गन्तुं सप्त सिन्धूनवासृजः सूर्जित, तथैव शत्रुषु चेष्टसे तत्तस्मात्त्वा त्वां युद्धेषु वयमधिकुर्मः॥१२॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। यथायं मेघ: सूर्यस्य प्रकाशं निकारयित तदा सूर्यः स्विकरणैस्तं छित्त्वा भूमौ जलं निपातयत्यत एवायमस्य जलसमूहस्य गमनागम्बाक समुद्भाणां निष्पादनहेतुर्भवित तथा प्रजापालको राजाऽरीन्निरुध्य शस्त्रैश्छित्त्वाऽधो नीत्वा प्रजाया ध्रत्ये मार्गे गम्महेतुः स्यात्॥१२॥

पदार्थ:-हे (शूर) वीर के तुल्य भयरहित (इन्द्र) सन्नुओं का विदीर्ण करनेहारे सेना के स्वामी! आप जैसे (यत्) जो (अश्व्यः) वेग और तड़फ आदि गुणीं में निपुण (वारः) स्वीकार करने योग्य (एकः) असहाय और (देवः) उत्तम-उत्तम गुण देने वालों मेंघ सूर्य के साथ युद्ध करनेहारा (अभवः) होता है (मृके) किरणरूपी वज्र में अपने बहलों के जाल की (प्रत्यहन्) छोड़ता है अर्थात् किरणों को उस घन जाल से रोकता है, सूर्य उस मेघ की जीत कर (गाः) उससे अपनी किरणों को (अजयः) अलग करता अर्थात् एक देश से दूसरे हिंश में पहुंचाता और (सोमम्) पदार्थों के रस को (अजयः) जीतता है। इस प्रकार करता हुआ वह सूर्यलोक मलों को (सर्त्व) ऊपर नीचे जाने आने के लिये सब लोकों में स्थिर होने वाले (सप्त) (सिच्चूप) बड़े-बड़े जलाशय, नदी, कुंआ और साधारण तालाब ये चार जल के स्थान पृथिवी पर और समीप बीच और दूरदेश में रहने वाले तीन जलाशय इन सात जलाशयों को (अवास्जः) उत्पन्न करता है, वैसे शत्रुओं में चेष्टा करते हो (तत्) इसी कारण (त्वा) आपको युद्धों में हम लोग अधिष्ठाता करते हैं॥१२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे यह मेघ सूर्य के प्रकाश को ढांप देता, तब वह सूर्य अपनी किरणों से उसको छिन्न-भिन्न कर भूमि में जल को वर्षाता है। इसी से यह सूर्य उस जल समुदाय को पहुंचाने ने पहुंचाने के लिये समुद्रों को रचने का हेतु होता है, वैसे प्रजा का रक्षक राजा शत्रुओं को बाँध शस्त्रों से कीर और नीच गित को प्राप्त करके प्रजा को धर्मयुक्त मार्ग में चलाने का निमित्त होवे॥ १२०।

एतयोरस्मिन् युद्धे कस्य विजयो भवतीत्युपदिश्यते॥

इन दोनों के इस युद्ध में किस का विजय होता है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया

है।

नास्मै विद्युन्न तन्यतुः सिषेध् न यां मिह्नमिक्तरद् ध्रादुनि च। इन्द्रेश्च यद्युयुधाते अहिश्चोतापुरीभ्यो मुघवा वि जिंग्ये॥ १३॥

ना अस्मै। विऽद्युत्। ना तुन्यतुः। सिषेष्या ना याम्। मिह्नम्। अर्किरत्। ह्यादुर्निम्। चू। इन्द्रेः। चु। यत्। युगुधाते इति। अहिः। चु। उत। अपुरीभ्येः। मुघऽवा। वि। जिग्ये॥ १३॥

पदार्थ:-(न) निषेधार्थे (अस्मै) इन्द्राय सूर्यलोकाय (विद्युत्) प्रयुक्तार स्तनिष्ठातः (न) निषेधे (तन्यतः) गर्जनसहिता (सिषेध) निवारयित। अत्र सर्वत्र लड्थें लङ्लिटो। (न) निवारणे (द्याम्) वक्ष्यमाणम् (मिहम्) मेहित सिंचित यया वृष्ट्या ताम् (अकिरत्) किर्यतः विक्षिपित (हादुनिम्) हादतेऽव्यक्ताञ्शब्दान् करोति यया वृष्ट्याताम्। अत्र हादधातोर्बाहुलकादौणादिक उनिः प्रत्ययः। (च) समुच्चये (इन्द्रः) सूर्यः (च) पुनर्थे (यत्) यः। अत्रापि सुणं सु० इति स्रीर्लुक्। (युयुधाते) युध्येते (अहिः) मेघः (च) अन्योन्यार्थे (उत्) अपि (अपरीभ्यः) अपूर्णास्यः सेनोक्रियाभ्यः। अत्र पृधातोः। अच इः। (उणा०४.१४४) अनेन इः प्रत्ययः। कृदिकारदिकतः (अष्टा०वा०४.१४५) अनेन ङीष् प्रत्ययः। इदं पदं सायणाचार्येणाप्रमाणादपराभ्य इत्यशुद्धं व्याख्यातम्। (मध्या) मघं पूज्यं बहुविधं प्रकाशो धनं विद्यते यस्मिन् सः। अत्र भूम्न्यर्थे मतुप्। (वि) विशेष्ण्ये (जिग्ये) अयित॥१३॥

अन्वय:-हे सेनापते! त्वं यथा येनाहिनास्मा इन्द्रायो प्रत्युक्ता विद्युदेनं न सिषेध निवारियतुं न शक्नोति। तन्यतुर्गर्जनाप्यस्मै प्रयुक्ता न सिषेध निषेद्धं प्रमर्था न भवति, योऽहिर्या ह्यादुनिं मिहं वृष्टिं चािकरत् प्रक्षिपति साऽप्यस्मै न सिषेध अयिमिन्द्रः परीभ्यः पूर्णाभ्यः सेनाभ्यो युक्त उताप्यपरीभ्यः सेनाभ्यो युक्तोऽहिर्मेघश्च परस्परं युयुधाले। सद्यामादिधिकबलयुक्तत्वान्मघवा तं मेघं विजिग्ये विजयते तथैव पूर्णं बलं सम्पाद्य शत्रुन् विजयस्वते १३॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुजीपमालङ्क्तरः। राजपुरुषैर्यथा वृत्रस्य यावन्ति विद्युदादीनि युद्धसाधनानि सन्ति, तावन्ति सूर्योपेक्षया क्षुद्धाण वर्तन्ते, सूर्यीस्य खलु युद्धसाधनानि तदपेक्षया महान्ति सन्ति। अत एव सर्वदा सूर्यस्य विजयो वृत्रस्य पराज्यस्य भवति, तथैव धर्म्मेण शत्रुविजयः कार्यः॥१३॥

पदार्थ:-हे सेनापते औप जैसे मेघ ने (अस्मै) इस सूर्यलोक के लिये छोड़ी हुई (विद्युत्) बिजुली (न) (सिष्ट्रेश) इसकी कुछ रुकावट नहीं कर सकती (तन्यतुः) उस मेघ की गर्जना भी उस सूर्य को (न) (सिष्ट्रेश) नहीं रोक सकता और वह (अहिः) मेघ (याम्) जिस (हादुनिम्) गर्जना आदि गुणवाली (पिहम्) बरसा को (च) भी (अकिरत्) छोड़ता है, वह भी सूर्य की (न) (सिष्ट्रेश) हानि नहीं कर सकती है, यह (इन्द्रः) सूर्यलोक अपनी किरणरूपी पूर्णसेना से युक्त (उत) और अपनी (अपरीभ्यः) अधूरी सेना से युक्त (अहिः) मेघ (च) भी ये दोनों (युयुधाते) परस्पर युद्ध किया करते हैं (यत्) अधिक

मण्डल-१। अनुवाक-७। सुक्त-३२

बलयुक्त होने के कारण (मघवा) अत्यन्त प्रकाशवान् सूर्यलोक उस मेघ को (च) भी (विजिग्ये) अच्छे प्रकार जीत लेता है, वैसे ही धर्मयुक्त पूर्णबल करके शत्रुओं का विजय कीजिये॥१३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। राजपुरुषों को योग्य है कि जैसे वृत्र अर्थीत् मेघ के जितने बिजली आदि युद्ध के साधन हैं, वे सब सूर्य्य के आगे क्षुद्र अर्थात सब प्रकार निर्वल और थोड़े हैं और सूर्य के युद्धसाधन उसकी अपेक्षा से बड़े-बड़े हैं। इसी से सब समय में सूर्य ही का विजय और मेघ का पराजय होता रहता है, वैसे ही धर्म से शत्रुओं को जीतें॥१३॥

पुनस्तयोः परस्परं किं भवतीत्युपदिश्यते॥

फिर उन दोनों में परस्पर क्या होता है, इस विषय का उपदेश अगुरि मिन्न में किया है।।

अहेर्यातारं कर्मपश्य इन्द्र हृदि यत्ते जुध्नुषो भीरगच्छत्।

नवं च यन्नवृतिं च स्रवन्तीः श्येनो न भीतो अत्रो जिस्मि। १४॥

अहै:। यातार्रम्। कम्। अपुश्यः। इन्द्रः। हृदि। यत्। ते। जिम्मुषेः। भीः। अर्गच्छत्। नर्व। च। यत्। नुवृतिम्। च स्रवन्तीः। श्येनः। न। भीतः। अर्तरः। रजांसि॥ १४॥

पदार्थ:-(अहे:) मेघस्य (यातारम्) देशान्तर प्रापियतारम् (कम्) सूर्यादन्यम् (अपश्यः) पश्येत्। अत्र लिङ्थें लङ्। (इन्द्र) शत्रुदलिवदारकः योद्धः (हृद्धि) हृदूर्थं (यत्) धनम् (ते) तव (जघ्नुषः) हन्तुः सकाशात् (भीः) भयम् (अगच्छत्) गच्छति प्राप्नोति। अत्र सर्वत्र वर्त्तमाने लङ्। (नव) संख्यार्थे (च) पुनर्रथें (स्रवन्तीः) गमनं कुर्वन्तीर्नदीर्नाङ्कीर्वाः स्रवन्त्र्य इति नदीनामसु पठितम्। (निघं०१.१३) सु धातोर्गत्यर्थत्वाद् रुधिरप्राणगमनमार्गा नोष्नेहत्वो नाड्योऽपि गृह्यन्ते। (श्येनः) पक्षी (न) इव (भीतः) भयं प्राप्तः (अतरः) तरित (रजांसि) सर्वोत्लोकान्। लोका रजांस्युच्यन्ते। (निरु०४.१९)॥१४॥

अन्वय:-हे इन्द्र योद्धार्णस्य सन्नून जघ्नुषस्ते तव प्रभावोऽहेर्मेघस्य विद्युद्गर्जनादिविशेषात् प्राणिनो यद्याभीरगच्छत् प्राप्नीति विद्वान् मृनुष्यस्तस्य मेघस्य यातारं देशान्तरे प्रापियतारं सूर्य्यादन्यं कमप्यर्थं न पश्येयु:। स सूर्येण हतो प्रेघी भीतो नेव श्येनादिव कपोतः भूमौ पितत्वा नवनवितर्नदीर्नाडीर्वा स्रवन्तीः पूर्णाः करोति यद्यस्मात्मूर्यः स्वकीयैः प्रकाशाकर्षणछेदनादिगुणैर्महान् वर्तते तत्तस्माद्रजांस्यतरः सर्वांल्लोकान् सन्त्रतीवास्ति स त्वं हदि यं शत्रुमपश्यः पश्येस्तं हन्याः॥१४॥

भावार्थ:-अन्नोपमालङ्कार:। राजभृत्या वीरा यथा केनचित् प्रहृतो भययुक्तः श्येनः पक्षी इतस्ततो गच्छिति तथ्रैव सूर्रीण हत आकर्षितश्च यो मेघ इतस्ततः पतन् गच्छिति, स स्वशरीराख्येन जलेन लोकलोक्शन्तरस्य मध्येऽनेका नद्यो नाड्यश्च पिपर्ति। अत्र नवनवितिमिति पदम्र्यस्थ्यास्यर्थेऽस्त्युपलक्षणत्वान्नह्येतस्य मेघस्य सूर्योद्धिन्नं किमपि निमित्तमस्ति। यथाऽन्धकारे प्राणिनां

भयं जायते, तथा मेघस्य सकाशाद् विद्युद्गर्जनादिभिश्च भयं जायते तन्निवारकोऽपि सूर्य एव तथा सर्वलोकानां प्रकाशाकर्षणादिभिर्व्यवहारहेतुरस्ति तथैव शत्रून् विजयेरन्॥१४॥

पदार्थ: -हे (इन्द्र) इन्द्र योद्धा जिस युद्ध व्यवहार में शत्रुओं का (जानुष:) हनने वाले तें) आपका प्रभाव (अहे:) मेघ के गर्जन आदि शब्दो से प्राणियों को (यत्) जो (भी:) भय (अपच्छत्) प्रप्त होता है, विद्वान् लोग उस मेघ के (यातारम्) देश-देशान्तर में पहुंचाने वाले सूर्य को छोड़ और (कम्) किसको देखें। सूर्य से ताड़ना को प्राप्त हुआ मेघ (भीतः) डरे हुए (श्येनः) (न) याज के समाप (च) भूमि में गिर के (नवनवितम्) अनेक (स्रवन्तीः) जल बहाने वाली नदी वा चिड़ियों को पूरित करता है (यत्) जिस कारण सूर्य अपने प्रकाश, आकर्षण और छेदन आदि गुणों से बद्धा है, इसी से (रजांसि) सब लोकों को (अतरः) तरता अर्थात् प्रकाशित करता है। इसके समान आप हैं) व आप (हिंदि) अपने मन में जिसको शत्रु (अपश्यः) देखो उसी को मारा करो॥१४॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। राजसेना के वीर पुरुषों को योग्य है कि जैसे किसी से पीड़ा को पाकर डरा हुआ श्येन पक्षी इधर-उधर गिरता-पड़ता उड़ता है वा सूर्य से अनेक प्रकार की ताड़ना और खैंच कढ़ेर को प्राप्त होकर मेघ इधर-उधर हिश्चेशान्तर में अनेक नदी वा नाड़ियों को पूर्ण करता है। इस मेघ की उत्पत्ति का सूर्य से भिन्न कोई निमित्त पहीं है और जैसे अन्धकार में प्राणियों को भय होता है, वैसे ही मेघ के बिजली और गर्जना आदि गुणों से भय होता है, उस भय का दूर करने वाला भी सूर्य ही है तथा सब लोकों के व्यवहारों को अपने प्रकाश और आकर्षण आदि गुणों में चलाने वाला है, वैसे ही दुष्ट शत्रुओं को जीता करें। इस मन्त्र में, (नवनवितम्) यह संख्या का उपलक्षण होने से पद असंख्यात अर्थ में है॥१४॥

पुनः सूर्यः कादृश इत्युपदिश्यते॥

फिर उक्त सूर्य केंसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

इन्द्री यातोऽवसितस्य राजा शर्मस्य च शृङ्गिणो वर्ज्रबाहुः।

सेदु राजा क्षयति चर्षणी माम्राम् रान्न नेमिः परि ता बंभूव॥१५॥३८॥२॥

इन्ह्रं:। यातः। अवेऽिमतस्या राजां। शर्मस्य। चा शृङ्गिणः। वर्ज्रऽबाहुः। सः। इत्। ऊम् इति। राजां। श्रुयति। चर्षणीनाम्/अरान्। ना नेमिः। परिं। ता। बुभूवा। १५॥

पदार्थः (इन्हः) सूर्यलोक इव सभासेनापती राज्यं प्राप्तः (यातः) गमनादिव्यवहारप्रापकः (अवसितम्य) निष्वितस्य चराचरस्य जगतः (राजा) यो राजते दीप्यते प्रकाशते सः (शमस्य) शाम्यन्ति येन तस्य शान्तियुक्तस्य मनुष्यस्य (च) समुच्चये (शृङ्गिणः) शृङ्गयुक्तस्य गवादेः पशुसमूहस्य (वज्रवाहः) चज्रः शस्त्रसमूहो बाहौ यस्य सः (सः) (इत्) एव (उ) अप्यर्थे (राजा) न्यायप्रकाशकः स्रभाध्यक्ष (क्षयति) निवासयित गमयित वा (चर्षणीनाम्) मनुष्याणाम् (अरान्) चक्रावयवान् (इव)

मण्डल-१। अनुवाक-७। सूक्त-३२

(नेमि:) रथाङ्गम् (परि) सर्वतोऽर्थे (ता) तानि यानि जगतो दुष्टानि कर्माणि पूर्वोक्ताँल्लोकान् वा। अत्र शेश्छन्दिस बहुलम् इति शेर्लोपः। (बभूव) भवेः। अत्र लिङ्थें लिट्॥१५॥

अन्वय:-सूर्य्य इव वज्रबाहुरिन्द्रो यात: सभापितरविसतस्य शमस्य शृङ्गिप्रश्चर्षणीचां च मध्येऽरान्नेमिर्नेव ता तानि रजांसि परिक्षयित स चेदु उतापि सर्वेषां राजा बभूव भवतु॥ १९॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। अत्र पूर्वमन्त्रात् रजांसीति पदमनुवर्त्तते। राज्या यथा रथनकमरान् धृत्वा चालयित यथायं सूर्य्यश्चराचरस्य शान्ताशान्तस्य जगतो मध्ये प्रकाशमान: सन् सूर्वील्लोकान् धरन् स्वस्वकक्षासु चालयित न चैतस्माद्विना कस्यचित्संनिहितस्य मूर्निमेजो लोकस्य धारणकर्षणप्रकाशमेघवर्षणादीनि कर्माणि सम्भवितुमर्हन्ति तथा धर्मेण राज्यं पात्र्वेत्॥१५॥

अत्रेन्द्रवृत्रयुद्धालङ्कारवर्णनेनास्य पूर्वसूक्तोक्ताग्निशब्दार्थेन सह्र सङ्गितिएस्त्रीति वेदितव्यम्॥

इति प्रथमस्य द्वितीयेऽष्टात्रिंशो वर्गः ३८॥

प्रथममण्डले सप्तमेऽनुवाके द्वात्रिशं च सूक्तमध्यायभून द्वितीयः समाप्तः॥२॥ श्रीमत्परिव्राजकाचार्यश्रीविरजानन्दसरस्वतीस्वामिना शिष्येण द्यानन्दसरस्वतीस्वामिना विरचिते संस्कृतभाषार्यभाषाभ्यां विभूषिते सुप्रमाणयुक्त ऋग्वेद्धभाष्ट्रो द्वितीश्रोऽध्यायः पूर्तिमगमत्॥२॥

पदार्थ:-सूर्य्य के समान (वज्रवाहु:) शस्त्रास्त्रयुक्तवाहु (इन्द्र:) दुष्टों का निवारणकर्ता (यात:) गमन आदि व्यवहार को वर्ताने वाला सभापित (अवस्तिस्य) निश्चित चराचर जगत् (शमस्य) शान्ति करने वाले मनुष्य आदि प्राणियों (शृङ्गिण:) सींगों वाले गाये आदि पशुओं और (चर्षणीनाम्) मनुष्यों के बीच पहियों को धारने वाले (नेमि:) धुरी के (म) समान (राजा) प्रकाशमान होकर (ता) उत्तम तथा नीच कर्मों के कर्ताओं को सुख-दु:खों को तथा (रज़िंगि) उक्त लोकों को (परिक्षयित) पहुंचाता और निवास करता है (उ) (इत्) वैसे ही (स्) वह सभी के (राजा) न्याय का प्रकाश करने वाला (वभूव) होवे॥१५॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उप्रमालङ्कार और पूर्व मन्त्र से (रजांसि) इस पद की अनुवृत्ति आती है। राजा को चाहिये कि जैसे रथ का पहिया धुरियों को चलाता और जैसे यह सूर्य चराचर शान्त और अशान्त संसार में प्रकाशमान होकर सब लोकों को धारण किये हुए उन सभों को अपनी-अपनी कक्षा में चलाता है, जैसे सूर्य के विभा अब्रिंगनेकट मूर्तिमान लोक की धारणा, आकर्षण, प्रकाश और मेघ की वर्षा आदि काम किसी से नहीं हो सकते हैं, वैसे धर्म से प्रजा का पालन किया करें॥१५॥

इस सूक्त्र में सूर्य और मेघ के युद्ध वर्णन करने से इस सूक्त की पिछले सूक्त में प्रकाशित किये अग्नि शब्द के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये।

यह पहिले अष्टेक के दूसरे अध्याय में अड़तीसवां वर्ग, पहिले मण्डल के सातवें अनुवाक में बत्तीसवां सुक्त और दूसरा अध्याय भी समाप्त हुआ॥३२॥

इति श्रीमत्परिव्राजकाचार्यश्रीविरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां शिष्येण दयानन्दसरस्वतीस्वामिना विरचिते रसंस्कृतभाषार्य्यभाषाभ्यां विभूषिते सुप्रमाणयुक्ते वेदभाष्ये द्वितीयोऽध्याय: पूर्तिमगमत्॥२॥ अथ तृतीयोऽध्याय: प्रारभ्यते॥

विश्वांनि देव सवितर्दुरितानि पर्रा सुव। यद्धद्रं तन्न आ सुव।। ऋ०५.८२.५।

अथ पञ्चदशर्चस्य त्रयस्त्रिंशस्य सूक्तस्याङ्गिरसो हिरण्यस्तूप ऋषि:। इन्द्रो देवृता

१,२,४,८,१२,१३। निचृत्त्रिष्टुप् ३,६,१०; त्रिष्टुप् ५,७,११; विराट् त्रिष्टुप् १४-१५

भुरिक् पड्क्तिश्छन्द:। पड्क्ते: पञ्चम:। त्रिष्टुभो धैवत: स्वरश्चा

तत्रादाविन्द्रशब्देनेश्वरसभापती उपदिश्येते॥

अब तेतीसवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके पहिले मन्त्र में इन्द्र शब्द से क्रिस और सभापित का प्रकाश किया है।।

एतायामोपं गुव्यन्त इन्द्रंमस्माकं सु प्रमंतिं वावृधाति।

अनामृणः। कुर्विदादुस्य रायो गवां केतं परमावर्जने नः।। शा

आ। <u>इत्। अर्यामा उर्पा गुव्यन्त</u>ः। इन्द्रम्। अस्मार्कम्। ग्रुं। प्रेऽमेतिर्म्। वृवृधाति। अनामृणः। कुवित्। आत्। अस्य। गुयः। गर्वाम्। केर्तम्। पर्रम्। आऽवर्जते। नः॥ श्रो

पदार्थ:-(आ) समन्तात् (इत) प्राप्नुत (अयाम्) प्राप्नुयाम। अयं लोडुत्तमबहुवचने प्रयोगः। (उप) सामीप्ये (गव्यन्तः) आत्मनो गा इन्द्रियाणीच्छन्तः। अत्र गो शब्दात् सुप आत्मनः क्यच्। (अष्टा०३.१.८) इति क्यच्। गौरिति पदनामसु पिंढतम्। (निघं०४.१) (इन्द्रम्) परमेश्वरम् (अस्माकम्) मनुष्यादीनाम् (सु) पूजायाम् (प्रमितम्) प्रकृष्टा मितिर्विज्ञानं यस्य तम् (वावृधाति) वर्द्धयेत्। अत्र वृध्धातोर्लेट् बहुलं छन्दिस शपः लुः व्यत्योगन परस्मैपदम्। तुजादीनां दीर्घ० (अष्टा०६.१.७) इत्यभ्यासदीर्घत्वमन्तर्गतो ण्यर्थश्च (अन्तर्मणः) अविद्यमाना समन्तान् मृणा हिंसका यस्य सः (कुवित्) बहुविधानि। कुविदिति बहुनामसु पठितम्। (निघं०३.१) (आत्) अनन्तरार्थे (अस्य) जगतः (रायः) प्रशस्तानि धनानि (गवाम्) सन्आदीनामिन्द्रियाणां पृथिव्यादीनां पशूनां वा (केतम्) प्रज्ञानम्। केत इति प्रज्ञानामसु पठितम्। (निघं०३.९) (परम्) प्रकृष्टम् (आवर्जते) समन्ताद्वर्जयित त्याजयित। अत्राङ्पूर्वाद् वृजीधातोर्लट् बहुलं छन्दिस इति प्रपो लुङ् न। अन्तर्गतो ण्यर्थश्च। (नः) अस्मभ्यम्॥१॥

अन्वयः-हे मनुष्या। यथा गव्यन्तो वयं योऽस्माकमस्य जगतश्च कुविद्रायो वावृधाति, यश्च आदनन्तरं नोऽसम्भयम्नामृणो गवां परं केतं वावृधात्यज्ञानं चावर्जते सुप्रमितिमिन्द्रं परेशं न्यायाधीशं वा शरणमुपायाप तथैन यूचमप्येत॥१॥

भावार्थ:-अत्र श्लेषालङ्कार:। मनुष्यैरिवद्यानाशिवद्यावृद्धियां य: परमं धनं वर्द्धयित तस्य्रैविश्वस्याज्ञापालनोपासनाभ्यां शरीरात्मबलं नित्यं वर्द्धनीयम्। नह्येतस्य सहायेन विना क्रश्चिद्धम्थिकाममोक्षाख्यं फलं प्राप्तुं शक्नोतीति॥१॥

मण्डल-१। अनुवाक-७। सूक्त-३३

पदार्थ:-हे मनुष्यो! (गव्यन्त:) अपने आत्मा गौ आदि पशु और शुद्ध इन्द्रियों की इच्छा करने वाले हम लोग जो (अस्माकम्) हम लोगों और (अस्य) इस जगत् के (कुवित्) अनेक प्रकार के (राष:) उत्तम धनों को (वावृधाति) बढ़ाता और जो (आत्) इसके अनन्तर (न:) हम लोगों के लिखे (अन्पूर्ण:) हिंसा, वैर, पक्षपातरहित होकर (गवाम्) मन आदि इन्द्रिय, पृथिवी आदि लोक तथा गौ आदि पशुओं के (परम्) उत्तम (केतम्) ज्ञान को बढ़ाता और अज्ञान का (आवर्जते) नाश करता है, उस (सुप्रमितम्) उत्तम ज्ञानयुक्त (इन्द्रम्) परमेश्वर और न्यायकर्ता को (उपायाम) प्राप्त होते हैं, वैसे पुम लोग आ इत) प्राप्त होओ॥१॥

भावार्थ:-यहाँ श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों को योग्य है कि जो पुरुष सिंगर में अविद्या का नाश तथा विद्या के दान से उत्तम-उत्तम धनों को बढ़ाता है, परमेश्वर की आज्ञा का पालन और उपासना करके उसी के शरीर तथा आत्मा का बल नित्य बढ़ावे और इसकी सहायता के बिना कोई भी मनुष्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूपी फल प्राप्त होने को समर्थ नहीं हो सकता॥१॥

पुनः स कीदृश इत्युप्रदिश्यते॥

फिर वह कैसा है, इस विषय का उपदेश अपले मन्त्र में किया है।।

उपेद्रहं धनदामप्रतीतं जुष्टां न श्येनो वस्ति पत्तामा

इन्द्रं नुमस्यन्नुपुमेभिर्कैर्यः स्तोतृभ्यो ह्रित्यो अस्ति यामन्॥२॥

उप। इत्। अहम्। धनुऽदाम्। अप्रतिश्ङ्तम्। जुष्ट्राम्। न। श्येनः। वस्तिम्। पृतामि। इन्द्रम्। नुमस्यन्। उपमेभिः। अर्कैः। यः। स्तोतृभ्यः। हव्यः। अस्ति। यामुन्। २॥

पदार्थ:-(उप) सामीप्ये (इत्) एवं (अहम्) मनुष्यः (धनदाम्) यो धनं ददाति तम् (अप्रतीतम्) यश्चक्षुरादीन्द्रियैर्न प्रतीयते तमम्तेचरम्। (जृष्टाम्) पूर्वकालसेविताम् (न) इव (श्येनः) वेगवान् पक्षी (वसतिम्) निवासस्थानम् (पत्रामि) प्राप्त्रीम (इन्द्रम्) अखण्डैश्वर्यप्रदं जगदीशश्वरम् (नमस्यन्) नमस्कुर्वन्। अत्र नमोविष्ट्रिश्चेश्च क्रुप्य्। (अष्टा०३.१.१९) इति क्यच्। (उपमेभिः) उपमीयन्ते यैस्तै। अत्र माङ् धातोः घत्रथे के विधानम् (अष्टा०वा०३.३.५८) इति वार्त्तिकेन करणे कः प्रत्ययः। बहुलं छन्दिम इति भिस् ऐस् न। (अर्कः) अनेकैः सूर्यलोकैः (यः) पूर्वोक्तः सूर्यलोकोत्पादकः (स्तोतृभ्यः) य ईश्वरं स्तुवन्ति लेभ्यः (हव्यः) होतुमादातुमर्हः (अस्ति) वर्तते (यामन्) याति गच्छिति प्राप्नोति स यामा तस्मिन्नस्मिन्न संस्ते। अत्र सुपां सुलुग्० इति विभक्तेर्लुक्॥२॥

अन्वय:-स्रो हव्य: स्तोतृभ्यो धनप्रदोऽस्ति तमप्रतीतं धनदामिन्द्रं नमस्यन्नहं जुष्टां वसितं श्येनो नेव यामन् प्रमनशीलेऽस्मिन् संसार उपमेभिरकैरिदेवोपपतााम्यभ्युपगच्छामि॥२॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। यथा श्येनाख्यः पक्षी प्राक्सेवितं सुखप्रदं निवासस्थाने स्थानान्तराद्वेगेन गत्वा प्राप्नोति, तथैव परमेश्वरं नमस्यन्तो मनुष्या अस्मिन् संसारे तद्रचितैः सूर्यादिलोकदृष्टान्तैरीश्वरं निश्चत्य तमेवोपासताम्। यावन्तोऽस्मिञ्जगित रचिताः पदार्था वर्त्तस्, तावन्तः सर्वे निर्मातारमीश्वरं निश्चापयन्ति। निर्मात्रा विना किञ्चित्रिर्मितं सम्भवति। तथाऽस्मिन् सनुष्ये रचनीये व्यवहारे रचकेन विना किञ्चदिप स्वतो न जायते तथैवेश्वरसृष्टौ वेदितव्यम्। अही एवे सित य ईश्वरमनादृत्य नास्तिका भवन्ति तेषामिदं महदज्ञानं कृतः समागतिमिति। अत्राध्यासक्वित्सनेन स्थेनस्य प्रसिद्धस्य पक्षिणो नामा विदित्वा गोदृष्टान्तो गृहीतोऽस्य मन्त्रस्यान्यथायौ वर्णितस्तस्मिदिदमस्य व्याख्यानमनादरणीयमस्तीति॥२॥

पदार्थ:-(य:) जो (हव्य:) ग्रहण करने योग्य ईश्वर (स्तोत्भ्य:) अपनी स्तुति करने वालों के लिये धन देने वाला (अस्ति) है, उस (अप्रतीतम्) चक्षु आदि इन्द्रियों से अमोचर (धनदाम्) धन देने वाले (इन्द्रम्) परमेश्वर को (नमस्यन्) नमस्कार करता हुआ (अहम्) मैं (न) जैसे (जुष्टाम्) पूर्व काल में सेवन किये हुए (वसतिम्) घोंसले को (श्येन:) बाज पक्षी प्राप्त होता है, वैसे (यामन्) गमनशील अर्थात् चलायमान इस संसार में (उपमेभि:) उपमा देने के अभय (अर्कै:) अनेक सूर्यों से (इत्) ही (उपपतािम) प्राप्त होता हूं॥२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे श्येन अर्थात् वेगवान् पक्षी अपने पहिले सेवन किये हुए सुख देने वाले स्थान को स्थानान्तर से चलकर प्राप्त होता है, वैसे ही परमेश्वर को नमस्कार करते हुए मनुष्य उसी के बनाये इस संसार से सूर्य्य आदि त्यों को दृष्टान्तों में ईश्वर का निश्चय करके उसी की प्राप्ति करें, क्योंकि जितने इस संसार में को हुए पदार्थ हैं, वे सब रचने वाले का निश्चय कराते हैं और रचने वाले के विना किसी जड़ यदार्थ की रचना कभी नहीं हो सकती। जैसे इस व्यवहार में रचने वाले के विना कुछ भी पदार्थ नहीं बन मकता, वैसे ही ईश्वर की सृष्टि में भी जानना चाहिये। बड़ा आश्चर्य है कि ऐसे निश्चय हो निने पर भी जो ईश्वर का अनादर करके नास्तिक हो जाते हैं, उनको यह बड़ा अज्ञान क्योंकर प्राप्त होता है। २॥

अर्थेन्द्रशब्देन श्रूरवीरगुणा उपदिश्यन्ते॥ अब अगल मन्त्र में इन्द्र शब्द से शूरवीर के गुण प्रकाशित किये हैं॥

नि सर्वसिन इषुधिरिसक्त समुर्यो गा अजिति यस्य विष्टि। चोक्क्रियमाण इन्द्र भूरि वामं मा पणिर्भूरस्मदिधि प्रवृद्ध॥३॥

नि। सर्वेऽसेनः। इषुऽधीन्। असक्ता सम्। अर्यः। गाः। अजिति। यस्यं। विष्टं। चोष्क्रूयमाणः। इन्द्र। भूरिं। कुममो मा। पुणिः। भूः। अस्मत्। अर्धि। प्रऽवृद्धा। ३॥

मण्डल-१। अनुवाक-७। सूक्त-३३

पदार्थ:-(नि) नितराम् (सर्वसेनः) सर्वाः सेना यस्य सः (इषुधीन्) इषवो बाणा धीयन्ते येषु तान् (असक्त) सज्ज। अत्र सज्ज धातोः बहुलं छन्दिस इति शपो लुक्। लोडर्थे लङ् व्यत्ययेनास्निनादे च्या (सम्) संयोगे (अर्थः) विणग्जनः। अर्थः स्वामिवैश्ययोः। (अष्टा०३.१.१०३) इत्ययं शृद्धो निपादितः। (गाः) पशून् (अर्जित) प्राप्य रक्षति (यस्य) पुरुषस्य (विष्ट) प्रकाशते (चोष्क्र्यमाण्ः) सर्वाताप्रावयन्। स्कुञ् आप्रवण इत्यस्य यङन्तं रूपम् (इन्द्र) शत्रूणां दारियतः (भूरि) बहु। भूरीति बहुनामसु पिटतम्। (निघं०३.१) (वामम्) वमत्युदिगरित येन तम्। टुवमु उदिगरणेऽस्माद्धातोः हत्सश्च इति घञ्। उपधावृद्धिनिषेधे प्राप्तेः। अनाचिमकिमिवमीनािमिति वक्तव्यम्। (अष्टा०व्यव्७.३.३४) इति वार्त्तिकेन वृद्धिः सिद्धा। (मा) निषेधे (पणिः) सत्यव्यवहारः (भूः) भव। अत्र लीड्थें) लुङ् न माइयोग (अष्टा०६.४.७४) इत्यडभावः। (अस्मत्) स्पष्टार्थम् (अधि) उपरिभावे (प्रवृद्ध) महोत्तमगुणविशिष्ट॥३॥

अन्वय:-हे अधिप्रवृद्धेन्द्र! सर्वसेनः पणिश्चोष्कूयमाणस्त्वं भूरीपुर्धीन् धृत्वाऽर्यो गाः भूरि समजतीव न्यसक्त सज्जास्मद् वामं मा भूर्यस्माद्यस्य भवतः प्रतीपि वष्टि विजयी च भवेः॥३॥

भावार्थ:-अत्रवाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथावणिप्रमन्ति गाः प्रालयित्वा चारयित्वा दुग्धादिना व्यवहारसिद्धिर्निष्पाद्यते यथेश्वरेणोत्पादितस्य महतः सूर्यलोकस्य किरणा बाणवच्छेदकत्वेन सर्वान् पदार्थान् प्रवेश्य वायुनोपर्यधो गमयित्वा सर्वान् सर्वान् पदार्थान् कृत्वा सुखानि निष्पादयन्ति तथा राजा प्रजाः पालयेत्॥३॥

पदार्थ:-हे (अधिप्रवृद्ध) महोत्तमगुण्युक्त! (इन्द्र) शत्रुओं को विदीर्ण करने वाले (सर्वसेन:) जिसके सब सेना (पणि:) सत्य व्यवहारी (बाष्क्रुप्रमाण:) सब शत्रुओं को भगाने वाले आप (भूरि) बहुत (इषुधीन्) जिसमें प्राण रक्खे आते हैं उन्निको घर के जैसे (अर्च्य:) वैश्य (गा:) पशुओं को (समजित) चलाता और खवाता है, वैसे (स्यसक्त) शत्रुओं को दृढ़बन्धनों से बाँध और (अस्मत्) हम से (वामम्) अरुचिकर कर्म के क्यि (मा भू:) मत हो, जिससे (यस्य) आपका प्रताप (विष्ट्र) प्रकाशित हो और आप विजयी हों॥३॥

भावार्थ:-इस मह्न में लुप्लोपमालङ्कार है। राजा को चाहिये कि जैसे वैश्य गौओं का पालन तथा चराकर दुग्धादिकों से व्यवहार भिद्ध करता है और जैसे ईश्वर से उत्पन्न हुए सब लोकों में बड़े सूर्यलोक की किरणें बाण के समान छेदन करने वाली सब पदार्थों को प्रवेश करके वायु से ऊपर नीचे चलाकर रस सहित सब्ब पदार्थों को करके सब सुख सिद्ध करते हैं, इसके समान राजा प्रजा का पालन करे॥३॥

रहः नोदात्तीपदेशस्य मान्तस्यानाचमेः। इत्यनेन। सं०

४०६

ऋग्वेदभाष्यम्

इन्द्रशब्देन पुनः स एवार्थ उपदिश्यते॥

अगले मन्त्र में इन्द्र शब्द से उसी के गुणों का उपदेश किया है॥

वधोहिं दस्युं धनिनं घनेन एकश्चरेन्नुपशाकेभिरिन्द्र।

धनोरिं विषुणक्ते व्यायन्नयंज्वानः सनुकाः प्रेतिमीयुः॥४॥

वधीः। हि। दस्युम्। धुनिर्नम्। घुनेर्ना एकः। चर्रन्। उपुऽशाकिभिः। इन्द्रः। धनौः, अधि विष्रुणक्। ते। वि। आयुन्। अर्यज्वानः। सुनकाः। प्रऽइतिम्। ईयुः॥४॥

पदार्थ:-(वधी:) हिन्धि। अत्र लोडर्थे लुङ्डभावश्च। (हि) निश्चयार्थ (दस्युम्) बलान्यायाभ्यां परस्वापहर्त्तारम् (धिननम्) धार्मिकं धनाढ्यम्। (घनेन) वज्राख्येन शस्त्रेण पूर्ती घनः) (अष्टा॰३.३.७७) इति घनशब्दो निपातितस्तेन काठिन्यादिगुणयुक्तो हि शस्त्रविशेषो गृहार्त। अत्र इंप्राअक्षादिषु च छन्दिस प्रकृतिभावमात्रं वक्तव्यम्। (अष्टा॰६.१.१२७) इति वार्त्तिकेन प्रकृतिभावः। अत्र सायणाचार्थ्येण द्रष्टव्यमिति भाष्यकारपाठमबुध्वा वक्तव्यमित्यशुद्धः पाठो लिखितः। मूल्क्रार्त्तिकस्यापि पाठो न बुद्धः। (एकः) यथैकोऽपि परमेश्वरः सूर्यलोको वा (चरन्) जानन प्राप्तः सन् (उपशाकेभिः) उपशक्यन्ते यैः कर्मिभस्तैः। बहुलं छन्दिस इति भिस ऐस् न। (इन्द्र) ऐश्वर्ययुक्ति शूर्यवीर (धनोः) धनुषो ज्यायाः (अधि) उपिरभावे (विषुणक्) वेविषत्यधर्मेण ये ते विषवस्त्रान् माश्रयद्धि सः। अत्र अन्तर्गतो ण्यर्थः। (ते) तव (वि) विशेषार्थे (आयन्) यन्ति प्राप्नुवन्ति। अत्र लड्थे लङ्। (अयज्वानः) अयाक्षुस्ते यज्वानो न यज्वानोऽयज्वानः (सनकाः) सनन्ति सेवन्ते परपदार्थान् ये ते। अत्र क्वुन् शिल्पसंज्ञयोरपूर्वस्यापि। (उणा॰२.३२) इत्यनेन क्वुन् प्रत्ययः। (प्रतिम्) प्रयुक्ति प्रियन्ते येन तं मृत्युम् (ईयुः) प्राप्नुयः। अत्र लर्ड्थे लिट्॥४॥

अन्वय:-हे इन्द्र शूरवीर! यथेश्वरः सूर्य्यलोकश्चोपशाकेभिरेकश्चरन् दुष्टान् हिनस्ति, तथैकाकी त्वं धनेन दस्युं वधीर्हिन्धि विनुश्य विषुणक त्वं धनोरिध बाणान् सक्त्वा दस्यूत्रिवार्य धिननं वर्द्धय। यथेश्वरस्य निन्दकाः सूर्यलोकस्य शत्रवो धनेन सामर्थ्येन किरणसमूहेन वा नाशं व्यायन् वियन्ति तथा हिते तवायज्वानः सनकाः प्रेतिनिस्पूर्यथा प्राप्नुयुस्तथैव यतस्व॥४॥

भावार्थ:-अत्र विच्किलुप्तॉपमालङ्कारः। यथेश्वरो जातशत्रुः सूर्यलोकोऽपि निवृतवृत्रो भवति, तथैव मनुष्यैर्दस्यून्र्रहत्वा धनिना ह्यवित्वाऽजातशत्रुभिर्भवितव्यमिति॥४॥

पदार्थ्य: हे (इन्द्र) एश्वर्ययुक्त शूरवीर! एकाकी आप जैसे ईश्वर वा सूर्यलोक (उपशाकेभि:) सामर्थ्यरूपि कमि से (एक:) एक ही (चरन्) जानता हुआ दुष्टों को मारता है, वैसे (घनेन) वज्ररूपी शस्त्र से (दस्युम्) बल और अन्याय से दूसरे के धन को हरने वाले दुष्ट को (वधी:) नाश कीजिये और (विष्टुणक्) अधर्म से धर्मात्माओं को दु:ख देने वालों के नाश करने वाले आप (धनो:) धनुष् के (अधि) इस बागों को निकाल कर दुष्टों को निवारण करके (धनिनम्) धार्मिक धनाढ्य की वृद्धि कीजिये। जैसे

मण्डल-१। अनुवाक-७। सूक्त-३३

ईश्वर की निन्दा करने वाले तथा सूर्यलोक के शत्रु मेघावयव (घनेन) सामर्थ्य वा किरणसमूह से नाश को (व्यायन्) प्राप्त होते हैं, वैसे ही निश्चय करके (ते) तुम्हारे (अयज्वानः) यज्ञ को न करने तथा (सनकाः) अधर्म से औरों के पदार्थों का सेवन करने वाले मनुष्य (प्रेतिम्) मरण को (इंग्रुः) प्राप्त हों, वैसा यत्न कीजिये॥४॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे ईश्वर शत्रुओं से रहित तथा सूर्यकोक भी मेघ से निवृत्त हो जाता है, वैसे ही मनुष्यों को चोर, डाकू वा शत्रुओं को मार्र और धुमवाले धर्मात्माओं की रक्षा करके शत्रुओं से रहित होना अवश्य चाहिये॥४॥

अथेन्द्रशब्देन शूरवीरकृत्यमुपदिश्यते॥

अब अगले मन्त्र में इन्द्रशब्द से शूरवीर के काम का अपदेश किञ्चा है।।

पर्ग चिच्छीर्षा ववृजुस्त इन्द्रायंज्वानो यज्विभिः स्पर्धमानाः।

प्र यद्विवो हरिवः स्थातस्य निर्वृताँ अधमो रोर्दस्योः॥ ।।।

पर्रां। चित्। शीर्षा। ववृजुः। ते। इन्द्र। अर्यज्वानः। अर्ज्विभिः। स्पर्धमानाः। प्र। यत्। दिवः। हृरिऽवः। स्थातः। उग्रा निः। अवृतान्। अधुमः। रोदंस्योः॥५॥

पदार्थ:-(परा) दूरीकरणे (चित्) उपमित्राम् (शीर्षा) शिरांसि। अत्र अचि शीर्ष:। (अष्टा॰६.१.६२) इति शीर्षादेश:। शेश्छन्दिम् बि इति शेर्लीप:। (ववृक्षु:) त्यक्तवन्तः (ते) वक्ष्यमाणाः (इन्द्र) शत्रुविदारियतः शूरवीर (अयज्वानः) यज्ञानुष्ठानं त्यक्तवन्तः (यज्विभः) कृतयज्ञानुष्ठानैः सह (स्पर्द्धमानाः) ईर्ष्यकाः (प्र) प्रकृष्टार्थे (यत्) यस्मात् (दिवः) प्रकाशस्य (हरिवः) हरयोऽश्वहस्त्यादयः प्रशस्ताः सेनासाधका विद्यन्ते यस्य स हरिवास्तत्सम्बुद्धौ (स्थातः) यो युद्धे तिष्ठतीति तत्सम्बुद्धौ (उग्र) दुष्टान् प्रति तीक्ष्णव्रत। (निः) नितसम् (अव्रतान्) व्रतेन सत्याचरणेन हीनान् मिथ्यावादिनो दुष्टान्। (अधमः) शब्दैः शिक्षय (रादस्योः) द्यावापृथिव्योः। रोदस्योरिति द्यावापृथिव्योर्नामसु पठितम्। (निघं०३.३०)॥५॥

अन्वय:-हे हरिक्षे युद्धे प्रति प्रस्थातरुग्रेन्द्र यथा प्रस्थातोग्रेन्द्र! सूर्यलोको रोदस्योः प्रकाशाकर्षणे कुर्वन् वृत्रावयवाँष्ठिछत्वा पराधमित तथैव त्वं यद्येऽयज्वानो यज्विभः स्पर्द्धमानाः सन्ति, ते यथा शीर्षा शिरांसि ववृजुम्त्यक्तेष्वन्तो भवयुस्तानव्रताँस्त्वं निरधमो नितरां शिक्षय दण्डय॥५॥

भाषार्थः अत्रोपमालङ्कारः। यथा सूर्यो दिनं पृथिव्यादिकं प्रकाशं च धृत्वा वृत्रान्धकारं निवार्य वृष्ट्या सूर्वान् प्राणिनः सुखयित, तथैव मनुष्यैः सद्गुणान् धृत्वाऽसद्गुणाँस्त्यक्त्वाऽधार्मिकान् दण्डियत्वा विद्यासुशिक्षाधर्मोपदेशवर्षणेन सर्वान् प्राणिनः सुखियत्वा सत्यराज्यं प्रचारणीयमिति॥५॥

पदार्थ:-हे (हरिव:) प्रशंसित सेना आदि के साधन घोड़े हाथियों से युक्त (प्रस्थात:) युद्ध में स्थित होने और (उग्र) दुष्टों के प्रति तीक्ष्णव्रत धारण करने वाले (इन्द्र) सेनापित! (चित्) जैसे हरण आकर्षण गुण युक्त किरणवान् युद्ध में स्थित होने और दुष्टों को अत्यन्त ताप देने वाला सर्वलोक (रोदस्यो:) अन्तरिक्ष और पृथिवी का प्रकाश और आकर्षण करता हुआ मेघ के अवयवों को छिन्न-पिन्न कर उसका निवारण करता है, वैसे आप (यत्) जो (अयज्वान:) यज्ञ के न करने वृत्ले (यज्वभि:) यज्ञ करने वालों से (स्पर्द्धमाना:) ईर्षा करते हैं, वे जैसे (शीर्षा:) अपने शिरों को (ते) तुम्हारे सेकाश से (ववृजु:) छोड़ने वाले हों, वैसे उन (अव्रतान्) सत्याचरण आदि व्रतों से रिक्ट्रत मनुष्यों को (निरधम:) अच्छे प्रकार दण्ड देकर शिक्षा कीजिये॥५॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे सूर्य दिन और पृथियों और प्रकाश को धारण तथा मेघ रूप अन्धकार को निवारण करके वृष्टि द्वारा सब प्राणियों को सुख युक्त करता है, वैसे ही मनुष्यों को उत्तम-उत्तम गुणों का धारण खोटे गुणों को छोड़ धार्मिकों की रक्षा और अधम्मी दुष्ट मनुष्यों को दण्ड देकर विद्या, उत्तम शिक्षा और धर्मोपदेश की वर्षा से सब प्राणियों को सुख देके सत्य के राज्य का प्रचार करना चाहिये॥५॥

पुनस्तस्य किं कृत्यमित्युपदिश्यते॥

फिर उसका क्या कार्य है, यह उपदेश अन्त्रे मन्त्र में किया है॥

अयुंयुत्सन्ननवद्यस्य सेनामयातयन्त क्षितयो नवग्वाः।

वृषायुधो न वध्रयो निर्रष्टाः प्रवृद्धिरिन्हां च्युत्तर्यन्त आयन्॥६॥

अर्युयुत्सन्। अनुवृद्यस्य। सेनाम्। अयोत्यन्ता क्षितयः। नवंऽग्वाः। वृष्ऽयुर्धः। न। वर्ध्रयः। निःऽअष्टाः। प्रवतुऽभिः। इन्द्रात्। चितर्यन्तः। आयन्ता। ६॥

पदार्थ:-(अयुयुत्सन्) युद्धिच्छां कुर्च्यः। अत्र लिडर्थे लङ्। व्यत्ययेन परस्मैपदं च (अनवद्यस्य) सद्गुणैः प्रशंसनीयस्य सेनाध्यक्षस्य (सेनास्) चतुरङ्गिणीं सम्पाद्य (अपातयन्त) सुशिक्षया प्रयत्नवतीं संस्कुर्वन्तु (क्षितयः) क्षित्रित्त क्षयं प्राप्नुवन्ति निवसन्ति ये ते मनुष्याः। क्षितय इति मनुष्यनामसु पठितम्। (निघं०२.३) क्षि निवासग्रचोर्यार्यर्वत्तमानाद् धातोः क्तिच् क्तौ च संज्ञायाम्। (अष्टा०३.३.१७४) अनेन क्तिच्। (नवग्वाः) नवीनशिक्षाविद्याप्राप्तः प्रापयितारश्च। नवगतयो नवनीतगतयो वा। (निरु०११.१९४) (वृषायुधः) ये वृषेण वीर्यवता शूरवीरेण सह युध्यन्ते ते। वृषोपपदे क्विप् च इति क्विप्। अन्येषामिष् दृश्यते इति दीर्घः। (न) इव (वध्यः) ये वध्यन्ते निर्वीर्या नपुंसका वीर्य्यहीनास्ते (निरष्टाः) ये नितरां अश्यन्ते व्याप्यन्ते शत्रुभिर्बलने ते (प्रविद्धः) ये नीचमार्गैः प्रवन्ते प्लवन्ते तैः (इन्द्रतः) शूर्त्वीरात् (चितयनः) धनुर्विद्यया प्रहारादिकं संजानन्तः (आयन्) ईयुः। अत्र लिडर्थे लङ्॥६॥

मण्डल-१। अनुवाक-७। सूक्त-३३

अन्वय:-हे नवग्वा वृषायुधश्चितयन्तः क्षितयो मानुषा! भवन्तो यस्यानवद्यस्य सेनामयातयन्त दुष्टैः शत्रुभिः सहायुयुत्सन् यस्मादिन्द्रात् सेनाध्यक्षात् वध्रयो नेव शत्रवश्चितयन्तो निष्टिः सन्तर्भ प्रवद्भिर्मार्गेरायन् पलायेरँस्तं सेनाध्यक्षं स्वीकुर्वन्तु॥६॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। ये मानवा: शरीरात्मबलयुक्तं शूरवीरं धार्मिकं मनुष्टि सेनोध्यक्षं कृत्वा सर्वथोत्कृष्टां सेनां सम्पाद्य यदा दुष्टै: सह युद्धः कुर्वन्ति, तदा यथा सिंहस्य समीपादजा वीरस्य समीपाद्भीरव: सूर्यस्य प्रतापाद् वृत्रावयवा नश्यन्ति, तथा तेषां शत्रवो नृष्ट्रभुखाद्धितपृष्ठा इतस्ततः पलायन्ते। तस्मात्सर्वेमनुष्यरीदृशं सामर्थ्यं सम्पाद्य राज्यं भोक्तव्यमिति॥६॥

पदार्थ:-हे (नवग्वा:) नवीन-नवीन शिक्षा वा विद्या के प्राप्त करा और कराने (वृषायुध:) अतिप्रबल शत्रुओं के साथ युद्ध करने (चितयन्त:) युद्ध विद्या से पुक्त (क्षित्रयः) मनुष्य लोगो! आप (अनवद्यस्य) जिस उत्तम गुणों से प्रशंसनीय सेनाध्यक्ष की (सेनाम्) सेना को (अयातयन्त) उत्तम शिक्षा से यत्नवाली करके शत्रुओं के साथ (अयुयुत्सन्) युद्ध की इच्छा करो, जिस (इन्द्रात्) शूरवीर सेनाध्यक्ष से (वध्यः) निर्बल नपुंसकों के (न) समान शत्रुलोग (निर्म्थः) दूर दूर भागते हुए (प्रवद्धिः) पलायन योग्य मार्गों से (आयन्) निकल जावें, उस पुरुष को सेनापित की जिया। हा।

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो मनुष्य शर्रोर और आत्मबल वाले शूरवीर धार्मिक मनुष्य को सेनाध्यक्ष और सर्वथा उत्तम सेना को सम्पादन करके जब दुष्टों के साथ युद्ध करते हैं, तभी जैसे सिंह के समीप बकरी और वीर मनुष्य के समीप से भीरु मनुष्य और सूर्य के ताप से मेघ के अवयव नष्ट होते हैं, वैसे ही उक्त वीरों के समीप से शत्रु लोग सुख से रहित और पीठ दिखाकर इधर-उधर भाग जाते हैं। इससे सब मनुष्य्रों को इस म्राह्म का सामर्थ्य सम्पादन करके राज्य का भोग सदा करना चाहिये॥६॥

पुनरिन्द्रशब्देन शूरवीरकर्त्तव्यमुपदिश्यते॥

फिर अगुले मन्त्र में इन्द्र शब्द से शूरवीर के काम का उपदेश किया है।।

त्वमेतान् रुद्रते ज्ञक्षतुरुचार्यीधयो रजस इन्द्र पारे।

अवादहो दिव आ दस्युमुच्चा प्र सुन्वतः स्तुवतः शंसमावः॥७॥

त्वम्। प्रताने <u>रुद</u>तः। जक्षतः। च। अयोधयः। रजसः। <u>इ</u>न्द्रः। पारे। अर्व। <u>अदहः</u>। दिवः। आ। दस्युंम्। उच्चा। प्रा सुन्वतः। स्तुबुवः। शंसम्। आवः॥ १७॥

्पदार्थ:-(त्वम्) युद्धविद्याविचक्षण: (एतान्) परपीडाप्रदान् दुष्टान् शत्रून् (रुदतः) रोदनं कुर्वतः (ज्र्ष्ट्र्तः) भक्षणसहने कुर्वतः (च) समुच्चये (अयोधयः) सम्यक् योधय। अत्र लोडर्थे लङ्। (रजसः) पृथिवीलीकस्य। लोका रजांस्युच्यन्ते। (निरु०४.१९) (इन्द्र) राज्यैश्वर्ययुक्त (पारे) परभागे (अव)

अर्वागर्थे (अदहः) दह (दिवः) सुशिक्षयेश्वरधर्मशिल्पयुद्धविद्यापरोपकारादिप्रकाशात् (आ) समन्तात् (दस्युम्) बलादन्यायेन परपदार्थहर्त्तारम् (उच्चा) उच्चानि सुखानि कर्माणि वा (प्र) प्रकृष्टार्थे (सुन्वतः) निष्पादयतः (स्तुवतः) गुणस्तुतिं कुर्वतः (शंसम्) शंसित येन शास्त्रबोधेन तम् (आवः) (क्षा प्राप्नुहि वा॥७॥

अन्वय:-हे इन्द्र सेनैश्वर्ययुक्त सेनाध्यक्ष! त्वमेतान् दुष्टकर्मकारिणो रुदतो रोद्धर्न कुर्वतो शत्रून् वा दस्युं च स्वकीयभृत्यान् जक्षतो बहुविधभोजनादिप्रापितान् कारितहर्षांश्चायोधय:। एत्तन् धर्मशत्रून् रजसः पारे कृत्वाऽवादह:। एवं दिव उच्चोत्कृष्टानि कर्माणि प्रसुन्वत आस्तुवतस्तेषां श्रंध च प्राक्राणि।।

भावार्थ:-मनुष्यैर्युद्धार्थं विविधं कर्म कर्त्तव्यम्। प्रथमं स्वसेन्यस्थानां पृष्टिहर्षकरणं दुष्टानां बलोत्साहभञ्जनसम्पादनं नित्यं कार्यम्। यथा सूर्यः स्विकरणेः सूर्वान् प्रकाश्य) वृत्रान्धकारनिवारणाय प्रवर्तते, तथा सर्वदोत्तमकर्मगुणप्रकाशनाय दुष्टकर्मदोषनिवारणाय च मित्य प्रयत्नः कर्त्तव्य इति॥७॥

पदार्थ: -हे (इन्द्र) सेना के ऐश्वर्य से युक्त सेनाध्यक्ष! (विम्) आप (एतान्) इन दूसरों को पीड़ा देने दुष्टकर्म करने वाले (रुदतः) रोते हुए जीवों (च) और (दस्युम्) डाकुआं को दण्ड दीजिये तथा अपने भृत्यों को (जक्षतः) अनेक प्रकार के भोजन आदि देते हुए जानन्द्र करने वाले मनुष्यों को उनके साथ (अयोधयः) अच्छे प्रकार युद्ध कराइये और इन धर्म के शत्रुओं को (रजसः) पृथिवी लोक के (पारे) परभाग में करके (अवादहः) भस्म कीजिये। इसी प्रकार (ख्यः) उत्तम शिक्षा से ईश्वर, धर्म, शिल्प, युद्धविद्या और परोपकार आदि के प्रकाशन से (उच्चा) उत्तम - उत्तम कर्म वा सुखों को (प्रसुन्वतः) सिद्ध करने तथा (आस्तुवतः) गुणस्तुति करने वालों को (प्रावः) रक्षा कीजिये और उनकी (शंसम्) प्रशंसा को प्राप्त हूजिये॥७॥

भावार्थ:-मनुष्यों को युद्ध के लिये अनेक प्रकार के कर्म करने अर्थात् पहिले अपनी सेना के मनुष्यों की पृष्टि, आनन्द तथा दुष्ट्रों का दुर्बलपन वा उत्साह भङ्ग नित्य करना चाहिये। जैसे सूर्य अपनी किरणों से सबको प्रकाशित करके मेघ के अधिकार निवारण के लिये प्रवृत्त होता है, वैसे सब काल में उत्तम कर्म वा गुणों के प्रकृष्य और दुष्ट्र कर्म के दोषों की निवृत्ति के लिये नित्य यत्न करना चाहिये॥७॥

पुनरिन्द्रकृत्यमुपदिश्यते॥

फिर अगले मन्त्र में इन्द्र के कृत्य का उपदेश किया है॥

चुक्राप्रासिर परीपहें पृथिव्या हिरंण्येन मुणिना शुम्भंमानाः।

न हिन्दासासिस्तितिकृस्त इन्द्रं परि स्पशी अदधात् सूर्येण॥८॥

सुक्राणासः। पुरिऽनहंम्। पृथिव्याः। हिरंण्येन। मुणिनां। शुम्भंमानाः। न। हिन्वानासः। तितिरुः। ते। इन्ह्रेष्ट्रा पुरि। सुर्थेण॥८॥

मण्डल-१। अनुवाक-७। सूक्त-३३

पदार्थ:-(चक्राणासः) भृशं युद्धं कुर्वाणाः (परीणहम्) परितस्सर्वतः प्रबन्धनं सुखाच्छादकत्वेन व्यापनं वा। णह बन्धन इत्यस्मात् विवप् च इति क्विप् निहवृति (अष्टा०६.३.११६) असैनादेशिर्यः (पृथिव्याः) भूमे राज्यस्य (हिरण्येन) न्यायप्रकाशेन सुवर्णादिधातुमयेन वा (मणिज्ञाः) आभूष्रणेन (शुष्भमानाः) शोभायुक्ताः। (न) निषेधार्थे (हिन्वानासः) सुखं सम्पादयन्तः (वितिरुः) प्लवन्त उल्लङ्घयन्ति। अत्र लड्थे लिट्। (ते) शत्रवो दुष्टा मनुष्याः (इन्द्रम्) सबलं सेनाध्यक्ष्म् (परि) सर्वतो भावे (स्पशः) ये स्पशन्ति ते। अत्र क्विप् प्र०। (अद्धात्) दधाति। अत्र व्वड्थे लङ्। (सूर्येण) स्वितृमण्डलेनेव॥८॥

अन्वय:-यथा यान् सूर्य्यः पर्य्यदधात् परिदधाति ते वृत्रावयव घर्माः सूर्यस्य प्रकाशं स्पशो बाधमानाः पृथिव्याः परीणहं चक्राणासो हिरण्येन मणिनेव सूर्य्येण शुर्मभाना हिन्नानास इन्द्रं न तितिरुर्न प्लवन्ते नोल्लङ्घयन्ति तथा स्वसेनाध्यक्षादीञ्जनाँञ्छत्रवो बाधितुं समर्था यथा न स्युस्तथा सर्वेरनुष्ठैयम्॥८॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। यथा परमृत्यित्रा सूर्येष्ट्र सह प्रकाशाकर्षणादीनि कर्माणि निबद्धानि तथैव विद्याधर्मन्यायशूरवीरसेनादिसामग्रीप्राप्तेन पुरुषण मह पृथिवीराज्यं नियोजितमिति॥८॥

पदार्थ:-जैसे जिनको सूर्य (पर्यद्धात्) सूर्व और से धारण करता है (ते) वे मेघ के अवयव बादल सूर्य के प्रकाश को (स्पश:) बाँधने वाले (पृथिव्य:) पृथिवी को (परीणहम्) चौतर्फी घेरे हुए के समान (चक्राणास:) युद्ध करते हुए (हिरण्येम) प्रकाशक्ष्प (मणिना) मणि से जैसे (सूर्य्येण) सूर्य्य के तेज से (शुम्भमाना:) शोभायमान (हिन्वास्ति) सुर्ख्यों को सम्पादन करते हुए (इन्द्रम्) सूर्यलोक को (न) नहीं (तितिरु:) उल्लङ्घन कर सकते हैं। वैसे ही मनाध्यक्ष अपने धार्मिक शूरवीर आदि को शत्रुजन जैसे जीतने को समर्थ न हों, वैसा प्रयत्यस्व स्रोग किया करें॥८॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तेपमालङ्कार है। जैसे परमेश्वर ने सूर्य के साथ प्रकाश आकर्षणादि कर्मों का निबन्धने किया है, बैसे ही विद्या, धर्म, न्याय, शूरवीरों की सेनादि सामग्री को प्राप्त हुए पुरुष के साथ इस मुश्चिकों के राज्य को नियुक्त किया है॥८॥

पुनरिन्द्रस्य कृत्यमुपदिश्यते॥

🚯 अगले मन्त्र में इन्द्र के कृत्य का उपदेश किया है॥

पर्ियदेनु भेदंसी उभे अर्बुभोजीर्महुना विश्वतः सीम्।

अमन्यमानाँ अभि मन्यमानैर्निर्ब्रह्मभिरधमो दस्युमिन्द्र॥९॥

परि यत्। इन्द्रः। रोदंसी इति। उभे इति। अर्बुभोजीः। मृहिना। विश्वतः। सीम्। अर्मन्यमानान्। अभि।

मेमानै: नि:। बृह्यऽभि:। अधुमु:। दस्युम्। इन्द्र॥९॥

पदार्थ:-(पिर) सर्वतो भावे (यत्) यस्मात् (इन्द्र) ऐश्वर्ययोजक राजन् (रोदसी) भूमिप्रकिशी (उभे) द्वे (अबुभोजी:) आकर्षणेन न्यायेन वा पालयिस पालयित वा। अत्र भुज पालनाभ्यवहारयोर्लडर्थे लिङ सिपि बहुलं छन्दिस इति शपः स्थान आदिष्टस्य शनमः स्थाने श्लुः श्लौ इति द्वित्वम् बहुलं छन्दिस इति शपः स्थान आदिष्टस्य शनमः स्थाने श्लुः श्लौ इति द्वित्वम् बहुलं छन्दिस इति इडागमश्च। (मिहना) मिहम्ना। अत्र छान्दसो वर्णलोपो वा यथेष्कर्तारमध्वर इति मर्लिएः। (विश्वतः) सर्वतः (सीम्) सुखप्राप्तिः। सीमिति पदनामसु पठितम्। (निघं०४.२) अनेन प्राप्त्यूर्थी मृह्यके। सीमिति परिग्रहार्थीयः। (निरु०१.७) (अमन्यमानान्) अज्ञानहठाग्रहयुक्तान् सूर्य्यप्रकाशिनरोधकान् मेघावयेषान् वा (अभि) आभिमुख्ये (मन्यमानैः) विद्यार्जवयुक्तैर्दुराग्रहरिहतैर्मनुष्यैर्ज्ञानसम्पादके किरणेर्ज्ञ (निः) सातत्ये (ब्रह्मभिः) वेदैर्ब्रह्मविद्धिक्राह्मणेर्वा। ब्रह्म हि ब्राह्मणः। (शत०ब्रा०५.१.१.११) (अधमः) शिक्षय अग्निना संयोजयित वा। लोडर्थे लडर्थे वा लङ्। (दस्युम्) दुष्टकर्मणा सह वर्त्तमान्त्रं परद्रोह्मणं परस्वहर्तारं चोरं शत्रुं वा (इन्द्र) राज्यैश्वर्ययुक्त सेनाध्यक्ष शूरवीर मनुष्य॥९॥

अन्वय:-हे इन्द्र! त्वं यथेन्द्रः सूर्यलोको महिना महिन्तिभे रोदसी सीं विश्वतः पर्युबुभोजीः। मन्यमानैर्ब्रह्मभिर्बृहत्तमैः किरणैर्दस्युं वृत्रं मेघममन्यमानान्मेघावश्ववान् घनाम् यद्यस्मादिभिनिरधमः। अभितो नितरां स्वतापाग्नियुक्तान् कृत्वा निवारयित तथा विश्वते महिन्ना भ्रीमुभे रोदसी पर्यबुभोजीः सर्वतो भृग्धि। एवं च हे इन्द्र! मन्यमानैर्ब्रह्मभिरमन्यमानान् मनुष्यान् दस्यु दुष्टपुरुषं चाभिनिरधम आभिमुख्यतया शिक्षय॥९॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः यिश्र सूत्रीलोकः सर्वान् पृथिव्यादिमूर्तिमतो लोकान् प्रकाश्याकर्षणेन धृत्वा पालको भूत्वा वृत्रराष्ट्रमधुकारात्रिवारयति, तथैव हे मनुष्या! भवन्तः सुशिक्षितैर्विद्वद्भिर्मूर्खाणां मूढतां निवार्य दुष्ट्रात्रुम् शिक्षात्वा महद्राज्यसुखं नित्यं भुञ्जीरत्रिति॥९॥

पदार्थ:-हे (इन्द्र) ऐश्वर्य का योग करने वाले राजन्! आपको योग्य है कि जैसे सूर्यलोक (मिहना) अपनी महिमा से (उभे) दानों (प्रेंदसी) प्रकाश और भूमि को (सीम्) जीवों के सुख की प्राप्ति के लिये (विश्वत:) सब प्रकार आकर्षण से पोलन करता और (मन्यमानै:) ज्ञानसम्पादक (ब्रह्मिप:) बड़े आकर्षणादि बलयुक्त किरणों से (देस्युम्) मेंच और (अमन्यमानान्) सूर्य्य प्रकाश के रोकने वाले मेंघ के अवयवों को (निरधम:) जार्ग और अपने तापरूप अग्नि करके निवारण करता है, वैसे सब प्रकार अपनी महिमा से प्राणियों के सुख के लिये (उभे) दोनों (रोदसी) प्रकाश और पृथिवी का (पर्य्यंबुभोजी:) भोग कीजिये। इसी प्रकार हे (इन्द्र) राज्य के ऐश्वर्य से युक्त सेनाध्यक्ष शूरवीर पुरुष! आप (मन्यमानै:) विद्या की नम्रता से युक्त हठ दुराग्रह रहित (ब्रह्मिप:) वेद के जानने वाले विद्वानों से (अमन्यमानान्) अज्ञानी दुर्ग्यही मनुश्यों को (अभिनिरधम:) साक्षात्कार शिक्षा कराया कीजिये॥९॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्यलोक सब पृथिव्यादि मूर्तिमान् लोकों मुप्रकार, आकर्षण से धारण और पालन करने वाला होकर मेघ और रात्रि के अन्धकार को निवारण

मण्डल-१। अनुवाक-७। सूक्त-३३

करता है, वैसे ही हे मनुष्यो! आप लोग उत्तम शिक्षित विद्वानों से मूर्खों की मूढ़ता छुड़ा और दुष्ट शत्रुओं को शिक्षा देकर बड़े राज्य के सुख का भोग नित्य कीजिये॥९॥

पुनरिन्द्रकर्माण्युपदिश्यन्ते॥

फिर अगले मन्त्र में इन्द्र के कर्मों का उपदेश किया है।।

न ये दिवः पृथिव्या अन्तमापुर्न मायाभिर्धन्दां पर्यभूवन्। युजुं वज्रं वृष्भश्चंक्र इन्द्रो निज्योतिषा तमसो गा अंदुक्षत्॥ १०॥ रा

न। ये। दिवः। पृथिव्याः। अन्तेम्। आपुः। न। मायाभिः। धनुऽदाम्। पृर्ऽअभूवन्। युर्जम्। वर्ज्रम्। वृष्णः। चुक्रे। इन्द्रेः। निः। ज्योतिषा। तर्मसः। गाः। अधुक्षृत्॥ १०॥

पदार्थ:-(न) निषेधार्थे (ये) मेघावयवघनवदुदस्य्वाद्यः शत्रवः (दिव:) सूर्यप्रकाशस्येव न्यायबलपराक्रमदीप्तेः (**पृथिव्याः**) पृथिवीलोकस्यान्तरिक्षस्येव पृथिवीराज्यस्य। **पृथिवीत्यन्तरिक्षनामस्** पठितम्। (निघं०१.३) पदनामसु च। (निघं०५.३) अनेन सुखप्रोप्तिहेन्नुसार्वभौमराज्यं गृह्यते। (अन्तम्) लडर्थे (निषेधार्थे प्राप्नुवन्ति। सीमानम (आपु:) अत्र गर्जनान्धकारविद्युदादिवत्कपटधूर्त्तताधर्मादिभिः वृष्टिवद्राजनीतिम् (पर्घ्यभवन्) (धनदाम्) परितस्सर्वतस्तिरकुर्वन्ति (युजम्) यो युज्यते तम् अत्र र्विवप् प्र० (वज्रम्) छेदकत्वादिगुणयुक्तं किरणविद्युदाख्यादिशस्त्रादिकम्। वज्र इति वर्धनापसु पढितम्। (निघं०२.२०) (वृषभः) जलवद्वर्षयति शस्त्रसमृहम् (चक्रे) करोति। अत्र लर्डर्थे लिष्ट्। (इन्द्रः) सूर्यलोकसदृक् शूरवीरसभाध्यक्षो राजा (नि:) नितराम् (ज्योतिषा) प्रकाशवद्विद्यान्यायादिस्यद्गाणप्रकाशेन (तमसः) अन्धकारवदविद्याछलाधर्मव्यवहारस्य (गा:) पृथिवी इव मन आदीन्द्रियाण्णि (अधुक्षत्) प्रपिपूर्द्धि। अत्र लोडर्थे लुङ्॥१०॥

अन्वयः-हे सभेश! त्वं यथाऽस्ये वृत्रस्य ये घनादयोऽवयवा दिवः सूर्य्यप्रकाशस्य पृथिव्या अन्तरिक्षस्य चान्तं नापुर्मायाभिधेषदां न पर्यभूवन् तानुपरि वृषभ इन्द्रो युजं वज्रं प्रक्षिप्य ज्योतिषा तमस आवरणं निश्चक्रे गा अधुक्षत् तथा सृत्रुषु वर्त्तस्व॥१०॥

भावार्थ:-अत्र व्यचिक्तुमापमालङ्कारः। मनुष्यैः सूर्यस्य स्वभावप्रकाशसदृशानि कर्माणि कृत्वा सर्वशत्रवान्यायाऽन्ध्रकारं विनाश्य धर्मेण राज्यं सेवनीयम्। न हि मायाविनां कदाचित् स्थिरं राज्यं जायते तस्मात् स्वयम्मायािक्शिविद्वद्भिः शत्रुप्रयुक्तां मायां निवार्य्य राज्यकरणायोद्यतैर्भवितव्यमिति॥१०॥

७. अन्वये, आर्य भाषाया: पदार्थे च 'दस्ट्वादय: शत्रव:' अस्यार्थ: स्खलित:। सं०

पदार्थ:-हे सभा के स्वामी! आप जैसे इस मेघ के (ये) जो बादलादि अवयव (दिव:) सूर्य के प्रकाश और (पृथिव्या:) अन्तरिक्ष की (अन्तम्) मर्यादा को (नापु:) नहीं प्राप्त होते (मायाभि:) अपनी गर्जना अन्धकार और बिजली आदि माया से (धनदाम्) पृथिवी का (न) (पर्यभूवन्) अन्धि प्रकार आच्छादन नहीं कर सकते हैं, उन पर (वृषभः) वृष्टिकर्त्ता (इन्द्रः) छेदन करनेहारा सूर्य (युजम्) प्रहार करने योग्य (वज्रम्) किरण समूह को फेंक के (ज्योतिषा) अपने तेज प्रकाश से (तमसः) अन्धेरे को (निश्चक्रे) निकाल देता और (गाः) पृथिवी लोकों को वर्षा से (अधुक्षत्) पूर्ण कर देता है, वैसे जो शत्रुजन न्याय के प्रकाश और भूमि के राज्य के अन्त को न पावें, धन देने व्यक्ति सम्बन्धित का नाश न कर सकें, उन वैरियों पर अपनी प्रभुता विद्यादान से अविद्या की निवृत्ति और प्रजा को सुखों से पूर्ण किया कीजिये॥१०॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को योग्य है कि सूर्य के तेजरूप स्वभाव और प्रकाश के सदृश कर्म कर और सब शत्रुओं के अन्यस्टिष अन्धकार का नाश करके धर्म से राज्य का सेवन करें, क्योंकि छली कपटी लोगों का राज्य स्थित कभी नहीं होता। इससे सबको छलादि दोष रहित विद्वान् होके शत्रुओं की माया में न फँस के लिंग का प्रात्न करने के लिये अवश्य उद्योग करना चाहिये॥१॥

पुनस्तस्येन्द्रस्य कृत्यमुषदिश्यते॥

फिर अगले मन्त्र में इन्द्रिक कर्पों का उपदेश किया है।।

अनु स्वधामक्षरन्नापो अस्यावर्धत् पथ्य आ नाव्यानाम्।

सुधीचीनेन मनसा तमिन्द्र ओिषिष्ठेन हेर्ग्मनाहन्नभि द्यून्॥११॥

अर्नु। स्वधाम्। अक्षुरुन्। अर्पः। अस्य। अवर्धतः। मध्ये। आ। नाव्यानाम्। सुधीचीनेन। मर्नसा। तम्। इन्द्रेः। ओजिष्टेन। हन्मेना। अहुन्। अभि। द्यून्॥ १९॥

पदार्थ:-(अनु) वीप्सायाम् (स्वधाम्) अन्नमन्नं प्रति (अक्षरन्) संचलन्ति। अत्र सर्वत्र लडर्थं लङ्। (आपः) जलानि (अस्य) स्मृतस्य (अवर्धत) वर्धते (मध्ये) (आ) समन्तात् (नाव्यानाम्) नावा तार्थ्याणां नदी तडागसमुद्राणाम्। नौवयोध्ये (अष्टा०४.४.९१) इत्यादिना यत्। (सध्रीचीनेन) सहाञ्चति गच्छति तत्सध्य्रङ्, सध्युङ् एव सध्रीचीनं तेन। सहस्य सिधः। (अष्टा०६.३.९५) अनेन सध्यादेशः। विभाषाऽञ्चेरद्विस्त्रयम्। (अष्टा०५.४.८)^{१८} चौ। (अष्टा०६.३.१३८) इति दीर्घत्वम्। (मनसा) मनोवद्वेगेन (तम्) चूत्रम् (इन्द्रः) विद्युत् (ओजिष्ठेन) ओजो बलं तदितिशयितं तेन। ओज इति बलनामसु

१८. इत्यनेन प्वार्थे खः प्रत्ययः।

मण्डल-१। अनुवाक-७। सूक्त-३३

पठितम्। (निघं०२.९) (हन्मना) हन्ति येन तेन। अत्र कृतो बहुलिमिति। अन्येभ्योऽपि दृश्यन्त इति करणे मिनन् प्रत्ययः। न संयोगाद्वमन्तात्। (अष्टा०६.४.१३७) इत्यल्लोपो न। (अहन्) हन्ति (अभि) आभिमुख्ये (द्यून्) दीप्तान् दिवसान्॥११॥

अन्वय:-हे सेनाधिपते! यथाऽस्य वृत्रस्य शरीरं नाव्यानां मध्ये आवर्धत यथास्य अपः सूर्य्येण छित्रा अनुस्वधामक्षरन्। यथा चायं वृत्रः सध्रीचीनेनौजिष्ठेन हन्मना मनसाऽस्य सूर्य्यस्याभिद्यूनहर् हन्ति। यथेन्द्रो विद्युत् सध्रीचीनेनौजिष्ठेन बलेन तं हन्ति। अभिद्यून् प्रकाशान् च दर्श्यिति तथा नाव्याचां मध्ये नौकादिसाधनसहितं बलमावर्ध्यास्य युद्धस्य मध्ये प्राणादीनीन्द्रियाण्यनुस्वधां चालय सैन्येन तिममं शत्रुं हिन्धि न्यायादीन् प्रकाशय च॥११॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा विद्युता वृत्र हत्वा मिप्पतिता वृष्टिर्यवादिकमत्रं नदीतडागसमुद्रजलं च वर्धयित, तथैव मनुष्यैः सर्वेषां शुभगुणानां सर्वतो वर्षणन प्रजाः सुखियत्वा शत्रून् हत्वा विद्यासद्गुणान् प्रकाश्य सदा धर्मः सेवनीय इति॥११॥

पदार्थ: - हे सेना के अध्यक्ष! आप जैसे (अस्य) इस मेघ का शरीर (नाव्यानाम्) नदी, तड़ाग और समुद्रों में (आवर्द्धत) जैसे इस मेघ में स्थित हुए (आपः) जल सूर्य से छिन्न-भिन्न होकर (अनुस्वधाम्) अन्न- अन्न के प्रति (अक्षरन्) प्राप्त होते और जैसे यह मेघ (सधीचीनेन) साथ चलने वाले (ओजिष्ठेन) अत्यन्त बलयुक्त (हन्मना) हनन कर्न के साधन (मनसा) मन के सदृश वेग से इस सूर्य के (अभिद्यून्) प्रकाशयुक्त दिनों को (अहन्) अध्यक्तर से ढांप लेता और जैसे सूर्य के अपने साथ चलने वाले किरणसमूह के बल वा वेग से (तम्) उस्प्रेमिंघ को (अहन्) मारता और अपने (अभिद्यून्) प्रकाशयुक्त दिनों का प्रकाश करता है वैसे नदी वहाग और समुद्र के बीच नौका आदि साधन के सहित अपनी सेना को बढ़ा तथा इस युद्ध में प्राण आदि सब इन्द्रियों को अन्नादि पदार्थों से पृष्ट करके अपनी सेना से (तम्) उस शत्रु को (अहन्) मारा कीजिये॥११॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में कार्चक लुप्तोपमालङ्कार है। जैसे बिजुली ने मेघ मार कर पृथिवी पर गेरी हुई वृष्टि यव आदि अन्न को बढ़ाती और नदी तड़ाग समुद्र के जल को बढ़ाती है, वैसे ही मनुष्यों को चाहिये कि सब प्रकार शुभ गुणों की वर्षा से प्रजा सुख शत्रुओं का मारण और विद्या वृद्धि से उत्तम गुणों का प्रकाश की धर्म का सेवन सदैव करें॥११॥

पुनरिन्द्रस्य कृत्यमुपदिश्यते॥

फिर अगले मन्त्र में इन्द्र के कृत्य का उपदेश किया है॥

न्याविध्यदिलोबिशस्य दृळहा वि शृङ्गिर्णमभिनुच्छुष्णुमिन्द्रै:।

यावन्तरो मघवुन्यावदोजो वर्ज्रेण शत्रुमवधीः पृतुन्युम्॥१२॥

नि। अविध्यत्। इलीबिशस्य। दृळ्हा। वि। शृङ्गिणम्। अभिनत्। शुष्णम्। इन्द्रीः। यार्वत्। तरीः मुघुऽवन्। यार्वत्। ओर्जाः। वर्त्रीणा शर्त्रुम्। अवधीः। पृतुन्युम्॥ १२॥

पदार्थ:-(नि) निश्चितार्थे (अविध्यत्) विध्यति अत्र लड्थें लङ्। (इलीबिशस्य) पृथिव्या बिले गर्ते शेते तस्य वृत्रस्य। इलेति पृथिवीनामसु पठितम्। (निघं०१.१) इतमभीष्ट पदं पृषोदरादिना सिध्यति। इलाबिशस्य इलाबिलशयस्य (निरु०६.१९) (दृळ्हा) दृढानि दृद्धितानि वर्द्धितानि किरणशस्त्राणि (वि) विशेषार्थे (शृङ्गिणम्) शृङ्गवदुत्रतिवद्युद्गर्जनाकारणघनीभूतं मेघे (अभिनत्) भनित। अत्र लड्थें लङ्। (शुष्णम्) शोषणकर्त्तारम् (इन्द्रः) विद्युत् (यावत्) वक्ष्यमाणम् (तरः) तरित येन बलेन तत्। (इन्द्रः) विद्युत् (यावत्) वक्ष्यमाणम् (तरः) तरित येन बलेन तत्। (इन्द्रः) विद्युत् (यावत्) महाधनप्रद महाधनयुक्त वा (यावत्) वक्ष्यमाणम् (ओजः) पराक्रमः (वज्रेण) छेदकेन वेगयुक्तेन तापेन (शत्रुम्) वृत्रमिव शत्रुम् (अवधीः) हिन्धि। अत्र लोक्थें लुङ्। (पृतन्युम्) पृतनां सेनामिच्छतीव पृतन्यतीति पृतन्युस्तम्। कव्यध्वरपृतनस्यिचं लोप्। (अष्ट्र०७.४.३९) । । १२॥

अन्वय:-हे मघवन्! वीरस्त्वं यथेन्द्रः स्तनियत्नुरिलीबिशस्य वृत्रस्य सम्बन्धीनि दृढा दृढानि घनादीनि व्यभिनत् भिनत्ति स्वस्य यावत्तरो यावदोजोऽस्ति तेन सह गुजा वज्रेण शृङ्गणं शुष्णं न्यविध्यन् निहन्ति पृतन्युं वृत्रमिव शत्रुमवधीर्हन्ति तथा शत्रुषु चेष्ट्रस्व॥१९॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। यथा विद्युद् में घावयवान् भित्त्वा जलं वर्षयित्वा सर्वान् सुखयित, तथैव मनुष्यै: सुशिक्षितया सेनया खुष्टगुणान् द्वुष्टान्मनुष्याँश्चोपदेश्य प्रचण्डदण्डास्त्रवृष्टिभ्यां शत्रृत्रिवार्य प्रजायां सततं सुखानि वर्षणीयान्नीति॥१२॥

पदार्थ:-हे (मघवन्) अत्यन्त किर्वता महाँधनयुक्त वीर! आप जैसे (इन्द्रः) बिजुली आदि बलयुक्त सूर्य्यलोक (इलीबिशस्य) पृथिवी के गड़ों में सोने वाले मेघ के सम्बन्धी (दृळहा) दृढरूप बादलादिकों को (अभिनत्) छिन्न भिन्न करते और अपना (यावत्) जितना (तरः) बल और (यावत्) जितना (ओजः) पराक्रम है, अप से युक्त हुए (वज्रेण) किरण समूह से (शृङ्गिणम्) सींगों के समान ऊंचे (शृष्णम्) ऊपर चढ़ते हुए पदार्थों को सुखाने वाले मेघ को (न्यविध्यत्) नष्ट और (पृतन्युम्) सेना की इच्छा करते हुए (श्रृजुम्) शृद्ध के समान मेघ का (अवधीः) हनन करता है, वैसे शत्रुओं में चेष्टा किया करें॥१२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे बिजुली मेघ के अवयवों को छिन्न-भिन्न और जल को वर्ष कर सबको सुखयुक्त करती है, वैसे ही सब मनुष्यों को उचित है कि उत्तम-उत्तम

९. इत्यनेन पृतनाऽऽकारस्य लोप:। सं०

मण्डल-१। अनुवाक-७। सूक्त-३३

शिक्षायुक्त सेना से दुष्टगुण वाले दुष्ट मनुष्यों को उपदेश दे और शस्त्र-अस्त्र वृष्टि से शत्रुओं को निवारण कर प्रजा में सुखों की वृष्टि निरन्तर किया करें॥१२॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अभि सिध्मो अजिगादस्य शत्रून् वि तिग्मेन वृष्भेणा पुरोऽभेत्। सं वञ्जेणासृजद् वृत्रमिन्द्रः प्र स्वां मृतिमंतिरुच्छाशंदानः॥ १३॥

अभि। सिध्मः। अजिगात्। अस्य। शत्रून्। वि। तिग्मैन। वृष्यभेणी। पुर्रः अभेत्। सम्। वर्त्रेण। असृजत्। वृत्रम्। इन्द्रेः। प्रा स्वाम्। मृतिम्। अतिरत्। शाश्रीदानः॥ १३॥

पदार्थ:-(अभि) आभिमुख्ये (सिध्म:) सेवते प्राप्नोति विजयं भेरे गुणेन सः। अत्र षिधु गत्यामित्यस्मादौणादिको मक् प्रत्ययः। (अजिगात्) प्राप्नोति अत्र सर्जत्र लडथें लङ्। जिगातीति गतिकर्मसु पठितम्। (निघं०२.१४) (अस्य) स्तनयित्नोः (प्रजून्) मेघान्यवान् (वि) विशेषार्थे (तिग्मेन) तीक्ष्णेन तेजसा (वृषभेण) वृष्टिकरणोत्तमेन। अन्येषामिष इति दीर्घ)। (पुरः) पुराणि (अभेत्) भिनति (सम्) सम्यगर्थे (वज्रेण) गतिमता तेजसा (असृजत्) सृजति (वृत्रम्) मेघम् (इन्द्रः) सूर्य्यः (प्र) प्रकृष्टार्थे (स्वाम्) स्वकीयाम् (मितम्) ज्ञापनम् (अतिगत्त) सन्तरित्र प्लावयति अत्र विकरणव्यत्ययेन शः। (शाशदानः) अतिशयेन शीयते शातयति छिनित्र सः। १९४३।।

अन्वय:-यथास्य स्तनियत्नोः सिध्मी वेगस्तिभून वृषभेण शत्रून् व्यजिगाद् विजिगाति। अस्य पुरो व्यभेत् पुराणि विभिनत्ति, यथाऽयं शाश्राद्धम् इन्द्रो वृत्रं वज्रेण समसृजत् संसृजति संयुक्तं करोति, तथा मितं ज्ञापिकां स्वां रीतिं प्रातिरत् प्रकृष्टतया सन्तर्रति, तथैवानेन सेनाध्यक्षेण भवितव्यम्॥३३॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तीपमालङ्कारः। यथा विद्युन्मेघावयवाँस्तीक्ष्णवेगेन घनाकारं मेघं च छित्वा भूमौ निपात्य ज्ञाप्यति, तथैन सभासेनाध्यक्षो बुद्धिशरीरबलसेनावेगेन शत्रूँश्छित्वा शस्त्रप्रहारैर्निपात्य स्वसंमृत्नावान्येदिष्ति॥१३॥

पदार्थ:-जैसे (अस्य) इस सूर्य का (सिध्म:) विजय प्राप्त कराने वाला वेग (तिग्मेन) तीक्ष्ण (वृषभेण) वृष्टि कूरने वाले तेज से (शत्रून्) मेघ के अवयवों को (व्यजिगात्) प्राप्त होता और इस मेघ के (पुर:) नगरों के सदूश समुदायों को (व्यभेत्) भेदन करता है जैसे (शाशदान:) अत्यन्त छेदन करने

वाली (इन्द्र:) बिजुली (वृत्रम्) मेघ को (प्रातिरत्) अच्छे प्रकार नीचा करती हैं वैसे ही इस सेनाध्यक्ष के होना चाहिये॥१३॥२०

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे बिजुली मेघ के अवयव जावितों को तीक्ष्णवेग से छिन्न-भिन्न और भूमि में घेर कर उसको वश में करती है, वैसे ही सभासेनाध्यक्ष को चाहिये कि बुद्धि, शरीरबल वा सेना के वेग से शत्रुओं को छिन्न-भिन्न और शस्त्रों के अच्छे प्रकार प्रहार से पृथिवी पर गिरा कर अपनी सम्मति में लावें॥१३॥

पुनरिन्द्रकृत्यमुपदिश्यते॥

फिर अगले मन्त्र में इन्द्र के कृत्य का उपदेश किया है।

आवः कुर्त्सिमन्द्र यस्मिश्चाकन्त्रावो युध्यन्तं वृष्भं दर्शाद्यम्। शफच्युतो रेणुर्नक्षत द्यामुच्छ्वैत्रेयो नृषाह्याय तस्थौ॥ १४॥

आर्वः। कुत्स्मम्। इन्द्रः। यस्मिन्। चाकन्। प्रः। आवः। युध्यन्तम्। वृष्यभम्। दर्शःऽद्युम्। शृफऽच्युतः। रेणुः। नुक्षुत्। द्याम्। उत्। श्वैत्रेयः। नृऽसह्यायः। तस्थौ॥ १४॥

पदार्थ:-(आव:) रक्षेत्। अत्र लिङ्थें लुङ्। (कुल्सम्) जुज्ञम्। कुत्स इति वज्रनाममु पठितम्। (निघं०२.२०)। सायणाचार्येणात्र भ्रान्त्या कुत्सग्तिस्त्रऋषिगृहीतोऽसम्भवादिदं व्याख्यानमशुद्धम्। (इन्द्र) सुशील सभाध्यक्ष (यस्मिन्) युद्धे (चाकन्) म्वङ्कन्यते काम्यत इति चाकन्। 'कनी दीपिकान्तिगतिषु' इत्यस्य यङ्लुगन्तस्य विक्वन्तं रूषम्। वाच्छन्दिस सर्वे विधयो भवन्ति इति नुगभावः। दीर्घोऽिकत (अष्टा०७.४.८३) इत्यभ्यसम्भ दीर्घत्वं च। सायणाचार्येणेदं भ्रमतो मित्संज्ञकस्य ण्यन्तस्य च कनीधातो रूपमशुद्धं व्याख्यातम् (प्र) प्रकृष्टार्थे (आवः) प्राणिनः सुखे प्रवेशयेत्। अत्र लिङ्थें लुङ्। (युध्यन्तम्) युद्धे प्रवतिमानम् (वृषभम्) प्रवलं (दशद्युम्) दशसु दिक्षु द्योतते तम् (शफ्चयुतः) शफेषु गवादिखुरविहेषु च्युतः पतित आसिक्तो यः सः (रेणुः) धूलिः (नक्षत) प्राप्नोति। अत्र अडभावो व्यत्ययेनात्मनेषदम्। 'णक्ष गतो' इति प्राप्त्यर्थस्य रूपम् (द्याम्) प्रकाशसमूहं द्युलोकम् (उत्) उत्कृष्टार्थे (श्रेत्रेयः) विश्रया आवरणकर्त्या भूमेरपत्यं श्रेत्रेयः (नृसाह्याय) नृणां सहायाय। अत्र अन्येषामिण इति दीर्घः। (तस्यौ) तिष्ठत्। अत्र लिङ्थें लिट्॥१४॥

अन्वयः हे इन्द्र! भवता यथा सूर्यलोको यस्मिन् युद्धे युध्यन्तं वृषभं दशद्युं वृत्रं प्रति कुत्सं वज्रं प्रहृत्य जगत्प्राव्यः श्रेत्रयो मेघः शफच्युतो रेणुश्च द्यां नक्षत प्राप्नोति नृषाह्याय चाकन्नुत्तस्थौ सुखान्यावः प्रापयित, त्रिया संस्थिन राज्ञा प्रयतितव्यम्॥१४॥

२०. <mark>(बज्रेण)</mark> तेज से <mark>(समसृजत्)</mark> मिलाता है, तथा <mark>(स्वाम्)</mark> अपनी <mark>(मितम्)</mark> ज्ञान से। (इतना पाठ छूट गया है। सं०

मण्डल-१। अनुवाक-७। सूक्त-३३

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। यथा सूर्य: स्विकरणैर्वृत्रं भूमौ निपात्य सर्वान्प्राणिन: सुखयित, तथा हे सेनाध्यक्ष! त्वमिप सेनाशिक्षाशस्त्रबलेन शत्रूनस्तव्यस्तात्रधो निपात्य सितां प्रजा रक्षेति॥१४॥

पदार्थ:-हे इन्द्र सभापते! जैसे सूर्यलोक (यस्मिन्) जिस युद्ध में (युध्यन्त्रम्) युद्ध करते हुए (वृषभम्) वृष्टि के कराने वाले (दशद्युम्) दश दिशाओं में प्रकाशमान मेघ के प्रति (कृत्सम्) वर्ष मारके जगत् की (प्रावः) रक्षा करता है और (श्रेत्रेयः) भूमि का पुत्र मेघ (शफच्युतः) मी आदि पशुओं के खुरों के चिह्नों में गिरी हुई (रेणुः) धूलि (द्याम्) प्रकाशयुक्त लोक को (नृक्षतः) प्राप्त होती है, उसको (नृषाह्याय) मनुष्यों के लिये (चाकन्) वह कान्ति वाला मेघ (उत्तस्था) उठता और सुखें को देता है, वैसे सभा सहित आपको प्रजा के पालन में यत्न करना चाहिये॥१४॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्यत्वीक अपने किरणों से पृथिवी में मेघ को गिरा कर सब प्राणियों को सुखयुक्त करता है, वैसे ही हे सभाध्यक्ष र्तू भी सेना, शिक्षा और शस्त्र बल से शत्रुओं को अस्त-व्यस्त कर नीचे गिरा के प्रजा की स्क्षा निरन्तुर किया कर॥१४॥

पुनिरन्द्रस्य किं कृत्यमित्युपिदश्यमे॥

फिर इन्द्र का क्या कृत्य है, इस विषय (का उपदेश) अगले मन्त्र में किया है।।

आवः शमं वृष्भं तुग्र्यांसु क्षेत्रजेषे प्रिविञ्ज्विन्यं गाम्। ज्योक् चिद्रत्रं तस्थिवांसो अक्रञ्जूयताम्यस् वेदनाकः॥१५॥३॥

आर्वः। शर्मम्। वृष्भम्। तुक्र्यापुः। क्षित्रकेषे। मुघऽवन्। श्चित्र्यम्। गाम्। ज्योक्। चित्। अत्री। तुस्थिऽवांसेः। अक्रन्। शृत्रुऽयुताम्। अर्थरा। वेदेना। अक् इत्यंकः॥१५॥

पदार्थ:-(आव:) प्राप्त (शमम्) शाम्यन्ति येन तम् (वृषभम्) वर्षणशीलं मेघम् (तुष्र्यासु) अप्सु हिंसनक्रियासु (क्षेत्रजेषे) क्षेत्रमन्नादिसहितं भूमिराज्यं जेषते प्रापयित तस्मै। अत्र अन्तर्गतो णयर्थः क्विबबुपपदसमासश्च। (प्रवन्) महाभन सभाध्यक्ष (श्वित्र्यम्) श्वित्रायां भूमेरावरणे साधु (गाम्) ज्योतिः पृथिवीं वा (ज्योक्) निस्ता (जित्) उपमार्थे (अत्र) अप्सु भूमौ वा (तस्थिवांसः) तिष्ठन्तः (अक्रन्) कुर्वन्ति। मन्त्रे घ्रमहरणश् (अष्टा०२.४.८०) इत्यादिना च च्लेर्लुक्। (शत्रूयताम्) शत्रुरिवाचरताम् (अधरा) नीचामि (वदना) वदनानि। अत्रोभयत्र शेष्ठजन्दिस बहुलम् (अष्टा०६.१.७०) इति शेर्ल्लीपः। (अकः) कर्गोति। अत्र लड्थें लुङ्॥१५॥

अन्वय:-हें मघवन्! सभेश त्वं यथा सूर्यः क्षेत्रजेषे श्वित्र्यं वृषभं तुग्रचास्वप्सु गां किर्णप्रमूहसावः प्रवेशयति शत्रूयतां तेषां मेघावयवानामधरा नीचानि वेदना वेदनानि पापफलानि दुःखानि

तस्थिवांसः किरणाश्छेदनं ज्योगक्रन्। अत्र भूमौ निपातनमकः क्षेत्रजेषे आसु क्रियासु श्वित्र्यं वृषि शममावः शान्तिं प्रापयति गां पृथिवीमावः दुःखान्यकश्चिदिव शत्रूत्रिवार्य प्रजाः सदा सुखय॥१५॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। यथा सूर्य्योऽन्तरिक्षान्मेघजलं भूमौ निपाल प्राणिभ्यः) शमं सुखं ददाति, तथैव सेनाध्यक्षादयो मनुष्या दुष्टान् शत्रुन् बध्वा धार्मिकान् पालयित्व स्ततं सुखानि भुञ्जीरित्रिति॥१५॥

पूर्वसूक्तार्थेन सहात्र सूर्यमेघयुद्धार्थवर्णनेनोपमानोपमेयालङ्कारेष मोत्रुष्येभ्ये युद्धविद्योपदेशार्थस्यैतत्सूक्तार्थस्य सङ्गतिरस्तीति बोध्यम्॥

इति तृतीयो वर्गस्त्रयस्त्रिंशं सूक्तं च समाप्तम्॥ ३ 📶

पदार्थ:-हे (मघवन्) बड़े धन के हेतु सभा के स्वामी! अप् जैसे पूर्वजीक (क्षेत्रजेषे) अन्नादि सिहत पृथिवी राज्य को प्राप्त कराने के लिये (श्वित्र्यम्) भूमि के ढीफ लेने में कुशल (वृषभम्) वर्षण स्वभाव वाले मेघ के (तुम्र्यासु) जलों में (गाम्) किरण समूह को (आवः) प्रवेश करता हुआ (शत्रूयताम्) शत्रु के समान आचरण करने वाले उन मेघावयवीं के (अवरा) नीचे के (वेदना) दुष्टों को वेदनारूप पापफलों को (तिस्थवांसः) स्थापित हुए किएणे क्ट्रेंस (अयोक्) निरन्तर (अक्रन्) करते हैं (अत्र) और फिर इस भूमि में वह मेघ (अकः) गमन करता है उपके (चित्) समान शत्रुओं का निवारण और प्रजा को सुख दिया कीजिये॥१५॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है भीसे सूर्य अन्तरिक्ष से मेघ के जल को भूमि पर गिरा के सब प्राणियों के लिये सुख देता है, वैसे सेनाध्यक्षाद्धि लोग दुष्ट मनुष्य शत्रुओं को बांधकर धार्मिक मनुष्यों की रक्षा करके सुखों का भोग करें और करावें॥१५॥

इस सूक्त में सूर्य मेघ के युद्धार्थ के वर्णन तथा उपमान उपमेय अलङ्कार वा मनुष्यों के युद्धविद्या के उपदेश करने से पिछले सूक्तार्थ के साथ इस सूक्तार्थ की सङ्गति जाननी चाहिये॥

यह त्रीसरा वर्ग और तेतीसवां सूक्त समाप्त हुआ॥३३॥

अथास्य द्वादशर्चस्य चतुस्त्रिंशस्य सूक्तस्य हिरण्यस्तूप आङ्गिरस ऋषिः। अश्विनौ देवते। १, ६ विराड् जगती। २,३,७,८, निचृज्जगती। ५,१०,११ जगती छन्दः। निषादः स्वरः। ४ भुरिक

त्रिष्टुप्। १२ निचृत्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। ९ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः।

तत्रादिमेन मन्त्रेणाश्चिदृष्टान्तेन शिल्पिगुणा उपदिश्यन्ते।।

अब चौतीसवें सूक्त का आरम्भ है। उसके पहिले मन्त्र में अश्वि के दृष्टान्त से कारी<mark>गरीं के पुण</mark>ों का उपदेश किया है।।

त्रिश्चिन्नो अद्या भवतं नवेदसा विभुवाः यामे उत रातिरश्चिना। युवोहि युन्त्रं हिम्येव वासंसोऽभ्यायंसेन्या भवतं मनीषिभिः॥

त्रिः। चित्। नुः। अद्या भवतम्। नुवेदुसा। विऽभुः। वाम्। यार्पः (उत्त। रातिः। अश्विना। युवोः। हि। युन्त्रम्। हिम्याऽईव। वासंसः। अभिऽआयंसेन्यां। भवतम्। मुनीषिऽभिः॥श्य

पदार्थ:-(त्रि:) त्रिवारम् (चित्) एव (नः) अस्माकम् (अद्य) अस्मित्रहिन। निपातस्य च इति दीर्घः। (भवतम्) (नवेदसा) न विद्यते वेदितव्यं ज्ञात्व्व्यप्वशिष्ठं यथोस्तौ विद्वांसौ। नवेदा इति मेधाविनामसु पिठतम्। (निघं०३.१५) (विभुः) सर्वमार्णव्यपन्धात्तः (वाम्) युवयोः (यामः) याति गच्छिति येन स यामो रथः (उत्त) अप्यर्थे (रातिः) चेगादीनां दानम् (अश्विना) स्वप्रकाशेन व्यापिनौ सूर्य्याचन्द्रमसाविव सर्वविद्याव्यापिनौ (युवोः) युव्याः। अत्र ब्रा छन्दिस सर्वे विधयो भवन्ति इति ओसि च (अष्टा०७.३.१०४) इत्येकारादेशो न भवित (हि) प्रतः (यन्त्रम्) यन्त्र्यते यन्त्रयन्ति संकोचयन्ति विलिखन्ति चालयन्ति वा येन तत् (हिम्बाइवे) हेम्ब्रुतीं भवा महाशीतयुक्ता रात्रय इव। भवेष्ठज्यि (अष्टा०४.४.११०) इति यत्। हिम्येति रात्रिमामसु पिठतम्। (निघं०१.७) हन्तेहिं च। (उणा०३.११६) इति हन् धातोर्मक् ह्यादेशश्च। (वाससः) वसन्ति यस्मिन् तद्वासो दिनं तस्य मध्ये। दिवस उपलक्षणेन रात्रिरिप ग्राह्या (अभ्यायंसेन्या) आभिमुख्यत्या समन्तात् यम्येते गृहोते यौ तौ। अत्र सुपां सुलुग्० इत्याकारादेशः। अभ्याङ्पूर्वाद्वे प्रमधातोर्बाह्वलकादौणादिकः सेन्यः प्रत्ययः। (भवतम्) (मनीषिभः) मेधाविभिविद्विद्वदः शिल्पिभः, पनीषिति मेधाविनामसु पिठतम्। (निघं०३.१५)॥१॥

अन्वय:-हे परस्यरपुप्रभारिणावभ्यायंसेन्या नवेदसाविश्वनौ! युवां मनीिषिभि: सह दिनै: सह सखायौ शिल्पिनौ हिम्या इव नाऽस्माकमद्यास्मिन् वर्त्तमानेऽिह शिल्पकार्यसाधकौ भवतं हि यतो वयं युवो: सकाशाद् यन्त्रं संसाध्य यानसमूहं चालयेम, येन नोऽस्माकं वाससो राति: प्राप्येत उतािप वां युवयो: सन्नाशाद् विभूर्थामो रथश्च प्राप्त: सन्नस्मान् देशान्तरं सुखेन त्रिस्त्रिवारं गमयेदतो युष्मत्सङ्गं कुर्याम। अ॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। मनुष्यैर्यथा रात्रिदिवसयो: क्रमेण सङ्गतिर्वर्तते तथैव यन्त्रकलानां क्रमेण सङ्गतिः कार्या, यथा विद्वांस: पृथिवीविकाराणां यानकलाकीलयन्त्रादिकं रचयित्वा तेषां भ्रामणेन

तत्र जलाग्न्यादिसम्प्रयोगेण भूसमुद्राकाशगमनार्थानि यानानि साध्नुवन्ति, तथैव मयापि साधनीर्यानि नैवैतद्विद्यया विना दारिद्र्यक्षयः श्रीवृद्धिश्च कस्यापि सम्भवति तस्मादेतद्विद्यायां सर्वेर्मनुष्यैरत्यन्तः प्रयत्नः कर्तव्यः। यथा मनुष्या हेमन्तर्तो शरीरे वस्त्राणि सम्बध्नन्ति, तथैव सर्वतः कीलयन्त्रकलादिषः सम्बन्धनीयानीति॥१॥

पदार्थ: - हे परस्पर उपकारक और मित्र (अभ्यायंसेन्या) साक्षात् कार्व्यसिद्धि के लिये मिले हुए (नवेदसा) सब विद्याओं के जानने वाले (अश्विना) अपने प्रकाश से व्याप्त सूर्व्य चिद्मा के समान सब विद्याओं में व्यापी कारीगर लोगो! आप (मनीषिभिः) सब विद्वानों के साथ द्विनी के साथ (हिम्याइव) शीतकाल की रात्रियों के समान (नः) हम लोगों के (अद्य) इस वर्तमान दिवस में शिल्पकार्व्य के साधक (भवतम्) हूजिये (हि) जिस कारण (युवोः) आपके सकाश से (यन्त्रम्) किलायन्त्र को सिद्ध कर यानसमूह को चलाया करें जिससे (नः) हम लोगों को (वाससः) एत्रि, दिन, के बीच (रातिः) वेगादि गुणों से दूर देश को प्राप्त होवे (उत) और (वाम्) आपके सकाश से (विभुः) सब मार्ग में चलने वाला (यामः) रथ प्राप्त हुआ हम लोगों को देशान्तर को सुख से (त्रिः) तीन ब्रार पहुंचावे, इसिलये आप का सङ्ग हम लोग करते हैं॥१॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहियों जैसे रात्रि वा दिन की क्रम से सङ्गति होती है, वैसे सङ्गति करें जैसे विद्वान् लोग पृथिवी विकारों के यान, कला, कील और यन्त्रादिकों को रचकर उनके घुमाने और उसमें अग्नयादि के स्थिगि से भूमि समुद्र वा आकाश में जाने-आने के लिये यानों को सिद्ध करते हैं। वैसे ही मुझ को भी विमानिद्ध यान सिद्ध करने चाहिये। क्योंकि इस विद्या के विना किसी के दारिद्र्य का नाश वा लक्ष्मी की कृद्धि कभी नहीं हो सकती। इससे इस विद्या में सब मनुष्यों को अत्यन्त प्रयत्न करना चाहिये। जैसे मनुष्य लोग हेमन्त ऋतु में वस्त्रों को अच्छे प्रकार धारण करते हैं, वैसे ही सब प्रकार कील कला यहादिकों से यानों को संयुक्त रखना चाहिये॥१॥

मुस्स्ताभ्यां तत्र कि कि साधनीयमित्युपदिश्यते॥

फिर उनसे क्या-क्या सिद्ध करूना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

त्रयः प्वयो मधुवाहिने उर्थे सोमस्य वेनामनु विश्व इद्विदः।

त्रयः स्कृष्भासः स्कर्भितासं आरभे त्रिर्नक्तं याथस्त्रिर्वश्चिना दिवा॥२॥

त्रयः <u>प्</u>वयः मुधुऽवाहीन। रथे। सोमस्या वेनाम्। अर्नु। विश्वे। इत्। विदुः। त्रयः। स्कम्भासः। स्कभितासः/आऽस्मे। त्रिः। नक्तम्। याथः। त्रिः। ऊँ इति। अश्विना। दिवां॥२॥

२१. यह अर्थ संस्कृत पदार्थ में नहीं है। सं०

मण्डल-१। अनुवाक-७। सूक्त-३४

पदार्थ:-(त्रयः) त्रित्वसंख्याविशिष्टाः (पवयः) वज्रतुल्यानि चालनार्थानि कलाचक्राणि। पविरिति वज्रनामसु पठितम्। (निघं०२.२०) (मधुवाहने) मधुरगुणयुक्तानां द्रव्याणां वेगानां वा वहिनं प्रापणं यस्मात् तस्मिन् (रथे) रमन्ते येन यानेन तस्मिन् (सोमस्य) ऐश्वर्यस्य चन्द्रलोकस्यू वा। अत्र षु प्रसवैश्वर्ययोरित्यस्य प्रयोगः। (वेनाम्) कमनीयां यात्रां। धाप्वस्यज्यितभ्यो नृः। (रणा०३.६) इत्यजधातोर्नः प्रत्ययः। १२ (अनु) आनुकूल्ये (विश्वे) सर्वे (इत्) एव (विद्वः) जानन्ति (त्रयः) त्रित्वसंख्याकाः (स्कम्भासः) धारणार्थाः स्तम्भविशेषाः (स्किभतासः) स्थाप्रिताः। अत्राभयत्र आज्जसेरसुग् (अष्टा०७.१.५०) इत्यसुगागमः। (आरभे) आरब्धव्ये प्रमनागमने (त्रिः) त्रिवारम् (नक्तम्) रात्रौ। नक्तिमिति रात्रिनामसु पठितम्। (निघं०१.७) (याथः) प्राप्तिम् (त्रिः) त्रिवारम् (ऊँ) वितर्के (अश्विना) अश्वनाविव सकलशिलपविद्याव्यापिनौ। अत्र सुणं सुलुग् इत्याकारादेशः। (दिवा) दिवसे॥२॥

अन्वय:-हे अश्विनाविवसमग्रशिल्पविद्याव्यापिनौ पुरुष्ट्री! युवों यस्मिन् मधुवाहने रथे त्रयः पवयस्त्रयः स्कम्भासः स्कभितासो भवन्ति तस्मिन् स्थित्व त्रिर्नक्ते रुष्ट्री त्रिर्दिवा दिवसे चाभीष्टं स्थानं याथो गच्छथस्तत्रापि युवाभ्यां विना कार्य्यसिद्धिनं जायते। पनुष्या भस्य मध्ये स्थित्वा सोमस्य चन्द्रस्य वा वेनां कमनीयां कान्तिं सद्यः प्राप्नुवन्ति। यं चार्षे विश्वेदेवा इदेव विदुर्जानन्ति तमु रथं संसाध्य यथावदभीष्टं क्षिप्रं प्राप्नुतम्॥२॥

भावार्थ:-भूमिसमुद्रान्तरिक्षगमनं चिकीषुँभिर्मनुध्यैस्त्रिचक्राग्न्यागारस्तम्भयुक्तानि विमानादीनि यानानि रचयित्वा तत्र स्थित्वैकस्मिन् दिन् एकस्यां प्रभ्रौ भूगोलसमुद्रान्तरिक्षमार्गेण त्रिवारं गन्तुं शक्येरन्। तत्रेदृशास्त्रयस्स्कम्भा रचनीया, यत्र सर्वे कलाव्यवाः काष्ठलोष्ठादिस्तम्भावयवा वा स्थितिं प्राप्नुयुः। तत्राग्निजले सम्प्रयोज्य चालनीयाति। नेतिर्विना कश्चित्सद्यो भूमौ समुद्रेऽन्तरिक्षे वा गन्तुमागन्तुं च शक्नोति, तस्मादेतेषां सिद्धये विश्लिष्टाः प्रयत्नारं कार्या इति॥२॥

पदार्थ:-हे अश्व अर्थात् क्यु और बिजुली के समान सम्पूर्ण शिल्प विद्याओं को यथावत् जानने वाले विद्वान् लोगो! आप जिस (पश्चाहने) मधुर गुणयुक्त द्रव्यों की प्राप्ति होने के हेतु (रथे) विमान में (त्रयः) तीन (पवयः) वज्र के स्मान कला घूमने के चक्र और (त्रयः) तीन (स्कम्भासः) बन्धन के लिये खंभ (स्किभितासः) स्थापित और धारण किये जाते हैं, उसमें स्थित अग्नि और जल के समान कार्य्यसिद्धि कृष्क (त्रिः) तीन वार (नक्तम्) रात्रि और (त्रिः) तीन वार (दिवा) दिन में इच्छा किये हुए स्थान को (अपयार्थः) पहुंचो, वहाँ भी आपके विना कार्य्यसिद्धि कदापि नहीं होती। मनुष्य लोग जिसमें

२२. अजेळ्येघेञपो:। अष्टा०२.४.५६ इत्यनेन चाज्धातो: स्थाने व्यादेश:। सं०

बैठ के (सोमस्य) ऐश्वर्य की (वेनाम्) प्राप्ति को करती हुई कामना वा चन्द्रलोक की कान्ति को प्राप्ते होते और जिसको (आरभे) आरम्भ करने योग्य गमनागमन व्यवहार में (विश्वे) सब विद्वान (इत्) ही (विदुः) जानते हैं, उस (ऊँ) अद्भुत रथ को ठीक-ठीक सिद्ध कर अभीष्ट स्थानों में शीघ्र जाया आया करो॥२॥

भावार्थ:-भूमि समुद्र और अन्तरिक्ष में जाने की इच्छा करने वाले मनुष्यों को योग्य है कि तीन-तीन चक्र युक्त अग्नि के घर और स्तम्भयुक्त यान को रच कर उसमें बैठ कर एक दिन-रात में भूगोल, समुद्र, अन्तरिक्ष मार्ग से तीन-तीन वार जाने को समर्थ हो सकें, उस यान में इस प्रकार के खेंभ रचने चाहिये कि जिसमें कलावयव अर्थात् काष्ठ, लोष्ठ आदि खंभों के अवयव स्थित हों, फिर वहाँ अग्नि जल का सम्प्रयोग कर चलावें। क्योंकि इनके विना कोई मनुष्य शीघ्र भूमि, समुद्रे, अन्तरिक्ष में जाने-आने को समर्थ नहीं हो सकता। इस से इनकी सिद्धि के लिये सब मनुष्यों को बड़े-बड़े यत्न अवश्य करने चाहियें॥२॥

पुनस्ताभ्यां कृतैर्यानै: किं किं साधनीयमित्युषिद्वश्रुवत॥

फिर उनसे सिद्ध किये हुए यानों से क्या-क्या सिद्ध क्रिना चोहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

समाने अहुन् त्रिरंवद्यगोहना त्रिर्द्य युज्ञं पर्धना सिमिक्षतम्। त्रिर्वाजंवतीरिषो अश्विना युवं दोषा/अस्मभ्यमुष्ट्रसंश्च पिन्वतम्॥३॥

समाने। अहंन्। त्रिः। अवद्युऽगोहुनाः जिः। अद्युः युज्ञम्। मधुना। मिमिक्षुतम्। त्रिः। वार्जंऽवतीः। इषंः। अश्चिना। युवम्। दोषाः। अस्मभ्यंम्। उषस्रं। चा पिन्तुतम्॥३॥

पदार्थ:-(समाने) एकस्मित्त् (अहन्) अहनि दिने (त्रिः) त्रिवारम् (अवद्यगोहना) अवद्यानि गर्ह्याणि निन्दितानि दुःखानि गृह्व आच्छाद्यतो दूरीकुरुतस्तौ। अवद्यपण्य० (अष्टा०३.१.१०१) इत्ययं निन्दार्थे निपातः। ण्यन्ताद् गृहू संबरण् इत्यस्माद्धातोः ण्यासश्रन्थो युच्। (अष्टा०३.३.१०७) इति युच्। ऊदुण्धाया गोहः। (अष्टा०६.४८९) इत्यूदादेशे प्राप्ते। वा च्छन्दिस सर्वे विधयो भवन्ति इत्यस्य निषेधः। सुपां सुलुग्० इत्याकारादेशस्च (त्रिः) त्रिवारम् (अद्य) अस्मित्रहिन (यज्ञम्) ग्राह्यशिल्पादिसिद्धिकरम् (मधुना) जलेन। मध्वत्युदकनामसु पठितम्। (निघं०१.१२) (मिमिक्षतम्) मेढुमिच्छतम् (त्रिः) त्रिवारम् (वाजवतीः) प्रशस्ता त्राजा वगादयो गुणा विद्यन्ते यासु नौकादिषु ताः। अत्र प्रशंसार्थे मतुप्। (इषः) या इष्यन्ते ता इष्ट्रसुक्रसाधिकाः (अश्वना) वहिजलवद्यानसिद्धिं सम्पाद्य प्रेरकचालकावध्वर्यू। अश्वनावध्वर्यू। (श०बा०११.१२.१७) (युवम्) युवाम्। प्रथमायाश्च द्विवचने भाषायाम्। (अष्टा०७.२.८८) इत्याकारादेशनिषेधः। (दोषाः) रात्रिषु। अत्र सुपां सुलुग्० इति सुब्व्यत्ययः। दोषेति रात्रिनामसु पठितम्।

मण्डल-१। अनुवाक-७। सूक्त-३४

(निघं०१.७) (अस्मभ्यम्) शिल्पक्रियाकारिभ्यः (उषसः) प्रापितप्रकाशेषु दिवसेषु। अत्रापि सुब्व्यत्ययः। उष इति पदनामसु पठितम्। (निघं०५.५) (च) समुच्चये (पिन्वतम्) प्रीत्या सेवेथाम्॥३॥

अन्वय:-हे अश्विनावद्यगोहनाध्वर्यू! युवं युवां समानेऽहिन मधुना यज्ञं त्रिर्मिश्चित्रतमहोस्य यं दोषा उषसः त्रिर्यानानि पिन्वतं वाजवतीरिषश्च त्रिः पिन्वतम्॥३॥

भावार्थ:-शिल्पविद्याविद्विद्वांसो यन्त्रैर्यानं चालियताश्च प्रतिदिनं शिल्पविद्या यानानि निष्पाद्य त्रिधा शरीरात्ममनः सुखाय धनाद्यनेकोत्तमान् पदार्थानर्जियत्वा सर्वान् प्राणिनः स्विच्यन्तु। येनाहोस्त्रे सर्वे पुरुषार्थेनेमां विद्यामुत्रीयालस्यं त्यक्त्वोत्साहेन तद्रक्षणे नित्यं प्रयतेरिति॥३॥

पदार्थ:-हे (अश्वना) अग्नि जल के समान यानों को सिद्ध करके प्रेरणा करने और चलाने तथा (अवद्यगोहना) निन्दित दुष्ट कर्मों को दूर करने वाले विद्वान् मनुष्यों (पुवम्) तुम दोनों (समाने) एक (अहन्) दिन में (मधुना) जल से (यज्ञम्) ग्रहण करने योग्य शिल्पाहि विद्या सिद्धि करने वाले यज्ञ को (त्रि:) तीन वार (मिमिक्षितम्) सींचने की इच्छा करो और (अद्य) आज (अस्मभ्यम्) शिल्पिक्रियाओं को सिद्ध करने कराने वाले हम लोगों के लिये (दोषा:) रात्रिक्षे और (उपसः) प्रकाश को प्राप्त हुए दिनों में (त्रि:) तीन वार यानों का (पिन्वतम्) सेवन करो और (वाज्वनाः) उत्तम-उत्तम सुखदायक (इष:) इच्छा सिद्धि करने वाले नौकादि यानों को (त्रि:) तीन वार (पिन्वतम्) प्रीति से सेवन करो॥३॥

भावार्थ:-शिल्पविद्या को जानने और क्लियेन्त्रों से यान को चलाने वाले प्रतिदिन शिल्पविद्या से यानों को सिद्ध कर तीन प्रकार अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और मानसिक सुख के लिये धन आदि अनेक उत्तम-उत्तम पदार्थों को इकट्ठा कर सब प्राणिकों को सुखयुक्त करें, जिससे दिन-रात में सब लोग अपने पुरुषार्थ से इस विद्या की उन्नति कर और आलस्य को छोड़ के उत्साह से उसकी रक्षा में निरन्तर प्रयत्न करें॥३॥

पुनस्ताभ्यां कि कार्यं कर्त्तव्यमित्युपदिश्यते॥

फिर उनसे क्या कार्य करमा चाहिय, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

त्रिर्वुर्तिर्यातुं त्रिर्मु विते जुमै त्रिः सुप्राव्ये त्रेधेव शिक्षतम्।

त्रिर्नान्द्यं व्रहतमिश्वना युवं त्रिः पृक्षो अस्मे अक्षरेव पिन्वतम्॥४॥

त्रिः। कुर्तिः। यातम्। त्रिः। अनुंऽव्रते। जने। त्रिः। सुप्रुऽअव्ये। त्रेधाऽईव। शिक्षृतम्। त्रिः। नान्द्यम्। वहुतम्। अश्विना। कुन्मन्तिः। पृक्षः। अस्मे इति। अक्षरांऽइव। पिन्वतम्॥४॥

पदार्थ:-(त्रिः) त्रिवारम् (वर्त्तिः) वर्तन्ते व्यवहरन्ति यस्मिन् मार्गे। हिपिषिरुहिवृति० (उप्रार्विक १२४)। इत्यधिकरण इप्रत्यय:। अत्र सुपां सुलुग्० इति द्वितीयैकवचनस्य स्थाने सोरादेश:। (थातम्) प्रापयतम् (त्रिः) त्रिवारम् (अनुव्रते) अनुकूलं सत्याचरणं व्रतं यस्य तस्मिन् (जने) यो जनयति

बुद्धिं तस्मिन्। अत्र पचाद्यच्। (त्रिः) त्रिवारम् (सुप्राव्ये) सुष्ठु प्रकृष्टमिवतुं प्रवेशितुं योग्यस्तस्मिन् अत्र वाच्छन्दिस सर्वे॰ इति वृद्धिनिरोधः। (त्रेधेव) यथा त्रिभिः पाठनज्ञापनहस्तिक्रयादिभिः प्रकारैस्तथा। इवेन सह नित्यसमासो विभक्त्यलोपः पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वं च। (अष्टा॰वा॰२.१.४) अत्र सायणांवार्य्यणे त्रेधैव त्रिभिरेवप्रकारैरित्येवशब्दोऽशुद्धो व्याख्यातः, पदपाठ इव शब्दस्य प्रत्यक्षत्वात्। (शिक्षतम्) सुशिक्षया विद्यां ग्राहयतम् (त्रिः) त्रिवारम् (नान्द्यम्) नन्दियतुं समर्धियतुं योग्यं शिल्पज्ञानम् (वहतम्) प्रापयतम् (अश्विना) विद्यादाताग्रहीतारावध्वर्यू (युवम्) युवाम् (त्रिः) त्रिवारम् (पृक्षः) पृङ्कते येत तत्। अत्र पृचीधातोः सर्वधातुभ्योऽसुन्। बाहुलकात्सुडागमश्च। (अस्मे) अस्मान् (अश्वरेष) यथान्यक्षराणि जलानि तथा। अत्र शेश्छन्दिस इति शेर्लोपः। अक्षरिमत्युदकनामसु पठितप्रा (निघं०१.१२) (पिन्वतम्) प्रापयतम्॥४॥

अन्वय:-हे अश्विना! युवं युवामस्मे अस्माकं वर्तिर्मार्गं त्रियत्तं तथा सुप्राव्येऽनुव्रते जने त्रिर्यातं प्रापयतम्, शिष्याय त्रेधा हस्तिक्रयारक्षणचालनज्ञानाढ्यां शिक्षत्रभूमप्क इवास्मान् त्रिः शिक्षतमस्मान्नान्द्यं त्रिर्वहतं त्रिवारं प्रापयतम् यथा नदीतडागसमुद्रादयो जलाशया स्वास्य सक्रोशादक्षराणि जलानि व्याप्नुवन्ति तथाऽस्मान् पृक्षोविद्या सम्पर्कं त्रिः पिन्वतम्॥४॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कारौ। शिल्पविद्याविदां योग्यतास्ति विद्या चिकीर्षूननुकूलान् बुद्धिमतो जनान् हस्तिक्रयाविद्यां पाठियत्वा पुनः पुनः सुशिक्ष्य कार्यसाधनम्ममर्थान् सम्पादयेयुः। ते चैतां सम्पाद यथावच्चातुर्यपुरुषार्थाभ्यां बहुन् सुखोपकारान् गृह्ययुः। १४॥

पदार्थ:-हे (अश्विना) विद्या देने वा ग्रेहण करने वाले विद्वान् मनुष्यो! (युवम्) तुम दोनों (अस्मे) हम लोगों के (वर्ति:) मार्ग को (वि:) नीन वार (यातम्) प्राप्त हुआ करो। तथा (सुप्राव्ये) अच्छे प्रकार प्रवेश करने योग्य (अनुकृते) जिसके अनुकृल सत्याचरण व्रत है उस (जने) बुद्धि के उत्पादन करने वाले मनुष्य के निर्मित्त (कि:) तीन वार (यातम्) प्राप्त हूजिये और शिष्य के लिये (त्रेधेव) तीन प्रकार अर्थात् हस्तक्रिया (क्षा और यान चालन के ज्ञान को शिक्षा करते हुए अध्यापक के समान (अस्मे) हम लोगों को (त्रि:) तीन बार (शिक्षतम्) शिक्षा और (नान्द्यम्) समृद्धि होने योग्य शिल्प ज्ञान को (त्रि:) तीन बार (वह्नतम्) प्राप्त करो और (अक्षरेव) जैसे नदी, तालाब और समुद्र आदि जलाशय मेघ के सकाश से जल को प्राप्त होते हैं, वैसे हम लोगों को (पृक्षः) विद्यासम्पर्क को (त्रि:) तीन वार (पिन्वतम्) प्राप्त करो॥४॥

भाक्ष उस पन्त्र में दो उपमालङ्कार हैं। शिल्प विद्या के जानने वाले मनुष्यों को योग्य है कि विद्या की इस्का करने वाले अनुकूल बुद्धिमान् मनुष्यों को पदार्थ विद्या पढ़ा और उत्तम-उत्तम शिक्षा वार-वार देकर कार्यों को सिद्ध करने में समर्थ करें और उनको भी चाहिये कि इस विद्या को सम्पादन कर्र के प्रशावत चतुराई और पुरुषार्थ से सुखों के उपकारों को ग्रहण करें॥४॥

मण्डल-१। अनुवाक-७। सुक्त-३४

पुनस्तौ किं साधकावित्युपदिश्यते॥

फिर वे किस कार्य के साधक हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

त्रिनों रियं वहतमिश्चना युवं त्रिर्देवताता त्रिरुतावतं धियः।

त्रिः सौभगुत्वं त्रिरुत श्रवांसि नस्त्रिष्ठं वां सूरे दुहिता रुहुद्रथम्॥५॥

त्रिः। नः। रियम्। वहतम्। अश्विना। युवम्। त्रिः। देवऽत्राता। त्रिः। उत्। अवतम्। धियो त्रिः। सौभगुऽत्वम्। त्रिः। उत्। श्रवांसि। नः। त्रिऽस्थम्। वाम्। सूरे। दुहिता। आ। रुहुत्। स्थम्॥५॥

पदार्थ:-(त्रि:) त्रिवारं विद्याराज्यश्रीप्राप्तिरक्षणित्रयामयम् (तः) अस्मन्त् (रियम्) परमोत्तमं धनम् (वहतम्) प्रापयतम् (अश्विना) द्यावापृथिव्यादिसंज्ञकाविव। अश्र सुपा सुनुग्० इत्याकारादेशः। (युवम्) युवाम् (त्रिः) त्रिवारं प्रेरकसाधकित्रयाजन्यम्। (देवताता) शिल्पित्रव्याग्रज्ञसम्पत्तिहेतू यद्वा देवान् विदुषो दिव्यगुणान् वा तनुतस्तौ। अत्र दुतिनिश्यां दीर्घश्च। (उणा०३.४८) इति क्तः प्रत्ययः। देवतातिति यज्ञनामसु पठितम्। (निघं०३.१७) (त्रिः) त्रिवारं शरीरप्राणमभाभी रक्षणम् (उत्) अपि (अवतम्) प्रविशतम् (धियः) धारणावतीर्बुद्धीः (त्रिः) त्रिवारं भृष्पस्ताप्त्रम्भार्यादिशिक्षाकरणम् (सौभगत्वम्) शोभना भगा ऐश्वर्याणि यस्मात् पुरुषार्थात् तस्येदं सौभगं तस्य भावः सौभगत्वम् (त्रिः) त्रिवारं श्रवणमननिदिध्यासनकरणम् (उत्) अपि (श्रवांसि) श्रयन्ते यनि तानि वेदादिशास्त्रश्रवणानि धनानि वा। श्रव इति धननामसु पठितम्। (निघं०२.१०) (तः) अस्माकम् (त्रिस्थम्) त्रिषु शरीरात्ममनस्सुखेषु तिष्ठतीति त्रिस्थम् (वाम्) तयोः (सूरे) सूर्यस्य। अत्र सुपां सुलुग्० इति शे आदेशः। (दुहिता) कन्येव। दुहिता दुरिता दूरे हिता दोष्येवा तिष्टिः स्तर्थः। बहुलं छन्दस्यमाङ्योगेऽपि (अष्टा०६.४.७५) इत्यडभावो लडर्थे लुङ्। च (रथम्) रमन्ते येन तं विमानादियानसमूहम्॥५॥

अन्वय:-हे देवतातावृष्टिनो ! युवं युवो नोऽस्मभ्यं रियं त्रिर्वहतं नोऽस्माकं धियो बुद्धीरुतापि बलं त्रिरवतं नोऽस्मभ्यं त्रिस्थं सौभगत्वं त्रिर्वहतं प्राप्नुतमुतापि श्रवांसि त्रिर्वहतं प्राप्नुतं वां ययोरिश्वनोः सूरे दुहिता पुत्रो वसुविद्यया ग्रीऽस्माकं यथं त्रिरारुहत् त्रिवारमारोहेत् तौ वयं शिल्पकार्येषु सम्प्रयुज्महे॥५॥

२३, तस्येदम्। अप्रा०४.३.१२०। इत्यण् प्र०।

र४. तस्य मोत्तरत्वतलो। अष्टा०५.१.११९। इति <mark>'त्व'</mark> रोहति, सं०।

भावार्थ:-मनुष्यैरश्विनोः सकाशाच्छिल्पकार्याणि निर्वर्त्य बुद्धिं वर्धियत्वा सौभाग्यमुत्तमान्नादीनि च प्रापणीयानि तत्सिद्धयानेषु स्थित्वा देशदेशान्तरान् गत्वा व्यवहारेण धनं प्राप्य सदानन्दियतव्यमिति॥५॥

पदार्थ:-हे (देवताता) शिल्प क्रिया और यज्ञ सम्पत्ति के मुख्य कारण वा विद्वान स्था सुमगुणों के बढ़ाने और (अश्विना) आकाश-पृथिवी के तुल्य प्राणियों को सुख देने वाले विद्वान लोगों। (युवम्) आप (नः) हम लोगों के लिये (रियम्) उत्तम धन (त्रिः) तीन वार अर्थात् विद्वाः, राज्य, श्री को प्राप्ति और रक्षण क्रियारूप ऐश्वर्य को (वहतम्) प्राप्त करो (नः) हम लोगों की (विद्वः) बुद्धियों (उत्त) और बल को (त्रिः) तीन बार (अवतम्) प्रवेश कराइये (नः) हम लोगों के लिये (त्रिष्ठम्) तीन अर्थात् शरीर, आत्मा और मन के सुख में रहने और (सौभगत्वम्) उत्तम ऐश्वर्य्य के उत्पन्न वाले पुरुषार्थ को (त्रिः) तीन अर्थात् भृत्य, सन्तान और स्वात्म, भार्यादि को प्राप्त कोजिये (उत्त) और (श्रवांसि) वेदादि शास्त्र वा धनों को (त्रिः) शरीर, प्राण और मन की रक्षा सिहत प्रम्व करते और (वाम्) जिन अश्वयों के सकाश से (सूरेः) सूर्य की (दुहिता) पुत्री के समान कान्ति (नः) हम्न लोगों के (रथम्) विमानादि यानसमूह को (त्रिः) तीन अर्थात् प्रेरक, साधक और चालन कर्या से (आरुहत्) ले जाती है, उन दोनों को हम लोग शिल्प कार्यों में अच्छे युक्त करें॥५॥

भावार्थ:-मनुष्यों को उचित है कि अग्नि भूमि के अब्लम्ब से शिल्प कार्यों को सिद्ध और बुद्धि बढ़ाकर सौभाग्य और उत्तम अन्नादि पदार्थों को प्राप्त हो तथा इस सब सामग्री से सिद्ध हुए यानों में बैठ के देश-देशान्तरों को जा आ और व्यवहार द्वारा धन को बढ़ा कर सब काल में आनन्द में रहें॥५॥

पुनस्त(भ्यां/कि कार्यमित्युपदिश्यते॥

फिर उनसे क्या करना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

त्रिनों अश्विना दिव्यानि भेषुजा त्रिः पार्थिवानि त्रिरुं दत्तमुद्ध्यः। ओमानं शुंयोर्ममंकाय सूनवे त्रिधातु शर्मं वहतं शुभस्पती॥६॥४॥

त्रिः। नः। अश्विना दिच्यानि। भेषुजा। त्रिः। पार्थिवानि त्रिः। ऊँ इति। दुत्तम्। अत्ऽभ्यः। ओमार्नम्। शुंऽयोः। मर्मकाय। सूनवे। व्रिधाती शर्मी वहुतुम्। शुभुः। पुती इति॥६॥

पदार्थ: (त्रः) त्रिकारम् (नः) अस्मभ्यम् (अश्विना) अश्विनौ विद्याज्योतिर्विस्तारमयौ (दिव्यानि) विद्यादिशुभगुप्रश्रिकाशकानि (भेषजा) सोमादीन्यौषधानि रसमयानि (त्रिः) त्रिवारम् (पार्थिवानि) पृथिव्या विकारयुक्त्राचि (त्रिः) त्रिवारम् (ऊँ) वितर्के (दत्तम्) (अद्भयः) सातत्यागन्तृभ्यो वायुविद्युदादिभ्यः (ओमानम्) रक्षन्तम्, विद्याप्रवेशकं क्रियागमकं व्यवहारम्। अत्रावधातोः। अन्येभ्योऽपि दृश्यन्त इति

मण्डल-१। अनुवाक-७। सूक्त-३४

मिन्। (शंयोः) शं सुखं कल्याणं विद्यते यस्मिँस्तस्य (ममकाय) ममायं ममकस्तस्मै। अत्र संज्ञापूर्वको विधिरिन्त्यः। (अष्टा॰६.४.१४६) इति वृद्ध्यभावः (सूनवे) औरसाय विद्या पुत्राय व विधातु त्रयोऽयस्ताम्रपित्तलानि धातवो यस्मिन् भूसमुद्रान्तिरक्षगमनार्थे याने तत् (शर्म) गृहस्वरूपं सुखकारकं मा। शर्मित गृहनामसु पठितम्। (निघं०३.४) (वहतम्) प्रापयतम् (शुभः) यत् कल्याणकारकं मनुष्याणां कर्म तस्य। अत्र सम्पादादित्वात् क्विप्। (पती) पालियतारौ। षष्ट्याः पितपुत्र० (अष्टा०८.३.५५) इति संहितायां विसर्जनीयस्य सकारादेशः॥६॥

अन्वय:-हे शुभस्पती अश्विनौ! युवां नोऽस्मभ्यमद्भ्यो दिव्यानि भेषजीषधानि त्रिर्दत्तं ऊँ इति वितर्के पार्थिवानि भेषजीषधानि त्रिर्दत्तं ममकाय सूनवे शंयो: सुखस्य दास्भोगिनं चे त्रिर्दत्तं त्रिधातु शर्म ममकाय सूनवे त्रिर्वहतं प्रापयतम्॥६॥

भावार्थ:-मनुष्यैर्जलपृथिव्योर्मध्ये यानि रोगनाशकान्यौषधानि सन्ति तानि त्रिविधतापनिवारणाय भोक्तव्यान्यनेकधातुकाष्ठमयं गृहाकारं यानं रचयित्वा तत्रोत्तमानि यवादोत्र्भौषधानि संस्थाप्याग्निगृहेऽग्निं पार्थिवैरिन्धनै: प्रज्वाल्याप: स्थापयित्वा वाष्पबलेन यानानि बाल्यित्वा व्यवहारार्थं देशदेशान्तरं गत्वा तत आगत्य सद्य: स्वदेश: प्राप्तव्य एवं कृते महान्ति सुखानि प्राप्तिनि भवन्तीति॥६॥

इति चतुर्थो वर्गः॥ ४॥

पदार्थ:-हे (शुभस्पती) कल्याणकारक निष्धों के कर्मीं की पालना करने और (अश्विना) विद्या की ज्योति को बढ़ाने वाले शिल्प लोगो! औष दोनों (न:) हम लोगों के लिये (अद्भ्यः) जलों से (दिव्यानि) विद्यादि उत्तम गुण प्रकाश करने बाले (भषजा) रसमय सोमादि औषधियों को (त्रि:) तीन ताप निवारणार्थ (दत्तम्) दीजिये (3) और (पार्थिवानि) पृथिवी के विकारयुक्त औषधी (त्रि:) तीन प्रकार से दीजिये और (ममकाय) मेरे (पूर्ववे) औरस अथवा विद्यापुत्र के लिये (शंयो:) सुख तथा (ओमानम्) विद्या में प्रवेश और क्रिया के बिध कराने चाले रक्षणीय व्यवहार को (त्रि:) तीन वार कीजिये और (त्रिधातु) लोहा ताँबा पीतल इन चीन धातुओं के सिहत भूजल और अन्तरिक्ष में जाने वाले (शर्म) गृहस्वरूप यान को मेरे पुत्र के लिये (त्रि:) तीन वार (वहतम्) पहुंचाइये॥६॥

भावार्थ:-मनुष्यों को सहिये कि जो जल और पृथिवी में उत्पन्न हुई रोग नष्ट करने वाली औषधी हैं, उनका एक दिन में तीन चार भोजन किया करें और अनेक धातुओं से युक्त काष्ट्रमय घर के समान यान को बन् असमें इत्तम-उत्तम जब आदि औषधी स्थापन, अग्नि के घर में अग्नि को काष्ट्रों से

रप. अन्या परिभाषया। सं०

प्रज्ज्वलित जल के घर में जलों को स्थापन, भाफ के बल से यानों को चला व्यवहार के लिये देश-देशान्तरों को जा और वहाँ से आकर जल्दी अपने देश को प्राप्त हों, इस प्रकार करने से बड़े बड़े सुख्याप्त होते हैं॥६॥

यह चौथा वर्ग समाप्त हुआ॥४॥ पुनस्तौ कीदृशौ स्त इत्युपदिश्यते॥

फिर वे कैसे हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

त्रिनों अश्विना यज्ञता द्विवेदिवे परि त्रिधातुं पृथिवीमशायतम्। तिस्रो नांसत्या रथ्या परावतं आत्मेव वातः स्वसंराणि गच्छत्माण्या

त्रिः। नुः। अश्विना। युज्ता। द्विवेऽदिवे। पिर्। त्रिऽधातुं। पृथिवीमा अशायतुम् तिस्रः। नासत्या। रृथ्या। पुराऽवर्तः। आत्माऽईव। वार्तः। स्वसंराणि। गुच्छुतुम्॥७॥

पदार्थ:-(त्रि:) त्रिवारम् (न:) अस्माकम् (अश्विना) जलाग्नो इव शिल्पिनौ (यजता) यष्टारौ सङ्गन्तारौ। अत्र सर्वत्र सुणां सुलुग्० इत्याकारादेश:। (दिवेदिवे) प्रतिद्वनम् (पिर) सर्वतो भावे (त्रिधातु) सुवर्णरजतादिधातुसम्पादितम् (पृथिवीम्) भूमिमन्तरिश्चे वा पृथिवीत्यन्तरिक्षनामसु पिठतम्। (निघं०१.३) (आशयतम्) शयाताम्। अत्र लोडर्थे लङ्ग् अश्वयातामिति प्राप्ते हस्वदीर्घयोर्व्यत्ययास:। (तिस्र:) ऊर्ध्वाध: समगतीः (नासत्या) न विद्यत्रे सत्यं व्ययोस्तौ (रथ्या) यौ रथविमानादिकं यानं वहतस्तौ (परावतः) दूरस्थानानि। परावतः प्रतित्वतः परागताः। (निरु०११.४८) परावत इति दूरनामसु पिठतम्। (निघं०३.२६) (आत्मेव) आत्मनः शिद्यगम्मवत् (वातः) कलाभिभ्रामितो वायुः (स्वसराणि) स्वस्वकार्य्यप्रापकाणि दिनानि। स्वसम्भणीति पदमामसु पिठतम्। (निघं०४.२) अनेन प्राप्त्यर्थो गृह्यते (गच्छतम्)॥७॥

अन्वय:-हे नासत्यौ यज्ञती रथ्यावश्विनाविव शिल्पिनौ युवां! पृथिवी प्राप्य त्रि: पर्य्यशयातमात्मेव वात: प्राणश्च स्वसराणि दिवे दिवे गुच्छति तद्वद्गच्छतं नोऽस्माकं त्रिधातु यानं परावतो मार्गेस्तिस्रो गतीर्गमयतम्॥७॥

भावार्थ:-अत्रोपमाल द्वारे। ऐहिकसुखमभीप्सवो जना यथा जीवोऽन्तरिक्षादिमार्गै: सद्यः शरीरान्तरं गच्छि यथा च वायुः सद्यो गच्छित तथैव पृथिव्यादिविकारैः कलायन्त्रयुक्तानि यानानि रचित्वा तत्र प्रवारसादीन् सम्प्रयोज्याभीष्टान् दूरदेशान् सद्यः प्राप्नुयुः। नैतेन कर्मणा विना सांसारिकं सुखं भवित्रभिद्धिति भिर्।।

पदार्थ: - हे (नासत्या) असत्य व्यवहाररिहत (यजता) मेल करने तथा (रथ्या) विमानादि यानों को प्राप्त कराने वाले (अश्विना) जल और अग्नि के समान कारीगर लोगो! तुम दोनों (पृथिवी) भूमि वा अन्तिस्थि को प्राप्त होकर (त्रि:) तीन वार (पर्य्यशायतम्) शयन करो (आत्मेव) जैसे जीवात्मा के समान

मण्डल-१। अनुवाक-७। सूक्त-३४

(वात:) प्राण (स्वसराणि) अपने कार्यों में प्रवृत्त करने वाले दिनों को नित्य नित्य प्राप्त होते हैं, वैसे (गच्छतम्) देशान्तरों को प्राप्त हुआ करो और जो (न:) हम लोगों के (त्रिधातु) सोना सन्वि आदि धातुओं से बनाये हुए यान (परावत:) दूर स्थानों को (तिस्र:) ऊंची नीची और सम च्राल चलते हुए मनुष्यादि प्राणियों को पहुंचाते हैं, उनको कार्यसिद्धि के अर्थ हम लोगों के लिये बनाओं।।।।

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। संसारसुख की इच्छा करने ब्राल पुरुष जैसे जीव अन्तरिक्ष आदि मार्गों से दूसरे शरीरों को शीघ्र प्राप्त होता और जैसे वायु शीघ्र चलता है, बैसे ही पृथिव्यादि विकारों से कलायन्त्र युक्त यानों को रच और उनमें अग्नि, जल आदि का अच्छे प्रकार प्रयोग करके चाहे हुए दूर देशों को शीघ्र पहुंचा करें, इस काम के विना संसारसुख होने की योग्य नहीं है॥७॥

पुनस्तौ कीदृशौ ताभ्यां किं किं साध्यमित्युपिद्धश्यते॥

फिर वे कैसे हैं और उनसे क्या-क्या सिद्ध करना चाहिये, इस विषय को उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

त्रिरश्चिना सिन्धुभिः सप्तमातृभिस्त्रयं आहावास्त्रधा ह्विकृतम्। तिस्तः पृथिवीरुपरि प्रवा दिवो नाकं रक्षेष्ट्रे द्युभिरुक्तुभिर्हितम्॥८॥

त्रिः। अश्विना। सिर्स्युऽभिः। सप्तमातृऽभिः। त्रर्षः। ओऽह्मवाः। त्रेधा। हुविः। कृतम्। तिस्रः। पृथिवीः। उपरि। प्रवा। दिवः। नार्कम्। रुक्षुथे इति। द्युऽभिः। अन्तुऽभिः। हितम्॥८॥

पदार्थ:-(त्रि:) त्रिवारम् (अश्वन्त) अश्विनौ सूर्य्याचन्द्रमसाविव। अत्र सर्वत्र सुणां सुलुग्० इत्याकारादेश:। (सिन्धुभि:) नदीभि: (सप्पमातुभि:) सप्तार्थात् पृथिव्यग्निसूर्यवायुविद्युदुदकावकाशा मातरो जनका यासां ताभिः (त्रयः) उपर्यधोमध्याख्याः (आहावाः) निपानसदृशा मार्गा जलाधारा वा। निपानमाहावः। (अष्टा०३.३.७४) इति निपातनम्। (त्रेष्टा) त्रिभिः प्रकारैः (हविः) होतुमर्हं द्रव्यम्। (कृतम्) शोधितम् (तिस्रः) स्थूलत्रसरेणुपरमण्वाख्याः (पृथिवीः) विस्तृताः (उपिर) ऊर्ध्वार्थे (प्रवा) गमयितारौ (दिवः) प्रकाशयुक्तान् क्रिरणान् (नाकम्) अविद्यमानदुःखम् (रक्षेथे) रक्षतम्। अत्र लोडर्थे लङ् व्यत्ययेनात्मनेपदं च (द्युभिः) दिनैः (अक्तुभिः) रात्रिभिः। द्युरित्यहर्नामसु पठितम्। (निघं०१.७ (हितम्) धृतम्॥८॥

अन्वयः-हे प्रवौ गमयिताराविश्वनौ वायुसूर्य्याविव शिल्पिनौ! युवां सप्तमातृिभः सिन्धुभिर्द्युभिरक्तुभिश्च यस्य त्रय आहावाः सन्ति तत् त्रेधा हिवष्कृतं शोधितं नाकं हितं द्रव्यमुपिर प्रिक्षिप्य तत् तिस्तः पृथिवीर्दिवः प्रकाशयुक्तान् किरणान् प्रापय्य तदितस्ततश्चालियत्वाऽधो वर्षियत्वैतेन सर्वं अंगती क्षेथे त्रिवारं रक्षतम्॥८॥

भावार्थ:-मनुष्यैर्वायुसूर्य्ययोश्छेदनाकर्षणवृष्ट्युद्धावकैर्गुणैर्नद्यश्चलित हुतं द्रैं व्ये दुर्गन्धादिदोषात्रिवार्य हितं सर्वदु:खरहितं सुख साधयित यतोऽहर्निशं सुखं वर्द्धते येन विना कश्चित्प्राणी जीवितुं न शक्नोति तस्मादेतच्छोधनार्थं यज्ञाख्यं कर्म नित्यं कर्तव्यमिति॥८॥

पदार्थ:-हे (प्रवा) गमन कराने वाले (अश्विना) सूर्य और वायु के समान कारी लोगी। आप (सप्तमातृभिः) जिन को सप्त अर्थात् पृथिवी, अग्नि, सूर्य, वायु, बिजुली, जल और आकाश पात माता के तुल्य उत्पन्न करने वाले हैं उन (सिस्युभिः) निदयों और (द्युभिः) दिन (अक्तुभिः) रात्रि के साथ जिसके (त्रयः) ऊपर, नीचे और मध्य में चलने वाले (आहावः) जलाधार मार्ग हैं, उस (त्रेषा) तीन प्रकार से (हिवष्कृतम्) ग्रहण करने योग्य शोधे हुए (नाकम्) सब दुःखों से रहित (हितम्) स्थित द्रव्य को (उपिर) ऊपर चढ़ा के (तिस्रः) स्थूल त्रसरेणु और परमाणु नाम वाली तीन प्रकार की (पृथिवीः) विस्तारयुक्त पृथिवी और (दिवः) प्रकाशस्वरूप किरणों को प्राप्त कर्पके उसको इधर-उधर चला और नीचे वर्षा के इससे सब जगत् की (त्रिः) तीन वार (रक्षेथे) रक्षा किजुबे। हो

भावार्थ:-मनुष्यों को योग्य है कि जो सूर्य वायु के छेदन आकर्षण और वृष्टि कराने वाले गुणों से निदयां चलती तथा हवन किया हुआ द्रव्य दुर्गन्धादि देखीं को निवारण कर सब दु:खों से रहित सुखों को सिद्ध करता है, जिससे दिन-रात सुख बढ़ता है, इसके विज्ञा कोई प्राणी जीवने को समर्थ नहीं हो सकता, इस से इसकी शुद्धि के लिये यज्ञरूप कर्म नित्य करें।।

पुनस्ताभ्यां कि कर्त्तव्यमिल्यपदिश्यते॥

फिर उन से क्या करना चाहिये, इस किएय क्रा उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

क्वर् त्री चुक्रा त्रिवृतो रथस्य क्वर् त्रयौ वृन्धुरो ये सनीळाः। कुदा योगी वाजिनो रास्भस्य येन चुज्ञं नासत्योपयाथः॥९॥

क्वं। त्री। चुक्रा। त्रिऽवृत्ते। रथस्य। क्वं। त्रयं:। वृन्धुर्रः। ये। सऽनीळाः। कुदा। योगंः। वाजिनंः। रासंभस्य। येनं। युज्ञम्। नासुत्या उपऽयाथः॥ १॥

पदार्थ:-(क्व) किस्मिन् (क्रो) त्रीणि (चक्रा) यानस्य शीघ्रं गमनाय निर्मितानि कलाचक्राणि। अत्रोभयत्र शेश्छन्द० इति शिलीपः। (त्रिवृतः) त्रिभी रचनचालनसामग्रीभिः पूर्णस्य (रथस्य) त्रिषु भूमिजलान्तिरक्षमूर्गेषु रमन्ते येन तस्य (क्व) (त्रयः) जलाग्निमनुष्यपदार्थिस्थत्यर्थावकाशाः (बन्धुरः) बन्धनिवशेषाः (सुपां सुलुग्० इति जसः स्थाने सुः। (ये) प्रत्यक्षाः (सनीडाः) समाना नीडा बन्धना धारा गृहविशेषा अयन्योपारविशेषा वा येषु ते (कदा) कस्मिन् काले (योगः) युज्यते यस्मिन् सः (वाजिनः) प्रशस्तो वाजो वेगोऽस्यास्तीति तस्य। अत्र प्रशंसार्थ इनिः। (रासभस्य) रासयन्ति शब्दयन्ति येन वेगेन तस्य रासभावश्चिनोरित्यादिष्टोपयोजननामसु पठितम्। (निघं०१.१५) (येन) रथेन (यज्ञम्) गमनयोग्यं मूर्णि (नामत्या) सत्यगुणस्वभावौ (उपयाथः) शीघ्रमभीष्टस्थाने सामीप्यं प्रापयथः॥९॥

मण्डल-१। अनुवाक-७। सूक्त-३४

अन्वय:-हे नासत्याविश्वनौ शिल्पिनौ युवां! येन विमानािदयानेन यज्ञं सङ्गन्तव्यं मार्गं कदोपयाथो दूरदेशस्थं स्थानं सामीप्यवत्प्रापयथः तस्य च रासभस्य वाजिनस्त्रिवृतो रथस्य मध्ये क्व त्रीण मकािप कर्त्तव्यानि क्व चास्मिन् विमानािदयाने ये सनीडास्त्रयो बन्धुरास्तेषां योगः कर्त्तव्य इति त्रयू प्रश्ना ॥९॥

भावार्थ:-अत्रोक्तानां त्रयाणां प्रश्नानामेतान्युत्तराणि वेद्यानि विभूतिकामैनीरे र्थस्योद्धिमध्यान्तेषु सर्वकलाबन्धनाधाराय त्रयो बन्धनिवशेषाः कर्त्तव्याः। एकं मनुष्याणां स्थित्यर्थं द्वितीर्धमग्निस्थित्यर्थं तृतीयं जलस्थित्यर्थं च कृत्वा यदा यदा गमनेच्छा भवेत्तदा तदा यथायोग्यकाष्ठानि संस्थार्थाग्नं योजयित्वा कलायन्त्रोद्धावितेन वायुना सन्दीप्य वाष्पवेगेन चालितेन यानेन सद्यो दूस्पपि स्थानं समीपवत्प्राप्तुं शक्नुयुः। नहीदृशेन यानेन विना कश्चित्रिविंघ्नतया स्थानान्तरं सद्यो गन्तुं शक्नोतित्ति। ।।

पदार्थ:-हे नासत्या सत्य गुण और स्वभाव वाले कारीगर लिमा! तुम दोनों (यज्ञम्) दिव्यगुण युक्त विमान आदि यान से जाने-आने योग्य मार्ग को (कदा) कुछ (उपयोध:) शीघ्र जैसे निकट पहुंच जावें, वैसे पहुंचते हो और (येन) जिससे पहुंचते हो उस (रासभस्य) शब्द करने वाले (वाजिन:) प्रशंसनीय वेग से युक्त (त्रिवृत:) रचन, चालन आदि सामक्षी से पूर्ण (रथस्य) और भूमि, जल, अन्तरिक्ष मार्ग में रमण कराने वाले विमान में (क्व) कहाँ (त्री) तीन (चक्रा) चक्र रचने चाहिये और इस विमानादि यान में (ये) जो (सनीडा:) बराबर बन्धनों के स्थान वा अग्नि रहने का घर (बन्धुर:) नियमपूर्वक चलाने के हेतु काष्ठ होते हैं, उनका (योग:) योग (क्व) कहाँ रहना चाहिये ये तीन प्रश्न हैं॥९॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में कहे हुए तिन प्रश्नों के ये उत्तर जानने चाहिये। विभूति की इच्छा रखने वाले पुरुषों को उचित है कि रथ के आदि, मध्य और अन्त में सब कलाओं के बन्धनों के आधार के लिये तीन बन्धन विशेष सम्पादन करें तथा तीन कला घूमने-घुमाने के लिये सम्पादन करें। एक मनुष्यों के बैठने, दूसरी अग्नि की स्थिति और तीसरी जल की स्थिति के लिये करके जब-जब चलने की इच्छा हो, तब-तब यथायोग्य जलकाष्ट्रों को स्थापन, अग्नि को युक्त और कला के वायु से प्रदीप्त करके भाफ के वेग से चलाये हुए याने से शिष्ठ दूर स्थान को भी निकट के समान जाने को समर्थ होवें। क्योंकि इस प्रकार किये विना निर्विघ्नता सिन्धानान्तर को कोई मनुष्य शीघ्र नहीं जा सकता॥९॥

पुनस्ताभ्यां किं साधनीयमित्युपदिश्यते॥

फ्रिर इन से क्या सिद्ध करना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मंन्त्र में किया है।।

आ नासत्या गच्छतं हूयते हुविर्मध्वः पिबतं मधुपेभिगासभिः।

युक्तोर्हि पूर्वं सवितोषसो स्थमृतायं चित्रं घृतवन्तुमिष्यंति॥१०॥

आ। नासत्या। गच्छतम्। हूयते। हुविः। मध्वेः। पि<u>बत</u>म्। मधुऽपेभिः। आसऽभिः। युवोः। हि। पूर्वम्। सुविता। उषसंः। रथम्। ऋताये। चित्रम्। घृतऽवेन्तम्। इष्यंति॥ १०॥

पदार्थ:-(आ) समन्तात् (नासत्या) अश्विनाविव। अत्र सुपां सुलुग्० इत्याकारादेशः (गळतम्) (हूयते) क्षिप्यते दीप्यते (हिवः) होतुं प्रक्षेप्तुं दातुमर्हं काष्ठाादिकिमन्धनम् (मध्वः) मधुरगुणयुक्तानि जलानि। मध्वित्युदकनामसु पठितम्। (निघं०१.१२) अत्र लिङ्गव्यत्ययेन पुंस्त्वम्। वाच्छन्दिसः सर्वे० इति पूर्वसवर्णप्रतिषेधाद्यणादेशः। (पिबतम्) (मधुपेभिः) मधूनि जलानि पिबन्ति ऐस्तैः (आसभिः) स्वकीयैरास्यवच्छेदकगुणैः। अत्रास्यस्य स्थाने पदन्नोमासू० (अष्टा०६.१.६३) इत्यासम्प्रदेशः। (युवोः) युवयोः (हि) निश्चयार्थे (पूर्वम्) प्राक् (सिवता) सूर्यलोक (उषसः) सूर्योदयात्प्राक् वर्त्तमानकालवेलायाः (रथम्) रमणहेतुम् (ऋताय) सत्यगमनायः। ऋतमिति सत्यनामसु पठितम्। (निघं०३.१०) (चित्रम्) आश्चर्यवेगादियुक्तम् (धृतवन्तम्) घृतानि चहुन्युद्कानि विद्यन्ते यस्मिँस्तम्। धृतिमत्युदकनामसु पठितम्। (निघं०१.१२) (इष्यति) गच्छिति। राष्ट्रा

अन्वय:-हे अश्विनौ! नासत्याभ्यामिश्वभ्यामिव युवाभ्य कद्भिर्ह्यूर्ते तेन हिवषा शोधितानि मध्वो मधूनि जलानि मधुपेभिरासिभ: पिबतम्। अस्मदानन्दाय पृतिवानं चित्रे रथमागच्छतं समन्ताच्छीघ्रं प्राप्नुतं युवोर्युवयोर्यो रथ उषस: पूर्वं सिवतेव प्रकाशमान इष्यृति स ह्युतस्य स्माभिर्गृहीतव्यो भवति॥१०॥

भावार्थः-यदा यानेष्वग्निजले प्रदीप्य चाल्यन्ति तद्मानि यानानि स्थानान्तरं सद्यः प्राप्नुवन्ति। तत्र जलवाष्पनिस्सारणायैकमीदृशं स्थानं निर्मात्मधं यद्ह्यार् वाष्पनिर्मोचनेन वेगो वर्द्धेत। एतद्विद्याऽभिज्ञ एव सम्यक् सुखं प्राप्नोति॥१०॥

पदार्थ:-हे शिल्पिलोगो! तुम दोनों (नास्ट्या) जल और अग्नि के सदृश जिस (हिवः) सामग्री का (हूयते) हवन करते हो उस हवि से शुद्ध हुए (मध्वः) मीठे जल (मधुपेभिः) मीठे-मीठे जल पीने वाले (आसिभः) अपने मुखों से (पिबतम्) पियो और हम लोगों को आनन्द देने के लिये (घृतवन्तम्) बहुत जल की कलाओं से पुष्त (चित्रम्) वेगादि आश्चर्य गुणसहित (रथम्) विमानादि यानों से देशान्तरों को (गच्छतम्) भीघ्र जोओं (युवोः) तुम्हारा जो रथ (उषसः) प्रातःकाल से (पूर्वम्) पहिले (सिवता) सूर्यलोक वे समाज प्रकाशमान (इध्यित) शीघ्र चलता है (हि) वही (ऋताय) सत्य सुख के लिये समर्थ होता है॥१०॥

भावार्थ:-जेब यानों में जल और अग्नि को प्रदीप्त करके चलाते हैं, तब ये यान और स्थानों को शीघ्र प्राप्त कराते हैं, उत्तमें जल और भाप के निकलने का एक ऐसा स्थान रच लेवें कि जिसमें होकर भाफ के निकलने से वेग की वृद्धि होवे। इस विद्या का जानने वाला ही अच्छे प्रकार सुखों को प्राप्त होता है। १५॥

पुनस्ताभ्यां किं किं साधनीयमित्युपदिश्यते॥

मण्डल-१। अनुवाक-७। सूक्त-३४

फिर उनसे क्या-क्या सिद्ध करना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

आ नांसत्या त्रिभिरेकाद्रशैरिह देवेभिर्यातं मधुपेयंमश्चिना। प्रायुस्तारिष्टुं नी रपांसि मृक्षतुं सेधतुं द्वेषो भवतं सचाभुवां॥११॥

आ। नासत्या। त्रिऽभिः। एकादुशैः। इह। देवेभिः। यातम्। मधुऽपेयम्। अश्विना। प्रा आयुः। तारिष्टम्। निः। रपांसि। मृक्षुतम्। सेर्धतम्। द्वेषः। भवंतम्। सचाऽभुवां॥ ११॥

पदार्थ:-(आ) समन्तात् (नासत्या) सत्यगुणस्वभावौ। अत्र सर्वत्र सुपौ सुलुम् इत्याकारादेश:। (त्रिभि:) एभिरहोरात्रै: समुद्रस्य पारम् (एकादशै:) एभिरहोरात्रैर्भूगोलाल्पम् (इह्र) यानेषु सम्प्रयोजितौ (देवेभि:) विद्वद्भिः (यातम्) प्राप्नुतम् (मधुपेयम्) मधुभिर्भूपौर्श्वृक्त पेये द्रव्यम् (अश्विना) द्यावापृथिव्यादिकौ द्वौ द्वौ (प्र) प्रकृष्टार्थे (आयुः) जीवनम् (तारिष्टम्) अन्तरिक्षं लावयतम् (निः) नितराम् (रणांसि) पापानि दुःखप्रदानि। रणोरिप्रमिति पापनामनी भवतः। (निरुञ्जन्त इति कर्तरि विच्। (भवतम्) (संधतम्) मङ्गलं सुखं प्राप्नुतम् (द्वेषः) द्विषतः शत्रून्। अन्येभ्योऽपि दृश्यन्त इति कर्तरि विच्। (भवतम्) (सचाभुवा) यौ सचा समवायं भावयतस्तौ। अत्रान्तर्गतो प्र्यश्वीतर्थः)

अन्वय:-हे शिल्पिनौ! युवां नासत्याश्विना सन्ताभुवावित द्विभिर्विद्वद्भिस्सहेहोत्तमेषु यानेषु स्थित्वा त्रिभिरहोरात्रैर्महासमुद्रस्य पारमेकादशैरहोरात्रैर्भूगोलानां यात हुँगौँ रपांसि च निर्मृक्षतं मधुपेयमायुः प्रतारिष्टं सुसुखं सेधतं विजयिनौ भवतम्॥११॥

भावार्थः-यदा मनुष्या ईदृशेषु (यानेषु) स्थित्वा चालयन्ति तदा त्रिभिरहोरात्रैः सुखेन समुद्रपारमेकादशैरहोरात्रैर्भूगोलस्याभितो गन्तुं शक्नुवन्ति। एवं कुर्वन्तो विद्वांसः सुखयुक्तं पूर्णमायुः प्राप्य दुःखानि दूरीकृत्य शत्रून् विजित्य चक्नविर्तिराज्यभागिनो भवन्तीति॥११॥

पदार्थ: - हे शिल्पि लोगो तुम दोनें (नासत्या) सत्यगुण स्वभावयुक्त (सचाभुवा) मेल कराने वाले जल और अग्नि के समृति (देवेभि:) विद्वानों के साथ (इह) इन उत्तम यानों में बैठ के (त्रिभि:) तीन दिन और तीन रात्रियों में महासुमुद्र के पार और (एकादशिभ:) ग्यारह दिन और ग्यारह रात्रियों में भूगोल पृथिवी के अन्त को (यातम्) पहुंचो (द्वेष:) शत्रु और (रपांसि) पापों को (निर्मृक्षतम्) अच्छे प्रकार दूर करो (मधुपेयम्) मधुर गुणयुक्त पीने योग्य द्रव्य और (आयु:) उमर को (प्रतारिष्टम्) प्रयत्न से बढ़ाओ, उत्तम सुख़ों को (सेधतम्) सिद्ध करो और शत्रुओं को जीतने वाले (भवतम्) होओ॥११॥

भावार: जब मनुष्य ऐसे यानों में बैठ और उनको चलाते हैं, तब तीन दिन और रात्रियों में सुख से समुद्ध के पार तथा ग्यारह दिन और ग्यारह रात्रियों में ब्रह्माण्ड के चारों और जाने को समर्थ हो सकते हैं। इसी प्रकार करते हुए विद्वान् लोग सुखयुक्त पूर्ण आयु को प्राप्त हो दु:खों को दूर और शत्रुओं को ज़ीत कर चिक्रवर्तिराज्य भोगने वाले होते हैं॥११॥ ४३६

ऋग्वेदभाष्यम्

पुनरेताभ्यां किं साधनीयमित्युपदिश्यते॥

फिर इन से क्या सिद्ध करना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

आ नौ अश्विना त्रिवृता रथेनार्वाञ्चं वहतं सुवीरम्

शृण्वन्ता वामवसे जोहवीमि वृधे च नो भवतं वाजसातौ॥ १२॥ ५॥

आ। नः। अश्विना त्रिऽवृतां। रथेन। अर्वाञ्चंम्। रियम्। वृहत्म्। सुऽवीरंम्। श्रूगवन्ताः वाम्। अवंसे। जोह्वीमि। वृधे। च। नः। भवतम्। वार्जंऽसातौ॥ १२॥

पदार्थ:-(आ) समन्तात् (नः) अस्माकम् (अश्विना) जलपवनौ। अत्र सर्वत्र सुणां सुलुग्॰ इत्याकारादेश:। (त्रिवृता) यस्त्रिषु स्थलजलान्तरिक्षेषु पूर्णगत्या गमन्त्रि कर्तते यते तेन (रथेन) विमानादियानस्वरूपेण रमणसाधनेन (अर्वाञ्चम्) अर्वागुपरिष्टादधस्थ स्थानमभूष्टं वाऽञ्चति येन तम् (रियम्) चक्रवर्त्तराज्यसिद्धं धनम् (वहतम्) प्राप्नुत:। अत्र लडर्थे ह्योट्। (सुत्रीरम्) शोभना वीरा यस्य तम् (शृण्वन्ता) शृण्वन्तौ (वाम्) युवयोः (अवसे) रक्षणाय सुख्यव्यमाय विद्यायां प्रवेशाय वा (जोहवीिम) पुन: पुनराददामि (वृधे) वर्द्धनाय। अत्र कृतो बहुलम् इति भावे क्विप्। (च) समुच्चये (नः) अस्मान् (भवतम्) भवतः। अत्र लडर्थे लोट्। (वाजसातौ) अर्द्धग्रोमे। २॥

अन्वय:-हे शिल्पविद्याविचक्षणौ शृण्वन्ता आविष्यासमिश्वनौ! युवां द्यावापृथिव्यादिकौ द्वाविव त्रिवृता रथेन नोऽस्मानर्वाञ्चं सुवीरं रियमावहतं प्रानुतम् नोऽस्माकं वाजसातौ वृधे वर्द्धनाय च विजयिनौ भवतं यथाऽहं वामवसे जोहवीमि पुन: पुनरादद्वामि तथा भ्रां गृह्णीतम्॥१२॥

भावार्थ:-नैतदश्विसम्प्रयोजितरथेन बिना कश्चित् स्थलजलान्तरिक्षमार्गान् सुखेन सद्यो गन्तुं शक्नोत्यतो राज्यश्रियमुत्तमां सेनां वीरपुरुषारच सम्प्राप्येदृशेन यानेन युद्धे विजयं प्राप्तुं शक्नुवन्ति तस्मादेतस्मिन् मनुष्याः सदा युक्ता भविस्त्रिति॥१२॥

पूर्वेण सूक्तेनैतद्विद्यासाधकेन्द्रोऽश्रे प्रतिपादितोऽनेन सूक्तेन ह्येतस्या विद्याया मुख्यौ साधकावश्विनौ द्यावापृथिव्यादिको च प्रतिपादितौ स्त इत्येतदर्थस्य पूर्वार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति विज्ञेयम्।

इति पञ्जमो वर्गश्चतुस्त्रिंशं सूक्तं च समाप्तम्॥३४॥

पदार्थ:-हे कारीगरी में मत्रजनो! (शृण्वन्ता) श्रवण कराने वाले (अश्विना) दृढ़ विद्या बलयुक्त आप दोनों जल और पवन के समान (त्रिवृता) तीन अर्थात् स्थल, जल और अन्तरिक्ष में पूर्णगित से जाने के लिये वर्तमूर्ण (रथन) विमान आदि यान से (न:) हम लोगों को (अर्वाञ्चम्) ऊपर से नीचे अभीष्ट स्थान को प्राप्त होने वाले (सुवीरम्) उत्तम वीर युक्त (रिवम्) चक्रवर्त्ति राज्य से सिद्ध हुए धन को (आवहन्स्) अच्छे प्रकार प्राप्त होके पहुंचाइये (च) और (न:) हम लोगों के (वाजसाती) सङ्ग्राम में (वृष्ट्र) चिद्धिके अर्थ विजय को प्राप्त कराने वाले (भवतम्) हूजिये, जैसे मैं (अवसे) रक्षादि के लिये (वाम्) वुस्हारा (जोहवीमि) वारंवार ग्रहण करता हूं, वैसे आप मुझ को ग्रहण कीजिये॥१२॥

मण्डल-१। अनुवाक-७। सूक्त-३४

भावार्थ:-जल अग्नि से प्रयुक्त किये हुए रथ के विना कोई मनुष्य स्थल जल और अन्तरिक्ष मार्गों में शीघ्र जाने को समर्थ नहीं हो सकता। इस से राज्यश्री, उत्तम सेना और वीर पुरुषों को प्राप्त होके ऐसे विमानादि यानों से युद्ध में विजय को पा सकते हैं। इस कारण इस विद्या में मनुष्य सहा युक्त हों॥१२॥

पूर्व सूक्त से इस विद्या के सिद्ध करने वाले इन्द्र शब्द के अर्थ का प्रिक्यिंदन किया तथा इस सूक्त से इस विद्या के साधक अश्वि अर्थात् द्यावापृथिवी आदि अर्थ प्रतिपादन किये हैं। इससे इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये।

क अर्थ का पूर्व सूक्त क अर्थ क साथ सङ्गित जाननी चाहिय।

यह पांचवां वर्ग और चौतीसवां सूक्त समाप्त हुआ।

अथैकादशर्चस्य पञ्चत्रिंशस्य सूक्स्याङ्गिरसो हिरण्यस्तूप ऋषि:। आदिमस्य

मन्त्रस्याग्निर्मित्रावरुणौ रात्रिः सविता च, २-११ सविता च देवताः। १ विराड् जगती। ९

निचृज्जगती छन्दः। निषादः स्वरः। २, ५, १०, ११ विराट् त्रिष्टुप्। ३, ४, ६ त्रिष्टुप् छ<mark>न्द</mark>ः

धैवतः स्वरः ७,८ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

तत्र अग्न्यादिगुणान् विज्ञाय कृत्यं सिद्धं कुर्य्यादित्युपदिश्यन्ते॥

अब पैतीसवें सूक्त का आरम्भ है। उस के पहिले मन्त्र से अग्नि आदि के गुणों की जाने के सब प्रयोजनों को सिद्ध करे, इस विषय का वर्णन किया है।

ह्वयाम्युग्निं प्रथमं स्वस्तये ह्वयामि मित्रावर्मणाविहावसे। ह्वयामि रात्रीं जर्गतो निवेशनीं ह्वयामि देवं सवितारमूत्रिभ्रशः।

ह्वयामि। अग्निम्। प्रथमम्। स्वस्तये। ह्वयामि। मित्रावरुणौ। हुहै। अवसे ह्वयामि। रात्रीम्। जर्गतः। निऽवेशनीम्। ह्वयामि। देवम्। सवितारम्। ऊतये॥ १॥

पदार्थ:-(ह्रयामि) स्पर्धामि (अग्निम्) रूपगुणम् (प्रथमम्) जीवनस्यादिमनिमित्तम् (स्वस्तये) सुशोभनिमष्टं सुखमस्ति यस्मात्तस्मै सुखाय (ह्रयामि) स्ब्रीकरोमि (मित्रावरुणौ) मित्रः प्राणो वरुण उदानस्तौ (इह) अस्मिन् शरीरधारणादिव्यवहारे अवसे) स्थ्रणाद्याय (ह्रयामि) प्राप्नोमि (रात्रीम्) सूर्याभावादन्धकाररूपाम् (ह्रयामि) गृह्णामि (वेद्मम्) द्योतिप्रत्मकं (सवितारम्) सूर्यलोकम् (ऊतये) क्रियासिद्धीच्छायै॥१॥

अन्वय:-अहमिह स्वस्तये प्रथम्भिन ह्याभ्यवसे मित्रावरुणौ ह्वयामि जगतो निवेशनीं रात्रीं ह्वयाम्यूतये सवितारं देवं ह्वयामि॥१॥ 🗸

भावार्थः-मनुष्यैरहर्निशं सुखायापिवायुसूर्याणां सकाशादुपयोगं गृहीत्वा सर्वाणि सुखानि प्राप्याणि नैतदादिना विना कदाचित् कस्यचित् सुखं साभवतीति॥१॥

पदार्थ:-मैं (इह) इस शरीर धारणादि व्यवहार में (स्वस्तये) उत्तम सुख होने के लिये (प्रथमम्) शरीर धारण के आदि सधिन (अग्निम्) रूप गुणयुक्त अग्नि के (ह्वयामि) ग्रहण की इच्छा करता हूँ (अवसे) रक्षणादि के लिये (प्रिमावरुणों) तथा प्राण वा उदान वायु को (ह्वयामि) स्वीकार करता हूं (जगतः) संसार क्रों (निवेशनीम्) निद्रा में निवेश कराने वाली (रात्रीम्) सूर्य के अभाव से अन्धकाररूप रात्रि को (ह्वयामि) प्राप्त होता हूं (ऊतये) क्रियासिद्धि की इच्छा के लिये (देवम्) द्योतनात्मक (सवितारम्) सूर्य को को (ह्वयामि) ग्रहण करता हं॥१॥

भावार्थ:-मनुष्यों को चाहिये कि दिन-रात सुख के लिये अग्नि वायु और सूर्य के सकाश से उपक्रार को प्रहण करके सब सुखों को प्राप्त होवें, क्योंकि इस विद्या के विना कभी किसी पुरुष को पूर्ण सुख का सम्भव नहीं हो सकता॥१॥

मण्डल-१। अनुवाक-७। सूक्त-३५

अथ सूर्यलोकगुणा उपदिश्यन्ते॥

अब अगले मन्त्र में सूर्यलोक के गुणों का उपदेश किया है॥

आ कृष्णेन रर्जसा वर्तमानो निवेशयेन्नमृतं मर्त्यं च। हिरुण्ययेन सविता रथेना देवो योति भुवनानि पश्यन्॥२॥

आ। कृष्णेने। रजेसा। वर्तमानः। निऽवेशर्यन्। अमृतंम्। मर्त्यम्। च। हिर्ण्ययेने। सविता रथेने। आ। देवः। याति। भुवनानि। पश्यन्॥२॥

पदार्थ:-(आ) समन्तात् (कृष्णेन) कर्षति येन स कृष्णस्तेन। रहि। कृष्ण्यत्रर्णेन लोकेन। कृष्णं कृष्येतर्निकृष्टो वर्णः। (निरु०२.२०) यत्कृष्णं तदन्नस्य। (छान्दो०६.१००० एताभूमं प्रमाणाभ्यां पृथिवीलोका अत्र गृह्यन्ते। कृषेर्वर्णे। (उणा०३.४) इति नक् प्रत्ययः। अत्राङ्कपूर्वकत्वाद्यक्षर्षणार्थो गृह्यते (रजसा) लोकसमूहेन सह। लोका रजांस्युच्यन्ते। (निरु०४.१९) (वर्त्त्यनिः) वर्त्तव्रेऽसौ वर्त्तमानः (निवेशयन्) नितरां स्वस्वसामर्थ्ये स्थापयन् (अमृतम्) अन्तर्यामित्या वेदद्वारा वृष्टिद्वाराऽमृतात्मकं रसं वा (मर्त्यम्) कर्मप्रलयप्राप्ति स्वत्रस्थया क्रालव्यवस्थया वा मरणधर्मयुक्तं (च) समृच्चये (हिरण्ययेन) ज्योतिमीयेनान्नेन्तेन ऋत्व्यवास्त्व्यवास्त्वमाध्वीहिरण्ययानि छन्दिस। (अष्टा०वोष्ट्र.४.१७५) इत्ययं निपातित:। ज्योतिर्हि हिरण्यम्। (श॰ब्रा॰४.३.१.२१) (सविता) सर्वेषां प्रसेचिता प्रकाशवृष्टिरसानां च प्रसविता (रथेन) रहित जानाति गच्छति गमयति वा येन तेन। रथ्ने रंहतर्गतिक्रर्मणः। (निरु०९.११) (आ) समन्तात् (देवः) दीव्यति प्रकाशयतीति (**याति**) प्राप्नोति प्राप्याति व्याप्याति प्राप्याति प्र येषु तानि। भूसु॰ (उणा॰२.७८) इत्यश्विकरणे क्युन् प्रत्ययः। (पश्यन्) प्रेक्षमाणो दर्शयन् वा। अत्रापि पक्षेऽन्तर्गतो ण्यर्थः॥२॥

अन्वय:-अयं सिवता देवः परमेश्वर आकृष्णेन रजसा सहाभिव्याप्य वर्त्तमानः सर्वस्मिन् जगत्यमृतं मर्त्यं च निवेशयन् सन् हिरण्ययेन यशोमयेन ज्ञानरथेन युक्तो भुवनानि पश्यन्नायाति समन्तात् सर्वान् पदार्थान् प्राप्नोतीि प्रविज्ञ्चयः। अयं सिवता देवः सूर्यलोकः कृष्णेन रजसा सह वर्त्तमानोऽस्मिन् जगत्यमृतं मर्त्यं च निवेशयन् हिरण्ययेन रथेन भुवनानि पश्यन् दर्शयन् सन्नायाति समन्ताद् वृष्ट्यादिरूपविभागं स प्रापयनीत्यपरोऽन्वयः॥२॥

भावर्थिः अत्र श्लेषालङ्कारः। यथा पृथिव्यादयो लोकाः सर्वान् मनुष्यादीन् धरन्ति सूर्यलोक आकर्षणेन् पृथिव्यद्धीन् धरित। ईश्वरः स्वसत्तया सूर्यादीन् लोकान् धरित। एवं क्रमेण सर्वलोकधारणं प्रवर्त्तो, नेतन विनान्तरिक्षे कस्यचिद् गुरुत्वयुक्तस्य लोकस्य स्वपिरधौ स्थितेः सम्भवोऽस्ति। नैव लोकानो भ्रमणेन विना क्षणमुहूर्त्तप्रहराहोरात्रपक्षमासर्तुसंवत्सरादयः कालावयवा उत्पत्तुं शक्नुवन्तीित॥२॥

पदार्थ:-यह (सविता) सब जगत् के उत्पन्न करने वाला (देव:) सबसे अधिक प्रकाशयुक्त परमेश्वर (आकृष्णेन) अपनी आकर्षण शक्ति से (रजसा) सब सूर्य्यादि लोकों के साथ व्यापक (वर्त्तमान:) हुआ (अमृतम्) अन्तर्यामिरूप वा वेद द्वारा मोक्षसाधक सत्य ज्ञान (च) और (मर्च्यम्) कर्मों और प्रलय की व्यवस्था से मरणयुक्त जीव को (निवेशयन्) अच्छे प्रकार स्थापमा करता हुआ (हिरण्ययेन) यशोमय (रथेन) ज्ञानस्वरूप रथ से युक्त (भुवनानि) लोकों को (पृथ्वन्) देखता हुआ (आयाति) अच्छे प्रकार सब पदार्थों को प्राप्त होता है॥१॥२॥

यह (सविता) प्रकाश वृष्टि और रसों का उत्पन्न करने वाला (कृष्णेन) प्रकाशरहित (रजसा) पृथिवी आदि लोकों के साथ (आ वर्त्तमान:) अपनी आकर्षण शक्ति से वर्द्धमान इस जगत् में (अमृतम्) वृष्टि द्वारा अमृत स्वरूप रस (च) तथा (मर्त्यम्) काल व्यवस्था से मरण को (निवंशयन्) अपने-अपने सामर्थ्य में स्थापन करता हुआ (हिरण्ययेन) प्रकाशस्वरूप (रथेन) गम्न शक्ति से (भुवनानि) लोकों को (पश्यन्) दिखाता हुआ (आयाति) अच्छे प्रकार वर्षा आदि रूपों कि अलग अलग प्राप्ति कराता है॥२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जैसे सब पृथिवी आदि लोक मनुष्यादि प्राणियों वा सूर्यलोक अपने आकर्षण से पृथिवी आदि लोकों वा ईश्वर अपनी सत्त्र से सूर्यादि सब लोकों का धारण करता है, ऐसे क्रम से सब लोकों का धारण होता है, इसके विज्ञ अन्तरिक्ष में किसी अत्यन्त भारयुक्त लोक का अपनी परिधि में स्थिति होने का सम्भव नहीं होता और लोकों के घूमने विना क्षण, मुहूर्त, प्रहर, दिन, रात, पक्ष, मास, ऋतु और संवत्सर आदि कालों के अवयव नहीं उत्पन्न हो सकते हैं॥२॥

अथ वायुमुर्व्यदृष्टानेन शूरवीरगुणा उपदिश्यने॥

अब वायु और सूर्य्य के दृष्टान्त के साथ अपले मेन्त्र में शूरवीर के गुणों का उपदेश किया है॥

याति देव: प्रवता यात्युद्धता याति शुभाभ्यां यज्तो हरिभ्याम्। आ देवो योति सविता परावतोऽपु विश्वा दुरिता बार्धमान:॥३॥

याति। देव:। प्रुऽवर्ता याति। युज्राभ्याम्। युज्तः। हरिर्ऽभ्याम्। आ। देव:। याति। सुविता। पुराऽवर्तः। अप। विश्वा दुःद्वरा बार्धमानः॥३॥

पदार्थ:-(याति) पिछ्लि (देव:) द्योतको वायुः (प्रवता) अधोमार्गेण। अत्र प्रपूर्वकात् संभजनार्थाद् वन्धातोः क्विप् (याति) प्राप्नोति (उद्वता) ऊर्ध्वमार्गेण (याति) गच्छिति (शुभ्राभ्याम्) शुद्धाभ्याम् (य्रजैतः) सङ्गन्तुं योग्यः (हिरभ्याम्) कृष्णशुक्लपक्षाभ्याम् (आ) अभ्यर्थे (देवः) प्रकाशकः (याति) प्राप्नोति (सिवता) सूर्यलोकः (परावतः) दूरमार्गान्। परावत इति दूरनामसु पिठतम्। (निघं० १६) (अप) दूरार्थे (विश्वा) विश्वानि सर्वाणि (दुरिता) दुष्टानि दुःखानि। अत्रोभयत्र शेश्छन्दिस इति लिपः। खाधमानः) दुरीकुर्वन्॥३॥

मण्डल-१। अनुवाक-७। सूक्त-३५

अन्वय:-हे राजपुरुषा! भवन्तो यथा विश्वानि दुरितान्यपबाधमानो यजतो देवो वायुः प्रवता मार्गेण यात्युद्वता मार्गेण यात्यायाति च यथा च विश्वा दुरिता सर्वाणि दुःखप्रदान्यन्धकारादीनि बाधमानौ यजता सिवता देवः सूर्यलोकः शुभ्राभ्यां हरिभ्यां हरणसाधनाभ्यामहोरात्राभ्यां कृष्णशुक्लपश्लाभ्यां प्रद्यतो दूरस्थान् पदार्थान् स्विकरणैः प्राप्य पृथिव्यादीन् लोकान् याति प्राप्नोति तथा र्युद्धार्थ शूरवीरा गमनागमनाभ्यां प्रजाः सततं सुखयन्तु॥३॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। यथा ईश्वरोत्पादितायां सृष्टौ वाषुरधऊर्ध्वसमगत्या गच्छन्नधस्थानुपर्युपरिस्थानानयति यथायमहोरात्रादिभ्यां हरणशीलाभ्यां स्विक्रस्णयुक्ताभ्यां युक्त: सिवता देवोऽन्धकाराद्यपवारणेन दु:खानि विनाश्य सुखानि प्रकटय्य कदाचित् सुखानि निवाय्ये दु:खानि प्रकटयित तथा सभापत्यादिभिरपि सेनादिभि: सहगत्वागत्य च शत्रून् जित्वा प्रजापाल्यनममुख्यम्॥३॥

पदार्थ:-जैसे (विश्वा) सब (दुरिता) दुष्ट दु:खों को अप) (कार्यमान:) दूर करता हुआ (यजत:) संगत करने योग्य (देव:) श्रवण आदि ज्ञान का प्रकाशक वायु (प्रवता) नीचे मार्ग से (याति) जाता आता और (उद्धता) ऊर्ध्व मार्ग से (याति) जाता आता और जैसे सब दु:ख देने वाले अन्धकारादिकों को दूर करता हुआ (यजतः) सङ्गत हीने वोग्य (सविता) प्रकाशक सूर्यलोक (शुभ्राभ्याम्) शुद्ध (हिरिभ्याम्) कृष्ण वा शुक्लपक्षों से (परावतः) दूरस्थ पदार्थों को अपनी किरणों से प्राप्त होकर पृथिव्यादि लोकों को (आयाति) सब प्रकार प्राप्त होता है, वैसे शूरवीरादि लोग सेना आदि सामग्री सहित ऊंचे-नीचे मार्ग में जा आ के शतुओं को जीत कर प्रजा की रक्षा निरन्तर किया करें॥३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्लिपमल्ड्राहरें। जैसे ईश्वर की उत्पन्न की हुई सृष्टि में वायु नीचे ऊपर वा समगित से चलता हुआ नीचे के पद्मार्थों को ऊपर और ऊपर के पदार्थों को नीचे करता है और जैसे दिन-रात वा आकर्षण धारण्रपण्ण बाले अपने किरण समूह से युक्त सूर्यलोक अन्धकारादिकों के दूर करने से दुःखों का विनाश किर सुख और सुखों का विनाश कर दुःखों को प्रगट करता है, वैसे ही सभापित आदि को भी अनुष्टान करना चाहिये। ३॥

पुनस्तयोर्दृष्टान्तेन राजकृत्यमुपदिश्यते॥

फिर भी अग्ले मन्त्र में दोनों के दृष्टान्त से राजकार्य्य का उपदेश किया है॥

अभीवृतं क्रशनैर्बिश्वरूपं हिर्गण्यशम्यं यज्तो बृहन्तम्।

आस्थार्स्स सिवता चित्रभानुः कृष्णा रजांसि तर्विषीं दर्धानः॥४॥

भूभिऽवृत्तम्। कृश्नी:। विश्वऽरूपम्। हिर्रण्यऽशम्यम्। युज्तः। बृहन्तम्। आ। अस्थात्। रथम्। सुविता। चित्रऽभानः। कृष्णा। रजांसि। तिविषीम्। दर्धानः॥४॥

पदार्थ:-(अभीवृतम्) अभितः सर्वतः साधनैः पूर्णो वर्तते सोऽभीवृत्तम्। निहवृति (अष्टा॰६.३.११६) इति पूर्वस्य दीर्घत्वम्। (कृशनैः) तनूकरणैः सूक्ष्मत्विनिष्पादकैः किरणैर्विविधैरूपैर्वा। कृशनिमित रूपनामसु पठितम्। (निघं॰३.७) (विश्वरूपम्) विश्वानि बहूनि रूपाणि यस्मिन् प्रवासे तम् (हरण्यशम्यम्) हिरण्यसुवर्णान्यन्यानि वा ज्योतीषि शम्यानि शमितुं योग्यानि यस्मिन् प्रवासः) सङ्गतिप्रकाशयोदीता (वृहन्तम्) महान्तम् (आ) समन्तात् (अस्थात्) तिष्ठति। अत्र लुईर्भे बुद्ध। (रथम्) यस्मिन् रमते तम्। रममाणोऽस्मिंस्तष्ठतीति वा। (निरु॰९.११) (सविता) ऐश्वर्यत्रान् राजा सूर्यलोको वायुर्वा। सवितेति पदनामसु पठितम्। (निघं॰५.४) अनेन प्राप्तिहेतोर्वायोग्रिप ग्रहणम्। (चित्रभानुः) चित्राभानवो दीप्तयो यस्य यस्माद्वा सः (कृष्णा) कृष्णान्याकर्षणाकृष्णवर्णयुक्तानि पृथिव्यादीनि (रजांसि) लोकान् (तविषीम्) बलम्। तविषीति बलनामसु पठितम्। (नृष्ठं०२९)। (देधानः) धरन्॥४॥

अन्वय:-हे सभेश राजँस्त्वं यथा यजतश्चित्रभानुः सिवता सूर्यो वायुर्ता कृशनैः किरणै रूपैर्वा बृहन्तं हिरण्यशम्यमभीवृतं विश्वरूपं रथं कृष्णानि रजांसि पृश्विद्यादिलोकांस्तविषीं बलं च दधानः सन्नास्थात् समन्तात् तिष्ठति तथा भूत्वा वर्त्तस्व॥४॥

भावार्थ:-अत्र श्लेषवाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। यथा सूत्रिकिनिमित्तः सूर्यादिलोकधारको बलवान् सर्वान् लोकानाकर्षणाख्यं बलं च धरन् वायुर्वर्त्तते यथा च सूर्यलोकः स्वसिन्निहितान् लोकान् धरन् सर्वं रूपं प्रकटयन् बलाकर्षणाभ्यां सर्वं धरित नैताभ्यां विनो कस्यचित् परमाणोरिप धारणं संभवित। तथैव राजा शुभगुणाढ्यो भूत्वा राज्यं धरेत्॥४॥

पदार्थ:-हे सभा के स्वामी राजन्! अप जैसे (यजतः) सङ्गति करने वा प्रकाश का देने वाला (चित्रभानुः) चित्र-विचित्र दीप्तियुक्त (सविना) सूर्यंलीक वा वायु (कृशनैः) तीक्ष्ण करने वाले किरण वा विविधरूपों से (बृहन्तम्) बड़े (हिरण्यशम्यम्) जिसमें सुवर्ण वा ज्योति शान्त करने योग्य हो (अभीवृतम्) चारों ओर से वर्त्तमान (विश्वरूपम्) जिसके प्रकाश वा चाल में बहुत रूप हैं, उस (रथम्) रमणीय रथ (कृष्णा) आकर्षण वा कृष्णवर्ण पुक्त (रजांसि) पृथिव्यादि लोकों और (तविषीम्) बल को (दश्चनः) धारण करता हुआ (आएशान्) अच्छे प्रकार स्थित होता है, वैसे अपना बर्जाव कीजिये॥४॥

भावार्थ:-इस मन्त्र मिं क्लोर और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे सूर्य आदि की उत्पत्ति का निमित्त सूर्य आदि लोक का धारण करने वाला बलवान् सब लोकों और आकर्षणरूपी बल को धारण करता हुआ वायु विचरता है और जैसे सूर्य्यलोक अपने समीप स्थलों को धारण और सब रूप विषय को प्रकट करता हुआ बल वा आकर्षण शक्ति से सबको धारण करता है और इन दोनों के विना किसी स्थूल वा सूक्ष्म वस्सु के धारण का संभव नहीं होता, वैसे ही राजा को होना चाहिये कि उत्तम गुणों से युक्त हाँका राज्य का धारण किया करें॥४॥

पुनस्तौ कीदृशावित्युपदिश्यते॥

मण्डल-१। अनुवाक-७। सूक्त-३५

फिर वे कैसे हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

वि जनां उठ्यावाः शितिपादौ अख्यन् रथुं हिर्रण्यप्रउगुं वहन्तः।

शश्रुद्विशः सवितुर्दैव्यंस्योपस्थे विश्वा भुवनानि तस्थुः॥५॥६॥

वि। जनान्। श्यावाः। शितिऽपादेः। अख्यन्। रथम्। हिर्रण्यऽप्रउगम्। वहन्तः। शर्थन्। विशेः। सवितुः। दैव्यस्य। उपऽस्थे। विश्वां। भुवनानि। तस्थुः॥५॥

पदार्थ:-(वि) विशेषार्थे (जनान्) विदुषः (श्यावाः) श्यायन्ते प्राप्नुकिन्ते ते। श्यावाः। सिवतुरित्यादिष्टोपयोजननामसु पठितम्। (निघं०१.१५) (शितिपादः) शित्ये शुक्लाः पादा अंशा येषां किरणानान्ते (अख्यन्) ख्याता भवन्ति। अत्र लडथें लुङ्। (रथम्) विमानिदियानम् (हिरण्यप्रउगम्) हिरण्यस्य ज्योतिषोऽग्नेः प्रउगं सुखवत्स्थानं यस्मिँस्तं प्रयोगार्हम्। पृषोदौरादिना अभीष्टरूपसिद्धिः (वहन्तः) प्राप्नुवन्तः (श्रश्चत्) अनादयः (विशः) प्रजा (सिवतुः) सूर्यलोकस्य (दैव्यस्य) देवेषु दिव्येषु पदार्थेषु भवो दैव्यस्तस्य (उपस्थे) उपतिष्ठन्ते यस्मिँस्तस्मिन्। अत्र ध्वर्थे कविधानम् इत्यधिकरणे कः प्रत्ययः। (विश्वा) विश्वानि सर्वाणि। अत्र शेश्वन्दिस इति शिलापः। (भवनानि) पृथिवीगोलादीनि (तस्थुः) तिष्ठन्ति। अत्र लडथें लिट्॥५॥

अन्वय:-हे सज्जन! यथाऽस्य दैव्यस्य सवितुः सूर्यलोकस्योपस्थे विश्वा भुवनानि सर्वे भूगोलास्तस्थुस्तस्य शितिपादः श्यावाः किरणा जनान् हिरण्यप्रउगं रथं शश्वद्विशश्च वहन्त व्यख्यन् विविधतया ख्यान्ति तथा तव निकटे विद्वां सुस्तिष्ठन्तु स्व व विद्याधर्मी प्रकटय॥५॥

भावार्थ:-हे मनुष्या! यूयं यथा सूर्यन्तिकस्य प्रकाशाकर्षणादयो गुणाः सन्ति, ते सर्वं जगद्धारणपुरस्सरं यथायोग्यं प्रकटयन्ति, ऐ सूर्यस्य सन्निधौ लोकाः सन्ति, ते सूर्य्यप्रकाशेन प्रकाशन्ते, या अनादिरूपाः प्रजास्ता अपि वायुध्रस्ति। अनेत सर्वे लोकाः स्वस्वपिधौ समवितष्ठन्ते तथा गुणान् धरत स्वस्वव्यवस्थायां स्थित्वा न्याप्ट्रीम् स्थापयत च्रो।५॥

पदार्थ:-हे सज्जन पुरुष! आप जैसे जिस (दैव्यस्य) विद्वान् वा दिव्य पदार्थों में उत्पन्न होने वाले (सिवतुः) सूर्यलोक की (अस्थ) गोद अर्थात् आकर्षण शिक्त में (विश्वा) सब (भुवनानि) पृथिवी आदि लोक (तस्थुः) स्थित होते हैं, उसके (शितिपादः) अपने श्वेत अवयवों से युक्त (श्यावाः) प्राप्ति होने वाले किरण (जेपान्) विद्वानों (हिरण्यप्रउगम्) जिसमें ज्योतिरूप अग्नि के मुख के समान स्थान हैं, उस (रथम्) विमान आदि यान और (शश्वत्) अनादि रूप (विशः) प्रजाओं को (वहन्तः) धारण और बढ़ाते हुए (अख्यन्) अनेक प्रकार प्रगट होते हैं, वैसे तेरे समीप विद्वान् लोग रहें और तू भी विद्या तथा धर्म का प्रचार कर।।५।।

888

ऋग्वेदभाष्यम्

भावार्थ:-हे मनुष्यो! तुम जैसे सूर्यलोक के प्रकाश वा आकर्षण आदि गुण सब जगत् की धारणपूर्वक यथायोग्य प्रकट करते हैं और जो सूर्य के समीप लोक हैं, वे सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होते हैं, जो अनादि रूप प्रजा है, उसका भी वायु धारण करता है। इस प्रकार होने से सब लॉक अपनी अपनी परिधि में स्थित होते हैं, वैसे तुम सद्गुणों को धारण और अपने-अपने अधिकारों में स्थित होकर अन्य सबको न्याय मार्ग में स्थापन किया करो॥५॥

पुनरिप वायुसूर्व्ययोर्गुणा उपदिश्यन्ते॥

फिर भी वायु और सूर्य्य के गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।

तिस्रो द्यार्वः सवितुर्द्वा उपस्थाँ एको यमस्य भुवने विराषाट्। आणि न रथ्यममृतार्धि तस्थुरिह ब्रवीतु य उ तिच्चकेतत्। १६॥

तिस्रः। द्यार्वः। सुवितुः। द्वौ। उपऽस्थां। एकां। यमस्यं। भुवने। विराष्ट्रार्थे शाणिम्। न। रथ्यंम्। अपृतां। अर्थि। तस्थुः। इह। ब्रवीतुः। यः। ऊँ इति। तत्। चिकैतत्॥६॥

पदार्थ:-(तिस्र:) त्रित्वसंख्याकाः (द्याव:) सूर्य्याकित्वद्युदूपारं (सवितु:) सूर्यलोकस्य (द्वौ) यस्मिँस्तत्र 🗘 (क्षत्रे) 🗡 आडयाजयाराणां स्वप्रकाशभूगोलौ (उपस्था) उपतिष्ठन्ति चोपसङ्ख्यानम्। आङोऽनुनासिकश्छन्दसि। (अष्टा०वा०७.१.३९) ङे: इति वार्त्तिकेन स्थाने आङादेश: । (अष्टा॰६.१.१२६) इति प्रकृतिभावादसंधिः। (एका) विद्युदाख्यदीप्तिः (यमस्य) वायोः (भुवने) अन्तरिक्षस्थाने (विराषाट्) वीरान् ज्ञानवतः प्राप्तिशीक्षान् जीवान् सहते सः। अत्र वर्णव्यत्ययेन दीर्घेकारस्य स्थाने ह्रस्वेकारोऽकारस्थान आकारश्चे स्फायितञ्चि० (उणा०२.१३) इत्यजधातोरक् प्रत्ययः। १६ **छन्दिस सहः।** (अष्टा०३.२/६३) हित्रिण्वः। **सहः साढः सः।** (अष्टा०८.३.५६) इति षत्वम् (आणिम्) संग्रामम्। आणाविति संग्रामनामस् पठितम्। (निघं०२.१७) (न) इव (रथ्यम्) रथान् वहति तम् (अमृता) अमृतानि (अभि) उपरिभारे (तस्थुः) तिष्ठन्ति। अत्र लडर्थे लिट्। (इह) अस्मिन् संसारेऽस्यां विद्यायां वा (व्यवीतु) उपदिश्तु (य:) मनुष्यः (ऊँ) वितर्के (तत्) ज्ञानम् (चिकेतत्) विजानीयात्। अयं **कितज्ञाने** श्लासोलेट्टे प्रथमैकवचनप्रयोगः। **बहुलं छन्दसि** इति शपः श्लुः॥६॥

अन्वय:-हे विद्वस्तां स्थिमाणि भृत्यानेवाऽस्य सिवतुः सूर्यलोकस्य प्रकाशे यास्तिस्रो द्यावोऽधितस्थुस्त्रत्र द्वौ स्रवितृमण्डलस्योपस्था वर्त्तेते। एका विराषाट् विद्युदाख्या दीप्तिर्यमस्य नियन्तुर्वायोर्भुत्रवेऽन्तरिक्षे हि तिष्ठति। यान्यमृता कारणरूपेण नाशरहितानि चन्द्रतारकादीनि भुवनानि सन्ति

रदः अजेव्येध्रजपोः। अष्टा०२.४.५६। इत्यजधातोः स्थाने व्यादेशः।

मण्डल-१। अनुवाक-७। सूक्त-३५

तान्यन्तरिक्षेऽधितस्थुरिधतिष्ठन्ति य उ एतानि चिकेतत् जानीयात् स तज्ज्ञानं ब्रवीतु तथा भूत्वेमां विद्यामुपादिश॥६॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। ईश्वरेण या अग्न्याख्यात् कारणात् तिस्रो दीप्तयः सूर्य्याप्तिविद्युद्धस्य रचिताः सन्ति, तद्द्वारा सर्वाणि कार्याणि सिध्यन्ति। यदा ये जीवाः। शरीराणि त्यक्त्वा सस्य यसस्य स्थानं गच्छन्ति स कोऽस्तीति पृच्छ्यते। अत्रोत्तरमन्तिरक्षस्थं वायुं यमाख्यं गच्छन्तीति ब्रूब्यत्। यथा युद्धं रथस्य भृत्यादीन्यङ्गान्युपतिष्ठन्ति। तथैव मृता जीविताश्च जीवा वायुमाश्रित्य तिष्ठन्ति। पृथिवीचन्द्रत्यस्कादयो लोकाः सूर्यप्रकाशमुपाश्रित्य वर्त्तन्ते। यो विद्वान् स एव प्रश्नोत्तरम्भ वदेन्नेतरौ मूढः। नैव मनुष्यैरविद्वत्त्कथने विश्वसितव्यं न किलाप्तशब्दऽश्रद्धातव्यं चेति॥६॥

पदार्थ:-हे विद्वान्! तू (रथ्यम्) रथ आदि के चलाने योग्ये (आणिम्) संग्राम को जीतने वाले राजभृत्यों के (न) समान इस (सिवतुः) सूर्यलोक के प्रकाश में जो (तिस्रः) तीन अर्थात् (द्वावः) सूर्य, अग्नि और विद्युत् रूप के साधनों से युक्त (अधितस्थुः) स्थित होते हैं उनमें से (द्वौ) दो प्रकाश वा भूगोल सूर्य मण्डल के (उपस्था) समीप में रहते हैं और (रक्का) एक (विराषाट्) शूरवीर ज्ञानवान् प्राप्ति स्वभाव वाले जीवों को सहने वाली बिजुली रूप दीप्ति (यपस्य) नियम करने वाले वायु के (भुवने) अन्तरिक्ष में ही रहती है और जो (अमृता) कारणरूप से नाशरिहत चन्द्र, तारे आदि लोक हैं, वे इस सूर्य लोक के प्रकाश में प्रकाशित होकर (अधितस्थुः) स्थित होते हैं (यः) जो मनुष्य (ऊँ) वाद-विवाद से इनको (चिकेतत्) जाने और इस ज्ञान को (व्यवीतु) अच्छे प्रकार उपदेश करे, उसी के समान हो के हम को सद्गुणों का उपदेश किया कर॥६॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमाल द्वार है जिस ईश्वर ने अग्निरूप कारण से सूर्य अग्न और बिजुली रूप तीन प्रकार की दीप्ति रची है, जिनके द्वारा सब कार्य सिद्ध होते हैं। जब कोई ऐसा पूछे कि जीव अपने शरीरों को छोड़ के जिस यम के स्थान को प्राप्त होते हैं, वह कौन है, तब उत्तर देने वाला अन्तरिक्ष में रहने वाले वायु की प्राप्त होते हैं, ऐसा कहे। जैसे युद्ध में रथ, भृत्य आदि सेना के अङ्गों में स्थित होते हैं, वैसे मरे और जीते हुए जीव वायु के अवलम्ब से स्थित होते हैं। पृथिवी चन्द्रमा और नक्षत्रादि लोक सूर्य्य प्रकाश के आश्रय से स्थित होते हैं, जो विद्वान् हो, वही प्रश्नों के उत्तर कह सकता है, मूर्ख नहीं। इस्तिये मनुष्यों को मूर्ख अर्थात् अनाप्तों के कहने में विश्वास और विद्वानों के कथन में अश्रद्धा कभी निकरनी चाहिये॥६॥

पुनरस्य सूर्यलोकस्य गुणा उपदिश्यन्ते॥

फिर इस सूर्यलोक के गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

वि सुपूर्णो अन्तरिक्षाण्यख्यद् गभीरवेपा असुरः सुनी्थः।

४४६

ऋग्वेदभाष्यम्

क्वे ३ दानीं सूर्यः कश्चिकेत कतुमां द्यां रुश्मिरुस्या ततान॥७॥

वि। सुऽपूर्णः। अन्तरिक्षाणि। अख्यत्। गुभीरऽवेषाः। असुरः। सुऽनीथः। क्वं। इदानीम्। सूर्कः। कः। चिकेत्। कृतमाम्। द्याम्। रृश्मिः। अस्य। आ। तृतानु॥७॥

पदार्थ:-(वि) विशेषार्थे (सुपर्ण:) शोभनपतनशीला रश्मयो यस्य। सुपर्णा इति रश्मिनामसु पिठतम्। (निघं०१.५) (अन्तरिक्षाणि) अन्तरिक्षस्थानि सर्वाणि भुवनानि (अख्यत्) ख्याप्यति प्रकाशयित (गभीरवेपा:) गभीरोऽविद्विद्धिर्लिक्षितुमशक्यो वेपः कम्पनं यस्य सः। हुवेपृ कम्पन अस्मात् सर्वधातुभ्योऽसुन् इत्यसुन् प्रत्ययः (असुरः) सर्वेभ्यः प्राणदः सूर्य्योदये मृत इवोत्तिष्टेकीत्यतः। असुषु प्राणेषु रमते वा। (सुनीथः) सुषु नीथाः पदार्था प्राप्तयो यस्मात् सः। हुनिकृषि (उणा०२.२) अनेन णीञ् प्रापणे धातोः कथन् प्रत्ययः। (क्व) कुत्र (इदानीम्) अस्मिन् समये वर्त्रमानायां रात्रौ (सूर्यः) (कः) विद्वान् (चिकेत) केतित जानाति। अत्र कितज्ञाने धातोर्लड्थे लिट्। (कतमाम्) बहूनां पृथिवीनां मध्ये काम् (द्याम्) द्योतनात्मिकाम् (रिश्मः) ज्योतिः (अस्य) सूर्यस्य (अप्र) समन्तात् (ततान) तनोति विस्तृणोति। अत्रापि लड्थे लिट्॥७॥

अन्वय:-हे विद्वन्! यथाऽसुरो गभीरवेपाः सुमीथः सुपौर्णीऽस्य रश्मिरन्तरिक्षाणि व्यख्यद् विख्यापयित प्रकाशयित तेन रश्मिगणेन युक्तः सूर्य् इदानीं क्व वर्तते। एतत्कश्चिकेत को जानाित। कतमां द्यामस्य सूर्य्यस्य रश्मिराततानैतदिप कश्चिकेत्रा कश्चिदेव जानाित न तु सर्वे तदेतत्तत्त्वमवेहि॥७॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यद्ग्यं भूगोलो भ्रमणेन सूर्यप्रकाशमाच्छाद्यान्धकारं जनयित तदाऽविद्वांसो जनाः पृच्छन्तीदानी सूर्य्यः वव गत इति तं प्रश्नमुत्तरेणैवं समादध्यात्। पृथिव्या अपरे पृष्ठेऽस्तीति यस्य चलनमतीव सूर्यभूसस्यतः प्राकृतैर्जनेर्न विज्ञायत एवं विद्वदिभिप्रायोऽपि॥७॥

पदार्थ:-हे विद्वज्जन! जैसे यह सूर्य्यलोक जो (असुर:) सब के लिये प्राणदाता अर्थात् रात्रि में सोये हुओं को उदय के समग्ने चेतनता देने (गभीरवेपा:) जिसका कम्पन गभीर अर्थात् सूक्ष्म होने से साधारण पुरुषों के मन में नहीं बैठता (सुनीथ:) उत्तम प्रकार से पदार्थों की प्राप्ति कराने और (सुपर्ण:) उत्तम पतन स्वभाव किस्णयुक्त सूर्य्य (अन्तरिक्षाणि) अन्तरिक्ष में उहरे हुए सब लोकों को (व्यख्यत्) प्रकाशित करता है (इदानीम्) इस वर्त्तमान समय रात्रि में (क्व) कहाँ है। इस बात को (क:) कौन (चिकेत) जानता तथा (कतमाम्) बहुतों में किस (द्याम्) प्रकाश को (अस्य) इस सूर्य्य के (रिश्म:) किरण (आन्तान) व्याप्त हो रहे हैं, इस बात को भी कौन जानता है अर्थात् कोई-कोई जो विद्वान् हैं वे ही जानते हैं, सब साधारण पुरुष नहीं, इसलिये सूर्य्यलोक का स्वरूप और गित आदि को तू जान॥७॥

भोवार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जब यह भूगोल अपने भ्रमण से सूर्य्य के प्रकाश की आच्छादन कर अन्धकार करता है, तब साधारण मनुष्य पूंछते हैं कि अब वह सूर्य्य कहाँ

मण्डल-१। अनुवाक-७। सूक्त-३५

गया, उस प्रश्न का उत्तर से समाधान करे कि पृथिवी के दूसरे पृष्ठ में है, जिस का चलना अति सूक्ष्म है, जैसे वह मूर्ख मनुष्यों से जाना नहीं जाता, वैसे ही महाशय मनुष्यों का आशय भी अविद्वार लोग उहीं जान सकते॥७॥

पुनरतेस्य कृत्यमुपदिश्यन्ते॥

फिर इसके कृत्य का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अष्टौ व्यंख्यत्कुकुर्भः पृथिव्यास्त्री धन्व योजना सप्त सिन्धून्।

हिर्ण्याक्षः संविता देव आगाद् दध्द्रत्नां दाशुषे वार्याणि॥ 🎢

अष्टौ। वि। अख्यत्। कुकुर्भः। पृथिव्याः। त्री। धन्वं। योर्जना। सप्ता सिन्धून्। हृर्ण्युऽअक्षः। सुविता। देवः। आ। अगात्। दर्धत्। रत्नां। दाशुर्षे। वार्याणि॥८॥

पदार्थ:-(अष्ट्रौ) चतस्रो दिश उपदिशश्च। (वि) क्रिश्मिष्ट क्रिशायोगे (अख्यत्) ख्यापयित (ककुभः) दिशः। ककुभ इति दिङ्नामसु पठितम्। (निघं०१६) (पृथ्विव्याः) भूमेः सम्बन्धिनीः (त्री) त्रीणि भूम्यन्तिरक्षप्रकाशस्थानि भुवनानि (धन्व) प्राप्तव्यानि अत्र पृष्टिर्थाद्धविधातौरौणादिकः कनिन्, सुपां सुलुग्० इति विभक्तेर्लुक्। (योजना) युज्यन्ते सर्वाणि वस्तूनि येषु भुवनेषु तानि योजनानि। अत्र शेष्छन्दिस इति शेर्ल्लोपः। (सप्त) सप्त सङ्ख्याकान (सिन्धूभू) भूम्यन्तिरक्षोपर्युपरिस्थितान् (हिरण्याक्षः) हिरण्यानि ज्योतींष्यक्षीणि व्याप्तिशीलानि यस्य सः (सिन्धूभू) वृष्ट्युत्पादकः (देवः) द्योतनात्मकः (आ) समन्तात् (अगात्) एति प्राप्नोति। अत्र लुद्धे सुङ्। इणौं गा लुडि। (अष्टा०२.४.४५) इति गा आदेशः। (दधत्) दधातीति दधत्सन् (रत्ना) सुवणदिनि सम्णीयानि (दाशुषे) सर्वोपकारकाय विद्यादिदानशीलाय यजमानाय (वार्य्याणि) विर्तुं ग्रहीतुं योग्सानि।स्ता

अन्वय:-हे सभेश! त्वं यथा यो हिरण्याक्ष: सिवता देव: सूर्यलोक: पृथिव्या: सम्बन्धिनीरष्टें ककुभस्त्री त्रीण्युपर्यधोमध्यस्थिषि धन्वानि योजनानि तदुपलिक्षतान् मार्गान् सप्तिसधूँश्च व्यख्यद् विख्यापयित, स दाशुषे क्रार्योषि रत्ना रत्नानि दधत्सन्नागात् समन्तादेति तथा भूत: सन् वर्त्तस्व॥८॥

भावार्थ:-अत्र विस्ति प्रतिपमालङ्कारः। यथाऽयं सूर्यलोकः सर्वाणि मूर्तद्रव्याणि प्रकाश्य छित्वा वायुद्वाराऽन्तिरक्षे तीत्वा तस्मादधी निपात्य सर्वाणि रमणीयानि सुखानि जीवार्थं नयति। पृथिव्या मध्ये स्थितानामेकोनुपञ्चाशेत क्रोशपर्यन्तेऽन्तिरक्षे स्थूलसूक्ष्मलघुगुरुत्वरूपेण स्थितानां चापां सप्तिसिन्ध्विति संज्ञैताः सर्वा अकर्णेन धरित च तथा सर्वैविद्वद्भिर्विद्याधर्म्माभ्यां सकलान् मनुष्यान् धृत्वाऽऽ्रमन्दियतव्याः॥८॥

पदार्थ:-हे सभेश! जैसे जो (हिरण्याक्ष:) जिसके सुवर्ण के समान ज्योति है वह (सविता) वृष्टि इतपत्र करने वाला (देव:) द्योतनात्मक सूर्यलोक (पृथिव्या:) पृथिवी से सम्बन्ध रखने वाली (अष्टौ)

आठ (ककुभ:) दिशा अर्थात् चार दिशा और चार उपदिशाओं (त्री) तीन भूमि, अन्तरिक्ष और प्रकाश के अर्थात् ऊपर, नीचे और मध्य में ठहरने वाले (धन्व) प्राप्त होने योग्य (योजना) सब वस्तु के आधार तीन लोकों और (सप्त) सात (सिन्धून्) भूमि, अन्तरिक्ष वा ऊपर स्थित हुए जलसमुदायों को (व्यख्यतः) प्रकाशित करता है, वह (दाशुषे) सर्वोपकारक विद्यादि उत्तम पदार्थ देने वाले यजसान के लिये (वार्याणि) स्वीकार करने योग्य (रत्ना) पृथिवी आदि वा सुवर्ण आदि रमणीय रत्नों को (देधत्) धारण करता हुआ (आगात्) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है, वैसे तुम भी वर्त्तो॥८॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे यह सूर्यलोक सब मूर्सिमान् पदार्थीं का प्रकाश, छेदन, वायु द्वारा अन्तरिक्ष में प्राप्त और वहाँ से नीचे गिराकर सूब रमणीय सुखों को जीवों के लिये उत्पन्न करता और पृथिवी में स्थित और उनचास क्रोश पर्यन्त अन्तरिक्ष में म्थूल, सूक्ष्म, लघु और गुरु से स्थित हुए जलों को अर्थात् जिन का सप्तिसिन्धु नाम है, आकर्षणशक्ति से धारण करता है, वैसे सब विद्वान् लोग विद्या और धर्म से सब प्रजा को धारण करके सुन्त्र आनन्द में रक्खें॥८॥

पुन: स किं करोतीत्युपदिश्यते॥

फिर वह क्या करता है, इस विषय का उपदिशा अंगले भेन्त्र में किया है।।

हिरण्यपाणिः सिवता विचर्षणिरुभे द्यावापृथिवी अन्तरीयते।

अपामीवां बाधते वेति सूर्यमभि कृष्णेन रचसा द्वार्मणोति॥९॥

हिर्रण्यऽपाणि:। सुविता। विऽचेर्षणि:। उमे इति। द्वावापृथिवी इति। अन्तः। ईयुते। अपे। अमीवाम्। बाधते। वेति। सूर्यम्। अभि। कृष्णेने। रजसा। काम्। ऋणुर्जि।। ९॥

पदार्थ:-(हिरण्यपाणि:) हिरण्यानि प्योतीर्षि पाण्यो हस्तवद्ग्रहणसाधनानि यस्य सः (सिवता) रसानां प्रसिवता (विचर्षणिः) विलेखनस्वभावन विच्छेदकः। कृषेरादेश्च चः। (उणा०२.१००) इति कृषिवलेखने धातोरिनः प्रत्यया (उमे) हे (द्यावापृथिवी) प्रकाशपृथिव्यौ (अन्तः) अन्तरिक्षस्य मध्ये (ईयते) प्रापयित (अप) दूरिकरणे (अमीवाम्) रोगपीडाम् (बाधते) निवारयित (वेति) प्रजनयित। अत्रान्तर्गतो ण्यर्थः। (सूर्यम्) सरणश्रीलं स्वकीयरिशमगणम् (अभि) सर्वतो भावे (कृष्णेन) पृथिव्यादिना (रजसा) लोकसमूहेन (द्याम्) प्रकाशम् (ऋणोति) प्रापयित। अत्रान्तर्गतो ण्यर्थः॥९॥

अन्वयः भोः सभाश्यक्ष! यथा हिरण्यपाणिर्विचर्षणिः सिवता सूर्यलोक उभे द्यावापृथिवी अन्तरीयते अमें व्यामण्याधते सूर्यमभिवेति कृष्णेन रजसा सह द्यामणोति तथाभूतस्त्वं भव॥९॥

भूर्तमर्थ:-भूत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। हे सभापते! यथायं सूर्यो बहुभिर्लोकै: सहाकर्षणसम्बन्धेन वर्त्तमान: सर्वं वस्तुजातं प्रकाशयन् प्रकाशपृथिव्योरान्तर्यं करोति तथैव त्वया भक्तिव्यम्मिक्याए॥

मण्डल-१। अनुवाक-७। सूक्त-३५

पदार्थ:-हे सभाध्यक्ष! जैसे (हिरण्यपाणि:) जिसके हिरण्यरूप ज्योति हाथों के समान ग्रहण करने वाले हैं (विचर्षणि:) पदार्थों को छिन्न-भिन्न और (सविता) रसों को उत्पन्न करने वाला सूर्यलोक (उभे) दोनों (द्यावापृथिवी) प्रकाशभूमि को (अन्तः) अन्तरिक्ष के मध्य में (ईयते) प्राप्त (अमीवाप) ग्रेंग पीड़ा का (अपबाधते) निवारण (सूर्य्यम्) सबको प्राप्त होने वाले अपने किरणसमूह को (अभिविति) साक्षात् प्रगट और (कृष्णोन) पृथिवी आदि प्रकाशरहित (रजसा) लोकसमूह के साथ अपने (द्याम्) प्रकाश को (ऋणोति) प्राप्त करता है, वैसे तुझ को भी होना चाहिये॥९॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे सभापते! जैसे यह सूर्य्यलीक बहुत लोकों के साथ आकर्षण सम्बन्ध से वर्त्तमान सब वस्तुमात्र को प्रकाशित करता हुआ प्रकाश तथा पृथिवी लोक का मेल करता है, वैसे स्वभावयुक्त आप हूजिये॥९॥

अथ वायुगुणा उपदिश्यन्ते।

अब अगले मन्त्र में वायु के गुणों का उपदेश किया है।।

हिर्गण्यहस्तो असुरः सुनीथः सुमृळीकः स्ववा यात्व्वाङ्ग

अपसेर्धन् रक्षसी यातुधानानस्थाद् देवः प्रतिदो्षं एपण्नः॥१०॥

हिर्रण्यऽहस्तः। असुरः। सुऽनीथः। सुऽमुळ्येकः। स्वर्ध्वान् यातु। अर्वाङ्। अपुऽसेर्धन्। रक्षसीः। यातुऽधानान्। अस्थात्। देवः। प्रतिऽदोषम्। गृणान्/। १०॥

पदार्थ:-(हिरण्यहस्तः) हिरण्याति सर्वतो गूर्मनानि हस्ता इव यस्य सः। अत्र गत्यर्थाद्धर्यं धातौरौणादिकः कन्यन् प्रत्ययः। (अपूरः) असून् प्राणान् राति ददात्यविद्यमानरूपगुणो वा सोऽसुरो वायुः। आतोऽनुपसर्गे कः। (अष्टा०३.२३) इत्यसूपपदाद्राधातोः कः। (सुनीथः) शोभनं नीथो नयनं प्रापणं यस्य सः। (सुमृडीकः) यः शोभने मृह्यति सुखयति सः। मृडः कीकच् कङ्कणौ। (उणा०४.२५) इति कीकच्। (स्ववान्) स्वे प्रश्निताः स्पर्शाद्ये गुणा विद्यन्ते यस्मिन् सः। अत्र प्रशंसार्थे मतुप्। (यातु) प्राप्नोति प्राप्नोतु वा (अर्बोङ्) अन्तिः स्वकीयानध ऊर्ध्वतिर्यग्गमनाख्यवेगानञ्चति प्राप्नोतीति। अत्र ऋत्विग्दशृक्० (अष्टा०३.२.१९) इति किवन्। क्विन् प्रत्यस्य कुः (अष्टा०८.२.६२) इति कवर्गादेशः। (अपसेधन्) निवादयन् सन् (रक्षसः) चोरादीन् दुष्टकर्मकर्तृन्। रक्षो रक्षयितव्यमस्मात्। (निरु०४.१८) (यातुधानान्) स्नातवे यातनाः पीडा धीयन्ते येषु तान् दस्यून् (अस्थात्) स्थितवानस्ति (देवः) सर्वव्यवहादस्थिकः (प्रतिदोषम्) रात्रिं रात्रिं प्रति। अत्र रात्रेरुपलक्षणत्वाद् दिवसस्यापि ग्रहणमस्ति प्रतिसम्प्रामित्यर्थः। दोषेति रात्रिनामसु पठितम्। (निघं०१.७) (गृणानः) स्वगुणैः स्तोतुमर्हः॥१०॥

अन्वय:-हे सभेश! भवान् यथाऽयं हिरण्यहस्तोऽसुरः सुनीथः सुमृडीकः स्ववानर्वाङ् वायुर्यति सर्वतश्चलित। एवं प्रति दोषं गृणानो देवो वायु दुःखानि निवार्य सुखानि प्रापियत्वाऽस्थात् तथा यातुधानान् रक्षसोऽपसेधन् सर्वान् दुष्टान्निवारयन् श्रेष्ठान् यातु प्राप्नोतु॥१०॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। हे सभापते! यथायं वायुः स्वकीयाकविपाबलिदिगुणैः सर्वान् पदार्थान् व्यवस्थापयित यथा च दिवसे चौराः प्रबला भवितुं नार्हन्ति, तथैव भूवतापि भवितव्यम्। येन जगदीश्वरेण बहुगुणसुखप्रापका वायुवादयः पदार्था रचितास्तस्मै सर्वैर्धन्यवादा देवाः॥१०॥

पदार्थ:-हे सभापते! आप जैसे यह (हिरण्यहस्तः) जिसका चलना हाथ के समान है (असुरः) प्राणों की रक्षा करने वाला रूपगुणरहित (सुनीथः) सुन्दर रीति से सबको प्राप्त होने (सुमृडीकः) उत्तम व्यवहारों से सुखयुक्त करने और (स्ववान्) उत्तम-उत्तम स्पर्श आदि प्राप्त वाला (अर्वाङ्) अपने नीचे- ऊपर टेढ़े जाने वाले वेगों को प्राप्त होता हुआ वायु चारों ओर से चलता है तथा (प्रतिदोषम्) रात्रि-रात्रि के प्रति (गृणानः) गुण कथन से स्तुति करने योग्य (देवः) सुखलक चायु दुःखों को निवृत्त और सुखों को प्राप्त करके (अस्थात्) स्थित होता है, वैसे (रक्षसः) दुष्ट कम करने बाले (यातुधानान्) जिनसे पीड़ा आदि दुःख होते हैं, उन डाकुओं को (अपसेधन्) निवारण करने हुए क्रेप्टों को प्राप्त हूजिये॥१०॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। है स्थिपित! जैसे यह वायु अपने आकर्षण और बल आदि गुणों से सब पदार्थों को व्यवस्था में खिता है और जैसे दिन में चोर प्रबल नहीं हो सकते हैं, वैसे आप भी हूजिये और तुमको जिस जगहीं हो ने बहुत गुणयुक्त सुख प्राप्त करने वाले वायु आदि पदार्थ रचे हैं, उसी को सब धन्यवाद देने योग्य हैं। १०५४

अथन्द्रशब्दनेश्चरे उपदिश्यते॥

अब अगले मन्त्र भें इन्द्र शब्द से ईश्वर का उपदेश किया है।।

ये ते पन्थाः सवितः पूर्व्यासौऽरेणवः सुकृता अन्तरिक्षे।

तेभिनी अद्य पृथिभिः सुरोभी रक्ष्मे च नो अधि च बूहि देव॥११॥७॥७॥

ये। ते। पन्याः। स्विन्तिः पूर्व्यासः। अरेणवः। सुऽकृताः। अन्तिरक्षे। तेभिः। नः। अद्य। पृथिऽभिः। सुऽगेभिः। रक्षे। च। नः। अर्था च्या बृहि। देव॥ ११॥

पदार्थ: यो) वक्ष्यमाणाः (ते) तव (पन्थाः) धर्ममार्गाः। अत्र सुपां सुलुग्० इति जसः स्थाने सुः। (सिवतः) प्रकल्पनगदुत्पादकेश्वर (पूर्व्यासः) पूर्वैः कृता साधिताः सेविताश्च। अत्र पूर्वैः कृतिमिनयौ च। (अष्ट्रार्० ४.४ १३३) इति पूर्वशब्दाद्यः प्रत्ययः। आज्जसेरसुग् (अष्टा०७.१.५०) इत्यसुगागमश्च। (अरेणवः) अविद्यमाना रेणवो धूल्यंशा इव विघ्ना येषु ते। अजिवृरी० (उणा०३.३७) इति रीधातोर्णुः प्रत्ययः। (सुकृताः) सुष्ठु निर्मिताः (अन्तरिक्षे) स्व्याप्तिरूपे ब्रह्माण्डे (तेभिः) तैः (नः) अस्मान् (अद्य) अस्मिन्नहिष् (पथिभिः) उक्तमार्गैः (सुगेभिः) सुखेन गच्छन्ति येषु तैः। सुदुरोरधिकरणे०

मण्डल-१। अनुवाक-७। सुक्त-३५

(अष्टा०३.२.४८) इति वार्त्तिकेन सूपपदाद् गमधातोर्डः प्रत्ययः (रक्ष) पालय। अत्र द्वाचोऽतिस्तङ इति दीर्घः। (च) समुच्चये (नः) अस्मभ्यम् (अधि) ईश्वरार्थ उपरिभावे (च) अपि (व्रूहि) उपदिश (देव) सर्वसुखप्रदातरीश्वर॥११॥

अन्वय:-हे सवितर्देव जगदीश्वर! त्वं कृपया ये ते तवारेणवः पूर्व्यासः सुकृताः पन्थातोऽन्तरिक्षे स्वव्याप्तिरूपे वर्तन्ते, तेभिः सुगेभिः पथिभिर्नोऽस्मानद्य रक्ष च नोऽस्मभ्यं व्यक्ति विद्या अधिब्रूहि च॥११॥

भावार्थ:-हे ईश्वर! त्वया ये सूर्यादिलोकानां भ्रमणार्था मार्गा प्राणिसुखाय च धर्ममार्गा अन्तरिक्षे स्वमहिम्नि च रचितास्तेष्विमे यथानियमं भ्रमन्ति विचरन्ति च तान् सर्वेष्य पदार्थानां मार्गान् गुणांश्चास्मभ्यं ब्रूहि। येन वयं कदाचिदितस्ततो न भ्रमेमेति॥११॥

अस्मिन् सूक्ते सूर्यलोकेश्वरवायुगुणानां प्रतिपादनास्वतुस्त्रिंशसूक्तीक्तार्थेन सङ्गतिरस्तीति वेदितव्यम्।

इति सप्तमो ७ वर्ग:, अनुवाक: पञ्चित्रिंग ३५ सुक्तं च समाप्तम्॥

पदार्थ:-हे (सिवत:) सकल जगत् के रचने और (देव) मेंब सुख देने वाले जगदीश्वर! (ये) जो (ते) आपके (अरेणव:) जिनमें कुछ भी धूलि के अंशों के सम्पन्न विघ्नरूप मल नहीं हैं तथा (पूर्व्यास:) जो हमारी अपेक्षा से प्राचीनों ने सिद्ध और सेवन किये हैं (सुकृता:) अच्छे प्रकार सिद्ध किये हुए (पन्था:) मार्ग (अन्तरिक्षे) अपने व्यापकता रूप ब्रह्माण्ड में वर्त्तमान हैं (तेभि:) उन (सुगेभि:) सुखपूर्वक सेवने योग्य (पथिभि:) मार्गों (प्राः) क्रम लोगों की (अद्य) आज (रक्ष) रक्षा कीजिये (च) और (न:) हम लोगों के लिये सब विद्धाओं का (अधिकृति) उपदेश (च) भी कीजिये॥११॥

भावार्थ:-हे ईश्वर! आपने जो सूर्य आदि लोकों के घूमने और प्राणियों के सुख के लिये आकाश वा अपने महिमारूप संसार में शुद्ध मार्ग रचे हैं, जिनमें सूर्यादि लोक यथानियम से घूमते और सब प्राणी विचरते हैं, उन सब पदार्थों के पार्भी नथा पुणों का उपदेश कीजिये कि जिससे हम लोग इधर-उधर चलायमान न होवें॥११

इस सूक्त में सूर्यलोक बायु और ईश्वर के गुणों का प्रतिपादन करने से चौंतीसवें सूक्त के साथ इस सूक्त की सङ्गीत जाननी चाहिये॥

बह सातबां वर्ग ७ सातवां अनुवाक ७ और पैंतीसवां सूक्त समाप्त हुआ॥३५॥

अथ विंशत्यृचस्य षट्त्रिंशस्य सूक्तस्य घौरः काण्वऋषिः। अग्निर्देवता। १, १२ भुरिगनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः। २ निचृत्सतःपङ्क्तिः। ४ निचृत्पङ्क्तिः। १०,१४ निचृद्विष्टारपङ्क्तिः। १८ विष्टारपङ्क्तिः। २० सतः पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः। ३,११ निचृत्पथ्याबृहती। ५ १६ निचृद्वृहती। ६ भुरिग् बृहती। ७ बृहती। ८ स्वराड् बृहती। ९ निचृदुपरिष्टाद् बृहती। १२ उपरिष्टाद् बृहती। १५ विराट् पथ्या बृहती। १७ विराडुपरिष्टाद् बृहती। १९ पथ्यां बृहती। १४ विराट्

छन्द:। मध्यम: स्वर:॥

तत्रादावग्निशब्देनेश्वरगुणा उपदिश्यन्ते॥

अब छत्तीसवें सूक्त का आरम्भ है उसके पहिले मन्त्र में अग्नि शब्द से इंबर के गुणों का उपदेश किया है।।

प्र वो यह्वं पुरूणां विशां देवयतीनाम्।

अुग्निं सूक्तेभिर्वचौभिरीमहे यं सीमिद्रन्य ईळते॥ भ्रा

प्रा वः। यह्नम्। पुरूणाम्। विशाम्। देवऽयतीनाम्। अग्निम्। सुऽङ्क्तेभिः। वर्चःऽभिः। ईमहे। यम्। सीम्। इत्। अन्ये। ईळते॥ १॥

पदार्थ:-(प्र) प्रकृष्टार्थे (व:) युष्माकम् (यह्नप्) गुणैर्महान्तम्। यह्न इति महन्नामसु पठितम्। (निघं०३.३) (पुरूणाम्) बह्वीनाम् (विशाम्) प्रजानां मध्ये (देवयतीनाम्) आत्मना देवान् दिव्यान् भोगान् गुणाँशचेच्छन्तीनाम् (अग्निम्) परमेश्चरम् (सूक्तेभिः) सुष्टूक्ता विद्या येषु तैः (वचोभिः) वेदार्थज्ञानयुक्तैर्वचनैः (ईमहे) याचामहे। अत्र बहुल् छन्दिस इति श्यनो लुक्। ईमह इति याञ्चाकर्मसु पठितम्। (निघं०३.१९) (यम्) उक्तम् (सीम्) सर्वतः। प्र सीमादित्यो असुजत्। (ऋ०२.२८.४) प्रासृजदिति वा। प्रासृजत् सर्वत इति वा) (निरु०१.७) इति सीमव्ययं सर्वार्थे गृह्यते। (इत्) एव (अन्ये) परोपकारका बुद्धिमन्तो धार्मिका विद्वांसः (इक्ते) स्तुवन्ति॥१॥

अन्वय:-वयं यथान्ये/विद्गंसः सूक्तेभिर्वचोभिर्देवयतीनां पुरूणां वो युष्माकं विशां प्रजानां सुखाय यं यह्नमिनं सीमीडते तथा त्रिमदेव प्रमहे प्रकृष्टतया याचामहे प्रकाशयामश्च॥१॥

भावार्थ:-अत्र विक्लितामालङ्कारः। हे मनुष्या! यूयं यथा विद्वांसः प्रजासुखसम्पत्तये सर्वव्यापिनं परमेश्वरं निश्चित्योपदिश्य च तद्गुणान् प्रयत्नेन विज्ञापयन्ति स्तावयन्ति, तथैव वयमपि प्रकाशयामः। यथेश्वर्षेऽग्न्यादिपदार्थरचनपालनाभ्यां जीवेषु सर्वाणि सुखानि दधाति तथा वयमपि सर्वप्राणिसुखानि सद्दा निर्वर्त्तयेमेति बुध्यध्वम्॥१॥

पदार्थ: - हम लोग जैसे (अन्ये) अन्य परोपकारी धर्मात्मा विद्वान् लोग (सूक्तेभि:) जिनमें अच्छे प्रकार बिद्धा कही है, उन (वचोभि:) वेद के अर्थज्ञानयुक्त वचनों से (देवयतीनाम्) अपने लिये दिव्यभोगे वा दिव्यगुणों की इच्छा करने वाले (पुरूणाम्) बहुत (व:) तुम (विशाम्) प्रजा लोगों के सुख

मण्डल-१। अनुवाक-८। सूक्त-३६

के लिये (यम्) जिस (यह्नम्) अनन्तगुण युक्त (अग्निम्) परमेश्वर की (सीम्+ईडते) सब प्रकार स्तुति करते हैं, वैसे उस (इत्) ही की (प्रेमहे) अच्छे प्रकार याचना और गुणों का प्रकाश करें॥१॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! जैसे तुम लोग द्र्यूण विद्यास्त्रित विद्वान् लोग प्रजा के सुख की सम्पत्ति के लिये सर्वव्यापी परमेश्वर का निश्चय तथा उपदेश करके प्रयत्न से जानते हैं, वैसे ही हम लोग भी उसके गुण प्रकाशित करें। जैसे ईश्वर अग्नि आद्भि पदार्थों के रचन और पालन से जीवों में सब सुखों को धारण करता है, वैसे हम लोग भी प्राणियों के लिये सदा सुख व्य विद्या को सिद्ध करते रहें, ऐसा जानो॥१॥

पुनः स एवार्थ उपदिश्यते॥

फिर भी अगले मन्त्र में उक्त विषय का उपदेश किया है।

जनांसो अग्निं दंधिरे सहोवृधं हुविष्मंन्तो विधेम ते। स त्वं नो अद्य सुमनां इहाविता भवा वाजेषु सन्य।। २।।

जनांसः। अग्निम्। दुधिरे। सहःऽवृधंम्। हुविष्मन्तः। विधेमा तेर)सः। त्वम्। नः। अद्य। सुऽमनाः। इह। अविता। भवं। वाजेषु। सुन्त्यु॥ २॥

पदार्थ:-(जनासः) विद्यासु प्रादुर्भूता मनुष्याः (अफ्रिम्) सर्वाभिरक्षकमीश्वरम् (दिधरे) धरन्ति। अत्र लर्ड्थे लिट्। (सहोवृधम्) सहोबलं वर्ध्यतीति सहोवृत्तम् (हिवष्मन्तः) प्रशस्तानि हवींषि दातुमादातुमर्हाणि वस्तूनि विद्यन्ते येषां हो। अत्र प्रश्नंसार्थे मतुप्। (विधेम) सेवेमिह (ते) तव। अत्र सायणाचार्थ्येण ते त्वामित्युक्तं तन्न सम्भवति द्वितीयकवचने त्वाऽऽदेशविधानात् (सः) ईश्वरः (त्वम्) सर्वदा प्रसन्नः (नः) अस्माकम् (अद्य) अस्मिन्नहिन (सुमनाः) शोभनं मनो ज्ञानं यस्य सः (इह्) अस्मिन् संसारे (अविता) रक्षको ज्ञापकः सर्वासु विद्यासु प्रवेशकः (भवा) अत्र द्वयचोऽतस्तिङ इति दीर्घः। (वाजेषु) युद्धेषु (सन्त्य) सन्त्री दाने साधुस्त्रत्ममृबुद्धौ। अत्र षणुदान इत्यस्माद् बाहुलकादौणादिकस्तिः प्रत्ययस्ततः साध्वर्थे यच्च्याद्वा

अन्वय:-हे सन्त्येश्वर्ण! येथ्वा हिवष्मन्तो जनासो यस्य ते तवाश्रयं दिधरे तथा तं सहोवृधमिंगं त्वां वयं विधेम स सुमृतास्त्वमद्य नोऽस्माकिमह वाजेषु चाविता भव॥२॥

भावार्थ:-मभुष्यैरेकस्याद्वितीयपरमेश्वरस्योपासनेनैव सन्तोषितव्यं निह विद्वांसः कदााचिद् ब्रह्मस्थानेऽत्यद् वस्तूपास्यत्वेन स्वीकुर्वन्ति। अत एव तेषां युद्धेष्विह कदाचित् पराजयो न दृश्यते। एवं निह कद्मचिदनीश्वरोपासकास्तान् विजेतुं शक्नुवन्ति येषामीश्वरो रक्षकोऽस्ति कुतस्तेषां पराभवः॥२॥

पदार्थ:-हे (सन्त्य) सब वस्तु देनेहारे ईश्वर! जैसे (हिवष्मन्तः) उत्तम देने-लेने योग्य वस्तु वाले जिनासः विद्या में प्रसिद्ध हुए विद्वान् लोग जिस (ते) आप के आश्रय का (दिधरे) धारण करते हैं, वैसे

उन (सहोवृधम्) बल को बढ़ाने वाले (अग्निम्) सब के रक्षक आप को हम लोग (विधेम) सेवन करें (स:) सो (सुमना:) उत्तम ज्ञान वाले (त्वम्) आप (अद्य) आज (न:) हम लोगों के (इह) संसार और (वाजेषु) युद्धों में (अविता) रक्षक और सब विद्याओं में प्रवेश कराने वाले (भव) ह्जिये॥२।

भावार्थ:-मनुष्यों को एक अद्वितीय परमेश्वर की उपासना ही से सन्तुष्ट रहना व्यहिये, क्योंकि विद्वान् लोग परमेश्वर के स्थान में अन्य वस्तु को उपासना भाव से स्वीकार कभी नहीं करते। इसी कारण उनका युद्ध वा इस संसार में कभी पराजय दीख नहीं पड़ता, क्योंकि वे धार्मिक ही होते हैं और इसी से ईश्वर की उपासना नहीं करने वाले उनके जीतने को समर्थ नहीं होते, क्योंकि ईश्वर जिनकी रक्षा करने वाला है, उनका कैसे पराजय हो सकता है॥२॥

अथ भौतिकाग्निदृष्टान्तेन राजदूतगुणा उपहिश्यन्ते॥

अब अगले मन्त्र में भौतिक अग्नि के दृष्टान्त से राजदूत के गुणें का उपदेश किया है।।

प्र त्वां दूतं वृंणीमहे होतांरं विश्ववेदसम्। महस्ते सतो वि चरन्त्युर्चयों दिवि स्पृंशन्ति भान्नवः॥३॥

प्रा त्वा। दूतम्। वृणीमहे। होतारम्। विश्वऽवैदसम् महः। ते। चुर्न्ति। अर्चर्यः। दिवि। स्पृश्निः। भानवः॥ ३॥

पदार्थ:-(प्र) प्रकृष्टार्थे (त्वा) त्वाम् (दूतम्) यो दुनोस्युपतापयित सर्वान् पदार्थानितस्ततो भ्रमणेन दुष्टान् वा तम् (वृणीमहे) स्वीकुर्महे (होतारम्) ग्रहीतारम्) (विश्ववेदसम्) विश्वानि सर्वाणि शिल्पसाधनानि विन्दन्ति यस्मात्तं सर्वप्रजासमाचारज्ञं वा (पहः) महस्रो महागुणविशिष्टस्य। सर्वधातुभ्योऽसुन् (उणा०४.१९०) इत्यसुन्। सुपां सुलुग् (ति इसो लुक्। (ते) तव (सतः) कारणरूपेणाविनाशिनो विद्यमानस्य (वि) विशेषार्थे (चरन्ति) गेस्कृति (अर्चयः) दीप्तिरूपा ज्वाला न्यायप्रकाशका नीतयो वा (दिवि) द्योतनात्मके सूर्यप्रकाशे प्रजाव्यवहारं वा (स्पृशन्ति) सम्बध्नन्ति (भानवः) किरणाः प्रभावा वा। भानव इति रिश्मनामसु पठितम्। (निघं०१.५) ॥३॥

अन्वय:-हे विद्वत् राज्यूत भ्राया वयं विश्ववेदसं होतारं दूतमिनं प्रवृणीमहे तथाभूतं त्वा त्वामिप प्रवृणीमहे यथा च महो महसः स्रोतोऽग्नेर्भानवः सर्वान् पदार्थान् स्पृशन्ति सम्बध्नन्त्यर्चयो दिवि विचरन्ति च तथा ते तवापि सन्तु॥३॥

भावार्थः अत्रे वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। हे स्वकर्मप्रवीण राजदूत! यथा सर्वेर्मनुष्येम्रह्मप्रकाषादिगुणयुक्तमिनं पदार्थप्राप्त्याः कारकत्वाद् दूतं कृत्वा शिल्पकार्याणि वियदि हुतद्रव्यक्रपणं च साधियत्वा सुखानि स्वीक्रियन्ते यथाऽस्य विद्युदूपास्याग्नेर्दीप्तयः सर्वत्र वर्त्तन्ते प्रसिद्धस्य वायुत्वाद् वायोश्छेदकत्वेनावकाशकारित्वाज्जवाला उपरि गच्छन्ति तथा त्वमपीदं कृत्वैवं भवा। स्वीक्रियन

मण्डल-१। अनुवाक-८। सूक्त-३६

पदार्थ:-हे विद्वन् राजदूत! जैसे हम लोग (विश्ववेदसम्) सब शिल्पविद्या का हेतु (होतारम्) ग्रहण करने और (दूतम्) सब पदार्थों को तपाने वाले अग्नि को (वृणीमहे) स्वीकार करते हैं विसे (चा) तुझ को भी ग्रहण करते हैं तथा जैसे (महः) महागुणविशिष्ट (सतः) सत्कारणरूप से पित्य अग्नि के (भानवः) किरण सब पदार्थों से (स्पृशन्त) सम्बन्ध करते और (अर्चयः) प्रकाशरूप ज्वाला (दिवि) द्योतनात्मक सूर्य्य के प्रकाश में (विचरन्ति) विशेष करके प्राप्त होती हैं, वैसे तेरें भी सब काम होने चाहिये॥३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे अपने काम में प्रवीण राजदूत! जैसे सब मनुष्य महाप्रकाशादिगुणयुक्त अग्नि को पदार्थों की प्राप्ति वा अप्राप्ति के कारण इत के समान जान और शिल्पकार्यों को सिद्ध करके सुखों को स्वीकार करते और जैसे इस बिजुली रूप अग्नि की दीप्ति सब जगह वर्त्तती है और प्रसिद्ध अग्नि की दीप्ति छोटी होने तथा वायु के छेदक होने से अवकाश करने वाला होकर ज्वाला ऊपर जाती है, वैसे तू भी अपने कामों में प्रवित्त हो।। अग

पुनः स दूतः कीदृश इल्युपदिश्यते॥ फिर वह दूत कैसा है, इस विषय का उपदेश अगुले मन्त्र में किया है॥

देवासंस्त्वा वर्रणो मित्रो अर्यमा सं दूतं प्रतिपित्यके। विश्वं सो अंग्ने जयति त्वया धनं यस्त द्वाश्च मर्त्यः॥४॥

देवासंः। त्वा। वर्रणः। मित्रः। अर्धुमा। सम्। हूँतम्। प्रत्नम्। इस्ते। विश्वम्। सः। अग्ने। जयति। त्वयो। धर्नम्। यः। ते। दुदाशे। मर्त्यः॥४॥

पदार्थ:-(देवासः) सभ्या विद्वासः (त्वा) त्वाम् (वरुणः) उत्कृष्टः (मित्रः) मित्रवत्प्राणप्रदः (अर्थ्यमा) न्यायकारी (सम्) सन्यमर्थे (दूतम्) यो दुनोति सामादिभिः शत्रूँस्तम्। दुतिनिभ्यां दीर्घश्च। (उणा०३.८८)। (प्रत्नम्) वृत्रिष्क्षपेणानादिम्। नश्च पुराणे प्रादूक्तव्याः। अधा०५.४.३०) इति पुराणार्थे प्रशब्दात् तनप् प्रत्येषः। (इभ्यते) शुभगुणैः प्रकाशन्ते (विश्वम्) सर्वम् (सः) (अग्ने) धर्मविद्या श्रेष्ठगुणैः प्रकाशमानसभापते (जन्नति) उत्कर्षयति (त्वया) (धनम्) विद्यासुवर्णादिकम् (यः) (ते) तव (ददाश) दाशति। अत्र लडथे लिट्। (मर्त्यः) मनुष्यः॥४॥

२७, नैत्सदृ<mark>शं केश्चित्। सूत्रं</mark> वार्तिक वा विद्यते। अत: 'प्रगस्य छन्दिस गलोपश्च' अष्टा० ४.३.२३ अनेन वार्त्तिकेन <mark>'प्रत्न'</mark> शब्द: सिद्ध्यति सं०

अन्वय:-हे अग्ने सभेश! यस्ते दूतो मर्त्त्यो धनं ददाश यस्त्वया सह शत्रूञ्जयित मित्र वरुणोऽर्यमा देवासो यं दूतं सिमन्धते यस्त्वा त्वां प्रजाञ्च प्रीणाति स प्रत्नं विश्वं राज्यं रिक्षतुमहिति॥४॥

भावार्थ:-निह केचिदिप सर्वशास्त्रविशारदै राजधर्मवित्तमैः परावरज्ञैधार्मिकैः प्रगल्भे शूरेदृते। सराजिभः सभासिद्धश्च विना राज्यं लब्धुं रिक्षतुमुत्रेतुमुपकर्त्तुं शक्नुविन्त तस्मादेवमेव सर्वे सदा विधेयमिति॥४॥

पदार्थ: -हे (अग्ने) धर्म विद्या श्रेष्ठ गुणों से प्रकाशमान सभापते! (यः) जो (ते) तेरा (दूतः) दूत (मर्त्यः) मनुष्य तेरे लिये (धनम्) विद्या, राज्य, सुवर्णादि श्री को (ददाश) देता है तथा जो (त्वया) तेरे साथ शत्रुओं को (जयित) जीतता है (मित्रः) सबका सुहृद् (वरुणः) सब से उत्तम (अर्यमा) न्यायकारी (देवासः) ये सब सभ्य विद्वान् मनुष्य जिसको (सिमश्वते) अच्छे प्रकार प्रशसित जान कर स्वीकार के लिये शुभगुणों से प्रकाशित करें जो (त्वा) तुझ और सब प्रजाको प्रसन्न रक्खे (सः) वह दूत (प्रत्नम्) जो कि कारणरूप से अनादि है (विश्वम्) सब राज्य को सुरक्षित रख्ने को श्रोग्य होता है॥४॥

भावार्थ:-कोई भी मनुष्य सब शास्त्रों में प्रवीण, राजधर्म को ठीक-ठीक जानने, पर-अपर इतिहासों के वेता, धर्मात्मा, निर्भयता से सब विषयों के विक्ता, शूर्म्बार, दूतों और उत्तम राजा सहित सभासदों के विना राज्य को पाने, पालने, बढ़ाने और परोपकार में लगाने को समर्थ नहीं हो सकते, इससे पूर्वोक्त प्रकार ही से राज्य की प्राप्ति आदि क्रांविधान सुख लोग सदा किया करें॥४॥

पुनः स कींदूश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा है, इस किय्य का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

मुन्द्रो होता गृहपंतिरग्ने दूतो विशामिस्

त्वे विश्वा संगतानि वृता श्रुवो यानि देवा अर्कृण्वत॥५॥८॥

मुन्द्रः। होतां। गृहऽपंति। अग्ने। दूतः। विशाम्। असि। त्वे इति। विश्वां। सम्ऽगंतानि। वृता। ध्रुवा। यानि। देवाः। अकृण्वता। ५॥

पदार्थ:-(मन्द्र:) पहार्थप्राप्नकत्वेन हर्षहेतुः (होता) सुखानां दाता (गृहपितः) गृहकार्याणां पालियता (अग्ने) शरीरबलेन देतीप्यमान (दूतः) यो दुनोत्युपतप्य भिनित्त दुष्टान् शत्रून् सः (विशाम्) प्रजानाम् (अस्थि) (त्वे) त्विय राज्यपालके सित (विश्वा) विश्वानि सर्वाणि (संगतानि) धर्म्यव्यवहारस्रंशुक्ताि (वृता) व्रतािन सत्याचरणािन कर्माणि। वृतिमिति कर्मनामसु पिठतम्। (निघं०२.४) (धुवा) निश्चलािन। अत्र त्रिषु शेश्छन्दिस बहुलम् इति शेर्लोपः। (यािन) (देवाः) विद्वांसः (अकृण्वतः) कृण्वन्ति कुर्वन्ति। अत्र लड्थे लङ् व्यत्येयनात्मनेपदञ्च॥५॥

अन्वयः-हे अग्ने! यतस्त्वं मन्द्रो होता गृहपतिर्दूतो विशांपतिरसि, तस्मात् सर्वा प्रजा यानि विश्वा भूवा संगतानि व्रता धर्म्याणि कर्माणि देवा अकृण्वत तानि त्वे सततं सेवन्ते॥५॥

मण्डल-१। अनुवाक-८। सूक्त-३६

भावार्थ:-सुराजदूतसभासद एव राज्यं रक्षितुमर्हन्ति न विपरीता:॥५॥

इत्यष्टमो वर्गः॥

पदार्थ:-हे (अग्ने) शरीर और आत्मा के बल से सुशोभित जिससे आप (मन्द्री) पदार्थी की प्राप्ति करने से सुख का हेतु (होता) सुखों के देने (गृहपित:) गृहकार्यों का पालन (दूर्त!) दृष्ट शत्रुओं को तप्त और छेदन करने वाले (विशाम्) प्रजाओं के (पित:) रक्षक (असि) हैं, इस्सी सब प्रजा (यानि) जिन (विश्वा) सब (ध्रुवा) निश्चल (संगतानि) सम्यक् युक्त समयानुकूल प्राप्त हुए (वृता) धर्मयुक्त कर्मों को (देवा:) धार्मिक विद्वान् लोग (अकृण्वत) करते हैं, उनका सेवन (त्वे) आप के रक्षक होने से सदा कर सकती हैं॥५॥

भावार्थ:-जो प्रशस्त राजा, दूत और सभासद् होते हैं, वे ही राज्य को पालन कर सकते हैं, इन से विपरीत मनुष्य नहीं कर सकते॥५॥

आठवाँ वर्ग समाप्त हुआ

अथाग्निदृष्टान्तेन राजपुरुषगुणा अपेदिश्यन्त्रे॥

अब अग्नि के दृष्टान्त से राजपुरुषों के गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

त्वे इद्ग्ने सुभगे यविष्ठ्य विश्वमा हूयते हुवि:। स त्वं नो अद्य सुमनां उताप्रं यक्षि देवान्सुवीर्या॥६॥

त्वे इति। इत्। अग्ने। सुऽभगे। युविष्ठ्या विश्वम्। आ। हृयते। हुविः। सः। त्वम्। नः। अद्य। सुऽमर्नाः। उत्त। अपुरम्। यक्षि। देवान्। सुऽवीर्या। ह्मा

पदार्थ:-(त्वे) त्विय (इत्) एवे (अग्ने) सुखप्रदातः सभेश (सुभगे) शोभनमैश्वर्यं यस्मिँस्तस्मिन् (यिवष्ट्य) यो वेगेन पदार्थान् यौति संयुक्तित संहतान् भिनत्ति वा स युवातिशयेन युवा यिवष्ठो यिवष्ठ एव यिवष्ट्यस्तत्सम्बुद्धौ (विश्वम्) सर्वप् (आ) समन्तात् (हूयते) दीयते (हिवः) सुसंस्कृतं वस्तु (सः) त्वम् (नः) अस्मान् (अद्य) अस्मिन्हित् (स्रुपनाः) शोभनं मनो विज्ञानं यस्य सः (उत) अपि (अपरम्) श्वो दिनं प्रति (यिक्ष) संगमय। अत्र लोडिपे लङ्डभावश्च। (देवान्) विदुषः (सुवीर्या) शोभनानि वीर्याणि येषां तान्। अत्र सुपां सुलुग्० इत्याकारादेशः॥६॥

अन्वय्राः-हे पिविष्ठयाग्ने! यथा होत्राग्नौ विश्वं हिवराहूयते यस्मिन् सुभगे त्वे त्विय सर्वो न्यायोऽस्माभिरधिक्रियते स सुमनास्त्वमद्योताप्यपरं दिनं प्रति नोऽस्मान् सुवीर्या श्रेष्ठपराक्रमयुक्तानि देवान्यक्षि(संगमयादि॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा विद्वांसो वह्नौ शुद्धं हव्यं द्रव्यं प्रक्षिप्य जगते सुखं व्यक्तिपथैव राजपुरुषा दुष्टान् कारागृहे प्रक्षिप्य धार्मिकेभ्य आनन्दं प्रादुर्भावयन्तु॥६॥

पदार्थ:-हे (यिवष्ठ्य) पदार्थों के मेल करने में बलवान् (अग्ने) सुख देनेवाले राजन्! जैसे हाता द्वारा (अग्नो) अग्नि में (विश्वम्) सब (हवि:) उत्तमता से संस्कार किया हुआ पदार्थ (आहूयते) डाला जाता है, वैसे जिस (सुभगे) उत्तम ऐश्वर्ययुक्त (त्वे) आप में न्याय करने का काम स्थापित करते हैं सो (सुमना:) अच्छे मन वाले (त्वम्) आप (अद्य) आज (उत्त) और (अपरम्) दूसरे दिन में भी (गः) हम लोगों को (सुवीर्य्या) उत्तम वीर्य वाले (देवान्) विद्वान् (इत्) ही (यिश्व) कीजिये॥६॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे विद्वान् लोग विह में पवित्र होने करके योग्य घृतादि पदार्थों को होम के संसार के लिये सुख उत्पन्न करते हैं, वैसे ही (सम्पुरुष) दुष्टों को बन्दीघर में डाल के सज्जनों को आनन्द सदा दिया करें॥६॥

पुनः स एवार्थ उपदिश्यते॥

फिर उसी अर्थ का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

तं घेमित्था नेमस्विन उप स्वराजीमासते।

होत्राभिर्गिनं मनुषः समिन्धते तितिर्वांसो अति सिर्धः।। १०१४

तम्। घः। ईम्। इत्थाः। नमस्विनः। उपं। स्वऽराजम्। आस्ति। हार्श्वोभिः। अग्निम्। मनुषः। सम्। इश्वते। तितिवांसः। अति। स्त्रिधः॥७॥

पदार्थ:-(तम्) प्रधानसभाध्यक्षं राजानम् (घ) एव (ईम्) प्रदातारम्। ईमिति पदनामसु पठितम्। (निघं०४.२) अनेन प्राप्त्यथों गृह्यते (इत्था) अनेन प्रकारण (नमस्विनः) नमः प्रशस्तो वजः शस्त्रसमूहो विद्यते येषां ते। अत्र प्रशंसार्थे विनिः। (इप) सामीप्रे (स्वराजम्) स्वेषां राजा स्वराजस्तम् (आसते) उपविशन्ति (होत्राभिः) हवनसत्यक्रियाभिः अग्निम्) ज्ञानस्वरूपम् (मनुषः) मनुष्याः। अत्र मनधातोर्बाहुलकादौणादिक उसिः शत्ययः (सम्) सम्यगर्थे (इन्धते) प्रकाशयन्ते (तितिर्वासः) सम्यक् तरन्तः। अत्र तृधातोर्लिटः श्रीने वर्त्तमाने क्वसुः। (अति) अतिशयार्थे (स्निधः) हिंसकान् क्षयकर्त्तृञ्च्छत्रून्॥७॥

अन्वय:-ये नम्स्वित् मृतुर्थो होत्राभिस्तं स्वराजमिंगं सभाध्यक्षं घोपासते सिमन्धते च तेऽतिस्रिधस्तितिर्वांसो भवयु ॥ ॥

भावार्थः त खलु सभाध्यक्षोपासकैः सभासद्भिर्भृत्यैर्विना कश्चिदपि स्वराजसिद्धिं प्राप्य शत्रून् विजेतुं शक्नोर्द्विभिधा

/

मण्डल-१। अनुवाक-८। सूक्त-३६

पदार्थ:-जो (नमस्विन:) उत्तम सत्कार करने वाले (मनुष:) मनुष्य (होत्राभि:) हवनयुक्त सत्य क्रियाओं से (स्वराजम्) अपने राजा (अग्निम्) ज्ञानवान् सभाध्यक्ष को (घ) ही (उपासते) ज्यासना और (तम्) उसीका (सिमन्धते) प्रकाश करते हैं, वे मनुष्य (स्निध:) हिंसानाश करने वाले शृह्युओं को (अति तितिवांस:) अच्छे प्रकार जीतकर पार हो सकते हैं॥७॥

भावार्थ:-कोई भी मनुष्य सभाध्यक्ष की उपासना करने वाले भृत्य और स्प्रीसदों के विशेष अपने राज्य की सिद्धि को प्राप्त होकर शत्रुओं से विजय को प्राप्त नहीं हो सकता॥७॥

पुनः स एवार्थ उपदिश्यते॥

फिर भी पूर्वोक्त विषय का उपदेश अगले मन्त्र में क्रिया है।।

घनतों वृत्रमतर्न् रोदंसी अप उरु क्षयाय चक्रिरे।

भुवत्कण्वे वृषां द्युम्याहुतः क्रन्ददश्चो गविष्टिषु॥८॥

घ्रन्तः। वृत्रम्। अतुरुन्। रोदंसी इति। अपः। उरु। ध्रयीया चिक्रिर्रे। भुवत्। कण्वे। वृषां। द्युम्नी। आऽहुतः। क्रन्दत्। अर्थः। गोऽइष्टिषु॥८॥

पदार्थ:-(घन्तः) शत्रुहननं कुर्वन्तो विद्युत्स्पृर्धिक्रणा इव सेनापत्यादयः (वृत्रम्) मेघिमव शत्रुम् (अतरन्) प्लावयन्ति। अत्र लड्थें लङ्। (रोदसी) झावापृथ्वियो (अपः) कर्माणि। अप इति कर्मनामसु पठितम्। (निघं०२.१) (उरु) बहु (क्षयाय) निष्पसाय (चिक्रिरे) कुर्वन्ति। अत्र लड्थें लिट्। (भुवत्) भवेत् लेट् प्रयोगो बहुलं छन्दिस इति शर्मो लुकि भूर्सुवोस्तिङ। (अष्टा०७.३.८८) इति गुणप्रतिषेधः। (कण्वे) शिल्पविद्याविदि मेधाविनि विद्वज्यने (वृष्ण) सुखवृष्टिकर्त्ता (द्युम्नी) द्युम्नानि बहुविधानि धनानि भवन्ति यस्मिन्। अत्र भूम्न्यर्थ इनिः। (आहतः) सभाध्यक्षत्वेन स्वीकृतः (क्रन्दत्) हेषणाख्यं शब्दं कुर्वन् (अश्वः) तुरङ्ग इव (गविष्टिषु) गुड्गं पृथिव्यादीनामिष्टिप्राप्तीच्छा येषु संग्रामेषु तेषु॥८॥

अन्वय:-राजपुरुषा विद्युत्सूर्यिकरणा वृत्रमिव शत्रुदलं घ्नन्तो रोदसी अतरन्नपः कुर्युः तथा गविष्टिषु क्रन्ददश्च इवाहुत्रे बुषासनुरुष्ट्रयाय कण्वे द्युम्नी दधद्भवत्॥८॥

भावार्थ:-यथा विद्युद्धभौतिकसूर्याग्नयो मेघं छित्त्वा वर्षयित्वा सर्वान् लोकान् जलेन पूयन्ति तत् कर्म प्राणिनां चिर्रमुखाय भवत्येवं सभाध्यक्षादिभी राजपुरुषै: कण्टकरूपाञ्छत्रून् हत्वा प्रजा: सततं तर्पणीया:॥८॥८

पदार्थ:-एजपुरुष जैसे बिजुली सूर्य और उसके किरण (वृत्रम्) मेघ का छेदन करते और वर्षाते हुए आक्रीश और पृथिवी को जल से पूर्ण तथा इन कर्मों को प्राणियों के संसार में अधिक निवास के लिये करते हैं वैसे ही शत्रुओं को (धननः) मारते हुए (रोदसी) प्रकाश और अन्धेरे में (अपः) कर्म को क्रिंर और सब जीवों को (अतरन्) दु:खों के पार करें तथा (गिविष्टिषु) गाय आदि पशुओं के संघातों में

४६०

(क्रन्दत्) शब्द करते हुए (अश्वः) घोड़े के समान (आहुतः) राज्याधिकार में नियत किया (वृषा) सुंखे की वृष्टि करने वाला (उरुक्षयाय) बहुत निवास के लिये (कण्वे) बुद्धिमान् में (द्युम्नी) बहुत ऐश्वर्य को धरता हुआ सुखी (भुवत्) होवे॥८॥

भावार्थ:-जैसे बिजुली, भौतिक और सूर्य यही तीन प्रकार के अग्नि मेघ को छिन्न भिन्न कर सब लोकों को जल से पूर्ण करते हैं, उनका युद्ध कर्म सब प्राणियों के अधिक निवास के लिये होता है, वैसे ही सभाध्यक्षादि राजपुरुषों को चाहिये कि कण्टकरूप शत्रुओं को मार के प्रजा को निरन्तर तृप्त करें॥८॥

अथ सभापतेर्गुणा उपदिश्यन्ते॥

अब अगले मन्त्र में सभापति के गुणों का उपवेश क्रिया है।।

सं सीदस्व महाँ असि शोचस्व देववीर्तमः।

वि धूममंग्ने अरुषं मियेध्य सुज प्रशस्त दर्शतम्॥ १ भी

सम्। सी<u>द</u>स्व। महान्। असि। शोचस्व। देवऽवीतम् । वि। सूमम्। अग्ने। अरुषम्। मियेध्य। सृज। प्रऽशस्त। दुर्शतम्॥९॥

पदार्थ:-(सम्) सम्यगर्थे (सीदस्व) दोषान् हिन्धा ल्येल्येनात्रत्मनेपदम् (महान्) महागुणविशिष्टः (असि) वर्तसे (देववीतमः) देवान् पृथित्व्यदीन् बेति व्याप्नोति (शोचस्व) प्रकाशस्व। शुचिदीप्तावित्यस्माल्लोट् (देववीतमः) यो देवान् विदुषो व्याप्नोति सोऽतिशयतः (वि) (धूमम्) धूमसदृशमलरिहतम् (अग्ने) तेजस्विन् सभापते (अरुषम्) सुन्दररूपयुक्तम्। अरुषमिति रूपनामसु पिठतम्। (निघं०३.७) (मियेध्य) मेधूर्महं। अर्थः प्रयोगः पृषोदरादिना अभीष्टः सिद्धचिति। (सृज) (प्रशस्त) प्रशंसनीय (दर्शतम्) द्रष्टुमर्हम्॥९॥

अन्वय:-हे तेजस्विन् मियेध्याग्ने सभापते! यस्त्वं महानसि स सभापते देववीतमः सन्न्याये संसीदस्व शोचस्व।हे प्रशस्ति राजुँस्त्वमृत्र विधुमं दर्शतमरुषं सृजोत्पादय॥९॥

भावार्थ:-मेधार्विना राजपुरेषा अग्निवत् तेजस्विनो महागुणाढ्या भूत्वा दिव्यगुणानां पृथिव्यादिभूतानां तत्त्वं विज्ञार प्रकाशमानाः सन्तो निर्मलं दर्शनीयं रूपमुत्पादयेयुः॥९॥

पदार्थ: हैं (तेजिस्क्न) विद्याविनययुक्त (मियेध्य) प्राज्ञ (अग्ने) विद्वन् सभापते! जो आप (महान्) बड़े कुं गुणें से युक्त (असि) हैं सो (देववीतमः) विद्वानों को व्याप्त होने हारे आप न्यायधर्म में स्थित होकर (संसीदस्व) सब दोषों का नाश कीजिये और (शोचस्व) प्रकाशित हूजिये हे (प्रशस्त) प्रशंसा करने योग्य राजन्! आप (विधूमम्) धूमसदृश मल से रहित (दर्शतम्) देखने योग्य (अरुषम्) रूपका (सुज) उत्पन्न कीजिये॥९॥

मण्डल-१। अनुवाक-८। सूक्त-३६

भावार्थ:-प्रशंसित बुद्धिमान् राजपुरुषों को चाहिये कि अग्नि के समान तेजस्वि और बड़े-बड़े गुणों से युक्त हों और श्रेष्ठ गुणवाले पृथिवी आदि भूतों के तत्त्व को जान के प्रकाशमान होते हिए निर्मल देखने योग्य स्वरूपयुक्त पदार्थों को उत्पन्न करें॥९॥

मनुष्याः कीदृशं सभेशं कुर्व्युरित्याह॥

मनुष्य किस प्रकार के पुरुष को सभाध्यक्ष करें, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्रीमें किया है।

यं त्वा देवासो मनेवे दुधुरिह यजिष्ठं हव्यवाहन।

यं कण्वो मेध्यातिथिर्धनुस्पृतं यं वृषा यमुपस्तुत:॥१०॥९॥

यम्। त्वा। देवासः। मनवे। दुधुः। इह। यजिष्ठम्। हृव्युऽकाह्मः। यम्। कण्वः। मेध्यऽअतिथिः। धुनुऽस्पृतंम्। यम्। वृषां। यम्। उपुऽस्तुतः॥ १०॥

पदार्थ:-(यम्) मननशीलम् (त्वा) त्वाम् (देवासः) विद्वसिः (पन्वे) मननयोग्याय राजशासनाय (दधुः) दध्यासुः। अत्र लिङ्थें लिट्। (इह) अस्मिन् संसारे (यजिष्ठम्) अतिशयेन यष्टारम् (हव्यवाहन) हव्यान्यादातुमर्हाणि वसूनि वहति प्राप्नोति तत्सम्बुद्धौ स्थ्यपनि (यम्) शिक्षितम् (कण्वः) मेधावीजनः (मेध्यातिथिः) मेध्यैरतिथिभिर्युक्तोऽध्यापकः (धनस्पतम्) धनैविद्धासुवर्णादिभिः स्पृतः प्रीतः सेवितस्तम् (यम्) सुखस्य वर्षकम् (वृषा) विद्यावर्षकः (यम्) स्तोतुमह्म् (उपस्तुतः) उपगतः स्तौति स उपस्तुतो विद्वान्। अत्र स्तुधातोर्बाहुलकादौणादिकः क्तः प्रस्यः॥ १०॥

अन्वय:-हे हव्यवाहन! यं यजिष्टं त्वा त्वा देवासो मनव इह दधुर्दधित। यं धनस्पृतं त्वा त्वां मेध्यातिथि: कण्वो दधे। यं त्वा त्वां वृष्टिधे। यं त्वा त्वामुपस्तुतो दधे तं त्वां वयं सभापितत्वेनाङ्गीकुर्महे॥१०॥

भावार्थ:-अस्मिञ्जगति स्वैर्मनुष्येविद्धांसोऽन्ये च श्रेष्ठपुरुषा मिलित्वा यं विचारशीलमादेयवस्तु-प्रापकं शुभगुणाढ्यं विद्यासुवभाविधनयुक्तं सम्यजनं राज्यशासनाय नियुञ्ज्युस्स एव पितृवत्पालको राजा भवेत्॥१०॥

पदार्थ: -हे (हव्यवहिन) ग्रहण करने योग्य वस्तुओं की प्राप्ति कराने वाले सभ्यजन! (यम्) जिस विचारशील (यजिष्ठम्) अत्यन्त यज्ञ करने वाले (त्वा) आप को (देवासः) विद्वान् लोग (मनवे) विचारने योग्य राज्य की शिक्षा के लिये (इह) पृथिवी में (दधुः) धारण करते (यम्) जिस शिक्षा पाये हुए (धनस्प्रतम्) तिद्वा सुवर्ण आदि धन से युक्त आप को (मेध्यातिथिः) पवित्र अतिथियों से युक्त अध्यापक्ष (कण्वः) विद्वान् पुरुष स्वीकार करता (यम्) जिस सुख की वृष्टि करने वाला (त्वा) आप को (वृष्ण) सुखें का फैलाने वाला धारण करता और (यम्) जिस स्तुति के योग्य आप को (उपस्तुतः)

समीपस्थ सज्जनों की स्तुति करने वाला राजपुरुष धारण करता है, उन आप को हम लोग सभापित के अधिकार में नियत करते हैं॥१०॥

भावार्थ:-इस सृष्टि में सब मनुष्यों को चाहिये कि विद्वान् और अन्य सब श्रेष्ठ चतुर पुरिष मिले के जिस विचारशील ग्रहण के योग्य वस्तुओं के प्राप्त कराने वाले शुभ गुणों से भूषित विद्या सुवर्णिद धनयुक्त सभा के योग्य पुरुष को राज्य शिक्षा के लिये नियुक्त करें, उसी पिता के तुल्य मालन करने वाला जन राजा होवे॥१०॥

पुनरेतैरग्न्यादिपदार्थाः कथमुपकर्त्तव्याः॥

फिर सभाध्यक्षादि लोग अग्नि आदि पदार्थों से कैसे उपकार लेवें, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।

यमुग्निं मेध्यातिथिः कण्वं ई्ध ऋतादिध।

तस्य प्रेषो दीदियुस्तमिमा ऋचस्तमिमं वर्धयामसिम्रशा

यम्। अग्निम्। मेध्यंऽअतिथिः। कण्वंः। ईधे। ऋतात्। अधि। तस्याँ प्र। इषंः। दीदियुः। तम्। इमाः। ऋचंः। तम्। अग्निम्। वर्ध्यामुसि॥ ११॥

पदार्थ:-(यम्) (अग्निम्) दाहगुणविशिष्टं सर्वपदार्थ हेदंकं च (मेध्यातिथि:) पिवत्रैः पूजकैः शिष्यवर्गेर्युक्तो विद्वान् (कण्वः) विद्याक्रियाकुशलः (ईष्ट्रे) दीपयित। अत्र लड्थें लिट्। इजादेश्च गुरुमतोऽनृच्छः। (अष्टा०३.१.३६) इति 'अमर्ख' इति प्रक्रिषधाद् 'आम्' निषेधः। इस्थिभवितभ्यां लिट् च। (अष्टा०१.२.६) इति लिटः कित्त्वाद् अमिदिन्गम् (अष्टा०६.४.२४) इति नलोपो गुणाभावश्च। (ऋतात्) मेघमण्डलादुपरिष्टादुदकात् (अधि) उपरिभावे (तस्य) अग्नेः (प्र) प्रकृष्टार्थे (इषः) प्रापिका दीप्तयो रश्मयः (दीदियुः) दीयन्ते। दीद्यतीति ज्वलितकर्मसु पिठतम्। (निघं०१.१६) दीङ् क्षय इत्यस्माद् व्यत्ययेन परस्मैपदमान्यासस्य हस्कत्वे वाच्छन्दिस सर्वे विधयो भवन्ति इत्यनभ्यासस्य हस्वः। सायणाचार्येणेदं पदमन्यथा व्याख्यातम्। (तम्) यज्ञस्य मुख्यं साधनम् (इमाः) प्रत्यक्षाः (ऋचः) वेदमन्त्राः विद्युदाख्यम् (अग्निम्) सूर्कत्र व्यापकम् (वर्धयामिस्) वर्धयामः॥११॥

अन्वय:-मेध्यातिथिः क्रिण्व ऋतादिध यमग्निमीधे तस्येषो प्रदीदियुरिमा ऋचस्तं वर्णयन्ति तमेवाग्नि राजपुरुष्ट्रा वयं शिल्पिक्रियासिद्धये वर्धयामिस॥११॥

र९. 'अम्त्रे इति पूर्वसूत्रादनुवृत्तौ सत्याम् <mark>'आम्'</mark> निषेधः, इत्यर्थः। सं०

मण्डल-१। अनुवाक-८। सूक्त-३६

भावार्थ:-सभाध्यक्षादिराजपुरुषैर्होत्रादयो विद्वांसो वायुवृष्टिशुद्ध्यर्थं हवनाय यमिनं दीपयन्ति, यस्य रश्मय ऊर्ध्वं प्रकाशन्ते, यस्य गुणान् वेदमन्त्रा वदन्ति, स राजव्यवहारसाधकशिल्पिक्रियास्त्रिय एव वर्द्धनीय:॥११॥

पदार्थ:-(मेध्यातिथि:) पवित्र सेवक शिष्यवर्गों से युक्त (कण्व:) विद्यासिद्ध केर्मकाण्ड में कुशल विद्वान् (ऋतादिध) मेघमण्डल के ऊपर से सामर्थ्य होने के लिये (द्विप्) जिस (अग्निप्) दाहयुक्त सब पदार्थों के काटने वाले अग्नि को (ईधे) प्रदीप्त करता है (तस्य) उसे अग्नि के (इष:) घृतादि पदार्थों को मेघमण्डल में प्राप्त करने वाले किरण (प्र) अत्यन्त (दोदियु:) प्रज्वलित होते हैं और (इमा:) ये (ऋच:) वेद के मन्त्र (तम्) जिस अग्नि के गुणों का प्रकाश करने हैं (तम्) उसी (अग्निप्) अग्नि को सभाध्यक्षादि राजपुरुष हम लोग शिल्प क्रियासिद्धि के लिये (वर्धयामुम्प) बढ़ाते हैं॥११॥

भावार्थ:-सभाध्यक्षादि राजपुरुषों को चाहिये कि होता आदि विद्वान लोग वायु वृष्टि के शोधक हवन के लिये जिस अग्नि को प्रकाशित करते हैं, जिसके किएण ऊपर क्री प्रकाशित होते और जिसके गुणों को वेदमन्त्र कहते हैं, उसी अग्नि को राज्य साधक क्रियासिद्धि के लिये बढ़ावें॥११॥

पुनश्च तेषामेव राजपुरुषाणां गुणा उपदिश्यन्ते॥

फिर भी अगले मन्त्र में उन्हीं राजपुरुषों के गुण्णें का उपदेश किया है॥

रायस्पूर्धि स्वधावोऽस्ति हि तेऽग्ने देवेष्वाष्यम्। त्वं वार्जस्य श्रुत्यस्य राजसि स्नो मूळ सुद्धा असि॥ १२॥

रायः। पूर्धि। स्वधाऽवः। अस्ति। हि। ति। अस्ति। देवेषुं। आप्यम्। त्वम्। वार्जस्य। श्रुत्यस्य। राजिसि। सः। नः। मुळ्। महान्। असि॥ १२॥

पदार्थ:-(राय:) विद्यास्वर्णचक्रवर्तिराज्यादिधनानि (पूर्धि) पिपूर्धि। अत्र बहुलं छन्दिस (अष्टा०२.४.७३) इति शपो लुक्। श्रुशृणुण्० (अष्टा०६.४.१०२) इति हेर्धि:। (स्वधाव:) स्वधा भोक्तव्या अन्नादिपदार्था: सन्ति यस्य तत्सम्बुद्धौ (अस्ति) (हि) यतः (ते) तव (अग्ने) अग्निवत्तेजस्विन् (देवेषु) विद्वत्सु (आप्यम्) आप्तुं प्राप्तुं योग्यं सखित्वम्। अत्र आप्तृ व्याप्तावित्यस्मादौणादिको यत्। सायणाचार्य्येण प्रमादाददुपधत्वाभावेऽपि पोरदुपधात् इति कर्मणि यत्। यतो नाव (अष्टा०६.१.२१०) इत्याद्युदात्तत्वम् यत्ये छान्दसमाद्युदात्तत्वमित्यशुद्धमुक्तम्। औणादिकस्य यत्प्रत्ययस्य विद्यमानत्वात् (त्वम्) पुत्रवत्प्रजीपालकः (वाजस्य) युद्धस्य (श्रुत्यस्य) श्रोतुं योग्यस्य। श्रु श्रवण इत्यस्मादौणादिकः कर्माणि स्थप् प्रत्ययः। (राजिस) प्रकाशितो भवसि (सः) (नः) अस्मान् (मृड) सुखय (महान्) बृहद् गुणाह्यः (अस्ति) वर्त्तसे॥१२॥

अन्वय:-हे स्वधावोऽग्ने! हि यतस्ते देवेष्वाप्यमस्ति रायस्पूर्धि। यस्त्वं महानसि श्रुत्यस्य वार्जस्य च मध्ये राजसि, स त्वं नोऽस्मान् मृड सुखयुक्तान् कुरु॥१२॥

भावार्थ:-वेदवित्सु विद्यावृद्धिषु मैत्रीं भावयद्भिः सभाध्यक्षादिराजपुरुषैरन्नधनादिस्तार्थीमारान् सततं प्रपूर्य प्रसिद्धैर्दस्युभिस्सह युद्धाय समर्था भूत्वा प्रजायै महान्ति सुखानि दातव्यानि॥ १२॥

पदार्थ:-हे (स्वधाव:) भोगने योग्य अन्नादि पदार्थों से युक्त (अग्ने) अग्नि के समीप तेजस्वी सभाध्यक्ष! (हि) जिस कारण (ते) आपकी (देवेषु) विद्वानों के बीच में (आप्यम्) ग्रहण करने योग्य मित्रता (अस्ति) है, इसलिये आप (राय:) विद्या, सुवर्ण और चक्रवर्त्ति राज्यादि धनों को (पूर्धि) पूर्ण कीजिये जो आप (महान्) बड़े-बड़े गुणों से युक्त (असि) हैं और (श्रुत्यस्व) सुनने के योग्य (वाजस्य) युद्ध के बीच में प्रकाशित होते हैं (स:) सो (त्वम्) पुत्र के तुल्य प्रज्ञा की रक्षा कानेहारे आप (न:) हम लोगों को (मृड) सुखयुक्त कीजिये॥१२॥

भावार्थ:-वेदों को जानने वाले उत्तम विद्वानों में मित्रता रखते हुए सभाध्यक्षादि राजपुरुषों को उचित है कि अन्न, धन आदि पदार्थों के कोशों को निरन्तर भर और प्रसिद्ध डाकुओं के साथ निरन्तर युद्ध करने को समर्थ होके प्रजा के लिये बड़े-बड़े सुख देने वाले होने।।१२॥

पुनः स कथंभूत इत्युपदिश्यते।

फिर वह सभाध्यक्ष कैसा होता है, इस विषय का उप्रदेश अगले मन्त्र में किया है॥

ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतये तिष्ठा देवो न सिव्ता।

अर्ध्वो वार्जस्य सनिता यदञ्जिभिन्धिद्धिर्विह्नयामहे॥ १३॥

कुर्ध्वः। कुँ इति। सु। नुः। कुत्रयूगे तिष्ठ। देवः। न। सुविता। कुर्ध्वः। वार्जस्य। सर्निता। यत्। अञ्चिऽभिः। वाघत्ऽभिः। विऽह्वयामहे॥ १३॥

पदार्थ:-(ऊर्ध्व:) उच्चासने (ऊँ) च (सु) शोभने। अत्र सोरुपसर्गस्यग्रहणं न किन्तु सुञो निपातस्य तेन इक: सुजि। (अष्टाब्द:३.१३४) इति संहितायामुकारस्य दीर्घ:। सुञ:। (अष्टाब्ट:३.१०७) इति मूर्ज्यन्देशस्य। (न:) अस्माकम्। नश्च धातुस्थोरुषभ्यः। (अष्टाब्ट:४.२६) इति णत्वम्। (ऊतये) रक्षणाद्याय (किष्ट) अत्र द्वयचोऽतिस्तिङ इति दीर्घश्च। (देव:) द्योतकः (न) इव (सिवता) सूर्यलोकः (ऊर्व्वः) उन्नतस्पन् (वाजस्य) संग्रामस्य (सिनता) सम्भक्ता सेवकः (यत्) यस्मात् (अञ्चिभः) अञ्जसाधनानि प्रकटयद्धिः। सर्वधातुभ्य इन्। (उणाव्४.१२३) इति कर्त्तरीन् प्रत्ययः। (वाघिद्धः) विद्वद्धिर्मधाविभः। वाघत इति मेधाविनामसु पठितम्। (निघंव्३.१५) (विद्वयामहे) विविधैः शब्दैः स्तुमः॥१३॥

अन्वयः-हे सभापते! त्वं सविता देवो नेव नोऽस्माकमूतय ऊर्ध्वः सुतिष्ठ। ऊ चोर्ध्वः सन् अजस्य सनिता भव, अतो वयमञ्जिभिर्वाघद्भिस्सह त्वां विह्वयामहे॥१३॥

मण्डल-१। अनुवाक-८। सूक्त-३६

भावार्थ:-सूर्य्यवदुत्कष्टतेजसा सभापतिना संग्रामसेवने न दुष्टशत्रूत्रिवार्य्य सर्वेषां प्राणिनामूतये यज्ञसाधकैर्विद्वद्भिः सहात्युच्चासने स्थातव्यम्॥१३॥

पदार्थ: - हे सभापते! आप (देव:) सबको प्रकाशित करनेहारे (सविता) सूर्यह्मीक के नि) समान (न:) हम लोगों की रक्षा आदि के लिये (ऊर्ध्व:) ऊंचे आसन पर (सुतिष्ठ) सुर्योधित हुजिये (ऊँ) और (ऊर्ध्व:) उन्नति को प्राप्त हुए (वाजस्य) युद्ध के (सिवता) सेवने वाले हूजिये इसलिये हम लोग (अञ्जिभि:) यज्ञ के साधनों को प्रसिद्ध करने तथा (वाघिद्ध:) सब ऋतुओं में अज्ञ करो वाले विद्वानों के साथ (विद्वयामहे) विविध प्रकार के शब्दों से आप की स्तुति करते हैं॥१३॥

भावार्थ:-सूर्य्य के समान अति तेजस्वी सभापित को चाहिये कि संग्राम सेवर्ग से दुष्ट शत्रुओं को हटा के सब प्राणियों की रक्षा के लिये प्रसिद्ध विद्वानों के साथ सभा में बीच में ऊंचे आसन पर बैठे॥१३॥

पुन: स कीदृश इत्याह

फिर वह सभापति कैसा होवे, यह अगले मन्त्र में कहा है।।

ऊर्ध्वो नं: पाह्यंहंसो नि केतुना विश्वं समुत्रिणं दह। कृधी नं ऊर्ध्वाञ्चरथाय जीवसे विदा द्वेवेषु नो दुन्रः॥१४॥

ऊर्ध्वः। नः। पाहि। अंहंसः। नि। केतुना विश्वम्। पुर्म्। अत्रिर्णम्। दुहु। कृधि। नः। ऊर्ध्वान्। चुरथाय। जीवसे। विदाः। देवेषु। नः। दुवः॥१४॥

पदार्थ:-(ऊर्ध्व:) सर्वोत्कृष्ट: (न:) अस्मान् (पाहि) रक्ष (अंहसः) परपदार्थहरणरूपपापात्। अमेर्हुक् च। (उणा०४.२१३)। इत्यसुन् प्रत्ययां हुगागमश्च। (नि) नितराम् (केतुना) प्रकृष्टज्ञानदानेन केतुरिति प्रज्ञानामसु पठितम्। (निषं०३.९) (विश्वम्) सर्वम् (सम्) सम्यगर्थे (अत्रिणम्) अत्ति भक्षयत्यन्यायेन परपदार्थान् यः स शत्रुस्तम् (दह) भस्मी (कृष्टि) कुरु। अत्रान्येषामपीति संहितायां दीर्घः। (नः) अस्मान् (ऊर्ध्वान्) उत्कृष्टगुणसुखसहितान् (चरथाय) चरणाय (जीवसे) जीवितुम्। जीव धातोस्तुमर्थेऽसे प्रत्ययः (विद्याः) लम्भय। अत्र लोडर्थे लेट्। (देवेषु) विद्वत्स्वृतुषु वा। ऋतवो वै देवाः। (शत०७.२.४.२६० तै०सं०५ ४.११.४) (नः) अस्माकमस्मभ्यं वा (दुवः) परिचर्याम्॥१४॥

अन्वग्रद-हे सभापते! त्वं केतुना प्रज्ञादानेन नोंऽहसो निपाहि विश्वमत्रिणं शत्रुं सन्दह ऊर्ध्वस्त्वं चरथाय न कथ्वीर्स्कि देवेषु जीवसे नो दुवो विदा:॥१४॥

भावार्थः-उत्कृष्टगुणस्वभावेन सभाध्यक्षेण राज्ञा राज्यनियमदण्डभयेन सर्वमनुष्यान् पापात् पृथक्रकत्य सर्वान् शत्रून् दग्ध्वा विदुषः परिषेव्य ज्ञानसुखजीवनवर्द्धनाय सर्वे प्राणिन उत्कृष्टगुणाः सदा स्र्विभादनीसाः॥१४॥

पदार्थ:-हे सभापते! आप (केतुना) बुद्धि के दान से (नः) हम लोगों को (अंहसः) दूसरे की पदार्थ हरणरूप पाप से (निपाहि) निरन्तर रक्षा कीजिये (विश्वम्) सब (अत्रिणम्) अन्याय से दूसरे के पदार्थों को खाने वाले शत्रुमात्र को (संदह) अच्छे प्रकार जलाइये और (ऋर्वः) सब से उत्कृष्ट अप्य (चरथाय) ज्ञान और सुख की प्राप्ति के लिये (नः) हम लोगों को (ऋर्वान्) बड़े-बड़े राण कर्म और स्वभाव वाले (कृष्टि) कीजिये तथा (नः) हमको (देवेषु) धार्मिक विद्वानों में (जीवहें) सम्पूर्ण अवस्था होने के लिये (दुवः) सेवा को (विदाः) प्राप्त कीजिये॥१४॥

भावार्थ:-अच्छे गुण, कर्म और स्वभाव वाले सभाध्यक्ष राजा को ब्राहिये कि राज्य की रक्षा नीति और दण्ड के भय से सब मनुष्यों को पाप से हटा सब शत्रुओं को मूल और विद्वानों की सब प्रकार सेवा करके प्रजा में ज्ञान, सुख और अवस्था बढ़ाने के लिये सब प्राणियों के शुभगुणयुक्त सदा किया करें॥१४॥

पुनः तं प्रति प्रजासेनाजनाः किङ्किम्प्रार्थयेयुरित्युपिदश्यते॥

फिर उस सभाध्यक्ष राजा से प्रजा और सेना के जन क्या-क्या प्रार्थना करें, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।

पाहि नो अग्ने रक्षसी: पाहि धूर्तेरराव्या:।

पाहि रीषत उत वा जिघांसतो बृहंद्रानो विविष्ठया १५॥१०॥

पाहि। नुः। अग्ने। रक्षसंः। पाहि। धूर्तेः। असित्याः। प्राहि। रिषंतः। उत। वा। जिघांसतः। बृहंद्धानो इति बृहंत्ऽभानो। यविष्ठ्य॥ १५॥

पदार्थ:-(पाहि) रक्ष (नः) अस्मान् (भागे) सर्वाग्रणीः सर्वाभिरक्षक (रक्षसः) महादुष्टान्मनुष्यात् (पाहि) (धूर्तेः) विश्वासघातिनः। अत्र धुर्वे धातोबांहुलकादाणौदिकस्तिः प्रत्ययः। (अराव्णः) राति ददाति स रावा न अरावा रावा तस्मान्क्रपणाददानश्रीलात्। (पाहि) रक्ष (रिषतः) हिंसकाद् व्याघ्रादेः प्राणिनः। अत्रान्येषामि दृश्यत इति दिर्धिः। (उत) अपि (वा) पक्षान्तरे (जिघांसतः) हन्तुमिच्छतः शत्रोः (वृहद्धानो) बृहन्ति भानक्षे विद्याद्येश्वस्थतंजांसि यस्य तत्सम्बुद्धौ (यिवष्ठ्य) अतितरुणावस्थायुक्त॥१५॥

अन्वय:-हे बृहद्भानी योष्ट्रिष्ट्याग्ने सभाध्यक्ष महाराज! त्वं धूर्तेरराव्यणो रक्षसो नः पाहि। रिषतः पापाचाराज्जनात् प्राहि। उत् बा जिघांसतः पाहि॥१५॥

भावार्थः मनुष्यैः सर्वतोभिरक्षणाय सर्वाभिरक्षको धर्म्मीत्रतिं चिकीर्षुर्दयालुः सभाध्यक्षः सदा प्रार्थनीयः स्वैरिपि दृष्टस्वभावेभ्यो मनुष्यादिप्राणिभ्यः सर्वपापेभ्यश्च शरीरवचोमनोभिर्दूरे स्थातव्यं नैवं विना करित्तत्सदा सुखी भवितुमर्हति॥१५॥

एदार्थ:-हे (**बृहद्धानो**) बड़े-बड़े विद्यादि ऐश्वर्य्य के तेजवाले (**यविष्ठ्य**) अत्यन्त करणाकस्थायुक्त (अग्ने) सब से मुख्य सब की रक्षा करने वाले मुख्य सभाध्यक्ष महाराज! आप (धूर्ते:)

मण्डल-१। अनुवाक-८। सूक्त-३६

कपटी, अधर्मी (अराव्णः) दानधर्मरहित कृपण (रक्षसः) महाहिंसक दुष्ट मनुष्य से (नः) हमको (पाहि) बचाइये (रिषतः) सबको दुःख देने वाले सिंह आदि दुष्ट जीव दुष्टाचारी मनुष्य से हम को पृथिक रिष्टिशे (उत) और (वा) भी (जिघांसतः) मारने की इच्छा करते हुए शत्रु से हमारी रक्षा कीजिये। १९५॥

भावार्थ:-सब मनुष्यों को चाहिये कि सब प्रकार रक्षा के लिये सर्वरक्षक अर्थोव्यति की इच्छा करने वाले सभाध्यक्ष की सर्वदा प्रार्थना करें और अपने आप भी दुष्ट स्वभाव वाले सनुष्य आदि प्राणियों और सब पापों से मन वाणी और शरीर से दूर रहें, क्योंकि इस प्रकार रहने के बिना कोई मनुष्य सर्वदा सुखी नहीं रह सकता॥१५॥

पुनस्तदेवाह॥

फिर भी अगले मन्त्र में उसी सभाध्यक्ष का उपदेश किया है।

घनेव विष्विग्व ज्ह्यरांव्यास्तपुंर्जम्भ यो अस्मध्रुक्। यो मर्त्यः शिशीते अत्यक्तुभिर्मा नः स रिपुरीशत्। १६॥

घुनाऽईव। विष्वंक्। वि। जुद्धि। अर्राव्याः। तपुं:ऽजम्म होः। अर्थम्ऽध्रुक्। यः। मर्त्यः। शिशीते। अर्ति। अक्तुऽभिः। मा। नुः। सः। रिपुः। ईशृतु॥ १६॥

पदार्थ:-(घनेव) घनाभिर्यष्टिभिर्यथा घटं भिनित्त तथ्य (विष्वक्) सर्वतः (वि) विगतार्थे (जिह) नाशय (अराव्याः) उक्तशत्रून् (तपुर्जम्भ) तप सन्ताप्य इत्यूस्मादौणादिक उसिन् प्रत्ययः, सन्ताप्यन्ते शत्रवो यैस्तानि तपूंषि। जिभ नाशन इत्यस्मात् कर्णे घञ्, ज्ञस्यन्त एभिरिति जम्भान्यायुधानि तपूंष्येव जम्भानि यस्य भवतस्तत्सम्बुद्धौ (यः) मनुष्यः (अस्माद्युक्को अस्मान् दुह्यति यः सः (यः) (मर्त्यः) मनुष्यः (शिशीते) कृशं करोति। शो तनूकरण इत्यस्माल्लिट विकरणव्यत्ययेन श्यनः स्थाने श्लुरात्मनेपदं वहुलं छन्दिस इत्यभ्यासस्येत्वम्। ई हत्यघोः। (अष्टा०६.४.११३) इत्यनभ्यासस्येकारादेशश्च। (अति) अतिशये (अक्तुभिः) अञ्चन्ति मृत्युं मयन्ति यैस्तैः श्रस्तैः। अञ्जू धातोर्बाहुलकादौणादिकस्तुः प्रत्ययः (मा) निषेधार्थे (नः) अस्मान् (सः) (रिपुः) शत्रुः (ईशतम्) ईष्टां समर्थो भवतु। अत्र लोडर्थे लङ्, वहुलं छन्दिस इति शपो लुक्॥ १६

अन्वय:-ह्रे तपुर्जिम्भ सेनापते! विष्वक् त्वमराव्योऽरीन् घनेन विजिह यो मर्त्योऽक्तुभिरस्मधुगेतिशिशीतं स रिपुर्नोऽस्मान् मेशत॥१६॥

भाषार्थः अत्रोपभालङ्कारः। सेनापत्यादयो यथा घनेनायः पाषाणादीस्त्रोटयन्ति, तथैव शत्रूणामञ्ज्ञानि त्रोटियत्वाऽहर्निशं धार्मिकप्रजापालनतत्पराः स्युर्यतोऽरय एते दुःखियतुत्रो शक्नुश्रुरिति। १६॥

पदार्थ:-हे (तपुर्ज्जम्भ) शत्रुओं को सताने और नाश करने के शस्त्र बांधने वाले सेनापती! (विष्वक्) सर्वथा सेनादि बलों से युक्त होके आप (अराव्णः) सुखदानरहित शत्रुओं को (घनेव) घन के समान (विजिह) विशेष करके जीत और (यः) जो (मर्त्यः) मनुष्य (अक्तुभिः) रात्रियों से (अभिषुक्) हमारा द्रोही (अतिशिशीते) अति हिंसा करता हो (सः) सो (रिपुः) वैरी (नः) हम लोगे को पीड़ा देने में (मा) मत (ईशत) समर्थ होवे॥१६॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है। सेनाध्यक्षादि लोग जैसे लोहा के घन भे लोहे पाषाणादिकों को तोड़ते हैं, वैसे ही अधर्म्मी दुष्ट शत्रुओं के अङ्गों को छिन्न-भिन्न कर हिन-रात धर्मात्मा प्रजाजनों के पालन में तत्पर हों, जिससे शत्रुजन इन प्रजाओं को दु:ख देने को समर्थ न हो सकें॥१६॥

पुनस्तेषां गुणा अग्नि दृष्टान्तेनोपदिश्यते॥

फिर भी इन सभाध्यक्षादि राजपुरुषों के गुण अग्नि के दृष्टान्त से अगले मन्त्र में कहे हैं॥

अ्गिनर्वन्ने सुवीर्यमुग्निः कण्वाय सौभगम्।

अग्नि: प्रावन्मित्रोत मेध्यातिथिमुग्नि: साता उपस्तुतम्।। १७००

अग्निः। वृद्गे। सुऽवीर्यम्। अग्निः। कण्वायः। सौर्मगम्। अग्निः। प्रा आवृत्। मित्रा। उत। मेध्यंऽअतिथिम्। अग्निः। सातौ। उपुऽस्तुतम्॥ १७॥

पदार्थ:-(अग्नि:) विद्युदिव सभाध्यक्षो राजा (वर्ल) याचते। वनु याचन इत्यस्माल्लडर्थे लिट्, वन सम्भक्तावित्यस्माद् वा छन्दसो वर्णलोपो वा इत्यनेनोपधालोपः। (सुवीर्यम्) शोभनं शरीरात्मपराक्रमलक्षणं बलम् (अग्निः) उत्तमेश्वर्यप्रदुः (कण्वाय) धर्मात्मने मेधाविने शिल्पिने (सौभगम्) शोभना भगा ऐश्वर्ययोगा यस्य तस्य भूग्वस्तम् (अग्निः) सर्विमित्रः (प्र) प्रकृष्टार्थे (आवत्) रक्षति प्रीणाति (मित्रा) मित्राणि। अत्र शेर्लोपः। (उत्त) अपि (मध्यातिथिम्) मेध्याः सङ्गमनीयाः पवित्रा अतिथयो यस्य तम् (अग्निः) सर्वाभिरक्षकः (स्त्रितो) सम्भजन्ते धनानि यस्मिन् युद्धे शिल्पकर्मणि वा तस्मिन् (उपस्तुतम्) य उपगतिर्गुणैः स्तूयते तम्॥ १००।

अन्वय:-यो विद्वान सज्जिनिरिव सातौ संग्रामे उपस्तुतं सुवीर्यमग्निरिव कण्वाय सौभगं वक्नेऽग्निरिव मित्रा: सुहदः प्राचद्वीनिरिवोताग्निरिव मेध्यातिथिं च सेवेत, स एव राजा भवितुमर्हेत॥१७॥

भावार्थः अत्र वात्रकलुप्तोपमालङ्कारः। यथायं भौतिकोऽग्निर्विद्वद्भिः सुसेवितः सन् तेभ्यो बलपराक्रमान् सोभाप्यं च प्रदाय शिल्पविद्याप्रवीणं तन्मित्राणि च सर्वदा रक्षति। तथैव प्रजासेनास्श्रेर्भद्रपुरुष्योचितोऽयं सभाध्यक्षो राजा तेभ्यो बलपराक्रमोत्साहानैश्वर्य्यशिक्तं च दत्त्वा युद्धं विद्याप्रविभान् तन्मित्राणि च सर्वथा पालयेत्॥१७॥

पद्मर्थ:-जो विद्वान् (अग्नि) भौतिक अग्नि के समान (सातौ) युद्ध में (उपस्तुतम्) उपगत स्तुति अयोग्य (सुवीर्य्यम्) अच्छे प्रकार शरीर और आत्मा के बल पराक्रम (अग्नि:) विद्युत् के सदृश

मण्डल-१। अनुवाक-८। सूक्त-३६

(कण्वाय) उसी बुद्धिमान् के लिये (सौभगम्) अच्छे ऐश्वर्य्य को (वन्ने) किसी ने याचित किया हुआ देता है (अग्निः) पावक के तुल्य (मित्रा) मित्रों को (आवत्) पालन करता (उत) और (अग्निः) जाठराग्निवत् (उपस्तुतम्) शुभ गुणों से स्तुति करने योग्य (मेध्यातिथिम्) कारीगर विद्वान् को सेवे, वहीं पुरुष राजा होने को योग्य होता है॥१७॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे यह भौतिक अग्नि द्विह्यानों का ग्रहण किया हुआ, उनके लिये बल पराक्रम और सौभाग्य को देकर, शिल्पविद्या में प्रवीण और उसके मित्रों की सदा रक्षा करता है, वैसे ही प्रजा और सेना के भद्रपुरुषों से प्रार्थना किया हुआ यह सभाध्यक्ष राजा उनके लिये बल, पराक्रम, उत्साह और ऐश्वर्य का सामर्थ्य देकर युद्धविद्या में प्रवीण और उनके मित्रों को सब प्रकार पाले॥१७॥

सर्वे मनुष्या: सभाध्यक्षेण सह दुष्टान् कथं हन्युरित्युएदिश्यते॥

सब मनुष्य सभाध्यक्ष से मिल के दुष्टों को कैसे मारें, इस क्रिय का उप्रदेश अगले मन्त्र में किया

है॥

अग्निनी तुर्वशं यदुं परावतं उत्रादेवं हवामहे। अग्निनीयुन्नवंवास्त्वं बृहद्र्थं तुर्वीतिं दस्येवे सह ॥ १८॥

अग्निनां। तुर्वशंम्। यदुम्। प्राऽवर्तः। अग्विद्वम्। हुर्व्यमहे। अग्निः। नयत्। नवंऽवास्त्वम्। बृहत्ऽर्रथम्। तुर्वीतिम्। दस्यवे। सहः॥१८॥

पदार्थ:-(अग्निना) अग्निवत्तेन्नस्थिन सेभाध्यक्षेण (तुर्वशम्) तुरा शीघ्रतया परपदार्थान् विष्ट काङ्कृति सः। तुर्वशा इति मनुष्यनापसु पठितम्। (निघं०२.३) (यदुम्) इतरधनाय यततेऽसौ यदुर्मनुष्यस्तम्। अत्र यती प्रयन् इत्यस्पादाहुलकादौणादिक उः प्रत्ययस्तकारस्य दकारः (परावतः) दूरदेशात् (उग्रादेवम्) उग्रान्/तीवस्वभावान् विजिगीषुम्। अत्रान्येषामिष दृश्यत इति पूर्वपदस्य दीर्घः (हवामहे) योद्धुमाह्वयेम (अग्निः) अग्रणीस्सभाध्यक्षः (नयत्) नयतु बन्धनागारे प्रापयतु। अयं लेट्प्रयोगः। (नववास्त्वम्) नवानि नषीनात्यग्रेष्यं निर्मितानि वस्तूनि गृहाणि येन तम्। अगिपूर्वः (अष्टा०६.१.१०७) इत्यत्र वाच्छन्दिम् (अष्टा०६.१.१०६) इत्यनुवर्त्तनात् पूर्वसवर्णाभावे यणादेशः। (बृहद्रथम्) बृहन्तो रथा रमणसाधका यस्य तम् (तुर्वीतिम्) तुर्वति हिनस्ति यस्तम्। अत्र हिंसार्थात् तुर्वीधातोर्बाहुलकादौणादिकः कर्तृकारक हितः प्रत्ययः (दस्यवे) स्वबलोत्कर्षेण परपदार्थहर्त्तुर्दस्योः। अत्र षष्टचर्थं चतुर्थी। (सहः) पराभावुतः।।१८॥

अस्वय:-वयं येनाग्निना संग्राह्योग्रादेवं तुर्वशं यदुं परावतो हवामहे। स च दस्यवे सुरोऽग्निर्ववास्त्वं बृहद्रथं तुर्वीतिमिहानयत् बन्धागारे प्रापयतु॥१८॥

भावार्थ:-सर्वैधार्मिकपुरुषैस्तेजस्विना सभाध्यक्षेण राज्ञा सह समागम्य वेगेन परपदार्थहर्त्तृन् कुटिलस्वभावान् स्वविजयमिच्छन् दस्यूनाहूय पर्वतारण्यादिषु निर्मितानि तद्गृहाणि निपात्य तान् बध्वा कारागृहे नियोक्तव्याः सायणाचार्य्येणायं मन्त्रोऽर्वाचीनपुराणाख्यमिथ्याग्रन्थरीतिमाश्रित्य भान्त्याऽनिर्थो व्याख्यातः॥१८॥

पदार्थ:-हम लोग जिस (अग्निना) अग्नि के समान तेजस्वी सभाध्यक्ष राज्य के साथ मिल के (उग्रादेवम्) तेज स्वभाव वालों को जीतने की इच्छा करने तथा (तुर्वशम्) शीघ्र ही दूसरे के पदार्थों को ग्रहण करने वाले (यदुम्) दूसरे का धन मारने के लिये यत्न करते हुए डाकू पुरुष को (परावत:) दूसरे देश से (हवामहे) युद्ध के लिये बुलावें, वह (दस्यवे) अपने विशेष बल से दूसरे का पदार्थ हरने वाले डाकू का (सह:) तिरस्कार करने योग्य बल को (अग्नि:) सब सुख्य एजा (निजवास्त्वम्) एकान्त में नवीन घर बनाने (बृहद्रथम्) बड़े-बड़े रमण के साधन रथों वाले (बुर्विसम्) हिंसक दुष्टपुरुषों को यहाँ (नयत्) कैद में रक्खे॥१८॥

भावार्थ:-सब धार्मिक पुरुषों को चाहिये कि तेजस्वी सभाष्यक्ष राजा के साथ मिल के वेग से अन्य के पदार्थों को हरने खोटे स्वभावयुक्त और अपने विजय की क्रेंच्छा करने वाले डाकुओं को बुला उनके पर्वतादि एकान्त स्थानों में बने हुए घरों को खस्राकर और बींध के उनको कैद में रक्खें॥१८॥

सायणाचार्य ने यह मन्त्र नवीन पुराण मिथ्या ग्रन्थों की रीति के अवलम्ब से भ्रम के साथ कुछ का कुछ विरुद्ध वर्णन किया है।।

पुनरेषां सहायकारी जगदीश्वरः कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर उन राजपुरुषों का सहायक जग्दिश्वर कैसी हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

नि त्वामग्ने मनुर्दधे ज्येतिर्जनाये शश्वते।

द्विदेश कण्व ऋतज्ञात उक्षितो यं नेगुस्यन्ति कृष्टयः॥१९॥

नि। त्वाम्। अपने मन् । द्वश्ये ज्योतिः। जनीय। शर्श्वते। दीदेर्थं। कण्वे। ऋतऽजीतः। उक्षितः। यम्। नुमुस्यन्ति। कृष्ट्यः॥१९॥

पदार्थ: कि निक्सम् (त्वाम्) सर्वसुखप्रदम्। अत्र स्वरव्यत्ययादुदात्तत्वम्। सायणाचार्येणेदं भ्रमात्र बुद्धम् (अपने) तेजस्विन् (मनुः) विज्ञानन्यायेन सर्वस्याः प्रजायाः पालकः (दधे) स्वात्मिनि धरे (ज्योतिः) स्वयं प्रकाशकत्वेन ज्ञानप्रकाशकम् (जनाय) जीवस्य रक्षणाय (शश्चते) स्वरूपेणानादिने

मण्डल-१। अनुवाक-८। सुक्त-३६

(दीदेथ) प्रकाशयेथ। शबभाव:। (कण्वे) मेधाविनि जने (ऋतजात:) ऋतेन सत्याचरणेन जात: प्रसिद्धः (उक्षित:) आनन्दैः सिक्तः (यम्) परमात्मानम् (नमस्यन्ति) पूजयन्ति। नमसः पूजाराम्। (अष्टा०३.१.१९) (कृष्टयः) मनुष्याः। कृष्टय इति मनुष्यनामसु पठितम्। (निघं०२.३)॥ १९॥

अन्वय:-हे अग्ने जगदीश्वर! यं परमात्मानं त्वां शश्वते जनाय कृष्टयो नमस्यन्त्रि। हे विद्वांसो! यूयं दीदेथ तज्ज्योतिस्स्वरूपं ब्रह्म ऋतजात उक्षितो मनुरहं कण्वे निदधे, तमेव सर्वे मनुष्ट्री उपासीरन्॥१९॥

भावार्थ:-पूज्यस्य परमात्मनः कृपया प्रजारक्षणाय राज्याधिकारे सिंभेजिते मनुष्यैः सर्वैः सत्यव्यवहारप्रसिद्ध्या धार्मिका आनन्दितव्या दुष्टाश्च ताड्या बुद्धिमत्सु मनुष्ट्रेषु विद्या निधातव्याः॥१९॥

पदार्थ: - हे (अग्ने) परमात्मन्! (यम्) जिस परमात्मा (त्वाम्) अप्र की (अश्वते) अनादि स्वरूप (जनाय) जीवों की रक्षा के लिये (कृष्ट्यः) सब विद्वान् मनुष्य (नमस्यन्ति) पूजा और हे विद्वान् लोगो! जिसको आप (दिदेश) प्रकाशित करते हैं, उस (ज्योतिः) ज्ञान के प्रकाश करने वाले परब्रह्म को (ऋतजातः) सत्याचरण से प्रसिद्ध (उक्षितः) आनन्दित (मनुः) विज्ञानयुक्त मैं (कण्वे) बुद्धिमान् मनुष्य में (निदंधे) स्थापित करता हूं, उसकी सब मनुष्य लोग उपस्ता करें। ११९॥

भावार्थ:-सब के पूजने योग्य परमात्मा के कृपाक्यक्ष से प्रजा की रक्षा के लिये राज्य के अधिकारी सब मनुष्यों को योग्य है कि सत्यव्यवहार की प्रसिद्धि से धर्मात्माओं को आनन्द और दुष्टों को ताड़ना देवें॥१९॥

अथ तं सभेशं प्रति कि किमुपदिशेदित्याह।।

अब उस सभापित के प्रति क्या-क्स अदिश और, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया

त्वेषासी अग्नेरमवन्तो अर्चयी भीपासो न प्रतीतये।

रुक्ष्सिवनः सद्मिद्यातुमावतो विश्वं प्रमित्रणं दह॥२०॥११॥

त्वेषासः। अग्नेः अर्पःवन्तः। अर्चर्यः। भीमासः। न। प्रतिऽइतये। रृक्षुस्विनः। सर्दम्। इत्। यातुऽमार्वतः। विश्वम्। सम्। अत्रिणम्। दुहु॥२०॥

पदार्थ:- (त्वेषासः) त्विषिति दीप्यन्ते यास्ताः (अग्नेः) सूर्यविद्युत्प्रसिद्धरूपस्य (अमवन्तः) निन्दितरोगकारकाः (अर्चयः) दीप्तयः। अर्चिरिति ज्वलतो नामधेयेषु पठितम्। (निघं०१.१७) (भीमासः) विभ्यति साभ्यस्ता भयङ्कराः (न) इव (प्रतीतये) सुखप्राप्तये ज्ञानाय वा (रक्षस्विनः) रक्षांसि

इठ. नमा वेरिवृश्चित्रङ: क्यच्। अष्टा०३.१.१९ इत्यनेन सूत्रेण नमस: पूजायिमिति नियमात्पूजार्थे क्यच् प्रत्यय:। सं०

निन्दिताः पुरुषा सन्ति येषु व्यवहारेषु ते। अत्र निन्दितार्थे विनिः। (सदम्) सीदन्त्यवितष्ठिन्ति यस्मिंस्तित् (इत्) एव (यातुमावतः) यान्ति प्राप्नुवन्ति ये यातवः, मत्सदृशा इति मावन्तः। यातवश्च ते मावन्तश्च तान्। अत्र सायणाचार्येण यातुरिति पूर्वपदं मावानित्युत्तरपदं चाविदित्वा यातुमावत्पदान् मतुक्तिस्त्रं पदपाठाद् विरुद्धत्वादशुद्धम्। (विश्वम्) सर्वं जगत् (सम्) सम्यगर्थे (अत्रिणम्) परपदाश्चीपहत्तरि अपृम् (दह) भस्मी कुरु॥२०॥

अन्वय:-हे तेजस्विन् सभापते! त्वमग्नेस्त्वेषसो भीमासोऽर्चयोर्न येऽमक्र्यतो रक्षस्विमः सन्ति तानित्रणं चेदेवं संदह प्रतीतये विश्वं सदं यातुमावतश्च संरक्ष॥२०॥

भावार्थ:-सभाध्यक्षादिभी राजपुरुषै: प्रजाजनैश्च यथाऽग्न्यादय: वनार्दीनि दहन्ति तथा दुष्टाचारा: प्राणिनो विनाशनीया एवं प्रयतमानै: सततं प्रजारक्षणं कार्यमिति॥२०॥

अत्र सर्वाभिरक्षकेश्वरस्य दूतदृष्टान्तेन भौतिकाग्नेश्च गुणबर्णनं दुत्तगुणोपदेशोऽग्निदृष्टान्तेन राजपुरुषगुणवर्णनं सभापतिकृत्यं सभापतित्वाधिकारिप्रकारोऽग्न्याद्विपदार्थोषयोग्करणं मनुष्याणां सभेशस्य प्रार्थना सर्वमनुष्याणां सभाध्यक्षेण सह दुष्टहननं राजपुरुषसहायविश्वरवर्षनं योक्तमत एतत्सूक्तोक्तार्थस्य पूर्वसूक्तोक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेदितव्यम्।

षट्त्रिंशं सुक्तमेकादशो वर्गश्च समाजः। ३६॥

पदार्थ: - हे तेजस्वी सभास्वामिन्! आप (अपनेः) सूर्ये, विद्युत् और प्रसिद्ध रूप अग्नि की (त्वेषासः) प्रकाशस्वरूप (भीमासः) भयकारक (अर्थयः) ज्याला के (न) समान जो (अमवन्तः) निन्दित रोग करने वाले (रक्षस्वनः) राक्षस अर्थात् निन्दित पुरुष हैं, उन और (अत्रिणम्) बल से दूसरे के पदार्थों को हरने वाले शत्रु को (इत्) ही (संदह) अच्छे प्रकार भस्म कीजिये और (प्रतीतये) विज्ञान वा उत्तम सुख की प्रतीति होने के लिये (विश्वम्) सूत्र (सदम्) संसार तथा (यातुमावतः) मेरे समान होने वालों की रक्षा कीजिये॥२०॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में सायणाचार्य ने यातु पूर्वपद और मावान् उत्तर पद नहीं जान (यातुमा) इस पूर्वपद से मतुप् प्रत्यय माना है, सो पद पोठ से विरुद्ध होने के कारण अशुद्ध है। सभाध्यक्ष आदि राजपुरुषों और प्रजा के मनुष्यों को चाहिये कि जिस प्रकार अग्नि आदि पदार्थ वन आदि को भस्म कर देते हैं, वैसे दु:ख देने विल भारू अमें के विनाश के लिये इस प्रकार प्रयत्न करें॥२०॥

इस सूक्त में सब की रक्षा करने वाले परमेश्वर तथा दूत के दृष्टान्त से भौतिक अग्नि के गुणों का वर्णन, दूत के गुणों का उष्टिश, अग्नि के दृष्टान्त से राजपुरुषों के गुणों का वर्णन, सभापित का कृत्य, सभापित होने के अधिकारी का कथन, अग्नि आदि पदार्थों से उपयोग लेने की रीति, मनुष्यों की सभापित स्व प्राथित, सब मनुष्यों को सभाध्यक्ष के साथ मिलके दुष्टों का मारना और राजपुरुषों के सहायक जगदीश्वर के उपदेश से इस सूक्त के अर्थ की पूर्वसूक्त के अर्थ के साथ सङ्गित जाननी चाहिये।

यह छत्तीसवां सूक्त और ग्यारहवां वर्ग समाप्त हुआ॥३६॥

अथास्य पञ्चदशर्चस्य सप्तत्रिंशस्य सूक्तस्य घौरः कण्व ऋषिः। मरुतो देवताः। १,२,४,६,८,१२ गायत्री। ३,९,११,१४ निचृद्गायत्री। ५ विराड्गायत्री १०,१५ पिपीलिकामध्या निचृद्गायत्री। १३ पादनिचृद्गायत्री च छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अत्र मोक्षमूलरादिकृतव्याख्यानं सर्वमसङ्गतं तत्र प्रत्येकमन्त्रेणानर्जयमस्तीति वेद्यम्।

तत्रादिमे मन्त्रे विद्वद्भिर्वायुगुणै: किं किं कर्त्तव्यमित्युपदिश्यते॥

अब सैंतीसवे सूक्त का आरम्भ है और इस सूक्त भर में मोक्षमूलर आदि साहित्वों के किया हुआ व्याख्यान असङ्गत है, उसमें एक-एक मन्त्र में उनकी अंसगति जानेनी चाहिये। इस सूक्त के प्रथम मन्त्र में विद्वानों को वायु के गुणों से क्या-क्या उपकार लगा जाहिये, इस विषय का उपदेश किया है।

क्रीळं वः शर्धो मार्रुतमनुर्वाणं रथे शुभैम्। कण्वां अभि प्र गांयत॥ १॥

क्वीळम्। वः। शर्धः। मार्म्तम्। अनुर्वाणम्। रुथे। शुभूम्। क्रूपवाः। अर्थाः। गायत्॥ १॥

पदार्थ:-(क्रीडम्) क्रीडिन्त यस्मिँस्तत्। अत्र कीड्र विहारे इत्यस्माद् घञर्थे किवधानम् इति कः प्रत्ययः। (वः) युष्माकम् (शर्धः) बलम्। शर्ध इति विलग्गमपु पिठतम्। (निघं०२.९) (मारुतम्) मरुतां समूहः। अत्र मृत्रोरुतिः। (उणा०१.९५) इति मृह्धात्तारुतिः प्रत्ययः। अनुदात्तादेरञ्। (अष्टा०४.२.४४) इत्यञ् प्रत्ययः। इदं पदं सायणाचार्येण मरुती सम्बन्धि तस्येदम् इत्यण् व्यत्ययेनाद्युदात्तत्विमत्यशुद्धं व्याख्यातम् (अनर्वाणम्) अविद्यमाना अविणिऽश्च अस्मिँस्तम्। अर्वेत्यश्चनामसु पिठतम्। (निघं०१.१४) (रथे) रयते गच्छिन्त येन तस्मिन् विमानाहित्यमि (शुभम्) शोभनम् (कण्वाः) मेधाविनः (अभि) आभिमुख्ये (प्र) प्रकृष्टार्थे (गायत) शब्दायेत् शृणुतोपदिशत च॥१॥

अन्वय:-हे कण्वा मेश्निविनो विद्वासो! यूयं यद्वोऽनर्वाणं रथे क्रीडं क्रियायां शुभमारुतं शर्धोऽस्ति, तदभिप्रगायत॥१।

भावार्थः-विद्विद्ध्य व्ययम् प्राणिनां चेष्टाबलवेगयानमङ्गलादिव्यवहारान् साधयन्ति, तस्मात् तद्गुणान् परीक्ष्यैतेभ्यो यथायान्यभुपकारा ग्राह्याः॥१॥

मोक्षमूलराख्येनार्वशब्देन ह्यश्वग्रहणनिषेधः कृतः सोऽशुद्ध एव भ्रममूलत्वात्। तथा पुनर्र्वशब्देन सर्वत्रैवाश्वग्रहण क्रियत् इत्युक्तम्। एतदपि प्रमाणाभावादशुद्धमेव। अत्र विमानादेरनश्वस्य रथस्य विविधितत्वाद् अत्रो कलाभिश्वालितेन वायुनाग्नेः प्रदीपनाञ्जलस्य वाष्पवेगेन यानस्य गमनं कार्य्यते निह पशवोऽश्वी सहान्त इति॥१॥

808

ऋग्वेदभाष्यम्

पदार्थ:-हे (कण्वा:) मेधावी विद्वान् मनुष्यो! तुम जो (व:) आप लोगों के (अनर्वाणम्) घेड़िं के योग से रहित (रथे) विमानादि यानों में (क्रीडम्) क्रीड़ा का हेतु क्रिया में (शुभम्) शोभनीय (मारुतम्) पवनों का समूह रूप (शर्धः) बल है, उसको (अभि प्रगायत) अच्छे प्रकार सुने विश्व करो॥१॥

भावार्थ:-सायणाचार्य्य ने (मारुतम्) इस पद को पवनों का सम्बन्धि (तर्स्थेदम्) इस सूत्र से अण् प्रत्यय और व्यत्यय से आद्युदात्त स्वर अशुद्ध व्याख्यान किया है। बुद्धिमान् पुरुषों को चाहिये कि जो पवन प्राणियों के चेष्टा, बल, वेग, यान और मङ्गल आदि व्यवहारों को सिद्ध करते, इससे इनके गुणों की परीक्षा करके इन पवनों से यथायोग्य उपकार ग्रहण करें॥१॥

मोक्षमूलर साहिब ने 'अर्व' शब्द से अश्व के ग्रहण का निषेध किया है, स्रों भ्रममूलक होने से अशुद्ध ही है और फिर अर्व शब्द से सब जगह अश्व का ग्रहण किया है, यह भी प्रमाण के न होने से अशुद्ध ही है। इस मन्त्र में अश्वरहित विमान आदि रथ की विवश्ना होने से यानों में कलाओं से चलाये हुए पवन तथा अग्नि के प्रकाश और जल की भाफ के वेग से यानों के ग्रमन का सम्भव है, इससे यहाँ कुछ पशुरूप अश्व नहीं लिये हैं॥१॥

पुनस्तै: कथं भवित्र स्यसित्युपिदश्यते॥

फिर वे विद्वान् कैसे होने चाहियें, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

ये पृषंतीभिऋष्टिभिः साकं वाशीभिरुद्धिभिः।

अजायन्त स्वभानवः॥२॥

ये। पृषतिभिः। ऋष्टिऽभिः। साक्रम्। वशिभिः। अञ्जिऽभिः। अजीयन्त। स्वऽभीनवः॥२॥

पदार्थ:-(ये) मरुत इव विज्ञानशीला विद्वांसो जनाः (पृषतीिभः) पर्षन्ति सिञ्चन्ति धर्मवृक्षं याभिरिद्धः (ऋष्टिभिः) याभिः कृतायन्त्रयष्टीभिर्ऋषन्ति जानन्ति प्राप्नुवन्ति व्यवहाराँस्ताभिः (साकम्) सह (वाशीिभः) वाणीिभः। वाशीति वाद्नामसु एिठतम्। (निघं०१.११) (अञ्जिभिः) अञ्जन्ति व्यक्तीकुर्वन्ति पदार्थगुणान् याभिः क्रियाभः (अज्ञाग्नन्त) धर्म्मिक्रियाप्रचाराय प्रादुर्भवन्ति। अत्र लडथें लङ्। (स्वभानवः) वायुवत्स्वभानवो ज्ञानदीप्तये येष्ट्रन्त॥ २॥

अन्वयः ये पृष्ट्वीभिर्ऋष्टिभिरञ्जिभिर्वाशीभिः साकं क्रियाकौशले प्रयतन्ते ते स्वभानवोऽजार्यन्त। २॥

भूतार्थः-हे विद्वांसो मनुष्या! युष्माभिरीश्वररचितायां सृष्टौ कार्यस्वभावप्रकाशस्य वायोः सकाशान्त्रलसेचनं चेष्टाकरणमग्न्यादिप्रसिद्धिर्वायुव्यवहाराश्चार्थात् कथनश्रवणस्पर्शा भवन्ति, तैः क्रिज्ञाविद्यार्थम्(दिश्भगुणाः प्रचारणीयाः॥२॥

मण्डल-१। अनुवाक-८। सूक्त-३७

मोक्षमूलरोक्तिः। ये ते वायवो विचित्रैर्हिरिणैरयोमयोभिः शक्तिभिरिसिभिः प्रदीप्तैराभूषणैश्च सह जाता इत्यसम्भवोऽस्ति। कुतः? वायवो हि पृषत्यादीनां स्पर्शादिगुणानां च योगेन सर्वचेष्ट्रहितुन्वेन ज्वागिनप्रादुर्भावे हेतवः सन्तः स्वप्रकाशवन्तः सन्त्यतः। यच्चोक्तं सायणाचार्येण वाशीश्रद्धस्य व्याख्यानं समीचीनं कृतिमत्यप्यलीकम्। कुतः? मन्त्रपदवाक्यार्थविरोध्राद्। यश्च प्रकरणपदवाक्यभावार्थानुकूलोऽस्ति सोऽयमस्य मन्त्रस्यार्थो दृष्टव्यः॥२॥

पदार्थ:-(ये) जो (पृषतीभि:) पदार्थों को सींचने (ऋष्टिभि:) व्यवहारों को प्राप्त और (अञ्जिभि:) पदार्थों को प्रगट कराने वाली (वाशीभि:) वाणियों के (साकम्) साथ क्रियाओं के करने की चतुराई में प्रयत्न करते हैं, वे (स्वभानव:) अपने ऐश्वर्य के प्रकाश से प्रकाशित (अज्ञीयन्त) होते हैं॥२॥

भावार्थ:-हे विद्वान् मनुष्यो! तुम लोगों को उचित है कि इंद्वर्स की रची हुई इस कार्य्य सृष्टि में जैसे अपने-अपने स्वभाव के प्रकाश करने वाले वायु के सकाश से जल की बृष्टि, चेष्टा का करना, अग्नि आदि की प्रसिद्धि और वाणी के व्यवहार अर्थात् कहना सुनना स्पर्श करना आदि सिद्ध होते हैं, वैसे ही विद्या और धर्मादि शुभगुणों का प्रचार करो॥२॥

मोक्षमूलर साहिब कहते हैं कि जो वे पवन, चित्र-किच्त्र हिरण, लोह की शक्ति तथा तलवारों और प्रकाशित आभूषणों के साथ उत्पन्न हुए हैं, इति। यह च्याख्या असम्भव है, क्योंकि पवन निश्चय करके वृष्टि कराने वाली क्रिया तथा स्पर्शादि गूणों के योग और सब चेष्टा के हेतु होने से वाणी और अग्नि के प्रगट करने के हेतु हुए अपने आप प्रकाश वाले हैं और जो उन्होंने कहा है कि सायणाचार्य ने 'वाशी' शब्द का व्याख्यान यथार्थ किया है, सो भी असङ्गत है, क्योंकि वह भी मन्त्र पद और वाक्यार्थ से विरुद्ध है और जो मेरे भाष्य में प्रकरण, पद, बाक्य और भावार्थ के अनुकूल अर्थ है, उसको विद्वान् लोग स्वयं विचार लोंगे कि ठीक है वा नहीं। २॥

पुनरेते तै: कि कुर्य्युरित्युपदिश्यते॥

फिर वे विद्वान् लोग इन पेक्नों से क्या क्या उपकार लेवें, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

इहेर्व शृण्व एषां कर्णा हस्तेषु यद्वदान्।

नि याम्बित्रमृञ्जते। ३॥

डुहर्इंबो भुष्के एषाम्। कशाः। हस्तेषु। यत्। वदान्। नि। यामन्। चित्रम्। ऋञ्चते॥३॥

पदार्थ:-(इहेव) यथाऽस्मिन् स्थाने स्थित्वा तथा (शृण्वे) शृणोमि। अत्र व्यत्ययेनात्मनेपदम्। (एषुर्ण्) बायूनाम् (कशाः) चेष्टासाधनरज्जुवन्नियमप्रापिकाः क्रियाः (हस्तेषु) हस्ताद्यङ्गेषु। कृष्टुवचनेदङ्गानीति ग्राह्मम्। (यत्) व्यावाहारिकं वचः (वदान्) वदेयुः (नि) नितराम् (यामन्) यान्ति

प्राप्नुवन्ति सुखहेतुपदार्थान् यस्मिँस्तस्मिन् मार्गे। अत्र सुपां सुलुग्० इति डेर्लुक्। (चित्रम्) अद्भुतं किमे (ऋञ्जते) प्रसाध्नोति। ऋञ्जतिः प्रसाधनकर्मा। (निरु०६.२१)॥३॥

अन्वय:-अहं यदेषां वायूनां कशा हस्तेषु सन्ति प्राणिनो वदान् वदेयुस्तिदहेव (प्रणे सर्व) प्राण्यप्राणी यद्यामन् यामिन चित्रं कर्म न्युञ्जते तदहमिप कर्तुं शक्नोमि॥३॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। पदार्थविद्यामभीप्सुभिर्विद्वद्भिर्यानि कर्माणि जुडचेतनाः पदार्थाः कुर्वन्ति, तद्धेतवो वायव: सन्ति। यदि वायुर्न स्यात्तर्हि कश्चित् किञ्चदिप कर्म कर्तुं न शक्तुयात्। दूरस्थेनोच्चारिताञ्छब्दान् समीपस्थानिव वाुचेष्टामन्तरेण कश्चिदिप श्रोतुं व्यक्तुं च म प्रभवेत्। वीरा युद्धादिकार्येषु यावन्तौ बलपराक्रमौ कुर्वन्ति, तावत्तौ सर्वो वायुयोग्गर्देच भवतः। नह्येतेन विना नेत्रस्पन्दनमि कर्त्तुं शक्यमतोऽस्य सर्वदेव शुभगुणाः सर्वेः सदान्वेष्ठ्याः। श्रा

मोक्षमूलरोक्तिः। अहं सारिथना कशाशब्दाञ्च्छृणोमि। अतिनिक्दे हस्तेषु तान् प्रहरन्ति ते स्वमार्गेष्वितशोभां प्राप्नुवन्ति। यामन्निति मार्गस्य नाम येन मार्गेष् देवा गच्छन्ति यस्मान् मार्गाद् बिलदानानि प्राप्नुवन्ति। यथास्माकं प्रकरणे मेघावयवानामिष प्रहणं भवतीत्यशुद्धास्ति। कुतः ? अत्र कशाशब्देन वायुहेतुकानां क्रियाणां ग्रहणाद् यामन्निति अव्देन सर्वव्यवहारसुखप्रापिकस्य कर्मणो ग्रहणाच्च॥३॥

पदार्थ:-मैं (यत्) जिस कारण (एषाम्) इन पवनों की (कशाः) रज्जु के समान चेष्टा के साधन नियमों को प्राप्त कराने वाली क्रिया (हस्तेषु) हस्त आदि अङ्गो में हैं, इससे सब चेष्टा और जिससे प्राणी व्यवहार सम्बन्धी वचन को (वदान्) बोलते हैं, उसको (इहेव) जैसे इस स्थान में स्थित होकर वैसे करता और (शृण्वे) श्रवण करता हूं और जिससे प्राणी और अप्राणी (यामन्) सुख हेतु व्यवहारों के प्राप्त कराने वाले मार्ग में (चित्रम्) अध्वय्ये एप कर्म को (न्यृञ्जते) निरन्तर सिद्ध करते हैं, उसके करने को समर्थ उसी से मैं भी होता हूं।

भावार्थ:-इस मन्त्र में इपमालङ्कार है। वायु, पदार्थ-विद्या की इच्छा करने वाले विद्वानों को चाहिये कि मनुष्य आदि प्राणी जितने कर्म करते हैं, उन सभी के हेतु पवन हैं। जो वायु न हों तो कोई मनुष्य कुछ भी कर्म करने की समर्थ न हो सके और दूरस्थित मनुष्य ने उच्चारण किये हुए शब्द निकट के उच्चारण के समान, वायु की चेष्टा के विना, कोई भी कह वा सुन न सके और मनुष्य मार्ग में चलने आदि जितने बल का पराक्रम्पयुक्त कर्म करते हैं, वे सब वायु ही के योग से होते हैं। इससे यह सिद्ध है कि वायु के विना कोई नेत्र के चलाने को भी समर्थ नहीं हो सकता, इसलिये इसके शुभगुणों का खोज सर्वदा किया करें॥ शा

मेश्लमूलर साहिब कहते हैं कि मैं सारथियों के कशा अर्थात् चाबुक के शब्दों को सुनता हूं तथा अति सम्मुच हाथों में उन पवनों को प्रहार करते हैं, वे अपने मार्ग में अत्यन्त शोभा को प्राप्त होते हैं और

मण्डल-१। अनुवाक-८। सूक्त-३७

'यामन्' यह मार्ग का नाम है, जिस मार्ग से देव जाते हैं वा जिस मार्ग से बिलदानों को प्राप्त होते हैं, जैसे हम लोगों के प्रकरण में मेघ के अवयवों का भी ग्रहण होता है। यह सब अशुद्ध है, वियोक इस मन्त्र में 'कशा' शब्द से सब क्रिया और 'यामन्' शब्द से मार्ग में सब व्यवहार प्राप्त क्रूरने वाल मार्ग का ग्रहण है॥३॥

पुनरेते वायोः कस्मै प्रयोजनाय किं कुर्युरित्युपदिश्यते॥

फिर वे विद्वान् लोग वायु से किस-किस प्रयोजन के लिये क्या-क्या करें, इस विषये का उपदेश

अगले मन्त्र में किया है॥

प्र वः शर्धाय घृष्वये त्वेषद्यमाय शुष्मिणे।

देवतुं ब्रह्मं गायत॥४॥

प्रा वः। शर्धायः। घृष्वये। त्वेषऽद्युम्नायः। शुष्मिणे। देवत्तम्। बह्याः मायुत्सः। ४।।

पदार्थ:-(प्र) प्रीतार्थे (व:) युष्माकम् (शर्धाय) बलाय (धृष्वये) घर्षन्ति परस्परं संचूर्णयन्ति येन तस्मै (त्वेषद्युम्नाय) प्रकाशमानाय यशसे। द्युम्नं द्योततेर्यशी वीत्रं वो। (निरु०५.५) (शुष्मिणे) शुष्यित बलयित येन व्यवहारेण स बहुर्विद्यते यस्मिँस्तस्मै। अत्र भूम्न्यर्थ इनि:। (देवत्तम्) यद्देवेनेश्वरेण दत्तं विद्वद्भिर्वाध्यापकेन तत् (ब्रह्म) वेदम् (गायत) षड्जादि स्वरेश्वर्लपत॥४॥

अन्वय:-हे विद्वांसो मनुष्या! य इमे विस्वः को युष्माकं शर्धाय घृष्वये शुष्मिणे त्वेषद्युम्नाय सन्ति, तिन्नयोगेन देवत्तं ब्रह्म यूयं गायत॥ अस

भावार्थः-विद्वद्भिर्मनुष्यैरीश्वरोक्ताम् वैदानुधीत्य वायुगुणान् विदित्वा यशस्वीनि बलकारकाणि कर्माणि नित्यमनुष्ठाय सर्वेभ्यः प्राणिभ्यः सुखानि देयानीति॥४॥

मोक्षमूलरोक्तिः। येषां मुहिषु वास्त्री देवता आगच्छन्ति हे कण्वा! यूयं तेषामग्रे ता देवता स्तुत। ताः कीदृश्यः सन्ति। उन्मत्ता विजयवत्यो बल्वित्यश्च। अत्र। ऋ०४.१७.२ इदमत्रप्रमाणमस्तीत्यशुद्धास्ति। यच्चात्र मन्त्रप्रमाणं दत्तं लुक्कपूरि तदभूष्टि।ऽर्थो नास्तीत्यतः॥४॥

पदार्थ:-हे विद्वान मनुष्णी! जो ये पवन (व:) तुम लोगों के (शर्धाय) बल प्राप्त करनेवाले (घृष्वये) जिसके तिये परस्पर लड़ते-भिड़ते हैं, उस (शृष्मिणे) अत्यन्त प्रशंसित बलयुक्त व्यवहार वाले (त्वेषद्युम्नाय) प्रकाशभान यश के लिये हैं, तुम लोग उनके नियोग से (देवत्तम्) ईश्वर ने दिये वा विद्वानों ने पढ़ाये हुए (ब्रह्में) वेद को (प्रगायत) अच्छे प्रकार षड्जादि स्वरों से स्तुतिपूर्वक गाया करो॥४॥

भावार्थ:-विद्वान् मनुष्यों को चाहिये कि ईश्वर के कहे हुए वेदों को पढ़, वायु के गुणों को जान और यस वा बल के कर्मों का अनुष्ठान करके सब प्राणियों के लिये सुख देवें॥४॥

मोक्षमूलर साहिब का अर्थ: - जिन के घरों में वायु देवता आते हैं, हे बुद्धिमान् मनुष्यो! तुमें उनके आगे उन देवताओं की स्तुति करो तथा देवता कैसे हैं कि उन्मत्त विजय करने वा वेग वाले। इसमें चौथे मण्डल सत्रहवें सूक्त दूसरे मन्त्र का प्रमाण है। सो यह अशुद्ध है, क्योंकि सब जगह प्रामा की स्थिति के जाने-आने वाली क्रिया होने वा उनके सामीप्य के विना वायु के गुणों की स्तुति के सम्भव होने से और वायु से भिन्न वायु का कोई देवता नहीं हैं, इससे तथा जो मन्त्र का प्रमाण दिया है, वहाँ भी उनका अभीष्ट अर्थ इनके अर्थ के साथ नहीं है॥४॥

पुनरेतेषां योगेन किं किं भवतीत्युपदिश्यते॥

फिर इनके योग से क्या-क्या होता है, यह अगले मन्त्र में उपहें किया है।।

प्र शंसा गोष्वघ्यं क्रीळं यच्छर्धो मार्म्तम्। जम्भे रसंस्य वावृधे॥५॥१२॥

प्रा शंसा गोषुं। अर्घ्यम्। क्रीळम्। यत्। शर्धः। मार्म्तम्। गुर्म्या रसस्या ववृधे॥५॥

पदार्थ:-(प्र) प्रकृष्टार्थे (शंसा) अनुशाधि (गोष्) पृथिव्याद्विष्विन्द्रियेषु पशुषु वा (अघ्यम्) हन्तुमयोग्यमघ्न्याभ्यो गोभ्यो हितं वा। अघ्यादयश्च। अणि ११२)। अनेनाऽयं सिद्धः। अघ्येति गोनामसु पठितम्। (निघं०२.११) (क्रीडम्) क्रीडिति येन तत् (यत्) (शर्धः) बलम् (मारुतम्) मरुतो विकारो मारुतस्तम् (जम्भे) जम्भ्यन्ते गात्राणि विकारयन्ते चेष्ट्रचन्ते येन मुखेन तस्मिन् (रसस्य) भुक्तान्नत उत्पन्नस्य शरीरवर्द्धकस्य भोगेन (वावृधे) वधिते। अत्र तुजादीनां दीर्घोऽभ्यासस्य (अष्टा०६.१.७) इति दीर्घः॥५॥

अन्वय:-हे विद्वंस्त्वं यद् गोष्ट्र क्री सिघ्यां मारुतं जम्भे रसस्य सकाशादुत्पद्यमानं शर्धो बलं वावृधे तन्मह्यं प्रशंस नित्यमनुशाधिमाद्।।

भावार्थ:-मनुष्यैर्यद्वायुस्मिन्धि अर्रोरादिषु क्रीडाबलवर्धनमस्ति तन्नित्यं वर्धनीयम्। यावद्रसादिज्ञानं तत्सर्वं वायुक्षित्रयोगेनेव जायते, अतः सर्वेः परस्परमेवमनुशासनं कार्य्यं यतः सर्वेषां वायुगुणविद्या विदिता स्यात्। स्रा

मोक्षमूलरोक्तिः। स्प्रमिद्धो वृषभो गवां मध्य अर्थात् पवनदलानां मध्ये उपाधिवर्द्धितो जातः सन् यथा तेन मेष्ट्रावयवाः खादिताः। कुतः? अनेन मरुतामादरः कृतस्तस्मादित्यशुद्धास्ति। कथम्। अत्र यद्गवां मध्ये पारुतो बलमस्ति। तस्य प्रशंसाः कार्य्याः। यच्च प्राणिभिर्मुखेन खाद्यते तदिप मारुतं बलमस्तीव्रि। अत्र प्रम्भशब्दार्थे विलसन मोक्षमूलराख्यविवादो निष्फलोऽस्ति॥५॥

पदार्थ: - हे विद्वान्मनुष्यो! तुम (यत्) जो (गोषु) पृथिवी आदि भूत वा वाणी आदि इन्द्रिय तथा गौ बादि पशुओं में (क्रीडम्) क्रीड़ा का निमित्त (अध्यम्) नहीं हनन करने योग्य वा इन्द्रियों के लिये दितकारी (मारुतम्) पवनों का विकाररूप (रसस्य) भोजन किये हुए अन्नादि पदार्थों से उत्पन्न (जम्मे)

मण्डल-१। अनुवाक-८। सूक्त-३७

जिससे गात्रों का संचलन हो, मुख में प्राप्त हो के शरीर में स्थित (शर्ध:) बल (वावृधे) वृद्धि को प्राप्त होता है, उसको मेरे लिये नित्य (प्रशंसा) शिक्षा करो॥५॥

भावार्थ:-मनुष्यों को योग्य है कि जो वायुसम्बन्धी शरीर आदि में क्रीड़ा और बद्धी का बहुना है, उसको नित्य उन्नति देवें और जितना रस आदि प्रतीत होता है, वह सब वायु के संयोग से होता है। इससे परस्पर इस प्रकार सब शिक्षा करनी चाहिये कि जिससे सब लोगों को वायु के गुण्में की विद्या बिदित हो जावे॥५॥

मोक्षमूलर साहिब का कथन कि यह प्रसिद्ध वायु पवनों के दलों में उपाधि से बढ़ा हुआ जैसे उस पवन ने मेघावयवों को स्वादयुक्त किया है, क्योंकि इसने पवनों का अदिरुक्तिया इससे। सो यह अशुद्ध है, कैसे कि जो इस मन्त्र में इन्द्रियों के मध्य में पवनों का बल है, और इस 'जम्म' शब्द के अर्थ में विलसन और मोक्षमूलर साहिब का वाद-विवाद निष्फल है।।

पुनरेतेभ्यः प्रजाराजजनाभ्यां किं किं कार्व्यं ज्ञात्तव्यं ग्रेत्युपदिश्यते॥

फिर इन पवनों से मनुष्यों को क्या-क्या करना वा जानना चाहियें, इस विषय का उपदेश अगले

मन्त्र में किया है।

को वो वर्षिष्ठ आ नरो दिवश्च गमस्य धूतराः। यत्सीमन्तं न धूनुथ॥६॥

कः। वः। वर्षिष्ठः। आ। नुरः। द्विकः। 🛍 गुःने च। धृतुयः। यत्। सीम्। अन्तम्। न। धृनुथ॥६॥

पदार्थ:-(क:) प्रश्ने (व:) युष्पाकं मध्ये (वर्षिष्ठ:) अतिशयेन वृद्धः (आ) समन्तात् (नरः) नयन्ति ये ते नरस्तत्सम्बुद्धे (क्वः) द्योतकान् सूर्यादिलोकान् (च) समुच्चये (ग्मः) प्रकाशरिहतपृथिव्यादि- लोकान्। गोति पृथिवीनामसु पठितम्। (निघं०१.१) अत्र गमधातोर्बाहुलकादौणादिक आप्रत्ये उपधालोपश्च। (च) तत्सम्बन्धितश्च (धूतयः) धून्वन्ति ये ते (यत्) ये (सीम्) सर्वतः (अन्तम्) बस्त्रभान्तम् (न) इव (धूनुथ) शत्रून् कम्पयत॥६॥

अन्वयः-त्रे धृतया नरो विद्वांसो मनुष्या! यद्ये यूयं दिवः सूर्यादिप्रकाशकाँल्लोकाँस्तत्सम्बन्धिनोऽन्याँश्च ग्मः ग्मपृथिवीस्तत्सम्बन्धिन इतराँश्च सीं सर्वतस्तृणवृक्षाद्यवस्थान् कम्पयन्तो वायवो नेव शत्रुगणानामन्तं यदाधूनुथ समन्तात् कम्पयत तदा वो युष्माकं स्थ्ये को वर्षिष्ठो विद्वान्न जायते॥६॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। विद्वद्भी राजपुरुषैर्यथाकश्चिद्धलवान् मनुष्यो निर्बलं केशान् गृहीत्वो कम्पयित, यथा च वायव: सर्वान् लोकान् धृत्वा कम्पयित्वा चालियत्वा स्वं स्वं परिधिं प्रापयित्व, तथैव सर्वं शत्रुगणं प्रकम्प्य तत्स्थानात् प्रचाल्य प्रजा रक्षणीया॥६॥

मोक्षमूलरोक्तिः। हे मनुष्या! युष्माकं मध्ये महान् कोऽस्ति? यूयं कम्पयितार अकाशपृथिचीः। यदा यूयं धारितवस्त्रप्रान्तकम्पनवत् तान् कम्पयत। अन्तशब्दार्थं सायणाचार्योक्तं ने स्वीकुर्वे किन्तु विलसनाख्यादिभिरुक्तमित्यशुद्धमिति। कुतः? अत्रोपमालङ्कारेण यथा राजपुरुषाः अत्रूनितरे मनुष्यास्तृणकाष्ठादिकं च गृहीत्वा कम्पयन्ति तथा वायवोऽग्निपृथिव्यादिकं यृहीत्वा कम्पयन्तीत्यर्थस्य विदुषां सकाशान्निश्चयः कार्य इत्युक्तत्वात्। यथा सायणाचार्येण कृतोऽर्थो व्यर्थोऽस्ति, तथैव मोक्षमूलरोक्तोऽस्तीति विजानीमः॥६॥

पदार्थ:-हे विद्वान् मनुष्यो! (धूतयः) शत्रुओं को कम्पाने वाले (चरः) नीतियुक्त (यत्) ये तुम लोग (दिवः) प्रकाश वाले सूर्य आदि (च) वा उनके सम्बन्धी और तथा (मः) पृथिवी (च) और उनके सम्बन्धी प्रकाश रहित लोकों को (सीम्) सब ओर से अर्थात् तृण, वृक्ष आदि अवयवों के सहित ग्रहण करके कम्पाते हुए वायुओं के (न) समान शत्रुओं का (अतम्) नाश्रुकर दुष्टों को जब (आधूनुथ) अच्छे प्रकार कम्पाओ, तब (वः) तुम लोगों के बीच में (कः) कीन (विष्ठः) यथावत् श्रेष्ठ विद्वान् प्रसिद्ध न हो॥६॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। विद्वान् सर्जपुरुषों को चाहिये कि जैसे कोई बलवान् मनुष्य निर्बल मनुष्य के केशों का ग्रहण करके केपाना और जैसे वायु सब लोकों का ग्रहण तथा चलायमान करके अपनी-अपनी परिधि में प्राप्त कारते हैं, वैसे ही सब शत्रुओं को कम्पा और उनके स्थानों से चलायमान करके प्रजा की स्था करें। है।

मोक्षमूलर साहिब का अर्थ कि है मनुष्यो! तुम्हारे बीच में बड़ा कौन है तथा तुम आकाश वा पृथिवी लोक को कम्पाने वाले हा, जब तुम धारण किये हुए वस्त्र का प्रान्त भाग कंपने समान उनको कंपित करते हो। सायणाचार्य के कहे हुए अन्त शब्द के अर्थ को मैं स्वीकार नहीं करता, किन्तु विलसन आदि के कहे हुए को स्क्रिकार करेंगा हूं। यह अशुद्ध और विपरीत है, क्योंकि इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे राजपुरुष शत्रुओं और अन्य मनुष्य, तृण, काष्ठ आदि को ग्रहण करके कंपाते हैं, वैसे वायु भी हैं, इस अर्थ का बिद्वानों के सकाश से निश्चय करना चाहिये, इस प्रकार कहे हुए व्याख्यान से। जैसे सायणाचार्य का किया हुआ अर्थ व्यर्थ है, वैसा ही मोक्षमूलर साहिब का किया हुआ अर्थ अनर्थ है, ऐसा हम सब स्वयन त्या जानते हैं॥६॥

पुना राजप्रजाजनै: कथं भवितव्यमित्युपदिश्यते॥

किर वे राजा और प्रजाजन कैसे होने चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

मण्डल-१। अनुवाक-८। सूक्त-३७

नि वो यामाय मानुषो दुध्र उग्राय मन्यवे। जिहीत पर्वतो गिरि:॥७॥

नि। वु:। यामाय। मार्नुष:। दुध्ने। उत्रायं। मुन्यवे। जिहीत। पर्वत:। गिरि:॥७॥

पदार्थ:-(नि) निश्चयार्थे (व:) युष्माकम् (यामाय) यथार्थव्यवहारप्राकृणाय। अर्तिस्तुसु० (उणा०१.१४०)। इति याधातोर्मप्रत्ययः। (मानुषः) सभापतिर्मनुजः (दध्ने) ध्राति। अत्र लड्थे लिट्। (उग्राय) तीव्रदण्डाय (मन्यवे) क्रोधरूपाय (जिहीत) स्वस्थानाच्चलति। अत्र लड्थे खिङ्गे (पर्वतः) मेघः (गिरिः) यो गिरति जलादिकं गृणाति महतः शब्दान् वा सः॥७॥

अन्वय:-हे प्रजासेनास्था मनुष्या! भवन्तो यस्य सेनापतेर्भश्राद्वायाः सिक्काशाद् गिरिः पर्वत इव शत्रुगणो जिहीत पलायते, स मानुषो वो युष्माकं यामाय मन्यव उग्राय चे राज्यं द्विध्र इति विजानन्तु॥७॥

मोक्षमूलरोक्ति:। हे वायवो! युष्माकमागमनेन मनुष्पस्य पुत्रः स्वयमेव नम्रो भवति, युष्माकं क्रोधात् पलायत इति व्यर्थोऽस्ति। कुतोऽत्र गिरिपर्वतसब्दाभ्यां मेघो गृहीतोऽस्ति, मानुषशब्दोऽर्थो निद्धे इति क्रियायाः कर्त्तास्त्यतो नात्र बालकशिरो नपनस्य ग्रहणं यथा सायणाचार्यस्य व्यर्थोऽर्थः तथैव मोक्षमूलरस्यापीति वेद्यम्। यदि वेदकर्तेश्वर एव नैव मनुष्याः सन्तीत्येतावत्यपि मोक्षमूलरेण न स्वीकृतं तर्हि वेदार्थज्ञानस्य तु का कथा॥७॥

पदार्थ:-हे प्रजासेना के महूच्यी जिस सभापित राजा के भय से वायु के बल से (गिरि:) जल को रोकने गर्जना करने वाले (पर्वत:) मेघ शत्रु लोग (जिहीत) भागते हैं वह (मानुष:) सभाध्यक्ष राजा (व:) तुम लोगों के (यामाय) यथार्थ व्यवहार चलाने और (मन्यवे) क्रोधरूप (उग्राय) तीव्र दण्ड देने के लिये राज्यव्यवस्था को (हुई) धारण कर सकता है, ऐसा तुम लोग जानो॥७॥

भावार्थ:-इस मेन्त्र में ब्राचिक लुप्तोपमालङ्कार है। हे प्रजासेनास्थ मनुष्यो! तुम लोगों के सब व्यवहार वायु के समान राजव्यवस्था ही से ठीक-ठीक चल सकते हैं और जब तुम लोग अपने नियमोपनियमों पर नहीं चलते हो, तब तुम को सभाध्यक्ष राजा वायु के समान शीघ्र दण्ड देता है और जिसके भयु से वायु से मेघों के समान शत्रुजन पलायमान होते हैं, उसको तुम लोग पिता के समान जानो॥ १९॥

मोश्नमूलर कहते हैं कि हे पवनो! आप के आने से मनुष्य का पुत्र अपने आप ही नम्र होता है क्रिंभ तुम्हिर क्रोध से डर भागता है। यह उनका कथन व्यर्थ है, क्योंकि इस मन्त्र में गिरि और पर्वत

शब्द से मेघ का ग्रहण किया है। तथा मानुष शब्द का अर्थ धारण क्रिया का कर्ता है और न इस मन्त्र में बालक के शिर के नमन होने का ग्रहण है। जैसा कि सायणाचार्य्य का अर्थ व्यर्थ है, वैसा ही मोक्षमूलर का भी जानना चाहिये। वेद का करने वाला ईश्वर ही है, मनुष्य नहीं। इतनी भी परीक्षा मोक्षमूलर में नहीं की, पुन: वेदार्थज्ञान की तो क्या ही कथा है॥७॥

पुनस्तेषां योगेन किं भवतीत्युपदिश्यते।

फिर उन पवनों के योग से क्या होता है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

येषामज्मेषु पृथिवी जुंजुवीँ ईव विश्पतिः।

भिया यामेषु रेजते॥८॥

येषाम्। अज्मेषु। पृथिवी। जुजुर्वान्ऽईव। विश्पतिः। भिया। यामेषुारीजते। टार

पदार्थ:-(येषाम्) महताम् (अज्मेषु) प्रापकक्षेपकादिगुणेषु सत्सु (पृष्टिवी) भूः (जुजुर्वान् इव) यथा वृद्धावस्थां प्राप्तो मनुष्य:। जृष वयोहानावित्यस्मात् कृष्सः। बहुत् छन्दिस (अष्टा०७.१.१०३) इत्युत्वम्। वा छन्दिस सर्वे विधयो भवन्तीति हिल च (अष्टा०४ २.७५) इति दीर्घो न। (विश्पितः) विशां प्रजानां पालको राजा (भिया) भयेन (यामेषु) स्वस्वगमनस्प्रम्णिषु (रेजते) कम्पते चलित॥८॥

अन्वय:-हे विद्वांसो! येषां मरुतामज्मेषु सत्सु भिया जुजुर्वानिव वृद्धो विश्पतिः पृथिव्यादिलोकसमूहो यामेषु रेजते कम्पते चलिति ताने कार्येषु सम्प्रयुङ्ध्वम्॥८॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। यथा जीर्णावस्थां प्राप्त: कश्चिद्राजा रोगै: शत्रूणां भयेन वा कम्पते तथा वायुभि: सर्वतो धारित: पृथिवील्कि स्वप्राप्ति प्रतिक्षणं भ्रमित एवं सर्वे लोकाश्च। निह सूत्रवद्वेष्टनेन वायुना कस्यचिल्लोकस्य रिथितिभूपणे च सम्भवतीति॥८॥

मोक्षमूलरोक्तिः येषां मुर्ग्सां धावने पृथिवी निर्बलराजवद्भयेन मार्गेषु कम्पते, संस्कृतरीत्यायं महान् दोषो यत् स्त्रीलिङ्गोपमयेन सह पुल्लिङ्गोपमा न दीयत इत्यलीकास्ति कृतो वायोर्योगेनैव पृथिव्या धारणभ्रमणे सम्भूय बद्धीषणेनैव पृथिव्यादीनां लोकानां स्वरूपस्थितिर्भवति, नायं लिङ्गव्यत्ययेनोपमालङ्कारे दोषो भिन्तुमर्हति। मनोवद्वायुर्गच्छिति। वायुरिव मनो गच्छिति। श्येनवन्मेना गच्छिति। स्त्रीवत् पुरुषः पुरुष्यत् स्त्री। हस्तिवन्महिषी हस्तिनीवद्वा चन्द्रवन्मुखम्। सूर्यप्रकाश इव राजनीतिरित्यादिनास्य शोभन्तवात्॥८॥

पदार्थः हे खिद्धानों लोगो! (येषाम्) जिन पवनों के (अज्मेषु) पहुंचाने फेंकने आदि गुणों में (भिया) भूय से (जुर्जानिव) जैसे वृद्धावस्था को प्राप्त हुआ (विश्पितः) प्रजा की पालना करने वाला राजा शत्रुओं से कम्पता है, वैसे (पृथिवी) पृथिवी आदि लोक (यामेषु) अपने-अपने चलने रूप परिधि मार्ग्ये में (रेजेंते) चलायमान होते हैं॥८॥

मण्डल-१। अनुवाक-८। सूक्त-३७

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे कोई राजा जीर्ण अवस्था को प्राप्त हुआ रोग वा शत्रुओं के भय से कम्पता है, वैसे पवनों से सब प्रकार धारण किये हुए पृथिवी आदि लोक घूमते हैं। और सूत्र के समान बंधे हुए वायु के विना किसी लोक की स्थिति वा भ्रमण का सम्भव्यक्षी मही हो सकता॥८॥

मोक्षमूलर साहिब का कथन कि जिन पवनों के दौड़ने में पृथिवी निर्बल द्वार्ण के समान भय से मार्गों में किम्पत होती है। संस्कृत की रीति से यह बड़ा दोष है कि जो स्त्रीलिङ्क उपमेय के साथ पुल्लिङ्गवाची उपमान दिया है। सो यह मोक्षमूलर का कथन मिथ्या है, क्योंकि वायु के योग ही से पृथिवी के धारण वा भ्रमण का सम्भव होकर वायु के भीषण ही से पृथिवी जीहि लीकों के स्वरूप की स्थिति होती है तथा यह लिङ्गव्यत्यय से उपमालङ्कार में दोष नहीं ही सकता, जैसे मनुष्य के तुल्य वायु और वायु के समान मन चलता है, श्येनपक्षी के समान सेना, स्त्री के समान पुरुष वा पुरुष के समान स्त्री, हाथी के समान भैंसी अथवा हथिनी के समान, चन्द्रम् के समान मुख, सूर्य प्रकाश के समान राजनीति, इस प्रकार उपमालङ्कार में लिङ्गभेद से कोई भी द्वार पहीं आ सकता।।८॥

पुनस्ते वायवः कीदृशगुणाः सन्तीस्युप्रदिश्यते॥

फिर वे वायु कैसे गुण वाले हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

स्थिरं हि जानमिषां वयो मातुर्निरेतवे।

यत्सीमन् द्विता शर्वः॥९॥

स्थिरम्। हि। जानम्। एषाम्। वयूः पातुः। विःर्रं एतवे। यत्। सीम्। अनुं। द्विता। शर्वः॥९॥

पदार्थ:-(स्थिरम्) गमनरिहृतम् (हि) खलु (जानम्) जायते यस्मात्तदाकाशम्। अत्र जनधातोर्घञ् स्वरव्यत्ययेनाद्युदात्तत्वम्। सायणाचार्यणदे जनिवध्योरित्यादीनामबोधादुपेक्षितम्। (एषाम्) वायूनाम्। (वयः) पिक्षणः (मातुः) अनुस्थिस्य मध्ये (निरेतवे) निरन्तरमेतुं गन्तुम् (यत्) (सीम्) सर्वतः (अनु) अनुक्रमेण (द्विता) द्वयो शब्दस्पर्शिर्गार्गणयोर्भावः (श्रवः) बलम्। श्रव इति बलनामसु पठितम्। (निघं०२.९)॥९॥

अन्वय:-हे मनुष्या! एषां यत् स्थिरं जानं शवो बलं द्विता वर्त्तते, यदाश्रित्य वयः पिक्षणो मातुरन्तरिक्षस्य मध्ये सीं निरतवे शक्नुवन्ति, तान् भवन्तोऽनुविजानन्तु॥९॥

भारतार्थः स्र इमे कार्यवायव आकाशादुत्पद्येतस्ततो गच्छन्त्यागच्छन्ति यत्र यत्रावकाशस्तत्र तत्र येषां सर्वतो गमनं सम्भवति। सर्वे प्राणिनो याननुजीवनं प्राप्य बलवन्तो भवन्ति, तान् युक्त्या यूयं सेवध्यम्॥ १॥

मोक्षमूलरोक्तिः। सत्यमेव वायूनामृत्पत्तिस्तेषां सामर्थ्यं मातुः सकाशादागच्छत्येतेषां सामर्थ्यं द्विगुणं चास्तीति निष्प्रयोजनास्येयं व्याख्याऽस्ति। कृतः सर्वेषां द्रव्याणामृत्पत्तिः स्वस्वकारणानुकूलत्वेन् बलवती जायते, तेषां कार्याणां मध्ये कारणगुणा आगच्छन्त्येव वयःशब्देन किस् प्रक्षिणे ग्रहणमस्तीत्यतः॥९॥

पदार्थ: - हे मनुष्यो! (एषाम्) इन (वायूनाम्) पवनों का (यत्) जो (स्थिरम्) निश्चल (जानम्) जन्मस्थान आकाश (शवः) बल और जिसमें (द्विता) शब्द और स्पर्श गुण का योग है, जिसके अश्रिय से (वयः) पक्षी (मातुः) अन्तरिक्ष के बीच में (सीम्) सब प्रकार (निरेतवे) निश्चतर जाने आने का समर्थ होते हैं, उन वायुओं को आप लोग (अनु) पश्चात् विशेषता से जानिये॥९॥

भावार्थ:-ये कार्यरूप पवन आकाश में उत्पन्न होकर इधर उधर जात-आत हैं, जहाँ अवकाश है, वहाँ जिनके सब प्रकार गमन का सम्भव होता और जिनकी अनुकूलता से सब प्राणी जीवन को प्राप्त होकर बल वाले होते हैं, उनको युक्ति के साथ तुम लोग सेवन किया करो।। ए।।

मोक्षमूलर की उक्ति है कि सत्य ही है कि पवनों की उत्पत्ति बल वाली तथा उनका सामर्थ्य आकाश से आता है, उनका सामर्थ्य द्विगुण वा पुष्कल है सि यह निष्प्रयोजन है, क्योंकि सब द्रव्यों की उत्पत्ति अपने-अपने कारण के अनुकूल बलवाली होती है उनके कार्यों में कारण के गुण आते ही हैं और वय: शब्द से पिक्षयों का ग्रहण है॥९॥

पुनस्ते कीदृश्ं कर्म कुर्बुरित्युँपदिश्यते॥

फिर वे कैसे काम करें, इस विषय का अपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

उदु त्ये सूनवो गिर्: काष्ट्रा अञ्चीपत्तारा वाश्रा अभिज्ञ यात्रवे॥ १०॥ १३॥

उत्। ऊँ इति। त्ये। सूनव्रा गिरं:। कार्घः। अज्मेषु। अत्मृत्। वाश्राः। अभिऽज्ञु। यात्वे॥ १०॥

पदार्थ:-(उत्) उत्कृष्टार्थे (उ) वित्वे (त्ये) परोक्षाः (सूनवः) ये प्राणिगर्भान् विमोचयन्ति। (गिरः) वाचः (काष्ट्रः) दिश्या काष्ट्रा इति दिङ्नामसु पठितम्। (निघं०१.६) (अज्मेषु) गमनाऽधिकरणेषु मार्गेषु (अत्मतः) तन्वते। अत्र लड्थें लुङ्। बहुलं छन्दिस इति विकरणाभावः। तिनपत्योश्छन्दिस् (अष्टा०६४.९९) अनेनोपधालोपः। (वाश्राः) यथा शब्दायमाना गावो वत्सानिभतो गच्छन्ति तथा (अभिन्नु) अभिगते जानुनी यासां ताः। अत्र अव्ययं विभक्ति० (अष्टा०२.१.६) इति यौगपद्यार्थे समासः वा छन्दिस सर्वे विधयो भवन्ति इति समासान्तो ज्ञुरादेशश्च (यातवे) यातुम्। अत्र तुमर्थे तविष्याः। १०॥

अन्वयः-हे राजप्रजाजना! भवन्तस्त्ये तेऽन्तरिक्षस्थास्सूनवो वायव अभिज्ञु वाश्रा इव गिरः काष्ठा बज्नेषु अयातवे यातुं तन्वन्तीव सुखमुद् अत्नत तन्वन्तु॥१०॥

मण्डल-१। अनुवाक-८। सूक्त-३७

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। राजप्रजाजनैर्यथेमे वायव एव वाचो जलानि च चालयित्वा विस्तार्य शब्दानाश्रावयन्तो गमनागमनजन्मवृद्धिक्षयहेतवः सन्ति शुभकर्माण्यनुष्ठेयानि॥१०॥

मोक्षमूलरोक्तिः। ये गायनाः पुत्राः स्वगतौ गोष्ठानानि विस्तीर्णानि लम्बीभूत्रानि कुर्बन्ति, गावो जानुबलेनागच्छन्निति व्यर्थास्ति कुतः? अत्र सूनुशब्देन प्रियां वाचमुच्चायन्तो बालक्री गृह्यन्ते। यथा गावो वत्सलेहनार्थं पृथिव्या जानुनी स्थापयित्वा सुखयन्ति, तथा वायवोऽपीति विविध्नित्वाद्वा १०॥

त्रयोदशो वर्ग समाप्त:॥१३॥

पदार्थ: - हे राजप्रजा के मनुष्यो! आप लोग (त्ये) वे अन्तिरक्ष में उहाँ का (सूनवः) प्राणियों के गर्भ छुड़ाने वाले पवन (अभिज्ञु) जिनकी सन्मुख जंघा हों (वाश्राः) दिशाओं से (अज्मेषु) जाने के मार्गों में और (यातवे) प्राप्त होने को विस्तार करते हुओं के समान सुख का (उन्न अल्तत) अच्छे प्रकार विस्तार कीजिये॥१०॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है। राजा और प्रमा के मनुष्यों को चाहिये कि जैसे ये वायु ही वाणी और जलों को चलाकर विस्तृत करके प्रकार शब्दों को श्रवण कराते हुए जाना-आना, जन्म, वृद्धि और नाश के हेतु हैं, वैसे ही शुभाशुभ कर्मों का अनुष्ठान सुख-दु:ख का निमित्त है।।१०।।

मोक्षमूलर की उक्ति है कि जो गान करने वाले पुत्र अपनी गित में गौओं के स्थानों को विस्तारयुक्त लम्बे करते हैं तथा गौ जींघ के बल से आती हैं। सो वह व्यर्थ है, क्योंकि इस मन्त्र में 'सून' शब्द से प्रिय वाणी को उन्निस्प करते हुए बालक ग्रहण किये हैं, जैसे गौ बछड़ों को चाटने के लिये पृथिवी में जंघाओं को स्थापन करके सुख्युक्त होती है, इस प्रकार विवक्षा के होने से॥१०॥

यह नेरहवीं वर्ग समाप्त हुआ॥ १३॥

पुनरेते किं कुर्युरित्युपदिश्यते॥

फिर ये राजपुरुष क्या करें, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

त्यं चिद् भा दीर्घ पृथुं मिहो नपातमपृधम्।

प्र च्यावयन्ति यामंभिः॥ ११॥

त्यम्। चित्। घु। दीर्घम्। पृथुम्। मिहः। नपातम्। अमृध्रम्। प्र। च्यावयन्ति। यामेऽभिः॥ ११॥

पदार्थ:-(त्यम्) मेघम् (चित्) अपि (घ) एव। अत्र ऋचि तुनुघ० इति दीर्घः। (दीर्घम्) स्थूलम्। (पृथुम्) विस्तीर्णम् (मिहः) सेचनकर्तारः। अत्र इगुपधलक्षणः इत्यनेन कः प्रत्ययः। सुपां सुलुक्० इति जसः स्थाने सुः। (नपातम्) यो न पातयित जलं तम्। अत्र नपात् (अष्टा०६.३.७५) इति निपालनम्। (अमृध्रम्) न मर्धते नोनित्त तम्। अत्र नञ्पूर्वान्मृधधातोर्बाहुलकादौणादिको रक् प्रत्ययः (प्र) प्रकृष्टार्थे (च्यावयन्ति) पातयन्ति (यामिभः) यान्त्यायान्ति यैस्तैः स्वकीयगमनागमनैः॥११॥

अन्वय:-हे राजपुरुषा! यूयं यथा मिहो वृष्ट्या सेचनकर्तारो मरुतो यामिर्भिव नपातममुध्रं पृथुं दीर्घं त्यं चिदिप प्र च्यावयन्ति तथा शत्रुन् प्रच्याव्य प्रजा आनन्दयत॥११॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। राजपुरुषैर्यथा मरुत एव मेश्विनिमित्तं पुष्कलं जलमुपिर गमयित्वा परस्परं घर्षणेन विद्युतमुत्पाद्य तत्समूहमपतनशीलमतुन्दनीयं द्रीष्मवयवं मेथं भूमौ निपातयन्ति, तथैव धर्मविरोधिन: सर्वव्यवहारा: प्रच्यावनीया:॥११॥

मोक्षमूलरोक्तिः। ते वायवोऽस्य दीर्घकालं वर्षतोऽप्रतिबद्धस्य मेघस्य निमित्तं सन्ति पातनाय मार्गस्योपरि। इति किञ्चिच्छुद्धास्ति। कुतः? मिह इति मरुतां विशेषणमस्त्यनेन मेघविशेषणं कृतमस्त्यतः॥११॥

पदार्थ: - हे राजपुरुषो! तुम लोग जैसे (मिह:) वर्षों जिल से सींचने वाले पवन (यामिभ:) अपने जाने के मार्गों से (घ) ही (त्यम्) उस (नपातम्) जर्भ को च जिराने और (अमृध्रम्)) गीला न करने वाले (पृथुम्) बड़े (चित्) भी (दीर्घम्) स्थूल मेघ को (प्रच्यावयन्ति) भूमि पर गिरा देते हैं, वैसे शत्रुओं को गिरा के प्रजा को आनन्दित करो॥११॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्ताप्रमिलङ्कार है। राजपुरुषों को चाहिये कि जैसे पवन ही मेघ के निमित्त बहुत जल को ऊपर पहुंचा कर परस्पर घिसने से बिजुली को उत्पन्न कर उस न गिरने योग्य तथा न गीला करने और बड़े आकार बाले मेच को भूमि में गिराते हैं, वैसे ही धर्मविरोधी सब व्यवहारों को छोड़ें और छुड़ावें॥११॥

मोक्षमूलर की उक्त है कि वे पवन इस बहुत काल वर्षा कराते हुए अप्रतिबद्ध मेघ के निमित्त और मार्ग के ऊपर गिराम के लिये हैं, यह कुछेक शुद्ध है। क्योंकि (मिह:) यह पद पवनों का विशेषण है और इन्होंने मेघ का विशेषण किया है॥११॥

पुनस्ते वायुवत् कर्माणि कुर्युरित्युपदिश्यते॥

फिर व राजप्रजाजन वायु के समान कर्म करें, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

३१ इगुपधज्ञोप्रीकिरः कः (अष्टा०३.१.१३५)

मण्डल-१। अनुवाक-८। सूक्त-३७

मर्रुतो यद्धे वो बलं जना अचुच्यवीतन। गिरीरंचुच्यवीतन॥ १२॥

मर्रतः। यत्। हु। वुः। बल्पम्। जनान्। अचुच्यवीतन्। गिरीन्। अचुच्यवीतन्॥ १२॥

पदार्थ:-(मरुत:) वायव इव सेनाध्यक्षादय: (यत्) यस्मात् (ह) प्रसिद्धम् (वः) युष्माकम् (बलम्) सेनादिकम् (जनान्) प्रजास्थान् मनुष्यान्। अत्र दीर्घादिट समानपादे। (अष्टा०८.३.१) इति नकारस्य रुत्वम्। अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तु वा। (अष्टा०८.३.२) इति पूर्वस्याऽनुनासिकः भोभगोअघो० (अष्टा०८.३.१७) इति य लोपः। विश्व (अच्चच्यवीतन) प्रेरयन्ति। अत्र लडर्थे (विश्व बहुलं छन्दिस इति शपः श्लुः। बहुलं छन्दिस इति ईडागमः। तप्तनप्तनथनाश्च (अष्टा०७.१.४५०) इति सन्वादेशः। पुरुषव्यत्ययः। सायणाचार्येणेदं भ्रान्त्या लुङन्तं व्याख्याय बहुलं छन्दिस इति शपः श्लुप्तित सूत्रं योजितम्। तत्र च्लेरपवादत्वाच्छवेव नास्ति, कुतः श्लुः, कस्य लुक्, तस्मादशुद्धपेकः (गिरीन्) मेघान्। गिरिरिति मेघनामसु पठितम्। (निघं०१.१०) अत्र रुत्वाऽनुनासिकाविति पूर्ववत् (अचुच्यवीतन) आकाशे भूमौ च प्रापयन्ति। अस्य सिद्धिः पूर्ववत् अत्रान्तर्गतो ण्यर्थः॥१२।

अन्वय:-हे मरुत इव वर्त्तमानाः सेनापत्याद्यो। यूपे यद्धो युष्माकं ह बलमस्ति तेन वायवो गिरीनचुच्यवीतनेव जनानचुच्यवीतन स्वस्वव्यवहास्य प्रेरयते॥ १/२॥

भावार्थ:-अत्र लुप्तोपमालङ्कार:। सभाष्यक्षादिराजीपुरुषैर्यथा वायवो मेघानितस्तत: प्रेरयन्ति, तथैव सर्वे प्रजाजना: स्वस्वकर्मस् न्यायव्यवस्थ्या सदैव निरालस्ये प्रेरणीया:॥१२॥

मोक्षमूलरोक्तिः। हे मरुत! ईदुग्बलेन सह यादृशी शक्तिर्युष्माकमस्ति यूयं पुरुषाणां पातनिर्मित्तं स्थ पर्वतानां चेत्यशुद्धास्ति। कुतः २ गिरिशब्देनात्र मेघस्य ग्रहणं न शैलानां जनशब्देन सामान्यगतिमतो ग्रहणं न तु पतनमात्रस्यातः॥१२॥

पदार्थ:-हे (मरुत:) पैबनों के सम्मान सेनाध्यक्षादि राजपुरुषो! तुम लोग (यत्) जिस कारण (व:) तुम्हारा (ह) प्रसिद्ध (बलमे) सेना आदि दृढ़ बल है, इसिलये जैसे वायु (गिरीन्) मेघों को (अचुच्यवीतन) इधर-उधर आकाश पृथिवी में घुमाया करते हैं, वैसे (जनान्) प्रजा के मनुष्यों को (अचुच्यवीतन) अपने-अपने उत्तम व्यवहारों में प्रेरित करो॥१२॥

२. इति यक्षरादेश:। लोप: शाकल्यस्य। अष्टा०८.३.१९ इत्यनेन च यकारलोप:। सं०॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है। सभाध्यक्षादि राजपुरुषों को चाहिये कि जैसे वायु मैंघों को इधर-उधर घुमा के वर्षाते हैं, वैसे ही प्रजा के सब मनुष्यों को न्याय की व्यवस्था से अपने-अपने कर्मों में आलस्य छोड़के सदा नियुक्त करते रहें॥१२॥

मोक्षमूलर की उक्ति है। हे पवनो! ऐसे बल के साथ जैसी आप की शक्ति है और तुम पुरुष वा पर्वतों को पतन कराने के निमित्त हो सो यह अशुद्ध है, क्योंकि गिरि शब्द से इस मह्य में मेश्र का ग्रहण है और जन शब्द से सामान्य गित वाले का ग्रहण है, पतनमात्र का नहीं है॥१२॥

पुनस्ते वायुभ्यः किं किमुपकुर्युरित्युपदिश्यते॥

फिर वे वायुओं से क्या-क्या उपकार लेवें, इस विषय का उपदेश अनुल मुन्त्र में किया है।।

यद्ध यान्ति मुरुतः सं ह बुवतेऽध्वन्ना।

शृणोति कश्चिदेषाम्॥ १३॥

यत्। हु। यान्ति। मुरुत्ते:। सम्। हु। ब्रुवते। अध्वेन्। आ। श्रुणेति। केः। चित्। एषाम्॥ १३॥

पदार्थ:-(यत्) ये (ह) स्फुटम् (यान्ति) गच्छन्ति (मस्तः) बूर्यवः (सम्) सङ्गमे (ह) प्रसिद्धम् (बुवते) परस्परमुपदिशन्ति (अध्वन्) अध्वनि विद्यामार्गे। अप्र सुणुं सुलुक्० इति डेर्लुक् (आ) समन्तात् (शृणोति) शब्दविद्यां गृह्णाति (कः) विद्वान् (चित्) अपि (एषाम्) मरुताम्॥१३॥

अन्वय:-यथा यद्येत इमे मरुत इतस्ततो ह योन्त्यायुर्गन्त तथाऽध्वन् विद्यामार्गे शिल्पिनो विद्वांसो ह समाबुवते, एषां मरुतां विद्यां कश्चिदेव शृणोति विज्ञानुर्गतं च न तु सर्वे॥१३॥

भावार्थ:-अस्य वायोर्विद्यां कश्चिद्धिक्कियानुस्राल एव ज्ञातुं शक्नोति नेतरो जडधी:॥१३॥

मोक्षमूलरोक्तिः। यदा खूर्तु मर्रतः सह गच्छन्ति स्वमार्गाणामुपरि परस्परं वदन्ति। कश्चिन्मनुष्यः शृणोति किमित्यशुद्धस्ति। कृतः ? मरुतां जडत्वेन परस्परं वार्त्ताकरणाऽसम्भावत्। वक्तॄणां चेतनानां जीवानां वचनश्रवणहेतुन्त्राच्च॥१३॥

पदार्थ:-जैसे (यत) ये (मरुद:) पर्वन (यान्ति) जाते-आते हैं, वैसे (अध्वन्) विद्यामार्ग में कारीगर विद्वान् लोग (ह) स्पष्ट (समाबुवते) मिलके अच्छे प्रकार परस्पर उपदेश करते हैं और (एषाम्) इन वायुओं की विद्या को (किश्चित्) कोई विद्वान् पुरुष (शृणोति) सुनता और जानता है, सब साधारण पुरुष नहीं॥१३॥

भावार्थ:-इस वायु विद्या को कोई विद्वान् ही ठीक-ठीक जान सकता है, जड़बुद्धि नहीं जान सकता॥१४॥

मेक्षिमूलर की उक्ति है कि जब निश्चय करके पवन परस्पर साथ-साथ जाते वा अपने मार्गों के ऊपर चोवते हैं, तब कोई मनुष्य क्या श्रवण करता है अर्थात् नहीं, यह अशुद्ध है, क्योंकि पवनों का

मण्डल-१। अनुवाक-८। सूक्त-३७

जड़त्व होने से वार्त्ता करना असम्भव है और कहने वाले चेतन जीवों के बोलने-सुनने में हेतु तो होते हैं॥१३॥

पुनर्मनुष्यैर्वायुभ्यः किं किं कार्य्यमित्युपदिश्यते॥

फिर मनुष्यों को वायुओं से क्या-क्या कार्य्य लेना चाहिये, इस विषय का उपदेश अस्ति मन्त्र में किया है।।

प्र यात शीभमाशुभिः सन्ति कण्वेषु वो दुवैः। तत्रो षु मादयाध्वै॥१४॥

प्र। यात्। शीर्भम्। आशुऽभिः। सन्ति। कण्वेषु। वः। दुर्वः। तत्रो इति। सु। <u>मादुपा</u>ध्वै॥ १४॥

अन्वय:-हे राजप्रजाजना! यूयमाशुभिः शीभं वासुवत् प्रयात। येषु कण्वेषु वो दुवः सन्ति तत्रो सु मादयाध्वै॥१४॥

भावार्थ:-राजप्रजास्थैर्विद्वद्भिर्जनैरभीष्टप्र्यनिषु वायुवच्छीघ्रगमनाय यानान्युत्पाद्य स्वकार्याणि सततं साधनीयानि। धर्मात्मनां सेवनेऽधर्मात्मनां क्रुत्ताडने सद्दैवानन्दितव्यञ्च॥१४॥

मोक्षमूलरोक्तिः यूयं तीव्रगृत्तीनामेश्रानामुपरि स्थित्वा शीघ्रमागच्छत, तत्र युष्माकं पूजारयः कण्वानां मध्ये सन्ति, यूयं तेषां मध्ये अतिन्दं कुरुतित्यशुद्धास्ति। कुतः ? महान्तो वेगादयो गुणा एवाश्वास्ते वायौ समवायसम्बन्धेन वर्त्तन्ते। तेषामुपरि वायूनां स्थितेरसम्भवात्। कण्वशब्देन विदुषां ग्रहणं तत्र निवासेनान्दस्योद्भवाच्चेति॥१४॥

पदार्थ:-हे राजकृष्णे : तुम्क्रॉग (आशुभि:) शीघ्र ही गमनागमन कराने वाले यानों से (शीभम्) शीघ्र वायु के समान (प्र यात) अच्छे प्रकार अभीष्ट स्थान को प्राप्त हुआ करो, जिन (कण्वेषु) बुद्धिमान् विद्वानों में (व:) तुम लोगों को (दुव:) सत् क्रिया हैं (तत्र उ) उन विद्वानों में तुम लोग (सु मादयाध्वे) सुन्दर रीति से प्रसन्न रहो॥१४॥

भाषार्थ: राजा और प्रजा के विद्वानों को चाहिये कि वायु के समान अभीष्ट स्थानों को शीघ्र जाने-अपने के लिये विमानादि यान बना के अपने कार्यों को निरन्तर सिद्ध करें और धर्मात्माओं की सेवा तथा दृष्टों को ताड़ने में सदैव आनन्दित रहें॥१४॥

मोक्षमूलर की उक्ति है कि तुम तीव्र गित वाले घोड़ों के ऊपर स्थित होकर जल्दी आओ, वहाँ आपके पुजारी कण्वों के मध्य में हैं, तुम उनमें आनिन्दत होओ, सो यह अशुद्ध है, क्योंकि बड़े-बड़े वेग आदि गुण ही अश्व हैं, वे गुण वायु के हैं, वे गुण उनमें समवाय सम्बन्ध से रहते हैं, उनके अपर इस पवनों की स्थित होने का ही सम्भव नहीं और कण्व शब्द से विद्वानों का ग्रहण है, उनके निवास करने से विद्वा की प्राप्ति और आनन्द का प्रकाश होता है॥१४॥

पुनस्ते वायवः किं प्रयोजनाः सन्तीत्युपदिश्यते॥

फिर वे वायु किस-किस प्रयोजन के लिये हैं, इस विषय का उपदेश अगले पन्न में किया है।।

अस्ति हि ष्मा मदाय वः स्मसि ष्मा वयमेषाम्।

विश्वं चिदायुर्जीवसे॥ १५॥ १४॥

अस्ति। हि। स्म। मदाय। वु:। स्मसि। स्मु। वुयम्। एवाम्। व्रिश्वर्म्। चिता आर्यु:। जीवसे॥ १५॥

पदार्थ:-(अस्ति) वर्तते (हि) यतः (स्म) खलु। अत्र निपातस्य च इति दीर्घः। अविहितलक्षणो मूर्द्धन्यः सुषामादिषु द्रष्टव्यः। (अष्टा॰८.३.९८) इति वार्त्तिकेन मूर्द्धन्यादेशः। इदं पदं सायणाचार्येण व्याकरणविषयमबुद्ध्वा त्यक्तम्। (मदाय) आनन्दाय (वः) यूष्माकर्म् (स्मिस्त) भवेम। अत्र लिर्ङ्थे लट्। इदन्तो मिस (अष्टा॰७.१.४६) इतीकारागमः (स्म) केरन्तर्थे। अत्रापि पूर्ववन्मूर्द्धन्यादेशः। (वयम्) उपदेश्या जनाः (एषाम्) ज्ञातविद्यानां मरुतां सकाशात् (विश्वम्) सर्वम् (चित्) अपि (आयुः) प्राणधारणम् (जीवसे) जीवितुम्। अत्र तुमर्थे । अष्टा॰३.४.९) इत्यसेन् प्रत्ययः॥१५॥

अन्वय:-हे विद्वांसो मनुष्या! एष्ट्रं हि सम् वो युष्माकं मदाय जीवसे विश्वामायुरस्ति, तथाभूता वयं चित्स्मसि स्म॥१५॥

भावार्थ:-यथा योगाभ्यासेन भाणविद्याविदो वायुविकारज्ञा: पथ्यकारिणो जनाश्चानन्देन सर्वमायुर्भुञ्जते तथैवेतरैर्जनैस्तत्स्काशात् तद्विद्यां ज्ञात्वा सर्वमायुर्भोक्तव्यम्॥१५॥

मोक्षमूलरोक्तिः निश्नवर्येन तत्र युष्पाकं प्रसन्नता पुष्कलास्ति वयं सदा युष्पाकं भृत्याः स्मः। यद्यपि वयं सर्वमायुर्जीवर्षत्यशुद्धास्त्रि कृतः? अत्र प्रमाणरूपेण वायुना जीवनं भवतीति वयमेतद्विद्यां विजानीमेत्युक्तत्वादिति। १५०।

एवमेव यथात्र मोक्षमूलरेण कपोलकल्पनया मन्त्रार्था विरुद्धा वर्णितास्तथैवाग्रेऽप्येतदुक्तिरन्यथास्तीति वेदितव्यम्। यदा पक्षपातिवरहा विद्वांसो मद्रचितस्य मन्त्रार्थभाष्यस्य सोक्षमुलरोक्तादेश्च सम्यक् परीक्ष्य विवेचनं करिष्यन्ति, तदैतेषां कृतावशुद्धिर्विदिता भविष्यतीन्यव्यमिति विस्तरेण। अत्राग्निप्रकाशकस्य सर्वचेष्टाबलायुर्निमत्तस्य वायोस्तद्विद्याविदां राजप्रजाश्विद्दुषां च गुणवर्णनादेतत्सूक्तार्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेद्यम्।

इति चतुर्दशो वर्गः सप्तत्रिंशं सूक्तञ्च समाप्तम्॥३७॥

मण्डल-१। अनुवाक-८। सूक्त-३७

पदार्थ: - हे विद्वान् मनुष्यो! (एषाम्) जानी है विद्या जिनकी उन पवनों के सकाश से (हि) जिस कारण (स्म) निश्चय करके (व:) तुम लोगों के (मदाय) आनन्दपूर्वक (जीवसे) जीने के लिलें (विश्वम्) सब (आयु:) अवस्था है। इसी प्रकार (वयम्) आप से उपदेश को प्राप्त हुए हम लोग (चित्))भी (स्मिस्,स्म) निरन्तर होवें॥१५॥

भावार्थ:-जैसे योगाभ्यास करके प्राणिवद्या और वायु के विकारों को ठीक चिक जानने वाले पथ्यकारी विद्वान् लोग आनन्दपूर्वक सब आयु भोगते हैं वैसे अन्य मनुष्यों को भी करनी चाहिये कि उन विद्वानों के सकाश से उस वायु विद्या को जान के सम्पूर्ण आयु भोगें॥१५॥

मोक्षमूलर की उक्ति है कि निश्चय करके वहां तुम्हारी प्रसन्नता हुन्कल है। हम लोग सब दिन तुम्हारे भृत्य हैं, जो भी हम सम्पूर्ण आयु भर जीते हैं-यह अशुद्ध है। क्योंकि यहाँ प्राणरूप वायु से जीवन होता है, हम लोग इस विद्या को जानते हैं, इस प्रकार इस मन्त्र का अर्थ है। १५॥

इसी प्रकार कि जैसे यहाँ मोक्षमूलर साहेब ने अपनी कपोल कल्पना से मन्त्रों के अर्थ विरुद्ध वर्णन किये हैं, वैसे आगे भी इनकी शक्ति अन्यथा ही है, ऐसा सबको जानना चाहिये। जब पक्षपात को छोड़ कर मेरे रचे हुए मन्त्रार्थ भाष्य वा मोक्षमूलरादिकों के कहे हुए की परीक्षा करके विवेचन करेंगे, तब इनके किये हुए ग्रन्थों की अशुद्धि जान पड़ेंगी, बहुत को थोड़े ही लिखने से जान लेवें। आगे अब बहुत लिखने से क्या है।

इस सूक्त में अग्नि के प्रकाश करने वाले पूब चेष्ठा, बल और आयु के निमित्त वायु और उस वायु विद्या को जानने वाले राजप्रजा के विद्वानों के गुणवर्णम से इस सूक्तार्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये।

यह चौदहवां वर्ग और सिंतीसवा सुक्त समाप्त हुआ॥३७॥

अथास्य पञ्चदशर्चस्याष्टतिंशस्य सूक्तस्य घौरः कण्व ऋषिः। मरुतो देवताः॥१,८,११,१३,१५ गायत्री २,६,७,९,१० निचुद्गायत्री। ३ पादनिचुदुगायत्री। ५,१२ पिपीलिकामध्या 🧢

निचृद्गायत्री। १४ यवमध्या विराड्गायत्री छन्द:। षड्ज: स्वर:॥

तत्रादिमे मन्त्रे वायुरिव मनुष्यैर्भवितव्यमित्युपदिश्यते॥

अब अड़तीसवें सूक्त का आरम्भ है। उसके पहिले मन्त्र में वायु के समान मनुष्य<mark>ों को होनी</mark> चाहिये, इस विषय का वर्णन अगले मन्त्र में किया है।।

कर्द्ध नूनं कंधप्रियः पिता पुत्रं न हस्तयोः।

दुधिष्वे वृक्तबर्हिष:॥ १॥

कत्। हु। नूनम्। कुधुऽप्रियः। पिता। पुत्रम्। न। हस्तयोः। दुधिध्वे र्वृक्तुऽबहिष्ट्रा। १॥

पदार्थ:-(कत्) कदा। अत्र छान्दसो वर्णलोपो वा इत्याकारेखोपः (ह) प्रसिद्धम् (नूनम्) निश्चयार्थे (कधप्रियः) ये कधाभिः कथाभिः प्रीणयन्ति ते। अत्र पर्णव्यत्येवेन थकारस्य धकारः। ड्यापोः संज्ञाछन्दसोर्बहुलम्। (अष्टा॰६.३.६३) अनेन हस्वः। (चिता) जनकः (पुत्रम्) औरसम् (न) इव (हस्तयोः) बाह्वोः (दिधध्वे) धरिष्यथ। अत्र लोडर्थे लिट्। (चूवतिबर्हिषः) ऋत्विजो विद्वांसः॥१॥

अन्वय:-हे कधप्रिया वृक्तबर्हिषो विद्वांस: पिता हस्तयी: पुत्रं न मरुतो लोकानिव कद्ध नूनं यज्ञकर्म दिधध्वे॥१॥

भावार्थ:-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारी। यथार्रिता हस्ताभ्यां स्वपुत्रं गृहीत्वा शिक्षित्वा पालियत्वा सत्कार्येषु नियोज्य सुखी भवति, तथैव से मनुष्या मरुतो लोकानिव विद्यया यज्ञं गृहीत्वा युक्त्या संसेवन्ते त एव सुखिनो भवन्त्रीति॥१॥

पदार्थ:-हे (कधप्रिया:) सत्य कथाओं से प्रीति कराने वाले (वृक्तबर्हिष:) ऋत्विज् विद्वान् लोगो! (न) जैसे (पिता) उत्पन्न करने वाला जनक (पुत्रम्) पुत्र को (हस्तयो:) हाथों से धारण करता है और जैसे पवन लोकों को धारण कर रहे हैं, वैसे (कद्ध) कब प्रसिद्ध से (नूनम्) निश्चय करके यज्ञकर्म को (दिधिष्वे) धारण करोगा का

भावार्थ:-इस मन्त्र मिं उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे पिता हाथों से अपने पुत्र को ग्रहण कर शिक्षापूर्वक पालना तथा अच्छे कार्यों में नियुक्त करके सुखी होता और जैसे पवन सब लोकों को धारण कर्र्ते हैं, वसे जो मनुष्य विद्या से यज्ञ का ग्रहण कर युक्ति से अच्छे प्रकार सेवन करते हैं, वे ही सुखी होती हैं।

पुनस्ते कथं प्रश्नोत्तरं कुर्युरित्युपदिश्यते॥

फिर्म्भनुष्यों को परस्पर किस प्रकार प्रश्नोत्तर करना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

मण्डल-१। अनुवाक-८। सूक्त-३८

क्वं नूनं कह्ये अर्थं गन्तां दिवो न पृथिव्याः। क्वं वो गावो न रंण्यन्ति॥२॥

क्वं। नूनम्। कत्। वः। अर्थम्। गर्ना। दिवः। न। पृथिव्याः। क्वं। वः। गावंः। न। रृण्यन्ति।। २।

पदार्थः-(क्व) कुत्र (नूनम्) निश्चयार्थे (कत्) कदा (वः) युष्माकम् (अर्थम्) द्रव्यं (गन्त)
गच्छति गच्छन्ति वा। अत्र पक्षे लड्थें लोट्। बहुलं छन्दसीति शपो लुक्। तृप्तनप्तन् इति त्राव्यदेशो
ङित्वाभावादनुनासिकलोपाभावः। द्वयचोऽतस्तिङ इति दीर्घश्च। (दिवः) द्योतनकर्मणः सूर्यस्य (न) इव
(पृथिव्याः) भूमेरुपरि (क्व) कस्मिन् (वः) युष्माकम् (गावः) पशव् इत्विश्वणि, वा (न) उपमार्थे
(रण्यन्ति) रणन्ति शब्दयन्ति। अत्र व्यत्ययेन शपः स्थाने श्यन्॥ २॥

अन्वय:-मनुष्या यूयं पृथिव्या कन्नूनं दिवो गावोऽर्थं गन्त, क्वे को ग्रुष्माकमर्थं गन्त तथा वो युष्माकं गावो रण्यन्ति नेव मरुत: क्व रणन्ति॥२॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कारौ। यथा सूर्यस्य किरणाः पृथिव्यां स्थितान् पदार्थान् प्रकाशयन्ति तथा यूयमपि विदुषां समीपं प्राप्य क्व वायूनां नियोगः कर्त्तव्य इति तान्)पृष्ट्वाऽर्थान् प्रकाशयत। यथा गावः स्ववत्सान् प्रति शब्दियत्वा धावन्ति तथा यूयमिष विदुषां संङ्गं कर्तुं शीघ्रं गच्छत गत्वा शब्दियत्वाऽस्माकिमिन्द्रियाणि वायुवत् क्व स्थित्वाऽर्थान् प्रति गच्छन्तीति पृष्ट्वा युष्माभिर्निश्चेतव्यम्॥२॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! तुम (न) जैसे (कत्) कुल (नूनम्) निश्चय से (पृथिव्या:) भूमि के वाष्प और (दिव:) प्रकाश कर्म वाले सूर्य की (गाव:) किरणें (अर्थम्) पदार्थों को (गन्त) प्राप्त होती हैं, वैसे (क्व) कहाँ (व:) तुम्हारे अर्थ को (गन्त) प्राप्त होते हो, जैसे (गाव:) गौ आदि पशु अपने बछड़ों के प्रति (रण्यन्ति) शब्द करते हैं, वैसे तुम्हारी पाय आदि शब्द करते हुओं के समान वायु कहाँ शब्द करते हैं॥२॥

भावार्थ:-इस मूल में दो उपुमालङ्कार हैं। हे मनुष्यो! जैसे सूर्य की किरणें पृथिवी में स्थित हुए पदार्थों को प्रकाश करती हैं, विसोत्तम भी विद्वानों के समीप जाकर कहाँ पवनों का नियोग करना चाहिये, ऐसा पूछ कर अर्थों को प्रकाश करो और जैसे गौ अपने बछड़ों के प्रति शब्द करके दौड़ती हैं, वैसे तुम भी विद्वानों के संग करने को प्राप्त हो तथा हम लोगों की इन्द्रियां वायु के समान कहाँ स्थित होकर अर्थों को प्राप्त होता है, ऐसा पूछकर निश्चय करो॥२॥

पुनस्तदेवाह॥

फिर भी उक्त विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

क्व व: सुम्ना नर्व्यांसि मर्स्तु: क्व सुविता।

४९४

ऋग्वेदभाष्यम्

क्वो ३ विश्वानि सौभंगा॥ ३॥

क्वं। वु:। सुम्ना। नर्व्यांसि। मर्रुत:। क्वं। सुविता। क्वो र् इति। विश्वानि। सौर्भगा॥३॥

पदार्थ:-(क्व) कुत्र (व:) युष्माकं विदुषाम् (सुम्ना) सुखानि। अत्र सर्वत्र शेश्वन्दिमे विहुनम् (अष्टा॰६.१.७०) इति शेर्लोप:। (नव्यांसि) नवीयांसि नवतमानि। अत्र छान्दसो वर्णलोपो वा इति ईकारलोप:। (मरुत:) वायुवच्छीघ्रं गमनकारिणो जना: (क्व) कस्मिन् (सुविता) प्रेरणानि (क्वो) कुत्र। अत्र वर्णव्यत्ययेन अकारस्थान ओकार:। (विश्वा) सर्वाणि (सौभगा) सुभगामें कर्म्माणि अत्र उदातृत्वादज्^{२२}॥३॥

अन्वय:-हे मरुतो मनुष्या! यूयं विदुषां सदेशं प्राप्य वो युष्माकं क्वि विश्वािक नव्यांसि सुम्ना क्व सुविता सौभगा: सन्तीति पृच्छत॥३॥

भावार्थ:-अत्र लुप्तोपमालङ्कार:। हे शुभे कर्म्मणि वायुवत् क्षिप्रे पन्तरी मनुष्या! युष्माभिर्विदुषः प्रति पृष्ट्वा यथा नवीनानि क्रियासिद्धिनिमित्तानि कर्म्माणि नित्यं प्राप्यिरस्त्रिश्र-ग्रयतितव्यम्॥३॥

पदार्थ: - हे (मरुत:) वायु के समान शीघ्र गमन करने वाले समुख्यां! तुम लोग विद्वानों के समीप प्राप्त होकर (व:) आप लोगों के (विश्वानि) सब (नव्याप्ति) मुतीने (सुम्ना) सुख (क्व) कहाँ? सब (सुविता) प्रेरणा कराने वाले गुण (क्व) कहाँ? और सब नबीन (सौभगा) सौभाग्य प्राप्ति कराने वाले कर्म (क्वो) कहाँ हैं? ऐसा पूछो॥३॥

भावार्थ:-हे शुभ कर्मों में वायु के सम्मिन शीघ्र चूलने वाले मनुष्यो! तुम लोगों को चाहिये कि विद्वानों के प्रति पूछ कर जिस प्रकार नक्षेन क्रिया की सिद्धि के निमित्त कर्म प्राप्त होवें, वैसा अच्छे प्रकार निरन्तर यत्न किया करो॥३॥

(पुनस्ते कीदृशाः स्युरित्युपदिश्यते॥

फिर वे राजपुरुष कुर्भ होने चाहिसें, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।

यद्ययं पृष्टिनमातरो मत्त्रीसः स्यातना

स्तोता वो अमृतः स्यात्। ४॥

यत्। यूयम्। पृष्टिनुऽमातुर्ः। मर्तासः। स्यातन। स्तोता। वः। अमृतः। स्यात्॥४॥

इ. अष्टाव्ये.४.१२९

मण्डल-१। अनुवाक-८। सूक्त-३८

पदार्थ:-(यत्) यदि (यूयम्) (पृश्निमातरः) पृश्निराकाशो माता येषा वायूनां त इव (मर्त्तासः) मरणधर्माणो राजाप्रजाजनाः। अत्राज्जसेरसुग् इत्यसुगागमः। (स्यातन) भवेत। तस्य तनबादेश (प्रतोता) स्तुतिकर्त्ता सभाध्यक्षो राजा (वः) युष्माकम् (अमृतः) शत्रुभिरप्रतिहतः (स्यात्) भवेत्॥४०००

अन्वय:-हे पृश्निमातर इव वर्त्तमाना मर्त्तासो! यूयं यद्यदि पुरुषार्थिन: स्यातमे तर्हि वः स्तोताऽमृतः स्यात्॥४॥

भावार्थ:-राजप्रजापुरुषैरालस्यं त्यक्त्वा वायव इव स्वकर्मसु नियुक्ते भिवित्रस्यम्। यह एतेषां रक्षकः सभाध्यक्षो राजा शत्रुभिर्हन्तुमशक्यो भवेत्॥४॥

पदार्थ:-हे (पृश्निमातर:) जिन वायुओं का माता आकाश है, उपके सिदृष्ट (मर्तास:) मरणधर्म युक्त राजा और प्रजा के पुरुषो! आप पुरुषार्थयुक्त (यत्) जो अपने अपने क्रामीं में (स्यातन) हों तो (व:) तुम्हारी रक्षा करने वाला सभाध्यक्ष राजा (अमृत:) अमृत सुख्युक्त (स्थात्) होवे॥४॥

भावार्थ:-राजा और प्रजा के पुरुषों को उचित है कि आलेस्य छोड़ वायु के समान अपने-अपने कामों में नियुक्त होवें, जिससे सब का रक्षक सभाध्यक्ष राजा श्रुत्रुओं से मारा नहीं जा सकता॥४॥

तत्सम्बन्धेन जीवस्य कि भवतीत्युपद्धिश्यते॥

उन वायुओं के सम्बन्ध से जीव को क्या होता है, इस विष्य का उपदेश अगले मन्त्र में किया

मा वी मृगो न यवसे जित्ता भूदजीच्यः। पृथा यमस्य गादुर्प।। ५॥ १५॥

मा। वु:। मृगः। न। यवसे। जुरिता भूत। अज्ञीच्यः। पुथा। युमस्य। गुत्। उप।।५॥

पदार्थ:-(मा) निषेधार्थे (वः) एतेषां मरुताम् (मृगः) हरिणः (न) इव (यवसे) भक्षणीये घासे (जिरता) स्तोता जनः (भूत्) भवत्। अत्रे बहुलं छन्दस्यमाङ्योगेऽपि (अष्टा॰६.४.७५) इत्यडभावः। (अजोघ्यः) असेवनीयः (पथा) श्वासप्रश्वासरूपण मार्गेण (यमस्य) निग्रहीतुर्वायोः (गात्) गच्छेत्। अत्र लिङ्थें लुङ्डभावश्च। (उप) सामीष्ये। ५॥

अन्वयः-हे राजप्रजाजनाः यूयं यवसे मृगो नेव वो जिरताऽजोष्यो मा भूत्, यमस्य पथा च मोपगादेवं विधत्तास्ता।

भावार्थ:-अन्नोपमालङ्कार:। यथा हरिणा निरन्तरं घासं भक्षयित्वा सुखिनो भवन्ति, तथा प्राणविद्यावित्मनुष्या सुकत्याऽऽहारविहारं कृत्वा यमस्य मार्गं मृत्युं नोपगच्छेत्, पूर्णमायुर्भुक्त्वा शरीरं सुखेन त्युजेत्।।५॥

पदार्थ: -हे राजा और प्रजा के जनो! आप लोग (न:) जैसे (मृग:) हिरन (यवसे) खाने योग्य प्राप्त के निमित्त प्रवृत्त होता है, वैसे (व:) तुम्हारा (जिरता) विद्याओं का दाता (अजोध्य:)

असेवनीय अर्थात् पृथक् (मा भूत्) न होवे तथा (यमस्य) निग्रह करने वाले वायु के (पथा) मार्ग से (मोप गात्) कभी अल्पायु होकर मृत्यु को प्राप्त न होवे, वैसा काम किया करो॥५॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे हिरन युक्ति से निरन्तर घास खाकर सुखी होते हैं) वैसे प्राणवायु की विद्या को जानने वाला मनुष्य युक्ति के साथ आहार-विहार कर क्यू के मार्ग को अर्थात् मृत्यु को प्राप्त नहीं होता और सम्पूर्ण अवस्था को भोग के सुख से शरीर को छोड़ता है अर्थात् सदा विद्या पढ़े-पढ़ावें, कभी विद्यार्थी और आचार्य वियुक्त न हों और प्रमाद करके अल्पायु में न मर जायें॥५॥

पुनस्तद्विषयमाह॥

फिर भी पूर्वोक्त विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है

मो षु णुः पर्रापरा निर्ऋतिर्दुर्हणा वधीत्।

पदीष्ट तृष्णीया सह।।६॥

मो इति। सु। नु:। पराऽपरा। नि:ऽऋति:। दु:ऽहना। हुधीन्। पदीष्ट्रा/तृष्णीया। सुह।।६॥

पदार्थ:-(मो) निषेधार्थे (सु) सर्वथा (नः) अस्माज् (परापरा) या परोत्कृष्टा चासावपराऽनुत्कृष्टा च सा (निर्ऋतिः) वायूनां रोगकारिका दुःखप्रदा पतिः। निर्ऋतिरिमणादृच्छतेः कृच्छ्रापतिरितरा सा पृथिव्या संदिहाते तयोर्विभागः। (निरु०२.७) दुरेखन हन्तुं योग्या (वधीत) नाशयतु। अत्र लोडर्थे लुङन्तर्गतो ण्यर्थश्च। (पदीष्ट) पत्सीष्ट्रे प्राप्नुयात्। अत्र छन्दस्युभयथा इति सार्वधातुकाश्रयणात्सलोपः। (तृष्णया) तृष्ट्रित सूत्रा पूर्णस्या लोभगत्या वा तया (सह) सहिता॥६॥

अन्वय:-हे अध्यापका! यूयं स्था परार्थिंग दुईणा निर्ऋतिर्मरुतां प्रतिकूला गतिस्तृष्णया सह नोऽस्मान्मोपदीष्ट मोपवधीच्च किं त्वेत्यां या सुष्ठु सुखप्रदा गतिः सास्मान्नित्यं प्राप्ता भवेदेवं प्रयतध्वम्॥५॥

भावार्थ:-मरुतां द्विविधा गितरेका सुख्कारिणी द्वितीया दु:खकारिणी च, तत्र या सुनियमै: सेविता रोगान् हन्त्री सती शरीर दिसुखहेतु भवित साऽऽद्या। या च कुनियमै: प्रमादेनोत्पादिता कृच्छूदु:खरोगप्रदा साऽपरा। एतयोर्मध्यान्मनुष्येः प्रमेश्वराऽनुग्रहेण विद्वत्सङ्गेन स्वपुरुषार्थेश्च प्रथमामुत्पाद्य द्वितीयां निहत्य सुखमन्नेयम्। यः प्रपासादिध्नर्मः स वायुनिमित्तेनैव यश्च लोभवेगः सोऽज्ञानेनैव जायत इति वेद्यम्॥६॥

पदार्थ: हे अध्यापक लोगो! आप जैसे (परापरा) उत्तम, मध्यम और निकृष्ट (दुईणा) दु:ख से हटने योग्यू (निक्कि:) पवनों की रोग करने वा दु:ख देने वाली गित (तृष्णया) प्यास वा लोभ गित के (सह) साथ (न:) हम लोगों को (मोपिदृष्ट) कभी न प्राप्त हो और (मावधीत्) बीच में न मारें, किन्तु जो इन पवनों की सुख देने वाली गित है, वह हम लोगों को नित्य प्राप्त होवे, वैसा प्रयत्न किया क्रीजिये।।

मण्डल-१। अनुवाक-८। सूक्त-३८

भावार्थ:-पवनों की दो प्रकार की गित होती है, एक सुखकारक और दूसरी दु:ख करने वाली, उनमें से जो उत्तम नियमों से सेवन की हुई रोगों का हनन करती हुई शरीर आदि के सुख का हिता है, वह प्रथम और जो खोटे नियम और प्रमाद से उत्पन्न हुई क्लेश, दु:ख और रोगों की देने व्यक्षी वह दूसरी। इन्हीं के मध्य में से मनुष्यों को अति उचित है कि परमेश्वर के अनुग्रह और अपने प्रष्टार्थों से पहिली गित को उत्पन्न करके दूसरी गित का नाश करके सुख की उन्नित करनी चाहये और जो पिपास आदि धर्म हैं, वह वायु के निमित्त से तथा जो लोभ का वेग है, वह अज्ञान से ही उत्पन्न होता है॥६॥

पुनस्ते कीदृशा भवेयुरित्युपदिश्यते॥

फिर वे कैसे हों, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।

सत्यं त्वेषा अमेवन्तो धन्वश्चिदा रुद्रियासः।

मिहं[।] कृण्वन्त्यवाताम्॥७॥

सुत्यम्। त्वेषा:। अमेऽवन्त:। धन्वेन्। चित्। आ। रुद्रियास:। मिहेम्। कृणवृन्ति। अवाताम्॥७॥

पदार्थ:-(सत्यम्) अविनाशि गमनागमनाख्यं कर्म (विषः) बाह्याभ्यन्तरघर्षणेनोत्पन्नविद्युदिग्नना प्रदीप्ताः। (अमवन्तः) अमानां रोगानां गमनागमनबलानां वा सम्बन्धो विद्यते एषान्ते। अत्र सम्बन्धार्थे मतुप्। अम रोगे। अमगत्यादिषु चेत्यस्माद् हल्पण्च (अष्ट्रा०३.३.१२१) इति करणाधिकरणयोर्घञ्। अमन्ति रोगं प्राप्नुवन्ति यद्वाऽमन्ति गच्छन्त्रागच्छन्ति बलयन्ति यैस्तेऽमाः (धन्वन्) धन्वन्यन्तरिक्षे मरुस्थले वा। धन्वेत्यन्तरिक्षनामसु पठितम् (निघं०१,३) पदनामसु च। (निघं०४.२) (चित्) उपमार्थे (आ) अभितः (स्रिद्रयासः) रुद्राणा विवासिममे जीवननिमित्ता रुद्रिया वायवः। तस्येदम् (अष्टा०४.३.१२०) इति शैषिको घः। आज्ञसेरसुग् इत्यसुगागमः (मिहम्) मेहति सिचित यया तां वृष्टिम् (कृण्वन्ति) कुर्वन्ति (अवाताम्) अविद्यामाने वातो यस्यास्ताम्॥७॥

अन्वय:-हे मनुष्या!/ श्रूयं धन्वन्नन्त्रिक्षे त्वेषा अमवन्तो रुद्रियासो मरुतो वर्तन्तेऽवातां मिहं वृष्टिमाकृण्वन्ति तेषां मरुत्रां सन्यकर्मार्मित चिदिवानुतिष्ठत॥७॥

भावार्थ:-मनुष्यैर्थय ये अन्तरिक्षस्थाः सत्यगुणस्वभावा वायवो वृष्टिहेतवः सन्ति, त एव युक्त्या परिचरिता अनुकूला सन्तः सुखयन्ति। अयुक्त्या सेविताः प्रतिकूलाः सन्तश्च दुःखयन्ति तथा युक्त्या धर्माऽनुकूलानि कमोणि सेव्यानि॥७॥

पदार्थ: है मनुष्यो! तुम लोग जैसे (धन्वन्) अन्तरिक्ष में (त्वेषा:) बाहर-भीतर घिसने से उत्पन्न हुई बिजुली से प्रदीप्त (अमवन्त:) जिनका रोगों और गमनागमन रूप वालों के साथ सम्बन्ध है (रुट्रिश्रास:) प्राणियों के जीने के निमित्त वायु (अवाताम्) हिंसा रहित (मिहम्) सींचने वाली वृष्टि को

(आकृण्वन्ति) अच्छे प्रकार सम्पादन करते हैं और इनका (सत्यम्) सत्य कर्म है (चित्) वैसे ही सत्य कर्म का अनुष्ठान किया करो॥७॥

भावार्थ:-मनुष्यों को चाहिये कि जैसे अन्तरिक्ष में रहने तथा सत्यगुण और स्वभाव जाति प्रवन्ति वृष्टि के हेतु हैं, वे ही युक्ति से सेवन किये हुए अनुकूल होकर सुख देते और युक्तिरहित सेवन किये प्रितिकूल होकर दु:खदायक होते हैं, वैसे युक्ति से धर्मानुकूल कर्मों का सेवन करें॥ श्री

एते किंवत्किं कुर्युरित्युपदिश्यते॥

ये मनुष्य किस के समान क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में किया है।

वाश्रेवं विद्युन्मिमाति वृत्सं न माता सिषिक्ति। यदेषां वृष्टिरसर्जि॥८॥

वाश्राऽईव। विऽद्युत्। मिमाति। वृत्सम्। न। माता। सिसुक्ति। यत्। एषाम्। वृष्टिः। असर्जि॥८॥

पदार्थ:- (वाश्रेव) यथा कामयमाना धेनुः (विद्युत्) स्तिनियित्नुः (मिमाति) मिमीते जनयति। अत्र व्यत्ययेन परस्मैपदम्। (वत्सम्) स्वापत्यम् (न) इव (मातः) मान्यप्रद्गं जननी (सिषक्ति) समेति सेवते वा। सिषक्तु सचत इति सेवमानस्य। (निरु०३.२१) (यत् या (एषाम्) मरुतां सम्बन्धेन (वृष्टिः) अन्तरिक्षाज्जलस्याधःपतनम् (असर्जि) सृज्यते। अत्र लिड्थै लुङ्गाट॥

अन्वय:-हे मनुष्या! यूयं यद्येषां विद्युद्धार्त्सं वाश्चेव र्यमहं मिमाति कामयमाना माता पयसा पुत्रं सिषक्ति नेव यया वृष्टिरसर्जि सृज्यते तथैव परस्पर शुभगुष्णवर्षणेन सुखकारका भवत॥८॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कारौ। यथा स्वस्ववन्तान् सेवितुं कामयमाना धेनवो मातरः स्वपुत्रान् प्रत्युच्चैः शब्दानुच्चार्य धावन्ति तथैव विद्युन्महाश्रवेदं कुर्वन्ती मेघावयवान् सेवितुं धावित॥८॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! आप स्वोग (अत्) जो (एषाम्) इन वायुओं के योग से उत्पन्न हुई (विद्युत्) बिजुली (वाश्रेव) जैसे गौ अपने (वत्सम्) बिजुली इच्छा करती हुई सेवन करती है, वैसे (मिहम्) वृष्टि को (मिमाति) उत्पन्न करती और इच्छा करती हुई (माता) मान्य देनेवाली माता पुत्र का दूध से (सिषक्ति न) जैसे सींचली है, वैसे पदार्थों को सेवन करती है, जो (वृष्टिः) वर्षा को (असर्जि) करती है, वैसे शुभ गुण, कर्मों से एक इस्प्रीं के सुख करनेहारे हूजिये॥८॥

भावार्थ: इस मन्त्र में दो उपमालङ्कार हैं। हे विद्वान् मनुष्यो! तुम लोगों को उचित है कि जैसे अपने-अपने ब्रिंग्ड्रों को सेवन करने के लिये इच्छा करती हुई गौ और अपने छोटे बालक को सेवनेहारी माता ऊँचे स्वर से शब्द करके उनकी ओर दौड़ती है, वैसे ही बिजुली बड़े-बड़े शब्दों को करती हुई मेघ के अवयवों के सेवन के लिये दौड़ती है॥८॥

पुनस्ते वायवः किं कुर्वन्तीत्युपदिश्यते॥

मण्डल-१। अनुवाक-८। सूक्त-३८

फिर से वायु क्या करते हैं इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मं किया है॥

दिवां चित्तमः कृण्वन्ति पुर्जन्येनोदवाहेन।

यतृष्यिवीं व्युन्दिन्ति॥९॥

दिवा। चित्। तमः। कृण्वन्ति। पुर्जन्येन। उदुऽवाहेर्न। यत्। पृथिवीम्। विऽउन्दन्ति॥ १॥

पदार्थ:-(दिवा) दिवसे (चित्) इव (तमः) अन्धकाराख्यां रात्रिम् (कृण्वन्ति) कृर्वन्ति (पर्जन्येन) मेघेन (उदवाहेन) य उदकानि वहति तेन। अत्र कर्मण्यण्। (अष्टार्ण्डः २.१) इत्यण् प्रत्ययः। वाच्छन्दिस सर्वे विधयो भवन्ति इत्युदकस्योद आदेशः। (यत्) ये (पृथिकीम्) विस्तीर्णां भूमिम् (व्यन्दिन्त) विविधतया क्लेदयन्त्यार्द्रयन्ति॥९॥

अन्वय:-हे मनुष्या! यद्ये वायव उद्घाहेन पर्जन्येन दिवा तर्म: चित्र क्रुण्विन्ति, पृथिवीं व्युन्दिन्ति तान्युक्त्योपकुरुत॥९॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। वायव एव जलावयवान कठिनीकूल्य घनाकारं मेघं दिवसेऽप्यन्धकारं जिनत्वा पुनर्विद्युतमुत्पाद्य तया तान् छित्वा पृथिवीं प्रति निभाल जले स्निग्धां कृत्वानेकानोषध्यादिसमूहान् जनयन्तीति विद्वांसोऽन्यानुपदिशन्तु॥९॥

पदार्थ:-हे विद्वान् लोगो! आप (यत्) बो पवन (इदवाहेन) जलों को धारण वा प्राप्त कराने वाले (पर्जन्येन) मेघ से (दिवा) दिन में (तमः) अनुभकाररूप रात्रि के (चित्) समान अन्धकार (कृण्विन्त) करते हैं (पृथिवीम्) भूमि को (व्युद्धिन्त) मैघ के जल से आर्द्र करते हैं, उनका युक्ति से सेवन करो॥९॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालक्कार है। पवन ही जलों के अवयवों को कठिन सघनाकार मेघ को उत्पन्न उस बिजुली से उन मेघों के अवयवों को छिन्न-भिन्न और पृथिवी में गेर कर जलों से स्निग्ध करके अनेक ओषधी आदि समूहों की उत्पन्न करते हैं। उनका उपदेश विद्वान् लोग अन्य मनुष्यों को सदा किया करें॥९॥

पुनरेतेषां योगेन किं भवतीत्युपदिश्यते॥

फिर इनू (पवनों के योग से क्या होता है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

अर्ध स्वनान्यरुतां विश्वमा सद्म पार्थिवम्। अरेजन्त प्र मानुषा:॥१०॥१६॥

अधा स्वाना मुस्ताम्। विश्वम्। आ। सद्गी पार्थिवम्। अरेजन्त। प्र। मानुषा:॥१०॥

षदार्थ:-(अध) आनन्तर्ये। वर्णव्यत्ययेन थस्य धः। (स्वनात्) उत्पन्नाच्छब्दात् (मरुताम्) वायूनां विद्युतस्य सम्भाशात् (विश्वम्) सर्वम् (आ) समन्तात् (सद्ग) सीदन्ति यस्मिन् गृहे तत्। सदोति गृहनामसु

पठितम्। (निघं०३.४) (पार्थिवम्) पृथिव्यां विदितं वस्तु (अरेजन्त) कम्पन्ते। रेजृ कम्पने अस्माद्धातोर्लडर्थे लङ्। (प्र) प्रगतार्थे (मानुषाः) मानवाः॥१०॥

अन्वय:-हे मानुषा! यूयं येषां मरुतां स्वनादध विश्वं पार्थिवं सद्म कम्पते प्राणिनः प्रिकेन्ते प्रकम्पन्ते चलन्तीति तान् विजानीत॥१०॥

भावार्थ:-हे ज्योतिर्विदो विपश्चितो भवन्तो! मरुतां योगेनैव सर्वं मूर्तिमद्दूट्यं चेष्टेते प्राणिनो भयंकराद् विद्युच्छब्दाद् भीत्वा कम्पते पृथिव्यादिकं प्रतिक्षणं भ्रमतीति निश्चिन्वन्तु। १०॥

पदार्थ:-हे (मानुषा:) मननशील मनुष्यो! तुम जिन (मरुताम्) पवनों के (स्थानात्) उत्पन्न शब्द के होने से (अध) अनन्तर (विश्वम्) सब (पार्थिवम्) पृथिवी में विदित्त बस्तुमात्र का (सद्म) स्थान कम्पता और प्राणिमात्र (प्रारेजन्त) अच्छे प्रकार कंपित होते हैं, इस प्रकार जाने।। १०।।

भावार्थ:-हे ज्योतिष्य शास्त्र के विद्वान् लोगो! आप पवनों के योग हो के सब मूर्तिमान् द्रव्य चेष्टा को प्राप्त होते, प्राणी लोग बिजुली के भयंकर शब्द में भय की प्राप्त होकर कंपित होते और भूगोल आदि प्रतिक्षण भ्रमण किया करते हैं, ऐसा निश्चित समझो॥ १०००

पुनस्ते मानवो वायुभिः किं कुर्बन्तीत्युएदिश्र्यते॥

फिर वे मनुष्य पवनों से क्या करते हैं, इस विषय का उपर्देश अगले मन्त्र में किया है।।

मर्रुतो वीळुपाणिभिश्चित्रा रोधस्वतीरुन्

यातेमखिद्रयामभि:॥ ११॥

मर्रुतः। वीळुपाणिऽभिः। चित्राः। ग्रिधिस्त्रतीः। अर्नु। यात। ईम्। अखिद्रयामऽभिः॥ ११॥

पदार्थ:-(मस्तः) योगाभ्याभिने व्यवहारमधिने व्यवहारमधिने वा जनाः (वीळुपाणिभिः) वीळूनि दृढानि बलानि पाण्योर्ग्रहणसाधनव्यवहारमधिंखां तैः। वीड्विति बलनामसु पठितम्। (निघं०२.९) (चित्राः) अद्भुतगुणाः (रोधस्वतीः) रोधो बहुविधमावरणं विद्यते यासां नदीनां नाडीनां वा ताः। रोधस्वत्य इति नदीनामसु पठितम्। (निघं०१:१३) (अनु) अनुकूले (यात) प्राप्नुत (ईम्) एव (अखिद्रयामिभः) अच्छिन्नानि निरन्तराणि लिगमनानि मेथां तैः। स्फायितिञ्च० (उणा०२.१४) इति रक्। सर्वधातुभ्यो मनिन् इति करणे मनिंश्च॥११॥

अन्वयः है मरुतो श्रूयमखिद्रयामिभवीं ळुपाणिभिः पवनैः सह रोधस्वतीश्चित्रा ईमनुयात॥११॥ भावायः नास्तुषु गमनबलव्यवहारहेतूनि कर्माणि स्वाभाविकानि सन्ति। एते खलु नदीनां गमियतारो नास्तीनां मध्ये गच्छन्तो रुधिररसादिकं शरीराऽवयवेषु प्रापयन्ति, तस्माद्योगिभियोंगाभ्यासेनेतरैर्जनैश्च बलादिसाधनाय वायुभ्यो महोपकारा ग्राह्याः॥११॥

मण्डल-१। अनुवाक-८। सूक्त-३८

पदार्थ:-हे (मरुत:) योगाभ्यासी योगव्यवहार सिद्धि चाहनेवाले पुरुषो! तुम लोग (अखिद्रयामि):) निरन्तर गमनशील (वीळुपाणिभि:) दृढ़ बलरूप ग्रहण के साधक व्यवहार चाले पवनों के साथ (रोधस्वती:) बहुत प्रकार के बाँध वा आवरण और (चित्रा:) आश्चर्य्य ग्रुण वाली नदी वा नाडियों के (ईम्) (अनु) अनुकूल (यात) प्राप्त हों॥११॥

भावार्थ:-पवनों में गमन बल और व्यवहार होने के हेतु स्वाभाविक धर्म हैं और ये निश्चय करके निदयों को चलाने वाले नाड़ियों के मध्य में गमन करते हुए रुधिर रसाद्वि को शर्भर के अवयवों में प्राप्त करते हैं, इस कारण योगी लोग योगाभ्यास और अन्य मनुष्य बल आदि के साधनरूप वायुओं से बड़े-बड़े उपकार ग्रहण करें॥११॥

पुनस्तदेवाह॥

फिर भी उक्त विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।

स्थिरा वं: सन्तु नेमयो स्था अश्चांस एषाम्।

सुसंस्कृता अभीशंव:॥१२॥

स्थिराः। वः। सुन्तु। नेमर्यः। रथाः। अश्वासः। हुपुम्। सुरसम्कृताः। अभीर्शवः॥१२॥

पदार्थ:-(स्थिरा:) दृढा (व:) युष्माकम् (सन्तु) भवन्तु (नेमय:) कलाचक्राणि (रथा:) विमानादीनि यानानि (अश्वास:) अग्न्यादयस्तुर्रङ्गे वा। अत्र आज्जसरेसुग् इत्यसुगागमः। (एषाम्) मरुतां सकाशात् (अभीशव:) अभितोऽश्नुवते व्याप्नुवन्ति मार्गान् यैस्ते रश्मयो हया वा। अत्राभिपूर्वादशूङ् व्यापावित्यस्माद्धातोः। कृवापा० (उणा०१.१) अन्युण् वर्णव्यत्ययेनाकारस्थान ईकारश्च॥१२॥

अन्वयः-हे विद्वांसो मनुष्या वो युष्माकमेषां मरुतां सकाशात्सुसंस्कृता नेमयो रथा अभिशवोऽश्वासश्च स्थिराः सन्तुम्हरूरा।

भावार्थ:-ईश्वर उपदिशति। हे मेनुष्या! युष्माभिर्विविधकलाचक्राणि यानानि रचयित्वा तेष्विग्निजलादीनां शीघ्रं गम्यतृणां सम्प्रयोगेण वायूनां योगात्सुखेन सर्वतो गमनागमनानि शत्रुविजयादयः सर्वे व्यवहाराः संसाधनीया इति। १२॥

पदार्थ:-क्रे विद्वान लोगों! (व:) तुम्हारे (एषाम्) इन पवनों के सकाश से (सुसंस्कृता:) उत्तम शिल्प विद्या स्रे (संस्कृर किए हुये (नेमय:) कला चक्रयुक्त (रथा:) विमान आदि रथ (अभीशव:) मार्गों को व्याप्त करने जाले (अश्वास:) अग्नि आदि वा घोड़ों के सदृश (स्थिरा:) दृढ़ बलयुक्त (सन्तु) होवें॥ १३५।

भावार्थ:-ईश्वर उपदेश करता है। हे मनुष्यो! तुम को चाहिये कि अनेक प्रकार के कलाचूँके युक्त विमान आदि यानों को रच कर उनमें जल्दी चलने वाले अग्नि जल के सम्प्रयोग वा पवनों के योग से सुख पूर्वक जाने-आने और शत्रुओं को जीतने आदि सब व्यवहारों को सिद्ध करो॥१२॥

तदेतदुपदेशको विद्वान् कीदृशो भवेदित्युपदिश्यते॥

फिर इस विमानादि विद्या का उपदेशक विद्वान् कैसा होवे, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्रे में

किया है॥

अच्छो वदा तर्ना गिरा जुरायै ब्रह्मणस्पर्तिम्। अग्निं मित्रं न देर्शतम्॥ १३॥

अच्छी वृद्धा तर्ना। गिरा। जुरायै। ब्रह्मणः। पतिम्। अग्निम्। मित्रम्(न। दुर्शतम्।। १३॥

पदार्थ:-(अच्छ) सम्यग्रीत्या। अत्र दीर्घः। (वद) उपदिश्रः। अत्र द्वयचोऽतस्तिङ इति दीर्घः। (तना) गुणप्रकाशं विस्तारयन्त्या (गिरा) स्वकीयया वेदयुक्त्या आण्या (ज्रशये) स्तुत्यै। जरास्तुतिर्जरतेः स्तुतिकर्मणः। (निरु०१०.८) (ब्रह्मणः) वेदस्याऽध्यायनोपदेशेन (पतिम्) पालकम् (अग्निम्) ब्रह्मवर्चस्विनम् (मित्रम्) सुहृदम् (न) इव (दर्शतम्) दृष्टव्यम् (१३॥

अन्वय:-हे सर्वविद्याविद्विद्वँस्त्वं ब्रह्मणस्मृति दर्शन्तमिग्निमत्रं न जरायै, तना गिरा विमानादियानविद्यामच्छा वद॥१३॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। हे विद्वांस्म सनुष्या! यथा प्रिय: सखा प्रीतं तेजस्विनं वेदोपदेशकं सुहृदं सेवागुणस्तुतिभ्यां प्रीणाति तथा सर्विवद्याविस्तारिकया वेदवाण्या विमानादियानरचनविद्यां तद्गुणज्ञानाय सम्यगुपदिशत॥१३॥

पदार्थ:-हं सब विद्या के जानने सले विद्वान्! तू (न) जैसे (ब्रह्मण:) वेद के पढ़ाने और उपदेश से (पतिम्) पालने हारे (दर्शतम्) देखने योग्य (अग्निम्) तेजस्वी (मित्रम्) जैसे मित्र को मित्र उपदेश करता है, वैसे (जरायै) गुणजान के लिये (तन्म) गुणों के प्रकाश को बढ़ानेहारी (गिरा) अपनी वेदयुक्त वाणी से विमानादि यानिविद्याका (अच्छा वद) अच्छे प्रकार उपदेश कर॥१३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे विद्वान् मनुष्यो! तुम लोगों को चाहिये कि जैसे प्रिय मित्र अपने प्रिय देंजस्वी वेदोपदेशक मित्र को सेवा और गुणों की स्तुति से तृप्त करता है, वैसे सब विद्याओं का विस्तार करने वाली वेद वाणी से विमानादि यानों के रचने की विद्या का उस के गुण ज्ञान के लिये निर्म्तर अदेश करो॥१३॥

पुनस्तत्पाठितो विद्यार्थी कीदृशो भवेदित्युपदिश्यते॥

फिर उस विद्वान् का पढ़ाया शिष्य कैसा होना चाहिये, इसका उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

मण्डल-१। अनुवाक-८। सूक्त-३८

मिमीहि श्लोकंमास्ये पर्जन्यं इव ततनः। गार्य गायुत्रमुक्थ्यंम्॥ १४॥

मिमीहि। श्लोकेम्। आस्ये। पुर्जन्यः ऽइव। तुतुनः। गार्य। गायुत्रम्। उक्थ्यम्॥ १४॥

पदार्थ:-(मिमीहि) निर्मिमीहि। माङ् माने शब्दे चेत्यस्य रूपम् व्यत्ययेन पर्स्मेपदम्। (श्लोकम्) वेदिशिक्षायुक्तां वाणीम्। श्लोक इति वाङ्नामसु पठितम्। (निघं०१.११) (आस्य) पुखे (पर्जन्य इव) यथा मेघो गर्जनं कुर्वन् वृष्टिं तनोति (ततनः) विस्तारय। लेटि मध्यमैकवचने तनु विस्तार इत्यस्य रूपम्। विकरणव्यत्ययेन ओः श्लुः। (गाय) पठ पाठय वा (गायत्रम्) गायत्रीद्यस्यम् (उक्थ्यम्) गातुं वक्तुं योग्यम्॥१४॥

अन्वय:-हे विद्वन् मनुष्य! त्वमास्ये श्लोकं मिमीहि तं च पॅर्जेन्य इव्योततनः। उक्थ्यं गायत्रं च गाय॥१४॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। हे विद्वद्भयोधीतिवद्या मनुष्यो! सुष्याभि: सर्वथा प्रयत्नेन स्वकीयां वाणीं वेदविद्यासुशिक्षितां कृत्वा वाचस्पत्यं सम्पाद्य परमेश्वरम् बाष्ट्रीदीनां च गुणा: स्तोतव्या: श्रोतव्या उपदेशनीयाश्च॥१४॥

पदार्थ:-हे विद्वान् मनुष्य! तू (आस्ये) अपने मुख में (श्लोकम्) वेद की शिक्षा से युक्त वाणी को (मिमीहि) निर्माण कर और उस वाणी को (पर्जन्य इन्न) जैसे मेघ वृष्टि करता है, वैसे (ततनः) फैला और (उक्थ्यम्) करने योग्य (गायत्रम्) गायत्री छन्द क्राले स्तोत्ररूप वैदिक सूक्तों को (गाय) पढ़ तथा पढ़ा॥१४॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालिङ्कार है। है विद्वानों से विद्या पढ़े हुए मनुष्यो! तुम लोगों को उचित है कि सब प्रकार प्रयत्न के साथ वेदिविद्या से शिक्षा की हुई वेदवाणी से वाणी के वेता के समान वक्ता होकर वायु आदि पदार्थी के गुणों की स्तुति तथा उपदेश किया करो॥१४॥

प्रुनः स किं कुर्यादित्युपदिश्यते॥

फिर वह विद्वान स्या करे, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

वन्दस्व सारुतं गुमं त्वेषं पनस्युमर्किणम्।

अस्मे वृद्धा अंसन्निह॥ १५॥ १७॥

बन्दस्वा मीर्पतम्। गुणम्। त्वेषम्। पुनस्युम्। अुर्किणम्। अस्मे इति। वृद्धाः। असुन्। इह॥१५॥

परार्थ:-(वन्दस्व) कामय **(मारुतम्)** मरुतिममम् **(गणम्)** समूहम् **(त्वेषम्)** अग्न्यादिप्रकाशवद् द्रव्ययुक्तम् **(पनस्युम्)** पनायति व्यवहरति येन। तदात्मन इच्छुम् **क्याच्छन्दसि** (अष्टा०३.२.१७०) इत्युः

प्रत्ययः। (अर्किणम्) प्रशस्तोऽर्कोऽर्चनं विद्यते यस्मिस्तम्। अत्र प्रशंसार्थ इनिः। (अस्मे) अस्माकम्। अत्र सुपां सुलुग् इत्यामः स्थाने शे। (वृद्धाः) दीर्घविद्यायुक्ताः (असन्) भवेयुः। लेट्प्रयोगः। (इह्र) अस्मिन् सर्वव्यवहारे॥१५॥

अन्वयः-हे विद्वंस्त्वं यथेहास्मे वृद्धा असन् तथाऽर्किणं त्वेषं पनस्युं मारुतं गणं वन्दस्व॥१५॥
भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। मनुष्यैर्यथा वायवः कार्याणि स्वधिकत्वेन सुखप्रदा
भवेयुस्तथा विद्यापुरुषार्थाभ्यां प्रयतितव्यम्॥१५॥

अथास्मिन् वायुदृष्टान्तेन विद्वद्गुणवर्णितेनातीतेन सूक्तेन सहास्य सङ्गित्रस्तीति बोध्यम्॥

इति सप्तदशो वर्गोऽष्टात्रिशं सूक्तं च समाप्तम्॥ ३८००

पदार्थ: - हे विद्वान् मनुष्य! तू जैसे (इह) इस सब व्यवहार में (अस्पे) हम लोगों के मध्य में (वृद्धाः) बड़ी विद्या और आयु से युक्त वृद्ध पुरुष सत्याचरण करने माले (असन्) होवें, वैसे (अर्किणम्) प्रशंसनीय (त्वेषम्) अग्ने आदि प्रकाशवान् द्रव्यों से युक्त (पनस्युम्) अपने आत्मा के व्यवहार की इच्छा के हेतु (मारुतम्) वायु के इस (गणम्) समूह को (ब्रन्दस्व) कामना कर॥१५॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यां की चाहियं कि जैसे पवन कार्यों को सिद्ध करने के साधन होने से सुख देने वाले होते हैं, वैसे विद्या और अपने पुरुषार्थ से सुख किया करें॥१५॥

इस सूक्त में वायु के दृष्टान्त से विद्वानों के पुण वर्णने करने से पूर्व सूक्त के साथ इस सूक्त की सङ्गति जाननी चाहिये।

यह सत्रहवां वर्ग और अड्तीसेबा स्वत समाप्त हुआ॥३८॥

अथ दशर्चस्यैकोनचत्वारिंशस्य सूक्तस्य घोरपुत्रः कण्व ऋषिः मरुतो देवताः। १,५,९ पथ्याबृहती। ७ उपरिष्टाद्विराड् बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः। २,८,१० विराड् सतः पङ्क्तिः। ४,६ निचृत्सतःपङ्क्तिश्चन्दः। पञ्चमः स्वरः। ३ अनुष्टप् छन्दः। गान्धारः स्वरः। अत्र

सायणाचार्च्यादिभिर्विलसनमोक्षमूलराख्यादिभिश्चैतत्सूक्तस्था मन्त्राः सतो बृहती छन्दस्का आयुजो बृहती छन्दस्काश्च छन्दःशास्त्राभिप्रायमविदित्वाऽन्यथा व्याख्याता इति <u>सन्त</u>व्यम्॥

पुनस्ते विद्वांसः कथं कथं संवदन्त इत्युपदिश्यते॥

अब उनतालीसवें सूक्त का आरम्भ है। फिर वे विद्वान् लोग परस्पर किस् स्किस प्रकीर संवाद करें, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।

प्र यदित्था परावतः शोचिर्न मानुमस्येथ।

कस्य क्रत्वा मस्तुः कस्य वर्षसा कं याथु कं है धूतयः।। ११६

प्र। यत्। इत्था। प्राऽवर्तः। शोचिः। न। मार्नम्। अस्येथ। क्रत्वां मुरुतः। कस्ये। वर्षसा। कम्। याथु। कम्। हु। धूत्यः॥ १॥

पदार्थ:-(प्र) प्रकृष्टार्थे (यत्) ये (इत्था) अस्माद्धिते (प्रायवतः) दूरात् (शोचिः) सूर्यज्योतिः पृथिव्याम् (न) इव (मानम्) यत्परिमाणम् (अस्यथ्) प्रक्षिपत् (कस्य) सुखस्वरूपस्य परमात्मनः (क्रत्वा) कृतुना कर्मणा ज्ञानेन वा। अत्र जसादिषु छन्दिस् वा वचनम्। (अष्टा०वा०७.३.१०९) इति नादेशाभावः। (मस्तः) विद्वांसः (कस्य) सुखदातुर्भाग्यशान्तिनः (वर्षसा) रूपेण। वर्ष इति रूपनामसु पठितम्। (निघं०३.७) (कम्) सुखप्रदं देशम् (याथः) प्राप्नुत् (कम्) सुखहेतुं पदार्थम् (ह) खलु (धूतयः) ये धून्वन्ति ते। कितच् कतौ च संज्ञायाम्। (अष्टा ३.३.१७४) इति क्तिच्॥१॥

अन्वय:-हे मरुतो! यूयं यहो धूतयो वायव इव शोचिर्न परावत: कस्य मानमस्यथ। इत्था ह कस्य क्रत्वा वर्पसा च कं याथनेति समाधानानि ब्रत॥१॥

भावार्थ:-अत्र वाक्ष्यलुप्तोपमाल्ड्योरौ। सुखमभीप्सुभिर्विद्वद्भिर्जनैर्यथा सूर्यस्य रश्मयो दूरदेशाद्भूमिं प्राप्य पदाश्रान् प्रकाशुर्श्वन्त, तथैव सर्वसुखदातुः परमात्मनो भाग्यशालिनः परमविदुषश्च सकाशाद् वायोर्गुणकर्मस्वभाषान् याथातथ्यतो विज्ञाय तेष्वेव रमणीयं वायवः कारणमानं कारणस्वरूपेण यान्तीति विजानीयूत्॥१॥

पदार्थ: हे (मरुत:) विद्वान् लोगो! आप (यत्) जो (धूतयः) सबको कम्पाने वाले वायु (शोचिर्न) असे सूर्य की ज्योति और वायु पृथिवी पर दूर से गिरते हैं, इस प्रकार (परावतः) दूर से (कस्य) किस के (मानम्) परिमाण को (अस्यथ) छोड़ देते (इत्था) इसी हेतु से (कस्य) सुखस्वरूप परमृत्मा के (क्रत्वा) कर्म वा ज्ञान और (वर्षसा) रूप के साथ (कम्) सुखदायक देश को (याथ) प्राप्त होते हो, इन प्रश्नों के उत्तर दीजिये॥१॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। सुख की इच्छा करने वाले विद्वान् पुरुषों को चाहिये कि जैसे सूर्य की किरणें दूर देश से भूमि को प्राप्त होकर पदार्थों को प्रकाश करती हैं, वैसे ही अभिमान को दूर से त्याग के सब सुख देने वाले परमात्मा और भाग्यशाली परमविद्वान् के गुण, कर्म, स्वभाव और मार्ग को ठीक-ठीक जान के उन्हीं में रमण करें, ये वायु कारण से आते कारणस्वरूप से स्थित और कारण में लीन भी हो जाते हैं॥१॥

अथ तेभ्य उपदिश्याऽशीर्दत्वा युष्माभिः किं किं साधनीयमित्युपदिश्यते। अब ईश्वर इनको उपदेश और आशीर्वाद देकर सब से कहता है कि तुमको क्या-क्या सिद्ध करना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।

स्थिरा वे: सुन्त्वायुंधा पराणुदे वीळू उत प्रतिष्कभे। युष्माकंमस्तु तर्विषी पनीयसी मा मर्त्यस्य मायिनः॥ ३॥

स्थिरा। वः। सुनु । आयुंधा। पुराऽनुदे। वीळु। उत। प्रतिश्रस्क्रभे। युष्माक्रम्। अस्तु। तर्विषी। पनीयसी। मा। मर्त्यस्य। मायिनः॥२॥

पदार्थ:-(स्थिरा) स्थिराणि चिरं स्थातुमर्हाणि अप्र मन्त्रेत्र शेश्छन्दिस इति लोपः। (वः) युष्माकम् (सन्तु) भवन्तु (आयुधा) आयुधान्यान्येति धनुर्बाणभुसुण्डीशतघ्न्यादीन्यस्त्रशस्त्राणि (पराणुदे) परात्रुदन्ति शत्रून् यस्मिन् युद्धे तस्मै। अत्र कृतो बहुलम् इत्यधिकरणे क्विप्। (वीळू) वीडूनि दृढानि बलकारीणि। अत्र ईषा अक्षादित्वात् प्रकृतिभावः। (उत्त) अप्येव (प्रतिष्कभे) प्रतिष्कम्भते प्रतिबध्नाति शत्रून् येन कर्मणा तस्मै। अत्र सौत्रात् स्कृम्भु धातोः पूर्ववत् क्विप्। (युष्माकम्) धार्मिकाणां वीराणाम् (अस्तु) भवतु (तिवषी) प्रमुस्तबलिवद्यायुक्ता सेना। तविणिद्वा। (उणा०१.४९) अनेन टिषच् प्रत्ययो णिद्वा। तविषीति बलनगममु पिठतम्। (निघं०२.९) (पनीयसी) अतिशयेन स्तोतुमर्हा व्यवहारसाधिका (मा) निषेधार्थे (मर्त्यस्य) सनुष्यस्य (मायिनः) कपटधर्माचरणयुक्तस्य। माया कुत्सिता प्रज्ञा विद्यते यस्य तस्य। अत्र निन्दार्थ इनिः। सायिति प्रज्ञानामु पिठतम्। (निघं०३.९)॥२॥

अन्वय:-हे धार्मिकमनुष्या व आयुधा! शत्रूणां पराणुद उत प्रतिष्कभे स्थिरा वीळू सन्तु। युष्माकं तिविषी सेना पनीयस्यस्तु माथिनो मर्त्यस्य मा सन्तु॥२॥

भावार्थः भावार्थः भार्मिका मनुष्या एवेश्वरानुग्रहविजयौ प्राप्नुविन्ति, ईश्वरोऽपि धर्मात्मभ्य एवाशीर्ददाति, नेतरेभ्यः । एतृै प्रशस्तानि शस्त्रास्त्राणि रचयित्वा तत्प्रक्षेपाभ्यासं कृत्वा प्रशस्तां सेनां शिक्षित्वा दुष्टानां शत्रूणां वध्निस्रोध्यपाजयान् कृत्वा न्यायेन नित्यं प्रजा रक्ष्या नेदं मायावी प्राप्तुं कर्त्तुं शक्नोति॥२॥

इष्ट. ईषा अक्षादिषु छन्दसि प्रकृतिभावमात्रं वक्तव्यम्। अष्टा०वा०६.१.१२७

अष्टक-१। अध्याय-३। वर्ग-१८-१९

मण्डल-१। अनुवाक-८। सूक्त-३९

पदार्थ:-हे धार्मिक मनुष्यो! (व:) तुम्हारे (आयुधा) आग्नेय आदि अस्त्र और तलवार, धनुष, बाण, भुसुण्डी (बन्दूक), शतष्ट्री (तोप) आदि शस्त्र-अस्त्र (पराणुदे) शत्रुओं को व्यथा कियो पद्ध (उत) और (प्रतिष्कभे) रोकने, बांधने और मारने रूप कर्मों के लिये (स्थिरा) स्थिर दूढ़ विस्क्ष्रीयी (वीळू) दृढ़ बड़े-बड़े उत्तम बलयुक्त (तिवषी) प्रशस्त सेना (पनीयसी) अतिशय करके स्तृति करने योग्य वा व्यवहार को सिद्ध करनेवाली (अस्तु) हो और पूर्वोक्त पदार्थ (प्रायिन:) कपर आदि अधर्माचरणयुक्त (मर्त्यस्य) दुष्ट मनुष्यों के (मा) कभी मत हों॥२॥

भावार्थ:-धार्मिक मनुष्य ही परमात्मा के कृपा पात्र होकर सदा विजय को प्राप्त होते हैं, दुष्ट नहीं। परमात्मा भी धार्मिक मनुष्यों ही को आशीर्वाद देता है, पापियों की हों। पुण्यात्मा मनुष्यों को उचित है कि उत्तम-उत्तम शस्त्र-अस्त्र रचकर उनके फेंकने का अध्यास करके सेना को उत्तम शिक्षा देकर शत्रुओं का निरोध वा पराजय करके न्याय से मनुष्यों की निर्म्तर रक्षा करनी चाहिये ॥२॥

अथ विद्वन्मनुष्यकृत्यमुपदिश्र्यते।।

अब अगले मन्त्र में विद्वान् मनुष्यों के क्लार्क्का उपदेश किया है॥

पर्रा ह यत्स्थिरं हथ नरी वर्तयथा गुरु।

वि याथन वृनिनः पृथिव्या व्याशाः पर्वसानाम्॥३॥

पर्रा। हु। यत्। स्थिरम्। हुथ। नर्रः। वृतेषेथ। गुरू। वि। याथनः। विनर्नः। पृथिव्याः वि। आश्राः। पर्वतानाम्॥३॥

पदार्थ:-(परा) प्रकृष्टार्थे (ह) किल (यत) ये (स्थिरम्) दृढं बलम् (हथ) भग्नाङ्गाञ्च्छत्रून् कुरुथ (नर:) नेतारो मनुष्याः (वर्त्यथ) निष्पादयथ। अत्र अन्येषामिष् इति दीर्घः (गुरु) गुरुत्वयुक्तं न्यायाचरणं पृथिव्यादिकं द्रव्यं के (वि) विविधार्थे (याथन) प्राप्नुथ। अत्र तप्तनप्तनः इति थस्य स्थाने थनादेशः। (विननः) वनं रष्ट्रिमेपम्बन्धो विद्याते येषान्ते वायवः। अत्र सम्बन्धार्थ इनिः। (पृथिव्याः) भूगोलस्यान्तरिक्षस्य वा (वि) विशिष्टार्थे (आशाः) दिशः। आशा इति दिङ्नामसु पठितम्। (निघं०१.६) (पर्वतानाम्) गिरीणां मेघानां व्राप्तिः।

३५ सं.भा के अनुसार इसके आगे 'इन शस्त्रादि पदार्थों को छली मनुष्य नहीं प्राप्त कर सकता' इतना वाक्य और होना चाहिये।

अन्वय:-हे नरो नायका! यूयं यथा विननो वायवो यत्पर्वतानां पृथिव्याश्च व्याशाः सन्तः स्थिरे गुरु हत्वा नयन्ति तथा तित्स्थरं गुरु बलं सम्पाद्य शत्रून् पराहथ ह किलैतान् विवर्त्तयथ विजयाय वायुवच्छत्रुसेनाः शत्रुपुराणि वा वियाथ॥३॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। यथा वेगयुक्ता वायवो वृक्षादीन् भञ्जते पृथिच्यादिकं धरन्ति तथा धार्मिका न्यायाधीशा अधर्म्माचरणानि भङ्कत्वा धर्म्येण न्यायेन प्रजा ध्रार्यु:। सेगपतयश्च महत्सैन्यं धृत्वा शत्रून् हत्वा पृथिव्यां चक्रवर्त्तिराज्यं संसेव्य सर्वासु दिक्षु सत्कीर्त्तं प्रचारयन्तु यथा सर्वेषां प्राणा: प्रिया: सन्ति, तथैते विनयशीलाभ्यां प्रजासु स्यः॥३॥

पदार्थ:-हे (नर:) नीतियुक्त मनुष्यो! तुम जैसे (विनन:) सम्यक् विभाग और सेवन करने वाले किरण सम्बन्धी वायु अपने बल से (यत्) जिन (पर्वतानाम्) पहाड़ और मेधे (पृष्टिव्या:) और भूमि को (व्याशा:) चारों दिशाओं में व्यासवत् व्याप्त होकर उस (स्थिरम्) कृढ़ और (गुरु) बड़े-बड़े पदार्थों का धरते और वेग से वृक्षादि को उखाड़ के तोड़ देते हैं, वैसे किंजर के लिये शत्रुओं की सेनाओं को (पराहथ) अच्छे प्रकार नष्ट करो और (ह) निश्चय से इन शश्रुओं को (विवर्त्तयथ) तोड़-फोड़, उलट-पलट कर अपनी कीर्त्त से (आशा:) दिशाओं को (वियायन) सेनेक प्रकार व्याप्त करो॥३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमालङ्कार है। जैसे ब्रायुक्त वायु वृक्षादि को उखाड़ तोड़-झंझोड़ देते और पृथिव्यादि को धरते हैं, वैसे धार्मिक न्यायाधील अधर्माचारों को रोक के धर्मयुक्त न्याय से प्रजा को धारण करें और सेनापित दृढ़ बल युक्त हो, अनम सेना का धारण, शत्रुओं को मार, पृथिवी पर चक्रवर्त्ति राज्य का सेवन कर, सब दिशाओं में अपनी उत्तम कीर्ति का प्रचार करें और जैसे प्राण सब में अधिक प्रिय होते हैं, वैसे राजपुरुष प्रजा की प्रियुक्ता। ३॥

पुनस्ते कीदृशा भवेयुरित्युपदिश्यते॥

फिर वे विद्वान् किस् अकार के हीं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

नृहि वु: शत्रुविविवेद अधि द्यवि न भूम्यां रिशादस:।

युष्माकंमस्तु तिविधी तनां प्रुजा रुद्रांसो नू चिंदाधृषे॥४॥

नृहि। वः। शर्तुः। विविद्धे। अर्धि। द्यवि। न। भूम्याम्। रिशादुसः। युष्माक्षम्। अस्तु। तर्विषी। तर्ना। युजा। रुद्रासः। नु। वित्। आऽधृषे॥४॥

पदार्थः (निह) निषेधार्थे (व:) युष्मान् (शृतुः) विरोधी (विविदे) विन्देत्। अत्र लिङ्थें लिट्। (अधि) उप्रस्थिवे (द्यवि) प्रकाशे (न) निषेधार्थे (भूम्याम्) पृथिव्याम् (रिशादसः) रिशान् शत्रून् रोगान् वा समन्ताद् दस्यन्त्युपक्षयन्ति ये तत्सम्बुद्धौ (युष्माकम्) मनुष्याणाम् (अस्तु) भवतु (तिवषी) प्रशस्त्रवलस्युष्ता सेना (तना) विस्तृता (युजा) युनिक्त यया तया। अत्र कृतो बहुलम् इति करणे क्विप्।

अष्टक-१। अध्याय-३। वर्ग-१८-१९

मण्डल-१। अनुवाक-८। सूक्त-३९

(फद्रासः) ये रोदयन्त्यन्यायकारिणो जनांस्तत्सम्बुद्धौ (नु) क्षिप्रम् (चित्) यदि (आधृषे) समन्ताद् धृष्णुवन्ति यस्मिन् व्यवहारे तस्मै। अत्र पूर्ववत् क्विप्॥४॥

अन्वय:-हे रिशादसो रुद्रासो वीरा! चित् यदि युष्माकमाधृषे तना युजा तिवष्यस्त स्यानिहीधि द्यवि न्यायप्रकाशे वो युष्मान् शत्रुर्नु निह विविदे कदाचित्र प्राप्नुयात्र भूम्या भूमिराज्ये कश्चिच्छत्रुरुत्पद्यते॥४॥

भावार्थः-यथा पवना अजातशत्रवः सन्ति तथा मनुष्या विद्याधर्मबल्रपसङ्गमेष्यन्तो न्यायाधीशा भूत्वा सर्वान् प्रशास्य दुष्टाञ्च्छत्रून निवार्याऽदृष्टशत्रवः स्युः॥४॥

पदार्थ:-हे (रिशादस:) शत्रुओं के नाशकारक (रुद्रास:) अन्यायकारी मृतुष्यों को रुलाने वाले वीर पुरुष! (चित्) जो (युष्माकम्) तुम्हारे (आधृषे) प्रगल्भ होने वाले व्यवहार के लिये (तना) विस्तृत (युजा) बलादि सामग्री युक्त (तिवषी) सेना (अस्तु) हो तो (अधिक्रिक्त) न्याय प्रकाश करने में (व:) तुम लोगों को (शत्रु:) विरोधी शत्रु (नु) शीघ्र (निह) नहीं (विविदे) प्रप्त हो और (भूम्याम्) भूमि के राज्य में भी तुम्हारा कोई मनुष्य विरोधी उत्पन्न न हो॥४॥

भावार्थ:-जैसे पवन आकाश में शत्रु रहित विचरते हैं, मैसे मनुष्य विद्या, धर्म, बल, पराक्रम वाले न्यायधीश हो, सबको शिक्षा दे और दुष्ट शत्रुक्षों को दण्ड देके, शत्रुओं से रहित होकर धर्म्म में वर्ते॥४॥

पुनस्ते कीदृशानि कर्माणि क्रुर्व्युरित्युपदिश्यते॥

फिर वे कैसे कर्म्म करें, इस विषय की उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

प्र वेपयन्ति पर्वतान् वि विश्वन्ति वनुस्पतीन्।

प्रो आरत मरुतो दुर्मद्द इव देवीपुः सर्वया विशा॥५॥१८॥

प्रा वे<u>पयिना पर्वतान्। विञ्चिति वे</u>नस्पतीन्। प्रो इति। आ<u>रतः। पुर्मदाः</u>ऽइवा देवासः। सर्वया। विशा॥५॥

पदार्थ:-(प्र) प्रकृष्टि विपयिन्त) चालयिन्त (पर्वतान्) मेघान् (वि) विवेकार्थे (विञ्चन्ति) विभिञ्जन्ति (वनस्प्रतीन्) वद्मश्वत्थादीन् (प्रो) प्रवेशार्थे (आरत) प्राप्नुत। अत्र लोडर्थे लुङ्। (मरुतः) वायुवद्धलवन्त्र (दुमेद्दा इव) यथा दुष्टमदा जनाः (देवासः) न्यायाधीशाः सेनापतयः सभासदो विद्वांसः। अत्राज्जसेर्भुग् इत्स्रस्कृ (सर्वया) अखिलया (विशा) प्रजया सह॥५॥

अन्वयः-हे मरुतो देवासो! यूयं यथा वायवो वनस्पतीन् प्रवेपयन्ति पर्वतान् विञ्चन्ति तथा दुर्मदा इव वर्त्तमानास्रीन् युद्धेन प्रो आरत सर्वया प्रजया सह सुखेन वर्त्तध्वम्॥५॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। यथा राजधर्मनिष्ठा विद्वांसो दण्डेनोन्मत्तान् दस्यून् वशं नीत्वा धार्मिकी: प्रजा: पालयन्ति तथा यूयमप्येता: पालयत। यथा वायवा भूगोलस्याऽभितो विचरन्ति तथा भवन्तोऽपि विचरन्तु॥५॥

अष्टादशो वर्गः समाप्तः॥ १८॥

पदार्थ:-हे (मरुत:) वायुवत् बलिष्ठ और प्रिय (देवास:) न्यायाधीश सेनापूर्व सभाश्यक्ष विद्वान् लोगो! तुम जैसे वायु (वनस्पतीन्) बड़ और पिप्पल आदि वनस्पतियों को (प्रवेपयन्ति) कम्पोने और जैसे (पर्वतान्) मेघों को (वि विञ्चन्ति) पृथक्-पृथक कर देते हैं, वैसे (दुर्मदा इव) मद्योन्मत्तों के समान वर्तते हुए शत्रुओं को युद्ध से (प्रो आरत) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये और (सर्वद्या) सब (विशा) प्रजा के साथ सुख से वर्त्तिये॥५॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे राजधर्म में वर्तने बाले विद्वान् लोग दण्ड से घमण्डी डाकुओं को वश में करके धर्मात्मा प्रजाओं का पालन करते हैं, कैसे तुम भी अपनी प्रजा का पालन करो और जैसे पवन भूगोल के चारों और विचरते हैं, वैसे आप लोग भी सर्वत्र जाओ-आओ॥५॥

यह अठारहवां वर्ग समाप्त हुआ। १४।

पुनर्मनुष्यैः केन सहैतान्सम्प्रयोज्य क्रार्क्सिण साधनीयानीत्युपदिश्यते॥

फिर मनुष्यों को किस के साथ इनको युक्त कर्म्फ कार्यों को सिद्ध करने चाहिये, इस विषय का उपदेश अगुले मन्त्र में क्रिया है।।

उपो रथेषु पृषतीरयुष्ट्वं प्रष्टिर्वहृति रोहितः।

आ वो यामाय पृथिवी चिद्रश्रोदेवीभयन्त मानुषाः॥६॥

उपो इति। रथेषु। पृषेतीः। अयुग्ध्यम्। प्रष्टिः। वहितः। रोहितः। आ। वः। यामीय। पृथिवी। चित्। अश्रोत्। अबीभीयन्त। मार्नुषाः॥६॥

पदार्थ:-(उपो) सामीच्ये (रथेषु) स्थलजलान्तरिक्षाणां मध्ये रमणसाधनेषु यानेषु (पृषती:) पर्षन्ति सिंचन्ति याभिस्तः अधिमतीः मरुतां धारणवेगादयोऽश्वा:। पृषत्यो मरुतामित्यादिष्टोपयोजननामसु पिठतम्। (निघं०१.१५) (अयुष्ट्यम्) सम्प्रयुङ्ध्वम्। अत्र लोडर्थे लुङ्। बहुलं छन्दिस इति विकरणाभावश्च (प्रिष्टिः) पृच्छन्ति ज्ञीप्सन्त्यनेन सः (वहित) प्रापयित (रोहितः) रक्तगुणविशिष्ट्रस्थापने ईरादिगुणसमूहः। रोहितोऽग्नेरित्यादिष्टोपयोजननामसु पिठतम्। (निघं०१.१५)। विष्

इद. इस मन्त्र में 'आ, वः, यामाय, पृथिवी' ये चार पद छूटे हुए हैं।

अष्टक-१। अध्याय-३। वर्ग-१८-१९

मण्डल-१। अनुवाक-८। सूक्त-३९

(चित्) एव (अश्रोत्) शृणोति। अत्र **बहुलं छन्दिस** इति विकरणाभावः। (अबीभयन्त) भीषयन्ते। अत्र लडर्थे लुङ् (मानुषाः) विद्वांसो जनाः॥६॥

अन्वय:-हे मानुषा! यूयं वो युष्माकं यामाय प्रष्टी रोहितोऽग्निः पृथिवी भूमावस्त्रिक्षे प्रमनाय यान् वहति यस्य शब्दानश्रोदबीभयन्त तेषु रथेषु तं पृषतीश्चायुग्ध्वम्॥६॥

भावार्थ:-यदि मनुष्या यानेषु जलाग्निवायुप्रयोगान् कृत्वा तत्र स्थित्वा स्पानागमने कुर्युस्तर्हि सुखेनैव सर्वत्र गन्तुमागन्तुं च शक्नुयु:॥६॥

पदार्थ: -हे (मानुषा:) विद्वान् लोगो! तुम (व:) अपने (यामाय) स्थानान्तर में जाने के लिये (पृष्टि:) प्रश्नोत्तरादि विद्या व्यवहार से विदित (रोहित:) रक्तगुणयुक्त अग्ने (पृथिवी) स्थल जल अन्तरिक्ष में जिनको (उपो वहित) अच्छे प्रकार चलाता है जिनके शब्दों को (अश्रोत्) सुनते और (अबीभयन्त) भय को प्राप्त होते हैं, उन (रथेषु) रथों में (पृथ्वी:) वासुआं को (अयुग्ध्वम्) युक्त करो॥६॥

भावार्थ:-जो मनुष्य यानों में जल, अग्नि और वासू को युक्त कर, उनमें बैठ, गमनागमन करें तो सुख ही से सर्वत्र जाने-आने को समर्थ हों॥६॥

पुनस्ते कीदृशा भवयुरित्युपिद्ध्यते॥

फिर वे कैसे हों, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

आ वो मुक्षू तनाय कं रुद्रा अवो वृणीमहा

गन्ता नूनं नोऽवसा यथा पुरेत्या वण्वास विभ्युषे॥७॥

आ। वः। मुक्षु। तनाय। कम्। रुद्रीः। अवः। वृणीमहे। गन्तं। नूनम्। नः। अवसा। यथां। पुरा। इत्था। कण्वाय। बि्भ्युषे॥७॥

पदार्थ:-(आ) समन्तात् (व:) युष्पाक्रम् (मक्षु) शीघ्रम्। ऋचि तुनुघमक्षु० इति दीर्घः। (तनाय) यः सर्वस्मै सिद्ध्या ध्रमीप्दशेच सुखानि तनोति तस्मै। अत्र बाहुलकादौणादिकोऽन् प्रत्ययः। इदं सायणाचार्थ्येण पचाद्यजिख्युद्धि व्याख्यातम्। कृतोऽच् स्वराभावेन वित्यादिर्नित्यम् इत्याद्युदात्तस्याभितितत्वात् (कम्) सुखम्। किमिति सुखनामसु पठितम्। (निघं०३.६) (ऋदाः) दुष्टरोदनकारकुर्श्चतुरुवत्वारिशद् वर्षकृतब्रह्मचर्यविद्याः (अवः) अवन्ति येन तद्रक्षणादिकम् (वृणीमहे) स्वीकुर्महे (भन्ते) प्राप्नुतः। अत्र द्वयचोऽतिस्तिङ इति दीर्घः। बहुलं छन्दिस इति शपो लुक्। तप्तनप्तन० इति तबादेश्य (नूनम्) निश्चतार्थे (नः) (अस्मभ्यम्) (अवसा) रक्षणादिना (यथा) येन प्रकारेण (पुरा) पूर्वं पुराकृत्ये वो (इत्या) अनेन प्रकारेण (कणवाय) मेधाविने (बिभ्युषे) भयं प्राप्ताय।।७।।

अन्वय:-हे रुद्रा! यथा वयं वोऽवसा मक्षु नूनं कं वृणीमह इत्था यूयं नोऽवो गन्त यथा चेश्वरी बिभ्युषे तनाय कण्वाय रक्षां विधत्ते तथा यूयं च मिलित्वाऽखिलप्रजाया: पालनं सततं विदध्याम्॥७॥

भावार्थः-अ्त्रोपमालङ्कारः। यथा मेधाविनो वाय्वादिद्रव्यगुणसम्प्रयोगेण भयं निषाय सुर्खिनो भवन्ति, तथाऽस्माभिरप्यनुष्ठेयमिति॥७॥

पदार्थ:-हे (फद्रा:) दुष्टों के रोदन कराने वाले ४४ वर्ष पर्यन्त अखिण्डल बहाच्ये सेवन से सकल विद्याओं को प्राप्त विद्वान् लोगो! (यथा) जैसे हम लोग (व:) आप लोगों के लिये (अवसा) रक्षादि से (मक्षु) शीघ्र (नूनम्) निश्चित (कम्) सुख को (वृणीमहे) सिद्ध करते हैं (इस्था) ऐसे तुम भी (न:) हमारे वास्ते (अव:) सुख वर्द्धक रक्षादि कर्म (गन्त) किया करो और जैसे ईश्वर (विभ्युषे) दुष्ट प्राणी वा दु:खों से भयभीत (तनाय) सबको सिद्धा और धर्म के उपदेश से सुख्यारक (कण्वाय) आप्त विद्वान् के अर्थ रक्षा करता है, वैसे तुम और हम मिलके सब प्रजा को रक्षा सद्दा किया करें॥७॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे मेधावी विद्वान लोग वायु आदि के द्रव्य और गुणों के योग से भय को निवारण करके तुरन्त सुखी होते हैं, वैसे हुम लोगों को भी होना चाहिये॥७॥

पुनः युष्पाभिस्तेभ्यः किं साध्यीयमित्युषद्विश्यते

फिर तुम को उन से क्या सिद्ध करना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

युष्मेषितो मरुतो मर्त्येषित आ यो नो अभ्व ईषते।

वि तं युयोत शर्वसा व्योजसा वि सुम्मकाभिक्तिभिः॥८॥

युष्माऽइषितः। मुक्तः। मर्त्येऽइषितः। आ। यः। नः। अभ्वः। ईषते। वि। तम्। युयोतः। शर्वसा। वि। ओजसा। वि। युष्माकाभिः। कुतिऽभिः॥द्वे।।

पदार्थ:-(युष्मेषित:) यो युष्माभिर्जेतुमिषित: सः। अत्र छान्दसो वर्णलोपो वा इति दकारलोपः। इमं सुगमपक्षं विहाय सायणाद्वार्येण प्रत्ययस्थ्रणादिकोलाहलः कृतः (मरुतः) ऋत्विजः। मरुत इति ऋत्विङ्नामसु पठितम्। (निष्ठ १८) (मर्त्येषितः) मर्त्यैः सेनास्थैरितरैश्चेषितो विजयः (आ) समन्तात् यः शत्रुः (नः) अस्मान् अश्वः) जो विरोधी मित्रो न भवित सः (ईषते) हिनस्ति (वि) विगतार्थे (तम्) शत्रुम् (युयोत) पृथक् कुरुत् अत्र बहुलं छन्दिस इति शपः श्लुः। तप्तनप्तन० इति तबादेशः। (शवसा) बलयुक्त-सैन्येन (वि) विविधार्थे (ओजसा) पराक्रमेण (वि) विशिष्टार्थे (युष्माकाभिः) युष्माभिरनुकिष्णिताभिः सेनाभिः (ऊतिभिः) रक्षाप्रीतितृप्त्यवगमप्रवेशयुक्ताभिः॥८॥

अन्यसः है मरुतो! यूयं योऽभ्वो युष्मेषितो मर्त्येषितः शत्रुर्नोऽस्मानीषते तं शवसा व्योजसा युष्माकाभिरुतिभिर्वियुयोत॥८॥

भावार्थः-मनुष्यैर्ये स्वार्थिनः परोपकारिवरहाः परपीडारता अरयः सन्ति तान् विद्याशिक्षाभ्यां क्रियां निवर्त्याऽथवा परमे सेनाबले सम्पाद्य युद्धेन विजित्य निवार्य सर्विहतं सुखं विस्तारणीयम्॥८॥

अष्टक-१। अध्याय-३। वर्ग-१८-१९

मण्डल-१। अनुवाक-८। सूक्त-३९

पदार्थ:-हे (मरुत:) विद्वानो! तुम (य:) जो (अभ्व:) विरोधी मित्र भाव रहित (युष्मेषित:) तुम लोगों को जीतने और (मर्त्येषित:) मनुष्यों से विजय की इच्छा करने वाला शत्रु (न:) हुए लोगों को (ईषते) मारता है, उसको (शवसा) बलयुक्त सेना वा (व्योजसा) अनेक प्रकार के पराव्रम और (युष्माकाभि:) तुम्हारी कृपापात्र (ऊतिभि:) रक्षा, प्रीति, तृप्ति, ज्ञान आदिकों से खुक्त सेनाओं से (वियुयोत) विशेषता से दूर कर दीजिये॥८॥

भावार्थ:-मनुष्यों को उचित है कि जो स्वार्थी, परोपकार से रहितृ दूसरे को पीड़ा देने में अत्यन्त प्रसन्न शत्रु हैं, उनको विद्या वा शिक्षा के द्वारा खोटे कर्मी से निवृत्त कर वा उत्तम सेना बल को सम्पादन कर, युद्ध से जीत, उनका निवारण करके सब के हित का विस्तार करने चीहिये॥८॥

पुनस्तच्छोधिताः प्रेरिताः किं किं साध्नुवन्तीत्युप्रदेश्यते॥

फिर उन से शोधे वा प्रेरे हुए वे क्या-क्या करें, इस विषय क उपदेश अंगलें मन्त्र में किया है॥

असामि हि प्रयज्यवः कण्वं दुद प्रचेतसः।

असामिभिर्मरुत आ न ऊतिभिर्गन्ता वृष्टिं न विद्याना शो

असोमि। हि। प्रऽयुज्युवः। कण्वम्। दुद। प्रऽयुत्सः। असोमिऽभिः। मुरुतः। आ। नः। कृतिऽभिः। गन्तं। वृष्टिम्। न। विऽद्युतंः॥९॥

पदार्थ:-(असामि) सम्पूर्णम्। सामीति खुण्डवाची न साम्यसामि (हि) खलु (प्रयज्यवः) प्रकृष्टो यज्य परोपकाराख्यो यज्ञो येषां राजपुरुषाणां तत्सम्बुद्धी (कण्वम्) मेधाविनं विद्यार्थिनम् (दद) दत्त। अत्र लोडर्थे लिट्। (प्रचेतसः) प्रकृष्टं चेतो ज्ञानं येषां तो (असामिभिः) क्षयरिहताभिः रीतिभिः। अत्र षै क्षय इत्यस्माद् बाहुलकादौणादिको मि प्रत्ययेश (मस्तः) पूर्णबला ऋत्विजः (आ) समन्तात् (नः) अस्मभ्यम् (ऊतिभिः) रक्षादिभिः (गन्त) गुळ्ता अत्र दीर्घः। (वृष्टिम्) वर्षाः (न) इव (विद्युतः) स्तनयित्नवः॥९॥

अन्वय:-हे प्रयज्यवः प्रेचित्सो मरुत्रे यूयं सामभिरुतिभिर्न विद्युतो वृष्टिं नोऽसामि सुखं सर्वस्मै दद हि किल शत्रुविजयाय क्रुष्वमागुन्त ॥९॥

भावार्थ:-अत्रोपमाल्ड्राम्। यथा मरुतः सूर्यविद्युतश्च वृष्टिं कृत्वा सर्वेषां प्राणिनां सुखाय विविधानि फलपृत्रपुष्पदीन्युत्पादयन्ति। तथैव विद्वांसः सर्वेभ्यो मनुष्येभ्यो वेदविद्यां दत्त्वा सुखानि सम्पादयत्वितिग्रारः॥

प्दार्थ:-हैं (प्रयेज्वय:) अच्छे प्रकार परोपकार करने (प्रचेतस:) उत्तम ज्ञानयुक्त (मरुत:) विद्वान् द्वीरागे! तुम (असामिभि:) नाशरहित (ऊतिभि:) रक्षा सेना आदि से (न) जैसे (विद्युत:) सूर्य, बिजुती आदि (वृष्टिम्) वर्षा कर सुखी करते हैं, वैसे (न:) हम लोगों को (असामि) अखण्डित सुख

(दद) दीजिये (हि) निश्चय से दुष्ट शत्रुओं को जीतने के वास्ते (कण्वम्) और आप्त विद्वान् के समीपे नित्य (आगन्त) अच्छे प्रकार जाया कीजिए॥९॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे पवन, सूर्य, बिजुली आदि वर्षा करके सब प्राणिशें के सुख के लिये अनेक प्रकार के फल, पत्र, पुष्प, अन्न आदि को उत्पन्न करते हैं, वैसे विद्वान खाँग भी सब प्राणिमात्र को वेदविद्या देकर उत्तम-उत्तम सुखों को निरन्तर सम्पादन करें॥९॥

पुनस्ते किं कुर्युरित्युपदिश्यते॥

फिर वे क्या करें, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।

असाम्योजो बिभृथा सुदान्वोऽसामि धूतयः शर्वः।

ऋषिद्विषे मरुतः परिमन्यव इषुं न सृजत द्विषम्॥१०॥११॥

असामि। ओर्जः। बि्भृष्य। सुऽदानवः। असामि। धृतयः। शर्वः। ऋषिऽद्विष्टे मुरुतः। परिमन्यवे। इषुंम्। न। सुजतः। द्विषम्॥ १०॥

पदार्थ:-(असामि) अखिलम् (ओज:) विद्याप्यक्रमम् (विभूष्ट) धरत तेन पुष्यत वा। अत्र अन्येषामिण इति दीर्घ:। (सुदानव:) शोभनं दानुर्दानं येषां (तत्मम्बुद्धौ (असामि) पूर्णम् (धूतय:) ये धून्वन्ति ते (शव:) बलम् (ऋषिद्विषे) वेदवेदिविषयिक्षरिकरोधिनं दुष्टाय मनुष्याय (मरुत:) ऋत्विजः (परिमन्यव:) परितः सर्वतो मन्युः क्रोधो येषां वीराणां ते (अधुम्) बाणादिशस्त्रसमूहम् (न) इव (सृजत) प्रक्षिपत (द्विषम्) शत्रुम्॥१०॥

अन्वय:-हे धूतयः सुदानवो महत्त्र ऋत्विजे ! यूयं परिमन्यवो द्विषं शत्रुं प्रतीषुं शस्त्रसमूहं प्रक्षिपन्ति नर्षिद्विषेऽसाम्योजोऽसामि शृत्रो बिभूध ब्रह्मद्विषं शत्रुं प्रति शस्त्राणि सृजत प्रक्षिपत॥१०॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार: यथो धार्मिका जातक्रोधाः शूरवीराः शस्त्रप्रहारैः शत्रून् विजित्य निष्कण्टकराज्यं प्राप्य प्रजाः सुखयन्ति। तथैव सर्वे मनुष्या वेदविद्याविद्वदीश्वरद्वेष्ट्न् प्रत्यखिलाभ्यां बलपराक्रमाभ्यां शस्त्राऽस्त्राणि प्रक्षिप्यैतान् चिजित्य वेदविद्येश्वरप्रकाशयुक्तं राज्यं निष्पादयन्तु॥१०॥

अत्र वायुविद्वद्र्रुणिवृर्णनेत्र्र्णूर्वसूक्तार्थेन सहास्य सङ्गतिरस्तीति बोध्यम्।

इत्येको नचत्वारिशं सूक्तमेकोनविशो वर्गश्च समाप्त:॥

पदार्थ: हैं (धूतय) दुष्टों को कम्पाने (सुदानवः) उत्तम दान स्वभाव वाले (मरुतः) विद्वान् लोगो! तुम (त्र) जैसे (पिरमन्यवः) सब प्रकार क्रोधयुक्त शूरवीर मनुष्य (द्विषम्) शत्रु के प्रति (इषुम्) बाण आदि शस्त्र प्रमूहों को छोड़ते हैं, वैसे (ऋषिद्विषे) वेद, वेदों को जानने वाले और ईश्वर के विरोधी दुष्ट मनुष्यों के लिसे (असामि) अखिल (ओजः) विद्या पराक्रम (असामि) सम्पूर्ण (शवः) बल को (बिभूथ) धरण करो और उस शत्रु के प्रति शस्त्र वा अस्त्रों को (सृजत) छोड़ो॥१०॥

अष्टक-१। अध्याय-३। वर्ग-१८-१९

मण्डल-१। अनुवाक-८। सूक्त-३९

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे धार्मिक शूरवीर मनुष्य क्रोध को उत्पन्न कर शस्त्रों के प्रहारों से शत्रुओं को जीत निष्कण्टक राज्य को प्राप्त होकर प्रजा को सुखी करते हैं, वैसे ही सब मनुष्य वेद, विद्वान् वा ईश्वर के विरोधियों के प्रति सम्पूर्ण बल पराक्रमों से शस्त्र को छोड़, उनकी जीत कर, ईश्वर वेद विद्या और विद्वान् युक्त राज्य का सम्पादन करें॥१०॥

इस सूक्त में वायु और विद्वानों के गुण वर्णन करने से पूर्व सूक्तार्थ के साध इस सूक्त के अर्थ की सङ्गति जाननी चाहिये।

यह उनतालीसवां सूक्त और उन्नीसवां वर्ग समाप्त हुआ॥ ३ ११। १९॥

अथाष्टर्चस्य चत्वारिंशस्य घोरपुत्रः कण्व ऋषिः। ब्रह्मणस्पतिर्देवता। २,८ निचृदुपरिष्टाद् बृहती छन्दः। ५ पथ्या बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः। ३,७ आर्ची त्रिष्टप् छन्दः। धैवतः स्वरः। ४,६

> शतः पङ्क्तिर्निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥ पुनर्मनुष्यैर्वेदविदङ्कथमुपदिशेदित्युपदिश्यते॥

फिर मनुष्यों को उचित है कि वेदविद जनों को कैसे उपदेश करें, इस विषय का उपदेश अपने मन्त्र में किया है।।

उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवयन्तस्त्वेमहे।

उपु प्र यन्तु मुरुतः सुदानेव इन्द्रं प्राशूर्भवा सर्चा॥ १॥

उत्। तिष्ठु। ब्रह्मणुः। पते। देवऽयन्तेः। त्वा। ईमहे। उप। प्रा येन्तुः मस्तः। सुर्दानेवः। इन्द्री प्राशूः। भवा सर्चा॥१॥

पदार्थ:-(उत्) उत्कृष्टार्थे (तिष्ठ) (ब्रह्मणः) वेदस्य (पते) स्वर्गमन् (देवयन्तः) सत्यविद्याः कामयमानाः (त्वा) त्वाम् (ईमहे) जानीमः (उप) सामीप्र्ये (प्र) प्रतितार्थे (यन्तु) प्राप्नुवन्तु (मरुतः) आर्त्विजीना विद्वांसः (सुदानवः) शोभनं दानुर्दानं येषां ते (इन्ह्रे) विद्यादिपरमैश्वर्यप्रद (प्राश्नूः) यः प्राश्नुते प्रकृष्टतया व्याप्नोति सः (भव) द्वयचोऽतस्तिङ इति विद्विः। (सवः) समवेतेन विज्ञानेन॥१॥

अन्वय:-हे ब्रह्मणस्पत इन्द्र! यथा सचा सिंह देवयन्त्रः सुदानवो मरुतो वयं त्वेमहे यथा च सर्वे जना उपप्रयन्तु तथा त्वं प्राशुः सर्वसुखप्रापको भव सर्वस्य/हितायोत्तिष्ठ॥१॥

भावार्थ:-मनुष्या यत्नतो बिहुत्सङ्गसेवार्विद्यायोगधर्मसर्वोपकाराद्युपायै: सर्वविद्याधीशस्य परमेश्वरस्य विज्ञानेन प्राप्तानि सर्वाणि स्रुखानि प्राप्तव्यानि प्रापयितव्यानि च॥१॥

पदार्थ:-हे (ब्रह्मणस्पते) वेद के रक्षा करने वाले (इन्द्र) अखिल विद्यादिपरमैश्वर्ययुक्त विद्वन्! जैसे (सचा) विज्ञान से (देवयन्तः) सत्य विद्याओं की कामना करने (सुदानवः) उत्तम दान स्वभाव वाले (मरुतः) विद्याओं के सिद्धान्तों के प्रचार के अभिलाषी हम लोग (त्वा) आप को (ईमहे) प्राप्त होते और जैसे सब धार्मिक जन अप्रिक्तु) समीप आवें, वैसे आप (प्राश्नूः) सब सुखों के प्राप्त कराने वाले (भव) हूजिये और सब के हिंताओं प्रयत्न कीजिये॥१॥

भावार्थ: इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। सब मनुष्य अति पुरुषार्थ से विद्वानों का संग, उनकी सेवा विद्वान, योग, धर्म और सब का उपकार करना आदि उपायों से समग्र विद्वाओं के अध्येता, परमात्मा क्रे विद्वान और प्राप्ति से सब मनुष्यों को प्राप्त हों और इसी से अन्य सबको सुखी करें॥१॥

पुनरेतै: परस्परं कथं वर्त्तितव्यमित्याह॥

फिर ये लोग आपस में कैसे वर्त्तें, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अष्टक-१। अध्याय-३। वर्ग-२०-२१

मण्डल-१। अनुवाक-८। सूक्त-४०

त्वामिद्धि संहसस्पुत्र मर्त्यं उपब्रूते धर्ने हिते। सुवीर्यं मरुत आ स्वश्व्यं दधीत यो व आचुके॥२॥

त्वाम् इत्। हि। सहसः। पुत्र। मर्त्यः। उपुऽब्रूते। धर्ने। हिते। सुऽवीर्यम्। मुरुतः। और सुऽअश्व्यम्। दधीत। यः। वुः। आऽचुके॥२॥

पदार्थ:-(त्वाम्) (इत्) एव (हि) खलु (सहसः) शरीरात्मबलयुक्तस्य विदुषः (पुत्र) मर्त्यः) मनुष्यः (उपबूते) सर्वा विद्यामुपदिशेत् (धने) विद्यादिगुणसमूहे (हिते) सुखसम्पादके (सुवीर्यम्) शोभनं वीर्यं पराक्रमो यस्मिस्तत् (मरुतः) धीमन्तो जनाः (आ) समन्तात् (स्वश्ब्यम्) शोभनेष्वश्वेषु विद्याव्याप्तविषयेषु साधुम् (दधीत) धरत (यः) विद्वान्/ (वः) युष्मान् (आचके) सर्वतस्सुखैस्तर्पयेत्॥२॥

अन्वय:-हे सहसस्पुत्र! यो मर्त्यो विद्वांस्त्वामुपब्रूते हे मरुतो सूत्रं यो वो हिते धन आचके तस्मादेव स्वश्व्यं वीर्यं यूयं दधत॥२॥

भावार्थ:-मनुष्या अध्ययनाऽध्यापनादिव्यवहारेणैव प्रयूपिरमुपैकृत्य सुखिनः सन्तु॥२॥

पदार्थ:-हे (सहसस्पुत्र) ब्रह्मचर्य और विद्यादि गुणों से शरीर आत्मा के पूर्ण बलयुक्त के पुत्र! (य:) जो (मर्त्य:) विद्वान् मनुष्य (त्वाम्) तुझ को सब विद्या (उपब्रूते) पढ़ाता हो और (मरुत:) बुद्धिमान् लोगो! आप जो (व:) आप लोगों को (हिते) किल्याणकार्रक (धने) सत्यविद्यादि धन में (आचके) तृप्त करे (इत्) उसी के लिये (स्वश्व्यम्) उत्तम विद्या विषुत्रों में उत्पन्न (सुवीर्यम्) अत्युत्तम पराक्रम को तुम लोग धारण करो॥२॥

भावार्थ:-मनुष्य लोग पढ़ने-पढ़ाने ऑर्दि धर्मयुक्त कर्मों ही से एक-दूसरे का उपकार करके सुखी हों॥२॥

पुनस्तुै: मिथ्यः कथं वर्तितव्यमित्याह॥

फिर ये लोग अनुयोऽन्य क्रेसी वर्ती, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

प्रेतु ब्रह्मणस्पतिः प्रदेखेतु सूनृतां।

अच्छा वीरं नर्यं पुङ्कितराधसं देवा युज्ञं नयन्तु नः॥३॥

प्रा क्तुं। ब्रह्मणः। पर्तिः। प्रा देवी। एतुः। सूनृतां। अच्छं। वीरम्। नर्यम्। पुङ्क्तिऽराधसम्। देवाः। युज्ञम्। नुयुन्तु। नुः। ३५।

पदार्थ:-(प्र) प्रकृष्टार्थे (एतु) प्राप्नोतु (ब्रह्मणः) चतुर्वेदविदः (पतिः) पालयिता (प्र) प्रतीतार्थे (देवी) सर्वस्मास्त्रबोधेन देदीप्यमाना (एतु) प्राप्नोतु (सूनृता) प्रियसत्याचरणलक्षणवाणीयुक्ता (अच्छ)

शुद्धार्थे। अत्र निपातस्य च (अष्टा॰६.३.१३६) इति दीर्घः। (वीरम्) पूर्णशरीरात्मबलप्रदम्। (नयम्) नरेषु साधुं हितकारिणम् (पङ्क्तिराधसम्) यः पङ्क्तीर्धर्मात्मवीरमनुष्यसमूहान् राध्नोति यद्वा पङ्क्त्यर्थं राधोऽत्रं यस्य तम् (देवाः) विद्वांसः (यज्ञम्) पठनपाठनश्रवणोपदेशाख्यम् (नयन्तु) प्राप्यन्तु (नः) अस्मान्॥३॥

अन्वय:-हे विद्वन्! ब्रह्मणः पतिर्भवान् यं पङ्क्तिराधसं नर्यमच्छा वीरं सुख्रप्रापकं येतं प्रैतु। हे विदुषि! सूनृता देवी सती भवत्यप्येतं प्रैतु तं नो देवाः प्रणयन्तु॥३॥

भावार्थ:-सर्वेर्मनुष्यैरिदं कर्त्तव्यमाकांक्षितव्यं च यतो विद्यावृद्धिः स्यादिति॥ ३॥

पदार्थ:-हे विद्वान्! (ब्रह्मणः) वेदों का (पितः) प्रचार करने वाले जिस (पङ्क्तिराधसम्) धर्मात्मा और वीर पुरुषों को सिद्धकारक (अच्छावीरम्) शुद्ध पूर्ण शाग्ने आप क्रियुक्त वीरों की प्राप्ति के हेतु (यज्ञम्) पठन-पाठन, श्रवण आदि क्रियारूप यज्ञ को (प्रेतु) प्राप्त होते और हे विद्यायुक्त स्त्री! (सूनृता) उस वेदवाणी की शिक्षा सहित (देवी) सब विद्या सुशीलता से प्रकाशमान होकर आप भी जिस यज्ञ को प्राप्त हो, उस यज्ञ को (देवाः) विद्वान् लोग (नः) हम लोगों को (प्रणयन्तु) प्राप्त करावें॥३॥

भावार्थ:-सब मनुष्यों को ऐसी इच्छा करनी चाहिए कि जिस्सूल विद्या की वृद्धि होती जाये॥३॥

विद्वद्भिरितरैर्मनुष्यैश्च परस्पारं कि कर्त्तस्याप्रत्युपदिश्यते॥

विद्वान् और अन्य मनुष्यों को एक दूसरे के साथ क्यो कर्रना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले/मध्य में क्यिय है॥

यो वाघते ददाित सूनरं वसु स् धते अक्षिति श्रवं:। तस्मा इळां सुवीरामा यंजामहे सुप्रतृतिमन्हसंम्॥४॥

यः। वाघते। दर्दाति। सून्त्रम्। वस् । सः। ध्ते। अक्षिति। श्रवः। तस्मै। इळाम्। सुऽवीराम्। आ। युजामहे। सुऽप्रतूर्तिम्। अनेहस्मम्॥ ।

पदार्थ:-(य:) मनुष्यः (कायते) ऋतिजे (ददाति) प्रयच्छिति (सूनरम्) शोभना नरा यस्मातत् (वसु) धनम्। वस्विति धननामसु पठितम्। (निघं०२.१०) (स:) मनुष्यः (धत्ते) धरित (अक्षिति) अविद्यमानाक्षितिः क्षयो यस्य तत् (श्रवः) शृण्वन्ति सर्वा विद्या येनान्नेन तत् (तस्मै) मनुष्याय (इडाम्) पृथिवीं वाणीं वा (स्वीराम्) शोभना वीरा यस्यां ताम् (आ) समन्तात् (यजामहे) प्राप्नुयाम् (सुप्रतूर्तिम्) सुष्ठु प्रकृष्टा तृतिस्वरिता प्राप्तिर्यया ताम् (अनेहसम्) हिंसितुमनर्हां रक्षितुं योग्याम्॥४॥

अन्वयः यो मनुष्यो वाघते सूनरं वसु ददाति यामनेहसं सुप्रतूर्त्तिं सुवीरामिडां वयमायजामहे तेन तया च सारक्षिति श्रवो धत्ते॥४॥

भावार्थः-यो मनुष्यः शरीरवाङ्मनोभिर्विदुषः सेवते स एवाक्षयां विद्यां प्राप्य पृथिवीराज्यं भुक्त्वा जुक्तमाप्नोति। ये वाग्विद्यां प्राप्नुवन्ति ते विद्वांसोऽन्यान् विदुषः कर्त्तुं शक्नुवन्ति नेतरे॥४॥ अष्टक-१। अध्याय-३। वर्ग-२०-२१

मण्डल-१। अनुवाक-८। सूक्त-४०

पदार्थ:-(य:) जो मनुष्य (वाघते) विद्वान् के लिये (सूनरम्) जिससे उत्तम मनुष्य हों उस् (वसु) धन को (ददाति) देता है और जिस (अनेहसम्) हिंसा के अयोग्य (सुप्रतूर्तिम्) उत्तमता से श्रीष्ठ प्राप्ति कराने (सुवीराम्) जिससे उत्तम शूरवीर प्राप्त हों (इडाम्) पृथिवी वा वाणी को हम लीग (आयजामहे) अच्छे प्रकार प्राप्त होते हैं, उससे (स:) वह पुरुष (अक्षिति) जो कभी क्षीणतो को न प्राप्त हो उस (श्रवः) धन और विद्या के श्रवण को (धने) धारण करता है॥४॥

भावार्थ:-जो मनुष्य शरीर, वाणी, मन और धन से विद्वानों का सेवृत करता है, वही अक्षय विद्या को प्राप्त हो और पृथिवी के राज्य को भोग कर मुक्ति को प्राप्त होता है। जो पुरुष वाणी, विद्या को प्राप्त होते हैं, वे विद्वान् दूसरे को भी पण्डित कर सकते हैं, आलसी अविद्वान् पूरुष नहीं॥४॥

अथेश्वर: कीदृश इत्युपदिश्यते।

अब ईश्वर कैसा है, उसका उपदेश अगले मृन्त्र में किया है।।

प्र नूनं ब्रह्मण्एस्पतिर्मन्त्रं वदत्युक्थ्यम्।

यस्मित्रिन्द्रो वर्रुणो मित्रो अर्युमा देवा ओकां पि क्विक्रेसे। ५॥२०॥

प्रा नूनम्। ब्रह्मणः। पर्तिः। मन्त्रम्। वृद्दति। उवस्यम्। यस्मिन्। इन्द्रः। वर्रुणः। मित्रः। अर्युमा। देवाः। ओकांसि। चुक्रिरे॥५॥

पदार्थ:-(प्र) (नूनम्) निश्चये (ब्रह्मण्डः) बृहतो जगतो वेदस्य वा (पितः) न्यायाधीशः स्वामी (मन्त्रम्) वेदस्थमन्त्रसमूहम् (वदित) उष्ट्रिशति (ज्रब्ध्यम्) वक्तुं श्रोतुं योग्येषु ऋग्वेदादिषु भवम् (यस्मिन्) जगदीश्वरे (इन्द्रः) विद्युत् (व्रक्ष्णः) चनुद्रसमुद्रतारकादिसमूहः (मित्रः) प्राणः (अर्घ्यमा) वायुः (देवाः) पृथिव्यादयो लोका विद्वांसो वा (ओकांसि) गृहाणि (चिक्ररे) कृतवन्तः सन्ति॥५॥

अन्वय:-यो ब्रह्मणस्पितिशिश्वरो नूनेपुक्थ्यं मन्त्रं प्रवदित यस्मिन्निन्द्रो वरुणो मित्रो अर्य्यमा देवाश्चौकांसि चिक्रिरे तमेव वर्ष्य अज्ञामहे॥५॥

भावार्थ:-हे मनुष्या चेनेश्वरेण वेदा उपदिष्टा यः सर्वजगदिभव्याप्य स्थितोऽस्ति, यस्मिन् सर्वे पृथिव्यादयो लोकास्तिष्टन्ति, मुक्तिसमये विद्वांसश्च निवसन्ति, स एव सर्वैर्मनुष्यैरुपास्योऽस्ति, न चास्माद्भिन्नोऽन्यः प्रभू।

पदार्थ्य जो (ब्रह्मणस्पितः) बड़े भारी जगत् और वेदों का पित स्वामी न्यायाधीश ईश्वर (नूनम्) निश्चय कृरके (ज्ञस्थम्) कहने-सुनने योग्य वेदवचनों में होने वाले (मन्त्रम्) वेदमन्त्र समूह का (प्रवदित्र) उपदेश करता है वा (यस्मिन्) जिस जगदीश्वर में (इन्द्रः) बिजुली (वरुणः) समुद्र, चन्द्र, तारे आद्वि लोकार्त्तर (मित्रः) प्राण (अर्थमा) वायु और (देवाः) पृथिवी आदि लोक और विद्वान् लोग (जीकांसि) स्थानों को (चिक्रिरे) किये हुए हैं, उसी परमेश्वर का हम लोग सत्कार करें॥५॥

भावार्थ:-मनुष्यों को उचित है कि जिस ईश्वर ने वेदों का उपदेश किया है, जो सब जगत् में व्याप्त होकर स्थित है, जिसमें सब पृथिवी आदि लोक रहते और मुक्ति समय में विद्वान् लोग निवास करते हैं, उसी परमेश्वर की उपासना करनी चाहिये, इससे भिन्न किसी की नहीं॥५॥

 \bigcirc

अथ सर्वमनुष्याऽर्था वेदाः सन्तीत्युपदिश्यते॥

अब अगले मन्त्र में सब मनुष्यों के लिये वेदों के पढ़ने का अधिकार है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

तिमद्वीचेमा विद्धेषु शुंभुवं मन्त्रं देवा अनेहस्मम्।

ट्टमां च वाचं प्रतिहर्यथा नरो विश्वेद्वामा वो अश्नवत्॥६॥

तम्। इत्। वोचेम्। विदर्थेषु। शृम्ऽभुवंम्। मन्त्रम्। देवाः। अनेहस्म्। इमाम्। यः। वार्चम्। प्रतिऽहर्यथः। नरः। विश्वां। इत्। वामा। वः। अश्नवत्॥६॥

पदार्थ:-(तम्) वेदम् (इत्) एव (वोचेम) उपिद्रश्रेमें। अन्येष्गर्मिप इति दीर्घः। (विद्येषु) विज्ञानेषु पठनपाठनव्यवहारेषु कर्तव्येषु सत्सु। विद्यानि वेदमिनि विद्यानि प्र चोदयादित्यिप निगमो भवित। (निरु०६.७) (शंभुवम्) शं कल्याणं यस्मप्रता। अत्र शम्युपपदे भुवः संज्ञान्तरयोः (अष्टा०३.२.१७९) इति क्विप् कृतो बहुलम् इति हेती (मन्त्रम्) मन्यन्ते गुप्ताः पदार्थाः परिभाषन्ते येन तम्। मन्त्रा मननात्। (निरु०७.१२) (देवाः) विद्वानः (अनेहस्सम्) अहिंसनीयं सर्वदा रक्ष्यं निर्दोषम्। अत्र निर्वे हन एह च। (उणा०४.२३१) इति नञ्जूविकस्य हुन् धातोः प्रयोगः। (इमाम्) वेदचतुष्ट्यीम् (च) सत्यविद्यान्वयसमुच्चये (वाचम्) वाणीम् (प्रतिहर्यथ्य) पुनः पुनर्विजानीथ। अत्र अन्येषामिप इति दीर्घः। (नरः) विद्यानेतारः (विश्वा) सर्वा (इत्र) यदि (वामा) प्रशस्ता वाक्। वाम इति प्रशस्यनामसु पठितम्। (निघं०३.८) (वः) युष्मान् युष्मश्यं वा (अञ्चवत्) प्राप्नुयात्। अयं लेट् प्रयोगो व्यत्ययेन परस्मैपदं च॥६॥

अन्वय:-हे देवा विद्वासी! वो युष्पश्य वयं विदथेषु यमनेहसं मन्त्रं वोचेम तिमद्यूयं विजानीत। हे नरो! यूयिमद्यदीमां वास प्रति हुर्ग्य तिहैं विश्वा सर्वा वामा प्रशस्तेऽयं वाक् वो युष्मानश्नवत् व्याप्नुयात्॥६॥

भावार्थः विद्विद्धिविद्याप्रचाराय सर्वेभ्यो मनुष्येभ्यो नित्यं सार्थाः साङ्गाः सरहस्याः सस्वरहस्तिक्र्या वेदा उपदेष्टव्याः। यदि किश्चित्सुखिमच्छेत्सङ्गेन वेदिवद्यां प्राप्नुयात्। नैतया विना कस्यचित्सूत्यं सुखं भवित। तस्मादध्यापकैरध्येतृभिश्च प्रयत्नेन सकला वेदा ग्राहियतव्या ग्रहीतव्यस्त्रितेत॥६॥

पदार्थ:-हे (देवा:) विद्वानो! (व:) तुम लोगों के लिये हम लोग (विदथेषु) जानने योग्य पढ़ने-प्रद्वाने अदि व्यवहारों में जिस (अनेहसम्) अहिंसनीय सर्वदा रक्षणीय दोषरहित (शंभुवम्) अष्टक-१। अध्याय-३। वर्ग-२०-२१

मण्डल-१। अनुवाक-८। सूक्त-४०

कल्याणकारक (मन्त्रम्) पदार्थों को मनन कराने वाले मन्त्र अर्थात् श्रुति समूह को (वोचेम) उपदेश करें। (तम्) उस वेद को (इत्) ही तुम लोग ग्रहण करो (इत्) जो (इमाम्) इस (वाचम्) विद्वार्णों को (प्रतिहर्य्यथ) बार-बार जानो तो (विश्वा) सब (वामा) प्रशंसनीय वाणी (व:) तुम लोगों को (अश्ववित्) प्राप्त होवे॥६॥

भावार्थ:-विद्वानों को योग्य है कि विद्या के प्रचार के लिये मनुष्यों को निरन्तर अर्थ अङ्ग, उपाङ्ग, रहस्य, स्वर और हस्तिक्रया सिहत वेदों को उपदेश करें और ये लूंगी अर्थात मनुष्यमात्र इन विद्वानों से सब वेद विद्या को साक्षात् करें। जो कोई पुरुष सुख चाहे तो वह बिद्वानों के सँग से विद्या को प्राप्त करे तथा इस विद्या के विना किसी को सत्य सुख नहीं होता, इससे प्रवृति-पृद्धीने वालों को प्रयत्न से सकल विद्याओं को ग्रहण करना वा कराना चाहिये॥६॥

कश्चिदेव विद्वांसं प्राप्य विद्याग्रहणं कर्त्तुं शक्तीतीत्युपदिश्यते॥

कोई ही मनुष्य विद्वान् मनुष्य को प्राप्त होकर विद्या को फ्रहण कर स्कृता है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।

को देवयन्तमश्नवज्जनं को वृक्तबर्हिषम्।

प्रप्रं दाश्वान् पुस्त्याभिरस्थितान्तुर्वावृत् क्षयं द्धेभ्राष्ट्रा।

कः। देवऽयन्तेम्। अञ्चवत्। जर्नम्। कः। वृक्तऽवैहिषम्। प्रऽप्रं। दाश्चान्। पुस्त्यांभिः। अस्थित्। अन्तःऽवार्वत्। क्षयंम्। दुधे॥७॥

पदार्थ:-(क:) कश्चिदेव (देवयन्प) देवानां कामियतारम् (अश्नवत्) प्राप्नुयात्। लेट् प्रयोगोऽयम्। (जनम्) सकलिव्धाऽ विभूतम् (क:) कश्चिदेव (वृक्तबर्हिषम्) सर्वविद्यासु कुशलमृत्विजम् (प्रप्र) प्रत्यर्थे। अत्र प्रसमुपोदः पादपूरणे। (अष्टा०८.१.६) इति द्वित्वम्। (दाश्चान्) दानशीलः (पस्त्याभिः) पस्त्यूपि गृहाणि विद्यन्ते यासु भूमिषु ताभिः। पस्त्यमिति गृहनामसु पठितम्। (निघं०३.४) ततः अर्श्वभिदेश्योऽस् (अष्टा०५.२.१२७) (अस्थित) प्रतिष्ठते (अन्तर्वावत्) अन्तर्मध्ये वाति गच्छिति सोऽन्तर्वा ष्ययुः सोविद्यते यस्मिन् गृहे तत् (क्षयम्) क्षियन्ति निवसन्ति यस्मिँस्तत्। अत्र क्षि निवासगत्योरित्यस्मात् एरच्। (अष्टा०३.३.५६) इत्यच्। भयादीनामिति वक्तव्यम्। (अष्टा०३.३.५६) इति नपुंसकत्वमू। (क्ष्ये) धरत्। (अत्र) लिङ्थें लिट्॥७॥

इ७. इत्यनेन पत्वर्थीयोऽच्। सं०

अन्वय:-को मनुष्या देवयन्तं कश्च वृक्तबर्हिषं जनमश्नवत् प्राप्नुयात् को दाश्वान् प्रास्थिते प्रतिष्ठिते को विद्वान् पस्त्याभिरन्तर्वावत् क्षयं गृहं दधे धरेत्॥७॥

भावार्थ:-नैव सर्वे मनुष्या विद्याप्रचारकामं विद्वांसं प्राप्नुवन्ति निह समस्ता दाश्वांसो भूत्वा सर्वेतुं सुखं गृहं धर्तुं शक्नुवन्ति, किन्तु कश्चिदेव भाग्यशाल्येतत्प्राप्तुमर्हतीति॥७॥

पदार्थ:-(क:) कौन मनुष्य (देवयन्तम्) विद्वानों की कामना करते और (क:) कौन (वृक्तबर्हिषम्) सब विद्वाओं में कुशल सब ऋतुओं में यज्ञ करने वाले (जनम्) सकल विद्याओं में प्रकट हुए मनुष्य को (अश्नवत्) प्राप्त तथा कौन (दाश्चान्) दानशील पुरुष (प्रास्थित) प्रतिष्ठा को प्राप्त होवे और कौन (पस्त्याभि:) उत्तमगृह वाली भूमि में (अन्तर्वावत्) सब के अन्तर्भत् चलने वाले वायु से युक्त (क्षयम्) निवास करने योग्य घर को (दधे) धारण करे॥७॥

भावार्थ:-सब मनुष्य विद्या प्रचार की कामना वाले उत्तम विद्वान को नहीं प्राप्त होते और न सब दानशील होकर सब ऋतुओं में सुखरूप घर को धारण कर सकत हैं, किन्तू कोई ही भाग्यशाली विद्वान् मनुष्य इन सबको प्राप्त हो सकता है॥७॥

एतल्लक्षणस्य विदुषः कीदृशं राज्यं भवतीत्युप्रदिश्यते॥

ऐसे विद्वान् का कैसा राज्य होता है, इस विष्युय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

उप क्ष्रत्रं पृञ्चीत हन्ति राजिभिर्भये चित्सुक्षिति देथे। नास्य वर्ता न तंरुता महाधुने नाभे अस्ति वुक्रिणी:॥८॥२१॥

उपं। क्षुत्रम्। पृञ्चीत। हन्ति। राजंऽभिः। भयो। र्ष्यित्। सुऽक्षितिम्। दुधे। न। अस्य। वर्ता। न। तुरुता। महाऽधुने। न। अभें। अस्ति। वृज्ञिणः॥८००

पदार्थ:-(उप) सामीप्ये (ध्रत्रम्) राज्यम् (पृञ्चीत) सम्बध्नीत (हन्ति) नाशयति (राजिभः) राजपूतैः सह (भये) बिभेति यस्मात्तस्मिन् (चित्) अपि (सुक्षितिम्) शोभना क्षितिर्भूमिर्यस्मिन् व्यवहारे तम्। अत्र लोपस्त आत्मनेपदेषु इति त लोपः। (न) निषेधार्थे (अस्य) पूर्वोक्तलक्षणाऽन्वितस्य सर्वसभाध्यक्षस्य (वर्ता) विमरिषर्विता। अत्र वृणोतेस्तृच् छन्दस्युभयथा इति सार्वधातुकत्वादिङभावः। (न) निषेधार्थे (तरुता) संस्मन्निकर्ता। अत्र ग्रस्ति० (अष्टा०७.२.२४) इति निपातनम्। (महाधने) पुष्कलधनप्रापके स्रीपामे (अभे) अल्पे युद्धे (अस्ति) भवति (विज्ञणः) बिलनः। वज्रो वै वीर्यम्। (शत० ७.४.२.२४)।

अन्वयः धः क्षत्रं पृञ्चीत सुक्षितिं दधेऽस्य विज्ञणो राजिभः सङ्गे भये स्वकीयान् जनाञ्च्छत्रुर्न हन्ति महाभूने युद्धे वर्त्ता विपरिवर्त्तयिता नास्त्यर्भे युद्धे चिदिप तरुता बलस्योल्लङ्घयिता नास्ति॥८॥

भावार्थः-ये राजपुरुषा महाधनेऽल्पे वा युद्धे शत्रून् विजित्य बध्वा वा निवारियतुं धर्मेण राज्यं भत्वियतुं शक्नुवन्ति, त इहानन्दं भुक्त्वा प्रेत्यापि महानन्दं भुञ्जते॥८॥ अष्टक-१। अध्याय-३। वर्ग-२०-२१

मण्डल-१। अनुवाक-८। सूक्त-४०

अथैकोनचत्वारिंशत्सूक्तोक्तेन विद्वत्कृत्यार्थेन सह ब्रह्मणस्पत्यादीनामर्थानां सम्बन्धात् पूर्वेण सूक्तार्थेन सहैतदर्थस्य सङ्गतिरस्तीति बोध्यम्।

इति चत्वारिशं सुक्तमेकविंशो वर्गश्च समापा:॥

पदार्थ:-जो मनुष्य (क्षत्रम्) राज्य को (पृञ्जीत) सम्बन्ध तथा (सुक्षितिम्) उत्तमोत्ते भूमि की प्राप्ति कराने वाले व्यवहार को (दधे) धारण करता है (अस्य) इस सर्व सभाध्यक्ष (विज्ञणः) बली के (राजिभः) रजपूतों के साथ (भये) युद्ध भीति में अपने मनुष्यों को कोई भी अत्र (क्रिन्त) मार सकता (न) (महाधने) नहीं महाधन की प्राप्ति के हेतु बड़े युद्ध में (वर्ता) विपरीत वर्तनेवाला और (न) इस वीर्य वाले के समीप (अर्भे) छोटे युद्ध में (चित्) भी (तरुता) बल को हिल्लाङ्कन करने वाला कोई (अस्ति) होता है॥८॥

भावार्थ:-जो राजपूत लोग महाधन की प्राप्ति के निमित्त बड़े बुद्ध न थोड़े युद्ध में शत्रुओं को जीत वा बाँध के निवारण करने और धर्म से प्रजा का पालन करने को भूमर्थ होते हैं, वे इस संसार में आनन्द को भोग कर परलोक में भी बड़े भारी आनन्द को भिग्ते हैं।। अ

अब उनतालीसवें सूक्त में कहे हुए विद्वानों के कार्यरूप अर्थ के साथ ब्रह्मणस्पति आदि शब्दों के अर्थों के सम्बन्ध से पूर्वसूक्त की सङ्गति जाननी विहियो।

यह चालीसवां सूक्त और इक्क्रीसवां वर्ग्य समाप्त हुआ॥४०॥२१॥

अथ नवर्चस्यैकचत्वारिंशस्य सूक्तस्य घोरः कण्व ऋषिः। १-३, ७-९ वरुणिमत्रार्यम्णः। ४-६ आदित्याश्च देवताः। १,४,५,८ गायत्री। २,३,६, विराङ्गायत्री। ७,९ निचृहायत्री च छन्द्रः।

षड्जः स्वरः॥

अनेकै: सुरक्षितोऽपि कदाचिच्छत्रुणा पीड्यत इत्युपदिश्यते॥

अनेक वीरों से रक्षित भी राजा कभी शत्रु से पीड़ित होता ही है, इस विषय का उर्घ्वदेश अमेले मन्त्र में किया है।।

यं रक्षन्ति प्रचेतसो वरुणो मित्रो अर्यमा।

नू चित्स देभ्यते जर्नः॥ १॥

यम्। रक्षन्ति। प्रऽचेतसः। वर्रुणः। मित्रः। अर्युमा। नु। चित्। सः। दुभ्यते। जन्।। १॥

पदार्थ:-(यम्) सभासेनेशं मनुष्यं (रक्षन्ति) पालयन्ति (प्रचेतसः) प्रकृष्टं चेतो विज्ञानं येषान्ते (वरुणः) उत्तमगुणयोगेन श्रेष्ठत्वात् सर्वाध्यक्षत्वार्हः (मित्रः) सर्धसृहत् (अर्थमा) पक्षपातं विहाय न्यायं कर्त्तुं समर्थः (नु) सद्यः। अत्र ऋचि तुनु इति दीर्घः। (चित्रः) एव (सः) रक्षितः (दभ्यते) हिंस्यते (जनः) प्रजासेनास्थो मनुष्यः॥१॥

अन्वय:-प्रचेतसो वरुणो मित्रोऽर्यमा चैते यं स्क्रिन्त स चिदपि कदाचित्र दभ्यते॥१॥

भावार्थ:-मनुष्यै: सर्वोत्कृष्ट: सेनासभूष्ट्यक्ष: सर्विमित्रो दूतोऽध्यापक उपदेष्टा धार्मिको न्यायाधीशश्च कर्तव्य:। तेषां सकाशाद्रक्षणदीनि प्राप्य सर्वीन् शत्रून् शीघ्रं हत्वा चक्रवर्त्तिराज्यं प्रशास्य सर्विहतं सम्पादनीयम्। नात्र केनचिन्मृत्युन् भेन्नव्यं कुल सर्वेषां: जातानां पदार्थानां ध्रुवो मृत्युरित्यत:॥१॥

पदार्थ:-(प्रचेतसः) उत्तम जूपवान् (वर्षणः) उत्तम गुण वा श्रेष्ठपन होने से सभाध्यक्ष होने योग्य (मित्रः) सब का मित्र (अर्युमा) पक्षपात छोड़ के न्याय करने को समर्थ ये सब (यम्) जिस मनुष्य वा राज्य तथा देश की (रक्षन्ति) रक्षा करते हों (सः) (चित्) वह भी (जनः) मनुष्य आदि (नु) जल्दी सब शत्रुओं से कदाचित् (दभ्यते) भारा जाता है॥१॥

भावार्थ:-मनुष्यों का उच्चित हैं कि सब से उत्कृष्ट, सेना सभाध्यक्ष, सब का मित्र, दूत, पढ़ाने वा उपदेश करने वाले धार्मिक प्रमुख्य को न्यायाधीश करें; तथा उन विद्वानों के सकाश से रक्षा आदि को प्राप्त हो, सब शब्रुओं को शीम्र मार और चक्रवर्त्ति राज्य का पालन करके सबके हित को सम्पादन करें, किसी को भी मिन्यु से भय करना योग्य नहीं है, क्योंकि जिनका जन्म हुआ है, उनका मृत्यु अवश्य होता है। इसलिय्ने मृत्यु से डरना मूर्खों का काम है॥ १॥

स संरक्षितस्सन् किं प्राप्नोतीत्युपदिश्यते॥

वह क्षा किया हुआ किसको प्राप्त होता है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अष्टक-१। अध्याय-३। वर्ग-२२-२३

मण्डल-१। अनुवाक-८। सूक्त-४१

यं बाहुतेव पिप्रति पान्ति मर्त्यं रिषः।

अरिष्टु: सर्व एधते॥२॥

यम्। बाहुतांऽइव। पिप्रति। पान्ति। मर्त्यम्। रिषः। अरिष्टः। सर्वः। एधते॥२॥

पदार्थ:-(यम्) जनम् (बाहुतेव) यथा बाधते दु:खानि याभ्यां भुजाभ्यां बलवीर्थाभ्यां वा तयोभीवस्तथा (पिप्रति) पिपुरित (पान्ति) रक्षन्ति (मर्त्यम्) मनुष्यम् (रिषः) हिंसकाच्छत्रोः (अरिष्टः) सर्वविघ्नरितः (सर्वः) समस्तो जनः (एधते) सुखैश्वर्ययुक्तैर्गुणैर्वर्धते॥२॥

अन्वय:-एते वरुणादयो यं मर्त्यं बाहुतेव पिप्रति रिषः शत्रोः सकाशात पान्ति स सर्वो जनोऽरिष्टो निर्विघ्नः सन् देवविद्यादिसद्गुणैर्नित्यमेधते॥२॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। यथा सभासेनाध्यक्षा राजपुरुषा बाहुबल्ग्रीयत्नाभ्यां शत्रुदस्युचोरान् दारिद्र्यञ्च निवार्य जनान् सम्यग्रक्षित्वा पूर्णानि सुखानि सम्प्रद्धि सर्व बिष्टनान्निवार्य्य सर्वान् मनुष्यान् पुरुषार्थे संयोज्य ब्रह्मचर्यसेवनेन विषयलोलुपतात्यागेन विद्यासुन्निक्षाभ्यां शरीरात्मोन्नतिं कुर्वन्ति तथैव प्रजास्थैरप्यनुष्ठेयम्॥२॥

पदार्थ:-जो वरुण आदि धार्मिक विद्वान् लोग (काहुतेब) असे शूरवीर बाहुबलों से चोर आदि को निवारण कर दु:खों को दूर करते हैं, वैसे (यम्) जिस् (मर्त्यप्र) मनुष्य को (पिप्रति) सुखों से पूर्ण करते और (रिष:) हिंसा करने वाले शत्रु से (पान्ति) बचाते हैं) (स:) वे (सर्व:) समस्त मनुष्यमात्र (अरिष्ट:) सब विघ्नों से रहित होकर वेद विद्या आद्गि उत्तम् गुणों से नित्य (एधते) वृद्धि को प्राप्त होते हैं॥२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालुङ्गार है जिसे सभा और सेनाध्यक्ष के सहित राजपुरुष बाहुबल वा उपाय के द्वारा शत्रु, डाकू, चोर आदि और दरिद्रपन को निवारण कर, मनुष्यों की अच्छे प्रकार रक्षा, पूर्ण सुखों को सम्पादन, सब विष्नों को दूर कर, पुरुषार्थ में संयुक्त कर, ब्रह्मचर्य सेवन वा विषयों की लिप्सा छोड़ने से शरीर की विद्वा वा उत्तम शिक्षा से आत्मा की उन्नति करते हैं; वैसे ही प्रजाजन भी किया करें॥ अस

पुनम्ते राजजनाश्च परस्परं किं कुर्युरित्युपदिश्यते॥

फिर्भुवे राजप्रजा पुरुष क्या करें, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

वि द्वर्गी विद्विषं: पुरो घनित राजान एषाम्।

नयनि दुरिता तिर:॥३॥

🔖 दुःऽगाः। वि। द्विष॑ः। पुरः। घ्नन्ति। राजा॑नः। एषा॒म्। नय॑न्ति। दुःऽङ्कता। ति्रः॥३॥

पदार्थ:-(वि) विविधार्थे (दुर्गा) येषु दु:खेन गच्छन्ति तानि। अत्र सुदुरोरधिकरणै० (अष्टा॰वा॰३.२.४८) इति दुरुपपदाद्गमेर्डः प्रत्ययः। शेश्छन्दिस इति शेर्लोपः। (वि) विशेषार्थे (द्विषः) ये द्विषन्त्यप्रीणयन्ति ताञ्छत्रून् (पुरः) पुराणि (घनित) नाशयन्ति (राजानः) ये राजन्ते सत्कर्मगुणै, प्रकाशन्ते ते (एषाम्) शत्रूणाम् (नयन्ति) गमयन्ति (दुरिता) दुरिता दुःसहानि दुःखानि। अत्रापि शेर्लोपः। (तिरः) अदर्शने॥३॥

अन्वय:-ये राजान एषां शत्रूणां दुर्गा घ्नन्ति द्विषः शत्रूँस्तिरो नयन्ति ते साम्राज्ये प्राप्तुं शक्नुवन्ति॥३॥

भावार्थ:-येऽन्यायकारिणो धार्मिकान् पीडियत्वा दुर्गस्था भवन्ति पुनरागत्य दु:खयन्ति तेषां विनाशाय श्रेष्ठानां पालनाय धार्मिका विद्वांसो राजपुरुषास्तेषां दुर्गाणि विनाश्य तान् कित्वा भित्वा हिंसित्वा मरणं वा वशत्वं प्रापय्य धर्मेण राज्यं पालयेयु:॥३॥

पदार्थ:-जो (राजान:) उत्तम कर्म वा गुणों से प्रकाशमान राजा लोंग (एषाम्) इन शत्रुओं के (दुर्गा) दु:ख से जाने योग्य प्रकोटों और (पुर:) नगरों को (ध्नन्ति) छिन्न-भिन्न करते और (द्विष:) शत्रुओं को तथा (दुरिता) दु:खों को (वि)(तिरो नयन्ति) नष्ट करिते हैं, बे चक्रवर्ति राज्य को प्राप्त होने को समर्थ होते हैं॥३॥

भावार्थ:-जो अन्याय करने वाले मनुष्य ध्रार्मिक मनुष्यों को पीड़ा देकर दुर्ग में रहते और फिर आकर दु:खी करते हों उनको नष्ट और श्रेष्ठों के पालच करने के लिये विद्वान् धार्मिक राजा लोगों को चाहिये कि उनके प्रकोट और नगरों का विनाश और शत्रुओं को छिन्न-भिन्न मार और वशीभूत करके धर्म से राज्य का पालन करें॥३॥

पुनस्ते कि साधयेयुरित्युपदिश्यते।

फिर वे क्या सिद्ध करें, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

सुग: पन्थां अनृक्ष्य् अदित्यास ऋते यते।

नात्रावखादो अस्ति वः॥४॥

सुऽगः। पर्स्याः। अनुभूरः आदित्यासः। ऋतम्। यते। न। अत्री। अवुऽखादः। अस्ति। वः॥४॥

पदार्थ: सुगः) सुखेन गच्छन्ति यस्मिन् सः (पन्थाः) जलस्थलान्तरिक्षगमनार्थः शिक्षाविद्याधर्मृन्यपूर्णस्यर्थश्च मार्गः (अनृक्षरः) कण्टकगर्त्तादिदोषरिहतः सेतुमार्जनादिभिः सह वर्तमानः सरलः। न्न्रोस्द्रस्युकुशिक्षाऽविद्याऽधर्माऽऽचरणरिहतः (आदित्यासः) सुसेवितेनाष्ट्रचत्वारिंशद्वर्षब्रह्मचर्येण शरीरात्म्बलसाहित्येनाऽऽदित्यवत्प्रकाशिता अविनाशिधर्मविज्ञाना विद्वांसः। आदित्या इति पदनामसु पदिसम्। (जिघं०५.६) अनेन ज्ञानवत्त्वं सुखप्रापकत्वं च गृह्यते। (ऋतम्) ब्रह्म सत्यं यज्ञं वा (यते)

अष्टक-१। अध्याय-३। वर्ग-२२-२३

मण्डल-१। अनुवाक-८। सूक्त-४१

प्रयतमानाय (न) निषेधार्थे (अत्र) विद्वत्प्रचारिते रक्षिते व्यवहारे (अवखाद:) विखादो भयम् (अस्ति) भवति (व:) युष्माकम्॥४॥

अन्वय:-यत्रादित्यासो रक्षका भवन्ति, यत्र चैतैरनृक्षरः सुगः पन्थाः सम्पादितस्वद्धमृतं पते च वोऽत्रावखादो नास्ति॥४॥

भावार्थ:-मनुष्यैर्भूमिसमुद्रान्तरिक्षेषु रथनौकाविमानानां गमनाय सरला दृढाः कंटकचोरदस्युभयादिदोष-रिहताः पन्थानो निष्पाद्या यत्र खलु कस्याऽपि किंद्रिद् दुःखभये न स्याताम्। एतत्सर्वं संसाध्याखण्डचक्रवर्त्तराज्यं भोग्यं भोजयितव्यमिति॥४॥

पदार्थ:-जहाँ (आदित्यास:) अच्छे प्रकार सेवन से अड़तालीस वर्ष युक्त ब्रह्मचर्य से शरीर आत्मा के बल सहित होने से सूर्य के समान प्रकाशित हुए अविनाशी धर्म्म को जानने वाले विद्वान् लोग रक्षा करने वाले हों वा जहाँ इन्हीं से जिस (अनृक्षर:) कण्टक, गृह्हा, चोर, डाकू, अविद्या, अधर्माचरण से रहित सरल (सुग:) सुख से जानने योग्य (पन्था:) जल, स्थल, अन्तिरक्ष में जाने के लिये वा विद्या, धर्म, न्यायप्राप्ति के मार्ग का सम्पादन किया हो उस और (ऋतम्) ब्रह्म, सत्य वा यज्ञ को (यते) प्राप्त होने के लिये तुम लोगों को (अत्र) इस मार्ग में (अवखाद:) स्थ (नास्ति) कभी नहीं होता॥४॥

भावार्थ:-मनुष्यों को भूमि, समुद्र, अन्तरिक्ष में रथ नौका विमानों के लिये सरल, दृढ़, कण्टक, चोर, डाकू, भय, आदि दोष रहित मार्गों का सम्भिद्रि करने चाहिये, जहाँ किसी को कुछ भी दु:ख वा भय न होवे। इन सबको सिद्ध करके अखण्ड चक्रवर्त्ती उज्य को भोग करना वा कराना चाहिये॥४॥

पुनरेते कं संरक्ष्य कि प्राप्नुयुरित्युपदिश्यते॥

फिर ये किस की रक्षा कर किस को प्राप्त होते हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

यं युज्ञं नयथा नर् आदित्या ऋजुनो पथा। प्र वः स धीतये नशत्॥५॥२२॥ यम्। युज्ञम्। नयथा न्रः। आदित्याः। ऋजुनो। पथा। प्र। वः। सः। धीतये। नृशत्॥५॥

पदार्थ:-(यम्) विक्ष्माप्राम् (यज्ञम्) शत्रुनाशकं श्रेष्ठपालनाख्यं राजव्यवहारम् (नयथ) प्राप्नुथ। अत्र अन्येषामिष् इति दीघः। (नरः) नयन्ति सत्यं व्यवहारं प्राप्नुवन्त्यसत्यं च दूरीकुर्वन्ति तत्सम्बुद्धौ (आदित्याः) पूर्वोक्ता वरुणादयो विद्वांसः (ऋजुना) सरलेन शुद्धेन (पथा) न्यायमार्गेण (प्र) प्रकृष्टार्थे (वः) युष्माक्रम् (सः) प्रज्ञः (धीतये) धीयन्ते प्राप्यन्ते सुखान्यनया क्रियया सा (नशत्) नाशं प्राप्नुयात्। अत्र व्यवस्थिन सम् वेट् प्रयोगश्च॥५॥

अस्य:-हे आदित्या! नरो यूयं धीतये यं यज्ञमृजुना पथा नयथ, स वः प्रणशत् यूयमपि नयथ। पूर्वं कृते सिति स यज्ञो वो युष्माकं धीतये न प्रणशत् नाशं न प्राप्नुयात्॥५॥

भावार्थः-अत्र पूर्वस्मान्मन्त्रान्नेत्यनुवर्तते। यत्र विद्वांसः सभासेनाध्यक्षाः सभास्थाः सभ्याः भृत्याश्च भूत्वा विनयं कुर्वन्ति तत्र न किञ्चिदपि सुखं नश्यतीति॥५॥

पदार्थ:-हे (आदित्याः) सकलविद्याओं से सूर्य्यवत् प्रकाशमान (नरः) न्याययुक्त राजस्मिसदों) आप लोग (धीतये) सुखों को प्राप्त कराने वाली क्रिया के लिये (यम्) जिस (यज्ञम्) राजधर्मयुक्त व्यवहार को (ऋजुना) शुद्ध सरल (पथा) मार्ग से (नयथ) प्राप्त होते हो (सः) सो (वः) तुम् लोगों को (प्र नशत्) नष्ट करनेहारा नहीं होता॥५॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में पूर्व मन्त्र से (न) इस पद की अनुवृत्ति है जहाँ विद्वान् लोग सभा सेनाध्यक्ष सभा में रहने वाले भृत्य होकर विनयपूर्वक न्याय करते हैं, वहाँ सुख का नाश कभी नहीं होता॥५॥

पुन: स संरक्षित: सन् मनुष्य: किं प्राप्नोतीत्युपिंदश्यते॥

फिर वह रक्षा को प्राप्त होकर किस को प्राप्त होता है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

स रत्नुं मर्त्यों वसु विश्वं तोकमुत त्मना।

अच्छा गच्छत्यस्तृत:॥६॥

सः। रत्नेम्। मर्त्यः। वसुं। विश्वम्। तोकम्। क्रा त्मना अच्छं। गुच्छति। अस्तृतः॥६॥

पदार्थ:-(स:) वक्ष्यमाणः (रत्नम्) रमन्ते जनामा मनांसि यस्मिस्तत् (मर्त्यः) मनुष्यः (वसु) उत्तमं द्रव्यम् (विश्वम्) सर्वम् (तोकम्) उत्तमगुणवद्भप्त्यम्। तोकिमित्यपत्यनामसु पठितम्। (निघं०२.२) (उत) अपि (त्मना) आत्मना मनुम्रा प्राणेच वा। अत्र मन्त्रेष्वाङ्यादेरात्मनः। (अष्टा०६.४.१४१) अनेनास्याकारलोपः। (अच्छ) सम्बक् प्रकारेण। अत्र निपातस्य च इति दीर्घः। (गच्छति) प्राप्नोति (अस्तृतः) अहिंसितस्सन्॥६॥

अन्वय:-योऽस्तृतोऽहिंसितो मर्त्यो स्नुष्योऽस्ति, स त्मनाऽऽत्मना विश्वं रत्नं वसूतापि तोकमच्छ गच्छति॥६॥

भावार्थ:-विद्वद्भिर्मनुष्येः सम्यग्रिक्षता मनुष्यादयः प्राणिनः सर्वानुत्तमान् पदार्थान् सन्तानांश्च प्राप्नुवन्ति नैतेन विभा कस्यन्विद् वृद्धिर्भवतीति॥६॥

पदार्श्व: चो (अस्तृत:) हिंसारहित (मर्त्य:) मनुष्य है (स:) वह (त्मना) आत्मा मन वा प्राण से (विश्वम्) स्व (रह्म्म्) मनुष्यों के मनों के रमण कराने वाले (वसु) उत्तम से उत्तम द्रव्य (उत) और (तोकम्) सब उत्तम गुणों से युक्त पुत्रों को (अच्छ गच्छिति) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है॥६॥

भावार्थ:-विद्वान् मनुष्यों से अच्छे प्रकार रक्षा किये हुए मनुष्य आदि प्राणी सब उत्तम से उत्तम स्वर्थ और सन्तानों को प्राप्त होते हैं, रक्षा के विना किसी पुरुष वा प्राणी की बढ़ती नहीं होती॥६॥ अष्टक-१। अध्याय-३। वर्ग-२२-२३

मण्डल-१। अनुवाक-८। सूक्त-४१

सर्वै: किं कृत्वैतत् सुखं प्रापयितव्यमित्युपदिश्यते॥

सबको क्या करके इस सुख को प्राप्त कराना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र

किया है॥

कथा राधाम सखायुः स्तोमं मित्रस्यार्युम्णः।

मिंह प्सरो वर्रुणस्य॥७॥

कथा। राधाम। सखायः। स्तोमेम्। मित्रस्ये। अर्यम्णः। महि। प्सरेः। वर्रणस्याः ।

पदार्थ:-(कथा) केन हेतुना (राधाम) साध्नुयाम। अत्र विकरक्ष्यस्यः) (सखायः) मित्राः सन्तः (स्तोमम्) गुणस्तुतिसमूहम् (मित्रस्य) सर्वसुहदः (अर्घ्यम्णः) स्त्रायाधीसस्य (मित्र) महासुखप्रदम् (प्सरः) यं प्सान्ति भुज्जते स भोगः (वरुणस्य) सर्वोत्कृष्टस्य॥७॥

अन्वय:-वयं सखायः सन्तो मित्रस्यार्य्यम्णो वरुणस्य मिह्न स्क्रोमं कथा राधामास्माकं कथं प्सरः सुखभोगः स्यात्॥७॥

भावार्थ:-यदा केचित्कञ्चित्पृच्छेयुर्वयं केन प्रकारिंग मित्रीन्यायात्तमविद्याः प्राप्नुयामेति, स तान् प्रत्येवं ब्रूयात् परस्परं विद्यादानपरोपकाराभ्यामेवैतत्सर्वं प्राप्तुं शक्यं नैतेन विना कश्चित्किंचिदिप सुखं साद्धं शक्नोतीति॥७॥

पदार्थ:-हम लोग (सखाय:) सबके मित्र होकर (मित्रस्य) सबके सखा (अर्थ्यम्ण:) न्यायाधीश (वरुणस्य) और सबसे उत्तम अध्यक्ष के (महि) बड़े (स्तोमम्) गुण-स्तुति के समूह को (कथा) किस प्रकार से (राधाम) सिद्ध करें और किस प्रकार हम्क (प्सर:) सुखों का भोग सिद्ध होवे॥७॥

भावार्थ:-जब कोई मनुष्य किसी को पूछ कि हम लोग किस प्रकार से मित्रपन, न्याय और उत्तम विद्याओं को प्राप्त होवें, वह उनको ऐसा कहे कि परस्पर मित्रता, विद्यादान और परोपकार ही से यह सब प्राप्त हो सकता है, स्मिके विना कोई भी मनुष्य किसी सुख को सिद्ध करने को समर्थ नहीं हो सकता॥७॥

सभाध्यक्षाद्यः प्रजास्थैः सह किं किं प्रतिजानीरन्नित्युपदिश्यते॥

सभाध्यक्ष्रुआदि लोग प्रजाजनों के साथ क्या-क्या प्रतिज्ञा करें, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

मृ वो झन्ते मा शर्पन्तं प्रति वोचे देवयन्तम्।

सुम्नैरिद्ध आ विवासे॥८॥

मार्चिः। घ्नन्तम्। मा। शर्पन्तम्। प्रति। वोचे। देवऽयन्तम्। सुम्नैः। इत्। वः। आ। विवासे॥८॥

पदार्थ:-(मा) निषेधार्थे (व:) युष्मान् (घन्तम्) हिंसन्तम् (मा) (शपन्तम्) आक्रोशन्तम् (प्रति) प्रतीतार्थे (वोचे) वदेयम्। अत्र स्थानिवत्त्वात् आत्मनेपदमडभावश्च। (देवयन्तम्) देवान् द्वियगुणान् कामयमानम् (सुम्नै:) सुखै:। सुम्निमिति सुखनामसु पठितम्। (निघं०३.६) (इत्) एव (वः) सुष्माने (आ) समन्तात् (विवासे) परिचरामि॥८॥

अन्वय:-अहं वो युष्पान्मन्मित्रान् घ्नन्तं मा प्रतिवोचे वो युष्पाञ्छपन्तं मू प्रतिबोचे प्रियं न वदेयम्। किन्तु युष्पान्सुम्नै: सह देवयन्तमिदेवाविवासे॥८॥

भावार्थ:-मनुष्यै: स्विमत्रशत्रौ तिन्मित्रेऽपि प्रीति: कदाचित्रैव कार्य्या मित्ररक्षो सदैव विधेया। विदुषां मित्राणां प्रियधनभोजनवस्त्रयानादिभिर्नित्यं परिचर्य्या कार्य्या नो अस्त्रिः सुखमेधते, तस्माद्विद्वांसो धार्मिकान् मित्रान् सम्पादयेयु:॥८॥

पदार्थ:-मैं (व:) मित्ररूप तुम को (घतम्) मारते हुए जन्र से (मा प्रतिवोचे) सम्भाषण भी न करूं (व:) तुम को (शपन्तम्) कोसते हुए मनुष्य से प्रिय (मा॰) त बोलू किन्तु (सुम्नै:) सुखों से सिहत तुम को सुख देनेहारे (इत्) ही (देवयन्तम्) दिव्यगुणीं को कामना करनेहारे की (आविवासे) अच्छे प्रकार सेवा किया करूं॥८॥

भावार्थ:-मनुष्य को योग्य है कि न अपने शत्रु और निर्मित्र के शत्रु में प्रीति करे, मित्र की रक्षा और विद्वानों को प्रियवाक्य, भोजन-वस्त्र-पान आदि से सुन करनी चाहिये, क्योंकि मित्ररहित पुरुष सुख की वृद्धि नहीं कर सकता; इस से विद्वान लिए बहुत हो धर्मात्माओं को मित्र करें॥८॥

उक्तवक्ष्यमाणेभ्यश्चतुभ्यों दुष्ट्रेभ्यो भये कुल्बा कदाचिन्न विश्वसेदित्युपदिश्यते॥

जो कहे और जिनको आगे कहते हैं उन चार देश से नित्य भय करके उनका विश्वास कभी न करे, इस विषय का उमदेश अगले मन्त्र में किया है।।

चुतुरिश्चद् दर्दमानाद् विभीयादी निर्धातो:।

न दुं कुक्तार्य स्पृहयेत्। ९॥२३॥

चुतुरं:। चित्। दद्मानात्। बिर्श्वियात्। आ। निऽधातो:। न। दु:ऽउक्तायं। स्पृहुयेत्॥९॥

पदार्थ:-(चतुर:) निन्तं शपन्तं द्वावुक्तौ द्वौ वक्ष्यमाणौ (चित्) अपि (ददमानात्) दु:खार्थे विषादिकं प्रयच्छ्की (बिभीषात्) भयं कुर्य्यात् (आ) आभिमुख्ये (निधातोः) अन्यायेन परपदार्थानां स्वीकर्तुः (न) निषधार्थे (दुरुक्ताय) दुष्टमुक्तं येन तस्मै (स्पृहयेत्) ईप्सेदाप्तुमिच्छेत्॥९॥

अन्वयः-मेनुष्यो घ्नतः शपतो ददमानान्निधातोरेताञ्चतुरः प्रति न विश्वसेच्चिद् बिभीयात् तथा दुरुक्ताय सम्पृहयेदेतान् पञ्च मित्रान् कर्त्तुं नेच्छेत्॥९॥

भावार्थः-मनुष्यैर्दुष्टकर्म्मकारिणां दुष्टवचसां सङ्गविश्वासौ कदाचिन्नैव कार्या मित्रद्रोहाषुपानविश्वासघाताश्च कदाचिन्नैव कर्त्तव्या इति॥९॥ अष्टक-१। अध्याय-३। वर्ग-२२-२३

मण्डल-१। अनुवाक-८। सूक्त-४१

अस्मिन् सूक्ते प्रजारक्षणं शत्रुविजयमार्गशोधनं यानरचनचालने द्रव्योन्नतिकरणं श्रेष्ठैः सह मित्रत्वभावनं दुष्टेष्वविश्वासकरणमधर्म्माचरणान्नित्यं भयमित्युक्तमतः पूर्वसूक्तार्थेन सङ्गतिरस्तीति बोध्यम्।

इति प्रथमस्य तृतीये त्रयोविंशो वर्ग:। २३) प्रथममण्डल एकचत्वारिंशं सूक्तं च सर्माप्तम्। 💸 १।।

पदार्थ:-मनुष्य (चतुर:) मारने, शाप देने और (ददमानात्) विषादि देने और (निधातो:) अन्याय से दूसरे के पदार्थों को हरने वाले इन चार प्रकार के मनुष्यों का विश्वास नृ करे (चित्) और इन से (बिभीयात्) नित्य डरे और (दुरुक्ताय) दुष्ट वचन कहने वाले मनुष्य के लिये (न स्पृहयेत्) इन पांचो को मित्र करने की इच्छा कभी न करें॥९॥

भावार्थ:-मनुष्य को दुष्ट कर्म्म करने वा दुष्ट वचन बोलने क्राले मनुष्ट्रों का संग, विश्वास और मित्र से द्रोह, दूसरे का अपमान और विश्वासघात आदि कर्म्म कर्भी न करें॥ ९॥

इस सूक्त में प्रजा की रक्षा शत्रुओं को जीतना, मार्ग को शोधना, यान की रचना और उनका चलाना, द्रव्यों की उन्नति करना, श्रेष्ठों के साथ मित्रता, द्रुष्टों में विश्वास न करना और अधर्माचरण से नित्य डरना। इस प्रकार कथन से पूर्व सूक्तार्थ के साथ इस सूक्त के अर्थ की सङ्गति जाननी चाहिये।

यह पहिले अष्टक के तीसरे अध्याय में तेईसवां वर्ग और पहिले मण्डल में इकतालीसवां सूक्त समाप्त

अथ दशर्चस्य द्विचत्वारिंशस्य सूक्तस्य घौरः कण्व ऋषिः। पूषा देवता। १,९ निचृहायत्री। २,३,५-८,१० गायत्री। ४ विराड् गायत्री च छन्दः। षड्जः स्वरः॥

प्रवसन्मार्गे किं किमेष्टव्यमित्युपदिश्यते॥

अब बयालीसवें सूक्त का आरम्भ है। उस के पहिले मन्त्र में प्रवास करते हुए मनुष्य मीर्ग में किस-किस पदार्थ की इच्छा करें, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।

सं पूष्टिन्नध्वनस्तिर् व्यंही विमुचो नपात्। सक्ष्वा देव प्र णस्पुरः॥१॥

सम्। पूष्टन्। अर्ध्वनः। तिर्। वि। अंहः। विऽमुचः। नुपात्। सक्ष्वं। देव प्रान्तः। पुरः।। १॥

पदार्थ:-(सम्) सम्यगर्थे (पूषन्) पोषकविद्यया पृष्टिकारक विद्वन्। पूर्वेति पदनामसु पठितम्। (निघं०५.६) (अध्वनः) मार्गात् (तिर) पारं गच्छ (वि) विशेषार्थे (अंहः) दुःखरोगवेगम्। अत्र अमेर्हुक् च। (उणा०४.२२०) चादसुन्। अनेन वेगो गृह्यते (विमुचः) बिमुञ्च (नपात्) न विद्यते पातो यस्य तत्सम्बुद्धौ (सक्ष्व) सक्तो भव। अत्र द्वयचोऽतिस्तिङ इति दीर्घः। (देव्र) दिव्यगुणसम्पन्न (प्र) प्रकृष्टार्थे (नः) अस्मान्। अत्र उपसर्गाद् बहुलम्। (अष्टा०८.४.२८) असेन पृत्वम्। (पुरः) पूर्वम्।।१॥

अन्वय:-हे पूषत्रपाद्देव विद्वंस्त्वं दु:खस्याध्वतः पारे वितिर विशिष्टतया प्रापयांहो रोगदु:खवेगं विमुचो दूरीकुरु पुर: पूर्वं नोऽस्मान् प्रसक्ष्व सद्गुर्भिषु प्रसक्ताम् कुरु॥१॥

भावार्थ:-मनुष्यैर्यथा परमेश्वरस्योपासमेन तदाज्ञापीलनेन च सर्वदु:खपारं गत्वा सर्वाणि सुखानि प्राप्तव्यान्येवं धार्मिकसर्विमित्रपरोपकर्तुर्विद्धाः स्मित्रध्योपदेशाभ्यामविद्याजालमार्गस्य पारं गत्वा विद्याऽर्कः सम्प्राप्तव्यः॥१॥

पदार्थ:-हे (पूषन्) सब ज्यात् को पोषण करने वाले (नपात्) नाशरहित (देव) दिव्य गुण सम्पन्न विद्वन्! दु:ख के (अध्वनः) मार्ग् से (वितिर) पार होकर हम को भी पार कीजिये (अंहः) रोगरूपी दु:खों के वेग को (विमुचः) दूर कीजिये (पुरः) पहिले (नः) हम लोगों को (प्रसक्ष्व) उत्तम-उत्तम गुणों में प्रसक्त कीजिये॥१॥

भावार्थ:-मनुष्य, जैसे समिश्वर की उपासना वा उस की आज्ञा के पालन से सब दु:खों के पार प्राप्त होकर सब सुखों को क्षाप्त करें, इसी प्रकार धर्म्मात्मा सबके मित्र, परोपकार करने वाले विद्वानों के समीप वा उन्हें उपदेश से अविद्या जालरूपी मार्ग से पार होकर विद्यारूपी सूर्य्य को प्राप्त करें॥१॥

ये धर्म्मराजमार्गेषु विघ्नकर्त्तारस्ते निवारणीया इत्युपदिश्यते॥

अप धर्म्म और राज्य के मार्गों में विघ्न करते हैं, उनका निवारण करना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।। अष्टक-१। अध्याय-३। वर्ग-२४-२५

मण्डल-१। अनुवाक-८। सूक्त-४२

यो नं: पूषत्रघो वृकों दुःशेवं आदिदेशित। अपं स्म तं पथो जीहा। २॥

यः। नः। पूष्टन्। अघः। वृक्तः। दुःऽशेर्वः। आऽदिदेशति। अपः। स्मः। तम्। प्रथः। जिह्नुः। २०१

पदार्थ:-(य:) वक्ष्यमाणः (न:) अस्मान् (पूषन्) विद्वन् (अघ:) अघं पापं विद्वते यस्मिन् सः (वृकः) स्तेनः। वृक इति स्तेननामसु पठितम्। (निघं०३.२४) (दुःशेवः) दुःखे शायपितुमर्हः (आदिदेशित) अतिसृजेदस्मानितदेश्य पीडयेत् (अप) निवारणे (स्म) एव (तम्) दुष्टस्बभावम् (पथः) धर्मराजप्रजामार्गाद् दूरे (जिह्न) हिन्धि गमय वा॥२॥

अन्वयः-हे पूषन् विद्वँस्त्वं योऽघो दुःशेवो वृकः स्तेनोनस्मान्यदिदेशितः वं पथोऽपजिह विनाशय वा दूरे निक्षिप॥२॥

भावार्थ:-मनुष्यै: शिक्षाविद्यासेनाबलेन परस्वादायिन: श्रामाश्चीरा: स्रविथा हन्तव्या दूरत: प्रक्षेप्या: सततं बन्धनीयाश्चैवं विधाय राजधर्म्मप्रजामार्गा नि:शंका निर्भया: सम्पादनीया:। यथा परमेश्वरो दुष्टाँस्तत्कम्मीनुसारेण शिक्षते तथैवाऽस्माभिरप्येते शिक्षादप्डविद्वारा अर्वे साधव: सम्पादनीया इति॥२॥

पदार्थ:-हे (पूषन्) सब जगत् को विद्या से पृष्ट करने वाले विद्वान्! आप (य:) जो (अघ:) पाप करने (दु:शेव) दु:ख में शयन कराने योग्य (वृक:) स्तेन अर्थीत् दु:ख देने वाला चोर (न:) हम लोगों को (आदिदेशति) उद्देश करके पीड़ा देता हो/ (तम्) उप्प दुष्ट स्वभाव वाले को (पथ:) राजधर्म और प्रजामार्ग से (अपजिह) नष्ट वा दूर कीजिये/पर्भ

भावार्थ:-मनुष्यों को उचित है कि शिक्षा, विद्या तथा सेना के बल से दूसरे के धन को लेने वाले शठ और चोरों को मारना, सर्वथा दूर करनो, निरन्तर बाँध के राजनीति के मार्गों को भय से रहित सम्पादन करें, जैसे जगदीश्वर दुष्टों को उनके कर्मों के अनुसार दण्ड के द्वारा शिक्षा करता है, वैसे हम लोग भी दुष्टों को दण्ड द्वारा शिक्षा देकर श्रेष्ट्र स्वभावयुक्त करें॥२॥

ग्रुनरेतस्मान्मार्गात्के के निवारणीया इत्युपदिश्यते॥

फिर इस मार्ग से कि कि का निवारण करना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

अपु सं परिपृथिनं मुषीवाणं हुर्श्चितम्।

दूरमधि खुतरंज॥३॥

अप्। त्यम्। पुरिऽपुन्थिनंम्। मुषी॒वाणंम्। हुरःऽचितंम्। द्रूरम्। अर्धि। स्नुतेः। अजा।३॥

पदार्थ:-(अप) दूरीकरणे (त्यम्) पूर्वोक्तम् (परिपन्थिनम्) प्रतिकूलं पन्थानं परित्यज्य स्तेयाय गुप्तं स्थितम्। अत्र छन्दिस परिपन्थिपरिपरिणौ पर्यवस्थाति। (अष्टा०५.२.८९) अनेन पर्य्यवस्थाति विरोधी गृह्यते। (मुषीवाणम्) स्तेयकर्मणा भित्तं भित्वा दृष्टिमावृत्य परपदार्थापहर्त्तारम्। पुषीवानित स्तेननामसु पठितम्। (निघं०३.२४) (हुरिश्चतम्) उत्कोचकं हस्तात् परपदार्थापहर्त्तारम्। हुरिश्चिदित स्तेननामसु पठितम्। (निघं०३.२४) (दूरम्) विप्रकृष्टदेशम् (अधि) उपरिभावे (स्नुते:) स्रवित्त गच्छिन्त यस्मिन् स स्नुतिमार्गस्तस्मात्। अत्र वित्तच्वतौ च संज्ञायाम्। (अष्टा०३.३.१७४) अतेन स्नुधातोः संज्ञायां क्तिच्। (अज्र) प्रक्षिप॥३॥

अन्वय:-हे पूषँस्त्वं त्यं परिपन्थिनं मुषीवाणं हुरश्चितमनेकविधं स्त्रेनं स्तुवेर्द्रमध्यपाज॥३॥

भावार्थ:-चोरा अनेकविधाः केचिद्दस्यवः, केचित्कप्रदेशपितारे, केचिन्मोहियत्वा परपदार्थादायिनः, केचिदुत्कोचकाः, केचिद्रात्रौ सुरंगं कृत्वा परपदार्थान् हरित्तं, केचित्रानापण्यवासिनो हट्टेषु छलेन परपदार्थान् हरित्तं, केचिच्छुल्कग्राहिणः, केचिद् भूत्या भूत्वा स्वामिनः पदार्थान् हरित्तं, केचिच्छलकपटाभ्यां परराज्यानि स्वीकुर्वन्ति, केचिद्धर्मोपवेशेन् जन्मि भ्रामियत्वा गुरुवो भूत्वा शिष्यपदार्थान् हरित्तं केचित् प्राड्विवाकाः सन्तो जनान् विभादयित्वा पदार्थान् हरित्तं, केचिन्न्यायासने स्थित्वा शुल्कादिकं स्वीकृत्य मित्रभावेन वाऽन्यायं कुर्यन्द्रोतिदादयस्सर्वे चोरा विज्ञेयाः। एतान् सर्वोपायैर्निवर्त्य मनुष्यैर्धर्मेण राज्यं शासनीयमिति॥ ३।

पदार्थ: - हे विद्वन् राजन्! आप (ल्प्स्) उसे (परिपन्थिनम्) प्रतिकूल चलने वाले डाकू (मुषीवाणम्) चोरकर्म से भित्ति को फोड़ कर दूष्टि का आच्छादन कर दूसरे के पदार्थों को हरने (हुरिश्चतम्) उत्कोचक अर्थात् हाथ से दूसरे के पदार्थों को ग्रहण करने वाले अनेक प्रकार से चोरों को (सुते:) राजधर्म और प्रजामार्ग से (दूस्स्) (अध्यणज) उन पर दण्ड और शिक्षा कर दूर कीजिये॥३॥

भावार्थ:-चोर अनेक प्रकार के होते हैं, कोई डाकू, कोई कपट से हरने, कोई मोहित करके दूसरे के पदार्थों को ग्रहण करने, कोई रात में सुरंग लगाकर ग्रहण करने, कोई उत्कोचक अर्थात् हाथ से छीन लेने, कोई नाना प्रकार के व्यवहारी हुकानों में बैठ छल से पदार्थों को हरने, कोई शुल्क अर्थात् रिश्वत लेने, कोई भृत्य होकर स्वामी के पदार्थों को हरने, कोई छल कपट से औरों के राज्य को स्वीकार करने, कोई धर्मीपदेश से मनुष्यों को अमाकर गुरु बन शिष्यों के पदार्थों को हरने, कोई प्राइविवाक अर्थात् वकील होकर मनुष्यों को खिवाद में फंसाकर पदार्थों को हर लेने और कोई न्यायासन पर बैठ प्रजा से धन लेके अन्याय करमें वाले इत्यादि हैं, इन सबको चोर जानो। इनको सब उपायों से निकाल कर मनुष्यों को धर्म से पज्य का पालन करना चाहिये॥३॥

पुनरेतेषां चोराणां का गतिः कार्य्येत्युपदिश्यते॥

किर इस पूर्वोक्त चोरों की क्या गति करनी चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया

अष्टक-१। अध्याय-३। वर्ग-२४-२५

मण्डल-१। अनुवाक-८। सूक्त-४२

है॥

त्वं तस्यं द्वयाविनोऽघशंसस्य कस्यं चित्। पुदाभि तिष्टु तपुषिम्॥४॥

त्वम्। तस्ये। द्वयाविने:। अघऽशंसस्य। कस्ये। चित्। पदा। अभि। तिष्ठु। तपुंषिम्॥ स्रो

पदार्थ:-(त्वम्) पूर्वोक्तः पूषा (तस्य) पूर्वोक्तस्य वक्ष्यमाणस्य च (द्वयाविनः) प्रत्यक्षाप्रस्थक्षयोः परपदार्थापहर्तुः (अघशंसस्य) स्तेनस्य। अघशंस इति स्तेननामसु पठितम् (निघ् २४) (कस्य) किंत्वमितिवदतः (चित्) अपि (पदा) पादाक्रमणेन (अभितिष्ठ) स्थिरो भव (तपुषिम्) श्रेष्ठानां सन्तापकारिकां सेनाम्॥४॥

अन्वय:-हे पूषन्सेनासभाध्यक्ष! त्वं तस्य द्वयाविन: कस्येचिद्ध्यश्रीसस्य तपुषिं पदाभितिष्ठ पादाक्रान्तां कुरु॥४॥

भावार्थ:-नैव न्यायकारिभर्मनुष्यै: कस्यापराधिनश्र्चोरस्य दण्डदानेन विना त्याग: कर्त्तव्य:। नोचेत्प्रजा पीडिता स्यात् तस्मात् प्रजारक्षणार्थं दुष्टकर्मकारिण: प्रित्राचार्य्यमातृपुत्रमित्रादयोऽपि सदैव यथाऽपराधं ताडनीया:॥४॥

पदार्थ: - हे सेनासभाध्यक्ष! (त्वम्) आप (तस्य) इस (द्वयाविन:) प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष औरों के पदार्थों को हरने वाले (कस्यचित्) किसी (अपूर्णसस्य) (तपुषिम्) चोरों की सेना को (पदाभितिष्ठ) बल से वशीभूत कीजिये॥४॥

भावार्थ:-न्याय करने वाले मृतुष्यों की क्यित है कि किसी अपराधी चोर को दण्ड देने विना छोड़ना कभी न चाहिये, नहीं तो, प्रजा भीड़ायुक्त होकर नष्ट-भ्रष्ट होने से राज्य का नाश हो जाये। इस कारण प्रजा की रक्षा के लिये हुए कर्म करने वाले अपराध किये हुए माता-पिता, पुत्र, आचार्य्य और मित्र आदि को भी अपराध के यौर्य ताड़ना अवश्य देनी चाहिये॥४॥

पुनः म्रान्यायाधीशः कीदृशो भवेदित्युपदिश्यते॥

फिर वह न्यायाधीश्रोकसा होवे, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

आ तत्ते दस्त्र मन्तुमुः पूष्टुन्नवो वृणीमहे।

येन पितृनचौद्यः॥५॥२४॥

आ। तत्। सु। दुस्रु। मुन्तुऽमुः। पूर्षन्। अर्वः। वृणीुमुहे। येने। पुतृन्। अर्चोदयः॥५॥

पदार्थ:-(आ) समन्तात् (तत्) पूर्वोक्तं वक्ष्यमाणं च (ते) (दस्न) दुष्टानामुपक्षेप्तः (मनुमः) मन्तुः प्रशस्तं ज्ञानं विद्यते यस्य तत्सम्बुद्धौ (पूषन्) सर्वथा पुष्टिकारक (अवः) रक्षणादिकम् (वूणीमहे) स्वीकुर्वीमहि (येन) (पितृन्) वयोज्ञानवृद्धान् (अचोदयः) धर्मे प्रेरयेः। अत्र लिङ्थें लङ्॥५॥

अन्वय:-हे दस्र मन्तुमः पूषन् विद्वँस्त्वं येन पितॄनचोदयस्तत् ते तवाऽवो स्थणादिक वयं वृणीमहे॥५॥

भावार्थ:-मनुष्या यथा प्रेमप्रीत्या सेवनेन जनकादीनध्यापकादीन् ज्ञानवयोवृद्धांश्च प्रीणयेषुस्तथैव सर्वासां प्रजानां सुखाय दुष्टान् दण्डयत्वा श्रेष्ठान् सुखयेयु:॥५॥

पदार्थ:-हे (दस्न) दुष्टों को नाश करने (मन्तुम:) उत्तम ज्ञानयुक्त (पूचन) सर्वथा पुष्टि करने वाले विद्वान्! आप (येन) जिस रक्षादि से (पितृन्) अवस्था वा ज्ञान से क्रूद्धों के (अचीदय:) प्रेरणा करो (तत्) उस (ते) आप के (अव:) रक्षादि को हम लोग (आवृणीमहे) सर्वथा स्वीकार करें॥५॥

भावार्थ:-जैसे प्रेम प्रीति के साथ सेचन करने से उत्पन्न करने वा पढ़ाने वाले ज्ञान वा अवस्था से वृद्धों को तृप्त करें, वैसे ही सब प्रजाओं के सुख के लिये दुष्ट मनुष्यों को दण्ड दे के धार्मिकों को सदा सुखी रक्खें॥५॥

पुनः स प्रजासु किं क्रुर्व्यादित्युपदिश्यते॥

फिर वह न्यायाधीश प्रजा में क्या करे, इस विषय का हैपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अर्घा नो विश्वसौभगु हिर्एयवाशीमृत्रम्।

धर्नानि सुषणां कृधि॥६॥

अर्ध। नुः। विश्वऽसौभुगु। हिर्रण्यवाशीम्त्ऽत्रम्। धर्नानि। सुऽसर्ना। कृधि॥६॥

पदार्थ:-(अध) अथेत्यन्तरम्। अत्र वर्णव्यत्ययेन थस्य धः निपातस्य च इति दीर्घश्च। (नः) अस्मभ्यम् (विश्वसौभग) विश्वषां सर्वेषां सुभगानां श्रेष्ठानामैश्वर्याणां भावो यस्य तत्सम्बुद्धौ (हिरण्यवाशीमत्तम) हिरण्येन सत्यप्रकाशेन परमयशसा सह प्रशस्ता वाक् विद्यते यस्य सोऽतिशयित-स्तत्सम्बुद्धौ। वाशीति विद्यन्तपमु प्रिटतम्। (निघं०१.११) (धनानि) विद्याधर्मचक्रवर्त्तराज्यश्रीसिद्धानि (सुषणा) यानि सुखेन सन्यन्ते तानि सुषणानि। अत्र अविहितलक्षणो मूर्द्धन्यः, सुषमादिषु द्रष्टव्यः। (अष्टा०८.३.९८) इति मूर्द्धन्यादेशस्तत्सित्रयोगेन णत्वं शेश्चन्दिस बहुलम् इति लोपश्च। (कृधि) कुरु॥६॥

अन्वयः-है विश्वसौभग हिरण्यवाशीमत्तम पृथिव्यादिराज्ययुक्त सभाध्यक्ष विद्वँस्त्वं नोऽस्मभ्यं सुषणा धर्मान कृधि॥६॥ अष्टक-१। अध्याय-३। वर्ग-२४-२५

मण्डल-१। अनुवाक-८। सूक्त-४२

भावार्थ:-ईश्वरस्यानन्तसौभगत्वाद्धार्म्मिकस्य सभासेनान्यायाधीशस्य चक्रवर्त्तिसुखैश्वर्ययुक्तत्वादेतौ समाश्रित्य मनुष्यैरसंख्यातानि विद्यासुवर्णादिधनानि प्राप्य बहुसुबभोग्रा कर्त्तव्यः कारयतिव्यश्चेति॥६॥

पदार्थ:-हे (विश्वसौभग) सम्पूर्ण ऐश्वर्थों को प्राप्त होने (हिरण्यवाशीमन्त्र) अतिशय करके सत्य के प्रकाशक उत्तम कीर्त्ति और सुशिक्षित वाणीयुक्त सभाध्यक्ष! आप (नः) हम लोगों के लिये (सुषणा) सुख से सेवन करने योग्य (धनानि) विद्या, धर्म और चक्रवर्त्ति राज्य की लक्ष्मी से सिद्ध किये हुए धनों को प्राप्त कराके (अध) पश्चात् हम लोगों को सुखी (कृष्टि) कीज़ियेग है।।

भावार्थ:-ईश्वर के अनन्त सौभाग्य वा सभा, सेना, न्यायाधीश, धर्मिक मेनुष्य के चक्रवर्त्ति राज्य आदि सौभाग्य होने से इन दोनों के आश्रय से मनुष्यों को असंख्यात विद्या, सुकर्ण आदि धनों की प्राप्ति से अत्यन्त सुखों के भोग को प्राप्त होना वा कराना चाहिये॥६॥

पुन: स कीदृशानस्मान् सम्पादयेक्त्वुप्रिक्थित्रे।

फिर वह हम लोगों को किस प्रकार के करे, इस विश्वय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

अर्ति नः सुश्चती नय सुगा नीः सुपर्था कृण्।

पूर्षित्रिह क्रतुं विदः॥७॥

अति। नुः। सुश्चर्तः। नुया सुऽगा। नुः। सुरुप्था। कुर्णु। पूर्षन्। डूहा क्रतुंम्। विदुः॥७॥

पदार्थ:-(अति) अत्यन्तार्थे (नः) अस्मान् (मुश्चतः) विज्ञानवतो विद्याधर्मप्राप्तान् (नय) प्रापय (सुगा) सुखं गच्छन्ति प्राप्नुवन्ति यस्मिन् तेन (नि) अस्मान् (सुपथा) विद्याधर्मयुक्तेनाप्तमार्गेण (कृणु) कुरु (पूषन्) सर्वपोषकेश्वर प्रजापोषक सेभाध्यक्ष वा (इह) अस्मिन् समये संसारे वा (कृतुम्) श्रेष्ठं कर्म प्रज्ञां वा। कृतुरिति कर्म्मनामसु पठितम्। (निघं०२.१) प्रज्ञानामसु पठितम्। (निघं०३.९) (विदः) प्राप्नुहि। अत्र वा छन्दिस् सर्वे विधयो भवन्ति इति गुणविकल्पो लेट्प्रयोगोऽन्तर्गतो ण्यर्थश्च। सायणाचार्य्येणेदमडागमेन् साधितम् भूणप्राप्तिनं बुद्धाऽतोऽस्यानभिज्ञता दृश्यते॥७॥

अन्वयः-हे पूषेन् (रमामन् सभाध्यक्ष! वा त्विमह सश्चतो नोऽस्मान् सुगा सुपथाऽतिनय नोऽस्मान् कृतुं विद्वः॥७॥

भावार्थः-अत्र श्लेषालङ्कारः। सर्वैर्मनुष्यैरेवं जगदीश्वरः प्रार्थनीयः। हे जगदीश्वर! भवान् कृपयाऽधर्म्/मागिद्धस्मान्निवर्त्य धर्ममार्गेण नित्यं गमयत्विति। विद्वानिप प्रष्टव्यः सेवनीयश्च भवान्नोऽस्माञ्छुद्धेन सरलेन वेदविद्यामार्गेण गमयत्विति॥७॥

पदोर्थ:-हे (पूषन्) सबको पुष्ट करने वाले जगदीश्वर वा प्रजा का पोषण करनेहारे सभाध्यक्ष विद्वान्। आप (इह) इस संसार वा जन्म में (सश्चतः) विज्ञानयुक्त विद्या धर्म को प्राप्त हुए (नः) हम

लोगों को (सुगा) सुख पूर्वक जाने के योग्य (सुपथा) उत्तम विद्या, धर्मयुक्त विद्वानों के मार्ग से (अतिनय) अत्यन्त प्रयत्न से चलाइये और हम लोगों को उत्तम विद्यादि धर्म मार्ग से (कृतुम्) उत्तम कर्म वा उत्तम प्रज्ञा से (विदः) जानने वाले कीजिये॥७॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में श्लेषांलकार है। सब मनुष्यों को ईश्वर की प्रार्थना इस प्रकार करनी चाहिये कि हे जगदीश्वर! आप कृपा करके अधर्म मार्ग से हम लोगों को अलग कर धर्म मार्ग में निस्य चलाइये तथा विद्वान् से पूछना वा उसका सेवन करना चाहिये कि हे विद्वान्! आप हम लोगों को शुद्ध, सरल वेदविद्या से सिद्ध किये हुए मार्ग में सदा चलाया कीजिये॥७॥

पुनस्तेन किं प्रापणीयमित्युपदिश्यते॥

फिर उसे किस को प्राप्त होना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र मैं किया है।।

अभि सूयवंसं नय न नंवज्वारो अध्वंने।

पूर्षित्रिह क्रतुं विदः॥८॥

अभि। सुऽयवसम्। नयः। ना नवऽज्वारः। अध्वने। पूर्णना द्वहः। क्रतुम्। विदः॥८॥

पदार्थ:-(अभि) आभिमुख्ये (सुयवसम्) शोभिस्य पवाद्योपिधिसमूहो यस्मिन् देशे तम्। अत्र अन्येषामिष दृश्यते इति दीर्घ:। (नय) प्रापय (न) निष्धार्थे (नवज्वार:) यो नवो नूतनश्चासौ ज्वार: सन्तापश्च सः (अध्वने) मार्गाय (पूषन्) सभाध्यक्ष (दृह्) उक्लार्थम् (विदः) प्राप्नुहि॥८॥

अन्वय:-हे पूषंस्त्विमहाऽध्वने सुयवस् देशम्भिनयं तेन मार्गेण क्रतुं विदो येन त्विय नवज्वारो न भवेत्॥८॥

भावार्थ:-हे परमेश्वर! भवान् स्वकृपेश शृष्ठदेशं गुणाँश्चास्मभ्यं देहि। सर्वाणि दु:खानि निवार्य्य सुखानि प्रापय। हे विद्वन् सभाध्यक्ष! स्वमस्मान् विनयेन पालियत्वा विद्यां शिक्षयित्वाऽस्मिन् राज्ये सुखयेति॥८॥

पदार्थ:-हे (पूषन) सभाष्यक्षा इस संसार वा जन्मान्तर में (अध्वने) श्रेष्ठ मार्ग के लिये हम लोगों को (सुयवसम्) उत्तम यव अर्पद ओषधी होने वाले देश को (अभिनय) सब प्रकार प्राप्त कीजिये और (क्रतुम्) उत्तम कर्म वा प्रक्रा को (विदः) प्राप्त हूजिये जिससे इस मार्ग में चल के हम लोगों में (नवज्वारः) नवीद्वी नवीन सन्ताप (न) न हों॥८॥

भावार्थ:-हे सभाध्यक्ष! आप अपनी कृपा से श्रेष्ठ देश वा उत्तम गुण हम लोगों को दीजिये और सब दु:खों को निवारण कर सुखों को प्राप्त कीजिये। हे सभासेनाध्यक्ष! विद्वान् लोगों को विनयपूर्वक पालन् से विद्या पढ़ाकर इस राज्य में सुखयुक्त कीजिये॥८॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते।

अष्टक-१। अध्याय-३। वर्ग-२४-२५

मण्डल-१। अनुवाक-८। सूक्त-४२

फिर वह कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

शृम्धि पूर्षि प्र यंसि च शिशोहि प्रास्युदर्गम्। पूर्षित्रह क्रतुं विदः॥९॥

शुम्बि। पूर्वि। प्रा यंसि। च। शिशोहि। प्रासि। उदर्रम्। पूर्वन्। इह। क्रतुम्। विदः।

पदार्थ:-(शम्धि) सुखदानाय समर्थोऽसि। अत्र बहुलं छन्दिस इति श्नोलुके। (पूर्धि) प्रीणीहि सर्वाणि सुखानि सम्प्राप्नुहि (प्र) प्रकृष्टार्थे (यंसि) यच्छ। दुष्टेभ्यः कर्मभ्य उपरतोऽसि। अत्र लोडर्थे लट्। (च) समुच्चये (शिशीहि) सुखेन शयनं कुरु। अत्र व्यत्ययेन परस्मैपव्य (प्रास्) सर्वाणि सेनाङ्गानि प्रजाङ्गानि च प्रपूर्धि (उदरम्) जठरं श्रेष्ठैभीजनादिभिस्तृप्यतु (पूषन्) स्नेमाध्यक्ष (इह) प्रजासुखे (कृतुम्) युद्धप्रज्ञां कर्म वा (विदः) प्राप्नुहि॥९॥

अन्वय:-हे पूषन् सभासेनाद्यध्यक्ष! त्वं सेनाप्रजाङ्गानि स्थि पूर्वि प्रयंसि शिशीहि नोऽस्माकमुदरं चोत्तमात्रैरिह प्रासि प्रपूर्धि कृतुं विद:॥९॥

भावार्थ:-निह सभासेनाध्यक्षाभ्यां विर्मेह काँरैचत्सामर्थ्यप्रदः सुखैरलङ्कर्ता पुरुषार्थप्रदश्चोरदस्युभय- निवारकः सर्वोत्तमभोगपुद्ये त्यायविद्याप्रकाशकश्च विद्यते तस्मात् तस्यैवाऽश्रयः सर्वैः कर्त्तव्यः॥९॥

पदार्थ:-हे (पूषन्) सभासेनाधिपते! अप हमें लीगों के (शिष्धि) सुख देने के लिये समर्थ (पूर्धि) सब सुखों की पूर्ति कर (प्रयंसि) हुए कर्मों से पूर्थक् रह (शिशीहि) सुख पूर्वक सो वा दुष्टों का छेदन कर (प्रासि) सब सेना वा प्रजा के अहीं को पूरण कीजिये और हम लोगों के (उदरम्) उदर को उत्तम अन्नों से (इह) इस प्रजा के सुख से तथा (कृतुम्) युद्ध विद्या को (विदः) प्राप्त हूजिये॥९॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में श्र्मणाऽलङ्कार है। सभा सेनाध्यक्ष के विना इस संसार में कोई सामर्थ्य को देने वा सुखों से अलंकृत कर्रिन, पुरुषार्थ को देने, चोर-डाकुओं से भय निवारण करने, सबको उत्तम भोग देने और न्यायविद्या का प्रकाश करने वाला अन्य नहीं हो सकता, इससे दोनों का आश्रय सब मनुष्य करें॥९॥

तुमार्श्रित्य कथं भवितव्यं किं च कर्त्तव्यमित्युपदिश्यते॥

उसका आश्रेष लेकर कैसे होना वा क्या करना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

त पूषणं मेथामसि सूक्तैर्भि गृंणीमसि। वसूति दुस्ममीमहे॥ १०॥ २५॥ 480

ऋग्वेदभाष्यम्

न। पूषर्णम्। मेथामुस्। सुऽउक्तैः। अभि। गृणीुमुस्। वसूनि। दुस्मम्। ईमुहे॥१०॥

पदार्थ:-(न) निषेधार्थे (पूषणम्) पूर्वोक्तं सभासेनाध्यक्षम् (मेथामिस) हिंस्मः (सूक्तैः) वेदोक्तैः स्तोत्रैः (अभि) सर्वतः (गृणीमिस) स्तुमः। अत्रोभयत्र मिसरादेशः। (वसूनि) उत्तमानि धनि (दस्मम्) शत्रुम् (ईमहे) याचामहे॥१०॥

अन्वय:-हे मनुष्या! यथा वयं सूक्तैः पूषणं सभासेनाध्यक्षमभिगृणीमस्स दस्मे मेथामसि वसूनीमहे परस्परं कदाचित्र द्विष्मस्तथैव यूयमप्याचरत॥१०॥

भावार्थ:-अत्र श्लेषालंकार:। न केनचिन्मूर्खत्वेन सभासेनाध्यक्षाश्र<mark>यं त्यक्त्वो</mark> शत्रुर्योचनीय:, किन्तु वेदै राजनीतिं विज्ञाय सुसहायेन शत्रून् हत्वा विज्ञानसुवर्णादीनि धन्मिन प्राप्य सुपात्रेभ्यो दानं दत्वा विद्या विस्तारणीया॥१०॥

अत्र पूषन्शब्दवर्णनं शक्तिवर्द्धनं दुष्टशत्रुनिवारणं सर्वेश्वर्यप्रोपणं भ्रामार्गगमनं बुद्धिकर्मवर्द्धनं चोक्तमस्त्यतोऽस्यैकचत्वारिंशसूक्तार्थेन सहैतदर्थस्य सङ्गतिरस्त्रीर्मि विस्तिब्यम्।।

इति पञ्चविंशतितमो वर्गो द्विचत्वारिंशं सूक्ते च समाप्तम्॥४२॥

पदार्थ: - हे मनुष्य लोगो! जैसे हम लोग (सूर्व्स:) विदेनित स्तोत्रों से (पूषणम्) सभा और सेनाध्यक्ष को (अभिगृणीमिस) गुणज्ञानपूर्वक स्तुति करते हैं (दस्मम्) शत्रु को (मेथामिस) मारते हैं। (वसूनि) उत्तम वस्तुओं को (ईमहे) याचना करते हैं और आप्रस में द्वेष कभी (न) नहीं करते, वैसे तुम भी किया करो॥१०॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। किसी मनुष्य को नास्तिक वा मूर्खपन से सभाध्यक्ष की आज्ञा को छोड़ शत्रु की याचना न करनी चाहिये, किन्तु वेदों से राजनीति को जान के इन दोनों के सहाय से शत्रुओं को मार विज्ञान वा सुवर्ण ओहि धनीं को प्राप्त होकर उत्तम मार्ग में सुपात्रों के लिये दान देकर विद्या का विस्तार करना चाहिये।

इस सूक्त में पूषन् शृद्धि का वर्णन शक्ति का बढ़ाना, दुष्ट शत्रुओं का निवारण, सम्पूर्ण ऐश्वर्य की प्राप्ति, सुमार्ग में चलका बुद्धि बार् कर्म का बढ़ाना कहा है। इससे इस सूक्त के अर्थ की सङ्गिति पूर्व सूक्तार्थ के साथ जाननी चाहिये।

यह पच्चीसवां वर्ग २५ और बयालीसवां सूक्त समाप्त हुआ॥४२॥

अथ नवर्च्चस्य त्रयश्चत्वारिंशस्य सूक्तस्य घौरः कण्व ऋषिः। १,२,४,५,६ रुद्रः। ३ मित्रावरुणौ। ७,८,९ सोमश्च देवताः। १,४,७,८ गायत्री। ५ विराड्गायत्री। ६

् पादिनचृद्गायत्री च छन्दः। षड्जः। स्वरः। ९ अनुष्टुप् छन्दः। गास्थारः स्वरः॥ (

अब तेंतालीसवें सूक्त का आरम्भ है, उस के पहिले मन्त्र में रुद्र शब्द के अर्थ का उपदेश किया

है॥

कड्डुद्राय प्रचेतसे मीळ्हुष्टमाय तव्यसे। वोचेम शंतमं हुदे॥ १॥

कत्। रुद्रायं। प्रचेतसे। मी॒ढु:ऽतमाय। तव्यसे। वोचेमं। शम्ऽतमम्। हुद्रें॥ शार

पदार्थ:-(कत्) कदा (फद्राय) परमेश्वराय जीवाय वा (प्रचेत्से) प्रकृष्टे चेती ज्ञानं यस्य यस्माद्वा तस्मै (मीढुष्टमाय) प्रसेक्तुतमाय (तव्यसे) अतिशयेन वृद्धाय। अत्र तवीत्रीनिति सम्प्राप्ते छान्दसो वर्णलोपो वा इतीकारलोप:। (वोचेम) उपदिशेम (शन्तमम्) अतिश्वितं सुद्धम् (हृदे) हृदयाय॥१॥

अन्वय:-वयं कत्कदा प्रचेतसे मीदुष्टमाय तव्यसे हुद्दे रुद्राय स्तिमं वोचेम॥१॥

भावार्थ:-रुद्रशब्देन त्रयोऽर्था गृह्यन्ते। परमेश्वरो जोवी वायुश्चेति तत्र परमेश्वर: सर्वज्ञतया येन यादृशं पापकर्म कृतं तत्फलदानेन रोदयिताऽस्ति जीव: खुलु क्दा मरणसमये शरीरं जहाति पापफलं च भुङ्क्ते तदा स्वयं रोदिति वायुश्च शूलादिपीद्धाकर्मणा कर्मनिमित्तः सन् रोदयिताऽस्त्यत एते रुद्रा विज्ञेया:॥१॥

पदार्थ:-हम लोग (कत्) कब (प्रचित्तसे) इतिम ज्ञानयुक्त (मीढुष्टमाय) अतिशय करके सेवन करने वा (तव्यसे) अत्यन्त वृद्ध (हृदे) (हृदय पें रहने वाले (फद्राय) परमेश्वर जीव वा प्राणवायु के लिये (शंतमम्) अत्यन्त सुख रूप वेद का (वारोम) अच्छे प्रकार उपदेश करें॥१॥

भावार्थ:-रुद्र शब्द से तिम अर्थी का ग्रहण है, परमेश्वर जीव और वायु, उनमें से परमेश्वर अपने सर्वज्ञपन से जिसने जैसा पाप कर्म किया उस कर्म के अनुसार फल देने से उसको रोदन कराने वाला है। जीव निश्चय करके मरने समय अन्य सम्बन्धियों को इच्छा कराता हुआ शरीर को छोड़ता है, तब अपने आप रोता है और वायु शूल आदि पीड़ा कर्म से रोदन कर्म का निमित्त है; इन तीनों के योग से मनुष्यों को अत्यन्त सुखों को प्राप्त होना चाहिये॥१॥

पुनः स किं करोतीत्युपदिश्यते॥

फिर वह क्या करता है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

येथां नो अदितिः कर्त् पश्चे नृभ्यो यथा गर्वे।

वधा तोकायं रुद्रियंम्॥२॥

यथा। नः। अदितिः। कर्त्। पश्चै। नृऽभ्येः। यथा। गर्वे। यथा। तोकार्य। रुद्रियम्॥२॥

पदार्थ:-(यथा) येन प्रकारेण (नः) अस्मभ्यम् (अदितिः) माता। अत्र अदितिद्यौः इत्यादिना माता गृह्यते। (करत्) कुर्य्यात् अत्राऽयं भ्वादिः। (पश्चे) पशुसमूहाय पशुपालः। अत्र जसादिषु छन्ति व वचनम्। (अष्टा०७.६.१०९) इति वार्तिकेनायं सिद्धः। (नृभ्यः) यथा मनुष्येभ्यो नृपितः (यथा) (गवे) इन्द्रियाय जीवः पृथिव्यै कृषीवलः (यथा) (तोकाय) सद्यो जातायापत्याय बालकाय (रुद्धिम्) रुद्रस्येदं कर्म। अत्र पृषोदराद्याकृतिगणान्तर्गतत्वात् इदमर्थे घः॥२॥

अन्वय:-यथा तोकायादितिर्माता यथा पश्चे पशुपालो यथा नृभ्यो नरेशो यथा गर्वे गोपालश्च सुखं करत् कुर्यात् तथा नोऽस्मभ्यं रुद्रियं कर्म स्यात्॥२॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। यथा मातापितृभ्यां सन्तानाय पशुभ्यो गोपालेम राजसभया च विना प्रजाभ्य: सुखं न जायते तथैव विद्यापुरुषार्थाभ्यां विना सुखं न भवति। रिप्त

पदार्थ:-(यथा) जैसे (तोकाय) उत्पन्न हुए बालक के लियें (अहिनि:) माता (यथा) जैसे (पश्चे) पशु समूह के लिये पशुओं का पालक (यथा) जैसे (नृभ्य:) मनुष्यों के लिये राजा (यथा) जैसे (गवे) इन्द्रियों के लिये जीव वा पृथिवी के लिये खेती करने वास्त (करते) सुखों को करता है, वैसे (न:) हम लोगों के लिये (रुद्रियम्) परमेश्वर वा पवनों का कर्म प्राप्त हो। रि

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमाऽलङ्कार है। जैसे माता फ्रिंता पुत्र के लिये, गोपाल पशुओं के लिये और राजसभा प्रजा के लिये सुखकारी होते हैं। समें ही समुखीं के करने-कराने वाले परमेश्वर और पवन भी हैं॥२॥

अथ सर्वै: सह बिद्धांसे कथं वर्तेरन्नित्युपदिश्यते॥

अब सबके साथ विद्वान् ल्रोग कैसे वर्तें, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

यथा नो मित्रो वर्रुणो प्रथा कुद्रिश्चिकेतति।

यथा विश्वे सुजोषंसः॥ ३॥

यथा। नुः। मित्रः विक्रमः। यथा। रुद्रः। चिकेतित। यथा। विश्वे। सुजोषेसः॥३॥

पदार्थ:-(यथा) येन प्रकारेण (नः) अस्मान् (मित्रः) सखा प्राणो वा (वरुणः) उत्तम उपदेष्टोदानो वा (यथा) (स्ट्रः) परमेश्वरः (चिकेतित) ज्ञापयित (यथा) (विश्वे) सर्वे (सजोषसः) समानो जोषः प्रीतिः स्विनं का श्रेषान्ते॥३॥

अन्वयः-येथा मित्रो यथा वरुणो यथा रुद्रो नोऽस्मॉरिचकेतित यथा विश्वे सजोषसः सर्वे विद्वांसः सर्वा विद्यार्श्चकेतन्ति तथाऽऽप्ता जनाः सत्यं विज्ञापयन्तु॥३॥ अष्टक-१। अध्याय-३। वर्ग-२६-२७

मण्डल-१। अनुवाक-८। सूक्त-४३

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। यथा सर्वैर्विद्वद्भिमैत्रीमुत्तमशीलं च धृत्वा सर्वेभ्यो मनुष्येभ्यो यथार्था विद्या उपदेष्टव्या:। यथा परमेश्वरेण वेदद्वारा सर्वा विद्या: प्रकाशितास्तथैवाध्यापकै: र्स्व मनुष्य विद्यायुक्ता: सम्पादनीया इति॥३॥

पदार्थ:-(यथा) जैसे (मित्र:) सखा वा प्राण (वरुण:) उत्तम उपदेष्टा वा उदान (यथा) जैसे (फद्र:) परमेश्वर (न:) हम लोगों को (चिकेतित) ज्ञानयुक्त करते हैं (यथा) जैसे (विश्व) सब (सजोषस:) स्वतुल्य प्रीति सेवन करने वाले विद्वान् लोग सब विद्याओं के अनिने बाले होते हैं, वैसे यथार्थ वक्ता पुरुष सबको जनाया करें॥३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे विद्वान् लोग सब मनुष्यों को मित्रपन और उत्तम शील धारण कराकर उनके लिये यथार्थ विद्याओं की प्राप्ति और जैसे परमेश्वर ने वेदद्वारा सब विद्याओं का प्रकाश किया है, वैसे विद्वान् अध्यापकों को भी सब मनुष्यों को विद्यायुक्त करना चाहिये॥३॥

पुनः स रुद्रः कीदृश इत्युपिक्स्यते॥

फिर वह रुद्र कैसा है, इस विषय का उपहेरा अगले मुन्त्र में किया है।।

गाथपतिं मेधपतिं रुद्रं जलाषभेषजम्।

तच्छुंयो: सुम्नमीमहे॥४॥

गाथऽपतिम्। मेधऽपतिम्। रुद्रम्। जलाष् भेषज्म्। ततु शृम्ऽयोः। सुम्नम्। ईमहे॥४॥

पदार्थ:-(गाथपितम्) यो गाथानां स्ताबकानां विदुषां पितः पालकस्तम् (मेधपितम्) यो मेधानां पिवत्राणां पुरुषाणां वा पालियता तम् मेध इति वज्ञनामसु पिठतम्। (निघं०३.१७) (रुद्रम्) पूर्वोक्तम् (जलाषभेषजम्) जलाषाय सुखाय भेषजे यस्मोत्तम् (तत्) ज्ञानम् (शंयोः) शं लौकिकं पारमार्थिकं सुखं विद्यते यस्मिंस्तस्य (सुम्नम्) मोक्सुखम् (इसहे) याचामहे॥४॥

अन्वय:-हे मनुष्या । यथा वयं गार्थपतिं मेधपतिं जलाषभेषजं रुद्रमाश्रित्य यच्छंयोरिप सुम्नं मोक्षसुखमीमहे याचामहे तथिव युयमुर्जीच्छत॥४॥

भावार्थ:-निह केश्चलितोनां मेधानां दु:खनाशकानामोषधीनां प्रापकेण विदुषा प्राणायामेन च विना विज्ञानं लौकिकं सुखं मोक्षसुखं च प्राप्तुमर्हति॥४॥

पदार्थः है मेनुष्यो! जैसे हम लोग (गाथपितम्) स्तुति करने वालों के पालक (मेधपितम्) यज्ञ वा पिवत्र मुख्यों की पालना करने वाले (जलाषभेषजम्) जिससे सुख के लिये औषधी हो, उस (रुद्रम्) परमेश्वर के आश्रय होकर (तत्) उस विज्ञान वा (शंयो:) व्यावहारिक पारमार्थिक सुख से भी (सुम्नम्) मोक्ष्र के सुख की (ईमहे) याचना करते हैं, वैसे तुम भी करो॥४॥

488

ऋग्वेदभाष्यम्

भावार्थ:-कोई भी मनुष्य स्तुति, यज्ञ वा दु:खों के नाश करने वाली ओषधियों की प्राप्ति कराने वाले परमेश्वर, विद्वान् और प्राणायाम के विना, विज्ञान और लौकिक सुख वा मोक्ष सुख प्राप्त होने के योग्य नहीं हो सकता॥४॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते।

फिर वह कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

यः शुक्रइव सूर्यो हिरण्यमिव रोचते।

श्रेष्ठो देवानां वसुः॥५॥२६॥

यः। शुक्रःऽईव। सूर्यः। हिर्गण्यम्ऽइव। रोचते। श्रेष्ठः। देवानाम्। वसुं (१५५)।

पदार्थ:-(य:) पूर्वोक्तो रुद्र: (शुक्रइव) यथा तेजस्वी (मूर्य्य:) सर्विता (हिरण्यमिव) यथा सुवर्णं प्रीतिकरम् (रोचते) रुचिकारी वर्त्तते (श्रेष्ठ:) अत्युत्तमः (देवानाम्) सर्वेषां विदुषां पृथिव्यादीनां च मध्ये (वसुः) वसन्ति सर्वाणि भूतानि यस्मिन् सः॥५॥

अन्वय:-हे मनुष्या! यूयं यो रुद्रः सभेशः सूर्यः शुक्रङ्ग् हिरण्यमिव रोचते देवानां श्रेष्ठो वसुरस्ति तं सेनानायकं कुरुत॥५॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। मनुष्यैर्यथा प्रमेश्वरः सर्वेषां ज्योतिषां ज्योतिरानन्दिनामानन्दी श्रेष्ठानामुत्तमानम्तमो देवानां देवोऽधिकरणानाम्भिकरणमस्ति। एवं सभाध्यक्षः प्रकाशवत्सु प्रकाशवान् न्यायकारिषु न्यायकारी खल्वानन्दप्रदेष्वानन्दप्रदः श्रेष्ठस्वभावेषु श्रेष्ठस्वभावो विद्वत्सु विद्वान् वासहेतुनां वासहेतुर्भवेदिति वेद्यम्॥५॥

पदार्थ:-(य:) जो पूर्व कहा हुआ रुद्ध सम्पर्णत (सूर्य: शुक्र इव) तेजस्वी शुद्ध भास्कर सूर्य के समान (हिरण्यमिव) सुवर्ण के तुस्ध प्रीतिकारक (देवानाम्) सब विद्वान् वा पृथिवी आदि के मध्य में (श्रेष्ठ:) अत्युत्तम (वसु:) सम्पूर्ण प्राणीमात्र का वसाने वाला (रोचते) प्रीतिकारक हो उसको सेना का प्रधान करो॥५॥

भावार्थ:-इस महित्र में उपमालङ्कार है। मनुष्यों को उचित है कि जैसा परमेश्वर सब ज्योतिषों का ज्योति, आनन्दकारियों का अभन्दकारी, श्रेष्ठों का श्रेष्ठ, विद्वानों का विद्वान्, आधारों का आधार है, वैसे ही जो न्यायकारियों में न्यायकारी, आनन्द देने वालों में आनन्द देने वाला, श्रेष्ठ स्वभाव वालों में श्रेष्ठ स्वभाव वाला, बिद्वानों में विद्वान् और वास हेतुओं का वासहेतु वीर पुरुष हो, उसको सभाध्यक्ष मानना चाहिये॥ पूर्ण

स तस्मै किं करोतीत्युपदिश्यते॥

वह उसके लिये क्या करता है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

अष्टक-१। अध्याय-३। वर्ग-२६-२७

मण्डल-१। अनुवाक-८। सूक्त-४३

शं ने: कर्त्यर्वते सुगं मेषायं मेघ्ये। नृभ्यो नारिभ्यो गर्वे॥६॥

शम्। नुः। कुर्ति। अर्वते। सुऽगम्। मेषायं। मेष्यं। नृऽभ्यं:। नारिंऽभ्यः। गर्वे॥६॥

पदार्थ:-(शम्) सुखम् (नः) अस्माकम् (करित) कुर्यात्। लेट् प्रद्विगिध्यम्। (अर्वते) अश्वजातये। अर्वेत्यश्चनामसु पिठतम्। (निघं०१.१४) (सुगम्) सुखं गम्यं यस्मिन्। अत्र बहुल्रम् इति करणे डः। (मेषाय) मेषजातये (मेष्ये) तित्स्त्रयै। अत्र वाच्छन्दिस सर्वे विधयो भविते इत्याडागमो न भवित (नृभ्यः) मनुष्येभ्यः (नारिभ्यः) तत्स्त्रीभ्यः (गवे) गोजातये॥६॥

अन्वय:-यो रुद्रो नोऽस्माकमर्वते मेधाय मेध्ये नृभ्यो नारिभ्यो/गर्वे सुगं सततं करित, स एव सभाधीश: स्थापनीय:॥६॥

भावार्थ:-मनुष्यै: स्वस्य स्वकीयपरकीयानां मनुष्याणां पश्चिदीनां च सुखाय परमेश्वरस्य प्रार्थना विदुषां सहाय: प्राणानां यथावदुपयोग: पुरुषार्थश्च कर्त्तव्य द्वित्। दे॥

पदार्थ:-जो रुद्रस्वामी (नः) हम लोगों की (अर्बते) अश्वजीत (मेषाय) मेषजाति (मेष्ये) भेड़, बकरी (नृभ्यः) मनुष्य जाति (नारिभ्यः) स्त्री जाति और (ग्वे) म जाति के लिये (सुगम्) सुगम (श्रम्) सुख को (करति) निरन्तर करे, वही न्यायाधीश करना चाहिये। ६॥

भावार्थ:-मनुष्यों को अपने वा पराए पशु, मनुष्यों के लिये परमेश्वर की प्रार्थना, विद्वानों की सहायता, प्राणवायुओं से यथावत् उपयोग और अपने प्रुरुषार्थ करना चाहिये॥६॥

पुनस्तद्गुणा उपदिश्यन्ते॥

अब अगुले मन्त्र में रुद्र के गुणों का उपदेश किया है॥

अस्मे सोम् श्रियमधि मि धेहि श्रावस्य नृणाम्।

महि श्रवंस्तुविनृम्णम्।। ११।

अस्मेऽइति। सो प्रियम् अधि। नि। धेहि। शृतस्य। नृणाम्। मिह। श्रवः। तुविऽनृम्णम्॥७॥

पदार्थ: -(अस्मे) अस्मश्यस्माकं वा अत्र सुपां सुलुग्० इति शे आदेश: । (सोम) सर्वसुखप्रापक सभाध्यक्ष (श्रियम्) लक्ष्मी विद्यां भोगान् धनं वा (अधि) उपरिभावे (नि) निश्चयार्थे (धेहि) स्थापय (शतस्य) बहूनाम् (नुणाम्) वीरपुरुषाणाम् (मिह) पूज्यम्महद्वा (श्रवः) विद्याश्रवणमत्रं वा (तुविनृम्णम्) बहुविधं श्रनम्॥णा

अस्वय:-हे सोम सभाध्यक्ष! त्वमस्मे अस्मभ्यमस्माकं वा शतस्य नृणां तुविनृम्णं महि श्रव: श्रियं प्रध निष्षहिगण्णा ५४६

ऋग्वेदभाष्यम्

भावार्थ:-अत्र श्लेषाऽलङ्कार:। निह किश्चत्परमेश्वरस्य कृपया सभाध्यक्षसहायेन स्वपुरुषार्थेन चे विना पूर्णां विद्यां पशूँश्चक्रवर्त्तिराज्यं लक्ष्मीं च प्राप्तुं शक्नोतीति॥७॥

पदार्थ:-हे (सोम) जगदीश्वर सभाध्यक्ष वा आप! (अस्मे) हम लोगों के लिये वा हम लोगों के (शतस्य) बहुत (नृणाम्) वीरपुरुषों के (तुविनृम्णम्) अनेक प्रकार के धन (मिह) पूज्य का बहुत (श्ववः) विद्या का श्रवण और (श्रियम्) राज्यलक्ष्मी को (अधि नि धेहि) स्थापन कीजिये॥७॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। कोई प्राणी परमेश्वर की कृपा, सभाध्यक्ष की सहायता वा अपने पुरुषार्थ के विना पूर्ण विद्या, पशु, चक्रवर्त्ती राज्य और लक्ष्मी को प्राप्त बही हो सकता॥७॥

पुनः स किन्निवारयेदित्युपदिश्यते॥

फिर वह किसका निवारण करे, इस विषय का उपदेश अपले मन्त्र मिं निया है।।

मा नः सोमपरिबाधो मारातयो जुहुरन्त।

आ न इन्द्रो वाजे भज॥८॥

मा। नः। सोमुऽपुरिबार्धः। मा। अरातयः। जुहुरुन्त। अम्म नुः। इन्सुर्र्इति। वार्जे। भुजा।८॥

पदार्थ:-(मा) निषेधार्थे (न:) अस्मान् (सोमपरिषाधः) में सोमानुत्तमान् पदार्थान् परितः सर्वतो बाधन्ते ते (मा) निषेधार्थे (अरातयः) शत्रवः (ज्हरून्ते प्रमहाकारिणो भवन्तु। अत्र ह प्रसहाकरणे व्यत्ययेन आत्मनेपदं लड्यडभावो बहुलं छन्द्रिस इत्युत्व वा छन्द्रिस सर्वे विधयो भवन्ति इति अदभ्यस्तात् इति प्राप्तेऽद्भावो न भवति (आ) अभितः (नः) अस्मान् (इन्दो) आर्द्रीकारक सभाध्यक्ष (वाजे) युद्धे (भज) सेवस्व॥८॥

अन्वयः-हे इन्दो सभाध्यक्षः! निऽस्मान् सोमपरिबाधो विरोधिनो मा जुहुरन्त येन नोऽस्माकमरातयः सन्ति ताँस्त्वं कृदाचिनमाऽऽभज॥८॥

भावार्थ:-मनुष्यै: परमोत्तिमबलसाहित्येन युद्धेन च सर्वान् दुष्टाञ्च्छत्रून् विजित्य सत्यन्याययुक्तं राज्यं कार्य्यमिति॥८॥

पदार्थ: -हे (इन्हीं) सुशिक्ष्म से आर्द्र करने वाले सभाध्यक्ष (न:) हम लोगों को (सोमपिरबाध:) जो उत्तम पदार्थों को सब प्रकार दूर करने वाले विरोधी पुरुष हैं वे हम पर (मा जुहुरन्त) प्रबल न होवें और (अरातय:) की दान आदि धर्मरहित शत्रु हठ करने वाले हैं वे (न:) हम लोगों को इन शत्रुओं को (वाजे) युद्ध में पराचेष्ठ करने को (आभज) अच्छे प्रकार युक्त कीजिये॥८॥

भावार्थ: इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों को अत्यन्त उत्तम बल के साहित्य से परमेश्वर वा सभासेनाष्ट्रपक्ष के आश्रय वा अपने पुरुषार्थयुक्त युद्ध में सब शत्रुओं को जीत कर न्याययुक्त होके राज्य का मालून करना चाहिये॥८॥ अष्टक-१। अध्याय-३। वर्ग-२६-२७

मण्डल-१। अनुवाक-८। सूक्त-४३

पुनरेतस्य का कीदृशीत्युपदिश्यते॥

फिर उसकी कौन कैसी है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

यास्ते प्रजा अमृतस्य परिस्मिन् धार्मत्रृतस्य।

मूर्घा नाभा सोम वेन आभूषंन्तीः सोम वेदः॥९॥२७॥८॥

याः। ते। प्रऽजाः। अमृतस्य। पर्रस्मिन्। धार्मन्। ऋतस्यं। मूर्धा। नाभां। सोर्म्। वेनः। आऽभूर्षन्तीः। सोम्। वेदुः॥९॥

पदार्थ:-(या:) वक्ष्यमाणाः (ते) तव जगदीश्वरस्येव सभाध्यक्षस्य (प्रजा:) प्रादुर्भूताः पालनीयाः (अमृतस्य) नाशरहितस्य कारणस्य सकाशाद्वोत्पन्नाः (परिस्मिन्) उत्तर्थे (धामन्) धामन्यानन्दमये स्थाने (ऋतस्य) सत्यस्वरूपस्य सत्यप्रियस्य वा (मूर्द्धा) उत्तमः (नाभा) सन्नहन्तस्य सुखस्थिरस्य बन्धनरूपे। अत्र सुपां सुलुक् इत्याकारादेशः। (सोम) सर्वसुखैश्वर्यप्रद (वेदः) क्रामृथस्व (आभूषन्तीः) समन्ताद् भूषणयुक्ताः (सोम) विज्ञानप्रद (वेदः) प्राप्नुहि॥९॥

अन्वय:-हे सोम! वेनो मूर्द्धा त्वमृतस्याऽमृतस्य मार्शरिहतस्य नाभा परिस्मिन् धामन् वर्त्तमानस्येश्वरस्य ते याः प्रजाः सन्ति ता आभूषन्तीर्वेद्धः सर्वाभिर्व्विद्याभिः प्राप्नुहि॥९॥

भावार्थ:-यत्र मनुष्या अद्वितीयस्येश्वरस्योगस्कस्य सभाद्यध्यक्षस्य चाश्रयं कुर्वन्ति तत्रैते दुःखस्य लेशमपि न प्राप्नुवन्ति। यथा परमेश्वरः श्रेष्ठाचारिणो मनुष्यान् कामयते सभाध्यक्षश्च तथैव प्रजास्थैरपि पुरुषै: परमेश्वरसभाध्यक्षौ नित्यं कामनीयौ नितास्वामनुष्य विना विस्तृतं सुखं कदाचित्सम्भवतीति॥९॥

अस्मिन् सूक्ते रुद्रशब्दार्थक्र्णनं सर्वसुखप्रतिपादनं मित्रताऽऽचरणं परमेश्वरसभाध्यक्षाश्रयेण सर्वसुखप्रापणमेकस्येश्वरस्योपासन् परमोषुखप्रापणं सभाद्यध्यक्षाश्रयकरणं चोक्तमत एतदर्थस्य पूर्वस्क्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीनिविदितव्यम्॥

इति त्रयश्चलारिशं सूक्तं सप्तविशो वर्गश्च समापः॥

पदार्थ:-हे (सोप) विज्ञान के देने वाले (वेन:) कमनीयस्वरूप (मूर्द्धा) सर्वोत्तम! तू (ऋतस्य) सत्यस्वरूप वा सृत्यप्रिय (अमृतस्य) नाशरहित (नाभा) स्थिर सुख के बन्धनरूप (धामन्) न्याय वा आनन्दमय स्थान में वर्तमान ईश्वर के समान न्यायकारी (ते) तेरी (या:) जो (प्रजा:) हैं उन को (आभूषन्ती:) सर्व प्रकार भूषणयुक्त होने की (वेन:) इच्छा कर और उनको (वेद:) सब विद्याओं से प्राप्त होति ।।

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जहाँ मनुष्य ईश्वर ही की उपासना करनेहारे त्युत्तम सभाध्यक्ष का आश्रय करते हैं, वहां वे दु:ख के लेश को भी नहीं प्राप्त होते। जैसे परमेश्वर और

सभाध्यक्ष श्रेष्ठ आचरण करने वाले मनुष्यों की इच्छा करते हैं, वैसे ही प्रजा में रहने वाले मनुष्य परमेश्वर वा सभाध्यक्ष की नित्य इच्छा करें, क्योंकि इसके विना बहुत सुख कभी प्राप्त नहीं हो सकते॥ ९॥

इस सूक्त में रुद्र शब्द के अर्थ का वर्णन, सब सुखों का प्रतिपादन, मित्रपन की अचिरण परमेश्वर वा सभाध्यक्ष के आश्रय से सुखों की प्राप्ति, एक ईश्वर ही की उपासना, परमेसुख की प्राप्ति और सभाध्यक्ष का आश्रय करना कहा है। इससे इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्तर्थ के साथ सङ्गिति जाननी चाहिये॥

यह तेंतालीसवां सूक्त और सत्ताईसवां वर्ग समाप्त हुआ॥ ४३॥ २७॥

अथ चतुर्दशर्च्चस्य चतुश्चत्वारिंशस्य सूक्तस्य प्रस्कण्व ऋषिः। अग्निर्देवता। १,५ उपरिष्टाद्विराड् बृहती। ३ निचृदुपरिष्टाद् बृहती। ७,११ निचृत्पथ्याबृहती। १२ भुरिग्बृहती। १३

पथ्याबृहती च छन्दः। मध्यमः स्वरः २,४,६,८,१४ विराट्सतः पङ्क्तिः। १० विराङ्

विस्तारपङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः। ९ आर्च्ची त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अत्र सायणाचार्थ्यादिभिर्विलसनमोक्षमूलरादिभिश्च युज: सतोबृहत्योऽयुजोबृहत्य इत्युक्ते तदलीकतरम्। इत्यमेषां छन्दोविषयज्ञानं सर्वत्रैवास्तीति वेद्यम्॥

इस सूक्त में सायणाचार्य्यादि वा विलसन मोक्षमूलरादिकों ने यजोबृहती, अर्युजो बृहती छन्द कहें हैं, सो मिथ्या हैं। इसी प्रकार छन्दों का ज्ञान इन को सब जूनह जानो॥

अथाऽग्निशब्दसम्बन्धेन देवकामना कार्य्यत्युरातिशयते॥

अब चवालीसवें सूक्त का आरम्भ है, उसके पहिले मन्त्र में अग्नि शब्द के सम्बन्ध से विद्वानों की कामना करनी चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

अग्ने विवस्वदुषसंश्चित्रं राधी अमर्त्य।

आ दा्शुषे जातवेदो वहा त्वमुद्या देवाँ उषुर्बुध्री ।।।(हो)

अग्ने। विवस्वत्। उषसं:। चित्रम्। रार्धः। अमुर्त्धाः आ। दाशुर्षे। जात्ऽवेदः। वहः। त्वम्। अद्य। देवान्। उषःऽबुर्धः॥ १॥

पदार्थ:-(अग्ने) विद्वन् (विवस्वत्) प्रथा स्वष्नुकाशस्वरूपः सूर्यः (उषसः) प्रातःकालात् (चित्रम्) अद्भुतं विवस्वत्प्रकाशक्षम् (प्रधः) धनम् (अमर्त्य) स्वस्वरूपेण मरणधर्मरहितसाधारणमनुष्यस्वभाव- विलक्षण् (आ) अभितः (दाशुषे) दात्रे पुरुषार्थिने मनुष्याय (जातवेदः) यो जातान् सर्वान्वेत्रि जातान् विन्दित वा तत्सम्बुद्धौ। अत्राह यास्कमुनिः। जातवेदाः कस्माज्जातानि वेद जातानि वेतं विदुर्जाते जाते विद्यत इति वा जातवित्तो वा जातधनो वा जातविद्यो वा जातप्रज्ञो वा यत्तज्जातः पश्चित्वद्वतेति जज्जातवेदसो जातवेदस्विमिति ब्राह्मणम्। (निरु०७.१९) (वह) प्राप्नुहि। अत्र द्वय्योऽतिस्तिङ्काहित दीर्घः। (देवान्) उत्तमान् विदुषो दिव्यगुणान् वा (उषर्बुधः) य उषसि स्वयं बुध्यन्ते सुप्तान् बोध्यान्त तान्॥१॥

अन्वयः हे अमर्त्य जातवेदोऽग्ने विद्वन्! यतस्त्वमद्य दाशुषे उषसश्चित्रं विवस्वद्राधो ददासि स उषर्बुधो देवाँश्वीवह १९॥

भूतिर्थः-भनुष्येरीश्वराज्ञापालनाय स्वपुरुषार्थेन परमेश्वरमनलसानुत्तमान् विदुषश्चाश्रित्य चक्रवर्तिराज्य-विद्याश्रीः प्राप्तव्या सर्वविद्याविदो विद्वांसः परमोत्तमगुणाढ्यं यच्छ्रेष्ठं कर्म स्वीकर्त्तुमिष्टं तिन्नर्यं कुर्युः। यद्दुष्टं कर्म्म तत्कदाचिन्नैव कुर्य्युरिति॥१॥

पदार्थ:-हे (विवस्वत्) स्वप्रकाशस्वरूप वा विद्याप्रकाशयुक्त (अमर्त्य) मरणधर्म से रहित वा साधारण मनुष्यस्वभाव से विलक्षण (जातवेद:) उत्पन्न हुए पदार्थों को जानने वा प्राप्त होने वाले (अग्ने) जगदीश्वर वा विद्वान्! जिस से आप (अद्य) आज (दाशुषे) पुरुषार्थी मनुष्य के लिये (उषस:) प्रातःकाल से (चित्रम्) अद्भुत (विवस्वत्) सूर्य्य के समान प्रकाश करने वाले (राध:) धन को देने हो, वह आप (उषबुंध:) प्रातःकाल में जागने वाले विद्वानों को (आवह) अच्छे प्रकार प्राप्त कीजिये।

भावार्थ:-मनुष्यों को परमेश्वर की आज्ञा पालन के लिये अपने पुरुषार्थ से परमेश्वर वा आलस्य रहित उत्तम विद्वानों को आश्रय लेकर चक्रवर्त्ति राज्य, विद्या और राजलक्ष्मी का स्वीकार करना चाहिये सब विद्याओं के जानने वाले विद्वान् लोग जो उत्तम गुण और श्रेष्ठ अपने करने योग्य कर्म हैं, उसीको नित्य करें और जो दुष्ट कर्म हैं, उस को कभी न करें॥१॥

पुनर्विद्वत्सङ्गगुणा उपदिश्यन्ते॥

फिर विद्वानों के संग के गुणों का उपदेश अगूले मन्त्र में किया है।।

जुष्ट्रो हि दूतो असि हव्यवाहुनोऽग्ने र्थीरध्वराणाम्। सजूरश्विभ्यांमुषसां सुवीर्यमस्मे धेहि श्रवी बृहत्।। रा

जुष्टं:। हि। दूत:। असि। हृव्युऽवाह्नन:। अनी पूर्थी:। अर्थ्वराणाम्। सुऽजू:। अश्विऽभ्याम्। उषसा। सुऽवीर्यम्। अस्मेऽइति। धेहि। श्रवं:। बृहत्॥२॥

पदार्थ:-(जुष्ट:) प्रीतः सेवितः (हि) खेलु (दूर्तः) शत्रूणामुपतापियताऽतिप्रतापगुणयुक्तो वा (असि) (हव्यवाहनः) यो हव्यानि ग्राह्यदात्व्यानि हुन्नानि द्व्याणि यानानि वा वहित प्राप्नोति सः (अग्ने) राजिवद्याविचक्षण (रथीः) प्रशस्ता रथा पर्ये सिन्ति सः। अत्र छन्दसीविनिपौ च वक्तव्यौ। (अष्टा०वा०५.२.१०९) अनेन रथ्रशब्दोस्त्वर्थे ईप्रत्ययः। (अध्वराणाम्) अहिंसनीयानां यज्ञानां मध्ये (सजूः) यः समाना जुषते। अत्र जुष धात् िक्वप् समानस्य सादेशश्च (अश्विभ्याम्) वायुजलाभ्याम् (उषसा) प्रातःकालेन युक्त्या (स्विन्ध्यम्) सुष्ठु वीर्य्याणि यस्य सः (अस्मे) अस्मासु। अत्र सुणं सुलुग्० इति सप्तम्याः स्थाने श्रे आदेशः। (धेहि) धर (श्रवः) सर्वविद्याश्रवणिनिमत्तमन्नम् (बृहत्) महत्तमम्॥२॥

अन्वयः त्रे अग्ने विद्वान्! यतस्त्वं जुष्टो दूतः सन्नध्वराणां रथीर्हव्यवाहनः सजूरिस तस्मादस्मे अश्विभ्यामुषस्म सिद्धं बुहत्सुवीर्य्यं श्रवो धेहि॥२॥

भूतिमर्थः-तिह कश्चिद्धिदुषां सङ्गेन विना सर्वविद्यां प्राप्य शत्रुविजयमुत्तमं पराक्रमं चक्रवत्यिदिश्रियं च प्राप्तुं शक्नोति। निह खल्वग्नेर्जलादियोगेन विनोत्तमव्यवहारसिद्धिं च प्राप्तुमर्हृतीति॥२॥ अष्टक-१। अध्याय-३। वर्ग-२८-३०

मण्डल-१। अनुवाक-९। सूक्त-४४

पदार्थ:-हे (अग्ने) पावक के समान राजविद्या के जानने वाले विद्वान्! (हि) जिस कारण आप (जुष्ट:) प्रसन्न प्रकृति और (दूत:) शत्रुओं को ताप कराने वाले होकर (अध्वराणाम्) अहिंसनीय गर्जों को सिद्ध करते (रथी:) प्रशंसनीय रथयुक्त (हव्यवाहन:) देने-लेने योग्य वस्तुओं को प्राप्त होने (प्रजू:) अपने तुल्यों के सेवन करने वाले (असि) हो इस से (अस्मे) हम लोगों में (अश्विश्याम्) वायु, जल (उषस:) प्रात:काल में सिद्ध हुई क्रिया से सिद्ध किये हुए (वृहत्) बड़े (सुवीर्थ्यम्) उत्तम पराक्रम कारक (श्रव:) सब विद्या के श्रवण का निमित्त अन्न को (धेहि) धारण कीजिये।

भावार्थ:-कोई मनुष्य विद्वानों के संग के विना विद्या को प्राप्त, शत्र को जीत के उत्तम पराक्रम चक्रवर्ति राज्यलक्ष्मी के प्राप्त होने को समर्थ नहीं हो सकता और अग्नि, जल आदि के योग के विना उत्तम व्यवहार की सिद्धि भी नहीं कर सकता॥२॥

पुनस्तं कथंभूतं स्वीकुर्य्युरित्युपदिश्यते।।

फिर कैसे मनुष्य को स्वीकार करे, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।

अद्या दूतं वृणीमहे वसुंमुग्नि पुरुष्ट्रियम्। धूमकेतुं भाऋजीकं व्युष्टिषु यज्ञानामध्वर्श्रियम्॥ शा

अद्यः। दूतम्। वृणोम्हे। वसुम्। अग्निमा पुरुऽप्रियम् धूमऽकेतुम्। भाःऽऋंजीकम्। विऽउष्टिषुः। युज्ञानीम्। अध्वरुऽश्रियम्॥३॥

पदार्थ:-(अद्य) अस्मिन् दिने। निर्मातस्य चे हित दीर्घः। (दूतम्) यो दुनोति पदार्थान् देशान्तरं प्रापयित तम् (वृणीमहे) स्वीकुर्वीमिह्न (वसुम्) सकलिवद्यानिवासम् (अग्निम्) पावकिमव विद्वांसम् (पुरुप्रियम्) यः पुरूणां बहूनां प्रियस्तम् (धूमकेतुम्) धूमकेतुर्ध्वजो यस्य तम् (भाऋजीकम्) भाति प्रकाशयित सा भा भा कान्तिर्वा सां योऽजीयते तम् (व्युष्टिषु) विविधा उष्टयः कामनाश्च तासु (यज्ञानाम्) अग्निहोत्राद्यश्वमेधान्तानां योग्राह्मिनिशिल्पोपासनाज्ञानानां वा मध्ये (अध्वरिश्रयम्) याऽध्वराणामिहंसनीयानां यज्ञानां श्रीः शोभा ताम्॥

अन्वय:-वयमद्ये मृतुष्याजन्मविद्याप्राप्तिसमयं प्राप्याऽस्मिन् दिने व्यृष्टिषु भाऋजीकं यज्ञानां मध्येऽध्वरिश्रयं धूमकेतुं वसुं पुरुप्रियं दूतमग्निमिव वर्त्तमानं विद्वांसं दूतं वृणीमहे॥३॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। मनुष्यैर्विद्याराज्यसुखप्राप्त्यर्थमनूचानं विद्वांसं दूतं कृत्वा बहुगुणयोगेन बहुक्सर्य्यप्रपिकां विद्युतं स्वीकृत्य सर्वाणि कार्य्याणि संसाधनीयानि॥३॥

पदार्थ:-हम लोग (अद्य) आज मनुष्यजन्म वा विद्या के प्राप्ति समय को प्राप्त होकर (व्युष्टिषु) अने क्र प्रकार की कामनाओं में (भाऋजीकम्) कामनाओं के प्रकाश (यज्ञानाम्) अग्निहोत्र आदि अश्वमेध प्रयन्त को योग, उपासना, ज्ञान, शिल्पविद्यारूप यज्ञों के मध्य (अध्वरिश्रयम्) अहिंसनीय यज्ञों की भी

शोभारूप (धूमकेतुम्) जिसका धूम ही ध्वजा है (वसुम्) सब विद्याओं का घर वा बहुत धन की प्राप्ति का हेतु (पुरुप्रियम्) बहुतों को प्रिय (दूतम्) पदार्थों को दूर पहुंचाने वाले (अग्निम्) भौतिक अग्नि के सदृश विद्वान् दूत को (वृणीमहे) अङ्गीकार करें॥३॥

भावार्थ:-मनुष्यों को उचित है कि विद्या वा राज्य की प्राप्ति के लिये सब विद्याओं के कथन करने वा सब बातों का उत्तर देने वाले विद्वान् को दूत करें और बहुत गुणों के योग से बहुत कार्य्यों को प्राप्त कराने वाली बिजुली को स्वीकार करके सब कार्य्यों को सिद्ध करें॥३॥

पुनस्तं कीदृशं गृह्णीयुरित्युपदिश्यते॥

फिर किस प्रकार के विद्वान् को ग्रहण करें, इस विषय का उपदेश अमृति मुन्त्र में किया है।।

श्रेष्टं यिवष्टमितिष्टिं स्वाहुतं जुष्टं जर्नाय दाशुषे।

447

देवाँ अच्छा यात्वे जातवेदसमुग्निमीळे व्यृष्टिषु॥४॥

श्रेष्ठम्। यविष्ठम्। अतिथिम्। सुऽआहुतम्। जुष्टम्। जनाय। द्वाश्रुषे। देवान्। अच्छे। यातेवे। जातऽवेदसम्। अग्निम्। ईळे। विऽउष्टिषु॥४॥

पदार्थ:-(श्रेष्ठम्) अत्युत्तमम् (यिवष्ठम्) बलवत्तरम् (अतिर्धिम्) नित्यं भ्रमणशीलं सेवितुमर्हम् (स्वाहुतम्) यः सुष्ठु आहूयते तम् (जुष्टम्) विद्विद्धः प्रीतं सेवितं वा (जनाय) धार्मिकाय विदुषे मनुष्याय (दाशुषे) दात्रे (देवान्) विदुषो दिव्यगुणान् वा (अच्छ) उत्तमेन प्रकारेण। अत्र निपातस्य च इति दीर्घः। (यातवे) यातुं प्राप्तुम्। अत्र तुमर्थे से० इति क्वेत प्रत्ययः। (जातवेदसम्) जातेषु पदार्थेषु विद्यमानिमव व्याप्तविद्यम् (अग्निम्) विद्ववद्वर्त्तमानं विद्वासम् (ईडे) सत्कुर्याम् (व्युष्टिषु) विशिष्टासु कामनास्वध्येषितासु सतीषु॥४॥

अन्वय:-अहं व्युष्टिषु यात्रवे दाशुषे जनाय श्रेष्ठं यविष्ठं जुष्टं स्वाहुतं जातवेदसमितिथिमग्निमिव प्रकाशमानं विद्वांसं दूतमन्यान् देव्यान् वाऽच्छेडे॥४॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। मनुष्यैः श्रेष्ठानां धर्मबलानां सर्वेविद्वद्भिः सत्कृतानां प्रसन्नस्वभावानां सर्वोपक्रिकाणां विद्वणामितिथिनामेव सत्कारः कर्त्तव्यः, यतः सर्विहतं स्यात्॥४॥

पदार्थ:-मैं (व्युष्टिषु) विशिष्ट पढ़ने के योग्य कामनाओं में (यातवे) प्राप्ति के लिये (दाशुषे) दाता (जनाय) धर्मिक विद्वान् मनुष्य के अर्थ (श्रेष्ठम्) अति उत्तम (यविष्ठम्) परम बलवान् (जुष्टम्) विद्वान् से प्रसूर्व चा सेवित (स्वाहुतम्) अच्छे प्रकार बुला के सत्कार के योग्य (जातवेदसम्) सब पदार्थों में व्याप्त (अनिधिष्) सेवा करने योग्य (अग्निम्) अग्नि के तुल्य वर्तमान सज्जन अतिथि और (देवान्) दिव्य गुण वाले विद्वानों को (अच्छ) अच्छे प्रकार सत्कार करूं॥४॥

अष्टक-१। अध्याय-३। वर्ग-२८-३०

मण्डल-१। अनुवाक-९। सूक्त-४४

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को अति योग्य है कि उत्तम धर्म बल वाले प्रसन्न स्वभाव सहित सबके उपकारक विद्वान् और अतिथियों का सत्कार करें, जिस से स्वा अजें का हित हो॥४॥

पुनस्तं कीदृशं स्वीकुर्व्युरित्युपदिश्यते॥

फिर कैसे को ग्रहण करें, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में कियान्है।

स्तुविष्यामि त्वामहं विश्वस्यामृत भोजन।

अग्ने त्रातारममृतं मियेध्य यजिष्ठं हव्यवाहन॥५॥२८॥

स्तुविष्यामि। त्वाम्। अहम्। विश्वस्य। अमृत्। भोजन्। अग्ने। प्राक्तारम्। अमृतम्। मियेध्य। यजिष्ठम्। हृव्यवाहन्॥५॥

पदार्थ:-(स्तविष्यामि) स्तोष्यामि (त्वाम्) जगदीश्वरम् (अहम्) (विश्वस्य) समस्तस्य संसारस्य (अमृत) अविनाशिन् (भोजन) पालक (अग्ने) स्वप्रकाशेश्वर (त्रात्तरम्) अभिरक्षितारम् (अमृतम्) नाशरिहतं सदा मुक्तम् (मियेध्य) दु:खानां प्रक्षेप्तः (यिष्ठिम्) सुखीनामितशियतं दातारम् (हव्यवाहन) यो हव्यानि होतुं दातुमर्हाणि द्रव्याणि सुखसाधकानि वृह्यते प्राप्यान तत्सम्बुद्धौ॥५॥

अन्वय:-हे अमृत भोजन मियेध्य हव्यवहर्नी रुप्ते! जुगदीश्वरोऽहं विश्वस्य त्रातारं यजिष्ठममृतं त्वां स्तविष्यामि स्तोष्यामि नान्यं कदाचित्॥५॥

भावार्थ:-निह विद्वद्भिरस्य सर्वस्य स्थलं माञ्चदातारं विद्याकामानन्दप्रदं सेवनीयं परमेश्वरं हित्वा कस्यापीश्वरत्वेनाऽऽश्रयः स्तृतिर्वा कदामि कर्तस्या।। ।।

पदार्थ:-(अमृत) अविनामिस्वरूप (भाजन) पालनकर्ता (मियेध्य) प्रमाण करने (हव्यवाहन) लेने-देने योग्य पदार्थों को प्राप्त कराने चाले (अग्ने) परमेश्वर (अहम्) मैं (विश्वस्य) सब जगत् के (त्रातारम्) रक्षा (यजिष्ठम्) अत्यन्त यजन करने वाले (अमृतम्) नित्य स्वरूप (त्वा) तुझ ही की (स्तविध्यामि) स्तृति कर्ल्लाभूद्रभा

भावार्थ:-विद्वानों की योग्य है कि इस सब जगत् के रक्षक, मोक्ष देने, विद्या, काम, आनन्द के देने वा उपासना क्रूएने योग्य परमेश्वर को छोड़ अन्य किसी का भी ईश्वरभाव से आश्रय न करें॥५॥

पुनः स कीदृशः कस्मै किं करोतीत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा है, किस के लिये क्या करता है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

सुशंसो बोधि गृण्ते येविष्ठ्य मधुंजिह्वः स्वाहुतः।

प्रस्केणवस्य प्रतिरन्नायुर्जीवसे नमुस्या दैव्यं जनम्॥६॥

448

ऋग्वेदभाष्यम्

सुऽशंसः। बोधि। गृणते। यविष्ठ्य। मधुंऽजिह्वः। सुऽआहुतः। प्रस्केण्वस्य। प्रऽतिरन्। आर्युः। जीवसी नमस्य। दैर्व्यम्। जर्नम्॥६॥

पदार्थ:-(सुशंस:) शोभना शंसाः स्तुतयो यस्य विदुषः सः (बोधि) बुध्येत्। अत्र लिड्ये लुङडभावश्च। (गृणते) स्तुतिं कुर्वते (यिवष्ठ्य) अतिशयने युवा यिवष्ठो यिवष्ठ एव यिष्ठियस्तत्सम्बुद्धौ (मधुजिह्वः) मधुरगुणयुक्ता जिह्वा यस्य। अत्र फिलपाटिनिम० (उणा०१.१८) अनेन मन्धातो रः प्रत्ययो नस्य धकारादेशश्च। (स्वाहुतः) यः सुखेनाहूयते (प्रस्कण्वस्य) प्रकृष्टश्चासौ कण्को मेधावी स्न तस्य (प्रितिरन्) दुःखात्तरन्। अत्र बहुलं छन्दिस इति शपो लुक्। (आयुः) जीवनम् (जीवसे) अवितुम् (नमस्य) पूजितुं योग्य। अत्र नमस् धातोण्यत्। अन्येषामिण० इति दीर्घश्च (दैव्यम्) देवेषु विद्वत्सु भवम् (जनम्) मनुष्यम्॥६॥

अन्वय:-हे यविष्ठ्य नमस्य विद्वन्! मधुजिह्नः सुशंसः स्वाहुतः प्रस्कण्वस्य जीवस आयुः प्रतिरन्त्सँस्त्वं गृणते शास्त्राणि बोध्यनेन दैव्यं जनं रक्षसि तस्मात् स्वर्क्तेत्र्योऽसि॥६॥

भावार्थ:-सर्वेर्मनुष्यैः सर्वोत्कृष्टत्वात्रमस्करणीयो विद्वारचि सत्कर्तेत्यः। एवमेतं समाश्रित्य सर्वे आयुर्विद्ये प्राप्तव्ये इति॥६॥

पदार्थ:-हे (यिवष्ट्य) अत्यन्त बलवान् (नमस्य) पूर्जन योग्य विद्वान्! (मधुजिह्वः) मधुर ज्ञानरूप जिह्वायुक्त (सुशंसः) उत्तम स्तुति से प्रशंसित (स्वाहुतः) सुख से आह्वान बोलने योग्य (प्रस्कण्वस्य) उत्तम मेधावी विद्वान् के (जीवसे) जीवन के लिये (आयुः) जीवन को (प्रतिरन्) दुःखों से पार करते जो आप (गृणते) सत्य की स्तुति करते हुए मनुष्य के लिये शास्त्रों का (बोधि) बोध कीजिये और जिस से (दैव्यम्) विद्वानों में उत्पन्न हुए जिन्म्) मनुष्य की रक्षा करते हो, इस से सत्कार के योग्य हो॥६॥

भावार्थ:-सब मनुष्यों को उचित है कि जो सब से उत्कृष्ट विद्वान् है, उसी का सत्कार करें। ऐसे ही इस का अच्छे प्रकार आश्रम लेकर सब उम्म और विद्या को प्राप्त करें॥६॥

भूगः स कीदृशोऽस्तीत्युपदिश्यते॥

फिर वह किए प्रकृत का है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

होतारं ब्रिश्ववेदसुं स हि त्वा विश इन्धते।

स आ बंह पुरुहूत प्रचेतुसोऽग्ने देवाँ इह द्रवत्॥७॥

होतीरम्। बिश्वऽवैदसम्। सम्। हि। त्वा। विश्नः। ड्रम्थते। सः। आ। वृह्। पुरुऽहूत्। प्रऽचैतसः। अग्ने। देवान्। ड्रह्म द्रवत्॥७॥ अष्टक-१। अध्याय-३। वर्ग-२८-३०

मण्डल-१। अनुवाक-९। सूक्त-४४

पदार्थ:-(होतारम्) हवनस्य कर्त्तारम् (विश्ववेदसम्) विश्वानि सर्वाणि सुखानि विन्दित यस्मात्तम् (सम्) सम्यगर्थे (हि) खलु (त्वा) त्वाम् (विश:) प्रजाः (इस्वते) प्रदीप्यन्ते (सः) (आ) अभितः (वह) प्राप्नुहि (पुरुहूत) यः पुरुभिर्बहुभिविद्वद्भिर्दूयते स्तूयते तत्सम्बुद्धौ (प्रचेतसः) प्रकृष्टं चेत्रे विज्ञानि योसां ताः (अग्ने) विशिष्टज्ञानयुक्त (देवान्) वीरान् विदुषो दिव्यगुणान् वा (इह) अस्मिर्य् युद्धादिव्यवहारे (द्रवत्) द्रवतु॥७॥

अन्वय:-हे पुरुहूताग्ने विद्वन्! प्रचेतसो विशो यं होतारं विश्ववेदसं त्वां हि खुलू सिमन्धरे ता प्रति भवान् द्रवत्॥७॥

भावार्थ:-निह विद्वत्सहायेन विना प्रजासुखं दिव्यगुणप्राप्तिः शत्रुचिज्ञायस्य जीयते तस्मादेतत्सर्वैः प्रयत्नेन संसाधनीयमिति॥७॥

पदार्थ: - हे (पुरुहूत) बहुत विद्वानों के बुलाये हुए (अग्ने) विशिष्ट ज्ञानयुक्त विद्वन्! (प्रचेतसः) उत्तम ज्ञानयुक्त (विशः) प्रजा जिस (होतारम्) हवन के कर्ता (विश्ववेदसम्) सब सुख प्राप्त (त्वा) आपको (हि) निश्चय करके (सिम्धते) अच्छे प्रकार प्रकृतिस् करती हैं (सः) सो आप (इह) इस युद्ध आदि कर्मों में उत्तम ज्ञान वाले (देवान्) शूरवीर विद्वानों को (आवह) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये॥७॥

भावार्थ:-विद्वानों के सहाय के विना प्रजा के सुख को वा दिव्य गुणों की प्राप्ति और शत्रुओं से विजय नहीं हो सकता। इससे यह सब मनुष्यों क्षी प्रयत्ने के साथ सिद्ध करना चाहिये॥७॥

पुनस्तं कीदृशं जानीयुः केन सह 🗖 कि प्राप्नोतीत्युपदिश्यते।

फिर वह कैसा और किस के सहार से किस की प्राप्त होता है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

स्वितारं मुषसं मृश्विना अगम्पिनं स्रुंष्टिषु क्षपं:।

कण्वांसस्त्वा सुतस्रोमिस इन्धते हुव्यावाहं स्वध्वर॥८॥

स्वितारम्। उपस्मि। अश्विनी। भर्गम्। अग्निम्। विऽउष्टिषु। क्षर्पः। कण्वासः। त्वा। सुतऽसीमासः। इन्धते। ह्व्युऽवाह्नम्। सुऽअध्वर्गः।

पदार्थ:-(मिवतारम्) सूर्य्यप्रकाशम् (उषसम्) प्रातःकालम् (अश्विना) वायुजले (भगम्) ऐश्वर्य्यम् (अग्निम्) विद्युत्सम् (सृष्टिषु) कामनासु (क्षपः) रात्रीः (कण्वासः) मेधाविनः (त्वा) त्वाम् (सृतसोमासः) सुताः सम्प्रादिता कत्तमाः पदार्था यैस्ते (इश्वते) दीप्यन्ते (हव्यवाहम्) यो हव्यानि वहति प्राप्नोति तम् (स्वध्वर्ष्) शोभना अध्वरा यस्य तत्सम्बद्धौ॥८॥

अन्वयः-हे स्वध्वर विद्वन्! ये सुतसोमाः कण्वासो व्यृष्टिषु सवितारमुषसमश्विनौ भगमग्नि क्षपो हुव्यवाहीत्वां च समिन्धते ताँस्त्वमपि दीप्यस्व॥८॥

भावार्थ:-मनुष्यै: सर्वासु क्रियास्वहोरात्रे सिवत्रादीन् पदार्थान् सम्प्रयोज्य वायुवृष्टिशुद्धिकराणि शिल्पादीनि सर्वाणि कार्य्याणि सम्पादनीयानि केनापि विद्वत्सङ्गेन विनैतेषां गुणज्ञानाभावात् क्रियासिद्धिं कर्त्तुं नैव शक्यत इति॥८॥

पदार्थ: -हे (स्वध्वर) उत्तम यज्ञ वाले विद्वान्! जो (सुतसोमा:) उत्तम पदार्थों को सिद्ध करते (कण्वास:) मेधावी विद्वान् लोग (व्युष्टिषु) कामनाओं में (सिवतारम्) सूर्य्यप्रकाश (उपसम्) प्रात:काल (अश्विना) वायुजल (क्षप:) रात्रि और (हव्यवाहम्) होम करने योग्य द्रव्यों को प्राप्त कराने वाले (त्वा) आपको (सिमिस्थते) अच्छे प्रकार प्रकाशित करते हैं, वह आप भी उन को प्रकाशित कार्ये॥८॥

भावार्थ:-मनुष्यों को उचित है कि सब क्रियाओं में दिन-रात प्रयुक्त से सूर्य्य आदि पदार्थों को संयुक्त कर वायु, वृष्टि शुद्धि करने वाले शिल्परूप यज्ञ को प्रकाश करके कर्यों को सिद्ध और विद्वानों के संग से इनके गुण जानें॥८॥

पुनरयं विद्वान् कीदृश इत्युपदिश्वते।

फिर यह विद्वान् कैसा है, इस विषय का उपदेश अपले सन्त्र में किया है।।

पतिर्द्धाध्वराणामग्ने दूतो विशामिस।

उपर्बुध आ वह सोमंपीतये देवाँ अद्य स्वर्ह्सा ।। राम

पतिः। हि। अध्वराणाम्। अग्ने। दूतः। विक्राम्। असि। उषःऽबुर्धः। आ। वहः। सोर्मऽपीतये। देवान्। अद्य। स्वःऽदृशेः॥९॥

पदार्थ:-(पित:) पालियता (हि) खिलु (अध्वर्णणाम्) यज्ञानाम् (अग्ने) नीतिज्ञ विद्वन् (दूत:) यो दुनोति शत्रून् भेत्तुं जानाति सः (विष्ट्राम्) प्रजानम् (असि) (उषर्बुधः) य उषि बुध्यन्ते तान् (आ) आभिमुख्ये (वह) प्राप्नुहि (सोमप्रेक्ये) सोमानाममृतरसानां पानं यस्मिन् व्यवहारे तस्मै। अत्र सह सुपा (अष्टा०२.१.४) इति समासः। (देवान्) विदुषो दिव्यगुणान् वा (अद्य) अस्मिन् दिने (स्वर्दृशः) ये सुखेन विद्यानन्दं पश्यन्ति तान्॥९॥

अन्वय:-हे अर्गे किंद्रन्। ग्रेस्त्वमध्वराणां विशां पतिरसि तस्मात्त्वमद्य हि सोमपीतय उषर्बुध: स्वर्दुशो देवानावह॥९॥

भावार्थः सभासेनाह्यध्यक्षादयो विद्वांसो विद्यापाठनप्रजापालनादियज्ञानां रक्षायै प्रजासु दिव्यगुणान्नित्रं प्रकारसेयु:॥९॥

पद्धि: है (अग्ने) विद्वन्! जो तू (हि) निश्चय करके (अध्वराणाम्) यज्ञ और (विशाम्) प्रजाओं के (पितः) पालक (असि) हो इससे आप (अद्य) आज (सोमपीतये) अमृतरूपी रसों के पीने रूप व्यवहार के लिये (उपर्जुधः) प्रातःकाल में जागने वाले (स्वर्दृशः) विद्यारूपी सूर्य्य के प्रकाश से अथवत सेखने वाले (देवान्) विद्वान् वा दिव्यगुणों को (आवह) प्राप्त हूजिये॥९॥

अष्टक-१। अध्याय-३। वर्ग-२८-३०

मण्डल-१। अनुवाक-९। सूक्त-४४

भावार्थ:-सभासेनाध्यक्षादि विद्वान् लोग विद्या पढ़ के प्रजापालनादि यज्ञों की रक्षा के लिये प्रजा में दिव्य गुणों का प्रकाश नित्य किया करें॥९॥

पुनः स कीदृशः किं कुर्य्यादित्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा हो क्या करे, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया 🕍

अग्ने पूर्वा अनूषसौ विभावसो द्येदेथे विश्वदर्शतः।

असि ग्रामेष्वविता पुरोहितोऽसि युज्ञेषु मानुषः॥ १०॥ २९॥

अग्ने। पूर्वाः। अनु। उषसः। विभावसो इति विभाऽवसो। दीदेर्था विश्वऽदर्भातः। असि। ग्रामेषु। अविता। पुरःऽहितः। असि। यज्ञेषुं। मानुषः॥ १०॥

पदार्थ:-(अग्ने) विद्याप्रकाशक विद्वन् (पूर्वा:) अतीताः (अन्) पश्चीत् (उषसः) या वर्त्तमाना आगामिन्यश्च (विभावसो) विशिष्टां भां दीप्तिं वासयित तत्सूम्बुद्धौ (दौद्रेथ) विजानीहि (विश्वदर्शतः) विश्वैः सर्वैः सम्प्रेक्षितुं योग्यः (असि) (ग्रामेषु) मनुष्यादिनिवासेषु (अविता) रक्षणादिकर्त्ता (पुरोहितः) सर्वसाधनसुखसम्पादियता (असि) (यज्ञेषु) अश्वमेधादिशिष्णानीषु (मोनुषः) मनुष्याकृतिः॥१०॥

अन्वयः-हे विभावसोऽग्ने विद्वन्! विश्वदर्शती यस्त्वं पूर्वा अनु पश्चादागामिनीर्वर्त्तमाना वोषसो दीदेथ ग्रामेष्ववितासि यज्ञेषु मानुषः पुरोहितोऽसि क्रिस्मादस्माभिः पूज्यो भवसि॥१०॥

भावार्थ:-विद्वान् सर्वेषु दिनेष्वेकं क्षण्मिष व्यर्थेत्र नयेत् सर्वोत्तमकार्य्याऽनुष्ठानयुक्तानि सर्वाणि दिनानि जानीयादेवमेतानि ज्ञात्वा प्रजारक्षको स्ज्ञानुष्ठात्। सततं भवेत्॥१०॥

पदार्थ:-हे (विभावसो) विशेष दीपि को वसाने वाले (अग्ने) विद्या को प्राप्त करनेहारे विद्वान्! (विश्वदर्शतः) सभों को देखने योग्य आप (पूर्वीः) पहिले व्यतीत (अनु) फिर (उषसः) आने वाली और वर्त्तमान प्रभात और रात दिनों को (दौदेथ) सनकर एक क्षण भी व्यर्थ न खोवे आप ही (ग्रामेषु) मनुष्यों के निवास योग्य ग्रामों में (अविता) रक्षा करने वाले (असि) हो और (यज्ञेषु) अश्वमेध आदि शिल्प पर्य्यन्त क्रियाओं में (मानुषः) मनुष्यों व्यक्ति (पुरोहितः) सब साधनों के द्वारा सब सुखों को सिद्ध करने वाले (असि) हो॥१०॥

भावार्थ: विद्वान् सब दिन एक क्षण भी व्यर्थ न खोवे, सर्वथा बहुत उत्तम-उत्तम कार्य्यों के अनुष्ठान ही के लिये सब दिनों को जान कर प्रजा की रक्षा वा यज्ञ का अनुष्ठान करने वाला निरन्तर हो॥१०॥

पुनः स कीदृशो भवेदित्युपदिश्यते॥

फिर वह किस प्रकार का हो, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

446

ऋग्वेदभाष्यम्

नि त्वा यज्ञस्य सार्धनुमग्ने होतारमृत्विजम्। मनुष्वद्देव धीमिह् प्रचेतसं जी्रं दूतममर्त्यम्॥ ११॥

नि। त्वा। यज्ञस्ये। सार्धनम्। अग्ने। होतारम्। ऋत्विजीम्। मुनुष्वत्। देव। धीमहि। प्रऽचैतसम् जीम्मा दूतम्। अमर्त्यम्॥ ११॥

पदार्थ:-(नि) नितराम् (त्वा) त्वाम् (यज्ञस्य) त्रिविधस्य (साधनम्) साध्नोति येन तत् (अग्ने) विद्वन् (होतारम्) हवनकर्त्तारम् (ऋत्विजम्) यज्ञसम्पादकम् (मनुष्वत्) मननशीलेन मनुष्येण तुल्यम् (देव) दिव्यविद्यासम्पन्नम् (धीमिह) धरेमिह (प्रचेतसम्) प्रकृष्टं चेतो विज्ञानं यस्य यस्माद्वा तम् (जीरम्) विद्यावन्तम्। अत्र जोरी च। (उणा०२.२३) अनेनायं सिद्धः। (दूरम्) प्रशस्तकृद्धिमन्तम् (अमर्त्यम्) साधारणमनुष्यस्वभावरहितं स्वस्वरूपेणं नित्यम्॥११॥

अन्वय:-हे देवाग्ने विद्वन्! सुतसोमासः कण्वासो वयं क्र्स्य सार्धनं होतारमृत्विजं प्रचेतसं जीरममर्त्यं दूतं त्वा मनुष्वद्धीमिह॥११॥३८

भावार्थ:-अष्टमान्मन्त्रात् (सुतसोमासः) (कण्कासः) इति पदद्वयमनुवर्त्तते निह विदुषा द्रव्यसामग्रया च विना यज्ञसिद्धिं कर्त्तुं शक्यते॥११॥

पदार्थ:-हे (देव) दिव्यविद्यासम्पन्न (अग्ने) मौतिक अग्नि के सदृश उत्तम पदार्थों को सम्पादन करने वाले मेधावी विद्वान्! हम लोग (यज्ञस्य) तीन प्रकार के यज्ञ के (साधनम्) मुख्य साधक (होतारम्) हवन करने वा ग्रहण करने वाले (ऋत्विज्ञम्) यज्ञ साधक (प्रचेतसम्) उत्तम विज्ञानयुक्त (जीरम्) वेगवान् (अमर्त्यम्) साधारण मृतृष्यस्वभाव्य से रहित वा स्वरूप से नित्य (दूतम्) प्रशंसनीय बुद्धियुक्त वा पदार्थों को देशान्तर में ग्राप्त करने वाले (त्वा) आपको (मनुष्यवत्) मननशील मनुष्य के समान (नि धीमिह) निरन्तर धारण करें।। १॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। और आठवें मन्त्र से (सुतसोमासः) (कण्वासः) इन दो पदों की अनुवृत्ति है। विद्वान् अपने आदि साधन और द्रव्य आदि सामग्री के विना यज्ञ की सिद्धि नहीं कर सकता॥११॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते।

फिर व्ह कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

य<u>द</u>्देवान् मित्रमहः पुरोहितोऽन्तरो यासि दूर्त्यम्।

१८ मूलमन्त्रोपुसारेण (देव) हे दिव्यविद्यासम्पन्न। सं०।

अष्टक-१। अध्याय-३। वर्ग-२८-३०

मण्डल-१। अनुवाक-९। सूक्त-४४

सिन्धोरिव प्रस्वनितास ऊर्मयोऽग्नेभ्रीजन्ते अर्चयः॥१२॥

यत्। देवानाम्। मित्रऽमहः। पुरःऽहितः। अन्तरः। यासि। दूत्यम्। सिन्धोःऽइव। प्र**प्तितासः)** कुर्मयः। अग्नेः। भ्राजुन्ते। अर्चयः॥१२॥

पदार्थ:-(यत्) यः (देवानाम्) विदुषाम् (मित्रमहः) यो मित्राणां महः पूज्यः (पुरोहितः) पुर एनं दधित पुरोऽयं दधित सः (अन्तरः) मध्यस्थः सन् (यासि) गच्छिस (दूत्यम्) दूसस्य भागं कर्म वा (सिन्धोरिव) यथा समुद्रस्य (प्रस्विनतासः) प्रकृष्टतया शब्दायमानाः (ऊर्मयः) बीचयः (अग्नेः) विद्युतो भौतिकस्य वा (भ्राजन्ते) प्रकाशन्ते (अर्चयः) दीप्तयः॥१२॥

अन्वय:-हे मित्रमहो विद्वन्! यस्त्वं सिन्धोरिव प्रस्कृतिकास रूपियाँऽग्नेरर्चयो भ्राजन्ते पुरोहितोऽन्तरस्सन्देवानां दूत्यं यासि, सोऽस्माभिः सत्कर्त्तव्यः कथं न स्याः ११२३॥

भावार्थ:-हे मनुष्या! यूयं तथा परमेश्वरः सर्वेषां मनुष्यागां भित्रः पूज्यः पुरोहितोऽन्तर्य्यामी सन् दूतवदन्तरात्मिन सत्यमसत्यं कर्म जानाति। एवं यस्येश्वरस्यनिन्ता दीप्रतयश्चरन्ति स एव जगदीश्वरः सर्वस्य धाता रचकः पालको न्यायकारी महाराजः सर्वेश्वरस्योग्नस्योग्नस्ति तथोत्तमो दूतः सत्करणीयो भवति॥१२॥

पदार्थ: - हे (मित्रमहः) मित्रों में बड़े पूजनीय विद्वान्! आप मध्यस्थ होकर (दूत्यम्) दूत कर्म को (यासि) प्राप्त करते हो जिस (अग्नेः) आत्म की (सिन्धीरिव) समुद्र के सदृश (प्रस्वनितासः) शब्द करती हुई (ऊर्मयः) लहरियाँ (अग्नेः) अपि के (अर्चयः) दीप्तियां (भ्राजन्ते) प्रकाशित होती हैं। (पुरोहितः) पुरोहित तथा (अन्तरः) मध्यस्थ होते हुए (देवानाम्) विद्वानों के (दूत्यम्) दूत के स्वभाव को (यासि) प्राप्त होते हो सो आप हुम लोगों को सत्कार के योग्य क्यों न हों॥१२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! तुम जैसे परमेश्वर सबका मित्र, पूजनीय, पुरोहित, अन्तर्यामी होकर दूत के समान सत्यो असत्य कर्मों का प्रकाश करता है; जैसे ईश्वर की अनन्त दीप्ति विचरती है, जो ईश्वर सबका धाता, रचने वा पालन करने वा न्यायकारी महाराज सबको उपासने योग्य है, वैसे उत्तम दूत भी राजपुरुषों को माननीय होता है॥१२॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह विद्वान् कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

श्रुधि श्रुक्तर्ण बह्निभिर्देवैरंग्ने स्याविभि:।

न्या सीदन्तु बुर्हिषि मित्रो अर्युमा प्रातुर्यावाणो अध्वरम्॥ १३॥

श्रुवि। श्रुत्ऽकर्ण्। वह्निऽभिः। देवैः। अग्ने। सयार्वऽभिः। आ। सीदनु। बर्हिषि। मित्रः। अर्यमा।

गुतुःऽयावीतः। अध्वरम्॥१३॥

पदार्थ:-(श्रुधि) शुणु (श्रुत्कर्ण) यः शृणोति कर्णाभ्यां तत्सम्बुद्धौ (विह्निभिः) वहनसमर्थैः (देवैः) विद्विद्धिः (अग्ने) विद्याप्रकाशयुक्त (सयाविभिः) ये समानं यान्ति ते सयावानस्तैः (आ) आभिमुख्ये (सीदन्तु) (बिहिषि) उत्तमे व्यवहारे स्थाने वा (मित्रः) सर्विहितकारी (अर्यमा) न्यायाधीशः (प्रात्योकाणः) ये प्रातः प्रतिदिनं पुरुषार्थं यान्ति ते (अध्वरम्) अहिंसनीयं पूर्वोक्तयज्ञम्॥१३॥

अन्वय:-हे श्रुत्कर्णाऽग्ने! विद्वँस्त्वं सम्प्रीत्या सयाविभर्विह्निभिर्देवै: सहास्माक्तं वार्ताः श्रुधि शृणु मित्रोऽर्य्यमा प्रातर्यावाणस्सर्वेऽध्वरमनुष्ठाय बर्हिष्यासीदन्तु॥१३॥

भावार्थ:-मनुष्याः श्रुतसर्वविद्यां धार्मिकान् मनुष्यान् राजकार्य्येषु स्यिज्जीरन् विद्वांसस्तुं खलु सुशिक्षितैर्भृत्यैः सर्वाणि कार्याणि साधयेयुः सर्वदाऽऽलस्यं विहाय सततं पुरुषर्थे प्रयतेरन् नह्येवं विना खलु व्यवहारापरमार्थौ सिध्येते, इति॥१३॥

पदार्थ:-हे (श्रुत्कर्ण) श्रवण करने वाले (अग्ने) विद्याप्रकाशक विद्वन्! आप प्रीति के साथ (सयाविभः) तुल्य जानने वाले (विद्विभः) सत्याचार के भार ध्रात्नेहर पनुष्य आदि (देवैः) विद्वान् और दिव्यगुणों के साथ (अस्माकम्) हम लोगों की वार्ताओं को (श्रुधि) सुने, तुम और हम लोग (मित्रः) सबके हितकारी (अर्च्यमा) न्यायाधीश (प्रातर्च्यावाणः) प्रतिक्वि पुरुष्टि से युक्त (सर्वे) सब (अध्वरम्) अहिंसनीय पहिले कहे हुए यज्ञ को प्राप्त होकर (विद्विधि) उत्तम् व्यवहार में (आसीदन्तु) ज्ञान को प्राप्त हों वा स्थित हों॥१३॥

भावार्थ:-मनुष्यों को उचित है कि स्पेष विद्याओं को श्रवण किये हुए धार्मिक मनुष्यों को राज्यव्यवहार में विशेष करके युक्त करें, विद्वान लोग श्रिक्षा से युक्त भृत्यों से सब कार्थ्यों को सिद्ध और सर्वदा आलस्य को छोड़ निरन्तर पुरुषार्थ में यन्त करें। निदान इसके विना निश्चय हैं कि व्यवहार वा परमार्थ कभी सिद्ध नहीं होते॥१३॥

पुनस्ते कीदृशा भवेयुरित्युपदिश्यते॥

फिर वे कैसे होवें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

शृणवन्तु स्तोमं मुस्तंः सुदानवोऽग्निजिह्वा ऋतावृधंः।

पिबतु सोमं वर्राणी धुत्रवृत्तोऽश्विभ्यामुषसा सुजूः॥ १४॥ ३०॥

शृण्वन्तुं। स्तोमेम्। मुस्तः। सुऽदानेवः। अग्निऽजिह्वाः। ऋतऽवृधः। पिर्वतु। सोमेम्। वर्रुणः। धृतऽव्रतः। अश्विऽभ्याम्। वर्षसाः सुऽजुः॥ १४॥

पूर्दार्थः (भूण्वन्तु) (स्तोमम्) स्तुतिविषयं न्यायप्रज्ञापनम् (मरुतः) विद्वांस ऋत्विजः सुखप्राप्याद्धाः सर्वे प्रजास्थाः मनुष्याः। मरुत इत्यृत्विङ्नामसु पठितम्। (निघं०३.१८) पदनामसु पठितम्। (निघं०५.५) (सुदानवः) शोभनानि दानवो दानानि येषान्ते (अग्निजिह्वाः) अग्निविह्वाशब्दप्रकाशिका जिह्वा येषान्ते (ऋतावृधः) ऋतेन सत्येन वर्द्धन्ते ते। अत्र अन्येषामि इति

अष्टक-१। अध्याय-३। वर्ग-२८-३०

मण्डल-१। अनुवाक-९। सुक्त-४४

दीर्घः। (पिबतु) (सोमम्) पदार्थसमूहजं रसम् (वरुणः) श्रेष्ठ (धृतव्रतः) धृतं सत्यं व्रतं येन सः (अश्विभ्याम्) व्याप्तिशीलाभ्यां सभासेनाधर्माध्यक्षाभ्यामध्वर्युभ्यां (उषसा) प्रकाशेन (सजूः) यः सम्पर्जं जुषते सः॥१४॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! अग्निजिह्वा ऋतावृधः सुदानवो मरुतो भवन्तोऽस्माकं स्त्रीमं श्रुपवन्तु। एवं प्रतिजनः सजूर्वरुणो धृतव्रतः सनुषसाश्विभ्यां सह सोमं पिबत॥१४॥

भावार्थ:-या धर्मराजसभानां सकाशादाज्ञाः प्रकाश्यन्ते ताः सर्वैर्मनुष्यैः श्रुत्वा प्रथावदनुष्ठमत्व्याः। ये च तत्रस्थाः सभासदो भवेयुस्तेऽपि पक्षपातं विहाय प्रतिदिनं सर्विहिताय सर्वे मिलित्वा यथाऽविद्याऽधर्माऽन्यायनाशो भवेत् तथैव प्रयतेरित्रिति॥१४॥

अस्मिन् सूक्ते धर्मप्राप्तिकरणं दूतत्वसम्पादनं सर्वविद्याश्रवणं परश्रीसम्प्रापणं श्रेष्ठपुरुषसम्पादनमुत्तमपुरुष- स्तवनसत्कारौ सर्वाभिः प्रजाभिरुत्तमपुरुषपदार्थप्रकाशनं विद्वद्भिः पदार्थविद्यानां सम्पादनं सभाध्यक्षदूतकृत्यं यज्ञानुष्ठानं मित्रतादिसंग्रहणमुक्तमव्यवहारे स्थितिः परस्परं विद्याधर्मराजसभाज्ञाः श्रुत्वाऽनुष्ठानमुक्तमतोऽस्य सूक्तार्थस्य त्रस्र्यंचत्वारिंशत्तमसूक्तोक्तर्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेदितव्यम्॥

इति त्रिंशो वर्ग: चतुश्चत्वारिंशं सूक्ते च समाप्तम्॥३०॥४४॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! (अग्निजिह्वा:) जिनकी अग्नि के समान शब्दविद्या से प्रकाशित हुई जिह्वा है (ऋतावृध:) सत्य के बढ़ाने वाले (सुदानव:) उत्तम दानुश्रील (मरुत:) विद्वानो! तुम लोग हम लोगों के (स्तोमम्) स्तुति वा न्यायप्रकाश को (शृष्वन्त) श्रवण करो, इसी प्रकार प्रतिदिन (सजू:) तुल्य सेवने (वरुण:) श्रेष्ठ (धृतव्रत:) सत्यव्रत का धारण करनेहारे सब मनुष्यजन (उपसा) प्रभात (अश्विभ्याम्) व्याप्तिशील सभा, सेना, शाला, धुमिष्यक्ष, अध्वर्युओं के साथ (सोमम्) पदार्थविद्या से उत्पन्न हुए आनन्दरूपी रस को (पिबतु) पीओं॥१४॥

भावार्थ:-जो विद्या भूमें वा राजसभाओं से आज्ञा प्रकाशित हो सब मनुष्य उनका श्रवण तथा अनुष्ठान करें, जो सभासद हों वे भी प्रक्षपात को छोड़कर प्रतिदिन सबके हित के लिये सब मिल कर जैसे अविद्या, अधर्म, अस्त्राय का चोवे, वैसा यत्न करें॥१४॥

इस सूक्त में धर्म की प्राप्ति, दूत का करना, सब विद्याओं का श्रवण, उत्तम श्री की प्राप्ति, श्रेष्ठ सङ्ग, स्तुति और सरकार, पदार्थ विद्याओं, सभाध्यक्ष, दूत और यज्ञ का अनुष्ठान, मित्रादिकों का ग्रहण, परस्पर मिल कर सब कार्थ्यों की सिद्धि, उत्तम व्यवहारों में स्थिति, परस्पर विद्या, धर्म, राजसभाओं को सुनकर अनुष्ठान करना कहा है, इससे इस सूक्तार्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये।

यह तीसवां वर्ग और चवालीसवां सूक्त समाप्त हुआ॥३०॥४४॥

अथ दशर्च्चस्य पञ्चचत्वारिंशस्य सूक्तस्य प्रस्कण्वः काण्व ऋषिः। अग्निर्देवाश्च देवताः। १ भुरिगुष्णिक्। ५ उष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः। २,३,७,८ अनुष्टुप्। ४ निचृद्नुष्टुप्। ६,९,१०

विराडनुष्टुप् च छन्द:। गान्धार: स्वर:॥

तत्रादौ विद्युद्धिद्वद्गुणा उपदिश्यन्ते॥

अब पैंतालीसवें सूक्त का आरम्भ है। उसके पहिले मन्त्र में बिजुली के दृष्टान्त से ब्रि<u>ट्टीन् के पु</u>णों का उपदेश किया है॥

त्वमंग्ने वसूँरिह रुद्राँ आदित्याँ उत। यजो स्वध्वरं जनुं मनुजातं घृतुपुष्प्।। १॥

त्वम्। अग्ने। वसून्। इह। फ़ुद्रान्। आदित्यान्। उत। यन्। सुऽअध्वरम्। जर्नम्। मर्नुजातम्। घृतुऽप्रुषम्॥१॥

पदार्थ:-(त्वम्) (अग्ने) विद्युद्वर्द्धनान विद्वन् (वसून्) कृतचतुर्विशतिवर्षब्रह्मचर्य्यान् पण्डितान् (इह) अत्र। दीर्घादि समानपादे। (अष्टा०८.३.९) अनेन रः पूर्वस्यानुनासिकश्च। (रुद्रान्) आचिरतचतुश्चत्वारिशद्वर्षब्रह्मचर्य्यान् महाबलान् विदुषः (अर्प्यादेत्यान्) समाचिरताऽष्टचत्वारिशत् संवत्सर- ब्रह्मचर्य्याऽखण्डितव्रतान् महाविदुषः। अत्रापि पूर्वसूत्रणैव रुत्वाऽनुनासिकत्वे। भोभगोअघो अपूर्वस्य योऽिश। (अष्टा०८.३.१७) इति यत्वमः लोगः शाकल्यस्य। (अष्टा०८.३.१९) इति यकारलोपः। (उत) अपि (यज) सङ्गच्छस्य। अत्र द्वग्रचीऽतिस्तङ इति दीर्घः। (स्वध्वरम्) शोभना पालनीया अध्वरा यस्य तम् (जनम्) पूर्वपर्थिनम् (मनुजातम्) यो मनोर्मननशीलान्मनुष्यादुत्पननस्तम् (यृतप्रवम्) यो यज्ञसिद्धेन घृतेन प्रष्णाव्रि स्निद्यति ग्रम्॥१॥

अन्वय:-हे अग्ने! त्विमृह् वसून् रुद्रानादित्यानुतापि घृतप्रुषम्मनुजातं स्वध्वरं जनं सततं यज॥१॥

भावार्थ:-स्वस्वपुत्रान् न्यूनान्यूनं प्रञ्जविंशतिवर्षमितेनाऽधिकादिधकेनाऽष्टचत्वारिंशद्वर्षमितेनैवं न्यूनान्यूनेन षोडशवर्षेण्यिकादिधकेन चतुर्विंशतिवर्षमितेन च ब्रह्मचर्य्येण स्वस्वकन्याश्च पूर्णविद्याः सुशिक्षिताश्च सम्पाद्य स्वयवस्याविधानेनैतैर्विवाहः कर्त्तव्यो यतः सर्वे सदा सुखिनः स्युः॥१॥

पदार्थ: हे (अग्ने) बिजुली के समान वर्तमान विद्वान्! आप (इह) इस संसार में (वसून्) जो चौबीस वर्ष ब्रह्मचर्य में विद्वा को प्राप्त हुए पण्डित (फद्रान्) जिन्होंने चवालीस वर्ष ब्रह्मचर्य किया हो उन महाब्रह्मी विद्वान् और (आदित्यान्) जिन्होंने अड़तालीस वर्ष पर्य्यन्त ब्रह्मचर्य किया हो, उन महाविद्वान् लोगों को (उत) और भी (घृतप्रुषम्) यज्ञ से सिद्ध हुए घृत से सेचन करने वाले (मनुजातम्) मनन्त्रशील मनुष्य से उत्पन्न हुए (स्वध्वरम्) उत्तम यज्ञ को सिद्ध करनेहारे (जनम्) पुरुषार्थी मनुष्य को स्थापन कराया करें॥१॥

अष्टक-१। अध्याय-३। वर्ग-३१-३२

मण्डल-१। अनुवाक-९। सूक्त-४५

भावार्थ:-मनुष्यों को चाहिये कि अपने पुत्रों को कम से कम चौबीस और अधिक से अधिक अड़तालीस वर्ष तक और कन्याओं को कम से कम सोलह और अधिक से अधिक चौबीस वर्ष पर्यञ्ज ब्रह्मचर्य करावें। जिससे सम्पूर्ण विद्या और सुशिक्षा को पाकर वे परस्पर परीक्षा और आति प्रिक्रि से विवाह करें, जिससे सब सुखी रहें॥१॥

पुनः स किं कुर्च्यादित्युपदिश्यते॥

फिर वह क्या करे, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

श्रुष्टीवानो हि दाशुषे देवा अंग्ने विचेतसः। तान् रोहिदश्च गिर्वणस्त्रयंस्त्रिंशतमा वह॥२॥

श्रुष्टीऽवार्नः। हि। दा्शुषे। देवाः। अग्ने। विऽचैतसः। तान्। रोहित्ऽअश्रे। प्रीर्वेणः। त्रयेःऽत्रिंशतम्। आ। वहः॥२॥

पदार्थ:-(श्रृष्टीवान:) ये श्रृष्टी शीघ्रं वनन्ति सम्भजन्ते ते। श्रृष्टी इति पदनामसु पठितम्। (निघं०४.३) (हि) खलु (दाशुषे) दानशीलाय पुरुषार्थिने पनिष् (देवा:) दिव्यगुणा विद्वांस: (अग्ने) विद्वन् (विचेतस:) विविधं चेतः शास्त्रोक्तबोधयुक्ता प्रज्ञा येषाः (तान्) देवान् (रोहिदश्च) रोहितोऽश्वा वेगादयो गुणा यस्य तत्सम्बुद्धौ (गिर्वण:) यो भीभिवेन्य्रते सम्भज्यते तत्सम्बुद्धौ (त्रयस्त्रिंशतम्) एतत्संख्याकान् पृथिव्यादीन् (आ) आभिमुख्ये (वह्न) प्राप्नुहिं॥२॥

अन्वय:-हे रोहिदश्व गिर्वणोऽग्ने स्विभिह् ये विचेतसः श्रुष्टीवानो देवा दाशुषे सुखं प्रयच्छन्ति, तान् त्रयस्त्रिंशतं देवानावह॥२॥

भावार्थः-यदा विद्वांसो विद्यार्थिने त्रयस्त्रिशतो देवानां विद्याः साक्षात्कारयन्ति तदैते विद्युत्प्रमुखैः पदार्थैरनेकानुत्तमान् व्यवहारान् साधितुं सक्नुबन्ति॥२॥

पदार्थ: - हे (रोहिदश्व) वैस् आदि गुण्युक्त (गिर्वण:) वाणियों से सेवित (अग्ने) विद्वन्! (त्वम्) आप इस संसार में जो (विचत्सः) माना प्रकार के शास्त्रोक्त ज्ञानयुक्त (श्रृष्टीवान:) यथार्थ विद्या के सेवन करने वाले (देवा:) दिन्य गुणवान् विद्वान् (दाशुषे) दानशील पुरुषार्थी मनुष्य के लिये सुख देते हैं (तान्) उन (त्रयिशंशतम्) भूमि आदि तेंतीस दिव्य गुण वालों को (हि) निश्चय करके (आवह) प्राप्त हूजिये॥२॥

भाषार्थ: जब विद्वान् लोग विद्यार्थियों को तेंतीस देव अर्थात् पृथिवी आदि तेंतीस पदार्थों की विद्या की अच्छे प्रकार साक्षात्कार कराते हैं, तब वे बिजुली आदि अनेक पदार्थों से उत्तम-उत्तम व्यवहासें की सिद्धि कर सकते हैं॥२॥

पुनः स किं कुर्यादित्युपदिश्यते॥

५६४

ऋग्वेदभाष्यम्

फिर वह क्या करे, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

प्रियमेध्वदंत्रिवज्जातंवेदो विरूपवत्।

अङ्गिर्स्वन्महिव्रत् प्रस्केण्वस्य श्रुधी हर्वम्॥३॥

प्रियमेध्य वत्। अत्रि वत्। जार्तं प्रवेदः। विरूप प्रवत्। अङ्गि स्वत्। महि प्रकेण्यस्य। श्रुधि। हर्वम् ॥ ३॥

पदार्थ:-(प्रियमेधवत्) प्रिया तृप्ता कमनीया प्रदीप्ता मेधा बुद्धिर्यस्य तेन तुस्यः (अविवेत्) न विद्यन्ते त्रय आध्यात्मिकाधिभौतिकाधिदैविकास्तापा यस्य तद्वत् (जातवेदः) यो जातेषु पदार्थेषु विद्यते सः (विरूपवत्) विविधानि रूपाणि यस्य तद्वत् (जातवेदः) यो जातेषु विद्यत् सः (विरूपवत्) विविधानि रूपाणि यस्य तद्वत् (अङ्गिरस्वत्) योऽङ्गानां रसः प्राणस्तद्वत् (महिवत्) मिह् महद्व्रतं शीलं यस्य सः (प्रस्कण्वस्य) प्रकृष्टश्चासौ कण्वो मेधावी (श्रुधी) शृणु। अत्र व्यत्ययो, द्व्यचोऽतस्तिङ इति दीर्घः। (हवम्) ग्राह्यं देयमध्ययनाध्यापनाख्यं व्यवहारम्। यास्कमुनिरेवृष्मिमं मेन्त्रं व्याख्यातवान्। प्रियमेधः प्रिया अस्य मेधा यथैतेषामृषीणामेवं प्रस्कण्वस्य शृणु ह्वानम्। प्रस्कण्वः कण्वस्य पुत्रः कण्वस्य प्रभवो यथा प्राग्रमिति। विरूपो नानारूपो महिव्रतो महाव्रत इति। (निरूप्त १९००) ३॥

अन्वयः-हे जातवेदो महिव्रत! विद्वँस्त्वं प्रियमेधवदित्रविद्वरूपवदिङ्गरस्वत् प्रकण्वस्य हवं श्रुधि॥३॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। हे न्यनुष्य! यथा सर्वस्य प्रियकारिणो जना: कायिकवाचिकमानसदोषरिहता नानाविद्याप्रत्यक्षा: स्वप्राणवत्सर्वान् जानन्तो विद्वांसो मनुष्याणां प्रियाणि कार्य्याणि साध्नुयुस्तथा यूयमप्याचरत्।।।

पदार्थ:-हे (जातवेद:) उत्पन्न हुए पदार्थों को जाननेहारे (मिहव्रत) बड़े व्रत युक्त विद्वान्! आप (प्रियमेधवत्) विद्याप्रिय बुद्धि को तुल्य (अत्रिवत्) तीन अर्थात् शरीर, अन्य प्राणी और मन आदि इन्द्रियों के दु:खों से रहित के समान (विरूपवर्त्) अनेक प्रकार के रूपवाले के तुल्य (अङ्गिरस्वत्) अङ्गों के रसरूप प्राणों के सदृश (प्रस्कृण्यास्य) उत्तम मेधावी मनुष्य के (हवम्) देने-लेने, पढ़ने-पढाने योग्य व्यवहार को (श्रुधि) श्रवण किया करें॥३॥

भावार्थ: इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! जैसे सबके प्रिय करने वाले विद्वान् लोग शरीर, वाणी और मन्त्रके दोषों से रहित, नानाविद्याओं को प्रत्यक्ष करने और अपने प्राण के समान सबको जानते हुए बिद्धान लोग मनुष्यों के प्रिय कार्य्यों को सिद्ध करते हैं और जैसे पढ़ाये हुए बुद्धिमान् विद्यार्थी भी बहुद इतम-उत्तम कार्य्यों को सिद्ध कर सकें, वैसे तुम भी किया करो॥३॥

पुनर्विद्वांसस्तं कस्मै प्रयुञ्जीरन्नित्युपदिश्यते॥

किर विद्वान् लोग उसको किसके लिये प्रेरणा करें, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया

अष्टक-१। अध्याय-३। वर्ग-३१-३२

मण्डल-१। अनुवाक-९। सूक्त-४५

है॥

महिंकेरव ऊतये प्रियमेधा अहूषत। राजन्तमध्वराणामुग्नि शुक्रेण शोचिषा॥४॥

महिंऽकेरवः। ऊतर्थे। प्रियऽमेधाः। अहूषत्। राजन्तम्। अध्वराणाम्। अग्निम्। शुक्रेणः शोचिषे।।४॥

पदार्थ:-(महिकेरव:) महयो महान्तः कारवः शिल्पविद्यासाधका येषां ते। अत्र कृञ भातोरुण् प्रत्ययो वर्णव्यत्ययेन अकारस्य एकारश्च। (ऊतये) रक्षणाद्याय (प्रियमेधाः) सत्यविद्याशिक्षाप्रापिका प्रिया मेधा येषां ते (अहूषत) उपदिशत। अत्र लोडर्थे लुङ्। (राजन्तम्) प्रकाशमानम् (अध्वराणाम्) अहिंसनीयव्यवहाराख्यकर्मणाम् (अग्निम्) पावकवद्विद्वांसम् (शुक्रेष्प) शीघ्रकरेण (शोचिषा) पवित्रेण विज्ञानेन॥४॥

अन्वय:-हे महाविद्वांसो महिकेरवः प्रियमेधाः! यूर्यमध्वराणामृतये शुक्रेण शोचिषा सह राजन्तमग्निमहूषत॥४॥

भावार्थ:-निह कश्चिद्धार्मिकविद्वत्सङ्गेन विना परिभित्तियवहाराणां सिद्धिं कर्त्तुं शक्नोति, तस्मात् सर्वेरेतेषां सङ्गेन सकला विद्याः साक्षात्कर्त्तव्याः॥४॥

पदार्थ: - हे महाविद्वानो! (महिकेरव:) जिनके बेड्रें बड़े शिल्प विद्या के सिद्ध करने वाले कारीगर हों, ऐसे (प्रियमेधा:) सत्यविद्या वा शिक्षाओं की प्राप्त कराने वाली मेधा बुद्धियुक्त आप लोग (अध्वराणाम्) पालनीय व्यवहाररूपी कर्मों की (अत्ये) रक्षा आदि के लिये (शुक्रेण) शुद्ध शीघ्रकारक (शोचिषा) तेज से (राजन्तम्) प्रकाशमान (अग्निम्) प्रसिद्ध वा बिजुली रूप आग के सदृश सभापित को (अहूषत्) उपदेश वा उससे श्रवण क्रियो करो। हा

भावार्थ:-कोई मनुष्य अर्मिक बुद्धिमानों के सङ्ग के विना उत्तम-उत्तम व्यवहारों की सिद्धि करने को समर्थ नहीं हो सक्ती। इससे सब्द्र मनुष्यों को योग्य है कि इनके सङ्ग से इन विद्याओं को साक्षात्कार अवश्य करें॥ अर्भ

पुनः स केन ज्ञातुं शक्नुयादित्युपदिश्यते॥

फिर वृह्ण किससे ज्यानने को समर्थ होवे, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

घृताह वन सन्येमा उ षु श्रुधी गिर्रः।

याभि: केएवस्य सूनवो हवन्तेऽवसे त्वा॥५॥३१॥

घृतुंऽआहवन। सुन्त्य। डुमाः। ऊँ इति। सु। श्रुधि। गिर्रः। याभिः। कण्वस्य। सूनवः। हर्वन्ते। अवसे।

त्यापिN

पदार्थ:-(घृताहवन) घृतग्राहिन् (सन्त्य) सनन्ति सम्भजन्ति सुखानि याभिः क्रियाभिस्तासु सीधो (इमा:) वक्ष्यमाणाः प्रत्यक्षाः (उ) वितर्के (सु) शोभार्थे। अत्र सूज (अष्टा०८.३.१०७) इति मूर्धन्यादेशः। (शुधि) शृणु। अत्र द्व्यचोऽतस्तिङ इति दीर्घः। (गिरः) वाणीः (याभिः) वेदवाग्भिः (कण्वस्य) मेशिविन्। (सुनवः) पुत्रा विद्यार्थिनः (हवन्ते) गृह्णन्ति (अवसे) रक्षणाद्याय (त्वा) त्वाम्॥५॥

अन्वय:-हे सन्त्य घृताहवन विद्वन्! यथा कण्वस्य सूनवोऽवसे याभिर्वेदवाणी्रिर्यं त्वा हवन्ते स त्वमुताभिस्तेषामिमा गिरः सुश्रुधि सुष्ठु शृणु॥५॥

भावार्थ:-ये मनुष्या इह संसारे विदुष्या मातुर्विदुषः पिर्मुस्नूचनस्याचार्यस्य च सकाशाच्छिक्षाविद्ये गृहीत्वा परमार्थव्यवहारौ साधित्वा विज्ञानशिल्पयोः स्निद्धे कर्त्तुं प्रवर्तन्ते, ते सर्वाणि सुखानि प्राप्नुवन्ति नेतरे॥५॥

पदार्थ:-हे (सन्त्य) सुखों की क्रियाओं में कुशल (घृताहवर) भी को अच्छे प्रकार ग्रहण करने वाले विद्वान् मनुष्य! जैसे (कण्वस्य) मेधावी विद्वान् के (सूनव्य) पुत्र विद्वार्थी (अवसे) रक्षा आदि के लिये (याभि:) जिन वेदवाणियों से जिस (त्वा) तुझ को (हवसी) ग्रहण करते हैं सो आप (3) भी उनसे उनकी (इमा) इन प्रत्यक्ष कारक (गिर:) वाणियों को (सुर्श्वाध) अच्छे प्रकार सुन और ग्रहण कर॥५॥

भावार्थ:-जो मनुष्य इस संसार में विदुषी माता, विद्वान पता और सब उत्तर देने वाले आचार्य्य आदि से शिक्षा वा विद्या को ग्रहण कर परमार्थ और व्यवहरूर को सिद्ध कर विज्ञान और शिल्प को करने में प्रवृत्त होते हैं, वे सब सुखों को प्राप्त होते हैं, शालासी कभी नहीं होते॥५॥

पुनस्तं क्रीदृशं गृह्णीयुर्वित्युपदिश्यते॥

फिर उसको किस प्रकार ग्रहुण करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

त्वां चित्रश्रवस्तम् हर्वने विक्षु जनवः।

शोचिष्केशं पुरुप्रियामे हुव्याय बोळ्हवे॥६॥

त्वाम्। चित्रश्रवःऽतुम्। हर्वन्ते। बिश्चा जन्तर्वः। शोचिःऽकैशम्। पुरुऽप्रियः। अग्ने। हव्यार्य। वोळ्हवे॥६॥

पदार्थ:-(त्वाम्) (चित्रश्रवस्तम्) चित्राण्यद्धतानि श्रवांस्यतिशयितान्यन्नादीनि यस्य तत्सम्बुद्धौ (हवन्ते) स्पर्द्धन्ते (विश्वु) ष्रजासु (जन्तवः) मनुष्याः। जन्तव इति मनुष्यनामसु पठितम्। (निघं०२.३) (शोचिष्केशम्) शोद्धिषः शुद्धाचाराः केशाः प्रकाशका यस्य तम् (पुरुप्रिय) यः पुरून् बहून् प्रीणाति तत्सम्बुद्धौ (अग्ने) विद्वन् (हव्याय) होतुमर्हाय यज्ञाय (वोढवे) विद्याप्रापणाय॥६॥

अन्वय:-हे चित्रश्रवसस्तम पुरुप्रियाग्ने विद्युदिव विद्वन्! ये जन्तवो विक्षु वोढवे हव्याय यं शोबिष्कशंत्वां हवन्ते, स त्वं तान् विद्यासुशिक्षाप्रदानेन विदुषः सुशीलान् सद्यः सम्पादय॥६॥

भावार्थः-मनुष्यैरनेकगुणाग्निवद्वर्त्तमानं विद्वांसं प्राप्य विद्याः सततं ग्राह्याः॥६॥

अष्टक-१। अध्याय-३। वर्ग-३१-३२

मण्डल-१। अनुवाक-९। सूक्त-४५

पदार्थ:-हे (चित्रश्रवस्तम) अत्यन्त अद्भुत अन्न वा श्रवणों से व्युत्पन्न (पुरुप्रिय) बहुतों को तृप्त करने वाले (अग्ने) बिजुली के तुल्य विद्याओं में व्यापक विद्वान्! जो (जन्तवः) प्राणी लिंग (विश्व) प्रजाओं में (वोढवे) विद्या प्राप्ति कराने हारे (हव्याय) ग्रहण करने योग्य पठन-पाठनरूप यज्ञ के लिय जिस (शोचिष्केशम्) जिसके पवित्र आचरण हैं, उस (त्वाम्) आपको (हवन्ते) ग्रहण् करते हैं, वह आप उन को विद्या और शिक्षा देकर विद्वान् और शीलयुक्त शीघ्र कीजिये॥६॥

भावार्थ:-मनुष्यों को उचित है कि अनेक गुणयुक्त अग्नि के समान विद्वास को प्राप्त होके विद्याओं का ग्रहण करें॥६॥

पुनस्तं कथंभूतं विदित्वा धरेयुरित्युपदिश्यते॥

फिर उसको किस प्रकार जानकर धारण करें, इस विषय का उपरेश अगले मन्त्र में किया है।।

नि त्वा होतारमृत्विजं दिधरे वसुवित्तमम्। श्रुत्कर्णं सुप्रथस्तम् विप्नं अग्ने दिविष्टिषु॥७॥

नि। त्वा। होर्तारम्। ऋत्विज्ञम्। दुधिरे। वसुवित्ऽत्मम्। श्रुत्उक्रणम्। सप्रर्थःऽतमम्। विप्नाः। अग्ने। दिविष्टिषु॥७॥

पदार्थ:-(नि) निश्चयार्थे (त्वा) त्वाम् (होतारम्) ग्रह्मितारम् (ऋत्विजम्) ऋतून् यजित सङ्गच्छते यस्तम् (दिधरे) दधीरन्। अत्र लिङ्थे क्रिट्रे। (वसुवित्तमम्) यो वसूनि विदिन्त स वसुवित् सोऽतिशयितस्तम् (श्रुत्कर्णम्) यः सकला विद्याः शृणेति तम् (सप्रथस्तमम्) यः प्रथेन विद्याविस्तरेण सह वर्तते सोऽतिशयितस्तम् (विप्राः) मेध्यविभः (अमे) बहुश्रुत सज्जन (दिविष्टिषु) दिवो दिव्या इष्टयो येषु पठनपाठनाख्येषु यज्ञेषु तेषु॥७॥

अन्वय:-हे अग्ने! मेधाजिनो विप्रा विद्वांसो दिविष्टिष्विग्निमिव होतारमृत्विजं श्रुत्कर्णं सप्रथस्तमं वसुवित्तमं त्वा निद्धिरे तांस्त्वपदि निधेहि॥ श्री

भावार्थ:-ये मनुष्या विद्याप्रमाराद्युत्तमकार्य्यसिद्धये प्रयतन्ते चक्रवर्त्तराज्यश्रीर्विद्याधनं साद्धं च शक्नुवन्ति, ते शोकं नोपलभन्ते॥।

पदार्थ:-हे (अग्ने) बहुश्रुत सत्पुरुष! जो (विप्रा:) मेधावी विद्वान् लोग (दिविष्टिषु) पवित्र पठन-पाठनरूष कियाओं में अग्नि के तुल्य जिस (होतारम्) ग्रहण कारक (ऋत्विजम्) ऋतुओं को सङ्गत करने (श्रुत्कर्णम्) पवि विद्याओं को सुनने (सप्रथस्तमम्) अत्यन्त विस्तार के साथ वर्तने (वसुवित्तमम्) पदार्थों की ठीक-ठीक जानने वाले (त्वा) तुझ को (निदिधरे) धारण करते हैं, उनको तू भी धारण करमुष्टिम

भावार्थ:-जो मनुष्य उत्तम कार्य सिद्धि के लिये प्रयत्न करते और चक्रवर्ती राज्य, श्री और विद्याधन की सिद्धि करने को समर्थ हो सकते हैं, वे शोक को प्राप्त नहीं होते ॥७॥

पुनस्त कीदृशं जानीयुरित्युपदिश्यते॥

फिर उस को कैसा जाने, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

आ त्वा विप्रां अचुच्यवुः सुतसोमा अभि प्रयः। बृहद्भा बिभ्रंतो हुविरग्ने मर्ताय दाुशुर्षे॥८॥

आ। त्वा। विप्राः। अचुच्यवुः। सुतऽसौमाः। अभि। प्रयः। बृहत्। भाः। बिप्रतः। हुविः। अग्ने। मर्ताय। दाशुषे॥८॥

पदार्थ:-(आ) समन्तात् (त्वा) त्वाम् (विप्राः) विद्वांस (अचुच्युंडं) च्यवन्तां प्राप्नुवन्तु (सुतसोमाः) सुता ओषध्यादिपदार्थसारा यैस्ते। (अभि) अभितः (प्रयः) प्रिष्ण्यन्ति तृप्यन्ति येन तदन्नम् (वृहत्) महत्सुखकारकम् (भाः) या भान्ति प्रकाशयन्ति ताः (विश्वतः) प्ररन्तः (हविः) ग्रहीतुन्दातुमत्तुं योग्यं पदार्थम् (अग्ने) विद्युदिव विद्वन् (मर्त्ताय) मनुष्याय (दाशुषे) दानुशीलाय॥८॥

अन्वय:-हे अग्ने! यस्त्वं यथा क्रियाकुशला देशिए मुर्तीय प्रयो बृहद्धविर्भा बिभ्रतः सन्तः सुतसोमा विप्रास्त्वामभ्यचुच्यवुस्तथैताँस्त्वमिप प्राप्नुहिं॥ ४॥

भावार्थ:-विद्वांसो येन मनुष्याणमुत्तमं सुद्धं स्यात्तं विद्याविशेषपरीक्षाभ्यां प्रत्यक्षीकृत्य यथाऽनुक्रमं सर्वान् ग्राहयेयुर्यतो ह्येतेषां सर्वाणि कार्याणि सिध्येयु:५८००

पदार्थ:-हे (अग्ने) बिजुली के स्मान वर्त्तम्म विद्वान्! जो तू जैसे क्रियाओं में कुशल (दाशुषे) दानशील मनुष्य के लिये (प्रयः) अन्न (बृहत्) बढ़े सुख करने वाले (हविः) देने-लेने योग्य पदार्थ और (भाः) जो प्रकाशकारक क्रियाओं को (बिभ्रतः) धारण करते हुए (सुतसोमाः) ऐश्वर्ययुक्त (विप्राः) विद्वान् लोग (त्वा) तुझको (अभ्रत्युच्यवुः) सुब प्रकार प्राप्त हों, वैसे तू भी इन को प्राप्त हो॥८॥

भावार्थ:-विद्वान् मनुष्यों को चाहिये जिस प्रकार उत्तम सुख हों, उस को विद्याविशेष परीक्षा से प्रत्यक्ष कर अनुक्रम से प्रवक्तो ग्रह्मण करावें, जिससे इन लोगों के भी सब काम निश्चय करके सिद्ध होवें॥८॥

ऐतदनुष्ठाता मनुष्य: कस्मै किं कुर्यादित्युपदिश्यते॥

इस के अनुष्ठानोकरने वाला मनुष्य किसके लिये क्या करे, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

प्रतर्यावर्णः सहस्कृत सोमुपेयाय सन्त्य।

इहाझ दैव्यं जनं बर्हिरा सादया वसो॥९॥

अष्टक-१। अध्याय-३। वर्ग-३१-३२

मण्डल-१। अनुवाक-९। सूक्त-४५

प्रातःऽयार्नः। सहःऽकृत्। सोम्ऽपेयाय। सन्त्य। इह। अद्य। दैर्व्यम्। जर्नम्। बर्हिः। आ। साद्यः। वसो इति॥९॥

पदार्थ:-(प्रातर्याव्या:) ये प्रातः प्रतिदिनं यान्ति पुरुषार्थं गच्छन्ति तान् (सहस्कृत) सहो बेलं कृतं येन तत्सम्बुद्धौ (सोमपेयाय) यः सोमो रसश्च पेयः पातुं योग्यश्च तस्मै (सन्त्य) सनृति सम्भिजन्ति ये ते सन्तस्तेषु साधो (इह) अस्मिन् विद्याव्यवहारे (अद्य) अस्मिन् दिने (दैव्यम्) देवषु विद्वत्सु कुशलम् (जनम्) पुरुषार्थयुक्तं धार्मिकं विपश्चितम् (बर्हिः) उत्तमासनम् (आ) समन्त्रति (सादश) आस्य। अत्र अन्येषामिष० इति दीर्घः। (वसो) यः श्रेष्ठेषु गुणेषु वसित तत्सम्बुद्धौ॥९॥

अन्वय:-हे सहस्कृत सन्त्य वसो विद्वँस्त्विमहाद्य सोम्प्रेप्पय प्रान्स्यां व्यां जनं बर्हिश्चासादय॥९॥

भावार्थ:-ये मनुष्या उत्तमगुणेभ्यो मनुष्येभ्य एवोत्तमानि वस्तृति दुद्गति, तादृशानां सङ्गः सर्वैः कार्य्य:। न हि कश्चिदपि विद्यापुरुषार्थयुक्तानां सङ्गोपदेशाभ्यां विना द्व्यानि सुखानि प्राप्तुमर्हति॥९॥

पदार्थ:-हे (सहस्कृत) सबको सिद्ध करने (सन्स्) नो सम्भजनीय क्रियाओं में कुशल विद्वानों में सज्जन (वसो) श्रेष्ठ गुणों में वसने वाले विद्वान्। तू (इह) इस विद्या व्यवहार में (अद्य) आज (सोमपेयाय) सोमरस के पीने के लिये (प्रातर्याव्याः) (प्रातःकाल पुरुषार्थ को प्राप्त होने वाले विद्वानों और (दैव्यम्) विद्वानों में कुशल (जनम्) पुरुषार्श्वावत धार्मिक मनुष्य और (बर्हि:) उत्तम आसन को (आसादय) प्राप्त कर॥९॥

भावार्थ:-जो मनुष्य उत्तम गुणयुक्त मिनुष्यों ही को उत्तम वस्तु देते हैं, ऐसे मनुष्यों ही का संग सब लोग करें, कोई भी मनुष्य विद्या व पुरुषार्थ युक्त मनुष्यों के संग वा उपदेश के विना पवित्र गुण, वस्तुओं और सुखों को प्राप्त नहीं ही सकता।।९॥

पुनम्तमेव विषयमाह॥

किर भी उसी विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अर्वाञ्चं दैव्यं जन्मिन् यस्व सहूतिभिः।

अयं सोमः सुदानुबस्तं पात तिरोअह्वयम्॥ १०॥ ३२॥

अर्वाञ्चीप्। देव्यम्। जर्नम्। अग्ने। यक्ष्वं। सहूतिऽभिः। अयम्। सौमः। सुऽदान्वः। तम्। पातः। तिरः। अह्नयम्॥ १८भ

ण्दार्थ:-(अर्वाञ्चम्) योऽर्वतो वेगादिगुणानश्वानञ्चति प्राप्नोति तम् (दैव्यम्) दिव्यगुणेषु भवम् (जदम्) पुरुषार्थेषु प्रादुर्भूतम् (अग्ने) विद्वन् (यक्ष्व) सङ्गच्छस्व (सहूतिभिः) समाना हूतयः, आह्वानानि स सहूत्रभूताभिः (अयम्) प्रत्यक्षः (सोमः) विद्यैश्वर्ययुक्तः (सुदानवः) शोभनानि दानानि येषां विदुषां

तत्सम्बुद्धौ (तम्) (पात) रक्षत (तिरोअह्न्यम्) अहिन भवमहन्यम्। तिरस्कृतमाच्छादितमहन्यम् येन तम्। अत्र प्रकृत्यानाः पादमव्यपरे (अष्टा॰६.१.११४) इति प्रकृतिभावः॥१०॥

अन्वय:-हे सुदानवो विद्वांसो! यूयं सहूतिभिस्तमर्वाञ्चं दैव्यं तिरो अह्नयं जनं पात, स्थार्ग साम् सत्कार्य्यस्ति तथा त्वमप्येतान् यक्ष्व सत्कुरु॥१०॥

भावार्थ:-मनुष्यै: सर्वदा सज्जनानाहूय सत्कृत्य सर्वेषां पदार्थानां विद्वानं सोधनं तेभ्य उपकारग्रहणं च कार्य्यमुत्तरोत्तरमेतद्विज्ञायैतद्विद्याप्रचारश्च कार्य्य:॥१०॥

अस्मिन् सूक्ते वसुरुद्रादित्यानां प्रमाणादिचोक्तमत एतत्सूक्तार्थस्य पूर्वसूक्तोतार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेदितव्यम्॥

इति ४५ पञ्चचत्वारिशं सूक्तं द्वात्रिंशत् ३२ वर्षश्च्य समातः॥

पदार्थ:-(हे सुदानव:) उत्तम दानशील विद्वान् लोगो! आप (सहूर्तिभ:) तुल्य आह्वान युक्त क्रियाओं से (अर्वाञ्चम्) वेगादि गुण वाले घोड़ों को प्राप्त करने वा कराने (दैव्यम्) दिव्य गुणों में प्रवृत्त (तिरोअह्वयम्) चोर आदि का तिरस्कार करनेहारे दिन में प्रसिद्ध (जनम्) पुरुषार्थ में प्रकट हुए मनुष्य की (पात) रक्षा कीजिये और जैसे (अयम्) यह (सोम:) पद्धार्थि के समूह सबके सत्कारार्थ हैं तथा (तम्) उसको तू भी (यक्ष्व) सत्कार में संयुक्त कर॥१०॥

भावार्थ:-मनुष्यों को उचित है कि सर्वदा सज़नों को बुला सत्कार कर सब पदार्थों का विज्ञान शोधन और उनसे उपकार ले और उत्तरोत्तर इस् की जोम कर इस विद्या का प्रचार किया करें॥१०॥

इस सूक्त में वसु, रुद्र और आदित्यों की पूर्वि तथा प्रमाण आदि कहा है, इससे इस सूक्तार्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चारिया। अधि।

यह ४५ पैंताली सर्वा सुक्त और ३२ बत्तीसवां वर्ग समाप्त हुआ॥

अथ पञ्चदशर्चस्य षट्चत्वारिंशस्य सूक्तस्य प्रस्कण्व ऋषि:। अश्विनौ देवते। १, १० विराड्गायत्री। ३,११,६,१२,१४, गायत्री। ५,७,९,१३,१५,२,४,८, निचृद्गायत्री चू

छन्दः। षड्जः स्वरः॥

तत्रोषरश्चिवद्वर्त्तमानानां विदुषीणां गुणा उपदिश्यन्ते॥

अब छयालीसवें सूक्त का आरम्भ है। इसके पहिले मन्त्र में उषा और सूर्य-चन्द्र के दृष्टान्त से विद्वान् स्त्रियों के गुणों का प्रकाश किया है।।

एषो उषा अपूर्व्या व्युच्छति प्रिया दिवः।

स्तुषे वामश्चिना बृहत्॥ १॥

एषो इति। उषा:। अपूर्व्या। वि। उच्छति। प्रिया। दिव:। स्तुषे। वाम्(अश्विता। बृहत्॥ १॥

पदार्थ:-(एषो) इयम् (उषा:) दाहनिमित्तशीला (अपूर्व्या) न पूर्वै: कृता। अत्र पूर्वै: कृतिमित्तशीला (अपूर्व्या) न पूर्वै: कृतिमितियौ च। (अष्टा॰४.४.१३४) अनेनायं सिद्धः। (वि) विविधार्थे (उच्छुकि) विबस्ति (प्रिया) या प्रीणाति सर्वान् सा (दिवः) सूर्य्यप्रकाशात् (स्तुषे) तद्गुणान् प्रकाशयसि (वाम्) द्वे (अश्विना) अश्विनौ सूर्य्याचन्द्रमसाविवा- ध्यापिकोपदेशिके (बृहत्) महद्दिनम् अ

अन्वय:-हे विदुषि! या त्वं यथैषो अपूर्व्या दिष अद्भुता सती प्रियोषा बृहदुच्छति तथा मां व्युच्छिस यथाऽश्विनौ स्तुषे तथाऽहमपि त्वां विवासियामि स्तौष्ट्रि च॥१॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार याः स्त्रियः सूर्यचन्द्रोषर्वत्सर्वान् प्राणिनः सुखयन्ति ता एवानन्दाप्ता भवन्ति नेतराः॥१॥

पदार्थ: -हे विदुषि! जो तू जैसे (एषे) यह (अपूर्व्या) किसी की की हुई न (दिव:) सूर्य्यप्रकाश से उत्पन्न हुई (प्रिया) सबको प्रीति को बढ़ाने वाली (उषा:) दाहशील उषा अर्थात् प्रात:काल की वेला (वृहत्) बड़े दिन को (उच्छति) प्रकाशित करती है, वैसे मुझ को (व्युच्छति) आनन्दित करती हो और जैसे वह (वाम्) (अश्विना) सूर्य और चन्द्रशा के तुल्य पढ़ाने और उपदेश करनेहारी स्त्रियों के (स्तुषे) गुणों का प्रकाश करती हो, वैसे मैं भी तुझ को सुखों में वसाऊं और तेरी प्रशंसा भी करूं॥१॥

भावार्थ:-इस मन्त्र मिं वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो स्त्री लोग सूर्य चन्द्र और उषा के सदृश सब प्राणियों को सुख देती हैं, वे आनन्द को प्राप्त होती हैं, इनसे विपरीत कभी नहीं हो सकती॥१॥

पुनस्तौ कीदृशावित्युपदिश्यते॥

फिर वे अश्वि कैसे हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

वा दुस्रा सिन्धुमातरा मनोतरा रयीणाम्।

<mark>थियो</mark> देवा वंसुविदां॥२॥

या। दुम्ना। सिन्धुंऽमातरा। मुनोतरां। रुयोणाम्। धिया। देवा। वुसुऽविदां॥२॥

पदार्थ:-(या) यौ (दस्ना) दु:खोपक्षेतारौ (सिन्धुमातरा) सिन्धूनां समुद्राणां नदीनां वा मातरौ यद्वा सिन्धवो मातरो ययो: (मनोतरा) अतिशयितं मनो ययोस्तौ (रयोणाम्) धनानाम् (धिया) कर्मणा (देवा) दिव्यगुणप्रापकौ (वसुविदा) बहुधनप्रदौ। अत्र सर्वत्र सुपां सुलुग्० इत्याकारादेश:॥२॥

अन्वय:-हे मनुष्या! यूयं या दस्रा सिन्धुमातरा मनोतरा ध्रिया रयीणां देवा वसुविदावग्निजलवद्वर्त्तमाना- वध्यापकोपदेशकौ स्तस्तौ सेवध्वम्॥२॥

भावार्थः-यथा शिल्पिभर्यथावत्सम्प्रयोजिते अग्निजले यानानां पनोवेपवत्सद्यो गमयितृणी बहुधनप्रापके वर्तेते, तथाऽध्यापकोपदेशकौ भवेतामिति॥२॥

पदार्थ: -हे मनुष्य लोगो! तुम लोग (या) जो (दस्रा) दु:खों को नष्ट (सिम्सुमातरा) समुद्र निदयों के प्रमाण कारक (मनोतरा) मन के समान पार करने हारे (धिया) केर्म से (भयोणाम्) धनों के (देवा) देने हारे (वसुविदा) बहुत धन को प्राप्त कराने वाले अग्नि और जिल के बुल्य वर्त्तमान अध्यापक और उपदेशक हैं, उनकी सेवा करो॥२॥

भावार्थ:-जैसे कारीगर लोगों ने ठीक-ठीक युक्त किंग हुए अग्नि और जल के यानों को मन के वेग के समान तुरन्त पहुँचाने वा बहुत धन को प्राप्त करने वाले हैं, उसी प्रकार अध्यापक और उपदेशकों को होना चाहिये॥२॥

पुनस्तौ कुद्भावित्युप्रदिश्यते॥

फिर वे कैसे हैं, इस क्रिय का उपद्रश अगले मन्त्र में किया है।।

व्चयने वां ककुहासी जूर्णामाध विष्टिप।

यद्वां रथो विभिष्पतात्। 💵

वुच्यन्ते। वाम्। कुकुहास्ति जूर्णायाम्। अधि विष्टपि। यत्। वाम्। रथः। विऽभिः। पतात्॥३॥

पदार्थ:-(वच्यन्ते) उच्चरेन्। सम्प्रसारणाच्य (अष्टा॰६.१.१०८) इत्यत्र वा छन्दिस (अष्टा॰६.१.१०६) इत्यत्र मूर्वरूपाभावाद्यणादेश:। (वाम्) युवां शिल्पविद्याध्यापकाध्येतारौ (ककुहास:) महान्तो विद्वास:। ककुह इति महन्नामसु पठितम्। (निघं॰३.३) (जूर्णायाम्) गन्तुमशक्यायां वृद्धावस्थायाम् (अधि) उपरिभावे (विष्टिण्) अन्तरिक्षे (यत्) यः (वाम्) युवयोः (रथः) विमानादियान समूहः (विभः) यथा वयन्ति गच्छन्ति ये ते वयः पक्षिणस्तैः (पतात्) गच्छेत्॥३॥

अन्वय:-हे शिल्पिनौ! यदि जूर्णायां वर्त्तमानाः ककुहासो वां विद्या वच्यन्ते, तर्हि वां युवयोरथो विभिः, सह विष्टप्यधिपतात्॥३॥ अष्टक-१। अध्याय-३। वर्ग-३३-३५

मण्डल-१। अनुवाक-९। सूक्त-४६

भावार्थ:-यदि मनुष्याः परमविदुषां सकाशाच्छिल्पविद्यां गृह्णीयुस्तर्हि विमानादियानानि रचयित्वा पक्षिवदाकाशे गन्तुं शक्नुयु:॥३॥

पदार्थ:-हे कारीगरो! जो (जूर्णायाम्) वृद्धावस्था में वर्तमान (ककुहासः) बड़े विद्वान् (वाम्) तुम शिल्पविद्या पढ़ने-पढ़ाने वालों को विद्याओं का (वच्यन्ते) उपदेश करें तो (वाम्) आप लोगों का बनाया हुआ (रथः) विमानादि सवारी (विभिः) पिक्षयों के तुल्य (विष्टिपि) अन्द्रिक्ष में (अधि) ऊपर (पतात्) चलें॥३॥

भावार्थ:-जो मनुष्य लोग बड़े ज्ञानी के समीप से कारीगरी और शिक्षा को ग्रहण करें तो विमानादि सवारियों को रच के पक्षी के तुल्य आकाश में जाने-आने को समर्थ होचेंग्रेश।

पुन: स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

हुविषा जारो अपां पिपर्ति पपुरिर्नरा।

पिता कुर्टस्य चर्षणि:॥४॥

हुविषां। जारः। अपाम्। पिपर्ति। पपुरिः। नुरा। प्रिताः कुरस्यः चुर्षुणिः॥४॥

पदार्थ:-(हिवषा) दानाऽऽदानेन (जार) विभागक्रतांदित्यः (अपाम्) जलानाम् (पिपर्ति) प्रपिपूर्त्ति (पपुरिः) प्रपूरको विद्वान् (नरा) नेत्रारावध्यापको पदेशकौ। अत्र सुपां सुलुग्० इत्याकारादेशः। (पिता) पालयिता (कुटस्य) कुटिलस्य मार्गस्य सुक्राशात् (चर्षणिः) दर्शको मनुष्यः। चर्षणिरिति पदनामसु पठितम्। (निघं०४.२) इमं मन्त्रं यस्क्रिमुनिरेवं समाचष्टे। हिवषापां जरियता पिपर्ति पपुरिरिति पृणातिनिगमौ वा प्रीणातिनिगमौ वा पिता कृतस्य कर्मणश्चायितादित्यः। (निरु०५.२४)॥४॥

अन्वय:-हे नरा! युवां व्या जार: पप्रिश्च कुटस्य पिता चर्षणिरादित्यो हविषाधिविष्टप्यपां योगेन पिपर्त्ति तथा प्रजा: पालयताम्

भावार्थ:-मनुष्यो यथा पूर्यो वर्षादिद्वारा प्राण्यप्राणिन: पुष्णाति तथा सर्वान् पुष्येत्॥४॥

पदार्थ:-हे (नरा) निक्रिक सिखाने पढ़ाने और उपदेश करनेहारे लोगो! तुम जैसे (जार:) विभागकर्ता (पपुरि:) अच्छे प्रकार पूर्ति (पिता) पालन करने (कुटस्य) कुटिल मार्ग को (चर्षणि:) दिखलाने हार्ग पूर्य (हिवषा) आहुति से बढ़कर (अपाम्) जलों के योग से (पिपर्ति) पूरण कर प्रजाओं का पालन करता है वैसे प्रजा का पालन करो॥४॥

आवार्थ:-मनुष्यों को योग्य है कि जैसे सविता वर्षा के द्वारा जिलाने के योग्य प्राणी और अप्राणियों को पृष्ट करता है, वैसे ही सबको पृष्ट करें॥४॥

पुनस्तौ कीदृशावित्युपदिश्यते॥

408

ऋग्वेदभाष्यम्

फिर वे कैसे हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

आदारो वां मतीनां नासत्या मतवचसा।

पातं सोमंस्य धृष्णुया॥५॥३३॥

आऽदारः। वाम्। मृतीनाम्। नासंत्या। मृतुऽवचसा। पातम्। सोमंस्य। धृष्णुऽया॥५॥

पदार्थ:-(आदार:) समन्ताच्छत्रूणां दारणकर्ता गुणः (वाम्) युवयोः (मृतीनाम्) मर्प्याणाम् (नासत्या) सत्यगुणस्वभावौ। अत्र सुपां सुलुग्० इत्याकारादेशः। (मतव्यसा) मतानि बचांसि वेदवचनानि याभ्यां तौ (पातम्) प्राप्नुतम् (सोमस्य) ऐश्वर्य्यम्। अत्र कर्मणि (अष्टा॰२.३.६५) षष्ठी (धृष्णुया) धर्षणेन प्रगल्भत्वेन॥५॥

अन्वय:-हे नासत्या मतवचसाऽश्विना सभासेनेशौ! युवां यो विसादारेऽस्त्रि तेन धृष्णुया सोमस्य मतीनां पातम्॥५॥

भावार्थ:-राजपुरुषा दृढेन बलेन शत्रून् जित्वा स्वेषां प्रभाषां चैश्वर्यं/सततं वर्द्धयेयु:॥५॥

पदार्थ:-हे (नासत्या) पवित्र गुण, स्वभावयुक्त (भतवचसा) ज्ञान से बोलने वाले सभा सेना के पित! तुम जो (वाम्) तुम्हारे (आदार:) सब प्रकार से शत्रुओं को विदारण कर्ता गुण हैं, उस और (धृष्णुया) प्रगल्भता से (सोमस्य) ऐश्वर्य और (मतीनाम्) पनुष्यों की (पातम्) रक्षा करो॥५॥

भावार्थ:-राजपुरुषों को चाहिये कि दृद्ध बलेयुक्त सेना से शत्रुओं को जीत अपनी प्रजा के ऐश्वर्य्य की निरन्तर वृद्धि किया करें॥५॥

पुन: सूर्य्यच द्वदिश्विनौ कि कुरुत इत्युपदिश्यते॥

फिर सूर्य्य-चन्द्रमा के समान द्वीभा सेनीपित क्या करें, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

या नः पीपरदश्चिना स्वीतिष्मती तेपस्तिरः।

तामुस्मे रासाथामिषम्।। ६११/

या। नुः। पीपरत् अश्विना न्योतिष्मती। तर्मः। तिरः। ताम्। अस्मे इति। रासाथाम्। इषम्॥६॥

पदार्थ:-(या) यौ वक्ष्यमाणौ (नः) अस्मभ्यम् (पीपरत्) सुखैः पूरयेत्। अत्र लिङ्थें लुङ्डभावश्च। (अश्विना) सूर्य्याचन्द्रमसाविव सभासेनेशौ (ज्योतिष्मती) प्रशस्तानि ज्योतींषि विद्यन्ते यस्यां सा। अत्र सुपां सुनुग् इत्यमो लुक्। (तमः) रात्रिम्। तम इति रात्रिनामसु पठितम्। (निघं०१.७) (तिरः) अन्तर्धाने (ताम्) (अस्मे) अस्माकम्। अत्र सुपाम् इति शे आदेशः। (रासाथाम्) दद्यातम् (इषम्) उत्तम्भूणसस्पादक- मन्नाद्यौषधसमूहम्॥६॥

अष्टक-१। अध्याय-३। वर्ग-३३-३५

मण्डल-१। अनुवाक-९। सूक्त-४६

अन्वय:-हे अश्विना सभासेनेशौ! युवां यथा सूर्याचन्द्रमसोज्यींतिष्मती तमस्तिरस्कृत्योषसं रात्रिं च कृत्वा नः सर्वान् पीपरत् तथास्मे अविद्यां निवार्य तामिषं रासाथाम्॥६॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा सूर्याचन्द्रमसावन्धकारं निवार्य्य प्राधितः सुख्यित, तथैव सभासेनेशावन्यायं निवर्त्य प्रजाः सुखयेताम्॥६॥

पदार्थ:-हे (अश्विना) सभासेनाध्यक्षो! जैसे सूर्य्य और चन्द्रमा की ज्योतिष्मती उत्तम प्रकाशयुक्त कान्ति (तमः) रात्रि का निवारण करके प्रभात और शुक्लपक्ष से स्व को पोषण करते हैं, वैसे (अस्मे) हमारी अविद्या को छुड़ा विद्या का प्रकाश कर (नः) हम सबको (ताम्) उस (इषम्) अन्न आदि को (रसाथाम्) दिया करो॥६॥

भावार्थ:-यहाँ वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जिस प्रकार सूर्य्य और चन्द्रमा अन्धकार को दूर कर प्राणियों को सुखी करते हैं, वैसे ही सभा और सेना के अध्यक्षों की चाहिये कि अन्याय दूर कर प्रजा को सुखी करें॥६॥

पुनस्तौ किं कुर्यातामिल्युपिक्रिश्यते॥

फिर वे क्या करें, इस विषय का उपदेश अंगले मन्त्र में किया है॥

आ नो नावा मंतीनां यातं पाराय गन्तेवे। युञ्जार्थामश्चिना रथम्॥७॥

आ। नुः। नावा। मृतीनाम्। यातम्। क्रुस्त्रुये। गर्नुके युञ्जार्थाम्। अश्विना। रथम्।।७॥

पदार्थ:-(आ) समन्तात् (नः) अस्पान्) (नावा) नौकादिना (मतीनाम्) मनुष्याणाम् (यातम्) प्राप्नुतम् (पाराय) परतटम् (गन्तवे) पतुम्। अत्र गत्यर्थकर्मणि० (अष्टा०२.३.१२) इति द्वितीयार्थे चतुर्थी। (युञ्जाथाम्) (अश्विना) व्यवहारूच्यापिनौ। अत्र सुपां सुलुग्० इत्याकारादेश:। (रथम्) रमणीयं विमानादिकं यानसमूहम्॥७॥

अन्वय:-हे अभिना अवां मूर्लीनां नावा पाराय गन्तवे नोऽस्मानायातं रथं च युञ्जाथाम्॥७॥

भावार्थ:-मनुष्ये रथेन स्थल नौकया समुद्रे विमानेनाऽकाशे गमनाऽगमने कार्य्ये॥७॥

पदार्थ: ते (अश्वना) व्यवहार करने वाले कारीगरो! आप (मतीनाम्) मनुष्यों की (नावा) नौका से (पाराय) पर (मतवे) जाने के लिये (नः) हमारे लिये (रथम्) विमान आदि यानसमूहों को (युआथाम्) युक्त कर चलाइये॥७॥

भावार्थ:-मनुष्यों को चाहिये कि रथ से स्थल अर्थात् सूखे में नाव से जल में विमान से आकाश में जाया-अन्या करें॥७॥

पुनस्तत् कीदृशं कर्त्तव्यमित्युपदिश्यते॥

५७६

ऋग्वेदभाष्यम्

फिर वह यान किस प्रकार का होना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

अरित्रं वां दिवस्पृथु तीर्थे सिस्यूनां रथः।

धिया युंयुज्र इन्दंव:॥८॥

अ्रित्रम्। वाम्। दिवः। पृथु। तीर्थे। सिम्यूनाम्। रथः। धिया। युयुत्रे। इन्देवः॥८॥

पदार्थ:-(अरित्रम्) यानस्तम्भनार्थं जलगाधग्रहणार्थं वा लोहमयं साध्यम् (वाम्) युवयोः (दिवः) द्योतमानात्मकविद्युदग्न्यादिपदार्थेर्युक्तम् (पृथु) विस्तीर्णम् (तीर्थे) तरित् येन तिस्मिन्नर्थे (सिन्धूनाम्) समुद्रादीनाम् (रथः) यानसमूहः (धिया) क्रियया (युयुन्ने) योज्यन्ताम्। अत्र लोडर्थे लिट्। इरयो रे। (अष्टा०६.४.७६) इति रे आदेशः। (इन्द्रवः) जलानि। इन्द्रिरिन्धुदकनामसु पठितम्। (निघं०१.१२)॥८॥

अन्वय:-हे शिल्पिनौ! यो वां पृथु रथोऽस्ति तत्र सिन्धूनां (त्त्रेथे) योन्द्रिरत्रं दिवोऽग्न्यादीनीन्दवो जलानि च युवाभ्यां धिया युयुज्रे योज्यन्ताम्॥८॥

भावार्थ:-न किल कश्चिदग्निजलादिचालनयुक्तेन यानेन विनी भूसमुद्रान्तरिक्षेषु सुखेन गन्तुं शक्नोति॥८॥

पदार्थ:-हे कारीगरो! जो (वाम्) आप लेगों का (पृथु) विस्तृत (रथः) यानसमूह अर्थात् अनेकविध सवारी हैं, उनको (सिन्धूनाम्) समुद्रों के (तीर्थे) तराने वाले में (अरित्रम्) यान रोकने और बहुत जल के थाह ग्रहणार्थ लोहे का साधन (दिवः) प्रकाशमान बिजुली अग्न्यादि और (इन्दवः) जलादि को आप (धिया) क्रिया से) (युयुकें) युक्त क्रीजिये॥८॥

भावार्थ:-कोई भी मनुष्य अपूर्व आदि से चलने वाले यान अर्थात् सवारी के विना पृथिवी, समुद्र और अन्तरिक्ष में सुख से आने-जाने को समर्थ नहीं हो सकता॥८॥

पुनस्तौ कि कुर्व्यातामित्युपदिश्यते॥

फिर वे क्या करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

द्विवस्कंणवास् इन्देको वसु सिस्यूनां पदे।

स्वं वृद्धिं कुहं धित्सथः॥९॥

द्विः। क्रिक्स्मः। इन्देवः। वस्रु। सिन्धूनाम्। पदे। स्वम्। वृद्रिम्। कुर्ह। धित्सुथः॥९॥

पदार्थ: (दिवः) प्रकाशमानानग्न्यादीन् (कण्वासः) शिल्पविद्याविदो मेधाविनः (इन्दवः) जलानि (वसु) अनम् (सिन्धूनाम्) समुद्राणाम् (पदे) गन्तव्ये मार्गे (स्वम्) स्वकीयम् (विद्रम्) रूपयुक्तं पदार्थसमूहेम्। विद्रिति रूपनामसु पठितम्। (निघं०३.७) (कुह) क्व (धित्सथः) धर्तुमिच्छथः॥९॥

अष्टक-१। अध्याय-३। वर्ग-३३-३५

मण्डल-१। अनुवाक-९। सूक्त-४६

अन्वय:-हे कण्वासो विद्वांसो! यूयिममौ शिल्पिनौ पृच्छत युवां सिन्धूनां पदे ये दिव इन्दवः सन्ति तान् स्वं विव्रं वसु च कुह धित्सथ इति॥९॥

भावार्थः-यदि मनुष्या विद्वच्छिक्षानुकूल्येनाऽग्निजलादिसम्प्रयुक्तेषु यार्वेषु स्थित्वा राजकर्मव्यापारयोः सिद्धये समुद्रान्तं गच्छेयुस्तदा पुष्कलं सुरूपं धनम्प्राप्नुयुः॥९॥

पदार्थ:-हे (कण्वास:) मेधावी विद्वान् लोगो! तुम इन कारीगरों को पूछो कि तुम लोग (सिन्धूनाम्) समुद्रों के (पदे) मार्ग में जो (दिव:) प्रकाशमान अग्नि और (इन्हें अल आर्दि हैं उन्हें और (स्वम्) अपना (विद्वम्) सुन्दर रूपयुक्त (वसु) धन (कुह) कहाँ (धित्सथ:) धरने की इच्छा करते हो॥९॥

भावार्थ:-जो मनुष्य लोग विद्वानों की शिक्षा के अनुकूल अपने जल के प्रयोग से युक्त यानों पर स्थित होके राजा-प्रजा के व्यवहार की सिद्धि के लिये समुद्र के अन्त में जावें आवें तो बहुत उत्तमोत्तम धन को प्राप्त होवें॥९॥

तदुत्तरमाह।

इस विषय का उत्तर अगुले मन्त्र में कहा है॥

अभूदु भा उ अंशवे हिर्गण्यं प्रति सूर्यः। व्यंख्यज्जिह्वयासितः॥१०॥३४॥

अभूत्। ऊम् इति। भाः। ऊम् इति। अ्ंश्रेषे। हिर्रण्यम्। प्रति। सूर्यः। वि। अख्युत्। जिह्नया। असितः॥१०॥

पदार्थ:-(अभूत्) भवित। अत्र लड्थें लुङ्। (उ) वितर्के (भाः) या भाित प्रकाशयित (उ) (अंशवे) पदार्थानां किरणानां वेजाय (हिस्प्यम्) सुवर्णादिकं (प्रति) प्रतीतार्थे (सूर्य्यः) सिवता (वि) विविधार्थे (अख्यत्) प्रसिद्धत्या प्रकाशेत (जिह्वया) रसनेन्द्रियेणेव किरणज्वालासमूहेन (असितः) अबद्धः॥१०॥

अन्वय:-हे शिल्पि, मुवां यथाऽसितो भाः सूर्य्योऽशवे जिह्नयेवाख्यत् सन्मुखोऽभूत् तथा तत्सित्रधौ तद्यानं स्थापियत्वा तत्रोचितस्थाने हिरण्यं ज्योतिः सुवर्णादिकं रक्षेत॥१०॥

भावार्षः-हे सानयायिनो मनुष्या! यूयं ध्रुवयन्त्रसूर्य्यादिनिमित्तेन दिशो विज्ञाय यानानि चालयत स्थापयत च्र^{्रा}यतो सान्त्याऽन्यत्र गमनं न स्यात्॥१०॥

पदार्थ:-हे कारीगरो! तुम लोग जैसे (असित:) अबद्ध अर्थात् जिसका किसी के साथ बन्धन नहीं है (भाः) प्रकाशयुक्त (सूर्य्य:) सूर्य्य के (अंशवे) किरणों के विभागार्थ (जिह्वया) जीभ के समान

(व्यख्यत्) प्रसिद्धता से प्रकाशमान सन्मुख (अभूत्) होता है, वैसे उसी पर यान का स्थापन कर उसम् उचित स्थान में (हिरण्यम्) सुवर्णादि उत्तम पदार्थों को धरो॥१०॥

भावार्थ:-हे सवारी पर चलने वाले मनुष्यो! तुम दिशाओं के जानने वाले चुम्बक (धुर्), येन्त्रे और सूर्यादि कारण से दिशाओं को जान; यानों को चलाओ और ठहराया भी करो, जिससे भ्रान्ति में पड़कर अन्यत्र गमन न हो अर्थात् जहाँ जाना चाहते हो, ठीक वहीं पहुँचो, भटकना न हो॥१०॥

पुनस्तदेवोपदिशति॥

फिर उसी उत्तर का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

अभूंदु पारमेर्तवे पन्यां ऋतस्यं साधुया। अदंर्शि वि स्नुतिर्दिवः॥११॥

400

अभूत्। ऊम् इति। पारम्। एतवे। पन्याः। ऋतस्यं। साधुऽया। अवस्ति। विक्रितिः। दिवः॥ ११॥

पदार्थ:-(अभूत्) भवेत्। अत्र लर्डथें लुङ्। (उ) निश्चियार्थे (पार्म्) परभागम् (एतवे) एतुम्। अत्र तुमर्थे से॰ इति तवे प्रत्ययः। (पन्था) मार्गः (ऋतस्य) जलस्य (साधुया) साधुना। अत्र सुपां सुलुग्॰ इति याडादेशः। (अदिशिं) दृश्यताम्। अत्रापि लर्ड्थे सुङ्क्ति विविधार्थे (स्नुतिः) स्रवणं गमनं यस्मिन्मार्गे सः (दिवः) प्रकाशमानादग्नेः॥११॥

अन्वय:-यदि मनुष्यैः समुद्रादेः पारमेत्वे सत्र दिव् ऋतस्य विस्नृतिः पन्था अभूत् तत्र स्थित्वा साधुया यानेन सुखतो देशान्तरमदर्शि तर्हि श्रीमन्तः कथं ने स्यः॥११॥

भावार्थ:-मनुष्यै: सर्वत्र गम्सागानार्थारा सरलान् शुद्धान् मार्गान् रचयित्वा तत्र विमानादिभिर्यानै- यथावद्गमनं कृत्वा विविधानि सुवानि प्राप्तव्यानि॥११॥

पदार्थ:-मनुष्यों को योग्य है कि समुद्रादि के (पारम्) पार (एतवे) जाने के लिये जहाँ (दिव:) प्रकाशमान सूर्य्य और (ऋतस्य) जल का (विस्नुति:) अनेक प्रकार गमनार्थ (पन्था:) मार्ग (अभूत्) हो वहां स्थिर हो (साधुया) उत्तम स्वारी से सुख्यूर्वक देश-देशान्तरों को (अदिर्शि) देखें तो श्रीमन्त क्यों न होवें॥११॥

भावार्थ:-मनुष्यों को अधित है कि सर्वत्र आने-जाने के लिये सीधे और शुद्ध मार्गों को रच और विमानादि यानों स्टेड्स्छापूर्वक गमन करके नाना प्रकार के सुखों को प्राप्त करें॥११॥

पुनरेताभ्यां किं प्राप्तव्यमित्युपदिश्यते॥

किर सभा और सेनापित अश्वियों से क्या पाना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

त्त्र्नादुदश्चिनोरवो जरिता प्रति भूषति।

अष्टक-१। अध्याय-३। वर्ग-३३-३५

मण्डल-१। अनुवाक-९। सूक्त-४६

मद्रे सोमस्य पिप्रतोः॥१२॥

तत्ऽतंत्। इत्। अश्विनोः। अवः। जिर्ता। प्रति। भूषितः। मदे। सोर्मस्य। पिप्रतोः॥ १२॥

पदार्थ:-(तत्तत्) तत्तदुक्तं वक्ष्यमाणं वा सुखम् (इत्) एव (अश्विनोः) उक्तयोः सभासेनेष्ठयोः सकाशात् (अवः) रक्षणादिकम् (जिरता) स्तोता विद्वान् (प्रिति) (भूषिति) अलङ्करोति (मदे) माद्यन्ति हष्यन्त्यानन्दन्ति यस्मिन् व्यवहारे तस्मिन् (सोमस्य) उत्पन्नस्य जगतो मध्ये (पिप्रतोः) यौ पिपूर्तस्तयोः॥१२॥

अन्वय:-यो जरिता मनुष्यः पिप्रतोरिश्वनोः सकाशात् सोमस्य मदेश्वः प्रति भूषित स तत्सुखमाप्नोति॥१२॥

भावार्थ:-निह कैश्चिदिप विद्विच्छिक्षायुक्त्या क्रियया विन सर्वाण सुखानि प्राप्तुं शक्यन्ते तस्मादेतान्नित्यमध्येष्टव्यम्॥१२॥

पदार्थ:-जो (जिरता) स्तुति करने वाला विद्वान् मनुष्य (पित्रतोः) पूरण करने वाले (अश्विनोः) सभा और सेनापित से (सोमस्य) उत्पन्न हुए जगत् के बीच (मरे) आनन्दयुक्त व्यवहार में (अवः) रक्षािद को (प्रतिभूषित) अलंकृत करता है (तत्तत्) उस्र उस सुख् को (इत्) ही प्राप्त होता है॥१२॥

भावार्थ:-कोई भी विद्वानों से शिक्षा वा क्रिया को ग्रहण किये विना सब सुखों को प्राप्त नहीं हो सकता। इससे उसका खोज नित्य करना चाहियोग १२॥

पुनस्तौ कीद्शिवित्युपदिश्यते॥

फिर वे कैसे हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

वावसाना विवस्वति सोमस्य पीत्या गिरा।

मुनुष्वच्छंभू आ गतमू 🏳 १३॥

वृवसाना। विवस्वति। सोपस्य। प्रीत्या गिरा। मुनुष्वत्। शुंभू इति शम्ऽभू। आ। गृतम्॥ १३॥

पदार्थ:-(वावस्ति) सुखेर्वितिशयेन वस्तारौ अत्र सुपां सुलुग्० इत्याकारादेश:। (विवस्वित) सूर्य्ये (सोमस्य) उत्पन्नस्य जनते मध्ये (पीत्या) रक्षिकया क्रियया। अत्र पा रक्षण इत्यस्मात् क्तिन्। (गिरा) वाण्या (भूष्वत्) ख्रथा मनुष्या रक्षन्ति तद्वत् (श्रम्भू) सुखं भावुकौ (आ) समन्तात् (गतम्) प्राप्नुतम्॥१३४।

अन्वयः न्हे वावसाना शम्भू अध्यापकोपदेशकौ! युवां विवस्वति सोमस्य पीत्या गिराऽसमास्पनुष्वदागतम्॥१३॥

भावार्थः-हे मनुष्या! यूयं यथा परोपकारिणो जनाः प्राणिनां निवासविद्याप्रकाशदानेन सुर्खानि भावयन्ति, तथैव सर्वेभ्यो बहूनि सुखानि सम्पादयतेति॥१३॥

पदार्थ:-हे (वावसाना) अत्यन्त सुख में वसाने (शम्भू) सुखों के उत्पन्न करने वाले पदाने और सत्य के उपदेश करने हारे! आप (विवस्वित) सूर्य्य के प्रकाश में (सोमस्य) उत्पन्न हुए ज्यात के मध्य में (पीत्या) रक्षा रूपी क्रिया वा (गिरा) वाणी से हम को (मनुष्वत्) रक्षा करने हारे मनुष्यों के तुल्य (आ) (गतम्) सब प्रकार प्राप्त हूजिये॥१३॥

भावार्थ:-हे मनुष्यो! तुम जिस प्रकार परोपकारी मनुष्य प्राणियों के निवास और विद्या प्रकाश के दान से सुखों को प्राप्त कराते हैं, वैसे तुम भी उन को प्राप्त कराओ॥१३॥

तयो: सकाशात् किं प्राप्नुयुरित्युपदिश्वते॥

इन दोनों से क्या प्राप्त करें, इस विषय का उपदेश अगुल मन्त्र में किया है।।

युवोरुषा अनु श्रियं परिज्मनोरुपाचेरत्। ऋता वनथो अक्तुभिः॥ १४॥

युवो:। उषा:। अनुं। श्रियंम्। परिऽज्मनो:। उपुऽआचेप्त्। ऋता वेनुष्य:। अक्तुऽभिं:॥१४॥

पदार्थ:-(युवो:) सभासेनेशयोः (उषाः) सूर्य्याचन्द्रमसोः प्रातःप्रकाशः (अनु) पश्चादर्थे (श्रियम्) विद्याराजलक्ष्मीम् (परिज्मनोः) यः परितः सर्वतिष्ठजतः प्रक्षिपतो गच्छतस्तयोः (उपाचरत्) उपचारिणीव वर्तते (ऋता) ऋतौ यथार्थसुगुणस्वरूपौ। अत्र सुपां सुलुग्० इत्याकारादेशः। (वनथः) सम्भजेथाम् (अक्तुभिः) रात्रिभिः। अक्तुर्विति राविनाससु पठितम्। (निघं०१.७)॥१४॥

अन्वयः-हे ऋता सभासेनाश्चिपतौ ! पश्चीषा अक्तुभिरुपाचरत् तथा ययोः परिज्मनोर्युवोर्न्यायो रक्षणं चोपाचरत् तौ युवां श्रियमनुक्रवेथः।। १४॥

भावार्थ:-राजप्रजाजना अन्योन्येषु प्रौतिं कृत्वा महदैश्वर्यं प्राप्य सदा सर्वोपकारे प्रयतन्ताम्॥१४॥

पदार्थ:-हे (ऋता) उचित ग्रुण सुन्दरस्वरूप सभासेनापित! जैसे (उषा:) प्रभात समय (अक्तुभि:) रात्रियों के प्राथा (उपार्थरत्) प्राप्त होता है, वैसे जिन (परिज्मनो:) सर्वत्र गमनकर्त्ता पदार्थों को प्रकाश से फेंकने हारे सूर्थ और चन्द्रमा के सदृश वर्त्तमान (युवो:) आपका न्याय और रक्षा हम को प्राप्त होवे आप (अयुव्यम्) उत्तम लक्ष्मी को (अनुवनथ:) अनुकूलता से सेवन कीजिये॥१४॥

भावार्थ:-सन्ते और प्रजाजनों को चाहिये कि परस्पर प्रीति से बड़े ऐश्वर्य्य को प्राप्त होकर सदा सबके उपक्रीर में यून किया करें॥१४॥

पुनस्तावस्मभ्यं किं किं कुर्यातामित्युपदिश्यते॥

फिरे वे हम लोगों के लिये क्या-क्या करें, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

अष्टक-१। अध्याय-३। वर्ग-३३-३५

मण्डल-१। अनुवाक-९। सूक्त-४६

उभा पिर्वतमश्चिनोभा नः शर्म यच्छतम्। अविद्रियाभिरूतिभिः॥ १५॥ ३५॥ ३॥

उभा। पिबतुम्। अश्विना। उभा। नः। शर्म। युच्छतुम्। अविद्वियाभिः। ऊतिभिः॥१५॥

पदार्थ:-(उभा) द्वौ। अत्र सर्वत्र सुपां सुलुग्० इत्याकारादेशः (पिबतम्) स्क्षतम् (अश्विना) सकलविद्यासुखव्यापिनौ सभासेनेशौ (उभा) उभौ (नः) अस्मभ्यम् (शर्म) सुख्रं निकासं वा (य्रव्यतम्) (अविद्रियाभिः) या विदीर्यन्ते ता विद्रास्ता अर्हन्ति ता विद्रियाः। अविद्यमाना विद्रियोः यासु क्रियासु ताभिः। अत्र 'घञर्थे कविधानम्' ततो घस्तद्धितः। (ऊतिभिः) रक्षणादिभिः

अन्वय:-हे सभासेनेशाविश्वना! युवामुभावमृतात्मकमोषधीरुगं पिब्रतपुर्शाऽविद्रियाभिरूतिभिर्नः शर्म यच्छतम्॥१५॥

भावार्थ:-यदि सभासेनेशादयो राजजनाः प्रीतिविनयाभ्या प्रजाः मालयेयुस्तर्हि प्रजाजना अपि तानित्थमेव रक्षयेयु:॥१५॥

अस्मिन् सूक्ते उषोऽश्विशब्दार्थदृष्टार्थवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वभूक्तोर्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेद्यम्॥

इति पञ्चत्रिंशो वर्गः ३५ षट्चत्वारिंश ४६ सूक्तं ३ तृतीयोऽध्यायश्च समाप्तः॥ इति श्रीमत्परिव्राजकाचार्थ्येण श्रीयुतमहाविदुषां श्रीमद्भिष्जानन्दभूरस्वतीस्वामिनां शिष्येण दयानन्दसरस्वती-स्वामिना विरचिते संस्कृतार्थ्यभाषाभ्यां विभूषिते सुश्रमाणयुक्तं ऋग्वेदभाष्ये तृतीयोऽध्यायः पूर्तिं प्रापितः॥३॥

पदार्थ:-हे सभा और सेना के ईश्रूर (अश्विना) सम्पूर्ण विद्या और सुख में व्याप्त होने वाले! तुम दोनों अमृतरूप औषिधयों के रस को (पिवाम) पीओ और (उभा) दोनों (अविद्रियाभिः) अखण्डित क्रियायुक्त (ऊतिभिः) रक्षाओं से (ज्ञः) हम की (शर्म) सुख (यच्छतम्) देओ॥१५॥

भावार्थ:-जो सभा और पेनापित अदि राजपुरुष प्रीति और विनय से प्रजा की पालना करें तो प्रजा भी उनकी रक्षा अच्छे प्रक्रीर करें॥१५॥

इस सूक्त में उमा और अश्वियों का प्रत्यक्षार्थ वर्णन किया है। इससे इस सूक्तार्थ के साथ पूर्वसूक्तार्थ की सङ्गति जानार चाहिये॥

यह पैंतीसूनां वर्ग ३५ छयालीसवां ४६ सूक्त और ३ तीसरा अध्याय समाप्त हुआ॥४६॥ इति श्रीमत्पिस्त्राजकाचार्च्य महाविद्वान् श्रीयुत् स्वामी विरजानन्द सरस्वती जी के शिष्य दयानन्द सरस्वती स्वामी ने संस्कृत और आर्च्यभाषा से सुशोभित अच्छे प्रमाण सिंहत ऋग्वेदभाष्य के तीसरे अध्याय को पूर्ण किया॥३॥

ओ३म्

अथ चतुर्थाऽध्यायाऽऽरम्भः॥

विश्वानि देव सिवतर्दुरितानि पर्रा सुव। यद्धद्रं तन्न आ सुव। ऋ०५.८२.५॥ अतोऽग्रे यानि सामान्येन शब्दसाधुत्वविषयाणि सूत्राणि लिखितानि तान्युत्तरत्र स्थाविषयं वेदितव्यानि यच्चापूर्वं भविष्यति तत्तु लेखिष्यते॥

अथ दशर्चस्य सप्तचत्वारिंशस्य सूक्तस्य प्रस्कण्व ऋषि:। अश्विनौ देवते। १,५ निचृत्पथ्या बृहती। ३,७ पथ्या बृहती। ९ विराट् पथ्या बृहती च छन्द:। मध्यपः विराध २,६,८

निचृत्सतःपङ्क्तिः। ४,१० सतः पङ्क्तिरुछन्दः। प्रञ्चेमः स्वरः।

अब इस के आगे चौथे अध्याय के भाष्य का आरम्भ हैं।।

तत्राऽश्विभ्यां किं साधनीयमित्युषिहरूकते।।

उस के पहले मन्त्र में अश्वि से क्या सिद्ध करना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

अयं वां मधुमत्तमः सुतः सोम ऋतावृधाः तमश्चिना पिबतं तिरोअह्मयं धुत्तं रत्नीमि दाशुर्धे। १॥

अयम्। वाम्। मधुमत्ऽतमः। सुतः। सिमः। ऋतुऽवृधाः। तम्। अश्विनाः। पिबतम्। तिरःऽअह्वयम्। धत्तम्। रत्नानि। दाशुषे॥ १॥

पदार्थ:-(अयम्) वक्ष्यमाण्य एतिष्यां साधितः (वाम्) युवाभ्यां (मधुमत्तमः) प्रशस्ता मधुरादयो गुणा विद्यन्ते यस्मिन् सोऽविश्वयितः (सुनः) निष्पादितः (सोमः) वैद्यकशिल्पक्रियया संसाधित ओषधीरसः (ऋतावृधा) यावृतिन जलेन यथार्थतया शिल्पक्रियया वा वर्धेते तौ (तम्) रसम् (अश्विना) सूर्य्यपवनाविव (पिबतम्) (तिरोअङ्क्यम्) तिरश्च तदहश्च तिरोहस्तस्मिन् भवम् (धत्तम्) (रत्नानि) रमणीयानि सुवर्णादीनि यानाम् वो (दाशुषे) विद्यादिदानकर्त्रे विदुषे॥१॥

अन्वय:-ते ऋतावधाऽश्विना सूर्य्यपवनवद्वर्त्तमानौ सभासेनेशौ वां योऽयं मधुमत्तमः सोमोऽस्माभिः: सुतस्त तिरोअह्मयं रसं युवां पिबतं दाशुषे रत्नानि धत्तम्॥१॥

भृतिर्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। सभाध्यक्षादय: सदौषधीसारान् संसेव्य बलवन्तो भूत्वा प्रजाश्रियो वर्धयेयु:॥१॥

पदार्थ:-हे (ऋतावृधा) जल वा यथार्थ शिल्पक्रिया करके बढ़ाने वाले! (अश्विना) सूर्य्य-वायु तुल्य पभा और सेना के ईश! (वाम्) जो (अयम्) यह (मधुमत्तमः) अत्यन्त मधुरादि गुणयुक्त अष्टक-१। अध्याय-४। वर्ग-१-२

मण्डल-१। अनुवाक-९। सूक्त-४७

(सोम:) यान व्यापार वा वैद्यक शिल्प क्रिया से हम ने (सुत:) सिद्ध किया है (तम्) उस (तिरोअह्वयम्) तिरस्कृत दिन में उत्पन्न हुए रस को तुम लोग (पिबतम्) पीओ और विद्यादान करने वाले विद्वान स्थिते (रत्नानि) सुवर्णादि वा सवारी आदि को (धत्तम्) धारण करो॥१॥

भावार्थ:-सभा के मालिक आदि लोग सदा औषधियों के रसों की सेवा से अन्छे प्रकार बलवान् होकर प्रजा की शोभाओं को बढ़ावें॥१॥

ताभ्यां साधितेन यानेन किं कर्त्तव्यमित्युपदिश्यते॥

उनसे सिद्ध किये हुए यान से क्या करना चाहिये, इस विषय का उपदेश्र अपले मन्त्र में किया

है॥

त्रिव्स्थुरेण त्रिवृतां सुपेशंसा रथेना यांतमश्चिना। कण्वांसो वां ब्रह्मं कृण्वन्त्यध्वरे तेषां सु शृंणुतं हर्वस्। २॥

त्रिवस्थुरेणी। त्रिऽवृत्ती। सुऽपेश्रीसा। रथेन। आ। यातमा अश्विचा। कण्वीसः। वाम्। ब्रह्मी। कृण्वन्ति। अध्वरे। तेषीम्। सु। शृणुतम्। हर्वम्॥२॥

पदार्थ:-(त्रिबसुरेण) त्रीणि बन्धुराणि विद्या व्यक्तिम् तेन। पेश इति रूपनामसु पठितम्। (निघं०३.७) हिरण्यनामसु पठितम्। (निघं०१.२) चे। (रथेन) विमानादिना (आ) अभितः (यातम्) गच्छतम् (अश्वना) अग्निजले इव वर्त्तम्तौ (कण्वामः) मेधाविनः (वाम्) एतयोः सकाशात् (ब्रह्म) अत्रम्। ब्रह्मेत्यन्ननामसु पठितम्। (निघं०२.७) (कण्वन्ति) कुर्वन्ति (अध्वरे) सङ्गते शिल्पिक्रयासिद्धे याने (तेषाम्) मेधाविनाम् (सु) शोभनार्थे (शृषुतम्) (हवम्) ग्राह्यं विद्याशब्दसमूहम्॥२॥

अन्वय:-हे अश्विना वर्तमानी सभासेनेशौ! युवां यथा कण्वासोऽध्वरे येन त्रिबधुरेण त्रिवृता सुपेशसा रथेन देशदेशाऽन्त्ररं शीघ्रं गत्बाऽऽगत्य ब्रह्म कृण्वन्ति तथा तेनायातम्। तेषां हवं सुशृणुतमन्नादिसमृद्धिं च क्रिक्स्यूतम्॥ १/।

भावार्थः-अत्र विच्वितुप्तोपमालङ्कारः। मनुष्यैर्विदुषां सकाशात् पदार्थविज्ञानपुरःसरां यज्ञशिल्पहस्तक्रियुर्गं साक्षात्कृत्वा व्यवहारकृत्यानि निष्पादनीयानि॥२॥

पदार्थ्य: हे (अश्विना) पावक और जल के तुल्य सभा और सेना के ईश तुम लोग! जैसे (कण्वास:) बुद्धिसान् लोग (अध्वरे) अग्निहोत्रादि वा शिल्पिक्रियया से सिद्ध यज्ञ में जिस (त्रिबन्धुरेण) तीन बन्धीच्युक्त (त्रिवृता) तीन शिल्पिक्रिया के प्रकारों से पूरित (सुपेशसा) उत्तम रूप वा सोने से जटित (रथ्रेम) विमान आदि यान से देश-देशान्तरों में शीघ्र जा आ के (ब्रह्म) अन्नादि पदार्थों को (कृण्वन्ति) क्ररेते हैं वैसे उससे देश-देशान्तर और दीप-द्वीपान्तरों को (आयातम्) जाओ आओ (तेषाम्) उन

बुद्धिमानों का (**हवम्**) ग्रहण करने योग्य विद्याओं के उपदेश को (शृणुतम्) सुनो और अन्नादि समृद्धि को बढ़ाया करो॥२॥

भावार्थ:-यहां वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को योग्य है कि विद्वानों के सङ्ग्री पदार्थ विज्ञानपूर्वक यज्ञ और शिल्पविद्या की हस्तक्रिया को साक्षात् करके व्यवहाररूपी की सिद्ध करें॥२॥

पुनस्तौ कीदृशावित्युपदिश्यते॥

फिर वे कैसे हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।

अर्श्विना मधुमत्तमं पातं सोममृतावृधा।

अथाद्य देस्रा वसु बिभ्रंता रथे दाश्वांसमुपं गच्छतम्॥ ३ 🖊

अर्थिना। मधुमत्ऽतमम्। पातम्। सोमम्। ऋतुऽवृधा। अर्थ। अद्या दुस्रा। वसु। बिभ्रता। रथे। दा्शांस्रीम्। उप। गुच्छुतुम्॥३॥

पदार्थ:-(अश्विना) सूर्य्यवायुसदृक्कर्मकारिणौ स्रभासेनेशौँ (मधुमत्तमम्) अतिशयेन प्रशस्तैर्मधुरादिगुणैरुपेतम् (पान्तम्) रक्षतम् (सोमम्) वीररस्पदिक्रम् (ऋतावृधा) यावृतेन यथार्थगुणेन प्राप्तिसाधकेन वर्धयेते तौ (अथ) आनन्तर्य्ये (अद्य) अस्मिन् वर्त्तमाने दिने (दस्रा) दु:खोपक्षेतारौ (वसु) सर्वोत्तमं धनम् (बिभ्रता) धरन्तौ (रथे) विमानादिक्यने (दाश्वासम्) दातारम् (उप) सामीप्ये (गच्छतम्) प्राप्नुतम्॥३॥

अन्वय:-हे अश्विना सूर्य्यवायुवहुर्त्तभानी द्रम्ता वसु बिभ्रतर्तावृधा सभासेनाध्यक्षौ युवामद्य मधुमत्तमं सोमं पातमथोक्ते रथे स्थित्न्य दाश्वां समुम्रणच्छतम्॥३॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्त्रीपमालङ्कारः। यथा वायुना सोमसूर्य्ययोः पृष्टिस्तमो नाशश्च भवति, तथैव सभासेनेशाभ्यां प्रजानां दुखीपक्षयो धमनुद्धिश्च जायते॥३॥

पदार्थ:-हे (अश्वना) सूर्य्य जुप्यु के समान कर्म और (दस्ना) दुःखों के दूर करने वाले! (वसु) सब से उत्तम धन को (विभ्रात) धारण करते तथा (ऋतावृधा) यथार्थ गुण संयुक्त प्राप्ति साधन से बढ़े हुए सभा और सेना के पित आप (अद्य) आज वर्तमान दिन में (मधुमत्तमम्) अत्यन्त मधुरादिगुणों से युक्त (सोमम्) वर्षि रस की (पातम्) रक्षा करो (अथ) तत्पश्चात् पूर्वोक्त (रथे) विमानादि यान में स्थित होकर (दाश्वांक्रम्) देने वाले मनुष्य के (उपगच्छतम्) समीप प्राप्त हुआ कीजिये॥३॥

भावार्थः यहां वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे वायु से सूर्य्य चन्द्रमा की पृष्टि और अन्धकार का नाश होता है, वैसे ही सभा और सेना के पतियों से प्रजास्थ प्राणियों की सन्तुष्टि दु:खों का नाश और धन की कृद्धि होती है॥३॥ अष्टक-१। अध्याय-४। वर्ग-१-२

मण्डल-१। अनुवाक-९। सूक्त-४७

पुनस्तौ कीदृशावित्युपदिश्यते॥

फिर वे कैसे हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

त्रिष्धस्थे बुर्हिषि विश्ववेदसा मध्वा यज्ञं मिमिक्षतम्। कण्वासो वां सुतसोमा अभिद्यवो युवां ह्वन्ते अश्विना॥४॥

त्रिऽस्थस्थे। बुर्हिषि। विश्ववेदसा। मध्या। युज्ञम्। मिमिक्षुत्तम्। कण्यासः। वाम्। सुत्रभीमाः। अभिऽद्यवः। युवाम्। हुवन्ते। अश्विना॥४॥

पदार्थ:-(त्रिषधस्थे) त्रीणि भूजलपवनाख्यानि स्थित्यर्थानि स्थालानि वर्सिंगस्तस्मिन् (बर्हिषि) अन्तरिक्षे (विश्ववेदसा) विश्वान्यखिलान्यत्रानि धनानि वा ययोस्तौ (मध्वा) मधुरेण रसेन। जसादिषु छन्दिस वा वचनाद् (अष्टा०वा०७.३.१०९) नादेशो न। (यज्ञम्) शिल्प्पोख्यम् (मिमिक्षतम्) मेढुं सेक्तुमिच्छतम् (कण्वासः) मेधाविनः (वाम्) युवाम् (सुतसोगाः) सुताः निष्पादिताः सोमाः पदार्थसारा यैस्ते (अभिद्यवः) अभितः सर्वतो द्यवो दीप्ता विद्या विद्युदादयः पदार्थाः साधिता यैस्ते। अत्र द्युतधातोर्बाहुलकादौणादिको डुः प्रत्ययः। (युवाम्) यौ (ह्युत्ते) पूक्ति (अश्वना) क्षत्रधर्मव्यापिनौ॥४॥

अन्वय:-हे विश्ववेदसाऽश्विनेव वर्त्तमानौ सभासेनेशौ युवां यथाऽभिद्यवः सुतसोमाः कण्वासो विद्वांसस्त्रिषधस्थे बर्हिषि मध्वा मधुरेण रसेन वां सूज्ञ च हवेनो तथा मिमिक्षतम्॥४॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार: प्रिष्धा मेनुष्या विद्वद्भयो विद्यां गृहीत्वा यानानि रचयित्वा तत्र जलादिकं संयोज्य सद्यो गमनाय शक्नुव्यन्ति तथो नेवरणोपायेन॥४॥

पदार्थ:-हे (विश्ववेदसा) अख़िल धार्मी के प्राप्त करने वाले (अश्विना) क्षत्रियों के धर्म में स्थित के सदृश सभा सेनाओं के रक्षक। आप जैसे (अभिद्यवः) सब प्रकार से विद्याओं के प्रकाशक और विद्युदादि पदार्थों के साधक (सुनसोमाः) उत्पन्न पदार्थों के ग्राहक (कण्वासः) मेधावी विद्वान् लोग (त्रिषधस्थे) जिस में तीनों भूमि जल, पवन स्थिति के लिये हों उस (बर्हिण) अन्तरिक्ष में (मध्वा) मधुर रस से (वाम्) आप और (यज्ञम्) शिल्प कर्म को (हवन्ते) ग्रहण करते हैं, वैसे (मिमिक्षतम्) सिद्ध करने की इच्छा करो॥४॥

भावार्थ:- जैसे मनुष्य लींग विद्वानों से विद्या सीख, यान रच और उसमें जल आदि युक्त करके शीघ्र जाने आने के बास्ते समर्थ होते हैं, वैसे अन्य उपाय से नहीं, इसलिये उसमें परिश्रम अवश्य करें॥४॥

पुनस्तौ किं कुरुतमित्युपदिश्यते॥

फिर वे क्या करें, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

याभिः कर्ण्वमुभिष्टिभिः प्रार्वतं युवमेश्चिना।

५८६

ऋग्वेदभाष्यम्

ताभिः ष्वर्रसमाँ अवतं शुभस्पती पातं सोर्ममृतावृधा॥५॥१॥

याभिः। कण्वम्। अभिष्टिंऽभिः। प्रा आर्वतम्। युवम्। अश्विनाः। ताभिः। सः। अस्मान्। अवतमः शुभः। पृतीः इति। पातम्। सोर्मम्। ऋतुऽवृधाः॥५॥

पदार्थ:-(याभि:) वक्ष्यमाणाभिः (कण्वम्) मेधाविनम् (अभिष्टिभिः) या अभिमुख्येनेष्यन्ते ताभिरभीष्टाभिरिच्छाभिः। अत्र एमन्नादिषु छन्दिस पररूपं वक्तव्यम् (अष्टा) वार्वः १.१४) इति पूर्वस्येकारस्य पररूपम्। (प्र) प्रकृष्टार्थे (आवतम्) पालयतम् (युवम्) प्रवाम् (अश्विना) सूर्य्यचन्द्रमसाविव सभासेनाध्यक्षौ (ताभिः) उक्ताभिः (सु) शोभनार्थे (अस्मान्) धार्मिकान् पुरुषार्थिनो मनुष्यान् (अवतम्) (शुभः) कल्याणकरस्य कर्मणः शुभगुणसमूहस्य व (पत्रो) प्रालयितारौ (पातम्) रक्षतम् (सोमम्) ऐश्वर्य्यम् (ऋतावृधा) यावृतेन सत्यानुष्ठानेन वर्धेते तिप्रश्रा

अन्वयः-हे ऋतावृधा शुभस्पती अश्विना सूर्य्याचन्द्रमसौ गुणयुक्तौ श्रुवं याभिरभिष्टिभिः सोमं कण्वं च पातं ताभिरस्मान् सुप्रावतं याभिरस्मान् पातं ताभिः सर्वावतम्।

भावार्थ:-सभासेनेशौ यथा स्वस्यैश्वर्यस्य रक्षां विधूनां तथैव पूजाः सेनाश्च सततं रक्षेताम्॥५॥

पदार्थ:-हे (ऋतावृधा) सत्य अनुष्ठान से बढ़ने चाले (शुध्रस्पती) कल्याणकारक कर्म्म वा श्रेष्ठ गुण समूह के पालक! (अश्विना) सूर्य और चन्द्रमा के गुणयुक्त सभा सेनाध्यक्ष! (युवम्) आप दोनों (याभि:) जिन (अभिष्टिभि:) इच्छाओं से (सोम्प्) अपने एश्वर्य और (कण्वम्) मेधावी विद्वान् की (पातम्) रक्षा करें, उनसे (अस्मान्) हम लोगि को (सु) अच्छे प्रकार (आवतम्) रक्षा कीजिये और जिनसे हमारी रक्षा करें उनसे प्राणियों की (अवतम्) रक्षा कीजिये॥५॥

भावार्थ:-सभा और सेना के प्रति राजपुरुष जैसे अपने ऐश्वर्य की रक्षा करें, वैसे ही प्रजा और सेनाओं की रक्षा सदा किया करें॥५॥

पुनस्तौ कीदृशावित्युपदिश्यते॥

फिर वे कैसे हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

सुदासे दस्रा वस् विभेता एथे पृक्षो वहतमश्चिना।

र्यि समुद्रादुत वादिवस्पर्यस्मे धत्तं पुरुस्पृहम्॥६॥

सुऽदासे दुसा। वर्षी बिभ्रता। रथे। पृक्षः। <u>वहत</u>म्। अश्विना। रुयिम्। सुमुद्रात्। उत। वा। दिवः। परि। अस्मे इति। <u>धृतम्, सुरु</u> स्पृहंम्॥६॥

पदार्थ: (सुद्रासे) सुष्ठु शोभना दासा यस्य तस्मिन् (दस्ना) शत्रूणामुपक्षेतारौ (वसु) विद्याद्धिनेषमूहम् (विभ्रता) धरन्तौ (रथे) विमानादियाने (पृक्षः) सुखसम्पर्कनिमित्तं विज्ञानम्। अत्र पृत्रीधातोः बोहुलकाद् औणादिकोऽसुन् प्रत्ययस्तस्य सुडागमश्च। (वहतम्) प्रापयतम् (अश्विना)

अष्टक-१। अध्याय-४। वर्ग-१-२

मण्डल-१। अनुवाक-९। सूक्त-४७

वायुविद्युदादिरिवि व्याप्तैश्वर्यों (रियम्) राज्यिश्रयम् (समुद्रात्) सागरादन्तरिक्षाद्वा (उत) अपि (वा) पक्षान्तरे (दिवः) द्योतनात्मकात् सूर्यात् (पिरि) सर्वतः (अस्मे) अस्मभ्यम् (धत्तम्) पुरुष्णुहम्) यत्सत्पुरुषैर्बहुभिः स्पृह्यत ईप्स्यते तत्॥६॥

अन्वय:-हे दस्रा वसु बिभ्रताऽश्विनेव! युवां सुदासे रथे समुद्रादुत दिव: प्रारेऽस्मी पृक्षो वहतं पुरुस्पृहं रियं च परिधत्तम्॥६॥

भावार्थ:-सभेशादिभि: राजपुरुषै: सेनाप्रजार्थं विविधं धनं समुद्राद्विपाराऽवस्मिमनाय विमानादियानानि च सम्पाद्य सुखोन्नति: कार्य्येति॥६॥

पदार्थ:-हे (दस्रा) शत्रुओं के नाश करने वाले (वसु) विद्यादि ध्रेम (ममुद्ध को (विश्वता) धारण करते हुए (अश्विना) वायु और बिजुली के समान पूर्ण ऐश्वर्ययुक्त आप! जैसे (सुदासे) उत्तम सेवक युक्त (रथे) विमानादि यान में (समुद्रात्) सागर वा सूर्य से (इते) और (दिवः) प्रकाशयुक्त आकाश (सूर्य) से पार (पृक्षः) सुख प्राप्ति का निमित्त (पुरुस्पृहम्) जो बहुत्र का इच्छित हो उस (रियम्) राज्यलक्ष्मी को धारण करें, वैसे (अस्मे) हमारे लिये (परिश्वत्तपू) धार्ण कीजिये॥६॥

भावार्थ:-राजपुरुषों को योग्य है कि सेना और प्रज के अर्थ नाना प्रकार का धन समुद्रादि के पार जाने के लिये विमान आदि यान रच कर सब प्रकार सूख की उन्नति करें॥६॥

पुनरेतौ किं कुरुतामित्युपदिश्यते॥

फिर वे क्या करें, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

यन्नांसत्या परावति यद्वा स्थो अधि तुर्वेष्ट्री

अतो रथेन सुवृता न आ गैते साके सूर्यस्य रिश्मिभः॥७॥

यत्। नास्तत्या। प्राऽविति यत्। वा। स्थः। अर्धि। तुर्वशे। अतः। रथेन। सुऽवृतां। नः। आ। गृत्म। साकम्। सूर्यस्य। रुश्मिऽभिः॥ ।

पदार्थ:-(यत्) य जिम्मत्या) सत्यगुणकर्मस्वभावौ सभासेनेशौ (परावति) दूरं दूरं देशं प्रतिगमने कर्त्तव्ये (यत्) यह (वा) पक्षान्तरे (स्थः) (अधि) उपरिभावे (तुर्वशे) वेदशिल्पादिविद्यावित मनुष्ये। तुर्वश इति मनुष्यनामसु पठितम्। (निघं०२.३) (अतः) कारणात् (रथेन) विमानादियानेन (सुवृता) शोभूनी वृतारुङ्गपूर्त्तिर्य्यस्य तेन (नः) अस्मान् (आ) अभितः (गतम्) गच्छतम् (साकम्) सह (सूर्यस्य) स्वित्मेष्डलस्य (रिश्मिभः) किरणैः॥७॥

अन्वयः-हे नासत्यावश्विना! युवां यत्सुवृता रथेन यद्यतः परावित देशे तुर्वशेऽधिष्ठस्तेनातः सूर्य्यस्य स्थाभिः साकं नोऽस्मानागतम्॥७॥ 466

ऋग्वेदभाष्यम्

भावार्थ:-राजसभेशादयो येन यानेनान्तरिक्षमार्गेण देशान्तरं गन्तुं शक्नुयुस्तद्यानं प्रयत्निन रचयेयु:॥७॥

पदार्थ:-हे (नासत्या) सत्य गुण, कर्म, स्वभाव वाले सभा, सेना के ईश! आप (यता) जिसे (सुवृता) उत्तम अङ्गों से परिपूर्ण (रथेन) विमान आदि यान से (यत्) जिस कारण (परावित्त) दूर देश में गमन करने तथा (तुर्वशे) वेद और शिल्पविद्या के जानने वाले विद्वान् जन के (अधिष्ठ:) अपर स्थित होते हैं (अत:) इससे (सूर्य्यस्य) सूर्य के (रिश्मिभ:) किरणों के (साकम्) साथ (न:) हम लेगों को (आगतम्) सब प्रकार प्राप्त हूजिये॥७॥

भावार्थ:-राजसभा के पित जिस सवारी से अन्तरिक्ष मार्ग करके देशान्तर जाने को समर्थ होवें, उसको प्रयत्न से बनावें॥७॥

पुनस्तौ किं हेतुकावित्युपदिश्यते॥

फिर वे किस हेतु वाले हैं, इस विषय का उपदेश अंगले मेन्द्र में किया है।।

अर्वाञ्चा वां सप्तयोऽध्वर्श्रियो वहन्तु सवनेदुपे। इषं पृञ्चन्तां सुकृतें सुदानंव आ बहिः सीदतं नर्राहिः।

अर्वाञ्चां। वाम्। सप्तयः। अध्वर्ऽश्रियः। वहन्ताः सर्वमा इत्। उपं। इषंम्। पृञ्चन्तां। सुऽकृते। सुऽदानेवे। आ। बहिः। सीद्वम्। न्सा।८॥

पदार्थ:-(अर्वाञ्चा) अर्वतो वेगानञ्चतः प्राप्तुतस्तौ (वाम्) युवयोः (सप्तयः) वाष्पादयोऽश्वा येषान्ते। सिपित्यश्चनामसु पठितम्। (निष्टेंष्ट्रं १४) (अध्वरिष्रयः) या अध्वरस्याहिंसनीयस्य चक्रवर्त्तिराज्यस्य लक्ष्मीस्ताः (वहन्तु) प्राप्नुबन्दु (सवना) सुन्वति यैस्तानि (इत्) एव (उप) सामीप्ये (इषम्) श्रेष्ठामिच्छामुत्तममन्नादिकं वा (पृञ्चन्ता) सम्पर्चकौ (सुकृते) यः शोभनानि कर्म्माणि करोति तस्मै (सुदानवे) शोभना दानवो दान्तिन यस्य तस्मै (आ) अभितः (बर्हिः) अन्तरिक्षमुत्तमं वस्तुजातम् (सीदतम्) गच्छतम् (नरा) नायकौ सभासेनायन्ती॥८॥

अन्वय:-हे अवश्वि पृञ्चन्त्र नरा सभासेनेशौ! युवां ये वां सप्तयः सुकृते सुदानवे जनाय चैषां बर्हिः सवनाध्वरिश्रयश्चोपावहन्त्र तानुपासीदतम्॥८॥

भावार्थः देशाजप्रजाजनाः पस्परमुत्तमान् पदार्थान् समर्प्य सुखिनः स्यु:॥८॥

पदार्थः हे (अर्वाञ्चा) घोड़े के समान वेगों को प्राप्त (पृञ्चन्ता) सुखों के कराने वाले (नरा) सभा सेनायित! आप जो (वाम्) तुम्हारे (सप्तयः) भाफ आदि अश्वयुक्त (सुकृते) सुन्दर कर्म करने (सुदानवें) उत्तम दाता मनुष्य के वास्ते (इषम्) धर्म की इच्छा वा उत्तम अन्न आदि (बर्हिः) आकाश वा श्रेष्ठ पदार्थ (सवना) यज्ञ की सिद्धि की क्रिया (अध्वरिश्रयः) और पालनीय चक्रवर्ति राज्य की लिक्ष्मयों का (आवहन्तु) प्राप्त करावें, उन पुरुषों का (उपसीदतम्) सङ्ग सदा किया करो॥८॥

अष्टक-१। अध्याय-४। वर्ग-१-२

मण्डल-१। अनुवाक-९। सूक्त-४७

भावार्थ:-राजा और प्रजाजनों को चाहिये कि आपस में उत्तम पदार्थों को दे लेकर सुखी हों॥८॥

पुनस्तौ किं कुर्य्यातामित्युपदिश्यते॥

फिर वे क्या करें, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

तेन नासत्या गतुं रथेन सूर्यत्वचा।

येन शर्श्वदूहर्थुर्दाशुषे वसु मध्वः सोमस्य पीतर्ये॥ ९॥

तेन नासत्या। आ। गृतम्। रथेन। सूर्यंऽत्वचा। येने। शर्श्वत्। ऊहर्थुः। दाशुषी वसी प्रध्वः। सोमेस्य। पीतये॥९॥

पदार्थ:-(तेन) पूर्वोक्तेन वक्ष्यमाणेन च (नासत्या) सत्याचेरणस्वरूपे (आ) समन्तात् (गतम्) गच्छतम् (रथेन) विमानादिना (सूर्य्यत्वचा) सूर्य्य इव त्वग् यस्य तेन (येन) केक्तेन (शश्वत्) निरन्तरम् (ऊहथुः) प्रापयतम् (दाशुषे) दानशीलाय मनुष्याय (वसु) कार्य्यक्तिरणेद्रव्यं वा (मध्वः) मधुरगुणयुक्तस्य (सोमस्य) पदार्थसमृहस्य (पीतये) पानाय भोगाय वा॥९॥

अन्वय:-हे नासत्या! युवां येन सूर्य्यत्वचा श्विन्गितं वैन दाशुषे मध्वः सोमस्य पीतये शश्वद्वसूहथुः प्रापयतम्॥९॥

भावार्थ:-राजपुरुषा यथा स्वहिताय प्रयत्नि तथैव प्रजासुखायापि प्रयतेरन्॥९॥

पदार्थ: - हे (नासत्या) सत्याचरण करनेहारे सभाक्षेना के स्वामी! आप (येन) जिस (सूर्य्यत्वचा) सूर्य्य की किरणों के समान भास्वर (रथेन) निमन कराने वाले विमानादि यान से (आगतम्) अच्छे प्रकार आगमन करें (तेन) उस से (दाशुषे) बानशील मुमुष्य के लिये (मध्व:) मधुरगुणयुक्त (सोमस्य) पदार्थ समूह के (पीतये) पान वा भोग के अर्थ (त्रसु) कार्य्यरूपी द्रव्य को (ऊह्थु:) प्राप्त कराइये॥९॥

भावार्थ:-राजपुरुष जैसे अपने हित के लिये प्रयत्न करते हैं, उसी प्रकार प्रजा के सुख के लिये भी प्रयत्न करें॥९॥

पुनरेकौ प्रति प्रजाजनाः किं कुर्य्युरित्युपदिश्यते॥

फिर उन के प्रति प्रजीजन क्या करें, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है।।

उक्थेभिर्क्गगवसे पुरुवसू अर्केश्च नि ह्वयामहे।

शश्चरकप्रवाना सर्दसि प्रिये हि कुं सोमं पुपर्युरश्चिना॥ १०॥ २॥

द्क्थिभिः। अर्वाक्। अर्वसे। पुरुवसू इति पुरुऽवसू। अर्कैः। च। नि। ह्वयामहे। शर्थत्। कण्वानाम्। सर्दम्गि प्रिये। हि। कुम्। सोर्मम्। पुपर्थुः। अश्विना॥ १०॥

पदार्थ:-(उक्थेभि:) वेदस्तोत्रैरधीतवेदाप्तोपदिष्टवचनैर्वा (अर्वाक्) पश्चात् (अवसे) रक्षणाद्याये (पुरूवसू) पुरूणां बहूनां विदुषां मध्ये कृतवासौ (अर्कै:) मन्त्रैर्विचारैर्वा। अर्को मन्त्रो भवित् यदेनेनार्चित्त। (निरु०५.४) (च) समुच्चये (नि) नितराम् (ह्वयामहे) स्पर्धामहे (श्रश्चत्) अनिदूरू पम् (कण्वानाम्) मेधाविनां विदुषाम् (सदिस्) सभायाम् (प्रिये) प्रीतिकामनासिद्धिकर्य्यां (हि) खलु (कम्) सुखसम्पादकम् (सोमम्) सोमवल्यादिरसम् (पपथुः) पिबतम् (अश्विना) वायुमूर्व्याविद्ये वर्तमानौ धर्मन्यायप्रकाशकौ॥१०॥

अन्वय:-हे पुरूवसू अवसे अश्वना! वयमुक्थेभिरकैर्यत्र कण्वानां प्रिये सदिस यो युवां निह्नयामहे तत्रार्वाक् तौ शश्वत्कं प्राप्नुतं हि सोमं च पपथु:॥१०॥

भावार्थ:-राजप्रजाजना विदुषां सभायां गत्वोपदेशान्नित्यं सृण्वान्तु यतः सर्वेषां कर्त्तव्याऽकर्त्तव्यबोधः स्यात्॥१०॥

अत्र राजप्रजाधर्मवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तोक्तार्थेन साकृं सङ्गतिरस्तेर्गित बोध्यम्॥

इति द्वितीयो २ वर्गः सप्तचत्वारिशं ४७ सुक्ते च स्रेमाप्तम्॥

पदार्थ:-हे (पुरूवसू) बहुत विद्वानों में बसने वार्स (अश्विन) वायु और सूर्य के समान वर्त्तमान धर्म्म और न्याय के प्रकाशक! (अवसे) रक्षादि के अर्थ हम लोग (उक्थेभि:) वेदोक्त स्तोत्र वा वेदविद्या के जानने वाले विद्वानों के इष्ट वचनों के (अर्के:) विचार से जहाँ (कण्वानाम्) विद्वानों की (प्रिये) पियारी (सदिस) सभा में आप लोगों को (निह्वयामहे) भितिशय श्रद्धा कर बुलाते हैं, वहां तुम लोग (अर्वाक्) पीछे (शश्वत्) सनातन (कम्) सुख को प्राप्त होओं (य) और (हि) निश्चय से (सोमम्) सोमवल्ली आदि औषधियों के रसों को (पपथु:) पिक्षित्री (अर्ष)

भावार्थ:-राजप्रजा जनों को चाहिये कि विद्वानों की सभा में जाकर नित्य उपदेश सुनें, जिससे सब करने और न करने योग्य विषयों का बोध हो॥१०॥

यहां राजा और प्रजा के धर्म्म का वर्णन होने से इस सूक्तार्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गित जाननी चाहिये॥

ह दूसे २ वर्ग सैंतालीसवां ४७ सूक्त समाप्त हुआ॥

अथाऽस्य षोडशर्चस्याऽष्टचत्वारिंशस्य सूक्तस्य प्रस्कण्व ऋषि:। उषा देवता। १,३,७,९ विराट् पथ्याबृहती। ५,११,१३ निचृत्पथ्याबृहती च छन्द:। मध्यम: स्वर:। ४,६,१४, विराट् सतः

पङ्क्तिः। २,१०,१६ निचृत्सतः पङ्क्तिः। ८ पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

अथोषर्वत्कन्यकानां गुणाः सन्तीत्युपदिश्यते॥

अब अड़तालीसवें सूक्त का आरम्भ है। उस के पहिले मन्त्र में उषा के समान पुर्<mark>तियों के पुष्</mark> होने चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

सह वामेन न उषो व्युच्छा दुहितर्दिव:।

सह द्युम्नेन बृहुता विभाविर राया देवि दास्वती॥ १॥

सह। वामेनं। नः। उषः। वि। उच्छ। दुहितः। दिवः। सह। द्युनिन्। बृहता। विभाऽवृदि। राया। देवि। दास्वंती॥ १॥

पदार्थ:-(सह) सङ्गे (वामेन) प्रशस्येन (नः) अस्मान् (उषः) द्रषर्वद्वर्त्तमाने (वि) विविधार्थे (उच्छ) विवस (दुहितः) पुत्रीव (दिवः) प्रकाशमानस्य सूर्यस्य (सहं) सार्द्धम् (द्युम्नेन) प्रकाशेनेव विद्यासुशिक्षारूपेण (वृहता) महागुणविशिष्टेन (विभाविरे) विविधा दीप्तयो यस्यास्तत्सम्बुद्धौ (राया) विद्याचक्रवर्त्तिराज्यश्रिया (देवि) विद्यासुशिक्षाभ्यां द्यातमाने (दास्वती) प्रशस्तानि दानानि विद्यन्तेऽस्याः सा॥१॥

अन्वयः-हे दिवो! दुहितरुषर्वद्वर्त्तमाने विभाविर देवि कन्ये दास्वती त्वं बृहता वामेन द्युम्नेन राया सह नो व्युच्छ॥१॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोष्रमालङ्करः। यतो यदुत्पद्यते तत्तस्याऽपत्यवद्भवति यथा कश्चित्स्वामिभृत्यः स्वामिनं प्रबोध्य सचेतरं कृत्वा व्यवहारेषु प्रयोजयित यथोषाश्च पुरुषार्थयुक्तान् प्राणिनः कृत्वा महता पदार्थसमूहेन सुक्षेत्र वा साद्धे योजयित्वाऽऽनिन्दितान् कृत्वा सायंकालस्थैषा व्यवहारेभ्यो निवर्त्यारामस्थान् करोति तथा मातापितृभ्यां विद्यासुशिक्षादिव्यवहारेषु स्वकन्याः प्रेरियतव्याः॥१॥

पदार्थ:-हे (दिवः) सूर्यप्रकाश की (दुहितः) पुत्री के समान (उषः) उषा के तुल्य वर्तमान (विभाविर) विविध दीप्तिसुक्त (देवि) विद्या सुशिक्षाओं से प्रकाशमान कन्या (दास्वती) प्रशस्त दानयुक्त! तू (वृह्ता) बड़े (वामेन) प्रशंसित प्रकाश (द्युम्मेन) न्यायप्रकाश करके सहित (राया) विद्या चक्रवर्ति राज्य खक्ष्मों के (सह) सहित (नः) हम लोगों को (व्युच्छ) विविध प्रकार प्रेरणा करें॥१॥

भूतियं: पहाँ वाचकलुप्तोपमालंकार है। जैसे कोई स्वामी भृत्य को वा भृत्य स्वामी को सचेत कर व्यवहारों में प्रेरणा करता है और जैसे उषा अर्थात् प्रात:काल की वेला प्राणियों को पुरुषार्थ युक्त कर बहु-बहु पदार्थसमूह युक्त सुख से आनन्दित कर सायंकाल में सब व्यवहारों से निवृत्त कर

आरामस्थ करती है, वैसे ही माता-पिता विद्या और अच्छी शिक्षा आदि व्यवहारों में अपनी कन्याओं की प्रेरणा करें॥१॥

पुन: सा कीदृशी किं करोतीत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसी और क्या करती है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया हैं।

अश्वावतीर्गोमतीर्विश्वसुविदो भूरि च्यवन्त वस्तवे। उदीरय प्रति मा सूनृता उष्टश्चोद राधी मुघोनाम्॥२॥

अर्श्वऽवतीः। गोऽमंतीः। विश्वऽसुविदः। भूरिं। च्यवन्तः। वस्तवे। उत्। ईर्यू। प्रति। मा। सूनृताः। उषः। चोदं। रार्धः। मुघोनाम्।।२॥

पदार्थ:-(अश्वावती) प्रशस्ता अश्वा विद्यन्ते यासान्ताः (गोमतीः) बहुची गावो विद्यन्ते यासां ताः (विश्वसुविदः) विश्वानि सर्वाणि सुष्ठुतया विदन्ति याभ्यस्ताः (भूरि) बहु (च्यवन्त) च्यवन्ते (वस्तवे) निवस्तुम् (उत्) उत्कृष्टार्थे (ईरय) गमय (प्रति) अभिमुखे (मा) माम् (सूनृताः) सुष्ठु सत्यप्रियवाचः (उषः) दाहगुणयुक्तोषर्वत् (चोद) प्रेरय (राधः) अनुत्तमं धूनम् (मघोनाम्) धनवतां सकाशात्॥२॥

अन्वय:-हे उषरिव स्त्रि! त्वमश्ववतीर्गीमतीर्विश्वसुषिदः) सूनृता वाचो वस्तवे भूर्युदीरय ये व्यवहारेभ्यश्च्यवन्त तेषां मघोनां सकाशाद्राधश्चोद प्रेरय ताधिर्मा प्रत्यानन्दय॥२॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यिश्रा सुशुस्ममानोषाः सर्वान् प्राणिनः सुखयित तथा स्त्रियः पत्यादीन् सततं सुखयेयुः॥२॥

पदार्थ:-हे (उष:) उषा के सदृष्ट स्मी: तू में से यह शुभगुणयुक्ता उषा है, वैसे (अश्वावती:) प्रशंसनीय व्याप्ति युक्त (गोमती:) बहुत गो आदि पशुसहित (विश्वसुविद:) सब वस्तुओं को अच्छे प्रकार जानने वाली (सूनृता:) अच्छे प्रकार प्रियादियुक्त वाणियों को (वस्तवे) सुख में निवास करने के लिये (भूरि) बहुत (उदीरय) प्रिरणा कर और जो व्यवहारों से (च्यवन्त) निवृत्त होते हैं, उन को (मघोनाम्) धनवानों के सकाश से (राध:) उत्तम से उत्तम धन को (चोद) प्रेरणा कर उनसे (मा) मुझे (प्रति) आनन्दित कर॥ २०००

भावार्थ:-इस मन्त्र में विचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे अच्छी शोभित उषा सब प्राणियों को सुख देती है, वैसे स्त्रिय्ये अपने फ़्लियों को निरन्तर सुख दिया करें॥२॥

पुन: सा कीदृशी भवेदित्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसी हो, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

<u>जे</u>शासोषा उच्छाच्य नु देवी जीरा रथानाम्।

ये अस्या आचरणेषु दध्निरे संमुद्रे न श्रवस्यवः॥३॥

अष्टक-१। अध्याय-४। वर्ग-३-५

मण्डल-१। अनुवाक-९। सूक्त-४८

उवासी उषाः। उच्छात्। च। नु। देवी। जीरा। रथानाम्। ये। अस्याः। आऽचरणेषु। दृष्टिरे। सुमुद्रे। न। श्रुवस्यर्वः॥३॥

पदार्थ:-(उवास) वसति (उषा:) प्रभावती (उच्छात्) विवसनात् (च) समुच्चर्य (नु) शिष्ट्रम् (देवी) सुखदात्री (जीरा) वेगयुक्ता (रथानाम्) रमणसाधनानां यानानाम् (ये) विद्वांसः (अस्याः) सित्स्त्रियाः (आचरणेषु) समन्ताच्चरिन्त जानिन्त व्यवहरिन्त येषु तेषु (दिक्रि) धरिन्त (समुद्रे) जलमयेऽन्तरिक्षे वा (न) इव (श्रवस्थवः) आत्मनः श्रवणिमच्छवः॥३॥

अन्वय:-या स्त्री उषा इव वर्त्तमाना जीरा देवी रथानां मध्य उवास श्रेऽस्याआचरणेषु समुद्रे न श्रवस्यवो दिधरे ते रथानामुच्छान्न्वध्वानं तरन्ति॥३॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। येन स्वसदृशी विदुषी सर्वथा अनुकूला प्राप्यते स सुखमवाप्नोति नेतर:॥३॥

पदार्थ:-जो स्त्री उषा के समान (जीरा) वेगयुक्त (देवी) सुख देने वाली (रथानाम्) आनन्ददायक यानों के (उवास) वसती है (ये) जो (अस्थाः) इस मुनी स्त्री के (आचरणेषु) धर्म्मयुक्त आचरणों में (समुद्रे) (न) जैसे सागर में (श्रवस्थवः) अपने आप विद्या के सुनने वाले विद्वान् लोग उत्तम नौका से जाते आते हैं, वैसे (दिधरे) प्रीति को धरते हैं, वै पुरुष्/अत्यन्त आनन्द को प्राप्त होते हैं॥३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जिसको अपने समान विदुषी पण्डिता और सर्वथा अनुकूल स्त्री मिलती है, वह सुख को प्राप्त होता है और नहीं॥३॥

य उषिस योगामभूस्यान्त ते किं प्राप्नुवन्तीत्याह।।

जो प्रभात समय में योगाऽभ्यास करते हैं, बे किसको प्राप्त होते हैं, इस विषय का उपदेश अगले

उषो ये ते प्र यामेषु युद्धते मनी द्वीगार्य सूरर्यः।

अत्राहु तत्कण्व एष्ट्रा कण्वतम्। नाम गृणाति नृणाम्॥४॥

उषु:। ये। ते। प्रा यामिषु। युङ्कते मर्नः। दानायं। सूर्यः। अत्रं। अहं। तत्। एषाम्। कण्वंः। कण्वंऽतमः। नामं। गृणाति। नृण्यम्॥४॥

पदार्थ: (उष्टें) उषसः (ये) (ते) तव (प्र) प्रकृष्टार्थे (यामेषु) प्रहरेषु (युञ्जते) अभ्यस्यन्ति (मनः) विज्ञानं (दानाय) विद्यादिदानाय (सूरयः) स्तोतारो विद्वांसः। सूरिरिति स्तोतृनामसु पठितम्। (निघं० १:१६) (अत्र) अस्यां विद्यायाम् (अह) विनिग्रहार्थे। अह इति विनिग्रहार्थीयः। (निरु०१.५) (तत्) (कण्वः) मेधावी (एषाम्) (कण्वतमः) अतिशयेन मेधावी (नाम) सञ्ज्ञादिकम् (गृणाति) प्रशंसित (गृणाम्) विद्याधर्मेषु नायकानां मनुष्याणां मध्ये॥४॥

अन्वय:-हे विद्वन्! ये सूरयस्ते तव सकाशादुपदेशं प्राप्यात्रोषर्यामेषु दानाय मनोऽह प्रयुञ्जते ते सिद्धा भवन्ति। यः कण्वः एषां नृणां नाम गृणाति स कण्वतमो जायते॥४॥

भावार्थ:-ये जना एकान्ते पवित्रे निरुपद्रवे देशे स्वासीना यमाविस्यानिन्तानी नवानामुपासनाङ्गानामभ्यासं कुर्वन्ति, ते निर्मलात्मानः सन्तः प्राज्ञा आप्ताः सिद्धा जावन्ते। ये चैत्रषां सङ्गसेवे विद्धति तेऽपि शुद्धान्तःकरणा भूत्वाऽत्मयोगजिज्ञासवो भवन्ति॥४॥

पदार्थ: - हे विद्वन्! जो (सूरय:) स्तुति करने वाले विद्वान् लोग (ते) आप से उपदेश पाके (अत्र) इस (उष:) प्रभात के (यामेषु) प्रहरों में (दानाय) विद्यादि दान के लिये (मर्मः) विद्याप्युक्त चित्त को (प्रयुञ्जते) प्रयुक्त करते हैं, वे जीवन्मुक्त होते हैं और जो (कण्वः) स्थानी (एषाम्) इन (नृणाम्) प्रधान विद्वानों के (नाम) नामों को (गृणाति) प्रशंसित करता है वह (कण्वतमः) अतिशय मेधावी होता है॥४॥

भावार्थ:-जो मनुष्य एकान्त पवित्र निरुपद्रव देश में स्थिर होकर यमादि संयमान्त उपासना के नव अङ्गों का अभ्यास करते हैं, वे निर्मल आत्मा होकर ज्ञानी श्रष्ठ सिद्ध होते हैं और जो इनका संग और सेवा करते हैं, वे भी शुद्ध अन्त:करण होके आत्मयोग के जिन्हों के अधिकारी होते हैं॥४॥

पुनः सा किं करोतीत्युपदिश्यते।

फिर वह क्या करती है, इस विषय का उपदेश अंगले मन्त्र में किया है।।

आ घा योषेव सूनर्युषा योति प्रभुञ्जूती।

जुरयन्ती वृजनं पद्धदीयत उत्पातन्त्रित पृक्षिणं ॥५॥३॥

आ। घा योषांऽइवा सूनरी। घषाः। याप्ति। प्रभुञ्जती। जरर्यन्ती। वृजेनम्। पुत्ऽवत्। ई्युते। उत्। पातुयुति। पुक्षिणः॥५॥

पदार्थ:-(आ) समन्तात (घ) एवं (योषेव) यथा स्त्री तथा (सूनरी) या सुष्ठु नयित (उषा:) प्रबोधदात्री (याति) प्राप्नोति (प्रभुञ्जती) प्रकृष्टं पालनं कुर्वती (जरयन्ती) या जीर्णामवस्थां भावयन्ती (वृजनम्) मार्गम् (पद्धत्) पिक्यों तुल्यम् (ईयते) प्राप्नोति (उत्) ऊर्ध्वे (पातयित) जागारयित (पिक्षणः) विहङ्गमान्॥५॥

अन्वयः योषेव प्रभुञ्जती सूनरी जरयन्ती उषा पद्वदीयते वृजनं याति पक्षिण उत्पातयति तस्यां सर्वैर्योगो घाभ्यसनीय ॥५॥

भावार्थः यथोषा निर्मला सर्वथा सुखप्रदा योगाभ्यासनिमित्ता भवति तथैव स्त्रीभिभिवत्तव्यम्॥५॥

पदार्थ:-जो (योषेव) सत्स्त्री के समान (प्रभुञ्जती) अच्छे प्रकार भोगती (सूनरी) अच्छे प्रकार ले जती (जरभनी) जीर्णावस्था को करती (उषा:) प्रातः समय (पद्वत्) पगों के तुल्य (वृजनम्) मार्ग को अष्टक-१। अध्याय-४। वर्ग-३-५

मण्डल-१। अनुवाक-९। सूक्त-४८

(ईयते) प्राप्त होती हुई (याति) जाती और (पक्षिण:) पक्षियों को (उत्पातयित) उड़ाती है, उस काल में सबको योगाभ्यास (घ) ही करना चाहिये॥५॥

भावार्थ:-जैसे प्रात:काल की वेला निर्मल तथा सब प्रकार से सुख की देने वाली योगाभ्यास का कारण है, उसी प्रकार स्त्रियों को होना चाहिये॥५॥

पुन: सा किं कुर्यादित्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसी हो, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में कियू है।।

वि या सृजित समेनं व्यर्थिनेः पुदं न वेत्योदेती। वयो निकष्टे पितुवांसे आसते व्युष्टौ वाजिनीवित॥६॥

वि। या। सूजिती समैनम्। वि। अर्थिनैः। पुदम्। न। वेति। ओर्देती। वस्री निर्कः। ते। पुप्तिऽवांसैः। आसते। विऽउष्टौ। वाजिनीऽवृति॥६॥

पदार्थ:-(वि) विविधार्थे (या) उषर्वतस्त्री (सृजिति) (समन्म) समीचीनं संग्रामम्। समनिति संग्रामनामसु पठितम्। (निघं०२.१७) (वि) विशेषार्थे (अर्थिनः) प्रशस्ता अर्था यस्य सन्ति (पदम्) प्रापणीयम् (न) इव (वेति) व्याप्नोति (ओदती) उन्दर्न कुर्बन्ती (वयः) पक्षिणः (निकः) या न शब्दयित सा (ते) तव (पितवांसः) पतनशीला (आसते) (व्यष्ट्री) व्रिशेषेणोष्यन्ते दह्यन्ते यया कान्त्या तस्याम् (वाजिनीवती) बहवो वाजिन्यः क्रिया विद्यन्ते प्रस्यां सा॥द्वर्णा

अन्वय:-हे योगिनि स्त्रि! भवति स्था योदती निकर्वाजिनीवत्युषा अर्थिनः पदं न समानं विवेति विसृजित यस्या व्युष्टौ पप्तिवांसो वय आसते सा वृत्ता ते योगाभ्यासार्थाऽस्तीति मन्यस्व॥६॥

भावार्थ:-अत्रोपमाऽलङ्कारम्। यथा स्त्रियो व्यवहारेण स्वकीयान् पदार्थान् प्राप्नुवन्ति तथोषाः स्वप्रकाशेन स्वव्यवहाराऽधिकारं प्राप्नोति यथा सा दिनमुत्पाद्य सर्वान् प्राणिन उत्थाप्य स्वस्वव्यवहारेषु वर्त्तियत्वा रात्रिं निवर्तयति दिस्स्य प्रादुर्भावाद्वाहं जनयति तथैव स्त्रीभिर्भवितव्यम्॥६॥

पदार्थ: – हे योग स्थास करने हारी स्त्री! आप जैसे (या) जो (ओदती) आर्द्रता को करती हुई (निक:) शब्द को न करती (व्यक्तिनीवती) बहुत क्रियाओं का निमित्त (उषा:) प्रात:समय (अर्थिन:) प्रशस्त अर्थ वाले का (पदं न) प्राप्त के योग्य के समान (समनम्) सुन्दर संग्राम को जैसे (विवेति) व्याप्त होती हैं, जिसकी (व्युष्टों) दहन करने वाली कान्ति में (पितवांस:) पतनशील (वय:) पक्षी (आसते) स्थिर होते हैं, वह वेला (ते) तेरे योगाभ्यास के लिये है, इसको तू जान।।६॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे स्त्रियां व्यवहार से अपने पदार्थों को प्राप्त होती हैं, वैसे उपा अपने प्रकाश से अधिकार को प्राप्त होती है। जैसे वह दिन को उत्पन्न और सब प्राणियों को

उठाकर अपने-अपने व्यवहार में प्रवर्त्तमान कर रात्रि को निवृत्त करती और दिन के होने से दाह को भी उत्पन्न करती है, वैसे ही सब स्त्री जनों को भी होना चाहिये॥६॥

पुनस्तद्वत् स्त्रियः स्युरित्युपदिश्यते॥

फिर उषा के समान स्त्रीजन हों, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।

एषायुक्त परावतः सूर्यस्योदयनादिध।

शृतं रथेभि: सुभगोषा इयं वि यात्यभि मानुषान्॥७॥

एषा। अयुक्ता प्राऽवर्तः। सूर्यस्य। उत्ऽअर्यनात्। अर्धाः शृतम्। रथेभिः। सुऽभगो उषाः। इयम्। वि। याति। अभि। मानुषान्॥७॥

पदार्थ:-(एषा) वक्ष्यमाणा (अयुक्त) युङ्कते। अत्र लडर्थे लुङ् बहुलं छन्दिस इति श्नमो लुक्। (परावत:) दूरदेशात् (सूर्य्यस्य) सवितृमण्डलस्य (उदयनात्) उदयत् (अधि) उपरान्तसमये (शतम्) असंख्यातान् (रथेभि:) रमणीयै: किरणै: (सुभगा) शोभना भूगी ऐश्वयंप्रि यस्याः सा (उषा:) सुशोभा कान्तिः (इयम्) प्रत्यक्षा (वि) विविधार्थे (याति) प्राप्नोति (अभि) आभिमुख्ये (मानुषान्) मनुष्यादीन्॥७॥

अन्वय:-हे स्त्रियो! यूयं यथैषोषाः परावतः सूर्यस्योदयनादध्यभ्ययुक्त यथेयं सुभगा रथेभिः शतं मानुषान् वियाति तथैव युक्ता भवत॥७॥

भावार्थ:-यथा पतिव्रताः स्त्रियो निषमेन स्वपूर्तीन् सेवन्ते यथोषसः पदार्थानां च दूरदेशात् संयोगो जायते, तथैव दूरस्थैः कन्यावरैर्विवाहः कर्त्तव्या यतो दूरदेशेऽपि प्रीतिर्वर्द्धेत। यथा समीपस्थानां विवाहः क्लेशकारी भवति, तथैव दूरस्थानां च सुखेदायी जायते॥७॥

पदार्थ:-हे स्त्री जनो! जैसे (एषा) यह (उषा:) प्रात:काल (सूर्यस्य) सूर्यमण्डल के (परावत:) दूरदेश से (उदयनात्) उदय से (अधि) उपरात्त (अध्यभ्ययुक्त) ऊपर सन्मुख से सब में युक्त होती है, जिस प्रकार (इयम्) यह (सुभगा) उन्नम एश्वर्ययुक्त (रथेभि:) रमणीय यानों से (शतम्) असंख्यात (मानुषान्) मनुष्यादिकों की (विवाति) विविध प्रकार प्राप्त होती है, वैसे तुम भी युक्त होओ॥७॥

भावार्थ:-जैसे पतिष्रता स्त्रियां नियम से अपने पतियों की सेवा करती हैं, जैसे उषा से सब पदार्थों का दूर देश से संयोग होता है, वैसे दूरस्थ कन्या-पुत्रों का युवावस्था में स्वयंवर विवाह करना चाहिये, जिस्से दूरदेश में रहनेवाले मनुष्यों से प्रीति बढ़े। जैसे निकटस्थों का विवाह दु:खदायक होता है, वैसे ही दूरस्थों का विवाह आनन्दप्रद होता है॥७॥

पुनस्सा कीदृशीत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसी हो, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

अष्टक-१। अध्याय-४। वर्ग-३-५

मण्डल-१। अनुवाक-९। सूक्त-४८

विश्वमस्या नानाम् चक्षसे जगुज्ज्योतिष्कृणोति सूनरी। अपु द्वेषो मुघोनी दुहिता दिव उषा उच्छदपु स्त्रिर्धः॥८॥

विश्वम्। अस्याः। नुनाम्। चक्षसे। जर्गत्। ज्योतिः। कृणोति। सूनरी। अप। द्वेषः। मेघोनी। डुह्ति॥ दिवः। उषाः। उच्छत्। अप। स्त्रिर्धः॥८॥

पदार्थ:-(विश्वम्) सर्वम् (अस्याः) उषसः (नानाम) नमित। अत्र तुजाद्गित्वोहे अभ्यासद्वीर्धित्वम्। (चक्षसे) द्रष्टुम् (जगत्) संसारम् (ज्योतिः) प्रकाशम् (कृणोति) करोति (सूनरी) सुष्ट नेत्री (अप) दूरीकरणे (द्रेषः) द्विषन्ति ये शत्रवस्ते। अत्र अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते इति विश्व। (पघोनी) प्रशस्तानि मघानि पूज्यानि धनानि यस्याः सन्ति सा (दुहिता) पुत्रीव (दिवः) प्रकाशभानस्य स्वितुः (उषाः) प्रभातः (उच्छत्) विवासयित (अप) अपराधे (स्विधः) हिंसकान्॥८॥

अन्वय:-हे स्त्रियो! यूयं यथा मघोनी सूनरी दिवो हुई तेवेषा विश्वं जगन्नानाम तस्याश्चक्षसे ज्योति: कृणोति स्निधोऽपद्वेषोऽपोच्छद् दूरतो विवासयति तथ्रापत्याहिषु कृतध्वम्॥८॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। यथा फुस्मी विर्ध्नात्रिवार्य्य क्रियमाणानि कार्य्याणि साध्नोति, तथैवोषा दस्युचोरशत्रवादीन्निवार्य्य कार्यसाध्विक भववीति॥८॥

पदार्थ: -हे स्त्री जनो! तुम जैसे (मघोनी) प्रशंसनीय धन का निमित्त (सूनरी) अच्छे प्रकार प्राप्त कराने वाली (दिव:) प्रकाशमान सूर्य की (दुहिता) पुत्री के सदृश (उषा:) प्रकाशने वाली प्रभात की वेला को (विश्वम्) सब जगत् (नानाम) आदर करता है, और उसको (चक्षसे) देखने के लिये (ज्योति:) प्रकाश को (कृणोति) करती है और (क्रिप्टें) हिंसेक (द्वेष:) बुरा द्वेष करने वाले शत्रुओं को (अपोच्छत्) दूर वास कराती है, वैसे पित आदि में वर्से॥ ।

भावार्थ:-इस मन्त्र में बाचकलुष्तीपपालङ्कार है। जैसे सती स्त्री विघ्नों को दूर कर कर्तव्य कर्मों को सिद्ध कराती है, वैसे ही ध्रा डाकू, चोर, शत्रु आदि को दूर कर कार्य्य की सिद्धि कराने वाली होती है॥८॥

पुज्रे सा कीदृशी सती किं कुर्य्यादित्युपदिश्यते॥

फ्रि वह कैसी होके क्या करे, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

उषु आ भाहि भानुना चन्द्रेण दुहितर्दिव:।

अवहन्ते भूर्यस्मभ्यं सौभगं व्युच्छन्ती दिविष्टिषु॥९॥

उप:। आ। भाहि। भानुनां। चन्द्रेणं। दुहितः। दिवः। आऽवहंन्ती। भूरिं। अस्मभ्यंम्। सौभंगम्। वेऽउच्छन्तीः दिविष्टिषु॥९॥

पदार्थ:-(उष:) उषा इव कमनीये (आ) समन्तात् (भाहि) (भानुना) सूर्येण (चन्द्रेण) इन्दुनो (दुहित:) पुत्रीव (दिव:) प्रकाशस्य (आवहन्ती) सर्वतः सुखं प्रापयन्ती (भूरि) बहु (अस्मभ्यम्) पुरुषार्थिभ्यः (सौभगम्) शोभनानां भगानामैश्वर्य्याणामिदम् (व्युच्छन्ती) निवासं कुर्वन्ती (दिविष्टिषु) प्रकाशितासु कान्तिषु॥९॥

अन्वय:-हे दिवो दुहितरिव वर्त्तमाने स्त्रि! यथोषा भानुना चन्द्रेणऽस्मभ्यं भूरि सौभेजमावहन्ती दिविष्टिषु व्युच्छन्ती सती जगद् भाति तथा त्वं विद्याशमाभ्यामाभाहि॥९॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। यथा सुकन्या मातृपतिकुले उच्चलगित, तथीषा उभे स्थूलसूक्ष्मे वस्तुनी प्रकाशयति॥९॥

पदार्थ:-हे (दिव:) सूर्य्य के प्रकाश की (दुहित:) पुत्री के तुल्ल किनी जैसे (उषा:) प्रकाशमान उषा (भानुना) सूर्य्य और (चन्द्रेण) चन्द्रमा से (अस्मभ्यम्) हम पुरुषार्थी लोगों के लिये (भूरि) बहुत (सौभगम्) ऐश्वर्य के समूहों को (आवहन्ती) सब ओर से प्राप्त कराती (दिविष्टिषु) प्रकाशित कान्तियों में (व्युच्छन्ती) निवास कराती हुई संसार को प्रकाशित करती है, वैसे ही तू विद्या और शमादि से (आभाहि) सुशोभित हो॥९॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे विदुषी धार्मिक कन्या दोनों माता और पित के कुलों को उज्ज्वल करती है, वैसे उषा दोनों स्थूल-सूक्ष्म अर्थात् बड़ी-छोटी वस्तुओं को प्रकाशित करती है॥९॥

पुनः सा कृद्भिन् कि कुर्व्यादित्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसी होकर किससे क्या करि, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

विश्वस्य हि प्राणेनुं जीवेनुं त्वे वि यदुच्छिसं सूनिर।

सा नो रथेन बृहुता विभाविर श्रुष्ट्रि चित्रामधे हर्वम्॥१०॥४॥

विश्वस्य। हि। प्राणनम्। जीर्वनम्। त्वे इति। वि। यत्। उच्छिसि। सूनिर्। सा। नः। रथेन। बृहुता। विभाऽवृरि। श्रुधि। चित्रुऽमूर्धि। हवेम्॥१०॥

पदार्थ:-(विश्वस्य) सर्वेष्य (हि) खलु (प्राणनम्) प्राणधारणम् (जीवनम्) जीविकाप्रापणम् (त्वे) त्विय। अत्र सुपां सुलुग् इति शेआदेश:। (वि) विविधार्थे (यत्) या (उच्छिस्) (सूनिर्) सुष्ठुतया व्यवहारनेत्री (सा) (पः) अस्मभ्यम् (रथेन) रमणीयेन स्वरूपेण विमानादिना वा (बृहता) महता (विभाविर्) या विविधतया भाति प्रकाशयित तत्सम्बुद्धौ (श्रुधि) शृणु (चित्रामघे) चित्राण्यद्भुतानि मघानि धनानि यस्यास्तत्सम्बुद्धौ। अत्र अन्येषामिष् इति पूर्वपदस्य दीर्घः। (हवम्) श्रोतव्यं श्रावियतव्यं वा शब्दसमूहम्भू १०॥

अष्टक-१। अध्याय-४। वर्ग-३-५

मण्डल-१। अनुवाक-९। सूक्त-४८

अन्वय:-हे सूनिर विभाविर चित्रामघे स्त्रि! यथोषा बृहता महता रथेन रमणीयेन स्वरूपेण वर्तते यस्यां विश्वस्य प्राणिजातस्य हि प्राणनं जीवनं सम्भवित तथा त्वे त्वय्यप्यस्तु यद्या त्वं नि स्टब्स्सि साऽस्माकं हवं श्रुधि॥१०॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथोषसा सर्वस्य प्राणिजातस्य सुर्ख्नानि जीपन्ते, तथा सत्या स्त्रिया प्रसीदन्तं पुरुषं सर्व आनन्दाः प्राप्नुवन्ति॥१०॥

पदार्थ: - हे (सूनिर) अच्छे प्रकार व्यवहारों को प्राप्त (विभावृिर) विविध प्रकार युक्त (चित्रामघे) चित्र विचित्र धन से सुशोभित स्त्री जैसे उषा (बृहता) बड़े (स्थेन) रमणीय स्वरूप वा विमानादि यान से विद्यमान जिसमें (विश्वस्य) सब प्राणियों के (प्राणनम्) प्राण और (जीवनम्) जीविका की प्राप्ति का सम्भव होता है, वैसे ही (त्वे) तेरे में होता है (यत्) जा त् (नः) हम लोगों को (व्युच्छिस) विविध प्रकार वास करती है, वह तू हमारे (हवम्) सुनने-सुनाने यूरिक वाक्यों को (श्रुधि) सुन॥१०॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे उपा से सृब प्राणिजात को सुख होता है, वैसे ही पतिव्रता स्त्री से प्रसन्न पुरुष को सब आनन्द होते हैं। हैं।

पुनः सा कीदृशीत्युपदिश्यते॥

फिर वे कैसी है, इस विषय का इपदेश अमूले मन्त्र में किया है।।

उषो वाजुं हि वंस्व यश्चित्रो मानुषे जनि।

तेना वह सुकृतो अध्वराँ उप ये त्वा गृणन्ति वह्नयः॥११॥

उर्ष:। वार्जम्। हि। वंस्वी यः। विक्रः। मानुषा जनै। तेनी आ। वृह्। सुऽकृतीः। अध्वरान्। उपी ये। त्वा। गृणुन्ति। वह्नयः॥११॥

पदार्थ:-(उष:) प्रभातविद्वहुगुण्युक्ते (वाजम्) ज्ञानमन्नं वा (हि) किल (वंस्व) सम्भज (य:) विद्वान् (चित्र:) अद्भुतशुभगुणकर्मस्वभावः (मानुषे) मनुष्ये (जने) विद्याधर्मादिभिर्गुणैः प्रसिद्धे (तेन) उक्तेन (आ) समन्तात् (वह) प्राप्नुहि (सुकृतः) शोभनानि कृतानि कर्माणि येन सः (अध्वरान्) अहिंसनीयान् गृहाश्रमव्यवहारान्। (उप) उपगमे (ये) वक्ष्यमाणाः (त्वा) त्वाम् (गृणन्ति) स्तुवन्ति (वह्नयः) वोढारो बिद्धांसो ज्ञितेन्द्रियाः सुशीला मनुष्याः॥११॥

अन्त्र (-हे सूर्वद्वर्त्तमाने स्त्रि! त्वं यश्चित्र: सुकृतस्तव पतिर्वर्त्तते तस्मिन् मानुषे जने वाजं हि वंस्व ये वृह्नयो येमेध्वरामुपगृणन्ति त्वा चोपदिशन्ति तेन तानावह समन्तात् प्राप्नुहि॥११॥

भावार्थ:-हे मनुष्या! यथा सूर्य उषसं प्राप्य दिनं कृत्वा सर्वान् प्राणिनः सुखयित, तथा स्वाः स्त्रिया भूषयेषुस्तान् दारा अप्यलंकुर्युरेवं परस्परं सुप्रीत्युपकाराभ्यां सदा सुखिनः स्युः॥११॥

पदार्थ:-हे (उष:) प्रभात वेला के तुल्य वर्तमान स्त्री! तू (य:) जो (चित्र:) अद्भुत गुण, कैमें, स्वभावयुक्त (सुकृत:) उत्तम कर्म करने वाला तेरा पित है (मानुषे) मनुष्य (जने) विद्याधर्मादि गुणों से प्रसिद्ध में (वाजम्) ज्ञान वा अत्र को (हि) निश्चय करके (वंस्व) सम्यक् प्रकार से सेवन कर (वंस्व) प्राप्ति करने वाले विद्वान् मनुष्य जिस कारण से (अध्वरान्) अध्वरयज्ञ वा अक्रिसनीय विद्वानों की (उपगृणन्ति) अच्छे प्रकार स्तुति करते और तुझ को उपदेश करते हैं (तेन) उस से उन को (आवाह) सुखों को प्राप्त कराती रह॥११॥

भावार्थ:-जो मनुष्य जैसे सूर्य उषा को प्राप्त होके दिन को प्रकट कर सबको सुख देता हैं, वैसे अपनी स्त्रियों को भूषित करते हैं, उनको स्त्रीजन भी भूषित करती हैं। इस प्रकार परस्पर प्रीति उपकार से सदा सुखी रहें॥११॥

पुनः सा किं कुर्य्यादित्युपदिश्यते॥

फिर वह क्या करे, इस विषय का उपदेश अगृहें मन्त्र में क्रिया है।।

विश्वनिद्वाँ आ वह सोम्पीतयेऽन्तरिक्षादुष्टस्वम्। सास्मासुं धा गोमदश्चविदुक्थ्यर्पुमुषो वाजं सुवीर्यस्था

विश्वान्। देवान्। आ। वृह् । सोमंऽपीतये। अनिरक्षात्। उष्टः। त्वम्। सा। अस्मासुं। धाः। गोमंऽत्। अश्वंऽवत्। उक्ट्यंम्। उषंः। वार्जम्। सुऽवीर्यम्॥ १२॥

पदार्थ:-(विश्वान्) अखिलान् (देवान्) दिव्यगुण्युक्तान् पदार्थान् (आ) समन्तात् (वह्) प्राप्नुहि (सोमपीतये) सोमानां पीतिः पानं यस्मिन् व्यवहारे तुस्में (अन्तिरक्षात्) उपिरष्टात् (उषः) उषर्वदनुत्तमगुणे (त्वम्) (सा) (अस्मासु) मनुष्येषु (थाः) थिहि। अत्र लडर्थे लुङडभावश्च। (गोमत्) प्रशस्ता गाव इन्द्रियाणि किरणाः पृथिव्यादयो हा बिह्मन्ते यस्मिँस्तत् (अश्वावत्) बहवः प्रशस्ता वेगप्रदा अश्वा अगन्यादयः सन्ति यस्मिँस्तत्। अत्र मन्त्रे सोमाश्वेन्द्रिय० (अष्टा०६.३.१३१) इति दीर्घः। (उक्थ्यम्) उच्यते प्रशस्यते यत्तस्मै हितम् (उषः) उषर्विद्धितसम्पादिके (वाजम्) विज्ञानमत्रं वा (सुवीर्थ्यम्) शोभनानि वीर्थ्याणि पराक्रमा यस्मातम्॥१२॥

अन्वय:-हे उषवेंद्वर्समाने स्त्रि! अहं सोमपीतयेऽन्तरिक्षाद्यान् विश्वान्देवान् यां त्वाञ्च प्राप्नोमि सा त्वमेतानावह।हे द्वर्षवित्सर्वेष्ट्रप्रापिके! त्वमस्मासुक्थ्यं गोमदश्ववत्सुवीर्यं वाजं धा धेहि॥१२॥

भावार्थः अत्रे वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथेयमुषाः स्वप्रादुर्भावेन शुद्धजलवायुप्रकाशादीन् प्रापय्य दोषात्राशिंदिका सर्वसृत्तमपदार्थसमृहं प्रकटयन्ति तथोत्तमा स्त्री गृहकृत्येषु भवेत्॥१२॥

पदार्थ:-हे (उष:) प्रभात के तुल्य स्त्रि! मैं (सोमपीतये) सोम आदि पदार्थों को पीने के लिये (असिरिशात) ऊपर से (विश्वान्) अखिल (देवान्) दिव्य गुणयुक्त पदार्थों और जिस तुझ को प्राप्त होता हूं, उन्हीं को तू भी (आवह) अच्छे प्रकार प्राप्त हो। हे (उष:) उषा के समान हित करने और (सा) तू

अष्टक-१। अध्याय-४। वर्ग-३-५

मण्डल-१। अनुवाक-९। सूक्त-४८

(सब) इष्ट पदार्थों को प्राप्त कराने वाली! (अस्मासु) हम लोगों में इन्द्रिय किरण और पृथिवी आदि से (अश्वावत्) और अत्युत्तम तुरंगों से युक्त (सुवीर्च्यम्) उत्तम वीर्च्य पराक्रम कारक (वाजम्) विज्ञान अन्न को (धाः) धारण कर॥१२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे यह उषा अपने प्रादुर्भाव में शुद्ध वायु जल आदि दिव्य गुणों को प्राप्त करा के दोषों का नाश कर, सब उत्तम पदार्थ समूह को प्रकट करती है, वैसे उत्तम स्त्री गृह कार्य्य में हो॥१२॥

पुनः सा कीदृशी भूत्वा किं दद्यादित्युपदिश्यते।

फिर वह कैसी होकर क्या देवे, इस विषय का उपदेश अ्गले, मञ्ज मिं किया है।।

यस्या रुशन्तो अर्चयः प्रति भुद्रा अदृक्षत।

सा नी र्यिं विश्ववारं सुपेश्रीसमुषा देदातु सुग्र्यम्। रिशा

यस्याः। रुशन्तः। अर्चर्यः प्रति। भुद्राः। अर्द्श्यता सा। नुः। रुशिम्। विश्वऽवारम्। सुऽपेशसम्। उषाः। दुदातुः। सुग्र्यम्॥ १३॥

पदार्थ:-(यस्या:) प्रकाशिकायाः (फशन्तः) चौरदस्यबन्धकारादीन् हिंसन्तः (अर्चयः) प्रकाशाः (प्रति) प्रत्यक्षार्थे (भद्राः) कल्याणकारकाः (अद्भत्) वृष्टयन्ते (सा) (नः) अस्मभ्यम् (रियम्) चक्रवर्त्तिराज्यश्रियम् (विश्ववारम्) येन विश्वं पूर्वे वृणोति तत् (सुपेशसम्) शोभनं पेशो रूपं यस्मात्तत् (उषाः) उषर्वत्सुरूपप्रदा (ददातु) (सुगप्रम् सुखेषु भवमानन्दम्। सुग्ध्यमिति सुखनामसु पठितम्। (निघं०३.६)॥१३॥

अन्वय:-हे स्त्रि! यस्या रुशन्तो भद्रा अर्चयः प्रत्यदृक्षत सोषा नो विश्ववारं सुपेशसं रियं सुग्म्यं सुखं च यथा ददाति तथा सती होजित्सर्वं भवेती ददातु॥१३॥

भावार्थ:-अत्र वाचक्रतुष्तोपमालङ्कारः। यथा दिननिमित्तयोषसा विना सुखेन कार्य्याणि न सिद्धचन्ति स्वरूपप्राप्तिश्रवत्रासिक्षया विनैतदिखलं न जायते॥१३॥

पदार्थ:-हे स्त्रि! (अस्योः) जिस के सकाश से ये (फशन्तः) चोर, डाकू, अन्धकार आदि का नाश और (भद्राः) कल्याण करने वाली (अर्चयः) दीप्ति (प्रत्यदृक्षत) प्रत्यक्ष होती है (सा) जैसे वह (उषाः) सुरूप को देने वाली प्रभात की वेला (नः) हम लोगों के लिये (विश्ववारम्) सब आच्छादन करने योग्यू (सुपेश्रसम्) शोभनरूपयुक्त (रियम्) चक्रवर्ति राज्यलक्ष्मी (सुग्ध्यम्) सुख को (ददाति) देती है, देसी होकर तू भी हम को सुखदायक हो॥१३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे दिन की निमित्त उषा के विना सुख वो राज्य के कार्य्य सिद्ध नहीं होते और सुरूप की प्राप्ति भी नहीं होती, वैसे ही समीचीन स्त्री के विना यह सब नहीं होता॥१३॥

पुनः सा कस्मै प्रयोजनाय प्रभवतीत्युपदिश्यते॥

फिर वह किस प्रयोजन के लिये समर्थ होती है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।

ये चिद्धि त्वामृष्य: पूर्व ऊतये जुहूरेऽवसे महि।

सा नः स्तोमा अभि गृणीहि राधसोष शुक्रेण शोचिषा १४॥

ये। चित्। हि। त्वाम्। ऋषेयः। पूर्वे। ऊतये। जुहूरे। अवसे। मृहि। सार्धन्। स्तोगान्। अभि। गृणीिहि। रार्धसा। उर्षः। शुक्रेणे। शोुचिषां॥ १४॥

पदार्थ:-(ये) वक्ष्यमाणाः (चित्) अपि (हि) खलु (त्वाम्) (ऋषयः) वैदार्थविदो विद्वांसः (पूर्वे) येऽधीतवन्तः (ऊतये) अतिशयेन गुणप्राप्तये (जुहुरे) शब्दयन्ति (अवस्) रक्षणादिप्रयोजनाय (मिह) महागुणविशिष्टान् (सा) (नः) अस्माकम् (स्तोमान्) स्तुविसमहान् (अभि) आभिमुख्ये (गृणीहि) स्तुहि (राधसा) परमेण धनेन (उषः) उषर्वत्स्तोतुं योग्ये (शुक्रेण) शुद्धिन कर्महेतुना (शोचिषा) प्रकाशेन॥१४॥

अन्वय:-हे उषर्वद्वर्त्तमाने महि विदुषि स्त्रि! य पूर्व ऋषयः ऊतयेऽवसे त्वां जुहुरे शब्दयेयुः, सा त्वं शुक्रेण शोचिषा राधसा तान् नोऽस्मभ्यं चित्स्लीमान् ह्यभिष्टुणीहि॥१४॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। मनुष्यैर्येऽधीत्तवैद्यस्ते पूर्वे येऽधीयते तेऽर्वाचीना ऋषयो वेद्याः यथा विद्वांसो यान् पदार्थान् विदित्वोपकुर्वन्ति (ध्रिकान्यैरिप) कर्त्तव्यम्। नैव केनापि मूर्खाणामनुकरणं कार्य्यम्। यथा विद्वांसः स्वविद्यया पदार्थगुणान् प्रकाश्य विद्योपकारौ जनयेयुः। यथेयमुषा सर्वान् पदार्थान् संद्योत्य सुखानि जनयति, तथाऽखिलविद्याः स्त्रियो विश्वमलंकुर्वन्तु॥१४॥

पदार्थ: - हे उषा के तुल्य वर्तमान (महि) महागुणविशिष्ट पण्डिता स्त्री! (ये) जो (पूर्वे) अध्ययन किये हुए वेदार्थ के जानने वाले विद्वान लिए (ऊतये) अत्यन्त गुण प्राप्ति वा (अवसे) रक्षण आदि प्रयोजन के लिये (त्वाम्) तुझे (जुहुरे) प्रशंसित करें (सा) सो तू (शुक्रेण) शुद्ध कामों के हेतु (शोचिषा) धर्मप्रकाश से युक्त (राधसा) बहुत धन से (न:) हमारे (चित्) ही (स्तोमान्) स्तुति समूहों का (हि) निश्चय से (अभि) सन्मुख (गुणीहि) स्वीकार कर॥१४॥

भावार्थ:-इस्से मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्यों को योग्य है कि जिन्होंने वेदों का अध्ययन किया, वे पूर्ण ऋषि और जो वेदों को पढ़ते हों, उनको नवीन ऋषि जानें, और जैसे विद्वान् लोग जिन पदार्थों को जान कर उपकार लेते हों, वैसे अन्य पुरुषों को भी करना चाहिये। किसी मनुष्य को मूर्खों की चाल-चल्म पूर ने चलना चाहिये और जैसे विद्वान् लोग अपनी विद्या के पदार्थों के गुणों को प्रकाश कर अष्टक-१। अध्याय-४। वर्ग-३-५

मण्डल-१। अनुवाक-९। सूक्त-४८

उपकार करते हैं, जैसे यह उषा अपने प्रकाश से सब पदार्थों को प्रकाशित करती है, वैसे ही विद्वान् स्त्रियां विश्व को सुभूषित कर देती हैं॥१५॥

पुन: सा किं करोतीत्युपदिश्यते॥

फिर वह क्या करती है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।

उषो यदद्य भानुना वि द्वारावृणवी दिवः।

प्र नो यच्छतादवृकं पृथु च्छुर्दिः प्र देवि गोर्मतीरिषः॥ १५॥

उर्ष:। यत्। अद्या भानुनां। वि। द्वारौं। ऋणवं:। द्विवः। प्र। नुः। युच्छूत्ति। अवुक्रम्। पृथु। छुर्दिः। प्र। देवि। गोऽर्मतीः। इर्षः॥ १५॥

पदार्थ:-(उष:) उषर्वतप्रकाशिके (यत्) या (अद्य) अस्मिन् दिने (भीनुना) सदर्थप्रकाशकत्वेन (वि) विशेषार्थे (द्वारौ) गृहादीन्द्रिययोः प्रवेशनिर्गमनिमित्तौ (ऋणवः) ऋणृहि (दिवः) द्योतमानान् गुणान् (प्र) प्रकृष्टार्थे (नः) अस्मभ्यम् (यच्छतात्) देहि (अवक्रम्) हिंसकप्राणिरहितम् (पृथु) सर्वर्त्तुस्थानाऽवकाशयोगेन विशालम् (छदिः) शुद्धाच्छादत्तिविन संदीप्यमानं गृहम्। छदिरिति गृहनामसु पठितम्। (निघं०३.४) (प्र) प्रत्यक्षार्थे (देवि) दिव्यगुणे (गोमताः) प्रशस्ताः स्वराज्ययुक्ता गावः किरणा विद्यन्ते यास् ताः (इषः) इच्छाः॥१५॥

अन्वय:-हे देवि स्त्रि! त्वं यथोषा अद्वीभानुना द्वारी प्रार्णवो यथा च नो यदवृकं पृथु छर्दिर्दिवो गोमतीरिषश्च तथा विप्रयच्छतात्॥१५॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपुमालङ्कर्पः।) यथोषाः स्वप्रकाशेन पूर्वस्मित्रस्मित्रागामिनि दिवसे सर्वान् मार्गान् द्वाराणि च प्रकाशयि तथा मनुष्यैः सर्वर्तुसुखप्रदानि गृहाणि रचयित्वा तत्र सर्वान् भोगान् पदार्थान् संस्थाप्यैतत्सर्वं कृत्वा क्राह्मितं सुखिरतव्यम्॥१५॥

पदार्थ:-हे (देवि) दिन्य गुणयुक्त प्रेती! तू जैसे (उषा:) प्रभात समय (अद्य) इस दिन में (भानुना) अपने प्रकाश से (इसि) गूलदि वा इन्द्रियों के प्रवेश और निकलने के निमित्त छिद्र (प्राणिव:) अच्छे प्रकार प्राप्त होती और जैसे (नः) हम लोगों के लिये (यत्) (अवृक्तम्) हिंसक प्राणियों से भिन्न (पृथु) सब ऋतुओं के स्थान और अवकाश के योग्य होने से विशाल (छर्दि:) शुद्ध आच्छादन से प्रकाशमान घर है और जैसे (दिव:) प्रकाशादि गुण (गोमती:) बहुत किरणों से युक्त (इष:) इच्छाओं को देती है, वैसे (विप्रयच्छतात्) सम्पूर्ण दिया कर॥१५॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे उषा अपने प्रकाश से अतीत वर्त्तमान और आने काले दिनों में सब मार्ग और द्वारों को प्रकाश करती है, वैसे ही मनुष्यों को चाहिये कि सब ऋतुओं

में सुख देने वाले घरों को रच उन में सब भोग्य पदार्थों को स्थापन और वह सब स्त्री के आधीन कर प्रतिदिन सुखी रहें॥१५॥

पुनस्सा केन किं दद्यादित्युपदिश्यते॥

फिर वह किससे क्या दे, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

सं नो राया बृहता विश्वपेशसा मिमिक्ष्वा सिमळांभिरा। सं द्युम्नेन विश्वतुरोषो मिहु सं वाजैर्वाजिनीवित॥१६॥५॥

सम्। नुः। राया। बृहुता। विश्वपेशसा। मिमिक्ष्व। सम्। इळाभिः। आ। सम्। द्युमेने। विश्वयुऽतुर्रा। उषः। महि। सम्। वाजैः। वाजिनीऽवृति॥ १६॥

पदार्थ:-(सम्) सम्यगर्थे (नः) अस्मभ्यम् (राया) प्रशस्तध्रनेत्र (कृहता) महता (विश्वपेशसा) विश्वानि सर्वाणि पेशांसि रूपाणि यस्मात्तेन (मिमिक्ष्व) मेढुमिच्छ अत्र अन्येषामिष् इति दीर्घः। (सम्) एकीभावे (इडाभिः) भूमिवाणीनीतिभिः। इडेति पृथिवीनामेसु पिटतम्। (निघं०१.१) वाइनामसु पिटतम्। (निघं०१.११) पदनामसु पिटतम्। (निघं०५.११) पदनामसु पिटतम्। (निघं०५.५) अनेने प्राप्तुं योग्या नीतिर्गृहाते। (आ) समन्तात् (सम्) श्रैष्ठघेऽर्थे (द्युम्नेन) विद्याधर्मादिगुणप्रकाशकता (विश्वतुरा) यद्विश्वं सर्वं तुरित त्वरयित तेन (उषः) उषर्वत्सर्वरूपप्रकाशिके (मिह) पूजनीये (सम्) सम्यक् (वाजैः) युद्धैरत्रैविंज्ञानैर्वा (वाजिनीवित) प्रशस्ता वाजिनी क्रिया विद्यते यस्यास्तत्सम्बद्धा। १६॥

अन्वय:-हे उषर्वद्वर्त्तमाने वाजिनीवृति महि विदुषि स्त्रि! यथोषा विश्वपेशसा बृहता संविश्वतुरा संद्युम्नेन राया समिडाभिः संवाजैर्नः, सुख्याति, तथैतस्त्वमस्मान् सुखय॥१६॥

भावार्थ:-अत्र वाचक्लुप्तोपमालङ्करः। विदुषां शिक्षयोषर्गुणज्ञानेन सुहितैर्मनुष्यैर्भूत्वाऽनेन पुरुषार्थसिद्धेः सर्वाणि सुखनिपित्तानि वस्तूनि जायन्ते तथा मातृशिक्षयैवाऽपत्यान्युत्तमानि भवन्ति नान्यथा॥१६॥

अत्रोषर्दृष्ट्यन्तेन कन्यास्त्रीणां लक्षणप्रतिपादनादेतत्सूक्तार्थस्य पूर्वसूक्तोक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति बोध्यम्।

इत्यष्टाचत्वारिंशं सूक्तं पञ्चमो वर्गश्च समाप्तः॥४८॥

पदार्थ:-हे (उष:) प्रात: समय के सम तुल्य वर्त्तमान (वाजिनीवित) प्रशंसनीय क्रियायुक्त (महि) पूजनीय विद्वान् स्त्री! तू जैसे (उषा:) सब रूप को प्रकाश करने वाली प्रात:समय की वेला

अष्टक-१। अध्याय-४। वर्ग-३-५

मण्डल-१। अनुवाक-९। सूक्त-४८

(विश्वपेशसा) सब सुन्दर रूपयुक्त (वृहता) बड़े (विश्वतुरा) सबको प्रवृत्त करने (संद्युम्नेन) विद्या धर्मादि गुण प्रकाशयुक्त (राया) प्रशंसनीय धन (सिमडाभिः) भूमि, वाणी, नीति और (संविष्कः) प्रकार युद्ध, अन्न, विज्ञान से (नः) हम लोगों को सुख देती है, वैसे ही इन से तू हमें सुख देश १६॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे विद्वानों की विद्या सिक्षा से उन्ने के गुण का ज्ञान हो के उस से पुरुषार्थ सिद्धि, फिर उससे सब सुखों की निमित्त विद्वा प्राप्त होती है, वैसे ही माता की शिक्षा से पुत्र उत्तम होते हैं और प्रकार से नहीं॥१६॥

इस सूक्त में उषा के दृष्टान्त करके कन्या और स्त्रियों के लक्ष्मणी का प्रतिपादन करने से इस सूक्तार्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये॥

यह अड़तालीसवां सूक्त ४८ और पांचवां वर्ग ५ समाप्रत हुआ॥

अथास्य चतुर्ऋचस्यैकोनपञ्चाशस्य सूक्तस्य प्रस्कण्व ऋषिः। उषा देवता। निचृदनुष्टुप् छन्दः।

गास्थारः स्वरः।

तत्रादिमे पन्त्रे उषर्दृष्टान्तेन स्त्रीकृत्यमपदिश्यते॥

अब ४९ सूक्त का आरम्भ है, इस के प्रथम मन्त्र में उषा के दृष्टान्त से स्त्रियों के कर्म का उपदेश

अगले मन्त्र में किया है॥

उषों भुद्रेभिरा गीह दिवश्चिद्रीचनादर्धि। वहन्त्वरुणप्सेव उपे त्वा सोमिनों गृहम्॥१॥

उर्षः। भुद्रेभिः। आ। गृह्। द्विवः। चित्। ग्रेचनात्। अर्धि। वहन्तु। अर्हणाश्रम्बन्धाः उर्प। त्वा। सोमिर्नः। गृहम्॥ १॥

पदार्थ:-(उष:) उषर्वत्कल्याणनिमित्ते (भद्रेभि:) कल्यामकारकैर्युणे (आ) समन्तात् (गिह्र) प्राप्नुहि (दिव:) प्रकाशान् (चित्) अपि (रोचनात्) देदीप्यभागत् (अध्नि) उपि (वहन्तु) प्राप्नुवन्तु (अरुणप्सव:) अरुणा रक्तगुणविशिष्टाश्च प्सवो भक्षणानि वेषान्ते वृद्ध्य जाताः (उप) समीपे (त्वा) त्वाम् (सोमिन:) प्रशस्ताः सोमाः पदार्थास्सन्ति यस्य तस्य (गृह्म्) निवासस्थानम्॥१॥

अन्वयः-हे उषः शुभगुणैः प्रकाशमाने! यथीषा रोचनादधि भद्रेभिरागच्छति, तथा त्वमागिह यथेयं दिव उषा वहति तथा त्वारुणप्सव सोमिनो मृहसुष्वहन्तु सामीप्यं प्रापयन्तु॥१॥

भावार्थ:-यस्योषसो भूमिसंयुक्तसूर्यप्रकाशादुत्पतिरस्ति सा यथा दिनरूपेण परिणता पदार्थान् प्रकाशयन्ती सर्वानाह्णादयति, तथा ब्रह्मचर्यविद्यासंयोग्रा/स्त्री वरा स्यात्॥१॥

पदार्थ:-हे शुभगुणों से प्रक्राशमान श्रीस (उषा:) कल्याणनिमित्त (रोचनात्) अच्छे प्रकार प्रकाशमान से (अधि) ऊपर (भद्रेभि:) कल्याणकारक गुणों से अच्छे प्रकार आती है, वैसे ही तू (आ गिह) प्राप्त हो और जैसे यह (दिव:) प्रकाश के समीप प्राप्त होती है, वैसे ही (त्वा) तुझ को (अरुणप्सव:) रक्त गुणविशिष्ट छेदन करके भोक्ता (सोमिन:) उत्तम पदार्थ वाले विद्वान् के (गृहम्) निवासस्थान को (उपवहत्तु) समीप प्राप्त करें॥१॥

भावार्थ:-जिस उषा भूमि संयुक्त सूर्य के प्रकाश से उत्पत्ति है वह दिन रूप परिणाम को प्राप्त होकर पदार्श्वों को प्रकाशित करती हुई सबको आह्लादित करती है वैसे ही ब्रह्मचर्य विद्या योग से युक्त स्त्री श्रेष्ट्र हिमार्थ

पुन: सा कीदृशीत्युपदिश्यते॥

. फिर वह कैसी है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

सुपैश्रमं सुखं रथुं यमुध्यस्था उषुस्त्वम्।

अष्टक-१। अध्याय-४। वर्ग-६

मण्डल-१। अनुवाक-९। सूक्त-४९

तेनो सुश्रवसं जनं प्रावाद्य दुहितर्दिव:॥२॥

सुऽपेश्रीसम्। सुऽखम्। रथम्। यम्। अधिऽअस्थाः। उषः। त्वम्। तेनी सुऽश्रवसम्। जनसि प्रो अव्यो अद्या दुहितः। दिवः॥२॥

पदार्थ:-(सुपेशसम्) सुन्दरस्वरूपम् (सुखम्) आनन्दकारकम् (स्थम्) रमण्याधनं कोन्म् (यम्) वक्ष्यमाणम् (अध्यस्थाः) अध्युपरि तिष्ठन्तीत्यध्यस्थाः (उषः) उषर्वद्वर्त्तमाने (त्वम्) (तेन रथेन (सुश्रवसम्) शोभनानि श्रवांसि श्रवणान्यस्मिन् प्रसादे यस्य तम् (जनम्) विद्वांसम् (प्र) प्रकृष्टार्थं (अव) रक्ष (अद्य) अस्मिन् दिने (दुहितः) पुत्रीव (दिवः) प्रकाशस्य॥२॥

अन्वय:-हे दिवो दुहितरुषर्वद्वर्त्तमाने स्त्रि! त्वं यं सुपेशस्त्रं सुर्ख रश्रमध्यस्था, येन जना आनन्दमेधन्ते तेन रथेनाद्य सुश्रवसं जनं प्राव॥२॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। मनुष्यैर्यथा प्रिकाशेच सुरूपप्रसिद्धिर्जायते तथा सौभाग्यकारिकया विदुष्या स्त्रिया गृहकृत्यसिद्धिरपत्योत्पत्तिश्च जायत इद्धि विज्ञायोपकर्त्तव्यम्॥२॥

पदार्थ:-हे (दिव:) प्रकाशमान सूर्य्य की (दुहित:) पित्रों ही के तुल्य (उष:) वर्तमान स्त्रि! तू (यम्) जिस (सुपेशसम्) सुन्दर रूप (सुखम्) आनन्दकारक (रथम्) क्रीड़ा के साधन यान के (अध्यस्था:) ऊपर बैठने वाले प्राणी आनन्द को बहाते हैं (तैंन) उस रथ से (सुश्रवम्) उत्तम श्रवण युक्त (जनम्) विद्वान् मनुष्य की (प्राव) अच्छे प्रकार रक्षा आदि कर॥२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोष्यमालङ्कोर हैं। मनुष्य लोग जैसे सूर्य्य के प्रकाश से सुरूप की प्रसिद्धि होती है, वैसे ही विदुषी स्त्री से घर की काम और पुत्रों की उत्पत्ति होती है, ऐसा जान कर उनसे उपकार लेवें॥२॥

पुनः सा कीदृशीत्युपदिश्यते॥

फिर वह किसी है, इस किया का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

वयंश्चित्ते पतुर्विणो द्विपन्नातुष्पदर्जुनि।

उषुः प्रारंच्चतूँरने दिवो अन्तेभ्यस्परि॥३॥

वर्यः। र्थितः ते। एतृत्रिणः। द्विऽपत्। चतुःऽपत्। अर्जुनि। उर्षः। प्रा आर्न्। ऋतून्। अर्नु। दिवः। अन्तेभ्यः। पर्यि। इत

पदार्थ: (बय:) पक्षिण: (चित्) इव (ते) तव (पतित्रण:) पतनशीला:। अत्र पतेरित्रन्। (उणा॰ ४.५०) अनेनायं सिद्धः। (द्विपत्) द्वौ पादौ यस्य मनुष्यादेः सः (चतुष्पत्) चत्वारः पादा यस्य पश्चादेः सः। अत्रोभयत्र वाच्छन्दिस इति पदादेशः। (अर्जुनि) अर्जयन्ति प्रतियतन्ते ययोषसा सा। अत्र अर्ज

प्रतियत्ने धातोः रक् प्रत्ययो णिलुक् च। अर्जेणिलुक् च। (उणा०३.५८) अनेनायं सिद्धः। अर्जुनीत्युषर्नामसु पठितम्। (निघं०१.८) (उषः) उषर्वत्पुरुषार्थनिमित्ते (प्र) (आरन्) प्रापयित (ऋतून्) वसन्तादीन् (अनु) पश्चात् (दिवः) प्रकाशस्य (अन्तेभ्यः) समीपेभ्योऽहोरात्रेभ्य (परि) सर्वतः (५३)।

अन्वयः-हे स्त्रि! यथार्जुनि दिवोऽन्तेभ्य ऋतून् सम्पादयन्ती द्विपच्चतुष्पच्च बोधसन्ती पत्युषाः सर्वान् प्राप्नोति, यथाऽस्याः पतित्रणो वयः प्रारॅशिचत्ते गुणा भवन्तु॥३॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। यथोषा मुहूर्त्तप्रहरदिनमासर्त्वयनसंवत्सरान् विभन्ती सर्वेषा प्राणिनां व्यवहारचेतने च विभन्नति तथा स्त्री सर्वाणि गृहकृत्यानि विभन्नेत्॥३॥

पदार्थ: - हे स्त्रि! जैसे (अर्जुनि) अच्छे प्रकार प्रयत्न का निमित्त (उप:) उषा (दिव:) सूर्य्यप्रकाश के (अन्तेभ्य:) समीप से (ऋतून्) ऋतुओं को सिद्ध और (द्विपत्) समुख्यादि पथा (चतुष्पत्) पशु आदि का बोध कराती हुई सबको प्राप्त होके जैसे इससे (पतित्रणः) नीचे ऊंचे उड़ने वाले (वयः) पक्षी (प्रारन्) इधर-उधर जाते (चित्) वैसे ही (ते) तेरे गुण हों॥३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे उषा मृह्ती, प्रेष्टर, दिन, मास, ऋतु, अयन अर्थात् दिक्षणायन और वर्षों का विभाग करती हुई सब प्राणियों के क्विक्षण और चेतनता को करती है, वैसे ही स्त्री सब गृहकृत्यों को पृथक्-पृथक् करें॥

पुनः सा कीदृशी कि कुर्यादिल्यूपदिश्यते॥

फिर वह कैसी और क्या करें, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

व्युच्छन्ती हि रिश्मिधिर्विश्चमाभागि रोचनम्।

तां त्वामुंषर्वसूयवों गोभि: क्णवा अहुमत्॥४॥६॥

विऽउच्छन्तीं। हि। रिश्मिऽभिरी विश्वर्षा आऽभासिं। रोचनम्। ताम्। त्वाम्। उष्टः। वसुऽयर्वः। गीःऽभिः। कण्वाः। अहुष्ता।४॥

पदार्थ:-(व्युच्छन्ती) विविधत्या वास्यन्ति (हि) खलु (रिश्मिभः) किरणैः (विश्वम्) सर्वं जगत् (आभासि) समन्तात् प्रकाशासि अत्र व्यत्ययः (रोचनम्) देदीप्यमानं रुचिकरम् (ताम्) (त्वाम्) एताम् (उषः) उषाः (वसूयवः) य वसून् पृथिव्यादीन् युवन्ति मिश्रयन्त्यमिश्रयन्ति ते विद्वांसः (गीर्भिः) वेदिशिक्षासिहताभिः (कण्वाः) मेधाविनः (अहूषत) स्पर्द्धन्ताम्॥४॥

अन्वयः - हे बसूयवः कण्वा! यूयं यथोषरुषा व्युच्छन्ती हि खलु रश्मिभी रोचनं विश्वमाभास्याभाति तथाभूतां त्वां स्त्रियं गीर्भिरहूषत॥४॥

भावार्थ:-विद्वद्भिरुषर्गुणवद्वर्त्तमाना स्त्री श्रेष्ठाऽस्तीति बोद्धव्यं सर्वेभ्य उपदेष्टव्यं च॥४॥ अत्रीषर्गुणवत्स्त्रीगुणवर्णनादेतत्सूक्तार्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेदितव्यम्॥४॥ अष्टक-१। अध्याय-४। वर्ग-६

मण्डल-१। अनुवाक-९। सूक्त-४९

इत्येकोनपञ्चाशं सूक्तं षष्ठो वर्गश्च समाप्तः॥४९॥

पदार्थ:-हे (वसूयव:) जो पृथिवी आदि वसुओं को संयुक्त और वियुक्त करने वाले (क्राया:) बुद्धिमान् लोग! जैसे (उष:) उषा (व्युच्छन्ती) विविध प्रकार से वसाने वाली (हि) तिश्चय करके (रिश्मिभ:) किरणों से (रोचनम्) रुचिकारक (विश्वम्) सब संसार को (आभासि) अन्छे प्रकार प्रकाशित करती है, वैसी (ताम्) उस (त्वाम्) तुझ स्त्री को (गीर्भि:) वेदिशिक्षायुक्त अपनी बाणियों से (अहूपत) प्रंशसित करें॥४॥

भावार्थ:-विद्वानों को चाहिये कि उषा के गुणों के तुल्य स्त्री उत्तम होती है, इस बात को जानें और सबको उपदेश करें॥४॥

इस में उषा के गुणवर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्वस्कृत के अर्थ के साथ सङ्गिति जाननी चाहिये॥

यह उनचासवां सूक्त ४९ और छठा वर्ग समाप्त हुआ॥

अथास्य त्रयोदशर्चस्य पञ्चाशस्य सूक्तस्य प्रस्कण्व ऋषिः। सूर्यो देवता। १,६ निचृद्गायत्री। २,४,८,९ पिपीलिका मध्या निचृद्गायत्री। ३ गायत्री ५ यवमध्या विराड्गायत्री। ७ विराड्गायत्री च छन्दः। षड्जः स्वरः। १०,११ निचृद्नुष्टुप्। १२,१३ अनुष्टुप् च छन्दः।

गान्धार: स्वर:॥

तत्रादिमे मन्त्रे कीदृग्लक्षणः सूर्योऽस्तीत्युपदिश्यते॥

अब पचासवें सूक्त का आरम्भ है, उस के पहिले मन्त्र में कैसे लक्षण वाला सूर्य है, इस विषये का उपदेश किया है।।

उदु त्यं जातवैदसं देवं वहन्ति केतवै:। दुशे विश्वीय सूर्यम्॥१॥

उत्। ऊम् इति। त्यम्। जातऽवैदसम्। देवम्। वहुन्ति। केतवः। दृशे। विश्वायी सूर्यम्॥ १॥

पदार्थ:-(उत्) ऊर्ध्वार्थे (उ) वितर्के (त्यम्) अमुम् (जातवेदसम्) यो जातान् पदार्थान् विन्दति तम् (देवम्) देदीप्यमानम् (वहन्ति) प्राप्नुवन्ति (केतवः) किरणाः (दृशे) द्रष्टुं दर्शयितुं वा। इदं केन् प्रत्ययान्तं निपातनम्। (विश्वाय) सर्वेषां दर्शनव्यवहाराय (मूर्य्यम्) सर्वेषां वा सर्वेषां भूतानां संदर्शनाय सूर्य्यम्। (निरु०१२.१५)॥१॥

अन्वय:-हे मनुष्या! यूयं यथा केतवे रिश्मयो क्रिश्वाय दृश उदुत्यं जातवेदसं देवं सूर्य्यमुद्धहिन्त तथा गृहाश्रमसुखदर्शनाय सुशोभनाः स्त्रिय उद्गुहृत्।। १५)

भावार्थ:-धार्मिका जना यथाश्रा रथे किरोगाश्च सूर्यं वहन्त्येवं विद्याधर्मप्रकाशयुक्ताः स्वसदृशाः स्त्रियः सर्वान् पुरुषानुद्वाहयेयुः॥१॥

पदार्थ: - हे मनुष्यो! तुम जैसे (केवः) किरणें (विश्वाय) सबके (दृशे) दीखने (3) और दिखलाने के योग्य व्यवहार के लिये (त्यम्) उस (जातवेदसम्) उत्पन्न किये हुए पदार्थों को प्राप्त करने वाले (देवम्) प्रकाशमान (सूर्यम्) प्रवमण्डल के (उद्वहन्ति) ऊपर बहती हैं, वैसे ही गृहाश्रम का सुख देने के लिये सुशोभित स्त्रियों को विवाह विधि से प्राप्त होओ॥१॥

भावार्थः भार्ता-पिता आदि विद्वान् लोग जैसे घोड़े रथ को और किरणें सूर्य्य को प्राप्त करती हैं, ऐसे ही बिद्या और धर्म के प्रकाशयुक्त अपने तुल्य स्त्रियों से सब पुरुर्षों का विवाह करावें॥१॥

पुनः के कस्मै किं कुर्युरित्युपदिश्यते॥

फिर कौन किसके लिये क्या करें, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

अष्टक-१। अध्याय-४। वर्ग-७-८

मण्डल-१। अनुवाक-९। सूक्त-५०

अप त्ये तायवो यथा नक्षेत्रा यन्त्यक्तुभिः। सुरोय विश्वचेक्षसे॥२॥

अप। त्ये। तायर्वः। यथा। नक्षेत्रा। यन्ति। अक्तुऽभिः। सूर्राय। विश्वऽर्चक्षसे॥२॥

पदार्थ:-(अप) पृथग्भावे (त्ये) अमी (तायवः) सूर्य्यपालका वायवः (यथा) येन प्रकारेण (नक्षत्रा) नक्षत्राणि क्षयरिहता लोकाः (यन्ति) (अक्तुभिः) रात्रिभिः (सूराय) सूर्येलोकाय (विश्वचक्षसे) विश्वस्य चक्षुर्दर्शनं यस्मात्तस्मै॥२॥

अन्वय:-हे स्त्री पुरुषा! यूयं यथाऽक्तुभि: सह वर्त्तमानानि नक्ष्मा नक्षत्राण लोकास्त्ये तायवो वायवश्च विश्वचक्षसे सूरायापयन्ति तथा विवाहिताभि: स्त्रीभि: सह संयोगवियोगान् कुरुत॥२॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। यथा रात्रौ नक्षत्राणि चन्द्रेण प्राणश्च श्रीरीरेण सह वर्त्तन्ते, तथा विवाहित-स्त्रीपुरुषौ वर्त्तेयाताम्॥२॥

पदार्थ:-हे स्त्रीपुरुषो! तुम (यथा) जैसे (अक्तुभिः) रात्रियों के साथ (नक्षत्रा) नक्षत्र आदि क्षयरहित लोक और (तायवः) वायु (विश्वचक्षसे) विश्व के दिखाने वाले (सूराय) सूर्य्यलोक के अर्थ (अपयन्ति) संयुक्त वियुक्त होते हैं, वैसे ही विवाहित स्त्रियों के साथ संयुक्त वियुक्त हुआ करो॥२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे रिचि में मुक्षत्र लोक चन्द्रमा के साथ और प्राण शरीर के साथ वर्त्तते हैं, वैसे विवाह करके स्त्री-पुरुष्ट्र आपस में वर्त्ता करें॥२॥

पुनस्ते कीचुशा भन्ने ग्रुरित्युपदिश्यते॥

फिर वे कैसे हों, इस विषय को उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

अदृश्रमस्य केतवो वि रूक्ष्मयो जनाँ अनु।

भ्राजन्तो अग्नयौ यथ्राता ३॥

अर्दृश्रम्। अस्य। कृतवै:। बि। स्रुपये:। जनान्। अनु। भ्राजन्त:। अग्नये:। यथा॥३॥

पदार्थ:-(अदृश्रम्) प्रिक्षेयम्। अत्र लिङ्थें लङ् शपो लुक् रुडागमश्च। (अस्य) सूर्य्यस्य (केतवः) ज्ञापकाः (वि) विश्वमार्थे (रश्मयः) किरणाः (जनान्) मनुष्यादीन् प्राणिनः (अनु) पश्चात् (भ्राजन्तः) प्रकाशमाताः (अम्ययः) प्रज्वलिता वह्नयः (यथा) येन प्रकारेण॥३॥

अन्वयः सथाऽस्य सूर्य्यस्य भ्राजन्तोऽग्नयः केतवो रश्मयो जनाननुभ्राजन्तः सन्ति, तथाहं स्वस्त्रियं स्वपुरुषञ्चेव गम्यत्वेन व्यदृश्रं नान्यथेति यावत्॥३॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। यथा प्रदीप्ता अग्नय: सूर्य्यादयो बिह: सर्वेषु प्रकाशन्ते, तथैवान्तरात्मनीश्वरस्य प्रकाशो वर्त्तते। एतद्विज्ञानाय सर्वेषां मनुष्याणां प्रयत्न: कर्त्तुं योग्योऽस्ति तदाज्ञया परस्त्रीपुरुषै: सह व्यभिचारं सर्वथा विहाय विवाहिता: स्व-स्वस्त्रीपुरुषा ऋतुगामिन एव स्यू: (३)

पदार्थ:-(यथा) जैसे (अस्य) इस सविता के (भ्राजन्त:) प्रकाशमान (अग्नर्थः) प्रज्वातित (केतव:) जनाने वाली (रश्मय:) किरणें (जनान्) मनुष्यादि प्राणियों को (अनु) अनुकूलता से प्रकाश करती हैं, वैसे मैं अपनी विवाहित स्त्री और अपने पित ही को समागम के वोग्य देखूं अन्य को नहीं॥३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे प्रज्ज्वित हुए अग्नि और सूर्य्यादिक बाहर सब में प्रकाशमान हैं, वैसे ही अन्तरात्मा में ईश्वर का प्रकाश वर्त्तमान है। इसके अग्नि के लिये सब मनुष्यों को प्रयत्न करना योग्य है। उस परमात्मा की आज्ञा से परस्त्री के साथ पुरुष और परपुरुष के संग स्त्री व्यभिचार को सब प्रकार छोड़ के पाणिगृहीत अपनी-अपनी क्लि और अपने-अपने पुरुष के साथ ऋतुगामी ही होवें॥३॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्वको।

फिर वह कैसा है, इस विषय का उपदेश अंगले मन्त्र में किया है॥

तुरिणविश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदंसि सूर्य्या विश्वमाभासि रोचनम्॥४॥

तुरणि:। विश्वऽदर्शतः। ज्योति:ऽकृत् असि। सूर्या विश्वम्। आ। भासि। रोचनम्॥४॥

पदार्थ:-(तरिण:) क्षिप्रतया संप्लिविषा (विश्वदर्शत:) यो विश्वस्य दर्शियता (ज्योतिष्कृत्) यो ज्योति: प्रकाशात्मकं सूर्यादिलोकं करोति सः (असि) (सूर्य) सर्वप्रकाशक सर्वात्मन् (विश्वम्) सर्वं जगत् (आ) समन्तात् (भासि) प्रकाशसूमि (रोचनम्) अभिप्रेतं रुचिकरम्॥४॥

अन्वय:-हे सूर्य्येश्वर रे यतो विश्वदर्श्व स्तरणिज्योंतिष्कृत् त्वं रोचनं विश्वमाभासि तस्मात् स्वयं प्रकाशोऽसि॥४॥

भावार्थः-अत्र वाचेकलुर्जापमालङ्कारः। यथा सूर्य्यविद्युतौ बाह्याभ्यन्तरस्थान् मूर्तान् पदार्थान् प्रकाशेतान्तस्तथेश्वर्रः सर्वमिखलं जगत् प्रकाशयति॥४॥

पदार्थ: हे (सूर्य) चराचर के आत्मा ईश्वर! जिससे (विश्वदर्शतः) विश्व के दिखाने और (तरिणः) शीम्र सेव का आक्रमण करने (ज्योतिष्कृत्) स्वप्रकाश स्वरूप आप! (रोचनम्) रुचिकारक (विश्वम्) सब जगत् को प्रकाशित करते हैं, इसीसे आप स्वप्रकाशस्वरूप हैं॥४॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य्य और बिजुली बाहर-भीतर रहने वाले सब स्थूल पदार्थों को प्रकाशित करते हैं, वैसे ही ईश्वर भी सब वस्तुमात्र को प्रकाशित करता है॥४॥ अष्टक-१। अध्याय-४। वर्ग-७-८

मण्डल-१। अनुवाक-९। सूक्त-५०

पुनः स जगदीश्वरः कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह जगदीश्वर कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्डुदेषि मानुषान्।

प्रत्यङ् विश्वं स्वर्दृशे॥५॥७॥

प्रत्यङ्। देवानाम्। विश्राः। प्रत्यङ्। उत्। एषि। मानुषान्। प्रत्यङ्। विश्वम्। स्वाः। दृश्रीप्।।

पदार्थ:-(प्रत्यङ्) यः प्रत्यञ्चित सः (देवानाम्) दिव्यानां पदार्थानां विदुषां वो (विशः) प्रजाः (प्रत्यङ्) प्रत्यञ्चतीति (उत्) ऊर्ध्वे (एषि) (मानुषान्) मनुष्यान् (प्रत्यङ्) युप्प्रत्यञ्चिति तत् (विश्वम्) सर्वम् (स्वः) सुखम् (दृशे) दृष्टुम्॥५॥

अन्वय:-हे जगदीश्वर! यस्त्वं देवानां विशो मानुषान् प्रत्येङ्ड्युदेष्युत्कृष्टतया प्राप्तोऽसि सर्वेषामात्मसु प्रत्यङ्डसि तस्माद्विश्वं स्वर्दृशे प्रत्यङ्डुपासनीयोऽस्थि।५॥

भावार्थ:-यत ईश्वर: सर्वव्यापक: सकलान्तर्यामी समस्तकर्ममाक्षी वर्त्तते, तस्मादयमेव सर्वै: सज्जनैरुपासनीयोऽस्ति॥५॥

पदार्थ:-हे जगदीश्वर! जो आप (देवानाम) दिव्य प्रदार्थों वा विद्वानों के (विश:) प्रजा (मानुषान्) मनुष्यों को (प्रत्यङ्डदेषि) अच्छे प्रकार प्राप्त हो और सबके आत्माओं में (प्रत्यङ्) प्राप्त होते हो, इससे (विश्वं स्वर्दृशे) सब सुखों के देख्नी के अर्थ, सबों के (प्रत्यङ्) प्रत्यगात्मरूप से उपासनीय हो॥५॥

भावार्थ:-जिससे ईश्वर सब कहीं व्यापक सबके आत्मा का जानने वाला और सब कर्मी का साक्षी है, इसलिये यही सब सज्जन लोगों को नित्य उपासना करने के योग्य है॥५॥

पुन: स् कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह ईक्स कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

येना पावक चक्षमा भुर्ण्यन्तं जनाँ अनु।

त्वं वंरुण पश्यसि। है।

येनं। पार्वक्र चक्षस्म भुरुण्यन्तम्। जनान्। अनुं। त्वम्। वुरुणु। पश्यसि॥६॥

पदार्थ: (यैन) वक्ष्यमाणेन (पावक) पवित्रकारकेश्वर (चक्षसा) प्रकाशेन (भुरण्यन्तम्) धरन्तम् (जनान्) मनुष्यादीन् (अनु) पश्चादर्थे (त्वम्) उक्तार्थः (वरुण) सर्वोत्कृष्ट (पश्यिस) सम्प्रेक्षसे॥६॥

अस्वयः-हे पावक वरुण जगदीश्वर! त्वं येन चक्षसा विज्ञानप्रकाशेन भुरण्यन्तं लोकं जुर्नाश्चासुपस्यस्यि तेन युक्तानस्मान् कृपया सम्पादय॥६॥ ६१४

ऋग्वेदभाष्यम्

भावार्थ:-निह परमेश्वरोपासनेन विना कस्यिचिद्विज्ञानं पवित्रता च सम्भवित, तस्मात् सर्वैर्मनुष्येरक एवेश्वर उपासनीय:॥६॥

पदार्थ:-हे (पावक) पिवत्रकारक (वरुण) सब से उत्तम जगदीश्वर! आप (येन) जिस् (प्रक्रांसा) विज्ञान प्रकाश से (भुरण्यन्तम्) धारण वा पोषण करते हुए लोकों वा (जनान्) मनुष्यदि की अनु पश्यिस) अच्छे प्रकार देखते हो, उस ज्ञानप्रकाश से हम लोगों को संयुक्त कृपापूर्वक कीजियो ६॥

भावार्थ:-परमेश्वर की उपासना के विना किसी मनुष्य को विज्ञान वा परित्रता होने को सम्भव नहीं हो सकता, इससे सब मनुष्यों को एक परमेश्वर ही की उपासना करनी चार्हिया हो।

पुनः स किं करोतीत्युपदिश्यते॥

फिर वह क्या करता है, इस विषय का उपदेश अगले मुत्र में किया है।

वि द्यामेषि रर्जस्पृथ्वहा मिर्मानो अक्तुभिः। पश्यञ्जन्मोनि सूर्य॥७॥

वि। द्याम्। एष्टि। रजः। पृथु। अहां। मिमानः। अक्तुऽविः। पश्यम्। जन्मानि। सूर्य।।७॥

पदार्थ:-(वि) विशेषार्थे (द्याम्) प्रकाशम् (एषि) (राजः) लोकसमूहम् (पृथु) विस्तीर्णम् (अहा) अहानि दिनानि (मिमानः) प्रक्षिपन् विभजन् (अवतुभिः) रात्रिभिः (पश्यन्) समीक्षमाणः (जन्मानि) पूर्वापरवर्त्तमानानि (सूर्य्य) चराऽचरात्मन्॥७॥

अन्वय:-हे सूर्य्य जगदीश्वर! त्वं यथा स्विताऽवर्तुभिः पृथुरजोऽहा मिमानः सन् पृथु रजः प्राप्य व्यवस्थापयति तथा सर्वतः पश्यन् सर्वेषां जिन्मानि लोणि॥७॥

भावार्थ:-येन सूर्यादि जगद्भस्ते सर्वेषां जीवानां पापपुण्यानि कम्मीणि दृष्ट्वा यथायोग्यं तत्फलानि प्रदीयन्ते, स एव सर्वेषां सत्यो सायाधीशो राजास्तीति सर्वेर्मनुष्येर्मन्तव्यम्॥७॥

पदार्थ:-हे (सूर्य्य) चुन्चराऽत्मन् प्रमेश्वर! आप, जैसे सूर्य्य लोक (अक्तुभि:) प्रसिद्ध रात्रियों से (पृथु) विस्तारयुक्त (रज:) लोकसमूह और (अहा) दिनों को (मिमान:) निर्माण करता हुआ (पृथु) बड़े-बड़े (रज:) लोकों को प्राप्त होके नियम व्यवस्था करता है, वैसे हम लोगों के (जन्मानि) पहिले, पिछले और वर्त्तमान जन्मों को (पश्यन्) देखते हुए (व्येषि) अनेक प्रकार से जानने और प्राप्त होने वाले हो॥७॥

भावार्थ:-जिस्से सूर्य्य आदि लोक बनाये और सब जीवों के पाप-पुण्य को देख के ठीक-ठीक सुख-दु:ख रूप फर्तों को देता है, सब का सत्य-सत्य न्यायकारी राजा है, ऐसा सब मनुष्य जानें॥७॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अष्टक-१। अध्याय-४। वर्ग-७-८

मण्डल-१। अनुवाक-९। सूक्त-५०

सुप्त त्वा हुरितो रथे वहन्ति देव सूर्य। शोचिष्केशं विचक्षण॥८॥

सुप्ता त्वा। हुरित:। रथे। वहन्ति। देव। सूर्य। शोचि:ऽकैशम्। विऽचक्षुणु॥८॥

पदार्थ:-(सप्त) सप्तविधाः किरणाः (त्वा) त्वाम् (हरितः) यैः किरणै रसान् हर्सते ते आदित्य-रश्मयः। हरित इत्यादिष्टोपयोजननामसु पठितम्। (निघं०१.१५) (रथे) रमणीये लोके (वहन्ति) (देव) दातः (सूर्य्य) ज्ञानस्वरूप ज्ञानप्रापक वा (शोचिष्केशम्) शोचींषि केशा दीष्त्रयो रश्मयो यस्य तं सूर्य्यलोकम् (विचक्षण) विविधान् दर्शक॥८॥

अन्वय:-हे विचक्षण देव सूर्य जगदीश्वर! यथा सप्त हरिक्तः शोचिक्तिशं रथे वहन्ति तथा त्वा सप्त छन्दांसि प्रापयन्ति॥८॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। हे मनुष्या! यथि किस्पौर्चिमा सूर्य्यस्य दर्शनं न भवित, तथैव वेदाभ्यासमन्तरा परमात्मनो दर्शनं नैव जायत इति बोध्यम्॥८॥

पदार्थ:-हे (विचक्षण) सबको देखने (देव) सुर्ख दे हिंदू पूर्व्य) ज्ञानस्वरूप जगदीश्वर! जैसे (सप्त) हरितादि सात (हरित:) जिनसे रसों को हर्गा है, वे किरणें (शोचिष्केशम्) पवित्र दीप्ति वाले सूर्य्यलोक को (रथे) रमणीय सुन्दरस्वरूप रथ में वहन्ति) प्राप्त करते हैं, वैसे (त्वा) आपको गायत्री आदि वेदस्थ सात छन्द प्राप्त कराते हैं॥८॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्लेपमालङ्कार हैं। हे मनुष्यो! जैसे रश्मियों के विना सूर्य्य का दर्शन नहीं हो सकता, वैसे ही वेदों को क्षेत्र ठीक जाने विना परमेश्वर का दर्शन नहीं हो सकता, ऐसा निश्चय जानो॥८॥

पुनः स् कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा है, इस बिष्य का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

अयुक्त सप्त राष्ट्रिक्: सूर्रो रथस्य नुप्यः।

ताभिर्याति स्वयुक्तिभिः॥९॥

अर्युक्ता सुन्ता शुन्ध्युर्वः। सूर्रः। रथस्य। नुप्त्यः। ताभिः। याति। स्वयुक्तिऽभिः॥९॥

पदार्थ: (अयुक्त) योजयित (सप्त) पूर्वोक्ताः (शुन्थुवः) पवित्रहेतवो रश्मयोऽश्वाः। अत्र तन्वादीनां छन्दिस बहुलमुपसंख्यानम्। (अष्टा०वा०६.४.७७) अनेन वार्त्तिकेनोवडादेशः। (सूरः) यः सरित प्राप्निति स सूर्यः (रथस्य) रमणाधिकरणस्य जगतो मध्ये (नप्त्यः) पातेन नाशेन रहिताः। अत्र सुणं सुन्ग्रेण इति जसः स्थाने सुः। नञ् उपपदात् पतधातोः इक् कृष्यादिभ्यः। (अष्टा०वा०३.३.१०८)

६१६

इतीक्। **तनिपत्योश्छन्दसि।** (अष्टा०६.४.९९) अनेनोपधालोपः। इकारस्याकारादेशश्च। **(तार्भः)** व्याप्तिभिः **(याति)** प्राप्नोति **(स्वयुक्तिभिः)** स्वा युक्तयो योजनानि यासु ताभिः॥९॥

अन्वय:-हे ईश्वर! यथा सूरो या: सप्त नप्त्य: शुन्ध्युव सन्ति ता रथस्य मध्येऽयुम्त ही: सह याति प्राप्नोति तथा त्वं स्वयुक्तिभि: सर्वं विश्वं जगत्संयोजयसीति वयं विजानीम:॥९॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। य: सूर्यवत् स्वयं प्रकाश आकाशमित्र व्याप्त अपासकानां शुद्धिकर: परमेश्वरोऽस्ति, स खलु सर्वैर्मनुष्यैरुपासनीयो वर्त्तते॥९॥

पदार्थ:-हे ईश्वर! जैसे (सूर:) सब का प्रकाशक जो (सप्त) पूर्वोक्त सात (तप्य:) नाश से रहित (शुन्ध्युव:) शुद्धि करने वाली किरणें हैं उन को (खस्य) रमणीयस्वरूप में (अयुक्त) युक्त करता और उनसे सहित प्राप्त होता है, वैसे आप (ताभि:) उन (स्वयुक्तिभि)) अपनी युक्तियों से सब संसार को संयुक्त रखते हो, ऐसा हम को दृढ़ निश्चय है॥९॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो सूर्य के समान आप ही आप से प्रकाशस्वरूप, आकाश के तुल्य सर्वत्र व्यापक, उपासकों को पिबित्रकर्त्ती परमात्मा है, वही सब मनुष्यों का उपास्यदेव है॥९॥

पुनस्तं विद्वांसः कीदृशं जानीयुरित्युपिदश्यते॥

फिर उसको विद्वान् लोग किस प्रकार जानें, इस विषय क्र उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

उद्वयं तमसस्पिर् ज्योतिष्पश्यन्त उत्तरम्।

देवं देवत्रा सूर्यमर्गन्म ज्योतिक सम्मा १०॥

उत्। वयम्। तमसः। परि। ज्य्नोति। पश्यन्तः। उत्ऽतरम्। द्वेवम्। द्वेवऽत्रा। सूर्यम्। अर्गन्म। ज्योतिः। उत्ऽतमम्॥१०॥

पदार्थ:-(उत्) ऊर्ध्वे कि (वयम्) विद्वांसः (तमसः) आवरकादज्ञानादन्धकारात् (पिर) परितः (ज्योतिः) ईश्वररचितं प्रकाशस्वरूपं सूर्य्यलीकं (पश्यन्तः) प्रेक्षमाणाः (उत्तरम्) सर्वोत्कृष्टं प्रलयादूर्ध्वं वर्तमानं संप्लवकर्त्तारम् (देवम्) ब्रातारम् (देवन्न) देवेषु विद्वत्सु मनुष्येषु पृथिव्यादिषु वा वर्तमानम् (सूर्य्यम्) सर्वात्मानम् (अगन्य) प्राप्नुयाम (ज्योतिः) प्रकाशम् (उत्तमम्) उत्कृष्टगुणकर्मस्वभावम्॥१०॥

अन्वयः है मनुष्या यथा ज्योतिः पश्यन्तो वयं तमसः पृथग्भूते ज्योतिरुत्तमं देवत्रा देवमुत्तमं ज्योतिः सूर्य्यं प्रमान्यापं पर्य्युदगन्मोत्कृष्टतया प्राप्नुयाम तथा यूयमप्येतं प्राप्नुत॥१०॥

भावार्थः मेतुष्यैर्निहि परमेश्वरेण सदृशः कश्चिदुत्तमः प्रकाशकः पदार्थोऽस्ति, न खल्वेतृत्प्रोप्तिमन्तरेण मुक्तिसुखं प्राप्तुं कोऽपि मनुष्योऽर्हतीति वेद्यम्॥१०॥ अष्टक-१। अध्याय-४। वर्ग-७-८

मण्डल-१। अनुवाक-९। सूक्त-५०

पदार्थ:-हे मनुष्यो! जैसे (ज्योति:) ईश्वर ने उत्पन्न किये प्रकाशमान सूर्य्य को (पश्यन्त:) देखते हुए (वयम्) हम लोग (तमस:) अज्ञानान्धकार से अलग होके (ज्योति:) प्रकाशस्वरूप (उत्तम्) सब में उत्तम प्रलय से ऊर्ध्व वर्त्तमान वा प्रलय करने हारा (देवत्रा) देव, मनुष्य, पृथिव्याद्विकों में ष्यापक (देवम्) सुख देने (उत्तमम्) उत्कृष्ट गुण, कर्म, स्वभाव युक्त (सूर्यम्) सर्वात्मा ईश्वर क्रों (पर्युद्गगन्म) सब प्रकार प्राप्त होवें, वैसे तुम भी उस को प्राप्त होओ॥१०॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को योग्य है कि परमेश्वर के सदृश कोई भी उत्तम पदार्थ नहीं और न इस की प्राप्ति के विना मुक्ति सुख को प्राप्त होने योग्य कोई भी मनुष्य हो सकता है, ऐसा निश्चित जानें॥१०॥

पुन: स कीदृशोऽस्तीत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

उद्यन्नद्य मित्रमह आरोहन्नुत्तरां दिवेम्। हृद्रोगं ममे सूर्य हिर्माणं च नाशय॥ ११॥

उत्ऽयन्। अद्या मित्रुऽमहुः। आऽरोह्नन्। उत्ऽत्राम्। दिख्मा हृत्ऽरोगम्। मर्म। सूर्य्। हृरिमार्णम्। च। नाश्या। ११॥

पदार्थ:-(उद्यन्) उदयं प्राप्नुवन् सन्/अद्य) अस्मिन् वर्तमाने दिने (मित्रमहः) यः सर्वमित्रैः पूज्यते तत्सम्बुद्धौ (आरोहन्) समारुढः सन् जगत्यात्राहणं कुर्वन् वा (उत्तराम्) कारणरूपाम् (दिवम्) दीप्तिम् (हृद्रोगम्) यो हृद्रयस्योज्ञानाहिञ्वरादिरोगस्तम् (मम) मनुष्यादेः (सूर्य) सर्वौषधीरोगनिवारणविद्यावित् (हरिम्राणम्) सुखहरणशीलं (च) समुच्चये (नाशय)॥११॥

अन्वयः-हे मित्रमह! सूर्य विद्वंस्त्व यथाऽद्योद्यन्नुत्तरां दिवमारोहन् सविताऽन्धकारं निवार्य्य दिनं जनयित, तथा मम हृद्रोगं हिस्मणं च नाशय। ११॥

भावार्थ:-अत्र विकल्पुप्तोप्रमालङ्कारः। यथा सूर्य्योदयेऽन्धकारचोरादयो निवर्तन्ते, तथा सद्वैद्ये प्राप्ते कुपथ्यरोगा निवर्तन्ते। ११॥

पदार्थ: हे (मित्रमहः) मित्रों से सत्कार के योग्य (सूर्य्य) सब ओषधी और रोगनिवारण विद्याओं के जानने वाले विद्वार आप जैसे (अद्य) आज (उद्यन्) उदय को प्राप्त हुआ वा (उत्तराम्) कारणरूपी (दिवम्) द्रीप्त की (आरोहन्) अच्छे प्रकार करता हुआ अन्धकार का निवारण कर दिन को प्रकट करता है, वैसे पेरे (हृद्रोगम्) हृदय के रोगों और (हिरमाणम्) हरणशील चोर आदि को (नाशय) नष्ट की जिन्ने ॥१३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य के उदय में अन्धेरा और चोरिंदि निवृत्त हो जाते हैं, वैसे उत्तम वैद्य की प्राप्ति से कुपथ्य और रोगों का निवारण हो जाता है॥११॥

पुनस्ते किं कुर्य्युरित्याह॥

फिर वे क्या करें, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

शुकेषु मे हरिमाणं रोपणाकांसु दध्मसि। अथो हारिद्ववेषु मे हरिमाणुं नि दध्मसि॥१२॥

शुकेषु। मे। हृरिमाणम्। रोपणाकासु। दुध्मसि। अथो इति। हारिद्ववेषु। मे। हृरिमाणम्। नि। दुध्मसि॥१२॥

पदार्थ:-(शुकेषु) शुकवत्कृतेषु कर्मसु (मे) मम (हरिमाणम्) हरणश्रीलं रोगम् (रोपणाकासु) रोपणं समन्तात् कामयन्ति तासु क्रियासु लिप्तास्वोषधीषु (दध्मिम्) धरेम (अथा) आनन्तर्ये (हारिद्रवेषु) ये हरन्ति द्रवन्ति द्रावयन्ति च तेषोमेतेषु (मे) मम (हरिमाण्मि) चित्तहर्षकं व्याधिम् (नि) नितराम् (दध्मिस) स्थापयेम॥१२॥

अन्वय:-यथा सद्वैद्या ब्रूयुस्तथा वयं शुकेषु रोपणकासु में हरिमाणं दध्मस्यथो हारिद्रवेषु मे मम

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः मनुष्या लेपनादिक्रियाभिः सर्वान् रोगान्निवार्य बलं प्राप्नुवन्तु॥१२॥

पदार्थ:-जैसे श्रेष्ठ वैद्य लोग कहें विसे हम्म लोग (शुकेषु) शुओं के समान किये हुए कर्मों और (रोपणाकासु) लेप आदि क्रियाओं से (मे) मेर (हिरमाणम्) चित्त को खैंचने वाले रोगनाशक औषधियों को (दृष्टमिस) धारण करें (अथो) इस के पश्चात् (हारिद्रवेषु) जो सुख हरने, मल बहाने वाले रोग हैं, उनमें (मे) अपने (हरिमाणम्) हरणशील चित्त को (निदृष्टमिस) निरन्तर स्थिर करें॥१२॥

भावार्थ:-मनुष्य लोग लेपनादि क्रियाओं से रोगों का निवारण करके बल को प्राप्त होवें॥१२॥

पुर्नमुर्यैः कथं प्रजाः पालनीया इत्युपदिश्यते॥

फिर मनुष्य किस प्रकार प्रजाओं का पालन करें, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

उदंगाद्भयमादित्यो विश्वेन सहसा सह।

द्विष्तु पहाँ रुधयुन्मो अहं द्विषते रधम्॥१३॥८॥९॥

्रत्। अगात्। अयम्। आदित्यः। विश्वेन। सहसा। सह। द्विषन्तम्। मह्यम्। रुखर्यन्। मो इति। अहम्। द्विषते रुख्यम्॥१३॥ अष्टक-१। अध्याय-४। वर्ग-७-८

मण्डल-१। अनुवाक-९। सूक्त-५०

पदार्थ:-(उत्) ऊर्ध्वे (अगात्) व्याप्नोति (अयम्) सभेशो विद्वान् (आदित्यः) नाशरिहतः (विश्वेन) अखिलेन (सहसा) बलेन (सह) साकम् (द्विषन्तम्) शत्रुम् (महाम्) धार्मिकमनुष्यार्थ (स्थिन्त) हिंसन् (मो) निषेधार्थे (अहम्) मनुष्यः (द्विषते) शत्रवे (रधम्) हिंसेयम्॥१३॥

अन्वय:-हे विद्वन्! यथाऽयमादित्य उदगात् तथा त्वं विश्वेन सहसा सहऽस्मिन् पाज्य उदिहि यथा त्वं महां द्विषन्तं रन्धयन् प्रवर्तसे, तथाऽहं प्रवर्तेय। यथायं शत्रुर्मा हिनस्ति, तथाह्मिस्यस्मे द्विषते रधं यो मां न हिंसेत्तमहं मोरधं न हिंसेयम्॥१३॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। मनुष्यैरनन्तबलजगदीश्वरस्य बलनिमित्तस्य प्राणवद्विद्युतो दृष्टान्तेन वर्तित्वा सज्जनै: सार्द्धं मित्रभावमाश्रित्य सर्वा: प्रजा: पालनीया:॥११३॥

अत्र परमेश्वराग्निकार्यकारणयोर्दृष्टान्तेन राजगुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेदितव्यम्॥

इत्यष्टमो वर्गः ८ नवमोऽनुवाकः ९ पञ्चाशं सूक्ते च सम्प्राप्तम्॥५०॥

पदार्थ: -हे विद्वन्! यथा (अयम्) यह (आदित्यः) नाशरहित्रं सूर्य्य (उदगात्) उदय को प्राप्त होता है, वैसे तू (विश्वेन) अखिल (सहसा) बल के साथ उदित हैं। जैसे तू (महाम्) धार्मिक मनुष्य के (द्विषन्तम्) द्वेष करते हुए शत्रु को (स्थयन्) मारता हुआ कर्मता है, वैसे (अहम्) मैं (द्विषते) शत्रु के लिये वर्त्त्। जैसे यह शत्रु मुझ को मारता है, वैसे इसको मैं भी, मारूं जो मुझे न मारे उसे मैं भी (मो रधम्) न मारूं॥१३॥

भावार्थ:-मनुष्यों को उचित है कि अभन्त बले युक्त परमेश्वर के बल के निमित्त प्राण वा बिजुली के दृष्टान्त से वर्त्त के, सत्पुरुषों के साम्य मित्रता कर, सब प्रजाओं का पालन यथावत् किया करें॥१३॥

इस सूक्त में परमेश्वर क्यू अम्बिक कार्य-कारण के दृष्टान्त से राजा के गुणवर्णन करने से इस सूक्तार्थ की पूर्व सूक्तार्थ के स्मार्थ सङ्गति जामती चाहिये॥

यह आठवां ८ वर्ष नवम १ अनुवाक और पचासवां ५० सूक्त समाप्त हुआ॥५०॥

अथास्य पञ्चदशर्चस्यैकपञ्चाशस्य सूक्तस्याङ्गिरसः सव्य ऋषिः। इन्द्रो देवता। १,९,१० जगती। २,५,८ विराड् जगती। ११-१३ निचृज्जगती च छन्दः। निषादः स्वरः। ३,४ भुरिक् त्रिष्टुप्।

६,७ त्रिष्टुप्। १४,१५ विराट् त्रिष्टुप् च छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथेन्द्रशब्दार्थवद्विद्वद्गुणा उपदिश्यन्ते॥

अब इक्कावनवें सूक्त का आरम्भ है, उस के पहिले मन्त्र में इन्द्र शब्दार्थ के समान विद्वानी के गुणों का उपदेश किया है।।

अभि त्यं मेषं पुरुहूतमृग्मियमिन्द्रं गीभिर्मिदता वस्वो अर्ण्वम्। दिस्य द्यावो न विचरित्त मानुषा भुजे मंहिष्ठमुभि विप्रमर्चत॥

अभि। त्यम्। मेषम्। पुरुऽहूतम्। ऋग्मियम्। इन्द्रम्। गीःऽभिः। मर्द्ध्तः। वस्त्रः। अर्ण्वम्। यस्ये। द्यार्वः। न। विऽचरन्ति। मार्नुषा। भुजे। मंहिष्ठम्। अभि। विप्रम्। अर्च्ता। १॥

पदार्थ:-(अभि) आभिमुख्ये (त्यम्) तम् (मेष्ट्रम्) कृष्टिद्वारा सेक्तारम् (पुरुहूतम्) पुरुभिर्बहुभिर्विद्वद्भिः स्तुतम् (ऋग्मियम्) य ऋग्भिर्मीयते तम् (इन्द्रम्) सूर्यमिव शत्रूणां विदारियतारम् (गीभिः) वाग्भिः (मदत) हर्षत (वस्वः) वसोर्धनस्य (अणिवस्) समुद्रवद्वर्त्तमानम् (यस्य) इन्द्रस्य (द्यावः) प्रकाशः (न) इव (विचरन्ति) (मानुषा) प्रनुष्ट्रमणां हितकारकाणि (भुजे) भोगाय (मंहिष्ठम्) अतिशयेन महान्तम् (अभि) सर्वतः (विप्रम्) मेथ्यिन्यम् (अर्चत) सत्कुरुत॥१॥

अन्वय:-हे मनुष्या! यूयमर्णविमिव स्य पेषं पुरुहूतमृग्मियं मंहिष्ठिमिन्द्रं परमैश्वर्यवन्तं राजानं गीर्भिरिभमदत सर्वतो हर्षयत सूर्यस्य द्यावः किरणान्नेत्रं यस्य भुजे मानुषा विचरन्ति, तस्य वस्वो दातारं विप्रमभ्यर्चत॥१॥

भावार्थ:-अत्रोपमावाचकलुरतोपमालङ्कारों। मनुष्यैर्बहुगुणयोगाद्यः सूर्यवद्विद्वान् राजा वर्त्ततां स एव सत्कर्त्तव्यः। नह्येतेन विना कृष्यचित् सुख्भोगो जायत इति॥१॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! तुम (अर्णवम्) समुद्र के तुल्य (त्यम्) उस (मेषम्) वृष्टिद्वारा सेचन करने हारे (पुरुहूतम्) बहुत विद्वानों से स्तुष्ठ (ऋग्मियम्) ऋचाओं से मान करने योग्य (मंहिष्ठम्) गुणों से बड़े (इन्द्रम्) समग्र ऐश्वर्य से युक्त अर्गुओं को विदारण करने वाले राजा को (गीर्भि:) सत्य प्रशंसित वाणियों से (अभिमदत) हर्षित करो और सूर्य्य के (द्याव:) किरणों के (न) समान (यस्य) जिस को (भुजे) भोग के लिये (मानुष्य) मसुष्यों के हित करने वाले गुण (विचरन्ति) विचरते हैं, उस (वस्व:) धन के देने वाले (विप्रम्) विद्वात् का (अभ्यर्चत) सदा सत्कार करो॥१॥

पावार्थ:-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। मनुष्यों को योग्य है कि जो बहुत गुणों के स्रोप से सूर्य्य के सदृश विद्यायुक्त राजा हो, उसी का सत्कार सदा किया करें॥१॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

अष्टक-१। अध्याय-४। वर्ग-९-११

मण्डल-१। अनुवाक-१०। सूक्त-५१

फिर वह कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अभीमेवन्वन्स्विभृष्टिमृतयोऽन्तरिक्षुप्रां तिविधीभिरावृतम्। इन्द्रं दक्षांस ऋभवों मदुच्युतं शृतक्रेतुं जर्वनी सूनृतारुहत्॥२॥

अभि। ईम्। अवन्वन्। सुऽअभिष्टिम्। ऊतर्यः। अन्तरिक्षुऽप्राम्। तर्विषीभिः। आऽवनम्। इन्द्रम्। दक्षांसः।

ऋभवः। मुदुऽच्युतंम्। शृतऽक्रंतुम्। जर्वनी। सूनृतां। आ। अरुहुत्॥२॥

पदार्थ:-(अभि) आभिमुख्ये (ईम्) जलमत्रं पृथिवीं वा। ईमित्युदक्वामसु पठितम्। (निघं०१.१२) पदनामसु पठितम्। (निघं०४.२) (अवन्वन्) अवन्ति रक्षामिद्धकं कुर्वन्ति। अत्राऽव धातोः विकरणव्यत्ययेन श्नुः। (स्विभिष्टिम्) शोभना अभिष्टा इष्ट्यो स्रस्मात्तम्। अत्र व्यत्ययेन हस्वः। (ऊतयः) रक्षादयः (अन्तरिक्षप्राम्) स्वतेजसान्तरिक्षं प्राप्य प्राति पिणिति ताम् (तविषीभिः) बलाकर्षणादिगुणाढ्याभिः सेनाभिः (आवृतम्) संयुक्तम् (इन्द्रम्) सुखानां बिभर्तारं सेनेशम् (दक्षासः) विज्ञानबलवृद्धाः शीघ्रकारिणः (ऋभवः) मेधाविनः (मदच्युतम्) प्रदा हर्षणादयश्च्युता यस्मात्तम् (शतकृतुम्) अनेककर्मप्रज्ञायुक्तम् (जवनी) वेगशीला (मूनृता) अत्रादिसमूहकारी राजनीतिः। सूनृता इत्यन्ननामसु पठितम्। (निघं०२.७) (आ) समन्तात् (अरुद्धत्। रा।

अन्वय:-हे सेनेश! यस्य तवोतयः प्रजा रक्षन्ति देशार्स ऋभवो यं स्वभिष्टिमन्तरिक्षप्राम्मदच्युतं शतक्रतुं तिवधीभिरावृतमिन्द्रं त्वामभ्यवन्वत्रभ्यक्षीन्त जवनी सूनृताऽरुहत्तं वयमपि सततं रक्षेम॥२॥

भावार्थ:-धार्मिका मेधाविनो यस्याश्रयं कुर्य्युस्तस्यैवाश्रयं सर्वे मनुष्या गृह्णीयु:॥२॥

पदार्थ:-हे सेनापते! जिस आपके (कृत्य:) रक्षा प्रजा का पालन करती हैं (दक्षास:) विज्ञानवृद्ध शीघ्र कार्य को सिद्ध करने काले (ऋभव:) मेधावी विद्वान् लोग जिस (स्विभष्टिम्) उत्तम इष्टि युक्त (अन्तरिक्षप्राम्) अपने तेज प अन्तरिक्ष अर्थात् अवकाश में सबको सुख से पूर्ण करने (मदच्युतम्) हर्षादि को देने वाले (शतकृतुम्) अनेक कर्मों के कर्ता (तिवषिभि:) बल आकर्षण आदि गुणों से युक्त सेना से (आवृतम्) संयुक्त (इन्द्रम्) बिजुली के सदृश वर्त्तमान आपको (अभ्यवन्वन्) कार्यों को करने के लिये सब प्रकार से वृद्धिश्वका करते हैं जिस को (जवनी) वेगयुक्त (सूनृता) अन्नादि पदार्थों को सिद्ध करने हारी राजनीव्रि (आरुहत्) बढ़ के प्राप्त होवे, उस आपकी रक्षा हम किया करें॥२॥

भावार्थ:-धर्मात्मा बुद्धिमान् लोग जिस का आश्रय करें, उसी का शरण ग्रहण सब मनुष्य करें॥२॥ ४

पुनः सा कीदृशीत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

षं गोत्रमङ्गिरोभ्योऽवृणो॒रपो॒तात्रेये शृतदुरेषु गातुवित्।

सुसेनं चिद्धिमुदायावहो वस्वाजावद्गि वावसानस्य नुर्तयन्॥३॥

त्वम्। गोत्रम्। अङ्गिर:ऽभ्यः। अवृणोः। अपं। उत। अत्रये। शृतऽदुरेषु। गातुऽवित्। सम्नेन्। चित्। विऽमदायं। अवहः। वस्तुं। आजौ। अद्गिम्। ववसानस्य। नुर्तयन्॥३॥

पदार्थ:-(त्वम्) (गोत्रम्) मेघम्। गोत्रमिति मेघनामसु पठितम्। (निघं०१.१०) (अङ्गिरोभ्यः) प्राणरूपेभ्यो वायुभ्यः। प्राणो वा अङ्गिरा। (शत०६.३.७.३) (अवृणोः) वृणु (अप) दूर्यकरणे (उत) अपि (अत्रये) अविद्यमानानि त्रीणि दुःखान्याध्यत्मिकाऽऽधिभौतिकाऽऽधिदैविकानि यस्मिन् सुखे तस्मै (शतदुरेषु) शतावरणेषु मेघावयवेषु धनेषु (गातुवित्) यो भूगर्भविद्यया गातुं पृथिवीं बेटि सः। गातुरिति पृथिवीनामसु पठितम्। (निघं०१.१) (चित्) इव (विमदाय) विविधा महा हर्षा यस्मिन् व्यवहारे तस्मै (अवहः) प्राप्नुहि (वसु) धनादिकम् (आजौ) संग्रामे (अद्रिम्) मेघम् (वावसानस्य) आच्छादकस्य। अत्र यङ्लुगन्ताद् वस आच्छादने धातोः कर्त्तरि ताच्छीलिकश्चानश् बहुल छन्दिस् कृति शपः श्लुः। (नर्त्तयन्) नृत्यं कारयन्। अत्र न पादभ्याङ्यम० (अष्टा०१.३.८८) इति निष्धं प्राप्ते व्यत्ययेन परस्मैपदम्॥३॥

अन्वय:-हे ससेन राजँस्त्वं यथा सूर्योऽङ्गिरोध्योऽद्गि भौत्रं मेघं चिदिवात्रय आजौ शत्रुबलमपावृणो: वावसानस्यारिपक्षस्य सेनां नर्त्तयिष्ठि विमुद्दोय वस्वाऽवहरुहतापि गातुवित्त्वं शतदुरेष्विवावृतां स्वसेनामपावृणोसि स भवान् सत्कर्त्तव्योऽसि॥३)

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः सेमूर्गित्यादयो यावत्सूर्य्यवत्पराक्रमं न गृह्णीयुस्तावच्छत्रुविजयमाप्तुं न शक्नुयु:॥३॥

पदार्थ:-हे (ससेन) सेना से सहित सेनाध्यक्षा! आप जैसे सूर्य (अङ्गिरोभ्यः) प्राणस्वरूप पवनों से (अद्रिम्) पर्वत और मेघों के तुल्य वसमान (अत्रये) जिसमें तीन अर्थात् आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक दु:ख नहीं है उस्र (अप्तौ) सङ्ग्राम में शत्रुओं के बल को (अपावृणोः) दूर कर देते हो (वावसानस्य) ढांकने वाले अत्रुपक्ष की सेना को (नर्त्तयन्) नचाते के समान कम्पाते हुए (विमदाय) विविध आनन्द के वास्ते (वस्रु) धन को (अवहः) अच्छे प्रकार प्राप्त कर (उत) और (गातुवित्) भूगर्भ विद्या के जानने वाले आप (अतदुरेषु) असंख्य मेघ के अवयवों में ढके हुए पदार्थों के समान ढकी हुई अपनी सेना को बचाते हो स्रो अष्ट सत्कार के योग्य हो॥३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। सेनापित आदि जब तक वायु के सकाश से उत्पन्न हुए सूर्य्य के समान पराक्रमी नहीं होते, तब तक शत्रुओं को नहीं जीत सकते॥३॥

पुनः स कीदृशः किं कुर्यादित्युपदिश्यते॥

फिर वह किसके समान क्या करे, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

त्बम्पामप्रिधानविर्णोरपाधारयः पर्वते दानुमद्वसु।

अष्टक-१। अध्याय-४। वर्ग-९-११

मण्डल-१। अनुवाक-१०। सूक्त-५१

वृत्रं यदिन्द्र शवसावधीरहिमादित्सूर्यं दिव्यारोहयो दृशे॥४॥

त्वम्। अपाम् अपिऽधानां। अवृणोः। अपं। अधारयः। पर्वते। दानुंऽमत्। वसुं। वृत्रम् याः। इन्ह्र) शर्वसा। अवधीः। अहिंम्। आत्। इत्। सूर्यम्। दिवि। आ। अरोह्यः। दृशे॥४॥

पदार्थ:-(त्वम्) सभेश (अपाम्) जलानाम् (अपिधाना) अपिधानान्यावस्णानि (अवृणोः) वृणुयाः (अप) दूरीकरणे (अधारयः) धारयन्। अत्र नजुपपदाद् धारिपारि इति शः प्रत्ययः। (पर्वते) मेघे (दानुमत्) मेघम् (यत्) यस्मात् (इन्द्र) परमैश्वर्य्यवन् (शवसा) बलेन (अवधिः) हिन्धि (अहिम्) सर्वत्र व्याप्तुमर्हं मेघम् (आत्) अनन्तरम् (इत्) एव (सूर्यम्) (दिवि) प्रकाशे (आ) समन्तात् (अरोहयः) रोहयसि (दृशे) दृष्टुं दर्शयितुं वा॥४॥

अन्वय:-हे इन्द्र! यत्त्वमपिधाना सूर्य इव शत्रुबन्धनान्यपावृणीदूरीकरोषि यथायं रविः पर्वते मेघे जलं दानुमद् वस्वधारयन् सन् वृत्रं विद्युदिव शत्रूनिदवधीः किर्मणाः सूर्यमिव दृशे न्यायमारोहयस्तस्मात् त्वं राज्यं कर्त्तुमर्हसि॥४॥

भावार्थ:-मनुष्याणां योग्यतास्ति येनेश्वरेण यः स्वीम् लोकानाकृष्यान्तरिक्षे स्थाप्य वर्षयित्वा सर्वान् प्रकाश्य च सुखानि ददातीदृशं सूर्य्यं निर्माय स्थापित् इति वेदितव्यम्॥३॥

पदार्थ:-हे (इन्द्र) जगदीश्वर! (यम्) जिस्स कारण (त्वम्) आप जैसे सूर्य (अपाम्) जलों के (अपिधाना) आच्छादनों को दूर करता है, वैसे शत्रुओं के बल को (अपावृणोः) दूर करते हो जैसे (पर्वते) मेघ में (दानुमत्) उत्तम शिखर युक्त (वसु) द्वैच्य वा जल को (अधारयः) धारण करता और (शवसा) बल से (अहिम्) व्याप्त होने ओप (वृज्जम्) मेघ को (अवधीः) मारता है वैसे शत्रुओं को छिन्न-भिन्न करते हो और जैसे किरणसमृह (सूर्यम्) सूर्य को (अरोहयः) अच्छे प्रकार स्थापित करते हैं, वैसे न्याय के प्रकाश से युक्त हैं इससे राज्य करने के योग्य हैं॥४॥

भावार्थ:-मनुष्यों को याग्य है कि जिस ईश्वर ने मेघ के द्वार का छेदन कर, आकर्षण कर, अन्तरिक्ष में स्थापन, वर्ष और सबके प्रकाशित करके सुखों को देता है, उस सूर्य को ईश्वर ने रच कर स्थापन किया है, ऐसा जानें बिरा

पुन: सभाध्यक्षगुणा उपदिश्यन्ते॥

फिर सभाध्यक्षादि के गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

त्वं मायाभिरमे मायिनोऽधमः स्वधाभिर्ये अधि शुजावर्जुह्वत।

र्वा पिप्रोर्नुमणुः प्रार्रुजुः पुरुः प्र ऋजिश्वनि दस्युहत्येष्वाविथ॥५॥९॥

त्वम्। मायाभिः। अपे। मायिनः। अधुमुः। स्वधाभिः। ये। अधि। शुप्तौ। अर्जुह्वत। त्वम्। पिप्रौः।

र्डमुन्:। प्रे। अरुज:। पुर:। प्र। ऋजिश्वानम्। दुस्युऽहत्येषु। आवि्र्या।५॥

पदार्थ:-(त्वम्) सेनाध्यक्षः (मायाभिः) प्रज्ञानोपायैः। मायेति प्रज्ञानामसु पठितम्। (निघं०३.९) (अप) दूरीकरणे (मायिनः) निन्दिता माया प्रज्ञा विद्यते येषां तान्मायिनः (अधमः) धम कम्पय (स्वधाभिः) अन्नादिभिरुदकादिभिर्वा। स्वधेत्यन्ननामसु पठितम्। (निघं०२.७) उदकनामसु पठितम्। (निघं०२.१०) उदकनामसु पठितम्। (निघं०१.१२) (ये) चोरदस्य्वादयः परस्वापहर्तारः (अधि) उपरिभावे (शुप्तौ) शयने कृते सित्। अत्र वर्णव्यत्ययेन शः। (अजुह्वत) स्पर्द्धन्ते (त्वम्) उक्तार्थः (पिप्रोः) न्यायपूर्तेः कर्त्रोः (नृमनः) नृषु मनो ज्ञानं यस्य तत्सम्बुद्धौ (प्र) प्रकृष्टार्थे (अरुजः) रुज (पुरः) अग्रतः (प्र) प्रकृष्टार्थे (अरुजानम्) ये ऋजीन् ज्ञानादिसरलान् गुणानश्नुते तं धार्मिकं मनुष्यम्। अत्र इक् कृष्यादिभ्यः। (अष्टाक्वा०३.३.१०८) इत्यृजधातोरिक्। अशूङ् धातोर्ङ्वनिप्। अकारलोपश्च। (दस्युहत्येषु) दस्यूनां हत्या हननानि येषु सङ्ग्रामादिव्यवहारेषु (आविथ) रक्षा।५॥

अन्वय:-हे नृमणस्त्वं पुरः स्वधाभिः पिप्रोराज्ञामृजिश्वानं चार्किशे ये मुर्चिनी मायाभिः शुप्तावधि परपदार्थात्रजुह्वत तान् दस्यूनपाधमो दूरीकुरु दस्युहत्येषु प्रारुजः प्रभूत्रान् कुरुगप्।।

भावार्थः-यः सभाद्यध्यक्षः स्वसत्यन्यायेन श्रेष्ठदुष्टकमैकारिभ्यो ग्रंथावत्फलानि दत्वा रक्षति, स एवाऽत्र मान्यभाग्भवेत्॥५॥

पदार्थ:-हे (नृमण:) मनुष्यों में मन रखने वाले स्माध्यक्ष! (त्वम्) आप (पुर:) प्रथम (स्वधाभि:) अन्नादि पदार्थों से (पिप्रो:) न्याय की कूर्ण करने हारे न्यायाधीशों की आज्ञा और (ऋजिश्वानम्) ज्ञान आदि सरल गुणों से युक्त वी (प्राविश्व) रक्षा कर और जो (मायिन:) निन्दित बुद्धि वाले (मायाभि:) कपट छलादि से वा (शुप्तो) सोने के उपरान्त पराये पदार्थों को (अजुह्वत) हरण करते हैं, उन डाकू आदि दुष्टों को (अपाधम:) दूर को जिये और उन को (दस्युहत्येषु) डाकुओं के हननरूप संग्रामों में (प्रारुज:) छिन्न-भिन्न कर दीजिये। धा

भावार्थ:-जो सभाध्यक्ष अपने सम्बर्भणी न्याय से उत्तम वा दुष्टकर्मों के करने वाले मनुष्यों के लिये फलों को देकर दोनों की यथायोग्य रक्षा करता है, वही इस जगत् में सत्कार के योग्य होता है॥५॥

र्युनरपि सभाध्यक्ष गुणा उपदिश्यन्ते॥

फिर भी अगले मन्त्र में सभाध्यक्ष के गुणों का उपदेश किया है॥

त्वं कुर्त्सं भ्रूष्णहत्येष्वाविधारमधयोऽतिधिग्वाय शम्बरम्।

मुहान्तं सिदर्बुदं नि क्रमी: पदा सुनादेव देस्युहत्याय जिल्ले॥६॥

्रिम्। कुत्सम्। शुष्णुऽहत्येषुं। आवि्र्या अर्रस्ययः। अति्रिष्ठिऽग्वार्यः। शम्बरम्। महान्तम्। चित्। अर्बुदम्। नि। कुम्तः। पुदा। सुनात्। एव। दुस्युऽहत्याया जिज्ञिषे।।६॥ अष्टक-१। अध्याय-४। वर्ग-९-११

मण्डल-१। अनुवाक-१०। सूक्त-५१

पदार्थ:-(त्वम्) सभाध्यक्षः (कुत्सम्) वज्रादिशस्त्रसमूहम् (शुष्णहत्येषु) शुष्णानां बलानां हत्या हननं येषु संग्रामेषु। शुष्णमिति बलनामसु पठितम्। (निघं०२.९) (आविथ) रक्ष (अरस्यः) हिन्धि (अतिथिग्वाय) अतिथीनां गमनाय। अत्रातिथ्युपपदाद् गम् धातोः बाहुलकाद् औणादिको ह्वः प्रस्ययः। (शम्बरम्) बलम्। शम्बरमिति बलनामसु पठितम्। (निघं०२.९) (महान्तम्) महागुणविशिष्टम् (चित्) इव (अर्बुदम्) असङ्ख्यातगुणविशिष्टम् (नि) नितराम् (क्रमीः) क्रमस्व (प्रदेश) पादेन (सनात्) सम्भजनात् (एव) निश्चयार्थे (दस्युहत्याय) दस्यूनां हननं यस्मिन् व्यवहारे तस्मै (जिज्ञिषे) जातोऽसि जातोऽस्ति वा॥६॥

अन्वय:-हे विद्वन् वीर! यतस्त्वं पदा पदाक्रान्तं शत्रुसमूहं चिद्धित्र शिष्णहेत्येषु युद्धेषु महान्तं कुत्सं धृत्वा प्रजा आविथ शत्रूनरन्धयोऽतिथिग्वाय शुद्धमार्गायाबुहं शम्बरं बलं निक्रमी: सनात्पदा दस्युहत्यायैव जित्रषे तस्मादस्माभि: सत्कर्त्तव्योऽसि॥६॥

भावार्थ:-सभाद्यध्यक्षादिभिर्यथा सूर्यस्तथा शत्रून् हत्वा श्रेष्ठाभू पालियत्वा शुद्धान् मार्गान् कृत्वाऽसंख्यातं बलं धृत्वा शत्रूणां हननाय प्रभावो वर्द्धनीय सिद्धाः

पदार्थ: -हे विद्वन् शूरवीर मनुष्य! जिससे (त्वम्) तू (पत्र) पाद से आक्रान्त हुए शत्रुसमूह को मारने वाले के (चित्) समान (शुष्णाहत्येषु) शत्रुओं के कर्तों के हनने योग्य व्यवहारों में (महान्तम्) महागुण विशिष्ट (कुत्सम्) शस्त्रवर व्रज को धारण करके प्रजा की (आविथ) रक्षा करते और दुष्टों को (अरन्थय:) मारते हो (अतिथिग्वाय) अतिथियों के जिन-आने को शुद्ध मार्ग के लिये (अर्बुदम्) असंख्यात गुणविशिष्ट (शम्बरम्) बल को (कि क्रमी:) क्रम से बढ़ाते हो (सनात्) अच्छे प्रकार सेवन करने से (पदा) पदाक्रान्त शत्रुसेना को नाश करते हो (दस्युहत्याय) शत्रुओं के मारने रूप व्यवहार के लिये (एव) ही (जिज्ञिषे) उत्पन्न हुए हो इस्से हम लोग आप का सत्कार करते हैं॥६॥

भावार्थ:-सभाध्यक्षादिकों को योग्य है कि जैसे शत्रुओं को मार, श्रेष्ठों की रक्षा, मार्गों को शुद्ध और असंख्यात बल को धारण कर शत्रुओं के मारने के लिये अत्यन्त प्रभाव बढ़ावें॥६॥

पुर्नेः सभाद्यध्यक्षः कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह सभा आदि का अध्यक्ष कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

त्वे विश्वा सर्विषी सुध्रचिम्धता तव रार्धः सोमपी्थायं हर्षते।

तब् वज्रश्चिकिते बाह्वोर्हितो वृश्चा शत्रोरव विश्वानि वृष्ण्या॥७॥

स्य इति। विश्वा। तर्विषी। सुध्रयंक्। हिता। तर्व। रार्धः। सोमुऽपीथार्य। हुर्षेते। तर्व। वर्ष्यः। चिकिते। बाह्योः। हित्ते। वृश्च। शत्रीः। अर्व। विश्वानि। वृष्ण्यां॥७॥

पदार्थ:-(त्वे) त्विय (विश्वा) अखिला (तिविषी) बलयुक्ता सेना (सध्चयक्) सह सेवमानम् (हिता) हितकारिणी (तव) (राध:) धनम् (सोमपीथाय) सुखकारकपदार्थभोगाय (हर्षते) हर्षति। अत्र व्यत्ययेन आत्मनेपदम्। (तव) (वज्र:) शस्त्रसमूहः (चिकिते) चिकित्सित (बाह्वोः) भुज्याः (हितः) धृतः (वृश्च) छिन्धि (शत्रोः) (अव) रक्ष (विश्वानि) सर्वाणि (वृष्ण्या) वृषभ्यो कियानि बलानि॥७॥

अन्वय:-हे विद्वँस्त्वे त्विय या विश्वा तिविषी हिता सध्रयग्राध: सोमपीथाय हर्षत यस्तव बोह्नोर्हितो वज्रो येन भवान् चिकिते सुखानि ज्ञापयित तेनाऽस्माकं विश्वानि वृष्ण्या अव शत्रोबेलं वृश्च॥७॥

भावार्थ:-यदि च श्रेष्ठेषु बलं जायते तर्हि सर्वेषां सुखं वर्द्धेत, यदि दुष्टेषु बलमुत्पद्येत तर्हि सर्वेषां दु:खं वर्द्धेत, तस्माच्छ्रेष्ठानां सुखबलवृद्धिर्दुष्टानां बलहानिर्नित्यं कार्येति॥॥

पदार्थ: - हे विद्वन् मनुष्य! (त्वे) आप में जो (विश्वा) सब (तिविषी) जूल (हिता) स्थापित किया हुआ (सध्चक्) साथ सेवन करने वाला (राध:) धन (सोमपीथाब) सुख करने वाले पदार्थों के भोग के लिये (हर्षते) हर्षयुक्त करता है, जो (तव) आपके (बाह्वो:) भुजाओं में (हित:) धारण किया (वज्र:) शस्त्रसमूह है, जिससे आप (चिकिते) सुखों को जानते हो उनसे हम लोगों के (विश्वानि) सब (वृष्ण्या) वीरों के लिये हित करने वाले बल की (अव) रक्षा और (श्रात्रो:) शत्रु के बल का नाश कीजिये॥७॥

भावार्थ:-जो श्रेष्ठों में बल उत्पन्न हो तो उससे सब मुनुष्यों को सुख होवे, जो दुष्टों में बल होवे तो उससे सब मनुष्यों को दु:ख होवे, इससे श्रेष्ठी के सुख्यकी वृद्धि और दुष्टों के बल की हानि निरन्तर करनी चाहिये॥७॥

पुनुः स कि कुर्खीदित्युपदिश्यते॥

फिर वह सभाध्यक्ष क्या करे, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

वि जानीह्यार्यान्ये च दस्यवा वार्हिष्मते रस्थया शासदवृतान्।

शाकी भव यर्जमानस्य चोद्ता विधेता ते सध्मादेषु चाकन॥८॥

वि। जानीहि। शार्थाना ये। चा दस्यंवः। बहिष्मते। रुश्ययः। शार्सत्। अब्रुतान्। शाकीं। भुवः। यर्जमानस्य। चोदिता। विश्वां। इत्। ता। ते। सुधुऽमादेषु। चाकुन्॥८॥

पदार्थ: (क्) विशेषार्थे (जानीहि) विद्धि (आर्च्यान्) धार्मिकानाप्तान् विदुषः सर्वोपकारकान् मनुष्यान् (ये) विश्वयम्पणः (च) समुच्चये (दस्यवः) परपीडका मूर्खा धर्मरहिता दुष्टा मनुष्याः (बर्हिष्मते) बर्हिषः प्रश्लेक्ता ज्ञेपादयो गुणा विद्यन्ते यस्मिन् व्यवहारे तन्निष्पत्तये (रख्य) हिंसय (शासत्) शासनं कुर्वन्। (अवतान्) सत्यभाषणादिरहितान् (शाकी) प्रशस्तः शाकः शिक्तिर्विद्यते यस्य सः (भव) निर्वर्त्तस्व (यज्ञमान्स्य) यज्ञनिष्पादकस्य (चोदिता) प्रेरकः (विश्वा) सर्वाणि (इत्) एव (ता) तानि (ते) तव

अष्टक-१। अध्याय-४। वर्ग-९-११

मण्डल-१। अनुवाक-१०। सूक्त-५१

(सधमादेषु) सुखेन सह वर्त्तमानेषु स्थानेषु (चाकन) कामये। अत्र कनधातोर्वर्त्तमाने लिट् तुजादीनां दीर्घोऽभ्यासस्य (अष्टा०६.१.७) इत्यभ्यासदीर्घत्वं च॥८॥

अन्वय:-हे मनुष्य! त्वं बर्हिष्मत आर्य्यान् विजानीहि ये दस्यवः सन्ति द्विश्च विद्वित्वा रन्धयाऽव्रतान् शासत् यजमानस्य चोदिता सन् शाकी भव यतस्ते तवोपदेशेन सङ्गेन् वा संधमादेषु ता तानि विश्वा विश्वान्येतानि सर्वाणि कर्माणीदेवाहं चाकन॥८॥

भावार्थ:-मनुष्यैर्दस्युस्वभावं विहायाऽऽर्घ्यस्वभावयोगेन नित्यं भिक्तव्येष् । त आर्थ्या भिवतुमर्हन्ति ये सिद्धादिप्रचारेण सर्वेषामृत्तमभोगिसद्भयेऽधर्मदुष्टिनवारणायं च सततं प्रयतन्ते न खलु कश्चिदार्यसङ्गाध्ययनोपदेशै- विना यथाविद्धद्वान् धर्मात्माऽऽर्घ्यस्वभावो भवितं अवनीति, तस्मात् किल सर्वेरुत्तमानि गुणकर्माणि सेवित्वा दस्युकर्म्माणि हित्वा सुखियत्वम्॥ ।

पदार्थ:-हे मनुष्य! तू (बर्हिष्मते) उत्तम सुखादि गुणों के उत्पन्न करने वाले व्यवहार की सिद्धि के लिये (आर्थ्यान्) सर्वोपकारक धार्मिक विद्वान् मनुष्यों को (विजानीहि) जान और (ये) जो (दस्यवः) परपीड़ा करने वाले अधर्मी दुष्ट मनुष्य हैं, उनको जान कर (बर्हिष्मते) धर्म की सिद्धि के लिये (रम्थय) मार और उन (अव्रतान्) सत्यभाषणादि धर्मरहित मनुष्यों को (शासत्) शिक्षा करते हुए (यजमानस्य) यज्ञ के कर्ता का (चोदिता) प्रेरणाकर्ता और (शाकी) उत्तम श्राक्तयुक्त सामर्थ्य को (भव) सिद्ध कर, जिससे (ते) तेरे उपदेश वा सङ्ग से (सधमादेषु) सुखों के साथ वर्तमान स्थानों में (ता) उन (विश्वा) सब कर्मों को सिद्ध करने की (इत्) ही मैं (चाकन) इच्छा करता हूं॥८॥

भावार्थ:-मनुष्यों को दस्यु अर्थात कुष्ट स्वभाव को छोड़ कर आर्य्य अर्थात् श्रेष्ठ स्वभावों के आश्रय से वर्त्तना चाहिये। वे ही आर्य हैं कि जिल्हे तम विद्यादि के प्रचार से सबके उत्तम भोग की सिद्धि और अधर्मी दुष्टों के निवारण के लिये निरत्तर यत्न करते हैं। निश्चय करके कोई भी मनुष्य आर्थ्यों के संग, उनसे अध्ययन वा उपदेशों के विना यथावत् विद्वान्, धर्मात्मा, आर्यस्वभाव युक्त होने को समर्थ नहीं हो सकता। इससे निश्चय करके आर्थ के गुण और कर्मों को सेवन कर निरन्तर सुखी रहना चाहिये॥८॥

पुनः स किं कुर्वन् किं कुर्यादित्युपदिश्यते॥

फिर वह क्या करे के किस को करे, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

अनुद्धताय रुध्युत्रपंद्रतानाभूभिरिन्द्रः श्नथयुत्रनाभुवः।

वृद्धस्य चिद्रर्धतो द्यामिनक्षतः स्तवानो वुम्रो वि जघान सुंदिहः॥९॥

अर्भुऽव्रताय। रुस्थर्यन्। अर्पऽव्रतान्। आऽभूभिः। इन्द्रः। श्नुथर्यन्। अनाभुवः। वृद्धस्यं। चित्। वर्धतः।

द्याम्। इनेक्षतः। स्तर्वानः। वृप्रः। वि। जुघानः। सुम्ऽदिहः॥९॥

पदार्थ:-(अनुव्रताय) अनुगतानि धर्म्याणि व्रतानि यस्य तस्मै (रख्यन्) सेनया सामादिभिर्वा हिंसयन् (अपव्रतान्) अपगतानि दुष्टानि मिथ्याभाषणादीनि व्रतानि कर्माणि येषान्तान् दस्यून् (अपभूभिः) समन्ताद्भवन्ति वीरा यासु प्रशासनिक्रयासु ताभिः (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् सभाशालासेनियाणाधीस्थ (रुनथयन्) हिंसयन् (अनाभुवः) ये समन्ताद्धर्माचरणे भवन्ति त आभुवो नाभुवोऽनाभुवस्तान् (वृद्धस्य) ज्ञानादिगुणैः श्रेष्ठस्य (चित्) इव (वर्द्धतः) यो गुणैदींषैर्वा वर्द्धते तस्य (द्याम्) किरणप्रकाशविद्धाप्रकाशम् (इनक्षतः) व्याप्नुवतः। अयं निपातेकारोपपदस्य नक्षधातोः प्रयोगः। (स्तवानः) सं. स्तौति सः (वप्रः) उदिरकस्त्यक्ता (वि) विशेषे (ज्ञधान) हन्ति (संदिहः) संदिहत्यसौ सन्दिहः॥१००

अन्वय:-मनुष्यैर्य इन्द्रः परमविद्याद्यैश्वर्यवान् मनुष्य आभूभिः सह वर्त्तमानोऽनुव्रतायार्यायाव्रतान् दुष्टान् दस्यून् रन्धयन्ननाभुवः श्नथयन् शिथिली कुर्विन्ननक्षतो वर्धतो वृद्धस्य स्विन्नो वम्रोऽधर्मस्योद्गरकः सन्दिहो द्यां चिदिव प्रकाशं कुर्वन् सूर्य्य इव विद्याप्रचारं विस्तारयन् दुष्टान् विज्ञान विशेषेण हन्ति स एव कुलभूषकोऽस्ति तं सर्वाधिपतित्वेऽधिकृत्य राजधर्मः पालनीयः॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। मनुष्यैर्धार्मिकैर्भूत्वा सर्वान् मनुष्यानिबद्यातो निवर्त्य विद्यावतः कृत्वा धर्माऽधर्मौ संदिह्य निश्चित्य च धर्मग्रहणमधर्मत्यागश्च कर्य्यः कारियत्व्यश्च। सदैवार्य्याणां सङ्गं कृत्वा दस्यूनां च त्यक्तवा सर्वोत्तमायां व्यवस्थायां वर्त्तितव्यमित्॥९

पदार्थ:-मनुष्यों को उचित है कि जो (इन्ह्रा) परम बिद्धा आदि ऐश्वर्य्य, सभा, शाला, सेना और न्याय का अध्यक्ष (आभूभि:) उत्तम वीरों को शिक्षा करने वाली क्रियाओं के साथ वर्त्तमान (अनुव्रताय) अनुकूल धर्म युक्त व्रतों के धारण करने वाले आर्य प्रमुष्य के लिये (अपव्रतान्) मिथ्या भाषणादि दुष्ट कर्मयुक्त डाकू मनुष्यों को (रम्थयन्) अति लाइना करता हुआ (अनाभुवः) जो धर्मात्माओं से विरुद्ध मनुष्य हैं, उन पापियों को (श्रनथयन्) स्थिल करता (इनक्षतः) व्याप्तियुक्त (वर्धतः) गुण दोषों से बढ़ने वाले (वृद्धस्य) ज्ञानादि गुणों से युक्त अष्ठ की (स्तवानः) स्तृति का कर्त्ता (वप्रः) अधर्म का नाश (संदिहः) धर्माऽधर्म को संदेह से निश्चय करने वाला (द्याम्) सूर्य प्रकाश के (चित्) समान विद्या के प्रकाश को विस्तारयुक्त करती हुआ दुष्टों को (विज्ञधान) विशेष करके मारता है, उसी कुल को सुभूषित करने वाले आर्य मनुष्य की सर्विधिगतपन में स्वीकार कर राजधर्म का यथावत् पालन करें॥ ९॥

भावार्थ:-इस मन्त्र पे उपमालङ्कार है। सब धार्मिक मनुष्यों को उचित है कि सब मनुष्यों को अविद्या से निवारण और बिद्या पढ़ा विद्वान् करके धर्माऽधर्म के विचार पूर्वक निश्चय से धर्म का ग्रहण और अधर्म का त्याग करें। सदैव आर्यों का सङ्ग डाकुओं के सङ्ग का त्याग कर सबसे उत्तम व्यवस्था में वर्ते॥ ९॥

पुन: सभाध्यक्ष: कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह सभाध्यक्ष कैसा हो, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

अष्टक-१। अध्याय-४। वर्ग-९-११

मण्डल-१। अनुवाक-१०। सूक्त-५१

तक्ष्टार्त्त उशना सहसा सहो वि रोदसी मुज्मना बाधते शर्वः।

आ त्वा वार्तस्य नृमणो मनोयुज् आ पूर्यमाणमवहन्नभि श्रवः॥ १०॥ १०॥

तक्ष्र्तं। यत्। ते। उ्शनां। सहंसा। सहं:। वि। रोदंसी इतिं। मुज्मनां। बाधते। शर्वः। आ। स्त्रा। वार्कस्य। नृऽमुनः। मुनःऽयुर्जः। आ। पूर्यमाणम्। अवहुन्। अभि। श्रर्वः॥ १०॥

पदार्थ:-(तक्षत्) तनूकरोति (यत्) (ते) तव (उशना) कामयमानः (सहमा) स्पार्थ्यनाक्ष्णीन वा (सहः) बलं सहनम् (वि) विशेषार्थे (रोदसी) द्यावापृथिव्यौ (मज्मना) शुद्धेन बलेन । पंज्येति बलनामसु पठितम्। (निघं०२.९) (बाधते) विलोडयति (शवः) बलम् (आ) समन्ताल (खा) त्वाम् (वातस्य) बलिष्ठस्य वायोरिव (नृमणः) नृषु नयनकारिषु मनो यस्य तत्सम्बुद्धौ (मनोयुजः) ये मनसा युज्यन्ते ते भृत्याः (आ) समन्तात् (पूर्य्यमाणम्) न्यूनतारिहतम् (अवहन्) प्राप्नुषुः (अभि) आभिमुख्ये (श्रवः) श्रवणमन्नं वा॥१०॥

अन्वय:-हे नृमणो विद्वज्ञुशना! भवान् सहसा शत्रूणां सहो हल्यां सूर्यो रोदसी भूमिप्रकाशाविव मज्मना स्वकीयेन शुद्धेन बलेन शव: शत्रूणां बलं विबाधित आसक्ष्मा। मनोयुजो भृत्यास्त्वा त्वामाश्रित्य ते तव वातस्यापूर्यमाणं श्रवोऽभ्यवहन् समन्तात् प्राप्नुयः॥१०॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। नहिः विदुष्ण सेनाध्यक्षेण विना पृथिवीराज्यव्यवस्था शत्रूणां बलहानिर्विद्यासद्गुणप्रकाशा उत्तमान्नाद्भिपित्श्च जायते॥१०॥

पदार्थ:-हे (नृमणा:) मनुष्यों में मन देने चाल (उशना) कामयमान विद्वान् आप! (सहसा) अपने सामर्थ्य से शत्रुओं के (सह:) बल का हमने कर के जैसे सूर्य (रोदसी) भूमि और प्रकाश को करता है वैसे (मज्मना) शुद्ध बल से (शव:) शत्रुओं के बल को (विवाधते) विलोड़न वा (आतक्षत्) छेदन करते हो और (ते) आप के (मनोयुज:) मन से युक्त होने वाले भृत्य (त्वा) आप का आश्रय ले के (ते) आप के (वातस्य) बल्युक्त वायु के सम्बन्धी (आपूर्यमाणम्) न्यूनतारहित (श्रव:) श्रवण और अन्नादि को (अभ्यावहन्) मानु होवें। १०॥

भावार्थ:-इस मन्त्रे में बाचकलुप्तोपमालङ्कार है। विद्वान् सभाध्यक्ष के विना पृथिवी के राज्य की व्यवस्था शत्रुओं के बल को हानि विद्यादि सदुणों का प्रकाश और उत्तम अन्नादि की प्राप्ति नहीं होती॥१०॥ 🗸

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा हो, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

मिर्चष्ट यदुशने काव्ये सचाँ इन्द्री वृङ्कू वेङ्कुतराधि तिष्ठति।

उयो ययिं निर्पः स्रोतंसासृजुद् वि शुष्णंस्य दृंहिता ऐरयुत् पुर्रः॥ ११॥

मन्दिष्ट। यत्। उ्शनै। काव्ये। सर्चा। इन्द्रेः। वृङ्कू इति। वृङ्कुऽतर्रा। अर्धि। तिष्टुति। उग्रा युयिम्। निः। अपः। स्रोतंसा। असुजत्। वि। शुष्णस्य। दृंहिताः। ऐर्यत्। पुरः॥ ११॥

पदार्थ:-(मन्दिष्ट) अतिशयेन मन्दिता तत्सम्बुद्धौ (यत्) यस्मिन् (उशने) कामयमाने (काळे) कवीनां कर्मणि (सचा) विज्ञानप्रापकेन गुणसमूहेन (इन्द्रः) सभाध्यक्षः (वङ्कू) कृटिलमती शत्रूदासीनौ (वङ्कुतरा) अतिशयेन कृटिलौ (अधि) ईश्वरोपरिभावयोः (तिष्ठति) प्रवर्तते (उग्नः) दुश्चनां हन्ता (यियम्) याति सोऽयं यियमेंघस्तम् (निः) नितराम् (अपः) जलानीव प्राणान् (स्रोतसा) प्रसर्वितेन (असृजत्) सृजति (वि) विशिष्टार्थे (शुष्णस्य) बलस्य (दृंहिता) विधिकाः क्रियः (ऐरयत्) गमयित (पुरः) पूर्वम्॥११॥

अन्वय:-हे मन्दिष्ट! य उग्र इन्द्रः सभाध्यक्षो भवान् सूर्य्यः स्रोतस्मी पि इव यद्वङ्कू कुटिलौ वङ्कुतरौ शत्रूदासीनाविधितिष्ठति यथा सविता सचा यियं मेघं मिरसृजते नथा शुष्णस्य बलस्य दृंहिताः क्रियाः पुरो व्यैरयद् विविधतया प्रेरते तथा त्वं भव॥११॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। मनुष्येष्ठ कित्तिः सर्वशास्त्रवेत्ता कुटिलताविनाशको दुष्टानामुपर्युग्रः श्रेष्ठानामुपरि कोमलः सर्वथा बलवर्द्धकः पुरुषोऽस्ति, स एव सभाधिकारादिषु योजनीय:॥११॥

पदार्थ: - हे (मन्दिष्ट) अतिशय करके स्ति करने वाले जो (उग्र:) दुष्टों को मारने वाले (इन्द्र:) सभाध्यक्ष! आप जैसे सूर्य (स्रोतसा) स्रोताओं से (आप:) जलों को बहाता है, वैसे (उशने) अतीव सुन्दर (यत्) जिस (काव्ये) कवियों के कर्म में जो (वड्कू) कुटिल (वड्कुतरा) अतिशय करके कुटिल चाल वाले शत्रु और उदासी मनुष्यों के (अधितिष्ठति) राज्य में अधिष्ठाता होते हो जैसे सविता (सचा) अपने गुणों से (यियम्) मेघ को (निरमुजते) नित्य सर्जन करता है, वैसे (शुष्णस्य) बल की (दृंहिता) वृद्धि कराने हारी क्रियाओं को (पुर:) पहिले (व्येरयत्) प्राप्त करते हो, सो आपको सत्कार करने योग्य हो॥११॥

भावार्थ:-इस मेन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को योग्य है कि जो कवि सब शास्त्र का वक्ता, कुटिलूना का विनाश करने, दुष्टों में कठोर, श्रेष्ठों में कोमल, सर्वथा बल को बढ़ाने वाला पुरुष है, उसी को सभा आदि के अधिकारों में स्वीकार करें॥११॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अर्थ स्मा रथं वृष्पाणेषु तिष्ठसि शार्यातस्य प्रभृता येषु मन्दंसे।

अष्टक-१। अध्याय-४। वर्ग-९-११

मण्डल-१। अनुवाक-१०। सूक्त-५१

इन्द्र यथा सुतसोमेषु चाकनोऽनुर्वाणं श्लोकमा रोहसे दिवि॥ १२॥

आ। स्मा रथम्। वृष्ऽपानेषु। तिष्ठसा। शार्यातस्य। प्रऽभृताः। येषु। मन्दसे। इन्द्री। यथा। सुत्रस्मिषु) चाकनः। अनुर्वाणम्। श्लोकम्। आ। रोहुसे। दिवि॥ १२॥

पदार्थ:-(आ) अभितः (स्म) एव (रथम्) विमानादिकम् (वृषपाणेषु) ये वृष्यित पेषयन्ति ते वृषाः सोमादयः पदार्थास्तेषां पानेषु (तिष्ठसि) (शार्य्यातस्य) यो वीरसमूहं शस्तिं हिंसितुं योग्यान् समन्तान्निरन्तरमति व्याप्नोति तस्य मध्ये। अत्र शृधातोण्यंत् अतधातोरच् प्रत्ययः। (प्रभृताः) प्रकृष्टतया धृताः (येषु) उत्तमगुणेषु पदार्थेषु। (मन्दसे) हर्षसि (इन्द्र) उत्कृष्टैश्वय्यमुक्त (यथा) येन प्रकारेण (सुतसोमेषु) सुता निष्पादिताः सोमा उत्तमा रसा येभ्यस्तेषु (व्याकनः) कामयसे (अनर्वाणम्) अगन्याद्यश्वसहितं पश्चाद्यश्वरहितम्। अर्वेत्यश्चनामसु पठितम्। (निषंठ१.१४) (श्लोकम्) सर्वावयवैः संहितां वाचम् (आ) समन्तात् (रोहसे) (दिवि) द्योत्नात्पके सूर्यप्रकाशयुक्तेऽन्तिरक्ष इव न्यायप्रकाशे॥१२॥

अन्वय:-हे इन्द्र विद्वन् सभाध्यक्ष! यस्मात्त्वं (यथा विद्वांसः पदार्थविद्यां सम्यगेत्य सुखानि प्राप्नुवन्ति ये शार्थ्यातस्य येषु सुतसोमेषु वृषपाणेषु व्यवहारेषु प्रभृतास्तथैतान् प्राप्य मन्दसेऽनर्वाणं रथं श्लोकमातिष्ठसि चाकन दिव्यारोहसे तस्मात्त्वं योग्योऽसि॥ १२॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। निहं विमानादियानैर्विद्वत्सङ्गेन च विना कस्यचित्सुखं सम्भवति तस्माद्विद्वत्सभां पदार्थज्ञानोपयोगौ च कृत्वा सर्वेरानन्दितन्त्र्यम्॥१२॥

पदार्थ: -हे (इन्द्र) उत्तम ऐश्वर्य विले सिमाध्यक्ष ! जिससे तू (यथा) जैसे विद्वान् लोग पदार्थ विद्या को सिद्ध करके सुखों को प्राप्त होते और जो (आर्यातस्य) वीर पुरुष के (येषु) जिन (सुतसोमेषु) उत्तम रसों से युक्त (वृषपाणेषु) पृष्टि करने वाले सोमलतादि पदार्थों अर्थात् वैद्यक शास्त्र की रीति से अति श्रेष्ठ बनाये हुए उत्तम व्यवहारों में (अभूता:) धारणे किये हों, वैसे उनको प्राप्त होके (मन्दसे) आनन्दित होने और (अनर्वाणम्) अग्नि आदि अश्वसिंत, पशु आदि अश्वरहित (श्लोकम्) सब अवयवों से सहित रथ के मध्य (स्म) ही (आतिष्ठाम) स्थित और उस की (चाकन:) इच्छा करते हैं और (दिवि) प्रकाश रूप सूर्य्यलोक में (आर्रोहसे) आरेहण करते हो (स्म) इसलिये आप योग्य हो॥१२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। विमानादि यान वा विद्वानों के सङ्ग के विना किसी मनुष्य को सुख नहीं हो सकता। इससे विद्वानों के सभा वा पदार्थों के ज्ञान के उपयोग से सब मनुष्यों को आनन्द में रहना चाहिये॥१२॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा हो, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अर्ददा अर्भां महुते वेचस्यवे कुक्षीवते वृच्यामिन्द्र सुन्वते। मेर्नाभवो वृषणुश्वस्य सुक्रतो विश्वेत्ता ते सर्वनेषु प्रवाच्यां॥१३॥

६३२

अर्ददाः। अर्भाम्। मृहते। वृच्स्यवे। कक्षीवते। वृच्याम्। इन्द्रः। सुन्वते। मेना अभुकः। वृष्णुश्रीस्या सुकृतो इति सुऽक्रतो। विश्वा। इत्। ता। ते। सर्वनेषु। प्रुऽवाच्या॥ १३॥

पदार्थ:-(अददाः) देहि (अर्भाम्) अल्पामिप शिल्पिक्रयां वाचं वा (महूतें) महागुणिविशिष्टाय (वचस्यवे) आत्मनो वचः शास्त्रोपदेशिमच्छवे (कक्षीवते) कक्षाः प्रशस्ताङ्गुलयुद्धव विद्या प्रान्ता विद्यन्ते यस्य तस्मै। कक्षा इत्यङ्गुलिनामसु पिठतम्। (निघं०२.५) (वृचयाम्) छेदनभेदनप्रकारम् (इन्द्र) शिल्पिक्रियाविद्विद्वन्। (सुन्वते) शिल्पिवद्यानिष्पादकाय (मेना) वाणी। मेनेति बाङ्नामसु पिठतम्। (निघं०१.११) (अभवः) भव (वृषणश्चस्य) वृषणो वृष्टिहेतवो धार्यगमियतारे वाऽश्वा यस्य तस्य। वृषणवस्वश्चयोः। (अष्टा०वा०१.४.१८) अनेन भसंज्ञाकरणात्रलोपो न, णत्वं च भवित (सुक्रतो) शोभनाः क्रतवः प्रज्ञाः कर्माणि वा यस्य तत्सम्बुद्धौ (विश्वा) सर्वाणि (इत्र) एक (त्रा) तानि (ते) तव (सवनेषु) सुन्वन्ति यैः कर्मीभस्तेषु (प्रवाच्या) प्रकृष्टतया वक्तं योग्याप्रस्त्र।

अन्वय:-हे सुक्रतो इन्द्र! शिल्पविद्यादिद्वँस्त्वं क्रिय्येष्ट्रे महते सुन्वते कक्षीवते जनाय मां वृचयामभां स्वल्पामपि क्रियामददा: या सवनेष्ट्र प्रबच्या मेना वाक् क्रिया वा वृषणश्वस्य शिल्पक्रियामिच्छोस्ते यानि विश्वा कार्य्याणि सन्ति हो इदेव संसाधितुं समर्थोऽभवो भव॥१३॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः विद्विद्धरग्न्यादिपदार्थविद्यादानं कृत्वा सर्वेभ्यो हितं निष्पादनीयमिति॥१३॥

पदार्थ:-हे (सुक्रतो) शोभनूकमें सूक्तो (इन्द्र) शिल्प विद्या को जानने वाले विद्वान्। तू (वचस्यवे) अपने को शास्त्रोपदेश की इंग्ला करने वा (महते) महागुण विशिष्ट (सुन्वते) शिल्पविद्या को सिद्ध करने (कक्षीवते) विद्यापना अङ्गुली वाले मनुष्य के लिये जिस (वृचयाम्) छेदन-भेदनरूप (अर्भाम्) थोड़ी भी शिल्पक्रिया को (अददाः) देते हो (सवनेषु) प्रेरणा करने वाले कर्मों में (प्रवाच्या) अच्छे प्रकार कथन कर्मों योग्य (ग्रेमा) वाणी (वृषणश्चस्य) शिल्पक्रिया की इच्छा करने वाले (ते) आपके (विश्वा) सब कार्य हैं (त्रा) (इत्) उन ही के सिद्ध करने को समर्थ (अभवः) हूजिये॥१३॥

भावार्थः विद्वान् मनुष्यों को अग्नि आदि पदार्थों से विद्यादान करके सब मनुष्यों के लिये हित के काम करने चार्हिये। १२॥

पुनः स कीदृशग्गुणो भवेदित्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसे गुणवाला हो, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

इन्ही अश्रायि सुध्यो निरेके पुत्रेषु स्तोमो दुर्यो न यूपः।

अष्टक-१। अध्याय-४। वर्ग-९-११

मण्डल-१। अनुवाक-१०। सूक्त-५१

अश्वयुर्गेव्यू रथयुर्वसूयुरिन्द्र इद्रायः क्षेयति प्रयन्ता॥ १४॥

इन्ह्रं:। अश्रायि। सुऽध्यं:। निरेके। पन्नेषुं। स्तोमं:। दुर्यः। न। यूपं:। अश्रुऽयु:। गृव्युः। वसुऽयु:। वसुऽयु:। इन्ह्रं:। इत्। गुय:। क्षुयति। प्रुऽयुन्ता॥ १४॥

पदार्थ:-(इन्द्र:) सर्वाधीशः (अश्रायि) श्रियेत सेव्येत (सुध्यः) शोभून धीर्येषाते। अत्र छन्दस्युभयथा। (अष्टा०६.४.८६) अनेन पाक्षिको यणादेशः। (निरेके) निर्गता रेकाः शंका यस्मानस्मिन् (पज्रेषु) शिल्पव्यवहारेषु। अत्र पन धातोः बाहुलकाद् औणादिको स्कृ प्रत्येषो वर्णव्यत्ययेन जकारादेशश्च। (स्तोमः) स्तुतिसमूहः (दुर्यः) गृहसम्बन्धी द्वारस्थः। दुर्या इति गृहनामसु पठितम्। (निघं०३.४) (न) इव (यूपः) स्तम्भः (अश्वयुः) आत्मनोऽश्वानिच्छुः (ग्रव्युः) आत्मनो गाः धेनुपृथिवीन्द्रियिकरणात्रिच्छुः (इन्द्रः) विद्याद्यैश्वर्यवान् (इत्) एव (श्रयः) धुनानि (क्षयित) प्राप्नुयात्। लेट्प्रयोगोऽयम् (प्रयन्ता) प्रकर्षेण यमनकर्त्ता सन्॥१४॥

अन्वय:-योऽश्वयुर्गव्यूरथयुर्वसूयुरिदेवेन्द्रो राय क्षयति स मनुष्ट्रीर्य सुध्यः सन्ति तैर्दुर्यो यूपो नेवायमिन्द्रो निरेके पज्रेषु स्तोमः स्तोतुमर्होऽश्रायि॥१४॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। यथा सूर्यस्माश्रयेण बृहूनि कार्याणि सिध्यन्ति, तथा विदुषामग्निजलादीनां सकाशाद् रथसिद्ध्या धनप्राप्रिक्णीयत **इति/**१४॥

पदार्थ:-जो (अश्वयुः) अपने अश्वों (गृट्युः) अपने गौ पृथिवी इन्द्रिय किरणों (रथयुः) अपने रथ और (वसूयुः) अपने द्रव्यों की इच्छा और (प्रयन्ता) अच्छे प्रकार नियम करने वाले के (इत्) समान (इन्द्रः) विद्यादि ऐश्वर्ययुक्त विद्वान् (रायः) भनों को (क्षयित) निवासयुक्त करता है वह (सुध्यः) जो उत्तम बुद्धि वाले विद्वान् मनुष्य हैं, उत्तसे (दुर्यः) गृहसम्बन्धी (यूपः) खंभा के (न) समान (इन्द्रः) विद्यादि ऐश्वर्यवान् विद्वान् (निरेके) शकारहित् (पज्रेषु) शिल्पादि व्यवहारों में (स्तोमः) स्तुति करने योग्य (अश्रायि) सेवनयुक्त होता है। ४॥

भावार्थ:-इस मन्द्र में उपमालक्कार हैं। जैसे सूर्य से बहुत उत्तम-उत्तम कार्य सिद्ध होते हैं, वैसे विद्वान् वा अग्नि जलादि के सकार्य से रथ की सिद्धि के द्वारा धन की प्राप्ति होती है॥१४॥

अथ सभाध्यक्षगुणा उपदिश्यते॥

अब अगले मन्त्र में सभाध्यक्ष के गुणों का उपदेश किया है।।

इदं नमे विष्भार्य स्वराजे सत्यशुष्माय तुवसेऽवाचि।

्रम्सिन्निन्द्रं वृजने सर्ववीराः स्मत्सूरिभिस्तव शर्मन्स्याम॥१५॥११॥

इदम्। नर्मः। वृष्भार्य। स्वऽराजे। सत्यऽश्रुष्माय। तुवसे। अवाचि। अस्मिन्। इन्द्र। वृजने। सर्वऽवीराः।

मत्। सूरिऽभिः। तर्व। शर्मन्। स्याम्॥१५॥

पदार्थ:-(इदम्) प्रत्यक्षम् (नमः) सत्करणम् (वृषभाय) सुखवृष्टेः कर्त्रे (स्वराजे) स्वयं राजते तस्मै सर्वाधिपतये परमेश्वराय (सत्यशुष्माय) सत्यमिवनश्वरं शुष्मं बलं यस्य तस्मै (तवसे) बलाय। तव इति बलनामसु पठितम्। (निघं०२.९) (अवाचि) उच्यते (अस्मिन्) जगित यक्ष्यमाणे वा (इन्द्र) परमपूज्य (वृजने) वर्जन्ति दुःखानि येन बलेन तस्मिन्। वृजनिमिति बलनामसु पठितम्। (निघं०२.९) (सर्ववीराः) सर्वे च वीराश्च ते सर्ववीराः (स्मत्) श्रेष्ठार्थे (सूरिभिः) मेधाविभिः सह (तव) (शर्मन्) शर्मणि गृहे। शर्मिति गृहनामसु पठितम्। (निघं०३.४) (स्थाम) भवेम॥१५॥

अन्वय:-हे इन्द्र सभेश! यथा सूरिभिर्वृषभाय सत्यशुष्माय तवस्रे स्वसंजे जगदीश्वरायेदं नमोऽवाच्युच्यते तथास्मदादिभिरप्युच्यत एवं विधाय वयं तवास्मिन् वृजने स्मिन् स्मत् सुष्ठुतया सर्ववीराः स्याम भवेम॥१५॥

भावार्थ:-सर्वैर्मनुष्यैर्विद्वद्भिः सह वर्त्तमानैर्भूत्वा परमेश्वरस्थोपासनां पूर्णप्रीत्या विद्वत्सङ्गं च कृत्वाऽस्मिन् संसारे परमानन्दः प्राप्तव्यः प्रापयतिव्यश्चेति॥१५॥

अस्मिन् सूक्ते सूर्योग्निवद्युदादिपदार्थवर्णनं बलादिप्राप्णमनेकालङ्कारोक्त्या विविधार्थवर्णनं सभाध्यक्षपरमेश्वरगुणप्रतिपादनं चोक्तमत एतत्सूक्तार्थस्य पूर्वभूक्तोक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेदितव्यम्।

इत्येकादशो ११ वर्ग ५१ एकपञ्चाशं सूर्वतं च समान्तम्। वर्गः ११ सूक्तम्॥५१॥

पदार्थ:-हे (इन्द्र) परम पूजनीय सभापते (जैसे (सूर्राभ:) विद्वान् लोग (वृषभाय) सुख की वृष्टि करने (सत्यशुष्पाय) विनाशरहित बलयुक्त (तवसे) अति बल से प्रवृद्ध (स्वराजे) अपने आप प्रकाशमान परमेश्वर को (इदम्) इस (नम:) सत्कार को (अवाधि) कहते हैं, वैसे हम भी करें, ऐसे करके हम लोग (तव) आपके (अस्मिन्) इस जगत् वा इस (वृज्जे) दु:खों को दूर करने वाले बल से युक्त (शर्मन्) गृह में (स्मत्) अच्छे प्रकार सुखी (स्थाम) होने ॥१५॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में श्राचकलुप्तोपभालङ्कार है। सब मनुष्यों को विद्वान् के साथ वर्त्तमान रह कर परमेश्वर ही की उपासना, पूर्णभ्रोति से विद्वानों का सङ्ग कर परम आनन्द को प्राप्त करना और कराना चाहिये॥१५॥

इस सूक्त में सूर्य अनि और बिजुली आदि पदार्थों का वर्णन, बलादि की प्राप्ति, अनेक अलङ्कारों के कथन से विविध अर्थों का वर्णन और सभाध्यक्ष तथा परमेश्वर के गुणों का प्रतिपादन किया है। इससे इस सूक्तार्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये।

यह ग्यारहवां वर्ग ११ और इक्यावनवां ५१ सूक्त समाप्त हुआ॥१५॥

अथाऽस्य पञ्चदशर्चस्य द्विपञ्चाशस्य सूक्तस्याङ्गिरसः सव्य ऋषिः। इन्द्रो देवता॥ १,८ भुरिक् त्रिष्ठुप्। ७ त्रिष्ठुप्। ९,१० स्वराट् त्रिष्ठुप्। १२,१३,१५ निचृत्त्रिष्ठुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। २<u>-</u>४

निचृज्जगती। ५,१४ जगती। ६,११ विराट् जगती च छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनः स इन्द्रः कीदृगित्युपदिश्यते॥

अब बावनवें सूक्त का आरम्भ है। उसके प्रथम मन्त्र में इन्द्र कैसा हो, इस विषय् का उपदेश किया है।।

त्यं सु मेषं महिया स्वर्विदं शृतं यस्य सुभ्वः साकमीरते। अत्यं न वाजं हवनस्यदं रथुमेन्द्रं ववृत्यामवसे सुवृक्तिभिः॥

त्यम्। सु। मेषम्। मृह्यः। स्वःऽविद्यम्। शृतम्। यस्यः। सुभ्वः। स्वाकम्। ईस्ताः अत्यम्। न। वार्जम्। हृवनुऽस्यदंम्। रथम्। आ। इन्द्रम्। वृवृत्याम्। अवसे। सुवृक्तिभिः॥१॥

पदार्थ:-(त्यम्) तं सभाध्यक्षम् (सु) शोभने (मेषम्) सुखजेलाभ्यां सर्वान् सेक्तारम् (महय)
पूजयोपकुरु वा। अत्र अन्येषामिष दृश्यत इति दीर्घ:। (स्वर्विदम्) स्वर्ग्तरिक्षं विन्दित येन तम् (शतम्)
असंख्याताः (यस्य) इन्द्रस्य (सुभ्वः) ये जनाः सुष्ठु सुखं भावयन्ति ते। अत्र छन्दस्युभयथा
(अष्टा०६.४.८७) इति यणादेशः। (साकम्) सह इस्ते) गच्छन्ति प्राप्नुवन्ति (अत्यम्) अश्वम्। अत्य
इत्यश्चनामसु पिठतम्। (निघं०१.१४) (न) इव (वाजम्) क्रेगयुक्तम् (हवनस्यदम्) येन हवनं पन्थानं
स्यन्दते तम् (रथम्) विमनादिकम् (आ) समन्तात् (इन्द्रम्) परमैश्वर्यवन्तम् (ववृत्याम्) वर्तयेयम्, लिङ्
प्रयोगोऽयम्। बहुलं छन्दसीत्यादिभिः द्विन्तिदेकम् (अवसे) रक्षणाद्याय (सुवृक्तिभिः) सुष्ठु शोभना
वृक्तयो दुःखवर्जनानि यासु क्रियासु त्रिभः। हाः।

अन्वय:-हे विद्वन्! यस्येन्द्रस्य सेनाध्यक्षस्य शतं सुभ्वो जनाः सुवृक्तिभिः साकमत्यमश्चं नेवावसे हवनस्यदं वाजमिन्द्रं स्वर्विदं रथ्मीरते, येनाह्रं ववृत्यां वर्त्तयेयं त्यन्तं मेषं त्वं सुमहय॥१॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। मनुष्या यथाऽश्वं नियोज्य रथादिकं चालयन्ति, तथैतै-र्वह्नचादिभिर्यानानि वाहिय्रित्वा कार्याप्रि साधयेयु:॥१॥

पदार्थ:-(यस्य) जिस प्रिमेश्वर्ययुक्त सभाध्यक्ष के (शतम्) असंख्यात (सुभ्व:) सुखों को उत्पन्न करने वाले कारीग्रह लोग (सुवृक्तिभि:) दु:खों को दूर करने वाली उत्तम क्रियाओं के (साकम्) साथ (अत्यम्) अश्वर्षके (क्र) समान अग्नि जलादि से (अवसे) रक्षादि के लिये (हवनस्यदम्) सुखपूर्वक आकाश मूर्ग में प्राप्त करने वाले (वाजम्) वेगयुक्त (इन्द्रम्) परमोत्कृष्ट ऐश्वर्य के दाता (स्वर्विदम्) जिससे आकाश मार्ग से जा आ सकें, उस (रथम्) विमान आदि यान को (ईरते) प्राप्त होते हैं और जिस्से में (बवृत्याम्) वर्तता हूं (त्यम्) उस (मेषम्) सुख को वर्षाने वाले को हे विद्वान् मनुष्य! तू इनिका (सुमहय) अच्छे प्रकार सत्कार कर॥१॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को जैसे अश्व को युक्त कर रथ आदि को चलाते हैं, वैसे अग्नि आदि से यानों को चला के कार्यों को सिद्ध कर सुखों को प्राप्त होना चाहिये॥१॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा हो, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

स पर्वतो न ध्रुणेष्वच्युतः सहस्रमूतिस्तर्विषीषु वावृधे। इन्द्रो यद्वृत्रमर्वधीन्नदी्वृत्तमुब्जन्नणीस् जर्हषाणो अर्थसा॥२॥

सः। पर्वतः। न। धुरुणेषु। अच्युतः। सहस्रम्ऽऊतिः। तर्विषीषु। वृवृध्धः हेन्द्रः यत्। वृत्रम्। अवधीत्। नुदीऽवृतम्। उब्जन्। अणीसि। जर्हषाणः। अर्थसा॥२॥

पदार्थ:-(स:) पूर्वोक्तः (पर्वतः) मेघः (न) इव (धरुणेषु) भरकेषु वाय्वादिषु (अच्युतः) अक्षयः (सहस्रमूतिः) सहस्रमूतयो रक्षणीदीनि यस्मात्सः। अत्र वाच्छन्द्रस् सर्व विधयो भवन्ति इति विभक्त्यलोपः। (तिवषीषु) बलयुक्तेषु सैन्येषु (वावृधे) अतिशयेन वर्द्धते (इन्द्रः) सूर्यः (यत्) यः (वृत्रम्) मेघम् (अवधीत्) हन्ति (नदीवृतम्) नदीभिवृतो युक्तो नदीर्वर्त्तयिति वा तम् (उब्जन्) आर्जवं कुर्वन्। अधो निपातयन् वा (अर्णांसि) जलानि अर्ण इत्युदकनामसु पठितम्। (निघं०१.१२) (जहंषाणः) पुनः पुनर्हर्षं प्रापयन् (अन्धसा) अत्राहिन्सा ।

अन्वय:-हे राजप्रजाजन! यथा धरुणेष्वच्युतोऽणींस्युब्जिनन्द्रो नदीवृतं वृत्रमवधीत्, स च पर्वतो नेव वावृधे पुनः पुनर्वर्धते, यद्यस्त्वं शत्रून्/हिंभू सहस्रमूतिस्तिवषीषु जर्हषाणः सन्नन्धसा वर्द्धस्व॥२॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्त्रोपमालक्ष्म्यः। यो मनुष्यः सूर्यवत्सेनादिधारणं कृत्वा मेघवदन्नादिसामग्रचा सह वर्त्तमानो बलानि वर्धयित, स गिरिवित्स्थरसुखः सन् शत्रून् हत्वा राज्यं वर्द्धयितुं शक्नोति॥२॥

पदार्थ:-हे राजप्रजाजन! जैसे (धर्मणेषु) धारकों में (अच्युत:) सत्य सामर्थ्य युक्त (अणांसि) जलों को (उब्जन्) बल (कहता हुआ (इन्द्रः) सिवता (नदीवृतम्) निदयों से युक्त वा निदयों को वर्त्ताने वाले (वृत्रम्) मेघ को (अवधीत्) मारता है (सः) वह (पर्वतः) पर्वत के (न) समान (ववृधे) बढ़ता है, वैसे (यत्) जो दे शत्रुओं को मार (सहस्रमूतिः) असंख्यात रक्षा करनेहारे (तिविषीषु) बलों में (जर्ह्रषाणः) ब्रास्टिं को प्राप्त करता हुआ (अन्धसा) अन्नादि के साथ वर्त्तमान बार-बार बढ़ाता रहा। २॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य सेना आदि को धारण कर और मेघ के कुल्य अन्नदि सामग्री के साथ वर्त्तमान हो के बलों को बढ़ाता है, वह पर्वत के समान स्थिर सुखी हो सब्द्रों को मार कर राज्य के बढ़ाने में समर्थ होता है॥२॥ अष्टक-१। अध्याय-४। वर्ग-१२-१४

मण्डल-१। अनुवाक-१०। सूक्त-५२

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

स हि द्वरो द्वरिषुं वव्र उर्धनि चन्द्रबुध्नो मर्दवृद्धो मनी्षिभिः। इन्द्रं तमह्वे स्वपुस्ययां धिया मंहिष्ठरातिं स हि पप्रिरन्धंसः॥३॥

सः। हि। द्वरः। द्वरिषुं। वृद्रः। ऊर्धनि। चृन्द्रऽबुंध्नः। मर्दऽवृद्धः। मुनीषिऽभिः। इन्द्रंम्। तम्। अह्वे। सुऽअपुस्ययां। धिया। मंहिष्ठऽरातिम्। सः। हि। पप्रिः। अर्ध्यसः॥३॥

पदार्थ:-(स:) पूर्वोक्तः (हि) किल (हुरः) यो द्वरत्यावृणोति (हुप्तिषु) आवरकेषु व्यवहारेषु (ववः) कूप इव। वव इति कूपनामसु पठितम्। (निघं०३.२३) (अक्रिन्) उषि। अत्र वाच्छन्दिस सर्वे० इति अधसो नङ् (अष्टा०५.४.१३१) इति समासान्तो नङादेशः। अध इत्युषर्नामसु पठितम्। (निघं०१.८) (चन्द्रबुध्नः) चन्द्रं सुवर्णं चन्द्रमा वा बुध्नेऽन्तरिक्षे यस्य यस्माद्वा सः। चन्द्रमिति हिरण्यनामसु पठितम्। (निघं०१.२) (मदवृद्धः) मदो हर्षो वृद्धो यस्य यस्माद्वा सः (मन्द्रीषिभिः) मेधाविभिः। मनीषीति मेधाविनामसु पठितम्। (निघं०३.१५) (इन्द्रम्) विद्वांसम् (तम्) पूर्वेभितम् (अह्वे) आह्वयामि (स्वपस्यया) अप इति कर्मनामसु पठितम्। (निघं०२.१) (धिया) प्रज्ञया (महिष्ठरातिम्) अतिशयेन मंहित्री रातिर्दानं यस्य यस्माद्वा तम् (सः) पूर्वोक्तः (हि) खलु (प्रिः) पूरकः (अन्धसः) अन्नादेः॥३॥

अन्वय:-य ऊधिन द्वरिषु द्वरश्चन्द्रबुध्यो पदवृद्धोऽन्धसः पप्रिर्वव्र इव मेघोऽस्ति, तद्वन्मनीषिभिः सह वर्त्तमानः सभाध्यक्षो हि किल वर्तेत, क्रं मंहिष्ठरादिमिन्दं स्वपस्यया धियाऽहमह्न आह्नयामि॥३॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। मनुष्पेर्श्वी मिघनस्त्रजाः पालयति सूर्यवत्सुखं वर्षति, स परमैश्वर्यवान् सभाध्यक्षः संस्थापनीय:॥३॥

पदार्थ:-जो (ऋषिन) क्रातःकाल में (द्वरिषु) अन्धकारावृत व्यवहारों में (द्वरः) अन्धकार से आवृतद्वार (चन्द्रबुध्नः) बुध्न अर्थात अन्तरिक्ष्म में सुवर्ण वा चन्द्रमा के वर्ण से युक्त (मदवृद्धः) हर्ष से बढ़ा हुआ (अन्धसः) अन्निद् को (प्रिः) पूर्ण करने वाला (ववः) कूप के समान मेघ है, उसके तुल्य (मनीषिभः) मेधावियों के साथ (हि) निश्चय करके वर्तमान सभाध्यक्ष है (तम्) उस (मंहिष्ठरातिम्) अत्यन्त पूजनीय द्वानयुक्त (इन्द्रम्) विद्वान् को (स्वपस्थया) उत्तम कर्मयुक्त व्यवहार में होने वाली (धिया) बुद्धि में सिह्ने) आह्वान करता हूं॥३॥

भावार्थ: इस फेन्न में उपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि जो मेघ के तुल्य प्रजापालन करता है, उस प्रमेश्वर्य युक्त पुरुष को सभाध्यक्ष का अधिकार देवें॥३॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

आ यं पृणन्ति दिवि सद्मेबर्हिषः समुद्रं न सुभ्वर्रः स्वा अभिष्टियः। तं वृत्रहत्ये अनु तस्थुरूतयः शुष्मा इन्द्रमवाता अह्तरप्सवः॥४॥

आ। यम्। पृणन्ति। दिवि। सद्गीऽबर्हिषः। सुमुद्रम्। न। सुऽभ्वः। स्वाः। अभिष्टेयः। नर्म्। वृष्ठिरहेन्स्ये। अनुं। तुस्थुः। ऊतर्यः। शुष्माः। इन्द्रम्। अवाताः। अहुंतऽप्सवः॥४॥

पदार्थ:-(आ) समन्तात् (यम्) सभाध्यक्षम् (पृणिन्ति) सुखयेयुः (दिवि) न्यायप्रकाशे (सदाबर्हिषः) सद्मस्थानं बर्हिरुत्तमं यासां ताः (समुद्रम्) सागरम् (न) इव (सुभ्वः) यो सुष्ठु भवन्ति ताः (स्वाः) स्वकीयाः (अभिष्टयः) इष्टेच्छाः (तम्) पूर्वोक्तम् (वृत्रहत्ये) वृत्राणां मैघाञ्चयवानां हत्या हननिमव यस्मिँस्तस्मिन् संग्रामे (अनु) आनुपूर्व्ये (तस्थुः) वर्तन्ते (ऊतयः) पक्षणद्याः (शुष्माः) बलवत्यः शोषण-कारिण्यो वा (इन्द्रम्) परमैश्वर्यहेतुं सूर्य्यम् (अवाताः) अविद्यमानां वायुः कम्पनं यासां तां (अहुतप्सवः) अहुतं कुटिलं सूर्य्यरूपं यासां ताः। अत्र हु ह्रारेश्चन्द्रस्मा (अष्टा०७.२.३१) अनेन हुरादेशः। प्रवीति रूपनामसु पठितम्। (निघं०३.७)॥४॥

अन्वय:-सद्मबर्हिषो मनुष्या अवाता नद्यः सुभ्वो समुद्रं न यमिन्द्रं वृत्रहत्ये स्वा अभिष्टयः शुष्मा अहुतप्सव ऊतयः प्रजा आपृणन्ति तमनुतस्थुरनुतिष्ठेयुः स एव साम्राज्यं कर्त्तुमर्हति॥४॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। यथा सरित: समुद्धं जलम्यमन्तरिक्षं वा प्राप्य स्थिरा भवन्ति, तथैव ससभं विद्वांसं प्राप्य सर्वा: प्रजा स्थिरसुखा जायन्त्रेम्।

पदार्थ:-(सदावर्हिष:) उत्तम स्थान आसेन्युक्त (सुभ्व:) उत्तम होने वाले मनुष्य (अवाता:) वायु के चलाने से रहित निदयां (समुद्रं न् जिसे साग्राप्त वा आकाश को प्राप्त होकर स्थित होती हैं, वैसे जिस (इन्द्रम्) सभासदों सिहत सभापृति को (घृत्रहेत्य) जिनमें मेघावयवों के हनन तुल्य हनन होता, उस संग्राम में (स्वा:) अपने (अभिष्ट्रग्रः) शुभेच्छा युक्त (शुष्मा:) बल सिहत (अहुतप्सव:) कुटिलतारिहत सूर्यरूप (ऊतय:) सुरिक्षत प्रकृत (आ पृष्णिन) सुखी करें (तम्) उस परमैश्वर्यकारक वीरपुरुष के (अनुतस्थ:) अनुकूल स्थिर होने घृत्रवत्ती राज्य करने को योग्य होता है॥४॥

भावार्थ:-इस महित विद्वान् को प्राप्त होकर सब प्रजा स्थिर सुखवाली होती हैं॥४॥

पुनः स कीदृशो भवेदित्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा हो, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अभि स्वेवृष्ट्रं मदे अस्य युध्यतो रुघ्वीरिव प्रवृणे संस्रुरूतयः।

इस्रो यद्वजी धृषमाणो अर्थसा भिनद् बलस्य परिधीरिव त्रितः॥५॥१२॥

अष्टक-१। अध्याय-४। वर्ग-१२-१४

मण्डल-१। अनुवाक-१०। सूक्त-५२

अभि। स्वऽवृष्टिम्। मदे। अस्य। युध्यंतः। रुघ्वीःऽईव। प्रवृणे। सुस्रुः। ऊतर्यः। इन्द्रंः। यत्। वृज्री। धृषमाणः। अर्थसा। भिनत्। बुलस्यं। पुरिधीन्ऽईव। त्रितः॥५॥

पदार्थ:-(अभि) आभिमुख्ये (स्ववृष्टिम्) स्वस्य शस्त्राणां वा वृष्टिर्यस्य तम् (मदे हर्षे अस्य) शत्रोर्वृत्रस्य वा (युध्यतः) युद्धं कुर्वतः (रध्वीरिव) यथा गमनशीला नद्यः (प्रवणे) निम्नस्थाने (सस्तुः) गच्छन्ति (ऊतयः) रक्षणाद्याः (इन्द्रः) सभाद्यध्यक्षो विद्युद्धा (यत्) यः (वज्री) प्रशस्ति वज्रः शत्रुष्छेदकः शस्त्रसमूहो विद्यते यस्य सः (धृषमाणः) शत्रूणां धर्षणाऽऽकर्षणे प्रगल्भः (अस्यसा) अत्रादिनोद्दकादिना वा (भिनत्) भिनत्ति (बलस्य) बलवतः शत्रोर्मेघस्य वा। बल इति मेघनावस् पठितम्। (निघं०१.१०) (परिधीरिव) सर्वत उपरिस्था गोलरेखेव (त्रितः) उपरिरेखातो मध्यरेखातृरिकर्यं (रिखाद्यस्य॥५॥

अन्वय:-यद्य: सूर्य इव शस्त्राणां स्ववृष्टिं कुर्वन् धृषमाणो वजीन्द्रः सभाद्यध्यक्षो मदेऽस्य युध्यतः शत्रोस्त्रित: परिधीरिव बलमभिभिनदभितो भिनत्ति तस्यान्धसा रघ्वीः प्रेष्ठण इवातय: सस्रु:॥५॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। यथाऽऽपो निम्नस्थानं प्रतिगच्छन्ति, तथा सभाध्यक्षो नम्रो भूत्वा विनयं प्राप्नुयात्॥५॥

पदार्थ:-(यत्) जो सूर्य्य के समान (स्ववृष्टिम्) अपने शस्त्रों की वृष्टि करता हुआ (धृषमाणः) शत्रुओं को प्रगल्भता दिखाने हारा (वज्री) शत्रुओं को छेद्दम करने वाले शस्त्रसमूह से युक्त (इन्द्रः) सभाध्यक्ष (मदे) हर्ष में (अस्य) इस (युध्यतः) युद्ध करने हुए (बलस्य) शत्रु के (त्रितः) ऊपर, मध्य और टेढ़ी तीन रेखाओं से (परिधीरिव) सब प्रकार ऊपर की गोल रेखा के समान बल को (अभि भिनत्) सब प्रकार से भेदन करता है, उसके (अध्यम्) अन्नाद वा जल से (रध्वीरिव) जैसे जल से पूर्ण नदियां (प्रवणे) नीचे स्थान में जाती हैं, वैसे (अत्यः) रक्षा आदि (ससुः) गमन करती हैं॥५॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्योपमालङ्कार है। जैसे जल नीचे स्थान को जाते हैं, वैसे सभाध्यक्ष नम्र होकर विनय को प्राप्त होवे॥ ।

पुनः स किवत्कि करोतीत्युपदिश्यते॥

फिर वह सभाध्यक्ष किसके तुल्य क्या करता है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

परी घृणा चरित तित्विषे शवोऽपो वृत्वी रजसो बुध्नमाशयत्।

वृत्रस्य यत्रेष्वणे दुर्गृभिश्वनो निज्ञघन्य हन्वोरिन्द्र तन्युतुम्॥६॥

पृर्शि ईम्। घृणा चर्ति। तित्विषे। शर्वः। अपः। वृत्वी। रजसः। बुध्नम्। आ। अश्यत्। वृत्रस्यं। यत्। प्रवणे। दुः रगृभिश्वनः। निऽज्ञथस्यं। हन्वोः। इन्द्र। तन्यतुम्॥६॥

पदार्थ:-(परि) सर्वतः (ईम्) उदकम्। ईिमत्युदकनामसु पठितम्। (निघं०१.१२) (घृणा) दीप्ति: क्षरणं वा (चरित) सेवते (तित्विषे) प्रकाशाय (शवः) बलम् (अपः) जलानि (वृत्वी) आवृत्य

६४०

(रजस:) अन्तरिक्षस्य मध्ये (बुध्नम्) शरीरम्। इदमपीतरबुध्नमेतस्मादेव बद्धा अस्मिन् धृता: प्राणा इति। (निरु०१०.४४) (आ) समन्तात् (अशयत्) शेते (वृत्रस्य) मेघस्य (यम्) यस्य (प्रवणे) गमने (दुर्गृभिश्वनः) दुःखेन गृभिर्गृहिर्ग्रहणं श्वाभिव्याप्तिर्यस्य तस्य। अत्र गृहधातोः इक् कृष्णिदिभ्य (अष्टा०३.३.१०८) इक् हस्य भत्वं च। अशूङ् व्याप्तावित्यस्मात् कनिन् प्रत्ययो वृगागम्भे कारलोपश्च। (निज्ञघन्थ) नितरां हन्ति (हन्वोः) मुखावयवयोरिव (इन्द्र) सवितवद्वर्त्तमान (तन्यतुम्) विद्युतम् ६॥

अन्वय:-हे इन्द्र! यथा तित्विषे यस्येन्द्रस्य सूर्यस्य शवो बलं घृणा दीप्तिरीमुदकं परिचरित यो यस्य दुर्गृभिश्वनो वृत्रस्य मेघस्य बुध्नं शरीरं रजसोऽन्तरिक्षस्य मध्येऽपो वृत्वी जलमानृत्याशयच्छते तस्य हन्वोरग्रपार्श्वभागयोरुपरि तन्यतुं विद्युतं प्रहृत्य प्रवणे निजघन्थ तथा वर्त्तमान् सन्याये प्रवर्तस्व॥६॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। मनुष्याणामियं योभ्यतिस्ति यत्सूर्यमेघवद्वर्त्तित्वा विद्यान्यायवर्षा प्रकाशीकार्येति॥६॥

पदार्थ: - हे (इन्द्र) सूर्य के समान वर्तमान सभाध्यक्ष जैसे (तिस्तिषे) प्रकाश के लिये (यत्) जिस सूर्य का (शवः) बल वा (घृणा) दीप्ति (ईम्) जल को (परिचर्ति) सेवन करती है जो (दुर्गृभिश्चनः) दुःख से जिसका ग्रहण हो (वृत्रस्य) मेघ का (बुध्नम्) रिरिंग् (रज्जमः) अन्तरिक्ष के मध्य में (आपः) जल को (वृत्वी) आवरण करके (अशयत्) सोता है इसके (हन्योः) आगे-पीछे के मुख के अवयवों में (तन्यतुम्) बिजली को छोड़कर उसे (प्रवणे) नीचे (निजधन्य) गार कर गिरा देता है, वैसे वर्तमान होकर न्याय में प्रवृत्त हूजिये॥६॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोप्रमालङ्कार है। मनुष्यों को योग्य है कि सूर्य वा मेघ के समान वर्त्त के विद्या और न्याय की वर्षा का प्रवास किरंग हो।

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कै स है, इस बिषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

हुदं न हि त्वा न्युष्ट्यूर्भयो ब्रह्माणीन्द्र तव यानि वर्धना।

त्वष्टा चित्ते युज्य बाब्धे शर्वस्तृतक्ष् वर्त्रम्भिभूत्योजसम्॥७॥

हुदम्। न। हि। त्वा बिक्रिक्चषित्। ऊर्मर्यः। ब्रह्माणि। इन्द्र। तर्व। यानि। वर्धना। त्वष्टां। चित्। ते। युज्यम्। वृवधे। श्रद्धे। तुतक्षे। वर्षम्। अभिभूतिऽओजसम्॥७॥

पदार्थ: (हदम) जलाशयम् (न) इव (हि) खलु (त्वा) त्वाम् (न्यृषित) नितराम् प्राप्नुवन्ति (ऊर्मयः) तरङ्गाद्धरः (ब्रह्माणि) बृहत्तमान्यन्नानि (इन्द्र) विद्युद्धद्वर्त्तमान (तव) (यानि) वक्ष्यमाणानि (वर्धना) सुखानां वर्धनानि (त्वष्टा) मेघाऽवयवानां मूर्त्तद्रव्याणां च छेत्ता (चित्) अपि (ते) तव (युज्यम्) योक्तुमहम् (व्रावृधे) वर्धते (शवः) बलम् (ततक्ष) तक्षति (वज्रम्) प्रकाशसमूहम् (अभिभूत्योजसम्) अभिगतानि तप ऐश्वर्याण्योजः पराक्रमश्च यस्मात्तम्॥७॥

अष्टक-१। अध्याय-४। वर्ग-१२-१४

मण्डल-१। अनुवाक-१०। सूक्त-५२

अन्वय:-हे इन्द्र! ते वर्द्धना ब्रह्माण्ययूर्मयो हृदं न न्यृषन्ति यथा हि त्वष्टा ज्योतींषि शवोऽभिभूत्योजसं युज्यं वज्रं प्रहृत्य सर्वान् पदार्थान् ततक्ष तक्षति तथा त्वं भव॥७॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा जलं निम्नं स्थानं गत्वा स्थिरं स्वर्द्धं भवति तथा सद्गुणविनयवन्तं पुरुषं प्राप्य स्थिराः शुद्धिकारका भवन्तीति॥७॥

पदार्थ:-हे (इन्द्र) बिजुली के समान वर्त्तमान (ते) आपके (वर्द्धना) बढ़ानें होरे (व्रह्माणि) बड़े-बड़े अत्र (ऊर्मय:) तरंग आदि (हृदम्) (न) जैसे नदी जलस्थान को प्राप्त होती हैं, वैसे (हि) निश्चय करके ज्योतियों को (न्यूषिन्त) प्राप्त होते हैं, वह (त्वष्टा) मेघाऽवयव वा प्रतिपान द्रव्यों का छेदन करने वाले (शव:) बल (अभिभूत्योजसम्) ऐश्वर्ययुक्त पराक्रम तथा (युज्यम्) पुक्त करने योग्य (वज्रम्) प्रकाश समृह का प्रहार करके सब पदार्थों को (ततक्ष) छेदन करता है, वैसे आप-भी हुजिये॥७॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे ज़ब्ब चीचे स्थानों को जाकर स्थिर वा स्वच्छ होता है, वैसे ही राजपुरुष उत्तम-उत्तम गुणयुक्त तथा विनय वाले पुरुष को प्राप्त होकर स्थिर और शुद्धि करने वाले होते हैं॥७॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यवेश

फिर वह कैसा हो, यह विषय स्पदेश अमले मन्त्र में कहा है॥

ज्यन्वाँ उ हरिभिः संभृतक्रत्विन्द्रं वृत्रं मनुषे गार्नुयन्नपः। अयंच्छथा बाह्वोर्वज्रमायसमधारुखो द्व्या सूर्यं दृशे॥८॥

जुघुन्वान्। ऊम् इति। हरिऽभिः। संभृतिकतो इति सम्भृतऽक्रतो। इन्द्री। वृत्रम्। मनुषे। गातुऽयन्। अपः। अर्यच्छथाः। बाह्वोः। वर्ज्रम्। आयुसम्। अधौरयः। द्विवि। आ। सूर्यम्। दृशे॥८॥

पदार्थ:-(जघन्वान्) हमूत्र कुर्वन् (३) वितर्के (हिरिभिः) हरणशीलैरश्वैः किरणैर्वा (संभृतक्रतो) सम्भृता धारिताः क्रतवः क्रिय्म प्रज्ञा वा येन तत्सम्बुद्धौ (इन्द्र) मेघावयवानां छेदकवच्छत्रुच्छेदक (वृत्रम्) मेघम् (मनुषे) मानवाय (गतुष्वन्))यौ गातुं पृथिवीमेति सः (अपः) जलानि (अयच्छथाः) (बाह्वोः) बलाकर्षणयोरिव भुजयोः (बज्रम्) किरणसमूहवच्छस्त्रसमूहम् (आयसम्) अयोनिर्मितम् (अधारयः) धारय (दिवि) हुगेतनात्मके व्यवहारे (आ) समन्तात् (सूर्यम्) सवितृमण्डलिमव न्यायविद्याप्रकाशम् (दृशे) दर्शियतुग्वार्थः

अन्वय:-हे सम्भृतक्रतो इन्द्र सभेश! त्वं यथा सविता हरिभिर्वृत्रं जघन्वानपो मनुषे गातुयन् प्रजा धरित तथा प्रजापालनाय बाह्वोरायसं वज्रमाधारयः समन्ताद् धारय सार्वजनिकसुखाय दिवि सूर्यं दृश इव न्यायुविद्याक प्रकाशय॥८॥

६४२

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा सूर्यलोको बलाकर्षणाभ्यां सर्वान् लोकान् धृत्वो जलमाकृष्य वर्षित्वा दिव्यं सुखं जनयित, तथैव सभा सर्वान् शुभगुणान् धृत्वा श्रियमाकृष्य सुपात्रेभ्यो दत्वा प्रजाभ्य आनन्दं प्रकटयेत्॥८॥

पदार्थ:-हे (संभृतक्रतो) क्रियाप्रज्ञाओं को धारण किये हुए (इन्द्र) मेघावयवों का छेदच करने वाले सूर्य्य के समान शत्रुओं को ताड़ने वाले सभापति! आप जैसे सूर्य अपने किरणों से (वृत्रम्) मेघ को (जघन्वान्) गिराता हुआ (आप:) जलों को (मनुषे) मनुष्यों को (गातुयन्) पृथिवी पर प्राप्त करता हुआ प्रजा को धारण करता है, वैसे ही प्रजा की रक्षा के लिये (बाह्रोः) बल तथा अकर्षणों के समान भुजाओं के मध्य (आयसम्) लोहे के (वज्रम्) किरणसमूह के तुल्य शस्त्रों को (आधारयः) अच्छे प्रकार धारण कीजिये, वीरों को कराइये और सब मनुष्यों को सुख होने के लिये (विवि) शुद्ध व्यवहार में (सूर्य्यम्) सूर्यमण्डल के समान न्याय और विद्या के प्रकाश को (दृश्रो) दिखाने के लिये (अयच्छथाः) सब प्रकार से प्रदान कीजिये॥८॥

भावार्थ:-जैसे सूर्यलोक बल और आकर्षण गुणों से सब लोकों के धारण से जल को आकर्षण कर वर्षा से दिव्य सुखों को उत्पन्न करता है, वैसे ही सभा अब गुणों को धर, धनकार्य्य से सुपात्रों को सुमार्ग की प्रवृत्ति के लिये दान देकर प्रजा के लिये आनन्द को प्रवृत्ति करे॥८॥

पुनः स किं क्रुयीदित्युपदिश्यते॥

फिर वह क्या करे, इस विष्य का उपदुश्र अगले मन्त्र में किया है।।

बृहत्स्वश्चेन्द्रमम्बद्यदुक्थ्यर्थमकृण्वतः भिष्यस्य रोहणं दिवः। यन्मानुषप्रधनाः इन्द्रमूतयः स्वृनिषाची मुक्तोऽमदन्ननु॥९॥

बृहत्। स्वऽचेन्द्रम्। अमेऽवृत्। यत्। उक्थ्यम्। अकृण्वतः। भियसाः। रोहणम्। दिवः। यत्। मानुषऽप्रधनाः। इन्द्रम्। ऊतयः। स्वः नृऽसाचः। मुरुतः। अमेदन्। अनु॥९॥

पदार्थ:-(बृहत्) महत् (स्वश्चन्द्रम्) स्वेन प्रकाशेनाह्णादकारकेण युक्तं सुवर्णम्। चन्द्रमिति हिरण्यनामसु पठितम्। (निषं १.२) अत्र हस्वाच्चन्द्रोत्तरपदे मन्त्रे। (अष्टा०६.१.१५१) अनेन सुडागमः। (अमवत्) अमः प्रशस्ता क्राधः! सम्भागो यस्मिँस्तत् (यत्) गुणप्रकाशकम् (उवस्थम्) प्रशंसनीयम् (अकृण्वत) कुर्वित् (भियसा) भयेन (रोहणम्) आरोहन्ति येन तत् (दिवः) प्रकाशमानस्य (यत्) यम् (मानुषप्रधनाः) मनुष्यणां प्रकृष्टानि धनानि याभ्यस्ताः (इन्द्रम्) विद्युतम् (ऊतयः) रक्षणाद्याः (स्वः) सुखम् (नृषाचः) ये नृन् सचन्ति समवयन्ति ते (मरुतः) प्राणादयः (अमदन्) हर्षन्ति (अनु) आनुकृत्यी। १॥

अष्टक-१। अध्याय-४। वर्ग-१२-१४

मण्डल-१। अनुवाक-१०। सूक्त-५२

अन्वय:-ये मानुषप्रधना नृषाचो मरुत इन्द्रं प्राप्य यद्बृहत्स्वश्चन्द्रममवदुक्थ्यं स्व: सुखं चाकृण्वत कुर्वन्ति यद्ये भियसा दु:खभयेन दिव: प्रकाशमानस्य मोक्षसुखस्यारिहाणमून्त्ये भूत्वाऽन्वमदन्ननुमोदन्ते ते सुखिन: स्यु:॥९॥

भावार्थ:-विद्याधनं राज्यं पराक्रमो बलं पुरुषसहायश्च यं धार्मिकं विद्वासं प्रीप्नुवासि, तमुत्तमं सुखं जनयन्ति॥९॥

पदार्थ:-जो (मानुषप्रधना:) मनुष्यों को उत्तम धन प्राप्त करने तथा (निष्मचः) मनुष्यों की कर्म में संयुक्त करने वाले (मरुत:) प्राण आदि हैं वे (इन्द्रम्) बिजुली को प्राप्त होकर (यत्) जिस (बृहत्) बड़े (स्वश्चन्द्रम्) अपने आह्वादकारक प्रकाश से युक्त (अमवत्) उत्तम ज्ञान (उक्थ्यम्) प्रशंसनीय (स्व:) सुख को (अकृण्वत) सम्पादन करते हैं और (यत्) जो (भियस्।) इन्छ के भय से (दिव:) प्रकाशमान मोक्ष सुख का (रोहणम्) आरोहण (ऊतय:) रक्षा अदि होती हैं, उनको करके (अन्वमदन्) उसके अनुकूल आनन्द करते हैं, वे मनुष्य मुख्य सुख को प्राप्त होते हैं।। १/।

भावार्थ:-विद्याधन, राज्य, पराक्रम, बल वा पुरुषों की सहायता ये सब जिस धार्मिक विद्वान् मनुष्य को प्राप्त होते हैं, उसको उत्तम सुख उत्पन्न करते हैं।

पुन: स किं कुर्यादित्युपदिस्थते॥

फिर वह क्या करे, यह विषय अपने मन्त्र में कहा है॥

द्यौश्चिदस्यामवाँ अहै: स्वनादयोयवीद्धियस्म वर्च इन्द्र ते।

वृत्रस्य यद्वेद्वधानस्य रोदसी महे सुतस्य शेवसाभिनच्छिरः॥१०॥१३॥

द्यौः। चित्। अस्या अर्मवान्। अहैः। स्वनात्। अयोयवीत्। भियसा। वर्ष्नः। इन्द्र। ते। वृत्रस्य। यत्। बुद्बुधानस्य। रोदुसी इति। मदे। सुतस्य। अर्थनत्। अर्थनत्। शिरः॥ १०॥

पदार्थ:-(द्यौ:) प्रकाशः (चित्) इत् अस्य) वक्ष्यमाणस्य (अमवान्) बलवान् (अहे:) मेघस्य (स्वनात्) शब्दात् (अयोगवित) पुन्र पुनर्मिश्रयत्यिमश्रयति वा (भियसा) भयेन (वज्रः) शस्त्रास्त्रसमूहः (इन्द्र) परमैश्वर्यहेतो (त) त्व (वृत्रस्य) मेघस्य (यत्) यस्य (बद्बधानस्य) बन्धकस्य। अत्र बन्धधातोश्चानश् अबहुलं छन्दिस इति शपः श्लुः हलादिशेषाऽभावश्च। (रोदसी) द्यावापृथिवी (मदे) हर्षकारके व्यवहारे (सुतस्य) उत्पन्नस्य (श्रवसा) बलेन (अभिनत्) भिनत्ति (श्रिरः) उत्तमाङ्गम्॥१०॥

अन्वयः-हे सैनेश! यद्यस्य ते तवास्य सूर्यस्य द्यौरहेर्बद्बधानस्य सुतस्य वृत्रस्यावयवानयोयवी-च्चिदव्यस्वान् वज्रो यस्य शवसा स्वनादरयः पलायन्ते रोदसी इव मदे वर्त्तमानस्य शत्रोः शिरोऽभिनत् स भवानस्माके पालको भवतु॥१०॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा सूर्यकिरणा विद्युच्चमेघं प्रति प्रवर्त्तन्ते, तथैव सेनापत्यादिभिर्भवितव्यम्॥१०॥

पदार्थ:-हे (इन्द्र) परम ऐश्वर्य के हेतु सेनापित! जो (अस्य) इस (ते) आप का और इस सूर्यं का (द्यौ:) प्रकाश (अहे:) (बहुधानस्य) रोकने वाले मेघ के (सुतस्य) उत्पन्न हुए (वृत्रस्य) आवरण कारक जल के अवयवों को (अयोयवीत्) मिलाता वा पृथक् करता है (चित्) वैसे अमवान् बलकारी (वन्न:) वज्र के (स्वनात्) शब्दों से (भियसा) और भय से (शवसा) बल के साथ शत्रु लोग भगते हैं (रोदसी) आकाश और पृथिवी के समान (मदे) आनन्दकारी व्यवहार में वर्त्रधान शत्रु का (शिर:) शिर अभिनत् काटते हैं, सो आप हम लोगों का पालन कीजिये॥१०॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य के किस्ण और बिजुली मेघ के साथ प्रवृत्त होती है, वैसे ही सेनापित आदि के साथ सेना को होना चाहिये। १०॥ ॥

पुन: सभाध्यक्ष: किं कुर्यादित्युपद्भियते॥

फिर वह सभाध्यक्ष क्या करे, यह विषय अगिले मेन्त्र में कहा है।।

यदिन्विन्द्र पृथिवी दर्शभुजिरहानि विश्वा ततन्ति क्षुष्ट्रयेश

अत्राहं ते मघवन् विश्रुतं सहो द्यामनु शबसा बहीणां भुवत्॥ ११॥

यत्। इत्। नु। इन्द्र। पृथिवी। दर्शाऽभुजिः। अहाँनि। विश्वां। ततनेन्त। कृष्टयः। अत्रं। अहं। ते। मुघुऽवन्। विऽश्रुंतम्। सहं:। द्याम्। अनुं। शर्वसा। बुर्हणां। भुवत्। ९१॥

पदार्थ:-(यत्) वक्ष्यमाणम् (इत्) एवं (त्र) शीघ्रम् (इन्द्र) सभासेनाध्यक्ष (पृथिवी) भूमिः (दशभुजिः) या दशभिरिन्द्रयैर्भुज्यते स्व (अहानि) दिनानि (विश्वा) सर्वाणि (ततनन्त) विस्तीर्णानि भवन्ति (कृष्ट्यः) कृषन्ति विलिखन्ति स्वानि कर्माणि ये ते मनुष्याः। कृष्ट्य इति मनुष्यनामसु पठितम्। (निघं०२.३) (अत्र) अस्मिन् व्यवहारे (अहः) विनिग्रहार्थे (ते) तव (मघवन्) उत्कृष्टधनविद्येश्वर्ययुक्त (विश्वतम्) यद्विविधं श्रूयते तथ्यः (सहः) बलम् (द्वाम्) राजपालनविनयप्रकाशम् (अनु) आनुकूल्ये (शवसा) बलेन (वर्हण्यः) भवंसुख्यापिकया क्रियया। वर्हणा इति पदनामसु पठितम्। (निघं०४.३) अनेन प्राप्त्यर्थो गृह्यते। (भुकत्) भवंत्। अत्र लेटि वहुलं छन्दिस (अष्टा०२.४.७३) इति शपो लुक्। भूसुवोस्तिङ (अष्ट्रा०७.३.४८) इति गुणनिषेधादुवङादेशः॥११॥

अन्वर्यः हे मेघवित्रन्दः! त्वया यद्या दशभुजिः पृथिवी भुज्यते यस्य ते तव बर्हणा शवसाह द्यामनु विश्रुतं यश्रस्सहो भुवत् तेन सिहतस्त्वं प्रयतस्व, यतोऽत्र राज्ये कृष्टयो विश्वान्यहानीदेव सुखानि नु ततनन्त विस्तार्यसुः॥११॥

भावार्थ:-राजपुरुषै: स्वराज्ये सुखानां वृद्धिर्विविधगुणप्राप्तिश्च यथा स्यात् वर्थवानुष्टेपमिति॥११॥ अष्टक-१। अध्याय-४। वर्ग-१२-१४

मण्डल-१। अनुवाक-१०। सूक्त-५२

पदार्थ: -हे (मघवन्) उत्कृष्ट धन और विद्या के ऐश्वर्य से युक्त (इन्द्र) सभा सेनाध्यक्ष! आप (यत्) जो (दशभुजि:) दश इन्द्रियों से (पृथिवी) भूमि को भोगते हो (ते) आप के (बर्हणा) स्व सुख्र प्राप्त कराने वा (शवसा) (अह) बल से ही (द्याम्) राज्यपालन (अनुविश्रुतम्) अनुकूत कोर्ति कराने वाला यश (सह:) बल (भुवत्) होवे उससे युक्त होके आप प्रयत्न कीजिये, जिससे (अत्र) इस राज्य में (कृष्ट्य:) मनुष्य लोग (विश्वा) सब (अहानि) दिनों को (इत्) ही सुख से (नु) जर्दि (ततनन्त) विस्तार करें॥११॥

भावार्थ:-राजपुरुषों को चाहिये कि जैसे अपने राज्य में सुखों की बृद्धि और अनेक प्रकार से गुणों की प्राप्ति हो वैसा अनुष्ठान करें॥११॥

पुनरस्य जगतो राजेश्वरः कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर इस समग्र जगत् का राजा परमात्मा कैसा है, इस विषय का उपदेश अंगले मन्त्र में किया है॥

त्वमस्य पारे रजसो व्योमनः स्वभूत्योजा अवसि ध्रम्पन्थ चुकृषे भूमिं प्रतिमानमोर्जसोऽपः स्वः प्रस्भूरेष्या स्विम्॥१२॥

त्वम्। अस्य। पारे। रजसः। विऽऔमनः। स्वर्भतिऽश्लोजाः। अवसे। धृष्वत्ऽमुनः। चुकृषे। भूमिम्। प्रतिऽमार्नम्। ओर्जसः। अपः। स्वर्थरितिं स्वः। पुर्हिऽभूः। पुष्ति। आ। दिवम्।। १२॥

पदार्थ:-(त्वम्) परमेश्वरः (अस्य) संस्त्रारस्य क्लेशेभ्यः (पारे) अपरभागे (रजसः) पृथिव्यादिलोकानाम् (व्योमनः) आकाष्त्रास्य। अत्र व्याच्छन्दिस सर्वे विधयो भवन्ति इत्यल्लोपो न भवति। (स्वभूत्योजाः) स्वकीया भृतिरैश्वर्यमोजः पराक्रमो वा यस्य सः (अवसे) रक्षणाद्याय (धृषन्मनः) धृषद्धृष्यते मनः सर्वस्यान्तः करणं चेन तत्सम्बुद्धौ (चकृषे) कृतवानिस (भूमिम्) सर्वाधारां क्षितिम् (प्रतिमानम्) प्रतिमीयते परिणीयते प्रतिक्रियते येन तत् (ओजसः) पराक्रमस्य (अपः) प्राणान् (स्वः) सुखमन्तरिक्षं वा (परिभूत्र वः पर्वतः सर्वतो भवति सः (एषि) प्राप्नोषि (आ) समन्तात् (दिवम्) विज्ञानप्रकाशम्॥१२॥

अन्वय:-त्रे धृषन्मनो जगदीश्वर! यः परिभूः स्वभूत्योजास्त्वमवसेऽस्य संसारस्य रजसो व्योमनः पारेऽप्येषि त्वं सर्वेषामोजसः पराक्रमस्य स्वभूमिं चाप्रतिमानमाचकृषे समन्तात् कृतवानासि तं (सर्वे) वयमुपास्महेश १२

भावार्थ:-परमेश्वरः सर्वेभ्यः परः प्रकृष्टः सर्वेभ्यो दुःखेभ्यः पारे वर्त्तमानः सन् स्वसामर्थ्यात् सर्वार्त्न लोकान् रचियत्वा तानभिव्याप्तः सन्सर्वान् व्यवस्थापयन् जीवानां पापपुण्यव्यवस्थाकरणेन व्यायाधीसः सन् वर्तते तथा सभेशो राज्यं कुर्वन् सर्वेभ्यः सुखं जनयेत्॥१२॥

पदार्थ:-हे (धृषन्मनः) अनन्त प्रगल्भ विज्ञानयुक्त जगदीश्वर! जो (परिभूः) सब प्रकार हीने (स्वभूत्योजाः) अपने ऐश्वर्य वा पराक्रम युक्त से (त्वम्) आप (अवसे) रक्षा आदि के लिये (अस्य) इस् संसार के (रजसः) पृथिवी आदि लोकों तथा (व्योमनः) आकाश के (पारे) अपरभाग में भी (पणि) प्राप्त हैं और आप (ओजसः) पराक्रम आदि के (प्रतिमानम्) अवधि (स्वः) सुख (दिवम्) सुद्ध विज्ञान के प्रकाश (भूमिम्) भूमि और (अपः) जलों को (आचकृषे) अच्छे प्रकार किया है, उन आपकी हम सब लोग उपासना करते हैं॥१२॥

भावार्थ:-जैसे परमेश्वर सब से उत्तम, सबसे परे वर्त्तमान होकर साम्र्र<u>ध्य से ल</u>ोकों को रच के, उनमें सब प्रकार से व्याप्त हो धारण कर सब का व्यवस्था में युक्त करता हुआ जीवों के पाप-पुण्य की व्यवस्था करने से न्यायाधीश होकर वर्त्तता है, वैसे ही न्यायाधीश भी सब भूमि के राज्य को सम्पादन करता हुआ, सबके लिये सुखों को उत्पन्न करे॥१२॥

पुन: स कीदृश इत्यपुदिश्यते॥

फिर वह परब्रह्म कैसा है, इस विषय का उपदेश अपले मन्त्र में किया है।।

त्वं भुवः प्रतिमानं पृथिव्या ऋष्ववीरस्य बृहुतः प्रतिर्भूः।

विश्वमाप्रा अन्तरिक्षं महित्वा सुत्यमुद्धा निक्रुन्यस्वावीन्॥१३॥

त्वम्। भुवः। प्रतिऽमार्नम्। पृथिव्याः। ऋष्विऽवीरस्या) बृह्तः। पर्तिः। भूः। विश्वम्। आ। अप्राः। अन्तरिक्षम्। मुह्ऽत्वा। सुत्यम्। अद्धाः। नर्विः। अस्यः। न्वाऽवीन्॥१३॥

पदार्थ:-(त्वम्) जगदीश्वरः (भुद्धः) भवतीक्वि भूस्तस्याः (प्रतिमानम्) परिमाणम् (पृथिव्याः) विस्तृतस्याकाशस्य (ऋष्ववीरस्य) ऋष्ट्वा महान्तो गुणा वीरा वा यस्य तस्य (बृहतः) महाबलस्य (पितः) पालकः (भूः) भवसि (विश्वम्) सर्वं जगत् (आ) समन्तात् (अप्राः) प्रपूर्द्धि (अन्तरिक्षम्) अनेकेषां लोकानाम् मध्येऽवकाशरूपं वर्तमानमाकाशम् (महित्वा) महत्या व्याप्त्याभिव्याप्य (सत्यम्) अव्यभिचारि सुपरीक्षितं वेदचतुष्ट्यजन्यम् (अद्धा) साक्षात् (निकः) नैव (अन्यः) कश्चिदपि द्वितीयः (त्वावान्) त्वत्सदृशः॥१३॥

अन्वय:-हे जगदीश्वर। प्रस्तवं पृथिव्या भुवः प्रतिमानं बृहतं ऋष्ववीरस्य जगतो महावीरस्य मनुष्यस्य पतिर्भूग्रीस त्वं ब्रिश्चं सर्वं जगदन्तिरक्षं सत्यं च महित्वाऽद्धाप्राः तस्मात् कश्चिदन्यस्त्वावान् निकर्विद्यते॥ १३५॥

भूतिमर्थ:-स्था परमेश्वर: सर्वस्य जगतो रचयिता परिमाणकर्ता व्याप्त: सत्यप्रकाशकोऽस्त्यत ईश्वरसक्ष्यः कश्चिद्दिप पदार्थो न भूतो न भविष्यतीति मत्वा तमेव वयमुपास्महे॥१३॥

पदार्थ:-हे जगदीश्वर! जो (त्वम्) आप (पृथिव्या:) विस्तृत आकाश और (भुव:) भूमि के (प्रतिमानम्) परिमाणकर्त्ता तथा (बृहत:) महाबलयुक्त (ऋष्ववीरस्य) बड़े गुणयुक्त जगत् का वा अष्टक-१। अध्याय-४। वर्ग-१२-१४

मण्डल-१। अनुवाक-१०। सूक्त-५२

महावीर मनुष्य के (पित:) पालन करने वाले (भू:) हैं तथा आप (विश्वम्) सब जगत् (अन्तिरक्षम्) अनेक लोकों के मध्य में अवकाश स्वरूप आकाश और (सत्यम्) कारणरूप से अविनाशी पिक्के प्रकार परीक्षा किये हुए चारों वेदों को (मिहत्वा) बड़ी व्याप्ति से व्याप्त होकर (अद्धाप्रा:) स्वीक्षात्कार पूरण करते हो, इससे (त्वावान्) आप के सदृश (अन्य:) दूसरा (निक:) विद्यमान कोई भी नहीं है। १३॥

भावार्थ:-जैसे परमेश्वर ही सब जगत् की रचना, परिमाण, व्यापक और सत्य का प्रकाश करने वाला है, इससे ईश्वर के सदृश कोई भी पदार्थ न हुआ और न होगा, ऐसा सम्प्री के हम लोग उसी की उपासना करें॥१३॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा है, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है।।

न यस्य द्यावापृथिवी अनु व्यचो न सिर्म्यवो रर्जसो अन्तमानुशः। नोत स्ववृष्टिं मदे अस्य युध्यत एको अन्यच्यकृषे विश्वमानुष्रक्॥१४॥

न। यस्यं। द्यावांपृथ्विवी इति। अनुं। व्यर्चः। न। सिर्धिवः। रेजसः। अन्तम्। आनुशुः। न। उत। स्वऽवृष्टिम्। मदे। अस्य। युध्यंतः। एकः। अन्यत्। चुकृषे। विश्वम्। आनुषक॥ १४॥

पदार्थ:-(न) निषेधार्थे (यस्य) जगदीश्वरस्य पूरमिवदुषः सूर्यस्य (वा) (द्यावापृथिवी) प्रकाशाप्रकाशयुक्तौ लोकसमूहौ (अनु) अनुगूरि (व्यवः) व्याप्तेः (न) प्रतिषेधे (सिन्धवः) समुद्राः (रजसः) रागविषयस्यैश्वर्यस्य लोकस्य व्य (अन्तम्) सीमानम् (आनशुः) प्राप्नुवन्ति। अत्र व्यत्ययेन परस्मैपदम् (न) निवारणे (उत) अपि (स्ववृष्टिम्) स्वकीयानां धनानामिव प्रेरितानां पदार्थानां शस्त्राणां जलानां वा वर्षणं प्रति (मदे) आनन्द्रे (अस्य) मेघस्य (युध्यतः) युद्धमाचरतः (एकः) असहायः (अन्यत्) द्वितीयं भिन्नम् (व्यक्षे) करोषि (विश्वम्) जगत् (आनुषक्) व्याप्त्यानुषक्तमुत्कृष्टगुणैरनुरक्तमाकृष्णेनानुयुक्तां वा॥१४॥

अन्वय:-यस्य प्रमधः परमेश्वरस्याऽनुव्यचोऽनुगताया अनन्ताया व्याप्तेर्द्यावापृथिवी चन्द्रादयश्चान्तं नानशुः म व्याप्नुवन्ति नोतापि सिन्धवो व्याप्नुवन्ति। हे परमात्मँस्त्वं यथा स्ववृष्टिं प्रति मदे युध्यतो मेघून्य सूर्यस्याप्रे विजयो न भवति तथैकोऽसहायोऽद्वितीयः सन्नन्यद्विश्वमानुषक् चकृषे कृतवानसि तस्माद्भवानुपर्योऽस्ति॥१४॥

भाषार्थः प्रथा परमेश्वरस्य कस्यापि गुणस्य कोऽपि मनुष्यो लोकश्च पारं ग्रहीतुं न शक्नोति। यथा जर्मदीश्वरः पाषकर्मकारिभ्यो दुःखफलदानेन पीडयन् दुष्टान् ताडयन् सूर्यो मेघावयवान् विदारयँश्च युद्धक्रीरीव सूर्तते, तथैव सज्जनैर्भवितव्यम्॥१४॥

पदार्थ:-(यस्य) जिस (रजस:) ऐश्वर्ययुक्त जगदीश्वर की (अनुव्यच:) अनन्तव्याप्ति के अनुकूल वर्त्तमान (द्यावापृथिवी) प्रकाश अप्रकाश युक्त लोक और चन्द्रमादि भी (अन्तम्) अन्त अर्थात् सीमा को (न) नहीं (आनशु:) प्राप्त होते हैं। हे परमात्मन्! जैसे (स्ववृष्टिम्) अपने पदार्थों की रक्षा के प्रति (महे) आनन्द में (युध्यत:) युद्ध करते हुए मेघ का सूर्य के सामने विजय नहीं होता वैसे (एकः) सहायरहित अद्वितीय जगदीश्वर ने (अन्यत्) अपने से भिन्न द्वितीय (विश्वम्) जगत् को (आनुषक्) अपनी व्याप्ति से युक्त किया है, इससे आप उपासना के योग्य हैं॥१४॥

भावार्थ:-जैसे परमेश्वर के किसी गुण की कोई मनुष्य वा कोई लोक सीमा की ग्रहण नहीं कर सकता और जैसे वह पापयुक्त कर्म करने वाले मनुष्यों के लिये दु:खरूप फल देने से पीड़ा देता दुष्टों की ताड़ना और सूर्य मेघाऽवयवों को विदारण करता और युद्ध करने वाले मनुष्य के समान वर्तता है, वैसे ही सब सज्जन मनुष्यों को वर्त्तना चाहिये॥१४॥

पुनस्तदुपासकाः कीदृशा भवेयुरित्युपदिश्यते॥

फिर ईश्वरोपासक कैसे हों, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

आर्च्नन्ने मुरुतः सस्मिन्नाजौ विश्वे देवासी अपद्भन्ने त्या

वृत्रस्य यद्भृष्टिमता वधेन नि त्वमिन्द्र प्रत्यानं ज्यस्या १५॥१४॥

आर्चन्। अत्रं। मुरुतं:। सिस्मिन्। आजौ। विश्वा देवासः। अमुदुन्। अनुं। त्वा। वृत्रस्यं। यत्। भृष्टिऽमतां। वृधेनं। नि। त्वम्। डुन्द्र। प्रति। आनम्। जुघन्यं॥ १५/॥

पदार्थ:-(आर्चन्) अर्चन्तु (अत्र) अस्मिन् ज्ञणिति (मस्तः) ऋत्विजः। मस्त इति ऋत्विङ्नामसु पिठतम्। (निघं०३.१८) (सिस्मिन्) अत्र छान्दसो वर्णलोपो वा इति रेफवकारयोर्लोपः (आजौ) संग्रामे (विश्वे) सर्वे (देवासः) सिद्धांसः (अमदन्) हृष्यन्तु (अनु) पुनरर्थे (त्वा) त्वां सभाध्यक्षम् (वृत्रस्य) मेघस्येव शत्रोः (यत्) यः (भृष्टिमता) भृज्जन्ति यया सा भृष्टिः कान्तिरिव नीतिः सा प्रशस्ता विद्यते यस्मिन् तेन (वधेन) हन्निम् (नि) नित्यम् (त्वम्) (इन्द्र) परमैश्वर्यवन् (प्रति) प्रत्यक्षे (आनम्) अनन्ति येन तज्जीवनम् (ज्ञास्य) हन्नाग १५॥

अन्वय:-हे इन्द्र समाधेनेश यद्यस्त्वं भृष्टिमता वधेन वृत्रस्येव शत्रोरानं जीवनं जघन्थाऽहन् त्वा सिस्मित्राजौ विश्वे देवासो मुरुतो न्यार्चन् सततं सत्कुर्वन्तु, यतस्ते प्रजास्थाः प्राणिनः प्रत्यन्वमदन् प्रत्यक्षममाद्यन्॥१६६॥

भूतिमर्थ:-सू एकं परमेश्वरमुपास्य विद्यां गृहीत्वा शत्रून् जित्वा विजयं प्राप्य प्रजां नित्यमनुमादयन्ति, ते विद्वांस: सुखिनो भवन्तीति॥१५॥

अत्रे विद्वद्विद्युदाद्यग्नीश्वराणां गुणवर्णनादेतत्सूक्तार्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेदितिच्यम्। अष्टक-१। अध्याय-४। वर्ग-१२-१४

मण्डल-१। अनुवाक-१०। सूक्त-५२

इति ५२ द्विपञ्चाशं सूक्तं १४ चतुर्दशो वर्गश्च समाप्त:॥१४॥

पदार्थ:-हे (इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त सभा सेना के स्वामी (यत्) जो (त्वम्) आप (भृष्टिमता) प्रशंसनीय नीति वाले न्यायव्यवहार से युक्त (वधेन) हनन से (वृत्रस्य) अधर्मी मृतुष्य के समान (आनम्) प्राण को (जधन्य) नष्ट करते हो उन (त्वा) आपको (सिस्मन्) सब (आजौ) (संग्राम् वा (अत्र) इस आप में श्रद्धा करने वाले (विश्वे देवासः) सब विद्वान् और (मरुतः) ऋत्विज् लोग (न्याचेष्) नित्य सत्कार करते हैं, इससे वे प्रजा के प्राणी (प्रत्यन्वमदन्) सबको आनन्दित क्रूर के आप आनिद्धित होते हैं॥१५॥

भावार्थ:-जो एक परमेश्वर की उपासना विद्या को ग्रहण और अत्रुओं के ताड़कर प्रजा को निरन्तर आनन्दित करते हैं, वहीं धार्मिक विद्वान् सुखी रहते हैं॥१२॥

इस सूक्त में विद्वान्, बिजुली आदि अग्नि और ईश्वर के पूर्णों का वर्णन होने से इस सूक्तार्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये॥

यह बावनवां ५२ सूक्त और चौदहवां १४ वर्ग सुमाज हुआ।।

अथैकादशर्चस्य त्रिपञ्चाशस्य सूक्तस्याङ्गिरसः सव्य ऋषिः। इन्द्रो देवता १,३ निचृज्जगती। २ भुरिग्जगती। ४ जगती। ५,७ विराङ्जगती च छन्दः। निषादः स्वरः। ६,८,९, त्रिष्टुप्। १०

भुरिक् त्रिष्टुप् च छन्द:। धैवत: स्वर:। ११ सत: पङ्क्तिश्छन्द:। पञ्चम: स्वर:॥

सायणाचार्य्यादीनां मोक्षमूलरादीनां वा यदि छन्द:षड्जादिस्वरज्ञानमपि न स्यान्तर्हि

भाष्यकरणयोग्यता तु कथं भवेत्।।

जब सायणाचार्य्यादि वा मोक्षमूलरादिकों को छन्द और षड्जादि स्वरों का भी ज्ञान सहीं तो भाष्ट्र करने की योग्यता तो कैसे होगी॥

मनुष्येर्धर्मं विचार्थ्य किं कर्त्तव्यमित्युपदिश्यते॥

अब त्रेपनवें सूक्त का आरम्भ है, उस के पहिले मन्त्र में मनुष्यों को धर्म बिचार कर क्या करना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

न्यू ३ षु वाचं प्र महे भरामहे गिर इन्द्राय सदेने विवस्वतः।

नू चिद्धि रत्नं सस्तामिवाविदन्न दुंष्टुतिर्द्रविणोदेषु शस्यते॥१॥

नि। उम् इति। सु। वार्चम्। प्र। मुहे। भुरामुहे। गिर्रः। इन्हियो सर्दने। विवस्वतः। नु। चित्। हि। रत्नेम्। सुसुताम्ऽईव। अविंदत्। न। दुःऽस्तुतिः। द्रविणुःऽदेषुं। शृस्युत्।। १।

पदार्थ:-(नि) नितराम् (उ) वितर्के (मु) स्रोभने (बाचम्) वाणीम् (प्र) प्रकृष्टार्थे (महे) महित महासुखप्रापके (भरामहे) धरामहे (गिर:) स्तुत्तयः (इन्द्राय) परमैश्वर्यप्रापणाय (सदने) सीदिन्त यस्मिंस्थाने तस्मिन् (विवस्वतः) यथा प्रकृष्णिमस्य प्रूर्यस्य प्रकाशे (नु) शीघ्रम् (चित्) अपि (हि) खलु (रत्नम्) रमणीयं सुवर्णादिकम् (ससत्प्राम्व) यथा स्वपतां पुरुषाणां तथा (अविदत्) विन्दित प्राप्नोति (न) निषेधे (दुःस्तुतिः) दुष्टा चासौ स्तुतिः पापक्रीतिश्च सा (द्रविणोदेषु) ये द्रविणांसि सुवर्णादीनि द्रव्यप्रदानि विद्यादीनि च ददित तेषु (शस्यते) प्रशस्ता भक्षति॥१॥

अन्वय:-हे मनुष्या! वयं महे स्रेदन इन्द्राय वाचं सुभरामहे स्वप्ने ससतामिव विवस्वतः सूर्यस्य प्रकाशे रत्निमव गिरो निभग्नमहे, किन्तु द्रविणोदेष्वस्मासु दुष्टुतिर्न प्रशस्ता न भवति तथा यूयं भवत॥१॥

भावार्थः अत्रोपमालङ्कारः। मनुष्येर्यथा निद्रावस्था मनुष्या आरामं प्राप्नुवन्ति, तथा सर्वदा विद्यासुशिक्षाभूती संस्कृतां वाचं स्वीकृत्य प्रशस्तं कर्म सेवित्वा निद्रां दूरीकृत्य स्तुतिप्रकाशाय प्रयतितव्यम्। ११॥

परार्थ:-हे मनुष्यो! जैसे हम लोग (महे) महासुख प्रापक (सदने) स्थान में (इन्द्राय) परमैश्वर्य के क्रिप्त कर्षों के लिये (सु) शुभलक्षणयुक्त (वाचम्) वाणी को (निभरामहे) निश्चित धारण करते हैं, स्वप्त में (ससतामिव) सोते हुए पुरुषों के समान (विवस्वत:) सूर्यप्रकाश में (रत्नम्) रमणीय सुवर्णादि अष्टक-१। अध्याय-४। वर्ग-१५-१६

मण्डल-१। अनुवाक-१०। सूक्त-५३

के समान (गिर:) स्तुतियों को धारण करते हैं, किन्तु (द्रविणोदेषु) सुवर्णादि वा विद्यादिकों के देने वाले हम लोगों में (दुष्टुति:) दुष्ट स्तुति और पाप की कीर्ति अर्थात् निन्दा (न प्रशस्यते) श्रेष्ठ नहीं होती वैसे तुम भी होवो॥१॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्यों को जैसे निद्रा में स्थित हुए मनुष्यों आराम को प्राप्त होते हैं, वैसे सर्वदा विद्या उत्तम शिक्षाओं से संस्कार की हुई वाणी को स्वीकर्ण प्रशंसनीय कर्म को सेवन और निंदा को दूरकर स्तुति का प्रकाश होने के लिये अच्छे प्रकार प्रयत्न किस्ना चाहिये॥१॥

अथ विद्वद्धुणा उपदिश्यन्ते॥

अब अगले मन्त्र में विद्वानों के गुणों का उपदेश क्रिया है।

दुरो अश्वस्य दुर ईन्द्र गोर्रास दुरो यवस्य वस्न इनस्पातिः।

शिक्षानुरः प्रदिवो अकामकर्शनः सखा सर्खिभ्यस्त्रिष्टि गूणीप्रसि॥२॥

दुरः। अश्वीस्यः। दुरः। इन्द्रः। गोः। असि। दुरः। यवस्यः वसुनः। इनः। पतिः। शिक्षाऽनुरः। प्रऽदिर्वः। अक्वीमऽकर्शनः। सर्खाः। सर्खिऽभ्यः। तम्। इदम्। गृणीुमुसि॥।

पदार्थ:-(दुर:) सुखै: संवारकाणि द्वाराणि (अश्वस्य) व्याप्तिकारकाग्न्यादेस्तुरङ्गस्य वा (दुर:) (इन्द्र) विद्वन् (गो:) सुसंस्कृताया वाचः (असि) (दुर:) (यवस्य) उत्तमस्य यवादेरत्रस्य (वसुनः) सर्वोत्तमस्य द्रव्यस्य (इनः) ईश्वरः। इन इतिश्वरनामसु पठितम्। (निघं०२.२२) (पितः) पालयिता (शिक्षानरः) यः शिक्षां नृणाति प्राप्नोति स शिक्षाया न् शिक्षानरः। अत्र वा० सर्वधातुभ्योऽजयं वक्तव्यः इति नॄधातोरच्य्रत्ययः। (प्रदिवः) प्रकृष्टस्य सायुक्रकाशस्य (अकामकर्शनः) योऽकामानलसान् कृशित तनूकरोति सः (सखा) सुहृत् (स्रिखभ्यः) सुहृद्भ्यः (तम्) उक्तार्थम् (इदम्) अर्चनं सत्करणं यथा स्यात्तथा (गृणीमिस) अर्चामः स्तुमः।। रा

अन्वय:-हे इन्द्र विद्वन् योऽकामक्षींनः शिक्षानरः सिखभ्यः सखा पतिरिन इव त्वमश्वस्य दुरो गोर्दुरोऽभिप्राप्य यवस्य प्रद्वि दुरोऽभिष्ठितः सन् वसुनो दाताऽसि तं त्वामिदं वयं गृणीमसि॥२॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुमोपमालङ्कार:। न हि परमेश्वरतुल्येन धार्मिकेण विदुषा विना कस्मैचित् सर्वपदार्थानां सुख्रानां च प्रदाता कश्चिदस्ति, परन्तु ये खलु सर्वमित्राः शिक्षाप्राप्ता मनुष्याः सन्ति त एवैतत् सर्वसुख्रं लभन्ते नेतरे॥२॥

पदार्थ:-हें (इन्द्र) विद्वान्! जो (अकामकर्शनः) आलस्ययुक्त मनुष्यों को कृश (शिक्षानरः) शिक्षाओं को प्राप्त करने वा (सिखभ्यः) मित्रों के (सखा) मित्र (पितः) पालन करने वा (इनः) ईश्वर के तुल्यू सामर्थ्ययुक्त आप (अश्वस्य) व्याप्तिकारक अग्नि आदि वा तुरङ्ग आदि के (दुरः) द्वारों को प्राप्त क्रिके सुखे देने वाली (गोः) वाणी वा दूध देने वाली गौ के (दुरः) सुख देने वाले द्वारों को जान

(यवस्य) उत्तम यव आदि अत्र (प्रदिवः) उत्तम विज्ञान प्रकाश और (वसुनः) उत्तम धन देने वीले (असि) हैं (तम्) उस आपकी (इदम्) पूजा वा सत्कार पूर्वक (गृणीमिस) स्तुति करते हैं॥२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। परमेश्वर के तुल्य धार्मिक विद्वार्य के विनो किसी के लिये सब पदार्थ वा सब सुखों के देने वाला कोई नहीं है, परन्तु जो निश्चय करके सबके मित्र शिक्षाओं को प्राप्त किये हुए आलस्य को छोड़कर, ईश्वर की उपासना विद्या वा विद्वार्यों के सम्भ को प्रीति से सेवन करने वाले मनुष्य हैं वे ही इन सब सुखों को प्राप्त होते हैं आलसी मनुष्य रहीं॥२॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा है, यह विषय अगले मन्त्र में उपदेश में किया है।

शचींव इन्द्र पुरुकृद् द्युमत्तम् तवेदिदम्भितंश्चेिकते वसुं अतः संगृभ्याभिभूत आ भर् मा त्वायतो जिर्तुः काम्रमून्यौः।। इ।।

शचींऽवः। इन्द्रः। पुरुऽकृत्। द्युमत्ऽतमः। तवं। इत्। इदम्/ श्रुभितेः। चैकिते। वसं। अतः। सम्ऽगृभ्यं। अभिऽभृते। आ। भुर्। मा। त्वाऽयतः। जुरितुः। कार्मम्। ऊनुयीः । সুম

पदार्थ:-(शचीव:) प्रशस्ताः प्रज्ञा बह्नी वाक् प्रशस्तां कर्म च विद्यते यस्य तत्संबुद्धौ (इन्द्र) परमैश्वर्यप्रापक विद्वन् वा (पुरुकृत्) यः पुरूणि बहुनि सुखानि करोति सः (द्युमत्तम) द्यौर्बहुः सर्वज्ञः प्रकाशो विद्याप्रकाशो वा विद्यते यस्मिन् सोऽतिश्वितस्तत्संबुद्धौ (तव) (इत्) एव (इदम्) वक्ष्यमाणम् (अभितः) सर्वतः (चेकिते) जानाति (वसु) पर प्रकृष्टं द्रव्यम् (अतः) पुरुषार्थात् (संगृभ्य) सम्यग्गृहीत्वा (अभिभूतम्) अभिभूतिः शत्रूणामभिभवनं परभुषो द्यस्मात्तत्सम्बुद्धौ (आ) आभिमुख्ये (भर) धर (मा) निषेधे (त्वायतः) त्वामात्मानं तवात्मानं विद्यतः (जिरतुः) स्तोतुः (कामम्) इष्टसिद्धिम् (ऊनयीः) ऊनयेः। लुङ् प्रयोगोऽयम्॥३॥

अन्वय:-हे शचीवो द्युम्ब्रिम पुरुकृदिन्द्र सभेश! यो मनुष्यस्तव कृपया सहायेन वाऽभित इदं वसु चेकिते जानाति। हे अभिभूते शत्र्वणां पुराभवकर्त्तर्यतस्त्वं त्वायतो जिरतुर्धार्मिकस्य स्वजनस्य काममाभर समन्तात्प्रपूर्द्धि। अतस्त्वां सिगुभ्याहं वर्ते त्वं मां सर्वै: कामैराभर त्वायतो जिरतुर्मम कामं मोनयी: पिरहीणं क्षीणं न्यूनं कदाचिन्मा सम्पार्थः १३॥

भावार्थः अनुष्यैर्न किल परमेश्वरेणाप्तेन पुरुषसङ्गेन वा विना सर्वेषां कामानां पूर्तिः कर्तुं शक्या तस्मादेतमेवोप्रस्य संगुरुय वा कामपूर्तिः सम्पादनीयेति॥३॥

प्रदर्शः है (शचीव:) प्रशंसनीय प्रज्ञा, वाणी और कर्मयुक्त (द्युमत्तम) अतिशय करके सर्वज्ञता विद्याप्रकाशयुक्त (पुरुकृत्) बहुत सुखों के दाता (इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त जगदीश्वर वा ऐश्वर्य प्रापक सभ्यपित विद्वान्! आपकी कृपा वा आप के सहाय से मनुष्य (अभितः) सब ओर से (इदम्) इस (वसु) इस मि धर्म को (चेकिते) जानता है, हे (अभिभूते) शत्रुओं के पराजय करने वाले! जिस कारण आप

अष्टक-१। अध्याय-४। वर्ग-१५-१६

मण्डल-१। अनुवाक-१०। सूक्त-५३

(त्वायत:) आप वा उस के आत्मा की इच्छा करते हुए (जिरतु:) स्तुति करने वाले धार्मिक भक्तजन की (कामम्) इष्टिसिद्धि को (आभर) पूर्ण करें (अत:) इस पुरुषार्थ से आपको (संगृभ्य) ग्रह्म करके में वर्तता हूं और आप मुझे सब कामों से पूर्ण कीजिये, आपकी इच्छा करते हुए स्तुति करने वाले मेरी इष्टिसिद्धि को (मोनयी:) कभी क्षीण मत कीजिये॥३॥

भावार्थ:-मनुष्यों को निश्चय करके परमेश्वर वा विद्वान् मनुष्य के संग के विना कोई भी मनुष्य इष्टिसिद्धि को पूरण करने वाला होने को योग्य नहीं है। इससे इसी की उपास्नी वा विद्वान् मनुष्य का सत्संग करके इष्टिसिद्धि को सम्पादन करना चाहिये॥३॥

पुन: स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा है, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है।।

पुभिर्द्युभि: सुमना पुभिरिन्दुंभिर्निरुखानो अमितं गोभिन्धित्रा। इन्द्रेण दस्युं दुरयन्त इन्दुंभिर्युतद्वेषसः सिम्षा रभेमिहि॥ ४॥

एभि:। द्युऽभि:। सुऽमना:। एभि:। इन्दुंऽभि:। निरुष्टिम्। अमितिम्। गोभि:। अश्विनां। इन्द्रेण। दस्युंम्। दुरयंन्त:। इन्दुंऽभि:। युतऽद्वेषस:। सम्। हृषा। प्रभूमिहि॥ ४॥

पदार्थ:-(एभि:) प्रत्यक्षैः (द्युभि:) प्रकाश्ययुक्तैर्गुणेद्वर्ध्यवां (सुमनाः) शोभनं मनो विज्ञानं यस्य सभाध्यक्षस्य सः (एभिः) वक्ष्यमाणैः (इन्दुभिः) आह्लादकुर्गरिभिर्गुणैः पदार्थेवां (निरुन्थानः) निरोधं कुर्वन् (अमितम्) अविद्यमाना मितिर्विज्ञानं सुखं वा यस्याप्नविद्यायां दिरद्रायां वा तां सुरूपं वा (गोभिः) प्रशस्ताभिर्वाग्धेनुपृथिवीभिः (अश्विना) अनिजलसूर्यचन्द्रादिभिः (इन्द्रेण) विद्युता तद्रचितेन विदारकेण शस्त्रेण वा (दस्युम्) बलाकारेण परस्वापहर्त्तारम् (दरयन्तः) विदारयन्तः (इन्दुभिः) अभिषुतैर्बलकारिभिः पेयैः सोमस्पाभियुक्तेर्जलैः (युतद्वेषसः) युता अमिश्रिताः पृथगभूता द्वेषा येभ्यस्ते (सम्) सम्यगर्थे (इषा) इच्छक्षा अञ्चादिना वा (एभेमिह्) आरम्भं कुर्वीमिह॥४॥

अन्वय:-वयं योजमति निरुष्ट्रानः सुमना विद्वानस्ति तं प्राप्य तत्सहायेनैर्भिर्द्युभिरेभिरन्दुभिर्गोभि-रिश्वनेन्दुभिरिषेन्द्रेण सह दस्य दरमन्तो युतद्वेषसः शत्रुभिः सह युद्धं सुखेन समारभेमिह॥४॥

भावार्थ: सभाइध्यक्षो वा सर्वं दारिद्र्यं विनाश्य शत्रुविजयं कृत्वा सर्वा विद्याः शिक्षित्वाऽस्मान् सुख्यति स सर्वेर्मनुष्येः समाश्रयितव्यश्चेति निह खल्वेतत्सहायेन विना कश्चिदिप व्यावहारिकं चानेस् प्राप्तुं शक्नोति, तस्मादेतत्सहायेन सर्वेषां धर्म्याणां कार्याणामारम्भः सुखसेवनं च नित्यं क्रुस्यमिति। ४॥

पदीर्थ:-हम लोग जो (अमितिम्) विज्ञान वा सुख से अविद्या दिरद्रता तथा सुन्दर रूप को (निक्रमार्भः) निरोध वा ग्रहण करता हुआ (सुमनाः) उत्तम विज्ञानयुक्त सभाध्यक्ष है, उसकी प्राप्ति कर

उसके सहाय वा (एभि:) इन (द्युभि:) प्रकाशयुक्त द्रव्य (एभि:) इन (इन्दुभि:) आह्लादकारक गुण वो पदार्थ इन (गोभि:) प्रशंसनीय गौ पृथिवी (अश्विना) अग्नि, जल, सूर्य्य, चन्द्र आदि (इषा) इच्छा वा अन्नादि (इन्दुभि:) सोमरसादि पेयों (इन्द्रेण) बिजुली और उसके रचे हुए विदारण करने विधि शस्त्र से (दस्युम्) बल से दूसरे के धन को लेने वाले दुष्ट को (दरयन्त:) विदारण करते हुए (युनद्वेषस:) द्वेष से अलग होने वाले शत्रुओं के साथ युद्ध को सुख से (समारभेमिह) आरम्भ करें॥४॥

भावार्थ:-जो सभाध्यक्ष सब विद्याओं की शिक्षा कर हम लोगों को सुखी करता है, उसका सब मनुष्यों को सेवन करना चाहिये। इस के सहाय के विना कोई भी मनुष्य व्यावहारिक और परमार्थ विषयक आनन्द को प्राप्त होने को समर्थ नहीं हो सकता, इससे इसके सहाय से सब धर्म युक्त कार्यों का आरम्भ वा सुख का सेवन करना चाहिये॥४॥

पुनरेतत्सहायेन मनुष्यैः किं कर्त्तव्यमित्युपदिश्यते॥

फिर इसके सहाय से मनुष्यों को क्या करना चाहिये, इस विष्य का उपदेश अगले मन्त्र में किया

है॥

सिमन्द्र राया सिम्षा रभेमिह् सं वाजेभिः पुरस्चिम्द्रेरभिद्धिभिः। सं देव्या प्रमत्या वीरशृष्मया गोअययाश्चित्या रभमहि॥५॥१५॥

सम्। इन्द्र। राया। सम्। इषा। रुभेमहि। सम्। वाजैभिः। पुरुऽचन्द्रैः। अभिद्युऽभिः। सम्। देव्या। प्रऽमत्या। वीरऽश्रुष्मया। गोऽअप्रया। अश्वऽवत्या। स्थिमहि॥ ५)।

पदार्थ:-(सम्) प्राप्तौ (इन्द्र) प्रमिश्चर्यप्रदेश्वर सभाध्यक्ष वा (राया) राज्यपरमिश्चया (सम्) सम्यक् (इषा) धर्मेच्छयात्रादिना ब्रा (रामाहि) आरम्भं कुर्याम (सम्) श्रैष्ठघेऽर्थे (वाजेभिः) विज्ञानादिगुणैः संग्रामेर्वा (पुरुष्चन्द्रैः) पुरवो बहवश्चन्द्रा आह्वादकारकाः सुवर्णरजतादयो धातवो वा येभ्यस्तैः (अभिद्युभिः) अभित्रा दिवः विद्याव्यवहारप्रकाशा येषु तैः (सम्) श्लेषे (देव्या) दिव्यगुणसिहतया विद्यायुक्तया सेन्या (प्रमत्या) प्रकृष्टा मितमननं यस्यां तया (वीरशुष्मया) वीराणां योद्धृणां शुष्माणि बलानि यस्यां तत्रा (गोअग्रया) गाव इन्द्रियाणि धेनवः पृथिव्यो वाऽग्राः श्रेष्ठा यस्यां तया। अत्र सर्वत्र विभाषा गाः। (अष्टा०६.१.१२२) अनेन प्रकृतिभावः। (अश्ववत्या) प्रशस्ता वेगबलयुक्ता अश्व्राविद्यन्ते यस्यां तया (रभेमिह) शत्रुभिः सह युध्येमिह॥५॥

अन्वर्यः हे इन्द्र सभाध्यक्ष! यथा वयं त्वत्सहायेन सम्राया सिमषा पुरुश्चन्द्रैरिभद्युभिः संवाजेभिः प्रमत्या देव्या गोऽभग्रयाऽश्वावत्या वीरशुष्मया सेनया सह वर्त्तमानाः शत्रुभिः संरभेमिहं सम्यक् संग्रामं कुर्याम स्थितत्कृत्वा लौकिकपारमार्थिकान् व्यवहारान् रभेमिहं तं त्वं संसाधय॥५॥

अष्टक-१। अध्याय-४। वर्ग-१५-१६

मण्डल-१। अनुवाक-१०। सूक्त-५३

भावार्थ:-निह कश्चिदिप विद्वत्सहायमन्तरा सम्यक् पुरुषार्थसिद्धिमाप्नोति नैव किल बलारोग्यपूर्णसामग्री- सुशिक्षितया धार्मिकशूरवीरयुक्त्या चतुरङ्गिण्या सेनया विना कश्चिल्लिगुपराज्यं कृत्वा विजयं प्राप्तुं शक्नोति, तस्मादेतत्सर्वदोन्नेयमिति॥५॥

पदार्थ:-हे (इन्द्र) सभाध्यक्ष! जैसे हम लोग आप के सहाय से (सम्राया) उत्तम राज्यलक्ष्मी (सिमषा) धर्म की इच्छा वा अन्नादि (अभिद्युभि:) विद्या व्यवहार और प्रकाशयुक्त (पुरुचन्द्रें) बहुत आह्वादकारक सुवर्ण और उत्तम चांदी आदि धातु (सं वाजेभि:) विज्ञानादि गुण् का संग्राम तथा (प्रमत्या) उत्तम मितयुक्त (देव्या) दिव्यगुण सिहत विद्या से युक्त सेना से (गोअग्रया) श्रेष्ठ इन्द्रिय गौ और पृथिवी से युक्त (वीरशुष्मया) शूरवीर योद्धाओं के बल से युक्त (अश्ववत्या) प्रशंसनीय विग, बलयुक्त घोड़े वाली सेना के साथ वर्त्तमान होके शत्रुओं के साथ (संरभेमिह) अच्छे प्रकार संग्राम को करें, इस सब कार्य्य को करके लौकिक और पारमार्थिक सुखों को (रभेमिह) सिद्ध करें॥ प्रा

भावार्थ:-कोई भी मनुष्य विद्वान् की सहायता के विना अच्छे प्रकार पुरुषार्थ की सिद्धि को प्राप्त नहीं हो सकता और निश्चय करके बल, आरोग्य, पूर्ण सामग्री और उत्तम शिक्षा से युक्त धार्मिक, शूरवीर युक्त चतुरंगिणी अर्थात् चौतर्फी अङ्ग से युक्त सेनो के किना शत्रुओं का पराजय वा विजय के प्राप्त होने को समर्थ नहीं हो सकता, इससे मनुष्यों की इन कार्यों की उन्नति करनी चाहिये॥५॥

पुनस्तै: किं कत्तिव्यमित्युप्रदिश्यते॥

फिर उन मनुष्यों को क्या करना चाहिय, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

ते त्वा मदा अमद्रन्तानि वृष्ण्या ते सोमाओं वृत्रहत्येषु सत्पते। यत्कारवे दर्श वृत्राण्यप्रिति विर्हिष्मते नि सहस्राणि बुईर्यः॥६॥

ते। त्वा। मदाः। अमदुन् तानि। वैषया। ते। सोमासः। वृत्रऽहत्येषु। सत्ऽपते। यत्। कारवे। दर्श। वृत्राणि। अप्रति। बुहिष्मते। नि। सहस्राणि। बुहिर्गः॥६॥

पदार्थ:-(ते) प्रनास्था धार्मिका विद्वांसः (त्वा) त्वां पाठशालाध्यक्षम् (मदाः) आनन्दिता आनन्दियतारः (अमदन्) हृष्यन्त् (तानि) पूर्वोक्तानि कर्माणि (वृष्ण्या) सुखसेचनसमर्थानि (ते) पूर्वोक्ताः (सोमासः) अभिष्रुताः सुसम्पादिताः पदार्था यैस्ते (वृत्रहत्येषु) वृत्राः शत्रवो हत्या हननीया येषु तेषु संग्रामेषु (सत्पते) सत्पुरुषाणां पति पालियता तत्सम्बुद्धौ (यत्) यः (कारवे) कर्मकर्त्रे (दश) दशत्वसंख्याविशिष्ट्यनि (वृत्राणि) शत्रूणामावरकाणि कर्माणि (अप्रति) अप्रतीतानि यथा स्यात् तथा (बर्हिष्मते) विज्ञानक्ते (नि) नित्यम् (सहस्राणि) बहून्यसंख्यातानि सैन्यानि (बर्हयः) वर्द्धय॥६॥

अस्य:-हे सत्पते यस्त्वं बर्हिष्मते कारवे दश सहस्राणि वृत्राण्यप्रति निबर्हयस्तं त्वामाश्रित्य ते स्रोपासो भदाः शूरवीराः वृत्रहत्येषु तानि वृष्ण्या सेचनसमर्थान्युत्तमानि कर्माण्याचरन्तोऽमदन्॥६॥

भावार्थः-सर्वैर्मनुष्यैः सदा सत्पुरुषसङ्गेनाऽनेकानि साधनानि प्राप्यानन्दयितव्यमिति॥६॥

पदार्थ:-हे (सत्पते) सत्पुरुषों के पालन करने वाले सभाध्यक्ष! (यत्) जो आप (बर्हिष्मते) विज्ञान युक्त (कारवे) कर्म करने वाले मनुष्य के लिये (वृत्राणि) शत्रुओं को रोकने हारे कर्म (देश) दुर्श (सहस्राणि) हजार अर्थात् असंख्यात सेनाओं के (अप्रति) अप्रतीति जैसे हो वैसे प्रतिकृत कर्मों को (निर्बह्य:) निरन्तर बढ़ाइये, उस आप के आश्रित होकर (ते) वे (सोमास:) उत्तम-उत्तम पदार्थों को उत्पन्न करने (मदा:) आनन्दित करने वाले शूरवीर धार्मिक विद्वान् लोग (त्वा) आपको (वृत्रहत्येषु) शत्रुओं के मारने योग्य संग्रामों में (तानि) उन (वृष्ण्या) सुख वर्षाने वाले उत्तम कर्मों को आचरण करते हुए (अमदन्) प्रसन्न होते हैं॥६॥

भावार्थ:-सब मनुष्यों को चाहिये कि सत्पुरुषों के संग से अनेक साधनों की प्राप्त कर आनन्द भोगें॥६॥

पुनः स सेनाध्यक्षः कीदृश इत्युप्रिश्यते।

फिर वह सेनाध्यक्ष कैसा होवे, इस विषय का उपदेश अंगले मेन्त्र में किया है।।

युधा युधमुप घेदेषि धृष्णुया पुरा पुरं सिम्दं ह्रस्योजस्ता। नम्या यदिन्द्र सख्यां परावति निब्हयो न्युच्चि नाम मायिनम्॥७॥

युधा। युधम्। उपं। घा इत्। एषि। धृष्णुऽया पुरम्। सम्। इदम्। हृंसि। ओर्जसा। नम्यां। यत्। इन्द्र। सख्यां। पुराऽवर्ति। निऽबुर्हयः। नर्मुचिम्। नामा मायिनम्।। ७॥

पदार्थ:-(युधा) यो योधयित तेल (युध्य) युध्यमानम् (उप) सामीप्ये (घ) एव (इत्) अपि (एषि) प्राप्नोषि (धृष्णुया) धाष्ट्यांदिगृप्युक्तेन् धृष्टेन (पुरा) पूर्वम् (पुरम्) शत्रुनगरम् (सम्) एकीभावे (इदम्) यद्यद्गोचरं तत्तत् (हंसि) (नाश्यूसि (ओजसा) बलेन (नम्या) यथा रात्रिरन्धकारेण सर्वान् पदार्थानावृणोति तथा। नम्या इति रात्रिमामसु पठितम्। (निघं०१.७) (यत्) यस्मात् (इन्द्र) सभासेनाध्यक्ष (सख्या) मिश्रसमृहेन (परावित) दूरदेशे (निबर्हयः) निःसारय (नमुचिम्) न विद्यते मुचिमीक्षणं यस्य तम् अत्र इत्र कृष्यादिभ्य (अष्टा०वा०३.३.१०८) इति मुचधातोभीव इक्। नभ्राण्नपात्रवेदाना० (अष्टा०६३७५) इति निपातनात्रञः प्रकृतिभावः। (नाम) प्रसिद्धम् (मायिनम्) कृत्सिता माया विद्यते यस्य तं छलकपटयुक्तं दुष्टकर्मकारिणं मनुष्यम्॥७॥

अन्वर्यः हे इन्द्र सभाद्यध्यक्ष! यद्यस्मात्त्वं धृष्णुया सख्या युधौजसा च सह पुरेदं पुरं हंसि युधमिद् घ्र श्राञ्चमप्रोवैषि नम्या रात्रिरिवान्यायेनान्धकारिणं नाम प्रसिद्धं नमुचिं मायिनं परावित दूरदेशे निबर्हयस्त्रस्मात्त्वां मूर्धाभिषिक्तं कृत्वा वयं सभाद्यध्यक्षत्वेन स्वीकृत्य राजानमभिषिञ्चाम:॥७॥ अष्टक-१। अध्याय-४। वर्ग-१५-१६

मण्डल-१। अनुवाक-१०। सूक्त-५३

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। मनुष्यैर्बहून् मित्रान् सम्पाद्य दुष्टान् शत्रूत्रिवार्य दुष्टदलानि शत्रूणां पुराणि च विदार्य सर्वानन्यायकारिणो मनुष्यादीन् सततं कारागारे बध्वा धर्म्यं चक्रविर्निसञ्जं प्रशास्य परमैश्वर्यं सम्पादनीयम्॥७॥

पदार्थ:-हे (इन्द्र) सभा सेनाध्यक्ष! (यत्) जिस कारण तुम (धृष्णुया) दृद्धता आदि गुणयुक्त (सख्या) मित्रसमूह (युधा) युद्ध करने वाले (ओजसा) बल के साथ (पुरा) पहिल्ले (इदम्) इस (पुरम्) शत्रुओं के नगर को (हंसि) नष्ट करते तथा (युधम्) युद्ध करते हुए शत्रु को (इत्) भी (घ) निश्चय करके (एषि) प्राप्त करते और (नम्या) जैसे रात्रि अन्धकार से सब पदार्थों का आवरण करती है, वैसे अन्याय से अन्धकार करने वाले (नाम) प्रसिद्ध (नमुचिम्) छुट्टी से रहिता (माधिनम्) छल-कपटयुक्त दुष्ट कर्म करने वाले मनुष्य वा पश्चादि को (परावति) दूर देश में (निर्वाह्यः) चित्रसारण करते हो, इससे आपको मूर्द्धाभिषिक्त करके हम लोग सभाध्यक्ष के अधिकार में स्वीकार करके राजपदवी से मान्य करते हैं॥७॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को च्राहिये कि बहुत उत्तम-उत्तम मित्रों को प्राप्त, दुष्ट शत्रुओं का निवारण, दुष्ट दल वा शत्रुओं के पुरों को विदारण, सब अन्यायकारी मनुष्यों को निरन्तर कैदघर में बांध, ताड़ना दे और धर्मयुक्त चक्रबर्त्ति, राज्य को पालन करके उत्तम ऐश्वर्य को सिद्ध करें॥७॥

पुन: स कि कुर्यादिल्युपदिश्यते॥

फिर वह क्या करे, इस विक्रय का) उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

त्वं कर्ञमुत पूर्णयं वधीस्नेजिष्ठयातिष्टिग्वस्य वर्तनी।

त्वं शृता वङ्गृदस्याभिन्त् पुरोऽनानुदः परिषूता ऋजिर्थना॥८॥

त्वम्। कर्रञ्जम्। उता पूर्णियम्। वृधीः) तेजिष्ठया। अतिथिऽग्वस्ये। वृर्तनी। त्वम्। शृता। वङ्गृंदस्य। अभिनृत्। पुर्रः। अनुनुऽदः। पर्रिऽसूताः। ऋजिऽश्वना॥८॥

पदार्थ:-(त्वम्) समाध्यक्षः (करञ्जम्) यः किरित विक्षिपित धार्मिकाँस्तम्। अत्र कृविक्षेप इत्यस्माद्धातोः बाहुलकाद् औणादिकोऽञ्जन् प्रत्ययः। (उत्र) अपि (पर्णयम्) पर्णानि परप्राप्तानि वस्तूनि याति प्राप्नोति (तं चिरम् (वधीः) हंसि (तेजिष्ठया) या अतिशयेन तीव्रा तेजिष्ठा सेनानीतिर्वा तया (अतिथिग्वस्थ) अतिश्रीम् गच्छिति गमयित वा येन तस्य। अत्रातिथ्युपपदादमधातोः बाहुलकादौणादिको इवः प्रहूषयः। (वर्तनी) वर्तते यया क्रियया सा (त्वम्) (शता) बहूनि (वङ्गृदस्य) यो वङ्गृन् वक्रान् विषादीन् पदार्थान् व्यवहारान् ददात्युपदिशति वा तस्य दुष्टस्य (अभिनत्) विदारयसि (पुरः) पुराणि

६५८

(अननुदः) योऽनुगतं न ददाति तस्य (परिषूताः) परितः सर्वतः सूता उत्पन्ना उत्पादिता वा पदार्थी (ऋजिश्वना) ऋजव ऋजुगुणयुक्ता सुशिक्षिताः श्वानो येन तेन सह॥८॥

अन्वय:-हे सभाध्यक्ष! यतस्त्वं यस्मिन् युद्धव्यवहारे तेजिष्ठया सेनया करञ्जमुमाणि पर्णेर्थं वधीर्हंसि याऽतिथिग्वस्य वर्त्तनी गमनागमनसत्करणिक्रयाऽस्ति तां रिक्षित्वाऽननुदो वङ्गुदस्य दृष्टस्य शतानि पुरः पुराण्यभिनद्भिनित्से ये परिसूताः पदार्थास्तानृजिश्वनां व्यवहारेण रक्षित्व सभाध्यक्षत्वे योग्योऽसीति वयं निश्चिनुमः॥८॥

भावार्थ:-राजपुरुषैर्दुष्टान् शत्रून् छित्वा पूर्णविद्यावतां परोपकास्णि भीर्भिकाणामितथीनां सित्क्रियार्थं सर्वान् प्राणिनः पदार्थांश्च रक्षित्वा धर्म्यं राज्यं सेवनीयम्। यथा आनः स्वामिनं रक्षन्ति तथान्ये रिक्षतुं न शक्नुवन्ति तस्मादेते सुशिक्ष्य परिरक्षणीयाः॥८॥

पदार्थ:-हे सभाध्यक्ष! जिस कारण (त्वम्) आप इस युद्ध व्यवहार में (तेजिष्ठया) अत्यन्त तीक्ष्ण सेना वा नीतियुक्त बल से (करञ्जम्) धार्मिकों को दुःख देने (प्रणयम्) दूसरे के वस्तु को लेने वाले चोर को (उत) भी (वधी:) मारते और जो (अतिथिग्वस्य) अतिथियों के जाने आने के वास्ते (वर्तनी) सत्कार करने वाली क्रिया है, उसकी रक्षा कर (अननुदः) अनुकूर्ण ने वर्त्तने (वड्गृदस्य) जहर आदि पदार्थों को देने वा दुष्ट व्यवहारों का उपदेश करने वाले दुष्ट मनुष्य के (शता) असंख्यात (पुरः) नगरों को (अभिनत्) भेदन करते और जो (पिरसूताः) सब प्रवार से उत्पन्न किये हुए पदार्थ हैं, उनकी (ऋजिश्वना) कोमल गुणयुक्त कुत्तों की शिक्षा करने वाले के समाम व्यवहार के साथ रक्षा करते हो, इससे आप ही सभा आदि के अध्यक्ष होने योग्य हो, ऐसा हम लोग चित्रचय करते हैं॥८॥

भावार्थ:-राजमनुष्यों को दुष्ट शाक्षां कि होतेन से पूर्ण विद्यायुक्त परोपकारी धार्मिक अतिथियों के सत्कार के लिये सब प्राणी वा सब पदार्थों को रक्षा करके धर्मयुक्त राज्य का सेवन करना चाहिये, जैसे कि कुत्ते अपनी स्वामी की रक्षा करते हैं, वैसी अन्य जन्तु रक्षा नहीं कर सकते, इससे इन कुत्तों को सिखा कर और इनकी रक्षा करती चाहिये॥८)

पुर्तः स किं कुर्यादित्युपदिश्यते॥

फिर अह क्या और, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

त्वमेताञ्जन्तराज्ञो द्विदेशाबन्धना सुश्रवसोपज्ग्मुषः।

षृष्टिं सहस्रो नवति नवं श्रुतो नि चुक्रेण रथ्यां दुष्पदांवृणक्॥९॥

त्वर्षः। प्रतेत्। जन्उराज्ञः। द्विः। दर्शः। अबुन्धुनां। सुऽश्रवंसा। उपुऽजग्मुषंः। षृष्टिम्। सहस्रां। नवतिम्। नवं। श्रुतः नि। चुक्रणः। रथ्यां। दुःऽपदां। अवृणुक्॥९॥

पदार्थ:-(त्वम्) सभाद्यध्यक्षः (एतान्) मनुष्यादीन् (जनराज्ञः) जना धार्मिका राजानो येषां तान् (द्विः) हिन्नारम् (दश) दश संख्यायाम् (अबन्धुना) अविद्यमाना बन्धवो मित्रा यस्य तेनार्थेन सह अष्टक-१। अध्याय-४। वर्ग-१५-१६

मण्डल-१। अनुवाक-१०। सूक्त-५३

(सुश्रवसा) शोभनानि श्रवांसि श्रवणन्यन्नानि वा यस्य तेन मित्रेण सह (उपजग्मुषः) य उप सामीप्ये गतवन्तस्तान् (षष्ट्रिम्) एतत्संख्याकान् (सहस्ना) सहस्राणि (नवितम्) एतत्संख्याकान् (नवितम्) याः श्रूयते सः (नि) नित्यम् (चक्रेण्) शस्त्रसम्प्रहेन चक्राङ्गयुक्तेन यानसमूहेन वा (स्थ्या) यो रथं वहित तेन रथ्येन (दुष्पदा) दुःखेन पत्तं प्रस्तु योग्येन (अवृणक्) वृणक्षि॥९॥

अन्वय:-हे सभाद्यध्यक्ष! यथा श्रुतस्त्वमेतानबन्धुना सुश्रवसा सह वर्त्तमानोपुपजग्मुष उपगतां षष्टिं नवितं नव दश च सहस्राणि जनराज्ञो दुष्पदा रथ्या दुष्प्रापकेन रथ्येन चक्रेण द्विन्यवृणक् नित्यं वृणिक्ष दु:खै: पृथक् करोषि दुष्टांश्च दूरीकरोषि तथा त्वमिप दुराचार्त्पृथ्व प्रस्तार्थ।

भावार्थ:-चक्रवर्तिना राज्ञा सर्वान् माण्डलिकान् महामाणुँ हिल्कान् सज्ञो भृत्यान् गृहस्थान् विरक्तान् वाऽनुरज्य शरणागतान् पालयित्वा धर्म्यं सार्वभौमपञ्चिपन्शासमीयम्। यतो दशेत्यादयः संख्यावाचिनः शब्दा उपलक्षणार्थाः सन्त्यतो राजपुरुषैः सर्वेषां प्रथायोग्यं रक्षणं दण्डनं च विधेयमिति॥९॥

पदार्थ: - हे सभा और सेना के अध्यक्ष! जैसे (श्रुत:) श्रिवण करने वाले (त्वम्) तुम (एतान्) इन (अबन्धुना) अबन्धु अर्थात् मित्ररहित अनाथ वा (सुश्रवसा) उत्तम श्रवण अन्नयुक्त मित्र के साथ वर्तमान (उपजग्मुषः) समीप होने वाले (षष्ट्रिम्) सिठ (भवितम्) नव्वे (नव) नौ (दश) (सहस्राणि) दस हजार (जनराज्ञः) धार्मिक राजायुक्त मनुष्यादिकों को (दृष्पदा) दुःख से प्राप्त होने योग्य (रथ्या) रथ को प्राप्त करने वाले (चक्रेण) शस्त्र विशेष का स्वक्रेष्ट अङ्क युक्त यानसमूह से (द्विः) दो बेर (न्यवृणक्) नित्य दुःखों से अलग करते वा दुष्टों क्ये दूर करते हो, वैसे तू भी पापाचरण से सदा दूर रह॥९॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में बाचकेत्प्तोपमालङ्कार है। चक्रवर्त्ति राजा को माण्डलिक वा महामाण्डलिक राजा भृत्य गृहस्भ वा विरक्तों को प्रसन्न और शरणागत आये हुए मनुष्य की रक्षा करके धर्मयुक्त सार्वभौम राज्य का यथावत प्रालम करना चाहिये और दश से आदि ले के सब संख्यावाची शब्द उपलक्षण के लिये हैं, इससे अजपुरुषों को योग्य है कि सब की यथावत् रक्षा वा दुष्टों को दण्ड देवे॥९॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

किर वह कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

त्वर्माविष्य सुश्रवंसं तवोतिभिस्तव त्रामंभिरिन्द्र तूर्वयाणम्।

त्वेप्स्मै कुर्त्समितिथिग्वमायुं मुहे राज्ञे यूने अरन्धनाय:॥१०॥

त्वम्। आवि्र्यः। सुऽश्रवंसम्। तर्व। ऊतिऽभिः। तर्व। त्रामंऽभिः। इन्द्रः। तूर्वयाणम्। त्वम्। अस्मै। कुर्त्सम्। अति्रियुऽग्वम्। आयुम्। मुहे। राज्ञे। यूने। अरुखनायः॥ १०॥

पदार्थ:-(त्वम्) सभाद्यध्यक्षः (आविथ) रक्षसि (सुश्रवसम्) सुष्ठु श्रवांसि श्रवणान्यस्तिनि घर्ये तम् (तव) रक्षणे वर्त्तमानस्य (ऊतिभिः) रक्षणादिभिः (तव) सेनादिभिः सह वर्त्तमानस्य (त्रामानः) त्रायन्ते ते धार्मिका विद्वांसः शूरास्तैः (इन्द्र) परमैश्वर्यप्रद (तूर्वयाणम्) तूर्वाः शत्रुवव्विहंसका योद्धारो यानेषु यस्य तम् (त्वम्) सभाशालासेनाप्रजारक्षकः (अस्मै) युध्यमानाय वीराय (कुर्मम्) वज्रम्) कुत्स इति वज्रनामसु पठितम्। (निघं०२.२०) (अतिथिग्वम्) योऽतिथीन् गच्छति गम्यति वो तम् (आयुम्) य एति प्राप्नोति तम् (महे) महोत्तमगुणविशिष्टाय (राज्ञे) न्यायविनय्वव्यामुणैर्देदीप्यमानाय (यूने) युवावस्थायां वर्त्तमानाय (अरस्थनायः) अरमलं धनं यस्य स इव्यच्यसीत्यरम्वनायः। अत्र लडथें लिङ्॥१०॥

अन्वय:-हे इन्द्र सभाद्यध्यक्ष! त्वमस्मै महे यूने राज्ञे तुर्वोत्तिभिस्तव त्रामभी रिक्षतं यमतिथिग्वं तूर्वयाणमायुं सुश्रवसमरन्धनायो यं त्वं कृत्समाविथ तं किमपि दुःखं त्र भूवति॥१०॥

भावार्थ:-राजपुरुषै: शत्रून् निवार्य सर्वान् रक्षित्वा सर्वेद्या सुखिन: सम्पादनीया: एते किल राजोत्रतिश्रिय: सदा भवेयु:। विद्याशालाध्यक्ष: सर्वान् सुशिक्षया विदुष: शस्त्रास्त्रकुशलान् सम्पाद्येतै: प्रजां सततं रक्षेत्॥१०॥

पदार्थ:-हे (इन्द्र) सभासेनाध्यक्ष! (त्वम्) आप (अस्मे) इस (महे) महा उत्तम-उत्तम गुणयुक्त (यूने) युवावस्था में वर्तमान (राज्ञे) न्याय विजय और विद्यादि गुणों से देदीप्यमान राजा के लिये (तव) आप के (ऊतिभिः) रक्षण आदि कर्मों से सेनीदि सहित और (तव) वर्तमान आपके (त्रामिभः) रक्षा करने वाले धार्मिक विद्वानों से रक्षा किये हुस् जिस (अतिथिग्वम्) अतिथियों को प्राप्त करने कराने (तूर्वयाणाम्) शत्रुबलों की हिंसा करने वाले यानसहित (आयुम्) जीवनयुक्त (सुश्रवसम्) उत्तम श्रवण वा अन्नादि युक्त मनुष्यों को अरस्थनायः) पूर्ण धन वाले मनुष्य के समान आचरण करते और (त्वम्) आप जिस (कुत्सम्) वज्र के समान वीर पुरुष की (आविथ) रक्षा करते हो, उसको कुछ भी दुःख नहीं होता॥१०॥

भावार्थ:-राजपुरुषों को योग्य है कि शत्रुओं को निवारण कर सब की रक्षा करके सर्वथा उनको सुखयुक्त करें व्रथा से निश्क्य करके राजोन्नतिरूपी लक्ष्मी से सदा युक्त रहें और विद्याशाला के अध्यक्ष उत्तम शिक्षा से सब श्रेस्त्रास्त्र विद्या में कुशल निपुण विद्वानों को सम्पन्न करके इन से प्रजा की निरन्तर रक्षा करें। रूपा

पुनरेते परस्परं कथं वर्त्तेरन्नित्युपदिश्यते॥

फिर ये लोग परस्पर कैसे वर्त्तें, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अष्टक-१। अध्याय-४। वर्ग-१५-१६

मण्डल-१। अनुवाक-१०। सूक्त-५३

य उद्चीन्द्र देवगोपाः सर्खायस्ते शिवतमा असीम। त्वां स्तोषाम् त्वयां सुवीरा द्राघीय आर्युः प्रतरं दर्धानाः॥११॥१६॥

ये। उत्रऋचि। इन्द्र। देवऽगोपाः। सर्खायः। ते। शिवऽत्तेमाः। असाम। त्वाम्। स्ताराम्। स्वया। सुऽवीराः। द्राघीयः। आर्युः। प्रऽतरम्। दर्धानाः॥११॥

पदार्थ:-(ये) वक्ष्यमाणलक्षणा वयम् (उद्चि) उत्कृष्टा ऋचो यस्मिन्ध्ययेने तस्मिन् (इन्द्र) सभाद्यध्यक्षं (देवगोपा:) देवा विद्वांसो गोपा रक्षका येषान्ते। यद्वा ये देवानां दिव्यानां गुणानां कर्मणां वा गोपा रक्षकास्ते (सखाय:) परस्परं सुहृदः सन्तः (ते) तव (शिवतमाः) अतिश्रयेन श्रिवाः कल्याणकारकं कर्म कुर्वन्तः कारयन्तश्च (असाम) भवेम (त्वाम्) शुभलक्षणम् (स्रोषाम्) गुणान् कीर्त्तयेम (त्वया) रिक्षताः शिक्षिता वा (सुवीराः) शोभनाश्च ते वीराश्च यद्वा सुष्ट्र वीरा येष्ट्र) ते (द्राघीयः) अतिशयेन विस्तीर्णं शताद् वर्षेभ्योऽप्यधिकम् (आयुः) जीवनम् (प्रतरम्) प्रकृष्टिया तस्त्री प्लावयित दूरीकरोति दुःखं येन तत् (दधानाः) धरन्तः सन्तः॥११॥

अन्वय:-हे इन्द्र! ते तव देवगोपाः शिवतमाः स्खियो व्यभैसाम भवेम त्वया रक्षिताः सुवीराः प्रतरं द्राघीय आयुर्दधानाः सन्तो वयमुदृचि त्वां स्तोषामा ११।

भावार्थ:-सर्वेर्मनुष्यै: परस्परं निश्चितां मैत्रीं कृत्वा सर्वान् स्त्रीपुरुषादिजनान् सुविद्यायुक्तान् सम्पाद्य जितेन्द्रियत्वादिगुणान् गृहीत्वा ग्राहयित्वा च पूर्णमात्रुभीक्तव्यम्॥११॥

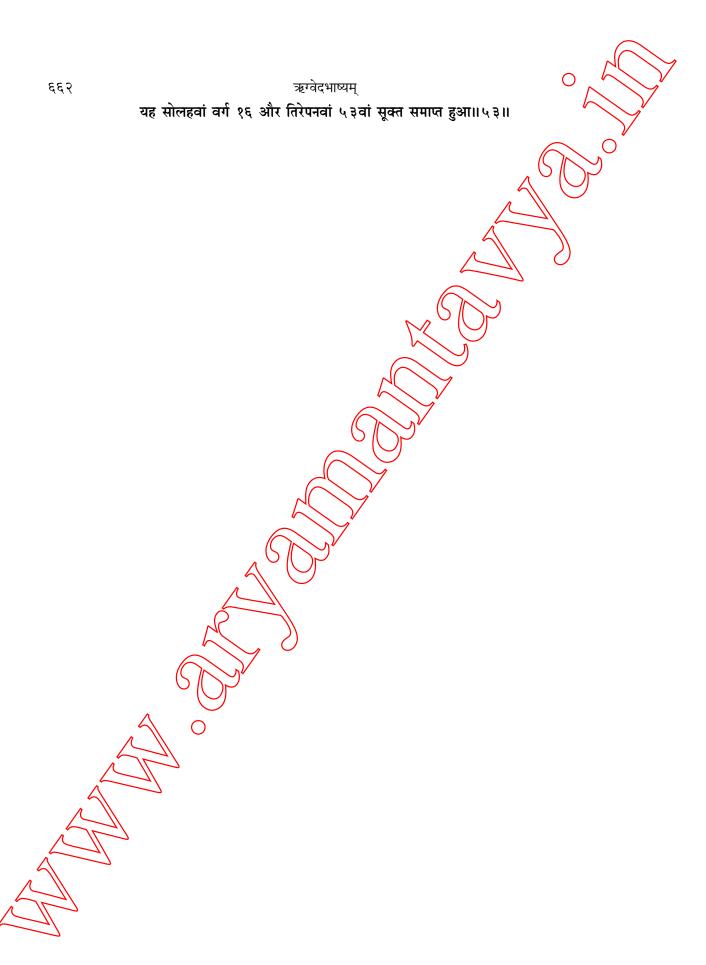
अस्मिन् सूक्ते विद्वत्सभाध्यस्म्रजापुरुषेः, परस्परिमत्रभावेन वर्त्तित्वा सर्वदा सुखं प्राप्तव्यमित्युक्तमत एतत्सूक्तार्थस्य पूर्वसूक्तार्थन् । सह सङ्गतिरस्तीति बोध्यम्॥

इति षोडशो १६ वर्रीस्त्रिपञ्चाशं ५३ सूक्तं च समाप्तम्॥५३॥

पदार्थ:-हे (इन्द्र) सभारताध्यक्ष! (ते) आप के (देवगोपा:) रक्षक विद्वान् वा दिव्य गुण कर्मों की रक्षा करने (शिवतमा:) अतिशय करके कल्याण लक्षणयुक्त (सखाय:) परस्पर मित्र हम लोग (असाम) होवें (त्वया) अपिक साथ) रक्षा वा शिक्षा किये (सुवीरा:) उत्तम वीरयुक्त (अतरम्) दु:ख दूर करते (द्राघीय:) अत्यन्त विस्तायुक्त सौ वर्ष से अधिक (आयु:) उमर को (दधाना:) धारण करके (उद्चि) उत्तम ऋणा युक्त अध्ययन व्यवहार में (त्वाम्) शुभ लक्षण युक्त आप के (स्तोषाम) गुणों का कीर्तन करें॥ ११॥

भाषार्थः सब मनुष्यों को परस्पर निश्चित मैत्री, सब स्त्री पुरुषों को उत्तम विद्या युक्त जितेन्द्रिद्धपून आदि मुणों को ग्रहण कर और कराके पूर्ण आयु का भोग करना चाहिये॥११॥

इसे सूक्त में विद्वान् सभाध्यक्ष तथा प्रजा के पुरुषों को परस्पर प्रीति से वर्त्तमान रहकर सुख को प्रिक करें। इससे सूक्तार्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये।।



अथास्यैकादशर्चस्य चतुःपञ्चाशस्य सूक्तस्याङ्गिरसः सव्य ऋषिः। इन्द्रो देवता। १,४,१० विराड्जगति। २,३,५ निचृज्जगती। ७ जगती च छन्दः। निषादः स्वरः। ६ विराट्त्रिष्टुप्।

८,९,११ निचृत्त्रिष्टुप् च छन्दः। धैवतः स्वरः॥

तत्रादावीश्वरगुणा उपदिश्यन्ते॥

अब चौअनवें सूक्त का आरम्भ है। उस के पहिले मन्त्र में ईश्वर के गुणों का उपदेश किया है।

मा नो अस्मिन् मेघवन् पृत्स्वंहीस नृहि ते अन्तः शर्वसः परीणशे। अक्रन्दयो नृद्यो रे रोरुवद्वना कथा न क्षोणीर्भियसा समारत॥ १॥

मा। नुः। अस्मिन्। मुघुऽवृन्। पृत्ऽसु। अंहंसि। नुहि। ते। अन्तः। शर्वाः। मुरुज्यो। अक्रन्दयः। नुर्धः। रोरुवत्। वर्ना। कुथा। न। क्षोणीः। भियसा। सम्। आर्तु॥ १॥

पदार्थ:-(मा) निषेधार्थे (न:) अस्मान् (अस्मिन्) जगृति (मध्यन्) प्रशस्तधनयुक्त (पृत्सु) सेनासु (अंहिस) पापे (निहं) निषेधार्थे (ते) तव (अन्तः) पूर्म् (शवसः) बलस्य (परीणशे) परितः सर्वतो नश्यन्त्यदृश्या भवन्ति यस्मिस्तिस्मिन्। अत्र घूवर्थे कः प्रत्ययोऽन्येषामि इति दीर्घश्च। (अक्रन्दयः) आह्वय (नद्यः) सरित इव (रोक्तवत्) पुनः पुत्रा रोद्यु (वना) सम्भक्तानि वस्तूनि (कथा) कथम् (न) निषेधे (क्षोणीः) बह्वीः पृथिवीः। क्षोणी इति पृथिवीनमम् पठितम्। (निघं०१.१) (भियसा) भयेन (सम्) सम्यक् (आरत) प्राप्नुत॥१॥

अन्वयः-हे मघवन् जगदीश्वर! यस्त्वं पूत्स्वस्मिन् परीणशेंऽहस्यस्मान् माक्रन्दयो यस्य ते तव शवसोऽन्तो नह्यस्ति स त्वमस्मान्नद्यः सिन्ति इव मा भ्रमय भियसा मारोरुवन्मा रोदय यस्त्वं क्षोणीर्बह्वीः पृथिवीर्निर्मातुं धर्तुं शक्नोषि तन्त्वा मनुष्याः बधा मे समारत कथं न प्राप्नुयुः॥१॥

भावार्थ:-अत्र मनुष्ट्रैः परमेश्वरस्यानन्तत्वात् सत्यभावेनोपासितः सन्नयं दुःखजनकादधर्ममार्गान्निवर्त्य सुख्यति। एतस्यानन्तरूपगुणवत्त्वात् कश्चिदप्यस्यान्तं ग्रहीतुं न शक्नोति, तस्मादेतस्योपासनं त्यक्त्वा को भाष्यहीनोऽन्यमुपासीत॥१॥

पदार्थ:-हे (मघ्वन) उत्तम् धनयुक्त जगदीश्वर! जो आप (पृत्सु) सेनाओं (अस्मिन्) इस जगत् और (परीणशे) सब प्रकार से नहें करने वाले (अंहिंस) पाप में हम लोगों को (माक्रन्दयः) मत फँसाइये जिस (ते) आप है (शवसः) बल के (अन्तः) अन्त को कोई भी (निह) नहीं पा सकता वह आप (नद्यः) निद्यों के समान हम को मत भ्रमाइये (भियसा) भय से (मा रोक्रवत्) बार-बार मत रुलाइये जो आप (क्षीणीः) बहुत गुणयुक्त पृथिवी के निर्माण वा धारण करने को समर्थ हैं, इसलिये मनुष्य आपको क्षिया) क्यों (न) नहीं (समारत) प्राप्त होवे॥१॥

भावार्थ:-मनुष्यों को चाहिये कि जो परमेश्वर अनन्त होने से सत्य प्रेम के साथ उसकी उपासना किया हुआ दु:ख उत्पन्न करने वाले अधर्म मार्ग से निवृत्त कर मनुष्यों को सुखी करता है, उसके अनन्त

स्वरूप गुण होने से कोई भी अन्त को ग्रहण नहीं कर सकता। इस से उस ईश्वर की उपासना को छीड़े के कौन अभागी पुरुष दूसरे की उपासना करे॥१॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा है, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अर्चा शक्रायं शाकिने शचीवते शृण्वन्तमिन्द्रं महयन्निभ ष्टुहि। यो धृष्णुना शवसा रोदसी उभे वृषां वृष्क्वा वृष्भो न्यू अते॥२॥

अर्च। शृक्रार्य। शाकिने। शचीऽवते। शृण्वन्तम्। इन्द्रम्। महर्यन्। अभि। स्तुद्धि। यः। शृष्णुनां। शर्वसा। रोदंसी इति। उभे इति। वृषां। वृष्ऽत्वा। वृष्भः। निऽऋुअते॥२॥

पदार्थ:-(अर्च) सत्कुरु (शक्राय) समर्थाय (शाकिने) प्रशस्ताः शाकाः श्राक्तियुक्ता गुणा विद्यन्ते यस्मिस्तस्मै (शचीवते) प्रशस्ता प्रज्ञा विद्यते यस्य तस्मै। शचीति प्रज्ञानामसु पठितम्। (निघं०३.९) (शृण्वन्तम्) श्रवणं कुर्वन्तम् (इन्द्रम्) प्रशस्तैश्वर्ययुक्तं स्भावध्यक्षम् (महयन्) सत्कुर्वन् (अभि) आभिमुख्ये (स्तुहि) प्रशंस (यः) (धृष्णुना) दृढत्वादिगुणयुक्तेन (शव्मा) बलेन (रोदसी) द्यावापृथिव्यौ (उभे) द्वे (वृषा) जलानां वर्षकः (वृषत्वा) सुखवर्षकाणां भावस्त्रीन। अत्र शेश्छन्दिस बहुलम् इति शेर्लोपः। (वृषभः) यो वृषान् वृष्टिनिमित्तानि भावि सः (नि) नितरां (ऋञ्जते) प्रसाध्नोति। ऋञ्जितः प्रसाधनकर्मा। (निरु०६.१)॥२॥

अन्वयः-हे मनुष्य! यथा सूर्य्यो वृषा वृष्यभो वृष्यत्वा धृष्णुना शवसोभे रोदसी निऋज्ञते तथा यो राज्यं साध्नोति तस्मै शाकिने शचीवते शक्नायात्वपर्चा में सर्वन्यायं शृण्वन्तमिन्द्रं महयन् सन्नभिस्तुहि॥२॥

भावार्थ:-यो गुणोत्कृष्टत्वेन सूर्विभौमः स्रोमाद्यध्यक्षो धर्मेण सर्वान् प्रशास्य धर्मे संस्थापयित स एव सर्वैर्मनुष्यैराश्रयितव्य:॥२॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! तुम जैसे (वृष्ण) जल वर्षाने और (वृष्ण:) वर्षा के निमित्त बादलों को प्रसिद्ध करानेहारा सूर्य्य (वृष्तवा) सुखों को वर्षा के तत्त्व और (धृष्णुना) दृढ़ता आदि गुणयुक्त (शवसा) आकर्षण बल से (उभे) दिनि (सेद्रली) द्यावापृथिवी को (न्यूञ्जते) निरन्तर प्रसिद्ध करता है, वैसे (य:) जो तू राज्य का यथायोग्य प्रबन्ध करता है उस (शाकिने) प्रशंसनीय शक्ति आदि गुणयुक्त (शचीवते) प्रशंसित बुद्धिमान् (शक्ताय) समर्थ के लिये (अर्च) सत्कार कर उस सबके न्याय को (शृण्वन्तम्) श्रवण करने वाले (इन्द्रम्) प्रशंसनीय ऐश्वर्ययुक्त सभाध्यक्ष का (महयन्) सत्कार करता हुआ (अभिष्टुहि) गुणों की प्रशंसा किया कर।। रे॥

भावार्थ:-जो गुणों की अधिकता होने से सार्वभौम सभाध्यक्ष धर्म से सबको शिक्षा देकर धर्म के नियम में स्थापन करता है, उसी का सब मनुष्यों को सेवन वा आश्रय करना चाहिये॥२॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

अष्टक-१। अध्याय-४। वर्ग-१७-१८

मण्डल-१। अनुवाक-१०। सूक्त-५४

फिर वह सभाध्यक्ष कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अर्चा दिवे बृहुते श्रूष्यं र्वे वचः स्वक्षेत्रं यस्य धृष्तो धृषन्मनः।

बृहच्छ्रीवा असीरो बुर्हणा कृतः पुरो हरिभ्यां वृष्भो रथो हि षः॥३॥

अर्ची दिवे। बृहते। श्रूष्येम्। वर्चः। स्वऽक्षेत्रम्। यस्य। धृष्ठतः। धृषत्। मर्नः। बृहत्ऽश्रेवाः। असुरः।

बुर्हणां। कृत:। पुर:। हरिंऽभ्यास्। वृष्भ:। रथः। हि। स:॥३॥

पदार्थ:-(अर्च) पूजय। अत्र ह्रच्चोऽतस्तिङ इति दीर्घः। (दिवे) सर्वथा शुभगुणस्य प्रकाशकाय (बृहते) विद्यादिगुणैर्वृद्धाय (शूष्यम) शूषे बले साधु यत्तत्। शूषिमिति बल्लामसु पित्तम्। (निघं०२.९) (वचः) विद्याशिक्षासत्यप्रापकं वचनम् (स्वक्षत्रम्) स्वस्य राज्यम्/(यस्य) सभाध्यक्षस्य (धृषतः) अधार्मिकान् दुष्टान् धर्षयतस्तत्कर्मफलं प्रापयतः (धृषत्) यो धृष्णिति दृष्टं कर्म करोति सः (मनः) सर्विक्रयासाधकं विज्ञानम् (बृहच्छ्रवाः) बृहच्छ्रवणं यस्य सः (असुरः) मेघो वा यः प्रज्ञां राति ददाति सः। असुर इति मेघनामसु पिठतम्। (निघं०१.१०) असुरिति प्रज्ञानामसु पिठतम्। (निघं०३.९) (बर्हणा) वृद्धियुक्तेन (कृतः) निष्पत्रः (पुरः) पूर्वः (हिष्याम्) सुशिक्षिताभ्यां तुरङ्गाभ्यां (वृषभः) यः पूर्वोक्तान् वृषान् भाति सः (रथः) रमणीयः (हि) खलू (सः)।

अन्वय:-हे विद्वन्मनुष्य! त्वं यस्य धृषतो मनी हि यो धृषद् बृहच्छ्वा असुर: पुरो हरिभ्यां युक्तो दिव इव वृषभो रथो बर्हणा कृतस्तस्मै बृहते स्बृक्षत्रं वर्धय शूष्यं वचोऽर्च च॥१३॥

भावार्थः-मनुष्यैरीश्वरेष्टं सभाद्यध्यश्चप्रशासितमेक्नमनुष्यराजप्रशासनविरहं राज्यं सम्पादनीयम्। यतः कदाचिद् दुःखान्यायालस्याज्ञानशत्रुपरस्प्रारविरोधपौद्धितं न स्यात्॥३॥

पदार्थ:-हे विद्वान् मनुष्य । तूँ (सस्य) जिस (धृषत:) अधार्मिक दुष्टों को कर्मों के अनुसार फल प्राप्त कराने वाले सभाध्यक्ष का (धृषत्) दृढ़ कर्म करने वाला (मन:) क्रियासाधक विज्ञान (हि) निश्चय करके है जो (बृहच्छ्रवा:) महाश्रेषण युक्त (असुर:) जैसे प्रज्ञा देने वाले (पुर:) पूर्व (हिरिभ्याम्) हरण-आहरण करने वा अग्नि जल वा भ्रोड़ से युक्त मेघ (दिवे) सूर्य के अर्थ वर्तता है, वैसे (वृषभ:) पूर्वोक्त वर्षाने वालों के प्रकाश करने वाले (रथ:) यानसमूह को (बर्हणा) वृद्धि से (कृत:) निर्मित किया है, उस (बृहते) विद्यादि गुणों से वृद्ध (दिवे) शुभ गुणों के प्रकाश करने वाले के लिये (स्वक्षत्रम्) अपने राज्य बढ़ा और (शूष्ट्रम्) बल तथा निपुणतायुक्त (वच:) विद्या शिक्षा प्राप्त करने वाले वचन का (अर्च) पूज्न अर्थात् उनके सहाय युक्त शिक्षा कर॥३॥

भावार्थ:-मनुष्यों को अपना राज्य ईश्वर इष्ट वाले सभाध्यक्ष के शिक्षा किये हुए को सम्पादन कर, एक मनुष्य राज के प्रशासन से अलग राज्य को सम्पादन करना चाहिये, जिससे कभी दु:ख, अस्याय, आलस्य, अज्ञान और शत्रुओं के परस्पर विरोध से प्रजा पीड़ित न होवे॥३॥

६६६

ऋग्वेदभाष्यम्

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह सभाध्यक्ष कैसा होवे, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

त्वं दिवो बृहतः सानुं कोपयोऽव त्मनां धृष्ता शम्बरं भिनत्। यन्मायिनो वृन्दिनो मुन्दिनां धृषच्छितां गर्भस्तिमुशनिं पृतुन्यसि॥४॥

त्वम्। द्विवः। बृहुतः। सानुं। कोपयः। अवं। त्मनां। धृष्ठता। शम्बंरम्। भिन्त्। यृत्। मास्यनः। वृन्दिनः। मन्दिनां। धृषत्। शिताम्। गर्भस्तिम्। अ्शनिम्। पृतन्यसिं॥४॥

पदार्थ:-(त्वम्) सभाध्यक्षः (दिवः) प्रकाशमयान्यायात् (बृहतः) महतः सत्यशुभगुणयुक्तात् (सानु) सनित्तं सम्भजन्ति येन कर्मणा तत्। अत्र दृसनिजनि (उपार्वाः) इति जुण् प्रत्ययः। (कोपयः) कोपयसि (अव) निरोधे (त्मना) आत्मना (धृषता) दृढकभिवरिणा (श्रम्बरम्) शं सुखं वृणोति येन तं मेघमिव शत्रुम् (भिनत्) विदृणाति (यत्) यः (मायिनः) कपटादिद्येषयुक्ताँश्छत्रून् (वृन्दिनः) निन्दिता व्रन्दा मनुष्यादिसमूहा विद्यन्ते येषां तान् (मन्दिना) हुप्रकारेण बृह्मिना (धृषत्) शत्रुधर्षणं कुर्वन् (श्रिताम्) तीक्ष्णधाराम् (गभित्तम्) रिशमम् (अशिनम्) छोदनभेदनेम वृद्धस्वरूपाम् (पृतन्यिस्) आत्मनः पृतनां सेनामिच्छिस॥४॥

अन्वय:-हे सभाध्यक्ष! यः शत्रून् धृषत्वं यथा सूर्य्यो बृहतो दिवः सानु शितामशिनं गभितं वज्राख्यं किरणं प्रहृत्य शम्बरं मेघं भिनत्तथा शम्ब्रास्त्राणि प्रक्षिप्य त्मना दुष्ट जनानवकोपयो व्रन्दिनो मायिनो विदृणासि तिन्नवारणाय पृतन्यसि स त्वं राज्यमहिन्ना। ४॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। यथा जगदीश्वर: पापकर्मकारिभ्य: स्वस्वपापानुसारेण दु:खफलानि दत्वा यथायोग्यं पीड्य्रत्येव पभाध्यक्ष: शस्त्रास्त्रशिक्षया धार्मिकशूरवीरसेनां सम्पाद्य दुष्टकर्मकारिणो निवार्य्य धार्मिकीं प्रजां सस्तं पालयत्॥४॥

पदार्थ: - हे सभाध्यक्ष! जो (धृषत्) शत्रुओं का धर्षण करता (त्वम्) आप जैसे सूर्य्य (बृहतः) महासत्य शुभगुणयुक्त (दिवा) प्रकाश से (सामु) सेवने योग्य मेघ के शिखरों पर (शिताम्) अति तीक्ष्ण (अशनिम्) छेदन-भेदन करने से त्रुब्रस्वरूप बिजुली और (गभित्तम्) वज्रूरूप किरणों का प्रहार कर (शम्बरम्) मेघ को (भिनत्) कार्ट के भूमि में गिरा देता है, वैसे शस्त्र और अस्त्रों को चला के अपने (त्मना) आत्मा स्रे दृष्ट मनुष्यों को (अवकोपयः) कोप कराते (वृन्दिनः) निन्दित मनुष्यादि समूहों वाले (मायिनः) कप्रदादि द्रोषयुक्त शत्रुओं को विदीर्ण करते और उनके निवारण के लिये (गृतन्यिस) अपने न्यायादि गृग्णों की प्रकाश करने वाली विद्या वा वीर पुरुषों से युक्त सेना की इच्छा करते हो सो आप राज्य के श्रीग्य होते हो॥४॥

भाषार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे जगदीश्वर पापकर्म करने वाले मनुष्यों के लिंचे अपते-अपने पाप के अनुसार दु:ख के फलों को देकर यथायोग्य पीड़ा देता है, इसी प्रकार

अष्टक-१। अध्याय-४। वर्ग-१७-१८

मण्डल-१। अनुवाक-१०। सूक्त-५४

सभाध्यक्ष को चाहिये कि शस्त्रों और अस्त्रों की शिक्षा से धार्मिक शूरवीर पुरुषों की सेना को सिद्ध और दुष्ट कर्म करने वाले मनुष्यों का निवारण करके धर्मयुक्त प्रजा का निरन्तर पालन करे॥४॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा हो, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

नि यद्वृणिक्षं श्रस्नस्यं मूर्धनि शुष्णस्य चिद्वृन्दिनो रोरुवृद्वनां। प्राचीनेन मनसा बुईणांवता यदद्या चित्कृणवः कस्त्वा परि॥५॥११७॥

नि। यत्। वृणिक्षिं। श्रुस्तनस्यं। मूर्धनिं। शुष्णिस्य। चित्। वृन्दिनः। ग्रिकेत्। वर्जा। प्राचीनेन। मनसा। बुर्हणांऽवता। यत्। अद्य। चित्। कृणवंः। कः। त्वा। परि॥५॥

पदार्थ:-(नि) नितराम् (यत्) यः (वृणिक्षि) त्यजिस (श्रासनस्य) श्रमनित येन प्राणेन तस्य (मूर्द्धनि) उत्तमाङ्गे (शुष्णस्य) बलस्य (चित्) इव (व्रन्दिनः) निन्दिता जन्दाः सन्ति येषां तान् दुष्टान् (रोस्रवत्) पुनः पुनारोदनं कारयन् सन् (वना) रिष्मियुक्तेन वन्निति रिष्मिनामसु पठितम्। (निघं०१.५) (प्राचीनेन) सनातनेन (मनसा) विज्ञानेन (बर्हणावता) बहु विधं बहु णं वर्धनं विद्यते यस्य तेन। अत्र भूम्न्यर्थे मतुप्। (यत्) यस्मात् (अद्य) अस्मिन् विद्यो निपातस्य च (अष्टा०६.३.१३६) इति दीर्घः। (चित्) अपि (कृणवः) हिंसितुं शक्नोति (कः) कृष्टिचदेव (त्वृत्र) त्वाम् (परि) निषेधे॥५॥

अन्वय:-हे विद्वन्! यद्यस्त्वं सूर्य्यो वहाँ भेघमित्र प्राचीनेन बर्हणावता मनसा श्वसनस्य शुष्णस्य मूर्धिन वर्त्तमाने व्रन्दिनो रोरुवत्सन् यद्यस्माद्धा चिवृणिक्ष तत्तस्माच्चिदिप त्वा त्वां कः पिर कृणवो हिंसितुं शक्नोति॥५॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोममालङ्कार:। यथा परमेश्वर: स्वकीयेनानादिना विज्ञानेन सर्वं न्यायेन प्रशास्ति सूर्य्यश्च मेघं हिनस्ति तृश्व सभाध्यक्षो धर्मेण सर्वं प्रशिष्याच्छत्र्र्रॅंश्च हिंस्यात्॥५॥

पदार्थ:-हे सभाध्यक्ष विद्वान्! (यत्) जो आप जैसे सविता (वना) रिष्मयुक्त मेघ का निवारण करता है, वैसे (प्राचीनेन) सनातन (व्रहणावता) अनेक प्रकार वृद्धियुक्त (मनसा) विज्ञान से (श्वसनस्य) प्राणवद् बलवान् (शुष्णस्य) शोषण कर्ता के (मूर्द्धिन) उत्तम अङ्ग में प्रहार के (चित्) समान (व्रन्दिन:) निन्दित कर्म करने वाले दुष्ट मनुष्यों को (रोक्ठवत्) रोदन कराते हुए (यत्) जिस कारण (अद्य) आज (निवृणक्षि) निर्दत्तर उन दुष्टों को अलग करते हो इससे (चित्) भी (त्वा) आप के (कृणवः) मारने को (कः) कोई भी सेम्पर्थ (परि) नहीं हो सकता॥५॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे परमेश्वर अपने अनादि विज्ञान युक्त न्याय से मुक्को शिक्षा देता और सूर्य मेघ को काट-काट कर गिराता है, वैसे ही सभापित आदि धर्म से सब क्री शिक्षा देवें और शत्रुओं को नष्ट-भ्रष्ट करें॥५॥ ६६८

ऋग्वेदभाष्यम्

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा हो, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

त्वमाविथ नर्यं तुर्वशं यदुं त्वं तुर्वीतिं वृय्यं शतक्रतो। त्वं रथुमेर्तशं कृत्व्ये धने त्वं पुरों नवृतिं देम्भयो नवं॥६॥

त्वम्। आविष्यः। नर्यम्। तुर्वश्नम्। यद्वेम्। त्वम्। तुर्वीतिम्। वय्यम्। शृतक्रतो इति शत्रक्रतो। त्वम्। रथम्। एतंशम्। कृत्व्ये। धने। त्वम्। पुरे:। नवितम्। दम्भयः। नवं॥६॥

पदार्थ:-(त्वम्) सभाध्यक्षः (आविथ) रक्षणादिकं करोषि (नर्यम्) नृषु साधुम् (तुर्वशम्) उत्तमं मनुष्यम् (यदुम्) प्रयतमानम्। अत्र यती प्रयत्ने धातोः बाहुलकाद् औणादिक उः)प्रत्ययो जश्त्वं च। (त्वम्) (तुर्वीतिम्) दुष्टान् प्राणिनो दोषांश्च हिंसन्तम्। अत्र संज्ञाया वितन्। वहुल छन्दिस इतीडागमः। (वय्यम्) यो वयते जानाति तम्। अत्र वय धातोः बाहुलकाद् औणादिको यत्प्रत्ययः। (शतक्रतो) बहुप्रज्ञ (त्वम्) शिल्पविद्योत्पादकः (रथम्) रमणस्यधिकरणम् (एत्रशम्) वेगादिगुणयुक्ताश्चवन्तम् (कृत्व्ये) कर्त्तत्ये (धने) विद्याचक्रवर्तिराज्यसिद्धे द्रव्ये (त्वम्) दुष्टानो भेता (पुरः) पुराणि (नवितम्) एतत्संख्याकानि (दम्भयः) हिंधि (नव) नवसंख्यासहितानि ।

अन्वय:-हे शतक्रतो विद्वन्! यतस्त्वं नर्यं तुर्वशं यदुमार्विथ त्वं तुर्वीतिं वय्यमाविथ त्वं कृत्व्ये धन एतशं रथं चाविथ त्वं नव नवितं शत्रूणा पुरो दम्भयस्तस्माद् भवानेवास्माभिरत्र राज्यकार्य्ये समाश्रयितव्य:॥६॥

भावार्थ:-मनुष्यैर्यो राज्यं रक्षितुं न्क्ष्मः स राज्ञा नैव कार्य्य:॥६॥

पदार्थ:-हे (शतक्रतो) बहुत सुद्धियुक्त विद्वन् सभाध्यक्ष! जिस कारण (त्वम्) आप (नर्च्यम्) मनुष्यों में कुशल (तुर्वशम्) उत्तम (यद्म्) यत्न करने वाले मनुष्य की रक्षा (त्वम्) आप (तुर्वितिम्) दोष वा दुष्ट प्राणियों को नष्ट करने बाले (वय्यम्) ज्ञानवान् मनुष्य की रक्षा और (त्वम्) आप (कृत्व्ये) सिद्ध करने योग्य (धने) विद्या, चक्रवर्षि राज्य से सिद्ध हुए द्रव्य के विषय (एतशम्) वेगादि गुण वाले अश्वादि से युक्त (रथम्) सुन्दर रथ्, क्षी (आविथ) रक्षा करते और (त्वम्) आप दुष्टों के (नव) नौ संख्या युक्त (नवितम्) नव्वे अथात नित्राणवे (पुरः) नगरों को (दम्भयः) नष्ट करते हो, इस कारण इस राज्य में आप ही का आश्रुष्ट हम लोगों को करना चाहिये॥६॥

भावार्थ:-मनुष्यों को योग्य है कि जो राज्य की रक्षा करने में समर्थ न होवे उस को राजा कभी न बनावें॥ ४५

पुनस्तेन सभाध्यक्षेण किं कर्त्तव्यमित्युपदिश्यते॥

किर अस सभाध्यक्ष को क्या करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।। अष्टक-१। अध्याय-४। वर्ग-१७-१८

मण्डल-१। अनुवाक-१०। सूक्त-५४

स घा राजा सत्पंतिः शूशुवज्जनो रातहंव्यः प्रति यः शासमिन्वंति। उक्था वा यो अभिगृणाति राधंसा दानुंरस्मा उपरा पिन्वते दिवः॥७॥

सः। घा राजां। सत्ऽपंतिः। श्रृशुव्वत्। जर्नः। रातऽह्रंव्यः। प्रति। यः। शासम्। इन्वति। उवेशा। वा। यः। अभिऽगृणाति। रार्धसा। दार्नुः। अस्मै। उपरा। पिन्वते। दिवः॥७॥

पदार्थ:-(स:) (घ) एव। अत्र ऋचि तुनुघ० इति दीर्घ:। (राजा) न्यायितज्ञाने दिभि: प्रक्रांशमानः (सत्पति:) सतां पालयिता (श्रृशुवत्) यो ज्ञापयित वर्द्धयित वा। अयं ण्यन्तस्ये शिवधातोर्लुङि प्रयोगोऽडभावश्च (जनः) उत्तमगुणकर्मिभवित्तमानः (रातहव्यः) रातानि व्याप्ति ह्व्यानि येन सः (प्रति) वीप्सायाम् (यः) ईदृग्लक्षणः (शासम्) शास्ति येन तं न्यायम्/ (इन्वति) व्याप्नोति। इन्वतिति व्याप्तिकर्मसु पठितम्। (निघं०२.१८) (उक्था) वक्तुं योग्यानि वेदस्ति अणि वीचनानि वा (वा) पक्षान्तरे (यः) सत्यवक्ता (अभिगृणाति) अभिगतान्युपदिशित (राधसा) न्यायप्रप्तेन धनेन (दानुः) दानशीलः (अस्मै) सभाध्यक्षाय (उपरा) मेघ इव। उपर इति मेघनामसु पठितम्। (निघं०१.१०) उपर उपलो मेघो भवित। उपरमन्तेऽस्मिन्नभ्राणि। उपरता आप इति वा। (पिरुपे २.२४) (पिन्वते) सेवते सिञ्चित वा। अत्र व्यत्ययेन आत्मनेपदम्। (दिवः) प्रकाशमानाद्धम्यांचरणात्। ७॥

अन्वय:-यो रातहव्यः सत्पितः सभाध्यक्षे जैनो राज्य प्रतिशासं प्रजा इन्वित न्यायं व्याप्नोति वा। यः शृशुवद् राज्यं कर्त्तुं जानाति राधसा दानुः सिन्तुक्थाऽभिगृणाति सर्वेभ्यो मनुष्येभ्य उपदिशत्यस्मै दिव उपरा सूर्य्यादुत्पद्य मेघो भूमिं सिञ्चतीव सर्वृद्धान् भिन्त्रते सेवते स घ राज्यं कर्तुं शक्नोति॥७॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। नहि कश्चित्सद्विद्याविनयन्यायवीरपुरुषसेनाग्रहणनुष्ठानेन विना राज्यं शासितुं शत्रून् जेतुं सर्वाणि सुखानि च प्राप्तुं शक्नोति तस्मादेतत्सभाध्यक्षेणावश्यमनुष्ठेयस्तारुग

पदार्थ:-(य:) जो (गतहव्य:) हल्ले पदार्थों को देने (सत्पित:) सत्पुरुषों का पालन करने (जन:) उत्तम गुण और कर्मों से सहित वर्तमान (राजा) न्यायिवनयादि गुणों से प्रकाशमान सभाध्यक्ष (प्रतिशासम्) शास्त्र-शास्त्र के प्रति प्रजा को (इन्वित) न्याय में व्याप्त करता (वा) अथवा (शूशुवत्) राज्य करने को जानता है और जो (राधसा) न्याय करके प्राप्त हुए धन से (दानु:) दानशील हुआ (उक्था) कहने योग्य वेदस्तात्र वा वचनों को (अभिगृणाित) सब मनुष्यों के लिये उपदेश करता है (अस्मै) इस सभाष्ट्रक्ष के लिये (दिव:) (उपरा) जैसे सूर्य के प्रकाश से मेघ उत्पन्न होकर भूमि को (णिन्वते) सीचता है, वैसे सब सुखों को (णिन्वते) सेवन करे (स:) वही राज्य कर सकता है॥७॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। कोई भी मनुष्य उत्तम विद्या, विनय, न्याय और क्रीएपुरुषों की सेना के ग्रहण वा अनुष्ठान के विना राज्य के लिये शिक्षा करने, शत्रुओं को जीतने और सब

सुखों को प्राप्त होने को समर्थ नहीं हो सकता, इसलिये सभाध्यक्ष को अवश्य इन बातों का अनुष्टान करना चाहिये॥७॥

पुनः स किं कुर्यादित्युपदिश्यते॥

फिर वह क्या करे, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

असमं क्ष्रत्रमसमा मनीषा प्र सीमुपा अपसा सन्तु नेमे। ये ते इन्द्र दुदुषी वर्धयन्ति महि क्ष्रत्रं स्थिविंगुं वृष्णयं च॥८॥

असमम्। क्षुत्रम्। असमा। मुनीषा। प्र। सोमुऽपाः। अपसा। सुनु। नेमे। ये। ते। हुन्द्रा दुदुर्षः। वर्धर्यन्ति। मिही क्षुत्रम्। स्थविरम्। वृष्णर्यम्। चु॥८॥

पदार्थ:-(असमम्) अविद्यमानः समः समता यस्मिस्तत्वेम् सादृश्यरहितम् (क्षत्रम्) राज्यम् (असमा) अविद्यमाना समा यस्यां साऽनुपमा (मनीषा) मनो विज्ञानमीषते यया प्रज्ञया सा (प्र) प्रकृष्टार्थे (सोमपाः) ये वीराः सोमानोषधिरसान् पिबन्ति ते (अपसा) कमूणि (सन्तु) भवन्तु (नेमे) सर्वे (ये) उक्ता वक्ष्यमाणश्च (ते) तव (इन्द्र) ऐश्वर्ययुक्त (ददुषः) दत्तवतः (वर्धयन्ति) उन्नयन्ति (मिह्र) महागुणविशिष्टम् (क्षत्रम्) राज्यम् (स्थविरम्) प्रवृद्धम् (वृष्ण्यम्) शत्रुमा (र्थ्यवर्षे वृषेभ्यो हितम् (च) समुच्चये॥८॥

अन्वयः-हे इन्द्र सभेश! यदि ददुषस्ते त्वासमं क्षत्रमसमा मनीषाऽस्तु तर्हि ये नेमे सोमपा धार्मिका वीरपुरुषा अपसा स्थविरं वृष्ण्यं मिय क्षत्र प्रवर्धयन्ति, ते तव सभासदो भृत्याश्च सन्तु॥८॥

भावार्थ:-नैव कदाचिद्राजपुरुषै: प्रजाविसेध्य प्रजास्थै राजपुरुषविरोधश्च कार्य्य:, किन्तु परस्परं प्रीत्युपकारबुद्ध्या सर्वं राज्यं सुखैर्वर्धन्रीयम्। सहोत्रीविना राज्यपालनव्यवस्था निश्चला जायते॥८॥

पदार्थ: -हे (इन्द्र) सभाध्यक्ष । जो (ददुष:) दान करते हुए (ते) आप का (असमम्) समता रहित कर्म वा सादृश्य रहित (क्षत्रम्) सन्य तथा (असमा) समता वा उपमा रहित (मनीषा) बुद्धि होवे तो (ये) जो (नेमे) सब (सोमपा:) सोम अदि ओषधीरसों के पीने वाले धार्मिक विद्वान् पुरुष (अपसा) कर्म से (स्थिवरम्) वृद्ध (वृष्ण्यम्) राज्य को (प्रवर्धयन्ति) बढ़ाते हैं, वे सब आपकी सभा में बैठने योग्य सभासद् (च) और भृत्य (स्तृत्) होवें।।८॥

भावार्थ: -राजपुरुषों को प्रजा से और प्रजा में रहने वाले पुरुषों को राजपुरुषों से विरोध कभी न करना चाहिये, किस्त परस्पर प्रीति वा उपकार बुद्धि के साथ सब राज्य सुखों से बढ़ाना चाहिये, क्योंकि इस प्रकार किये विना राज्यपालन की व्यवस्था निश्चल नहीं हो सकती॥८॥

पुनः स किं कुर्य्यादित्युपदिश्यते॥

फिर वह क्या करे, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अष्टक-१। अध्याय-४। वर्ग-१७-१८

मण्डल-१। अनुवाक-१०। सूक्त-५४

तुभ्येद्रेते बंहुला अद्गिंदुग्धाश्चमूषदेश्चम्सा ईन्द्रपानाः। व्यंश्नुहि तुर्पया काममेषामथा मनो वसुदेयांय कृष्व॥९॥

तुभ्यं। इत्। एते। बहुलाः। अद्गिऽदुग्धाः। चुमूऽसर्दः। चुमुसाः। इन्द्रुऽपानाः। वि। अभूनुह्। तर्पयं। कार्मम्। एषाम्। अर्थः। मर्नः। वसुऽदेयायः। कृष्वः॥ ९॥

पदार्थ:-(तुभ्य) तुभ्यम्। अत्र छान्दसो वर्णलोपो वा इति मलोपः। (इत्) एव (एत्) वीराः (बहुलाः) बहूनि सुखानि युद्धकर्माणि लान्ति प्रयच्छन्ति ते (अद्रिदुग्धाः) अद्रेमेघात् पबतेश्यो वा प्रपूरिताः (चमूषदः) ये चमूषु सेनासु सीदन्त्यवस्थिता भवन्ति (चमसाः) ये चाम्यन्त्यद्वन्ति भोगान् येभ्यो मेघेभ्यस्ते। चमस इति मेघनामसु पठितम्। (निघं०१.१०) (इन्द्रपानाः) य इन्द्रं परमैश्वर्य्यहेतुं सिवतारं पान्ति ते। अत्र नन्दादित्वात् ल्युः प्रत्ययः। (वि) विविधार्थे (अन्नुहि) च्याप्नुहि। अत्र व्यत्ययेन परस्मैपदम्। (तर्पय) प्रीणय (कामम्) यः काम्यते तम् (एषाम्। भृत्यानाम् (अथ) आनन्तर्य्ये (मनः) मननात्मकम् (वसुदेयाय) दातव्यधनाय (कृष्व) विलिख॥९॥

अन्वय:-हे इन्द्र सभेश! यथैते बहुला इन्द्रिपानश्चिमसाः सर्वान् कामान् पिप्रति तथाऽद्रिदुग्धाश्चमूषदो वीरास्तुभ्यं प्रीणयन्तु त्वमेतेभ्यो वसुदेयाय मनः कृष्व त्वमेताँस्तर्पयैषां कामं प्रपूर्द्धि अर्थात् सर्वान् कामान् व्यश्नुहि॥९॥

भावार्थ:-सभाद्यध्यक्षः सुशिक्षितपालिद्वीत्पादितान् श्रूरवीरान् रक्षित्वा प्रजा सततं पालियत्वैतेभ्यः सर्वाणि सुखानि दद्यादेते च सभाद्यध्यक्षान् वित्यं सन्तेषुर्ययुर्यतः सर्वे कामाः पूर्णाः स्युः॥९॥

पदार्थ:-हे (इन्द्र) सभाध्यक्ष जिसे (एके) ये (बहुला:) बहुत सुख वा कर्मों को देने वाले (इन्द्रपाना:) परमैश्वर्य के हेतु सूर्य्य को प्राप्त होने हारे (चमसा) मेघ सब कामों कों पूर्ण करते हैं, वैसे (अद्रिदुग्धा:) मेघ वा पर्वतों से प्राप्तिक्या (चमूषद:) सेनाओं में स्थित शूरवीर पुरुष (तुभ्यम्) आपको तृप्त करें तथा आप इन को (वसुदेयाय) सुन्हरें धन देने के लिये (मन:) मन (कृष्व) कीजिये और आप इन को (तर्पय) तृप्त वा (एषाम्) इन की (कामान्) कामना पूर्ण कीजिये (अथ) इस के अनन्तर (इत्) ही सब कामनाओं को (व्यक्शुहि) प्राप्त हूजिये॥९॥

भावार्थ:-सभा आदि के अध्यक्ष उत्तम शिक्षा वा पालन से उत्पादन किये हुए शूरवीरों और प्रजा की निरन्तर पालना करके इनके लिये सब सुखों को देवें और वे प्रजा के पुरुष भी सभाध्यक्षादिकों को निरन्तर सन्त्रृष्ट रक्खें, जिससे सब कामना पूर्ण होवें॥९॥

अथ स सूर्य इव किं कुर्य्यादित्युपदिश्यते॥

अब वह सूर्य्य के समान क्या करे, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

भूपामितिष्ठद् धुरुणह्वरुं तमोुऽन्तर्वृत्रस्यं जुठरेषु पर्वतः।

अभीमिन्द्री नृद्यी वृद्रिणा हिता विश्वा अनुष्ठाः प्रवृणेषु जिघ्नते॥ १०॥

अपाम्। अतिष्ठत्। धुरुणंऽह्वरम्। तमेः। अन्तः। वृत्रस्यं। जुठरेषु। पर्वतः। अभि। ईम्। इन्हः। नद्यः। वृत्रिणां। हिताः। विश्वाः। अनुऽस्थाः। प्रवणेषुं। जि्घन्ते॥ १०॥

पदार्थ:-(अपाम्) जलानाम् (अतिष्ठत्) तिष्ठति (धरुणहृरम्) धरुणानि धारिकाणि हृराणि कुटिलानि यस्मिस्तत् (तमः) अन्धकारम् (अन्तः) मध्ये (वृत्रस्य) मेघस्य (जृतरेषु) जायन्ते वृष्टयो येभ्यस्तेषु। अत्र जनेररष्ठ च। (उणा०५.३८) इत्यरः प्रत्ययष्ठकारादेशश्च्य (पर्वतः) पर्वताकारो घनसमूहवान् मेघः (अभि) आभिमुख्ये (ईम्) जलम् (इन्द्रः) परमैश्वर्यदाता (नद्यः) स्रितः (विव्रणा) रूपेण (हिताः) हिन्वन्ति गच्छन्ति यास्ताः (विश्वाः) सर्वाः (अनुष्ठाः) भा अनुतिष्ठन्ति (प्रवणेषु) निम्नमार्गेषु (जिञ्नते) गच्छन्ति अत्र बहुलं छन्दिस इति शपः श्लुः अत्रकृथेन आस्मिपदं च॥१०॥

अन्वय:-हे सभेशेन्द्रस्त्वं यथा सूर्य्यो वृत्रस्यापामन्तर्जठरेषु स्थितं धरणीह्नरं तमोऽतिष्ठत् तन्निवार्य्य विव्रणा सह वर्त्तमानो यः पर्वतो मेघ ईमिभपातयित येन प्रवर्णीष्वनुष्ठा विश्वा हिता नद्यो जिघ्नते तथा भव॥१०॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। यथा सूर्व्यो यज्जेलमाकृष्यान्तरिक्षं नयित तद्वायुर्धरित यदैतन्मिलित्वा पर्वताकारं भूत्वा सूर्य्यप्रकाशमावृणोति तद्विद्युष्टित्वा भूमौ निपातयित तदुद्भूता नानारूपा अधोगामिन्यो नद्यः प्रचलन्त्यः सत्यः पृथिवीपर्वत्वक्षादीन् छित्वा भित्वा च पुनस्तज्जलं सागरमन्तरिक्षं च प्राप्यैवं पुनः पुनर्वर्षित तथा राजाद्यध्यक्षा भवेयुरिस्।। १०॥

पदार्थ:-हे सभेश! (इन्द्र:) परमैश्र्य देनेहारे आप जैसे सूर्य्य (वृत्रस्य) मेघ सम्बन्धी (अपाम्) जलों के (अन्त:) मध्यस्थ (जठरेषु) जहाँ से पूर्णो होती है, उनमें (धरुणह्वरम्) धारण करने वाला कुटिल कर्मों का हेतु (तम:) अन्धकार (अतिष्ठत्र) स्थित है, उसका निवारण कर (विव्रणा) रूप से सह वर्तमान जो (पर्वत:) पक्षीवत् आकाश में उड़नेहारा मेघ (ईम्) जल को (अभि) सन्मुख गिराता है, जिससे (प्रवणेषु) नीचे स्थानों में (अनुष्ठा:) अनुकूलाता से बहने हारी (विश्वा) सब (हिता:) प्रतिक्षण चलने वाली (नद्य:) निदयां (ज्ञिन्नते) समुद्र पर्यन्त चली जाती हैं, वैसे आप हूजिये॥१०॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य जिस जल को आकर्षण कर अन्तरिक्ष में पहुंचाता और उसको वायु धारण करता है, जब वह जल मिल तथा पर्वताकार होकर सूर्य के प्रकाश का आवरण करता है, उसको बिजुली छेदन करके भूमि में गिरा देती है, उससे उत्पन्न हुई नानारूपयुक्त नीचे चलने वाली चलकी हुई नदियां पृथिवी, पर्वत और वृक्षादिकों को छिन्न-भिन्न कर फिर वह जल समुद्र क्रा अन्तरिक्ष को प्राप्त होकर वार-वार इसी प्रकार वर्षता है, वैसे सभाध्यक्षादिकों को होना चाहिया। १ अ।

पुनः सभाद्यध्यक्षकृत्यमुपदिश्यते॥

अष्टक-१। अध्याय-४। वर्ग-१७-१८

मण्डल-१। अनुवाक-१०। सूक्त-५४

फिर सभा आदि के अध्यक्षों के कृत्य का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

स शेवृधमिध धा द्युम्नम्स्मे मिह क्षुत्रं जनाषाळिन्द्र तव्यम्।

रक्षां च नो मुघोनं: पाहि सूरीन् राये चं नः स्वपुत्या इषे धाः॥ ११॥ १८॥

सः। शेऽवृंधम्। अर्धि। धाः। द्युम्नम्। अस्मे इति। मिही। क्षुत्रम्। जुनाषाट्। इन्द्रः। क्र्यमा स्क्षे। चाः। मुघोनः। पाहि। सूरीन्। राये। चा नः। सुऽअपत्यै। इषे। धाः॥ ११॥

पदार्थ:-(स:) सभाध्यक्ष: (शेवृधम्) सुखम्। शेवृधमिति सुखनामस् पठितम्। (निर्घं ३.६) (अधि) उपरिभावे (धा:) धेहि (द्युम्नम्) विद्याप्रकाशयुक्तं धनम् (अस्मे) अस्मभ्यम् (मिह्र) महासुखप्रदं पूज्यतमम् (क्षत्रम्) राज्यम् (जनाषाट्) यो जनान् सहते स:। अत्र छन्दिस् महः। अष्टा०३.२.६३) इति सहधातोण्विः प्रत्ययः। (इन्द्र) परमैश्वर्य्यसम्पादक सभाध्यक्ष (तव्यम्) तव बले मृत्रम् (रक्ष) पालय (च) समुच्चये (न:) अस्मान् (मघोनः) मघं प्रशस्तं धनं विद्यते येषां तान् (फाह्रि) पालय (सूरीन्) मेधाविनो विदुषः (राये) धनाय (च) समुच्चये (नः) अस्माकम् (स्वपत्ये) शोभेनान्यपत्यानि यस्यां तस्यै (इषे) अत्ररूपायै राज्यलक्ष्म्यै (धाः) धेहि॥११॥

अन्वय:-हे इन्द्र सभाद्यध्यक्ष! यो जनाषाट् सँर्स्वमूल्पे श्रेष्ट्रधं तव्यं महि क्षत्रमधिधा मघोनो नोऽस्मान् रक्ष सूरींश्च पाहि राये स्वपत्या इषे च द्युम्नं धाः सोऽस्मीभिः कथन्न सत्कर्त्तव्यः॥११॥

भावार्थ:-सभाद्यध्यक्षेण सर्वाः प्रजाः पालियेन्त्रा सर्वान् सुशिक्षितान् विदुषः सम्पाद्य चक्रवर्त्तिराज्यं धनं चोन्नेयम्॥११॥

अस्मिन् सूक्ते सूर्य्यविद्युत्सभाध्यक्षश्रविराज्यप्रशासनप्रजापालनानि विहितान्यत एतत्सूक्तार्थस्य पूर्वसूक्तोक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति बोध्यम्। १९५०

इति चतु:पञ्चाष्ट्रां ५४ सूक्न मष्टादशो १८ वर्गश्च समाप्त:॥

पदार्थ:-हे (इन्द्र) परमैश्वर्णसम्पोदक सभाध्यक्ष! जो (जनाषाट्) जनों को सहन करने हारे आप (अस्मे) हम लोगों के लिये (श्रेव्धम्) सुख्र (तव्यम्) बलयुक्त (मिह्र) महासुखदायक पूजनीय (क्षत्रम्) राज्य को (अधि) (धाः) अच्छे प्रकार सर्वोपि धारण कर (मघोनः) प्रशंसनीय धन वा (नः) हम लोगों की (रक्ष) रक्षा (च) और (सरीन्) बुद्धिमान् विद्वानों की (पाहि) रक्षा कीजिये (च) और (नः) हम लोगों के (राये) धन (च) और (स्वाप्त्ये) उत्तम अपत्ययुक्त (इषे) इष्टरूप राजलक्ष्मी के लिये (द्युम्नम्) कीर्त्तिकारक धन को (धाः) धारण करते हो (सः) वह आप हम लोगों से सत्कार योग्य क्यों न होवें॥११॥

भाकार्थ:-सभीध्यक्ष को योग्य है कि सब प्रजा की अच्छे प्रकार रक्षा और शिक्षा से युक्त विद्वान् करके चक्रवर्त्ती राज्य वा धन की उन्नति करे॥११॥

इस सूक्त में सूर्य्य, बिजुली, सभाध्यक्ष, शूरवीर और राज्य की पालना आदि का विधान किया है, इससे इस सुक्तार्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये॥

यह अठाहरवां १८ वर्ग और चौअनवां ५४ सूक्त समाप्त हुआ॥५४॥

अथास्याऽचष्टर्चस्य पञ्चपञ्चाशस्य सूक्तस्याङ्गिरसः सव्य ऋषिः। इन्द्रो देवता। १,४ जगती। २,५,६,७ निचृज्जगती। ३,८, विराङ्जगती च छन्दः। निषादः स्वरः॥

तत्रादौ सभाध्यक्षगुणा उपदिश्यन्ते॥

अब पचपनवें सूक्त के पहिले मन्त्र में सभाध्यक्ष के गुणों का उपदेश किया है।

दिवश्चिदस्य वरिमा वि पप्रथा इन्द्रं न मुह्ना पृथिवी चन प्रति। भीमस्तुविष्माञ्चर्षणिभ्यं आतुपः शिशीते वज्रं तेजसे न वंस्पाः॥ १॥

द्विः। चित्। अस्या वृरिमा। वि। पुप्रथे। इन्द्रम्। न। मुह्ना। पृथिवी। चन। प्रति भीमः। तुर्विष्मान्। चुर्षुणिऽभ्यः। आऽतुपः। शिशीते। वर्ज्रम्। तेर्जसे। न। वंस्त्रगः॥ १॥

पदार्थ:-(दिव:) दिव्यगुणात् (चित्) एव (अस्य) सभाद्यध्यक्षस्य (विरिण्ण) वरस्य भावः (वि) विविधार्थे (पप्रथे) प्रथते (इन्द्रम्) परमैश्वर्यस्य प्रापकम् (न) इव (मह्मा) महत्त्वेन। अत्र महधातोः बाहुलकाद् औणादिकः किन् प्रत्ययः। (पृथिवी) भूमिः (चन्) अपि (प्रति) योगे (भीमः) दुष्टान् प्रति भयंकरः श्रेष्टान् प्रति सुखकरः (तुविष्मान्) वृद्धिमान्। अत्र तुधातोः बाहुलकादौणादिक इसिः प्रत्ययः स च कित्। (चर्षणिभ्यः) दुष्टेभ्यः श्रेष्टेभ्यो वा मनुष्येभ्यः (आत्राः) समन्तात् प्रतापयुक्तः (शिशीते) उदके शिशीतिमत्युदकनामसु पठितम्। (निघं०१.१२) (वश्रम्) किरणान् (तेजसे) प्रकाशाय (न) इव (वंसगः) यो वंसं सम्भजनीयं गच्छित गमयित वा स वृषभ्(भूशः)

अन्वय:-हे मनुष्या! यथाऽस्य सवितुर्दिचे चिरमार्रमहा विपप्रथे पृथिवी चन महा तुल्या न भवित नातपो वंसगो न गोसमूहान् वंसगो न पृथिवीं प्रति तेशसे वज्रं शिशीते प्रक्षिपित तथा यो दुष्टेभ्यो भीमो धार्मिकेभ्यः प्रियो भूत्वा प्रजाः पालयेत्रस चित्पवे। सत्कर्त्तव्यो नेतरः खलु॥१॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोस्मालङ्कार:। यथा सिवतृमण्डलं सर्वेभ्यो लोकेभ्य उत्कृष्टगुणं महद्वर्तते यथा वृषभो गोसमूहेषूत्तमो महाबुलिष्ठो वर्तते तथैवोत्कृष्टगुणो महान् मनुष्य: सभाद्यधिपति: कार्य्य:। स च सदैव स्वयं धर्मात्मा सन् दुष्टेभ्यो भयप्रदो धार्मिकभ्य: सुखकारी च भवेत्॥१॥

पदार्थ:-हे मनुश्री! जैसे (अस्य) इस सविता के (दिव:) प्रकाश से (विरमा) उत्तमता का भाव (मह्ना) बड़ाई से (विपप्रथ) बिश्लेष करके प्रसिद्ध करता है (पृथिवी) जिसके बराबर भूमि (चन) भी तुल्य (न) नहीं और न (आतप:) सब प्रकार प्रताप युक्त (वंसग:) बलवान् विभाग कर्ता के समान (पृथिवी) भूमि के (प्रति) मध्य में (तेजसे) प्रकाशार्थ (वज्रम्) किरणों को (शिशीते) अति शीतल उदक में प्रक्षेप करता है, वैसे जो दृष्टों के लिये भयंकर धर्मात्माओं के वास्ते सुखदाता हो के प्रजाओं का पालन करे, वह सब से सत्कार के योग्य है, अन्य नहीं॥१॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य मण्डल सब लोकों से उत्कृष्ट युणयुक्त और बड़ा है और जैसे बैल गोसमूहों में उत्तम और महाबलवान् होता है, वैसे ही उत्कृष्ट अष्टक-१। अध्याय-४। वर्ग-१९-२०

मण्डल-१। अनुवाक-१०। सूक्त-५५

गुणयुक्त सब से बड़े मनुष्य को सब मनुष्यों को सभा आदि का पित करना चाहिये और वे सभाध्यक्षादि दुष्टों को भय देने और धार्मिकों के लिये आप भी धर्मात्मा हो के सुख देने वाले सदा होवें॥१

पुनः स कीदृग्गुण इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसे गुण वाला हो, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया हैं।

सो अर्णुवो न नृद्यः समुद्रियः प्रति गृभ्णाति विश्रिता वरीमभिः। इन्द्रः सोर्मस्य पीतर्ये वृषायते सुनात्स युध्म ओर्जसा पनस्यते॥ २१।

सः। अर्ण्वः। न। नृद्यः सुमुद्रियः। प्रति। गृभ्णाति। विऽश्रिताः। वर्रम्ऽभिः। इन्ह्रः। सोर्मस्य। पीतर्ये। वृष्ऽयते। सुनात्। सः। युष्टमः। ओर्जसा। पुनस्यते॥२॥

पदार्थ:-(स:) उक्तार्थ: (अर्णव:) समुद्र: (न) इव (न्ह्य:) स्रोत्तः (समुद्रिय:) समुद्रे भवो नौसमूह: (प्रति) क्रियायोगे (गृभ्णाति) गृह्णाति (विश्रिता:) विविध प्रकारै: सेवमाना: (वरीमिभ:) वृण्वन्ति ये तै: शिल्पिभ: (इन्द्र:) सभाद्यध्यक्ष: (सोमस्य) वैद्यविद्यासम्पादितस्य (पीतये) पानाय (वृषायते) वृष इवाचरित (सनात्) सर्वदा (स:) (युध्म:) यो पुष्पति स: (ओजसा) बलेन (पनस्यते) यः पनायित व्यवहरित स पना, पना इवाचरित॥२॥

अन्वयः-य इन्द्रः सूर्य इव सोमस्य पीत्र्ये बृषायते सयुध्मो विश्रिता नद्योऽर्णवो न समुद्रियः सनादोजसा वरीमभिः पनस्यते राज्यं प्रति गृभ्णाति स राज्याय सत्काराय च सर्वेर्मनुष्यैः स्वीकार्य्यः॥२॥

भावार्थ:-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारो। प्राथा सागरो विविधानि रत्नानि नानानदींश्च स्वमहिम्ना स्वस्मिन् संरक्षिति तथैव सभाद्यस्था विविधान् पदार्थान्नानाविधाः सेनाः स्वीकृत्य दुष्टान् पराजित्य श्रेष्ठान् संरक्ष्य स्वमहिमानं विस्तारयेत्॥२॥

पदार्थ:-जो (इन्द्र:) सम्भध्यक्ष सूर्य के समान (सोमस्य) वैद्यक विद्या से सम्पादित वा स्वभाव से उत्पन्न हुए रस के (पीतर्थ) भीने के लिये (वृषायते) बैल के समान आचरण करता है (स:) वह (युध्म:) युद्ध करने वाल पुरुष (न्) जैसे (विश्रिता:) नाना प्रकार के देशों को सेवन करने हारी (नद्य:) निदयाँ (अर्णव:) समुद्र को प्राप्त होके स्थिर होती और जैसे (समुद्रिय:) सागरों में चलने योग्य नौकादि यान समूह पार पृष्ट्वाता है, जैसे (सनात्) निरन्तर (ओजसा) बल से (वरीमिभ:) धर्म वा शिल्पी क्रिया से (पनस्यते) ख्यवहार करने वाले के समान आचरण और पृथिवी आदि के राज्य को (प्रतिगृभ्णाति) ग्रहण कर सकता है कह राज्य करने और सत्कार के योग्य है, उस को सब मनुष्य स्वीकार करें॥२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे समुद्र नाना प्रकार के रत्न और नान् क्रिकार की नदियों को अपनी महिमा से अपने में रक्षा करता है, वैसे ही सभाध्यक्ष आदि भी अनेक

प्रकार के पदार्थ और अनेक प्रकार की सेनाओं को स्वीकार कर दुष्टों को जीत और श्रेष्ठों की रक्षा करके अपनी महिमा फैलावें॥२॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा हो, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

त्वं तिमन्द्रं पर्वतं न भोजेसे महो नृम्णस्य धर्मणामिरज्यसि। प्र वीर्येण देवताति चेकिते विश्वस्मा उत्रः कर्मणे पुरोहितः॥३॥

त्वम्। तम्। इन्द्रः। पर्वतम्। नः। भोजसः। मुहः। नृम्णस्यः। धर्मणाम्। इर्ज्यस्यः। प्रा वीर्वेषः। देवताः। अति। चेकिते। विश्वस्मः। उत्रः। कर्मणे। पुरःऽहितः।।३॥

पदार्थ:-(त्वम्) (तम्) वक्ष्यमाणम् (इन्द्र) सभाध्यक्ष (पूर्वेतम्) मेघ्रम् (न) इव (भोजसे) पालनाय भोगाय वा (महः) महागुणविशिष्टस्य (नृम्णस्य) धनस्य। नृम्णमिति धननामसु पठितम्। (निघं०२.१०) (धर्मणाम्) धर्माणां योगेन (इरज्यिस) ऐश्वर्यं प्राप्तोसि। इरज्यतीत्यैश्वर्यकर्मसु पठितम्। (निघं०२.२१) (प्र) प्रकृष्टार्थे (वीर्येण) पराक्रमेण (देवता) द्योतमान् एव (अति) अतिशये (चेिकते) जानाति। वा छन्दिसस० इत्यभ्यासस्य गुणः (विश्वरमे) स्वर्समें (उपः) तीव्रकारी (कर्मणे) कर्तव्याय (पुरोहितः) पुरोहितवदुपकारी॥३॥

अन्वय:-हे इन्द्र! यो देवतोग्रः पुरोहितासूर्वं विद्युद्धतुपर्वतं न वीर्य्येण भोजसे तं शत्रुं हत्वा महो नृम्णस्य धर्मणां योगेनातीरज्यसि यो भवान् विश्वस्मे कर्मणे प्रचेकिते सोऽस्मासु राजा भवतु॥३॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। ये भिनुष्याः प्रकृतिमाश्रित्य धनं सम्पाद्य भोगान् प्राप्नुवन्ति ते ससभाध्यक्षा विद्याबुद्धिवनयधर्मवीरस्रोताः प्राप्य दुष्टेषूग्रा धार्मिकेषु क्षमान्विताः सर्वेषां हितकारका भवन्ति॥३॥

पदार्थ:-हे (इन्द्र) सभाश्यक्ष! जो (देवता) विद्वान् (उग्रः) तीव्रकारी (पुरोहितः) पुरोहित के समान उपकार करने वाले (त्वम्) आप जैसे बिजुली (पर्वतम्) मेघ के आश्रय करने वाले बादलों के (न) समान (वीर्येण) पराक्रम सि (धोजमे) पालन वा भोग के लिये (तम्) उस शत्रु को हनन कर (महः) बड़े (नृम्णस्य) धन और (धर्मणाम्) धर्मों के योग से (अतीरज्यिस) अतिशय ऐश्वर्य करते हो जो आप (विश्वस्मै) सब (कर्पणे) क्मों के लिये (प्रचेकिते) जानते हो, वह आप हम लोगों में राजा हूजिये॥३॥

भावार्थ:-इस्से मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो मनुष्य प्रवृत्ति का आश्रय और धन को सम्पादन करके भोगों को यान करते हैं, वे सभाध्यक्ष के सहित विद्या, बुद्धि, विनय और धर्मयुक्त वीरपुरुषों की सेना को प्राप्त होकर दुष्ट जनों के विषय में तेजधारी और धर्मात्माओं में क्षमायुक्त हों, वे ही सबके हितकारक होते हैं।

पुन: स किं कुर्यादित्युपदिश्यते॥

अष्टक-१। अध्याय-४। वर्ग-१९-२०

मण्डल-१। अनुवाक-१०। सूक्त-५५

फिर वह कैसा कर्म करे, यह उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

स इद्वर्ने नम्स्युभिर्वचस्यते चारु जर्नेषु प्रब्रुवाण इन्द्रियम्। वृषा छन्द्रभवति हर्युतो वृषा क्षेमेण धेनां मुघवा यदिन्वति॥४॥

सः। इत्। वने। नुमस्युऽभिः। वचस्यते। चार्म। जनेषु। प्रऽब्रुवाणः। इन्द्रियम्। वृषो छन्दुः। भवति। हुर्युतः। वृषां। क्षेमेणा धेनाम्। मुघऽवां। यत्। इन्वति॥४॥

पदार्थ:-(स:) अध्यापक उपदेशको वा (इत्) एव (वने) एकान्ते (नमस्युभः) नम्नैर्विद्यार्थिभिः श्रोतृभिः (वचस्यते) परिभाष्यते सर्वतः स्तूयते (चारु) सुन्दरम् (जनेषु) प्रसिद्धम् मनुष्येषु (प्रबुवाणः) यः प्रकर्षेण वाचयत्युपदेशयति वा सः (इन्द्रियम्) विज्ञानयुक्तं मनः (वृषा) सप्रश्रीः (छन्दुः) स्वच्छन्दः (भवति) वर्त्तते (हर्यतः) सर्वेषां सुबोधं कामयमानः (वृषा) सत्योपदेशवर्षकः (क्षेमेण) रक्षणेन (धेनाम्) विद्याशिक्षायुक्तां वाचम्। धेनेति वाङ्नामसु पठितम्। (निघं०१,४१) (मध्यः) प्रशस्तविद्याधनवान् (यत्) यः (इन्वति) व्याप्नोति॥४॥

अन्वय:-यद्योऽध्यापक उपदेशको वा वने जनेषु चार्वेन्द्रियं प्रुवाणो हर्यतः प्रभवति वृषा मघवा छन्दुर्वृषा क्षेमेण सहितां धेनामिन्वति स इन्नमस्युभिर्वन्नस्यते॥ ॥

भावार्थ:-परमिवद्वान् सर्वान् मनुष्यान् सर्वा विद्याः, प्रापय्य विद्यावतो बहुश्रुतान् स्वच्छन्दान् सुरक्षितान् कुर्याद्यतो निःसंशयाः सन्तः सदा सुर्विनः स्युः। ४॥

पदार्थ:-(यत्) जो अध्यापक वा स्पदेशकर्ता (वने) एकान्त में एकाग्र चित्त से (जनेषु) प्रसिद्ध मनुष्यों में (चारु) सुन्दर (इन्द्रियम्) मन को (ब्रुवाणः) अच्छे प्रकार कहता (हर्य्यतः) और सबको उत्तम बोध की कामना करता हुआ (प्रभवति) समर्थ होता है (वृषा) दृढ़ (मघवा) प्रशंसित विद्या और धनवाला (छन्दुः) स्वच्छन्द (वृषा) सुख वर्षाने बाला (क्षेमेण) रक्षण के सहित (धेनाम्) विद्या शिक्षायुक्त वाणी को (इन्वति) व्याप्त करता है (स इत्) वही (नमस्युभिः) नम्र विद्वानों से (वचस्यते) प्रशंसा को प्राप्त होता है॥४॥

भावार्थ:-उत्तम विद्वान् मभाध्यक्ष सब मनुष्यों के लिये सब विद्याओं को प्राप्त करके सबको विद्यायुक्त, बहुशुक्त रक्षा वा स्वच्छन्दता युक्त करें कि जिससे सब निस्सन्देह होकर सदा सुखी रहें॥४॥

पुन: स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा हो, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

षु इन्मुहानि समि्थानि मुज्मना कृणोति युध्म ओर्जसा जर्नेभ्यः।

अद्यो चुन श्रद्दंधित त्विषीमत इन्द्रांय वज्रं निघर्निघ्नते वृधम्॥५॥१९॥

सः। इत्। मुहानि। सुम्ऽङ्कथानि। मुज्मना। कृणोति। युध्मः। ओर्जसा। जनेभ्यः। अर्ध। चुन। श्रत्। दुर्धित्। त्विषिऽमते। इन्द्राय। वर्ज्रम्। निऽधनिध्नते। वधम्॥५॥

पदार्थ:-(स:) (इत्) एव (महानि) महान्ति पूज्यानि (सिमधानि) सम्यक् यन्ति यानि जिल्लामि तानि (मज्मना) बलेन। मज्मेति बलनामसु पठितम्। (निघं०२.९) (कृणोति) कर्राति (युध्मः) अविद्याकुटुम्बस्य प्रहर्ता (ओजसा) पराक्रमेण (जनेभ्यः) मनुष्येभ्यः (अध) अथ्य निपातस्य च इति दीर्घः। (चन) अपि (श्रत्) सत्यम्। श्रदिति सत्यनामसु पठितम्। (निघं०३.१०) (दधित) धरन्ति (त्विषीमते) प्रशस्तप्रकाशान्तः करणवते (इन्द्राय) परमैश्वय्ययोजकाय (वज्रम्) शस्त्रमिवाज्ञानच्छेदकमुपदेशम् (निघनिघनते) यो हन्ति स निघनः स इवाच्यत्ति। अत्र निघनशब्दाद् आचारे क्विप् ततो लट् शपः श्लुः व्यत्ययेन आत्मनेपदं च। (वधम्) हननम्।। ।

अन्वय:-यदि स युध्मो मज्मनौजसा जनेभ्य उपदेशेन महानि समिशामि कृणोति करोति वज्रमिव वधं निघनिघ्नतेऽधाथ तर्ह्यस्मा इत् त्विषीमत इन्द्राय चन जनाः श्रह्यिस्रोपना

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा सूर्यो मेघमुत्पाद्य छित्वा वर्षित्वा स्वप्रकाशेन सर्वानानन्दयति तथाऽध्यापकोपदेशकावन्धपरम्परां निवार्य विद्यान्यायादीन् प्रकाश्य सर्वाः प्रजाः सुखिनीः कुर्याताम्॥५॥

पदार्थ:-जो (स:) वह (युध्म:) युद्ध करने वाला उपदेशक (मज्मना) बल वा (ओजसा) पराक्रम से युक्त हो के (जनेभ्य:) मनुष्यादिकों के सुख्य के लिये उपदेश से (महानि) बड़े पूजनीय (सिम्थानि) संग्रामों को जीतने वाले के तुल्य अविद्या विजय को (कृणोति) करता है (वज्रम्) वज्रप्रहार के समान शत्रुओं के (वधम्) मारने को (निधनिभते) मारने वाले के समान आचरण करता है तो (अध) इसके अनन्तर (इत्) ही (अस्मै) इस (विधीमके) प्रशंसनीय प्रकाशयुक्त (इन्द्राय) परमैश्वर्य्य की प्राप्ति कराने वाले के लिये सब मनुष्य बाग (चन) भी (श्रद्दधति) प्रीति से सत्य का धारण करते हैं॥५॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में विचकलुप्तोपमोलङ्कार है। जैसे सूर्य मेघ को उत्पन्न, काट और वर्षा करके अपने प्रकाश से सब मनुष्ट्रों को अपनेद युक्त करता है, वैसे ही अध्यापक और उपदेशक लोग विद्या को प्राप्त करा और अविद्या को जित्न के अन्धपरम्परा को निवारण कर विद्यान्यायादि का प्रकाश करके सब प्रजा को सुखी करें।।५॥

पुनः स किं कुर्यादित्युपदिश्यते॥

फिर वह क्या करे, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

में हि श्रवस्युः सदनानि कृत्रिमां क्ष्मया वृधान ओजसा विनाशयन्।

ज्योतीषि कृण्वन्नेवृकाणि यज्यवेऽवे सुक्रतुः सर्तवा अपः सृजत्॥६॥

अष्टक-१। अध्याय-४। वर्ग-१९-२०

मण्डल-१। अनुवाक-१०। सूक्त-५५

सः। हि। श्र<u>व</u>स्युः। सर्दनानि। कृत्रिमां। क्ष्मया। वृधानः। ओर्जसा। विऽनाशर्यन्। ज्योतींषि। कृण्वन्। अवृकाणि। यज्येवे। अर्व। सुऽक्रतुः। सर्त्वे। अपः। सृजुत्॥६॥

पदार्थ:-(स:) उक्तः (हि) किल (श्रवस्युः) आत्मनः श्रवोऽन्निमच्छुः (सदन्ति) स्थानान्युदकानि वा। सदनिमत्युदकनामसु पठितम्। (निघं०१.१२) (कृत्रिमा) कृत्रिमाणि (क्ष्मया) पृथिव्या सह। क्ष्मेति पृथिवीनामसु पठितम्। (निघं०१.१) (वृधानः) वर्धमानः (ओजसा) विद्याबलेन (विनाशयन्) अविद्याऽदर्शनं प्रापयन् (ज्योतींषि) विद्यादिसद्गुणप्रकाशकानि तेजांसि (कृण्वन्) कुर्वन् (अवृकाणि) अविद्यमानचोराणि (यज्यवे) यज्ञाऽनुष्ठानाय (अव) विनिग्रहे (सुकृतुः) शोभना प्रज्ञा कर्म वा यस्य सः (सर्त्तवे) सर्तुं ज्ञातुं गन्तुं वा (अपः) जलानि (सृजत) सृजित्।। हुः

अन्वय:-यः सुक्रतुरोजसा क्ष्मया सह वृधानः श्रवस्युर्यज्यके सर्तवे कृत्रिमाण्यवृकाणि सदनानि कृण्वन्नपो ज्योतींषि प्रकाशयन् सूर्य इव विनाशयन्निव सृजत् सहि सर्वेमेनुष्यमीता पिता सुहृद्रक्षकश्च मन्तव्य:॥६॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। य सूर्यविद्धाः भिराजुर्शेतिप्रकाशकः सन् सर्वान् सुबोधान् करोति स सर्वेरखिलमनुष्यादिप्राणिनां कल्याणकार्य्यस्तीति वद्यम्॥ ॥

पदार्थ:-जो (सुक्रतु:) श्रेष्ठ बुद्धि वा कर्मयुक्त (ओज्ज्ञा) पराक्रम से (क्ष्मया) पृथिवी के साथ (वृधान:) बढ़ता हुआ और (श्रवस्यु:) अपने आत्मा के क्षस्त अन्न की इच्छा से सब शास्त्रों का श्रवण कराता हुआ (यज्यवे) राज्य के अनुष्ठान के वास्त (सर्तवे) जाने-आने को (कृत्रिमाणि) किये हुए (अवृक्षाणि) चोरादि रहित (सदनानि) मार्प और सुन्देर घरों को सुशोभित (कृण्वन्) करता हुआ (अप:) जलों को वर्षाने हारा (ज्योतींषि) चन्द्रादि नक्षत्रों को प्रकाशित करते हुए सूर्य्य के तुल्य (विनाशयन्) अविद्या का नाश करता हुआ राज्य (अवस्वज्ञत्) बनावे, वही सब मनुष्यों को माता, पिता, मित्र और रक्षक मानने योग्य है॥६॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। सब मनुष्य जो सूर्य्य के सदृश विद्या, धर्म और राजनीति का प्रचारकर्ता हो कि सुर्ण मनुष्यों को उत्तम बोधयुक्त करता है, वह मनुष्यादि प्राणियों का कल्याणकारी है, ऐसा निश्चित जानें॥६॥

पुनः स कथंभूतः स्यादित्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा हो, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

द्गानाय मने सोमपावन्नस्तु तेऽर्वाञ्चा हरी वन्दनश्रुदा कृषि।

यभिष्ठासः सार्रथयो य ईन्द्र ते न त्वा केता आ देभ्नुवन्ति भूर्णयः॥७॥

दानार्य। मर्नः। सोमुऽपावन्। अस्तु। ते। अर्वाञ्चां। हरी इति। वन्दन्ऽश्रुत्। आ। कृष्टि। यिषष्ठासः सार्रथयः। ये। इन्द्र। ते। ना त्वा। केर्ताः। आ। दुभ्नुवन्ति। भूर्णयः॥७॥

पदार्थ:-(दानाय) सुपात्रेभ्यो विद्यादिदानाय (मनः) अन्तःकरणम् (सोमपावन्) यः सोमान् श्रेष्ठान् रसान् पिबति तत्सम्बुद्धौ (अस्तु) भवतु (ते) तव (अर्वाञ्चा) यावर्वागऽञ्चतस्तौ (हरो) हरण्यालौ (वन्दनश्रुत्) येन वायुना वन्दनं स्तवनं भाषणं शृणोति श्रावयित वा तत्सम्बुद्धौ (अर्थ) समन्ताष् (कृष्टि) कुरु (यिमष्ठासः) अतिशयेन नियन्तारः (सारथयः) यानगमयितारः (ये) सुशिक्षितीः (इन्द्र) सभोद्यध्यक्ष (ते) तव (न) निषेधे (त्वा) त्वाम् (केताः) प्रज्ञाः प्रज्ञापनव्यवहारान् (आ) अभितः (देशुवन्ति) हिंसन्ति (भूर्णयः) ये बिभ्रति ते। अत्र घृणिपृष्टिन (उणा०४.५४) अनेनायं निपादिनाः प्रज्ञा

अन्वय:-हे वन्दनश्रुत्सोमपावित्रन्द्र! ते तव मनो दानायास्तु समन्तिद्वात्रीयथा वायोरर्वाञ्चौ हरी यथा भूर्णयो यमिष्ठासः सारथयस्तथा सर्वान् धर्मे नियच्छ सर्वेषु केता अकृष्णि एवंकृते ये तव शत्रवः सन्ति, ते तव वशे भवन्तु त्वा न दभ्नुवन्ति॥७॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा सुस्रिक्योऽश्चान् संशिक्ष्य नियच्छन्ति यथा तिर्यग्गामी वायुश्च तथाऽऽध्यापकोपदेशका विद्यासूपदेश्या सर्वाम् सत्याचरणे निश्चितान् कुर्वन्तु न ह्येताभ्यां विना मनुष्यान् धार्मिकान् कर्त्तुं शक्नुवन्ति॥५॥

पदार्थ:-हे (वन्दनश्रुत्) स्तुति वा भाषण के सुनने सुनाने और (सोमपावन्) श्रेष्ठ रसों के पीने वाले (इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त सभाध्यक्ष! (ते) आपका (मनः) मन (दानाय) पुत्रों को विद्यादि दान के लिये (अस्तु) अच्छे प्रकार होवे, जैसे वायु वा सूर्व्य के (अर्ज़ाञ्चा) वेगादि गुणों को प्राप्त कराने वाली (हरी) धारणाऽकर्षण गुण और जैसे (भूण्यः) पण्च (यप्रिष्ठासः) अतिशय करके यमन करता (सारथयः) रथों को चलाने वाले सारथि घोड़े आदि की सुशिक्षा कर नियम में रखते हैं, वैसे तू सब मनुष्यादि को धर्म में चला और सब में (केताः) शास्त्रीय प्रजाओं को (आकृष्टि) अच्छे प्रकार प्राप्त कीजिये, इस प्रकार करने से (ये) जो तेरे शत्रु हैं वे (ते) भेर वश में हो जायें, जिससे (त्वा) तुझ को (न दभ्नुवन्ति) दुःखित न कर सकें॥७॥

भावार्थ:-इस में वार्चकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे उत्तम सारिथ लोग घोड़े को अच्छे प्रकार शिक्षा करके नियम में चलाते हैं और जैसे तिरछा चलने वाला वायु नियन्ता है, वैसे धार्मिक पढ़ाने और उपदेश करनेहारे कियान लोग सत्य विद्या और सत्य उपदेशों से सबको सत्याचार में निश्चित करें, इन दोनों के विन्ना मनुष्यों को धर्मात्मा करने के वास्ते कोई भी समर्थ नहीं हो सकता॥७॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अप्रक्षितं वसुं बिभर्षि हस्तयोरषाळ्हं सहस्तुन्वि श्रुतो दंधे।

अष्टक-१। अध्याय-४। वर्ग-१९-२०

मण्डल-१। अनुवाक-१०। सूक्त-५५

आवृतासोऽवृतासो न कुर्तृभिस्तुनूषु ते क्रतंव इन्द्र भूर्रयः॥८॥२०॥

अप्रेऽक्षितम्। वसुं। बिभूर्षि। हस्तेयोः। अषाळ्हम्। सहः। तुन्वि। श्रुतः। दुधे। आऽवृतासः अवितासः। न। कुर्तुऽभिः। तुनूषुं। ते। क्रतेवः। इन्द्र। भूरयः॥८॥

पदार्थ:-(अप्रक्षितम्) यत्र प्रक्षीयते तत् (वसु) वसन्ति सुखेन यत्र तिद्वज्ञानम् (विभिर्षे) धरिस (हस्तयो:) करयोः (अषाढम्) पापिभिः सोढुमशक्यम् (सहः) बलम् (तन्वि) शरीरे। अत्र वाष्ट्रन्दिस सर्वे० इत्याडामोरभावः। (श्रुतः) यः श्रूयते सः (दधे) (आवृतासः) समन्तात सुखैराच्छादिताः (अवतासः) सर्वतो रिक्षताः (न) इव (कर्तृभिः) पुरुषार्थिभिः (तनूषु) शर्विरेषु (ते) तव (क्रतवः) प्रज्ञाः (इन्द्र) विद्यैश्वर्य (भूरयः) बहव्यः। भूरिरिति बहुनामसु पठितम्। (निघं०३.१)।८।

अन्वय:-हे इन्द्र! श्रुतस्त्वं यदप्रक्षितं वस्वषाढं सहश्च तन्त्रि हस्तुर्णारामलकमिव बिभर्षि य आवृतासोऽवतासो न ते भूरय: क्रतव: कर्त्तृभिस्तनूषु ध्रियन्ते तान्यहं दक्षार्य।

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। यथा सभ्यैर्विद्वद्भिश्चाक्षयं विज्ञानं बर्ल धनं श्रवणं बहूनि सुकर्माणि च धार्यन्ते तथैवैतत्सर्वं प्रजास्थैर्मनुष्यैरिप सन्धार्य्यम्॥८॥

अस्मिन् सूक्ते सूर्यप्रजासभाद्यध्यक्षकृत्यं वर्णितमेते एवैतत्सूक्तार्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति बोध्यम्॥

इति विशतितमो २० वर्गः पञ्चपञ्चाशं ५५ सूक्तञ्च समाप्तम्॥

पदार्थ:-हे (इन्द्र) सभाध्यक्ष (श्रृतः) प्रशंसायुक्त तू जिस (अप्रक्षितम्) क्षयरिहत (वसु) धन और (अषाढम्) शत्रुओं से असह्य (सहः) बता को (तन्वि) शरीर में (हस्तयोः) हाथ में आंवले के फल के समान (विभिष्) धारण करता है जो (आकृतासः) सुखों से युक्त (अवतासः) अच्छे प्रकार रक्षित मनुष्यों के (न) समान (ते) अष्टकी (भूरयः) बहुत शास्त्र विद्यायुक्त (क्रतवः) बुद्धि और कर्मों को (कर्नृषिः) पुरुषार्थी मनुष्य (तृनुष्) शरीरों में भारण करते हैं, उनको मैं (दधे) धारण करता हूं॥८॥

भावार्थ:-इस मूल में उपमालङ्कार है। जैसे सभाध्यक्ष वा सभासद् विद्वान् लोग क्षयरिहत विज्ञान, बल, धन, श्रवण और बहुत उत्तम कर्मों को धारण करते हैं, वैसे ही इन सब कामों को सब प्रजा के मनुष्यों को धारण करना चाहिये॥८॥

इस सूक्त में सूर्य, प्रजा और सभाध्यक्ष के कृत्य का वर्णन किया है, इसी से इस सूक्तार्थ-की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जानना चाहिये॥

यह बीसवां वर्ग २० और पचपनवां ५५ सूक्त समाप्त हुआ॥५५॥

अथास्य षडर्चस्य षट्पञ्चाशस्य सूक्तस्याङ्गिरसः सव्य ऋषिः। इन्द्रो देवता। १,३,४ निचृज्जगती। २ जगती च छन्दः। निषादः स्वर। ५ त्रिष्टुप्। भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः

स्वर:॥

तत्रादावध्यापकोपदेशकगुणा उपदिश्यन्ते॥

अब छप्पनवें सूक्त का आरम्भ है, उस के पहिले मन्त्र में अध्यापक और उपदेशक के गुणो का उपदेश किया है॥

एष प्र पूर्वीरव तस्यं चम्रिषोऽत्यो न योषामुद्यंस्त भुर्विणिः। दक्षं महे पाययते हिर्ण्ययं रथमावृत्या हरियोगमुभ्वसम्॥ १।

एषः। प्रा पूर्वीः। अवं। तस्यं। चृप्रिषः। अत्यः। न। योषाम्। उत्। अर्युस्ता भुर्विणिः। दक्षंम्। मृहे। पाययते। हिर्ण्ययम्। रथम्। आऽवृत्यं। हरिंऽयोगम्। ऋभ्वंसम्॥ १॥

पदार्थ:-(एष:) अध्यापक उपदेशको वा (प्र) प्रकृष्टार्थ (पूर्वी:) प्रौचीनाः सनातनीः प्रजाः (अव) विरुद्धार्थे (तस्य) परमैश्वर्यस्य प्राप्तये (चिप्रषः) चाम्यन्त्वदन्त भागौंस्तान्। अत्र बाहुलकादौणादिक इसिः प्रत्ययो रुडागमश्च। (अत्यः) अश्वः। अत्य इत्यश्चनीमस् पठितम्। (निघं०१.१४) (न) इव (योषाम्) भार्य्याम् (उत्) (अयँस्त) उद्यच्छित् (भुविष्यः) विभित्तं यः सः। अत्र भृञ् धातोर्बाहुलकादौणादिकः क्वणिः प्रत्ययः। (दक्षम्) बलं चातुर्यं वा (महे) पूज्ये व्यवहारे (पाययते) रक्षां कार्यते (हरण्ययम्) तेजः सुवर्णं वा प्रचुरं सिम्पत्तम् (रथम्) यानसमूहम् (आवृत्य) सामग्रयाच्छाद्य (हरियोगम्) हरीणामश्चादीनां योगो यस्मित्तम् (ऋभ्वसम्) ऋभून् मनुष्यादीन् पदार्थान् वाऽस्यन्ति येन तम्॥१॥

अन्वय:-य एष भुर्वणिस्त्रस्य द्विष्ठाः पूर्वीः प्रजा उत्पादयितुमत्यो न योषामुदयँस्त स तस्यै प्रजायै महे सत्योपदेशैः श्रोत्राण्यावृत्य हिरण्ययमृभ्वसं हरियोगं रथं दक्षं च प्रापय्य पाययते स सर्वेर्माननीयो भवति॥१॥

भावार्थ:-अत्र लिपोपमालुङ्कारौ। उपदेशकः स्वसदृशी विदुषीं स्त्रियं परिणीय यथा स्वयं पुरुषानुपदिशेद् बालकानध्याप्रयत् तथातत्स्त्री स्त्रिय उपदिशेत् कन्याश्च पाठयेदेवं कृते कुतिश्चदप्यविद्याभूर्ये न पीड्रयेताम्॥१॥

पदार्थ: जो एष:) यह (भुविण:) धारण वा पोषण करने वाला सभा का अध्यक्ष वा सूर्य (न) जैसे (अल्य:) घोड़ा घोड़ियों से संयोग करता है, वैसे (योषाम्) विद्वान् स्त्री से युक्त हो के (तस्य) उस परमैश्वर्य की प्राप्ति के लिये (चिप्रिष:) भोगों को करने वाली (पूर्वी:) सनातन प्रजा को (प्रावोदयंस्त) अच्छे प्रकार अधर्म वा निकृष्टता से निवृत्त कर वह उस प्रजा के वास्ते (महे) पूजनीय मार्ग में कान आदि इन्द्रियों को (आवृत्य) युक्त कर (हिरण्यम्) बहुत तेज वा सुवर्ण (ऋभ्वसम्) मनुष्यादिकों के प्रक्षेपण

अष्टक-१। अध्याय-४। वर्ग-२१

मण्डल-१। अनुवाक-१०। सूक्त-५६

करने वाला (हरियोगम्) अग्नियुक्त वा अश्वादि युक्त हुए (दक्षम्) बल चतुर शिल्पी मनुष्य युक्त (रथम्) यान समूह को (आवृत्य) सामग्री से आच्छादन करके सुखीरूपों रसों को (पाययते) पित्र करता है, वह सब से मान्य को प्राप्त होता है॥१॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में श्लेष और उपमालङ्कार हैं। उपदेशक अपने तुल्य विदुषी स्त्री के साथ विवाह करके जैसे आप पुरुषों को उपदेश और बालकों को पढ़ावे, वैसे उसकी स्त्री स्त्रियों को उपदेश और कन्याओं को पढ़ावें, ऐसे करने से किसी ओर से अविद्या और भय से दु:ख्रू नहीं हो सकतापर।

पुनस्ते कीदृशा इत्युपदिश्यते॥

फिर वे कैसे हों, इस विषय अगले मन्त्र में कहा 🖏

तं गूर्तयो नेमित्रिषः परीणसः समुद्रं न संचर्गणे सिन्ध्यवेः।
पितुं दक्षस्य विदर्थस्य नू सही गिरिं न वेना अर्धि सिंह तेर्जसा। २॥

तम्। गूर्तर्यः। नेमन्ऽइषः। परीणसः। समुद्रम्। न। समुऽचरणे। सन्निष्यर्वः। पर्तिम्। दक्षस्य। विदर्थस्य। नु। सहः। गिरिम्। न। वेनाः। अर्धि। रोह्। तेर्जसा॥२॥

पदार्थ:-(तम्) पूर्वोक्तम् (गूर्त्तयः) उद्यमयुक्ताः कन्याः (नेमन्निषः) नीयन्त इष्यन्ते च यास्ताः (परीणसः) बह्वयः। परीणस इति बहुनामसु परित्तम्। (निघं०३.१) (समुद्रम्) सागरम् (न) इव (संचरणे) सङ्गमने (सनिष्यवः) संविभागिमिक्छवः (पितृम्) स्वामिनम् (दक्षस्य) चतुरस्य (विदथस्य) विज्ञानयुक्तस्य (नु) शीघ्रम् (सहः) बलुम् (शिरिम्) मेघम् (न) इव (वेनाः) मेधाविनः। वेन इति मेधाविनामसु पठितम्। (निघं०३.१५) (अधि उपरिभावे (रोह) (तेजसा) प्रतापेन॥२॥

अन्वय:-हे कन्ये! त्वं संवरणे सिनिष्यवः समुद्रं नद्यो न गिरिं न परीणसो नेमन्निषो गूर्त्तयो धीमत्यो ब्रह्मचारिण्यो वेना मेधानिनो ब्रह्मचारिणः समावर्त्तनात् पश्चात् परस्परं प्रीत्या विवाहं कुर्वन्तु, दक्षस्य विद्यस्य विदुषः सक्रात् प्राप्तविद्यां प्रतिमिधरोह तं तेजसा प्राप्य सहो नु प्राप्नुहि॥२॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्क्षरौ। सर्वैर्बालकैः कन्याभिश्च यथाविधिसेवितेन ब्रह्मचर्य्येणाऽखिला विद्या अधीत्य पूर्णयुवावस्थाया तुस्यागाकर्मस्वभावान् परीक्ष्यान्योन्यमितप्रेमोद्भवानन्तरं विवाहं कृत्वा पुनर्यदि पूर्णविद्यास्तिहें ब्राल्का अध्यापयेयुः। क्षत्रियवैश्यशूद्भवर्णयोग्याश्चेत्तिहें स्व-स्व वर्णोचितानि कर्माणि कुर्य्यः॥२॥

पदार्थ:-ह कन्ये! तू (संचरणे) अच्छे प्रकार समागम में (न) जैसे (सिनष्यवः) सम्यक् विविध सेवन कर्रतेहारी निद्यां (समुद्रम्) सागर को प्राप्त होती और (न) जैसे बादल (गिरिम्) मेघ को प्राप्त होते हैं; वैसे जो (परीणसः) बहुत (नेमिन्निषः) प्राप्त होने योग्य इष्ट सुखदायक (गूर्त्तयः) उद्यमयुक्त बृद्धिमती बृह्मचारिणी और (वेनाः) बृद्धिमान् ब्रह्मचारी लोग समावर्तन के पश्चात् परस्पर प्रीति के साथ

विवाह करें (दक्षस्य) हे कन्ये! तू सब विद्याओं में अतिचतुर (विदथस्य) पूर्णविद्या युक्त विद्वान् से विद्या को प्राप्त हुए (पितम्) स्वामी को (अधिरोह) प्राप्त हो (तेजसा) अतीव तेज से (तम्) उसको प्राप्त हो के (सहः) बल को (नु) शीघ्र प्राप्त हो॥२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। सब लड़के और लड़कियों को योग्य है कि युश्राक्त ब्रह्मचर्य्य के सेवन से सम्पूर्ण विद्याओं को पढ़ के पूर्ण युवावस्था में अपने तुल्य, गुण्न कर्म और स्वभाव वाले परस्पर परीक्षा करके अतीव प्रेम के साथ विवाह कर पुन: जो पूर्ण विद्या बाले हों तो लड़का लड़िकयों को पढ़ाया करें, जो क्षत्रिय हों तो राजपालन और न्याय किया करें, जो वैश्य हों तो अपने वर्ण के कर्म और जो शूद्र हों तो अपने कर्म किया करें॥२॥

पुनस्तौ कीदृशा इत्युपदिश्यते॥

फिर वे दोनों कैसे हों, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

स तुर्वणिर्महाँ अरेणु पौंस्ये गिरेर्भृष्टिर्न भ्राजते तुजा श्विः। येन शुष्णं मायिनमायसो मदे दुध आभूषुं गुम्यून्नि दामिन्॥३॥

सः। तुर्विणिः। महान्। अरेणु। पौंस्यै। गिरेः। भृष्टिः जि। भिष्मित्रे तुजा। शर्वः। येने। शुष्णेम्। मायिनेम्। आयुसः। मदे। दुधः। आभूषुं। रुमयत्। नि। दार्मनि॥३॥

पदार्थ:-(स:) उक्तार्थः (तुर्विणः) शीक्रान्स्दाता तुर्विणस्तूर्णविनः। (निरु०६.१४) महान् गुणैर्महत्त्वयुक्तः (अरेणु) अहिंसनीयम् (पौंस्थ) षुंसो भव यौवने (गिरेः) मेघस्य (भृष्टिः) भृज्जन्ति परिपचन्ति यस्यां वृष्टौ सा (न) इव (भ्राज्ते) प्रकाशते (तुजा) तोजित हिनस्ति दुःखानि येन तेन (शवः) बलम् (येन) बलेन (शुष्णम्) बलवन्तम् (मिथिनम्) प्रशंसितप्रज्ञादियुक्तम् (आयसः) विज्ञानात् (मदे) हर्षयुक्ते (दुधः) बलेन पूर्णः। अश्व वर्षत्य्ययेन हस्य धः। (आभृषु) समन्ताद्भृषिता जना येन तत् (रामयत्) रामं रमणं कारियत् (नि) नितराम् (दामिन) यः सुखानि ददाति तस्मिन् गृहाश्रमे॥३॥

अन्वय:-हे वरिमच्छुक केरो! यथा व्यं यस्तुर्वणिर्दुध्र आयसो महान् पौंस्ये तुजाऽऽभूष्वरेणु मदे रामयच्छवः प्राप्य गिरेभृष्टिरुत्रतो नेन्न भ्राजते तं शुष्णं मायिनं जनं दामिन निबध्नासि तथा स वरोऽपि तेन त्वां निबध्नीयात्॥३॥

भावार्थः अत्रोपमानाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। स विवाह उत्तमो यत्र समानरूपशीलौ कन्यावरौ स्यातां परन्तु क्रम्यायाः सकाशाद् वरस्य बलायुषी द्विगुणे सार्द्धेकगुणे वा भवेताम्॥३॥

पूर्दार्थ: है उत्तम वर की इच्छा करनेहारी कन्या! जैसे तू जो (तुर्विण:) शीघ्र सुखकारी (दुध:) बल से पूर्ण (आयस:) विज्ञान से युक्त (महान्) सर्वोत्कृष्ट (पौंस्ये) पुरुषार्थ युक्त व्यवहार में प्रवीण (तुजा) दु:खों का नाशक (आभूषु) सब प्रकार सबको सुभूषित कारक (अरेणु) क्षयरहित कर्म को (मदे) हर्षित होने में (रमयत्) क्रीड़ा का हेतु (शव:) उत्तम बल को प्राप्त हो के (न) जैसे (गिरे:) मेघ के

मण्डल-१। अनुवाक-१०। सूक्त-५६

(भृष्टि:) उत्तम शिखर (भ्राजते) प्रकाशित होते हैं, वैसे (तम्) उस (शुष्णम्) बलयुक्त (मायिनम्) अत्युत्तम बुद्धिमान् वर को (येन) जिस बल से (दामिन) सुखदायक गृहाश्रम में स्वीकार कर्ति को वैसे (स:) वह वर भी तुझे उसी बल से प्रेमबद्ध करे॥३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमा वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। अति उत्तम विवाह वह है, सिसमें तुल्य रूप स्वभाव युक्त कन्या और वर का सम्बन्ध होवे, परन्तु कन्या से वर का बढ़ी और आयु दूना वा डियोढ़ा होना चाहिये॥३॥

पुनस्तौ कीदृशौ स्यातामित्याह।।

फिर वे कैसे हों, यह विषय अगले मन्त्र में कहा 🛍

देवी यदि तिवधी त्वावधोतय इन्द्रं सिर्धक्त्युषसं न सूर्य रेप यो धृष्णुना शर्वसा बार्धते तम इयर्ति रेणुं बृहर्दर्हिस्स्रिणिः।

देवी। यदि। तर्विषी। त्वाऽवृंधा। ऊतये। इन्ह्रंम्। सिषंक्रित्। उष्पंम्। नं। सूर्यः। यः। धृष्णुनां। शर्वसा। बाधते। तर्मः। इयति। रेणुम्। बृहत्। अर्हुरिऽस्वनिः॥४॥

पदार्थ:-(देवी) दिव्यगुणैर्वर्तमाना स्त्री (यहि) चेत् (त्रविषी) बलादिगुणयुक्ता (त्वावृधा) या त्वां वर्धयते सा (ऊतये) रक्षणाद्याय (इन्द्रम्) परमसुखपूर्द पतिम् (सिषक्ति) समवैति (उषसम्) प्रत्युष:कालम् (न) इव (सूर्य्यः) सविता (यः) (धृष्णुना) धृष्टेन दृढेन (शवसा) बलेन (बाधते) निवर्त्तयति (तमः) रात्रिम् (इयर्त्ति) प्राप्नोति (रणुम्) विद्यादिशुभप्राप्तम् (वृहत्) महत् (अर्हरिष्वणिः) योऽर्हान् हिंसकाँश्च सम्भजति सः॥४॥

अन्वय:-हे स्त्रियोऽर्हिरिष्वणिर्धृष्पुना शवसोषसं प्राप्य सूर्यो बृहत्तमो न दु:खं बाधते। हे पुरुष! यदि त्वावृधा तिवषी देवी रेणुं व्यामिर्यत्यून्य इन्द्रं त्वा सिषक्ति स सा च युवां परस्परस्यानन्दाय सततं वर्त्तेयाथाम्॥४॥

भावार्थ:-अत्रोपमालक्कारौ। यदा स्त्रीप्रियः पुरुषः पुरुषप्रिया भार्या च भवेत्तदैव मङ्गलं वर्द्धेत॥४॥

पदार्थ: हे स्त्र! (य:) जो (अर्हरिष्वणि:) अहिंसक, धार्मिक और पापी लोगों का विवेककर्ता पुरुष (धृष्णुना) दृढ़ (शवसा) बल से (न) जैसे (सूर्य्य:) रिव (उषसम्) प्रातः समय को प्राप्त हो के (बृहत्) बड़े (तमः) अन्धकार को दूर कर देता है, वैसे तेरे दुःख को दूर कर देता है। हे पुरुष! (यदि) जो (त्वावृंधा) तुझे सुख से बढ़ाने हारी (तिवंधी) पूर्ण बलयुक्त (देवी) विदुषी अतीव प्रिया स्त्री (रेणुम्) रमण्रीव स्वरूप तुझ को (इयित्ती) प्राप्त होती है और (ऊतये) रक्षादि के वास्ते (इन्द्रम्) परम सुखप्रद तुझे

६८६

(सिषक्ति) उत्तम सुख से युक्त करती है, सो तू और वह स्त्री तुम दोनों एक-दूसरे के आनन्द के लिये सदा वर्त्ता करो॥४॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जब स्त्री से प्रसन्न पुरुष और पुरुष से प्रसन्न स्त्री होवे, तभी गृहाश्रम में निरन्तर आनन्द होवे॥४॥

पुनः स कीदृशो भवेदित्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा हो, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।

वि यत्तिरो धुरुणमच्युतं रजोऽतिष्ठिपो दिव आतासु बहीणा। स्वीमीळहे यन्मद्री इन्द्र हर्ष्याहीन् वृत्रं निरुपामौको अर्ण्वम्॥ प्री

वि। यत्। तिरः। धुरुणम्। अच्युतम्। रजः। अतिस्थिपः। दिवः। आतासु। बहुणां। स्वःऽमीळ्हे। यत्। मदे। इन्द्र। हर्ष्यां। अहन्। वृत्रम्। निः। अपाम्। औुब्जः। अर्णुवम्॥५॥

पदार्थ:-(वि) विशेषार्थे (यत्) यम् (तिरः) तिरस्तरेषो (धेरुणम्) आधारकम् (अच्युतम्) कारणरूपेण प्रवाहरूपेण वाऽविनाशि (रजः) पृथिव्यादित्रोकचातम् (अतिष्ठिपः) संस्थापयेः (दिवः) प्रकाशादाकर्षणाद्वा (आतासु) सर्वासु दिश्च। आता इति दिइनामसु पठितम्। (निघं०१.६) (बर्हणा) बृह्यते येन तत् (स्वर्मीढे) स्वः किरणान् जलानि वा मेह्यति यस्मादन्तरिक्षात् तस्मिन् (यत्) तम् (मदे) माद्यन्ति यस्मिस्तस्मिन् (इन्द्र) सूर्य इव परमैश्वर्यकारक (हर्ष्या) हर्षं जिनतुं योग्यानि कर्माणि कुर्वन् (अहन्) हन्ति (वृत्रम्) मेघम् (निः) नितराम् (अपाम्) जलानां सकाशात् (औब्जः) य उब्जत्यार्जवी करोति तेन निर्वृत्तः सः (अर्णवम्) समुद्रम्लाक्ष्म

अन्वय:-हे इन्द्र! यथौब्जो सूर्यलाकि हैव आतासु तिरो बर्हणाऽच्युतं धरुणं रजो व्यतिष्ठिपो व्यवस्थापयित मदे स्वर्मीढेऽन्तरिश्लो हर्ष्या हर्षकराणि कर्माणि कुर्वन् यद्यं वृत्रमहन्नपामर्वणं निर्वर्त्तयिति यथा स्वराज्यन्यायौ धृत्वा शत्रून् हत्वा पत्न्या आनन्दं जनय॥५॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा सूर्यलोकः स्वप्रकाशाकर्षणादिगुणैः सर्वाल्लोकान् स्वस्वकक्षासु भ्रामयन् सर्वास्त्र दिश्च स्वतेजसा रसं हृत्वा वर्षा जनयन् प्रजापालनहेतुर्वर्तते तथा स्त्रीपुरुषाभ्यां वर्त्तितव्यम्॥५॥

पदार्थ: हैं परमैश्वर्ल्ययुक्त (इन्द्र) सभेश! जैसे (औब्जः) कोमल करने वाले से सिद्ध हुआ (यत्) जो सूर्य (दिवः) प्रकाश वा आकर्षण से (आतासु) दिशाओं में (तिरः) तिरछा किया हुआ (बर्हणा) विद्धि युक्त (अच्युतम्) कारणरूप वा प्रवाहरूप से अविनाशि (धरुणम्) आधारकर्त्ता (रजः) पृथिवी अदि सब लोकों को (व्यतिष्ठिपः) विशेष करके स्थापन करता और (मदे) आनन्दयुक्त (स्वर्मीहे) अन्तरिक्ष में वर्त्तमान (हर्ष्या) हर्ष उत्पन्न कराने योग्य कर्मों को करता हुआ (यत्) जिस वृत्रम्) मध्न को (अहन्) नष्ट कर (आतासु) दिशाओं में (अपाम्) जलों के सकाश से (अर्णवम्) समुद्र

मण्डल-१। अनुवाक-१०। सूक्त-५६

को सिद्ध करता है, वैसे अपने राज्य और न्याय को धारण कर शत्रुओं को मार अपनी स्त्री को आनन्द दिया कर॥५॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्यलोक अपने प्रकाश और आकर्षणीदि गुणों से सब लोकों को अपनी-अपनी कक्षा में भ्रमण कराता, सब दिशाओं में अपूर्ण तेज बा रस को विस्तार और वर्षा को उत्पन्न करता हुआ प्रजा के पालन का हेतु होता है, वैसे स्त्री-पुरुषों को भी वर्तना चाहिये॥५॥

पुन: स सभाध्यक्ष: कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह सभाध्यक्ष कैसा हो, इस विषय का उपदेश अगूले मुख्ये में किन्ना है।।

त्वं दिवो धुरुणं धिषु ओर्जसा पृथिव्या इन्द्र सदनेषु माहिनः। त्वं सुतस्य मदे अरिणा अपो वि वृत्रस्यं सुमर्या पूर्णिरुजः॥६॥२१॥

त्वम्। दिवः। धुरुणम्। धिषे। ओर्जसा। पृथिव्याः। हुद्भः सदेनेषु माहिनः। त्वम्। सुतस्ये। मदे। अरिणाः। अपः। वि। वृत्रस्ये। सुमयो। पाष्यो। अरुजः॥६॥

पदार्थ:-(त्वम्) सभाध्यक्षः (दिवः) दिव्यगुप्रसमूहान् (ध्रुरुणम्) सर्वमूर्तद्रव्याणामाधारम् (धिषे) दधासि। अत्र वाच्छन्दिस सर्वे० इति द्विवंचनाभावः (ओजुर्सा) बलेन (पृथिव्याः) भूमे राज्यम् (इन्द्र) परमैश्वर्यसम्पादक (सदनेषु) गृहादिषु (माहिनः) पूज्या महत्त्वगुणविशिष्टाः (त्वम्) शत्रुविनाशकः (सुतस्य) सम्पादितस्य (मदे) आह्णादकारके व्यवहारे (अरिणाः) प्राप्नोसि (अपः) जलानि (वि) विशेषेण (वृत्रस्य) मेघस्य (समया) यथासमृय्यम् (पाष्ट्रा) पेषणयोग्यानि कर्माणि। अत्र पिष्लृधातोण्यत् वर्णव्यत्ययेन पूर्वस्याऽऽकारः सुपां सुलुप् इत्याकारादेशश्च। (अरुजः) आमर्दय॥६॥

अन्वय:-हे इन्द्र! माहिनस्त्वमोजसा यथा सूर्यो दिव: पृथिव्या धरुणं सदनेषु धरित तथा प्रजा धिषे यथेन्द्रो विद्युद् वृत्रस्य हर्नमं कृत्वाऽपो वर्षित तथा त्वं सुतस्य मदे समया पाष्या शत्रून् व्यरुज: सुखमिरणा:॥६॥

भावार्थः-अत्र वाच्कलुर्गोपमालङ्कारः। ये विद्वांसः सूर्यवन्त्यायं प्रकाश्य शत्रूत्रिवार्य्य प्रजाः पालयन्ति तथैवाऽरूमाभिरप्युनुष्टयम्॥६॥

अत्र सूर्य्यविद्युद्गुणवर्णनादेतदुक्तार्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेद्यम्॥

इत्येकविंशो २१ वर्ग: षट्पञ्चाशं ५६ सूक्तं च समाप्तम्॥५६॥

पदार्थ: -हें (इन्द्र) परमैश्वर्यसम्पादक सभाध्यक्ष! (माहिनः) पूजनीय महत्त्व गुणवाले (त्वम्) आप्र अनुस्म) बल से जैसे सविता (दिवः) दिव्यगुणयुक्त प्रकाश से (पृथिव्याः) पृथिवी और पदार्थों क्रि (धर्मणम्) आधार है, वैसे (सदनेषु) गृहादिकों में (धिषे) धारण करते हो वा जैसे बिजुली (वृत्रस्य)

मेघ को मार कर (अप:) जलों को वर्षाती है, वैसे (त्वम्) आप (सुतस्य) उत्पन्न हुए वस्तुओं के (मदे) आनन्दकारक व्यवहार में (समया) समय में (अप:) जलों की वर्षा से सुख देते हो, वैसे (पाष्या) अच्छे प्रकार चूर्ण करने रूप सिद्ध किये हुए रस के (मदे) आनन्दरूपी व्यवहार में (पाष्या) चूर्ण करके से शतुओं को (व्यरुज:) मरणप्राय: करके (अरिणा:) सुख को प्राप्त कीजिये॥६॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो विद्वान् सूर्य्य के समान राज्य को सुप्रकाशित कर शत्रुओं का निवारण करके प्रजा का पालन करते हैं, वैसा ही हम सब लोगों को भी अनुष्ठान करना चाहिये॥६॥

इस सूक्त में सूर्य्य वा विद्वान् के गुण वर्णन से इस सूक्तार्थ की सूर्वे सूक्तार्थ के साथ सङ्गिति जाननी चाहिये॥

यह इक्कीसवां २१ वर्ग और छप्पनवां ५६ सूक्त समाप्त हुआ।।६॥

अथ षड्चस्य सप्तपञ्चाशस्य सूक्तस्याङ्गिरसः सव्य ऋषिः। इन्द्रो देवता। १,२,४ जगती। ३ विराट्। ६ निचृज्जगती छन्दः। निषादः स्वरः। ५ भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनः सभाध्यक्षो कीदृशो भवेदित्युपदिश्यते॥

फिर सभाध्यक्ष कैसा हो, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

प्र मंहिष्ठाय बृह्ते बृहद्रये सत्यश्रुष्माय त्वसे मृति भरे। अपामिव प्रवृणे यस्ये दुर्धरुं राधो विश्वायु शर्वसे अपावृतम्॥ १॥

प्रा मंहिष्ठाय। बृहुते। बृहत्ऽरये। सुत्यऽशुष्माय। तुवसे। मृतिम्। भुरे। अपाम्ऽइको प्रवणे। यस्य। दुःऽधरम्। रार्धः। विश्वऽआयु। शर्वसे। अर्पऽवृतम्॥ १॥

पदार्थ:-(प्र) प्रकृष्टार्थे (मंहिष्ठाय) योऽतिशयेन मंहिता दाता तसी। मह इति दानकर्मसु पठितम्। (निघं०३.२०) (बृहते) गुणैर्महते (बृहद्रये) बृहन्तो रायो धनानि यस्य तस्मै। अत्र वर्णव्यत्ययेन ऐकारस्य स्थान एकारः। (सत्यशुष्माय) सत्यं शुष्मं बलं यस्य तस्मै (तवस्मे) बलबते (मितम्) विज्ञानम् (भरे) धरे (अपामिव) जलानामिव (प्रवणे) निम्ने (यस्य) सभाध्यक्षस्य (दुर्धरम्) अतुभिर्दुःखेन धर्तुं योग्यम् (राधः) विद्याराज्यसिद्धं धनम् (विश्वायु) विश्वं सर्वमायुर्यस्मात्तत् (श्रावस्) मेर्च्यबलाय (अपावृतम्) दानाय भोगाय वा प्रसिद्धम्॥१॥

अन्वय:-यथाऽहं यस्य सभाद्यध्यक्षस्य स्रविसे प्रवर्णेऽपामिवापावृतं विश्वायु दुर्धरं राधोऽस्ति, तस्मै सत्यशुष्माय तवसे बृहद्रये बृहते मंहिष्ठाय मतिं प्रभग्नेतथा यूयमपि संधारयत॥१॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। यथा जिलम् ध्विद्धेश्रादागत्य निम्नदेशस्थं जलाशयं प्राप्य स्थिरं स्वच्छं भवित तथा नम्राय धार्मिकाय बलवते पुरुषार्थिने मनुष्यायाक्षयं धनं निश्चलं जायते। यो राज्यश्रियं प्राप्य सर्विहिताय विद्यावृद्धये शरीरात्म्ह्यलोत्रस्ये प्रददाति, तमेव शूरं प्रदातारं सभाशालासेनापितत्वे वयमभिषिञ्चेम॥१॥

पदार्थ:-जैसे मैं यस्य जिस सभा आदि के अध्यक्ष के (शवसे) बल के लिये (प्रवणे) नीचे स्थान में (अपामिव) कि समान (अपावृतम्) दान वा भोग के लिये प्रसिद्ध (विश्वायु) पूर्ण आयुयुक्त (दुर्धरम्) दुष्ट जनों के दु:ख से धारण करने योग्य (राध:) विद्या वा राज्य से सिद्ध हुआ धन है, उस (सत्यशुष्ट्राय) सत्य बलों का निमित्त (तवसे) बलवान् (बृहद्रये) बड़े उत्तम-उत्तम धन युक्त (बृहते) गुणों सिब्डे (मंहिष्ठाय) अत्यन्त दान करने वाले सभाध्यक्ष के लिये (मितम्) विज्ञान को (प्रभरे) उत्तम रीति से धारण करता हूं, वैसे तुम भी धारण कराओ॥१॥

सावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे जल ऊंचे देश से आकर नीचे देश अर्थात् जलाशय को प्राप्त होके स्वच्छ, स्थिर होता है, वैसे नम्र, बलवान् पुरुषार्थी, धार्मिक, विद्वान् मनुष्य को प्राप्त हुआ विद्यारूप धन निश्चल होता है। जो राज्यलक्ष्मी को प्राप्त हो के सबके हित, न्याय वा विद्या की वृद्धि

तथा शरीर, आत्मा के बल की उन्नति के लिये देता है, उसी शूरवीर, विद्यादि देने वाले सभाशीली सेनापित मनुष्य का हम लोग अभिषेक करें॥१॥

पुन: विद्युद्धत्सभाध्यक्षगुणा उपदिश्यन्ते॥

फिर बिजुली के दृष्टान्त से सभा आदि के अध्यक्ष के गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

अर्घ ते विश्वमन् हासदिष्टय आपो निम्नेव सर्वना हुविष्मतः।

यत्पर्वते न समशीत हर्युत इन्द्रस्य वज्रः श्नर्थिता हिर्ण्ययः॥२॥

अर्घ। ते। विश्वम्। अर्नु। हु। असत्। इष्ट्रये। आर्पः। निम्नाऽईव। सर्वना। हुविष्मतः। यत्। पर्वते। न। सुम्ऽअशीत। हुर्युतः। इन्द्रस्य। वज्रुः। श्नर्थिता। हुर्एययः॥२॥

पदार्थ:-(अध) आनन्तर्ये (ते) तव (विश्वम्) सर्वं जगत् (अनु अनुपाँ) (ह) निश्चये (असत्) भवेत् (इष्ट्ये) अभीष्टसिद्धये (आपः) जलानि (निम्नेव) यथा निम्नानि स्थानाम गच्छन्ति तथा (सवना) ऐश्वर्याणि (हविष्मतः) प्रशस्तानि हवींषि विद्यन्ते यस्य (यत्) पस्य (पृर्वते) गिरौ मेघे वा (न) इव (समशीत) सम्यग् व्याप्नुयात्। अत्र बहुलं छन्दिस इति श्लोलुके (हर्यतः) गमियता कमनीयो वा (इन्द्रस्य) विद्युतः (वज्रः) ऊष्मसमूहः (श्लाधिता) हिंसिता (हिएण्यूनः) ज्योतिर्मयः॥२॥

अन्वय:-यद्यस्य हिवष्मतो जनस्येन्द्रस्य हिल्ल्यो ज्योर्तिर्मयो वज्रः पर्वते श्निथता नेव हर्यतो व्यवहारः समशीताध ते समाश्रयेन विश्वं सर्वं जनस्यनाऽप्रपी निम्नेवेष्टये ह खल्वन्वसत् सोऽस्माभिः समाश्रयितव्यः॥२॥

भावार्थ:-अत्र श्लेषवाचकलुप्तोपमालङ्कारो। अथा शैलं मेघं वा समाश्रित्य सिंहादयो जलानि वा रक्षितानि स्थिराणि जायन्ते, तथैव सभूम्बध्यक्षाश्रयेण प्रजाः स्थिरानन्दा भवन्ति॥२॥

पदार्थ:-(यत्) जिस (हिंबिष्मतः) उत्तम दानग्रहणकर्ता (इन्द्रस्य) ऐश्वर्य वाले सभाध्यक्ष का (हिरण्ययः) ज्योति:स्वरूप (वृद्धः) शस्त्ररूप किरणें (पर्वते) मेघ में (न) जैसे (श्निथता) हिंसा करने वाला होता है, वैसे (हर्यतः) उत्तम व्यवहार (समशीत) प्रसिद्ध हो (अध) इसके अनन्तर (ते) आप के समाश्रय से (विश्वम्) सर्व जूपत (प्रवना) ऐश्वर्य को (आपः) जल (निम्नेव) जैसे नीचे स्थान को जाते हैं, वैसे (इष्ट्ये) अभीष्ट सिद्धि के लिये (ह) निश्चय करके (अन्वसत्) हो उसी सभाध्यक्ष वा बिजुली का हम सब मनुष्यों क्री समाश्रम वा उपयोग करना चाहिये॥२॥

भावार्थ: इसे भन्त्र में श्लेष और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे पर्वत वा मेघ का समाश्रय कर सिंह आदि वा जल रक्षा को प्राप्त होकर स्थित होते हैं, जैसे नीचे स्थानों में रहने वाला जलसमूह सुख देने वाला होता है, वैसे ही सभाध्यक्ष के आश्रय से प्रजा की रक्षा तथा बिजुली की विद्या से शिल्प विद्या की सिद्धि की प्राप्त होकर सब प्राणी सुखी होवें॥२॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

मण्डल-१। अनुवाक-१०। सूक्त-५७

फिर वह कैसा हो इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

अस्मै भीमाय नर्मसा सर्मध्वर उषो न श्रुंभ्र आ भरा पनीयसे। यस्य धाम श्रवसे नामेन्द्रियं ज्योतिरकारि हरितो नायसे॥३॥

अस्मै। भीमार्य। नर्मसा। सम्। अध्वरे। उर्षः। न। शुभ्रे। आ। भुर्। पनीयसे। यस्य धार्म। श्रेवसे। नाम। इन्द्रियम्। ज्योतिः। अर्कारि। हुरितः। न। अर्यसे॥३॥

पदार्थ:-(अस्मै) सभाध्यक्षाय (भीमाय) दुष्टानां भयंकराय (नमसा) सत्करेण (सम्) सम्यगर्थे (अध्वरे) अहिंसानीये धर्मे यज्ञे (उष:) उषा:। अत्र सुपाम् इति विभक्तेलुक् (न) इव (शुभ्रे) शोभमाने सुखे (आ) समन्तात् (भर) धर (पनीयसे) यथायोग्यं व्यवहारं कुर्कत् स्तोतुमझीय (यस्य) उक्तार्थस्य (धाम) दधाति प्राप्नोति विद्यादिसुखं यस्मिस्तत् (श्रवसे) श्रवणायात्रीय च (जीम) प्रख्यातिः (इन्द्रियम्) प्रशस्तं बुद्ध्यादिकं चक्षुरादिकं वा (ज्योतिः) न्यायविनयप्रचारकम् (अकारि) क्रियते (हरितः) दिशः (न) इव (अयसे) विज्ञानाय। हरित इति दिङ्नामसु पठितम्। (निघं०१:६)॥३॥

अन्वय:-हे मनुष्य! त्वं यस्य धाम श्रवसेऽस्ति येनायस क्रिरितो न येन नामेन्द्रियं ज्योतिकारि क्रियतेऽस्मै भीमाय पनीयसे शुभ्र अध्वर उषो न प्रात्रकाल इव नमसा समाभर॥३॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। मनुष्येर्यथा प्रातः कालः प्रविन्धकारं निवार्य सर्वान् प्रकाश्याह्णादयित तथैव अन्यायिवनाशको गुणाधिक्येन प्रशंसित: सिन्कृत्य संप्रामादिव्यवहारे संस्थाप्य:। यथा दिशो व्यवहारं प्रज्ञापयन्ति तथैव विद्यासुशिक्षासेनाविनयन्त्रायानुष्टानोद्गिना सर्वान् भूषियत्वा धनान्नादिभिः संयोज्य सततं सुखयेत्। स एव सभाद्यधिकारे प्रधान: कर्चव्यः। भा

पदार्थ:-हे विद्वान् मनुष्य। तूँ (यस्य) जिस सभाध्यक्ष का (धाम) विद्यादि सुखों का धारण करने वाला (श्रवसे) श्रवण वा अत्र के लिये हैं, जिसने (अयसे) विज्ञान के वास्ते (हरित:) दिशाओं के (न) समान (नाम) प्रसिद्ध (इन्द्रियम्) प्रशंसनीय बुद्धिमान् आदि वा चक्षु आदि (अकारि) किया है (अस्मै) इस (भीमाय) दृष्ट वा पाषियों को भय देने (पनीयसे) यथायोग्य व्यवहार, स्तुति करने योग्य सभाध्यक्ष के लिये (शुभ्रे) शाभावयान शुद्धिकारक (अध्वरे) अहिंसनीय धर्मयुक्त यज्ञ (उष:) प्रात:काल के (न) समान (नग्रसा) नमस्ते वाक्य के साथ (समाभर) अच्छे प्रकार धारण वा पोषण कर॥३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्यों को समुचित है कि जैसे प्रात:काल सब अन्धकार को निवारण और सबको प्रकाश से आनन्दित करता है, वैसे ही शत्रुओं को भय करने वाले मनुष्य को गुणों की अधिकता से स्तुति, सत्कार वा संग्रामादि व्यवहारों में स्थापन करें। जैसे दिशा व्यवहार की जान्ते हारी होती है, वैसे ही जो विद्या उत्तम शिक्षा, सेना, विनय, न्यायादि से सबको सुभूषित धन अन्न आदि से सयुक्त कर सुखी करे, उसी को सभा आदि अधिकारों में सब मनुष्यों को अधिकार देवें॥३॥

अथेश्वरगुणा उपदिश्यन्ते॥

अब अगले मन्त्र में ईश्वर और सभा आदि के अध्यक्ष के गुणों का उपदेश किया है।।

इमे ते इन्द्र ते व्ययं पुरुष्ठुत् ये त्वारभ्य चरामसि प्रभूवसो।

६९२

नुहि त्वदुन्यो गिर्वणो गिरु: सर्घत् क्षोणीरिव प्रति नो हर्य तद्वर्य:॥४॥

ड्रमे। ते। इन्द्र। ते। वयम्। पुरुऽस्तुत्। ये। त्वा। आऽरभ्यं। चरामिस। प्रभुवसो इति प्रभुऽवसो। नृहि। त्वत्। अन्यः। गिर्वणः। गिर्रः। सर्घत्। श्लोणीःऽईव। प्रति। नः। हुर्यु। तत्। वर्चः॥४॥

पदार्थ:-(इमे) सर्वे प्रत्यक्षा मनुष्याः (ते) तव (इन्द्र) जगदीश्वर (ते) सर्वे परोक्षाः (वयम्) सर्वे मिलित्वा (पुरुष्टुत्) पुरुभिर्बहुभिः स्तुतस्तत्सम्बुद्धौ (ये) पूर्वोक्ताः (त्वा) त्वाम् (आरभ्य) त्वत्सामर्थ्यमाश्रित्य (चरामिस) विचरामः (प्रभूवसो) प्रभूः सर्वसम्ब्र्य्यः सुखेषु वासप्रदश्चासौ तत्सम्बुद्धौ (निह) निषेधे (त्वत्) तव सकाशात् (अन्यः) भिन्नस्त्वत्सदृक् (गिर्वणः) योगीभिर्वेदविद्यासंस्कृताभिर्वाग्भिर्वन्यते सम्भज्यते तत्सम्बुद्धौ अत्र निरुपदाद्वनधातोरौणादिकोऽसुन् प्रत्ययः। (गिरः) वाचः (सघत्) हिंसन्। अत्र बहुलं छन्दिम इति श्लोर्लुक्। (क्षोणीरिव) यथा पृथिवीः। क्षोणीरिति पृथिवीनामसु पठितम्। (निघं०१.१) (प्रति) प्राप्तु (न) अस्मभ्यम् (हर्य) कमनीय सर्वसुखप्रापक (तत्) वक्ष्यमाणम् (वचः) उपदेशकार्क वेदवश्वम्।।४॥

अन्वय:-हे प्रभूवसो! गिर्वण: पुरुष्टुत हर्येन्द्र अगदीश्वर ते तव कृपासहायेनेमे वयं सघत् क्षोणीरिव त्वारभ्य पृथिवीराज्यं चरामिस त्वं नोऽस्मभ्यं भिर: श्रुष्धि त्वदन्य: कश्चिदिप नो रक्षक इति निह विजानीमो यच्च भवदुक्तं वेदवचस्तद्वयमा स्थिम्॥४॥)

भावार्थ:-ये मनुष्या परब्रह्मणो निश्च वस्तूपास्यत्वेन नाङ्गीकुर्वन्ति तदुक्तवेदाभिहितं मतं विहायान्यन्नैव मन्यन्ते त एवात्र पूज्या जोस्ति॥४॥

पदार्थ:-हे (प्रभूवसो) समर्थ वा सुखों में वास देने (गिर्वण:) वेदविद्या से संस्कार की हुई वाणियों से सेवनीय (पुरुष्टुत) बहुतों से स्तृति करने वाले (हर्य) कमनीय वा सर्वसुखप्रापक (इन्द्र) जगदीश्वर! (ते) आपकी कृष्ण के सहाय से हम लोग (सघत्) (क्षोणीरिव) जैसे शूरवीर शत्रुओं को मारते हुए पृथिवी राज्य को प्राप्त होते हैं, वैसे (नः) हम लोगों के लिये (गिरः) वेद विद्या से अधिष्ठित वाणियों को प्राप्त कराने की इच्छा करने वाले (त्वत्) आप से (अन्यः) भिन्न (निह) कोई भी नहीं है (तत्) उन (वृद्धः) वर्षनों को सुन कर वा प्राप्त करा जो (इमे) ये सन्मुख मनुष्य वा (ये) जो (ते) दूर रहने वाले मनुष्य और (वयम्) हम लोग परस्पर मिलकर (ते) आप के शरण होकर (त्वारभ्य) आप के सामर्थ्य का आश्रय करके निर्भय हुए (प्रतिचरामिस) परस्पर सदा सुखयुक्त विचरते हैं॥४॥

मण्डल-१। अनुवाक-१०। सूक्त-५७

भावार्थ:-इस मन्त्र में श्लेष और उपमालङ्कार हैं। जैसे शूरवीर शत्रुओं के बलों को निवारण और राज्य को प्राप्त कर सुखों को भोगते हैं, वैसे ही हे जगदीश्वर! हम लोग अद्वितीय आप का अश्विक करके सब प्रकार विजय वाले होकर विद्या की वृद्धि को कराते हुए सुखी होते हैं॥४॥

पुन: स: कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा हो, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है

भूरि त इन्द्र वीर्यं र्व तर्व स्मस्यस्य स्तोतुर्मघवुन्काममा पृण। अन् ते द्यौर्वृहती वीर्यं मम इयं चे ते पृथिवी नेम ओजसे॥ प्रा

भूरिं। ते। इन्द्रा वीर्यम्। तर्व। स्मुसि। अस्य। स्तोतुः। मघुऽव्यू कार्मम् अर्ग पृण्। अर्नु। ते। द्यौः। बृहुती। वीर्यम्। मुमे। इयम्। च। ते। पृथिवी। नेमे। ओर्जसे॥५॥

पदार्थ:-(भूरि) बहु (ते) तव (इन्द्र) परमात्मन् (वीर्च्यम्) बलं पराक्रमो वा (तव) (स्मिस्) स्मः (अस्य) वक्ष्यमाणस्य (स्तोतुः) गुणप्रकाशकस्य (मघवन्) परमपूज्य (कामम्) इच्छाम् (आ) समन्तात् (पृण) प्रपूर्द्धि (अनु) पश्चात् (ते) तव (द्यौः) सूर्यादि (वहती) महती (वीर्च्यम्) पराक्रमम् (ममे) मिमीते (इयम्) वक्ष्यमाणा (च) समुच्चये (ते) तव (पृथिवी) भूमिः (नेमे) प्रह्लीभूता भवति (ओजसे) बलयुक्ताय॥५॥

अन्वय:-हे मघवन्निन्द्र! यस्य ते तव्य्यद्भूरि वीर्म्यमस्ति यद्वयं स्मसि यस्य तवेयं बृहती द्यौः पृथिवी चौजसे नेमे भोगाय प्रह्वीभूता नम्रेव स्वित्ति, स ज्वमस्य स्तोतुः काममापृण॥५॥

भावार्थः-मनुष्यैरीश्वरस्यानन्तं वीय्यमाष्ट्रित्य कामसिद्धिं पृथिवीराज्यं सम्पाद्य सततं सुखयितव्यम्॥५॥

पदार्थ:-हे (मघवन्) उत्तम धनयुक्त (इन्द्र) सेनादि बल वाले सभाध्यक्ष! जिस (ते) आप का जो (भूरि) बहुत (वीर्यम्) प्रस्कृप है, जिस के हम लोग (स्मिस) आश्रित और जिस (तव) आपकी (इयम्) यह (बृहती) बहु (हो:) ब्रिह्म, विनययुक्त न्यायप्रकाश और राज्य के वास्ते (पृथिवी) भूमि (ओजसे) बलयुक्त के लिये और भोगने के लिये (नेमे) नम्र के समान है, वह आप (अस्य) इस (स्तोतु:) स्तुति कुर्षा के (क्रामम्) कामना को (आपृण) परिपूर्ण करें॥५॥

भावार्थः-मनुष्यों को योग्य है कि ईश्वर का आश्रय करके सब कामनाओं की सिद्धि वा पृथिवी के राज्य की पाप्ति करके निरन्तर सुखी रहें॥५॥

पुनस्तदुपासकः कीदृशो भवेदित्युपदिश्यते॥

फिर ईश्वर का उपासक कैसा हो, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

त्वं तिमन्द्रं पर्वतं महामुरुं वज्रेण वज्रिन्पर्वशश्चेकर्तिथ।

अवासृजो निवृताः सर्तवा अपः सुत्रा विश्वं दिधषे केवलं सहः॥६॥२२॥१० 🖊

त्वम्। तम्। इन्द्रा पर्वतम्। महाम्। उरुम्। वञ्जेण। वृद्धिन्। पूर्वऽशः। चुकुर्तिथः। असे असुभूः। निऽवृताः। सर्त्वै। अपः। सुत्रा। विश्वम्। दृधिषे। केवलम्। सर्हः॥।६॥

पदार्थ:-(त्वम्) सेनेशः (तम्) वक्ष्यमाणम् (इन्द्र) सूर्य इव शत्रुबलविदार्क्न (पर्वतम्) भेघाश्रितं जलिमव पर्वताश्रितं शत्रुम् (महाम्) पूज्यतमम् (उरुम्) बहुबलादिगुणविशिष्ट्रिम् (चन्नेण) क्रिणैरिव तीक्ष्णेन शस्त्रसमूहेन (विज्ञन्) शस्त्रास्त्रधारिन् (पर्वशः) अङ्गमङ्गम् (चकर्तिथ) कृन्तस्य (अव) विनिग्रहे (अस्जः) सृज (निवृताः) निवारिताः (सर्तवै) सर्तुं गन्तुम् (अपः) जलानीव (सत्रा) सत्यकारणरूपेणाविनाशि। सत्रेति सत्यनामसु पठितम्। (निघं०३.१०) (विश्वम्) जगत् (दिधषे) धरिस (केवलम्) असहायम् (सहः) बलम्॥६॥

अन्वय:-हे विज्ञिनिद्र! यस्त्वं महामुरुं वीराणां पूज्यतमां सिनास्वासृजी वज्रेण यथा सूर्यः पर्वतं छित्वा निवृता अपस्तथा शत्रुसमूहं पर्वशश्चकित्तिथाङ्गमङ्गं कृन्द्रीस निवास्त्रयस सत्रा विश्वं केवलं सहश्च सर्तवै दिधषे तन्त्वां सभाद्यधिपतिं वयं गृह्णीमः॥६॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। मपुष्येर्पः शत्रूणां छेत्ता प्रजापालनतत्परो बलविद्यायुक्तोऽस्ति, स एव सभाद्यध्यक्ष: कार्य्य:॥६/

अस्मिन् सूक्तेऽग्निसभाध्यक्षादिगुणवर्णनादृतेदर्शस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिर्वेद्या॥

इति द्वाविंशो २२ वर्गः सिर्प्पञ्चाशे 🕫 सुक्तं च समाप्तम्॥

पदार्थ:-हे (विज्ञन्) प्रशस्त शस्त्रविद्यावित् (इन्द्र) दुष्टों के विदारण करनेहारे सभाध्यक्ष! जो (त्वम्) आप (महाम्) श्रेष्ठ (उरुम्) बड़ी जीर पुष्टा की सत्कार के योग्य उत्तम सेना को (अवासृजः) बनाइये और (वज्रेण) वज्र से जैसे सूर्य्य (पर्वतम्) मेघ को छिन्न-भिन्न कर (निवृताः) निवृत्त हुए (अपः) जलों को धारण करता और पुनः पृथिवी पर गिराता है, वैसे शत्रुदल को (पर्वशः) अङ्ग अङ्ग से (चकर्तिथ) छिन्न-भिन्न कर श्रुष्ठीं का निवारण करते हो (सन्ना) कारणरूप से सत्यस्वरूप (विश्वम्) जगत् को अर्थात् राज्य को धारण करके (केवलम्) असहाय (सहः) बल को (सर्तवै) सबको सुख से जाने-आने के न्यायमार्ग में कलने को (दिधिषे) धरते हो (तम्) उस आपको सभा आदि के पित हम लोग स्वीकार करते हैं॥६॥

भावार्थ: इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को योग्य है कि जो शत्रुओं के छेदन, प्रजा के पालन में तप्पर, बल और विद्या से युक्त है, उसी को सभा आदि का रक्षक अधिष्ठाता स्वामी बनावें।। ६।।

हस सूक्त में अग्नि और सभाध्यक्ष आदि के गुणों के वर्णन से इस सूक्तार्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गीत जाननी चाहिये॥

यह बाईसवां २२ वर्ग और सत्तावनवां ५७ सुक्त समाप्त हुआ॥

अथ नवर्चस्याष्टपञ्चाशस्य सूक्तस्य गौतमो नोधा ऋषिः। अग्निर्देवता। १,५, जगती। २ विराङ्जगती। ४ निचृज्जगती च छन्दः। निषादः स्वरः। ३ त्रिष्टुप्। ६,७,९ निचृत्त्रिष्टुप्।

विराड्त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथाऽग्निदृष्टान्तेन जीवगुणा उपदिश्यन्ते॥

अब अट्ठावनवें सूक्त का आरम्भ है। उस के पहिले मन्त्र में अग्नि के दृष्टान्त से जीव के सुणो का उपदेश किया है।।

नू चित्सहोजा अमृतो नि तुन्दते होता यहूतो अभवद्विवस्वतः।

वि सार्धिष्ठेभि: पृथिभी रजी मम् आ देवताता हुविषा विवासति। रा

नु। चित्। सहःऽजाः। अमृतः। नि। तुन्द्ते। होतां। यत्। दूतः। अर्भवत्। विवर्णवेतः। वि। सार्धिष्ठेभिः। पृथिऽभिः। रजः। मुमे। आ। देवऽताता। हुविषां। विवासति॥ १॥

पदार्थ:-(नु) शीघ्रम् (चित्) इव (सहोजाः) यः सहस्य बलेन् प्रसिद्धः (अमृतः) नाशरिहतः (नि) नितराम् (तुन्दते) व्यथते। अत्र वाच्छन्दिस सर्वे विषयो भवन्ति इति नुमागमः। (होता) अत्रा खल्वादाता (यत्) यः (दूतः) उपतप्ता देशान्तरं प्रापयित्। अभवत् (विवस्वतः) परमेश्वरस्य (वि) विशेषार्थे (साधिष्ठेभिः) अधिष्ठोऽधिष्ठानं समान्मिधिष्ठानं येषां तैः (पथिभिः) मार्गेः (रजः) पृथिव्यादिलोकसमूहम् (ममे) मिमीते (आ) सर्वृद्धः (देवताम्म) देवा एव देवतास्तासां भावः (हविषा) आदत्तेन देहेन (विवासित) परिचरित॥१॥

अन्वय:-हे मनुष्या! यद्यश्चिद्विह्युद्धिताऽमृतः सहोजा होता दूतोऽभवद् देवताता साधिष्ठेभिः पथिभी रजो नु निर्मातुर्विवस्वतो मध्ये वर्त्तमारः मन् हिवषा सह विवासित स्वकीये कर्मणि व्याममे स जीवात्मा वेदितव्यः॥१॥

भावार्थ:-हे मनुष्या यूयमनादौ सिच्चिदानन्दस्वरूपे सर्वशक्तिमित स्वप्रकाशे सर्वाऽऽधारेऽखिल- विश्वोत्मिदके देशकालवस्तुपरिच्छेदशून्ये सर्वाभिव्यापके परमेश्वरे नित्येन व्याप्यव्यापकसम्बन्धेन यूरिकृदि नित्यश्चेतनोऽल्पोऽल्पज्ञोऽस्ति स एव जीवो वर्त्तत इति बोध्यम्॥१॥

पदार्थ: -हे मनुष्या (ख्रेन) जो (चित्) विद्युत् के समान स्वप्रकाश (अमृतः) स्वस्वरूप से नाशरहित (सहोज्यः) बल को उत्पादन करने हारा (होता) कर्मफल का भोक्ता सब मन और शरीर आदि का धर्ता (दूत्रः) सबको चलाने हारा (अभवत्) होता है (देवताता) दिव्यपदार्थों के मध्य में दिव्यस्वरूप (साधिष्ठेभिः) अधिष्ठानों से सह वर्त्तमान (पिथिभिः) मार्गो से (रजः) पृथिवी आदि लोकों को (नु) शीघ्र बनाने हरि (विवस्वतः) स्वप्रकाश स्वरूप परमेश्वर के मध्य में वर्त्तमान होकर (हविषा) ग्रहण किये हुए शरीर से सिंदत (नि तुन्दते) निरन्तर जन्म-मरण आदि में पीड़ित होता और अपने कर्मों के फलों का

६९६

(विवासित) सेवन और अपने कर्म में (व्याममे) सब प्रकार से वर्त्तता है, सो जीवात्मा है, ऐसा तुम लीग जानो॥१॥

भावार्थ:-हे मनुष्यो लोगो! तुम अनादि अर्थात् उत्पत्तिरहित, सत्यस्वरूप जीनसेय) आनन्दस्वरूप, सर्वशक्तिमान्, स्वप्रकाश, सबको धारण और सबके उत्पादक, देश-काल और वस्तुओं के परिच्छेद से रहित और सर्वत्र व्यापक परमेश्वर में नित्य व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध स्रे जो अनादि, नित्य, चेतन, अल्प, एक देशस्थ और अल्पज्ञ है, वही जीव है, ऐसा निश्चित जानो॥१॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा है, यह विषय अगले मन्त्र में कहा हैं।

आ स्वमद्मं युवमानो अजरस्तृष्वविष्यन्नतसेषुं तिष्ठति। अत्यो न पृष्ठं प्रृष्टितस्यं रोचते द्विवो न सानुं स्तुनयंन्नविकदत्॥ भी

आ। स्वम्। अर्द्या युवर्मानः। अजर्रः। तृषु। अविष्यन्। अत्सेषु। तिष्ठुद्धि। अत्यः। न। पृष्ठम्। प्रुष्टितस्य। रोचते। दिवः। न। सानुं। स्तनर्यन्। अचिक्रदुत्॥२॥

पदार्थ:-(आ) समन्तात् (स्वम्) स्वकीयम् (अग्न) अनुमहं कर्मफलम् (युवमानः) संयोजको भेदकश्च। अत्र विकरणव्यत्ययेन श आत्मनेपदं र्ग (अज्ररः) स्वस्वरूपेण जीर्णावस्थारिहतः (तृषु) शीघ्रम्। तृष्विति क्षिप्रनामसु पठितम्। (निघं १८१५) (अविष्यन्) रक्षणादिकं करिष्यन् (अतसेषु) विस्तृतेष्वाकाशपवनादिषु पदार्थेषु (तिष्ठति) वर्गते (अत्यः) अश्वः (न) इव (पृष्ठम्) पृष्ठभागम् (प्रुषितस्य) स्निग्धस्य मध्ये (रोचते) प्रकाशते (दिव्या सूर्व्यप्रकाशात् (न) इव (सानु) मेघस्य शिखरः (स्तनयन्) शब्दयन् (अचिक्रदत्) विकलयित॥ २०००

अन्वय:-हे मनुष्या:! यूग्रं यो युवमानोऽजरो देहादिकमिवष्यन्नतसेषु तिष्ठति प्रुषितस्य पूर्णस्य मध्ये स्थित: सन् पृष्ठमत्यो न देहादि वहति सानु दिवो न रोचते विद्युत् स्तनयन्निवाचिक्रदत् स्वमद्य तृष्वाभुङ्क्ते स देही जीव इति मन्तव्यम्॥२॥

भावार्थ:-अत्र हिन्केलुप्तोर्थमालङ्कारः। यः पूर्णेनेश्वरेण धृत आकाशादिषु प्रयतते सर्वान् बुध्यादीन् प्रकाशते ईश्वरनियापेन स्वकृतस्य शुभाशुभाचिरतस्य कर्मणः सुखदुःखात्मकं फलं भुङ्क्ते, सोऽत्र शरीरे स्वतः भोन्ता जीवोऽस्तीति मनुष्यैर्वेदितव्यम्॥२॥

पदार्थ्य: हे सेपुष्यो! तुम जो (युवमान:) संयोग और विभाग कर्ता (अजर:) जरादि रोगरहित देह आदि की (अबिध्यन्) रक्षा करने वाला होता हुआ (अतसेषु) आकाशादि पदार्थों में (तिष्ठति) स्थित होता (प्रुपितस्य) पूर्ण परमात्मा में कार्य्य का सेवन करता हुआ (न) जैसे (अत्य:) घोड़ा (पृष्ठम्) अपनी पीट पर भार को बहाता है, वैसे देहादि को बहाता है (न) जैसे (दिव:) प्रकाश से (सानु) पर्वत के सिखर को मेघ की घटा प्रकाशित होती है, वैसे (रोचते) प्रकाशमान होता है, जैसे (स्तनयन्) बिजुली

मण्डल-१। अनुवाक-११। सूक्त-५८

शब्द करती है, वैसे (अचिक्रदत्) सर्वथा शब्द करता है, जो (स्वम्) अपने किये (अद्म) भोक्तव्य कर्म को (तृषु) शीघ्र (आ) सब प्रकार से भोगता है, वह देह का धारण करने वाला जीव है॥२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो पूर्ण ईश्वर ने धारण किया, अकाशादि तावों में प्रयत्नकर्ता, सब बुद्धि आदि का प्रकाशक, ईश्वर के न्याय-नियम से अपने किये प्रभाशिभ कर्म के सुखदु:खरूप फल को भोगता है, सो इस शरीर में स्वतन्त्रकर्ता भोक्ता जीव है, ऐसा सब मनुष्य जानें॥२॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मून्त्र में किया है।

क्राणा रुद्रेभिर्वसुंभिः पुरोहितो होता निषेत्तो रियाणळमेर्त्यः। रथो न विक्ष्वृञ्जसान आयुषु व्यानुषग्वार्या देव ऋण्विति। रा

क्राणा। क्ट्रेभिः। वसुंऽभिः। पुरःऽहितः। होतां। निऽस्तः। रेक्क्रियाट्। अर्मर्त्यः। रथः। न। विक्षु। ऋञ्चसानः। आयुषुं। वि। आनुषक्। वार्या। देवः। ऋण्वति॥ ३॥

पदार्थ:-(क्राणा) कर्ता। अत् कृञ् धातोविह्यकादीणादिक आनच् प्रत्ययः। सुपां सुलुग्॰ इत्याकारादेशश्च। (फट्रेभि:) प्राणै: (वसुभि:) पृथित्यादिभि:) सहः (पुरोहित:) पूर्वं ग्रहीता (होता) अत्ता (निषत्तः) स्थितः (रियपट्) यो रियं द्रव्यं सहते (अमर्त्यः) नाशरहितः (रथः) रमणीयस्वरूपः (न) इव (विश्व) प्रजासु (ऋञ्जसानः) य ऋञ्जित स्थान्तोति सः। अत्र ऋञ्जिवृधिमदि॰ (उणा॰२.८७) अनेन सानच् प्रत्ययः। (आयुषु) बाल्यावस्थासु (वि विश्वष्टार्थे (आनुषक्) अनुकूलतया (वार्या) वर्तुं योग्यानि वस्तूनि (देवः) देदीप्यमानः (ऋण्वति) कर्माणि साध्नोति॥३॥

अन्वय:-हे मनुष्या! यो इंद्रेभिर्वसुभिः सह निषत्तो होता पुरोहितो रियषाडमर्त्यः क्राणा ऋञ्जसानो विक्षु रथो नेवायुष्वानुषग्वार्या व्यूप्वित साध्नोति, स एव देवो जीवात्माऽस्तीति यूयं विजानीत॥३॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। प्रे पृथिव्यां प्राणैश्चेष्टन्ते, मनोऽनुकूलेन रथेनेव शरीरेण सह रमन्ते, श्रेष्ठानि वस्तूनि सुखं चेच्छन्ति, तोएव जीवा इति वेद्यम्॥३॥

पदार्थ: हे मनुष्यो तुम जो (फ्रेंभि:) प्राणों और (वसुभि:) वास देनेहारे पृथिवी आदि पदार्थों के साथ (निस्तः:) स्थित चलता फिरता (होता) देहादि का धारण करने हारा (पुरोहित:) प्रथम ग्रहण करने योग्य (रिविषाट) धन का सहन कर्ता (अमर्त्यः) मरण धर्मरहित (क्राणा) कर्मों का कर्ता (ऋञ्जसर्वः) जो किये हुए कर्म को प्राप्त होता (विक्षु) प्रजाओं में (रथो न) रथ के समान शरीरसहित होके (आयुष्) बाल्यादि जीवनावस्थाओं में (आनुषक्) अनुकूलता से वर्त्तमान (वार्या) उत्तम पदार्थ और

६९८

सुखों को (व्यृण्वित) विविध प्रकार सिद्ध करता है, वही (देव:) शुद्ध प्रकाशस्वरूप जीवात्मा है, ऐसी जानो॥३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो पृथिवी में प्राणों के साथ चेष्टा, मन के अनुकाल, रूथे के समान शरीर के साथ क्रीड़ा, श्रेष्ठ वस्तु और सुख की इच्छा करते हैं, वे ही जीव हैं, ऐसा सब लोग जानें॥३॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।

वि वार्तजूतो अत्सेषुं तिष्ठते वृथां जुहूभिः सृण्यां तुविष्वणिः तृषु यदंग्ने वृनिनों वृषायसें कृष्णं त एम रुशंदूर्मे अजर्गार्थ।।

वि। वार्तंऽजूतः। अत्सेषुं। तिष्ठते। वृथां। जुहूभिः। सृण्यां। तुर्बिऽस्विनिः। तृषु। यत्। अग्ने। वृतिनेः। वृषुऽयसे। कृष्णम्। ते। एमं। रुशंत्ऽऊमें। अजुर्॥४॥

पदार्थ:-(वि) विशेषार्थे (वातजूत:) वातेन वासुना जूत: प्राप्तवेगः (अतसेषु) व्याप्तव्येषु तृणकाष्ठभूमिजलादिषु (तिष्ठते) वर्तते (वृथा) व्यर्थे (जुहूभिः) जुहूनि याभिः क्रियाभिः (सृण्या) धारणेन हननेन वा। द्विविधा सृणिर्भवित भर्ता च हन्ता वा चिरु १३.५) (तुविष्वणिः) यस्तुविषो बहून् पदार्थान् वनित सम्भजित सः (तृषु) शीघ्रम् (यत्र) यः (अग्रे) विद्युद्धद्वर्त्तमान (विननः) प्रशस्ता रश्मयो वनानि वा येषां तेषु वा तान् (वृषायसे) वृष इकावस्सि (कृष्णम्) कर्षति विलिखति येन ज्योतिः समूहेन तम् (ते) तव (एम) विज्ञाय प्राप्नुयाम (क्राइमी रुप्रोप्तय अर्मयो ज्वाला यस्य तत्सम्बुद्धौ (अजर) स्वयं जरादिदोषरहित॥४॥

अन्वय:-हे रुशदूर्मेऽजराजे यो भवानतसेषु वितिष्ठते यद्यो वातजूतो जुहूभि: सृण्या च सह विनन: प्राप्य त्वं वृथाऽभिमानं प्रित्यज्य स्वासानं जानीहि॥४॥

भावार्थः-सर्वान् मनुष्यान् प्रतीश्वरोऽभिवदति मया यदुपदिष्टं तदेव युष्मदात्मस्वरूपमस्तीति वेदितव्यम्॥४॥

पदार्थ: -हे (फ्रादूर्म) अपने स्वभाव की लहरी युक्त (अजर) वृद्धावस्था से रहित (अग्ने) बिजुली के तुल्य सूर्तमान जीव! जो तू (अतसेषु) आकाशादि व्यापक पदार्थों में (वितिष्ठते) ठहरता (यत्) जो (वृत्तजूतः) वायु का प्रेरक और वायु के समान वेग वाला (तुविष्वणिः) बहुत पदार्थों का सेवक (जुद्धिः) पहण करने के साधनरूप क्रियाओं और (सृण्या) धारण तथा हननरूप कर्म्म से सह वर्तमान (बिनिः) विद्युत् युक्त प्राणों को प्राप्त होके तू (तृषु) शीघ्र (वृषायसे) बलवान् होता है, जिस (ते) तर (कृष्णाम्) कर्षणरूप गुण को हम लोग (एम) प्राप्त होते हैं, सो तू (वृथा) अभिमान को छोड़ के अपने स्वरूप को जान॥४॥

मण्डल-१। अनुवाक-११। सूक्त-५८

भावार्थ:-सब मनुष्यों को ईश्वर उपदेश करता है कि जैसा मैंने जीव के स्वभाव का उपदेश किया है, वही तुम्हारा स्वरूप है, यह निश्चित जानो॥४॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा है, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

तपुर्जम्भो वन आ वार्तचोदितो यूथे न साह्वाँ अर्व वाति वंसंगः। अभिव्रजन निर्क्षतं पार्जसा रर्जः स्थातुश्चरथं भयते पतित्रणः॥५॥२३॥

तपुं:ऽजम्भः। वने। आ। वार्तऽचोदितः। यूथे। न। साह्वान्। अवि वार्ति। ब्रंसंगः। अभिऽव्रर्जन्। अक्षितम्। पार्जसा। रर्जः। स्थातुः। चरथम्। भुयते। पुत्रिर्णः॥५॥

पदार्थ:-(तपुर्जम्भः) तपूंषि तापा जम्भो वक्रमिव यस्य सः (वर्न) रश्मौ (आ) समन्तात् (वातचोदितः) वायुना प्रेरितः (यूथे) सैन्ये (न) इव (साह्वान्) सहनशीलो श्रीरः (अव) विनिग्रहे (वाति) गच्छति (वंसगः) यो वंसान् सम्भक्तान् पदार्थान् गच्छित् प्राप्नोति सः (अभिव्रजन्) अभितः सर्वतो गच्छन् (अक्षितम्) क्षयरिहतम् (पाजसा) बलेन। पाज इति विलन्तिम् पठितम्। (निघं०२.९) (रजः) सकारणं लोकसमूहम् (स्थातुः) कृतस्थितेः (चरथम्) चर्यते गस्यतं भक्ष्यते यस्तम् (भयते) भयं जनयित। अत्र व्यत्ययेन बहुलं छन्दिस इति शपो लुक् आत्मनेपदञ्च (पात्रंगः) पिक्षणः॥५॥

अन्वय:-हे मनुष्या! यो वंसगो वाचच्यित्तस्तपुर्ज्यभीऽग्निरिव जीवो यूथे साह्वानाववाति विस्तृतो भूत्वा हिनस्ति योऽभिव्रजन् चरथमिक्षतं रूनः पाजसा भूरित स्थातुस्तिष्ठतो वृक्षादेर्मध्ये पतित्रण इव भयते तद्युष्माकमात्मस्वरूपमस्तीति विजानीत्मा भी

भावार्थ:-मनुष्यैर्योऽन्त:करणप्राणिन्द्रियशरीरप्रेरकः सर्वेषामेतेषां धर्ता नियन्ताऽधिष्ठातेच्छाद्वेषप्रयत्नसुक् दुःखज्ञान्।दिगुणोऽस्ति सोऽत्र देहे जीवोऽस्तीति वेद्यम्॥५॥

पदार्थ:-हे मनुष्य लेगा को (वंस्ता) भिन्न-भिन्न पदार्थों को प्राप्त होता (वातचोदित:) प्राणों से प्रेरित (तपुर्जम्भ:) जिस्न का मुख्य के समान प्रताप, वह जीव अग्नि के सदृश जैसे (यूथम्) सेना में (साह्वान्) सहनशील जीव (अववाति) सब शरीर की चेष्टा कराता है, जो विस्तृत होके दुःखों का हनन करता जो (अभिव्रजन्) जाता-आता हुआ (चरथम्) चरनेहारे (अक्षितम्) क्षयरिहत (रजः) कारण के सिहत लोकसमूह को (पाजसा) बल से धरता जो (स्थातुः) स्थिर वृक्ष में बैठे हुए (पतित्रणः) पक्षी के समान (भ्रयते) भेश करता है, सो तुम्हारा आत्मस्वरूप है, इस प्रकार तुम लोग जानो॥५॥

भावार्थ:-मनुष्यों को योग्य है कि जो अन्त:करण अर्थात् मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्कार, प्राण अर्थात् प्राणाद्धि दशवायु इन्द्रिय अर्थात् श्रोत्रादि दश इन्द्रियों का प्रेरक, इन का धारक और नियन्ता, 900

ऋग्वेदभाष्यम्

स्वामी, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दु:ख और ज्ञान आदि गुण वाला है, वह इस देह में जीव है, ऐसी निश्चित जानो॥५॥

पुन: स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

दुधुष्ट्वा भृगवो मार्नुषेष्वा र्ययं न चार्रं सुहवं जर्नेभ्यः। होतारमग्ने अतिथिं वरेण्यं मित्रं न शेवं दिव्याय जन्मने॥६॥

दुधुः। त्वा। भृगवः। मानुषेषु। आ। रियम्। न। चारुम्। सुऽहर्वम्। जर्नेभ्यः। होतरिम्। अग्ने। अतिथिम्। वरेण्यम्। मित्रम्। न। शेर्वम्। दुव्यायं। जन्मने॥६॥

पदार्थ:-(दधु:) धरन्तु (त्वा) त्वाम् (भृगवः) परिपक्विवज्ञाना मेश्वार्विमा विद्वांसः (मानुषेषु) मानवेषु (आ) समन्तात् (रियम्) धनम् (न) इव (चारुम्) सन्दरम् (सुहब्रम्) सुखेन होतुं योग्यम् (जनेभ्यः) मनुष्यादिभ्यः (होतारम्) दातारम् (अग्ने) पावक्विद्वर्त्तमाने (अतिथिम्) न विद्यते नियता तिथिर्यस्य तम् (वरेण्यम्) वरीतुमर्हं श्रेष्ठम् (मित्रम्) सखायम् (न) इच् (शेवम्) सुखस्वरूपम्। शेविमिति सुखनामसु पठितम्। (निघं०३.६) (दिव्याय) दिव्यभोगान्तित्विय (जन्मने) प्रादुर्भावाय॥६॥

अन्वय:-हे अग्ने स्वप्रकाशस्वरूप! त्वं य त्वा भूगवो मानुषेषु जनेभ्यश्चारुं सुहवं रियं न धनिमव होतारमितिथिं वरेण्यं शेवं लब्ध्वा दिव्याय जन्मने र्मित्रं न सखायिमव त्वाऽऽदधुस्तमेव जीवं विजानीहि॥६॥

भावार्थ:-यथा मनुष्या विद्यार्भियो पित्रोरेच प्राप्य सुखमेधन्ते, तथैव जीवस्वरूपस्य वेदितारोऽत्यन्तानि सुखानि प्राप्नुवन्ति 🍂 ॥

पदार्थ:-हे (अग्ने) अग्नि के संदूश स्वप्रकाश स्वरूप जीव! तू जिस (त्वा) तुझको (भृगवः) परिपक्व ज्ञान वाले विद्वान् (मृतिषेषु) मनुष्यां में (जनेभ्यः) विद्वानों से विद्या को प्राप्त होके (चारुम्) सुन्दरस्वरूप (सुहवम्) सुखों के देनेहारे (स्थिम्) धन के (न) समान (होतारम्) दानशील (अतिथिम्) अनियत स्थिति अर्थात् (अतिथि के सदृश देह-देहान्तर और स्थान-स्थानान्तर में जानेहारा (वरेण्यम्) ग्रहण करने योग्य (शेवम्) सुर्वरूप जीव को प्राप्त होके (दिव्याय) शुद्ध (जन्मने) जन्म के लिये (मित्रन्न) मित्र के सदृश तुझ को (आदधुः) सब प्रकार धारण करते हैं, उसी को जीव जान॥६॥

भावार्थ: इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे मनुष्य विद्या वा लक्ष्मी तथा मित्रों को प्राप्त होकर सुखों को प्राप्त होते हैं, वैसे ही जीव के स्वरूप को जानने वाले विद्वान् लोग अत्यन्त सुखों को प्राप्त होते हैं।

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

मण्डल-१। अनुवाक-११। सूक्त-५८

होतारं सप्त जुह्यो ३ यजिष्टं यं वाघतो वृणते अध्वरेषु। अग्निं विश्वेषामर्रतिं वसूनां सपुर्यामु प्रयंसा यामि रत्नम्॥७॥

होतारम्। सप्ता जुर्ह्वः। यजिष्ठम्। यम्। वाघतः। वृणते। अध्वरेषुं। अग्निम्। विश्वेषाम्। अस्तिम्। वर्मूनाम्। सप्यामि। प्रयंसा। यामि। रत्नेम्॥७॥

पदार्थ:-(होतारम्) सुखदातारम् (सप्त) एतत्संख्याकाः (जुह्वः) याभिर्जुह्वत्यपदिशन्ति परस्परं ताः (यजिष्ठम्) अतिशयेन यष्टारम् (यम्) शिल्पकार्योपयोगिनम् (वाघतः) मेधाविन । वाघत इति मेधाविनामसु पठितम्। (निघं०३.१५) (वृणते) सम्भजन्ते (अध्वरेषु) अनुष्ठात्रस्थेषु कर्ममयेषु यज्ञेषु (अग्निम्) पावकम् (विश्वेषाम्) सर्वेषाम् (अरितम्) प्रापकम् (वस्त्राम्) पृथ्वित्यादीनाम् (सपर्यामि) परिचरामि (प्रयसा) प्रयत्नेन (यामि) प्राप्नोमि (रत्नम्) रमणीयस्वरूपम्॥५॥

अन्वय:-हे मनुष्या! यस्य सप्त जुह्नस्तं होतारं स्विजिष्ठं विश्वेषां वसूनामरितं यं वाघतः प्रयसाऽग्निमिवाध्वरेषु वृणते सम्भजन्ते, तं रत्नमहं यामि सपूर्यामि च्याप्त्रा

भावार्थ:-ये मनुष्याः स्वात्मानं विदित्वा परंब्रह्म विजातिन्त्र ते एव मोक्षमिधगच्छन्ति॥७॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! जिस के (सप्त) सात (जुह्न:) सुख की इच्छा के साधन हैं, उस (होतारम्) सुखों के दाता (यजिष्ठम्) अतिशय सङ्गित में निपूर्ण (विश्वेष्ट्रम्म्) सब (वसूनाम्) पृथिव्यादि लोकों को (अरितम्) प्राप्त होनेहारा (यम्) जिस को (वाधतः) बुद्धिमान् लोग (प्रयसा) प्रीति से (अध्वरेषु) अहिंसनीय गुणों में (अग्निम्) अग्नि के सिदृश (वृण्जे) स्वीकार करते हैं, उस (रत्नम्) रमणीयानन्द स्वरूप वाले जीव को मैं (यामि) प्राप्त होता शौर)(सपर्यामि) सेवा करता हूं॥७॥

भावार्थ:-जो मनुष्य अपने आत्मा को जान के परब्रह्म को जानते हैं, वे ही मोक्ष पाते हैं॥७॥

अधारमविदो योसिनः कीदृशः स्युरित्युपदिश्यते॥

अब आतम्ज्ञ योगीजून कैसे हों, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अच्छिद्रा सूनो सहसा चो श्रुद्य स्तोतृभ्यो मित्रमहु: शर्म यच्छ।

अग्ने गृणन्तुमंहस उरुयोर्जो नपात् पूर्भिरायंसीभि:॥८॥

अच्छिद्रा सूनों इसि सहसः। नः। अद्या स्तोतृऽभ्यः। मित्रऽमहः। शर्मा युच्छ। अग्ने। गृणन्तेम्। अंहंसः। <u>उरुष्ट्रा कर्नः। नपा</u>त्। पूःऽभिः। आर्यसीभिः॥८॥

पदार्थ: (अच्छिद्रा) अच्छिद्राणि छिद्ररिहतानि (सूनो) यः सूयते सुनोति वा तत्सम्बुद्धौ (सहसः) विद्यािवनयेश्वलयुक्तस्य (नः) अस्मभ्यम् (अद्य) अस्मिन् दिने (स्तोतृभ्यः) विद्यया पदार्थगुणस्तावकेभ्यः (स्त्रिमहः) पित्राणां महः सत्कारस्य कारियतः (शर्म) शर्माणि सुखानि (यच्छ) प्रदेहि (अग्ने) अग्निमिव

907

प्रकाशक विद्वन् (गृणन्तम्) स्तुवन्तम् (अंहसः) दुःखात् (उरुष्य) पृथग्रक्ष। अयं कण्वादिगणे नामधातुर्गणनीयः। (ऊर्जः) पराक्रमात् (नपात्) न कदाचिदधः पतित (पूर्भिः) पूर्णाभिः पालनसम्पर्धाभिः क्रियायुक्ताभिरत्रमयादिभिः (आयसीभिः) अयसः सुवर्णनिर्मितान्याभूषणानीवेश्वरेण रचिताभिः

अन्वय:-हे सहसः सूनो मित्रमहोऽग्ने विद्वँस्त्वमद्यात्मस्वरूपोपदेशेन नोंऽहसः कहाच्छिद्रो शर्म यच्छ स्तोतृभ्यो नो विद्याः प्रापय। हे विद्वँस्त्वमात्मानं गृणन्तं स्तुवन्तमायसीभिः पूर्भिर्<u>कर्ज उस्</u>ष्य दुःखात् पृथग्रक्ष॥८॥

भावार्थ:-हे आत्मपरमात्मिवदो योगिनो यूयमात्मपरमात्मन उपदेशेन सर्वान् पुन् दुःखाद् दूरे कृत्वा सततं सुखिनः कुरुत॥८॥

पदार्थ:-हे (सहस:) पूर्ण ब्रह्मचर्य्य से शरीर और विद्या से अहमा के बलेयुक्त जन का (सूनो) पुत्र (मित्रमह:) सबके मित्र और पूजनीय (अग्ने:) अग्निवत् प्रकाशमान विद्वन् (नपात्) नीच कक्षा में न गिरने वाला तू (अद्य) आज अपने आत्मस्वरूप के उपदेश से (नः) हम को (अंहस:) पापाचरण से (पाहि) अलग रक्षा कर (अच्छिद्रा) छेद-भेद रहित (शर्म) सुखों को (यच्छ) प्राप्त कर (स्तोतृभ्यः) विद्वानों से विद्याओं की प्राप्त हम को करा। हे विद्वन् (तू आर्प्प) की (गृणन्तम्) स्तुति के कर्त्ता को (आयसीभि:) सुवर्ण आदि आभूषणों की ईश्वर की रचनारूप (पूर्णि:) रक्षा करने में समर्थ अन्न आदि क्रियाओं के साथ (ऊर्जः) पराक्रम के बल से (उन्नष्टा) दु:ख से पृथक् रख॥८॥

भावार्थ:-हे आत्मा और परमात्मा को भानने चोले योगी लोगो! तुम आत्मा और परमात्मा के उपदेश से सब मनुष्यों को दु:ख से दूर करके निरन्तर सुखी किया करो॥८॥

पुनः स सभेशः क्रिंदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह सभापति कैसा है, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

भवा वर्र्स्थं गृणते विभावो भवी मघवन्मघव द्व्यः शर्म।

उरुष्याग्ने अंहंसो गृष्यत्तं प्रातृर्मक्षू श्रियावंसुर्जगम्यात्॥९॥२४॥

भर्व। वर्र्स्थम्। गृण्जो विभारवः। भर्व। मघ्ऽवन्। मघर्वत्ऽभ्यः। शर्म। उरुष्य। अग्ने। अहंसः। गृणन्तंम्। प्रातः। मुक्षु। घ्रियाऽवसुः/ जगुम्यात्॥ ९॥

पदार्थ: (भव) (व्रुथम्) गृहम्। वरूथिमित गृहनामसु पठितम्। (निघं०३.४) (गृणते) गुणान् कीर्तयते (विभावः) विभावय (भव) अत्रोभयत्र द्वयचोऽतस्तिङ इति दीर्घः। (मघवन्) परमधनवन् (मघवद्वयः) विद्यादिधनयुक्तेभ्यः (शर्म) सुखम् (उरुष्य) पाहि (अग्ने) विज्ञानादियुक्त (अंहसः) पापात् (गृणन्तम्) स्तुवन्तम् (प्रातः) दिनारम्भे (मक्षु) शीघ्रम्। अत्र ऋचि तुनु० (अष्टा०६.३.१३३) इति दीर्घः। (धियावसुः) धिया कर्मणा प्रज्ञया वा वासयितुं योग्यः (जगम्यात्) भृशं प्राप्नुयात्॥९॥

मण्डल-१। अनुवाक-११। सूक्त-५८

अन्वय:-हे मघवन्नग्ने विद्वँस्त्वं गृणते मघवद्भ्यश्च वरूथं विभावो विभावय शर्म च गृणन्तमंहसो मक्षूरुष्य पाहि त्वमप्यंहसः पृथग्भव यो धियावसुरेवं प्रातः प्रतिदिनं प्रजारक्षणं विभन्ते, स सुखानि जगम्याद् भृशं प्राप्नुयात्॥९॥

भावार्थ:-मनुष्यैर्यो विद्वान् धर्मविनयाभ्यां सर्वाः प्रजाः प्रशास्य पालयेत्, स्र्/एव स्भाद्यध्यक्षः स्वीकार्य्यः॥९॥

अस्मिन् सूक्तेऽग्निविद्वद्गुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह संगतिर्लेष्ट्याम

इत्यष्टपञ्चाशं ५८ सुक्तं चतुर्विंशो २४ वर्गश्च समाप्रदार

पदार्थ:-हे (मघवन्) उत्तम धन वाले (अग्ने) विज्ञान आदि, गुणपुक्ते सभाध्यक्ष विद्वन्! तू (गृणते) गुणों के कीर्तन करने वाले और (मघवद्ध्यः) विद्यादि धनगुक्त विद्वानों के लिये (वस्त्थ्यम्) घर को और (शर्म) सुख को (विभावः) प्राप्त कीजिये तथा आप भी घर और सुख को (भव) प्राप्त हो (गृणन्तम्) स्तुति करते हुए मनुष्य को (अंहसः) पाप से (मक्षु) श्रीघ्र (उरुष्य) रक्षा कीजिये; आप भी पाप से अलग (भव) हूजिये, ऐसा जो (धियावसुः) प्रज्ञा का रक्षा कराने योग्य (प्रातः) प्रतिदिन प्रजा की रक्षा करता है, वह सुखों को (जगम्यात्) अतिशय करके प्राप्त होवे॥९॥

भावार्थ:-मनुष्यों को योग्य है कि जो विद्वान धर्म वा क्रिनय से सब प्रजा को शिक्षा देकर पालना करता है, उसी को सभा आदि का अध्यक्ष करें॥ ॥

इस सूक्त में अग्नि वा विद्वानों के गुण क्रिंग करने से इस सूक्तार्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये॥

यह अट्ठावनवां पर्सूक्त और चौबीसवां २४ वर्ग समाप्त हुआ॥

अथास्य सप्तर्चस्यैकोनषष्टितमस्य सूक्तस्य गौतमो नोधा ऋषिः। अग्निर्वैश्वानरो देवता। १ निचृत् त्रिष्टुप्। २,४, विराट्त्रिष्टुप्। ५-७ त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। ३ पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चम

स्वर:॥

अथाग्नीश्वरगुणा उपदिश्यन्ते॥

अब उनसठवें सूक्त का आरम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र में अग्नि और ईश्वर के गुण्<u>गें का उपवेश</u> किया है॥

वया इदंग्ने अग्नयंस्ते अन्ये त्वे विश्वे अमृतां मादयन्ते। वैश्वानर् नाभिरसि क्षितीनां स्थूणेव जनाँ उपमिद्ययस्थ॥ १॥

वयाः। इत्। अग्ने। अग्नयः। ते। अन्ये। त्वे इति। विश्वे। अमृतीः (माद्येताः) वैश्वानरः। नाभिः। असि। क्षितीनाम्। स्थुणांऽइव। जनान्। उपऽमित्। ययस्थ।। १॥

पदार्थ:-(वया:) शाखा:। वया: शाखा वेतेर्वातायना/भवन्ति। तिरु०१.४) (इत्) इव (अग्ने) सर्वाधारेश्वर (अग्नय:) सूर्यादय इव ज्ञानप्रकाशकाः (ते) तव (अन्ये) त्वत्तो भिन्नाः (त्वे) त्विय (विश्वे) सर्वे (अमृताः) अविनाशिनो जीवाः (मादयन्ते) हर्षयन्ति (वैश्वान् यो विश्वान् सर्वान् पदार्थान् नयित तत्सम्बुद्धौ (नाभिः) मध्यवर्तिः (असि) (श्वितीनाम्) मनुष्याणम्म (स्थूणेव) यथा धारकस्तम्भः (जनान्) मनुष्यादीन् (उपमित्) य उप समीपे मिनोति प्रक्षिणित् सः (यग्नन्थ) यच्छति॥१॥

अन्वय:-हे वैश्वानराऽग्ने जगदीश्वर! यस्य ते तव स्रे त्वत्तोऽभिन्ना विश्वेऽमृता अग्नय इव जीवास्त्वे त्विय वया इन्मादयन्ते यस्त्वं क्षित्रीनात्राभिरिश्च जनानुपमित् सन् स्थूणेव ययन्थ यच्छ सोऽस्माभिरुपासनीय:॥१॥

भावार्थ:-यथा वृक्षः शाखाः स्थूणाश्च गृहं धृत्वाऽऽनन्दयन्ति, तथैव परमेश्वरः सर्वान् धृत्वाऽऽनन्दयति॥१॥

पदार्थ:-हे (वैश्वानर) सम्पूर्ण विश्व को नियम में रखने हारे (अग्ने) जगदीश्वर! जिस (ते) आप के सकाश से जो (अन्ये) भिन्न (विश्व) सब (अमृताः) अविनाशी (अग्नयः) सूर्य आदि ज्ञानप्रकाशक पदार्थों के तुल्य जीव (त्वे) आप में (वयाः) शाखा के (इत्) समान बढ़ के (मादयन्ते) आनन्दित होते हैं, जो आप (श्वितीनाम्) मनुष्यादिकों के (नाभिः) मध्यवर्त्ति (असि) हो (जनान्) मनुष्यादिकों को (उपमित्) धर्मिबद्या में स्थापित करते हुए (स्थूणेव) धारण करने वाले खंभे के समान (ययन्थ) सबको नियम में रखते हो वही आप हमारे उपास्य देवता हो॥१॥

भावार्थ:-जैसे वृक्ष अपनी शाखा और खंभे गृहों को धारण करके आनन्दित करते हैं, वैसे ही परमे<mark>श्वर सबको</mark> धारण करके आनन्द देता है॥१॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

मण्डल-१। अनुवाक-११। सूक्त-५९

फिर वह कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

मूर्घा दिवो नाभिर्गिनः पृथिव्या अर्थाभवदर्ती रोद्स्योः। तं त्वा देवासोऽजनयन्त देवं वैश्वानर् ज्योतिरिदार्याय॥२॥

मूर्धा। दिवः। नाभिः। अग्निः। पृथिव्याः। अर्थ। अभवत्। अर्रतः। रोर्दस्योः। तम्। त्वा। देवासिः। अजनयन्त्र। देवम्। वैश्वानर। ज्योतिः। इत्। आर्यायः॥२॥

पदार्थ:-(मूर्द्धा) उत्कृष्टः (दिवः) सूर्य्यादिप्रकाशात् (नाभिः) मध्यवित्तिः (अगिनः) नियन्त्री विद्युदिव (पृथिव्याः) विस्तृताया भूमेः (अथ) अनन्तरे (अभवत्) भवित् (अरितिः) स्वव्याप्त्या धर्ता (रोदस्योः) प्रकाशाऽप्रकाशयोर्भूमिसूर्ययोः (तम्) उक्तार्थम् (त्वा) त्त्रास् (देवासः) विद्वांसः (अजनयन्त) प्रकटयन्ति (देवम्) द्योतकम् (वैश्वानर) सर्वप्रकाशक (ज्योतिः) ज्ञानप्रकाशम् (इत्) एव (आर्याय) उत्तमगुणस्वभावाय॥२॥

अन्वय:-ये वैश्वानर यो भवानग्निरिव दिवें: पृष्क्रिया मूर्द्धा नाभिश्चाभवदथ रोदस्योररतिरभवदार्यायेज्ज्योतिरिदेव यं देवं देवासोऽजनयात त्रित्वा वीर्यमुपासीमहि॥२॥

भावार्थ:-यो जगदीश्वर आर्य्याणां विज्ञानाय सूर्विषद्याप्रकाशकान् वेदान् प्रकाशितवान् यः सर्वतः उत्कृष्टः सर्वाधारो जगदीश्वरोस्ति, तं विदित्वा स एव मनुष्येः सूर्वदोपासनीयः॥२॥

पदार्थ:-हे (वैश्वानर) सब संसार के नियक! जो आप (अग्नि:) बिजुली के समान (दिव:) प्रकाश वा (पृथिव्या:) भूमि के मध्य समान (पूद्धा) इत्कृष्ट और (नाभि:) मध्यवर्तिव्यापक (अभवत्) होते हो (अथ) इन सब लोकों की रचना के अनुम्तर जो (रोदस्यो:) प्रकाश और अप्रकाश रूप सूर्यादि और भूमि आदि लोकों के (अरित:) आप व्यापक होके अध्यक्ष (अभवत्) होते हो जो (आर्याय) उत्तम गुण, कर्म, स्वभाव वाले मनुष्य के लिये (स्योति:) ज्ञानप्रकाश वा मूर्त द्रव्यों के प्रकाश को (इत्) ही करते हैं, जिस (देवम्) प्रकाशमिष (त्वा) अप्यक्तो (देवास:) विद्वान् लोग (अजनयन्त) प्रकाशित करते हैं वा जिस बिजुलीरूप अग्निको विद्वान् लोग (अजनयन्त) प्रकट करते हैं (तम्) उस आप ही की उपासना हम लोग करें॥२॥

भावार्थ:-जिस जगदीश्वर ने आर्य अर्थात् उत्तम मनुष्यों के विज्ञान के लिये सब विद्याओं के प्रकाश करने व्यले वेदों को प्रकाशित किया है तथा जो सब से उत्तम सब का आधार जगदीश्वर है, उस को जानकर मनुष्यों को उसी की उपासना करनी चाहिये॥२॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

आ सूर्ये न रुश्मयों ध्रुवासों वैश्वानुरे दंधिरेऽग्ना वसूनि।

७०६

ऋग्वेदभाष्यम्

या पर्वतेष्वोषेधीष्वप्सु या मार्नुषेष्वसि तस्य राजां॥३॥

आ। सूर्ये। न। <u>र</u>श्मर्यः। ध्रुवासः। वैश्वान्रे। दुधिरे। अग्ना। वसूनि। या। पर्वतेषु। ओषंधीष्ट्रा <u>अ</u>प्ऽसु। या। मानुषेषु। असिं। तस्ये। राजां॥३॥

पदार्थ:-(आ) समन्तात् (सूर्ये) सिवतृमण्डले (न) इव (रश्मय:) किरणा (ध्रुवासेः) निश्चलाः (वैश्वानरे) जगदीश्वरे (दिधरे) धरन्ति (अग्ना) विद्युदिव वर्त्तमाने। अत्र सुपां सुन्तुग्र इति डादेशः। (वसूनि) सर्वाणि द्रव्याणि (या) यानि (पर्वतेषु) शैलेषु (ओषधीषु) यवादिषु (अप्सु) जलेषु (या) यानि (मानुषेषु) मानवेषु (असि) (तस्य) द्रव्यसमूहस्य जगतः (राजा) प्रकाशकः॥ ३॥

अन्वय:-हे जगदीश्वर! यस्यास्य जगतस्त्वं राजाऽसि तस्य मध्ये या पूर्वतेषु यौषधीषु याऽप्सु यानि मानुषेषु वसूनि वर्त्तन्ते, तानि सर्वाणि सूर्ये रश्मयो नेव वैश्वानरेज्या त्विष्ट स्ति ध्रुवास: प्रजा: सर्वे देवास आदिधरे धरन्ति॥३॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। अत्र पूर्वस्मान्मन्त्राद्देवास हर्षि पद्मनुवर्तते। मनुष्यैर्यथा प्रकाशमाने सूर्ये विद्यमाने सित कार्याणि निर्वर्त्तन्ते तथैवोपासिते जगदीश्वरे सर्वाणि कार्याणि सिध्यन्ति। एव कुर्वत्रृणां नैव कदाचित् सुखधननाशो दु:खदारिद्र्ये चोपजायेते॥३॥

पदार्थ:-हे जगदीश्वर! जिस इस द्रव्यसमूह ज्यात के अप (राजा) प्रकाशक (असि) हैं (तस्य) उस के मध्य में (या) जो (पर्वतेषु) पर्वतों में (या) जो (ओपधीषु) ओषधियों में जो (अप्सु) जलों में और (मानुषेषु) जो मनुष्यों में वसूनि द्रव्य हैं उन सबको (सूर्य) सिवतृलोक में (रश्मयः) किरणों के (न) समान (अग्ना) (वैश्वानरे) आप में (अवासः) निश्चल प्रजाओं को विद्वान् लोग (आ दिधरे) धारण कराते हैं॥३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालक्कार है। तथा पूर्व मन्त्र से (देवास:) इस पद की अनुवृत्ति आती है। मनुष्यों को योग्य है कि जैसे प्राणी लोग प्रकाशमान सूर्य के विद्यमान होने में सब कार्यों को सिद्ध करते हैं, वैसे मनुष्यों को उपमिन्न किये हुए जगदीश्वर में सब कार्यों को सिद्ध करना चाहिये। इसी प्रकार करते हुए मनुष्यों को कभी सूख और धन का नाश होकर दु:ख वा दिरद्रता उत्पन्न नहीं होते॥३॥

अथ नरोत्तमगुणा उपदिश्यन्ते॥

अब अगले मन्त्र में पुरुषोत्तम के गुणों का उपदेश किया है।।

बृह्त्रीईव सूत्रवे रोदसी गिरो होता मनुष्यो ३ न दक्ष:।

स्वर्वते सेत्यशुष्माय पूर्वीर्वैश्वानुरायु नृतमाय युह्वी:॥४॥

बृहुती ड्वेर्ति बृहुतीऽईव। सूनवे। रोर्दसी इति। गिर्रः। होता। मुनुष्येः। न। दक्षेः। स्वःऽवते। क्रुंऽशुष्ताया पूर्वीः। वैश्वानराये। नृऽतमाय। यह्वीः॥४॥

मण्डल-१। अनुवाक-११। सूक्त-५९

पदार्थ:-(वृहतीइव) यथा महागुणयुक्ता पूज्या माता (सूनवे) पुत्राय (रोदसी) द्यावापृथिव्यौ (गिर:) वाणी: (होता) दाता ग्रहीता (मनुष्य:) मानव: (न) इव (दक्ष:) चतुर: (स्वर्वते) प्रिम्तं स्वभ् सुखं वर्त्तते यस्मिँस्तस्मै (सत्यशुष्पाय) सत्यं शुष्मं यस्य तस्मै (पूर्वी:) पुरातनी (विश्वानस्य) परब्रह्मोपासकाय (नृतमाय) अतिशयेन ना तस्मै (यह्वी:) महती:। यह्व इति प्रहंत्रामसु पठितम्। (निघं०३.३) अस्माद् बह्वादिश्यश्चान्तर्गत्वात् डीष् (अष्टा०४.१.४५)॥४॥

अन्वय:-यथा सूनवे बृहती इव रोदसी दक्षो मनुष्य: पिता न विद्वान् पुर्राष इव होतेश्वरे स्थाध्यक्षे वा प्रीतो भवित यथा विद्वांसोऽस्मै स्वर्वते सत्यशुष्माय नृतमाय वैश्वानराय पूर्वीर्यह्वीगिरो वेदवाणीर्दिधिरे तथैव तस्मिन् सर्वैर्मनुष्यैर्विर्तिव्यम्॥४॥

भावार्थः-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। यथा भूमिसूर्ग्यूकाशौ भृत्वा सुखयतो यथा पिताऽध्यापको वा पुत्रशिष्ययोर्हिताय प्रवर्तते, यथेश्वरः प्रजासुख्यय प्रवर्तते, तथैव सभाध्यक्षः प्रयतेतेति सर्वा वेदवाण्यः प्रतिपादयन्ति॥४॥

पदार्थ:-जैसे (सूनवे) पुत्र के लिये (बृहतीइव) महागुणयुक्त माता वर्तती है, जैसे (रोदसी) प्रकाश भूमि और (दक्ष:) चतुर (मनुष्य:) पढ़ानेहारे विद्वान् मनुष्य) पिता के (न) समान (होता) देने-लेने वाला विद्वान् ईश्वर वा सभापित विद्वान् में प्रसन्न होता है, जैसे विद्वान् लोग इस (स्वर्वते) प्रशंसनीय सुख वर्तमान (सत्यशुष्माय) सत्यबलयुक्त (नृतमाय) पुरुषों में उत्तम (वैश्वानराय) परमेश्वर के लिये (पूर्वी:) सनातन (यह्वी:) महागुण लक्षणयुक्त (गिर:) वेदवाण्यों को (दिधरे) धारण करते हैं, वैसे ही परमेश्वर के उपासक सभाध्यक्ष में सब मनुष्यों को (वर्तिमा चाहिया।४॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमा और विच्य लुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे भूमि वा सूर्यप्रकाश सबको धारण करके सुखी करते हैं, जैसे पिता के अध्यापक पुत्र के हित के लिये प्रवृत्त होता है, जैसे परमेश्वर प्रजासुख के वास्ते वर्तता है, कैसे सभापित प्रजा के अर्थ वर्ते, इस प्रकार सब देववाणियां प्रतिपादन करती हैं॥४॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा हो, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

द्विविष्ट्रिचेत्ते बृहुतो जातवेदो वैश्वानर प्र रिरिचे महित्वम्।

राज्ञी कृष्टीनामस्य मानुषीणां युधा देवेभ्यो वरिवश्चकर्थ॥५॥

द्विः। चित् ते। बृहतः। जातुऽवेदुः। वैश्वांनरः। प्राः रिरिचे। महिऽत्वम्। राजां। कृष्टीनाम्। असि। मानुर्शिणाम्। यथा। देवेभ्यः। वरिवः। चुकुर्थः॥५॥

पदार्थ:-(दिव:) विज्ञानप्रकाशात् (चित्) अपि (ते) तव (बृहत:) महतः (जातवेदः) जाता वैदा यस्माज्जगदीश्वराज्जातान् वेदान् वेत्ति जातान् सर्वान् पदार्थान् विदन्ति जातेषु पदार्थेषु विद्यते वा तत्सम्बुद्धौ (वैश्वानर) सर्वनेतः (प्र) प्रकृष्टार्थे (रिरिचे) रिणक्ति। (महित्वम्) महागुणस्वभाषम् (राजाः) प्रकाशमानोऽधीशः (कृष्टीनाम्) मनुष्याणाम् (असि) (मानुषीणाम्) मनुष्यसम्बन्धिनीनां प्रजानाम् (युष्टा) युध्यन्ते यस्मिन् संग्रामे तेन। अत्र कृतो बहुलम् इत्यधिकरणे क्विप्। (देवेभ्यः) विद्वद्ध्यः (विरवः) परिचरणम् (चकर्थ) करोषि॥५॥

अन्वय:-हे जातवेदो वैश्वानर जगदीश्वर! यस्य ते तव महित्वं बृहर्त्वो दिवश्चित् सूर्यार्देर्महतः प्रकाशादिप प्रिरिरचे प्रकृष्टतयाऽधिकमस्ति यस्त्वं कृष्टीनां मानुषीणां प्रजानां राजासि यस्त्वं देवेभ्यो युधा विरवश्चकर्थ स भवानस्माकं न्यायाधीशोऽस्त्विति॥५॥

भावार्थः-अत्र श्लेषालङ्कारः। सभासद्भिर्मनुष्यैः पुमेश्वरोऽनन्तसामर्थ्यवत्त्वात् सर्वाधीशत्वेनोपासनीयः। सभाद्यध्यक्षो महाशुभगुणान्वितत्वात् सर्वाधिषतित्वेन समाश्रित्य युद्धेन दुष्टान् विजित्य धार्मिकान् प्रसाद्य प्रजापालनं विधाय विदुषां सेवासङ्गो सदेव कर्त्तृष्यो॥५॥

पदार्थ:-हे (जातवेद:) जिससे वेद उत्पन्न हुए विद्यों को जामने वा उन को प्राप्त कराने तथा उत्पन्न हुए पदार्थों में विद्यमान (वैश्वानर) सबको प्राप्त होने काले (प्रजापते) जगदीश्वर! जिस (ते) आप का (महित्वम्) महागुणयुक्त प्रभाव (बृहत:) बड़े (दिव:) श्रूर्य्यादि प्रकाश से (चित्) भी (प्रिरिचे) अधिक है जो आप (कृष्टीनाम्) मनुष्यादि (मानुष्पामम्) मनुष्य सम्बन्धी प्रजाओं के (राजा) प्रकाशमानाधीश (असि) हो और जो आप (देवभ्यः) बिद्धानों के लिये (युधा) संग्राम से (विरव:) सेवा को (चकर्य) प्राप्त कराते हो, सो आप ही हम्मालों के न्यायाधीश हूजिये॥५॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में श्लेष असङ्कार है। सभा में रहने वाले मनुष्यों को अनन्त सामर्थ्यवान् होने से, परमेश्वर की सबके अधिष्ठाता होने से अपासना वा महाशुभगुण युक्त होने से, सभा आदि के अध्यक्ष के अधीश का सेवन और युद्धार्स दुष्टों को जीन के प्रजा का पालन करके विद्वानों की सेवा तथा सत्सङ्ग को सदा करना चाहिये॥५॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

प्र नू प्रहित्वं वृष्कस्य वोचं यं पूरवी वृत्रहणं सर्चन्ते।

वैश्वान्से दस्युम्गिनर्जिधन्वाँ अधूनोत्काष्टा अव शम्बरं भेत्॥६॥

्रि। नु। मृह्यित्वम्। वृष्धभस्ये। वोचम्। यम्। पूरवः। वृत्रऽहर्नम्। सर्चन्ते। वैश्वानुरः। दस्युम्। अग्निः। जुधुन्वान्। अर्थूतोत्। काष्टाः। अवं। शम्बरम्। भेत्॥६॥

मण्डल-१। अनुवाक-११। सूक्त-५९

पदार्थ:-(प्र) प्रकृष्टार्थे (नु) शीघ्रम् (महित्वम्) महत्त्वम् (वृषभस्य) सर्वोत्कृष्टस्य (वोचम्) कथयेयम् (यम्) वक्ष्यमाणम् (पूरवः) मनुष्याः। पूरव इति मनुष्यनामसु पठितम्। (निघे रे.३) (वृत्रहणम्) यो वृत्रं मेघं शत्रुं वा हन्ति तम् (सचन्ते) समवयन्ति (वैश्वानरः) सर्विनियन्ता (दस्युम्) दुष्टस्वभावयुक्तम् (अग्निः) स्वयंप्रकाशः (जघन्वान्) हतवान् (अधूनोत्) कृष्पयति (काष्ठाः) दिशस्तत्रस्थाः प्रजाः (अव) विनिग्रहे (शम्बरम्) मेघम्। शम्बरमिति मेघनामसु पर्वितम्। (निघं १९०) (भेत्) भिन्द्यात्॥६॥

अन्वय:-यं परमेश्वरं पूरवः सचन्तेऽग्निर्वृत्रहणं सवितारिमव सर्वान् पदार्थीन् दर्शयित यथा वैश्वानरो दस्युं शम्बरं जघन्वानधूनोदवभेत् यस्य मध्ये काष्ठाः सन्ति, तस्य कृष्भिस्य महित्वमहं नु प्रवोचं तथा सर्वे विद्वांसः कुर्युः॥६॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। यस्यायं सर्व: संस्रोते महिमास्ति स एवानन्तशक्तिमान् परमेश्वर: सर्वेरुपास्यो मन्तव्य:॥६॥

पदार्थ:-(तम्) जिस परमेश्वर को (पूरवः) विद्वान लोग अपने आत्मा के साथ (सचने) युक्त करते हैं, जैसे (अग्निः) सर्वत्र व्यापक विद्युत् (वृत्रहणम्) मेथ के नाशकर्त्ता सूर्य को दिखलाती है, जैसे (वैश्वानरः) सम्पूर्ण प्रजा को नियम में रखने वाला सूर्य्य (दम्युम्) डाकू के तुल्य (शम्बरम्) मेघ को (जघन्वान्) हनन (अधूनोत्) कँपाता (अवभेत्) विदिर्ण करता है, जिस के बीच में (काष्ठाः) दिशा भी व्याप्य है, उस (वृषभस्य) सब से उत्तम सूर्य के (महित्वम्) महिमा को मैं (नु) शीघ्र (प्रवोचम्) प्रकाशित करूं, वैसे सब विद्वान् लोग किस्त करें। हम

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचक्रीतुप्तोपमालुङ्कार है। जिस की महिमा को सब संसार प्रकाशित करता है, वहीं अनन्त शक्तिमान् प्रस्मेश्वर सबको उपासना के योग्य है॥६॥

पुनरीश्वरगुणा उपदिश्यन्ते॥

फिर अपले पुन्त्र में ईश्वर के गुणों का उपदेश किया है॥

वैश्वानरो महिस्त विश्वकृष्टिर्भरद्वाजेषु यज्तो विभावा।

शातवनेये शतिनीभिर्यानः पुरुणीथे जरते सूनृतावान्॥७॥२५॥

वैश्वानुरः। मेहिम्ना। विश्वऽकृष्टिः। भुरत्ऽवाजेषु। यज्तः। विभाऽवा। शातुऽवनेये। शतिनीभिः। अग्निः। पुरुऽनीथे। जुरते। सूनताञ्चान्॥७॥

पदार्थ:-(वैश्वानरः) सर्वनेता (महिम्ना) स्वप्रभावेण (विश्वकृष्टिः) विश्वाः सर्वाः कृष्टीमीनुष्यादिकाः प्रजाः (भरद्वाजेषु) ये भरन्ति ते भरतः। वज्यन्ते ज्ञायन्ते यैस्ते वाजा भरतश्च ते व्राजाश्च तेषु पृथिव्यादिषु। भरणाद्धारद्वाजः। (निरु०३.१७) (यजतः) यष्टुं सङ्गन्तुमर्हः (विभावा) यो

विशेषेण भाति प्रकाशयित सः (शातवनेये) शतान्यसंख्यातानि वनयः सम्भक्तयो येषान्ते शतवनयस्तैर्निर्वृत्ते जगित (शितनीभिः) शतसंख्याताः प्रशस्ता गतयो यासु क्रियासु ताभिः सह वर्तमानः (अग्निः) सूर्य्य इव स्वप्रकाशः (पुरुणीये) यत्पुरुभिर्बहुभिः प्राणिभिः पदार्थेर्वा नीयते तस्पिन् (जरते) सत्करोति। जरत इत्यर्चितकर्मसु पठितम्। (निघं०३.१४) (सूनृतावान्) सूनृता अञ्चर्विति प्रशस्त्रानि विद्यन्ते यस्मिन् सः॥७॥

अन्वय:-यो विश्वकृष्टीरुत्पादितवान् यजतो विभावा सूनृतावान् वैश्वानर्रात्मः सर्वेद्योतकः परमात्मा स्वमहिम्ना भरद्वाजेषु शतिनीभिः सह वर्त्तमानः सन् पुरुनीथे शातवनेय वर्तते तं यो जस्तऽर्चिति स सत्कारं प्राप्नोति॥७॥

भावार्थ:-यो संख्यातेषु पदार्थेष्वसंख्यातिक्रयाहेतुर्विद्युदिवेश्वरो व्रतिते, स एवं सर्वं जगद्धरित यो मनुष्यस्तिद्वद्यां जानाति स सततं महीयते॥७॥

अत्र वैश्वानरशब्दार्थवर्णनादेतत्सूक्तार्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सङ्गितरस्तीति वेदितव्यम्॥

इति पञ्चविंशो २५ वर्गः एकोनषष्टितमं ५ र सूक्तं चु समाप्तम्॥

पदार्थ:-जो (विश्वकृष्टी:) सबको उत्पन्न कर्ता (यजितः) पूजा के योग्य (विभावा) विशेष करके प्रकाशमान (सूनृतावान्) प्रशंसनीय अन्नादि का आधार (विश्वानरः) सबको प्राप्त कराने वाला (अग्निः) सूर्य्य के समान जगदीश्वर अपने जगत्रूप (महिम्मा) महिमा के साथ (भरद्वाजेषु) धारण करने वा जानने योग्य पृथिवी आदि पदार्थों में (शतिनीभिः) असंख्यात मृतियुक्त क्रियाओं से सहित (पुरुणीथे) बहुत प्राणियों में प्राप्त (शातवनेये) असंख्यात विभागयुक्त क्रियाओं से सिद्ध हुए संसार में वर्तता है, उसका जो मनुष्य (जरते) अर्चन पूजन करता है, पह निरुत्ती सत्कार को प्राप्त होता है॥७॥

भावार्थ:-जो असंख्यात पदार्थी में असंख्यात क्रियाओं का हेतु बिजुलीरूप अग्नि के समान ईश्वर है, वहीं सब जगत् को धारण बस्ता है, असका पूजन जो मनुष्य करता है, वह सदा महिमा को प्राप्त होता है॥७॥

इस सूक्त में वैश्वानर शब्दार्थ वर्णन से इसके अर्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये॥

यह पच्चीसवां २५ वर्ग और उनसठवां ५९ सूक्त समाप्त हुआ॥५९॥

अथास्य पञ्चर्चस्य षष्टितमस्य सूक्तस्य गौतमो नोधा ऋषिः। अग्निर्देवता। १ विराट् त्रिष्टुप्। ३,५ त्रिष्टुप् च छन्दः। धैवतः स्वरः। २,४ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनः स परेशः कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह ईश्वर कैसा है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

विह्नं यशसं विद्यस्य केतुं सुप्राव्यं दूतं सद्योअर्थम्। द्विजन्मनि र्यिमिव प्रशुस्तं रातिं भरद्भृगवे मातुरिश्वा॥ १॥

वह्निम्। युशस्मम्। विदर्थस्य। केतुम्। सुप्रुऽअव्यम्। दूतम्। सद्यःऽअर्थम्। द्विऽजन्मनिम्। र्यिम्ऽईव। प्रऽशस्तम्। रातिम्। भरत्। भूगवे। मातरिश्चा॥ १॥

पदार्थ:-(विद्वम्) पदार्थानां वोढारम् (यशसम्) कीर्त्तिकरम् (विद्वम्य) विज्ञातव्यजगतोऽस्य मध्ये (केतुम्) ध्वजवद्वर्त्तमानम् (सुप्राव्यम्) सुष्ठु प्रावितं चालितुम्हिम् (दूतम्) देशान्तरप्रापकम् (सद्योअर्थम्) शीघ्रगामिपृथिव्यादि द्रव्यम् (द्विजन्मानम्) द्वाभ्यां व्यथ्वतरण्णभ्यां जन्म यस्य तम् (रिविमव) यथोत्तमां श्रियम् (प्रशस्तम्) श्रेष्ठतमम् (रातिम्) दातारम् (भरत्) धर्मत् (भृगवे) भर्जनाय परिपाचनाय (मातिस्था) आकाशे शियता वायु:॥१॥

अन्वय:-हे मनुष्या! यथा मातिरश्वा भृगवे बिद्धस्य केतुं यशसं सुप्राव्यं दूतं रातिं प्रशस्तं द्विजन्मानं विह्नं रियमिव सद्योअर्थं भरद्धरित तथा क्रूयम्प्याचर्ता। १॥

भावार्थ:-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। अथा वायुः पावकादिवस्तु धृत्वा सर्वाञ्चराऽचराँल्लोकान् धरति तथा राजपुर्वाविद्वाः धर्मुआरणपुरःसरं प्रजा न्याये धर्त्तव्याः॥१॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! (मातिरश्ला) अतिरक्षि में शयन करता वायु (भृगवे) भूजने वा पकाने के लिये (विदथस्य) युद्ध के (केतुम्) ध्वज् के समान (यशसम्) कीर्त्तिकारक (सुप्राव्यम्) उत्तमता से चलाने के योग्य (दूतम्) देशान्त्रि को प्राप्त करने (रातिम्) दान का निमित्त (प्रशस्तम्) अत्यन्त श्रेष्ठ (द्विजन्मानम्) वायु वा कारण से जन्मसिंहत (विह्नम्) सबको वहनेहारे अग्नि को (रियमिव) उत्तम लक्ष्मी के समान (सद्योअर्थिम्) श्रीष्ठ्रणमी पृथिव्यादि द्वय को (भरत्) धरता है, वैसे तुम भी काम किया करो॥१॥

भावार्थः इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे वायु बिजुली आदि वस्तु का धारण करके स्व चर्या चर्या को का धारण करता है, वैसे राजपुरुष विद्याधर्म धारणपूर्वक प्रजाओं को न्याय में रक्षिं॥१॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अस्य शासुं रूभयांसः सचन्ते हुविष्मन्त उशिजो ये च मर्ताः। द्विवश्चित्पूर्वो न्यंसाद्वि होताऽऽपृच्छ्यो विश्पतिर्विक्षु वेधाः॥२॥

अस्य। शासुं:। उभयांसः। सचन्ते। हृविष्मन्तः। उशिर्जः। ये। च। मर्ताः। द्विवः। चित्रिप्र्वः। नि। असादि। होतां। आऽपृच्छ्यः। विश्पतिः। विश्वः। वेधाः॥२॥

पदार्थ:-(अस्य) वक्ष्यमाणस्य (शासुः) न्यायेन प्रजायाः प्रशासितुः (अभूयासः) राजप्रजाजनाः (सचन्ते) समवयन्ति (हविष्मन्तः) प्रशस्तसामग्रीमन्तः (उशिजः) कामयितारः (ये) धर्मविद्ये विकीर्षवः (च) समुच्चये (मर्ताः) मनुष्याः (दिवः) प्रकाशादुत्पन्नः (चित्) अपि (पूर्वः) अविश्वर्त्तमानः (नि) नितराम् (असादि) साद्यते (होता) ग्रहीता (आपृच्छ्यः) समन्तान्निश्चपार्थं प्रष्टुं योग्यः (विश्पितः) प्रजायाः पालयिता (विश्वु) प्रजासु (वेधाः) विविधशास्त्रजन्त्रमेधायुक्तः। विधाञो वेध च। (उणा०४.२२५) अनेनासुन् प्रत्ययो वेधादेशश्च॥२॥

अन्वय:-ये हिवष्मन्त उशिज उभयासा मर्ता यस्यास्य श्रीसुर्विक्षु स्रवन्ते यो होताऽऽपृच्छ्यो वेधा विश्पतिर्दिवः पूर्विश्चिदव धार्मिकै राज्याय न्यसादि नियोज्युते सर्वैः स् च्र समाश्रयितव्यः॥२॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। मनुष्यैर्विद्वद्भिर्धार्मिकैर्स्यायाधीके प्रशंस्यन्ते, येषां च विनयात् सर्वाः प्रजाः सन्तुष्यन्ते, ते सर्वैः पितृवत्सेवितव्याः॥२॥

पदार्थ:-(ये) जो (हिवष्मन्तः) उत्तम सामग्रीयुक्त (उशिजः) शुभ गुण कर्मों की कामना करनेहारे (उभयासः) राजा और प्रजा के (पन्तिः) मनुष्य जिस (अस्य) इस (शासुः) सत्यन्याय के शासन करने वाले (विक्षु) प्रजाओं में (सर्वान्ते) संयुक्त होते हैं जो (होता) शुभ कर्मों का ग्रहण करनेहारा (आपृच्छ्यः) सब प्रकार के प्रश्नों के पूछ्मे योग्य (वेधाः) विविध विद्या का धारण करने वाला (विश्पितः) प्रजाओं का स्वामी (दिवः) प्रकाश के (पूर्वः) पूर्व स्थित सूर्य के (चित्) समान धार्मिक जनों ने जो राज्यपालन के लिये नियुक्त किया हो (च) वहीं सब मनुष्यों को आश्रय करने के योग्य है॥२॥

भावार्थ:-इस मून्त्र में उप्रमालङ्कार है। मनुष्यों को योग्य है कि जो विद्वान् धर्मात्मा और न्यायधीशों से प्रशंसा को प्राप्त हों, जिनके शील से सब प्रजा सन्तुष्ट हो, उनकी सेवा पिता के समान सब लोग करें॥२॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

🖊 फिर वह कैसा हो, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

ते नर्व्यसी हुद आ जार्यमानमुस्मत्सुंकीर्तिर्मधुंजिह्वमश्याः।

व्यमृद्धिजो वृजने मानुषासुः प्रयस्वन आयवो जीजनना।।३॥

मण्डल-१। अनुवाक-११। सूक्त-६०

तम्। नव्यंसी। हृदः। आ। जार्यमानम्। अस्मत्। सुऽकीर्तिः। मधुंऽजिह्नम्। अश्याः। यम्। ऋृत्विजः। वृजने। मानुषासः। प्रयंस्वन्तः। आयर्वः। जीर्जनन्त॥३॥

पदार्थ:-(तम्) विनयादिशुभगुणाढ्यम् (नव्यसी) नवतरा प्रजा (हृदः) सुहृदः (आ) समन्तात् (जायमानम्) उत्पद्यमानम् (अस्मत्) अस्माकं सकाशात् प्राप्तया शिक्षया (सुकीर्त्तिः) अतिप्रशंसनीयः (मधुजिह्नम्) मधुरजिह्नम् (अश्याः) भोगं कुर्याः (यम्) उक्तम् (ऋत्विजः) य ऋतुषु यजन्ते ते विद्वांसः (वृजने) त्यक्ताधर्मे मार्गे। अत्र कृपृवृजिमन्दि० (उणा०२.७९) अनेन वृज्ञभातोः क्युः प्रत्ययः। (मानुषासः) मननशीला मानवाः (प्रयस्वनः) प्रशस्तानि प्रयांसि प्रज्ञानावि बिद्यन्ते येषान्ते (आयवः) प्राप्तसत्यासत्यविवेचनाः (जीजनन्त) जनयन्ति। अत्र लडथें लुङ्डभावश्र्यः।

अन्वय:-हे मनुष्य! यथा ऋत्विजः प्रयस्वन्त आयवो हृदो म्यनुषासो जिज्ञासून् वृजने जीजनन्त जनयन्ति, यं जायमानं मधुजिह्नं नव्यसी प्रजा प्रीत्या सेवते, तमस्मृत्मुकीर्त्तस्त्वमाश्याः॥३॥

भावार्थ:-मनुष्यैर्येऽधर्मं त्याजयित्वा धर्मं ग्राहयन्ति ते सर्वेथा सत्क्रेतिच्याः सन्ति॥३॥

पदार्थ:-हे मनुष्य! जैसे (ऋत्विज:) ऋतुओं के पिंग् कर्मक्रमी (प्रयस्वन्त:) उत्तम विज्ञानयुक्त (आयव:) सत्याऽसत्य का विवेक करनेहारे (हृद:) सबके मिन्न (मानुषास:) विद्वान् मनुष्य जानने की इच्छा करने वालों को (वृजने) अधर्मरहित धर्ममार्ग में (जीजनन्त) विद्याओं से प्रकट कर देते हैं, जिस (जायमानम्) प्रसिद्ध हुए (मधुजिह्नम्) स्वादिष्ट भाग को (मन्यसी) अति नूतन प्रजा सेवन करती है (तम्) उसको (अस्मत्) हम से प्राप्त हुई शिक्षा से युक्त (सुक्तीर्ति:) अति प्रशंसा के योग्य तू (आश्या:) अच्छे प्रकार भोग कर॥३॥

भावार्थ:-मनुष्यों को उचित हैं कि जो अधर्म को छुड़ा के धर्म का ग्रहण कराते हैं, उन का सब प्रकार से सन्मान किया करें॥३॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा हो, ईस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

उशिक् पावको वसुमिनिषेषु वरेणयो होताऽधायि विश्व। दमूना गृह्दपतिर्दम् आँ अग्निभीवद्रयिपती रयोणाम्॥४॥

उशिक्री पावकः। वर्षुः। मानुषेषु। वरेण्यः। होतां। अधायाः। विश्वः। दमूनाः। गृहऽपेतिः। दमे। आ। अग्निः। भुक्ति। र्योणाम्॥४॥

पदार्थ:-(उशिक्) सत्यं कामयमानः (पावकः) पवित्रः (वसुः) वासयिता (मानुषेषु) युक्त्याहारविद्यारकर्तृषु (वरेण्यः) वरितुं स्वीकर्तुमर्हः (होता) सुखानां दाता (अधायि) धीयते (विक्षु) प्रचासु (देपूनाः) दाम्यति येन सः। अत्र दमेरुनसि० (उणा०४.२४०) इत्युनस् प्रत्ययो अन्येषामपि इति

दीर्घः। (गृहपतिः) गृहस्य पालयिता (दमे) गृहे (आ) समन्तात् (अग्निः) भौतिकोऽग्निरिव (भुवत्) भवेत्। अयं लेट् प्रयोगः। (रियपितः) धनानां पालयिता (रियोणाम्) राज्यादिधनानाम्॥४॥

अन्वय:-मनुष्यैर्य उशिक् पावको वसुर्वरेण्यो दमूना गृहपती रियपितरिग्निरिव मानुषेषु विश्व दम् च रयीणां होता दाता भुवद्भवेत्, स प्रजापालनक्षम अधायि॥४॥

भावार्थ:-मनुष्यैर्नेव कदाचिदविद्वानधार्मिको राज्यरक्षायामधिकर्त्तव्य:॥४॥

पदार्थ:-मनुष्यों को उचित है कि जो (उशिक्) सत्य की कामनायुक्त (पविकः) अग्नि के तुल्य पवित्र करने (वसुः) वास कराने (वरेण्यः) स्वीकार करने योग्य (दमूनाः) दम् अर्थात् शान्तियुक्त (गृहपतिः) गृह का पालन करने तथा (रियपितः) धनों को पालने (अग्निः) अग्नि के समान (मानुषेषु) युक्तिपूर्वक आहार-विहार करने वाले मनुष्य (विश्व) प्रजा और (दमे) गृह में (ग्रंगीणाम्) राज्य आदि धन और होता सुखों का देने वाला (भुवत्) होवे, वही प्रजा में राजा (अधारिं) धारण करने योग्य है॥४॥

भावार्थ:-मनुष्यों को उचित है कि अधर्मी मूर्खजन की राज्य की रक्षा का अधिकार कदापि न देवें॥४॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते।

फिर वह कैसा हो, इस विषय का उपदेश अगैले मन्त्र में किया है॥

तं त्वा वयं पर्तिमग्ने रयीणां प्र शंसामा मृतिभूगीतीमासः।

आशुं न वाजभारं मुर्जर्यन्तः प्रातम्भू ध्यावसूर्जगम्यात्॥५॥२६॥

तम्। त्वा। वयम्। पर्तिम्। अपूर्ने। र्थिक्याम्। प्र। शंसामः। मृतिऽभिः। गोर्तमासः। आशुम्। न। वाजुम्ऽभुरम्। मुर्जर्यन्तः। प्रातः। मुक्कुरिध्याऽवस्यात्॥५॥

पदार्थ:-(तम्) विद्वांस्म् (त्वा) त्वाम् (वयम्) (पतिम्) पालयितारम् (अग्ने) विद्युद्वर्त्तमान (रयोणाम्) चक्रवर्त्तिराज्यश्रियादिधनानम् (प्रः) प्रकृष्टार्थे (शंसामः) स्तुमः (मितिभिः) मेधाविभिः सह। मतय इति मेधाविनामसु पवितम्। (निघं०३.१५) (गोतमासः) येऽतिशयेन गावो वेदाद्यर्थानां स्तोतारस्ते। गौरिति स्तोतृनामसु पवितम्। (निघं०३.१६) (आशुम्) शीघ्रगमनहेतुमश्चम् (न) इव (वाजम्भरम्) यो वाजं वेगं बिभि तम् (मर्जयन्तः) शोधयन्तः (प्रातः) प्रातःकाले (मक्षु) शीघ्रम् (धियावसुः) धियां बुद्धीनां वास्त्रिता (जाएयात्) पुनः पुनर्भृशं ज्ञानानि गमयेत्॥५॥

अन्वयः हैं प्रेग्ने पावकवत्प्रकाशमान धियावसुर्मितिभिः सह वाजम्भरं प्रातराशुमश्चं न मक्षु रयीणां पतिं जगन्त्रात् तथा त्वा तं मर्जयन्तो गोतमासो वयं प्रशंसामः॥५॥

भावार्थः-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। यथा मनुष्या यानेऽश्वान् योजयित्वा तूर्णं गच्छन्ति, त्रिके विद्वाद्धिः सह सङ्गत्य विद्वापारावारं प्राप्नुवन्ति॥५॥

मण्डल-१। अनुवाक-११। सूक्त-६०

अत्र शरीरयानादिषु सम्प्रयोज्यस्याऽग्नेर्दृष्टान्तेन विद्वद्गुणवर्णनादेतत्सूक्तार्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेदितव्यम्॥

इति षड्विंशो २६ वर्गः षष्टितमं ६० सूक्तञ्च समाप्तम्॥

पदार्थ:-हे (अग्ने) पावकवत्पवित्र स्वरूप विद्वन्! जैसे (धियावसुः) बुद्धियाँ में वसाने वाला (मितिभिः) बुद्धिमानों के साथ (वाजंभरम्) वेग को धारण करने वाले को (प्रातः) प्रतिदिन (अग्रुं न) जैसे शीघ्र चलने वाले घोड़े को जोड़ के स्थानान्तर को तुरन्त जाते-आतें हैं, वैसे (मक्षु) शीघ्र (रयीणाम्) चक्रवर्त्ति राज्यलक्ष्मी आदि धनों के (पितम्) पालन करने वाले को (जगम्यात्) अच्छे प्रकार प्राप्त होवे, वैसे (तम्) उस (त्वा) तुझ को (मर्जयन्तः) शुद्ध कराते हुए (गीतमामः) अतिशय करके स्तुति करने वाले (वयम्) हम लोग (प्रशंसामः) स्तुति से प्रशंसित करने वाले (वयम्) हम लोग (प्रशंसामः)

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे मनुष्य लोग उत्तम यान अर्थात् सवारियों में घोड़ों को जोड़ कर शीघ्र देशान्तर को जाते हैं, वैसे ही विद्वानों के सङ्ग से विद्या के पाराऽवार को प्राप्त होते हैं॥५॥

इस सूक्त में शरीर और यान आदि में संयुक्त करने और यजन के दृष्टान्त से विद्वानों के गुणवर्णन से इस सूक्तार्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गिति अन्तर्ग चाहिये॥

यह छब्बीसवां २६ वर्ग और साठवां ६० समाप्त हुआ॥

अथास्य षोडशर्चस्यैकषष्टितमस्य सूक्तस्य गोतमो नोधा ऋषिः। इन्द्रो देवता। १,१४,१६ विराट् त्रिष्टुप्। २,७,९, निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। ३,४,६,८,१०,१२, पङ्क्तिः। ५,१५५

विराट् पङ्क्तिः। ११ भुरिक् पङ्क्तिः। १३ निचृत् पङ्किश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

अथ सभाद्यध्यक्ष: कीदृश इत्युपदिश्यते॥

अब इकसठवें ६१ सूक्त का आरम्भ है। उसके पहिले मन्त्र में सभा आदि का अध्यक्<mark>ष कैसा स</mark>्रे

इस विषय का उपदेश किया है॥

अस्मा इदु प्र त्वसे तुराय प्रयो न हर्मि स्तोमं माहिनाय। ऋचीषमायाधिगव ओहमिन्द्रीय ब्रह्मीण रातत्मा॥ १॥

अस्मै। इत्। ऊम् इति। प्र। त्वसे। तुराये। प्रये:। न। हुर्मि। स्तोमेम्(माहिताय) ऋचीषमाय। अधिऽगवे ओह्रीम्। इन्द्रीय। ब्रह्माणि। रातऽत्रीमा॥१॥

पदार्थ:-(अस्मै) सभाद्यध्यक्षाय (इत्) एव (३) वितृत्ते (प्र) प्रवृष्टि (तवसे) बलवते (तुराय) कार्य्यसिद्धये तूर्णं प्रवर्तमानाय शत्रूणां हिंसकाय वा (प्रयः) चूप्तिकारकं मत्रम् (न) इव (हर्मि) हरामि। अत्र शपो लुक्। (स्तोमम्) स्तुतिम् (माहिनाय) उत्कृष्ट्योगानाहते (ऋचीषमाय) ऋच्यन्ते स्तूयन्ते ये त ऋचीषास्तानितमान्यान् करोति तस्मै। अत्र ऋचधातिबिहुलकासैणादिकः कर्मणीषन् प्रत्ययः। ऋचीषमः स्तूयते वज्री ऋचा समः। (निरु०६.२३) (अधिप्रव) शत्रुभिरध्रयोऽसहमाना वीरास्तान् गच्छति प्राप्नोति तस्मै (ओहम्) ओहति प्राप्नोति येन तम्। (इन्द्राय) परमैश्वर्यकारकाय (ब्रह्माणि) सुसंस्कृतानि बृहत्सुखकारकाण्यत्रानि धनानि वा। ब्रह्मत्वज्ञमामस् पठितम्। (निघं०२.७) धननामसु च पठितम्। (निघं०२.१०) (राततमा) अतिशयेन द्रातच्यानि॥)

अन्वय:-यथाहम् प्रयो न प्रीतिकारकमन्निमव तवसे तुराय ऋचीषमायाध्रिगवे माहिनायास्मा इन्द्राय सभाद्यध्यक्षायेदेवौहं स्तोम राततमा ब्रह्माण्यन्नानि धनानि वा प्रहर्मि प्रकृष्टतया ददामि तथा यूयमपि कुरुत॥१॥

भावार्थ:-मनुष्यै स्वीतुमहोत् राज्याधिकारिणः कृत्वा तेभ्यो यथायोग्यानि करप्रयुक्तानि धनानि दत्त्वोत्तमैरन्नादिभिः सदा सत्कर्त्तव्याः राजपुरुषैः प्रजास्था मनुष्याश्च॥१॥

पदार्थ: है विद्वान् लोगो! जैसे मैं (3) वितर्कपूर्वक (प्रयः) तृप्ति करने वाले कर्म्म के (न) समान (तवसे) बलवान (तुराय) कार्यसिद्धि के लिये शीघ्र करता (ऋचीषमाय) स्तृति करने को प्राप्त होने तथा (अधिगव) शत्रुओं से असह्य वीरों के प्राप्त होनेहारे (माहिनाय) उत्तम-उत्तम गुणों से बड़े (अस्मे) इस (इन्द्राय) सभाध्यक्ष के लिये (इत्) ही (ओहम्) प्राप्त करने वाले (स्तोमम्) स्तृति को (रातृतमा) अतिशय करने के योग्य (ब्रह्माणि) संस्कार किये हुए अन्न वा धनों को (प्र) (हर्मि) देता हूं, ब्रैसे नुम् भी किया करो॥१॥

मण्डल-१। अनुवाक-११। सूक्त-६१

भावार्थ:-मनुष्यों को चाहिये कि स्तुति के योग्य पुरुषों को राज्य का अधिकार देकर, उनके लिये यथायोग्य हाथों से प्रयुक्त किये हुए धनों को देकर, उत्तम-उत्तम अन्नादिकों से सदा सत्कार करें और राजपुरुषों को भी चाहिये कि प्रजा के पुरुषों का सत्कार करें॥१॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।

अस्मा इदु प्रयंइव प्र यंसि भराम्याङ्कृषं बाधे सुवृक्ति। इन्द्राय हुदा मनसा मनीषा प्रत्नाय पत्ये धियो मर्जयन्त॥२॥

अस्मै। इत्। ऊम् इति। प्रयी:ऽइव। प्र। यंसि। भरोमि। आङ्गूष्यम्। बाधी सुवृक्ति। इन्द्रीय। हृदा। मनसा। मुनीषा। प्रतायी पत्यी। धियी:। मुर्जुयुनु॥ २॥

पदार्थ:-(अस्मै) सभाद्यध्यक्षाय (इत्) एव (उ) वितर्वे (प्रयह्व) यथाप्रीतमन्नम् (प्र) प्रकृष्टार्थे (यंसि) यच्छसि। अत्र शपो लुक्। (भरामि) धरामि पुष्पासि (आङ्गूषम्) युद्धे प्राप्तं शत्रुम् (बाधे) ताडयामि (सुवृक्ति) सुष्ठु व्रजन्ति येन यानेन तत् (इन्द्राया) शर्वे उपित्र (हृदा) आत्मना (मनसा) मननात्मकेन (मनीषा) बुद्ध्या (प्रत्नाय) प्राचीनाय (पत्ये) स्वर्धिन (धियः) कर्माणि प्रज्ञा वा (मर्जयन्त) शोधयन्ति॥२॥

अन्वय:-हे विद्वंस्त्वमस्मै प्रत्नाय द्विहेष पत्य इन्द्राय प्रय इव यथा प्रीतमन्नं धनं वा दत्वाऽभिप्रीतमन्नं धनं वा प्रयंसि यस्मा इन्द्रायाहं सर्वाभिः सामग्रीभिर्हदा मनीषा मनसा सुवृक्ति भराम्याङ्गूषं बाधे यस्मै सर्वे वीराः प्रजास्थारम् मार्ज्या धियो मर्जयन्त शोधयन्ति, तस्मा इन्द्रायेद्वहमप्येता मार्जये॥२॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार्छ। मनुष्येर्तेव परीक्षितपूर्वं पूर्णिवद्यं धार्मिकं सर्वोपकारकं प्राचीनं सभाद्यधिपतिं विहायैतद्विरुद्धः स्वीकर्तव्यः स्वीतस्य प्रियमाचरणीयम्॥२॥

पदार्थ:-हे विद्वन सनुष्य जिसमें इस (प्रत्नाय) प्राचीन सबके मित्र (पत्ये) स्वामी (इन्द्राय) शत्रुओं को विदारण कर्मने वाले के लिये (प्रयइव) जैसे प्रीतिकारक अन्न वा धन वैसे (प्रयंसि) सुख देते हो, जिस्न परमैश्वर्ययुक्त धार्मिक के लिये मैं सब सामग्री अर्थात् (हृदा) हृदय (मनीषा) बुद्धि (मनसा) विज्ञान पूर्वक मन से (सुवृक्ति) उत्तमता से गमन कराने वाले यान को (भरामि) धारण करता वा पृष्ट करता हूं, जैसे (आङ्गूषम्) युद्ध में प्राप्त हुए शत्रु को (बाधे) ताड़ना देना जिस वीर के वास्ते सब प्रजृत के मनुष्य (धियः) बुद्धि वा कर्म को (मर्जयन्त) शुद्ध करते हैं, उस पुरुष के लिये (इत्) ही (उ) तर्कि के साथ मैं भी बुद्धि शुद्ध करूं॥२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्यों को उचित है कि पहिले परीक्षा किये पूर्णे विद्यायुक्त धार्मिक सबके उपकार करने वाले प्राचीन पुरुष को सभा का अधिपित करें तथा इससे विरुद्धि मनुष्य को स्वीकार नहीं करें और सब मनुष्य उसके प्रिय आचरण करें॥२॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा हो, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

अस्मा इदु त्यमुपमं स्वर्षां भराम्याङ्गूषमास्येन। मंहिष्टमच्छोक्तिभिर्मतोनां सुवृक्तिभिः सूरिं वावृधध्ये॥३॥

अस्मै। इत्। ऊम् इतिं। त्यम्। उपुऽमम्। स्वःऽसाम्। भरामि। आङ्गूषम्र) आस्येन। मंहिष्ठम्। अच्छोक्तिऽभिः। मृतोनाम्। सुवृक्तिऽभिः। सूरिम्। वृवृधध्यै॥३॥

पदार्थ:-(अस्मै) सभाध्यक्षाय (इत्) अपि (उ) वितर्के (त्यम्) तम् (उपमम्) दृष्टान्तस्वरूपम् (स्वर्षाम्) सुखप्रापकम् (भरामि) धरामि (आङ्गूषम्) स्त्रुतिप्राप्तम् (आस्येन) मुखेन (मंहिष्ठम्) अतिशयेन मंहिता वृद्धस्तम् (अच्छोक्तिभिः) अच्छ श्रेष्ठा उक्तेषो वचनानि यासु स्तुतिषु ताभिः (मतीनाम्) मननशीलानां मनुष्याणाम् (सुवृक्तिभिः) सुष्ठु व्रजन्ति गच्छन्ति याभिस्ताभिः (सूरिम्) शास्त्रविदम् (वावृधध्ये) पुनः पुनर्विधितुम्॥३॥

अन्वय:-हे मनुष्या! यथाऽहमस्मा जास्येन मतीनां वावृधध्ये सुवृक्तिभिरच्छोक्तिभिः स्तुतिभिरिदुत्यमुपमं स्वर्षामाङ्गूषं मंहिष्ठं सूरिं भतमि तथेवृश्यूयमपि भरत॥३॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालक्ष्मार प्रथा विद्वद्भिर्मनुष्याणां सुखाय सर्वथोत्कृष्टोऽनुपमो यत्नः क्रियते, तथैतेषां सत्काराय मनुष्यैरपि प्रस्तितस्यम्। ३॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! जैसे में (असे) इस सभाध्यक्ष के लिये (मतीनाम्) मनुष्यों के (वावृधध्ये) अत्यन्त बढ़ाने को (आस्येन) सूख से (सुवृत्तिनिभः) जिन में अच्छे प्रकार अधर्म और अविद्या को छोड़ सकें (अच्छोक्तिभिः) श्रेष्ठ वचन स्तुतियों से (इत्) भी (उ) (त्यम्) उसी (उपमम्) उपमा करने योग्य (स्वर्षाम्) सुखों को प्राप्त किसने (अवङ्गूषम्) स्तुति को प्राप्त किये हुए (मंहिष्ठम्) अतिशय करके विद्या से वृद्ध (सूरिम्) शास्त्रों को अपने वाले विद्वान् को (भरामि) धारण करता हूं, वैसे तुम लोग भी किया करो॥३॥

भावार्थ:-इस्से मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे विद्वानों से मनुष्यों के लिये सब से उत्तम उपमा रहित्र स्वन्य किया जाता है, वैसे इन के सत्कार के वास्ते सब मनुष्य भी प्रयत्न किया करें॥३॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

मण्डल-१। अनुवाक-११। सूक्त-६१

अस्मा इदु स्तोमं सं हिनोमि खं न तष्टेव तत्सिनाय। गिर्रुश्च गिर्वाहसे सुवृक्तीन्द्राय विश्वमिन्वं मेधिराय॥४॥

अस्मै। इत्। उम् इति। स्तोमेम्। सम्। हिनोमि। रथम्। न। तष्टांऽइव। तत्ऽसिनीया गिरः। च। गिर्वाहसे। सुऽवृक्ति। इन्द्राय। विश्वम्ऽडुन्वम्। मेधिराय॥४॥

पदार्थ:-(अस्मै) सभ्याय (इत्) अपि (उ) वितर्के (स्तोमम्) स्तृतिम् (सम्) सम्यगर्थे (हिनोमि) वर्धयामि (रथम्) यानसमूहम् (न) इव (तष्टेव) यथा तनूकर्ता शिल्पी (तत्सिनाय) तस्य यानसमूहस्य बन्धनाय (गिरः) वाचः (च) समुच्चये (गिर्वाहसे) यो गिरो विद्यावाचे विस्ति तस्मै (सुवृक्ति) सुष्ठु वृजते त्यजन्ति दोषान् यस्मात्तत् (इन्द्राय) विद्यावृष्टिकारकाय (विश्विभिन्धेम्) यो विश्वं सर्वं विज्ञानमिन्वति व्याप्नोति तत्। अत्र विभक्त्यलुक्। (मेधिराय) धीमते॥४॥

अन्वय:-हे मनुष्या! यथाऽहं मेधिराय गिर्वाहसेऽस्मा इद्गियेदुं रूष्ट्रं न यानसमूहिमव तिसनाय तष्टेव विश्वमिन्वं सुवृक्ति स्तोमं गिरश्च संहिनोमि, तथा यूयमूपि प्रयत्रध्नम्।।४॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। यथा रथकारो दृहें थिं चीलनाय बन्धनै: सह यन्त्रकला: सम्यग्रचित्वा स्वप्रयोजनानि साध्नोति सुखेन गमनागमने कृत्वा मोदते, तथैव मनुष्यो विद्वांसमाश्रित्य तत्सित्रयोगेन विद्या गृहीत्वा सुखेन धर्मार्थकाममोश्लान साधिका सततमानन्देत्॥४॥

पदार्थ: - हे मनुष्यो! जैसे मैं (मेधिराय) अच्छे प्रकार जानने (गिर्वाहसे) विद्यायुक्त वाणियों को प्राप्त कराने वाले (अस्में) इस (इन्द्राय) विद्या को बृष्टि करने वाले विद्वान् (इत्) ही के लिये (उ) तर्कपूर्वक (रथम्) यानसमूह के (न) समाम (तिष्सिनाय) यानसमूह के बन्धन के लिये (तष्ट्रेव) तीक्ष्ण करने वाले कारीगर के तुल्य (विश्वमिन्वम्) सब विज्ञान को प्राप्त कराने (सुवृक्ति) जिससे सब दोषों को छोड़ते हैं, उस (स्तोमम्) शास्त्रों के अभ्यास्युक्त स्तुति (च) और (गिर:) वेद वाणियों को (संहिनोमि) सम्यक् बढ़ाता हूं, वैसे तुम भूरियत्न किया करो॥४॥

भावार्थ:-इस मूल में बाचकुलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे रथ का बनाने वाला दृढ़ रथ के बनाने के वास्ते उत्तम बन्धनों के सिहत युम्किलाओं को अच्छे प्रकार रच कर अपने प्रयोजनों को सिद्ध करता और सुखपूर्वक जाना-आना करके आनिन्दित होता है, वैसे ही मनुष्य विद्वान् का आश्रय लेकर उस के सम्बन्ध से धर्मा, अर्थ, काम और मोक्ष को सिद्ध करके सदा आनन्द में रहें॥४॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अस्मा इदु सिर्पिमिव श्रवस्येन्द्रायार्कं जुह्यार्चसमेञ्जे।

७२०

वीरं दानौकंसं वन्दध्ये पुरां गूर्तश्रवसं दुर्माणम्॥५॥२७॥

अस्मै। इत्। ऊम् इति। सिर्पिम्ऽइव। श्र<u>व</u>स्या। इन्द्राय। अर्कम्। जुह्वा। सम्। अञ्चे। वीरम्। दानऽओकसम्। वन्दध्यै। पुराम्। गूर्तऽश्रवसम्। दुर्माणम्॥५॥

पदार्थ:-(अस्मै) सभ्याय विदुषे (इत्) एव (उ) वितर्के (सिप्तिमिव) यथा वेगुवानिश्वः (श्रेवस्या) आत्मनः श्रवणेच्छया (इन्द्राय) परमैश्वर्यप्रापकाय (अर्कम्) अर्च्यन्ते येन तम् (ज्रुह्वा) जुहाति यदाति वा यया तया (सम्) सम्यगर्थे (अञ्जे) कामये। अत्र विकरणलुक् व्यत्ययेन आत्मनेपदं च। ब्रीरम्) विद्याशौर्यगुणयुक्तम् (दानौकसम्) दानमोकश्च यस्य तम् (वन्दध्ये) अभिवन्दितुं स्तोतुम् (पुराम्) शत्रुनगराणाम् (गूर्तश्रवसम्) गूर्तं निगलितं श्रवः शास्त्रश्रवणं येन तम् (दम्णिम्) बिद्युरियतारम्॥५॥

अन्वय:-हे मनुष्या! यथाऽहं श्रवस्या जुह्वा स्मा इन्द्रायेदु वन्द्रभ्ये सिपिपिय गूर्त्तश्रवसं पुरां दर्माणं दानौकसमर्कं वीरमित् समञ्जे सेम्यक्कामये तथा तं यूयमपि कामयध्वम्॥५०००

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। यथा मनुष्या रथेऽश्वान् योज्ञायित्वा तदुष्रि स्थित्वा गमनाऽऽगमनाभ्यां कार्याणि साध्नुवन्ति तथा वर्त्तमानैर्विद्वद्भिवीरे: सह सङ्गत्य सूर्वाणि कार्याण मनुष्ये: साधनीयानि॥५॥

पदार्थ: -हे मनुष्यो! जैसे मैं (श्रवस्या) अपने किन की इच्छा (जुह्वा) विद्याओं के लेने-देने वाली क्रियाओं से (अस्मै) इस (इन्द्राय) परमैश्वर्य प्रप्त करने वाली (इत्) सभाध्यक्ष का ही (उ) विशेष तर्क के साथ (वन्दध्ये) स्तुति कराने के लिये (सिव्यिम्ब) वेश वाले घोड़े के समान (गूर्तश्रवसम्) जिसने सब शास्त्रों के श्रवणों को ग्रहण किया है (पूराम्) शत्रुओं के नगरों के (दर्माणम्) विदारण करने वा (दानौकसम्) दान वा स्थानयुक्त (अर्कम्) सत्कार के हितु (वीरम्) विद्या शौर्यादि गुणयुक्त वीर (इत्) ही को (समझे) अच्छे प्रकार कामना कुरता है वैश्वी तुम भी कामना किया करो॥५॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालक्क्सर है। जैसे मनुष्य लोग रथ में घोड़े को जोड़ उस के ऊपर स्थित होकर जाने-आने से कार्यों को सिद्ध करते हैं, वैसे वर्त्तमान विद्वान् वीर पुरुषों के सङ्ग से सब कार्यों को मनुष्य लोग सिद्ध करीए।।

🗸 पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसी है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

अस्मा इद्गे त्वष्टां त्रभूद्रज्ञं स्वपंस्तमं स्वर्यं रणाय।

वृत्रस्य चिद्धिदद्येन मर्म तुजन्नीशानस्तुज्ता कियेधाः॥६॥

अस्मे। इत्। ऊम् इति। त्वष्टां। तुक्षुत्। वज्रम्। स्वर्षःऽतमम्। स्वर्यम्। रणांय। वृत्रस्यं। चित्। विदत्। येनं। मुर्मं। बुजन्। ईशानः। तुज्ता। कियेधाः॥६॥ अष्टक-१। अध्याय-४। वर्ग-२७-२९

मण्डल-१। अनुवाक-११। सूक्त-६१

पदार्थ:-(अस्मै) उक्ताय (इत्) एव (उ) वितर्के (त्वष्टा) प्रकाशयिता (तक्षत्) तन्करोति (वज्रम्) किरणसमूहं प्रहृत्य (स्वपस्तमम्) अतिशयेन शोभनान्यपांसि कर्माणि यस्मात्तम् (स्वर्यम्) स्विष् सुखे साधुस्तम् (रणाय) युद्धाय। रण इति संग्रामनामसु पठितम्। (निघं०२.१७) (वृत्रस्य) मेघूर्य (चित्र्) हव (विदत्) प्राप्नुवन् (येन) वज्रेण (मर्म) जीवननिमित्तम् (तुजन्) हिंसन्। अत्र शपो लुक् (ईशातः) समर्थः (तुजता) छेदकेन वज्रेण (कियेधाः) यः कियतो धरति सः। अत्र पृषोदरा० इति तस्थित इकारः।। ॥

अन्वय:-मनुष्यैर्यस्त्वष्टेशानः कियेधाः स्वयं शत्रून् तुजन् वृत्रस्य मेष्ट्रस्थापरि वज्रं स्वकिरणान् क्षिपन् विदत् स्वर्यं स्वपस्तमं तक्षत्सूर्यश्चिदिवास्मै रणाय मर्म तुजता येन वज्रेण शत्रून् विजयते स इदु सभाद्यध्यक्षत्वे योग्य इति वेद्यम्॥६॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। यथा सविता स्वप्रतापेन मेघं छित्वा भूमी निपात्य जलं विस्तार्य सुखयित तथा सभाद्यध्यक्षो विद्याविनयादिना शस्त्रास्त्राशिक्षया युद्धेषु कुशलां सेनां सम्पाद्य शत्रून् जित्वा सर्वान् प्राणिन आनन्दयेतु॥६॥

पदार्थ:-मनुष्यों को उचित है कि जो (त्वष्टा) प्रकास करने (ईशानः) समर्थ (कियेधाः) कितनों को धारण करने वाला शत्रुओं को (तुजन्) मारता हुआ (वृत्रस्य) मध के ऊपर अपने किरणों को छोड़ता (विदत्) प्राप्त होते हुए सूर्य के समान (स्वर्यम्) सूर्ध के हेतु (स्वपस्तमम्) अतिशय करके उत्तम कर्मों के उत्पन्न करने वाले (वज्रम्) किरणसमूह को (तक्षत्र) छेद्रम करते हुए सूर्य के (चित्) समान (अस्मे) इस (रणाय) स-ाम के वास्ते जिस (मर्म) जीवन निमित्त स्थान को (तुजता) काटते हुए (येन) जिस वज्र से शत्रुओं को जीतता है, (इदु) उसी कि सभा अर्विद का अध्यक्ष करना चाहिये॥६॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालक्कार है जैसे सूर्य अपने प्रताप से मेघ को छिन्न-भिन्न कर भूमि में जल को गिरा के सबको सुखी कर्ता है, बैसे ही सभा आदि का अध्यक्ष विद्या, विनय वा शस्त्र-अस्त्रों के सीखने-सिखाने से युद्धों में कुशल सेने को सिद्ध कर, शत्रुओं को जीत कर, सब प्राणियों को आनिन्दित किया करे॥६॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

अस्येदुं मातुः सब्नेषु सद्यो महः पितुं पंपिवाञ्चार्वन्ना।

मुष्र्यिद्वर्णुः षच्तं सहीयान् विध्यद्वराहं तिरो अद्रिमस्ता॥७॥

अस्य। इत्। ऊम् इति। मातुः। सर्वनेषु। सद्यः। महः। पितुम्। पुपिऽवान्। चार्रः। अन्नां। मुषायत्। विष्णुः पुचतम्। सहीयान्। विध्यत्। वृराहम्। तिरः। अद्रिम्। अस्तां॥७॥

पदार्थ:-(अस्य) सभाध्यक्षस्य (इत्) अपि (उ) वितर्के (मातुः) परिमाणकर्तुः (सवनेषु) ऐश्वयिषु (सद्यः) समानेऽहिन (महः) महत् (पितुम्) सुसंस्कृतमन्नम् (पिपवान्) रसान् पीतवान् (चारु) सुन्दरम् (अन्ना) अन्नानि (मुषायत्) आत्मनः स्तेयमिच्छत्। अत्र घत्रथे कविधानम् (अष्टा०वा०३.३.५०) हित्त कः) प्रत्ययः, ततः सुप आत्मनः क्यच्। (अष्टा०३.१.८) इति क्यच्, न छन्दस्यपुत्रस्य। (अष्टा०७.४.३५) इतीत्विनिषेधः। (विष्णुः) सर्वविद्याङ्गव्यापनशीलः (पचतम्) परिपक्वम् (वराहम्) मध्मम् (सहीयान्) अतिशयेन सोढा (विध्यत्) विध्यति मेघम् (तिरः) अधोगमने (अद्रिम्) वर्षताकारम् अस्ता) प्रक्षेपता॥७॥

अन्वय:-योऽस्य मातुः सभाद्यध्यक्षस्य सवनेषु महः पचतं चार षितुं च पपिवान् सहीयान् वीरोऽन्नास्ता मुषायदिव विष्णुः सूर्योऽद्रिं वराहं तिरो विध्यदिव शत्रुन् सद्यो हिन्सत् स इदु सेनाध्यक्षो योग्यो भवति॥७॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। यथा सूर्योऽन्नजलरसान् चारयन् गोपायन् स्विकरणैर्मेघं संहत्य प्रकटयन् छित्वा निपात्य विजयते, तथैव सेनाद्यध्यक्षस्य सेनाद्येश्वर्येषु स्थिताः शूरवीराः पुरुषाः शूत्रन् विजयेरन्॥७॥

पदार्थ:-जो (अस्य) इस (मातुः) शत्रु और अपने किल का परिमाण करने वाले सभाध्यक्ष के (सवनेषु) ऐश्वर्यों में (महः) बड़े (पचतम्) परिपक्व (चारु) स्नुन्दर (पितुम्) संस्कार किये हुए अत्र को (पिवान्) खाने-पीने तथा (सहीयान्) अतिशय करके सहन करने वाला वीर मनुष्य (अन्ना) अत्रों को (अस्ता) प्रक्षेपण करने (मुषायत्) अपने को चौर की इच्छा करते हुए के तुल्य (विष्णुः) सब विद्याओं के अङ्गों में व्यापक (अद्रिम्) पर्वताकार (वराहम्) मेंग्र को (तिरः) नीचे (विध्यत्) गिराते हुए सूर्य के समान शत्रुओं को (सद्यः) शीघ्र नष्ट की (इदु) वही मनुष्य सेनाध्यक्ष होने के योग्य होता है॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वार्यकल्प्नीपमालङ्कार है। जैसे सूर्य अन्न-जल के रसों को चोर के समान हरता वा रक्षा करता हुआ, अपने किरणों से मेघ को हनन कर प्रकट करता हुआ, छिन्न-भिन्न कर अपने विजय को प्राप्त होता है, वैसे ही सेना आदि के अध्यक्ष के सेना आदि ऐश्वर्यों में स्थित हुए शूरवीर पुरुष शत्रुओं का पराजय करें।

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा है, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अर्मा इतु रेनेश्चिद्देवपत्नीरिन्द्रायार्कमहिहत्यं अवुः।

पुरि द्यावापृथिवी जभ्र उर्वी नास्य ते महिमानुं परि ष्टः॥८॥

अस्मे। इत्। ऊम् इति। ग्नाः। चित्। देवऽपेलीः। इन्द्रांय। अर्कम्। अहिऽहत्ये। ऊवुरित्यूवुः। परि। द्यावाषृष्यिको इति। जुभ्रे। उर्वी इति। न। अस्य। ते इति। मुहिमानम्। परि। स्तु इति स्तः॥८॥ अष्टक-१। अध्याय-४। वर्ग-२७-२९

मण्डल-१। अनुवाक-११। सूक्त-६१

पदार्थ:-(अस्मै) सभाध्यक्षाय (इदु) पादपूरणे (ग्नाः) वाणीः। ग्नेति वाङ्नामसु पठितम्। (निघं०१.११) (चित्) अपि (देवपत्नीः) देवैर्विद्वद्धिः पालनीयाः (इन्द्राय) परमैश्वर्यप्रापकार्य (अर्कम्) दिव्यगुणसम्पन्नमर्चनीयं वीरम् (अहिहत्ये) अहीनां मेघानां हत्या यस्मिस्तस्मिन् (इतुः) तन्तुवद् विस्तारयेयुः (पिर) सर्वतः (द्यावापृथिवी) भूमिप्रकाशौ (जभ्रे) धरित (उर्वी) बहुरूपे द्याप्रापृथिव्यौ। उर्विति पृथिवीनामसु पठितम्। (निघं०१.१) (न) निषेधे (अस्य) सूर्यस्य (ते) (महिमानम्) स्तृत्यस्य पूज्यस्य व्यवहारस्य भावम् (पिर) अभितः (स्तः) भवतः॥८॥

अन्वय:-हे सभेश! यथाऽयं द्यावापृथिवी जभ्रेऽस्य वशे उर्वी वर्तते सस्यास्याहिहत्ये द्यावापृथिवी चित् भूमिप्रकाशाविप महिमानं न परि स्तः परिछेत्तुं समर्थेन भवतस्तथा यस्म अस्पाद्रेन्द्रायेदु देवपत्नीग्र्ना अर्कं पर्य्यूवुः परितः सर्वतो विस्तारयन्ति स राज्यं कर्तुं योग्यः स्यात्।

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। यथा सूर्यस्य प्रतापमहत्त्वस्याग्रे पृथिव्यादीनां स्वल्पत्वं विद्यते, तथैव पूर्णविद्यावत: पुरुषस्य महिम्नोऽग्रे मूर्खस्य गणन् तुच्छाऽस्त्रीत॥८॥

पदार्थ:-हे सभापति! जैसे यह सूर्य्य (द्यावापृथिली) प्रकाश और भूमि को (जभ्रे) धारण करता वा जिसके वश में (उर्वी) बहुधा रूपप्रकाशयुक्त पृथिवी है (अस्म) जिस इस सभाध्यक्ष के (अहिहत्ये) मेघों के हनन व्यवहार में (चित्) प्रकाश भूमि की (महिपानम्) महिमा के (न) (परि स्तः) सब प्रकार छेदन को समर्थ नहीं हो सकते, वैसे उस (अस्म) इस (इन्ह्राय) ऐश्वर्य प्राप्त करने वाले सभाध्यक्ष के लिये (इदु) ही (देवपत्नीः) विद्वानों से पालनीय पितृत्रता स्त्रियों के सदृश (ग्नाः) वेदवाणी (अर्कम्) दिव्यगुण सम्पन्न अर्चनीय वीर पुरुष को (पर्यूबुः) अर्थ प्रकार तन्तुओं के समान विस्तृत करती हैं, वही राज्य करने के योग्य होता है॥८॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वान्निक्लुप्तेएमालङ्कार है। जैसे सूर्य के प्रताप और महत्त्व के आगे पृथिवी आदि लोकों की गणना स्वल्प हैं, वैसे ही पूर्ण विद्या वाले पुरुष के महिमा के आगे मूर्ख की गणना तुच्छ है॥८॥

अथ्र भूर्यसभाद्यध्यक्षौ कथं भूतावित्युपदिश्यते॥

अब सूर्य सभाध्यक्ष कैसे हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अस्येद्रेव 🛪 रिरिचे महित्वं दिवस्पृंधिव्याः पर्यन्तरिक्षात्।

स्वृताबिस्तो देमु आ विश्वगूर्तः स्वृतिरमेत्रो ववश्चे रणाय॥९॥

अस्या इत्। पुवा प्रा रिरिचे। महिऽत्वम्। दिवः। पृथिव्याः। परिं। अन्तरिक्षात्। स्वऽराट्। इन्द्रेः। दमे। आ। बिश्वऽपूर्तः। सुऽअरिः। अमेत्रः। वृवक्षे। रणाय॥९॥

पदार्थ:-(अस्य) सभाद्यध्यक्षस्य सूर्यस्य वा (इत्) अपि (एव) निश्चयार्थे (प्र) प्रकृष्टार्थ (रिरिचे) रिणिक्त अधिकं वर्तते (मिहत्वम्) पूज्यत्वं महागुणिविशिष्टत्वं परिमाणेनाधिकत्वं च (दिवः) प्रकाशात् (पृथिव्याः) भूमेः (पिर) सर्वतः (अन्तिरक्षात्) सूक्ष्मादाकाशात् (स्वराट्) यः स्वर्ग राजिते स्र) (इन्द्रः) परमैश्वर्यहेतुमान् हेतुर्वा (दमे) दाम्यन्त्युपशाम्यन्ति जना यस्मिन् गृहे संसारे व तस्मिम् (आ) आभिमुख्ये (विश्वगूर्तः) विश्वं सर्वं भोज्यं वस्तु निगलितं येन सः (स्विरिः) यः शाभनश्चासाविरिश्च (अमत्रः) ज्ञानवान् ज्ञानहेतुर्वा (ववश्चे) वक्षित रोषं सङ्घातं करोति (रणाय) सङ्ग्रामस्या । ।

अन्वय:-यो विश्वगूर्तः स्वरिरमत्रः स्वरिष्ठन्द्रो दमे रणायाववक्षे यस्येद्धि दिवः पृथिव्या अन्तिरिक्षात् परि महित्वं प्ररिरिचेऽस्ति रिक्तं वर्त्तते तस्यास्यैव सभाद्गिष्विधकारः कार्य्येषूपयोगश्च कर्त्तव्यः॥९॥

भावार्थ:-अत्र श्लेषालङ्कार:। मनुष्यैर्यथा सूर्य: पृथिव्यादिश्यो गुणै: परिमाणेनाऽधिकोऽस्ति तथैवोत्तमगुणं सभाद्यधिपतिं राजानमधिकृत्य सर्वकार्य्यसिद्धिः कार्स्वाप्रश्री

पदार्थ:-जो (विश्वगूर्त:) सब भोज्य वस्तुओं को भक्षण करने (स्विरि:) उत्तम शत्रुओं (अमत्र:) ज्ञानवान् वा ज्ञान का हेतु (स्वराट्) अपने आप प्रकाश स्महित (इन्द्र) परमैश्वर्य युक्त सूर्य वा सभाध्यक्ष (दमे) उत्तम घर वा संसार में (रणाय) संग्राम के लिये (आववर्ध) रोष वा अच्छे प्रकार घात करता है वा जिस की (दिव:) प्रकाश (पृथिव्या:) भूमि और (अन्तिस्थात्) अन्तरिक्ष से (इत्) भी (पिर) सब प्रकार (महित्वम्) पूज्य वा महागुणविशिष्ट महिमा (प्र किरिचे) विशेष हैं उस (अस्य) इस सूर्य वा सभाध्यक्ष का (एव) ही कार्यों में उपयोग वा सभा अदि में अधिकार देना चाहिये॥९॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। पनुर्धीं को जैसे सूर्य, पृथिव्यादिकों से गुण वा परिमाण के द्वारा अधिक है, वैसे ही उत्तम गुण सुक्त सभा आदि के अधिपति राजा को अधिकार देकर सब कार्यों की सिद्धि करनी चाहिये॥९॥

पुनस्तौ कीदृशावित्युपदिश्यते॥

फिर वे केसे हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है।

अस्येदेव शर्वसा शुषनुं वि वृश्चुह्रज्रेण वृत्रमिन्द्री:।

गा न ब्रुग्गा अवनीरमुञ्जदुभि श्रवी दावने सर्वेताः॥१०॥२८॥

अस्या इत्। पुवा शर्वसा। शुषन्तम्। वि। वृश्चत्। वर्त्रेण। वृत्रम्। इन्द्रं:। गाः। न। ब्राणाः। अवनीः। अमुञ्जूत्। अभि। शर्वः। दावने। सऽचेताः॥ १०॥

पदार्थ:-(अस्य) सभाद्यध्यक्षस्य (इत्) अपि (एव) अवधारणे (शवसा) बलेन (शुषन्तम्) द्वेषेण प्रतामेन क्षीणम् (वि) विविधार्थे (वृश्चत्) छिनत्ति (वज्रेण) शस्त्रसमूहेन तेजोवेगेन वा (वृत्रम्) मेघमिव स्यायावस्य शत्रुं (इन्द्रः) सेनाधिपतिस्तनयित्नुर्वा (गाः) पशून् (न) इव (व्राणाः) आवृताः (अवनीः) अष्टक-१। अध्याय-४। वर्ग-२७-२९

मण्डल-१। अनुवाक-११। सूक्त-६१

पृथिवीं प्रति (अमुञ्जत्) मुञ्जति (अभि) आभिमुख्ये (श्रवः) श्रवणमत्रं वा (दावने) दात्रे (सचेताः) समानं चेतो विज्ञानं संज्ञापनं वा यस्य सः॥१०॥

अन्वय:-यः सचेता इन्द्रोऽस्यैव शवसा वज्रेण शुषन्तं वृत्रं विवृश्चिद्विछिनित्त स्र गा न भिर्मालो बन्धनान्मोचियत्वा वनं गमयतीवावनीः व्राणा दावने श्रव इदिप व्राणा अपो वाभ्यमुश्रृद्धिमुख्येन मुञ्जिति स राज्यं कर्तुमर्हित॥१०॥

भावार्थ:-अत्र श्लेषोपमालङ्कारौ। यथा विद्युत्सहायेन सूर्यः सूर्यस्य सह्येन विद्युच्च प्रवृध्य विश्वं प्रकाश्य मेघं विच्छिद्य भूमौ निपातयित यथा गोपालो बन्धनादु गा विमुच्य सुखयित तथैव सभासदः सेनासदश्च न्यायं संरक्ष्य शत्रृंश्च छित्रं भित्रं कृत्वा धार्मिकान् दुःखबन्धनाद्विमोन्स सुख्यत्॥१०॥

पदार्थ:-जो (सचेता:) तुल्य ज्ञानवान् (इन्द्र:) सेनाधिपति (अस्य) इस सभाध्यक्ष (एव) ही के (शवसा) बल तथा (वज्रेण) तेज से (शुषन्तम्) द्वेष से क्षीण हुए (व्रूज्र्म्) प्रकाश के आवरण करने वाले मेघ के समान आवरण करने वाले शत्रु को (विवृश्चत्) छेदन करता है वह (गा:) पशुओं को पशुओं के पालने वाले बन्धन से छुड़ाकर वन को प्राप्त करते हुए के (न) समान (अवनी:) पृथिवी को (व्राणा:) आवरण किये हुए जल के तुल्य (दावने) देने वाले के लिये (श्रव:) अत्र को (इत्) भी (अभ्यमुञ्जत्) सब प्रकार से छोड़ता है, वह राज्य करने को समर्थ हीता है। १०॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में श्लेष और उपमानिङ्कार हैं। जैसे बिजुली के सहाय से सूर्य्य वा सूर्य्य के सहाय से बिजुली बढ़ के विश्व को प्रकाशित और मेघ की छिन्न-भिन्न कर भूमि में गिरा देती है, जैसे गौओं का पालने वाला गौऔं को बन्धन से छोड़कर सुखी करता है, वैसे ही सभा सेना के अध्यक्ष मनुष्य न्याय की रक्षा और शत्रुओं को छिन्न-भिन्न और धार्मिकों को दु:खरूपी बन्धनों से छुड़ाकर सुखी करें॥१०॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अस्येदुं त्वेषस राज्या सिश्चेवः परि यद्वत्रेण सीमर्यच्छत्।

र्ट्टशानकृद्दाशुषे दश्स्यनुर्वीतये गाधं तुर्वणिः कः॥११॥

अस्या इत्। कृम् इति। त्वेषसां। रुन्ता सिर्चवः। पिरं। यत्। वर्जेण। सीम्। अर्यच्छत्। ईशानुऽकृत्। दाशुषे। दुशुस्थन्। कुर्वितिचे। गाधम्। तुर्विणिः। कुरितिं कः॥ ११॥

पदार्थ:-(अस्य) सभाद्यध्यक्षस्य सूर्य्यस्य वा (इत्) अपि (उ) वितर्के (त्वेषसा) विद्युन्ययक्तप्रकाशेन कान्त्या वा (रन्त) रमन्ते। अत्र लिङ बहुलं छन्दिस इति शपो लुक्। (सिश्ववः) स्र्मुद्रवदीवत् कठिनावगाहाः शत्रवः (पिर) सर्वतः (यत्) येन (वज्रेण) शस्त्रसमूहेन छेदनाकर्षणादिगुणैः

(सीम्) सेनाम् (अयच्छत्) यच्छेत् (ईशानकृत्) ईशानानैश्वर्यवतः करोतीति (दाशुषे) दानकरणशीलाये (दशस्यन्) दशति येन तद्दशस्तदिवाचरतीति। अत्र दंश धातोरसुन् प्रत्ययः स च चित्। तत उपमानादाचारे (अष्टा०३.१.१०) इति क्यच्। (तुर्वीतये) तुराणां शीघ्रकारिणां व्याप्तिस्तस्ये (गाधम्) विलोहनम् (तुर्विणः) यस्तुरः शीघ्रकरान् वनति सम्भजति सः (कः) करोति। अयमडभावेन लुङ्प्रयोम्स् ।११॥

अन्वय:-अस्य सभाद्यध्यक्षस्य त्वेषसा सह वर्त्तमानाः शूराः स्तनियत्नव इब्र रन्तो स्मन्ते यद्यः सिन्धव इव सीं वज्रेण शत्रुसेनाः पर्यच्छत्सर्वतो निगृह्णाति य ईशानकृत् तुर्वीतये दश्युषे दशस्यन् तुर्विणः शत्रुबलं गाधं कः करोति स सेनाध्यक्षत्वमर्हति॥११॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। यो मनुष्यो यस्य सभाद्यध्यसम्बद्धसममस्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसम्बद्धसममस्यसम्बद्धसम

पदार्थ:-(अस्य) इस सभाध्यक्ष के (त्वेषसा) विद्या, न्याय, बल के प्रकाश के साथ जो वर्तमान शूरवीर बिजुली के समान (रन्त) रमण करते हैं (सिन्धवः) समृद्ध के समान (वज्रेण) शस्त्र से (सीम्) सब प्रकार शत्रु की सेनाओं को (पर्यच्छत्) निग्रह करता है, वह (दाशुषे) दानशील मनुष्य के (ईशानकृत्) ऐश्वर्ययुक्त करने वाला (तुर्वीतये) शीघ्र करने वालों के लिये (दशस्यन्) दशन के समान आचरण करता हुआ (तुर्विणः) शीघ्र करने वालों को सेवस करने वाला मनुष्य (गाधम्) शत्रुओं का विलोडन (कः) करता है॥११॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालक्क्षार है। जो मनुष्य सभाध्यक्ष वा सूर्य के सहाय से शत्रु वा मेघादिकों को जीत कर पृथिवी राज्य का सेवन कर सुखी और प्रतापी होता है, वह सब शत्रुओं के बिलोड़ने को योग्य है॥११॥

पुष् स क्रीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा है, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है।।

अस्मा इदु प्र भेरा क्रुजानो वृत्राष्ट्र वज्रमीशानः कियेधाः।

गोर्न पर्व वि रदा तिरश्चेष्ट्रत्रणांस्युपां चुरध्ये॥ १२॥

अस्मै। इत्। ऊम् इति प्रे भूर्। तूर्तुजानः। वृत्राये। वर्त्रम्। ईश्नानः। कियेधाः। गोः। न। पर्व। वि। रद्। तिरुश्चा। इष्येन्। अर्पीसि। अस्मम्। चरध्ये॥ १२॥

पदार्श्व: (असे) वक्ष्यमाणाय (इत्) अपि (उ) उक्तार्थे (प्र) प्रकृष्टतया (भर) धर (तूतुजान:) त्वरमाण: (वृत्राय) मेघायेव शत्रवे (वज्रम्) शस्त्रसमूहम् (ईशान:) ऐश्वर्यवानैश्वर्यहेतुर्वा (कियेधा:) कियतो गुणान् धरतीति (गो:) वाच: (न) इव (पर्व) अङ्गमङ्गम् (वि) विशेषार्थे (रद) संसेध (तिरश्चा) तिर्यप्रयु (इथ्यन्) जानन् (अणाँसि) जलानि (अपाम्) जलानाम् (चरध्ये) चरितुं भिक्षतुं गन्तुम्॥१२॥

अष्टक-१। अध्याय-४। वर्ग-२७-२९

मण्डल-१। अनुवाक-११। सूक्त-६१

अन्वय:-हे सभाद्यध्यक्ष! कियेधा ईशानस्तूतुजानस्त्वं सूर्योऽपामणांसि चरध्यै निपातयन् वृत्रायेवास्मै शत्रवे वृत्राय वज्रं प्रभर तिरश्चा वज्रेण गोर्न वाचो विभागिमव तस्य पर्वाङ्गमङ्गं वृत्तिमध्यिद्व विदद विविधतया हिन्धि॥१२॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। हे सेनेश! त्वं यथा प्राणवायुना ताल्ल्लिद्धु ताडनं कृत्वा भिन्नान्यक्षराणि पदानि विभज्यन्ते, तथैव शत्रोर्बलं छिन्नं भिन्नं कृत्वाङ्गानि विभक्तानि कृत्वैवं विजयस्व॥१२॥

पदार्थ: - हे सभाध्यक्ष (कियेधा:) कितने गुणों को धारण करने काला (ईशान:) ऐश्वर्ययुक्त (तूतुजान:) शीघ्र करनेहारे आप जैसे सूर्य्य (अपाम्) जलों के सम्बन्ध से अपामि जलों के प्रवाहों को (चरध्ये) बहाने के अर्थ (वृत्राय) मेघ के वास्ते वर्तता है, वैसे (अस्मे) इस शुरु के वास्ते शस्त्र को (प्र) अच्छे प्रकार (भर) धारण कर (तिरश्चा) टेढ़ी गित वाले वज्र से (भर्न) व्याणयों के विभाग के समान (पर्व) उस के अङ्ग-अङ्ग को काटने को (इध्यन्) इच्छा करता हुआ (इट्र) ऐसे ही (विरद) अनेक प्रकार हनन कीजिये॥१२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। है सैनाप्रोते! आप जैसे प्राणवायु से तालु आदि स्थानों में जीभ का ताड़न कर भिन्न-भिन्न अक्षर वा पदों के ब्रिभाग प्रसिद्ध होते हैं, वैसे ही सभाध्यक्ष शत्रु के बल को छिन्न-भिन्न और अङ्गों को विभाग युक्त करके इसी प्रकार शत्रुओं को जीता करे।।१२॥

पुनः स सभाध्यक्षः कि कुर्म्योदित्युपदिश्यते॥

फिर वह सभाध्यक्ष क्या क्र इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

अस्येदु प्र ब्रूहि पूर्व्याणि तुरस्य कर्माणा नव्य उक्थैः।

युधे यदिष्णान आयुधारमधारणो निर्णाति शत्रून्॥ १३॥

अस्य। इत्। ऊम् इति। प्रा ब्रूहि। पूट्टोणि। तुरस्य। कर्माणि। नव्यः। उक्थः। युधे। यत्। इष्णानः। आर्युधानि। ऋघायमाणः। विरुद्धिणाति अर्त्रून्॥ १३॥

पदार्थ:-(अस्य) स्पाद्याध्यक्षस्य (इत्) अपि (उ) आकाङ्क्षायाम् (प्र) प्रत्यक्षे (त्रूहि) कथय (पूर्व्याणि) पूर्वै: कृतानि (तुरस्य) त्वरमाणस्य (कर्माणि) कर्त्तुं योग्यानि कर्त्तुरीप्सिततमानि (नव्य:) नवान्येव नव्यापि नृतसानि (उक्थै:) वक्तुं योग्यै: वचनै: (युधे) युध्यन्ति अस्मिन् संग्रामे तस्मै (यत्) यः (इष्णानः) अभिक्षणं निष्पादयन् शोधयन् (आयुधानि) शतघ्नीभुशुण्डचादीनि शस्त्राणि, आग्नेयादीन्यस्त्राणि चा (ऋघायमाणः) ऋघो हिंसित इवाचरित। अत्र रघधातो बाहुलकाद् औणादिकोऽन् प्रत्ययः। सम्भूसारणं च तत आचारे क्यङ्। (निरिणाति) नित्यं हिनस्ति (शत्रून्) वैरिणो दुष्टान्॥१३॥

अन्वय:-हे विद्वन्! यद्यः सभाद्यध्यक्षो यथर्घायमाण आयुधानीष्णानो नव्यो युधे शत्रून् निरिणीति तस्य तुरस्येदुक्थैः पूर्व्याणि नव्यानि च कर्माणि करोति तथा त्वं प्रब्रूहि॥१३॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। मनुष्यै: सभाविध्यक्षादीनी विद्याविनयशत्रुपराजयकरणादीनि कर्माणि प्रशंस्योत्साह्येते सदा सत्कर्त्तव्या:। एते राजपुर्र्णः शस्त्रास्त्रशिक्षाशिल्पकुशलान् सेनास्थान् वीरान् सङ्गृह्य शत्रून् पराजित्य प्रजाः सततं स्रंरक्ष्या। ३३।।

पदार्थ:-हे विद्वन् मनुष्य! (यत्) जो सभा आदि का पित जैसे (ऋघायमाणः) मरे हुए के समान आचरण करने वाले (आयुधानि) तोप, बन्दूक, तलवार आदि शस्त्र-अस्त्रों की (इष्णापः) नित्य-नित्य सम्हालते और शोधते हुए (नव्यः) नवीन शस्त्रास्त्र विद्या को पढ़े हुए आप (युधे) संग्राम में (शत्रून्) दुष्ट शत्रुओं को (निरिणाति) मारते हो उस (तुरस्य) शीघ्रतायुक्त (अस्य) सभापि आदि के (इत्) ही (उक्थेः) कहने योग्य वचनों से (पूर्व्याणि) प्राचीन सत्पुरुषों ने किये (कर्माणि) करने योग्य और करने वाले को अत्यन्त इष्ट कर्मों को करता है, वैसे (प्र ब्रुहि) अच्छे प्रकार कहो॥१३॥

भावार्थ:-मनुष्यों को चाहिये कि सभाध्यक्ष आदि के विद्या, विनय, न्याय और शत्रुओं को जीतना आदि कर्मों की प्रशंसा करके और उत्साह देकर इन को स्तर्ण सत्कार करें तथा इन सभाध्यक्ष आदि राजपुरुषों से शस्त्रास्त्र चलाने की शिक्षा और शिल्पविद्या की चतुराई को प्राप्त हुए सेना में रहने वाले वीर पुरुषों के साथ शत्रुओं को जीत कर प्रजा की निस्तर रक्षा करें॥१३॥

पुनः स कीदूश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा हो, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अस्येदुं भिया गिरयंश्च दृळ्हा हा वि च भूमां जनुषंस्तुजेते। उपो वेनस्य जोगुंवान ओणि सुद्यो भुवद्वीर्याय नोधाः॥१४॥

अस्य। इत्। ऊम् इति। भिया। गिरयः। च। दृळ्हाः। द्यावां। च। भूमं। जुनुषः। तुजेते इति। उपो इति। वेनस्यं। जोगुंवानः। ओणिम्। सुद्यः। भुवृतु। वीर्याय। नोधाः॥ १४॥

पदार्थ:-(अस्य) सिभाइध्यक्षस्य (इत्) (उ) पादपूरणार्थौं (भिया) भयेन (गिरय:) मेघा:।
गिरिरिति मेघनामसु पठितम् (निघं०१.१०) (च) शत्रूणां समुच्चये (दृढा:) स्थिराः कृता (द्यावा) द्यौः प्रकाशः। अत्र सुपरं सुलुग्० इत्याकारादेशः। (च) समुच्चये (भूम) भवेम (जनुषः) जनाः (तुजेते) हिंस्तः (उपो) समीपे (वेनस्य) मेधाविनः। वेन इति मेधाविनामसु पठितम्। (निघं०३.१५) (जोगुवानः) पुनः पुनरव्यक्तूशब्दं कुर्षन् (ओणिम्) दुःखान्धकारस्यापनयनम् (सद्यः) शीघ्रम् (भुवत्) भवति (वीर्याय) पराक्रमस्त्रपादनाय (नोधाः) नायकान् प्राप्तिकरान् धरन्तीति। अत्र णीञ् धातोर्बाहुलकादौणादिको डो प्रत्ययस्तुस्पदाइडुधाञ्धातोश्च क्विप्॥१४॥

अष्टक-१। अध्याय-४। वर्ग-२७-२९

मण्डल-१। अनुवाक-११। सूक्त-६१

अन्वय:-यो जोगुवानो नोधाः सभाध्यक्षः सद्यो वीर्याय भुवद् यथा सूर्याद् दृढा गिरयो मेघा इवाऽस्य वेनस्येदु भिया च शत्रवः कम्पन्ते यथा द्यावा च तुजेते इव जनुषो भयं प्राप्नुवन्ति निप्ति भूम अ ओणिमाप्नोति॥१४॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। न किल विद्यादिसद्गुणैरीश्वरेण ज्यादृत्यादितेन विना सभाद्यध्यक्षादय: प्रजा: पालयितुं यथा सूर्य: सर्वांल्लोकान् प्रकाशयितुं धर्तुं च स्राक्नोति तस्माद्विद्याद्युत्तमगुणग्रहण-परेशस्तवनं च कार्यम्॥१४॥

पदार्थ:-जो (जोगुवान:) अव्यक्त शब्द करने (नोधा:) सेना का नाक सभा आदि का अध्यक्ष (सद्य:) शीघ्र (वीर्च्याय) पराक्रम के सिद्ध करने के लिये (भुवत्) हो जैसे सूर्य से (वृढा:) पृष्ट (गिरय:) मेघ के समान (अस्य) इस (वेनस्य) मेधावी के (इत्) (उ) ही (भिया) भय से (च) शत्रुजन कम्पायमान होते हैं, जैसे (द्यावा) प्रकाश (च) और भूमि (तुजेते) कांपते हैं, वैसे (जनुष:) मनुष्य लोग भय को प्राप्त होते हैं, वैसे हम लोग उस सभाध्यक्ष के (उपो) निकट भय की प्राप्त ने (भूम) हों और वह सभाध्यक्ष भी (ओणिम्) दु:ख को दूरकर सुख को प्राप्त होता है॥१४मा

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। यह सब्कों निश्चय समझना चाहिये कि विद्या आदि उत्तम गुण तथा ईश्वर से जगत् के उत्पन्न होते किस सम्भाध्यक्ष आदि प्रजा का पालन करने और जैसे सूर्य सब लोकों को प्रकाशित तथा धारण करने को समर्थ नहीं हो सकता। इसलिये विद्या आदि श्रेष्ठगुणों और परमेश्वर ही की प्रशंसा और स्तुति करना उनित है॥१४॥

पुनः सभाष्यक्षित्रातौ कादृशावित्युपदिश्यते॥

फिर उक्त सभाध्यक्ष और विद्धार कैसे हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

अस्मा इदु त्यदन् दाय्ये<u>र्धामेको यह</u>्वे भूरेरीशानः।

प्रैतर्शं सूर्ये पस्पृधानं सौवश्व्ये सुम्बिमावदिन्द्रः॥१५॥

अस्मै। इत्। ऊम् इति। त्यत्। अनुं। दाया एषाम्। एकः। यत्। व्वने। भूरेः। ईशानः। प्र। एतशम्। सूर्ये। पुरपृधानम्। सौर्वश्र्वे। सुस्विमा आवत्। इन्द्रंः॥१५॥

पदार्थ:-(अस्मै) उक्ताय (इत्) अपि (3) वितर्के (त्यत्) तम् (अनु) पश्चात् (दायि) दीयते (एषाम्) मनुष्याणां लोकानां वा (एकः) अनुत्तमोऽसहायः (यत्) यम् (वव्ने) याचते (भूरेः) बहुविधस्यैश्वर्यस्य (ईशानः) अधिपतिः (प्र) प्रकृष्टे (एतशम्) अश्वम्। एतश इत्यश्चनामसु पठितम्। (निघं०४,४४) (सूर्ये) सिवतृप्रकाशे (पस्पृधानम्) पुनः पुनः स्पर्द्धमानम् (सौवश्व्ये) शोभना अश्वास्तुरङ्गा विद्युत्ते यास् सेनासु ते स्वश्वास्तेषां भावे (सुष्विम्) शोभनैश्वर्यप्रदम् (आवत्) रक्षेत् (इन्द्रः) प्रभाद्यध्यक्षः॥१५॥

अन्वय:-यथा विद्वद्भिरेषां सुखं दायि तथा य एको भूरेरीशान इन्द्रः सूर्ये इव यद्यं सौवश्व्य पस्पृधानं सुष्विमेतशमनुवन्ने याचतेत्यत्तमस्मा इदु सभाद्यध्यक्षाय प्रावत् स सभामर्हति॥१५॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। मनुष्यैर्यो बहुसुखदाताऽश्वविद्याविदनुपमपुरु भिद्रान्धे मनुष्योऽस्ति स एव रक्षणे नियोजनीय:, विद्युद्विद्या च संग्राह्या॥१५॥

पदार्थ:-जैसे विद्वानों ने (एषाम्) इन मनुष्यादि प्राणियों को सुख (दायि) दिया है। वैसे जो (एक:) उत्तम से उत्तम सहाय रहित (भूरे:) अनेक प्रकार के ऐश्वर्य्य का (ईशान:) स्वामी (इन्द्र)) सभा आदि का पित (मूर्ये) सूर्य्यमण्डल में है वैसे (सौवश्व्ये) उत्तम-उत्तम घोड़े से युक्त सेना में (यत्) जिस (पस्पृधानम्) परस्पर स्पर्द्धा करते हुए (सुष्विम्) उत्तम ऐश्वर्य के देने वाले (एतशम्) घोड़े की (अनुवव्ने) यथायोग्य याचना करता है (त्यत्) उसको (अस्मै) इस (इद्ग) समाध्यक्ष ही के लिये (प्रावत्) अच्छे प्रकार रक्षा करता है, वह सभा के योग्य होता है॥१५॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यें को उचित है कि जो बहुत सुख देने तथा घोड़ों की विद्या को जानने वाला और उपमारहित पुरुषार्थी चिद्वान मनुष्य है, उसी को प्रजा की रक्षा करने में नियुक्त करें और बिजुली की विद्या का ग्रहण भी अवस्थ करें। १५॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते।

फिर वह सभाध्यक्ष कैसा हो, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

एवा ते हारियोजना सुवृक्तीन्द्र ब्रह्मीिष् गौतमासो अक्रन्।

ऐष् विश्वपेशसं धियं धाः प्रात्रऋक्ष्क्ष्क्ष्क्ष्यविद्धार्वग्रस्तर्गम्यात्॥१६॥२९॥४॥

एव। ते। हार्रिऽयोजन्। सुऽवृक्ति। इन्ह्री ब्रह्माणि। गोर्तमासः। अक्रन्। आ। एषु। विश्वऽपेशसम्। धिर्यम्। धाः। प्रातः। मुक्षु। धियाऽवसुः जगस्यात्॥ १६॥

पदार्थ:-(एव) अवधारणार्थे (ते) तुभ्यम् (हारियोजन) यो हरीन् तुरङ्गानग्न्यादीन् वा युनक्ति स एव तत्सम्बुद्धौ (सुवृक्ति) सुष्ठु कृक्तुयो बर्जिता दोषा येभ्यस्तानि (इन्द्र) परमैश्वर्य्यप्रापक (ब्रह्माणि) बृहत्सुखकारकाण्यन्नानि (गोनपास्प्र) गच्छन्ति स्तुवन्ति सर्वाविद्यास्तेऽतिशयिताः। गौरिति स्तोतृनामसु पठितम्। (निघं०३.१६) (अक्रन) कुर्य्युः (आ) समन्तात् (एषु) स्तोतृषु (विश्वपेशसम्) विश्वानि सर्वाणि पेशांसि रूपाणि यस्यां ताम् (धियम्) धारणावतीं प्रज्ञाम् (धाः) धर (प्रातः) प्रतिदिनम् (मक्षु) शीघ्रम् (धियावसुः) श्राः प्रजाक्तमंभ्यां सह वसति सः (जगम्यात्) भृशं प्राप्नुयात्॥१६॥

अन्वयः-है हारियोजनेन्द्र सभाद्यध्यक्ष! धियावसुर्भवान् यद्येषु विद्याऽध्येतृषु जनेषु विश्वपेशसं धियं प्रात्तर्पक्ष्वाधास्तर्हि सर्वा विद्या जगम्यात् प्राप्नुयात्। ये गोतमासः संस्तोतारस्ते तुभ्यमेव सुवृक्ति सुष्ठु वर्जितदोषाण्यभिसंस्कृतानि ब्रह्माणि बृहत्सुखकारकाण्यन्नान्यक्रँस्तान् सुसेवताम्॥१६॥ अष्टक-१। अध्याय-४। वर्ग-२७-२९

मण्डल-१। अनुवाक-११। सूक्त-६१

भावार्थः-परोपकारिभिर्विद्वद्भिर्नित्यं प्रयत्नेन सुशिक्षाविद्यादानाभ्यां सर्वे मनुष्याः सुशिक्षिता विद्वांसः सम्पादनीयाः। एते चाध्यापकान् विदुषो मनोवाक्कर्मभिः सत्कृत्य सुसंस्कृतैर्प्यदिभिर्नित्यं सेवन्ताम्। निहं कश्चिदपि विद्यादानग्रहणाभ्यामृत्तमो धर्मोऽस्ति तस्मात् सर्वेः परस्परं प्रीत्या विद्योज्ञितः सदा कार्य्या॥१६॥

अस्मिन् सूक्ते सभाद्यध्यक्षाऽग्निविद्याप्रचारकरणाद्युक्तमत एतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेत्र सह सङ्गतिरस्तीत्यवगन्तव्यम्॥

इति चतुर्थोऽध्याय ४ एकषष्टितमं ६१ सूक्तमेकोनत्रिंशो २९ वर्मञ्च समाप्त:॥

पदार्थ:-हे (हारियोजन) यानों में घोड़े वा अग्नि आदि पदार्थ युम्न होने वालों को पढ़ने वा जानने वाले (इन्द्र) परम ऐश्वर्य के प्राप्त कराने वाले (धियावसुः) बुद्धि और कर्म के निवास करने वाले आप जो (एषु) इन स्तुति तथा विद्या पढ़ने वाले मनुष्यों में (विश्वर्षेशसम्) सब विद्यारूप गुणयुक्त (धियम्) धारणा वाली बुद्धि को (प्रातः) प्रतिदिन (मश्च) शीघ्र (आधाः) अच्छे प्रकार धारण करते हो तो जिन को ये सब विद्या (जगम्यात्) वार-वार प्राप्त होवें (गितपासः) अत्यन्त सब विद्याओं की स्तुति करने वाले (ते) आप के लिये (एव) ही (सुवृक्ति) अच्छे प्रकार दोषों को अलग करने वाले शुद्धि किये हुए (ब्रह्माणि) बड़े-बड़े सुख करने वाले अन्नों को देने के लिये (अक्रन्) सम्पादन करते हैं, उनकी अच्छे प्रकार सेवा कीजिये॥१६॥

भावार्थ:-परोपकारी विद्वानों को उचित है कि नित्य प्रयत्नपूर्वक अच्छी शिक्षा और विद्वा के दान से सब मनुष्यों को अच्छी शिक्षा से युक्त विद्वान कों तथा इतर मनुष्यों को भी चाहिये कि पढ़ाने वाले विद्वानों को अपने निष्कपट मन, वाष्ट्री और कर्जी से प्रसन्न करके ठीक-ठीक पकाए हुए अन्न आदि पदार्थों से नित्य सेवा करें। क्योंकि पढ़ाने और पढ़ाने से पृथक् दूसरा कोई उत्तम धर्म नहीं है, इसलिये सब मनुष्यों को परस्पर प्रीतिपूर्विन विद्या की बुद्धि करनी चाहिये॥१६॥

इस सूक्त में सभाध्यक्ष आदि का बर्णन और अग्निविद्या का प्रचार करना आदि कहा है, इससे इस सूक्तार्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गित समझनी चाहिये॥

यह उनतीसवाँ २० वर्ग चौथा अध्याय ४ इकसठवाँ ६१ सूक्त समाप्त हुआ। इति श्रीयुत्परिव्राजकाचार्य्येण श्रीयुतमहाविदुषां विरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां शिष्येण दयानन्दसरस्वतीस्वामिना विरचित्रे संस्कृतस्र्यभाषाभ्यां विभूषिते सुप्रमाणयुक्ते ऋग्वेदभाष्ये चतुर्थोऽध्यायः समाप्तिमगात्॥

॥ओ३म्॥

अथ ऋग्वेदभाष्ये प्रथमोऽष्टकः॥

अथ पञ्चमाध्यायारम्भः॥

विश्वानि देव सिवतर्दुरितानि पर्रा सुव। यद्धद्रं तन्न आ सुव। ऋ०५६२.५॥ अथ त्रयोदशर्चस्य द्विषष्टितमस्य सूक्तस्य गौतमो नोधा ऋषिः। इन्द्रो देवता। १,४,६ विराडार्षी त्रिष्टुप्। २,५,९ निचृदार्षी त्रिष्टुप्। १०-१३ आर्षी त्रिष्टुप्छन्दः १-२,४६, ९-१३ धैवतः

स्वरः। भुरिगार्षी पङ्किश्छन्दः। ३,७,८ पञ्चमः स्वरः।

अथेश्वरसभाध्यक्षगुणा उपदिश्यन्ते।

अब पांचवे अध्याय का आरम्भ किया जाता है, इसके प्रथम सूक्त के प्रथम मन्त्र में ईश्वर और सभाध्यक्ष के गुणों का वर्णन क्रिया है॥

प्र मन्महे शवसानायं श्रूषमाङ्गूषं गिर्वणसे अङ्गरस्वत्। सुवृक्तिभिः स्तुवृत ऋंग्मियायार्चामार्कं नरे विश्रुताया १॥

प्रा मुन्महे। शृवसानार्य। श्रूषम्। आङ्गूषम्। विर्वणसे। अङ्ग्रिर्स्वत्। सुवृक्तिऽभिः। स्तुवृते। ऋग्मियार्य। अर्चाम। अर्कम्। नरे। विऽश्रुताय॥ १॥

पदार्थ:-(प्र) प्रकृष्टार्थे (मन्मन्हे) मन्यामहे योचामहे वा। अत्र बहुलं छन्दिस इति श्यनो लुक्। मन्मह इति याञ्चाकर्मसु पठितम्। (निघं०३११) (प्रविमानाय) ज्ञानबलयुक्ता। छन्दस्यसानच् शुजृभ्याम्। (उणा०२.८६) अनेनायं सिद्धः। (प्रवम्) बलम् (आङ्गूषम्) विज्ञानं स्तुतिसमूहं वा। अत्र बाहुलकादिगिधातोरौणादिक ऊषन् प्रत्ययः। अङ्गूषाणां विदुषामिदं विज्ञानमयं स्तुतिसमूहो वेति। तस्येदम् इत्यण। आङ्गूष इति पदनामसु च। (निघं०४२) (गिर्वणसे) गीर्भिः स्तोतुमर्हाय (अङ्गिरस्वत्) प्राणानां बलिमव (सुवृक्तिभिः) सुष्ठु कृत्वत्री दीषवर्जनानि याभ्यस्ताभिः (स्तुवते) सत्यस्य स्तावकाय (ऋग्मियाय) ऋग्भिर्यो सीप्रवे स्तुयते तस्मै। अत्र ऋगुपपदान्मा धातोर्बाहुलकादौणादिको डियच् प्रत्ययः। (अर्घाम) पूजयेम (अर्कम्) अर्चनीयम् (नरे) नयनकर्त्रे (विश्वताय) यो विविधैर्गुणैः श्रूयते तस्मै॥१॥

अन्वयः - है विद्वांसो यथा वयं सुवृक्तिभिः शवसानाय गिर्वणस ऋग्मियाय नरे विश्रुताय स्तुवते सभाद्यध्यक्षाया क्रिस्वच्छू पर्कमाङ्गूषमर्चाम प्रमन्महे च तथा यूयमप्याचरत॥१॥

भावार्थः अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। मनुष्यैर्यथा परमेश्वरं स्तुत्वा प्रार्थयित्वोपास्य सुखं लभते तथा भभावश्यक्षमाश्रित्य व्यावहारिकपारमार्थिके सुखे संप्रापणीये इति ॥१॥ अष्टक-१। अध्याय-५। वर्ग-१-३

मण्डल-१। अनुवाक-११। सूक्त-६२

पदार्थ:-हे विद्वान् लोगो! जैसे हम (सुवृक्तिभि:) दोषों को दूर करनेहारी क्रियाओं से (शवसानाय) ज्ञान बलयुक्त (गिर्वणसे) वाणियों से स्तुति के योग्य (ऋग्मियाय) ऋचाओं से प्रसिद्ध (नरे) न्याय करने (विश्रुताय) अनेक गुणों के सह वर्त्तमान होने के कारण श्रवण करने श्रोग्य (स्तुवित) सत्य की प्रशंसावाले सभाध्यक्ष के लिये (अङ्गिरस्वत्) प्राणों के बल के समान (शूषम्) बल और (अर्कम्) पूजा करने योग्य (आङ्गूषम्) विज्ञान और स्तुति समूह को (अर्चाम्) पूज्य करें और (प्रमन्महे) मानें और उससे प्रार्थना करें, वैसे तुम भी किया करो॥१॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि जैसे परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना से सुख को प्राप्त होते हैं, वैसे सभाध्यक्ष के आश्रय से व्यवहार और परमार्थ के सुखों को सिद्ध करें॥१॥

पुनर्मनुष्यैरेतद्विषये किं कर्त्तव्यमित्युपद्भिश्यते॥

फिर मनुष्यों को इस विषय में क्या करना चाहिये, इस विक्रय का उपेट्रेश अगले मन्त्र में किया

है॥

प्र वो महे महि नमों भरध्वमाङ्गूष्यं शवसानाय सामे येनां नुः पूर्वे पितरः पदुज्ञा अर्चन्तो अद्विरसो गा अविन्दन्॥२॥

प्रा वः। महे। महि। नर्मः। भुरुध्वम्। आङ्क्रमूर्ध्यम्। भुवर्शानाये। सामे। येने। नः। पूर्वे। पितरेः। पुदुऽज्ञाः। अर्चेन्तः। अङ्गिरसः। गाः। अविन्दन्॥२॥

पदार्थ:-(प्र) प्रकृष्टार्थे (व:) युष्माक्रम् (प्रहें) महते (प्रहिं) महत् (नपः) नमस्करणमत्रं वा (भरध्वम्) धरध्वम् (आङ्गूष्यम्) अङ्गूषाणां विज्ञानानां भावस्तम् (श्रवसानाय) ज्ञानवते (साम) स्यन्ति खण्डयन्ति दुःखानि येन तत्। अत्र सर्वधातुश्यो मनिन् (उणा०४.१४६) इति करणकारके मनिन्। (येन) पूर्वोक्तेन। अत्रान्येषामपीति द्विष्:। (न:) अस्माकम् (पूर्वे) पूर्वं विद्या अधीतवन्तोऽनूचाना विद्वांसः (पितरः) ये पान्ति पितृषत् स्थन्ति विद्यासुशिक्षादिदानैस्ते (पदज्ञाः) ये पदानि प्राप्तव्यानि धर्मार्थकाममोक्षाख्यानि आधितुं साधियतुं वा जानन्ति ते (अर्चन्तः) सत्कुर्वन्तः (अङ्गिरसः) प्राणादिविद्याविदः (गाः) विद्याप्रकाशयुक्ता वाचः (अविन्दन्) प्राप्नुयः। अत्र लिडर्थे लङ्॥२॥

अन्वयः हे मनुष्याः ! ये वो युष्माकं नोऽस्माकं चाङ्गिरसः पदज्ञा महे महते शवसानाय सभाद्यध्यक्षाय महि महत्सामाङ् गूष्य नमुश्राचन्तः सन्तः पूर्वे पितरो येन गा अविन्दन् प्राप्नुयुस्तान् यूयं प्रभरध्वम्॥२॥

भावार्थः है मनुष्याः! यथा विद्वांसो वेदसृष्टिक्रमप्रत्यक्षादिप्रमाणैः प्रतिपादितेन धर्म्येण मार्गेण गच्छतः सत्तः परमात्मानमभ्यर्च्य सर्विहतं धरन्ति, तथैव यूयमपि समवतिष्ठध्वम्॥२॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! जो (व:) तुम वा (न:) हम लोगों को (अङ्ग्रिस्स:) प्राणादि विद्या और (पदज्ञा:) धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को जाननेवाले (महे) बड़े (शवसानाय) ज्ञान बलयुक्त सभाध्यक्ष के लिये (मिह) बहुत (साम) दु:खनाश करनेवाले (आङ्गूष्यम्) विज्ञानयुक्त (नम:) नमस्क्रार का अर्थ का (अर्चन्त:) सत्कार करते हुए (पूर्वे) पहिले सब विद्याओं को पढ़ते हुए (पितर:) विद्यादि सद्गुणों से रक्षा करनेवाले विद्वान् लोग (येन) जिस विज्ञान वा कर्म से (गा:) विद्या प्रकाश्रयुक्त व्याणियों को (अविन्दन्) प्राप्त हों, उनका तुम लोग (प्रभरध्वम्) भरण-पोषण सदा किया करो॥

भावार्थ:-हे मनुष्यो! जैसे विद्वान् लोग जिन वेद, सृष्टिक्रम और प्रत्यक्षादि प्रमणों से कहे हुए धर्मयुक्त मार्ग से चलते हुए सब प्रकार परमेश्वर का पूजन करके सबके हिन्न को धारण करते हैं, वैसे ही तुम लोग भी करो॥२॥

पुनर्मनुष्यैरेतत्किमर्थमनुष्ठेयमित्युपदिश्यते।

फिर मनुष्यों को पूर्वोक्त कृत्य किसलिये करना चाहिये, यह विषय अगुले मन्त्र में कहा है॥

इन्द्रस्याङ्गिरसां चेष्टौ विदत्सरमा तर्नयाय धासिम्।

बृहस्पतिर्भिनदद्गि विदद्गाः समुस्त्रियाभिर्वावशस्त न्रेरः॥३)॥

इन्द्रंस्य। अङ्गिरसाम्। चा इष्टौ। विदत्। सरमा तन्याय ध्यासम्। बृहस्पतिः। भिनत्। अद्रिम्। विदत्। गाः। सम्। उस्त्रियाभिः। वावशन्तः। नरः॥३॥

पदार्थ:-(इन्द्रस्य) परमैश्वर्यवतः सभाद्यध्यक्षस्य (अङ्गिरसाम्) विद्याधर्मराज्यप्राप्तिमतां विदुषाम्। अङ्गिरस इति पदनामसु पठितम्। (निघंक्ष्णः) (च्रु) समुच्चये (इष्ट्रौ) इष्टसाधिकायां नीतौ (विदत्) प्राप्नुयात्। अत्र लिडर्थे लडडभावश्च। (सस्या) युवा सरान् विद्याधर्मबोधान् मिमीते तथा। आतोऽनुपसर्गे कः। (अष्टा॰३.२.३) इति कः प्रत्ययः (तनयाय) सन्तानाय (धासिम्) अत्रादिकम्। धासिमित्यन्ननामसु पठितम्। (निघं॰२.७) (वृहस्पतिः) वृहतां पतिः पालयिता सभाद्यध्यक्षः (भिनत्) भिनति। अत्र लडर्थे लङडभावश्च। (अद्रिम्) मेघम् (विदत्) प्राप्नीति। अस्याऽपि सिद्धिः पूर्ववत्। (गाः) पृथिवीः (सम्) सम्यगर्थे (उस्त्रियाभिः) किर्णः (वृत्रकान्त) पुनः पुनः प्रकाशयन्त (नरः) ये नृणन्ति नयन्ति ते मनुष्यास्तत्सम्बुद्धौ॥३॥

अन्वय:-ह्रेनरो मनुष्या:! यथा सरमा माता तनयाय धासिं विदत् प्राप्नोति यथा बृहस्पति: सभाद्यध्यक्षो यथा सूर्य उस्त्रियाभि: किरणेरिद्रं भिनद्विदृणित यथा गा विदत् प्राप्नोति तथैव यूयमपीन्द्रस्याङ्गरसां चेष्टौ विद्यादिसद्गुणान् संवावशन्त पुनः पुनेर सम्यक् प्रकाशयन्तः, यतः सर्वस्मिन् जगत्यविद्यादिदुष्टगुणा नश्येयु:॥३॥

भावार्थः अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। मनुष्यैर्मातृवत्प्रजायां वर्त्तित्वा सूर्यवद् विद्यादिसद्गुणान् प्रकार्र्थेश्वरोक्तायां विद्वदनुष्ठितायां नीतौ स्थित्वा सर्वोपकारं कर्म कृत्वा सदा सुखयितव्यम्॥३॥

अष्टक-१। अध्याय-५। वर्ग-१-३

मण्डल-१। अनुवाक-११। सूक्त-६२

पदार्थ: -हे (नर:) सुखों को प्राप्त करानेवाले मनुष्यो! जैसे (सरमा) विद्या धर्मादिबोधों को उत्पन्न करनेवाली माता (तनयाय) पुत्र के लिये (धासिम्) अन्न आदि अच्छे पदार्थों को (दित्त) प्राप्त करती है। जैसे (बृहस्पित:) बड़े-बड़े पदार्थों को रक्षा करनेवाला सभाध्यक्ष जैसे सूर्य (उस्थिपि:) किरणों से (अद्रिम्) मेघ को (भिनत्) विदारण और जैसे (गा:) सुशिक्षित वाणियों को (बिदत्) प्राप्त करता है, वैसे तुम भी (इन्द्रस्य) परमैश्वर्यवाले परमेश्वर, सभाध्यक्ष वा सूर्य (च्ये और (अद्भिरसाम्) विद्या, धर्म और राज्यवाले विद्वानों की (इष्ट्रौ) इष्ट की सिद्ध करनेवाली नीति में विद्यादि उत्तम गुणों का (संवावशन्त) अच्छे प्रकार वार-वार प्रकाश करो, जिससे सब संसार में अविद्यादि दुष्ट गुण नष्ट हों॥३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को उसित है कि माता के समान प्रजा में वर्त, सूर्य के समान विद्यादि उत्तम गुणों का प्रकाश कर, ईश्वर की कही वा विद्वानों से अनुष्ठान की हुई नीति में स्थित हो और सबके उपकार को करते हुए विद्यादि सद्गुणों के अनुन्द में सदा मग्न रहें॥३॥

पुनर्मनुष्यै: कथं वर्त्तितव्यमित्युपदिश्यते॥

फिर मनुष्यों को कैसे वर्तना चाहिये, इस विषय क्रा उषदेश अगले मन्त्र में किया है।।

स सुष्टुभा स स्तुभा सप्त विष्रै' स्वरेणाद्गि स्वया विषेतः।

सुरुप्युभिः फल्गिमिन्द्र शक्त बुलं खेप्पद्रयो दुश्रग्वै:॥४॥

सः। सुऽस्तुभा। सः। स्तुभा। सप्ता विष्रैंग्रा स्वरेणा अद्भिम्। स्वर्यः। नवंऽग्वैः। सुरण्युऽभिः। फुलिऽगम्। इन्द्रा शुक्का बुलम्। रवेणा दुर्युः। दर्शंऽग्वैः॥ ४॥

पदार्थ:-(सः) इन्द्रः (सुष्टुभा) सुष्टु व्याप्णिक्रयास्थिरकारकेण (सः) उक्तार्थः (स्तुभा) स्तोभते स्थिरीकरोति येन तेन (सप्त) सप्तरिष्याकानामुदात्तादीनां षड्जादीनां स्वराणां वा मध्यस्थेन केनचित् (विप्रेः) मेधाविभिः। विविधान पदार्थीन प्रान्ति तैः किरणैर्वा (स्वरेण) महाशब्देन (अद्रिम्) मेघम् (स्वर्थः) स्वरेषु साधुः (नृव्यवेः) नवनीत्रगतिभिः। नवग्वा नवनीतगतयः। (निरु०११.११) अत्र नवोपपदाद् गमधातोर्बाहुलकादौणोदिका ड्वप्रत्ययः। (सरण्युभिः) सर्वेषु शास्त्रेषु विज्ञानगतिभिः। अत्र स्युवचि०। (उणा०३.८१) हित् सूत्रेणान्युच् प्रत्ययः। (फलिगम्) फलीनां गमयितारं मेघम्। फलिग इति मेघनामसु पठितम्। (निघं०१.२०) (इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त (शक्र) शक्तिमान् (बलम्) बलयुक्तं मेघम् (रवेण) विद्युतः शब्देन (दर्यः) विदारय। अत्र लिडर्थे लडडभावश्च। (दशग्वैः) ये रश्मयो दश दिशो गच्छिन्त तैः। अत्र

स्वियः हे सु इन्द्र शक्र सभाद्यध्यक्ष! यस्त्वं नवग्वैर्दशग्वै: सरण्युभिर्विप्रै: सुष्टुभा स्तुभा रवेण सप्त यथा स्रवितुष्टसप्तासुं मध्ये वर्त्तमानेन स्वरेणाद्विं बलं फलिगं हन्ति तथाऽरीन् द्रस्यो विदारयः स त्वं स्वर्यः स्तृत्योऽसि॥४॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। यथा स्तनियत्नुः स्वैरुत्तमैर्गुणैर्वर्त्तमानः सन् जीवनहित्तें मेघोत्पत्त्यादिकं कार्य्यं साधयित, तथैव सभाद्यध्यक्षः परमोत्तमैर्विद्याबलयुक्तैः पुरुषैः सह वर्त्तमानेन् विद्यान्यायप्रकाशेन सर्वमन्यायं प्रणाश्य दुष्टांश्च निवार्य्य चक्रवर्त्तिराज्यं प्रशिष्यात्॥४॥

पदार्थ:-हे (स:) वह (इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त (शक्र) शक्ति को प्राप्त करनेवाले सभाध्यक्षा जो आप (नवग्वै:) नवों से प्राप्त हुई गित वा (दशग्वै:) दश दिशाओं में जाने (सरण्युधि:) सब शास्त्रों में विज्ञान करनेवाली गितयों से युक्त (विष्रै:) बुद्धिमान् विद्वानों के साथ जैसे सूर्य्य (सृष्टुभा) उत्तम द्रव्य, गुण और क्रियाओं के स्थिर करने वा (स्तुभा) धारण करनेवाले (रवेण) शब्वों के शब्द से जैसे सूर्य (सप्त) सात संख्यावाले स्वरों के मध्य में वर्तमान (स्वरेण) उदात्तादि वा षद्जादि स्वर से (अद्रिम्) बलयुक्त (फिलिंगम्) मेघ का हनन करता है, वैसे शत्रुओं को (दर्यः) विद्रारण करते हो (स:) आप हम लोगों से (स्वर्य:) स्तुति करने योग्य हो॥४॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे विजुली उत्तम-उत्तम गुणों से वर्तमान हुई जीवन के हेतु मेघ के उत्पन्न करने आदि कार्यों को सिद्ध करती है, वैसे ही सभाध्यक्ष आदि अत्यन्त उत्तम-उत्तम विद्या बल से युक्त पुरुषों के साथ वर्त्त के विद्यारूपी न्याय के प्रकाश से अन्याय वा दुष्टों का निवारण कर चक्रवर्ति राज्य का पालन करें॥४॥

पुन: स कीदृश् (इत्युपदिश्यते॥

फिर वह सभाध्यक्ष कैसा हो, यह चिष्य/अगले मन्त्र में कहा है।।

गृणानो अङ्गिरोभिर्दस्म वि वेरुषसा सूर्येण गौभिरस्थः।

वि भूम्यां अप्रथय इन्द्र सानुं, हिंबो रिजा उपरमस्तभाय:॥५॥१॥

गृणानः। अङ्गिरऽभिः। दुस्माः वि। वः। उषसां। सूर्येण। गोभिः। अर्खः। वि। भूम्याः। अप्रथ्ययः। इन्द्र। सानुं। दिवः। रजः। उपरम्। अस्तुभृखुः॥ प॥

पदार्थ:-(गृणान:) क्रिव्हें कुर्वाण: अत्र व्यत्ययेनात्मनेपदम्। (अङ्गिरोभि:) प्राणैर्बलै: (दस्म) उपक्षेत: (वि) विशेषार्थे (वः) वृणोषि (उषसा) दिनप्रमुखेन (सूर्येण) सूर्यप्रकाशेन (गोभि:) किरणै: (अन्थ:) अत्रम् (वि) विविधार्थे (भूम्या:) भूमिषु साधवः (अप्रथयः) प्रथय (इन्द्र) विदारक (सानु) शिखरम् (दिवः) प्रकाशस्य (रजः) लोकम् (उपरम्) मेघम् (अस्तभायः) स्तभान। अत्र लर्ङ्थे लङ्॥५॥

अन्वयृर्िहे इस्हि! (दस्म) सभाद्यध्यक्ष! गृणानस्त्वमङ्गिरोभिरुषसा सूर्येण गोभिरन्धो विवो वृणोति तथा विद्युद् व्यप्रथयो यथा भूम्योदिव: श्रकाशस्य सानु रजः सर्वं लोकमुपरं मेघं स्तभ्नाति तथा धर्मराज्यसेना विवः शत्रून् व्यस्तभनन् भवानस्मार्भः स्तुत्योऽस्ति॥५॥ अष्टक-१। अध्याय-५। वर्ग-१-३

मण्डल-१। अनुवाक-११। सूक्त-६२

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। पुरुषैरुषोवत् सूर्यवित्करणवत् प्राणवच्च सद्गुणान् प्रकाश्य दुष्टिनवारणं कार्यम्। यथा सूर्य: स्वप्रकाशं विस्तार्य मेघमुत्पाद्य वर्षयित, त्रांव प्रजास् सिद्धद्यामृत्पाद्य सुखवृष्टि: कार्येति॥५॥

पदार्थ:-हे (इन्द्र) शत्रुओं के (दस्म) नाश करनेवाले सभाध्यक्ष! (गृणानः) उपदेश करते हुए आप जैसे बिजुली (अङ्गरोभिः) प्राण (उषसा) प्रातःकाल के (सूर्येण) सूर्य के प्रकाश तथा (पोभिः) किरणों से (अन्धः) अत्र को प्रकट करती है, वैसे धर्मराज्य और सेना को (बिवः) प्रकट करी वैसे बिजुली को (व्यप्रथयः) विविधप्रकार से विस्तृत कीजिये। जैसे सूर्य (भूम्याः) पृथिवी में श्रेष्ठ (दिवः) प्रकाश के (सानु) ऊपरले भाग (रजः) सब लोकों और (उपरम्) मेघ की (अस्तुभीयः) संयुक्त करता है, वैसे धर्मयुक्त राज्य की सेना को विस्तारयुक्त कीजिये और शत्रुओं को बन्धन करते हुए आप हम सब लोगों से स्तुति करने के योग्य हो॥५॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। महिष्यों को प्रात:काल सूर्य के किरण और प्राणों के समान उक्त गुणों का प्रकाश करके दुष्टों का निवस्ण करना ज़ाहिये। जैसे सूर्य प्रकाश को फैला और मेघ को उत्पन्न कर वर्षाता है, वैसे ही सभाध्यक्ष आदि मिनुष्यों की प्रजा में उत्तम विद्या उत्पन्न करके सुखों की वर्षा करनी चाहिये॥५॥

पुनरस्य कीदृशं कर्म स्थादिल्युपदिश्यते॥

फिर भी इस सभाध्यक्ष के कैसे कर्म ही, इस विषुष का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

तदु प्रयक्षितममस्य कर्म दुस्मस्य चास्त्मम्मस्ति दंसः।

उपह्वरे यदुपरा अपिन्वनमध्वर्णसो मुद्यदेशतस्त्रः॥६॥

तत्। ऊम् इति। प्रयक्षऽतम्म्। अस्या कर्म। दस्मस्य। चार्रुऽतमम्। अस्ति। दस्रीः। उपऽह्वरे। यत्। उपराः। अपिन्वत्। मधुऽअर्णसः। नुर्द्यः। इतिसः॥६॥

पदार्थ:-(तत्) ब्रह्ममाणम् (३) वितर्के (प्रयक्षतमम्) अत्यन्तपूजनीयम् (अस्य) सभाध्यक्षस्य (कर्म) क्रियमाणम् (दस्मम्य दुः) खापक्षेतुः (चारुतमम्) अतीव सुन्दरम् (अस्ति) वर्तते (दंसः) दंसयन्ति पश्यन्ति विद्याः सुखानि च येन कर्मणा तत् (उपह्वरे) उपह्वरन्ति कृटिलयन्ति येन तस्मिन् व्यवहारे। अत्र कृतो बहुलिमिति करणे अच्। (यत्) उक्तम् (उपराः) दिशः। उपरा इति दिङ्नामसु पठितम्। (निघं०१.६) (अपन्वतः) सेवते (मध्वर्णसः) मधूनि मधुराण्यर्णांस्युदकानि यासु ताः (नद्यः) सरितः (चतसः) चतुःसंख्याकाः॥६॥

अन्वय:-हे मनुष्याः! युष्पाभिरस्य दस्मस्येन्द्रस्य सभाद्यध्यक्षस्य स्तनयित्नोर्वोपह्वरे यत्प्रयक्षतमं चारुतमं देसः कर्मास्ति, तदु विदित्वाऽऽचरणीयं य ईदृशेन कर्मणा मध्वर्णसो नद्यश्चतस्र उपरा दिशोऽपिन्वत् सेवते सिञ्चति स विद्यया सम्यक् सेवताम्॥६॥

भावार्थ:-अत्र श्लेषालङ्कार:। मनुष्यै: श्रेष्ठतमानि कर्माणि संसेव्य यज्ञमनुष्ठाय स्रीतं पालिश्रित्वा सर्वासु दिक्षु कीर्तिवृष्टि: संप्रसारणीयेति॥६॥

पदार्थ: - हे मनुष्यो! तुम लोगों को उचित है कि (अस्य) इस (दस्मस्य) दृःख नष्ट करनेवाले सभाध्यक्ष वा बिजुली के (उपह्नरे) कुटिलतायुक्त व्यवहार में (यत्) जो (प्रयक्षतमम्) अत्यन्त पूजने योग्य (चारुतमम्) अतिसुन्दर (दंस:) विद्या वा सुखों के जानने का हेतु (कर्म) कर्म (अस्ति) है (तदु) उसको जानकर आचरण करना वा जिनके इस प्रकार के कर्म से (मध्वणस्मः) मधुर जलवाली (नद्य:) नदी और (चतस्र:) चार (उपरा:) दिशा (अपिन्वत्) सेवन या सेचम्न करती हैं। उन दोनों को विद्या से अच्छी प्रकार सेवन करना चाहिये॥६॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों को न्यहिये कि अति उत्तम-उत्तम कर्मों का सेवन, यज्ञ का अनुष्ठान और राज्य का पालन करके सब दिशाओं में क्रीतिं की वर्षा करें॥६॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते।

फिर सभाध्यक्ष कैसा हो, इस विषय का उपदेश आगले मन्त्र में किया है।।

द्विता वि ववे सुनजा सनीके अयास्य स्तर्वेपाने भिर्कै:। भगो न मेर्ने परमे व्योमन्नधारयुद्धोदसी सुदेसी:॥७॥

द्विता। वि। वृवे। सुनऽजां। सनीके इति स्रिज्ञीके। अयास्यः। स्तर्वमानेभिः। अर्कैः। भगः। न। मेने इति। पुरुमे। विऽऔमन्। अर्धारयत्। रोदंसी इति। सुरदंसीः।।७॥

पदार्थ:-(द्विता) द्वयोः जासभाद्यश्यक्षयोर्भावो द्विता (वि) विशेषे (वव्रे) व्रियते (सनजा) या सनित सनातनाज्जायते सा (सभीडे) समीवे (अयास्य:) प्रयत्नासाध्यः स्वाभाविकः (स्तवमानेभिः) स्तुवन्ति यैस्तैः (अर्कैः) स्तितेः (भगः) ऐश्वर्य्यम् (न) इव (मेने) प्रक्षेप्ये। अत्र बाहुलकाङ्डुमिञ् धातोर्नः प्रत्ययः आत्वनिषेधश्च। (पापे) प्रकृष्टे (व्योगन्) अन्तरिक्षे। अत्र सुपां सुलुक् इति सप्तम्या लुक्। (अधारयत्) धारयेत् (रोदसी) द्यावापृथिव्यौ (सुदंसाः) शोभनानि दसांसि कर्माणि यस्मिन् सः॥७॥

अन्वयः यथो विद्वद्भियां सनीडे स्तवमानेभिरकैं: सनजा द्विता विवन्ने विशेषेण न्नियते तथा मनुष्योऽयास्यः सुदंसा अहं पूर्म व्योपन् सेवसी भगो न सवितेव अधारयत् धारयेत् विद्वान् मेने तथाऽहं धरेयं मन्ये च॥७॥

भावार्थः अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। मनुष्यैर्यथा सभाद्यध्यक्षेणैश्वर्यं ध्रियते यथा च सूर्यः प्रकार्रीपृथिक्षौ धरित तथैव न्यायविद्ये धर्त्तव्ये॥७॥

अष्टक-१। अध्याय-५। वर्ग-१-३

मण्डल-१। अनुवाक-११। सूक्त-६२

पदार्थ:-जैसे विद्वानों से जो (सनीडे) समीप (स्तवमानेभिः) स्तुतियुक्त (अर्कैः) स्तोत्रों से (सनजा) सनातन कारण से उत्पन्न हुई (द्विता) दो अर्थात् प्रजा और सभाध्यक्ष को (विववे) विशेष करके स्वीकार किया जाता है, वैसे मनुष्य (अयास्यः) अनायास से सिद्ध करनेवाला (सुदंसाः) उत्तम कर्पयुक्त मैं जैसे (परमे) (व्योमन्) उत्तम अन्तरिक्ष में (रोदसी) प्रकाश और भूमि को (भगो न्) सूर्य्य के समान विद्वान् (मेने) मानता और (अधारयत्) धारण करता है, वैसे इसको धारण करता और मानता हूँ भू।।

भावार्थ: - इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि जैसे सभा धादि का अध्यक्ष ऐश्वर्य को और जैसे सूर्यप्रकाश तथा पृथिवी को धारण करता है, कैसे ही न्याय और विद्या को धारण करें॥ ७॥

अथ रात्रिदिवसदृष्टान्तेन स्त्रीपुरुषौ कथं वर्त्तेयाताप्रित्युपदिश्यत्नेभ

अब रात्रि और दिन के दृष्टान्त से स्त्री और पुरुष किस-किस प्रकार वर्तमान करें, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।

स्नाहिवं परि भूमा विरूपि पुनर्भुवा युवती स्वेभिरवैः। कृष्णेभिर्क्तोषा रुशिद्धर्वपुर्भिरा चरतो अन्यान्या हि

सुनात्। दिवम्। परि। भूमा। विरूपे इति विश्रस्पे। पुनुःऽभुवा युवती इति। स्वेभिः। एवैः। कृष्णेऽभिः। अक्ता। उषाः। रुशत्ऽभिः। वर्षःऽभिः। आ। चुर्तः। अन्याऽअस्यागि ८॥

पदार्थ:-(सनात्) सनातनात्कारणात् (दिवम्) सूर्यप्रकाशं प्राप्य (पिर) सर्वतः (भूमा) भूमिम्। अत्र सुपां सुलुक् इति डादेशः। (विरूप) विषिध्य रूपं ययोरह्नो रात्रेश्च ते (पुनर्भवा) ये पुनः पुनः पर्य्यायेण भवतस्ते। अत्र सुपां सुलुक् इत्याकारादेशः। (युवती) युवावस्थास्थे स्त्रियाविव (स्वेभिः) दिक्षणादिभिरवयवैः (एवैः) प्राप्कैः इण्शिभ्यां वन्। (उणा०१.१५४) अनेनात्रेण्धातोर्वन् प्रत्ययः। (कृष्णेभिः) परस्पराकर्षणैर्विलेखनैः (अक्ता) अनक्त्यञ्जनवत्पदार्थानाच्छादयित सा रात्रिः (उषाः) दिनं च। (रुशिद्धः) प्रापकै रूपादिगुणैः (व्रपुर्भिः) स्वाकृत्यादिभिः शरीरैः (आ) समन्तात् (चरतः) गच्छत आगच्छतश्च (अन्यान्या) भित्र भित्रा पृथक् पृथक् संयुक्ते च। अत्र वीप्सायां द्विर्वचनम्॥८॥

अन्वयः-हे स्त्रीपुरुषौ ! युवां यथा सनाद्दिवं भूमा प्राप्य पुनर्भुवा युवती इव विरूपे अक्तोषाः स्वेभीरुशद्भिवपुभिः कृष्णेभिरेवै सहान्यान्या पर्य्याचरतस्तथा स्वयंवरिवधानेन विवाहं कृत्वा परस्परौ प्रीतिमन्तौ भूत्वा सततमानन्देतमुगारम

भावार्थः अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। मनुष्यैर्यथा सर्वदा चक्रवत्परिवर्त्तमाने रात्रिदिने परस्परं संयुक्तो वर्तते तथा विवाहितो स्त्रीपुरुषौ संप्रीत्या सर्वदा वर्त्तेयाताम्॥८॥

पदार्थ:-हे स्त्री-पुरुषो! तुम जैसे (सनात्) सनातन कारण से (दिवम्) सूर्य्य प्रकाश और (भूमा) भूमि को प्राप्त होकर (पुनर्भुवा) वार-वार पर्य्याय से उत्पन्न होके (युवती) युवावस्था को प्राप्त हुए स्त्री-पुरुष के समान (विरूपे) विविध रूप से युक्त (अक्ता) रात्रि (उषा:) दिन (स्वेभि:) क्षण अवि अवयव (रुशिद्ध:) प्राप्ति के हेतु रूपादि गुणों के साथ (वपुर्भि:) अपनी आकृति अदि शरीर वा (कृष्णेभि:) परस्पर आकर्षणादि को (एवै:) प्राप्त करनेवाले गुणों के साथ (अयान्या) भिन्न-भिन्न परस्पर मिले हुए (पर्य्याचरतः) जाते-आते हैं, वैसे स्वयंवर अर्थात् परस्पर की प्रसन्ता से विवाह करके एक-दूसरे के साथ प्रीति युक्त होके सदा आनन्द में वर्ते॥८॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को योग्न है कि जैसे चक्र के समान सर्वदा वर्त्तमान रात्रि-दिन परस्पर संयुक्त वर्त्तते हैं, वैसे विवाहित स्त्री-पुरुष अल्पन्त प्रेम के साथ वर्त्ता करें॥८॥

पुनस्ते कीदृशा इत्युपदिश्यते।

फिर वे कैसे हों, यह विषय अगले मिन्त्र में कहा है।।

सर्नेमि सुख्यं स्वपुस्यमानः सूनुदर्धार शर्वसा सुहंसाः

आमासु चिद्दधिषे पुक्वमुन्तः पर्यः कृष्णासु स्श्रुद्रहिणीषु॥९॥

सर्नेमि। सुख्यम्। सुऽअपुस्यमानः। सूनुः। हाध्युर्भ शर्वसूर्ग सुऽदंसाः। आमासुं। चित्। दुधिषे। पुक्वम्। अन्तरिति। पर्यः। कृष्णासुं। रुशत्। रोहिणीषु॥९॥

पदार्थ:-(सनेमि) पुराणम्। सनेमिरित पुराणनामसु पठितम्। (निघं०३.२७) (सख्यम्) मित्रत्वम् (स्वपस्यमानः) शोभनानि वापासि वामाणि च स्वपांसि तान्याचरतीव सः (सूनुः) पुत्रो मातापितराविव (दाधार) धरित (श्रावसर्) बलेन (सुदंसाः) शोभनानि दंसानि कर्माणि यस्य सः। (आमासु) अपक्वास्वोषधीषु (वित्) अपि (दिधषे) धरिस (पक्वम्) पच्यमानम् (अन्तः) मध्ये (पयः) रसम् (कृष्णासु) परिपक्वासु विस्वितासु (रुष्णत्) सुन्दरं रूपं धरन् (रोहिणीषु) रोहणशीलासु॥९॥

अन्वय:-यः स्वप्रस्थपानः सुद्धंसा रुशत्त्वं सूनुमिवाहोरात्रं सनेमि सख्यं दाधार स रोहिणीषु कृष्णासु चिदप्यामास्वन्तः पक्वं पयो धरिति तथ्रैव शवसा दिधषे स सुखमाप्नुयात्॥९॥

भावार्थः निवद्वद्भिर्यथाऽहोरात्रः पक्वापक्वरसोत्पादक उत्पन्नद्रव्यवृद्धिक्षयकरः सर्वेषां मित्रवद्वर्तते तथा सर्वैर्मनुष्येः सहे वर्तितव्यम्॥९॥

पदार्थ: जो (स्वपस्यमान:) उत्तम कर्मों को करते हुए के समान (सुदंसा:) उत्तम कर्म्मयुक्त (फ्शत्) श्रूभ गुणों की प्राप्ति करता हुआ तू जैसे (सूनु:) सत्पुत्र अपने माता-पिता का पोषण करते हुए के स्नमान राज्ञि-दिन (सनेमि) प्राचीन (सख्यम्) मित्रपन के कालावयवों को (दाधार) धारण करता और (राह्मणोष्) उत्पन्नशील (कृष्णासु) सब प्रकार से पकी हुई (चित्) और (आमासु) कच्ची औषधियों के

अष्टक-१। अध्याय-५। वर्ग-१-३

मण्डल-१। अनुवाक-११। सूक्त-६२

(अन्तः) मध्य में (पक्वम्) पक्व (पयः) रस को धारण करता है, वैसे (शवसा) बल के साथ गृहाश्रम को (दिधिषे) धारण कर॥९॥

भावार्थ:-विद्वानों को जैसे ये दिन-रात कच्चे-पक्के रसों से उत्पन्न करने और उत्पन्न हुए पद्रीर्थीं की वृद्धि वा नाश करनेवाले सबों के मित्र के समान वर्त्तमान है, वैसे सब मनुष्यों के साथ वर्त्तना योग्य है॥९॥

पुनस्ते कीदृशा इत्युपदिश्यते॥

फिर वे कैसे हों, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में क्रिया है।।

सुनात्सनीळा अवनीरवाता वृता रक्षन्ते अमृताः सहीभिः। पुरू सहस्रा जनयो न पत्नीर्दुवस्यन्ति स्वसारो अह्रयाणम्॥ १०॥ १॥

सुनात्। सऽनीळाः। अवनीः। अवाताः। वृता। रृक्षुन्ते। अपूर्ताः। सहःऽभिः। पुरु। सहस्रा। जनयः। न। पत्नीः। दुवस्यन्ति। स्वसारः। अह्रयाणम्॥ १०॥

पदार्थ:-(सनात्) सनातनात्कारणात् (सनीडाः) स्मिति वर्त्तर्भोनाः (अवनीः) पृथिवीः (अवाताः) वायुकम्पादिरहिताः (वृता) वृतानि सत्याचरणानि। अत्र श्रेष्ठिवः इति शेर्लोपः। (रक्षन्ते) पालयन्ति। व्यत्ययेनात्मनेपदम्। (अमृताः) स्वरूपेण नित्याः (सहोभिः) बलैः (पुरु) बहूनि (सहस्रा) सहस्राणि (जनयः) ये जनयन्ति ते पतयः (नः) इव (प्रृतीः) भाव्योः (दुवस्यन्ति) परिचरन्ति (स्वसारः) भगिन्यः (अहयाणम्) विगतलज्जं प्रकाशितम्। अत्र वञ्चूवद्भीभातोर्बाहुलकादौणादिक आनच् प्रत्ययः॥१०॥

अन्वय:-अवाता अवनीरिव पुरु सहस्राप्राप्य: प्रस्तीर्न ये सनीडा अमृताः सहोभिः सनाद् व्रता स्वसारोऽह्रयाणं बन्धुं दुवस्यन्तीव विद्याधर्मी सेवन्ते ते मुक्तिमासुवन्ति॥ १०॥

भावार्थ:-अत्रोपमावाच्य्रलुप्तोपमोत्यङ्कारौ। यथा पतयः स्वस्त्री-भगिनी-भ्रातॄन् विद्यार्थन आचार्यांश्च सेवित्वा सुखानि विद्याश्च प्राप्नुवन्ति तथा धर्मारूढा धार्मिका विद्वांसः स्त्रीपुरुषा गृहे वसन्तोऽपि मुक्तिमाप्नुविद्या १०॥

पदार्थ:-जैसे (अविताः) वहंसारहित (अवनीः) भूमि सबकी रक्षा (पुरुसहस्रा) बहुत हजारह (जनयः) उत्पन्न करनेहारे पति (पत्नीः) (न) जैसे अपनी स्त्रियों की रक्षा करते हैं, वैसे (सनीडाः) समीप में वर्तमान (अमृताः) नाशरहित विद्वान् लोग (सहोभिः) विद्या योग धर्मवालों से (सनात्) सनातन (वृता) सत्य धर्म के आचरणों की (रक्षन्ते) रक्षा करते हैं, और जैसे (स्वसारः) बहिनें (अहयाणम्) लज्जा क्रों अप्राप्त अपने भाई की (दुवस्यन्ति) सेवा करती हैं, वैसे विद्या और धर्म ही को सेवते हैं, वे मुक्तिको प्रप्त होते हैं॥१०॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे पित लोग अपनी स्त्रियों, बिहिनों और भाइयों तथा विद्यार्थी लोग आचार्य्यों की सेवा से सुख और विद्याओं को प्राप्त होते हैं, वैसे धर्मात्मा विद्वान् स्त्री-पुरुष लोग घर में बसते हुए मुक्ति को प्राप्त होते हैं॥१०॥

पुनस्ते कीदृशा एतद्वेदितारो विद्वांश्चेत्युपदिश्यते॥

फिर भी दिन और रात्रि कैसे तथा इनके जाननेवाले विद्वान् लोग कैसे हैं, इस विषय<mark>्न का उपदेश</mark> अगले मन्त्र में किया है।।

सुनायुवो नर्मसा नव्यो अर्कैर्वसूयवो मृतयो दस्म दद्वः॥

पतिं न पत्नीर्रुशतीरुशन्तं स्पृशन्तिं त्वा शवसावन्मनीषा:॥११॥

सुनाऽयुर्वः। नर्मसा। नर्व्यः। अर्केः। वसुऽयर्वः। मृतर्यः। दुस्मा दुदुः। पितिम्। न। पत्नीः। उशतीः। उशन्तम्। स्पृशन्ति। त्वा। शुवुसाऽवुन्। मुनीषाः॥११॥

पदार्थ:-(सनायुव:) सनातनस्य कर्मणः कर्तार इवाचर्रनः (नमसा) नमस्कारेण युक्ताः (नव्यः) नवीना युवतयः। अत्र सुपां सुलुक् इति जसः स्थाने सुः। (अर्कः) मन्त्रैर्विचारैः सह (वसूयवः) आत्मनो वसूनि विद्याधनानीच्छन्तः (मतयः) मन्यन्ते जानन्ति ये ते ब्रिह्मसः (दस्म) अन्धकारोपक्षेतः (ददुः) द्रान्ति (पतिम्) पालयितारम् (न) इव (पत्नीः) भार्य्या युवत्यः (उशन्तीः) कामयमानाः (उशन्तम्) कामयमानम् (स्पृशन्ति) आलिङ्गयन्ति (त्वा) (शवसावन्) बृत्वयुक्त (मृनीषाः) ये मनांसि विज्ञानानीषन्ते ते। अत्र शकन्थ्वादित्वात् पररूपम्॥११॥

अन्वयः – हे शवसावन् दस्म सभापते न्व यथा सूनायुवो नमसाऽर्केः सह वर्त्तमाना वसूयवो मनीषा मतय उशन्तं पतिं नोशन्तीर्नव्यः पत्नीः स्पृशन्ति यथा स्पर्द्धः कुह्निलां गतिं गच्छन्ति तथा त्वा प्रजाः सेवन्ताम्॥११॥

भावार्थ:-अत्रोपमावाचकलुप्तोपभालङ्कारौँ। यथा स्त्रीपुरुषयोः सह वर्त्तमानेनापत्यान्युत्पद्यन्ते तथैव रात्रिंदिवयोः सह वर्त्तमानेन सर्वे व्यवहारा जायन्ते। यथा च सूर्य्यप्रकाशभूमिच्छायाभ्यां विनैतयोरुत्पत्तिर्भवितुं न शक्या तथा दम्पतीभ्यो विना मैथुनसृष्ट्युत्पत्तिरसंभवा॥११॥

पदार्थ:-हे (श्रवसावन्) ज़लयुक्त (दस्म) अविद्यान्धकार विनाशक सभापते! तू जैसे (सनायुवः) सनातन कर्म के अरनेवालों के समान आचरण करते (नमसा) अत्र वा नमस्कार तथा (अर्कैः) मन्त्र अर्थात् विचारों के साथ वर्त्तमान (वसूयवः) अपने लिये विद्या, धनों और (मनीषाः) विज्ञानों के इच्छा करने (मतयः) सबको जाननेवाले विद्वान् लोग (न) जैसे (नव्यः) नवीन (उशतीः) काम की चेशा से एक्त (पत्नीः) स्त्री (उशन्तम्) काम की इच्छा करनेवाले (पतिम्) पति का (स्पृशन्ति) आलिङ्गद्ध करती हैं और जैसे (दद्धः) कुटिल गित को प्राप्त होनेवालों को जानते हैं, वैसे (त्वा) तुझको प्रजार्थवें। ११॥

अष्टक-१। अध्याय-५। वर्ग-१-३

मण्डल-१। अनुवाक-११। सूक्त-६२

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। मनुष्यों को समझना चाहिये कि जैसे स्त्री-पुरुषों के साथ वर्त्तमान होने से सन्तानों की उत्पत्ति होती है, वैसे ही रात-दिनों के एक-साअ वर्तमान होने से सब व्यवहार सिद्ध होते हैं। और जैसे सूर्य का प्रकाश और पृथिवी की शाया के विना रात और दिन का सम्भव नहीं होता, वैसे ही स्त्री-पुरुष के विना मैथुनी सृष्टि नहीं हो सकती ११॥

अथ सूर्यसभाद्यध्यक्षयोर्गुणा उपदिश्यन्ते॥

अब अगले मन्त्र में सूर्य्य और सभापति आदि के गुणों का उपदेश किया है।

स्नादेव तव रायो गर्भस्तौ न क्षीयन्ते नोर्प दस्यन्ति दस्म। द्युमाँ असि क्रतुमाँ इन्द्र धीरः शिक्षा शचीवस्तवं नः श्र्चीभिः॥ १२)

सुनात्। एव। तर्व। रार्यः। गर्भस्तौ। न। क्षीर्यन्ते। न। उर्प। दुस्युन्ति। दुस्पा द्युऽमान्। असि। क्रतुंऽमान्। इन्द्र। धीर्रः। शिक्षं। शृचीऽवः। तर्व। नः। श्रचीभिः॥ १२॥

पदार्थ:-(सनात्) सनातनात् (एव) निश्चये (तव) सभीध्यक्षस्य (रायः) धनानि (गभस्तौ) नीति प्रकाशे। गभस्तय इति रिश्मनामसु पठितम्। (निघं०१.५) (म) निषेधं (क्षीयन्ते) क्षीणानि भवन्ति (न) निषेधं (उप) सामीप्ये (दस्यन्ति) नश्यन्ति (दस्म) क्ष्त्रोरुपक्षेतः (द्यम्) विद्यादिसद्गुणप्रकाशयुक्तः (असि) (क्षतुमान्) प्रज्ञावान् (इन्द्र) परमधनवन् परमधनहेर्नुर्वा (धीरः) ध्यानवान् (शिक्ष्) उपदिश (शचीवः) शची प्रशस्ता वाक् प्रज्ञा कर्म वा घद्यतेऽस्मिन् तत्सम्बुद्धौ। शचीति प्रज्ञानामसु पठितम्। (निघं०३.९) कर्मनामसु पठितम्। (निघं०२.११) (तव) भवत्प्रबन्धं (नः) अस्मान् (शचीभिः) कर्मभिः॥१२॥

अन्वय:-हे दस्म शचीव इन्द्र! यस्ति द्युमीन् ऋतुमान् धीरोऽसि तस्य तव गभस्तौ सनाद्रायो नैव क्षीयन्ते, तव नोपदस्यन्ति स त्वं शचीभिर्नोऽस्मान् श्रिक्षा १२॥

भावार्थ:-यः सनातनार्द्धदिवज्ञानात् शिक्षां प्राप्य सभाद्यध्यक्षो भूत्वा प्रजाः पालयेत्, स मनुष्यो धार्मिको वेद्यः॥१२॥

पदार्थ:-हे (दस्प) शत्रुओं के नाश करनेवाले (शचीव:) उत्तम बुद्धि वा वाणी से युक्त (इन्द्र) उत्तम धनवाले सभाध्यक्ष! जो आप (द्युमान्) विद्यादि श्रेष्ठ गुणों के प्रकाश से युक्त (क्रतुमान्) बुद्धि से विचार कर कर्म करनेवाले (धीर:) ध्यानी (असि) हैं, उस (तव) आपके (गभस्तौ) राजनीति के प्रकाश में (सनात्) सनाक्त से (राय:) धन (नैव) नहीं (क्षीयन्ते) क्षीण तथा (तव) आपके प्रबन्ध में (न) नहीं (उपदस्यत्ति) नष्ट होते हैं, सो आप अपनी (शचीभि:) बुद्धि, वाणी और कर्म से (न:) हम लोगों को (शिक्ष) उपदेश दीजिये॥१२॥

७४४

ऋग्वेदभाष्यम्

भावार्थ:-मनुष्यो को चाहिये कि जो सनातन वेद के ज्ञान से शिक्षा को और सभापित आदि के अधिकार को प्राप्त होके प्रजा का पालन करे, उसी मनुष्य को धर्मात्मा जानें॥१२॥

पुनः सभाध्यक्षगुणा उपदिश्यन्ते॥

फिर सभाध्यक्ष के गुणों का उपदेश किया है।।

सनायते गोर्तम इन्द्र नव्यमतेश्चद् ब्रह्म हिर्योर्जनाय।

सुनीर्थाय नः शवसान नोधाः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात्॥ १३॥ ३॥

सुनाऽयते। गोर्तमः। इन्द्रा नव्यम्। अर्तक्षत्। ब्रह्मं। हुरिऽयोर्जनाय। सुऽनीर्थायं। नुः। शुवसान्। नोधाः। प्रातः। मुक्षु। ध्याऽवसुः। जुगुम्यात्॥ १३॥

पदार्थ:-(सनायते) सना सनातन इवाचरित (गोतमः) गच्छतिति गो. स्त्रीता सोऽतिशयितः सः (इन्द्र) परमैश्वर्यवन् (नव्यम्) नवीनम् (अतक्षत्) तनूकरोति (ब्रह्म) बृहद्धनेमत्रं वा। ब्रह्मेति धननामसु पिठतम्। (निघं०२.१०) अत्रनामसु पिठतम्। (निघं०२.७) (हिपयोजनाय) हरीणां मनुष्याणां योजनाय समाधानाय। हरय इति मनुष्यनामसु पिठतम्। (निघं०२ १०) (सुनौथार्य) सुखानां सुष्ठु प्रापणाय (नः) अस्मान् (शवसान) बलयुक्त (नोधाः) स्तोता। नवो धुट् च (क्रणा०४.२२३) अनेनौणादिकसूत्रेणास्य सिद्धिः। (प्रातः) प्रतिदिनम् (मक्षु) शीघ्रम् (धियावसुः) यः प्रज्ञयां कर्मणा वा वसित सः (जगम्यात्) पुनः पुनः प्राप्नुयात्॥१३॥

अन्वय:-हे शवसानेन्द्र गोतमो धियावसुर्नोधा भवान् इस्योजनाय नव्यं ब्रह्मातक्षत्तनूकरोति नोऽस्मभ्यं सुनीथाय प्रातर्मक्षु सनायते नोऽस्मान् सद्यो जगम्यात्॥१३॥

भावार्थ:-सभाद्यध्यक्षो मनुष्येभ्यो हिताय प्रतिदिनं नवीनं धनमत्रं च प्रापयेत्। यथा प्राणो वायु: सुखानि प्रापयित तथैव सर्व्यन् सुख्येत्।।१३॥

अस्मिन् सूक्त ईश्वरूसभाध्यक्षाहोरात्रविद्वत्सूर्य्यवायुगुणानां वर्णनादेतदर्थस्यैकषष्टितम-सूक्तार्थेन सह सङ्गतिर्वेद्या॥

इति ब्रिक्षष्टितमं ६२ सूक्तं तृतीयो ३ वर्गश्च समाप्त:॥

पदार्थ:-हे (शवसान) बलयुक्त (इन्द्र) उत्तम धनवाले सभाध्यक्ष (धियावसुः) बुद्धि और कर्म के साथ बस्नेवाले (गोतमः) अत्यन्त स्तुति के योग्य तथा (नोधाः) स्तुति करनेवाले आप (हिरियोजनायः) मेनुष्यों से समाधान के लिये (नव्यम्) नवीन (ब्रह्म) बड़े धन को (अतक्षत्) क्षीण करते हो (नः) हम लोगों को (सुनीथाय) सुखों की प्राप्ति के लिये (प्रातः) प्रतिदिन (मक्षु) शीघ्र (सनायते) सनावन के समान आचरण करते हो तथा (नः) हम लोगों के सुखों के लिये शीघ्र (जगम्यात्) प्राप्त हो। १३००

अष्टक-१। अध्याय-५। वर्ग-१-३

मण्डल-१। अनुवाक-११। सूक्त-६२

भावार्थ:-सभापित आदि को चाहिये कि मनुष्यों के हित के लिये प्रतिदिन नवीन-नवीन धन और अन्न को उत्पन्न करें। जैसे प्राणवायु से मनुष्यों को सुख होते हैं, वैसे ही सभाध्यक्ष स्विक सुखी करें॥१३॥

इस सूक्त में ईश्वर, सभाध्यक्ष, दिन, रात, विद्वान्, सूर्य और वायु के गुणों का वर्णन होने से पूर्व सूक्तार्थ के साथ इस सूक्तार्थ की सङ्गति जाननी चाहिये॥

यह बासठवां ६२ सूक्त और तीसरा ३ वर्ग पूरा हुआ॥६ साइम

अथ नवर्चस्य त्रिषष्टितमस्य सूक्तस्य गोतमो नोधा ऋषिः। इन्द्रो देवता। १,७-९ भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः। ३ विराट् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः। २,४ विराट् त्रिष्टुष्छन्दः। धैवतः

 \bigcirc

स्वर:। ५ भुरिगार्षी जगती छन्द:। निषाद: स्वर:। ६ स्वराडार्षी बृहती छन्द:। मध्यम: स्वर्र:।।

यद्येतेषां रावणोवटसायणमहीधरमोक्षमूलरादीनां छन्दोविज्ञानमपि नास्ति तर्हि वेदार्थं व्याख्यानानर्थस्य तु

का कथा॥

अथेश्वरगुणा उपदिश्यन्ते॥

अब त्रेसठवें सूक्त का आरम्भ है, उसके पहिले मन्त्र में ईश्वर के गुणों का उपदेश किया है।।

त्वं महाँ ईन्द्र यो ह शुष्मैर्द्यावां जज्ञानः पृथिवी अमे धाः। यद्धं ते विश्वां गि्रयंश्चिदभ्वां भिया दृळ्हासः कि्रणा नैजेत्॥ १॥

त्वम्। महान्। इन्द्र। यः। हु। शुष्पैः। द्यावां। जुज्ञानः। पृथिवी इति। अमे धाः। यत्। हु। ते। विश्वां। गिरयंः। चित्। अभ्वां। भिया। दृळ्हासंः। किरणाः। न। ऐर्जन्॥ १॥

पदार्थ:-(त्वम्) (महान्) गुणैरिधकः (इन्द्र) परमैश्चर्यप्रद (यूः) उक्तार्थः (ह) किल (शुष्मैः) बलादिभिः (द्यावा) प्रकाशम् (जज्ञानः) प्रसिद्धः (पृथिवी) भूमि, (अमे) गृहे (धाः) दधासि (यत्) ये (ह) प्रसिद्धम् (ते) तव (विश्वा) सर्वे (गिरयः) शैल मिघा वा (चित्) अपि (अभ्वा) नोत्पद्यते कदाचित् तेन कारणेन सह वर्तमानाः (भिया) भयेन (दृढामः) दृंहितोः (किरणाः) कान्तयः (न) निषेधे (ऐजन्) एजन्ति॥१॥

अन्वय:-हे इन्द्र! यस्त्वं महान् जज्ञान् राष्ट्रीस्पे ह ह्यावापृथिवी धा दधासि ते तवाभ्वा सामर्थ्येन भिया भयेन ह प्रसिद्धं यद्ये विश्वा गिरयो दृढास: सन्त: किरपाश्चिदिपि नैजा कम्पन्ते॥१॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्नोपमालङ्कार:। मनुष्यैर्य: परमेश्वर: स्वकीयसामर्थ्यबलादिभि: सर्वं जगद्रचित्वा स्वसामर्थ्येन दृढं ध्राति स एवं सर्वदोपास्य:। ये सूर्यलोकेन स्वकीयाकर्षगुणेन पृथिव्यादयो लोका ध्रियन्ते सोऽपि परमेश्वरेण स्चितो धारित इति बोध्यम्॥१॥

पदार्थ:-हे (इन्ह्र) इत्तम् सम्पदा के देनेवाले परमात्मन्! जो (त्वम्) आप (महान्) गुणों से अनन्त (जज्ञानः) प्रसिद्ध (शृष्मैः) बलादि के (अमे) प्रकाश में (ह) निश्चय करके (द्यावापृथिवी) प्रकाश और पृथिवी को (थाः) धारण करते हो (ते) आपके (अभ्वा) उत्पन्न रहित सामर्थ्य के (भिया) भय से (ह) ही (यत्) जो (विश्वा) सब (गिरयः) पर्वत वा मेघ (दृढासः) दृढ़ हुए (चित्) और (किरणाः) कान्ति (नैजृत्) केश्री कम्प को प्राप्त नहीं होते॥१॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को ऐसा समझना चाहिये कि जो परमे<mark>श्वर अपूरे</mark> सामर्थ्य और बल आदि से सब जगत् को रच के दृढ़ता से धारण करता है, उसी की सब अष्टक-१। अध्याय-५। वर्ग-४-५

मण्डल-१। अनुवाक-११। सूक्त-६३

काल में उपासना करें तथा जिस सूर्य्यलोक ने अपने आकर्षण आदि गुणों से पृथिवी आदि लोकों को धारण किया है, उसको भी परमेश्वर का बनाया और धारण किया जानें॥१॥

पुन: सभाद्यध्यक्षगुणा उपदिश्यन्ते॥

अब अगले मन्त्र में सभापति आदि के गुणों का उपदेश किया है॥

आ यद्धरी इन्द्र विव्नेता वेरा ते वज्रं जित्ता बाह्वोधीत्। येनाविहर्यतक्रतो अमित्रान् पुरं इष्णासि पुरुहूत पूर्वी:॥२॥

आ। यत्। हरी इति। इन्द्र। विऽव्नेता। वे:। आ। ते। वर्ज्रम्। जित्ता। ब्रह्मिः। धात्। येने। अविहर्यतक्रतो इत्येविहर्य्यतऽक्रतो। अमित्रोन्। पुर्रः। इष्णासि। पुरुहृत्। पूर्वी:॥२॥

पदार्थ:-(आ) समन्तात् (यत्) यस्मात् (हरी) सद्व्यवहरिहरणश्रीकृतसेनान्यायप्रकाशौ (इन्द्र) परमैश्वर्यकारक सभाध्यक्ष (विव्रता) विविधानि व्रतानि श्रीलिनि ग्राभ्यां तौ (वे:) विद्धि। अत्रोभयत्राडभावः। (आ) आभिमुख्ये (ते) तव (वज्रम्) आन्नाप्रनं शस्त्रसमूहं वा (जिरता) सर्वविद्यास्तोता (बाह्नोः) बलवीर्ययोः (धात्) दधाति (येन) विज्ञण (अविहर्यतक्रतो) न विद्यन्ते विरुद्धा हर्य्यताः प्रज्ञाकर्माणि यस्य तत्सम्बुद्धौ (अिमत्रान्) शत्त्रन् (पुरः) नगरीः (इष्णासि) अभीक्ष्णं प्राप्नोषि गच्छिस वा (पुरुहूत) बहुभिविद्विद्धः पूजित (पूर्विः) पूर्वेषा सम्बन्धिनीः॥२॥

अन्वयः-हे अविहर्यतक्रतो पुरुहूतेन्द्र सभाद्गध्यक्ष! त्वं यद्धस्माद्विव्रतो हरी आवेः समन्ताद् विद्धि। येनामित्रान् हंसि येन शत्रूणां पूर्वीः पुर इष्णासि तत्पराज्याय स्विचिज्ञाभीक्षणं गच्छसि तस्माज्जरिता ते तव बाह्बोराश्रयेण वज्रमाधाद्दधाति॥२॥

भावार्थ:-सभाद्यक्षेणैवं शील गुणाम् कर्माणि च स्वीकार्याणि यतः सर्वे मनुष्यास्तदेतद् दृष्ट्वा शिष्टा भृत्वा निष्कण्टकं राज्यसुखं सर्वेदा भूऔरन्निति॥२॥

पदार्थ: - हे (अविहर्म्यक्रतो) दुष्ट बुद्धि और पाप कर्मों से रहित (पुरुहूत) बहुत विद्वानों से सत्कार को प्राप्त करानेवाले सभावध्यक्ष! आप (यत्) जिस कारण (विव्रता) नाना प्रकार के नियमों के उत्पन्न करनेवाले (हरी) सन् और न्यायप्रकाश को (आवे:) अच्छे प्रकार जानते हो (येन) जिस वज्र से (अमित्रान्) शत्रुओं को मारते कथा जिससे उनके (पूर्वी:) बहुत (पुर:) नगरों को (इष्णािस) जीतने के लिये इच्छा करते और शत्रुओं के पराजय और अपने विजय के लिये प्रतिक्षण जाते हो, इससे (जिरता) सब विद्याओं की स्तुति करनेवाला मनुष्य (ते) आपके (बाह्वो:) भुजाओं के बल के आश्रय से (वज्रम्) वज्र को (आधान्) धारण करता है॥२॥

७४८

ऋग्वेदभाष्यम्

भावार्थ:-सभापित आदि को उचित है कि इस प्रकार के उत्तम स्वभाव, गुण और कर्मों को स्वीकार करें कि जिससे सब मनुष्य इस कर्म को देख तथा शिष्ट होकर निष्कण्टक राज्य के सुख को सदा भोगें॥२॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह सभाध्यक्ष कैसा हो, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया ही।

त्वं सत्य ईन्द्र धृष्णुरेतान् त्वमृशुक्षा नर्यस्त्वं षाट्। त्वं शुष्णं वृजने पृक्ष आणौ यूने कुत्साय द्युमते सर्चाहन्॥३॥

त्वम्। सृत्यः। इन्द्रः। धृष्णुः। एतान्। त्वम्। ऋभुक्षाः। नर्यः। त्वम्। प्राट्या विम्। शृष्णीम्। वृजने। पृक्षे। आणौ। यूने। कुत्साय। द्युऽमते। सर्चा। अहुन्॥३॥

पदार्थ:-(त्वम्) निरूपितपूर्वः (सत्यः) सत्सु साधुर्जीवस्वरूपेणानादिस्वरूपो वा (इन्द्र) परमैश्वर्यप्रापक (धृष्णुः) दृढः (एतान्) मित्रान् शत्रून् वा (त्वम्) (ऋश्वः) महान्। ऋभुक्षा इति महन्नामसु पठितम्। (निघं०३.३) (नर्य्यः) नृषु साधुर्नृभ्यो हितो वा (त्वम्) (षाट्) सहनशीलः। वा छन्दिस विधयो भवन्तीति केवलादिप ण्वः। (त्वम्) (शुष्णम्) बल्मे (वृजने) वृजते शत्रून् येन तस्मिन् (पृक्षे) पृचन्ति संयुञ्जन्ति यस्मिन् (आणौ) संग्रामे (यूने) ऋरीरात्यमीः पूर्णं बलं प्राप्ताय (कुत्साय) कुत्सः प्रशस्तो वज्रः शस्त्रसमूहो वा यस्य तस्मै धृतवज्राय (द्युमते) द्वाः प्रशस्तो विद्याप्रकाशो विद्यते यस्मिंस्तस्मै (सचा) शिष्टसमवायेन सह (अहन्) शत्रून् हंस्मि। ३॥

अन्वय:-हे इन्द्र! यतस्त्वं सत्योऽसि यतस्त्वं धृष्णुर्गूर्स यतस्त्वमृभुक्षा असि यतस्त्वं नर्य्योऽसि यतस्त्वं षाडसि तस्माद् वृजने पृक्ष आणौ सचा सत्समवायेन कुत्साय द्युमेने यूने शूष्णं शरीरात्मबलं ददासि शत्रूनहन् हंस्येतान् धार्मिकान् पालयसि तस्मात् पूज्योऽसि॥३॥

भावार्थ:-निह सभासभाद्यध्यक्षाभ्यां विना शत्रुपराजयो राज्यपालनं च यथावज्जायते तस्माच्छिष्टगुणयुक्ताभ्यामेताभ्यामेते कार्य्ये सुवैर्भनुष्येः कारियतव्ये इति ॥३॥

पदार्थ:-हे (इन्द्र) उत्तप सम्प्रदा के देनेवाले सभाध्यक्ष! (त्वम्) आप जिस कारण (सत्य:) जीव स्वरूप से अनादि हो, जिस कारण (त्वम्) आप (धृष्णु:) दृढ़ हो तथा जिस कारण (त्वम्) आप (ऋभुक्षा:) गुणों स्ने बड़े (नर्व्य:) मनुष्यों के बीच चतुर और (षाट्) सहनशील हो, इससे (वृजने) जिसमें शत्रुओं को प्राप्त होते हैं (पृक्ष) संयुक्त इकट्ठे होते हैं, जिसमें उस (आणौ) संग्राम में (सचा) शिष्टों के सम्बन्ध से (कृत्साय) शस्त्रों को धारण किये (द्युमते) उत्तम प्रकाशयुक्त (यूने) शरीर और आत्मा के बल को प्राप्त्र हुए मनुष्य के लिये (शुष्णम्) पूर्ण बल को देते हो। जिस कारण आप शत्रुओं को (अहन्) मारते तथा (एतान्) इन धर्मात्मा श्रेष्ठ पुरुषों का पालन करते हो, इससे पूजने योग्य हो॥३॥

अष्टक-१। अध्याय-५। वर्ग-४-५

मण्डल-१। अनुवाक-११। सूक्त-६३

भावार्थ:-सभा और सभापित के विना शत्रुओं का पराजय और राज्य का पालन किसी से नहीं हो सकता। इसिलये श्रेष्ठ गुणवालों की सभा और सभापित से इन सब कार्य्यों को सिद्ध करिना सनुष्यों का मुख्य काम है॥३॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह पूर्वोक्त सभाध्यक्ष कैसा हो, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में 🕭 या है।।

त्वं ह त्यदिन्द्र चोदीः सर्खा वृत्रं यद्वीत्रन्वृषकर्मन्नुभ्नाः।

यद्धं शूर वृषमणः पराचैर्वि दस्यूँर्योनावकृतो वृथाषाट्॥४॥

त्वम्। हु। त्यत्। इन्द्रः। चोदीः। सर्खाः। वृत्रम्। यत्। वृत्रिन्। वृष्ठऽकर्म्त्रः। यत्। हु। श्रूरः। वृष्ऽमनः। प्राचैः। वि। दस्यून्। योनौ अकृतः। वृथाषाट्॥४॥

पदार्थ:-(त्वम्) सभाद्यध्यक्षः (ह) खलु (त्यत्) तम् (ह्न्ह्रं) सदगुण्धारक (चोदीः) शुभे कर्मणि प्रेरयसि (सखा) सहत् (वृत्रम्) मेघमिव सुखावरकं शत्रुम् (यत्) वरमाद् (विद्रम्) प्रशस्तशस्त्रसमूहयुक्त (वृषकर्मन्) वृषस्य श्रेष्ठस्येव कर्माणि यस्य सः (उभाः) प्राह्मि अत्र व्यत्ययेन श्ना। (यत्) यः (ह) खलु (शूर) निर्भय (वृषमणः) वृषेषु शूरवीरेषु मन्ने विज्ञानं यस्य तत्सम्बुद्धौ (पराचैः) दूरार्थे। अत्र बाहुलकात्परोपदादिप चिधातोर्डसिः प्रत्ययः। (वि) विविधार्थे (दस्यून्) परस्वापहारकान् (योनौ) गृहे। योनिरिति गृहनामसु पठितम्। (निघं०३.४) (अकृतः) कृन्तिस (वृथाषाट्) यो वृथाऽनायासेन सहते सः॥४॥

अन्वयः-हे विज्ञित्तिन्द्र! यस्मात्त्वं ह यतं वृत्रं प्रश्नेपसि। तस्माच्छिष्टानां पालने समर्थोऽसि। हे वृषकर्मित्रन्द्र! यद्यतस्त्वं सखासि तस्मात्सखीम् पालयसि। हे शूर! यस्त्वं ह खलु दस्यून् पराचैरकृतः पृथक् पृथक् विच्छिनित्स तस्मात् प्रजारिक्षतुं योग्योद्धि। हे वृषमण इन्द्र! यतस्त्वं सुखान्युभ्नाः प्रपूर्द्धि तस्मात् सत्कर्त्तव्योऽसि। इन्द्र! यतस्त्वं वृथाषाडसि तस्माद्योनौ गृहे पूर्वान् सुखैरुभ्नाः।।४॥

भावार्थ:-मनुष्येर्थ्य सूत्र्यः स्वप्रकशिन सर्वानानन्द्य मेघमुत्पाद्य वर्षयति, अन्धकारं निवार्य प्रकाशते तथैव सभाद्यध्यक्षे विद्यादिशुभगुणैः सर्वान् सुखयित्वा शरीरात्मबलमुत्पाद्य धर्मशिक्षाभयानि वर्षित्वाऽधर्मान्धकारशत्रुन् निचार्य राज्ये प्रकाशेत॥४॥

पदार्थ: है (विज्ञिन्) उत्तम शस्त्रों के धारण करने तथा (इन्द्र) उत्तम गुणों के जाननेवाले सभाध्यक्ष! जिस्र कारण (त्वम्) आप (ह) निश्चय करके (त्यत्) उस (वृत्रम्) शत्रु को (पराचै:) दूर (चोदी:) कर देते हो, इसी कारण श्रेष्ठ पुरुषों के धारण और पालन करने को समर्थ हो। हे (वृषकर्मन्) श्रेष्ठ मृतुष्यों के समान उत्तम कर्मों के करनेवाले सभाध्यक्ष! (यत्) जिस कारण आप (सखा) सबके मित्र हो, इसीसे मित्रों की रक्षा करते हो। हे (शूर) निर्भय सेनाध्यक्ष! (यत्) जो आप (ह) निश्चय करके

(दस्यून्) दूसरे के पदार्थों को छीन लेनेवाले दुष्टों को (अकृत:) दूर से (वि) विशेष कर के छेदन करते हो, इससे प्रजा की रक्षा करने के योग्य हो। हे (वृषमण:) शूरवीरों में विचारशील सभाध्यक्ष! आप जिस कारण सुखों को (उभ्ना:) पूर्ण करते हो, इससे सत्कार करने के योग्य हो। तथा हे सभाध्यक्ष! जिस कारण आप (वृथाषाट्) सहज स्वभाव से सहन करनेवाले हो, इससे (योनी) घर में रहनेवाले सब मनुष्यों के सुखों को पूर्ण करते हो॥४॥

भावार्थ:-मनुष्यों को चाहिये कि जैसे सूर्य्य अपने प्रकाश से सबको आनिन्द्रत कर तथा मेघ को उत्पन्न करके वर्षाता है और अन्धकार को निवारण करके अपने प्रकाश को फैब्राता है, वैसे ही सभाध्यक्ष विद्यादि उत्तम गुणों से सबको सुखी, शरीर वा आत्मा के बल को सिद्ध, वर्म, शिक्षा, अभय आदि की वर्षा, अधर्मरूपी अन्धकार और शत्रुओं का निवारण करके राज्य में प्रकृशित होवे। ।।

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह उक्त सभाध्यक्ष कैसा है, इस विषय का उपवेश अगले मन्त्र में किया है॥

त्वं हु त्यदिन्द्रारिषण्यन् दृळ्हस्यं चिन्मर्तानामजुष्टौ। व्यर्थस्मदा काष्टा अर्वते वर्धनेवं वज्रिञ्चछ्नथिद्धिमित्रान्।। ४॥

त्वम्। हु। त्यत्। इन्द्र्। अरिषण्यन्। दृळ्हस्यं। चित्रः मर्तानाम्। अर्जुष्टौ। वि। अस्मत्। आ। काष्टाः। अर्वते। वुः। घुनाऽइंव। वुज्जिन्। श्नृथिहि। अमित्रान्॥५॥

पदार्थ:-(त्वम्) उक्तार्थः (ह) प्रसिद्धम् (त्यत्) क्रस्य (इन्द्र) सभाद्यध्यक्ष! (अरिषण्यन्) आत्मनो रिषं हिंसनमनिच्छन्। अत्र दुरस्युर्द्रविणस्तुवा (अष्ट्रा०७.४.३६) अनेनेत्वनिषेधः। (दृढस्य) स्थिरस्य (चित्) अपि (मर्त्तानाम्) मनुष्याणाम् (अजुष्टे) अप्रतीतावसेवने (वि) (अस्मत्) अस्माकं सकाशात् (आ) अभितः (काष्टाः) दिशः प्रति (अर्वते) अश्वादियुक्ताय सैन्याय (वः) वृणोषि (घनेव) यथा घनेन तथा (वज्रिन्) प्रशस्तो वज्रः शस्त्रसमृह्या विद्यते सस्य तत्सम्बुद्धौ (श्रनिष्टिह) हिन्धि (अमित्रान्) धर्मविरोधिनो मनुष्यान्॥५॥

अन्वय:-हे अरिष्यान विजिन्नित्र. त्वं ह प्रसिद्धमस्मदर्वते व्याव:। त्यत्तस्य दृढस्य राज्यस्य मर्त्तानां चिदप्यजुष्टौ घनेवामित्रान् काष्टाः श्निथिहि ॥५

भावार्थ: अत्रोपमालङ्कार:। सभाद्यध्यक्षाभ्यां राज्यसेनयोः प्रीतिमुत्पाद्य शत्रुषु द्वेषश्चेति यथा सूर्यो मेघान् छिनत्ति तथैव दुष्टाः सदा छेत्तव्याः॥५॥

पृदार्थ: - हैं (अरिषण्यन्) अपने शरीर से हिंसा अधर्म्म की इच्छा नहीं करने वाले (विज्ञन्) उत्तम आयुधों से युक्त (इन्द्र) सभापते! (त्वम्) आप (ह) प्रसिद्ध (अस्मत्) हम लोगों से (अर्वते) घोड़े आदि धनों से युक्त सेना के लिये (व्याव:) अनेक प्रकार स्वीकार करते हो (त्यत्) उस (दृढस्य) स्थिर राज्य

अष्टक-१। अध्याय-५। वर्ग-४-५

मण्डल-१। अनुवाक-११। सूक्त-६३

(चित्) और (मर्त्तानाम्) प्रजा के मनुष्यों को शत्रुओं की (अजुष्टौ) अप्रीति होने में (घनेव) जैसे सूर्य मेघों को काटता (अमित्रान्) धर्म्मविरोधी शत्रुओं को (काष्टाः) दिशाओं के प्रति (श्निष्टिहि) मारो॥ प्रा

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। सभा सभापित आदि को उचित है कि राज्य तथा सिन में प्रीति उत्पन्न और शत्रुओं में द्वेष करके जैसे सूर्य मेघों का नित्य छेदन करता है, वैसे दुष्ट शत्रुओं का सदैव छेदन किया करें॥५॥

पुनर्मनुष्यैरीश्वरसभाध्यक्षयोः सहायः क्व क्व प्रेप्सितव्य इत्युपद्भिष्टेक्ते॥

फिर मनुष्यों को ईश्वर और सभापित आदि के सहाय की इच्छा कहाँ-कहाँ करनी चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

त्वां हु त्यदिन्द्राणीसातौ स्वीमीळहे नर् आजा हीवन्ते। तर्व स्वधाव इयमा सीमुर्य ऊतिर्वाजीष्वतसाय्या भूत्॥

त्वाम्। हु। त्यत्। इन्द्र। अर्णंऽसातौ। स्वं:ऽमीळ्हे। नरं:। आजा हुव्रन्ते। तवं। स्वधाऽवः। इयम्। आ। सुऽमुर्ये। कुतिः। वाजेषु। अतुसाय्यां। भूत्॥६॥

पदार्थ:-(त्वाम्) जगदीश्वरं सभाध्यक्षं वा (ह) खलु (त्यत्) तस्मिन् (इन्द्र) परमैश्वर्यप्रापक (अर्णसातौ) अर्णानां विजयप्रापकाणां योद्धृणां स्मृतिर्थिस्मिस्त्रास्मिन् (स्वमीढे) स्वः सुखस्य मीढः सेचनं यस्मिन् तस्मिन्। (नरः) नयनकर्तारो मनुष्याः (आजा) संग्रामे (हवन्ते) स्पर्द्धन्ते प्रेप्सन्ते (तव) (स्वधावः) प्रशस्तं स्वधात्रं विद्यते तस्य तस्मृबुद्धौ (इयम्) वक्ष्यमाणा (आ) अभितः (समर्थ्य) संग्रामे (ऊतिः) रक्षणादिका (वाजेषु) विज्ञानात्रसेन्मिष्यु (अत्मसाय्या) अतन्ति निरन्तरं सुखानि गच्छन्ति यया सा। अत्रातधातोर्बाहुलकादौणादिक आय्यप्रत्ययोऽसुगागमश्च। सायणाचार्य्यणेदं पदमतधातोराय्यप्रत्ययं वर्जयित्वा साय्य प्रत्ययान्तरं किल्क्लाऽद्यागमेन व्याख्यातं तदशुद्धम् (भृत्) भवतु॥६॥

अन्वयः-हे स्वधाव इन्त्र जैपदीश्वर सभाद्यभ्यक्ष! नरस्त्यन्नर्णसातौ स्वर्मीढ आजौ त्वां ह खल्वाहवन्ते। यतस्तव येयं समर्थ्ये वाजेष्वतसाय्योऽहिर्वृक्ते साउस्मृत् प्राप्ता भूत्॥६॥

भावार्थ:-अत्र खेषलङ्कार:। मनुष्यै: सर्वेषु धर्म्यकार्येषु कर्तव्येष्वीश्वरस्य सभाध्यक्षस्य च सहायं नित्यं सङ्गृह्य कार्य्यसिद्धिः कर्त्तव्या॥६॥

पदार्थः है (स्वधाव:) उत्तम अन्न और (इन्द्र) श्रेष्ठ ऐश्वर्य के प्राप्त करानेवाले जगदीश्वर वा सभाध्यक्ष (तर:) राजनीति के जाननेवाले मनुष्य (त्यत्) उस (अर्णसातौ) विजय की प्राप्ति करानेवाले शूरवीर ख्रोंद्धा, मनुष्यों का सेवन हो, जिस (स्वर्मीढे) सुख के सींचने से युक्त (आजौ) संग्राम में (त्वाम्) आपन्नो (ह) निश्चय करके (आहवन्ते) पुकारते हैं। जिस कारण (तव) आपकी जो (इयम्) यह (समर्थ्य)

संग्राम वा (वाजेषु) विज्ञान, अन्न और सेनादिकों में (अतसाय्या) निरन्तर सुखों की प्राप्ति करानेवील (ऊति:) रक्षण आदि क्रिया है, वह हम लोगों को प्राप्त (भूत्) होवे॥६॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि सब धर्मसम्बन्धी कार्स्यों में ईश्वर्र वा सभाध्यक्ष का सहाय लेके सम्पूर्ण कार्यों को सिद्ध करें॥६॥

अथ सभाद्यध्यक्षगुणा उपदिश्यन्ते॥

फिर अगले मन्त्र में सभापति आदि के गुणों का उपदेश किया है।

त्वं ह त्यदिन्द्र सप्त युध्यन् पुरो विज्ञन् पुरुकुत्सीय दर्दः। बहिर्न यत्सुदासे वृथा वर्गंहो राजन्वरिवः पूरवे कः॥७॥

त्वम्। हु। त्यत्। डुन्द्र। सुप्त। युध्यन्। पुर्रः। वृज्ञिन्। पुरुऽकुत्साय। हुर्द्वरिति दर्दः। ब्रहिः। न। यत्। सुऽदासे। वृथा। वर्क्। अंहोः। राजुन्। वरिवः। पूरवे। कुरिति कः॥७॥

पदार्थ:-(त्वम्) (ह) किल (त्यत्) तस्मै (हुन्रू) विज्यप्रद सभाद्यध्यक्ष (सप्त) सभासभासद्सभापितसेनासेनापितभृत्यप्रजाः (युध्यन्) युद्धं कुर्वन्ति अत्र व्यत्ययेन परस्मैपदम् अडभावश्च। (पुरः) शत्रुनगराणि (विज्रन्) प्रशस्तो वजः शस्त्र समृह्य यस्यास्तीति तत्संबुद्धौ (पुरुकुत्साय) बहुभिरविक्षप्ताय (दर्दः) पुनर्विदारय। अयं यङ्लुङ्ग्नः प्रयोगोऽङभावश्च। (बर्हिः) शुद्धमन्तरिक्षम्। (न) इव (यत्) (सुदासे) शोभना दासा दानकर्त्तारो यस्मिन् देशे ह्रस्मिन् (वृथा) व्यर्थे (वर्क्) वर्जयसि। अत्र मन्त्रे घसहर० इति च्लेर्लुक्। (अंहोः) प्राप्तह्य प्राप्तव्यस्य वा राज्यस्य (राजन्) प्रकाशक (वरिवः) परिचरणम् (पूरवे) प्रपूर्णाय सुखाय (कः) कर्षेषि। अत्र मन्त्रे घस० इति च्लेर्लुक्॥७॥

अन्वयः-हे विज्ञिन्निन्द्र राजन् सभाभिपते! व तम् सभादयः सप्त सन्ति तैः सह वर्त्तमानाः शत्रुभिः सह युध्यन् यतस्त्वं ह खलु तेषां पुरो दर्दो विदारयसि योजस्त्वमहो राज्यस्य पुरुकुत्साय पूरवे यद्वरिवः सुदासे बर्हिर्न को यद्वृथा मनुष्या वर्त्तन्ते त्यत्तान् वर्क् वर्जयसि तुमात्त्वं सर्वेर्युमाभिस्सत्कर्त्तव्योऽसि॥७॥

भावार्थ: -यथा सूर्यो जिम्हिताय मेर्थे छित्त्वा निपातयित तथैव सर्वाधीशः सभापितः सर्वेभ्यः प्राणिभ्यो हितं सम्पादयेत्र अस्त्री

पदार्थ:-हे (विजिन) उत्तीम शस्त्रों से युक्त (राजन्) प्रकाश करने तथा (इन्द्र) विजय के देनेवाले सभा के अधिपितृ! जो आपके (सप्त) सभा, सभासद, सेना, सेनापित, भृत्य, प्रजा ये सात हैं, उन्हीं के साथ प्रेम से वर्तमान होके शत्रुओं के साथ (युध्यन्) युद्ध करते हुए जिस कारण तुम उन शत्रुओं के (पुरः) नगूरों को (दर्दः) विदारण करते हो। जो आप (अंहोः) प्राप्त होने योग्य राज्य के (पुरुकुत्साय) बहुत मुनुष्यों को ग्रहण करने योग्य (पूरवे) पूर्ण सुख के लिये (यत्) जो (विरिवः) सेवन करने योग्य पदाश्री को (सुदासे) उत्तम दान करनेवाले मनुष्यों से युक्त देश में (बिर्हः) अन्तरिक्ष के (न) समान

अष्टक-१। अध्याय-५। वर्ग-४-५

मण्डल-१। अनुवाक-११। सूक्त-६३

(क:) करते हो (यत्) जो (वृथा) व्यर्थ काम करनेवाले मनुष्य हों (त्यत्) उनको (वर्क्) वर्जित करते हो, इस कारण हम सब लोगों को सत्कार करने योग्य हो॥७॥

भावार्थ:-जैसे सूर्य्य सब जगत् के हित के लिये मेघ को वर्षाता है, वैसे ही सबका स्वीमी सभापति सभों का हित सिद्ध करे॥७॥

पुनः सभाद्यध्यक्षविद्युतोर्गुणा उपदिश्यन्ते॥

अब सभाध्यक्षादि और विद्युत् अग्नि के गुणों का उपदेश किय्रा है।।

त्वं त्यां न इन्द्र देव चित्रामिष्माणे न पीपयः परिज्मन्। यया शूर् प्रत्यस्मभ्यं यंसि त्मनुमूर्जं न विश्वध् क्षर्रध्यै॥ ६॥⁄

त्वम्। त्याम्। नुः। डुन्द्र। देवा चित्राम्। इषम्। आपः। ना पीप्यः। परिऽज्मन्। यया। श्रूर्। प्रति। अस्मभ्यम्। यसि। त्मनेम्। ऊर्जम्। ना विश्वधी क्षरिध्यै॥८॥

पदार्थ:-(त्वम्) सभाद्यध्यक्षः सूर्यो वा (त्याम्) ताम् (नः) अस्माकम् (इन्द्र) सुखप्रद सुखहेतुर्वा (देव) विद्याशिक्षाप्रकाशक चक्षुर्हिता वा (चित्राम्) अद्भुतसुष्णिकाशिकाम् (इषम्) इच्छामन्नादिप्राप्तिं वा (आपः) जलानि (न) इव (पीपयः) पाययसि। ण्यन्तोठ्यं प्रयोपः (परिज्मन्) परितः सर्वतो जिह हिनस्ति दुष्टांस्तत्सम्बुद्धौ विद्यद्वा (यया) उक्तया (शूर्) निर्भय निर्भयहेतुर्वा (प्रति) वीप्सायाम् (अस्मभ्यम्) (यसि) दुष्टाचारात्रिरुणत्सि। अत्र शपो लुक्पा (त्मनन्) आत्मानम्। अत्र वाच्छन्दिस सर्वे विधयो भवन्तीत्याकारलोपः। उपधादीर्घत्वनिष्णेश्व। सायणाचार्य्येणेदं पदमुपधादीर्घत्वनिष्धकरं वचनमविज्ञायाशुद्धं व्याख्यातम् (ऊर्जम्) पराक्रमम्ब्यं वा (न) इव (विश्वध) विश्वं दधातीति तत्सम्बुद्धौ (क्षरध्ये) क्षरितुं संचिलतुम्॥८॥

अन्वय:-हे विद्युदिव परिज्ञान् विश्वध्य श्रेर देवेन्द्र सभाद्यध्यक्ष! यथा त्वं यया नोऽस्माकं त्मनमात्मानं क्षरध्या कर्जं न संचलितुमत्रं पराक्रममिव ग्रीस त्यां तां चित्रागिषमस्मभ्यमापो न जलानीव प्रतिपीपय: पाययिस तथा वयमिप त्वां संतोषयेम॥८॥

भावार्थ:-अत्र वाच्कितुर्वोपमालङ्कार:। यथाऽत्रं क्षुधं यथा च जलं पिपासां निवार्य्य सर्वान् प्राणिन: सुखयतस्तृथैव सभावश्यक्ष: सर्वान्सुखयेत्॥८॥

पदार्थ; है जिज़लों के समान (परिज्मन्) सब ओर से दुष्टों के नष्ट करने (विश्वध) विश्व के धारण करने (शूर) निर्मष् (देख) विद्या और शिक्षा के प्रकाश करने और (इन्द्र) सुखों के देनेवाले सभाध्यक्ष! जैसे (त्व्रस्) आप (ख्रया) जिससे (न:) हम लोगों के (त्मनम्) आत्मा को (क्षरध्ये) चलायमान होने को (ऊर्जम्) अत्र वा पराक्रम के (न) समान (यंसि) दुष्ट काम से रोक देते हो (त्यम्) उस (चित्राम्) अद्भुत

७५४

सुखों को करनेवाली (इषम्) इच्छा वा अन्न को (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिये (आपो न) जलो के समान (प्रतिपीपय:) वार-वार पिलाते हो, वैसे हम भी आपको अच्छे प्रकार प्रसन्न करें॥८॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे अन्न क्षुधा को और जल तृषा की निष्णि करके सब प्राणियों को सुखी करते हैं, वैसे सभापित आदि सबको सुखी करें॥८॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर भी उक्त सभाध्यक्ष कैसा हो, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किस्ना है।।

अकारि त इन्द्र गोर्तमेभिर्ब्रह्माण्योक्ता नर्मसा हरिभ्याम्।

सुपेश्रसं वाजमा भरा नः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात्॥९॥५((

अर्कारि। ते। इन्द्रा गोर्तमेभिः। ब्रह्माणि। आऽर्जक्ता। नर्मसा। हरिष्ट्रियाम्। सुरुपेष्ट्रीसम्। वार्जम्। आ। भुर्। नः। प्रातः। मुक्षु। ध्रियाऽर्वसुः। जुगुम्यात्॥९॥

पदार्थ:-(अकारि) क्रियते (ते) तव (इन्द्र) सभाद्यध्य (गोतमेभिः) ये गच्छन्ति जानन्ति प्राप्नुवन्ति विद्यादिशुभान् गुणांस्तैर्विद्वद्धिः किरणैर्वा। गौरिति पदनामसु प्रिंठतम्। (निघं०४.१) (ब्रह्माणि) बृहत्तमान्यन्नानि धनानि वा (ओक्ता) समन्तादुक्तानि प्रशंसिति (नमसा) अन्नेन। नम इति अन्ननामसु पिठतम्। (निघं०२.७) वज्रनामसु पिठतम्। (निघं०२.२) (हरिभ्याम्) हरणशीलाभ्याम् बलपराक्रमाभ्याम् (सुपेशसम्) शोभनानि पेशांसि रूपाणि यस्मात्तम् (वाजम्) विज्ञानकरम् (आ) समन्तात् (भर) धर (नः) अस्मभ्यम् (प्रातः) प्रतिदनम् (प्रभु) शीघ्रम् (धियावसुः) कर्मप्रज्ञाभ्यां सुखेषु वासयिता (जगम्यात्) पुनः पुनः प्राप्नुयात् (भर्)

अन्वयः-हे इन्द्र! सभाद्यध्यक्ष! ते तव येगितमोभः सुशिक्षितैः पुरुषैर्नमसा हरिभ्यां यान्योक्ता ब्रह्माण्यकारि तैः सह नोऽस्मभ्यं यथा धियावसुः सुपेशसं ब्राजं प्रतुर्जगम्यदितद्भरेच्च तथा त्वमेनत् सर्वं मक्ष्वाभर॥९॥

भावार्थ: -यथा विद्युत्पूर्य्यादिरूपेण सर्वं जगत्पोषित तथैव सभाद्यध्यक्षादय: प्रशस्तैर्धनादिभिर्युक्तां प्रजां कुर्यु: ॥९॥

अस्मिन् सूक्त ईश्वरसभाद्धध्यक्षाग्निगुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति बोध्यम्॥

इति त्रिषष्टितमं ६३ सूक्तं पञ्चमो ५ वर्गश्च समाप्त:॥

पदार्थः है (इन्द्र) सभा आदि के पित! (ते) आपके जिन (गोतमेभिः) विद्या से उत्तम शिक्षा को प्राप्त हुए शिक्षित पुरुषों से (नमसा) अन्न और धन (हिरिभ्याम्) बल और पराक्रम से जिन (ओक्ता) अच्छे प्रकार प्रशंसा किये हुए (ब्रह्माणि) बड़े-बड़े अन्न और धनों को (अकारि) करते हैं, उनके साथ (नः) हम कोगों के लिये उनको जैसे (धियावसुः) कर्म और बुद्धि से सुखों में बसानेवाला विद्वान् (पुषेशस्त्र) उत्तमरूप युक्त (वाजम्) विज्ञान समूह को (प्रातः) प्रतिदिन (जगम्यात्) पुनः-पुनः प्राप्त

अष्टक-१। अध्याय-५। वर्ग-४-५

मण्डल-१। अनुवाक-११। सूक्त-६३

होवे और इसका धारण करे, वैसे आप पूर्वोक्त सबको (मक्षु) शीघ्र (आ भर) सब ओर से धारण कीजिये॥९॥

भावार्थ:-जैसे बिजुली सूर्य्य आदि रूप से सब जगत् को आनन्दों से पुष्ट करती है, जैसे सभाध्यक्ष आदि भी उत्तम धन और श्रेष्ठ गुणों से प्रजा को पुष्ट करें॥९॥

इस सूक्त में ईश्वर, सभाद्यध्यक्ष और अग्नि के गुणों का वर्णन होने से सूक्तार्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ संगति समझनी चाहिये॥

यह त्रेसठवां ६३ सूक्त और पाचवां ५ वर्ग समाप्त हुआ।

अथ पञ्चदशर्चस्य चतु:षष्टितमस्य सूक्तस्य गौतमो नोधा ऋषि:। इन्द्रो देवता। १,४,६,९,१४ विराङ्जगती। २,३,५,७,१०,११,१३ निचृज्जगती। ८,१२ जगती छन्द:। निषाद: स्वर:

१५ निचृत्त्रिष्टुछन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथ वायुस्वरूपगुणदृष्टान्तेन विद्वद्गुणा उपदिश्यन्ते॥

अब चौसठवें सूक्त का आरम्भ किया जाता है, उसके पहिले मन्त्र में वायु के गुणों के हुम्पन्त से विद्वान् के गुणों का उपदेश किया है।।

वृष्णे शर्धाय सुमंखाय वेधसे नोधः सुवृक्तिं प्र भंरा मुरुद्ध्यः॥

अपो न धीरो मर्नसा सुहस्त्यो गिरः समञ्जे विद्धेष्वाभुवः॥ 📶

वृष्णे। शर्धाय। सुऽमंखाय। वे्धसे। नोर्धः। सुऽवृक्तिम्। प्रा भुरुत्ऽभ्यः। भूपः। न। धीरः। मनसा। सुऽहस्त्यः। गिरः। सम्। अञ्जे। विद्येषु। आऽभुवः॥ १॥

पदार्थ:-(वृष्णे) वृष्टिकर्त्रे (श्रद्धाय) बलाय (सुमखाय) शोभनाय चेष्टासाध्याय यज्ञाय (वेधसे) धारणाय। अत्र विधाजो वेध च। (उणा०४.१३२) अनेनास्य सिद्धिः (नोधः) स्तावकः (सुवृक्तिम्) वर्जयन्त्यनया सा शोभना चासौ वृक्तिश्च ताम् (प्र) प्रकृष्ट्ये (भरे) धर (मरुद्धः) वायुभ्यः (अपः) प्राणान् कर्माणि वा (न) इव (धीरः) संयमी विद्वान् मनुष्यः (मनसा) विज्ञानेन (सुहस्त्यः) शोभनहस्तिक्रयाः सुहस्तास्तासु साधुः (गिरः) वाचः (सम्) सम्यक् (अञ्चे) स्वेच्छया गृह्णामि (विद्येषु) युद्धादिचेष्टामययज्ञेषु (आभुवः) समन्ताद्भवन्ति ये या वो ज्ञानं ता वा॥१॥

अन्वय:-हे नोधो मनुष्य! आभुव अपनिव धीर: मुहस्त्योऽहं वृष्णे शर्द्धाय वेधसे सुमखाय मनसा मरुद्ध्यो विदथेषु गिर: सुवृक्तिं च समञ्जे तथैव त्वं प्रभूर। ११

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। मनुष्येयविच्चेष्टा भावना बलं विज्ञानं पुरुषार्थी धारणं विसर्जनं वचनं श्रवणं वृद्धिः क्षयः क्षुत्पिपासादिकं च भवति तावत् सर्वं वायुनिमित्तेनैव जायत इति वेद्यम्। यादृशीमेतां विद्यामहं जानामि तादृशीमेव विमपि गृहाणेति सर्वदोपदेष्टव्यम्॥१॥

पदार्थ:-हे (नोध:) स्तुति करनेवाले मनुष्य! (आभुव:) अच्छे प्रकार उत्पन्न होनेवाले (अप:) कर्म वा प्राणों के समान (धीर:) संयम से रहनेवाला विद्वान् (सुहस्त्य:) उत्तम हस्तक्रियाओं में कुशल मैं (मनसा) विज्ञान और (मरुद्ध्य:) पवनों के सकाश से (विद्धेषु) युद्धादि चेष्टामय यज्ञों में (गिर:) वाणी (सुवृक्तिम्) उत्तमता से दुष्टों को रोकनेवाली क्रिया को (समञ्जे) अपनी इच्छा से ग्रहण करता हूँ, वैसे ही तू (प्रभर) आरण करा। शारण

भावार्थ:=इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि जितनी चेष्टा, भावना, बल, विज्ञान, पुरुषार्थ धारण करना, छोड़ना, कहना, सुनना, बढ़ना, नष्ट होना, भूख, प्यास आदि हैं, वे सब

मण्डल-१। अनुवाक-११। सूक्त-६४

वायु के निमित्त से ही होते हैं। जिस प्रकार कि इस विद्या को मैं जानता हूँ, वैसे ही तू भी ग्रहण कर, ऐसा उपदेश सबको करो॥१॥

पुनस्ते वायवः कीदृशा इत्युपदिश्यते॥

फिर भी उक्त वायु कैसे हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है⁄।

ते जिज्ञिरे दिव ऋष्वासं उक्षणी रुद्रस्य मर्या असुरा अरेपसः॥

पावकासः शुर्चयः सूर्या इव सत्वानो न द्रप्सिनो घोरवर्षसः॥ २

ते। जुज़िरे। दिवः। ऋष्वासः। उक्षणः। रुद्रस्यं। मर्याः। असुराः। असुराः। पावकासः। शुर्चयः। सूर्याःऽइव। सत्वानः। न। द्रुप्सिनः। घोरऽवर्षसः॥२॥

पदार्थ:-(ते) वायव इव (जिज्ञिरे) प्रादुर्भवन्ति (दिवः) प्रकाशावी (ऋष्वासः) ज्ञानहेतवः (उक्षणः) सेचनकर्त्तारः। अत्र वा षपूर्वस्य निगमे। (अष्टाक् ४.९) अनेन दीर्घनिषेधः। (रुद्रस्य) समष्टिप्राणस्य (मर्याः) मरणधर्मकाः (असुराः) प्रकाशरहिताः (अरेपसः) अव्यक्तशब्दा निष्पापाः (पावकासः) पवित्रकारकाः (शुचयः) पवित्रा (सूर्ध्याइवः) सूर्य्यस्य किरणा इव (सत्वानः) बलपराक्रमप्राणिभूतगणाः (न) (इव) (द्रप्सिनः) बहुद्रष्यो विविधा मोहोऽस्ति येषु ते (घोरवर्षसः) घोरं वर्षो रूपं येषान्ते॥२॥

अन्वय:-हे मनुष्या! युष्माभिर्ये रुद्रस्य जीवृस्य प्राणसमुद्भायस्य वा सम्बन्धिनो वायवो दिवो जिज्ञरे जायन्ते। ये सूर्य्याइव ऋष्वास उक्षणः पावकासः शुचयो वर्त्तन्ते। ये सत्यानी नेव मर्या असुरा अरेपसो द्रप्सिनो घोरवर्पसः सन्ति तेषां सङ्गेन विद्यादिशुभगुणा गृह्यन्ताम्॥२॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कारौ। येथेश्वरसृष्टी सिंहहस्तिमनुष्यादयो बलवन्तः सन्ति तथा वायवो वर्त्तन्ते। यथा सूर्यिकरणाः पवित्रकारकाः सन्ति तथैव वायवोऽपि। नह्येतयोर्विना रोगाऽऽरोग्यमरणजन्मादयो व्यवहाराः सम्भवितुं शक्यास्तस्मान्मनुष्यैरेतेषां गुणान् विज्ञाय सर्वेषु कार्येषु यथावत्संप्रयोगः कार्याः॥ २॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो तिम लोगों को उचित है कि जो (स्ट्रस्य) जीव वा प्राण के सम्बन्धी पवन (दिव:) प्रकाश से (जिज़रे) उत्पन्न होते हैं जो (सूर्याइव) सूर्य के किरणों के समान (ऋष्वास:) ज्ञान के हेतु (उक्षण:) स्रेचन और (पावकास:) पवित्र करनेवाले (शुचय:) शुद्ध जो (सत्वान:) बल पराक्रमवाले प्राणियों के (न) समान (मर्या:) मरणधर्मयुक्त (असुरा:) प्रकाशरहित (अरेपस:) पापों से पृथक् (द्रिप्सन:) नाना प्रकार के मोहों से युक्त (घोरवर्षस:) भयङ्कर वायु के हैं (ते) उन्हीं के संग से विद्यादि उत्तम गुणों का ग्रहण करो॥२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में दो उपमालङ्कार हैं। जैसे ईश्वर की सृष्टि में सिंह, हाथी और मनुष्य अदि प्राणी बलवान् होते हैं, वैसे वायु भी है। जैसे सूर्य की किरणें पवित्र करने वाली हैं, वैसे वायु भी। इन दोनों के बिना, रोग, रोग का नाश, मरण और जन्म आदि व्यवहार नहीं हो सकते। इससे प्रनुष्यों को चाहिये कि इनके गुणों को जानके सब कार्यों में यथावत् संप्रयोग करें॥२॥

पुनस्ते कीदृशा इत्युपदिश्यते॥

फिर भी पूर्वोक्त वायु कैसे हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

युवानो रुद्रा अजरा अभोग्धनो ववृक्षुरिष्ट्रागावः पर्वताइव। दृळ्हा चिद्विश्चा भुवनानि पार्थिवा प्र च्यावयन्ति दिव्यानि मुज्जिम्

युर्वानः। फ़ुद्राः। अजराः। अभोक्ऽहनः। वृवश्चः। अधिऽगावः। यर्वताः इत्र दृळ्हा। चित्। विश्वा। भुर्वनानि। पार्थिवा। प्र। च्यावयुन्ति। दुव्यानि। मुज्मना॥ ३॥

पदार्थ:-(युवान:) मिश्रणामिश्रणकर्तृत्वेन बलिष्ठाः (क्राः) मरणुज्वरादिपीडाहेतुत्वाद्रोदियतारः (अजराः) जन्मजरामृत्युधर्मादिरहित्वात्कारणरूपेण नित्याः (अभोग्धनः) ये भोज्यन्ते ते भोजो हन्यन्ते ते हनः। भोजश्च ते हनो भोग्धनः न भोग्धनोऽभोग्धनस्ते (विश्वश्वः) ये वक्षयन्ति रोषयन्ति ते (अधिगावः) अधृता गावो रश्मयो यैस्ते (पर्वताइव) यथा पर्वता मिशः शैला वा धर्त्तारः सन्ति तथैव मूर्त्तद्व्यधर्त्तारः (दृढा) दृढानि (चित्) अपि (विश्वा) सर्वाणि (भुवनानि) सर्वेषां पदार्थानामधिकरणानि (पार्थिवा) पृथिवीत्याख्यस्य कारणस्य विकारभूतानि भूगोद्धाख्यानि क्रार्थ्याणि (प्र) प्रकृष्टार्थे (च्यावयन्ति) प्रचालयन्ति (दिव्यानि) दिवि प्रकाशे भवानि सूर्य्यविद्युदादीनि (मज्मना) शुद्धिधारणक्षेपणाख्येन बलेन। अत्र मस्जधातोरौणादिको मनिन् प्रत्ययो बहुलाकात्सकारलोपश्च। मज्मेति बलनामसु पठितम्। (निघं०२.९)॥३॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यूरं य इमे पर्वणङ्व युवानोऽभोग्घनोऽध्रिगावोऽजरा रुद्रा जीवान् ववक्षु रोषयन्ति। मज्मना पार्थिवा दिव्यानि चिदिप ब्रिश्ना भुवनानि दृद्धा प्रच्यावयन्ति तान् विद्यया यथाविद्वदित्वा कार्य्येषु संप्रयोजयत॥३॥

भावार्थ: अत्रोपमाल्ड्सरः मनुष्यैर्यथा मेघा जलाधिकरणाः शैलाश्चौषध्याद्यधिकरणाः सन्ति तथैवैते संयोगवियोगकत्तरिः सर्वृधाराः सुखदुःखहेतवो नित्या रूपरिहताः स्पर्शवन्तो वायवः सन्तीति वेदितव्यम्। नह्येतैर्विना भूगोलुजलाग्निपुञ्जाश्चैतेषां कणाश्च गन्तुमागन्तुं स्थातुं च शक्नुवन्ति॥३॥

पदार्था: है भनुष्यों! तुम लोग जो ये (पर्वताइव) पर्वत वा मेघ के समान धारण करनेवाले (युवान:) प्रदार्थों के मिलाने तथा पृथक् करने में बड़े बलवान् (अभोग्धन:) भोजन करने तथा मरने से पृथक् (अधिगाव:) किरणों को नहीं धारण करनेवाले अर्थात् प्रकाशरहित (अजरा:) जन्म लेके वृद्ध होना, पिर परना इत्यादि कामों से रहित तथा कारणरूप से नित्य (फद्रा:) ज्वर आदि की पीडा से कृत्यानेवाले वायु जीवों को (ववशु:) रुष्ट करते हैं (मज्मना) बल से (पार्थिवा) भूगोल आदि (दिव्यानि)

मण्डल-१। अनुवाक-११। सूक्त-६४

प्रकाश में रहनेवाले सूर्य आदि लोक (चित्) और (विश्वा) सब (भुवनानि) लोक (दृढा) दृढ़ स्थिरों को भी (प्रच्यावयन्ति) चलायमान करते हैं, उनको विद्या से यथावत् जानकर कार्य्यों के बीच लगाओं स्रो

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्यों को जैसे मेघ जलों के आधार और पर्वत ओर्थांध आदि के आधार हैं, वैसे ही ये संयोग-वियोग करनेवाले, सबके आधार, सुख-दूर्य होरे के हेतु, नित्यरूप, गुण से अलग, स्पर्श गुणवाले पवन हैं, ऐसा समझना योग्य है। और इन्हींक विना जल अग्नि और भूगोल तथा इनके परमाणु भी जान-आने [तथा ठहरने] को समर्थ नहीं हो सकते। ३॥

पुनस्ते कीदृशा इत्युपदिश्यते॥

फिर वे कैसे हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कूह है।

चित्रैर्जिभिर्वपुषे व्यंञ्चते वक्षःसु रुक्माँ अधि येतिरे शुभी अंसेष्वेषां नि मिमृक्षुर्ऋष्टयः साकं जिज्ञिरे स्वधया द्विता नरः॥॥

चित्रैः। अञ्चिऽभिः। वर्षषे। वि। अञ्चते। वक्षःऽसु। कुक्मिन्। अर्थः। श्रुभे। अंसेषु। एषाम्। नि। मिमृक्षुः। ऋष्टयः। साकम्। जुज्ञिरे। स्वधयां। द्विः। नरः॥४॥

पदार्थ:-(चित्रै:) अद्धुतक्रियास्वभावै: (अञ्चिषः) व्यक्तीकरणादिधर्मैं: (वपुषे) शरीरधारण-पोषणाग्निरूपप्रकाशाय। वपुरिति रूपनामसु पठितम्। (निषंठ्र ७) (वि) विशेषार्थे (अञ्चते) गच्छन्ति। अत्र व्यत्ययेनात्मनेपदम्। (वक्षःसु) हृदयेषु/ (फक्मान्) विद्युज्जाठराग्निप्रकाशान् (अधि) उपरिभावे (येतिरे) प्रयतन्ते (शुभे) शोभनाय (अंसेषु) बल्लपराक्रमाधिकरणेषु भुजमूलेषु (एषाम्) वायुनां योगे (नि) नितराम् (मिमृक्षुः) सहन्ते। अत्र बहुलं छन्द्रमीत्प्रभ्यासस्येत्वम्। (ऋष्ट्रयः) गमनागमनशीलाः (साकम्) सह (जित्ररे) जायन्ते जनयन्ति वा (स्वध्या) पृथिव्यादिनान्नेना वा (दिवः) सूर्य्यादिप्रकाशान् (नरः) नेतारः॥४॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यूर्ये य एते ऋष्टयो नरो वायवश्चित्रैरञ्जिभिः शुभे वपुषे व्यञ्जते वक्षःसु रुक्मानिधयेतिरे स्वधया साकं जिज्ञरे जायन्ते द्विवो जनयन्ति विषामसेषु निमिमृक्षुः सर्वे पदार्थाः सहन्ते तान् विदित्वा सम्प्रयोजयत॥४॥

भावार्थ:-विद्विद्विरीद्विप्दित्र्यगुणान् वायून् विदित्वा शुद्धानि सुखानि भोक्तव्यानि॥४॥

पदार्थ:- हे मनुष्यो! तुम लोग जो ये (ऋष्ट्रयः) इधर-उधर चलने तथा (नरः) पदार्थों को प्राप्त करनेवाले पवन (चित्रैः) आश्चर्य रूप क्रिया, गुण और स्वभाव तथा (अञ्चिभिः) प्रकट करना आदि धर्मों से (शुभें) सुन्दर (वपुषे) शरीर के धारण वा पोषण के लिये (व्यञ्जते) विशेष करके प्राप्त होते हैं, जो (वश्नुःसु) हृदयों में (रुक्मान्) बिजुली तथा जाठराग्नि के प्रकाशों को (अधियेतिरे) यत्नपूर्वक सिद्ध करते (स्वध्या) पृथिवी, आकाश तथा अन्न के (साकम्) साथ (जायन्ते) उत्पन्न होते और (दिवः) सूर्य अगदि के प्रकाशों को उत्पन्न करते हैं, (एषाम्) इन पवनों के योग से (अंसेषु) बल, पराक्रम के मूल

कन्धों में (निममृक्षुः) सब पदार्थ समूह को प्राप्त हो सकते हैं, उनको यथावत् जानकर अपने कार्यों में सम्प्रयुक्त करो॥४॥

भावार्थ:-विद्वानों को उचित है कि ऐसे-ऐसे विलक्षण गुणवाले वायुओं को जानक शुक्र सुखों को भोगें॥४॥

पुनस्ते कीदृशा इत्युपदिश्यते॥

फिर उक्त वायु कैसे हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

र्द्दशानकृतो धुनेयो रिशार्दसो वार्तान्विद्युतस्तर्विषीभिरक्रत।

दुहन्त्यूर्धर्दिव्यानि धूर्तयो भूमिं पिन्वन्ति पर्यसा परिज्रयः॥५॥६॥

र्डुशानुऽकृतः। धुनेयः। रि्शादेसः। वार्तान्। विऽद्युतः। तिविषीभिः(अक्रुत्ता व्रुहन्ति। अर्थः। दिव्यानि। धृतेयः। भूमिम्। पिन्वन्ति। पर्यसा। परिऽज्रयः॥५॥

पदार्थ:-(ईशानकृत:) य ईशानानैश्वर्य्ययुक्तान् कुर्विन्त्रि से (धुनयः) रजो वृक्षादीन् कम्पयितारः (रिशादस:) ये रिशान् हिंसकान् रोगानदन्ति ते (वातान्) प्रचनान् (विद्युत्) स्तनयित्नून् (तिवधिभिः) बलैः (अक्रत) कुर्वन्ति (दुहन्ति) पिप्रति (ऊधः) उषसम् (अधिस्युषर्नामसु पठितम्। (निघं०१.८) (दिव्यानि) शुद्धानि जलादीनि वस्तूनि कर्माणि वा (धूत्यः) ये धून्वन्ति (भूमिम्) पृथिवीम् (पिन्वन्ति) सेवन्ते सिञ्चन्ति वा (पयसा) जलेन रसेन वा (पिर्व्यः) ये पृर्तिः सर्वतो जीर्णयन्ति ते॥५॥

अन्वय:-हे मनुष्या! यूयं य एत ईशानकृती धुनयों/रिशादसो धूतयः परिज्ञयस्तविषीभिर्विद्युतोऽक्रत ये पयसोऽधर्दुहन्ति भूमिं पिन्वन्ति सेवन्ते तान् वाताम् विज्ञानीत्।। भू।

भावार्थ:-हे मनुष्या! युष्मभ्यमीश्वरी वायुगुणानुपदिशति। उक्तानुक्तगुणा वायवो विद्युदुत्पादनेन वृष्ट्या भूम्यौषधादिसेचनेन सर्वान् प्रमणिनः सुखयन्तीति विजानीत॥५॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! तुम लोग जो चे (ईशानकृत:) जीवों के ऐश्वर्य्ययुक्त करने (धुनय:) धूलि के वर्षाने, वृक्ष आदि के कम्पाने (रिशादम:) जीवों को दुःख देनेवाले रोगों के नाश करने (धूतय:) सब पदार्थों को कम्पाने और (परिश्रय:) सब ओर से पदार्थों को जीर्ण करनेवाले वायु (तिवधिभि:) अपने बलों से (विद्युत:) बिजुली श्राद्धि को (अक्रत) उत्पन्न करते हैं तथा जो (पयसा) जल वा रस से (अध:) उषा को (दुहन्ति) पूर्ण करते हैं जो (भूमिम्) पृथिवी (दिव्यानि) शुद्ध जल आदि वस्तु तथा उत्तम कार्य्यों का (पिन्वन्ति) सेवन श्रा सेचन करते हैं (वातान्) उन पवनों को जानो॥५॥

भाषार्थ: है मनुष्यो! तुम लोगों के लिये परमेश्वर वायु के गुणों का उपदेश करता है कि कहे वा न कहे युणवाले वायु बिजुली को उत्पन्न करके वर्षा द्वारा भूमि पर ओषधि आदि के सेचन से सब प्राणियों को सुख देनेवाले होते हैं, ऐसा तुम सब लोग जानो॥५॥

पुनस्ते कीदृशा इत्युपदिश्यते॥

मण्डल-१। अनुवाक-११। सूक्त-६४

फिर उक्त वायु किस प्रकार के गुणवाले हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

पिन्वन्त्यपो मुरुतः सुदानवः पयो घृतविद्विदथेष्वाभुवः।

अत्यं न मिहे वि नैयन्ति वाजिनुमुत्सं दुहन्ति स्तुनयन्तुमक्षितम्॥६॥

पिन्वन्ति। अपः। मुरुतः। सुऽदानेवः। पर्यः। घृतऽवत्। विद्धेषु। आऽभुवः। अत्यम्। ना मिहा वि। नयन्ति। वाजिनेम्। उत्सम्। दुहुन्ति। स्तनर्यन्तम्। अक्षितम्॥६॥

पदार्थ:-(पिन्वन्ति) सेवन्ते सिञ्चन्ति वा (अपः) प्राणान् जलान्यन्तिस्थावेश्वान् (मस्तः) शरीरत्यागहेतवः (सुदानवः) सुष्ठु दानवो दानानि येभ्यस्ते (पयः) जलं स्मिन्ना (धृतवत्) घृतेन तुल्यम् (विदथेषु) यज्ञेषु (आभुवः) समन्ताद्भवन्ति ये ते (अत्यम्) अश्वम् (न्) इव (मिहे) विर्यसेचनाय वेगाय वा (वि) विविधार्थे (नयन्ति) प्राप्नुवन्ति (वाजिनम्) प्रशस्तो वाजो वेगो यस्यास्ति तम् (उत्सम्) कूपम् (दुहन्ति) पिपुरति (स्तनयन्तम्) शब्दयन्तम् (अक्षितम्) क्षयरहित्म्। दि।

अन्वयः-हे मनुष्याः! यूयं यथाऽऽभुवः सुदानवो मरुतो विद्धेषु घृत्वत्पयः पिन्वन्ति मिह अत्यं नेवापो विनयन्ति। उत्समिवाक्षितं स्तनयन्तं वाजिनं दुहन्ति तथाऽऽचरत॥६॥

भावार्थ:-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। स्था यज्ञेषु पृतादिकं हविः क्षेत्रपश्चादितृप्तये कूपो वडवासेचनायाश्वश्चास्ति तथैव विद्यया संप्रयुक्ता व्ययम् सर्वाणि कार्याणि साध्नुवन्तीति॥६॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! तुम लोग जैसे (आपुव:) अच्छे प्रकार उत्पन्न होने तथा (सुदानव:) उत्तम दान देने के हेतु (मरुत:) पवन (विद्रथेषु) यूजों में (धृतवत्) घृत के तुल्य (पय:) जल वा रस को (पिन्वन्ति) सेवन वा सेचन करते हैं (मिह) विर्व वृष्टि के लिये (अत्यम्) घोड़े के (न) समान (अप:) प्राण, जल वा अन्तरिक्ष के अवयवों की (विनयन्ति) नाना प्रकार से प्राप्त करते हैं (उत्सम्) और कूप के समान (अक्षितम्) नाशरहित (स्तर्यन्तम्) अब्द करते हुए (वाजिनम्) उत्तम वेगवाले पुरुष को (दुहन्ति) पूर्ण करते हैं, वैसे हो और उनुकों कार्यों में लगाओ॥६॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमा तथा वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे यज्ञ में घृत आदि पदार्थ, क्षेत्र पशु आदि की तृप्ति के लिये घोड़ा है, वैसे विद्या से संप्रयोग किये हुए पवन सब कार्यों को सिद्ध करते हैं॥६॥

पुनस्ते कीदृशा इत्युपदिश्यते॥

फिर वे पूर्वोक्त वायु कैसे हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

पुहिषासी मायिनश्चित्रभानवो गि्रयो न स्वतंवसो रघुस्पदेः।

मुगोइंव हुस्तिनः खादथा वना यदार्रुणीषु तर्विषीरयुंध्वम्॥७॥

मृहिषासः। मायिनः। चित्रऽभीनवः। गिरयः। न। स्वऽत्वसः। रघुऽस्पर्दः। मृगाःऽईव। हुस्तिनः। खा<u>र्दथः।</u> वर्ना। यत्। आरुणीषु। तिविषीः। अयुग्ध्वम्॥७॥

पदार्थ:-(मिहषास:) पूजितगुणा महान्तः। मिहष इति महन्नामसु पठितम्। (निघं के इ) (मायिन:) प्रशस्ता माया प्रज्ञा विद्यते येभ्यस्ते (चित्रभानवः) चित्रा अद्भुता भानवो दीप्तयो येभ्यस्ते (गिरयः) ये जलं गिलन्ति शब्दं वा गृणन्ति ते मेघाः (न) इव (स्वतवसः) स्वं स्वकीय तवो जलं येषु ते (रघुस्पदः) रघव आस्वादाः स्पदश्च प्रश्रवणानि प्रकृष्टगमनानि येषां ते (मृगाइव) हरिणवद् वेपावन्तः (हस्तिनः) किरणाः (खादथ) खादन्ति (वना) वनानि जलानि वा (यत्) अथा (आस्णोषु) गच्छन्ति प्राप्नुवन्ति सुखानि यैस्तान्यरुणानि यानानि तेषामिमाः क्रियास्तासु (त्रविषीः) बलानि (अयुष्ट्यम्) योजयत॥७॥

अन्वय:-हे मनुष्या! यूयं यद्यथा महिषासश्चित्रभानवो मायिनः स्वतवस्ते रेषुस्पत्ने गिरवो नेव जलानि हस्तिनो मृगाइव च वना खादथ तथैतैसस्तविषीरारुणीष्वयुग्ध्वम्॥७॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कारौ। मनुष्यैर्निह वायुभिर्विना गमनभोजनेयानचालनादीनि कर्माणि कर्त्तुं शक्यन्ते तस्मादेते वायवो विमाननौकादियानेषु संप्रयोज्याऽ (निजल्योगेन यानानि सद्यश्चालनीयानि॥७॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! तुम लोग (यत्) जैसे (महिषापः) बड़े-बड़े सेवन करने योग्य गुणों से युक्त (चित्रभानवः) चित्र-विचित्र दीप्तिवाले (माय्रिषः) उत्तम बुद्धि होने के हेतु (स्वतवसः) अपने बल से बलवान् (रघुस्पदः) अच्छे स्वाद के कारण वा उत्तम चलन क्रिया से युक्त (गिरयो न) मेघों के समान जलों को तथा (हिस्तनः) हाथी और (मृगाइवे) बलवाले हिरणों के समान वेगयुक्त वायु (वना) जल वा वनों को (खादथ) भक्षण करते हैं, वैसिड्न (तिविषीः) बलों को (आरुणीषु) प्राप्त होते हैं, सुख जिन्हों में, उन सेना और यानों की क्रियाओं में (अयुष्वम्) ठीक-ठीक विचारपूर्वक संयुक्त करो॥७॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में दो उपमालङ्कार हैं। मनुष्यों को चाहिये कि पवनों के विना हमारे चलना, खाना, यान का चलाना आदि काम भी सिद्धी नहीं हो सकते, इससे इन वायुओं को सेना, विमान और नौका आदि यानो में संयुक्त करके अपन जलों के संयोग से यानों को शीघ्र चलाया करें॥७॥

पुनस्ते कीदृशा इत्युपदिश्यते॥

फिर वे पूर्वोक्स व्ययु कैसे हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

सिंहाईव भानदित प्रचेतसः पिशाईव सुपिशो विश्ववेदसः।

क्षर्यो जिल्लानः पृषतीभिर्ऋष्टिभिः समित्सबाधः शवसाहिमन्यवः॥८॥

स्हिहाःऽइवा नानुद्ति। प्रऽचेतसः। पि्शाःऽईव। सुऽपिर्शः। विश्वऽवेदसः। क्षपः। जिन्वन्तः। पृषेतीभिः।

ऋष्ट्रिः भिः। सप्। इत्। सुऽबार्धः। शर्वसा। अहिंऽमन्यवः॥८॥

मण्डल-१। अनुवाक-११। सूक्त-६४

पदार्थ:-(सिंहाइव) व्याघ्रतुल्यबलाः (नानदित) पुनः पुनः शब्दयन्ति (प्रचेतसः) प्रकृष्टं चेतः संज्ञानं येभ्यस्ते (पिशाइव) यथा बलयुक्तावयववन्तो गजाः (सुपिशः) सुष्टु पिशन्त्यवयुवित के जे (विश्ववेदसः) ये विश्वानि सर्वाणि कर्माणि वेदयन्ति प्रापयन्ति ते (क्षपः) रात्रीः। क्षप्रेति रात्रिन्त्यसु पिठतम्। (निघम्)१.७) (जिन्वतः) तर्पयन्तः (पृषतीभिः) स्वगमनागमनवेगाद्विपुणैः (ऋष्टिभिः) व्यवहारप्रापकैः (सम्) सम्यगर्थे (इत्) एव (सबाधः) ये पदार्थान् सहैव बाधन्त्रे ते (शवसा) बलेन (अहिमन्यवः) येऽहिं मेघं मानयन्ति ते ज्ञापयन्ति ते॥८॥

अन्वय:-हे मनुष्या! यूयं य एते प्रचेतसः सुपिशः सबाधोऽहिमन्यव इदेव ऋष्टिभः पृषतीभिः क्षपः संजिन्वन्तो विश्ववेदसो वायवः शवसा सिंहा इव पिशा इव बलाऽवयववन्तो गजा इव नानदित तास् कार्यिषु संप्रेयोजयत॥८॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कारौ। हे मनुष्याः! यूयं यावद्बल्प्स्क्रमजीवनश्रवणमननादिकर्मास्ति तावत्सर्वं वायूनां सकाशादेव जायत इति विजानीत॥८॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! तुम लोग जो ये (प्रचेतसः) उत्तम विज्ञान होने के हेतु (सुपिशः) सुन्दर अवयवों के करनेवाले (सबाधः) पदार्थों को अपने नियम में रखनेवाले (अहिमन्यवः) मेघ की वर्षा का ज्ञान करानेवाले वायु (इत्) ही (ऋष्ट्रिभिः) व्यवहारों के प्राप्त करानेवाले वायु (इत्) ही (ऋष्ट्रिभिः) व्यवहारों के प्राप्त करते हुए (विश्ववेदसः) सब कर्मों के प्राप्त करानेवाले पवन (शवसा) अपने बलों से (सिंहाइब) सिह्ने के समान तथा (पिशाइव) बड़े बलवाले हाथियों के समान (नानदित) अत्यन्त शब्द करते हैं उनकी कार्यों की सिद्धि के लिये यथावत् संयुक्त करो॥८॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में दो उपूमालङ्कार है। है मनुष्यो! तुम ऐसा जानो कि जितना बल, पराक्रम, जीवन, सुनना, विचारना आदि क्रिया है, से सब वायु के सकाश से ही होती हैं॥८॥

पुनस्ते कीदृशा इत्युपदिश्यते॥

फिर पूर्वोक्त वासु कैसे हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

रोर्दसी आ वेद्वा गणिश्रियी नृषांचः शूराः शवसाहिमन्यवः।

आ बुसुरेष्व्रमित्र देशीता विद्युन्न तस्थी मरुतो रथेषु वः॥९॥

रोर्दसी इति। आ। वद्ता गुणुऽश्चियः। नृऽसाचः। श्रूगुः। शर्वसा। अहिऽमन्यवः। आ। बुन्धुरेषु। अमितः। न। दुर्शता। विऽद्युत्। ना तुर्श्यो। मुरुतः। रथेषु। वः॥९॥

पदार्थ: (रोदसी) द्यावापृथिव्यौ (आ) समन्तात् (वदत) उपदिशत (गणश्रिय:) गणानां समूहानां श्रिय: (श्रोभा येषु ते (नृषाच:) ये कर्म्मसु नृन् जीवान् साचयन्ति संयोजयन्ति ते (श्रूरा:) शूरवीराः (श्रवसा) बलेन (अहिमन्यव:) येऽहिं व्याप्तिं मानयन्ति ज्ञापयन्ति ते (आ) अभितः (बन्धुरेषु)

यानयन्त्राणां बन्धनेषु (अमितः) रूपम्। अमितिरिति रूपनामसु पठितम्। (निघं०३.७) (न) इव (दर्शता) दृष्टव्यानि (विद्युत्) स्तनयित्नुः (न) इव (तस्थौ) तिष्ठति (मस्तः) शिल्पविद्याविद ऋत्विजः (रथेषु) यानेषु (वः) युष्माकम्॥९॥

अन्वय:-हे गणश्रियो नृषाचोऽहिमन्यवः शूरा मरुतो! येऽमितर्न रूपमिव दर्शता विद्युत्तस्यो न वर्तते इव वर्त्तमाना वायवो बन्धुरेषु रोदसी आधरयन्ति ये वो युष्माकं रथेषु संयुक्ताः कार्य्याणि साध्नुवर्तन्ति तानस्मभ्यमावदत समन्तादुपदिशत॥९॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारौ। मनुष्यैः सर्वमूर्त्तद्रव्याधाराः शौर्य्यशिल्पविद्याकार्यक्षेत्रवो वस्यि एव सन्तीति बोद्धव्यम्॥९॥

पदार्थ:-हे (गणश्रिय:) इकट्ठे होके शोभा को प्राप्त होने (नृष्ण्यः) मनुष्णें को कर्मों में संयुक्त करने और (अहिमन्यव:) अपनी व्याप्त को जाननेवाले (श्रूरा:) श्रूर्ण्वार के तुल्य (मरुत:) शिल्पविद्या के जाननेवाले ऋत्विज विद्वान् लोग जो (अमितर्न) जैसे रूप तथा (दर्शता) देखने योग्य (विद्युत्) बिजुली (तस्थौ) वर्तमान होती वैसे वर्तमान वायु (बन्धुरेषु) यानयन्त्रों के बन्धनों में जो (शवसा) बल से (रोदसी) प्रकाश और भूमि को धारण करते हैं तथा जो विद्युत्) तुम लोगों के (रथेषु) रथों में जोड़े हुए कार्य्यों को सिद्ध करते हैं, उनका हम लोगों के लिये (आवदत्) उगदेश कीजिये॥९॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में दो उपमालङ्कार हैं। मिनुष्यों को जानना योग्य है कि सब मूर्तिमान् द्रव्यों के आधार, शूरवीरता के तुल्य तथा शिल्पविद्या और अन्य कार्य्यों के हेतु मुख्य करके पवन ही हैं, अन्य नहीं॥९॥

पुनस्त कीदृशा ईत्युपदिश्यते॥

फिर उक्त पवन किस प्रकार के पुणवाले हैं, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है।।

विश्ववैदसो र्यिभिः स्मीकसः एमिश्लास्सतिविषीभिर्विर्षानः।

अस्तार् इषुं दिधरे गर्भस्त्योरनुन्तश्रुक्षेमा वृषंखादयो नर्रः॥१०॥७॥

विश्वऽवैदसः। र्किःभः। सम्ऽभौकसः। सम्ऽमिश्लासः। तर्विषीभिः। विऽर्ष्णिनेः। अस्तौरः। इषुंम्। दुधिरे। गर्भस्त्योः। अनुन्तऽशुष्टमाः। वृष्णेऽखादयः। नर्रः॥१०॥

पदार्थ:-(विश्ववेदसः) विश्वानि सर्वाणि वस्तूनि विदन्ति येभ्यस्ते (रियभिः) चक्रवर्त्तिराज्य-श्रियादिभिः (स्पोकसः) सम्यगोको निवासार्थं स्थानं येभ्यस्ते (संपिश्लासः) अग्न्यादितत्त्वैः सम्यङ् मिश्राः। अत्र किल्कादीनां सञ्जाछन्दसोर्वा रो लमापद्यत इति वक्तव्यम्। (अष्टा०वा०८.२.१८) इति लत्वम्। (तिविधिभः) बलपराक्रमुयुक्ताभिः सेनाभिः (विरिष्णानः) महान्तः। विरष्णीति महन्नामसु पिठ्निम्। (निघं०३.३) (अस्तारः) प्रक्षेप्तारः। अत्रास् धातोस्तृन् वाच्छन्दिस सर्वे विधयो भ्रवन्तीतीहागमविकल्पः। (इषुम्) बाणम्। प्राप्तिसाधनमिच्छाविशेषं वा (दिधरे) धरन्ति (गभस्त्योः)

मण्डल-१। अनुवाक-११। सूक्त-६४

रश्मियुक्तयोः सूर्य्यप्रसिद्धाग्न्योरिव भुजयोः (अनन्तशुष्माः) अनन्तं शुष्मं बलं येषान्ते (वृषखादयः) ये वृषान् रसवर्षकान् पदार्थान् खादयन्ति ते (नरः) नयनकर्त्तारो मनुष्या वायवो वा॥१०॥

अन्वय:-हे नरो मनुष्या! यूयं ये समोकसः संमिश्लास इषुमस्तारो वृषखादयोऽनन्तशुष्मा विद्वाप्तिमा विश्ववेदसो रयिभिस्तविषीभिश्च प्रजा गभस्त्योः सूर्य्याग्न्योरिव बलं दिधरे धरन्ति तेषां सङ्गेन विद्याप्त्रिधायानेस्नलनक्रियाश्च स्वीकुरुत॥१०॥

भावार्थ:-मनुष्यैर्निह विद्वद्भिर्वाय्वादिपदार्थविद्यया च विना परमार्थव्यवहारसुखानि सेद्धं शक्यन्ते॥१०॥

पदार्थ:-हे (नर:) विद्या को प्राप्त होनेवाले मनुष्यो! तुम लोग जो (संपार्कस:) जिनसे अच्छे प्रकार निवास होता है (संमिश्लास:) अग्नि आदि चार तत्त्वों के साथ अत्यन्त मिल हुए (इषुम्) बाण वा इच्छा विशेष छोड़ते हुए (वृषखादय:) रसों को वर्षानेवाले पदार्थों के खोनेवाले (अनन्तशुष्मा:) अनन्त बलवान् (विरिष्मिन:) बड़े (विश्ववेदस:) सब पदार्थों की प्राप्ति के हेतु होके सब पदार्थों को इधर-उधर चलानेवाले वायु (रियभि:) चक्रवर्त्तिराज्य की शोभा आदि तथा (तिक्विभि:) बल पराक्रम सेना आदि प्रजा और (गभस्त्यो:) किरणयुक्त सूर्य्य वा प्रसिद्ध अग्नि के समान भुजाओं में बल को (दिधरे) धारण करते हैं, उनके गुणों को ठीक-ठीक जान कर उनसे विद्या, शिक्षा और यान के चलाने की क्रियाओं को ग्रहण करो॥१०॥

भावार्थ:-मनुष्य लोग विद्वान् तथा वायु आदि पदार्थ विद्या के विना परलोक और इस लोक के सुखों की सिद्धि कभी नहीं कर सकते॥१६॥

पुनद्रेते वायवः कीदृशा इत्युपदिश्यते॥

फिर भी वे पूर्वोक्त व्यर्यु कैसे हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

हिर्ण्ययेभिः पुविभि (पयोवृध् उप्जिन्नन आपुथ्यो ३ न पर्वतान्।

मुखा अयासी: स्वस्ती धुक्ध्युती दुधुकृती मुरुतो भ्राजीदृष्टयः॥११॥

हिर्ण्ययेभिः। पुविऽभिः। पुर्यःऽवृष्टः। उत्। जिघ्नन्ते। आऽपुर्थ्यः। न। पर्वतान्। मुखाः। अयासः। स्वऽसृतः। धुवऽच्युतः। दुष्टुऽकृतः। मुस्तः। भ्राजंत्ऽऋष्टयः॥११॥

पदार्थ; (हिरण्ययेभिः) तेजोमयैः (पविभिः) वज्रतुल्यैः पवित्रैर्गमनागमनादिसाधनचक्रैः (पयोवृधः) ये पत्र उदकं रात्रिं वा वर्धयन्ति ते (उत्) उत्कृष्टे (जिञ्जन्ते) हिंसन्ति। अत्र वा छन्दिस सर्वे विधयो भवन्तीत्यद्यदेशविकल्पः। (आपथ्यः) पथि भवः पथ्यः सर्वतः पथ्य आपथ्यः (न) इव (पर्वतान्) शैलान् मेघत् वा (मखाः) यष्टुमर्हा यज्ञाः (अयासः) प्राप्तिशीलाः (स्वसृतः) ये स्वान् गुणान् सरन्ति प्राप्नुविन्ति ते (धुवच्युतः) ये धुवानिप पदार्थान् च्यावयन्ति निपातयन्ति ते (दुध्रकृतः) ये दुध्राणि धारकाणि

७६६

बलादीनि कुर्वन्ति ते (**मरुतः**) वायवः (भ्राजदृष्टयः) भ्राजत्यः प्रदीप्ता ऋष्टयो व्यवहारप्रापिकाः कार्न्त्यो येभ्यस्ते॥११॥

अन्वय:-हे विद्वांसो मनुष्या! यूयमापथ्यो न हिरण्ययेभिः पविभिः सह समन्ताद्रथेन पथि पच्चित्रिव है भाजदृष्टयो दुध्रकृतो ध्रुवच्युतः स्वसृतः पयोवृधो मरुतो पर्वतान् मेघान् शैलान् वोज्जिघ्नन्ते तेषां मुणान् बिज्ञायेतान् कार्य्येषु नित्यं संप्रयोजयत॥११॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। मनुष्यैर्येभ्यो वृष्ट्यादिकं जायते ते वायवो युक्य सेवनीया:॥ ११॥

पदार्थ:-हे विद्वान् मनुष्यो! तुम लोग (आपथ्यो न) अच्छे प्रकार (हिरूप्ययेभिः) सुवर्ण आदि के योग से प्रकाशरूप (पविभिः) पवित्र चक्रों के रथ से मार्ग में चलने के समान (भ्राजदृष्ट्यः) जिनसे व्यवहार प्राप्त करानेवाली कान्ति प्रसिद्ध हों (दुध्रकृतः) धारण करने वाले बामदि के उत्पन्न करने (ध्रुवच्युतः) निश्चल आकाश से चलायमान (स्वसृतः) अपने गुणों को प्राप्त होने चलनेहारे (पयोवृधः) जल वा रात्रि के बढ़ानेवाले (मखाः) यज्ञ के योग्य (अयासः) प्रम्त होने के स्वभाव से युक्त (मस्तः) पवन (पर्वतान्) मेघ वा पर्वतों को (उज्जिधन्ते) नष्ट करते हैं, उन्न पवनों के गुणों को जान कर अपने कार्यों में संयुक्त करो॥११॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्यों की व्यक्ति कि जिन वायुओं से वृष्टि आदि की उत्पत्ति होती है, उनका युक्ति के साथ सेवन किया करें॥ ११ ॥

पुनस्तत्समुदायः कीदृशोऽस्तीत्युपदिश्यते॥

फिर वायुओं के समुदाय कैसे हैं, इस बिष्य का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

घृषुं पावुकं वृनिनं विचर्षणि रूद्धस्य सूनं हुवसा गृणीमसि।

र्जस्तुरं तुवसं मार्र्तं गुप्रामृजीकिणं चूर्षणं सश्चत श्रिये॥१२॥

घृषुंम्। पावकम्। वनिनम्। विञ्चेषीणम्। रुद्रस्यं। सूनुम्। हुवसां। गृणीमुसि। रुजःऽतुंरम्। तुवसंम्। मारुतम्। गुणम्। ऋजीषिणम्। वर्ष्णम्। सुश्चत्। श्चिये॥ १२॥

पदार्थ:-(घृषुम्) वर्षणशीलाम् (पावकम्) पवित्रकारकम् (विननम्) संभक्तारम् (विचर्षणिम्) विलेखकम् (फद्रस्य) परमेश्वस्य) जीवस्य वायुकरणस्य वा (सूनुम्) पुत्रवद्वर्त्तमानं प्राणिगर्भविमोचकं वा (हवसा) ग्रहणत्यागभक्षणादिकमणा सह वर्त्तमानम् (गृणीमिस्) स्तुवीमः (रजस्तुरम्) यो रजांसि लोकान् तुरित तूर्णगमन्त्रागमनद्वतुम् (तवसम्) महाबलयुक्तम् (मारुतम्) मरुतां वायूनामिमम् (गणम्) समूहम् (ऋजीषणाम्) प्रश्रस्तमुपार्जनं विद्यते यस्मिंस्तम् (वृषणाम्) वृष्टिकारकम् (सश्चत) विजानीत प्राप्नुत वा (श्चिये) विद्याशिक्षासम्यधनप्राप्तये॥१२॥

अनेव्यः-हे मनुष्याः! यथा वयं हवसा श्रिये रुद्रस्य सूनुं विचर्षणि वनिनं घृषुं पावकं तवसं रजस्तुरमृजीषिणं वृषणं मार्त्रां गणे गृणीमसि स्तुवीमस्तं यूयमपि सश्चत विजानीत॥१२॥

मण्डल-१। अनुवाक-११। सूक्त-६४

भावार्थ:-मनुष्यैर्निहि वायुसमुदायेन विना काचिद्व्यवहारिक्रया भवितुं शक्येति निश्चत्यावश्यं वायुविद्यां स्वीकृत्य स्वकीयानि कार्य्याणि साधनीयानि॥१२॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! जैसे हम लोग (हवसा) दान और ग्रहण से (श्रिये) विद्वा शिक्ष और चक्रवर्त्तराज्य की प्राप्ति के लिये जिस (फद्रस्य) मुख्य वायु के (सूनुम्) पुत्र के समाप वर्तमान (विचर्षणिम्) भेद करने तथा (विननम्) संग्राम करनेवाले (घृषुम्) घिसने के स्वभाव से युक्त (पावकम्) पवित्र करनेवाले (तवसम्) महाबलवान् (रजस्तुरम्) लोकों को शीघ्र चलाने किजीषिणम्) उसम शुद्धि होने के कारण और (वृषणम्) वृष्टि करनेवाले (मारुतम्) पवनों के (गण्नम्) समूह का (गृणीमिस) उपदेश करते हैं, उसको तुम भी (सश्चत) जानो॥१२॥

भावार्थ:-मनुष्यों को चाहिये कि वायुसमुदाय के विना हम्प्रें कोई काम सिद्ध नहीं हो सकते, ऐसी वायुविद्या का निश्चयतया स्वीकार करके अपने कार्यों की सिद्धि अवश्य करें॥१२॥

पुतस्तेः वायवः कीदृशा इत्युपिदश्यते॥

फिर वे उक्त वायु कैसे गुणवाले हैं, यह क्रिक्य अगले प्रन्त्र में कहा है।।

प्र नू स मर्तः शर्वसा जनाँ अति तस्थौ व क्ती सर्वते यमार्वत। अर्विद्धर्वाजं भरते धना नृभिरापृच्छ्यं क्रुसुमा क्षेत्रिपुष्यति॥ १३॥

प्रा नु। सः। मर्तः। शर्वसा। जर्नान्। अति प्रस्थौ। बुः क्रिती। मुख्तः। यम्। आर्वत। अर्वत्ऽभिः। वार्जम्। भरते। धर्ना। नुऽभिः। आऽपृच्छ्यम्। क्रतुम्। आर क्षेति। पृष्पेद्धि। १३॥

पदार्थ:-(प्र) प्रकृष्टार्थे (नु) श्रीष्रम् (स्र) (मर्तः) मनुष्यः (श्रवसा) विद्याक्रियायुक्तेन बलेन (जनान्) मनुष्यादीन् (अति) अतिश्रयेन (तस्था) तिष्ठति (वः) युष्माकम् (ऊती) ऊत्या रक्षादिना। अत्र सुपां सुलुगिति तृतीयायाः पूर्वस्वर्णास्यः (मरुतः) युक्त्या सेविता वायवः। (यम्) मनुष्यम् (आवत) विजानीत (अर्विद्धः) वेगादिगृणिरश्चेः (वाजम्) वेगादिगुणसमूहम् (भरते) धरति (धना) (नृभिः) मनुष्यैः (आपृच्छ्यम्) समन्तात्प्रष्ट्रव्यम् (क्रतुम्) प्रज्ञां कर्म वा (आ) समन्तात् (क्षेति) क्षियति निवासयति। अत्र बहुलं छन्दसीति शस्य लुक् (पुष्मात) पृष्टं करोति॥१३॥

अन्वयः-हे मरुतो! यूयं यमावत स मर्त्त ऊती शवसाऽर्वद्भिरश्वेर्नृभिः सह वाजं वेगमत्रं वो जनान् धनान्यापृच्छ्य क्रत्नुं च सूप्रभरत आक्षेति शरीरात्मभ्यां चाति पुष्यति तस्थौ॥१३॥

भार्नार्थः से मनुष्याः प्राणविद्यां विदित्वोपयुञ्जते ते बलवन्तः प्रतिष्ठिता भूत्वा दुःखानि शत्रूनुल्लंभ्योत्तमैर्हस्त्यश्वमनुष्यधनप्रज्ञायुक्ताः सन्तः सदा पुष्यन्ति॥१३॥

पदार्थ:-हे (मरुत:) युक्ति से सेवन किये हुए वायु के समान तुम (यम्) जिस मनुष्य की (आवत) रक्षा आदि करते हो (स:) वह (मर्त्त:) मनुष्य (ऊती) रक्षा आदि के सहित (शवसा) विद्या

क्रियायुक्त बल (अर्विद्धः) घोड़ों और (नृिभः) मनुष्यों के साथ (वाजम्) वेग अन्न (वः) तुम (जर्नान्) मनुष्यादि प्राणियों और (धना आ पृच्छ्यम्) धनों को पूछने योग्य अच्छे (क्रतुम्) बुद्धि वा कर्म्म को (नु) शीघ्र (प्रभरते) अच्छे प्रकार धारण करता (आक्षेति) अच्छे प्रकार निवासयुक्त करता, शरीर और अन्तः करण से (पुष्यित) बल को पुष्ट करता हुआ (तस्थौ) स्थित होता है॥१३॥

भावार्थ:-जो मनुष्य प्राणवायु की विद्या को जानकर उपयोग करते हैं, वे बल्वान् प्रतिष्ठा को प्राप्त हो और दु:ख तथा शत्रुओं को जीत कर उत्तम हाथी, घोड़े, मनुष्य, धन और बुद्धि से युक्त होके सदा सबको पृष्ट करते हैं॥१३॥

पुनस्ते कीदृशा इत्युपदिश्यते॥

फिर वे पूर्वोक्त वायु कैसे गुणवाले हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

चकृत्यं मरुतः पृत्सु दुष्टरं द्युमन्तं शुष्मं मघवत्सु धत्तन। धनस्पृतंमुक्थ्यं विश्वचेषींणं तोकं पुष्येम् तनयं शतं हिमाः॥१४॥

चुर्कृत्यम्। मु<u>रुतः</u>। पृतऽसु। दुस्तरम्। द्युऽमन्तम्। शुष्टम्म्। मुघ्यत्तर्र्म्। धुत्तन्। धुनुऽस्पृत्तम्। उक्थ्यम्। विश्वऽचेर्षणिम्। तोकम्। पुष्येम्। तनयम्। शृतम्। हिमाः॥ १४॥

पदार्थ:-(चर्कृत्यम्) पुनः पुनः कर्त्तव्येषु सन्धिम्। अत्र यङ् लुङ्न्तात्करोतेः क्तस्ततः साध्वर्थे यत्। (मरुतः) वायुवद्वर्त्तमानाः (पृत्सु) पृतनास् सन्तस् (हुष्टरम्) दुःखेन तिरतुं योग्यम् (द्युमन्तम्) बहुप्रकाशवन्तम् (शुष्मम्) शोषकम् (मघवत्सु) प्रशस्तधन्नम्यक्तेषु राजषु (धत्तन) धत्त (धनस्पृतम्) धनेन प्रीतं सेवितं वा (उवस्थम्) वक्तुं श्रोतुं योग्यम् (विश्वन्नपिणम्) सर्वदर्शकम् (तोकम्) अपत्यम् (पृष्येम) पृष्टा भवेम (तनयम्) विद्वांसं पौत्रम् (शृतम्) श्रतसंख्याकान् (हिमाः) हेमन्तानृतून्॥१४॥

अन्वयः-हे मरुतः मनुष्या! यभा वयं पृत्सु चर्कृत्यं दुष्टरं द्युमन्तं शुष्मं बलं मघवत्सु धनस्पृतमुक्थ्यं विश्वचर्षणि तोकं तनयं प्राप्य शतं हिमाः पुष्येम क्याऽनुष्ठाच यूर्यं सुखं धत्तन॥१४॥

भावार्थः-अत्र वाचक्र्युष्तोपमालङ्कारः। यथा विद्वद्भिर्मरुतां विद्याग्रहणाय युक्त्योपयोगः क्रियते तथान्येऽप्याचरन्तु॥१४॥

पदार्थ:-हे (मस्तः) प्रवानवद्वर्तमान मनुष्यो! जैसे हम (पृत्सु) सेनाओं में (चर्कृत्यम्) वार-वार करने योग्य कार्यों में कुशल (दुष्टरम्) दु:ख से पार होने योग्य (द्युमन्तम्) अति प्रकाशयुक्त (शुष्मम्) सुखानेवाले बल को (मघवत्सु) प्रशंसनीय धनयुक्त राजकार्य्यों में (धनस्पृतम्) धन से प्रसन्न वा सेवा को प्राप्त हुए (उक्थ्र्यम्) कहने-सुनने योग्य (विश्वचर्षणिम्) सबको देखने योग्य (तोकम्) पुत्र तथा (तनयम्) विद्वान् पौत्र को प्राप्त होके (शतं हिमाः) हेमन्त ऋतु युक्त सौ वर्ष पर्य्यन्त (पुष्येम) बल, पराक्रम् आहि से पुष्ट होवें, वैसे कर्म करके तुम भी सुख को (धन्तन) धारण कीजिये॥१४॥

मण्डल-१। अनुवाक-११। सूक्त-६४

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे विद्वान् लोग-पवनों के योग से हमारे बिजुली, यन्त्र, बैल, सौ वर्ष पर्य्यन्त जीना और शरीर आदि में पृष्टि का होना ये सब काम होते हैं, इसलिए इन वायुओं की विद्या को युक्ति के साथ जान कर-उपयोग में लिया करते हैं, दैसे अप्यासीग भी आचरण करें॥१४॥

पुनस्ते कीदृशा इत्युपदिश्यते॥

फिर वे उक्त वायु कैसे हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।

नू ष्टिरं मेरुतो वीरवेन्तमृतीषाहं रियम्स्मासुं धत्त। सहस्रिणं शृतिनं शूशुवांसं प्रातम्क्षू धियावसुर्जगम्यात्। १५०। रिश्रा

नु। स्थिरम्। मुरुतः। वीरऽवन्तम्। ऋतिऽसाह्नम्। रियम्। अस्मास्। धनाः सहस्रिणम्। शितन्म। श्रूशुऽवांसम्। प्रातः। मुक्षुः। धियाऽवसः। जगम्यात्॥ १५॥

पदार्थ:-(नु) क्षिप्रार्थे (स्थिरम्) निश्चलम् (मरुतः) वयिष इव्यवर्तमानाः (वीरवन्तम्) प्रशस्ता वीरा विद्यन्ते यस्मिँस्तम् (ऋतिषाहम्) य ऋतिं सत्यं सहते सम्प्रे अत्रान्येषामिष दृश्यत इति दीर्घः। (रियम्) विद्याराज्यसुवर्णीदिधनसमूहम् (अस्मासु) (धन्तः) धरत (सहस्रिणम्) सहस्रमसंख्यातं प्रशस्तं सुखं विद्यते यस्मिस्तम्। अत्र तपः सहस्राभ्यां विनीपी। (अष्ट्रा०५.२.१०२) इति सूत्रेण मत्वर्थीय इनिः प्रत्ययः। (शितनम्) (शूशुवांसम्) सर्वसुख्यापकं प्रापृकं वा (प्रातः) प्रतिदिनम् (मक्षु) शीघ्रम् (धियावसुः) प्रज्ञाकर्मयुक्तः (जगम्यात्) भूशं-प्राप्नुयात्। १५॥

अन्वयः-हे मरुतो! यथा विद्वांसोऽस्मासु स्थिरं व्यरवन्तमृतिसाहं सहस्रिणं शतिनं शूशुवांसं प्राप्यानन्दित तथैव यूयमप्येतत्प्राप्यानन्दतेति॥१५॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। हे मनुष्याः! यथाऽतिप्रशस्यो मेधावी विद्यापुरुषार्थैः संयुक्तो विद्वान् वातादि पदार्थेभ्यो दृढानि वृह्नि सुखानि शंसाध्यानन्दं प्राप्नोति तथा यूयमप्येतां विद्यां प्राप्यानन्दं भुञ्जत॥१५॥

अत्र वायुगुणोप<mark>देशाद्दितदुर्धस्य</mark> पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेदितव्यम्॥

इत्येकादशो ११ अनुवाकश्चतुःषष्टितमं ६४ सूक्तमष्टमो ८ वर्गश्च समाप्तः॥

पदार्थः है (मरुतः) पवन के तुल्य वर्त्तमान! जैसे विद्वान् लोग (अस्मासु) हम लोगों में (स्थिरम्) निश्चल (विद्वान्तम्) प्रशंसा करने योग्य वीर पुरुषों से युक्त (ऋतिषाहम्) सत्य के सहन करनेवाले (रियम्) बिद्याराज्य और सुवर्ण आदि धन को धारण करें और (धियावसुः) बुद्धि और कर्मों से युक्त (विद्वान् (जगम्यात्) शीघ्र प्राप्त हो, वैसे उनको तुम (प्रातः) प्रतिदिन (मक्षु) शीघ्र (धत्त) धारण करें।।।।

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! तुम लोग जैसे अति प्रशंसा करने योग्य, बुद्धिवाला, विद्या, पुरुषार्थीं से युक्त विद्वान् जन वायु आदि पदार्थीं के सकाश से दृढ़ निश्चल बहुत सुखों को सिद्ध करके आनन्द को प्राप्त होता है, वैसे तुम भी इस विद्या को प्राप्त होकर भागो॥१५॥

इस सूक्त में वायु के गुणों का उपदेश करने से इस सूक्तार्थ की पूर्व सूक्<mark>तर्थ के स</mark>ाथ संगति समझनी चाहिये॥

यह ग्यारहवां ११ अनुवाक चौसठवां ६४ सूक्त और आठवां ८ वर्ग समाज हुआ।।



अथ पञ्चर्चस्य पञ्चषष्टितमस्य सूक्तस्य पराशर ऋषि:। अग्निर्देवता। १,२,३,५ निचृत्पिङ्क्त:।

४ विराट्पड्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

अथान्तर्व्याप्तोऽग्निरुपदिश्यते॥

अब पैंसठवें सूक्त का आरम्भ है। इसके पहिले मन्त्र में सर्वत्र व्यापक अग्नि शब्द का बास्य जो

पदार्थ है, उसका उपदेश किया है॥

पृश्चा न तायुं गुहा चर्तन्तं नमी युजानं नमो वर्हन्तम्। सुजोषा धीरा: पुदैरनुं ग्मुन्नुपं त्वा सीटुन् विश्वे यजेत्रा:॥ १॥

पृश्चा। न। तायुम्। गृहां। चर्तन्तम्। नर्मः। युजानम्। नर्मः। वहन्तम्। सुऽर्वाषाः। धीर्गः। पृदैः। अनुं। ग्मन्। उपं। त्वा। सीटुन्। विश्वे। यजेत्राः॥ १॥

पदार्थ:-(पश्चा) अपहतस्य पशोः स्वरूपाङ्गपादिचहान्वेषणेन (ने) इच् (तायुम्) चोरम्। तायुरिति स्तेननामसु पठितम्। (निघं०३.२४) (गुहा) गुहायां सर्वष्यार्थानां मध्ये। अत्र सुपां सुलुगिति सप्तम्याडादेशः। (चतन्तम्) गच्छतं व्याप्तम्। चततीति प्रतिकर्मसु पठितम्। (निघं०२.१४) (नमः) अत्रम्। नम इत्यन्ननामसु पठितम्। (निघं०२.२०) (युजानम्) समादधानम्। अत्र बाहुलकादौणादिक आनच् प्रत्ययः किच्च। (नमः) सत्कारमत्रं व्या (वहन्तम्) प्राप्नुवन्तम् (सजोषाः) सर्वत्र समानप्रीतिसेवनाः (धीराः) मेधाविनो विद्वांसः (पदः) प्रत्यक्षण प्राप्तैर्गुणनियमैः (अनु) पश्चात् (गमन्) प्राप्नुवन्ति। अत्र गमधातोर्लुङ मन्त्रे घस० इति च्लेलुक् गमहनेत्युपधालोपोऽडभावो लडर्थे लुङ् च। (विश्वे) सर्वे (यजताः) पूजका उपदेशका सङ्गति–कृतिण द्वातासुः। १॥

अन्वयः – हे सर्वविद्याभिव्याप्त सभेक्षरे! यजेत्राः सजोषा धीरा विद्वांसः पदैः पश्चा तायुं नेव यं गुहा बुद्धौ चतन्तं नमो युजानं नमो वहन्तं त्वा त्वामनुगम्भा उपसीदने त्वां प्राप्य त्वय्यवितष्ठन्ते वयमप्येवं प्राप्यावितष्ठामहे॥१॥

भावार्थ:-हे मनुष्याः प्रथा स्तेनस्य पदाङ्गस्वरूपप्रेक्षणेन चोरं प्राप्य पश्वादिः पदार्थान् गृह्णन्ति, तथैवात्मान्तरुपदेष्टारं सर्वाभारं ज्ञानगस्य परमेश्वरं प्राप्य सर्वानन्दं स्वीकुरुत॥१॥

पदार्थ:-हे सर्विषद्यायुक्त सभेश! (विश्वे) सब (यजत्राः) संगतिप्रिय (सजोषाः) सब तुल्य प्रीति को सेवन करनेवाले (धीराः) बुद्धिमान् लोग (पदैः) प्रत्यक्ष प्राप्त जो गुणों के नियम उन्हीं से (न) जैसे (पश्चा) पशु को ले जानेवाले (तायुम्) चोर को प्राप्त कर आनन्द होता है, वैसे जिस (गृहा) गुफा में (चतन्तम्) व्यप्ति (नमः) वज्र के समान आज्ञा का (युजानम्) समाधान करने (नमः) सत्कार को (वहन्तम्) प्राप्त करते हुए (त्वा) आपको (अनुग्मन्) अनुकूलतापूर्वक प्राप्त तथा (उपसीदन्) समीप स्थित्र होते हैं। इस आपको हम लोग भी इस प्रकार प्राप्त होके आपके समीप स्थिर होते हैं॥ इ॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! तुम लोग जैसे वस्तु को चुराए हुए चोर के पाद आदि अङ्ग वा स्वरूप देखने से उसको पकड़कर चोरे हुए पशु आदि पदार्थों का ग्रहण करते हो, वैसे अन्त:करण में उपदेश करनेवाले, सबके आधार विज्ञान से जानने योग्य परमेश्वर तथा बिजाली रूप अग्नि को जान और प्राप्त होके सब आनन्द को स्वीकार करो॥१॥

पुनस्तं कीदृशं विजानीम इत्युपदिश्यते॥

फिर उसको किस प्रकार हम लोग जानें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है।।

ऋतस्यं देवा अनुं वृता गुर्भुवृत् परिष्टिर्द्यीर्न भूमं।

वर्धन्तीमार्पः पुन्वा सुशिश्विमृतस्य योना गर्भे सुर्जातम्॥२॥

ऋतस्यं। देवाः। अनुं। वृता। गुः। भुवंत्। परिष्टिः। द्यौः। नि भूमं। वर्धन्तः। ईम्। आपंः। पुन्वा। सुऽर्शिश्चिम्। ऋतस्यं। योनां। गर्भे। सुऽजातम्॥२॥

पदार्थ:-(ऋतस्य) सत्यस्वरूपस्य (देवा:) विद्वांसः (अनु) पश्चात् (व्रता) सत्यभाषणादीनि व्रतानि (गु:) गच्छन्ति। अत्राडभावो लडर्थे लुङ् च। (भुवत) भवति (परिष्टिः) परितः पर्वतः इष्टिरन्वेषणं यस्याः सा। अत्र एमन्नादिषु पररूपं वक्तव्यम्। (अष्टा० विष्टिः) इति वार्त्तिकेन पररूप एकादेशः। (द्यौः) सूर्यद्यतिः (न) इव (भूम) भवेम (वर्धन्ति) वर्धन्ते। अत्र व्यत्येन परस्मैपदम्। (ईम्) पृथिवीम् (आपः) जलानि (पन्वा) स्तुत्येन कर्मणा (सुशिश्चिम) सृष्टु द्वर्धकम्। छन्दिस सामान्येन विधानादत्र किः प्रत्ययः। (ऋतस्य) सत्यस्य कारणस्य (योना) योनौ निमृतं सित (गर्भे) सर्वपदार्थान्तःस्थाने (सुजातम्) सुष्टु प्रसिद्धम्॥२॥

अन्वयः-हे मनुष्या! देवा विद्वांसः पर्सिष्टः ह्योभुवर्त्रवर्त्तस्य व्रताऽनुगुरनुगम्याचरन्ति। यथैत ऋतस्य योना स्थितं सुजातं सुशिश्विं सभेशं पन्वा वर्धयन्ति विद्वातमी पृथिवौं चापश्च तथैव वयं भूम भवेम यूयमपि भवत॥२॥

भावार्थ: -अत्र वाचकलुजीपमालङ्कारः। मनुष्या यथा सूर्य्यप्रकाशेन सर्वे पदार्थाः सदृश्या भवन्ति, तथैव विदुषां सङ्गेन वेदविद्वार्याः जातायां धर्माचरणे कृते परमेश्वरो विद्युदादयश्च स्वगुणकर्मस्वभावः सम्यग्दृष्टा भवन्तीति यूयं विज्ञानीत। श्रा

पदार्थ:-हे मनुष्यों (न) जैसे विद्वान् लोग (परिष्टि:) सब प्रकार खोजने योग्य (द्यौ:) सूर्य्य के प्रकाश के तुल्य (भ्रवत्) होकर व पदार्थों को दृष्टिगोचर करते हैं, वैसे (ऋतस्य) सत्य धर्म स्वरूप आज्ञा विज्ञान से (व्रता) सत्यभाषण आदि नियमों को (अनुगु:) प्राप्त होकर आचरण करते हैं, तथा जैसे ये (ऋतस्य) कारणसूपी सत्य की (योना) योनि अर्थात् निमित्त में स्थित (सुजातम्) अच्छी प्रकार प्रसिद्ध (सुशिश्चिम्) अच्छे पढ़ानेवाले सभापित की (पन्वा) स्तुति करने योग्य कर्म्म से (ईम्) पृथिवी को (आप्रः) जल वा प्राण को (वर्धन्ति) बढ़ा कर ज्ञानयुक्त कर देते हैं, वैसे हम लोग (भूम) होवें और तुम भ्री होओं। रा।

मण्डल-१। अनुवाक-१२। सूक्त-६५

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! जैसे सूर्य के प्रकाश से सब पदार्थ दृष्टि में आते हैं, वैसे ही विद्वानों के संग से वेदविद्या के उत्पन्न होने और धर्म्माचरण की प्रकृति में परमेश्वर और बिजुली आदि पदार्थ अपने-अपने गुण, कर्म, स्वभावों से अच्छे प्रकार देख्ने जाते हैं, ऐसा तुम लोग जान कर अपने विचार से निश्चित करो॥२॥

पुनः स कीदृशोऽस्तीत्युपदिश्यते॥

फिर वह परमात्मा कैसा है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहतें हैं॥

पुष्टिर्न रण्वा क्षितिर्न पृथ्वी गिरिर्न भुज्म क्षोदो शंभु। अत्यो नाज्मन्त्सर्गप्रतक्तः सिन्धुर्न क्षोदः क ई वराते॥ ३॥/

पुष्टिः। न। रुण्वा। क्षि्तिः। न। पृथ्वी। गि्रिः। न। भुज्मे। क्षोदैः। न। श्रुम्ऽभु। अत्येः। न। अज्मेन्। सर्गेऽप्रतक्तः। सिन्धुः। न। क्षोदेः। कः। ईम्। वृराते॥३॥

पदार्थ:-(पृष्टि:) शरीरेन्द्रियात्मसौख्यवर्द्धिका (न) इव (एक्या) या रण्वित सुखं प्रापयित सा (क्षिति:) क्षियन्ति निवसन्ति राज्यरत्नानि प्राप्नुवन्ति यस्यां पा (न) इव (पृथ्वी) भूमिः (गिरिः) मेघः (न) इव (भुज्म) सुखानां भोजयिता (क्षोदः) जलम् (न) इव (शंभु) सुखसम्पादकम् (अत्यः) साधुरश्वः (न) इव (अज्मन्) मार्गे (सर्गप्रतक्तः) यः सर्गमुदकं प्रतपिति संक्रीचयित सः। सर्ग इत्युदकनामसु पठितम्। (निघं०१.१२) (सिन्धुः) समुदः (न) इव (क्षोदः) जलस्मूहः (कः) कश्चिदपि (ईम्) ज्ञातव्यं प्राप्तव्यं परमेश्वरं विद्युदूपमिनं वा (वराते)॥३॥

अन्वय:-यस्तमेतं परमात्मानं रण्वा पृष्टिमैव श्लितः पृथ्वी नेव गिरिर्भुज्मनेव क्षोदः शंभुनेवाऽज्मन्नत्यो नेव सर्गप्रतक्तः क्षोदो नेव को वराते वृणुते स पूर्णिक्द्यो भवति॥३॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। कश्चिद्व मनुष्य: परमेश्वरस्य प्राप्तिं विद्युतो विज्ञानोपकरणे कर्तुं शक्नोति। यथा सर्वोत्तमा पृष्टिः पूथ्वीराज्यं मेनवृष्टिरुत्तममुदकं श्रेष्ठोऽश्व: समुद्रश्च बहूनि सुखानि ददाति। तथैव परमेश्वरो विद्युच्च सूर्वान्दान् प्राप्रयत: परन्त्वेतं ज्ञाता महाविद्वान् मनुष्यो दुर्लभो भवति॥६॥

पदार्थ:-जो मनुष्य उसे परमेश्वर को (रण्वा) सुख से प्राप्त करानेवाला (पृष्टि:) शरीर आत्मा और इन्द्रियों की पृष्टि के (न) समान (क्षोद:) जल (शम्भु) सुख सम्पन्न करनेवाले के (न) समान तथा (अज्मन्) मार्ग में (अत्य:) घोड़े के समान (सर्गप्रतक्त:) जल को संकोच करनेवाले (सिन्धु:) समुद्र (क्षोद:) जल के (न) समान (ईम्) जानने तथा प्राप्त करने योग्य परमेश्वर वा बिजुलीरूप अग्नि को (क:) कुन विद्वान् मनुष्य (वराते) स्वीकार करता है॥३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। कोई विद्वान् मनुष्य परमेश्वर को प्राप्त होके और क्रिजुलीर्सिप अग्नि जान के उससे उपकार लेने को समर्थ होता है, जैसे उत्तम पुष्टि, पृथिवी का राज्य, मेघ

की वृष्टि, उत्तम जल, उत्तम घोड़े और समुद्र बहुत सुखों को प्राप्त कराते हैं, वैसे ही परमेश्वर और बिजुली भी सब आनन्दों को प्राप्त कराते हैं, परन्तु इन दोनों का जाननेवाला विद्वान् मनुष्य दुर्लभ है॥३॥

पुनभौतिकोऽग्नि: कीदृश इत्युपदिश्यते॥

अब भौतिक अग्नि कैसा है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

जामिः सिम्यूनां भ्रातेव स्वस्रामिभ्यान्न राजा वनान्यति॥ यद्वातंजूतो वना व्यस्थादुग्निही दाति रोमा पृथिव्याः॥४॥

जामिः। सिर्स्यूनाम्। भ्रातांऽइव। स्वस्नाम्। इभ्यांन्। न। राजां। वनांनि। अस्ति। यत्। मार्तःऽजूतः। वनां। वि। अस्थांत्। अग्निः। हु। दाति। रोमं। पृथिव्याः॥४॥

पदार्थ:-(जािम:) सुखप्रापको बन्धुः (सिन्धूनाम्) नदीनां समुद्राणां वा (भ्रातेव) सनािभरिव (स्वस्नाम्) स्वसॄणां भिगनीनाम्। अत्र वाच्छन्दिस सर्वे विधयो भवनोिति नुडभावः। (इभ्यान्) य इभान् हिस्तनो नियन्तुमहीन्त तान् (न) इव (राजा) नृपः (वनािन) अस्पयानि (अति) भक्षयित (यत्) यः (वातजूतः) वायुना वेगं प्राप्तः (वना) वनािन जङ्गलािन (कि) विविधार्थे (अस्थात्) तिष्ठति (अग्निः) प्रसिद्धः पावकः (ह) किल (दाित) छिनति (रोमा) रोमाण्योषभ्यादीिन (पृथिव्याः) भूमेः॥४॥

अन्वय:-यद्यो वातजूतोऽग्निर्वनानि दाति छिन्द्रि पृथिव्या है किल रोमाणि दाति छिनत्ति स सिन्धूनां जामि:। स्वस्रां भगिनीनां भ्रातेवेभ्यान् राजानेव व्यस्थात् वनानि/व्यत्ति॥४॥

भावार्थ:-अत्र द्वावुपमालङ्कारौ। यहा मनुष्यैयान चालनादिकार्य्येषु वायुसंप्रयुक्तोऽग्निश्चाल्यते, तदा स बहुनि कार्य्याणि साधयतीति बोद्धव्यम्। १४

पदार्थ:-(यत्) जो (वातजूतः) घायु से वेग को प्राप्त हुआ (अग्नि:) अग्नि (वना) वनों का (दाति) छेदन करता तथा (पृथिव्याः) पृथिवी के (ह) निश्चय करके (रोमा) रोमों के समान छेदन करता है, वह (सिन्धूनाम्) समुद्र और निर्दियों के (जािमः) सुख प्राप्त करानेवाला बन्धु (स्वस्नाम्) बहिनों के (भ्रातेव) भाई के समान तथा (इभ्रान्) हाथियों की रक्षा करनेवाले पीलवानों को (राजेव) राजा के समान (व्यस्थात्) स्थित होत् और (वनािन) वनों को (व्यत्ति) अनेक प्रकार भक्षण करता है॥४॥

भावार्थ: इस मन्त्र में दो उपमालङ्कार हैं। जब मनुष्य लोग यानचालन आदि कार्यों में वायु से संयुक्त किये हुए अपने को चलाते हैं, तब वह बहुत कार्यों को सिद्ध करता है, ऐसा सब मनुष्यों को जानना चाहिये।। अप

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह सभेश कैसा हो, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

भ्रुसित्यप्सु हुंसो न सीदुन् क्रत्वा चेतिष्ठो विशामुंषुर्भुत्।

मण्डल-१। अनुवाक-१२। सूक्त-६५

सोमो न वेधा ऋतप्रजातः पशुर्न शिश्वा विर्भुद्वरेभाः॥५॥९॥

श्वसिति। अप्ऽसु। हुंसः। न। सीर्दन्। क्रत्वां। चेतिष्ठः। विशाम्। उषः ऽभुत्। सोर्मः। न। बेथाः) ऋतऽप्रजातः। पृशुः। शिश्वां। विऽभुः। दूरेऽभाः॥५॥

पदार्थ:-(श्विसिति) योऽग्निना प्राणाऽपानचेष्टां करोति (अप्सु) जलेषु (हसः) पक्षिविशेषः (सीदन्) गच्छन्नागच्छन्निमज्जनुन्मज्जन् वा (क्रत्वा) क्रतुना प्रज्ञया स्वकीयेन कर्मणा वा (चेतिष्ठः) अतिशयेन चेतियता (विशाम्) प्रजानाम् (उषर्भुत्) उषिस सर्वान्बोधयित सः। अत्रोषरुपपदाद् बुध्रधातोः क्विप्। बशोभिषिति भत्वं च। (सोमः) ओषधिसमूहः (न) इव (वेधाः) पोषकः (ऋतप्रजातः) कारणादुत्पद्य ऋते वायावुदके प्रसिद्धः (पशुः) गवादिः (न) इव (शिश्वाः) शिश्वन्य वत्सादिना (विभुः) व्यापकः (दूरेभाः) दूरदेशे भा दीप्तयो यस्य सः॥५॥

अन्वयः – हे मनुष्या! यूयं योऽप्सु हंसो नेव सीदन् विशामुषर्भुत् सन् कृत्वा चेन्त्रिः सोमो नेवर्त्तप्रजातः शिशुना पशुर्नेव विभुः सन् दूरेभा विद्युदाद्यग्निरिव वेधाः श्वसिति तं कार्य्येषु विद्यया संप्रोजयत्त्रप्रभू॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। यथा विद्युताग्निना विना कस्यचिद्धाणिनो व्यवहारसिद्धिर्भवितुं न शक्यास्ति। तस्मादयं विद्यया सम्परीक्ष्य कार्य्येषु संयोजितः बहुनि सुख्यान साध्नोतीति॥५॥

अत्रेश्वरविद्युदग्निगुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्त्रार्थेन सह स्मृह्नतिरस्तीति बोद्धव्यम्॥

इति पञ्चषष्टितमं ६५ सूक्तं (नवमो ९ वर्गश्च समाप्त:॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! तुम लोग जो (अप्पू) जिलों में हंस:) पक्षी के (न) समान (सीदन्) जाता-आता डूबता-उछलता हुआ (विशाम्) प्रजाओं को (अप्पूर्ण्) प्रात:काल में बोध कराने वा (क्रत्वा) अपनी बुद्धि वा कर्म्म से (चेतिष्ठ:) अत्यन्त ज्ञान किंग्नेकले (सोम:) ओषधिसमूह के (न) समान (ऋतप्रजात:) कारण से उत्पन्न होकर वायु जल में प्रसिद्ध (वेधा:) पृष्ट करनेवाले (शिशुना) बछड़ा आदि से (पशु:) गौ आदि के (न) समान (विभु:) न्यापक हुआ (दूरेभा:) दूरदेश में दीप्तियुक्त बिजुली आदि अग्नि के समान (श्रिसित) प्राण, अपान अदि को करता है, उसको शिल्पादि कार्यों में संप्रयुक्त करो॥५॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे बिजुली के विना किसी मनुष्य के व्यवहार की सिद्धि नहीं हो सकती। इस अग्निबिद्धार से परीक्षा करके कार्यों में संयुक्त किया हुआ अग्नि बहुत सुखों को सिद्ध करता है॥५॥

इस सूक्त में ईश्वर, अर्फिरूप बिजुली के वर्णन से इस सूक्तार्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये॥ 🔷 🔘

यह पैसठवां ६५ सूक्त और नवां ९वर्ग समाप्त हुआ॥

अथ पञ्चर्चस्य षट्षष्टितमस्य सूक्तस्य शाक्त्यः पराशर ऋषिः। अग्निर्देवता। १ पङ्किः। २ भुरिक्पङ्क्तिः। ३ निचृत्पङ्क्तिः। ४,५ विराट् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनः सोऽग्निः कीदृश इत्युपदिश्यते॥

अब छासठवें सूक्त का आरम्भ किया जाता है। इसके प्रथम मन्त्र में पूर्वोक्त अग्नि के मुणां का उपदेश किया है।।

र्यिर्न चित्रा सूरो न संदृगायुर्न प्राणो नित्यो न सूनुः। तक्वा न भूर्णिर्वना सिषक्ति पयो न धेनुः शुचिर्विभावा॥ १॥

र्याः। न। चित्रा। सूर्रः। न। सम्ऽदृक्। आर्युः। न। प्राणः। नित्यः। न सूनुः। तक्रमी। न। भूर्णिः। वर्ना। सिसुक्तिः। पर्यः। न। धेनुः। शुर्चिः। विऽभावी॥ १॥

पदार्थ:-(रिय:) द्रव्यसमूहः (न) इव (चित्रा) विविधाश्चर्यपुणः अत्र सुपां सुलुगित्याकारादेशः। (सूर:) सूर्यः (न) इव (सन्दृक्) सम्यग्दर्शयिता (आयुः) जीवन्य (न) इव (प्राणः) सर्वशरीरगामी वायुः (नित्यः) कारणरूपेणाविनाशिस्वरूपः (न) इव (सूनुः) कारणरूपेण वायोः पुत्रवद्वर्त्तमानः (तक्वा) स्तेनः। तक्वेति स्तेननामसु पठितम्। (निघं०३.२४) भूणिः) ध्रेतां (वना) अरण्यानि किरणान् वा (सिसक्ति) समवैति (पयः) दुग्धम् (न) इव (धेनुः) दुग्धस्त्र्यां गौः (शुचिः) पवित्रः (विभावा) यो विविधान् पदार्थान् भाति प्रकाशयित सः॥१॥

अन्वय:-हे मनुष्या! भवन्तो रियर्नेव चित्रः/सूरी नेव सृंद्रगायुर्नेव प्राणो नित्यो नेव सूनुः पयो नेव धेनुस्तक्वा नेव भूणिविभावा शुचिरग्निर्वना सिसक्ति तं यथाकृद् विज्ञाय कार्येषूपयोजयन्तु॥१॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। ममुभीयेनेश्वरण प्रजाहिताय विविधगुणोऽनेककार्योपयोगी सत्यस्वभावोऽग्नि-र्निर्मित: स एव सर्विदेशासनीय:॥१॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! अप सब लोग (रियर्न) द्रव्यसमूह के समान (चित्रा) आश्चर्य गुणवाले (सूर:) सूर्य्य के (न) समान (सहक) अच्छे प्रकार दिखानेवाला (आयु:) जीवन के (न) समान (प्राण:) सब शरीर में रहनेवाला (नित्यः) कार्रणरूप से अविनाशिस्वरूप वायु के (न) समान (सूनु:) कार्र्यरूप से वायु के पुत्र के तुल्य बेल्पान (पय:) दूध के (न) समान (धेनु:) दूध देनेवाली गौ (तक्वा) चोर के (न) समान (भूणिंश) धारण करने (विभावा) अनेक पदार्थों का प्रकाश करनेवाला (शुचि:) पवित्र अग्नि (वना) वन वा किरणों को (सिसक्ति) संयुक्त होता वा संयोग करता है, उसको यथावत् जान के कार्यों में उपयुक्त करो। है।

भावार्थ:=इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्यों को उचित है कि जिस ईश्वर ने प्रजा के हित के लिए बहुत सुणवाले अनेक कार्य्यों के उपयोगी सत्य स्वभाववाले इस अग्नि को रचा है, उसी की सदा उपासनी करें॥

मण्डल-१। अनुवाक-१२। सूक्त-६६

पुनः स मनुष्यः कीदृशो भवेदित्युपदिश्यते॥

फिर वह मनुष्य कैसा हो, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है।।

दाधार क्षेममोको न रण्वो <mark>यवो</mark> न पुक्वो जेता जर्नानाम्। ऋषिर्न स्तुभ्वा विक्षु प्रशास्तो वाजी न प्रीतो वयो दधाति॥२॥

दाधारं। क्षेमंम्। ओर्कः। न। रुण्वः। यर्वः। न। पुक्वः। जेर्ता। जर्नानाम्। ऋषिः) न। स्तुभ्वा) विक्षु। प्रऽशुस्तः। वाजी। न। प्रीतः। वर्यः। दुधाति॥२॥

पदार्थ:-(दाधार) धरेत्। अत्र तुजादित्वाद् दीर्घोऽभ्यासः। (क्षेमम्) कन्याणक् रं रक्षणम् (ओकः) गृहम् (न) इव (रण्वः) रमणीयः पुष्वकारी धान्यविशेषः (म) इव (पववः) उपभोक्तुमर्हः (जेता) उत्कर्षत्वप्रापकः (जनानाम्) मनुष्यादीनाम् (ऋषिः) मन्त्रार्थदृष्टि। विद्वान्ने विद्याप्रकाशकः (न) इव (स्तुभ्वा) अर्चकः। स्तोभतीत्यर्चितिकर्मसु पठितम्। (निघं०३.१४) (विक्षु) उत्पन्नासु प्रजासु (प्रशस्तः) श्रेष्ठः (वाजी) वेगवानश्चः (न) इव (प्रीतः) कमनीयः (वयः) जीवनम् (द्याति) धरेत्॥२॥

अन्वय:-यो मनुष्य ओको नेव रण्वः पक्वो यवो नेव प्रकारिकीय स्तुभ्वा वाजी नेव प्रीतो विक्षु प्रशस्तो जनानां जेता वयो दधाति स क्षेमं दाधार॥२॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। ये मनुष्या जीपनहेतून् ब्रह्मचर्यादीन् सम्यग् विज्ञाय कार्य्यसिद्धये संप्रयुञ्जते युक्ताहारविहारायोपयुक्तान् पदार्थान् व्यन्ति, ते देश्चीयुषो भूत्वा सदा सुखिनो भवन्ति॥२॥

पदार्थ:-जो मनुष्य (ओक:) घर के (न) समान (राण्वः) रमणीयस्वरूप (पक्वः) पके (यवः) सुख करनेवाले यव के (न) समान (राण्वः) मुन्नों के अर्थ को जाननेवाले विद्वान् के (न) समान (स्तुभ्वा) सत्कार के योग्य (वाजी) सगवान् थोड़े के समान (प्रीतः) कमनीय (विक्षु) प्रजाओं में (प्रशस्त) श्रेष्ठ (जनानाम्) मनुष्य आदि प्रणियों को (जेता) सुख प्राप्त करानेवाला (वयः) जीवन (दधाति) धारण करता है, वह (क्ष्मम्) रक्षा को (दाधार) धारण करता है॥२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमाल ङ्कार है। जो मनुष्य जीवन के निमित्त ब्रह्मचर्य्यादि कर्मों को काम की सिद्धि के लिये अच्छे प्रकार जीनके युक्तिपूर्वक आहार और विहार के अर्थ यथायोग्य पदार्थों को धारण करते हैं, वे बहुत काल पर्यन्त जी के सदा सुखी होते हैं॥२॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

ऽफिर वह कैसा है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

द्वरोकशोचिः क्रतुर्न नित्यो जायेव योनावरं विश्वस्मै।

चित्रो यदभ्राट्च्छ्वेतो न विक्षु रथो न रुक्मी त्वेष: सुमत्सुं॥३॥

S00

ऋग्वेदभाष्यम्

दुरोक्तेऽशोचिः। क्रर्तुः। न। नित्यः। जायाऽईव। योनौ। अर्रम्। विश्वस्मै। चित्रः। यत्। अभ्राट्। श्वेतः। न। विश्वु। रर्थः। न। फुक्मी। त्वेषः। सुमत्ऽसुं॥३॥

पदार्थ:-(दुरोकशोचि:) दूरस्थेष्वोकेषु स्थानेषु शोचयो दीप्तयो यस्य सः (कृतुः) प्रह्या किम वी (न) इव (नित्यः) अविनश्वरस्वभावः (जायेव) यथा भार्या तथा (योनौ) कारणे (अरम्) अत्सम् (विश्वरमें) सर्वसमें जगते (चित्रः) अद्भुतस्वभावः (यत्) यः (अभ्राट्) न केनापि प्रकाशितो भवति स्वप्रकाशत्वात् (श्वेतः) भास्वरस्वरूपत्वाच्छुद्धः (न) इव (कृक्मी) प्रशस्तानि रुक्माणि रोचकानि कर्माणि गुणा व सन्ति यस्य सः (त्वेषः) प्रदीप्तस्वभावः (समत्सु) संग्रामेषु। समित्स्विति संग्रामेषम् पिठतम्। (निघं०२.१७)॥३॥

अन्वय:-यद्यो मनुष्यो क्रतुर्नेव नित्यो जायेव योनावरं कर्ता श्वेतो नेव विश्व रथी नव अवमी दुरोकशोचि-विश्वस्मै सर्वसुखकर्ता समत्सु चित्रोऽभ्राट् त्वेषोऽस्ति स सम्राड् भवितुमर्हति॥३॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। मनुष्यैर्यो ज्ञानकर्मवत्सदा वर्त्तमानोऽनुकूलस्त्रीवत्सर्वसुखनिमित्तः सूर्य्यवत् प्रकाशकोऽद्धृतो रथवन्मोक्षमार्गस्य नेता वीरवद्युद्धेषु बिजेता वर्त्तते, स राज्यश्रियमवाप्नोति॥३॥

पदार्थ:-(यत्) जो मनुष्य (क्रतुः) बुद्धि वा कर्म के (च) समान (नित्यः) अविनाशिस्वभाव (जायेव) भार्या के समान (योनौ) कारणरूप में (अरम्) अलंकर्च्या (श्वेतः) शुद्ध शुक्लवर्ण के (न) समान (विश्व) प्रजाओं में शुद्ध करने (रथः) सुवर्णादि से मिनित विमानादि यान के (न) समान (रुक्मी) रुचि करनेवाले कर्म वा गुणयुक्त (दुरोकशोचिः) दूर्यथानों से क्षेप्तियुक्त (विश्वस्मै) सब जगत् के लिये सुख करने (समत्सु) संग्रामों में (चित्रः) अद्भुत स्वभावयुक्त (अभ्राट्) आप ही प्रकाशमान होने से शुद्ध (त्वेषः) प्रदीप्त स्वभाववाला है, वहीं चक्रविश्वि स्जा)होने के योग्य होता है॥३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि जो ज्ञान और कर्मकाण्ड के समान सदा वर्त्तमान, अनुकूल स्वी के समान सुखों का निमित्त, सूर्य के समान शुभगुणों को प्रकाश करने, आश्चर्य गुणवाले रथ के समान मोक्ष में प्राप्त करने, वीर के समान युद्धों में विजय करनेवाला हो, वह राज्यलक्ष्मी को प्राप्त होता है। ३॥/

ँ पुन: स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

सेनेव सृष्टे एमं दधात्यस्तुर्न दिद्युत्त्वेषप्रतीका।

युर्गो हे जातो युमो जनित्वं जारः क्नीनां पितुर्जनीनाम्॥४॥

सेनाऽइवा सृष्टा। अर्मम्। दुधाति। अस्तुः। न। दिद्युत्। त्वेषऽप्रतीका। यमः। हु। जातः। यमः। जर्निऽत्वम्। जारः। कुनीन्स्। पर्तिः। जनीनाम्॥४॥

मण्डल-१। अनुवाक-१२। सूक्त-६६

पदार्थ:-(सेनेव) यथा (सुशिक्षिता) वीरपुरुषाणां विजयकर्त्री सेनास्ति तथाभूतः (सृष्टा) युद्धाय प्रेरिता (अमम्) अपरिपक्वविज्ञानं जनम् (दधाति) धरित (अस्तुः) शत्रूणां विजेतुः प्रक्षेप्तुः (जिन्ह्यम्) (दिद्युत्) विच्छेदिका (यमः) नियन्ता (ह) किल (जातः) प्रकटत्वं गतः (यमः) सर्वोप्रतः (जिन्ह्यम्) जन्मादिकारणम् (जारः) हन्ता सूर्य्यः (कनीनाम्) कन्येव वर्त्तमानानां रात्रीणां सूर्य्यदिनां वा (पितः) पालियता (जनीनाम्) जनानां प्रजानाम्॥४॥

अन्वय:-हे मनुष्या! यूयं योऽयं सेनेशो जातो यमो जनित्वं कनीनां जार इव विभीनां पितश्चाऽस्ति स सृष्टा सेनेवास्तुस्त्वेषप्रतीका दिद्युन्नेवादधाति तं भजत॥३॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। मनुष्यैर्विद्यया सम्यक् प्रयत्नेन यथा सुन्निक्षित् सेना शत्रून् विजित्य विजयं करोति। यथा च धनुर्वेदविद: शत्रूणामुपिर शस्त्रास्त्राणि प्रक्षिप्यतान् विक्छिद्य प्रलयं गमयन्ति, तथैवोत्तम: सेनाऽधिपित: सर्वदु:खानि नाशयतीति बोद्धव्यम्॥४॥

पदार्थ: - हे मनुष्यो! तुम लोग जो सेनापित (यम:) विश्वस केर्जुवाला (जात:) प्रकट (यम:) सर्वथा नियमकर्त्ता (जिन्त्वम्) जन्मादि कारणयुक्त (किन्तिम्) कन्यावत् वर्त्तमान रात्रियों के (जार:) आयु का हननकर्त्ता सूर्य के समान (जननीनाम्) उत्पन्न हुई प्रमाओं का (पित:) पालनकर्ता (सृष्टा) प्रेरित (सेनेव) अच्छी शिक्षा को प्राप्त हुई वीर पुरुषों की किजय करनेवाली सेना के समान (अस्तु:) शत्रुओं के ऊपर अस्त्र-शस्त्र चलानेवाले (त्वेषप्रतीका) दीक्तियों के प्रतिति करनेवाले (दिद्युन्न) बिजुली के समान (अमम्) अपरिपक्व विज्ञानयुक्त जन को (द्याति) धारण्यकरता है, उसका सेवन करो॥४॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि विद्या से अच्छे प्रयत्न द्वारा जैसे की हुई उत्तम शिक्षा से सिद्ध की हुई सेन श्रमुओं को जीत कर विजय करती है, जैसे धनुर्वेद के जाननेवाले विद्वान् लोग शत्रुओं के उत्तम सेनापित सब दु:खों का निश करता है, ऐसा तुम जानो॥४॥

पुनः स्कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर (विक्त कैस) है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

तं वश्चरार्था वयं वसत्याऽस्तं न गावो नक्षन्त इद्धम्।

सिन्धुर्न क्षेतुः प्र नीचीरैनोन्नवंन्त गावः स्वर्थर्दृशीके॥५॥१०॥

तम्। वः रच्चरोष्ट्रां। वयम्। वस्त्या। अस्तम्। न। गार्वः। नक्षन्ते। इद्धम्। सिन्धुः। न। क्षोर्दः। प्र। नीचीः। ऐनोत्। नवन्ता गार्वः। स्वः। दृशीके॥५॥

पद्गर्थः-(तम्) पूर्वोक्तम् (वः) युष्मभ्यम् (चराथा) चराथया। अत्र चरधातो ब्रह्मुलकर्ह्निणादिकोऽथप्रत्ययः प्रत्ययादेर्दीर्घः **सुपां सुलुगि**त्याकारादेशश्च। (वयम्) अनुष्ठातारः (वसत्या)

वसन्ति यस्यां तया (अस्तम्) गृहम् (न) इव (गावः) पालिता धेनवः (नक्षन्ते) प्राप्नुवन्ति (इद्धम्) दीर्प्तम् (सिन्धुः) समुद्रः (न) इव (क्षोदः) जलम् (प्र) प्रकृष्टार्थे (नीचीः) निम्नदेशे (ऐनोत्) प्राप्नोति। अत्रेण् धातोर्व्यत्ययेन श्नुः। (नवन्त) गच्छन्ति। नवत इति गतिकर्मसु पठितम्। (निघं०२.१४) (गावः) किरणः) (स्वः) आदित्ये (दृशीके) दर्शके। अत्र दृशधातोर्बाहुलकादौणादिक ईकन् प्रत्ययः किच्च।

अन्वय:-यः सभेशश्चराथा वसत्या गावोऽस्तं न गृहमिव नक्षन्ते गाव स्वर्दृशीक इद्धं नक्तेव सिन्धुर्भीचीः क्षोदो न वः प्रैनोत् प्राप्नोति तं वयं सेवेमिह॥५॥

भावार्थ:-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। य एवं जगदीश्वरं संसेव्य विद्युत्तं को साध्नुवन्ति तान् यथा गावो गृहं किरणाः सूर्य्यं च गच्छन्ति तथैव सुखानि प्राप्नुवन्ति यथा मनुष्यः समुद्रं प्राप्य नानाकार्य्याण्यलंकरोति तथैव सज्जनैरन्तर्यामिणमुपास्य विद्युद्धिद्यां व साध्य सर्वे कामा अलंकर्त्तव्याः॥५॥

अत्रेश्वरस्याग्नेश्च गुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वद्यम्॥ इति षट्षष्टितमं ६६ सुक्तं दशमो १० वर्षश्च सम्पनः॥

पदार्थ:-जो (चराथा) चररूप (वसत्या) वास करिने मोग्य पूर्णिथवी के सह वर्त्तमान (गाव:) गौ (न) जैसे (अस्तम्) घर को (नक्षन्ते) प्राप्त होती जैसे (गाव:) किएण (स्वर्दृशीके) देखने के हेतु व्यवहार में (इद्धम्) सूर्य्य को (नवन्ते) प्राप्त होते हैं (न) जैसे (सिश्यु:) समुद्र (नीची:) नीचे के (क्षोद:) जल को प्राप्त होता है, वैसे (व:) तुम लोगों को (प्रैनोत्) प्राप्त होता है, उसी की सेवा हम लोग करें॥५॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुम्लोपमालङ्कार हैं। जो सभापित आदि इस प्रकार परमेश्वर का सेवन और विद्युत् अग्नि को सिद्ध करते हैं, उनको जैसे गौ, घर और किरण सूर्य को प्राप्त होते हैं और जैसे मनुष्य समुद्र को प्राप्त होके नान्य प्रकार के कामों को सुशोभित (सिद्ध) करता है, वैसे ही सज्जन पुरुषों को उचित है कि अन्तर्स्योमी परमेश्वर की उपासना तथा विद्युत् विद्या को यथावत् सिद्ध करके अपनी सब कामनाओं को पूर्ण करें॥५)

इस सूक्त में ईश्वर और अभि और गुणों का वर्णन होने इस सूक्त की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये॥

यह छास्छवां ६६ सूक्त तथा दशवां १० वर्ग समाप्त हुआ॥

अथ पर्ञ्चस्य सप्तषष्टितमस्य सूक्तस्य शाक्त्यः पराशर ऋषिः। अग्निर्देवता। १,२,४ निचृत् पङ्क्तिः। ३ पङ्किः। ५ विराट् पङ्किश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनः स विद्वान् कीदृशो भवेदित्युपदिश्यते॥

अब सड़सठवें सूक्त का आरम्भ है। इसके प्रथम मन्त्र में विद्वान् कैसा हो, इस विषय की कहा

है॥

वर्नेषु जार्युमर्तेषु मित्रो वृणीते श्रुष्टिं राजेवाजुर्यम्। क्षेमो न साधुः क्रतुर्न भुद्रो भुवेत्स्वाधीर्होता हव्यवाट्॥ १॥

वर्नेषु। जायुः। मर्तेषु। मित्रः। वृणीते। श्रुष्टिम्। राजाऽइव। अजुर्यम्। क्षेपः। ना साधुः। क्रतुः। न। भुद्रः। भुवत्। सुऽआधीः। होतां। हुव्युऽवाट्॥ १॥

पदार्थ:-(वनेषु) संभजनीयेषु पदार्थेषु (जायुः) प्रजेता (मर्तेषु) मनुष्येषु (मित्रः) सखेव (वृणीते) स्वीकुरुते (श्रुष्टिम्) क्षिप्रकारिणम्। श्रुष्टि इति क्षिप्रनाम। आशु श्रष्टीति। (निरु०६.१२) (राजेव) यथा सभाद्यध्यक्षः (अजुर्व्यम्) युद्धविद्यासङ्गतम् (क्षेमः) कल्याणकारी (न) इव (साधुः) सत्यमानी सत्यकारी सत्यवादी (कृतुः) प्रशस्तकर्मप्रज्ञः (न) इव (भद्रः) कल्याणकारः (भुवत्) भवेत्। अत्र लडर्थे लेट्। (स्वाधीः) सुष्टु समन्ताद्धीयते येन सः (होता) दाताऽनुग्रहीता (हव्यवाट्) यो ग्राह्यदातव्यान् पदार्थान् वहति प्रापयित सः॥१॥

अन्वय:-हे मनुष्या! यूयं यो विद्वान् वनेषु जिस्तिवाजुर्य्यं श्रृष्टिं राजेव क्षेमः साधुर्नेव भद्रः क्रतुर्नेव स्वाधीर्होता हव्यवाङ्भुवद्भवेद्धार्मिकान् मनुष्यान् वृणीते तं सद्भारकेष्ट्यम् ॥१/।

भावार्थः-अत्रोपमावाचकलुप्त्रोपमाल्यक्रारो मनुष्यैर्विद्वत्सङ्गं कृत्वाऽऽनन्दः सदैव कर्त्तव्यः॥१॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! तुम लोग जो विद्वान् (वनेषु) सम्यक् सेवने योग्य पदार्थ (जायुः) जीतने के हेतु सूर्य्य के समान (अजुर्य्यम्) युद्धविद्या से सङ्गत सेना के तुल्य योग्य (श्रुष्टिम्) शीघ्रता करनेवाले को (राजेव) राजा के समान (क्षेपः) रक्षक (साष्टुं) सत्पुरुष के समान (भद्रः) कल्याणकारी (क्रतुर्न) उत्तम बुद्धि और कर्मकर्ता के हुत्य (स्वाधीः) अच्छे प्रकार धारण करने (होता) देने तथा अनुग्रह करने और (हव्यवाट्) लेने-देने योग्य पदार्थों का प्राप्त करानेवाला (भुवत्) हो तथा धर्मात्मा मनुष्यों को (वृणीते) स्वीकार करे, उसक्रा सदा सेवन करो॥१॥

भावार्थ:-इस मन्त्रा में उपमा और (वाचकलुप्तोपमालङ्कार) हैं। मनुष्यों को उचित कि विद्वानों का संग कर्रके सदेत आभन्द भोग करें॥१॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह विद्वान् कैसा हो, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

हस्ते दर्धानो नृम्णा विश्वान्यमे देवान् धाद्गुहा निषीदेन्।

विदन्तीमत्र नरो धियुंधा हृदा यत्तृष्टान् मन्त्राँ अशंसन्॥२॥

हस्ते। दर्धानः। नृम्णा। विश्वानि। अमे। देवान्। धात्। गुहां। निऽसीर्दन्। विदन्ति। ईम्। अस्री नर्रः। धियुम्ऽधाः। हृदा। यत्। तृष्टान्। मन्त्रान्। अशंसन्॥२॥

पदार्थ:-(हस्ते) करे (दधानः) धरन्नुदारो धातेव (नृम्णा) धनानि (विश्वानि) सर्वाणि (अमे) ज्ञानादिनिमित्तेषु गृहेषु (देवान्) विदुषो दिव्यगुणान् वा (धात्) दधाति (गुहा) गुहायां सर्वविद्यासंयुक्तायां बुद्धौ। गुहागूहते:। (निरु०१३.९) (निषीदन्) स्थितोऽवस्थापयन् (विदन्ति) जानिन् (ईम्) प्राप्तव्यान् बोधान्। ईमित पदनामसु पठितम्। (निघं०४.२) (अत्र) अस्मिन् (नरः) चे नयिति ते मनुष्याः (धियन्धाः) ये प्रज्ञां कर्म्म वा दधाति ते (हृदा) हृदयस्तेन विज्ञानेन (यत्) तिष्ठान्) तुक्षन्ति तीक्ष्णीकुर्वन्ति यैविद्यास्तान् (मन्त्रान्) वेदावयवान् विचारान् वा (अशंसन्) स्तुवन्ति स्त्रा

अन्वय:-यद्येन नरो यथा धियन्धा विद्वांसस्तष्टान् मन्त्रान् विदन्त्यशसन् स्तुवित च। यथोदारो दाता हस्ते विश्वानि नृम्णानि दधानोऽन्येभ्य: सुपात्रेभ्यो ददाति यथा गुहा निषीदत्रीश्वरो विद्वान् अत्र अमे देवान् धाद्दधाति तथा वर्त्तन्ते तेऽतुलमानन्दं लभन्ते॥२॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। हे मुनुष्याः युष्पाभिर्योऽन्तर्य्याम्यात्मिन सत्यानृते उपदिशति बाह्योऽध्यापको विद्वांश्च वर्त्तते तं विहाय नैव-कस्याप्युप्पानना संसर्गश्च कर्त्तव्य इति ॥२॥

पदार्थ:-(यत्) जो (नरः) प्राप्ति करने व्यास्य मनुष्य जैसे (धियन्धाः) प्रज्ञा, कर्म को धारण करनेवाले विद्वान् लोग (तष्टान्) विद्याओं को तीष्ण करनेवाले (मन्त्रान्) वेदों के अवयव वा विचाररूपी मन्त्रों को (विदन्ति) जानते (अशंसन्) स्तृति करते हैं। जैसे देनेवाला उदार मनुष्य (हस्ते) हाथ में (विश्वानि) सब (नृम्णा) धनों को (दधार) धिरण किया हुआ अन्य सुपात्र मनुष्यों को देता है। जैसे (गृहा) सब विद्याओं से युक्त बुद्धि में (निषीद्द्य) स्थित हुआ ईश्वर वा योगी विद्वान् (अत्र) इस (अमे) विज्ञान आदि में (देवान्) विद्वान् व दिव्य गुणों को (धात्) धारण करता है, वैसे होते हैं, वे अत्यन्त आनन्द को प्राप्त होते हैं॥२॥

भावार्थ:-इस मृत्र में वाचुन लुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! तुम लोगों को चाहिये कि जो अन्तर्यामी आत्मा में सार्थ- हिंठ को उपदेश करता और बाह्य अध्ययन करानेवाला विद्वान् वर्त्तमान है, उसको छोड़ कर क़िसी की उपासना वा संगत कभी मत करो॥२॥

पुनरीश्वरविद्वद्गुणा उपदिश्यन्ते॥

🚵 अगले मन्त्र में ईश्वर और विद्वान् के गुणों का उपदेश किया है॥

भूजो न क्षां दाधारं पृथिवीं तुस्तम्भ द्यां मन्त्रेभिः सुत्यैः।

प्रिया पुदानि पुश्चो नि पाहि विश्वार्युरग्ने गुहा गुहं गाः॥३॥

मण्डल-१। अनुवाक-१२। सूक्त-६७

अजः। न। क्षाम्। दाधारं। पृथिवीम्। तस्तम्भं। द्याम्। मन्त्रेभिः। सुत्यैः। प्रिया। पदानिं। पृश्वः। नि। पाहि। विश्वऽआयुः। अग्ने। गुहा। गुहंम्। गाः॥३॥

पदार्थ:-(अजः) यः परमात्मा कदाचित्र जायते सः (न) इव (क्षाम्) भूमिम्। क्षेत्रिं पृथिबीनामसु पठितम्। (निघं०१.१) (दाधार) स्वसत्तयाकर्षणेन धरित (पृथिवीम्) अन्तर्रिक्षस्थानस्यांल्लोकान् (तस्तम्भ) स्तभ्नाति (द्याम्) प्रकाशमयं विद्यमानम्। सूर्य्यादिलोकसमूहं वा (मन्त्रेभिः) ज्ञानयुक्तेर्विचारैः (सत्यैः) सत्यलक्षणोज्ज्वलैर्नित्यैः (प्रिया) प्रियाणि (पदानि) प्राप्तव्यानि (प्रश्वः) प्रशोर्बन्धनान् (नि) नितराम् (पाहि) रक्ष (विश्वायुः) सर्वमायुर्जीवनं यस्मात्सः (अग्ने) विद्वन् (गृहा) गुहायां बुद्धौ (गृहम्) गूढं विज्ञानगम्यं कारणज्ञानम् (गाः)॥३॥

अन्वय:-हे अग्ने विद्वंस्त्वं यथा परमात्मा सत्यैर्मन्त्रेभिः क्षां दाधार पृष्टिवीं द्यां तस्तम्भ स्तभ्नाति प्रियाणि पदानि ददाति गुहा स्थितः सन् गुहं गाः पश्चो बन्धनादस्मान् रक्षति तथा विश्वायुः स्मृन् धुर्मेण प्रजानिपाह्यजो नेव भव॥३॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। यथा परमेश्वर स्वकीयैर्तिज्ञानबलादिगुणै: सर्वं जगद्धरित यथा प्रिय: सखा स्वकीयं मित्रं दु:खबन्धात् पृथक्कृत्य क्रियाणि सुख्रानि प्रापयित यथाऽन्तर्यामिरूपेण परमेश्वरो जीवादिकं धृत्वा प्रकाशयित, तथैव सभाध्यक्ष: सत्यायोग राज्यं सूर्य: स्वैराकर्षणादिगुणैर्जगच्च धरित॥३॥

पदार्थ:-हे (अग्ने) पूर्ण विद्यायुक्त विद्वान् कि परमात्मा (सत्ये:) सत्य लक्षणों से प्रकाशित ज्ञानयुक्त (मन्त्रेभि:) विचारों से (क्षाम्) भूमि को (द्याधार) अपने बल से धारण करता (पृथिवीम्) अन्तरिक्ष में स्थित जो अन्य लोक (द्याम्) तथा प्रकाशमय सूर्य्यादि लोकों को (तस्तम्भ) प्रतिबन्धयुक्त करता और (प्रिया) प्रीतिकारक (पद्यम्) प्राप्त करने योग्य ज्ञानों को प्राप्त कराता है (गृहा) बुद्धि में स्थित हुए (गृहम्) गूढ़ विज्ञान भूक्षिर के स्थान को (गा:) प्राप्त हो वा होते हैं (पश्च:) बन्धन से हम लोगों की रक्षा करता वैसे धर्म स्थित को (कि पाहि) निरन्तर रक्षा कर और (अजो न) न्यायकारी ईश्वर के समान हजिये॥३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में बाच्यक्त लुप्तोपमालङ्कार है। जैसे परमेश्वर वा जीव कभी उत्पन्न वा नष्ट नहीं होता, वैसे कारण भी विनाश में नहीं आता। जैसे परमेश्वर अपने विज्ञान, बल आदि गुणों से पृथिवी आदि जगत् को रचकर भारण करता है, वैसे सत्य विचारों से सभाध्यक्ष राज्य का धारण करे। जैसे प्रिय मित्र अपने मित्र को दुःख्य के बन्धों से पृथक् करके उत्तम-उत्तम सुखों को प्राप्त कराता है, वैसे ईश्वर और सूर्य्य भी ख़ब सुखों को प्राप्त कराते हैं। जैसे अन्तर्य्यामि रूप से ईश्वर जीवादि को धारण करके प्रकाश करता है, वैसे सभाध्यक्ष सत्यन्याय से राज्य और सूर्य्य अपने आकर्षणादि गुणों से जगत् को धारण करता है।

पुनस्तौ कीदृशावित्युपदिश्यते॥

४७७

ऋग्वेदभाष्यम्

फिर भी ईश्वर और विद्वान् के गुणों का उपदेश करते हैं॥

य ईं चिकेत गुहा भवंन्तमा यः ससाद धारामृतस्य। वि ये चृतन्त्यृता सर्पन्त आदिद्वसूनि प्र वंवाचास्मै॥४॥

यः। ईम्। चिकेते। गुहां। भवन्तम्। आ। यः। सुसादं। धाराम्। ऋतस्यं। वि। ये। चृतिति। ऋता। सर्पन्तः। आत्। इत्। वसूनि। प्र। वृवाच। अस्मै॥४॥

पदार्थ:-(य:) मनुष्यः (ईम्) विज्ञानमुदकं वा (चिकेत) जानाति (गुहा) बुद्धी विज्ञाने (भवन्तम्) सन्तं जगदीश्वरं सभाद्यध्यक्षं वा (आ) समन्तात् (य:) (ससाद) अवसादयित (धाराम्) आचं प्रवाहं वा। धारेति वाङ्नामसु पठितम्। (निघं०१.११) (ऋतस्य) सत्यविद्यामयस्य द्विचतुष्ट्रवस्य जलस्य वा (वि) विशेषे (ये) मनुष्याः (चृतन्ति) ग्रथ्नन्ति (ऋता) ऋतानि सत्यानि (सर्यन्तः) सम्प्रयन्तः (आ) अनन्तरे (इत्) एव (वसूनि) विद्यासुवर्णादिधनानि (प्र) प्रकृष्टे (ववाच) उक्तवान्। सम्प्रसारणाच्चेत्यत्र वाच्छन्दसीत्युनवर्त्तनाद् यणादेशः। (अस्मै) मनुष्याय॥४॥

अन्वय:-यो मनुष्यो गुहाभवन्तमी ज्ञानस्वरूपमीश्वरं विद्वांसं ज्ञापक्रमुद्धं वा चिकेत जानाति। य ऋतस्य धारामाससाद ये ऋता सपन्तो वसूनि विचृतन्ति। यस्मै प्रमिश्वरः प्रविवाचादनन्तरमस्मायिदेव सर्वाणि सुखानि प्राप्नुवन्ति॥४॥

भावार्थ:-अत्र श्लेषालङ्कार:। निह कस्यवित्परमेश्वर्ग्रेपासनिवज्ञानाभ्यां सत्यविद्याचरणाभ्यां च विना सुखानि यथावन्निर्विघ्नतया भवितुं शक्यन्त्री। ।

पदार्थ:-(य:) जो मनुष्य (गुहा) बुद्धि तथा विज्ञान में (ईम्) विज्ञानस्वरूप (भवन्तम्) जगदीश्वर वा सभाध्यक्ष को (चिकेत) जानता है (यः) जो (ऋतस्य) सत्य विद्यारूप चारों वेद वा जल के (धाराम्) वाणी वा प्रवाह को (आ ससाद) प्राप्त कराता है (ये) जो मनुष्य (ऋता) सत्यों को (सपन्त:) संयुक्त करते हुए (वसूनि) विद्या, सुवर्ण आदि धनें को (विचृतन्ति) ग्रन्थियुक्त करते हैं, जिसलिये परमेश्वर ने (प्र ववाच) कहा है (आत्) इसके पीछे (इत्) इसी के लिये सब सुख प्राप्त होते हैं॥४॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में श्लेप्सलङ्कार है। किसी मनुष्य को परमेश्वर की उपासना वा विज्ञान, सत्यविद्या और उत्तम आचरणों के विना सुख प्राप्त नहीं हो सकते॥४॥

अथेश्वरविद्युद्गुणा उपदिश्यन्ते॥

अब अगले मन्त्र में ईश्वर और विद्युत् अग्नि के गुणों का वर्णन किया है।।

विर्यो वेरिरुत्सु रोधन्महित्वोत प्रजा उत प्रसूष्वनतः।

क्षित्तिरूपां दमें विश्वायुः सद्मेव धीराः सुंमार्य चक्रः॥५॥११॥

मण्डल-१। अनुवाक-१२। सूक्त-६७

वि। यः। वी्रुक्त्ऽस्रुं। रोधंत्। मृह्युऽत्वा। उत। प्रुऽजाः। उत। प्रुऽसूषु। अन्तरिति। चित्तिः। अपाम्। दमे। विश्वऽआयुः। सद्योऽइव। धीराः। सुम्ऽमायः। चुकुः॥५॥

पदार्थ:-(वि) विशेषार्थे (यः) जगदीश्वरो विद्युद्वा (वीरुत्सु) सत्तारचनाविस्रीकेण निरुद्धिषु कार्य्यकारणद्रव्येषु। वीरुध इति पदनामसु पिठतम्। (निघं०४.३) (रोधत्) निरुणिद्धि स्वीकरोति (मिहत्वा) सत्कृत्य (उत्त) अपि (प्रजाः) समृत्पन्नाः (उत्त) अपि (प्रसूषु) येभ्यो ये वा प्रसूपन्ते तेषु (अन्तः) मध्ये (चित्तः) सम्यङ् ज्ञाता ज्ञापको वा (अपाम्) प्राणानां जलानां वा (इमे) उपशमे गृहीते गृहे वा (विश्वायुः) विश्वमायुर्यस्य सः (सद्मेव) गृहमिव संग्रामिव वा। सद्मेति संग्रामनामसु पिठतम्। (निघं०२.१७) (धीराः) ज्ञानवन्तो विद्वांसः (संमाय) सम्यङ् मानं कृत्वा (चक्काः) कुर्यन्ति॥५॥

अन्वयः-हे मनुष्या! धीराः यूयं संमाय सद्मेव यं लाभं चक्रुः। तथा ये महित्वा वीरुत्सु प्रज्ञा दाधार विरोधत् प्रसूष्वन्तर्वर्तते। य उतापि विश्वायुश्चितिर्दमेऽपां मध्ये प्रजा दधाति तं सुसेवध्वम्मार्।।

भावार्थ:-अत्र श्लेषोपमालङ्कारौ। मनुष्यैर्योऽन्तर्य्यामिस्पिण रूपवेगादिगुणवत्त्वेन वा प्रजासु व्याप्य संनियच्छति तमेव जगदीश्वरमुपास्य कार्य्येषु विद्युतं संप्रयोज्य अथा विद्वांसो गृहे स्थित्वा संग्रामे शत्रून् विजित्य सुखयन्ति तथैव सुखयितव्यम्॥५॥

अत्रेश्वरसभाध्यक्षविद्युद्गुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेदितव्यम्॥

इति सप्तषष्टितमं ६७ सूक्तमेकादशो 🚧 वर्गश्च समाप्त:॥

पदार्थ:-हे (धीरा:) ज्ञानवाले विद्वान् मिनुष्यो! (संमाय) अच्छे प्रकार मान कर (सद्गेव) जैसे घर वा संग्राम के लिये जिस लाभ को (चक्कर) करते हो, वैसे (य:) जो जगदीश्वर वा बिजुली (महित्वा) सत्कार करके (वीरुत्स) रचना विशेष में निर्मेष्ट प्राप्त हुए कारण-कार्य द्रव्यों में (प्रजा:) प्रजा (विरोधत्) विशेष कर के आवरण करता है, जो (उत) (प्रसूषु) उत्पन्न होनेवालों में भी (अन्त:) मध्य में वर्तमान है, जो (उत) (विश्वाय:) पूर्ण आयुयुक्त भी (चित्ति:) अच्छे प्रकार जाननेवाला (दमे) शान्तियुक्त घर तथा (अपाम्) प्राण वा जलों के मध्य में प्रजा को धारण करता है, उसकी सेवा अच्छे प्रकार करो॥५॥

भावार्थ:-इस मिन्न में श्लेष और उपमालङ्कार हैं। मनुष्यों को चाहिये कि जो अन्तर्यामीरूप तथा रूप वेगादि गुणों से प्रजा में नियत (संयमन) करता है, उसी जगदीश्वर की उपासना और विद्युत् अग्नि को अपने कार्यों में संयुक्त करके जैसे विद्वान् लोग घर में स्थित हुए संग्राम में शत्रुओं को जीत कर सुखी करते हैं वैसे सुखी करे॥५॥

इस सुक्तो में ईश्वर, सभाध्यक्ष और विद्युत्, अग्नि के गुणों का वर्णन होने से पूर्व सूक्तार्थ के साथ इस सुक्तार्थ की सङ्गति जाननी चाहिये॥

यह सड़सठवां ६७ सूक्त और ग्यारहवां ११ वर्ग समाप्त हुआ॥

अथ पञ्चर्चस्याष्ट्रषष्टितमस्य सूक्तस्य शाक्त्यः पराशर ऋषिः। अग्निर्देवता। १,४ निचृत्

पङ्क्तिः। २,३,५ पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनस्तौ कीदृशावित्युपदिश्यते॥

फिर वे ईश्वर और विद्युत् अग्नि कैसे गुणवाले हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया

है॥

श्रीणन्नुपं स्थाद्दिवं भुर्ण्यः स्थातुश्चरर्थमक्तून् व्यूर्णीत्। परि यदेषामेको विश्वेषां भुवद्देवो देवानां महित्वा॥ १॥

श्रीणन्। उपं। स्थात्। दिर्वम्। भुरुण्युः। स्थातुः। चर्य्यम्। अक्तून्। वि। कर्णान्। पर्छ। यत्। एषाम्। एकः। विश्वेषाम्। भुवत्। देवः। देवानाम्। मृह्डिऽत्वा॥ १॥

पदार्थ:-(श्रीणन्) परिपक्वं कुर्वन् (उप) सामीप्ये (स्थात्) तिष्टेत् (दिवम्) प्रकाशस्वरूपम् (भुरण्युः) धर्ता पोषको वा। अत्र भुरणधातोः कण्ड्वादित्वाद् पक् तत् हः। (स्थातुः) स्थावरसमूहम्। अत्र स्थाधातोस्तुः सुपां सुलुगित्यमः स्थाने सुश्च। (चरथम्) जङ्गमसमूहम् (अक्तून्) व्यक्तान् प्राप्तव्यान् सर्वान् पदार्थान् (वि) विशेषार्थे (ऊर्णोत्) ऊर्णोत्याच्छाद्यति स्थीकरोति (पिर) सर्वतः (यत्) यः (एषाम्) वर्त्तमानानां मनुष्याणां मध्ये (एकः) कश्चित् (विशेषाम्) सर्वेषाम् (भुवत्) (देवः) दिव्यगुणसम्पन्नो विद्वान् (देवानाम्) विदुषां मध्ये (महित्वा) पूजितो भूत्वा॥१॥

अन्वय:-यद्यो भुरण्युः श्रीणन्मनुष्यो दिवृ क्षोतनात्मक्रं परमेश्वरं विद्युतं वा पर्युपस्थात् स्थातुः स्थावरं चरथमक्तूंश्च पर्यूर्णोत् स एषां विश्वेषां देवानामेको महिल्वा भुकद्भिमवेत्॥१॥

भावार्थः-अत्र श्लेषालङ्कारः। महि कश्चित्परमेश्वरमनुपास्य विद्युद्धिद्यामनाश्रित्य सर्वाणि पारमार्थिकव्यावहारिकसुखानि प्राप्तुमहीति॥१॥

पदार्थ:-(यत्) जो (भुरुष्यु:) धारण वा पोषण करनेवाला (श्रीणन्) परिक्व करता हुआ मनुष्य (दिवम्) प्रकाश करनेवाले प्रमेश्वर वा विद्वृत् अग्नि के (उप स्थात्) उप स्थित होवे और (स्थातु:) स्थावर (चरथम्) जङ्गम तथा (अक्तूम्) प्रकट प्राप्त करने योग्य पदार्थों को (पर्यूणीत्) आच्छादन वा स्वीकार करता है वह (एप्राम्) इन वर्त्तमान (विश्वेषाम्) सब (देवानाम्) विद्वानों के बीच (एक:) सहायरहित (देव:) दिव्यगुणयुक्त (महित्वा) पूजा को प्राप्त होकर (विभुवत्) विभव अर्थात् ऐश्वर्य को प्राप्त होवे॥१॥

भार्बार्थ: इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। कोई परमेश्वर की उपासना वा विद्युत् अग्नि के आश्रय को छोड़कर सब परमार्थ और व्यवहार के सुखों को प्राप्त होने को योग्य नहीं हो सकता॥१॥

पुनर्जगदीश्वरः कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर जगदीश्वर कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

मण्डल-१। अनुवाक-१२। सूक्त-६८

आदित्ते विश्वे क्रतुं जुषन्त शुष्काद्यदेव जीवो जनिष्ठाः। भजन्त विश्वे देवत्वं नामं ऋतं सपन्तो अमृतुमेवैः॥२॥

आत्। इत्। ते। विश्वे। क्रतुम्। जुषुन्त। शुष्कात्। यत्। देव्। जीवः। जिनेष्ठाः। भर्जन्त। विश्वे। देवुऽत्वम्। नामं। ऋतम्। सर्पन्तः। अमृतम्। एवैः॥२॥

पदार्थ:-(आत्) अनन्तरम् (इत्) एव (ते) तव तस्य वा (विश्वे) अखिलाः (कृत्म्) प्रज्ञाणेनं कर्म वा (जुषन्त) प्रीणन्ति सेवन्ते वा (शुष्कात्) धर्मानुष्ठानतपसो नीरसात् काष्ठादेः (यत्) ये (देव) जगदीश्वर (जीवः) इच्छादिगुणविशिष्टश्चेतनः (जिनष्ठाः) अतिशयेन प्रकटाः (भजन्त) सेवन्ते (विश्वे) सम्पूर्णाः (देवत्वम्) देवस्य भावः (नाम) प्रसिद्धम् (ऋतम्) सत्यम् (अपन्तः) समवयन्तः (अमृतम्) मरणजन्मदुःखादिदोषरहितम् (एवैः) ज्ञापकैः प्रापकैर्गुणैः॥२॥

अन्वय:-हे देव जगदीश्वर! त्वामाश्रित्य यद्ये विश्वे सर्वे जिन्छाः सिपन्तो बिद्धांस एवै: शुष्कान् ते देवत्वं क्रतुं नाम जुषन्त ते ऋतममृतं भजन्त सेवन्ते तथा जीवआदिरेतत्सर्वं प्रयत्नेन प्राप्नुष्यत्॥२॥

भावार्थ:- निह मनुष्याः परमेश्वरोपासना जातिष्ठानेन) विना व्यवहारपरमार्थसुखं प्राप्तुमर्हन्तीति॥ २॥

पदार्थ:-हे (देव) जगदीश्वर! आपका आश्रय करके (यत्) जो (विश्वे) सब (जिनष्ठाः) अतिज्ञान युक्त (सपन्तः) एक सम्मत विद्वान् लोग (एवे): प्राप्तिकारक गुणों और (शुष्कात्) धर्मानुष्ठान के तप से (वा नीरस काष्ठादि से) (ते) आपके (देवत्वस्) दिव्य गुण प्राप्त करनेवाले (क्रतुम्) बुद्धि और कर्म (नाम) प्रसिद्ध अर्थयुक्त संज्ञा को सिद्ध (जुपना) प्रति से सेवा करें वे (ऋतम्) सत्य रूप को (भजन्त) सेवन करते हैं, वैसे (अमृतम्) मोक्ष को (जीवः) इच्छादि गुणवाला चेतनस्वरूप मनुष्य (आत्) इसके अनन्तर (इत्) ही इस सबको प्राप्त हो।। रो

भावार्थ:-मनुष्य परमेश्वर की उपासनी वा आज्ञानुष्ठान के विना व्यवहार और परमार्थ के सुखों को प्राप्त नहीं हो सकते।

पुनस्तौ कीदृशावित्युपदिश्यते॥

फिर वे ईश्वर और विद्वान् कैसे हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

ऋतस्य प्रेषे ऋतस्य धीतिर्विश्वायुर्विश्वे अपांसि चक्रुः।

य्रसुभ्यं द्वाशाद्यो वा ते शिक्षात्तरमै चिकित्वान् र्यिं देयस्व॥३॥

त्र्यतस्य। प्रेषां:। ऋतस्य। धोति:। विश्वऽआयु:। विश्वे। अपांसि। चुक्रुः। य:। तुभ्यम्। दाशांत्। य:। वा। ते। शिक्षात्। तस्मे। चिकित्वान्। रुयिम्। दुयुस्व॥३॥

पदार्थ:-(ऋतस्य) सत्यस्य विज्ञानस्य परमात्मनः कारणस्य वा (प्रेषाः) प्रेष्यन्ते ये प्रकृष्टमिष्यन्ते बोधसमूहास्ते (ऋतस्य) स्वरूपप्रवाहरूपेण सत्यस्य (धीतिः) धारणम् (विश्वायुः) विश्वं सर्वमायुर्यस्माद्यस्य वा (विश्वं) सर्वे (अपांसि) न्याय्यानि कर्माणि (चक्रुः) कुर्वन्ति (य) (तुभ्यम्) ईश्वरोपासकाय धर्मपुरुषार्थयुक्ताय (दाशात्) पूर्णां विद्यां दद्यात् (यः) (वा) पक्षान्तरे (ते) तुभ्यम् (शिक्षात्) साध्वीं शिक्षां कुर्यात् (तस्मै) महात्मने (चिकित्वान्) ज्ञानवान् (रिक्रम्) सुवर्णादिधनम् (दयस्व) देहि॥३॥

अन्वय:-येनेश्वरेण विद्युता विश्वे प्रेषाः प्राप्यन्ते ऋतस्य धीतिर्विश्वायुश्च भवित् तमाश्रित्ये ये ऋतस्य मध्ये वर्तमाना विद्वांसोऽपांसि चक्रुः। य एतिद्वद्यां तुभ्यं दाशाद्वा तव सकाशाद् गृह्णीयात्। यश्चिकित्वांस्ते तुभ्यं शिक्षां दाशाद् वा तव सकाशाद् गृह्णीयात्तस्मै स्वं रियं दयस्व देहि॥३॥

भावार्थ:-अत्र श्लेषालङ्कारः मनुष्यैर्नहीश्वररचनया विना जहाँ कारणाहिक चित्कार्यमुत्पत्तुं विनष्टुं च शक्यते। नह्याधारेण विनाऽऽधेयं स्थातुमर्हति। नहि कश्चित् क्रमणा विना स्थातुं शक्नोति ये विद्वांसः सन्तो विद्यादिशुभगुणान् ददित वा य एतेभ्यो गृह्णन्ति, तेषानिव सदा सत्कारः कर्त्तव्यो नान्येषामिति बोद्धव्यम्॥३॥

पदार्थ:-जिस ईश्वर वा विद्युत् अग्नि से (विश्वे) सक (प्रेषा:) अच्छी प्रकार जिनकी इच्छा की जाती है, वे बोधसमूह को प्राप्त होते हैं (ऋतस्य) सत्य विद्युन तथा कारण का (धीति:) धारण और (विश्वायु:) सब आयु प्राप्त होती है, उसका आश्वय करके जो (ऋतस्य) स्वरूप प्रवाह से सत्य के बीच वर्तमान विद्वान् लोग (अपांसि) न्याययुक्त किमों को (यक्कु:) करते हैं (य:) वा मनुष्य इस विद्या को (तुभ्यम्) ईश्वरोपासना, धर्म, पुरुषार्थयुक्त मनुष्य के लिये (दाशात्) देवे वा उससे ग्रहण करे (य:) जो (चिकित्वान्) ज्ञानवान् मनुष्य (ते) तेरे (लिये (शिक्षात्) शिक्षा करे वा तुझ से शिक्षा लेवे (तस्मै) उसके लिये आप (रियम्) सुवर्णादि धन की (द्युस्व) दीजिये॥३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में लिषालङ्कार है। मनुष्यों को ऐसा जानना चाहिये ईश्वर की रचना के विना जड़ कारण से कुछ भी कार्य उत्पन्न का नष्ट होने तथा आधार के विना आधेय भी स्थित होने को समर्थ नहीं हो सकता और कोई मनुष्य कर्म से विना क्षण भर भी स्थित नहीं हो सकता। जो विद्वान् लोग विद्या आदि उत्तम गुणों को अन्य पज्जीं के लिये देते तथा उनसे ग्रहण करते हैं, उन्हीं दोनों का सत्कार करें, औरों का नहीं।। ३४

पुनस्तौ कीदृशावित्युपदिश्यते॥

फिर अध्यापक और शिष्य कैसे हों, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

होता निर्वत्तो मनोरपत्ये स चिन्वासां पती रयीणाम्। इच्छन् रेतो मिथस्तनूषु सं जानत स्वैर्दक्षेरमूराः॥४॥

मण्डल-१। अनुवाक-१२। सूक्त-६८

होतां। निऽसंत्तः। मनोः। अपंत्ये। सः। चित्। नु। आसाम्। पतिः। र्योणाम्। इच्छन्तं। रेतः। मिथः। तुनूषुं। सम्। जानतः। स्वैः। दक्षैः। अमूराः॥४॥

पदार्थ:-(होता) दाता (निषत्तः) सर्वत्र शुभकर्मसु स्थितस्य (मनोः) विज्ञान्वतो मनुष्यिय (अपत्ये) सन्ताने (सः) विद्वान् (चित्) अपि (नु) सद्यः (आसाम्) प्रजानाम् (पितः) पालयिता (रयीणाम्) राज्यश्रियादिधनानाम् (इच्छन्त) इच्छन्तु। अत्र व्यत्ययेनात्मनेपदम्। (रतः) विद्याशिक्षाजं शरीरात्मवीर्य्यम् (मिथः) परस्परं प्रीत्या (तनूषु) विद्यमानेषु शरीरेषु (सम्) सम्यप्ये (जानत) (स्वैः) आत्मीयैः (दक्षैः) विद्यासुशिक्षाचातुर्य्यगुणैः (अमूराः) अमूढाः। (निम्०६८) मूढत्वादिगुणरिहता ज्ञानवन्तः। अमूर इति पदनामसु पठितम्। (निघं०४.३)॥४॥

अन्वय:-यो निषत्तो मनोरपत्ये रयीणां होताऽस्ति स आसां प्रज्ञानां पितर्भवेत्। हे अमूराः! स्वैर्दक्षेर्गुणैः सह तनूषु वर्त्तमानाः सन्तो मिथो रेतो विस्तारयन्तो भवन्त एतं सिमच्छन्त चिदिप सर्वा विद्या यूयं नुजानत॥४॥

भावार्थ:-मनुष्यैरन्योन्यं सखायो भूत्वाखिलविद्याः शीर्ध जात्वा स्तृतमानन्दितव्यम्॥४॥

पदार्थ:-जो (निषत्त:) सर्वत्र स्थित (मनो:) मनुष्य के (अपुष्ये) सन्तान में (रयोणाम्) राज्यश्री आदि धनों का (होता) देनेवाला है (स:) वह ईश्वर विद्युत् अणि (आसाम्) इन प्रजाओं का (पित:) पालन करनेवाला है। हे (अमूरा:) मूढ़पन आदि गुणों से रहित्र ज्ञानवाले! (स्वै:) अपने (दक्षे:) शिक्षा सिहत चतुराई आदि गुणों के साथ (तन्षु) शर्गरों में वर्तमान होते हुए (मिथ:) परस्पर (रेत:) विद्या शिक्षारूपी वीर्य का विस्तार करते हुए तुम लिंग इस की (सिमच्छन्त) अच्छे प्रकार शिक्षा करो (चित्) और तुम सब विद्याओं को (नु) शीघ्र (जार्षत्त) अच्छे प्रकार जानो॥४॥

भावार्थ:-मनुष्यों को उचित्र है कि पर्भूपर मित्र हो और समग्र विद्याओं को शीघ्र जानकर निरन्तर आनन्द भोगें॥४॥

पुनस्तौ कीदृशावित्युपदिश्यते॥

फिर वे पढ़ने और पढ़ाने हारे कैसे हों, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

पितुर्न पुत्राः क्रीं क्रिक्त श्रीष्टन्ये अस्य शासं तुरासः।

वि राय और्णोद्दरः पुरुक्षुः पिपेश नाकं स्तृभिर्दमूनाः॥५॥१२॥

पितुः। न। पुताः। क्रतुंम्। जुषन्त। श्रोषंन्। ये। अस्य। शासंम्। तुरासंः। वि। रायः। और्णोत्। दुरः। पुरुऽक्षः। पित्रेशी नाक्षम्। स्तुऽभिः। दर्मनाः॥५॥

पदार्थ:-(षितु:) जनकस्य (न) इव (पुत्रा:) औरसा:। पुत्र: पुरु त्रायते निपरणाद्वा पुं नरकं ततस्त्रीयत इति वा। (निरु०१.११) (क्रतुम्) कर्म प्रज्ञां वा (जुषन्त) सेवन्ताम् (श्रोषन्) शृण्वन्तु (ये) प्रभुष्ट्या: अस्य) जगदीश्वरस्याप्तस्य वा (शासम्) शासनम् (तुरासः) शीघ्रकारिणः (वि) विशेषार्थे

(राय:) धनानि (और्णोत्) स्वीकरोति (दुर:) हिंसकान् (पुरुक्षु:) पुरूणि क्षूण्यन्नानि यस्य सः (पिपेश) पिंशत्यवयवान् प्राप्नोति (नाकम्) बहुसुखम् (स्तृभिः) प्राप्तव्यैर्गुणैः (दमूनाः) उपशमयुक्तः। दमूना दममना वा दानमना वा (निरु०४.४)॥५॥

अन्वयः-ये तुरासो मनुष्याः पितुः पुत्रानेवास्य शासं श्रोषन् शृण्वन्ति ते सुखिनो भवन्तु। या दमूनाः पुरुक्षुः स्तृभी रायो व्यौर्णोत्राकं च दुरः पिपेश स सर्वैर्मनुष्यैः सेवनीयः॥५॥

भावार्थ:-अत्र श्लेषोपमालङ्कारौ। मनुष्यैर्नहीश्वराप्ताज्ञापालनेन विना कस्यस्तित् किंचिद्री सुखं प्राप्तुं शक्नोति नहि जितेन्द्रियत्वादिभिर्विना कश्चित्सुखं प्राप्तुमर्हति। तस्मादेतत्स<u>र्व्व</u> सूर्वदा स्रोवनीयम्॥५॥

अत्रेश्वरग्निगुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेद्धित्यम्॥

इत्यष्टषष्टितमं ६८ सूक्तं द्वादशो १२ वर्गश्च समाप्तः।

पदार्थ:-(ये) जो (तुरास:) अच्छे कर्मों को शीघ्र करनेवाल मनुष्य (पितु:) पिता के (पुत्रा:) पुत्रों के (न) समान (अस्य) जगदीश्वर वा सत्पुरुष की (शासम्) शिक्षा को (श्रोषन्) सुनते हैं, वे सुखी होते हैं। जो (दमूना:) शान्तिवाला (पुरुक्षु:) बहुत अन्नादि पदार्थों से युक्त (स्तृिभः) प्राप्त करने योग्य गुणों से (राय:) धनों के (व्यौणोंत्) स्वीकारकर्त्ता तथा (निक्रम्) सुख को स्वीकार कर और (दुर:) हिंसा करनेवाले शत्रुओं के (पिपेश) अवयवों को पृथक-पृथक करता है, उसी की सेवा सब मनुष्य करें॥५॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में श्लेष और उपमानिङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि ईश्वर की आज्ञा पालने विना किसी मनुष्य का कुछ भी सुख सम्भव नहीं होता तथा जितेन्द्रियता आदि गुणों के विना किसी मनुष्य को सुख प्राप्त नहीं हो सकता। इससे ईश्वर की आज्ञा और जितेन्द्रियता आदि का सेवन अवश्य करें॥५॥

इस सूक्त में ईश्वर और अपने के पुणों का वर्णन होने से इस सूक्तार्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ संगति जाननी चाहिये॥

यह अङ्सठवां ६८ सूक्त और बारहवां १२ वर्ग समाप्त हुआ॥

अथ पञ्चर्चस्य नवषष्टितमस्य सूक्तस्य शक्तिपुत्रः पराशर ऋषिः। अग्निर्देवता। १ पङ्क्तिः। २,३ निचृत्पङ्किः। ४ भुरिक्पङ्क्ति। ५ विराट् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥ अथ विद्वदुगुणा उपदिश्यन्ते॥

अब उनहत्तरवें सूक्त का आरम्भ किया जाता है। इसके प्रथम मन्त्र में विद्वानों के गुण्में का उपदेश किया है॥

शुक्रः श्रृंशुक्वाँ उषो न जारः पुप्रा समीची दिवो न ज्योतिः। परि प्रजातः क्रत्वां बभूथ भुवो देवानां पिता पुत्रः सन्॥१॥

शुक्रः। शुशुक्वान्। उषः। न। जारः। पुप्रा। सुमीची इर्ति सुम्ऽईची। द्विः। न। जोतिः। परि। प्रऽजीतः। क्रत्वां। बुभूथा भुवः। देवानाम्। पिता। पुत्रः। सन्॥१॥

पदार्थ:-(शुक्रः) वीर्यवान् शुद्धः (शुशुक्वान्) शोचकः (उर्षः) उष्ठाः अत्र सुपां सुलुगिति ङमो लुक्। (न) इव (जारः) वयोहन्ता सूर्यः (पप्रा) स्विवद्या पूर्णः अत्र आङ्गमहनजन० इति किः। सुपां सुलुगिति सोर्डादेशश्च। (समीची) सम्यगञ्चित प्राप्नोति सा भूमिः (दिवरः) प्रकाशात् (न) इव (ज्योतिः) (पिर्) सर्वतः (प्रजातः) प्रसिद्ध उत्पन्नः (क्रत्वा) प्रज्ञया कर्मणा वो (बभूथ) अत्र बभूथाततंथजगृम्भ०। (अष्टा०७.२.६४) इति निपातनादिङभावः। (भुवः) पृष्ठित्याः (दवानाम्) विदुषाम् (पिता) अध्यापकः (पुतः) अध्येता (सन्) अस्ति॥१॥

अन्वय:-यो मनुष्य उषो जारो नेव शुक्रः श्रृश्चिम्बान् पेश्ग्र/भुवो दिवः समीची ज्योतिर्न परि प्रज्ञातः क्रत्वा सह वर्त्तमानो देवानां पुत्रः सन् पिता बभूथ भवति, स्राप्त्व सर्वेस्सैन्य्र/॥१॥

भावार्थ:-अत्र श्लेषोपमालङ्कारौ जिहि कश्चिदिप विद्यार्थित्वेन विना विद्वान् जन्यते हि कस्यचिद् विद्युदादिविद्यासंप्रयोगाभ्यां विना महान् सुखलाभो जायत इति ॥१॥

पदार्थ:-जो मनुष्य (उक्ट्र) प्रातःकाल की वेला के (जारः) आयु के हन्ता सूर्य के (न) समान (शुक्रः) वीर्यवान् शुद्ध (शुश्रुक्यान्) शुद्ध कराने (पप्रा) अपनी विद्या से पूर्ण (युवः) भूमि के मध्य (दिवः) प्रकाश से (समीकी) पृथिवी को प्राप्त हुए (ज्योतिः) दीप्ति के (न) समान (पिर) सब प्रकार (प्रजातः) प्रसिद्ध उत्पन्न (क्रावा) उत्तम बुद्धि वा कर्म्म के साथ वर्त्तमान (देवानाम्) विद्वानों के (पुत्रः) पुत्र के तुल्य पढ़नेबाला सब विद्याओं को पढ़ के (पिता) पढ़ानेवाला (बभूथ) होता है, उसका सेवन सब मनुष्य करें॥१॥

भारार्थ: इस मन्त्र में श्लेष और उपमालङ्कार हैं। विद्यार्थी न होके कोई भी मनुष्य विद्वान् नहीं हो सकता और किसी मनुष्य को बिजुली आदि विद्या तथा उसके संप्रयोग के विना बड़ा भारी सुख भी नहीं ही सकता॥१॥

पुनर्विद्वान् कीदृशो भवेदित्युपदिश्यते॥

७९२

ऋग्वेदभाष्यम्

फिर यह विद्वान् कैसा हो, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

वेधा अर्दृप्तो अग्निर्विजानन्नूधर्न गोनां स्वाद्मां पितृनाम्। जने न शेवं आहूर्यः सन्मध्ये निषंत्तो रुण्वो दुरोणे॥२॥

वेधाः। अदृष्तः। अग्निः। विऽजानन्। अर्थः। न। गोर्नाम्। स्वाद्यं। पितृनाम्। जर्ने। न। शेवैः। आऽहूर्यः। सन्। मध्ये। निऽस्तः। रुण्वः। दुग्रेणे॥२॥

पदार्थ:-(वेधा:) ज्ञानवान्। वेधा इति मेधाविनामसु पठितम्। (निघं० १५) (अदृजः) मोहरिहतः (अग्निः) अग्निरिव ज्ञानप्रकाशकः (विजानन्) सर्वविद्या अनुभवन् (ऊधः) दुग्धाधिकरणम् (न) इव (गोनाम्) धेनूनाम्। अत्र गोः पादान्ते इति वाच्छन्दिस सर्वे विध्यो भवन्तीत्यपादान्तेऽपि नुट्। (स्वादा) स्वादिष्ठानाम्। अत्र सुपां सुलुगित्यामो लोपः। (पितूनाम्) अत्रीनाम् चितुरित्यन्ननामसु पठितम्। (निघं०२.७) (जने) गुणैरुत्कृष्टे सेवनीये (न) इव (शेवः) सुखकारी (आहूर्यः) आह्वातव्यः। अत्र ह्वेञ् धातोर्बाहुलकाद्यक् रुडागमश्च। (सन्) (मध्ये) सभायाः (निष्कृष्ट) निष्णुणः (रणवः) रमयिता (दुरोणे) गृहे। दुरोण इति गृहनामसु पठितम्। (निघं०३.४)॥२॥

अन्वय:-सर्वेर्मनुष्यैर्यो गोनामूधर्न जने शेवो न वेधा असूजः स्वाह्म पितृनां दुरोणे रण्व आहूर्यः सभाया मध्ये निषत्तो विजानन् सन्नग्निरिव वर्तते स सदैव सेवनीय:॥२॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। हे मनुष्याः स्था गेत्रुं दुग्धस्थानं यथा च विद्वज्जनः सर्वस्य हितकारी भवति, तथैव शुभैर्गुणैर्व्याप्ताः सभादिषु स्थिताः सभाध्यक्षादयो यूयं सर्वान् सुखयत॥२॥

पदार्थ:-सब मनुष्यों को चाहिये कि जो (ग्रॉनाम्) गौओं के (ऊधः) दूध के स्थान के (न) समान (जने) गुणों से उत्तम सेवने योग्र्य मनुष्य में (शेवः) सुख करनेवाले के (न) समान (वेधाः) पूर्ण ज्ञानयुक्त (अदृष्तः) मोहरहित (स्वादा) स्वादिष्ठ (पितृनाम्) अत्रों का भोक्ता (दुरोणे) घर में (रण्वः) रमण करनेवाला (आहूर्यः) आह्नान करने योग्य सभा के मध्य में (निषत्तः) स्थित (विजानन्) सब विद्या का अनुभव करता हुआ (अपिः) अग्नि के तृत्य ज्ञानप्रकाश से युक्त सभाध्यक्ष है, इसका सदा सेवन करो॥२॥

भावार्थ:-इस मेन्त्र में उपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! तुम लोगों को चाहिये कि जैसे गौओं का ऐन दूध आदि से सब्नको सुख दता है, वैसे विद्वान् मनुष्य सब का उपकारी होता है, वैसे ही सब में अभिव्याप्त जीव के भध्य में अन्तर्य्यामी रूप से व्याप्त ईश्वर पक्षपात को छोड़ के न्याय करता है, वैसे सभा आदि से स्थित सभापति तुम सबको सुख करानेवाले होओ॥२॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर विद्वान् कैसा हो, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

भूत्रो न जातो रुण्वो दुंरोुणे वाजी न प्रीतो विशो वि तारीत्।

अष्टक-१। अध्याय-५। वर्ग-१३

मण्डल-१। अनुवाक-१२। सूक्त-६९

विशो यदह्वे नृभिः सनीका अग्निदेवत्वा विश्वान्यश्याः॥३॥

पुत्रः। न। जातः। रुण्वः। दुरोणे। वाजी। न। प्रीतः। विशः। वि। तारीत्। विशः। यत्। अहि। निऽभिः। सऽनीळाः। अग्निः। देवऽत्वा। विश्वानि। अश्याः॥३॥

पदार्थ:-(पुत्र:) पित्रादीनां पालियता (न) इव (जात:) उत्पन्नः (रण्व:) स्मणीयः। अत्र रम धातोर्बाहुलकादौणादिको वः प्रत्ययः। (दुरोणे) गृहे (वाजी) अश्वः (न) इव (प्रीतः) प्रसन्नः (विशः) प्रजाः (वि) विशेषार्थे (तारीत्) दुःखात्सन्तारयेत् (विशः) प्रजाः (यत्) यः (अह्ने) अहुषित्त व्याप्नुवित्त यस्मिन् व्यवहारे तस्मिन् (नृभिः) नेतृभिर्मनुष्यैः (सनीडाः) समानस्थानाः (अपिः) पावक इव पवित्रः सभाध्यक्षः (देवत्वा) देवानां विदुषां दिव्यगुणानां वा भावरूपाणि (विश्वप्रिने) सर्वाणि (अश्याः) प्राप्नुयाः। अत्र व्यत्ययेन परस्मैपदम्॥३॥

अन्वय:-हे मनुष्य! यद्योऽग्निरिव दुरोणे जातः पुत्रो न रण्वो ब्राजी न प्रीता विशो वितारीत्। योऽह्वे नृभिः सनीडा विशो विश्वानि देवत्वा प्रापयित ते त्वमप्यश्याः॥३॥

भावार्थ:-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। निह सिनुभाषां जिज्ञानविद्वत्सङ्गाश्रयेण विना सर्वाणि सुखानि प्राप्तुं शक्यानि भवन्तीति वेदितव्यम्॥३॥

पदार्थ: -हे मनुष्य! (यत्) जो (अग्निः) अग्नि के तुल्य सभाध्यक्ष (दुरोणे) गृह में (जातः) उत्पन्न हुआ (पुत्रः) पुत्र के (न) समान (रण्वः) रमणीय (वाजी) अश्व के (न) समान (प्रीतः) आनन्ददायक (विशः) प्रजा को (वितारीत) दुःखों से छुड़ाता है (अह्वे) व्याप्त होनेवाले व्यवहार में (सनीडाः) समानस्थान (विशः) प्रजाओं को (विश्वानि) सब (देवत्वा) विद्वानों के गुण, कर्मों को प्राप्त करता है, उसको तू (अश्याः) प्राप्त हो ३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। मनुष्यों को विज्ञान और विद्वानों के सङ्ग के विना सब सुख प्राप्त नहीं हो सकते, प्रेसा जानना चाहिये॥३॥

प्रुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर विहे विद्वीन् कैसा है, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

नर्किष्ट पुता वृता मिनन्ति नृभ्यो यदेभ्यः श्रुष्टिं चुकर्थ।

तत्तु द्वे दंसी यदहन्त्समानैर्नृभिर्यद्युक्तो विवे रपांसि॥४॥

नृकिः। ते एता। वृताः। मिनुन्ति। नृऽभ्यः। यत्। एभ्यः। श्रुष्टिम्। चकर्थः। तत्। तु। ते। दंसः। यत्। अहेन्। सुमानैः। व्रुभिः। यत्। युक्तः। विवेः। रपांसि॥४॥

पदार्थ:-(निक:) निह (ते) तव (एता:) एतानि (व्रता) व्रतानि शीलानि (मिनन्ति) हिंसन्ति (नुभ्य:) पनुष्यादिभ्य: (यत्) यम् (एभ्य:) वर्त्तमानेभ्य: (श्रृष्टिम्) शीघ्रम् (चकर्थ) करोति (तत्)

वक्ष्यमाणम् (तु) पश्चादर्थे (ते) तव (दंसः) कर्म (यत्) यैः (युक्तः) सिहतः (विवेः) प्राप्नोषि। अत्र बहुलं छन्दसीति श्लुः। (रपांसि) व्यक्तोपदेशप्रकाशकानि शोभनानि वचनानि॥४॥

अन्वय:-हे विद्वन्! यानि ते तवैतानि व्रतानि सन्ति तानि केऽपि न मिनन्ति। तानि कानीत्याह। यत्त्रीभी नृष्यी यं श्रुष्टिं चकर्थ रपांसि विवे:। यत्ते तवेदं समानैर्नृभि: सह दंसोऽस्ति, तत्तु कश्चिदपि निकरहन् हन्ति॥४॥

भावार्थ:-सर्वेर्मनुष्यैर्यथा परमेश्वर आप्तो विद्वान् वा पक्षपातं विहाय मनुष्यादिषु स्रोरीरुपकारै: कर्मभि: सह वर्त्तते, तथैव सदा वर्त्तितव्यम्॥४॥

पदार्थ: -हे विद्वन्! जो आपके (एता:) ये (व्रता) व्रत हैं वे कोई भी (निक्तः) नहीं (मिनन्ति) हिंसा कर सकते हैं (यत्) जो आप (एभ्यः) इन (नृभ्यः) मनुष्यों के लिये (यत्) जिस (श्रृष्टिम्) शीघ्र सत्यविद्यासमूह को (चकर्थ) करते हो वा (रंपासि) सत्कर्म और व्यक्त, अपदेशयुक्त वचनों को (विवेः) प्राप्त करते हो तथा (यत्) जो (ते) आप का (इदम्) यह (समानेः) विद्यादि गुणों में तुल्य (नृभिः) मनुष्यों के साथ (दंसः) कर्म है (तत्) उसको (तु) कोई मनुष्य (निकः) नहीं (अहन्) हनन कर सकता, जो (युक्तः) युक्त होकर आप करते हो, उसको हम लोग भी सत्य ही जोनते हैं॥४॥

भावार्थ:-सब मनुष्यों को चाहिये कि जैसे परमेश्वर वा पूर्णिवद्यायुक्त विद्वान् पक्षपात छोड़कर मनुष्यादि प्राणियों में सत्य उपकार करनेवाले कर्मों के साथ वर्तसम्ब है वैसे सदा वर्ते॥४॥

पुनः स कीदृश्य इत्युपिदश्यते॥

फिर वह विद्वान् कैसा है, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

उषो न जारो विभावोस्रः संज्ञातस्युश्चिकेतद्रस्मै।

त्मना वहन्तो दुरो व्यृण्वन्नवृत्त विश्व स्वर्द्शीके॥५॥१३॥

उषः। न। जारः। विभाऽवा। उसः। संज्ञातऽरूपः। चिकैतत्। अस्मै। त्मना। वहन्तः। दुर्रः। वि। ऋण्वन्। नर्वन्त। विश्वे। स्वः। दृशीके॥५॥

पदार्थ:-(उष:) प्रत्यूष्कालस्य (न) इव (जार:) दु:खहन्ता सविता (विभावा) यः सर्वं विभातीति सः (उस्र:) रिमिरिव (संज्ञातस्यः) सम्योजातं रूपं येन सः (चिकेतत्) जानीयात् (अस्मै) विदुषे (त्मना) आत्मना जीवेन (वहन्तः) उपदेशेन प्राप्तुवन्तः (दुरः) दुष्टान् (वि) विशेषे (ऋण्वन्) हिंसन् (नवन्त) प्रशंसत (विश्वे) सर्वे धार्मिका मनुष्याः (स्वः) सुखप्रप्यकम् (दृशीके) द्रष्टव्ये ज्ञानव्यवहारे॥५॥

अन्वयः - य रुषो न जार उस्र इव संज्ञातरूपो विभावास्ति तं मनुष्यश्चिकेतज्जानीयादस्मै सर्वं समर्पयतु। हे मनुष्या! यथैवं कुर्वन्तो विश्वे विद्वांसस्त्मना स्वर्वन्तो दृशीके व्यवहारे दुरो व्यृण्वन् हिंसन्ति सन्नुवन्ति तथैव यूयं सदैतत्कुरुत्त्वं सद्व क्वन्ता। ५॥

भावार्थः-अत्र श्लेषोपमालुप्तोपमालङ्काराः। मनुष्यैर्यः सूर्यवत् सर्विवद्याप्रकारकोऽग्निवत्सर्वदुःखदाहकः परमेश्वरो विद्वान् वास्ति तमात्मनाऽश्रित्य दुष्टव्यवहारांस्त्यक्त्वा सत्येषु ब्यवहारेषु पुःखं सदा प्राप्तव्यम्॥५॥

अष्टक-१। अध्याय-५। वर्ग-१३

मण्डल-१। अनुवाक-१२। सूक्त-६९

अत्र विद्वद्विद्युदीश्वरगुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेदितव्यम्॥

इति नवषष्टितमं ६९ सूक्तं त्रयोदशो १३ वर्गश्च समाप्त:॥

पदार्थ:-जो (उष:) प्रात:काल के (न) समान (जार:) दु:ख का नाश करनेवाला (उष:) किरणों के समान (संज्ञातरूप:) अच्छी प्रकार रूप जानने (विभावा) सब प्रकाश करने वाला है, उसको मनुष्य (चिकतत्) जाने (अस्में) उस ईश्वर वा विद्वान् के लिये सब कुछ उत्तम पदार्थ समर्पण करे। हे मनुष्यो! जैसे इस प्रकार करते हुए (विश्वे) सब विद्वान् लोग (त्मना) आत्मा से (स्व:) सुख प्राप्त करनेवाले विद्वासमूह को (वहन्त:) प्राप्त होते हुए (दृशीके) देखने योग्य व्यवहार में (दुर:) शत्रुओं को (व्यृण्वन्) मस्ते तथा सज्जनों की प्रशंसा करते हैं, वैसे तुम भी शत्रुओं को मारो तथा (नवन्त) सज्जनों की स्तुति करो॥

भावार्थ: - इस मन्त्र में श्लेष, उपमा और लुप्तोपमालङ्कार हैं। मनुष्यों की महिये कि जो सूर्य्य के समान विद्या का प्रकाशक, अग्नि के समान सब दु:खों को भस्म करनेवात्म परमेश्वर वा विद्वान् है, उसको अपने आत्मा से आश्रय कर दुष्ट व्यवहारों को त्याग और सत्य व्यवहारों में स्थित होकर सदा सुख को प्राप्त हों॥ ५॥

इस सूक्त में विद्वान् बिजुली और ईश्वर के गुणों का वर्णने होने से इस सूक्तार्थ की पूर्वसूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये॥

यह उनहत्तरवां ६९ सूक्त तथा तेरहवा १६ वर्ग समाप्त हुआ॥



अथ षड्चस्य सप्तितिमस्य सूक्तस्य पराशर ऋषिः। अग्निर्देवता। १,४ विराट्पङ्क्तिः। २ पङ्क्तिः। ३,५ निचृत् पङ्क्तिः। ६ याजुषी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

अथ पनुष्यगुणा उपदिश्यन्ते॥

अब ७० सत्तरवें सूक्त का आरम्भ किया जाता है, इसके पहिले मन्त्र में मनुष्यों के गुर्मी का उपदेश किया है॥

वनेमं पूर्वीर्यो मंनीषा अग्निः सुशोको विश्वांन्यश्याः। आ दैव्यांनि वृता चिकित्वाना मानुषस्य जनस्य जन्म॥१॥

वनमे। पूर्वी:। अर्थ:। मुनीषा। अग्नि:। सुऽशोर्कः। विश्वानि। अश्याः। आहे देव्यानि। वृता। चिकित्वान्। आ। मार्नुषस्य। जनस्य। जन्मे॥ १॥

पदार्थ:-(वनेम) संविभागेनानुष्ठेम (पूर्वी:) पूर्वभूताः प्रजाः (अर्थः) विवामिश्वरो जीवो वा। अर्थ इतिश्वरनामसु पठितम्। (निघं०२.२२) (मनीषा) मनीषया विज्ञानेन (अर्पेन्) ज्ञानादिगुणवान् (सुशोकः) शोभनाः शोका दीप्तयो यस्य सः (विश्वानि) सर्वाणि भूवानि कर्माणि वा (अश्याः) व्याप्नुहि (आ) समन्तात् (दैव्यानि) दिव्यैर्गुणैः कर्मिभर्वा निर्वृत्तानि (वृता) विद्याभागिष्ठानशीलानि (चिकित्वान्) ज्ञानवान् (आ) आभिमुख्ये (मानुषस्य) मनुष्यजातौ भवस्य (जनस्य) श्रेष्ठस्य देवस्य मनुष्यस्य (जन्म) शरीरधारणेन प्रादुर्भवम्॥१॥

अन्वय:-वयं यः सुशोकश्चिकित्वानिग्नरर्थ्य श्चिसे जीवो क्र्य मनीषया पूर्वीः प्रजा विश्वानि दैव्यानि व्रता मानुषस्य जन्म चाश्याः समन्ताद् व्याप्नोति तमा वनेम॥१॥

भावार्थः-अत्र श्लेषालङ्कारः। मधुर्प्येरीन जगदीश्वरेण मनुष्येण वा कारणकार्यजीवाख्याः शुद्धाः गुणाः कर्म्माणि व्याप्तानि स चोपास्य्राः सक्तितव्यो वास्ति नह्येतेन विना मनुष्यजन्मसाफल्यं जायते॥१॥

पदार्थ:-हम लोग जो (सुशोक:) उत्तम दीप्तियुक्त (चिकित्वान्) ज्ञानवान् (अग्नि:) ज्ञान आदि गुणवाला (अर्थ्य:) ईश्वर वा मूनुष्य (मनीषा) बुद्धि तथा विज्ञान से (पूर्वी:) पूर्व हुई प्रजा और (विश्वानि) सब (दैव्यानि) दिव्य गुण बा कमों से सिद्ध हुए (व्रता) विद्याधर्मानुष्ठान और (मानुषस्य) मनुष्य जाति में हुए (जनस्य) श्रेष्ठ विद्वाम् मनुष्य के (जन्म) शरीरधारण से उत्पत्ति को (अश्या:) अच्छी प्रकार प्राप्त कराता है, उसका (आ वनेम) अच्छे प्रकार विभाग से सेवन करें॥१॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों को जिस जगदीश्वर वा मनुष्य के कार्य्य, कारण और जीव प्रजा शुद्ध मुण और कर्मों को व्याप्त किया करे, उसी की उपासना वा सत्कार करना चाहिये, क्योंकि दूसके विना मनुष्यजन्म ही व्यर्थ जाता है॥१॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अष्टक-१। अध्याय-५। वर्ग-१४

मण्डल-१। अनुवाक-१२। सूक्त-७०

गर्भो यो अपां गर्भो वनानां गर्भश्च स्थातां गर्भश्चरथाम्। अद्रौ चिदस्मा अन्तर्दुरोणे विशां न विश्वो अमृतः स्वाधीः॥२॥

गर्भः। यः। अपाम्। गर्भः। वनानाम्। गर्भः। च। स्थाताम्। गर्भः। चरथाम्। अद्रौ। चित् अस्मै। अन्तः। दुरोणे। विशाम्। न। विश्वः। अमृतः। सुऽआधीः॥२॥

पदार्थ:-(गर्भ:) स्तोतव्योऽन्तःस्थो वा (यः) परमात्मा जीवात्मा वा (अपोप्) प्राणानां जलानां (गर्भ:) गर्भ इव वर्त्तमानः (वनानाम्) संभजनीयानां पदार्थानां रश्मीनां वा (गर्भ:) गूढ इव स्थितः (च) समुच्चये (स्थाताम्) स्थावराणाम्। अत्र वाच्छन्दिस सर्वे विधयो भवन्तीति तुक् (गर्भः) गर्भ इवावृतः (चरथाम्) जङ्गमानाम्। अत्र वाच्छन्दसीति नुडागमाभावः। (अद्रो) श्रीलादो धने पदार्थे (चित्) अपि (अस्मे) जगदुपकाराय कर्मभोगाय वा (अन्तः) मध्ये (दुरोणे) गृहे (विशाम्) ग्रजानाम् (न) इव (विश्वः) अखिलश्चेतनस्वरूपः (अमृतः) अनुत्पन्नत्वान्नाशरिहतः (स्वाधीः) यः सुष्टु समन्ताद् ध्यायित सर्वान् पदार्थान् सः॥२॥

अन्वय:-यो जगदीश्वरो जीवो वा यथाऽपामन्तर्गभी विभागमिर्गर्गर्भः स्थातामन्तर्गर्भश्चरथामन्तर्गर्भोऽद्रौ चिदन्तर्गर्भो दुरोणेऽन्तर्गर्भो विश्वोऽमृतः स्वाधीविंशा प्रजानामन्तराकाशोऽिमर्वायुर्नेव सर्वेषु च बाह्यदेशेष्विप विश्वानि दैव्यानि व्रतान्यश्या व्याप्तोऽस्त्यस्मै सर्वे पदार्थाः सन्ति तं वर्ष वनेमार्श्य

भावार्थ: - अत्र श्लेषालङ्कारः । (अश्यार) (वनेम) (वश्यान) (व्रता) इति पञ्चपदानां पूर्वस्मान्मन्त्रादनुवृतिश्च। मनुष्यैर्निह चिन्मयेन परमेश्वरेण विना किंचिदिप वस्त्वव्याप्तमस्ति। निह चिन्मयो जीवः स्वकर्मफलभोगविरह एकक्षणम् वर्ति तस्मात्तं सर्वाभिव्याप्तमन्तर्यामिणं विज्ञाय सर्वदा पापकर्माणि त्यक्त्वा धर्म्यकार्य्येषु प्रवर्त्तितव्यम् यथा पृथिव्यादिककार्य्यरूपाः प्रजा अनेकेषां तत्त्वानां संयोगेनोत्पन्ना वियोगेन विनष्टाश्च भवन्ति तथैष ईश जीवकारणाख्या अनादित्वात् संयोगविभागेभ्यः पृथक्त्वादनादयो सन्तीति वेदितस्यम्॥२॥

पदार्थ:-हम लोग जो जगदीश्वर वा जीव (अपाम्) प्राण वा जलों के (अन्तः) बीच (गर्भः) स्तुति योग्य वा भीतर रहेनेवाला (वनानाम्) सम्यक् सेवा करने योग्य पदार्थ वा किरणों में (गर्भः) गर्भ के समान आच्छादित (अद्रौ) पर्वत आदि बड़े-बड़े पदार्थों में (चित्) भी गर्भ के समान (दुरोणे) घर में गर्भ के समान (विश्वः) सब चेतन तत्त्वस्वरूप (अमृतः) नाशरहित (स्वाधीः) अच्छे प्रकार पदार्थों का चिन्तन करनेवाला (विशाम्) प्रजाओं के बीच आकाश वायु के (न) समान बाह्य देशों में भी सब दिव्य गुण कर्मशुक्त बतों को (अश्याः) प्राप्त होवे (अस्मै) उसके लिये सब पदार्थ हैं, उसका (आ वनेम) सेवन करो। र॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में श्लेष और उपमालङ्कार हैं। पूर्व मन्त्र से (अश्याः) (वनेम) (विश्वानि) (दैव्यानि) (व्रता) इन पांच पदों की अनुवृत्ति आती है। मनुष्यों को ज्ञानस्वरूप परमेश्वर के विना कोई भी वस्तु अव्याप्त नहीं है और चेतनस्वरूप जीव अपने कर्म के फल भोग से एक क्षण भी अलग नहीं रहता। इससे उस सबमें अभिव्याप्त अन्तर्य्यामी ईश्वर को जानकर सर्वदा पापों को छोड़ कर धर्मयुक्त कार्यों में प्रवृत्त होना चाहिये। जैसे पृथिवी आदि कार्यरूप प्रजा अनेक तत्त्वों के संयोग से अत्यन्न और वियोग से नष्ट होती है, वैसे यह ईश्वर जीव कारणरूप आदि वा संयोग-वियोग से अलग होने से अनादि है, ऐसा जानना चाहिये॥२॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह मनुष्य कैसा हो, इस विषय को अगले मून्त्र में कहा है।

स हि क्ष्मपावाँ अग्नी रयोणां दाशहाो अस्मा अरं सूक्तै। एता चिकित्वो भूमा नि पाहि देवानां जन्म मर्तांश्च खिद्वान्॥३॥

सः। हि। क्षुपाऽवान्। अग्निः। रृयीणाम्। दार्शत्। यः। अर्म्भः सुऽउक्तैः। एता। चिकित्वः। भूमी। नि। पाहि। देवानाम्। जन्मी। मर्तान्। च। विद्वान्॥३॥

पदार्थ:-(स:) परमेश्वरो जीवो वा (हि) खलु (क्षणावान्) क्षपा: प्रशस्ता रात्रयो विद्यन्ते यस्मिन् यस्य वा सः (अग्निः) यथा सर्वसुखदात्री विद्युत् (रयोपुर्गम्) विद्यारत्नराज्यादिपदार्थानाम् (दाशत्) दाश्यात् (यः) उक्तार्थः (अस्मै) प्रापणाय (अरम्) अलम् (सूक्तैः) शोभनान्युक्तानि वचनानि येषूपदेशनेषु तेषु (एता) एतानि (चिकित्वः) ज्ञानवन् (भूम) भूमानि बहूनि (नि) नितराम् (पाहि) रक्ष (देवानाम्) दिव्यानां गुणानां विदुषां वा (अन्म) प्रोहुर्भावम् (मर्त्तान्) मनुष्यान् (च) समुच्चये (विद्वान्) यो वेत्ति सः॥३॥

अन्वयः-हे चिकित्वो विद्वान्! यस्त्वं श्रेपावानग्निरिवास्मै रयीणामरं प्रापणायैतान् परं सूक्तैर्भूम देवानां जन्म मर्त्तौश्चादन्यश्च दाशत् स त्वं हि खत्वेतानि निपाहि॥३॥

भावार्थ:-अत्र व्यक्तिसुप्तोषुमालङ्कारः। मनुष्यैर्यः परमेश्वरो विद्वान् वा वेदान्तर्यामित्वद्वारोपदेशैर्वा सर्वा विद्या सर्वमनुष्येभ्यः प्रयुच्छोति, स एवोपास्यः सङ्गमनीयश्चेति॥३॥

पदार्थ:-हे (चिकित्वः) ज्ञानवान् जगदीश्वर वा (विद्वान्) जाननेवाले! (यः) जो (क्षपावान्) जिसमें उत्तम ब्रह्त रात्रि हैं (अग्निः) सब सुखों की देनेवाली बिजुली के समान (अस्मै) इन (रयीणाम्) विद्यारत्न राज्य ऑदि पदार्थों की (अरम्) पूर्णप्राप्ति के लिये (एता) इन (अरम्) पूर्ण (सूक्तैः) उत्तम वचनों स्रे (भूम) बहुत (देवानाम्) दिव्यगुण वा विद्वानों के (जन्म) जन्म (मर्जान्) मनुष्य (च) मनुष्य से भिन्नों को (दाशत्) देते हो (सः) सो आप (हि) निश्चय करके इनकी (नि पाहि) निरन्तर रक्षा क्रीजियो। हा।

अष्टक-१। अध्याय-५। वर्ग-१४

मण्डल-१। अनुवाक-१२। सूक्त-७०

भावार्थ:-इस मन्त्र में श्लेष और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। मनुष्यों को जो परमेश्वर वा विद्वान् वेद वा अन्तर्यामि द्वारा तथा उपदेशों से सब मनुष्यों के लिये सब विद्याओं को देता है, उसकी स्पासन तथा सत्सङ्ग करना चाहिये॥३॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह मनुष्य कैसा हो, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है।

वर्धान्यं पूर्वीः क्ष्मपो विरूपाः स्थातुश्च रथमृतप्रवीतम्।

अराधि होता स्वर्श्निषंत्तः कृण्वन् विश्वान्यपांसि सुत्या॥४॥

वर्धान्। यम्। पूर्वीः। क्षुपः। विऽरूपाः। स्थातुः। च। रथम्। ऋतऽस्वित्तम्। अर्पाष्टि। होता। स्वः। निऽस्तः। कृण्वन्। विश्वानि। अपाँसि। सुत्या॥४॥

पदार्थ:-(वर्धन्) वर्धयेयु:। अत्र व्यत्ययेन परस्मैपदम् । तिट् प्रक्षेग्गेऽयम्। (यम्) परमेश्वरं जीवं वा (पूर्वी:) सनातन्यः (क्षपः) क्षान्ता रात्रीः (विश्वरूपाः) विविधानि रूपणि यासान्ताः (स्थातुः) तिष्ठतो जगतः (च) समुच्चये (रथम्) रमणीयस्वरूपं संसारम् (कृत्याचीतम्) ऋतात्सत्यात्कारणात्प्रकृष्टतया जनितमुदकेन चालितं वा (अराधि) संसाध्यते (होता) ऋदीता दात्रा वा (स्वः) सुखस्वरूपः सुखकारको वा (निषत्तः) नितरामवस्थितः (कृण्वन्) कुर्वन् (विश्वािन्) अखिलानि (अपांसि) कर्माणि (सत्या) सत्याधर्मोज्ज्वलितानि॥४॥

अन्वय:-मनुष्यैर्योऽराधि यं परमेश्वरं नीवं वा पूर्वी क्षपो विरूपाः प्रजावर्धान् यः स्थातुर्ऋतप्रवीतं रथः निर्मितवान् यः स्वर्निषतो होता विश्वानि सत्यान्यपासि कृष्णुन वर्तते स सदा ज्ञातव्यः सङ्गमनीयश्च॥४॥

भावार्थ:-अत्र श्लेषालङ्कारः। भनुष्यैर्थस्य परमेश्वरस्य ज्ञापिका इमाः सर्वाः प्रजा वर्तन्ते, येन जीवेन ज्ञातव्याश्च, नैव यस्योत्पादनेन विना कस्याप्युत्पत्तिः सम्भवति, यस्य पुरुषार्थेन विना किञ्चित् सुखं प्राप्तुं न शक्नोति। यः सत्यमानी सत्यकारी सत्यवादी स सर्वैः सेवनीयः॥४॥

पदार्थ:-मनुष्यों को चाहिये कि जो (अराधि) सिद्ध हुआ वा (यम्) जिस परमेश्वर तथा जीव को (पूर्वी:) सनातन (क्षप:) आतियुक्त रात्रि (विरूपा:) नाना प्रकार के रूपों से युक्त प्रजा (वर्धान्) बढ़ाती हैं, जिसने (स्थातु:) स्थित जमत् के (ऋतप्रवीतम्) सत्य कारण से उत्पन्न वा जल से चलाये हुए (स्थम्) रमण करने योग्य संसार वा यान को बनाया, जो (स्व:) सुखस्वरूप वा सुख करनेहारा (निषत्त:) निरन्तर स्थित (होता) ग्रहण करने वा देनेवाला (विश्वानि) सब (सत्या) सत्य धर्म से शुद्ध हुए (अपांसि) कर्मों को (कृष्वन्) करता हुआ वर्त्तता है, उसको जाने वा सत्सङ्ग करे॥४॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों को उचित है कि जिस परमेश्वर का ज्ञान कुरानेवासी यह सब प्रजा है वा जिसको जानना चाहिये, जिसके उत्पन्न करने के विना किसी की उत्पत्ति

का सम्भव नहीं होता, जिसके पुरुषार्थ के विना कुछ भी सुख प्राप्त नहीं हो सकता और जो सत्यमिनी, सत्यकारी, सत्यवादी हो, उसी का सदा सेवन करें॥४॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर ईश्वर के गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

गोषु प्रशस्तिं वर्नेषु धिषे भरन्त विश्वे बलिं स्वर्णः।

600

वि त्वा नर्: पुरुत्रा संपर्यन् पितुर्न जिब्नेर्वि वेदो भरन्त॥५॥

गोर्षु। प्रऽशंस्तिम्। वर्नेषु। धिष्ठे। भर्रन्त। विश्वे। बुलिम्। स्वः। नः। वि। त्वाः नरः। पुरुऽत्रा। सुपुर्यन्। पितुः। न। जिब्नेः। वि। वेदेः। भुरुन्तु॥५॥

पदार्थ:-(गोषु) पृथिव्यादिषु (प्रशस्तिम्) प्रशस्तव्यवहारम् (वनेषु) सम्यग्विभाजकेषु किरणेषु (धिषे) दधासि (भरन्त) यो भरित सर्वं विश्वं सर्वान् गुणांस्तत्संबुद्धौ (बिश्वं) सर्वे (बिलम्) संवरणम् (स्वः) आदित्यम् (नः) अस्मान् (वि) विशेषे (त्वा) त्वाम् (नः) नयमकर्जारो मनुष्याः (पुरुत्रा) पुरूणि देयानि (सपर्यन्) परिचरन्ति (पितुः) (न) इव (जिव्नेः) जीप्रांत् वृद्धावस्थां प्राप्तात् जनकात् (वि) विशेषे (वेदः) विन्दित सुखानि येन धनेन तत् (भरन्त) धरन्तु॥५०

अन्वय:-हे भरन्त! पुरुत्रा गोषु बलिं स्वः वनेषु प्रशस्ति चो बिश्विषऽतो विश्वे नरः पुत्राः जिब्नेः पितुर्वेदो भरन्त न त्वा सपर्यन्॥५॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। हे मनुष्यः: सर्वे द्वयं येन जगदीश्वरेण सनातनात्कारणात्सर्वाणि कार्याणि वस्तून्युत्पाद्य स्पर्शादयो गुणाः प्रकाशिताः। द्वयस्य सृष्टावुत्पन्नानां जनकस्य पुत्रा इव सर्वे जीवा दायभागिनः सन्ति। येन सर्वेभ्यः सर्वाणि सुवानि दीयन्ते तस्यात्ममनोवाक्छरीरधनैर्नित्यं परिचर्य्यां यूयं कुरुत॥५॥

पदार्थ:-हे (भरना) सर्व विश्व का सब गुणों को धारण करनेवाले जगदीश्वर! जिस कारण (पुरुत्रा) बहुत दान करने योग्य आप (गोषु) पृथिवी आदि पदार्थों में (बिलम्) संवरण (स्व:) आदित्य (वनेषु) किरणों में (प्रश्निष्) उत्तम् व्यवहार और (न:) हम लोगों को (वि धिषे) विशेष धारण करते हो (विश्वे) सब (नर:) इससे विद्वान् लोग जैसे (पुत्रा:) पुत्र (जिवे:) वृद्धावस्था की प्राप्त हुए (पितु:) पिता के सकाश स्ने (वेद:) विद्याधन को (भरना) धारण करें (न) वैसे (त्वा) आपका (सपर्यन्) सेवन करते हैं॥५॥

भाषार्थ: इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! तुम सब लोग जिस जगदीश्वर ने सनातन कारण में सब कार्य अर्थात् स्थूलरूप वस्तुओं को उत्पन्न करके स्पर्श आदि गुणों को प्रकाशित किया है, जिस्की सृष्टि में उत्पन्न हुए सब पदार्थों के पिता-पुत्र के समान सब जीव दायभागी हैं, जो सब प्राणियों के स्विये सब सुखों को देता है, उसी की आत्मा, मन, वाणी, शरीर और धनों से सेवा करो॥५॥

अष्टक-१। अध्याय-५। वर्ग-१४

मण्डल-१। अनुवाक-१२। सूक्त-७०

पुनः स सभाध्यक्षः कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह सभाध्यक्ष कैसा हो, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

साधुर्न गृध्नुरस्तेव शूरो यातेव भीमस्त्वेषः समन्स्री।। ६।। १४।।

साधुः। न। गृध्नुः। अस्तौऽइव। शूर्रः। यातौऽइव। भी॒मः। त्वेषः। सुमत्ऽसुं॥६॥

पदार्थ:-(साधु:) यः परोपकारी परकार्याणि साध्नोति सः (भ) इव प्राृष्टुः) परोत्कर्षाभिकाङ्क्षकः (अस्ताइव) तथा शस्त्राणां प्रक्षेप्ता (शूरः) शूरवीरः (यातेव) यथा दण्डप्रापकः (भीमः) बिभेति यस्मात्स भयङ्करः (त्वेषः) त्वेषित प्रदीप्तो भवित सः (स्मृत्सु) संग्रामेषु॥६॥

अन्वय:-हे मनुष्या! यूयं यो गृध्नुः साधुर्नास्ताइव शूरो भीमो यातेव समृत्सु त्वेषः प्रामेश्वरः सभाध्यक्षोऽस्ति तं नित्यं सेवध्वम्॥६॥

भावार्थ:-अत्र श्लेषोपमालङ्कारा:। हे मनुष्या:! परमेश्वरं धार्मिकं विद्वासं सभाद्यध्यक्षं च विहाय कश्चिदन्य: स्वेषां राजा शत्रुविजेता दण्डप्रदाता सुखाभिवर्धको नैबाउस्तीक्षि निश्चित्य सर्वाणि परोपकृतानि सुखान्यभिवर्धयत॥६॥

अत्रेश्वरमनुष्यसभाद्यध्यक्षाणां गुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेदितव्यम्॥

इति सप्तितितमं ७० सूक्तं चतुर्दशो १४ वर्गश्च समाप्त:॥

पदार्थ: - हे मनुष्यो! तुम जो (गृध्नु:) व्यूसरे के उन्कर्ष की इच्छा करनेवाले (साधु:) परोपकारी मनुष्य के (न) समान (अस्ताइव) शत्रुओं के ऊपर शुरू पहुंचानेवाले (शूर:) शूरवीर के समान (भीम:) भयङ्कर (यातेव) तथा दण्ड प्राप्त करनेवाले कि समीन (समत्सु) संग्रामों में (त्वेष:) प्रकाशमान परमेश्वर वा सभाध्यक्ष है, उसका नित्य सेवन करों॥६॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में अने उपमालङ्कार हैं। हे मनुष्यो! तुम लोग परमेश्वर वा धर्मात्मा विद्वान् को छोड़ कर शत्रुओं को जीतने और देण्ड देने तथा सुखों का बढ़ानेवाला अन्य कोई अपना राजा नहीं है, ऐसा निश्चय करके सब लोग प्रोपकारी होके सुखों को बढ़ाओ॥६॥

इस सूक्त में ईश्वर, मनुष्य और सभा आदि अध्यक्ष के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त की पूर्वसूक्तार्थ के साथ सङ्गति अन्ती चाहिये॥

यह सत्तरवाँ ७० सूक्त और चौदहवां १४ वर्ग पूरा हुआ॥

अथ दशर्चस्यैकसप्ततितमस्य सूक्तस्य पराशर ऋषि:। अग्निर्देवता। १,६,७ त्रिष्टुप्। २,५ निचृत् त्रिष्टुप्। ३,४,८,१० विराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। ९ भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः।

पञ्चमः स्वरः॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

अब इकहत्तरवें सूक्त का आरम्भ किया जाता है, इसके प्रथम मन्त्र में सभाध्यक्ष आ<mark>दि के पुष्</mark>रे का उपदेश किया है।।

उपु प्र जिन्वन्नुशृतीरुशन्तुं पितं न नित्युं जन्युः संनीळाः।

स्वसारुः श्यावीमर्रुषीमजुष्रञ्चित्रमुच्छन्तीमुषसुं न गार्वः॥ १॥

उपं। प्रा जिन्वन्। उ्शृतीः। उ्शन्तम्। पर्तिम्। न। नित्यम्। जन्यः। सर्वनिक्राः। स्वसारः। श्यावीम्। अर्ह्षीम्। अजुष्टन्। चित्रम्। उच्छन्तीम्। उषसम्। न। गार्वः॥ १॥

पदार्थ:-(उप) सामीप्ये (प्र) प्रकृष्टार्थे (जिन्बन्) तर्प्यन्त्। (उश्रानीः) कामयमानाः (उश्रान्तम्) कामयमानम् (पितम्) पालकं पाणिग्रहीतारम् (न) इव (नित्यम्) अव्यभिचारिस्वरूपेणाविनाशिनम् (जनयः) या जायन्ते ता प्रजाः (सनीळाः) एकेश्वराधिकरण्यमानस्थानाः (स्वसारः) युवतयो भिगन्यः (श्यावीम्) अल्पकृष्णवर्णाम् (अरुषीम्) आरक्तवर्णाम् (अजुष्ट्रन्) सेवन्ते। अत्र बहुलं छन्दसीति रुडागमः। (चित्रम्) अद्भुतगुणस्वरूपभावम् (उच्छन्तीम्) भित्रासयन्तीम् (उषसम्) रात्र्यन्तसमयम् (न) इव (गावः) किरणा धेनवो वा॥१॥

अन्वय:-हे मनुष्या! यूयं यं नित्यं चित्रं परमेश्वरं सुभाध्यक्षं वा सनीळा जनयः प्रजा उशन्तीः स्वसार उशन्तं पतिं नेव गावः श्यावीमरुषीमुच्छन्तीमुषसं नेव्रोपाजुषम् तं भूवतं सेवित्वा प्रजिन्वन्॥१॥

भावार्थ:-अत्र श्लेषोपमालङ्कारो सर्वेर्मनुष्यैर्यथा धार्मिका विदुषी पतिव्रता स्त्री पतिं धार्मिको विद्वान् स्त्रीव्रतो मनुष्यो धार्मिक विवाहितां स्त्रियं सेवते। यथा चोष: कालं प्राप्य किरणा: पशव: पृथिव्यादिकान् पदार्थान् सेवन्ते तथैव परमेश्वर्रः)सभाध्यक्षश्च नित्यं सेवनीय:॥१॥

पदार्थ:-हे मनुष्या तुम विद्वान लोग जिस (नित्यम्) व्यभिचाररहित स्वरूप से नित्य अविनाशी (चित्रम्) आश्चर्य गुण, कर्म और स्वभावयुक्त परमेश्वर वा सभाध्यक्ष के (सनीळा:) एक ईश्वर के बीच रहने से समान स्थान वाले (जनय:) प्रजा वा (उशन्ती:) शोभायमान (स्वसार:) युवती भगिनी (उशन्तम्) शोभायमान अपने-अपने (पतिम्) पालन करनेवाले पित के (न) समान तथा (गाव:) किरण वा धेनु (श्यावीम्) भुमेक्षे वर्ण से युक्त वा (अरुषीम्) अत्यन्त लाल वर्ण वाली (उच्छन्तीम्) विशेष वास कराती हुई (उपसम्) प्रात:काल की वेला के (न) समान (उपाजुष्रन्) सेवन करके (प्रजिन्वन्) अत्यन्त तृप्त रहो॥ १॥

अष्टक-१। अध्याय-५। वर्ग-१५-१६

मण्डल-१। अनुवाक-१२। सूक्त-७१

भावार्थ:-इस मन्त्र में श्लेष और उपमालङ्कार हैं। सब मनुष्यों को चाहिये कि जैसे धर्मात्मा विद्वान् स्त्री विवाहित पति का और धर्मात्मा विद्वान् मनुष्य विवाहित स्त्री का सेवन कर्णा है, जैसे प्रात:काल होते ही किरण वा गौ आदि पशु पृथिवी आदि पदार्थों का सेवन करते हैं, वैसे ही परमश्चर वा सभाध्यक्ष का निरन्तर सेवन करें॥१॥

पुनः कै: के कथं सेवनीया इत्युपदिश्यते॥

फिर किनकी कौन कैसे सेवा करें, इस विषय को अगले मन्त्र में क्राह्म है।

वीळु चिंद् दृळ्हा पितरों न उक्थैरद्रिं रुजुन्निः स्यो रवेण। चुकुर्दिवो बृंहतो गातुम्स्मे अहुः स्वर्विविदुः केतुमुस्राः॥३॥

वीळु। चित्। दूळहा। पितर्रः। नः। उक्थैः। अद्रिम्। रुजुन्। अङ्गिरसः। रहेण। चुकुः। दिवः। बृहुतः। गातुम्। अस्मे इति। अहुरिति। स्वः। विविदुः। केतुम्। उस्राः॥२॥

पदार्थ:-(वीळु) बलम् (चित्) अपि (दृढा) दृढम्। अत्राकायदेशः। (पितरः) ज्ञानिनः (नः) अस्मान् (उक्थैः) परिभाषितोपदेशैः (अद्रिम्) मेघमिव (फ्रान्) भुष्ट्रान्ति (अद्गिरसः) वायवः (रवेण) स्तुतिसमूहेन (चक्रुः) कुर्वन्ति (दिवः) द्योतकान् (वृहतः) महतः (गातुम्) पृथिवीम् (अस्मे) अस्माकम् (अहः) व्यापनशीलं दिनम् (स्वः) सुखम् (विविद्वः) वेदयन्ति (केतुम्) प्रज्ञानम् (उस्नाः) किरणाः॥२॥

अन्वय:-अस्माभिर्ये पितर उक्थैर्नोस्मान् हुँहै केतुं बीळु स्वश्चिदुम्ना गातुमिवाहर्बृहतो दिव इव विविदु:। अङ्गिरसो रवेणाद्रिं रुजन्निवास्मे दु:खनाशं चक्रुस्ते सेक्जीया:॥२०

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालुङ्कारः। मुर्गेष्यैराप्तान् विदुषः संसेव्य विद्यां प्राप्य प्रज्ञामुत्पाद्य धर्मार्थकाममोक्षफलानि सेवनीयानि॥ २॥

पदार्थ:-हम लोगों को वाहिये कि जो (पितर:) ज्ञानी मनुष्य (उक्थे:) कहे हुए उपदेशों से (न:) हम लोगों के (दृढा) दृह्ह (केतुम्) प्रज्ञा (वीळु) बल (स्व:) (चित्) और सुख को (उस्ना:) किरण वा (गातुम्) पृथिवी के समान (अह;) तथा दिन और (बृहत:) बड़े (दिव:) द्योतमान पदार्थों के समान (विविदु:) जानते हैं वा (आहुरमः) वायु (रवेण) स्तुतिसमूह से (अद्रिम्) मेघ को (रुजन्) पृथिवी पर गिराते हुए के समान (अस्मे) हम लोगों के दु:खों को (चक्रु:) नष्ट करते हैं, उनको सेवें॥२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि पूर्ण विद्यायुक्त विद्वानों का सेवन तुशा विद्वा बुद्धि को उत्पन्न करके धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष फलों का सेवन करें॥२॥

यथा पुरुषा ब्रह्मचर्यं सेवित्वा विद्वांसो भवन्ति तथा स्त्रियोऽपि भवेयुरित्युपदिश्यते॥ जैसे ब्रह्मचर्याश्रम का सेवन करके पुरुष विद्वान् होते हैं, वैसे स्त्रियों को भी होना योग्य है, यह विषय कहा है॥ ८०४

ऋग्वेदभाष्यम्

दर्धन्तृतं धनयंत्रस्य धीतिमादिदुर्यो दिधिष्वो र्वे विभृताः। अतृष्यन्तीरृपसो युन्त्यच्छा देवाञ्जन्म प्रयंसा वर्धयन्तीः॥३॥

दर्धन्। ऋतम्। धुनर्यन्। अस्य। धीतिम्। आत्। इत्। अर्यः। दिधिष्वः। विऽभृताः। अर्तृप्रान्तिः। अप्रान्तिः। युन्ति। अच्छं। देवान्। जन्मं। प्रयंसा। वर्धयन्तीः॥३॥

पदार्थ:-(दधन्) दधीरन् (ऋतम्) सत्यं विज्ञानम् (धनयन्) विद्याद्विधनं कुर्युः (अस्य) ब्रह्मचर्य्यस्य धर्मस्य विद्यादिधनस्य वा (धीतिम्) धारणम् (आत्) अनन्तरम् (ऋत्) इष (अर्थ्यः) वैश्यः (दिधिष्वः) धारयन्त्यः (विभृत्राः) विशिष्टानि भृत्राणि धारणानि यासां ताः (अतृष्यन्तीः) तृष्णादिदोषरिहताः (अपसः) कर्माणि। अत्र लिङ्गव्यत्ययः। (यन्ति) प्रापुतिन क्य्यं अच्छे सम्यग्रीत्या (देवान्) विदुषो दिव्यान् गुणान् वा (जन्म) विद्याजननम् (प्रयसा) व्यसं प्रीणन्ति तृप्यन्ति कामयन्ते वा शिष्टान् विदुषः शुभान् गुणांस्तेन सह वर्त्तमानाः (वर्धयन्तीः) उन्नयन्त्यः॥ ३॥

अन्वयः-या विभृत्रा दिधिष्वोऽतृष्यन्त्यो वर्धयन्त्यः कुमार्यो देवात्र्णाप्यार्थ्य इदिव ऋतं धनयन्नादस्य धीतिं दधन् प्रयसाऽपसो देवाञ्जन्माच्छादयन्ति। ता विदुष्यो भूत्वा वेदादिषु सर्वाणि सुखानि प्राप्नुत्रन्ति॥३॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। यथा वैश्या धर्मं धृत्या धिनमुजैयन्ति तथैव कन्या विवाहात् प्राक् सुब्रह्मचर्य्येणाप्ता विदुष्योऽध्यापिका: प्राप्य पूर्णां सुशिक्षां विद्यां चादायाथ विवाहं कृत्वा प्रजासुखं स्वाजयेयु:। निह विद्याध्ययनस्य समयो विवाहादर्वागस्ति न खलु कस्यचित्पुरुषस्य स्त्रिया वा विद्याग्रहणेऽनिधकारोऽस्ति॥३॥

पदार्थ:-जो (विभृत्रा:) विशेष धारण करनेवाली (दिधिष्व:) भूषण आदि से युक्त (अतृष्यन्ती:) तृष्णा आदि दोषों से पृथक् (वर्धयन्ती:) उन्नित् करनेवाली कुमारी कन्या (देवान्) दिव्य गुणों को प्राप्त होकर (अर्थ्य:) वैश्य के (इत्) समान (ऋतम्) सत्य विज्ञान को (धनयन्) विद्याधनयुक्त कर (आत्) इसके अनन्तर (अस्य) ब्रह्मचर्य की (धीतिम्) धारणा को (दधन्) धारण कर (प्रयसा) अत्र के समान वर्तमान (अपसः) कर्म्म (देवान्) विद्वान् (जन्म) और विद्या की प्राप्त को (अच्छ) अच्छे प्रकार (यन्ति) प्राप्त होती हैं, वेदादि शास्त्रों में विद्वान् होकर सब सुखों को प्राप्त होती हैं॥३॥

भावार्थ: -इस मेन्त्र में ज्ञेपमालङ्कार है। जैसे वैश्य लोग धर्म्म के अनुकूल धन का संचय करते हैं, वैसे ही कन्या विवाह से पहले ब्रह्मचर्यपूर्वक पूर्ण विद्वान् पढ़ानेवाली स्त्रियों को प्राप्त हो पूर्णशिक्षा और विद्या का ग्राहण तथा विवाह करके प्रजासुख को सम्पादन करे। विवाह के पीछे विद्याध्ययन का समय नहीं समझना चाहिये। किसी पुरुष वा स्त्री को विद्या के पढ़ने का अधिकार नहीं है, ऐसा किसी को नहीं समझना चाहिये, किन्तु सर्वथा सबको पढ़ने का अधिकार है॥३॥

पुनस्ताः कथंभूता भवेयुरित्युपदिश्यते॥

फिर उन स्त्रियों को कैसा होना चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अष्टक-१। अध्याय-५। वर्ग-१५-१६

मण्डल-१। अनुवाक-१२। सूक्त-७१

मथी॒द्यदीं विभॄतो मात्रिश्चा गृहेगृहे श्येतो जेन्यो भूत्। आदीं राज्ञे न सहीयसे सचा सन्ना दूत्यं र्र भृगवाणो विवाय॥४॥

मधीत्। यत्। ईम्। विऽभृतः। मात्रिश्चा। गृहेऽगृहे। श्येतः। जेन्यः। भूत्। आत्। ईम्। रज्ञि। न। सहीयसे। सर्चा। सन्। आ। दूत्यम्। भृगवाणः। विवाया।४॥

पदार्थ:-(मथीत्) मथित (यत्) (ईम्) प्राप्तमग्निम् (विभृतः) विविश्वद्रव्यविद्याधारकाः (मातिरश्चा) यो मातर्यन्तिरक्षे श्वसिति स वायुः (गृहेगृहे) प्रतिगृहम् (श्येतः) प्राप्तः (जेन्द्रः) विजयहेतुः। अत्र बाहुलकादौणादिक एन्यप्रत्ययो डिच्च। (भूत्) भवित (आत्) अनन्तरम् (ईप्) विजयप्रापिका सेना (राज्ञे) नृपतये (न) इव (सहीयसे) यशसा सोढे (सचा) सङ्गत्या (सन्) चर्चमानः (आ) समन्तात् (दूत्यम्) दूतस्य भावः कर्म वा (भृगवाणः) भृज्जित पदार्थविद्ययनिकाम् पदार्थानिति भृगवाणस्तद्वत् (विवाय) संवृणोति॥४॥

अन्वय:-भृगवाण इव गृहीतिवद्याः कुमार्य्यो यथायं विभृतः श्येतो जेन्यो मातिरश्चा यद्दूत्यं तदाविवाय गृहेगृह ईम्प्राप्तमिनं मथीदात् सहीयसे राज्ञे नेम् सचा सन् भृत् तथैव विद्यायाने सुख्यारिण्यो भवन्तु॥४॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। न खुन्तु विद्या ग्रहणेन विना स्त्रीणां किंचिदिप सुखं भवित यथाऽगृहीतिवद्याः पुरुषाः सुलक्षणा विदुष्तिः स्त्रियः प्राडयिन्त, तथैव विद्याशिक्षारिहताः स्त्रियः स्वान् पतीन् पीडयिन्त तस्माद्विद्याग्रहणानन्तरमेष परस्परं प्रीत्या स्वयंवरिवधानेन विवाहं कृत्वा सततं सुखियतव्यम्॥४॥

पदार्थ:-(भृगवाण:) अनेकविध प्रतिर्थिति से पदार्थों को व्यवहार में लानेहारों के तुल्य विद्याग्रहण की हुई कन्याओ! जैसे यह (विभृतः) अनेक प्रकार की पदार्थ विद्या का धारण करनेवाला (श्येत:) प्राप्त होने का (जेन्य:) और विजय का हेतु तथा (मातिरश्चा) अन्तरिक्ष में सोने आदि विहारों का करनेवाला वायु (यत्) जो (दूर्यम्) दूत का कर्म है उसको (आ विवाय) अच्छे प्रकार स्वीकार करता और (गृहे-गृहे) घर-घर वर्थात् कलार्यन्त्रों के कोठे-कोठे में (ईम्) प्राप्त हुए अग्नि को (मर्थीत्) मथता है (आत्) अथवा (सहीराम्) यूप्त सहनेवाले (राज्ञे) राजा के लिये (न) जैसे (ईम्) विजय सुख प्राप्त करानेवाली सेना (सचा) सङ्गित के साथ (सन्) वर्तमान (भूत्) होती है, वैसे विद्या के योग से सुख करानेवाली होओ॥ ४॥

भावार्थ: इस पन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। विद्या-ग्रहण के विना स्त्रियों को कुछ भी सुख नहीं होता। जैसे अविद्याओं का ग्रहण किये हुए मूढ़ पुरुष उत्तम लक्षण युक्त विद्वान् स्त्रियों को पीड़ा देते हैं, वैसे विद्या शिक्षा से रहित स्त्री अपने विद्वान् पतियों को दु:ख देती हैं। इससे

८०६

ऋग्वेदभाष्यम्

विद्या-ग्रहण के अनन्तर ही परस्पर प्रीति के साथ स्वयंवर विधान से विवाह कर निरन्तर सुखयुक्त हीना चाहिये॥४॥

पुन: सूर्यवदध्यापकगुणा उपदिश्यन्ते॥

फिर सूर्य के समान अध्यापक के गुणों का उपदेश किया है॥

महे यत्पित्र ईं रसं दिवे करवे त्सरत्पृश्-यिश्चिकित्वान्। मृजदस्तां धृषुता दिद्युमंस्मै स्वायां देवो दुहितिर त्विषिं धात्॥५॥ १५॥

महे। यत्। पित्रे। ईम्। रस्मम्। द्विवेः। कः। अवं। त्सुर्त्। पृश्नन्यंः। चिकित्वान् सूजत्। अस्तां। धृष्वता। दिद्युम्। अस्मे। स्वायाम्। देवः। दुहितरिं। त्विषिम्। धात्॥५॥

पदार्थ:-(महे) विद्यया परिमाणेन महत् (यत्) यः (पित्रे) विद्याप्रकाशियदिनिन पालियत्रे (ईम्) प्राप्तव्यम् (रसम्) विद्योषधिफलम् (दिवे) प्रकाशाय (कः) सुखदः (अवे) विनिग्रहे (त्सरत्) विरुद्धं गच्छित (पृशन्यः) पर्शिता (चिकित्वान्) ज्ञानवान् ज्ञानहेतुर्वा (मृज्त्) सूज्ति (अस्ता) प्रक्षेप्ता (धृषता) प्रागलभ्येन (दिद्युम्) द्योतमानां विद्यां दीप्तिं वा (अस्मे) प्रयोजनाय (स्वायाम्) स्वकीयाम् (देवः) विद्याप्रकाशदाता (दुहितरि) कन्येव वर्त्तमानायामुषिस (विष्मे) विद्याप्रकाशं तेजो वा (धात्) द्याति॥५॥

अन्वय:-हे मनुष्या:! यूयं तथा यद्यः कः पृश्यन्य अस्ता चिकित्वान् देवः सूर्यो महे पित्रे दिव ईम्रसमवसृजदीमन्धकारं च त्सरत्स्वायां दुहितरि त्विषि धादश दिद्युं)शृषता सुखं दीयते तथा सर्वस्मै सुखं कुरुत॥५॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालक्क्सर: सर्वेभ्रातापित्रादिभिर्मनुष्यै: स्वस्य स्वस्य सन्तानेषु विद्या स्थापनीया। यथा प्रकाशमय: सन् सूर्यः सर्वे प्रकाश्यानन्दयित तथैव विद्यायुक्ता: पुत्रा: कन्याश्च सर्वाणि सुखानि ददित॥५॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! तुम लोगों को जैसे (यत्) जो (कः) सुखदाता (पृशन्यः) स्पर्श करने (अस्ता) फेंकने (चिकित्वान्) जीपने (देवः) विद्या प्रकाश के देनेवाला सूर्य्य (महे) बड़े (पित्रे) प्रकाश के देने से पालन करनेवाले (दिवे) प्रकाश के लिये (ईम्) प्राप्त करने योग्य (रसम्) ओषधि के फल को (अवसृजत्) रचता (ईम्) (त्सरत्) अन्धकार को दूर करता (स्वायाम्) अपनी (दुहितरि) कन्या के समान उषा में (त्विषिम्) प्रकाश वा तेज को (धात्) धारण करता, उसके अनन्तर (दिद्युम्) दीप्ति की (धृषता) दृढ़ता से सुख देता है, वैसे किया करो॥५॥

भूग्वार्थ: हस मेन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। सब माता-पिता आदि मनुष्यों को अपने-अपने सन्तानों में विद्यास्थापन करना चाहिये। जैसे प्रकाशमान सूर्य सबको प्रकाश करके आनन्दित करता है, वैसे ही विद्यास्थापन पुत्र वा पुत्री सब सुखों को देते हैं॥५॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

अष्टक-१। अध्याय-५। वर्ग-१५-१६

मण्डल-१। अनुवाक-१२। सूक्त-७१

फिर भी अध्यापक के गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

स्व आ यस्तुभ्यं दम् आ विभाति नमो वा दाशांदुशतो अनु द्यून्। वर्धो अग्ने वयो अस्य द्विबर्हा यासंद्राया सुरथुं यं जुनासिं॥६॥

स्वे। आ। यः। तुभ्यम्। दमे। आ। विऽभाति। नर्मः। वा। दाशात्। उशातः। अनु। ह्यून्। वर्धो इति। अग्ने। वर्यः। अस्य। द्विऽवर्हाः। यासत्। राया। सुऽरर्थम्। यम्। जुनासि॥६॥

पदार्थ:-(स्वे) स्वकीये (आ) समन्तात् (यः) अध्येता (तुभ्यम्) (दमें) गृहे। दमें इति गृहनामसु पिठतम्। (निघं०६.४) (आ) अभितः (विभाति) प्रकाशते (नमः) अत्रम् (वा) विकल्पे (दाशात्) ददाति (उशतः) कामयमानान् (अनु) वीप्सायाम् (द्यून्) दिवसान् (वर्षोः) यो वर्धयित तत्संबुद्धौ (अग्ने) विज्ञानप्रद (वयः) जीवनम् (अस्य) अपत्यस्य जगतो वा (द्विबहिः) यो द्वाभ्यां विद्याशिक्षाभ्यां प्रतापप्रकाशाभ्यां वा वर्धयति सः (यासत्) प्रापयन्ति (राया) विद्यादिधनेन (सरथम्) रथै रमणीयैः कर्मभिर्गुणैर्यानैर्वा सह वर्त्तमानस्तम् (यम्) मनुष्यं रथं वा (जुनासि) व्यवहार प्रेरयसि॥६॥

अन्वय:-हे अग्ने! वर्धो द्विबर्हास्त्वं यथा सविता स्वे द्वे तुभी नम् औदाशादाविभाति यथा वास्य जगतो वयो यासत् तथा यः स्वे दमे तुभ्यं नम् आदाशादाविभात्यस्यापत्यस्य वयो पासत् राया सरथं यं जुनासि तान् सर्वाननुद्यूनुशतः सम्पादय॥६॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:/। ह मनुष्या ग्रं युष्माभिर्ये युष्माकं पितरो जनका आचार्याश्च युष्मभ्यं सुशिक्षया सूर्य्यवद्विद्याप्रकाशेनान्नाद्विद्यानेन वा सुख्ययन्ति ते नित्यं सेवनीया:॥६॥

पदार्थ:-हे (अग्ने) विज्ञानप्रद! (वर्धी) (दिवर्ही:) विद्या और शिक्षा से वार-वार बढ़ानेहारे आप जैसे सिवता (स्वे) अपने (दमे) घर में (तुभ्यम्) तुमको (नमः) अत्र (आदाशात्) अच्छे प्रकार देता (आविभाति) और अत्यन्त प्रकाश को करता (वा) अथवा (अस्य) इस जगत् की (वयः) अवस्था को (यासत्) पहुंचाता है, वैसे (यः) जो शिष्य अपने घर में तुम्हारे लिये अत्र देता अर्थात् यथायोग्य सत्कार करता और आपसे गुणों को प्राप्त होली हुआ प्रकाशित होता अथवा इस अपने पुत्र आदि की अवस्था पहुंचाता अर्थात् औषधि आदि पदार्थीं से नीरोगता को प्राप्त करता है और (राया) विद्यादि धन (सरथम्) मनोहर (यान,) कर्म वा गुणों सहित से (यम्) जिस मनुष्य को (जुनािस) व्यवहार में चलाते हो, उन सबको (अनुद्यून्) प्रतिदिन (अशतः) अति उत्तम कीजिये॥६॥

भानार्थ: इस पुन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! तुम लोगों को चाहिये कि जो तुम्हारे प्रिता अर्थात उत्पन्न करनेवाले वा पढ़ानेवाले आचार्य्य तुम्हारे लिये उत्तम शिक्षा से सूर्य के समान विद्याप्रकाश वा अन्नादि दे कर सुखी रखते हैं, उनका निरन्तर सेवन करो॥६॥

पुनस्स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

८०८

ऋग्वेदभाष्यम्

फिर वह कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अ्गिनं विश्वा अभि पृक्षः सचन्ते समुद्रं न स्रवतः सप्त युह्णेः। न जामिभिर्वि चिकिते वयो नो विदा देवेषु प्रमिति चिकित्वान्॥७॥

अुग्निम्। विश्वाः। अभि। पृक्षः। सुचुन्ते। सुमुद्रम्। न। स्रुवतः। सुप्त। युद्धाः। न। जामिऽभिः। वि। चिकिते। वर्यः। नुः। विदाः। देवेषुं। प्रऽमीतम्। चिकित्वान्॥७॥

पदार्थ:-(अग्निम्) विद्युतम् (विश्वा:) अखिलाः (अभि) अभितः (पृक्षः) याः पुचते विद्वासम्पर्कं कुर्वन्ति ताः पुत्र्यः (सचन्ते) समवयन्ति (समुद्रम्) अर्णवम् (न) इव (स्रवतः) प्राणान् (सप्त) प्राणापानव्यानोदानसमानसूत्रात्मकारणस्थान् (यह्वीः) महत्यो रुधिर्विद्युक्तद्विस्त्रायः (न) निषेधे (जामिभिः) स्त्रीभिः (वि) विशेषे (चिकिते) ज्ञापयित (वयः) विज्ञापम् ((नः) अस्मान् (विदाः) विज्ञापय (देवेषु) विद्वत्सु दिव्यगुणेषु वा (प्रमितम्) प्रकृष्टं ज्ञानम् (चिकित्वान्न) ज्ञानकान् स्त्रीपको वा॥७॥

अन्वयः-यश्चिकित्वान् नोऽस्मान् देवेषु प्रमितं विदा वयो विचिकिते तमेप्निमृतं विश्वा पृक्षः पुत्र्यः कान्तयो वा समुद्रं स्रवतः सप्त प्राणान् यह्वीर्नेवाभिसचन्ते यतो वयं मूर्खाभिर्दुःखद्राभिर्जामिभिर्वान्तरह न संवसेम॥७॥

भावार्थ:-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। यथा प्राद्धिं नेर्धः प्राणान् विद्युदादयश्च संयुञ्जन्ति तथैव मनुष्याः सर्वे पुत्रा कन्याश्च ब्रह्मचर्य्येण विद्याब्रते सम्पाप्य युवाऽवस्थां प्राप्य विवाहादिना सन्तानानुत्पाद्य तेभ्यस्तथैव विद्यासुशिक्षा ग्राहयेयुग्नेन समः कृश्चिद्धिक उपकारो न विद्यत इति ॥७॥

पदार्थ:-जो (चिकित्वान्) ज्ञानवान् ज्ञान का हुत् (नः) हम लोगों को (देवेषु) विद्वान् वा दिव्यगुणों में (प्रमितम्) उत्तम ज्ञान को (क्दाः) प्राप्त करता (वयः) जीवन का (विचिकिते) विशेष ज्ञान कराता है, उस (अग्निम्) अग्नि के समान किंद्वाने (विश्वाः) सब (पृक्षः) विद्यासम्पर्क करनेवाले पुत्र वा दीप्ति (समुद्रम्) समुद्र वा (स्रवतः) नदी के समान शरीर को गमन कराते हुए (सप्त) सात अर्थात् प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान हुन पांच के और सूत्ररूप आत्मा के समान (सूत्रात्मकारणस्थ) तथा (यह्वीः) रुधिर वा बिजुली अदि की गतियों के (न) समान (अभिसचन्ते) सम्बन्ध करती हैं, जिससे हम लोग मूर्ख वा दु:ख देनेवाली (जामिणः) स्त्रियों के साथ (न) नहीं बसें॥७॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में ज्ञेपमा तथा वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे समुद्र को नदी वा प्राणों को बिजुली आदि गित्र संयुक्त करती हैं, वैसे ही मनुष्य सब पुत्र वा कन्या ब्रह्मचर्य्य से विद्या वा व्रतों को समाप्त करके युवावस्था वाले होकर विवाह से सन्तानों को उत्पन्न कर उनको इसी प्रकार विद्या शिक्षा सदा ग्रहण करावे पूत्रों के लिये विद्या का उत्तम शिक्षा करने के समान कोई बड़ा उपकार नहीं है॥७॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह अध्यापक कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

मा यदिषे नृपतिं तेज आनुट्छुचि रेतो निर्षिक्तं द्यौर्भीके।

अष्टक-१। अध्याय-५। वर्ग-१५-१६

मण्डल-१। अनुवाक-१२। सूक्त-७१

अग्निः शर्धमनवृद्यं युर्वानं स्वाध्यं जनयत्सूदयच्च॥८॥

आ। यत्। इषे। नृऽपर्तिम्। तेर्जः। आर्नट्। शुचिं। रेर्तः। निऽसिक्तम्। द्यौः। अभीके। अम्बः। सर्वेम्) अनुबद्यम्। युर्वानम्। सुऽआध्येम्। जुनुयत्। सूदयेत्। चु॥८॥

पदार्थ:-(आ) समन्तात् (यत्) यः (इषे) इच्छापूर्त्तये (नृपितम्) राजानम् (तेजः) प्रागलभ्यम् (आनट्) व्याप्नोति। अत्र व्यत्ययेन परस्मैपदं श्नं च। (शुचि) पिवत्रम् (रेतः) श्रीर्थ्यमुदकं च। रेत इत्युदकनामसु पिठतम्। (निघं०१.१२) (निषिक्तम्) संस्थापितम् (द्यौः) क्रकाशः (अभीके) संग्रामे। अभीक इति संग्रामनामसु पिठतम्। (निघं०२.१७) (अग्निः) विद्युत् (श्रीम्) बिलनम् (अनवद्यम्) अनिन्दितम् (युवानम्) (स्वाध्यम्) सुष्ठु समन्ताद् विद्याऽधीयते यस्मिन् स्रस्थां तं जा (जनयत्) (सूदयत्) सूदयेत् (च) समुच्चये॥८॥

अन्वयः-हे युवते! त्वं यथा द्यौरग्निरभीके इषे यन् निषिक्तं शुक्ति रेतस्तेजश्चान्ट् समन्तात् प्रापयित तेन युक्ता त्वं तथा शर्धमनवद्यं स्वाध्यं युवानं नृपितं विद्वांसं स्वयंवरिववाहेन प्राप्यापत्यान्याजन्यद् दुःखं सूदयच्च॥८॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। न सर्वेमिनुन्ये: क्रुटाचित्सुविद्या शरीरबलाभ्यां विना व्यावहारिकपारमार्थिकसुखे प्राप्येते। न खलु सन्तानेभ्यो विद्याद्यिन विना मातापित्रादयोऽनृणा भवितुं शक्नुवन्तीति वेद्यम्॥८॥

पदार्थ:-हे युवते! जैसे (द्यौ:) प्रकाशस्त्र (अगि:) विद्युत् (अभीके) संग्राम में (इषे) इच्छा की पूर्णता के लिये (यत्) जो (निषिक्तम्) स्थापन किये हुए (शुचि) पवित्र (रेत:) वीर्य और (तेज:) प्रगल्भता को (आनट्) प्राप्त करती है, उसे वृद्धायुक्त तू वैसे (शर्धम्) बली (अनवद्यम्) निन्दारहित (युवानम्) युवावस्था वाले (स्वाध्यम्) उत्तम विद्यायुक्त विद्वान् (नृपितम्) मनुष्यों में राजमान पित को स्वेच्छा से प्रसन्नतापूर्वक प्राप्त हो के (आजनयत्) सन्तानों को उत्पन्न (च) और अविद्या दु:ख को (सूदयत्) दूर कर॥८॥

भावार्थ:-सब मनुष्यों जो जलना चाहिये कि कभी उत्तम विद्या वा प्रदीप्त अग्नि के समान विद्वान् के सङ्ग के विना व्यवहार और परमार्थ के सुख प्राप्त नहीं होते और अपने सन्तानों को विद्या देने के विना माता-पिता आदि कृतकृत्य नहीं हो सकते॥८॥

विद्यया किं प्राप्नोतीत्युपदिश्यते॥

बिद्या से क्या प्राप्त होता है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

मनो न योऽध्वनः सद्य एत्येकः सत्रा सूरो वस्व ईशे।

रोजाना मित्रावरुणा सुपाणी गोषु प्रियमुमृतं रक्षमाणा॥९॥

मर्नः। न। यः। अर्ध्वनः। सद्यः। एति। एकेः। सुत्रा। सूर्रः। वस्वः। ई्रशे। राजीना। मित्रावर्रुणा। सुर्पाणी इति सुऽपाणी। गोर्षु। प्रियम्। अमृतेम्। रक्षेमाणा॥९॥

पदार्थ:-(मन:) सङ्कल्पविकल्पात्मिकान्त:करणवृत्तिः (न) इव (यः) विद्वान् (अध्वनः) मिर्गान् (सद्यः) शीघ्रम् (एति) गच्छति (एकः) असहायः (सत्रा) सत्यान् गुणकर्मस्वभाषान् (सूरः) प्राणिगर्भविमोचिका प्राणस्थविद्युदिव (वस्वः) वसूनि (ईशे) ऐश्वर्ययुक्तो भवति (राजाना) प्रकाशमानौ सभाविद्याध्यक्षौ (मित्रावरुणा) यः सर्विमित्रः सर्वेश्वरश्च तौ (सुपाणी) शोभनाः पाणसे व्यवहारा अयोस्तौ (गोषु) पृथिवीराज्येषु (प्रियम्) प्रीतिकरम् (अमृतम्) सर्वसुखप्रापकत्वेन दुःखिविचाशकम् (रक्षमाणा) यौ रक्षतस्तौ। अत्र व्यत्ययेनात्मनेपदम्॥९॥

अन्वय:-हे स्त्रीपुरुषो! युवां यथा विद्वान् मनो न सूर इव विमानादियानैरध्वेनः पारे सद्य एति य एकः सत्रा वस्व ईशे तथा गोषु प्रियममृतं रक्षमाणा सुपाणी मित्रावरुणौ राजा नेव भूत्वा धर्मीर्थकापमोक्षान् साध्नुयाताम्॥९॥

भावार्थ:-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। यथा मनुष्या न विद्याविद्वत्सङ्गाभ्यां विना विमानादीन् रचयित्वा तत्र स्थित्वा देशान्तरेषु सद्यो गमनागमने सत्यविज्ञानस्त्रसद्वयप्राप्तिधीर्मिको राजा च राज्यं भावियतुं शक्नुवन्ति तथा स्त्रीपुरुषेषु विद्या बलोन्नत्या विना सुन्नुवृद्धिने भवति॥९॥

पदार्थ:-हे स्त्रीपुरुषो! तुम विद्वान्मनुष्य जैसे (मन:) सिङ्क पविकल्परूप अन्त:करण की वृत्ति के (न) समान वा (मूर:) प्राणियों के गर्भों को बाहर करनेहांसे प्रमणस्थ बिजुली के तुल्य विमान आदि यानों से (अध्वन:) मार्गों को (सद्य:) शीघ्र (एति) जाता और (य:) जो (एक:) सहायरहित एकाकी (सत्रा) सत्य गुण, कर्म और स्वभाववाला (वस्व:) द्रष्ट्यों को शीघ्र (ईशे) प्राप्त करता है, वैसे (गोषु) पृथिवीराज्य में (प्रियम्) प्रीतिकारक (अम्मीम्) भेब सुखों-दु:खों के नाश करनेवाले अमृत की (रक्षमाणा) रक्षा करनेवाले (सुपाणी) उत्तम व्यवहारों से युक्त (मित्रावरुणों) सबके मित्र सब से उत्तम (राजाना) सभा वा विद्या के अध्यक्षों के सदृश हो के धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को सिद्ध किया करो॥९॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमो और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे मनुष्य विद्या और विद्वानों के संग के विना विमानादि सन्ते को रूप और उनमें स्थित होकर देश-देशान्तर में शीघ्र जाना-आना, सत्य विज्ञान, उत्तम द्रव्यों की प्राप्ति और धर्मात्मा राजा राज्य के सम्पादन करने को समर्थ नहीं हो सकते, वैसे स्त्री और पुरुषों में निरन्ति विद्या और शरीरबल की उन्नति के विना सुख की बढ़ती कभी नहीं हो सकती॥९॥

पुनः स विद्वान् कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा हो, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

भा नी अग्ने सुख्या पित्र्याणि प्र मंर्षिष्ठा अभि विदुष्क्विः सन्।

अष्टक-१। अध्याय-५। वर्ग-१५-१६

मण्डल-१। अनुवाक-१२। सूक्त-७१

नभो न रूपं जीरमा मिनाति पुरा तस्या अभिशस्तेरधीहि॥ १०॥ १६॥

मा। नुः। अग्ने। सुख्या। पित्र्योणि। प्रा मुर्षिष्ठाः। अभि। विदुः। कृविः। सन्। नर्भः। स्टूप्प्। जिरिक्षा मिनाति। पुरा। तस्योः। अभिऽशस्तेः। अधि। इहि॥ १०॥

पदार्थ:-(मा) निषेधे (न:) अस्माकम् (अग्ने) सर्वविद्याऽभिव्याप्त विद्वान् (सख्या) मित्रभावकर्माणि (पित्र्याणि) पितृभ्य आगतानि (प्र) प्रकृष्टार्थे (मर्षिष्ठा:) विनाशष् (अभि) अभितः (विदुः) वेता (किवः) पूर्णविद्यः (सन्) वर्त्तमानः (नभः) अन्तरिक्षम् (न) इव (रूपम्) रूपवद्वस्तु (जिरमा) एतस्याः स्तुतेर्भावयुक्तः (मिनाति) हन्ति (पुरा) पुरातनानि (तस्यः) उक्तायाः (अभिशस्तेः) हिंसायाः (अधि) उपरिभावे (इहि) स्मर॥१०॥

अन्वयः - हे अग्ने! पावकवर्जिंगा कविर्विदुः संस्त्वं नमो रूपं ने तथा नोजस्माकं पुरा पित्र्याणि सख्या माभिप्रमर्षिष्ठास्तस्या अभिशस्तेर्नाशस्याधीहि एवं भूतः सन् यः सुखं मिनाति तं दूरीकरु॥१०॥

भावार्थ:-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। यथा रूपेबन्तः पदार्थाः सूक्ष्म अवस्थां प्राप्यान्तरिक्षेऽदृश्या भवन्ति। तथाऽस्माकं सिखत्वानि नष्टार्शि न भवेयुर्वेतः सर्वे वयं सर्वथा विरोधं विहाय परस्परं सुहृदो भूत्वा सर्वदा सुखिनः स्याम॥१०॥

अत्रेश्वरसभाध्यक्षस्त्रीपुरुषविद्युद्विद्वद्गुणवर्णम् कृतेमत् स्तदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेदितव्यम्॥

इत्येकसप्ततितमं ७२ सूक्तं षोड्डशो १६ वर्गश्च पूर्णः॥

पदार्थ:-हे (अग्ने) सब विद्याओं की प्राप्ते हुए विद्वान्! (जिरमा) स्तुति के योग्य (किवः) पूर्णिवद्या को (विदुः) जाननेवाले (सन्) होकर आप (नभोरूपं न) जैसे आकाश सब रूपवाले पदार्थों को अपने में नाश के समय गुप्त कर ब्विता है, वैसे (नः) हम लोगों के (पुरा) प्राचीन (पित्र्याणि) पिता आदि से आए हुए (सख्या) मित्रता आदि कर्मों को (माभि प्र मर्षिष्ठाः) नष्ट मत कीजिए और (तस्याः) उस (अभिशस्तेः) नाश को (अधिहि) अच्छी प्रकार स्मरण रखिये, इसी प्रकार होकर जो सुख को (मिनाति) नष्ट करता है, उसको दूर की जिस्रे। १०॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे रूपवाले पदार्थ सूक्ष्म अवस्था को प्राप्त होकर अस्तिक्ष में नहीं दीखते, वैसे हम लोगों के मित्रपन आदि व्यवहार नष्ट न होवें, किन्तु हम सब लोग विस्थि सर्वथा छोड़कर परस्पर मित्र होके सब काल में सुखी रहें॥१०॥

हस सूक्त में ईश्वर, सभाध्यक्ष, स्त्री, पुरुष, बिजुली और विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्तार्श्व की पूर्व सूक्तार्थ के साथ संगति समझनी चाहिये॥

यह इकहत्तरवां ७१ सूक्त और सोलहवां १६ वर्ग समाप्त हुआ॥

अथ दशर्चस्य द्विसप्ततितमस्य सूक्तस्य पराशर ऋषिः। अग्निर्देवता। १,२,५,६,९ विराट् त्रिष्टुप्। ४,१० त्रिष्टुप्। ७ निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। ३,८ भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः।

पञ्चम: स्वर:॥

अथ मनुष्याणां वेदाध्यापनाध्ययनेन किं किं फलं भवतीत्युपदिश्यते॥

अब बहत्तरवें सूक्त का आरम्भ किया है। इसके प्रथम मन्त्र में मनुष्यों को वेदों के पहने पहाने से क्या-क्या फल होता है, इस विषय को कहा है।।

नि काव्या वेधसः शर्श्वतस्कर्हस्ते दर्धानो नर्या पुरूणि। अग्निर्भुवद्रयिपती रयोणां सुत्रा चंक्राणो अमृतानि विश्वा॥ १॥

नि। कार्व्या। वेधसं:। शर्धतः। कु:। हस्ते। दधानः। नर्या। पुरूणि अग्निः। पुर्वेतः। रृयोणाम्। सुत्रा। चुक्राणः। अमृतानि। विश्वा॥ १॥

पदार्थ:-(नि) नितराम् (काव्या) वेदस्तोत्राणि वा (वेधमः) पकलविद्याधातुर्विधातुः (शश्वतः) अनादिस्वरूपस्य परमेश्वरस्य सम्बन्धात् प्रकाशितानि (कः) करोति (हस्ते) करे प्रत्यक्षवस्तुवत् (दधानः) धरन् (नर्थ्या) नृभ्यो हितानि (पुरूणि) बहूनि (अग्निः) विद्वाने। अग्निरिति पदनामसु पठितम्। (निघं०५.४) (भुवत्) भवति (रियपितः) श्रीशः (रियोणाम्) विद्याचक्रवर्त्तिप्रभृतिधनानाम् (सत्रा) नित्यानि सत्यार्थप्रतिपादकानि (चक्राणः) (अमृतानि) मीक्षपर्यन्तार्थप्रापकानि (विश्वा) सर्वाणि चतुर्वेदस्थानि॥१॥

अन्वयः-योग्निरिव विद्वान्मनुष्यो यानि विध्नसः शश्चतुः परमात्मनः सकाशात् प्रकाशितानि पुरूणि सत्राऽमृतानि विश्वा नर्य्या काव्यानि सन्ति तानि दधानः विद्याप्रकाशो चक्राणः सन् धर्माचरणं नि को निश्चयेन करोति स रयीणां रियपितिर्भुवद्भवति॥१॥

भावार्थ:-हे मनुष्या! अनन्तसत्येविद्येनाऽनादिना सर्वज्ञेन परमेश्वरेण युष्मद्धिताय स्वविद्यामया अनादयो वेदा: प्रकाशितास्तान्धीत्याध्याप्य च भार्मिका विद्वांसो भूत्वा धर्मार्थकाममोक्षान्निर्वर्त्तयत॥१॥

पदार्थ:-जो (अग्निः) अग्नि के तुल्य विद्वान् मनुष्य (वेधसः) सब विद्याओं के धारण और विधान करनेवाले (श्रश्चतः) अनि स्वरूप परमेश्वर के सम्बन्ध से प्रकाशित हुए (पुरूणि) बहुत (सत्रा) सत्य अर्थ के प्रकाश करने तथा (अमृतानि) मोक्षपर्यन्त अर्थों को प्राप्त करनेवाले (विश्वा) सब (नर्या) मनुष्यों को सुख़ होने के हेतु (काव्या) सर्वज्ञ निर्मित वेदों के स्तोत्र हैं, उन को (हस्ते) हाथ में प्रत्यक्ष पदार्थ के तृल्य (ह्थानः) धारण कर तथा विद्याप्रकाश को (चक्राणः) करता हुआ धर्माचरण को (नि कः) निश्चय करके सिद्ध करता है वह (रयीणाम्) विद्या, चक्रवर्ति राज्य आदि धनों का (रियपितः) पालन्यकरनेज्ञाला श्रीपित (भुवत्) होता है॥१॥

अष्टक-१। अध्याय-५। वर्ग-१७-१८

मण्डल-१। अनुवाक-१२। सूक्त-७२

भावार्थ:-हे मनुष्यो! अनन्त सत्यविद्यायुक्त अनादि सर्वज्ञ परमेश्वर ने तुम लोगों के हित के लिए जिन अपनी विद्यामय अनादि रूप वेदों को प्रकाशित किये हैं, उनको पढ़-पढ़ा और धम्तिम विद्यान होकर धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, आदि फलों को सिद्ध करो॥१॥

य एतान् स्वीकुर्वन्ति ते सदानन्दा भवन्ति, ये च नाधीयते वृथाश्रमा भवन्तीत्युपृर्दिश्यते। जो लोग इन उक्त वेदों को पढ़ते हैं, वे ही सदा आनन्द में रहते हैं और जो नहीं पढ़ते उनका परिश्रम व्यर्थ जाता है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में कियी है।

असमे वृत्सं परि षन्तं न विन्दिन्निच्छन्तो विश्वे अमृता अमूराः।

श्रमयुर्वः पद्व्यौ धियंधास्तस्थुः पदे पर्मे चार्वग्नेः॥२॥

अस्मे इति। वृत्सम्। पिर्। सन्तेम्। न। विन्दुन्। इच्छन्तेः। विश्वे। अमृताः। अमूराः। श्रमुऽयुर्वः। पुदुऽव्येः। ध्युम्ऽधाः। तुस्थुः। पुदे। पुरुमे। चार्रः। अपनेः॥२॥

पदार्थ:-(अस्मे) अस्मान् (वत्सम्) सुखेषु निवासयन्ते ब्येष्कवर्णाचं प्रसिद्धं वेदचतुष्टयम्। अत्र वृत्०। (उणा०३.६१) इति सूत्रेणास्य सिद्धिः। (पिर) सर्वत् (सन्तम्) वर्त्तमानम् (न) निषेधे (विन्दन्) लभन्ते (इच्छन्तः) श्रद्धालवो भूत्वा (विश्वे) सर्वे जीताः (अमृताः) अनुत्पन्नत्वादनादित्वान्मरणधर्मरिहताः प्राप्तमोक्षाश्च (अमृराः) मूढभावरिहताः (श्रम्युषः) श्रूमेण युक्ताः। अत्र विवब्वचिप्रच्छि०। (उणा०२.५४) इति विवब्दीर्घो भवतः। (पदव्यः) सुखे प्राप्ताः (धियन्धाः) बुद्धं कर्म वा दधित (तस्थुः) तिष्ठन्ति। (पदे) प्राप्तव्ये (परमे) सर्वोत्कृष्टे (चारु) श्रष्ट्रयं यथा स्यात्तथा (अग्नेः) परमेश्वरस्य॥२॥

अन्वयः-ये विश्वे अमृता अमूराः श्रमसुष्ठः पदेच्या धियंधा मोक्षमिच्छन्तो मनुष्या अस्मे वत्सं सन्तं वेदचतुष्ट्यं परि विन्दँस्तेऽग्नेश्चारु परमे पदे तस्थुर्ये च न बिदुस्ते तद्ब्रह्म पदं नाप्नुवन्ति॥२॥

भावार्थ:-सर्वे जीवा अनादयः सत्त्येतेषां मध्ये ये मनुष्या देहधारिणः सन्ति, तान् प्रतीश्वर उपदिशति। हे मनुष्याः! सर्वे पूर्यं वेदानधीत्पाध्याप्याज्ञानविरहा ज्ञानवन्तः पुरुषार्थिनो भूत्वा सुखिनो भवत, न हि वेदार्थज्ञानेन विना कश्चिद्वि मनुष्यः सर्वविद्याः प्राप्तुं शक्नोति, तस्माद् वेदविद्यावृद्धिं सम्यक् कुरुत॥२॥

पदार्थ:-जो (विश्वे) सब (अमृता:) उत्पत्तिमृत्युरिहत अनादि (अमूरा:) मूढ़तादि दोषरिहत (श्रमयुव:) श्रम से युक्त (पदव्य:) सुखों को प्राप्त (धियन्धा:) बुद्धि वा कर्म को धारण करनेवाले (इच्छन्त:) श्रद्धाल होकर मनुष्य (अस्मे) हम लोगों को (वत्सम्) पुत्रवत् सुखों में निवास करती हुई प्रसिद्ध गरीं चेद से युक्त वाणी के (सन्तम्) वर्तमान को (परिविन्दन्) प्राप्त करते हैं, वे (अग्ने:) (चारु) श्रेष्ठ जैसे हो वैसे परमात्मा के (परमे) सबसे उत्तम (पदे) प्राप्त होने योग्य सुखरूपी मोक्ष पद में (त्रस्थु:) स्थित होते हैं और जो नहीं जानते, वे उस ब्रह्म पद को प्राप्त नहीं होते॥२॥

भावार्थ:-सब जीव अनादि हैं, जो इनके बीच मनुष्य देहधारी हैं, उनके प्रति ईश्वर उपदेश करती है कि हे मनुष्यो! तुम सब लोग वेदों को पढ़-पढ़ा कर अज्ञान से ज्ञानवाले पुरुषार्थी होके सुख भोगो, क्योंकि वेदार्थज्ञान के विना कोई भी मनुष्य सब विद्याओं को प्राप्त नहीं हो सकता, इससे तुम लोगों को वेदविद्या की वृद्धि निरन्तर करनी उचित है॥२॥

पुनस्तं किमर्थमधीयीरन्नित्युपदिश्यते॥

फिर वे उन वेदों को किसलिये पढ़ें, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

तिस्रो यदंग्ने शरदुस्त्वामिच्छुचिं घृतेन शुचंयः सपूर्यान्। नामानि चिद्दधिरे युज्ञियान्यसूदयन्त तुन्वर्रुः सुजाताः॥३॥

तिस्रः। यत्। अग्ने। श्रारदेः। त्वाम्। इत्। श्रुचिम्। घृतेने। श्रुचैयशे सुपूर्णन्। नामनि। चित्। दुधिरे। युज्ञियनि। असूदयन्त। तुन्वेः। सुऽजाताः॥३॥

पदार्थ:-(तिस्र:) त्रित्वसंख्याविशिष्टान् (यत्) ये (अग्ने) विद्वन् (श्रादः) शरदृत्वन्तान् संवत्सरान् (त्वाम्) तम् (इत्) एव (श्रुचिम्) पवित्रम् (घृतेन) आज्येनोहकेन् वा (श्रुचयः) पवित्राः सन्तः (सपर्यान्) परिचरेयुः सेवेरन् (नामानि) अर्थज्ञानक्रियासहिताः संज्ञाः (चिन्) अपि (दिधरे) दधित (यज्ञियानि) कर्मोपासनाज्ञानसम्पादनार्हाणि कर्माणि (असूदयन्त्र) सच्चलयेयुः (तन्वः) तनूः (सुजाताः) विद्याक्रियासुकौशले सुष्ठु प्रसिद्धाः॥३॥

अन्वय:-हे अग्ने! यद्ये शुचय: सुजाता मनुष्या: शुचिं क्र्वा तिस्र: शरद: सपर्यान् त इद्यज्ञियानि नामानि दिधिरे चिदिप घृतेन तन्वस्तन्रसूदयन्त॥३॥

भावार्थ: - निह कस्यचिदिप वेदाननेधीत्य विद्याः प्राप्नोति, निह विद्याभिर्विना मनुष्यजन्मसाफल्यं पवित्रता च जायते, तस्मात्सर्वेमनुष्येरेतत्वर्स प्रयत्नेन सदैवानुष्ठेयम्॥३॥

पदार्थ: - हे (अग्ने) विद्वान् । (यत्) जो (शुचयः) पवित्र (सुजाताः) विद्याक्रियाओं में उत्तम कुशलता से प्रसिद्ध मनुष्य (शुचिम्) पवित्र (त्वाम्) तुझको (तिस्रः) तीन (शरदः) शरद् ऋतुवाले संवत्सरों को (सपर्यान्) लेबने करें हे (इत्) ही (यज्ञियानि) कम्मी, उपासना और ज्ञान को सिद्ध करने योग्य व्यवहार (नामानि) अर्थज्ञाम सहित संज्ञाओं को (दिधरे) धारण करें (चित्) और (घृतेन) घृत वा जलों के साथ (तन्त्वः) शरीरों को भी (असूदयन्त) चलावें॥३॥

भावार्थ: कोई भी मनुष्य वेदविद्या के विना पढ़े विद्वान् नहीं हो सकता और विद्याओं के विना निश्चय करके मनुष्य जन्म की सफलता तथा पवित्रता नहीं होती, इसलिये सब मनुष्यों को उचित है कि धर्म कर भेवन नित्य करें॥३॥

वेदानामध्येतारः कीदृशा भवेयुरित्युपदिश्यते॥

वेदों के पढ़नेवाले किस प्रकार के हों, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

अष्टक-१। अध्याय-५। वर्ग-१७-१८

मण्डल-१। अनुवाक-१२। सूक्त-७२

आ रोर्दसी बृहुती वेविदानाः प्र रुद्रिया जिभ्रेरे युज्ञियासः॥ विदन्मर्ती नेमधिता चिकित्वानुग्नि पुदे पर्मे तस्थिवांसम्॥४॥

आ। रोर्दसी इति। बृहती इति। वेविदानाः। प्र। रुद्रियो। जुभ्रिरे। युज्ञियासः। विदत्। मेतेः। नेमऽधिता। चिकित्वान्। अग्निम्। पुदे। पुरुमे। तुस्थ्रिऽवांस्म्।। ४॥

पदार्थ:-(आ) अभितः (रोदसी) भूमिराज्यं विद्याप्रकाशं वा (बृहती) महत्यौ (वेविदानाः) अतिशयेन विज्ञानवन्तः (प्र) प्रकृष्टार्थे (रुद्रिया) शत्रून् दुष्टान् रोदयतां सम्बन्धिनो रुद्राः (जिभ्रिरे) भरन्ति पुष्णन्ति (यज्ञियासः) यज्ञसम्पादने योग्याः (विदत्) जानाति (मर्तः) मन्याः (अष्टिक् १४.४५) इति छन्दिस पदार्था धिता हिता येन सः। अत्र सुधितवसुधितनेमधितधिष्वधिषीय च्याः (अष्टिक १४.४५) इति छन्दिस निपातनात् क्तप्रत्यये हित्वं प्रतिषिध्यते। सुपां सुलुगिति सोः स्थान आकारादेशः। (चिकित्वान्) ज्ञानवान् (अग्निम्) परमेश्वरम् (पदे) प्राप्तव्ये गुणसमूहे (परमे) सर्वोत्कृष्टे (तिस्थवांसम्) स्थितम्॥४॥

अन्वय:-ये रुद्रिया वेविदाना यज्ञियासो विद्वांसो बृहती रोद्रसी ओजिश्रिरे सर्वाविद्याविदंस्तेषां सकाशाद् विज्ञानं प्राप्य यश्चिकित्वान् नेमधिता मर्त्तः परमे पदे तस्थिवांसमिनं प्रविदत् स ग्रुखी जागते॥४॥

भावार्थ:-मनुष्यैर्वेदविदां सकाशात् सुनियमेन चेदिवाह्यों प्राप्य विद्वांसो भूत्वा परमेश्वरं तत्सृष्टं च विज्ञायाऽन्येभ्यो विद्या सततं दातव्या:॥४॥

पदार्थ:-जो (फ़्रिया) दुष्ट शत्रुओं को स्लानेकल के सम्बन्धी (वेविदाना:) अत्यन्त ज्ञानयुक्त (यज्ञियास:) यज्ञ की सिद्धि करने वाले विद्वान लोग (क्रुह्ती) बड़े (रोदसी) भूमि राज्य वा विद्या प्रकाश को (आजिभ्ररे) धारण-पोषण करते और सम्प्रि विद्याओं को जानते हैं, उनसे विज्ञान को प्राप्त होकर जो (चिकित्वान्) ज्ञानवान् (नेमधिता) प्राप्त पदार्थ को धारण करनेवाला (मर्तः) मनुष्य (परमे) सबसे उत्तम (पदे) प्राप्त करने योग्य मोक्ष पद में (तिस्थिवांसम्) स्थित हुए (अग्निम्) परमेश्वर को (प्रविदत्) जानता है, वहीं सुख भोगता है॥४॥

भावार्थ:-मनुष्यों को चाहिसे कि वेद के जाननेवाले विद्वानों से उत्तम नियम द्वारा वेदविद्या को प्राप्त हो विद्वान् होके पर्धेश्वर तथा उसके रचे हुए जगत् को जान अन्य मनुष्यों के लिये निरन्तर विद्या देवें॥४॥

पुनस्ते कीदृशा भवेयुरित्युपदिश्यते॥

फिर वह विद्वान् कैसे हों, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

र्<mark>पुंजानाना अप</mark> सीदन्नभिज्ञु पत्नीवन्तो नुमस्यं नमस्यन्।

र्सिष्टेक्वांसस्तन्वेः कृण्वत् स्वाः सखा सख्युर्निमिषि रक्षमाणाः॥५॥१७॥

सुम्ऽजानानाः। उप। सीदुन्। अभिऽज्ञु। पत्नीऽवन्तः। नुमुस्यम्। नुमुस्यत्रिति नमस्यन्। रिरिक्वांसः। तुर्न्वः। कृण्वतः। सर्वाः। सर्खाः। सर्ख्यः। निऽमिषि। रक्षमाणाः॥५॥

पदार्थ:-(संजानानाः) सम्याजानन्तः। अत्र व्यत्ययेनात्मनेपदम्। (उप) सामीप्ये (सीह्न) तिष्ठन्ति (अभिज्ञु) अभितो जानुनी यस्य तम् (पत्नीवन्तः) प्रशस्ता विद्यायुक्ता यज्ञसम्बन्धिन्यः स्त्रियो विद्यन्ते येषान्ते (नमस्यम्) परमेश्वरमध्यापकं विद्वांसं वा नमस्कारार्हम् (नमस्यन्) सत्कुर्वन्ति (सिरिक्वांसः) अधर्माद्विनिर्गताः। अत्र न्यङ्क्कादित्वात्कुत्वम्। (तन्वः) बलारोग्ययुक्तास्ते (कृण्वते) कुर्वन्ति (स्वाः) स्वकीयाः (सखा) सुहत् (सख्युः) सुहदः (निमिषि) विद्याधिक्याय स्पर्धिते सम्तदे व्यवहारे (रक्षमाणाः) रक्षां कुर्वन्तः॥५॥

अन्वय:-ये संजानानाः पत्नीवन्तो धर्मविद्ये रक्षमाणा अधर्माद्विरिक्वांपी विद्वांसोऽभिजूपसीदन्नमस्यं नमस्यन्निमिषि सख्युः सखेव स्वास्तन्वः कृण्वत ते भाग्यशालिनो भवन्ति॥५॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। नहीश्वरविदुषो: सत्कारेण विना कस्यचिद् विद्यासुखानि प्रजायन्ते, तस्मात् सत्कर्तुं योग्यानामेव सत्कार: सदैव कर्तव्य: गण्या

पदार्थ:-जो (संजानाना:) अच्छी प्रकार जानते हुए (प्रत्मीक्ट्न:) प्रशंसा योग्य विद्यायुक्त यज्ञ की जाननेवाली स्त्रियों के सिहत (रक्षमाणा:) धर्म और विद्या की रक्षा करते हुए विद्वान् लोग (रिरिक्वांस:) विशेष करके पापों से पृथक् (अधिज्ञ) जङ्काओं से (उपसीदन्) सन्मुख समीप बैठना जानते हैं तथा (नमस्यम्) नमस्कार करने योग्य परमेश्वर और पढ़ानेवाले विद्वान् का (नमस्यन्) सत्कार करते और (निमिषि) अधिक विद्या के होने के लिये स्पर्द्धायुक्त निरन्तर व्यवहार में क्षण-क्षण में (सख्य:) मित्र के (सखा) मित्र के समाप (स्वा:) अपने (तन्व:) शरीरों को (कृण्वत) बलयुक्त और रोगरहित करते हैं, वे मनुष्य भाग्यशाली होते हो।।

भावार्थ:-इस मन्त्र में श्लेष और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। ईश्वर और विद्वान् के सत्कार करने के विना किसी मनुष्य को विद्वा के पूर्ण सुखे नहीं हो सकते, इसलिए मनुष्यों को चाहिये कि सत्कार करने ही योग्य मनुष्यों का सत्कार और अयोग्यों का असत्कार करें॥५॥

एने बिद्यया कि विदित्वा वर्त्तत इत्युपदिश्यते॥

इन विद्वानों को विद्या सिर्किसको जान के वर्त्तना योग्य है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

त्रि सप्ता यद्गुह्यानि त्वे इत् पदाविदन् निर्हिता युज्ञियासः।

इ. संस्कृतभावार्थ में श्लेष अलङ्कार नहीं दिया है। सं०

अष्टक-१। अध्याय-५। वर्ग-१७-१८

मण्डल-१। अनुवाक-१२। सूक्त-७२

तेभी रक्षन्ते अमृतं सुजोषाः पुशूँश्च स्थात्ँञ्चरथं च पाहि॥६॥

त्रिः। सप्ता यत्। गुह्यांनि। त्वे इतिं। इत्। पद्मा अविद्रन्। निऽहिता। युज्ञियांसः। तेभिः। रृक्ष्मिः। सुऽजोषाः। पुशून्। च। स्थातृन्। चरर्थम्। च। पाहि॥६॥

पदार्थ:-(त्रि) त्रिवारं श्रवणमननिर्दिध्यासनै: (सप्त) साङ्गोपाङ्गाँश्वर्य वैद्यन् त्रीन् क्रियाकौशल-विज्ञानपुरुषार्थान् (यत्) यानि (गृह्यानि) गुप्तानि सम्यक् स्वीकर्त्तव्यानि (त्वे) केचित् (इत्) अपि (पदा) प्राप्तुमर्हाणि (अविदन्) लभन्ते (निहिता) निधिरूपाणि (यज्ञियासः) यज्ञेषम्पादने योग्याः (तेषिः) तैः (रक्षन्ते) पालयन्ति (अगृतम्) धर्मार्थकाममोक्षाख्यममृतसुखम् (सजोषाः) समानप्रीतिसेविनः (पशून्) पशुवद्वर्त्तमानान् मूर्खत्वयुक्तान् गवादीन् वा (च) समुच्चये (प्रातृन्) भूम्यादिस्थावरान् (चरथम्) मनुष्यादिजङ्गमम् (च) समुच्चये (पाहि) रक्ष॥६॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यथा त्वे यज्ञियासो यद्यानि निहिता गुह्यानि सेष्त् पदानि त्रिरंविन्दँस्तथा त्वमप्येतानि लभस्व। हे जिज्ञासो! यथैते सजोषास्तेभिरमृतं पशून् चाद् भृत्यादीन् स्थात्न् म्वाद्राज्यरत्नादीःश्चरथं जङ्गमं चात् पुत्रकलत्रादीन् रक्षन्ते, तथैतानि त्वामित् पाहि॥६॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। मनुष्यैविदुष्यिनुकरणं कार्य्यं न किलाऽविदुषाम्। यथा सत्पुरुषा: सत्कार्येष् प्रवर्त्तन्ते दृष्टानि कर्माणि त्यजन्ति तथैष सर्वमनुष्ठेयमिति॥६॥

पदार्थ:-हे विद्वान् मनुष्यो! जैसे (त्वे) कीई (यिज्ञियांसः) यज्ञ के सिद्ध करनेवाले विद्वान् (यत्) जिन (निहिता) स्थापित विद्यादि धनरूप (गृह्यानि) गृष्क वा सब प्रकार स्वीकार करने (पदा) प्राप्त होने योग्य (सप्त) सात अर्थात् चार वेदों और तीन क्रियांकौशल, विज्ञान और पुरुषार्थों को (त्रिः) श्रवण, मनन और विचार करने से (अविदन्) प्राप्त करते हैं, वैसे तुम भी इनको प्राप्त होओ। हे जानने की इच्छा करनेहारे सज्जन! जैसे (सजोषाः) समान प्रीति के सेवन करनेवाले (तेषिः) उन्हींसे (अगृतम्) धर्म, अर्थ काम और मोक्षरूपी सुख (प्रश्नृत) पशुओं के तुल्य मूर्खत्वयुक्त मनुष्य वा पशु आदि (च) और भृत्य आदि (स्थातृन्) भूमि आदि स्थावर (च) और राज्य रत्नादि सम्पदा (चरथम्) मनुष्य आदि जङ्गम (च) और स्त्री पुत्र आदि की (पश्नृत) रक्षा करते हैं, वैसे उनकी तू (इत्) भी (पाहि) रक्षा कर।। ६॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में ब्राचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिए कि विद्वानों का अनुकरण करें, मूर्खों का नहीं। जैसे फिजन पुरुष उत्तम कार्यों में प्रवृत्त होते और दुष्ट कर्मों का त्याग कर देते हैं, वैसा ही सब मनुष्य करें॥६॥

पुनरीश्वरगुणा उपदिश्यन्ते॥

फिर भी अगले मन्त्र में ईश्वर के गुणों का उपदेश किया है।।

क्ट्रिं अंग्ने वयुनानि क्षितीनां व्यानुषक्छुस्धी जीवसे धाः।

अन्तर्विद्वाँ अध्वनो देवयानानतन्त्रो दूतो अभवो हविर्वाट्॥७॥

विद्वान्। अग्ने। वयुर्नानि। क्षितीनाम्। वि। आनुषक्। शुरुर्धः। जीवसे। धाः। अन्तःऽविद्वानः अर्ध्वनः। देवऽयार्नान्। अर्तन्द्रः। दूतः। अभवः। हृविःऽवाट्॥७॥

पदार्थ:-(विद्वान्) यः सर्वं वेति (अग्ने) सर्वसुखप्रापक! (वयुनानि) विज्ञानानि (क्षितीनाम्) मनुष्याणाम् (वि) विविधार्थे (आनुषक्) आनुकूल्ये (शुरुधः) प्राप्तव्यानि सुखानि (जीवसे) जीवितुम् (धाः) दधासि (अन्तर्विद्वान्) योऽन्तर्वेति सः (अध्वनः) मार्गान् (देवयानान्) योश्वि यैस्तान् देवानाम् विदुषां गमनाधिकरणान् (अतन्द्रः) अनलसः (दूतः) विज्ञापकः (अभवः) भवति (हविर्वाट्) विज्ञानादिप्रापकः॥७॥

अन्वयः-हे अग्ने! यतोऽन्तर्विद्वान् बहिर्विद्वानतन्द्रो हिवर्वाट् त्वं क्षितीनां/वयुनानि जीवसं शुरुध आनुषक् विधा देवयानानध्वनो दूतोऽभवस्तस्मात्पूज्यतमोऽसि॥७॥

भावार्थ:-अत्र श्लेषालङ्कार:। यः प्रार्थितो सेवित ईश्वर विद्वान वा धर्म्यमार्गं विज्ञानं प्रदर्श्य सुखानि ददाति स कथं न सेवनीय:॥७॥

पदार्थ:-हे (अग्ने) सब सुख प्राप्त करनेवाले जिस्सिर जिस कारण (अन्तर्विद्वान्) अन्त:करण के सब व्यवहारों को तथा (विद्वान्) बाहर के कार्य्यों को जारनेवाले (अतन्द्रः) आलस्यरहित (हविर्वाट्) विज्ञान आदि प्राप्त करानेवाले आप (क्षितीनाम्) मनुष्यों के व्युनानि) विज्ञानों को (जीवसे) जीवन के लिये (शुरुध:) प्राप्त करने योग्य सुखों को अनुषक्) अनुकूलता पूर्वक (विधा:) विविध प्रकार से धारण करते हो, वेदद्वारा (देवयानान्) विद्वानों के जाने-आनेवाले (अध्वनः) मार्गों के (दूतः) विज्ञान करानेवाले (अभवः) होते हो, इससे आपका सिकार हम लोग अवश्य करें॥७॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जो प्रार्थना वा सेवन किया हुआ ईश्वर धर्ममार्ग वा विज्ञान को दिखाकर सुखों को देता है, उत्तका सेवन अवश्य करना चाहिये॥७॥

पुन्रते ब्हाविदो विद्वासः कीदृशा भवन्तीत्युपदिश्यते॥

फिर वे ब्रह्म के जाननेवाले विद्वान कैसे होते हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

स्वाध्यों दिव ओ सिप्तार्यह्वी रायो दुरो व्यृतज्ञा अजानन्।

विदद्गळी सरमा दूळहमूर्वं येना नु कं मानुंषी भोजीते विट्॥८॥

सुऽअर्थाः द्वितः। आ। सप्ता यह्वीः। रायः। दुर्रः। वि। ऋतऽज्ञाः। अजानन्। विदत्। गर्व्यम्। स्रमा। दृळ्हम्। कुर्वम्। येन्रोतुः। कुम्। मानुषीः। भोजते। विट्॥८॥

पदार्थ:-(स्वाध्य:) ये सुष्ठु सम्यक् सर्वेषां कल्याणं ध्यायन्ति ते (दिव:) पूर्वोक्तविद्याः (आ) अभितः (सप्त) एतत्संख्याकान् (यह्वीः) महतीः (रायः) अनुत्तमानि धनानि (दुरः) दूर्वन्ति सर्वाणि दुःखानि यैस्तान् विद्याप्रवेशस्थान् द्वारान् (वि) विशेषार्थे (ऋतज्ञाः) सत्यविदः (अजानन्) जानन्ति अष्टक-१। अध्याय-५। वर्ग-१७-१८

मण्डल-१। अनुवाक-१२। सूक्त-७२

(विदत्) लभते (गव्यम्) गोभ्यः पशुभ्य इन्द्रियेभ्यो वा हितम् (सरमा) या सरान् बोधान् मिमीते सा (दृढम्) (उर्वम्) दोषहिंसनम् (येन) पुरुषार्थेन (नु) शीघ्रम् (कम्) सुखम् (मानुषी) मानुषीप्रामियम् (भोजते) भुङ्क्ते। अत्र विकरणव्यत्ययेन शप्। (विट्) प्रजाः॥८॥

अन्वय:-हे मनुष्या! यूयं यथा स्वाध्य ऋतज्ञाविद्वांसो येन यह्वी: सप्त दिवो रायो दुर्गे व्यजानेस येन सरमा मानुषी विट् दृढमूर्व गव्यं सुखं नु विदत्कं भोजते तथैव तत्कर्म सदा सेवध्वम्॥८॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। मनुष्याणामियं योग्यतास्ति याद्रशीं विश्वं स्वयं प्रप्तनुयात् तादृशीं सर्वेभ्यो नैष्कापट्येन सदा दद्यु: यतो मनुष्या: सर्वाणि सुखानि लभेरनुस्र।।

पदार्थ:-हे मनुष्यो! जैसे-जैसे (स्वाध्य:) सबके कल्याण को यथावा विद्योरने (ऋतज्ञाः) सत्य के जाननेवाले (येन) जिस पुरुषार्थ से (यह्नीः) बड़ी (बड़ी) (सप्त) सात संख्यावाली (दिवः) सूर्य के तुल्य (पूर्वोक्त मन्त्र ६ में वर्णित) विद्या (रायः) अति उत्तम धनों के (दुरः) प्रवेश के स्थानों को (व्यजानन्) जानते तथा (सरमा) बोध के समान करनेवाली (मानुषी) मृतुष्यों की (विट्) प्रजा (दृढम्) दृढ़ निश्चल (ऊर्वम्) दोषों का नाश (गव्यम्) पशु और इन्द्रियों के हित्तुम्रारक सुख को (नु) शीघ्र (विदत्) प्राप्त होती है, वैसे इस कर्म का सदा सेवन करो॥८॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्क्षार है। मनुष्यों को यह योग्य है कि जैसे विद्या को पढ़े, वैसी ही कपट-छल छोड़ कर सब मनुष्यों को पढ़ावें और उपदेश करें, जिससे मनुष्य लोग सब सुखों को प्राप्त हो॥८॥

पुनर्सत कींद्शा इत्युपदिश्यते॥

फिर वे कैसे हों, द्वेस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

आ ये विश्वां स्वप्त्यानि तस्यु केण्वानासी अमृत्त्वार्य गातुम्। महा महद्धिः पृथिवी वि तस्थे माना पुत्रैरदितिर्धार्यसे वेः॥९॥

आ। ये। विश्वां। सुरञ्जूष्ट्यानि। कृष्युः। कृण्वानासः। अमृतुऽत्वार्य। गातुम्। मह्ना। महत्ऽभिः। पृथिवी। वि। तुस्थे। माता। पुत्रैः। अदितिः। ध्यसे। बेरिति। वेः॥९॥

पदार्थ:-(आ) समन्तात् (ये) विद्वांसः (विश्वा) सर्वाणि (स्वपत्यानि) शोभनिशक्षायुक्तान् पुत्रादीन् (तस्थुः) तिष्ठन्ति (कृण्वानासः) कुर्वन्तः (अमृतत्वाय) मोक्षादिसुखानां भावाय (गातुम्) बोधसमूहम् गातुस्ति पदनामसु पठितम्। (निघं०४.१) (मह्ना) महागुणसमूहेन (महद्धिः) महासुख्रुकारकैर्नुणैः (पृथिवीः) भूमिः (वि) विशेषार्थे (तस्थे) तिष्ठामि (मा) उत्पादिका (पुत्रैः) सह (अद्वितः) श्रौः (धायसे) धारणाय। अत्र बाहुलकादौणादिकोऽसुन्प्रत्ययो युट् च। (वेः) पक्षिण इव॥९॥

अन्वय:-यथा येऽमृतत्वाय गातुं कृण्वानासो विद्वांसो महद्भिर्गुण: सह विश्वानि स्वपत्यानि मह्ना धायसे पृथिवीव पुत्रैर्मात्रेवादितिर्मूर्तान् पदार्थान् वेरिवातस्थुस्तथैवैतदहं वितस्थे॥९॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। मनुष्यैर्विद्वद्वत्स्वसंतानान् सुशिक्षाविद्या युक्तान् कूत्वा धर्मार्थकाममोक्षान् प्राप्यताम्॥९॥

पदार्थ:-जैसे (ये) जो (अमृतत्वाय) मोक्षादि सुख होने के लिये (गातुम्) भूमि के समान बोध के कोश को (कृण्वानासः) सिद्ध करते हुए विद्वान् लोग (महद्धिः) अतिसुख कर्त्तवाले गुणों के साथ (विश्वा) सब (स्वपत्यानि) उत्तम शिक्षायुक्त पुत्रादिकों को (मह्ना) बड़े-बड़े ग्रुणों से (धायसे) धारण के लिये (पृथिवी) भूमि के तुल्य (पुत्रैः) पुत्रों के साथ (माता) माता के सम्मन् (अदितिः) प्रकाशस्वरूप सूर्य स्थूल पदार्थों में (वेः) व्याप्ति करनेवाले पक्षी के समान (आतस्थः) स्थित होते हैं, वैसे मैं इस कर्म का (वितस्थे) विशेष करके ग्रहण करता हूं॥९॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को विद्वानों के समान अपने सन्तानों को विद्या शिक्षा से युक्त करके धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूपी सुखों को प्राप्त करना चाहिये॥९॥

पुनस्ते किं धरन्तीत्युपदिश्यते॥

फिर वे विद्वान् किसको धारण करते हैं, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है।।

अधि श्रियं नि देधुश्चार्रमस्मिन् दिवो यद्शी अमृत्र अकृण्वन्।

अर्ध क्षरन्ति सिर्चवो न सृष्टाः प्र नीचीरग्ने अर्द्भवीरजानन्॥१०॥१८॥

अर्घि। श्रियम्। नि। दुधुः। चार्रुम्। अस्मिन्। दुवः। यत्। अक्षी इति। अमृताः। अकृण्वन्। अर्घ। क्षुरुन्ति। सिर्चवः। न। सृष्टाः। प्र। नीर्चीः। अग्ने। अर्पोः। अर्जामुन्। १०॥

पदार्थ:-(अधि) अधिकार्थ (श्रियम्) विद्याराज्यैश्वर्यशोभाम् (नि) नितराम् (द्यु) धरन्ति (चारुम्) श्रेष्ठं व्यवहारम् (अस्मिन्) लोके (दिवः) विज्ञानात्सूर्व्यप्रकाशाद्वा (यत्) ये (अक्षी) अश्नुवते व्याप्नुवन्ति याभ्यां बाह्याभ्यन्तरविद्यायुक्तभ्याते (अमृता) मरणधर्मरहिताः प्राप्तमोक्षा वा (अकृण्वन्) कुर्वन्ति (अध) अनन्तरम्। अथेल्क्यार्थे शब्द्धारमभेऽधेत्यव्ययम्। (क्षरन्ति) संवर्षन्ति (सिन्धवः) नद्यः (न) इव (सृष्टाः) निर्मिताः (प्र) व्रियाओगे (नीचीः) नितरां सेव्याः (अग्ने) विद्वान् (अरुषीः) उषस इव सर्वसुखप्रापिका विद्वाः क्रिया वा (अजानन्) जानीयुः॥१०॥

अन्वय् १-हे अने ! यथा यद्येऽमृता विद्वांसोऽस्मिन् श्रियमिध निदधुश्चारुं दिवोऽक्षी अकृण्वन् सृष्टाः सिन्धवो नाध सुखानि क्षरित्व नीचीरुषीः ग्राजानन् तथात्वमप्येतान्निधेहि कुरु देहि प्रजानीहि॥१०॥

भावार्थ: अत्रोपमा (वाचक)लुप्तोपमालङ्कारौ। हे मनुष्या! यथायोग्यं विदुषामाचरणं स्वीकुरुत, नैवार्विदुषाम्। यथा नद्य: सुखानि सृजन्ति तथा सर्वेभ्य: सर्वाणि सुखानि सृजत॥१०॥

अत्रेश्वरविद्वद्गुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति बोध्यम्॥

अष्टक-१। अध्याय-५। वर्ग-१७-१८

मण्डल-१। अनुवाक-१२। सूक्त-७२

इति द्विसप्तितितमं ७२ सूक्तमष्टादशो १८ वर्गश्च समाप्त:॥

पदार्थ:-जैसे (यत्) जो (अमृताः) मरण-जन्म रहित मोक्ष को प्राप्त हुए विद्वान् लोग (अस्मिन्) इस लोक में (श्रियम्) विद्या तथा राज्य के ऐश्वर्य की शोभा को (अधि निद्युः) अधिक धारण (यारुम्) श्रेष्ठ व्यवहार (दिव्यः) प्रकाश और विज्ञान से (अक्षी) बाहर भीतर से देखने की सिद्याओं को (अकृण्वन्) सिद्ध करते (सृष्टाः) उत्पन्न की हुई (सिन्धवः) निदयों के (न) समान् (अध) अनन्तर सुखों को (श्ररन्ति) देते हैं (नीचीः) निरन्तर सेवन करने तथा (अरुषीः) प्रभात के समाम सब सुख्य प्राप्त करनेवाली विद्या और क्रिया को (प्र अजानन्) अच्छा जानते हैं, वैसे हे (अर्पे) विद्वान् मनुष्य! तू भी यथाशिक्त सब कामों को सिद्ध कर॥१०॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं हे मनुष्या! तुम लोग यथायोग्य विद्वानों के आचरण को स्वीकार करो और अविद्वानों का नहीं। तथा जैसे नहीं-सुखों के होने की हेतु होती है, वैसे सबके लिये सुखों को उत्पन्न करो॥१०॥

इस सूक्त में ईश्वर और विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्तार्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ संगति समझनी चाहिये॥

यह बहत्तरवां ७२ सूक्त और अठिरहवां १४ वर्ग समाप्त हुआ॥

अथ दशर्चस्य त्रिसप्ततितमस्य सूक्तस्य पराशर ऋषिः। अग्निर्देवता। १,२,४,५,७,१० निचृत्त्रिष्टुप्। ३,६ त्रिष्टुप्। ८ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथ विद्वद्गुणा उपदिश्यन्ते॥

अब तिहत्तरवें सूक्त का आरम्भ किया जाता है। इसके प्रथम मन्त्र में विद्वान् के गुणों क्र सपदेश किया है।।

र्यिर्न यः पितृवित्तो वयोधाः सुप्रणीतिश्चिकितुषो न शासुः। स्योनुशीरतिथिर्न प्रीणानो होतेव सद्म विध्तो वि तारीत्॥१॥

र्यिः। नः। यः। पितृऽवित्तः। वृयःऽधाः। सुऽप्रनीतिः। चिकितुर्षः। न। शासुः। स्योनुऽशीः। अतिथिः। न। प्रीणानः। होताऽइव। सद्यी विधतः। वि। तारीत्॥ १॥

पदार्थ:-(रिवः) निधिसमूहः (न) इव (यः) विद्वान् (पितृवितः) गृतृभ्योऽध्यापकेभ्यो वित्तः प्रतीतो विज्ञातः (वयोधाः) यो वयो जीवनं दधातीति (सुप्रणीतिः) श्रोभना प्रशस्ता नीतिर्यस्य सः (चिकितुषः) प्रशस्तविद्यस्य (न) इव (शासुः) शासनकर्त्तेपदेष्ट (स्योनशीः) यः स्योनेषु सुखेषु विद्याधर्मपुरुषार्थेषु शेत आस्ते सः (अतिथिः) महाविद्वान् अम्णिशील्) उपदेष्टा परोपकारी मनुष्यः (न) इव (ग्रीणानः) प्रसन्नः सत्यासत्यविज्ञापकः (होतेव) दाता अथा यहाता (सदा) गृहवद् वर्त्तमानं शरीरं वा (विधतः) यो विधानं करोति तस्य (वि) विशेषे (त्रारीत्) सुख्यानं ददाति॥१॥

अन्वय:-हे मनुष्या! यूयं यः पितृवित्तो र्याम् व्योधाः, सुप्रणीतिश्चिकितुषः शासुर्न स्योनशीः प्रीणानोऽतिथिर्न विधतो होतेव सद्म वितारीत् तं नित्यं भजतोपकुरुव्यागाः ।

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कारा:। न खेलु किंद्यधर्मानुष्ठानविद्वत्सङ्गसुविचारैर्विना कस्यचिन्मनुष्यस्य विद्यासुशिक्षासाक्षात्कारो विद्युदाद्विपदार्श्विज्ञानं च जायते, न किल नित्यं भ्रमणशीलानां विदुषामतिथीनामुपदेशेन विना कश्चित्रिभ्रमा भवितुं शक्नोति, तस्मादेतत् सदान्वाचरणीयम्॥१॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! विमे (यः) जो विद्वान् (पितृवित्तः) पिता, पितामहादि अध्यापकों से प्रतीत विद्यायुक्त हुए (रियः) अनसमूह के (न) समान (वयोधाः) जीवन को धारण करने (सुप्रणीतिः) उत्तम नीतियुक्त तथा (चिकितुषः) उन्नम विद्यावाले (शासुः) उपदेशक मनुष्य के (न) समान (स्योनशीः) विद्या, धर्म्म और मुरुषार्थयुक्त सुख में सोने (प्रीणानः) प्रसन्न तथा (अतिथिः) महाविद्वान् भ्रमण और उपदेश करनेवाले पर्रापकारी मनुष्य के (न) समान (विधतः) वा सब व्यवहारों को विधान करता है, उसके (होतेव) देने लेखेवाले (सद्य) घर के तुल्य वर्त्तमान शरीर का (वि तारीत्) सेवन और उससे उपकार खेंके सबका सुख देता है, उसका नित्य सेवन और उससे परोपकार कराया करो॥१॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। विद्याधर्मानुष्ठान, विद्वानों का संग तथा उत्तमविचार के ब्रिपा किसी मनुष्य को विद्या और सुशिक्षा का साक्षात्कार, पदार्थों का ज्ञान नहीं होता और निरन्तर भ्रमण

अष्टक-१। अध्याय-५। वर्ग-१९-२०

मण्डल-१। अनुवाक-१२। सूक्त-७३

करने वाले अतिथि विद्वानों के उपदेश के विना कोई मनुष्य सन्देहरहित नहीं हो सकता, इससे सब मनुष्यों को अच्छा आचरण करना चाहिये॥९॥

पुनर्विद्वान् कीदृशः स्यादित्युपदिश्यते॥

फिर वह विद्वान कैसा हो, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।

देवो न यः संविता सत्यर्मन्मा क्रत्वा निपाति वृजनानि विश्वा। पुरुप्रशस्तो अमितिन सत्य आत्मेव शेवो दिधिषाय्यो भूत्॥ २॥

देवः। न। यः। सुविता। सुत्यऽर्मन्मा। क्रत्वा। निऽपाति। वृजनीन। विश्वा पुरुऽप्रशस्तः। अमितिः। न। सुत्यः। आत्माऽईव। शेवः। दिधिषाय्यः। भूत्॥२॥

पदार्थ:-(देव:) दिव्यगुणः (न) इव (य:) पूर्णविद्यः (सर्विता) सूर्य्यः (सत्यमन्मा) यः सत्यं मन्यते विजानाति विज्ञापयित सः (क्रत्वा) कर्मणा (निपाति) निर्दा रक्षिति (बृजनानि) बलानि। वृजनिमिति बलनामसु पठितम्। (निघं०२.९) (विश्वा) सर्वाणि (पुरुप्रशस्तः) बहुषु श्रेष्ठतमः (अमितः) सुन्दरस्वरूपः (दिधिषाय्यः) धारकः पोषकः। दधातेद्वित्वमित्व पुके थ। (उणा०३.९५) अनेनायं सिद्धः। (भूत्) वर्तते॥२॥^{४०}

अन्वय:-हे मनुष्या! यूयं यः सविता देवो न सत्यपन्मा क्रेत्ना विश्वा वृजनानि पाति पुरुप्रशस्तोऽमितर्न सत्यो दिधिषाय्य आत्मेव शेवो भूत्तं सेवित्वा विद्योन्नतिं कुरुत्।।

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। नैव मनुष्यै: विद्वुत्यङ्गेन विना सत्यविद्याबले सुखसौन्दर्य्याणि प्राप्तुं शक्यन्ते तस्मादेते नित्यं सेवनीया:॥२॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! तुम (यः) जो (सर्विता) सूर्य (देवः) दिव्य गुण के (न) समान (सत्यमन्मा) सत्य को जानने वा जनानेवाला विद्वान् (कत्वा) बुद्धि वा कर्म से (विश्वा) सब (वृजनानि) बलों की (निपाति) रक्षा करता है (पुरुष्णस्तः) बहुतों में अति श्रेष्ठ (अमितः) उत्तम स्वरूप के (न) समान (सत्यः) अविनाशिस्वरूप (दिधिषाच्यः) धारण वा पोषण करनेवाले (आत्मेव) आत्मा के समान (शेवः) सुखस्वरूप अध्यापक वा अदिष्टा (भूत्) है, उसका सेवन करके विद्या की उन्नति करो॥२॥

भावार्थ: इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्य विद्वानों के सत्संग से सत्यविद्या, बल, सुख और सौन्दर्य आदि के प्राप्त होने की समर्थ हो सकते हैं, इससे इन दोनों का सेवन निरन्तर करें॥२॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

०. संस्कृतपदार्थे 'न, सत्य:, आत्मेव, शेव:' इति चतुर्णानां पदानां पदार्थो नैव कृत:। सं०।

८२४

ऋग्वेदभाष्यम्

फिर भी विद्वान् कैसा हो, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

देवो न यः पृथिवीं विश्वधाया उपक्षेति हितमित्रो न राजा।

पुरःसर्दः शर्मसद्ो न वीरा अनवद्या पर्तिजुष्टेव नारी॥३॥

देवः। न। यः। पृथिवीम्। विश्वऽधायाः। उपुरक्षेतिं। हितऽमित्रः। न। राजां। पुर्ऽसर्दः। शर्म्ऽसर्दः। न। वीराः। अनुवृद्या। पतिजुष्टाऽइव। नारीं॥३॥

पदार्थ:-(देव:) दिव्यसुखदाता (न) इव (य:) सर्वोपकारको विद्वान् (पृथिवीम्) भूमिम् (विश्वधाया:) यो विश्वं दधाति। अत्र विश्वोपपदाद्बाहुलकादसुन् युडागमश्च। (उपक्षेति) विजानाति निवासयित वा (हितिमत्र:) हिता धृता मित्राः सुहृदो येन सः (नः) इव (राजा) सभाध्यक्षः (पुरःसदः) ये पूर्वं सीदन्ति शत्रून् हिंसन्ति वा (शर्म्मसदः) ये शर्मणि सुखे सीदन्ति ते (न) इव (वीराः) शत्रूणां प्रक्षेप्तारः (अनवद्या) विद्यासौन्दर्यादिशुभगुणयुक्ता (पितजुष्टेव) पित्रजुष्टः प्रीतः सेवितो यया तद्वत् (नारी) नरस्येयं विवाहिता भार्य्या॥३॥

अन्वयः-हे मनुष्या! यूयं यो देवः पृथिवीं न विश्वधाया हित्तिमत्रो राजा नोपेक्षति पुरःसदः शर्म्मसदो वीरा न दुःखानि शत्रून् विनाशयति। अनवद्या पतिजुष्टेव सुखे निवासयति तं सद्य सम्महिता भूत्वा यथावत् परिचरत॥३॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। न खलु मनुष्याः परमेश्वरेष विद्वद्भिः सह प्रेम्णा सह वर्त्तमानेन विना सर्वं बलं सुखं च प्राप्तुमर्हन्ति तस्मादेताभ्यां साकं प्रीतिं सदा क्रुर्वन्तु॥३॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! तुम लोग (यः) जि (देवः) अच्छे सुखों का देनेवाला परमेश्वर वा विद्वान् (पृथिवीम्) भूमि के समान (विश्वधायाः) विश्व को भूगरण करनेवाले (हितमित्रः) मित्रों को धारण किये हुए (राजा) सभा आदि के अध्यक्ष के (में) ममान (उपक्षेति) जानता वा निवास कराता है तथा (पुर:सदः) प्रथम शत्रुओं को मारने वा पुद्ध के जानने (शर्मसदः) सुख में स्थिर होने और (वीराः) युद्ध में शत्रुओं के फेंकनेवाले के (न) समान तथा (अनवद्या) विद्यासौन्दर्यादि शुद्धगुणयुक्त (नारी) नर की स्त्री (पतिजुष्टेव) जो कि पित्र की सेवा करनेवाली के समान सुखों में निवास कराता है, उसको सदा सेवन करो॥३॥

भावार्थ:-इस मेन्त्र में जपमालङ्कार है। मनुष्य लोग परमेश्वर वा विद्वानों के साथ प्रेम प्रीति से वर्त्तने के विना सक्तबल वा सुखाँ को प्राप्त नहीं हो सकते, इससे इन्हींके साथ सदा प्रीति करें॥३॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर विद्वान् कैसा हो, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

तं त्वा नरो दम् आ नित्यमिद्धमग्ने सर्चन्त क्षितिषुं ध्रुवासुं। अधि द्युम्नं नि देधुर्भूर्यस्मिन् भर्वा विश्वार्युर्ध्रुरुणो रयीणाम्॥४॥ अष्टक-१। अध्याय-५। वर्ग-१९-२०

मण्डल-१। अनुवाक-१२। सूक्त-७३

तम्। त्वाः। नर्रः। दमे। आः। नित्येम्। इद्धम्। अग्ने। सर्चन्तः। क्षिृतिषुं। ध्रुवासुं। अधि। द्युम्नम्। नि। द्रधुः। भूरिं। अस्मिन्। भर्वः। विश्वऽआयुः। धुरुणंः। रुयीणाम्॥४॥

पदार्थ:-(तम्) एवंभूतम् (त्वा) त्वां धार्मिक विद्वांसम् (नरः) ये विद्यां नयन्ति ह्रें सर्वे प्रमुणाः (दमे) दुःखोपशान्ते गृहे (आ) समन्तात् (नित्यम्) निरन्तरम् (इद्धम्) प्रदीप्तम् (अग्ने) विद्धापक (सचन्त) सेवन्ताम् (क्षितिषु) पृथिवीषु। क्षितिरिति पृथिवीनाम। (निघं०१.१) (ध्रुवासु) दृद्धारु (अधि) उपरिभावे (द्युम्नम्) विद्याप्रकाशं यशोधनं वा (नि) नितराम् (द्युः) धरन्तु (भूरि) बहु (अस्मिन्) मनुष्यजन्मनि जगति वा (भव) अत्र द्वयचोऽतस्तिङ इति दीर्घः। (विश्वायुः) अखिलं जीवनं यस्य सः (धरुणः) धर्ता (रयीणाम्) विद्यासार्वभौमराज्यनिष्पन्नधनानाम्॥४॥

अन्वय:-हे अग्ने! विद्वँस्त्व रयीणां धरुणो विश्वायुस्त्वमस्मिन् सहायवारी भव भूरि-ह्युम्नं धेहि तं नित्यिमद्धं त्वा ध्रुवासु क्षितिषु ये नरोऽधिनिदधुर्दमे आसचन्त ताँस्त्वं सततं सेवस्व॥४॥

भावार्थ:-हे मनुष्या! यूयं येन जगदीश्वरेणेह संसार्य के पद्भिर्ण रचिता विदुषा वा ज्ञायन्ते तिद्वज्ञानोपासनासङ्गेन सत्यं सुख जायत इति विजानीत॥४

पदार्थ:-हे (अग्ने) विज्ञान करानेवाले विद्वान्! (रयोणाम्) विद्या और सब पृथिवी के राज्य से सिद्ध किये हुए धनों के (धरुण:) धारण करनेवाले (विश्वायु:) सम्पूर्ण जीवन युक्त आप (अस्मिन्) इस मनुष्य वा जगत् में सहायकारी (भव) हूजिये, जो (भूरि) बहुत (द्युम्नम्) विद्याप्रकाशरूपी धन और कीर्ति को धारण करते हो (तम्) उन (नित्यम्) निरन्तर (इद्धम्) प्रदीप्त (त्वा) आपको (ध्रुवासु) दृढ़ (क्षितिषु) भूमियों में जो (नर:) नयन करनेवाले सब मनुष्य (अधि निद्धु:) धारण करें और (दमे) शान्तियुक्त घर में (आ सचन्त) सेवन करें, उनका सेवस् नित्य किया करो॥४॥

भावार्थ: -हे मनुष्यो! तुम् लोग जिस जगदीश्वर ने अनेक पदार्थों को रच कर धारण किये हैं और जिस विद्वान् ने जाने हैं, उसकी उपासना वा सत्संग के विना किसी मनुष्य को सुख नहीं होता, ऐसा जानो॥४॥

तत्कृपासङ्ग्रार्थां सह मनुष्यै: कि कि प्राप्यत इत्युपदिश्यते॥

परमेश्वर और विद्वानों के स्क्रिं से मनुष्यों को क्या-क्या प्राप्त होता है, यह विषय अगले मन्त्र में

कहा है॥

वि मृक्षी अम्मे मुघवानो अश्युर्वि सूरयो दर्दतो विश्वमार्युः।

सनेम बाजे सिम्थेष्वर्यो भागं देवेषु श्रवसे दर्धानाः॥५॥१९॥

्रिक्षिः। अग्ने। मुघऽवानः। अश्युः। वि। सूरर्यः। दर्दतः। विश्वम्। आर्युः। सुनेमे। वार्जम्। सुम्ऽङ्क्थेषुं। अर्थः। भूराम्। देवेषुं। श्रवसे। दर्धानाः॥५॥

पदार्थ:-(वि) विशेषे (पृक्ष:) अत्युत्तमान्यन्नानि (अग्ने) सुखरूपविद्वन् (मघवानः) सत्कृतधनाः (अश्युः) भुञ्जते (वि) विशेषार्थे (सूरयः) मेधाविनः (ददतः) दानशीलाः (विश्वम्) अखिलम् (आयुः) जीवनं प्राप्तव्यं वस्तु वा (सनेम) संभजेम (वाजम्) विज्ञानम् (सिमथेषु) संग्रामेषु। सिमथे इति संग्रामे नामसु पठितम्। (निघं०२.१७) (अर्थः) स्वामी विणग्जनो वा। (भागम्) भागसमूहम् (देवेषु) विद्वत्सु दिव्यगुणेषु वा (श्रवसे) श्रूयते येन यशसा तस्मै (दधानाः) धरन्तः॥५॥

अन्वयः-हे अग्ने! यथाऽर्यो भागं मघवानो ददतः सूरयः सिमथेषु देवेषु वाजं दधानाः अवसे पृक्षो विश्वामायुश्च व्यश्युस्तथा वयमपि विसनेम॥५॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। मनुष्यैरीश्वरविद्वत्सहायपुरुषार्थाभ्यां सर्वाणि सुखानि प्राप्यन्ते नान्यथेति॥५॥

पदार्थ:-हे (अग्ने) सुखस्वरूप विद्वान्! आपके उपदेश के जैसे (अर्थः) स्वामी वा वैश्य (भागम्) सेवनीय पदार्थों के समान (मघवानः) सत्कारयुक्त (अन्वर्त्तः) दानशील (सूरयः) मेधावी लोग (सिमथेषु) संग्रामों तथा (देवेषु) विद्वान् वा दिव्यपुणों में (वाजम्) विज्ञान को (दधानाः) धारण करते हुए (श्रवसे) श्रवण करने योग्य कीर्ति के लिये (पृथः) अत्युत्तम अन्न और (विश्वम्) सब (आयुः) जीवन को (व्यश्युः) विशेष करके भोगें वा (वि सनम्) विशेष करके सेवन करें, वैसे हम भी किया करें॥५॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमाल्याङ्कार है। मुर्नुष्य ईश्वर और विद्वानों के सहाय और अपने पुरुषार्थ से सब सुखों को प्राप्त हो सकते हैं, अन्यथा चड़ी॥५॥

अश विद्वद्गुण उपदिश्यन्ते॥

अब विद्वान के पूणों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

ऋतस्य हि धेनवो वाक्शानाः स्मदूध्नीः पीपर्यन्त द्युभक्ताः।

पुरावर्तः सुमृतिं भिक्षमाणा वि स्निभवः सुमर्या सस्रुरद्रिम्॥६॥

ऋतस्य। हि। धूनवः। वावर्णानाः। स्मत्ऽर्ऊध्नीः। पीपर्यन्त। द्युऽर्भक्ताः। प्राऽवर्तः। सुऽमितम्। भिक्षमाणाः। वि। सिन्धवः। सुमर्या। सुन्नुः। अद्रिम्॥ ६॥

पदार्थ:-(ऋतस्य) मेघाँत्पन्नजलस्येव सत्यस्य (हि) खलु (धेनवः) गावः (वावशानाः) अत्यन्तं कामयमानाः (स्पद्धनीः) बहुदुग्धप्रापिकाः। अत्र स्मदुपपदादूधसोऽनङ्। (पीपयन्त) पाययन्ति (द्युभक्ताः) सूर्यादिप्रकाशेन सेशागं प्राप्ताः (परावतः) दूरदेशात् (सुमितम्) शोभनं विज्ञानम् (भिक्षमाणाः) याचमानाः (वि) विशेषे (सिन्धवः) नद्यः (समया) सामीप्ये (सस्यः) स्रवन्ति (अद्रिम्) मेघम्॥६॥

अन्बर:-हे मनुष्या! यथा वावशानाः स्मदूध्नीर्धेनवः पीपयन्त यथा द्युभक्ताः किरणाः परावतोऽद्रिं मेघं समया वृषेपन्ति सिन्धवो नद्यश्च सस्रुस्तथा यूयं सुमतिं भिक्षमाणाः विजानीतान्येभ्यः ऋतस्य हि वर्षयत॥६॥ अष्टक-१। अध्याय-५। वर्ग-१९-२०

मण्डल-१। अनुवाक-१२। सूक्त-७३

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। यथा यज्ञेन संशोधितं जलं शक्तिकारकं भूत्वा विज्ञानजनकं भवति, तथैव हि धार्मिका विद्वांसो भवेयु:॥६॥

पदार्थ: - हे मनुष्यो! तुम लोग जैसे (वावशाना:) अत्यन्त शोभायमान (स्मदूध्वी:) बहुत दूध देनेवाली (धेनव:) गायें (पीपयन्त) दूध आदि से बढ़ाती हैं, जैसे (द्युभक्ता:) प्रक्रांश से भिन्न-भिन्न किरणें (परावत:) दूरदेश से (अद्रिम्) मेघ को (समया) समय पर वर्षाते हैं, (सिन्ध्व:) नदियों (सम्नु:) बहती हैं, वैसे तुम (सुमितम्) उत्तम विज्ञान को (भिक्षमाणा:) जिज्ञासा से (वि) विशेष जानकर अन्य मनुष्य के लिये विद्या और सुशिक्षापूर्वक (ऋतस्य हि) मेघ से उत्पन्न हुए जल के समान सत्य ही की वर्षा करो॥६॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे यज्ञीस सम्यक्ष्म प्रकार शोधा हुआ जल शक्ति को बढ़ानेवाला होकर विज्ञान को बढ़ाता है, वैसे ही धर्मात्मा विद्वान होंग ६॥

ते मनुष्याः कीदृशा भवेयुरित्याहम

वे मनुष्य कैसे हों, इस विषय का उपदेश अगृत्वे मन्त्र में किया है।।

त्वं अंग्ने सुमृतिं भिक्षमाणा दिवि श्रवी दिधरे युह्मियासः।

नक्ता च चुकुरुषसा विरूपे कृष्णं च वर्णमरुणं च सं धुं:॥७॥

त्वे इति। अग्ने। सुऽमृतिम्। भिक्षीमाणाः/ दिवि। श्रवः। दृधिरे। युज्ञियासः नक्तां। च। चुक्रः। उषसां। विरूपे इति विऽरूपे। कृष्णम्। च। वर्णम्। अनुजन्। च। सम्/ धुरिति धुः॥७॥

पदार्थ:-(त्वे) त्विय (अग्ने) अध्याकि (सुमितम्) शोभनां बुद्धिम् (भिक्षमाणाः) लम्भमानाः (दिवि) प्रकाशस्वरूपे (श्रवः) श्रवणमेशं वा (दिधरे) धरन्ति (यज्ञियासः) यज्ञित्रयाकुशलाः (नक्ता) रात्र्या (च) समुच्चये (चकुः) कुर्वन्ति (उष्णम्) दिनेन सह (विरूपे) विरुद्धरूपे (कृष्णम्) निकृष्टम् (च) समुच्चये (वर्णम्) चक्षुर्विषयम् (अरुणम्) रक्तम् (च) समुच्चये (सम्) सम्यगर्थे (धुः) धरन्ति॥७॥

अन्वय:-हे अग्ने विद्वि त्वे स्थिता भिक्षमाणाः यज्ञियासः सुमितं दिधरे श्रवः संधुः नक्तोषसा च सह कृष्णमरुणं च वर्णं चादन्यान् वर्णान् देश्वरे विरूपे चक्रुस्ते सुखिनः स्युः॥७॥

भावार्थ: नहि परमेश्वरसृष्टेर्विज्ञानेन विना कश्चिदलं विद्वान् भवितुं शक्नोति। यथा रात्रिंदिवौ विरुद्धरूपे वर्तेत्वे तथा साधम्यवैधर्म्यादिविचारेण सर्वान् पदार्थान् विद्यु:॥७॥

पदार्थ: है (अने) पढ़ानेहारे विद्वान्! जो (दिवि) प्रकाशस्वरूप (त्वे) आपके समीप स्थित हुए (भिक्षमाणाः) विद्याओं ही की भिक्षा करनेवाले (यज्ञियासः) अध्ययनरूप कर्मचतुर विद्वान् लोग (सुमृतिम्) उत्तमबुद्धि को (दिधिरे) धारण करते तथा (श्रवः) श्रवण वा अत्र को (संधुः) धारण करते हैं (नवता) एत्री (च) और (उषसा) दिन के साथ (कृष्णम्) श्याम (अरुणम्) लाल (वर्णम्) वर्ण को (च)

तथा इनसे भिन्न वर्णों से युक्त पदार्थों को धारण करते हैं (च) और (विरूपे) विरुद्ध रूपों का विज्ञान (चक्क:) करते हैं, वे सुखी होते हैं॥७॥

भावार्थ:-परमेश्वर की सृष्टि के विज्ञान के विना कोई मनुष्य पूर्ण विद्वान् होने को प्रमार्थ नहीं होता। जैसे रात्री-दिवस भिन्न-भिन्न रूपवाले हैं, वैसे ही अनुकूल और विरुद्ध धर्मादि के विज्ञान से सब पदार्थों को जान के उपयोग में लेवें॥७॥

अथैतत्सृष्टिकर्त्तेश्वर: कीदृशोऽस्तीत्युपदिश्यते॥

फिर सृष्टिकर्त्ता ईश्वर कैसा है, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है।।

यान् राये मर्तान्त्सुषूदो अग्ने ते स्याम मुघवानो वयं ची। छायेव विश्वं भुवनं सिसक्ष्यापप्रिवान् रोदंसी अन्तरिक्षम्। दि॥

यान्। राये। मर्तान्। सुसूदः। अग्ने। ते। स्याम्। मघऽवानः। ब्यम्। चा छायाऽईव। विश्वम्। भुवनम्। सिसुक्षि। आपुष्रिऽवान्। रोदंसी इति। अन्तरिक्षम्॥८॥

पदार्थ:-(यान्) उत्तमविद्यास्वभावान् (राये) धनाये (मर्तान्) मनुष्यान् (सुसूदः) क्षयशरीरादियुक्तान् (अग्ने) जगदीश्वर (ते) तव (स्याम) भूषम् (मघवानः) प्रशस्तधनयुक्ताः (वयम्) पुरुषार्थिनः (च) समुच्चये (छायेव) यथा शरीरैः सह छाया कर्तते तथा (विश्वम्) अखिलम् (भुवनम्) जगत् (सिसक्षि) समवैति (आपप्रिवान्) सर्वृत्ति च्याप्तवान् (रोदसी) द्यावापृथिव्यौ (अन्तरिक्षम्) आकाशम्॥८॥

अन्वयः-हे अग्ने जगदीश्वर! यस्त्वं यन् सूसूदो मुर्ग्गनस्मान् राये सिसक्षि, ते वयं मघवानः स्याम। यो भवान् छायेव विश्वं भुवनं रोदसी अन्तरिक्षं चापप्रिवान् व्यापातानिम तं सर्वे वयमुपास्महे॥८॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार: । विद्वेद्धिरीश्वरीपासनापुरुषार्थाभ्यां स्वयं विद्यादिधनवन्तो भूत्वा सर्वे मनुष्या विद्यादिधनवन्तः कार्याः। ।

पदार्थ:-हे (अग्ने) क्रियदिश्वर! जो आप (यान्) जिन (सुसूदः) क्षयवृद्धि धर्म्मयुक्त (मर्तान्) मनुष्यों को (राये) विक्रिंदि अने के लिये (सिसक्षि) संयुक्त करते हो (ते) वे (वयम्) हम लोग (मघवानः) प्रशंसा योग्य धर्मचाले (स्याम) होवें (च) और जो आप (छायेव) शरीरों की छाया के समान (विश्वम्) सब (अवनम्) जगत् और (रोदसी) आकाश, पृथिवी और (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष को (आपप्रिवान्) पूर्ण करनेवाले हो, उन आपकी सब लोग उपासना करें॥८॥

भाषार्थ: इस मेन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि ईश्वर की उपासना और अपने पुरुषार्थ अप विद्यादि धनवाले होकर सब मनुष्यों को भी करें॥८॥

पुनस्ते कीदृशा भवेयुरित्युपदिश्यते॥

फिर वे मनुष्य कैसे हों, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अष्टक-१। अध्याय-५। वर्ग-१९-२०

मण्डल-१। अनुवाक-१२। सूक्त-७३

अर्वेद्धिरग्ने अर्वतो नृभिर्नॄन् वीरैर्वीरान् वनुयामा त्वोताः।

र्डुशानासः पितृवित्तस्यं रायो वि सूरयः शतिहमा नो अश्युः॥९॥

अर्वत्ऽभिः। अर्मे। अर्वतः। नृऽभिः। नृन्। वीरैः। वीरान्। वनुयाम्। त्वाऽऊताः। ईशानासः। पितृऽविज्ञस्य। रायः। वि। सूर्यः। शृतऽहिमाः। नः। अश्युः॥९॥

पदार्थ:-(अर्वद्भि:) प्रशस्तैरश्वै: (अग्ने) सर्वसुखप्रापक (अर्वतः) अश्वान् मृभिः) विद्यादिप्रशस्तगुणयुक्तैर्मनुष्यै: (नृन्) विद्यासुशिक्षाधर्मयुक्तान् मनुष्यान् (वीरै:) श्रीय्यदियुक्तै: (वीरान्) शौर्यादिगुणयुक्तान् (वनुयाम) इच्छेम याचेम (त्वोताः) त्वया कृतरक्षाः (इशानामः) समर्थाः स्वामिनः (पितृवित्तस्य) जनकभुक्तस्य (रायः) धनस्य (वि) विशेषे (सूरयः) विद्वास (श्रीतिहमाः) शतं हिमानि यासु समासु ताः (नः) अस्मान् (अश्युः) प्राप्नुयुः॥९॥

अन्वयः-हे जगदीश्वर! त्वोता वयमर्वद्भिरर्वतो नृभिर्नॄन् वीर्विरान् वनुयाम। त्वत्कृपया पितृवित्तस्य राय ईशानासो भवेम सूरयो नोऽस्मान् शतिहमा व्यश्यु:॥९॥

भावार्थ:-निह मनुष्यैरीश्वरगुणकर्मस्वभावानुकूलिच्यूणेन विनोत्तमा विद्याः पदार्थाश्च प्राप्तुं शक्यास्तस्मादेतन्नित्यं प्रेम्णानुष्ठातव्यम्॥९॥

पदार्थ:-हे (अग्ने) सब सुखों के प्राप्त करिनेवाल पूर्णभेशर! आपसे (त्वोता:) रक्षित हम लोग (अर्विद्ध:) प्रशंसा योग्य घोड़ों से (अर्वत:) घ्रोड़ों को (जूँभ:) विद्यादि श्रेष्ठ गुणयुक्त मनुष्यों से (नृन्) शिक्षा धर्म्मवाले मनुष्यों और (वीरै:) शौर्यादियुक्त शूर्रवीरों से (वीरान्) शूरता आदि गुणवाले शूरवीरों की प्राप्ति (वनुयाम) होने को चाहें और याचना करें। आपकी कृपा से (पितृवित्तस्य) पिता के भोगे हुए (राय:) धन के (ईशानास:) समर्थ स्वामी हम हों और (सूरय:) मेधावी विद्वान् (न:) हम लोगों को (श्रतिहमा:) सौ हेमन्त ऋतु पर्यन्त (व्यष्ट्य:) प्राप्त होते रहें॥९॥

भावार्थ:-मनुष्य लोग ईश्वर के गुण कम्म, स्वभाव के अनुकूल वर्त्तने और अपने पुरुषार्थ के विना उत्तम विद्या और पदार्थों के प्राप्त होने को समर्थ नहीं हो सकते, इससे इसका सदा अनुष्ठान करना उचित है॥९॥

पुनस्तं तत्सहायेन किं प्राप्यत इत्युपदिश्यते॥

फिर उसको उसके सहाय से क्या प्राप्त होता है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

पुना ते अग्न उचथानि वेधो जुष्टानि सन्तु मनसे हुदे च।

र्भूकेम रायः सुधुरो यम् तेऽधि श्रवी देवभक्तं दर्धानाः॥१०॥२०॥१२॥

एतम् ते। अग्ने। उचर्थानि। वेधः। जुष्टानि। सुन्तु। मर्नसे। हृदे। च। शुकेमी रायः। सुऽधुर्रः। यर्मम्। ते। अधि। श्रुवेः। देवऽभक्तम्। दर्धानाः॥१०॥

पदार्थ:-(एता) एतानि (ते) तव (अग्ने) विज्ञानप्रद (उच्चथानि) वेदवचनानि (वेध:) प्रज्ञप्रिद (जुष्टानि) प्रीतानि सेवितानि (सन्तु) भवन्तु (मनसे) (हृदे) आत्मने (च) समुच्चये (शकेम) शक्नुयाम। अत्र व्यत्ययेन शप्। (राय:) धनानि (सुधुर:) शोभना धुरो धारणानि येषान्ते (यमम्) यच्छिति कि तम् (ते) तव (अधि) उपरिभावे (श्रव:) सर्वविद्याश्रवणम् (देवभक्तम्) विद्वद्भिः सेक्तिम् (दधान्मः) धरन्तः॥१०॥

अन्वय:-हे वधोऽग्ने जगदीश्वर! ते तव कृपयैतोचथान्यस्माकं मनसे हृदे च जुष्टानि सन्तु ते तव सम्बन्धेन यमं देवभक्तं श्रवो दधाना: सुधुरो वयं राया धनानि प्राप्तुमधि शकेम॥१०॥

भावार्थ:-मनुष्यै: सर्वाणि सुखानि प्राप्य सर्वेभ्यः प्रापयितव्यानि॥१०॥ अत्रेश्वराग्निविद्वत्सूर्य्यगुण-वर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सुङ्गितरस्तीति वेदितव्यम्॥ इति त्रिसप्तितमं ७३ सुक्तं [द्वादशोऽनुवाको] विशो २० वर्षेश्च समापः॥२०॥

पदार्थ:-हे (वेध:) सबके अन्तःकरण में रहने से स्वक्ते बुद्धपुद धर्ता (अग्ने) विज्ञान के देनेवाले जगदीश्वर (ते) आपकी कृपा से (एता) (उचथानि) घदवस्त हम लोगों के (मनसे) मन (च) और (हदे) आत्मा के लिये (जुष्टानि) सेवन किये हुए प्रीतिकारक (मन्तु) होवें, वे (ते) आपके सम्बन्ध से (यमम्) नियम करने (देवभक्तम्) विद्वानों ने सेवन किये हुए (श्रवः) श्रवण को (दधानाः) धारण करते हुए (सुधुरः) उत्तम पदार्थों के धारण करनेवाल हम लोग (रायः) धनों के प्राप्त होने को (अधि शक्म) समर्थ हों॥१०॥

भावार्थ:-मनुष्यों को चाहिये कि आप सब सुखों को प्राप्त होकर और सभी के लिये प्राप्त करावें॥१०॥

इस सूक्त में ईश्वर, अग्नि, विद्वान् और सूर्य के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्तार्थ की पूर्वसूक्तार्थ के साथ सङ्गति समझ्वी उचित है।।

यह तिहत्तरवां ७३ (सूक्त बीसवां) २० वर्ग [और बारहवां अनुवाक] पूरा हुआ॥

अथ नवर्चस्य चतुःसप्तितिमस्य सूक्तस्य राहूगणो गोतम ऋषिः। अग्निर्देवता। १,२,८,९ निचृद्गायत्री। ३,६ गायत्री। ४,७ विराड्गायत्री च छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अथेश्वरगुणा उपदिश्यन्ते॥

अब चौहत्तरवें सूक्त का आरम्भ किया जाता है, इसके प्रथम मन्त्र में ईश्वर के गुणों का उपदेश किया है।।

उपप्रयन्तो अध्वरं मन्त्रं वोचेमाग्नये। आरे अस्मे च शृण्वते॥ १॥

उपुऽप्रयन्तः। अध्वरम्। मन्त्रम्। वोचेम्। अग्नये। आरे। अस्मे इर्ति। च। शृण्वर्ते।। श्रा

पदार्थ:-(उपप्रयन्तः) समीपं प्राप्तवन्तः (अध्वरम्) अहंसकम् (मन्त्रप्) विचारम् (वोचेम) उच्याम। अत्राशीर्लिङ्चङ् वचउमित्यमागमश्च। (अग्नये) परमेश्वराष्ट्र (आरे) दूरे आर इति दूरनामसु पठितम्। (निघं०३.२६) (अस्मे) अस्माकम् (च) चात्समीपे (शृण्वते) श्रवणं कुर्वते॥१॥

अन्वय:-हे मनुष्या! यथोपप्रयन्तो वयमस्मे आरे च शृण्वतेश्वनियेऽस्वरं मन्त्रं सततं वोचेम तथा ययूमिप वदत॥१॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। मनुष्यैक्टिगुन्तर्व्याप्रामस्माकं दूरे समीपे सर्वव्यवहारं विजानन्तं परमात्मानं विज्ञायाऽधर्माद्भीत्वा सत्यं धर्मं स्नेबित्वाऽऽनिद्धतव्यम्॥१॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! जैसे (उपप्रयन्तः) समिष् प्राप्त होर्नेवाले हम लोग इस (अस्मे) हम लोगों के (आरे) दूर (च) और समीप में (शृण्वते) श्रूषण करते हुए (अग्नये) परमेश्वर के लिये (अध्वरम्) हिंसारहित (मन्त्रम्)विचार को निरन्तर (वोच्चेम) उपदेश करें, वैसे तुम भी किया करो॥१॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालुङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि बाहर-भीतर व्याप्त होके हम लोगों के दूर-समीप व्यवहार के कर्मी को जानते हुए परमात्मा को जानकर, अधर्म से अलग होकर, सत्य धर्म का सेवन करके आनन्दयुक्त रहें॥१॥

पुनः स्कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह परमेश्वर केसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

यः स्नीहितीषु पूर्वाः भंजग्मानासुं कृष्टिषुं। अरक्षद्दाशुषे गर्यम्॥२॥

यः। स्नीहितीषु। पूर्व्यः। सम्ऽज्ग्मानास्। कृष्टिषु। अरक्षत्। दाशुषे। गर्यम्॥२॥

पदार्थः (यः) जगदीश्वरः (स्नीहितीषु) स्नेहकारिणीषु। अत्रान्येषामि दृश्यत इति दीर्घः। (पूर्व्यः) पूर्वैः सोक्षात्कृतः (संजग्मानासु) सङ्गच्छन्तीषु (कृष्टिषु) मनुष्यादिप्रजासु (अरक्षत्) रक्षति (दाशुषे) विद्यादिशुभगुणानां दात्रे (गयम्) धनम्। गयिनित धननामसु पठितम्। (निघं०२.१०)॥२॥

अन्वयः-हे मनुष्या! यः पूर्व्यो जगदीश्वरः संजग्मानासु स्नीहितीषु कृष्टिषु दाशुषे गयमरक्षत् तस्मा अग्नयेऽध्वरं युधा बयं पुत्रं वोचेम तथा यूयमपि वदत॥२॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। पुरस्तात् (अग्नये) (अध्वरम्) (मन्त्रम्) (वोचेम) इति पदचतुष्टयमत्रानुवर्तते, निहं कस्यापि प्रजास्थस्य जीवस्य परमेश्वरेण विना यथावद्रक्षणं सुखं च जायते तस्मादयं सर्वेस्सदा सेवनीय:॥२॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! जो (पूर्व्य:) पूर्वज विद्वान् लोगों ने साक्षात्कार किये हुए जरादीश्वर (संजग्मानासु) एक-दूसरे के सङ्ग चलती हुई (स्नीहितीषु) स्नेह करनेवाली (कृष्टिषु) मनुष्य आदि प्रजा में (दाशुषे) विद्यादि शुभ गुण देने वाले के लिये (गयम्) धन की (अरक्षत्) रक्षा करता है, उस (अग्नये) ईश्वर के लिये (अध्वरम्) हिंसारहित (मन्त्रम्) विचार को हम लोग (वोचेम्) कहें, बैसे तुम भी कहा करो॥२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। पूर्व मन्त्र स्ने (अनिये) (अध्वरम्) (मन्त्रम्) (वोचेम) इन चार पदों की अनुवृत्ति आती है। प्रजा में रहनेवाले किसी जीव का परमेश्वर के विना रक्षण और सुख नहीं हो सकता, इससे सब मनुष्यों को उचित है कि इसका सेवन सर्वदा करें॥२॥

पुन: स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा है, इस विषय का उपदेश अपने साने में किया है॥

उत ब्रुवन्तु जन्तव उद्गिवृत्रहाजीन। धुनुंजुको रणीरको ३॥

उता ब्रुवन्तु। जन्तर्वः। उत्। अग्निः। वृत्रऽहा। अनुनिः। धनुमूर्वज्वः। रणेऽरणे॥३॥

पदार्थ:-(उत) अपि (ब्रुवन्तु) उपिदश्रन्तु (जन्तवः) जीवाः (उत्) उत्कृष्टे (अग्निः) विजयप्रदो भगवान् (वृत्रहा) मेघहन्ता सूर्य इवाविद्यान्धकारनाशकः (अजिन) जनयति (धनञ्जयः) यो धनेन जापयति सः (रणेरणे) युद्धे युद्धे॥३॥

अन्वय:-यो रणेरणे धनञ्जयो क्लाहेव दाशुषे गयमुदजिन। उतापि यं विद्वांस उपदिशन्ति, तं जन्तवोऽन्योन्यमुपब्रुवन्तु॥३॥

भावार्थ:-हे मनुष्या र्यूयं यस्योपाश्रवण शत्रूणां पराजयेन विजयः स्वविजयेन च राज्यधनानि जायन्ते, तं नित्यं सेवध्वमूमञ्जा

पदार्थ:-जो (रणरेपी) मुद्ध-युद्ध में (धनञ्जयः) धन से जितानेवाला (वृत्रहा) मेघ को नष्ट करनेहारे सूर्य्य के समान (अग्निः) परमेश्वर (दाशुषे) विद्या, शुभ गुणों के दान करनेवाले मनुष्य के लिये (गयम्) धन को (उद्दर्जनि) उत्पन्न करता है (उत्) और भी जिसका विद्वान् लोग उपदेश करते हैं (जन्तवः) मूर्ब मनुष्य (अध्वरम्) हिंसारहित (मन्त्रम्) उसी के विचार को (उपब्रुवन्तु) परस्पर उपदेश करें॥३॥

भोवार्थ:-हे मनुष्यो! तुम जिसके आश्रय से शत्रुओं के पराजय द्वारा अपने विजय से राज्यधनों क्री प्राप्ति होती है, उस परमेश्वर का नित्य सेवन किया करो॥३॥ अष्टक-१। अध्याय-५। वर्ग-२१-२२

मण्डल-१। अनुवाक-१३। सूक्त-७४

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है॥

यस्यं दूतो असि क्षये वेषि ह्व्यानि वीतये। दुस्मत्कृणोष्यंध्वरम्॥४॥ यस्यं। दूतः। असि। क्षये। वेषि। ह्व्यानि। वीतये। दुस्मत्। कृणोषि। अध्वरम्॥४॥

पदार्थ:-(यस्य) मनुष्यस्य (दूतः) दुःखोपनाशकः (असि) (क्षये) गृहे (वेषि) प्राप्नोषि (हव्यानि) होतुमर्हाण्युत्तमगुणकर्मयुक्तानि द्रव्याणि (वीतये) विज्ञानाय (दस्पत्) दुःखोपक्षेत्तारम्। अत्र बाहुलकादौणादिको मदिक् प्रत्ययः। (कृणोषि) करोषि (अध्वरम्) अग्निहोत्रादिकमिव विद्याविज्ञानवर्द्धकं यज्ञम्॥४॥

अन्वय:-हे विद्वँस्त्वं यस्य वीतयेऽग्निरिव दूतोऽसि क्षये हत्यानि बेषि दस्मदध्वरं च कृणोति, तं सर्वे सत्कुर्वन्तु॥४॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। येन मनुष्येण पूर्वेश्वरविद्वद्वांसावध्यापकोपदेष्टारौ विज्ञापकौ चेष्येते, तस्य न कदाचिद् दुखं संभवति॥४॥

पदार्थ:-हे विद्वान्! आप (यस्य) जिस मनुष्य के (वीर्त्य) विज्ञान के लिये अग्नि के तुल्य (दूत:) दु:खनाश करनेवाले (असि) हैं (क्षये) घर मिं (हच्चानि) हवन करने योग्य उत्तम द्रव्यगुणकर्मों को (वेषि) प्राप्त वा उत्पन्न करते हो (दस्मत्) दु:ख निष्ण करनेवाले (अध्वरम्) अग्निहोत्रादि यज्ञ के समान विद्याविज्ञान को बढ़ानेवाले यज्ञ को (कृणोषि) स्मिद्ध करते हो, उसका सब मनुष्य सेवन करें॥४॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुष्तोर्भमालुङ्गीर है। जिस मनुष्य ने परमेश्वर के समान विद्वान् पढ़ाने और उपदेश करनेवाले की चाहना की है, उसको कभी दु:ख नहीं होता॥४॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह विद्वार्य कैसा हो, इसे विषय का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है।।

तमित्सुह्रव्यमंद्गिरः सुदेवं सहसो यहो।

जनां आहु: सुबहिषम्) ५॥२१॥

तम्। इत्। पुऽहुव्यम्। अङ्गिरुः। पुऽदेवम्। सहसः। यहो इति। जनाः। आहुः। सुऽबुर्हिषम्॥५॥

पदार्थः (तम्) उक्तम् (इत्) एव (सुहव्यम्) शोभनानि हव्यनानि यस्य सः (अङ्गिरः) अङ्गानां रसरूपः (सुदेवम्) शोभनश्चासौ देवो दिव्यगुणो दाता च तम् (सहसः) प्रशस्तबलयुक्तस्य (यहो) पुत्र (जनाः) हिद्वांसः (आहुः) कथयन्ति (सुबिहिषम्) शोभनानि बर्हीष्यन्तिरिक्षोदकविज्ञानानि तस्य तम्॥५॥

अन्वेषः-हे अङ्गिरः सहसो यहो विद्वन्! यं त्वामग्निमिव सुदेवं सुबर्हिषं सुहव्यं जना आहुस्तमिद्वयं क्षेत्रमहि॥**७**॥

Pandit Lekhram Vedic Mission (834 of 1953.)

४६১

ऋग्वेदभाष्यम्

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। मनुष्यैर्विद्वत्सु प्रख्यातस्य विदुष सकाशात् पदार्थविद्यो विदित्वा सम्प्रयुज्याऽन्येभ्यो वेदयितव्या च॥५॥

पदार्थ:-हे (अङ्गिर:) अङ्गों के रस रूप (सहस:) बल के (यहो) पुत्ररूप विद्वान् स्पूर्ण! जिस् तुझको बिजुली के तुल्य (सुदेवम्) दिव्यगुणों के देने (सुबर्हिषम्) विज्ञानयुक्त (सुहव्यम्) उत्तम ग्रहण करनेवाले आपको (जना:) विद्वान् लोग (आहु:) कहते हैं (तम्) उसको (इत्) ही हम लोग सेवन करें॥५॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिस्र कि विद्वानों के संग से पदार्थविद्या को जान और सम्यक् परीक्षा करके अन्य मनुष्यों को जनावें॥ भा

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा हो, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया हैं।।

आ च वहांसि ताँ इह देवाँ उप प्रशस्तये। हुव्या सुश्चन्द्र बोतये। ६॥ आ। च। वहांसि। तान्। इह। देवान्। उप। प्रऽशस्तये। हुव्या सुऽचुकु। वीतये।।६॥

पदार्थ:-(आ) समन्तात् (च) समुच्चये (वहासि) प्राप्तुराः (तान्) वक्ष्यमाणान् (इह) अस्मिन् संसारे (देवान्) विदुषो दिव्यगुणान् वा (उप) सामीप्ये (प्रशस्तये) प्रशंसनाय (हव्या) ग्रहीतुं योग्यान्। अत्राकारादेश:। (सुश्चन्द्र) शोभनं चन्द्रमाह्णादनं हिरण्यं वा प्रूर्स्मात् तत्सम्बुद्धौ। चन्द्रमिति हिरण्यनामसु पठितम्। (निघं०१.२) हस्वाच्चन्द्रोत्तरपदे मन्त्रे। (अर्ष्टा०६.१.१५१) इति सुडागम:। (वीतये) सर्वसुखव्याप्तये॥६॥

अन्वयः-हे सुश्चन्द्राप्तविद्वँस्त्विमह् प्रश्नेस्यये भीतये च यान् हव्या देवानुपावहासि सर्वतः प्राप्नुयास्तान् वयं प्राप्नुयाम॥६॥

भावार्थ:-यावन्मनुष्याः परमेश्वरस्थाप्तिवदुषोऽग्न्यादेश्च सङ्गाय विज्ञानाय प्रशंसितं पुरुषार्थं न कुर्वन्ति, तावत् किल पूर्णा विद्या प्राप्तुं न शक्नुवन्ति॥६॥

पदार्थ:-हे (सुभून्द्र) अच्छे आनन्द देनेवाले विद्वान्! आप (इह) इस संसार में (प्रशस्तये) प्रशंसा (च) और (वीतये) सुखों की प्राप्ति के लिये जिन (हव्या) ग्रहण के योग्य (देवान्) दिव्य गुणों वा विद्वानों को (उपावहासि) समीप में सब प्रकार प्राप्त हों (तान्) उन आप को हम लोग प्राप्त होवें॥५॥

भावार्थ: -जेल तक मनुष्य परमेश्वर के जानने के लिये धर्मात्मा विद्वान् पुरुषों से शिक्षा और अग्नि आदि पदार्थों से उपकार लेने में ठीक-ठीक पुरुषार्थ नहीं करते, तब तक पूर्ण विद्या को प्राप्त कभी नहीं हो स्कते।। हा।

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा हो, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अष्टक-१। अध्याय-५। वर्ग-२१-२२

मण्डल-१। अनुवाक-१३। सूक्त-७४

न योर्रुपब्दिरश्र्यः शृण्वे रथस्य कच्चन। यदंग्ने यासि दूर्त्यम्॥७॥

न। यो:। उपब्दि:। अरुव्यं:। शृण्वे। रथंस्य। कत्। चुन। यत्। अन्ने। यासि। दूर्त्यम्॥७॥

पदार्थ:-(न) निषेधे (यो:) गच्छतो गमयितु:। अत्र या प्रापण इत्यत्माद्धातोर्बाहुलकादौणादिकः कुः प्रत्ययः। (उपिद्धः) महाशब्दकर्त्ता। उपिद्धिरित वाङ्नामसु पठितम्। (निघं १११) (अश्रव्यः) अश्वेष्वाशु गच्छत्सु साधुरत्यन्तवेगकारी (शृण्वे) (रथस्य) विमानादियानसमूहस्य (कत्) कदा (चम्) अपि (यत्) यस्य (अग्ने) अग्निवद्विद्यया प्रकाशमान (यासि) (दृत्यम्) दृत्यम् कर्म॥ ध्रा

अन्वय:-हे अग्ने! यथोपब्दिरश्व्यस्त्यं यद्यस्य यो रथस्य मध्ये स्थितः सम्दूत्यं यासि, तस्य समीपेऽन्यान् शब्दानहं कच्चन न शृण्वे तथाहं यामि त्वमिप मा शृणु॥७॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। नैव मनुष्यै: शिल्पविश्वया संसाधितेषु यानयन्त्रादिषु सम्प्रयुक्तस्यातीव गमयितोऽग्ने: समीपेऽन्ये शब्दा: श्रोतुं शक्यन्ते राज्य

पदार्थ:-हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य विद्या से प्रकाशित विद्वान्। आप जैसे (उपिद्ध) अत्यन्त शब्द करने (अश्व्य:) शीघ्र चलनेवाले यानों में अत्यन्त वेगकार्क (यत्) जिस अग्नियुक्त और (यो:) चलने-चलाने वाले (रथस्य) विमानादि यानसमूह के बीच स्थिर हीके दूत्यम्) दूत के तुल्य अपने कर्म को (यासि) प्राप्त होते हो, मैं उस अग्नि के समीप और शब्दों को (कच्चन) कभी (न) नहीं (शृण्वे) सुनता किन्तु प्राप्त होता हूँ, तू भी नहीं सुन सकता, प्राप्तु प्राप्त होता है॥७॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। मनुष्य लोग शिल्पविद्या से सिद्ध किये हुए यान और यन्त्रादिकों में युक्त अत्यन्त गान्त किसनेवील अग्नि के समीपस्थ शब्द के निकट अन्य शब्दों को नहीं सुन सकते॥७॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

त्वोती वाज्यह्रयुर्धि पूर्वस्माद्रपरः। प्र दाशाँ अग्ने अस्थात्॥८॥

त्वाऽर्ऊतः। वाजी अहुयः। अभि। पूर्वस्मात्। अपरः। प्रा दाश्वान्। अग्ने। अस्थात्॥८॥

पदार्थ:-(त्वोत:) युष्माभिरुतः सङ्गमितः (वाजी) प्रशस्तो वेगोऽस्यास्तीति (अह्रयः) ये सद्योऽहुन्ति व्याप्नुवित्ति यानानि मार्गांस्ते (अभि) आभिमुख्ये (पूर्वस्मात्) पूर्वाधिकरणस्थात् (अपरः) अन्यो देशोऽन्यः शिल्पी वा (प्र) (दाश्चान्) दाता (अग्ने) विद्वन् (अस्थात्) तिष्ठति॥८॥

अन्वयः-हे अग्ने यथाऽह्रयोऽपरस्त्वोतो वाजी दाश्वान्वा पूर्वस्मादिभसंप्रयुक्तः सन् प्रतिष्ठते प्रस्थितो भविति तथाऽन्य पदार्थाः सन्तीति विजानीहि॥८॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। मनुष्यैर्निह शिल्पविद्यासिद्धयन्त्रप्रयोगेण विनाग्नियानीनी गमयिता भवतीति वेद्यम्॥८॥

पदार्थ: - हे (अग्ने) विद्यायुक्त! जैसे (अह्रय:) शीघ्रयान मार्गों को प्राप्त करानेवाले अभि अहिं (अपर:) और भिन्न देश वा भिन्न कारीगर (त्वोत:) आपसे संगम को प्राप्त हुआ (वाजी) प्रशंसा के यग्य वेगवाला (दाश्चान्) दाता (पूर्वस्मात्) पहले स्थान से (अभि) सन्मुख (प्रास्थात्) देशान्तर को बलानेवाला होता है, वैसे अन्य मन आदि पदार्थ भी हैं, ऐसा तू जान॥८॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को व्यह जागेता चाहिये कि शिल्पविद्यासिद्ध यन्त्रों के विना अग्नि यानों का चलानेवाला नहीं होता॥८॥

पुन: स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

उत द्युमत्सुवीर्यं बृहदंग्ने विवासिस। देवेभ्यों देव दाशुषी। १॥ २२॥ उता द्युऽमत्। सुऽवीर्यम्। बृहत्। अन्ते। विवासिस। देवेभ्यः। देवेभ्यः। देवे। सुश्रुषे॥ ९॥

पदार्थ: -(उत) अपि (द्युमत्) प्रशस्तप्रकाशवत् (सुवीच्येम्) सुष्ठु पराक्रमम् (वृहत्) महान्तम् (अग्ने) विद्युदादिस्वरूपवद्वर्त्तमान (विवासिस) परिचरिस (देवभ्यः) विद्वद्भयः (देवः) दिव्यगुणकर्म्म- स्वभावयुक्त (दाशुषे) दानशीलाय कार्य्याधिपतये ।

अन्वय:-हे देवाऽग्ने विद्वन्! यथा त्वं दाशुष उत देवेश्या द्युपद् बृहत्सु वीर्य्यं विवासिस, तथा तं वयं सदा सेवेमिहि॥९॥

भावार्थः-कार्य्यस्वामिनां विद्विद्धर्भृतिश्च विद्वापुरुषार्थाभ्यां विदुषां सकाशान्महान्त उपकाराः संग्राह्याः॥९॥

अत्रेश्वरविद्वद्विद्युदग्निगुण<mark>ूर्वर्णनादेतस्</mark>र्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेदितव्यम्॥

इति चतुः पप्तिततमं ७४ सूक्तं द्वाविंशो २२ वर्गश्च समाप्तः॥

पदार्थ: -हे (देव) दिंव्य पुण्र कम्म और स्वभाववाला (अग्ने) अग्निवत् प्रज्ञा से प्रकाशित विद्वान्! तू (दाशुषे) देने के स्वभाववाले कार्थ्यों के अध्यक्ष (उत्त) अथवा (देवेभ्य:) विद्वानों के लिये (द्युमत्) अच्छे प्रकाशवाले (बृहत्) बड़े (सुवीर्ध्यम्) अच्छे पराक्रम को (विवासित) सेवन करता है, वैसे हम भी उसका सेवर करें॥ ।

भाकार्थः - जो कार्यों के स्वामी होवें, उन विद्वानों के सकाश से विद्या और पुरुषार्थ करके विद्वान् तथा भृत्यों की बड़े बड़े उपकारों का ग्रहण करना चाहिये॥९॥

इस सूक्त में ईश्वर विद्वान् और विद्युत् अग्नि के गुणों का वर्णन होने से पूर्वसूक्तार्थ के साथ इस सूक्त को सङ्गति है।।

यह चौहत्तरवां ७४ सूक्त और बाईसवां २२ वर्ग पूरा हुआ॥

अथ पञ्चर्चस्य पञ्चसप्ततितमस्य सूक्तस्य राहूगणो गोतम ऋषि:। अग्निर्देवता। १ गायत्री।

२,४,५ निचृद्गायत्री। ३ विराड् गायत्री छन्द:। षड्ज: स्वर:॥

पुनर्विद्वान् कीदृशो भवेदित्युपदिश्यते॥

अब ७५ पचहत्तरवें सूक्त का आरम्भ किया जाता है। उसके प्रथम मन्त्र में विद्वान् लोग कैसे हों,

इस विषय का उपदेश किया है।।

जुषस्व सप्रथस्तम् वचो देवप्सरस्तमम्। हृव्या जुह्वान आसिन।। १॥

जुषस्व। सुप्रर्थःऽतमम्। वर्चः। देवप्सरःऽतमम्। हुव्या। जुह्वनः। आसनि॥ श

पदार्थ:-(जुषस्व) (सप्रथस्तमम्) अतिशयेन विस्तारयुक्त स्ववहारम् (वचः) वचनम् (देवप्सरस्तमम्) देवैर्विद्वद्भिरितशयेन ग्राह्मम् तम् (हव्या) अतुमर्ह्माष्ट्र (जुह्मन्) भुञ्जानः (आसनि) व्याप्त्याख्ये मुखे। अत्र पद्त्रोमास०। (अष्टा०६.१.६३) इति सूत्रेणासित्रादेशः॥।

अन्वय:-हे विद्वन्नासनि हव्या जुह्वानस्त्वं य विदुषां व्यवहारस्तं सूर्णथस्त्रम् देवप्रसरस्तमं वचश्च जुषस्व॥१॥

भावार्थः-ये मनुष्या युक्ताहारैर्ब्रह्मचारिणः स्युस्ते शरीरात्मसुखम्मपनुवन्तीति॥१॥

पदार्थ:-हे विद्वान्! (आसिन) अपने सुख में (ह्रव्या) भोजने करने योग्य पदार्थों को (जुह्वानः) खानेवाले आप जो विद्वानों का (सप्रथस्तमम्) अनिविस्तारयुक्त (देवप्सरस्तमम्) विद्वानों को अत्यन्त ग्रहण करने योग्य व्यवहार वा (वच:) वचन है (तम्) उसको (जुषस्व) सेवन करो॥१॥

भावार्थ:-जो मनुष्य युक्तिपूर्वक भोजून पान और चेष्टाओं से युक्त ब्रह्मचारी हों, वे शरीर और आत्मा के सुख को प्राप्त होते हैं॥१॥

पुनस्तं प्रत्यन्ये कि वदेयुरित्याह॥

फिर उससे विद्वान् क्या केहें, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अर्था ते अङ्गिरस्तुमाग्ने वैधस्तम प्रियम्। वोचेम् ब्रह्म सानुसि॥२॥

अर्थ। ते। अङ्गिरःऽतुम् अर्ग्ने। वेधुःऽतुम्। प्रियम्। वोचेर्म। ब्रह्मं। सानुसि॥२॥

पदार्थ:-(अथ) अनुन्तस्म् (ते) तुभ्यम् (अङ्गिरस्तम) अङ्गिति गच्छिति जानाति सोऽतिशयित-स्तत्संबुद्धौ तस्मै वा (अग्ने) विज्ञानस्वरूप (वेधस्तम) अतिशयेन सर्वाविद्याधर (प्रियम्) प्रीणाति यत् तत् (वोचेम) उपदिशेष्ट्र (ब्रह्म) वेदचतुष्टयम् (सानिस) सनातनम्॥२॥

अन्बर्यः हे अङ्किरस्तम वेधस्तमाग्ने विद्वन्! यथा वयं वेदानधीत्याथ ते तुभ्यं सानिस प्रियं ब्रह्म वोचेम तथैव त्वं विधेहि॥ रीम

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। नुह्यपदेशेन विना कस्यचिन्मनुष्यस्य परमेश्वरविषयं विद्युद्धदिविषयं वा ज्ञानं संभवति तस्मात् सर्वैर्मनुष्यैरुपदेशश्रवणे सदा कर्त्तव्ये॥२॥

पदार्थ:-हे (अङ्गिरस्तम) सब विद्याओं के जानने और (वेधस्तम) अत्यन्त धारण करनेवाले (अग्ने) विद्वान्! जैसे हम लोग वेदों को पढ़ के (अथ) इसके पीछे (ते) तुझे (सानिस) सदा से वर्त्तमान (प्रियम्) प्रीतिकारक (ब्रह्म) चारों वेदों का (वोचेम) उपदेश करें, वैसे ही तू कर॥२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। वेदादि सत्यशास्त्रों के उपदेशक विना किसी मनुष्य को परमेश्वर और विद्युत् अग्नि आदि पदार्थों के विषय का ज्ञान नहीं होता॥२॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा हो, यह विषय कहा है॥

कस्ते जामिर्जनानामग्ने को दार्श्वध्वरः। को हु कस्मिन्नसि श्रितः॥३॥

कः। ते। जामिः। जनानाम्। अग्ने। कः। दाशुऽअध्वरः। कः। हु। कस्मिन्। अप्ति। श्रितः॥३॥

पदार्थ:-(क:) (ते) तव (जािम:) ज्ञाता। अत्र ज्ञा धातिबहुत्वनीदौणािदको मि: प्रत्ययो जादेशश्च। (जनानाम्) मनुष्याणां मध्ये (अग्ने) स्कलिबहान्त्रत् (क:) (दाश्रध्वर:) दाशुर्दाताऽध्वरोऽहिंसको यस्मिन् स: (क:) (ह) किल (कस्मिन्) (अस्प्रि) (श्रित:) आश्रित:॥३॥

अन्वय:-हे अग्ने विद्वन्! जनानां मध्ये ते तव को ह जिम्सित की द्वाश्वध्वरस्त्वं कः कस्मिन् श्रितोऽसीत्यस्य सर्वस्य वदोत्तरम्॥३॥

भावार्थ:-मनुष्याणां मध्ये कश्चिदेव परमेश्वरस्याग्न्योदेश्च विज्ञाता विज्ञापको भवितुं शक्नोति। कृत एतयोरत्यन्ताश्चर्य्यगुणकर्मस्वभाववत्त्वात्॥३॥

पदार्थ:-हे (अग्ने) विद्वन्! (जनावाम्) मनुष्य के बीच (ते) आपका (कः) कौन मनुष्य (ह) निश्चय करके (जािमः) जाननेवाला है, (कः) कौन (दाश्चध्वरः) दान देने और रक्षा करनेवाला है, तू (कः) कौन है और (कस्मिन्) किसूमें (श्वितः) आश्रित (असि) है, इस सब बात का उत्तर दे॥३॥

भावार्थ:-बहुत मनुष्यों में कोई ऐसा होता है कि जो परमेश्वर और अग्न्यादि पदार्थों को ठीक-ठीक जाने और जनावें, क्योंकि ये दोनों अत्यन्त आश्चर्य गुण, कर्म और स्वभाववाले हैं॥३॥

पुनः स कीदृश इत्याह॥

फिरे वह मिद्धान् कैसा हो, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

त्वं जामिर्जुनानामम्बे मित्रो असि प्रियः। सखा सर्खिभ्य ईड्यः॥४॥

त्वम्। जुम्मि: जूनानाम्। अग्ने। मित्रः। असि। प्रियः। सर्खाः। सर्खिऽभ्यः। ईड्यः॥४॥

पूर्दार्थः (त्वम्) सर्वोपकारी (जािमः) उदकिमव शान्तिप्रदः। जािमिरित्युदकनामसु पिठतम्। (निघं०११२) (जनानाम्) मनुष्याणाम् (अग्ने) अत्यन्तिवद्यायोगेनानूचान (मित्रः) सर्वसुहत् (असि) वर्त्तवे (श्रियः) कामयमानः प्रियकारी (सखा) सुखप्रदः (सिखभ्यः) मित्रेभ्यः (ईड्यः) स्तोतुमर्हः॥४॥

अष्टक-१। अध्याय-५। वर्ग-२३

मण्डल-१। अनुवाक-१३। सूक्त-७५

अन्वय:-हे अग्ने विद्वन्! यतस्त्वं जनानां जामिर्मित्रः प्रिय ईड्यः सन् सखिभ्यः सखाऽसि तस्मात् सर्वेस्सत्कर्त्तव्योऽसि॥४॥

भावार्थ:-मनुष्यैर्यः सर्वदा मित्रो भूत्वा सर्वेभ्यो विद्यादिशुभगुणान् सुखानि च द्रव्यति, स क्रिश्रे न सेवनीय:॥४॥

पदार्थ:-हे (अग्ने) पण्डित! जिस कारण (जनानाम्) मनुष्यों को (जामिश्र) जल के तुस्य सुख देनेवाले (मित्र:) सबके मित्र (प्रिय:) कामना को पूर्ण करनेवाले योग्य विद्वानृ (न्वम्) आप (सिखभ्य:) सबके मित्र मनुष्यों को (ईड्य:) स्तुति करने योग्य (सखा) मित्र हो, इसीसे सबको सेवने योग्य विद्वान् (असि) हो॥४॥

भावार्थ:-मनुष्यों को उस परमेश्वर और उस विद्वान् मनुष्य क्री सेवा क्यों नहीं करना चाहिये कि जो संसार में विद्यादि शुभ गुण और सबको सुख देता है॥४॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते।

फिर वह कैसा हो, इस विषय का उपदेश अगूले मन्त्र में किया है।।

यजा नो मित्रावर्रणा यजा देवाँ ऋतं बृहत्। अन् यक्षि स्वं दर्मम्॥५॥२३॥

यर्ज। नु:। मित्रावर्रुणा। यर्ज। देवान्। ऋतम्। बृहत्। अन्ते। त्रक्षि। स्वम्। दर्मम्।।५॥

पदार्थ:-(यज) सङ्गमय। अत्र द्वयचोऽतस्तिङ इति दीर्घः। (नः) अस्मभ्यम् (मित्रावरुणा) बलपराक्रमकारकौ प्राणोदानौ (यज) सङ्गच्छस्व (देवान्) दिव्यगुणान् भोगान् (ऋतम्) सत्यं विज्ञानम् (कृहत्) महाविद्यादिगुणयुक्तम् (अग्ने) विज्ञान्युक्त (यक्षि) यजिस। अत्र लडर्थे लुङ्। (स्वम्) स्वकीयम् (दमम्) दान्तस्वभावं गृहम्॥५॥

अन्वय:-हे अग्ने यतस्त्वं स्वं दमं यक्षि तस्मान्नो मित्रावरुणा यज बृहदृतं देवाँश्च यज॥५॥

भावार्थ: -यथा परमेश्वरस्य परोपकारुयायादिशुभगुणदानस्वभावोऽस्ति तथैव विद्वद्भिरिप तादृक् स्वभाव: कर्त्तव्य:॥५॥

अत्रेश्वराग्निविद्वद्गुण्विर्णनादैतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेदितव्यम्॥

इति पञ्चसप्ततितमं ७५ सूक्तं त्रयोविंशो २३ वर्गश्च समाप्त:॥५॥

पदार्थ; है (अग्ने) पूर्ण विद्यायुक्त विद्वान् मनुष्य! जिस कारण (स्वम्) आप अपने (दमम्) उत्तम स्वभावरूषी घर को (यिक्ष) प्राप्त होते हैं, इसी से (नः) हमारे लिये (मित्रावरुणा) बल और पराक्रम के करनेवाले प्राण और उदान को (यज) अरोग कीजिये (बृहत्) बड़े-बड़े विद्यादिगुणयुक्त (ऋतृम्) सन्य विज्ञान को (यज) प्रकाशित कीजिये॥५॥

भावार्थ:-जैसे परमेश्वर का परोपकार के लिये न्याय आदि शुभ गुण देने का स्वभाव है, वैसे ही विद्वानों को भी अपना स्वभाव रखना चाहिये॥५॥

इस सूक्त में ईश्वर अग्नि और विद्वान् के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ संगति समझनी चाहिये॥

यह पचहत्तरवां ७५ सूक्त और तेईसवां २३ वर्ग पूरा हुआ॥

अथ पञ्चर्च्चस्य षट्सप्तितिमस्य सूक्तस्य राहूगणो गोतम ऋषि:। अग्निर्देवता। १,३,४ निचृत्त्रिष्टुप्। २,५ विराट् त्रिष्टुप् छन्द:। धैवत: स्वर:॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

अब छहत्तरवें सूक्त का आरम्भ किया जाता है। इसके प्रथम मन्त्र में विद्वान् के गुणों क्रि सपदेश

किया है॥

का त उपेतिर्मर्नसो वराय भुवंदग्ने शंतमा का मनीषा। को वा युज्ञैः परि दक्षं त आपु केन वा ते मनसा दाशेम॥ १॥

का। ते। उपंऽइति:। मर्नसः। वराय। भुवंत्। अग्ने। शम्ऽतमा। का। मृनीका। कः। खु। युज्ञैः। पिर्। दक्षम्। ते। आपु। केर्न। वा। ते। मर्नसा। दाशेमु॥ १॥

पदार्थ:-(का) नीति: (ते) तवानूचानस्य विदुषः (उपेतिः) उपेयन्ते सुखानि यया सा (मनसः) चित्तस्य (वराय) श्रैष्ठ्याय (भुवत्) भवति (अग्ने) शान्तिप्रद्र (शन्तमः) अतिशयेन सुखप्रापिका (का) (मनीषा) प्रज्ञा (कः) मनुष्यः (वा) पक्षान्तरे (यज्ञैः) अध्ययम्बाध्यापनिदिभिर्यज्ञैः (पिर्) सर्वतः (दक्षम्) बलम् (ते) तव (आप) प्राप्नोति (केन) कीदृशेन (वा) पक्षान्तरे (ते) तुभ्यम् (मनसा) विज्ञानेन (दाशेम) दद्याम॥१॥

अन्वय:-हे अग्ने! ते तव का उपेतिर्मनसो वराय भुकत। का अन्तमा मनीषा को वा ते दक्षं यज्ञैः पर्याप वयं केन मनसा किं वा ते दाशेमेति ब्रहि॥१॥

भावार्थ:-मनुष्यै: परमेश्वरस्य विद्वृषो चेदृशो प्रार्थना कार्य्या हे भगवँस्त्वं कृपयाऽस्माकं शुद्धये यद्वरं कर्म वरा बुद्धि: श्रेष्ठं बलमस्ति तानि वेहि येन् वयं त्वां विज्ञाय प्राप्य वा सुखिनो भवेम॥१॥

पदार्थ: -हे (अग्ने) शान्ति के देग्नाले विद्वान् मनुष्य! (ते) तुझ अति श्रेष्ठ विद्वान् की (का) कौन (उपेति:) सुखों को प्राप्त करनेकाली नीति (पनसः) चित्त की (वराय) श्रेष्ठता के लिये (भुवत्) होती है (का) कौन (शन्तमा) सुख की प्राप्त करनेवाली (मनीषा) बुद्धि होती है (क:) कौन मनुष्य (वा) निश्चय करके (ते) आपके (दक्ष्म) बल को (यज्ञैः) पढ़ने-पढ़ाने आदि यज्ञों को करके (पिर) सब ओर से (आप) प्राप्त होता है (वा) अथाना हम लोग (केन) किस प्रकार के (मनसा) मन से (ते) आपके लिये क्या (दाशेम) देवें॥१॥

भावार्थ: - मेरुष्यों की परमेश्वर और विद्वान् से ऐसी प्रार्थना करनी चाहिये कि हे परमात्मन् वा विद्वान् पुरुष्य! ओर कृष्ण करके हमारी शुद्धि के लिये श्रेष्ठ कर्म, श्रेष्ठ बुद्धि और श्रेष्ठ बल को दीजिये, जिससे हुए लोग आपको जान और प्राप्त होके सुखी हों॥१॥

पुन: स किमर्थं प्रार्थनीय इत्युपदिश्यते॥

किर उस विद्वान् की प्रार्थना किसलिये करनी चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया

८४२

ऋग्वेदभाष्यम्

है॥

एह्यंग्न इह होता नि षीदार्दब्धः सु पुरिष्ट्ता भवा नः। अर्वतां त्वा रोर्दसी विश्वमिन्वे यजा महे सौमनुसार्य देवान्॥२॥

आा इहि। अने। इह। होतां। नि। सीदा अर्दब्धः। सु। पुरःएता। भवा नः। अर्वताम्। त्वा रोदसी इति। विश्वमिन्वे इति विश्वम्ऽइन्वे। यर्ज। मुहे। सीमनुसायं। देवान्॥२॥

पदार्थ:-(आ) समान्तात् (इहि) प्राप्नुहि (अग्ने) विश्वोपकारक (इह) अस्पिन् संसारे होता) दाता सन् (नि) नित्यम् (सीद) आस्व (अदब्ध:) अस्माभिरहिंसितोऽतिरस्कृतः (सु) सुष्टु (पुरएता) पूर्वं प्राप्तः (भव) (नः) अस्मान् (अवताम्) रक्षेताम् (त्वा) त्वाम् (पदानी) किद्याप्रकाशभूमिराज्ये द्यावापृथिव्यौ वा (विश्वमिन्वे) विश्वतर्पके (यज) सङ्गच्छस्व (महे) महर्ते (सौमनस्यय) मनसो निर्वेरत्वाय (देवान्) विदुषो दिव्यगुणान् वा॥२॥

अन्वय:-हे अग्नेऽदब्धस्त्विमह नो होतेहि सुनिषीद पुरएता भूव यं त्वां विश्विमन्वे रोदसी अवतां स त्वं महे सौमनसाय देवान् यज॥२॥

भावार्थ:-एवं सत्यभावेन प्रार्थितः परमेश्वरः संज्ञिती भार्मिको विद्वान् वा सर्वमेतन्मनुष्येभ्यो ददाति॥२॥

पदार्थ:-हे (अग्ने) सबके उपकार करनेवाल विद्वान्! (अदब्ध:) अहिंसक हम लोगों को सेवा करने योग्य आप (इह) इस संसार में (होता) देनेवाले (न:) हम लोगों को (आ, इहि) प्राप्त हूजिये (सु) अच्छे प्रकार (नि) नित्य (सीद) ज्ञान दें जिये (पुरएता) पहिले प्राप्त करनेवाले (भव) हूजिये जिस (त्वा) आपको (विश्वमिन्वे) सब संसार को तूप्त करनेवाले (रोदसी) विद्याप्रकाश और भूगोल का राज्य अथवा आकाश और पृथिवी (अवनाम्) प्राप्त हों, सो आप (महे) बड़े (सौमनसाय) मन का वैरभाव छुड़ाने के लिये (देवान्) विद्वान् इंट्य गुणों को स्वात्मा में (यज) संगत कीजिये॥२॥

भावार्थ:-इस प्रकार सत्यभाव से प्रार्थना किया हुआ परमेश्वर और सेवा किया हुआ धर्मात्मा विद्वान् सब सुख मनुष्यों की द्वेसा है।। र।।

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

क्षिर वह व्रिद्धान् कैसा हो, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

प्र स् विश्वास् रक्षसो धक्ष्यंग्ने भवा यज्ञानांमभिशस्तिपार्वा।

अथा बहु सोमपितुं हरिभ्यामातिथ्यमस्मै चकुमा सुदावे।।३॥

क्रे सु। विश्वान्। रक्षसं:। धिक्षं। अग्ने। भर्व। युज्ञानाम्। अभिशृस्तिऽपावां। अर्थ। आ। वृह्। सोर्मऽपितम्। हर्निऽभ्याम्। अ<u>ति</u>थ्यम्। अस्मै। चुकृम्। सुऽदाव्ने॥३॥ अष्टक-१। अध्याय-५। वर्ग-२४

मण्डल-१। अनुवाक-१३। सूक्त-७६

पदार्थ:-(प्र) प्रकृष्टे (सु) सुष्ठु (विश्वान्) सर्वान् (रक्षसः) दुष्टान् मनुष्यान् दोषान् वा। अत्र लिङ्गव्यत्ययः। (धिक्ष) दहिस। अत्र बहुलं छन्दसीति शपो लुक्। (अग्ने) दुष्टप्रशासक सभाष्यक्ष (भव) (यज्ञानाम्) विज्ञानिक्रियाशिलपसाधकानाम् (अभिशस्तिपावा) योऽभिशस्तेर्हिंसायाः पाद्वा रक्षकः सः (अथ) आनन्तर्ये (आ) अभितः (वह) प्राप्नुहि (सोमपितम्) ऐश्वर्याणां स्वामिनम् (हिरिभ्याम्) धारणाकर्षणाभ्याम् (आतिथ्यम्) अतिथेः कर्म (अस्मै) (चकृम) कुर्याम (सुदाव्ने) विद्याविनयसुशिक्षाराज्यधनानां सुष्ठु दात्रे॥३॥

अन्वय:-हे अग्ने! यतस्त्वं विश्वान् रक्षसः प्रधिक्ष तस्मादेव यज्ञानामभिशस्त्रिम्पवा भव। यथा सूर्यो हिरभ्यां सोमपितं वहित तथैश्वर्यमावहाऽथातोऽस्मै सुदान्ने तुभ्यमातिथ्यं चकुम॥३॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथेश्वरेण जगित प्राणिभ्यः सर्वे पदार्थो दत्तास्तथा मनुष्यैर्यो विद्यासुशिक्षे दद्यात्तस्यैव सत्कारः कर्त्तव्यो नेतरस्य॥३॥

पदार्थ:-हे (अग्ने) दुष्टों को शिक्षा करनेवाले सभाव्यिक्ष! जिल्ल प्रकार आप (विश्वान्) सब (रक्षसः) दुष्ट मनुष्यों वा दोषों का (प्र) अच्छे प्रकार (धिक्ष) नाश करते हैं, इसी कारण (यज्ञानाम्) जो जानने योग्य कारीगरी है उनके साधकों की (अभिशस्तिपाका) हिंसा से रक्षा करने वाले (सु) अच्छे प्रकार (भव) हूजिये, जैसे सूर्य्य (हिरिभ्याम्) धारण और अकर्षण से सब सुखों को प्राप्त करता है, वैसे (सोमपितम्) ऐश्वर्यों के स्वामी को (आवह) प्राप्त हृजिये, (अथ) इसके पीछे (अस्मे) इस (सुदाने) विद्या विज्ञान अच्छी शिक्षा राज्यादि धनों के देनेवाले आपके लिये हम लोग (आतिथ्यम्) सत्कार (चकृम) करते हैं॥३॥

भावार्थ: -यहाँ वाचकलुप्तोप्रमालङ्कार है। जैसे ईश्वर ने जगत् में प्राणियों के वास्ते सब पदार्थ दिये हैं, वैसे जो मनुष्य उत्तम विद्याओर शिक्षा देवे उसीका सत्कार करें, अन्य का नहीं॥३॥

पुनः से कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर विद्वार् कैसे हो इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

प्रजावता वर्चसा विहित्समा च हुवे नि च सत्सीह देवै:। वेषि होत्रमुत पोत्रं यजत्र बोधि प्रयन्तर्जनित्वर्वसूनाम्॥४॥

प्रजाऽवृता। सर्चसा। चिह्निः। आसा। आ। च। हुवे। नि। च। सृत्सि। इह। देवैः। वेषि। होत्रम्। उत। पोत्रम्। युज्त्र। बोधि। प्रुऽयुत्तुः। जुनितः। वसूनाम्॥४॥

पदार्थ: (प्रजावता) प्रशस्ता प्रजा विद्यते यस्मिँस्तेन (वचसा) वचनेन (विह्नः) सुखानां प्रापकः (आसा) अस्यन्ते वर्णा येन तेन मुखेन (च) समुच्चये (हुवे) स्तुवे। अत्र बहुलं छन्दसीति संप्रसारणम्। (वि) नित्राम् (च) पुनरर्थे (सित्स) सभायाम् (इह) अस्मिन् संसारे (देवैः) दिव्यगुणैर्विद्वद्भिर्वा (वेषि)

व्याप्नोषि (होत्रम्) हवनीयं वस्तु (उत) अपि (पोत्रम्) पवित्रकारम् (यजत्र) दातः (बोधि) जानीहि (प्रयन्तः) प्रकृष्टनियमकर्त्तः (जनितः) उत्पादकः (वसूनाम्) वासाधिकरणानाम्॥४॥

अन्वय:-हे यजत्र! यो विह्नस्त्विमह देवै: सह सित्स प्रजावता वचसा बोधि यतो होत्रमुत पोर्ड निविष्। है यजत्र! प्रयन्तर्यथा त्वं वसूनां वेत्ताऽसि तथाऽहमासा त्वां हुवे॥४॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। मनुष्यैः परमेश्वरस्य धार्मिकाणां विदुषां च सहायेन पवित्रतां सम्पाद्य सर्वाणि श्रेष्ठानि प्राप्तव्यानि॥४॥

पदार्थ:-हे (यजत्र) दाता! (विह्नः) सुखों को प्राप्त करनेवाले तू (इह) इस संसार में (देवैः) विद्वानों के साथ (सित्स) सभा में (प्रजावता) प्रजा की सम्मित के अनुकूल (वचसा) वचनों से (बोधि) बोध कराता है, जिससे (होत्रम्) हवन करने योग्य (च) और (पोत्रम्) यात्रित्र करनेवाले वस्तुओं को (उत) भी (नि) निरन्तर (वेषि) प्राप्त होता है, (जिनतः) सुखोत्पन्न करनेवाले (प्रयन्तः) प्रयत्न से तू जैसे (वसूनाम्) पृथिव्यादि पदार्थों को जाननेवाला है, वैसे मैं (आसा) मुख्य से तेरी (च) अन्य विद्वानों की भी (आहुवे) स्तुति करता हूँ॥४॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्य परमेश्वर और धार्मिक विद्वानों के सहाय और संग से शुद्धि को प्राप्त होकर सब श्रेष्ठ वस्तुओं को प्राप्त होंगे।।

पुनः स कीदृश् इत्युपदिश्यते॥

फिर पूर्वोक्त कैसा हो, इस किप्स का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

यथा विप्रस्य मनुषो ह्विभिर्द्वाँ अयुजः कुर्विभिः कुविः सन्।

एवा होतः सत्यत्र त्वमुद्याम्ने मुन्द्र्यो जुह्ना यजस्व॥५॥२४॥

यथा। विप्रस्य। मर्नुष:। हुविःऽभि द्वेवान्। अर्यजः। कृविऽभिः। कृविः। सन्। एव। होतुरितिं। सृत्युऽतुर्। त्वम्। अद्या अग्ने। मुन्द्रयां। जुह्वा। कृत्वा। पा।

पदार्थ:-(यथा) येन प्रकारेण (विष्रस्य) मेधाविनः (मनुषः) मननशीलस्य मानवस्य (हविर्भिः) आदेयैर्गुणकर्मस्वभावैः सह (देवान) विदुषे दिव्यगुणान् वा (अयजः) (कविभिः) पूर्णिवद्यैः क्रान्तदर्शनैः (कविः) क्रान्तदर्शनो विद्वान् (सम्) वर्त्तमानः (एव) निश्चये (होतः) सर्वसुखप्रदातः (सत्यतर) अतिशयेन सत्यस्वरूप (त्वम्) परमात्मा विद्वान् वा (अद्य) अस्मिन् दिने (अग्ने) ज्ञानप्रदिवद्वन् (मन्द्रया) आह्रादकामनाविज्ञानपूदया (जुत्या (जुह्वा) आदानिक्रयाकौशलया बुद्ध्या (यजस्व) सुखानि देहि॥५॥

अन्वयः हे स्तर्भतर होतरग्ने! यथा कश्चिद्धार्मिको विद्वान् विद्यार्थी वा विप्रस्य मनुषोऽनुकूलो भूत्वा सुखकारी वर्तते, तथैव त्वमञ्च कविभिः सह सन् यया हविभिर्देवानयजस्तया मन्द्रया जुह्वाऽस्मान् यजस्व॥५॥

भावार्थ:-यथा कश्चिन्मनुष्यो विद्वद्भयो विद्यां प्राप्य सर्वोपकारी भूत्वा सर्वान् प्राणिनः सुखयित्वा मनुष्ट्यान् विदुषः कृत्वानन्दति तथैवाप्तौ मनुष्यो वर्त्तते इति वेद्यम्॥५॥

भूत्रेश्वरविद्वद्गुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेदितव्यम्॥

अष्टक-१। अध्याय-५। वर्ग-२४

मण्डल-१। अनुवाक-१३। सूक्त-७६

इति षट्सप्ततितमं ७६ सूक्तं चतुविंशो २४ वर्गश्च समाप्त:॥

पदार्थ:-हे (सत्यतर) अतिशय सत्याचारनिष्ठ (होत:) सत्यग्रहण करनेहारे दाता (अर्ले) विद्वान्। (यथा) जैसे कोई धार्मिक विद्वान् अथवा विद्यार्थी (विप्रस्य) बुद्धिमान् अध्यापक विद्वान् (मनुषः) मनुष्य के अनुकूल होके सबका सुखदायक होता है, वैसे (एव) ही (त्वम्) तू (अद्य) इसी समये (किविभः) पूर्णिवद्यायुक्त बहुदर्शी विद्वानों के साथ (किवः) विद्वान् बहुदर्शी (सन्) होके जिन (हिविभिः) ग्रहण करने योग्य गुण, कर्म, स्वभावों के साथ (देवान्) विद्वान् और दिव्यगुणों को (अयजः) प्राप्त होता है, उस (मन्द्रया) आनन्द करनेहारी (जुह्वा) दान क्रिया से हमको (यजस्व) प्राप्त हो।। दान

भावार्थ:-जैसे कोई मनुष्य विद्वानों से सब विद्याओं को प्राप्त करके सबका उपकारक हो, सब प्राणियों को सुख दे, सब मनुष्यों को विद्वान् करके आनन्दित होता है, वैस्तर अर्थात् पूर्ण विद्वान् धार्मिक होता है॥५॥

इस सूक्त में ईश्वर और विद्वान् के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति समझनी चाहिये॥

यह छहत्तरवां ७६ सूक्त और चौबीसूबां २४ वर्ग पूरा हुआ॥

अथ पञ्चर्च्चस्य सप्तसप्तितिमस्य सूक्तस्य राहूगणो गोतम ऋषिः। अग्निर्देवता। १ निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः। २ निचृत्त्रिष्टुप्। ३-५ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

अब सतहत्तरवें सूक्त का आरम्भ किया जाता है। इसके प्रथम मन्त्र में विद्वान् कैसा हर्ते, यह

विषय कहा है॥

कथा दाशिमाग्नये कास्मै देवर्जुष्टोच्यते भामिने गीः। यो मर्त्येष्वमृतं ऋतावा होता यर्जिष्ट इत्कृणोतिं देवान्॥ १॥

कथा। दाशेम्। अग्नये। का। अस्मै। देवऽर्जुष्टा। उच्यते। भामिने। गीः या। मर्स्येषु। अमृतः। ऋतऽर्वा। होतां। यजिष्ठः। इत्। कृणोतिं। देवान्॥ १॥

पदार्थ:-(कथा) केन प्रकारेण (दाशेम) दद्याम (अग्नये) विज्ञापकाष्य (का) वक्ष्यमाणा (अस्मै) उपदेशकाय (देवजुष्टा) विद्विद्धः प्रीता सेविता वा (उच्यते) कथ्यते (भामिने) प्रशस्तो भामः क्रोधो विद्यते यस्य तस्मै (गीः) वाक् (यः) जीवः (मर्त्येषु) नश्यमानेषु पद्मर्थेषु (अमृतः) मृत्युरिहतः (ऋतावा) ऋताः प्रशस्ताः सत्या गुणा विद्यन्ते यस्मिन् सः (होता) ग्रहीता स्ता (यिजिष्टः) अतिशयेन यष्टा सङ्गमिता (इत्) एव (कृणोति) करोति (देवान्) दिव्यगुणान् पदार्थान् विदुषो कार्यः।

अन्वय:-हे मनुष्या! यथा वयं विद्वद्भियों मर्त्येष्वमत्त ऋतावा, होता यजिष्ठो देवान् कृणोत्यस्मै भामिनेऽग्नये का कथा देवजुष्टा गीरुच्यते तस्मा इदेव दाशेम तथा यूयम्प्रि कुरुत॥ १॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्करः। यथा विद्वानीश्वरस्य स्तुतिं विद्वत्सेवनं च कृत्वा दिव्यान् गुणान् प्राप्य सुखानि प्राप्नोति, तथैवाऽसमाभापि कुनेव्यम्॥१॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! जैसे हमें लोग विद्वानों के साथ होते हैं, वैसे (य:) जो (मर्त्येषु) मरणधर्म्मयुक्त शरीरादि में (अमृत:) मृत्युरहित (ऋतावा) सत्य गुण, कर्म, स्वभावयुक्त (होता) दाता और ग्रहण करनेहारा (यजिष्ट:) अत्यन्त सत्मंगी (देवान्) दिव्यगुण वा दिव्यपदार्थों वा विद्वानों को (कृणोति) करता है (अस्में) इस उपदेशक (भामिने) दुष्टों पर क्रोधकारक (अग्नये) सत्यासत्य जनानेहारे के लिये (का) कौन (कथा) किस हेतु से (देवजुष्टा) विद्वानों ने सेवी हुई (गी:) वाणी (उच्यते) कही है, उस (इत्) ही को (दाशेम) विद्वा देवें, वैसे तुम भी किया करो॥१॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे विद्वान् ईश्वर की स्तुति और विद्वानों को सेवन करके दिव्य गुम्म को प्राप्त होकर सुखों को प्राप्त होता है, वैसे ही हम लोगों को सेवन करना चाहिये। 🗓

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह विद्वान् कैसा हो, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है।।

अष्टक-१। अध्याय-५। वर्ग-२५

मण्डल-१। अनुवाक-१३। सूक्त-७७

या अध्वरेषु शंतम ऋतावा होता तमू नमोभिरा कृणुध्वम्। अग्नियंद्वेर्मर्ताय देवान्त्स चा बोधाति मनसा यजाति॥२॥

यः। अध्वरेषुं। शम्ऽतमः। ऋतऽवां। होतां। तम्। ऊम्ऽइतिं। नर्मःऽभिः। आ। कृणुध्वम्। अभिः। यस्। वः। मर्ताय। देवान्। सः। च। बोधांति। मर्नसा। युजाति॥२॥

पदार्थ:-(य:) विद्वान् (अध्वरेषु) अहिंसनीयेषु (शन्तमः) अतिश्रयेनीस्त्रप्रदः (ऋतावा) सत्यगुणकर्मस्वभाववान् (होता) सर्वस्य जगतो विज्ञानस्य वा दाता (तम्) (उ) विज्ञकें (नमोभिः) नमस्कारैरत्रैर्वा (आ) समन्तात् (कृणुध्वम्) कुरुध्वम् (अग्निः) विज्ञानस्वस्त्रपः (यत्) यः (वेः) आवहति (मर्ताय) मनुष्याय (देवान्) दिव्यगुणान् विज्ञानादीन् (सः) (च) समुख्यये (विधानि) जानीयात् (मनसा) विज्ञानेन (यजाति) सङ्गच्छेत॥२॥

अन्वय:-हे मनुष्या! यूयं योऽग्निरध्वरेषु शन्तम ऋतावा होता स्ति पद्यो मूर्ताय देवान् वेस्स मनसा सर्वान् बोधाति यजाति च तमु नमोभिराकृणुध्वम् प्रसन्नं कुरुध्वम्॥२॥

भावार्थ:-नह्याप्तेन मनुष्येण विना मनुष्याणां विद्याऽ स्मापको विद्यते, निह तं विहायान्य: कश्चित् सत्कर्तुं महींऽस्तीति वेद्यम्॥२॥४१

पदार्थ:-हे मनुष्यो! तुम लोग (य:) जो (अप्नि:) विज्ञानस्वरूप परमेश्वर वा विद्वान् (अध्वरेषु) सदैव ग्रहण करने योग्य यज्ञों में (शन्तमः) अत्यन्त आर्मन्द को देनेहारा तथा (ऋतावा) शुभ गुण, कर्म,और स्वभाव से सत्य है (होता) सब जगत और विज्ञान का देनेवाला है तथा (यत्) जो (मर्ताय) मनुष्य के लिये (देवान्) विज्ञान और श्रेष्ठ गुणों को (बोधाति) अच्छे प्रकार जाने (च) और (यजाति) संगत करें, इसलिये (तम् उ) उसी परमेश्वर वा विद्वान् को (नमोभिः) नमस्कार वा अन्नों से प्रसन्न (आ कृण्ध्वम्) करो॥२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में स्लिषालङ्कार है। परमेश्वर और धर्मात्मा मनुष्य के विना मनुष्य को विद्या का देनेवाला कोई दूसरा नहीं है तथा इन दोनों को छोड़ के उपासना तथा सत्कार भी किसी का न करना चाहिये॥२॥

पुनः स विद्वान् कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह विद्वान् कैसा हो, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

स्र हि क्रेतुः से मर्युः स साधुर्मित्रो न भूदद्धंतस्य र्थीः।

२. हिन्दी भावार्थ में श्लेषालंकार दिखाया है, जबिक संस्कृत-भावार्थ में ऐसा नहीं किया है। सं०

787

तं मेधेषु प्रथमं देवयन्तीर्विश उप बुवते दुस्ममारीः॥३॥

सः। हि। क्रतुंः। सः। मर्यः। सः। साधुः। मित्रः। न। भूत्। अद्धुतस्य। रृथीः। तम्। मेधेष्टुः प्रथमम्। देवऽयन्तीः। विशः। उपं। बुवते। दुस्मम्। आरीः॥३॥

ऋग्वेदभाष्यम्

पदार्थ:-(स:) अग्निर्ज्ञानवान् विद्वान् (हि) खलु (क्रतुः) प्रज्ञाकर्मयुक्तः प्रज्ञाकर्मज्ञापको वा (स:) (मर्थः) मनुष्यः (सः) (साधुः) परोपकारी सन्मार्गस्थितो विद्वान् (मित्रः) सृहत् (ने) इव (भूत्) भवेत्। अत्राडभावः। (अद्भुतस्य) आश्चर्यकर्मयुक्तस्य सैन्यस्य (रथीः) प्रशस्तरथः। अत्र वा छन्द्रिम सर्वे विधयो भवन्तीति सोरलुक्। (तम्) (मेधेषु) अध्ययनाध्यापनसंग्रामादियज्ञेषु (प्रथमप्) सर्वोत्कृष्टम् (देवयन्तीः) कामयमानाः। अत्र वा छन्दसीति पूर्वसवर्णादेशः। (विशः) (ज्ञाः (उप) (ब्रुवते) (दस्मम्) दुःखनामुपक्षेत्तारम् (आरीः) ज्ञानवत्यः। अत्र ऋ धातोः सर्वधातुभ्य इत्रितीन्। कृदिकारादिकतन इति डीष् पूर्वसवर्णादेशश्च॥३॥

अन्वय:-देवयन्तीः कामयमाना आरीर्ज्ञानवत्यो विशः प्रजाः मेधेषु ते दस्मं प्रभाध्यक्षत्वेन प्रथममुपब्रुवते। यो मित्रो न सर्वस्य हृदिव भूद् भवेत्, स हि खलु सर्वथा ऋतः स मर्यो मनुष्यस्थभावः स साधुरद्धृतस्य सैन्यस्य रथो रथवान् भवेत्॥३॥

भावार्थ:-मनुष्यैर्यः सर्वोत्कृष्टगुणकर्मस्वभावः सर्जनः सर्वोपकारी मनुष्योऽस्ति, स एव सभाध्यक्षत्वेन राजा मन्तव्यः। नैव कस्यन्दिकस्याज्ञार्थां राज्यव्यवहारोऽधिकर्त्तव्यः। किन्तु शिष्टसभाधीनान्येव सर्वाणि कार्याणि रक्षणीयानित्राष्ट्र॥

पदार्थ:-(देवयन्ती:) कामनायुक्त (आरी:) ज्ञानैवाली (विश:) प्रजा (मेधेषु) पढ़ने-पढ़ाने और संग्राम आदि यज्ञों में (तम्) उस (दस्मम्) दु खिनाष्ट्र) करनेवाले को सभाध्यक्ष मान कर (प्रथमम्) सबसे उत्तम (उपबुवते) कहती है कि जो (मित्र:) सबका मित्र (न) जैसा (भूत्) हो (स हि) वही सब प्रकार (क्रतु:) बुद्धि और सुकर्म से युक्त (सः) वही (मर्च्यः) मनुष्यपन का रखनेवाला और (सः) वही (साधु:) सबका उपकार करने निथा श्रेष्ठ मार्ग में चलनेवाला विद्वान् (अद्भुतस्य) आश्चर्यकर्मों से युक्त सेना का (रथी:) उत्तम रथनाला रथी होवे॥ ३॥

भावार्थ:-मनुष्यी के चाहियें कि जो सबसे अधिक गुण, कर्म और स्वभाव तथा सबका उपकार करने वाला सज्जन मनुष्य है, उसीको सभाध्यक्ष का अधिकार देके राजा माने अर्थात् किसी एक मनुष्य को स्वतन्त्र राज्य का अधिकार न देवें, किन्तु शिष्ट पुरुषों की जो सभा है, उसके आधीन राज्य के सब काम रक्खें॥ शा

पुन: स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह उक्त विद्वान् कैसा हो, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

नौ नृणां नृतमो रि्शादा अग्निर्गिरोऽवसा वेतु धीतिम्।

अष्टक-१। अध्याय-५। वर्ग-२५

मण्डल-१। अनुवाक-१३। सूक्त-७७

तनां च ये मुघवानुः शर्विष्ठा वाजप्रसूता इषयन्तु मन्मी।। ४॥

सः। नुः। नृणाम्। नृऽत्नेमः। रि्शादाः। अग्निः। गिर्रः। अवसा। वेतुः। धीतिम्। तनाः। च। ये प्रमुठेबानः) शिविष्ठाः। वार्जेऽप्रसूताः। ड्रषयन्त। मन्मे॥४॥

पदार्थ:-(स:) (न:) अस्माकम् (नृणाम्) मनुष्याणां मध्ये (नृतमः) अतिश्वेनीत्तमो नरः (रिशादाः) यो रिशान् हिंसकान् शत्रूनति नाशयित सः। अत्रादधातोरसुन्। (अग्निः) उत्कृष्टगुणविज्ञानः (गिरः) वाणी (अवसा) रक्षणादिना (वेतु) कामयताम् (धीतिम्) धारणाम् (तना) विस्तृतानि धनानि। तनेति धननामसु पठितम्। (निघं०२.१०) (च) विद्यादिशुभगुणानां समुच्चये (ये) (मघवानः) प्रशस्तधनाः (शविष्ठाः) अतिशये बलवन्तः (वाजप्रसूताः) विज्ञानादिगुणैः प्रवाशिकाः (इषयन्त) एषयन्ति प्राप्नुवन्ति। अत्र लिङ वा च्छन्दिस सर्वे विधयो भवन्तीति गुणाभावोऽङभावश्च। (मन्म) विज्ञानम्। अत्रान्येभ्योऽपि दृश्यन्त इति मनधातोर्मनिन्॥४॥

अन्वय:-यो नोऽस्माकं नृणां मध्ये नृतमोऽग्निरिवावसा गिरो धीति च कार्ययते स नो नृणां मध्ये सभाध्यक्षात्वं वेतु प्राप्नोतु। ये नोऽस्माकं नृणां मध्ये रिशादा वाजप्रसूताः श्रविष्ठा विवानस्तना प्रन्म चात् सद्गुणानिषयन्त ते नोऽस्माकं सभासदः सन्तु॥४॥

भावार्थ:-मनुष्यै: सपरमोत्तमसभाध्यक्षमनुष्तां सभां निर्माय राज्यव्यवहारपालने चक्रवर्त्तिराज्यं प्रशासनीयं नैवं विना कदाचित् स्थिरं राज्यं कस्यचिद्धवितुमर्हति। तस्मादेतत्सदानुष्ठायैको राजा नैव मन्तव्य:॥४॥

पदार्थ:-जो (न:) हमारे (नृणाम्) मिनुष्यों) के बीच (नृतम:) अत्यन्त उत्तम मनुष्य (अग्नि:) पावक के तुल्य अधिक ज्ञान प्रकाशकला (अवसा) रक्षण आदि से (गिर:) वाणी और (धीतिम्) धारणा को चाहता है (स:) वह मनुष्य हुमारे बीच में सभाध्यक्ष के अधिकार को (वेतु) प्राप्त हो, जो (नृणाम्) मनुष्यों में (रिशादा:) शत्रुओं (को नष्ट कर्महारे (वाजप्रसूता:) विज्ञान आदि गुणों से शोभायमान (शविष्ठा:) अत्यन्त बलवान (मेघवानः) प्रशंसित धनवाले (तना) विस्तृत धनों की और (मन्म) विज्ञान (च) विद्या आदि अच्छे अष्टे भुणों की (इषयन्त) इच्छा करते हैं, इसीसे हमारी सभा में वे लोग सभासद हों॥४॥

भावार्थ: भनुष्यों को चाहिये कि अत्युत्तम सभाध्यक्ष मनुष्यों के सहित सभा बना के राज्यव्यवहार की रक्षा से चक्रवर्त्तराज्य की शिक्षा करे, इसके विना कभी स्थिर राज्य नहीं हो सकता, इसलिये पूर्वीक्त कर्म का अनुष्ठान करके एक को राजा नहीं मानना चाहिये॥४॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा है, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

८५०

ऋग्वेदभाष्यम्

पुवाग्निर्गोत्पेभिर्ऋृतावा विप्रेभिरस्तोष्ट जातवेदाः।

स एषुं द्युम्नं पीपयत्स वाजं स पुष्टिं योति जोष्रमा चिकित्वान्॥५॥२५॥

एव। अग्निः। गोर्तमेभिः। ऋतऽवां। विष्रेभिः। अस्तोष्ट्रः। जातऽवेदाः। सः। एषुः। द्युम्नम्। पीययत्। कर्न वार्जम्। सः। पुष्टिम्। याति। जोर्षम्। आ। चिकित्वान्॥५॥

पदार्थ:-(एव) अवधारणार्थे (अग्नि:) उक्तार्थे (गोतमेभि:) अतिशयेन स्तावकै: क्रितावा) ऋतानि सत्यानि कर्माणि गुणा स्वभावो वा विद्यते यस्य सः (विप्रेभिः) मेध्यविभिः (अस्तोष्ट्र) स्तौति (जातवेदाः) यो जातानि विन्दित वेत्ति वा सः (सः) (एषु) धार्मिकेषु विद्वत्सु (द्युम्नम्) विद्याप्रकाशम् (पीपयत्) प्रापयति (सः) (वाजम्) उत्तमान्नादिपदार्थसमूहम् (सः) (पृष्टिप) धातुस्मम्योपचयम् (याति) प्राप्नोति (जोषम्) प्रीतिं प्रसन्नताम् (आ) समन्तात् (चिकित्वान्) ज्ञानन्नस्यापः।।

अन्वय:-हे विद्वन्! गोतमेभिर्विप्रेभिर्यो जातवेदा ऋतावा अग्नि: स्नूयते येस्त्वेमस्तोष्ट स एव चिकित्वान् द्युम्नं याति स वाजं पीपयत् स जोषं पुष्टिमायाति॥५॥

भावार्थ:-मनुष्यैर्धामिकैर्विद्वद्भिरार्य्यैः सह संवासं कृत्वेतेषां सभायां स्थित्वा विद्यासुशिक्षाः प्राप्य सुखानि सेवनीयानि॥५॥

अत्रेश्वरविद्वदिग्नगुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्त्रार्थेन सह सङ्गतिर्वेद्या॥

इति सप्तसप्तितमं ७७ सूक्तं पञ्चिविशो रि५ वर्गश्च समाप्तः॥

पदार्थ:-(गोतमेभि:) अत्यन्त स्तुति करनेवाले (विप्रेभि:) बुद्धिमान् लोगों से जो (जातवेदा:) ज्ञान और प्राप्त होनेवाला (ऋतावा) सत्य हैं गुण, कर्म और स्वभाव जिसके (अग्नि:) वह ईश्वर स्तुति किया जाता और (अस्तोष्ट) जिसको विद्वान् प्तुति करता है (एव) वही (एषु) इन धार्मिक विद्वानों में (चिकित्वान्) ज्ञानवाला (द्युम्नम्) विद्या के प्रकाश को प्राप्त होता है (स:) वह (वाजम्) उत्तम अन्नादि पदार्थों को (पीपयत्) प्राप्त कर्गता और (स:) वही (जोषम्) प्रसन्नता और (पुष्टिम्) धातुओं की समता को (आ याति) प्राप्त होता है स्र

भावार्थ:-मनुष्यें को चाहिसे कि श्रेष्ठ धर्मात्मा विद्वानों के साथ उनकी सभा में रहकर उनसे विद्या और शिक्षा को प्राप्त होके मुखें का सेवन करे॥५॥

इस सूक्त्र में ईश्वर, विद्वान् और अग्नि के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्तार्थ के सार्थ संगत्ति समझनी चाहिये॥

यह सतहत्तरवां ७७ सूक्त और पच्चीसवां २५ वर्ग समाप्त हुआ॥

अथ पञ्चर्चस्याष्ट्रसप्ततितमस्य सूक्तस्य राहूगणो गोतम ऋषि:। अग्निर्देवता। गायत्री छन्दः।

षड्जः स्वरः॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

अब अठहत्तरवें सूक्त का आरम्भ किया जाता है। इसके प्रथम मन्त्र में उन्हीं विद्वानों के मुणों का उपदेश किया है।।

अभि त्वा गोर्तमा गिरा जार्तवेदो विचर्षणे। द्युम्नैरुभि प्र णोनुमः॥ रु।

अभि। त्वा। गोर्तमा:। गिरा। जार्तऽवेद:। विऽचेर्षणे। द्युम्नै:। अभि। प्र। नोुनुम्:।। श्र।

पदार्थ:-(अभि) आभिमुख्ये (त्वा) त्वाम् (गोतमाः) अतिशार्वेन स्तोतारः (गिरा) वाण्या (जातवेदाः) पदार्थप्रज्ञापक (विचर्षणे) सर्वादिदृष्टः (द्युप्नैः) धनैर्विज्ञानादिभिर्पुणैः सह (अभि) सर्वतः (प्र) प्रकृष्टे (नोनुमः) अतिशयेन स्तुमः॥१॥

अन्वय:-हे जातवेदो विचर्षणे परमात्मन्! यं त्वां यथा ग्रातमा ह्यून्नैर्प्रिरा स्तुवन्ति यथा च वयमभि प्रणोनुमस्तथा सर्वे मनुष्याः कुर्य्यु:॥१॥

भावार्थ:-सर्वैर्मनुष्यै: परमेश्वरमुपास्याप्तविद्वांसमुर्पसङ्ग्रन्य विद्वा संभावनीया॥१॥

पदार्थ:-हे (जातवेद:) पदार्थों को जाननेवाले (विचर्षण) सबसे प्रथम देखने योग्य परमेश्वर! जिस आपकी जैसे (गोतमा:) अत्यन्त स्तुति करनेवास (द्युम्भे;) धन और विमानादिक गुणों तथा (गिरा) उत्तम वाणियों के साथ (अभि) चारों ओर स्रे प्तृति करते हैं और जैसे हम लोग (अभि प्रणोनुम:) अत्यन्त नम्र होके (त्वा) आपकी प्रशंसा करते हैं, वैसे स्व मनुष्य करें॥१॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुओं मिलक्कीर है। सब मनुष्यों को चाहिये कि परमेश्वर की उपासना और विद्वानों का सङ्ग करके विद्वा का विचार करें॥१॥

पुन: सः विद्वान् कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह विद्वान कैसा हो, इस्र विषय का उपदेश अगले मन्त्र में कहा है।।

तमुं त्वा गोर्तमो गिरा रायुरकामो दुवस्यति। द्युमौर्भि प्र णोनुमः॥२॥

तम्। ऊम्ऽइति। त्वा। पोत्रमः। गिरा। गुयःऽकामः। दुवस्यति। द्युमौः। अभि। प्रा नोनुमः॥२॥

पदार्थ: (तम्) उक्तार्थम् (उ) वितर्के (त्वा) त्वाम् (गोतमः) विद्यायुक्तो जनः (गिरा) वाचा (रायस्कामः) अनुमीस्सः (दुवस्यित) सेवते (द्युम्नैः) श्रेष्ठैर्यशोभिः (अभि) सर्वतः (प्र) प्रकृष्टे (नोनुमः) प्रशंसामः ॥

्र्यन्वयः-हे धेनेश! यथा रायस्कामो गोतमो विद्वान् गिरा त्वा दुवस्यित तथा तमु द्युम्नैः सह वर्त्तमानः वयमुभिष्रपोनुसः॥२॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। निह मनुष्याणां परमेश्वरोपासनेन विद्वत्सहवासेन च विना धनकामपूर्तिर्भवितुं शक्या॥२॥

पदार्थ:-हे धनपते (रायस्कामः) धन की इच्छा करनेवाला (गोतमः) विद्वान् मनुष्यः! (पिरा) वाणी से (त्वा) तेरी (दुवस्यित) सेवा करता है वैसे (तम् उ) उसी आपकी (द्युम्नैः) श्रेष्ट कीर्ति से सह वर्त्तमान हम लोग (अभि) सब ओर से (प्र णोनुमः) अति प्रशंसा करते हैं॥२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को ऐसा विचार अपने मन में सदैव रखना चाहिये कि परमेश्वर की उपासना और विद्वान् मनुष्य के संग के विद्वा हम लोगों की धन की कामना पूरी कभी नहीं हो सकती॥२॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह विद्वान् कैसा हो, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में क्रिया है।।

तमुं त्वा वाज्सातंममङ्गिर्स्वद्धवामहे। द्युम्नैर्भि प्र प्रानुमः।।३॥

तम्। ऊम्ऽइति। त्वा। वाजुऽसार्तमम्। अङ्गिरुस्वत्। हुवामुद्धे। द्युम्भैः। अर्भि। प्रा नोनुमः॥३॥

पदार्थ:-(तम्) यशस्विनम् (उ) वितर्के (त्वा) त्विम् (वाज्योतमम्) यो वाजान् प्रशस्तान् बोधान् संभजते सोऽतिशयितस्तम् (अङ्गिरस्वत्) प्रशस्तप्राणवत् (हवापहे) स्वीकुर्मः (द्युम्नैः) पुण्ययशोभिः सह (अभि) सर्वतः (प्र) प्रकृष्टे (नोनुमः) स्तुमः॥३॥

अन्वय:-हे विद्वन्! विद्वांसो वयं यं द्युम्नैव्यासातमं त्वामुम् हवामहे स्तुमो यमङ्गिरस्वदिभप्रणोनुमस्तं त्वं स्तुहि प्रणम॥३॥

भावार्थ:-हे मनुष्या! एवं सत्कारेण विदुष्ट्र सन्तोष्य धर्मार्थकाममोक्षसिद्धिं कुरुत॥३॥

पदार्थ:-हे विद्वन्! (द्युम्नै:) पुण्यूरूपी कॉर्तियों के साथ जिस (वाजसातमम्) अतिप्रशंसित बोधों से युक्त विद्वान् की और (त्वा) आपकी हम लोग (हवामहे) स्तुति करें (3) अच्छे प्रकार (अङ्गिरस्वत्) प्रशंसित प्राण के समान (अभि) सब ओर से प्र णोनुमः) सत्कार करते हैं सो तुम (तम्) उसीकी स्तुति और प्रणाम किया करो॥ अस

भावार्थ:-हे मनुष्ये। तुम लोग विद्वान् को उक्त प्रकार के सत्कार से सन्तुष्ट करके धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को सिद्ध करो।।३।।

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह विद्वान् कैसा हो, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

तुमु त्वा वृत्रहन्तमुं यो दस्यूँरवधूनुषे। द्युम्नैरुभि प्र णीनुमः॥४॥

तम्। उम् इति। त्वा। वृत्रहन्ऽतेमम्। यः। दस्यून्। अवऽधूनुषे। द्युमैः। अभि। प्र। नोनुमः॥४॥

अष्टक-१। अध्याय-५। वर्ग-२६

मण्डल-१। अनुवाक-१३। सूक्त-७८

पदार्थ:-(तम्) उक्तम् (उ) वितर्के (त्वा) त्वाम् (वृत्रहन्तमम्) अतिशयेन वृत्रस्य हन्तारम् (यः) विद्वान् (दस्यून्) महादुष्टान् (अवधूनुषे) अतिकम्पयित (द्युम्नैः) यशसा प्रकाशमानैः शस्त्रास्त्रीः (अभि) आभिमुख्ये (प्र) प्रकृष्टे (नोनुमः) भृशं स्तुमः॥४॥

अन्वय:-हे विद्वन्! यस्त्वं दस्यूँरवधूनुषे तं वृत्रहन्तमं त्वामु द्युम्नै: सह वर्त्तमाना वयमभिप्रणीनुमः 🔃 🕷 ॥

भावार्थ:-हे मनुष्या! यूयं योऽजातशत्रुः सभाध्यक्षः दुष्टाचारान् शत्रूम् पराजयते तं सदा सेवध्वम्॥४॥

पदार्थ:-हे विद्वन् (यः) जो (त्वम्) तू (दस्यून्) महादुष्ट डाकुओं को (अवधूनुषे) कँपा के नष्ट करता है (तम्) उसी (वृत्रहन्तमम्) मेघ वर्षानेवाले सूर्य के समान (त्वा) वर्षा (द्युन्दें:) कीर्तिकारी शस्त्रों से हम लोग (अभि) सम्मुख होके (प्रणोनुमः) सब प्रकार स्तुति करें। अभ

भावार्थ:-हे मनुष्यो! तुम लोग जिसका कोई शत्रु न हि ऐसा विद्वान् सभाध्यक्ष जो कि दुष्ट शत्रुओं को परास्त कर सके, उसकी सदैव सेवा करो॥४॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह विद्वान् कैसा हो, इस विषय का उपदेश अन्ले मन्त्र में किया है॥

अवीचाम् रहूंगणा अग्नये मधुमद्वर्चः। द्युनिर्भि प्रणीनुमः॥५॥२६॥

अवीचाम। रहूंगणा:। अग्नये। मधुंऽमत्। वर्षाः। द्युमैः। अभि। प्र। नोनुमः॥५॥

पदार्थ:-(अवोचाम) उच्याम (म्हूनपा:) हवीऽधर्मत्यागिनो गणाः सेविता यैस्ते (अग्नये) विदुषे सभाध्यक्षाय (मधुमत्) मधुरसवत् (बच:) व्यानम् (द्युम्नै:) उत्तमैर्यशोभिः (अभि) (प्र) (नोनुमः) भृशन्नमस्कुम्मैः॥५॥

अन्वयः-हे विद्वांसो! रहुर्गणा मकन्तो यथा द्युम्नैरग्नये मधुमद्वचो ब्रुवते तथा वयमवोचाम। यथा वयं तमभिप्रणोनुमस्तथा यूयमपि नमत्रास्त्री

भावार्थः-अत्र क्रिक्तुप्तोप्रमालङ्कारः। मनुष्यैर्धर्म्यकीर्त्तिमतामेव प्रशंसा कार्य्या नेतरेषाम्॥५॥ अत्रेश्वरविद्वद्गुणवर्णभादेशदर्थस्य पूर्वसूक्ताऽर्थेन सह सङ्गतिर्वेद्या॥

इति शृष्टासप्ततितमं ७८ सूक्तं षड्विंशो २६ वर्गश्च समाप्त:॥

पदार्थ: हे बिह्नान् लोगो! (रहूगुणा:) धर्मयुक्त पापियों के समूह के त्याग करनेवाले तुम जैसे (द्युमै:) इतम कीर्षि के साथ वर्तमान (अग्नये) विद्वान् के लिये (मधुमत्) मिष्ट (वच:) वचन बोलते हो, वैसे हम भी (अवोचाम) बोला करें। जैसे हम लोग उसको (अभि प्र णोनुमः) नमस्कारादि से प्रसन्न कार्ते हैं। वैसे जुम भी किया करो॥५॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को अत्यावश्यक है कि धर्मयुक्ते कीर्त्तिवाले मनुष्यों ही की प्रशंसा करें, अन्य की नहीं॥५॥

इस सूक्त में ईश्वर और विद्वानों के गुणकथन से इस सूक्तार्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्ग्रित

यह अठत्तरवाँ ७८ सूक्त और छब्बीसवां २६ वर्ग पूरा हुआ॥

अथ द्वादशर्चस्य नवसप्ततितमस्य सूक्तस्य राहूगणो गोतम ऋषि:। अग्निर्देवता। १ विराट् त्रिष्टुप्। २,३ निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। ४ आर्घ्युष्णिक्। ५,६ निचृदार्घ्युष्णिक् छन्दः।

ऋषभः स्वरः। ७,८,१०,११ निचृद्गायत्री। ९,१२ गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥ (

अथ कथंभूतो विद्युदग्निरित्युपदिश्यते॥

अब ७९ वें सूक्त का आरम्भ किया जाता है। उसके प्रथम मन्त्र में विद्युत् अग्नि क<mark>्रैसा है, बेस्</mark> विषय का उपदेश किया है।।

हिर्ण्यकेशो रजसो विसारेऽहिर्धुनिर्वात व ध्रजीमान्।

शुचिभ्राजा उषसो नवेदा यशस्वतीरपस्युवो न सुत्याः॥ १॥

हिर्रण्यऽकेशः। रजसः। विऽसारे। अहिः। धुनिः। वार्तःऽइव। ध्रुजिभीन्। शुचिश्राजाः। उषसः। नवैदाः। यशस्वतीः। अपुस्युर्वः। न। सुत्याः॥ १॥

पदार्थ:-(हिरण्यकेश:) हिरण्यवत्तेजोवत्केशा न्यायपुर्वाशा यस्त्र सः (रजसः) ऐश्वर्यस्य (विसारे) विशेषेण स्थिरत्वे (अहिः) मेघ इव (धुनिः) दुष्ट्रनां कम्पक (वातइव) वायुवत् (ध्रजीमान्) शीघ्रगतिः (शुचिभ्राजाः) शुचयः पवित्रा भ्राजाः प्रकाशा असि ताः (उषसः) प्रभाताः इव (नवेदाः) या अविद्यां न विन्दित ताः (यशस्वतीः) पुण्यकीर्त्तमत्त्रः (अपस्यवः) आत्मनोऽपांसि कर्माणीच्छन्तः (न) इव (सत्याः) सत्स् गुणकर्मस्वभावेषु भवाः॥१॥

अन्वय:-हे कुमारिका ब्रह्मचारिण्यो! रजसूँ। बिसारे हिरुण्यकेशो धुनिरहिरिव ध्रजीमान् वात इव उषस इव शुचिभ्राजा न वेदा यशस्वतीरपस्युवो नेव यूयं सत्ब्रा भवत॥१॥

भावार्थ:-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालक्कारो याः कन्या यावच्चतुर्विंशतिवर्षमायुस्तावद् ब्रह्मचर्येण जितेन्द्रियतया साङ्गोपाङ्गा वेदविद्या अधीरते ताः मनुष्यजातिभूषिका भवन्ति॥१॥

पदार्थ:-हे कुमारि ब्रह्मचर्य्यक्व कन्या लोगो! (रजस:) ऐश्वर्य के (विसारे) स्थिरता में (हिरण्यकेश:) हिरण्य सुवर्णक्रेत वा प्रकाशक्त न्याय के प्रचार करनेवाले (धुनि:) शत्रुओं को कंपानेवाले (अहि:) मेघ के समान (धुनिपान) श्रीघ्र चलने वाले (वातइव) वायु के तुल्य (उषस:) प्रात:काल के समान (शुचिभ्राजा:) पिन्त्र विद्याविज्ञान से युक्त (नवेदा:) अविद्या का निषेध करने वाली विद्यायक्त (यशस्वती:) उत्तम कीर्त्तियुक्त (अपस्युव:) प्रशस्त कर्म्म करनेवाली के (न) समान तुम (सत्या:) सत्य गुण, कर्म्म, स्त्रुभावेषाली हों॥१॥

भाषार्थः इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जो कन्या लोग चौबीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य्य सेवन और जितेन्द्रिय होकर छः अङ्ग अर्थात् शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिषा उपाङ्ग अर्थात् मीमांसा, वैशेषिक, न्याय, योग, सांख्य और वेदान्त तथा आयुर्वेद अर्थात् वैद्यक ब्रिह्म अर्द्धि को पढ़ती हैं, वे सब संसारस्थ मनुष्य जाति की शोभा करनेवाली होती हैं॥१॥

८५६

ऋग्वेदभाष्यम्

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह विद्वान् कैसा हो, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

आ ते सुपुर्णा अमिनन्तुँ एवै: कृष्णो नोनाव वृष्टभो यदीदम्। शिवाभिन स्मर्यमानाभिरागात् पर्तन्ति मिहः स्तुनर्यन्त्यभ्रा॥२॥

आ। ते। सुऽपूर्णाः। अमिनुन्त। एवैः। कृष्णः। नोनाव। वृष्पः। यदि। इदम्। शिवाभिः। ना स्पर्यमानाभिः। आ। अगात्। पर्तन्ति। मिह्नं। स्तुनर्यन्ति। अभा॥२॥

पदार्थ:-(आ) समन्तात् (ते) तव (सुपर्णाः) किरणाः। सुपर्ण इति रिष्टमनामसु पठितम्। (निघं०१.५) (अमिनन्त) प्रक्षिपन्ति (एवैः) प्रापकैर्गुणैः (कृष्णः) आकर्णणकर्ता (नोनाव) अत्यन्तप्रशंसितः (वृषभः) वृष्टिहेतुः सूर्यः (यदि) चेत् (इदम्) जर्मम्। इदिमित्युदकनामसु पठितम्। (निघं०१.२) (शिवाभिः) कल्याणकारिकाभिः कन्याभिः (च) इव (स्मयमानाभिः) किञ्चिद्धासकारिकाभिः (आ) अभितः (अगात्) प्राप्नोति (पतिन्ते) उपरिष्टादधः (मिहः) वृष्टयः (स्तनयन्ति) शब्दयन्ति (अभ्रा) अभ्राणि॥२॥

अन्वयः-हे विद्वन्! यो सुपर्णाः आमिनन्तैवैः कृष्णो सूष्प्रभ इद्धिन् नोनाव यथा स्मयमानाभिः शिवाभिर्नेव यद्यगाद् यथाऽभ्रास्ते नयन्ति मिह आपतन्ति तथा विद्या वर्षेत् विहै सस्य च तय किमप्राप्तं स्यात्॥२॥

भावार्थ:-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारो विषां ब्रह्मचारिणां ब्रह्मचारिण्यः स्त्रियः स्युस्ते सुखं कथन्न लभेरन्॥२॥

पदार्थ:-हे विद्वन्! आप जैसे (सूर्यणाः) किर्ण (आमिनन्त) सब ओर से वर्षा की प्रेरणा करती हैं (एवै:) प्राप्त करनेवाले गुणों से सूहित (कृष्णाः) आकर्षण करता (वृषभः) वर्षानेवाला सूर्य (इदम्) जल को वर्षाता है, वैसे विद्या की (निताव) प्रशंसित वृष्टि करें तथा (स्मयमानाभिः) सदा प्रसन्नवदन (शिवाभिः) शुभ गुण, कर्म्मयुक्त कन्याओं के साथ तत्तुल्य ब्रह्मचारियों के विवाह के (न) समान सुख को (यदि) जो (अगात्) प्राप्त हो और जैसे अभ्रा) मेघ (स्तनयन्ति) गर्जते तथा (मिहः) वर्षा के जल (आ पतिन्ति) वर्षते हैं, वैसे बिद्या को वर्षावे तो (ते) तुझको क्या अप्राप्त हो, अर्थात् सब सुख प्राप्त हों॥२॥

भावार्थ: इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार और उपमालङ्कार हैं। जिन विद्वान् ब्रह्मचारियों की विदुषी ब्रह्मचारिणी स्त्री हों, वे पूर्ण सुख को क्यों न प्राप्त हों॥२॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा हो, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

यदीपृतस्य पर्यसा पियानो नयन्नृतस्य पृथिभी रजिष्ठैः।

अष्टक-१। अध्याय-५। वर्ग-२७-२८

मण्डल-१। अनुवाक-१३। सूक्त-७९

अर्युमा मित्रो वर्मणुः परिजमा त्वचं पृञ्चन्त्युपरस्य योनौ॥३॥

यत्। ईम्। ऋतस्यं। पर्यसा। पियानः। नर्यन्। ऋतस्यं। पृथिऽभिः। रजिष्ठैः। अर्यमा। मिर्कः। वस्णः) परिऽज्मा। त्वर्चम्। पृञ्चन्ति। उपरस्य। योनौं॥३॥

पदार्थ:-(यत्) यदा (ईम्) प्राप्तव्यं सुखम् (ऋतस्य) उदकस्य (पयसा) रसेन (पियानः) पिबन् (नयन्) प्राप्नुवन् (ऋतस्य) सत्यस्य (पथिभिः) मार्गैः (रिजष्ठैः) अतिशयेन रजस्वतेः (अर्यमा) नियन्ता सूर्य्यः (मित्रः) प्राणः (वरुणः) उदानः (परिज्मा) यः परितः सर्वतो गर्म्छिति स्रोजीवः (त्वचम्) त्विगिन्द्रियम् (पृञ्चन्ति) सम्बध्नन्ति (उपरस्य) मेघस्य (योनौ) निमित्ते मेघम् हित्रु ॥३॥

अन्वय:-यदृतस्य पयसा पियानो रजिष्ठैः पिथिभिरुपरस्य योनावीं नयत्रर्यमा मित्री वर्गणः परिज्मा चर्त्तस्य त्वचं पृञ्जन्ति तदा सर्वेषां जीवनं संभवति॥३॥

भावार्थ:-यदा कार्यकारणस्थै: प्राणजलादिभि: सह जीवा: सम्बन्धमाप्नुवन्ति तदा शरीराणि धर्तुं शक्नुवन्ति॥३॥

पदार्थ:-(यत्) जब (ऋतस्य) उदक के (पयात्ता) रस में (पियानः) पीनेवाला (रिजष्ठैः) अत्यन्त धूलीयुक्त (पथिभिः) मार्गों से (उपरस्य) मेघ के (योमी) कारणरूप मण्डल में (ईम्) जल को (नयन्) प्राप्त करता हुआ (अर्यमा) नियन्ता (सूर्यः) (मित्रः) ग्राण (वरुणः) उदान और (परिज्मा) सब ओर से जाने-आने वाला जीव (ऋतस्य) सत्य के (त्वचम्) त्वचा रूप उपरिभाग को (पृञ्चन्ति) सम्बन्ध करते हैं, तब सब का जीवन सम्भव होता है॥३॥

भावार्थ:-जब कार्य्य और कारण में रिहनेवर्लि प्राण और जलादि पदार्थों के साथ जीव सम्बन्ध को प्राप्त होते हैं, तब शरीरों के धारण करने का समर्थ होते हैं॥३॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा हो, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

अग्ने वार्जस्य फ्रोम्ल ईशान्: सहसो यहो।

असमे धेहि जातवेद्य मेहि श्रवं:॥४॥

अग्ने। वाजस्य। गोऽम्तः। ईश्नानः। सहसः। यहो इति। अस्मे इति। धेहि। जात्ऽवेदः। महि। श्रवः॥४॥ पदार्थः (अप्मे) विद्युदिव विद्वान् (वाजस्य) अन्नस्य (गोतमः) बहुधेनुधनयुक्तस्य (ईशानः) स्वामी (सहसः) बलयुक्तस्य (यहो) पुत्र (अस्मे) अस्मासु (धेहि) (जातवेदः) जातविज्ञान (मिह) महतः (श्रवः) रित्वेदादिशास्त्रश्रवणम्॥४॥

अवेप:-हे जातवेदोऽग्ने! सहसो यहो गोतमो वाजस्येशानस्त्वमस्मे महि श्रवो धेहि॥४॥

८५८

ऋग्वेदभाष्यम्

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये मनुष्या विदुषां मातापितॄणां सन्ताना भूत्वा मातापित्राचार्य्येः प्राप्तिशक्षा बह्नत्रेश्वर्य्यविद्याः स्युस्तेऽन्येष्वप्येतत्सर्वं वर्द्धयेयुः॥४॥

पदार्थ:-हे (जातवेद:) प्राप्तविज्ञान (अग्ने) विद्युत् के समान विद्या प्रकाशयुक्त विद्वन्) (सहस:) बलयुक्त पुरुष के (यहो) पुत्र (गोतम:) धन से युक्त (वाजस्य) अन्न के (इंगान:) स्वामी आप (अस्मे) हम लोगों में (मिह) बडे (श्रव:) विद्याश्रवण को (धेहि) धारण कीजियेग्रा

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य विद्वान माल और पिताओं के सन्तान होके माता, पिता और आचार्य्य से विद्या की शिक्षा को प्राप्त होकर बहुत अन्नादि ऐश्वर्य और विद्याओं को प्राप्त हों, वे अन्य मनुष्यों में भी यह सब बढ़ावें॥४॥

पुन: स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा है, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है।

स ईधानो वर्सुष्क्विवर्गनरीळेन्यो गिरा। रेवदुस्मभ्यं पुर्वणीक दीदिहि॥५॥

सः। इधानः। वसुः। कृविः। अग्निः। ईळेन्यः। गिरा। रखत्। अनुम्प्रेयम्। पुरुऽअनीकः। दीदिहि॥५॥

पदार्थ:-(स:) (इधान:) इन्धनैः पावक्विद्वाया प्रदीप्तः (वसुः) वासियता (किवः) सर्विवद्यावित् (अग्निः) पावक इव वर्त्तमान (इक्टेन्यः) स्तोतुं योग्यः (गिरा) वाण्या (रेवत्) प्रशस्तधनयुक्तम् (अस्मभ्यम्) (पुर्वणीक) पुरक्रीऽनीकाः स्नेना यस्य तत्सम्बुद्धौ (दीदिहि) भृशं प्रकाशय। दीदयित ज्वलित कर्मनामसु पठितम्। (निर्विष्ठुः १६)) (।।

अन्वयः-हे पुर्वणीक! यस्विम्भानेरिनि विन्धाना गिरेलेन्यो वसुः कविरसि स त्वमस्मभ्यं रेवच्छ्वो दीदिहि॥५॥

भावार्थ:-अत्र वाचकर्लुप्तोपमालङ्कारः। पूर्वस्मान्मन्त्राच्छ्व इति पदमनुवर्तते। यथा विद्युद्धौमसूर्यरूपेणाऽग्निः सर्व मूर्तं द्रव्यं द्योत्यिति तथाऽनूचानो विद्वान् सर्वा विद्याः प्रकाशयति॥५॥

पदार्थ:-हे (पुर्वणीक) बहुत सेनाओं से युक्त! जो तू जैसा इन्धनों से (अग्नि:) अग्नि प्रकाशमान होता है, वैसे (इन्धाने:) प्रकाशमान (गिरा) वाणी से (ईळेन्य:) स्तुति करने योग्य (वसु:) सुख को बसानेवाला और (कवि:) सर्वशास्त्रवित् होता है (स:) सो (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (रेवत्) बहुत धन करनेवाला सब विद्या के श्रवण को (दीदिहि) प्रकाशित करे॥५॥

भूषार्थ: इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। पूर्व मन्त्र से (श्रवः) इस पद की अनुवृत्ति आती हैं। जैसे बिजुली प्रसिद्ध पावक सूर्य अग्नि सब मूर्तिमान् द्रव्य को प्रकाश करता है, वैसे सर्वृतिद्यानित सत्पुरुष सब विद्या का प्रकाश करता है॥५॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

अष्टक-१। अध्याय-५। वर्ग-२७-२८

मण्डल-१। अनुवाक-१३। सूक्त-७९

फिर वह कैसा हो, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

क्ष्मपो राजञ्जुत त्मनाग्ने वस्तोकृतोषस्ः। स तिग्मजम्भ रक्षसो दह प्रति॥६॥२७॥

क्षुपः। राजुन्। उता त्मनां। अग्ने। वस्तोः। उता उषसंः। सः। तिग्मुऽजुम्भु। रक्षसंः। द्वहा प्रति।हिप

पदार्थ:-(क्षप:) रात्री: (राजन्) न्यायविनयाभ्यां प्रकाशमान (उत्त) अपि (त्मेनः) आत्मना (अग्ने) विद्वन् (वस्तो:) दिनस्य (उत्त) अपि (उषस:) प्रत्यूषकालस्य (तिग्मजम्भ) तिग्मं तीव्रं जम्भं वक्त्रं यस्य तत्सम्बुद्धौ (रक्षस:) दुष्टान् (दह) (प्रति)॥६॥

अन्वयः-हे तिग्मजम्भाऽग्ने राजँस्त्वं त्मना यथा सूर्यः क्षपो निवर्त्यात् स वस्तोष्ण्यसो भावं करोति तथा धार्मिकेषु सज्जनेषु विद्याविनयौ प्रकाश्योत रक्षसः प्रतिदह॥६॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। यथा सविता स्वितिहित जग्रत् प्रकाश्य वृष्टिं कृत्वा सर्वं रक्षति तमो निवारयति राजानो धार्मिकान् संरक्ष्य दुष्टान् दण्डयित्वा राज्यं ग्रक्षन्तु॥६॥

पदार्थ:-हे (तिग्मजम्भ) तीव्र मुख से बोलनेहिए (अरने) विद्वन्! (राजन्) न्याय विनय से प्रकाशमान तू (त्मना) अपने आत्मा से जैसे सूर्य (क्षयः) राष्ट्रियों को निवर्त करके (सः) वह (वस्तोः) दिन (उत) और (उषसः) प्रभातों को विद्यमान करता है, वैस् धार्मिक सज्जनों में विद्या और विनय का प्रकाश कर (उत) और (रक्षसः) दुष्टाचारियों को (प्रतिदह्) प्रत्यक्ष दग्ध कर॥६॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्लेपमालङ्कार हैं। जैसे सविता निकट प्राप्त जगत् को प्रकाशित कर वृष्टि करके सब जगत् की रक्षा और अन्धकार का निवारण करता है, वैसे सज्जन राजा लोग धार्मिकों की रक्षा कर दुष्टों के दण्ड से सज्य की रक्षा करें॥६॥

र्युनः स संभाध्यक्षः कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह सभाष्ट्रीक्ष कैसा हो, इसे विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

अवां नो अग्न क्रितिभिगोवुत्रस्य प्रभर्मिण। विश्वासु धीषु वन्द्य॥७॥

अर्व। नु:। अग्ने। कुर्विऽभिः। गायुत्रस्यं। प्रऽभर्मणि। विश्वांसु। धोषु। वुन्द्य॥७॥

पदार्थ:-(अव) रक्ष् (न:) अस्मान् (अग्ने) विज्ञानस्वरूप (ऊतिभि:) रक्षणादिभि: (गायत्रस्य) गायत्रीप्रगाथस्त्र छन्द्रस् आनन्दकरस्य व्यवहारस्य वा (प्रभर्मणि) प्रकर्षेण बिभ्रति राज्यादीन् यस्मिंस्तस्मिष् (विश्वासु) सर्वासु (धीषु) प्रज्ञासु (वन्द्य) अभिवदितुं प्रशंसितुं योग्य॥७॥

अन्वय:-हे वन्द्याग्ने सभाध्यक्ष! त्वमूतिभिर्गायत्रस्य प्रभर्मणि विश्वासु धीषु नोऽस्मानव॥७॥

भावेर्थः-मनुष्यैर्येन प्रज्ञा प्रज्ञाप्यते स सत्कर्त्तव्य:॥७॥

पदार्थ:-हे (वन्द्य) अभिवादन और प्रशंसा करने योग्य (अग्ने) विज्ञानस्वरूप सभाध्यक्ष! अपि (ऊतीभि:) रक्षण आदि से (गायत्रस्य) गायत्री के प्रगाथ वा आनन्दकारक व्यवहार का (प्रभर्मणि) अच्छी प्रकार राज्यादि का धारण हो जिसमें उस तथा (विश्वासु) सब (प्रज्ञासु) बुद्धियों में (न:) हमि लोगों भी (अव) रक्षा कीजिये॥७॥

भावार्थ:-सब मनुष्यों को चाहिये कि जो सभाध्यक्ष विद्वान् हमारी बुद्धि की सुद्धे करता है, उसका सत्कार करें॥७॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह सभाध्यक्ष कैसा हो, इस विषय का उपदेश अगले मन में किया है।।

आ नो अग्ने र्यि भर सत्रासाहं वरेण्यम्। विश्वासु पृत्सु दुष्टरम्

आ। नुः। अग्ने। र्यिम्। भुर्। सुत्राऽसाह्म्। वरेण्यम्। विश्वासु। पुत्रसु। दुस्त्रीम्॥८॥

पदार्थ:-(आ) समन्तात् (नः) अस्मभ्यम् (अर्पन) प्रदातः प्रदानहेतुर्वा (रियम्) प्रशस्तद्रव्यसमूहम् (भर) (सत्रासाहम्) सत्यानि सहान्ते येन तम् (वरेण्यम्) प्रशस्तगुणकर्मस्वभावकारकम् (विश्वासु) सर्वासु (पृत्सु) सेनासु (दुष्टरम्) शत्रुभिर्दुःखेन तिरतुं योग्यम्॥८॥

अन्वय:-हे अग्ने सभाध्यक्ष! त्वं नोऽस्मभ्यं विश्वास पृत्सु स्त्रासाहं वरेण्यं दुष्टरं रियमाभर॥८॥

भावार्थ:-मनुष्यै: सभाध्यक्षाश्रयेणाग्न्यादिपदार्थेस्रंप्रयोगेण च विनाऽखिलं सुखं प्राप्तुं न शक्यत इति वेद्यम्॥८॥

पदार्थ: - हे (अग्ने) दान देने का दिलानेवाले सभाध्यक्ष! आप (नः) हम लोगों के लिये (विश्वासु) सब (पृत्सु) सेनाओं में (संत्रासाहम्) सत्य का सहन करते हैं जिससे उस (वरेण्यम्) अच्छे गुण और स्वभाव होने का हेतु (दुष्टरम्) शत्रुओं के दुःख से तरने योग्य (रियम्) अच्छे द्रव्यसमूह को (आभर) अच्छी प्रकार धारण के जिये॥८॥

भावार्थ:-मनुष्यें को सभाध्यक्ष आदि के आश्रय और अग्न्यादि पदार्थों के विज्ञान के विना सम्पूर्ण सुख प्राप्त कभी मही हो मकता॥८॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

आची अपने सुचेतुना रियं विश्वायुपोषसम्। मार्डीकं धेहि जीवसे॥९॥

बा। नः। अग्ने। सुऽचेतुनां। रियम्। विश्वार्युऽपोषसम्। मार्डीकम्। धेहि। जीवसे॥९॥

अष्टक-१। अध्याय-५। वर्ग-२७-२८

मण्डल-१। अनुवाक-१३। सूक्त-७९

पदार्थ:-(आ) समन्तात् (नः) अस्मभ्यम् (अग्ने) विज्ञानसुखद (सुचेतुना) सुष्ठु विज्ञानेन सह वर्त्तमानम् (रियम्) धनसमूहम् (विश्वायुपोषसम्) अखिलायुपृष्टिकारकम् (मार्डीकम्) मुद्धीकानं सुखानामिमं साधकम् (धेहि) (जीवसे) जीवितुम्॥९॥

अन्वय:-हे अग्ने! त्वं नोऽस्मभ्यञ्जीवसे सुचेतुना विश्वायुपोषसं मार्डीकं रियमाधेहि॥९॥

भावार्थ:-मनुष्यै: संसेवितो विद्वान् सुशिक्षां कृत्वा पूर्णायुप्रापके विद्याधने द्द्यति॥९॥

पदार्थ:-हे (अग्ने) विज्ञान और सुख के देनेवाले विद्वान्! आप (नः) हमारे (जीवसे) भीवन के लिये (सुचेतुना) अच्छे विज्ञान से युक्त (विश्वायुपोषसम्) सम्पूर्ण अवस्था में पृष्टि करने (मार्डीकम्) सुखों के सिद्ध करने वाले (रियम्) धन को (आधेहि) सब प्रकार धारण कीजिय। हम

भावार्थ:-मनुष्यों को अच्छी प्रकार सेवा किया हुआ विद्वान् विज्ञान और धन को देके पूर्ण आयु भोगने के लिये विद्या धन को देता है॥९॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर भी अगले मन्त्र में विद्वान् कैसा हो, इस विषय का उपदेश किया है।।

प्र पूर्तास्तिग्मशोचिषे वाचो गोतमाग्नये। भूरस्व सुम्न्युर्गिरः॥ १०॥

प्रा पूताः। तिग्मऽशोचिषे। वार्चः। गोतम्। अग्नर्य। भरस्य। सुम्नुऽयुः। गिर्रः॥ १०॥

पदार्थ:-(प्र) प्रकृष्टार्थे (पूता:) पितृत्रकारिकाः (तिग्मशोचिषे) तीव्रबुद्धिप्रकाशाय (वाच:) विद्यावाणी: (गोतम) अतिशयेन स्तोत: (अन्तये) बिज्ञानैवते (भरस्व) धर (सुम्नयु:) य आत्मन: सुम्नं सुखिमच्छित तच्छील: (गिर:) विद्याशिक्षेष्ठिकेषितिकेष्ठिक्षेष्ठिक्षेष्ठिकेषिति

अन्वयः-हे गोतम! सुम्नयुस्त्वं विद्वासः तिम्पर्शाचिषेऽग्नये याः पूतागिरो धरन्ति ता वाचः प्रभरस्व॥१०॥

भावार्थ:-यस्मान्नहि किक्त्यः परेमेश्वरेण परमविदुषा वा विना सत्यविद्याः प्रकाशितुं शक्नोति, तस्मादेतौ सदा संसेवनीयौ स्तुः १०॥

पदार्थ:-हे (गोलम्) अत्यन्त स्तुति और (सुम्नयुः) सुख की इच्छा करनेवाले विद्वान्! तू (तिग्मशोचिषे) तीक्ष्ण बुद्धि प्रकाशवाले (अग्नये) विज्ञानरूप और विज्ञानवाले विद्वान् के लिये (पूताः) पवित्र करनेवाली (गिरः) विद्वा की शिक्षा और उपदेश से युक्त वाणियों को धारण करते हैं, उन (वाचः) वाणिय्रों को (प्र भरस्व) सब प्रकार धारण कर॥१०॥

भार्तार्थ: जिस कारण परमेश्वर और परम विद्वान् के विना कोई दूसरा सत्यविद्या के प्रकाश करने को समर्श्व नहीं होता, इसलिए ईश्वर और विद्वान् की सदा सेवा करनी चाहिये॥१०॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा हो, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

यो नो अग्नेऽभिदासुत्यन्ति दूरे पदीृष्ट सः। अस्माक्निद् वृधे भव।। ११॥

यः। नुः। अग्ने। अभिऽदासीत। अन्ति। दूरे। पुदीष्ट। सः। अस्मार्कम्। इत्। वृधे। भुवा। ११॥

पदार्थ:-(य:) विद्वान् (न:) अस्मभ्यम् (अग्ने) विज्ञापक (अभिदासित) अभीष्टं दूदक्रि (अन्ति) समीपे। अत्र सुपां सुलुगिति विभक्तेर्लुक्। छान्दसो वर्णलोपो वेति कलोपश्च। (दूरे) विप्रकृष्टे (भदीष्ट) पद्यते। अत्र लिङ: सलोपो०। इति सकारलोप:। अत्रान्येषामपीति दीर्घ:। (स:) (अस्माकम्) (इत्) एव (वृद्ये) वृद्धये (भव)॥११॥

अन्वयः-हे अग्ने! यः भवानन्ति दूरे नोऽस्मभ्यमभिदासित पदीष्ट सं त्वमस्माकं वृध इद्भवारिश।।

भावार्थ:-मनुष्यैर्योऽन्तर्बिहर्व्याप्तेश्वरो ज्ञानं विज्ञापयित यो विद्वान् दूरे ममीपे वा स्थित्वा सत्योपदेशेन विद्याः प्रददाति स कथं न सम्यक् सेवनीय:॥११॥

पदार्थ:-हे (अग्ने) विज्ञान देनेवाले (य:) जो विद्वान्! आप (अन्ते) स्मिप और (दूरे) दूर (न:) हमारे लिये (अभिदासित) अभीष्ट वस्तुओं को देते और (पदिष्टि) प्राप्त होते हो (स:) सो आप (अस्माकम्) हमारी (इत्) ही (वृधे) वृद्धि करनेवाले (भव) ह्रिज्यारे १५)

भावार्थ:-मनुष्यों को उस ईश्वर की सेवा अवश्य करिनी क्योँ नहीं चाहिये, क्योंकि जो बाहर-भीतर सर्वत्र व्यापक होके ज्ञान देता है तथा जो विद्वान दूर वा समीप स्थित होके सत्य उपदेश से विद्या देता है॥११॥

पुनः स क्रीदृश् इत्युप्रदिश्यते॥

फिर वह कैसा हो, इस विषय का अपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

सहस्राक्षो विचर्षणिरुग्नी रक्षांसि संघति।

होता गृणीत उक्थ्यः॥ ११॥ १४॥।

सहस्रुऽअक्षः। विऽचर्षाप्रित अग्निः। रक्षांसि। सेघुति। होतां। गृणीते। उक्थ्यः॥१२॥

पदार्थ:-(सहस्राक्ष:) सहस्राण्यक्षीणि यस्मिन् सः (विचर्षणि:) साक्षाद् द्रष्टा (अग्निः) यथा परमेश्वरस्तथा विद्वान् (रक्षामि) दुष्ट्रामि कर्माणि दुष्टस्वभावान् प्राणिनः (सेधित) दूरीकरोति (होता) दाता (गृणीते) उपदिशति (उक्क्ये स्मेतिमर्हः॥१२॥

अन्वयः-हे विद्वन्! यथौर्क्थ्यः सहस्राक्षो विचर्षणिर्होताग्नी रक्षांसि सेधित निषेधित वेदान् गृणीते तथा त्वं भव॥१२॥

भावर्थः त्यत्रे वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। हे मनुष्या! यूयं परमेश्वरो विद्वान् वा यानि कर्माणि कर्त्तुमुपद्भिति तानि कर्त्तव्यानि यानि निषेधित तानि त्यक्तव्यानि इति विजानीत॥१२॥

भूत्राऽग्निविद्वदीश्वरगुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेदितव्यम्॥

इत्येकोनाशीतितमं ७९ सूक्तमष्टाविंशो २८ वर्गश्च समाप्तः॥

अष्टक-१। अध्याय-५। वर्ग-२७-२८

मण्डल-१। अनुवाक-१३। सूक्त-७९

पदार्थ:-हे विद्वन्! जैसे (उक्थ्य:) स्तुति करने योग्य (सहस्राक्ष:) असंख्य नेत्रों की सामर्थ्य से युक्त (विचर्षणि:) साक्षात् देखनेवाला (होता) अच्छे-अच्छे विद्या आदि पदार्थों को देनेवाल (अपि:) परमेश्वर (रक्षांसि) दुष्ट कर्म वा दुष्ट कर्मवाले प्राणियों को (सेधित) दूर और वेदों का (गणिते) उपहेश करता है, वैसे तू हो॥१२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। परमेश्वर वा विद्वान् जिन् कर्मों के करने की आज्ञा देवे उनको करो और जिनका निषेध करें उनको छोड़ दो॥१२॥

इस सूक्त में अग्नि ईश्वर और विद्वान् के गुणों का वर्णन होने से इसके अर्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ संगति समझनी चाहिये॥



अथ षोडशर्चस्याशीतितमस्य सूक्तस्य राहूगणो गोतम ऋषिः। इन्द्रो देवता १,११ निचृदास्तारपङ्क्तिः। ५,६,९,१०,१३,१४ विराट्पङक्तिछन्दः। पञ्चमः स्वरः।

२,३,४,७,१२,१५ भुरिग् बृहती। ८,१६ बृहतीछन्द:। मध्यम: स्वर:॥

अथ सभाद्यध्यक्ष: कीदृश इत्युपदिश्यते॥

अब ८० वें सूक्त का आरम्भ किया जाता है। इसके प्रथम मन्त्र में सभापित आद्वि का वर्णेत किया है।।

इत्या हि सोम् इन्मदे ब्रह्मा चुकार् वर्धनम्।

शर्विष्ठ विज्ञार्जसा पृथिव्या निः शंशा अहिमर्चन्नन् स्वराज्यम्।।११।

ड्रत्था। हि। सोमें। इत्। मदें। ब्रह्मा। चुकारं। वर्धनम्। शर्विष्ठ। वृष्ट्रिम्। ओर्जसार् पृथिव्याः। निः। शृशाः। अहिम्। अर्चन्। अनु। स्वुऽराज्यम्॥ १॥

पदार्थ:-(इत्था) अनेन हेतुना (हि) खलु (सोमे) ऐश्वर्षप्रापके (इत्) अपि (मदे) आनन्दकारके (ब्रह्मा) चतुर्वेदवित् (चकार) कुर्यात् (वर्धनम्) येन वर्धन्ति तत् (श्राविष्ठ) अतिशयेन बलवान् (विज्रन्) शस्त्रास्त्रविद्यासम्पन्न (ओजसा) पराक्रमेण (पृथिव्याः) विस्तृत्वायी भूमेः (निः) नितराम् (शशाः) उत्प्लवस्व (अहिम्) सूर्यो मेघमिव (अर्चन्) पूजयन् (अनु) पश्चात् (स्वराज्यम्) स्वस्य राज्यम्॥१॥

अन्वय:-हे शविष्ठ विज्ञन्! यथा सूर्योऽहिं यथा ब्रह्मोज्सा पृष्ट्रिव्या मदे सोमे स्वराज्यमन्वर्चन्नित्था वर्धनं चकार तथा हि त्वं सर्वानन्यायाचारान्निः शशाः॥१॥

भावार्थ:-मनुष्याश्चक्रवर्त्तराज्यकर्र्णस्य सामग्री विधाय पालनं कृत्वा विद्यासुखोन्नतिं कुर्यु:॥१॥

पदार्थ:-हे (शिवष्ठ) बलयुक्त (बिजिन) गर्स्त्रास्त्रविद्या से सम्पन्न सभापित! जैसे सूर्य (अहिम्) मेघ को जैसे (ब्रह्मा) चारों वेद के ज्ञाननेबाला (आजसा) अपने पराक्रम से (पृथिव्या:) विस्तृत भूमि के मध्य (मदे) आनन्द और (सोमे) ऐश्वर्य की प्राप्ति करानेवाले में (स्वराज्यम्) अपने राज्य की (अन्वर्चन्) अनुकूलता से सत्कार करता हुआ (इत्या) इस हेतु से (वर्धनम्) बढ़ती को (चकार) करे, वैसे ही तू सब अन्यायाचरणों को (इत्) हि ही (जिल्लाशा:) दूर कर दे॥१॥

भावार्थ:-मनुष्यों की चाहिये कि चक्रवर्त्तिराज्य की सामग्री इकट्ठी कर और उसकी रक्षा करके विद्या और सुख की निरन्तर वृद्धि करें॥१॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर बह सभाध्यक्ष आदि कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

स त्वामदुद् वृषा मदुः सोम॑ः श्येनाभॄ॑तः सुतः।

येनी वृत्रं निरुद्ध्यो जुघन्यं विज्ञिन्नोजुसार्चन्ननुं स्वुराज्यम्॥२॥

अष्टक-१। अध्याय-५। वर्ग-२९-३१

मण्डल-१। अनुवाक-१३। सूक्त-८०

सः। त्वा। अमुदुत्। वृषां। मर्दः। सोमः। श्येनऽआभृतः। सुतः। येनं। वृत्रम्। निः। अत्ऽभ्यः। ज्ञघन्यं। वृत्रिन्। ओर्जसा। अर्चन्। अनुं। स्वऽराज्यंम्॥२॥

पदार्थ:-(स:) (त्वा) त्वाम् (अमदत्) हर्षयेत् (वृषा) न्यायवर्षकः (मदः) आह्रादेकर्पकः (सोमः) ऐश्वर्यप्रदः पदार्थसमूहः (श्येनाभृतः) यः श्येन इव विज्ञानादिगुणैः समन्ताद् प्रियते पः (सुतः) संतापितः (येन) (वृत्रम्) जलं स्वीकुर्वन्तं प्रजासुखं स्वीकुर्वन्तं वा (निः) नितराम् (अद्ध्यः) जलेभ्यः प्रजाभ्यो वा (जघन्य) हन्ति (विज्ञन्) शस्त्रास्त्रविद्याभिज्ञ (ओजसा) पराक्रमेण् (अर्चन्) सत्कुर्वन् (अनु) आनुकूल्ये (स्वराज्यम्) स्वकीयं राज्यम्॥२॥

अन्वयः हे विज्ञन्! येन वृष्णा मदेन श्येनाभृतेन सुतेन सोमेन त्वमोजसा स्वर्णस्यम् वर्षन् यथा सूर्य्योऽद्भयः पृथक्कृत्य वृत्रं जलं स्वीकुर्वन्तं मेघं निर्जघान तथा प्रजाभ्यः पृथक्कृत्य प्रजासुखं स्वीकुर्वन्तं ऋतुं निर्जघन्थ, स वृषा मदः श्येनाभृतः सुतः सोमस्त्वामदत्॥२॥

भावार्थ:-अत्र लुप्तोपमालङ्कार:। पुरुषैर्यै: पदार्थै: किर्मिभिश्च प्रजा प्रसन्ना स्यात्तै: समुन्नेया शत्रून्निवार्य्य धर्मराज्यं नित्यं प्रशंसनीयम्॥२॥

पदार्थ:-हे (विज्ञन्) शस्त्र और अस्त्रों की विद्या की धारण करनेवाले और सभाध्यक्ष! (येन) जिस न्याय वर्षाने और मद करनेवाले जो कि बाज क्षिण के समान धारण किया जावे उस उत्पादन किये हुए पदार्थों के समूह से तू (ओजसा) पराक्रम में (स्वराज्यम्) अपने राज्य को (अन्वर्चन्) शिक्षानुकूल किये हुए जैसे सूर्य (अद्भ्य:) जलों से अलग कर (वृत्रम्) जल को स्वीकार अर्थात् पत्थर सा कित करते हुए मेघ को निरन्तर छिन्न-भिन्न करती हुए शत्रु को (निर्जघन्थ) छिन्न-भिन्न करते हुए शत्रु को (निर्जघन्थ) छिन्न-भिन्न करते हुए वह (वृषा) (मदः) (श्र्येनाभृतः) (सुतः) उक्त गुण वाला (सोमः) पदार्थों का समूह (क्षा) तुस्को (अमदत्) आनन्दित करावे॥२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में लिप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि जिन पदार्थों और कामों से प्रजा प्रसन्न हो, उनसे प्रजा की उन्नित करें और शत्रुओं की निवृत्ति करके धर्मयुक्त राज्य की नित्य प्रशंसा करें॥२॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर व्ह कैसा हो, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

प्रेह्यभीहि कृष्पुहि न ते वज्रो नि यंसते।

इन्द्र नुम्पो हि ते शवो हनो वृत्रं जर्या अपोऽर्चन्ननु स्वराज्यम्॥३॥

प्रो इहि। अभि। इहि। धृष्णुहि। न। ते। वर्त्रः। नि। यंसते। इन्द्रं। नृम्णम्। हि। ते। शर्वः। हर्नः। वृत्रम्। स्रोः। अपः। अर्चन्। अर्नु। स्वऽराज्यम्॥३॥

पदार्थ:-(प्र) प्रकृष्टार्थे (इहि) प्राप्नुहि (अभि) आभिमुख्ये (इहि) जानीहि (धृष्णुहि) (न) निषधे (ते) तव (वज्र:) किरणसमूह: (नि:) क्रियायोगे (यंसते) यच्छन्ति (इन्द्र) सभाद्यध्यक्ष (नृम्णम्) धनम् । नृम्णमिति धननामसु पठितम्। (निघं०२.१०) (हि) किल (ते) तव (शवः) बलम् (हनः) हन्याः (वृत्रम्) मेघम् (जयाः) (अपः) जलानि (अर्चन्) सत्कुर्वन् (अनु) आनुकृल्ये (स्वराज्यम्) स्वस्य स्थ्यम्। इत

अन्वय:-हे इन्द्र! यथा सूर्यस्य वज्रो वृत्रं हनोऽपो निर्यंसते तथा ये ते शत्रवस्तान् हत्न्ना स्वसम्बेपन्वर्चन् हि नृम्णं प्रेहि, शवोऽभीहि शरीरात्मबलेन धृष्णुहि जया एवं कुर्वतस्ते पराजयो न भविष्यति॥३॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये राजजना सूर्यवत् प्रक्राशितकोर्त्तयः सन्ति, ते राज्यैश्वर्यभोगिनो भवन्ति॥३॥

पदार्थ:-हे (इन्द्र:) परमसुखकारक! जैसे सूर्य का (वज्र:) किरणसमृह (वज्रम्) मेघ को (हन:) मारता और (अप:) जलों को (निर्यंसते) नियम में रखता है, वैसे जो (ते) आपके शत्रु हैं, उन शत्रुओं का हनन करके (स्वराज्यम्) अपने राज्य का (अन्वर्चन्) स्कार करता हुआ (हि) निश्चय करके (नृम्णम्) धन को (प्रेहि) प्राप्त हो (शव:) बल को (अभीहि) चारों ओर से बढ़ा शरीर और आत्मा के बल से (धृष्णुहि) ढीठ हो तथा (जया:) जीत को प्राप्त हो, इस प्रकार करते हुए (ते) आपका पराजय (न) न होगा॥३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालक्कार है। जो राजपुरुष सूर्यप्रकाश के तुल्य प्रसिद्ध कीर्तिवाले हैं, वे राज्य के ऐश्वर्य के भोगनेहारे होते हैं। राज्य

पुनः स कीदृश इत्स्रुपदिश्यते॥

फिर वह कैसा है, इस विभिन्न के छैपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

निरिन्द्र भूम्या अधि वृत्रं ज्ञास्य निर्दिवः।

सृजा मुरुत्वंतीरवं जीवधंचा दुमा अपोऽर्चन्ननुं स्वराज्यंम्॥४॥

निः। इन्द्रः। भूम्याः। अधि। वृत्रम्। जुष्ट्रम्। निः। दिवः। सूज। मुरुत्वंतीः। अवं। जीवऽर्धन्याः। इमाः। अपः। अर्चन्। अर्नु। स्वऽराज्यम्॥४॥

पदार्थ:-(नि:) निरामें (इन्द्र) परमैश्वर्यप्रद (भूम्या:) पृथिव्या:। भूमिरिति पृथिवीनामसु पिठतम्। (निघं०११) (अधि) उपरि (वृत्रम्) मेघम् (जघन्थ) हन्ति (नि:) नित्यम् (दिव:) किरणान् (सृज) (मरुत्वर्षी:) मनुष्यादिप्रजासम्बन्धिनी: (अव) (जीवधन्या:) या जीवेषु धन्या धनाय हिताः (इमा:) प्रत्यक्षाः (अप:) जलानि (अर्चन्) सत्कुर्वन् (अनु) आनुकूल्ये (स्वराज्यम्)॥४॥

्र्यन्वय:-हे इन्द्र! त्वं यथा सूर्य्यो वृत्रं हत्वा भूम्याऽधीमा जीवधन्या मरुत्त्वतीरपो निर्जघन्थ दिवोऽवसृजित तथा दुष्टाचासन् हत्स्र धर्माचारं प्रचार्य स्वराज्यमन्वर्चन् राज्यं शाधि विविधं वस्तु सृज॥४॥ अष्टक-१। अध्याय-५। वर्ग-२९-३१

मण्डल-१। अनुवाक-१३। सूक्त-८०

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यो राज्यं कर्त्तुमिच्छेत् स विद्याधर्मविनयान् प्रचार्य्य स्वयं धार्मिको भूत्वा प्रजासु पितृवद्वर्तेत॥४॥

पदार्थ:-हे (इन्द्र) परमैश्वर्य के देनेहारे! तू जैसे सूर्य्य (वृत्रम्) मेघ का ताड़न कर (भूम्याः) पृथिवी के (अधि) ऊपर (इमाः) ये (जीवधन्याः) जीवों में धनादि की सिद्धि में हितृकीरक (परुत्वतीः) मनुष्यादि प्रजा के व्यवहारों को सिद्ध करनेवाले (अपः) जलों को (निर्जधन्य) निर्व्य पृथिवी को पहुंचाता है और (दिवः) प्रकाशों को प्रकट करता है, वैसे अधर्मियों को दण्ड दे अर्माचार का प्रकाश कर (स्वराज्यम्) अपने राज्य का (अन्वर्चन्) यथायोग्य सत्कार करता हुआ प्रजासासन किया कर और नाना प्रकार के सुखों को (निरवसृज) निरन्तर सिद्ध कर॥४॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो राज्य कर्रेन की इच्छा करे, वह विद्या, धर्म और विशेष नीति का प्रचार करके आप धर्म्मात्मा होकर, सब प्रजुओं में पिता के समान वर्ते॥४॥

पुनस्तस्य कर्त्तव्यानि कर्माण्युपदिश्यन्ते॥

फिर उस सभाध्यक्ष के कर्त्तव्य कर्मों का उपदिश्र अगले प्रन्त्र में किया है।।

इन्द्री वृत्रस्य दोधतः सानुं वर्त्रण हीळितः।

अभिक्रम्यावं जिञ्जतेऽपः सर्मीय चोद्र्युत्रर्च्चूत्रने स्वृराज्यम्॥५॥२९॥

इन्द्रंः। वृत्रस्यं। दोर्घतः। सार्नुम्। वर्त्रेण। हिव्हितः। अर्फ्निऽक्रम्यं। अवं। जि्घनते। अपः। सर्माय। चो्दर्यन्। अर्चन्। अर्नु। स्वराज्यम्॥५॥

पदार्थ:-(इन्द्र:) उक्तपूर्व: (वृत्रस्य) भेष्यस्य (दोधतः) क्रुद्धतः। दोधतीति क्रुध्यतिकर्मा। (निघं०२.१२) (सानुम्) अङ्कानां संविभागम् (वज्रेण) तीव्रेण तेजसा (हीळितः) अनादृतः। अत्र वर्णव्यत्ययेनेकारः। (अभिक्रम्य) सर्वत उत्लिङ्घ्य (अव) (जिघ्नते) हन्त्रे (अपः) जलानि (सर्माय) गच्छते (चोदयन्) प्रेरयन् (अर्धुन्) (अनु) (स्वराज्यम्)॥५॥

अन्वयः-हे विद्वन् प्रथेन्द्रः सूर्यो वज्रेण वृत्रस्याऽपोऽभिक्रम्य सानुं छिनति तथा त्वं स्वराज्यमन्वर्चन् जिघ्नते सर्माय स्वबलं चोदयन् दोधस्य श्रुतोबेनुम्मभिक्रम्य सेनां छित्त्वा हीळितः सन् क्रोधमवसृज॥५॥

भावार्थ: अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। ये सूर्यवदिवद्यां निवार्य विद्यां प्रकाश्य दुष्टान् संताडच धार्मिकान् सत्कुर्वन्ति ते विद्वत्सु सत्कृता जायन्ते॥५॥

पत्रर्थ: है विद्वान्! जैसे (इन्द्र:) सूर्य्य (वज्रेण) किरणों से (वृत्रस्य) मेघ के (अप:) जलों को (अभिक्रम्य) आक्रमण करके (सानुम्) मेघ के शिखरों को छेदन करता है, वैसे (स्वराज्यम्) अपने राज्य का (अन्वयेस) सत्कार करता हुआ राजा (जिघ्नते) हनन करनेवाले (सर्माय) प्राप्त हुए शत्रु के पराजय के (ल्ये अपने सेनाओं को (चोदयन्) प्रेरणा करता हुआ (दोधतः) कुद्ध शत्रु के बल के आक्रमण से

सेना को छिन्न-भिन्न करके (**हीळितः**) प्रजाओं से अनादर को प्राप्त होता हुआ शत्रु पर क्रोध को (**अव**) कर॥५॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो सूर्य के समान अविद्यान्धकार को छुड़ा विद्या का प्रकाश कर, दुष्टों को दण्ड और धर्मात्माओं का सत्कार करते हैं, वे विद्वानों में सत्कार को प्रप्त होते हैं॥५॥

पुनस्तस्य कर्त्तव्यानि कर्माण्युपदिश्यन्ते॥

फिर उसके करने योग्य कर्मों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।

अधि सानौ नि जिंघ्नते वर्ज्रेण शृतपर्वणा।

मुन्दान इन्द्रो अर्थसः सर्खिभ्यो गातुर्मिच्छ्त्यर्चन्ननु स्वराज्यम्।। ६।।

अधि। सानौ। नि। जिघ्नते। वर्त्रेण। शृतऽपर्वणा। मृन्दानः। इन्ह्रं:। अन्यसः। सर्विऽभ्यः। गातुम्। इच्छृति। अर्चन्। अर्नु। स्वऽराज्यम्॥६॥

पदार्थ:-(अधि) उपिरभावे (सानौ) अवयवे (नि) नित्तराम् (जिन्नते) हन्त्रे (वच्चेण) (शतपर्वणा) शतान्यसंख्यातानि पर्वाण्यलं कर्माणि वा यस्मात्तेन (मस्दान्) क्रम्मयमानो हर्षयन् वा (इन्द्रः) दाता (अस्यसः) अत्रस्य (सिखभ्यः) मित्रेभ्यः (गातुम्) स्त्रिक्षितां क्रण्णम् (इच्छिति) काङ्क्षिति (अर्चन्) (अनु) (स्वराज्यम्)॥६॥

अन्वयः-हे राजन्! यथेन्द्रो विद्युच्छतपर्वामा क्रज्ञेण वृष्ट्रस्य सानावधि प्रहरन्तीव प्रकाशं निजिघ्नते मेघाय प्रतिकूलो वर्त्तते तथैव गातुमिच्छति स भवान् सिक्टिस्या सन्दान्। स्वराज्यमन्वर्चन्नन्धसो दाता भव॥६॥

भावार्थ:-अत्र श्लेषलुप्तोपमालङ्कारी यथा सर्वजगदुपकारी सूर्य्योऽस्ति, तथैव सभाद्यध्यक्षादयः सततं स्यु:॥६॥

पदार्थ:-हे राजन्! जैसे (इन्द्र:) बिह्यत् अग्नि (शतपर्वणा) असंख्यात अच्छे-अच्छे कर्मों से युक्त (वज्रेण) अपने किरणों से मेघ के (स्तानविध) अवयवों पर प्रहार करता हुआ (निजिध्नते) प्रकाश को रोकनेवाले मेघ के लिय सदैव प्रतिकूल रहता है, वैसे ही जो आप (गातुम्) उत्तम रीति से शिक्षायुक्त वाणी की (इच्छति) इच्छा करते हैं सो (सिखभ्य:) मित्रों के लिये (मन्दान:) आनन्द बढ़ाते हुए और (स्वराज्यम्) अपने राज्य का (अन्वर्चन्) सत्कार करते हुए (अन्धस:) अन्न के दाता हों॥६॥

भावार्थ: इस मन्त्र में श्लेष [और] लुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे सब जगत् का उपकार करनेवाला सूर्य्य है, वैसे ही सभाध्यक्ष आदि को भी होना चाहिये॥६॥

पुनरेतस्य कृत्यमुपदिश्यते॥

फिर इसके कृत्य का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

इन्द्र तुभ्यमिदंद्रिवोऽनुंत्तं वज्रिन् वीर्यम्।

अष्टक-१। अध्याय-५। वर्ग-२९-३१

मण्डल-१। अनुवाक-१३। सूक्त-८०

यद्ध त्यं मायिनं मृगं तमु त्वं माययावधीरर्चन्ननु स्वराज्यम्॥७॥

इन्द्रं। तुभ्यम्। इत्। अद्ग्रिऽवः। अनुत्तम्। वृद्धिन्। वीर्यम्। यत्। हु। त्यम्। मायिनम्। मृगम्। तम्। अप् इति। त्वम्। माययां। अवुधीः। अर्वन्। अनु। स्वऽराज्यम्॥७॥

पदार्थ:-(इन्द्र) सुखस्य दातः (तुभ्यम्) (इत्) अपि (अद्रिवः) मेघवत्पर्वत्युक्तराज्यालङ्कृत (अनुत्तम्) अप्रेरितं स्वाभाविकम् (विज्ञन्) प्रशस्ता वजाः शस्त्रास्त्राणि यस्य तत्सम्बुद्धौ (बीर्यम्) पराक्रमः (यत्) यतः (ह) किल (त्यम्) एतम् (मायिनम्) छलादिदोषयुक्तम् (मृगम्) परस्वापहर्त्तारम्। मृगो मार्ष्टर्गतिकर्मणः। (निरु०१.२०) (तम्) (उ) वितर्के (त्वम्) (मार्य्या) प्रज्ञया (अवधीः) हंसि (अर्चन्) (अनु) (स्वराज्यम्)॥७॥

अन्वयः-हे अद्रिवो वज्रिन्निन्द्र! त्वं यत्यं मायिनं मृगं माययाहाऽधभीर्दिवः सूर्यस्येवाऽनुत्तं वीर्य्ये गृहीत्वा स्वराज्यमन्वर्चंस्तम् दण्डयसि तस्मै तुभ्यमिदेव वयं करान् ददाम॥७॥

भावार्थ:-ये प्रजापालनाय सूर्यवत्स्वबलन्यायिवद्याः प्रकाश्य कपृष्टिनो जनान् निबध्नन्ति, ते राज्यं वर्द्धयितुं करान् प्राप्तुं च शक्नुवन्ति॥७॥

पदार्थ:-हे (अद्रिव:) मेघ शिखरवत् पर्वतादि युक्त स्वराज्य से सुभूषित (विज्ञन्) अत्युत्तम शस्त्रास्त्रों से युक्त (इन्द्र) सभेश! (यत्) जिससे (विम्) इस्/(मायिनम्) कपटी (मृगम्) मृग के तुल्य पदार्थ भोगनेवाले को (मायया) बुद्धि से (ह) विश्वय करके (अवधी:) हनन करता है (दिव:) सूर्य्य के समान (अनुत्तम्) स्वाधीन पुरुषार्थ से ग्रहण किये हुए (वीर्यम्) पराक्रम को ग्रहण करके (स्वराज्यम्) अपने राज्य का (अन्वर्चन्) सत्कार करता हुआ (तम्) उसी दुष्ट को दण्ड देता है, उस (तुभ्यिमत्) तेरे ही लिये उत्तम-उत्तम धन हम लोग देवें।

भावार्थ:- जो प्रजा रक्षा के लिये सूर्य के समान शरीर और आत्मा तथा न्यायविद्याओं का प्रकाश करके कपटियों को दण्ड देते हैं। व राज्य के बढ़ाने और करों को प्राप्त होने में समर्थ होते हैं॥७॥

र्पुनरेतस्य गुणा उपदिश्यन्ते॥

फिर भी अंगुले मन्त्र में पूर्वोक्त सभाध्यक्ष और सूर्य के गुणों का वर्णन किया है॥

वि ते वन्नांसो अस्थिरत्रवृतिं नाव्याः अनुं।

महत्त हुन्द्र शीर्यं बाह्वोस्ते बलं हितमर्चन्नुन स्वराज्यम्॥८॥

त्रि ते। वेजसः। अस्थिर्न्। नुवृतिम्। नाव्याः। अनु। महत्। ते। इन्द्रः। वीर्यम्। बाह्वोः। ते। बर्लम्। हितम्। अर्चन्। अर्त्। स्वऽराज्यम्॥८॥

पदार्थ:-(वि) विशेषार्थे (ते) तव (वज्रासः) शस्त्रकलाः समूहा (अस्थिरन्) तिष्ठन्ति (नवर्तिम्) एतत्संख्याकाः (नाव्याः) नौकाः (अनु) आनुकूल्ये (महत्) (ते) तव (इन्द्र) (वीर्च्यम्) (बाह्वोः) (ते) तव (बलम्) (हितम्) सुखकारि (अर्चन्) (अनु) (स्वराज्यम्)॥८॥

अन्वयः-हे इन्द्र! सभापते! ते वज्रासो नवितं नाव्या अनु व्यस्थिरन्, यत् ते बाह्वोर्महद्वीर्यं बल्ले हितमस्ति, तेन स्वराज्यमन्वर्चन् राज्यश्रियं त्वं प्राप्नुहि॥८॥

भावार्थ:-ये राज्यं वर्धयितुमिच्छेयुस्ते बृहतीरग्न्यश्वतरीर्नीका निर्ममीरँस्ताभिर्द्धापान्तरं गत्वोऽऽगत्य व्यवहारलाभान्नुन्नीय स्वराज्यं धनधान्यैरलंकुर्यु:॥८॥

पदार्थ:-हे (इन्द्र)! जो (ते) तेरी (वन्नासः) शस्त्रास्त्रयुक्त हुद्दार सेना (नवितम्) नब्बे (नाव्याः) तारनेवाली नौकाओं को (अनुव्यस्थिरन्) अनुकूलता से व्यवस्थित करती है और जो (ते) तेरी (बाह्वोः) भुजाओं में (महत्) बड़ा (वीर्यम्) पराक्रम और (ते) तेरी भुजाओं में (बलम्) बस (हितम्) स्थित है, उससे (स्वराज्यम्) अपने राज्य का (अन्वर्चन्) यथावत सत्कार करता हुआ राज्यलक्ष्मी को तू प्राप्त हो॥८॥

भावार्थ:-जो विद्वान् राज्य के बढ़ाने की इच्छा करें, के बड़ी अग्नियन्त्र से चलाने योग्य नौकाओं को बनाकर द्वीप-द्वीपान्तरों में जा-आ के व्यवहार से धन आदि के लाभों को बढ़ा के अपने राज्य को धन-धान्य से सुभूषित करें॥८॥

पुनः राजपुरुषैः/किं कर्त्तव्यक्तित्युपदिश्यते॥

फिर राजपुरुषों को क्या करना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

सहस्रं साकर्मर्चत परि ष्टोभत विंश्वीति।

श्तैनमन्वनोनवुरिन्द्रीय ब्रह्मोद्येषुमर्चेन्ननु स्वराज्यम्॥९॥

सहस्रम्। साकम्। अर्चुता परि स्ताभत्। विष्ठितिः। शृता। एनम्। अर्नु। अनोन्वुः। इन्द्रीय। ब्रह्मी उत्ऽर्यतम्। अर्चन्। अर्नु। स्वऽराष्ट्रीम्॥९॥

पदार्थ:-(सहस्रम्) असंख्यालगुणसम्पन्नम् (साकम्) परस्परं मिलित्वा (अर्चत) सत्कुरुत (पिर) सर्वतः (स्तोभत) स्तम्भयत (विशतिः) एतत्संख्याकानि (शता) शतानि सैन्यानि (एनम्) सभाध्यक्षम् (अनु) आनुकूल्यू (अनोनवः) स्तुवत (इन्द्राय) उत्कृष्टैश्वर्य्याय (ब्रह्म) वेदं सुसंस्कृमन्नं वा (उद्यतम्) उद्वृत्तम् (अर्च्यू) (अनु) (स्वराज्यम्)॥९॥

अर्थय:- है मनुष्या! यूयं यः स्वराज्यं स्वकीयं राष्ट्रमर्चन् सत्कुर्वन् वर्त्तते तमाश्रित्य तदधर्माचरणात् पृथक् परिष्टोभत् साकं सहस्रमर्चत यं विंशतिः शतान्यन्वनोनवुर्य उद्यतं ब्रह्मार्चन् वर्तते तस्मा इन्द्राय सभाध्यक्षायान् स्तुवत॥९॥

भावार्थः-निह विरोधत्यागेन विना परस्परं सुखं भवति, निह मनुष्यैर्विद्योत्तमसुशिक्षारिहतो मिन्दितो पनुष्यः सभाद्यध्यक्षः कार्य्यः॥९॥ अष्टक-१। अध्याय-५। वर्ग-२९-३१

मण्डल-१। अनुवाक-१३। सूक्त-८०

पदार्थ: - हे मनुष्यो! तुम लोग जो सभाध्यक्ष (स्वराज्यम्) अपने राज्य का (अन्वर्चन्) सत्कार करता हुआ वर्तमान होता है (एनम्) उसका आश्रय करके उस अपने राज्य को सब प्रकार के अधर्माचरण से (परिष्टोभत) रोको, (साकम्) परस्पर मिल के (सहस्रम्) असंख्यात गुणों से युक्त पुरुषों से सहित (अर्चत) सत्कार करो। जिसको (विंशति:) बीस (शता) सैकड़े (अर्च) अर्कूलता से (अनोनवु:) स्तुति करो, जो (उद्यतम्) प्रसिद्ध (ब्रह्म) वेद वा अत्र को (अर्चन्) सत्क्रीर करता हुआ वर्तता है, उस (इन्ह्राय) अधिक सम्पत्ति वाले सभाध्यक्ष के लिये अनुकूल हो के स्तुति करो। है।

भावार्थ:-मनुष्यों को विरोध के विना छोड़े परस्पर सुख कभी नहीं होता। मनुष्यों को उचित है कि विद्या तथा उत्तम सुख से रहित और निन्दित मनुष्य को सभाध्यक्ष अदि को अधिकार कभी न देवें॥९॥

पुनस्तस्य गुणा उपदिश्यन्ते॥

फिर भी पूर्वोक्त सभाध्यक्ष के गुणों का उपदेश अंगले मन्त्र में किया है।।

इन्द्रों वृत्रस्य तिवधीं निरहन्त्सहसा सहः।

महत्तदेस्य पौंस्यं वृत्रं जेघुन्वाँ असृजदर्चन्नु स्वराज्यम्॥ १०॥३०॥

इन्द्रं:। वृत्रस्यं। तर्विषीम्। नि:। अहुन्। सहस्मा सहै:। मृहत्। तत्। अस्य। पौंस्यम्। वृत्रम्। जुघुन्वान्। असुजुत्। अर्चन्। अनु। स्वुऽराज्यम्॥१०॥

पदार्थ:-(इन्द्र:) विद्युदिव पराक्रमी सभाध्यक्ष. (वृत्रस्य) मेघस्य वा शत्रोः (तिविषीम्) बलम् (निः) नितराम् (अहन्) हन्यात् (सहसा) बलन् (सहः) बलम् (महत्) (तत्) (अस्य) (पौंस्यम्) पुंसो भावः कर्म बलं वा। पौंस्यानीति, बलनामसु पठितम्। (निघं०२.९) (वृत्रम्) (जघन्वान्) हतवान् (असृजत्) सृजति (अर्चन्) (अनु) (स्वराज्यम्)॥१०॥

अन्वयः-य इन्द्रो वृत्रिम्वि शत्रुं जघन्वान् यः सहसा वृत्रस्य सूर्य्य इव शत्रोस्तविषीं निरहन्, स्वराज्यमन्वर्चन्, सुखमसृजत्, तदस्य महत्पौंस्युं सहोऽस्तीति विद्वान् विजानातु॥१०॥

भावार्थ:-अत्र चार्चकलुप्तिपमालङ्कार:। यथा सूर्यो महता बलेन तेजसा सर्वमाकृष्य प्रकाशते, तथैव सभाद्यध्यक्षाद्रिभिर्महता बलेन शुभगुणानाकृष्य न्यायप्रकाशेन राज्यमनुशासनीयम्॥१०॥

पदार्थः जो (इन्द्रः) सभाध्यक्ष विद्युत्स्वरूप सूर्य्य (वृत्रम्) मेघ को नष्ट करने के समान शत्रु को (जधन्वान्) मिरता हुआ निरन्तर हनन करता है तथा जो (सहसा) बल से सूर्य जैसे (वृत्रस्य) मेघ के बल को वैसे शत्रु के (तिवधीम्) बल को (निरहन्) निरन्तर हनन करता और (स्वराज्यम्) अपने राज्य का (अन्वर्चर्य) सत्कार करता हुआ सुख को (अस्जत्) उत्पन्न करता है (तत्) वही (अस्य) इस का (महत्) खूड़ा (पौस्यम्) पुरुषार्थरूप बल के (सह:) सहन का हेतु है॥१०॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य्य अत्यन्त बल और तेज से सर्बकी आकर्षण और प्रकाश करता है, वैसे सभाध्यक्ष आदि को उचित है कि अपने अत्यन्त बल से शुभ गुणों के आकर्षण और न्याय के प्रकाश से राज्य की शिक्षा करें॥१०॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

ड्रमे चित्तवं मृन्यवे वेपेते भियसां मृही। यदिन्द्र विज्ञन्नोर्जसा वृत्रं मुरुत्वाँ अवधीरर्चन्ननुं स्वराज्यंम्॥ ११॥

डुमे इति। चित्। तर्व। मुन्यवे। वेपेते इति। भियसा। मुही इति। यत् डुम्हा चुम्निन्। ओर्जसा। वृत्रम्। मरुत्वान्। अर्वधी:। अर्चन्। अनु। स्वऽराज्यम्॥११॥

पदार्थ:-(इमे) वक्ष्यमाणे (चित्) अपि (तव) (मन्यवे) न्यायं व्यवस्थाणे लनहेतवे (वेपेते) चलतः (भियसा) भयेन (मही) महत्यौ द्यावापृथिव्यौ (यत्) यूर्ण्य (इन्द्र) सभाद्यध्यक्षराजन् (विज्रन्) सुशिक्षितशस्त्रविद्यायुक्त (ओजसा) सेनाबलेन (वृत्रम्) पेघिमवारीन् (मरुत्वान्) प्रशस्तवायुमान् (अवधी:) हिन्धि (अर्चन्) (अनु) (स्वराज्यम्)॥११॥

अन्वय:-हे विज्ञिनिन्द्र सभाद्यध्यक्ष! यद्यस्य तवौज्ञास यथा सूर्यस्याकर्षणेन ताडनेन चेमे मही वेपेते तत्तुल्यस्य तव भियसा मन्यवे बलेन शत्रवोऽनुकम्पन्ते यथा मरुत्वानिन्द्री बृत्रं हिन्तु तथा स्वराज्यमन्वर्चन्नरांश्चिदवधी:॥११॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्करः। यथा सभाप्रबन्धेन प्रजा: सुखेन सन्मार्गेण गच्छन्त्यागच्छन्ति तथैव सूर्यस्याकर्षणेन सर्वे भूगोला गच्छन्त्यागच्छन्ति यथा सूर्यो मेघं हत्वा जलेन प्रजा: पालयित, तथैव सभासभाद्यध्यक्षे सञ्चलायो हत्वा विद्यान्यायप्रचारेण प्रजा: पालयेताम्॥११॥

पदार्थ:-हे (विज्ञन्) शस्त्रविद्या को ठीक-ठीक जाननेवाले (इन्द्र) सभाध्यक्ष राजन्! (यत्) जिस (तव) आपके (ओजसा) सेना के बल से जैसे सूर्य के आकर्षण और ताड़न से (इमे) ये (मही) लोक (वेपेते) कँपते हैं, उनके समान जो आप (शियसा) भयबल से (मन्यवे) क्रोध की शान्ति के लिये शत्रु लोग (अनु) अनुकूल होके कम्पते रहते हैं जैसे (मरुत्वान्) बहुत वायु से युक्त सूर्य (वृत्रम्) मेघ को मारता है, वैसे ही (स्वराज्यम्) अपने राज्य का (अर्चन्) सत्कार करता हुआ (चित्) और शत्रु को (अवधी:) मारा करा। ११॥

भावार्थ: -इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सभाप्रबन्ध के होने से सुखपूर्वक प्रजा के मनुष्य अच्छे मार्ग में चलते-चलाते हैं, वैसे ही सूर्य के आकर्षण से सब भूगोल इधर-उधर चलते-फिरते हैं। जैसे सूर्य मेघ को वर्षा के सब प्रजा का पालन करता है, वैसे सभा और सभापित आदि को भी किह्ये कि शत्रु और अन्याय का नाश करके विद्या और न्याय के प्रचार से प्रजा का पालन करें।। ११%

अष्टक-१। अध्याय-५। वर्ग-२९-३१

मण्डल-१। अनुवाक-१३। सूक्त-८०

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर भी सभाध्यक्ष कैसा हो, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

न वेपसा न तन्यतेन्द्रं वृत्रो वि बीभयत्।

अभ्येनं वर्ज्र आयुसः सहस्रभृष्टिरायुतार्चन्ननुं स्वराज्यम्॥१२॥

न। वेपसा। न। तुन्यता। इन्द्रम्। वृत्रः। वि। बीभ्यत्। अभि। एनम्। वर्त्रः। आयसः। सहस्रंऽभृष्टिः। आयत्। अर्चन्। अर्नु। स्वऽराज्यम्॥१२॥

पदार्थ:-(न) निषेधार्थे (वेपसा) वेगेन (न) निषेधे (तन्यता) तन्यतुना गर्जनेन शब्देन। अत्र सुपां सुलुगिति डादेश:। (इन्द्रम्) सभाद्यध्यक्षम् (वृत्र:) मेघ इव शत्रुः (कि) विशेषे (वीभयत्) भियतुं शक्नोति (अभि) आभिमुख्ये (एनम्) शत्रुं पर्जन्यं वा (वज्रः) शस्त्रसमूहः किस्ऐसमूहो वा (आयसः) अयसा निष्पत्रस्तेजोमयो वा (सहस्रभृष्टिः) सहस्रमसंख्याता भृष्टयः पिडा दाह्य वा यस्मात् सः (आयत) समन्ताद्धन्ति। अत्र यमो गन्धने। (अष्टा०१.२.१५) (अर्चन्) (अन्) (स्वराज्यम्)॥१२॥

अन्वय:-हे सभाध्यक्ष! स्वराज्यमन्वर्चंस्त्वं यथा वृत्र इन्ह्र्विपक्षा न विबीभयत् तन्यता न विबीभयदेनं मेघं प्रति सूर्यप्रेरित: सहस्रभृष्टिरायसो वज्रोऽभ्यायत तथा शत्रून् प्रति भव्रमश्रा

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। यथि मेघाद्यः सूर्यस्य पराजयं कर्तुं न शक्नुवन्ति, तथैव शत्रवो धार्मिकौ सभाद्यध्यक्षौ परिभवतिुत्र शक्नुव्यत्ति॥१२॥

पदार्थ: – हे सभापते! (स्वराज्यमन्त्रर्वन्) अपने राज्य का सत्कार करता हुआ तू जैसे (वृत्रः) मेघ (वेपसा) वेग से (इन्द्रम्) सूर्य्य को (न विवीपयत्) भय प्राप्त नहीं करा सकता और वह मेघ [गर्जन वा] प्रकाश की हुई (तन्यता) बिजुली से भी भय को (न) नहीं दे सकता (एनम्) इस मेघ के ऊपर सूर्यप्रेरित (सहस्रभृष्टिः) सहस्र प्रकार के द्वहरू से युक्त (आयसः) लोहा के शस्त्र वा आग्नेयास्त्र के तुल्य (वज्रः) वज्ररूप किरण (अभ्यायत) चूलें और से प्राप्त होता है, वैसे शत्रुओं पर आप हूजिये॥१२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकर्तुं प्रोपमालङ्कार है। जैसे मेघ आदि सूर्य्य को नहीं जीत सकते, वैसे ही शत्रु भी धर्मात्मा सभा और सुभापति का तिरस्कार नहीं कर सकते॥१२॥

पुन स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर भी अगले मन्त्र में सभाध्यक्ष के गुणों का उपदेश किया है।।

यद्वत्रं त्व चाशनिं वज्रेण समयोधयः।

🕰 हिमिन्द्र जिघांसतो दिवि ते बद्बधे शवोऽर्चुन्ननु स्वराज्यम्॥ १३॥

कत्। वृत्रम्। तर्व। चु। अ्शनिम्। वर्ज्रेण। सुम्ऽअयोधयः। अहिम्। इन्द्रु। जिघांसतः। दिवि। ते। बुद्बुधे। भर्वः। अवीप्। अर्नु। स्वऽराज्यम्॥१३॥

पदार्थ:-(यत्) यथा (वृत्रम्) (तव) (च) समुच्चये (अशिनम्) विद्युतम् (वन्नेण) प्रापणिने (समयोधयः) सम्यग्योधयसि (अहिम्) व्यापनशीलं मेघम् (इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त (जिद्यांसतः) हन्तुमिच्छतः (दिवि) आकाशे (ते) तव (बद्बधे) अत्र वाच्छन्दसीति सन् हलादिः शेषो न भविले (शवः) बलम् (अर्चन्) (अनु) (स्वराज्यम्)॥१३॥

अन्वय:-हे इन्द्र! स्वराज्यमन्वर्चस्त्वं यद्यथा दिवि सूर्य्योऽशिनं प्रहृत्याऽहिं बद्बधे तथा क्रेषे शस्त्रास्त्रैः स्वसेनास्ता शत्रुभिस्सह समयोधयः शत्रून् जिघांसतस्तव शवो बलमुत्तमं भवतु एवं वर्तस्त्रनस्य ते ते यशश्च विर्धिष्यते॥१३॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। यथा सूर्य: किरणसमूहेन विद्युतं वृत्रेण योधयित, तथैव सेनाध्यक्ष आग्नेयास्त्रयुक्ता सेना शत्रुबलेन सह योधयेत्। न हीदृशस्य सेनाप्तः कवीचित्पराजयो भिवतुं शक्य:॥१३॥

पदार्थ:-हे (इन्द्र) परमैश्वर्य्ययुक्त सभेश! (स्वराज्यम्) अपने राज्य का (अन्वर्चन्) सत्कार करता हुआ तू (यत्) जैसे (दिवि) आकाश में सूर्य्य (अशिनम्) बिजुली क्रा प्रहार करके (वृत्रम्) कुटिल (अहिम्) मेघ का (बद्बधे) हनन करता है वैसे (वज्रेण) शस्त्रास्त्रों से सहित अपनी सेनाओं का शत्रुओं के साथ (समयोधयः) अच्छे प्रकार युद्ध करा शत्रुओं को (जिंचांस्तः) मारनेवाले (तव) आपके (शवः) बल अर्थात् सेना का विजय हो, इस प्रकार वर्तमान करनेहारे (क्र) आपका (च) यश बढ़ेगा॥१३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालिङ्कार है। औस सूर्य्य अपने बहुत से किरणों से बिजुली और मेघ का परस्पर युद्ध करता है, वैसे ही सेनाफित अपनिय आदि अस्त्रयुक्त सेना को शत्रुसेना के साथ युद्ध करावे। इस प्रकार के सेनापित का कभी क्रिएज्य महीं हो सकता॥१३॥

पुनस्तस्य कि कृत्यमस्तीत्युपदिश्यते॥

फिर इस सभाध्यक्ष की क्या करना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अभिष्टुने ते अद्रिवो बत्स्था जर्गच्ये रेजते।

त्वष्टा चित्तवं मुख्यकं इन्द्रं वृर्विज्यते भियार्चन्ननुं स्वराज्यम्॥ १४॥

अभिऽस्तने। ते। अद्भित्वः। यत्। स्थाः। जर्गत्। च्। रेजते। त्वष्टां। चित्। तर्व। मन्यवे। इन्द्रं। वेविज्यते। भिया। अर्चन्। अनु। स्वऽराज्यम्॥ १४॥

पदार्थः (अभिष्ठने) अभितः शब्दयुक्ते व्यवहारे (ते) तव (अद्रिवः) बहुमेघयुक्तसूय्यवित्सेनायुक्त (यत्) यदा (स्थाः) स्थावरम् (जगत्) जङ्गमम् (च) (रेजते) कम्पते (त्वष्टा) क्षेता (चित्) अपि (तव) (मन्यवे) क्रोधाय (इन्द्र) राज्यधारक सभाद्यध्यक्ष (वेविज्यते) अत्यन्तं विभेति सम्यक् (भिया) भयेन (अर्चन्) (अनु) (स्वराज्यम्)॥१४॥

अष्टक-१। अध्याय-५। वर्ग-२९-३१

मण्डल-१। अनुवाक-१३। सूक्त-८०

अन्वय:-हे अद्रिव इन्द्र! यद्यदा ते तवाभिष्टने स्था जगच्च रेजते त्वष्टा सेनापतिस्तव मन्यवे ते भिया चिद्वेविज्यते तदा भवान् स्वराज्यमन्वर्चन् सुखी भवेत्॥१४॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। मनुष्यैर्यथा सूर्यस्य योगेन प्राणिन: स्वस्वक्रमस् प्रवस्ति, भूगोला यथानुक्रमं भ्रमन्ति, तथैव सभया प्रशासितस्य राज्यस्य योगेन सर्वे प्राणिनो धुर्मेण स्वस्वव्यवहारे वर्त्तित्वा सन्मार्गेऽनुचलन्तीति वेद्यम्॥१४॥

पदार्थ:-हे (अद्रिव:) बहुमेघयुक्त सूर्य्य के समान (इन्द्र:) परमैश्वर्ययूक्त सभाध्यक्ष (यत्) जब (ते) आपके (अभिष्टने) सर्वथा उत्तम न्याययुक्त व्यवहार में (स्था:) स्थावर (जगच्च) और जङ्गम (रेजते) कम्पायमान होता है तथा जो (त्वष्टा) शत्रुच्छेदक सेनापित है (तब्ब) उसके (मन्यवे) क्रोध के लिये (भिया चित्) भय से भी (वेविज्यते) उद्विग्न होता है, तब अप (स्वयाज्यम्) अपने राज्य का (अन्वर्चन्) सत्कार करते हुए सुखी हो सकते हैं॥१४॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्टीं को च्याहिए कि जैसे सूर्य के योग से प्राणधारी अपने-अपने कर्म में वर्त्तते और सब भूगोल अपनी कप्ती में यथावत् भ्रमण करते हैं, वैसे ही सभा से प्रशासन किये राज्य के संयोग से सब मनुष्यादि प्राणि धर्म के साथ अपने-अपने व्यवहार में वर्त्त के सन्मार्ग में अनुकूलता से गमनाग्रान करते हैं। १४॥

अथेश्वरं परमविद्वांसञ्च प्राप्य विद्वासः क्रि कुर्वन्तीत्युपदिश्यते॥

अब ईश्वर और परम विद्वान् को प्राप्त होकर विद्वान् लोग क्या-क्या करें, यह विषय अगले मन्त्र

नहि नु यादधीमसीन्द्रं को बीर्या परः

तस्मिन् नृम्णमुत क्रतुं द्वेवा ओओंसि सं देधुरर्चन्ननुं स्वराज्यम्॥ १५॥

नुहि। नु। यात्। अधिऽहुमसि। इन्द्रम्। को। वीर्या। पुरः। तस्मिन्। नृम्णम्। उत। क्रतुम्। देवाः। ओजांसि। सम्। दुधुः। अर्चन्। अर्नु। स्वरुराज्यम्। १५/।

पदार्थ:-(निह) जिषेश (न) शीघ्रं (यात्) यायात्। लेट् प्रयोगः। (अधीमिस) सर्वोपिर विराजमानं प्राप्नुमः (इन्द्रम्) अनन्तपराक्रमं जगदीश्वरं पूर्णं वीर्य्यं विद्वांसं वा (कः) कश्चित् (वीर्या) विद्यादिवीर्याणि (परः) प्रकृष्टगुप्पः (कस्मिन्) इन्द्रे (नृम्णम्) धनम् (उत) अपि (क्रतुम्) प्रज्ञां पुरुषार्थं वा (देवाः) विद्वांसः (ओजांसि) शरीपत्यमिनः पराक्रमान् (सम्) सम्यक् (दधः) दधित। अन्यत् सर्वे पूर्ववद् बोध्यम्। (अर्चन्) (अनु) (स्वराज्यम्)॥१५॥

अस्य:-यः परः स्वराज्यमन्वर्चन् वर्त्तते यस्मिन् देवा नृम्णमुत क्रतुमुताप्योजांसि नु निह संदधुर्यं प्राप्य वीर्म्याधीमेसि तमिन्द्रं प्राप्य कः नृम्णं निह यात् तस्मिन् को नृम्णमुत क्रतुमप्योजांसि निह सन्दध्यात्॥१५॥ ३७ऽ

ऋग्वेदभाष्यम्

भावार्थ:-निह कश्चिदपि परमेश्वरं विद्वांसं चाप्राप्य विद्यां शुद्धां धियमुत्कृष्टं सामर्थ्यं प्रीप्तुं शक्नोति, तस्मादेतदाश्रयः सदा सर्वै: कर्त्तव्यः॥१५॥

पदार्थ:-जो (पर:) उत्तमगुणयुक्त राजा (स्वराज्यम्) अपने राज्य का (अन्वर्चन्) अपनिता रे सत्कार करता हुआ वर्त्तता है, जिस राज्य में (देवा:) दिव्यगुणयुक्त विद्वान् लोग (नृम्णम्) धन को (क्रतुम्) और बुद्धि वा पुरुषार्थ को (उत) और भी (ओजांसि) शरीर, आत्मा और मन के परक्रमों को (संदधु:) धारण करते हैं तथा जिस परमेश्वर को प्राप्त होकर हम लोग (वीर्च्या) शिद्या आदि वीर्यों को (अधीमिस) प्राप्त होवें उस (इन्द्रम्) अनन्त पराक्रमी जगदीश्वर वा पूर्ण वीर्च्यश्चित्त राज्य को प्राप्त होकर (क:) कौन मनुष्य धन को (नु) शीघ्र (निह) (यात्) प्राप्त हो, उस राज्य में कौन पुरुष धन को तथा बुद्धि वा पुरुषार्थ वा बलों को शीघ्र नहीं धारण करता॥१५॥

भावार्थ:-कोई भी मनुष्य परमेश्वर वा परम विद्वान् की प्राप्ति के विना उत्तम विद्या और श्रेष्ठ सामर्थ्य को नहीं प्राप्त हो सकता, इस हेतु से इनका सदा आश्रय किस्ता चाहिये॥१५॥

पुनर्मनुष्यस्तौ प्राप्य किं प्राप्नोतीत्वुपदिश्यते॥

फिर मनुष्य उनको प्राप्त होकर किसको प्राप्त होते हैं, इस विषय की अगले मन्त्र में कहा है।।

यामर्थर्वा मनुष्पिता दुध्यङ् धियुमत्नेत।

तस्मिन् ब्रह्माणि पूर्वथेन्द्रं उक्था समग्रुतर्चिन्ननु स्त्र्रराज्यम्।। १६ ॥ ३ १॥ ५ ॥

याम्। अर्थर्वा। मर्नुः। पिताः। दुध्यङ्। श्रियम्। अत्नेतुः तस्मिन्। ब्रह्मीण। पूर्वऽर्था। इन्द्रे। उक्था। सम्। अग्मत्। अर्चन्। अर्नु। स्वऽराज्यम्॥ १६॥

पदार्थ:-(याम्) वक्ष्यमाणम् (अथवां) हिंसादिदोषरहितः (मनुः) विज्ञानवान् (पिता) अनूचानोऽध्यापकः (दध्यङ्) दधित येप्ते दधयः सद्गुणास्तानञ्चित प्रापयित वा सः। अत्र कृतो बहुलिमिति करणे किस्ततोऽञ्चतः किवम्। (धियम्) शुभविद्यादिगुणिक्रियाधारिकां बुद्धिम् (अलत) प्रयतध्वम् (तिस्मन्) (ब्रह्माणि) प्रकृष्टान्यन्नानि धनानि (पूर्वथा) पूर्वाणि (इन्द्रे) सम्यक् सेविते (उक्था) वक्तुं योग्यानि (सम्) सम्वक् (अग्मृत) प्राप्नुत अन्यत्सर्वं पूर्ववत् (अर्चन्) (अनु) (स्वराज्यम्)॥१६॥

अन्वय:-हे मनुष्या! यथा स्वराज्यमन्वर्चन् दध्यङ्ङ्थर्वा पिता मनुर्यां धियं प्राप्य यस्मिन् सुखानि तनुते तथैतां प्राप्य यूयं सुखान्यत्नुती यस्मित्रिन्द्रे पूर्वथा ब्रह्माण्युक्था प्राप्नोति तस्मिन् सेविते सप्येतानि समग्मत सङ्गच्छध्वम्॥१६॥

भावार्थः अप्रे वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। मनुष्यैः परमेश्वरोपासकानां विद्वत्सङ्गप्रीतीनामनुकरणं कृत्वा प्रश्नस्तां प्रजामनुत्तमान्यन्नानि धनानि वा वेदविद्यासुशिक्षितानि भाषणानि प्राप्यैतानि सर्वेभ्यो देयानि। १२॥

अष्टक-१। अध्याय-५। वर्ग-२९-३१

मण्डल-१। अनुवाक-१३। सूक्त-८०

अस्मिन् सूक्ते सभाध्यक्षसूर्यविद्वदीश्वरशब्दार्थवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेदितव्यम्॥

इत्यशीतितमं ८० सूक्तमेकत्रिंशत्तमो ३१ वर्गश्च समाप्तः॥

अस्मिन्नध्याय इन्द्रमरुदग्निसभाद्यध्यक्षस्वराज्यपालनाद्युक्तत्वाच्चतुर्थाध्या<u>र्थीन</u> सहास्य पञ्चमाध्यायार्थस्य सङ्गतिरस्तीति वेदितव्यम्॥

इति श्रीमत्परिव्राजकाचार्याणां श्रीयुतिवरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां शिष्येण दयानन्दसरस्वतीस्वामिना विरचिते संस्कृतार्यभाषाभ्यां सुविभूषिते ऋग्वेदभाष्ये पञ्चमोऽध्यायः स्माफ्रिम्मम्मू॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! तुम लोग जैसे (स्वराज्यम्) अपने राष्ट्रिंश के उन्नित्त से सबका (अन्वर्चन्) सत्कार करता हुआ (दध्यङ्) उत्तम गुणों को प्राप्त होनेवाला (अथवां) हिंसा औदि दोषरहित (पिता) वेद का प्रवक्ता अध्यापक वा (मनुः) विज्ञानवाला मनुष्य ये (याम्) जिस (ध्रियम्) शुभ विद्या आदि गुण क्रिया के धारण करनेवाली बुद्धि को प्राप्त होकर जिस व्यवहार में सुखों को (अत्नत) विस्तार करते हैं, वैसे इसको प्राप्त होकर (तस्मिन्) उस व्यवहार में सुखों का विस्तार करों और जिस (इन्द्रे) अच्छे प्रकार सेवित परमेश्वर में (पूर्वथा) पूर्व पुरुषों के तुल्य (ब्रह्माण्) उत्तम अन्न, धन (उक्था) कहने योग्य वचन प्राप्त होते हैं (तस्मिन्) उसको सेवित कर तुम भी उन्को (स्मागत) प्राप्त होओ॥१६॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्य परमेश्वर की उपासना करनेवाले विद्वानों के संग प्रीति के सदृश कर्म करके सुन्दर खुद्धि, उत्तम अत्र, धन और वेदविद्या से सुशिक्षित संभाषणों को प्राप्त होकर उनको सब मनुष्यों के लिये देने साहिये॥१६॥

इस सूक्त में सभा आद्भि अध्यक्षे सूर्य, विद्वान् और ईश्वर शब्दार्थ का वर्णन करने से पूर्वसूक्त के साथ इस सूक्त के अर्थ की संगति जाननी चाहिये॥

यह अस्सीवा ४० भूक्त और इकत्तीसवां ३१ वर्ग समाप्त हुआ॥

इस अध्याय में इन्द्र में स्त्रे, अग्नि, सभा आदि के अध्यक्ष और अपने राज्य का पालन आदि का वर्णन करने से चतुर्थ अध्याय के अर्थ के साथ पञ्चम अध्याय के अर्थ की संगति जाननी चाहिये॥

इति श्रीमत्परिव्यक्तकोत्सर्य श्रीयुतिवरजानन्दसरस्वतीस्वामी जी के शिष्य श्रीमहयानन्दसरस्वतीस्वामी ने संस्कृत श्रीर आर्यभाषाओं से सुभूषित ऋग्वेदभाष्य में पञ्चम अध्याय पूरा किया॥

॥ओ३म्॥

अथ प्रथमाष्ट्रके षष्टाध्याय आरम्भते

अथ पञ्चमाध्यायारम्भः॥

विश्वांनि देव सवितर्दुरितानि पर्रा सुव। यद्धद्रं तन्न आ सुव।। ऋ०५ ६२.५॥ अथ नवर्चस्यैकाशीतितमस्य सूक्तस्य राहूगणो गोतम ऋषिः। इन्द्रो देवता १५,७,६ विराट् पङ्क्तिः। ३-६, ९ निचृदास्तारपङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः। २ भुरिग्र बृहती छन्दः। मध्यमः

स्वर:॥

अथ सभाध्यक्षगुणा उपदिश्यन्ते॥

अब अगले मन्त्र में सभाध्यक्ष के गुणों का उपदेश किया है

इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभिः।

तिमन्महत्स्वाजिषूतेमभे हवामहे स वाजेषु प्र लेडिक्षित्। रे।।

इन्ह्रंः। मदाय। वृत्रुधे। श्रवसे। वृत्रुऽहा। नृऽभिः। तम्। इत्। मुहत्ऽसुं। आजिषुं। उत। ईम्। अभें। हुवामहे। सः। वाजेषु। प्र। नुः। अविष्त्।। १॥

पदार्थ:-(इन्द्र:) शत्रुगणिवदारियता स्माध्यक्ष: (प्रदाय) स्वस्य भृत्यानां हर्षकरणाय (वावृधे) वर्धते। अत्र तुजादीनािमत्यभ्यासदीर्घ:। (श्रवसे) बलाय (वृत्रहा) मेघहन्ता सूर्य इव शत्रूणां हन्ता (नृभि:) सेनासभाप्रजास्थै: पुरुषै: सह मित्रत्वेन वृत्तीिनः (तम्) (इत्) एव (महत्सु) महाप्रबलेषु (आजिषु) संग्रामेषु (उत) अपि (ईम्) प्राप्तव्यो विजयः (अभे) अल्पे संग्रामे (हवामहे) आदद्यः (सः) (वाजेषु) संग्रामेषु (प्र) प्रकृष्टार्थे (नः) अस्प्रवस्माकं षा (अविषत्) रणादिकं व्याप्नोतु॥१॥

अन्वयः-वयं यो वृत्रहा सूर्ष इवेन्द्रः सेनाध्यक्षो नृभिः सह वर्त्तमानः शवसे मदाय वावृधे यं महत्स्वाजिषूताप्यर्भे हवामहे तिमदीं सेनाद्यध्यक्षं स्क्रीकुर्यामे स व्यजिषु नः प्राविषत्॥१॥

भावार्थ:-मनुष्येर्थः पूर्णिविद्यो बलिष्ठो धार्मिकः सर्विहितैषी शस्त्रास्त्रप्रहारे शिक्षायां च कुशलो भृत्येषु वीरेषु योद्भृषु पितृबद्धर्त्तमानो देशकालानुकूलत्वेन युद्धकरणाय सामयिकव्यवहारज्ञो भवेत् स सेनाध्यक्षः कर्त्तृव्यो स्तरः॥ श्र

पदार्थ: हम लोग जो (वृत्रहा) सूर्य्य के समान (इन्द्र:) सेनापित (नृभि:) शूरवीर नायकों के साथ (श्रृत्वसे) बले और (मदाय) आनन्द के लिये (वावृधे) बढ़ता है, जिस (महत्सु) बड़े (आजिषु) संग्रामों (उत्ते) और (अभें) छोटे-संग्रामों में (हवामहे) बुलाते और (तिमत्) उसीको (ईम्) सब प्रकार से

अष्टक-१। अध्याय-६। वर्ग-१-२

मण्डल-१। अनुवाक-१३। सूक्त-८१

सेनाध्यक्ष कहते हैं (स:) वह (वाजेषु) संग्रामों में (न:) हम लोगों की (प्राविषत्) अच्छे प्रकार रक्षा करे॥१॥

भावार्थ:-मनुष्यों को उचित है कि जो पूर्ण विद्वान्, अति बलिष्ठ, धार्मिक सब्बी हित चहिने वाला, शस्त्रास्त्र क्रिया और शिक्षा में अतिचतुर, भृत्य, वीरपुरुष और योद्धाओं में पिता के समान, देशकाल के अनुकूलता से युद्ध करने के लिये समय के अनुकूल व्यवहार जान्नीवाला हो, उसी को सेनापित करना चाहिये, अन्य को नहीं॥१॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा हो, इस विषय का उपदेश अगले मून्त्र में किया है।

असि हि वींर सेन्योऽसि भूरि परादुदि:।

असि दुभ्रस्य चिद्वृधो यर्जमानाय शिक्षसि सुन्वते भूरि ते बसु।। २॥

असिं। हि। वीर्। सेन्यः। असिं। भूरिं। प्राऽद्दिः। असिं। दुभस्य। विवा वृधः। यर्जमानाय। शिक्षसि। सुन्वते। भूरिं। ते। वसुं॥२॥

पदार्थ:-(असि) (हि) खलु (वीर) शत्रूणां सेनाबलं च्याप्रं शील (सेन्य:) सेनासु साधुस्सेनाभ्यो हितो वा (भूरि) बहु (परादिदः) पराञ्च्छूत्रूनादाता (असि) (दभ्रस्य) हस्वस्य। दभ्रमिति हस्वनामसु पिठतम्। (निघं०३.२) (चित्) अपि (वृधः) ये युद्धे बर्लन्ते तान् (यजमानाय) अभयदात्रे (शिक्षसि) युद्धिवद्यां ददासि (सुन्वते) सुखानामभिषिक्षित्रे (भूरि) बहुँ (ते) तुभ्यम् (वसु) उत्तमं द्रव्यम्॥२॥

अन्वय:-हे वीर सेनापते! यस्त्वं हि धूरि सिन्योऽस्सँ परादिदरसि दभ्रस्य चिन्महतो युद्धस्यापि विजेतासि वृधो वीरान् शिक्षसि तस्मै सुन्वते यजमानाय ते तुभ्ये भूरि वस्वस्ति॥२॥

भावार्थ: -यथा सेनापित्रिंश: सेना सदा शिक्षणीया पालनीया हर्षयितव्याऽस्ति, तथैव सेनास्थै: सेनापतय: पालनीया: सन्तीति। सा

पदार्थ: - हे वीर सेनापते! जो तू (हि) निश्चय करके (भूरि) बहुत (सेन्य:) सेनायुक्त (असि) है (भूरि) बहुत प्रकार से (परादिः) रात्रुओं के बल को नष्ट कर ग्रहण करनेवाला है (दभ्रस्य) छोटे (चित्) और (महतः) बड़े युद्ध का जीतनेवाला (असि) है (वृधः) बल से बढ़ानेवाले वीरों को (शिक्षिसि) शिक्षा करता है, उस (सुन्वते) विजय की प्राप्ति करनेहारे (यजमानाय) सुख देनेवाले (ते) तेरे लिये (भूरि) बहुत (वसु) धन प्रप्त हो॥२॥

भावार्थ:=भृत्य लोग जैसे सेनापतियों से सेना शिक्षित, पाली और सुखी की जाती है, वैसे सेनाम्थ भत्रों से सेनापतियों का पालन और उनको आनन्दित करना योग्य है॥२॥

पुनरेतै: परस्परं कथं वर्त्तितव्यमित्युपदिश्यते॥

८८०

ऋग्वेदभाष्यम्

फिर इनको परस्पर कैसे वर्ताव रखना चाहिये, सो अगले मन्त्र में कहा है॥

यदुदीरत आजयो धृष्णवे धीयते धना।

युक्ष्वा मदुच्युता हरी कं हनः कं वसौ दधोऽस्माँ ईन्द्र वसौ दधः॥३॥

यत्। उत्ऽईरते। आजर्यः। धृष्णवे। धीयते। धनां। युक्ष्व। मद्ऽच्युतां। हरी इति। कम्। हनेः कम्। वसौं। दुधः। अस्मान्। इन्द्र। वसौं। दुधः॥३॥

पदार्थ:-(यत्) यदा (उदीरते) उत्कृष्टा जायन्ते (आजयः) संग्रामाः (धृष्णवे) दृढत्वाय (ध्रीयते) धरित (धना) धनानि (युक्ष्व) योजय। अत्र द्वयचोऽतिस्तङ इति दीर्घः। (मदच्युता) यौ मदान्हर्षान् च्यवेते प्राप्नुतस्तौ (हरी) रथादीनां हरणशीलावश्चौ (कम्) शत्रुम् (हनः) हन्याः (कम्) मित्रम् (वसौ) धने (दधः) दध्याः (अस्मान्) (इन्द्र) पालयितः (वसौ) धनसमूहे (दधः) दध्याः॥ हम

अन्वय:-हे इन्द्र! यद्यदाऽऽजय उदीरते तदा भवान् धृष्णवे [धना धौषते पूर्व मदच्युता हरी युक्ष्व कं] कञ्चिच्छत्रुं हनः कञ्चिन्मित्रं वसौ दधोऽतोऽस्मान् वसौ दधः॥३॥

भावार्थ:-यदा युद्धानि कर्त्तव्यानि भवेयुस्तदा सेनापतयो यानशस्त्रास्त्रभोजनाच्छादनसामग्रीरलंकृत्य कांश्चिच्छत्रून् हत्वा क्रिश्चिन्मित्रान् सत्कृत्य युद्धादिकार्येषु धार्मिकान् संयोज्य युक्त्या योधयित्वा युध्वा च सततं विजयान् प्राप्नुय:॥३॥

पदार्थ:-हे (इन्द्र) सेना के स्वामी! (यत्) ज्व (आज्र्यः) संग्राम (उदीरते) उत्कृष्टता से प्राप्त हों तब (धृष्णवे) दृढ़ता के लिये (धना) धनों के (धीयते) अरता है सो तू (मदच्युता) बड़े बलिष्ठ (हरी) घोड़ों को रथादि में (युक्षव) युक्त कर (क्व्यू) किसी भूग्रु को (हनः) मार (क्रम्) किसी मित्र को (वसौ) धन कोष में (दधः) धारण कर और (अस्मान्) हमको (वसौ) धन में (दधः) अधिकारी कर॥३॥

भावार्थ: -जब युद्ध करना हो तो तब सेनापित लोग सवारी शतघ्नी (तोप), भुशुण्डी (बंदूक) आदि शस्त्र, आग्नेय आदि अस्त्र और भोजन आच्छादन आदि सामग्री को पूर्ण करके किन्हीं शत्रुओं को मार, किन्ही मित्रों का सत्कार कर, युद्धादि क्रमीं में धर्मात्मा जनों को संयुक्त कर, युक्ति से युद्ध कराके सदा विजय को प्राप्त हों

पुनः सेनापतिः किं कुर्यादित्युपदिश्यते॥

फिर सेनापित क्या करे, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

क्रत्व पहाँ अनुष्वधं भीम आ वावधे शर्वः।

श्चिय ऋष्य उपाकयोर्नि शिप्री हरिवान् दधे हस्तयोर्वर्जमायसम्॥४॥

क्रेत्वां। महान्। अनुऽस्वधम्। भीमः। आ। वृवृधे। शर्वः। श्रिये। ऋष्वः। उपाकयोः। नि। शिप्री। हरिंऽवान्। दुधे हस्त्र्याः। बुर्जम्। आयुसम्॥४॥ अष्टक-१। अध्याय-६। वर्ग-१-२

मण्डल-१। अनुवाक-१३। सूक्त-८१

पदार्थ:-(क्रत्वा) प्रज्ञया कर्मणा वा (महान्) सर्वोत्कृष्टः (अनुष्वधम्) स्वधामन्नमनुकूलम् (भीमः) विभेति यस्मात् सः (आ) सर्वतः (वावृधे) वर्धते (शवः) सुखवर्धकं बलम् (श्रिये) शोभाये धारप्राप्तके वा (ऋष्वः) प्राप्तविद्यः (उपाकयोः) समीपस्थयोः सेनयोः (नि) नितराम् (शिप्री) शृद्धणामाक्रोशिकः (हिरवान्) प्रशस्ता हरयोऽश्वा विद्यन्ते यस्य सः (दधे) धरामि (हस्तयोः) कृष्योमिश्रे (वज्रम्) शस्त्रसमूहम् (आयसम्) अयोमयम्॥४॥

अन्वय:-यो हरिवान् शिप्री भीमो महानृष्वः शवः सेनापितः क्रत्वाऽनुष्वध्नं निववेशे श्रिय उपाकयो-र्हस्तयोरायसं वज्रमादधे, स एव शत्रून् विजित्य राज्याधिकारी भवति॥४॥

भावार्थ:-मनुष्यैर्यो बुद्धिमान् महोत्तमगुणविशिष्टः शत्रूणां भयङ्करः सेन्।शिक्षकोऽतियोद्धा वर्त्तते तं सेनापतिं कृत्वा धर्मेण राज्यं प्रशासनीयम्॥४॥

पदार्थ:-जो (हरिवान्) बहुत उत्तम अश्वों से युक्त (शिफ्री) शतुओं के रुलाने (भीम:) और भय देनेवाला (महान्) बड़ा (ऋष्व:) प्राप्तविद्या सेनापित (शव:) हुल (क्रत्वा) प्रज्ञा वा कर्म से (अनुष्वधम्) अनुकूल अन्न को (नि, ववृधे) अत्यन्त बढ़ाता है (श्रिये) साभा और लक्ष्मी के अर्थ (उपाकयो:) समीप में प्राप्त हुई अपनी और शतुओं की सेना के समीप (हस्तयो:) हामों में (आयसम्) लोहे आदि से बनाये हुए (वज्रम्) शस्त्रसमूह को (आदधे) धारण करके शत्रुओं को जीतता है, वही राज्याऽधिकारी होता है॥४॥

भावार्थ:-मनुष्यों को योग्य है कि जी बुद्धिमान, बड़े-बड़े उत्तम गुणों से युक्त, शत्रुओं को भयकर्त्ता, सेनाओं का शिक्षक, अत्यन्त युद्ध कानेहारा पुरुष है, उसको सेनापित करके धर्म से राज्यपालन की न्यायव्यवस्था करनी चूहिया।

अथिश्वरगुणा उपदिश्यन्ते॥

अब अनेले मन्त्र में ईश्वर के गुणों का उपदेश किया है॥

आ पेप्रौ पार्थिवं रजी बद्बुझे रोचुना दिवि।

न त्वावाँ इन्द्र कश्चिन न जीतो न जीनष्यतेऽति विश्वं ववक्षिथ।।५॥१॥

आ। पुग्रौ। पार्थिवम्। स्र्वः। बुद्बुधे। रोचना। द्विव। न। त्वाऽवान्। इन्द्र। कः। चन। न। जातः। न। जुनिष्युते। अति। विश्वम्। वुवुक्षिया। ५॥

पद्मर्थ: (आ) समन्तात् (पप्रौ) प्रपूर्ति (पार्थिवम्) पृथिवीमयं पृथिव्यामन्तरिक्षे विदितं वा (रजः) प्रमाण्वादिकं वस्तु लोकसमूहं वा (बद्बधे) बीभत्सते (रोचना) सूर्यादिदीप्तिः (दिवि) प्रकाशे (न) तिषेधे (त्वावान्) त्वया सदृशः (इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त परमात्मन् (कः) (चन) अपि (न) (जातः) उत्पन्नः (न) (जनिष्यते) उत्पत्स्यते (अति) अतिशये (विश्वम्) सर्वम् (वविश्वय) वक्षसि॥५॥

अन्वयः-हे इन्द्र! यतः कश्चन त्वावात्र जातो न जनिष्यतेऽतस्त्वं विश्वं सर्वं जगद्वविक्षथ यो भवान् पार्थिवं विश्वे रज आ पप्रौ दिवि रोचनाऽतिबद्धधेऽतः स त्वमुपास्योऽसि॥५॥

भावार्थ:-हे मनुष्या! यूयं येन सर्वं जगद्रचियत्वा व्याप्य रक्ष्यते योऽजन्माऽनुपम् यो तृष्यं किंचिदिप वस्तु नास्ति कुतश्चातोऽधिकं किंचिदिप भवेत् तमेव सततमुपासीध्वम्। एतस्मित्पूथग्वस्तु नैव ग्राह्यं गणनीयं च॥५॥

पदार्थ:-हे (इन्द्र) परमैश्वर्य्ययुक्त ईश्वर! जिससे (कश्चन) कोई भी (त्वाचान्) तेरे स्तुष्ट्रश (न जातः) न हुआ (न जनिष्यते) न होगा और तू (विश्वम्) जगत् को (वविश्वथ्) यथा सम्प्य नियम में प्राप्त करता है और जो (पार्थिवम्) पृथिवी और आकाश में वर्त्तमान (रजः) परप्राणु और लोक में (आ पप्रौ) सब ओर से व्याप्त हो रहा है (दिवि) प्रकाशरूप सूर्यादि जगत् में (रोचन्) प्रकाशमान भूगोलों को (अति बद्धथे) एक-दूसरे वस्तु के आकर्षण से बद्ध करता है, वह सक्को उपास्त्र देव है॥५॥

भावार्थ: -हे मनुष्यो! आप लोग जिसने सब जगत् को रचके व्याप्त कर रक्षित किया है, जो जन्म और उपमा से रहित, जिसके तुल्य कुछ भी वस्तु नहीं है, तो उस परमेश्वर से अधिक कुछ कैसे होवे! इसकी उपासना को छोड़के अन्य किसी पृथक् वस्तु का ग्रहण के गणना मत करो॥५॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यवेश

फिर वह परमात्मा कैसा है, इस बिषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

यो अर्थो मर्तभोजनं पराददाति दाशुर्षे।

इन्द्रों अस्मभ्यं शिक्षतु वि भंजा भूरि ते वसु भक्षीय तव राधंसः॥६॥

यः। अर्यः। मुर्तुऽभोर्जनम्। पुराुऽददिसि दाुभुषे। इन्द्रः। अस्मभ्यम्। शिक्षुतुः। वि। भुजः। भूरि। ते। वस्। भुक्षीयः। तर्व। राधसः॥६॥

पदार्थ:-(य:) वक्ष्यमाणः (अर्थः) सर्वस्वामीश्वरः (मर्त्तभोजनम्) मर्तेभ्यो मनुष्येभ्यो भोजनं मर्तानां पालनं वा (पराददाति) पूर्वं प्रयच्छित (दाशुषे) दानशीलाय जीवाय (इन्द्रः) परमैश्वर्ययुक्तः (अस्मभ्यम्) (शिक्षतु) विद्यामुपाददात् (वि) विशेषे (भज) सेवस्व (भूरि) बहु (ते) तव (वसु) वस्तुजातम् (भक्षीय) सेवय (तेव) (राधसः) वृद्धिकारकस्य कार्यरूपस्य धनस्य। शेषत्वात् कर्मणि षष्ठी॥६॥

अन्वयुः/- हे विद्वन्! यं इन्द्रोऽर्य ईश्वरः ते दाशुषेऽस्मभ्यं भूरि वसु मर्त्तभोजनं च पराददाति तदुत्पन्नं भवानस्मभ्यं सदा शिक्षत्। तस्य तेष शिक्षतस्य राधसोऽहमपि भक्षीय॥६॥

भावार्थः = चंदीश्वर इदं जगद्रचियत्वा धृत्वा जीवेभ्यो न दद्यात्तर्हि न कस्यापि किंचिन्मात्रा भोगूसिम्प्यी भवितुं शक्या। यद्ययं वेदद्वारा शिक्षां न कुर्यात्तर्हि न कस्यापि विद्यालेशो भवेत्तस्माद्विदुषा सर्विषां सुखाय विद्या प्रसारणीया॥६॥ अष्टक-१। अध्याय-६। वर्ग-१-२

मण्डल-१। अनुवाक-१३। सूक्त-८१

पदार्थ: - हे विद्वन्! (य:) जो (इन्द्र) परम ऐश्वर्य का देनेहारा (अर्थ:) ईश्वर (ते) तुझ (दाशुषे) दाता और (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (भूरि) बहुत (वसु) धन को (मर्त्तभोजनम्) वा मनुष्य के भोजनार्श्व पदार्थ को (पराददाति) देता है उस ईश्वरनिर्मित पदार्थों की आप हमको सदा (शिक्षतु) शिक्षा करो और (तव) आपके (राधसः) शिक्षित कार्यरूप धन का मैं (भक्षीय) सेवन करूं॥६॥

भावार्थ: - जो ईश्वर इस जगत् को रच धारण कर जीवों को न देता तो किसी को कुछ भी भोग सामग्री प्राप्त न हो सकती। जो यह परमात्मा वेद द्वारा मनुष्यों को शिक्षा न कर्त्री तो किसी को विद्या का लेश भी प्राप्त न होता, इससे विद्वान् को योग्य है कि सबके सुख के लिए विद्या का विस्तार करना चाहिये॥६॥

पुनः स ईश्वरोपासकः कीदृश इत्युपदिश्यत्॥

फिर वह ईश्वर का उपासक कैसा है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

मदेमदे हि नो दुदिर्यूथा गर्वामृजुक्रतुः।

सं गृभाय पुरू श्तोभयाहुस्त्या वसुं शिशोहि (एय) आ और।।७॥

मर्देऽमदे। हि। नुः। दुदिः। यूथा। गर्वाम्। ऋजुङकर्तुः। सम्। गृभायः। पुरु। शृता। उभयाह्रस्त्या। वर्सु। शिशीहि। रायः। आ। भुरु॥७॥

पदार्थ:-(मदेमदे) हर्षे हर्षे (हि) खलू (मः) असम्भ्यम् (दिदः) दाता (यूथा) समूहान् (गवाम्) रश्मीनामिन्द्रियाणां पशूनां वा (ऋजुक्रतुः) ऋजवः क्रुत्रवः प्रज्ञाः कर्माणि वा यस्य सः (सम्) सम्यक् (गृभाय) गृहाण (पुरु) बहूनि (शता) अस्यक्यातानि (उभयाहस्त्या) समन्तादुभयत्र हस्तो येषु कर्मसु तानि तेषु साधूनि (वसु) वासस्थानानि (शिशोहि) शिनु। अत्र बहुलं छन्दसीति श्लुरन्येषामपीति दीर्घश्च। (रायः) विद्यासुवर्णादिधनसमूहान् (आ) समन्तात् (भर) धेहि॥७॥

अन्वयः-हे विद्वन्! ऋपूर्कतुर्ददिस्त्वमीश्वग्रेषासनेन मदेमदे हि नोऽस्मभ्यममुभया हस्त्या पुरु शता वसु गवां यूथा चाभर रायः सङ्गृभाय क्रिशोहि॥७॥

भावार्थ:-हे मनुष्य ये सर्वानन्दप्रदः सर्वसाधनसाध्योत्पादकः सर्वाणि धनानि प्रयच्छति, स एवेश्वरोऽस्माभिरुपुस्यो नेतरः॥७॥

पदार्थः है विद्वान्! (ऋजुक्रतुः) सरल ज्ञान और कर्मयुक्त (दिदः) दाता आप ईश्वर की आज्ञापालन और उपासना से (मदेमदे) आनन्द-आनन्द में (हि) निश्चय से (नः) हमारे लिये (उभयाह्मस्या) सेनों हाथों की क्रिया में उत्तम (पुरु) बहुत (शता) सैकड़ों (वसु) द्रव्यों का (शिशीहि) प्रबन्ध की प्रिये (गवाम्) किरण, इन्द्रियां और पशुओं के (यूथा) समूहों को (आभर) चारों ओर से धारण क्र (राष्ट्र) धनों को (संगृभाय) सम्यक् ग्रहण कर॥७॥

८८४

ऋग्वेदभाष्यम्

भावार्थ:-हे मनुष्यो! जो सब आनन्दों का देनेवाला, सब साधन-साध्य रूप पदार्थों की उत्पादक, सब धनों को देता है, वही ईश्वर हमारा उपास्य है, अन्य नहीं॥७॥

पुन: स सभेश: कीदृश स्यादित्याह॥

फिर वह सभापित कैसा हो, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

मादयस्व सुते सचा श्रवसे शूर राधसे।

विद्या हि त्वा पुरुवसुमुप कार्मान्त्ससृज्महेऽथा नोऽविता भव॥८॥

मादर्यस्व। सुते। सर्चा। शर्वसे। श्रूर्। राधसे। विद्या हि। त्वा। पुरुऽवसुम्। उपी कार्मान्। सुसृज्महे। अर्थ। नु:। अविता। भुवा।८॥

पदार्थ:-(मादयस्व) आनन्दं प्रापय (सुते) उत्पन्नेऽस्मिन् जेगति (सर्चा) सुखसमवेतेन युक्ताय (शवसे) बलाय (शूर) दुष्टदोषान् शत्रून् वा निवारयन् (राधसे) संसिद्धाय धनाय (विद्य) विजानीमः (हि) खलु (त्वा) त्वाम् (पुरुवसुम्) बहुषु धनेषु वासयितारम् (अप) सोपीच्ये (कामान्) मनोभिलषितान् (सस्जमहे) निष्पादयेम (अथ) आनन्तर्ये (नः) अस्माकमस्मान् वा (अविता) रक्षणादिकर्त्ता (भव)॥८॥

अन्वय:-हे शूर! वयं सुते पुरुवसुं त्वामुपाश्रित्याथ कार्साम् सिसृन्सहें हि विद्य च स त्वं नोऽविता भव सचा शवसे राधसे मादयस्व॥८॥

भावार्थ:-मनुष्याणां सेनापत्याश्रयेण विना श्रेत्रुविजयो कामसमृद्धिः स्वरक्षणमुत्कृष्टे धनबले परमं सुखं च प्राप्तुं न शक्यते॥८॥

पदार्थ:-हे (शूर) दुष्ट दोष और क्लुओं का निवारण करनेहारे! हम (सुते) इस उत्पन्न जगत् में (पुरुवसुम्) बहुतों को बसानेवाले (लूग) आपको (उप) आश्रय करके (अथ) पश्चात् (कामान्) अपनी कामनाओं को (ससृज्यहे) सिद्ध करते हैं (हि) निश्चय करके (विद्य) जानते भी हैं तू (न:) हमारा (अविता) रक्षक (भव) हो और इस जगत् में (सचा) संयुक्त (शवसे) बलकारक (राधसे) धन के लिये (मादयस्व) आनन्द कराया कर्मा है।

भावार्थ:-मनुष्यें को सेनापूर्ति के आश्रय के विना शत्रु का विजय, काम की सिद्धि, अपना रक्षण, उत्तम धन, बल और परमसुख प्राप्त नहीं हो सकता॥८॥

अथेश्वर: कीदृश इत्याह॥

अब ईश्वर कैसा है, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

एते ते इंद्र जन्तवो विश्वं पुष्यन्ति वार्यम्।

भूत्तर्हि ख्यो जर्नानामुर्यो वेदो अदाशुषां तेषां नो वेद आ भरा।९॥२॥

अष्टक-१। अध्याय-६। वर्ग-१-२

मण्डल-१। अनुवाक-१३। सूक्त-८१

एते। ते। इन्द्रा जन्तर्वः। विश्वम्। पुष्यन्ति। वार्यम्। अन्तः। हि। ख्यः। जनानाम्। अर्यः। वेदः। अदांशुषाम्। तेषाम्। नुः। वेदः। आ। भुरु॥९॥

पदार्थ:-(एते) सृष्टौ विद्यमानाः (ते) तव (इन्द्र) परमैश्वर्यप्रद जगदीश्वर सेनाध्यक्ष्में वा (जन्तवः) जीवाः (विश्वम्) जगत् (पुष्यन्ति) आनन्दयन्ति (वार्यम्) स्वीकर्त्तुमर्हम् (अन्तः) मध्ये (हि) खल् (ख्यः) प्रकथयसि (जनानाम्) सज्जानानां मनुष्याणाम् (अर्यः) स्वामीश्वरः (वेदः) विदन्ति सुखानि येने तद्धनम् (अदाशुषाम्) अदातॄणाम् (तेषाम्) (नः) अस्मभ्यमस्माकं वा (वेदः) विज्ञानधूनम् (आ) समन्तान् (भर) प्रापय॥९॥

अन्वयः-हे इन्द्र! यस्य ते सृष्टौ य एते जन्तवो वार्यं विश्वं पुष्यन्ति, तेषा जनानामुन्दर्मध्ये वर्त्तमानामदाशुषां दानशीलतारहितानामर्यस्त्वं वेदो हि ख्यः प्रकथयसि स त्वं नोऽस्मभ्यं वेद आ भूग्राप्ता

भावार्थ:-हे मनुष्या! य ईश्वरोऽन्तर्बिहः सर्वत्र व्याप्य सर्वमन्तर्बिहःस्थं व्यवहारं जानाति सदुपदेशान् करोति सर्वजीवानां हितं चिकीर्षिति तमाश्रित्य पारम्भ्यिकव्यावद्वारिकसुखे प्राप्नुत॥९॥

अस्मिन् सूक्ते सेनापतिरीश्वरसभाध्यक्षगुणवर्णन्स्तिदुर्श्वस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेदितव्यम्॥

इत्येकाशीतितमं ८१ सूक्तं द्वितीयो २ वर्गश्च समाप्त:॥

पदार्थ:-हे (इन्द्र) परमेश्वर! जिस (ते) तिरी सृष्टि में जो (एते) ये (जन्तवः) जीव (वार्यम्) स्वीकार के योग्य (विश्वम्) जगत् को (पृष्टिन्ति) पृष्ट करते हैं (तेषाम्) उन (जनानाम्) मनुष्य आदि प्राणियों के (अन्तः) मध्य में वर्त्तमान (अदाश्वामा) दानादिकर्मरहित मनुष्यों के (अर्यः) ईश्वर तू (वेदः) जिससे सुख प्राप्त होता है उसको (हि) निश्चय करके (ख्यः) उपदेश करता है, वह तू (नः) हमारे लिये (वेदः) विज्ञानरूप धन का (आभूर) दान क्रीजिये॥९॥

भावार्थ:-हे मनुष्यो! जी ईश्वर बाहर भीतर सर्वत्र व्याप्त होकर सब भीतर-बाहर के व्यवहारों को जानता, सत्य उपदेश और सब जीनों के हित की इच्छा करता है, उसका आश्रय लेकर परमार्थ और व्यवहार सिद्ध करके सुर्खी नी तुम प्राप्त होओ॥

इस सूक्त में सेनापति, हैश्वर और सभाध्यक्ष के गुणों का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की सङ्गति पूर्व सूक्ताथ के साध्यसमझनी चाहिये॥

ष्ह इक्यासीवाँ ८१ सूक्त और दूसरा २ वर्ग समाप्त हुआ॥

अथ षडर्चस्य क्र्यशीतितमस्य सूक्तस्य राहूगणो गोतम ऋषि:। इन्द्रो देवता। १,४ निचृदास्तारपङ्क्ति:। २,३,५ विराडास्तारपङ्किश्छन्द:। पञ्चम: स्वर:। ६ विराड् जगती छन्द्रः।

निषाद: स्वर:॥

पुनस्तदुपासकः सेनेशः कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर परमात्मा का उपासक सेनापित कैसा हो, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।

उपो षु शृंणुही गिरो मघंवन्मातंथा इव।

यदा नः सूनृतावतः कर् आदुर्थयास इद्योजा न्विन्द्र ते हरी।। १॥

उपो इति। सु। शृणुहि। गिर्रः। मर्घऽवन्। मा। अर्तथाःऽइव। यदा। निः। सुनृत्र्णं वतः। करेः। आत्। अर्थयांसे। इत्। योजी नु। इन्द्र। ते। हरी इति॥ १॥

पदार्थ:-(उपो) सामीप्ये (सु) शोभने (शृणुिह) (गिर:) वाणीः (पष्ठविन्) प्रशस्तगुणप्रापक (मा) निषेधे (अतथाइव) प्रतिकृल इव। अत्राऽऽचारे क्विप् तदन्ताच्ये प्रत्ययः (यदा) यस्मिन् काले (नः) अस्माकम् (सूनृतावतः) सत्यवाणीयुक्तान् (करः) कुरु (आत्) आकृत्ताच्ये (अर्थयासे) याचस्व (इत्) एव (योज) युक्तान् कुरु (नु) शीघ्रम् (इन्द्र) परमैश्वर्यप्राप्ति सेन्छियक्ष (ते) तव (हरी) हरणशीलौ धारणाकर्षणगुणावुत्तमाश्चौ वा॥१॥

अन्वय:-हे इन्द्र! यो ते तव हरी स्तस्तौ त्वं ने योज प्रिप्नवाणीवतो विदुषोऽर्थयासे याचस्व। हे मघवँस्त्वं नोऽस्माकं गिर उपो सुशृणुह्यात्रोऽतथा इवेन्मा भव येदा वयं त्व्रं सुखानि याचामहे तदा त्वं नोऽस्मान् सूनृतावतः करः॥१॥

भावार्थ:-मनुष्यैर्यथा राजा सुसेबिवज्पदिभुष्यत् सेनापतेर्वा सेनापितना सुसेविता सेना वा सुखानि प्राप्नोति यथा च सभाद्यध्यक्षाः प्रजासेनाजनानामानुकूल्ये वर्त्तेरंस्तथैवैतेषामानुकूल्ये प्रजासेनास्थैर्भवितव्यम्॥१॥

पदार्थ:-हे (इन्द्र) स्निपते! जो (ते) आपके (हरी) धारणाऽऽकर्षण के लिये घोड़े वा अग्नि आदि पदार्थ हैं, उनको (ते) सिंघ (य्रांज) युक्त करो, प्रियवाणी बोलनेहारे विद्वान् से (अर्थयासे) याञ्चा कीजिये। हे (मघवन्) अच्छे गुणों के प्राप्त करनेवाले! (न:) हमारी (गिर:) वाणियों को (उपो सुश्रणुहि) समीप होकर सुनिये (आत्) पश्चात् हमारे लिये (अतथाइवेत्) विपरीत आचरण करनेवाले जैसे ही (मा) मत हो (यस) जब हम तुमसे सुखों की याचना करते हैं, तब आप (न:) हमको (सूनृतावत:) सत्य वाणीयुक्त (कर:) कीजिये॥१॥

भावार्थ:=ममुष्यों को योग्य है कि जैसे राजा ईश्वर के सेवक या सेनापित वा सेनापित से पालन की हुई सेना सुखों को प्राप्त होती है। जैसे सभाध्यक्ष प्रजा और सेना के अनुकूल वर्त्तमान करें, वैसे उनके असुकूल प्रजा और सेना के मनुष्य को आचरण करना चाहिये॥१॥

अष्टक-१। अध्याय-६। वर्ग-३

मण्डल-१। अनुवाक-१३। सूक्त-८२

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा हो, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अक्षुन्नमीमदन्त ह्यवं प्रिया अधूषत।

अस्तोषतु स्वभानवो विष्ठा नविष्ठया मृती योजा न्विन्द्र ते हरी॥२॥

अक्षेन्। अमीमदन्ता हि। अवं। प्रियाः। अधूष्ता अस्तोषता स्वऽभानवः। विप्राः। मती योजं। नु। इन्द्र। ते। हरी इति॥२॥

पदार्थ:-(अक्षन्) शुभगुणान् प्राप्नुवन्तु (अमीमदन्त) आनन्दन्तु (क्रि) खुलु (अव) विरुद्धार्थे (प्रिया:) प्रीतियुक्ताः सन्तः (अधूषत) शत्रून् दुःखानि वा दूरीकुरूत् (अस्तिष्ट्रत) स्तृत (स्वभानवः) स्वकीया भानवो दीप्तयो येषां ते (विप्राः) मेधाविनः (निवष्टया) अति अधे नूतनया (मती) बुद्ध्या (योज) योजय (नु) शीघ्रम् (इन्द्र) सभाध्यक्ष (ते) (हरी)॥२॥

अन्वयः - हे इन्द्र! यो ये तव हरी वर्त्तते तावस्मदर्थं नु योज। हे स्वधानवो विप्रा! भवन्तः सूर्यादय इव नविष्ठया मती सह सर्वेषां प्रिया भवन्तु सर्वाणि शास्त्राणि ह्यस्तोषत् ।

भावार्थ:-मनुष्यैरुत्तमगुणकर्मस्वभावयुक्तस्य सर्वेश्च प्रशंसिताचरणस्य सेनाद्यध्यक्षस्योपदेशकस्य वा गुणप्रशंसनाऽनुकरणाभ्यां नवीनौ विज्ञानपुरुषार्थी वर्धियुत्त्रा सर्वदा प्रसन्नतयाऽऽनन्दो भोक्तव्य:॥२॥

पदार्थ:-हे (इन्द्र) सभापते! जो (ते) तेरे (हंग्नी) धारण-आकर्षण करनेहारे वाहन वा घोड़े हैं उनको तू हमारे लिये (न योज) शीघ्र पुक्र कर हे (स्वभानवः) स्वप्रकाशस्वरूप सूर्यादि के तुल्य (विप्राः) बुद्धिमान् लोगो! आप (नविष्ठ्या) अविशय नवीन (मती) बुद्धि के सहित होके (प्रियाः) प्रिय हूजिये, सबके लिये सब शास्त्रों की (हि) निश्चय से (अस्तोषत) प्रशंसा आप किया करिये, शत्रु और दुःखों को (अवाधूषत) छुड़ाह्म (अक्षन्) विद्यादि शुभगुणों में व्याप्त हूजिये, (अमीमदन्त) अतिशय करके आनन्दित हूजिये और इमको भी ऐसे ही कीजिये॥२॥

भावार्थ:-मनुष्ये की योग्ये है कि श्रेष्ठ गुण-कर्म्म-स्वभावयुक्त सब प्रकार उत्तम आचरण करनेहारे सेना और सभापति क्या सत्योपदेशक आदि के गुणों की प्रशंसा और कर्मों से नवीन-नवीन विज्ञान और पुरुषिय को बद्धकर सदा प्रसन्नता से आनन्द का भोग करें॥२॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा हो, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

सुभंदृशं त्वा वयं मघवन् वन्दिषीमहि।

प्र नूने पूर्णबन्धुर: स्तुतो याहि वशाँ अर्नु योजा न्विन्द्र ते हरी॥३॥

222

सुऽसंदृशंम्। त्वा। वयम्। मर्घऽवन्। वृन्द्रिषीमिही। प्र। नूनम्। पूर्णऽबेन्धुरः। स्तुतः। याहि। वशीन्। अने। योजी नु। हुन्द्र। ते। हरी इति॥३॥

पदार्थ:-(सुसंदृशम्) एकीभावेन सर्वकर्मणां द्रष्टारम् (त्वा) त्वां सेनाद्यध्यक्षं क्ष्ण्यं (प्राध्यक्षं क्ष्ण्यं (प्राध्यक्षं क्ष्ण्यं प्राध्यक्षं क्ष्ण्यं (प्राध्यक्षं क्ष्ण्यं प्राध्यक्षं क्ष्ण्यं (प्राध्यक्षं क्ष्ण्यं प्राध्यक्षं क्षण्यं प्राध्यक्षं क्ष्ण्यं क्षण्यं क्ष्ण्यं क्षण्यं क्ष्ण्यं क्षण्यं क्ष्ण्यं क्ष

अन्वय:- हे मघवन्निन्द्र! यथा वयं सुसंदृशं त्वा वन्दिषीमिह तथाऽस्माभिर्नूनं पूर्णबन्धुरः स्तृते संस्त्वं येऽस्माकं शत्रवस्तानु वशान् कुरु यौ ते तव हरी स्तस्तावनु योज विजयाय प्रयाहि॥३॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। यदा मनुष्याः सर्वेद्रष्टः परमेश्वरस्य स्तोतारं सभेशमाश्रयन्ति तदैतानरीन् सद्यो निगृह्णन्ति॥३॥

पदार्थ:-हे (मघवन्) परमपूजित धनयुक्त (इन्द्र) सुख्यद जैसे (वयम्) हम (सुसंदृशम्) कल्याणदृष्टियुक्त (त्वा) आपको (वन्दिषीमिह) प्रशंसित करें, वैसे हमसे सहित होके (पूर्णबन्धुरः) समस्त सत्य प्रबन्ध और प्रेमयुक्त (स्तुतः) प्रशंसा को प्रात होके आप जो प्रजा के शत्रु हैं, उन को (नु) शीघ्र (वशान्) वश में करो, जो (ते) आपके (हरी) सूर्य के ध्याणाकर्षणादिगुणवत् सुशिक्षित अश्व हैं, उनको (अनुयोज) युक्त करो, विजय के लिये (सूनम्) निश्चय करके (प्रयाहि) अच्छे प्रकार जाया करो॥३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जब मनुष्य सबके द्रष्टा परमेश्वर की स्तुति करनेहारे सभापति का आश्रय लेते हैं, तब इन शबुओं का शीघ्र निग्रह कर सकते हैं॥३॥

पुरः स कोंदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह केसा हो, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

स घा तं वृषेणुं रथुमधि तिष्ठाति ग्रीविदम्।

यः पात्रं हारियोजन पूर्णिमेन्द्रं चिकैतित योजा न्विन्द्र ते हरी।। ४॥

सः। घा तम्। वृष्णम्। अधि। तिष्ठाति। गोऽविद्यम्। यः। पात्रम्। हारिऽयोजनम्। पूर्णम्। इन्द्र। चिकेतति। योजी नु/इन्द्र। ते। हरी इति॥४॥

पदार्थः (सं.) विद्वान् वीरः (घ) एव (तम्) (वृषणम्) शत्रूणां शक्तिबन्धकम् (रथम्) ज्ञानम् (अधि) उप्रस् (तिष्ठाति) तिष्ठतु (गोविदम्) गां भूमिं विन्दित येन तम् (यः) (पात्रम्) पद्यते येन तत् (हारियोजन्म्) हरयोऽश्वा युज्यन्ते यस्मिंसतत् (पूर्णम्) समग्रशस्त्रसामग्रीसहितम् (इन्द्र) परमैश्वर्यप्रापक (विकेतित) जानाति (योज) अश्वर्युक्तं कुरु (नु) शीघ्रम् (इन्द्र) परमैश्वर्यप्रापक (ते) तव (हरी) हरणशीलौ वेगाकर्षणाख्यावश्वौ॥४॥

अष्टक-१। अध्याय-६। वर्ग-३

मण्डल-१। अनुवाक-१३। सूक्त-८२

अन्वय:-हे इन्द्र! यो भवान् हारियोजनं पूर्णं पात्र रथं चिकेतित, स त्वं तस्मिन् रथे हरी नु योज। हे इन्द्र! यस्ते तं वृषणं गोविदं रथमिधितिष्ठाति स घ कथं न विजयते॥४॥

भावार्थ:-सेनाध्यक्षेण पूर्णशिक्षाबलहर्षितां हस्त्यश्वरथशस्त्रादिसामग्रीपरिपूर्णां सेनां सम्पाद्य श्राप्त्रवीं विजेया:॥४॥

पदार्थ:-हे (इन्द्र) परमिवद्याधनयुक्त! (य:) जो आप (हारियोजनम्) अभि वा घोड़ों से युक्त किये इस (पूर्णम्) सब सामग्री से युक्त (पात्रम्) रक्षा निमित्त (रथम्) रथ को बनाना (चिकेतिर्ति) जानते हो (स:) सो उस रथ में (हरी) वेदादिगुणयुक्त घोड़ों को (नु योज) शीघ्र युक्त कर। हे (इन्द्र) सेनापते! जो (ते) आप के (वृषणम्) शत्रु के सामर्थ्य का नाशक (गोविदम्) पिस्र भूमि का राज्य प्राप्त हो (तम्) उस रथ पर (अधितिष्ठाति) बैठे, (घ) वहीं विजय को प्राप्त क्यू प्राप्त होवेगू अ

भावार्थ:-सेनापित को योग्य है कि शिक्षा बल से हृष्ट-पुष्ट हार्थी, घोड़े रथ, शस्त्र-अस्त्रादि सामग्री से पूर्ण सेना को प्राप्त करके शत्रुओं को जीता करे।।४।

पुन: स कथं कुर्यादित्युविद्वश्यते॥

फिर वह कैसे करे, इस विषय को अगून मुंग में कहा है।।

युक्तस्ते अस्तु दक्षिण उत सृव्यः शतकती।
तेन जायामूर्ण प्रियां मन्दानो याह्यस्यस्य योजा विन्द्र ते हरी॥५॥

युक्तः। ते। अस्तु। दक्षिणः। उत। सुन्यः। शतकृतो इति शतऽक्रतो। तेनी जायाम्। उपी प्रियाम्। मुन्दानः। याहि। अर्चसः। योजी नु। इन्द्र। ते। हरी इति ॥ ।

पदार्थ:-(युक्त:) कृतयोजनः तो तच (अस्तु) भवतु (दक्षिण:) एको दक्षिणपार्श्वस्थः (उत) अपि (सव्य:) द्वितीयो वामपार्श्वस्थः (श्वतकतो) शतधाक्रतुः प्रज्ञाकर्म वा यस्य तत्सम्बुद्धौ (तेन) रथेन (जायाम्) स्वस्त्रियम् (उप) सूमीपे (प्रियाम्) प्रीतिकारिणीम् (मन्दानः) आनन्दयन् (याहि) गच्छ प्राप्नुहि वा (अन्यसः) अन्नादेः (योज) (नु) शौद्धम् (इन्द्र) (ते) (हरी)॥५॥

अन्वय:-हे इन्द्र! अत्कृतो त्व यो सुशिक्षितौ हरी स्त एतौ रथे त्वं नु योज, यस्य ते तव रथस्यैकोऽश्वो दिक्षणपार्श्वे युक्त उतापि द्वितीय: सन्यो युक्तोऽस्तु तेन रथेनाऽरीन् जित्वा प्रियां जायां मन्दानस्त्वमन्धस उपयाहि प्राप्नुहि द्वौ मिलित्वा शत्रुद्विजयोश्वं गच्छेताम्॥५॥

भावार्थः सम्बाह्म स्वपत्न्या सह सुशिक्षितैरश्वैर्युक्ते याने स्थित्वा युद्धे विजयो व्यवहारे आनन्दः प्राप्तव्यः यत्र यत्र युद्धे क्वचिद् भ्रमणार्थं वा गच्छेत्, तत्र तत्र सुशिल्पिरचिते दृढे रथे स्त्रिया सिहतः स्थित्नैव यासात्॥५॥

पदार्थ:-हे (इन्द्र) सबको सुख देनेहारे (शतक्रतो) असंख्य उद्यम बुद्धि और क्रियाओं से युक्त ! (ते) आपके जो सुशिक्षित (हरी) घोड़े हैं, उनको रथ में तू (नु योज) शीघ्र युक्त कर, जिस (ते) तेरे रथ के (एक:) एक घोड़ा (दक्षिण:) दाहिने (उत) और दूसरा (सव्य:) बांई ओर (अस्तु) हो (तेम) हस स्थ पर बैठ शत्रुओं को जीत के (प्रियाम्) अतिप्रिय (जायाम्) स्त्री को साथ बैठा (मन्दान:) अप प्रस्त्र और उसको प्रसन्न करता हुआ (अन्धसः) अन्नादि सामग्री के (उप याहि) समीपस्थ होके तुम को शत्रुओं को जीतने के अर्थ जाया करो॥५॥

भावार्थ:-राजा को योग्य है कि अपनी राणी के साथ अच्छे सुशिक्षित घोड़ों से सुक्त रथ में बैठ के युद्ध में विजय और व्यवहार में आनन्द को प्राप्त होवें। जहाँ-जहाँ युद्ध में वा भ्रमण के लिये जावें, वहाँ-वहाँ उत्तम कारीगरों से बनाये सुन्दर रथ में स्त्री के सहित स्थित हो के ही जावें।।५॥

पुनर्भुत्याः किं कुर्य्युस्तेन स किं कुर्यादित्याहा।

फिर उसके भृत्य क्या करें और उस रथ से वह क्या करे, इस बिषेष को अगले मन्त्र में कहा

युनर्जिन ते ब्रह्मणा केशिना हरी उप प्र याहि हिंधिन गर्भास्याः। उत्त्वां सुतासों रभुसा अमन्दिषुः पूष्णवान विज्ञन्सम् पत्यामदः॥६॥३॥

युनर्जिम। ब्रह्मणा। केशिना। हरी इति। उप। प्रा याहि। हुर्धिषे। गर्भस्त्योः। उत्। त्वा। सुतासः। रुभसाः। अमन्दिषुः। पूष्प्ऽवान्। वृज्ञिन्। सम्। ऊम् इति। पुरुष्णाः अमन्दे। ६॥

पदार्थ:-(युनज्मि) युक्तौ कल्लेमि (ते) तव (ब्रह्मणा) अनादिना सह (केशिना) सूर्यरिश्मवत्प्रशस्त-केशयुक्तौ (हरी) बुलिष्ठावश्चो (उप) सामीप्ये (प्र) (याहि) गच्छाऽऽगच्छ (दिधषे) धरिस (गभस्त्यो:) हस्तयो:। गभस्ती इति बाहुनगम् पठितम्। (निघं०२.५) (उत्) उत्कृष्टे (त्वा) त्वाम् (सुतास:) विद्याशिक्षाभ्यामृत्तमाः सम्मादिताः (रभसाः) वेगयुक्ताः (अमन्दिषुः) हर्षयन्तु (पूषण्वान्) अरिशक्तिनिरोधकैवीरैः सह (बुन्) प्रशस्त्रस्त्रयुक्त (सम्) सम्यक् (उ) वितर्के (पत्न्या) युद्धादौ सङ्गमनीये यज्ञे संयुक्तया स्त्रिया (अमदः) अमनदः॥६॥

अन्वयः – हे विज्ञित् स्माध्यक्ष्यभ्यथाऽहं ते तव ब्रह्मणा युक्ते रथे केशिना हरी युनज्मि यत्र स्थित्वा त्वं गभस्त्योरश्वरशनां दिधषे उपप्रयाहि यथा रभसाः सुतासः सुशिक्षिता भृत्या यं त्वा उ उदमन्दिषुरानन्दयेयुस्तथैतानानन्दय। पूषण्वान् स्वकीयया यूत्त्या सह सम्ममदः सम्यगानन्द॥६॥

भावार्षः - मेर्नुष्यैर्येऽश्वादिसंयोजका भृत्यास्ते सुशिक्षिता एव रक्षणीयाः स्वस्त्र्यादयोऽपि स्वानुरक्ता एव केरणीयाः स्वयमप्येतेष्वनुरक्तास्तिष्ठेयुः सर्वदा युक्तः सन् सुपरीक्षितैरेतैर्धर्म्याणि कार्याणि संसाधयेत्।

अप्र सेनापतिरीश्वरगुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेदितव्यम्॥

इति द्व्यशीतितमं ८२ सूक्तं तृतीयो ३ वर्गश्च समाप्तः॥

अष्टक-१। अध्याय-६। वर्ग-३

मण्डल-१। अनुवाक-१३। सूक्त-८२

पदार्थ:-हे (विज्ञन्) उत्तम शस्त्रयुक्त सेनाध्यक्ष! जैसे मैं (ते) तेरे (ब्रह्मणा) अन्नादि से युक्त नौका रथ में (केशिना) सूर्य की किरण के समान प्रकाशमान (हरी) घोड़ों को (युनज्मि) जोड़ता हूं, जिसमें बैठ के तू (गभस्त्यो:) हाथों में घोड़ों की रस्सी को (दिधिषे) धारण करता है, उस रथ से (उप प्रयाह) अभीष्ट स्थानों को जा। जैसे बलवेगादि युक्त (सुतास:) सुशिक्षित (भृत्या:) नौकर लोग जस (त्वा) तुझको (3) अच्छे प्रकार (उदमन्दिषु:) आनन्दित करें, वैसे इनको तू भी आनदित कर और (पूषण्वान्) शत्रुओं की शक्तियों को रोकनेहारा तू अपनी (पत्या) स्त्री के साथ (सम्मद:) अच्छे प्रकार आनन्द को प्राप्त हो॥६॥

भावार्थ:-मनुष्यों को योग्य है कि जो अश्वादि की शिक्षा सेवा करवेहारे और उनको सवारियों में चलानेवाले भृत्य हों, वे अच्छी शिक्षायुक्त हों और अपनी स्त्री आदि को भी अपने स्रे प्रसन्न रख के आप भी उनमें यथावत् प्रीति करे। सर्वदा युक्त होके सुपरीक्षित स्त्री आदि में धर्म कार्यों को साधा करें॥६॥

इस सूक्त में सेनापित और ईश्वर के गुणों का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति समझनी चाहिये॥

यह ८२ बियासीवाँ सूक्त और ३ त्रीसरा वर्ग पूरी हुआ॥

अथ षडर्च्चस्य त्र्यशीतितमस्य सूक्तस्य राहूगणो गोतम ऋषिः। इन्द्रो देवता। १,३-५ निचृज्जगती। २ जगती छन्दः। निषादः स्वरः। ६ त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनः स कीदृशे रथे तिष्ठन्कार्याणि साधयेदित्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसे रथ में बैठा हुआ कामों को सिद्ध करे, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अश्वाविति प्रथमो गोषुं गच्छति सुप्रावीरिन्द्र मर्त्यस्तवोतिभिः।

तमित्पृणिक्ष् वसुना भवीयसा सिन्धुमापो यथाभितो विचेतसः॥ १॥

अर्श्वऽवितः। प्रथमः। गोर्षुः। गुच्छृतिः। सुप्रऽअवीः। इन्द्रः। मर्त्यः। तर्वः। ऊतिऽभिः। तम्। इत्रे पृण्किः। वसुनाः। भवीयसाः। सिन्धुम्। आपः। यथाः। अभितः। विऽचैतसः॥ १॥

पदार्थ:-(अश्वावित) संबद्धा अश्वा यस्मिस्तस्मिन् रथे (प्रेथिं) अदिमी भूमिगमनार्थो रथः (गोषु) पृथिवीषु (गच्छित) चलित (सुप्रावीः) सुष्ठु प्रजारक्षाकर्ता (इन्द्र) परमेश्वर्यप्रापकसेनापते! (मर्त्यः) सुशिक्षितो धार्मिको भृत्यो मनुष्यः (तव) (ऊतिभिः) रक्षणादिभिः (तम्) (इत्) एव (पृणिक्ष्) संयुनिक्ष (वसुना) प्रशस्तेन धनेन (भवीयसा) यदितिशयितं भवित तेन (सिन्धुम्) समुद्रं नदीं वा (आपः) जलानि (यथा) येन प्रकारेण (अभितः) सर्वतः (विचेतसः) विगतं चेतः संज्ञाने याभ्यस्ताः॥१॥

अन्वय:-हे इन्द्र! यो मर्त्यस्तवोतिभिः सह वर्त्तमानो भूत्योऽश्वावित रथे स्थित्वा गोषु युद्धाय प्रथमो गच्छित तेन त्वं प्रजाः सुप्रावीस्तिमद्यथा विचेतस आपोऽभितः सिन्धुमप्नुवन्ति यथा भवीयसा वसुना सह प्रजाः पृणिक्ष संयुनिक्ष तथैव सर्वे संयुजन्तु॥१॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। सेनाध्यक्षादिभी गूजिपुरुषैर्ये भृत्याः स्वस्वाऽधिकृतेषु कर्मसु यथावत्र वर्त्तरन् तान् सुदण्ड्य ये चानुवर्त्तरंस्तान् सुस्कृत्य बहुभिरुत्तमैः पदार्थैः सत्कारैः सह योजितानां संतोषं सम्पाद्य राजकार्याणि संसाधनीयानि नहि कश्चिष्ठश्रापराधिने दण्डदानेन सुकर्मानुष्ठानाय पारितोषेण च विना यथावद्राजव्यवस्थां संस्थापयितुं सक्नोत्यत सुतत्कर्म सदानुष्ठेयम्॥१॥

पदार्थ:-हे (इन्द्र) स्विकी रक्षा करनेहारे राजन्! जो (मर्त्य:) अच्छी शिक्षायुक्त धार्मिक मनुष्य (तव) तेरी (ऊतिभि:) रक्ष्म अदि से प्रक्षत भृत्य (अश्वावित) उत्तम घोड़ों से युक्त रथ में बैठ के (गोषु) पृथिवी विभागों में युद्ध के लिये (प्रथम:) प्रथम (गच्छित) जाता है, उससे तू प्रजाओं को (सुप्रावी:) अच्छे प्रकार रक्षा कर (तिमत्) उसी को (यथा) जैसे (विचेतस:) चेतनता रहित जड़ (आप:) जल वा वायु (अभित:) चारों ओर से (सिन्धुम्) नदी को प्राप्त होते हैं, जैसे (भवीयसा) अत्यन्त उत्तम (वसुना) धन से तू प्रजा को (प्रणक्षि) युक्त करता है, वैसे ही सब प्रजा और राजपुरुष पुरुषार्थ करके ऐश्वर्य से संयुक्त हों॥ शा

भोवार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। सेनापित आदि राजपुरुषों को योग्य है कि जो भृत्य अपने-अपने अधिकार के कर्मों में यथायोग्य न वर्त्तें, उन-उन को अच्छे प्रकार दण्ड और जो न्याय के अष्टक-१। अध्याय-६। वर्ग-४

मण्डल-१। अनुवाक-१३। सूक्त-८३

अनुकूल वर्तें, उनका सत्कार कर शत्रुओं को जीत प्रजा की रक्षा कर पुरुषों को प्रसन्न रखके राजकार्यों को सिद्ध करना चाहिये। कोई भी पुरुष अपराधी के योग्य दण्ड और अच्छे कर्मकर्ता के येग्य प्रितिष्ठ किये विना यथावत् राज्य की व्यवस्था को स्थिर करने को समर्थ नहीं हो सकता, इस्से इस कर्म का अनुष्ठान सदा करना चाहिये॥१॥

पुनर्विद्वांसः किं कुर्वन्तीत्युपदिश्यते॥

फिर विद्वान् लोग क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा⁄ है॥

आपो न देवीरुपं यन्ति होत्रियंमुवः पंश्यन्ति विर्ततं यथा रज्ञाः प्राचैर्देवासुः प्र णंयन्ति देवयुं ब्रह्मप्रियं जोषयन्ते वृराईब्राप्रा

आर्पः। न। देवीः। उर्प। युन्ति। होत्रियम्। अवः। पुश्यन्ति। विऽत्तिम्। यथा। रर्जः। प्राचैः। देवासंः। प्र। नयुन्ति। देवऽयुम्। ब्रह्मऽप्रियम्। जोषयुन्ते। वृराःऽईव॥२॥

पदार्थ:-(आप:) व्याप्तिशीलानि (न) इव (देवी:) देदीप्यमानाः (उप) सामीप्ये (यनि) प्राप्नुवन्ति (होत्रियम्) दातव्यादातव्यानामिदम् (अवः) रक्षणिस्किम् (पश्यन्ति) प्रेक्षन्ते (विततम्) विस्तृतम् (यथा) येन प्रकारेण (रजः) सूक्ष्मं सर्वलोककारणं प्रमाण्वादिकम् (प्राचैः) प्राचीनैर्विद्वद्भिः (देवासः) प्रशस्ता विद्वांसः (प्र) (नयन्ति) प्राप्नुवन्ति (देवर्ग्युम्) आत्मानं देविमच्छन्तम् (ब्रह्मप्रियम्) ईश्वरो वेदो वा प्रियो यस्य तम् (जोषयन्ते) प्रीत्रापत् (वसङ्क्र) यथा प्रशस्तविद्याधर्मकर्मस्वभावाः॥२॥

अन्वयः-ये देवासो मेघमापो न देवीरुप्यन्ति तथी प्रार्चैः सह विततं रजो होत्रियमवः पश्यन्ति वराइव ब्रह्मप्रियं देवयुं प्रणयन्ति जोषयन्ते ते सततं सुखिनः कथं निस्याः॥ २॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कारः। केत् हेर्नुनेमे विद्वांस इमेऽविद्वांस इति विवेचनीयमित्यात्राह जलवच्छान्ता, प्राणवित्रयाः, धूर्म्यादिदिव्यक्रियाः कुर्युः, सर्वेषां शरीरात्मनोः यथार्थरक्षणं जानीयुः, भूगर्भादिविद्याभिः प्राचीनवेदिविद्वद्वद् वर्तेरन्, वेदद्वारेश्वरप्रणीतं धर्मं प्रचारयेयुस्ते विद्वांसो विज्ञेयाः, एतद्विपरीताः स्युस्तेऽविद्वांस्रकेति निश्चिनुयुः॥२॥

पदार्थ:-जो (देवास:) बिह्नांन् लोग मेघ को (आपो न) जैसे जल प्राप्त होते हैं, वैसे (देवी:) विदुषी स्त्रियों को (उपयन्ति) प्राप्त होते हैं और (यथा) जैसे (प्राचै:) प्राचीन विद्वानों के साथ (विततम्) विशाल और जैसे (प्राः) परमाणु आदि जगत् का कारण (होत्रियम्) देने-लेने के योग्य (अव:) रक्षण को (पश्यन्ति) देखते हैं (वराइव) उत्तम पतिव्रता विद्वान् स्त्रियों के समान (ब्रह्मप्रियम्) वेद और ईश्वर की आज्ञा में प्रसन्न (देवयुम्) अपने आत्मा को विद्वान् होने की चाहनायुक्त (प्रणयन्ति) नीतिपूर्वक करते और (जोषयन्ते) इसका सेवन करते औरों को ऐसा कराते हैं, वे निरन्तर सुखी क्यों न हो॥२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। किस हेतु से विद्वान् और अविद्वान् भिन्न-भिन्न कहाते हैं, इसका उत्तर-जो धर्मयुक्त शुद्ध क्रियाओं को करें, सबके शरीर और आत्मा का यथावत् रक्षण करना जानें और भूगर्भादि विद्याओं से प्राचीन आप्त विद्वानों के तुल्य वेदद्वारा ईश्वरप्रणीत सत्यध्म मार्भ भा प्रचार करें, वे विद्वान् हैं और जो इनसे विपरीत हों वे अविद्वान् हैं; इस प्रकार निश्चय से जन्नें। २॥

पुनस्ते कीदृशा इत्युपदिश्यते॥

फिर वे कैसे हों, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अधि द्वयोरदधा उक्थ्यं र्वं वची यतस्रुंचा मिथुना या संपर्यतः। असंयत्तो वृते ते क्षेति पुष्यंति भुद्रा शुक्तिर्यर्जमानाय सुन्वते॥

अर्धि। द्वयोः। अर्द्धमाः। उक्थ्यमा वर्चः। युतऽस्त्रचा। मिथुना। या। सूर्य्यतेः। अस्मिऽयत्तः। वृते। ते। क्षेति। पुष्यति। भुद्रा। शुक्तिः। यजमानाय। सुन्वते॥३॥

पदार्थ:-(अधि) उपिरभावे (द्वयोः) स्वात्मपरात्मनाः प्रियम् (अदधाः) धेहि (उक्थ्यम्) वक्तुमर्हम् (वचः) सत्यं वचनम् (यतस्रुचा) यता नियतः स्रुचः साधनानि याभ्यामुपदेशाभ्यां तौ (मिथुना) विरोधं विहाय मिलितौ (या) यौ (सपर्यतः) प्रियरितः (असंयत्तः) अजितेन्द्रियोऽपि (व्रते) सत्यभाषणादिलक्षणे व्यवहारे (ते) तव (क्षेति) निवस्ति (पृष्यति) पृष्टो भवति (भद्रा) कल्याणकारिणी (शक्तः) समर्थता (यजमानाय) उपदेश्याय पालुकार्य वा (सुन्वते) ऐश्वर्यमिच्छुकाय प्राप्ताय वा॥३॥

अन्वयः – हे मनुष्य! यथा या यतस्तुचा मिश्रुना द्वयोर्यदुक्र्यं वचः सपर्यतस्तथैतौ त्वमदधाः। यो संयतोऽपि ते व्रते क्षेति तस्मिन् भद्रा शक्तिरधि निवसति स पुष्ट्रास्त पुष्टो भवति तहिं तस्मै सुन्वते यजमानाय सुखं कथं न वर्द्धेत॥३॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कर्णः। वि मनुष्याः परोपकारबुद्ध्या सर्वेषां शरीरात्मनोर्मध्ये पृष्टिविद्याबले ज्ञात्वा विरोधं त्यक्त्वा धर्प्यं व्यवहारं सेवित्वा सततं सर्वान् मनुष्यान् सत्ये व्यवहारे प्रवर्त्तयन्ति, ते मोक्षमाप्नुवन्ति नेत्र इति बेद्यम्॥३॥

पदार्थ:-हे मनुष्य! क्रेस (या) जो (यतसुचा) साधनोपसाधनयुक्त पढ़ाने और उपदेश करनेहारे (मिथुना) दोनों मिलके (ह्रयो:) अप्रना और पराया कल्याण करके जो (उक्थ्यम्) प्रशंसा के योग्य (वच:) वचन को (सपर्यत:) सेम्रेते हैं, वैसे इसका तू (अदधा:) धारण कर। जो (असंयत्त:) अजितेन्द्रिय भी (ते) तेरे (व्रते) सत्यभाषणादि नियम पालन में (क्षेति) निवास करता है, उसमें (भद्रा) कल्याण करनेहारी (श्रावत:) सामर्थ्य (क्षेति) बसती है और वह (पुष्यति) पृष्ट होता है, तब (सुन्वते) ऐश्वर्यप्राप्ति होनेवाले (अज्ञामनित्य) सबको सुखके दाता के लिये निरन्तर सुख कैसे न बढ़े॥३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य परोपकारी बुद्धि से सबके शरीर और आत्मा के मध्य पृष्टि और विद्याबल को उत्पन्न कर विरोध छोड़के धर्मयुक्त व्यवहार को सेवन करिक निस्तर सब मनुष्यों को सत्यव्यवहार में प्रवृत्त करते हैं, वे मोक्ष को प्राप्त होते हैं॥३॥

अष्टक-१। अध्याय-६। वर्ग-४

मण्डल-१। अनुवाक-१३। सूक्त-८३

पुनस्ते कीदृशा इत्युपदिश्यते॥

फिर वे कैसे हों, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

आदङ्गिराः प्रथमं देधिरे वयं इद्धाग्नयः शम्या ये सुकृत्यया। सर्वं पणेः समेविन्दन्त भोजनुमश्चोवन्तं गोमन्तमा पृशुं नरः॥४॥

आत्। अङ्गिराः। प्रथमम्। दुधिरे। वर्यः। इद्धऽअंग्नयः। शम्यां। ये। सुऽकृत्यर्या। सर्वम्। पणेः। सम्। अविन्दन्तः। भोर्जनम्। अर्थ्वऽवन्तम्। गोऽमन्तम्। आ। पृशुम्। नर्रः॥४॥

पदार्थ:-(आत्) अनन्तरम् (अङ्गिराः) प्राण इव प्रियो वत्सः। अत्रि नसः स्थाने सुः। अङ्गिरस इति पदनामसु पठितम्। (निघं०५.५) (प्रथमम्) आदिमं ब्रह्मचर्यार्थस्य (दिधरे) वैधित (वयः) जीवनम् (इद्धाग्नयः) इद्धाः प्रदीप्ता मानसब्राह्माग्नयो यैस्ते (श्राम्या) शान्तियुक्तद्भिया। शमीति कर्मनामसु पठितम्। (निघं०२.१) (ये) (सुकृत्यया) शोभनानि कृत्यानि कर्मीण् यस्यां तया (सर्वम्) अखिलम् (पणेः) स्तुत्यस्य व्यवहारस्य (सम्) सम्यक् (अविन्दन्त) बिन्दन्ते प्राप्नुवन्ति (भोजनम्) पालनं भोग्यमानन्दं वा (अश्वावन्तम्) प्रशस्ता अश्वा विद्यन्ते यस्पिस्तम् (पोपन्तम्) बह्वयो गावः सन्त्यस्मिस्तम् (आ) समन्तात् (पश्नम्) स्वमातरम् (नरः) नेतारः॥४॥

अन्वय:-हे इद्धाग्नयो ये नरो मनुष्या यया सुकृत्येषा शम्या प्रणीः प्रथमं वयो ब्रह्मचर्यार्थमादिधरे सर्वतो दधित ते सर्वं भोजनं समिवन्दन्त प्राप्नुवन्त्वाद्यथाऽङ्गिराः अश्वावन्तं गोमन्त्रं राज्यं प्राप्यानिन्दितः पशुं लब्ध्वानन्दी भवित तथा भवन्तु॥४॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमाल्ड्कारः। केन्रिदिप मनुष्या ब्रह्मचर्यसेवनेन विना साङ्गोपाङ्गविद्याः प्राप्तुं न शक्नुवन्ति, विद्याशिक्तिभ्यां विना सज्येऽधिकारं लब्धुं नार्हन्ति, न चैतिद्वरहा जनाः सत्यानि सुखानि प्राप्तुमर्हन्ति॥४॥

पदार्थ:-हे (इद्धाग्नय:) अग्निविद्या को प्रदीप्त करनेहारे (ये) (नर:) नायक मनुष्यो! आप जैसे (सुकृत्यया) सुकृतयुक्त (अप्या) कृषे और (पणे:) प्रशंसनीय व्यवहार करनेवाले के उपदेश से (प्रथमम्) पहिले (वय:) उम्र को ब्रह्मचर्य के लिये (आदिधरे) सब प्रकार से धारण करते हैं वे (सर्वम्) सब (भोजनम्) आनन्द को भोग और पालन को (समिवन्दन्त) अच्छे प्रकार प्राप्त होते हैं (आत्) इससे अनन्तर जैसे (अङ्गियः) प्रण्णवत् प्रिय बछड़ा (पशुम्) अपनी माता को प्राप्त होके आनन्दित होता है, वैसे आप (अञ्चात्वनम्) उत्तम घोड़ों से युक्त (गोमन्तम्) श्रेष्ठ गाय और भूमि आदि से सहित राज्य को प्राप्त होक्ने आनिद्दत हुजिये॥४॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। कोई भी मनुष्य ब्रह्मचर्य से विद्या पढ़े विना साङ्गोपाङ्ग विद्याओं को प्राप्त होने को समर्थ नहीं हो सकते और विद्या सत्कर्म के विना राज्याधिकार को प्राप्त होने योग्य नहीं होते, उक्त प्रकार से रहित मनुष्य सत्य सुख को प्राप्त नहीं हो सकते॥

पुनस्ते केन किं संगच्छन्त इत्युपदिश्यते॥

फिर वे किससे किसको प्राप्त होते हैं, यह विषय कहा है॥

युज्ञैरर्थर्वा प्रथमः पृथस्तेते ततः सूर्यो व्रतुपा वेन आर्जनि। आ गा आजदुशनो काव्यः सर्चा युमस्य जातमुमृतं यजामहे॥५००

युज्ञैः। अर्थर्वा। प्रथमः। पृथः। तृते। तर्तः। सूर्यः। वृत्रऽपाः। वृनः। आ। ध्रुजितः। अग्रणाः। आजृत्। उ्शर्ना। काव्यः। सर्चा। युमस्य। जातम्। अमृतम्। युजामहे॥५॥

पदार्थ:-(यज्ञै:) विद्याविज्ञानप्रचारै: (अथर्वा) अहिंसकः (प्रथम:) प्रख्यातो विद्वान् (पथ:) मार्गम् (तते) तनुते। अत्र बहुलं छन्दसीति विकरणस्य लुक्। (ततः) किस्तृतः। अत्र तिमृङ्। (उणा०३.८६) अनेन तन्प्रत्ययः किच्च। (सूर्यः) यथा सविता तथा (वृतपाः) सत्यितियमरक्षकः (वेनः) कमनीयः (आ) अभितः (अजिन) जायते (आ) समन्तात् (गाः) पृथिवीः (आजित्) अजत्याकर्षणेन प्रक्षिपति वा (उशना) कामियता (काव्यः) यथा कवेः पुत्रः शिष्यो वा (सद्या) विद्वानेन (यमस्य) सर्वनियन्तुः (जातम्) प्रसिद्धिगतम् (अमृतम्) अधर्मजन्मदुःखरहितं मोक्षसुजम् (यज्ञामहे) सङ्गच्छामहे॥५॥

अन्वय:-यथा प्रथमोऽथर्वा पथस्तते यथा वित्त वृतपा भ्राजिन समन्ताज्जायते यथा ततः सूर्यो गा आजदजित यथा काव्य उशना विद्वान् विद्याः प्राप्नोति तथा वृत्र युक्कैर्यमस्य स्रचा जातममृतमायजामहे॥५॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। मदि मनुष्यै: सन्मार्गे स्थित्वा सित्क्रियाभिर्विज्ञानेन च परमेश्वरं विज्ञाय मोक्षसुखमिष्यते तर्ह्मवश्ये ते मुक्तिमश्नुवते॥५॥

पदार्थ:-जैसे (प्रथम:) इसिद्ध चिह्नात (अथर्वा) हिंसारहित (पथ:) सन्मार्ग को (तते) विस्तृत करता है, जैसे (वेन:) बुद्धिमान (वतपा:) सत्य का पालन करनेहारा सब प्रकार (आजिन) प्रसिद्ध होता है, जैसे (तत:) विस्तृत (सूर्य:) सूर्यृत्नोंक (गा:) पृथिवी में देशों को (आजत्) धारण करके घुमाता है, जैसे (काव्य:) किवयों में शिक्षों को प्राप्त (उशना) विद्या की कामना करनेवाला विद्वान् विद्याओं को प्राप्त होता है, वैसे हम लोग (यज्ञै:) विद्या के पढ़ने-पढ़ाने सत्संयोगादि क्रियाओं से (यमस्य) सब जगत् के नियन्ता परमेश्वर क (सचा) साथ (जातम्) प्राप्त हुए (अमृतम्) मोक्ष को (आयजामहे) प्राप्त होवें॥५॥

भावार्थ: इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को योग्य है कि सत्य मार्ग में स्थित होके सत्य किया और विज्ञान से परमेश्वर को जान के मोक्ष की इच्छा करें, वे विद्वान् मुक्ति को प्राप्त होति हैं। ।। अष्टक-१। अध्याय-६। वर्ग-४

मण्डल-१। अनुवाक-१३। सूक्त-८३

पुनः स कथं कि कुर्यादित्युपदिश्यते॥

फिर वह किस प्रकार से क्या करे, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

बहिर्वा यत्स्वपत्यायं वृज्यतेऽकों वा श्लोकंमाघोषते दिवि।

यावा यत्र वर्दति काुरुक्थ्यर्थस्तस्येदिन्द्रो अभिपित्वेषु रण्यति॥६॥४<u>।</u>४

बुर्हि:। वा। यत्। सुऽअपुत्याये। वृज्यते। अर्कः। वा। श्लोकंम्। आऽघोषते। द्वित्रे ग्रावां। यत्रे वदंति। काुरुः। उक्थ्येः। तस्ये। इत्। इन्द्रेः। अभिऽपित्वेषुं। रुण्यति॥६॥

पदार्थ:-(बर्हि:) विज्ञानम् (वा) समुच्चयार्थे। वेत्यथापि समुख्यार्थे। निरु०१.४) (यत्) यस्मै। अत्र सुपां सुबिति डेर्लुक्। (स्वपत्याय) शोभनान्यपत्यानि यस्यातस्मै (वृज्यते) त्यज्यते (अर्कः) विद्यमानः सूर्यः (वा) विचारणे। (निरु०१.४) (श्लोकम्) विद्यासहितों काच्यम् (आघोषते) विद्याप्राप्तय उच्चरित (दिवि) आकाश इव दिव्ये विद्याव्यवहारे (ग्रावा) मेघः ग्राविति पेघ्रनाम। (निघं०१.१०) (यत्र) यस्मिन्देशे (वदित) उपदिशित (कारुः) स्तुत्यानां शिल्पकर्मणां कर्त्ता। कारुरहमस्मि स्तोमानां कर्त्ता। (निरु०६.६) (उक्थ्यः) उक्थेषु वक्तव्येषु व्यवहारेषु साधु (तस्य) (इत्) एव (इन्द्रः) परमैश्वर्यप्रदो विद्वान् (अभिपित्वेषु) अभितः सर्वतः प्राप्तव्येषु व्यवहारेषु। अत्र पदधातोर्बाहुलकादौणादिक इत्वन् प्रत्ययो डिच्च। (रण्यित) उपदिशिति। अत्र विकरण्ड्यत्ययः। हिर्ग

अन्वय:-यत्र दिव्युक्थ्यः कारुरिन्द्रोऽभिपिक्षेषु यद्यस्मे विपत्याय बर्हिर्वृज्यतेऽर्को वा श्लोकमाघोषते ग्रावा वदित रण्यति तत्र तस्येदेव विद्या जायते॥६॥

भावार्थ:-विद्विद्धिर्यथा जलं विच्छिद्यन्तिरही गत्वा वर्षित्वा सुखं जनयित तथैव कुव्यसनानि छित्त्वा विद्यामुपगृह्य सर्वे जनाः सुख्यितव्याः। यथा सूर्योऽन्धकारं विनाश्य प्रकाशं जनयित्वा सर्वान् प्राणिनः सुखयित दुष्टान् भीषयते तथैव जनानामज्ञानं विनाश्य ज्ञानं जनयित्वा सदैव सुखं सम्पादनीयम्। यथा मेघो गर्जित्वा वर्षित्वा त्रीभिक्ष्यं विनाश्य सौभिक्ष्यं करोति तथैव सदुपदेशवृष्ट्याऽधर्मं विनाश्य धर्मं प्रकाश्य जनाः सर्वदाऽऽन्द्वियतव्याः ॥ ॥

अत्र सेनापत्युपदेशक्यो ब्रुत्यवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेदितव्यम्॥ इति त्र्यशीतितमं ८३ सूक्तं चतुर्थो ४ वर्गश्च समाप्तः॥

पदार्थ; (यत्र) जिस (दिवि) प्रकाशयुक्त व्यवहार में (उक्थ्य:) कथनीय व्यवहारों में निपुण प्रशंसनीय प्रिल्प कार्मों का कर्ता (इन्द्र:) परमैश्वर्य को प्राप्त करनेहारा विद्वान् (अभिपित्वेषु) प्राप्त होने योग्य व्यवहारों में (अत्) जिस (स्वपत्याय) सुन्दर सन्तान के अर्थ (बर्हि:) विज्ञान को (वृज्यते) छोड़ता है (अर्क:) पूजनीय विद्वान् (श्लोकम्) सत्यवाणी को (वा) विचारपूर्वक (आघोषते) सब प्रकार सुनाता

है (**ग्रावा**) मेघ के समान गम्भीरता से (**वदति**) बोलता है (**वा**) अथवा (**रण्यति**) उत्तम उपदेशों की करता है, वहाँ (तस्येत्) उसी सन्तान को विद्या प्राप्त होती है॥६॥

भावार्थ:-विद्वान् लोगों को योग्य है कि जैसे जल छिन्न-भिन्न होकर आकाश में जा कहाँ से वर्षों से सुख करता है, वैसे कुव्यसनों को छिन्न-भिन्न कर विद्या को ग्रहण करके सब मनुष्यों को सुखों करें। जैसे सूर्य अन्धकार का नाश और प्रकाश करके सब प्राणियों को सुखी और दुष्ट चोरों को दुःखी करता है, वैसे मनुष्यों के अज्ञान का नाश विज्ञान की प्राप्ति करा के सबको सुखी करें। प्रेसे मेघ गर्जना कर और वर्ष के दुभिक्ष को छुड़ा सुभिक्ष करता है, वैसे ही सत्योपदेश की वृष्टि द्वे अध्यमिका नाश धर्म के प्रकाश से सब मनुष्यों को आनन्दित किया करें॥६॥

इस सूक्त में सेनापित और उपदेशक के गुणों का वर्णन करने से इस सूक्तार्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति समझनी चाहिये॥

यह त्र्यासीवां ८३ सूक्त और चौथा ४ वृ समाप्त हुआ।।

अथ विंशत्यृचस्य चतुरशीतितमस्य सूक्तस्य राहूगणो गोतम ऋषि:। इन्द्रो देवता। १,३-५

निचृदनुष्टुप्। विराडनुष्टुप्। गान्धार: स्वर:। ६ भुरिगुष्णिक्। ७-९ उष्णिक् छन्द:। ऋषभ:

स्वरः। १०,१२ विराडास्तारपङ्किः। ११ आस्तारपङ्क्तिः। २० पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः।

१३-१५ निचृद्गायत्रीछन्द:। षड्ज: स्वर:। १६ निचृत् त्रिष्टुप् छन्द:। १७ विराट् त्रिष्टुष् छन्द:।

१८ त्रिष्टुप् छन्द:॥

पुनः सेनाध्यक्षकृत्यमुपदिश्यते॥

अब चौरासीवें सूक्त का आरम्भ किया जाता है। इसके प्रथम मन्त्र में सेन<mark>्ग्रपति के पु</mark>णों का

उपदेश किया है॥

असांवि सोमं इन्द्र ते शर्विष्ठ धृष्ण्वा गंहि।

आ त्वां पृणक्त्विन्द्रियं रजुः सूर्यो न रृश्मिभीः॥ १॥

असोवि। सोमे:। इन्द्र। ते। शर्विष्ठ। धृष्णो इति।। आ। गृह्रि। आ। त्वाः पृष्णुक्तु। इन्द्रियम्। रर्जः। सूर्यः। न। रुश्मिभः॥ १॥

पदार्थ:-(असावि) उत्पाद्यते (सोमः) उत्पाद्यते (सोमः) उत्पाद्यते (सोमः) सर्वेश्वर्यप्राप्तिहेतो (ते) तुभ्यम् (शविष्ठ) बलिष्ठ (धृष्णो) प्रगल्भ (आ) आभिमुख्ये (गिह्ह) प्राप्नुहि (आ) समन्तात् (त्वा) त्वाम् (पृणक्तु) सम्पर्कं करोतु (इन्द्रियम्) मनः (रजः) लोकसमूहम् (सूर्यः) सविता (न) इव (रिश्मिभः) किरणै:॥१॥

अन्वय:-हे धृष्णो शिवष्ठेन्द्र! ते तुभ्यं कः सोमोऽस्मार्भिरसावि यस्ते तवेन्द्रियं सूर्यो रश्मिभी रजो नेव प्रकाशयेत् तं त्वमागहि समन्तात् प्राप्नुहि स च त्वा त्वामापृष्णम्तु॥१)।

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। प्रजासेनाशालासभास्थै: पुरुषै: सुपरीक्ष्य सूर्यसदृशं प्रजासेनाशालासभाध्यक्षं कृत्वा सूर्व्या स सेत्कर्त्तव्य एवं सभ्या अपि प्रतिष्ठापयितव्या:॥१॥

पदार्थ:-हे (धृष्णो) प्रिल्भ (शिवष्ट) प्रशंसित बलयुक्त (इन्द्र) परमैश्वर्य देनेहारे सत्पुरुष (ते) तेरे लिये जो (सोम:) अनेक प्रकार के रोगों को विनाश करनेहारी औषधियों का सार हमने (असावि) सिद्ध किया है, जो तेरी (इस्यम) इन्द्रियों को (सूर्य:) सविता (रिश्मिभ:) किरणों से (रज:) लोकों का प्रकाश करने के (न) तुल्य प्रकाश करे उसको तू (आगिह) प्राप्त हो, वह (त्वा) तुझे (आ पृणक्तु) बल और आरोग्यता से युस्त करें।।१॥

भार्षार्थ: इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। प्रजा, सेना और पाठशालाओं की सभाओ में स्थित पुरुषों को योग्ब्र है कि अच्छे प्रकार सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष को प्रजा, सेना और पाठशालाओं में अध्यक्ष करके सब प्रकार से उसका सत्कार करना चाहिये, वैसे सभ्यजनों की भी प्रतिष्ठा करनी चाहिये॥१॥

पुनस्तं कथं सत्कुर्युरित्युपदिश्यते॥

900

ऋग्वेदभाष्यम्

फिर उसका सत्कार किस प्रकार करे, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

इन्द्रमिद्धरी वहुतोऽप्रतिधृष्टशवसम्।

ऋषीणां च स्तुतीरुपं युज्ञं च मानुंषाणाम्॥२॥

इन्द्रम्। इत्। हुरी इति। वहतः। अप्रतिधृष्टऽशवसम्। ऋषीणाम्। च। स्तुतीः। उपी यज्ञम्। च। मानुषाणाम्॥२॥

पदार्थ:-(इन्द्रम्) प्रजासेनापितम् (इत्) एव (हरी) दुःखहरणशिलौ (वहतः) प्राप्नुतः (अप्रतिधृष्टशवसम्) न प्रतिधृष्यते शवो बलं यस्य तम् (ऋषीणाम्) मन्त्रार्थविदाम् (च) समुच्चये (स्तुतीः) प्रशंसाः (उप) सामीप्ये (यज्ञम्) सर्वैः सङ्गमनीयम् (च) समुच्चये (मानुषाणाम्) मानवानाम्॥२॥

अन्वयः – हे मनुष्या! यूयं यमप्रतिधृष्टशवसमृषीणां स्तुतीः प्राप्तं मह्मशुभगुष्रसम्बन्धं च मानुषाणामन्येषां प्राणिनां च विद्यादानसंरक्षणाख्यं यज्ञं पालयन्तमिन्द्रं हरी उपवहतस्तमित्सदा स्वीकुरस्त॥२॥

भावार्थ: - निह प्रशंसितपुरुषै: सत्कृतैरिधष्ठातृभिर्विना प्राणिनां भुंखं भवितुं शक्यम्। न खलु सित्क्रियया विना चक्रवर्त्तिराज्यादिप्राप्तिरक्षणे च भवितुं शस्त्रिते तस्मात्रे सर्वेरेतत्सर्वदाऽनुष्ठेयम्॥२॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! तुम जिस (अप्रतिषृष्टशायसम्) अहिंसित अत्यन्त बलयुक्त (ऋषीणाम्) वेदों के अर्थ जाननेहारों की (स्तुती:) प्रशंसा को प्राप्त (च) महागुणसम्पन्न (मानुषाणाम्) मनुष्यों (च) और प्राणियों के विद्यादान संरक्षण नाम (यज्ञम्) यक्न को पालम् करनेहारे (इन्द्रम्) प्रजा, सेना और सभा आदि ऐश्वर्य को प्राप्त करानेवाले को (हरी) दुःखहरण स्वभाव, श्री, बल, वीर्य, नाम, गुण, रूप, अश्व (उप वहतः) प्राप्त होते हैं, उसको (इत्) ही सद्य प्राप्त हुंजये॥२॥

भावार्थ:-जो प्रशंसा सत्कार अधिकार की प्राप्त है उनके विना प्राणियों को सुख नहीं हो सकता तथा सित्क्रिया के विना चक्रवर्षिणज्य आदि की प्राप्ति और रक्षण नहीं हो सकते, इस हेतु से सब मनुष्यों को यह अनुष्ठान करना उचित्र है। २॥

पुतः प्रेनध्यक्षः स्वभृत्यान् प्रति किं किमादिशेदित्युपदिश्यते॥

फिर सेनापति अपनी सेंचा क्रे भृत्यों को क्या-क्या आज्ञा देवे, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा

है॥

आ सिष्ठ वृत्रह्न् रथं युक्ता ते ब्रह्मणा हरी।

अर्वाचीने सु ते मनो प्रावा कृणोतु वुग्नुना ॥३॥

औ। तिष्ठ। वृत्रऽहुन्। रथम्। युक्ता। ते। ब्रह्मणा। हरी इति। अर्वाचीनम्। सु। ते। मर्नः। ग्रावां। कृणोतुः।

वुग्नुनी।∖३॥

मण्डल-१। अनुवाक-१३। सूक्त-८४

पदार्थ:-(आ) अभितः (तिष्ठ) (वृत्रहन्) मेघं सवित इव शत्रुमितिवच्छेतः (रथम्) विमानादियानम् (युक्ता) सम्यक् सम्बद्धौ (ते) तव (ब्रह्मणा) अन्नादिसामग्रया सह वर्तमानेत शिल्पिन् सारिथना वा (हरी) हरणशीलाविग्नजलाख्यौ तुरङ्गौ वा (अर्वाचीनम्) अधस्ताद् भूमिजूल्योरुप्पन्तिम् (सु) शोभने (ते) तव (मनः) विज्ञानम् (ग्रावा) मेघ इव विद्वान् यो गृणाति सः (कृणोतु) करोतु (वग्नुना) वाण्या। वग्नुरिति वाङ्नामसु पठितम्। (निघं०१.११)॥३॥

अन्वय:-हे वृत्रहन् शूरवीर! ते तव यस्मिन् ब्रह्मणा चालितौ हरी युक्ता स्तस्तृपर्वाचीने स्थं त्वमाविष्ठ ग्रावेव वग्नुना वक्तृत्वं सुकृणोत्वित्थं ते मनो वीरान् सुष्टूत्साहयतु॥३॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। सभाध्यक्षै: सेनायां द्वावध्यक्षे रक्ष्येतां तयोरेकः सेनापितर्योधियता द्वितीयो वक्तृत्वेनोत्साहायोपदेशकः। यदा युद्धं प्रवर्तेत तदा सेनापितर्भृत्यान् सुपरीक्ष्योत्साह्य शत्रुभिः सह योधयेद्यतो ध्रुवो विजयस्स्याद् यदा सुद्धं निवर्तेत तदोपदेशकः सर्वान् योद्धृन् परिचारकांश्च शौर्यकृतज्ञता धर्म्मकर्मोपदेशेन सूत्साहयुक्तान् कुर्योद्धं कर्त्तृणां कदाचित् पराजयो भिवतुत्र शक्यते इति वेद्यम्॥३॥

पदार्थ:-हे (वृत्रहन्) मेघ को सिवता के समान शतुओं के मारनेहारे शूरवीर! (ते) तेरे जिस (ब्रह्मणा) अन्नादिसामग्री से युक्त शिल्पि वा सार्शि के चलाये हुए (हरी) पदार्थ को पहुंचाने वाले जलाग्नि वा घोड़े (युक्ता) युक्त हैं, उस (अर्वाबीनम्) भूमि, जल के नीचे-ऊपर आदि को जाने वाले (रथम्) रथ में तू (आतिष्ठ) बैठ (ग्रावा) मेथ के समान (वग्नुना) सुन्दर मधुर वाणी में वक्तृत्व को (सुकृणोतु) अच्छे प्रकार कर, उससे (ते) तेरा (मन्ध्र) विज्ञान वीरों को अच्छे प्रकार उत्साहित किया करे॥३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वार्षकलुष्तीपमालङ्कार है। सभापितयों को योग्य है कि सेना में दो प्रकार के अधिकारी रक्खें। उनमें एक सिमा को लड़्को और दूसरा अच्छे भाषणों से योद्धाओं को उत्साहित करे। जब युद्ध हो तब सेनापित अच्छो प्रकार परीक्षा और उत्साह से शत्रुओं के साथ ऐसा युद्ध करावे कि जिससे निश्चित विजय ही और जब युद्ध बन्द हो जाये, तब उपदेशक योद्धा और सब सेवकों को धर्मयुक्त कर्म के उपदेश से अच्छे प्रकार उत्साहित करें, ऐसे करनेहारे मनुष्यों का कभी पराजय नहीं हो सकता॥३॥

पुनः स किमादिशेदित्युपदिश्यते॥

फिर वह क्या आज्ञा करे, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

द्रुपमिन्द्र सुतं पिंब ज्येष्टममत्युं मद्म।

सुकेष्यं त्वाभ्यक्षर्भारां ऋतस्य सादने॥४॥

डुमम्। डुन्द्र। सुतम्। पिब्। ज्येष्ठम्। अमर्त्यम्। मर्दम्। शुक्रस्य। त्वा। अभि। अक्षुरुन्। धार्राः। ऋतस्य। सर्दने॥४॥

पदार्थ:-(इमम्) प्रत्यक्षम् (इन्द्र) शत्रूणां विदारियतः (सुतम्) निष्पादितम् (पिष्क्री) अतिशयेन प्रशस्तम् (अमर्त्यम्) दिव्यम् (मदम्) हर्षम् (शुक्रस्य) पराक्रमस्य। (त्वा) स्वाम् (अभि) आभिमुख्ये (अक्षरन्) चालयन्ति (धाराः) वाचः। धारेति वाङ् नामसु पठितम्। (निष्कृर्वः ११) (ऋतस्य) सत्यस्य (सदने) स्थाने॥४॥

अन्वय:-हे इन्द्र! यं त्वा या धारा ऋतस्य शुक्रस्य सदन अभ्यक्षरंस्ताः प्राप्येमं सुतं सोमं पिब तेन ज्येष्ठममर्त्यं मदं प्राप्य शत्रून् विजयस्व॥४॥

भावार्थ: -कश्चिदिप विद्यासुभोजनैर्विना वीर्यं प्राप्तुं न शक्नोति, वीन विना सत्यस्य विज्ञानं विजयश्च न जायते॥४॥

पदार्थ:-हे (इन्द्र) शत्रुओं को विदारण करनेहारे! जिस् (त्वा) तुझे जॉ (धारा:) वाणी (ऋतस्य) सत्य (शुक्रस्य) पराक्रम के (सदने) स्थान में (अभ्यक्षरन्) प्राप्त करती हैं, उनको प्राप्त होके (इमम्) इस (सुतम्) अच्छे प्रकार से सिद्ध किये उत्तम ओषधियों के एस को (पिब) पी, उससे (ज्येष्ठम्) प्रशंसित (अमर्त्यम्) साधारण मनुष्य को अप्राप्त दिव्यस्वरूप (मदम्) आनन्द को प्राप्त होके शत्रुओं को जीत॥४॥

भावार्थ:-कोई भी मनुष्य विद्या और बिज्य नहीं हो सकता॥४॥

पुनस्तं कीदृष्णं स्भाध्यक्षे सत्कुर्युरित्युपदिश्यते॥

फिर किस प्रकार के सभाष्ट्रविक्ष का सेल्कर करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

इन्द्राय नूनमर्चतोक्थानि च ब्रवीतन।

सुता अमत्सुरिन्देवो र्चेष्ठं नम्स्यतो सहः॥५॥५॥

इन्द्राया नूनम्। अर्<u>ष्ट्वित्रा उ</u>ष्ट्याति। चा ब्र<u>वीतन्। सुताः। अमृत्सुः। इन्देवः। ज्येष्ठ</u>म्। नुमुस्यत्। सर्हः॥५॥

पदार्थ:-(इन्द्राय) अत्यन्तित्कृष्टाय (नूनम्) निश्चितम् (अर्चत) सत्कुरुत (उक्थानि) वक्तव्यानि वचनानि (च) समुरुवये (क्वीतन) उपदिशत (सुताः) निष्पादिताः (अमत्सुः) हर्षयेयुः (इन्दवः) सोमाः (ज्येष्ठम्) प्रशस्तिम् (न्सस्यत) पूजयत (सहः) बलम्॥५॥

अन्वयः-हे मनुष्या! यूयं यं सुता इन्दवोऽमत्सुहर्षयेयुर्यं ज्येष्ठं सहः प्राप्नुयात् तस्मा इन्द्राय नमस्यत तं मुख्यकार्येषु नियोज्य नूनमर्चतोक्थानि ब्रवीतन तस्मात् सत्कारं च प्राप्नुत॥५॥

भावार्थ: मनुष्यैर्यः सर्वान् सत्कुर्याच्छरीरात्मबलं प्राप्य परोपकारी भवेत् तं विहायान्यः सेनास्थिकारे कदाचित्रैव संस्थाप्य:॥५॥

मण्डल-१। अनुवाक-१३। सूक्त-८४

पदार्थ: - हे मनुष्यो! तुम जिसको (सुता:) सिद्ध (इन्दव:) उत्तम रसीले पदार्थ (अमत्सु:) आनन्दित करें, जिसको (ज्येष्ठम्) उत्तम (सह:) बल प्राप्त हो उस (इन्द्राय) सभाध्यक्ष को (निमस्यत) नमस्कार करो और उसको मुख्य कामों में युक्त करके (नूनम्) निश्चय से (अर्चत्) सत्वार करो (उक्थानि) अच्छे-अच्छे वचनों से (ब्रवीतन) उपदेश करो, उससे सत्कारों को (च) भूरिपाप्त हो॥५॥

भावार्थ:-मनुष्यों को योग्य है कि जो सबका सत्कार करे, शरीर और आदेमा के बल को प्राप्त होके परोपकारी हो, उसको छोड़ के अन्य को सेनापित आदि अधिकारों में कभी स्थापन न करें।।।।

पुन: स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा हो, इस विषय का उपदेश अगले मृन्त्र में किया है।

निकृष्ट्वद्रथीतरो हरी यदिन्द्र यच्छस।

निक्कष्टवानु मुज्मना निकः स्वर्ध आनशे॥६॥

नर्किः। त्वत्। रृथिऽतरः। हरी इति। यत्। इन्द्र। यच्छंसे। नर्किः। त्वप्रा अनुं। मुज्मनां। नर्किः। सुऽअर्थः। आनुशे॥६॥

पदार्थ:-(निक:) प्रश्ने (त्वत्) (रथीतर:) अतिश्येन रथ्नेयुक्तो योद्धा (हरी) अश्वौ (यत्) यः (इन्द्र) सेनेश (यच्छसे) ददासि (निक:) (त्वा) त्वाम (अनु) अनुकूल्ये (मज्मना) बलेन (निक:) न किल (स्वश्व:) शोभना अश्वा यस्य सः (आनशे) व्याप्निति॥६॥

अन्वय:-हे इन्द्र! यस्त्वं रथीतरस्स हर्यर्थेच्छसे त्या त्वां मज्मना कश्चित् किं निकरन्वानशे त्वदिधकः कश्चित् स्वश्चः किं निकर्विद्यते तस्मात् त्व सर्वेरङ्गैर्युक्तो भावा (६॥)

भावार्थ:-हे मनुष्या! यूयं सेनेशमेवमुप्रदिशत किं त्वं सर्वेभ्योऽधिक:? किं त्वया सदृश एव नास्ति? किं कश्चिदपि त्वां विजेतुं ते शक्चीति? तस्मात् त्वया समाहितेन वर्त्तितव्यमिति॥६॥

पदार्थ:-हे (इन्द्र) सेनी के धारण करनेहारे सेनापित! (यत्) जो तू (रथीतरः) अतिशय करके रथयुक्त योद्धा है सो (इसे) अन्याद्ध वा घोड़ों को (निकः) (यच्छसे) क्या रथ में नहीं देता अर्थात् युक्त नहीं करता? क्या रिवा) गुझको (मज्मना) बल से कोई भी (निकः) (अन्वानशे) व्याप्त नहीं हो सकता? क्या (त्वत्) तुझसे अधिक कोई भी (स्वश्वः) अच्छे घोड़ों वाला (निकः) नहीं है? इससे तू सब अङ्गों से युक्त हो॥६॥

भार्माथ: ५हे मनुष्यो! तुम सेनापित को इस प्रकार उपदेश करो कि क्या तू सब से बड़ा है? क्या तेरे तुल्य्न कोई भी यहीं है? क्या कोई तेरे जीतने को भी समर्थ नहीं है? इससे तू निरिभमानता से सावश्रीन होकर वर्ता कर॥६॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

808

ऋग्वेदभाष्यम्

फिर वह कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

य एक इद्विदयंते वसु मर्ताय दाशुषे। ईशानो अप्रतिष्कृत इन्द्रो अङ्गा।७॥

यः। एकः। इत्। विऽदयते। वसुं। मर्ताय। दाशुषे। ईशानः। अप्रतिऽस्कुतः। इन्द्रः। अङ्गार्था।

पदार्थ:-(य:) एक असहाय: (इत्) अपि (विदयते) विविधं दापयित (व्रस्) द्रव्यम् (मर्त्ताय) मनुष्याय (दाशुषे) दानशीलाय (ईशान:) समर्थ: (अप्रतिष्कुत:) असंचिलतः (इन्द्र:) सभाष्ट्रध्यक्ष: (अङ्ग) मित्र॥७॥

अन्वयः – हे अङ्ग मित्र मनुष्य! य इन्द्र एक इद् दाशुषे मर्ताय वसु विद्युते (ईशाम्भे)प्रतिष्कुतोऽस्ति, तमेव सेनायामधिकुरुत॥७॥

भावार्थ:-हे मनुष्या! यूयं यः सहायरिहतोऽपि निर्भयो युद्धाँदपलायेनश्रीलोऽतिशूरो भवेत्, तमेव सेनाध्यक्षं कुरुत॥७॥

पदार्थ: -हे (अङ्ग) मित्र मनुष्य! (य:) जो (इन्द्र:) सभा आदि? का अध्यक्ष (एक:) सहायरिहत (इत्) ही (दाशुषे) दाता (मर्नाय) मनुष्य के लिये (वसु) द्रव्य को (विदयते) बहुत प्रकार देता है और (ईशान:) समर्थ (अप्रतिष्कुत:) निश्चल है, उसी को स्निन् आदि-में अध्यक्ष कीजिए॥७॥

भावार्थ:-हे मनुष्यो! तुम लोग जो सहायसहित भी क्रिभिय होके युद्ध से नहीं हटता तथा अत्यन्त शूर है, उसी को सेना का स्वामी करो॥७॥

पुनः स कीदृश् इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

कदा मर्तमराधसं पदा श्रुप्पमिब स्फुरत्।

कदा नः शुश्रवद् गिर् इन्द्रो अङ्गार्थ॥

कदा। मर्तम्। अराध्यम्। पदा। क्षुम्पम्ऽइव। स्फुर्त्। कदा। नः। शुश्रुवत्। गिर्रः। इन्द्रः। अङ्गा।८॥

पदार्थ:-(कदा) क्रांसिन काले (मर्तम्) मनुष्यम् (अराधसम्) धनरहितम् (पदा) पदार्थप्राप्त्या (श्रुप्पमिव) यथा सर्प्यः फण्म् (स्फुरत्) संचालयेत् (कदा) (नः) अस्माकम् (श्रुश्रवत्) श्रुत्वा श्रावयेत् (गिरः) वाणीः (इन्द्रः) सभाद्यध्यक्षः (अङ्ग) शीघ्रकारी। यास्कमुनिरिमं मन्त्रमेवं समाचष्टे। श्रुप्पमिहच्छत्रकं भवति यत् श्रुभ्यते कदा मर्त्तमनाराधयन्तं पादेन श्रुप्पमिवावस्फुरिष्यति। कदा नः श्रोष्यिति गिर इन्द्रो अङ्ग। अङ्गेति श्रिप्रनाम। (निरु०५.१६)॥८॥

अस्त्रयः-हे अङ्ग क्षिप्रकारिन्निन्द्रो! भवान् पदा क्षुम्पमिवाराधसं मर्त्तं कदा स्फुरत् कदा नोऽस्मान् पदा क्षुम्पमिव स्फुरत् कद्म-नौऽस्माकं गिरः शुश्रवदिति वयमाशास्महे॥८॥

मण्डल-१। अनुवाक-१३। सूक्त-८४

भावार्थ:-हे मनुष्या! यूयं यो दरिद्रानिप धनाढ्यानलसान् पुरुषार्थयुक्तानश्रुतान् बहुश्रुतांश्च कुर्यात्, तमेव सभाध्यक्षं कुरुत। कदायमस्मद्वात्तां श्रोष्यति कदा वयमेतस्य वार्त्तां श्रोष्याम् इत्थमाशास्महे॥८॥

पदार्थ:-(अङ्ग) शीघ्रकर्ता (इन्द्र:) सभा आदि का अध्यक्ष (पदा) विज्ञान व्याधिन की प्राप्ति से (शुम्पिव) जैसे सर्प्य फण को (स्फुरत्) चलाता है, वैसे (अराधसम्) धनरहिद्ध (मर्तम्) मेनुष्य को (कदा) किस काल में चलावोगे (कदा) किस काल में (न:) हमको उक्त प्रक्रीर से अर्थात् विज्ञान वा धन की प्राप्ति से जैसे सर्प्य फण को चलाता है, वैसे (गिर:) वाणियों को (शुश्रवत्) सुन कर सुनावोगे॥८॥

भावार्थ:-हे मनुष्यो! तुम लोग में से जो दिरद्रों को भी धन्युक्त, अल्लिसयों को पुरुषार्थी और श्रवणरिहतों को श्रवणयुक्त करे, उस पुरुष ही को सभा आदि का अध्यक्ष करो। कब यहाँ हमारी बात को सुनोगे और हम कब आपकी बात को सुनेंगे, ऐसी आशा हम करते हैं। ८॥

पुन: स कीदृश इत्युप्रदिश्यते॥

फिर वह कैसा है, इस विषय का उपदेश अपले) मन्त्र में किया है।।

यश्चिद्धि त्वां बहुभ्य आ सुतावाँ आविवासिते। उम्रं तत्पत्यते शवु इन्द्रों अङ्गा। ९॥

यः। चित्। हि। त्वा। बहुऽभ्यः। आ सुतऽकान्। आऽविवासित। उत्रम्। तत्। पुत्यते। शर्वः। इन्द्रः। अङ्गा।९॥

पदार्थ:-(य:) (चित्) अपि (ह) खल् (त्वा) त्वाम् (बहुभ्य:) मनुष्येभ्यः (आ) समन्तात् (सुतावान्) प्रशस्तोत्पन्नपदार्थयुक्तः (आविवासित) समन्तात् परिचरित (उग्रम्) उत्कृष्टम् (तत्) (पत्यते) प्राप्यते (शवः) बलम् (इन्द्रः) सभाद्यध्यक्षः (अङ्ग) क्षिप्रकारी सर्वसुहृद्॥९॥

अन्वयः-हे अङ्ग ! न्व यः सुताव्यनिन्द्रो बहुभ्यस्त्वा त्वामाविवासित य उग्रं शवश्चित्तदा पत्यते, तं हि खलु राजानं मन्यध्वम्॥९॥

भावार्थ: हे मनुष्या! यूयं यः शत्रूणां बलं हत्वा युष्मान् दुःखेभ्यो वियोज्य सुखिनः कर्तुं शक्नोति, यस्य भयप्रक्रमाभ्यां शत्रवो निलीयन्ते, तं किल सेनापितं कृत्वानन्दत॥९॥

पदार्थ: है (अङ्ग) मित्र! तू जो (सुतावान्) अन्नादि पदार्थों से युक्त (इन्द्रः) परमैश्वर्य का प्रापक (बहुभ्यः) मनुष्यों से (त्वा) तुझको (आविवासित) सेवा करता है, जो शत्रुओं का (उग्रम्) अत्यन्त (शवः) बल्ल (तत्) उसको (चित्) भी (आपत्यते) प्राप्त होता है (तम्) (हि) उसी को राजा मानो॥९॥

भावार्थ:-हे मनुष्यो! तुम लोग जो शत्रुओं के बल का हनन करके तुमको दु:खों से हटाकर सुखयुक्त करने को समर्थ हो तथा जिसके भय और पराक्रम से शत्रु नष्ट होते हैं, उसे सेनापित करके आनन्द को प्राप्त होओ॥९॥

पुनः स कीदृशः स्यादित्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

स्वादोरित्था विषूवतो मध्वः पिबन्ति गौर्यः।

या इन्द्रेण सुयावरीवृष्णा मदिन्ति शोभसे वस्वीरने स्वराज्यम्॥ १०॥६॥

स्वादोः। इत्था। विषुऽवर्तः। मध्वः। पि्बन्ति। गौर्यः। याः। इन्द्रेण। सुर्थावितः। कृणां। मदन्ति। शोभसे। वस्वीः। अनुं। स्वराज्यम्॥१०॥

पदार्थ:-(स्वादो:) स्वादयुक्तस्य (इत्था) अनेन हेतुना (विषुवत:) प्रश्निता विषुव्यांप्तिर्यस्य तस्य (मध्व:) मधुरादिगुणयुक्तस्य (पिबन्ति) (गौर्य:) शुभ्रा किरणा इव उद्यमयुक्ताः सेनाः (या:) (इन्द्रेण) सूर्य्येण सह वर्तमानाः (सयावरी:) याः समानं यान्ति ताः (चृष्णा) बिल्लप्टेन (मदन्ति) हर्षन्ति (शोभसे) शोभितुम् (वस्वी:) पृथिव्यादिसंबन्धिनीः (अनु) आनुकूल्ये (स्वराज्यम्) स्वकीयराष्ट्रम्॥१०॥

अन्वय:-हे इन्द्र! वृष्णेन्द्रेण सयावरीर्वस्वीगौर्यः किरणाः) स्वराज्यं शोभसेऽनुमदन्ती इत्था स्वादोर्विषुवतो मध्वः पिबन्तीव त्वमपि वर्त्तस्व॥१०॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्काद्वः निह्न स्वसेनापितिभिर्वीरसेनाभिश्च विना स्वराज्यस्य शोभारक्षणे भवितुं शक्ये इति। यथा सूर्यस्य किरणाः प्रूर्यण विना स्थातुं वायुना जलाकर्षणं कृत्वा वर्षितुं च नु शक्नुवन्ति तथा सेनापितना राज्ञा नाम्तरेष प्रभाश्चानन्दितुं न शक्नुवन्ति॥१०॥

पदार्थ:-जैसे (वृष्णा) सुख के वर्षाने (इन्द्रण) सूर्य के साथ (सयावरी:) तुल्य गमन करनेवाली (वस्वी:) पृथिवी [आदि से सम्बन्ध करनेवाली] (गौर्य:) किरणों से (स्वराज्यम्) अपने प्रकाशरूप राज्य के (शोभसे) शोभा के लिये (अनुमदन्ति) हुई का हेतु होती हैं, वे (इत्था) इस प्रकार से (स्वादो:) स्वादयुक्त (विषुवत:) वाले (मध्व:) आदि गुण को (पिबन्ति) पीती हैं, वैसे तुम भी वर्ता करो॥१०॥

भावार्थ: इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। अपनी सेना के पित और वीरपुरुषों की सेना के विना निज राज्य की शोभा तथा रक्षा नहीं हो सकती। जैसे सूर्य की किरण सूर्य के विना स्थित और वायु के विना ज़ुल को आकर्षण करके वर्षाने के लिये समर्थ नहीं हो सकती, वैसे सेनाध्यक्ष और राजा के विना प्रश्री आनन्द करने को समर्थ नहीं हो सकती॥१०॥

पुनस्तत्सम्बन्धिगुणा उपदिश्यन्ते॥

अब फिर उससे सम्बन्धित गुणों का उपदेश किया है॥

मण्डल-१। अनुवाक-१३। सूक्त-८४

ता अस्य पृशनायुवः सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः।

प्रिया इन्द्रस्य धेनवो वज्रं हिन्वित् सार्यकं वस्वीरनं स्वराज्यम्॥११॥

ताः। अस्य। पृशन्ऽयुर्वः। सोर्मम्। श्रीणन्तः। पृश्नयः। प्रियाः। इन्द्रस्य। धेनवः। विश्रमः। हिन्दुन्ति। सार्यकम्। वस्वीः। अनु। स्वऽराज्यम्॥११॥

पदार्थ:-(ता:) उक्ता वक्ष्यमाणाश्च (अस्य) (पृशनायुव:) आत्मनः, स्पर्शमिच्छन्त्यः) अत्र छान्दसो वर्णलोपो वेति सलोपः। (सोमम्) पदार्थरसमैश्वर्यं वा (श्रीणन्ति) पन्निन्ते (पृश्नयः) याः स्पृशन्ति ताः। अत्र घृणिपृश्नि० (उणा०४.५४) अनेनायं निपातितः। (प्रियाः) तर्पयन्ति ताः (इन्द्रस्य) सूर्यस्य वा सेनाध्यक्षस्य वा (धेनवः) किरणा गावो वाचो वा (वस्त्रम्) सप्प्रमूहं किरणसमूहं वा (हिन्वन्ति) प्रेरयन्ति (सायकम्) स्यन्ति क्षयन्ति येन तम् (वस्त्रीः) पृथिवीसम्बन्धिन्यः (अनु) (स्वराज्यम्)॥११॥

अन्वयः-हे मनुष्या! यूयमस्येन्द्रस्य याः पृशनायुवः पृश्नयः प्रियो धेनवः सोमं श्रीणन्ति सायकं वज्रं हिन्वन्ति वस्वीः स्वराज्यमनुभवन्ति ताः प्राप्ता॥११॥

भावार्थ:-यथा गोपालस्य धेनवो जलं पीत्वा स्वसं जिंध्वा सुखं वर्धित्वाऽन्येषामानन्दं वर्धयन्ति, तथैव सेनाध्यक्षस्य सेनाः सूर्यस्य च किरणा ओष्ट्रीभ्यो वैद्यक्षशास्त्रसम्पादितं परिपक्वं वा रसं पीत्वा विजयं प्रकाशं वा कृत्वानन्दयन्ति॥११॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! तुम लोग (अस्य) इस (इन्ह्रस्य) सूर्य वा सेना के अध्यक्ष की (पृशनायुवः) अपने को स्पर्श करनेवाली अर्थात् उलट प्राप्त अपना स्पर्श करना चाहती (पृश्नयः) स्पर्श करती और (प्रियाः) प्रसन्न करनेहारी (धेनवः) किरण बा गौ वा वाणी (सोमम्) ओषधि रस वा ऐश्वर्य को (श्रीणन्ति) सिद्ध करती और (सायकम्) दुर्गुणों को क्षय करनेहारे ताप वा शस्त्रसमूह को (हिन्वन्ति) प्रेरणा देती है (वस्वीः) और च पृथिवी से सम्बन्ध करनेवाली (स्वराज्यम्) अपने राज्य के (अनु) अनुकूल होती है, उनको प्राप्त होओ। १॥

भावार्थ:-जैसे प्रिम् को गी जल रस को पी, घास को खा, निज सुख को बढ़ाकर, औरों के आनन्द को बढ़ाती है, वैसे ही सेनाध्यक्ष की सेना और सूर्य की किरण औषधियों से वैद्यकशास्त्र के अनुकूल वा उत्प्रत्र हुए परिषक्व रस को पीकर विजय और प्रकाश को करके आनन्द कराती हैं॥११॥

पुनरेताः किं कुर्वन्तीत्युपदिश्यते॥

फिर वे क्या करती हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

तो अस्य नर्मसा सहैः सपुर्यन्ति प्रचैतसः।

ब्रुतान्यस्य सश्चिरे पुरूणि पूर्विचत्तये वस्वीरनु स्वराज्यम्॥१२॥

ताः। अस्य। नर्मसा। सर्हः। सपुर्यन्ति। प्रऽचैतसः। वृतानि। अस्य। सुश्चिरे। पुरूणि। पूर्वऽचित्तये। वस्वीः अर्नु। स्वऽराज्यम्॥१२॥

पदार्थ:-(ता:) (अस्य) प्रतिपादितस्य (नमसा) अन्नेन वज्रेण वा (सह:) बलम् (स्परिक्त) सेवन्ते (प्रचेतस:) प्रकृष्टं चेतो विज्ञानं यासां ताः (व्रतानि) नियमानुगतानि धर्म्याणि कर्माणि (अस्य) (सिश्चरे) गच्छन्ति (पुरूणि) बहूनि (पूर्वचित्तये) पूर्वेषां संज्ञानाय संज्ञापनाय व्य (वस्वीः) (अनु) (स्वराज्यम्) इति पूर्ववत्॥१२॥

अन्वयः-हे मनुष्या! यूयं यथा स्वराज्यमर्चन् न्यायाधीशः सर्वान् पालयित, तथाउस्य नेमसा सह वर्त्तमानाः प्रचेतसः सेनाः सहः सपर्यन्ति, या अस्य पूर्वचित्तये पुरूणि व्रतानि सिश्चरे ता वस्वीरनुमुहित् सेवध्वम्॥१२॥

भावार्थ:-मनुष्यैर्निह सामग्रया बलेन नियमैर्विनाऽनेकानि सञ्ज्ञादीनि सुखानि सम्पद्यन्ते तस्माद् यमनियमानामानुयोग्यमेतत्सर्वं संचिन्त्य विजयादीनि कर्माणि साधनीयानि। १२।)

पदार्थ:-हे मनुष्यो! तुम लोग जैसे (स्वराज्यम्) अपने प्रत्ये का सुत्कार करता हुआ न्यायाधीश सबका पालन करता है, वैसे (अस्य) इस अध्यक्ष के (नमसा) अब बा क्यू के साथ वर्तमान (प्रचेतसः) उत्तम ज्ञानयुक्त सेना (सहः) बल को (सपर्यन्ति) सेव्य करती हैं (याः) जो (अस्य) सेनाध्यक्ष के (पूर्वचित्तये) पूर्वज्ञान के लिये (पुरुषणि) बहुत (व्रतानि) सत्यभाषण नियम आदि को (सिश्चरे) प्राप्त होती हैं (ताः) उन (वस्वीः) पृथिवी सम्बन्धियों को दिशों के अननद भोगने के लिये सेवन करो॥१२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को योग्य है कि सामग्री बल और अच्छे नियमों के विना बहुत राज्य आदि के सुख नहीं ग्राप्त होते, इस हेतु से यम-नियमों के अनुकूल जैसा चाहिये, वैसा इसका विचार करके किन्त्र आदि धर्मयुक्त कर्मों को सिद्ध करें॥१२॥

पुनस्तस्य कृत्यमुपदिश्यते॥

फिर उस सजा के करूप का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

इन्द्री दधीचो अस्थभिर्धृत्राण्यप्रतिष्क्रितः। ज्ञ्यानं नवतीर्नवं॥१३॥

इन्द्रं:। दुधीच:। अस्पर्भि:। वृत्ताणी। अप्रतिऽस्कुत:। जुघानी। नुवृती:। नवी॥ १३॥

पदार्थ:-(इन्द्र:) सूर्यलोकः (दधीच:) ये दधीन् वाय्वादीनञ्चन्ति तान् (अस्थिभः) अस्थिरैश्चञ्चलैः किरणचलनैः। अत्र छन्दस्यपि दृश्यते। (अष्टा०७.१) अनेनानझदेशः। (वृत्राणि) वृत्रसंबन्धिभूतानि जलानि (अप्रतिष्कृतः) असंचलितः (जघान) हन्ति (नवतीः) नवतिसंख्याकाः (नव) नव दिशामवयक्राः॥१२॥

अन्वयः - हे सेनेश! यथाप्रतिष्कुत इन्द्रोऽस्थिभिर्नवनवतीर्दधीचो वृत्राणि कणीभूतानि जलानि जघान हन्ति तथा शत्रून् हिन्धा १३॥

मण्डल-१। अनुवाक-१३। सूक्त-८४

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। मनुष्यैः स एव सेनापितः कार्यो यः सूर्यवच्छत्रूणां हन्ता स्वसेनारक्षकोऽस्तीति वेद्यम्॥१३॥

पदार्थ: - हे सेनापते! जैसे (अप्रतिष्कुतः) सब ओर से स्थिर (इन्द्रः) सूर्यले (अस्थिरः) अस्थिर किरणों से (नव नवतीः) निन्नानवें प्रकार के दिशाओं के अवयवों को प्राप्त हुए (देशीचः) जो धारण करनेहारे वायु आदि को प्राप्त होते हैं, उन (वृत्राणि) मेघ के सूक्ष्म अवयव रूप जलों को (जधान) हनन करता है, वैसे तू अनेक अधर्मी शत्रुओं का हनन कर॥१३॥

भावार्थ:-यहाँ वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। वहीं सेनापित होने के क्षेप्य होता है, जो सूर्य के समान दुष्ट शत्रुओं का हन्ता और अपनी सेना का रक्षक है॥१३॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

डुच्छन्नश्चस्य यच्छिरः पर्वतेष्वपश्चितम्। तद्विदच्छर्युणाचेति॥ १४॥

डुच्छन्। अश्वस्य। यत्। शिर्रः। पर्वतेषु। अपंऽश्रितम्। तत्। क्रिट्त्। सूर्यणाऽवंति॥ १४॥

पदार्थ:-(इच्छन्) (अश्वस्य) आशुगामिन: (यत्) (शिर:) उत्तमाङ्गम् (पर्वतेषु) शैलेषु मेघावयवेषु वा (अपश्रितम्) आसेवितम् (तत्) (विदत्) विद्यात् (शर्यणावित) शर्यणोऽन्तरिक्षदेशस्तस्यादूरभवे। अत्र मध्वादिभ्यश्च। (अ०१४.२.८३) अनेन मतुप्॥१४॥

अन्वय:-यथेन्द्रोऽश्वस्य यच्छर्यणावित पर्वतेष्वपश्चितं शिरोऽस्ति तज्जघान हन्ति तद्वच्छत्रुसेनाया उत्तमाङ्गं छेतुमिच्छन् सुखानि विदल्लभेत्॥१४॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः यथा सूर्योऽन्तरिक्षमाश्रितं मेघं छित्त्वा भूमौ निपातयित, तथैव पर्वतदुर्गाश्रितमपि शत्रुं हत्त्व भूमो निषातयेत् नैवं विना राज्यव्यवस्था स्थिरा भवितुं शक्या॥१४॥

पदार्थ:-जैसे (इन्द्र:) सूर्य (अश्वस्त्र) शीघ्रगामी मेघ का (यत्) जो (शर्यणावित) आकाश में (पर्वतेषु) पहाड़ वा मेघों में (अपश्रित्रम्) आश्रित (शिर:) उत्तमाङ्ग के समान अवयव है, उसको छेदन करता है, वैसे शत्रु की अने के उत्तमाङ्ग के नाश की (इच्छन्) इच्छा करता हुआ सुखों को सेनापित (विदत्) प्राप्त होवे॥१४॥

२. 'इन्द्रः पद मन्त्र में पठित नहीं है।

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य आकाश में रहनेहारे मेघ का छैदने कर भूमि में गिराता है, वैसे पर्वत और किलों में भी रहनेहारे दुष्ट शत्रु का हनन करके भूमि में गिरा देवे, इस प्रकार किये विना राज्य की व्यवस्था स्थिर नहीं हो सकती॥१४॥

अथ राज्ञः सूर्यवत्कृत्यमुपदिश्यते॥

अब राजा का सूर्य के समान करने योग्य कर्म का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

अत्राहु गोर्रमन्वत् नाम् त्वष्टुरिपोच्यम्। इत्था चन्द्रमसो गृहे॥१५॥७॥ अत्री अही गोः। अमुन्वत्। नामी त्वष्टुः। अपोच्यम्। इत्था। चन्द्रमसः। गृहे॥१५॥

पदार्थ:-(अत्र) अस्मिञ्जगित (अह) विनिग्रहे (गो:) पृथिव्याः (अमन्वत) मृत्यन्ते (नाम) प्रसिद्धं रचनं नामकरणं वा (त्वष्टुः) मूर्तद्रव्यछेदकस्य (अपीच्यम्) येऽप्यष्ट्रम्ति प्राप्तचित्रं तेषु साधुम् (इत्था) अनेन हेतुना (चन्द्रमसः) चन्द्रलोकादेः (गृहे) स्थाने॥१५॥

अन्वयः-हे राजादयो मनुष्या! यूयं यथाऽत्रनाम गोश्चन्द्रमसस्त्रम्थरिपीच्यमस्त्रीत्रथामन्वत तथाऽह न्यायप्रकाशाय प्रजागृहे वर्त्तध्वम्॥१५॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। मनुष्यैज्ञावित्रामोश्वरतिद्यावृद्ध्योहीनिर्विपरीतता भवितुं न शक्या, सर्वेषु कालेषु सर्वासु क्रियास्वेकरसम्बृष्टिनियमा भवन्ति। यथा सूर्यस्य पृथिव्या सहाकर्षणप्रकाशादिसम्बन्धाः सन्ति, तथैवान्यभूगोलैः सह स्मन्ति। कुत ईश्वरेण संस्थापितस्य नियमस्य व्यभिचारो न भवति॥१५॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! तुम लोग जैसे (अत्र) इस जगत् में (नाम) प्रसिद्ध (गौ:) पृथिवी और (चन्द्रमस:) चन्द्रलोक के मध्य में (त्वष्टु:) छेदन करनेहारे सूर्य का (अपीच्यम्) प्राप्त होनेवालों में योग्य प्रकाशरूप व्यवहार है (इत्था) इस प्रकार (अमन्वत) मानते हैं, वैसे (अह) निश्चय से जाके (गृहे) घरों में न्यायप्रकाशार्थ वर्तो॥१५॥

भावार्थ: - इस मन्त्र मि वाचकलुप्तोम्भालङ्कार है। मनुष्यों को जानना चाहिये कि ईश्वर की विद्यावृद्धि की हानि और विषयितता नहीं हो सकती। सब काल सब क्रियाओं में एकरस सृष्टि के नियम होते हैं। जैसे सूर्य का पृथिव के साथ आकर्षण और प्रकाश आदि सम्बन्ध हैं, वैसे ही अन्य भूगोलों के साथ। क्योंकि ईश्वर से स्थिर किये नियम का व्यभिचार अर्थात् भूल कभी नहीं होती॥१५॥

पुनः सेनापतेः कृत्यमुपदिश्यते॥

फिर सेनापित के योग्य कर्म का उपदेश करते हैं॥

को अद्य चुड्क्ते धुरि गा ऋतस्य शिमीवतो भामिनौ दुईणायून्।

अप्रेम्त्रिषून् हुत्स्वसी मयोभून् य एषां भृत्यामृणध्त् स जीवात्॥१६॥

मण्डल-१। अनुवाक-१३। सूक्त-८४

कः। अद्यः। युऽङ्क्ते। धुरि। गाः। ऋतस्ये। शिमीऽवतः। भामिनेः। दुःऽहृणायून्। आसन्ऽईषून्। हृत्सुऽअसेः। मुयःऽभून्। यः। एषाम्। भृत्याम्। ऋणधत्। सः। जीवात्॥ १६॥

पदार्थ:-(क:) (अद्य) इदानीम् (युड्क्ते) युक्तो भवित (धुरि) शत्रुहिंसने युद्धे (गाः) भूमिः (ऋतस्य) सत्याचारस्य (शिमीवतः) प्रशस्तकर्मयुक्तान् (भामिनः) शत्रूणामुपरिक्रोधकृतिणः (दुर्हणायून्) शत्रुभिर्दुर्लभं हणं प्रसह्यकरणं येषां ते दुर्हणास्त इवाचरन्तीति दुर्हणायवस्तान् यस्त्रेत्र क्याच्छेन्द्रसीत्युः प्रत्ययः। (आसित्रधून्) आसने प्राप्ता बाणा यैस्तान् (हत्स्वसः) ये हत्स्वस्यिन्ति बाणाप्त तान् (भयाभून्) मयः सुखं भावुकान् (यः) (एषाम्) (भृत्याम्) भृत्येषु साध्वीं सेनाम् (ऋणधत्) समृध्नुयात् (सः) (जीवात्) चिरञ्जीवेत्॥१६॥

अन्वय:-कोऽद्यर्तस्य शिमीवतो भामिनो दुईणायूनासन्निषून् हत्स्वसो स्योभन् सुनीरान् धुरि युङ्कते य एषां भृत्यां गा ऋणधत् स चिरञ्जीवात्॥१६॥

भावार्थ:-सर्वाध्यक्षो राजा सर्वान् प्रसिद्धामाज्ञां दद्यात् सर्वान् सैन्नस्थवीरान् सत्याचारेण युञ्जीत सदैषां जीविकां वर्द्धयित्वा स्वयं दीर्घायु: स्यात्॥१६॥

पदार्थ:-(क:) कौन (अद्य) इस समय (ऋतस्य) सत्य आचरण सम्बन्धी (शिमीवत:) उत्तम क्रियायुक्त (भामिन:) शत्रुओं के ऊपर क्रोध करने (दुर्हणायूक्र) शत्रुओं को जिनका दुर्लभ सहसा कर्म उनके समान आचरण करने (आसित्रपून्) अच्छे स्थान भें जाण पहुंचाने (हत्स्वस:) शत्रुओं के हृदय में शस्त्र प्रहार करने और (मयोभून्) स्वराज्य के लिये सुखु करनेहारे श्रेष्ठ वीरों को (धुरि) संग्राम में (युङ्के) युक्त करता है वा (य:) जो (एषाम्) इनको जीविका के निमित्त (गा:) भूमियों को (ऋणधत्) समृद्धियुक्त करे (स:) वह (जीवात्) बहुत समय पर्यन्त जीवे॥१६॥

भावार्थ:-सबका अध्यक्ष राजा सेचको प्रकट आज्ञा देवे। सब सेना वा प्रजास्थ पुरुषों को सत्य आचरणों में नियुक्त करे। सर्वद्वा उनकी जीविका बढ़ाके आप बहुत काल पर्यन्त जीवे॥१६॥

अश्रु प्रश्नीतरै राजधर्ममुपदिश्यते॥

क्व अनल में त्र में प्रश्नोत्तर से राजधर्म का उपदेश किया है॥

क ईषते तुज्यते को बिभाय को मंसते सन्तमिन्द्रं को अन्ति।

कस्तोकाये क इभायोत रायेऽधि ब्रुवत् तन्वे र् को जनाय।। १७॥

कः। इपिता तुज्यते। कः। बिभाय। कः। मंसते। सन्तम्। इन्द्रम्। कः। अन्ति। कः। तोकाय। कः। इभाय। उता राये। अधि। ब्रुक्तः तुन्वे। कः। जनाय।। १७॥

पर्वार्थ:-(क:) कश्चित् (ईषते) युद्धमिच्छेत् (तुज्यते) हिंस्यते (क:) (विभाय) विभेति (क:)

(मॅंसते) सन्यते (सन्तम्) राजव्यवहारेषु वर्त्तमानम् (इन्द्रम्) परमैश्वर्यकारकम् (कः) (अन्ति) समीपे (कः)

987

(**तोकाय**) सन्तानाय (**कः) (इभाय)** हस्तिने (उत) अपि (राये) उत्तमश्रिये (अधि) अध्यक्षतया (ब्रर्वत्) ब्रूयात् (तन्वे) शरीराय (कः) (जनाय) प्रधानाय॥१७॥

अन्वय:-हे सेनापते! सेनास्थभृत्यानां मध्ये कः शत्रूनीषते? कः शत्रुभिस्तुज्यते? को युद्धे (विभागि? कः) सन्तमिन्द्रं मंसते? कस्तोकायान्ति वर्त्तते? क इभाय शिक्षते? उतापि को राये प्रवर्तेत? कस्तन्वे जनाम चाधिब्रविद्धित? त्वं ब्रूहि॥१७॥

भावार्थ:-ये दीर्घब्रह्मचर्येण सुशिक्षयान्यैः शुभैर्गुणैर्युक्तास्ते सर्वाण्येसानि कम्मीणि कर्तुं शक्नुवन्ति, नेतरे। यथा राजा सेनापितं प्रति सर्वां स्वसेनाभृत्यव्यवस्थां प्रेच्छेत् तथा सेनाध्यक्षः स्वाधीनान्नध्यक्षान् स्वयमेतां पृच्छेत्। यथा राजा सेनापितमाञ्जापयेत् तथा स्वयं सेनाध्यक्षान्नाज्ञापयेत्॥१७॥

पदार्थ: - हे सेनापते! सेनाओं में स्थित भृत्यों में (क:) कौन प्रत्रुओं को (ईषते) मारता है। (क:) कौन शत्रुओं से (तुज्यते) मारा जाता है (क:) कौन युद्ध में (विभाय) भय को प्राप्त होता है (क:) कौन (सन्तम्) राजधर्म में वर्तमान (इन्द्रम्) उत्तम ऐश्वर्य के दाता को (मसते) ज्ञानता है (क:) कौन (तोकाय) सन्तानों के (अन्ति) समीप में रहता है (क:) कौन (इभाय) हाथी के ज्ञत्तम होने के लिये शिक्षा करता है (उत) और (क:) कौन (राये) बहुत धन करने के लिये वर्तिता और (तन्वे) शरीर और (जनाय) मनुष्यों के लिये (अधिव्रवत्) आज्ञा देवे, इसका उत्तर आप कहिये॥१७॥

भावार्थ:-जो अड़तालीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य, उच्चम शिक्षा और अन्य शुभ गुणों से युक्त होते हैं, वे विजयादि कर्मों को कर सकते हैं। जैसे राजा सेनाप्रति को सब अपनी सेना के नौकरों की व्यवस्था को पूछे, वैसे सेनापित भी अपने अधीन छोटे सेनाप्रतियों को स्वयं सब वार्ता पूछे। जैसे राजा सेनापित को आज्ञा देवे, वैसे (सेनापित स्वयं) सिना के प्रश्नीन पुरुषों को करने योग्य कर्म की आज्ञा देवे॥१७॥

पुनस्तदेवोपदिश्यते॥

फिर भी उक्ते विषय का उपदेश किया है।।

को अग्निमीट्टे हिक्षा घृतन सुचा यंजाता ऋतुभिर्धुवेभिः।

कस्मै देवा आ बहानामु होम को मंसते वीतिहोत्रः सुदेवः॥१८॥

कः। अग्निम्। ईट्टे। हविषां। घृतेनं। स्रुचा। यजातै। ऋतुऽभिः। ध्रुवेभिः। कस्मै। देवाः। आ। वृहान्। आशु। होमं। कः। मंसुते। वीकिऽहोत्रः। सुऽदेवः॥१८॥

पदार्थ: कः) (अग्निम्) पावकमाग्नेयाऽस्त्रं वा (ईट्टे) ऐश्वर्यहेतुं विदधाति (हविषा) होतव्येन विज्ञानेन धनादिना चा (घृतेन) आज्येनोदकेन वा (स्नुचा) कर्मणा (यजातै) यजेत (ऋतुभिः) वसन्तादिभिः (धुवेभिः) सिश्चलैः कालावयवैः (कस्मै) (देवाः) विद्वांसः (आ) (वहान्) समन्तात् प्राप्नुयुः (आशु)

मण्डल-१। अनुवाक-१३। सुक्त-८४

सद्यः (होम) ग्रहणं दानं वा (कः) (मंसते) जानाति (वीतिहोत्रः) प्राप्ताप्तविज्ञानः (सुदेवः) शुभैर्गुणकर्मस्वभावै-र्देदीप्यमानः॥१८॥

अन्वय:-हे ऋत्विक्! त्वं को वीतिहोत्रो हिवषा घृतेनाऽग्निमीट्टे सुचा ध्रुवेभिर्ऋतुभिर्यद्वीते देवाः नस्मे होमाऽऽश्वावहान् कः सुदेव एतत्सर्वं मंसत इति ब्रूहि॥१८॥

भावार्थ:-हे विद्वन्! केन साधनेन कर्मणा वाऽग्निविद्याऽस्मान् प्राप्नुयात् देकेन यज्ञः सिध्यते? कस्मै प्रयोजनाय विद्वांसो विज्ञानयज्ञं तन्वते?॥१८॥

पदार्थ:-हे विद्वान्! (क:) कौन (वीतिहोत्रः) विज्ञान और श्रेष्ठ क्रियायुक्त पुरुष (हविषाः) विचार और (घृतेन) घी से (अग्निम्) अग्नि को (ईट्टे) ऐश्वर्य प्राप्ति को हैते करता है, (क:) कौन (सुचा) कर्म से (ध्रुवेभिः) निश्चल (ऋतुभिः) वसन्तादि ऋतुओं में (यूजाते) ज्ञान और क्रियायज्ञ को करे, (देवाः) विद्वान् लोग (कस्मै) किसके लिये (होम) ग्रहण वा दान को (आशु) शीघ्र (आवहान्) प्राप्त करावें, कौन (सुदेवः) उत्तम विद्वान् इस सबको (मंसते) जानत् है इस भूग उत्तर कहिये॥१८॥

भावार्थ: -हे विद्वन्! किस साधन वा कर्म से अनिविद्या को प्राप्त हों? और किससे क्रियारुप यज्ञ सिद्ध होवे? किस प्रयोजन के लिये विद्वान् लोग यज्ञ का विस्तार करते हैं?॥१८॥

पुनरीश्वरसभाद्यध्याक्षौ कीदुशी जानीयादित्युपदिश्यते॥

फिर ईश्वर और सभा आदि के अध्यक्षों को किसे जोनें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

त्वमङ्ग प्र शंसिषो देव: शविष्ठ मृत्यम्।

न त्वदुन्यो मंघवन्नस्ति मर्डितेन्द्र ज्ञानीम् है वर्चः॥१९॥

त्वम्। अङ्गः। प्राः शृंसिषः। देवः। शृविष्ठः। मर्त्यम्। न। त्वत्। अन्यः। मघुऽवन्। अस्ति। मुर्डिता। इन्द्री। ब्रवीमि। ते। वर्चः॥१९॥

पदार्थ:-(त्वम्) (अङ्क्री मित्र (प्र) (श्रेंसिषः) प्रशंसे (देवः) दिव्यगुणः (श्रविष्ठ) अतिबलयुक्त (मर्त्यम्) मनुष्यम् (न) निषेधे (त्वत्र) (अन्यः) भिन्नः (मघवन्) परमधनप्रापक (अस्ति) (मर्डिता) सुखप्रदाता (इन्द्र) दुःखबिदा कं (ज्रवीमि) उपदिशामि (ते) तुभ्यम् (वचः) धर्म्यं वचनम्॥१९॥

अन्वयः-हे अङ्ग शविष्ठ! यतस्त्वं देवोऽसि तस्मान् मर्त्यं प्रशंसिषः। हे मघवन्निन्द्र! यतस्त्वदन्यो मर्डिता सुखप्रदाता नाऽस्त्रि तस्मात् ते वची ब्रवीमि॥१९॥

भावार्थः भानाप्येः प्रशंसितकर्मणानुपमेन सततं सुखप्रदेन धार्मिकेण मनुष्येण सहैव मित्रतां कृत्वा परस्परं द्वितोपदेशः कर्तव्यः॥१९॥

पदार्थ:-हे (अङ्ग) मित्र (शविष्ठ) परम बलयुक्त! जिससे (त्वम्) तू (देव:) विद्वान् है, उससे (मर्त्यम्) मनुष्य को (प्र शंसिष:) प्रशंसित कर। हे (मघवन्) उत्तम धन के दाता (इन्द्र) दु:खों का

नाशक! जिससे (त्वम्) तुझसे (अन्यः) भिन्न कोई भी (मर्डिता) सुखदायक (नास्ति) नहीं है, उससे (ते) तुझे (वचः) धर्म्मयुक्त वचनों का (ब्रवीमि) उपदेश करता हूँ॥१९॥

भावार्थ:-मनुष्यों को योग्य है कि उत्तम कर्म करने, असाधारण सदा सुख देने हो आर्मिक मनुष्यों के साथ ही मित्रता करके एक-दूसरे को सुख देने का उपदेश किया करें॥१९॥

पुनः स सभाध्यक्षः कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह सभाध्यक्ष कैसा हो, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा हैं।

मा ते राधांसि मा ते ऊतयों वसोऽस्मान् कदां चना देभन्। विश्वां च न उपिममी॒हि मानुष् वसूंनि चर्ष्णिभ्य आ॥२०॥ (१) हो।

मा। ते। राधांसि। मा। ते। ऊतर्यः। वसो इति। अस्मान्। कदौ। चेन्ना दुभन्। विश्वा च। नः। उपऽिममीहि। मानुष्। वसूनि। चुर्षुणिऽभ्यः। आ॥२०॥

पदार्थ:-(मा) निषेधे (ते) (राधांसि) धनानि (मा) (ते) (ऊतये) रक्षणादीनि कर्माणि (वसो) सुखेषु वासयित (अस्मान्) (कदा) (चन) कस्मिन्निप काले (दभने) हिंस्युः (विश्वा) सर्वाणि (च) समुच्चये (नः) अस्मान् (उपिममीहि) श्रेष्ठैरुपमितान् कुरु (मानुष) मनुष्यस्वभावयुक्त (वसूनि) विज्ञानादिधनानि (चर्षणिभ्यः) उत्तमेभ्यो मनुष्येभ्यः (आ) अभितः॥२०॥

अन्वयः-हे वसो! ते राधांस्यस्मान् कदान्ति मा दभन्। त ऊतयोऽस्मान् मा हिंसन्तु। हे मानुष! यथा त्वं चर्षणिभ्यो विश्वा वसूनि ददासि तथा च नोऽस्मान् उपिपमीहि॥ २०॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। त एव धार्मिका मनुष्या सन्ति येषां तनुर्मनो धनानि च सर्वान् सुखयेयु:। त एव प्रशंसिता भवन्ति ये च जगदुपकाराय प्रयतन्त इति ॥२०॥

अस्मिन् सूक्ते सेनापितुप्रुणवर्णनादेतद्वर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेद्यम्॥

इति चतुरशीकितमं ८४ सूक्तमष्टमो ८ वर्गश्च समाप्तः॥

पदार्थ:-हे (वर्मा) सिख में वास करनेहारे! (ते) आपके (राधांसि) धन (अस्मान्) हमको (कदाचन) कभी भी (मा दभन्) दु:खदायक न हों (ते) तेरी (ऊतयः) रक्षा (अस्मान्) हमको (मा) मत दु:खदायी होवे। हे (मानुष) मनुष्यस्वभावयुक्त! जैसे तू (चर्षणिभ्यः) उत्तम मनुष्यों को (विश्वा) विज्ञान आदि सब प्रकार के (वसूनि) धनों को देता है, वैसे हमको भी दे (च) और (नः) हमको विद्वान् धार्मिकों की (आ) सब और से (उपिममीहि) उपमा को प्राप्त कर॥२०॥

मण्डल-१। अनुवाक-१३। सूक्त-८४

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। वे ही धार्मिक मनुष्य हैं जिनका शरीर, मन और धन सबको सुखी करे, वे ही प्रशंसा के योग्य हैं जो जगत् के उपकार के लिये स्थल करें। हैं॥२०॥

इस सूक्त में सेनापित के गुण-वर्णन होने से इस सूक्तार्थ की संगित पूर्व सूक्तार्थ के संग जाननी चाहिये॥

यह चौरासीवां ८४ सूक्त और आठवाँ ८ वर्ग समाप्त हुआ।

अथ द्वादशर्च्चस्य पञ्चाशीतितमस्य सूक्तस्य राहूगणो गोतम ऋषिः। मरुतो देवताः।

१,२,६,११ जगती। ३,७,८ निचृज्जगती। ४,९,१० विराङ्जगती छन्दः। निषादः स्वरः। ५

विराट् त्रिष्टुप्। १२ त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्ते सेनाध्यक्षादयः कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वे सेनाध्यक्ष आदि कैसे हों, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में कियार है।।

प्र ये शुम्भन्ते जनयो न सर्पयो यामन् रुद्रस्यं सूनवंः सुदंसंसः॥ रोदंसी हि मुरुतश्चिक्रिरे वृधे मर्दन्ति वीरा विदथेषु घृष्वयः॥१॥

प्रा ये। शुम्भन्ते। जर्नयः। ना सप्तयः। यार्मन्। कृद्रस्यं। सूनवः। सुऽदंसस्या सेर्द्रम्यो इति। हि। मुरुतः। चुक्रिरे। वृधे। मदन्ति। वीराः। विद्येषु। घृष्वयः॥ १॥

पदार्थ:-(प्र) प्रकृष्टे (ये) वक्ष्यमाणाः (शुम्भन्ते) शोभन्ते (जनयः) जीयाः (न) इव (सप्तयः) अश्वा इव। सिप्तिरत्यश्चनामसु पठितम्। (निघं०१.१४) (यामन्) यान्ति यस्मिन् मार्गे तस्मिन्। अत्र सुपां सुलुगिति डेर्लुक्। सर्वधातुभ्यो मनिन्नित्यौणादिको मनिन् प्रत्ययः। (क्रुस्य) शत्रूणां रोदयितुर्महावीरस्य (सूनवः) पुत्राः (सुदंससः) शोभनानि दंसांसि कर्माणि पिष्ठं हो। दंस इति कर्मनामसु पठितम्। (निघं०२.१) (रोदसी) द्यावापृथिव्यौ (हि) खलु (मरुतः) सथा वायवस्तथा (चिक्ररे) कुर्वन्ति (वृधे) वर्धनाय (मदन्ति) हर्षन्ति। विकरणव्यत्ययेन भ्यः स्थाने प्रप्। (वीराः) शौर्यादिगुणयुक्ताः पुरुषाः (विदथेषु) संग्रामेषु (घृष्वयः) सम्यग् घर्षणशीलीः। कृतिधृष्वि०। (उणा०४.५७) घृषु संघर्ष इत्यस्माद्विन् प्रत्ययः॥१॥

अन्वय:-ये रुद्रस्य सूनवः सुदंससो शृष्यो क्रिंग हि यामन्मार्गेऽलङ्कारैः शुम्भमाना अलंकृता जनयो नेव सप्तयोऽश्वा इव गच्छन्तो मरुतो रोदसी इव वृष्ट्र विद्रथेषु विजयं चक्रिरे ते प्रशुम्भन्ते मदन्ति तैः सह त्वं प्रजायाः पालनं कुरु॥१॥

भावार्थ:-अत्रोपमावार्विकलुप्तोपमालुक्कारौ। यथा सुशिक्षिता पतिव्रता स्त्रियः पतीन् वा स्त्रीव्रताः पतयो जायाः सेवित्वा सुख्यति। यूथा शोभमाना बलवन्तो हयाः पथि शीघ्रं गमयित्वा हर्षयन्ति तथा धार्मिका वीराः सर्वाः प्रकामदियन्ति॥१॥

पदार्थ:-(ये) जो (फद्रस्य) दुष्टों के रुलाने वाले के (सूनवः) पुत्र (सुदंससः) उत्तम कर्म करनेहारे (घृष्ट्यः) आनन्दयुक्त (वीराः) वीरपुरुष (हि) निश्चय (यामन्) मार्ग में जैसे अलङ्कारों से सुशोभित (जन्यः) सुशील स्त्रियों के (न) तुल्य और (सप्तयः) अश्व के समान शीघ्र जाने-आनेहारे (मरुतः) वायु (सद्भी) प्रकाश और पृथ्वी के धारण के समान (वृधे) बढ़ने के अर्थ राज्य का धारण करते (विदश्य) संग्रामों में विजय को (चिक्रिरे) करते हैं, वे (प्र शुम्भन्ते) अच्छे प्रकार शोभायुक्त और (मदन्ति) आनन्द को प्राप्त होते हैं, उनसे तू प्रजा का पालन कर॥१॥

मण्डल-१। अनुवाक-१४। सूक्त-८५

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे अच्छी शिक्षा और विद्या को प्राप्त हुई पतिव्रता स्त्रियां अपने पतियों का अथवा स्त्रीव्रत सदा अपनी स्त्रियों ही से प्रसन्न ऋतुगानी पिन लोग अपनी स्त्रियों का सेवन करके सुखी और जैसे सुन्दर बलवान् घोड़े मार्ग में श्रीष्ठ पहुंचा के आनन्दित करते हैं, वैसे धार्मिक राजपुरुष सब प्रजा को आनन्दित किया करें॥१॥

पुनस्ते कीदृशा इत्युपदिश्यते॥

फिर वे कैसे हों, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया हैं॥

त उक्षितासो महिमानमाशत दिवि कुद्रासो अधि चिक्रिरे सर्दः। अर्चन्तो अर्कं जनयन्त इन्द्रियमधि श्रियो दिधरे पृश्निमात्रः। र।

ते। उक्षितासः। मृहिमानम्। आशतः। दिवि। रुद्रासः। अर्धि। चिक्रिरे। सर्वः। अर्वन्तः। अर्कम्। जनवन्तः। इन्द्रियम्। अर्धि। श्रियः। दिधरे। पृश्निऽमातरः॥२॥

पदार्थ:-(ते) पूर्वोक्ताः (उक्षितासः) वृष्टिद्वारा सेक्त्वरः (महिमानम्) उत्तमप्रतिष्ठाम् (आशत) व्याप्नुवन्ति। अत्र बहुलं छन्दसीति श्नोर्लुक्। (दिवि) दिप्यन्सिः (फद्रासः) वायवः (अधि) उपरिभावे (चिक्ररे) कुर्वन्ति (सदः) स्थिरम् (अर्चन्तः) सत्कुर्वन्तः (अर्कम्) सत्कर्त्तव्यम् (जनयन्तः) प्रकटयन्तः (इन्द्रियम्) धनम्। इन्द्रियमिति धननामसु पठितप्। (निर्म०२.१०) (अधि) उपरिभावे (श्रियः) चक्रवर्त्यादिराज्यलक्ष्मीः (दिधरे) धरन्ति (पृश्निमात्रः) पृष्टिनेरन्तरिक्षं माता येषां वायूनां ते॥२॥

अन्वयः-हे मनुष्या! यथोक्षितासः पृष्टिकमत्रः ते रुद्रांसो वायवो दिवि सदो महिमानमध्याशत वाधिचक्रिर इन्द्रियं दिधरे तथार्कमर्चन्तो यूयं श्रियो जनयन्त शामस्ति॥२॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमीलङ्कार:। यथा वायवो वृष्टिहेतवो भूत्वा दिव्यानि सुखानि जनयन्ति तथा सभाध्यक्षादयो विद्यया सुशिक्षिताः परस्परमुपकारिणः प्रीतिमन्तो भवन्तु॥२॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! क्रीस (उक्षितासः) वृष्टि से पृथ्वी का सेचन करनेहारे (पृश्निमातरः) जिनकी आकाश माता है (ते) वे (कदासः) वायु (दिवि) आकाश में (सदः) स्थिर (महिमानम्) प्रतिष्ठा को (अध्याशत) अधिक प्राप्त होते और उसी को (अधिचक्रिरे) अधिक करते और (इन्द्रियम्) धन को (दिधिरे) धारण करते हैं, वैसे (अर्कम्) पूजनीय का (अर्चन्तः) पूजन करते हुए आप लोग (श्रियः) लक्ष्मी को (जन्मन्तः) बढ़ा के आनन्दित रहो॥२॥

भावार्थ: इस अन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे वायु वृष्टि का निमित्त होके उत्तम सुखों को प्राप्त्र कराते हैं, वैसे सभाध्यक्ष लोग विद्या से सुशिक्षित हो के परस्पर उपकारी और प्रीतियुक्त होवें। पर।।

पुनस्ते कीदृशा इत्युपदिश्यते॥

फिर वे कैसे हों, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

गोमांतरो यच्छुभयन्ते अञ्जिभिस्तुनूषुं शुभा दंधिरे विरुक्मतः। बार्धन्ते विश्वमंभिमातिनुमप् वर्त्मान्येषामनुं रीयते घृतम्॥३॥

388

गोऽमातारः। यत्। शुभयन्ते। अञ्चिऽभिः। तुनूषुं। शुभाः। दुधिरे। विरुक्पतः। बाधते। विश्वम्। अभिऽमातिनेम्। अर्प। वर्त्मानि। पुषाम्। अर्नु। रीयते। घृतम्॥३॥

पदार्थ:-(गोमातर:) गौ: पृथिवीव माता मानप्रदा येषां वीराणां ते (यत) ये (शुभयन्ते) शुभमाऽऽचक्षते (अञ्जिभि:) व्यक्तैर्विज्ञानादिगुणनिमित्तै: (तनूषु) विस्तृतबलयुक्तैषु स्मरीरेषु (शुभा:) शुद्धधर्मा: (दिधरे) धरन्ति (विरुक्पतः) प्रशस्ता विविधा रुचो दीप्तयो विधन्ते षेषु ते (बाधन्ते) (विश्वम्) सर्वम् (अभिमातिनम्) शत्रुगणम् (अप) विरुद्धार्थे (वर्त्मानि) मागित् (एषाम्) सेनाध्यक्षादीनाम् (अनु) आनुकूल्ये (रीयते) गच्छति (धृतम्) उदकम्॥३॥

अन्वय:-हे मनुष्या! यद्ये गोमातरो विरुक्मतः शुभ्रा वीरा यथा मरूतस्तेत्रूष्विश्विभिः शुभयन्ते विश्वमनुद्धिर एषां सकाशाद् घृतं रीयते वर्त्मानि यान्ति तथाऽभिमातिनमपबाधन्ते तैः सह य्यं विजयं लुभध्वम्॥३॥

भावार्थ:-यथा वायुभिरनेकानि सुखानि प्राणकुर्वेन पुष्टिश्च भवति, तथैव शुभगुणयुक्तविद्याशरीरात्म-बलान्वितसभाध्यक्षादिभि प्रजाना अनेकानि रक्षणानि लभन्ते॥३॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! (यत्) जो (गोमानरः) पृथिन्न समान मातावाले (विरुक्तमतः) विशेष अलंकृत (शुभ्राः) शुद्ध स्वभावयुक्त शूरवीर लोग जैसे प्राण (तनूषु) शरीरों में (अञ्जिभिः) प्रसिद्ध विज्ञानादि गुणनिमित्तों से (शुभयन्ते) शुभ कर्मों का आवरण कराके शोभायमान करते हैं, (विश्वम्) जगत् के सब पदार्थों का (अनुद्धिरे) अनुकूलता से ध्राहण करते हैं, (एषाम्) इनके संबन्ध से (धृतम्) जल (रीयते) प्राप्त और (वर्त्मानि) मार्गों को जाते हैं, वैसे (अभिमातिनम्) अभिमानयुक्त शत्रुगण का (अपबाधन्ते) बाध करते हैं, उनके साथ सुम लोग विजय को प्राप्त हो॥३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में काचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे वायुओं से अनेक सुख और प्राण के बल से पृष्टि होती है, वैसे ही सुभगुणयुक्त विद्या, शरीर और आत्मा के बलयुक्त सभाध्यक्षों से प्रजाजन अनेक प्रकार के रक्षणों को प्राप्त होते हैं॥३॥

पुनस्ते किं किं कुर्य्युरित्युपदिश्यते॥

फिर वे क्या-क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

ब्रिये भूजिन्ते सुर्मखास ऋष्टिभिः प्रच्यावयन्तो अच्युता चिदोर्जसा।

मुत्तोजुवो यन्मरुतो रथेष्वा वृषेव्रातासः पृषेतीरयुग्ध्वम्॥४॥

मण्डल-१। अनुवाक-१४। सूक्त-८५

वि। ये। भ्राजन्ते। सुऽर्मखासः। ऋष्टिऽभिः। प्रऽच्यवर्यन्तः। अच्युंता। चित्। ओर्जसा। मुनःऽजुर्वः। यत्। मुरुतः। रथेषु। आ। वृषेऽव्रातासः। पृषेतीः। अयुग्ध्वम्॥४॥

पदार्थ:-(वि) विशेषार्थे (ये) सभाद्यध्यक्षादयः (भ्राजन्ते) प्रकाशन्ते (सुमखासः) शिष्पाः शिल्पसंबन्धिनः संग्रामा यज्ञा येषान्ते (ऋष्टिभिः) यन्त्रचालनार्थेर्गमनागमनिमित्तैर्दण्टैः (प्रच्यावयन्तः) विमानादीनि यानानि प्रचालयन्तः सन्तः (अच्युता) क्षेतुमशक्येन (चित्) इव (ओजन्स) बलयुक्तेष सैन्येन सह वर्तमानाः (मनोजुवः) मनोवद्गतयः (यत्) याः (मरुतः) वायवः (ख्रेष्ट्) विमानादियानेषु (आ) समन्तात् (वृषद्रातासः) वृषाः शस्त्रास्त्रवर्षयितारो व्रातासो मनुष्या येषान्ते (कृषतीः) मरुत्सम्बन्धिनीरपः (अयुष्ट्वम्) योजयत॥४॥

अन्वयः-हे प्रजासभामनुष्या! ये मनोजुवो मरुतश्चिदिव वृषव्रातासः सुमखास ऋष्टिभिरच्युतौजसा शत्रुसैन्यानि प्रच्यावयन्तः सन्तो व्याभ्राजन्ते तैः सह येषु रथेषु यत् पृषतीरयुग्ध्वं तैः शत्रुन् विजयध्वम्॥४॥

भावार्थ:-मनुष्यैर्मनोजवेषु विमानादियानेषु जलाग्निवर्यन् संप्रयुज्य तत्र स्थित्वा सर्वत्रभूगोले गत्वागत्य शत्रुन् विजित्य प्रजाः सम्पाल्य शिल्पविद्याकार्याष्ट्रि प्रवृध्य सुत्रीपकाराः कर्त्तव्याः॥४॥

पदार्थ:-हे प्रजा और सभा के मनुष्यो! (ये) जो (मिर्गेजुव:) मन के समान वेगवाले (मरुत:) वायुओं के (चित्) समान (वृषवातास:) शस्त्र और अस्त्रों का शत्रुओं के ऊपर वर्षानेवाले मनुष्यों से युक्त (सुमखास:) उत्तम शिल्पविद्या सम्बन्धी वा संग्रमक्रप क्रियाओं के करनेहारे (ऋष्टिभि:) यन्त्र कलाओं को चलानेवाले दण्डों और (अच्युता) अक्षय (आजसा) बल पराक्रम युक्त सेना से शत्रु की सेनाओं को (प्रच्यावयन्त:) नष्ट-भ्रष्ट कर्रा हुए (व्याभाजने) अच्छे प्रकार शोभायमान होते हैं, उनके साथ (यत्) जिन (रथेषु) रथों में (पृषती:) वायु से युक्त जलों को (अयुष्ट्यम्) संयुक्त करो, उनसे शत्रुओं को जीतो॥४॥

भावार्थ:-मनुष्यों को इतित है कि मन के समान वेगयुक्त विमानादि यानों में जल, अग्नि और वायु को संयुक्त कर, उसमें बैठ के, सर्वत्र भूगोल में जा-आके शत्रुओं को जीतकर, प्रजा को उत्तम रीति से पाल के, शिल्पविद्या किमो को बढ़ा के सबका उपकार किया करें॥४॥

पुनस्ते किं कुर्युरित्युपदिश्यते॥

फिर बेकिसे करें, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

प्र यद्रथेषु पृषेतीरयुष्ट्वं वाजे अद्गि मरुतो रहियन्तः।

र्तारुषस्ये वि ष्यन्ति धाराश्चर्मेवोदिभव्युन्दिन्ति भूमे॥५॥

प्रो यत्। रथेषु। पृषेतीः। अयुंग्ध्वम्। वाजे। अद्रिम्। मु<u>रुतः। रृं</u>हयन्तः। उता अरुषस्ये। वि। स्युन्ति। धार्राः। ध्रुट्टवो उद्दर्शनेः। वि। उन्दुन्ति। भूमे॥५॥

पदार्थ:-(प्र) प्रकृष्टार्थे (यत्) येषु (रथेषु) विमानादियानेषु (पृषतीः) अग्निवायुयुक्ता अपः (अयुष्ट्वम्) संप्रयुग्ध्वम् (वाजे) युद्धे (अद्रिम्) मेघम्। अद्रिरिति मेघनामसु पठितम्। (निघं०१.१०) (मरुतः) वायवः (रंहयन्तः) गमयन्तः (उत्त) अपि (अरुषस्य) अश्वस्येव। अरुष इति अश्वनामसु पठितम्। (निघं०१.१४) (वि) विशेषार्थे (स्यन्ति) कार्याणि समापयित (धाराः) जलप्रवाहान् (वर्षेव) चम्यत् काष्ठादिनाऽऽवृत्य (उदिभः) उदकैः (वि) (उन्दन्ति) क्लेदन्ति (भूम) भूमिम्। अत्र सुग्धे सुलुगिति सुप्लुगिकारस्य स्थानेऽकारश्च॥५॥

अन्वय:-हे मनुष्या! यूयं यथा विद्वांसः शिल्पिनो यद्येषु रथेषु पृषतीः प्रयुद्ध्व संप्रयुध्वमुतार्द्धि रंहयन्तो मरुतोऽरुषस्य वाजे चर्मेवोद्धिर्धारा विष्यन्ति भूम भूमिं व्युन्दन्ति तैरन्तरिक्षे गत्वागत्य श्रिष्टं कर्द्ध्यत॥५॥

भावार्थ:-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। हे मनुष्या! यथा वायुर्वानानु संधत्ते गमयति तथा शिल्पिनः सुशिक्षयाऽग्न्यादेः संप्रयोगेण स्थानान्तरं प्रापय्य कार्याणि साध्नुवस्ति। स्रा

पदार्थ:-हे मनुष्यो! तुम जैसे विद्वान् शिल्पी लोग (यत्) जिन (रथेषु) विमानादि यानों में (पृषती:) अग्नि और पवनयुक्त जलों को (प्रयुष्ट्वम्) संयुक्त करें (उत्त) और (अद्रिम्) मेघ को (रहयन्त:) अपने वेग से चलाते हुए (मरुत:) पवन जैसे (अरुष्ट्य) घोड़े के समान (वाजे) युद्ध में (चर्मेव) चमड़े के तुल्य काष्ठ धातु और चमड़े से भी महे कलाघरों में (उद्धि:) जलों से (धारा:) उनके प्रवाहों को (विष्यन्ति) काम की समाप्ति करने के लिय समर्थ करते और (भूम) भूमि को (व्युन्दन्ति) गीली करते अर्थात् रथ को चलाते हुए जल टप्पकृति जोते हैं, वैसे उन यानों से अन्तरिक्ष मार्ग से देश-देशान्तर और द्वीप-द्वीपान्तर में जा-आ के लक्ष्मी का बढ़ाओ॥५॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमा और वायकलातीपमालङ्कार हैं। हे मनुष्यो! जैसे वायु बादलों को संयुक्त करता और चलाता है, वैसे शिल्प लोग उत्तम शिक्षा और हस्तक्रिया अग्नि आदि अच्छे प्रकार जाने हुए वेगकर्ता पदार्थों के योग सि स्थानितर को प्राप्त हो के कार्यों को सिद्ध करते हैं॥५॥

पुनस्ते कि कुर्वन्तीत्युपदिश्यते॥

फिर वे क्या करते हैं/ इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

आ वो वहन्तु सप्ति रघुष्यदो रघुपत्वानः प्र जिगात बाहुभिः। सीद्रता ब्रुहिंकुरु वः सर्दस्कृतं मादयेध्वं मरुतो मध्वो अर्धसः॥६॥९॥

आ। वर्। वेहत्तुः। सप्तयः। रघुऽस्यदेः। रघुऽपत्वानः। प्रा जिगातः। बाहुऽभिः। सीर्दतः। आ। बहिः। उरु। वः। सर्दः। कृतम्। सादयेखम्। मुरुतः। मध्वेः। अर्धसः॥६॥

्रिदार्थ:-(आ) समन्तात् (वः) युष्मान् (वहन्तु) देशान्तरं प्रापयन्तु (सप्तयः) संयुक्ताः शीघ्रं गम्यित्तरोऽस्निवायुजलादयोऽश्वाः (रघुस्यदः) ये मार्गान् स्यन्दन्ते ते। गत्यर्थाद् र्रिष्ठधातीर्ष्काहुलकादौणादिक उः प्रत्ययो नकारलोपश्च। (रघुपत्वानः) ये रघून् पथः पतन्ति ते।

मण्डल-१। अनुवाक-१४। सूक्त-८५

अत्रान्येभ्योऽपि दृश्यन्त इति वनिप् प्रत्ययः। (प्र) उत्कृष्टार्थे (जिगात) स्तुत्यानि कर्माणि कुरुत (बाहुभिः) हस्तिक्रयाभिः (सीदत) देशान्तरं गच्छत (आ) सर्वतः (बिहः) अन्तरिक्षम् (उरु) बहु (वः) युप्तिक्रम् (सदः) स्थानम्। अत्र छन्दिस वा अतः कृकिमिकंसकुम्भपात्रकुशाकर्णीष्वनव्ययस्य। (अप्रा०८ अत्रेष्टे) अनेन सूत्रेण विसर्जनीयस्य सत्वम्। (कृतम्) निष्पादितम् (मादयध्वम्) आनन्दं प्रापयते (मस्तः) वायव इव ज्ञानयोगेन शीघ्रं गन्तारो मनुष्याः (मध्वः) मधुरगुणयुक्तानि (अन्यसः) अत्रानि।

अन्वय:-हे मनुष्या! ये रघुस्यदो रघुपत्वानो मरुत इव सप्तयोऽश्वा वो युष्पान् वहूनी तान श्राहुभिः प्राठ४जिगात तैरुरुबर्हिरासीदत यैर्वो युष्पाकं सदस्कृतं भवेत् तैर्मध्वोऽन्धसः प्राप्यास्मान् मादयध्वम्॥हुनाः

भावार्थ:-सभाद्यध्यक्षादयो मनुष्याः क्रियाकौशलेन शिल्पविद्यासिद्धानि कार्योणि कृत्वा संभोगान् प्राप्नुवन्तु, निह केनिचदिस्मिन् जगित पदार्थविज्ञानिक्रयाभ्यां विनोत्तर्मा भोगाः प्राप्तुं शक्यन्ते तस्माद् एतिन्नित्यमनुष्ठेयम्॥६॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! जो (रघुस्यदः) गमन करने-कर्गनेहारे (रघुप्रत्वानः) थोड़े वा बहुत गमन करनेवाले (मरुतः) वायुओं के समान (सप्तयः) शीघ्र क्लेनेहारे अश्व (वः) तुमको (वहन्तु) देश-देशान्तर में प्राप्त करें, उनको (बाहुभिः) बल पराक्रमयुक्त हाथों से (प्राजिगात) उत्तम गतिमान् करो उनसे (उरु) बहुत (बर्हिः) उत्तम आसन पर (आसीदत) बैद के आकाशादि में गमनागमन करो। जिनसे तुम्हारे (सदः) स्थान (कृतम्) सिद्ध (भवेत्) होकें, उनसे (मध्वः) मधुर (अन्धसः) अत्रों को प्राप्त हो के हमको (माद्यध्वम्) आनन्दित करो॥६॥

भावार्थ:-सभाध्यक्षादि मनुष्य लेग कियाकौर्शल से शिल्पविद्या से सिद्ध करने योग्य कार्यों को करके अच्छे भोगों को प्राप्त हों, कोई भी मनुष्य हस जगत् में पदार्थविज्ञान क्रिया के विना उत्तम भोगों को प्राप्त होने में समर्थ नहीं होता। इससे इस काम का नित्य अनुष्ठान करना चाहिये॥६॥

पुनस्ते किं कुर्युरित्युपदिश्यते॥

फिर बे क्या करें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

तेऽवर्धन्त स्वतंबसो महिल्यना नाक तस्थुकुरु चेक्रिरे सर्दः।

विष्णुर्यद्भावद् वृष्णं मदुच्युतं वयो न सीदुन्नधि बुर्हिषि प्रिये॥७॥

ते। अवर्धन्ते। स्वऽतेवसः। मृह्रिऽत्वना। आ। नार्कम्। तुस्थुः। उरु। चृक्किरे। सर्दः। विष्णुः। यत्। हु। आर्वत्। वृषणम्। मृदुऽच्युतम्। वयेः। न। सीदुन्। अर्धि। बुर्हिषि। प्रिये॥७॥

पदार्थ: (त) मनुष्याः (अवर्धन्त) वर्धन्ते (स्वतवसः) स्वं स्वकीयं तवो बलं येषां ते (महित्वना) महिन्ना। महित्वेनेति प्राप्ते वा च्छन्दिस सर्वे विधयो भवन्तीति विभक्तेर्नादेशः। अत्र सायणाचार्येण व्यत्यये नाभावः कृतः सोऽशुद्धः। (आ) समन्तात् (नाकम्) सुखविशेषं स्वर्गम् (तस्थुः) तिष्ठन्तु (उरु)

९२२

बहु (चिक्रिरे) कुर्वन्ति (सदः) सुखस्थानम् (विष्णुः) शिल्पविद्याव्यापनशीलो मनुष्यः (यत्) यम् (ह) किल (आवत्) रक्षणादिकं कुर्यात् (वृषणम्) अग्निजलवर्षणयुक्तं यानसमूहम् (मदच्युतम्) यो मदं हर्षं च्योतित तम् (वयः) पक्षी (न) इव (सीदन्) गच्छन् (अधि) उपरिभावे (बर्हिषि) अन्ति (प्रिक्रे) प्रीतकरे॥७॥

अन्वय:-हे मनुष्या! यथा विष्णुः प्रिये बर्हिषि वृषणमिधसीदन् वयो न यन्मदच्<mark>यते समुवि</mark>रोधकमावत् स्वतवसस्ते ह महित्वना (अवर्धन्त) वर्धन्ते ये विमानादियानेन तस्थुरुरुसदः गच्छन्त्याऽऽगच्छन्तिते नाकं चक्रिरा७॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। यथा पक्षिण आकाशे सुखेन गत्त्राऽऽगच्छेत्ति, तथैव ये प्रशस्ताशिल्पविद्याविद्ध्योऽध्यापकेभ्य: साङ्गोपाङ्गां शिल्पविद्यां साक्षात्कृत्य तया यानानि संसाध्य सम्यग्रिक्षत्वा वर्धयन्ति, त एवोत्तमां प्रतिष्ठां प्रशस्तानि धनानि च प्राप्यू नित्यं वर्धन्ते इति ॥७॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! जैसे (विष्णु:) सूर्यवत् शिल्पविद्या में निपुण मनुष्य (प्रिये) अत्यन्त सुन्दर (बर्हिषि) आकाश में (वृषणम्) अग्नि-जल के वर्षायुक्त विमान के (अधिसीदन्) ऊपर बैठ के (वयो न) जैसे पक्षी आकाश में उड़ते और भूमि में आते हैं, वैसे (यत्) जिस (मदच्युतम्) हर्ष को प्राप्त दुष्टों को रोकनेहारे मनुष्यों की (आवत्) रक्षा करता है, उसको की (स्वत्वसः) स्वकीय बलयुक्त मनुष्य प्राप्त होते हैं (ते ह) वे ही (महित्वना) महिमा से (अवर्धना) बढ़ते हैं और जो विमानादि यानों में (आतस्थु:) बैठ के (उक्त) बहुत सुखसाधक (सदः) स्थान को जाते आजे हैं, वे (नाकम्) विशेष सुख (चिक्रिरे) करते हैं॥७॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार हैं। जैसे पश्ली आकाश में सुखपूर्वक जाके आते हैं, वैसे ही साङ्गोपाङ्ग शिल्पविद्या को साक्षात् करके उससे उसमें यानादि सिद्ध करके अच्छी सामग्री को रख के बढ़ाते हैं, वे ही उत्तम प्रतिष्ठा और धर्मे को प्राप्त होकर नित्य बढ़ा करते हैं॥७॥

पुनस्ते बायवः कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर के जायु कैसे हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

शूरांड्वेद्ययुंधयो न जग्मयः श्रवस्यवो न पृतनासु येतिरे। भयन्ते विश्वा भुवना मुरुद्धयो राजानइव त्वेषसंदृशो नरः॥८॥

शूर्राःऽइव्। इत्। युर्वेघयः। न। जग्मयः। श्रृवस्यवः। न। पृतेनासु। येतिरे। भयेन्ते। विश्वां। भुवेना। मुरुत्ऽभ्यः। राज्यतःऽइत्। त्वेषऽसंदृशः। नरः॥८॥

पद्धार्थ:-(श्रूराइव) यथा शस्त्राऽस्त्रप्रक्षेपयुद्धकुशलाः पुरुषास्तथा (इत्) एव (युयुधयः) साधुयुद्धकारिणः। उत्सर्गञ्छन्दिस सदादिभ्यो दर्शनात्। (अष्टा०वा०३.२.१७१) अनेन वार्तिकेनाऽत्र युध्धातोः किन् प्रत्ययः। (न) इव (जग्मयः) शीघ्रगमनशीलाः (श्रवस्यवः) आत्मनः श्रवोऽन्निमच्छन्तः (न) इव (पृतनास्) सेनास् (येतिरे) प्रयतन्ते (भयन्ते) बिभ्यति। अत्र बहुलं छन्दसीति शपः स्थाने श्लूनं

मण्डल-१। अनुवाक-१४। सूक्त-८५

व्यत्ययेनात्मनेपदं च। (विश्वा) विश्वानि सर्वाणि (भुवना) भुवनानि लोकाः (मरुद्धाः) वायूनामाधारबलाकर्षणेभ्यः (राजानइव) यथा सभाध्यक्षास्तथा (त्वेषसंदृशः) त्वेषं दीप्तिं (पश्यन्ति के सम्यग्दर्शयितारः (नरः) नेतारः॥८॥

अन्वय:-ये वायव: शूरा इवेदेव वृत्रेण सह युयुधयो नेव जग्मय: पृतनासु श्रवस्यवो नेव येतिरे राजान इव त्वेषसंदृशो नर: सन्ति येभ्यो मरुद्भयो विश्वा भुवना प्राणिनो भयन्ते बिभ्यति तान् सुयुक्त्योपयुञ्जस्र्यार्थः।

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। यथा निर्भया: पुरुषा: युद्धात्र निवर्तन्ते, यूथा योद्धारो युद्धाय शीघ्रं धावन्ति, यथा बुभुक्षवोऽन्नमिच्छन्ति तथा ये सेनासु युद्धमिच्छन्ति, यथा दण्डाधीशेभ्य: सभाद्यध्यक्षेभ्योऽन्यायकारिणो जना उद्विजन्ते, तथैव वायुभ्योऽपि सर्वे कुप्रथाकारिणोऽन्यथा तत्सेविन: प्राणिन उद्विजन्ते स्वमर्यादायां तिष्ठन्ति॥८॥

पदार्थ: – हे मनुष्यो! तुम लोग जो वायु (शूराइव) शूरवीरों के समान (इत्) ही मेघ के साथ (युयुधयो न) युद्ध करने वाले के समान (जग्मय:) जाने – अनिहारे (पृतृनासु) सेनाओं में (श्रवस्यव:) अन्नादि पदार्थों को अपने लिये बढ़ानेहारे के समान (येक्सर) यत्न करते हैं (राजान इव) राजाओं के समान (त्वेषसंदृश:) प्रकाश को दिखानेहारे (नर:) नायक के समान हैं, जिन (मरुद्ध्य:) वायुओं से (विश्वा) सब (भुवना) संसारस्थ प्राणी (भयन्ते) इस्ते हैं, उन वायुओं का अच्छी युक्ति से उपयोग करो॥८॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार हैं जैसे भयुरहित पुरुष युद्ध से निवर्त नहीं होते, जैसे युद्ध करनेहारे लड़ने के लिये शीघ्र दौड़ते हैं, जैसे सुधातुर मनुष्य अन्न की इच्छा और जैसे सेनाओं में युद्ध की इच्छा करते हैं, जैसे दण्ड देनेहारे न्यायाध्येष्ट्रों से अन्यायकारी मनुष्य उद्धिग्न होते हैं, वैसे ही कुपथ्यकारी, [वायुओं का] अच्छे प्रकार उपयोग न करनेहारे मनुष्य वायुओं से भय को प्राप्त होते और अपनी मर्यादा में रहते हैं॥८॥

पुनस्ते सुभाध्यक्षादयः कीदृशा इत्युपदिश्यते॥

फिर वे सभाध्यात आदि कैसे हों, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

त्वष्टा यद्वज्ञं सुकृति हिर्ण्ययं सहस्रभृष्टिं स्वपा अवर्तयत्।

ध्त इन्द्री सर्वपांसि कर्त्वेऽह्नं वृत्रं निर्पामी ब्जदर्ण्वम्॥९॥

त्वष्ट्रा यस विश्वम्। सुऽकृतम्। हिर्ण्ययम्। सहस्र्वेऽभृष्टिम्। सुऽअपाः। अर्वर्तयत्। धृत्ते। इन्द्रेः। निर्धे अपांसि। कर्तवा अहने। वृत्रम्। निः। अपाम्। औृब्जृत्। अर्णुवम्।। ९॥

पद्मर्थ:-(त्वष्टा) दीप्तिमत्त्वेन छेदकः। त्विषेर्देवतायामकारश्चोपधाया अनिट्त्वं च। अष्टार्व्णार्वे २.१३५) अनेन वार्त्तिकेन त्विषधातोस्तृन्। (यत्) यम् (वज्रम्) किरणसमूहजन्यं

विद्युदाख्यम् (सुकृतम्) सुष्ठु निष्पन्नम् (हिरण्ययम्) ज्योतिमर्यम्। ऋत्व्यवा०। (अष्टा०६.४.१७५) अनिन सूत्रेण मयट् प्रत्ययस्य मकारलोपो निपात्यते (सहस्रभृष्टिम्) सहस्रमसंख्याता भृष्टयः पाका यस्मातम् (स्वपाः) सुष्ठु अपांसि कर्माणि यस्मात् (अवर्त्तयत्) वर्त्तयति (धत्ते) धरति (इन्द्रः) सूर्यः (निष्) नीतिमार्गे मनुष्ये (अपांसि) कर्माणि (कर्त्तवे) कर्त्तम् (अष्ट्रन्) हन्ति (वृत्रम्) मेघम् (निः) नित्तरम् (अप्णम्) उदकानाम् (औब्जत्) उब्जित सरलीकरोति (अर्णवम्) समुद्रम्॥९॥

अन्वय:-प्रजासेनास्थाः पुरुषा यथा स्वपास्त्वष्टेन्द्रः सूर्यः कर्तवेऽपांसि यत् सुकृतं हिरण्ययं सहस्रभृष्टं वज्रं प्रहृत्य वृत्रमहन् अपामर्णवं निरौब्जत् तथा दुष्टान् पर्यवर्त्तयच्छत्रून् हत्वा नर्याऽऽधत्ते स राजा भवितुमहत्।।९॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। यथा सूर्यो मेघं धृत्वा वर्षिक्वा प्रजाः पालयित तथा राजादयोऽविद्याऽन्याययुक्तान् दुष्टान् हत्वा सर्विहताय सुखसागरं साध्नुवृत्तुप्रेश्री

पदार्थ:-प्रजा और सेना में स्थित पुरुष जैसे (स्वपा:) उत्तम कर्म करता (त्वष्टा) छेदन करनेहारा (इन्द्र:) सूर्य (कर्त्तवे) करने योग्य (अपांसि) कर्मों को और (यह) जिस (सुकृतम्) अच्छे प्रकार सिद्ध किये (हिरण्ययम्) प्रकाशयुक्त (सहस्रभृष्टिम्) जिससे हजारह पदार्थ प्रकृते हैं, उस (वज्रम्) वज्र का प्रहार करके (वृत्रम्) मेघ का (अहन्) हनन करता हैं, (अपाम्) जलों के (अर्णवम्) समुद्र को (निरौब्जत्) निरन्तर सरल करता है, वैसे दुष्टों को (पर्यवर्त्तयत्) छित्र-भिन्न करता हुआ शत्रुओं का हनन करके (निरी) मनुष्यों में श्रेष्ठों को (आधने) धारण क्राता है, कह राजा होने को योग्य होता है॥९॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमाल्झार है। औस सूर्य मेघ को धारण और हनन कर वर्षा के समुद्र को भरता है, वैसे सभापित लोग विद्या न्याययुक्त प्रजा के पालन व धारण करके, अविद्या अन्याययुक्त दुष्टों का ताड़न करके, सबके हिंग के लिये सुखसागर को पूर्ण भरें॥९॥

पुनस्ते कींद्शा इत्युपदिश्यते॥

फिर वे केसे हों, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

ऊर्ध्वं नुनुद्रेऽवृतं त अजिसा दादृह्यणं चिद्धिभिदुर्वि पर्वतम्। धर्मन्तो वाणं मुक्तः सुदानुँवी मदे सोमस्य रण्यानि चिक्ररे॥ १०॥

ऊर्ध्वम्। नुनुद्रे। अचेतम्। ते ओर्जसा। दुदृहाणम्। चित्। बिभिदुः। वि। पर्वतम्। धर्मन्तः। वाणम्। मुरुतः। सुऽदानवः। मदे। स्रोस्सस्य। रण्यानि। चृक्रिरे॥ १०॥

पदार्थः (अर्बम्) उत्कृष्टमार्गं प्रति (नुनुद्रे) नुदन्ति (अवतम्) रक्षणादियुक्तम् (ते) मनुष्याः (ओजसा) गलपरिक्रमाभ्याम् (दादृहाणम्) दंहितुं शीलम् (चित्) इव (बिभिदुः) भिन्दन्तु (वि) विविधार्थे (पर्वतम्) मेघम् (धमन्तः) कम्पयमानाः (वाणम्) वाणादिशस्त्रास्त्रसमूहम् (मरुतः) वायवः (सुदानवः) शोभूनीवि दोशानि येषां ते (मदे) हर्षे (सोमस्य) उत्पत्रस्य जगतो मध्ये (रण्यानि) रणेषु साधूनि कर्माणि (चिक्रिरे) कुर्वन्ति।।१०॥

मण्डल-१। अनुवाक-१४। सूक्त-८५

अन्वय:-यथा मरुत ओजसाऽवतं दादृहाणं पर्वतं मेघं बिभिदुरूर्ध्वं नुनुद्रे तथा ये वाणं धमन्तः सुदानवः सोमस्य मदे रण्यानि विचक्रिरे ते राजानश्चिदिव जायन्ते॥१०॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। मनुष्या अस्य जगतो मध्ये जन्म प्राप्य विद्यारिक्षां गृहीत्वा वायुवत् कर्माणि कृत्वा सुखानि भुञ्जीरन्॥१०॥

पदार्थ:-जैसे (मरुत:) वायु (ओजसा) बल से (अवतम्) रक्षणादि का निमित्त (दोह्हाणम्) बढ़ाने के योग्य (पर्वतम्) मेघ को (बिभिदु:) विदीर्ण करते और (अर्ध्वम्) ऊंचे को (सुनुद्रे) लेजाते हैं, वैसे जो (वाणम्) बाण से लेके शस्त्रास्त्र समूह को (धमन्त:) कंपाते हुए (सुदानव:) उत्तम पदार्थ के दान करनेहारे (सोमस्य) उत्पन्न हुए जगत् के मध्य में (मदे) हर्ष में (रण्यानि) संग्रीमों में उत्तम साधनों को (विचक्रिरे) करते हैं (ते) वे राजाओं के (चित्) समान होते हैं॥ १०%।

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्य लोग इस जगत् में जन्म पा, विद्या शिक्षा का ग्रहण और वायु के समान कर्म्म करके सुखों को भोर्गी। १०॥

पुनस्ते कस्मै किं कुर्य्युस्तिष्युषद्भ्यते॥

फिर वे किसके लिये क्या करें, इस विषय के अगृहे मन्त्र में कहा है।।

जिह्मं नुनुद्रेऽवृतं तया दिशासिञ्चन्नुत्सं गोर्तमाय तृष्णजे।

आ गच्छन्तीमवसा चित्रभानवः कामं विप्रस्य क्रपयन्त धार्मभिः॥ ११॥

जिह्मम्। नुनुद्दे। अवतम्। तया। दिशा। असिञ्जन्। उत्सम्। गोर्तमाय। तृष्णऽजे। आ। गुच्छन्ति। ईम्। अवसा। चित्रऽभानवः। कार्मम्। विप्रस्य। तुर्पयन्त। ध्रामऽभि(॥ १९॥

पदार्थ:-(जिह्मम्) कृटिलम् (नुनुद्दे) प्रस्वित्त (अवतम्) निम्नदेशस्थम् (तया) अभीष्टया (दिशा) (असिञ्चन्) सिञ्चन्ति (उत्सम्) कृपम्। उत्स इति कृपनामसु पठितम्। (निघं०३.२३) (गोतमाय) गच्छतीति गौः सोऽतिशयित्री गोतमस्तस्मे भृशं मार्गे गन्त्रे जनाय (तृष्णजे) तृषितुं शीलाय। स्विपतृषोर्निजङ्। (अष्टा० २.१७२) अनेन सूत्रेण तृषधातोर्निजङ् प्रत्ययः। (आ) समन्तात् (गच्छन्ति) यान्ति (ईम्) पृथिवीम् (अवसा) रक्षणादिना (चित्रभानवाः) आश्चर्यप्रकाशाः (कामम्) इच्छासिद्धिम् (विप्रस्य) मेधाविनुः (तर्पयन्त) तर्पयन्ति (धामिभः) स्थानविशेषैः॥११॥

अन्वयः यथा दातारोऽवतं जिह्ममुत्सं खनित्वा तृष्णजे गोतमाय जलेन ईमसिञ्चन् तया दिशा पिपासां नुनुद्रे चित्रभानवः प्राणा इक्त्रभामिभविप्रस्यावसा कामं तर्पयन्त सर्वतः सुखमागच्छन्ति तथोत्तमैर्मनुष्यैर्भवितव्यम्॥११॥

भावार्थः अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। मनुष्याः कूपं सम्पाद्य क्षेत्रवाटिकादीनि संसिच्य तत्रोत्यन्नेभ्योऽत्रफलादिभ्यः प्राणिनः सन्तर्प्य सुखयन्ति तथैव सभाध्यक्षादयः शास्त्रविशारदान् विदुषः काम-रस्तिकृत्येशैर्विद्यासुशिक्षाधर्मान् सम्प्रचार्य प्राणिन आनन्दयन्तु॥११॥

पदार्थ:-जैसे दाता लोग (अवतम्) निम्नदेशस्थ (जिह्मम्) कृटिल (कुत्सम्) कृप को खोद के (तृष्णजे) तृषायुक्त (गोतमाय) बुद्धिमान् पुरुष को (ईम्) जल से (असिञ्चन्) तृप्त करके (तया) (दिशा) उस अभीष्ट दिशा से (नुनुद्रे) उसकी तृषा को दूर कर देते हैं, जैसे (चित्रभानवः) विविध प्रकार के आधार प्राणों के समान (धामिभः) जन्म, नाम और स्थानों से (विप्रस्य) विद्वान् के (अवसा) एक्षण से (कामम्) कामना को (तर्पयन्त) पूर्ण करते और सब ओर से सुख को (आगच्छन्ति) प्राप्त होते हैं, वैसे उत्तम मनुष्यों को होना चाहिये॥११॥

भावार्थ:- जैसे मनुष्य कूप को खोद खेत वा बगीचे आदि को सींचके इसमें उस्पन्न हुए अन्न और फलादि से प्राणियों को तृप्त करके सुखी करते हैं, वैसे ही सभाध्यक्ष आदि लोग वेदशास्त्रों में विशारद विद्वानों को कामों से पूर्ण करके इनसे विद्या, उत्तम शिक्षा और धर्म का प्रचार करके सब प्राणियों को आनन्दित करें॥ ११॥

पुनस्तेभ्यो मनुष्यै: किं किमाशंसनीयमिलुपदिश्यते॥

फिर उनसे मनुष्यों को क्या-क्या आशा करनी चाहिये, इस बिषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

या वः शर्म शशमानाय सन्ति त्रिधातूनि दाश्र्ष यच्छ्नार्थि। अस्मभ्यं तानि मरुतो वि यन्त र्यिं नी धृत बृष्णः सुवीरम्॥१२॥१०॥

या। वः। शर्मं। शृश्मानार्य। सन्ति। त्रिऽधात्वि। द्राशुषे। युच्छत्। अधि। अस्मभ्यम्। तानि। मुरुतः। वि। युन्ता रुथिम्। नः। धुन्ता वृषुणुः। सुऽवीरम्॥ १२॥

पदार्थ:-(या) यानि (व:) युष्माकृम् (शर्म) श्रूमीणि सुखानि (शशमानाय) विज्ञानवते। शशमान इति पदनामसु पठितम्। (निघं०४.३) (सन्ति) वर्तन्ते (त्रिधातूनि) त्रयो वातिपत्तकफा येषु शरीरेषु वाऽयः सुवर्णरजतानि येषु धनेषु तानि (दाशुषे) दानशीलाय (यच्छत) दत्त (अधि) उपरिभावे (अस्मभ्यम्) (तानि) (मरुतः) मरणधर्माणो मनुष्यास्तत्सम्बुद्धौ (वि) (यन्त) प्रयच्छत। अत्र यमधातोर्बहुलं छन्दसीति शपो लुक्। (रियम्) श्रीसमूहम् (नः) अस्मान् (धत्त) (वृषणः) वर्षन्ति ये तत्सम्बुद्धौ (सुवीरम्) शोभना वीरा यस्मात्तम्॥१२॥

अन्वय:-हे सभाद्यस्थात्य मनुष्या! यूयं मरुत इव वो या त्रिधातूनि शर्म शर्माणि सन्ति तानि शशमानाय दाशुषे यच्छतास्मभ्यं वि यन्त हे वृष्णी! नोऽस्मभ्यं सुवीरं रियमधिधत्त॥१२॥

भावार्थ:-संभाद्यध्यक्षादिभिः सुखदुःखावस्थायां सर्वान् प्राणिनः स्वात्मवन्मत्वा सुखधनादिभिः पुत्रवत् पालुसीयाः प्रजासेनास्थैः पुरुषैश्चैते पितृवत्सत्कर्त्तव्या इति ॥१२॥

अत्र वायुक्तसभाद्यध्यक्षराजप्रजाधर्मवर्णनादेतदर्थेन सह पूर्वसूक्तार्थस्य सङ्गतिरस्तीति वेद्यम्॥ इति पञ्चाशीतितमं ८५ सूक्तं दशमो १० वर्गश्च समाजः॥

मण्डल-१। अनुवाक-१४। सूक्त-८५

पदार्थ:-हे सभाध्यक्ष आदि मनुष्यो! तुम लोग (मरुत:) वायु के समान (व:) तुम्हारे (या) जो (त्रिधातूनि) वात, पित्त, कफयुक्त शरीर अथवा लोहा, सोना, चांदी आदि धातुयुक्त (शर्म) धर (मित्त) हैं (तानि) उन्हें (शशमानाय) विज्ञानयुक्त (दाशुषे) दाता के लिये (यच्छत) देओ और (अम्बच्चम्) हमारे लिये भी वैसे घर (वि यन्त) प्राप्त करो। हे (वृषण:) सुख की वृष्टि करनेहारे ((द:) हमारे लिये (सुवीरम्) उत्तम वीर की प्राप्ति करनेहारे (रियम्) धन को (अधिधत्त) धारण करो। १९॥

भावार्थ:-सभाध्यक्षादि लोगों को योग्य है कि सुख-दु:ख की अवस्था में सब प्राणियों की अपने आत्मा के समान मान के, सुख धनादि से युक्त करके पुत्रवत् पालें और प्रजा सेना के मनुष्यों को योग्य है कि उनका सत्कार पिता के समान करें॥१२॥

इस सूक्त में वायु के समान सभाध्यक्ष राजा और प्रजा के पूर्णों का वर्णन होने से इस सूक्तार्थ की संगति पूर्व सूक्तार्थ के साथ समझनी चाहिये॥

यह पिचासीवाँ ८५ सूक्त और दसवाँ १० वर्ग समाप्त हुआ॥

अथ दशर्चस्य षडशीतितमस्य सूक्तस्य राहूगणो गोतम ऋषिः। मरुतो देवताः। १,४,८,९ गायत्री। २,३,७ पिपीलिका मध्या निचृद्गायत्री। ५,६,१० निचृद्गायत्री च छन्दः। षड्जः

स्वर:॥

पुनः स गृहस्थः कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह गृहस्थ कैसा हो, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

मरुतो यस्य हि क्षये पाथा दिवो विमहसः।

स सुंगोपातमो जनः॥ १॥

मर्रुत:। यस्यं। हि। क्षये। पाथ। दिव:। विऽमृहुसु:। स:। सुऽगोपार्तम:। क्निः॥१॥०

पदार्थ:-(मरुत:) प्राणा इव प्रिया विद्वांसः (यस्य) (हि) खेलु (क्षये) मृहे (पाथ) रक्षका भवथ। अत्र द्वयचोऽतस्तिङ इति दीर्घः। (दिव:) विद्यान्यायप्रकाशकाः (विमहसः) विविधानि महांसि पूज्यानि कर्माणि येषां तत्सम्बुद्धौ (सः) (सुगोपातमः) अतिशयेन पृष्ठु स्वस्त्रान्येषां च रक्षकः (जनः) मनुष्यः॥१॥

अन्वय:-हे विमहसो! दिवो यूयं मरुतो यस्य क्षये पाथ सिहि खिलु सुर्गापातमो जनो जायेत॥१॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। यथा प्राणेन विना शरीरादिरक्षणं न सम्भवति, तथैव सत्योपदेशकेन विना प्रजारक्षणं न जायते॥१॥

पदार्थ:-हे (विमहसः) नाना प्रकार प्रूजिनीय कार्जी के कर्ता! (दिवः) विद्यान्यायप्रकाशक तुम लोग (मरुतः) वायु के समान विद्वान् जन (सस्य) जिल्लक (क्षये) घर में (पाथ) रक्षक हो (सः हि) वही (सुगोपातमः) अच्छे प्रकार (जनः) मनुष्य होति॥ भा

भावार्थ:-जैसे प्राण के विना शिरीरादि का रक्षण नहीं हो सकता, वैसे सत्योपदेशकर्ता के विना प्रजा की रक्षा नहीं होती॥१॥

पुनः स्कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर्विक केसा हो, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

युज्ञैर्वा यज्ञवाहसो विश्वेस्य वा मतोनाम्। मर्स्तः शृणुता हर्वम्॥२॥

युज्ञै:। वृष्ट्र्युज्ञुऽवाहुसु:। विप्रस्य। वा। मृतीनाम्। मर्रुत:। शृणुत। हर्वम्॥२॥

पदार्थ: (यज्ञे) अध्ययनाध्यापनोपदेशनाऽऽदिभिः (वा) पक्षान्तरे (यज्ञवाहसः) यज्ञान् वोढुं शीलं येषान्ते (विप्रस्य) मेधाविनः (वा) पक्षान्तरे (मतीनाम्) विदुषां मनुष्याणाम् (मरुतः) परीक्षका विपिश्चितः (शृणुत) (हवम्) परीक्षितुमर्हमध्ययनमध्यापनं वा॥२॥

अन्वयः-हे यज्ञवाहसो! यूयं मरुत इव स्वकीयैर्यज्ञै: परकीयैर्वा विप्रस्य मतीनां वा हवं शृणुत॥२॥

मण्डल-१। अनुवाक-१४। सूक्त-८६

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। मनुष्यैर्विज्ञानविज्ञापनाख्यैः क्रियाजन्यैर्वा यज्ञैः सह वर्त्तमाना भूत्वाऽन्यान् मनुष्यानेतैर्योजयित्वा यथावत्सुपरीक्ष्य विद्वांसो निष्पादनीयाः॥२॥

पदार्थः -हे (यज्ञवाहसः) सत्सङ्गरूप प्रिय यज्ञों को प्राप्त करानेवाले विद्वानो ! तुम्र लोग (मस्तः) वायु के समान (यज्ञैः) अपने (वा) पराये पढ़ने-पढ़ाने और उपदेशरूप यज्ञों से (विष्रस्य) खिद्वान् (वा) वा (मतीनाम्) बुद्धिमानों के (हवम्) परीक्षा के योग्य पठन-पाठनरूप व्यवहर्ष को (शृणुक्) सुना कीजिये॥२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को योग्य है कि जानने-जनाने वा क्रियाओं से सिद्ध यज्ञों से युक्त होकर, अन्य मनुष्यों को युक्त करा, यथान्त्र परिकार करके विद्वान् करना चाहिये॥२॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते।

फिर वह कैसा हो, यह विषय अगले सन्त्र में कहा है।

उत वा यस्य वाजिनोऽनु विष्रुमतंक्षता स गन्त् गोमिति वेर्जे॥३॥

ुत। वा। यस्य। वाजिनः। अनु। विप्रम्। अतक्षता सः। गन्ति। ग्रीऽमीत। ब्रुजे॥३॥

पदार्थ:-(उत) अपि (वा) विकल्पे (यस्य) (वाजिन:) प्रशस्तविज्ञानयुक्ताः (अनु) पश्चादर्थे (विप्रम्) मेधाविनम् (अतक्षत) अतिसूक्ष्मां धियं कुर्वन्ति (स्:) (गन्ता) (गोमित) प्रशस्ता गाव इन्द्रियाणि विद्यन्ते यस्मिँस्तस्मिन् (व्रजे) व्रजन्ति जना यस्मिस्तस्मिन्॥३॥

अन्वयः-हे वाजिनो! यूयं यस्य क्रियाकुश्लिस्य विरुषो वाऽध्यापकस्य सकाशात् प्राप्तविद्यं विप्रमन्वतक्षत, स गोमति व्रज उत गन्ता भवेतु॥३॥

भावार्थ:-तीव्रया बुद्धया शिल्मेविद्यया च सिद्धैर्विमानादिभिर्विना मनुष्यैर्देशदेशान्तरे सुखेन गन्तुमागन्तुं वा न शक्यते, तस्माद्तिपुरुषार्थेनैवानि निष्पादनीयानि॥३॥

पदार्थ:-(वाजिन के उत्तम विद्वानयुक्त विद्वानो! तुम (यस्य) जिस क्रियाकुशल विद्वान् (वा) पढ़ानेहारे के समीप से विद्वा को प्राप्त हुए (विप्रम्) विद्वान् को (अन्वतक्षत) सूक्ष्म प्रज्ञायुक्त करते हो (स:) वह (गोमित) उत्तम इन्द्रिय विद्या प्रकाशयुक्त (वज्रे) प्राप्त होने के योग्य मार्ग में (उत) भी (गन्ता) प्राप्त होवें। ३॥

भार्तार्थ: त्वांवेखुद्धि और शिल्पविद्या सिद्ध विमानादि यानों के विना मनुष्य देश-देशान्तर में सुख से जाने आने को सेपर्थ नहीं हो सकते, उस कारण अति पुरुषार्थ से विमानादि यानों को यथावत् सिद्ध करें।। 🕉।।

पुनस्तै शिक्षितै: किं जायत इत्युपदिश्यते॥

फिर उन शिक्षित मनुष्यों से क्या होता है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अस्य वीरस्यं बहिषिं सुतः सोमो दिविष्टिषु।

उक्थं मद्धा शस्यते॥४॥

अस्य। वीरस्य। बुर्हिषि। सुत:। सोम:। दिविष्टिषु। उक्थम्। मर्द:। चु। शुस्युते॥४॥

पदार्थ:-(अस्य) (वीरस्य) विज्ञानशौर्य्यनिर्भयाद्युपेतस्य (बिहिषि) उत्तमे व्यवहारे कृते सित (सुत:) निष्पन्न: (सोम:) ऐश्वर्यसमूह: (दिविष्टिषु) दिव्या इष्टय: सङ्गतानि कर्माणि सुखानि वा येषु व्यवहारेषु तेषु (उक्थम्) शास्त्रप्रवचनम् (मद:) आनन्द: (च) विद्यादयो गुणाः (शस्यते) स्तूयते॥४॥

अन्वय:-हे विद्वांसो! भवच्छिक्षितस्यास्य वीरस्य सुत: सोमो दिविष्टिषूवर्श बहिष्णे पर्वो गुणसमूहश्च शक्यते नेतरस्य॥४॥

भावार्थ:-विदुषां शिक्षया विना मनुष्येषूत्तमा गुणा न जायन्ते तस्मादतिन्नीत्यमनुष्ठेयम्॥४॥

पदार्थ: - हे विद्वानो! आपके सुशिक्षित (अस्य) इस (वृश्स्य) घोर का (सुतः) सिद्ध किया हुआ (सोमः) ऐश्वर्य (दिविष्ट्षु) उत्तम इष्टिरूप कर्मों से सुख्युक्त व्यवहारों में (उक्थम्) प्रशंसित वचन (बिहिष्) उत्तम व्यवहार के करने में (मदः) आनन्द (च) और सिद्धिद्यादि गुणों का समूह (शस्यते) प्रशंसित होता है, अन्य का नहीं॥४॥

भावार्थ:-विद्वानों की शिक्षा के विना मनुष्यों में अत्तम गुण उत्पन्न नहीं होते। इससे इसका अनुष्ठान नित्य करना चाहिये॥४॥

पुनस्त कि कुर्युरित्युपदिश्यते

फिर वे क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

अस्य श्रोष्टन्ता भुवो विश्वा यश्चर्षणीर्भि। सूरं चित्सस्रुषीरिषं:॥५॥११॥

अस्य। श्रोषुन्तु। आ। भुव्रि विश्वाः। यः चूर्षुणीः। अभि। सूर्रम्। चित्। सुस्रुषीः। इषः॥५॥

पदार्थ:-(अस्य) सुशिक्षितस्य मनुष्यस्य (श्रोषन्तु) शृण्वन्तु। अत्र विकरणव्यत्ययेन लेटि सिप्। (आ) सर्वतः (भुवः) भूमया (बिश्राः) सर्वाः (यः) (चर्षणीः) मनुष्यान् (अभि) आभिमुख्ये (सूरम्) प्रेरियतारमध्यापकम् (चित्) इव (ससुषीः) प्राप्तव्याः (इषः) इष्टसाधकाः किरणाः॥५॥

अन्वयः-हैं मनुष्या! भवन्तोऽस्य सुशिक्षितस्येषिश्चिदिव विश्वाः सस्रुषीराभुवश्चर्षणीः प्रजाः किरणाः सूरिमवाभिश्रोषद्वाप्ता

भावार्थः से मनुष्यः सुशिक्षितः सुपरीक्षितः शुभलक्षणः सर्वविद्यो दृढिष्ठो बलिष्ठोऽध्यापकः सुसहायः पुरुषार्थी धार्मिको विद्वानस्ति, स एव पूर्णान् धर्मार्थकाममोक्षान् प्राप्तः सन् प्रजाया दुःखानि निकर्म पूरां विद्यां श्रुत्वा प्राप्नोति नातो विरुद्धः॥५॥

मण्डल-१। अनुवाक-१४। सूक्त-८६

पदार्थ:-हे मनुष्यो आप लोग (अस्य) इस सुशिक्षित विद्वान् के (इष:) इष्टसाधक किरणों के (चित्) समान (विश्वा:) सब (ससुषी:) प्राप्त होने के योग्य (आभुव:) सब ओर से सुख्युक्त (चर्षणी:) मनुष्यरूप प्रजा को जैसे किरणें (सूरम्) सूर्य को प्राप्त होती हैं, वैसे (अभि श्रोष-तु) सब ओर से सुनो॥५॥

भावार्थ:-जो मनुष्य अच्छी शिक्षा से युक्त, अच्छे प्रकार परीक्षित, शुभ्लक्षणयुक्त, सम्पूर्ण विद्याओं का वेत्ता, दृढ़ाङ्ग, अतिबली, पढ़ानेहारा, श्रेष्ठ सहाय से सिहत, पुरुषाश्री धार्मिक विद्वान् है, वही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त होके प्रजा के दुःख का निवारण कर प्रसविद्या को सुनके प्राप्त होता है, इससे विरुद्ध मनुष्य नहीं॥५॥

सर्वे वयं मिलित्वा किं कुर्य्यामेत्युपदिश्यते।

सब हम मिल के क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

पूर्वीभिहिं दंदाशिम श्ररिद्धिर्मरुतो वयम्। अवीभिश्रर्विणीनाम्। द॥

पूर्वीभिः। हि। दुदा्शिम। शुरत्ऽभिः। मुरुतः। वयम्। विक्रिभिः। नुर्खुणीनाम्॥६॥

पदार्थ:-(पूर्वीभि:) पुरातनीभि: (हि) खलु (ददाशिम) दद्याम (शरिद्ध:) शरदादिभिर्ऋतुभिः (मरुत:) सभाद्यध्यक्षादयः (वयम्) सभाप्रजाप्रालास्थाः (अवोभिः) रक्षणादिभिः (चर्षणीनाम्) मनुष्याणाम्॥६॥

अन्वय:-हे मरुतो! यथा यूयं पूर्वीभि: प्रार्द्धः सर्वैर्ऋतुभिरवोभिश्चर्षणीनां सुखाय प्रवर्त्तध्वम्। तथा वयमपि हि खलु युष्मदादिभ्यः सुखानि ददाशिम॥६॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः यथा ऋतुस्था वायवः प्राणिनो रक्षित्वा सुखयन्ति तथा विद्वांसः सर्वेषां सुखाय प्रवर्त्तेरन्, स्किल कस्यचिद् दुःखाय॥६॥

पदार्थ:-हे (मरुत:) सभाध्यक्ष आदि सज्जनो! जैसे तुम लोग (पूर्वीभि:) प्राचीन सनातन (शरिदः) सब ऋतु वा (अवभि:) रक्षा आदि अच्छे-अच्छे व्यवहारों से (चर्षणीनाम्) सब मनुष्यों के सुख के लिये अच्छे प्रकार अपना वर्त्ताव वर्त्त रहे हो, वैसे (हि) निश्चय से (वयम्) हम प्रजा, सभा और पाठशालास्थ आदि प्रत्येक शाला के पुरुष आप लोगों को सुख (ददाशिम) देवें॥६॥

भावार्थ: इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सब ऋतु में ठहरने वाले वायु प्राणियों की रक्षा कर उनकी सुख पहुंचाते हैं, वैसे ही विद्वान् लोग सबके सुख के लिये प्रवृत्त हों, न कि किसी के दु:ख के लिये।।

तै: पालित: शिक्षितो जन: कीदृशो भवतीत्युपदिश्यते॥

रुतकी रक्षा और शिक्षा पाया हुआ मनुष्य कैसा होता है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

९३२

सुभगः स प्रयज्यवो मर्मतो अस्तु मर्त्यः। यस्य प्रयांसि पर्षथ॥७॥ सुऽभगः। सः। प्रऽयुज्यवः। मर्म्तः। अस्तु। मर्त्यः। यस्यं। प्रयांसि। पर्षथ॥७॥

पदार्थ:-(सुभगः) शोभनो भगो धनमैश्वर्यं वा यस्य सः। भग इति धननामसु पित्रम् (निघं०२.१०) (सः) (प्रयज्यवः) प्रकृष्टा यज्यवो येषाम् तत्सम्बुद्धौ (मरुतः) सभाध्यक्षोद्धयः (अस्तु) भवतु (मर्त्यः) मनुष्यः (यस्य) यस्मै। अत्र चतुर्थ्यर्थे बहुलं छन्दसीति षष्टीप्रयोगः (प्रयासि) प्रीतानि कान्तानि वस्तूनि (पर्षथ) सिञ्चत दत्त॥७॥

अन्वय:-हे प्रयज्यवो मरुतो! यूयं यस्य प्रयांसि पर्षथ स मर्त्य: सुभगोऽस्तु॥७॥

भावार्थ:-येषां जनानां सभाद्यध्यक्षादयो विद्वांसो रक्षकाः सन्ति ते कथं न सुखैश्वर्यं प्राप्नुयु:॥७॥

पदार्थ:-हे (प्रयज्यवः) अच्छे-अच्छे यज्ञादि कर्म करनेवाले (मस्तः) सभाध्यक्ष आदि विद्वानो! तुम (यस्य) जिसके लिये (प्रयांसि) अत्यन्त प्रीति करने योग्य महिर पदार्श्नों को (पर्षथ) परसते अर्थात् देते हो (सः) वह (मर्त्यः) मनुष्य (सुभगः) श्रेष्ठ धन और ऐश्वय्येयुक्त (अस्तु) हो॥७॥

भावार्थ:-जिन मनुष्यों के सभाध्यक्ष आदि विद्वान स्थि। अर्रनेवाले हैं, वे क्योंकर सुख और ऐश्वर्य्य को न पावें?॥७॥

मनुष्यैस्तेषां सङ्गेन कि विज्ञातव्याप्रित्युपदिश्यते॥

उनके सङ्ग से मनुष्यों को क्या जानूना चाहिये, अह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

शृशुमानस्य वा नर्ः स्वेदस्य सत्यश्चसः। विदा कार्मस्य वेनेतः॥८॥

शृश्मानस्य। वा। नुरुः। स्वेदंस्यू/(सृत्युऽशुबुसुः। विद। कार्मस्य। वेनंतः॥८॥

पदार्थ:-(शशमानस्य) विद्यातव्यस्य। अत्र सर्वत्र अधिगर्थ इति शेषत्विववक्षायां षष्ठी। (वा) अथवा (नरः) सर्वकार्यनेतारो मनुष्यास्तत्सम्बुद्धौ (स्वेदस्य) पुरुषार्थेन जायमानस्य (सत्यशवसः) नित्यदृढबलस्य (विद) वित्था ह्रुचचोऽतस्तिङ इति दीर्घः। (कामस्य) (वेनतः) सर्वशास्त्रैः श्रुतस्य कमनीयस्य। अत्र वेनृधालिबिह्निलकाद्भैणादिकोऽतन् प्रत्ययः॥८॥

अन्वय:-हे नरो! यूयं सभाह ध्यक्षादीनां सङ्गेन स्वपुरुषार्थेन वा शशमानस्य सत्यशवसो वेनतः स्वेदस्य कामस्य विद विजानीत॥८॥🛆

भावार्थः निह्न कश्चिद्विदुषां सङ्गेन विना सत्यान् कामान् सदसिद्वज्ञातुं च शक्नोति, तस्मादेतत् सर्वेरनुष्ठेयम् भिद्या

पदार्थ: -हे (नर:) मनुष्यो! तुम सभाध्यक्षादिकों के संग (वा) पुरुषार्थ से (शशमानस्य) जानने योग्य (सत्यश्रवस:) जिसमें नित्य पुरुषार्थ करना हो (वेनत:) जो कि सब शास्त्रों से सुना जाता हो तथा

Pandit Lekhram Vedic Mission (933 of 1953.)

मण्डल-१। अनुवाक-१४। सूक्त-८६

कामना के योग्य और (स्वेदस्य) पुरुषार्थ से सिद्ध होता है, उस (कामस्य) काम को (विद) जानो अर्थात् उसको स्मरण से सिद्ध करो॥८॥

भावार्थ:-कोई पुरुष विद्वानों के संग विना सत्य काम और अच्छे-बुरे को जार्ब नहीं सिक्सा। इससे सबको विद्वानों का संग करना चाहिये॥८॥

अथेतरमनुष्यैस्ते सभाध्यक्षादयो मनुष्याः कथं प्रार्थनीया इत्युपदिश्य से

अब और मनुष्यों को उन सभाध्यक्ष आदि मनुष्यों से कैसे प्रार्थना करनी च्राहिये, यह विषय

अगले मन्त्र में कहा है॥

यूयं तत्सत्यशवस आविष्कर्त महित्वना। विध्यता विद्युता रक्ष्राः। 📢

यूयम्। तत्। सत्युऽश्रवसः। आविः। कुर्तु। मुह्डिऽत्वना। विध्यत। विऽद्युताः रक्षः॥९॥

पदार्थ:-(यूयम्) (तत्) (सत्यशवसः) नित्यं बलं येषान्तित्सम्बुद्धौ (आविः) प्रकटीभावे (कर्त्त) कुरुत। विकरणस्यात्र लुक्। (महित्वना) महिम्ना (विध्यता) ताङ्क्किप्रा (विद्युता) विद्युत्रिष्पन्नेनास्त्रसमूहेन (रक्षः) दुष्टकर्मकारी मनुष्यः॥९॥

अन्वय:-हे सत्यशवसः सभाद्यध्यक्षादयो! यूयं महिल्बना तत्क्रामम्गविष्कर्त येन विद्युता रक्षो विध्यता मया सर्वे कामाः प्राप्येरन्॥९॥

भावार्थ:-मनुष्यै: परस्परं प्रीत्या पुरुषार्थेत विद्याः प्राप्य दुष्टस्वभावगुणमनुनिवार्य कामसिद्धिर्नित्यं कार्येति॥९॥

पदार्थ: - हे (सत्यशवस:) नित्यश्रावित से माद्यध्यक्ष आदि सज्जनो! (यूयम्) तुम (महित्वना) उत्तम यश से (तत्) उस काम को (आबि:) प्रकट (कर्त्त) करो कि जिससे (विद्युता) बिजुली के लोहे से बनाये हुए शस्त्र वा आग्नेयादि अस्त्रों के समूह से (रक्ष:) खोटे काम करनेवाले दुष्ट मनुष्यों को (विध्यता) ताड़ना देते हुए मेरी सब कामना फिद्ध हों॥९॥

भावार्थ:-मनुष्यों को चाहिए कि परस्पर प्रीति और पुरुषार्थ के साथ विद्युत् आदि पदार्थविद्या और अच्छे-अच्छे गुणों को पाकर दुष्ट स्वभावी और दुर्गुणी मनुष्यों को दूर कर नित्य अपनी कामना सिद्ध करें॥९॥

पुनस्ते किं कुर्य्युरित्युपदिश्यते॥

फिर वे क्या करें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

गृहता मुद्धे तमो वि यांत विश्वमित्रिणम्। ज्योतिष्कर्ता यदुश्मसि॥१०॥१२॥ गृहता गुह्यम्। तमः। वि। याता विश्वम्। अत्रिणम्। ज्योतिः। कुर्तु। यत्। उश्मसि॥१०॥

पदार्थ:-(गूहत) आच्छादयत। अत्रान्येषामपीति दीर्घः। (गुह्यम्) गोपनीयम् (तर्मः) रात्रिवदिवद्याऽन्धकारम् (वि) विगतार्थे (यात) गमयत (विश्वम्) सर्वम् (अत्रिणम्) परसुखमत्तारम् अदेस्त्रिनिश्च। (उणा०४.६९) अनेन सूत्रेणाऽदधातोस्त्रिनिः प्रत्ययः। (ज्योतिः) विद्याप्रकार्यम् (कर्मः) कुरुत। अत्र द्वयचोऽतस्तिङ इति दीर्घः। (यत्) (उश्मिस्) कामयामहे॥१०॥

अन्वय:-हे सत्यशवस: सभाद्यध्यक्षादयो! यूयं यथा स्वमहित्वना गुह्यं गूहत विश्वं तुर्मोऽत्रिणं वियात विनष्टं कुरुत तथा वयं यज्ज्योतिर्विद्याप्रकाशमुश्मसि तत्कर्ता॥१०॥

भावार्थ:-मरुतः सत्यशवसो महित्वनेति पदत्रयमनुवर्त्तते। सभाद्यध्यक्षिदिभिरे परमपुरुषार्थेन सततं राज्यं रक्ष्यमविद्याऽधर्मान्धकारः शत्रवश्च निवारणीया विद्याधर्मसज्जनसुखानि प्रचारणीयानीति॥१०॥

अत्र यथा शरीरस्थाः प्राणवायवः प्रियाणि साधियत्वा सर्वान् रक्षेत्रित तथेव सभाध्यक्षादिभिः सर्वं राज्यं यथावत् संरक्ष्यमत एतत्सूक्तार्थस्य पूर्वसूक्तोक्तार्थेन सह स्क्रित्रस्तीति बीध्यम्॥

इति षडशीतितमं ८६ सूक्तं द्वादशो १२ वर्गश्च सुमाप्त:॥

पदार्थ:-हे (सत्यशवसः) नित्यबलयुक्त सभाध्यक्ष आदि अर्जनो! जैसे तुम (महित्वना) अपने उत्तम यश से (गृह्यम्) गुप्त करने योग्य व्यवहार को (गृह्त होंग्रे) और (विश्वम्) समस्त (तमः) अविद्या रूपी अन्धकार को जो कि (अत्रिणम्) उत्तम सुख्य का बिनाम्न करनेवाला है, उस को (वि यात) दूर पहुंचाओ तथा हम लोग (यत्) जो (ज्योतिः) विद्या के प्रकाश को (उश्मिस) चाहते हैं, उसको (कर्त) प्रकट करो॥१०॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में (मरुत: प्रत्यश्वर्भ:, महित्वना) इन तीनों पदों की अनुवृत्ति है। सभाध्यक्षादि को परम पुरुषार्थ से निरूतर राज्य की रक्षा करनी तथा अविद्यारूपी अन्धकार और शत्रुजन दूर करने चाहिये तथा विद्या, धर्म और सज्जनों के सुखों का प्रचार करना चाहिये॥१०॥

इस सूक्त में जैसे श्रास्त में ठहरनेहों। प्राण आदि पवन चाहे हुए सुखों को सिद्ध कर सबकी रक्षा करते हैं, वैसे ही सभाध्यक्षादिकों को चाहिये कि समस्त राज्य की यथावत् रक्षा करें। इस अर्थ के वर्णन से इस सूक्त में कि हुए अर्थ की उस पिछले सूक्त के अर्थ के साथ एकता जाननी चाहिये।।

यह छिशासीवां ८६ सूक्त और बारहवां १२ वर्ग पूरा हुआ॥

अथास्य षड्चस्य सप्ताशीतितमस्य सूक्तस्य राहूगणपुत्रो गोतम ऋषि:। मरुतो देवता:। १,२,५ विराड् जगती। ३ जगती। ६ निचृज्जगती छन्द:। निषाद: स्वर:। ४ त्रिष्टुप् छन्द:। धैवत:

स्वर:॥

पुनस्ते सभाध्यक्षादयः कीदृशा इत्युपदिश्यते॥

अब सतासीवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में पूर्वोक्त सभाध्यक्ष कैसे <u>हॉर्त हैं, यह</u> उपदेश किया है॥

प्रत्वेक्षसः प्रतंवसो विर्ष्णिनोऽनानता अविधुरा ऋजीिषणः। 🗸 जुष्टतमासो नृतमासो अञ्जिभिर्व्यानचे के चिंदुस्राईव स्तृभिः। शि

प्रऽत्वेक्षसः। प्रऽतेवसः। विऽर्ष्णिनः। अनीनताः। अविथुराः। ऋत्रीषिणे जुर्रिऽतमासः। नृऽतेमासः। अञ्जिऽभिः। वि। आनुत्रे। के। चित्। उस्राःऽईव। स्तृऽभिः॥ १॥

पदार्थ:-(प्रत्वक्षसः) प्रकृष्टतया शत्रूणां छेतारः (प्रत्वसः) प्रकृष्ट्यानि तवांसि बलानि सैन्यानि येषान्ते (विरिष्णिनः) सर्वसामग्रचा महान्तः (अनानताः) शत्रूणसिश्ममुखे खल्वनम्राः (अविथुराः) कम्पभयरिहताः। अत्र बाहुलकादौणादिकः कुरच् प्रत्युः! (ऋजीषिणः) सर्वविद्यायुक्तः उत्कृष्टसेनाङ्गोपार्जकाः (जुष्टतमासः) राजधर्मिभिरित्रयुक्ते सेविताः (नृतमासः) अतिशयेन नायकाः (अञ्चिभः) व्यक्तैरक्षणविज्ञानादिभिः (वि) (अग्नुष्टे) अजन्तु शत्रून् क्षिपन्तु। व्यत्ययेनात्मनेपदम्। (के) (चित्) अपि (उस्नाइव) यथा किरणास्तथा (स्तृभः) शत्रुष्ठलाच्छादकेर्गुणैः। स्तृज् आच्छादन इत्यस्मात् क्विष् वा च्छन्दिस सर्वे विधयो भवन्तीति तुगुभवः।। श्री

अन्वय:-हे सभाध्यक्षादयो! भवत्सेनस्यु मे केन्द्रित्स्तृभिरञ्चिभिः सह वर्त्तमाना उस्रा इव प्रत्वक्षसः प्रतवसो विरिष्शिनोऽनानता अविथुरा ऋजीिषणो जुष्टतसासो मृतमासश्च शत्रुबलानि व्यानच्चे व्यजन्तु प्रक्षिपन्तु ते भवद्भिर्नित्यं पालनीया:॥१॥

भावार्थ:-यथा किरण्रास्त्या प्रतापवन्तो मनुष्या येषां समीपे सन्ति, कुतस्तेषां पराजय:। अतः सभाध्यक्षादिभिरेतल्लक्षणः पुरुषाः सुर्परीक्ष्य सुरुष्टि सत्कृत्योत्साह्य रक्षणीया:। नैवं विना केचिद्राज्यं कर्त्तुं शक्नुवन्तीति॥१॥

पदार्थ:-हे सभाध्यक्ष आदि सज्जनो! आप लोगों को (के) (चित्) उन लोगों की प्रतिदिन रक्षा करनी चाहिये जो कि अपनी सेनाओं में (स्तृभिः) शत्रुओं को लिखत करने के गुणों से (अक्किभिः) प्रकट रक्षा और उत्तम जन अदि व्यवहारों के साथ वर्ताव रखते और (उस्ना इव) जैसे सूर्य की किरण जल को छित्र भिन्न करती हैं, वैसे (प्रत्वक्षसः) शत्रुओं को अच्छे प्रकार छिन्न-भिन्न करते हैं तथा (प्रतवसः) प्रबल् जिनके सेनाजन (विरिष्णनः) समस्त पदार्थों के विज्ञान से महानुभाव (अनानताः) कभी शत्रुओं के स्मान ने दीन हुए और (अविथुराः) न कँपे हो (ऋजीषिणः) समस्त विद्याओं को जाने और उत्कर्षयुक्त

सेना के अङ्गों को इकट्ठे करें (जुष्टतमासः) राजा लोगों ने जिनकी बार-बार चाहना करी हो (नृतमासः) सब कामों को यथायोग्य व्यवहार में अत्यन्त वर्त्तानेवाले हों (व्यानज्रे) शत्रुओं के बलों को अलग करें, उनका सत्कार किया करो॥१॥

भावार्थ:-जैसे सूर्य की किरणें तीव्र प्रतापवाली हैं, वैसे प्रबल प्रतापवाले मनुष्य जिनके समीप है, क्योंकर उनकी हार हो। इससे सभाध्यक्ष आदिकों को उक्त लक्षणवाले पुरुष अव्ही शिक्षा, सत्कार और उत्साह देकर रखने चाहिये, विना ऐसे किये कोई राज्य नहीं कर सकते हैं॥११

सभाध्यक्षस्य भृत्यादयः किं कुर्युरित्युपदिश्यते॥

सभाध्यक्ष के कामवाले मनुष्य क्या करें, यह विषय अगले मन्नि में ऋहा है।।

उपह्नरेषु यदिचिध्वं ययिं वर्यद्रव मरुतः केर्न चित्पथा। श्रोतन्ति कोशा उपं वो रथेष्वा घृतमुक्षता मधुवर्णमर्चते॥ २॥

उपुऽह्वरेषुं। यत्। अचिध्वम्। ययिम्। वर्यःऽइव। मुरुतः। केन्न चित्। पृथा। श्रोतन्ति। कोशाः। उप। वः। रथेषु। आ। घृतम्। उक्षुत्। मधुंऽवर्णम्। अर्चते॥२॥

पदार्थ:-(उपहृरेषु) उपस्थितेषु कुटिलेषु मार्गेषु (यत्) उपम् (अचिध्वम्) संचिनुत (यियम्) प्राप्तव्यं विजयम् (वयइव) यथा पक्षिणस्तथा (मम्तः) सभाद्यध्यक्षादयो मनुष्याः (केन) (चित्) अपि (पथा) मार्गेण (श्चोतिन्त) रक्षन्तु संचलन्तु (क्षिणाः) यथा मेघाः। कोश इति मेघनामसु पठितम्। (निघं०१.१०) (उप) (वः) युष्माकम् (रथेषु) विभानादिस्रानेषु (आ) समन्तात् (घृतम्) उदकम् (उक्षत) सिञ्चत। अत्रान्येषामपि दृश्यत इति दीर्घः (मधुवर्णमू) यन्मधुरं च वर्णोपेतं च तत् (अर्चते) सत्कर्त्रे सभाद्यध्यक्षप्रियाय॥२॥

अन्वयः - हे मरुतो भृत्यादयो भृयूयभुपह्नरेषु रथेषु स्थित्वा वय इव केनचित्पथा यद्यं यियमचिध्वं संचिनुत तमर्चते दत्त ये वो युष्माकं रथाः कोभा इवाकासे श्रोतन्ति तेषु मधुवर्णं घृतमुपोक्षत। अग्निवायुकलागृहसमीपे सिञ्चत॥२॥

भावार्थ:-अत्रोपमाव किलुप्तोपमाल होरो। मनुष्यैर्विमानादियानानि रचियत्वा तत्राग्निवायुजलस्थानानि निर्माय क्षत्र तत्र तानि स्थापयित्वा कलाभिः संचाल्य वाष्पादीनि संनिरुद्धचैतान्युपरि नीत्वा पक्षित्रमेघवच्चाकाशमार्गेण यथेष्टं स्थानं गत्वागत्य व्यवहारेण युद्धेन विजयं राज्यधनं वा प्रमुखैतैः परापकारं कृत्वा निरिभमानिनो भूत्वा सर्वानन्दान् प्राप्नुयुरेते सर्वेभ्यः प्रापयितव्याश्च। १८॥

पदार्थ: है (मरुत:) सभा आदि कामों में नियत किये हुए मनुष्यो! तुम (उपह्लरेषु) प्राप्त हुए टेढ़े-सूध्ने भूमि आकाशादि मार्गों में (रथेषु) विमान आदि रथों पर बैठ (वयइव) पिक्षयों के समान (केन्सीबत) किसी (पथा) मार्ग से (यत्) जिस (यियम्) प्राप्त होने योग्य विजय को (अचिध्वम्) सम्पादन क्री, जोशो-आओ उसको (अर्चते) जिसका सत्कार करते और सभा आदि कामों के अधीश जिसको

अष्टक-१। अध्याय-६। वर्ग-१३

मण्डल-१। अनुवाक-१४। सूक्त-८७

प्यारे हैं, उसके लिये देओ, जो (a:) तुमहारे रथ (कोशा:) मेघों के समान आकाश में (श्रोतिन्त) चलते हैं, उनमें (मधुवर्णम्) मधुर और निर्मल (घृतम्) जल को (उप+आ+उक्षत) अच्छे प्रकार उपस्तिकत करें अर्थात् उन रथों की आग और पवन के कलघरों के समीप अच्छे प्रकार छिड़को॥२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। मनुष्यों को सिहिये कि विमान आदि रथ रचकर उनमें आग, पवन और जल के घरों को बनाकर, उनमें आग, पवन जल धर कर कलों से उनको चलाकर उनकी भाप रोक रथों को ऊपर ले जायें, जैसे कि पख्रे वा भेघ जाते हैं, वैसे आकाश मार्ग से अभीष्ट स्थान को जा-आकर व्यवहार से धन और युद्ध सर्वथा जीत वा राज्यधन को प्राप्त होकर उन धन आदि पदार्थों से परोपकार कर निरिभमानी होकर स्थान के आनन्द पावें और उन आनन्दों को सबके लिये पहुँचावें॥२॥

पुनस्ते किं कुर्युरित्युपदिश्यते।

फिर वे क्या करें, इस विषय का उपदेश आर्खि मन्त्र में) किया है।।

प्रैषामज्मेषु विश्वरेव रेज्ते भूमिर्यामेषु यद्ध युक्ते श्रुभे।

ते क्रीळयो धुनयो भ्राजदृष्टयः स्वयं महित्वं प्नयन्त धूर्तयः॥३॥

प्रा एषाम्। अज्मेषु। विश्वुराऽईव। रेज़ते। भूमिः। यामेषु। यत्। हु। युक्कते। शुभे। ते। क्रीळयेः। धुनेयः। भ्राजंत्ऽऋष्टयः। स्वयम्। मुहुऽत्वम्। पुनुयन्तु। धूतया।

पदार्थ:-(प्र) (एषाम्) सभाध्यक्षादीनां रथाऽ १ वहिस्तभृत्यादिशब्दैः (अज्मेषु) सङ्ग्रामेषु। अज्म इति सङ्ग्रामनाम। (निघं०२.१७) (विश्वुजेव) श्रीविज्वरव्यथितोद्विग्ना कन्येव (रेजते) कम्पते (भूमिः) (यामेषु) यान्ति येषु मार्गेषु तेषु (यत्) ए (ह) खलु (युज्जते) (शुभे) शुभ्यते यस्तस्मै शुभाय विजयाय। अत्र कर्मणि क्विप्। (ते) (क्रीव्यः) क्रीडेन्तः (धुनयः) शत्रून् कम्पयन्तः (भ्राजदृष्टयः) प्रदीप्तायुधाः (स्वयम्) (महित्वम्) महिमानुम् यथास्यात्तथा (पनयन्त) पनं व्यवहारं कुर्वन्ति। अत्र बहुलं छन्दस्यमाङ्-योगेऽपीत्यडभावः। अत्र कृत्करोति तद्गवष्ट इति णिच्। (धूतयः) धूयन्ते युद्धक्रियासु ये ते॥३॥

अन्वय:-यद्ये क्रीह्यो धुनमे प्राजदृष्ट्यो धृतयो वीराः शुभेऽज्मेषु प्रयुञ्जते ते महित्वं यथा स्यात्तथा स्वयं ह पनयन्त। एषां यामेषु गुच्छद्भिर्यानिदिर्भिमिर्विथुरेव रेजते॥३॥

भावार्थः-अन्नोपमालङ्कारः। यथा शीघ्रं गच्छन्तो वायवो वृक्षतृणौषधिभूमिकणान् कम्पयन्ति, तथैव वीराणां सेभस्थचक्रप्रहारैः पृथिवी शस्त्रप्रहारैर्भीरवश्च कम्पन्तो यथा च व्यापारवन्तो व्यवहारेण धनं प्राप्य मह्नन्तो धनाद्या भवन्ति, तथैव सभाद्यध्यक्षादयः शत्रुर्विजेयन स्वमहत्त्वं प्रख्यापयन्ति॥३॥

पदार्थ:-(यत्) जो (क्रीळयः) अपने सत्य चालचलन को वर्त्तते हुए (धुनयः) शत्रुओं को कंपावें (भ्राजदृष्ट्यः) ऐसे तीव्र शस्त्रोंवाले (धूतयः) जो कि युद्ध की क्रियाओं में विचरके वे वीर (शुभे) श्रेष्ठ

विजय के लिये (अज्मेषु) संग्रामों में (प्र+युञ्जते) प्रयुक्त अर्थात् प्रेरणा को प्राप्त होते हैं (ते) व (महित्वम्) बड़प्पन जैसे हो वैसे (स्वयम्) आप (ह) ही (पनयन्त) व्यवहारों को करते हैं (एषाम्) इनके (यामेषु) उन मार्गों में कि जिनमें मनुष्य आदि प्राणी जाते हैं, चलते हुए रथों से (भूषि:) धरती (विथुरा+इव+रेजते) ऐसे कम्पती है कि मानो शीतज्वर से पीड़ित लड़की कंपे॥३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे शीघ्र चलनेवाले पवन वृक्ष, तृण् अंसिक और धूलि को कंपाते हैं, वैसे वीरों की सेना के रथों के पहियों के प्रहार से धरती और उनके शस्त्रों की मोटों से डरनेहारे मनुष्य कंपा करते हैं और जैसे व्यापारवाले मनुष्य व्यवहार से धन को पाकर बड़े धनाढ्य होते हैं, वैसे ही सभा आदि कामों के अधीश शत्रुओं को जीतने से अपना बड़फून और प्रतिष्ठा विख्यात करते हैं॥३॥

पुनः सेनायुक्तः सेनापतिर्वीरः कीदृशो भवतीत्युपदिश्यते।

फिर सेनायुक्त सेना का अधीश वीर कैसा होता है, यह क्रिक्य अराले मन्त्र में कहा है॥

स हि स्वसृत्पृषदश्चो युवा गुणो ३ या ईशानस्तविषीभिराचृतः। असि सत्य ऋणयावानेद्योऽस्या ध्यः प्राविताया विषा गुणः॥४॥

सः। हि। स्वऽसृत्। पृषंत्ऽअश्वः। युवां। गुणः। अया। ई्ष्यानः। तर्विषीभिः। आऽवृतः। असि। सुत्यः। ऋृणुऽयावां। अनेद्यः। अस्याः। ध्यिः। प्रुऽअविता। अर्था वृष्मा गुण्या ४॥

पदार्थ:-(सः) (हि) यतः (स्वसृत्र पः स्वान् सरित प्राप्नोति सः (पृषदश्वः) पृषदिव वेगवन्तस्तुरङ्गा यस्य सः (युवा) प्राप्तयुवस्थः (गणः) गणनीयः (अया) एति जानाति सर्वा विद्या यया प्रज्ञया तया। अत्र सुपां सुलुगित्याकारादेशः। (ईशानः) पूर्णसामर्थ्ययुक्तः (तिवधिभिः) पूर्णबलयुक्ताभिः सेनाभिः (आवृतः) युक्तः (असि) (सत्यः) सत्सु साधुः (ऋणयावा) य ऋणं याति प्राप्नोति सः (अनेद्यः) प्रशस्यः। अनेद्य इति प्रशस्यन्तमसु पठितम्। (निघं०३.८) (अस्याः) (धियः) प्रज्ञायाः कर्मणो वा (प्राविता) रक्षणादिकर्ता (अर्थ) आनन्तर्ये (वृषा) सुखवर्षणसमर्थः (गणः) मरुतां समूह इव॥४॥

अन्वयः – हे सेनापूर्वः त्वं ह्यया कृषा गणः स्वसृत्पृषदश्चो युवा गण ईशानः सत्य ऋणयावाऽनेद्योऽस्या धियः प्राविता समस्तविषीभरावृतोऽस्या शत्यानत्तरमस्माभिः सत्कर्त्तव्योऽप्यसि॥४॥

भावार्थः ज्ञाह्मचर्येण विद्यया पूर्णशरीरात्मबलः स्वसेनया रक्षितः सेनापितः स्वसेनां सततं रक्ष्य शत्रुन् विजित्य गुजां पालयेत्॥४॥

पदार्थ:- हे सेनापते! (स:) (हि) वहीं तू (अया) जिससे सब विद्या जानी जाती हैं, उस बुद्धि से युक्त (द्वृषा:) शौतल मन्द सुगन्धिपन से सुखरूपी वर्षा करने में समर्थ (गण:) पवनों के समान वेग बल्यूक्त (स्वमृत्) अपने लोगों को प्राप्त होनेवाला (पृषदश्व:) वा मेघ के वेग के समान जिसके घोड़े हैं (युवा) तथा जवानी को पहुंचा हुआ (गण:) अच्छे सज्जनों में गिनती करने के योग्य (ईशान:)

अष्टक-१। अध्याय-६। वर्ग-१३

मण्डल-१। अनुवाक-१४। सूक्त-८७

परिपूर्णसामर्थ्य युक्त (सत्यः) सज्जनों में सीधे स्वभाव वा (ऋणयावा) दूसरों का ऋण चुकानेवाला (अनेद्यः) प्रशंसनीय और (अस्याः) इस (धियः) बुद्धि वा कर्म की (प्राविता) रक्ष करनेहाज (तिविषीभिः) परिपूर्णबलयुक्त सेनाओं से (आवृतः) युक्त (असि) है (अथ) इसके अनन्त्र हम लियों के सत्कार करने योग्य भी है॥४॥

भावार्थ:-ब्रह्मचर्य और विद्या से परिपूर्ण शारीरिक और आत्मिक बलयुक्द अपनी सेना से रक्षा को प्राप्त सेनापित सेना की निरन्तर रक्षा करके शत्रुओं को जीतके प्रजा का पालन करे। ४॥

पुनस्ते किं कुर्युरित्युपदिश्यते॥

फिर वे क्या करते हैं, यह विषय अगले मन्त्र में कूहर है

पितुः प्रत्नस्य जन्मना वदामिस सोमस्य जिह्वा प्र जिगाति वक्षसा यदीमिन्द्रं शम्यक्वाण आश्तादिन्नामानि युज्ञियानि द्विरिश्राप्ता

पितुः। प्रत्नस्यं। जन्मेना। वृदामुस्। सोमस्य। जिह्ना। प्रा जिपाति। चक्षेसा। यत्। ईम्। इन्द्रेम्। शर्मि। ऋक्वाणः। आश्रत। आत्। इत्। नामानि। यज्ञियानि। द्धिरे॥५॥

पदार्थ:-(पितु:) पालकस्य जनकस्य (प्रतन्त्र्य) पुरतिन्त्र्याऽनादेः (जन्मना) शरीरेण संयुक्ताः (वदामिस) वदामः (सोमस्य) उत्पन्नस्य जगतः (जिह्ना) रूसनेन्द्रियं वाग्वा (प्र) (जिगाति) प्रशंसित (चक्षसा) दर्शनेन वा (यत्) यानि (ईम्) प्राप्तृत्यम् (इन्ह्रम्) विद्युदाख्यमग्निम् (शिम्) कर्मणि। शमीति कर्मनामसु पठितम्। (निघं०२.१) (ऋक्वाणः) प्रशस्त्री ऋचः स्तुतयो विद्यन्ते येषां ते (आशत) प्राप्नुत (आत्) अनन्तरे (इत्) एव (नामानि) जुलामि (यिन्नयानि) शिल्पादियज्ञार्हाणि (दिधरे) धरन्तु॥५॥

अन्वय:-ऋक्वाणो वयं प्रत्नस्य सितुर्जगदीश्वरस्य व्यवस्थया कर्माऽनुसारतः प्राप्तेन मनुष्यदेहधारणाख्येन जन्मना सोमस्य चक्षसा यानि यज्ञियानि नामानि च प्रवदामसि भवतः प्रत्युपदिशमो वा यदीमिन्द्रं जिह्ना प्रजिगाति तानि यूयमाऽऽशत प्राप्नुतादिद् दिधर एव परन्तु॥५॥

भावार्थ:-मनुष्यैद्धिं देहमाश्रित्य पितृभावेन परमेश्वरस्याज्ञापालनरूपप्रार्थनां कृत्वोपास्योपदिश्य जगत्पदार्थगुणविज्ञानोपकाशन् सङ्ग्रम्ह्य जन्मसाफल्यं कार्य्यम्॥५॥

पदार्थ:-(ऋक्वाण:) प्रशंसित स्तुतियों वाले हम लोग (प्रत्नस्य) पुरातन अनादि (पितु:) पालनेहारे जगदीश्वर की व्यवस्था से अपने कर्म्म के अनुसार पाये हुए मनुष्य देह के (जन्मना) जन्म से (सोमस्य) प्रकट संसार के (चक्षसा) दर्शन से जिन (यज्ञियानि) शिल्प आदि कर्मों के योग्य (नामानि) जलों को (वदामसि) तुम्हारे प्रति उपदेश करें वा (यत्) जो (ईम्) प्राप्त होने योग्य (इन्द्रम्) बिजुली अग्निक ते को (शिम) कर्म के निमित्त (जिह्वा) जीभ वा वाणी (प्रजिगाति) स्तुति करती है, उन सब

980

की तुम लोग (आशत) प्राप्त होओ और (आत+इत्) उसी समय इनको (दिधिरे) सब लोग धरिण करो॥५॥

भावार्थ:-मनुष्यों को चाहिये कि इस मनुष्य देह को पाकर पितृभाव से परमेश्वर की आजीपालने रूप प्रार्थना, उपासना और परमेश्वर का उपदेश, संसार के पदार्थ और उनके विशेष ज्ञान से उपकारों को लेकर अपने जन्म को सफल करें॥५॥

पुनस्ते किं कुर्युरित्युपदिश्यते॥

फिर वे क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है।

श्रियसे कं भानुभिः सं मिमिक्षिरे ते रिश्मिभस्त ऋक्वंभिः स्वादयः। ते वाशीमन्त डुष्मिणो अभीरवो विद्रे प्रियस्य मार्हतस्य कार्मः॥ ६॥ ३॥

श्रियसें। कम्। भानुभिः। सम्। मिमिक्षिरे्। ते। रश्मिभिः। ते। ऋक्वेऽभिः। सुऽखादयेः। ते। वाशीऽमन्तः। इष्मिणीः। अभीरवः। विद्रे। प्रियस्ये। मार्कतस्य। धाम्नीः॥६॥

पदार्थ:-(श्रियसे) श्रियतुम् (कम्) सुखम् (भानुभिः) दिवार्थः (सम्) सम्यक् (मिमिक्षिरे) मेढुमिच्छन्ति (ते) (रिश्मिभः) अग्निकरणैः (ते) (ऋक्विभः) प्रशस्ता ऋचः स्तुतयो विद्यन्ते येषु कर्मसु तैः (सुखादयः) सुष्ठु खादयो भोजनादीनि येषां ते (ते) (वाशीमन्तः) प्रशस्ता वाशी वाग् विद्यते येषां ते (इष्मिणः) प्रशस्तविज्ञानगतिमन्तः (अभीरवः) भयरहिताः (विद्रे) विन्दन्ति लभन्ते। छन्दसि वा द्वे भवतः। (अष्टा०वा०६.१.८) अनेन वार्त्तिके द्विवचन्त्रभावः। (प्रियस्य) प्रसन्नकारकस्य (मारुतस्य) कलायन्त्रवायोः प्राणस्य वा (धामनः) गृहाद्वास्त्रभ

अन्वय:-ये भानुभि कं श्रियसे प्रियस्य मास्तर्भ धाम्नो विद्यां जलं वा संमिमिक्षिरे ते शिल्पविद्याविदो भवित्त। ये रिश्मिभिरिग्निकरणै: कं श्रियसे कलाभिर्यानार्भ चालयन्ति ते शीघ्रं स्थानान्तरप्राप्तिं विद्रे लभन्ते। ऋक्विभिर्ये कं श्रियसे सुखादयो भविन्ति, ते आरोग्यं लभन्ते। ये वाशीमन्त इष्मिणोऽभीरवः प्रियस्य मारुतस्य धाम्नो युद्धे प्रवर्तन्ते ते विद्रे विजयं लभन्ते॥६॥

भावार्थ:-ये मनुष्याः प्रतिदिनं सृष्टिपदार्थविद्यां लब्ध्वाऽनेकोपकारान् गृहीत्वा तिद्वद्याध्ययनाऽध्यापनैर्वाप्मिना भूत्वा शत्रून् शुद्धाचारे वर्त्तन्ते त एव सर्वदा सुखिनो भवन्तीति॥६॥

अत्र राजप्रजापुरुषाणां कर्त्तव्यानि कर्माण्युक्तान्यत एतत्सूक्तार्थेन सह पूर्वसूक्तार्थस्य सङ्गतिरस्तीति बोध्यम्।

इति सप्ताशीतितमं ८७ सूक्तं त्रयोदशो १३ वर्गश्च समाप्त:॥

पदार्थ:-जो (भानुभि:) दिन-दिन से (कम्) सुख को (श्रियसे) सेवन करने के लिये (ते) वे (प्रियस्य) प्रेस उत्पन्न करानेवाले (मारुतस्य) कला के पवन वा प्राणवायु के (धाम्न:) घर से विद्या वा जिल्ला को (सम्+मिमिक्षिरे) अच्छे प्रकार छिड़कना चाहते हैं (ते) वे शिल्पविद्या के जाननेवाले होते हैं

अष्टक-१। अध्याय-६। वर्ग-१३

मण्डल-१। अनुवाक-१४। सूक्त-८७

तथा जो (रिश्मिभ:) अग्निकिरणों से सुख के सेवन के लिये कलाओं से यानों को चलाते हैं, वे शीघ्र एक स्थान से दूसरे स्थान का (विद्रे) लाभ पाते हैं (ऋक्विभ:) जिनमें प्रशंसनीय स्तुति विद्यान है, उनसे जो सुख के सेवन करने के लिये (सुखादय:) अच्छे-अच्छे पदार्थों के भोजन करनेवाले होते हैं (ते) वे आरोग्यपन को पाते हैं (वाशीमन्त:) प्रशंसित जिनकी वाणी वा (इष्मिण:) विशेष ज्ञान है वे (अभीरव:) निर्भय पुरुष प्रेम उत्पन्न करानेहारे प्राणवायु वा कलाओं के पवन के पर से युद्ध में प्रवृत्त होते हैं, वे विजय को प्राप्त होते हैं॥६॥

भावार्थ:- जो मनुष्य प्रतिदिन सृष्टिपदार्थविद्या को पा अनेक उपकार्य को ग्रहण कर उस विद्या के पढ़ने और पढ़ाने से वाचाल अर्थात् बातचीत में कुशल हो और शत्रुओं को जितकर अच्छे आचरण में वर्तमान होते हैं, वे ही सब कभी सुखी होते हैं॥६॥

इस सूक्त में राजा प्रजाओं के कर्त्तव्य कहे हैं, इस कारण इस सूक्त के अर्थ से पिछले सूक्त के अर्थ की संगति है, यह जानना चाहिये॥

यह सत्तासी ८७ वां सूक्त और तेरह र क्वाँ वर्ग भी पूरा हुआ।।

अथास्य षड्चस्याष्टाशीतितमस्य सूक्तस्य राहूगणपुत्रो गोतम ऋषिः। मरुतो देवताः। १ पङ्किः। २ भूरिक्पङ्किः। ५ निचृत्पङ्किश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः। ३ निचृत् त्रिष्टुप्। ४ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः।

धैवत: स्वर:। ६ निचृद् बृहती छन्द:। मध्यम: स्वर:॥

पुन: पूर्वोक्तसभाध्यक्षादिपुरुषाणां कृत्यमुपदिश्यते॥ अब छ: मन्त्रोंवाले अठासीवें सुक्त का आरम्भ है। इसके प्रथम मन्त्र से फिर भी स्रशास्त्रकादि

का उपदेश किया है॥

आ विद्युन्मद्भिर्मरुत: स्वुकै रथेभिर्यात ऋष्ट्रिमद्भिरश्चेपणैं:।

आ वर्षिष्ठया न इषा वयो न पंपतता सुमाया:॥१॥

आ। विद्युन्मंत्ऽभिः। मुरुतः। सुऽअर्कैः। रथेभिः। यात्। ऋष्ट्रिमत्ऽभिः। अर्थुऽप्पैः। आ। वर्षिष्ठया। नः। हुषा। वर्यः। न। पुप्ततः। सुऽमायाः॥ १॥

पदार्थ:-(आ) अभितः (विद्युन्मिद्धः) तारयन्त्रादिसंकृद्धा विद्युत्ते विद्यन्ते येषु तैः (मरुतः) सभाध्यक्षप्रजा मनुष्याः (स्वर्कैः) शोभना अर्का मन्त्रा विचारा का देवा विद्वांसो येषु तैः। (रथेभिः) विमानादिभिर्यानैः (यात) गच्छत (ऋष्ट्रिमिद्धः) कत्त्रभूमिष्ण्र्ष्ट्रीयष्टिशस्त्रास्त्रादियुक्तैः (अश्वपर्णैः) अगन्यादीनामश्वानां पतनैः सह वर्त्तमानैः (आ) समन्त्रात् (विष्ठिया) अतिशयेन वृद्धया (नः) अस्माकम् (इषा) उत्तमान्नादिसमूहेन (वयः) पक्षिणः (न) इव (पप्तेन्) उत्पतत (सुमायाः) शोभना माया प्रज्ञा येषान्ते॥१॥

अन्वयः-हे सुमाया मरुतः सभाध्यक्ष्यज्ञापुरुषा! यूर्यं नोऽस्माकं वर्षिष्ठयेषा पूर्णैः स्वर्केर्ऋष्टिमद्भिरश्वपर्णै-विद्युन्मद्भी रथेभिर्वयो न पप्ततापप्तत यातायात्। शा

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कारः। मेसुष्यैर्यथा पक्षिण उपर्यधः सङ्गत्याऽभीष्टं देशान्तरं सुखेन गच्छन्त्यागच्छन्ति तथैव सुसाधितस्तिङ्चारयन्त्रैर्विमानादिभिर्यानैरुपर्यधः समागमनेनाभीष्टान् समाचरान् वा देशान् सुखेन गत्वागत्य स्वकार्य्यणि संसाध्य स्राततं सुखयितव्यम्॥१॥

पदार्थ:-हे (सुप्राचाः) उत्तम् बुद्धिवाले (मस्तः) सभाध्यक्ष वा प्रजा पुरुषो! तुम (नः) हमारे (वर्षिष्ठया) अत्यन्त बुढ़ाये (से (इषा) उत्तम अन्न आदि पदार्थों (स्वर्कैः) श्रेष्ठ विचारवाले विद्वानों (ऋष्टिमद्भिः) तार्विद्या में चलाने अर्थ डण्डे और शस्त्रास्त्र (अश्वपणैः) अग्नि आदि पदार्थरूपी घोड़ों के गमन के साथ वर्तमान (विद्युन्मद्भिः) जिनमें कि तार बिजली हैं, उन (रथेभिः) विमान आदि रथों से (वयः) पिंक्स्यों के (न) प्रमान (पप्तत) उड़ जाओ (आ) उड़ आओ (यात) जाओ (आ) आओ॥१॥

भावार्थ:=इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि जैसे पखेरू ऊपर-नीचे आके चाहे हुए एक स्थान से दूसरे स्थान को सुख से जाते हैं, वैसे अच्छे प्रकार सिद्ध किये हुए तारविद्या अष्टक-१। अध्याय-६। वर्ग-१४

मण्डल-१। अनुवाक-१४। सूक्त-८८

प्रयोग से चलाये हुए विमान आदि यानों से आकाश और भूमि वा जल में अच्छे प्रकार जा-आके अभीष्ट देशों को सुख से जा-आके अपने कार्य्यों को सिद्ध करके निरन्तर सुख को प्राप्त हों॥१॥

तैस्ते किं प्राप्नुवन्तीत्युपदिश्यते॥

उक्त कामों से वे क्या पाते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

तेंऽरुणेभिर्वरमा पिशङ्गैः शुभे कं यन्ति रथतूर्भिरश्चैः।

कुक्मो न चित्रः स्वधितीवान् पुव्या रथस्य जङ्गनन्तु भूमी। २॥

ते। अ्रुणेभिः। वर्रम्। आ। पि्राङ्गैः। श्रुभे। कम्। यान्ति। रृथुतूःऽभिः। अर्थैः। रुक्मः। न। चित्रः। स्वर्धितिऽवान्। पुव्या। रथस्य। जुङ्गनन्तु। भूमं॥ २॥

पदार्थ:-(ते) शिल्पविद्याविचक्षणाः (अरुणेभिः) आरक्तवर्णरिम्प्रियोगे जैः (वरम्) श्रेष्ठम् (आ) आभिमुख्ये (पिशङ्गैः) अग्निजलसंयोगजैर्वाष्यैः पीतैः (शुभे) श्रेष्ठाय ब्यवह्यराय (कम्) सुखम् (यान्ति) गच्छन्ति (रथतूर्भिः) ये रथान् विमानादियानानि तूर्वन्ति शीघ्रं गमयन्ति ते (अश्रेः) आशुगमनहेतुभिरग्नि-जलकलागृहरूपैरश्वैः (रुक्मः) देदीप्यमानः (न) इव (चिश्रः) शौर्याविगुणैरद्धृतः (स्वधितीवान्) स्वधितिः प्रशस्तो वज्रो विद्यते यस्य (पव्या) वज्रतुल्यया चक्रश्वास्या (रथस्य) विमानादियानसमूहस्य (जङ्घनन्त) अत्यन्तं घ्नन्ति। लडर्थे लङ्। छन्दस्युभयथेति आर्ष्ठधातुसंज्ञाऽकारयकारयोर्लोपः अडभावश्च। (भूम) भवेम। अत्र लुङ्घङभावश्च॥२॥

अन्वयः-यथा शिल्पविदो विद्वांसः शुभे अरूणेभिः पिश्रङ्गै रथतूर्भिरश्चै रथस्य पव्या स्वधितीवान् रुक्मश्चित्रो नेव जङ्घनन्त ते वरं कमायान्ति प्राप्नुवन्ति तथा वयसपि भूमभूरो।

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमीलङ्कारी। यथा शूरवीर: सुशस्त्रवान् पुरुषो वेगेन गत्वागत्य शत्रून् हन्ति, तथैव मनुष्या वेगवत्सु यानेषु स्थित्वा देशदेशान्तरं गत्वा शत्रून् विजयन्ते॥२॥

पदार्थ:-जैसे कारीगर्री को जाननेहारे विद्वान् लोग (शुभे) उत्तम व्यवहार के लिये (अरुणेभिः) अच्छे प्रकार अग्नि के ताप से लाल (पिशङ्गेः) वा अग्नि और जल के संयोग की उठी हुई भाफों से कुछेक श्वेत (रथतूर्भिः) जो कि किमान आदि रथों को चलानेवाले अर्थात् अति शीघ्र उनको पहुंचाने के कारण आग और पानी की कलों के घररूपी (अश्वेः) घोड़े हैं, उनके साथ (रथस्य) विमान आदि रथ की (पव्या) वज्र के तुरुप पहिंचों की धार से (स्वधितीवान्) प्रशंसित वज्र से अन्तरिक्ष वायु को काटने (रुक्मः) और उत्तेजनी एखनेवाले (चित्रः) शूरता, धीरता, बुद्धिमता आदि गुणों से अद्भुत मनुष्य के (न) समान मूर्ण को (जङ्भनन्त) हनन करते और देश-देशान्तर को जाते-आते हैं (ते) वे (वरम्) उत्तम (कम्) सुख को (आयान्ति) चारों ओर से प्राप्त होते हैं, वैसे हम भी (भूम) इसको करके आनन्दित होते। रे

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे शूरवीर अच्छे शस्त्र रखनेवाला पुरुष विग से जाकर शत्रुओं को मारता है, वैसे मनुष्य वेगवाले रथों पर बैठ देश-देशान्तर को जा-आ के शत्रुओं को जीतते हैं॥२॥

अथ सभाध्यक्षाद्यपदेशमाह॥

अब सभाध्यक्षादिकों को उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

श्रिये कं वो अर्धि तुनूषु वाशीर्मेधा वना न कृणवन्त ऋर्घा। युष्मभ्यं कं मेरुतः सुजातास्तुविद्युम्नासी धनयन्ते अर्द्रिम्॥३॥

श्रिये। कम्। वः। अर्धि। तुनूषुं। वाशीः। मेधा। वनां। न। कृणवन्ते। क्र्यां। युष्णभ्यम्। कम्। मुरुतः। सुऽजाताः। तुविऽद्युम्नासः। धुनयन्ते। अर्द्रिम्॥३॥

पदार्थ:-(श्रिये) विद्याराज्यशोभाप्राप्तये (कम्) सुखम् (वः) युष्मकम् (अधि) आधेयत्वे (तनूषु) शरीरेषु (वाशीः) वेदविद्यायुक्ता वाणीः (मेधा) पवित्रकारिका पृज्ञा। केचिद्धः प्रान्ताः 'मेधा' इत्यत्र 'मेध्या' इति पदमाश्रित्याद्युदात्तेन मेध्यपदार्थायै तत्पदमिच्छन्ति। तच्चासमञ्जसमेलः। कृतः ? 'मेधा' इत्यन्तोदात्तस्य दर्शनात्। भट्टमोक्षमूलरोऽपि 'मेधा' इति सविसर्गं एष्टं मिन्त्री बुद्धिपदार्थायैनत् पदं विवृणोति तच्चाप्यसमञ्जसमेव। कृतः ? 'मेधा' इति निर्विसर्जनीयस्य पदस्य जागरूकत्वात्। (वना) वनानि (न) इव (कृणवन्ते) कुर्वन्ति। व्यत्ययेनात्रात्मनेपदम्। (अध्यो उत्कृष्टभुखप्रापिकाः (युष्मभ्यम्) (कम्) कल्याणम् (मरुतः) (सुजाताः) शोभनेषु विद्यादिगुणेषु प्रसिद्धाः (तुविद्युम्नासः) तुवीनि बहूनि द्युम्नानि विद्याप्रकाशनानि येषान्ते (धनयन्ते) धनं कुर्वन्ति (अद्गि) पर्वतिमव॥३॥

अन्वय:-हे मरुतो! ये वस्तनूषूर्ध्य वस्तिमिधा क्रमा नोच्छ्रितवनवृक्षसमूहानि वाधिकृणवन्ते तदाचरणायाधिकारं ददित। हे सुजातास्तुविद्युम्नासो महान्तो। युष्पस्यं के यथा स्यात् तथाद्रिं धनयन्ते पर्वतसदृशं महान्तं धनं कुर्वन्ति ते युष्माभि: सदा सेवनीया:॥३॥

भावार्थ:-अत्रोपमाल्ड्क्स्स्रि:। यथा मेधीन कूपोदकेन वा सिक्ताः वनान्युपवनानि वा निजफलैः प्राणिनः सुखयन्ति, तथ्रीब विद्वीसी विद्यासुशिक्षा जनयित्वा निजपरिश्रमफलेन सर्वान् मनुष्यान् सुखयन्तीति॥३॥

पदार्थ:-हे (मरुत:) सभाध्यक्षादि सज्जनो! जो (व:) तुम्हारे (तनूषु) शरीरों में (श्रिये) लक्ष्मी के लिये (कम्) सुख (क्ष्वा) अच्छे सुख को प्राप्त करनेवाली (वाशी:) वेदवाणी (मेधा) शुद्ध बुद्धियों को (वना) ऊंचे जने वने पेड़ों के (न) समान (अधि कृणवन्ते) अधिकृत करते हैं अर्थात् उनके आचरण के लिये अधिकार देते हैं। हे (सुजाता:) विद्यादि श्रेष्ठ गुणों में प्रसिद्ध उक्त सज्जनो! जो (तुविश्चुम्नासः) बहुत विद्या प्रकाशों वाले महात्मा जन (युष्मभ्यम्) तुम लोगों के लिये (कम्) अत्यन्त

अष्टक-१। अध्याय-६। वर्ग-१४

मण्डल-१। अनुवाक-१४। सूक्त-८८

सुख जैसे हो वैसे (अद्रिम्) पर्वत के समान (धनयन्ते) बहुत धन प्रकाशित कराते हैं, वे तुम लोगों को सदा सेवने योग्य हैं॥३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे मेघ वा कूप जल से सिंचे हुए वर्ष और उपनिन, बाग-बगीचे अपने फलों से प्राणियों को सुखी करते हैं, वैसे विद्वान् लोग विद्या और अच्छी सिक्षा करके अपने परिश्रम के फल से सब मनुष्यों को सुखसंयुक्त करते हैं॥३॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी उक्त विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।

अहानि गृध्याः पर्या व आगुरिमां धियं वार्कायां च देवीम्। कहा कृण्वन्तो गोर्तमासो अर्केन्ध्वं नुनुद्र उत्सुधि पिर्वध्ये। ४।।

अहांनि। गृष्ट्यां:। पिर्रा आ। वु:। आ। अगु:। इमाम्। धियम् वोक्युर्क्यम्। चु। देवीम्। ब्रह्मं। कृण्वन्तं:। गोर्तमासः। अर्कै:। अर्थिम्। नुनुद्रे। उत्सुऽधिम्। पिर्बर्ध्ये॥४॥

पदार्थ:-(अहानि) दिनानि (गृधाः) अभिकाङ्ख्निः (पिरि) सर्वतः (आ) आभिमुख्ये (वः) युष्मभ्यम् (आ) समन्तात् (अगुः) प्राप्तवन्तः (इमाम्) (ध्यम्) धारणवतीं प्रज्ञाम् (वार्कार्थ्याम्) जलमिव निर्मलां सम्पत्तव्याम् (च) अनुक्तसमुच्चये (देवीप्) देद्वीप्यमानाम् (ब्रह्म) धनमन्नं वेदाध्यापनम् (कृण्वन्तः) कुर्वन्तः (गोतमासः) अतिशयेन् अन्वन्तः (अर्कैः) वेदमन्त्रैः (अर्क्ष्यं) उत्कृष्टभागम्। (नुनुद्रे) प्रेरते (उत्सिधम्) उत्साः कूपा धीयन्ते यस्मिन् भूमिभागे तम् (पिबध्ये) पातुम्॥४॥

अन्वयः-हे मनुष्या! ये गृध्रा गोतमस्ये बहा कृष्वन्तः सन्तोऽर्केरहान्यूर्ध्वं पिबध्या उत्सिधिमिवानुनुद्रे ते वो युष्मभ्यं वार्कार्यामिमां देवीं धियं धनं च पूर्योगुस्ते सदा सेवनीयाः॥४॥

भावार्थः-अत्र वास्कलुप्तोपेमालङ्कारः। हे जिज्ञासवो मनुष्या! यथा पिपासानिवारणादिप्रयोजनायातिश्रमेण जलाशयं निर्माय स्वकार्याणि साध्नुवन्ति, तथैव भवन्तोऽतिपुरुषार्थेन विदुष्णं सङ्गेन विद्धांभ्यासं यथावत् कृत्वा सर्वविद्याप्रकाशां प्रज्ञां प्राप्यां तदनुकूलां क्रियां साध्नुवन्तु॥४॥

पदार्थ: - ह्रे मनुष्यो! जो (गृधाः) सब प्रकार से अच्छी काङ्क्षा करनेवाले (गोतमासः) अत्यन्त ज्ञानवान् सज्जन (ब्रह्म) धन, अत्र और वेद का पठन (कृण्वन्तः) करते हुए (अर्कैः) वेदमन्त्रों से (अहानि) दिनोदिस (अर्ध्वम्) उत्कर्षता से (पिबध्ये) पीने के लिये (उत्सिधम्) जिस भूमि में कुएं नियत किये जाले, उसके समान (आ+नुनुद्रे) सर्वथा उत्कर्ष होने के लिये (वः) तुम्हारे सामने होकर प्रेरणा करते हैं वे (वार्कार्थ्याम्) जल के तुल्य निर्मल होने के योग्य (देवीम्) प्रकाश को प्राप्त होती हुई

(इमाम्) इस (धियम्) धारणवती बुद्धि (च) और धन को (परि+आ+अगु:) सब कहीं से अच्छे प्रकार प्राप्त हो के अन्य को प्राप्त कराते हैं, वे सदा सेवा के योग्य हैं॥४॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे ज्ञान गौरव चाहनेवालो! जैसे माहिया पिओर के खोने आदि प्रयोजनों के लिये परिश्रम के साथ कुंआ, बावरी, तालाब आदि खुदा कर अपने अपने कामों को सिद्ध करते हैं, वैसे आप लोग अत्यन्त पुरुषार्थ और विद्धानों के संग से ब्रिद्धा के अध्यास को जैसे चाहिये वैसा करके समस्त विद्या से प्रकाशित उत्तम बुद्धि को पाकर उसके अनुकूल क्रिया को सिद्ध करो॥४॥

विद्वान् मनुष्यान् प्रति किं किं शिक्षेतेत्युपदिश्यते

विद्वान् मनुष्यों को क्या-क्या शिक्षा दे, यह विषय अगले प्रान्त्र में कहा है।।

एतत्त्यन्न योजनमचेति सस्वर्ह् यन्मरुतो गोर्तमो वः। पश्यन् हिर्गण्यचक्रानयोदंष्ट्रान् विधावतो वराहून्॥ प्रा

पुतत्। त्यत्। न। योर्जनम्। अचेति। सुस्वः। हु। यत्। मुर्कुतः। गौतुर्मः। वः। पश्यन्। हिर्रणयऽचक्रान्। अयःऽदंष्ट्रान्। विऽधार्वतः। वराहून्॥५॥

पदार्थ:-(एतत्) प्रत्यक्षम् (त्यत्) उक्तम् (ते) इष (योजनम्) योक्तुमर्हं विमानादियानम् (अचेति) संज्ञाप्यते। चिती संज्ञाने। लुङि कर्मणि चिण्। (सम्बः) उपदिशति। स्वृधातोर्लिङ प्रथमैकवचने बहुलं छन्दसीति शपःस्थाने १लुः। हल्ख्याब्ध्य इति तृलीपः। (ह) खलु (यत्) (मरुतः) मनुष्याः (गोतमः) विद्वान् (वः) युष्पभ्यं जिज्ञासुभ्यः (पश्चन्) पर्य्यालोचमानः (हिरण्यचक्रान्) हिरण्यानि सुवर्णादीनि तेजांसि चक्रेषु येषां विमानादीनां तान् (अयोदंष्ट्रान्) अयोदंष्ट्रायो दंसनानि येषु तान् (विधावतः) विविधान् मार्गान् धावतः (वराहून्) वरमाह्वयतः शब्दायमानान्॥५॥

अन्वय:-हे मरुतो! यूयं बची गौतमो न वो योजनं हिरण्यचक्रानयोदंष्ट्रान् वराहून् विधावतो रथानेतत्पश्यन् ह सस्वस्त्यदचेति तं विज्ञाय सत्कुरुत्।। ।

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कारः हे मनुष्या! यथा परावरज्ञो विद्वान् सुक्रियाः कृत्वाऽऽनन्दं भुङ्क्ते, तथैव भवन्तोऽपि विद्वत्सङ्गन् विद्यासिद्धाः क्रियाः कृत्वा सुखानि भुञ्जीरन्॥५॥

पदार्थ: है (मरुत:) मनुष्यो! तुम (गोतम:) विद्वान् के (न) तुल्य (व:) विद्वा का ज्ञान चाहनेवाले तुम्/लोगों को (यत्) जो (योजनम्) जोड़ने योग्य विमान आदि यान (हिरण्यचक्रान्) जिनके पहियों में सोने की काम वा अति चमक दमक हो, उन (अयोदंष्ट्रान्) बड़ी लोहे की कीलों वाले (वराहून्) अच्छे शब्दों को करने (विधावत:) न्यारे-न्यारे मार्गों को चलनेवाले विमान आदि रथों को (एन्त्र) प्रत्यक्ष (पश्यन्) देख के (ह) ही (सस्व:) उपदेश करता है, (त्यत्) वह उसका उपदेश किया हुआ तुम् लोगों को (अचेति) चेत करता है, उसको तुम जान के मानो॥५॥

अष्टक-१। अध्याय-६। वर्ग-१४

मण्डल-१। अनुवाक-१४। सूक्त-८८

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! जैसे अगली-पिछली बातों को जाननेवाला विद्वान् अच्छे-अच्छे काम कर आनन्द को भोगता है, वैसे आप लोग भी विद्या से सिद्ध हुए किमी को करके सुखों को भोगो॥५॥

पुनर्जिज्ञासुरेतेषु कथं वर्त्तित्वा किं गृह्णीयादित्युपदिश्यते॥

अब विद्या ज्ञान चाहनेवाला पुरुष उनमें कैसे वर्त्त कर, क्या ग्रहण करे, इस विष्कर का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

एषा स्या वो मरुतोऽनुभुर्त्री प्रति ष्टोभित वाघतो न वाणी। अस्तोभयुद् वृथासामनु स्वधां गर्भस्त्योः॥६॥१४॥

एषा। स्या। वः। मुरुतः। अनुऽभुर्त्री। प्रति। स्तोभृति। वाघतः। ने। बाणीः अस्तोभयत्। वृथा। आसाम्। अनुं। स्वधाम्। गर्भस्त्योः॥६॥

पदार्थ:-(एषा) उक्तविद्या (स्या) वक्ष्यमाणा (वः) ग्रुष्मान् (मरुतः) (अनुभर्त्री) अनुगतसुखधारणस्वभावा (प्रति) प्रतिबन्धेन (स्तोभित) विद्या क्रियमाणानाम् (अनु) (स्वधाम्) स्वकीयां धारणशक्तिम् (गभस्त्योः) बाह्वोः॥६॥

अन्वय:-हे मरुतो! वो युष्माकं यैषा स्यानुभर्षी वाणी व्राघतो नेव विद्याः प्रतिष्टोभत्यासां गभस्त्योरनु स्वधां प्रतिष्टोभित वृथा व्यवहारानस्तोभयदेतां भवद्भ्यो वृष्टं ग्राप्नयास्।।

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। यथा प्रविका वाक्यज्ञकार्याणि प्रकाश्य दोषान् निवारयन्ति, तथैव विदुषां वाणी विद्या: प्रकाश्याऽविद्यां निवारयति। अत एव सर्वैविद्वत्सङ्गः सततं सेवनीय:॥६॥

अत्र मनुष्याणां विद्यसिद्धयेऽध्ययनाऽध्यापनरीतिः प्रकाशितैतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति बोद्धव्यम्।।

इति अष्टाशीनितमं ८८ सूक्तं चतुर्दशो १४ वर्गश्च समाप्तः॥

पदार्थ:-हे (मस्तः: मनुष्यां! तुम लोगों की जो (एषा) यह कही हुई वा (स्या) कहने को है, वह (अनुभर्त्री) इष्ट्र सुख धारण करानेहारी (वाणी) वाक् (वाधतः) ऋतु-ऋतु में यज्ञ करने-करानेहारे विद्वान् के (न) समीच विद्याओं का (प्रति+स्तोभित) प्रतिबन्ध करती अर्थात् प्रत्येक विद्याओं को स्थिर करती हुई (आसाम) बिद्या के कामों को (गभस्त्योः) भुजाओं में (अनु) (स्वधाम्) अपने साधारण सामर्थ्य के अनुकूल प्रतिबन्धन करती है तथा (वृथा) झूंठ व्यवहारों को (अस्तोभयत्) रोक देती है, इस वाणी को अप लोगों से हम सुनें॥६॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे ऋतु-ऋतु में यज्ञ करानेवाले की वाणी यज्ञ कामों का प्रकाश कर दोषों को निवृत्त करती है, वैसे ही विद्वानों की वाणी विद्याओं का प्रकाश कर अविद्या को निवृत्त करती है, इसीसे सब मनुष्यों को विद्वानों के संग का निरन्तर सेवन करना चाहिये॥६॥

इस सूक्त में मनुष्यों को विद्यासिद्धि के लिये पढ़ने-पढ़ाने की रीति प्रकाशित की है, इस करण इसके अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ संगति है, यह जानना चाहिये॥

यह अठासीवाँ ८८ सूक्त और चौदहवाँ १४ वर्ग पूरा हुआ॥

अथास्यैकोननवितिमस्य दशर्चस्य सूक्तस्य राहूगणपुत्रो गोतम ऋषि:। विश्वे देवा देवता:। १,५

निचृज्जगती। २,३,७ जगती छन्द:। निषाद: स्वर:। ४ भुरिक् त्रिष्टुप्। ८ विराट् त्रिष्टुप्।

९,१० त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। ६ स्वराड् बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

सर्वे विद्वांसः कीदृशा भवेयुर्जगज्जनैः सह कथं वर्त्तेरंश्चेत्युपदिश्यते॥

अब नवासीवें सूक्त का आरम्भ है। उसके प्रथम मन्त्र से सब विद्वान् लोग कैसे हों और संयारी मनुष्यों के साथ कैसे अपना वर्ताव करें, यह उपदेश किया है।।

आ नो भुद्राः क्रतंवो यन्तु विश्वतोऽदंब्धासो अपरीतास उद्भिदः।

देवा नो यथा सदमिद् वृधे असन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवेदिवे। (१)

आ। नः। भुद्राः। क्रतेवः। युन्तु। विश्वतेः। अदेब्धासः। अपरिऽह्न्स्सः। उत्हिभिदेः। देवाः। नः। यथा। सर्दम्। इत्। वृधे। असन्। अप्रेऽआयुवः। रुक्षितारेः। द्विवेऽदिवे॥ १॥

पदार्थ:-(आ) समन्तात् (नः) अस्मान् (भद्राः) कल्याणकोस्काः (क्रतवः) प्रशस्तिक्रयावन्तः शिल्पयज्ञिधयो वा (यन्तु) प्राप्नुवन्तु (विश्वतः) सर्वाभ्यो दिग्भ्यः (अद्बार्ध्सः) अहिंसनीयाः (अपरीतासः) अवर्जनीयाः (उद्धिदः) उत्कृष्टतया दुःखविदारकाः (देवाः) दिव्यगुणाः (नः) अस्माकम् (यथा) येन प्रकारेण (सदम्) विज्ञानं गृहं वा (इत्) एव (वृधे) सुखवर्द्धनाय (असन्) सन्तु। लेट्प्रयोगः। (अप्रायुवः) न विद्यते प्रगतः प्रणष्ट आयुर्बोधो येषान्ते। जसादिषु छन्दिस वृ वचनिमिति गुणविकल्पात् इयडुवङ्ग्रकरणे तन्वादीनां छन्दिस बहुलमुपसङ्ख्यानम् (अष्ट्राञ्चा०६ः) इति वार्तिकेनोवङादेशः। (रिक्षतारः) (दिवेदिवे) प्रतिदिनम्॥१॥

अन्वयः-यथा ये विश्वतो भद्राः कृतिष्योऽद्यामाञ्चपरीतास उद्भिदोऽप्रायुवो देवाश्च नः सदमायन्तु, तथैते दिवे नोऽस्माकं वृधे रक्षितारोऽसन् सन्तु॥१॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार । स्था श्रष्ठं सर्वर्तुकं गृहं सर्वाणि सुखानि प्रापयति, तथैव विद्वांसो विद्याः शिल्पयज्ञाश्च सर्वसुखक्रीरकाः सन्तीति विदित्तव्यम्॥१॥

पदार्थ:-(यथा) तैसे जो (विश्वतः) सब ओर से (भद्राः) सुख करने और (क्रतवः) अच्छी क्रिया वा शिल्पयज्ञ में बुद्धि (खनेवाले (अदब्धासः) अहिंसक (अपरीतासः) न त्याग के योग्य (उद्भिदः) अपने उत्कर्ष से द्भुखों का विनाश करनेवाले (अप्रायुवः) जिनकी उमर का वृथा नाश होना प्रतीत न हो (देवाः) ऐसे दिव्ये गुणवाल विद्वान् लोग जैसे (नः) हम लोगों को (सदम्) विज्ञान व घर को (आ+यन्तु) अच्छे प्रकार पहुंचावें, वैसे (दिवेदिवे) प्रतिदिन (नः) हमारे (वृधे) सुख के बढ़ाने के लिये (रक्षितारः) रक्षा करमेवाले (इत्) ही (असन्) हों॥१॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे सब श्रेष्ठ सब ऋतुओं में सुख देने योग्य घर सब सुखों को पहुँचाता है, वैसे ही विद्वान् लोग, विद्या और शिल्पयज्ञ सुख करनेवाले होते हैं, यह जानना चाहिये॥१॥

सर्वैर्मनुष्यैस्तेभ्यः किं प्रापणीयमित्युपदिश्यते॥

सब मनुष्यों को विद्वानों से क्या-क्या पाना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है।।

देवानां भुद्रा सुमृतिऋष्पूयतां देवानां रातिरभि नो नि वर्तताम्। देवानां सुख्यमुपं सेदिमा वयं देवा नु आयुः प्र तिरन्तु जीवसे॥ रा

देवानाम्। भुद्रा। सुऽमृतिः। ऋजुऽयुताम्। देवानाम्। रातिः। अभि। नः। नि। वर्तुताम्। देवानाम्। सुख्यम्। उपं। सेदिम्। वयम्। देवाः। नः। आर्युः। प्र। तिरुत्तु। जीवसे॥२॥

पदार्थ:-(देवानाम्) विदुषाम् (भद्रा) कल्याणकारिणी (सुपति:) श्रीभना बुद्धिः (ऋजूयताम्) आत्मन ऋजुमिच्छताम् (देवानाम्) दिव्यगुणानाम् (रातिः) विद्यापानम् अत्र मन्त्रे वृषेषपचमनविदभूवीरा उदात्तः। (अष्टा०३.३.१६) अनेन भावे क्तिन् स चान्तोदात्तः। (अष्टा०भ) आभिमुख्ये (नः) अस्मभ्यम् (नि) नित्यम् (वर्तताम्) (देवानाम्) दयया विद्यावृद्धिं चिकीर्षाम् (स्रख्यम्) मित्रभावम् (उप) (सेदिम) प्राप्नुयाम। अत्रान्येषामपि दृश्यत इति दीर्घः। (वर्षम्) (देवाः) विद्वांसः (नः) अस्माकम् (आयुः) जीवनम् (प्र) (तिरन्तु) सुशिक्षया वर्द्धयन्तु (जीवस्) जीविष्ठुम्। इमं मन्त्रं यास्कमुनिरेवमाचष्टे। देवानां वयं सुमतौ कल्याण्यां मतौ। ऋजुगामिनाम्। ऋतुगामिन्नगमिति वा। देवानां दानमभि नो निवर्तताम्। देवानां सख्यमुपसीदेम वयम्। देवा न आदुः अवध्येन्तु विरं जीवनाय। (निरु०१२.३९)॥२॥

अन्वयः-वयं या ऋजूयतां देवानां भद्रे सुमतिओं ऋजयूतां देवानां रातिः यदृजूयतां देवानां भद्रं सख्यं चाऽस्ति तदेतत्सर्वं नोऽस्मभ्यमभिनिवर्त्तताम्। तच्च्रोपसेरिसोपप्राप्नुयाम य उक्ता देवास्ते नोऽस्माकं जीवस आयुः प्रतिरन्तु॥२॥

भावार्थ:-नह्याप्तानां विदुषां सङ्गेने ब्रह्मचर्यादिनियमैश्च विना कस्यापि शरीरात्मबलं वर्द्धितुं शक्यं तस्मात्सवैरेतेषां सङ्गो नित्यं विधिष:॥२॥

पदार्थ:-(वयम्) हम लोग् ज़ॉ (ऋजूयताम्) अपने को कोमलता चाहते हुए (देवानाम्) विद्वान् लोगों की (भद्रा) सुख करिवाली (सुमितः) श्रेष्ठ बुद्धि वा जो अपने को निरिभमानता चाहनेवाले (देवानाम्) दिव्य गुणों की (रातः) विद्या का दान और जो अपने को सरलता चाहते हुए (देवानाम्) दया से विद्या की वृद्धि करना चाहते हैं, उन विद्वानों का जो सुख देनेवाला (सख्यम्) मित्रपन है, यह सब (नः) हमारे लिये (अभि+नि+वर्तताम्) सम्मुख नित्य रहे। और उक्त समस्त व्यवहारों को (उप+सेहिम) प्राप्त हों। और उक्त जो (देवाः) विद्वान् लोग हैं, वे (नः) हम लोगों के (जीवसे) जीवन के लिये (असुः) उमर को (प्र+तिरन्तु) अच्छी शिक्षा से बढ़ावें॥२॥

अष्टक-१। अध्याय-६। वर्ग-१५-१६

मण्डल-१। अनुवाक-१४। सूक्त-८९

भावार्थ:-उत्तम विद्वानों के सङ्ग और ब्रह्मचर्य्य आदि नियमों के विना किसी का शरीर और आत्मा का बल बढ़ नहीं सकता, इससे सबको चाहिये कि इन विद्वानों का सङ्ग नित्य करें और जिनिद्रेष्ठ रहें॥२॥

मनुष्याः कया कान् प्राप्य विश्वसिते विश्वसेयुरित्युपदिश्यते॥

मनुष्य किससे किन्हें पाकर विश्वासयुक्त पदार्थ में विश्वास करें, यह उपदेश अगर्ल्स सन्त्र में किया

है॥

तान्पूर्वया निविदां हूमहे वयं भगं मित्रमदितिं दक्षमिस्रिधम्। अर्युमणुं वर्रुणुं सोमम्श्रिना सरस्वती नः सुभगा मयस्करम्। ३

तान्। पूर्विया। निऽविदा। हूमहे। वयम्। भर्गम्। मित्रम्। अर्दितिम्। दक्षम्। अस्विम्। अर्यमणम्। वर्रुणम्। सोर्मम्। अश्विना। सर्रस्वती। नुः। सुऽभर्गा। मर्यः। कुर्त्॥३॥

पदार्थ:-(तान्) उक्तान् वक्ष्यमाणान् सर्वान् विदुषः (पूर्वया) सनातन्या (निवदा) वेदावाण्याऽभिलक्षितान् निश्चितानर्थान् विदन्ति यया (या विद्या) निविदिति वाङ्नामसु पठितम्। (निघं०१.११) (हूमहे) प्रशंसेम (वयम्) (भगम्) ऐश्चर्यवन्त्रम् (मित्रम्) सर्वसुहृदम् (अदितिम्) सर्वविद्याप्रकाशवन्तम् (दक्षम्) विद्याचातुर्य्यक्तपुक्तम् (अस्त्रिधम्) अहिंसकम् (अर्व्यमणम्) न्यायकारिणम् (वरुणम्) वरगुणयुक्तं दुष्टानां क्रिथकारिणम् (सोमम्) सृष्टिक्रमेण सर्वपदार्थाभिषवकर्त्तारं शान्तम् (अश्विना) शिल्पविद्याध्यापकाध्ययनिक्रियायुक्ताविग्निजलादिद्वन्द्वं वा (सरस्वती) विद्यासुशिक्षया युक्ता वागिव विदुषी स्त्री (नः) अस्माक्ष्म्) (सुभगा) सुष्टवैश्वर्यपुत्रपौत्रादिसौभाग्यसहिता (मयः) सुखम् (करन्) कुर्य्युः। लेट् प्रयोगोऽयम्। बहुल्थं छन्दस्मिति विकरणाभावः॥३॥

अन्वय:-हे मनुष्या! यथा व्यं पूर्वयो निविदाऽभिलक्षितानुक्तांस्तान् सर्वान् विदुषोऽस्निधं भगं मित्रमिदितिं दक्षमर्यमणं वरुणं सोमं च हूमहो यथैतेषां समागमोत्पन्ना सुभगा सरस्वत्यश्विना नोऽस्माकं मयस्करन् सुखकारिणो भवेयुस्तथा यूयं कुरुत॥३॥

भावार्थ:-अत्र जार्बकलुद्धीपमालङ्कार:। निह कस्यचिद्वेदोक्तलक्षणैर्विना विदुषामविदुषां च लक्षणानि यथाविद्विदितानि भवितुं शक्यानि न च विद्यासुशिक्षासंस्कृता वाक् सुखकारिणी भवितुं शक्या तस्मात्सर्वे मनुष्या वदार्थिक्जानेनैतेषां लक्षणानि विदित्वा विद्वत्सङ्गस्वीकरणमविद्वत्सङ्गत्यागं च कृत्वा सर्वविद्यायुक्त भवन्ता ३॥

पदार्थ: है पनुष्यो! जैसे (वयम्) हम लोग (पूर्वया) सनातन (निविदा) वेदवाणी जिससे सब प्रकार से रिश्चित किये हुए पदार्थों को प्राप्त होते हैं, उससे कहे हुए वा जिनको कहेंगे (तान्) उन सब विद्वानों को वा (अस्त्रिधम्) अहिंसक अर्थात् जो हिंसा नहीं करता उस (भगम्) ऐश्वर्ययुक्त (मित्रम्)

सबका मित्र (अदितिम्) समस्त विद्याओं का प्रकाश (दक्षम्) और उनकी चतुराइयोंवाला विद्वान् (अर्घ्यमणम्) न्यायकारी (वरुणम्) उत्तम गुणयुक्त दुष्टों का बन्धनकर्ता (सोमम्) सृष्टि के क्रम से सब पदार्थों का निचोड़ करनेवाला तथा जो शान्तचित्त है, उस (अश्विना) विद्या के पढ़ने-पढ़िष्ट का कार्म रखनेवाले वा जल और आग दो-दो पदार्थों को (हूमहे) स्तुति करते हैं और जो संग्रे से उत्पन्न हुई (सरस्वती) विद्या और (सुभगा) श्रेष्ठ शिक्षा से युक्त वाणी (नः) हम लोगों को (प्रयः) सुख (करन्) करें, वैसे तुम भी करो और वाणी तुम्हारे लिये भी वैसे कहें॥३॥

भावार्थ:-किसी को [भी] वेदोक्त लक्षणों के विना विद्वान् और मूर्खें के लक्षण जाने नहीं जा सकते और न उनके विना विद्या और श्रेष्ठ शिक्षा से सिद्ध की हुई वाणी सुख करनेवाली हो सकती है। इससे सब मनुष्य वेदार्थ के विशेष ज्ञान से विद्वान् और मूर्खों के लक्षण जानकर विद्वानों का संग कर, मूर्खों का संग छोड़ के समस्त विद्यावाले हों॥३॥

पुनस्तौ किं कुर्यातामित्युपदिश्यता।

फिर वे क्या करें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा हैं॥

तन्नो वातो मयोभु वातु भेषुजं तन्माता पृथिवी तिस्ता हो:। तद्ग्रावाण: सोमुसुतो मयोभुवस्तदेशिना शुणुतं विषया युवम्॥४॥

तत्। नः। वार्तः। मुयःऽभु। वातुः। भेषुजम् तत्। मात्रः। पृथिवी। तत्। पिता। द्यौः। तत्। ग्रावाणः। सोमुऽसुर्तः। मुयःऽभुर्वः। तत्। अश्विनाः शृणुतुम्। श्विष्याः युवभूगः ४॥

पदार्थ:-(तत्) विज्ञानम् (नः) अस्मध्यम् (तृतः) (मयोभु) परमसुखं भवित यस्मात्तत् (वातु) प्रापयतु (भेषजम्) सर्वदुःखनिवारकमौग्रधम् (तत्) मान्यम् (माता) मातृवन्मान्यहेतुः (पृथिवी) विस्तीर्णा भूमिः (तत्) पालनम् (पिता) जनक इस् पालनहेतुः (द्यौः) प्रकाशमयः सूर्यः (तत्) कर्म (ग्रावाणः) मेघादयः पदार्थाः (सोमसुतः) सोमाः सूता येभ्यस्ते (मयोभुवः) सुखस्य भावियतारः (तत्) क्रियाकौशलम् (अश्वना) श्रिल्पविद्याध्येत्रथ्यापकौ (शृणुतम्) यथावत् श्रवणं कुरुतम् (धिष्णया) शिल्पविद्योपदेष्टारे (युवमू) युवाम्। भूग

अन्वय:-हे धिष्ण्याविधिनावध्येत्रध्यापकौ! युवं यच्छृणुतं तन्मयोभु भेषजं नो वात इव वैद्यो वातु मातेव पृथिवी तन्मयोभु भेषजं वातु होः पिता तन्मयोभु भेषजं वातु सोमसुतस्तत् ग्रावाणस्तन्मयोभुवो भेषजं वान्तु॥४॥

भावार्ष:-शिल्पविद्यावर्द्धितारावध्येत्रध्यापकौ यावदधीत्य विजानीयतां तावत् सर्वे सर्वेषां मनुष्याणां सुखाये निष्कपटतया नित्यं प्रकाशयेताम्। यतो वयमीश्वरसृष्टिस्थानां वाय्वादीनां पदार्थानां सकाशाद्वभेकानुपकारम् गृहीत्वा सुखिनः स्याम॥४॥

पदार्थ:-हे (धिष्ण्या) शिल्पविद्या के उपदेश करने और (अश्विना) पढ़ने-पढ़ानेवालो! (युवम्) तूर्म दोनों जो (शृणुतम्) सुनो (तत्) उस (मयोभु) सुखदायक उत्तम (भेषजम्) सब दु:खों को दूर अष्टक-१। अध्याय-६। वर्ग-१५-१६

मण्डल-१। अनुवाक-१४। सूक्त-८९

करनेहारी ओषधि को (न:) हम लोगों के लिये (वात:) पवन के तुल्य वैद्य (वातु) प्राप्त करे वा (पृथिवी) विस्तारयुक्त भूमि जो कि (माता) माता के समान मान-सम्मान देने की निदान है वह (तत्) उस मान करानेहारे जिससे कि अत्यन्त सुख होता और समस्त दु:ख की निवृत्ति होती है, औषधि को प्राप्त करावे वा (द्यौ:) प्रकाशमय सूर्य्य (पिता) पिता के तुल्य जो कि रक्षा का निदान है, वह (तत्) उस रक्षा करानेहारे जिससे कि समस्त दु:ख की निवृत्ति होती है, औषधि को प्राप्त करे वा (स्तिम्मुत:) औषधियों का रस जिनसे निकाला जाय (तत्) वह कर्म तथा (ग्रावाण:) मेष्ट्र आदि पदार्थ (क्त्) जो उनसे रस का निकालना वा जो (मयोभुव:) सुख के करानेहारे उक्त पदार्थ हैं, वे (तत्) उस क्रियाकुशलता और अत्यन्त दु:ख की निवृत्ति करानेवाले ओषधि को प्राप्त करें। धा

भावार्थ:-शिल्पविद्या की उन्नित करनेहारे जो उसके पढ़ने-पूर्ट्रानेहारे विद्वान् हैं, वे जितना पढ़के समझें उतना यथार्थ सबके सुखके लिये नित्य प्रकाशित करें, जिससे हम स्वाग ईश्वर की सृष्टि के पवन आदि पदार्थों से अनेक उपकारों को लेकर सुखी हों॥४॥

मनुष्यै: सर्वाविद्याप्रकाशकं जगदीश्वरमाश्रित्य स्तुत्व प्रार्थियत्वोपास्य सर्वविद्यासिद्धये परमपुरुषार्थः कार्य्य इत्युपिद्शयोगा

मनुष्यों को सर्वविद्या के प्रकाश करनेवाले जगदीश्वर की आश्रयता, स्तुति, प्रार्थना और उपासना करके सब विद्या की सिद्धि के लिये अत्यन्त पुरुषार्थ करना चाहिये, यह उपदेश अगले मन्त्र में

तमीशानं जर्गतस्तुस्थुषुस्पति विधिक्तिन्वम्बस हूमहे वयम्।

पूषा नो यथा वेदसामसद्बृध रिक्षना पायुरदेव्धः स्वस्तये॥५॥१५॥

तम्। ईशानम्। जर्गतः। तुम्युर्षः। पतिम्। धियम्ऽजिन्वम्। अवसे। हूमहे। वयम्। पूषा। नः। यथा। वेदसाम्। असत्। वृधे। रक्षिता। पायुः। अदेखाः। स्वस्तये॥ ५)।

पदार्थ:-(तम्) मृष्टिविद्योप्रकार्शकम् (ईशानम्) सर्वस्याः सृष्टेविधातारम् (जगतः) जङ्गमस्य (तस्थुषः) स्थावरस्य (पितम्) षाव्यकम् (धियम्) समस्तपदार्थचिन्तकम् (जिन्वम्) सर्वैः सुखैस्तप्पंकम् (अवसे) रक्षणाय (हूमहे) स्पर्धामहे (वयम्) (पूषा) पृष्टिकर्त्ता परमेश्वरः (नः) अस्माकम् (यथा) (वेदसाम्) विद्यादिधनानाम् वेद इति धननाम। (निघं०२.१०) (असत्) भवेत् (वृधे) वृद्धये (रिक्षता) (पायुः) पालुसकर्त्त (अदृब्धः) अहिंसिता (स्वस्तये) सुखाय॥५॥

अन्वयः हे बिद्धन्! यथा पूषा नोऽस्माकं वेदसां वृधे यो रक्षिता स्वस्तयेऽदब्धः पूषा पायुरसत्तथा त्वं भव यथा वयमक्रुसे तं अगतस्तस्थुषस्पतिं धियं जिन्वमीशानं परमात्मानं हुमहे तथैतं त्वमप्याह्वय॥५॥

भावार्थ:-अत्र श्लेषवाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। मनुष्यैस्तथाऽनुष्ठातव्यं यथेश्वरोपदेशानुकूल्यं स्यात्। यथेश्वरः सर्वस्याऽधिपतिस्तथा मनुष्यैरपि सर्वोत्तमविद्याशुभगुणप्राप्त्या सुपुरुषार्थेन सर्वोऽधिपत्यं साधनीयम्। यथेश्वरो विज्ञानमयः पुरुषार्थमयः सर्वसुखप्रदो जगद्वर्धकः सर्वोभिरक्षकः सर्वेषां सुख्यायः प्रवर्तते, तथैव मनुष्यैरपि भवितव्यम्॥५॥

पदार्थ: - हे विद्वन्! (यथा) जैसे (पूषा) पृष्टि करनेवाला परमेश्वर (न:) हम लिंगों के (वेदसाम्) विद्या आदि धनों की (वृद्धे) वृद्धि के लिये (रिश्वता) रक्षा करनेवाला (स्वस्तये) सुख के लिये (अदब्धः) अहिंसक अर्थात् जो हिंसा में प्राप्त न हुआ हो (पूषा) सब प्रकार की पृष्टि का दाता और (पायुः) सब प्रकार से पालना करनेवाला (असत्) होवे वैसे तू हो जैसे (वयम्) हम (अवसे) रक्षा के लिये (तम्) उस सृष्टि का प्रकाश करने (जगतः) जङ्गम और (तस्थुषः) स्थावरमात्र जगत के (पितान) पालनेहारे (धियम्) समस्त पदार्थों का चिन्तनकर्त्ता (जिन्वम्) सुखों से तृप्त करने (ईश्वरंतम्) समस्त सृष्टि की विद्या के विधान करनेहारे ईश्वरं को (हूमहे) आह्वान करते हैं, वैसे तू भी क्रितान्त्र)

भावार्थ: -इस मन्त्र में श्लेष और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। मनुष्यों को चाहिये कि वैसा अपना व्यवहार करें कि जैसा ईश्वर के उपदेश के अनुकूल हो और नेसे ईश्वर सबका अधिपित है, वैसे मनुष्यों को भी सदा उत्तम विद्या और शुभ गुणों की प्राप्ति और अच्छे पुर्शार्थ से सब पर स्वामिपन सिद्ध करना चाहिये। और जैसे ईश्वर विज्ञान से पुरुषार्थयुक्त, सब सुखों को देने, संसार की उन्नति और सब की रक्षा करनेवाला सब के सुख के लिये प्रवृत्त हो रहा है, वैसे ही मनुष्यों को भी होना चाहिये॥५॥

पुनर्मनुष्यै: कथं प्रार्थित्वा किन्नेष्टव्यमित्युपदिश्यते॥

फिर मनुष्यों को किस प्रकार ईश्वर की प्रार्थिता कर्गकें किसकी इच्छा करनी चाहिये, इस विषय को अगत्ते मन्त्र में कहा है॥

स्वस्ति न इन्ह्री वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।

स्वस्ति नस्तार्क्ष्यों अरिष्ट्रनेमिः स्व्यिम् नो बृहुस्पतिर्दधातु॥६॥

स्वस्ति। नः। इन्ह्रे विद्धारश्रवाः। स्वस्ति। नः। पूषा। विश्वरवेदाः। स्वस्ति। नः। तार्क्यः। अरिष्टरनेमिः। स्वस्ति। नः। बृहस्पतिः। दुधानु (६।)

पदार्थ:-(स्वस्ति) शरीरसुखम् (नः) अस्मभ्यम् (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् परमेश्वरः (वृद्धश्रवाः) वृद्धं श्रवः श्रवणमत्रे वा सृष्टौ यस्य सः (स्वस्ति) धातुसाम्यसुखम् (नः) अस्मभ्यम् (पूषा) पृष्टिकर्ता (विश्ववेदाः) विश्वस्य घेदो विज्ञानं विश्वेषु सर्वेषु पदार्थेषु वेदः स्मरणं वा यस्य सः (स्वस्ति) इन्द्रियश्रात्तिसुखम् (मः) अस्मभ्यम् (तार्क्यः) तृक्षितुं वेदितुं योग्यस्तृक्ष्यः। तृक्ष्य एव तार्क्यः। अत्र गत्यूर्थीत् तृक्ष धातोण्यत्। ततः स्वार्थेऽण्। (अरिष्टनेमिः) अरिष्टानां दुःखानां नेमिर्वज्रवच्छेता। नेमिरिति

अष्टक-१। अध्याय-६। वर्ग-१५-१६

मण्डल-१। अनुवाक-१४। सूक्त-८९

वज्रनामसु पठितम्। (निघं०२.२०) (स्वस्ति) विद्ययाऽऽत्मसुखम् (नः) अस्मभ्यम् (बृहस्पितः) बृहत्या वेदवाचः पितः (द्यातु) धारयतु॥६॥

अन्वयः-वृद्धश्रवा इन्द्रो नः स्वस्ति दधातु विश्ववेदाः पूषा नः स्वस्ति दधातु। अरिष्टनेमिस्ताक्ष्य्ये ५ स्वस्ति द्यातु बृहस्पतिर्नः स्वस्ति दधातु॥६॥

भावार्थ:-न हीश्वरप्रार्थनास्वपुरुषार्थाभ्यां विना कस्यचिच्छरीरेन्द्रियात्मसुर्वे सम्पूर्णे सम्भवति तस्मादेतदनुष्ठेयम्॥६॥

पदार्थ:-(वृद्धश्रवा:) संसार में जिसकी कीर्ति वा अन्न आदि सामग्री अति उन्नित को प्राप्त है वह (इन्द्र:) परम ऐश्वर्यवान् परमेश्वर (न:) हम लोगों के लिये (स्वस्ति) शरीर के सुख को (दधातु) धारण करावे (विश्ववेदा:) जिसको संसार का विज्ञान और जिसका सब पद्धार्थों में स्परण है, वह (पूषा) पृष्टि करनेवाला परमेश्वर (न:) हम लोगों के लिये (स्वस्ति) धातुओं की समता के सुख को धारण करावे जो (अरिष्टनेपि:) दु:खों का वज्र के तुल्य विनाश करनेवाला (त्रार्थ्य:) और जानने योग्य परमेश्वर है, वह (न:) हम लोगों के लिये (स्वस्ति) इन्द्रियों की शान्तिरूप सुख को धारण करावे और जो (बृहस्पित:) वेदवाणी का प्रभु परमेश्वर है, वह (न:) हम लोगों को (स्वस्ति) विद्या से आत्मा के सुख को धारण करावे॥६॥

भावार्थ:-ईश्वर की प्रार्थना और अपने पुरुषार्थ के विना किसी को शरीर, इन्द्रिय और आत्मा का परिपूर्ण सुख नहीं होता, इससे उसका अनुष्ठान अवश्य करना चाहिये॥६॥

पुनस्तदुपासकै पनुष्रोः कथं भवितव्यमित्युपदिश्यते॥

फिर ईश्वर की उपासना करनेक्स मनुष्यां की कैसा होना चाहिये, यह उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

पृषंदश्चा मुरुतः पृश्चिमीतरः शुभ्येशवानो विदर्थेषु जग्मयः।

अग्निजिह्वा मन्द्रः सूरचक्षमो विश्वे नो देवा अवसा गमित्रिह॥७॥

पृष्तं, उअशाः। मुक्तं पृष्टिं पातरः। शुभुम् उयावानः। विद्येषु। जग्मयः। अग्निऽजिह्वाः। मनवः। सूर्रं उचक्षसः। विश्वे। तः। देवाः। अवसा। आ। गमन्। इह॥७॥

पदार्थः (पृषदश्वाः) सेनाया पृषान्तोऽश्वा येषान्ते (मरुतः) वायवः (पृश्निमातरः) आकाशादुत्पर्धमाम् इव (शुभंयावानः) शुभस्य प्रापकाः। अत्र तत्पुरुषे कृति बहुलिमिति बहुलवचनाद् द्वितीयाया अलुक्। (विदथेषु) संग्रामेषु यज्ञेषु वा। (जग्मयः) गमनशीलाः (अग्निजिह्वाः) अग्निर्जिह्वाः हूयमासो येषान्ते (मनवः) मननशीलाः (मूरचक्षसः) सूरे सूर्ये प्राणे वा चक्षो व्यक्तं वचो दर्शनं वा येषान्ते

९५६

(विश्वे) सर्वे (नः) अस्मान् (देवाः) विद्वांसः (अवसा) रक्षणादिना सह वर्त्तमानाः (आ) (अगर्मन्) आगच्छन्तु प्राप्नुवन्तु। अत्र लिङर्थे लुङ् प्रयोगः। (इह) अस्मिन् संसारे॥७॥

अन्वय:-शुभंयावानोऽग्निजिह्वा मनवः सूरचक्षसः पृषदश्चा विदथेषु जग्मयो विश्वेदेवा इह नोजिस्स विस्तर्भा पृश्निमातरो मरुत इवागमन्॥७॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा बाह्याभ्यन्तरस्था वायवः सर्वात प्राणितः सुखाय प्राप्नुवन्ति, तथैव विद्वांसः सर्वेषा प्राणिनां सुखाय प्रवर्तेरन्॥७॥

पदार्थ:-हे (शुभंयावानः) जो श्रेष्ठ व्यवहार की प्राप्ति कराने (अध्निजिह्नाः) और आग्न को हवनयुक्त करनेवाले (मनवः) विचारशील (सूरचक्षसः) जिनके प्राण और सूर्य में प्रसिद्ध वचन वा दर्शन है (पृषदश्वाः) सेना में रङ्ग-विरङ्ग घोड़ों से युक्त पुरुष (विदथेषु) जो के संग्राम वा यज्ञों में (जग्मयः) जाते हैं, वे (विश्वे) समस्त (देवाः) विद्वान् लोग (इह) संसार में (त्रः) हम् लोगों को (अवसा) रक्षा आदि व्यवहारों के साथ (पृश्निमातरः) आकाश से उत्पन्न होने काले (मरुतः) पवनों के तुल्य (आ) (अगमन्) आवें प्राप्त हुआ करें॥७॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जिस कहर और भीतरले पवन सब प्राणियों के सुख के लिये प्राप्त होते हैं, वैसे विद्वान् लोग सबके सुख के लिये प्राप्त होवें॥७॥

मनुष्यैरेवं कृत्वा किं क्रियाचरणीयमित्युपदिश्यते॥

मनुष्यों को ऐसा करके क्या-क्या करना चाहिये, अहँ उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

भुद्रं कर्णीभ: शृणुयाम देवा भुद्रं पश्येमाक्ष्मिर्यजत्राः।

स्थिरेरङ्गैस्तुष्टुवांसंस्तुनूभिर्व्याश्रेम देवहितं यदायुं:॥८॥

भुद्रम्। कर्णेभिः। शृणुयाम्। देवाः भुद्रम्। पुश्येम्। अक्षऽभिः। यज्त्राः। स्थिरैः। अङ्गैः। तुस्तुऽवांसिः। तुन्भिः। वि। अशोम्। देवऽहितम्। कृत्। आर्थुः॥ द्वा

पदार्थ:-(भद्रम्) कल्मणिकारकमध्ययमाध्यापनम् (कर्णिभः) श्रोत्रैः। अत्र ऐसभावः। (शृणुयाम) (देवाः) विद्वांसः (भद्रम्) शरीरात्मेश्रुखम् (पश्येम) (अक्षिभः) बाह्याभ्यन्तरैर्नेत्रैः। छन्दस्यिप दृश्यते। (अष्टा०७.१.७६) अनेन सूत्रेणीक्षिशब्दस्य भिस्यनङादेशः। (यजत्रा) यजन्ति सङ्गच्छन्ते ये ते। अमिनक्षियजिवधियतिभ्योऽत्रन्। (उणा०३.१०३। अनेनौणादिकसूत्रेण यजधातोरत्रन्। (स्थिरैः) निश्चलैः (अङ्गैः) शिर् श्रादिभिर्व्ह्यचर्यादिभिर्वा (तुष्टुवांसः) पदार्थगुणान् स्तुवन्तः (तनूभिः) विस्तृतबलैः शरीरैः (वि) विव्रिधार्थे (अश्रेम) प्राप्नुयाम। अत्राऽशूङ् धातो लिङ्याशिष्यङ् (अष्टा०३.१.८६) इत्यङ्। सार्वधाद्वकसंज्ञया लिङः सलोप इति सकारलोपः। आर्द्धधातुकसंज्ञया शपोऽभावः। (देवहितम्) देवेभ्यो विद्वद्वी हितम् (यत्) (आयुः) जीवनम्॥८॥

अष्टक-१। अध्याय-६। वर्ग-१५-१६

मण्डल-१। अनुवाक-१४। सूक्त-८९

अन्वयः-हे यजत्रा देवा! भवत्सङ्गेन तनूभिः स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसः सन्तो वयं कर्णेभिर्यद्भद्रं तच्छृणुयामाक्षभिर्यद्भद्रं तत्पश्येम एवं तनूभिः स्थिरैरङ्गैर्यद्देवहितमायुस्तदशेम॥८॥

भावार्थ:-निह विदुषां सत्पुरुषाणामाप्तानां सङ्गेन विना कश्चित्ससत्यविद्यावचूर् सत्य द्यानं सत्यिनिष्ठामायुश्च प्राप्तुं शक्नोति, न ह्येतैर्विना कस्यचिच्छरीमात्मा च्र दृक्षे भवितुं शक्यस्तस्मादेतत्सर्वैर्मनुष्यै: सदाऽनुष्ठेयम्॥८॥

पदार्थ:-हे (यजत्रा:) संगम करनेवाले (देवा:) विद्वानो! आप लोगों के संगूपि (तनूषि!) बढ़े हुए बलोंवाले शरीर (स्थिर:) दृढ़ (अङ्गेः) पृष्ट शिर आदि अङ्ग वा ब्रह्मचर्माद नियमों से (तुष्टुवांस:) पदार्थों के गुणों की स्तुति करते हुए हम लोग (कर्णेभि:) कानों से (यत्) जो (भेद्रम्) कल्याणकारक पढ़ना-पढ़ाना है, उसको (शृणुयाम) सुनें-सुनावें (अक्षभि:) बाहरीं शीतरत्वी आंखों से जो (भद्रम्) शरीर और आत्मा का सुख है, उसको (पश्येम) देखें, इस प्रकार उक्त शरीर और अङ्गों से जो (देवहितम्) विद्वानों की हित करनेवाली (आयु:) अवस्था है उसको (वं) (अश्रेम) वार-वार प्राप्त होवें॥८॥

भावार्थ:-विद्वान्, आप्त और सज्जनों के संग के बिना कोई सत्यविद्या का वचन सत्य-दर्शन और सत्य व्यवहारमय अवस्था को नहीं पा सकता और न इसके विना किसी का शरीर और आत्मा दृढ़ हो सकता है, इससे सब मनुष्यों को यह उक्त व्यवहार वर्तन योग्य है॥८॥

पुनर्विद्वांसो विद्यार्थिनः प्रति कथ्ने वर्त्तरिन्नुपदिश्यते॥

फिर विद्वान् लोग विद्यार्थियों के साभ कैसे लेतीं, यह उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

शतिमन्नु शरदो अन्ति देवा भर्त्रो मश्चन्ना जरसं तनूनाम्। पुत्रासो यत्रं पितरो भर्वाना मा त्रो मध्या रीरिषतायुर्गन्तोः॥९॥

शृतम्। इत्। नु। शृरद्ः। धन्ति। देवाः। ब्रेष्ट्री। नः। चक्रा जरसम्। तुनूनाम्। पुत्रासः। यत्री। पितरः। भवन्ति। मा। नः। मध्या। रीरिष्तु। अत्रुद्धः। गन्तीम् स्रा

पदार्थ:-(शतम्) शतवार्थंख्याकान् (इत्) एव (नु) शीघ्रम् (शरदः) शरदृतूपलिक्षतान् संवत्सरान् (अन्ति) अनन्ति जीवन्ति विद्यादिसुखसाधनैर्ये तेऽन्तयः। अत्रानधातोरौणादिकस्तिन् प्रत्ययः। सुपां सुलुगिति जसी लुक् च (देवाः) विद्वांसः (यत्र) यस्मिन् सत्ये व्यवहारे। अत्र ऋचि तुनुघेति दीर्घः। (नः) अस्माकम् (चक्रे) कुरुत। लोडर्थे लिट्। द्वयचोऽतस्तिङ इति दीर्घः। (जरसम्) जरां वृद्धावस्थाम्। जराया जरसन्यतरस्थाम्। (अष्टा०७.२.१०१) अनेन जराशब्दस्य जरसादेशः। (तनूनाम्) शरीराणाम् (पुत्रासः) (यत्र) (पितरः) वयोविद्यावृद्धाः (भवन्ति) (मा) निषेधे (नः) अस्माकम् (मध्या) मध्ये। अत्र

सुपां सुलुगिति सप्तम्याः स्थाने डादेशः। (रीरिषत) हिंस्त (आयुः) जीवनम् (गन्तोः) गन्तुम् प्राप्तुम्॥९॥

अन्वय:-हे अन्ति देवा! यूयं यत्र तनूनां शतं शरदो जरसं चक्र यत्राऽस्माकं नो मध्या मध्ये पुत्रास इतिकारी मु भवन्ति, तदायुर्गन्तोर्गन्तुं प्रवृत्तान्नोऽस्मान्नु मा रिरीषत॥९॥

भावार्थ:-यस्यां प्राप्तायां विद्यायां बालका अपि वृद्धा भवन्ति, यत्र शुभूविरणेन पूद्धावस्था जायते, तत्सर्वं विदुषां सङ्गेनैव भवितुं शक्यते। विद्वद्भिरेतत्सर्वेभ्यः प्रापयितव्यं च॥

पदार्थ: - हे (अन्ति) विद्या आदि सुख साधनों से जीनेवाले (देवा:) विद्वानो तुम (यत्र) जिस सत्य व्यवहार में (तनूनाम्) अपने शरीरों के (शतम्) सौ (शरदः) वर्ष (जरसम्) वृद्धापन का (चक्र) व्यतीत कर सको (यत्र) जहाँ (नः) हमारे (मध्या) मध्य में (पुत्रासः) पुत्र लोग (इत्) ही (पितरः) अवस्था और विद्या से युक्त वृद्ध (नु) शीघ्र (भवन्ति) होते हैं, उस (आयुः) जीवन को (गन्तोः) प्राप्त होने को प्रवृत्त हुए (नः) हम लोगों को शीघ्र (मा रीरिषत) नष्ट मृति कीजियो। र॥

भावार्थ:-जिस विद्या में बालक भी वृद्ध होते वा जिस सुभ आचरण में वृद्धावस्था होती है, वह सब व्यवहार विद्वानों के संग ही से हो सकता है और विद्वानों के चहिये कि यह उक्त व्यवहार सबको प्राप्त करावें॥९॥

एतेषां संगेन किं किं सेवितुं विज्ञातुं च क्राग्यमित्युपदिश्यते॥

अब इन विद्वानों के संग से क्या-क्या सेवने और जाने योग्य है, यह विषय अगले मन्त्र में कहा

अदितिद्यौरदितिर्न्तरिक्षुमदितिसीता स प्रिता स पुत्रः।

विश्वे देवा अदितिः पञ्च जना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम्॥ १०॥ १६॥

अदितिः। द्योः। अदितिः। अनिरिक्षम्। अदितिः। माता। सः। पिता। सः। पुत्रः। विश्वे। देवाः। अदितिः। पञ्चे। जनाः। अदितिः। जातम्। अदितिः। जनिरुत्वम्।। १०॥

पदार्थ:-(अदिनि:) विनाश्चरिहता (द्यो:) प्रकाशमानः परमेश्वरः सूर्य्यादिर्वा (अदिति:) (अन्तरिक्षम्) (अदिति:) (माता) मान्यहेतुर्जननी विद्या वा (सः) (पिता) जनकः पालको वा (सः) (पुत्रः) औरसः श्लेष्ठजादिर्विद्याजा वा (विश्वे) सर्वे (देवाः) विद्वांसो दिव्यगुणाः पदार्था वा (अदितिः) (पञ्च) इन्द्रियाणि (जनाः) जीवाः (अदितिः) उत्पत्तिनाशरिहता (जातम्) यत्किञ्चिदुत्पन्नम् (अदितिः) (जनित्वम्) हत्पत्रस्यमानम्॥१०॥

अन्वयः - हे मेनुष्या! युस्मिभद्यौरिदितिरन्तिरक्षिमिदितिर्माताऽदितिः स पिता स पुत्रश्चादितिर्विश्चे देवा अदितिः पञ्चेद्भिष्मण्यास्त्र तथा एवं जातमात्रं कार्य्यं जनित्वं जन्यञ्च सर्वमिदितिरेवेति वेदितव्यम्॥१०॥ अष्टक-१। अध्याय-६। वर्ग-१५-१६

मण्डल-१। अनुवाक-१४। सूक्त-८९

भावार्थ:-अत्र (द्यौ:) इत्यादीनां कारणरूपेण प्रवाहरूपेण वाऽविनाशित्वं मत्वा दिवादीनामदितिसंज्ञा क्रियते। अत्र यत्र वेदेष्वदितिशब्द: पठितस्तत्र प्रकरणाऽनुकूलतया विवादीनां मध्याद्यस्य यस्य योग्यता भवेत्तस्य तस्य ग्रहणं कार्य्यम्। ईश्वरस्य जीवात्रां कारणस्य प्रकृतेश्चाविनाशित्वाददितिसंज्ञा वर्त्तत एव॥१०॥

अत्र विदुषां विद्यार्थिनां प्रकाशादीनां च विश्वे देवान्तर्गतत्वाद्वर्णनं कृतमत **प्रत**दुक्तार्थस्य स्वतस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेद्यम्॥

इति नवाशीतितमं ८९ सूक्तं षोडशो १६ वर्गश्च सम्मूलः।

पदार्थ: -हे मनुष्यो! तुमको चाहिये कि (द्यौ:) प्रकाशयुक्त परमेश्वर वा सूर्य्य आदि प्रकाशमय पदार्थ (अदिति:) अविनाशी (अन्तरिक्षम्) आकाश (अदिति:) अविनाशी (माता) माँ वा विद्या (अदिति:) अविनाशी (स:) वह (पिता) उत्पन्न करनेवा पालमहारा पिता (स:) वह (पुत्र:) औरस अर्थात् निज विवाहित पुरुष से उत्पन्न वा क्षेत्रज अर्थात् नियोग करके दूसरे से क्षेत्र में हुआ विद्या से उत्पन्न पुत्र (अदिति:) अविनाशी है तथा (विश्वे) समस्त (देवा:) विद्वान् वा दिव्य गुणवाले पदार्थ (अदिति:) अविनाशी हैं (पञ्च) पांचों ज्ञानेन्द्रिय और (जनाः) जीव भी (अदिति:) अविनाशी हैं, इस प्रकार जो कुछ (जातम्) उत्पन्न हुआ वा (जिनत्वम्) होनेहारा है, वह सब (अदिति:) अविनाशी अर्थात् नित्य है॥१०॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में परमाणुरूप वा प्रवाहरूप से सब पदार्थ नित्य मानकर दिव् आदि पदार्थों की अदिति संज्ञा की है। जहाँ-जहाँ वेद में अदिति शब्द पढ़ा है, वहाँ-वहाँ प्रकरण की अनुकूलता से दिव् आदि पदार्थों में से जिस-जिस की योग्यता है। उस-उस का ग्रहण करना चाहिये। ईश्वर, जीव और प्रकृति अर्थात् जगत् का कारण इनकें अविशाशी होने से उसकी भी अदिति संज्ञा है॥१०॥

इस सूक्त में विद्वान्, किद्यार्थी और प्रकाशमय पदार्थीं का विश्वेदेव पद के अन्तर्गत होने से वर्णन किया है। इससे इस सूक्त के अर्थ की मिछलें सूक्त के अर्थ के साथ संगति है, ऐसा जानना चाहिये॥

यह (नवासीकां) १ सूक्त और सोलहवाँ १६ वर्ग समाप्त हुआ।।

अथास्य नवर्च्चस्य नविततमस्य सूक्तस्य रहूगणपुत्रो ऋषिः। विश्वे देवा देवताः। १,८ पिपीलिकामध्या निचृद् गायत्री। २,७ गायत्री। ३ पिपीलिकामध्या विराड्गायत्री। ४ विराड्गायत्री। ५,६ निचृद् गायत्री च छन्दः। षड्जः स्वरः। ९ निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। गास्थारः स्वरः।

पुनः स विद्वान् मनुष्येषु कथं वर्त्तेतेत्युपदिश्यते॥

अब नब्बेवें सूक्त का प्रारम्भ है। उसके प्रथम मन्त्र में फिर वह विद्वान् मनुष्यों में क्रेंसे बच्चीब् करे, यह उपदेश किया है॥

ऋजुनीती नो वर्रुणो मित्रो नयतु विद्वान्। अर्यमा देवै: सजोषां:। शा

ऋजुऽनीती। नः। वर्र्णः। मित्रः। नयतु। विद्वान्। अर्यमा। देवैः। सऽजोष्राः। राष्ट्राः।

पदार्थ:-(ऋजुनीती) ऋजुः सरला शुद्ध चासौ नीतिश्च तथा अत्र सुणे सुलुगिति तृतीयायाः पूर्वसवर्णादेश:। (नः) अस्मान् (वरुणः) श्रेष्ठगुणस्वभावः (मित्रः) सर्वोपकारी (नयतु) प्रापयतु (विद्वान्) अनन्तविद्य ईश्वर आप्त मनुष्यो वा (अर्च्यमा) न्यायकारी (देवैः) द्विव्येर्गुणकर्मस्वभावैर्विद्वद्भिर्वा (सजोषाः) समानप्रीतिसेवी॥१॥

अन्वय:-यथेश्वरो धार्मिकमनुष्यान् धर्म्मं नयित, तथा देवै स्विक्षा करणी मित्रोऽर्य्यमा विद्वानृजुनीती नोऽस्मान् धर्मिवद्यामार्गं नयतु॥१॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्क्ष्यः। परमेश्वर आप्तमनुष्यो वा सत्यविद्याग्रहणस्वभावपुरुषार्थिनं मनुष्यमनुत्तमे धर्मिक्रिये च्यापयित नेतरम्॥१॥

पदार्थ:-जैसे परमेश्वर धार्मिक मनुष्यों को धर्म प्राप्त कराता है, वैसे (देवै:) दिव्य गुण, कर्म और स्वभाववाले विद्वानों से (सजोषा:) समिन प्राप्ति करनेवाला (वरुण:) श्रेष्ठ गुणों में वर्त्तने (मित्र:) सबका उपकारी और (अर्यमा) न्याय करनेवाला (विद्वान्) धर्मात्मा सज्जन विद्वान् (ऋजुनीती) सीधी नीति से (न:) हम लोगों को धर्मिब्ह्यामार्ग को (नयतु) प्राप्त करावे॥१॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में बाचकलुप्तोप्रमालङ्कार है। परमेश्वर वा आप्त मनुष्य सत्यविद्या के ग्राहक स्वभाववाले पुरुषार्थी मनुष्य को उत्तम धर्म और उत्तम क्रियाओं को प्राप्त कराता है, और को नहीं॥१॥

पुनसे विद्वांसः कथंभूत्वा किं कुर्य्युरित्युपदिश्यते॥

फिर वे विद्वान् कैसे होकर क्या करें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है।।

ते हि वस्की वसवानास्ते अप्रमूरा महोभिः। वृता रक्षन्ते विश्वाहा॥२॥

ते। र्हि। वेस्त्रः। चस्रवानाः। ते। अप्रेऽमूराः। महःऽभिः। वृता। रुक्षुन्ते। विश्वाहां॥२॥

पदार्थ:-(तै) (हि) खलु (वस्वः) वसूनि द्रव्याणि। वा च्छन्दिस सर्वे विधयो भवन्तीति नुम्भवि। जसादिषु छन्दिस वा वचनिमिति गुणाभावे च यणादेशः। (वसवानाः) स्वगुणैः सर्विनाच्छादयन्तः। अत्र बहुलं छन्दसीति शपो लुङ् न शानिच व्यत्ययेन मकारस्य वकारः। (ते)

अष्टक-१। अध्याय-६। वर्ग-१७-१८

मण्डल-१। अनुवाक-१४। सूक्त-९०

(अप्रमूराः) मूढत्वरिहता धार्मिकाः। अत्रापि वर्णव्यत्येन ढस्य स्थाने रेफादेशः। (महोभिः) महद्भिर्गुणकर्मभिः (वृता) सत्यपालननियतानि व्रतानि (रक्षन्ते) व्यत्ययेनात्मनेपदम् (विश्वाहा) सर्विदनानि॥२॥

अन्वय:-ते पूर्वोक्ता वसवाना हि महोभिर्विश्वाहा विश्वाहानि वस्वो रक्षन्ते। ये अप्रमूरो धार्मिकास्ते महोभिर्विश्वाहानि व्रता रक्षन्ते॥२॥

भावार्थ:-निह विद्वद्भिर्विना केनचिद्धनानि धर्माचरणानि च र्रिक्षितुं शक्यन्ते, तस्मात् सर्वेर्मनुष्यैर्नित्यं विद्या प्रचारणीया यतः सर्वे विद्वांसो भूत्वा धार्मिका भवेयुरिक्निस्र।।

पदार्थ:-(ते) वे पूर्वोक्त विद्वान् लोग (वसवाना:) अपने गुणों से सबकी द्वापिते हुए (हि) निश्चय से (महोभि:) प्रशंसनीय गुण और कर्मों से (विश्वाहा) सब दिनों में (वस्व:) धन आदि पदार्थों की (रक्षन्ते) रक्षा करते हैं तथा जो (अप्रमूरा:) मूढ़त्वप्रमादरहित धार्मिक विद्वान् हैं (ते) वे प्रशंसनीय गुण कर्मों से सब दिन (व्रता) सत्यपालन आदि नियमों को रखते हैं। रा

भावार्थ:-विद्वानों के विना किसी से धन और धर्मशुक्त आचार रक्खे नहीं जा सकते। इससे सब मनुष्यों को नित्य विद्वाप्रचार करना चाहिये, जिससे सब मनुष्ये विद्वान् होके धार्मिक हों॥२॥

पुनस्ते कीदृशाः कि कुर्युस्तियपदृश्यते॥

फिर वे कैसे हों और क्या करें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है।।

ते अस्मभ्यं शर्म यंसन्नमृता मर्त्येभ्यः। बार्धम्मना अप द्विषं:॥३॥

ते। अस्मभ्यम्। शर्म। युंसुन्। अमृताः मुर्यिभ्युः । वार्धमानाः। अप। द्विषः॥३॥

पदार्थ:-(ते) विद्वांसः (अस्मभ्यम्) (श्राम्मी) सुखम् (यंसन्) यच्छन्तु ददतु (अमृताः) जीवन-मुक्ताः (मर्त्यभ्यः) मनुष्येभ्यः (क्राधमानाः) निवारयन्तः (अप) दूरीकरणे (द्विषः) दुष्टान्॥३॥

अन्वय:-ये द्विषोऽपबाध्यमाना अमृता विद्वांमः सन्ति ते मर्त्येभ्योऽस्मभ्यं शर्म यंसन् प्रापयन्तु॥३॥

भावार्थ:-मनुष्यैर्विद्वन्द्वयः शिक्षां प्राप्य दुष्टस्वभावात्रिवार्य्य नित्यमानन्दितव्यम्॥३॥

पदार्थ:-जो (द्विष्) दुषों को (अप बाधमाना:) दुर्गति के साथ निवारण करते हुए (अमृता:) जीवनमुक्त विद्वान्, हैं (ते) वे (मर्त्येभ्य:) (अस्मभ्यम्) अस्मदादि मनुष्यों के लिये (शर्म) सुख (यंसन्) देवें॥३॥

भार्नार्थ: भार्नार्थ: को चाहिये कि विद्वानों से शिक्षा को पाकर खोटे स्वभाववालों को दूर कर नित्य अमिन्दित हो।। ३।।

पुनस्ते कथं वर्त्तरन्नित्युपदिश्यते॥

फिर वे कैसे वर्तें, यह उपदेश अगले मन्त्र में कहा है॥

वि नः पुथः सुवितायं चियन्त्वन्द्रो मुरुतः। पूषा भगो वन्द्यासः॥४॥

वि। नुः। पुथः। सुविताये। चियन्तुं। इन्द्रंः। मुरुतंः। पूषा। भर्गः। वन्द्यांसः॥४॥

पदार्थ:-(वि) विशेषार्थे (नः) अस्मान् (पथः) उत्तममार्गान् (सुविताय) ऐश्वर्यप्राप्ति (चियन्तु) चिन्वन्तु। अत्र बहुल छन्दसीति विकरणलुक् इयडादेशश्च। (इन्द्रः) विद्यश्चर्यवान् (मरुतः) मेनुष्याः (पूषा) पोषकः (भगः) सौभाग्यवान् (वन्द्यासः) स्तोतव्याः सत्कर्त्तव्याश्च॥४॥

अन्वय:-य इन्द्रः पूषा भगश्च वन्द्यासो मरुतस्ते नोऽस्मान् सुविताय पथो विचियन्तु॥४॥

भावार्थ:-विद्वद्भिर्मनुष्यैरैश्वर्यं पुष्टिं सौभाग्यं प्राप्यान्येऽपि तादृशा सौभाग्यवन्तः केर्ज्वव्याः॥४॥

पदार्थ:-जो (इन्द्र:) विद्या और ऐश्वर्ययुक्त वा (पूषा) दूसरे का प्रिण पालज करनेवाला (भग:) और उत्तम भाग्यशाली (वन्द्यास:) स्तुति और सत्कार करने योग्य (भर्सा:) मनुष्य हैं वे (न:) हम लोगों को (सुविताय) ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये (पथ:) उत्तम मार्गों को (वि चियन्तु) नियत करें॥४॥

भावार्थ:-मनुष्यों को चाहिये कि विद्वानों से ऐश्वर्य, पृष्टि और सौभाग्य पाकर उस सौभाग्य की योग्यता को औरों को भी प्राप्त करावें॥४॥

पुनस्ते किं कुर्य्युरित्युपिद्भयते॥

फिर वे क्या करें, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

उत नो धियो गोअंगाः पूष्टन् विष्णुवेदस्यवः। कर्ली नः स्वस्तिमतः॥५॥१७॥

उता नुः। धिर्यः। गोऽअंग्राः। पूर्षन्। विष्णे इति। एवंश्यावः। कर्ता नुः। स्वस्तिऽमर्तः॥५॥

पदार्थ:-(उत) अपि (न:) अस्मिय्य (श्रिय:) उत्तमाः प्रज्ञाः कर्माणि च (गोअग्रा:) गाव इन्द्रियाण्यग्रे यासां ताः। सर्वत्र विभाष्य गाः। अष्टा०६.१.१२२) अनेन सूत्रेणाऽत्र प्रकृतिभावः। (पूषन्) विद्याशिक्षाभ्यां पृष्टिकर्तः (विष्णो) धर्वविद्यासु व्यापनशील (एवयावः) एति जानाति सर्वव्यवहारं येन स एवो बोधस्तं याति प्राप्नोति प्राप्यति वा तत्सम्बुद्धौ। मतुवसोरादेशे वन उपसंख्यानम्। (अष्टा०वा०८.३.१) अनेन वार्त्तिकेन्त्र सम्बोधने रुः। (कर्त्त) कुरुत। अत्र बहुलं छन्दसीति विकरणस्य लुक् लोडादेशस्य तस्य स्थान त्रव्यदेशः। द्वयचोऽतिस्तिङ इति दीर्घश्च। (नः) अस्मान् (स्विस्तमतः) सुखयुक्तान्॥५॥

अन्वय:-हॅ पूषन् विष्णुवेवयावश्च विद्वांसो! यूयं नोऽस्मभ्यं गोअग्रा धियः कर्त्तः। उतापि नोऽस्मान् स्वस्तिमतः कर्त्तः॥५॥

भूर्त्वार्थ:-अध्येतृभिर्यथाऽध्यापका विद्याशिक्षाः कुर्य्युस्तथैव सङ्गृह्यैताः सुविचारेण नित्यमुक्रेया।५॥

पदार्थ:-हे (पूषन्) विद्या और उत्तम शिक्षा से पोषण करने वा (विष्णो) समस्त विद्याओं में व्यापक होने वा (एवयाव:) जिससे सब व्यवहार ज्ञात होता है, उस अगाध बोध को प्राप्त होनेवाले अष्टक-१। अध्याय-६। वर्ग-१७-१८

मण्डल-१। अनुवाक-१४। सूक्त-९०

विद्वान् लोगो! तुम (न:) हम लोगों के लिये (गोअग्रा:) इन्द्रिय अग्रगामी जिनमें हों, उन (धिय:) उत्तम बुद्धि वा उत्तम कर्मों को (कर्त्त) प्रसिद्ध करो (उत) उसके पश्चात् (न:) हम लोगों को (विक्रिसमतः) सुखयुक्त करे।॥५॥

भावार्थ:-पढ़नेवालों को चाहिये कि पढ़ानेवाले जैसे विद्या की शिक्षा करे, वैसे उनके ग्रहण कर अच्छे विचार से नित्य उनकी उन्नति करें॥५॥

विद्यया किं जायत इत्युपदिश्यते॥

विद्या से क्या उत्पन्न होता है, यह विषय अगले मन्त्र में क्रहा है॥

मधु वार्ता ऋतायते मधु क्षरित् सिन्धवः। माध्वीर्नः सुन्वोप्रधिः। ६।। मधु। वार्ताः। ऋतुऽयते। मधु। क्षुरन्ति। सिन्धवः। माध्वीः। नः। सुनु। औषधीः॥ ६॥

पदार्थ:-(मधु) मधुरं ज्ञानम् (वाताः) पवनाः (ऋतायते) ऋतमात्मन इच्छवे। वा च्छन्दिस सर्वे विधयो भवन्तीति क्यच ईत्वं न। (मधु) मधुताम् (क्षरिन्त) वर्षन्ति (सिन्ध्रवः) समुद्रा नद्यो वा (माध्वीः) मधुविज्ञाननिमित्तं विद्यते यासु ताः। मधोर्ज च। (अष्ट्रा०४:४९) अनेन मधुशब्दाञ् ञः। ऋत्व्यवास्त्व्य० इति यणादेशनिपातनम्। वाच्छन्दमीति पूर्वसर्वणिदेशः। (नः) अस्मभ्यम् (सन्तु) (ओषधीः) सोमलतादय ओषध्यः। अत्रापि पूर्ववतपूर्वस्वर्णदेशिः। ह॥

अन्वय:-हे पूर्णविद्य! यथा युष्मभ्यमृतायके च वाता मधुँ सिन्धवश्च मधु क्षरन्ति तथा न ओषधीर्माध्वी: सन्तु॥६॥

भावार्थ:-हे अध्यापका! यूयं चिवं प्रैयतेमिह यतः सर्वेभ्यः पदार्थेभ्योऽखिलानन्दाय विद्ययोपकारान् ग्रहीतुं शक्नुयाम॥६॥

पदार्थ:-हे पूर्ण विद्यावाले विद्वाना जैसे तुम्हारे लिये और (ऋतायते) अपने को सत्य व्यवहार चाहनेवाले पुरुष के लिये (वार्ताः) वायु (मधु) मधुरता और (सिन्धवः) समुद्र वा निदयां (मधु) मधुर गुण को (क्षरन्ति) वर्षा कस्ती हैं, वैसे (नः) हमारे लिये (ओषधीः) सोमलता आदि ओषधि (मध्वीः) मधुरगुण के विशेष ज्ञान कर्मिकली (सन्तु) हों॥६॥

भावार्थ: – हे पढ़ाने कार्ली! तुम और हम ऐसा अच्छा यत्न करें कि जिससे सृष्टि के पदार्थीं से समग्र आनन्द के लिए विद्या करके उपकारों को ग्रहण कर सकें॥६॥

पुनर्वयं कस्मै कं पुरुषार्थं कुर्य्यामेत्युपदिश्यते॥

फिर हमे किसके लिये किस पुरुषार्थ को करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

मधु नक्तंमुतोषसो मधुंमृत्पार्थिवं रजः। मधु द्यौरंस्तु नः पिता॥७॥

मुद्या नेक्तम्। उता उषसं:। मधुंऽमत्। पार्थिवम्। रजः। मधुं। द्यौः। अस्तु। नुः। पिता॥७॥

पदार्थ:-(मधु) मधुरा (नक्तम्) रात्रिः (उत) अपि (उषसः) दिवसानि (मधुमत्) मधुरगुणयुक्तम् (पार्थिवम्) पृथिव्यां विदितम् (रजः) अणुत्रसरेण्वादि (मधु) माधुर्यसुखकारिका (द्यौः) सूर्यकान्तिः (अस्तु) भवतु (नः) अस्मभ्यम् (पिता) पालकः॥७॥

अन्वयः-हे विद्वांसो! यथा नोऽस्मभ्यं नक्तं मधूषसो मधूनि पार्थिवं रजो मधुमदुत पिता होर्मध्वस्त तथा युष्मभ्यमप्येते स्यु:॥७॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। अध्यापकैर्यथा मनुष्येभ्यः पृथिवीस्थाः पदार्था आनन्दप्रदाः स्युस्तथा गुणज्ञानेन हस्तिक्रयया च विद्योपयोगः सर्वैरनुष्ठेयः॥७॥

पदार्थ:-हे विद्वानो! जैसे (नः) हम लोगों के लिये (नक्तम्) राष्ट्रि (मध्) मधुर (उषसः) दिन मधुर गुणवाले (पार्थिवम्) पृथिवी में (रजः) अणु और त्रसरेणु आदि छोटे-छोट भूमि के कणके (मधुमत्) मधुर गुणों से युक्त सुख करनेवाले (उत) और पिता पालन करनेवाली (द्यौः) सूर्य्य की कान्ति (मधु) मधुर गुणवाली (अस्तु) हो, वैसे तुम लोगों के लिये भी हो एथा

भावार्थ:-पढ़ानेवाले लोगों से जैसे मनुष्यों के लिये पृथितीस्थ पदार्थ आनन्दायक हों, वैसे सब मनुष्यों को गुण, ज्ञान, और हस्तक्रिया से विद्या का उपयोग कारना सहिए॥७॥

पुनरस्माभि: किमर्थं विद्याऽनुष्टानं कर्त्तव्यमित्युपदिश्यते॥

फिर हम लोगों को किसलिए विद्या का अनुष्ठान करना चाहिये॥

मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ अस्तु सूर्यः पाध्वीरावि भवन्तु नः॥८॥

मधुंऽमान्। नुः। वनस्पतिः। मधुंऽमान्। अस्तु। सूर्यः। माध्वीः। गार्वः। भुवन्तु। नुः॥८॥

पदार्थ:-(मधुमान्) प्रशस्तानि मधूनि सुकानि विद्यन्ते यस्मिन्सः (नः) अस्मदर्थम् (वनस्पितः) वनानां मध्ये रक्षणीयो वटादिवृक्षसमूही मघो चा (मधुमान्) प्रशस्तो मधुरः प्रकाशे विद्यते यस्मिन् सः (अस्तु) भवतु (सूर्यः) ब्रह्माण्डस्थो मार्चण्डः शरीरस्थः प्राणो वा (माध्वीः) माध्व्यः (गावः) किरणाः (भवन्तु) (नः) अस्माकं हितासू। (॥

अन्वय:-भो विद्वां स्वे. यथा नोऽस्मभ्यं वनस्पतिर्मधुमान् सूर्यश्च मधुमानस्तु नोऽस्माकं गावो माध्वीर्भवन्तु तथा यूयमस्मान् शिक्षध्वम्॥८॥

भावार्थ: हे विद्वांसो! यूयं वयं चेत्थं मिलित्वैवं पुरुषार्थं कुर्याम, येनाऽस्माकं सर्वाणि कार्याणि सिध्येयु: ॥८॥४

पदार्थ: है चिह्नानो! जैसे (न:) हम लोगों के लिये (मधुमान्) जिसमें प्रशंसित मधुर सुख है, ऐसा (क्रूस्पित:) बमों में रक्षा के योग्य वट आदि वृक्षों का समूह वा मेघ और (सूर्य:) ब्रह्माण्डों में स्थिर होनेवाला सूर्य वा शरीरों में ठहरनेवाला प्राण (मधुमान्) जिसमें मधुर गुणों का प्रकाश है, ऐसा

अष्टक-१। अध्याय-६। वर्ग-१७-१८

मण्डल-१। अनुवाक-१४। सूक्त-९०

(अस्तु) हो तथा (नः) हम लोगों के हित के लिये (गावः) सूर्य को किरणें (माध्वीः) मधुर गुणवाली (भवन्तु) होवें, वैसी तुम लोग हमको शिक्षा करो॥८॥

भावार्थ:-हे विद्वान् लोगो! तुम और हम आओ मिलके ऐसा पुरुषार्थ करें कि जिससे हम लोगों के सब काम सिद्ध होवें॥८॥

पुनरीश्वरो विद्वांसश्च मनुष्येभ्यः किं कुर्वन्तीत्युपदिश्यते॥

फिर ईश्वर और विद्वान् लोग मनुष्यों के लिये क्या-क्या करते हैं, यह विषय अंगले मेरेन में कहा

है॥

शं नो मित्रः शं वर्रुणः शं नो भवत्वर्युमा।

शं नु इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो विष्णुं रुरुक्रमः॥ ९॥ १८॥

शम्। नः। मित्रः। शम्। वर्रुणः। शम्। नः। भवतु। अर्युम्प शिम्। नः। इन्द्रः। बृहस्पतिः। शम्। नः। विष्णुः। उरुऽक्रमः॥९॥

पदार्थ:-(श्रम्) सुखकारी (न:) अस्मभ्यम् (मिन्नः) सर्वेसुर्धकारी (श्रम्) शान्तिप्रदः (वरुणः) सर्वोत्कृष्टः (श्रम्) आरोग्यसुखदः (न:) अस्मभ्यम् (भक्तु) (अर्यमा) न्यायव्यवस्थाकारी (श्रम्) ऐश्वर्यसौख्यप्रदः (न:) अस्मदर्थम् (इन्द्रः) परमैश्वर्यप्रदः (कृहस्पितः) बृहत्यो वाचो विद्यायाः पितः पालकः (श्रम्) विद्याव्याप्तिप्रदः (नः) अस्मभ्यम् (विष्णुः) सर्वगुणेषु व्यापनशीलः (उरुक्रमः) बहवः क्रमाः पराक्रमा यस्य सः॥९॥

अन्वयः - हे मनुष्या! यथाऽस्मदर्थमुरुक्रमो मिन्नो नः शमुरुक्रमो वरुणो नः शमुरुक्रमोऽर्यमा नः शमुरुक्रमो बृहस्पतिरिन्द्रो नः शमुरुक्रमो विष्णुर्नः शं च भगतु तथा-युष्मदर्थमपि भवतु॥९॥

भावार्थ: – निह परमेशवरण समः कश्चित्सखा श्रेष्ठो न्यायकार्येश्वर्यवान् बृहत्स्वामी व्यापकः सुखकारी च विद्यते। निह च्रिष्टुषा तुल्यः प्रियकारी धार्मिकः सत्यकारी विद्यादिधनप्रदो विद्यापालकः शुभगुणकर्मसु व्याप्तिमान महापराष्ट्रम् च भवितुं शक्यः। तत्स्मात्सर्वेर्मनुष्येरीश्वरस्य स्तुतिप्रार्थनोपासना विदुषां सेवासङ्गौ च सत्तर्भ्यत्वो नित्यमानन्दियतव्यमिति॥९॥

अत्राऽध्यापकाऽध्येतृणामीश्वरस्य च कर्त्तव्यफलस्योक्तत्वादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति ब्रेह्मभू

🕽 इति नवतितमं ९० सूक्तं अष्टादशो १८ वर्गश्च समाप्त:॥

पदार्थ: -हे मनुष्यो! जैसे हमारे लिये (उस्क्रम:) जिसके बहुत पराक्रम हैं, वह (मित्र:) सबका सुख्र करनेवाला, (न:) हम लोगों के लिये (शम्) सुखकारी, वा जिसके बहुत पराक्रम हैं, वह (वरुण:) स्रवमें अति उन्नतिवाला, हम लोगों के लिये (शम्) शान्ति सुख का देनेवाला, वा जिसके बहुत पराक्रम

हैं, वह (अर्थ्यमा) न्याय करनेवाला, (न:) हम लोगों के लिये (शम्) आरोग्य सुख का देनेवाला, जिसके बहुत पराक्रम हैं वह (बृहस्पित:) महत् वेदविद्या का पालनेवाला, वा जिसके बहुत पराक्रम हैं वह (इन्द्र:) परमैश्वर्य देनेवाला, (न:) हम लोगों के लिये (शम्) ऐश्वर्य सुखकारी, वा जिसके बहुत पराक्रम हैं, वह (विष्णु:) सब गुणों में व्याप्त होनेवाला परमेश्वर तथा उक्त गुणोंवाला विद्वान् सज्जम पुरुष (न:) हम लोगों के लिये पूर्वोक्त सुख और (शम्) विद्या में सुख देनेवाला (भवतु) हो॥९॥

भावार्थ:-परमेश्वर के समान मित्र, उत्तम न्याय का करनेवाला, ऐश्वर्य्यवान्, बड़े-बड़े पदार्थों का स्वामी तथा व्यापक सुख देनेवाला और विद्वान् के समान प्रेम उत्पादन कर्से, धार्मिक सत्य व्यवहार वर्त्तने, विद्या आदि धनों को देने और विद्या पालनेवाला शुभ गुण और सन्दर्भों में व्याप्त महापराक्रमी कोई नहीं हो सकता। इससे सब मनुष्यों को चाहिये कि परमात्मा की स्तुरित, प्रार्थना, उपासना, निरन्तर विद्वानों की सेवा और संग करके नित्य आनन्द में रहें॥९॥

इस सूक्त में पढ़ने-पढ़ानेवालों के और ईश्वर के कर्त्तवा काम तथा उनके फल का कहना है, इससे इस सूक्त के अर्थ के साथ पिछले सूक्त के अर्थ की संगित जाननी ग्वाहिये।।

यह नब्बेवां ९० सूक्त और अठाहरक् १४ वर्ग समाप्त हुआ॥



अथास्य त्रयोविंशतिर्ऋचस्यैकनवितिमस्य सूक्तस्य रहूगणपुत्रो गोतम ऋषिः। सोमो देवता। १,३,४ स्वराट् पङ्क्तिः। २ पङ्क्तिः। १८,२० भुरिक्पङ्क्तिः। २२ विराट्पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः। ५ पादिनचृद्गायत्री। ६,८,९,११ निचृद्गायत्री। ७ वर्धमाना गायत्री। १०,९२ गायत्री। १३,१४ विराङ्गायत्री। १५,१६ पिपीलिकामध्या निचृद्गायत्री च छन्दः। यद्भाः स्वरः। १७ परोष्णिक्छन्दः। ऋषभः स्वरः। १९,२१,२३ निचृत्तिष्ठुप् छन्दः। धैकृतः स्वरः।

अथ सोमशब्दार्थ उपदिश्यते॥

अब तेईस मन्त्रवाले इक्कानवें सूक्त का आरम्भ है। उसके प्रथम मन्त्र में सूर्म शब्द के अर्थ की उपदेश किया है।।

त्वं सोम् प्र चिकितो मनीषा त्वं रिजिष्टमन् नेषि पन्थाम्। तव प्रणीती पितरो न इन्दो देवेषु रत्नमभजन्त धीराः॥ १॥

त्वम्। सोम्। प्र। चिकितः। मुनीषा। त्वम्। रिजेष्ठम्। अनु। नेषि पन्याम्। त्व्वं। प्रऽनीती। पितरः। नः। इन्दो इति। देवेषुं। रत्नम्। अभुजन्त। धीराः॥ १॥

पदार्थः-(त्वम्) परमेश्वरो विद्वान् वा (सोम्) सिवैश्वर्यवान् (प्र) (चिकितः) जानासि। मध्यमैकवचने लेट्प्रयोगः। (मनीषा) मनस ईषया प्रज्ञानुरूप्या। अत्र सुपां सुलुगिति तृतीयास्थाने डादेशः। (त्वम्) (रिजष्टम्) अतिशयेन ऋजु रिजष्टम्। ऋजुशब्दादिष्टन्। विभाषजींश्वन्दिस। (अष्टा०६.४.१६२) इति ऋकारस्य रेफादेशः। (अनु) (नेष्ण्) प्रापयसि। अत्र नीधातोर्लिट बहुलं छन्दसीति शपो लुक्। अत्रान्तर्गतो ण्यर्थः। (पन्थाम्) पन्धानम्। अत्र छान्दसो वर्णलोपो वेति नकारलोपः। (तव) (प्रणीती) प्रकृष्टा चासौ नीतिस्तया। अत्र सूपो सुलुगिति पूर्वसवर्णदीर्घः। (पितरः) ज्ञानिनः (नः) अस्मभ्यम् (इन्दो) सोम्यगुणसम्पन्न (देवेषु) विद्वत्सु दिव्यगुणकर्मस्वभावेषु वा (रत्नम्) रत्नमणीयं धनम् (अभजन्त) भजन्ति (धीराः) ध्याद्धेर्ययुक्ताः।।१॥

अन्वयः-हे इन्दो सोम! विस्या मनीषा विकितस्तव प्रणीती धीराः पितरो देवेषु रत्नं प्राभजन्त, तया नोऽस्मान् रजिष्ठं पन्थामनुनेषि, तस्मात् व्यमस्पाभिः सर्वर्तव्योऽसि॥२॥

भावार्थ:-अत्र स्टेमिलक्सर:। यथा परमेश्वर: परमविद्वान् वाऽविद्यां विनाश्य विद्याधर्ममार्गे प्रापयति, तथैव वैद्यकशास्त्ररीत्या सेवित: सोमाद्योषधिगण: सर्वान् रोगान् विनाश्य सुखानि प्रापयति॥१॥

पदार्थ है (इन्दो) सीम के समान (सोम) समस्त ऐश्वर्य्ययुक्त (त्वम्) परमेश्वर वा अति उत्तम विद्वान्! जिस् (मेर्सोक्स) मन को वश में रखनेवाली बुद्धि से (चिकितः) जानते हो वा (तव) आपकी

४३. अतिशायने तमबिष्ठनौ। अष्टा०५.३.५५

अष्टक-१। अध्याय-६। वर्ग-१९-२३।

मण्डल-१। अनुवाक-१४। सूक्त-

९१

(प्रणीती) उत्तम नीति से (धीरा:) ध्यान और धेर्ययुक्त (पितर:) ज्ञानी लोग (देवेषु) विद्वार्त चारित्य गुण, कर्म और स्वभावों में (रत्नम्) अत्युत्तम धन को (प्र) (अभजन्त) सेवते हैं, उससे शान्ति (एप्रेक्ट्रित आप (नः)हम लोगों को (रजिष्ठम्) अत्यन्त सीधे (पन्थाम्) मार्ग को (अन्) अनुकुलते से (निष) पहुंचाते हो, इससे (त्वम्) आप हमारे सत्कार के योग्य हो॥१॥

भावार्थ:- इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जैसे परमेश्वर वा अत्यन्त उत्तम विद्वार अविद्या विनाश करके विद्या और धर्ममार्ग को पहुंचाता है, वैसे ही वैद्यकशास्त्र की रीति से सेवा किया हुआ सोम आदि ओषिधयों का समूह सब रोगों का विनाश करके सुखों को पहुंचाता है॥१ 🖒

पुनस्तौ कीदृशावित्युपदिश्यते॥

फिर वे दोनों कैसे हैं, इस विषय को अगले मुन्त में कहा है।।

त्वं सोम् क्रतुंभिः सुक्रतुंभूं स्त्वं दक्षैः सुदक्षो विश्ववेदाः। त्वं वृषां वृष्वत्वेभिर्माहुत्वा द्युम्नेभिर्द्युम्यभवो नृध्याः।। अ

त्वम्। सोम्। क्रतुंऽभिः। सुऽक्रतुंः। भूः। त्वम्। क्क्षैः। सुरक्क्ष्रीः। विश्वऽवेदाः। त्वम्। वृषां। वृष्उत्वेभिः। मृह्रिऽत्वा। द्युम्नेभि:। द्युम्नी। अभुव:। नृऽचक्षां:॥२॥

पदार्थ:-(त्वम्) (सोम) (क्रतुभि:) प्रकाभि: कर्मिर्मर्वा (सुक्रतु:) शोभनप्रज्ञ: सुकर्म वा (भू:) भवसि। अत्राडभावो लडर्थे लुङ् च। (त्वम्) (दक्षे:) विद्धानादिगुणै: (सुदक्ष:) सुष्ठु विज्ञान: (विश्ववेदा:) प्राप्तसर्वविद्यः (त्वम्) (वृषा) विद्यासुखुष्प्रकः (वृष्यत्विभिः) विद्यासुखवर्षणैः (महित्वा) महागुणवत्त्वेन। अत्र सुपां सुलुगित्याकारादेश:। (द्युमीभ:) चक्रवर्त्यादिराजधनै: सह (द्युमी) प्रशस्तधनी यशस्वी वा (अभव:) भवसि (नृचक्षा:) नृषु मक्षी दश्मे यस्य सः॥२॥

अन्वयः-हे सोम! यत्रिर्स् क्रतुभिः सुक्रेतुर्दक्षैः सुदक्षो विश्ववेदा भूः। यतस्त्वं महित्वा वृषत्वेभिर्वृषा द्युम्नेभिर्द्युम्नी नृचक्षा अभवस्त्रम्मान् त्वे सर्वेद्धिष्टोऽसि॥२॥

भावार्थ:-अत्र श्लिमालङ्कर्यः। यथा सुरीत्या सेवितः सोमाद्योषधिगणः प्रज्ञाचातुर्यवीर्यधनानि जनयति, तथैव सूपासित ईश्वरः स्सेवितो विद्वांश्चैवं तानि प्रज्ञादीनि जनयतीति॥२॥

पदार्थ; है (सोम) शान्ति गुणयुक्त परमेश्वर वा उत्तम विद्वान्! जिस कारण (त्वम्) आप (क्रतुभि:) उत्तम बुद्धि व कर्मी से (सुक्रतु:) श्रेष्ठ बुद्धिशाली वा श्रेष्ठ काम करनेवाले तथा (दक्षै:) विज्ञान आदि गुर्जों से (सुदेश:) अति श्रेष्ठ ज्ञानी (विश्ववेदा:) और सब विद्या पाये हुए (भू:) होते हैं वा जिस कारण्र (त्वेषु) आप (महित्वा) बड़े-बड़े गुणोंवाले होने से (वृषत्वेभि:) विद्यारूपी सुखों की (वृषा) वर्षा

और (द्युम्नेभि:) कीर्त्ति और चक्रवर्त्ति आदि राज्य धर्मों से (द्युम्नी) प्रशंसित धनी (नृचक्षा:) मनुष्यों में दर्शनीय (अभव:) होते हो, इससे (त्वम्) आप सब में उत्तम उत्कर्षयुक्त हुजिये॥२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जैसे अच्छी रीति से सेवा किया हुआ पो आदि ओषधियों का समूह बुद्धि, चतुराई, वीर्य और धनों को उत्पन्न कराता है, वैसे ही अच्छी उपासना को प्राप्त हुआ ईश्वर वा अच्छी सेवा को प्राप्त हुआ विद्वान् उक्त कामों को उत्पन्न कराता है। रूप

पुनस्तौ कीदृशावित्युपदिश्यते॥

फिर वे दोनों कैसे हों, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है

राज्ञो नु ते वर्रुणस्य वृतानि बृहर्द्गभीरं तर्व सोम् धार्म। शुचिष्ट्वर्मस प्रियो न मित्रो दक्षाय्यो अर्युमेर्वास सोम्भाई॥

९७०

राज्ञः। नु। ते। वर्मणस्य। वृतानि। बृहत्। गुभीरम्। तवं। सोम्। धार्मे शुचिः। त्वम्। असि। प्रियः। न। मित्रः। दुक्षाय्यः। अर्युमाऽईव। असि। सोम्॥ ३॥

पदार्थ:-(राज्ञ:) सर्वस्य जगतोऽधिपतेर्विद्याप्रकाशकतो वो (त्र) सद्यः (ते) तव (वरुणस्य) वरस्य (व्रतानि) सत्यपालनादीनि कर्माणि (वृहत्) महत् (प्रीर्म) महोत्तमगुणागाधम् (तव) (सोम) महैश्वर्ययुक्त (धाम) धीयन्ते पदार्था यस्मिस्तत् (शुचिः) पवित्रः पवित्रकारको वा (त्वम्) (असि) भवसि (प्रियः) प्रीतः (न) इव (मित्रः) सुहत् (दक्षाय्यः) विज्ञानकारकः (अर्यमेव) यथार्थन्यायकारीव (असि) भवसि (सोम) शुभकर्मगुणेषु प्रेरक॥३॥

अन्वय:-हे सोम! यतस्त्वं प्रियो मित्रे नेव शुचिरप्रिं। अर्यमेव दक्षाय्योऽसि। हे सोम! यतो वरुणस्य राज्ञस्ते तव व्रतानि सत्यप्रकाशकानि कर्माणि सिन्तं पतस्तव कृहद्गभीरं धामास्ति तस्माद्भवान् नु सर्वदोपास्यः सेवनीयो वास्ति॥३॥

भावार्थ:-अत्र श्लेषायमालङ्कासे। मनुष्या यथा यथाऽस्यां सृष्टौ रचनानियमैरीश्वरस्य गुणकर्मस्वभावांश्च दृष्ट्वा प्रयत्मन् कुर्वीरन् तथा तथा विद्यासुखं जायत इति वेद्यम्॥३॥

पदार्थ:-हे (सोम:) महा प्रश्नियंयुक्त परमेश्वर वा विद्वान्! जिससे (त्वम्) आप (प्रियः) प्रसन्न (मित्रः) मित्र के (न) तुल्य (प्रुवि) पवित्र और पवित्रता करनेवाले (असि) हैं तथा (अर्यमेव) यथार्थ न्याय करनेवाले के समान (दक्षाय्यः) विज्ञान करनेवाले (असि) हैं। हे (सोम) शुभ कर्म और गुणों में प्रेरणेवाले (वक्रणस्य) श्रेष्ठ (राज्ञः) सब जगत् के स्वामी वा विद्याप्रकाशयुक्त (ते) आपके (व्रतानि) सत्यप्रकाश करनेवित काम हैं, जिससे (तव) आपका (वृहत्) बड़ा (गभीरम्) अत्यन्त गुणों से अथाह (धाम) असमें पदार्थ धरे जायें, वह स्थान है, इससे आप (नु) शीघ्र और सदा उपासना और सेवा करने योग्य हैं॥ ३॥

अष्टक-१। अध्याय-६। वर्ग-१९-२३

मण्डल-१। अनुवाक-१४। सूक्त-९१

त सृष्टि में सृष्टि की रचना

भावार्थ:-इस मन्त्र में श्लेष और उपमालङ्कार है। मनुष्य जैसे-जैसे इस सृष्टि में सृष्टि की स्चन के नियमों से ईश्वर के गुण, कर्म और स्वभावों को देखके अच्छे यत्न को करें, वैसे-वैसे बिद्या और सुख उत्पन्न होते हैं॥३॥

पुनस्तयो: कीदृशानि कर्माणि सन्तीत्युपदिश्यते॥

फिर उन दोनों के कैसे काम हैं, यह विषय अगले मन्त्र में कहा/है।।

या ते धार्मानि दिवि या पृथिव्यां या पर्वतेष्वोषधीष्वप्सु। तेभिर्नो विश्वैः सुमना अहेळून् राजन्त्सोम् प्रति हुव्या गृशायु।

या। ते। धार्मानि। दिवि। या। पृथिव्याम्। या। पर्वतेषु। ओषधीषु। अप्रसु। तेभिः। नः। विश्वैः। सुऽमर्नाः। अहेळन्। रार्जन्। सोम्। प्रति। हुव्या। गृभायु॥४॥

पदार्थ:-(या) यानि (ते) तव (धामानि) नामजन्मस्थामानि (दिवि) प्रकाशमये सूर्य्यादौ दिव्यवहारे वा (या) यानि (पृथिव्याम्) (या) यानि (पृर्वतिषु) (ओषधीषु) (अप्सु) (तेभिः) तैः (नः) अस्मान् (विश्वैः) सर्वैः (सुमनाः) शोभनविज्ञानः (अहेडन्) अन्यत्रमकुर्वन् (राजन्) सर्वोधिपते (सोम) सर्वोत्पादक (प्रति) (हव्या) हव्यानि दातुमादातुं योग्धानि (पृभाध) गृहाण ग्राहय वा। अत्रान्तर्गतो ण्यर्थः। ग्रह धातोर्हस्य भत्वं शनः स्थाने शायजादेशश्च॥

अन्वय:-हे सोम! राजन् ते तव या यानि धार्मानि दिखिँ या यानि पृथिव्यां या यानि पर्वतेष्वोषधीष्वप्सु सन्ति। तेभिर्विश्वै: सर्वैरहेडन् सुमनास्त्वं हव्यानि नः प्रतिपृभिष्मा ४५)

भावार्थ:-यथा जगदीश्वर: स्वसूष्ट्री वेदद्वारा सृष्टिक्रमान् दर्शयित्वा सर्वा विद्या: प्रकाशयित, तथैव विद्वांसोऽधीतै: साङ्गोपाङ्गैर्वेदैर्हस्विक्रयमा च कलाकौशलानि दर्शयित्वा सर्वान् सकला विद्या ग्राहयेयु:॥४॥

पदार्थ:-हे (सोम) सबको उत्पन्न करनेवाले (राजन्) राजा! (ते) आपके (या) जो (धामानि) नाम, जन्म और स्थान (विवि) प्रकाशमय सूर्य्य आदि पदार्थ वा दिव्य व्यवहार में वा (या) जो (पृथिव्याम्) पृथिवी में वा (या) जो (पर्वतेषु) पर्वतों वा (ओषधीषु) ओषधियों वा (अप्पु) जलों में हैं, (तेभि:) उन (विश्वेः) सबस्य (अहेडन्) अनादर न करते हुए (सुमना:) उत्तम ज्ञानवाले आप (हव्या:) देने-लेने योग्य कर्मों को (न:) हमको (प्रति+गृभाय) प्रत्यक्ष ग्रहण कराइये॥४॥

भावार्थ: जैसे जगदीश्वर अपनी रची सृष्टि में वेद के द्वारा इस सृष्टि के कामों को दिखाकर सब विद्याओं का प्रकाश करता है, वैसे ही विद्वान् पढ़े हुए अङ्ग और उपाङ्ग सहित वेदों से हस्तक्रिया के सार्थ कराओं की चतुराई को दिखाकर सबको समस्त विद्या का ग्रहण करावें॥४॥ ९७२

ऋग्वेदभाष्यम्

पुनः स सोम कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह सोम कैसा है, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

त्वं सोमासि सत्पतिस्त्वं राजोत वृत्रहा। त्वं भुद्रो असि क्रतुः॥५॥१९॥

त्वम्। सोम्। असि। सत्ऽपीतः। त्वम्। राजां। उता वृत्रऽहा। त्वम्। भुद्रः। असि। क्रतुंः॥५१०

पदार्थ:-(त्वम्) परमेश्वरः शालाध्यक्ष ओषधिराजो वा (सोम) सकलजगदुल्पादक सर्वविद्याप्रद सर्वोषधिगुणप्रदो वा (असि) वा (सत्पितः) सतोऽविनाशिनः कारणस्य विद्यमानस्य क्रार्थ्यस्य सत्यपथ्यकारिणां वा पालकः (त्वम्) (राजा) सर्वाध्यक्षो विद्याध्यक्षो रोगनाशकमुणप्रकाशको वा (उत) अपि (वृत्रहा) यो दुःखप्रदान् शत्रून् मेघदोषान् वा हन्ति सः (त्वम्) (भद्रः) कत्याणकारकः सेवनीयो वा (असि) भवति वा (क्रतुः) प्रज्ञामयः प्रज्ञाप्रदः प्रज्ञाहेतुर्वा॥५॥

अन्वय:-हे सोम! यतस्त्वमयं सोमो वा सत्पितरस्युतापि त्वमयं च वृत्रहां चराष्ट्रीसि अस्ति वा यतस्त्वमयं च भद्रोऽसि भवति वा क्रतुरसि भवति वा तस्मात् त्वमयं च विद्वद्भिः सेव्यः॥(॥

भावार्थ:-अत्र श्लेषालङ्कारः। परमेश्वरो विद्वान् सोमलिताद्योषध्यिणो वा सर्वेश्वर्यप्रकाशकः सतां रक्षकोऽधिपतिर्दुःखविनाशको विज्ञानप्रदः कल्याणकार्य्यस्तिति क्षिप्यस्ति तेत्वः॥५॥

पदार्थ:-हे (सोम) संसार के उत्पन्न करने वा सब विद्याओं के देनेवाले! (त्वम्) परमेश्वर वा पाठशाला आदि व्यवहारों के स्वामी विद्वान् आप (सत्पतिः) अविनाशी जो जगत् कारण वा विद्यमान कार्य्य जगत् है, उसके पालनेहारे (असि) हैं (उत्) और (त्वम्) आप (वृत्रहा) दु:ख देनेवाले दुष्टों के विनाश करनेहारे (राजा) सबके स्वामी विद्वा के अध्यक्ष हैं वा जिस कारण (त्वम्) आप (भद्रः) अत्यन्त सुख करनेवाले हैं वा (क्रतुः) समस्त बुद्धियुक्त वा बुद्धि देनेवाले (असि) हैं, इसीसे आप सब विद्वानों के सेवने योग्य हैं॥१॥५॥

द्वितीय-(सोम) सब अधियों का गुणदाता सोम ओषधि (त्वम्) यह ओषधियों में उत्तम (सत्पितः) ठीक-ठीक पथ्य करनेवाले जनो की पालना करनेहारा है (उत) और (त्वम्) यह सोम (वृत्रहा) मेघ के समान देखों का नाशक (राजा) रोगों के विनाश करने के गुणों का प्रकाश करनेवाला है वा जिस कारण (त्वम्) यह (भेदः) सेवने के योग्य वा (क्रतुः) उत्तम बुद्धि का हेतु है, इसीसे वह सब विद्वानों के सेवने योग्य है॥१॥॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। परमेश्वर, विद्वान्, सोमलता आदि ओषधियों का समूह, ये समस्त ऐश्वर्य को प्रकाश करने, श्रेष्ठों की रक्षा करने और उनके स्वामी, दु:ख का विनाश करने और विज्ञान के दैनेहार और कल्याणकारी हैं, ऐसा अच्छी प्रकार जानके सबको इनका सेवन करना योग्य है॥५०।

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

मण्डल-१। अनुवाक-१४। सूक्त-९१

फिर वह कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

त्वं च सोम नो वशो जीवातुं न मरामहे। प्रियस्तीत्रो वनस्पतिः॥६॥

त्वम्। च। सोमा। नः। वर्षाः। जीवातुमा। न। मुरामहे। प्रियऽस्तीत्रः। वनस्पतिः॥६॥

पदार्थ:-(त्वम्) (च) समुच्चये (सोम) सत्कर्मसु प्रेरक प्रेरको वा (नः) अस्माकम् (वशः) विशित्वगुणप्रापकः (जीवातुम्) जीवनम् (न) निषेधार्थे (मरामहे) अकालमृत्युं श्रूणभङ्गदेहे प्राप्नुयाम्। अत्र विकरणव्यत्ययः। (प्रियस्तोत्रः) प्रियं प्रति प्रियकारि स्तोत्रं गुणस्तवनं यस्य सः (वनस्पतिः) संभक्तस्य पदार्थसमूहस्य जङ्गलस्य वा पालकः श्रेष्ठतमो वा॥६॥

अन्वय:-हे सोम! यतस्त्वमयं च नोऽस्माकं जीवातुं वशः प्रियस्तोत्रो वनस्पतिभेवस् भवति वा तदेतद् विज्ञाय वयं सद्यो न मरामहे॥६॥

भावार्थ:-अत्र श्लेषालङ्कार:। ये मनुष्या ईश्वराज्ञापालिनी विदुषामीषधीनां च सेविन: सन्ति, ते पूर्णमायु: प्राप्नुवन्ति॥६॥

पदार्थ:-हे (सोम) श्रेष्ठ कामों में प्रेरणा देनेहारे परमेश्वर हा श्रेष्ठ कामों में प्रेरणा देता जो (त्वम्) सो यह (च) और आप (न:) हम लोगों के (जीवातुम्) जीवच को (वश:) वश होने के गुणों का प्रकाश करने वा (प्रियस्तोत्र:) जिनके गुणों का कथन प्रेम करने करानेवाला है वा (वनस्पित:) सेवनीय पदार्थों की पालना करनेहारे वा यह सोम जङ्गली ओषिध्यों में अत्यन्त श्रेष्ठ है, इस व्यवस्था से इन दोनों को जानकर हम लोग शीघ्र (न) (मरामहे) अकालुमृत्यु और अनायास मृत्यु न पावें॥६॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में श्लेषात्रङ्कार है। जो मनुष्य ईश्वर की आज्ञा पालनेहारे विद्वानों और औषधियों का सेवन करते हैं, वे पूरी आयुर्वा पाते हैं॥६॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फ़िर्र वह कैस्ए है, वह उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

त्वं सीम महे भां विं यूर्ने ऋतायते। दक्षं दधासि जीवसे॥७॥

त्वम्। सोमु। महे। भर्गम्। त्वम्। यूने। ऋतुऽयुते। दक्षम्। दुधासि। जीवसे॥७॥

पदार्थः (त्वम्) विद्यासौभाग्यप्रदः (सोम) सोमायं वा (महे) महापूज्यगुणाय (भगम्) विद्याश्रीसमूहम् (त्वम्) (यूने) ब्रह्मचर्य्यविद्याभ्यां शरीरत्मानोर्युवावस्थां प्राप्ताय (ऋतायते) आत्मन ऋतं विज्ञानिम्ह्छते (दक्षम्) बलम् (दधासि) (जीवसे) जीवितुम्॥७॥

अव्ययः-हे सोम! त्वमयं च ऋतायते महे यूने भगं तथा त्वं जीवसे दक्षं दधासि तस्मात् सर्वैः क्रमनीयराज्या

९७४

भावार्थ:-अत्र श्लेषालङ्कार:। निह मध्याणां परमेश्वरस्य विदुषामोषधीनां च सेवनेन विना सुर्खे भवितुमर्हति तस्मादेतत् सर्वैर्नित्यमनुष्ठेयम्॥७॥

पदार्थ:-हे (सोम) परमेश्वर वा सोम अर्थात् औषधियों का समूह (त्वम्) विद्या और सौभाष्य के देनेहारे! आप वा यह सोम (ऋतायते) अपने को विशेष ज्ञान की इच्छा करनेहारे (महें) अति उत्तम गुणयुक्त (यूने) ब्रह्मचर्य्य और विद्या से शरीर और आत्मा की तरुण अवस्था को प्राप्त हुए ब्रह्मचारी के लिये (भगम्) विद्या और धनराशि तथा (त्वम्) आप (जीवसे) जीने के अर्थ (दक्षम्) बल को (द्यासि) धारण कराने से सबको चाहने योग्य हैं॥७॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों को परस्पर विद्वान और ओषधियों के सेवन के विना सुख होने को योग्य नहीं है, इससे यह आचरण सबको नित्य करने सम्बद्धी है।

पुन: स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा है, यह उपदेश अगले मून में कहा है।।

त्वं नं: सोम विश्वतो रक्षा राजन्नघायतः। न रिध्येत् त्यार्वतः सर्खा॥८॥

त्वम्। नुः। सोम्। विश्वतः। रक्षा गुजुन्। अघुऽयुतः। नि ग्रियुत्। त्वाऽवतः। सर्खा॥८॥

पदार्थ:-(त्वम्) (नः) (सोम) सर्वसुहृत्सौहार्दप्रदो या (विश्वतः) सर्वस्मात् (रक्ष) रक्षति वा। ह्रयचोऽतस्तिङ इति दीर्घः। (राजन्) सर्वरक्षणस्याभूग्रकाशक प्रकाशको वा (अघायतः) आत्मनोऽघिमच्छतो दोषकारिणः (न) निषेधे (रियोत्) ह्रिसतो भवेत् (त्वावतः) त्वत्सदृशस्य (सखा) मित्रः॥८॥

अन्वयः-हे सोम! त्वमयं च विश्वतोऽयान्तो नोर्हस्मान् रक्ष रक्षति वा। हे राजन्! त्वावतः सखा न रिष्येद् विनिष्टो न भवेत॥८॥

भावार्थ:-अत्र श्लेषालङ्कार:। मनुष्यैरेवमीश्वरं प्रार्थियत्वा प्रयतितव्यम्। यतो धर्मं त्यक्तुमधर्मं ग्रहीतुमिच्छापि न समुत्तिष्ठेत । धर्माधर्मप्रवृत्तौ भनस इच्छैव कारणमस्ति तत्प्रवृत्तौ तिन्नरोधे च कदाचिद् धर्मत्यागोऽधर्मग्रहणं च नैवोत्षद्यते।। ﴿।

पदार्थ:-हे (सोम) सबके मित्र वा मित्रता देनेवाला (त्वम्) आप वा यह औषधिसमूह! (विश्वतः) समस्त (अघायतः) अपने को दोष की इच्छा करते हुए वा दोषकारी से (नः) हम लोगों की (रक्ष) रक्षा की जिये वा यह ओषधिराज रक्षा करता है, हे (राजन्) सबकी रक्षा का प्रकाश करनेवाले! (त्वावतः) तुम्हारे समाने पुरुष का (सखा) कोई मित्र (न) न (रिष्येत्) विनाश को प्राप्त होवे वा सबका रक्षक जो ओषधिमण्ण इसके समान ओषधि का सेवनेवाला पुरुष विनाश को न प्राप्त होवे॥८॥

भोवार्थ:-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों को इस प्रकार ईश्वर की प्रार्थना करके उत्तम यत्न करिना चेहिये कि जिससे धर्म को छोड़ने और अधर्म के ग्रहण करने को इच्छा भी न उठे। धर्म और अष्टक-१। अध्याय-६। वर्ग-१९-२३।

मण्डल-१। अनुवाक-१४। सूक्त-९१

अधर्म की प्रवृत्ति में मन की इच्छा ही कारण है, उसकी प्रवृत्ति और उसके रोकने से कभी धर्म व और अधर्म का ग्रहण उत्पन्न न हो॥८॥

स कं रक्षतीत्युपदिश्यते॥

वह किनसे रक्षा करता है, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है।।

सोम् यास्ते मयोभुवं ऊतयः सन्ति दाशुषे। ताभिनीऽविता भवा। %

सोमी याः। ते। मुयुःऽभुवीः। ऊतयीः। सन्ति। दाशुषी। ताभिः। नुः। अवित्रारभवा। ९॥

पदार्थ:-(सोम) (या:) (ते) तव तस्य वा (मयोभुव:) सुख्रुकारिका (कृतय:) रक्षणादिका: क्रियाः (सन्ति) भवन्ति (दाशृषे) दानशीलाय मनुष्याय (ताभिः) (ने) अस्माकं (अविता) रक्षणादिकर्त्ता (भव) भवति वा॥९॥

अन्वयः-हे सोम! यास्ते तवास्य वा मयोभुव ऊतयो दाशुषे सन्ति, तार्भिनीर्र्यमाकमविता भव भवति वा॥९॥ भावार्थ:-येषां प्राणिनां परमेश्वरो विद्वांसः सुनिष्णिदिन्ना ओप्रधिसमूहाश्च रक्षका भवन्ति, कुतस्ते दुःखं पश्येयुः॥९॥

पदार्थ:-हे (सोम) परमेश्वर! (या:) जो (ते आफ्की आ सोम आदि ओषधिगण की (मयोभुव:) सुख को उत्पन्न करनेवाली (ऊतय:) रक्षा आदि फ्रिया (दाशुषे) दानी मनुष्य के लिये (सन्ति) हैं (ताभि:) उनसे (न:) हम लोगों के (अविता) रक्षा आदि करने वाले (भव) हूजिये वा जो यह ओषधिगण होता है, इनका उपयोग हम लीग क्रियों कोरें॥९॥

भावार्थ:-जिन प्राणियों की पर्भेश्वर, विद्वान् और अच्छी सिद्ध की हुई ओषिध रक्षा करनेवाली होती हैं, वे कहाँ से दु:ख देखें॥ 👊

पुन: स किं करोतीत्युपदिश्यते॥ फिर वह क्या करता है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

इमं युज्ञमिदं वद्यो जिजुम्मेण उपागिहि। सोम् त्वं नी वृधे भव।। १०॥ २०॥

डुमम्। युज्ञम्। डुदम्। वर्चः। जुजुषाणः। उपुऽआगिह। सोमी त्वम्। नः। वृधे। भुवा। १०॥

पदार्थः (इस्म्) प्रत्यक्षम् (यज्ञम्) विद्यारक्षाकारकं शिल्पसिद्धं वा (इदम्) विद्याधर्मयुक्तम् (वच:) वच्चनम् (जुजुष्पण:) सेवमानः (उपागिह) उपागच्छ उपागच्छित वा (सोम) (त्वम्) (नः) अस्माक्ष्म (वृधे) वृद्धये (भव) भवति वा॥१०॥

अन्त्रय:-हे सोम! यत इमं यज्ञमिदं वचो जुजुषाण: संस्त्वमुपागिह। उपागच्छति वाऽतो नो वृधे भव भवत्

भावार्थ:-अत्र श्लेषालङ्कार:। यदा विज्ञानेनेश्वर: सेवाकृतज्ञताभ्यां विद्वसि वैद्यकसत्क्रियाभ्यामोषधिगण- श्लोपागता भवन्ति तदा मनुष्याणां सर्वाणि सुखानि जायन्ते॥१०॥

पदार्थ: - हे (सोम) परमेश्वर वा विद्वन्! जिससे (इमम्) इस (यज्ञम्) विद्या की रक्षा किने हिल्च घे शिल्प कर्मों से सिद्ध किये हुए यज्ञ को तथा (इदम्) इस विद्या और धर्मसंयुक्त (वर्चः) वचन को (जुजुषाणः) प्रीति से सेवन करते हुए (त्वम्) आप (उपागिह) समीप प्राप्त होते हैं वा यह सोम आदि ओषधिगण समीप प्राप्त होता है (नः) हम लोगों की (वृधे) वृद्धि के लिये (भद्दे) हूजिये वा उक्त ओषधिगण होवे॥१०॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जब विज्ञान से ईश्वर और स्वि तथा कृतज्ञता से विद्वान्, वैद्यकविद्या वा उत्तम क्रिया से औषधियां मिलती हैं, तब मनुष्यों के सब्द्र सुख उत्पन्न होते हैं॥१०॥

पुन: स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा है, इस विषय को अगले मुन्न में कहा है।।

सोम गीभिष्ट्वा वयं वर्धयामा वचोविदः। सुमृळीकी न आ विशा ११॥

सोम। गीःऽभिः। त्वा। वयम्। वर्धयामः। वचःऽविदः (सुअमृब्बिकः)। नः। आ। विशा। ११॥

पदार्थ:-(सोम) विज्ञातव्यगुणकर्मस्वभाव! (गिर्भि:) विद्यासुसंस्कृताभिर्वाग्भिः (त्वा) त्वाम् (वयम्) (वर्धयामः) (वचोविदः) विदितवेदितव्याः (सुमृळीकः) सुष्ठु सुखकारी (नः) अस्मान् (आ) आभिमुख्ये (विशः)॥११॥

अन्वय:-हे सोम! यत: सुमृळीको वैद्यस्त्वं नोऽस्मानाविश तस्मात् त्वा त्वां वचोविदो वयं गीर्भिर्नित्यं वर्द्धयाम:॥११॥

भावार्थ:-अत्र श्लेषालङ्कारः। स हीश्वरविद्वदोषधिगणैस्तुल्यः प्राणिनां सुखकारी कश्चिद् वर्त्तते तस्मात् सुशिक्षाध्ययनाभ्यामेतेषां बाधवृद्धि कृत्वा तदुपयोगश्च मनुष्यैर्नित्यमनुष्ठेयः॥११॥

पदार्थ:-हे (सोम) क्रिनेचे योग्य गुण) कर्म, स्वभावयुक्त परमेश्वर! जिस कारण (सुमृळीक:) अच्छे सुख के करनेवाले केंद्र आप और सोम आदि ओषधिगण (न:) हम लोगों को (आ) (विश) प्राप्त हों, इससे (त्वा) आपकी और इस औषधिगण को (वचोविद:) जानने योग्य पदार्थों को जानते हुए (वयम्) हम (गीर्भि:) विद्या से शुद्ध की हुई वाणियों से नित्य (वर्द्धयाम:) बढ़ाते हैं॥११॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। ईश्वर, विद्वान् और ओषधिसमूह के तुल्य प्राणियों को कोई सुख करनेवाला नहीं है, इससे उत्तम शिक्षा और विद्याध्ययन से उक्त पदार्थों के बोध की वृद्धि करके मूसुष्यों को निस्थ वैसे ही आचरण करना चाहिये॥११॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

मण्डल-१। अनुवाक-१४। सूक्त-९१

गुयुस्फानो अमीवृहा वसुवित्पृष्टिवर्धनः। सुमित्रः सोम नो भव॥१२॥

गुयुऽस्फोनः। अमीवुऽहा। वुसुऽवित्। पुष्टिुऽवर्धनः। सुऽमित्रः। सोम्। नः। भवा। १२॥

पदार्थ:-(गयस्फानः) गयानां प्राणानां वर्धियता। स्फायी वृद्धीवित्यस्माद् धातोर्नन्द्यादेराकृतिगणत्वाल्ल्युः। छान्दसो वर्णलोप इति यलोपः। अत्र सायणाचार्येप स्फान इति कर्त्तरि ल्युडन्तं व्याख्यातं तदशुद्धम्। (अमीवहा) अमीवानामविद्यादीनां ज्वरादीनां व्यक्तिवत्) वसूनि सर्वाणि द्रव्याणि विदन्ति ये येन वा (पृष्टिवर्द्धनः) शरीरात्मपृष्टेर्वर्धियता (स्विम्बः) शोभनाः सुष्टुकारिणो मित्रा यतः (सोम) (नः) अस्माकम् (भव) भवतु वा॥१२॥

अन्वयः – हे सोम! यतस्त्वं नोऽस्माकं गयस्फानोऽमीवहा वसुक्रिस्मित्रः पुष्टिवर्धनो भव भवसि वा तस्मादस्माभिः सेव्यः॥१२॥

भावार्थ:-अत्र श्लेषालङ्कार:। निह प्राणिनामीश्वरस्यौष्धीनां च भ्रेवनेन विदुषां सङ्गेन च विना रोगनाशो बलवर्द्धनं द्रव्यज्ञानं धनप्राप्ति: सुहन्मेलनं च भवितुं शक्यं तस्मादेतेषां समाश्रय: सेवा च सर्वै: कार्या।।१२।।

पदार्थ:-हे (सोम) परमेश्वर वा विद्वन्! जिस् कारण आप वा यह उत्तमौषध (न:) हम लोगों के (गयस्फान:) प्राणों के बढ़ाने वा (अमीवहा) अविद्या आदि दीषों तथा ज्वर आदि दु:खों के विनाश करने वा (वसुवित्) द्रव्य आदि पदार्थों के ज्ञान करीने वा (सुमित्र:) जिनसे उत्तम कामों के करनेवाले मित्र होते हैं, वैसे (पृष्टिवर्द्धन:) शरीर और आस्माम्बे पृष्टि को बढ़ानेवाले (भव) हूजिये वा यह ओषधिसमूह हम लोगों को यथायोग्य उक्त गुण देनेवाला होवे, इससे आप और यह हम लोगों के सेवने योग्य हैं॥१२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में लिषालङ्कार है। प्राणियों को ईश्वर और ओषधियों के सेवन और विद्वानों के सङ्ग के विना रोगनाश, बलकृद्धि, प्रदार्थों का ज्ञान, धन की प्राप्ति तथा मित्रमिलाप नहीं हो सकता, इससे उक्त पदार्थों का यथायोग्य आश्रय और सेवा सबको करनी चाहिए॥१२॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

🗣 वह कैसा है, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

सोम सुरिख जो हृदि गावो न यवसेष्टा मर्य इव स्व ओक्ये॥ १३॥ सोमा सुरिख नुः। हृदि। गावेः। न। यवसेषु। आ। मर्यःऽइव। स्वे। ओक्ये॥ १३॥

पदार्थ:-(सोम) (रारिश्व) रमस्व रमेत वा। अत्र रमधातोर्लोटि मध्यमैकवचने बहुलं छन्दसीति शप: स्थाने श्लु:। व्यत्ययेन परस्मैपदं वाच्छन्दसीति हे: पित्वादिङतश्चेति धि:। (न:) अस्माकम् (हृदि) हृदये (गाव:) धेनव: (न) इव (यवसेषु) भक्षणीयेषु घासेषु (आ) समन्तात् (मर्यइव) यथा मिनुष्य) (स्वे) स्वकीये (ओक्ये) गृहे॥१३॥

अन्वय:-हे सोम! यतस्त्वमयं च नो हृदि नेव यवसेषु गावो स्व ओक्ये मर्य इवारारन्ध्रि समन्ताद्रीपास्व रमते वा तस्मात्सर्वे: सदा सेवनीय:॥१३॥

भावार्थ-अत्र श्लेषोपमालङ्काराः। हे जगदीश्वर! यथा प्रत्यक्षतया गावो भेतुष्याश्च स्वकीये भोक्तव्ये पदार्थे स्थाने वा क्रीडिन्त तथैवाऽस्माकमात्मिन प्रकाशितो भवेः। यथा पृथिव्यादिषु कार्य्यद्रव्येषु प्रत्यक्षाः किरणा राजन्ते तथैवास्माकमात्मिन राजस्व। अत्रासंभवत्वाद्विद्वात्र पृक्षात्। भूने।

पदार्थ:-हे (सोम) परमेश्वर! जिस कारण आप (न:) हम लोगों के (हाँद) हृदय में (न) जैसे (यवसेषु) खाने योग्य घास आदि पदार्थों में (गाव:) गौ रमती हैं, वैसे वा जैसे (स्वे) अपने (ओक्ये) घर में (मर्च्यइव) मनुष्य विरमता है, वैसे (आ) अच्छे प्रकर (रार्स्थ) रिमये वा ओषिधसमूह उक्त प्रकार से रमे, इससे सबके सेवने योग्य आप वा यह है॥ १३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में श्लेष और दो उपमालङ्कार है डिजगदीश्वर! जैसे प्रत्यक्षता से गौ और मनुष्य अपने भोजन करने योग्य पदार्थ वा स्थान में उत्साहपूर्वक अपना वर्ताव वर्तते हैं, वैसे हम लोगों के आत्मा में प्रकाशित हूजिये। जैसे पृथिवी आदि कार्य्य प्रदार्थों में प्रत्यक्ष सूर्य्य की किरणें प्रकाशमान होती हैं, वैसे हम लोगों के आत्मा में प्रकाशमान हूजिये। इस मन्त्र में असंभव होने से विद्वान् का ग्रहण नहीं किया॥१३॥

पुतः स कोंदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह केसा है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

यः सोम सुख्ये तर्व प्रणहिव मत्येः। तं दक्षः सचते कृविः॥१४॥ यः। सोम्। सुख्ये। तर्वः रुणत्। देवः। मर्त्यः। तम्। दक्षः। सुचते। कृविः॥१४॥

पदार्थ:-(य:) (मोप) बिंहुन् (सख्ये) मित्रस्य भावाय कर्मणे वा (तव) (रारणत्) उपसंवदते। अत्र रणधातोर्बहुलं छन्दसीति शपः स्थाने श्लुः। लडर्थे लेट् च। तुजादित्वाद् दीर्घः। (देव) दिव्यगुणप्रापक दिव्यगुणनिर्मितो वा (मर्त्यः) मनुष्यः (तम्) मनुष्यम् (दक्षः) विद्यमानशरीरात्मबलः (सचते) समुवति (कविः) क्रान्तप्रज्ञादर्शनः॥१४॥

<u>४४. अङ्तिश्च</u>। अष्टा०६.४.१०३ हेर्धि:। सं०।

अष्टक-१। अध्याय-६। वर्ग-१९-२३।

मण्डल-१। अनुवाक-१४। सूक्त-

९१

अन्वय:-हे देव सोम! यस्तव सख्ये दक्ष: कविर्मर्त्यो रारणत् सचते च तं सुखं कथं न प्राप्नुयात्॥ 😿 🛪 भावार्थ:-अत्र श्लेषालङ्कार:। ये मनुष्या: परमेश्वरेण विद्वद्भिरत्तमौषधिभिर्वा /सह कुर्वन्ति, ते विद्यां प्राप्य न कदाचिद् दु:खभागिनो भवन्ति॥१४॥

पदार्थ:-हे (देव) दिव्यगुणों को प्राप्त करानेवाले वा अच्छे गुणों का हेतु (सीम) वैद्यराज्य विद्वान् वा यह उत्तम ओषि (य:) जो (तव) आप वा इसके (सख्ये) मित्रपन वा पित्र के काम में (दक्ष:) शरीर और आत्मबलयुक्त (कवि:) दर्शनीय वा अव्याहत प्रज्ञायुक्त (मर्त्यः) मनुष्य (रारणत्) संवाद करता और (सचते) संबन्ध रखता है (तम्) उस मनुष्य को सुख क्यों न प्रीप्त होवेग्रे ४॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जो मनुष्य परमेश्वर विद्वान् चा उत्तम औषधि के साथ मित्रपन करते हैं, वे विद्या को प्राप्त होके कभी दु:खभागी नहीं होते हैं। १४॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्युदे

फिर वह कैसा है, यह उपदेश अगृह्में मुन्त्र में क्रिया है॥

उरुष्या णो अभिशंस्तेः सोम् नि पाह्यहंसः। सख्य सुशेवं एधि नः॥१५॥२१॥

<u>उकुष्य। नुः। अभिऽशस्तेः। सोमी नि। पाहि। अंह</u>सः। स्रख्ये सुऽशेर्वः। पुधा नुः॥१५॥

पदार्थ:-(उरुष्य) रक्ष। उरुष्यतीति रक्षातिकर्मा (निरु०५.२३) अत्र ऋचि तुनु० इति दीर्घ:। (नः) अस्मान् (अभिशस्तेः) सुखिहंसकात् (सोप) म्र्सक (नि) नितराम् (पाहि) पालय (अंहसः) अविद्याज्वरादिरोगात् (**सखा**) मित्रः (सुशे<mark>षः)</mark> सुष्ठु सुखदः (एधि) भवसि (नः) अस्माकम्॥१५॥

अन्वय:-हे सोम! यः सुरोव: सुखाऽभिरास्त्रेनं उरुष्यांहसोऽस्मान्निपाहि नोऽस्माकं सुखकार्य्येधि भवसि सोऽस्माभिः कथं न सत्कर्त्तव्यः॥१५॥

भावार्थ:-मनुष्यै: सुमेर्वित: परमवैद्ये विद्वान् सर्वैभ्योऽविद्यादिरोगेभ्य: पृथक्कृत्यैतानानन्दयति तस्मात्, स सदैव सङ्गमनीयः।।१५०।

पदार्थ:-हे (सोम) रिक्षा औरने और (सुशेव:) उत्तम सुख देनेवाले (सखा) मित्र! जो आप (अभिशस्ते:) सुखिवनाश कर्पनेवले काम से (न:) हम लोगों को (उरुष्य) बचाओ वा (अंहस:) अविद्या तथा ज्वरादिरोग् से हम लेगिं की (नि) निरन्तर (पाहि) पालना करो और (नः) हम लोगों के सुख करनेवाले (एक्ट्रे) होओ वह आप हमको सत्कार करने योग्य क्यों न होवें॥१५॥

भावार्थ: मेनुष्यों को अच्छी प्रकार सेवा किया हुआ वैद्य, उत्तम विद्वान्, समस्त अविद्या आदि राजरोगों से अलग कर उनको आनन्दित करता है, इससे यह सदैव संगम करने योग्य है॥१५॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

९८०

ऋग्वेदभाष्यम्

फिर वह कैसा है, यह उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

आ प्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम् वृष्ण्यम्। भवा वार्जस्य संगुथे॥ १६॥ आ। प्यायस्व। सम्। एतु। ते। विश्वतः। सोम्। वृष्ण्यम्। भवं। वार्जस्य। सम्ऽगुथे॥ १६॥

पदार्थ:-(आ) अभितः (प्यायस्व) वर्धस्व (सम्) (एतु) प्राप्नोतु (ते) तव (विश्वतः) सर्वस्याः सृष्टेः सकाशात् (सोम) वीर्य्यवत्तम (वृष्ण्यम्) वृषसु वीर्य्यवत्सु भवम्। वृषन् शब्दाद् भवे छन्दसीति यत्। वा च्छन्दसीति प्रकृतिभावनिषेधः पक्षेऽल्लोपः। (भव) द्व्यचोऽतिस्तङ इति दीर्घः। (वाजस्य) वेग्युक्तस्य सैन्यस्य (संगर्थ) संग्रामे। सङ्गर्थ इति संग्रामनामसु पठितम्। (निघं०२.७)॥१६॥

अन्वय:-हे सोम विद्वन्! वैद्यकवित्ते विश्वतो वृष्ण्यमस्मान् समेतु त्वमायायस्व वाजस्य सङ्गर्थे रोगापहा भव॥१॥

भावार्थ:-मनुष्यैर्विद्वदोषधिगणान् संसेव्य बलविद्ये प्राप्य सर्वस्याः सृष्टेगनुत्तमा विद्या उन्नीय शत्रून् विजित्य सज्जनान् संरक्ष्य शरीरात्मपृष्टिः सततं वर्धनीया॥१६॥

पदार्थ: -हे (सोम) अत्यन्त पराक्रमयुक्त वैद्यक श्रास्त्र को जननेहारे विद्वान्! (ते) आप का (विश्वतः) सम्पूर्ण सृष्टि से (वृष्णयम्) वीर्य्यवानों में उत्पन्न पराक्रम्)हैं, वह हम लोगों को (सम्+एत्) अच्छी प्रकार प्राप्त हो तथा आप (आप्यायस्व) उन्नति को प्राप्त और (वाजस्य) वेगवाली सेना के (संगथे) संग्राम में रोगनाशक (भव) हजिये॥१६॥

भावार्थ:-मनुष्यों को चाहिये कि विद्वान और और धिंगणों का सेवन कर, बल और विद्या को प्राप्त हो, समस्त सृष्टि की अत्युत्तम विद्याओं की उन्नित कर, शत्रुओं को जीत और सज्जनों की रक्षा कर, शरीर और आत्मा की पृष्टि निरन्तर बढ़ावें ॥ १६॥)

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

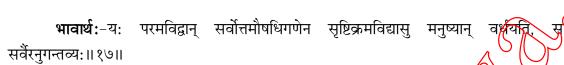
फिर के कैसा है सह विषय अगले मन्त्र में कहा है।।

आ प्यायस्व मदिन्तर्म् सोम् विश्वेभिगुंशुभिः। भर्वा नः सुश्रवस्तमः सर्खा वृधे॥ १७॥ आ। प्यायस्व। मुद्धिन्द्रतुम्। सोम्। विश्वेभिः। अंशुऽभिः। भर्व। नः। सुश्रवःऽतमः। सर्खा। वृधे॥ १७॥

पदार्थ:-(आ) सम्स्ताते (प्यायस्व) वर्धस्व (मदिन्तम) मदः प्रशस्तो हर्षो विद्यतेऽस्मिन् सोऽतिशयितस्तत्स्य बद्धौ (सोम) विद्यैश्वर्यस्य प्रापक (विश्वेभिः) सर्वैः (अंशुभिः) सृष्टितत्त्वावयवैः (भवः) अत्रार्थि द्वयचोऽतिस्तिङ इति दीर्घः। (नः) अस्माकम् (सुश्रवस्तमः) शोभनानि श्रवांसि श्रवणान्यत्रापि वो यस्मात्स सुश्रवाः। अतिशयेन सुश्रवा इति सुश्रवस्तमः। (सखा) सुहृत् (वृधे) वर्धनाययीर्ष्णः।

अञ्चेषः-हे मदिन्तम सोम! सुश्रवस्तमः सखा त्वं नो वृधे भव विश्वेभिरंशुभिराप्यायस्व॥१७॥

मण्डल-१। अनुवाक-१४। सूक्त-९१



पदार्थ: - हे (मिदन्तम) अत्यन्त प्रशंसित आनन्दयुक्त (सोम) विद्या और ऐश्वर्य के देखे वाले! जो (सुश्रवस्तम:) बहुश्रुत वा अच्छे अन्नादि पदार्थों से युक्त (सखा) आप मित्र हैं स्में (न:) हम लोगों के (वृधे) उन्नति के लिये (भव) हूजिये और (विश्वेभि:) समस्त (अंशुभि:) स्मृष्टि के सिद्धान्तभागों (तत्त्वावयवों) से (आ) अच्छे प्रकार (प्यायस्व) वृद्धि को प्राप्त हूजिये॥१७॥

भावार्थ:-जो उत्तम विद्वान् समस्त उत्तम ओषधिगण से सृष्टिक्रिम् की विद्वीओं में मनुष्यों की उन्नति करता है, उसके अनुकूल सबको चलना चाहिये॥१७॥

पुन: स किं कुर्यादित्युपदिश्यते। फिर वह कैसा है, यह विषय अगले मूर्जि में कहा हैं।।

सं ते पर्यांसि सम् यन्तु वाजाः सं वृष्णयान्यभिमातिषाहेः। आप्यार्यमानो अमृताय सोम दिवि श्रवांस्युनुमानि धिर्ण्व॥१८॥

सम्। ते। पर्यासि। सम्। ऊम्ऽइति। युन्तु। कार्षाः। सम्। वृष्णयानि। अभिमातिऽसर्हः। आऽप्यायमानः। अमृताय। सोम्। द्विव। श्रवांसि। उत्ऽतुमानि। धिष्युग्रद्ध।।

पदार्थ:-(सम्) (ते) तव सृष्टौ (प्रयांसि) अलुम्यन्नानि वा (सम्) (उ) वितर्के (यन्तु) प्राप्नुवन्तु (वाजाः) संग्रामाः (सम्) (वृष्ण्यानि) वीर्व्यापिकामि (अभिमातिषाहः) अभिमातीन् शत्रून् सहन्ते यैस्ते (आप्यायमानः) पृष्टः पृष्टिकारकः (अभृताय) मोक्षाय (सोम) ऐश्वर्य्यस्य प्रापक (दिवि) विद्याप्रकाशे (श्रवांसि) श्रवणान्यन्नानि वा (उत्तमानि) श्रेष्ठतमानि (धिष्व) धर। अत्र सुधितवसुधितनेमधित०। (अष्टा०७.४.४५) अस्मिन् सूत्रेष्ठ्यं निपातितः १८॥

अन्वयः-हे सोम्। ते तक ग्रानि वृष्ण्यानि पयांस्यस्मान् संयन्तु अभिमातिषाहो वाजाः संयन्तु तैर्दिव्यमृतायाप्यायमानस्त्वमुत्तुमामि श्रुतामि संधिष्व॥१८॥

भावार्थ:-अत्र श्लेषाल्यङ्कार:। मनुष्यैर्विद्यापुरुषार्थाभ्यां विद्वत्सङ्गादोषधिसेवनपथ्याभ्यां च यानि प्रशस्तानि कर्माणि प्रशस्तानिणाः श्रेष्ठानि वस्तूनि च प्राप्नुवन्ति, तानि धृत्वा रक्षित्वा धर्मार्थकामान् संसाध्य मुक्तिसिद्धः कार्य्या॥१८॥

पदार्थ: है (सोम) ऐश्वर्य को पहुंचानेवाले विद्वान्! (ते) आपके जो (वृष्ण्यानि) पराक्रमवाले (पयांसि) पल वा अन्न हम लोगों को (संयन्तु) अच्छे प्रकार प्राप्त हों और (अभिमातिषाहः) जिनसे शुमुओं को सहैं वे (वाजाः) संग्राम (सम्) प्राप्त हों उनसे (दिवि) विद्याप्रकाश में (अमृताय) मोक्ष के

लिये (आप्यायमान:) दृढ़ बलवाले आप वा उत्तम रस के लिये दृढ़ बलकारक ओषधिगण (उत्तमानि अत्यन्त श्रेष्ठ (श्रवांसि) वचनों वा अन्नों को (संधिष्व) धारण कीजिये वा करता है॥१८॥

927

भावार्थ:-मनुष्यों को चाहिये कि विद्या और पुरुषार्थ से विद्वानों के संग, ओषधिर्मी के सेक् और प्रयोजन से जो-जो प्रशंसित कर्म, प्रशंसित गुण और श्रेष्ठ पदार्थ प्राप्त होते हैं, उनका धारण और उनकी रक्षा तथा धर्म, अर्थ, कामों को सिद्ध कर मोक्ष की सिद्धि करें॥१८॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।

या ते धार्मानि हुविषा यर्जन्ति ता ते विश्वा परिभूरेस्तु युज्ञम्। गुयस्फानः। प्रतर्रणः सुवीरोऽवीरहा प्र चेरा सोम दुर्याम्॥१९॥

या। ते। धार्मानि। हुविषां। यर्जन्ति। ता। ते। विश्वां। पुरिऽभूः। अस्तुः। युज्जम्। गुयुऽस्फार्नः। प्रुऽतर्रणः। सुऽवीरः। अवीर्रऽहा। प्र। चुर्। सोम्। दुर्यान्॥ १९॥

पदार्थ:-(या) यानि (ते) तव (धामानि) स्थानानि वस्तूनि (हेविषा) विद्यादानाऽऽदानाभ्याम् (यजन्ति) सङ्गच्छन्ते (ता) तानि (ते) तव (विश्वा) विश्वाणि (पिरभूः) सर्वतो भवन्तीति (अस्तु) भवतु (यज्ञम्) क्रियामयम् (गयस्फानः) धनवर्धकः (प्रतरणः) दुःखात् प्रकृष्टतया तारकः (सुवीरः) शोभनैवीरैर्युक्तः (अवीरहा) विद्यासुशिक्षाभ्यां रहितान् प्राप्नोति सः (प्र) (चर) अत्र द्वयचोऽतस्तिङ इति दीर्घः। (सोम) सोमस्य वा (दुर्यान्) प्रासादान्। १९००

अन्वयः-हे सोम! ते तव या यानि विश्वा धामाप्ति हिवषा यज्ञं यजन्ति, ता तानि सर्वाणि ते तवाऽस्मान् प्राप्नुवन्तु। यतस्त्वं परिभूर्गयस्फानः प्रतरणः सुवीरोऽवीरहोहस्तु तस्मादस्माकं दुर्यान् प्रचर प्राप्नुहि॥१९॥

भावार्थ:-अत्र श्लेषालङ्कारः। ने हि कश्चिदपि सृष्टिपदार्थानां गुणविज्ञानेन विनोपकारान् ग्रहीतुं शक्नोति, तस्माद्विदुषां सङ्गेन पृथिवीमारभ्य परमेश्वरपर्य्यन्तात् पदार्थान् ज्ञात्वा मनुष्यैः क्रियासिद्धिः सदैव कार्या॥१९॥

पदार्थ:-हे (सोम) परमेश्वर वा विद्वान्! (ते) आपके वा इस ओषधिसमूह के (या) जो (विश्वा) समस्त (धामानि) स्थान वा पदार्थ (हिवषा) विद्यादान वा ग्रहण करने की क्रियाओं से (यज्ञम्) क्रियामय यज्ञ को (यजन्ति) संगत करते हैं (ता) वे सब (ते) आपके वा इस ओषधिसमूह के हम लोगों को प्राप्त हों, जिससे अल्प (परिभूः) सबके ऊपर विराजमान होने (गयस्फानः) धन बढ़ाने और (प्रतरणः) दुःख से प्रत्यक्ष व्राप्तेवास (सुवीरः) उत्तम-उत्तम वीरों से युक्त (अवीरहा) अच्छी शिक्षा और विद्या से कातरों को भी सख देनेवाले (अस्तु) हों, इससे हम लोगों के (दुर्य्यान्) उत्तम स्थानों को (चर) प्राप्त हुज्यि। १९११

मण्डल-१। अनुवाक-१४। सूक्त-९१

भावार्थ:-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। कोई भी सृष्टि के पदार्थों के गुणों को विना जाने उनसे उपकार नहीं ले सकता है, इससे विद्वानों के संग से पृथ्वी से लेकर ईश्वरपर्यन्त यथायोग्य सब पदार्थी को जानकर मनुष्यों को चाहिये कि क्रियासिद्धि सदैव करें॥१९॥

पुन: स किं करोतीत्युपदिश्यते॥

फिर वह क्या करता है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।

सोमों धेनुं सोमो अर्वन्तमाशुं सोमों वीरं कर्मण्यं ददाति। सादुन्यं विदुथ्यं सुभेयं पितृश्रवंणुं या ददाशदस्मै॥२०॥२०॥

सोर्मः। धेनुम्। सोर्मः। अर्वन्तम्। आशुम्। सोर्मः। वीरम्। कर्मण्यम्। दुद्दात्। सुद्दन्यम्। विदुर्थ्यम्। सुभेर्यम्। पृतुऽश्रवणम्। यः। दर्दाशत्। अस्मै॥२०॥

पदार्थ:-(सोम:) उक्तः (धेनुम्) वाणीम् (सोमः) (अर्बन्तम्) अश्वम् (आशुम्) शीघ्रगामिनम् (सोमः) (वीरम्) विद्याशौर्यादिगुणोपेतम् (कर्मण्यम्) कर्मणा सम्पन्नम् कर्मवेषाद्यत्। (अष्टा०५.१.१००) इति कर्मशब्दाद्यत्। ये चाऽभावकर्मणोः (अष्टा०६.४-१६८) इति प्रकृतिभावश्च। (ददाति) (सदन्यम्) सदनं गृहमर्हति। छन्दिस च। (अष्टा०५.१.६७) इति सदनशब्दाद्यत्। अन्येषामपीति दीर्घः। (विदथ्यम्) विदथेषु यज्ञेषु युद्धेषु वा साधुम् (सभेयम्) सभायां स्मधुम्। ढश्छन्दिस। (अष्टा०४.४.१०६) इति सभाशब्दाद्यत्। (पितृश्रवणम्) पितरो ज्ञानिनः श्रूयन्ते थेन तम् (यः) सभाध्यक्षः सोमराजो वा (ददाशत्) दाशति। लडथें लेट्। बहुलं छन्दसीति शप्रभूनि श्लु)। (अस्मै) धर्मात्मने॥२०॥

अन्वयः-यः सोमोऽस्मै सादन्यं विद्ध्यं सभेय पितृश्रवणं ददाशत् स सोमोऽस्मै धेनुं स सोम आशुमर्वन्तं सोमः कर्मण्यं वीरं च ददाति॥२०॥

भावार्थ:-अत्र श्लेषास्रङ्कार:। यथा विद्वांस: सुशिक्षितां वाणीमुपदिश्य सुपुरुषार्थं प्राप्यं कार्यसिद्धि: कारयन्ति, तथैव सोमप्ज ओषधिगण: श्रेष्ठानि बलानि पुष्टिं च करोति॥२०॥

पदार्थ:-(य:) जो समाध्येक्ष आदि (अस्मै) इस धर्मात्मा पुरुष को (सादन्यम्) घर बनाने के योग्य सामग्री (विद्थ्यम्) यज्ञ वा युद्धों में प्रशंसनीय तथा (सभेयम्) सभा में प्रशंसनीय सामग्री और (पितृश्रवणम्) ज्ञानी लोग जिससे सुने जाते हैं, ऐसे व्यवहार को (ददाशत्) देता है, वह (सोम:) सोम अर्थात् सभाष्यक्ष आदि सोमलतादि ओषधि के लिये (धेनुम्) वाणी को (आशुम्) शीघ्र गमन करनेवाले (अर्वन्तम्) अश्व को या (सोम:) उत्तम कर्मकर्ता सोम (कर्मण्यम्) अच्छे-अच्छे कामों से सिद्ध हुए (वीरम्) बिद्धा और शूरता आदि गुणों से युक्त मनुष्य को (ददाति) देता है॥२०॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जैसे विद्वान् उत्तम शिक्षा को प्राप्त वाणी का उपदेश कर अच्छे पुरुषार्थ को प्राप्त होकर कार्यसिद्ध कराते हैं, वैसे ही सोम औषिधयों का समूह श्रेष्ठ बल और पृष्टि को कराता है॥२०॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा है, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अषोळ्हं युत्सु पृत्नेनासु पप्ति स्वर्षामप्सां वृजनेस्य गोपाम्। भरेषुजां सुक्षितिं सुश्रवसं जर्यन्तं त्वामनुं मदेम सोम॥२१॥

अर्षाळ्हम्। युत्ऽसु। पृत्नेनासु। पप्रिम्। स्वःऽसाम्। अप्साम्। वृजनस्य। गिपम्। ध्येषुऽजाम्। सुऽक्षितिम्। सुऽश्रर्वसम्। जर्यन्तम्। त्वाम्। अर्नु। मुद्देम्। सोम्॥२१॥

पदार्थ:-(अषाढम्) शत्रुभिरसह्यमितरस्करणीयम् (युत्सु) संग्रामेषु अत्र संपदादिलक्षणः क्विप्। (पृतनासु) सेनासु (पिष्रम्) पालनशीलम् (स्वर्षाम्) यः एवः सुखं सनोति तम्। सनोतेरनः। (अष्टा०८.३.१०८) अनेन षत्वम्। (अप्साम्) योऽपो जलानि सनुते तम् (वृजनस्य) बलस्य पराक्रमस्य। वृजनिमित बलनामसु पिठतम्। (निघं०२.९) (गोपाम्) एक्ष्मिम् (अप्रेषुजाम्) बिभिति राज्यं यैस्ते भराः। भराश्च त इषवस्तान् भरेषून् जनयित तम्। अत्रापि विरू अनुमासिकस्यात्वं च। (सुक्षितिम्) शोभनाः क्षितयो राज्ये यस्य यस्माद्वा तम्। (सुश्रवसम्) शोभनिति श्रवांसि श्रवणानि वा यस्य यस्माद्वा तम् (जयन्तम्) विजयहेतुम् (त्वाम्) (अनु) आनुकूद्य (मदेम) आनिन्दता भवेम। अत्र विकरणव्यत्ययेन श्यनः स्थाने शप्। (सोम्) सेनाद्यध्यक्ष॥२१॥

अन्वयः-हे सोम! यथौषधिगणो युत्स्वयाह पृतृतासु पप्रिं वृजनस्य गोपां भरेषुजां सुक्षितिं स्वर्षामप्सां सुश्रवसं जयन्तं त्वामरोगं कृत्वाऽऽनन्दयति, तथैतं,प्राप्ये चयमनुमदम॥२१॥

भावार्थ:-अत्र वाचकतुप्तोषमाल्ङ्कारः। निह मनुष्याणां सर्वगुणसम्पन्नेन सेनाध्यक्षेण सर्वगुणकारकाभ्यां सोमाद्योषित्राण्यिक्ज्ञानसेवन्।भ्यां च विना कदाचिदुत्तमराज्यमारोग्यं च भवितुं शक्यम्। तस्मादेतदाश्रयः सर्वैः सर्वद्भकर्तव्युभा २१॥

पदार्थ:-हे (सोम) सिना आदि कार्यों के अधिपति! जैसे सोमलतादि ओषधिगण (युत्सु) संग्रामों में (अषाढम्) शत्रूओं से तिरस्कार को न प्राप्त होने योग्य (पृतनासु) सेनाओं में (पप्रिम्) सब प्रकार की रक्षा करनेवाले (वृज्यस्य) पराक्रम के (गोपाम्) रक्षक (भरेषुजाम्) राज्यसामग्री के साधक बाणों के बनानेवाले (सृक्षितिम्) जिसके राज्य में उत्तम-उत्तम भूमि हैं (स्वर्षाम्) सब के सुखदाता (अप्साम्) जलों को देनेवाले (सृश्रवसम्) जिसके उत्तम यश वा वचन सुने जाते हैं (जयन्तम्) विजय के करनेवाले (त्वाम्) आपको रोगरहित करके आनन्दित करता है, वैसे उसको प्राप्त होकर हम लोग (अनुमदेम) अभूमोद को प्राप्त होवें॥ २१॥

मण्डल-१। अनुवाक-१४। सूक्त-९१

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को सब गुणों से युक्त सेन्ध्यक्ष और समस्त गुण करनेवाले सोमलता आदि ओषधियों के विज्ञान और सेवन के विना कभी उन्हम राज्य और आरोग्यपन प्राप्त नहीं हो सकता, इससे उक्त प्रबन्धों का आश्रय सबको करना चाहिये।

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा है, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

त्विममा ओषधी: सोम् विश्वास्त्वमुपो अजनयुस्त्वं गाः। त्वमा तत्रस्थोर्वर्शन्तरिक्षं त्वं ज्योतिषा वि तमो ववर्थ॥ २,२॥

त्वम्। ड्रमाः। ओर्षधीः। सोम्। विश्वाः। त्वम्। अपः। अजन्यः। त्वम्। गाः। त्वम्। आ। तृतस्य। उरु। अन्तरिक्षम्। त्वम्। ज्योतिषा। वि। तर्मः। वृवर्थ्।। २२॥

पदार्थ:-(त्वम्) जगदीश्वर: (इमाः) प्रत्यक्षीभूताः (ओषधीः) सर्वरोगनाशिकाः सोमाद्योषधीः (सोम) सोम्यगुणसम्पन्न आरोग्यबलप्रापक (विश्वाः) अखिलाः (त्वम्) (अपः) बलानि जलानि वा (अजनयः) जनयसि। अत्र लड्धें लङ्। (त्वम्) अयं वा (गाः) इन्द्रियाणि किरणान् वा (त्वम्) (आ) (ततन्थ) विस्तृणोषि। अत्र वभूथाततन्थ जगृम्भववयिति निगमः (अष्टा०७.२.६४) अनेन सूत्रेणाततन्थ, ववर्थेत्येतौ निपात्येते। (उरु) बहु (अन्तरिक्षम्) अक्ष्येश्वर्य (त्वम्) (ज्योतिषा) विद्यासुशिक्षाप्रकाशेन शीतलेन तेजसा वा (वि) विगतार्थे (तमः) अविद्योक्ष्रित्सताख्यं चक्षुदृष्ट्यावरकं वाऽन्धकारम् (ववर्थ) वृणोषि। अत्राऽपि वर्त्तमाने लिट्॥२२॥

अन्वय:-हे सोमेश्वर! यतस्त्वं चेमा विश्वा आष्ट्रधीरजनयस्त्वमपस्त्वं गाश्चाजनयस्त्वं ज्योतिषाऽन्तरिक्षमुर्वाततन्थ त्वं ज्योतिषा तमो वि ववर्थ तस्माद्भवानस्माभिः सर्वैः सेव्य:॥२२॥

भावार्थ:-येनेश्वरेण किष्धा सृष्टिरुत्पोदिता स एव सर्वेषामुपास्य इष्टदेवोऽस्ति॥२२॥

पदार्थ:-हे (सोम) समस्त गुणयुक्त आरोग्यपन और बल देनेवाले ईश्वर! जिस कारण (त्वम्) आप (इमा:) प्रत्यक्ष (विश्वा) समस्त (ओषधी:) रोगों का विनाश करनेवाली सोमलता आदि ओषधियों को (अजनय:) उत्पन्न करते हो (त्वम्) आप (अप:) जलों (त्वम्) आप (गा:) इन्द्रियों और किरणों को प्रकाशित करते हो (त्वम्) अप (ज्योतिषा) विद्या और श्रेष्ठशिक्षा के प्रकाश से (अन्तरिक्षम्) आकाश को (उक्त) बहुत (आ) अच्छी प्रकार (ततन्य) विस्तृत करते हो और (त्वम्) आप उक्त (विद्या) आदि गुणों से (तम:) अविद्या, निन्दित शिक्षा वा अन्धकार को (वि ववर्थ) स्वीकार नहीं करते, इससे आप सब लोगों से सेवा करने योग्य हैं॥२२॥

९८६

ऋग्वेदभाष्यम्

भावार्थ:-जिस ईश्वर ने नाना प्रकार की सृष्टि बनाई है, वहीं सब मनुष्यों को उपासना के यौँग्ये इष्टदेव है॥२२॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा है, यह उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

देवेर्न नो मर्नसा देव सोम ग्रायो भागं सहसावन्नभि युध्य। मा त्वा तनदीशिषे वीर्यस्योभयेभ्यः प्र चिकित्सा गविष्टौ॥२३॥ २३॥

देवेनं। नः। मनसा। देव। सोम। रायः। भागम्। सहसाऽवन्। अभि। युध्य। मा। त्वा। आ। तन्त्। ईर्शिषे। वीर्यस्य। उभयेभ्यः। प्र। चिकित्स। गोऽईष्टौ॥२३॥

पदार्थ:-(देवेन) दिव्यगुणसम्पन्नेन (नः) अस्मभ्यम् (मगस्र) शिल्पक्रियादिविचारेण (देव) दिव्यगुणसम्पन्न (सोम) सर्वविद्यायुक्त (रायः) धनस्य (भागम्) भूगनीयमंशम् (सहसावन्) अत्यन्तबलवन्। सहसेत्यव्ययम्। भूमार्थे मतुप् च। (अभि) आधिमुख्ये (युध्य) युध्यस्व। अत्र व्यत्ययेन परस्मैपदम्। (मा) निषेधे (त्वा) (तनत्) विस्तारयेत् (ईशिषे) (वीर्यस्य) पराक्रमस्य (उभयेभ्यः) सोमाद्योषधिगणेभ्यः शत्रुभ्यश्च (प्र) (चिकित्स) (गविष्टी) विस्तिर्यपृथिवीराज्यविद्याप्रकाशानामिष्टयो यस्मिँस्तस्मिन्॥२३॥

अन्वयः – हे सहसावन् देव सोम! त्वं देवेन मनसा शत्रुभिः सह रायोऽभियुध्य यस्त्वं नोऽस्मभ्यम् रायो भागमीशिषे तं त्वा गविष्टौ शत्रुर्मा तनत् क्लेशयुक्तं क्लेशपुदं वा मा कुर्यात् त्वं वीर्यस्योभयेभ्यो मा प्रचिकित्स॥२३॥

भावार्थ:-मनुष्यै: परमोत्तमस्य सेनाध्यक्षस्योष्ट्रिधगणस्य वाश्रयं कृत्वा युद्धे प्रवृत्योत्साहे स्वसेनां संयोज्य शत्रुसेनां पराजय्य चक्रवर्त्तराज्येश्वर्यं प्राप्तान्त्रमिति॥२३॥

अत्राध्येत्रध्यापकादीनां विद्याध्ययनादिकर्मणां च सिद्धिकारकस्य सोमार्थस्योक्तत्वादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वैद्यम्॥

इत्येकन्वितृतम् ९१ सूक्तं त्रयोविंशतिः २३ वर्गश्च समाप्तः॥

पदार्थ:-हे (सहसावन) अत्भन्त बलवान् (देव) दिव्यगुणसम्पन्न (सोम) सर्व विद्या और सेना के अध्यक्ष! आप (देवेन) दिव्यगुण्युक्त (मनसा) विचार से (राय:) राज्यधन के लाभ को (अभि) शत्रुओं के सम्मुख (युध्य) युद्ध की जिये जो आप (न:) हमारे लिये धन के (भागम्) भाग के (ईशिषे) स्वामी हो उस (त्वा) तुझको (श्विष्टौ) इन्द्रिय और भूमि के राज्य के प्रकाशों की सङ्गतियों में शत्रु (मा तनत्) पीड़ायुक्त में करें आप (वीर्यस्य) पराक्रम को (उभयेभ्यः) अपने और पराये योद्धाओं से (मा प्रचिकितस्य) संशययुक्त मत हो॥२३॥

मण्डल-१। अनुवाक-१४। सूक्त-९१

भावार्थ:-मनुष्यों को चाहिये कि परम उत्तम सेनाध्यक्ष और ओषधिगण का आश्रय और युद्ध में प्रवृत्ति कर उत्साह के साथ अपनी सेना को जोड़ और शत्रुओं की सेना का पराजय कर सक्रवर्शि ग्रोज्य के ऐश्वर्य को प्राप्त हों॥२३॥

इस सूक्त में पढ़ने-पढ़ानेवालों आदि की विद्या के पढ़ने आदि कामों की सिद्धि करनेवाले (सोम) शब्द के अर्थ के कथन से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के स्थि संगति जाननी चाहिये॥

चाहिये॥ यह इक्कानवाँ ९१ सूक्त और तेईसवाँ २३ वर्ग सम्बि अथाऽष्टादशर्चस्य द्विनवितिमस्य सूक्तस्य राहूगणपुत्रो गोतम ऋषि:। उषा देवता। १,२ निचृज्जगती। ३ जगती। ४ विराड् जगती छन्दः। निषादः स्वरः। ५,७,१२ विराट् त्रिष्टुप्। ६,१० निचृत् त्रिष्टुप्। ८,९ त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। ११ भुरिक् पड्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः। १३ निचृत्परोष्णिक्। १४,१५ विराट्परोष्णिक्। १६-१८ उष्णिक् छन्दः। ऋष्भः

स्वर:॥

अथोषस: संबन्ध्यर्थकृत्यान्युपदिश्यन्ते॥

अब अठारह ऋचावाले बानवें सूक्त का आरम्भ है। इसके प्रथम मन्त्र से उषस सब्द के अर्थसंबन्धी कामों का उपदेश किया है।

प्ता उ त्या उषसं: केतुमकत पूर्वे अर्धे रजसो भानुमं करे। निष्कृणवाना आर्युधानीव धृष्णवः प्रति गावोऽरुषीर्यन्ति मातरः।।।

पुताः। ऊम् इति। त्याः। उषसः। केतुम्। अक्रतः। पूर्वे। अर्थे रजेसः। भानुम्। अञ्चते। निःऽकृण्वानाः। आर्युधानिऽइव। धृष्णवः। प्रति। गार्वः। अरुषीः। युन्ति। मातरः॥ श्रा

पदार्थ:-(एता:) प्रत्यक्षाः (३) वितर्के (त्याः) दूरलेकस्य अप्रत्यक्षाः (उषसः) प्रातःकालस्था प्रकाशाः (केतुम्) विज्ञानम् (अक्रत) कारयन्ति। अत्र णिलीपः। (पूर्वे) पुरो देशे (अर्धे) (रजसः) भूगोलस्य (भानुम्) सूर्यदीप्तिम् (अञ्चते) प्रापयन्ति (निष्कृण्वाना) दिनानि निष्पादयन्त्यः (आयुधानीव) यथा वीरैर्युद्धविद्यया प्रक्षिप्तानि शस्त्राणि गर्व्छन्त्यागच्छ्रमति तथा (धृष्णवः) प्रगलभगुणप्रदाः (प्रति) क्रमार्थे (गावः) गमनशीलाः (अरुषीः) अरुष्यो रक्तगुणविशिष्टाः (यन्ति) प्राप्नुवन्ति (मातरः) मातृवत्सर्वेषां प्राणिनां मान्यकारिण्यः।।१। एतास्ता उषसः केतुमकृषत प्रज्ञानम्। एकस्या एव पूजनार्थे बहुवचनं स्यात्। पूर्वेऽर्धेऽन्तरिक्षलोकस्य समञ्जते भानुना। निष्कृण्वाना आयुधानीव धृष्णवः। निरित्येष समित्येतस्य स्थाने। 'एमीदेषां निष्कृतं जारिणीव। (ऋ०१०.३४.४) इत्यपि निगमो भवति। प्रति यन्ति। गावो गमनात्। अरुषीरारोचनित्। पातरो भानो निर्मात्र्यः। (निरु०१२.७)॥१॥

अन्वयः-हे मनुष्ताः यूयं ग्रुगं एता उ त्या उषसः केतुमक्रत या रजसः पूर्वेऽर्धे भानुमञ्जते निष्कृण्वानाऽऽयुधानीव धृष्णाचौऽरुषीमृतिरः प्रति गावो यन्ति ताः सम्यग् विजानीत॥१॥

भावार्थः हह सृष्ट्रौ सर्वदा सूर्यप्रकाशो भूगोलार्धं प्रकाशयित भूगोलार्द्धे च तमस्तिष्ठति। सूर्यप्रकाशमन्त्ररेण कस्यचिद्वस्तुनो ज्ञानिवशेषो नैव जायते। सूर्यिकरणाः प्रतिक्षणं भूगोलानां भ्रमणेन गच्छन्तीव रूश्यन्ते योषाः स्वस्वलोकस्था सा प्रत्यक्षा या दूरलोकस्था साऽप्रत्यक्षा। इमाः सर्वा सर्वेषु लोकेषु त्र सदृशगुष्णः सर्वासु दिक्षु प्रविष्टाः सन्ति। यथाऽऽयुधान्यऽभिमुखदेशाभिगमनेन लोम्प्रविलोम्पातीर्गच्छन्ति तथैवोषसोऽनेकविधानामन्येषां लोकानां गतियोगाल्लोमप्रतिलोमगतयो गुष्किनीित मनुष्यैर्वेद्यम्॥१॥

मण्डल-१। अनुवाक-१४। सूक्त-९२

पदार्थ:-हे मनुष्यो! तुम जो (एता:) देखे जाते (3) और जो (त्या:) देखे नहीं जाते अर्थात् दूर देश में वर्तमान हैं वे (उषस:) प्रात:काल के सूर्य्य के प्रकाश (केतुम्) सब पदार्थों के ज्ञानू को (अर्क्रत:) कराते हैं, जो (रजस:) भूगोल के (पूर्व) आधे भाग में (भानुम्) सूर्य के प्रकाश को (अर्क्रत:) पहुंचाती और (निष्कृण्वाना:) दिन-रात को सिद्ध करती हैं वे (आयुधानीव) जैसे वीरों की यूद्ध विद्या से छोड़े हुए बाण आदि शस्त्र सूधे-तिरछे जाते-आते हैं वैसे (धृष्णव:) प्रगल्भता के गुणों को देने (अर्फ्षी:) लालगुणयुक्त और (मातर:) माता के तुल्य सब प्राणियों का मान करनेवाली (प्रतिगाव:) उस सूर्य के प्रकाश के प्रत्यागमन अर्थात् क्रम से घटने-बढ़ने से जगह-जगह में (यन्ति) घटती बढ़ती से पहुंचती है, उनको तुम लोग जानो॥१॥

भावार्थ:-इस सृष्टि में सदैव सूर्य का प्रकाश भूगोल के आधे भाग की प्रकाशित करता है और आधे भाग में अन्धकार रहता है। सूर्य के प्रकाश के विना किसी पदार्थ का विशेष ज्ञान नहीं होता। सूर्य की किरणें क्षण-क्षण भूगोल आदिलोकों के घूमने से गमन करतीसी द्रीख पड़ती हैं। जो प्रात:काल के रक्त प्रकाश अपने-अपने देश में हैं वे प्रत्यक्ष और दूसरे देश में हैं वे अप्रत्यक्ष। ये सब प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रात:काल की वेला सब लोकों में एकसी सब दिशाओं में प्रवेश करती है। जैसे शस्त्र आगे-पीछे जाने से सीधी-उलटी चाल को प्राप्त होते हैं, वैसे अनेक प्रकार के प्रात:प्रकाश भूगोल आदि लोकों की चाल से सीधी-तिरछी चालों से युक्त होते हैं, यह बात मनुष्यों को जाननी चाहिये॥१॥

पुनस्ताः क्रीदृश्य इत्युपदिश्यते॥

फिर वे प्रात:काल की ब्रेला कैसी है। इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

उद्पेपप्तन्नरुणा भानवो वृथा स्वायुजो अरुषीर्गा अयुक्षत।

अक्रन्नुषासौ वयुनानि यूर्विथा रुशन्तं भानुमरुषीरशिश्रयु:॥२॥

उत्। अपूप्तन्। अरुपाः। भानवेः। वृथाः सुऽआयुर्जः। अरुषिः। गाः। अयुक्षतः। अर्क्षन्। उषसंः। वयुनि। पूर्वऽथां। रुशन्तम्। भानुम्। अरुषिः। अर्षिः। अर्षिः। अर्थाः। २॥

पदार्थ:-(उत्) ऊर्ध्वे (अपप्तन्) पतन्ति (अरुणाः) आरक्ताः (भानवः) सूर्यस्य किरणाः (वृथा) (स्वायुजः) याः सुष्ठु समन्त्राद्युञ्जन्ति ताः (अरुषीः) आरक्तगुणाः (गाः) पृथिवीः (अयुक्षत) युञ्जते (अक्रन्) कुर्वन्ति (उषसः) प्रातःकालीनाः सूर्यस्य रश्मयः। अत्रान्येषामिष दृश्यत इति दीर्घः। (वयुनानि) विज्ञानानि कर्माणि षा (पूर्वथा) पूर्वा इव। अत्र प्रत्नपूर्व० (अष्टा०५.३.१११) इत्याकारकेण योगेनेवार्थे थाल् प्रत्येषः। (रुशन्तम्) हिंसन्तम्। रुशदिति वर्णनाम, रोचतेर्ज्वलितिकर्मणः। (निरु०२.२०) (भानुम्) सूर्यम् (अरुषीः) अरुष्य आरक्तगुणाः (अशिश्रयुः) श्रयन्ति सेवन्ते। अत्र लिङ प्रथमस्य बहुवचने

990

विकरणव्यत्ययेन शपः स्थाने श्लुः। **सिजभ्यस्त०** (अष्टा०३.४.१०९) इति झेर्जुस्। **जुसि ⁽च** (अष्टा०७.३.८३।) इति गुणः॥२॥

अन्वयः - हे विद्वांसो! या अरुणाः स्वायुज उषसो भानवः वृथोदपप्तन् गा अरुषीरयुक्षत् युक्तिः च अरुषीर्वयुनान्यक्रन् पूर्वथा पूर्वा इव पूर्वदैनिक्युषा इव परं परं रुशन्तं भानुमशिश्रयुस्ता युक्त्या सेवनीयाः

भावार्थ:-ये सूर्यस्य किरणा भूगोलान् सेवित्वा क्रमशो गच्छति ते साय्र्यत्भिमिषोगेनारक्ता भूत्वाऽऽकाशं शोभयन्ति। यदैता उषसः प्रवर्तन्ते तदा प्राणिनां विज्ञानानि जायन्ते। ये भूमि स्पृष्ट्वा आरक्ताः सूर्यं सेवित्वा रक्तं कृत्योषधीः सेवन्ते ता जागिरतैर्मनुष्येः सेवनीयाः।।

पदार्थ:-हे विद्वानो! जो (अरुणा:) रक्तगुणवाली (स्वायुज:) और अच्छे प्रकार सब पदार्थों से युक्त होती हैं, वे (उषस:) प्रात:कालीन सूर्य की (भानव:) किरणें (चृथा) मिथ्या सी (उत्) ऊपर (अपप्तन्) पड़ती हैं अर्थात् उनमें ताप न्यून होता है, इससे शीतल सी होती हैं और उनसे (गा:) पृथिवी आदि लोक (अरुषी:) रक्त गुणों से (अयुक्षत) युक्त होते हैं। जो (अरुषी:) रक्तगुण वाली सूर्य की उक्त किरणें (वयुनानि) सब पदार्थों का विशेष ज्ञान वा सब कामों को (अक्रन्) कराती हैं, वे (पूर्वथा) पिछले-पिछले (रुशन्तम्) अन्धकार के छेदक (भानुम्) सूर्य के समान अलग-अलग दिन करनेवाले सूर्य का (अशिश्रयु:) सेवन करती हैं, उनका सेवन युक्ति से करना चाहिय।। २॥

भावार्थ:-जो सूर्य की किरणें भूगोल आदि सिकों को खेवन अर्थात् उन पर पड़ती हुई क्रम-क्रम से चलती जाती हैं, वे प्रात: और सायङ्काल के समय भूमि के संयोग से लाल होकर बादलों को लाल कर देती हैं और जब ये प्रात:काल लोकों में प्रवृत्त अर्थात् उदय को प्राप्त होती हैं, तब प्राणियों को सब पदार्थों के विशेष ज्ञान होते हैं। जो भूमि पर किरो हुई लालवर्ण की किरणें हैं, वे सूर्य के आश्रय होकर और उसको लाल कर ओषधियों का स्वन करती हैं, उनका सेवन जागरितावस्था में मनुष्यों को करना चाहिये॥२॥

पुनस्ताः किं कुर्वन्तीत्युपदिश्यते॥

फिर वें क्या कस्त्री हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अर्चन्ति नारीरुपसो ने बिष्टिभीः समानेन योजनेना परावर्तः।

इषुं वहन्त्री: सुकृते सुदानवे विश्वेदह् यर्जमानाय सुन्वते॥३॥

अर्चित्रा नार्सः। अपसं:। ना विष्टिऽभिः। समानेनं। योजेनेन। आ। प्राऽवर्तः। इषेम्। वहन्तीः। सुऽकृते। सुऽदानेवे। क्रिशा देता अहे। यजमानाय। सुन्वते॥३॥

पदार्थ:-(अर्चन्ति) सत्कुर्वन्ति (नारी:) स्त्री: (अपसः) उत्तमानि कर्माणि (न) इव (विष्टिभिः) व्यार्ष्तिभिः (समानेन) तुल्येन (योजनेन) योगेन (आ) समन्तात् (परावतः) दूरदेशात् (इषम्) अन्नादिकम्

मण्डल-१। अनुवाक-१४। सूक्त-९२

(वहन्ती:) प्रापयन्ती: (सुकृते) धर्मात्मने (सुदानवे) सुष्ठु दानकरणशीलाय (विश्वा) विश्वानि स्वापि (इत्) एव (अह) दु:खविनिग्रहे (यजमानाय) पुरुषार्थिने (सुन्वते) ओषध्याद्यभिषवसेवनं कुर्वते॥ हू।।

अन्वय:-या उषसो विष्टिभिः समानेन योजनेन परावतो देशान्नारीर्न पुरुषान् सुकृते सुदान्ते सुजमानाय विश्वान्यपसः इषं चावहन्तीरह तद् दुःखविनाशनेनार्चन्तीदेव वर्त्तन्ते ता यथायोग्यं सर्वैः सेवनीयाःग्र३॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। यथा पतिव्रताः स्त्रियः स्वस्वपतीन् सेवित्वा सत्कुर्विन्त्, तथैव सूर्यस्य किरणा भूमिं प्राप्य ततो निवृत्यान्तरिक्षे प्रकाशं जनयित्वा सर्वाणि वस्तूनि सम्पोष्य सर्वान् प्राणिनः सुखयन्ति॥३॥

पदार्थ:-सूर्य की किरणें (विष्टिभि:) अपनी व्याप्तियों से (समानेन) समान (योजनेन) योग से अर्थात् सब पदार्थों में एकसी व्याप्त होकर (परावत:) दूर देश से (न) जैसे (मारी:) पुरुषों के अनुकूल स्त्रियां (सुकृते) धर्मिष्ठ (सुदानवे) उत्तम दाता (सुन्वते) ओषिष्ट्र धादि पदार्थों के रस निकाल कर सेवन कर्ता (यजमानाय) और पुरुषार्थी पुरुष के लिये (विश्वा) समस्त उत्तम-उत्तम (अपसः) कर्मी और (इषम्) अन्नादि पदार्थों को (आवहन्ती:) अच्छे प्रकार प्राप्त वर्रती हुई उनके (अह) दु:खों के विनाश से (अर्चन्ति) सत्कार करती हैं, वैसे उषा भी हैं, उनका सिवन यथायों य सबको करना चाहिये॥३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जिस पतिव्रमा स्त्रियां अपने-अपने पति का सेवन कर उनका सत्कार करती हैं, वैसे ही सूर्य की किरणें भूमि की प्राप्त हुई वहाँ से निवृत्त हो और अन्तरिक्ष में प्रकाश प्रकट कर समस्त वस्तुओं को पुष्ट करके सब प्रणियों को सुख देती हैं॥३॥

पुनः स्र कीदृशीत्युपदिश्यते॥

फिर वे कैसी है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

अधि पेशांसि वपते सुतूरिवापोर्णुने वक्ष उस्रेव बर्जहम्।

ज्योतिर्विश्वसमे भूवनीय कृण्वती गावो वृजं व्युर्धेषा आवर्तमः॥४॥

अर्घ। पेशांसि। व्याते नृतः ईव। अर्प। ऊर्णुते। वर्धः। उसाऽईव। बर्जहम्। ज्योतिः। विश्वस्मै। भुवनाय। कृण्वती। गार्वः। न। व्रुजम्। वि। उषाः। आवृतित्यावः। तर्मः॥४॥

पदार्थ: -(अधि) उपरिभावे (पेशांसि) रूपाणि (वपते) स्थापयित (नृतूरिव) यथा नर्तको रूपाणि धरित तथा। नृतिष्ट्रध्योः कू:। (उणा०१.९१) अनेन नृतिधातोः कूप्रत्ययः। (अप) दूरीकरणे (ऊर्णुते) आच्छाद्यति (वक्षः) वक्षस्थलम् (उम्नेव) यथा गौस्तथा (बर्जहम्) अन्धकारवर्जकं प्रकाशं हन्ति तत् (ज्योतिः) प्रकाशम् (विश्वस्मै) सर्वस्मै (भुवनाय) जाताय लोकाय (कृण्वती) कुर्वती (गावः) धेनवः (न) इत्र (व्रजम्) विवासस्थानम् (वि) विविधार्थे (उषाः) (आवः) वृणोति (तमः) अन्धकारम्॥४॥

अन्वयः-हे मनुष्या! योषा नृतूरिव पेशांस्यिध वपते वक्ष उस्रेव बर्जहं तमोऽपोर्णुते विश्वस्मै भुवनाय ज्यौतिः कृण्वती व्रजं गावो न गच्छति तमोऽन्धकारं व्यावश्च स्वप्रकाशेनाच्छादयति तथा साध्वी स्त्री स्वपतिं प्रसादयेत्॥४॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। सूर्यस्य यत्केवलं ज्योतिस्तद्दिनं यत्तिर्यग्गति भाष्टिस्नु तदुषाश्चेत्युच्यते, नैतया विना जगत्पालनं संभवति तस्मादेतद्विद्या मनुष्यैरवश्यं भावनीया॥ अस्रि

पदार्थ: - हे मनुष्यो! जो (उषा:) सूर्य्य की किरण (नृतूरिव) जैसे नाटक करनेवाला वा नट वा नाचनेवाला वा बहुरूपिया अनेक रूप धारण करता है, वैसे (पेशांसि) नाना प्रकार के रूपों (अधिवपते) उहराती है वा (वक्ष:+उस्नेव) जैसे गौ अपनी छाती को वैसे (बर्जहम्) अन्धेरे की नष्ट करनेवाल प्रकाश के नाशक अन्धकार को (अप+ऊर्णुते) ढांपती वा (विश्वरमे) समस्त (भुवन्तर्य) उत्पन्न हुए लोक के लिये (ज्योति:) प्रकाश को (कृण्वती) करती हुई (व्रजम्) (गावो) (न) जैसे मिन्नसम्भन को गो जाती है, वैसे स्थानान्तर को जाती और (तम:) अन्धकार को (व्याव:) अपने प्रकाश में ढाप लेती है, वैसे उत्तम स्त्री अपनी पति को प्रसन्न करे॥४॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो सूर्य्य की केवल ज्योति है, वह दिन कहाता और जो तिरछी हुई भूमि पर पड़ती है वह (उषा) प्रात:काल की विला कहाती है अर्थात् प्रात: समय अति मन्द सूर्य्य की उजेली तिरछी चाल से जहाँ-तहां लोक लोकान्तरों पर पड़ती है, उसके विना संसार का पालन नहीं हो सकता। इससे इस विद्या की भावना मनुष्यों की अवश्य होनी चाहिये॥४॥

पुनः सा विद्शौत्युपद्भिश्यते॥

फिर वह कैसी है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

प्रत्युची रुशदस्या अदर्शि वि तिष्ठते बाह्यते कृष्णमभ्वम्। स्वरुं न पेशो विद्रथेष्वुञ्जञ्जिनं द्विता भानुमश्रेत्॥५॥२४॥

प्रति। अर्चि:। रुशत्। अस्याः। <u>अद्भिष्</u>ये वि। तिष्ठते। बाधते। कृष्णम्। अभ्वम्। स्वर्रम्। न। पेशः। विद्येषु। अञ्जन्। चित्रम्। द्विव:। दुहिता। भूमनुम्। अश्वेत्॥ ५॥)

पदार्थ:-(प्रति) प्रनियोगे (अर्चि:) दीप्तिः (रुशत्) तमो हिंसत् (अस्याः) उषसः (अदिशि) दृश्यते (वि) (तिष्ठते) (कृष्णम्) अन्धकारम्। कृष्णं कृष्यतेर्निकृष्टो वर्णः। (निरु०२.२०) (अभ्वम्) महत्तरम् (स्वरुम्) तापकमादित्यम् (न) इव (पेशः) रूपम् (विदथेषु) यज्ञेषु (अञ्चन्) अञ्चन्ति गच्छन्ति (चित्रम्) अद्भुतम् (दिवः) सूर्यस्य (दुहिता) दुहिता दूरे हिता पुत्री वा (भानुम्) कान्तिम् (अश्रेत्) श्रुयति। अत्र लप्टर्थे लङ् बहुलं छन्दसीति शपो लुक् च॥५॥

अन्वय:-यस्य अस्या उषसो रुशदर्चिरभ्वं कृष्णं तमो बाधते। या दिवो दुहिता स्वरुं न चित्रं भानुं पेशोऽश्रेत्। यथर्क्त्रिजो विद्शेषु क्रिया अञ्जॅस्तथा वितिष्ठते सोषा अस्माभि: प्रत्यदर्शि॥५॥

मण्डल-१। अनुवाक-१४। सूक्त-

0,93

भावार्थ:-अत्रोपमावाचकलुप्तोमालङ्कारौ। या सूर्य्यदीप्तिः स्वयं प्रकाशमाना सर्वान् कृतिः दृश्यदे सोषाः सूर्य्यदुहितेवास्तीति सर्वैर्मनुष्यैरवगन्तव्यम्॥५॥

पदार्थ:-जिस (अस्या:) इस प्रात:समय अन्धकार के विनाशरूप उषा की (मृशत) अन्धकार का नाश करनेवाली (अर्चि:) दीप्ति (अभ्वम्) बड़े (कृष्णम्) काले वर्णरूप अन्धकार को (बाधते) अलग करती है जो (दिव:) प्रकाशरूप सूर्य की (दुहिता) पुत्री के तुल्य (स्वरुम्) तप्नेषाले सूर्य के (त) समान (चित्रम्) अद्भुत (भानुम्) कान्ति (पेश:) रूप को (अश्रेत्) आश्रय करती है वा जैसे ऋत्विज् लोग (विदथेषु) यज्ञ की क्रियाओं में (अञ्चन्) प्राप्त होते हैं, वैसे (वितिष्ठते) विविध प्रकार से स्थिर होती है, वह प्रात: समय की वेला हम लोगों को (प्रत्यदिश) प्रतीत होती है॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। ओ सूर्य्य की उजेली आप ही उजाला करती हुई सबको प्रकाशित कर सीधी-उलटी दिखलाती है, वह प्रात:काल की वेला सूर्य्य की पुत्री के समान है, ऐसा मानना चाहिये॥५॥

पुन: सा कीदृश्यनया जीव: कि के तित्रिपदिश्यते॥

फिर वह कैसी है और इससे जीव क्या करता है, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अतारिष्म तमसस्पारमस्योषा उच्छन्ती व्युनी कुर्गीति।

श्रिये छन्दो न समयते विभाती सुप्रतीका सौमन्सायाजीगः॥६॥

अर्तारिष्मा तमसः। पारम्। अस्य। अषाः उच्छन्ती वयुनां। कृणोति। श्रिये। छन्दः। न। स्मयते। विऽभाती। सुऽप्रतीका। सौमनसायं। अजीग्रिति॥६॥

पदार्थ:-(अतारिष्म) संबंध्य प्लवेगिह वा (तमसः) अन्धकारस्येव दुःखस्य (पारम्) परभागम् (अस्य) प्रत्यक्षस्य (उषाः) (उष्कृती) विवासयन्ती दूरीकुर्वन्ती (वयुना) वयुनानि प्रशस्यानि कमनीयानि वा कर्माणि (कृणोति) कार्यति (श्रिये) विद्याराज्यलक्ष्मीप्राप्तये (छन्दः) (न) इव (स्मयते) आनन्दयति। अत्रान्तर्गतो ण्यर्थः। (विभावी) विविधानि मूर्तद्रव्याणि प्रकाशयन्ती (सुप्रतीका) शोभनानि प्रतीकानि यस्याः सा (सौमनसाय) धर्मे सुष्ठु प्रवृत्तमनस आह्वादनाय (अजीगः) अन्धकारं निगलित। गृ निगरणे इत्यस्माद् बहुलं छन्द्रसीति श्रियः स्थाने श्लुः। तुजादीनामिति दीर्घश्च॥६॥

अनुधः आ श्रिये छन्दो नेवोच्छन्ती विभाती सुप्रतीकोषा सर्वेषां सौमनसाय वयुनानि कृणोत्यन्धकारमजीगः स्मयते तथास्य तमसः पारमतारिष्म॥६॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। मनुष्यैर्यथेयमुषाः कर्मज्ञानानन्दपुरुषार्थधनप्राप्तिमिव दुःखस्य प्राप्तमन्धकारमिकारणहेतुरस्ति तथाऽस्यां सुपुरुषार्थेन प्रयत्नमास्थाय सुखोन्नतिर्दुःखहानिश्च कार्य्या॥६॥

पदार्थ:-जो (श्रिये) विद्या और राज्य की प्राप्ति के लिये (छन्दः) वेदों के (न) समान (उच्छन्ती) अन्धकार को दूर करती और (विभाती) विविध प्रकार के मूर्तिमान पदार्थों को प्रकाशित और (मुप्रतीका) पदार्थों की प्रतीति कराती है, वह (उषा:) प्रात:काल की वेला सबके (सौमनसाय) धार्मिक कर्नों के मनोरञ्जन के लिये (वयुनानि) प्रशंसनीय वा मनोहर कामों को (कृणोति) कराती (अजीगर्भ) अन्धकार को निगल जाती और (समयते) आनन्द देती है, उससे (अस्य) इस (तमसः) अन्धकार के (पारम्) पार को प्राप्त होते हैं, वैसे दु:ख के परे आनन्द को हम (अतारिष्म) प्राप्त होते हैं॥६॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्यों को योग्य है कि जैसे यह उप प्रातः किल की वेला कर्म, ज्ञान, आनन्द, पुरुषार्थ, धनप्राप्ति के द्वारा दु:खरूपी अन्धकार के निवारण का निदान है, वैसे इस वेला में उत्तम पुरुषार्थ से प्रयत्न में स्थित होके सुख की बढ़ती और दुःख का निर्वा करें॥६॥

पुनः सा कीदृशीत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसी है, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है

भास्वती नेत्री सूनृतानां दिवः स्तेवे दुहिता गोतेमेभिः। प्रजावतो नृवतो अश्वेबुध्यानुषो गोअत्राँ उप मिस् वाक्तिम्।।७॥

भास्वती। नेत्री। सूनृतानाम्। द्विवः। स्तवे। दुहिला। गोर्तमेषिः। प्रजाऽवतः। नृऽवतः। अश्चेऽबुध्यान्। उर्षः। गोऽअग्रान्। उर्प। मासि। वार्जान्॥७॥

पदार्थ:-(भास्वती) दीप्तिमती (नेत्री) या) जनान् व्यवहारान्नयित सा (सूनृतानाम्) शोभनकर्मान्नानाम् (दिव:) द्योतमानस्य सर्वितः (स्तवे) प्रशंसामि। अत्र शपो लुङ् न। (दुहिता) कन्येव (गोतमेभि:) सर्वविद्यास्तावकैर्विद्वद्धिः (प्रजाबतः) प्रशस्ताः प्रजा येषु तान् (नृवतः) बहुनायकसहितान्। छन्दसीर इति वत्वम्। सायणचार्येणेदमेशुद्धं व्याख्यातम्। (अश्वबुध्यान्) अश्वान् वेगवतस्तुरङ्गान् वा बोधयन्त्यवगमयन्त्येषु तान्। अश्वान्तर्गतो एथर्थो बाहुलकादौणादिकोऽधिकरणे यक् च। (उषः) उषाः (गोअग्रान्) गौर्भूमिरग्रे प्राप्नुद्धिन यैस्तान्। गौरित्युपलक्षणं तेन भूम्यादिसर्वपदार्थनिमित्तानि सम्पद्यन्ते। (उप) (मासि) प्रापयसि (काजान्) सुङ्ग्रामान्॥७॥

अन्वयः-यथा सूनृतान भागवती नेत्री दिवो दुहितोषरुषा गोतमेभिः स्तूयते तथैतामहं स्तवे। हे स्त्रि! यथेयं प्रजावतो नृवतोऽश्वबुध्र्मान् गोअग्रान् वाजानुपमासि तथा त्वं भव॥७॥

भावार्ष:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। यथा सर्वगुणसम्पन्नया सुलक्षणया कन्यया पितरौ सुखिनौ भवतः तथोर्षविद्यस्य चिद्वांसः सुखिनो भवन्तीति॥७॥

पदार्थ:-जैसे (सूनृतानाम्) अच्छे-अच्छे काम वा अन्न आदि पदार्थों को (भास्वती) प्रकाशित (नेन्नी) और मनुष्यों को व्यवहारों की प्राप्ति कराती वा (दिव:) प्रकाशमान सूर्य्य की (दुहिता) कन्या के स्मान क्या:) प्रात: समय की वेला (गोतमेभि:) समस्त विद्याओं को अच्छे प्रकार कहने-सुननेवाले

मण्डल-१। अनुवाक-१४। सूक्त-९२

विद्वानों से स्तुति की जाती है, वैसे इसकी मैं (स्तवे) प्रशंसा करूँ। हे स्त्री! जैसे यह उषा (प्रजावतः) प्रशंसित प्रजायुक्त (नृवतः) वा सेना आदि कामों के बहुत नायकों से युक्त (अश्वबुध्यान्) जिनसे चिग्रान् घोड़ों को वार-वार चैतन्य करें (गोअग्रान्) जिनसे राज्य भूमि आदि पदार्थ मिलें, उन् (वाज्यन्) संग्रामों को (उप मासि) समीप प्राप्त करती है अर्थात् जैसे प्रातःकाल की वेला से अन्धकार का नाश होकर सब प्रकार के पदार्थ प्रकाशित होते हैं, वैसे तु भी हो॥७॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे सब गुणआगरी सुलक्षणी कन्या से पिता, माता, चाचा आदि सुखी होते हैं, वैसे ही प्रात:काल की किला के गुण-अपगुण प्रकाशित करनेवाली विद्या से विद्वान लोग सुखी होते हैं॥७॥

पुनस्तया किं प्राप्यते सा किं करोतीत्युपदिश्यती।

फिर उससे क्या मिलता है और वह क्या करती है, यह क्षिय अपूर्व मन्त्र में कहा है।।

उष्दत्तम्भयां युशसं सुवीरं दासप्रवर्गं र्यिमश्रेष्ट्यम्। सुदंसंसा श्रवंसा या विभासि वार्जप्रसूता सुभगे क्रूडनेम्॥८॥

उर्ष:। तम्। अश्याम्। युशसंम्। सुऽवीरंम्। दास्र्यऽप्रविर्गम्। अर्थ्यऽबुध्यम्। सुऽदंसंसा। श्रवंसा। या। विऽभासिं। वार्जऽप्रसूता। सुऽभुगे। बृहन्तंम्॥८॥

पदार्थ:-(उष:) उषा: (तम्) (अष्रयाम्) प्राप्नुष्टाम्। अत्र व्यत्ययेन परस्समैपदं बहुलं छन्दसीति विकरणस्य लुक्। (यशसम्) अतिकीर्त्तियुक्तिप्) (सुवीरम्) शोभनाः सुशिक्षिता वीरा यस्मात्तम् (दासप्रवर्गम्) दासानां सेवकानां प्रवर्गाः समूहा यस्मिरतम् (रियम्) विद्याराज्यिश्रयम् (अश्वबुध्यम्) अश्वा बुध्यन्ते सुशिक्षन्ते येन तम् (सुदंससा) शोभनानि दंसांसि कर्माणि यस्मिन् (श्रवसा) पृथिव्याद्यत्रेन सह (या) (विभासि) विविधान् तीप्यति (वाजप्रभूता) वाजेन सूर्यस्य गमनेन प्रसूतोत्पन्ना (सुभगे) शोभना भगा ऐश्वर्ययोगा यस्याः सा (बृहन्तम्) अर्वदा वृद्धियोगेन महत्तमम्॥८॥

अन्वयः-या वाजप्रसूत सुभूगो उषरुषा अस्ति सा यं सुदंससा श्रवसा सह वर्त्तमानमश्चबुध्यं दासप्रवर्गं सुवीरं बृहन्तं यशसं रियं विभासि विविधनया प्रकाशयित तमहमश्यां प्राप्नुयाम्॥८॥

भावार्थ: च उषर्विद्धाया प्रयतन्ते त एवैतत्सर्वं वस्तु प्राप्य सम्पन्ना भूत्वा सदानन्दन्ति नेतरे॥८॥ पदार्थ: च त्वाजप्रसूता) सूर्य की गित से उत्पन्न हुई (सुभगा) जिसके साथ अच्छे-अच्छे ऐश्वर्य के पदार्थ संयुक्त होते हैं, वह (उष:) प्रात: समय की वेला है, वह जिस (सुदंससा) अच्छे कर्मवाले (श्रवमा) पृथिवी आदि अन्न के साथ वर्त्तमान वा (अश्वबुध्यम्) जिस सहायता से घोड़े सिखाये जाते (द्वासप्रवर्तम्) जिससे सेवक अर्थात् दासी का काम करनेवाले रह सकते हैं (सुवीरम्) जिससे अच्छे

९९६

सीखे हुए वीरजन हों, उस (बृहन्तम्) सर्वदा अत्यन्त बढ़ते हुए और (यशसम्) सब प्रकार प्रशंसायुक्ते (रियम्) विद्या और राज्य धन को (विभासि) अच्छे प्रकार प्रकाशित करती है, (तम्) उसको मैं (अश्याम्) पाऊँ॥८॥

भावार्थ:-जो लोग प्रात:काल की वेला के गुण-अवगुणों को जतानेवाली विद्या स्थानकरते हैं, वे यह सब वस्तु पाकर सुख से परिपूर्ण होते हैं, किन्तु और नहीं॥८॥

पुनः सा कीदृशीत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसी है, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

विश्वांनि देवी भुवनाभिचक्ष्यां प्रतीची चक्षुंरुर्विया वि भाति। (विश्वां जीवं चुरसें बोधर्यन्ती विश्वंस्य वार्चमविदन्मनायोऽ।।

विश्वानि। देवी। भुवना। अभिऽचक्ष्यं। प्रतीची। चक्षुः। उर्विग्रमा वि। भार्ति। विश्वम्। जीवम्। च्रसी। बोधयन्ती। विश्वस्य। वार्चम्। अविदुत्। मुनायोः॥९॥

पदार्थ:-(विश्वानि) सर्वाणि (देवी) देदीप्यमाना (शुक्ता) त्योक्याँन् (अभिचक्ष्य) अभितः सर्वतः प्रकाश्य। अत्रान्येषामिष दृश्यत इति दीर्घः। (प्रतीची) प्रतीचीनं गक्क्वती (चक्षुः) नेत्रवद्दर्शनहेतुः (उर्विया) उर्व्या पृथिव्या सह। अत्रोवीं शब्दाट्टास्थाने डियाजादेशः। (वि) विविधार्थे (भाति) प्रकाशयते (विश्वम्) सर्वम् (जीवम्) जीवसमूहम् (चरसे) व्यवहर्तुं भिज्यतुं व्य (बोधयन्ती) चेतयन्ती (विश्वस्य) सर्वस्य प्राणिजातस्य (वाचम्) वाणीम् (अविदत्) (मन्नायोः) यो प्रान इवाचरित तस्य। अत्र मानशब्दस्य हस्वत्वं पृषोदरादित्वात्॥९॥

अन्वय:-हे स्त्रि! यथा प्रतीची चुप्रो विश्वं जीवे बाधयन्ती देव्युषा मनायोर्विश्वस्य वाचमविदत् विन्दित चक्षुरिव विश्वानि भुवनाभिचक्ष्योर्विया सह विभाति तथा स्वं भवा। ९॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुतापमालङ्कार:। यथा सती स्त्री सर्वथा स्वपतिमानन्दयित तथैवोषा: समग्रं जगदानन्दयित॥९॥

पदार्थ:-हे स्त्रि जिसे (प्रतीर्ज़ी) सूर्य की चाल से परे को ही जाती और (चरसे) व्यवहार करने वा सुख और दु:ख भोगने के स्पिय (विश्वम्) सब (जीवम्) जीवों को (बोधयन्ती) चिताती हुई (देवी) प्रकाश को प्राप्त (ह्या:) प्रातः समय की वेला (मनायो:) मान के समान आचरण करनेवाले (विश्वस्य) जीवमात्र की (वाचम्) वाणी को (अविदत्) प्राप्त होती (चश्चः) और आंखों के समान सब वस्तु के दिखाई पड़्ये को निदान (विश्वानि) समस्त (भुवना) लोकों को (अभिचक्ष्य) सब प्रकार से प्रकाशित करती हुई (उर्विया) पृथिवी के साथ (विभाति) अच्छे प्रकार प्रकाशित होती है, वैसी तू भी हो॥९॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे उत्तम स्त्री सब प्रकार से अपने पित को अनिन्दित करती है, वैसे प्रात:काल की वेला समस्त जगत् को आनन्द देती है।।९॥

मण्डल-१। अनुवाक-१४। सूक्त-९२

पुन: सा कीदृशी किं करोतीत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसी है और क्या करती है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

पुनः पुनुर्जायमाना पुराणी समानं वर्णम्भि शुम्भमाना।

श्रुघ्नीवं कृत्नुर्विजं आमिनाना मर्तस्य देवी जुरयुन्त्यार्युः॥१०॥२५॥८

पुनःऽपुनः। जार्यमाना। पुराणी। समानम्। वर्णम्। अभि। शुम्भमाना। श्रृ<u>ष्ट्रीऽङ्को</u> कृत्नुः। विजः। आऽमिनाना। मर्तस्य। देवी। जुरर्यन्ती। आर्युः॥

पदार्थ:-(पुन:पुन:) प्रतिदिनम् (जायमाना) उत्पद्यमानाः (पुरोणीः) प्रवाहरूपेण सनातनी (समानम्) तुल्यम् (वर्णम्) रूपम् (अभि) अभितः (शुम्भमाना) प्रकाशयन्ती (श्रुघ्नीव) यथा वृकी शुनः श्रादीन् मृगान् कृन्तन्ती (कृत्नुः) छेदिका श्येनी इव (विजः) इत्तस्त्तश्चलतः पक्षिणः (आमिनाना) समन्ताद्धिंसन्ती। मीज् हिंसायामित्यस्य रूपम्। (मर्तस्य) मरणधर्मस्रहितस्य प्राणिजातस्य (देवी) प्रकाशमाना (जरयन्ती) हीनं कुर्वती (आयुः) जीवनम्॥१०॥

अन्वय:-या श्रघ्नीव कृत्नुर्विज आमिनानेव मर्तस्यायुर्जरयेन्त्री पुनःपुनर्जायमाना समानं वर्णमभिशुम्भमाना पुराणी देव्युषा अस्ति सा जागरितैर्मनुष्यैः सेवनीया॥१०॥

भावार्थ:-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कर्मा। येथा ज्यर्थांना प्रसिद्धा वा वृकी: मृगान् छिनत्ति यथा वा श्येन्युड्डीयमानान् पक्षिणो हन्ति तथेवेयमुष्ण अस्माकमायुः शनैः शनैः कृन्ततीति विदित्वाऽस्माभिरालस्यं त्यक्त्वा रजन्याश्चसी यास उत्थाय विद्याधर्मपरोपकारादिषु व्यवहारेषु यथावन्नित्यं वर्त्तितव्यम्। येषामीदृशी बुद्धिरस्ति आलस्याऽधर्मयार्मध्ये कथं प्रवर्त्तरन्॥१०॥

पदार्थ:-जो (श्वघ्नीव) क्रुत्ते और हिरणों को मारनेहारी वृकी के समान वा जैसे (कृतुः) छेदन करनेवाली श्येनी (विजः) इध्यु उधर चलते हुए पिक्षयों का छेदन करती है, वैसे (आमिनाना) हिंसिका (मर्त्तस्य) मरने-जीनेहार जीवमात्र की (आयुः) आयुर्दा को (जरयन्ती) हीन करती हुई (पुनःपुनः) दिनोंदिन (जायमाना) उपत्र होनेवाली (समानम्) एकसे (वर्णम्) रूप को (अभि) (शुम्भमाना) सब ओर से प्रकाशित करती हुई घा (पुराणी) सदा से वर्त्तमान (देवी) प्रकाशमान प्रातःकाल की वेला है, वह जागरित होके मृनुष्यों को सेंब्रेने योग्य है॥१०॥

भाक्ष्यः इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे छिपके वा देखते-देखते भेड़िया क्री स्त्री वृक्षी वन के जीवों को तोड़ती और जैसे बाजिनी उड़ते हुए पखेरुओं को विनाश करती है, वैसे ही यह प्रात:समय की वेला सोते हुए हम लोगों की आयुर्दा को धीरे-धीरे अर्थात् दिनों-दिन कारती है, ऐसा जान और आलस्य छोड़ कर हम लोगों को रात्रि के चौथे प्रहर में जाग के विद्या, धर्म

और परोपकार आदि व्यवहारों में नित्य उचित वर्त्ताव रखना चाहिये। जिनकी इस प्रकार की बुद्धि है, व लोग आलस्य और अधर्म्म के बीच में कैसे प्रवृत्त हों!॥१०॥

पुनः सा कीदृशीत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसी है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

व्यूर्ण्वती दिवो अन्तौ अबोध्यप स्वसौरं सनुतर्युयोति। प्रमिनती मनुष्यो युगानि योषो जारस्य चक्षसा वि भौति॥११॥

९९८

विऽऊपर्वती। दिवः। अन्तान्। अबोधि। अपं। स्वसारम्। सुनुतः। युयोति। प्रऽमिन्ती। मुनुष्यां। युगानि। योषां। जारस्यं। चक्षसा। वि। भाति॥ ११॥

पदार्थ:-(व्यूण्वंती) विविधान् पदार्थानाच्छादयन्ती (दिव्य) प्रकाशमेचस्य सूर्यस्य (अन्तान्) समीपस्थान् पदार्थान् (अबोधि) बोधयति (अप) निवारणे (स्वसारम्) भिन्निस्वरूपां रात्रिम् (सनुतः) सततम् (युयोति) मिश्रयति (प्रिमनती) प्रकृष्टतया हिंसन्ती (मपुष्या) मृनुष्याणां सम्बन्धीनि (युगानि) संवत्सरादीनि (योषा) कामिनी स्त्रीव (जारस्य) लम्प्रस्य सत्त्रज्ञरियतुः सूर्यस्य वा (चक्षसा) तित्रिमित्तभूतेन दर्शनेन (वि) विशेषे (भाति) प्रकाशते॥११।

अन्वयः-हे मनुष्या! योषा जारस्य योषेव सर्वेषाभायः सनुतः प्रिमिनती या स्वसारं व्यूर्ण्वत्यपयुयोति स्वयं विभाति चक्षसा दिवोऽन्तान् मनुष्या युगानि चाबोधि सा युग्रावरसेव्या॥ १८॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः मनुष्ट्रीर्यथा व्यभिचारिणी स्त्री जारपुरुषस्यायुः प्रणाशयित, तथा सूर्यस्य सम्बन्ध्यन्धकार्यनिवारणेन दिनकारिण्युषा वर्त्तते इति बुध्वा रात्रिंदिवयोर्मध्ये युक्त्या वर्त्तित्वा पूर्णमायुर्भोक्तव्यम्॥१४॥

पदार्थ: – हे मनुष्यो! जो प्रात: केल की वेला जैसे (योषा) कामिनी स्त्री (जारस्य) व्यभिचारी लम्पट कुमार्गी पुरुष की उमर की नाश करे, वैसे सब आयुर्दा को (सनुतः) निरन्तर (प्रिमिनती) नाश करती (स्वसारम्) और अपनी बहिन के सम्मान जो रात्रि है, उसको (व्यूण्वंती) ढांपती हुई (अपयुयोति) उसको दूर करती अर्थात दिन से अन्नग करती है और आप (वि) अच्छी प्रकार (भाति) प्रकाशित होती जाती है (चक्षसा) उस प्रातः ममय की वेला के निमित्त उससे दर्शन (दिवः) प्रकाशवान् सूर्य्य के (अन्तान्) समीप के पदार्थों को और (मनुष्या) मनुष्यों के सम्बन्धी (युगानि) वर्षों को (अबोधि) जनाती है, उसका सेव्य तुम युक्ति से किया करो॥११॥

भाषार्थ: इस मेन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि जैसे व्यभिचारिणी स्त्री जारकर्म करनेहार पुरुष की उमर का विनाश करती है, वैसे सूर्य्य से सम्बन्ध रखनेहारे अन्धकार की निवृत्ति से दिन को प्रसिद्ध करनेवाली प्रात:काल की वेला है, ऐसा जानकर रात और दिन के बीच युक्ति के पाथ क्रांवि वर्त्तकर पूरी आर्युदा को भोगें॥११॥

मण्डल-१। अनुवाक-१४। सूक्त-९२

पुन: सा कीदृशीत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसी है, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

पुश्रून्न चित्रा सुभगां प्रथाना सिन्धुर्न क्षोदं उर्विया व्यंश्वेत्। अमिनती दैव्यानि वृतानि सूर्यस्य चेति रृष्टिमभिर्दृशाना॥१२॥

पुशून्। न। चित्रा। सुऽभगां। प्रथाना। सिन्धुं:। न। क्षोदं:। उर्विया। वि। अश्वेत्। अमिनती दैव्यानि। वृतानि। सूर्यस्य। चेति। रुश्मिऽभिं:। दृशाना॥१२॥

पदार्थ:-(पशून्) गवादीन् (न) इव (चित्रा) विचित्रस्वरूप्रोषीः चित्रेत्युषर्नामसु पठितम्। (निघं०१.८) (सुभगा) सौभाग्यकारिणी (प्रथाना) प्रथते तरङ्गैः शब्दायमाना। उषः पक्षे पिक्षशब्दैः शब्दायमाना (सिन्धुः) विस्तीर्णा नदी (न) इव (क्षोदः) अन्मध्यलम् (उर्विया) अत्र टास्थाने डियाजादेशः। (वि) (अश्वेत्) व्याप्नोति (अमिनती) अहिंसन्ती (दैव्यानि) र्देवेषु विद्वत्सु जातानि (व्रतानि) सत्यपालनादीनि कर्माणि (सूर्यस्य) मार्तण्डस्य (चेति) (ज्ञामते। अत्र चितीधातोर्लुङ्यडभावश्चिण् च। (रिश्निभिः) किरणैः (दृशाना) दृश्यमाना। अत्र कर्मणि लटः प्रामुच् बहुलं छन्दसीति विकरणस्य लुक् च॥१२॥

अन्वय:-मनुष्येर्या पशूत्रेव यथा पशून् प्राप्य विणिग्जनः सूर्भगा प्रथाना सिन्धुः क्षोदो नेव वा चित्रोषा उर्विया पृथिव्या सह सूर्यस्य रश्मिभिर्दृशानाऽमिनती रक्षां कुर्वती सती दैल्यानि व्रतानि व्यश्वैच्चेति संज्ञायते तिद्वद्यानुसारवर्त्तमानेन सततं सुखियतव्यम्॥१२॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। यश्य पश्चेनां प्राप्त्या विना विणग्जनो, जलस्य प्राप्त्या विना नद्यादि: सौभाग्यकारको न भवति, तथ्योपिर्विद्ययो पुरुषार्थेन च विना मनुष्या: प्रशस्तैश्वर्य्या न भवन्तीति वेद्यम्॥१२॥

पदार्थ:-मनुष्यों को चाहिये कि (न) जैसे (पशून्) गाय आदि पशुओं को पाकर वैश्य बढ़ता और (न) जैसे (सुभगा) सुदिर हे प्रयं करनेहारी (प्रथाना) तरङ्गों से शब्द करती हुई (सिन्धुः) अति वेगवती नदी (क्षोदः) जल को प्रकर बढ़ती है, वैसे सुन्दर ऐश्वर्य करानेहारी प्रातःसमय चूं-चां करनेहारे पखेरुओं के शब्दों से शब्दुबाली और कोसों फैलती हुई (चित्रा) चित्र-विचित्र प्रातःसमय की वेला (उर्विया) पृश्विची के साथ (सूर्यस्य) मार्तण्डमण्डल की (रिश्मिभः) किरणों से (दृशाना) जो देखी जाती है, वह (अधिनती) सब प्रकार से रक्षा करती हुई (दैव्यानि) विद्वानों में प्रसिद्ध (व्रतानि) सत्यपालन आदि कामों को (व्यश्वेत्) व्याप्त हो अर्थात् जिसमें विद्वान् जन नियमों को पालते हैं, वैसे प्रतिदिन अपने नियमों को पालती हुई (चेति) जानी जाती है, उस प्रातःसमय की वेला की विद्या के अनुसार वर्ताव रखकर निरन्तर सुखी हों॥१२॥

8000

ऋग्वेदभाष्यम्

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे पशुओं की प्राप्ति के विना वैश्य लोग वा जल की प्राप्ति के विना नदी-नद आदि अति उत्तम सुख करनेवाले नहीं होते, वैसे प्रात:समय की वेला के गुण जतानेवाली विद्या और पुरुषार्थ के विना मनुष्य प्रशंसित ऐश्वर्य्यवाले नहीं होते, ऐसा जानना चाहिये॥१२॥

मनुष्यैरेतया किं विज्ञातव्यमित्युपदिश्यते॥

मनुष्यों को इससे क्या जानना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है।।

उषुस्तिच्चित्रमा भरासमभ्यं वाजिनीवति। येन तोकं च तर्नयं च धार्महेगा १३०।

उर्षः। तत्। चित्रम्। आ। भुर्। अस्मभ्यम्। वाजिनीऽवृति। येनं। तोकम्। 🙀 तन्यम्। ह्या धार्महे॥ १३॥

पदार्थ:-(उष:) उषा: (तत्) (चित्रम्) अद्धृतं सौभाग्यम् (अत्र) समन्तित् भर) धर (अस्मभ्यम्) (वाजिनीवति) प्रशस्तिक्रयात्रयुक्ते (येन) (तोकम्) पुत्रम् (च) तत्पालिनक्षमान् पदार्थान् (तनयम्) पौत्रम् (च) स्त्रीभृत्यपृथिवीराज्यादीन् (धामहे) धरेम। अत्र धाञ्धातोति बहुत्तं छन्दसीति श्लोरभावः। अत्र निरुक्तम् उषस्तिच्चत्रं चायनीयं मंहनीयं धनमाहरास्मभ्यमत्रकति येन पुत्रांश्च पौत्रांश्च दधीमिह। (निरु०१२.६)॥१३॥

अन्वय:-हे सुभगे! वाजिनीवित त्वमुषिरवास्मभ्यं चित्रं चित्रं धनम्भर येन वयं तोकं च तनयं च धामहे॥१३॥ भावार्थ:-मनुष्यै: प्रात:कालमारभ्य कालिविभागूर्वीग्यान् व्यवहारान् कृत्वैव सर्वाणि सुखसाधनानि सुखानि च कर्त्तुं शक्यन्ते तस्मादेतस्मनुष्यैर्भित्र्यमनुष्ठेयम्॥१३॥

पदार्थ:-हे सौभाग्यकारिणी स्त्री (चाजिनेक्ति) उत्तम क्रिया और अन्नादि ऐश्वर्य्ययुक्त तू (उप:) प्रभात के तुल्य (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिये (चित्रम्) अद्भुत सुखकर्त्ता धन को (आ भर) धारण कर (येन) जिससे हम लोग (तीकम्) पुत्र (च) और इसके पालनार्थ ऐश्वर्य (तनयम्) पौत्रादि (च) स्त्री, भृत्य और भृमि के राज्यादिको (धामह) धारण करें॥१३॥

भावार्थ:-मनुष्यों से प्रीतःसमय से लेके समय के विभागों के योग्य अर्थात् समय-समय के अनुसार व्यवहारों को करके ही सब सुख के साधन और सुख किये जा सकते हैं, इससे उनको यह अनुष्ठान नित्य करना चाहिये १३॥

पुन: सा किं करोतीत्युपदिश्यते॥

फिर वह क्या करती है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

उम्रो अहेह गोमत्यश्चावित विभाविर। रेवदुस्मे व्युच्छ सुनृतावित॥१४॥

🕰 । अद्या द्वेह। गोऽमृति। अर्थ्वऽवित। विभाऽवृरि। रेवत्। अस्मे इति। वि। उच्छ। सूनृताऽवृति॥१४॥

पदार्थ:-(उष:) उषा: (अद्य) अस्मिन्नहिन (इह) अस्मिन् संसारे (गोमित) गावो यस्या: प्रस्कान्थेन भवन्ति (अश्वावित) अश्वा अस्या: सम्बन्धे सन्ति सा। अत्र मन्त्रे सोमाश्चेन्द्रियविश्वदेव्यस्य मतौ।

मण्डल-१। अनुवाक-१४। सूक्त-९२ 9000

(अष्टा॰६.३.१३१) इत्यश्वशब्दस्य दीर्घः। अत्रोभयत्र सम्बन्धार्थे मतुप्। (विभाविर) विविधितयुक्ते (रेवत्) प्रशस्तानि रायो धनानि विद्यन्ते यस्मिन् सुखे तत् (अस्मे) अस्मभ्यम् (वि) विरातार्थ (उच्छ) उच्छति विवासयति (सूनृतावित) सूनृतान्यनृशंस्यानि प्रशस्तानि कर्माण्यस्याः सा॥१४॥

अन्वय:-हे स्त्रि! यथा गोमत्यश्चावित सूनृतावित विभावर्युषोऽस्मे रेवद् व्युच्छित् तथा वयमद्येहे सुखानि धामहे॥१४॥

भावार्थ:-अत्र धामह इति पदमनुवर्तते। मनुष्यै: प्रत्युष:कार्लमुत्थाय यावच्छयनं न कुर्य्युस्तावन्निरालस्यतया परमप्रयत्नेन विद्याधनराज्यानि धर्मार्थकाममोक्षाश्च साधिनीयाः-) १४॥

पदार्थ:-हे स्त्री! जैसे (गोमित) जिसके सम्बन्ध में गौ हॉर्ती (अश्वावित) घोड़े होते तथा (सूनतावित) जिसके प्रशंसनीय काम हैं, वह (विभाविर) क्षण-क्षण बढ़ेती हुई दीप्तिवाली (उष:) प्रात:समय की वेला (अस्मे) हम लोगों के लिये (रेवत्) जिस्से प्रशंसित धन हों, उस सुख को (वि, उच्छ) प्राप्त कराती है, उससे हम लोग (अद्य) आज (इह) इस जगत् में सुखों को (धामहे) धारण करते हैं॥१४॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में (धामहे) इस पद की अनुकृति आती है। मनुष्यों को चाहिये कि प्रतिदिन प्रात:काल सोने से उठ कर जब तक फिर न सोवें तब तक अर्थात् दिन भर निरालसता से उत्तम यत्न के साथ विद्या, धन और राज्य तथा धर्म, अर्थ, कोम और मोक्ष इन सब उत्तम-उत्तम पदार्थों को सिद्ध करें॥१४॥

पुनः सा कि करोतीत्युपदिश्यते॥

फिर वह क्यु करते है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

युक्ष्वा हि वाजिनीवृत्पश्चा अद्यामुगाँ उषः।

अर्था नो विश्वा सौभगाचा बहा। १५॥२६॥

युक्ष्वा हि। वाजितीऽवृति। अर्थान्। अद्या अरुणान्। उषः। अर्थ। नः। विश्वां। सौर्भगानि। आ। वृह्।। १५॥ पदार्थः-(युक्ष्व) युनक्ति। अत्र बहुलं छन्दसीति विकरणस्य लुक्। द्वाचोऽतस्तिङ इति दीर्घश्च। (हि) खलु (वाजिसीवित) वाजयन्ति ज्ञापयन्ति गमयन्ति वा यासु क्रियासु ताः प्रशस्ता वाजिन्यो विद्यन्तेऽस्यां सा (अर्थान्) वेगवतः किरणान् (अद्य) अस्मिन्नहनि (अरुणान्) अरुणविशिष्टान् (उषः) उषाः (अर्थ) अनुन्तरम्। अत्र निपातस्य चेति दीर्घः। (नः) अस्मभ्यम् (विश्वा) अखिलानि (सौभगानि)

सुभग्मनां सुरूवैश्वर्यवतां पुरुषाणाम् (आ) समन्तात् (वह) प्रापय॥१५॥

अन्वयः-हे स्त्रि! यथा वाजिनीवत्युषोऽरुणानश्वान् युक्ष्व युनिक्ति। अथेत्यनन्तरं नोऽस्मभ्यं विश्वाऽखिलानि सौभगानि प्रापयति हि तथाद्य त्वं शुभान् गुणान् युङ्ग्ध्यावह॥१५॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। निह प्रतिदिनं सततं पुरुषार्थेन विना मनुष्याणामैश्वर्य्यप्राप्तिर्जायते तस्मादेवं तैर्नित्यं प्रयतितव्यं यत ऐश्वर्यं वर्धेत॥१५॥

पदार्थ:-हे स्त्र! जैसे (वाजिनीवित) जिसमें ज्ञान वा गमन करानेवाली क्रिया है, वह (उष:) प्रात:समय की वेला (अरुणन्) लाल (अश्वान्) चमचमाती फैलती हुई किरणों का (युक्ष्व) संयोग करती है, (अथ) पीछे (न:) हम लोगों के लिये (विश्वा) समस्त (सौभगानि) सौभार्यपन के कामों को अच्छे प्रकार प्राप्त करती (हि) ही है, वैसे (अद्य) आज तू शुभ गुणों को युक्त और (आवह) सब ओर से प्राप्त कर॥१५॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। प्रतिदिन फिस्तर पुरुषार्थ के विना मनुष्यों को ऐश्वर्य की प्राप्ति नहीं होती, इससे उनको चाहिये कि ऐसा पुरुषार्थ नित्य करें, जिससे ऐश्वर्य बढ़े॥१५॥

पुनस्तया किं कर्त्तव्यमित्युपदिश्वता।

फिर उससे क्या करना चाहिये, यह विषय अगले मुर्ख में कहा है।।

अश्विना वृत्तिंर्स्मदा गोमद्देस्रा हिर्गण्यवत्। अर्वोग् स्थं समनसा नि येच्छतम्॥१६॥ अश्विना। वृत्तिः। अस्मत्। आ। गोऽमत्। दुस्ता। हिर्गण्यऽवत्। अर्वाक्। रथम्। सऽमेनसा। नि। यच्छतम्॥१६॥

पदार्थ:-(अश्वना) अश्वनाविन्त्राले (वर्तिः) वर्तन्ते यस्मिन् गमनागमनकर्मणि तत् (अस्मत्) अस्माकम्। सुपां सुलुगिति षष्ट्या लुक्षे (आ) (गोमत्) प्रशस्ता गावो भवन्ति यस्मिस्तत् (दस्रा) कलाकौशलादिनिमित्तैर्दुःखोपक्षयितारौ (हिरण्यवत्) प्रशस्तानि हिरण्यादीनि विद्यादीनि वा तेजांसि विद्यन्ते यस्मिस्तत् (अर्वाक्) अधः (रथम्) भूजलान्त्रिरक्षेषु रमणसाधनं विमानादियानसमूहम् (समनसा) समानेन मनसा विचारेण सह वर्त्तमानौ (पि) नितराम् (यच्छतम्) यच्छतो यमनं कुरुतः॥१६॥

अन्वयः-हे जनाः स्था षुरं यौ दस्रा समनसाऽश्विनाऽस्मद् गोमद्धिरण्यवद्वर्तिरर्वाग्रथं न्यायच्छतं प्रापयतस्ताभ्यामुषर्युक्ताभ्यां युक्ते (रथ)प्रातिदनं साध्नुयाम तथा यूयमपि साध्नुत॥१६॥

भावार्थः अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। मनुष्यैः प्रतिदिनं क्रियाकौशलाभ्यामग्निजलादीनां सकाशाद् विमानादीस् यानानि साधित्वाऽक्षय्यधनं प्राप्य सुखयितव्यम्॥१६॥

पत्र्यः से मनुष्यो! जैसे हम लोग जो (दस्ना) कला-कौशलादि निमित्त से दु:ख आदि की निवृत्ति करनेहारे (समनसा) एक से विचार के साथ वर्त्तमान के तुल्य (अश्विना) अग्नि, जल (अस्मत्) हम लोगों के (गोमत्) जिसमें इन्द्रियां प्रशंसित होतीं वा (हिरण्यवत्) प्रशंसित सुवर्ण आदि पदार्थ वा विद्या अदि गुणों के प्रकाश विद्यमान वा (वर्त्तिः) आने-जाने के काम में वर्त्तमान उस (अर्वाक्) नीचे

मण्डल-१। अनुवाक-१४। सूक्त-

97

अर्थात् जल, स्थलों तथा अन्तरिक्ष में (रथम्) रमण करानेवाले विमान आदि रश्नसमूह (नि+आ+यच्छतम्) अच्छे प्रकार नियम में रखते हैं, वे उष:काल से युक्त अग्नि, जल तृशा उनस्प उक्त रथसमूह को प्रतिदिन सिद्ध करते हैं, वैसे तुम लोग भी सिद्ध करो॥१६॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये क्रि/प्रतिदिन क्रिशा और चतुराई तथा अग्नि और जल आदि की उत्तेजना से विमान आदि यानों को सिद्ध करके नित्य हुन्नित को प्राप्त होनेवाले धन को प्राप्त होकर सुखयुक्त हों॥१६॥

पुनस्तौ कीदृशावित्युपदिश्यते॥

फिर वे कैसे हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है।

यावित्था श्लोकुमा दिवो ज्योतिर्जनाय चुक्रथुं:।

आ नु ऊर्जं वहतमश्चिना युवम्।। १७॥

यौ। इत्था। श्लोकंम्। आ। दिवः। ज्योतिः। जनाया सूक्क्षुंस्र्रेश्रा। नः। ऊर्जम्। वृहतुम्। अश्विना। युवम्॥ १७॥

पदार्थ:-(यौ) (इत्था) इत्थमस्मै हेतवे (क्लोकम्) हतमां वाणीम् (आ) समन्तात् (दिवः) सूर्यात् (ज्योतिः) प्रकाशम् (जनाय) जनसमूहाय (चक्केथुः) कुरुतः (आ) सर्वतः (नः) अस्मभ्यम् (ऊर्जम्) पराक्रममन्नादिकं वा (वहतम्) प्राप्यतम् (अश्विमां) अश्विनावग्निवाय् (युवम्) युवाम्॥१७॥

अन्वय:-हे शिल्पविद्याध्यापकोपदेशकी! युवे युक्रिश्वनाऽश्विनावित्था जनाय दिवो ज्योतिराचक्रथु: समन्तात् कुरुतस्ताभ्यां नोऽस्मभ्यं श्लोकमूर्जं चावहतम् 🕻 १७॥

भावार्थ:-मनुष्यैर्निह वायुविद्युद्ध्यो विना सूर्यज्योतिर्जायते, न किल तयोर्विद्योपकाराभ्यां विना कस्यचिद् विद्यासिद्धिर्जायत इति विदितव्यम्॥ 📜 ॥

पदार्थ:-हे शिल्प्रकिद्या के प्रदाने और उपदेश करनेहारे विद्वानो! (युवम्) तुम लोग जो (अश्विना) अग्नि और विद्यु (जिनास) मनुष्य समूह के लिये (दिव:) सूर्य्य के (ज्योति:) प्रकाश को (आ, चक्रथु:) अच्छे प्रकार सिद्ध करते हैं (इत्था) इसलिये (नः) हम लोगों के लिये (श्लोकम्) उत्तम वाणी और (ऊर्जम्) पुरक्रिस् वा अन्नादि पदार्थों को (आ, वहतम्) सब प्रकार से प्राप्त कराओ॥१७॥

भावार्थ: सम्बूध्यों को चाहिये कि पवन और बिजुली के विना सूर्य का प्रकाश नहीं होता और उन दोनों ही के विद्या और उपकार के विना किसी की विद्यासिद्धि नहीं होती है, ऐसा जानें॥१७॥

पुनस्तौ कीदृशावित्युपदिश्यते॥

फिर वे अग्नि और पवन कैसे हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

Pandit Lekhram Vedic Mission (1004 of 1953.)

१००४

ऋग्वेदभाष्यम्

एह देवा मंयोभुवा दुम्ना हिर्रण्यवर्तनी। उषुर्बुधो वहन्तु सोमंपीतये॥१८॥२७॥

आ। इह। देवा। मुयु:ऽभुवां। दुस्रा। हिरंण्यवर्तनी इति हिरंण्यऽवर्तनी। उषु:ऽबुधेः। वहन्तु। सोमंऽपीतये॥१८॥

पदार्थ:-(आ) समन्तात् (इह) अस्मिन् संसारे (देवा) दिव्यगुणौ (मयोभुवा) सुखं भावियतारौ (दस्रा) विद्योपयोगं प्राप्नुवन्तावशेषदु:खोपक्षयितारौ वाय्वग्नी (हिरण्यवर्त्तनी) हिरण्यं प्रकाशं वर्त्तयन्तौ (उषर्जुधः) य उष:कालं बोधयन्ति तान् किरणान् (वहन्तु) प्रापयन्तु (सोमपीतये) पृष्टिशान्त्यादिगुणयुक्तानां पदार्थानां पानं यस्मिन् व्यवहारे तस्मै॥१८॥

अन्वय:-हे मनुष्या! भवन्तौ यौ देवा मयोभुवा हिरण्यवर्त्तनी दश्चार्श्वनावुषर्बुधो जनयतस्ताभ्यां सोमपीतये सर्वान् सामर्थ्यमिहावहन्तु॥१८॥

भावार्थ:-मनुष्यैर्जातेष्वपि दिवसेष्वग्निवायुभ्यां विना यदार्थभोगाः प्राप्तुं न शक्यास्तस्मादेतन्नित्य-मनुष्ठेयमिति॥१८॥

अत्रोषोऽश्विगुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गितिस्वीति वेद्यम्॥

इति द्वानविततमं ९२ सूक्तं स्प्रिविशो रे७ वर्गश्च समाप्तः॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! आप लोग जो (देवा) दिष्यगुण्युक्त (मयोभुवा) सुख की भावना करानेहारे (हिरण्यवर्त्तनी) प्रकाश के बर्ताव को रखते और (दस्ता) बिद्या के उपयोग को प्राप्त हुए समस्त दु:ख का विनाश करनेवाले अग्नि, पवन (उपर्बुध:) प्रानः काल भी वेला को जतानेहारी सूर्य्य की किरणों को प्रकट करते हैं, उनसे (सोमपीतये) जिस व्यूबहार में पृष्टि, शान्त्यादि तथा गुणवाले पदार्थों का पान किया जाता है, उसके लिये सब मनुष्यों को साम्बर्थ्य (इह) इस संसार में (आवहन्तु) अच्छे प्रकार प्राप्त करें॥१८॥

भावार्थ:-मनुष्यों को चाहिये कि उत्पन्न हुए दिनों में भी अग्नि और पवन के विना पदार्थ भोगना नहीं हो सकता, इससे अग्नि और पवन से उपयोग लेने का पुरुषार्थ नित्य करें॥१८॥

इस सूक्त में उषा और अश्वि पदार्थों के गुणों के वर्णन से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ इस सूक्तार्थ की संगति जाननों चाहिये।।

यह बानुवां ९२ सूक्त और सत्ताईसवां २७ वर्ग समाप्त हुआ॥

अथास्य द्वादशर्च्चस्य त्रयोनविततमस्य सूक्तस्य रहूगणपुत्रो गोतम ऋषि:। अग्नीषोमौ देवते। १ अनुष्टुप्। ३ विराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः। २ भुरिगुष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः। ४ स्वराट् पिङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः। ५,७ निचृत्त्रिष्टुप्। ६ विराट् त्रिष्टुप्। ८ स्वराट् त्रिष्टुप्।

२ त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। ९-११ गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥ अथाऽध्यापकपरीक्षकौ प्रति विद्यार्थिभिर्वक्तव्यमुपदिश्यते॥

अब तिरानवें सूक्त का आरम्भ है। उसके प्रथम मन्त्र में पढ़ाने और परीक्षा लेक्वालों के प्रति विद्यार्थी लोग क्या-क्या कहें, यह विषय कहा है।।

अग्नीषोमाविमं सु में शृणुतं वृषणा हर्वम्॥ प्रति सूक्तानि हर्यतं भवतं दाशुषे मर्यः॥ १॥

अग्नीषीमौ। इमम्। सु। मे्। शृणुतम्। वृष्णा। हर्वम्। प्रति। सुऽउन्नतानि हुर्यतम्। भवतम्। दाशुषे। मर्यः॥ १॥

पदार्थ:-(अग्नीषोमौ) तेजश्चन्द्राविव विज्ञानसोम्यगुणावध्यप्रकृपरीक्षकौ (इमम्) अध्ययनजन्यं शास्त्रबोधम् (मु) (मे) मम (शृणुतम्) (वृषणा) विद्यासुशिक्षाक्षकौ (हवम्) देयं ग्राह्यं विद्याशब्दार्थ- सम्बन्धमयं वाक्यम् (प्रति) (सूक्तानि) सुष्ट्वर्था उच्यन्ते पेषु गायत्र्यादिछन्दोयुक्तेषु वेदस्थेषु तानि (हर्य्यतम्) कामयेथाम् (भवतम्) (दाशुषे) अध्ययमे चित्तं दत्तन्ते विद्यार्थिने (मयः) सुखम्॥१॥

अन्वयः-हे वृषणावग्नीषोमौ! युवां मे प्रतिष्ट्रिक्तानीमं हत्त्रं सुशृणुतं दाशुषे मह्यं मयो हर्य्यतमेवं विद्याप्रकाशकौ भवतम्॥१॥

भावार्थ: - निहं कस्यापि मनुष्यस्याध्यापनेन परीक्षया च विना विद्यासिद्धिर्जायते निहं पूर्णविद्यया विनाऽध्यापनं परीक्षां च कर्त्तुं शक्नोति। नह्येतया विना सर्वाणि सुखानि जायन्ते तस्मादेतन्नित्यमनुष्ठेयम्॥१॥

पदार्थ:-हे (वृषणा) विद्या और उन्ने शिक्षा देनेवाले (अग्नीषोमौ) अग्नि और चन्द्र के समान विशेष ज्ञान और शान्ति गुण्युक्त पढ़ाने और परीक्षा लेनेवाले विद्वानो! तुम दोनों (मे) मेरा (प्रतिसूक्तानि) जिनमें अच्छे-अच्छें अर्थ उच्चारण किये जाते हैं, उन गायत्री आदि छन्दों से युक्त वेदस्थ सूक्तों और (इमम्) इस (हवम्) ग्रहण करने-कराने योग्य विद्या के शब्द अर्थ और सम्बन्धयुक्त वचन को (सुश्रृणुतम्) अच्छे प्रकार सुनो (दाशुषे) और पढ़ने में चित्त देनेवाले मुझ विद्यार्थी के लिये (मय:) सुख़ की (हच्चेतम्) कामना करो, इस प्रकार विद्या के प्रकाशक (भवतम्) हूजिये॥१॥

भावार्थ: किसी मनुष्य को पढ़ाने और परीक्षा के विना विद्या की सिद्धि नहीं होती और कोई मनुष्य पूरी विद्या के विना किसी दूसरे को पढ़ा और उसकी परीक्षा नहीं कर सकता और इस विद्या के विना सम्पत्त सुख नहीं होते, इससे इसका सम्पादन नित्य करें॥१॥

१००६

ऋग्वेदभाष्यम्

पुनस्तौ कीदृशावित्युपदिश्यते॥

फिर वे कैसे हैं, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अग्नीषोमा यो अद्य वामिदं वर्चः सप्रयिति। तस्मै। धत्तं सुवीर्यं गवां पोषं स्वश्व्यम्॥२॥

अग्नीषीमा। यः। अद्या वाम्। इदम्। वर्चः। सुपर्यति तस्मै। धुनुम्। सुऽवीर्यम्। गर्बोम्। पोषेम्। सुऽअश्र्व्यम्॥२॥

पदार्थ:-(अग्नीषोमा) अध्यापकसुपरीक्षकौ। अत्र सुपां सुलुगित्याकारादेश:-(य:) अध्येता (अद्य) (वाम्) युवयो: (इदम्) (वच:) वचनम् (सपर्व्यति) (तस्मै) प्रमुच्छतम् (सुवीर्यम्) शोभनानि वीर्य्याणि यस्माद्विद्याभ्यासात्तम् (गवाम्) इन्द्रियाणां पशूनां व्या (पोषम्) शरीरात्मपृष्टिकारकम् (स्वश्र्व्यम्) शोभनेष्वश्रेषु साधुम्॥२॥

अन्वयः-हे अग्नीषोमावध्यापकसुपरीक्षकौ! योऽद्य वामिदं वच्नः सपर्य्येति तस्मै स्वश्व्यं सुवीर्य्य गवां पोषं च धत्तम्॥२॥

भावार्थ:-यो ब्रह्मचारी विद्यार्थमध्यापकपरीक्षकी प्रति सुप्रौतिं कृत्वैनौ नित्यं सेवते, स एव महाविद्वान् भूत्वा सर्वाणि सुखानि लभते॥२॥

पदार्थ:-हे (अग्नीषोमा) पढ़ाने और परीक्ष्म लेनेवाल विद्वानो! (य:) जो पढ़नेवाला (अद्य) आज (वाम्) तुम्हारे (इदम्) इस (वच:) विद्या के क्रियम को (प्रपर्थित) सेवे (तस्मै) उसके लिये (स्वश्व्यम्) जो अच्छे-अच्छे घोड़ों से युक्त (सुवीर्थ्यम्) उत्तम् अत्तम बल जिस विद्याभ्यास से हों, उस (गवाम्) इन्द्रिय और गाय आदि पशुओं के (पोष्ट्रम्) सूचिया शरीर और आत्मा की पृष्टि करनेहारे सुख को (धत्तम्) दीजिये॥२॥

भावार्थ:-जो ब्रह्मचारी विद्या के लिये पढ़ाने और परीक्षा करनेवालों के प्रति उत्तम प्रीति को करके और उनकी नित्य सेवा करता है, वहीं बड़ा विद्वान् होकर सब सुखों को पाता है॥२॥

पुनरेत्राभ्यां भौतिकसम्बन्धकृत्यमुपदिश्यते॥

अब उक्त अग्नि, सीम शर्म्दॉ से भौतिक सम्बन्धी कार्यों का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

अग्नीषीय् य अहिति यो वां दाशाद्भिविष्कृतिम्।

स प्रज्ञा सुबीर्यं विश्वमायुर्व्यप्नवत्॥ ३॥

अप्नेष्ट्रीमारे यः। आऽहुंतिम्। यः। वाम्। दार्शात्। हुविःऽकृंतिम्। सः। प्रऽजयां। सुऽवीर्यम्। विश्वम्। आयुः, विर्भुश्नुवृत्॥३॥

मण्डल-१। अनुवाक-१४। सूक्त-९३ Q. ple

पदार्थ:-(अग्नीषोमा) अग्निवाय्वो:। अत्र षष्ठीद्विवचनस्य स्थाने डादेश:। (य:) सर्वस्य हितुं प्रेप्सुर्मनुष्य: (आहुतिम्) घृतादिसुसंस्कृताम् (य:) यज्ञानुष्ठाता (वाम्) एतयो: (दाशात्) दाशेद दुद्यात् (हिविष्कृतिम्) हिवषो होतव्यस्य पदार्थस्य कृतिं कारणरूपाम् (स:) (प्रजया) सुपुत्रादिशुक्त्यो (सुवीर्यम्) सुष्ठु पराक्रमयुक्तम् (विश्वम्) समग्रम् (आयु:) जीवनम् (वि) विविधार्थे (अश्नृव्यत्) व्याप्नुयात्। अत्र व्यात्ययेन परस्मैपदं शप् च॥३॥

अन्वय:-यो यो मनुष्योऽग्नीषोमयोर्वामेतयोर्मध्ये हविष्कृतिमाहुतिं द्राशात् स प्रजया सुवीर्य विश्वमायुर्व्यश्नवत्॥३॥

भावार्थ:-ये विद्वांसो वायुवृष्टिजलौषधिशुद्धचर्थं सुसंस्कृते हिवरमी हुत्वोत्तमान्सोमलतादीन् प्राप्यः तैः प्राणिनः सुखयन्ति च ते शरीरात्मबलयुक्ताः सन्तः पूर्णसुखमायुः प्राप्नुवन्ति नेतरे॥३॥

पदार्थ:-(य:) सबके हित को चाहनेवाला और (य:) जो यज्ञ क्रा अनुष्ठान करनेवाला मनुष्य (अग्नीषोमा) भौतिक अग्नि और पवन (वाम्) इन दोनों के बीच (हिवष्कृतिम्) होम करने के योग्य पदार्थ का कारणरूप (आहुतिम्) घृत आदि उत्तम-उत्तम सिग्नियतादि पदार्थों से युक्त आहुति को (दाशात्) देवे (स:) वह (प्रजया) उत्तम-उत्तम सन्तानयुक्त प्रजा से (सुवीर्च्यम्) श्रेष्ठ पराक्रमयुक्त (विश्वम्) समग्र (आयु:) आयुर्दा को (व्यश्नवत्) प्रमुद्ध होवे॥ हो।

भावार्थ:- जो विद्वान् वायु, वृष्टि, जल और ओषियों की शुद्धि के लिये अच्छे संस्कार किये हुए हिव को अग्नि के बीच होम के श्रेष्ठ सोमलताद ओष्ट्रियों की प्राप्ति कर उनसे प्राणियों को सुख देते हैं, वे शरीर आत्मा के बल से युक्त होते हुए पूर्ण सुख करनेवाली आयु को प्राप्त होते हैं, अन्य नहीं॥३॥

पुनस्तौ कीदृशावित्युपदिश्यते॥

फिर् है कैसे हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अग्नीषोमा चेति तद्वीर्यं वां युद्मुष्णीतमवसं पणिं गाः।

अवातिरतं वृस्यस्य शोषोऽविन्दतं ज्योतिरेकं बहुभ्यः॥४॥

अग्नीषीमा। चेति। तेत्। वीर्यम्। वाम्। यत्। अमुष्णीतम्। अवसम्। पुणिम्। गाः। अवं। अतिरृतम्। बृस्यस्य। शेषंः। अविस्ततम्। ज्योतिः। एकंम्। बहुऽभ्यंः॥४॥

पदार्थ: (अप्नीषोमा) वायुविद्युतौ (चेति) विज्ञातं प्रख्यातमस्ति (तत्) (वीर्यम्) पृथिव्याद्विलोकानां बलम् (वाम्) ययोः (यत्) (अमुष्णीतम्) चोरवद्धरतम् (अवसम्) रक्षणादिकम् (पिणम्) व्यवहारम् (गाः) किरणान् (अव) (अतिरतम्) तमो हिंस्तः। अवितरितिरिति वधकर्मसु पिठतम्। (तिविश्वरूक्ष्य) (बृसयस्य) आच्छादकस्य। वस आच्छादन इत्यस्मात् पृषोदरादित्वादिष्टसिद्धिः। (शेषः)

अविशष्टो भागः (**अविन्दतम्**) लम्भयतम् (ज्योतिः) दीप्तिम् (एकम्) असहायम् (बहुभ्यः) अनेके प्यः पदार्थेभ्यः॥४॥

अन्वय:-यावग्नीषोमा यदवसं पणि चामुष्णीतं गा विस्तार्य्य तमोऽवातिरतं बहुभ्य एक स्योगिरिचिन्सी ययोर्बसयस्य शेषो लोकान् प्राप्नोति तद् वामनयोर्वीर्यं चेति सर्वैविदितमस्ति॥४॥

भावार्थ:-मनुष्यैर्यावत्प्रसिद्धं तमस आच्छादकं सर्वलोकप्रकाशकं तेजो जायते तावत्सर्वं कारणभूतयोर्वायुविद्युतो: सकाशाद्भवतीति बोध्यम्॥४॥

पदार्थ:-जो (अग्नीषोमा) वायु और विद्युत् (यत्) जिस (अवसम्) रक्षा आदि (पणिम्) व्यवहार को (अमुष्णीतम्) चोरते प्रसिद्धाप्रसिद्ध ग्रहण करते (गाः) सूर्य्य की किरणों का विस्तार कर (अवातिरतम्) अन्धकार का विनाश करते (बहुभ्यः) अनेकों पदार्थों से (एकप्) एक (ज्योतिः) सूर्य के प्रकाश को (अविन्दतम्) प्राप्त कराते हैं, जिनके (बृसयस्य) ढांपनेकले सूर्य का (शेषः) अवशेष भाग लोकों को प्राप्त होता है, (वाम्) इनका (तत्) वह (वीर्च्यम्) परक्रिम (चेति) विदित है, सब कोई जानते हैं॥४॥

भावार्थ:-मनुष्यों को यह जानना चाहिये कि जितना प्रसिद्ध अन्धकार को ढांप देने और सब लोकों को प्रकाशित करनेहारा तेज होता है, उतना सब कार्ष्यक्रम पवन और बिजुली की उत्तेजना से होता है॥४॥

पुनस्तौ कीवृशावित्युपद्धिश्यते॥

फिर वे कैसे हैं, यह उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

युवमेतानि दिवि रोचनान्यग्निश्च समि सकेतू अधत्तम्।

युवं सिन्धूरभिश्रम्तरेवद्याद्वग्नीसोमावमुं अतं गृभीतान्॥५॥

युवम्। एतानि। दिवि। राज्यनिनि। अस्तिः। च। सोम्। सक्रत्रू इति सऽक्रत्रू। अधन्तम्। युवम्। सिन्धून्। अभिऽशस्तिः। अवद्यात्। अग्नीषिग्री अपुंज्ञतम्। गृभीतान्॥५॥

पदार्थ:-(युवम्) एती (एत्प्रानि) प्रत्यक्षाणि (दिवि) सूर्यप्रकाशे (रोचनानि) तेजांसि (अग्नि:) विद्युत् (च) सर्वेषां लोकानां समुच्चिये (सोम) बहुसुखप्रसावको वायुः (सक्रतू) समानक्रियौ (अधत्तम्) धत्तो धारयतः (युव्यम्) एतौ (सिन्धून्) समुद्रादीन् (अभिशस्तेः) अभितो हिंसकात् (अवद्यात्) निन्दितात् (अग्नीषोमौ) (अग्नुत्रतम्) मुञ्चतो मोचयतो वा (गृभीतान्) गृहीतान् लोकान्। अत्र गृहधातोर्हस्य भादेशः॥५/।

अन्वय:-युवमैतौ सूक्रतू अग्नि: सोम च सोमश्च यानि दिवि रोचनानि तारासमूहे प्रकाशनानि सन्त्येतान्यधत्तं धरत्र युवं स्रो सिन्धूनधत्तं तान् गृभीतान् सिन्धूस्तावग्नीषोमाववद्यादिभशस्तेर्गर्ह्यादिभितो रमणिनरोधकाद्धेतोरमुञ्जतं वर्षणिनिर्मित्ते तद्गृहीतमम्भः पृथिव्यां पातयतिमिति यावत्॥५॥

मण्डल-१। अनुवाक-१४। सूक्त-९३

-१४। सूक्त- 🭳

भावार्थ:-मनुष्यैर्वायुविद्युतावेव सर्वलोकसुखधारणादिव्यवहारे हेतू भवत इति बोध्यम् प्रिम्ना पदार्थ:-(युवम्) ये (सुक्रतू) एकसा काम देनेवाले दो अर्थात् (अग्नि:) बिजूली (स्रिम्ना) (सोम) बहुत सुख को उत्पन्न करनेहारा पवन (दिवि) तारागण में जो (रोचनानि) प्रकाश हैं (एतानि) इनको (अधत्तम्) धारण करते हैं, (युवम्) ये दोनों (सिन्धून्) समुद्रों को धारण करते अर्थात् उत्तके जल को सोखते हैं, उन (गृभीतान्) सोखे हुए नदी, समुद्रों को वे (अग्नीषोमा) बिजूली और पवन (अवद्यात्) निन्दित (अभिशस्ते:) उनके प्रवाहरूप रमण को रोकनेहारे हेतु से (अमुञ्जतम्) छोड़ते हैं अर्थात् वर्षा के निमित्त से उनके लिये हुए जल को पृथिवी पर छोड़ते हैं॥५॥

भावार्थ:-मनुष्यों को जानना चाहिये कि पवन और बिजुली ये ही दोनों सब लोकों के सुख के धारण आदि व्यवहार के कारण हैं॥५॥

पुनस्तौ कि कुरुत इत्युपदिश्यते॥

फिर वे क्या करते हैं, इस विषय को अपले मन्त्र में कहा है।।

आन्यं दिवो मातुरिश्चां जभारामध्यादुन्यं परि श्रेष्टेनो अहेरी

अग्नीषोमा ब्रह्मणा वावृधानोरुं युज्ञायं चक्कथुरु लोकम्।।६॥२८॥

आ। अन्यम्। दिवः। मात्रिक्षां। जुभार्। अमिश्नात्। अस्यम्। परि। श्येनः। अद्रैः। अग्नीषोमा। ब्रह्मणा। वृवृधाना। उरुम्। युज्ञायं। चुक्र्युः। ऊम् इति। लोकम्॥६॥

पदार्थ:-(आ) समन्तात् (अन्यम्) जिन्नपूर्विद्धम् (दिवः) सूर्य्यादिः (मातिरश्चा) आकाशशयानो वायुः (जभार) हरति। अत्रापि हस्य भीः (अमध्यत्) मध्नाति (अन्यम्) भिन्नमप्रसिद्धं कारणाख्यम् (पिर) सर्वतः (श्येनः) वेगवानश्च इव वर्तमानः। श्येनास इत्यश्चनामसु पिठतम्। (निघं०१.१४) (अद्रेः) मेघात् (अग्नीषोमा) कारणाख्यौ वायुक्तिद्युतौ (ब्रह्मणा) परमेश्वरेण (वावृधाना) वर्धमानौ (उरुम्) बहुविधम् (यज्ञाय) ज्ञानिक्रयामयाय सुराप्य (चक्र्युः) कुरुतः (उ) वितर्के (लोकम्) दृश्यमानं भुवनसमूहम्॥६॥

अन्वयः-हे मनुष्ये! यूर्वे यौ ब्रह्मणा वावृधानाग्नीषोमा यज्ञायोरुं लोकं चक्रथुस्तयोर्मध्यान्मातरिश्वा दिवोऽन्यमाजभार हरति द्वितीयः श्येकेऽग्निरद्रेरन्यमुपर्य्यमध्नात् सर्वतो मध्नाति तौ विदित्वा सम्प्रयोजयत॥६॥

भावार्थः -हें मनुष्याः यूयमेतयोर्वायुविद्युतोर्द्वे स्वरूपे स्ते एकं कारणभूतं द्वितीयं कार्यभूतं च तयोर्यत्कारणां विद्वानगम्यं यच्च कार्याख्यं तदिन्द्रियग्राह्यमेतेन कार्याख्येन विदितगुणोपकारकृतेन वायुनाऽपिना वा कारणाख्ये प्रवेशं कुरुतः। अयमेव सुगमो मार्गो यत् कार्यद्वारा कारणे प्रवेश इति विजानीत। हा।

पदार्थ:-हे मनुष्यो! तुम लोग जो (ब्रह्मणा) परमेश्वर से (वावृधाना) उन्नित को प्राप्त हुए (अग्नीषोमा) अग्नि और पवन (यज्ञाय) ज्ञान और क्रियामय यज्ञ के लिये (उरुम्) बहुत प्रकार (लोकम्) जो देखा जाता है, उस लोकसमूह को (चक्रथु:) प्रकट करते हैं, उनमें से (मातिरिश्वा) पूजन जो कि आकाश में सोनेवाला है, वह (दिव:) सूर्य्य आदि लोक से (अन्यम्) और दूसरा अप्रसिद्ध जो कारण लोक है, उसको (आ, जभार) धारण करता है तथा (श्येन:) वेगवान् घोड़े के समान वर्जनेकाला अग्नि (अद्रे:) मेघ से (अमध्नात्) मथा करता है, उनको जानकर उपयोग में लाओ॥६॥

भावार्थ: -हे मनुष्यो! तुम लोग जो पवन और बिजुली के दो रूप है, एक कारण और दूसरा कार्य्य। उनसे जो पहिला है, वह विशेष ज्ञान से जानने योग्य और जो दूसरा है, वह प्रत्यक्ष इन्द्रियों से ग्रहण करने योग्य है। जिसके गुण और उपकार जाने हैं, उस पवन वा अपने में कारण में उक्त अग्नि और पवन प्रवेश करते हैं, यही सुगम मार्ग है, जो कार्य के द्वारा कारण में प्रवेश होता है, ऐसा जानो॥६॥

पुनरेतौ किं कुरुत इत्युपदिश्यते।।

फिर वे क्या करते हैं, यह विषय अगिले मेन्त्र में भेकहा है।।

अग्नीषोमा हुविषः प्रस्थितस्य वीतं हर्यतं वृषणा जुषेथाम्। सुशर्माणा स्ववंसा हि भूतमथा धत्तं युज्यमानाय श्रे योः॥७॥

अग्नीषीमा। हुविष:। प्रऽस्थितस्य। वीतम्। हेर्यतम्। वृष्णुणा। जुषेथाम्। सुऽशर्माणा। सुऽअर्वसा। हि। भूतम्। अर्थ। धुतुम्। यर्जमानाय। शम्। यो:॥७॥

पदार्थ:-(अग्नीषोमा) अग्नीक्रोभी प्रिसिद्धी वाय्वग्नी (हविष:) प्रक्षिप्तस्य घृतादेर्द्रव्यस्य (प्रस्थितस्य) देशान्तरं प्रतिगच्छतः (वितप) व्याप्नुतः (हर्च्यतम्) प्राप्नुतः (वृषणा) वृष्टिहेतू (जुषेथाम्) जुषेते सेवेते (सुशर्म्माणा) सुष्टु सुखकारिण्णे (स्ववसा) सुष्टु रक्षकौ (हि) खलु (भूतम्) भवतः। अत्र बहुलं छन्दसीति शपो लुक्। (अथ) आनन्तर्थ (धत्तम्) धरतः। अत्र सर्वत्र लडर्थे लोट्। (यजमानाय) जीवाय (शम्) सुखम् (योः) षदार्थामां पृथवकरणम्। अत्र युधातोर्डोसिः प्रत्ययोऽव्ययत्वं च॥७॥

अन्वयः-हे मनुष्याः पूर्यं भा वृषणा सुशर्म्माणाऽग्नीषोमा प्रस्थितस्य हिवषो वीतं हर्यतं जुषेथां स्ववसा भूतमथैतस्माद्धि यजम्मनाय शं धृतं पदार्थान् योः पृथक् कुरुतस्तौ सम्प्रयोजयत॥७॥

भावार्थ:-मेरुष्यैरग्नौ यावन्ति सुगन्ध्यादियुक्तानि द्रव्याणि हूयन्ते, तावन्ति वायुना सहाकाशं गत्वा मेघमण्डलस्थं जलं शोधयित्वा सर्वेषां जीवानां सुखहेतुकानि भूत्वा धर्मार्थकाममोक्षसाधकानि भवन्तीव्चि वेद्यम्॥ ।।

पदार्थ:-हे मनुष्यो! तुम लोग जो (वृषणा) वर्षा होने के निमित्त (सुशर्माणा) श्रेष्ठ सुख क्रिनेवाल (अग्नीषोमा) प्रसिद्ध वायु और अग्नि (प्रस्थितस्य) देशान्तर में पहुंचनेवाले (हविष:) होमे हुए

मण्डल-१। अनुवाक-१४। सूक्त-९३ 9.2

घी आदि को (वीतम्) व्याप्त होते (हर्य्यतम्) पाते (जुषेथाम्) सेवन करते और (स्ववसा) उत्तम रक्ष्म करनेवाले (भूतम्) होते हैं, (अथ) इसके पीछे (हि) इसी कारण (यजमानाय) जीव क्रे लिये अमन्त (शम्) सुख को (धत्तम्) धारण करते तथा (यो:) पदार्थों को अलग-अलग करते हैं, जनको अच्छे प्रकार उपयोग में लाओ॥७॥

भावार्थ:-मनुष्यों को यह जानना चाहिये कि आग में जितने सुगन्धियुक्त पेदार्थ होमे जाते हैं, सब पवन के साथ आकाश में जा मेघमण्डल के जल को शोध और सब जीवों के सुख के हेतु होकर उसके अनन्तर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि करनेहारे होते हैं॥७

एवमेतौ संप्रयुक्तौ किं कुरुत इत्युपदिश्यते॥

ऐसे उत्तमता से काम में लाये हुए ये दोनों क्या करते हैं, यह किएय अपले मन्त्र में कहा है।।

यो अग्नीषोमा हुविषा सपुर्याद देवद्रीचा मनसा यो धुतेन। तस्य वृतं रक्षतं पातमंहसो विशे जनाय महि शर्म यच्छतम्॥८॥

यः। अग्नीषोमां। हुविषां। सुपूर्यात्। देवद्रीचां। मनस्सा। यः। घृतेनं। तस्यं। वृतम्। रृक्षुत्वम्। पातम्। अंहंसः। विशे। जनाय। मिहं। शर्मं। युच्छुतुम्॥८॥

पदार्थ:-(य:) विद्वान् मनुष्यः (अग्नीषीमा) वार्चग्नी (हिवषा) सुसंस्कृतेन हिवषा शोधितौ (सपर्यात्) सेवेत (देवद्रीचा) देवान् विदुषोऽञ्चता स्रत्कारिणा। विष्वग्देवयोश्च टेरद्र्यञ्चतौ वप्रत्यये। (अष्टा०६.३.९२) अनेन देवशब्दस्य टेरिट्राहिशः (मनसा) स्वान्तेन (य:) क्रियाकारी मानवः (घृतेन) आज्येनोदकेन वा (तस्य) (व्रतम्) सत्यभाषणादिशीलम् (रक्षतम्) रक्षतः (पातम्) पालयतः (अंहसः) क्षुज्ज्वरादिरोगात् (विशे) प्रजाये (जनाय) सेवकाय जीवाय (मिह) महत्तमं पूजनीयम् (शर्म) सुखं गृहं वा (यच्छतम्) दत्तः॥८॥

अन्वय:-यो देवद्रीचा प्नसा घतेन हिवषाऽग्नीषोमा सपर्याद्यश्चैतद्गुणान् विजानीयात् तस्य द्वयस्य व्रतिममौ रक्षतमंहसः पातं विशे जनाय पहिलोगि योच्छतम्॥८॥

भावार्थ:-यो मनुष्योऽप्निहोत्रादिकर्मणा वायुवृष्टिजलशुद्धिद्वारा पदार्थान् पवित्रयति, स प्राणिनः सुखयति॥८॥ ्र

पदार्थ: (यः) जो विद्वान् मनुष्य (देवद्रीचा) उत्तम विद्वानों का सत्कार करते हुए (मनसा) मन से वा (घूतन) घी और जल तथा (हविषा) अच्छे संस्कार किये हुए हवि से (अग्निषोमा) वायु और अग्नि को (सपर्यात्) सेवे और (य:) जो क्रिया करनेवाला मनुष्य इनके गुणों को जाने (तस्य) उन दोनों के (वृत्तम्) संस्थभाषण आदि शील की ये दोनों (रक्षतम्) रक्षा करते (अंहस:) क्षुधा और ज्वर आदि रोग

१०१२

से (पातम्) नष्ट होने से बचाते (विशे) प्रजा और (जनाय) सेवक जन के लिये (मिह) अत्यन्त प्रशैसी करने योग्य (शर्म्म) सुख वा घर को (यच्छतम्) देते हैं॥८॥

भावार्थ:-जो मनुष्य अग्निहोत्र आदि काम से वायु और वर्षा की शुद्धि द्वारा सब अस्तुओं को पवित्र करता है, वह सब प्राणियों को सुख देता है॥८॥

पुनस्तौ कीदृशावित्युपदिश्यते॥

फिर वे कैसे हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अग्नीषीमा सर्वेदसा सहूती वनतं गिर्रः। सं देवत्रा बंभूवथुः॥९।

अग्नीषीमा। सऽवैदसा। सहूती इति सऽहूती। वनतम्। गिर्रः। सम्। देवश्रा हिभूब्युः॥९॥

पदार्थ:-(अग्नीषोमा) यज्ञफलसाधकौ (सवेदसा) समानेन दुतद्व्येण युक्तौ (सहूती) समाना हृतिराह्वानं ययोस्तौ (वनतम्) संभजतः (गिरः) वाणीः (सम्) (देवत्रा) देवीपु विद्वत्सु दिव्यगुणेषु वा (वभूवथुः) भवतः॥९॥

अन्वय:-यो सहूती सवेदसाग्नीषोमा देवत्रा सम्बभूवथु: सम्भवंतस्तौ गिसे वनतं भजत:॥९॥

भावार्थ:-मनुष्यैर्निह यज्ञादिक्रियया वायो: शो निन् विना प्राणिनां सुखं संभवित, तस्मादेतन्नित्यमनुष्ठेयम्॥९॥

पदार्थ:-जो (सहूती) एक-सी वाणीलाली (सवेदूसा) बराबर होमे हुए पदार्थ से युक्त (अग्नीषोमा) यज्ञफल के सिद्ध करनेहारे अपन और पवन (देवत्रा) विद्वान् वा दिव्य गुणों में (सम्बभूवथु:) संभावित होते हैं, वे (गिर:) वाणियों को (वनतम्) अच्छे प्रकार सेवते हैं॥९॥

भावार्थ:-मनुष्य लोग यज्ञ आदि उत्तम कामीं से वायु के शोधे विना प्राणियों को सुख नहीं हो सकता, इससे इसका अनुष्ठान नित्या करें। १॥

एतदनुष्ठातुः किं जायत इत्युपदिश्यते॥

इसके अनुष्ठान करनेकाले को क्या होता है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

अग्नीषोमावनेन वां यो वां घृतेन दाशित। तस्मै दीदयतं बृहत्॥ १०॥

अग्नीषीमौ। अनेना बाम्। युः। वाम्। घृतेनी दार्शति। तस्मै। दीद्यतुम्। बृहत्॥ १०॥

पदार्थ: अग्नीषोसौ) विद्युत्पवनौ (अनेन) प्रत्यक्षेण (वाम्) युवयोर्मध्ये (यः) एकः (वाम्) एतयोः सकाप्रात् (यृतेन) आज्येनोदकेन वा (दाशित) आहुतीर्ददाति (तस्मै) (दीदयतम्) प्रकाशयतः (वृहत्) महत्ताः १०००

अत्वय:-यो वामेतयोर्मध्येऽनेन घृतेनाहुतीर्दाशित वां सकाशादुपकारान् गृह्णाति, तस्मा अग्नीषोमौ बृहर्द्यस्यतम्॥२०॥

भावार्थः-ये मनुष्याः क्रियायज्ञानुष्ठानं कुर्वन्ति, तेऽस्मिञ्जगति महत्सौभाग्यं प्राप्नुवन्ति॥१०॥

मण्डल-१। अनुवाक-१४। सूक्त-९३ 9.83

पदार्थ:-(य:) जो मनुष्य (वाम्) इनके बीच (अनेन) इस (घृतेन) घी वा जल से अहिनियों को देता है वा (वाम्) इनकी उत्तेजना से उपकारों को ग्रहण करता है, उसके लिये (अग्नीषोम्ग) बिजुली और पवन (बृहत्) बड़े विज्ञान और सुख को (दीदयतम्) प्रकाशित करते हैं॥१०॥

भावार्थ:-जो मनुष्य क्रियारूपी यज्ञों का अनुष्ठान करते हैं, वे इस संसार मूं अत्यन्त सौभाग्य को प्राप्त होते हैं॥१०॥

पुनस्तौ किं कुरुत इत्युपदिश्यते॥

फिर वे क्या करते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है।

अग्नीषीमाविमानि नो युवं ह्व्या जुंजोषतम्। आ यातमुर्हे नः सर्वाम ११॥

अग्नीषीमौ। इमानि। नु:। युवम्। हुव्या। जुजोषतम्। आ। यातम्। उप। नु:। सर्चा॥ ११॥

पदार्थ:-(अग्नीषौमौ) सर्वमूर्तद्रव्यसंयोगिनौ (इमानि) (नः) अस्माकम् (युवम्) यौ (हव्या) दातुमादातुं योग्यानि वस्तूनि (जुजोषतम्) अत्यन्तं स्वित्। अत्र जुषी प्रीतिसेवनयोरिति धातोः शब्विकरणस्य स्थाने १लुः। बहुलं छन्दसीति शप् च। (आ) स्मान्तात् (यातम्) प्राप्नुतः (उप) (नः) अस्मान् (सचा) यज्ञविज्ञानयुक्तान्॥११॥

अन्वय:-यावग्नीषोमौ नोऽस्माकिममानि हव्या ग्रिजोषत्मात्यम्तं सेवेते तौ सचा नोऽस्मानुपायातम्॥११॥

भावार्थ:-यदा यज्ञेन सुगन्धितादिद्वव्ययुक्ताविष्नवायू सर्वान् पदार्थानुपागत्य स्पृशतस्तदा सर्वेषां पृष्टिर्जायते॥११॥

पदार्थ:-(युवम्) जो (अग्नीषोमी) स्पास्त मूर्तिमान् पदार्थी का संयोग करनेहारे अग्नि और पवन (न:) हम लोगों के (इमानि) इन् (हव्या) देने-लेने योग्य पदार्थीं को (जुजोषतम्) बार-बार सेवन करते हैं, वे (सचा) यज्ञ के विशेष सिचार करने वाले (न:) हम लोगों को (उप, आ, यातम्) अच्छे प्रकार मिलते हैं॥११॥

भावार्थ:-जब एज सि सुग्रेन्धित आदि द्रव्ययुक्त अग्नि, वायु सब पदार्थों के समीप मिलकर उनमें लगते हैं, तब सबकी पुष्टि होती है॥११॥

पुनस्तौ किं कुरुत इत्युपदिश्यते॥

फिर वे क्या करते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

भ्रामीषोमा पिपृतमर्वतो न आ प्यायन्तामुस्रिया हव्यसूर्दः।

अस्मे बलानि मुघर्वत्सु धत्तं कृणुतं नो अध्वरं श्रुष्ट्रिमन्त्रम्॥१२॥२९॥१४॥

अग्नीषीमा। पिपृतम्। अर्वतः। नः। आ। प्यायन्ताम्। उस्त्रियाः। हृव्युऽसूर्दः। अस्मे इति। बर्लानि। मुघर्वत्ऽसु। धुनुम्। कृणुतम्। नः। अध्वरम्। श्रृष्टिऽमन्तम्॥ १२॥

पदार्थ:-(अग्नीषोमा) पालनहेतू अग्निवायू इव (पिपृतम्) प्रिपपूर्तम् (अर्वतः) अश्वानं (तः) अस्माकम् (आ) (प्यायन्ताम्) पृष्टा भवन्तु (उस्त्रियाः) गावः (हव्यसूदः) हव्यानि दुग्धादीनि क्षरित्ति ताः (अस्मे) अस्मभ्यम् (बलानि) (मघवत्सु) प्रशस्तपूज्यधनयुक्तेषु स्थानेषु व्यवहारेषु विद्वत्स् मा (धत्तम्) धरतम् (कृणुतम्) कुरुतम् (नः) अस्माकम् (अध्वरम्) व्यवहारयज्ञम् (शृष्टिमन्तम्) शीघ्रं बहुसुखहेतुम्॥१२॥

अन्वय:-हे राजप्रजाजनौ! युवामग्नीषोमेव नोऽस्माकमर्वतः पिपृतं यथा ह्व्यसूद् उद्गिया आप्यायन्तां तथा नोऽस्माकं श्रृष्टिमन्तमध्वरं मघवत्सु कृणुतमस्मे बलानि धत्तम्॥१२॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। निह वायुविद्युद्ध्यां विनो कैस्यचिद् बलपुष्टी जायेते तस्मादेते सुविचारेण कार्य्येषूपयोजनीये॥१२॥

अत्र वायुविद्युतोर्गुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सङ्ग्रसुर्हेत्रार्स्तीति वेद्यम्॥

इति षष्टाध्यायस्यैकोनत्रिंशत्तमो वर्गः। प्रथममण्डले चतुर्दशोऽनुवार्वस्त्रयोनवतितमं सूक्तं च समाप्तम्॥

पदार्थ:-हे राज प्रजा के पुरुषो! तुम (अर्माषोमा) प्रालन के हेतु अग्नि और पवन के समान (नः) हम लोगों के (अर्वतः) घोड़ों को (पिपूर्मा) पालों, जैसे (हव्यसूदः) दूध, दही आदि पदार्थों की देनेवाली (उस्त्रियाः) गौ (आ, प्यायन्ताम्) पृष्ट हों वैसे (नः) हम लोगों के (श्रुष्टिमन्तम्) शीघ्र बहुत सुख के हेतु (अध्वरम्) व्यवहाररूपी यज्ञ को (मघवन्स्) प्रशंसित धनयुक्त स्थान, व्यवहार वा विद्वानों में (कृणुतम्) प्रकट करो, (अस्मे) हम्म लोगों के लिये (बलानि) बलों को (धत्तम्) धारण करो॥१२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में जाचकलुप्तोषमालङ्कार है। पवन और बिजुली के विना किसी की बल और पृष्टि नहीं होती, इससे इसको अच्छे विचार से कामों में लाना चाहिये॥१२॥

इस सूक्त में प्रान और जिज़ली के गुणवर्णन करने से इस सूक्तार्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ संगति जाननी चाहिये॥

यह छठे अध्यार्य का उनर्तिसवां २९ वर्ग और प्रथम मण्डल का चौदहवां १४ अनुवाक तथा त्रानवां ९३ सूक्त समाप्त हुआ॥ अथास्य षोडशर्च्चस्य चतुर्नविततमस्य सूक्तस्याङ्गिरसः कुत्स ऋषिः। अग्निर्देवता।

१,४,५,७,९,१० निचृज्जगती। १२-१४ विराड् जगती छन्दः। निषादः स्वरः। २,३,१६

त्रिष्टुप्। ६ स्वराट् त्रिष्टुप्। ११ भुरिक् त्रिष्टुप्। ८ निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। १५ भुरिक्

पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

अथाऽग्निशब्देन विद्वद्भौतिकार्थावुपदिश्येते॥

अब सोलह ऋचावाले चौरानवें सूक्त का आरम्भ है। उसके प्रथम मन्त्र में अग्निर्शब्द से विद्वान् और भौतिक अर्थों का उपदेश किया है।।

इमं स्तोममहिते जातवेदसे रथिमव सं महिमा मनीषया।

भुद्रा हि नुः प्रमंतिरस्य सुंसद्यग्ने सुख्ये मा रिषामा वयं त्वा १

ड्टमम्। स्तोमेम्। अर्हते। जातऽवैदसे। रथम्ऽइव। सम्। महेम्। मर्नाषया। मुद्रा हि। नः। प्रऽमेतिः। अस्य। सुम्ऽसदि। अग्ने। सुख्ये। मा। रिषाम्। वयम्। तवं॥ १॥

पदार्थ:-(इमम्) प्रत्यक्षं कार्यनिष्ठम् (स्तोमम्) गुणकतिनम् (अर्हते) योग्याय (जातवेदसे) यो विद्वान् जातं सर्वं वेति तस्मै जातेषु कार्येषु विद्यमानाय वा (प्रथमिन) यथा रमणसाधनं विमानादियानं तथा (सम्) (महेम) सत्कुर्याम। अत्रान्येषामिप दृश्यत इति दीर्घः। (मजेषया) विद्याक्रियासुशिक्षाजातया प्रज्ञया (भद्रा) कल्याणकारिणी (हि) खलु (नः) अस्माकम् (प्रमृतिः) प्रकृष्टा बुद्धिः (अस्य) सभाध्यक्षस्य (संसदि) संसीदिन्त विद्वांसो यस्याम् तस्याम् (अपने) विद्यादिगुर्णैविंख्यात (सख्ये) सख्युर्भावे कर्मणि वा (मा) निषेधे (रिषाम) हिंसिता भवेम। अत्रान्थेषासपीति द्वीर्घः। (वयम्) (तव)॥१॥

अन्वय:-हे अग्ने! विद्वान् यथा वयं भजीपपाऽर्क्न जातवेदसे रथिमवेमं स्तोमं संमहेम वास्य तव सख्ये संसिद नो या भद्रा प्रमितरिस्त तां हि खलु मा रिष्नाम स्था त्व मा रिषा।१॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुतोषमालङ्करः। यथा शिल्पविद्यासिद्धानि विमानादीनि संसाध्य मित्रान् सत्कुर्युस्तथैव पुरुषार्थेन विदूषः सत्कुर्युः। यदा सभासदः सभायामासीरंस्तदा तदा हठदुराग्रहं त्यक्त्वा सर्वेषां कल्याणकरं कार्य्यो न त्यजेयुः। यद्यदग्न्यादिपदार्थेषु विज्ञानं स्यात्तत्त्सर्वैः सह मित्रभावमाश्रित्य सर्वेभ्यो मित्रदेशुसः। नैतेन विना मनुष्याणां हितं संभवति॥१॥

पदार्थ:-हे (अग्ने) विद्यादि गुणों से विदित विद्वन्! जैसे (वयम्) हम लोग (मनीषया) विद्या, क्रिया, और उन्नम शिक्षा से उत्पन्न हुई बुद्धि से (अर्हते) योग्य (जातवेदसे) जो कि उत्पन्न हुए जगत् के पदार्थों को जानता है वा उत्पन्न हुए कार्य्यरूप द्रव्यों में विद्यमान उस विद्वान् के लिये (रथिमव) जैसे विहार क्र्यानेहारे विमान आदि यान को वैसे (इमम्) कार्यों में प्रवृत्त इस (स्तोतम्) गुणकीर्त्तन को (सं महेम्) प्रशस्तित करें वा (अस्य) इस (तव) आपके (सख्ये) मित्रपन के निमित्त (संसदि) जिसमें विद्वान्

१०१६

स्थित होते हैं, उस सभा में (न:) हम लोगों को (भद्रा) कल्याण करनेवाली (प्रमित:) प्रबल बुद्धि है उसको (हि) ही (मा, रिषामा) मत नष्ट करें, वैसे आप भी न नष्ट करें॥१॥

भावार्थ: -इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि जैसे विद्वा में सिद्ध होते हुए विमानों को सिद्ध कर मित्रों का सत्कार करें, वैसे ही पुरुषार्थ से विद्वानों का भी सत्कार करें। जब-जब सभासद् जन सभा में बैठें तब-तब हठ और दुराग्रह को छोड़ सबके सुख़ करने योग्य काम को न छोड़ें। जो-जो अग्नि आदि पदार्थों में विज्ञान हो उस-उस को सबके साथ मित्रपन को आश्रय करके और सबके लिये दें, क्योंकि इसके विना मनुष्यों के हित की संभावना नहीं होती। १।

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा है, इस विषय को अगले मन्त्र में क्रहा है।

यस्मै त्वमायजीसे स साधत्यनुर्वा क्षेति दर्धते सुवीर्यम्। स तृताव नैनीमश्नोत्यंहतिरग्ने सुख्ये मा रिषामा वृह्यंतिवार राष्ट्र

यस्मै। त्वम्। आऽयर्जसे। सः। साधितः। अनुर्वा। क्षेति। द्वते। स्रुऽवीर्यम्। सः। तूतावः। नः एनम्। अञ्नोति। अंहतिः। अग्नै। सुख्ये। मा। रिषामः। वयम्। तर्व॥२॥

पदार्थ:-(यस्मै) जीवाय (त्वम्) (आयजसे) समन्तान सुखं ददते (सः) (साधित) साध्नोति। विकरणव्यत्ययेनात्र श्नोः स्थाने शप्। (अनर्वा) अविद्यमानाश्ची रथ इव (क्षेति) क्षयित निवसित। अत्र बहुलं छन्दसीति विकरणस्य लुक् (दधते) (सुवीर्षम्) श्लोभनानि वीर्याणि यस्मिन् सखीनां कर्मणि तत् (सः) (तूताव) वर्धयित। अत्रान्तिगतो ण्यकः, बुजादीनां दीर्घोऽभ्यासस्येति दीर्घः। (न) निषेधे (एनम्) पूर्वोक्तगुणम्। (अश्नोति) व्याप्नोति व्याप्नानि व्याप्नोति व्याप्नोति व्याप्नानि व्याप्नोति व्याप्नोति व्याप्नोति व्याप्नोति व्याप्नोति व्याप्नानि व्याप्नोति व्याप्नोति व्याप्नोति व्याप्नोति व्याप्नोति व्याप्नोति व्याप्नोति व्याप्नानि व्याप्नोति व्याप्नोति व्याप्नोति व्याप्नानि व्याप्नोति व्याप्नोति व्याप्नोति व्याप्नानि व्याप्नोति व्याप्नानि व्याप्नानि स्याप्नानि व्याप्नानि विष्नानि व्याप्नानि विष्नानि व्याप्नानि व्याप्नानि व्याप्नानि व्याप्नानि विष्नानि विष्याप्नानि विष्याप्नानि विष्याप्नानि विष्याप्याप्नान

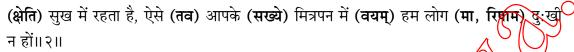
अन्वय:-हे अग्ने! अनर्वेव त्व यस्मा आयजसे भवान् जीवाय रक्षणं साधित, स सुवीर्यं दधते स तूताव चैनमंहतिर्नाश्नोति स सुखे क्षेति। इद्देशस्य तव सख्ये वयं मा रिषाम॥२॥

भावार्थ:-अत्र ब्राच्यकसुप्तोष्णमालङ्कार:। ये विदुषां सभायामग्निविद्यायां वा मित्रतामाचरन्ति, ते पूर्णं शरीरात्मबलं प्राप्य सुखारमपुत्रा भूत्वा निवसन्ति नेतरे॥२॥

पदार्थ: हे (अग्ने) सब विद्या के विशेष जनानेवाले विद्वान्! (अनर्वा) विना घोड़ों के अग्न्यादिकों से खलारे हुए विमान आदि यान के समान (त्वम्) आप (यस्मे) जिस (आयजसे) सर्वथा सुख को देनेहारे जिंव के लिये रक्षा को (साधित) सिद्ध करते हो (स:) वह (सुवीर्च्यम्) जिन मित्रों के काम में अच्छे-अच्छे पराक्रम हैं, उनको (दधते) धारण करता और वह (तूताव) उस को बढ़ाता भी है, (एन्म्) इस उत्तम गुणयुक्त पुरुष को (अंहित:) दिरद्रता (न, अश्नोति) नहीं प्राप्त होती, (स:) वह

मण्डल-१। अनुवाक-१५। सूक्त-

९४



भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो विद्वानों की सभा वा अग्विविद्यो में मित्रपन प्रसिद्ध करते हैं, वे पूरे शरीर तथा आत्मा के बल को पाकर सुखयुक्त रहते हैं, अनुस्र नहीं॥२॥

पुनस्ते कीदृशा इत्युपदिश्यते॥

फिर वे कैसे हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

शकेम त्वा समिधं साधया धियस्वे देवा ह्विरंदुन्त्याहुतम्। त्वमाद्वित्याँ आ वेहु तान्ह्युर्थश्मस्यग्ने सुख्ये मा रिषामा खुर्य त्व।।३॥

शृकेमी त्वा। सम्ऽइधम्। साधयी धियी:। त्वे इति। देवा:। ह्याव:। अदुन्ति। आऽहुतम्। त्वम्। आदुत्यान्। आ। वहु। तान्। हु। उश्मिसी अग्नै। सुख्ये। मा। रिषामु। वयम्। तर्वा ३२।

पदार्थ:-(शकेम) शक्नुयाम (त्वा) त्वाम् (सिष्धम्) सम्याणध्यते यया तां क्रियाम् (साधय) अत्रान्येषामपीति दीर्घ:। (धिय:) प्रज्ञाः कर्माणि वा (त्वे) त्विष्ट (देवा:) विद्वांसः (हिवः) अतुमर्हमत्रम् (अदिन्त) भुञ्जते (आहुतम्) समन्तात् स्वीकृतम् (व्वम्) स्प्रीद्यध्यक्षः (आदित्यान्) अष्टचत्वारिंशद् वर्षकृतब्रह्मचर्य्यान् (आ) (वह) प्राप्नुहि (तान्) (हि) खुलु (उश्मिस) कामयेमहि। (अग्ने, सख्ये, मा, रिषाम, वयं, तव) इति पूर्ववत्॥३॥

अन्वयः-हे अग्ने! वयं त्वाऽऽश्रित्य समिष्ठं वर्तुं शकेम त्वं नो धियः साधय त्वे सित देवा आहुतं हिवरदन्त्यतस्त्वमादित्यानावह तान् हि वयम्श्सूसीदृशस्य तव सख्ये वयं मा रिषाम॥३॥

भावार्थ:-ये मनुष्या विद्धा सङ्गमाश्रित्य विद्यामग्निकार्य्याणि च साद्धुं सहनशीलतां दधते, ते प्रज्ञाक्रियावन्तो भूत्वा सुखिनो भिवृन्ति॥३॥

पदार्थ:-हे (अग्ने) सब विद्याओं में प्रवीण सभाध्यक्ष! (वयम्) हम लोग (त्वा) आपका आश्रय लेकर (सिमधम्) जिससे अच्छे प्रकार प्रकाश होता है, उस क्रिया को (शकेम) कर सकें, (त्वम्) आप हम लोगों की (ध्यः) बुद्धि वा कर्मों को (साध्य) सिद्ध कीजिये, (त्वे) आपके होते (देवाः) विद्वान् लोग (आहुतम्) अच्छे प्रकार स्वीकार किये हुए (हिवः) खाने के योग्य अन्न का (अदिन्त) भोजन करते हैं, इससे आप (आदित्यान्) अड़तालीस वर्ष ब्रह्मचर्य्य को किये हुए ब्रह्मचारियों को (आ वह) प्राप्त कीजिये, तान्) उनको (हि) ही हम लोग (उश्मिस) चाहते हैं, ऐसे (तव) आपके (सख्ये) मित्रपन में हम लोग (सा, रिषाम) दुःखी न हों॥३॥

१०१८

ऋग्वेदभाष्यम्

भावार्थ:-जो मनुष्य विद्वानों के सङ्ग का आश्रय लेकर विद्या और अग्निकार्यों के सिद्ध करने के लिये सहनशीलता को धारण करते हैं, वे प्रबल विज्ञान और अनेक क्रियाओं से युक्त होकर सुखी होते हैं॥३॥

पुनस्ते कीदृशा इत्युपदिश्यते॥

फिर वे कैसे हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

भरामिध्मं कृणवामा हुवींषि ते चितयेन्तः पर्वणापर्वणा वयम्। जीवातवे प्रतुरं साध्या धियोऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तर्व॥ ४॥

भरोम। इध्मम्। कृणवीम। हुवींषि। ते। चितर्यन्तः। पर्वणाऽपर्वणा। वर्षम्। जोकावे। प्रऽतरम्। साध्य। धिर्यः। अग्नै। सुख्ये। मा। रिषाम्। वयम्। तर्व॥४॥

पदार्थ:-(भराम) हरेम। अत्र हस्य भत्वम्। (इध्यम्) इन्धनम् (कृणवाम) कुर्याम। अत्रान्येषामपीति दीर्घ:। (हवींषि) यज्ञार्थानि द्रव्याणि (ते) तुष्यमस्मै व्य (चितयन्तः) गुणानां चितिं कुर्वन्तः (पर्वणापर्वणा) पूर्णेन पूर्णेन साधनेन। अत्र नित्यवीप्सयोसित द्विवंचनम्। (वयम्) (जीवातवे) जीवनाय (प्रतरम्) प्रकृष्टम् (साधय) अत्रान्येषामपीति दीर्घः) प्रज्ञाः कर्माणि वा (अग्ने, सख्ये०) इति पूर्ववत्॥४॥

अन्वय:-हे अग्ने! पर्वणापर्वणा चितयन्तो वर्ष ते ह्वींषि)कृणवामेध्मं च भराम त्वं जीवातवे धिय: प्रतरं साधयेदृशस्य तव सख्ये वयं मा रिषाम॥४॥

भावार्थ:-अत्र श्लेषालङ्कार:। सेन्स्सभाप्रजास्थ्रे. पुरुषैर्येन सज्जनेन प्रज्ञा पुरुषार्थाश्च वर्द्धेरंस्तदर्थं सर्वे संभारा: संसाधनीयास्तेन सह मित्रता केन्पि क्षेच त्यक्तव्या॥४॥

पदार्थ:-हे (अग्ने) विद्वन् (पर्वणापर्वणा) पूरे-पूरे साधन से (चितयन्तः) गुणों को चुनते हुए (वयम्) हम लोग (ते) आपके लिये वा इस अग्नि के लिये (हवींषि) यज्ञ के योग्य जो पदार्थ हैं, उनको अच्छे प्रकार (कृणवाम) करें और (इध्मम्) हुँधन (भराम) लावें, आप (जीवातवे) हमारे जीवन के लिये (धियः) उत्तम बुद्धि वा किम्में को (प्रतरम्) अति उत्तमता जैसे हो, वैसे (साधय) सिद्ध करो, ऐसे (तव) आपके वा (अग्ने) इस भौतिक अग्ने के (सख्ये) मित्रपन में (वयम्) हम लोग (मा, रिषाम) मत दुःखी हों॥४॥

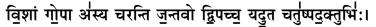
भावार्थ: -इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। सेना, सभा और प्रजा के जनों में रहनेहारे पुरुषों को चाहिये कि जिस भुजन पुरुष से बुद्धि वा पुरुषार्थ बढ़ें, उसके लिये सब सामग्री अच्छी सिद्ध करें और उस पुरुष के साथ मित्रता को कोई भी न छोड़े॥४॥

अथेश्वरसभाध्यक्षगुणा उपदिश्यन्ते॥

अब ईश्वर और सभाध्यक्ष के गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में करते हैं॥

मण्डल-१। अनुवाक-१५। सूक्त-

९४



चित्रः प्रकेत उषसी महाँ अस्यग्ने सुख्ये मा रिषामा वयं तर्व॥५॥३०॥

विशाम्। गोपाः। अस्य। चरन्ति। जन्तर्वः। द्विऽपत्। च। यत्। उत। चर्तुःऽपत्। अक्तुःभीः। चित्रः। प्रऽकेतः। उषसंः। महान्। असि। अग्ने। सुख्ये। मा। रिषाम्। वयम्। तर्व॥५॥

पदार्थ:- (विशाम्) प्रजानाम् (गोपाः) रक्षका गुणाः (अस्य) जगदीश्वरस्य सृष्टौ सभाद्यध्यक्षस्य राज्ये वा (चरन्ति) प्रवर्तन्ते (जन्तवः) मनुष्याः (द्विपत्) द्वौ पादौ यस्य अत्र द्विपच्चतुष्पदित्युभयत्र द्विपाच्चतुष्पादाविति भवितव्येऽयस्मयादित्वाद्धसंज्ञा भत्वात् पादः प्रदिति पद्भावः। (च) अपादः सर्पादयोऽपि (यत्) ये (उत्) अपि (चतुष्पत्) चत्वारः पादा यस्य (अक्तुष्पः) प्रसिद्धैः कर्मभिर्मार्गैः प्रसिद्धाभी रात्रिभिर्वा (चित्रः) अद्भुतगुणकर्मस्वभावः (प्रकेतः) प्रज्ञापकः (उषसः) दिवसान् (महान्) (असि) अस्ति वा (अग्ने) विज्ञापक। (सख्ये०) इति पूर्ववत्॥ १॥

अन्वय:-हे अग्ने! तवास्य विशां यद्ये गोपा जन्तवोऽक्तु (मुरुष्प्रसृष्टिक्) ये द्विपच्चोतापि चतुष्पच्चरन्ति यश्चित्रः प्रकेतो महांस्त्वमिस तस्य तव सख्ये वयं मा रिषाम॥५॥

भावार्थ:-अत्र श्लेषालङ्कार:। मनुष्यै: किर्व्य यस्य प्रस्नेश्वरस्य सभाध्यक्षस्य विदुषो वा महत्त्वेन कार्य्यजगदुत्पत्तिस्थितिभङ्गा जायन्ते तस्य मित्रभूषो कर्मिण ना कदाचिद्विघ्नो न कर्त्तव्य:॥५॥

पदार्थ:-हे (अग्ने) उत्तम सुखों के समझानेवाले सभा आदि कामों के अध्यक्ष! आपके राज्य में वा उत्तम सुखों का विज्ञान करानेवाले (अप्या) इस जगदीश्वर की सृष्टि में (विशाम्) प्रजाजनों के (यत्) जो (गोपा:) पालनेहारे गुण वा (जन्तव:) पनुष्य (चरन्ति) विचरते हैं वा (अक्तुभि:) प्रसिद्ध कर्म, प्रसिद्ध मार्ग और प्रसिद्ध रात्रियों के साध्य (उषस:) दिनों को प्राप्त होते हैं वा जो (द्विपत्) दो पगवाले जीव (च) वा पगहीन सर्प आदि (उत) और (चतुष्पत्) चौपाये पशु आदि विचरते हैं तथा जो (चित्र:) अद्भुत गुणकर्मस्वभावान (प्रकृत:) सब वस्तुओं को जनाते हुए जगदीश्वर वा सभाध्यक्ष आप (महान्) उत्तमोत्तम (असि) हैं, उन तिव्य) आप के (सख्ये) मित्रपन में (वयम्) हम लोग (मा, रिषाम) बेमन कभी न हों॥५॥

भावार्थ:-इस मन्त्रीमं श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि जिस जगदीश्वर वा सभाध्यक्ष विद्वान् के बड़्प्पन से जगत् की उत्पत्ति, पालना और भङ्ग होते हैं, उसके मित्रपन वा मित्र के काम में कभी विद्वन न करें॥ ॥

पुनस्तौ कीदृशावित्युपदिश्यते॥

फिर वे ईश्वर और सभाध्यक्ष कैसे हों, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

त्वर्मध्वर्युरुत होतांसि पूर्व्यः प्रशास्ता पोतां जनुषां पुरोहितः। विश्वां विद्वाँ आर्त्विज्या धीर पुष्यस्यग्ने सुख्ये मा रिषामा वयं तर्व॥६॥

१०२०

त्वम्। अध्वर्युः। उत। होतां। असि। पूर्व्यः। प्रऽशास्ता। पोतां। जनुषां। पुरःऽहितः। विश्वा। विद्वान्। आर्त्विज्या। धीरु। पुष्यसि। अग्ने। सुख्ये। मा। रिषाम्। वयम्। तर्व॥६॥

पदार्थ:-(त्वम्) (अध्वर्युः) अध्वरस्य योजको नेता कामयिता वा। अत्राध्वरशब्दोपपदाद् युजधातोर्बाहुलकात् क्युः प्रत्ययष्टिलोपश्च। अध्वर्युः। अध्वरं युनिक्तः अध्वरस्य नेता। अध्वरं कामयत इति वा। अपि वाधीयाने युरुपबन्धः। अध्वर इति यज्ञनाम। ध्वरतिहिंसाकर्मा। तत्प्रतिषेधः। (निरु०१.८) (उत) अपि (होता) दाता खल्वादाता (अपि) (पूर्व्यः)) पूर्वैः कृत इष्टः (प्रशास्ता) धर्मसुशिक्षोपदेशप्रचारकः (पोता) पवित्रः पवित्रकर्त्ता (जिनुष्प) जातेन जगता सह (पुरोहितः) हितप्रसाधकः (विश्वा) समग्राणि (विद्वान्) यो वेत्ति सः (आर्त्विज्ञम्) ऋत्विज्ञी गुणप्रकाशकानि कर्माणि (धीर) धारणादिगुणयुक्त (पुष्यसि) पोषयसि वा (अग्ने) (सख्ये) [इति पूर्ववत्]॥६॥

अन्वयः-हे धीराग्ने! यतः पूर्व्योऽध्वर्युर्होता प्रशास्ता पोता पुरोहितो ब्रिंद्वांस्त्वमस्युतापि जनुषा विश्वार्त्विज्या पुष्यसि, तस्मात्तव सख्ये वयं मा रिषाम॥६॥

भावार्थ:-अत्र श्लेषालङ्कार:। निह सर्वाधिष्ठात्रा जगदीश्वरण विद्वद्भिर्वा विना जगत: पालनादीनि संभवन्ति, तस्माञ्जनैस्तस्याहर्निशमुपासनमेतेषां सृङ्क कृत्वा सुखयितव्यम्॥६॥

पदार्थ:-हे (धीर) धारणा आदि गुणयुक्ते! (अग्ने) उत्तम ज्ञान देनेवाले परमेश्वर वा सभाध्यक्ष! जिस कारण (पूर्व्य:) पिछले महाशयों के किये और वाहे हुए (अध्वर्यु:) यज्ञ के यथोक्त व्यवहार से युक्त करने, वर्तने और चाहने (होता) देने लिने (प्रशास्ता) धर्म, उत्तम शिक्षा और उपदेश का प्रचार करने (पोता) पवित्र और दूसरों को पवित्र करने (पुरोहित:) हित प्रसिद्ध करने और (विद्वान्) यथावत् जाननेहारे (त्वम्) आप (असि) हैं (उत्त) और (जनुषा) उत्पन्न हुए जगत् के साथ (विश्वा) समग्र (आर्विज्या) ऋत्विजों के गुण्यकाशक कामों को (पुष्यसि) दृढ़ करते-कराते हैं, इससे (तव) आपके (सख्ये) मित्रपन में (वयम्) हुम लोग (मा, रिषाम) दु:खी कभी न होवें॥६॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में श्रीषालङ्कार है। सबके अधिष्ठाता जगदीश्वर वा विद्वानों के विना जगत् के पालने आदि व्यवहारों के होने का संभव नहीं होता, इससे मनुष्यों को चाहिये कि दिन-रात ईश्वर की उपासना और इस विद्वानों का संग करके सुखी हों॥६॥

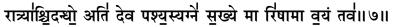
पुन: सभाध्यक्षभौतिकाग्नी कीदृशावित्युपदिश्यते॥

फिर सेभाध्यक्ष और भौतिक अग्नि कैसे हैं, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

यो विश्वर्तः सुप्रतीकः सदृइङसि दूरे चित्सन्तळिदिवार्ति रोचसे।

मण्डल-१। अनुवाक-१५। सूक्त-

९४



यः। विश्वर्तः। सुऽप्रतीकः। सुऽदृङ्। असि। दूरे। चित्। सन्। तृळित्ऽईव। अति। रोचसे रात्र्याः स्त्रित्। अर्चः। अति। देव। पुश्यसि। अग्ने। सुख्ये। मा। रिषाम्। वयम्। तर्व॥७॥

पदार्थ:-(य:) सभापतिः शिल्पविद्यासाधको वा (विश्वतः) सर्वतः (सुप्रतीकः) सुष्ठु प्रतीतिकारकः (सदृङ्) समानदर्शनः (असि) (दूरे) (चित्) एव (सन्) (तिडिदृद्व) सथा विद्युत्तथा (अति) (रोचसे) (रात्र्याः) (चित्) इव (अन्धः) नेत्रहीनः (अति) (देव) सत्यवकाशक (पश्यिस) (अग्ने) (सख्ये०) इति पूर्ववत्॥७॥

अन्वय:-हे देवाग्ने! त्वं यथा य: सदृङ् सुप्रतीकोऽसि दूरे चित्सन् सूर्यरूपेण विश्वतस्तडिदिवाऽतिरोचसे येन विना रात्र्या मध्येऽन्धिश्चिदिवातिपश्यिस तस्य तव सख्ये वयं मा रिषाम॥७॥

भावार्थ:-अत्र श्लेषालङ्कार:। दूरस्थोऽपि सभाध्यक्षो न्यायवस्थाप्रकाशेन यथा विद्युत्सूर्यो वा स्वप्रकाशेन मूर्त्तद्रव्याणि प्रकाशयित तथा गुणहीनान् प्राण्तिः प्रकाशयित तेन सह केन विदुषा मित्रता न कार्याऽपि तु सर्वे: कर्त्तव्येति॥७॥

पदार्थ:-हे (देव) सत्य के प्रकाश करने और (अपने) स्मस्त ज्ञान देनेहारे सभाध्यक्ष! जैसे (य:) जो (सदृङ्) एक से देखनेवाले (त्वम्) आप (स्मृतिकः) उन्नम प्रतीति करानेहारे (असि) हैं वा मूर्तिमान् पदार्थों को प्रकाशित कराने (दूरे, चित्) दूर ही में (सन्) प्रकट होते हुए सूर्व्यरूप से जैसे (तिडिदिव) बिजुली चमके वैसे (विश्वतः) सब ओर से (अकि) अत्यन्त (रोचसे) रुचते हैं तथा भौतिक अग्नि सूर्व्यरूप से दूर ही में प्रकट होता हुआ अत्यन्त रुचता है कि जिसके विना (रात्र्याः) रात्रि के बीच (असः चित्) अन्धे ही के समान (अति, पश्यिस) अत्यन्त देखते-दिखलाते हैं, उस अग्नि के वा (तव) आपके (सख्ये) मित्रपन में (व्यन्) हम लोग (मा, रिषाम) प्रीतिरहित कभी न हों॥७॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में श्लेष और उपमालङ्कार हैं। दूरस्थ भी सभाध्यक्ष न्यायव्यवस्थाप्रकाश से जैसे बिजुली वा सूर्य्य मूर्जिमान पदार्थों को प्रकाशित करता है, वैसे गुणहीन प्राणियों को अपने प्रकाश से प्रकाशित करता है, उसके साथ बा उसमें किस विद्वान् को मित्रता न करनी चाहिये, किन्तु सबको करना चाहिये॥७॥

पुन: शिल्पिभौतिकाग्निकर्माण्युपदिश्यन्ते॥

५. संस्कृत भावार्थ में केवल श्लेषालङ्कार है, जबिक हिन्दी में उपमा का भी उल्लेख है। सं०

१०२२

ऋग्वेदभाष्यम्

अब शिल्पी और भौतिक अग्नि के कामों का उपदेश किया है॥

पूर्वो देवा भवतु सुन्वतो रथोऽस्माकं शंसी अभ्यंस्तु दूढ्यः। तदा जानीतोत पुष्यता वचोऽग्ने सुख्ये मा रिषामा वयं तवी॥८॥

पूर्वीः। देवाः। भुवतु। सुन्वतः। रर्थाः। अस्मार्कम्। शंसीः। अभि। अस्तु। दुःऽध्यीः। तत्। आर्रिजानीता उत। पुष्युत्। वर्चाः। अग्नै। सुख्ये। मा। रिषाम्। वयम्। तर्व॥८॥

पदार्थ:-(पूर्व:) प्रथमः सुखकारी (देवा:) विद्वांसः (भवतु) (सुन्वतः) सुखोभिषवकर्तुः (रथः) विमानादियानम् (अस्माकम्) शिल्पविद्याजिज्ञासूनाम् (शंसः) शस्यते यः सः (अभि) आभिमुख्ये (अस्तु) (दूढ्यः) अनिधकारिभिर्दुःखेन ध्यातुं योग्यः। अत्र दुरुपपदाद् ध्यैधातोर्घवर्षि कविष्यप्रमिति कः प्रत्ययः। दुरुपसर्ग्गस्योकारादेश उत्तरपदस्य ष्टुत्वञ्च पृषोदरादित्वात्। (तत्) विद्यासुशिक्षासुन्तम् (आ) (जानीत) (उत्त) अपि (पुष्यत) अन्येषामपीति दीर्घः। (वचः) वचनम् (अग्ने, सख्ये । इत्यादि पूर्ववत्॥८॥

अन्वय:-हे देवा विद्वांसो! यूयं येनाऽस्माकं पूर्वो रथो दूढ्यो भूमत् पूर्वो दूढ्यं शंसश्चाभ्यस्तु तद्वच आजानीत। उतापि तेन स्वयं पुष्यताऽस्मान् पोषयत च।हे अग्ने परमशिल्पिन्! सुन्वतस्तकस्यान्त्रेर्वा सख्ये वयं मा रिषाम॥८॥

भावार्थ:-अत्र श्लेषवाचकलुप्तोपमालङ्कारि। रेहे विद्वांसो! येन प्रकारेणमनुष्येष्वात्मशिल्पव्यवहारविद्याः प्रकाशिता भूत्वा सुखोन्नातः स्यात् तथा प्रयतध्वम्॥८॥

पदार्थ:-हे (देवा:) विद्वानो! तुम जिससे (अस्माकम्) हम लोग जो कि शिल्पविद्या को जानने की इच्छा करनेहारे हैं, उनका (पूर्व:) प्रथम सुख करनेहारा (रथ:) विमानादि यान (दूढ्य:) जिनको अधिकार नहीं है, दु:खपूर्वक विचारने योग्य (भवतु) हो तथा उक्त गुणवाला रथ (शंस:) प्रशंसनीय (अभि) आगे (अस्तु) हो, (तत्) उस विद्या और इतम शिक्षा से युक्त (वच:) वचन की (आ, जानीत) आज्ञा देओ (उत) और उसी से आप (पुष्यत) पृष्ट होओ तथा हम लोगों को पृष्ट करो। हे (अग्ने) उत्तम शिल्प विद्या के जाननेहारे परमावीण! (सुवत:) सुख का निचोड़ करते हुए (तव) आपके वा इस भौतिक अग्नि के (सख्ये) मिन्नपूर्व में (वयम्) हम लोग (मा, रिषाम) दु:खी कभी न हों॥८॥

भावार्थ:-इस मूल में श्लेष और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। हे विद्वानो! जिस ढंग से मनुष्यों में आत्मज्ञान और शिल्पव्यवहार की विद्या प्रकाशित होकर सुख की उन्नति हो, वैसा यत्न करो॥८॥

अथ सभासेनाशालाद्यध्यक्षगुणा उपदिश्यन्ते॥

अब सभा, सेना और शाला आदि के अध्यक्षों के गुणों का उपदेश किया है।।

वृधैर्दु:श्रेभा अप दूढ्यो जिह दूरे वा ये अन्ति वा के चिंदुत्रिण:।

अर्था युज्ञाये गृणुते सुगं कृध्यम्ने सुख्ये मा रिषामा वयं तर्व॥९॥

मण्डल-१। अनुवाक-१५। सूक्त-

९४

वृधैः। दुःऽशंसान्। अप। दुःऽध्यैः। जिहि। दूरे। वा। ये। अन्ति। वा। के। चित्। अत्रिणीः। अयी यज्ञायी गृणते। सुऽगम्। कृष्टि। अग्नै। सुख्ये। मा। रिषाम्। वयम्। तर्व॥९॥

पदार्थ:-(वधै:) ताडनै: (दु:शंसान्) दुष्टा: शंसा शासनानि येषां तान् (अप) निवारेषे (दूढ्य:) दुष्टिध्य:। पूर्ववदस्य सिद्धि:। (जिह) (दूरे) (वा) (ये) (अन्ति) अन्तिके (वा) यक्षान्तरे (के) (चित्) अपि (अत्रिण:) शत्रव: (अथ) आनन्तर्ये। अत्र निपातस्य चेति दीर्घ:। (यज्ञाय) क्रियामयास् यागाय (गृणते) विद्याप्रशंसां कुर्वते पुरुषाय (सुगम्) विद्यां गच्छन्ति प्राप्नुवन्ति यस्मिन् कर्मणि (कृष्टि) कुरु (अग्ने) विद्याविज्ञापक सभासेनाशालाऽध्यक्ष (सख्ये०) इति पूर्ववत्॥९॥

अन्वय:-हे अग्ने सभासेनाशालाध्यक्ष विद्वन्! स त्वं दूढ्यो दुःशंसान् दस्यवादीपञ्जिणो मनुष्यान् वधैरपजिह ये शरीरेणात्मभावेन वा दूरे वान्ति केचिद्वर्त्तन्ते तानिप सुशिक्षया वधैर्वाऽपजिह एवं कृत्वाऽध्ये यज्ञाय गृणते पुरुषाय वा सुगं कृधि तस्मादीदृशस्य तव सख्ये वयं मा रिषाम॥९॥

भावार्थ:-सभाध्यक्षादिभिः प्रयत्नेन प्रजायां दुष्ट्रोपदेशपुर्वमेपाठनादीनि कर्माणि निवार्य दूरसमीपस्थान् मनुष्यान् मित्रवन्मत्वा सर्वथाऽविरोधः सम्पद्धनीयः स्वेत परस्परं निश्चलानन्दो वर्धेत॥९॥

पदार्थ:-हे सभा, सेना और शाला आदि के अध्यक्ष विद्वान्! आप जैसे (दूढ्यः) दुष्ट बुद्धियों और (दुःशंसान्) जिनकी दुःख देनेहारी सिखावर्ट हैं, उन हाकू आदि (अत्रिणः) शत्रुजनों को (वधैः) ताड़नाओं से (अप, जिह) अपघात अर्थात् दुर्गित से दुःख देओ और शरीर (वा) वा आत्मभाव से (दूरे) दूर (वा) अथवा (अन्ति) समीप में (ये) वा (केचित्र) कोई अधर्मी शत्रु वर्त्तमान हों, उनको (अपि) भी अच्छी शिक्षा वा प्रबल ताड़नाओं से स्रीधा करि। पूसे करके (अथ) पीछे (यज्ञाय) क्रियामय यज्ञ के लिये (गृणते) विद्या की प्रशंसा करते हुए पुरुष के योग्य (सुगम्) जिस काम में विद्या पहुंचती है, उसको (कृधि) कीजिये, इस कारण ऐसे समर्थ (त्व) आपके (सख्ये) मित्रपन में (वयम्) हम लोग (मा, रिषाम) मत दुःख पावें॥९॥

भावार्थ:-सभाध्यक्षादिकों को चाहिये कि उत्तम यत्न के साथ प्रजा में अयोग्य उपदेशों के पढ़ने-पढ़ाने आदि कामों को जियार के दूरस्थ मनुष्यों को मित्र के समान मान के सब प्रकार से प्रेमभाव उत्पन्न करें, जिसस्रे एरस्पर निश्चल आनन्द बढ़े॥९॥

अथ शिल्प्यग्निगुणा उपदिश्यन्ते॥

अब शिल्पी और भौतिक अग्नि के गुणों का उपदेश किया है॥

यद्रयुक्था अरुषा रोहिता रथे वार्तजूता वृष्भस्येव ते रर्वः।

आदिन्वसि वनिनो धूमकेतुनाग्ने सुख्ये मा रिषामा वयं तर्व॥१०॥३१॥

यत्। अर्युक्थाः। अ्रुषा। रोहिता। रथे। वार्तऽजूता। वृष्भस्यंऽइव। ते। रर्वः। आत्। इुन्वृस्ति। वृर्निनः धूमऽकेतुना। अग्ने। सुख्ये। मा। रि्षाम्। वृयम्। तर्व॥१०॥

पदार्थ:-(यत्) ये (अयुक्थाः) योजयसि (अरुषा) अहिंसकावश्वौ (रोहिता) दृढबल हिंगुगिपतौ) अत्रोभयत्र द्विवचनस्याकारदेशः। (रथे) विमानादौ याने (वातजूता) वायुवद्वेगौ। अत्रास्याकारदेशः। (वृषभस्येव) यथा वोढुर्बलीवर्दस्य तथा (ते) तवैतस्य वा (रवः) ध्विनः (आत्) अनन्तरे (इन्विस्) व्याप्नोषि व्याप्नोति वा (विननः) वनस्य संविभागस्य रश्मीनां वा प्रशस्तः सम्बन्धा विद्यते यस्य तस्य। अत्र सम्बन्धार्थ इनिः। (धूमकेतुना) धूमः केतुर्ध्वजावद्यस्मिन् रथे तेन (अपने) (सख्ये०) इति पूर्ववत्॥१०॥

अन्वय:-हे अग्ने विद्वन्! यतस्त्वं यद्यौ ते तवास्य वृषभस्येव बात्स्त्रति अरुषा प्रोहिताश्चौ रथे योक्तुमहौं स्तस्तावयुक्था योजयित योजयित वा तज्जन्यो यो रवस्तेन सह वर्त्तमानेन धूमकेनुना रूथेन सर्वान् व्यवहारानिन्विस व्याप्नोषि व्याप्नोति वा तस्मादादथ विननस्तवास्य वा सख्ये वयं मा रिषाम।

भावार्थ:-अत्र श्लेषोपमालङ्कारौ। यस्माच्छिल्प्यग्निर्वा सर्विहतानि कार्याणि कर्तुं शक्नोति, तस्माद्विमानादियानं संभावयितुं योग्योऽस्ति॥१०॥

पदार्थ:-(अग्ने) समस्त शिल्पव्यवहार के ज्ञान देने तिले कियाचतुर विद्वन्! जिस कारण आप (यत्) जो कि (ते) आपके वा इस अग्नि के (वृष्धस्विव) पदार्श्वों के ले जानेहारे बलवान् बैल के समान वा (वातजूता) पवन के वेग के समान वेगयुक्त (अरुष) सीधे स्वभाव (रोहिता) दृढ़ बल आदि युक्त घोड़े (रथे) विमान आदि यानों में जोड़ने के योग्य हैं; उनको (अयुक्था:) जुड़वाते हैं वा यह भौतिक अग्नि जुड़वाता है, उस रथ से निकला जें (र्ष्यः) शब्द उसके साथ वर्तमान (धूमकेतुना) जिसमें धूम ही पताका है, उस रथ से सब व्यवहारों की (इन्ह्यसि) व्याप्त होते हो वा यह भौतिक अग्नि उक्त प्रकार से व्यवहारों को व्याप्त होता है, इससे (आत्) पीछे (विननः) जिनको अच्छे विभाग वा सूर्यिकरणों का सम्बन्ध है (तव) उन आपके वा जिस भौतिक अग्नि को किरणों का सम्बन्ध है, उसके (सख्ये) मित्रपन में (वयम्) हम लोग (मा, रिषाम) भीद्वित न हों॥१०॥

भावार्थ:-इस मिन्न में श्लेष और उपमालङ्कार हैं। जिससे शिल्पी और भौतिक अग्नि सर्वहित करनेवाले कामों को सिद्ध कर सकते हैं, उससे विमान आदि यानों की संभावना करना योग्य है॥१०॥

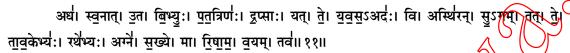
पुनरेतयोः कीदृशा गुणा इत्युपदिश्यते॥

फिर इनके कैसे गुण हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अ<mark>ध स्वनोद</mark>ुत बिभ्युः पतित्रणों द्रप्सा यत्ते यवसादो व्यस्थिरन्। पुरां तत्ते तावकेभ्यो रथेभ्योऽग्ने सुख्ये मा रिषामा वयं तर्व॥११॥

मण्डल-१। अनुवाक-१५। सूक्त-

९४



पदार्थ:-(अध) अथ (स्वनात्) शब्दात् (उत) अपि (बिभ्युः) भयं प्राप्नुवन्तु (पतित्रेषः) शत्रवः पक्षिणो वा (द्रप्साः) हर्षयुक्ता भृत्या ज्वालादयो गुणा वा (यत्) यदा (ते) तवास्य वा (यवसदः) ये यवसमन्नादिकमदन्ति ते (वि) विविधार्थे (अस्थिरन्) तिष्ठेरन्। अत्र लिङ्थे सुङ् वाच्छन्दसीति झस्य रनादेशः छान्दसो वर्णलोप इति सिचः सलोपः। (सुगम्) सुखेन गच्छन्त्यस्मिन्मार्गे तम् (तत्) तदा (ते) तव (तावकेभ्यः) त्वदीयेभ्यस्तित्सद्धेभ्यो वा (रथेभ्यः) विमानादिभ्यः (अन्ने) (सख्ये॰) इति पूर्ववत्॥११॥

अन्वय:-हे अग्ने! यद्यदा ते तवास्याग्नेर्वा यवसादो द्रप्सा सुगं व्यस्थिरन् मार्गे वितिष्ठेरँस्तत्तदा ते तवास्य वा तावकेभ्यो रथेभ्यः पतित्रणो बिभ्युः। अधाथोतापि तेषां रथानां स्वनात्प्रतित्रणः पिक्षण् इव शत्रवो भयं प्राप्ता विलीयन्त ईदृशस्य तव सख्ये वयं मा रिषाम॥११॥

भावार्थ:-मनुष्यैर्यदाऽऽग्नेयास्त्रविमानादियुक्ताः भेनीः स्मिष्य शत्रुविजयार्थं वेगेन गत्वा शस्त्रास्त्रप्रहारैः सुहर्षितशब्दैः शत्रुभिः सह युध्यते तहा धुन्नो निजयो जायत इति विज्ञेयम्। नह्योष स्थिरो विजयः खलु विद्वद्विरोधिनामग्न्यादिविद्याविरहाणां क्रिदाचिद्वितुत् शक्यः। तस्मादेतत्सर्वदाऽनुष्ठेयम्॥११॥

पदार्थ:-हे (अग्ने) समस्त विज्ञान देनेहारे शिल्पिन्! (यत्) जब (ते) तुम्हारे (यवसादः) अन्नादि पदार्थां को खानेहारे (द्रप्साः) हर्षयुक्त भूत्य ना लप्ने आदि गुण (सुगम्) उस मार्ग को कि जिसमें सुख से जाते हैं (वि) अनेक प्रकारों से (अस्थिरन्) स्मिर होवें (तत्) तब (ते) आपके वा इस भौतिक अग्नि के (तावकेभ्यः) जो आपके वा इस अग्नि के सिद्ध किये हुए रथ हैं, उन (रथेभ्यः) विमान आदि रथों से (पत्रिणः) पिक्षयों के तुल्य शत्र (विभ्युः) इरें (अध) उसके अनन्तर (उत) एक निश्चय के साथ ही उन रथों के (स्वनात्) शब्द से पिक्षयों के समान हरे हुए शत्रु बिलाय जाते हैं, ऐसे (तव) आपके वा इस अग्नि के (सख्ये) मित्रप्त में (व्यम्) हम लोग (मा, रिषाम) मत अप्रसन्न हों॥११॥

भावार्थ:-जब आग्निय अस्त्र-शस्त्र और विमानादि यानयुक्त सेना इकट्ठी कर शत्रुओं के जीतने के लिये वेग से क्राकर शस्त्रों के प्रहार वा अच्छे आनन्दित शब्दों से शत्रुओं के साथ मनुष्यों का युद्ध कराया जाता है, तब दूढ़ विजय होता है ,यह जानना चाहिये। यह स्थिर दृढ़तर विजय निश्चय है कि विद्वानों के विरोधियों, अग्न्यादि विद्वारहित पुरुषों का कभी नहीं हो सकता, इससे सब दिन इसका अनुष्ठान करना चाहिय।।११॥

अथ सभाद्यध्यक्षगुणा उपदिश्यन्ते॥

अब सभा आदि के अधिपति के गुणो का उपदेश करते हैं॥

१०२६

ऋग्वेदभाष्यम्

अयं मित्रस्य वर्मणस्य धार्यसेऽवयातां मुरुतां हेळो अद्धृतः। मृळा सु नो भूत्वेषां मनः पुनरग्ने सुख्ये मा रिषामा वयं तर्व॥१२॥

अयम्। मित्रस्यं। वर्रुणस्य। धार्यसे। अवयाताम्। मुरुताम्। हेळः। अद्धृतः। मृळ। सु। नुः। भूतु एषाम्। मनः। पुनः। अग्ने। सुख्ये। मा। रिषाम्। वयम्। तवं॥१२॥

पदार्थ:-(अयम्) प्रत्यक्षः (मित्रस्य) सख्युः (वरुणस्य) वरस्य (धायसे) ध्रारणाय (अवयाताम्) धर्मिवरोधिनाम् (मरुताम्) मरणधर्माणां मनुष्याणाम् (हेळः) अनादरः (अद्भुतः) अश्चर्ययुक्तः (मृड) आनन्दय। अत्रान्तर्गतोण्यर्थः द्वयचोऽतिस्तिङ इति दीर्घश्च। (सु) (नः) अस्माकम् (भूतु) भवतु। अत्र शपो लुक्। भूसुवोस्तिङ। (अष्टा०७.३.८८) इति गुणाभावः। (एषाम्) भद्राणाम् (भनः) अन्तःकरणम् (पुनः) मुहुर्मुहः (अग्ने, सख्ये०) इति पूर्ववत्॥१२॥

अन्वय:-हे अग्ने! यतस्त्वया मित्रस्य वरुणस्य धायसे योऽयमब्यातो मेरुतीमद्भुतो हेळ: क्रियते तेनैषां नोऽस्माकं मन: पुन: सुमृडैवं भूतु तस्मात् तव सख्ये वयं मा रिषाम॥१२/॥

भावार्थ:-मनुष्यै: सभाध्यक्षस्य यच्छ्रेष्ठानां पालनं द्रुष्टुन्तं ताड्नं तहिदित्वा सदाचरणीयम्॥१२॥

पदार्थ:-हे (अग्ने) समस्त ज्ञान देनेहारे सभा अि के अधिपति! जिस कारण आपने (मित्रस्य) मित्र वा (वरुणस्य) श्रेष्ठ के (धायसे) धारण वा सन्तिष के लिये जो (अयम्) यह प्रत्यक्ष (अवयाताम्) धर्मिवरोधी (मरुताम्) मरने जीनेवाले मनुष्यों का (अद्भुतः) अद्भुत (हेळः) अनादर किया है, उससे (एषाम्) इन (नः) हम लोगों के (मनः) मन की (पुनः) भ्रार-बार (सु मृड) अच्छी प्रकार आनन्दित करो ऐसे (भूतु) हो, इससे (तव) तुम्हारे (साइब्रें) मित्रपूत्र में (वयम्) हम लोग (मा, रिषाम) मत बेमन हों॥१२॥

भावार्थ:-मनुष्यों को चाहिसे कि सभाध्यक्ष को जो श्रेष्ठों का पालन और दुष्टों को ताड़ना देनी है, उसको जानकर यह सदा आचरण करें॥१२०

पुनरीश्चरिसभाद्यध्यक्षाभ्यां मेह मित्रता किमर्था कार्य्यत्युपदिश्यते॥

फिर ईश्वर और क्रिफ अदि के अधिपतियों के साथ मित्रभाव क्यों करना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

देवो देवानामसि मित्रो अद्धंतो वसुर्वसूनामसि चार्रुग्ध्वरे। शर्मित्स्याम तर्व सुप्रथस्तमेऽग्ने सुख्ये मा रिषामा वयं तर्व॥१३॥

देवः। देवानीम्। असि। मित्रः। अद्धेतः। वसुः। वसूनाम्। असि। चार्रः। अध्वरे। शर्मन्। स्याम्। तर्व। सुप्रर्थः इतमे। अग्ने। सुख्ये। मा। रिषाम्। वयम्। तर्व॥ १३॥

मण्डल-१। अनुवाक-१५। सूक्त-

९४

पदार्थ:-(देव:) दिव्यगुणसम्पन्नः (देवानाम्) दिव्यगुणसम्पन्नानां विदुषां पदार्थानां व्या असि) भवसि (मित्र:) बहुसुखकारी सर्वदुःखिवनाशकः (अद्भुत:) आश्चर्यगुणकर्मस्वभावकः (वसुः) वस्ता वासियता वा (वसूनाम्) वसतां वासियतॄणां मनुष्याणाम् (असि) भवसि (चारुः) श्रेष्टः (अध्वरे) अहिंसनीयेऽहातव्य उपासनाख्ये कर्त्तव्ये संग्रामे वा (शर्मन्) शर्मणि सुखे (स्थाम) भवेष (तव) (सप्रथस्तमे) अतिशयितैः प्रथोभिः सुविस्तृतैः श्रेष्ठैर्गुणकर्मस्वभावैः सह वर्त्तमाने (अपने) जगदीश्वर विद्वन् वा (सख्ये०) इति सर्वं पूर्ववत्॥१३॥

अन्वयः-हे अग्ने! यतस्त्वमध्वरे देवानां देवोऽद्भुतश्चारुर्मित्रोऽसि वसूनां स्पूर्णी तस्योत्तव सप्रथस्तमे शर्मन् शर्मणि वयं सुनिश्चिताः स्याम तव सख्ये कदाचिन्मा रिषाम च॥१३॥

भावार्थ:-अत्र श्लेषालङ्कार:। निह कस्यचित्खलु परमेश्वस्स्य विदुर्ण च सुखकारकं मित्रत्वं सुस्थितं तस्मादेतस्मिन् सर्वेरस्मदादिभिर्मनुष्यै: सुस्थिरया बुद्ध्या प्रवित्तिन्त्यम्॥१३॥

पदार्थ:-हे (अग्ने) जगदीश्वर वा विद्वन्! जिस्स कारणे औप (अध्वरे) न छोड़ने योग्य उपासनारूपी यज्ञ वा संग्राम में (देवानाम्) दिव्यगुणों से परिपूर्ण विद्वान् वा दिव्यगुणयुक्त पदार्थों में (देव:) दिव्यगुणसम्पन्न (अद्भुत:) आश्चर्यरूप गुण कर्म और स्वभाव से युक्त (चारु:) अत्यन्त श्रेष्ठ (मित्र:) बहुत सुख करने और सब दु:खों का विनाश करने मिले (असि) हैं तथा (वसूनाम्) वसने और वसानेवाले मनुष्यों के बीच (वसु:) वसने और वसामेवाले (असि) हैं, इस कारण (तव) आपके (सप्रथस्तमे) अच्छे प्रकार अति फैले हुए रूज, कर्म, स्त्रभावों के साथ वर्त्तमान (शर्मन्) सुख में (वयम्) हम लोग अच्छे प्रकार निश्चित (स्थाम्) हों, और (तव) आप के (सख्ये) मित्रपन में कभी (मा रिषाम) बेमन न हों॥१३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में क्लिपालङ्कार है। किसी मनुष्य को भी परमेश्वर और विद्वानों की सुख प्रकट करनेवाली मित्रता अच्छे प्रकार स्थिर नहीं होती, इससे इसमें हम मनुष्यों को स्थिर मित के साथ प्रवृत्त होना चाहिये॥१३

पुन किद्गिशाभ्यां सह सर्वै: प्रेमभाव: कार्य इत्युपदिश्यते॥

फिर क्रैंसों के साथ सबको प्रेमभाव करना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है।।

तत्ते भूद्रं यस्पर्मिद्धः स्वे दमे सोमाहुतो जरसे मृळ्यत्तमः।

द्धा<u>सि स्पुं</u> द्रविणं च दाशुषेऽग्ने सुख्ये मा रिषाम वयं तर्व॥१४॥

तेत्। ते। भुद्रम्। यत्। सम्ऽईद्धः। स्वे। दमे। सोर्मऽआहुतः। जरसे। मृळ्यत्ऽतेमः। दर्धासि। रत्नेम्। द्रिविणम्<u>भन्ता द्रा</u>शुषे। अग्ने। सख्ये। मा। रिषाम्। वयम्। तर्व॥१४॥

पदार्थ:-(तत्) तस्मात् (ते) तव (भद्रम्) कल्याणकारकं शीलम् (यत्) यस्मात् (सिमिद्धः) सुप्रकाशितः (स्वे) स्वकीये (दमे) दान्ते संसारे (सोमाहुतः) सोमैरैश्वर्थ्यकारकैर्गुणैः पदार्थैर्वाऽहुतो वर्द्धितः सन् (जरसे) अर्च्यसे पूज्यसे। अत्र विकरणव्यत्ययेन कर्मणि यकः स्थाने शप्। जरत इत्यर्धिति कर्मसु पठितम्। (निघं०३.१४) (मृडयत्तमः) अतिशयेन सुखियता (दधासि) (रत्नम्) रमणित्रम् (द्रविणम्) चक्रवर्तिराज्यादिसिद्धं धनम् (च) शुभानां गुणानां समुच्चये (दाशुषे) सुशीले वर्तमाने कुर्वेदे मनुष्याय (अग्ने) (सख्ये०) इति पूर्ववत्॥१४॥

अन्वय:-हे अग्ने! यद्यस्मात् स्वे दमे सिमद्धः सोमाहुतोऽग्निरिव मृडयत्तमस्त्वं सिवैधिद्वेदिर्जरसे दाशुषे रत्नं द्रविणञ्च विद्यादिशुभान् गुणान् दधासि। तदीदृशस्य ते तव भद्रं शीलं कदाचिद्वयं प्रा रिषाम तव सख्ये सुस्थिराश्च स्याम॥१४॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। मनुष्यैर्वेदसृष्टिक्रमप्रमणिः सत्पुरुषस्येश्वरस्य विदुषो वा कर्मशीलं च धृत्वा सर्वैः प्राणिभिः सह मित्रतामाचर्य्य सर्वदा विद्याधर्मिश्वक्षोत्रतिः कार्य्या॥१४॥

पदार्थ:-हे (अग्ने) समस्त विज्ञान देनेवाले ईश्वर वा विद्वन् ! (अत्) जिस कारण (स्वे) अपने (दमे) दमन किये हुए संसार में (सिमद्धः) अच्छे प्रकार प्रकाशित (सीमाहुतः) और ऐश्वर्य्य करनेवाले गुण और पदार्थों से वृद्धि को प्राप्त किये हुए अग्नि के समाप (मृडयत्तमः) अत्यन्त सुख देनेहारे आप सब विद्वानों से (जरसे) अर्चन पूजन को प्राप्त होते हैं वा (द्वाप्रुषे) उत्तम शील के निमित्त अपना वर्ताव वर्त्तते हुए मनुष्य के लिये (रत्नम्) अति रमणीय (द्वाप्रुषे) चक्रवर्त्ति राज्य आदि कामों से सिद्ध धन (च) और विद्या आदि अच्छे गुणों को (द्वापि) धरण करते हैं (तत्) इस कारण ऐसे (ते) आपके (भद्रम्) सुख करनेवाले स्वभाव को (वयप) हुए स्वोग कभी (मा, रिषाम) मत भूलें किन्तु (तव) आपके (सख्ये) मित्रपन में अच्छे प्रकार स्थित हों॥ १४॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वृत्विकलुष्तीपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि वेदप्रमाण और संसार के वार-वार होने न होने आदिल्यवहार के प्रमाण तथा सत्पुरुषों के वाक्यों से वा ईश्वर और विद्वान् के काम वा स्वभाव को जी में धर सब प्राणियों के साथ मित्रता वर्त्तकर सब दिन विद्या, धर्म और शिक्षा की उन्नति करें॥१४॥

पुनस्ते कीदृशा इत्युपदिश्यते॥

फिर 🗑 कैसे हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

यस्<u>भे त्व सुर</u>्विणाे ददांशोऽनागास्त्वमंदिते सुर्वताता।

य भुद्रेण श्रवसा चोदयांसि प्रजावता राधसा ते स्याम॥१५॥

यस्मै। त्वम्। सुऽद्रविणः। दर्दाशः। अनागाःऽत्वम्। अदिते। सर्वऽताता। यम्। भद्रेणे। शर्वसा। चोदयासि। प्रकाऽविते। राधसा। ते। स्याम्॥१५॥

मण्डल-१। अनुवाक-१५। सूक्त-९४ Q. PS

पदार्थ:-(यस्मै) मनुष्याय (त्वम्) जगदीश्वरो विद्वान् वा (सुद्रविणः) शोभनानि द्रविष्णांसियस्मात्तत्सम्बुद्धौ (ददाशः) ददासि। अत्र दाशृधातोर्लेटो मध्यमैकवचने शपः श्लुः। (आनागस्त्वम्) निष्पापत्वम्। इण आग अपराधे च। (उणा०४.२१२) अत्र नञ्पूर्वादागःशब्दात्त्वे प्रत्ययेष्ठन्येषपपि दृश्यते इत्युपधाया दीर्घत्वम्। (अदिते) विनाशरिहत (सर्वताता) सर्वतातौ सर्वस्थिन् व्यवहारे। अत्र सर्वदेवात्तातिल्। (अष्टा०४.४.१४२) इति सूत्रेण सर्वशब्दात्स्वार्थे तातिल् प्रत्ययः सुपां सुनुगिति सप्तम्या डादेशः। (यम्) (भद्रेण) सुखकारकेण (शवसा) शरीरात्मबलेन (चोदयासि) प्रेर्थिस (प्रजावता) प्रशस्ताः प्रजा विद्यन्ते यस्मिस्तेन (राधसा) विद्यासुवर्णादिधनेन सह (ते) त्वहाद्यास्म) वर्तमानाः (स्याम) भवेम॥१५॥

अन्वय:-हे सुद्रविणोऽदिते जगदीश्वर विद्वन्! वा यतस्त्वं सर्वताता सम्मा अनुगास्त्वं ददाश:। यं भद्रेण शवसा प्रजावता राधसा सह वर्त्तमानं कृत्वा शुभे व्यवहारे चोदयासि प्रेरये:। तस्मात्तवाज्ञायो विद्वच्छिक्षायां च वर्त्तमाना ये वयं प्रयतेमहि ते वयमेतस्मिन् कर्मणि स्थिरा: स्याम॥१५॥

भावार्थ:-अत्र श्लेषालङ्कार:। यस्मिन् मनुष्येऽन्तर्यामेश्वरः प्रापाकरणत्वं प्रकाशयित, स मनुष्ये विद्वत्सङ्गप्रीतिः सन् सर्वविधं धनं शुभान् गुणांश्च प्राप्य सर्वदा सुखी भवति, तस्मादेतत्कृत्यं वयमपि नित्यं कुर्याम॥१५॥

पदार्थ:-हे (सुद्रविण:) अच्छे-अच्छे धिनों के देने और (अदिते) विनाश को न प्राप्त होनेवाले जगदीश्वर वा विद्वन्! जिस कारण (त्वम्) आप (सर्वेत्नाता) समस्त व्यवहार में (यस्मै) जिस मनुष्य के लिये (अनागास्त्वम्) निरपराधता को (ददाशः) देते हैं तथा (यम्) जिस मनुष्य को (भद्रेण) सुख करनेवाले (शवसा) शारीरिक, अत्मिक बल और (प्रजावता) जिसमें प्रशंसित पुत्र आदि हैं, उस (राधसा) विद्या, सुवर्ण आदि जन से युक्त करके अच्छे व्यवहार में (चोदयासि) लगाते हैं, इससे आपकी वा विद्वानों की शिक्षा/में चर्तमान जो हम लोग अनेकों प्रकार से यत्न करें (ते) वे हम इस काल में स्थिर (स्थाम) हों॥१५/म

भावार्थ:-इस मेन्त्र में अनेषालङ्कार है। जिस मनुष्य में अन्तर्यामी ईश्वर धर्मशीलता को प्रकाशित करता है, वह मनुष्य विद्वानों के संग में प्रेमी हुआ सब प्रकार के धन और अच्छे-अच्छे गुणों को पाकर सब दिनों में सुखी होता है, इससे इस काम को हम लोग भी नित्य करें॥१५॥

पुनस्तौ कीदृशावित्युपदिश्यते॥

े फिर वे कैसे हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

स्रोत्वर्मग्ने सौभगुत्वस्य विद्वानस्माकुमायुः प्र तिरेह देव।

१०३०

तन्नो मित्रो वर्रुणो मामहन्तामदिति: सिन्धु: पृथिवी उत द्यौ:॥१६॥३२॥६॥

सः। त्वम्। अग्ने। सौभगुऽत्वस्ये। विद्वान्। अस्मार्कम्। आर्युः। प्र। तिर्। इह। देव। तत्। तः। मित्रः। वर्रणः। मुमहुन्ताम्। अदितिः। सिन्धुः। पृथिवी। उत। द्यौः॥ १६॥

पदार्थ:-(स:) (त्वम्) (अग्ने) जीवनैश्वर्यप्रद परमेश्वर रोगनिवारणायौषधप्रद वा (सौभगत्वस्य) सुष्ठु भगानामैश्वर्याणामयं समूहस्तस्य भावस्य (विद्वान्) सकलविद्याप्रापकः प्रस्मितविद्याप्रदो वा (अस्माकम्) (आयुः) जीवनं ज्ञानं वा (प्र) (तिर) सन्तारय (इह) कार्यजगित (देव) सर्वैः कमनीय (तत्) (नः) (मित्रः) प्राणः (वरुणः) उदानः (मामहन्ताम्) वर्द्धन्ताम्। व्यत्ययेनात्र सपः श्लुः। (अदितिः) उत्पन्नं वस्तुमात्रं जनित्वं कारणं वा (सिन्धुः) समुदः (पृथिवी) भूमिः (इत) अपि (द्यौः) विद्युत्प्रकाशः॥१६॥

अन्वय:-हे देवाऽग्ने! येन त्वयोत्पादिता विज्ञापिता मित्रो वरुणोऽदिति: सिन्धु पृथिवी उतापि द्यौर्नोऽस्मान् मामहन्तां तदस्माकं सौभगत्वस्यायुरिह स विद्वांस्त्वं प्रतिर॥१६॥

भावार्थ:-मनुष्यै: परमेश्वरस्य विदुषां चाश्रयेण पद्थिबिद्धां प्रीप्य सौभाग्यायुषी इह संसारे प्रयत्नेन वर्धनीये॥१६॥

अत्रेश्वरसभाध्यक्षविद्वदग्निगुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेद्यम्॥

इति चतुर्नवितितमं ९४ सूक्तं द्विशत्तमो ३२ वर्गश्च समाप्तः॥

इति श्रीमत्परिव्राजकाचार्याणां श्रीयुतमहाविदुषां विर्णानन्दस्र स्वतीस्वामिनां शिष्येण दयानन्दसरस्वतीस्वामिना विरचिते संस्कृतार्यभाषाभ्यां विभूषिते सुप्रमाणयुक्ते ऋग्वेदभाष्ये प्रथमाष्टके षष्ठोऽध्याय: पूर्त्तमगात्॥

पदार्थ:-हे (देव) सभी के कामना के बार्य (अग्ने) जीवन और ऐश्वर्य्य के देनेहारे जगदीश्वर! जो (त्वम्) आपने उत्पन्न किये वा रीम छूटमें की ओषधियों को देनेहारे विद्वान् जो आप ने बतलाये (मिन्नः) प्राण (वरुणः) उदान (अदिविः) उत्पन्न हुए समस्त पदार्थ (सिन्धुः) समुद्र (पृथिवी) भूमि (उत) और (द्यौः) विद्युत् का प्रकाश हैं, वे (नः) हुण लोगों को (मामहन्ताम्) उन्नति के निमित्त हों (तत्) और वह सब वृत्तान्त (अस्माक्रम्) हमें लोगों को (सौभगत्वस्य) अच्छे-अच्छे ऐश्वर्यों के होने का (आयुः) जीवन वा ज्ञान है (इह) इस्म कार्योरूप जगत् में (सः) वह (विद्वान्) समस्त विद्या की प्राप्ति करानेवाले जगदीश्वर व आपका प्रमाणपूर्वक विद्या देनेवाला विद्वान् तुम दोनों (प्रतिर) अच्छे प्रकार दुःखों से तारो॥१६॥

भार्तार्थ: इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि परमेश्वर और विद्वानों के आश्रय से पदार्थविद्या को पाकर इस संसार में सौभाग्य और आयुर्दा को बढ़ावें॥१६॥

इस सूक्त में ईश्वर, सभाध्यक्ष, विद्वान् और अग्नि के गुणों का वर्णन है, इससे इस सूक्तार्थ की पूर्व सुक्तार्थ के साथ सङ्गति समझनी चाहिये॥ इस अध्याय में सेनापित के उपदेश और उसके काम

मण्डल-१। अनुवाक-१५। सूक्त-

९४

आदि का वर्णन है, इससे इस छठे अध्याय के अर्थ की पञ्चमाध्याय के अर्थ के साथ एक्ला समझ्नी चाहिये॥

चौरानवेंवाँ ९४ सूक्त और बत्तीसवाँ ३२ वर्ग समाप्त हुआ॥ यह श्रीमान् संन्यासियों में भी जो आचार्य्य श्रीयुत महाविद्वान् विरजानन्द सरस्वती स्वामी जी उनके शिष्य दयानन्द सरस्वती स्वामी जी के बनाये संस्कृत और आर्च्यभाषा से शोभित अच्छे ग्रमाणी से युक्त ऋग्वेद-भाष्य के प्रथमाष्ट्रक में छठा अध्याय समाप्त हुआ।।

॥ओ३म्॥

अथ सप्तमाध्यायारम्भ:

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि पर्रा सुव। यद्धद्रं तन्न आ सुव।। ऋ०५.८२.५।। अथास्य पञ्चनवितनमस्यैकादाशर्च्चस्य सूक्तस्याङ्गिरसः कुत्स ऋषिः। सत्यगुण्यविशिष्टोऽग्निः शुद्धोऽग्निर्वा देवता। १,३ विराट् त्रिष्टुप्। २,७,८,११ त्रिष्टुप्। ४,५,६ १० निस्नुत्त्रिष्टुप्।

छन्दः। धैवतः स्वरः। ९ भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥ अथ रात्रिदिवसौ कीदृशौ स्त इत्युपदिश्यते॥

अब रात्रि और दिन कैसे हैं, इस विषय का उपदेश अगेल पन्त्र में किया है।।

द्वे विरूपे चरतः स्वर्थे अन्यान्यां वृत्समुपं धापयेते। हरिंगुन्यस्यां भवति स्वधावां ब्लुक्रो अन्यस्यां ददृशे सुवर्चाः ॥१॥

द्वे इति। विरूपे इति विऽरूपे। चुर्तः। स्वर्थे इति सुऽअर्थे। अन्यर्अन्या। वृत्सम्। उपं। धापयेते इति। हरिः। अन्यस्याम्। भवति। स्वधाऽवान्। शुक्रः। अन्यस्याम्। दृद्शः। सुऽवर्धाः॥ १॥

पदार्थ:-(द्वे) रात्रिदिने (विरूपे) प्रकाशान्यकाराध्यां विरुद्धरूपे (चरतः) (स्वर्थे) शोभनार्थे (अन्यान्या) परस्परं वर्तमाना (वत्सम्) जातं संग्रिप् (उप) (धापयेते) पाययेते (हिरः) हरत्युष्णतामिति हिरिश्चन्द्रः (अन्यस्याम्) दिवसादन्यस्यां रात्रौ (भविते) (स्वधावान्) स्वेन स्वकीयेन गुणेन धार्य्यत इति स्वधाऽमृतरूप ओषध्यादिरसस्तद्वान् (शुक्तः) तेजस्या (अन्यस्याम्) रात्रेरन्यस्यां दिनरूपायां वेलायाम् (ददृशे) दृश्यते (सुवर्चाः) शोभनदीपितः॥१॥

अन्वयः – हे मनुष्या! ये ब्रिस्पे स्वर्थे द्वे रात्रिदिने परस्परं चरतोऽन्यान्या वत्समुपधापयेते। तयोरन्यस्यां स्वधावान् हरिर्भवति। अन्यस्यां सुर्काः सुवर्चा सूर्यो दृशे ते सर्वदा वर्त्तमाने रेखादिगणितविद्यया विज्ञायानयोर्मध्य उपयुज्ञीध्वम्॥१॥

भावार्थ:-मनुष्येर्महाराज्ये) कदाचिन्निवर्त्तते, किन्तु देशान्तरे सदा वर्त्तते। यानि कार्य्याणि रात्रौ कर्त्तव्यानि यानि च दिवसे तान्यनालस्येनानुष्ठाय सर्वकार्य्यसिद्धिः कर्त्तव्या॥१॥

पदार्थ: -ह मनुष्यों पजो (विरूपे) उजेले और अन्धेरे से अलग-अलग रूप और (स्वर्थे) उत्तम प्रयोजनवाले (हे) दो अर्थात् रात और दिन परस्पर (चरतः) वर्ताव वर्तते और (अन्यान्या) परस्पर (वत्सम्) उत्त्यत्र हुए संसार का (उपधापयेते) खान-पान कराते हैं (अन्यस्याम्) दिन से अन्य रात्रि में (स्वधावाने) जो अपने गुण से धारण किया जाता वह औषिध आदि पदार्थों का रस जिसमें विद्यमान है, ऐसा (इस्टे) उष्णता आदि पदार्थों का निवारण करने वाला चन्द्रमा (भवति) प्रकट होता है वा

मण्डल-१। अनुवाक-१५। सूक्त-९५ 9.33

(अन्यस्याम्) रात्रि से अन्य दिवस होनेवाली वेला में (शुक्रः) आतपवान् (सुवर्चाः) अच्छे प्रकार उजेला करनेवाला सूर्य्य (दृदृशे) देखा जाता है, वे रात्रि-दिन सर्वदा वर्त्तमान हैं, इनको रेखागण्यि आदि गणित विद्या से जानकर इनके बीच उपयोग करो॥१॥

भावार्थ: -मनुष्यों को चाहिये कि दिन-रात कभी निवृत्त नहीं होते, किन्त्यू सर्वदा बने रहते हैं अर्थात् एक देश में नहीं तो दूसरे देश में होते हैं। जो काम रात और दिन में करने योग्य हों, उनको निरालस्य से करके सब कामों की सिद्धि करें॥१॥

अथाहोरात्रव्यवहारो दिशां मिषेणोपदिश्यते॥

अब दिन-रात का व्यवहार दिशाओं के मिष से अगले मेन्त्र में कहा है।।

दशेमं त्वष्टुंर्जनययन्त गर्भमतंन्द्रासो युवतयो विभृत्रम्।
तिग्मानीकुं स्वयंशसुं जनेषु विरोचमानुं परिं षीं नयन्ति॥२॥

दर्श। इमम्। त्वष्टुं:। जुनुयन्ता गर्भम्। अतेन्द्रासः। क्रुवितयः। क्रिमृत्रम्। तिग्मऽअनीकम्। स्वऽयेशसम्। जनेषु। विऽरोचेमानम्। परि। सीम्। नुयन्ति॥२॥

पदार्थ:-(दश) दिशः (इमम्) प्रत्यक्षमहारात्रप्रसिद्धम् (त्वष्टः) विद्युतो वायोर्वा (जनयन्त) जनयन्ति। अत्राङभावः। (गर्भम्) सर्वव्यवहाग्रास्कारणम् (अतन्द्रासः) नियतरूपत्वादनालस्यादियुक्ताः (युवतयः) मिश्रामिश्रत्वकर्मणा सदाऽजराः (विभृत्रम्) विविधिक्रियाधारकम् (तिग्मानीकम्) तिग्मानि निशितानि तीक्ष्णान्यनीकानि सैन्यानि यस्मिन्तम् (पवग्रशसम्) स्वकीयगुणकर्मस्वभावकीर्तियुक्तम् (जनेषु) गणितविद्यावित्सु विद्वत्सु मनुष्येषु (विरोच्चमानम्) विविधप्रकारेण प्रकाशमानम् (परि) सर्वतोभावे (सीम्) प्राप्तव्यमहोरात्रव्यवहारम् (नयन्ति) प्राप्यान्तर्। अत्रान्तर्गतो एयर्थः॥२॥

अन्वय:-हे मनुष्या! या प्रतन्द्रासो युवतम् इव दश दिशस्त्वष्टुरिमं गर्भं विभृत्रं तिग्मानीकं जनेषु विरोचमानं स्वयशसं सीं जनयन्त जनयन्त्रि परिणयन्ति ता यूयं विजानीत॥२॥

भावार्थ:-अत्र विचित्रस्तिर्पमालङ्कारः। मनुष्यैरनियतदेशकाला विभुस्वरूपा पूर्वादिक्रमजन्याः सर्वव्यवहारसाधिका दश दिशः सन्ति तासु नियता व्यवहाराः साधनीया नात्र खलु केनचिद् विरुद्धो व्यवहारोऽनुष्ठेयः।

पदार्थ: हे मनुष्यो! तुम (अतन्द्रास:) जो एक नियम के साथ रहने से निरालसता आदि गुणों से युक्त (युक्तच:) जेबान स्त्रियों के समान एक-दूसरे के साथ मिलने वा न मिलने से सब कभी अजर-अमर रहनेत्राली (दश) दश दिशा (त्वष्टु:) बिजुली वा पवन के (इमम्) इस प्रत्यक्ष अहोरात्र से प्रसिद्ध (गूर्भम्) समस्य व्यवहार का कारणरूप (विभृत्रम्) जो कि अनेकों प्रकार की क्रिया को धारण किये हुए

(तिग्मानीकम्) जिसमें अत्यन्त तीक्ष्ण सेना जन विद्यमान जो (जनेषु) गणितविद्या के जाननेवाले मनुष्यों में (विरोचमानम्) अनेक रीति से प्रकाशमान (स्वयशसम्) अनेक गुण, कर्म्म, स्वभाव और प्रशंसायुक्त (सीम्) प्राप्त होने के योग्य उस दिन-रात के व्यवहार को (जनयन्त) उत्पन्न करतीं और (पार्ष) में अभे से (नयन्ति) स्वीकार करती हैं, उनको तुम लोग जानो॥२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि जिनके देश काल का नियम अनुमान में नहीं आता ऐसी अनन्तरूप पूर्व आदि क्रम से प्रसिद्ध सब स्थवहारों की सिद्धि करानेवाली दश दिशा हैं, उनमें नियमयुक्त व्यवहारों को सिद्ध करें, इनमें किसी को बिरुद्ध व्यवहार न करना चाहिये॥२॥

पुनः सोऽहोरात्रः किं करोतीत्युपदिश्यते॥

फिर वह दिन और रात क्या करता है, इस विषय को अपले मूर्ज में कहा है।।

त्रीणि जाना परि भूषन्यस्य समुद्र एकं दिव्येकंम्प्सू पूर्वामनु प्र दिशं पार्थिवानामृतून् प्रशासिद्व दंधावनुष्ठा। ३॥

त्रीणि। जार्ना। पिर्रा भूष्टन्ति। अस्य। समुद्रे। एकम्। द्विति। एकम्। अप्ऽसु। पूर्वाम्। अनुं। प्र। दिशम्। पार्थिवानाम्। ऋतून्। प्रुऽशास्त्। वि। दुधौ। अनुष्ठु॥ ३॥

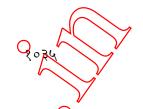
पदार्थ:-(त्रीणि) भूतभविष्यद्वर्तमान्विभागजन्यक्रमीणि (जाना) जनेषु भवानि। अत्रोत्सादेराकृतिगणत्वाद्भवार्थेऽञ् शेश्छन्दिस बहुल्लिमिति शेर्लोप:। अत्र सायणाचार्येण पृषोदराद्याकृतिगणत्वादाद्यदात्तत्वं प्रतिपादितं तदशुद्धम्, अनुत्सर्गापवादत्वात्। (पिर) सर्वतः (भूषित्त) अलं कुर्वन्ति (अस्य) अहोरात्रस्य (म्रमुद्रे) (एकम्) चरणम् (दिवि) द्योतमाने सूर्ये (एकम्) चरणम् (अप्सु) प्राणेषु अप्सु वा (पूर्वाम्) प्रोधीम् (अनु) आनुकूल्ये (प्र) (दिशम्) दिश्यते सवैर्जनैस्ताम् (पार्थिवानाम्) पृथिव्यामन्तरिक्षे निदित्तनाम् (ऋतून्) वसन्तादीन् (प्रशासत्) प्रशासनं कुर्वन् सन् (वि) (द्यो) विदधाति (अनुष्ठ) अनुतिष्ठन्ति यस्मिम्तत्।।३॥

अन्वय:-हे गणिलविद्याविदो मुनुष्या! योऽहोरात्रः पूर्वा प्रदिशमनुष्ठु पार्थिवानां मध्ये ऋतून् प्रशासदनु तान् विदधौ। अस्याऽहोरात्रस्यैकं चार्णं क्रिच्यकं समुद्र एकं चाप्स्वस्ति तथास्यावयवास्त्रीणि जाना परिभूषन्त्येतानि यूयं विजानीत॥३॥

भावार्थः - नेह्यहोरात्राद्यवयववर्त्तमानेन विना भूतभविष्यद्वर्त्तमानाकालाः संभवितुं शक्याः। नैतैर्विना कस्यचिदृतोः सम्भवोऽस्ति। यः सूर्य्यान्तिरक्षस्थवायुगत्या कालावयवसमूहः प्रसिद्धोऽस्ति तं सर्वं विज्ञाय सर्वेर्मनुष्ट्रोव्यवहारसिद्धिः कार्य्या॥३॥

पदार्थ:-हे गणितविद्या को जाननेवाले मनुष्यो! जो दिन-रात (पूर्वाम्) पूर्व (प्र, दिशम्) जिसका क्रि मनुष्य उपदेश किया करते हैं, उसको (अनुष्ठु) तथा उसके अनुकूल (पार्थिवानाम्) पृथिवी और

मण्डल-१। अनुवाक-१५। सूक्त-९५



अन्तरिक्ष में विदित हुए पदार्थों के बीच (ऋतून्) वसन्त आदि ऋतुओं को (प्रशासत्) प्रेरण देन हुआ (अनु) तदनन्तर उनका (वि, दधौ) विधान करता है (अस्य) इस दिन-रात का (एक्स्म) एक पाँव (दिवि) सूर्य्य में, एक (समुद्रे) समुद्र में और (एकम्) एक (अपसु) प्राण आदि पवनों में है तथा इस दिन-रात के अङ्ग (त्रीणि) अर्थात् भूत, भविष्यत् और वर्तमान के पृथग्भाव से उत्प्रव (जाना) सनुष्यों में हुए व्यवहारों को (परि, भूषन्ति) शोभित करते हैं, इन सबको जानो॥३॥

भावार्थ:-दिन-रात आदि समय के अङ्गों के वर्ताव के विना भूत, भ्रविष्यत् और वर्त्तमान कालों की संभावना भी नहीं हो सकती और न इसके विना किसी ऋतु के होने का सम्भिष्ठे है। जो सूर्य्य और अन्तरिक्ष में ठहरे हुए पवन की गित से समय के अवयव अर्थात् दिन् रात्रि आदि प्रसिद्ध हैं, उन सबको जान के सब मनुष्यों को चाहिये कि व्यवहारसिद्धि करें॥३॥

पुनः स कालसमूहः कीदृश इत्युपिदश्यते।

फिर वह दिन-रात्रि के समय का समूह कैसा है, यह विषये अगैले मन्त्र में कहा है॥

क इमं वो निण्यमा चिकेत वृत्सो मातूर्जनयत स्वधानिः।

बह्वीनां गभी अपसामुपस्थानमहान्कविर्निश्चरित स्वध्नवीन्॥४॥

कः। इमम्। वः। निण्यम्। आ। चिकेत्। वस्तः। मात्भ जनयतः। स्वधाभिः। बह्धीनाम्। गर्भः। अपसीम्। उपऽस्थीत्। महान्। कृविः। निः। चुरति। स्वधाऽव्रान्॥ ४॥

पदार्थ:-(क:) मनुष्यः (इमम्) प्रत्यक्षम् (वः) एतेषां कालावयवानाम् (निण्यम्) निश्चितं स्वरूपम् (आ) (चिकेत) विजानीयात् (चत्सः) स्वव्याप्त्या सर्वाच्छादकः (मातॄः) मातृवत्पालिका रात्रीः (जनयत) जनयित। अत्र लड्च्युट्धम् वो वृथयुधनशजनेङ्ग्रदुस्रुभ्यो णेः। (अष्टा०३.१.८६) इति परस्मैपदे प्राप्ते व्यत्ययेनात्मनेपदम्। (स्वधाभिः) द्यावाप्त्रिथव्यादिभिः सह (बह्वीनाम्) अनेकासां द्यावापृथिव्यादीनां दिशां वा (गर्भः) आवस्कः (अथसाम्) जलानाम् (उपस्थात्) समीपस्थव्यवहारात् (महान्) व्याप्त्यादिमहागुणविशिष्टः (किवः) क्रान्तदर्शनः (निः) नितराम् (चरित) प्राप्तोऽस्ति (स्वधावान्) स्वधाः स्वकीया अवयवाः प्रशस्ता बिद्यन्तैऽस्मिन् सः॥४॥

अन्वयः – यो बह्वीनामप्रसामुपस्थात् गर्भः स्वधावान् महान् वत्सः कविः कालोऽनिश्चरति स्वधाभिर्मातॄर्जनयतेमं निण्यं क आचिकत् व एतेषामवयवानां स्वरूपं च॥४॥

भावार्यः मेतुष्यैर्यस्य परमसूक्ष्मो बोधोऽस्ति यः सर्वान् कालविभागान् प्रकटयति कर्माणि व्याप्नोति सर्वत्रैकरसः कालोऽस्ति तं कश्चित्रिपुणो विद्वान् ज्ञातुं शक्नोति, निह सर्व इति वेद्यम्॥४॥

पदार्थ:-जो (बह्वीनाम्) अनेकों अन्तरिक्ष और भूमि तथा दिशाओं वा (अपसाम्) जलों के (उपस्थात्) समीपस्थ व्यवहार से (गर्भ:) अच्छा आच्छादन करनेवाला (स्वधावान्) जिसके कि प्रशंसित अपने अङ्ग विद्यमान हैं (महान्) व्याप्ति आदि गुणों से युक्त (वत्सः) किन्तु अपनी व्याप्ति से मर्जोषि सबको ढांपने वा (किवः) क्रम-क्रम से दृष्टिगत होनेवाला समय (निः) (चरित) निरन्तर अर्थात् एकतार चल रहा है और (स्वधाभिः) सूर्य्य वा भूमि के साथ (मातृः) माता के तुल्य पालिहासी स्त्रियों को (जनयत) प्रकट करता है (इमम्) इस (निण्यम्) निश्चय से एक से रहनेवाले समय को (कः) कौन मनुष्य (आ, चिकेत) अच्छे प्रकार जान सके (वः) इन समय के अवयवों अर्थात क्षण्य घड़ी प्रहर, दिन, रात, मास, वर्ष आदि के स्वरूप को भी कौन जान सके॥४॥

भावार्थ:-मनुष्यों को जानना चाहिये कि जिसका सूक्ष्म से सूक्ष्म की हैं, जो समस्त अपने अवयवों को प्रकट करता, सब कामों में व्याप्त होता, जिसमें सब जगत एक राज रहता है, उस समय को कोई विद्वान् जान सकता है, सब कोई नहीं॥४॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा है, यह विषय अपूर्ल भून्त्र में कहा है॥

आविष्ट्यो वर्धते चार्रुरासु जिह्यानांमूर्ध्वः स्वयंशा उपस्थि। उभे त्वष्टुर्विभ्यतुर्जायंमानात् प्रतीची सिंहं प्रति जोष्ट्यते॥५॥१॥

आविःऽत्यः। वर्धते। चार्मः। आसु। जिह्मिम्। ऊर्ध्वः। स्वऽयंशाः। उपऽस्थे। उभे इति। त्वष्टुः। बिभ्युतुः। जायमानात्। प्रतीची इति। सिंहम्। प्रति। जोष्युके इति॥५॥

पदार्थ:-(आविष्ट्य:) आविर्भृतेषु क्विहारेषु प्रसिद्धः (वर्धते) (चारुः) सुन्दरः (आसु) दिक्षु प्रजासु वा (जिह्मानाम्) कुटिलानां सक्तेष्णात् (अर्धः) उपिरस्थः (स्वयशाः) स्वकीयकीर्तिः (उपस्थे) कर्तॄणां समीपस्थे देशे (उभे) तित्रदिवसी (त्वष्टुः) छेदकात्कालात् (विभ्यतुः) भीषयेते। अत्र लर्डथें लिंडन्तर्गतो ण्यर्थश्च। (जायमामात्) प्रसिद्धात् (प्रतीची) पश्चिमा दिक् (सिंहम्) हिंसकम् (प्रति) (जोषयेते) सर्वान् सेवयतः॥५॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! यमाजायमानात् त्वष्टुरुभे बिभ्यतुर्यस्मात् प्रतीची जायते सर्वान् व्यवहारान् प्रति जोषयेते। य उपस्थे स्वयशा जिह्नानामूर्ध्व आसु चारुराविष्ट्यो वर्धते तं सिंह हिंसकमग्निं यूयं यथावद्विजानीत॥५॥

भावार्थः-मेरुप्यैर्यः सृष्ट्युत्पत्तिसमयाज्जातोऽग्निश्छेदकत्वादूर्ध्वगामी काष्ठादिष्वाविष्टतया वर्धमानः सूर्यरूपेण दिम्बोधकोऽस्ति सोऽपि कालादुत्पद्य कालेन विनश्यतीति वेद्यम्॥५॥

्षदार्थ: - हे मनुष्यो! तुम जिस (जायमानात्) प्रसिद्ध (त्वष्टु:) छेदन करने अर्थात् सब की अविध को पूरी करोत्हारे समय से (उभे) दोनों रात्रि और दिन (विश्यतु:) सबको डरपाते हैं वा जिससे (प्रतीची) पूछांह की दिशा प्रकट होती है वा उक्त रात्रि-दिन सब व्यवहारों का (प्रति, जोषयेते) सेवन तथा जो

मण्डल-१। अनुवाक-१५। सूक्त-९५



समय (उपस्थे) काम करनेवालों के समीप (स्वयशा:) अपनी कीर्ति अर्थात् प्रशंसा को प्राप्त होता वा (जिह्मानाम्) कुटिलों से (अर्ध्व:) ऊपर-ऊपर अर्थात् उन के शुभ कर्म में नहीं व्यतीत होता (आपु) इन दिशा वा प्रजाजनों में (चारु:) सुन्दर (आविष्ट्य:) प्रकट हुए व्यवहारों में प्रसिद्ध (वर्धते) और उन्नित को पाता है, उस (सिंहम्) हम तुम सबको काटनेहारे समय को तुम लोग यथावत् जानेगा (ना

भावार्थ:-मनुष्यों को यह जानना चाहिये कि संसार की उत्पत्ति के समय से जो उत्पन्न हुआ अग्नि है, वह छेदन गुण से ऊर्ध्वगामी अर्थात् जिसकी लपट ऊपर को जाती और काष्ट्र आदि पदार्थों में अपनी व्याप्ति से बढ़ता और सूर्यरूप से दिशाओं का बोध करानेवाला है, वह भी अब समय से उत्पन्न होकर समय पाकर ही नष्ट होता है॥५॥

पुनः स कालः कीदृश इत्युपदिश्रयते॥

फिर वह समय कैसा है, इस विषय को अपूलि मन्त्र में कहा है।।

उभे भुद्रे जीषयेते न मेने गावो न वाश्रा उप तस्युरेवै:। स दक्षाणां दक्षपतिर्बभूवाञ्जन्ति यं दक्षिणतो हविभिः। ६॥

उभे इति। भुद्रे इति। जोष्येते इति। न। मेने इति। गार्वः। ना वाष्ट्राः। उप। तस्थुः। एवैः। सः। दक्षाणाम्। दक्षेऽपतिः। बुभूवः। अञ्जन्ति। यम्। दुक्षिणातः। हुविः क्रिः।। हभ

पदार्थ:-(उभे) द्यावापृथिव्यो (भद्रे) सुंखप्रदे (जाषयेते) सेवते। अत्र स्वार्थे णिच्। (न) उपमार्थे (मेने) वत्सले स्त्रियाविव (गाव:) धेनवः (न) इच (वाश्रा:) वत्सान् कामयमानाः (उप) (तस्थुः) तिष्ठन्ते (एवै:) प्रापकैर्गुणैः सह (सः) (दक्षाणाम्) विद्याक्रियाकौशलेषु चतुराणां विदुषाम् (दक्षपितः) विद्याचातुर्य्यपालकः (बभूव) भविति (अञ्चन्ति) कामयन्ते (यम्) कालम् (दक्षिणतः) दिक्षणायनकालविभागात् (हिविभैः) यज्ञसामग्रीभिः॥६॥

अन्वय:-भद्रे उभे स्रिदिने मेर्ने न यं समयं जोषयेते वाश्रा गावो नेवान्ये कालावयवा एवैरुपतस्थुर्दक्षिणवतो हविभिर्यं विद्वांसोऽञ्जन्ति स कालो देश्सणीमत्युत्तमानां पदार्थानां मध्ये दक्षपतिर्बभूव॥६॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्करः। मनुष्यैरात्रिदिनादिकालावयवाः संसेवनीयाः। धर्मतस्तेषु यज्ञानुष्ठानादिश्रेष्ठुव्यब्हारा एकाचरणीया न त्वन्येऽधर्मादय इति ॥६॥

पदार्थ: (भद्रे) सुख देनेवाले (उभे) दोनों रात्रि और दिन (मेने) प्रीति करती हुई स्त्रियों के (न) समान (प्रम्) जिस समय को (जोषयेते) सेवन करते हैं (वाश्रा:) बछड़ों को चाहती हुई (गाव:) गौओं के (क) समान समय के और अङ्ग अर्थात् महीने वर्ष आदि (एवै:) सब व्यवहार को प्राप्त करानेवाले गुप्रा के साथ (उपतस्थु:) समीपस्थ होते हैं वा (दक्षिणत:) दक्षिणायन काल के विभाग से (हविभि:)

यज्ञसामग्री करके जिस समय को विद्वान् जन (अञ्चन्ति) चाहते हैं (सः) वह (दक्षाणाम्) विद्या और क्रिया की कुशलताओं में चतुर विद्वान् अत्युत्तम पदार्थों में (दक्षपितः) विद्या तथा चतुराई का पालनेहारा (बभूव) होता है।।६।।

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि रात-दिन आदि क्रिके समय के अवयव का अच्छी तरह सेवन करें। धर्म से उनमें यज्ञ के अनुष्ठान आदि श्रेष्ठ व्यवहारों का ही आचरण करें और अधर्म व्यवहार वा अयोग्य काम तो कभी न करें॥६॥

पुनः स कालः कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह समय कैसा है, इस विषय को अगले मन्त्र में क्रिस् है।

उद्यंयमीति सिवतेवं बाहू उभे सिचौं यतते भीम ऋञ्जन्। उच्छुक्रमत्कंमजते सिमस्मान्नवां मातृभ्यो वसंना जहाति॥७॥

उत्। यंयमीति। सुविताऽईव। बाहू इति। उभे इति। सिचौ। प्रतिते। भीमित्र ऋञ्जन्। उत्। शुक्रम्। अर्त्कम्। अजते। सिमस्मति। नर्वा। मातृऽभ्यः। वसना। जहाति॥७॥

पदार्थ:-(उत्) उत्कृष्टे (यंयमीति) पुनःपुनरितिष्टामें नियमें करोति (सिवतेव) यथा सूर्य्य आकर्षणेन भूगोलान् धरित तथा (बाहू) बलवीर्ये (उभे) स्मवापृथिव्यो (सिचौ) वृष्टिद्वारा सेचकौ वाय्वग्नी (यतते) व्यवहारयित (भीमः) बिभेत्यस्मात्सः (ऋजन्) प्राप्नुवन् (उत्) (शुक्रम्) पराक्रमम् (अत्कम्) निरन्तरम् (अजते) क्षिपित। व्यत्स्यस्मात्मात्मे पदम्। (सिमस्मात्) सर्वस्माज्जगतः (नवा) नवीनानि (मातृभ्यः) मानविधायकेभ्यः क्षण्यादिष्यः (वृष्टना) आच्छादनानि (जहाति) त्यजित॥७॥

अन्वय:-हे मनुष्या! यो भीम ऋजून् काली मोहृष्यः सवितेवोद्यंयमीति, बाहू उभे सिचौ यतते स कालोऽत्कं शुक्रं सिमस्मादुदजते, नवा वसना जहातीति जोसीत॥७॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार । हे मनुष्या! युष्माभिर्येन कालेन सूर्य्यादिकं जगज्जायते यो वा क्षणादिना सर्वमाच्छादयन्ति सर्वेन्यमहेतुः सर्वेषां प्रवृत्त्यधिकरणोऽस्ति, तं विज्ञाय यथासमयं कृत्यानि कर्त्तव्यानि॥७॥

पदार्थ:-हे मनुष्यों जो भीम:) भयङ्कर (ऋज्जन्) सबको प्राप्त होता हुआ काल (मातृभ्यः) मान करनेहारे क्षण्र आदि अपने अवयवों से (सिवतेव) जैसे सूर्य्यलोक अपनी आकर्षणशक्ति से भूगोल आदि लोकों को धारण करता है, वैसे (उद्यंयमीति) बार-बार नियम रखता है (बाहू) बल और पराक्रम वा (उभे) सूर्य्य और पृथिवी (सिचौ) वा वर्षा के द्वारा सींचनेवाले पवन और अग्न को (यतते) व्यवहार में लाता है, वह काल (अत्क्रम्) निरन्तर (शुक्रम्) पराक्रम को (सिमस्मात्) सब जगत् से (उद्) ऊपर की अपी को (अजते) पहुँचता और (नवा) नवीन (वसना) आच्छादनों को (जहाति) छोड़ता है, यह जिम्मेग्राक्रम

मण्डल-१। अनुवाक-१५। सूक्त-९५ 9038

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! तुम लोगों को जिस काल से सूर्य आदि जगद प्रकट होता है और जो क्षण आदि अङ्गों से सबका आच्छादन करता, सबके नियम का हेतु व सबकी प्रवृत्ति का अधिकरण, है, उसको जान के समय-समय पर काम करने चाहिये॥७॥

पुनः स किं करोतीत्युपदिश्यते॥

फिर वह काल क्या करता है, इस विषय को अगले मन्त्र में कल्लाहै॥

त्वेषं रूपं कृणुत उत्तरं यत्संपृञ्चानः सदने गोभिर्द्धः। कुविर्बुध्नं परि मर्मृज्यते धीः सा देवताता समितिर्बभूव॥८॥

त्वेषम्। रूपम्। कृणुते। उत्ऽत्रम्। यत्। सम्ऽपृञ्चानः। सर्दने। गोभिः। अतुर्ह्भाः। कृविः। बुध्नम्। पिर्। मुर्मृज्यते। धीः। सा। देवऽत्ताता। सम्ऽइतिः। बुभूव॥८॥

पदार्थ:-(त्वेषम्) कमनीयम् (रूपम्) स्वरूपम् (कृणुते) करोति (उत्तरम्) उत्पद्यमानम् (यत्) यः (सम्पृञ्चानः) सम्पर्कं कुर्वन् कारयन् वा (सदने) भुवि (मोभिः) किरणैः (अद्भिः) प्राणैः (कविः) क्रान्तदर्शनः (बुध्नम्) प्राणबलसम्बन्धिविज्ञानम्। इदममीतरद् बुध्नमेतस्मादेव बद्धा अस्मिन् धृताः प्राणा इति। (निरु०१०.४४) (परि) सर्वतः (मर्मृज्यते) असिशयेन शुभ्यते (धीः) प्रज्ञा कर्म वा (सा) (देवताता) देवेनेश्वरेण विद्वद्भिर्वा सह। अत्र देवशब्दात् सर्विवात्तातिल्यः (अष्टा०४.४.१४२) इति तातिलि कृते सुपां सुलुगिति तृतीया स्थाने डादेशः। (सिमितः) विज्ञानम्अद्धां (बभूव) भवति॥८॥

अन्वयः-मनुष्यैर्यद्यः सम्पृञ्चानः किन्तिसदेने गाभिरिद्धिरुत्तरं त्वेषं बुध्नं रूपं कृणुते या धीः परिमर्मृज्यते सा च देवताता समितिर्बभूव तदेतत्सर्वं विज्ञाच प्रज्ञोत्पदिनीया॥८॥

भावार्थ:-मनुष्यैर्न खलु कालेन बिना कार्य्यस्वरूपमृत्पद्य प्रलीयते, नैव ब्रह्मचर्यादिकालसेवनेन विना सर्वशास्त्रबोधसम्पन्ना बुद्धिर्जायते, तस्मात्कालस्य परमसूक्ष्मस्वरूपं विज्ञायैष व्यर्थो नैव नेयः, किन्त्वालस्यं त्यक्त्वा समयानुकुलं व्यान्नहारिकपारमार्थिकं कर्म सदानुष्ठेयम्॥८॥

पदार्थ:-मनुष्यों को चिहियें (यत्) जो (सम्पृञ्चानः) अच्छा परिचय करता-कराता हुआ (किवः) जिसका कर्म से दर्शन होता है यह समय (सदने) भुवन में (गोभिः) सूर्य्य की किरणों वा (अद्भिः) प्राण आदि पवनों से (उत्तरम्) उत्पन्न होनेवाले (त्वेषम्) मनोहर (बुध्नम्) प्राण और बल सम्बन्धी विज्ञान और (रूपम्) स्वद्भप को (कृणुते) करता है तथा जो (धीः) उत्तम बुद्धि वा क्रिया (पिर) (मर्मृज्यते) सब प्रकार से सुद्ध होतों है (सा) वह (देवताता) ईश्वर और विद्वानों के साथ (सिमितः) विशेष ज्ञान की मर्याद्ध (बिश्व) होती है, इस समस्त उक्त व्यवहार को जानकर बुद्धि को उत्पन्न करें॥८॥

भावार्थ:-मनुष्यों को चाहिये कि काल के विना कार्य्य स्वरूप उत्पन्न होकर और नष्ट हो जिये, यह होता ही नहीं और न ब्रह्मचर्य्य आदि उत्तम समय के सेवन विना शास्त्रबोध करानेवाली बृद्धि होती है। इस कारण काल के परमसूक्ष्म स्वरूप को जानकर थोड़ा भी समय व्यर्थ न खोवें, किन्तु भालस्थ छोड़ के समय के अनुकूल व्यवहार और परमार्थ काम का सदा अनुष्ठान करें॥८॥

पुनस्तेन किं भवतीत्युपदिश्यते॥

फिर उस समय के सेवन करने से क्या होता है, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है।।

उरु ते ज्रयः पर्येति बुध्नं विरोचमानं महिषस्य धामी

विश्वेभिरग्ने स्वयंशोभिरिद्धोऽदंब्धेभिः पायुभिः पाह्यस्मान्॥ 📶

उरु। ते। ज्रयः। परि। एति। बुध्नम्। विऽरोचमानम्। मृहिषस्य। धर्मि। विश्वेभिः। अग्ने। स्वयंशःऽभिः। इद्धः। अदेखेभिः। पायुऽभिः। पाहि। अस्मान्॥९॥

पदार्थ:-(उरु) बहु (ते) तव (ज्रय:) ज्ञयन्त्यभिभवन्त्र्यायुर्वेच तृत् (पिर) (एति) पर्य्यायेण प्राप्नोति (बुध्नम्) उक्तपूर्वम् (विरोचमानम्) विविधदीप्तियुक्तम् (महिष्स्य) महतो लोकसमूहस्य। मिहष् इति महन्नामसु पठितम्। (निघं०३.३) (धाम) अधिक्राणम् (विश्वेभिः) सर्वैः (अग्ने) विद्वन् (स्वयशोभिः) स्वगुणस्वभावकीर्त्तिभिः (इद्धः) प्रदीष्टः (अदब्धिभः) केनापि हिंसितुमशक्यैः (पायुभिः) अनेकविधै रक्षणैः (पाहि) (अस्मान्)॥९॥

अन्वय:-हे अग्ने विद्वंस्ते तव संबन्धेन सूर्य इवेद्धः प्रान् कालो विश्वेभिः स्वयशोभिरदब्धेभिः पायुभिर्युक्तं विरोचमानं बुध्नमुरु ज्रयोऽस्मान् महिषस्य धाम क्रुप्रेमेति तथाप्रमान् पाहि सेवस्व च॥९॥

भावार्थ:-मनुष्यैर्निह विभुना कालेन विभा सूर्यादिकार्यजगतः पुनः पुनर्वर्तमानं जायते न च तस्मात्पृथगस्माकं किंचिदपि कर्म सुंभवतीति विज्ञातव्यम्॥९॥

पदार्थ:-हे (अग्ने) विद्वन ! (ते) अपके सम्बन्ध से जैसे सूर्य्य वैसे (इद्धः) प्रकाशमान हुआ समय (विश्वेभिः) समस्त (स्वयंश्वोभिः) अपने प्रशंसित गुण, कर्म, और स्वभावों से (अदब्धेभिः) वा किसी से न मिट सकें, ऐसे (पायुष्पिः) अनेक प्रकार के रक्षा आदि व्यवहारों से युक्त (विरोचमानम्) विविध प्रकार से प्रकाशमान (ब्रुष्टम्) प्रथम कहे हुए अन्तरिक्ष को (उरु) वा बहुत (ज्रयः) जिससे आर्युदा व्यतीत करते हैं, उस वृत्त को वा (अस्मान्) हम लोगों को और (महिषस्य) बड़े लोक के (धाम) स्थानान्तर को (पर्योत) पर्याय से प्राप्त होता है, वैसे हमारी (पाहि) रक्षा कर और उसकी सेवा कर।। १।

भावार्थ: मनुष्यों को यह जानना चाहिये कि समय के विना सूर्य्य आदि कार्य्य जगत् का वार वर्जाव सहीं होता और न उससे अलग हम लोगों का कुछ भी काम अच्छी प्रकार होता है॥९॥

अथ कालोऽग्निर्वा कीदृश इत्युपदिश्यते॥

मण्डल-१। अनुवाक-१५। सूक्त-९५ Q o ks

अब समय वा अग्नि किस प्रकार का है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।

धन्वन्त्स्रोतः कृणुते गातुमूर्मि शुक्रैरूर्मिभिर्भि नक्षिति क्षाम्। विश्वा सर्नानि जुठरेषु धत्तेऽन्तर्नवासु चरति प्रसूषु॥१०॥

धन्वन्। स्रोतः। कृणुते। गातुम्। कुर्मिम्। शुक्रैः। कुर्मिऽभिः। अभि। नुक्षुति। क्षाम्। सर्नानि। जुठरेषु। धुत्ते। अन्तः। नर्वासु। चुरति। प्रुऽसूषुं॥ १०॥

पदार्थ:-(धन्वन्) अन्तरिक्षे धन्वान्तरिक्षं धन्वन्यस्मादाप:। (क्रिंग्स्) (स्रोत:) स्रवन्ति वस्तूनि जलानि वा येन तत् (कृणुते) करोति (गातुम्) प्राप्तव्यम् (क्रिंग्स्) उपसं) जलवीचिं वा (शुक्रै:) शुद्धैः क्रमैः किरणैर्वा (क्रिंग्सिः) प्रापकैः प्रकारैस्तरङ्गैर्वा। अर्त्तरुव्वा (उपा०) ४४) अत्र ऋधातोरूर्मिः प्रत्यय क्रकारादेशश्च। (अभि) सर्वतः (नक्षति) व्याप्नोति गच्छति चा (क्षाम्) भूमिम् (विश्वा) सर्वाणि (सनानि) संविभागयुक्तानि वस्तूनि (जठरेषु) अन्तर्वर्त्तिष्वश्नादिपचनाधिकरणेषु वा (धन्ते) (अन्तः) आभ्यन्तरे (नवासु) अर्वाचीनासु प्रजासु वा (चरित) (प्रसूष्ट्र) प्रसूक्ते बास्तासु॥१०॥

अन्वय:-हे मनुष्या! यः कालो विद्युदग्निर्वा धन्वन् स्रोतो पोतुमूर्मि च कृणुते शुक्रैरूर्मिभिः क्षां चाभिनक्षति जठरेषु विश्वा सनानि धत्ते प्रसूषु नवासु वा प्रजास्वन्तश्चरित तं यथाविद्वजन्त्रीत॥१०॥

भावार्थः-आप्तैर्विद्वद्भिर्व्यापनशीलौ ब्रिलिविद्युद्भन्नी विज्ञाय तन्निमित्तान्यनेकानि कार्याणि यथावत्साधनीयानि॥१०॥

पदार्थ: - हे मनुष्यो! जो समय व बिलिली हो आग (धन्वन्) अन्तरिक्ष में (स्रोतः) जिससे और अर वस्तु वा जल प्राप्त होते हैं, उस (गातुम्) प्राप्त होने योग्य (ऊर्मिम्) प्रातः समय की वेला वा जल की तरङ्ग को (कृणुते) प्रकट करता है को (शुक्रैः) शुद्ध क्रम वा किरणों और (ऊर्मिभिः) पदार्थ प्राप्त करानेहारे तरङ्गों से (क्षाम्) भूमि को भी (अभि, नक्षिति) सब ओर से व्याप्त और प्राप्त होता है वा जो (जठरेषु) भीतरले व्यवहारों और पेट के भीतर अत्र आदि पचाने के स्थानों में (विश्वा) समस्त (सनानि) न्यारे-न्यारे पदार्थों को (धने स्थापित करता वा जो (प्रसूषु) पदार्थ उत्पन्न होते हैं, उनमें वा (नवासु) नवीन प्रजाजनों में (अन्तः) भीतर (चरित) विचरता है, उसको यथावत् जानो॥१०॥

भावार्थ: आप्त विद्वान् मनुष्यों को चाहिये कि व्यापनशील काल और बिजुलीरूप अग्नि को जानकर उनके निमित्त से अनेक कामों को यथावत् सिद्ध करें॥१०॥

पुनस्तौ कीदृशावित्युपदिश्यते॥

फिर वे काल और भौतिक अग्नि कैसे हैं, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

एवा नो अग्ने सुमिधा वृधानो रेवत्पविक श्रवसे वि भाहि।

तन्नो मित्रो वर्रुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः॥ ११॥ २॥

पुवा नः। अग्ने। समऽइद्यां। वृधानः। रेवत्। पावकः। श्रवंसे। वि। भाहि। तत्। नः। मित्रक्ष वर्रणः। मुमुहुन्ताम्। अदितिः। सिन्धुः। पृथिवी। उत। द्यौः॥११॥

पदार्थ:-(एव) अत्र निपातस्य चेति दीर्घ:। (न:) अस्माकम् (अग्ने) विद्वन् (सिप्धा) सम्यक् प्रदीप्तेन स्वभावेन प्रदीपकेनेन्धनादिना वा (वृधान:) वर्धमानो वर्धियता वा (रेवत्) प्रमोत्तम्धनेत्रते। अत्र सुपां सुलुगिति चतुर्थ्या एकवचनस्य लुक्। (पावक) पवित्र (श्रवसे) श्रवणायात्रीय वा (वि) (भाहि) विविधतया प्रकाशते प्रकाशयित वा। तन्नो मित्रो० इत्यादि पूर्वसूक्तान्त्यमन्त्रवद् व्याख्ययम्॥११॥

अन्वय:-हे पावकाग्ने विद्वन्! यथा कालो विद्युदिग्नर्वा नोऽस्माकं सिमधा विधानो वस्मै रेवदेव श्रवसे विभाति विविधतया प्रकाशत उत तन्मित्रो वरुणोऽदिति: सिन्धु: पृथिवी द्यौर्नोऽस्मान् मामहत्रां तथा जिस्सान् विभाहि॥११॥

भावार्थ:-अत्र श्लेषालङ्कार:। निहं कस्यचित्कालाग्निविद्यया विमा विद्यायुक्तं धनं प्राप्तुं शक्यं न खलु कश्चित्समयानुकूलानुष्ठानेन विना प्राणादिभ्य उपकारान् ग्रह्मीत् यथावच्छक्नोति तस्मादेतत्सर्वं प्रबुध्य सर्वकार्य्यसिद्धिं कृत्वा सदानन्दयितव्यमिति॥११॥

अत्र कालाग्निविद्वद्गुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्व सूक्त्रश्नि सह सुङ्गतिरस्तीत्यवगन्तव्यम्॥

इति पञ्चनवितितमं ९५ सूक्तं तृतीयो ३ वर्गश्च समाप्तः॥

पदार्थ:-हे (पावक) पवित्र (अग्ने) विद्वान समये और बिजुली रूप भौतिक अग्नि (न:) हम लोगों के (सिमधा) अच्छे प्रकाश को प्राप्त किये हुए अपने भाव से वा इन्धन आदि (वृधानः) बढ़ता वा वृद्धि कराता हुआ जिस (रेवत्) परम उत्तम धनवान (श्रवसे) सुनने तथा अन्न के लिये (एव) ही अनेक प्रकार से प्रकाशित होता है (उत्त) और (तत्) इससे (मिन्नः) प्राण (वरुणः) उदान (अदितिः) अन्तरिक्ष आदि (सिन्धुः) समुद्र (पृथिवी) भूमि वा (द्यौः) बिजुली का प्रकाश (नः) हम लोगों को (मामहन्ताम्) वृद्धि देते हैं, वैसे आप हम लोगों को (वि. भाहि) प्रकाशित करो वा काल वा भौतिक अग्नि प्रकाशित होता है॥११॥

भावार्थ:-इस महा में श्लेषाल द्वार है। काल और भौतिक अग्नि की विद्या के विना किसी को विद्यायुक्त धन नहीं हो सकता और न कोई समय के अनुकूल वर्त्ताव वर्त्तने के विना प्राणादिकों से उपकार यथावत् ले सकता है, इससे इस समस्त उक्त व्यवहार को जानके सब कार्य की सिद्धि कर सदा आनन्द करना चाहिय। ११।।

इस सूक्त में काल और अग्नि के गुणों के वर्णन से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संग्रुति है, ऐसा जानना चाहिये॥

यह पिच्चानवेवाँ ९५ सूक्त और तीसरा ३ वर्ग समाप्त हुआ॥

अथ नवर्च्चस्य षण्णविततमस्य सूक्तस्याङ्गिरसः कुत्स ऋषिः। द्रविणोदा अग्निः शुद्धोऽग्निर्वा

देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अथाऽग्निशब्देन विद्वद्गुणा उपदिश्यन्ते॥

अब नव ऋचावाले छानवें सूक्त का प्रारम्भ है। इसके प्रथम मन्त्र में अग्नि शब्द से किन्नुस के गुणों का उपदेश किया है।।

स प्रत्नथा सहंसा जार्यमानः सद्यः कार्व्यानि बर्ळधत्त विश्वा। आपश्च मित्रं धिषणां च साधन् देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम्॥ १॥

सः। प्रत्नऽर्था। सहंसा। जार्यमानः। सद्यः। कार्व्यानि। बट्। अधुन्। विश्वा आर्यः। च्या मित्रम्। धिषणां। च। साधुन्। देवाः। अग्निम्। धाुर्युन्। द्रुविणुःऽदाम्॥ १॥

पदार्थ:-(स:) (प्रत्नथा) प्रतः प्राचीन इव (सहसा) बर्लेन (जास्प्रानः) प्रादुर्भवन् (सद्यः) शीघ्रम् (काव्यानि) कवेः कर्माणि (बट्) यथावत् (अधत्त) दध्यति (विश्वा) विश्वानि (आपः) प्राणाः (च) अध्यापनादीनि कर्माणि (मित्रम्) सुहत् (धिषणा) प्रज्ञा (च) हस्त्रिक्षणासमुच्चये (साधन्) साध्नुवन्ति साधयन्ति वा (देवाः) विद्वांसः (अग्निम्) परमेश्वरं भौतिष्ठं वा ध्यारयन्) धारयन्ति (द्रविणोदाम्) यो द्रव्याणि ददाति तम्। अत्रान्येभ्योऽपि दृश्यन्त इति विद्याः।

अन्वय:-ये देवा द्रविणोदामिंगं धारयँस्ते स्वाणि कार्योष्ट्रिं च साधँस्तेषामापश्चाध्यापनादीनि कर्माणि मित्रं धिषणा हस्तक्रियया सिध्यन्ति, यो मनुष्यः सहसा प्रमुख प्राचीन इव जायमानो विश्वा काव्यानि सद्यो बडधत्त यथावद् दधाति स विद्वान् सुखी च भवति॥१॥

भावार्थ: -निह मनुष्यो ब्रह्मचर्येण विद्याप्राप्त्या विना कविर्भवितुं शक्नोति न च कवित्वेन विना परमेश्वरं विद्युतं च विज्ञाय कार्याणि कर्त्ते शक्नोति तस्मादेतित्रित्यमनुष्ठेयम्।।

पदार्थ:-जो (देवा:) विद्वान् लोग (द्रविणोदाम्) द्रव्य के देनेहारे (अग्निम्) परमेश्वर वा भौतिक अग्नि को (धारयन्) धारण करते-कराते हैं, वे सब कामों को (साधन्) सिद्ध करते वा कराते हैं, उनके (आप:) प्राण (च) और विद्या पढ़ान्। आदि काम (मित्रम्) मित्र (धिषणा) (च) और बुद्धि हस्तक्रिया से सिद्ध होती हैं, जो मनुष्य (सहस्त) बल से (प्रत्नथा) प्राचीनों के समान (जायमान:) प्रकट होता हुआ (विश्वा) समस्त (काव्यानि) विद्वानों के किये काव्यों को (सद्य:) शीघ्र (बट्) यथावत् (अधत्त) धारण करता है, (स:) वह विद्वान् और सुखी होता है॥१॥

भार्माथ: भार्माथ: भार्माथ: प्रमुख्य ब्रह्मचर्य से विद्या की प्राप्ति के विना किव नहीं हो सकता और न किवताई के विना प्रमुख्य वा बिजुली को जानकर कार्य्यों को कर सकता है, इससे उक्त ब्रह्मचर्य्य आदि नियम का अनुष्ट्राप्त नित्य करना चाहिये॥१॥

पुन: स परमेश्वर: कीदृश इत्युपदिश्यते॥

१०४४

ऋग्वेदभाष्यम्

फिर वह परमेश्वर कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

स पूर्वया निवदां कव्यतायोरिमाः प्रजा अर्जनयन्मनूनाम्। विवस्वता चक्षसा द्यामुपश्चं देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम्॥२॥

सः। पूर्विया। निऽविदा। कुव्यता। आयोः। इमाः। प्रऽजाः। अजनयत्। मर्नूनाम्। विवस्त्रता। स्क्षेसा। द्याम्। अपः। चु। देवाः। अग्निम्। धाुरुयुन्। द्रविणुःऽदाम्॥२॥

पदार्थ:-(स:) जगदीश्वर: (पूर्वया) प्राचीनया (निविदा) वेदवाचा (कव्येत्) कव्यं कवित्वं तन्यते यया तया (आयो:) सनातनात् कारणात् (इमा:) प्रत्यक्षाः (प्रजाः) प्रजायन्ते व्यस्ताः (अजनयत्) जनयति (मनूनाम्) मननशीलानां मनुष्याणां सिन्नधौ (विवस्वता) सूर्य्येण (चक्षस्ता) दर्शकेन (द्याम्) प्रकाशम् (अपः) जलानि (च) पृथिव्योषध्यादिसमुच्चये (देवाः) आप्ता विद्वासः (अग्निम्) परमेश्वरम्। अन्यत्पूर्ववत्॥२॥

अन्वयः-मनुष्यैर्यः पूर्वया निविदा कव्यतामनूनामायोरिमाः प्रक्रा अजनयज्ज्ञभयति विवस्वता चक्षसा द्यामपः पृथिव्योषध्यादिकं च यं द्रविणोदामिनं परमेश्वरं देवा धारयन् धारयन्त्रिस् नित्यसुपास्त्रनीयः॥२॥

भावार्थ: - निह ज्ञानवतोत्पादकेन विना किंचिज्जी कार्स्यक्रैरं स्वयमुत्पत्तुं शक्नोति। तस्मात् सकलजगदुत्पादकं सर्वशक्तिमन्तं जगदीश्वरं सर्वे मनुष्या मन्यरन्॥ २॥

पदार्थ:-मनुष्यों को जो (पूर्वया) प्राचीन (मिविदा) वेदवाणी (कव्यता) जिससे कि कविताई आदि कामों का विस्तार करें, उससे (मनूनाम्) विचारशोल पुरुषों के समीप (आयो:) सनातन कारण से (इमा:) इन प्रत्यक्ष (प्रजा:) उत्पन्न होनेवाले प्रजाजनों को (अजनयन्) उत्पन्न करता है वा (विवस्वता) (चक्षसा) सब पदार्थों को दिखानेवाले सूर्य्य से (द्याम्) प्रकाश (अप:) जल (च) पृथिवी वा ओषि आदि पदार्थों तथा जिस (द्रविणोदाम्) अन देनेवाले (अग्निम्) परमेश्वर को (देवा:) आप्त विद्वान् जन (धारयन्) धारण करते हैं (स:) वह नित्य उपासना करने योग्य है॥२॥

भावार्थ:-ज्ञानवान् अर्थीत् जो चेतन्त्रयुक्त है, उसके विना उत्पन्न किये कुछ जड़ पदार्थ कार्य्य करने वाला आप नहीं उत्पन्न हो सकता। इससे समस्त जगत् के उत्पन्न करनेहारे सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर को सब मनुष्य मानें अर्थात् सूणमात्र जो आप से नहीं उत्पन्न हो सकता तो वह कार्य्य जगत् कैसे उत्पन्न हो सके। इससे इसको उत्पन्न करनेवाला जो चेतनरूप है, वही परमेश्वर है॥२॥

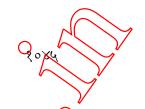
पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

ेफिर वह कैसा है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

र्त्तमीळत प्रथमं यज्ञसाधं विश् आरीराहुतमृञ्जसानम्।

कुर्जेः पुत्रं भर्तं सृप्रदानुं देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम्॥३॥

मण्डल-१। अनुवाक-१५। सूक्त-९६



तम्। ईळ्त्। प्रथमम्। यज्ञुऽसार्धम्। विश्तः। आरीः। आऽहुतम्। ऋञ्चसानम्। ऊर्जः। पुत्रम्। भूरतम्। सृप्रऽदानुम्। देवाः। अग्निम्। धार्यन्। द्विणःऽदाम्॥३॥

पदार्थ:-(तम्) परमात्मानम् (ईळत) स्तुत (प्रथमम्) सर्वस्य जगत आदिमं स्रष्टारम् (यज्ञसाधम्) यो यज्ञैर्विज्ञानादिभिर्ज्ञातुं शक्यस्तम् (विशः) प्रजाः (आरोः) आप्तुं योग्याः (आहुत्र्मः) विद्वद्भिः सत्कृतम् (ऋञ्जसानम्) विवेकादिसाधनैः प्रसाध्यमानम् (ऊर्जः) वायुरूपात् कारणात् (पुत्रम्) प्रसिद्धं प्राणम् (भरतम्) धारकम् (सृप्रदानुम्) सृप्रं सर्पणं दानुर्दानं यस्मात्तम् (देवाः०) इत्य्रादि पूर्ववत्। ३॥

अन्वय:-हे मनुष्या! यं प्रथमं यज्ञसाधमृञ्जसानं विद्वद्भिराहुतमारीर्विशो भरते प्रप्रदानुसूजी पुत्रं प्राणं च जनयन्तं द्रविणोदामग्निं देवा धारयन् धरन्ति धारयन्ति वा तं परमेश्वरं यूयं नित्यमीळत॥ हे॥

भावार्थ:-हे जिज्ञासवो मनुष्या! यूयं येनेश्वरेण सर्वेभ्यो जीवेभ्यः सर्वोः सृष्टीर्निष्पाद्य प्रापिता, येन सृष्टिधारको वायुः सूर्यश्च निर्मितस्तं विहायाऽन्यस्य कदाचिदपीश्वरेत्वेनोपास्त्रं मा कुरुत॥३॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! जो (प्रथमम्) समस्त उत्पन्न ज्यात के पहिले वर्त्तमान (यज्ञसाधम्) विज्ञान योगाभ्यासादि यज्ञों से जाना जाता (ऋञ्जसानम्) विवेक आदि सामनों से अच्छे प्रकार सिद्ध किया जाता (आहुतम्) विद्वानों से सत्कार को प्राप्त (आरी:) ब्राष्त्र होने योग्य (विश:) प्रजाजनों और (भरतम्) धारणा वा पृष्टि करनेवाला (सुप्रदानुम्) जिससे कि ज्ञान देना बनता है, उस (ऊर्जः) कारणरूप पवन से (पुत्रम्) प्रसिद्ध हुए प्राण को उत्पन्न करने और (द्विणोदाम्) धन आदि पदार्थों के देनेवाले (अग्निम्) जगदीश्वर को (देवा:) विद्वान् जन (धारयम्) भ्रास्ण क्रार्त वा कराते हैं (तम्) उस परमेश्वर की तुम नित्य (ईडत) स्तुति करो॥३॥

भावार्थ: – हे जिज्ञासु अर्थात् परमेश्वर का विज्ञान चाहनेवाले मनुष्यो! तुमको जिस ईश्वर ने सब जीवों के लिये सब सृष्टियों को उत्पन्न करके प्राप्त कराई हैं वा जिसने सृष्टि धारण करनेहारा पवन और सूर्य रचा है, उसको छोड़ के अन्य किसी की कभी ईश्वरभाव से उपासना मत करो॥३॥

🎢 पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

स मातुरिश्चा पुरुवारपुष्टिर्विदद् गातुं तनयाय स्वर्वित्।

विक्रां ग्रापा प्रिता रोदंस्योर्देवा अग्नि धारयन्द्रविणोदाम्॥४॥

सः। मा<u>र्वारेश्वां। पुर</u>ुवारंऽपुष्टिः। विदत्। गातुम्। तर्नयाय। स्वःऽवित्। विशाम्। गोपाः। जुनिता। रोदंस्योः। देवाः/(अग्निप्। धारुयुन्। द्वविणुःऽदाम्॥४॥

पदार्थ:-(स:) (मातिरश्चा) मातर्यन्तिरक्षे श्वसिति स वायुः (पुरुवारपुष्टिः) पुरु बहु वारो वरणीया पुष्टिर्यस्मात् सः (विदत्) लम्भयन् (गातुम्) वाचम् (तनयाय) पुत्राय (स्वर्वित्) सुख्रप्रापकः (विशाम्) प्रजानाम् (गोपाः) रक्षकः (जिनता) उत्पादकः (रोदस्योः) प्रकाशाप्रकाशलिक्समूहस्रोः (देवाः) इत्यादि पूर्ववत्॥४॥

अन्वय:-मनुष्यैर्येनेश्वरेण तनयाय स्वर्विद् गातुं विदद् पुरुवारपृष्टिर्मातरिश्वा बाह्याभ्यन्त्ररस्थो बाधुर्निर्मितो यो विशां गोपा रोदस्योर्जनिताऽस्ति यं द्रविणोदामिवाग्निं देवा धारयन् स सर्वदेष्टदेवो मन्तव्य:॥४॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। निह वायुनिमित्तेन विना कस्यापि वाक् प्रवर्तितुं शक्नोति, न च कस्यापि पृष्टिर्भवितुं योग्यास्ति, नहीश्वरमन्तरेण जगत उत्पक्तिश्वणे भवत इति वेद्यम्॥४॥

पदार्थ:-मनुष्यों को चाहिये कि जिस ईश्वर ने (तनयाय) अपने युत्र के समान जीव के लिये (स्वर्वित्) सुख को पहुंचानेहारी (गातुम्) वाणी को (विदत्) प्राप्त कराया (पुरुवारपुष्टिः) जिससे अत्यन्त समस्त व्यवहार के स्वीकार करने की पुष्टि होती है, कह (मातिरश्चा) अन्तरिक्ष में सोने और बाहर-भीतर रहनेवाला पवन बनाया है, जो (विशाम्) प्रजाजनों का (गेपाः) पालने और (रोदस्योः) उजेले-अन्धेरे को वर्त्तानेहारे लोकसमूहों का (जिनता) हत्या करनेवाला है, जिस (द्रविणोदाम्) धन देनेवाले के तुल्य (अग्निम्) जगदीश्वर को (देवाः) उक्त विद्वाप् जन (धारयन्) धारण करते वा कराते हैं (सः) वह सब दिन इष्टदेव मानने योग्य है॥४॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। पवन के निमित्त के विना किसी की वाणी प्रवृत्त नहीं हो सकती, न किसी की पृष्टि होने के खोरब और न ईश्वर के विना इस जगत् की उत्पत्ति और रक्षा के होने की संभावना है॥४॥

पुतः स कोंदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कसा है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

नक्तोषासा वर्णमामेर्पाने धापयेते शिशुमेकं समीची।

द्यावाक्षामां रुकुमो अन्तर्वि भीति देवा अग्नि धारयन्द्रविणोदाम्।।५॥३॥

नक्तोषसां। वर्णम्। भूमम्पाने इत्याऽमेम्याने। धापयेते इति। शिश्चम्। एकंम्। सुमीची इति सुम्ऽईची। द्यावाक्षामां। कुक्मः। श्रुन्तः। वि। भाति। देवाः। अग्निम्। धार्येन्। द्रविणःऽदाम्॥५॥

पदार्थः (नक्तोषासा) रात्रिन्दिवम् (वर्णम्) स्वरूपम् (आमेम्याने) पुनः पुनरहिंसन्त्यौ (धापयेते) दुग्धं पाययः (शिशुम्) बालकम् (एकम्) (समीची) प्राप्तसङ्गती (द्यावाक्षामा) प्रकाशभूमी (रुक्मः) स्वप्रकाश्चीस्वरूपः (अन्तः) सर्वस्य मध्ये (वि) विशेषे (भाति) (देवाः०) इति पूर्ववत्॥५॥

मण्डल-१। अनुवाक-१५। सूक्त-९६



अन्वय:-हे मनुष्या! यस्य सृष्टौ वर्णमामेम्याने समीची नक्तोषासा द्यावाक्षामा शिर्षो धापयेते येनोत्पादितविद्युद्युक्तो रुक्म: प्राण: सर्वस्यान्तर्मध्ये विभाति यं द्रविणोदामेकमिन देवा धारयन् स एव सर्वस्य पिताऽस्तीति यूयं मन्यध्वम्॥५॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। यथा धाप्यमानस्य बालकस्य पार्श्वे स्थिते हे स्त्रियौ दुग्धं पाययतस्तथैवाहोरात्रौ सूर्य्यपृथिवी च वर्तेते यस्य नियमेनैनं भवति स सर्वस्य जन्नुक: क्थं न स्यात्॥५॥

पदार्थ: - हे मनुष्य लोगो! जिनकी सृष्टि में (वर्णम्) स्वरूप अर्थात् उत्पन्न मात्र को (आमेम्याने) बार-बार विनाश न करते हुए (समीची) संग को प्राप्त (नक्तोषासा) रात्रि दिक्स को (द्यावाक्षामा) सूर्य्य और भूमि लोक (शिशुम्) बालक को (धापयेते) दुग्धपान करानेवाले मता-पिता के समान रस आदि का पान करवाते हैं, जिसकी उत्पन्न की बिजुली से युक्त (फ्रक्मः) आप ही प्रकाशस्वरूप प्राण (अन्तः) सबके बीच (वि, भाति) विशेष प्रकाश को प्राप्त होता है, जिस्से (द्रविष्णदाम्) धनादि पदार्थ देनेहारे के समान (एकम्) अद्वितीयमात्र स्वरूप (अग्निम्) परमेश्वर को (देवाः) आप्त विद्वान् जन (धारयन्) धारणा करते वा कराते हैं, वही सबका पिता है॥५॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्का है। जैसे दूथ पिलानेहारे बालक के समीप में स्थित दो स्त्रियां उस बालक को दूध पिलाती हैं, वैसे ही दिन और रात्रि तथा सूर्य और पृथिवी है, जिसके नियम से ऐसा होता है, वह सबका उत्पन्न करमेवाला कैसे न हो॥५॥

पुन: स क्रीदृश, इत्युपदिश्यते॥

फिर वह परमेश्वर कैसी है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

रायो बुध्नः संगर्मनो वसूनां यज्ञस्य कृतुर्मन्मसार्धनो वेः।

अमृतुत्वं रक्षमाणास् एनं देवा अस्ति धारयन्द्रविणोदाम्॥६॥

रायः। बुध्नः। सम्इगमेनः। वस्निम्। यज्ञस्यं। केतुः। मन्मुऽसार्धनः। वेरिति वेः। अमृतऽत्वम्। रक्षमाणासः। एनम्। देवाः अभिनम्। योर्यन्। द्रविणःऽदाम्॥६॥

पदार्थ:-(राय:) विद्यान क्रवर्त्तिराज्यधनस्य (बुध्न:) यो बोधयित सर्वान् पदार्थान् वेदद्वारा सः (सङ्गमनः) यः सस्यग्गमधीत सः (वसूनाम्) अग्निपृथिव्याद्यष्टानां त्रयस्त्रिंशद्देवान्तर्गतानाम् (यज्ञस्य) सङ्गमनीयस्य विद्याबोधस्य (केतुः) ज्ञापकः (मन्मसाधनः) यो मन्मानि विचारयुक्तानि कार्य्याणि साधयित सः (वेः) कमनीयस्य (अमृतत्वम्) प्राप्तमोक्षाणां भावम् (रक्षमाणासः) ये रक्षन्ति ते (एनम्) यथोक्तम् (देवाः, अग्निम्०) इति पूर्ववत्॥६॥

१०४८

ऋग्वेदभाष्यम्

अन्वयः-यं वेर्यज्ञस्य बुध्नः केतुर्मन्मसाधनो रायो वसूनां सङ्गमनो वाऽमृतत्वं रक्षमाणासो देवा य द्रविणोदामग्निं धारयंस्तमेवैनमिष्टदेवं यूयं मन्यध्वम्॥६॥

भावार्थ:-जीवनमुक्ता विदेहमुक्ता वा विद्वांसो यमाश्रित्यानन्दन्ति स एव सर्वैरुपासनीयः। क्या

पदार्थ:-हे मनुष्यो! (वे:) मनोहर (यज्ञस्य) अच्छे प्रकार समझने योग्य विद्याबंध को कुट:) समझाने और (केतु:) सब व्यवहारों को अनेक प्रकारों से चितानेवाला (मन्मसाधन:) वा बिचारयुक्त कामों को सिद्ध कराने तथा (राय:) विद्या, चक्रवर्त्तिराज्य, धन और (वसूनाम्) तेंतीस देवलाओं में अग्नि, पृथिवी आदि देवताओं का (संगमन:) अच्छे प्रकार प्राप्त करानेवाला है वा अमृतत्वम्) मोक्ष मार्ग को (रक्षमाणास:) राखे हुए (देवा:) आप्त विद्वान् जन जिस (द्विक्णोदाम्) धन आदि पदार्थ देनेवाले के समान सब जगत् को देनेहारे (अग्निम्) परमेश्वर को (धारवन्) धार्म करते वा कराते हैं (एनम्) उसीको तुम लोग इष्टदेव मानो॥६॥

भावार्थ:-जीवनमुक्त अर्थात् देहाभिमान आदि को छोई हुए वा शरीरत्यागी मुक्तविद्वान् जन जिसका आश्रय करके आनन्द को प्राप्त होते हैं, वहीं ईश्वर सबके उपासना करने योग्य है॥६॥

पुनः स कीदृश इत्युर्गदश्चित्रा

फिर वह कैसा है, इस विषय को अगती पन में कहा है॥

नू चे पुरा च सद्नें रयीणां जातस्ये च आयमानस्य च क्षाम्। सुतर्श्च गोपां भवतश्च भूरेर्देवा अग्नि धारयन्द्रनिणीदाम्॥७॥

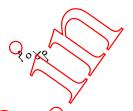
नु। चु। पुरा। चु। सर्दनम्। रयोणाम्। जातस्य। चे। जार्यमानस्य। चु। क्षाम्। सतः। चु। गोपाम्। भर्वतः। चु। भूरैः। देवाः। अग्निम्। धार्यन्। द्रविणुःऽद्राम्॥७॥

पदार्थ:-(नु) शीघ्रम्। ऋगि तुनुः। इति दीर्घः। (च) विलम्बेन (पुरा) कार्यात्प्राक्काले (च) वर्त्तमाने (सदनम्) उत्पत्तिस्थिति कङ्गस्य निम्तिकारणम् (रयीणाम्) वर्त्तमानानां पृथिव्यादिकार्य्यद्रव्याणाम् (जातस्य) उत्पत्रस्य कार्यस्य (च) प्रलयस्य (जायमानस्य) कल्पान्ते पुनरुत्पद्यमानस्य कार्यस्य जगतः (च) पुनर्वर्त्तमानप्रलययोः समुच्यमे (क्षाम्) व्यापकत्वान्निवासहेतुम् (सतः) अनादिवर्त्तमानस्य विनाशरिहतस्य कारणस्य (च) कार्यस्य (गोपाम्) रक्षकम् (भवतः) वर्त्तमानस्य (च) भूतभविष्यतोः (भूरे) व्यापकस्य (देवाः) (अग्निम्०) इति पूर्ववत्॥७॥

अन्वय्र्रिहे मेरुष्या! य देवां विद्वांसो नु च पुरा च रयीणां सदनं जातस्य जायमानस्य च क्षां भूरेः सतश्च भवतश्च गोपा द्रविणोद्रामिनं प्रिमेश्वर धारयंस्तमेवैकं सर्वशक्तिमन्तं यूयं धरध्वं धारयत वा॥७॥

भावार्थः भूतभविष्यद्वर्त्तमानानां त्रयाणां कालानामीश्वराद्विना वेत्ता प्रभुः कार्यकारणयोः पापप्र्राप्यात्मक्कर्मणां व्यवस्थापकोऽन्यः कश्चिदर्थो नास्तीति सदा सर्वैर्जनैर्मन्तव्यम्॥७॥

मण्डल-१। अनुवाक-१५। सूक्त-९६



पदार्थ:-हे मनुष्यो! जिसको (देवा:) विद्वान् जन (नु) शीघ्र (च) और विलम्ब से क (पुरा) कार्य्य से पहिले (च) और बीच में (रयोणाम्) वर्तमान पृथिवी आदि कार्य्य द्रव्यों के (सूदनम्) इत्यति, स्थिति और विनाश के निमित्त वा (जातस्य) उत्पन्न कार्यजगत् के (च) नाश होने व्रथा (जायमानस्य) कल्प के अन्त में फिर उत्पन्न होनेवाले कार्यरूप जगत् के (च) फिर इसी प्रकार जगत् के उत्पन्न और विनाश होने में (क्षाम्) अपनी व्याप्ति से निवास के हेतु वा (भूरे:) व्यापक्र (सतः) अनादिवर्त्तमान विनाशरहित कारणरूप तथा (च) कार्यरूप (भवतः) वर्त्तमान (च) भूत और भविष्यत् उक्त जगत् के (गोपाम्) रक्षक और (द्रविणोदाम्) धन आदि पदार्थों को देनेवाले (अपनम्) जम्मेशिश्वर को (धारयन्) धारण करते वा कराते हैं, उसी एक सर्वशिक्तमान् जगदीश्वर को धारण करते वा कराते हैं, उसी एक सर्वशिक्तमान् जगदीश्वर को धारण करते वा कराते।

भावार्थ:-भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान इन तीन कालों का ईश्वर से विना जाननेवाला प्रभु, कार्य कारण वा पापी और पुण्यात्मा जनों के कामों की व्यवस्था करमेषाला अन्य कोई पदार्थ नहीं है, सब यह मनुष्यों को मानना चाहिये॥७॥

पुन: स कीदृश इत्युपदिश्यते।

फिर वह जगदीश्वर कैसा है, यह विषय अंगले मन्त्र में कहा है॥

द्रविणोदा द्रविणसस्तुरस्यं द्रविणोदाः सन्रस्य प्रयंसत्। द्रविणोदा वीरवंतीमिषं नो द्रविणोदा ससते दीर्घमार्यः॥८॥

द्रविणःऽदाः। द्रविणसः। तुरस्ये। द्रिक्षुःःदिः। स्रोरस्य। प्र। यंसत्। द्रविणःऽदाः। वीरऽवंतीम्। इषंम्। नः। द्रविणःऽदाः। रासते। दीर्घम्। आयुः॥८।

पदार्थ:-(द्रविणोदाः) यो द्रविणोंस ददाति सः (द्रविणसः) द्रव्यसमूहस्य विज्ञानं प्रापणं वा (तुरस्य) शीघ्रं सुखकरस्य (द्रविणोदाः) विभागविज्ञापकः (सनरस्य) संभज्यमानस्य। अत्र सन्धातोर्बाहुलकादौणादिकोऽरन् प्रत्यथः। (प्र) (यंसत्) नियच्छेत् (द्रविणोदाः) शौर्थ्यादिप्रदः (वीरवतीम्) प्रशस्ता वीपा विद्यान्वैऽस्याम् (इषम्) अन्नादिप्राप्तीष्टाम् (नः) अस्मभ्यम् (द्रविणोदाः) जीवनविद्याप्रदः (रासते) रातु ददातु। लेट् प्रयोगो व्यत्ययेनात्मानेपदम्। (दीर्घम्) बहुकालपर्य्यन्तम् (आयुः) विद्याधूमीपरोजकं जीवनम्॥८॥

अन्वर्यः यो द्वीवणोदास्तुरस्य द्रविणसः प्रयंसत्। यो द्रविणोदा सनरस्य प्रयंसत्। यो द्रविणोदा वीरवतीमिषं प्रयंसत् यो द्विणोदा नाऽस्मभ्यं दीर्घमायू रासते तमीश्वरं सर्वे मनुष्या उपासीरन्॥८॥

भावार्थ:-हे मनुष्या! यूयं येन परमगुरुणेश्वरेण वेदद्वारा सर्वपदार्थविज्ञानं कार्य्यते तमाश्रित्य यश्लायोत्स्वच्यवहाराननुष्ठाय धर्मार्थकाममोक्षसिद्धये चिरजीवित्वं संरक्षत॥८॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! जो (द्रविणोदाः) धन आदि पदार्थों का देनेवाला (तुरस्य) शीघ्र सुंखे करनेवाले (द्रविणसः) द्रव्यसमूह के विज्ञान को (प्र, यंसत्) नियम में रक्खे वा जो (द्रविणोदाः) पदार्थों का विभाग जतानेवाला (सनरस्य) एक-दूसरे से जो अलग किया जाये, उस पदार्थ वा स्थवहार के विज्ञान को नियम में रक्खे वा जो (द्रविणोदाः) शूरता आदि गुणों का देनेवाला (वीरबत्तीम्) जिससे प्रशंसित वीर होवें, उस (इषम्) अन्नादि प्राप्ति की चाहना को नियम में रक्खे वा जो (द्रविणोदाः) आयुर्वेद अर्थात् वैद्यकशास्त्र का देनेवाला (नः) हम लोगों के लिये (दीर्घम्) बहुत समय तक (आयुः) जीवन (रासते) देवे, उस ईश्वर की सब मनुष्य उपासना करें॥८॥

भावार्थ: -हे मनुष्यो! तुमको जिस परम गुरु परमेश्वर ने वेद के द्वार सब पदार्थों का विशेष ज्ञान कराया है, उसका आश्रय करके यथायोग्य व्यवहारों का अनुष्ठान कर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि के लिये बहुत काल पर्य्यन्त जीवन की रक्षा करो॥८॥

पुन: स कीदृश इत्युपदिश्यते।

फिर वह कैसा है, इस विषय को अगले मन्त्रे में कुड़ा है।।

एवा नो अग्ने समिधा वृधानो रेवत्पविक श्रवस वि भाहि। तन्नो मित्रो वर्मणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी इत द्यौः॥९॥४॥

पुव। नुः। अग्ने। सुम्ऽइधा। वृधानः। रेवता पावका क्रवसे। वि। भाहि। तत्। नुः। मित्रः। वर्रणः। मुमहन्ताम्। अदितिः। सिन्धुः। पृथिवी। उत। द्यौः॥ रूप

पदार्थ:-(एव) अवधारणे। निणतस्य चेति दीर्घः। (नः) अस्मान् (अग्ने) सर्वमङ्गलकारक परमेश्वर (सिमधा) सम्यगिध्यते प्रदीप्तते यहा म्ववदिवद्यया तया (वृधानः) नित्यं वर्द्धमानः (रेवत्) राज्यादिप्रशस्ताय श्रीमते (पावक) पवित्र पवित्रकारक वा (श्रवसे) सर्वविद्याश्रवणाय सर्वान्नप्राप्तये वा (वि) विविधार्थे (भाहि) प्रकाशिय (तत्) तेन (नः) अस्मान् (मित्रः) ब्रह्मचर्य्येण प्राप्तबलः प्राणः (वरुणः) ऊर्ध्वगतिहेतुरुदानः (मामहन्ताम्) ह्याकारहेतवो भवन्तु (अदितिः) अन्तरिक्षम् (सिन्धुः) समुद्रः (पृथिवी) भूमिः (उत्) अभि (द्यौः) प्रकाशमानः सूर्य्यादिः॥९॥

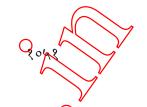
अन्वय:-हे पावकाने स्मिमधा वृधानस्त्वं नोऽस्मान् रेवच्छ्रवस एव विभाहि, तेन त्वया निर्मिता मित्रो वरुणोऽदितिः सिन्धुः पृथिव्युतापि द्यौर्नोऽस्मान् मामहन्ताम्॥९॥

भावार्थः - है भनुष्या ! यस्य विद्यया विना यथार्थं विज्ञानं न जायते येन भूमिमारभ्याकाशपर्य्यन्ता सृष्टिर्निर्मिता यं विश्वासमहे तमेव यूयमुपासीरन्॥ ९॥

अस्मिन् सूक्तेऽग्निशब्दगुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति बोध्यम्॥

इति षण्णविततमं ९६ सूक्तं चतुर्थो ४ वर्गश्च समाप्तः॥

मण्डल-१। अनुवाक-१५। सूक्त-९६



पदार्थ:-हे (पावक) आप पवित्र और संसार को पवित्र करने तथा (अग्ने) समस्त प्रकृत प्रकट्ट करनेवाले परमेश्वर! (सिमधा) जिससे समस्त व्यवहार प्रकाशित होते हैं, उस वेदविद्या से (व्यानः) नित्यवृद्धियुक्त जो आप (नः) हम लोगों को (रेवत्) राज्य आदि प्रशंसित श्रीमान् के लिये वा (श्रवसे) समस्त विद्या की सुनावट और अत्रों की प्राप्ति के लिये (एव) ही (वि, भार्ष्ट) अनेक प्रकार से प्रकाशमान कराते हैं (तत्) उन आपके बनाये हुए (मित्रः) ब्रह्मचर्य्य के नियम से बल को प्राप्त हुआ प्राण (वरुणः) ऊपर को उठानेवाला उदान वायु (अदितिः) अन्तरिक्ष (सिन्धः) समुद्र (पृथिवी) भूमि (उत) और (द्यौः) प्रकाशमान सूर्य्य आदि लोक (नः) हम लोगों के (मामहन्तरण्) सत्कार के हेतु हों॥९॥

भावार्थ: -हे मनुष्यो! जिसकी विद्या के विना यथार्थ विज्ञान नहीं होता वा जिसने भूमि से ले के आकाशपर्यन्त सृष्टि बनाई है और हम लोग जिसकी उपासना कारते हैं, तुम लोग भी उसी की उपासना करो॥९॥

इस सूक्त में अग्नि शब्द के गुणों के वर्णन से इसके अर्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ संगति है, यह जानना चाहिये॥

यह छियानवां ९६ सूक्त और चतुर्थ 😿 वर्ग समाप्त हुआ॥

अथास्य सप्तनविततमस्याष्टर्चस्य सूक्तस्याङ्गिरसः कुत्स ऋषिः। अग्निर्देवता। १,७,८ पिपीलिकामध्या निचृद् गायत्री। २,४,५ गायत्री। ३,६ निचृद्गायत्री च छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अथायं सभाध्यक्ष: कीदृश इत्युपदिश्यते॥

अब आठ ऋचावाले सत्तानवें सूक्त का प्रारम्भ है। उसके प्रथम मन्त्र में सभाध्यक्ष कैसा है। उपदेश किया है।।

अपे नः शोश्चिद्धमग्ने शुशुख्या र्यिम्। अपे नः शोश्चिद्धम्॥ १॥

अप। नुः। शोश्चंचत्। अघम्। अग्ने। शुशुन्धि। आ। र्यिम्। अप। नुः। शोश्चंचत्। अघम्। ९॥

पदार्थ:-(अप) दूरीकरणे (न:) अस्माकम् (शोशुच्यत् अघम्) रोगालस्यं पापम् (अग्ने) सभापते (शुशुम्धि) शोधय प्रकाशय। अत्र विकरणव्यत्यकेत् १९९१: (आ) समन्तात् (रियम्) धनम् (अप) दूरीकरणे (न:) अस्माकम् (शोशुचत्) दूरीकुर्यात् (अघम्) स्त्रोत्वाकुछरीरजन्यं पापम्॥१॥

अन्वय:-हे अग्ने! भवान् नोऽस्माकमघमपशोशुचत् पुनः पुनर्दूरीकुर्य्यात्। रियमाशुशुग्धि। नोऽस्माकमघमपशोशुचत्॥१॥

भावार्थ:-सभाध्यक्षेण सर्वमनुष्येभ्यो यद्यदिहतम् वर्म प्रमादीऽस्ति, तं दूरीकृत्यानालस्येन श्री: प्रापयितव्या॥१॥

पदार्थ:-हे (अग्ने) सभापते! आप (नः) हम लोगों के (अघम्) रोग और आलस्यरूपी पाप का (अप, शोशुचत्) बार-बार निवारण कीजिये (रियम्) धने को (आ) अच्छे प्रकार (शुशुच्छि) शुद्ध और प्रकाशित कराइये तथा (नः) हम लोगों के (अधम्) पने, वचन और शरीर से उत्पन्न हुए पाप की (अप, शोशुचत्) शुद्धि के अर्थ दण्ड दीजिये॥ १०

भावार्थ:-सभाध्यक्ष को चाहिये कि सब मनुष्यों के लिये जो-जो उनका अहितकारक कर्म और प्रमाद है, उसको मेट के निरालस्यपन से धन की प्राप्ति करावे॥१॥

पुनः स्कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह केसा है, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है।।

सुक्षेत्रिया सुगातुया विभूया च यजामहे। अप नः शोश्चिद्घम्॥२॥

सुऽक्षेत्रियू सुगातुऽया। वसुऽया। च। यजामहे। अप। नः। शोश्चंचत्। अघम्॥२॥

पदार्थः (सुक्षेत्रिया) शोभनं क्षेत्रं वपनाधिकरणं यया नीत्या तया। अत्रेयाडियाजीकाराणामिति डियाजादेशः (सुपातुया) शोभना गातुः पृथिवी यस्यां तया। अत्र याजादेशः। (वसूया) आत्मनो वसूनीच्छेत्ति तया (च) सर्वशस्त्रास्त्रादीनां समुच्चये (यजामहे) सङ्गच्छामहे (अप, नः०) इति पूर्ववृत्ताः स्था

मण्डल-१। अनुवाक-१५। सूक्त-९७



अन्वय:-हे अग्ने! यं त्वां वसूया सुगातुया सुक्षेत्रिया च शस्त्रास्त्रसेनया वयं विजानहे स् भवान्नोऽस्माकमघमपशोशुचत्॥२॥

भावार्थ:-पूर्वमन्त्रादग्ने इति -पदमनुवर्तते। सभाध्यक्षेण सामदण्डभेदक्रियान्त्रितां भीतिं सप्राप्य प्रजानां दुःखानि नित्यं दूरीकर्त्तुमुद्यमः कर्त्तव्यः प्रजयेदृश एव सभाध्यक्षः कर्त्तव्यः॥ भूग

पदार्थ:-(अग्ने) सभाध्यक्ष! जिन आपको (वसूया) जिससे अपने को धेमें की चहिना हो (सुगातया) जिसमें अच्छी पृथिवी हो और (सुक्षेत्रिया) अनाज बोने को जो अच्छा खेत हो, वह जिस नीति से हो, उससे (च) तथा शस्त्र और अस्त्र बांधनेवाली सेना से हम स्प्रिंग (राजागहे) संग देते हैं, वे आप (न:) हम लोगों के (अधम्) दुष्ट व्यसन को (अपशोशुचत्) दूर क्रिजिये। रा

भावार्थ:-पिछले मन्त्र से (अग्ने) इस पद की अनुवृत्ति आती है। सभाध्यक्ष को चाहिये कि शान्तिवचन कहने, दुष्टों को दण्ड देने और शत्रुओं को परस्पर फ्रूंड कराने की क्रियाओं से नीति को अच्छे प्रकार प्राप्त हो के प्रजाजनों के दु:ख को नित्य दूर करने के लिये उद्यूप्त करे, प्रजाजन भी ऐसे पुरुष ही को सभाध्यक्ष करें॥२॥

पुनः स कीदृश इत्युपिद्श्यते।

फिर वह सभाध्यक्ष कैसा हो, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

प्र यद्धन्दिष्ठ एषां प्रास्माकांसश्च सूर्यः। अप्रेमः शोशुंचद्घम्॥३॥

प्रा यत्। भन्दिष्टः। एषाम्। प्रा अस्माकासुः च्रणसूर्यः। अप। नः। शोश्चेवत्। अघम्॥३॥

पदार्थ:-(प्र) प्रकृष्टार्थे (यत्) यस्य (भन्दिष्ठ:) अतिशयेन कल्याणकारकः (एषाम्) मनुष्यादिप्रजास्थप्राणिनाम् (प्र) (अस्माकासः) येऽस्माकं मध्ये वर्त्तमानाः। अत्राणि वाच्छन्दिस सर्वे विधयो भवन्तीति वृद्धयभावः। (च) वीराणी समुच्चये (सूरयः) मेधाविनो विद्वांसः (अप, नः०) इति पूर्ववत्॥३॥

अन्वयः-हे अग्ने यदस्य तर्व सभायामेषां मध्येऽस्माकासः प्रसूरयो वीराश्च सन्ति, ते सभासदः सन्तु। स भन्दिष्ठो भवान् नोऽस्माकमघं प्रापशोशुचत्॥३॥

भावार्थः अत्राप्यग्ते इति पदमनुवर्त्तते। विद्वांसः यदा सभाद्यध्यक्षा आप्ताः सभासदः पूर्णशरीरबला भूत्याश्च भवेयुस्तदा राज्यपालनं विजयश्च सम्यग्भवेताम्, अतो विपर्य्यये विपर्य्ययः॥३॥

पदार्थ: हे अग्ने सभापते! (यत्) जिस आपकी सभा में (एषाम्) इस मनुष्य आदि प्रजाजनों के बीच (अस्माकासः) हम लोगों में से (प्र, सूरयः) अत्यन्त बुद्धिमान् विद्वान् (च) और वीर पुरुष हैं, वे

१०५४

ऋग्वेदभाष्यम्

सभासद् हों, (भन्दिष्ठ:) अति कल्याण करनेहारे आप (न:) हम लोगों के (अघम्) शत्रुजन्य दुःखरूपे पाप को (प्र, अप, शोशुचत्) दूर कीजिये॥३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में भी (अग्ने) इस पद की अनुवृत्ति आती है। जब विद्वान् सभी आदि के अधीश आप्त अर्थात् प्रामाणिक सत्य वचन को कहनेवाले सभासद् और आत्मिक, श्रापेरिक बल से पिरपूर्ण सेवक हों, तब राज्यपालन और विजय अच्छे प्रकार होते हैं, इससे उलटेपून में उत्बंदा ही ढंग होता है॥३॥

पुनस्तस्य कीदृशस्य कीदृशाश्चेत्युपदिश्यते॥

फिर उसके कैसे के कैसे हों, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

प्र यत्ते अग्ने सूरयो जार्येमिह प्र ते व्यम्। अप नः शोर्ध्यकृद्धम्। ४)।

प्रा यत्। ते। अन्ते। सूरर्यः। जार्यमिहा प्रा ते। वयम्। अप। नः। श्रीशुक्ता अभ्रम्॥४॥

पदार्थ:-(प्र) (यत्) यस्य (ते) तव (अग्ने) आप्त्राम्चानाध्यापक (सूरयः) पूर्णविद्यावन्तो विद्वांसः (जायेमिह) (प्र) (ते) तव (वयम्) (अप, नः०) इति पूर्वेषत्॥)।

अन्वय:-हे अग्ने! यद्यस्य ते तव यादृशाः सूरयः स्मिन्तः, तस्य ते तव तादृशा वयमपि प्रजायेमहीदृशस्त्वं नोऽस्माकमघं प्रापशोशुचत्॥४॥

भावार्थ:-इह संसारे यादृशाः भिष्ठाः स्मिभाद्यध्यक्षा मनुष्या भवेयुस्तादृशैरेव प्रजास्थैर्मनुष्यैर्भवितव्यम्॥४॥

पदार्थ:-हे (अग्ने) आप उत्तर-प्रत्युत्तर से कुहनेवाले (यत्) जिन (ते) आपके जैसे (सूरयः) पूरी विद्या पढ़े हुए विद्वान् सभासद् हैं; उने ति) आपके वैसे ही (वयम्) हम लोग भी (प्र, जायेमिह) प्रजाजन हों और ऐसे तुम (नः) हम लोगों के (अधम्) विरोधरूप पाप को (प्र, अप, शोशुचत्) अच्छे प्रकार दूर कीजिये॥४॥

भावार्थ:-इस संसार में जैसे धर्मिष्ठ सभा आदि के अधीश मनुष्य हों, वैसे ही प्रजाजनों को भी होना चाहिये॥४॥

अर्थ भौतिकोऽग्निः कीदृश इत्युपदिश्यते॥

अब भौतिक अग्नि कैसा है, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

प्र युद्धाने: सहस्वता विश्वतो यन्ति भानवः। अप नः शोश्चिद्घम्॥५॥

प्रा अत्। अपने:। सहस्वत:। विश्वत:। यन्ति। भानव:। अप। नु:। शोशुंचत्। अघम्॥५॥

पदार्थ:-(प्र) (यत्) यस्य (अग्नेः) पावकस्य (सहस्वतः) प्रशस्तं सहो बलं विद्यते यस्मिन् (विश्वतः) सर्चतः (यन्ति) गच्छन्ति (भानवः) प्रदीप्ताः किरणाः (अप) (नः) (शोशुचत्) शोशुच्यात् अध्म परिद्रयम्॥५॥

मण्डल-१। अनुवाक-१५। सूक्त-९७



अन्वयः-हे विद्वांसो! यूयं यद्यस्य सहस्वतोऽग्नेर्भानवो विश्वतः प्रयन्ति, यो नोऽस्माकमघं दारिद्वर्यमपुशोशुचद् दूरीकरोति तं कार्येषु संप्रयुङ्ग्ध्वम्॥५॥

भावार्थ:-नह्येतया विद्युता विना मूर्त्तद्रव्यमव्याप्तमस्ति यः शिल्मविद्येश कार्येषु संप्रयुक्तोऽग्निर्धनकारी जायते, स मनुष्यैः सम्यग्वेदितव्यः॥५॥

पदार्थ:-हे विद्वानो! तुम (यत्) जिस (सहस्वतः) प्रशंसित बलवाले (अपनेः) भौतिक धानि की (भानवः) उजेला करती हुई किरण (विश्वतः) सब जगह से (प्रयन्ति) फैलती हैं वा जो (नः) हम लोगों के (अधम्) दिरद्रपन को (अप, शोशुचत्) दूर करता है, उसको कामों में अच्छे प्रकृते जोड़ो॥५॥

भावार्थ:-ऐसा कोई मूर्तिमान् पदार्थ नहीं कि जो इस बिजूर्सी से अलग हो अर्थात् सब में बिजुली व्याप्त है और जो भौतिक अग्नि शिल्पविद्या से कामों में लगात्रा हुआ धन इकट्ठा करनेवाला होता है, वह मनुष्यों को अच्छे प्रकार जानना चाहिये॥५॥

अथेश्वरः कीदृशोऽस्तीत्युप्रदिश्यते॥

अब ईश्वर कैसा है, इस विषय का उपदेश अंगल मन्त्र में किया है॥

त्वं हि विश्वतोमुख विश्वतः परिभूरिसं। अप नः शोशुंचद्घम्॥६॥

त्वम्। हि। विश्वतःऽमुखः। विश्वतः। पुरिऽभूः असि। अप्रे नः। शोश्चंचत्। अघम्॥६॥

पदार्थ:-(त्वम्) जगदीश्वर: (हि) खुल् (विश्वतोर्मुख) सर्वत्र व्यापकत्वादन्तर्यामितया सर्वोपदेष्टः (विश्वतः) सर्वतः (परिभूः) सर्वोपरि विराजामाः (अपि) (अप०) इति पूर्ववत्॥६॥

अन्वयः-हे विश्वतोमुख अन्दीश्वर प्रतस्त्वं हि खलु विश्वतः परिभूरसि, तस्माद् भवान्नोऽस्माकमघमपशोशुचद्॥६॥

भावार्थः-मनुष्यैः सत्यापमभावेन प्रार्थितोऽन्तर्यामीश्वर आत्मनि सत्योपदेशेन पापादेतान् पृथक्कृत्य शुभगुणकर्मस्वभावेषु प्रवर्त्त्यति, तस्माद्भ्यं नित्यमुपासनीयः॥६॥

पदार्थ:-हे (विश्वतामुख) सबमें व्याप्त होने और अन्तर्यामीपन से सबको शिक्षा देनेवाला जगदीश्वर! जिस कारण (त्व हि) आप ही (विश्वत:) सब ओर से (पिरभू:) सबके ऊपर विराजमान (असि) हैं, इसले (न:) हि लोगों के (अघम्) दुष्ट स्वभाव संगरूप पाप को (अप, शोशुचत्) दूर कराइये॥६॥

भावार्थ:=सत्य-सत्य प्रेमभाव से प्रार्थना को प्राप्त हुआ अन्तर्यामी जगदीश्वर मनुष्यों के आत्मा में जो सत्य-सत्य उपदेश से उन मनुष्यों को पाप से अलग कर शुभ गुण, कर्म और स्वभाव में प्रवृत्त करता है, इससे यह नित्य उपासना करने योग्य है॥६॥ १०५६

ऋग्वेदभाष्यम्

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर भी वह परमेश्वर कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

द्विषों नो विश्वतोमुखार्ति नावेर्व पारय। अपं नः शोशुंचदुघम्॥७॥

द्विषं:। नु:। विश्वतु:ऽमुखु। अति। नावाऽईव। पारुय। अप। नु:। शोशूंचत्। अघम्॥७॥

पदार्थ:-(द्विष:) ये धर्मं द्विषन्ति तान् (न:) अस्मान् (विश्वतोमुख) विश्वते: सर्वतो मुखमुत्तममैश्वर्यं यस्य तत्सम्बुद्धौ (अति) उल्लङ्घने (नावेव) यथा सुदृढया नौकया समुद्रपारं गच्छति तथा (पारय) पारं प्रापय (अप, न:०) इति पूर्ववत्॥७॥

अन्वय:-हे विश्वतोमुख परमात्मँस्त्वं नो नावेव द्विषोऽतिपारय निरम्भक्तमुघं शत्रूद्भवं दु:खं भवानपशोशुचत्॥७॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। यथा न्यायाधीशो नौकायां स्थापिक्वो समृद्रपारे निर्जने जाङ्गले देशे दस्य्वादीन् प्रजा: पालयित, तथैव सम्यगुपासित ईश्वर उपासकार्वा कामक्रोधलोभमोहभयशोकादीन् शत्रून् सद्यो निवार्य्य जितेन्द्रियत्वादीन् गुणान् प्रयच्छित॥७॥

पदार्थ:-हे (विश्वतोमुख) सबसे उत्तम ऐश्वर्य से युक्त पर्णात्मन्! आप (नावेव) जैसे नाव से समुद्र के पार हों वैसे (न:) हम लोगों को (द्विष:) जो धर्म से द्वेष करनेवाले अर्थात् उससे विरुद्ध चलनेवाले उनसे (अति, पारय) पार पहुंचाइये और (न:) हम लोगों के (अघम्) शत्रुओं से उत्पन्न हुए दु:ख को (अप, शोशुचत्) दूर कीजिये॥७॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे नुर्गयधीश नाव में बैठा कर समुद्र के पार वा निर्जन जङ्गल में डाकुओं को रोक के प्रजा की पाला। करता है, वैसे ही अच्छे प्रकार उपासना को प्राप्त हुआ ईश्वर अपनी उपासना करनेवालों के कीम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, शोकरूपी शत्रुओं को शीघ्र निवृत्त कर जितेन्द्रियपन आदि गुणों को हता है।।।।

पुनः स्कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह केसा है, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

स नः सिर्स्थमिव सुवकाति पर्षा स्वस्तये। अप नः शोश्चंचदुघम्॥८॥५॥

सः। नः। सिम्धुंम्ऽइत्रा नावया। अति। पूर्ष। स्वस्तये। अप। नः। शोशुंचत् अघम्॥८॥

पदार्थः (सः) जगदीश्वरः (नः) अस्माकम् (सिन्धुमिव) यथा समुद्रं तथा (नावया) नावा। अत्र नौशब्दात् वृधियैकेषचनस्यायाजादेशः। (अति) (पर्ष) अत्र द्वयचोऽतस्तिङ इति दीर्घः। (स्वस्तये) सुखाय (अप, र्वः) इति पूर्ववत्॥८॥

अव्ययः-हे जगदीश्वर! स भवान् कृपया नोऽस्माकं स्वस्तये नावया सिन्धुमिव दुःखान्यति पर्ष, क्रोऽस्माकम्शमपशोशुचद् भृशं दूरीकुर्यात्॥८॥

मण्डल-१। अनुवाक-१५। सूक्त-९७



भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। संतारक: सुखेन मनुष्यादीन् नावा सिन्धोरिव परमेश्वर्य विज्ञानेन दु:खसागरात् तारयति स सद्य: सुखयति च॥८॥

अत्राग्नीश्वरसभाध्यक्षगुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेद्यम्॥

इति सप्तनविततमं ९७ सूक्तं पञ्चमो ५ वर्गश्च समाप्तः॥

पदार्थ:-हे जगदीश्वर! (स:) सो आप कृपा करके (न:) हम लोगों के (स्वस्तरे) सुख के लिये (नावया) नाव से (सिन्धुमिव) जैसे समुद्र को पार होते हैं, वैसे दु:खों के (अति, पर्ष) अत्यन्त पार कीजिये (न:) हम लोगों के (अधम्) अशान्ति और आलस्य को अप, शोशुचत्) निरन्तर दूर कीजिये॥८॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे पार करानेवाला भल्लाह-सुखपूर्वक मनुष्य आदि को नाव से समुद्र के पार करता है, वैसे तारनेवाला परमेश्वर विशेष ज्ञान से दुःखसागर से पार करता और वह शीघ्र सुखी करता है॥८॥

इस सूक्त में सभाध्यक्ष, अग्नि और ईश्वर के गुणों के वर्णन से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये।॥

यह सत्तानवां ९७ सूक्त और सचेवा ५ वर्ग समाप्त हुआ॥

अथास्याष्ट्रनविततमस्य त्र्यचस्य सूक्तस्याङ्गिरसः कुत्स ऋषिः। वैश्वानरो देवता। १ विराट् त्रिष्टुप्। २ त्रिष्टुप्। ३ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथाऽग्नी कीदृशावित्युपदिश्यते॥

अब अट्ठानवें सूक्त का आरम्भ है। उसके प्रथम मन्त्र में ईश्वर और भौतिक अग्नि कैसेन्ह्रे यह

विषय कहा है।।

वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम राजा हि कं भुवनानामभिश्रीः। इतो जातो विश्वमिदं वि चष्टे वैश्वानरो यतते सूर्येण॥१॥

वैश्<u>वान</u>रस्यं। सुऽमृतौ। स्याम्। राजां। हि। कृम्। भुवंनानाम्। अभिऽश्रीः। इत्। जाता। विश्वंम्। इदम्। वि। चुष्टे। वैश्वानुरः। युत्ते। सूर्येण॥ १॥

पदार्थ:-(वैश्वानरस्य) विश्वेषु नरेषु जीवेषु भवस्य (सुमत्रो) शोभना मितिर्यस्य यस्माद्वा तस्याम् (स्याम) भवेम (राजा) न्यायाधीशः सर्वाऽधिपतिरीश्वरः। प्रकारमानौ विद्युदिग्नर्वा (हि) खलु (कम्) सुखम् (भुवनानाम्) लोकानाम् (अभिश्रीः) अभिताः श्रियो यस्माद्वा (इतः) कारणात् (जातः) प्रसिद्धः (विश्वम्) सकलं जगत् (इदम्) प्रत्यक्षम् (वि) (चष्टे) दर्शयम् (विश्वम्) सर्वेषां जीवानां नेता (यतते) संयतो भवित (सूर्येण) प्राणेन वा मार्तण्डेन सह। अञ्चाहुनैरुक्तः-इतो जातः सर्विमदमभिविपश्यित। वैश्वानरः संयतते सूर्येण। राजा यः सर्वेषां भूतानामभिश्रयणीयस्तस्य वयं वैश्वानरस्य कल्याण्यां मतौ स्यामेति। तत्को वैश्वानरः? मध्यम इत्याचार्याः वर्षकर्मणा हीनं स्तौति (निरु०७.२२)॥१॥

अन्वय:-यो वैश्वानर इतो जात इदं कं विश्वं जगद्विष्ट्रियः सूर्येण सह यतते यो भुवनानामभिश्री राजास्ति तस्य वैश्वानरस्य सुमतौ हि वयं स्याम॥१॥

भावार्थ:-अत्र श्लेषालङ्कारः। हे मनुष्या! योऽभिव्याप्य सर्वं जगत्प्रकाशयित तस्यैव सुगुणै: प्रसिद्धायां तदाज्ञायां नित्यं प्रवर्त्तश्चम्। यस्त्रेश्चा सूर्य्यादिप्रकाशकोऽग्निरस्ति तस्य विद्यासिद्धौ च नैवं विना कस्यापि मनुष्यस्य पूर्णाः श्रियो भवितुं शक्यन्त्र)।१॥

पदार्थ:-जो (वैश्वन्तरः) समस्त जीवों को यथायोग्य व्यवहारों में वर्तानेवाला ईश्वर वा जाठराग्नि (इतः) कारण से (जातः) प्रसिद्धी हुए (इदम्) इस प्रत्यक्ष (कम्) सुख को (विश्वम्) वा समस्त जगत् को (विचष्टे) विशेष भाव से दिखलाता है और जो (मूर्येण) प्राण वा सूर्यलोक के साथ (यतते) यत्न करनेवाला होता है या जो (भुवनानाम्) लोकों का (अभिश्रीः) सब प्रकार से धन है तथा जिस भौतिक अग्नि से सब प्रकार को धन होता है वा (राजा) जो न्यायाधीश सबका अधिपति है तथा प्रकाशमान बिजुलीकूण अग्नि है, उस (वैश्वानरस्य) समस्त पदार्थों को देनेवाले ईश्वर का भौतिक अग्नि की (सुमतौ) श्रेष्ठ मित में अर्थात् जो कि अत्यन्त उत्तम अनुपम ईश्वर की प्रसिद्ध की हुई मित वा भौतिक अग्नि से अर्थीव प्रसिद्ध हुई मित उसमें (हि) ही (वयम्) हम लोग (स्थाम) स्थिर हों॥१॥

मण्डल-१। अनुवाक-१५। सूक्त-९८ Qoye T

भावार्थ:-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। हे मनुष्यो! जो सबसे बड़ा व्याप्त होकर सब जात को प्रकाशित करता है, उसीके अति उत्तम गुणों से प्रसिद्ध उसकी आज्ञा में नित्य प्रवृत्त होओ तथा की सूर्य्य आदि को प्रकाश करनेवाला अग्नि है, उसकी विद्या की सिद्धि में भी प्रवृत्त होओ, इसके विना किसी मनुष्य को पूर्ण धन प्राप्त नहीं हो सकता॥१॥

पुनस्तौ कीदृशावित्युपदिश्यते॥

फिर वे दोनों कैसे हैं, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है।

पृष्टो दिवि पृष्टो अग्निः पृथिव्यां पृष्टो विश्वा ओषंधीरा विवेशी वैश्वानुरः सहसा पृष्टो अग्निः स नो दिवा स रिषः पार्तु नक्तम्। २॥

पृष्टः। द्विव। पृष्टः। अग्निः। पृथिव्याम्। पृष्टः। विश्वाः। ओष्धाः। आः विवेशः। वैश्वान्रः। सर्हमा। पृष्टः। अग्निः। सः। नुः। दिवां। सः। रिषः। पातु। नर्क्तम्॥२॥

पदार्थ:-(पृष्ट:) विदुष: प्रति यः पृच्छ्यते (विवि) दिच्युणंसम्पन्ने जगित (पृष्टः) (अग्निः) विज्ञानस्वरूपम् ईश्वरो विद्युदग्निर्वा (पृथिव्याम्) अन्तिरक्षे भूमी व (पृष्टः) प्रष्टव्यः (विश्वाः) अखिलाः (ओषधीः) सोमलताद्याः (आ) सर्वतः (विवेश) प्रविष्टेश्वरिः (वैश्वानरः) सर्वस्य नरसमूहस्य नेता (सहसा) बलादिगुणैः सह वर्त्तमानाः (पृष्टः) (अग्निः) (सः) (नः) अस्मान् (दिवा) विज्ञानान्धकारप्रकाशेन सह (सः) (रिषः) इंस्कात् (षातुः) पाति वा (नक्तम्) रात्रौ॥२॥

अन्वय:-योऽग्निर्विद्वद्भिर्दिवि पृष्टो यः पृष्टीयां पृष्टी यः पृष्टो वैश्वानरोऽग्निर्विश्वा ओषधीराविवेश सहसा पृष्टः स नो दिवा रिषः स नक्तं च पातु पाति वा॥२११

भावार्थ:-अत्र श्लेषालङ्कार: मनुष्यैर्विदुषां समीपं गत्वेश्वरस्य विद्युदादेश्च गुणान् पृष्ट्वोपकारं चाश्रित्य हिंसायां च न स्थातकार्म्॥२॥

पदार्थ:-जो (अग्निः) इक्षर का भौतिक अग्नि (दिवि) दिव्यगुण सम्पन्न जगत् में (पृष्टः) विद्वानों के प्रति पूछा जाता वा जो (पृष्टिक्योम्) अन्तरिक्ष वा भूमि में (पृष्टः) पूछने योग्य है वा जो (पृष्टः) पूछने योग्य (वैश्वानरः) सब मनुष्यमात्र को सत्य व्यवहार में प्रवृत्त करानेहारा (अग्निः) ईश्वर और भौतिक अग्नि (विश्वा) समस्त (अग्वधीः) सोमलता आदि ओषधियों में (आ, विवेश) प्रविष्ट हो रहा और (सहसा) बल आदि गुणों के साथ वर्तमान (पृष्टः) पूछने योग्य है, वह (नः) (सः) हम लोगों को (दिवा) दिन में (रिषः) मारनेवाले से और (नक्तम्) रात्रि में मारनेवाले से (पातु) बचावे वा भौतिक अग्नि बचाता है॥२॥

१०६०

ऋग्वेदभाष्यम्

भावार्थ:-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि विद्वानों के समीप जाकर ईश्वर वि बिजुली आदि अग्नि के गुणों को पूछ कर ईश्वर की उपासना और अग्नि के गुणों से उपकारों का आश्रय करके हिंसा में न ठहरें॥२॥

अथेश्वरविद्वांसौ कीदृशावित्युपदिश्यते॥

अब ईश्वर और विद्वान् कैसे हों, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है।

वैश्वानर तव तत्सत्यमस्त्वस्मान् रायो मुघवानः सचन्ताम्।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः॥ ३॥ इ॥

वैश्वानर। तर्व। तत्। सत्यम्। अस्तु। अस्मान्। रार्यः। मघऽवानः। सच्चिताम्। तत्। नः। मित्रः। वर्रणः। ममहन्ताम्। अदितिः। सिन्धुः। पृथिवी। उता द्यौः॥३॥

पदार्थ:-(वैश्वानर) सर्वेषु मनुष्येषु विद्याप्रकाशक (तव) (तत्) (सत्यम्) व्रतम (अस्तु) प्राप्तं भवतु (अस्मान्) (रायः) विद्याराजिष्ठयः (मघवानः) मघं परम्पूज्यं विद्यार्थनं विद्यते येषां विदुषां राज्ञां वा ते (सचन्ताम्) समवयन्तु (तत्) (नः) अस्मान् (मित्रः) सुहत् (वरुणः) उत्तमगुणस्वभावो मनुष्यः (मामहन्ताम्) (अदितिः) विश्वेदेवाः सर्वे विद्वांसः (सिन्धुः) अन्तर्गक्षिसस्थो जलसमूहः (पृथिवी) भूमिः (उत्त) (द्यौः) विद्युत्प्रकाशः॥३॥

अन्वयः - हे वैश्वानर! यत्तव सत्यं शीलमस्ति त्रिस्मान् प्राप्तामस्तु। यन्मित्रो वरुणोऽदितिः सिन्धुः पृथिवी द्यौश्च मामहन्तां तदैश्वर्यमपि नोऽस्मान् प्राप्तमस्तु। मघवानो युन्ति एयः सम्भूतां तान् वयमुताऽपि प्राप्नुयाम॥३॥

भावार्थ:-मनुष्या ईश्वरस्य विदुषां च सकाशात् सत्यं शीलं धर्म्याणि धनानि धार्मिकान् मनुष्यान् सिक्रयाः पदार्थविद्याश्च पुरुषार्थेन प्राप्य सर्वस्याद्यात्राष्ट्रयतेरन्॥३॥

अत्रेश्वराग्निविद्वत्संबन्धिकर्म्वणिसदेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिर्बोद्धव्या॥

इत्यष्ट्राप्रविततमं ९८ सूक्तं षष्ठो ६ वर्गश्च समाप्तः॥

पदार्थ:-हे (वैश्वानर) सेच मनुष्यों में विद्या का प्रकाश करनेहारे ईश्वर वा विद्वान्! जो (तव) आपका (सत्यम्) सत्यशिल हे (तत्) वह (अस्मान्) हम लोगों को प्राप्त (अस्तु) हो, जो (मित्रः) मित्र (वरुणः) उत्तम गुणयुक्त प्रध्मविवाला मनुष्य (अदितिः) समस्त विद्वान् जन (सिन्धुः) अन्तरिक्ष में उहरनेवाला जल (पृथिवी) भूमि और (द्यौः) बिजुली का प्रकाश (मामहन्ताम्) उन्नति देवे (तत्) वह ऐश्वर्य्य (नः) हुप लोगों को प्राप्त हो, वा (मघवानः) जिन के परम सत्कार करने योग्य विद्या धन हैं, वे विद्वान् व ग्रांचा लोग जिम (रायः) विद्या और राज्य श्री को (सचन्ताम्) निःसन्देह युक्त करें, उनको हम लोग (उत्ते) और भी ग्राप्त हों॥३॥

भावार्थ:-ईश्वर और विद्वानों की उत्तेजना से सत्यशील धर्मयुक्त धन धार्मिक मनुष्य और क्रिया क्रीशलयुक्त पदार्थविद्याओं को पुरुषार्थ से पाकर समस्त सुख के लिये अच्छे प्रकार यत्न करें॥३॥

मण्डल-१। अनुवाक-१५। सूक्त-९८

इस सूक्त में अग्नि और विद्वानों से सम्बन्ध रखनेवाले कर्म के वर्णन से इस सूक्त के पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये॥

यह अट्ठानवां ९८ सूक्त और ६ छठा वर्ग पूरा हुआ॥

अथास्यैकर्चस्यैकोनशततमस्य सूक्तस्य मरीचिपुत्रः कश्यप ऋषिः। जातवेदा अग्निर्देवता। निचृत्

त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथेश्वरः कीदृश इत्युपदिश्यते॥

अब एक ऋचावाले निन्नानवें सूक्त का आरम्भ है। इसमें ईश्वर कैसा है, यह वर्णन किक्रीहै।।

जातर्वेदसे सुनवाम् सोमेमरातीयतो नि दहाति वेदैः।

स नः पर्षेदितं दुर्गाणि विश्वां नावेव सिन्धुं दुरितात्युग्निः॥१॥७॥

जातऽवेदसे। सुनवाम्। सोर्मम्। अ्रातिऽयतः। नि। दहाति। वेदः। सः। नः। पूर्वता अति। दुःगानि। विश्वा। नावाऽईव। सिर्स्थुम्। दुःऽङ्कता। अति। अग्निः॥ १॥

पदार्थ:-(जातवेदसे) यो जातं सर्वं वेति विन्दित जातेषु विद्यम्ति।ऽस्ति त्र्ण्मे (सुनवाम) पूजयाम (सोमम्) सकलेश्वर्य्यमुत्पन्नं संसारस्थं पदार्थसमूहम् (अरातीयतः) शत्रोरिवाचरणशीलस्य (नि) निश्चयार्थे (दहाति) दहित (वेदः) धनम् (सः) (नः) अस्मान् (पर्षत्) संसारयित (अति) (दुर्गाणि) दुःखेन गन्तुं योग्यानि स्थानानि (विश्वा) सर्वाणि (नावेव) यथा नौका व्रथा (सिस्पुम्) समुद्रम् (दुरिता) दुःखेन नेतुं योग्यानि (अति) (अग्निः) विज्ञानस्वरूपो जगदीश्वरः। इमं पन्नं व्यस्काऽऽचार्य्य एवं समाचष्टे। जातवेदस इति जातमिदं सर्वं सचराचरं स्थित्युत्पत्तिप्रलयन्यायेनास्थाय सुन्वाम सोममिति प्रसवेनाभिषवाय सोमं राजानममृतमरातीयतो यज्ञार्थमिति स्मो निश्चये निद्दहाति दहाति पस्मीकरोति सोमो ददित्यर्थः। स नः पर्वदित दुर्गाणि दुर्गमनानि स्थानानि नावेव सिस्थुं यथा किश्चत्कर्णधारो नावेव सिस्थोः स्यन्दनान्नदीं जलदुर्गां महाकूलां तारयित दुरितात्यग्निरिति दूरितानि तारयित। (निरु०१४.३३)॥१॥

अन्वय:-यस्मै जातवेदसे जगदीश्वराय वर्ष सामं सुनवाम यश्चारातीयतो वेदो निदहाति, सोऽग्निर्नावेव सिन्धुं नोऽतिदुर्गाण्यतिदुरिता विश्वा पर्षत् सोऽत्रान्वेषणीय:॥१॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार । स्था केर्णधाराः कठिनमहासमुद्रेषु महानौकाभिर्मनुष्यादीन् सुखेन पारं नयन्ति तथैव सुपासितो जगद्गीकरो दुःखरूपे महासमुद्रे स्थितान् मनुष्यान् विज्ञानादिदानैस्तत्पारं नयित, परमेश्वरोपासक एव मनुष्यः अञ्जपराभूवं कृत्वा परमानन्दं प्राप्तुं शक्नोति, किं सामर्थ्यमन्यस्य॥१॥

अत्रेश्वरगुणवर्णनादेतद्र्थेस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेदितव्यम्॥

इत्यकानशततमं ९९ सूक्तं सप्तमो ७ वर्गश्च समाप्तः॥

पदार्थः जिस (जातवदसे) उत्पन्न हुए चराचर जगत् को जानने और प्राप्त होनेवाले वा उत्पन्न हुए सर्व पूर्वार्थों में विद्यमान जगदीश्वर के लिये हम लोग (सोमम्) समस्त ऐश्वर्य्ययुक्त सांसारिक पदार्थों का (सुन्नाम्) निचोड़ करते हैं अर्थात् यथायोग्य सबको वर्त्तते हैं और जो (अरातीयतः) अधर्मियों के समान वर्त्तार रखनेवाले दुष्ट जन के (वेदः) धन को (नि, दहाति) निरन्तर नष्ट करता है (सः) वह अधिनः विज्ञानस्वरूप जगदीश्वर जैसे मल्लाह (नावेव) नौका से (सिन्धुम्) नदी वा समुद्र के पार

मण्डल-१। अनुवाक-१५। सूक्त-९९



पहुंचाता है, वैसे (न:) हम लोगों को (अति) अत्यन्त (दुर्गाणि) दुर्गति और (अतिदुरिता) अतीच दु:ख देनेवाले (विश्वा) समस्त पापाचरणों के (पर्षत्) पार करता है, वही इस जगत् में ख्रोजने के ख्रोप्य है॥१॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे मल्लाह कठिन बड़े समुद्रों में अत्यन्त विस्तारवाली नावों से मनुष्यादिकों को सुख से पार पहुंचाते हैं, वैसे ही अच्छे प्रकार उपाप्तर्था किया हुआ जगदीश्वर दु:खीरूपी बड़े भारी समुद्र में स्थित मनुष्यों को विज्ञानादि दानों से उसके पार पहुँचाता है। इसलिये उसकी उपासना करनेहारा ही मनुष्य शत्रुओं को हरा के उत्तम वीरता के अनिन्द्र को प्राप्त हो सकता, और का क्या सामर्थ्य है॥१॥

इस सूक्त में ईश्वर के गुणों के वर्णन से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ संगति है, यह जानना चाहिये॥

यह निन्नानवाँ ९९ सूक्त और सातकाँ ७ वर्ग समाप्त हुआ॥

अथाऽस्यैकोनविंशर्चस्य शततमस्य सूक्तस्य वृषागिरो महाराजस्य पुत्रभूता वार्षागिरा ऋजाश्वाम्बरीषसहदेवभयमानसुराधस ऋषयः। इन्द्रो देवता। १,५ पङ्क्तिः। २,१३,१७ स्वराट् पङ्क्तिः। ६,१०,१६ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः। ३,४,११,१८ विराट् त्रिष्टुप्

९, १२,१४,१५,१९ निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथायं सूर्यलोकः कीदृश इत्युपदिश्यते॥

अब उन्नीस ऋचावाले सौवें सूक्त का आरम्भ है। उसके प्रथम मन्त्र में सूर्य्यलोक कैसा है, यह विषय कहा है॥

स यो वृषा वृष्णयेभिः समोका महो दिवः पृथिव्याश्चे सम्राट्य सतीनसत्वा हव्यो भरेषु मुरुत्वान्नो भवत्विन्द्रे ऊती॥ १॥

सः। यः। वृषां। वृष्ण्येभिः। सम्ऽओकाः। मृहः। द्विवः। पृथिव्याः। स्य सम्प्रिगट्। सृतीनऽसंत्वा। हव्यः। भरेषु। मुरुत्वान्। नः। भुवतु। इन्द्रः। कृती॥ १॥

पदार्थ:-(स:) (य:) (वृषा) वृष्टिहेतुः (वृष्णयेभिः) वृष्ये भवैः किरणैः। वाच्छन्दिस सर्वे विधयो भवन्तीति प्रकृतिभावाभावेऽल्लोपः। (समोकाः) स्म्यूर्णिकांसि निवासस्थानानि यस्मिन् सः (महः) (दिवः) प्रकाशस्य (पृथिव्याः) भूमेर्मध्ये (च) सर्वमूर्च्लोकद्रव्यसमुच्चये (सम्राट्) यः सम्यग्राजते सः (सतीनसत्वा) यः सतीनं जलं सादयित सः। सतीनिमित्युद्धन्ननामसु पठितम्। (निघं०१.१२) (हव्यः) होतुमादातुमर्हः (भरेषु) पालनपोषणिनिमत्तेषु पदार्थेषु (मृज्वान्) प्रशस्ता मरुतो विद्यन्तेऽस्य सः (नः) अस्माकम् (भवतु) (इन्द्रः) सूर्यो लोकः (ऊती) इत्तेये रक्षणाद्याय। अत्र सुपां सुलुगिति चतुर्थ्या एकवचनस्य पूर्वसवर्णादेशः॥१॥

अन्वयः-हे मनुष्या! यूयं यो वृषा समोकाः सतीनसत्वा हव्यो मरुत्वान् महो दिवः पृथिव्याश्च लोकानां मध्ये सम्राडिन्द्रोऽस्ति, स यथा वृष्ण्येभिभीरमु न ऊत्यूतये भवतु तथा प्रयतध्वम्॥१॥

भावार्थ:-अत्र वाच्किलुप्तोपमालङ्क्रोः। मनुष्यैर्यः परिमाणेन महान् वायुनिमित्तेन प्रसिद्धः प्रकाशस्वरूपः सूर्यलोको वर्नते, तस्पादनेक उपकारा विद्यया ग्रहीतव्याः॥१॥

पदार्थ: -हे मनुष्ये (तुम) (य:) जो (वृषा) वर्षा का हेतु (समोका:) जिसमें समीचीन निवास के स्थान हैं (सतीनसत्वा) जो जल को इकट्ठा करता (हव्य:) और ग्रहण करने योग्य (मरुत्वान्) जिसके प्रशंसित पवन हैं जो (मह:) अत्यन्त (दिव:) प्रकाश तथा (पृथिव्या:) भूमि लोक (च) और समस्त मूर्तिमान् लोकों वा पदार्थों के बीच (सम्राट्) अच्छा प्रकाशमान (इन्द्र:) सूर्य्यलोक है (स:) वह जैसे (वृष्णयेश्वि:) उत्तमता में प्रकट होनेवाली किरणों से (भरेषु) पालन और पृष्टि करानेवाले पदार्थों में (न:) हमारे (ऊती) रक्षा आदि व्यवहारों के लिये (भवतु) होता है, वैसे उत्तम-उत्तम यत्न करो॥१॥

मण्डल-१। अनुवाक-१५। सूक्त-१००



भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि जो परिणान से बड़ा, वायुरूप कारण से प्रकट और प्रकाशस्वरूप सूर्य्य लोक है, उससे विद्यापूर्वक अनेक उपकृत लेवे। ११)

अथेश्वरविद्वांसौ कीदृक्कर्माणावित्युपदिश्यते॥

अब ईश्वर और विद्वान् कैसे कर्मवाले हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कृह्य है।।

यस्यानाप्तः सूर्यस्येव यामो भरेभरे वृत्रहा शुष्मो अस्ति।

वृषन्तमः सर्खिभिः स्वेभिरेवैर्मुरुत्वान्नो भवत्वन्द्रं कृती॥२॥

यस्यं। अनोप्तः। सूर्यस्यऽइव। यामः। भरेऽभरे। वृत्रुऽहा। शुर्मः। अस्ति। वृषन्ऽतमः। सर्खिऽभिः। स्वेभिः। एवैः। मुरुत्वोन्। नः। भुवतु। इन्द्रः। ऊती॥२॥

पदार्थ:-(यस्य) परमेश्वरस्याप्तस्य विदुषः सभाध्यक्षस्य वा (अनाप्तः) मूर्खेः शत्रुभिरप्राप्तः (सूर्यस्येव) यथा प्रत्यक्षस्य मार्तण्डस्य लोकस्य तथा (यामः) मूर्यादा (भरेभरे) धर्तव्ये धर्तव्ये पदार्थे युद्धे युद्धे वा (वृत्रहा) तत्तत्पापफलदानेन वृत्रान् धर्मावरकान् हिन्द्रिक् (शुष्पः) प्रशस्तानि शुष्पाणि बलानि विद्यन्तेऽस्मिन् (अस्ति) वर्तते (वृषन्तमः) अतिशयेन सुख्वर्षकः (सिखिभः) धर्मानुकूलस्वाज्ञापालकैर्मित्रं (स्वेभः) स्वकीयभक्तैः (एवैः) प्राप्तैः प्रशस्तज्ञाने (मक्त्वान्) यस्य सृष्टौ सेनायां वा प्रशस्ता वायवो मनुष्या वा विद्यन्ते सः (नः) (भवतु) (इन्द्रः) प्रमिश्वर्य्वान् (ऊती) रक्षणादिव्यवहारसिद्धये॥२॥

अन्वयः-यस्य भरेभरे सूर्यस्येव वृत्रहा शुष्मो यामाँऽनाप्तोऽस्ति स वृषन्तमो मरुत्वानिन्द्रः स्वेभिरेवैः सिखिभिरुपसेवितो नः सततमूत्यूतये भवतु॥२॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। भाष्ट्यैयदि सवितृलोकस्याप्तविदुषश्च गुणान्तो दुर्विज्ञेयोऽस्ति, तर्हि परमेश्वरस्य तु का कथा! निह खल्वेत्योसश्चयेण विना कस्यचित्पूर्णं रक्षणं संभवित, तस्मादेताभ्यां सह सदा मित्रता रक्ष्येति वेद्यम्॥२०००

पदार्थ:-(यस्य) निस् परमेश्वर वा विद्वान् सभाध्यक्ष के (भरेभरे) धारण करने योग्य पदार्थ-पदार्थ वा युद्ध-युद्ध में (भूयस्थेद्वा) प्रत्यक्ष सूर्यलोक के समान (वृत्रहा) पापियों के यथायोग्य पाप फल को देने से धर्म को छिपानेवालों का विनाश करता और (शुष्म:) जिस में प्रशंसित बल है, वह (याम:) मर्यादा का होना (अनाप्त:) मूर्ख और शत्रुओं ने नहीं पाया (अस्ति) है (स:) वह (वृषन्तम:) अत्यन्त सुख बढ़ानेवाला तथा (मरुत्वान्) प्रशंसित सेना जनयुक्त वा जिसकी सृष्टि में प्रशंसित पवन है, वह (इन्द्र:) प्रमेश्वर्यवान् ईश्वर वा सभाध्यक्ष सञ्जन (स्वेभि:) अपने सेवकों के (एवै:) पाये हुए प्रशंसित ज्ञानों और (सिखिभि:) धर्म के अनुकूल आज्ञापालनेहारे मित्रों से उपासना और प्रशंसा को प्राप्त हुआ (नृ:) हम लोगों के (ऊती) रक्षा आदि व्यवहारों के सिद्ध करने के लिये (भवतु) हो॥२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में श्लेष और उपमालङ्कार हैं। मनुष्यों को यह जानना चाहिये कि यदि सूर्यलोक तथा आप्त विद्वान् के गुण और स्वभावों का पार दु:ख से जानने योग्य है तो परमेश्वर का तो क्या ही कहना है! इन दोनों के आश्रय के विना किसी की पूर्ण रक्षा नहीं होती, इससे इनके साथ सहा मित्रता रखें॥२॥

पुनस्तौ कीदृशावित्युपदिश्यते॥

फिर वे दोनों कैसे हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

दिवो न यस्य रेतंसो दुर्घानाः पन्थासो यन्ति शवसापरीताः।

तुरद्द्वेषाः सासुहिः पौंस्येभिर्मुरुत्वान्नो भवत्वन्द्रं ऊती॥३॥

द्विः। न। यस्य। रेतसः। दुर्घानाः। पन्थासः। यन्ति। शर्वसा अपरिऽहताः तुरत्ऽद्वेषाः। सुसुहिः। पौंस्येभिः। मुरुत्वान्। नुः। भुवतु। इन्द्रेः। ऊती॥३॥

पदार्थ:-(दिव:) प्रकाशकर्मणः सूर्य्यलोकुस्य (न) इव (यस्य) जगदीश्वरस्याऽध्यापकस्यानूचानविदुषो वा (रेतसः) वीर्यस्य (दुघानाः) प्रपूरकाः। अत्र वर्णव्यत्ययेन हस्य घः। (पन्थासः) मार्गाः (यन्ति) प्राप्नुवन्ति गच्छन्ति वा (श्रावसा) बलेन (अपरीताः) अवर्जिताः (तरद्देषाः) तरन्ति द्वेषान् येषु ते (सासिहः) अतिश्यन् सहन्त्रश्रीलः। सहिवहिचलिपितिभ्यो यङन्तेभ्यः किकिनौ वक्तव्यौ। (अष्टा०वा०३.२.१७१। इति यङ्नेत्रात्सहभ्रातोः किः प्रत्ययः। (पौस्येभिः) बलैः सह वर्तमानाः। पौस्यानीति बलनामसु पठितम्। (विध्०२.९) (मरुत्वान्नो०) इति पूर्ववत्॥३॥

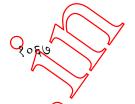
अन्वय:-यस्य दिवो नेव रेतसः शवस्य दुधान्नास्तरद्द्वेषाः पन्थासो यन्ति पौस्येभिः सासिहर्मरुत्वानस्ति स इन्द्रो न ऊती भवत्॥३॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार: भ्राथा सूर्य्यस्य प्रकाशेन सर्वे मार्गा सुदृश्या गमनीया अदृश्यदस्युचोरकण्टका भवन्ति तथैव बेदहारा परमेश्वरस्य विदुषो वा मार्गा: सुप्रकाशिता भवन्ति, न किल तेषु गमनेन विना कश्चिद्वीप मनुष्य: द्वेष्नोदिदोषेभ्य: पृथग्भवितुं शक्नोति, तस्मात् सर्वेरेतन्मार्गैर्नित्यं गन्तव्यम्॥३॥

पदार्थ:-(यस्य) जिस् ड्रीयर वा सभाध्यक्ष वा उपदेश करनेवाले विद्वान् के (दिव:) सूर्य्यलोक के (न) समान (रेतसूर) पराक्रम की (शवसा) प्रबलता से (अपरीता:) न छोड़े हुए (दुघाना:) व्यवहारों को पूर्ण करनेवाला (तरदृदेषा:) जिनमें विरोधों के पार हों वे (पन्थास:) मार्ग (यन्ति) प्राप्त होते और जाते हैं वार्णो (पौस्थिभ:) बलों के साथ वर्त्तमान (सासिह:) अत्यन्त सहन करनेवाला (मरुत्वान्)

<u>४६. हिन्दी भा</u>वार्थ में श्लेष भी लिखा है। सं०

मण्डल-१। अनुवाक-१५। सूक्त-१००



जिसकी सृष्टि में प्रशंसित प्रजा है, वह (इन्द्र:) परमैश्वर्यवान् परमेश्वर वा सभाध्यक्ष (न:) हम जामों के (ऊती) रक्षा आदि व्यवहारों के लिये (भवतु) हो॥३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में श्लेष और उपमालङ्कार हैं। जैसे सूर्य्य के प्रकाश से समस्ते मार्ग अच्छे देखने और गमन करने योग्य वा डाकू, चोर और कांटों से यथायोग्य अप्रतीत होते हैं, वैसे वेदद्वारा परमेश्वर वा विद्वान् के मार्ग अच्छे प्रकाशित होते हैं। निश्चय है कि उनमें चले क्रिया कोई मनुष्य हैं। अधि दोषों से अलग नहीं हो सकता, इससे सबको चाहिये कि इन मार्गों से नित्य चलें।। ३।।

पुनस्तौ कीदृशावित्युपदिश्यते॥

फिर वे कैसे हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।

सो अङ्गिरोभिरङ्गिरस्तमो भूद् वृषा वृषेभिः सर्खिभिः सखा सन्। ऋग्मिभिर्ऋग्मी गातुभिज्येष्ठी मुरुत्वान्नो भवत्विन्द्री कृती। ४॥

सः। अङ्गिरःऽभिः। अङ्गिरःऽतमः। भूत्। वृषो। वृषेऽभिः। सर्खिऽभिः। सर्खा। सन्। ऋग्मिऽभिः। ऋग्मी। गातुऽभिः। ज्येष्ठः। मुरुत्वीन्। नुः। भुवतु। इन्द्रः। ऊती॥४॥

पदार्थ:-(स:) (अङ्गिरोभि:) अङ्गेषु स्मभूतैः प्राणैः सह (अङ्गिरस्तमः) अतिशयेन प्राणवद्वर्त्तमानः (भूत्) भवति। अत्राडभावः। (कृषा) सुखसेन्यकः (वृषभिः) सुखवृष्टिनिमित्तैः (सिखभिः) सुहद्धः (सखा) सुहत् (सन्) (ऋग्मिभिः) ऋच ऋग्वेद्रभन्त्राः सन्ति येषान्त ऋग्मयस्तैः। अत्र मत्वर्थीयो बाहुलकाद् ग्मिनिः प्रत्ययः। (ऋग्मी) ऋग्वदी (गातुभिः) विद्यासुशिक्षिताभिर्वाणीभिः (ज्येष्ठः) अतिशयेन प्रशंसनीयः। अत्र ज्य च। (अष्टा०५.३.६१) इति सूत्रेण प्रशस्यस्य स्थाने ज्यादेशः। (मरुत्वान्नो०) इति पूर्ववत्॥४॥

अन्वय:-योऽङ्गिरोभिरङ्गिर्स्तमो वृषभिवृष्टी सिखिभिः सखा ऋग्मिभिर्ऋग्मी गातुभिर्ज्येष्टः सन् भूदस्ति, स मरुत्वानिन्द्रो न ऊती भवतु॥ ४॥

भावार्थ:-हे म्राप्ट्रिया प्यायवदुपकारी सर्वोत्कृष्टः परमेश्वरो वा सभाद्यध्यक्षो विद्वानस्ति, तं नित्यं भजध्वम्॥४॥

पदार्थ: -जी (अङ्गिसीभः) अङ्गों में रसरूप हुए प्राणों के साथ (अङ्गिरस्तमः) अत्यन्त प्राण के समान वा (वृषिभः) सुख की वर्षा के कारणों से (वृषा) सुख सींचनेवाला वा (सिखभिः) मित्रों के साथ (सखा) मित्र वा (ऋग्मिभिः) ऋग्वेद के पढ़े हुओं के साथ (ऋग्मी) ऋग्वेद वा (गातुभिः) विद्या से अच्छी शिक्षा को प्राप्त हुई वाणियों से (ज्येष्ठः) प्रशंसा करने योग्य (सन्) हुआ (भृत्) है (सः) वह

१०६८ ऋग

(मरुत्वान्) अपनी सृष्टि में प्रजा को उत्पन्न करनेवाला वा अपनी सेना में प्रशंसित वीर पुरुष रखनेवाली (इन्द्र:) ईश्वर और सभापति (न:) हम लोगों के (ऊती) रक्षा आदि व्यवहार के लिये (भवतु) हो॥४॥

भावार्थ:-हे मनुष्यो! जो यथावत् उपकार करनेवाला सबसे अति उत्तम परमेश्वर व सभी आदि का अध्यक्ष विद्वान् है, उसको नित्य सेवन करो॥४॥

पुनः सेनाद्यध्यक्षः कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह सेना आदि का अधिपति कैसा है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

स सूनुभिर्न रुद्रेभिर्ऋभ्वां नृषाह्ये सासहाँ अमित्रान्।

सनीळेभिः श्रवस्यानि तूर्वन् मुरुत्वान्नो भवत्वन्द्रं ऊती॥५॥ 🕼

सः। सूनुऽभिः। न। कुद्रेभिः। ऋभ्वा। नृऽसही। ससहान्। अभित्रार्स। संजीहिभः। श्रवस्यानि। तूर्वन्। मुरुत्वान्। नुः। भुवतु। इन्द्रंः। कुती॥५॥

पदार्थ:-(स:) यः सत्यगुणकर्मस्वभावः (सूनुभिः) पुष्टैः पुत्रवेद्धुत्वैर्वा (न) इव (रुद्रेभिः) दुष्टान् रोदयद्भिः प्राणैरिव वीरैः (ऋभ्वा) महता मेधाविना मन्त्रिणा अत्र सुर्णं सुलुगित्याकारादेशः। (नृषाह्ये) शूरवीरैः सोढुमर्हे संग्रामे (सासह्वान्) तिरस्कर्ता। अत्र सह अभिभवे इत्यस्मात् क्वसुः। तुजादीनां दीर्घोऽभ्यासस्येति दीर्घः। (अमित्रान्) शत्रृन् (सनीविभः) समीपवर्त्तिभिः (श्रवस्यानि) श्रवःसु धनेषु साधूनि वीरसैन्यानि (तूर्वन्) हिंसन् (मरुत्वान्नो०) इति पूर्ववत्रापः।

अन्वयः-मरुत्वान् सासह्णानिन्दः सूनुभिर्नि सनीहेभी रेद्रभिर्ऋभ्वा च सह वर्त्तमानानि श्रवस्यानि सम्पाद्य नृषाह्येऽमित्रान् तूर्वन् प्रयतते, स न ऊत्यूतये भवत्नाप्ता

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। ये सेनीविधिपति: पुत्रवत्सत्कृतै: शस्त्रास्त्रयुद्धविद्यया सुशिक्षितै: सह वर्त्तमानां बलवतीं सेनां संभाव्यानिकिष्ठिभेऽपि संग्रामे दुष्टान् शत्रून् पराजयमानो धार्मिकान् मनुष्यान् पालयन् चक्रवर्त्तिराज्यं कर्त्तुं शक्नैति, स एव सर्वे: सेनाप्रजापुरुषै: सदा सत्कर्त्तव्य:॥५॥

पदार्थ:-(मरुत्वान्) जिसकी सेना में प्रशंसित वीर पुरुष हैं वा (सासह्वानः) जो शत्रुओं का तिरस्कार करता है, वह (इन्हः) पर्भ ऐश्वर्य्यवान् सभापित (सूनुभिः) पुत्र वा पुत्रों के तुल्य सेवकों के (न) समान (सनीडेभिः) अपने समीप रहनेवाले (रुद्रेभिः) जो कि शत्रुओं को रुलाते हैं, उनके और (ऋभ्वा) बड़े बुद्धिमान् मन्त्री के साथ वर्त्तमान (श्रवस्यानि) धनादि पदार्थों में उत्तम वीर जनों को इकट्ठा कर (नृषाह्ये) जो कि शूरवीरों के सहने योग्य है, उस संग्राम में (अमित्रान्) शत्रुजनों को (तुर्वन्) मारता हुआ उत्तम धतन करता है। (सः) वह (नः) हम लोगों के (ऊती) रक्षा आदि व्यवहार के लिये (भवतु) हो॥५॥८

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो सेना आदि का अधिपति पुत्र के तुल्य सत्कार किये और शस्त्र अस्त्रों से सिद्ध होनेवाली युद्धविद्या से शिक्षा दिये हुए सेवकों के साथ वर्त्तमान बलवान् सेना

मण्डल-१। अनुवाक-१५। सूक्त-१०० Qore To

को अच्छे प्रकार प्रकट कर अति कठिन संग्राम में भी दुष्ट शत्रुओं को हरा देता और धार्मिक मनुष्यों की पालना करता हुआ चक्रवर्त्ति राज्य कर सकता है, वहीं सब सेना तथा प्रजा के जनों को सदा सत्कार करने योग्य है॥५॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है। 🖊

स मन्युमीः समर्दनस्य कुर्ताऽस्माकेभिर्नृभिः सूर्यं सनत्। अस्मिन्नहुन्त्सत्पतिः पुरुहूतो मुरुत्वान्नो भवृत्विन्द्रं ऊती॥६॥

सः। मुन्युऽमीः। सुऽमर्दनस्य। कुर्ता। अस्मार्केभिः। नृऽभिः। सूर्यम्। सृन्तु। अहिन्। सत्ऽपितः। पुरुऽहूतः। मुरुत्वोन्। नुः। भुवतु। इन्द्रेः। कुर्तो॥६॥

पदार्थ:-(स:) (मन्युमी:) यो मन्युं मीनाति हिनस्ति सः (समुद्रनस्य) मदनं हर्षणं यस्मिन्नस्ति तेन सहितस्य (कर्ता) निष्पादकः (अस्माकेभिः) अस्म्हिते अर्धे स्मिन्नस्ति तेन सहितस्य (कर्ता) निष्पादकः (अस्माकेभिः) अस्म्हितः (मृर्य्यम्) सिवतृप्रकाशिमव युद्धन्यायम् (सन्तः) संभिन्ने लेट् प्रयोगोऽयम्। (अस्मिन्) प्रत्यक्षे (अहन्) अहिन (सत्पितः) सतां पुरुषाणां वा प्रात्विकः (पुरुष्ट्रतः) पुरुभिर्बहुभिर्विद्विद्धः शूरवीरैर्वाहूतः स्पिद्धितो वा (मरुत्वान्नो०) इति पूर्ववत्॥६॥

अन्वयः-यो मन्युमीः समदनस्य कर्त्ता स्रत्यितिः पुरुहुन्तो मरुत्वानिन्द्रः परमैश्वर्यवान् सेनापितरस्माकेभि- र्नृभिः सह वर्त्तमानः सन् सूर्यमिव युद्धन्यायं सनत्संभजेसो सम्प्रहर्ते नः सततमूती भवतु॥६॥

भावार्थ: -अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः यथा सूर्यं प्राप्य समस्ताः पदार्था विभक्ताः प्रकाशिताः सन्त आनन्दकारका भवन्ति, तथे वार्मिकात् न्यायाधीशान् प्राप्य पुत्रपौत्रकलत्रभृत्यादिभिः सह वर्त्तमाना विद्याधर्मन्यायेषु प्रसिद्धाऽऽचरणा जना भूत्वो कल्याणकारका भवन्ति, यः सर्वदा क्रोधजित्सर्वथा नित्यं प्रसन्नताकारको भवति, स एव सेन्यापत्याधिकारेऽभिषेक्तुं योग्यो भवति। यो भूतकाले शेषज्ञो वर्त्तमानकाले क्षिप्रकारी क्रियारिशीलो स्ति, स एव सर्वदा विजयी भवति, नेतरः॥६॥

पदार्थ:-जो (मन्युमी:)क्रीध का मारने वा (समदनस्य) जिसमें आनन्द है, उसका (कर्ता) करने और (सत्पित:) सिजन तथा उत्तम कामों को पालनेहारा (पुरुहूत:) वा बहुत विद्वान् और शूरवीरों ने जिसकी स्तुलि और प्रशंसा की है (मरुत्वान्) जिसकी सेना में अच्छे-अच्छे वीरजन हैं (इन्द्र:) वह परमैश्वर्यक्र्यन् सेनापित् (अस्माकेभि:) हमारे शरीर, आत्मा और बल के तुल्य बलों से युक्त वीर (नृभि:) मनुष्य्रों के साथ वर्तमान होता हुआ (सूर्य्यम्) सूर्य के प्रकाशतुल्य युद्ध न्याय को (सनत्) अच्छे प्रकार

0009

सेवन करे (स:) वह (अस्मिन्) आज के दिन (न:) हम लोगों के (ऊती) रक्षा आदि व्यवहार के लिये निरन्तर (भवतु) हो॥६॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य को प्राप्त होकर सब पद्धि अलग अलग प्रकाशित हुए आनन्द के करनेवाले होते हैं, वैसे ही धार्मिक न्यायाधीशों को प्राप्त होकर प्रत्र, पौत्र, स्त्रीजन तथा सेवकों के साथ वर्त्तमान विद्या, धर्म और न्याय में प्रसिद्ध आचरप्रवाले होकर मनुष्य अपने और दूसरों के कल्याण करनेवाले होते हैं। जो सब कभी क्रोध को अपने क्या में करने और सब प्रकार से नित्य प्रसन्नता आनन्द करनेवाला होता है, वही सेनाधीश होने में व्यव कस्में योग्य होता है। जो बीते हुए व्यवहार के बचे हुए को जाने, चलते हुए व्यवहार में शीघ्र कर्मव्य काम के विचार में तत्पर है, वही सर्वदा विजय को प्राप्त होता है, दूसरा नहीं॥६॥

पुनः स कीदृश इत्यपुदिश्यते॥

फिर वह कैसा है, इस विषय को अगले मुन्न में कहा है।

तमूतयो रणयुञ्कूरसातौ तं क्षेमस्य क्षितयः कृण्वत् ऋस्। स विश्वस्य कुरुणस्येश एको मुरुत्वान्नो भवृत्विन्त्र कुति। ७॥

तम्। ऊतर्यः। रुणयुन्। शूर्रऽसातौ। तम्। क्षेमेस्य। क्षित्रयः। कृण्वतः। त्राम्। सः। विश्वस्य। कुरुणस्य। ईशे। एकः। मुरुत्वान्। नुः। भुवतु। इन्द्रः। ऊती॥७॥

पदार्थ:-(तम्) सेनाद्यधिपतिम् (ऊत्रयः) रक्षणादीनि (रणयन्) शब्दयन्तु स्तुवन्तु। अत्र लङ्घडभाव:। (शूरसातौ) शूराणां सातिर्वसम् संग्रामे तस्मिन् (तम्) (क्षेमस्य) रक्षणस्य (क्षितयः) मनुष्या:। क्षितय इति मनुष्यनामसु पृतितम्। (निघ्नं०२.३) (कृण्वत) कुर्वन्तु। अत्र लङ्घडभाव:। (त्राम्) रक्षकम् (सः) (विश्वस्य) अखिलम् (कर्षणस्य) कृपामयं कर्म (ईशे) ईष्टे। अत्र लोपस्त आत्मनेपदेष्विति त लोप:। (एकः) असहायः (मुक्तवान्नो०) इति पूर्ववत्॥७॥

अन्वयः-यमूतयो भजन्तु ते श्रारसातौ क्षित्रास्त्रां कृण्वन्त कुर्वन्तु। यः क्षेमस्य कर्ता तं त्रां कुर्वन्तो श्रारसातौ रणयन्। य एको विश्वस्य कर्णमस्यूशे स मुकुरवानिन्द्रः सेनादिरक्षको न ऊती भवतु॥७॥

भावार्थ:-मनुष्यैर्चौ पहोषोऽप्यनेकान् योद्धृन् विजयते संग्रामेऽन्यत्र वा प्रोत्साहनीय:। यथा प्रोत्साहेन वीरेषु श्रोर्स्यं जायते, न तथा खल्वन्येन प्रकारेण भवितुं शक्यम्॥७॥

पदार्थ: जिसको (ऊतयः) रक्षा आदि व्यवहार सेवन करें (तम्) उस सेना आदि के अधिपति को (शूरमाता) जिसमें शूरों का सेवन होता है, उस संग्राम में (क्षितयः) मनुष्य (त्राम्) अपनी रक्षा करनेवाली (कृण्वत) करें, जो (क्षेमस्य) अत्यन्त कुशलता का करनेवाला है (तम्) उसको अपनी पालना करनेहीस किये हुए उक्त संग्राम में (रणयन्) रटें अर्थात् बार-बार उसी की विनती करें जो (एकः) अकिला प्रभाध्यक्ष (विश्वस्य) समस्त (करुणस्य) करुणारूपी काम को करने में (ईशे) समर्थ है (सः)

मण्डल-१। अनुवाक-१५। सूक्त-१०० Q o les

वह (मरुत्वान्) अपनी सेना में प्रशंसित वीरों को रखने वा (इन्द्र:) सेना आदि की रक्षा करनेहारा (नः) हम लोगों के (ऊती) रक्षा आदि व्यवहार के लिये (भवतु) हो॥७॥

भावार्थ:-मनुष्यों को चाहिये कि जो अकेला भी अनेक योद्धाओं को जीतता है, उसका उत्साह संग्राम और व्यवहारों में अच्छे प्रकार बढ़ावें। अच्छे उत्साह से वीरों में जैसी शूरता होती है, वैसी निश्चय है कि और प्रकार से नहीं होती॥७॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह किस प्रकार का हो, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है।

तमेप्सन्त शर्वस उत्सवेषु नरो नर्मवेसे तं धनीय।

सो अन्धे चित्तमसि ज्योतिर्विदन्मरुत्वान्नो भवत्वन्द्र कृती। ४॥

तम्। अप्सन्तः। शर्वसः। उत्ऽस्रवेषुं। नर्रः। नर्रम्। अवसे। तभा धनायः। सः। अन्धे। चित्। तमिसः। ज्योतिः। विद्वत्। मुरुत्वान्। नः। भुवतुः। इन्द्रः। ऊती॥८॥

पदार्थ:-(तम्) अतिरथं सेनाद्यधिपतिम् (अप्सेन्त) प्राप्नुवन्तु। अत्र प्साधातोर्लिङ छन्दस्युभयथेत्यार्द्धधातुकत्वाद् आतो लोप इदि चेत्याकार्त्तीपश्च। प्सातीति गतिकर्मासु पठितम्। (निघं०२.१४) (श्रवसः) बलानि (उत्सवेषु) आनन्दयुक्तेषु कर्मसु (नरः) नेतारो मनुष्याः (नरम्) नायकम् (अवसे) रक्षणाद्याय (तम्) (धनाय) उत्तम्भनप्राप्तये (सः) (अस्थे) अन्धकारके (चित्) इव (तमिस) अन्धकारे (ज्योतिः) सूर्य्यादिप्रविष्ठाः (बिद्वते) विन्दति। अत्र लडर्थे लुङडभावश्च। (मरुत्वान्नो०) इति पूर्ववत्॥८॥

अन्वयः-हे मनुष्या! यं नरं श्रवसोऽप्सन्त तमुत्सवेषु सत्कुरुत तं नरोऽवसे धनायाप्सन्त। योऽन्धे तमसि ज्योतिश्चिदिव विजयं विदद्विन्दित, सुप्रस्टित्वानिन्द्रो न अती भवतु॥८॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। है/मनुष्या! यः शत्रून् विजित्य धार्मिकान् संरक्ष्य विद्याधने उन्नयित, यं प्राप्य सूर्य्यप्रकाशिम्ब विद्याप्रकाशमाप्नुवन्ति, तं जनमानन्दिदवसेषु सत्कुर्युः। नह्येवं विना कस्यचिच्छ्रेष्ठेषु कर्म्सूत्साहो भवितुं शक्यः॥८॥

पदार्थ: -है पनुष्यं (नरम्) सब काम को यथायोग्य चलानेहारे जिस मनुष्य को (शवसः) विद्या, बल तथा धन आदि अनेक बल (अप्सन्त) प्राप्त हों (तम्) उस अत्यन्त प्रबल युद्ध करने से भी युद्ध करनेवाले सेना आदि के अधिपित को (उत्सवेषु) उत्सव अर्थात् आनन्द के कामों में सत्कार देओ तथा (तम्) उसको (नरः) श्रेष्ठाधिकार पानेवाले मनुष्य (अवसे) रक्षा आदि व्यवहार और (धनाय) उत्तम धृत पाने के क्रिये प्राप्त होवें, जो (अन्धे) अन्धे के तुल्य करनेहारे (तमिस) अन्धेरे में (ज्योतिः) सूर्य्य

आदि के उजेले रूप प्रकाश (चित्) ही को (विदत्) प्राप्त होता है (सः) वह (मरुत्वान्) अपनी सेन में उत्तम वीरों को राखनेहारा (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् सेनापित वा सभापित (नः) हम लोगों के (ऊती) अच्छे आनन्दों के लिये (भवतु) हो॥८॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! जो शत्रुओं को जीत और धार्मिकों की पालना कर विद्या और धन की उन्नति करता है, जिसको पाकर जैसे सूर्य्यलोक का प्रकाश है, वैसे विद्या के प्रकाश को प्राप्त होते हैं, उस मनुष्य को आनन्द-मङ्गल के दिनों में आदर-सत्कार देवें, क्योंकि ऐसे किये विना किसी को अच्छे कामों में उत्साह नहीं हो सकता॥८॥

पुन: स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा है, इस विषय को अगले मन्त्र में क्रहा है।

स सुव्येन यमित व्राधितश्चित् स दक्षिणे संगृभीता कृतानि।

स कोरिणा चित्सनिता धर्नानि मुरुत्वान्नो भवत्विन्द्र कृती। १ भ

सः। सुव्येनं। युमुति। ब्रार्धतः। चित्। सः। दुक्षिणे। समुरुगृभीतो। कृतानिं। सः। कीरिणां। चित्। सनिता। धर्नानि। मुरुत्वान्। नुः। भुवतु। इन्द्रं:। कुती॥९॥

पदार्थ:-(स:) (सव्येन) सेनाया दक्षिणभागन (यमित) नियमयित। अत्र छन्दस्युभयथेति शप आर्द्धधातुकत्वाण्णिलोप:। (व्राधत:) अतिप्रवृद्धान स्त्रूच् (चित्) अपि (स:) (दक्षिणे) दक्षिणभागस्थेन सैन्येन। अत्र सुपां सुलुगिति तृतीयास्थाने सिआदेश:। (संगृभीता) सम्यग्गृहीतानि सेनाङ्गानि। अत्र ग्रहधातोर्हस्य भत्वम्। अत्र सायणाचार्येण सुबन्तं तिङ्कृतं साधितमतोऽशुद्धमेव निघाताभावात्। (कृतानि) कर्माणि (स:) (कीरिणा) शत्रूणां विक्षेपकृत प्रवन्धेन (चित्) अपि (सनिता) संभक्तानि। अत्र वनसनसंभक्ताविति धातोर्बाहुलकात्रू तन् प्रत्यथः। (धनानि) (मरुत्वान्नो०) इति पूर्ववत्॥९॥

अन्वय:-यः सव्येन स्वानिमिन वाधतिश्रहामित स विजयी जायते, यो दक्षिणे संगृभीता कृतानि कर्माणि नियमयित स स्वसेनां रक्षितुं शक्तिति, यः कीरिणा चित् शत्रुभिः सनिता धनानि स्वीकरोति, स मरुत्वानिन्द्रः सेनापितर्न ऊती भवतु॥९॥

भावार्थ:-यः सेनोक्षुहोन् सेनाङ्गशिक्षारक्षणिवज्ञानं पूर्णां युद्धसामग्रीञ्चार्जितुं शक्नोति, स एव शत्रुपराजयेन विजुत्रे प्रजारक्षणे च योग्यो भवति॥९॥

पदार्थ: जो (सट्येन) सेना के दाहिनी और खड़ी हुई अपनी सेना से (व्राधत:) अत्यन्त बल बढ़े हुए शत्रुओं को (चित्) भी (यमित) ढंग में चलाता है, वह उन शत्रुओं का जीतनेहारा होता है, जो (दिक्षणे) (दिहिनी और में खड़ी हुई उस सेना से (संगृभीता) ग्रहण किये हुए सेना के अङ्गों तथा (कृत्यिन) किये हुए कामों को यथोचित नियम में लाता है (स:) वह अपनी सेना की रक्षा कर सकता है, जो (कीरिणा:) शत्रुओं के गिराने के प्रबन्ध से (चित्) भी उनके (सिनता) अच्छी प्रकार इकट्ठे किये हुए

मण्डल-१। अनुवाक-१५। सूक्त-१०० Q 0/03

(धनानि) धनों को ले लेता है, (स:) वह (मरुत्वान्) अपनी सेना में उत्तम-उत्तम वीरों को राज्येनेहार (इन्द्र:) परमैश्वर्यवान् सेनापति (न:) हम लोगों के (ऊती) रक्षा आदि व्यवहारों के लिये (भूवतु) हो।।।।।।।

भावार्थ:- जो सेना की रचनाओं और सेना के अङ्गों की शिक्षा वा रक्षा के विशेष जीत को तथा पूर्ण युद्ध की सामग्री को इकट्ठा कर सकता है, वहीं शत्रुओं को जीत लेने से अपूर्व और प्रजा की रक्षा करने के योग्य है॥९॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा है, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है।।

स ग्रामेभिः सर्निता स रथेभिर्विदे विश्वाभिः कृष्टिभिन्वे हेर्दा। स पौस्येभिरभिभूरशस्तीर्म्फत्वान्नो भवत्विन्द्रं ऊती॥ १०॥ १॥

सः। ग्रामेभिः। सर्निता। सः। रथेभिः। विदे। विश्वाभिः। कृष्टिऽभिः। नु/ अद्य। सः। पौंस्येभिः। अभिऽभूः। अशस्तीः। मुरुत्वान्। नुः। भुवतु। इन्द्रंः। ऊती॥ १०॥

पदार्थ:-(स:) (ग्रामेभि:) ग्रामस्थैः प्रजापुरुषैः (सिन्ता) संविभक्तानि (स:) (रथेभि:) विमानादिभिः सेनाङ्गैः (विदे) विदन्ति युद्धविद्या विजयान् वा यया क्रियया तस्यै। अत्र सम्पदादित्वात् क्विप्। (विश्वाभिः) समग्राभिः (कृष्टिभिः) क्रिसेखनेक्रियाभिः (नु) सद्यः (अद्य) अस्मित्रहिन (सः) (पौंस्येभिः) उत्कृष्टे शरीरात्मबलैः सह वर्त्तमानः (अभिश्रूः) शत्रूणां तिरस्कर्त्ता (अशस्तीः) अप्रशंसनीयाः शत्रुक्रियाः (मरुत्वान्नो॰) इति पूर्ववत्॥१०॥

अन्वय:-यो मरुत्वानिन्द्रो सेनाद्यिपतिग्रीपेधिः सह सनिता धनानि भुङ्क्ते स आनन्दी जायते, यो विदे रथेभिर्विश्वाभिः कृष्टिभिश्च प्रकाशते स <mark>युश्वाशस्तीः क्रि</mark>या विदित्वाभिभूर्भवित स पौंस्येभिर्न्वद्य न ऊती भवतु॥१०॥

भावार्थ:-मनुष्यैर्यः पुरनगरग्रोभाणां सम्यग्रक्षिता पूर्णसेनाङ्गसामग्रीसहितो विदितकलाकौशलशस्त्रास्त्रमुद्ध- क्रिय् पूर्णविद्याबलाभ्यां पृष्टः शत्रूणां पराजयेन प्रजापालनप्रसन्नो भवति, स एव सेनाद्यधिपतिः कर्ताच्ये नेत्रः।।१०॥

पदार्थ: - जो (मरुत्वान्) अपनी सेना में उत्तम वीरों को राखनेहारा (इन्द्र:) परमैश्वर्य्यवान् सेना आदि का अधीश (म्रामेभि:) ग्रामों में रहनेवाले प्रजाजनों के साथ (सिनता) अच्छे प्रकार अलग-अलग किये हुए धनों को भौगता है (स:) वह आनन्दित होता है। जो (विदे) युद्धविद्या तथा विजयों को जिससे जाने उस किया के लिये (रथेभि:) सेना के विमान आदि अङ्गों और (विश्वाभि:) समस्त (कृष्टिभि:) शिल्प्यकामों की अति कुशलताओं से प्रकाशमान हो (स:) वह और जो (अशस्ती:) शत्रुओं की बड़ाई करने योग्य कियाओं को जान कर उनका (अभिभू:) तिरस्कार करनेवाला है (स:) वह (पौंस्येभि:)

४७०९ उत्तम शरीर और आत्मा के बल के साथ वर्त्तमान (नु) शीघ्र (अद्य) आज (न:) हम लोगों के (ऊर्ती

रक्षा आदि व्यवहारों के लिये (भवतु) होवे॥१०॥

भावार्थ:-मनुष्यों को चाहिये कि जो पूर, नगर और ग्रामों का अच्छे प्रकार रक्षा कस्तिकाला घ पूर्ण सेनाङ्गों की सामग्री सहित जिसने कलाकौशल तथा शस्त्र-अस्त्रों से युद्ध क्रिया के जाना हो और परिपूर्ण विद्या तथा बल से पुष्ट शत्रुओं के पराजय से प्रजा की पालना करने में प्रसन्न होता है वहीं सेना आदि का अधिपत्ति करने योग्य है, अन्य नहीं॥१०॥

पुन: स कीदुश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहार्ही।

स जामिभिर्यत्समजाति मीळहेऽजामिभिर्वा पुरुहूत एवै रा अपां तोकस्य तर्नयस्य जेषे मरुत्वान्नो भवत्विन्द्रं ऊती॥ १११

सः। जामिऽभिः। यत्। सम्ऽअजाति। मीळहे। अजामिऽभिः। वा। पुरुष्ट्तः। एवैः। अपाम्। तोकस्य। तर्नयस्य। जेषे। मुरुत्वीन्। नुः। भुवृतु। इन्द्रेः। ऊती॥ ११॥

पदार्थ:-(स:) (जामिभि:) बन्धुवर्गै: सह (यत्) अव (सम्मजाति) संजानीयात् (मीळहे) संग्रामे। मीळहे इति संग्रामनामसु पठितम्। (निघं०२.१७) (अज्ञासिभिः) अबन्धुवर्गेः शत्रुभिः (वा) उदासीनैः (पुरुहृत:) बहुभि: स्तुतो युद्ध आहूतो (एवै:) प्राप्तिः (अपाम्) प्राप्तानां मित्रशत्रूदासीनानां पुरुषाणां मध्ये (तोकस्य) अपत्यस्य (तनयस्य) पौत्रादेः (अपे उत्कृष्ट्रं विजेतुम्। अत्र जिधातोस्तुमर्थे से प्रत्ययः। सायणाचार्य्येणेदमपि पदमशुद्धं व्याख्यातमृश्वपृत्यासंभृष्यत् (मरुत्वान्न:) इति पूर्ववत्॥११॥

अन्वय:-योऽपां तोकस्य तनयस्य च मध्ये)वर्त्तमानः सन् यन्मीळ्ह एवैर्जामिभिः सहित एवैरजामिभिः शत्रुभिर्वोदासीनै: सह विरुद्ध्यन् पुरुहूत्रे मरुत्यानिन्द्रः सनाद्यधिपतिर्जेष एतान् स्वीयानुत्कर्ष्ट्रं शत्रून् विजेतुं वा समजाति तदा स न ऊती समर्थी भवतु॥११॥

भावार्थ:-नह्यत्र राष्ट्रिय्वहारे केमीचद् गृहस्थेन विना ब्रह्मचारिणो वनस्थस्य यतेर्वा प्रवृत्तेर्योग्यतास्ति, न कश्चित्सुमित्रैबेन्भुवर्गेविंना युद्धे शत्रून् पराजेतुं शक्नोति, न खल्वेवंभूतेन धार्मिकेण विना कश्चित्सेनाद्यधिपतित्वेम् ईती ति वेदितव्यम्॥११॥

पदार्थ:-जो (अपाम्) प्राप्त हुए मित्र, शत्रु और उदासीनों वा (तोकस्य) बालकों के वा (तनयस्य) पौत्र आदि के बीच वर्ताव रखता हुआ (यत्) जब (मीळहे) संग्रामों में (एवै:) प्राप्त हुए (जामिभि:) श्रृतुज्भों के सहित (अजामिभि:) बन्धुवर्गों से अन्य शत्रुओं के सहित (वा) अथवा उदासीन मनुष्यों 🔌 साथ विसेधभाव प्रकट करता हुआ (पुरुहृत:) बहुतों से प्रशंसा को प्राप्त वा युद्ध में बुलाया हुआ (प्रकृत्यान्) अपनी सेना में उत्तम वीरों को रखनेवाला (इन्द्र:) परमैश्वर्य्यवान् सेना आदि का अधीश (जैंपे) उपत अपने बन्धु भाइयों को उत्साह और उत्कर्ष देने वा शत्रुओं के जीत लेने का **(समजाति)**

मण्डल-१। अनुवाक-१५। सूक्त-१००



अच्छा ढङ्ग जानता है (स:) वह (न:) हम लोगों के (ऊती) रक्षा आदि व्यवहार के लिये सम्वि (भवत्) हो॥११॥

भावार्थ:-इस राज्यव्यवहार में किसी गृहस्थ को छोड़ ब्रह्मचारी वनस्थ वा यृति की प्रवृत्ति होने योग्य नहीं है और न कोई अच्छे मित्र और बन्धुओं के विना युद्ध में शत्रुओं को यूरास्त कर सकता है। ऐसे धार्मिक विद्वानों के विना कोई सेना आदि का अधिपति होने योग्या नहीं है, यह जानना चाहिये॥११॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा है, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है।।

स वेज्रभृद्दंस्युहा भीम उत्रः सहस्रचेताः शतनीय ऋभ्या। चुम्रीषो न शर्वसा पाञ्चजन्यो मुरुत्वान्नो भवत्वन्द्रं कुती॥ १२॥

सः। वृज्रऽभृत्। दुस्युऽहा। भीमः। उग्रः। सहस्रंऽचेताः। शृत्युनीर्थः। ऋभ्वां। चृम्रीषः। न। शर्वसा। पाञ्चंऽजन्यः। मुरुत्वान्। नुः। भुवतु। इन्द्रंः। ऊती॥ १२॥

पदार्थ:-(स:) (वज्रभृत्) यो वज्रं शस्त्रास्त्रसम्मूहें विभित्तिं स: (दस्युहा) दुष्टानां चौराणां हन्ता (भीम:) एतेषां भयङ्करः (उप्र:) अतिकृष्टिनदण्डपूदः (सहस्रचेता:) असंख्यातिवज्ञानिवज्ञापनः (शतनीथ:) शतानि नीथानि यस्य स: (ऋभ्वा) महता (चप्रीषः) ये चमूभिः शत्रुसेना ईषन्ते हिंसन्ति ते (न) इव (शवसा) व्याप्युवति सैन्येन (पाञ्चजन्यः) पञ्चसु सकलविद्येष्वध्यापकोपदेशकराजसभासेम्सर्वज्ञाधीशेषु जनेषु भवः पाञ्चजन्यः। वहिर्देवपञ्चजनेभ्यश्चेति वक्तव्यम्। (अष्टा०४.३.५८) (मृक्तवाज्ञो भवन्त्वन्द्र०) इति पूर्ववत्॥१२॥

अन्वयः-यश्चम्रीषो न वर्ष्ण्हस्युहा भीम उप्रेः सहस्रचेताः शतनीथः पाञ्चजन्यो मरुत्वानिन्द्रः सेनाद्यधिपतिर्ऋभ्वा शवसा शत्रून् समजाति, स न इन्ती भवेतु॥ १८॥

भावार्थ:-अत्रोपमाल्ड्रिपः निहं कश्चिन्मनुष्यो धनुर्वेदविज्ञानप्रयोगाभ्यां शत्रूणां हनने भयप्रदेन तीव्रेण सामर्थ्येन प्रवृद्धेन सैट्येन च विना सेनापतिर्भवितुं शक्नोति, नैवं भूतेन विना शत्रुपराजयः प्रजापालनं च सुंभवसीति वेदितव्यम्॥१२॥

पदार्थ: (चप्रीष:) जो अपनी सेना से शत्रुओं की सेनाओं के मारनेहारों के (न) समान (वज्रभृत्) अति कराल शस्त्रों को बांधने (दस्युहा) डाकू, चोर, लम्पट, लवाड़ आदि दुष्टों को मारने (भीम्र) उसको डर और (उग्र:) अति कठिन दण्ड देने (सहस्रचेता:) हजारहों अच्छे प्रकार के ज्ञान प्रकृट क्रुनेबाला (शतनीथ:) जिसके सैकड़ों यथायोग्य व्यवहारों के वर्ताव हैं (पाञ्चजन्य:) जो सब

विद्याओं से युक्त पढ़ाने, उपदेश करने, राज्यसम्बन्धी सभा, सेना और सब अधिकारियों के अधिष्ठातिओं में उत्तमता से हुआ (मरुत्वान्) और अपनी सेना में उत्तम वीरों को राखनेवाला (इन्द्रः) परमेश्वर्यवान् सेना आदि का अधीश (ऋभ्वा) अतीव (शवसा) बलवान् सेना से शत्रुओं को अच्छे प्रकार प्रपत्त होता है (सः) वह (नः) हम लोगों के (ऊती) रक्षा आदि व्यवहारों के लिये (भवतु) होवे॥१२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्यों को जानना चाहिए कि कोई मनुष्य धनुर्वेद के विशेष ज्ञान और उसको यथायोग्य व्यवहारों में वर्तने और शत्रुओं के मारने में भय के देनेवाले जा तीव्र अगाध सामर्थ्य और प्रबल बढ़ी हुई सेना के विना सेनापित नहीं हो सकता और ऐसे हुए विना शत्रुओं का पराजय और प्रजा का पालन हो सके, यह भी सम्भव नहीं, ऐसा जानें।

पुन: स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा है, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है।।

तस्य वर्त्रः क्रन्दति स्मत्स्वर्षा दिवो न त्वेषो रवशः शिमीवान।
तं संचन्ते सुनयस्तं धर्नानि मुरुत्वान्नो भवत्विन्द्रं कृती॥ १३॥

तस्यं। वर्ज्रः। क्रुन्दुति। स्मत्। स्वःऽसाः। दुवः। न। त्रुषः। प्रामीऽवान्। तम्। सुचन्ते। सुनर्यः। तम्। धर्नानि। मुरुत्वान्। नुः। भुवतु। इन्द्रः। ऊती॥ १३॥

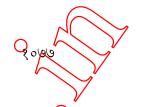
पदार्थ:-(तस्य) (वजः) शस्त्राऽस्त्रसमृहः (क्रन्दित) श्रेष्ठानाह्नयित दुष्टान् रोदयित। अत्रान्तर्गतो ण्यर्थ:। (स्मत्) तत्कर्मानुष्ठानोक्तम्। (स्वर्षः) स्वः सुखेन्न सनोति सः। अत्र स्वःपूर्वात् सन् धातोः कृतो बहुलिमिति करणे विच्। (दिवः) प्रकाशस्य (त्र) इव (त्वेषः) यस्त्वेषित प्रदीप्तो भवित सः (रवथः) महाशब्दकारी (शिमीवान्) प्रशस्तानि कर्माणि भविन्त यस्य सकाशात्। अत्र छन्दसीर इति मतुपो मकारस्य वत्वम्। शिमीति कर्मनामसु पितृतम्। (निघं०२.१) (तम्) (सचन्ते) सेवन्ते (सनयः) उत्तमाः सेवाः (तम्) (धनानि) (मरुत्वानः) इति पूर्वेषत्॥१३॥

अन्वय:-यस्य सभाद्यध्यक्षिस्य स्मत् स्वर्षा त्रवथः शिमीवान् वज्रः क्रन्दित तस्य दिवस्त्वेषो न सूर्य्यस्य प्रकाश इव गुणकर्मस्वभावाः प्रकाशक्ताय एवं भूतस्तं सनयः सचन्ते तं धनानि चेत्थं यो मरुत्वानिन्द्रो न ऊती प्रयतते सोऽस्माकं राजा भवतु॥१३॥

भावार्थः अत्रोपमालङ्कारः। सभासद्भृत्यसेनाप्रजाभिरीदृशान्युत्तमानि कर्माणि सेवनीयानि येभ्यो विद्यान्यायधर्मपुरुषार्था वर्धमानाः सूर्यवत्प्रकाशिताः स्युः। न हीदृशैः। कर्मभिर्विनोत्तमानि सुखसेवनानि धनानि रक्षाश्च भिष्तुं सक्या। तस्मादेवंभूतानि कर्माणि सभाद्यध्यक्षैः सेवनीयानि॥१३॥

पदार्थ:-जिस सभाद्यध्यक्ष का (स्मत्) काम के वर्त्ताव की अनुकूलता का (स्वर्षा:) सुख से सेवन और (रवथ:) भारी कोलाहल शब्द करनेवाला (शिमीवान्) जिससे प्रशंसित काम होते हैं, वह (वंद्र:) श्रस्त्र और अस्त्रों का समूह (क्रन्दित) अच्छे जनों को बुलाता और दुष्टों को रुलाता है (तस्य)

मण्डल-१। अनुवाक-१५। सूक्त-१००



उसके (दिव:) सूर्य्य के (त्वेष:) उजेले के (न:) समान गुण, कर्म और स्वभाव प्रकाशित होते हैं, जो ऐसा है (तम्) उसको (सनय:) उत्तम सेवा अर्थात् सज्जनों के किये हुए उत्साह (सचज़ो) सेव्य अरते और (तम्) उसको (धनानि) समस्त धन सेवन करते हैं, इस प्रकार (मरुत्वान्) जो सभाध्यक्षे अपनी सेना में उत्तम वीरों को रखनेवाला (इन्द्र:) परमैश्वर्य्यवान् तथा (न:) हम लोगों के (ऊत्ते) रक्षादि व्यवहारों के लिये यत्न करता है, वह हम लोगों का राजा (भवतु) होवे॥३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। सभासद्, भृत्य, सेना के पुरुष और प्रजाजनों को चाहिये कि ऐसे उत्तम कामों का सेवन करें कि जिनसे विद्या, न्याय, धर्म वा पुरुषार्ध बढ़े हुए सूर्य के समान प्रकाशित हों, क्योंकि ऐसे कामों के विना उत्तम सुखों के सेवन, धन और स्था हो नहीं सकती, इससे ऐसे काम सभाध्यक्ष आदि को करने योग्य हैं॥१३॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्युते।

फिर वह कैसा है, यह विषय अगृद्धे मन्त्र में कहाँ है॥

यस्यार्जस्वं शर्वसा मार्नमुक्थं परिभुजद्रोदसी विश्वतः मिम्। स परिष्कत्रतुंभिर्मन्दसानो मुरुत्वान्नो भृवत्वन्त्र ऊदी॥१४॥

यस्य। अर्जस्रम्। शर्वसा। मार्नम्। उक्थम्। परिऽथुजन्। रोर्दसी इति। विश्वतः। सीम्। सः। परिष्त्। कर्तुऽभिः। मुन्दसानः। मुरुत्वान्। नुः। भुवतु। इन्द्रेः। ऊतीभ १४४।

पदार्थ:-(यस्य) सभाद्यध्यक्षस्य (अवस्मा) सततम् (श्रवसा) शरीरात्मबलेन (मानम्) सत्कारम् (उक्थम्) वेदविद्याः (परिभुजत्) सर्वतः भुञ्ज्यान् पालयेत्। अत्र भुजधातोर्लिटि विकरणव्यत्ययेन शः। (रोदसी) विद्याप्रकाशपृथिवीराज्ये (विश्वतः) सर्वतः (सीम्) धर्म्मन्यायमर्थ्यादापरिग्रहे। सीमिति परिग्रहार्थीयः। (निरु०१.७) (पः) (पारिषत्) सुखैः प्रजाः पालयेत्। अत्र पृधातोर्लिटि सिप्। सिब्बहुलं छन्दिस णित् इति वार्तिकेन णित्सद् बृद्धिः। (क्रतुभिः) श्रेष्ठैः कर्मिभः सह (मन्दसानः) प्रशंसादियुक्तः (मरुत्वान्नो०) इति पूर्ववत्।। (४५)

अन्वय:-यस्य शवसा प्रज्यः मानुमुक्थं सीं विश्वतोऽजस्रं परिभुजद्रोदसी च यः क्रतुभिर्मन्दसानः सुखैः प्रजाः पारिषत् स मरुत्वानिन्द्रोत ऊत्यज्यस्रं भवतु॥१४॥

भावर्षः यः पत्पुरुषाणां मानं दुष्टानां परिभवं पूर्णां विद्याधर्ममर्य्यादां पुरुषार्थमानन्दं च कर्तुं शक्नुयात् स एवं सभाद्यध्यक्षाद्यधिकारमर्हेत्॥१४॥

पदार्थ:-(यस्य) जिस सभा आदि के अधीश के (शवसा) शारीरिक तथा आत्मिक बल से युक्त प्रज्ञाजन (मानम्) सत्कार (उक्थम्) वेदविद्या तथा (सीम्) धर्म न्याय की मर्यादा को (विश्वतः) सब ओर

2008

से (अजस्रम्) निरन्तर पालन और जो (रोदसी) विद्या के प्रकाश और पृथिवी के राज्य को भी (परिभुजत्) अच्छे प्रकार पालन करे। जो (क्रतुभि:) उत्तम बुद्धिमानी के कामों के साथ (मन्द्रसान:) प्रशंसा आदि से परिपूर्ण हुआ सुखों से प्रजाओं को (पारिषत्) पालता है (स:) वह (मरुत्सन्) अपनी सेना में उत्तम वीरों का रखनेवाला (इन्द्रः) परमैश्वर्य्यवान् सभापति (न:) हम लोगों के (कर्ति) रक्षा आदि व्यवहार को सिद्ध करनेवाला निरन्तर (भवतु) होवे॥१४॥

भावार्थ:-जो सत्पुरुषों का मान, दुष्टों का तिरस्कार, पूरी विद्या, धर्म की भूयादा, पुरुषोर्थ और आनन्द कर सके, वहीं सभाध्यक्षादि अधिकार के योग्य हो॥१४॥

अथेतस्याः सर्वप्रजायाः कर्त्तेश्वरः कीदृशोऽस्तीत्युपदिश्वित्रा

अब इस समस्त प्रजा को उत्पन्न करनेवाला ईश्वर कैसा है, इस विष्ठप्र को अगले मन्त्र में कहा

है॥

न यस्य देवा देवता न मर्ता आपश्चन शर्वसो अन्तमापुः।

स प्रिरिक्वा त्वक्षंसा क्ष्मो दिवश्चं मुरुत्वान्नो भवुन्विन्द्रे ऋती। १५॥१०॥

न। यस्य। देवा:। देवता। न। मर्ता:। आप:। चन। श्रावी:। अप्रीम्। आपु:। सः। प्रऽरिक्वा। त्वक्षीसा। क्ष्मः। दिवः। च। मुरुत्वान्। नः। भुवतु। इन्द्रंः। ऊती॥ १५॥

पदार्थ:-(न) निषेधे (यस्य) इन्द्रस्य प्रसिश्चर्यवती जगदीश्वरस्य (देवा:) विद्वांसः (देवता) दिव्यजनानां मध्ये। निर्धारणेऽत्र षष्ठी सुपां सुलुपित्यामो लुक् च। (न) (मर्त्ताः) साधारणा मनुष्याः (आपः) अन्तरिक्षं प्राणा वा (चन) अपि (अवसः) कृतस्य (अन्तम्) सीमानम् (आपुः) प्राप्नुवन्ति (सः) (प्रिरिक्वा) यः सर्वाः प्रजाः प्रकृष्टतया निर्माय व्याप्तवान् (त्वक्षसा) स्वेन बलेन सामर्थ्येन। त्वक्ष इति बलनामसु पठितम्। (निष्ठं०२९) (क्ष्मः) पृथिवीः (दिवः) सूर्यादिप्रकाशलोकान् (च) एतिद्वन्नलोकसमुच्चये (मरुत्वाक्षेत्) इति पूर्वत्॥१५॥

अन्वयः-यस्येन्द्रस्य जगृदीक्षरस्य शवसोठनें देवता देवा न मर्ता नापश्च नापुः। यस्त्वक्षसा क्ष्मो दिवश्चान्यांश्च लोकान् प्ररिक्वा स मरुत्वानिर्द्वीत् ऊर्ती भूत्रतु॥१५॥

भावार्थ:-किमनन्तगुणक्रमस्वभाव तस्य परमात्मनोऽन्तं ग्रहीतुं कश्चिदिप शक्नोति, यः स्वसामर्थ्येनैव प्रकृत्याख्यात परमसूक्ष्मात् सनातनात् कारणात् सर्वान् पदार्थान् संहत्य संरक्ष्य प्रलये छिनत्ति, स सर्वे कथ्रेनोपासनीय इति ॥१५॥

पदार्थ: (यस्य) जिस परम ऐश्वर्यवान् जगदीश्वर के (शवसः) बल की (अन्तम्) अवधि को (देवता) दिव्य उत्तम जनों में (देवाः) विद्वान् लोग (न) नहीं (मर्ताः) साधारण मनुष्य (न) नहीं (चन) तथा (अपः) अन्तरिक्ष वा प्राण भी (आपुः) नहीं पाते, जो (त्वक्षसा) अपने बलरूप सामर्थ्य से (क्ष्मः) प्रिश्वी (दिवः) सूर्य्यलोक तथा (च) और लोकों को (प्रिरिक्वा) रच के व्याप्त हो रहा है (सः) वह

मण्डल-१। अनुवाक-१५। सूक्त-१००



(मरुत्वान्) अपनी प्रजा को प्रशंसित करनेवाला (इन्द्रः) परम ऐश्वर्यवान् परमेश्वर (नः) हम लागों के (ऊती) रक्षा आदि व्यवहार के लिये निरन्तर उद्यत (भवतु) होवे॥१५॥

भावार्थ: - क्या अनन्त गुण, कर्म, स्वभाववाले उस परमेश्वर का पार कोई ले सकता है कि जो अपने सामर्थ्य से ही प्रकृतिरूप अतिसूक्ष्म सनातन कारण से सब पदार्थों को स्थूलू प उत्पन्न कर उनकी पालना और प्रलय के समय सबका विनाश करता है, वह सबके उपासना करने के योग्य क्यों न होवे ?॥१५॥

अथ शिल्पिभ: सेनादिषु प्रयुक्तोऽग्नि: कथम्भूत: सन् किं कराजीस्प्रपदिश्र्यते॥ अब शिल्पीजनों का सेनादिकों में अच्छे प्रकार युक्त किया हुआ अभिन कैसा हाता है और क्या

करता है, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है।।

ग्रोहिच्छ्यावा सुमदंशुर्ललामीर्द्युक्षा ग्राय ऋजार्श्वस्य

रोहित्। श्यावा। सुमत्ऽअंशुः। लुलामीः। द्युक्षा। र्ये। ऋक्रिअश्वस्य। वृष्णऽवन्तम्। बिभ्रंती। धूःऽसु। रथंम्। मुन्द्रा। चिकेत्। नाहुंषीषु। विक्षु॥ १६॥

पदार्थ:-(रोहित्) अधस्ताद्रक्तवर्णा (श्यांका) उपरिष्टाच्छ्यामवर्णा ज्वाला (सुमदंशुः) शोभनोंऽशुर्ज्वलनं यस्याः सा (ललामीः) शिरोवदुपरिशागः प्रशस्तो यस्याः सा (द्युक्षा) दिवि प्रकाशे निवासो यस्याः सा। अत्र क्षि निवासगत्योहित्यस्मिदौणादिको डः प्रत्ययः। (राये) धनप्राप्तये (ऋज्राश्वस्य) ऋज्ञा ऋतुगामिनोऽश्वा वेगवन्तो यस्य सस्य सभाद्यध्यक्षस्य (वृषणवन्तम्) वेगवन्तम् (विभ्रती) (धूर्षु) अयःकाष्ठविशेषासु कलासु (रथा) विमानादियानसमूहम् (मन्द्रा) आनन्दप्रदा (चिकेत) विजानीयाम् (नाहुषीषु) नहुषाणां मनुष्याणामिसास्तासु (विभ्रु) प्रजासु॥१६॥

अन्वय:-या ऋजाश्वरूप सम्बन्धिम: शिल्पिभ: सुमदंशुर्ललामीर्द्यक्षा रोहिच्छ्यावा धूर्षु संप्रयुक्ता ज्वाला वृषण्वन्तं रथं बिभ्रती मन्द्रा सहुषीषु विक्षा राये वर्तते, तां यश्चिकेत स आढ्यो जायते॥१६॥

भावार्थ: -यदा विमान्द्र्यालनादिकार्य्येष्विन्धनै: संप्रयुक्तोऽग्नि: प्रज्वलित तदा द्वे रूपे लक्ष्येते। एकं भास्वरं द्वितीय श्यामञ्चर्य अत एवाग्ने: श्यामकर्णाश्च इति संज्ञा वर्त्तते। यथाऽश्वस्य शिरस उपिर कर्णों दृश्येते तथाऽ निर्मार श्यामा कज्जलाख्या शिखा भवति। सोऽयं कार्य्येषु सम्यक् प्रयुक्तो बहुविधं धनं प्रापय्य प्रजा आनिद्त्ता: करोति॥१६॥

पदार्थ:-जो (ऋजाश्वस्य) सीधी चाल से चले हुए जिसके घोड़े वेगवाले उस सभा आदि के अर्थिश का संभ्वन्ध करनेवाले शिल्पियों को (सुमदंशुः) जिसका उत्तम जलाना (ललामीः) प्रशंसित

जिसमें सौन्दर्य (द्युक्षा) और जिसका प्रकाश ही निवास है, वह (रोहित्) नीचे से लाल (श्यावा) ऊपर से काली अग्नि की ज्वाला (धूर्षु) लोहे की अच्छी-अच्छी बनी हुई कलाओं में प्रयुक्त की गई (वृषण्वन्तम्) वेगवाले (रथम्) विमान आदि यान समूह को (बिभ्रती) धारण करती हुई (मिस्रा) आन्ने की देनेहारी (नाहुषीषु) मनुष्यों के इन (विक्षु) सन्तानों के निमित्त (राये) धन की प्राप्ति के लिये वर्तमान है, उसको जो (चिकेत) अच्छे प्रकार जाने वह धनी होता है॥१५॥

भावार्थ:-जब विमानों के चलाने आदि कार्यों में इन्धनों से अच्छे प्रकार युक्त किया अग्नि जलता है, तब उसके दो ढंग के रूप देख पड़ते हैं-एक उजेला लिये हुए दूसरा काला इसीसे अग्नि को श्यामकर्णाश्च कहते हैं। जैसे घोड़े के शिर पर कान दीखते हैं, वैसे अग्नि के शिर पर श्याम कज्जल की चुटेली होती है। यह अग्नि कामों में अच्छे प्रकार जोड़ा हुआ बहुत प्रकार कि भन को प्राप्त कराकर प्रजाजनों को आनन्दित करता है॥१६॥

ुपुनः स कथम्भूत इत्युपदिश्याता

फिर वह कैसा है, यह विषय अगले मन्त्र में कहा। है।।

एतत्त्यत्तं इन्द्र वृष्णं उक्थं वार्षागिरा अभि गृण्ति राध्य

ऋ्जाश्चः प्रष्टिभिरम्ब्रीषेः सहदेवो भयमानः सुराधीः। १७॥

पुतत्। त्यत्। ते। इन्द्र। वृष्णे। उक्थम्। वृष्णिम्राः। भूभि। गृणुन्ति। रार्धः। ऋज्ञऽअश्चः। प्रष्टिऽभिः। अम्बरीर्षः। सुहऽदेवः। भर्यमानः। सुऽरार्धाः॥ १७॥

पदार्थ:-(एतत्) प्रत्यक्षम् (त्यत्) अग्रस्थमानुमानिकं च (ते) तव (इन्द्र) परमिवद्यैश्वर्ययुक्त (वृष्णे) शरीरात्मसेचकाय (उक्थम्) प्रश्नंसनीय वृज्जनं कर्म वा (वार्षागिराः) वृषस्योत्तमस्य गीर्भिर्निष्पन्नाः पुरुषाः (अभि) आभिमुख्ये (गृणन्ति) वदन्ति (राधः) धनम् (ऋन्नाश्वः) ऋज्ञा ऋजवोऽश्वा महत्यो नीतयो यस्य सः। अश्व इति महन्नामस् पिठतम् (निघं०३.३) (प्रष्टिभिः) प्रश्नैः पृष्टः सन् (अम्बरीषः) शब्दिवद्यावित्। अत्र शब्दार्थादृष्टि धातोरौणाद्विक ईषन् प्रत्ययो रुगागमश्च। (सहदेवः) देवैः सह वर्तते सः (भयमानः) अधर्माचरणाद्विक् पृथुगुर्म्तमानो दुष्टानां भयङ्करः (सुराधाः) शोभनै राधोभिर्धनैर्युक्तः॥१७॥

अन्वयः-हे इन्द्र! वार्षिगिरो यदेतत्ते तवोक्थमभिगृणन्ति त्यद्राधो वृष्णे जायते। योऽम्बरीषः सहदेवो भयमानः सुराधा ऋजाश्वो भवान् प्रष्टिभिः पूष्टः समादधाति, सोऽस्माभिः कथं न सेवनीयः॥१७॥

भावार्थः-येद्म विद्वासः सुप्रीत्योपदेशान् कुर्वन्ति तदाऽज्ञानिनो जना विश्वस्ता भूत्वोपदेशाञ्छुत्वा सुविद्या धृत्वाऽऽदेशा भूत्वाऽऽनन्दिता भवन्ति॥१७॥

पदार्थ:-हे (इन्द्र) परमिवद्या ऐश्वर्य से युक्त सभाध्यक्ष! जो (वार्षागिरा:) उत्तम प्रशंसित विद्वान् की विण्यों से प्रशंसित पुरुष (एतत्) इस प्रत्यक्ष (ते) आपके (उक्थम्) प्रशंसा करने योग्य वचन वा क्रीम को सब लोग (अभिगृणन्ति) आपके मुख पर कहते हैं वह और (त्वत्) अगला वा अनुमान करने अष्टक-१। अध्याय-७। वर्ग-८-११

मण्डल-१। अनुवाक-१५। सूक्त-१००

ग जो (**अम्बरीयः)** रक्र उसरी अम्म

योग्य आपका (राध:) धन (वृष्णे) शरीर और आत्मा की प्रसन्नता के लिये होता है तथा जो अम्बरीष:) शब्द शास्त्र के जानने (सहदेव:) विद्वानों के साथ रहने (भयमान:) अधर्माचरण से डरकूर उसरी अमेग वर्ताव वर्त्तने और दुष्टों को भय करनेवाले (सुराधा:) जो कि उत्तम-उत्तम धनों से युक्त (ऋजाश:) जिनकी सीधी बड़ी-बड़ी राजनीति हैं और (प्रष्टिभि:) प्रश्नों से पूछे हुए समाधानों को देते हैं वे हम लोगों को सेवने योग्य कैसे न हों?॥१७॥

भावार्थ:-जब विद्वान् उत्तम प्रीति के साथ उपदेशों को करते हैं, तब अज्ञानी जन विश्वास को पा उन उपदेशों को सुन अच्छी विद्याओं को धारण कर धनाढ्य होके आनन्दिस होते हैं भी १७॥

पुनः स किं कुर्यादित्युपदिश्यते॥

फिर वह क्या करें, इस विषय का उपदेश अगले मुन्त्र में किया है॥

दस्यू ज्ञिम्यूंश्च पुरुहूत एवैहित्वा पृथिव्यां शर्वा नि विहीत्।

सनुत्क्षेत्रं सिखंभिः श्वित्येभिः सनुत्सूर्यं सनंदुर्शः सुकर्त्रः भेरिट॥

दस्यून्। शिम्यून्। चा पुरुऽहूतः। एवैः। हुत्वा। पृथि्व्याम्। श्रवीः। नि। बुर्हीत्। सर्नत्। क्षेत्रेम्। सर्खिऽभिः। श्चित्येभिः। सर्नत्। सूर्यम्। सर्नत्। अपः। सुऽवर्त्रः॥ १८॥

पदार्थ:-(दस्यून्) दुष्टान् (शिम्यून्) श्रान्तान् प्राणिनः (च) मध्यस्थप्राणिसमुच्चये (पुरुहूतः) बहुभिः पूजितः (एवैः) प्रशस्तज्ञानैः कर्मभिर्वा (हत्वा) (पृथिव्याम्) स्वराज्ययुक्तायां भूमौ (शर्वा) सर्वदुःखिहंसकः (नि) नितराम् (बहीत्) बहीति अत्र वर्त्तमाने लुङडभावश्च। (सनत्) सेवेत (क्षेत्रम्) स्विनवासस्थानम् (सिंखिभिः) सुहद्धिः (श्विक्ट्यमिः) श्वेतवर्णयुक्तैस्तेजस्विभिः (सनत्) सदा (सूर्यम्) सिवतारं प्राणं वा (सनत्) यथाविद्यस्तरम् (अपः) जलानि (सुवज्रः) शोभनो वज्रः शस्त्राऽस्त्रसमूहोऽस्य सः॥१८॥

अन्वयः-य सुवजः पुरुद्दृतः सर्वा सभाद्यध्यक्षः श्वितन्येभिः सिखिभिरेवैः सिहतो दस्यून् हत्वा शिम्यूञ्छान्तान् धार्मिकान् मनुष्यान् भृत्यादींश्च सन्त् दुःखानि निबर्हीत् पृथिव्यां क्षेत्रं सूर्य्यमपः सनद् रक्षेत्, सः सर्वैः सनत्सेवनीयः॥१८॥

भावार्थः च्यः सज्भनेः सिहतोऽधर्म्यं व्यवहारं निवार्य्य धर्म्यं प्रचार्य्य विद्यायुक्त्या सिद्धं संसेव्य प्रजादुःखानि हन्यातः संसभाद्यध्यक्षः सर्वेर्मन्तव्यो नेतरः॥१८॥

पदार्थ: (सुवजः) जिसका श्रेष्ठ अस्त्र और शस्त्रों का समूह और (पुरुहूतः) बहुतों ने सत्कार किया हो वह (शर्वा) समस्त दुःखों का विनाश करनेवाला सभा आदि का अधीश (श्वित्येभिः) श्वेत अर्थित् स्वच्छ तेजस्वी (सिखिभिः) मित्रों के साथ और (एवैः) प्रशंसित ज्ञान वा कर्मों के साथ (दस्यून)

१०८२

डाकुओं को (हत्वा) अच्छे प्रकार मारकर (शिम्यून्) शान्त धार्मिक सज्जनों (च) और भृत्य आदि की (सनत्) दु:खों को (नि, बर्हीत्) दूर करे, जो (पृथिव्याम्) अपने राज्य से युक्त भूमि में (क्षेत्रम्) अपने निवासस्थान (सूर्यम्) सूर्य लोक, प्राण (अप:) और जलों को (सनत्) सेवे, वह सबको सहस्र सेवने के योग्य होवे॥१८॥

भावार्थ:-जो सज्जनों से सिहत सभापित अधर्मयुक्त व्यवहार को निवृत्त और धर्म्य व्यवहार का प्रचार करके विद्या की युक्ति से सिद्ध व्यवहार का सेवन कर प्रजा के दु:खों की नष्ट करे, वह सभा आदि का अध्यक्ष सबको मानने योग्य होवे, अन्य नहीं॥१८॥

पुनः स कीदृशस्तत्सहायेन किं प्राप्नुयामेत्युपदिश्यलेगा

फिर वह कैसा है और उसके सहाय से हम लोग क्या पावें, इस विषय के उपनेश अगले मन्त्र में किया है॥

विश्वाहेन्द्री अधिवक्ता नी अस्त्वपरिहवृताः सनुयाम् वाजम्।
तन्नी मित्रो वर्रुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथ्विवी उत्त हो। १९॥ ११॥

विश्वाहां। इन्द्रं:। अधिऽवक्ता। नः। अस्तु। अपरिऽह्वताः सितुर्योम्। वार्जम्। तत्। नः। मित्रः। वर्रणः। मुमुहन्ताम्। अदितिः। सिन्धुः। पृथिवी। उत। द्यौः॥१९॥

पदार्थ:-(विश्वाहा) विश्वानि सर्वाण्यहानि (इन्द्रः) प्रश्नस्तविद्येश्वय्यौं विद्वान् (अधिवक्ता) अधिकं वक्तीति (नः) अस्मभ्यम् (अस्तु) भवतु (अष्ट्राहिवृताः) सर्वतो कुटिला ऋजवो भूत्वा। अपरिह्वृताश्च। (अष्ट्रा०७.२.३२) इत्यनेन निपातनाच्छन्द्रि प्रभ्तो हुभावो निषिध्यते। (सनुयाम) दद्याम संभजेम। अत्र पक्षे विकरणव्यत्ययः। (वाजम्) विज्ञानम् (तत्। क्रिज्ञानम् (नः) अस्माकम् (मित्रः) सुहृत् (वरुणः) श्रेष्ठः (मामहन्ताम्) सत्कारेण वर्धयन्ताम् (अदितः) अन्तरिक्षम् (सिन्धुः) समुद्रो नदी वा (पृथिवी) भूमिः (उत्) अपि (द्यौः) सूर्यादिप्रकाशः। १९॥

अन्वयः-य इन्द्रो नोर्प्रस्मेश्यं विश्वाहाश्चिवकतास्तु तस्मादापरिह्वृता वयं यं वाजं सनुयाम तन्नो मित्रो वरुणोऽदितिः सिन्धुः पृथिवी क्त, द्वौर्मामहुन्नाम्॥१९॥

भावार्थ:-मनुष्येर्थे मित्यं विद्याप्रदाताऽस्ति तमृजुभावेन सेवित्वा विद्या: प्राप्य मित्राञ्छ्रेष्ठादाकाशृष्ट्यदीभ्यो भूमेर्दिवश्चोपकारं गृहीत्वा सर्वेषु मनुष्येषु सत्कारेण भवितव्यम्। नैव कदाचिद्विद्या गुम्मनीयो किन्तु सर्वेरियं प्रसिद्धीकार्य्येति॥१९॥

अत्र सभेचिध्यक्षेश्वराध्यापकगुणानां वर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति बोद्ध्यम्॥ इति शततमं १०० सूक्तमेकादशो ११ वर्गश्च समाप्तः॥

पदार्थ:-जो (इन्द्र:) प्रशंसित विद्या और ऐश्वर्य्ययुक्त विद्वान् (न:) हम लोगों के लिये (विश्वाहा) स्व दिनों (अधिवक्ता) अधिक-अधिक उपदेश करनेवाला (अस्तु) हो, उससे (अपरिहवृता:) सब अष्टक-१। अध्याय-७। वर्ग-८-११

मण्डल-१। अनुवाक-१५। सूक्त-१०० 9.63

प्रकार कुटिलता को छोड़े हुए हम लोग जिस (वाजम्) विशेष ज्ञान को (सनुयाम) दूसरे को देवे. आप्र सेवन करें (न:) हमारे (तत्) उस विज्ञान को (मित्र:) मित्र (वरुण:) श्रेष्ठ सज्जन (अद्भित:) अन्ति क्षि (सिन्धु:) समुद्र, नदी (पृथिवी) भूमि (उत) और (द्यौ:) सूर्य्य आदि प्रकाशयुक्त लोकों का प्रकाश (मामहन्ताम्) मान से बढ़ावें॥१९॥

भावार्थ:-मनुष्यों को उचित है कि जो नित्य विद्या का देनेवाला है, इसकी सीधेपन से सेवा करके विद्याओं को पाकर मित्र, श्रेष्ठ आकाश, निदयों, भूमि और सूर्य्य आदि लोकों से उपकारों को ग्रहण करके सब मनुष्यों में सत्कार के साथ होना चाहिये, कभी विद्या छिपानी महीं किन्तु सबको यह प्रकट करनी चाहिये।।

इस सूक्त में सभा आदि के अधिपति, ईश्वर और पढ़ानेवालों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ एकता समझनी चाहिये।

यह सौवां १०० सुक्त और ग्यारहब्रॉ १९ वर्ग पूरा हुआ॥

अथास्यैकाधिकशततमस्यैकादशर्चस्य सूक्तस्याङ्गिरसः कुत्स ऋषिः। इन्द्रो देवता। १,४ निचृज्जगती। २,५,७ विराङ्जगती छन्दः। निषादः स्वरः। ३ भुरिक् त्रिष्टुप्। ६ स्वराट् त्रिष्टुप्।

८,१० निचृत् त्रिष्टुप्। ९,११ त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथ शालाध्यक्ष: कीदृश इत्युपदिश्यते॥

अब एक सौ एकवें सूक्त का प्रारम्भ है। उसके प्रथम मन्त्र में शाला का अधीश कै<mark>म्स होवे, अ</mark>ह

प्र मन्दिने पितुमदेर्चता वचो यः कृष्णगर्भा निरहेन्नुजिश्चेना। अवस्यवो वृषेणुं वर्ष्रदक्षिणं मुरुत्वेन्तं सुख्यायं हवामहे॥ १॥

प्रा मन्दिने। पितुऽमत्। अर्चत्। वर्चः। यः। कृष्णऽर्गर्भाः। निःऽअहेन्। ऋजिर्धना। अवस्यवंः। वृषणम्। वर्ज्ञऽदक्षिणम्। मुरुत्वन्तम्। सुख्यायं। हुवामहे॥ १॥

पदार्थ:-(प्र) प्रकृष्टार्थे (मन्दिने) आनन्दित आनन्दप्रदार्थ (पितुमेत्र) सुसंस्कृतमन्नाद्यम् (अर्चत) प्रदत्तेन पूजयत। अत्रान्येषामपीति दीर्घः। (वचः) प्रियं वचनम् (यः) अनूचानोऽध्यापकः (कृष्णगर्भाः) कृष्णा विलिखिता रेखाविद्यादयो गर्भा यैस्ते (निरहन्) निरुत्त हित्ते (ऋजिश्वना) ऋजवः सरलाः श्वानो वृद्धयो यस्मिन्नध्ययने तेन। अत्र श्वन्शब्दः श्विधातोः किनन्द्रत्य्यान्तो निपातित उणादौ। (अवस्यवः) आत्मनोऽवो रक्षणादिकमिच्छवः (वृषणम्) विद्यावृष्टिकर्तारम् (वज्रदक्षिणम्) वज्रा अविद्याछेदका दक्षिणा यस्मात्तम् (मरुत्वन्तम्) प्रशस्ता मरुतो विद्यावन्तं ऋत्विजोऽध्यापका विद्यन्ते यस्मिस्तम् (सख्याय) सख्यः कर्मणे भावाय वा (हवामहे) स्वीकुर्महे॥१४

अन्वय:-यूयं य ऋजिश्वनाऽविद्यात्वं भिग्रहंस्तस्मे मन्दिने पितुमद् वचः प्रार्चतावस्यवः कृष्णगर्भा वयं सख्याय यं वृषणं वज्रदक्षिणं मरुत्वन्तमध्यापकं हवामुहे ते पूर्यमि प्रार्चत॥१॥

भावार्थ:-मनुष्यैर्यस्माद्विषा ग्राह्मा से मनोवचः कर्मधनैः सदा सत्कर्त्तव्यः। येऽध्याप्यास्ते प्रयत्नेन सुशिक्ष्य विद्वांसः सम्पादनीया सर्वदा श्रेष्ठैमैंत्री संभाव्य सत्कर्मनिष्ठा रक्षणीया॥१॥

पदार्थ:-तुम लोह (यः) जो उपदेश करने वा पढ़ानेवाला (ऋजिश्वना) ऐसे पाठ से कि जिसमें उत्तम वाणियों की धारणशास्त की अनेक प्रकार से वृद्धि हो, उससे मूर्खपन को (नि, अहन्) निरन्तर हनें, उस (मन्दिने) आनन्दी पुरुष और आनन्द देनेवाले के लिये (पितुमत्) अच्छा बनाया हुआ अन्न अर्थात् पूरी, क्यौरी, लड्डू, बालूशाही, जलेबी, इमरती, आदि अच्छे-अच्छे पदार्थोंवाले भोजन और (वच:) पित्रारी बाणी को (प्रार्चत) अच्छे प्रकार निवेदन कर उसका सत्कार करो। और (अवस्थव:) अपने को रक्षा आदि व्यवहारों को चाहते हुए (कृष्णगर्भाः) जिन्होंने रेखागणित आदि विद्याओं के मर्म खोले हैं, वेहम लोग (सख्याय) मित्र के काम वा मित्रपनके लिये (वृषणम्) विद्या की वृद्धि करनेवाले (व्यवहिश्णम्) जिससे अविद्या का विनाश करनेवाली वा विद्यादि धन देनवाली दिक्षणा मिले

अष्टक-१। अध्याय-७। वर्ग-१२-१३

मण्डल-१। अनुवाक-१५। सूक्त-१०१



(मरुत्वन्तम्) जिसके समीप प्रशंसित विद्या वाले ऋत्विज् अर्थात् आप यज्ञ करें दूसरे को करतें, ऐसे पढ़ानेवाले हों उस अध्यापक अर्थात् उत्तम पढ़ानेवाले को (हवामहे) स्वीकार करते हैं, उसकी तुम लीग भी अच्छे प्रकार सत्कार के साथ स्वीकार करो॥१॥

भावार्थ:-मनुष्यों को चाहिये कि जिससे विद्या लेवें, उसका सत्कार मन, विचन, कर्म और धन से सदा करें और पढ़ानेवालों को चाहिये कि जो पढ़ाने योग्य हों, उन्हें अच्छे यहन के साथ उत्तम उत्तम शिक्षा देकर विद्वान् करें और सब दिन श्रेष्ठों के साथ मित्रभाव रख उत्तम उत्तम काम में चित्तवृत्ति की स्थिरता रक्खें॥१॥

अथ सभासेनाध्यक्षः किं कुर्यादित्युपदिश्येते॥

अब सभा और सेना का अध्यक्ष क्या करें, यह विषय अमले मेन्द्र में कहा है।।

यो व्यंसं जाहृषाणेन मन्युना यः शम्बरं यो अहुन् पिर्श्नमवृतम्

इन्द्रो यः शुष्णम्शुष् न्यावृणङ् मुरुत्वन्तं सुख्याय ह्यामुहा। २॥

यः। विऽअंसम्। जुहुषाणेनं। मुन्युनां। यः। शम्बरम्। यः। अहीन्। पिप्रुंम्। अव्वतम्। इन्द्रंः। यः। शुष्णंम्। अशुर्षम्। नि। अवृणक्। मुरुत्वेन्तम्। सुख्यायं। हुवामुहे॥ र्याः

पदार्थ:-(य:) सभासेनाध्यक्षः (व्यंसम्) विरातः अंसाः स्कन्धा यस्य तत् (जाहषाणेन) सज्जनानां सन्तोषकेन। अत्र हष तुष्टावित्स्माल्लिटः कृतन्च। तुजादित्वाद्दीर्घश्च (मन्युना) क्रोधेन (य:) शौर्यादिगुणोपेतो वीरः (शम्बरम्) अधर्मिम्बिन्धिनम्। अत्र शम्बधातोरौणादिकोऽरन् प्रत्ययः। (य:) धर्मात्मा (अहन्) हन्यात् (पिप्रुम्) उदरम्भरम्। अत्र पृधातोर्बाहुलकादौणादिकः कुः प्रत्ययः सन्वद्भावश्च। (अव्रतम्) ब्रह्मचर्यरीत्याचरणादिनियमपास्तरहितम् (इन्द्रः) सकलैश्वर्ययुक्तः (यः) अतिबलवान् (शुष्णम्) बलवन्तम् (अशुषम्) शोकरहितं हर्षितम् (नि) (अवृणक्) वर्जयेत्। अत्रान्तर्गतो ण्यर्थः। (मरुत्वनं ०) इति पूर्ववत्। स्था

अन्वय:-य इन्द्रो जाह्मणिन मेन्युना दुष्टं शत्रुं व्यंसं न्यहन्, यः शम्बरं न्यहन्, यः पिप्रुं न्यहन्, योऽव्रतमवृणक् शुष्णमशुषं मरुत्वन्तमिन्द्रं सख्याय व्यं हवामहे स्वीकुर्मः॥२॥

भावार्थः मतुष्यैर्यः प्रदीप्तेन क्रोधेन दुष्टान् हत्वा विद्योन्नतये ब्रह्मचर्यादि ब्रतानि प्रचार्याविद्याकुरिसक्षा निष्ध्य सर्वेषां सुखाय सततं प्रयतते, स एव सुहन्मन्तव्यः॥२॥

पदार्थः (ये) जो सभा सेना आदि का अधिपित (इन्द्रः) समस्त ऐश्वर्य को प्राप्त (जाहषाणेन) सज्जनों की सन्तोष देनेवाले (मन्युना) अपने क्रोधों से दुष्ट और शत्रुजनों को (व्यंसम्, नि, अहन्) ऐसा मार्रे कि जिससे कन्धा अलग हो जाये वा (यः) जो शूरता आदि गुणों से युक्त वीर (शम्बरम्) अधर्म से

सम्बन्ध करनेवाले को अत्यन्त मारे वा (य:) धर्मात्मा सज्जन पुरुष (पिप्रुम्) जो कि अधर्मी अपना पेट भरता उसको निरन्तर मारे और (य:) जो अति बलवान् (अव्रतम्) जिसके कोई नियम नहीं अर्थात् ब्रह्मचर्य, सत्यपालन आदि व्रतों को नहीं करता उसको (अवृणक्) अपने से अलग करे, उस (भूष्णम्) बलवान् (अशुषम्) शोकरहित हर्षयुक्त (मरुत्वन्तम्) अच्छे प्रशंसित पढ़नेवालों को स्वनेहारे सकल ऐश्वर्ययुक्त सभापित को (सख्याय) मित्रों के काम वा मित्रपन के लिये हम लोग (हवामहे) स्वीकार करते हैं॥२॥

भावार्थ:-मनुष्यों को चाहिये कि जो चमकते हुए क्रोध से दुष्टों को मारकर बिद्या की उन्निति के लिये ब्रह्मचर्यादि नियमों को प्रचारित और मूर्खपन और खोटी सिखावटों को रोक के सबके सुखके लिये निरन्तर अच्छा यत्न करे, वही मित्र मानने योग्य है॥२॥

अथेश्वरसभाध्यक्षौ कीदृशगुणावित्युपदिश्यते।।

अब ईश्वर और सभाध्यक्ष कैसे-कैसे गुणवाले होते हैं, यह विषये अगले मन्त्र में कहा है।।

यस्य द्यावापृथिवी पौंस्यं महद् यस्य वृते वर्मणो धस्य पूर्यं।

यस्येन्द्रस्य सिन्धवः सर्श्वति वृतं मुरुत्वन्तं सुख्याय ह्रवामेहै॥३॥

यस्य। द्यावापृथिवी इति। पौंस्यम्। महत्। यस्य द्वेते। वर्ष्णः। यस्य। सूर्यः। यस्य। इन्द्रंस्य। सिन्धर्वः। सर्थित। वृतम्। मुरुत्वन्तम्। सुख्यायं। हुवामुहु॥३॥

पदार्थ:-(यस्य) (द्यावापृथिवी) प्रकाश्चभूमी इव क्ष्मान्यायप्रकाशो (पौंस्यम्) पुरुषार्थयुक्तं बलम् (महत्) महोत्तमगुणविशिष्टम् (यस्य) (व्रहे) सामर्थ्ये शीले वा (वरुण:) चन्द्र एतद्गुणो वा (यस्य) (सूर्य्य:) सवितृलोक:। एतद्गुणो वा (यस्य) (इन्द्रस्य) परमैश्चर्यवतो जगदीश्वरस्य सभाध्यक्षस्य वा (सिन्धव:) समुद्राः (सश्चति) प्राप्नोति। सश्चति गतिकम्मा। (निघं०२.१४) (व्रतम्) सामर्थ्यं शीलं वा (मरुत्वन्तम्) सर्वप्राणियुक्तमृत्विग्युक्तं चा। अन्यत्पूर्ववत्॥३॥

अन्वयः-वयं यस्येन्द्रस्य वृते महत्पौंस्यमस्ति यस्य द्यावापृथिवी यस्य व्रतं वरुणो यस्य व्रतं सूर्य्यः सिन्धवश्च सश्चति, तं मरुत्वन्तं सख्याय क्वामहे॥३॥

भावार्थ:-अत्र स्त्रीपलङ्कार:। मनुष्या यस्य सामर्थ्येन विना पृथिव्यादीनां स्थितिर्न संभवतीति, यस्य सभाद्यध्यस्य प्रकाशविद्वद्या पृथिवीवत् क्षमा चन्द्रवच्छान्तिः सूर्य्यवन्नीतिप्रदीप्तिः समुद्रवद् गाम्भीर्यं वर्तते तं विह्ययाऽन्यं सुहृदं नैव कुर्य्यु:॥३॥

पदार्थ: इस लोग (यस्य) जिस (इन्द्रस्य) परमैश्वर्य्यवान् जगदीश्वर वा सभाध्यक्ष राजा के (व्रते) सामर्थ्य शील में (महत्) अत्यन्त उत्तम गुण और (पौंस्यम्) पुरुषार्थयुक्त बल है (यस्य) जिसका (द्याव्यापृथिवा) सूर्य्य और भूमि के सदृश सहनशीलता और नीति का प्रकाश वर्त्तमान है (यस्य) जिसके (वित्तम्) सामर्थ्य वा शील को (वरुण:) चन्द्रमा वा चन्द्रमा का शान्ति आदि गुण (यस्य) जिसके सामर्थ्य

अष्टक-१। अध्याय-७। वर्ग-१२-१३

मण्डल-१। अनुवाक-१५। सूक्त-१०१



वा शील को (सूर्य:) सूर्यमण्डल वा उसका गुण (सश्चित) प्राप्त होता और (सिन्धव:) समुद्ध प्राप्त होते हैं, उस (मरुत्वन्तम्) समस्त प्राणियों से और समय-समय पर यज्ञादि करनेहारों से युक्तू सभाध्यक्ष की (सख्याय) मित्र के काम वा मित्रपन के लिये (हवामहे) स्वीकार करते हैं॥३॥

भावार्थ: -इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि जिस परमेश्न्र के सामध्ये के विना पृथिवी आदि लोकों की स्थिति अच्छे प्रकार नहीं होती तथा जिस सभाध्यक्ष के स्वभाव और वर्तांव की प्रकाश के समान विद्या, पृथिवी के समान सहनशीलता, चन्द्रमा के तुल्य शान्ति, सूर्य्य के तुल्य नीति का प्रकाश और समुद्र के समान गम्भीरता है, उसको छोड़के और को अपना (मूत्र/न करें)। ३॥

अथ सभाध्यक्षः कीदृश इत्युपदिश्यते॥

अब सभाध्यक्ष कैसा होता, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यो अश्वानां यो गवां गोपितर्वृशी य अर्ितः कर्मणिकर्मणि स्थिरः। वीळोश्चिदिन्द्रो यो असुन्वतो वृधो मुरुत्वन्तं सुख्याये ह्यामहै॥४॥

यः। अश्वानाम्। यः। गर्वाम्। गोऽपतिः। वृशी। यः। आर्रितः। कर्मणिऽकर्मणि। स्थिरः। वीळोः। चित्। इन्द्रंः। यः। असुन्वतः। वृधः। मुरुत्वन्तम्। सुख्यायं। हुन्मुपुहे॥ ४॥

पदार्थ:- (य:) सभाद्यध्यक्षः (अश्चानाप) तुरुङ्गुनाम् (य:) (गवाम्) गवां पृथिव्यादीनां वा (गोपितः) गवां स्वेषामिन्द्रियाणां स्वामी (वशी) कर्शे कर्तुं शीलः (य:) (आरितः) सभया विज्ञापितः (कर्मणिकर्मणि) क्रियायां क्रियायाम् (स्थिर्) निश्चलप्रवृत्तिः (वीळोः) बलवतः (चित्) इव (इन्द्रः) दुष्टानां विदारियता (य:) (असुन्वतः) यज्ञकर्तुं क्रिरोधिनः (वधः) वज्र इव। वध इति वज्रनामसु पठितम्। (निघं० २.२०) (मरुत्वन्तं०) इदि पूर्ववता। ४॥

अन्वयः-य इन्द्रः सभावश्चिक्षोऽश्वानामधिष्ठोता यो गवां रक्षकः यो गोपतिर्वश्यारितः सन् कर्मणिकर्मणि स्थितो भवेद्योऽसुन्वतो वीळोर्वधश्चिद्धन्ता स्यात् तं महत्त्वन्तं सख्याय वयं हवामहे॥४॥

भावार्थ:-अत्र जार्चकलुप्लीपमालङ्कार:। मनुष्यैर्य: सर्वपालको जितेन्द्रिय: शान्तो यत्र यत्र सभयाऽऽज्ञापितस्त्रस्मिन्नेव कर्मणि स्थिरबुद्ध्या प्रवर्त्तमानो दुष्टानां बलवतां शत्रूणां विजयकर्त्ता वर्त्तते तेन सह स्रतित मित्रता संभाव्य सुखानि सदा भोक्तव्यानि॥४॥

पदार्थ: (यः) जो (इन्द्रः) दुष्टों का विनाश करनेवाला सभा आदि का अधिपति (अश्वानाम्) घोड़ों कू अध्यक्ष (प्रः) जो (गवाम्) गौ आदि पशु वा पृथिवी आदि की रक्षा करनेवाला (यः) जो (गोपतिः) अपनी इन्द्रियों का स्वामी अर्थात् जितेन्द्रिय होकर अपनी इच्छा के अनुकूल उन इन्द्रियों को चुलाने (नशीं) और मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार को यथायोग्य वश में रखनेवाला (आरितः) सभा से

आज्ञा को प्राप्त हुआ (कर्मणिकर्मणि) कर्म-कर्म में (स्थिर:) निश्चित (य:) जो (असुन्वत:) यज्ञकत्तीओं से विरोध करनेवाले (वीळो:) बलवान् को (वध: चित्) वज्र के तुल्य मारनेवाला हो, उस (मुक्त्वन्तम्) अच्छे प्रशंसित पढ़ानेवालों को राखनेहारे सभापित को (सख्याय) मित्रता वा मित्र के काप के लिये (हवामहे) हम स्वीकार करते हैं॥४॥

भावार्थ:-यहाँ वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि जो सबकी पालनी करनेवाला जितेन्द्रिय, शान्त और जिस-जिस कर्म में सभा की आज्ञा को पावे, उसी-उसी कर्म में स्थिरबुद्धि से प्रवर्तमान, बलवान्, दुष्ट शत्रुओं को जीतनेवाला हो, उसके साथ निरन्तर क्रियता की संभावना करके सुखों को सदा भोगें॥४॥

अथ सेनाध्यक्ष: कीदृश इत्युपिदश्यते।। अब सेनाध्यक्ष कैसा होता है, यह विषय अगले मम्त्र में कहातहै।

यो विश्वस्य जर्गतः प्राणतस्पतियों ब्रह्मणे प्रथमो गा अबिन्दत्। इन्ह्रो यो दस्यूँ रर्धराँ अवातिरन्मु रुत्वन्तं सुख्याये ह्वामहे। प्रा

यः। विश्वस्य। जर्गतः। प्राणतः। पतिः। यः। ब्रह्मणी प्रिथमः। गाः। अविन्दत्। इन्द्रेः। यः। दस्यून्। अर्धरान्। अवुऽअतिरत्। मुरुत्वन्तम्। सुख्याये। हुवामुहे॥ प्रा

पदार्थ:- (य:) सेनापितः (विश्वस्य) समग्रस्य (जग्रतः) जङ्गमस्य (प्राणतः) प्राणतो जीवतः। अत्र षष्ट्याः पितपुत्र०। (अष्टा०८.३.५३) इति विसर्जेष्णीयस्य सः। (पितः) अधिष्ठाता (यः) प्रदाता (ब्रह्मणे) चतुर्वेदविदे (प्रथमः) सर्वस्य प्रथमित्रो। अत्र प्रथरमच्। (उणा०५.६८) (गाः) पृथिवीरिन्द्रियाणि प्रकाशयुक्तान् लोकान् वा (अविन्दन्) प्राप्निति (इन्द्रः) इन्द्रियवान् जीवः (यः) शौर्यादिगुणयुक्तः (दस्यून्) सहसा परपदार्थहर्त्तृन् (अधराप्) नीचान् (अवातिरत्) अधः प्रापयित (मरुत्वन्त०) इति पूर्ववत्॥५॥

अन्वय:-यः प्रथम इन्द्रे जहाणे गा अवित्तंत्। यो दस्यूनधरानवातिरत्। यो विश्वस्य जगतः प्राणतस्पतिर्वत्तते, तं मरुत्वन्तं सख्याय वयं हवामहापूर्ण

भावार्थ:-पुरुषार्थेन विद्याऽन्नधनप्राप्तिर्न जायते शत्रुपराजयश्च। यो धार्मिकः सेनाध्यक्षः सुहृद्भावेन स्वप्राण्यत् सर्वान् प्राणयति, तस्य कदाचित्खलु दुःखं न जायते तस्मादेतत्सदाचरणीयम्॥५॥

पदार्थः (कः) जो उत्तमदानशील (प्रथमः) सबका विख्यात करनेवाला (इन्द्रः) इन्द्रियों से युक्त जीव (ज्ञहाणे) चारों वेदों के जाननेवाले के लिये (गाः) पृथिवी, इन्द्रियों और प्रकाशयुक्त लोकों को (अविन्दत्) प्राप्त होता वा (यः) जो शूरता आदि गुणवाला वीर (दस्यून्) हठ से औरों का धन हरनेवालों को (अधरान्) नीचता को प्राप्त कराता हुआ (अवातिरत्) अधोगित को पहुंचाता वा (यः) जो स्नेनिधिपति (विश्वस्य) समग्र (जगतः) जङ्गमरूप (प्राणतः) जीवसमूह का (पितः) अधिपित अर्थात्

अष्टक-१। अध्याय-७। वर्ग-१२-१३

मण्डल-१। अनुवाक-१५। सूक्त-१०१



स्वामी हो, उस (मरुत्वन्तम्) अपने समीप पढ़ानेवालों को रखनेवाले सभाध्यक्ष को हम लोग (सख्याय) मित्रपन के लिये (हवामहे) स्वीकार करते हैं॥५॥

भावार्थ:-पुरुषार्थ के विना विद्या, अन्न और धन की प्राप्ति तथा शत्रुओं का पराष्ट्रिय नहीं हो सकता, जो धार्मिक सेनाध्यक्ष सुहृद्भाव से अपने प्राण के समान सबको प्रसन्न करता है, उस पुरुष को निश्चय है कि कभी दु:ख नहीं होता, इससे उक्त विषय का आचरण सदा करना विद्याप।

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा हो, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है।

यः शूरेभिर्हव्यो यश्च भीरुभिर्यो धाविद्धिर्हूयते यश्च जिग्युभिः। इन्द्रं यं विश्वा भुवनाभि संदुधुर्मुरुत्वनं सुख्यायं हुवामहे॥ ६॥ १२॥

यः। शूरेभिः। हव्यः। यः। चा भी्रुक्तिः। यः। धार्वत्ऽभिः। ह्यते। यः। चा जिग्युऽभिः। इन्द्रेम्। यम्। विश्वा। भुवना। अभि। सम्ऽद्धः। मुरुत्वन्तम्। सुख्याया। हुवामुद्वे। ह्या

पदार्थ:-(य:) सेनाध्यक्षः (शूरेभिः) शूर्जिरः (ह्व्यं) आहवनीयः (य:) (च) निर्भयैः (भीरुभिः) कातरैः (य:) (धावद्धिः) वेगवद्धिः (ह्यते) स्पद्ध्यते (य:) (च) आसीनैर्गच्छद्भिर्वा (जिग्युभिः) विजेतृभिः (इन्द्रम्) परमैश्वर्य्यवन्तृं सनाध्यक्षम् (यम्) (विश्वा) अखिलानि (भुवना) लोकाः प्राणिनश्च (अभि) आभिमुख्ये (संद्धुः) संदृक्षति (मरुत्वन्तं ०) इति पूर्ववत्॥६॥

अन्वय:-य इन्द्रः शूरेभिर्हव्यो यो भीष्टिश्चि यो धाविद्धिर्द्यते यश्च जिग्युभिर्यमिन्द्रं विश्वा भुवनाभिसंदधुस्तं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे॥६॥

भावार्थ:-यः परमात्मा सेनाधीशश्चे सर्वांल्लोकान् सर्वतो मेलयति स सर्वैः सेवनीयः सुहृद्भावेन मन्तव्यश्च॥६॥

पदार्थ:-(य:) जो परमेश्वर्यताम् सेना आदि का अधिपति (शूरेभि:) शूरवीरों से (हव्य:) आह्वान करने अर्थात् चाहने योग्य (य) जो (भीरुभि:) डरनेवालों (च) और निर्भयों से तथा (य:) जो (धावद्धि:) दौड़ते हुए मनुष्यों से वा (य:) जो (च) बैठे और चलते हुए उनसे (जिग्युभि:) वा जीतनेवालो लोगों से (हूयते) बुलाया जाता वा (यम्) जिस (इन्द्रम्) उक्त सेनाध्यक्ष को (विश्वा) समस्त (भुवना) लोकस्थ प्राणी (अभि) सम्मुखता से (संदधु:) अच्छे प्रकार धारण करते हैं, उस (मरुत्वन्तम्) अच्छे पृद्धानवालों को रखनेहारे सेनाधीश को (सख्याय) मित्रपन के लिये हम लोग (हवामहे) स्वीकार करते हैं, उसको तुम भी स्वीकार करो॥६॥

भावार्थ:-जो परमात्मा और सेना का अधीश सब लोकों का सब प्रकार से मेल करता है, व सबको सेवन करने और मित्रभाव से मानने के योग्य है॥६॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा है, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

रुद्राणामिति प्रदिशा विचक्ष्णो रुद्रेभियोंषा तनुते पृथु ज्रयः। इन्द्रं मनीषा अभ्यर्चिति श्रुतं मुरुत्वन्तं सुख्यायं हवामहे॥७॥

रुद्राणांम्। एति। प्रऽदिशां। विऽच्क्ष्मणः। रुद्रेभिः। योषां। तनुते। पृथु। र्ज्रयः। इन्द्रम्। मुनीषा। अभि। अर्चिति। श्रुतम्। मुरुत्वन्तम्। सुख्यायं। हुवामुहे॥७॥

पदार्थ:-(रुद्राणाम्) प्राणानामिव दुष्टान् श्रेष्ठांश्च रोदियताम् (र्गत) प्राच्निति (प्रिदिशा) प्रदेशेन ज्ञानमार्गेण। अत्र घञ्चे किवधानिमिति कः सुपां सुलुगित्यक्तरादेशश्च। (विचक्षणः) प्रशस्तचातुर्यादिगुणोपेतः (रुद्रेभिः) प्राणैर्विद्यार्थिभिः सह (श्रीषा) विद्याभिर्मिश्रिताया अविद्याभिः पृथग्भृतायाः स्त्रियाः। अत्र युधातोर्बाहुलकात् कर्मणि सः प्रत्ययः। (तन्ते) विस्तृणाति (पृथु) विस्तीर्णम्। प्रिथभिदिभ्रस्जां संप्रसारणं सलोपश्च। (उणा०१.२८) इति प्रथधानाः कः प्रत्ययः संप्रासरणं च। (ज्रयः) तेजः (इन्द्रम्) शालाद्यधिपतिम् (मनीषा) मनीषया प्रशस्तबुद्धया। अत्र सुपां सुलुगिति तृतीयाया एकवचनस्याकारादेशः। (अभि) (अर्चित) सत्करोति (श्रुतम्) प्रख्यातम् (मरुत्वनतं०) इति पूर्ववत्॥७॥

अन्वय:-विचक्षणो विद्वान् रुद्राणां प्रदिशा/पूष्ट्र जय प्रति रुद्रेभिर्योषा तत्तनुते चातो यो विचक्षणो मनीषा श्रुतिमन्द्रमभ्यर्चित तं मरुत्वन्तं सख्याय वयं हवामहिं। अ।

भावार्थ:-यैर्मनुष्यै: प्राणायामै; प्राणान् सोकारण श्रेष्ठान् तिरस्कारेण दुष्टान् विजित्य सकला विद्या विस्तार्य्य परमेश्वरमध्यापकं वाभ्यर्च्योपकारेण सर्वे प्राणिन: सित्क्रियन्ते ते सुखिनो भवन्ति॥७॥

पदार्थ:-(विचक्षण:) प्रश्नित चतुराई आदि गुणों से युक्त विद्वान् (फद्राणाम्) प्राणों के समान बुरे-भलों को रुलाते हुए विद्वानों के (प्रिदेशा) ज्ञानमार्ग से (पृथु) विस्तृत (ज्ञयः) प्रताप को (एति) प्राप्त होता है और (फट्रेभि:) प्रण्क का छोड़े छोटे विद्यार्थियों के साथ (योषा) विद्या से मिली और मूर्खपन से अलग हुई स्त्री उसको (तपुते) विस्तारती है, इससे जो विचक्षण विद्वान् (मनीषा) प्रशंसित बुद्धि से (श्रुतम्) प्रख्यात (इन्द्रम्) श्राला आदि के अध्यक्ष का (अभ्यर्चित) सब ओर से सत्कार करता, उस (मरुत्वन्तम्) अपने समीप पढ़ानेवालों को रखनेवाले को (सख्याय) मित्रपन के लिये हम लोग (हवामहे) स्विकार करते हैं॥७॥

भावार्थ:-जिन मनुष्यों से प्राणायामों से प्राणों को, सत्कार से श्रेष्ठों और तिरस्कार से दुष्टों को वश् में कर समस्त विद्याओं को फैलाकर परमेश्वर वा अध्यापक का अच्छे प्रकार मान-सत्कार करके उपकार के साथ सब प्राणी सत्कारयुक्त किये जाते हैं, वे सुखी होते हैं॥७॥

अष्टक-१। अध्याय-७। वर्ग-१२-१३

मण्डल-१। अनुवाक-१५। सूक्त-१०१

अथ शालाध्यक्षः कीदृश इत्युपदिश्यते॥

अब शाला आदि का अधिपति कैसा है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

यद्वा मरुत्वः पर्मे सुधस्थे यद्वविमे वृजने मादयसि।

अतु आ योद्यध्वरं नो अच्छो त्वाया हुविश्चेकृमा सत्यराधः॥८॥

यत्। वा। मुफ़त्वः। पुरमे। सुधऽस्थे। यत्। वा। अवमे। वृजने। मादयसि। अर्तः। आ। सुहि। अध्वरम्। नः। अच्छे। त्वाऽया। हुविः। चुकृम्। सुत्युऽराधः॥८॥

पदार्थ:-(यत्) यतः (वा) उत्तमे (मरुत्वः) प्रशस्तविद्यायुक्तः (परमें) अत्यन्तोत्कृष्टे (सधस्थे) स्थाने (यत्) यः (वा) मध्यमे व्यवहारे (अवमे) निकृष्टे (वृजने) वर्जन्ति कुःखानि जना यत्र तस्मिन् व्यवहारे (मादयासे) हर्षयसे। लेट्प्रयोगोऽयम्। (अतः) कारण्यत् (आः) (याहि) प्राप्नुयाः (अध्वरम्) अध्ययना- ध्यापनाख्यमहिंसनीयं यज्ञम् (नः) अस्माकम् (अच्छे) उत्तमरीत्या। अत्र निपातस्य चेति दीर्घः। (त्वाया) त्वया सुपां सुलुगिति तृतीयास्थानेऽयानिकृशः। (ह्विः) आदेयं विज्ञानम् (चकृम) कुर्याम। अत्रान्येषामपीति दीर्घः। (सत्यराधः) सत्यानि ग्रधासि विद्यीद्धनानि यस्य तत्सम्बुद्धौ॥८॥

अन्वय:-हे मरुत्व: सत्यराधो विद्वान्! यद्यतस्त्वं परमे संधरधे यद्यतो वाऽवमे वा वृजने व्यवहारे मादयासेऽतो नोऽस्माकमध्वरमच्छायाहि त्वया सह वर्त्तमाना वयं हिन्स्चिकमार्टा

भावार्थः-मनुष्यैर्यो विद्वान् सर्वत्राचन्दयिता विद्याप्रदाता सत्यगुणकर्मस्वभावोऽस्ति, तत्सङ्गेन सततं सर्वा विद्याः सुशिक्षाश्च प्राप्य सर्वदासिन्दितिष्यम्।) ८॥

पदार्थ:-हे (मरुत्व:) प्रशंसित विद्यायुक्त (सत्यराध:) विद्या आदि सत्यधनों वाले विद्वान्! (यत्) जिस कारण आप (परमे) अत्यन्त उत्कृष्ट (सधस्थे) स्थान में और (यत्) जिस कारण (वा) उत्तम (अवमे) अधम (वा) वा मध्यम व्यवहार में (वृजने) कि जिसमें मनुष्य दु:खों को छोड़ें (मादयासे) आनन्द देते हैं, (अत:) इस कारण (मर) हम लोगों के (अध्वरम्) पढ़ने-पढ़ाने के अहिंसनीय अर्थान् न छोड़ने योग्य यज्ञ को (अच्च) अच्छे प्रकार (आ, याहि) आओ प्राप्त होओ (त्वाया) आपके साथ हम लोग (हिव:) ग्रहण करने योग्य विशेष ज्ञान को (चक्रम) करें अर्थात् उस विद्या को प्राप्त होवें॥८॥

भावार्थ: मनुष्यों की चाहिये कि जो विद्वान् सर्वत्र आनन्दित कराने और विद्या का देनेहारा सत्यगुण, कर्म और स्वभावयुक्त है, उसके संग से निरन्तर समस्त विद्या और उत्तम शिक्षा को पाकर सर्वदा आनन्दित होवें॥८॥

पुनस्तत्सङ्गेन किं कार्यं स चास्माकं यज्ञे किं कुर्यादित्युपदिश्यते॥

फिर उसके सङ्ग से क्या करना चाहिये और वह हम लोगों के यज्ञ में क्या करे, यह विषय

१०९२

ऋग्वेदभाष्यम् अगले मन्त्र में कहा है॥

त्वायेन्द्र सोमं सुषुमा सुदक्ष त्वाया ह्विश्चंकृमा ब्रह्मवाहः। अर्धा नियुत्वः सर्गणो मुरुद्धिरस्मिन् युज्ञे बुर्हिषि मादयस्व॥९॥

त्वाऽया। इन्द्र। सोर्मम्। सुसुम्। सुऽदुक्ष्। त्वाऽया। हुविः। चकुम्। बृह्यऽवाहुः। अर्थ। नियुत्वेः। संऽर्गणः। मुरुत्ऽभिः। अस्मिन्। युज्ञे। बुर्हिषि। माद्वयस्व॥९॥

पदार्थ:-(त्वाया) त्वया सिहताः (इन्द्रः) परमिवद्यैश्वर्ययुक्त (सोम्स्) ऐश्वर्यकारकं वेदशास्त्रबोधम् (सुसुम) सुनुयाम प्राप्नुयाम। वाच्छन्दिस सर्वे विधयो भवन्तितिङभावः। अन्येषामपीति दीर्घश्च। (सुदक्ष) शोभनं दक्षं चातुर्य्ययुक्तं बलं यस्य तत्सम्बुद्धौ। (त्वाया त्व्या सह संयुक्ताः (हविः) क्रियाकौशलयुक्तं कर्म (चकृम) विदध्याम। अत्राप्यन्येषामपि दृश्यते इति दीर्घः (ब्रह्मवाहः) अनन्तधन वेदविद्याप्रापक (अध) अथ। अत्र वर्णव्यत्ययेन धकारो निपातस्य चेति वीर्घश्च। (नियुत्वः) समर्थ (सगणः) गणैर्विद्यार्थिनां समूहैः सह वर्तमानः (मरुद्धः) ऋत्विभिः सिहतः (अस्मिन्) प्रत्यक्षे (यज्ञे) अध्ययनाध्यापनसत्कारप्राप्ते व्यवहारे (बर्हिषि) अत्युत्तमे (मृद्धस्व) अमृनन्दय हर्षितो वा भव॥९॥

अन्वयः-हे इन्द्र! त्वाया त्वया सह वर्त्तमाना वयं सोमं सुसूम। हे सुदक्ष! ब्रह्मवाहस्त्वाया त्वया सहिता वयं हविश्चकृम। हे नियुत्वोऽधाथा मरुद्धिः सहितः सगणस्त्वामस्मिन् वर्हिषि यज्ञेशस्मान् मादयस्व॥९॥

भावार्थ: - निह विदुषां सङ्गेन विना कश्चित् खलु विद्वेश्वर्य्यमानन्दं च प्राप्तुं शक्नोति, तस्मात्सर्वे मनुष्या विदुष: सदा सत्कृत्यैतेभ्यो विद्यासुशिक्षाः प्राप्य सर्जूथा सत्कृता भवन्तु॥९॥

पदार्थ: -हे (इन्द्र) परम विद्यारूपी एक्ट्रर्य से प्रुक्त विद्वान्! (त्वाया) आपके साथ हुए हम लोग (सोमम्) ऐश्वर्य करनेवाले वेदशास्त्र के किथ को (सुसुम) प्राप्त हों। हे (सुदक्ष) उत्तम चतुराईयुक्त बल और (ब्रह्मवाहः) अनन्तधन तथा वेद्दविद्या की प्राप्ति करानेहारे विद्वान्! (त्वाया) आपके सहित हम लोग (हिवः) क्रियाकौशलयुक्त काम का (चक्रमे) विधान करें। हे (नियुत्वः) समर्थ! (अधा) इसके अनन्तर (मरुद्धिः) ऋत्विज् अर्थात् पद्धानेवालों और (भगणः) अपने विद्यार्थियों के गोलों के साथ वर्तमान आप (अस्मिन्) इस (बर्हिषि) अत्यन्त उत्तम (यज्ञे) पढ़ने-पढ़ाने के सत्कार से पाये हुए व्यवहार में (मादयस्व) आनन्दित होओ क्षीर हम लोगों को आनन्दित करो॥९॥

भावार्थ: विद्वानों के सँग के विना निश्चय है कि कोई ऐश्वर्य्य और आनन्द को नहीं पा सकता है, इससे सब मनुष्यों विद्वानों का सदा सत्कार कर इनसे विद्या और अच्छी-अच्छी शिक्षाओं को प्राप्त होकर सब प्रकार से सत्कार चुक्त होवें॥९॥

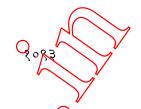
पुन: सेनाध्यक्ष: किं कुर्यादित्युपदिश्यते॥

फिर सेना आदि का अध्यक्ष क्या करें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

मादयस्व हरिभिर्ये तं इन्द्र वि ष्यंस्व शिष्रे वि संजस्व धेने।

अष्टक-१। अध्याय-७। वर्ग-१२-१३

मण्डल-१। अनुवाक-१५। सूक्त-१०१



आ त्वा सुशिष्र हर्रयो वहन्तूशन्हुव्यानि प्रति नो जुषस्व॥१०॥

मादर्यस्व। हरिंऽभिः। ये। ते। इन्द्र। वि। स्युस्व। शिष्ठे इतिं। वि। सृजुस्व। धेने इतिं। आर्यत्वा। सुऽश्रिप्र। हर्रयः। वृहुन्तु। उुशन्। हुव्यानिं। प्रतिं। नुः। जुषुस्वु॥ १०॥

पदार्थ:-(मादयस्व) हर्षयस्व (हरिभि:) प्रशस्तैर्युद्धकुशलैः सुशिक्षितैरश्वम्दिभिः (ये) ते तव (इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त सेनाधिपते (वि, ष्यस्व) स्वराज्येन विशेषतः प्राप्नुह्नि (श्विप्रे) सर्वसुखप्रापिके द्यावापृथिव्यौ। शिप्रे इति पदनामसु पठितम्। (निघं०४.१) (विमृजस्व) (धेने) धेनावत्सर्वानन्दरसप्रदे (आ) (त्वा) त्वाम् (सुशिप्र) सुष्ठु सुखप्रापक (हरयः) अश्वादयः (वहन्तु प्राप्यन्तु (उशन्) कामयमानः (हव्यानि) आदातुं योग्यानि युद्धादिकार्य्याणि (प्रति) (नः) अस्मान् (गुपस्ब) प्राप्यनिह ॥१०॥

अन्वय:-हे सुशिप्र इन्द्र! ये ते तव हरयः सन्ति तैर्हिरिभिर्नोऽस्मान् मादेशस्व। शिप्र धेने विष्यस्व विसृजस्व च। ये हरयस्त्वा त्वामावहन्तु यैरुशन्कामयमानस्त्वं हव्यानि जुषसे तान् प्रति क्षीऽस्माञ्जषस्त्रा।१०॥

भावार्थ:-सेनाधिपतिना सर्वाणि सेनाङ्गानि पूर्णब्लानि सुशिक्षितानि साधियत्वा सर्वान् विघ्नान् निवार्य्य स्वराज्यं सुपाल्य सर्वाः प्रजाः सततं रञ्जयितव्याः॥१०॥)

पदार्थ:-हे (मुशिप्र) अच्छा सुख पहुंचानेवलि (इन्ह्र) मरमैश्वर्य्ययुक्त सेना के अधीश! (ये) जो (ते) आपके प्रशंसित युद्ध में अतिप्रवीण और इतमता से चालें सिखाये हुए घोड़े हैं, उन (हरिभि:) घोड़ों से (न:) हम लोगों को (मादयस्व) अनिन्दित कीजिये (शिप्रे) और सर्व सुखप्राप्ति कराने तथा (धेने) वाणी के समान समस्त आनन्दरस् के देनेहारे आकाश और भूमि लोक को (वि घ्यस्व) अपने राज्य से निरन्तर प्राप्त हो (विसृजस्व) और छोड़ अर्थात् वृद्धावस्था में तप करने के लिये उस राज्य को छोड़ दे, जो (हरय:) घोड़े (त्वाप्र) आपको (आ, वहन्तु) ले चलते हैं वा जिनसे (उशन्) आप अनेक प्रकार की कामनाओं को करते हुए (हव्यानि) ग्रहण करने योग्य युद्ध आदि के कामों को सेवन करते हैं, उन कामों के प्रति (न:) हम् लीगों को (जृषस्व) प्रसन्न कीजिये॥१०॥

भावार्थ:-सेनापित की किसिना के समस्त अङ्गों को पूर्ण बलयुक्त और अच्छी-अच्छी शिक्षा दे, उनके युद्ध के योग्य पिद्ध कर, समस्त विघ्नों की निवृत्ति कर और अपने राज्य की उत्तम रक्षा करके सब प्रजा की निरन्तर आनन्दित करे॥१०॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

मुहत्स्तोत्रस्य वृजनस्य गोपा वयमिन्द्रेण सनुयाम् वाजम्।

त्रज्ञो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः॥११॥१३॥

मुरुत्ऽस्तोत्रस्य। वृजर्नस्य। गोपाः। वयम्। इन्द्रेण। सुनुयाम्। वार्जम्। तत्। नुः। मित्रः। वर्र्णः। मुमुहुन्ताम्। अर्दितिः। सिन्धुः। पृथिवी। उत। द्यौः॥११॥

पदार्थ:-(मरुत्स्तोत्रस्य) मरुतां वेगादिगुणै: स्तुतस्य (वृजनस्य) दु:खवर्जितस्य (व्याहरस्य) (गोपा:) रक्षक: (वयम्) (इन्द्रेण) ऐश्वर्य्यप्रदेन सेनापतिना सह वर्त्तमाना: (सनुयाम) संभजेमिह । अत्र विकरणव्यत्यय:। (वाजम्) संग्रामम् (तत्) तस्मात् (न:) अस्मान् (मित्रो वरु०) इति पूर्ववत्। ११॥

अन्वय:-यो मरुत्स्तोत्रस्य वृजनस्य गोपा सेनाधिपतिरस्ति तेनेन्द्रेणैश्वर्यप्रदेन सह द्वर्समाना वयं पतो वाजं सनुयाम तन्मित्रो वरुणोऽदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौर्नोऽस्मान् मामहन्तां सत्कारहेतवः स्युःग्रिथ्शः॥

भावार्थ:-न खलु संग्रामे केषांचित् पूर्णबलेन सेनाधिपतिना विना शत्रुपराजयो भवितुं शक्य:। नैव किल कश्चित् सेनाधिपति: सुशिक्षितया पूर्णबलया साङ्गोपाङ्गया हृष्टपुष्ट्या सेनेष्म विना शत्रून् विजेतुं राज्यं पालियतुं च शक्नोति। नैतावदन्तरेण मित्रादय: सुखकारका भिवतुं योग्यास्तस्मादेतत्सर्वं सर्वेर्मनुष्येर्यथावन्मन्तव्यमिति॥११॥

अत्रेश्वरसभासेनाशालाद्यध्यक्षाणां गुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसून्त्वार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति बोद्धव्यम्॥

इत्येकाधिकशततमं १०१ सूक्तं त्रयोदशी १३ वर्गेध समाप्त:॥

पदार्थ:-जो (मरुस्तोत्रस्य) पवन आदि के वेगादि पूर्णों से प्रशंसा को प्राप्त (वृजनस्य) और दु:खवर्जित अर्थात् जिसमें दु:ख नहीं होता, उस क्विहार का (गोपा:) रखनेवाला सेनाधिपित है, उस (इन्द्रेण) ऐश्वर्य के देनेवाले सेनापित के साथ वर्तामान (व्याप) हम लोग जिस कारण (वाजम्) संग्राम का (सनुयाम) सेवन करें (तत्) इस कारण (मित्रद्ध) मित्र (वर्षणः) उत्तम गुणयुक्त जन (अदितिः) समस्त विद्वान् मण्डली (सिन्धुः) समुद्र (पृथिवी) पृथिवी (उत्त) और (द्यौः) सूर्यलोक (नः) हम लोगों के (मामहन्ताम्) सत्कार करने के हेतु हों॥१९॥

भावार्थ:-निश्चय है कि संग्राम में किसी पूर्णबली सेनाधिपित के विना शत्रुओं का पराजय नहीं हो सकता और न कोई सेनाधिपित अच्छी शिक्षा की हुई पूर्ण, बल, अङ्ग और उपाङ्ग सहित आनिन्दत और पृष्ट सेना के विना शत्रुओं के जीतने वा राज्य की पालना करने को समर्थ हो सकता है। न उक्त व्यवहारों के विना मित्र आदि सुख करने के योग्य होते हैं, इससे उक्त समस्त व्यवहार सब मनुष्यों को यथावत् मानना चाहिये।

इस सूक्त में ईश्वर, सभी, सेना और शाला आदि के अधिपतियों के गुणों का वर्णन है। इससे इस सूक्तार्थ की प्रूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये॥

यह एकसौ एकवां १०१ सूक्त और तेरहवां १३ वर्ग समाप्त हुआ॥

अथ द्व्यधिकशततमस्यैकादशर्चस्य सूक्तस्याङ्गिरसः कुत्स ऋषिः। इन्द्रो देवता। १ जगती। ३,५-८ निचृज्जगती छन्दः। निषादः स्वरः। २,४,९ स्वराड् त्रिष्टुप्। १०,११ निचृत् त्रिष्टुप्

छन्द:। धैवत: स्वर:॥

अथ शालाद्यध्यक्षेण किं किं स्वीकृत्य कथं भवितव्यमित्युपदिश्यते॥

अब शाला आदि के अध्यक्ष को क्या-क्या स्वीकार कर कैसा होना चाहिये, यह ब्रिक्<mark>य अपेर</mark>्स मन्त्र में कहा है।।

ड्रमां ते धियं प्र भरे महो महीमस्य स्तोत्रे धिषणा यत्ते आनुजे। तमुत्सुवे च प्रसुवे च सासुहिमिन्द्रं देवासुः शर्वसामदुन्ननुं॥ १०००

डूमाम्। ते। धिर्यम्। प्रा भरे। महः। महीम्। अस्य। स्तोत्रे। धिषणी श्रेत्। ते। अनुजे। तम्। उत्रस्वे। च। प्ररस्वे। च। ससहिम्। इन्ह्रम्। देवासः। शर्वसा। अमुदुन्। अनु॥ १॥

पदार्थ:-(इमाम्) प्रत्यक्षाम् (ते) तव विद्याशालाधिपतेः (धियम्) ब्रज्ञां कर्म वा (प्र) (भरे) धरे (महः) महतीम् (महीम्) पूज्यतमाम् (अस्य) (स्तोत्रे) स्तोत्रव्ये व्यवहारे (धिषणा) विद्यासुशिक्षिता वाक् (यत्) या यस्य वा (ते) तव (आनजे) सर्वैः काम्यते प्रकृत्यते विज्ञायते। अत्राञ्ज्ञधातोः कर्मणि लिट्। (तम्) (उत्सवे) हर्षनिमित्ते व्यवहारे (च) दुःखनिमित्ते वा (प्रस्वे) उत्पत्तौ (च) मरणे वा (सासिहम्) अतिषोढारम् (इन्द्रम्) विद्यैश्वर्यप्रापकम् (देवासः) विद्वांसः (श्रवसा) बलेन (अमदन्) हृष्येयुर्हर्षयेयुर्वा (अनु)॥१॥

अन्वय:-हे सर्वविद्याप्रद शालाद्यधिपते यद्या ते तुत्रास्य धिषणा सर्वेरानजे तस्य ते तव यामिमां महो महीं धियमहं स्तोत्रे प्रभरे। उत्सवेऽनुत्सवे च प्रमवे माणे च यं त्वां सासहिमिन्द्रं देवासः शवसाऽन्वमदन् तं त्वामहमप्यन्वमदेयम्॥१॥

भावार्थ:-सर्वैर्मनुष्यै: सर्विषां धार्मिकाणां विदुषां विद्यां प्रज्ञाः कर्माणि च धृत्वा स्तुत्या च व्यवहाराः सेवनीयाः। येभ्या विद्यासुखे प्राप्येते ते सर्वान् सुखदुःखव्यवहारयोर्मध्ये सत्कृत्यैव सर्वदानन्दयेयुरिति॥१॥

पदार्थ:-हे सर्व विद्या वेनेवाले शाला आदि के अधिपति! (यत्) जो (ते) (अस्य) इन आपकी (धिषणा) विद्या और उत्तम शिक्षा की हुई वाणी (आनजे) सब लोगों ने चाही प्रकट की और समझी है, जिन (ते) आपके (इसाम्) इस (महः) बड़ी (महीम्) सत्कार करने योग्य (धियम्) बुद्धि को (स्तोत्रे) प्रशंसनीय व्यवहार में (प्रभरे) अतीव धरे अर्थात् स्वीकार करे वा (उत्सवे) उत्सव (च) और साधारण काम में त्रा (प्रसवे) पुत्र आदि के उत्पन्न होने और (च) गमी होने में जिन (सासहिम्) अति क्षमापन करने (इन्द्रम्) विद्या और ऐश्वर्य की प्राप्ति करानेवाले आपको (देवासः) विद्वान् जन (शवसा) बल से (अन्, असदन) आनन्द दिलाते वा आनन्दित होते हैं (तम्) उन आपको मैं भी अनुमोदित करूं॥१॥

१०९६

भावार्थ:-सब मनुष्यों को चाहिये कि सब धार्मिक विद्वानों की विद्या, बुद्धियों और कामों की धारण और उनकी स्तुति कर उत्तम-उत्तम व्यवहारों का सेवन करें, जिनसे विद्या और सुख मिलते हैं, वे विद्वान् जन सबको सुख और दु:ख के व्यवहारों में सत्कारयुक्त करके ही सदा आनन्दित कराविं।

ऋग्वेदभाष्यम्

अथेश्वराध्यापककर्मणा किं जायत इत्युपदिश्यते॥

अब ईश्वर और अध्यापक के काम से क्या होता है, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है।।

अस्य श्रवो नद्यः सप्त बिभ्रति द्यावाक्षामा पृथिवी देर्शतं वर्षुः। अस्मे सूर्याचन्द्रमसाभिचक्षे श्रद्धे किमन्द्र चरतो वितर्तुरम्॥२॥

अस्य। श्रवं:। नृद्यं:। सप्ता बिभ्रृति। द्यावाक्षामां। पृथिवी। दुर्शृतम्। विद्याः। अभिऽचक्षे। श्रुद्धे। कम्। इन्द्र। चुर्तः। विऽतुर्तुरम्॥२॥

पदार्थ:-(अस्य) अखिलविद्यस्य जगदीश्वरस्य सर्वविद्याध्यापकस्य च (श्रवः) सामर्थ्यमत्रं वा (नद्यः) सिरतः (सप्त) सप्तविद्याः स्वादोदकाः (बिभ्रति) धरिन्ति पाषयिति या (द्यावाक्षामा) प्रकाशभूमी। अत्र दिवो द्यावा। (अष्टा॰६.३.२९) अनेन दिव् शब्दस्य द्यावादेशः (पृथिवी) अन्तरिक्षम् (दर्शतम्) द्रष्टव्यम् (वपुः) शरीरम् (अस्मे) अस्माकम् (सूर्याचन्द्रासिः) सूर्यचन्द्रादिलोकसमूहौ (अभिचक्षे) आभिमुख्येन दर्शनाय (श्रद्धे) श्रद्धारणाय (कम्) स्विकारकप् (इन्द्र) विद्यैश्वर्यप्रद (चरतः) प्राप्नुतः। (वितर्तुरम्) अतिशयेन विविधप्लवे तरणार्थम्। अत्र यङलुङन्तान्धातोरच् प्रत्ययो बहुलं छन्दसीत्युत्वम्॥२॥

अन्वय:-हे इन्द्रास्य तव श्रवः सप्त निक्के दर्शतं विक्रित्तं कं वपुर्बिभ्रति द्यावाक्षामा पृथिवी सूर्य्याचन्द्रमसा च बिभ्रत्येते सर्व अस्मे अभिचक्षे श्रद्धे चरन्ति च्रुतः चरिन्त क्रुतः। वा॥२॥

भावार्थ:-अत्र श्लेषालङ्कारः। परमेश्वरस्य सर्जनेन पृथिव्यादयो लोकास्तत्रस्थाः पदार्थाश्च स्वं स्वं रूपं धृत्वा सर्वेषां प्राणिनां दर्शनाय श्रद्धाये च भूत्वा सुखं सम्पाद्य गमनागमनादिव्यवहारहेतवो भवन्ति। निहं कथंचिद् विद्यया विनैतेश्वरः सुखानि संजीयन्ते तस्मादीश्वरस्योपासनेन विदुषां सङ्गेन च लोकविद्याः प्राप्य सर्वेः सदा सुखियत्रस्मा २॥)

पदार्थ:-हे (इन्द्र) विद्या और ऐश्वर्य के देनेवाले! (अस्य) नि:शेष विद्यायुक्त जगदीश्वर का वा समस्त विद्या पढ़ानेहारे आप लोगों का (श्रव:) सामर्थ्य वा अत्र और (सप्त) सात प्रकार की स्वादयुक्त जलवाली (नद्यर) नेही (दर्शतम्) देखने और (वितर्तुरम्) अनेक प्रकार के नौका आदि पदार्थों से तरने योग्य महानद में तरने के अर्थ (कम्) सुख करनेहारे (वपु:) रूप को (विभ्रति) धारण करतीं वा पोषण करातीं व्रथा (द्यावाक्ष्ममा) प्रकाश और भूमि मिल कर वा (पृथिवी) अन्तरिक्ष (सूर्याचन्द्रमसा) सूर्य और चन्द्रमा आदि लोक धरते पृष्ट कराते हैं, ये सब (अस्मे) हम लोगों के (अभिचक्षे) सुख के सम्मुख देखने

अष्टक-१। अध्याय-७। वर्ग-१४-१५

मण्डल-१। अनुवाक-१५। सूक्त-१०२



(श्रद्धे) और श्रद्धा कराने के लिये प्रकाश और भूमि वा सूर्य-चन्द्रमा दो-दो (चरतः) प्राप्त होते तथा अन्तरिक्ष प्राप्त होता और भी उक्त पदार्थ प्राप्त होते हैं॥२॥

भावार्थ: -इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। परमेश्वर की रचना से पृथिवी आदि (लोक और उनमें रहनेवाले पदार्थ अपने -अपने रूप को धारण करके सब प्राणियों के देखने और श्रद्धा के लिये हो और सुख को उत्पन्न कर चालचलन के निमित्त होते हैं, परन्तु किसी प्रकार विद्यार के चिना इन सांसारिक पदार्थों से सुख नहीं होता। इससे सबको चाहिये कि ईश्वर की उपासना और विद्वानों के संग से लोकसम्बन्धी विद्या को पाकर सदा सुखी होवें॥२॥

पुनः सेनाधिपतिः किं कुर्यादित्युपदिश्यते।

फिर सेना का अधिपति क्या करे, इस विषय को अगुले मन्त्र में कहा है।।

तं स्मा रथं मघवन्त्रावं सातये जैत्रं यं ते अनुमदाम संग्मे। अाजा नं इन्द्र मनसा पुरुष्टुत त्वायद्भयों मघवुळ्य यन्छ। ३॥

तम्। स्मा रथम्। मघुऽवन्। प्रा अव। सातये। जैत्रम्। यम्। ते। अनुऽमदाम। सम्ऽगमे। आजा। नः। इन्द्र। मनसा। पुरुऽस्तुत्। त्वायत्ऽभ्यः। मघुऽवन्। शर्मा यच्छ्। नः॥ ३।

पदार्थ:-(तम्) (स्म) आश्चर्यगुणप्रकाहो निपातस्य चेति दीर्घः। (रथम्) विमानादियानसमूहम् (मघवन्) प्रशस्तपूज्यधनयुक्त (प्र, अव) प्राप्य (स्तित्रे) बहुधनप्राप्तये (जैत्रम्) जयन्ति येन तम्। अत्र जि धातोः सर्वधातुभ्यः ष्ट्रितित ष्ट्रन् प्रत्यये बहुलकाद् वृद्धिश्च। (यम्) (ते) तव (अनुमदाम) अनुहृष्येम। अत्र विकरणव्यत्ययेन शप्। (संगमे) संग्रामे। सग्म इति संग्रामनामसु पठितम्। (निघं०२.१७) (आजा) अजन्ति सङ्गच्छन्ते वीराः शत्रुभिर्ग्रस्मिन् (नः) अस्माकम् (इन्द्र) परमैश्चर्यप्रद (मनसा) विज्ञानेन (पुरुष्ठुत) बहुभिः शूरैः प्रशंसित (त्वायद्वयः) आत्मनस्त्रामिच्छद्भ्यः (मघवन्) प्रशंसितधन (शर्म) सुखम् (यच्छ) देहि (नः) अस्मभ्यम्॥३॥

अन्वय:-हे मघवित्रन्त सेमाधिपते! त्वं नोऽस्माकं सातये तं जैत्रं स्म रथं योजयित्वाऽऽजा सङ्गमे प्राव तं किमत्यपेक्षायामाह यं ते तव रथं चयमनुमदाम।हे पुरुष्टुत मघवन्! त्वं मनसा त्वायद्भ्यो नोऽस्मभ्यं शर्म यच्छ॥३॥

भावार्थ: - यदा शूरवीरैर्भृत्यै: सेनाधिपतिना च संग्रामं कर्त्तुं गम्यते तदाऽन्योऽन्यमनुमोद्य संरक्ष्य शत्रुभि: संयोध्य तेषां पेराजयं कृत्वा स्वकीयान् हर्षयित्वा शत्रूनिप संतोष्य सदा वर्त्तितव्यम्॥३॥

पदार्थ: है (मघवन्) प्रशंसित और मान करने योग्य धनयुक्त (इन्द्र) परमैश्वर्य्य के देनेवाले सेना के अधिपित ! आप (न:) हम लोगों के (सातये) बहुत से धन की प्राप्ति होने के लिये (जैत्रम्) जिससे संग्रामों में जीवें (तम्) उस (स्म) अद्भुत-अद्भुत गुणों को प्रकाशित करनेवाले (रथम्) विमान आदि

रथसमूह को जुता के (आजा) जहाँ शत्रुओं से वीर जा-जा मिलें उस (संगमे) संग्राम में (प्र, अव) पहुंचाओ अर्थात् अपने रथ को वहाँ ले जाओ, कौन रथ को ? कि (यम्) जिस (ते) आपके रथ को हम लोग (अनु, मदाम) पीछे से सराहें। हे (पुरुष्टुत) बहुत शूरवीर जनों से प्रशंसा को प्राप्त (मच्चन्र) प्रशंसित धनयुक्त! आप (मनसा) विशेष ज्ञान से (त्वायद्ध्य:) अपने को आप की चहिता करते हुए (न:) हम लोगों के लिये अद्धुत (शर्म) सुख को (यच्छ) देओ॥३॥

भावार्थ:-जब शूरवीर सेवकों के साथ सेनापित को संग्राम करने को जाना होता है, तब परस्पर अर्थात् एक-दूसरे का उत्साह बढ़ा के अच्छे प्रकार रक्षा, शत्रुओं के साथ अच्छा युद्ध, उनकी हार और अपने जनों को आनन्द देकर शत्रुओं को भी किसी प्रकार सन्तोष देकर सदा अपना वर्ताव रखना चाहिये॥३॥

पुनस्तेन सह किं कर्तव्यमित्युपदिश्यतेग

फिर उसके साथ क्या करना चाहिये, इस विषय को अनल पन्त्र में कहा है।।

व्यं जीयेम् त्वया युजा वृत्तेम्स्माक् मंश्मुद्वा भरेभरा अस्मभ्यीमन्द्र वरिवः सुगं कृष्टि प्र शत्रूणां मध्यन् बृष्ण्या रुज॥४॥

वयम्। ज्येम्। त्वया। युजा। वृत्तम्। अस्माकम्। अर्थम्। अत्। अव। भरेऽभरे। अस्मभ्यम्। इन्द्र। वरिवः। सुऽगम्। कृष्ट्। प्रा शत्रूणाम्। मुघुऽवन्। वृष्णया। कृज्।। ह्या

पदार्थ:-(वयम्) योद्धारः (जयेम) स्त्रुम् विज्ञ्यमिह (त्वया) सेनाधिपतिना सह वर्तमानाः (युजा) युक्तेन (वृतम्) स्वीकर्त्व्यम्) (अस्माकम्) (अंशम्) सेवाविभागम्। भोजनाच्छादनधनयानशस्त्रकोशविभागं वा (अत्) क्रुकृष्टे (अव) रक्षादिकं कुर्याः। अत्र द्वयचोऽतस्तिङ इति दीर्घः। (भरे-भरे) संग्रामे संग्रामे (अस्मास्यम्) (इन्द्र) शत्रुदलविदारक (विरवः) सेवनम् (सुगम्) सुष्ठु गच्छन्ति प्राप्नुवन्ति यस्मिस्तत्। (कृष्टि) कुरु (प्र) (शत्रूणाम्) वैरिणां सेनाः (मघवन्) प्रशस्तबल (वृष्णया) वृष्णां वर्षकाणां शस्त्रवृष्टये हितया समया (रुज) भङ्ग्धि॥४॥

भावार्थ: न्राजपुरुषा यदा यदा युद्धाऽनुष्ठानाय प्रवर्त्तेरन् तदा तदा धनशस्त्रकोशयानसेनासामग्रीः पूर्णाः कृत्वा प्रश्नस्तेन सेनापतिना रक्षिता भूत्वा प्रशस्तिवचारेण युक्त्या च शत्रुभिः सह युद्ध्वा शत्रुपृतनाः सदा विजयेग्न्। नेश्व पुरुषार्थेन विना कस्यचित् खलु विजयो भवितुमर्हति तस्मादेतत्सदाऽनुतिष्ठेयुः॥४॥

पदार्थ: -हे (इन्द्र) शत्रुओं के दल को विदीर्ण करनेवाले सेना आदि के अधीश! तुम (भरेभरे) प्रत्येक संग्रास में (अस्माकम्) हम लोगों के (वृतम्) स्वीकार करने योग्य (अंशम्) सेवाविभाग को (अंब) रक्षेत्रा, चाहो, जानो, प्राप्त होओ, अपने में रमाओ, मांगो, प्रकाशित करो, उससे आनन्दित होने

अष्टक-१। अध्याय-७। वर्ग-१४-१५

मण्डल-१। अनुवाक-१५। सूक्त-१०२



आदि क्रियाओं से स्वीकार करो वा भोजन, वस्त्र, धन, यान, कोश को बांट लेओ तथा (अस्प्रिया) हम लोगों के लिये (विरव:) अपना सेवन (सुगम्) (कृष्टि) करो। हे (मघवन्) प्रशंसित बलवारि! गूम (वृष्ण्या) शस्त्र वर्षानेवालों की शस्त्रवृष्टि के लिये हितरूप अपनी सेना से (शत्रूणाम्) शत्रुओं की सेनाओं को (प्र, रुज) अच्छी प्रकार काटो और ऐसे साथी (त्वया, युजा) जो आप उनक्रें साथ (वयस) युद्ध करनेवाले हम लोग शत्रुओं के बलों को (उत् जयेम) उत्तम प्रकार से जीतें॥४॥

भावार्थ:-राजपुरुष जब-जब युद्ध करने को प्रवृत्त होवें तब-तब धर्म, शस्त्र, योन, कोश, सेना आदि सामग्री को पूरी कर और प्रशंसित सेना के अधीश से रक्षा को प्राप्त होकर, प्रशंसित विचार और युक्ति से शत्रुओं के साथ युद्ध कर, उनकी सेनाओं को सदा जीतें। ऐसे पुरुषार्थ के विना किये किसी को जीत होने योग्य नहीं, इससे इस वर्त्ताव को सदा वर्तें॥४॥

पुनस्तै: परस्परं तत्र कथं वर्त्तितव्यिपित्युपिदश्येने।

फिर उनको परस्पर युद्ध में कैसे वर्त्तना चाहिये, ख़ुद्द विषय अप्रले मन्त्र में कहा है॥

नाना हि त्वा हर्वमाना जर्ना इमे धर्नानां धर्तुरवसा विकृत्यर्वः।

अस्माकं स्मा रथमा तिष्ठ सातये जैत्रं होद्धि निभृतं मनुस्तवं॥५॥१४॥

नानी। हि। त्वा। हर्वमानाः। जनीः। इमे। ध्रनीनाम्। ध्र्तःः अवसा। विपन्यवैः। अस्माकेम्। स्मा। रथम्। आ। तिष्ठु। सातयै। जैत्रम्। हि। इन्द्र। निऽभृतम्। मर्नः। तव।। प्रा

पदार्थ:-(नाना) अनेकप्रकाराः (हि खेलें (त्वा) त्वाम् (हवमानाः) स्पर्द्धमानाः (जनाः) शौर्य्यधनुर्वेदकुशला अतिरथा मनुष्याः (इमे) प्रत्यक्षतया सुपरीक्षिताः (धनानाम्) राज्यविभूतीनाम् (धर्तः) धारक (अवसा) रक्षणादिना सह वर्त्तमानाः (विपन्यवः) विविधव्यवहारकुशला मेधाविनः (अस्माकम्) (स्म) हर्षे। पूर्ववदत्र दीर्घः। (रथम्) विजयहेतुं विमानादियानम् (आ) (तिष्ठ) (सातये) संविभागाय (जैत्रम्) दृढं वैयाघ्रं विजयनिमित्तम् (ह) प्रसिद्धम् (इन्द्र) यथावद्वीराणां रक्षक (निभृतम्) नितरां धृतम् (मनः) मननशीलान्तःक प्रवृतिः (वेव)॥५॥

अन्वय:-हे इन्द्र! त्वं धन्मां सातये स्म यत्र तव मनो निभृतं तमस्माकं जैत्रं रथं ह्यातिष्ठ। हे धर्त्तस्तवाज्ञायां स्थिता अवसा सह् वत्त्रसाना नाम्प्रहवमाना विपन्यवो जना इमे वयं त्वानुकूलं हि वर्तेमहि॥५॥

भावर्षः यद्तो मनुष्या युद्धादिव्यवहारे प्रवर्तेरंस्तदा विरोधेर्ष्याभयालस्यं विहाय परस्पररक्षायां तत्परा भूत्वा शत्रुम् विजित्य विजितधनानां विभागान् कृत्वा सेनापत्यादयो यथायोग्यं योद्धृभ्यः सत्काग्रायेतानि दद्यर्यतोऽग्रेऽप्युत्साहो वर्धेत। सर्वथाऽऽदानमप्रियकरं दानञ्च प्रियकारकिमिति बुद्धवितत्सदोऽनुतिष्ठेयुः॥५॥

पदार्थ:-हे (इन्द्र) यथायोग्य वीरों के रखनेवाले! तुम (धनानाम्) राज्य की विभूतियों के (सातये) अलग-अलग बांटने के लिये (स्म) आनन्द ही के साथ जिसमें (तव) तुम्हारी (मनः) विचार करनेवाली चित्त की वृत्ति (निभृतम्) निरन्तर धरी हो, उस (अस्माकम्) हमारे (जैत्रम्) जी बाहा कुछ जिससे शत्रु जीते जायें, (रथम्) ऐसे विजय करानेवाले विमानादि यान (हि) ही को (अतिष्ठ) अच्छे प्रकार स्वीकार कर स्थित हो। हे (धर्तः) धारण करनेवाले! तुम्हारी आज्ञा में अपना चर्चावे रखते हुए (अवसा) रक्षा आदि आपके गुणों के साथ वर्त्तमान (नाना) अनेक प्रकार (हवमानाः) चाहे हुए (विपन्यवः) विविध व्यवहारों में चतुर बुद्धिमान् (जनाः) जन (इमे) ये प्रत्युक्षिता से परीक्षा किये हम लोग (त्वाम्) तुम्हारे अनुकूल (हि) ही वर्त्ताव रक्खें॥५॥

भावार्थ:-जब मनुष्य युद्ध आदि व्यवहारों में प्रवृत्त होवें तब विरोध है भी, डर और आलस्य को छोड़ एक-दूसरे की रक्षा में तत्पर हो शत्रुओं को जीत और जीते हुए धनों को बांट कर सेनापित आदि लड़नेवालों की योग्यता के अनुकूल उनके सत्कार के लिये हिंचे कि जिससे लड़ने का उत्साह आगे को बढ़े। सब प्रकार से ले लेना प्रीति करनेवाला नहीं और देन प्रसन्नता करनेवाला होता है, यह विचार कर सदा उक्त व्यवहार को वर्तें॥५॥

पुनः स सेनापतिः कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह सेनापित कैसा हो, यह विषय अपूर्ल मन्त्र में कहा है।।

गोजितां बाहू अमितक्रतुः सिमः कर्मिकर्मञ्जूतप्रूतिः खजंकरः।

अकुल्प इन्द्रीः प्रतिमानुमोजसाथा जना वि ह्वयन्ते सिषासर्वः॥६॥

गोऽजितां। बाहू इति। अमितऽक्रतः रिम्पः। कर्मन्ऽकर्मन्। शतम्ऽर्कतः। खुजुम्ऽक्ररः। अकुल्पः। इन्द्रेः। प्रतिऽमानम्। ओर्जसा। अर्थ। जर्नाः। वि। ह्वयस्त्रे। सिसासर्वः॥६॥

पदार्थ:-(गोजिता) गाः पृथिविजियित याभ्यां तौ। अत्र कृतो बहुलिमिति करणे क्विप्। सुपां सुलुगिति विभक्तेराकारादेशश्च्रा (बाहू) अतिबलपराक्रमयुक्तौ भुजौ (अिमतक्रतुः) अिमताः क्रतवः प्रजा यस्यः सः (सिमः) व्यवस्थ्या शत्रुणां बन्धकः (कर्म्मन्कर्मान्) कर्मणि कर्मणि (शतमूतिः) शतमसंख्याता ऊतयो रक्षणादिका क्रिया यस्य मः। अत्र वाच्छन्दिस सर्वे विधयो भवन्तीति सुपो लुगभावः। (खजङ्करः) यः संग्रामं करोति सः। अत्र खज मन्थने इति धातोः कर्मण्यण् (अष्टा०३.२.१) इत्यण्। वाच्छन्दिस सर्वे विधयो भवन्तीति वृद्ध्यभावः। सुपो लुगभावश्च। (अकल्पः) कल्पैरन्यैः समर्थेरसदृशोऽन्येभ्योऽधिक इति (इन्द्रः) अनेकश्चर्थः (प्रतिमानम्) अतिसमर्थानामुपमा (ओजसा) बलेन (अथ) आनन्तर्ये। अत्र निपातस्य चेति दीर्न्थः। (जनाः) विद्वांसः (वि) (ह्वयन्ते) स्पर्द्धन्ते (सिषासवः) सित्तुं संभजितुमिच्छवः॥६॥

अन्त्रयः-हे सभापते! यस्य ते गोजिता बाहू यो भवानिन्द्र ओजसा कर्मन्कर्मनिमतक्रतुरकल्पः सिमः खजङ्करः शृतमृतिः प्रतिमानं वर्त्ततेऽथ तं त्वां सिषासवो जनाः विह्वयन्ते॥६॥ अष्टक-१। अध्याय-७। वर्ग-१४-१५

मण्डल-१। अनुवाक-१५। सूक्त-१०२

भावार्थ:-मनुष्यैर्यः सर्वथा समर्थः प्रतिकर्मकर्तुं वेत्ताऽन्यैरजेयः सर्वेषां स्पृहणीयोऽनुपमो मनुष्यो वर्त्तते, तं सेनाधिपतिं कृत्वा विजयादीनि कार्य्याणि साधनीयानि॥॥॥

पदार्थ:-हे सभापति! जिन आपकी (गोजिता) पृथिवी की जितानेवाली (बाहू) अत्यन्त बल पराक्रमयुक्त भुजा (अथ) इसके अनन्तर जो आप (इन्द्रः) अनेक ऐश्वर्य्ययुक्त्र (ओजसा) बल से (कर्मन्कर्मन्) प्रत्येक को काम में (अमितक्रतुः) अतुल बुद्धिवाले (अकल्पः) और बड़े-बड़े समर्प्र जनों से अधिक (सिमः) व्यवस्था से शत्रुओं के बांधने और (खजङ्करः) संग्राम करने वाले (शतमूतिः) जिनकी सैकड़ों रक्षा आदि क्रिया हैं। (प्रतिमानम्) जिनको अत्यन्त सामर्थ्यवानों की उपमा दी जाती है, उन आपको (सिषासवः) सेवन करने की इच्छा करनेवाले (जनाः) विद्वान जन (वि, ह्वयन्ते) चाहते हैं॥६॥

भावार्थ:-मनुष्यों को चाहिये कि जो सर्वथा समर्थ, प्रत्येक कोम् कें करने को जानता, औरों से न जीतने योग्य, आप सबको जीतनेवाला, सबके हित चाहने योग्य और अनुपम मनुष्य हो, उसको सेनाधिपति करके विजय आदि कामों को साधें॥६॥

पुनः स कीदृशः कि कसेतीत्युपुदिश्यते॥

फिर वह कैसा और क्या करता है, इस बिषय की अगले मन्त्र में कहा है॥

उत्ते शतान्मंघवन्नुच्च भूयंस उत्सहस्राह्मिक् क्रिष्टिषु श्रवं:।

अमात्रं त्वां धिषणां तित्विषे मुह्यधा बूत्राणि जिघ्नसे पुरंदर॥७॥

उत्। ते। शृतात्। मुघुऽवन्। उत्। सूर्यमः। उत्। सहस्रात्। रिरिचे। कृष्टिषुं। श्रवं:। अमात्रम्। त्वा। धिषणां। तित्विषे। मही। अर्थ। वृत्राणि। जिञ्चसे पुरम्ऽदुर्॥७॥

पदार्थ:-(उत्) उत्कृष्टे (ते) तव (श्रातात्) असंख्यात् (मघवन्) असंख्यातैश्वर्य्य (उत्) (च) (भ्रूयसः) अधिकात् (उत्) (सहस्रात्) असंख्येयात् (रिरिचे) अतिरिच्यते (कृष्टिषु) मनुष्येषु (श्रवः) कीर्तनं श्रवणं धनं वा अमित्रम्) अपरिमितम् (त्वा) त्वाम् (धिषणा) विद्यासुशिक्षिता वाक् प्रज्ञा वा (तित्विषे) त्वेषित प्रदीप्यते (पहा) महागुणविशिष्टा (अध) आनन्तर्ये। निपातस्य चेति दीर्घः। (वृत्राणि) यथा मेघावयवान् सूर्य्यस्थ्या शत्रून् (जिष्नसे) हन्याः। अत्र हनधातोर्लेटि शपः स्थाने श्लुः। व्यत्येनात्मनेपूर्वं स्थापुरुद्धरे। यः शत्रूणां पुरो दृणाित तत्सम्बुद्धौ॥७॥

अन्वयः हे मेघवन्निन्द्र! ते कृष्टिषु श्रवः शतादुद्रिरिचे सहस्रादुद्रिरिचे भूयसश्चोद्रिरिचेऽधाऽमात्रं त्वा मही धिषणा तित्विषे। हे पुरन्दर! वृत्राणि सूर्य्य इव त्वं शत्रून् जिघ्नसे॥७॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। मनुष्यैर्यथा सूर्योऽन्धकारमेघादिकं हत्वाऽपरिर्मिते स्वकीयं तेज: प्रकाश्य सर्वेषु तेजस्विष्वधिको वर्त्तते, तथाभूतं विद्वांसं सभापितं मत्वा शत्रव: पराजेया:॥७॥

पदार्थ:-हे (मघवन्) असंख्यात ऐश्वर्य से युक्त सेनापित! (ते) आपका (कृष्टिषु) मपुख्यें में (श्रवः) कीर्तन, श्रवण वा धन (श्रतात्) सैकड़ों से (उत्) ऊपर (रिरिचे) निकल गयु (सहस्रात्) हजारों से (उत्) ऊपर (च) और (भूयसः) अधिक से भी (उत्) ऊपर अर्थात् अधिक निकल गया। (अध्य) इसके अनन्तर (अमात्रम्) परिमाणरहित (त्वा) आपकी (मही) महागुणयुक्त (धिषणार्थ विद्या और अच्छी शिक्षा को पाये हुई वाणी वा बुद्धि (तित्विषे) प्रकाशित करती है। हे (पुरन्दर) शतुओं के पुरों के विदारनेवाले! (वृत्राणि) जैसे मेघ के अङ्ग अर्थात् बद्दलों को सूर्य्य हनन करता है, वैसे आप) शतुओं को (जिझ्मे) मारते हो॥७॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि जैसे सूर्य्य अन्धकार और मेघ आदि का हनन करके अपरिमित अर्थात् जिसका परिमाण ने हो सके उस अपने तेज को प्रकाशित करके, सब तेजवाले पदार्थों में बढ़ के वर्त्तमान है, वैसे विद्वान् को सभा का अधीश मान के शत्रुओं को जीतें॥७॥

अथेश्वर: सभापतिश्च कीदृश इत्सुवदिश्यते॥

अब ईश्वर और सभापति कैसा है। इस विषय/को अगले मन्त्र में कहा है।।

त्रिविष्ट्रिधातुं प्रतिमानमोर्जसस्तिस्त्रो भूमोर्नेपेतुं त्रीणि रोचना।

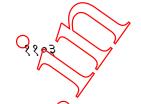
अतीदं विश्वं भुवनं ववक्षिथाश्रिचुरिंद्र जुनुषा सुनादंसि॥८॥

त्रिविष्टिऽधातुं। प्रतिऽमानेम्। ओजेसः। तिस्रः। भूमीः। नृऽपते। त्रीणि। रोचना। अति। इदम्। विश्वम्। भुवनम्। व्वक्षि्य्। अ्शृतुः। इन्द्र। जूनुषां। सुनात्। असि॥८॥

पदार्थ:-(त्रिविष्टिधातुं) त्रिधोत्तममध्यमिनकृष्टा विष्टयो व्याप्तयो धातूनां पृथिव्यादीनां यस्मिंस्तत् (प्रितिमानम्) प्रतिमीयते कृत् (अष्ट्रमः) बलात् (तिस्रः) त्रिविधाः (भूमीः) अधऊर्ध्वमध्यस्था उत्तमाधममध्यमाः क्षितीः (भूपते) नृणां स्वामिन्नीश्वर नृप वा (त्रीणि) त्रिविधानि (रोचना) रोचनानि विद्याशब्दसूर्य्यादीनि न्यायबलराज्यपालनादीनि च (अति) (इदम्) प्रत्यक्षम् (विश्वम्) समग्रम् (भुवनम्) भवन्ति भूतानि(यस्मिञ्जगित तत् (वविश्वथ) वोद्धमिच्छिसि। अत्र लडर्थे लिट्। सन्नन्तस्य वहधातोरयं प्रयोगः। बहुलं छस्मीत्यनेनाभ्यासस्येत्वाभावः। (अशृतः) न सन्ति शत्रवो यस्य सः (इन्द्र) बह्वश्वर्ययुक्त (जनुषा) प्रादुर्भृतेन कर्मणा (सनात्) सनातनात् कारणात् (असि) भवसि॥८॥

अनेत्यः-हे नृपत इन्द्र! बह्वैश्वर्यवतोऽशत्रुस्त्वं त्रिविष्टिधातु प्रतिमानं सनादोजसो जनुषा तिस्रो भूमिस्त्रीणि रोचना निर्विह्यसि\त्रिविष्टिधातु प्रतिमानमिदं विश्वं भुवनमतिवविक्षिथ तस्मात्सत्कर्त्तव्योऽसि॥८॥ अष्टक-१। अध्याय-७। वर्ग-१४-१५

मण्डल-१। अनुवाक-१५। सूक्त-१०२



भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। मनुष्यैर्येनाप्रतिमेश्वरेण कारणात्सर्वं कार्यं जग्निर्माय संरक्ष्य संह्रियते स एवेष्टो माननीयस्तथा योऽतुलसामर्थ्यो सभाधिपति: प्रसिद्धैर्न्यायादिगुणे: सर्वं रोज्यं संतोषयति, स च सत्कर्त्तव्य:॥८॥

पदार्थ:-हे (नृपते) मनुष्यों के स्वामी ईश्वर वा राजन्! (इन्द्र) बहुत ऐश्वर्य से युक्त (अशतुः) शत्रुरहित आप (त्रिविष्टिधातु) जिसमें तीन प्रकार की पृथिवी, जल, तेज, पृश्वन, अकाश की व्याप्ति अर्थात् परिपूर्णता है, उस संसार की (प्रतिमानम्) परिमाण वा उपमान जैसे हो वैसे (सनात्) सनातन कारण वा (ओजसः) बल वा (जनुषा) उत्पन्न किये हुए काम से (तिस्तः) तीन प्रकार (भूमीः) अर्थात् नीचली, ऊपरली, और बीचली उत्तम, अधम और मध्यम भूमि तथा (त्रीणि) तीन प्रकार के (रोचना) प्रकाशयुक्त विद्या, शब्द और सूर्य्य और न्याय करने, बल और सञ्च्यपालन आदि काम के तुम दोनों यथायोग्य निर्वाह करनेवाले (असि) हो और उक्त पञ्चभूतमयू (इदम्) इसं (विश्वम्) समस्त (भुवनम्) जिसमें कि प्राणी होते हैं, उस जगत् के (अति, वविश्वय) अतीव निर्वाह करने की इच्छा करते हो, इससे ईश्वर उपासना करने योग्य और विद्वान् आप सत्कार करने योग्य हो।।

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि जिसकी उपमा नहीं है, उस ईश्वर ने कारण से सब कार्य्यरूप जगत् को सब और उसकी रक्षा कर उसका संहार किया है, वही इष्टदेव मानने योग्य है तथा जो अतुल सामर्थ्ययुक्त सभायित प्रसिद्ध न्याय आदि गुणों से समस्त राज्य को सन्तोषित करता है, सो भी सदा सत्कार करेंचे योग्न है॥८॥

अथ्र सेनाध्यक्षः कींदृश इत्युपदिश्यते॥

अब सेना का अध्यक्ष कैसा है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

त्वां देवेषु प्रथमं ह्वामहे त्वं बभूश पृतनासु सास्हिः।

सेमं नः कारुमुपम्रयुमुद्धिद्धिमन्द्रः कृणोतु प्रस्वे रथं पुरः॥९॥

त्वाम्। द्वेवेषुं। प्रश्मम् ह्वाम्ह्रं। त्वम्। बुभूथा पृतेनासु। सुसहिः। सः। इमम्। नः। कारुम्। उप्ऽमन्युम्। उत्ऽभिर्दम्। इन्द्रंः। कृणोतु। प्रुऽसुवे। रथम्। पुरः॥९॥

पदार्थ: (त्यम्) सर्विसेनाधिपितम् (देवेषु) विद्वत्सु (प्रथमम्) आदिमम् (हवामहे) स्वीकुर्महे (त्वम्) (बभूष्य) भवसि। बभूषाततन्थ० इतीडभावो निपातनात्। (पृतनासु) स्वेषां शत्रूणां वा सेनासु (सासिहः) अविशयन षोढा (सः) सोऽचि लोपे चेत्पादपूरणिमिति सुलोपः। (इमम्) प्रत्यक्षम् (नः) अस्मभूयम् (कारुम्) शिल्पकार्यकर्त्तारम् (उपमन्युम्) उपसमीपे मन्तुं योग्यम् (उद्भिदम्) पृथिवीं भित्वा

११०४

जातेन काष्ठेन निर्मितम् (इन्द्रः) अखिलैश्वर्यकारकः (कृणोतु) (प्रसवे) प्रकृष्टतया सुवन्ति प्रेरयन्ति वीरान् यस्मिन् राज्ये तस्मिन् (रथम्) विमानादियानम् (पुरः) पुरःसरम्॥९॥

अन्वयः-हे सेनापते! यतस्त्वं पृतनासु सासहिर्बभूथ तस्माद् देवेषु प्रथमं त्वां वयं हवामहे। स् इन्ह्री भवाने प्रसव उद्भिदं रथं पुरः करोति स नोऽस्मभ्यमिममुपमन्युं कारुं कृणोतु॥९॥

भावार्थः-मनुष्यैर्य उत्तमो विद्वान् स्वसेनापालने शत्रुबलविदारणे चतुरः श्रि<mark>ल्पचित् प्रि</mark>यो युद्धे पुरःसरणादितयोद्धा वर्तते, स एव सेनापितः कर्त्तव्यः॥९॥

पदार्थ:-हे सेनापते! जिस कारण (त्वम्) आप (पृतनासु) अपनी ह्रा शत्रुओं की सेनाओं में (सासिह:) अतीव सहनशील (विभूथ) होते हैं, इससे (देवेषु) विद्वानों में (प्रथमम्) पहिले (त्वाम्) समग्र सेना के अधिपित तुमको (हवामहे) हम लोग स्वीकार करते हैं, जो (इन्द्रः) समस्त ऐश्वर्य के प्रकट करनेहारे आप (प्रसवे) जिसमें वीरजन चिताये जाते हैं, उस राज्य में (उद्धिदम्) पृथिवी का विदारण करके उत्पन्न होनेवाले काष्ठ विशेष से बनाये हुए (रथम्) विमान आदि रथ को (पुर:) आगे करते हैं (स:) वह आप (न:) हम लोगों के लिये (इमम्) इस (उपमन्युम्) समीप में मानने योग्य (कारुम्) क्रिया कौशल काम के करनेवाले जन को (कृणोतु) प्रसिद्ध को ए।)

भावार्थ:-मनुष्यों को चाहिये कि जो उत्तम विद्वान, अपनी सेना को पालन और शत्रुओं के बल को विदारने में चतुर, शिल्पकार्थ्यों को जाननेवाला प्रिमी, युद्ध में आगे होने से अत्यन्त युद्ध करता है, उसी को सेना का अधीश करें॥९॥

पुनः स कि कुर्योहित्युपदिश्यते॥

फिर वह क्या की कि विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

त्वं जिंगेथु न धर्ना रुरोधिथाभूवाजा मधवनमहत्सुं च।

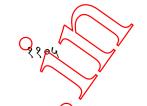
त्वामुप्रमवसे सं शिशिभुस्यको न इन्द्र हर्वनेषु चोदय॥१०॥

त्वम्। जि<u>गेथ</u>। न। धन्<mark>री रुगे्धियः। अभेष</mark>ा आजाः मघुऽवन्। महत्ऽस्री च। त्वाम्। उग्रम्। अवसे। सम्। शिशीमसि। अर्थः। नः। इन्द्रा हर्बनेषुः। चोह्नयः॥ १०॥

पदार्थ:-(त्वम्) चतुरङ्गमनायुक्तः (जिगेथ) जितवानिस (न) निषेधे (धना) धनानि (फरोधिथ) रुद्धवानिस (अर्भेष्ठ) अल्पेषु (आजा) आजिषु संग्रामेषु (मघवन्) परमपूज्यधनादिसामग्रीयुक्त (महत्सु) (च) मध्यस्थेषु (त्वास्) (उग्रम्) शत्रुबलविदारणक्षमम् (अवसे) रक्षणाद्याय (सम्) (शिशीमिस) शत्रून् सूक्ष्मान् जीर्णान् कुर्मः। अत्र शो तनूकरण इत्यस्माल्लिट श्यनः स्थाने व्यत्ययेन श्लुः। छन्दस्युभयथेति श्लोरार्द्धितुकत्वादाकारादेशः। (अथ) अत्र निपातस्य चेति दीर्घः। (नः) अस्माकमस्मान् वा (इन्द्र) शत्रूणी विद्राहक (हवनेषु) आदानयोग्येषु कर्मसु (चोदय)॥१०॥

अष्टक-१। अध्याय-७। वर्ग-१४-१५

मण्डल-१। अनुवाक-१५। सूक्त-१०२



अन्वयः-हे मघवन्निन्द्र! यस्त्वमर्भेषु महत्सु मध्यस्थेषु चाजा शत्रून् जिगेथ धना न रुरोधिथ तार्मुग्नं त्वासवस्रे स्वीकृत्य शत्रून् संशिशीमसि। अथ हवनेषु नोऽस्मान् चोदय॥१०॥

भावार्थ:-यो मनुष्य: शत्रूणां समयं प्राप्य धनानां च विजेता सत्कर्मसु प्रेरको द्रुष्टाना छेतास्ति, स एव सर्वै: सेनापतिर्मन्तव्य:॥१०॥

पदार्थ:-हे (मघवन्) परम सराहने योग्य धन आदि सामग्री लिये (हुए इन्द्र) श्रिकों के विदारनेवाले सेनापति! जो (त्वम्) आप चतुरङ्ग अर्थात् चौतरफी नाकेबन्दी की सेना सहित (अर्भेषु) थोड़े (महत्सु) बड़े (च) और मध्यम (आजा) संग्रामों में शत्रुओं को (जिगेष) जीते हुए हो और उक्त संग्रामों में (धना) धन आदि पदार्थों को (न) न (करोधिष) रोकते हो, उन (उग्रम्) शत्रुओं के बल को विदीर्ण करने में अत्यन्त बली (त्वाम्) आपको (अवसे) रक्षा आदि के लिये स्वीकार करके हम लोग शत्रुओं को (संशिशीमिस) अच्छे प्रकार निर्मूल नष्ट करते हैं, (अथ) इसके अन्तर्भ आप भी ऐसा कीजिये की (हवनेषु) ग्रहण करने योग्य कामों में (न:) हम लोगों को (चोदय) प्रवृत्त कराइये॥१०॥

भावार्थ:- जो मनुष्य शत्रुओं और समय को पाकर धनों को जीतने, श्रेष्ठ कामों में सबको लगाने और दुष्टों को छिन्न-भिन्न करनेवाला हो, वही सबको सिनाओं का अधीश मानना चाहिये॥१०॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा है, यह विषय अंग्रल मन्त्र में कहा है॥

विश्वाहेन्द्रों अधिवक्ता नो अस्त्वपिहिच्नताः सनुयाम् वार्जम्। तन्नो मित्रो वर्रुणो मामहन्तुभदितिः सन्धुः पृथिवी उत द्यौः॥११॥१५॥

विश्वाहां। इन्द्रंः। अधिऽवक्ता। नः। अस्तु। अपरिऽहवृताः। सनुयामः। वार्जम्। तत्। नः। मित्रः। वर्र्णः। मुमुहन्ताम्। अदितिः। सिन्धुः। पृथ्विमा। उत। द्यौः॥ ११॥

पदार्थ:-(विश्वाहा) विश्वान् सैर्वान् हिन्त सः (इन्द्रः) परमैश्वर्यः सभाध्यक्षः (अधिवक्ता) यथावदनुशासिता (नः) अमाजूमे (अस्तु) भवतु (अपरिह्वृताः) अपरिवर्जिताः (सनुयाम) दद्याम (वाजम्) सुसंस्कृतमन्नम् (तत्) (नः) अस्माकम् (मित्रः) इति पूर्ववत्॥११॥

अन्वयः - अपरिहवृताः वयं यो विश्वाहेन्द्रो नोऽअस्माकमधिवक्ताऽस्तु तस्मै वाजं सनुयाम येन तन्मित्रो वरुणोऽदितिः क्रिन्धुः पृथिवी उत द्यौर्नोऽस्मान् मामहन्ताम्॥११॥

भावार्थः सर्वेषां भृत्यानामियं रीतिः स्याद् यदा यादृशीमाज्ञां स्वस्वामी कुर्यात्तदैव साऽनुष्ठातव्या, योऽख्रिलिब्ह्यस्तस्मादेवोपदेशाः श्रोतव्या इति ॥११॥

अत्र शालाद्यध्यक्षेश्वराध्यापकसेनाधिपतीनां गुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति बोद्धव्यम्॥

इति द्वयुत्तरशततमं १०२ सूक्तं पञ्चदशो १५ वर्गश्च समाप्त:॥

पदार्थ:-(अपरिहवृता:) आज्ञा को पाये हुए हम लोग जो (विश्वाहा) सब शत्रुओं को मार्चे जला (इन्द्र:) परमैश्वर्य्ययुक्त सभाध्यक्ष (न:) हम लोगों को (अधिवक्ता) यथावत् शिक्षा द्वेचेवाला (अस्तु) हो, उसके लिये (वाजम्) अच्छे संस्कार किये हुए अन्न को (सनुयाम) देवें, जिससे (तत्) उसको (न) हम लोगों के (मिन्न:) मित्रजन (वरुण:) उत्तम गुणयुक्त (अदिति:) समस्त विद्वान अन्तिस्थ (सिन्धु:) समुद्र (पृथिवी) पृथिवी (उत) और (द्यौ:) सूर्य्यलोक (मामहन्ताम्) बढ़ावें॥११॥

भावार्थ:-सब सेवकों की यह रीति हो कि जब अपना स्वामी जैसे आज्ञा करे, उसी समय उसको वैसे ही करें और जो समग्र विद्या पढ़ा हो उसी से उपदेश सुनमे चाहिए॥११॥

इस सूत्र में शाला आदि के अधिपति ईश्वर, पढ़ानेवाले और सेनापूर्ति के गुणों के वर्णन से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ से एकता है, यह जानना चाहिये।

यह एक सौ दो वां १०२ सूक्त और पर्हह्वों १० वर्ग समाप्त हुआ॥

अथ त्र्युत्तरशततमस्याष्ट्रचस्य सूक्तस्याङ्गिरसः कुत्स ऋषिरिन्द्रो देवता। १,३,५,६ निचृत्त्रिष्टुप्। २,४ विराट् त्रिष्टुप्। ७,८ त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथ परमेश्वरस्य कार्ये जगित कीदृशं प्रसिद्धं लिङ्गमस्तीत्युपदिश्यते॥

अब एक सौ तीनवें सूक्त का प्रारम्भ है। उसके प्रथम मन्त्र में यह उपदेश है कि ईश्वर का कार्य

जगत् में कैसा प्रसिद्ध चिह्न है॥

तत्तं इन्द्रियं पर्मं पराचैरधारयन्त क्वयः पुरेदम्। क्षमेदमुन्यद्विव्यर्थन्यदस्य समी पृच्यते समुनेवं केतुः॥ १॥

तत्। ते। इन्द्रियम्। प्रमम्। प्राचैः। अर्धारयन्त। क्वर्यः। पुरा। इदम्। क्ष्मा। इदम्। क्षन्यत्। दिवि। अन्यत्। अस्य। सम्। ईम् इति। पृच्यते। सुमुनाऽईव। केतुः॥ १॥

पदार्थ:-(तत्) (ते) तव (इन्द्रियम्) इन्द्रस्य परमैश्वर्यवतस्तव जीवेस्य च लिङ्गम् (परमम्) प्रकृष्टम् (पराचै:) बाह्यचिह्नैर्युक्तम् (अधारयन्त) धृतवन्तः (क्रव्यः) मेध्राविनो विद्वांसः (पुरा) पूर्वम् (इदम्) प्रत्यक्षाप्रत्यक्षं सामर्थ्यम् (क्षमा) सर्वसहनयुक्ता मृथिवी (इदम्) वर्त्तमानम् (अन्यत्) भिन्नम् (दिवि) प्रकाशवित सूर्य्यादौ (अन्यत्) विलक्षणम् (अस्य) संपीरस्य) मध्ये (सम्) (ई) ईिमत्युदकनामसु पिठतम्। (निघं०१.१२) छन्दसो वर्णलोपो वेति मलोपः। (पृच्यतः) संयुज्यते (समनेव) यथा युद्धे प्रवृत्ता सेना तथा (केतुः) विज्ञापकः॥१॥

अन्वय:-हे जगदीश्वर! यत्ते तव जीवस्य चू सृष्ट्यविदं फूर्मिमिन्द्रियं कवयः पराचैः पुरा धारयन्त क्षमा पृथिवीदं धृतवती यिद्ववीदं वर्त्तते यदन्यत्कारणेऽस्त्यस्य संवारस्य मध्ये हैं ईमुदकं धरित यदन्यददृष्टे कार्य्ये भवित तत्सर्वं समनेव केतुः सन् प्रकाशयित तच्चात्र सम्मृच्यते॥१॥

भावार्थ:-हे मनुष्या! यद्यद्रस्मिश्चगति स्वनाविशेषयुक्तं सुष्ठु वस्तु वर्त्तते तत्तत्सर्वं परमेश्वरस्य रचनेनैव प्रसिद्धमस्तीति विजानीद्ध नहींदृशे विचित्रं जगद्विधात्रा विना संभवितुमर्हति तस्मादस्ति खल्वस्य जगतो निर्मातेश्वरो जैवीं सृष्टिं कुर्त्ता जीवश्चेति निश्चय:॥१॥

पदार्थ:-हे जगद्विश्वर! जो (त) आप वा जीव की सृष्टि में (इदम्) यह प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष सामर्थ्य (परमम्) प्रबल और उत्तम (इन्द्रियम्) परम ऐश्वर्थ्ययुक्त आप और जीव का एक चिह्न जिसको (कवयः) बुद्धिमान विद्वान जन (पराचैः) ऊपर के चिह्नों से सिहत (पुरा) प्रथम (अधारयन्त) धारण करते हुए (क्षमा) सबको सहनेवाली पृथिवी (इदम्) इस वर्त्तमान चिह्न को धारण करती जो (दिवि) प्रकाशमान सूर्य्य आदि कोक में वर्त्तमान वा जो (अन्यत्) उससे भिन्न कारण में वा (अस्य) इस संसार के बीच में हैं, इसको (ई) जल धारण करता वा जो (अन्यत्) और विलक्षण न देखे हुए कार्य्य में होता है (तत्) उस सबको (समनेव) जैसे युद्ध में सेना आ जुटे, ऐसे (केतुः) विज्ञान देनेवाले होते हुए आप वा जीव प्रकाशित करता,यह सब इस जगत् में (सम्पृच्यते) सम्बद्ध होता है॥१॥

भावार्थ:-हे मनुष्यो! इस जगत् में जो-जो रचना विशेष चतुराई के साथ अच्छी-अच्छी वस्तु वर्त्तमान है, वह-वह सब परमेश्वर की रचना से ही प्रसिद्ध है, यह तुम जानो, क्योंकि ऐसा विचित्र जगत् विधाता के विना कभी होने योग्य नहीं। इससे निश्चय है कि इस जगत् का रचनेवाला परमेश्वर है और जीव सम्बन्धी सृष्टि का रचनेवाला जीव है॥१॥

अथैतस्मिञ्जगति तद्रचितोऽयं सूर्य्यः किं कर्माऽस्तीत्युपदिश्यते॥

अब इस जगत् में परमेश्वर से बनाया हुआ यह सूर्य्य क्या काम करता है, यह क्लिश अगले मन्त्रे में कहा है।।

स धारयत् पृथिवीं पुप्रथेच्य वर्त्रेण हृत्वा निर्पः संसर्ज। अहुन्नहिमभिनद्रौहिणं व्यहुन् व्यंसं मुघवा शचीभिः॥२००४

सः। धार्यत्। पृथिवीम्। पुप्रर्थत्। च। वर्त्रेण। हृत्वा। निः। श्रूपः। पुसूर्जी अर्हन्। अर्हिम्। अर्धिनत्। रौहिणम्। वि। अर्हन्। विऽअंसम्। मुघऽवा। शचीभिः॥२॥

पदार्थ:-(स:) (धारयत्) धरित (पृथिवीम्) भूमिम् (पप्रथत्) स्वंतेजो विस्तार्य स्वेन तेजसा सर्वं जगत् प्रकाशयित (च) एवं विद्युदादीन् (वज्रेण) किरणसमूहे (हुन्छ) (नि:) निरन्तरम् (अप:) जलानि (ससर्ज) सृजित (अहन्) हन्ति (अहिम्) मेघम् (अभिन्त्) भिनित्त (रौहिणम्) रोहिण्यां प्रादुर्भूतम् (वि) (अहन्) हन्ति (व्यंसम्) विगता अंसा यस्य तम् (भूधक्र) सूर्यं (श्रचीभिः) कर्मभिः॥२॥

अन्वय:-हे मनुष्या! यो मघवा शचीभिः पृथिवीं धारयत्कृतजः पप्रथिद्वद्युदादींश्च वज्रेण मेघं हत्वाऽपो निःससर्ज पुनरिहमहन् रौहिणमभिनत् न केवलं साधारणमेव हिन्त्, किन्तूं व्यंसं यथा स्यात् तथा व्यहन् स ईश्वरेण रिचतोऽस्तीति विजानीत॥२॥

भावार्थ:-मनुष्यैरिदं द्रष्टव्यं प्रसिद्धो यः सूर्य्यलोकोऽस्ति, स विदारणाकर्षणप्रकाशनादिकर्मभिर्वृष्टिं कृत्वा पृथिवीं धृत्वाऽव्यक्तपदार्श्वन् प्रकाश्य सर्वान् प्राणिनो व्यवहारयित, स परमात्मनो रचनेन विना कदाचिदिप संभिवतुं नार्हित॥

पदार्थ:-हे मनुष्मि जो (भूधवा) सूर्य्यलोक (शचीभि:) कामों से (पृथिवीम्) पृथिवी को (धारयत्) धारण करता अपने तेज (च) और बिजुली आदि को (पप्रथत्) फैलाता उस अपने तेज से सब जगत् को प्रकाशिन करता (वर्जेण) अपने किरणसमूह से मेघ को (हत्वा) मार के (अप:) जलों को (नि:) (ससर्ज) (निर जर उत्पन्न करता, फिर (अहिम्) मेघ को (अहन्) हनता (रौहिणम्) रोहिणी नक्षत्र में उत्पन्न हुए मेघ को (अभिनत्) विदारण करता (व्यंसम्) (वि, अहन्) केवल साधारण ही विदारता हो सो नहीं (कन्तु किट जाय भुजा आदि जिसकी ऐसे रुण्ड, मुण्ड, मुचण्ड, उद्दण्ड, वीर के समान विशेष करके (मेघो को हनता है (स:) वह सूर्य्यलोक ईश्वर ने रचा है, यह जानो॥२॥

अष्टक-१। अध्याय-७। वर्ग-१६-१७

मण्डल-१। अनुवाक-१५। सूक्त-१०३



भावार्थ:-मनुष्यों को यह देखना चाहिये कि प्रसिद्ध जो सूर्यलोक है, वह मेघों के विदारण, लोकों के खीचनें और प्रकाश आदि कामों से जल, वर्षा, पृथिवी को धारण और अप्रकट अश्रीत् अन्धकार से ढंपे हुए जो पदार्थ हैं, उनको प्रकाशित कर सब प्राणियों को व्यवहार में चलाता है, वह परमात्मा के बनाने के विना उत्पन्न नहीं हो सकता॥२॥

अथ सेनाद्यध्यक्ष: कीदृश इत्युपदिश्यते॥

अब सेना आदि का अध्यक्ष कैसा हो, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है।।

स जातूर्भर्मा श्रद्दधांन ओजः पुरो विभिन्दन्नचरुद्वि दासीः। विद्वान् विज्ञिन् दस्यवे हेतिमस्यार्यं सहो वर्धया द्युम्निन्द्रभ ३॥

सः। जातूऽभीमां। श्रृत्ऽद्धानः। ओर्जः। पुर्रः। विऽभिन्दन्। अधुरुत्। बि। दासीः। विद्वान्। विज्ञन्। दस्यवे। हेतिम्। अस्य। आर्यम्। सहः। वर्ध्य। द्युम्नम्। इन्द्र॥३॥

पदार्थ:-(स:) (जातूभर्मा) यो जातान् जन्त् क्रिमिर्ति स:। अत्र जनीधातोस्तुः प्रत्ययो नकारस्याकारादेशोऽन्येषामपीति दीर्घः। (श्रद्दधानः) सत्कर्मस् प्रीतियुक्तः (ओजः) पराक्रमम् (पुरः) नगरी (विभिन्दन्) विदारयन् सन् (अचरत्) चरित् (वि) (दोष्टीः) दासीशीला नगरीः। अत्र दंसेष्टटनौ न आ च। (उणा०५.१०) (विद्वान्) (विज्ञन्) प्रशस्तशस्त्रसमूहयुक्त (दस्यवे) दुष्टकर्मकर्त्रे (हेतिम्) सुखवर्धकं वज्रम् (अस्य) दुष्टस्य (आर्ग्यम्) आर्थ्याणामर्याणां वा इदम् (सहः) बलम् (वर्धय) अत्रान्येषामपीति दीर्घः। (द्युमनम्) धनम् (इन्द्र) प्रकृष्ट्रपदार्थप्रद॥३॥

अन्वयः-हे विज्ञित्रिन्द् ! यो जातूभर्मा श्रद्धान्य विद्वान् भवानस्य दुष्टस्य दासीः पुरो दस्यवे विभिन्दन् सन् व्यचरत् स त्वं श्रेष्ठेभ्यो हेतिमार्य्यं सहो द्वानमोजस्य वर्धय॥३॥

भावार्थ:-यो मनुष्यो स्यून् विनाश्ये श्रेष्ठान् संहर्ष्य शरीरात्मबलं सम्पाद्य धनादिभि: सुखानि वर्धयित, स एव सर्वै: श्रद्धेय:॥३॥

पदार्थ:-हे (विजन) प्रशिप्त शस्त्रसमूहयुक्त (इन्द्र) अच्छे-अच्छे पदार्थों के देनेवाले सेना आदि के स्वामी! जो (जातूभर्मा) उत्पन्न हुए सांसारिक पदार्थों को धारण (श्रद्दधानः) और अच्छे कामों में प्रीति करनेवाले (विद्वान) विद्वान् आप (अस्य) इस दुष्ट जन की (दासीः) नष्ट होनेहारीसी दासी प्रधान (पुरः) नगरियों को (दस्यवे) दुष्ट काम करते हुए जन के लिये (विभिन्दन्) विनाश करते हुए (व्यचरत्) विचरते हो (सः) वह आप श्रेष्ठ सज्जनों के लिये (हेतिम्) सुख के बढ़ानेवाले वज्र को (आर्य्यम्) श्रेष्ठ वा अति श्रष्टों के इस (सहः) बल (द्युम्नम्) धन वा (ओजः) और पराक्रम को (वर्धय) बढ़ाया करों। अध

१११०

ऋग्वेदभाष्यम्

भावार्थ:-जो मनुष्य समस्त डाकू, चोर, लवाड़, लम्पट, लड़ाई करनेवालों का विनाश और श्रेष्ठों को हर्षित कर शारीरिक और आत्मिक बल का सम्पादन कर, धन आदि पदार्थों से सुख को बढ़ाता है, वहीं सबको श्रद्धा करने योग्य है॥३॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा है, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

तदूचुषे मानुषेमा युगानि कीर्तेन्यं मघवा नाम बिभ्रंत्। उपप्रयन् दंस्युहत्यांय वज्री यद्धं सूनुः श्रवंसे नामं दुधे॥४॥

तत्। ऊचुषे। मानुषा। डुमा। युगानि। कीर्तेन्यम्। मघऽवां। नाम। बिभ्रेत् उपुरुप्यन्। दुस्युऽहत्याय। वृज्ञी। यत्। हु। सूनु:। श्रवंसे। नाम। दुधे॥४॥

पदार्थ:-(तत्) (ऊचुषे) वक्तुमर्हाय (मानुषा) मानुषेषु भूमानि (इमा) इमानि (युगानि) वर्षाणि (कीर्तेन्यम्) कीर्तनीयम् (मघवा) भूयांसि मघानि धनानि विद्यापति यस्य सः (नाम) प्रसिद्धिं जलं वा (बिभ्रत्) धारयन् (उपप्रयन्) साधुसामीप्यङ्गच्छन् (दस्युहत्याय) दस्त्रृनां हत्या यस्मै तस्मै (वज्री) प्रशस्तशस्त्रसमूहयुक्तः सेनाधिपतिः (यत्) (ह) खलु (स्भूः) वीरप्रतः (श्रवसे) धनाय (नाम) प्रसिद्धं कर्म (दधे) दधति॥४॥

अन्वय:-मघवा सूनुर्वज्री सेनापितर्यथा सूर्यस्त्र्याचुषे दस्युह्नत्याय श्रवसे इमा मानुषा युगानि कीर्तेन्यं नाम बिभ्रदुपप्रयन् यन्नाम दधे तद्ध खलु वयमिप दधीमिह।

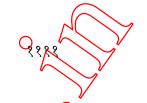
भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। प्रया सूर्यः कालावयवान् जलं च धृत्वा सर्वप्राणिसुखायान्धकारं हत्वा सर्वान् स्रुखयित् तोभेव सेनाधिपतिः सुखपूर्वकं संवत्सरान् कीर्तिं च धृत्वा शत्रुहननेन सर्वसुखाय धनं जनयेत्॥४॥

पदार्थ:-जो (मघवा) बहुत धनोंकता (सूनु:) वीर का पुत्र (वज्री) प्रशंसित शस्त्र-अस्त्र बांधे हुए सेनापित जैसे सूर्य प्रकाशियक्त है, वैसे प्रकाशित होकर (ऊचुषे) कहने की योग्यता के लिये वा (दस्युहत्याय) जिसके लिये डाकुओं को हनन किया जाये, उस (श्रवसे) धन के लिये (इमा) इन (मानुषा) मनुष्यों में होनेवाले (युगानि) वर्षों को तथा (कीर्तेन्यम्) कीर्त्तनीय (नाम) प्रसिद्ध और जल को (बिभ्रत्) धारण कृतता हुआ (उपप्रयन्) उत्तम महात्मा के समीप जाता हुआ (यत्) जिस (नाम) प्रसिद्ध काम को (दधे) धारण करता है, (तत्) उस उत्तम काम को (ह) निश्चय से हम लोग भी धारण करें॥४॥

भाषार्थ: इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य-काल के अवयव अर्थात् संवत्सर, महीना, दिन, घड़ी आदि और जल को धारण कर सब प्राणियों के सुख के लिये अन्धकार का विनाश करके सबको सुख देता है, वैसे ही सेनापित सुखपूर्वक संवत्सर और कीर्ति को धारण करके शत्रुओं के मिसने से सबके सुख के लिये धन को उत्पन्न करे॥४॥

अष्टक-१। अध्याय-७। वर्ग-१६-१७

मण्डल-१। अनुवाक-१५। सूक्त-१०३



मनुष्यैस्तस्मात् किं किं कर्म धार्यमित्युपदिश्यते॥

मनुष्यों को उससे कौन-कौन काम धारण करना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कह्ना हो।

तद्स्येदं पेश्यता भूरि पुष्टं श्रदिन्द्रस्य धत्तन वीर्याय।

स गा अविन्दुत् सो अविन्दुदश्चान्त्स ओषधीः सो अपः स वर्नानि॥ 📢 १६॥

तत्। अस्य। इदम्। पुश्यत्। भूरि। पुष्टम्। श्रत्। इन्द्रंस्य। धृत्तन्। वीर्याय। सः। मारे अविन्द्रत्। सः।
पदार्थ:-(तत्) कर्म (अस्य) सेनापतेः (इदम्) प्रत्यक्षम् (पर्यतः) अत्रान्येषामपीति दीर्घः। (भूरि) बहु (पृष्टम्) दृढम् (श्रत्) सत्याचरणम्। श्रदिति सत्यनामसु षिठतेम्। निघं०३.१०) (इन्द्रस्य) सेनाबलयुक्तस्य (धत्तन) धरत (वीर्याय) बलाय (सः) सूर्य इव (गाः) पृथिवाः (अविन्दत्) लभते (सः) (अविन्दत्) लभते (अश्वान्) महतः पदार्थान्। अश्व इति महन्नामसु पठितम्। (निघं०३.३) (सः) (ओषधीः) गोधूमाद्या ओषधीः (सः) (अपः) कर्माणि स्तानि चा (सः) (वनानि) जङ्गलान् किरणान् वा॥५॥

अन्वयः-हे मनुष्या! यः स सेनाधिपतिः सूर्य इव गा अविन्दत् सोऽश्वानविन्दत् स ओषधीरविन्दत् स अपोऽविन्दत् स वनान्यविन्दत्तदस्येन्द्रस्येदं भूरि पुष्टं श्रद्ध सत्याचरणं यूयं पश्यत वीर्याय धत्तन॥५॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। मनुष्येर्गतमेन सत्याचरणेन प्राप्ति: सैव धार्या नैतया विना सत्य: पराक्रम: सर्वपदार्थलाभश्च जिपते कि

पदार्थ: -हे मनुष्यो! जो (स.) वह सेनाप्रति सूर्य के तुल्य (गा:) भूमियों को (अविन्दत्) प्राप्त होता (स:) वह (अश्वान्) बड़े पदार्थों को (अविन्दत्) प्राप्त होता (स:) वह (ओषधी:) ओषधियों अर्थात् गेहूं, उड़द, मूँग, चना अदि को प्राप्त होता (स:) वह (अप:) सूर्य्य जलों को जैसे वैसे कर्मों को प्राप्त होता (स:) तथा वह सूर्य (वन्त्रिम) किरणों को जैसे वैसे जङ्गलों को प्राप्त होता है, (अस्य) इस (इन्द्रस्य) सेना बलयुक्त स्माषित के (तत्) उस कर्म को वा (इदम्) इस (भूरि) बहुत (पृष्टम्) दृढ़ (श्रत्) सत्य के आचरण को तुम (पश्यत) देखों और (वीर्य्याय) बल होने के लिये (धत्तन) धारण करो॥५॥

भाकार्थः इस पन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि जो श्रेष्ठ जनों के सत्य आचरण से प्राप्ति है उसी को धारण करें। उसके विना सत्य पराक्रम और सब पदार्थों का लाभ नहीं होता॥५।

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

१११२

ऋग्वेदभाष्यम्

फिर वह कैसा हो, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

भूरिकर्मणे वृष्टभाय वृष्णे सत्यश्रुष्माय सुनवाम सोर्मम्। य आदृत्या परिपुन्थीव शूरोऽयंज्वनो विभजन्नेति वेदः॥६॥

भूरिऽकर्मणे। वृष्ठऽभाये। वृष्णे। स्त्यऽश्रुष्माय। सुन्वाम्। सोर्मम्। यः। आऽदृत्ये। पृरिप्योऽईव। शूर्रः। अर्यज्वनः। विऽभर्जन्। एति। वेर्दः॥६॥

पदार्थ:-(भूरिकर्मणे) बहुकर्मकारिणे (वृषभाय) श्रेष्ठाय (वृष्णे) सुख्य्यापकेष्य (सत्यशुष्माय) नित्यबलाय (सुनवाम) निष्पादयेम (सोमम्) ऐश्वर्य्यसमूहम् (यः) (आदृत्य) आदरं कृत्वा (परिपन्थीव) यथा दस्युस्तथा चौराणां प्राणपदार्थहर्त्ता (शूरः) निर्भयः (अयज्वनः) यस्तिकाधिनः) (विभजन्) विभागं कुर्वन् (एति) प्राप्नोति (वेदः) धनम्॥६॥

अन्वयः-वयं यः शूर आदृत्य परिपन्थीव विभजन्नयज्वनो ब्रेस्ट एति तस्य भूरिकर्मणे वृषभाय वृष्णे सत्यशुष्मायेन्द्राय सेनापतये यथा सोमं सुनवाम तथा यूयमपि सुनुत॥६॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। मनुष्यैर्यो दस्युवत् प्रमुख्यः स्रोहस्री सन् चौराणां सर्वस्वं हृत्वा सत्कर्मणामादरं विधाय पुरुषार्थी बलवानुत्तमो वर्त्तते, स एक सेनापति कार्य्य:॥६॥

पदार्थ:-हम लोग (य:) जो (शूरः) निहर, शूरकीर पुरुष (आदृत्य) आदर सत्कार कर (पिरिप्यीव) जैसे सब प्रकार से मार्ग में चले हुए अकू दूसरे का धन आदि सर्वस्व हर लेते हैं, वैसे चोरों के प्राण और उनके पदार्थों को छीन-छून हर लेके वह (विभजन्) विभाग अर्थात् श्रेष्ठ और दुष्ट पुरुषों को अलग-अलग करता हुआ उनमें से (अयुज्वनः) जो यज्ञ नहीं करते उनके (वेदः) धन को (एति) छीन लेता, उस (भूरिकर्मणे) भारी कम के करनेवाले (वृषभाय) श्रेष्ठ (वृष्णे) सुख पहुंचानेवाले (सत्यशुष्माय) नित्य बली सेनापित के लिये जैसे (सोमम्) ऐश्वर्य समूह को (सुनवाम) उत्पन्न करें, वैसे तुम भी करो।।६॥

भावार्थ:-इस मन्त्र हैं उपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि जो ऐसा ढीठ है कि जैसे डाकू आदि होते हैं और साहस् करता हुआ, चोरों के धन आदि पदार्थों को हर सज्जनों का आदर कर पुरुषार्थी बलवान् उत्तम से उत्तम हो, इसी को सेनापित करें॥६॥

पुन: स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा है, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

तृदिन्द्र प्रेस वीर्यं चकर्थ यत्ससन्तं वज्रेणाबोधयोऽहिम्।

भून त्वा पत्नीर्हिष्तितं वर्यश्च विश्वे देवासी अमदुन्नन् त्वा॥७॥

अष्टक-१। अध्याय-७। वर्ग-१६-१७

मण्डल-१। अनुवाक-१५। सूक्त-१०३ Q183

तत्। इन्द्र। प्रऽईव। वीर्यम्। चकुर्थ्। यत्। ससन्तम्। वन्नेण। अबोधयः। अहिम्। अनु। स्वाः पत्तीः। हृषितम्। वर्यः। च। विश्वे। देवार्सः। अमुद्रन्। अनु। त्वाः॥७॥

पदार्थ:-(तत्) (इन्द्र) सेनाध्यक्ष (प्रेव) प्रकटं यथा स्यात्तथा (वीर्च्यम्) स्वकृष् बलेम् (चकर्थ) करोषि (यत्) (ससन्तम्) स्वपन्तं चिन्तारहितं वा (वज्रेण) तीक्ष्णशस्त्रेण (अबोधयः) बोधयसि अहिम्) सप्पं शत्रुं वा (अनु) (त्वा) त्वाम् (पत्नी:) पत्न्यः (हषितम्) जातहर्षम् (वयः) ज्ञासिनः (च) (विश्वे) अखिलाः (देवासः) विद्वांसः (अमदन्) हर्षयन्ति (अनु) (त्वा) त्वाम्॥७॥

अन्वय:-हे इन्द्र! ससन्तमिहं यद् वज्रेणाबोधयस्तद्वीर्यं प्रव चक्रेशीनुहृषितं पत्नीर्वयो विश्वेदेवासश्चाऽन्वमदन्॥७॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। बलवता सेनापतिना दुष्टप्राणिनो दुष्ट्रशत्रेबङ्ग यथाविधि हन्यन्ते॥७॥

पदार्थ:-हे (इन्द्र) सेनाध्यक्ष! आप (ससन्तम्) सोते हुए चा चिन्त्रारिहत (अहिम्) सप्पं वा शत्रु को (यत्) जो (वज्रेण) तीक्ष्ण शस्त्र से (अबोध्यः) सचेत्र कराते हो (तत्) सो (वीर्च्यम्) अपने बल को (प्रेव) प्रकट सा (चकर्थ) करते हो (अनु) उसके पीछे (हिंग्तिम्) उत्पन्न हुआ है आनन्द जिनको उन (त्वा) आपको (पत्नीः) आपके स्त्री जन और (वयः) ज्ञानवान (विश्वे) समस्त (देवासश्च) विद्वान् जन भी (त्वा) आपको (अन्वमदन्) अनुकूलता से प्रसृत्र करते हैं। अ।

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है बिलबान सैनापित से दुष्ट जीव तथा दुष्ट शत्रुजन मारे जाते हैं॥७॥

र्युतः स्किद्धाः इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

शुष्णुं पिप्रुं कुर्यवं वृत्रिमिन्द्र यदावधीर्वि पुरु: शम्बरस्य।

तन्नों मित्रो वर्मपो मामहन्तुमदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः॥८॥१७॥

शुष्णम्। पिप्रुम्। कुर्यम्। द्वन्त्रम्। इन्द्र। यदा। अवधीः। वि। पुर्रः। शम्बरस्य। तत्। नः। मित्रः। वर्रणः। ममहन्ताम्। अदितिः। सिन्धुः। पृथिवी। उत। द्यौः॥८॥

पदार्थः (शुणम्) बलवन्तम् (पिप्रुम्) प्रपूरकम्। अत्र पॄधातोर्बाहुलकादौणादिकः कुः प्रत्ययः। (कुयवम्) क्रौ पृष्टिच्यो यवा यस्मात् तम् (वृत्रम्) मेघं शत्रुं वा (इन्द्र) (यदा) (अवधीः) हंसि (वि) (पुरः) प्रुराणि (श्रम्बरस्य) मेघस्य बलवतः शत्रोर्वा। शम्बर इति मेघनामसु पठितम्। (निघं०१.१०) बलनगमसु श्रा (निघं०२.९) (तन्नो० मित्रो०) इति पूर्ववत्।।८॥

अन्वयः-हे इन्द्र! यदा त्वं यथा सूर्यः शुष्णं कुवयं पिप्रुं वृत्रं शम्बरस्य पुरश्च व्यवधीस्तन् मित्रो वरुणोऽदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौर्नोऽस्मान् मामहन्ताम्, सत्कारहेतवो भवेयुः॥८॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। मनुष्यैर्यथा सूर्यगुणास्तानुपमीकृत्य स्वैगुण्धुत्यादिभ्यः) पृथिव्यादिभ्यश्चोपकारान् सङ्गृह्य शत्रून् हत्वा सततं सुखयितव्यम्॥८॥

अत्रेश्वरसूर्य्यसेनाधिपतीनां गुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीर्ति बोध्यम्॥

इति त्र्युत्तरमेकशततमं १०३ सूक्तं सप्तदशो वर्गश्च १७ समाप्तः

पदार्थ:-हे (इन्द्र) सेनापित (यदा) जब सूर्य (शुष्णम्) बलवान् (कुवयम्) जिससे कि यवादि होते और (पिप्रुम्) जल आदि पदार्थों को परिपूर्ण करता उस (वृत्रम्) मेंच वा (शम्बरस्य) अत्यन्त वर्षनेवाले बलवान् मेघ की (पुर:) पूरी-पूरी घटा और घुमड़ी हुई सण्ड्रिक्यों को हनता है, वैसे शत्रुओं की नगिरयों को (वि, अवधी:) मारते हो (तत्) तब (मित्र:) मित्र (वर्षणः) उत्तम गुणयुक्त (अदिति:) अन्तिरक्ष (सिन्धु:) समुद्र (पृथिवी) पृथिवी (उत्त) और (वि:) सूर्यलोक (नः) हम लोगों के (मामहन्ताम्) सत्कार कराने के हेतु होते हैं॥८॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है मिनुष्यों को चाहिये कि जैसे सूर्य्य के गुण हैं, उनकी उपमा अर्थात् अनुसार लेकर अपने गुणों से, सेवकादिकों से और पृथिवी आदि लोकों से उपकारों को ले और शत्रुओं को मारकर निरन्तर सुखी हों॥

इस सूक्त में ईश्वर, सूर्य और सेनाधिपूर्वि के गुणों के वर्णन से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये॥

यह एकसौ तीनवाँ १० स्मित्त और सत्रहवाँ १७ वर्ग समाप्त हुआ॥



अथास्य नवर्चस्य चतुरिधकशततमस्य सूक्तस्याङ्गिरसः कुत्स ऋषिः। इन्द्रो देवता। १ पङ्क्तिः।

२,४,५ स्वराट् पङ्क्तिः। ६ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः। ३,७ त्रिष्टुप्। ८,९

निचृत्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनः स सभापतिः किं कुर्यादित्युपदिश्यते॥

अब नव ऋचावाले एकसौ चार सूक्त का आरम्भ है। उसके प्रथम मन्त्र में फिर सूर्यापित केरा करे. यह उपदेश किया है।।

योनिष्ट इन्द्र निषदें अकारि तमा निषीद स्वानो नार्वा।

विमुच्या वयोऽवसायाश्चान्दोषा वस्तोर्वहीयसः प्रपित्वे॥ १॥

योनि:। ते। इन्द्रा निऽसदे। अकारि। तम्। आ। नि। सीद्रा स्वानः स्थि अवी विश्वमुच्ये। वर्यः। अवऽसाये। अश्चान्। दोषा। वस्तोः। वहीयसः। प्रऽपित्वे॥ १॥

पदार्थ:-(योनि:) न्यायासनम् (ते) तव (इन्द्र) न्यायाधीश्र (निषदे) स्थित्यर्थम् (अकारि) क्रियते (तम्) (आ) (नि) (सीद) आस्व (स्वानः) शब्दं कुर्वन् (न्) इष (अर्वा) अश्वः (विमुच्य) त्यक्त्वा। अत्रान्येषामपीति दीर्घः। (वयः) पक्षिणो जीवनं वा (अवस्यि) रक्षणाद्याय (अश्वान्) वेगवतस्तुरङ्गान् (दोषा) रात्रौ (वस्तोः) दिने (वहीयसः) सद्यो देशान्तरे प्रापकान्य्यादीन् (प्रपित्वे) प्राप्तव्ये समये स्थाने वा। प्रपित्वेऽभीक इत्यासन्नस्य, प्रपित्वे प्राप्तेऽभीकेऽभ्यक्ते। (निरु०३.२०)॥१॥

अन्वय:-हे इन्द्र! ते निषदे योनि: सभासिद्धिरम्पाभिरकारि तं त्वमानिषीद स्वानोऽर्वा न प्रिपत्वे जिगिमषुस्त्वं वयोऽवसायाश्वान् विमुच्य दोषा वस्तोर्वहीयसोऽभ्रियुङ्क्ष्व॥१॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। न्यायाधीरीन्यायासनेषु स्थित्वा प्रसिद्धै: शब्दैरर्थिप्रत्यर्थीन् संबोध्य प्रतिदिनं यथावन्न्यायं कृत्वा प्रसन्नान् सम्पद्ध सर्वे ते सुखयितव्या:। अतिपरिश्रमेणावश्यं वयोहानिर्भवतीति विमृश्य त्वरितगमनाय क्रियाकोभूक्ताप्न्यादिभिर्विमानादियानानि सम्पादनीयानि॥१॥

पदार्थ:-हे (इन्द्र) न्यूरीश्वीश! (ते) आपके (निषदे) बैठने के लिये (योनि:) जो राज्यसिंहासन हम लोगों ने (अकारि) किया है (तम्) उस पर आप (आ निषीद) बैठो और (स्वान:) हींसते हुए (अर्वा) घोड़े के (न) समान (प्रिक्ति) पहुंचने योग्य स्थान में किसी समय पर जाया चाहते हुए आप (वय:) पक्षी वा अवस्था की (अवसाय) रक्षा आदि व्यवहार के लिये (अश्वान्) दौड़ते हुए घोड़ों को (विमुच्य) छोड़ के (दोषा) रात्रि वा (वस्तो:) दिन में (वहीयस:) आकाश मार्ग से बहुत शीघ्र पहुंचानेवाले अभि आदि पदार्थों को जोड़ो अर्थात् विमानादि रथों को अग्नि, जल आदि की कलाओं से युक्त करों॥१॥

भारार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। न्यायाधीशों को चाहिये कि न्यायासन पर बैठ के चलते हुए प्रसिद्ध शब्दों से अर्थी-प्रत्यर्थी अर्थात् लड़ने और दूसरी ओर से लड़नेवालों को अच्छी प्रकार समझा

कर प्रतिदिन यथोचित न्याय करके उन सबको प्रसन्न कर सुखी करें। और अत्यन्त परिश्रम से अवस्था की अवश्य हानि होती है, जैसे डाक आदि में अति दौड़ने से घोड़ा मरते हैं, इसको विचार कर बहुत शीघ्र जाने-आने के लिये क्रियाकौशल से विमान आदि यानों को अवश्य रचें॥१॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा है, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

ओ त्ये नर् इन्द्रमूतये गुर्नू चित्तान्त्सद्यो अध्वनो जगम्यात्। देवासो मन्युं दासस्य श्चम्नन्ते न आ विक्षन्तसुविताय वर्णम्॥२॥

ओ इर्ति। त्ये। नर्रः। इन्द्रम्। ऊतये। गुः। नु। चित्। तान्। सद्यः। अध्यनः। ज्रगप्यात्। देवासः। मन्युम्। दासंस्य। श्र्चमन्। ते। नुः। आ। वृक्षुन्। सुवितायं। वर्णम्॥२॥

पदार्थ:-(ओ) आभिमुख्ये (त्ये) ये (नरः) (इन्द्रम्) सभादिषतिम् (ऊतये) रक्षार्थम् (गुः) प्राप्नुवन्ति (नु) शीघ्रम् (चित्) अपि (तान्) (सद्यः) (अध्वनः) सन्पार्गन् (जगम्यात्) भृशं गच्छेत् (देवासः) विद्वांसः (मन्युम्) क्रोधम्। मन्युरिति क्रोधनामसु पठितम्। (निघं०२.१३) (दासस्य) सेवकस्य (श्चम्नन्) हिंसन्तु। श्चमुधातुहिंसार्थः। (ते) (नः) अस्माक्षम् (आ) (वक्षन्) वहन्तु प्रापयन्तु (सुविताय) प्रेरिताय दासाय (वर्णम्) आज्ञापालनस्वीकरणम्॥२॥

अन्वय:-त्ये ये नर ऊतय इन्द्रं सद्य ओ गुम्नां श्रद्यमध्वर्गी जगम्यात् ये देवासो दासस्य मन्युं श्चम्नन्ते नोऽस्माकं सुविताय प्रेरिताय दासाय वर्णं न्वावक्षन्॥ २॥

भावार्थ:-ये प्रजासेनास्था मनुष्या सत्यपालभूत्य सभाद्यध्यक्षादीनां शरणं प्राप्नुयुस्तानेते यथावद् रक्षेयु:, ये विद्वांसो वेदसुशिक्षाभ्यां मनुष्नाणां दीषाभिवार्य्य शान्त्यादीन् सेवयेयुस्ते सर्वै: सेवनीया:॥२॥

पदार्थ:-(त्ये) जो (नर:) मुज्जमें (ऊतयें) रक्षा के लिये (इन्द्रम्) सभा सेना आदि के अधीश के (सद्य:) शीघ्र (ओ, गु:) सम्मुख प्राप्त होते हैं (तान्) उनको (चित्) भी यह सभापित (अध्वन:) श्रेष्ठ मार्गों को (जगम्यात्) निरन्तर पहुंचावे। तथा जो (देवास:) विद्वान् जन (दासस्य) अपने सेवक के (मन्युम्) क्रोध को (श्व्यन्तर्भ) निवृत्त करें (ते) वे (न:) हम लोगों की (सुविताय) प्रेरणा को प्राप्त हुए दास के लिये (वर्णम्) आज्ञामल्ला करने को (नु) शीघ्र (आ, वक्षन्) पहुंचावें॥२॥

भावार्थ: जो प्रजा वा सेना के जन सत्य के राखने को सभा आदि के अधीशों के शरण को प्राप्त हों, उनकी वे राधावत रक्षा करें। जो विद्वान् लोग वेद और उत्तम शिक्षाओं से मनुष्यों के क्रोध आदि दोषों को निष्कृत केर शान्ति आदि गुणों का सेवन करावें, वे सबको सेवन करने के योग्य हैं॥२॥

अथ राजप्रजे परस्परं कथं वर्त्तेयातामित्युपदिश्यते॥

अब राजा और प्रजा परस्पर कैसे वर्तें, यह अगले मन्त्र में उपदेश किया है॥

भव त्मना भरते केर्तवेदा अव त्मना भरते फेर्नमुदन्।

मण्डल-१। अनुवाक-१५। सूक्त-१०४



क्षीरेण स्नातः कुर्यवस्य योषे हुते ते स्यातां प्रवणे शिफायाः॥३॥

अर्व। त्मना। भुरते। केर्तंऽवेदाः। अर्व। त्मना। भुरते। फेर्नम्। उदन्। श्चीरेण। स्नातः। कुर्यवेप्य। योषे स्र्ति। हुते इति। ते इति। स्याताम्। प्रवणे। शिफायाः॥३॥

पदार्थ:-(अव) (त्मना) आत्मना (भरते) विरुद्धं धरित (केतवेदाः) केतः प्रज्ञातं वेदो भनं येन सः। केत इति प्रज्ञानामसु पठितम्। (निघं०३.९) (अव) (त्मना) आत्मना (भरते) अस्यायेन स्त्रीकरोति (फेनम्) चक्रवृद्ध्यादिना वर्धितं धनम् (उदन्) उदकमये जलाशये (क्षीरेणः) जलेन। क्षीरिमत्युदकनामसु पठितम्। (निघं०१.१२) (स्नातः) स्नानं कुरुतः (कुयवस्य) कुत्सिता धर्माभर्मित्रिता व्यवहारा यस्य तस्य (योषे) कृतपूर्वापरिववाहे परस्परं विरुद्धे स्त्रियाविव (हते) हिंसिते (ते) (स्याताम्) (प्रवणे) निम्नप्रवाहे (शिफायाः) नद्याः। अत्र शिञ् पत्थाने धातोरौणादिक फ्र्यू प्रत्यसः॥३॥

अन्वयः-यः केतवेदा राजपुरुषस्त्मना प्रजाधनमवभरतेऽन्यायेन स्वीकरोक्ति यश्च प्रजापुरुषस्त्मना फेनं वर्धितं राजधनमवभरतेऽधर्मेण स्वीकरोति तौ क्षीरेणोदन् जलेन पूर्णे जलाशून स्नात्त उपिष्टाच्छुद्धौ भवतोऽपि यथा कुयवस्य योषे शिफायाः प्रवणे हते स्यातां तथैव विनष्टौ भवतः॥३॥

भावार्थ:-यः प्रजाविरोधी राजपुरुषो राजविराधी वा प्रजापुरुषोऽस्ति न खलु तौ सुखोन्नतिं कर्तुं शक्नुतः। यो राजपुरुषः पक्षपातेन स्वप्रयोजनाय प्रजापुरुषान् पीडियत्वा धनं संचिनोति। यः प्रजापुरुषस्तेयकपटाभ्यां राजधनस्य नाशं च तौ यथा सपत्न्यौ परस्परस्य कलहक्रोधाभ्यां नद्या मध्ये निमज्य प्राणांस्त्यजतस्तथा सद्यो विनश्यन् । नस्माद्यानपुरुषः प्रजापुरुषेण प्रजापुरुषो राजपुरुषेण च सह विरोधं त्यक्त्वाऽन्योऽन्यस्य सहायकार्ग्रे(भूत्वा सद्य) वर्तेत॥३॥

पदार्थ:-(केतवेदा:) जिस्में धन जान लिया है, वह राजपुरुष (त्मना) अपने से प्रजा के धन को (अव, भरते) अपना कर धर लेता है अर्थात् अन्याय से ले लेता है और जो प्रजापुरुष (त्मना) अपने से (फेनम्) ब्याज पर ब्याज ले लेकर बढ़ाये हुए वा और प्रकार अन्याय से बढ़ाये हुए राजधन को (अव, भरते) अधर्म से लेता है, वि होनें (बीरिण) जल से पूरे भरे हुए (उदन्) जलाशय अर्थात् नद-निदयों में (स्नात:) नहाते हैं, उससे रूपर से शुद्ध होते भी जैसे (कुयवस्य) धर्म और अधर्म से मिले जिसके व्यवहार हैं, उसरे पुरुष की (योष) अगले-पिछले विवाह की परस्पर विरोध करती हुई स्त्रियां (शिफाया:) अति कार करती हुई नदी के (प्रवणे) प्रबल बहाव में गिर कर (हते) नष्ट (स्थाताम्) हों, वैसे नष्ट हुं आते हैं। ३॥

भावार्थ:-जो प्रजा का विरोधी राजपुरुष वा राजा का विरोधी प्रजा पुरुष है, ये दोनों निश्चय है कि सुखोत्रिक को नहीं पाते हैं। और जो राजपुरुष पक्षपात से अपने प्रयोजन के लिये प्रजापुरुषों को पीड़ा देक धन इकट्ठा करता तथा जो प्रजापुरुष चोरी वा कपट आदि से राजधन को नाश करता है, वे दोनों

जैसे एक पुरुष की दो पत्नी परस्पर अर्थात् एक-दूसरे से कलह करके क्रोध से नदी के बीच गिर के मर जाती हैं, वैसे ही शीघ्र विनाश हो जाते हैं। इससे राजपुरुष प्रजा के साथ और प्रजापुरुष राजा के साथ विरोध छोड़ के परस्पर सहायकारी होकर सदा अपना वर्ताव रक्खें॥३॥

पुनस्तौ कथं वर्त्तेयातामित्युपदिश्यते॥

फिर वे कैसे वर्ताव वर्तें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

युयोप नाभिरुपंरस्यायोः प्र पूर्वाभिस्तिरते राष्ट्रि शूर्रः। अञ्चसी कुंलिशी वीरपंत्नी पर्यो हिन्वाना उदर्भिर्भरन्ते॥४॥

युयोर्प। नाभिः। उर्परस्य। आयोः। प्रा पूर्वाभिः। तिरते। राष्टि। शूर्रः अक्ट्रसी किलिशी। वीरऽर्पत्नी। पर्यः। हिन्वानाः। उदऽभिः। भुरने॥४॥

पदार्थ:-(युयोप) युप्यति विमोहं करोति (नाभि:) बन्धनामिव (उप्तस्य) मेघस्य। उपर इति मेघनामसु पठितम्। (निघं०१.१०) (आयो:) प्राप्तुं योग्यस्य। क्रुप्सीणः। (उणा०१.२) (प्र) (पूर्वाभिः) प्रजाभिस्सह (तिरते) प्लवते सन्तरित वा। अत्र व्यत्ययेन्नत्पनेपद्मा विकरणव्यत्ययेन शश्च। (राष्ट्रि) राजते। अत्र विकरणस्य लुक्। (शूरः) निर्भयेन शत्रूणां हिस्सित्। (अक्रिसी) प्रसिद्धा (कुलिशी) कुलिशेन वज्रेणाभिरक्ष्या (वीरपत्नी) वीरः पतिर्यस्याः सा (पयः) जलम् (हिन्वानाः) प्रीतिकारिका नद्यः (उदिभिः) उदकैः (भरन्ते) पुष्यन्ति। अत्र पक्षेऽन्तर्गतो ण्यर्थः।

अन्वय:-यदा शूर: प्रपूर्वाभिस्तिरते राज्यं मित्रित तत्र प्रष्टि प्रकाशते तदायोरुपरस्य नाभिर्युयोप सा न न्यूना किन्त्वञ्जसी कुलिशी वीरपत्नी नद्य: पयो हिन्वान उद्धिर्भरन्ते॥४॥

भावार्थ:-सुराज्येन सर्वसुखं प्रजासु भावति सुराज्येन विना दुःखं दुर्भिक्षं च भवति। अतो वीरपुरुषेण रीत्या राज्यपालनं कर्त्तव्यमिति॥४॥

पदार्थ:-जब (शूरः) किंद्र शत्रुओं का मारनेवाला शूरवीर (प्र, पूर्वाभिः) प्रजाजनों के साथ (तिरते) राज्य का यथावत् व्याय कर पार होता और (राष्ट्रि) उस राज्य में प्रकाशित होता है तब (आयोः) प्राप्त होने योग्य (उपरस्य) मेंघ की (नाभिः) बन्धन चारों ओर से घुमड़ी हुई बादलों की दवन (युयोप) सबको मोहित करती है अर्थात् राजधर्म से प्रजासुख के लिये जलवर्षा भी होती है, वह थोड़ी नहीं किन्तु (अञ्चम्मी) प्रसिद्ध (कुलिशी) जो सूर्य के किरणरूपी वज्र से सब प्रकार रही हुई अर्थात् सूर्य के विकट आत्रुप से पूखने से बची हुई (वीरपत्नी) बड़ी-बड़ी नदी जिनसे बड़ा वीर समुद्र ही है, वे (पयः) जलको (हिन्सानाः) हिड़ोलती हुई (उदिभिः) जलों से (भरन्ते) भर जाती हैं॥४॥

भावार्थ:-अच्छे राज्य से सब सुख प्रजा में होता है और विना अच्छे राज्य के दु:ख और दुर्भिक्ष आद्वि उपद्वे होते हैं, इससे वीर पुरुषों को चाहिये कि रीति से राज्य पालन करें॥४॥

पुनस्ते कथ वर्त्तेयातामित्युपदिश्यते॥

मण्डल-१। अनुवाक-१५। सूक्त-१०४

फिर वे कैसे वर्त्ताव वर्तें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

प्रति यत्स्या नीथार्दर्शि दस्योरोको नाच्छा सर्दनं जानती गात्। अर्ध स्मा नो मघवञ्चर्कृतादिन्मा नो मुघेव निष्पुपी पर्रा दाः॥५॥१८॥

प्रति। यत्। स्या। नीर्था। अर्दर्शि। दस्योः। ओर्कः। न। अच्छं। सर्दनम्। जान्ति। पात्। अर्थ। पुपा नः। मुघऽवन्। चुर्कृतात्। इत्। मा। नः। मुघाऽईव। निष्पुपी। पर्रा। दाः॥५॥

पदार्थ:-(प्रति) (यत्) या (स्या) सा प्रजा (नीथा) न्यायरक्ष्णे प्रापिता (अदिशिं) दृश्यते (दस्यो:) परस्वादातुश्चोरस्य (ओक:) स्थानम् (न) इव (अच्छ) सुष्टु निषातस्य भेति दीर्घः। (सदनम्) अवस्थितिम् (जानती) प्रबुध्यमाना (गात्) एति (अध) अथ (स्म) आपन्दे (नः) अस्मान् (मघवन्) सभाद्यध्यक्ष (चर्कृतात्) सततं कर्तुं योग्यात्कर्मणः (इत्) निश्चये (मा) निष्धे (नः) अस्माकम् (मघेव) यथा धनानि तथा (निष्धपी) स्त्रिया सह नितरां समवेता (परा) (दाः) द्वेर्षेखण्डयेर्विनाशयेः॥५॥

एतन्मन्त्रस्य कानिचित्पदानि यास्क एवं समाचष्ट्रे निष्यो स्त्रीकामो भवति विनिर्गतपसाः पसः पसतेः स्पृशतिकर्मणः। मा नो मुघेवं निष्प्रपी पर्रा दाः। स स्था धनानि विनाशयित मा नस्त्वं तथा परादाः। (निरु०५.१६)॥५॥

अन्वय:-सभादिपतिना यद्या नीथा प्रजा दस्योगिको न येथा गृहं तथा पालितादिश स्या साऽच्छ जानती सदनं प्रतिगात् प्रत्येति। हे मघवन्! निष्पपी संस्त्वं नोऽस्मान् मधेष मा परादा:। अधेत्यनन्तरं नोऽस्माकं चर्कृतादिदेव विरुद्धं मा स्म दर्शय॥५॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। यथा सुदृढं सम्यग्रक्षितं गृहं चोरेभ्यः शीतोष्णवर्षाभ्यश्च मनुष्यान् धनादिकं च रक्षति तथैव सभूषिषतिभी राजिभः सम्यग्रक्षिता प्रजैतान् पालयित। यथा कामुकः स्वशरीरधर्मविद्याशिष्टाचारान् विभाशयित, यथा च प्राप्तानि बहूनि धनानीर्ष्याभिमानयोगेन मनुष्या अन्यायेषु बद्ध्वा हीनानि कुर्वन्ति तथा प्रजाविनाशं नैव कुर्युः। किन्तु प्रजाकृतान् सततमुपकारान् बुद्धवा निरिभमानसंप्रीतिभ्यामेतान् स्रोतः पालेथयुः, नैव कदाचित् दुष्टेभ्यः शत्रुभ्यो भीत्वा पलायनं कुर्युः॥५॥

पदार्थ:-सभा आदि के स्वामी ने (यत्) जो (नीथा) न्याय रक्षा को पहुंचाई हुई प्रजा (दस्योः) पराया धन हरनेवाल डाकू के (ओकः) घर के (न) समान पाली सी (अदिशिं) देख पड़ती है (स्या) वह (अच्छ) अच्छा (जानती) जानती हुई (सदनम्) घर को (प्रति, गात्) प्राप्त होती अर्थात् घर को लौट जाती है। है (मघन्प्) सभा आदि के स्वामी! (निष्पपी) स्त्री के साथ निरन्तर लगे रहनेवाले तू (नः) हम लोगों को (मघेव) जैसे धनों को वैसे (मा, परा, दाः) मत बिगाड़े (अध) इसके अनन्तर (नः) हम लोगों के (चिक्रतात्) निरन्तर करने योग्य काम से (इत्) ही विरुद्ध व्यवहार मत (स्म) दिखावे॥५॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे अच्छा दृढ़, अच्छे प्रकार रक्षा किया हुआ घर चीरों वा शीत, गर्मी और वर्षा से मनुष्य और धन आदि पदार्थों की रक्षा करता है, वैसे ही सभापित राजाओं से अच्छी प्रकार पाली हुई प्रजा इनको पालती है। जैसे कामी जन अपने शरीर, धर्म, विद्या और अच्छे आचरण को बिगाड़ता और जैसे पाये हुए बहुत धनों को मनुष्य ईर्ष्या और अभिमान से अन्यायों में फैस कर बहाते हैं, वैसे उक्त राजा जन प्रजा का विनाश न करें, किन्तु प्रजा के किये विन्तर उपकारों को जान कर अभिमान छोड़ और प्रेम बढ़ाकर इनको सब दिन पालें और दुष्ट शत्रुजनों से डर के पोत्रयन न करें॥५॥

पुनस्ते कथं वर्त्तेयातामित्युपदिश्यते॥

फिर वे कैसे अपना वर्ताव वर्तें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है।

स त्वं न इन्द्र सूर्ये सो अप्स्वनागास्त्व आ भीज जीवशंसी मान्तरां भुजमा रीरिषो नः श्रद्धितं ते महुत इन्द्रियाय हि।

सः। त्वम्। नः। इन्द्रः। सूर्ये। सः। अप्ऽसुः। अनागाः उत्त्वे। आ। शुन्रः जीवुऽशंसे। मा। अन्तराम्। भुर्जम्। आ। रिरिषः। नः। श्रद्धितम्। ते। महते। इन्द्रियाये॥६॥

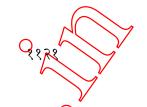
पदार्थ:-(स:) (त्वम्) (न:) अस्माकम् (इन्द्र) स्प्रादिस्वामिन् (सूर्ये) सिवतृमण्डले प्राणे वा (स:) (अप्सु) जलेषु (अनागास्त्वे) निष्पापभावे। अत्र वर्णव्यत्ययेनाकारस्य स्थान आकारः। (आ) (भज) सेवस्व (जीवशंसे) जीवानां शंसास्तुतियस्मिंस्तिस्मिन् व्यवहारे चोपमाम् (मा) (अन्तराम्) मध्ये पृथग्वा (भुजम्) भोक्तव्यां प्रजाम् (आ) (सिर्स्यः) हिस्याः (नः) (श्रद्धितम्) श्रद्धा संजाताऽस्येति (ते) (महते) बृहते पृजिताय वा (इन्द्रियाय) ध्रमाय इन्द्रियमिति धननामसु पठितम्। (निघं०२.१०)॥६॥

अन्वयः-हे इन्द्र! यस्य ते महत्न इन्द्रियाय नौऽस्माकं श्रद्धितमस्ति स त्वं नोऽस्माकं भुजं प्रजामन्तरां मारीरिषः। स त्वं सूर्य्येऽप्स्वनागास्त्वे जीवशंसे निपमामाभज्याः।

भावार्थ:-सभापतिभियीः प्रजा श्रद्धयो राज्यव्यवहारसिद्धये महद्धनं प्रयच्छन्ति ताः कदाचिन्नैव हिंसनीयाः। यास्तु दस्युक्तरभूताः भन्त्येताः सदैव हिंसनीयाः। यः सेनापत्यधिकारं प्राप्नुयात् स सूर्य्यवन्न्यायविद्याप्रकाशं जलवन्त्रान्ततृप्ती अन्यायापराधराहित्यं प्रजाप्रशंसनीयं व्यवहारं च सेवित्वा राष्ट्रं रञ्जयेत्॥६॥

पदार्थः है (इन्द्र) सभा के स्वामी जिन (ते) आपके (महते) बहुत और प्रशंसा करने योग्य (इन्द्रियाय) धन के लिये (नः) हम लोगों का (श्रद्धितम्) श्रद्धाभाव है (सः) वह (त्वम्) आप (नः) हम लोगों के (भुजम्) भीग करने योग्य प्रजा को (अन्तराम्) बीच में (मा) मत (आ रीरिषः) रिषाइये मत मारिये और (सः) सो आप (सूर्य्ये) सूर्य्य, प्राण (अप्सु) जल (अनागास्त्वे) और निष्पाप में तथा

मण्डल-१। अनुवाक-१५। सूक्त-१०४



(जीवशंसे) जिसमें जीवों की प्रशंसा स्तुति हो, उस व्यवहार में उपमा को (आ, भज) अच्छि प्रकार भजिये॥६॥

भावार्थ:-सभापितयों को जो प्रजाजन श्रद्धा से राज्यव्यवहार की सिद्धि के लिए बहुत धन देवें, वे कभी मारने योग्य नहीं और जो प्रजाओं में डाकू वा चोर हैं, वे सदैव ताडूना देने योग्य हैं। जो सेनापित के अधिकार को पावे वह सूर्य्य के तुल्य न्यायिवद्या का प्रकाश, जून के समान शान्ति और तृप्ति कर, अन्याय और अपराध का त्याग और प्रजा के प्रशंसा करने योग्य व्यवहार का सेवन कर राज्य को प्रसन्न करे॥६॥

पुनरेताभ्यां परस्परं कथं प्रतिज्ञातव्यमित्युपद्भिष्यते॥

फिर इन दोनों को परस्पर कैसी प्रतिज्ञा करनी चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है।।

अर्घा मन्ये श्रत्ते अस्मा अधायि वृषा चोदस्व महुते ध्रिस्य।

मा नो अर्कृते पुरुहुत योनाविन्द्र क्षुध्यंद्भयो वर्ष आसुति हाः॥७॥

अर्घ। मुन्ये। श्रत्। ते। अस्मै। अधायि। वृषां। चोद्रस्य। महित्ते। धर्नाय। मा। नः। अर्कृते। पुरुऽहृत्। योनौं। इन्द्रं। क्षुर्ध्यत्ऽभ्यः। वर्यः। आऽसुतिम्। दाः॥७॥

पदार्थ:-(अध) अनन्तरम् (मन्ये) विक्रानीयाम् (अत्) श्रद्धां सत्याचरणं वा (ते) तव (अस्मै) (अधायि) धीयताम् (वृषा) सुखवर्षयिता (चोदस्व) पूर्ल (महते) बहुविधाय (धनाय) (मा) निषेधे (नः) अस्माकमस्मान् वा (अकृते) अनिष्पादिते (पुहिंदूत) अनेकैः सत्कृत (योनौ) निमित्ते (इन्द्र) परमैश्वर्यप्रद शत्रुविदारक (श्रुध्यद्ध्यः) बुभुक्षितेभ्यः (त्रयः) कमनीयमन्नम् (आसृतिम्) प्रजाम् (दाः) छिन्द्याः॥७॥

अन्वय:-हे पुरुहूतेन्द्र! वृषा त्वमकृते योनौ नोऽस्माकं वय आसुतिं च मा दाः त्वया क्षुध्यद्भयोऽन्नादिकमधायि नोऽस्मान् महते धनाय चोदस्व। अभूमि ते तवैतच्छुद्रहं मन्ये॥७॥

भावार्थ:-न्यायाधीस्मदिभी सजपुरुषेरकृतापराधानां प्रजानां हिंसनं कदाचित्रैव कार्य्यम्। सर्वदैताभ्य: करा ग्राह्याः एनाः सम्पाल्य वर्धयित्वा विद्यापुरुषार्थयोर्मध्ये प्रवर्त्याऽऽनन्दनीयाः। एतत्सभापतीनां सत्यं कर्म प्रजास्थः सदैव मन्तव्यम्॥७॥

पदार्थ: है (पुरुहूत) अनेकों से सत्कार पाये हुए (इन्द्र) परमैश्वर्य देने और शत्रुओं का नाश करनेहारे सभापति! (वृषा) अति सुख वर्षानेवाले आप (अकृते) विना किये विचारे (योनौ) निमित्त में (न:) हम लोगों के (वय:) अभीष्ट अत्र और (आसुतिम्) सन्तान को (मा, दा:) मत छिन्न-भिन्न करो और (अधादि) धरो, हम लोगों को (महते) बहुत प्रकार के

(धनाय) धन के लिये (चोदस्व) प्रेरणा कर, (अध) इसके अनन्तर (अस्मै) इस उक्त काम के लिये (ते) तेरी (श्रत्) यह श्रद्धा वा सत्य आचरण मैं (मन्ये) मानता हूं॥७॥

भावार्थ: -न्यायाधीश आदि राजपुरुषों को चाहिये कि जिन्होंने अपराध न किया हो, हुन कि जिन्होंने अपराध न किया हो, हुन कि जिन्होंने को कभी ताड़ना न करें, सब दिन इनसे राज्य का कर धन लेवें, तथा इनको अच्छे प्रकार पाल और उन्नति दिलाकर विद्या और पुरुषार्थ के बीच प्रवृत्त कराकर आनन्दित करावें। सभापित आदि के इस सत्य काम को प्रजाजनों को सदैव मानना चाहिये॥७॥

पुनरेताभ्यां कथं प्रतिज्ञातव्यमित्युपदिश्यते॥

फिर इनको कैसी प्रतिज्ञा करनी चाहिए, यह विषय अगले मन्द्रि कहा है।।

मा नो वधीरिन्द्र मा पर्रा दा मा ने: प्रिया भोजनानि प्र मोक्री:। आण्डा मा नो मघवळ्ळक्र निर्भेन्मा नु: पात्रां भेत्सहर्जानुषाणि।।

मा। नः। वधीः। इन्द्र। मा। पर्रा। दाः। मा। नः। प्रिया। भोजनिन। प्रा मोष्ट्रीः। आण्डा। मा। नः। मुघुऽवन्। शुक्रु। निः। भेत्। मा। नः। पात्रा। भेत्। सहऽजानुषाणि॥८॥

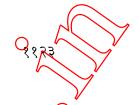
पदार्थ:-(मा) निषेधे (न:) अस्मान् प्रजस्थानम्पुष्यदिन् (वधी:) हिंस्याः (इन्द्र) शत्रुविनाशक (मा) (परा) (दाः) दद्याः (मा) (नः) अस्माकम् (प्रिया) प्रियाणि (भोजनानि) भोजनवस्तूनि (प्र) (मोषीः) स्तेनयेः (आण्डा) अण्डवद्गर्भे स्थितम् (मा) (नः) अस्माकम् (मघवन्) पूजितधनयुक्त (शक्र) शक्नोति सर्वं व्यवहारं कर्त्तुं तत्सम्बुद्धे (निः) भितराम् (भेत्) भिन्द्याः। बहुलं छन्दसीतीडभावो झलो झलीति सलोपो हल्ड्याब्भ्य इति स्थिब्लापृश्च। (मा) (नः) अस्माकम् (पात्रा) पात्राणि सुवर्णरजतादीनि (भेत्) भिन्द्याः (सहजानुषाणि) जनुभिर्जन्मभिर्निर्वृत्तानि जानुषाणि कर्माणि तैः सह वर्तमानानि॥८॥

अन्वय:-हे मघवञ्छक्रेन्द्र सभाधिपते! वं नो मा वधी:। मा परादा:। नः सहजानुषाणि प्रिया भोजनानि मा प्रमोषी:। नोऽस्माकमाण्डा मा निभेता मोऽस्माकं पान्ना मा भेत्॥८॥

भावार्थ: -हे स्माप्त ! त्वे यथान्यायेन कंचिदप्यहिंसित्वा कस्माच्चिदिप धार्मिकादपराङ्मुखो भूत्वा स्तेयादिदोषरिहतो पर्माश्वर्रो दयां प्रकाशयित, तथैव प्रवर्त्तस्व नह्येवं वर्त्तमानेन विना प्रजा संतुष्टा जायते॥८॥

पदार्थ: हे (प्रधवन्) प्रशंसित धनयुक्त (शक्र) सब व्यवहार के करने को समर्थ (इन्द्र) शत्रुओं को विनाश करनेवाल सभा के स्वामी आप (न:) हम प्रजास्थ मनुष्यों को (मा, वधी:) मत मारिये (मा, परा, दर्श) अन्याय से दण्ड मत दीजिये, स्वाभाविक काम और (न:) हम लोगों के (सहजानुषाणि) जो जन्म से सिद्ध उन के वर्तमान (प्रिया) पियारे (भोजनानि) भोजन पदार्थों को (मा, प्र, मोषी:) मत

मण्डल-१। अनुवाक-१५। सूक्त-१०४



चोरिये, (नः) हमारे (आण्डा) अण्डे के समान जो गर्भ में स्थित हैं, उन प्राणियों को (मा, निर्भेत्) विदीर्ण मत कीजिये, (नः) हम लोगों के (पात्रा) सोने चांदी के पात्रों को (मा, भेत्) मत बिगाड़िया।

भावार्थ:-हे सभापति! तू जैसे अन्याय से किसी को न मार के किसी भी शार्मिक सज्जन से विमुख न होकर चोरी-चपारी आदि दोषरहित परमेश्वर दया का प्रकाश करता है, ब्रैस ही अपने राज्य के काम करने में प्रवृत्त हो, ऐसे वर्त्ताव के विना राजा से प्रजा सन्तोष नहीं पाती॥ 💋

पुन: प्रजया तेन सह किं प्रतिज्ञातव्यमित्युपदिश्यते॥

फिर प्रजा को इस सभापित के साथ क्या प्रतिज्ञा करनी चाहिये, यह विषय अमले मन्त्र में कहा है।।

अर्वाङेहि सोमेकामं त्वाहुर्यं सुतस्तस्यं पिबा मदीय। उक्तव्यचां जुठर् आ वृषंस्व पितेवं नः शृणुहि हूयमीनः॥९॥१९॥

अर्वाङ्। आ। इहि। सोमेऽकामम्। त्वा। आहुः। अयम्। स्नूतः। त्रस्ये। पिष् । मदाय। उरुऽव्यचाः। ज्ठरे। आ। वृष्क्व। पिताऽईव। नः। शृणुद्धि। हूयमानः॥ ९॥

पदार्थ:-(अर्वाङ्) अर्वाचीने व्यवहारे (अर्, इहि) आगच्छ (सोमकामम्) अभिषुतानां पदार्थानां रसं कामयते यस्तम् (त्वा) त्वाम् (आहुः) कश्र्यन्ति (अयम्) प्रसिद्धः (सुतः) निष्पादितः (तस्य) तम्। अत्र शेषत्विववक्षायां कर्मणि षष्ठी। (पिब) अत्र द्वेषच्योऽतस्तिङ इति दीर्घः। (मदाय) हर्षाय (उरुव्यचाः) उरु बहुविधं व्यचो विज्ञानं पूजनं सत्करण् व यस्य सः (जठरे) जायन्ते यस्मादुदराद्वा तस्मिन्। जनेररष्ठ च। (उणा०५.३८) अत्र जन धातोऽरः प्रत्ययो नकारस्य ठकारश्च। (आ) (वृषस्व) सिञ्चस्व (पितेव) यथा दयमानः पिता तथा (नः) अस्माद्भम् (शृण्याह्म) (ह्यमानः) कृताह्वानः सन्॥९॥

अन्वयः-हे सभाध्यक्ष! व्यस्त्वा त्वां सोमेकाममाहुरतस्त्वमर्वाङेहि। अयं सुतस्तस्य मदाय पिब। उरुव्यचास्त्वं जठरे आवृषस्व। अस्माभिर्हूयम्मनस्त्वं षितेव नः शृणुहि॥९॥

भावार्थः-प्रजास्थे सभाप्रत्यादयो राजपुरुषा अन्नपानवस्त्रधनयानमधुरभाषणादिभिः सदा हर्षयितव्याः। राजपुरुषैश्चः प्रजास्थाः प्राणिनः पुत्रवत्सततं पालनीया इति॥९॥

अत्र सुर्भापेते राज्ञः प्रेजायाश्च कर्त्तव्यकर्मवर्णनादेतत्सूक्तार्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिर्बोध्या॥

इंहि चतुरधिकशतं १०४ सूक्तमेकोनविशो १९ वर्गश्च समाप्तः॥

पदार्थ: है अभाध्यक्ष! जिससे (त्वा) आपको (सोमकामम्) कूटे हुए पदार्थों के रस की कामना करनेवाले (आहु:) बतलाते हैं, इससे आप (अर्वाङ्) अन्तरङ्ग व्यवहार में (आ, इहि) आओ, (अयम्) यह जो (सुतः) निकाला हुआ पदार्थों का रस है (तस्य) उसको (मदाय) हर्ष के लिये (पिब) पिओ,

(उरुव्यचा:) जिसका बहुत और अनेक प्रकार का पूजन सत्कार है, वह आप (जठरे) जिससे सबे व्यवहार होते हैं, उस पेट में (आ, वृषस्व) आसेचन कर अर्थात् उस पदार्थ को अच्छी प्रकार पीओ तथा हम लोगो से (हूयमान:) प्रार्थना को प्राप्त हुए आप (पितेव) जैसे प्रेम करता हुआ पिता पुर्व की सुनल है, वैसे (न:) हमारी (शृणुहि) सुनिये॥९॥

भावार्थ:-प्रजाजनों को चाहिये कि सभापति आदि राजपुरुषों को खान, पान, वस्त्र, धन, यान और मीठी-मीठी बातों से सदा आनन्दित बनाये रहें और राजपुरुषों को भी चाहिये कि प्रजाजनों को पुत्र के समान निरन्तर पालें॥९॥

इस सूक्त में सभापित राजा और प्रजा के करने योग्य व्यवहार के वर्णन से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये॥

यह एकसौ चारवाँ १०४ सूक्त और उन्नीसवां १९ को पूरा हुआ।।

अथैकोनविंशत्यृचस्य पञ्चाधिकशततमस्य सूक्तस्याप्यस्त्रित ऋषिराङ्गिरसः कुत्सो वा। विश्वेदेवा देवता:। १,२,१२,१६,१७ निचृत्पङ्क्ति:। ३,४,६,९,१५,१८ विराट्पङ्क्ति:। ८,१०

0

स्वराट् पङ्क्तिः। ११,१४ पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः। ५ निचृद्बृहती। ७ भूरिग्बृहती। (१३)

महाबृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः। १९ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथ चन्द्रलोकः कीदृश इत्युपदिश्यते॥

अब एकसौ पांचवें सूक्त का आरम्भ है। उसके प्रथम मन्त्र में चन्द्रलोक कैसा है, इस विषय की कहा है॥

चन्द्रमा अप्स्वर्षन्तरा सुपूर्णो धावते दिवि।

न वो हिरण्यनेमय: पुदं विन्दन्ति विद्युतो वित्तुं में अस्य स्रेदसी रा

चन्द्रमा:। अप्ऽसु। अन्तः। आ। सुऽपुर्णः। धावते। दिवि। न। वः। हिर्फ्युऽनेमयः। पुदम्। विन्दुन्ति। विद्युतः। वित्तम्। मे। अस्य। रोदुसी इति॥१॥

पदार्थ:-(चन्द्रमा:) आह्नादकारक: इन्दुलोक: (अप्स) प्राप्त्रभूतेषु वायुषु (अन्त:) (आ) (सुपर्ण:) शोभनं पर्णं पतनं गमनं यस्य (धावते) (दिषि) सूर्यप्रकाशे (न) निषेधे (व:) युष्माकम् (हिरण्यनेमय:) हिरण्यस्वरूपा नेमि: सीमा यासां ताः (पदम्) विचारमयं शिल्पव्यवहारम् (विन्दन्ति) लभन्ते (विद्युत:) सौदामिन्यः (वित्तम्) विजानीतम् (मे) मम पदार्थविद्याविदः सकाशात् (अस्य) (रोदसी) द्यावापृथिव्याविव राजप्रजे जनसमूहौ ।

अन्वयः – हे रोदसी! मे मम सकाशाद योऽप्यवन्तः सुपर्णश्चन्द्रमा दिव्याधावते हिरण्यनेमयो विद्युतश्च धावत्योः वः पदं न विन्दन्त्यस्य पूर्वोक्तस्येमं पूर्वोक्तं विषये युवां क्रिक्नम्॥१॥

भावार्थ:-हे राजप्रजापुरुषौ । यश्चन्द्रमसंस्छायान्तरिक्षजलसंयोगेन शीतलत्वप्रकाशस्तं विजानीतम्। या विद्युत: प्रकाशन्ते ताश्चक्षुर्ग्राह्या भवन्ति या: प्रसीनास्तासां चिह्नं चक्षुषा ग्रहीतुमशक्यम्। एतत्सर्वं विदित्वा सुखं सम्पादयेतम्॥ श्री

पदार्थ:-हे (रोद्रक्त) सूर्यप्रकाश वा भूमि के तुल्य राज और प्रजा जनसमूह! (मे) मुझ पदार्थ विद्या जाननेवाले की उत्तर्जन सीजो (अप्सु) प्राणरूपी पवनों के (अन्तः) बीच (सुपर्णः) अच्छा गमन करने वा (चन्द्रमाः) आनन्द देनवाला चन्द्रलोक (दिवि) सूर्य के प्रकाश में (आ, धावते) अति शीघ्र घूमता है और (हिरप्रानेमयः) जिनको सुवर्णरूपी चमक-दमक चिलचिलाहट है, वे (विद्युतः) बिजली लपट-झपट से हैं इर्ज (वः) तुम लोगों की (पदम्) विचारवाली शिल्प चतुराई को (न) नहीं (विन्दन्ति) पाती हैं अर्थात् तुम उनको यथोचित काम में नहीं लाते हो (अस्य) इस पूर्वोक्त विषय को तुम (विन्तम्) जानो॥१॥

भावार्थ:-हे राजा और प्रजा के पुरुष! जो चन्द्रमा की छाया और अन्तरिक्ष के जल के संयोग से शीतलता का प्रकाश है, उसको जानो तथा जो बिजुली लपट-झपट से दमकती हैं, वे आखों से देखने योग्य हैं और जो विलाय जाती हैं, उनका चिह्न भी आँख से देखा नहीं जा सकता, इस सब्बी जिनकर सुख को उत्पन्न करो॥१॥

पुनस्तौ कीदृशावित्युपदिश्यते॥

फिर वे राजा और प्रजा कैसे हैं, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है।

अर्थुमिद्वा उ अर्थिन आ जाया युवते पतिम्।

तुञ्जाते वृष्णयं पर्यः परिदाय रसं दुहे वित्तं में अस्य रोदसी।

अर्थम्। इत्। वै। ऊम्ऽइति। अर्थिनः। आ। जाया। युवते। पर्तिम्। तुर्झाते इति। वृण्यम्। पर्यः। प्रार्टिऽदार्य। रसम्। दुहे। वित्तम्। मे। अस्य। रोदसी इति॥२॥

पदार्थ:-(अर्थम्) य ऋच्छति प्राप्नोति तम् (इत्) अपि (कै) खलु (उ) वितर्के (अर्थिनः) प्रशस्तोऽर्थः प्रयोजनं येषान्ते (आ) (जाया) स्त्रीव (युवते) युनते बध्निन्त। अत्र विकरणव्यत्ययेन शः। (पितम्) स्वामिनम् (तुझाते) दुःखानि हिंस्तः। व्यत्ययेनित्रात्विषद्धे। (वृष्ण्यम्) वृषसु साधुम् (पयः) अत्रम्। पय इत्यन्ननामसु पठितम्। (निघं०२.७) (पित्तिष्य) सर्वता दत्वा (रसम्) स्वादिष्ठमोषध्यादिभ्यो निष्पन्नं सारम् (दुहे) वर्धयेयम् (वित्तं, मे०) इति यूवक्त्॥२॥

अन्वय:-यथार्थिनोऽर्थं वै पतिं जायेव आयुक्ति पथा राष्ट्रप्रजे यद् वृष्ण्यं पयो रसमित् परिदाय दु:खानि तुञ्जाते तथा तच्चाहमपि दुहे। अन्यत् पूर्ववत्॥२॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोप्रमालक्ष्मरः। यथा स्त्रीष्टं पतिं प्राप्य पुरुषश्चेष्टां स्त्रियं वाऽऽनन्दयतस्तथाऽर्थ- साधनतत्प्रा विद्युत्पृथिवीसूर्यप्रकाशविद्यां गृहीत्वा पदार्थान् प्राप्य सदा सुखयित नहोतिद्वद्याविदां सङ्गेन विनेषा विद्या भवितुमहिति दुःखविनाशश्च संभवित। तस्मादेषा सर्वैः प्रयत्नेन स्वीकार्य्या॥२॥

पदार्थ:-जैसे (अधिनः) प्रश्नेंसित प्रयोजनवाले जन (अर्थम्) जो प्राप्त होता है, उसको (वै) ही (पितम्) पित का (जाया) सम्बन्ध करनेवाली स्त्री के समान (आ, युवते) अच्छे प्रकार सम्बन्ध करते हैं (उ) या तो जैसे राजा-प्रजा जिस (वृष्ण्यम्) श्रेष्ठों में उत्तम (पयः) अत्र (इत्) और (रसम्) स्वादिष्ठ ओषिधयों से निकाल रस को (पिरदाय) सब ओर से देके दुःखों को (तुझाते) दूर करते हैं, वैसे उस- उस को मैं भी (दुहें) बढ़ाऊँ। शेष अर्थ प्रथम मन्त्र में कहे समान जानना चाहिये॥२॥

भावार्थ: - इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे स्त्री अपनी इच्छा के अनुकूल पित को वा पित्र अपनी इच्छा के अनुकूल स्त्री को पाकर परस्पर आनन्दित करते हैं, वैसे प्रयोजन सिद्ध कराने में क्रिपर विभूली, पृथिवी और सूर्यप्रकाश की विद्या के ग्रहण से पदार्थीं को प्राप्त होकर सदा सुख देती है।

मण्डल-१। अनुवाक-१५। सूक्त-१०५

इसकी विद्या को जाननेवालों के संग के विना यह विद्या होने को कठिन है और दुःख का मी किनाश अच्छी प्रकार नहीं होता। इससे सबको चाहिये कि इस विद्या को यत्न से लेवें॥२॥

अत्र जगति विद्वांसः कथं प्रष्टव्या इत्युपदिश्यते॥

इस जगत् में विद्वान् जन कैसे पूछने के योग्य हैं, यह अगले मन्त्र में उपदेश्र्रिक्या है।।

मो षु देवा अदः स्वर्श्यवं पादि द्विवस्परि।

मा सोम्यस्य शंभुवः शूने भूम कर्दा चन वित्तं मे अस्य रोदस्री। ३।।

मो इति। सु। देवाः। अदः। स्वः। अवं। पादि। दिवः। परि। मा। सोम्यस्य। श्मिभुवः। शूने। भूम। कर्दा। चुन। वित्तम्। मे। अस्य। रोदसी इति॥३॥

पदार्थ:-(मो) निषेधे (मु) शोभने। अत्र सुषामादित्वात् षत्वम्। (देवाः) विद्वांसः (अदः) प्राप्स्यमानम् (स्वः) सुखम् (अव) विरुद्धे (पादि) प्रतिपद्यतां प्राप्यताम् (दिवः) सूर्यप्रकाशात् (पिर) उपरिभावे। अत्र पञ्चम्याः परावध्यर्थे। (अष्टा०८.३.५१) हिन्ति विसर्जनीयस्य सः। (मा) निषेधे (सोम्यस्य) सोममैश्वर्यमर्हस्य (शंभुवः) सुखं भवति यस्मासस्य अत्र कृतो बहुलिमत्यपादाने क्विप्। (शूने) वर्धने। अत्र नपुंसके भावे क्तः। (अष्टा०३.३ ११४) (भूम) भवेम (कदा) कस्मिन् काले (चन) अपि वित्तं, मे, अस्येति पूर्ववत्॥३॥

अन्वयः-देवा युष्माभिर्दिवस्पर्य्यदः स्वः कदाच्च मोऽवपादि वयं सोम्यस्य शंभुवः सुशूने विरुद्धकारिणः कदाचिन्मा भूम। अन्यत्पूर्ववत्॥३॥

भावार्थ:-मनुष्यैरस्मिन् संसारे धर्मसुखाँबरुद्धं कर्म नैवाचरणीयम्। पुरुषार्थेन सुखोन्नतिः सततं कार्या॥३॥

पदार्थ:-हे (देवा:) किईं नो! तुम लोगों से (दिव:) सूर्य के प्रकाश से (पिर) ऊपर (अद:) वह प्राप्त होनेहारा (स्व:) सुख (कदा, वर्ग) कभी (मो, अव, पादि) विरुद्ध न उत्पन्न हुआ है। हम लोग (सोम्यस्य) ऐश्वर्य के योग्य (शंभुव:) सुख जिससे हो उस व्यवहार की (सु, शूने) सुन्दर उन्नति में विरुद्ध भाव से चलनेहारे कभी (मा) (भूम) मत होवें। और अर्थ प्रथम मन्त्र के समान जानना चाहिये॥

भावार्थ:-मेनुष्यों की चाहिये कि इस संसार में धर्म और सुख से विरुद्ध काम नहीं करें और पुरुषार्थ से निरन्तर सुख की उन्नति करें॥३॥

पुनस्ते प्रष्टभि: समाधातृभिश्च परस्परं कथं वर्त्तित्वा विद्यावृद्धिकार्येत्युपदिश्यते॥ कर पूंछने और समाधान देनेवालों को परस्पर कैसे वर्त्ताव रख कर विद्या की वृद्धि करनी चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

११२८

युज्ञं पृच्छाम्यवमं स तद्दूतो वि वोचिति। क्वं ऋतं पूर्व्यं गुतं कस्तद् बिभर्ति नूर्तनो वित्तं में अस्य रोदसी॥४॥

युज्ञम्। पृच्छामि। अवमम्। सः। तत्। दूतः। वि। वोचति। क्वं। ऋतम्। पूर्व्यम्। गृतम्। कः। तत्। विभित्ति नूर्तनः। वित्तम्। मे। अस्य। रोदसी इति॥४॥

पदार्थ:-(यज्ञम्) सर्वविद्यामयम् (पृच्छामि) (अवमम्) रक्षादिसाधकमुत्तूम् मर्वोचीनं के (सः) भवान् (तत्) (दूतः) इतस्ततो वार्ताः पदार्थान् वा विजानन् (वि) विविच्य (वोचितिः) उच्याद्वद्वत्। अत्र लेटि वचधातोर्व्यत्ययेनौकारादेशः। (क्व) कुत्र (ऋतम्) सत्यमुदकं वा (पूर्व्यम्) पूर्वः कृतम् (गतम्) प्राप्तम् (कः) (तत्) (विभित्ते) दधाति (नूतनः) नवीनः। वित्तं मे० इति पूर्ववित्रार्थाः)

अन्वयः-हे विद्वन्नहं त्वां प्रति यमवमं यज्ञं पूर्व्यमृतं क्व गतं को र्नृत-स्स्ट्रिश्नर्तीति पृच्छामि स दूतो भवांस्तत्सर्वं विवोचति विविच्योपदिशतु। अन्यत्पूर्ववत्॥४॥

भावार्थ:-विद्यां चिकीर्षुभिर्ब्रह्मचारिभिर्विदुषां समीपं गृष्ट्याऽनेकविष्ट्यन् प्रश्नान् कृत्वोत्तराणि प्राप्य विद्या वर्धनीया। भो अध्यापका विद्वांसो! यूयं स्वगतमागच्छत् मत्तोऽस्त्र संसारस्य पदार्थसमूहस्य विद्या अभिज्ञाय सर्वानन्यानेवमेवाध्याप्य सत्यमसत्यं च यथार्थत्सा विज्ञापुर्यते॥४॥

पदार्थ:-हे विद्वन्! मैं आपके प्रति जिस (अवमम्) स्था आदि करनेवाले उत्तम वा निकृष्ट (यज्ञम्) समस्त विद्या से परिपूर्ण (पूर्व्यम्) पूर्वजों ने सिद्ध किया (ऋतम्) सत्यमार्ग वा उत्तम जल स्थान (क्व) कहाँ (गतम्) गया (कः) और कौन (नूतनः) नवीप्त जन (तत्) उसको (विभर्ति) धारण करता है, इसको (पृच्छामि) पूछता हूँ (सः) सो (दूतः) इधर् उधर से बातचीत वा पदार्थों को जानते हुए आप (तत्) उस सब विषय को (वि वोचित्) विकि को कहो। और अर्थ सब प्रथम के तुल्य जानना॥४॥

भावार्थ: विद्या को चाहते हुए ब्रह्मचारियों को चाहिये कि विद्वानों के समीप जाकर अनेक प्रकार के प्रश्नों को करके और इससे उत्तर पाकर विद्या को बढ़ावें और हे पढ़ानेवाले विद्वानो! तुम लोग अच्छा गमन जैसे हो वैसे अभी और हमसे इस संसार के पदार्थों की विद्या को सब प्रकार से जान, औरों को पढ़ा कर सत्य कि असत्य की यथार्थभाव से समझाओ॥४॥

पुनिरेत परस्परं कथं किं कुर्व्युरित्युपदिश्यते॥

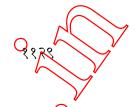
फिर ये परस्पर कैसे क्या करें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अमी ब देवाः स्थनं त्रिष्वारोचने दिवः।

कर्र ऋते कदरृतं कर्व प्रला व आहुतिर्वित्तं में अस्य रोदसी॥५॥२०॥

अभी इति। ये। देवाः। स्थर्न। त्रिषु। आ। रोचने। दिवः। कत्। वः। ऋतम्। कत्। अर्नृतम्। क्वे। प्रत्ना। वः। आर्रहतिः, वित्तपु। मे। अस्य। रोदुसी इति॥५॥

मण्डल-१। अनुवाक-१५। सूक्त-१०५



पदार्थ:-(अमी) प्रत्यक्षाऽप्रत्यक्षाः (ये) (देवाः) दिव्यगुणाः पृथिव्यादयो लोकाः (स्थान) सन्ति, अत्र तप्तनप्तनथनाश्चेति थनादेशः। (त्रिषु) नामस्थानजन्मसु (आ) समन्तात् (रोचने) प्रकाश्यविषये (दिवः) द्योतकस्य सूर्यमण्डलस्य (कत्) कुत्र। पृषोदरादित्वात् क्वेत्यस्य स्थाने कत्। (वः) पृषो मेक्ष्ये (ऋतम्) सत्यं कारणम् (कत्) (अनृतम्) कार्यम् (क्व) (प्रत्ना) प्राचीनानि (वः) एतेष्ट्राम् (आहुतिः) होमः प्रलयः। अन्यत्पूर्ववत्॥५॥

अन्वय:-हे विद्वांसो! यूयं दिवो रोचने त्रिष्वमी ये देवा आस्थन वस्तेषामृतं कदनृत कत्। वस्तेषां प्रत्ना आहुतिश्च क्व भवतीत्येषामृत्तराणि ब्रूत। अन्यत्पूर्ववत्॥५॥

भावार्थ: -यदा सर्वेषां लोकानामाहुति: प्रलयो जायते तदा कार्यं कारणं जीवाश्च क्व तिष्ठन्तीति प्रश्नः। एतदुत्तरं सर्वव्यापक ईश्वर आकाशे च कारणरूपेण सर्वं जगत्सुषुप्रीवज्जीवाश्च वर्त्तन्त इति। एकैकस्य सूर्यस्य प्रकाशाकर्षणविषये यावन्तो यावन्तो लोका वर्त्तन्ते तावन्तस्तावन्तः सर्व ईश्वरेण रचयित्वा धृत्वा व्यवस्थाप्यन्त इति वेद्यम्॥५॥

पदार्थ:-हे विद्वानो! तुम (दिव:) प्रकाश करनेबाले सूत्र्य के (रोचने) प्रकाश में (त्रिषु) तीन अर्थात् नाम, स्थान और जन्म में (अमी) प्रकट और अप्रकट (य) जो (देवा:) दिव्य गुणवाले पृथिवी आदि लोक (आ) अच्छी (स्थन) स्थिति करते हैं (वः) इनके बीच (ऋतम्) सत्य कारण (कत्) कहाँ और (अनृतम्) झूंठ कार्यरूप (कत्) कहाँ और (वः) उनके (प्रत्ना) पुराने पदार्थ तथा उनका (आहुति:) होम अर्थात् विनाश (क्व) कहाँ होता है, इन सब प्रश्नमें के उत्तर कहां ? शेष मन्त्र का अर्थ पूर्व के तुल्य जानना चाहिये॥५॥

भावार्थ:-प्रश्न-जब सब लोकों की आहुति अर्थात् प्रलय होता है, तब कार्य्यकारण और जीव कहाँ ठहरते हैं? इसका उत्तर-सर्वेद्यापी ईक्स और आकाश में कारण रूप से सब जगत् और अच्छी गाढ़ी नींद में सोते हुए के समान जीव रहते हैं। एक-एक सूर्य्य के प्रकाश और आकर्षण के विषय में जितने-जितने लोक हैं उतने अपने अपने इंश्वर ने बनाये धारण किये तथा इनकी व्यवस्था की है, यह जानना चाहिये॥५॥

पुनुस्तैः परस्परं किं किं प्रष्टव्यं समाधातव्यं चेत्युपदिश्यते॥

फिर इंग्रेको पुरस्पर क्या-क्या पूछना और समाधान करना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

कर्द्ध ऋतस्य धर्णसि कद्वर्रुणस्य चक्षणम्।

कर्दर्यम्णो महस्पुथार्ति क्रामेम दूढ्यो वित्तं मे अस्य रोदसी॥६॥

कत्। वः। ऋतस्यं। धुर्णुसि। कत्। वर्रुणस्य। चक्षणम्। कत्। अुर्युम्णः। मृहः। पुथा। अति। क्रामुम्। दुःऽध्यः। वित्तम्। मे। अस्य। ग्रेटुसी इति॥६॥

११३०

पदार्थ:-(कत्) क्व (व:) एतेषाम् (ऋतस्य) कारणस्य (धर्णास) धर्ता। अत्र सुर्ण सुलुगिति विभक्तेर्लुक्। (कत्) (वरुणस्य) जलादिकार्यस्य (चक्षणम्) दर्शनम् (कत्) केन (अर्थणः) सूर्यस्य (महः) महतः (पथा) मार्गेण (अति) (क्रामेम) उल्लङ्घयेम (दूढ्यः) दुःखेन ध्यातुं योग्यो व्यवहारः (वित्तं, मे अस्य, रोदसी) इति पूर्ववत्॥६॥

अन्वय:-हे विद्वांसो! व एतेषां स्थूलानां पदार्थानामृतस्य सत्यकारणस्य धर्णसि कत् क्वास्ति वरुणस्य चक्षणं कदस्ति महोऽर्यम्णे यो दूढ्यो व्यवहारस्तं कत् केन पथाऽतिक्रामेम तस्य पारं गच्छाम् तद्विद्वया परिपूर्णा भवेमेति यावत्। अन्यत् पूर्ववत्॥६॥

भावार्थ:-विद्या चिकीर्षुभिर्विदुषां सिवधं प्राप्य कार्यकारणिषद्यामार्गप्रहेनान् कृत्वोत्तराणि लब्ध्वा क्रियाकौशलेन कार्याणि संसाध्य दुःखं निहत्य सुखानि लब्धव्यानिमहा

पदार्थ: - हे विद्वानो! (व:) इन स्थूल पदार्थों के (ऋतस्य) सत्य कारण का (धर्णिस) धारण करनेवाला (कत्) कहाँ है (वरुणस्य) जल आदि कार्यरूप पदार्थों का (चक्षणम्) देखना (कत्) कहाँ है तथा (महः) महान् (अर्यम्णः) सूर्य्यलोक का जो (दूढ्यः) अति गम्भीर दुःख से ध्यान में आने योग्य व्यवहार है, उसको (कत्) किस (पथा) मार्ग से हम (अति क्रामेम) पार हों अर्थात् उस विद्या से परिपूर्ण हों। और शेष मन्त्रार्थ प्रथम मन्त्र के तुल्ल जानना च्याहिये॥६॥

भावार्थ:-विद्या प्राप्ति की इच्छावाले पुरुषों को चाहिये कि विद्वानों के समीप जाकर कार्य्य और कारण के विद्यामार्ग विषयक प्रश्नों को कर किस उत्तर पाकर क्रियाकुशलता से कामों को सिद्ध करके दु:ख का नाश कर सुख पावें॥६॥

अथ विदुष एतेषामुत्तराण्येवं दद्युरित्युपदिश्यते॥

अब विद्वान् क्रम इनके उत्तर पुरे देवें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

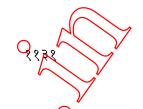
अहं सो अस्मि वः पुरा सुते वदामि कार्नि चित्।

तं मा व्यन्त्याध्ये र् वृक्ते न तृष्णजं मृगं वित्तं में अस्य रोदसी॥७॥

अहम्। सृः। अस्मि। यः। पुरा। सुते। वदामि। कार्नि। चित्। तम्। मा। व्यन्ति। आऽध्येः। वृक्तेः। न। तृष्णऽर्जम्। मृगम्। वित्तम्। मे। अस्य। रोदसी इति॥७॥

पद्धि:-(अहम्) अहमीश्वरो विद्वान् वा (सः) (अस्मि) (यः) (पुरा) सृष्टेविंद्योत्पत्तेः प्राग्वा (सुते) इत्पन्नेऽस्मिन् कार्य्ये जगित (वदािम) उपिदशािम (कािन) (चित्) अपि (तम्) (मा) माम् (व्यन्ति) काम्र्यन्ताम्। वाच्छन्दिस सर्वे विधयो भवन्तीतीयङभावे यणादेशः लेट्प्रयोगोऽयम्। (आध्यः) समन्ताद् ध्रीयन्ति चिन्तयन्ति ये ते (वृकः) स्तेनो व्याधः। वृकः इति स्तेननामसु पठितम्। (निघं०३.२४) (न) इव

मण्डल-१। अनुवाक-१५। सूक्त-१०५



(तृष्णजम्) तृष्णा जायते यस्मात्तम्। अत्र जन धातोर्डः। ड्यापोः संज्ञाछन्दसोर्बहुलिमिति हिस्तिन्वम्। (मृगम्) (वित्तं मे॰) इति पूर्ववत्॥७॥

अन्वय:-हे मनुष्या! योऽहं सृष्टिकर्ता विद्वान् वा सुतेऽस्मिञ्जगित कानिचित्पुरा वदामि सोऽहमस्मि सेवनीय:। तं माध्यो भवन्तो वृकस्तृष्याजं मृगं न व्यन्ति कामयन्तामन्यत्पूर्ववत्॥७॥

भावार्थ:-अत्र श्लेषोपमालङ्कारौ। सर्वान् मनुष्यान् प्रतीश्वर उपदिशित हे मानेष्य! यूयं राष्ट्री मया सृष्टिं रचियत्वा वेदद्वारा यादृशा उपदेशाः कृताः सन्ति तान् तथैव स्वीकुरुत्। उपास्यं मां विहायाऽन्यं कदाचिन्नोपासीरन्। यथा कश्चिन्मृगयायां प्रवर्त्तमानश्चोरो व्याधो वा मृगं प्राप्तु क्राम्यते, तथैव सर्वान् दोषान् हित्वा मां कामयध्वम्। एवं विद्वांसमिप॥७॥

पदार्थ: -हे मनुष्यो! (य:) जो (अहम्) संसार का उत्पन्न करनेवाला (सुते) उत्पन्न हुए इस जगत् में (कानि) (चित्) किन्हीं व्यवहारों को (पुरा) सृष्टि के पूर्व वा विद्वान में उत्पन्न हुए संसार में किन्हीं व्यवहारों को विद्या की उत्पत्ति से पहिले (वदामि) कहता हूं (स:) बहु में सेवन करने योग्य (अस्मि) हूं (तम्) उस (मा) मुझको (आध्य:) अच्छी प्रकार चिन्तम् वर्तनेवाले आप लोग जैसे (वृकः) चोर वा व्याघ्र (तृष्णजम्) पियासे (मृगम्) हरिण को (न) वैसे (व्यक्ति) चाहो। और शेष मन्त्रार्थ प्रथम मन्त्र के तुल्य जानना चाहिये॥७॥

भावार्थ: -इस मन्त्र में श्लेष और उपकार हैं। सब मनुष्यों के प्रति ईश्वर उपदेश करता है कि हे मनुष्यो! तुम लोग जैसे मैंने सृष्टि को रह के बेद द्वार जैसे -जैसे उपदेश किये हैं, उनको वैसे ही ग्रहण करो और उपासना करने योग्य मुझको छोड़ के अन्य किसी की उपासना कभी मत करो। जैसे कोई जीव मृग या रिसक चोर वा बधेरा हिए। को प्राप्त करना चाहता है, वैसे ही सब दोषों को निर्मूल छोड़कर मेरी चाहना करो और ऐसे विद्वान को भी चाहो॥७॥

अथ न्यायाधीशस्य समिपेऽर्धिप्रत्यर्थिसौ किंचित् क्लेशादिकं निवेदयेतां तयोर्यथावन्यायं स कुर्य्यादित्युपदिश्यते॥

अब न्यायाधीश के स्पिप्र वाद-विवाद करनेवाले वादी-प्रतिवादी जन अपने कुछ क्लेश का निवेदन्र करें और बहु उनका न्याय यथावत् करे, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

सं मृत्तिपन्स्यभितः सुपत्नीरिव पर्शवः।

पूर्ण<u> न शि</u>ष्टना व्यंदन्ति मार्ध्यः स्तोतारं ते शतक्रतो वित्तं में अस्य रौदसी॥८॥ सम्। मा। तुपन्ति। अभितः। सुपत्नीःऽइव। पर्शवः। मूर्षः। न। शिश्ना। वि। अदुन्ति। मा। आऽध्यः। तोतारम्। ने। शतक्रतो इति शतऽक्रतो। वित्तम्। मे। अस्य। रोदसी इति॥८॥

पदार्थ:-(सम्) (मा) मां प्रजास्थं वा पुरुषम् (तपन्ति) क्लेशयन्ति (अभितः) सर्वतः (सपत्नीरिव) यथाऽनेकाः पत्न्यः समानमेकपतिं दुःखयन्ति (पर्शवः) परानन्यान् शृणन्ति हिंसन्ति ते पर्शवः पार्श्वस्था मनुष्यादयः प्राणिनः। (मूषः) आखवः। अत्र जातिपक्षमाश्रित्यैकवचनम् (मि) इत्र (शिश्ना) अशुद्धानि सूत्राणि (वि) विविधार्थे (अदन्ति) विच्छिद्य भक्षयन्ति (मा) (आध्यः) परस्य मनसि शोकादिजनकाः (स्तोतारम्) धर्मस्य स्तावकम् (ते) तव (शतक्रतो) असंख्यातोत्तमपृत्तं बहून्तम्कर्मन् वा न्यायाध्यक्ष (वित्तं, मे, अस्य, रोदसी) इति पूर्ववत्॥८॥

अत्राह निरुक्तकारः-मूषो मूषिका इत्यर्थः। मूषिकाः पुनर्मुष्णातेः। मूर्षोऽप्येतस्पादेव। सन्तपन्ति मामभितः सपत्य इवेमाः पर्शवः कूपपर्शवः। मूषिका इवास्त्रातानि सूत्राप्पि व्यदन्ति। स्वाङ्गाभिधानं वा स्यात्। शिश्नानि व्यदन्तीति वा। सन्तपन्ति माध्यः कामाः। स्तोतारं ते शतकती क्रितं मे अस्य रोदसी। जानीतं मेऽस्य द्यावापृथिव्याविति। त्रितं कूपेऽविहतमेतत्सूक्तं प्रतिबशौ। तत्र ब्रह्मेतिहासिमश्रमृङ्मिश्रं गाथामिश्रं भवति। त्रितस्तीर्णतमो मेधया बभूव। अपि वा सङ्ख्यानामैबाभिन्नेत स्यात्। एकतो द्वितस्त्रित इति त्रयो बभूवः। (निरु०४.५–६)॥८॥

अन्वय:-हे शतक्रतो न्यायाधीश! ते तव प्रजास्थं स्तोतारं मा भा चे पर्शेव: सपत्नीरिवाभित: संतपन्ति य आध्यो मृष: शिश्ना व्यदन्ति न मा मामभित: संतपन्ति तानन्यायकारिणो जनास्त्वं युश्रावच्छाधि। अन्यत्पूर्ववत्॥८॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। हे न्यायाध्यक्षाद्यो मनुष्यः! यूयं यथा सपत्न्यः स्वपितमुद्वेजयन्ति, यथा वा स्वार्थिसद्ध्यसिद्धिका मूषिकाः परद्रव्यणि विनाम्भयन्ति, यथा च व्यभिचारिण्यो गणिकादयः स्त्रियः सौदामन्य इव प्रकाशवत्यः कामिनः शिश्नाद्दिर्गगद्वारा धर्मार्थकाममोक्षानुष्ठानप्रतिबन्धकत्वेन तं पीडयन्ति, तथा ये दस्य्वादयो मिथ्यानिश्चयक्षमेवच्यादस्मान् क्लेशयन्ति तान् संदण्डचैतानस्मांश्च सततं पालयत, नैवं विना सततं राज्यैश्चर्ययोग्ने ध्वक्षे भवितुं शक्यः॥८॥

पदार्थ:-हे (शतकतो) असंख्य उत्तम विचारयुक्त वा अनेकों उत्तम-उत्तम कर्म करनेवाले न्यायाधीश! (ते) आपकी प्रजा वा सेना में रहने और (स्तोतारम्) धर्म का गानेवाला मैं हूं (मा) मुझको जो (पर्शव:) औरों को मारने और तीर के स्हनेवाले मनुष्य आदि प्राणी (सपत्नीरिव) (अभित:, सम्, तपन्ति) जैसे एक पित के बहुत स्त्रियां दु:खी करती हैं, ऐसे दु:ख देते हैं। जो (आध्य:) दूसरे के मन में व्यथा उत्पन्न करनेहारे (मूष:) मूर्ष जैसे (शिश्ना) अशुद्ध सूतों को (वि, अदन्ति) विदार-विदार अर्थात् काट-काट खाते हैं (न) वैस्ते (मा) मुझको संताप देते हैं, उन अन्याय करनेवाले जनों को तुम यथावत् शिक्षा करो। और श्रेष्ट भन्त्रार्थ प्रथम मन्त्र के समान जानिये॥८॥

भावार्थ: इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे न्याय करने के अध्यक्ष आदि मनुष्यो! तुम जैसे सौतेली स्त्री अपने पित को कष्ट देती है वा जैसे अपने प्रयोजन मात्र का बनाव-बिगाड़ देखनेवाले मूषे परार्थ पहार्थों का अच्छी प्रकार नाश करते हैं और जैसे व्यभिचारिणी वेश्या आदि कामिनी दामिनी स्त्री दमकती हुई कामीजन के लिङ्ग आदि रोगरूपी कुकम्म के द्वारा उसके धर्म्म, अर्थ, काम और मोक्ष के

मण्डल-१। अनुवाक-१५। सूक्त-१०५ 9833

करने की रुकावट से उस कामीजन को पीड़ा देती हैं, वैसे ही जो डाकू, चोर, चवाई, अवाई, लड़ाई, भिड़ाई, करनेवाले झूठ की प्रतीति और झूठे कामों की बातों में हम लोगों को क्लेश देते हैं। उनकी अच्छे प्रकार दण्ड देकर हम लोगों को तथा उनको भी निरन्तर पालो, ऐसे करने के विना राज्य को ऐश्वर्य्य नहीं बढ़ सकता॥८॥

अथ न्यायाधीशादिभि: सह प्रजा: कथं वर्त्तेरन्नित्युपदिश्यते 🗸

अब न्यायाधीशों के साथ प्रजाजन कैसे वर्तें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

अमी ये सप्त रुशमयस्तत्रां मे नाभिरातता।

त्रितस्तद्वेदाप्त्यः स जामित्वायं रेभित वित्तं में अस्य रोदस्ती। ९॥

अमी इति। ये। सुप्ता रुश्मर्यः। तत्री मे। नाभिः। आऽतता। क्रितः। तत्। वृद्धा आप्यः। सः। जामिऽत्वार्य। रुभृति। वित्तम्। मे। अस्य। रोटुसी इति॥९॥

पदार्थ:-(अमी) (ये) (सप्त) सप्ततत्वाङ्गमिश्रितस्य भाषा) सप्तधा (रश्मयः) (तत्र) तस्मिन्। त्रिव तुनुघेति दीर्घः। (मे) मम (नाभिः) शरीरमध्यस्था सर्वप्रणबन्धनाङ्गम् (आतता) समन्ताद्विस्तृता (त्रितः) त्रिभ्यो भूतभविष्यद्वर्त्तमानकालेभ्यः (तत्) तिन् (घेदः) जानाति (आप्त्यः) य आप्तेषु भवः सः (सः) (जामित्वाय) कन्यावत्पालनाय प्रजाभावाय (रिभित्ते) अर्चिति। अन्यत् पूर्ववत्॥९॥

अन्वय:-यत्रामी ये सप्त रश्मय इव सप्तर्था नीतिप्रकार्शाः सन्ति, तत्र मे नाभिरातता यत्र नैरन्तर्येण स्थितिर्मम तद् य आप्त्यो विद्वान् त्रितो वेद स जामित्वाय राजभोगास प्रजी रेभित। अन्यत्सर्वं पूर्ववत्॥९॥

भावार्थ: –यथा सूर्येण सह रश्मीनां शोभासङ्गो स्तस्तथा राजपुरुषैः प्रजानां शोभासङ्गो भवेताम्। यो मनुष्यः कर्मोपासनाज्ञानानि ख्यावत् विजानाति, सः प्रजापालने पितृवद्भूत्वा सर्वाः प्रजा रञ्जयितुं शक्नोति नेतरः॥९॥

पदार्थ: जहाँ (अमी) (ये) चे (सप्त) सात (रश्मय:) किरणों के समान नीतिप्रकाश हैं (तत्र) वहाँ (मे) मेरी (नाभि:) सब नेसों की बांधनेवाली तोंद (आतता) फैली है, जिसमें निरन्तर मेरी स्थिति है (तत्) उसको जो (आप्त्य:) सब्जनों में उत्तम जन (त्रित:) तीनों अर्थात् भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान काल से (वेद) जिने अर्थात् रात-दिन विचारे (स:) वह पुरुष (जामित्वाय) राज्य भोगने के लिये कन्या के तुल्य (रेभित) प्रजाजनों की रक्षा तथा प्रशंसा और चाहना करता है। और अर्थ प्रथम मन्त्रार्थ के समान जानो॥९॥

भावार्थ:-जैसे सूर्य्य के साथ किरणों की शोभा और सङ्ग है, वैसे राजपुरुषों के साथ प्रजाजनों की शोभा और सङ्ग हो तथा जो मनुष्य कर्म, उपासना और ज्ञान को यथावत् जानता है, वह प्रजा के पालने में पितृवत् होकर समस्त प्रजाजनों का मनोरञ्जन कर सकता है, और नहीं॥९॥

पुनरेते परस्परं कथं वर्त्तरिन्नत्युपदिश्यते॥

फिर ये परस्पर कैसे वर्तें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अमी ये पञ्चोक्षणो मध्ये तस्थुर्महो दिव:।

देवत्रा नु प्रवाच्यं सध्रीचीना नि वावृतुर्वित्तं में अस्य रौदसी॥ १०॥ २१॥

अमी इति। ये। पञ्ची। उक्षणीः। मध्यी। तस्थुः। महः। दिवः। देवऽत्रा। वि। क्रुडवाच्यीम्। सुधीचीनाः। नि। वृवृतुः। वित्तम्। मे। अस्य। रोदसी इति॥१०॥

पदार्थ:-(अमी) प्रत्यक्षाप्रत्यक्षाः (ये) (पञ्च) यथाग्निबायुमेघितद्वीत्सूर्व्यमण्डलप्रकाशास्तथा (उक्षणः) जलस्य सुखस्य वा सेक्तारो महान्तः। उक्षा इति महन्तामसु पठितम्। (निघं०३.३) (मध्ये) (तस्युः) तिष्ठन्ति (महः) महतः (दिवः) दिव्यगुणपदार्श्वयुक्तस्याकाशस्य (देवत्रा) देवेषु विद्वत्सु वर्त्तमानाः (नु) शीघ्रम् (प्रवाच्यम्) अध्यापनोपदेशार्थं विद्याप्रकाशस्य (सधीचीनाः) सहवर्त्तमानाः (नि) (वावृतुः) वर्त्तन्ते। अत्र वर्त्तमाने लिट्। व्यत्यवेन परस्मैपदम्। तुजादीनां दीर्घोऽभ्यासस्येति दीर्घत्वम्। अन्यत् पूर्ववत्॥१०॥

अन्वयः-हे सभाध्यक्षादयो जना! युष्माभिय्या पी उक्षण्णः पञ्च महो दिवो मध्ये तस्थुर्यथा च सधीचीना देवत्रा निवावृतुस्तथा ये नितरां वर्त्तन्ते तान् प्रजाराजप्रसिद्धनः प्रति विद्यान्यायप्रकाशवचो नु प्रवाच्यम्। अन्यत् पूर्ववत्॥१०॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। मथा सूर्यादयो घटपटादिपदार्थेषु संभुज्य वृष्ट्यादिद्वारा महत्सुखं सम्पादयन्ति सर्वेषु पृथिन्यादिपदार्थेष्वाकर्षणादिना सहिता वर्त्तन्ते च। तथैव सभाद्यध्यक्षादयो महद्गुणविशिष्टान् मनुष्यान् सम्पाद्यतै: सह न्यायप्रीतिभ्यां सह वर्त्तित्वा सुखिन: सततं कुर्यु:॥१०॥

पदार्थ: -हे सभाध्यक्ष आदि सज्जनो तुमको जैसे (अमी) प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष (अक्षणः) जल सींचने वा सुख सींचनेहार बड़े (पञ्च) अग्नि, पवन, बिजुली, मेघ और सूर्य्यमण्डल का प्रकाश (महः) अपार (दिवः) दिव्यगुण और पदार्थयुक्त आकाश के (मध्ये) बीच (तस्थुः) स्थिर हैं और जैसे (सध्रीचीनाः) एक साथ रहनेवाल गुण (देवत्रा) विद्वानों में (नि, वावृतुः) निरन्तर वर्त्तमान हैं, वैसे (ये) जो निरन्तर वर्त्तमान हैं, उन प्रजा तथा राजाओं के संगियों के प्रति विद्या और न्याय प्रकाश की बात (नु) शीघ्र (प्रवाज्यम्) कहनी चाहिये। और शेष मन्त्रार्थ प्रथम मन्त्र के समान जानना चाहिये॥१०॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य्य आदि घटपटादि पदार्थों में संयुक्त होक्र⁽वृष्टि) आदि के द्वारा अत्यन्त सुख को उत्पन्न करते हैं और समस्त पृथिवी आदि पदार्थों में

मण्डल-१। अनुवाक-१५। सूक्त-१०५

आकर्षणशक्ति से वर्त्तमान हैं वैसे ही सभाध्यक्ष आदि महात्मा जनों के गुणों वा बड़े-बड़े उन्निसूणों से युक्त मनुष्यों को सिद्ध करके इनसे न्याय और प्रीति के साथ वर्त्तकर निरन्तर सुखी करें॥ १०॥

पुनरेतै: सह प्रजापुरुषा: कथं वर्त्तरिन्नत्युपदिश्यते॥

फिर इन राजपुरुषों के साथ प्रजापुरुष कैसे वर्त्ताव रक्खें, यह विषय अगले मन्द्र(में कहा है।।

सुपूर्णा एत आसते मध्य आरोधने दिवः।

ते सेंधन्ति पृथो वृकुं तर्गनं युह्वतीरुपो वित्तं में अस्य रौदसी॥१११॥

सुऽपूर्णाः। पुते। आसते। मध्ये। आऽरोधने। दिवः। ते। सेधन्ति। पुत्रः। वृत्तेम्। तरन्तम्। युह्वतीः। अपः। वित्तम्। मे। अस्य। रोदसी इति॥११॥

पदार्थ:-(सुपर्णा:) सूर्यस्य किरणाः (एते) (आसते) (मध्ये) (आरोधने) (दिवः) सूर्यप्रकाशयुक्तस्याकाशस्य (ते) (सेधन्ति) निवर्त्तयन्तु (पथः) मार्गात्र (वृकम्) विद्युतम् (तरन्तम्) संप्लावकम् (यह्वतीः) यह्वान् महत इवाचरन्ती। यह्व इति महन्नामसु पठितम्। (निघं०३.३) यह्वशब्दादाचारे क्विप्। (अपः) जलानि प्राणवती प्रजा वा। अस्क् मूर्ववत्॥११॥

अन्वय:-हे प्रजास्था मनुष्या! यथैते सुपर्णा दिवी मध्ये आरोधने आसते। यथा च ते तरन्तं वृकं प्रक्षिप्य यह्नतीरप: पथश्च सेधन्ति, तथैव यूयं राजकर्माणि सेवध्नम्। अन्यसूर्ववृत्त्॥११॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। येथेश्वर्णनयमे सूर्यिकरणादयः पदार्था यथावद्वर्तन्ते तथैव प्रजास्थैर्युष्माभिरपि राजनीतिनियमे च वर्तित्यम्। येथेते सभाद्यध्यक्षादयो दुष्टान् मनुष्यान् निवर्त्य प्रजा रक्षन्ति तथैव युष्माभिरप्येते सदैवेर्ष्यादीश्वर्त्य रक्ष्याः॥११॥

पदार्थ:-हे प्रजाजनो! अप लोग जैसे (एते) ये (सुपर्णाः) सूर्य्य की किरणें (दिवः) सूर्य्य के प्रकाश से युक्त आकाश के (भध्ये) बीच (आरोधने) रुकावट में (आसते) स्थिर हैं और जैसे (ते) वे (तरन्तम्) पार कर देनेवाली (वृक्तम्) बिजुली को गिरा के (यह्वतीः) बड़ों के वर्त्ताव रखते हुए (अपः) जलों और (पथः) मार्गों को सिद्ध करते हैं, वैसे ही आप लोग राज कामों को सिद्ध करो। और शेष मन्त्रार्थ प्रथम मन्त्र के तृष्ट्य जानना चाहिये॥११॥

भावार्थ: - इस मन्त्र-में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे ईश्वर के नियमों में सूर्य की किरणें आदि पदार्थ यथावृत् वर्तमान हैं, वैसे ही तुम प्रजा-पुरुषों को भी राजनीति के नियमों में वर्तना चाहिये। जैसे सभाध्यक्ष आदि जन दुष्ट मनुष्यों की निवृत्ति करके प्रजाजनों की रक्षा करते हैं, वैसे तुम लोगों को भी ये ईर्ष्या अभिसान आदि दोषों को निवृत्त करके रक्षा करने योग्य हैं॥११॥

पुनरेतान् प्रति विद्वांसः किं किमुपदिशेयुरित्युपदिश्यते॥

फिर विद्वान् जन इनके प्रति क्या-क्या उपदेश करें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

नव्यं तदुक्थ्यं हितं देवासः सुप्रवाचनम्।

११३६

ऋतमर्षन्ति सिन्धंवः सत्यं तातान सूर्यो वित्तं मे अस्य रोदसी॥१२॥

नव्यम्। तत्। उक्थ्यम्। हितम्। देवासः। सुऽप्रवाचनम्। ऋतम्। अर्षेन्ति। सिर्चवः। सन्यम्। ततान्। सूर्यः। वित्तम्। मे। अस्य। रोदसी इति॥१२॥

पदार्थ:-(नव्यम्) उत्तमेषु नवेषु नूतनेषु व्यवहारेषु भवम् (तत्) (उक्थ्यम्) स्वथेषु प्रश्लेमेनीयेषु भवम् (हितम्) सर्वाविरुद्धम् (देवासः) विद्वांसः (सुप्रवाचनम्) सुष्ट्वध्यापनम्पदेशनं चथा तथा (ऋतम्) वेदसृष्टिक्रमप्रत्यक्षादिप्रमाणविद्वदाचरणानुभवस्वात्मपवित्रतानामनुकूलम् (आदि) प्रापयन्तु। लेट् प्रयोगोऽयम्। (सिन्धवः) यथा समुद्राः (सत्यम्) जलम्। सत्यिमत्युद्धनामसु प्रवितम्। (निघं०१.१२) (ततान) विस्तारयति। तुजादित्वाद्दीर्घः। (सूर्व्यः) सविता। अन्यत् पूर्ववत्। १२४।

अन्वयः-हे देवासो! भवन्तो यथा सिन्धवः सत्यमर्षन्ति सूर्येष्ठ ततान तथा यद्दतं नव्यमुक्थ्यं हितं तत् सुप्रवाचनमर्षन्तु। अन्यत् पूर्ववत्॥१२॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। यथा सारिभी जलमुत्थितमूर्ध्व गत्वा सूर्यातपेन वितत्य प्रवर्ष्य च सर्वेभ्य: प्रजाजनेभ्य: सुखं प्रयच्छति तथा बिहुञ्जर्वेनित्यनवीनविचारेण गूढा विद्या ज्ञात्वा प्रकाश्य सकलिहतं सम्पाद्य सत्यधर्मं विस्तार्य प्रजाः स्वत सुभूवयतव्या:॥१२॥

पदार्थ: -हे (देवास:) विद्वानो! आप मिस (सिन्धृव:) समुद्र (सत्यम्) जल की (अर्षन्ति) प्राप्ति करावें और (सूर्य्य:) सूर्य्यमण्डल (तताल) उसका विस्तार कराता अर्थात् वर्षा कराता है, वैसे जो (ऋतम्) वेद, सृष्टिक्रम, प्रत्यक्षादि प्रमाण, विद्वानों के आचरण, अनुभव अर्थात् आप ही आप कोई बात मन से उत्पन्न होना और आत्मा की शुद्धता के अनुकूल (नव्यम्) उत्तम नवीन-नवीन व्यवहारों और (उक्थ्यम्) प्रशंसनीय वचनों में हानेवाला (हितम्) सबका प्रेमयुक्त पदार्थ (तत्) उसको (सुप्रवाचनम्) अच्छी प्रकार पढ़ाना, उपदेश करना जैसे बने वैसे प्राप्त कीजिये। शेष मन्त्रार्थ प्रथम मन्त्र के समान जानना चाहिये॥१२॥

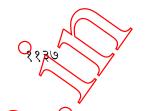
भावार्थ:-इस मेन्त्र में ग्राचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे समुद्रों से उड़कर जल ऊपर को चढ़ा हुआ, सूर्य्य के ताप से फैल कर, बरस के, सब प्रजाजनों को सुख देता है, वैसे विद्वान् जनों को नित्य नवीन-नवीन विचार से गूढ़ विद्याओं को जान और प्रकाशित कर सबके हित का सम्पादन और सत्य धर्म्म के विश्वार से प्रजा को निरन्तर सुख देना चाहिये॥१२॥

पुनर्विद्वान् प्रजासु किं कुर्यादित्युपदिश्यते॥

फिर विद्वान् प्रजाजनों में क्या करे, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अग्ने तव त्यदुक्थ्यं देवेष्वस्त्याप्यम्।

मण्डल-१। अनुवाक-१५। सूक्त-१०५



स नै: सुत्तो मैनुष्वदा देवान् यक्षि विदुष्टरी वित्तं में अस्य रौदसी॥१३॥

अग्ने। तर्व। त्यत्। उक्थ्यम्। देवेषुं। अस्ति। आप्यम्। सः। नः। सत्तः। मुनुष्वत्। अस्य देवान्। युश्चि। विदुःऽतरः। वित्तम्। मे। अस्य। रोदसी इति॥१३॥

पदार्थ:-(अग्ने) सकलविद्याविज्ञातः (तव) (त्यत्) तत् (उवश्यम्) प्रकृष्ट विद्यावचः (देवेषु) विद्वत्सु (अस्ति) वर्तते (आप्यम्) आप्तुं योग्यम्। अत्राप्लृधातोर्बाहुलकादौणार्दिको यस प्रत्ययः। (सः) (नः) अस्मान् (सत्तः) अविद्यादिदोषान् हिंसित्वा विज्ञानप्रदः। अत्र बाहुलकृद्ध सद्लृधातोरौणादिकः क्तः प्रत्ययः। (मनुष्वत्) मनुषु मनुष्येष्विव (आ) (देवान्) विदुषः (यक्षि) सङ्गम्पत् (विदुष्टरः) अतिशयेन विद्वान्। अन्यत् पूर्ववत्॥१३॥

अन्वयः-हे अग्ने विद्वन्! यस्य तव त्यद्यदाप्यं मनुष्वदुक्थ्यं देवेजिस्ति स सत्तौ विदुष्टरस्त्वं नोऽस्मान् देवान् सम्पादयत्रायक्षि। अन्यत् पूर्ववत्॥१३॥

भावार्थ:-यः सर्वा विद्या अध्याप्य विद्वत्सम्पादने कुशलोऽफ्रित तस्मात् सकलविद्याधर्मोपदेशान् सर्वे मनुष्या गृह्णीयुः, नेतरस्मात्॥१३॥

पदार्थ:-हे (अग्ने) समस्त विद्याओं को जाने हुए विद्वान् जन! (तव) आपका (त्यत्) वह जो (आप्यम्) पाने योग्य (मनुष्वत्) मनुष्यों में जैस हो वैस्प्र (उक्थ्यम्) अति उत्तम विद्यावचन (देवेषु) विद्वानों में (अस्ति) है। (सः) वह (सत्तः) अविद्या अद्भिद्धां को नाश करनेवाले (विदुष्टरः) अति विद्या पढ़े हुए आप (नः) हम लोगों को (देवाम्) विद्वान् करते हुए उनकी (आ यक्षि) संगति को पहुंचाइये अर्थात् विद्वानों की पदवी को पहुंचाइये और मन्त्रार्थ प्रथम मन्त्र के समान है॥१३॥

भावार्थ:- जो विद्वान् समृस्ति विद्वा को पढ़ाकर विद्वान्पन के उत्पन्न कराने में कुशल है, उससे समस्त विद्या और धर्म के उपदेशों को सब मेर्सुष्य ग्रहण करें, और से नहीं॥३॥

पुत्रः स तत्र किं कुर्यादित्युपदिश्यते॥

फिर वह विद्वार्त बहाँ अया करे, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

सत्तो होतृ। मनुष्वदा देवाँ अच्छा विदुष्टरः।

अग्निह्र्क्यो सुंपूदति देवो देवेषु मेधिरो वित्तं में अस्य रोदसी॥१४॥

सुनः। होता मुनुष्वत्। आ। देवान्। अच्छी विदुःऽत्ररः। अग्निः। ह्व्या। सुसूद्वि। देवः। देवेषु। मेधिरः। वित्तम्। म्रे) अस्य। रोद्धमी इति॥१४॥

पदोर्थ:-(सत्तः) विज्ञानवान् दु:खहन्ता (होता) ग्रहीता (मनुष्वत्) यथोत्तमा मनुष्या श्रेष्ठानि क्रम्भण्यनुष्ठाय पापानि त्यक्त्वा सुखिनो भवन्ति तथा (आ) (देवान्) विदुषो दिव्यक्रियायोगान् वा (अच्छ)

सम्यग्रीत्या। अत्र निपातस्य चेति दीर्घः। (विदुष्टरः) अतिशयेन वेत्ता (अग्निः) सिंद्वद्याया वेत्ता विज्ञापियता वा (हव्या) दातुं ग्रहीतुं योग्यानि (सुषूदित) ददाति (देवः) प्रशस्तो विद्वान्मनुष्यः (देवेषु) विद्वत्सु (मेधिरः) मेधावी। अत्र मेधारथाभ्यामीरित्ररचौ। (अष्टा०वा०५.२।१०९) इति वार्त्तिकेन मर्प्यशीय ईस्म् प्रत्ययः। (वित्तं, मे०) इति पूर्ववत्॥१४॥

अन्वयः-हे मनुष्या! यः सत्तो देवान् होता विदुष्टरोऽग्निर्मेधिरो देवेषु देवो मनुष्वद्भव्या सुप्रेयति तस्मात् सर्वैर्विद्याशिक्षे ग्राह्मे। अन्यत्पूर्ववत्॥१४॥

भावार्थ:-ईदृशो भाग्यहीनः को मनुष्यः स्याद्यो विदुषां सकाशाद् विद्याशिक्षे अपूहीत्वैषां विरोधी भवेत्॥१४॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! जो (सत्तः) विज्ञानवान् दुःख दुःख हरनेवाल (देवान्) विद्वान् वा दिव्य-दिव्य क्रियायोगों का (होता) ग्रहण करनेवाला (विदुष्टरः) अत्यन्त जाने (अप्तिः) श्रेष्ठ विद्या का जानने वा समझानेवाला (मेधिरः) बुद्धिमान् (देवेषु) विद्वानों में (देवः) प्रशंसभीय विद्वान् मनुष्य (मनुष्वत्) जैसे उत्तम मनुष्य श्रेष्ठ कर्मों का अनुष्ठान कर पापों को छोड़ सुखी होते हैं। वैसे (हव्या) देने-लेने योग्य पदार्थों को (अच्छ आ, सुषूदित) अच्छी रीति से अत्यन्त हिता है, उसे उत्तम विद्वान् से विद्या और शिक्षा को ग्रहण करनी चाहिये॥१४॥

भावार्थ:-ऐसा भाग्यहीन कौन जन होवे जो विद्वाची के समीप से विद्या और शिक्षा न लेके और इनका विरोधी हो॥१४॥

पुनरेतं कीदृशं प्राप्नुयादित्युपदिश्यते॥

फिर कैसे इसको पिन, यह उपीर्देश अगले मन्त्र में किया है॥

ब्रह्मा कृणोति वर्रुणो गातुविहुं तमीमह।

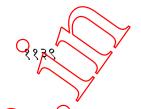
व्यूर्णोति हुदा मृतिं नृत्यी जायतीपृतं वित्तं में अस्य रोदसी॥१५॥२२॥

ब्रह्मं। कृणोति। वर्रुणा गृतुऽविदम्। तमे। ईमहे। वि। कुर्णोति। हृदा। मृतिम्। नव्यः। जायुताम्। ऋतम्। वित्तम्। मे। अस्य। रोदसी इति॥ १५॥

पदार्थ:-(ब्रह्म) परिश्वाः। अत्रान्येषामि दृश्यत इति दीर्घः। (कृणोति) करोति (वरुणः) सर्वोत्कृष्टः (गातुविदम्) वेदवाग्वेतारम् (तम्) (ईमहे) याचामहे (वि) (ऊर्णोति) निष्पादयति (हदा) हदयेन। अत्र पहन्नो (अष्टा॰६.१.६३) इति हदयस्य हदादेशः। (मितम्) विज्ञानम् (नव्यः) नवीनो विद्वान् (जायताम्) (ऋतम्) सत्यरूपम् (वित्तं, मे, अस्य॰) इति पूर्ववत्॥१५॥

अन्वय:-वयं यदृतं ब्रह्म वरुणो गातुविदं कृणोति तमीमहे तत्कृपया यो नव्यो विद्वान् हदा मितं व्यूणोति सोऽम्मीकं मध्ये जायताम्। अन्यत् पूर्ववत्॥१५॥

मण्डल-१। अनुवाक-१५। सूक्त-१०५



भावार्थ: – निह कस्यचिन्मनुष्यस्योपिर प्राक्पुण्यसंचयिवशुद्धक्रियमाणाभ्यां कर्मास्यां विन्ति परमेश्वरानुग्रहो जायते। नह्येतेन विना कश्चित्पूर्णां विद्यां प्राप्तुं शक्नोति तस्मात्सर्वेर्मनुष्ट्रेरस्मालं प्राध्ये प्राप्तपूर्णविद्याः शुभगुणकर्मस्वभावयुक्ता मनुष्याः सदा भूयासुरिति परमात्मा प्रार्थ्योयः एवं नित्यं प्रार्थितः सन्नयं सर्वव्यापकतया तेषामात्मानं सम्प्रकाशयतीति निश्चयः॥१५॥

पदार्थ:-हम लोग जो (ऋतम्) सत्यस्वरूप (ब्रह्म) परमेश्वर वा (वरुणः) स्वसे उत्तम् विद्वान् (गातुविदम्) वेदवाणी के जाननेवाले को (कृणोति) करता है (तम्) उसको (ईमहे) याचते अर्थात् उससे मांगते हैं कि उसकी कृपा से जो (नव्यः) नवीन विद्वान् (हदा) हदय से (मितिम्) विशेष ज्ञान को (व्यूणोति) उत्पन्न करता है अर्थात् उत्तम-उत्तम रीतियों को विचारता है, वह हम लोगों के बीच (जायताम्) उत्पन्न हो। शेष अर्थ प्रथम मन्त्र के तुल्य जानना चाहिन्से। १५॥

भावार्थ:-किसी मनुष्य पर पिछले पुण्य इकट्ठे होने और विशेष शुद्ध क्रियमाण कर्म करने के विना परमेश्वर की दया नहीं होती और उक्त व्यवहार के क्वि कोई क्री विद्या नहीं पा सकता, इससे सब मनुष्यों को परमात्मा की ऐसी प्रार्थना करनी चाहिये कि हम लोगों में परिपूर्ण विद्यावान् अच्छे-अच्छे गुण, कर्म, स्वभावयुक्त मनुष्य सदा हों। ऐसी प्रार्थना को नित्य प्राप्त हुआ परमात्मा सर्वव्यापकता से उनके आत्मा का प्रकाश करता है, यह निश्चय है। १९५०।

अथायं मार्गः कोदृश दृष्युपदिश्यते॥

अब यह मार्ग कैस्र है, यह विष्रय अगले मन्त्र में कहा है॥

असौ यः पन्था आदित्यो द्विव प्रकान्ये कृतः।

न स देवा अतिक्रमे तं र्मर्तासो र पश्यथ वित्तं में अस्य रोदसी॥१६॥

असौ। यः। पर्याः। अर्धित्यः। दिवि। प्रेऽवार्च्यम्। कृतः। न। सः। देवाः। अतिऽक्रमे। तम्। मुर्तासः। न। प्रयुथा वित्तम्। मे। अस्य। ग्रेदुसी इति। १९६॥

पदार्थ:-(असौ) (पन्था:) वेदप्रतिपादितो मार्गः (आदित्य:) विनाशरिहतः सूर्य्यवत्प्रकाशकः (दिवि) सर्व्यव्याप्रकाशे (प्रवाच्यम्) प्रकृष्टतया वक्तुं योग्यं यथास्यात्तथा (कृतः) नितरां स्थापितः (न) निषधे (सः) (देवाः) विद्वांसः (अतिक्रमे) अतिक्रमितुमुल्लिङ्घितुम् (तम्) मार्गम् (मर्त्तासः) मूरणधर्माणः (न) निषधे (पश्यथ) (वित्तं, मे, अस्य) इति पूर्ववत्॥१६॥

अन्वयः- है देवा! असावादित्यो यः पन्था दिवि प्रवाच्यं कृतः स युष्माभिर्नातिक्रमेऽतिक्रमितुं न उल्लिङ्घितुं न योग्यः∤ हे मेर्तासस्तं पूर्वोक्तं यूयं न पश्यथ। अन्यत् पूर्ववत्॥१६॥

भावार्थ:-मनुष्यैर्यो वेदोक्तो मार्गः स एव सत्य इति विज्ञाय सर्वाः सत्यविद्याः प्रप्य सदानन्दितव्यम्। सोऽयं विद्वद्भिर्नैव कदाचित् खण्डनीयो विद्यया विनाऽयं विज्ञातोऽपि न भवति॥१६॥

पदार्थ:-हे (देवा:) विद्वान् लोगो! (असौ) यह (आदित्य:) अविनाशी सूर्य्य के लिय प्रकार करनेवाला (य:) जो (पन्था:)वेद से प्रतिपादित मार्ग (दिवि) समस्त विद्या के प्रकार में (प्रवाच्यम्) अच्छे प्रकार से कहने योग्य जैसे हो वैसे (कृत:) ईश्वर ने स्थापित किया (स:) वह तुम लोगों को (अतिक्रमे) उल्लङ्घन करने योग्य (न) नहीं है। हे (मर्त्तास:) केवल मरने-जीर वाले विचाररिहत मनुष्यो! (तम्) उस पूर्वोक्त मार्ग को तुम (न) नहीं (पश्यथ) देखते हो। श्रेष्ठ मन्त्रार्थ पूर्व के तुल्य जानना चाहिये॥१६॥

भावार्थ:-मनुष्यों को चाहिये कि जो वेदोक्त मार्ग है वही सत्य है, ऐसा जान और समस्त सत्यविद्याओं को प्राप्त होकर सदा आनन्दित हों, सो यह वेदोक्त मार्ग बिद्वानों को कभी खण्डन करने योग्य नहीं और यह मार्ग विद्या के विना विशेष जाना भी नहीं जाता। १६।

पुन: स कीदृश इत्युपदिश्यते॥

फिर वह कैसा है, यह विषय आलि मन्त्र में कहा है।।

त्रित:कूपेऽवहितो देवान् हेवत ऊतये।

तच्छुश्राव बृह्स्पतिः कृण्वन्नंहूरणादुक वित्तं में अस्य रोदसी॥ १७॥

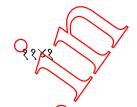
त्रित:। कूपे। अर्वऽहित:। देवान्। हुवते कत्ये। तुन्। शुश्रावः। बृहस्पर्ति:। कृण्वन्। अंहूर्णात्। उरु। वित्तम्। मे। अस्य। गोदसी इति॥१७॥

पदार्थ:-(त्रित:) यस्त्रीन् विषयाने विद्याशिक्षाब्रह्मचर्याणि तनोति सः। अत्र त्र्युपपदात्तनोतेरौणादिको डः प्रत्ययः। (कूपे) कूपाकारे हृदये (अवहितः) अवस्थितः (देवान्) दिव्यगुणान्वितान् विदुषो दिव्यान् गुणान् बा (हवते) गृह्णाति। अत्र बहुलं छन्दसीति शपः स्थाने श्लोरभावः। (ऊतये) रक्षणाद्माय (तत्) विद्याध्यापनम् (शुश्राव) श्रुतवान् (बृहस्पतिः) बृहत्या वाचः पालकः (कृण्वन्) कुर्वन् (अहूरणात्) अंहूरं पापं विद्यतेऽस्मिन् व्यवहारे ततः (उरु) बहु (वित्तं, मे, अस्य०) इति पूर्ववत्॥१७॥

अन्वयः-यू उरु तच्छ्वणं शुश्राव स विज्ञानं कृण्वन् त्रितः कूपेऽवहितो बृहस्पतिरंहूरणात् पृथग्भूत्वोतये देवान् हवते। अन्यत् पूर्वसत्॥ १५॥

भाषार्थः सि मेनुष्यो देहधारी जीवास्स्वबुद्ध्या प्रयत्नेन विदुषां सकाशात् सर्वा विद्याः श्रुत्वा मत्वा ब्रिद्ध्यास्य साक्षात्कृत्वा दुष्टगुणस्वभावपापानि त्यक्त्वा विद्वान् जायते, स आत्मशरीररक्षणादिकं प्राप्य बहुसुखं प्राप्नोति॥१७॥

मण्डल-१। अनुवाक-१५। सूक्त-१०५



पदार्थ:-जो (उरु) बहुत (तत्) उस विद्या के पाठ को (शुश्राव) सुनता है, वह विज्ञान को (कृण्वन्) प्रकट करता हुआ (त्रित:) विद्या, शिक्षा और ब्रह्मचर्य्य इन तीन विषयों का विस्तार अपने अर्थात् इनको बढ़ाने (कूपे) कूआ के आकार वाले अपने हृदय में (अविहत:) स्थिरता रखने और (कृहस्पित:) बड़ी वेदवाणी का पालनेहारा (अंहूरणान्) जिस व्यवहार में अधर्म हैं, उससे अलग होकर (ऊतये) रक्षा, आनन्द, कान्ति, प्रेम, तृप्ति आदि अनेकों सुखों के लिये (देवान्) दिव्य गुणयुक्त विद्वानों वा दिव्य गुणों को (हवते) ग्रहण करता है। और शेष मन्त्रार्थ प्रथम के तुल्य जानना चाहिये॥१७॥

भावार्थ:-जो मनुष्य वा देहधारी जीव अर्थात् स्त्री आदि भी अपनी बुद्धि से प्रयत्न के साथ पण्डितों की उत्तेजना से समस्त विद्याओं को सुन, मान, विचार और प्रकट कर खोटे गुण, स्वभाव वा खोटे कामों को छोड़ कर विद्वान् होता है, वह आत्मा और शरीर की रक्षा अदि को पाकर बहुत सुख पाता है॥१७॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्वते॥

फिर वह कैसा है, यह अगले मन्त्रीमें हपदेश किया है॥

अरुणो मा सकृद् वृक्षः पृथा यन्तं दुदर्श् हि। उज्जिहीते निचाय्या तष्टेव पृष्ट्यामुयी वित्तं मे अस्य रोदसी॥१८॥

अरुणः। मा। सुकृत्। वृक्षः। पृथा। यन्त्रम्। दुदर्शी हिं। उत्। जिहीते। निऽचाय्ये। तष्टांऽइव। पृष्टि्ऽआमयी। वित्तम्। मे। अस्य। रोदसी इति॥१८॥

पदार्थ:-(अरुण:) य ऋच्छति सर्व विद्या स आरोचको वा। अत्र ऋधातोरौणादिक उनच् प्रत्ययः। (मा, सकृत्) मामेकवारम्। अथवेकपद्यम्, मासानां चार्द्धमासादीनां च कर्ता। अत्र मासकृदित्येकं पदं निरुक्तकारप्रामाण्यादनुमीक्षर्। अथ शाकत्यस्तु (मा, सकृत्) इति पदद्वयमिभजानीते। (वृकः) यथा चन्द्रमाः शान्तगुणस्तथा (प्रथा) उत्तममार्गेण (यन्तम्) गच्छन्तं प्राप्नुवन्तं वा। इण् धातोः शतृ प्रत्ययः। (ददर्श) पश्यति (हि) खलु (उत्त) उत्कृष्टे (जिहीते) विज्ञापयति (निचाय्य) समाधाय। अत्र निशामनार्थस्य चायृ धातोः प्रयोगः। अन्यष्यप्रपीति दीर्घश्च। (तष्टेव) यथा तक्षकः शिल्पी शिल्पविद्याव्यवहारान् विज्ञापयित तथा (पृष्ट्यामर्था) पृष्टौ पृष्ठ आमयः क्लेशरूपो रोगो विद्यते यस्य सः। अन्यत्पूर्ववत्॥१८॥

अत्र निरुक्तेष्। वृकश्चन्द्रमा भवति। विवृतज्योतिष्को वा। विकृतज्योतिष्को वा। विकृतज्योतिष्को वा। विकृतज्योतिष्को वा। अरुण आरोचनः। मासकृन्मासानां चार्धमासानां च कर्ता भवति। चन्द्रमा वृकः। पथा गन्तं द्दर्श नक्षत्रगणम्। अभिजिहीते निचाय्य येन येन योक्ष्यमाणो भवति चन्द्रमाः। तक्ष्णुवन्निव पृष्ठरगिष्कि जानीतं मेऽस्य द्यावापृथिव्याविति। (निरु०५.२०-२१)॥१८॥

अन्वय:-योऽरुणो वृको मासकृत् पथा यन्तं ददर्श स निचाय्य पृष्ट्यामयी तष्टे वोज्जिहीते हि। अन्यत्पूर्ववत्॥१८॥

भावार्थ:-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। यो विद्वान् चन्द्रवच्छान्तस्वभावं मूर्स्यक्र् विद्याप्रकाशकरणं स्वीकृत्य विश्वस्मिन् सर्वा विद्या: प्रसारयति स एवाप्तोऽस्ति॥१८॥

पदार्थ:-जो (अरुण:) समस्त विद्याओं को प्राप्त होता वा प्रकाशित करता (वृक:) क्यन्ति आदि गुणयुक्त चन्द्रमा के समान विद्वान् (मा, सकृत्) मुझको एक बार (पथा, यन्तम्) अच्छे मार्ग में चलते हुए को (ददर्श) देखता वा उक्त गुणयुक्त महीना आदि काल विभागों को क्रर्यनेवाले चन्द्रमा के तुल्य विद्वान् अच्छे मार्ग से चलते हुए को देखता है, वह (निचाय्य) यथायोग्य समाधान देकर (पृष्ट्यामयी) पीठ में क्लेशरूप रोगवान् (तष्टेव) शिल्पी विद्वान् जैसे शिल्प व्यवहारों को समझाता वैसे (उज्जिहोते) उत्तमता से समझाता (हि) ही है। शेष मन्त्रार्थ प्रथम मन्त्र के तुल्य जन्नि चाहिसो। १८॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्क्ष्म हैं। जो विद्वान् चन्द्रमा के तुल्य शान्तस्वभाव और सूर्य्य के तुल्य विद्वा के प्रकाश करने को स्वीकार करके संसार में समस्त विद्वाओं को फैलाता है, वही आप्त अर्थात् अति उत्तम विद्वान् है॥१८॥

पुनस्तेन युक्ता वयं कीदृशा भवेगेत्युपदिश्यते॥

फिर उससे युक्त हम लोग कैसे होवें यह विषय अगले मन्त्र में कहा है।।

एनाङ्गूषेण वयमिन्द्रवन्तोऽभि घ्याम भूजने सर्ववीराः।

तन्नी मित्रो वर्मणो मामहन्तामद्भित् सिन्धुः पृथिवी उत द्यौ:॥१९॥२३॥१५॥

एना। आङ्गूषेणं। वयम्। इन्द्रंऽवन्तः। भूभि। स्याम्। वृजने। सर्वंऽवीराः। तत्। नः। मित्रः। वर्रुणः। मुमुहुन्ताम्। अदितिः। सिन्धुः। पृथिवी। हत। द्यौः॥ १९॥

पदार्थ:-(एना) एनेन (अङ्गूषेण) परमविदुषा (वयम्) (इन्द्रवन्तः) परमैश्वर्ययुक्त इन्द्रस्तद्वन्तः (अभि) आभिमुख्ये (स्याम) भवेम (वृज्ने) विद्याधर्मयुक्ते बले। वृजनिमित बलनामसु पठितम्। (निघं०२.९) (सर्ववीरा) सूर्वे च ते वीराश्च। अन्यत् पूर्ववत्॥१९॥

अन्वय:-येनैनाङ्गूषेण विदुषा सर्ववीरा इन्द्रवन्तो वयं वृजनेऽभिष्याम नस्तन्मित्रो वरुणोऽदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौर्मामहन्ताम्॥ १९॥

भावार्थ:-मेनुष्यैर्यस्याध्यापनेन विद्यासुशिक्षे वर्धेतां तस्य सङ्गेन सर्वा विद्या: सर्वथा निश्चेतव्या: ॥१९।

अत्र विश्वेषां देवानां गुणकृत्यवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेदितव्यम्॥ इति पञ्चोत्तरशततमं १०५ सूक्तं पञ्चदशोऽनुवाकस्त्रयोविशो २३ वर्गश्च समाप्तः॥

मण्डल-१। अनुवाक-१५। सूक्त-१०५

पदार्थ:-जिस (एना) इस (आङ्गूषेण) परम विद्वान् से (सर्ववीरा:) समस्त वीरजन (इन्द्वन्त:) जिनका परमैश्वर्य्ययुक्त सभापित है व (वयम्) हम लोग (वृजने) विद्याधर्मयुक्त बल में (अभि, स्योम) अभिमुख हों, अर्थात् सब प्रकार से उसमें प्रवृत्त हों (न:) हम लोगों के (तत्) उस विज्ञान को (मित्र:) प्राण (वरुण:) उदान (अदिति:) अन्तरिक्ष (सिन्धु:) समुद्र (पृथिवी) पृथिवी (जूत) और (द्वौ:) सूर्य्य प्रकाश वा विद्या का प्रकाश ये सब (मामहन्ताम्) बढावें॥१९॥

भावार्थ:-मनुष्यों को चाहिये कि जिसके पढ़ाने से विद्या और अच्छी शिक्षा बढ़े, उसके सङ्ग से समस्त विद्याओं का सर्वथा निश्चय करें॥१९॥

इस सूक्त में समस्त विद्वानों के गुण और काम के वर्णन से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये॥

यह एकसौ पांचवाँ १०५ सूक्त पन्द्रहवां १५ अनुवाक और तेईसेवाँ २३ वर्ग पूरा हुआ॥

अथ षडुत्तरस्य शततमस्य सप्तर्च्चस्य सूक्तस्याङ्गिरसः कुत्स ऋषिः। विश्वे देवा देवताः। १-६ जगतीच्छन्दः। निषादः स्वरः। ७ निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथ विश्वस्थानां देवानां गुणकर्माण्युपदिश्यन्ते॥

अब एकसौ छ: वें सूक्त का प्रारम्भ है। उसके प्रथम मन्त्र में संसार में ठहरनेवाले विद्वानों के गुण और कामों को वर्णन किया है।।

इन्ह्रं मित्रं वर्रुणमुग्निमूतये मार्रुतं शर्धो अदितिं हवामहे। रथुं न दुर्गाद्वंसवः सुदानवो विश्वंस्मान्नो अंहंसो निष्पिपर्तन॥१॥५

इन्द्रम्। मित्रम्। वर्रुणम्। अग्निम्। ऊतये। मार्रुतम्। शर्धः। अदितिम् हुन्यमहे। रथेम्। न। दुःऽगात्। वसवः। सुऽदानवः। विश्वस्मात्। नः। अहंसः। निः। पिपर्तन्॥ १॥

पदार्थ:-(इन्द्रम्) विद्युतं परमैश्वर्यवन्तं सभाध्यक्षं वा (मित्रम्) सर्वेष्ठम् सर्वसहृदं वा (वरुणम्) क्रियाहेतुमुदानं वरगुणयुक्तं विद्वांसं वा (अग्निम्) सूर्यादिक्ष्यं ज्ञानवन्तं वा (ऊतये) रक्षणाद्यर्थय (मारुतम्) मरुतां वायूनां मनुष्याणामिदं वा (श्रार्द्धः) बलम् (अदितिम्) मातरं पितरं पुत्रं जातं सकलं जगत् तत्कारणं जनित्वं वा (हवामहे) कार्यसिद्ध्यर्थं गृह्णिमः स्विकुर्णः (रथम्) विमानादिकं यानम् (न) इव (दुर्गात्) कठिनाद् भूजलान्तरिक्षस्थमार्गात् (वस्वः) विद्यादिशुभगुणेषु ये वसन्ति तत्सम्बुद्धौ (मुदानवः) शोभना दानवो दानानि येषां तत्सम्बुद्धौ (विश्वप्रमात्) अखिलात् (नः) अस्मान् (अंहसः) पापाचरणात् तत्फलाद् दुःखाद्वा (निः) नितराम् (पिप्रतने) प्रालयन्तु॥१॥

अन्वय:-हे सुदानवो वसवो विद्वांसो! पूर्य १थं न दुर्गात्रोऽस्मान् विश्वस्मादंहसो निष्पिपर्तन वयमूतय इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमदितिं मारुतं शर्द्धश्च हवामहे॥१॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार: येथा मनुष्या: सम्यङ् निष्पादितेन विमानादियानेनातिकठिनेषु मार्गेष्विप सुखेन गमनागमने कृत्वा कार्याणि संसाध्य सर्वस्माद् दारिद्रचादिदु:खान्मुक्त्वा जीवन्ति तथैवेश्वरसृष्टिस्थान् पृथिव्याद्वि- पदार्थान् विदुषो वा विदित्वोपकृत्य संसेव्यातुलं सुखं प्राप्तुं शक्नुवन्ति॥१॥

पदार्थ:-(सुदानेब:) जिन्ने उत्तम-उत्तम दान आदि काम वा (वसव:) जो विद्यादि शुभ गुणों में वस रहे हों वे हे विद्वानो! तुम लोग (रथम्) विमान आदि यान को (न) जैसे (दुर्गात्) भूमि, जल वा अन्तरिक्ष के कठिन पार्ग से बचा लाते हो वैसे (न:) हम लोगों को (विश्वस्मात्) समस्त (अंहस:) पाप के आचरण से (रिष्टिपर्यंन) बचाओ, हम लोग (ऊतये) रक्षा आदि प्रयोजन के लिये (इन्द्रम्) बिजुली वा परम ऐश्वर्यवाले सभाध्यक्ष (मित्रम्) सब के प्राणरूपीवन वा सर्वमित्र (वरुणम्) काम करानेवाले उदान वायु वा श्रेष्ठगुणयुक्त विद्वान् (अग्निम्) सूर्य्य आदि रूप अग्नि वा ज्ञानवान् जन (अदितिम्) माता, पिता,

मण्डल-१। अनुवाक-१६। सूक्त-१०६



पुत्र उत्पन्न हुए समस्त जगत् के कारण वा जगत् की उत्पत्ति (मारुतम्) पवनों वा मनुष्यों के समूह और (शर्द्धः) बल को (हवामहे) अपने कार्य की सिद्धि के लिये स्वीकार करते हैं॥१॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे मनुष्य अच्छी प्रकार सिद्ध किये हुए दिमान आदि यान से अति कठिन मार्गों में भी सुख से जाना-आना करके कामों को सिद्ध कर समस्त दिख्ला आदि दु:ख से छूटते हैं, वैसे ही ईश्वर की सृष्टि के पृथिवी आदि पदार्थों वा विद्वानों को जान उपकार में लाकर उनका अच्छे प्रकार सेवन कर बहुत सुख को प्राप्त हो सकते हैं॥१॥

पुनस्ते कीदृशा इत्युपदिश्यते॥

फिर वे कैसे हैं, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है।।

त आदित्या आ गीता सर्वतातये भूत देवा वृत्रतूर्येषु श्रंभुवेः। रथुं न दुर्गाद्वेसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहंसो निष्पपर्तन॥२॥

ते। आदित्याः। आ। गत्। सर्वऽतातये। भूत। देवाः। वित्रत्येषु। श्रुम्र्रभुवः। रथम्। न। दुःऽगात्। वसवः। सुऽदानवः। विश्वस्मात्। नः। अंहसः। निः। पिपर्तन्॥२॥

पदार्थ:-(ते) (आदित्या:) कारणरूपेण पित्याः सूर्वीदयः पदार्थाः (आ) क्रियायोगे (गत) गच्छत। अत्र द्वयचोऽतस्तिङ इति दीर्घः। (सर्वतासये) सर्वस्मे सुखाय (भूत) भवत। अत्र गत भूतेत्युभयत्र लोटि मध्यमबहुवचने बहुलं छन्दसीति भ्रम्पो लुक्। (देवाः) दिव्यगुणवन्तस्तत्संबुद्धौ दिव्यगुणा वा (वृत्रतूर्येषु) वृत्राणां शत्रूणां मेघावयवानां आ विषेषु हिसनकर्मसु संग्रामेषु (शंभुवः) ये शं सुखं भावयन्ति ते। (रथं, न, दुर्गात्) इति पूर्ववत्॥ २११

अन्वयः-हे देवा विद्वांसो! यथा ये आदित्या देवाः सूर्यादयः पदार्थास्ते वृत्रतूर्येषु शंभुवो भवन्ति, तथैव यूयमस्माकं सनीडमागतागत्य वृत्रतूर्येषु सर्वतातये शंभुवो भूत। अन्यत् पूर्ववत्॥२॥

भावार्थ:-अत्र बार्चकलुप्तोष्णालङ्कार:। यथेश्वरेण सृष्टाः पृथिव्यादय: पदार्थाः सर्वेषां प्राणिनामुपकाराय वर्त्तन्ते, तथेक सर्वेषामुपकाराय विद्वद्भिर्नित्यं वर्त्तितव्यम्। यथा सुदृहस्य यानस्योपिर स्थित्वा देशान्तरं गत्वा व्यापरिष्ण विजयेन वा धनप्रतिष्ठे प्राप्य दारिद्र्याप्रतिष्ठाभ्यां विमुच्य सुखिनो भवन्ति, तथैव विद्वांस उपदेशत विद्यिप्रापय्य सर्वान् सुखिनः सम्पादयन्तु॥२॥

पदार्थ: हे (देवा:) दिव्यगुणवाले विद्वान् जनो! जैसे (आदित्या:) कारणरूप से नित्य दिव्यगुण वाले जो सूर्व्य आदि पदार्थ हैं (ते)वे (वृत्रतूर्व्येषु) मेघावयवों अर्थात् बादलों का हिंसन विनाश करना जिनमें होता है, उन संग्रामों में (शंभुव:) सुख की भावना करानेवाले होते हैं, वैसे ही आप लोग हमारे समूर्गिप को (आ, गत) आओ और आकर शत्रुओं का हिंसन जिनमें हो उन संग्रामों में (सर्वतातये) समस्त

सुख के लिये (शंभुव:) सुख की भावना करानेवाले (भूत) होओ। शेष मन्त्रार्थ प्रथम मन्त्र के समाने जानना चाहिये॥२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे ईश्वर के बनाये हुए पृथिवी आदि पदार्थ सब प्राणियों के उपकार के लिये हैं, वैसे ही सबके उपकार के लिये विद्वानों को नित्य अपना वर्णाव रखना चाहिये। जैसे अच्छे दृढ़ विमान आदि यान पर बैठ देश-देशान्तर को जा आकर व्यापार वा विजय से धन और प्रतिष्ठा को प्राप्त हो, दिरद्रता और अयश से छूट कर सुखी होंते हैं, वैसे ही विद्वान् जन अपने उपदेश से विद्या को प्राप्त कराकर सबको सुखी करें॥२॥

पुनस्ते कीदृशा इत्युपदिश्यते॥

फिर वे कैसे हों, यह विषय अगले मन्त्र में उपदेश किया है।।

अर्वन्तु नः पितर्रः सुप्रवाचना उत देवी देवपुत्रे ऋतावृधारी

रथं न दुर्गाद्वेसवः सुदानवो विश्वेस्मान्नो अहंसो निर्मिपर्तन्। अ।

अर्वन्तु। नुः। पितर्रः। सुऽप्रवाचनाः। उत। देवी इति। देवपुत्रे इति देवऽपुत्रे। ऋतुऽवृधां। रथम्। न। दुःऽगात्। वसवः। सुऽदानवः। विश्वस्मात्। नुः। अंहंसः। निः। पिप्रतृति।। नुः।

पदार्थ:-(अवन्तु) रक्षणादिभिः पालयन्तु (चः) अस्मान् (पितरः) विज्ञानवन्तो मनुष्याः (सुप्रवाचनाः) सुष्ठु प्रवाचनमध्यापनमुपदेशनं च र्यम् ते (उत्) अपि (देवी) दिव्यगुणयुक्ते द्यावापृथिव्यौ भूमिसूर्यप्रकाशौ (देवपुत्रे) देवा दिव्या विद्वांसो दिव्यर्ताष्ट्रियुक्ताः पर्वतादयो वा पुत्रा पालयितारो ययोस्ते (ऋतावृधा) ये ऋतेन कारणेन वर्धेतां ते (ऋत्व्यः) इति पूर्ववत्॥३॥

अन्वयः-देवपुत्रे ऋतावृधा देवी स्था नीहस्मान्नवतस्तथैव सुप्रवाचनाः पितरोऽस्मानुतावन्तु। अन्यत् पूर्ववत्॥३॥

भावार्थ:-अत्र वाचकतुत्तोपमालङ्कारः। यथा दिव्योषध्यादिभिः प्रकाशादिभिश्च भूमिसवितारौ सर्वान् सुखेन वर्धयतः तथैवान्ति विद्वांसः सृत्वीन् मनुष्यान् सुशिक्षाध्यापनाभ्यां विद्यादिसद्गुणेषु वर्धयित्वा सुखिनः कुर्वन्ति। यथा चत्त्रसम्य यात्रस्योपिर स्थित्वा दुःखेन गम्यानां मार्गाणां सुखेन पारं गत्वा समग्रात् क्लेशाद्विमुच्य सुखिनो भवन्ति, तथैव ते दुष्टगुणकर्मस्वभावात् पृथक्कृत्याऽस्मान् धर्माचरणे वर्धयन्तु॥३॥

पदार्थ: - (देवपुत्रे) जिनके दिव्य गुण अर्थात् अच्छे-अच्छे विद्वान् जन वा अच्छे रत्नों से युक्त पर्वत आदि पूर्वार्थ पालनेवाले हैं वा जो (ऋतावृधा) सत्य कारण से बढ़ते हैं वे (देवी) अच्छे गुणोंवाले भूमि और सूर्य्य की प्रकाश जैसे (न:) हम लोगों की रक्षा करते हैं, वैसे ही (सुप्रवाचना:) जिनका अच्छा पढ़ाना ब्रा उपदेश है, वे (पितर:) विशेष ज्ञानवाले मनुष्य हम लोगों को (उत) निश्चय से (अवन्तु) रक्षादि व्यवृहीसें से पालें। शेष मन्त्रार्थ प्रथम मन्त्रार्थ के तुल्य समझना चाहिये॥३॥

मण्डल-१। अनुवाक-१६। सूक्त-१०६



भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे दिव्य औषिधयों और प्रकाश आदि पुणें से भूमि और सूर्व्यमण्डल सबको सुख के साथ बढ़ाते हैं, वैसे ही आप्त विद्वान् जन सूब मनुष्यों को अच्छी शिक्षा और पढ़ाने से विद्या आदि अच्छे गुणों में उन्नति देकर सुखी करते हैं और जैसे उत्तम रथ आदि पर बैठ के दु:ख से जाने योग्य मार्ग के पार सुखपूर्वक जाकर समग्र क्लेश से छूट के सुखी होते हैं, वैसे ही वे उक्त विद्वान् दुष्ट गुण, कर्म और स्वभाव से अलग कर हम लोगों को धर्म के अच्छिण में उन्नति देवें॥३॥

पुनस्तान् कथं भूतानुपयुङ्गीरन्नित्युपदिश्यते॥

फिर उनको कैसे उपयोग में लावें, यह विषय अगले मुन्द में कहा है।।

नराशंसं वाजिनं वाजयन्तिह क्षयद्वीरं पूषणं सुम्नैरीमहा रथं न दुर्गाद्वेसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पर्धतन॥४॥

नगुशंस्रम्। वाजिनेम्। वाजयेन्। इह। क्षयत्ऽवीरम्। पूर्णामः सुम्हेश र्थ्यम्। न। दुःऽगात्। वसवः। सुऽदानवः। विश्वस्मात्। नः। अंहसः। निः। पिपर्तन्॥४॥

पदार्थ:-(नराशंसम्) नृभिराशंसितुं योग्यं विद्वासम् (वाजिनम्) विज्ञानयुद्धविद्याकुशलम् (वाजयन्) विज्ञापयन्तो योधयन्तो वा। अत्र पुणं सुलुगिति जसः स्थाने सुः। (इह) अस्यां सृष्टो (क्षयद्वीरम्) क्षयन्तः शत्रूणां नाशकर्त्तारो वीग्र यस्य सेनाध्यक्षस्य तम् (पूषणम्) शरीरात्मनोः पोषयितारम् (सुम्नैः) सुखैर्युक्तम् (ईमहे) प्राप्नुयाम्। अत्र विहुल् छन्दसीति श्यनो लुक्। (रथं, न०) इति पूर्ववत्॥४॥

अन्वयः-हे विद्वन्! यथा वाजयन् ज्यमिह सुम्र्नेर्युक्तं नराशंसं वाजिनं क्षयद्वीरं पूषणं चेमहे तथा त्वं याचस्व। अन्यत् पूर्ववत्॥४॥

भावार्थः - वयं शुभगुम्भ्युक्तान् सुखिनो मनुष्यान् मित्रतया प्राप्य श्रेष्ठयानयुक्ताः शिल्पिन इव दुःखात्पारं गच्छेम॥४॥

पदार्थ:-हे विद्वान्! जिसे (वाजयन्) उत्तमोत्तम पदार्थों के विशेष ज्ञान कराने वा युद्ध करानेहारे हम लोग (इह) इस सृष्टि में (सुन्ने:) सुखों से युक्त (नराशंसम्) मनुष्यों के प्रार्थना कराने योग्य विद्वान् को तथा (वाजनम्) विशेष ज्ञान और युद्धविद्या में कुशल (क्षयद्वीरम्) जिसके शत्रुओं को काट करनेहारे वीर और जो (पूर्णाम) शरीर वा आत्मा की पृष्टि करानेहारा है, उस सभाध्यक्ष को (ईमहे) प्राप्त होवें, वैसे तू श्रूष मुणों को याचना कर। शेष मन्त्रार्थ प्रथम मन्त्र के तुल्य जानना चाहिये॥४॥

भेजार्थ:-हम लोग शुभ गुणों से युक्त सुखी मनुष्यों की मित्रता को प्राप्त होकर श्रेष्ठ यानयुक्त हुम् शिल्वियों के समान दु:ख से पार हों॥४॥ ११४८

ऋग्वेदभाष्यम्

पुनस्ते कीदृशा इत्युपदिश्यते॥

फिर वे कैसे हैं, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

बृहंस्पते सदमिन्नः सुगं कृधि शं योर्यते मनुर्हितं तदीमहे।

रथं न दुर्गाद्वेसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन॥५॥

बृह्मस्पते। सर्दम्। इत्। नुः। सुऽगम्। कृधि। शम्। योः। यत्। ते। मर्नुःऽहितम्। तत्। कृ<u>महे</u>। रथम्। न। दुःऽगात्। वसुवः। सुऽदान्वः। विश्वस्मात्। नुः। अहंसः। निः। पिपत्ना। ५॥

पदार्थ:-(वृहस्पते) परमाध्यापक (सदम्) (इत्) एव (नः) अस्मर्भ्यम् (सुगम्) सुष्ठु गच्छन्ति यस्मिन् (कृषि) कुरु निष्पादय (श्रम्) सुखम् (योः) धर्मार्थमोक्षप्रापणम् (यत्) (ते) (मनुर्हितम्) मनुषो मनसो हितकारिणम् (तत्) (ईमहे) याचामहे (रथं न०) इति पूर्ववत् र्रिश्री।

अन्वयः-हे बृहस्पते! ते तव यन्मनुर्हितं शं योश्चास्ति यत्सद्विपत्वं नोऽस्मीध्यं सुगं कृधि तद्वयमीमहे। अन्यत्पूर्ववत्॥५॥

भावार्थ:-मनुष्यैर्यथाऽध्यापकाद्विद्या सङ्गृह्यते तथैन सर्वेभ्ये विद्वद्भ्यश्च स्वीकृत्य दु:खानि विनाशनीयानि॥५॥

पदार्थ:-हे (बृहस्पते) परम अध्यापक अधीत् उत्तम रीति से पढ़ानेवाले! (ते) आपका जो (मनुर्हितम्) मन का हित करनेवाला (श्रम्) सुख वा (यो:) धर्म, अर्थ और मोक्ष की प्राप्ति कराना है तथा (यत्) जो (सदम् इत्) सदैव तुम (न:) हमारे लिये (सुगम्) सुख (कृष्टि) करो अर्थात् सिद्ध करो (तत्) उस उक्त समस्त सुख को हम लोग (ईमहे) मांगते हैं। शेष मन्त्रार्थ प्रथम मन्त्र के तुल्य समझना चाहिये॥५॥

भावार्थ:-मनुष्यों को चाहिये कि जैसे गुरुजन से विद्या ली जाती है, वैसे ही सब विद्वानों से विद्या लेकर दु:खों का विनाश कर्जा। पा

पुनरध्यापकोऽध्येता च किं कुर्य्यादित्युपदिश्यते॥

फिर पहुने और पद्धानेवाले क्या करें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है।।

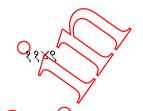
इन्द्रं कुत्सों वृत्रहर्ण अर्मीपतिं काटे निर्वाढ ऋषिरहृदूतयें।

रथं न दुर्भार्द्वसव ्रमुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन॥६॥

इन्द्र<mark>म्। कुत्सः। बृ</mark>त्रुऽहर्नम्। शची र्रेऽपर्तिम्। काटे। निऽवाढः। ऋषिः। अह्वत्। ऊतये। रथम्। न। दुःऽगात्। वसवः। सुरुस्<u>ववः</u>। विश्वस्मात्। नः। अंहसः। निः। पि<u>पर्तन्</u>॥६॥

परार्थ:-(इन्द्रम्) परमैश्वर्यवन्तं शालाद्यध्यक्षम् (कुत्सः) विद्यावज्रयुक्तश्छेत्ता पदार्थानां भेत्ता वा। कुत्स इति बज्रनामसु पठितम्। (निघं०२.२०) कुत्स इत्येतत्कृन्ततेर्ऋषिः कुत्सो भवति कर्ता

मण्डल-१। अनुवाक-१६। सूक्त-१०६



स्तोमानामित्यौपमन्यवोऽत्राप्यस्य वधकर्मैव भवित। (निरु०३.११) (वृत्रहणम्) शत्रूणां हन्तारम्। अत्र हन्तेरत्पूर्वस्य। (अष्टा०८.४.२२) इति णत्वम्। (श्रचीपितम्) वेदवाचः पालकम् (काटे) कटेन्ति वर्षेन्त सकला विद्या यस्मित्रध्यापने व्यवहारे तस्मिन् (निवाढः) नित्यं सुखानां प्रापयिता (ऋषिः) अध्यापकोऽध्येता वा (अह्वत्) अह्वयेत् (ऊतये) रक्षणाद्याय (रखं, न, दुर्गात्०) इति पूर्ववत्। इत

अन्वय:-कुत्सो निवाढ ऋषि: काट ऊतये यं वृत्रहणं शचीपतिमिन्द्रमहृत्, तं वयमुखाह्रयेभे अन्यत्पूर्ववित्।।६॥ भावार्थ:-निह विद्यार्थिना कपटिनोऽध्यापकस्य समीपे स्थातव्यं क्रिन्तु विदुषां समीपे स्थित्वा विद्वान् भूत्वर्षिस्वभावेन भवितव्यम्। स्वात्मरक्षणायाधर्माद्भीत्वा धर्मे सदा स्थातव्यम्।

पदार्थ:-(कुत्स:) विद्यारूपी वज्र लिये वा पदार्थों को छिन्न-भिन्न करमें (निवाढ:) निरन्तर सुखों को प्राप्त करानेवाला (ऋषि:) गुरु और विद्यार्थी (काटे) जिसमें समस्त विद्याओं की वर्षा होती है, उस अध्यापन व्यवहार में (ऊतये) रक्षा आदि के लिये जिस (विश्वहणम्) रात्रुओं को विनाश करने वा (शचीपतिम्) वेदवाणी के पालनेहारे (इन्द्रम्) परमैश्वर्यवान शाला अद्भि के अधीश को (अह्नत्) बुलावे, हम लोग भी उसी को बुलावें। शेष मन्त्रार्थ प्रथम मन्त्र के तुल्य जानेना चाहिये॥६॥

भावार्थ:-विद्यार्थी को कपटी पढ़ानेवाले के समिप ठहरूना नहीं चाहिये, किन्तु आप्त विद्वानों के समीप ठहर और विद्वान् होकर ऋषिजनों के स्वभाव से युक्त होना चाहिये और अपने आत्मा की रक्षा के लिये अधर्म से डर कर धर्म में सदा रहना चाहिये। हा

पुन्ति किद्शा इत्युपदिश्यते॥

फिर वे कैसे हो, यह बिषय अगले मन्त्र में कहा है।।

देवैनों देव्यदितिर्नि पातु देवस्त्राता त्रायतामप्रयुच्छन्।

तन्नी मित्रो वर्रुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः॥७॥२४॥

देवै:। नः। देवी। अर्दितः। नि। पातु। देवः। त्राता। त्रायताम्। अप्रेऽयुच्छन्। तत्। नः। मित्रः। वर्रुणः। मुमुहुन्ताम्। अर्दितिः। सिन्धुः) पृथिवी। देत। द्यौः॥७॥

पदार्थ: (देवै:) विद्विद्धिर्दिव्यगुणैर्वा सह वर्तमानः (नः) अस्मान् (देवी) दिव्यगुणयुक्ता (अदिति:) प्रकाशमधी विद्या (नि) (पातु) (देवः) विद्वान् (त्राता) सर्वाभिरक्षकः (त्रायताम्) (अप्रयुच्छन्) अप्रमाद्यन् (त्रात्रो सित्रोट) इति पूर्ववत्॥७॥

अन्वयः यो देवैः सह वर्त्तमानोऽप्रयुच्छँस्त्राता देवो विद्वानस्ति स नो निपातु, या देव्यदितिः सर्वांस्त्रायताम्। तन्नो मित्रो वरुणोऽदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौर्मामहन्ताम्॥७॥ ११५०

ऋग्वेदभाष्यम्

भावार्थ:-मनुष्यैर्योऽप्रमादी विद्वत्सु विद्वान् विद्यारक्षको विद्यादानेन सर्वेषां सुखवर्द्धकोऽस्ति ते सत्कृत्य विद्याधर्मो जगति प्रसारणीयौ॥७॥

अत्र विश्वेषां देवानां गुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेद्यम्॥

इति षडुत्तरशततमं १०६ सूक्तं चतुर्विशो २४ वर्गश्च समाप्त:॥

पदार्थ:-जो (देवै:) विद्वानों वा दिव्य गुणों के साथ वर्तमान (अप्रयुच्छन्) प्रमाद न करता हुआ (त्राता) सबकी रक्षा करनेवाला (देव:) विद्वान् है, वह (न:) हम लोगों की (नि, पात्) निरन्तर रक्षा करे तथा (देवी) दिव्य गुण भरी सब गुण अगरी (अदिति:) प्रकाशयुक्त विद्या सबकी (त्रायताम्) रक्षा करे (तत्) उस पूर्वोक्त समस्त कर्म को (न:) और हम लोगों को (मित्र:) मित्रजन (वरुण:) श्रेष्ठ विद्वान् (अदिति:) अखण्डित नीति (सिन्धु:) समुद्र (पृथिवी) भूमि (उत्) और हमें पूर्य का प्रकाश (मामहन्ताम्) बढ़ावें अर्थात् उन्नति देवें॥७॥

भावार्थ:-मनुष्यों को चाहिये कि जो अप्रमादी, विद्वानों में विद्वान, विद्या की रक्षा करनेवाला विद्यादान से सबके सुख को बढ़ाता है, उसका सत्कार करके विद्या और धर्म का प्रचार संसार में करें॥७॥

इस सूक्त में समस्त विद्वानों के गुणों का वर्णन है। इससे इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ संगति है, यह जानना चाहिये॥

यह एक सौ छ: वाँ १०६ सूक्त और चौब्रौसवाँ २४ वर्ग पूरा हुआ॥

अथ त्र्यृचस्य सप्तोत्तरशततमस्य सूक्तस्याङ्गिरसः ऋषिः। विश्वे देवा देवताः। १ विराट् त्रिष्टुप्। २ निचृत् त्रिष्टुप्। ३ त्रिष्टुप् च च्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

विश्वे देवाः कीदृशा इत्युपदिश्यते॥

अब तीन ऋचावाले एकसौ सातवें सूक्त का प्रारम्भ है। उसके प्रथम मन्त्र में समस्त क्रिक्क्स जन

कैसे हों, यह उपदेश किया है।।

युज्ञो देवानां प्रत्येति सुम्नमादित्यासो भवता मृळ्यन्तः। आ वोऽर्वाची सुमतिर्ववृत्यादंहोश्चिद्या वरिवोवित्तरासत्॥१॥

युज्ञः। द्वेवानाम्। प्रति। पुति। सुम्नम्। आर्दित्यासः। भवत। मृळ्यन्तं। आर् बुः) अर्वाची। सुऽमृतिः। वृवृत्यात्। अंहोः। चित्। या। वृर्वोवित्ऽतरा अस्त्॥ १॥

पदार्थ:-(यज्ञ:) सङ्गत्या सिद्धः शिल्पाख्यः (देवानाम्) (प्रति) प्राप्नोति प्रापयित। अत्रान्तर्गतो ण्यर्थः। (सुम्नम्) सुखम् (आदित्यासः) सूर्य्यवृद्धिद्योपेन प्रकाशिता विद्वांसः (भवत) अत्रान्येषामि दृश्यत इति दीर्घः। (मृडयन्तः) आनन्दयन्तः (आ) (चः) युष्माकम् (अर्वाची) इदानीन्तनी (सुमितः) शोभना प्रज्ञा (ववृत्यात्) वर्तेत। अत्र व्यत्यश्चि परमिपदम् शपः स्थाने श्लुश्च। (अंहोः) विज्ञानवत्। अत्राहि धातोरौणादिक उः प्रत्ययः। (चित्) अपि (या) (विरवोवित्तरा) वरिवः सेवनं विद्वद्वन्दनं वा यया सुमत्या सातिशयिता (असत्) भवतु॥१॥

अन्वयः – हे मृडयन्त आदित्यासो विद्वांसो पूर्ण यो देवानां यज्ञः सुम्नं प्रत्येति तस्य प्रकाशका भवत। या वोंऽहोरर्वाची सुमतिर्ववृत्यात् सा चिदस्मभ्यं विरक्नेवित्तराऽऽसद्दर्भवतु॥१॥

भावार्थ: - अस्मिञ्जगति विद्वद्भिः स्वपुरुषार्थन याः शिल्पक्रियाः प्रत्यक्षीकृतास्ताः सर्वेभ्यो मनुष्येभ्यः प्रकाशिताः कार्या यतो बृहवी सनुष्या शिल्पक्रियाः कृत्वा सुखिनः स्युः॥१॥

पदार्थ:-(मृडयन्त:) हे आनन्दित करते हुए (आदित्यास:) सूर्य्य के तुल्य विद्यायोग से प्रकाश को प्राप्त विद्वानो! तुम जो (देवानाम) विद्वानों की (यज्ञ:) संगित से सिद्ध हुआ शिल्प काम (सुम्नम्) सुख की (प्रति, एति) प्रतित कराजा है, उसको प्रकट करनेहारे (भवत) होओ, (या) जो (व:) तुम लोगों को (अंहो:) विशेष ज्ञान जैसे हो, वैसे (अर्वाची) इस समय की (सुमित:) उत्तम बुद्धि (ववृत्यात्) वर्ति रही है वह (चित्) भी हम लोगों के लिये (विरवोवित्तरा) ऐसी हो कि जिससे उत्तम जनों की अच्छी प्रकार श्रृश्रुषा (आ, असत्) सब ओर से होवे॥१॥

भाषार्थ: इस संसार में विद्वानों को चाहिये कि जो उन्होंने अपने पुरुषार्थ से शिल्पक्रिया प्रत्यक्ष कर रक्ष्मी हैं, उनको सब मनुष्यों के लिये प्रकाशित करें कि जिससे बहुत मनुष्य शिल्पक्रियाओं को करके सुखी हों॥१॥

पुनस्ते कीदृशा इत्युपदिश्यते॥

११५२

ऋग्वेदभाष्यम्

फिर वे कैसे हों, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

उपं नो देवा अवसा गंमन्त्विद्गिरसां सामंभिः स्तूयमानाः। इन्द्रं इन्द्रियैर्मुरुतो मुरुद्धिरादित्यैर्नो अदितिः शर्मं यंसत्॥२॥

उप। नुः। देवाः। अर्वसा। आ। गुमुन्तु। अङ्गिरसाम्। सामेऽभिः। स्तूयमानाः। इन्द्रंः। दुन्द्रियैः। मुरुतः। मुरुत्ऽभिः। आद्वित्यैः। नुः। अदितिः। शर्मी। युंसुत्॥ २॥

पदार्थ:-(उप) सामीप्ये (न:) अस्माकम् (देवा:) विद्वांसः (अवसा) रक्षणोदिना (आ) सर्वतः (गमनु) गच्छन्तु (अङ्गिरसाम्) प्राणविद्याविदाम् (सामिभः) सामवेदस्थैगिनैः (स्तूचमानाः) (इन्द्रः) सभाद्यध्यक्षः (इन्द्रियैः) धनैः (मरुतः) पवनाः (मरुद्धिः) विद्विद्धिः प्यनैर्वा (आदित्यैः) पूर्णविद्यैर्मनुष्यैद्वांदशिभर्मासैर्वा सह (नः) अस्मभ्यम् (अदितिः) विद्वित्यता सूर्यद्यीप्तर्वा (शर्मा) सुखम् (यंसत्) यच्छन्तु प्रददतु। अत्र वचनव्यत्ययेन बहुवचनस्थान एकवचनम्। रो।

अन्वय:-सामिभः स्तूयमाना आदित्यैर्मरुद्धिरिन्द्रियैः सहेन्द्रो महत्त्वी महत्त्वी अङ्गिङ्गिरसां नोऽस्माकमवसोपागमन्तु ते नोऽस्मभ्यं शर्म्म यंसत् प्रददतु॥२॥

भावार्थ:-जिज्ञासवो येषां विदुषां विद्वांसो जा जिज्जोसूनां सामीप्यं गच्छेयुस्ते नैव विद्याधर्मसुशिक्षाव्यवहारं विहायान्यत्कर्म कदाचित्कुर्युः यतो दुःखहान्या सुखं सततं सिध्येत्॥२॥

पदार्थ:-(सामिभ:) सामवेद के गानों हे (स्तूयमान्नाः) स्तुति को प्राप्त होते हुए (आदित्यैः) पूर्ण विद्यायुक्त मनुष्य वा बारह महीनों (मर्कादः) विद्वानीं वा पवनों और (इन्द्रियैः) धनों के सहित (इन्द्रः) सभाध्यक्ष (मरुतः) वा पवन (अदितः) विद्वानीं का पिता वा सूर्य्य प्रकाश और (देवाः) विद्वान् जन (अङ्गिरसाम्) प्राणविद्या के जाननेवाले (नः) हम लोगों के (अवसा) रक्षा आदि व्यवहार से (उप, आ, गमन्तु) समीप में सब प्रकार म्ने आदें और (न) हम लोगों के लिये (शर्म) सुख (यंसत्) देवें॥२॥

भावार्थ:-ज्ञानप्रचार सीखनहारे जन जिन विद्वानों के समीप वा विद्वान् जन जिन विद्यार्थियों के समीप जावें वे विद्या, धर्म और अच्छी शिक्षा के व्यवहार को छोड़ कर और कर्म कभी न करें, जिससे दु:ख की हानि होके निर्हत्स सुख की सिद्धि हो॥२॥

पुनस्ते कीदृशा इत्युपदिश्यते॥

फिर वे कैसे हों, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

तन्न इन्द्रस्तहरूणस्तद्गिनस्तदेर्यमा तत्सविता चनौ धात्।

क्यों मित्रों वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः॥३॥२५॥

तेत्। नः। इन्द्रेः। तत्। वर्रुणः। तत्। अग्निः। तत्। अर्युमा। तत्। सुविता। चर्नः। धात्। तत्। नः। मित्रः। वर्षुणः। सुमुद्दुन्तुम्। अदितिः। सिन्धुः। पृथिवी। उत। द्यौः॥३॥ अष्टक-१। अध्याय-७। वर्ग-२५

मण्डल-१। अनुवाक-१६। सूक्त-१०७



पदार्थ:-(तत्) धनम्। अत्रम् (नः) अस्मभ्यम् (इन्द्रः) विद्युत् धनाध्यक्षो वा (तत्) श्रासरि सुखम् (वरुणः) जलं गुणैरुत्कृष्टो वा (तत्) आत्मसुखम् (अग्निः) प्रसिद्धो भौतिको न्यायमार्गे गुमयित् विद्वान् वा (तत्) इन्द्रियसुखम् (अर्यमा) नियन्ता वायुर्न्यायकर्ता वा (तत्) सामाजिकं सुखम् (भविता) सूर्यो धर्मकृत्येषु प्रेरको वा (तत्नो मित्रो०) इति पूर्ववत्॥३॥

अन्वय:-यथा मित्रो वरुणोऽदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौर्वा मामहन्तां तत् तथेन्द्रो मसहरूणस्तदग्निस्तदर्यमा तत् सविता तच्च नो धात्॥३॥

भावार्थ:-विद्वद्भिर्यथा संसारस्थाः पृथिव्यादयः पदार्थाः सुखप्रदाः सन्ति, तथैव सुखप्रदातृभिर्भवितव्यम्॥३॥

अत्र विश्वेषां देवानां गुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्ग्रीतरस्तीति श्रेद्यम्॥

इति सप्तोत्तरशततमं १०७ सुक्तं पञ्चविंशो २५ वर्गेश्च सम्प्रीत:॥

पदार्थ:-जैसे (मित्र:) मित्रजन (वरुण:) श्रेष्ठ विद्वान (श्रीदिति:) अखिण्डत आकाश (सिन्धु:) समुद्र (पृथिवी) भूमि (उत) और (द्वौ:) सूर्य आदि का प्रकाश (त्र:) हमारे क्रिय तत् उस धन वा अन्न को अर्थात् उनके दिये हुए धनादि पदार्थ को (वरुण:) जल वा गुणों से उत्कृष्ट (तत्) उस धन वा अन्न को अर्थात् उनके दिये हुए धनादि पदार्थ को (वरुण:) जल वा गुणों से उत्कृष्ट (तत्) उस शरीरसुख को (अग्नि:) पावक अग्नि वा न्यायमार्ग में चलानेकला विद्वान (तत्) उस आत्मसुख को (अर्यमा) नियमकर्त्ता पवन वा न्यायकर्त्ता सभाध्यक्ष (तत्) इन्द्रियों के सुख और (चन:) अन्न को (धात्) धारण करता वा धारण करे॥३॥

भावार्थ:-जैसे संसारस्थ पृथिवी आहि पदार्श्व देनेवाले हैं, वैसे ही विद्वानों को सुख देनेवाले होना चाहिये।।

इस सूक्त में समस्त विद्वानों के पुणों का वर्णन है। इनसे इस सूक्त की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ संगति है, यह जानना चाहिया।

यह एकसौ स्मित्वाँ १०७ सूक्त्रे और पच्चीसवाँ २५ वर्ग समाप्त हुआ॥



अथाष्ट्रोत्तरस्य शततमस्य त्रयोदशर्च्चस्य सूक्तस्याङ्गिरसः कुत्स ऋषिः। इन्द्राग्नी देवते। १,८,१२ निचृत् त्रिष्टुप्। २,३,६,११ विराट् त्रिष्टुप्। ७,९,१०,१३ त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः

स्वरः। ४ भुरिक् पङ्किः। ५ पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

अथ युग्मयोर्गुणा उपदिश्यन्ते॥

अब एक सौ आठवें सूक्त का आरम्भ है। उसके प्रथम मन्त्र से दो-दो इकट्ठे पदार्श्नों चा उनेके गुणों का उपदेश किया है।।

य ईन्द्राग्नी चित्रतमो स्थौ वामुभि विश्वानि भुवनानि चष्टे। तेना यातं सुरथं तस्थिवांसाथा सोमस्य पिबतं सुतस्य॥१॥

यः। इन्द्राग्नी इति। चित्रऽतिमः। रथः। वाम्। अभि। विश्वानि। भुवन्मित्री। चष्टे। बेनी आ। यातम्। स्रऽरथम्। तुस्थिऽवांसी। अर्थ। सोमस्य। पि्बतुम्। सुतस्यी। १॥

पदार्थ:-(य:) (इन्द्राग्नी) वायुपावकौ (चित्रतमः) अतिश्चिनाश्चर्य्यस्वरूपगुणक्रियायुक्तः (रथः) विमानादियानसमूहः (वाम्) एतौ (अभि) अभितः (विश्वानि) सर्वाणि (मुवनानि) भूगोलस्थानानि (चष्टे) दर्शयति। अत्रान्तर्गतो ण्यर्थः। (तेन) (आ) (यातम्) गच्छतो गम्युकौ वा (सरथम्) रथैः सह वर्त्तमानं सैन्यमुत्तमां सामग्रीं वा (तस्थिवांसा) स्थितिमन्तौ (अथ) (सोमस्य) रसवतः सोमवल्ल्यादीनां समूहस्य रसम् (पिबतम्) पिबतः (सृतस्य) ईश्वरेणोत्पादिकस्य ॥१॥

अन्वयः – यश्चित्रतमो रथो वामेतौ तस्थिवांसून्द्रीम्ती प्राप्य विश्वानि भुवनान्यभिचष्टेऽभितो दर्शयति। अथ येनैतौ सरथमायातं समन्ताद् गमयतः सुतस्य सोमस्य रम्नं पिचतं पिचतम्तैन सर्वैः शिल्पिभः सर्वत्र गमनागमने कार्य्ये॥१॥

भावार्थ:-मनुष्यै: कलासु सम्प्रयोज्य चालितैर्वाय्वग्न्यादिभिर्युक्तैविमानादिभिर्योपैराकाशसमुद्रभूमिमार्गेषु देशान्तरान् गत्वाऽऽगत्य सर्वदा स्वाभिप्रायसिद्ध्यानन्दरसो भोक्त्यः:॥१॥

पदार्थ:-(य:) जो (चित्रतमः) एकीएका अद्भुत गुण और क्रिया को लिए हुए (रथः) विमान आदि यानसमूह (वाम्) इन (तिस्थ्रवांसा) ठहरे हुए (इन्द्राग्नी) पवन और अग्नि को प्राप्त होकर (विश्वानि) सब (भुवनािन) पूर्गोल के स्थानों को (अभि, चष्टे) सब प्रकार से दिखाता है। (अथ) इसके अनन्तर जिससे ये दोनों अर्थात् पवन और अग्नि (सरथम्) रथ आदि सामग्री सहित सेना वा उत्तम सामग्री को (अन, योतम्) प्राप्त हुए अच्छी प्रकार अभीष्ट स्थान को पहुंचाते हैं तथा (सुतस्य) ईश्वर के उत्पन्न किये हुए (सोमस्य) सोम आदि के रस को (पिबतम्) पीते हैं (तेन) उसे समस्त शिल्पी मनुष्यों को सब जाह जाना आना चाहिये॥१॥

अष्टक-१। अध्याय-७। वर्ग-२६-२७

मण्डल-१। अनुवाक-१६। सूक्त-१०८

भावार्थ:-मनुष्यों को चाहिये कि कलाओं में अच्छी प्रकार जोड़ के चलाये हुए वायु और अपन आदि पदार्थों से युक्त विमान आदि रथों से आकाश, समुद्र और भूमि मार्गों में एक देशू से दूसरे देशों को जा-आकर सर्वदा अपने अभिप्राय की सिद्धि से आनन्दरस भोगें॥१॥

पुनस्तौ कीदृशावित्युपदिश्यते॥

फिर वे कैसे हैं, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

यावंदिदं भुवंनं विश्वमस्त्युं रुव्यचा विर्मता गभीरम्। तावा अयं पातंवे सोमो अस्त्वरंगिन्द्राग्नी मनसे युवभ्याम्॥ २॥

यार्वत्। इदम्। भुवनम्। विश्वम्। अस्ति। उ्रुऽव्यची। वृश्मिता। गृषीरम्। तान्नन्। अयम्। पार्तवे। सोमीः। अस्तु। अर्रम्। इन्द्राग्नी इति। मनसे। युवऽभ्याम्॥२॥

पदार्थ:-(यावत्) (इदम्) प्रत्यक्षाप्रत्यक्षलक्षणम् (भुवनम्) स्वैषामधिकरणम् (विश्वम्) जगत् (अस्ति) वर्तते (उरुव्यचा) बहुव्याप्त्या (विरमता) बहुस्थूलके प्रतह (गभीरम्) अगाधम् (तावान्) तावत्प्रमाणः (अयम्) (पातवे) पातुम् (सोमः) उत्पन्नः पदार्थस्मूहः (अस्तु) भवतु (अरम्) पर्याप्तम् (इन्द्राग्नी) वायुसवितारौ (मनसे) विज्ञापयितुम् (युवश्याम्) एताभ्याम्॥२॥

अन्वयः-हे मनुष्या! यूयं यावदुरुव्यचा विष्मा सह वर्तमानं गभीरं भुवनिमदं विश्वमस्ति तावानयं सोमोऽस्ति मनस इन्द्राग्नी अरमतो युवभ्याम् पातवे तावन्तं बोधं पुरुषार्थं क स्वीकुरुत॥२॥

भावार्थ:-विचक्षणैः सर्वेरिदमवर्श्यं बैध्यं येत्रं यत्र मूर्तिमन्तो लोकाः सन्ति, तत्र तत्र वायुविद्युतौ व्यापकत्वस्वरूपेण वर्त्तेते। यावन्मनुष्याणां साम्ध्यमस्ति तावदेतद्गुणान् विज्ञाय पुरुषार्थेनोपयोज्यालं सुखेन भवितव्यम्॥२॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! सुम (यावत्) जितना (उरुव्यचा) बहुत व्याप्ति अर्थात् पूरेपन और (विरमता) बहुत स्थूलता के साथ वर्त्तभान (गभीरम्) गहरा (भुवनम्) सब वस्तुओं के उहरने का स्थान (इदम्) यह प्रकट अप्रकट (विश्वम्) जगत् (अस्ति) है, (तावान्) उतना (अयम्) यह (सोमः) उत्पन्न हुआ पदार्थों का समूह है, उसका (मनसे) विज्ञान कराने को (इन्द्राग्नी) वायु और अग्नि (अरम्) परिपूर्ण हैं, इससे (युवभ्याम्) उन वोनों से (पातवे) रक्षा आदि के लिये उतने बोध और पदार्थ को स्वीकार करो॥२॥

भावार्थः विचारशील पुरुषों को यह अवश्य जानना चाहिये कि जहाँ जहाँ मूर्तिमान् लोक हैं, वहाँ जहाँ पवन और बिजुली अपनी व्याप्ति से वर्त्तमान हैं। जितना मनुष्यों का सामर्थ्य है, उतने तक इनके गुणों की जानकर और पुरुषार्थ से उपयोग लेकर परिपूर्ण सुखी होवें॥२॥

११५६

ऋग्वेदभाष्यम्

पुनस्तौ कथंभूतावित्युपदिश्यते॥

फिर वे कैसे हैं, यह अगले मन्त्र में उपदेश किया है।।

चक्राथे हि सुध्रचर्रङ् नामं भुद्रं संधीचीना वृत्रहणा उत स्थः। तार्विन्द्राग्नी सुध्रचेश्चा निषद्या वृष्णुः सोमस्य वृष्णा वृषेथाम्॥३॥

चुकाथे इति। हि। सुध्रयंक्। नामं। भुद्रम्। सुध्रीचीना। वृत्रुऽहुनौ। उत। स्थः। तौ। हुन्द्राग्नी इति। सुध्रयंश्चा। निऽसद्यं। वृष्णंः। सोमंस्य। वृष्णुणा आ। वृष्थुम्॥३॥

पदार्थ:-(चक्राथे) कुरुतः (हि) खलु (सध्चक्) सहाञ्चतीति (नाम) जलम् (भद्गम्) वृष्ट्यादिद्वारा कल्याणकरम् (सध्मीचीना) सहाञ्चतः सङ्गतौ (वृत्रहणौ) वृत्रस्य मेघस्य हन्त्रारौ (उत्तर्भ)अपि (स्थः) भवतः (तौ) (इन्द्राग्नी) पूर्वोक्तौ (सध्चञ्चा) सहप्रशंसनीयौ (निषद्य) नित्य स्थित्वा अत्रान्येषामि दृश्यत इति दीर्घः। (वृष्णः) पृष्टिकारकस्य (सोमस्य) रसवतः पदार्थसमूहस्य (वृष्णी) पोषकौ। अत्र सर्वत्र द्विवचनस्थाने सुणां सुलुगित्याकारादेशः। (आ) (वृष्णाम्) व्यक्तः। त्यत्ययेन शः प्रत्यय आत्मनेपदं च॥३॥

अन्वयः-हे मनुष्या! यौ सध्रीचीना वृत्रहणौ सध्रयञ्चा निष्ठव वृष्णः सोमस्य वृषणेन्द्राग्नी भद्रं सध्रयङ् नाम चक्राथे कुरुत उतापि कार्यसिद्धिकरौ स्थो वृषेथां सुखं वर्षतस्त्रौ हा विज्ञानन्तु॥३॥

भावार्थ:-मनुष्यैरत्यन्तमुपयोगिनाविन्द्राग्नी विदित्वा क्रुथं नोपयोजनीयाविति॥३॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! जो (सद्वीचीना) एक सिश्व मिलने और (वृत्रहणौ) मेघ के हननेहारे (सद्व्यञ्जा) और एक साथ बड़ाई करने सिर्फ (निष्कृष्ट) नित्य स्थिर होकर (वृष्णः) पृष्टि करते हुए (सोमस्य) रसवान् पदार्थसमूह की (वृष्णा) पृष्टि करनेहारे (इन्द्राग्नी) पूर्व कहे हुए अर्थात् पवन और सूर्य्यमण्डल (भद्रम्) वृष्टि आदि काम से परम सुख करनेवाले (सद्व्यक्) एक संग प्रकट होते हुए (नाम) जल को (चक्राथे) करते हैं (उत्) और कार्य्यसिद्धि करनेहारे (स्थः) होते (वृष्थाम्) और सुखरूपी वर्षा करते हैं (तौ) उनको (हि) ही (आ) अच्छी प्रकार जानो॥३॥

भावार्थ:-मनुष्यों का अत्यन्त्र उपयोग करनेहारे वायु और सूर्य्यमण्डल को जान के कैसे उपयोग में न लाने चाहिये॥३॥

पुनस्तौ कीदृशावित्युपदिश्यते॥

फिर वे कैसे हैं, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

स्मिद्धेष्यग्निष्वानजाना यतस्रुचा बर्हिर्म तिस्तिराणा।

तुद्भैः सोमैः परिषिक्तेभिरुर्वागेन्द्राग्नी सौमनुसार्य यातम्॥४॥

अष्टक-१। अध्याय-७। वर्ग-२६-२७

मण्डल-१। अनुवाक-१६। सूक्त-

१०८

सम्ऽईद्धेषु। अग्निषुं। आनुजाना। यतऽस्रुचां। बुर्हिः। ऊम्ऽइतिं। तिस्तिराणा। तीवैः। सोमैः। परिऽसिक्तेभिः। अर्वाक्। आ। इन्ह्युग्नी इतिं। सौमनुसायं। यातुम्॥४॥

पदार्थ:-(सिमद्धेषु) प्रदीप्तेषु (अग्निषु) कलायन्त्रस्थेषु (आनजाना) प्रसिद्धौ प्रसिद्धिकारकौ। अत्राञ्च धातोर्लिट: स्थाने कानच्। (यतस्रुचा) यता उद्यता स्रुच: स्रुग्वत्कलादयो प्रयोस्तो। अत्र सर्वत्र सुपां सुलुगिति द्विवचनस्थान आकारादेश:। (बर्हि:) अन्तरिक्षे (उ) (तिस्तराण्ण) यन्त्रकलाभिराच्छादितौ (तीव्रै:) तीक्ष्णवेगादिगुणै: (सोमै:) रसभूतैर्जलै: (परिषिक्तेभि:) सर्वथा कृत्सिञ्चनै: सिहतौ (अर्वाक्) पश्चात् (आ) समन्तात् (इन्द्राग्नी) वायुविद्युतौ (सौमनसाय) अनुत्तमसुखाय (यतिष्) गमयत:॥४॥

अन्वय:-हे मनुष्या! यूयं यौ यतस्रुचा तिस्तिराणानजानेन्द्राग्नी तिर्वि: सोमै: परिषिक्तेभि: सिमद्धेष्वग्निषु सत्स्वर्वाग् बर्हिर्यातम् सौमनसायायातं गमयतस्तौ सम्यक् परीक्ष्य कार्य्यसिद्धये प्रयोज्योभश्रा

भावार्थ:-यदा शिल्पिभिः पवनस्सौदामिनी च कार्यमिङ्ग्यर्थं स्पृ्रेयुज्येते तदैते सर्वसुखलाभाय प्रभवन्ति॥४॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! जो तुम (यतसुचा) जिनमें खुच अर्मात् होम करने के काम में जो सुचा होती है, उनके समान कलाघर विद्यमान (तिस्तराणाः) बा जो यन्त्रकलादिकों से ढांपे हुए होते हैं (आनजाना) वे आप प्रसिद्ध और प्रसिद्धि करनेवाले (इन्ह्राग्नी) वायु और विद्युत् अर्थात् पवन और बिजुली (तीव्रै:) तीक्ष्ण और वेगादिगुणयुक्त (सामै:) रस्कप जलों से (परिषिक्तेभि:) सब प्रकार की, की हुई सिंचाइयों के सहित (सिमद्धेषु) अच्छी प्रकार अलते हुए (अग्निषु) कलाघरों की अग्नियों के होते (अर्वाक्) पीछे (बर्हि:) अन्तरिक्ष में (यातम्) पहुँगात हैं (उ) और (सौमनसाय) उत्तम से उत्तम सुख के लिये (आ) अच्छे प्रकार आते भी हैं, उसकी अच्छी शिक्षा कर कार्यसिद्धि के लिये कलाओं में लगाने चाहिये॥४॥

भावार्थ:-जब शिल्पियों से पवन और बिजुली कार्यसिद्धि के अर्थ कलायन्त्रों की क्रियाओं से युक्त किये जाते हैं, तब स्मिन्युकों के लाभ के लिये समर्थ होते हैं॥४॥

अथैश्वर्ययुक्तस्य स्वारीनः शिल्पविद्याक्रियाकुशलस्य शिल्पिनश्च कर्माण्युपदिश्यन्ते॥

अब ऐश्वर्य्वीयुक्त स्वामी और शिल्पविद्या की क्रियाओं में कुशल शिल्पीजन के कामों को अगले

मन्त्र में कहा है॥

यानीन्त्रामी चुक्रथुर्वीर्याणि यानि रूपाण्युत वृष्णयानि।

ये वां प्रलानि सुख्या शिवानि तेभिः सोमस्य पिबतं सुतस्यं॥५॥२६॥

यानि। इन्द्राग्नी इति। चुक्रथुः। वीर्याणि। यानि। रूपाणि। उत। वृष्ण्यानि। या। वाम्। प्रत्नानि। सुख्या। शिवानि। तेभिः। सोमस्य। पिबतुम्। सुतस्य।।५॥

पदार्थ:-(यानि) (इन्द्राग्नी) स्वामिभृत्यौ (चक्रथु:) कुर्य्यातम् (वीर्याणि) पराक्रिम्भुक्वानि कर्माणि (यानि) (रूपाणि) शिल्पसिद्धानि चित्ररूपाणि यानादीनि वस्तूनि (उत) अप (वृष्ण्यप्रिन) पुरुषार्थयुक्तानि कर्माणि (या) यानि (वाम्) युवयोः (प्रत्नानि) प्राक्तनानि (सख्या) सख्यति सख्युः कर्माणि (शिवानि) मङ्गलमयानि (तेभिः) तैः (सोमस्य) संसारस्थपदार्थसमृहस्य रसम् (पिवतम्) (सुतस्य) निष्पादितस्य॥५॥

अन्वय:-हे इन्द्राग्नी! यो वां यानि वीर्याणि यानि रूपाणि वृष्ण्यानि कर्माणि चा प्रतानि शिवानि सख्या सन्ति तेभिस्तै: सुतस्य सोमस्य रसं पिबतमुतास्मभ्यं सुखं चक्रथु: कुर्यातम्॥५॥

भावार्थ:-अत्रेन्द्रशब्देन धनाढ्योऽग्निशब्देन विद्यावान् शिल्फी गृह्यते, निह विद्यापुरुषार्थाभ्यां विना कार्यसिद्धिः कदापि जायते न च मित्रभावेन विना सर्वदा स्ववहारः सिद्धा भवितुं शक्यस्तस्मादेतत् सर्वदाऽनुष्ठेयम्॥५॥

पदार्थ:-हे (इन्द्राग्नी) स्वामी और सेवक! (वाम्) तुम्होरे (बानि) जो (वीर्याण) पराक्रमयुक्त काम (यानि) जो (रूपाणि) शिल्पविद्या से सिद्ध, चित्र, विकिन्न, अद्भुत जिनका रूप वे विमान आदि यान और (वृष्ण्यानि) पुरुषार्थयुक्त काम (या) जा तुम्र दोनों के (प्रलानि) प्राचीन (शिवानि) मङ्गलयुक्त (सख्या) मित्रों के काम हैं (तेभिः) उनसे (सुनस्य) निकाले हुए (सोमस्य) संसारी वस्तुओं के रस को (पिबतम्) पिओ (उत) और हम लोगों के लियें (चक्रथः) उनसे सुख करो॥५॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में इन्द्र शब्द से घन्डिय और अग्नि शब्द से विद्यावान् शिल्पी का ग्रहण किया जाता है, विद्या और पुरुषार्थ के विना काम की सिद्धि कभी नहीं होती और न मित्रभाव के विना सर्वदा व्यवहार सिद्ध हो सकता है, इससे अक्त काम सर्वदा करने योग्य हैं॥५॥

पुनस्तौ कीदृशावित्युपदिश्यते॥

फिर वे दोनों क्रैंसे हैं, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

यदब्रवं प्रथमं वां विणानां रूं देशं सोमो असुरैनों विहव्यः।

तां सुत्यां श्रद्धामुभ्या हि यातमथा सोमंस्य पिबतं सुतस्यं॥६॥

यत्। अवविम् प्रथमम्। वाम्। वृणानः। अयम्। सोमः। असुरैः। नः। विऽहव्यः। ताम्। सुत्याम्। श्रद्धाम्। अभि। आ। हि। यातम्। अर्थ। सोमस्य। पिवृतम्। सुतस्य।।६॥

पदार्थ:-(यत्) वचः (अब्रवम्) उक्तवानस्मि (प्रथमम्) (वाम्) युवाभ्यां युवयोर्वा (वृणानः) स्तुष्टमानः (अयम्) प्रत्यक्षः (सोमः) उत्पन्नः पदार्थसमृहः (अस्रैः) विद्याहीनैर्मनृष्यैः (नः) अस्माकम्

अष्टक-१। अध्याय-७। वर्ग-२६-२७

मण्डल-१। अनुवाक-१६। सूक्त-१०८



(विहव्य:) विविधतया ग्रहीतुं योग्यः (ताम्) (सत्याम्) (श्रद्धाम्) (अभि) (आ) (हि) किल (यातम्) आगच्छतम् (अथ) आनन्तर्ये। (सोमस्य) इति पूर्ववत्॥६॥

अन्वय:-हे स्वामिशिल्पनौ! वां प्रथमं यदहमब्रवमसुरैर्वृणानो विहव्योऽयं सोमो युवयोरम्सि तेन रोऽस्माकं तां सत्यां श्रद्धामभ्यायातमथ हि किल सुतस्य सोमस्य रसं पिबतम्॥६॥

भावार्थ:-जन्मसमये सर्वेऽविद्वांसो भवन्ति पुनर्विद्याभ्यासं कृत्वा विद्वांस्था तस्माद्विद्याहीना मूर्खा ज्येष्ठा विद्यावन्तश्च कनिष्ठा गण्यन्ते कोऽपि भवेत् परन्तु तं प्रति सत्यमेव वाच्यं न कञ्चित् प्रत्यसत्यम्॥६॥

पदार्थ:-हे स्वामी और शिल्पी जनो! (वाम्) तुम्हारे लिये (प्रथमि) पहिले (यत्) जो मैंने (अब्रवम्) कहा वा (असुरै:) विद्याहीन मनुष्यों की (वृणान:) बड़ाई किई हुई (विहव्य:) अनेकों प्रकार से ग्रहण करने योग्य (अयम्) यह प्रत्यक्ष (सोम:) उत्पन्न हुआ क्दार्थों का समूह [तुम दोनों का] है, उससे (न:) हम लोगों की (ताम्) उस (सत्याम्) सत्य (श्रद्धामें) प्रीति के (अभि, आ, यातम्) अच्छी प्रकार प्राप्त होओ (अथ) इसके पीछे (हि) एक निश्चय के साथ (सुतस्य) निकाले हुए (सोमस्य) संसारी वस्तुओं के रस को (पिबतम्) पिओ॥६॥

भावार्थ:-जन्म के समय में सब मूर्ख होते हैं और फिर विद्या का अभ्यास करके विद्वान् भी हो जाते हैं, इससे विद्याहीन मूर्ख जन ज्येष्ठ और विद्वान् जन कॉनष्ठ गिने जाते हैं। सबको यही चाहिये कि कोई हो परन्तु उसके प्रति सांची (सत्य) ही कहें, किन्तु किसी के प्रति असत्य न कहें॥६॥

पुनर्ती क्रीदृशावित्युपदिश्यते॥

फिर वे कैसे हैं, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

यदिन्द्राग्नी मद्यः स्वे हुरीणे यद् बृह्मणि राजीन वा यजत्रा।

अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य।।७॥

यत्। इन्द्राग्नी इति। पर्दथः। स्वेर दुरोणा यत्। ब्रह्मणि। राजीन। वा। यज्त्रा। अर्तः। परि। वृष्णौ आ। हि। यातम्। अर्थ। सोर्मस्य। प्रवृतम्। स्तर्मस्य।। ७॥

पदार्थ:-(यत्) यतः (इन्द्राग्नी) (मदथः) हर्षथः (स्वे) स्वकीये (दुरोणे) गृहे (यत्) यतः (ब्रह्मणि) ब्राह्मणसभायाम् (राजिन) राजसभायाम् (वा) अन्यत्र (यजत्रा) सङ्गम्य सत्कर्त्तव्यौ (अतः) कारणात् (पूरि) (बृषणो) सुखानां वर्षियतारौ। अन्यत्पूर्ववत्॥७॥

अन्वयः हे कुषणौ यजत्रा इन्द्राग्नी! युवां यद्यतः स्वे दुरोणे यद् यस्मिन् ब्रह्मणि राजनि वा मदथोऽतः कारणात् पर्य्यायुतमथ हि खलु सुतस्य सोमस्य पिबतम्॥७॥

भावार्थ:-यत्र यत्र स्वामिशिल्पिनावध्यापकाध्येतारौ राजप्रजापुरुषौ वा गच्छेतां खल्वागच्छेतां वा तत्र तत्र सभ्यतया स्थित्वा विद्याशान्तियुक्तं वचः संभाष्य सुशीलतया सत्यं वदतां सत्यं शृणुतां च्रा।७॥

पदार्थ:-हे (वृषणौ) सुखरूपी वर्षा के करनेहारे (यजत्रा) अच्छी प्रकार मिल कर सकार करने के योग्य (इन्द्राग्नी) स्वामी सेवको! तुम दोनों (यत्) जिस कारण (स्वे) अपने (दुरोणे) कर में वा (यत्) जिस कारण (ब्रह्मणि) ब्राह्मणों की सभा और (राजिन) राजजनों की सभा (वा) वा और सभा में (मदथ:) आनिन्दित होते हो (अत:) इस कारण से (पिर, आ, यातम्) सब प्रकार से आओ (अथ हि,) इसके अनन्तर एक निश्चय के साथ (सुतस्य) उत्पन्न हुए (सोमस्य) संसारी पद्मर्थीं के रेप को (पिंवतम्) पिओ॥७॥

भावार्थ:-जहाँ-जहाँ स्वामि और शिल्पि वा पढ़ाने और पढ़नेवाले का रोजा और प्रजाजन जायें वा आवें वहाँ-वहाँ सभ्यता से स्थित हों, विद्या और शान्तियुक्त क्वन को कह और अच्छे शील का ग्रहण कर सत्य कहें और सुनें॥७॥

पुनस्तौ कीदृशावित्युपदिश्यते॥

फिर वे कैसे हैं, यह विषय अगर्ल मुन्त्र में कहा है॥

यदिन्द्राग्नी यदुंषु तुर्वशेषु यद्दुह्युष्वनुंषु पूरुषु स्थरी

अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमूर्य पिबतं सुतस्य।।८॥

यत्। इन्द्राग्नी इति। यदुषु। तुर्वश्रीषु। यत्। दुह्युषु। अर्मुषु। पूरुषु। स्थः। अर्तः। परि। वृष्णौ। आ। हि। यातम्। अर्थ। सोर्मस्य। पि<u>बत्</u>म्। सुतस्य।।८॥

पदार्थ:-(यत्) यतः (इन्द्राग्नी) पूर्विक्ती (यदुषु) प्रयत्नकारिषु मनुष्येषु (तुर्वशेषु) तूर्वन्तीति तुरस्तेषां वशा वशं कर्तारो मनुष्यास्तेषु (यत्) यतः (दुह्युषु) द्रोहकारिषु (अनुषु) प्राणप्रदेषु (पूरुषु) परिपूर्णसद्गुणविद्याकर्मसु मनुष्येषु। यदव इत्यादि पञ्चविंशतिर्मनुष्यनामसु पठितम्। (निघं०२.३) (स्थः) (अतः) (परि०) इति पूर्ववत्। (अतः)

अन्वय:-हे इन्द्राम् ! युवां यद्, यदुषु तुर्वशेषु यद्दुह्युष्वनुषु पूरुषु यथोचितव्यवहारवर्तिनौ स्थोऽतः कारणात् सर्वेषु वृषणौ सन्तावायातं हि खक्ष्य भूतस्य सोमस्य रसं परि पिबतम्॥८॥

भावार्थः स्थापयित्वा कार्यसिक्धिः सम्पादनीया:॥८॥

पदीर्थ: है (इन्द्राग्नी) स्वामि शिल्पिजनो! तुम दोनों (यत्) जिस कारण (यदुषु) उत्तम यत्न करनेवालें मनुष्यों में वा (तुर्वषु) जो हिंसक मनुष्यों को वश में करें उनमें वा (यत्) जिस कारण (दुह्युषु) द्रोही जनों में वा (अनुषु) प्राण अर्थात् जीवन सुख देनेवालों में तथा (पुरुषु) जो अच्छे गुण, विद्या वा क्रीमों में परिपूर्ण हैं, उनमें यथोचित अर्थात् जिससे जैसा चाहिये वैसा वर्तनेवाले (स्थ:) हो (अत:) इस

अष्टक-१। अध्याय-७। वर्ग-२६-२७

मण्डल-१। अनुवाक-१६। सूक्त-१०८ Q ? F. ?

कारण से सब मनुष्यों में (वृषणौ) सुखरूपी वर्षा करते हुए (आ, यातम्) अच्छे प्रकार आओं (हि) एक निश्चय के साथ, (अथ) इसके अनन्तर (सुतस्य) निकाले हुए (सोमस्य) जगत् के पदार्थों के एस की (परि, पिबतम्) अच्छी प्रकार पिओ॥८॥

भावार्थ:-जो न्याय और सेना के अधिकार को प्राप्त हुए मनुष्यों में यथार्श्वोरय वर्तमान हैं, सब मनुष्यों को चाहिये कि उनको ही उन कामों में स्थापन अर्थात् मानकर कामों की सिद्धि करें॥८॥

पुनरेतौ भौतिकौ च कीदृशावित्युपदिश्यते॥

फिर वे और भौतिक इन्द्र और अग्नि कैसे हैं, यह विषय अगले मुन्न में कही है।।

यदिन्द्राग्नी अवुमस्यां पृथिव्यां मध्युमस्यां पर्मस्यामुत स्थान

अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुन्स्यी ९॥

यत्। इन्द्राग्नी इति। अवमस्योम्। पृथिव्याम्। मध्यमस्योम्। पुर्मस्योम्। उत। स्थः। अतः। परि। वृषणौ। आ। हि। यातम्। अर्थ। सोमस्य। पिबतुम्। सुतस्य।। ९॥

पदार्थ:-(यत्) यौ (इन्द्राग्नी) न्यायसेनाध्यक्षौ वायुविद्युती वा (अवमस्याम्) अनुत्कृष्टगुणायाम् (पृथिव्याम्) स्वराज्यभूमौ (मध्यमस्याम्) मध्यममुणायाम् (परमस्याम्) उत्कृष्टगुणायाम् (उत्) अपि (स्थ:) भवथो भवतो वा (अत:०) इति पूर्ववत्र (।

अन्वयः-हे इन्द्राग्नी! यद् युवामवमस्यां मध्यमस्यामुतापि परमस्यां पृथिव्यां स्वराज्यभूमाविधकृतौ स्थस्तौ सर्वदा सर्वे रक्षणीयौ स्त:। अतोऽत्र परिवृष्णी भूत्याऽऽयातं हि खल्वथ तत्रस्थं सुतस्य सोमस्य रसं पिबतमित्येक:॥१॥९॥

यद् याविमाविन्द्राग्नी <u>व्यवमस्यां</u> मध्यमस्यामुतापि परमस्यां पृथिव्यां स्थोऽतोऽत्र परिवृषणौ भूत्वाऽऽयातमागच्छतो हि खल्वभ्रायौ सुतस्य स्भापस्य रसं पिबतं पिबतस्तौ कार्यसिद्धये प्रयुज्य मनुष्यैर्महालाभः सम्पादनीयः॥२॥१॥

भावार्थ:-अत्र श्लिकाङ्क्षीरः उत्तममध्यमिनकृष्टगुणकर्मस्वभावभेदेन यद्यद्राज्यमस्ति तत्र तत्रोत्तममध्यमिनकृष्टगुणकर्मस्वभावान् मनुष्यान् संस्थाप्य चक्रवर्त्तिराज्यं कृत्वाऽऽनन्दः सर्वैभीक्तव्यः। एवमेतत्सृष्टिस्थौ सर्वलोकेष्ववस्थितौ पवनविद्युतौ विज्ञाय संप्रयुज्य कार्यसिद्धिं सम्पाद्य दारिद्रचादिदुःखं सर्वैविनाशनीद्वम्

(इन्द्राग्नी) न्यायाधीश और सेनाधीश! (यत्) जो तुम दोनों (अवमस्याम्) निकृष्ट (मध्यप्रस्थाम्) मध्यम (उत्) और (परमस्याम्) उत्तम गुणवाली (पृथिव्याम्) अपनी राज्यभूमि में अधिकार पाए हुए (स्थ:) हो वे सब कभी सबकी रक्षा करने योग्य हो (अत:) इस कारण इस उक्त

राज्य में (परि, वृषणौ) सब प्रकार सुखरूपी वर्षा करनेहारे होकर (आ, यातम्) आओ (हि) एक निश्चय के साथ (अथ) इसके उपरान्त उस राज्यभूमि में (सुतस्य) उत्पन्न हुए (सोमस्य) संसारी पदार्थों के रस को (पिबतम्) पिओ, यह एक अर्थ हुआ॥१॥९॥

(यत्) जो ये (इन्द्राग्नी) पवन और बिजुली (अवमस्याम्) निकृष्ट (मध्यमस्याम्) पध्यम (उत्) वा (परमस्याम्) उत्तम गुणवाली (पृथिव्याम्) पृथिवी में (स्थः) हैं (अतः) इससे ब्रहीँ (पिरे, वृषणौ) सब प्रकार से सुखरूपी वर्षा करनेवाले होकर (आ, यातम्) आते और (अथ) इसके उपरान्त (हि) एक निश्चय के साथ जो (सुतस्य) निकाले हुए (सोमस्य) पदार्थों के रस को (पिक्तम्) पीन हैं, उनका काम सिद्धि के लिये कलाओं में संयुक्त करके महान् लाभ सिद्ध करना चाहिये। सारा

भावार्थ:-इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। उत्तम, मध्यम और त्रिकृष्ट पुण, कर्म और स्वभाव के भेद से जो-जो राज्य हैं, वहाँ-वहाँ वैसे ही उत्तम, मध्यम, गुण, कर्म और स्वभाव के मनुष्यों को स्थापन कर और चक्रवर्ती राज्य करके सबको आनन्द भोगना श्लोपकाचा चाहिये। ऐसे ही इस सृष्टि में ठहरे और सब लोकों में प्राप्त होते हुए पवन और बिजुली को जान और उनका अच्छे प्रकार प्रयोग कर तथा कार्य्यों की सिद्धि करके दारिद्र्य दोष सबको नाश करना चाहिये। ए।

पुनस्तौ कीदृशावित्युपदिश्यतेग

फिर वे कैसे हैं, यह विषय अगले मूल में कहा है॥

यदिन्द्राग्नी परमस्यां पृथिव्यां मध्यमुख्यामवुमस्यामुत स्थः।

अतः परि वृषणावा हि यातमश्रा सोमस्य पिंबतं सुतस्य ॥ १०॥

यत्। इन्द्राग्नी इति। पुरमस्याम्। पृष्टिव्याम्। मध्यमस्याम्। अवमस्याम्। उत। स्थः। अतः। परि। वृष्णौ। आ। हि। यातम्। अर्थ। सोर्मस्य। पिवतुम्। सुतस्य।। १०॥

पदार्थ:-(यत्) यौ (इन्हान्नी) (परमस्याम्) (पृथिव्याम्) (मध्यमस्याम्) (अवमस्याम्) (उत्र) (स्थ:) पूर्ववदर्थः (अत:०) इत्यापि पूर्ववत्। १०॥

अन्वय:-अन्वयोऽ पि पूर्वेकद्विज्ञेयः १।१०॥

भावार्थ:-द्विविधाविन्द्रामी स्तः। एकावुत्तमगुणकर्मस्वभावेषु स्थितौ पवित्रभूमौ वा तावुत्तमौ यावपवित्रगुणकर्मस्वभावेष्वशुद्धभूम्यादिपदार्थेषु वा तिष्ठतस्ताववरौ इमौ द्विधा पवनाग्नी उपरिष्टादधोऽध्रस्तादुपर्यागच्छतस्तस्मादुभाभ्यां मन्त्राभ्यामवमपरमशब्दाभ्यां पूर्वप्रयुक्ताभ्यां विज्ञापितोऽयमर्थं इति वेद्यम्॥१०॥

्रिदार्थ:-इस मन्त्र का अर्थ पिछले मन्त्र के समान जानना चाहिये॥१०॥

भावार्थ:-इन्द्र और अग्नि दो प्रकार के हैं। एक तो वे कि जो उत्तम गुण, कर्म, स्वभाव में स्थिर वा पिक्कि भूमि में स्थिर हैं, वे उत्तम और जो अपवित्र गुण, कर्म, स्वभाव में वा अपवित्र भूमि आदि अष्टक-१। अध्याय-७। वर्ग-२६-२७

मण्डल-१। अनुवाक-१६। सूक्त-१०८ 9863

पदार्थों में स्थिर होते हैं वे निकृष्ट; ये दोनों प्रकार के पवन और अग्नि ऊपर-नीचे सर्वत्र चल्ले हैं। इससे दोनों मन्त्रों से (अवम) और (परम) शब्द जो पहिले प्रयोग किये हुए हैं, उनसे दो प्रकार के (इस) और (अग्नि) के अर्थ को समझाया है, ऐसा जानना चाहिये॥१०॥

अथ भौतिकाविन्द्राग्नी क्व क्व वर्त्तते इत्युपदिश्यते॥

अब भौतिक इन्द्र और अग्नि कहाँ-कहाँ रहते हैं, यह उपदेश अगले मन्त्र भें किया है।।

यदिन्द्राग्नी द्विवि ष्ठो यत्पृथिव्यां यत्पर्वतेष्वोषधीष्वप्सु।

अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्यी। ११

यत्। इन्द्राग्नी इति। दिवि। स्थः। यत्। पृथिव्याम्। यत्। पर्वतेषु। ओर्षधीषु। अप्रसु। अतः। परि। वृष्णौ। आ। हि। यातम्। अर्थ। सोर्मस्य। पि<u>वत</u>म्। सुतस्यं॥ ११॥

पदार्थ:-(यत्) यतः (इन्द्राग्नी) पवनविद्युतौ (दिवि) प्रिकाशमान आकाशे सूर्य्यलोके वा (स्थः) वर्तते (यत्) यतः (पृथिव्याम्) भूमौ (यत्) यतः (पर्वतेषु) (अप्पू) (अतः ०) इति पूर्ववत्॥११॥

अन्वय:-यदिन्द्राग्नी दिवि यत् पृथिव्यां यत् पर्वतेष्व एवोष्धीषु स्थो वर्त्तेते। अतः परिवृषणौ तौ ह्यायातमागच्छतोऽथ सुतस्य सोमस्य रसं पिबतम्॥११॥

भावार्थ:-यौ धनञ्जयवायुकारणाख्यावार्ग सर्वेषदार्शस्थौ विद्येते, तौ यथावद्विदितौ संप्रयोजितौ च बहुनि कार्य्याणि साधयत:॥११॥

पदार्थ:-(यत्) जिस कारण (इन्ह्रीम्नी) पवन और बिजुली (दिवि) प्रकाशमान आकाश में (यत्) जिस कारण (पृथिव्याम्) पृथिवी में (यत्) वा जिस कारण (पर्वतेषु) पर्वतों (अप्सु) जलों में और (ओषधीषु) ओषधियों में (स्थः) वर्तमान हैं (अतः) इस कारण (पिर, वृषणौ) सब प्रकार से सुख की वर्षा करनेवाले वे (हि) निश्चय से (आ, यातम्) प्राप्त होते (अथ) इसके अनन्तर (सुतस्य) निकाले हुए (सोमस्य) जगत् के पदार्थों के रस को (पिबतम्) पीते हैं॥११॥

भावार्थ:-जो धनु पान्न और कारणरूप अग्नि सब पदार्थों में विद्यमान हैं, वे जैसे के वैसे जाने और क्रियाओं, में जोड़े हुए बहुत कामों को सिद्ध करते हैं॥११॥

पुनस्तौ कीदृशावित्युपदिश्यते॥

फिर वे कैसे हैं, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

सदिन्द्राम्नी उदिता सूर्यस्य मध्ये दिवः स्वधया मादयेथे।

अकुः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य।। १२॥

यत्। डुन्द्राग्नी इति। उत्ऽईता। सूर्यस्य। मध्ये। दिवः। स्वधया। मादयेथे इति। अतः। परि। वृषणौ। आ। हि। यातम्। अर्थ। सोर्मस्य। पि<u>बत</u>म्। सुतस्ये॥ १२॥

पदार्थ:-(यत्) यतः (इन्द्राग्नी) पूर्वोक्तौ (उदिता) उदित्तौ प्राप्तोदयौ (सूर्य्यस्य) सर्वितुमाडिल्स्य (मध्ये) (दिवः) अन्तरिक्षस्य (स्वधया) उदकेनान्नेन वा सह वर्त्तमानौ (मादयेथे) हर्षयतः (अतः, प्रार्ट्) इति पूर्ववत्॥१२॥

अन्वय:-यत् याविन्द्राग्नी उदिता सूर्यस्य दिवो मध्ये स्वधया सर्वान् मादयेथे हर्षयते। तो वृषणौ प्रप्यायातं परितो बाह्याभ्यन्तरत आगच्छतो हि खल्वथ सुतस्य सोमस्य रसं पिबतं पिबतः॥१२॥

भावार्थ:-निह पवनविद्युद्भयां विना कस्यापि लोकस्य प्राणिनो स्था जीवनं च संभवति तस्मादेतौ जगत्पालने मुख्यौ स्त:॥१२॥

पदार्थ:-(यत्) जिस कारण (इन्द्राग्नी) पवन और बिजुली (उदिजा) उदय को प्राप्त हुए (सूर्व्यस्य) सूर्व्यमण्डल के वा (दिव:) अन्तरिक्ष के (मध्ये) बीच में (स्वध्या) अन्न और जल से सबको (मादयेथे) हर्ष देते हैं (अत:) इससे (वृषणा) सुख की वर्षी करनेवाले (पिर) सब प्रकार से (आ, यातम्) आते अर्थात् बाहर और भीतर से प्राप्त होते और (हि) निश्चय है कि (अथ) इसके अनन्तर (सुतस्य) निकाले हुए (सोमस्य) जगत् के पदार्थों के रस्स को (पिनृतम्) पीते हैं॥१२॥

भावार्थ:-पवन और बिजुली के विना किसी लोक वर्ग प्राणी की रक्षा और जीवन नहीं होते हैं, इससे संसार की पालना में ये ही मुख्य हैं॥१२/

पुनर्धनपतिसेनाध्यक्षौ कोदृशावित्युपदिश्यते॥

अब धनपति और सेनापित वैसि हो यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

एवेन्द्रांग्नी पिपवांसां सुतुस्य विश्वास्मभ्यं सं जयतं धर्नानि।

तन्नी मित्रो वर्रुणो मामहन्तामदितुः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः॥१३॥२७॥

एव। इन्द्राग्नी इति। पृष्टिरवांसा। सुतस्य। विश्वा। अस्मभ्यम्। सम्। ज्यतम्। धर्नानि। तत्। नः। मित्रः। वर्रुणः। मुमहुन्ताम्। अदितिः। प्रिन्थुः। पृथ्विवी। उत। द्यौः॥ १३॥

पदार्थ:-(एव) अवधारण (इन्द्राग्नी) परमधनाढ्यो युद्धविद्याप्रवीणश्च (पिवांसा) पीतवन्तौ (सुतस्य) निष्पन्नस्थ (विश्वा) अखिलानि (अस्मभ्यम्) (सम्) (जयतम्) (धनानि) (तन्नो, मित्रो०) इति पूर्ववत्॥१३॥

अन्वयः- पिन्नो वरुणोऽदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौर्यानि नोऽस्मभ्यं मामहन्तां तत् तान्येव विश्वा धनानि सुतस्य निष्पन्नस्य एां पिपवांसा इन्द्राग्नी संजयतं सम्यक् साधयतः॥१३॥ अष्टक-१। अध्याय-७। वर्ग-२६-२७

मण्डल-१। अनुवाक-१६। सूक्त-१०८



भावार्थ: – निह विद्वद्भयां बिलष्ठाभ्यां धार्मिकाभ्यां कोशसेनाध्यक्षाभ्यां विनोत्तमपुरुषार्श्वन्तं विद्यादिधनानि वर्धितुं शक्यानि तथा मित्रादयः स्विमत्रेभ्यः सुखानि प्रयच्छन्ति, तथैव कोश्रासेनाध्यक्षाद्वयः प्रजास्थेभ्यः प्राणिभ्यः सुखानि ददित तस्मात्सर्वेरेतौ सदा सम्पालनीयौ॥३॥

अत्र पवनविद्युदादिगुणवर्णनादेतत्सूक्तार्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीर्ट्स वेद्यम्॥

इत्यष्टोत्तरशततमं १०८ सूक्तं सप्तविंशो २७ वर्गश्च समाप्त्र⁄॥

पदार्थ:-(मित्र:) मित्र (वरुण:) श्रेष्ठ गुणयुक्त (अदिति:) उत्तम विद्वान् (सिन्धु:) समुद्र (पृथिवी) पृथिवी (उत) और (द्यौ:) सूर्य का प्रकाश जिनको (न:) हम लिगों के लिये (मामहन्ताम्) बढ़ावें (तत्, एव) उन्हीं (विश्वा) समस्त (धनानि) धनों को (सुतस्य) पदार्थों के निकाले हुए रस को (पिवांसा) पिये हुए (इन्द्राग्नी) अति धनी वा युद्धविद्या में कुशल वीरजन (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिये (संजयताम्) अच्छी प्रकार जीतें अर्थात् सिद्ध करें॥१३॥

भावार्थ:-विद्वान्, बलिष्ठ, धार्मिक, कोशस्वामी और सेनाध्यक्ष और उत्तम पुरुषार्थ करनेवालों के विना विद्या आदि धन नहीं बढ़ सकते हैं। जैसे मित्र आदि अपने मित्रों के लिये सुख देते हैं, वैसे ही कोशस्वामी और सेनाध्यक्ष आदि प्रजाजनों के लिये सुख देते हैं। इससे सबको चाहिये कि इनकी सदा पालना करें॥१३॥

इस सूक्त में पवन और बिजुली आदि पुणों के वर्णन से उसके अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये॥

यह एकसौ आठवाँ 🎎 ८ सूक्त और सत्ताईसवाँ २७ वर्ग पूरा हुआ॥

अथ नवोत्तरशततमस्याष्टर्च्चस्य सूक्तस्याङ्गिरसः कुत्स ऋषिः। इन्द्राग्नी देवते। १,३,४,६,८ निचृत्त्रिष्टुप्। २,५ त्रिष्टुप्। ७ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तौ विद्युत्प्रसिद्धाग्नी कीदृशावित्युपदिश्यते॥

अब एकसौ नववें सूक्त का प्रारम्भ है। उसके प्रथम मन्त्र से फिर वे भौतिक अग्नि और विजुली कैसे हैं, यह उपदेश किया है।।

वि हाख्यं मनसा वस्यं इच्छन्निन्द्रांग्नी ज्ञास उत वा सजातान् नान्या युवत्प्रमंतिरस्ति महां स वां धियं वाज्यन्तीमतक्षम्॥ १॥

वि। हि। अख्यम्। मनसा। वस्यः। इच्छन्। इन्द्रांग्नी इति। ज्ञासः। उत। सा। सूरजातान्। न। अन्या। युवत्। प्ररमितः। अस्ति। मह्यम्। सः। वाम्। धिर्यम्। वाजुऽयन्तीम्। अतुक्षुम्॥ १॥

पदार्थ:-(वि) विविधार्थे (हि) खलु (अख्यम्) अन्यान् प्रति कथ्रियेयम् (मनसा) विज्ञानेन (वस्यः) वसुषु साधु। छान्दसो वर्णलोपो वेत्युकारलोपः। (इच्छन्) (इन्द्राग्नी) विद्युद्धौतिकावग्नी (ज्ञासः) जानन्ति ये तान् विदुषः सृष्टिस्थान् ज्ञातव्यान् पदार्थान् वा (उत्ते) अपि (वा) विद्यार्थिनां ज्ञापकानां समुच्चये वा (सजातान्) सहोत्पन्नान् (न) निह (अन्या) भिन्ना (युवत्) मिश्रयित्रमिश्रकौ वा (प्रमितः) प्रकृष्टा चासौ मितश्च प्रमितः (अस्ति) (महाम्) (यः) (बाम्) युवाभ्याम् (धियम्) उत्तमां प्रज्ञाम् (वाजयन्तीम्) सबलानां विद्यानां प्रज्ञापिकाम् (अतुष्टुम्) तन्कुरुर्गीम्॥१॥

अन्वय:-यथेन्द्राग्नी इच्छन् वस्योऽहं ज्ञास् स्नातानुत्र वा मनसा ज्ञातुमिच्छन् युवदहमेतान् हि खलु व्यख्यं तथा यूयमपि विख्यात या मम प्रमितरस्ति सा सूच्याभ्यमप्यस्तु नान्या यथाहं वामध्यापकाध्येतृभ्यां वाजयन्तीं धियमतक्षं तथा सोऽध्यापकोऽध्येता चैनां मह्यं तक्षतु॥१॥

भावार्थ:-अत्र लुप्तोपमालेङ्गरौ मनुष्याणां योग्यतास्ति सत्प्रीतिपुरुषार्थाभ्यां सिद्धद्यादिबोधयन्तोऽत्युत्तमां बुद्धिंजनियत्वो स्यवहारपरमार्थसिद्धिकराणि कार्याण्यवश्यं साध्नुवन्तु॥१॥

पदार्थ:-जैसे (इन्द्राम्नी) बिजुली और जो दृष्टिगोचर अग्नि हैं, उनको (इच्छन्) चाहता हुआ (वस्य:) जिन्होंने चौबीस वर्ष पर्योन्त्र ब्रह्मचर्य्य किया है, उनमें प्रशंसनीय मैं तथा (ज्ञास:) जो ज्ञाताजन हैं उनको वा जानने योग्य परार्थी को (सजातान्) वा एक संग हुए पदार्थों को (उत) और (वा) विद्यार्थी वा समझानेवालों को (मनसा) विशेष ज्ञान से जानने की इच्छा करता हुआ (युवत्) सब वस्तुओं को यथायोग्य कार्य्य में लगवानेहारा मैं इनको (हि) निश्चय से (वि, अख्यम्) औरों के प्रति उत्तमता के साथ कहूं, वैसे तुम लोग भी कहो, जो मेरी (प्रमित:) प्रबल मित (अस्ति) है, वह तुम लोगों को भी हो, (न, अन्या) और न हो। जैसे मैं (वाम्) तुम दोनों पढ़ाने-पढ़नेवालों से (वाजयन्तीम्) समस्त विद्याओं को जतालेहाली (ध्रियम्) उत्तम बुद्धि को (अतक्षम्) सूक्ष्म करूं अर्थात् बहुत कठिन विषयों को सुगमता से जुन्हें, वैसे (सः) वह पढ़ाने और पढ़नेवाला इसको (महाम्) मेरे लिये सूक्ष्म करे॥१॥

अष्टक-१। अध्याय-७। वर्ग-२८-२९

मण्डल-१। अनुवाक-१६। सूक्त-१०९



भावार्थ:-इस मन्त्र में दो लुप्तोपमालङ्कार हैं। मनुष्यों की योग्यता यह है कि अच्छी प्रीति और पुरुषार्थ से श्रेष्ठ विद्या आदि का बोध कराते हुए अति उत्तम बुद्धि उत्पन्न कराकर व्यवहान और परमार्थ की सिद्धि करानेवाले कामों को अवश्य सिद्ध करें॥१॥

पुनस्तौ कीदृशावित्युपदिश्यते॥

फिर वे कैसे हैं, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अर्थ्रवं हि भूरिदार्वत्तरा वां विजामातुरुत वां घा स्यालात्। अथा सोर्मस्य प्रयंती युवभ्यामिन्द्रांग्नी स्तोमं जनयामि त्रव्यम्भारा।

अश्रवम्। हि। भूरिदार्वत्ऽतरा। वाम्। विऽजामातुः। उत। वा। धा स्यालाता अर्थ। सोर्मस्य। प्रऽयंती। युवऽभ्याम्। इन्द्रांग्नी इति। स्तोर्मम्। जन्यामि। नव्यम्॥२॥

पदार्थ:-(अश्रवम्) शृणोमि (हि) किल (भूरिदावत्तरः) अतिशयेन बहुधनदानप्राप्तिनिमित्तौ (वाम्) एतौ (विजामातुः) विगतो विरुद्धश्च जामाता च तस्मात् (उत्त) अपि (वा) (घ) एव। अत्र ऋचि तु० इति दीर्घः। (स्यालात्) स्वस्त्रीभ्रातुः (अथ) निपातस्य चेति दीर्घः। (सोमस्य) ऐश्वर्य्यप्रापकस्य व्यवहारस्य (प्रयती) प्रयत्यै प्रदानाय। अत्र प्रपूर्वाद्यम्भातोः क्तिन् तस्माच्चतुर्थ्येकवचने सुपां सुलुगितीकारादेशः। (युवभ्याम्) एताभ्याम् (इत्ह्राग्नीः) भूर्वाक्तौ (स्तोमम्) गुणप्रकाशम् (जनयामि) प्रकटयामि (नव्यम्) नवीनम्॥२॥

अन्वय:-यौ वामेतौ भूरिदावत्तरेन्द्रागी वृतिते यौ विजामातुः स्यालादुतापि वा धान्येभ्यश्चैव धनानि दापयत इत्यहमश्रवं अथ हि युवभ्यामेताभ्यां सोमस्य प्रेयती ऐश्वय्यप्रदानाय नव्यं स्तोममहं जनयामि॥१॥

भावार्थ:-सर्वेषां मनुष्याणां विद्युदादिपदार्थानां गुणज्ञानसंप्रयोगाभ्यां नूतनं कार्य्यसिद्धिकरं कलायन्त्रादिकं विधायानेकानि व्यार्थ्याणि निवृत्य धर्मार्थकामसिद्धिः सम्पादनीयेति॥२॥

पदार्थ:-जो (वाम) ये (भूतिदावत्तरा) अतीव बहुत से धन की प्राप्ति करानेहारे (इन्द्राग्नी) बिजुली और भौतिक अणि है वा जो उक्त इन्द्राग्नी (विजामातुः) विरोधी जमाई (स्थालात्) साले से (उत, वा) अथवा और (घ) अन्यों जनों से धनों को दिलाते हैं, यह मैं (अश्रवम्) सुन चुका हूं (अथ, हि) अभि (युवभ्याम्) इनसे (सोमस्य) ऐश्वर्य्य अर्थात् धनादि पदार्थों की प्राप्ति करनेवाले व्यवहार के (प्रयती) अच्छे प्रकार देने के लिये (नव्यम्) नवीन (स्तोमम्) गुण के प्रकाश को मैं (जनयामि) प्रकट करता हूं ।

भावार्थ:-सब मनुष्यों को बिजुली आदि पदार्थों के गुणों का ज्ञान और उनके अच्छे प्रकार कीर्ये में युक्त करने से नवीन-नवीन कार्य्य की सिद्धि करनेवाले कलायन्त्र आदि का विधान कर अनेक कामों को बना कर धर्म, अर्थ और अपनी कामना की सिद्धि करनी चाहिये॥२॥

पुनरेताभ्यां किन्न कर्त्तव्यमित्युपदिश्यते॥

फिर उनको क्या न करना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है।।

मा छेदा रुर्मीरिति नार्धमानाः पितुणां शक्तीरेनुयच्छेमानाः। इन्द्राग्निभ्यां कं वृषेणो मदन्ति ता ह्यद्री धिषणाया उपस्थे॥३॥

मा। छेद्मः। रुश्मीन्। इति। नार्धमानाः। पितुणाम्। शृक्तीः। अनुऽयच्छेमान्। क्रुन्स्प्रभ्योम्। कम्। वृषेणः। मुदुन्ति। ता। हि। अद्गी इति। धिषणायाः। उपऽस्थे॥३॥

पदार्थ:-(मा) निषेधे (छेदा) छिन्द्याम (रश्मीन्) विद्याविज्ञान्ते जांसि (इति) प्रकारार्थे (नाधमानाः) ऐश्वर्थ्येणाप्तिमिच्छुकाः (पितॄणाम्) पालकानां विज्ञानवतां विदुषां रक्षानुयुक्तानामृतूनां वा (शक्तीः) सामर्थ्यानि (अनुयच्छमानाः) आनुकूल्येन नियन्ताः अत्र व्यत्ययेनात्मनेपदम्। (इन्द्राग्निभ्याम्) पूर्वोक्ताभ्याम् (कम्) सुखम् (वृषणः) कल्पनिः (मदन्ति) मदन्ते कामयन्ते। अत्र वा च्छन्दिस सर्वे विधयो भवन्तीति नुमभावो व्यत्ययेन परस्पैपदं च। (ता) तौ (हि) खलु (अद्री) यौ न द्वतो विनश्यतः कदाचित्तौ (धिषणायाः) प्रज्ञायाः (अपस्थे) समीपे स्थापयितव्ये व्यवहारे। अत्र ध्वर्थे कविधानिमिति कः प्रत्ययः॥३॥

अन्वय:-यथा वृषणो यावद्री वर्तेते ता सम्यप्तिज्ञायैत्राभ्यामिन्द्राग्निभ्यां धिषणाया उपस्थे कं प्राप्य मदन्ति तथा पितृणां रश्मीन् नाधमानाः शक्तीरनुयच्छमाना, वश्रं-मद्देमहोति विज्ञायैतदादिविद्यानां मूलं मा छेद्रा॥३॥

भावार्थ:-ऐश्वर्यकामैर्मनुष्यैर्न् केदाचिद्विदुषां सेवासङ्गौ त्यक्त्वा वसन्तादीनामृतूनां यथायोग्ये विज्ञानसेवने च विहाय वर्त्तितव्यम्। विद्याबुद्ध्युत्रतिर्व्यवहारस्य सिद्धिश्च प्रयत्नेन कार्या॥३॥

पदार्थ:-जैसे (वृषण) बलवान् जन जो (अद्री) कभी विनाश को न प्राप्त होनेवाले हैं (ता) उन इन्द्र और अग्नियों को अच्छी प्रकार जान (इन्द्राग्निभ्याम्) इनसे (धिषणायाः) अति विचारयुक्त बुद्धि के (उपस्थे) समीप में स्थिर करने ग्रीग्य अर्थात् उस बुद्धि के साथ में लाने योग्य व्यवहार में (कम्) सुख को पाकर (मदन्त्रि) आनन्दित होते हैं वा उस सुख की चाहना करते हैं, वैसे (पितृणाम्) रक्षा करनेवाले ज्ञानी विद्वानों वर रक्षा से अनुयोग को प्राप्त हुए वसन्त आदि ऋतुओं के (रश्मीन्) विद्यायुक्त ज्ञानप्रकाशों को (नाधमानाः) ऐश्वर्य के साथ चाहते (शक्तीः) वा सामर्थ्यों को (अनु यच्छमानाः) अनुकूलता के साथ नियम में लाते हुए हम लोग आनन्दित होते (हि) ही हैं और (इति) ऐसा जानके इन विद्याओं की जड़ को हमें लोग (मा छेदा) न काटें॥३॥

अष्टक-१। अध्याय-७। वर्ग-२८-२९

मण्डल-१। अनुवाक-१६। सूक्त-१०९ 98kg

भावार्थ:-ऐश्वर्य की कामना करते हुए हम लोगों को कभी विद्वानों का संग और हनको सेवा को छोड़ तथा वसन्त आदि ऋतुओं का यथायोग्य अच्छी प्रकार ज्ञान और सेवन का न त्यागकर अपना वर्ताव रखना चाहिये और विद्या तथा बुद्धि की उन्नति और व्यवहार सिद्धि उत्तम प्रयत्न के साथ करना चाहिये॥३॥

पुनस्तौ कीदृशावित्युपदिश्यते॥

फिर वे कैसे हों, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है।

युवाभ्यां देवी धिषणा मदायेन्द्रांग्नी सोमेमुशती स्नेनोति। तार्वश्विना भद्रहस्ता सुपाणी आ धावतं मधुना पृङ्क्तमृप्सुग्रेश।

युवाभ्याम्। देवी। धिषणां। मदाय। इन्द्रांग्नी इति। सोर्मम्। इश्ल्रेसी सुनाति। तौ। अश्चिना। भृद्रऽहुस्ता। सुपाणी इति सुऽपाणी। आ। धावतम्। मधुना। पृङ्क्तम्। अप्ऽसु॥ ४।

पदार्थ:-(युवाभ्याम्) (देवी) दिव्यशिक्षाशास्त्रविद्याभिदेदी प्यमाना (धिषणा) प्रज्ञा (मदाय) हर्षाय (इन्द्राग्नी) पूर्वोक्तौ (सोमम्) ऐश्वर्यम् (उशती) कामयमाना (सुनोति) निष्पादयति (तौ) (अश्विना) व्याप्तिशीलौ (भद्रहस्ता) भद्रकरणहस्ताविव गुणा यस्तितौ (सुप्राणी) शोभनाः पाण्यो व्यवहारा ययोस्तौ (आ) समन्तात् (धावतम्) धावयतः (मधुना) जसीन (पृद्धकाम्) सम्पृङ्क्त (अप्सु) कलास्थेषु जलाशयेषु वर्त्तमानौ॥४॥

अन्वय:-या सोममुशती देवी धिषणा मुद्राय युवार्भ्यां कार्य्याणि सुनोति तया याविन्द्राग्नी अप्सु मधुना पृङ्क्तं भद्रहस्ता सुपाणी अश्विना स्तस्ताविन्द्राग्नी यनेषु संप्रयुक्ती सन्तवाधावतं समन्तात् यानानि धावयतम्॥४॥

भावार्थ:-मनुष्या यावत् सुशिक्षासुविद्याक्रियाकौशलयुक्ताधियो न सम्पादयन्ति तावद्विद्युदादिभ्यः पदार्थेभ्य उपकारं ग्रहीतुं न शक्सुवन्ति तस्मादेशत् प्रयत्नेन साधनीयम्॥४॥

पदार्थ:-जो (सोमम्) ऐश्वरं क्री (उशती) कान्ति करानेवाली (देवी) अच्छी-अच्छी शिक्षा और शास्त्रविद्या आदि से प्रवाशमान विषणा) बुद्धि (मदाय) आनन्द के लिये (युवाभ्याम्) जिनसे कामों को (सुनोति) सिद्ध करती है, उस बुद्धि से जो (इन्द्राग्नी) बिजुली और भौतिक अग्नि (अप्सु) कलाघरों के जल के स्थानों में (भधुना) जल से (पृङ्कम्) सम्पर्क अर्थात् संबन्ध करते हैं वा (भद्रहस्ता) जिनके उत्तम सुख के करनेवाले हाथों के तुल्य गुण (सुपाणी) और अच्छे-अच्छे व्यवहार वा (अश्विना) जो सब में व्याप्त होनेवाले हैं (तौ) वे बिजुली और भौतिक अग्नि रथों में अच्छी प्रकार लगाये हुए उनको (आ, धावतम्) चलाते हैं॥४॥

भावार्थ:-मनुष्य जब तक अच्छी शिक्षा, उत्तम विद्या और क्रियाकौशलयुक्त बुद्धियों को नि सिद्ध करते हैं, तब तक बिजुली आदि पदार्थों से उपकार को नहीं ले सकते। इससे इस काम को अच्छे यत्न से सिद्ध करना चाहिये॥४॥

पुनस्तौ कीदृशावित्युपदिश्यते॥

फिर वे दोनों कैसे हैं, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

युवार्मिन्द्राग्नी वर्मुनो विभागे त्वस्तमा शुश्रव वृत्रहत्ये। तावासद्या बुर्हिषि युज्ञे अस्मिन् प्र चेर्षणी मादयेथां सुतस्य।। ५॥ २८॥

युवाम्। इन्द्राग्नी इति। वसुनः। विऽभागे। तवःऽतिमा। शुश्रवः। वृत्रऽहस्य। तौ। अगुऽसद्यी वृहिषि। यज्ञे। अस्मिन्। प्र। चर्षणी इति। माद्येथाम्। सुतस्यी। ५॥

पदार्थ:-(युवाम्) एतौ द्वौ (इन्द्राग्नी) पूर्वोक्तौ (वसुनः) धनस्य (विभागे) सेवनव्यवहारे (तवस्तमा) अतिशयेन बलयुक्तौ बलप्रदौ वा (शुश्रव) शृणोमि (धृत्रहत्ये) कृत्रस्य शत्रूसमूहस्य मेघस्य वा हत्या हननं येन तस्मिन् सङ्ग्रामे (तौ) (आसद्य) प्राप्य वा अत्रान्येषामप दृश्यत इति दीर्घः। (बर्हिषि) उपवर्धयितव्ये (यज्ञे) सङ्गमनीये शिल्पव्यवहारे (अस्मिन्) (प्रा वर्षणी) सम्यक् सुखप्रापकौ। वर्षणिरिति पदनामसु पठितम्। (निघं०४.२) (मादयेथाम्) मिद्येते हर्षेत्रतः (सुतस्य) निष्पादितस्य। कर्मणि षष्ठी॥५॥

अन्वय:-अहं वसुनो विभागे वृत्रहत्ये वा सिन्द्राग्नी तवस्तमा स्त इति शुश्रव शृणोमि। अतस्तौ प्रचर्षणी अस्मिन् बर्हिषि यज्ञे सुतस्य निष्पादितं यानमासद्य माद्रुषेथाम्।।५/।

भावार्थ:-मनुष्या याभ्यां धनानि विभाजिता वा शत्रून् विजित्य सार्वभौमं राज्यं कर्तुं शक्नुवन्ति, तौ कार्यसिद्धये कथं न संप्रयुञ्जीरन्॥५॥

पदार्थ:-मैं (वसुन:) कि के (विभागे) सेवन व्यवहार में (वृत्रहत्ये) वा जिसमें शत्रुओं और मेघों का हनन हो उस संग्राम में (युवाम्) हो दोनों (इन्द्राग्नी) बिजुली और साधारण अग्नि (तवस्तमा) अतीव बलवान् और बल के देनेहारे हैं, यह (शुश्रव) सुनता हूं, इससे (तौ) वे दोनों (प्रचर्षणी) अच्छे सुख को प्राप्त करानेहारे (अस्मिन) इस (बिर्हिष) समीप में बढ़नेहारे (यज्ञे) शिल्पव्यवहार के निमित्त (सुतस्य) उत्पन्न क्रिये विमान आदि रथ को (आसद्य) प्राप्त होकर (मादयेथाम्) आनन्द देते हैं॥५॥

भावार्थ:-मेर्प्य जिससे धनों का विभाग करते हैं वा शत्रुओं को जीत के समस्त पृथिवी पर राज्य कर सकते हैं उनको कार्य की सिद्धि के लिये कैसे न यथायोग्य कामों में युक्त करें॥५॥

अथ वायुविद्युतौ कीदृशावित्युपदिश्यते॥

अब पवन और बिजुली कैसे हैं, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

प्र चेष्णिभ्यः पृतनाहवेषु प्र पृंधिव्या रिरिचाथे दिवर्श्च।

अष्टक-१। अध्याय-७। वर्ग-२८-२९

मण्डल-१। अनुवाक-१६। सूक्त-१०९



प्र सिर्स्थुभ्यः प्र गिरिभ्यों महित्वा प्रेन्द्रांग्नी विश्वा भुवनात्यन्या॥६॥

प्रा चुर्षुणिऽभ्यः। पृतुनाऽहवेषु। प्रा पृथिव्याः। रिरिचाथे इति। दिवः। च। प्रा सिर्स्युऽभ्यः प्रा गिरिङ्ग्यः। मुहित्वा। प्रा इन्द्राग्नी इति। विश्वा। भुवना। अति अन्या॥६॥

पदार्थ:-(प्र) प्रकृष्टार्थे (चर्षणिभ्य:) मनुष्येभ्यः (पृतनाहवेषु) सेनाभिः प्रवृत्तेषु युद्धेषु (प्र) (पृथिव्याः) भूमेः (रिरिचाथे) अतिरिक्तौ भवतः (दिवः) सूर्यात् (च) अर्त्यभ्योऽपि लोकेभ्यः (प्र) (सिन्धुभ्यः) समुद्रेभ्यः (प्र) (गिरिभ्यः) शैलेभ्यः (महित्वा) प्रशंसय्य (प्र) (इन्द्राग्नी) वायुविद्युतौ (विश्वा) अखिला (भुवना) भुवनानि लोकान् (अति) (अन्या) अन्यानि॥६॥

अन्वय:-इन्द्राग्नी अन्या विश्वा भुवना अन्यान् सर्वौल्लोकान् महित्वा पृतन्तिस्वेषु चर्षणिभ्यः प्रपृथिव्या प्रसिन्धुभ्यः प्रगिरिभ्यः प्रदिवश्च प्रातिरिरिचाथे प्रातिरिक्तौ भवतः॥६॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। निह वायुक्तियुद्ध्यां स्पृदृशो महान् कश्चिदपि लोको भवितुमर्हति कुत एतौ सर्वोल्लोकानभिव्याप्य स्थितावत:।।

पदार्थ:-(इन्द्राग्नी) वायु और बिजुली (अन्या) (विश्वा) (भुवना) और समस्त लोकों को (महित्वा) प्रशंसित करा के (पृतनाहवेषु) सेनाओं से प्रकृत होते हुए युद्धों में (चर्षणिभ्यः) मनुष्यों से (प्र, पृथिव्याः) अच्छे प्रकार पृथिवी वा (प्र, पृथिव्याः) अच्छे प्रकार समुद्रों वा (प्र गिरिभ्यः) अच्छे प्रकार पर्वतों वा (प्र दिवश्च) और अच्छे प्रकार सूर्व्य में (प्र, अति रिरिचाथे) अत्यन्त बढ़ कर प्रतीत होते अर्थात् कलायन्त्रों के सहाय से बढ़कर क्या देते हैं॥६॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालक्कार है। पवन और बिजुली के समान बड़ा कोई लोक नहीं होने योग्य है, क्योंकि ये दोनों सब लोकों को व्याप्त होकर ठहरे हुए हैं॥६॥

अथाध्यापकाध्येतारौ कीदृशावित्युपदिश्यते।।

अब पढ़ाने और पढ़नेवाले कैसे होते हैं, यह उपदेश अगले मन्त्र में इन्द्र और अग्नि नाम से किया है।।

आ भेरतुं शिक्षेतं वज्जबाहू अस्माँ ईन्द्राग्नी अवतुं शचीभि:।

ड्रमे नु ते रूपमयः सूर्यस्य येभिः सपित्वं पितरो न आसन्॥७॥

आर भुरतम्। शिक्षतम्। वृज्ञबाहू इति वज्रऽबाहू। अस्मान्। इन्द्राग्नी इति। अवतम्। शृचीभिः। इमे। नु। ते। रश्मर्यः। सुर्यस्या येभिः। सऽपित्वम्। पितर्रः। नः। आस्नन्॥७॥

पदार्थ:-(आ) (भरतम्) धारयतम् (शिक्षतम्) विद्योपादानं कारयतम् (वज्रबाहू) वज्रौ बलवीर्य्ये ब्रह्ह् ययोप्तौ (अस्मान्) (इन्द्राग्नी) अध्येत्रध्यापकौ (अवतम्) रक्षणादिकं कुरुतम् (शचीभि:) कर्मभि:

प्रज्ञाभिर्वा (इमे) प्रत्यक्षाः (नु) शीघ्रम् (ते) (रश्मयः) किरणाः (सूर्य्यस्य) मार्त्तण्डमण्डलस्य (येभिः) (सिपत्वम्) समानं च तत् पित्वं प्रापणं वा विज्ञानं च तत्। अत्र पिगतावित्यस्माद् धातोरौणादिकस्त्वन् प्रत्ययः। (पितरः) यथा जनकाः (नः) अस्मभ्यम् (आसन्) भवन्ति॥७॥

अन्वयः-हे वज्रबाहू इन्द्राग्नी! युवां य इमे सूर्यस्य रश्मयः सन्ति ते रक्षणादिकं च कुर्वित्ति स्था च प्रितरो येभिर्यैः कर्मभिर्नोऽस्मभ्यं सिपत्वं प्रदायोपकारका आसन् तथा शचीभिरस्मान्नाभरतं शिक्षतं सततं न्वर्वतं चाप्रे।

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। हे मनुष्या! यः सुशिक्षया मनुष्येषु सूर्यवद्विद्याप्रकाशको मातापितृवत्कृपया रक्षकोऽध्यापकस्तथा सूर्यवत् प्रकाशितप्रज्ञोध्येता चास्ति हो नित्यं पत्कुरुत नह्येतेन कर्मणा विना कदाचिद्विद्योन्नतिः सम्भवति॥७॥

पदार्थ:-(वज्रबाहू) जिनके वज्र के तुल्य बल और वीर्य हैं, वे (इंज़र्मनी) हे पढ़ने और पढ़ानेवालो! तुम दोनों जैसे (इमे) ये (सूर्यस्य) सूर्य की (रश्मयः) किरणें हैं और (ते) रक्षा आदि करते हैं और जैसे (पितरः) पितृजन (येभिः) जिन कामों से (नः) हम लोगों के लिये (सिपत्वम्) समान व्यवहारों की प्राप्ति करने वा विज्ञान को देकर उपकार के करमें बालें (आसान्) होते हैं, वैसे (शचीभिः) अच्छे काम वा उत्तम बुद्धियों से (अस्मान्) हम लोगों कि (आर् भरतम्) स्वीकार करो, (शिक्षतम्) शिक्षा देओ और (नु) शीघ्र (अवतम्) पालो॥७॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! जो अच्छी शिक्षा से मनुष्यों में सूर्य के समान विद्या का प्रकाशकर्ता और माता-पिता के तुल्य कृपा से रक्षा करने वा पढ़ानेवाला तथा सूर्य के तुल्य प्रकाशित बुद्धि को प्राप्त और दूसरा पढ़नेवाला है उन दोनों का नित्य सत्कार करो। इस काम के विना कभी विद्या की उन्नति होने का संभव नहीं है। ए।।

पुत्रस्तौ कोदृशावित्यपदिश्यते॥

फिर वे द्वानों कैसे हों, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है।।

पुरंदरा शिक्षतं वज्रहर्म्ताऽस्माँ ईन्द्रीनी अवतं भरेषु।

तन्नों मित्रो वर्त्मुमो मामहन्त्रामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः॥८॥२९॥

पुर्रम्ऽदरा। शिक्षतम् विद्वारहस्ता। अस्मान्। इन्द्राग्नी इति। अवतम्। भरेषु। तत्। नः। मित्रः। वर्रणः। मुमहन्ताम्। अदितिः सिन्धुः। पूथिवी। उता द्यौः॥८॥

पदार्थः (पुरुदरा) यौ शत्रूणां पुराणि दारयतस्तौ (शिक्षतम्) (वज्रहस्ता) वज्रहस्तौ वज्रं विद्यारूपं वर्षि हस्ते इव ययोस्तौ। वज्रो वै वीर्यम्। (शत०७.४.२.२४) अत्रोभयत्र सुणां सुलुगित्यकारादेशः (अस्मान्) (इन्द्राग्नी) उपदेश्योपदेष्टारौ (अवतम्) रक्षादिकं कुरुतम् (भरेषु) (तन्नो मित्रो १) इति पूर्ववत्॥८॥

अन्वयः-हे पुरन्दरा वज्रहस्तेन्द्राग्नी! युवां यथा मित्रो वरुणोऽदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौर्नो मामहन्तां वधारुस्मान् राद्विज्ञानं शिक्षतं भरेष्ववतञ्च॥८॥ अष्टक-१। अध्याय-७। वर्ग-२८-२९

मण्डल-१। अनुवाक-१६। सूक्त-१०९



भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। यथा मित्रादय: स्विमत्रादीन् रिक्षत्वा वर्धयुत्यानुकूल्ये वर्त्तन्ते तथोपदेश्योपदेष्टारौ परस्परं विद्यां वर्धियत्वा संप्रीत्या सिखत्वे वर्त्तेयाताम्॥८॥

अत्रेन्द्राग्निशब्दार्थवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेद्यम्॥

इति नवोत्तरशततमं १०९ सूक्तमेकोनित्रंशो २९ वर्गश्च समापः॥
पदार्थ:-जो (पुरन्दरा) शत्रुओं के पुरों को विध्वंस करनेवाले वा (वज्रहस्ता) जिनका विद्यारूपी वज्र हाथ के समान है, वे (इन्द्राग्नी) उपदेश के सुनने वा करनेवाले तुम जैसे (मित्रः) सुहज्जन (वरुणः) उत्तम गुणयुक्त (अदितिः) अन्तरिक्ष (सिन्धुः) समुद्र (पृथिवी) पृथिवी (उत्त) और (द्यौः) सूर्य का प्रकाश (नः) हम लोगों को (मामहन्ताम्) उन्नति देता है, वैसे (अस्पान्) हम लोगों को (तत्) उन उक्त पदार्थों के विशेष ज्ञान की (शिक्षतम्) शिक्षा देओ और (भरेषु) संग्राम आदि व्यवहारों में (अवतम्) रक्षा आदि करो॥८॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे मित्र ओदि जुन अपने मित्रादिकों की रक्षा कर और उन्नति करते वा एक-दूसरे की अनुकूलता में रहते हैं, वैसे उपदेश के सुनने और सुनाने वाले परस्पर विद्या की वृद्धि कर प्रीति के साथ मित्रपन में वर्ताब्र स्किखें॥८॥

इस सूक्त में इन्द्र और अग्नि शब्द के अर्थ का विण्नि है। इससे इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ संगति है, यह जानना चाहिये।

यह एकसौ नववाँ १०९ सूक्त और उनतीसूवाँ २९ वर्ग पूरा हुआ॥

अथ दशोत्तरशततमस्य नवर्च्यस्य सूक्तस्याङ्गिरसः कुत्स ऋषिः। ऋभवो देवताः। १,४ जगती। २,३,७ विराङ्जगती। ६,८ निचृज्जगती छन्दः। निषादः स्वरः। ५ निचृत् त्रिष्टुप्। ९ त्रिष्टुप्

छन्दः। धैवतः स्वरः।

अथ विद्वांसो पनुष्याः कथं वर्त्तेरन्नित्युपदिश्यते।

अब ११० एकसौ दशवें सूक्त का प्रारम्भ है। उसके प्रथम मन्त्र से विद्वान् मनुष्य केस अपेज वर्ताव रक्खें, यह उपदेश किया है।।

तृतं में अपस्तदुं तायते पुनः स्वादिष्ठा धीतिरुचथाय शस्यते।

अयं समुद्र इह विश्वदेव्यः स्वाहांकृतस्य सम् तृष्णुत ऋभवः।

तुतम्। मे। अर्पः। तत्। ऊम् इति। तायते। पुनिरिति। स्वादिष्ठा। धौतिश उचर्यास्य शृस्यते। अयम्। सुमुद्रः। इहा विश्वऽदेव्यः। स्वाहाऽकृतस्य। सम्। ऊम् इति। तृष्णुत्। ऋभवः॥ १॥

पदार्थ:-(ततम्) विस्तृतम् (मे) मम (अपः) कर्म (तत्। तथा (३) वितर्के (तायते) पालयित। अत्रान्तर्गतो एयर्थ:। (पुनः) (स्वादिष्ठा) अतिशयेन स्वाद्वी (श्रीतः) भीः (उचथाय) प्रवचनायाध्यापनाय (शस्यते) (अयम्) (समुद्रः) सागरः (इह) अस्मिल्लोके (विश्वदेव्यः) विश्वान् समग्रान् देवान् दिव्यगुणानर्हित (स्वाहाकृतस्य) सत्यवाङ् निष्पन्नस्य धर्मस्य (सम्) (३) (तृष्णुत) सुखयत (ऋभवः) मेधाविनः। ऋभुरिति मेधाविनामसु पठितम्। (निर्घं ३.१५) अत्राह निरुक्ताकारः-ऋभव उरु भान्तीति वा। ऋतेन भान्तीति वा। ऋतेन भवन्तीति वा। (निर्वं ३.१५)।।१॥

अन्वयः – हे ऋभवो मेधाविनो विद्वांस्रोः यथेहाय विश्वदेव्यः समुद्रो यथा च युष्पाभिः स्वाहाकृतस्योचथाय स्वादिष्ठा धीतिः शस्यते यथो मे ततमपस्तायते तदु पुनिरसमान् येयं संतृप्णुत॥१॥

भावार्थ:-अत्र लुप्तोपमालङ्कारे। यथा समस्तरत्नैर्युक्तः सागरो दिव्यगुणो वर्त्तते, तथैव धार्मिकैरध्यापकैर्मनुष्येषु सत्यकर्म्युज्ञे प्रचार्य्य दिव्यगुणाः प्रसिद्धाः कार्य्याः॥१॥

पदार्थ:-हे (ऋभवः) बुद्धिमान् विद्वीनो! तुम लोग जैसे (इह) इस लोक में (अयम्) यह (विश्वदेव्यः) समस्त अच्छे गुणों के योग्य (समुद्रः) समुद्र है और जैसे तुम लोगों में (स्वाहाकृतस्य) सत्य वाणी से उत्पन्न हुए धार्म के (उचथाय) कहने के लिये (स्वादिष्ठा) अतीव मधुर गुणवाली (धीतिः) बुद्धि (शस्यते) प्रशंसनीय होती है (उ) वा जैसे (मे) मेरा (ततम्) बहुत फैला हुआ अर्थात् सबको विदित (अपः) काम (तायत) पालना करता है (तत् उ पुनः) वैसे फिर तो हम लोगों को (सम् तृष्णुत) अच्छा तृप्त करो। श्री

भावार्थ:=इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है। जैसे समस्त रत्नों से भरा हुआ समुद्र दिव्य गुणयुक्त है, वैसे ही धार्मिक पढ़ानेवालों को चाहिये कि मनुष्यों में सत्य काम और अच्छी बुद्धि का प्रचार कर द्विध्य गुणों की प्रसिद्धि करें॥१॥ अष्टक-१। अध्याय-७। वर्ग-३०-३१

मण्डल-१। अनुवाक-१६। सूक्त-११०

पुनस्ते कीदृशा इत्युपदिश्यते॥

फिर वे कैसे हैं, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है।।

आभोगयं प्र यदिच्छन्त ऐतनापाकाः प्राञ्चो मम् के चिंदापर्यः। सौधन्वनासश्चरितस्यं भूमनार्गच्छत सवितुर्द्शुषो गृहम्॥२॥

आऽभोगर्यम्। प्र। यत्। इच्छन्तेः। ऐतन्। अपाकाः। प्राञ्चेः। मर्म। के। द्वित्। अप्पर्यः। सौधन्वनासः। चृत्तिस्य। भूमना। अगच्छत। सुवितुः। दाुशुर्षः। गृहम्॥२॥

पदार्थ:-(आभोगयम्) आसमन्ताद्भोगेषु साधुं व्यवहारम्। अत्रोभयस्ज्ञान्पपि छन्दांसि दृश्यन्त इति भसंज्ञा निषेधादल्लोपाभाव:। (प्र) (यत्) यम् (इच्छन्त:) (ऐतन्) प्राप्तुत् (अपाकाः) वर्जितपाकयज्ञा यतयः (प्राञ्चः) प्राचीनाः (मम) (के) (चित्) (आपयः) विद्याव्याप्तुकामाः (सौधन्वनासः) शोभनानि धन्वानि धनूषि येषु ते सुधन्वानस्तेषु कुशला सौधन्वनाः (चरितस्य) अनुष्ठितस्य कर्मणः (भूमना) बहुत्वेन। अत्रोभयसंज्ञान्यपीति भसंज्ञाऽभावादल्लोपाभावः। (आमुख्यत्) (सवितुः) ऐश्वर्य्ययुक्तस्य (दाशुषः) दानशीलस्य (गृहम्) निवासस्थानम्॥२॥

अन्वय:-हे प्राञ्चोऽपाका यतयो! यूयं ये केचिन्समापयो युज्यमाभोगयमिच्छन्तो वर्त्तन्ते, तान् तं प्रैतन। हे सौधन्वनासो! यदा यूयं भूमना चरितस्य सिव्यिदिशुषो पूरुमगच्छत खल्वागच्छत तदा जिज्ञासून् प्रति सत्यधर्मग्रहणमुपदिशत॥२॥

भावार्थ:-हे गृहस्थादयो मनुष्या यूर्य परिन्नाजां सकाशात् सत्या विद्याः प्राप्य क्वचिद्दानशीलस्य सभां गत्वा तत्र युक्त्या स्थित्वा निरिभिनात्वेन वर्तित्वा विद्याविनयौ प्रचारयत॥२॥

पदार्थ:-हे (प्राञ्चः) प्राचीन (अपोकाः) रोटी आदि का स्वयं पाक तथा यज्ञादि कर्म न करनेहारे संन्यासी जनो! आप जो (के, चित्) कोई जे (मम) मेरे (आपयः) विद्या में अच्छी प्रकार व्याप्त होने की कामना किए (यत्) जिस (आ श्रोगयम्) अच्छे प्रकार भोगने के पदार्थों में प्रशंसित भोग की (इच्छन्तः) चाह कर रहे हैं, उनको उसी भोग को (प्र, ऐतन) प्राप्त करो। हे (सौधन्वनासः) धनुष बाण के बांधनेवालों में अतीव चतुरा जब तुम (भूमना) बहुत (चिरतस्य) किये हुए काम के (सिवतुः) ऐश्वर्य से युक्त (दाशुषः) दान करनेवाले के (गृहम्) घर को (आगच्छत) आओ तब जिज्ञासुओं अर्थात् उपदेश सुननेवालों के प्रति सांचे धर्म के ग्रहण करने का उपदेश करो॥२॥

भावार्थ: है गृहस्थ आदि मनुष्यो! तुम संन्यासियों से सत्य विद्या को पाकर, कहीं दान करनेवालों की सभा में जाकर, वहाँ युक्ति से बैठ और निरिभमानता से वर्त्तकर विद्या और विनय का प्रचार करा।

११७६

ऋग्वेदभाष्यम्

पुनस्ते कथं वर्त्तरिन्नत्युपदिश्यते॥

फिर वे कैसे वर्ते, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

तत्संविता वोऽमृत्तत्वमासुंवदगोह्यं यच्छ्वयन्त ऐतेन। त्यं चिच्चमुसमसुरस्य भक्षणमेकं सन्तमकृणुता चतुर्वयम्॥३॥

तत्। सुविता। वः। अमृत्ऽत्वम्। आ। असुवत्। अगौह्यम्। यत्। श्रुवयन्तः। ऐतेन्। त्यम्। चित्। यम्। असुरस्य। भक्षणम्। एकंम्। सन्तम्। अकृणुत्। चतुःऽवयम्॥३॥

पदार्थ:-(तत्) (सविता) ऐश्वर्यप्रदो विद्वान् (वः) युष्मभ्यम् (अमृतत्वम्) मोक्षभावम् (आ) (असुवत्) ऐश्वर्ययोगं कुर्यात् (अगोह्यम्) गोप्तुमनर्हम् (यत्) (श्रवयन्तः) (श्रावयन्तः) (ऐतन) विज्ञापयत (त्यम्) अमुम् (चित्) इव (चमसम्) चमन्त्यस्मिन् मेघे (असुरस्य) असुषु प्राणेषु रतस्य। असुरताः। (निरु०३.८) (भक्षणम्) सूर्य्यप्रकाशस्याभ्यवहरणम् (एकम्) असह्ययम् (सन्तेम्) वर्त्तमानम् (अकृणुत) कुरुत। अत्रान्येषामणीति दीर्घः। (चतुर्वयम्) चत्वारो धर्मार्थाकामणीक्षा वया श्र्याप्तव्या येन तम्॥३॥

अन्वय:-हे बुद्धिमन्तो! यूयं यः सविता वो यदमृतत्त्रमासुवत् तद्गोहां श्रवयन्तः सकला विद्या ऐतन विज्ञापयत। असुरस्य चमसं त्यं भक्षणं चिदिव चतुर्वयमेकं सन्तमकृषुत् रिभ

भावार्थ:-हे विद्वांसो! यथा मेघः प्राणपोष्ट्रक्रिज्लादिपदार्थप्रदो भूत्वा सुखयित, तथैव यूयं विद्यादातारो भूत्वा विद्यार्थनो विदुषः सम्पाद्य सूप्कारान् कुरुष्ट्रा। ३॥

पदार्थ:-हे बुद्धिमानो! तुम जो (सविह्ना) ऐश्वर्यों का देनेवाला विद्वान् (व:) तुम्हारे लिये (यत्) जिस (अमृतत्वम्) मोक्षभाव के (आ, असुकत्) अच्छे प्रकार ऐश्वर्य का योग करे (तत्) उसको (अगोह्यम्) प्रकट (श्रवयन्तः) सुनाते हुए सब विद्वाओं को (ऐतन) समझाओ, (असुरस्य) जो प्राणों में रम रहा है, उस मेघ के (चमसम्) जिसमें सब भोजन करते हैं अर्थात् जिससे उत्पन्न हुए अन्न को सब खाते हैं (त्यम्) उस (भक्षणम्) सूर्य के प्रकाश को निगल जाने के (चित्) समान (चतुर्वयम्) जिसमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष हैं/ऐस (एकम्) एक (सन्तम्) अपने वर्ताव को (अकृणुत) करो॥३॥

भावार्थ:-हे विद्वानी जैसे मेर्घ प्राण की पृष्टि करनेवाले अन्न आदि पदार्थों को देनेवाला होकर सुखी करता है वैसे ही आप लोग विद्या के दान करनेवाले होकर विद्यार्थियों को विद्वान् कर सुन्दर उपकार करो॥३॥

पुनस्ते कीदृशा इत्युपदिश्यते॥

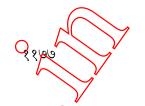
फिर वे कैसे हैं, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

्रिच्ची शमी तरणित्वेन वाघतो मर्तासः सन्तोऽअमृत्तवमानशुः।

मुधित्वना ऋभवः सूर्रचक्षसः संवत्सुरे सम्पृच्यन्त धीतिर्भिः॥४॥

अष्टक-१। अध्याय-७। वर्ग-३०-३१

मण्डल-१। अनुवाक-१६। सूक्त-११०



विष्ट्वी। शमी तर्णिऽत्वेनं। वाघतं:। मर्तांसः। सन्तं:। अमृत्ऽत्वम्। आनुशुः। सौधन्वन्तः। सूर्यः। सूर्यः। संवृत्सरे। सम्। अपृच्यन्त। धीतिऽभिः॥४॥

पदार्थ:-(विष्ट्वी) व्यापनशीलानि (शमी) कर्माणि। विष्ट्वी शमीत्येतदृद्वयं कर्मनामसु पठितम्। (निघं०२.१) (तरिणत्वेन) शीघ्रत्वेन (वाघतः) वाग्विद्यायुक्ताः (मर्त्तासः) स्र्रणधर्माणः (सन्तः) (अमृतत्वम्) मोक्षभावम् (आनशुः) अश्नुवन्ति (सौधन्वनाः) शोभनविज्ञानाः (ऋभवः) मेधाविनः (सूरचक्षसः) सूरप्रज्ञानाः (संवत्सरे) वर्षे (सम्) (अपृच्यन्त) पृच्यन्ति (धीतिभिः) कर्मभिः। इमं मन्त्रं निरुक्तकार एवं समाचष्टे– कृत्वा कर्माणि क्षिप्रत्वेन वोढारो मधाविनी वा, मर्त्तासः सन्तोऽमृतत्वमानशिरे, सौधन्वना ऋभवः सूरख्याना वा सूरप्रज्ञा वा, संवत्सरे समण्च्यन्त धीतिभिः कर्मभिः, ऋभुविभ्वा वाज इति। (निरु०११.१६)॥४॥

अन्वयः-ये सौधन्वनाः सूरचक्षसो वाघतो मर्तास ऋभवः सूर्वेस्सरे धौतिर्ग्यः सततं पुरुषार्थयुक्तैः कर्मभिः कार्यसिद्धिं समपृच्यन्त सम्यक् पृञ्चन्ति ते तरणित्वेन विष्ट्वी शमी कुर्वृन्तः सन्तोऽसूर्वत्वं मोक्षभाव- मानशुरश्नुवन्ति॥४॥

भावार्थ:-ये मनुष्याः प्रतिक्षणं सुपुरुषार्थान् कुर्विस्ति ते मोभूपर्यन्तान् पदार्थान् प्राप्य सुखयन्ति, न खल्वलसा मनुष्याः कदाचित् सुखानि प्राप्तुमर्हन्ति॥ अत

पदार्थ:-जो (सौधन्वना:) अच्छे ज्ञानवाल (सूरचक्षास:) अर्थात् जिनका प्रबल ज्ञान है (वाघत:) वा वाणी को अच्छे कहने, सुनने (मर्त्तास:) मरने और जीनहारे (ऋभव:) बुद्धिमान् जन (संवत्सरे) वर्ष में (धीतिभि:) निरन्तर पुरुषार्थयुक्त कामों से कार्यसिद्धि का (समपृच्यन्त) संबन्ध रखते अर्थात् काम का ढंग रखते हैं वे (तरिणत्वेन) शीघ्रता स्ने (विष्टुची) व्याप्त होने वाले (शमी) कामों को करते (सन्त:) हुए (अमृतत्वम्) मोक्षभाव को (आनश्रश्र) प्राप्त होते हैं॥४॥

भावार्थ:-जो मनुष्य प्रयोक क्षण अच्छे-अच्छे पुरुषार्थ करते हैं, वे संसार से ले के मोक्ष पर्यन्त पदार्थों को प्राप्त होकर सुखी होते हैं, किन्तु आलसी मनुष्य कभी सुखों को नहीं प्राप्त हो सकते॥४॥

पुनस्ते कीदृशा इत्युपदिश्यते॥ फर्म कैसे हैं, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

क्षेत्रमिव वि मंमुस्तेजनेन एकं पात्रमृभवो जेहंमानम्।

उपृस्तुता उपमं नार्धमाना अमर्त्येषु श्रवं इच्छमानाः॥५॥३०॥

क्षेत्रम्<mark>ड्वा</mark> वि। मुमुः। तेर्जनेन। एक्षेम्। पात्रेम्। ऋभवः। जेर्हमानम्। उपेऽस्तुताः। <u>उप</u>ऽमम्। नार्धमानाः। अमेर्त्येषु। श्रद्यः। इच्छमोनाः॥५॥

पदार्थ:-(क्षेत्रमिव) यथा क्षेत्रं तथा (वि) (ममु:) मानं कुर्वन्ति (तेजनेन) तीव्रेण कर्मणा (एकम्) (पात्रम्) पत्राणां ज्ञानानां समूहम् (ऋभवः) (जेहमानम्) प्रयत्नसाधकम् (उपस्तुताः) उपगतेन स्तुताः (उपमम्) उपमानम् (नाधमानाः) याचमानाः (अमर्त्येषु) मरणधर्मरहितेषु पदार्थेषु (श्रवः) अत्रम् (इच्छमानाः) इच्छन्तः। व्यत्ययेनात्रात्मनेपदम्॥५॥

अन्वयः-ये उपस्तुता नाधमाना अमर्त्येषु श्रव इच्छमाना ऋभवो मेधाविनस्तेजनेन क्षेत्र्यमिव जेहम्पनमेकमुपमं पात्रं विममुर्विविधं मान्ति ते सुखं प्राप्नुवन्ति॥५॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। यथा जना: क्षेत्रं कर्षित्वा उप्त्वा स्रंदेश्य तेत्रोऽत्रादिकं प्राप्य भुक्तवाऽऽनन्दिन्त तथा वेदोक्तकलाकौशलेन प्रशस्तानि यानानि रचित्वा तत्र स्थित्वा संचाल्य देशान्तरं गत्वा व्यवहारेण राज्येन वा धनं प्राप्य सुखयन्ति॥५॥

पदार्थ:-जो (उपस्तुता:) तीर आनेवालों से प्रशंसा को प्राप्त हुए (नाधमाना:) और लोगों से अपने प्रयोजन से याचे हुए (अमर्त्येषु) अविनाशी पदार्थों में (श्रवः) अन्न को (इच्छमाना:) चाहते हुए (ऋभवः) बुद्धिमान् जन (तेजनेन) अपनी उत्तेजना से (क्षेत्रमिष) खेत के समान (जेहमानम्) प्रयत्नों को सिद्ध करानेहारे (एकम्) एक (उपमम्) उपमा रूप अर्थात् अति श्रेष्ठ (पात्रम्) ज्ञानों के समूह का (वि, ममुः) विशेष मान करते हैं, वे सुख पाते हैं॥५॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे मनुष्य खेत को जोत, बोय और सम्यक् रक्षा कर उससे अन्न आदि को पाके उसका भोजन कर आनिन्दित होते हैं, वैसे वेद में कहे हुए कलाकौशल से प्रशंसित यानों को रचकर उनमें बैठ और उन्हें चला और एक देश से दूसरे देश में जाकर व्यवहार वा राज्य से धन को पाकर सुखी होते हैं॥५॥

अथ पूर्श्विकरणाः कीदृशा इत्युपदिश्यते॥

अब सूर्य्य की किरणें केसी हैं, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

आ मनीषामन्तरिक्षम्य नृभ्यः सुचे घृतं जुहवाम विद्यना।

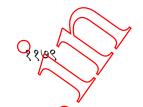
तुर्णित्वा ये प्रिनुरस्य सङ्क्ष्यि ऋभवो वार्जमरुहन्दिवो रर्जः॥६॥

आ। मुनीषाम्। अन्तिसिस्या नृऽभ्यः। सुचाऽईव। घृतम्। जुहुवाम्। विद्यनां। तुर्णिऽत्वा। ये। पितुः। अस्य। सृश्चिरे। ऋभवः। वार्षम्। अुरुहुन्। दिवः। रजः॥६॥

पदार्थ्यः (आ) (मनीषाम्) प्रज्ञाम् (अन्तिरक्षस्य) आकाशस्य मध्ये (नृभ्यः) मनुष्येभ्यः (स्रुचेव) यथा होमोप्रकरणेम् तथा (घृतम्) उदकमाज्यं वा (जृहवाम) आदद्याम (विद्यना) वेत्ति येन तेन विज्ञानेन (तरिणाल्वा) शीघ्रत्वेन (ये) (पितुः) अन्नम् (अस्य) (सिश्चरे) सज्जन्ति प्राप्नुवन्ति प्रापयन्ति वा (ऋभवः) किर्णाः। आदित्यरश्मयोऽप्यृभव उच्यन्ते। (निरु०११.१६) (वाजम्) पृथिव्यादिकमन्नम् (अरुहन्) रोहन्ति (दिवः) प्रकाशितस्याकाशस्य मध्ये (रजः) लोकसमूहम्॥६॥

अष्टक-१। अध्याय-७। वर्ग-३०-३१

मण्डल-१। अनुवाक-१६। सूक्त-११०



अन्वय:-ये ऋभवो तरिणत्वा वाजमरुहन् दिवो रजः सिश्चरे, अस्यान्तरिक्षस्य मध्ये वर्त्तमाना नृभ्यः सुवेष घृतं पितुरत्रं च सिश्चरे, तेभ्यो वयं विद्मना मनीषामा जुहवाम॥६॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। यथेम आदित्यरश्मयो लोकलोकान्तरानारुह्य पद्यो जलं वर्षयित्वौषधीरुत्पाद्य सर्वान् प्राणिन: सुखयन्ति तथा राजादयो जना: प्रजा: सुखयन्तु ग्रह्॥

पदार्थ:-(ये) जो (ऋभवः) सूर्य्य की किरणें (तरिणत्वा) शीघ्रता से (वाजम्) पृथिवी आदि अन्न पर (अफहन्) चढ़तीं और (दिवः) प्रकाशयुक्त आकाश के बीच (रजः) लोकसमूह को (सिश्चरें) प्राप्त होती हैं। और (अस्य) इस (अन्तरिक्षस्य) आकाश के बीच वर्त्तमान हुई (सूच्यें)) मनुष्यों के लिये (सुचेव) जैसे होम करने के पात्र से घृत को छोड़े वैसे (घृतम्) जल तथा (चितः) अन्न को प्राप्त कराती हैं, उनके सकाश से हम लोग (विद्याना) जिससे विद्वान् सत्-असत् का विचार करता है, उस ज्ञान से (मनीषाम्) विचारवाली बुद्धि को (आ, जुहवाम) ग्रहण करें॥ हम

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे ये सूर्य की किरणें लोक-लोकान्तरों को चढ़ कर शीघ्र जल वर्षा और उसने ओषधियों को उत्पन्न कर सब्द्र प्राणियों की सुखी करती हैं, वैसे राजादि जन प्रजाओं को सुखी करें॥६॥

पुनर्विद्वानस्मदर्थं केन कि कुर्याद्वित्युपदिश्यते॥

फिर श्रेष्ठ विद्वान् हमारे लिये किसर्से ब्या करे, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है।।

ऋभुर्न इन्द्रः शर्वसा नवीयानृभुविजिभिर्वसुर्देदिः।

युष्पाकं देवा अवसाहंनि भ्रिक्ट्रेड्डिंग पृत्सुतीरसुन्वताम्॥७॥

ऋभुः। नः। इन्द्रेः। शर्वस्मा नवीयोन्। ऋभुः। वार्जेभिः। वसुंऽभिः। वसुंः। दुदिः। युष्माकंम्। देवाः। अर्वसा। अर्हनि। प्रिये। अभि। तिष्टे<u>ष्</u>। पृत्सुतीः। अर्धुन्वताम्॥७॥

पदार्थ:-(ऋभु:) बहु विद्याप्रकाशका विद्वान् (नः) अस्मभ्यम् (इन्द्रः) यथा सूर्यः स्वस्य प्रकाशाकर्षणाभ्यां सर्वानाह्वावयित् तथा (शवसा) विद्यासुशिक्षाबलेन (नवीयान्) अतिशयेन नवः (ऋभुः) मेधाव्याऽऽयुःसभ्यताप्रकाशकः (वाजेभिः) विज्ञानैरन्नैः संग्रामैर्वा (वसुभिः) चक्रवर्त्यादिराज्यश्रीभिः सह (वसुः) सुखेषु वस्ता (दिः) सुखानां दाता (युष्माकम्) (देवाः) विद्यासुशिक्षे जिज्ञासवः (अवसा) रक्षणादिना सह वर्त्तमान्यः (अहिन) दिने (प्रिये) प्रसन्नताकारके (अभि) आभिमुख्ये (तिष्ठेम) (पृत्सुतीः) याः सम्प्रकन्नरकाणां सुतय ऐश्वर्यप्रापिकाः सेनास्ताः। अत्र पृची धातोः क्विप वर्णव्यत्ययेन तकारः। तदुपपुदादेश्वर्यार्थात् सुधातोः संज्ञायां क्तिच् प्रत्ययः। (असुन्वताम्) स्वैश्वर्यविरोधिनां शत्रूणाम्॥७॥

अन्वयः-यो नवीयानृभुर्यथेन्द्रस्तथा शवसा नोऽस्मभ्यं सुखं प्रयच्छेदृभुर्वाजेभिर्वसुर्भिर्वसुर्दिस्तिने स्वराज्यसेनानामवसा सह देवा वयं प्रियेऽहन्यसुन्वतां युष्माकं शत्रूणां पृत्सुतीः सेना अभितिष्ठेमाभिभवेम सदा तिरस्कुर्याम॥७॥

भावार्थ:-अत्र लुप्तोपमालङ्कार:। यथा सविता स्वप्रकाशेन तेजस्वी सर्वान् चयन्त्ररान् पिक्कर्थीन् जीवननिमित्ततयाऽऽह्णादयित तथा विद्वच्छूरवीरविद्वत्कुशलसहाययुक्ता वयं सुभ्निक्षिताभिह्द्ष्रपुष्टाभिः स्वसेनाभिः ससेनान् शत्रृंस्तिरस्कृत्य धार्मिकाः प्रजाः सम्पाल्य चक्रवर्त्तिराज्यं सततं स्वितेमहि॥७॥

पदार्थ:-जो (नवीयान्) अतीव नवीन (ऋभुः) बहुत विद्याओं का प्रकृष्टि करकेशला विद्वान् जैसे (इन्द्रः) सूर्य्य अपने प्रकाश और आकर्षण से सबको आनन्द देता है, वैसे (श्रवसा) विद्या और उत्तम शिक्षा के बल से (नः) हमको सुख देवे वा जो (ऋभुः) धीरबुद्धि अध्युद्ध और सभ्यता का प्रकाश करनेवाला (वाजेभिः) विज्ञान, अन्न और संग्रामों से वा (वसुभिः) चन्नवर्ती राज्य आदि के धनों से (वसुः) आप सुख में वसने और (दिदः) दूसरों को सुखों का देनवाला होता है, उससे अपने राज्य के और सेनाजनों के (अवसा) रक्षा आदि व्यवहार के साथ वर्तमान (देवाः) विद्या और अच्छी शिक्षा को चाहते हुए हम विद्वान् लोग (प्रिये) उत्पन्न करनेवाले (अहिन) दिन् में (असुन्वताम्) अच्छे ऐश्वर्य के विरोधी (युष्माकम्) तुम शत्रुजनों की (पृत्सुतीः) उन सेनाज के जो कि संबन्ध करानेवालों को ऐश्वर्य पहुंचानेवाली हैं (अभि) सम्मुख (तिष्ठेम) स्थित होवें अर्थात् उनका तिरस्कार करें॥७॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालक्क्रार है। जैसे सूर्य अपने प्रकाश से तेजस्वी समस्त चर और अचर जीवों और समस्त पदार्थों के जीवन कराने जे आनन्दित करता है, वैसे विद्वान्, शूरवीर और विद्वानों में अच्छे विद्वान् के सहायों से सुकत हम लोग अच्छी शिक्षा की हुई, प्रसन्न और पृष्ट अपनी सेनाओं से जो सेना को लिए हुए हैं, उन शत्रुओं का तिरस्कार कर धार्मिक प्रजाजनों को पाल चक्रवर्ति राज्य को निरन्तर सेवें॥७॥

पुनस्ते विद्वासः किं कुर्य्युरित्युपदिश्यते॥

फिर व विद्वान् क्या करें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

निश्चर्मण ऋभक्ष गामिष्टिश्रोत स वृत्सेनासूजता मातरं पुनं:।

सौर्धन्वनासः स्वपुस्ययी नरो जिब्री युर्वाना पितराकृणोतन॥८॥

निः। चर्मणिः ऋभ्वः। गाम्। अपिंशतः। सम्। वृत्सेनं। असृजतः। मातरम्। पुन्रितिं। सौधन्वनासः। सुऽअपुस्ययो नुरः जिद्दी इतिं। युवाना। पितरां। अकृणोतन्॥८॥

पदार्थ:-(निः) नितराम् (चर्मणः) (ऋभवः) मेधाविनः (गाम्) (अपिंशत) अवयवीकुरुत (सम्) (वत्स्रेष) तद्भुबालेन सह (असृजत) अत्रान्येषामपीति दीर्घः। (मातरम्) (पुनः) (सौधन्वनासः) शोभनेषु

अष्टक-१। अध्याय-७। वर्ग-३०-३१

मण्डल-१। अनुवाक-१६। सूक्त-११० 9345

धन्वसु धनुर्विद्यास्विमे कुशलाः (स्वपस्यया) शोभनान्यपांसि कर्माणि यस्यां तया (नरः) नायका विद्वांसः (जिन्नी) सुजीवनयुक्तौ (युवाना) युवानौ युवसदृशौ (पितरा) मातापितरौ (अकृणोतन) कुरूत्।। ८॥

अन्वय:-हे ऋभवो मेधाविनो मनुष्या! यूयं चर्मणो गां निरपिंशत पुनर्वत्सेन मातरं समस्रुवत। है सौधन्वनासो नरो! यूयं स्वपस्यया जित्री वृद्धौ पितरा युवानाऽकृणोतन॥८॥

भावार्थः - निह पूर्वोक्तेन कर्मणा विना केचिद्राज्यं कर्त्तुं शक्नुविन्ति तस्मादेतन्त्रे नुष्यैः सदाऽनुष्ठेयम्॥८॥

पदार्थ:-हे (ऋभवः) बुद्धिमान् मनुष्यो! तुम (चर्मणः) चाम (ग्रीम्) मो को (निरिपंशत) निरन्तर अवयवी करो अर्थात् उसके चाम आदि को खिलाने-पिलाने से पृष्ट करो (पुनः) फिर (वत्सेन) उसके बछड़े के साथ (मातरम्) उस माता गौ को (समस्वतः) युक्त करो। हे (सौधन्वनासः) धनुर्वेदविद्याकुशल (नरः) और व्यवहारों को यथायोग्य वर्त्तानेषाले किंद्रामी! तुम (स्वपस्थया) सुन्दर जिसमें काम बने उस चतुराई से (जिद्रो) अच्छे जीवनयुक्त बुद्धे (पितरा) अपने माँ-बाप को (युवाना) युवावस्थावालों के सदृश (अकृणोतन) निरन्तर करो॥८॥

भावार्थ:-पिछले कहे हुए काम के विना कोई भी राज्य नहीं कर सकते, इससे मनुष्यों को चाहिये कि उन कामों का सदा अनुष्ठान किया कों तार्थ।

अथ सेनाध्यक्ष: कीदृशा इत्युपदिश्यते॥

अब सेनाध्यक्ष कैस्त हैं। यह निषय अगले मन्त्र में कहा है।।

वाजेभिर्नो वाजसाताविबङ्ख्युमाँ ईम्ट्रच्यत्रमा देषि रार्धः।

तन्नो मित्रो वर्मणो मामूहेन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः॥९॥३१॥

वार्जिभिः। नुः। वार्जिऽसाती। अविड्डि। ऋभुऽमान्। इन्द्रा चित्रम्। आ। दुर्षि। राष्ट्रीः। तत्। नुः। मित्रः। वर्रुणः। मुमुहुन्ताम्। अदितिः। सिन्धुः। पृथ्विता उत्त। द्यौः॥९॥

पदार्थ:-(वाजेभि) विजिज्जीदिसामग्रीभिः सह (नः) (वाजसातौ) संग्रामे (अविड्ढि) व्याप्नुहि। अत्र विष्लृधातोः शपो लुकि स्त्राट मध्यमैकवचने हेधिः ष्टुत्वं जश्त्वं च छन्दस्यिप दृश्यत इत्यडागमः। (ऋभुमान्) प्रशस्ती ऋभवि मेधाविनो विद्यन्ते यस्य सः (इन्द्र) परमैश्वर्य्ययुक्त सेनाध्यक्ष (चित्रम्) आश्चर्यगुणयूक्तम् (आ) (दिषि) द्रियस्वादरं कुरु। अत्र दृङ् आदर इत्यस्माल्लोटि मध्यमैकवचने वाच्छन्दम्नीति विपः पित्वाद् गुणः। (राधः) धनम्। (तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्ताम्) इति पूर्ववत्॥९॥

अस्य:-हे इन्द्र ऋभुमाँस्त्वं नो यद्राधो मित्रो वरुणोऽदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौर्मामहन्तां तिच्चत्रं राभ्राँऽविङ्कृत्वि नाऽस्माँश्च वाजेभिर्वाजसातावादिषं समन्तादादरयुक्तान् कुरु॥९॥

भावार्थ:-निह कश्चित्सेनाध्यक्षो बुद्धिमतां सहायेन विना शत्रून् विजेतुं शक्नोतीति॥९॥ अत्र मेधाविनां कर्मगुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेद्यम्॥

इत्येकत्रिंशो ३१ वर्गो दशोत्तरं शततमं ११० सूक्तं च समाप्तम्॥

पदार्थ: -हे (इन्द्र) परमैश्वर्य्यक्त सेनाध्यक्ष! (ऋभुमान्) जिनके प्रशंसित बुद्धिमान् जन बिद्यमान् हैं, वे आप (नः) हमारे लिये जिस (राधः) धन को (मित्रः) सुहृत् जन (वस्त्र्यः) श्रेष्ठ गुणयुक्त (अदितिः) अन्तरिक्ष (सिन्धुः) समुद्र (पृथिवी) पृथिवी (उत) और (द्यौः) सूर्य्य का प्रकाश (मामहन्ताम्) बढ़ावें (तत्) उस (चित्रम्) अद्भुत धन को (अविड्ढि) व्याप्त हूजिये अर्थात् सब प्रकार समझिये और (नः) हम लोगों को (वाजेभिः) अन्नादि सामग्रियों से (वाजसातौ) संत्राम् में (आदिष्) आदरयुक्त कीजिये॥९॥

भावार्थ:-कोई सेनाध्यक्ष बुद्धिमानों के सहाय के विना शत्रुओं को जीत नहीं सकता॥९॥ इस सूक्त में बुद्धिमानों के काम और गुणों का वर्णन है। इससे इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है, यह जानना चाहिये॥

यह एकतीसवाँ ३१ वर्ग और एकसौ दश्यवां/११० भूक्त पूरा हुआ॥

अथ पञ्चर्चस्यैकादशोत्तरशततमस्य सूक्तस्याङ्गिरसः कुत्स ऋषिः। ऋभवो देवताः। १-४ जगती

छन्दः। निषादः स्वरः। ५ त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथ शिल्पकुशला मेधाविनः किं कुर्य्युरित्युपदिश्यते।

अब एकसौ ग्यारहवें सूक्त का प्रारम्भ है। उसके प्रथम मन्त्र में शिल्पविद्या में चतुर कुद्धिमान्

क्या करें, यह उपदेश किया है।।

तक्षन् रथं सुवृतं विद्यनापंसस्तक्षन्हरी इन्द्रवाहा वृषंण्वसू। तक्षन् पितृभ्यामृभवो युवृद्वयस्तक्षन्वत्सायं मातरं सचाभुवम्॥ १॥ १

तक्षेन्। रथम्। सुऽवृतेम्। विद्यनाऽअपसः। तक्षेन्। हरी इति। इन्द्रऽवाही। विष्णवस् इति वृषेण्ऽवस्। तक्षेन्। पितृऽभ्योम्। ऋभवेः। युवेत्। वयेः। तक्षेन्। वृत्साये। मातरेम्। सचाऽभुवेम्।।१२॥८

पदार्थ:-(तक्षन्) सूक्ष्मरचनायुक्तं कुर्वन्तु (रथम्) विभानिद्वियानसमूहम् (सुवृतम्) शोभनविभागयुक्तम् (विद्यनापसः) विज्ञानेन युक्तानि कर्माणि येषां ते। अत्र तृतीयाया अलुक्। (तक्षन्) सूक्ष्मीकुर्वन्तु (हरी) हरणशीलौ जलाग्न्याख्यौ (इन्द्रवाह्म) याविन्द्रं विद्युतं परमैश्वर्यं वहतस्तौ। अत्राकारादेशः। (वृषण्वसू) वृषाणो विद्याक्रियाबलयुक्ता विस्तीणीकुर्वन्तु (पितृभ्याम्) अधिष्ठातृशिक्षकाभ्याम् (ऋभवः) क्रियाकुशला मेधाविनः (युवत्) मिश्रणामिश्रणयुक्तम्। अत्र युधातोरौणादिको बहुलकात् क्रितन् प्रत्ययः। (वयः) जीवनम् (तक्षन्) विस्तारयन्तु (वत्साय) सन्तानाय (मातरम्) जन्निप् (सक्रभुवम्) सचा विज्ञानादिना भावयन्तीम्॥१॥

अन्वय:-ये पितृभ्यां युक्ता विद्यनापस् ऋभवो मेधार्विनो जना वृषण्वसू हरी इन्द्रवाहा तक्षन् सुवृतं रथं तक्षन् वयस्तक्षन् वत्साय सचाभुवं मातरं युवत्तक्षंस्तेऽधिकमेश्वये)त्वभरन्॥१॥

भावार्थ:-विद्वांसो याविद्वह भगति कार्यगुणदर्शनपरीक्षाभ्यां कारणं प्रति न गच्छन्ति ताविच्छिल्पविद्यासिद्धिं कर्त्तुं न शृष्कृचिन्ति॥१॥

पदार्थ:-जो (पितृभ्यमि) स्वामी और शिक्षा करनेवालों से युक्त (विद्यनापसः) जिनके अति विचारयुक्त कर्म हों वे (ऋभवः) क्रिया में चतुर मेधावीजन (वृषण्वसू) जिनमें विद्या और शिल्पक्रिया के बल से युक्त मनुष्य निकास करते कराते हैं (हरी) उन एक स्थान से दूसरे स्थान को शीघ्र पहुंचाने तथा (इन्द्रवाहा) परमैश्वर्य को प्राप्त करानेवाले जल और अग्नि को (तक्षन्) अति सूक्ष्मता के साथ सिद्ध करें वा (सुवृतम्) अच्छे अच्छे कोठे-परकोठेयुक्त (रथम्) विमान आदि रथ को (तक्षन्) अति सूक्ष्म क्रिया से बनावें वा (वेषः) अवस्था को (तक्षन्) विस्तृत करें तथा (वत्साय) सन्तान के लिये (सचाभुवम्) विशेष ज्ञान की भावना कराती हुई (मातरम्) माता का (युवत्) मेल जैसे हो वैसे (तक्षन्) उसे उन्नति देवें, वे अधिक ऐश्वर्य को प्राप्त होवें॥१॥

११८४

ऋग्वेदभाष्यम्

भावार्थ:-विद्वान् जन जब तक इस संसार में कार्य्य के दर्शन और गुणों की परीक्षा से कारण की नहीं पहुंचते हैं, तब तक शिल्पविद्या को नहीं सिद्ध कर सकते हैं॥१॥

पुनस्ते कीदृशा इत्युपदिश्यते॥

फिर वे कैसे हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

आ नो युज्ञार्य तक्षत ऋभुमद्वयः क्रत्वे दक्षाय सुप्रजार्वतीमिष्म्। यथा क्षर्याम् सर्ववीरया विशा तन्नः शर्धाय धासथा स्विन्द्रियम्॥ २॥

आ। नुः। युज्ञार्य। तुक्षुतु। ऋभुऽमत्। वर्यः। क्रत्वे। दक्षाय। सुऽप्रजार्वतीम्। इक्म् यथा। क्षर्याम। सर्ववीरया। विशा। तत्। नुः। शर्धाय। धासुथ। सु। इन्द्रियम्॥ २॥

पदार्थ:-(आ) समन्तात् (नः) अस्माकम् (यज्ञाय) सङ्गितिकरणाख्यशिल्पिक्रियासिद्धये (तक्षत) निष्पादयत (ऋभुमत्) प्रशस्ता ऋभवो मेधाविनो विद्यन्ते यस्मिर्स्तत् (वयः) आयुः (क्रत्वे) प्रज्ञायै न्यायकर्मणे वा (दक्षाय) बलाय (सुप्रजावतीम्) सुष्ठु प्रजा विद्यासे यस्या लाम् (इषम्) इष्टमन्नम् (यथा) (क्षयाम) निवासं करवाम (सर्ववीरया) सर्वैवीरैर्युक्तया (विक्राः) प्रजया (तत्) (नः) अस्माकम् (शर्द्धाय) बलाय (धासथ) धरत। अत्रान्येषामपीति दीर्घः। (सु) (इस्ट्रियम्) विद्योनं धनं वा॥२॥

अन्वय:-हे ऋभवो यूयं नोऽस्माकं यज्ञाय क्रालं दक्षाय ऋभुमद्वयः सुप्रजावतीमिषं चातक्षत यथा वयं सर्ववीरया विशा क्षयाम तथा यूयमपि प्रजया सह निवसत यथा वयं प्रद्धीय स्विन्द्रियं दध्याम तथा यूयमपि नोऽस्माकं शर्द्धाय तत् स्विन्द्रियं धासथ॥२॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। इह जुमित विद्विद्धिः सहाविद्वांसोऽविद्विद्धिः सह विद्वांसश्च प्रीत्या नित्यं वर्त्तरन्। नैतेन कर्मणा विना शिल्पविद्यासिद्धिः प्रजानसं शोभनाः प्रजाश्च जायन्ते॥२॥

पदार्थ: -हे बुद्धिमानो! तुम् (न:) हमारी (यज्ञाय) जिससे एक-दूसरे से पदार्थ मिलाया जाता है, उस शिल्पक्रिया की सिद्धि के लिये वा (क्रव्वे) उत्तम ज्ञान और न्याय के काम और (दक्षाय) बल के लिये (ऋभुमत्) जिसमें प्रशंसित मेधावी अथात् बुद्धिमान् जन विद्यमान हैं, उस (वय:) जीवन को तथा (सुप्रजावतीम्) जिसमें अच्छी प्रजा बिद्धमान हो अर्थात् प्रजाजन प्रसन्न होते हों (इषम्) उस चाहे हुए अन्न को (आतक्षत) अच्छे प्रजार उज्जन करो, (यथा) जैसे हम लोग (सर्ववीरया) समस्त वीरों से युक्त (विशा) प्रजा के साथ (क्षयाम) निवास करें तुम भी प्रजा के साथ निवास करो वा जैसे हम लोग (शर्द्धाय) बल के लिये (तत्) उस (सु, इन्द्रियम्) उत्तम विज्ञान और धन को धारण करें वैसे तुम भी (न:) हमारे बल कोने के लिये उत्तम ज्ञान और धन को (धाराण करें।।२॥

भावार्थ:=इस संसार में विद्वानों के साथ अविद्वान् और अविद्वानों के साथ विद्वान् जन प्रीति से नित्य अपना वर्ताव रक्खें। इस काम के विना शिल्पविद्यासिद्धि, उत्तम बुद्धि, बल और श्रेष्ठ प्रजाजन कभी नहीं हो सकता। २॥

अष्टक-१। अध्याय-७। वर्ग-३२

मण्डल-१। अनुवाक-१६। सूक्त-१११

पुनस्ते किं कुर्य्युरित्युपदिश्यते॥

फिर वे क्या करें, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

आ तक्षत सातिमस्मभ्यमभवः सातिं रथाय सातिमर्वते नरः।

सातिं नो जैत्रीं सं महित विश्वहां जामिमजामिं पृतनासु सक्षणिम्॥ ३ 🗗

आ। तुक्षुत्। साितम्। अस्मभ्यम्। ऋभवः। साितम्। स्थायः। साितम्। अर्वते। न्रः। सौितम्। नः। जैत्रीम्। सम्। महेत्। विश्वहां। जािमम्। अर्जािमम्। पृतनासु। सुक्षणिम्।।३॥

पदार्थ:-(आ) अभितः (तक्षत) निष्पादयत (सातिम्) बिद्यादिसेन्स् अस्मभ्यम्) (ऋभवः) मेधाविनः (सातिम्) संविभागम् (रथाय) विमानादियानसमूहसिद्धये (सातिम्) अश्वशिक्षाविभागम् (अर्वते) अश्वाय (नरः) विद्यानायकाः (सातिम्) संभिक्तम् (नः) अस्मभ्यम् (जैत्रीम्) जयशीलाम् (सम्) (महेत) पूज्येत (विश्वहा) सर्वाणि दिनानि। अत्र कृतो बहुलामत्यधिकरणे क्विप्। सुगां सुलुगित्यधिकरणस्य स्थान आकारादेशः। (जामिम्) प्रसिद्धे (अज्ञाविम्) अप्रसिद्धं वैरिणम् (पृतनासु) सेनासु (सक्षणिम्) सोढारम्॥३॥

अन्वय:-हे ऋभवो नरो! यूयमस्मभ्यं विश्वहा रथाय सोतिमर्क्ते च सातिमातक्षत पृतनासु सातिं जामिमजामिं सक्षणिं शत्रुं जित्वा नोऽस्मभ्यं जैत्रीं सातिं संमहेत॥३॥

भावार्थ:-ये विद्वांसोऽस्माकं रक्षकाः श्रत्रुणां विजेतारः सन्ति तेषां सत्कारं वयं सततं कुर्य्याम॥३॥

पदार्थ:-हे (ऋभवः) शिल्पिक्रिया में अति चतुर (नरः) मनुष्यो! तुम (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिये (विश्वहा) सब दिन (रथायः) विमान आदि यानसमूह की सिद्धि के लिये (सातिम्) अलग विभाग करना और (अवते) उत्तम अर्थ के लिये (सातिम्) अलग-अलग घोड़ों की सिखावट को (आ, तक्षत) सब प्रकार से सिद्ध करो और (पृतनामुः) सेनाओं में (सातिम्) विद्यादि उत्तम-उत्तम पदार्थ वा (जामिम्) प्रसिद्धि और (अजामिम्) अप्रसिद्ध (सक्षणिम्) सहन करनेवाले शत्रू को जीत के (नः) हमारे लिये (जैत्रीम्) जीत देनेहारी (सातिम्) उत्तम भिक्त को (सम्, महेत) अच्छे प्रकार प्रशंसित करो॥३॥

भावार्थ: जो विद्वान् जन हमारी रक्षा करने और शत्रुओं को जीतनेहारे हैं, उनका सत्कार हम

एतान् किमर्थं सत्कुर्यामेत्युपदिश्यते॥

इनका किसलिये हम सत्कार करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

ऋभुक्षणुमिन्द्रमा हुव ऊतर्य ऋभून्वाजानमुरुतः सोर्मपीतये।

उभा मित्रावर्रुणा नूनमुश्चिना ते नो हिन्वन्तु सातर्ये धिये जि्षे॥४॥

ऋभुक्षणम्। इन्द्रम्। आ। हुवे। ऊतये। ऋभून्। वार्जान्। मुरुतः। सोर्मऽपीतये। उभा। मित्रावर्मणाः नूनम्। अश्विनां। ते। नुः। हिन्वन्तु। सातये। धिये। जि्षे॥४॥

पदार्थ:-(ऋभुक्षणम्) य ऋभून् मेधाविनः क्षाययित निवासयित ज्ञापयित वा तम् (इन्द्रम्) परमैश्वर्ययुक्तम् (आ) समन्तात् (हुवे) आददामि गृह्णामि (ऊतये) रक्षणाद्याय (ऋभून्) पेधाविनः (वाजान्) ज्ञानोत्कृष्टान् (मरुतः) ऋत्विजः (सोमपीतये) सोमपानार्थाय यज्ञाय (उभा) हभौ द्वौ। अत्र सुपां सुलुगित्याकारादेशः। (मित्रावरुणा) सर्वसुहत्सर्वोत्कृष्टौ। अत्राप्याकारादेशः। (नूनम्) निश्चये (अश्विना) सर्वशुभगुणव्यापनशीलावध्यापकाध्येतारौ (ते) (नः) अस्मान् (हिन्वन्तु) विह्नापरान्तु वृद्धयन्तु वा (सातये) संविभागाय (धिये) प्रज्ञाप्राप्तये (जिषे) शत्रुञ्जेतुम्। तुमर्थे से० इति वस्रे कृत्ययः।

अन्वय:-अहमूतय ऋभुक्षणिमन्द्रमाहुवे। अहं सोमपीतये वाजान् मर्रुत ऋभूनाहुवि। अहमुभा मित्रावरुणाश्विना हुवे। ये धिये सातये शत्रून् जिषे नोऽस्मान् विज्ञापयन्तु वर्द्धयितुं शक्नुवन्तु ते विद्वांसा नोऽस्मान् नूनं हिन्वन्तु॥४॥

भावार्थ:-य आप्तान् क्रियाकुशलान् सेवन्ते ते सुशिक्षाविद्ययुक्तां प्रज्ञां प्राप्य शत्रून् विजित्य कुतो न वर्द्धेरन्॥४॥

पदार्थ:-मैं (ऊतये) रक्षा आदि व्यवहार के लिये (ऋभूक्षणम्) जो बुद्धिमानों को वसाता वा समझाता है, उस (इन्द्रम्) परमैश्वर्ययुक्त उत्तम बुद्धिपान् को (आहुवे) अच्छी प्रकार स्वीकार करता हूं। मैं (सोमपीतये) पदार्थों के निकाले हुए रस प्रिआनेहार यह के लिये (वाजान्) जो कि अतीव ज्ञानवान् (मरुत:) और ऋतु-ऋतु में अर्थात् समय समय पर यज्ञ करने वा करानेहारे (ऋभून्) ऋत्विज् हैं, उन बुद्धिमानों को स्वीकार करता हूं। मैं (उपा) दोनों (मित्रावरुणा) सबके मित्र, सबसे श्रेष्ठ, (अश्विना) समस्त अच्छे-अच्छे गुणों में रहनेहारें, पढ़ाने और पढ़नेहारों को स्वीकार करता हूं। जो (धिये) उत्तम बुद्धि पाने के लिये (सातये) वा बांट-चूंट के लिये वा (जिषे) शत्रुओं के जीतने को (न:) हम लोगों के समझाने वा बढ़ाने को समर्थ हैं (ते) वे विद्वान् जन हम लोगों को (नूनम्) एक निश्चय से (हिन्वन्तु) बढ़ावें और समझावें॥४॥

भावार्थ:-जो शस्त्र में दूध, सत्यवादी, क्रियाओं में अति चतुर और विद्वानों का सेवन करते हैं, वे अच्छी शिक्षायुक्त उत्तम बुद्धि को प्राप्त हो और शत्रुओं को जीत कर कैसे न उन्नति को प्राप्त हों॥४॥

पुनः स मेधावी नरः किं कुर्यादित्युपदिश्यते॥

क्तिर वह मेधावी श्रेष्ठ विद्वान् क्या करे, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

क्रुभुर्भराचे सं शिशातु सातिं समर्युजिद्वाजी अस्माँ अविष्टु।

तुन्नी मित्रो वर्रुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः॥५॥३२॥

अष्टक-१। अध्याय-७। वर्ग-३२

मण्डल-१। अनुवाक-१६। सूक्त-१११



ऋभुः। भर्राय। सम्। शिशातु। सातिम्। समार्येऽजित्। वार्जः। अस्मान्। अविष्ठु। तत्। नुः। मिश्रः। वस्र्याः। मुमुहुन्ताम्। अदितिः। सिम्बुः। पृथिवी। उत। द्यौः॥५॥

पदार्थ:-(ऋभु:) प्रशस्तो विद्वान् (भराय) संग्रामाय। भर इति संग्रामनामसु पठितम्। (निघं०२.१७) (सम्) (शिशातु) क्षयतु। अत्र शो तनूकरण इत्यस्मात् श्यनः स्थाने बहुलं छन्दसीति श्लुः। ततः श्लाविति द्वित्वम्। (सातिम्) संविभागम् (समर्यजित्) यः समर्यान् संग्रामान् जयति सः। समर्य इति संग्रामनामसु पठितम्। (निघं०२.१७) (वाजः) वेगादिगुणयुक्तः (अस्मान्) (अविष्टु) रक्षणादिकं करोतु। अत्रावधातोर्लोटि सिबुत्सर्गं इति सिब्विकरणः। (तन्नः०) इत्यादि पूर्ववत्॥५॥

अन्वयः – हे मेधाविन् समर्यजिदृभुर्वाजो भवान् भवान् शत्रून् संशिश्नत् प्रअस्मानिवृष्ट्रीतथा नोऽस्मदर्थं यन्मित्रो वरुणोऽदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौर्मामहन्तां तथैव भवांस्तत् तां सातिं नोऽस्मदर्थं निष्पाद्मतु॥५॥

भावार्थ:-विदुषामिदमेव मुख्यं कर्मास्ति यद् जिज्ञासूनिवृद्धो विद्यार्थिनः सुशिक्षाविद्यादानाभ्यां वर्द्धयेयु:। यथा मित्रादयः प्राणादयो वा सर्वान् वर्द्धयित्वा सुख्यन्ति, तथैव विद्वांसोऽपि वर्त्तेरन्॥५॥

अत्र मेधाविनां गुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन कह सङ्ग्तिग्रस्तीति वेद्यम्॥५॥

इति द्वात्रिंशो वर्ग ३२ एतत्सुक्तं (१११) क्र समाप्तम्॥

पदार्थ: - हे मेधावी (समर्थ्याजत्) संग्रामों क जीतनेवाल (ऋभुः) प्रशंसित विद्वान्! (वाजः) वेगादि गुणयुक्त आप (भराय) संग्राम के अर्थ अन्य शबुओं का (संशिशातु) अच्छी प्रकार नाश कीजिये (अस्मान्) हम लोगों की (अविष्ठु) रक्षा आदि कीजिये और (नः) हम लोगों के लिये जो (मित्रः) मित्र (वरुणः) उत्तम गुणवाला (अदितिः) विद्वान् (सिन्धुः) समुद्र (पृथिवी) पृथिवी (उत) और (द्यौः) सूर्य्य का प्रकाश (मामहन्ताम्) सिद्ध करें उन्निति देशि, जैसे ही आप (तत्) उस (सातिम्) पदार्थी के अलग-अलग करने को हम लोगों के लिये सिद्ध कीजिये। ५॥

भावार्थ:-विद्वानों का यहीं मुख्य कार्य है कि जो जिज्ञासु अर्थात् ज्ञान चाहनेवाले, विद्या के न पढ़े हुए विद्यार्थियों को अच्छी शिक्षा और बिद्यादान से बढ़ावें, जैसे मित्र आदि सज्जन वा प्राण आदि पवन सबकी वृद्धि करके उनकी सुखी करते हैं, वैसे ही विद्वान् जन भी अपना वर्त्ताव रक्खें॥५॥

इस सूक्त में बुद्धिमानों के गुणों के वर्णन से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति है, यह जानना चाहिये।

व्यह्र बत्तीसृवां ३२ वर्ग और एकसौ ग्यारहवां १११ सूक्त समाप्त हुआ॥

अथ पञ्चविंशत्यृचस्य द्वादशोत्तरशततमस्य सूक्तस्याङ्गिरसः कुत्स ऋषिः। आदिमे मन्त्रे प्रथमपादस्य द्यावापृथिव्यौ, द्वितीयस्याग्निः, शिष्टस्य सूक्तस्याश्विनौ देवते।

१,२,६,७,१३,१५,१७,१८,२०-२२ निचृज्जगती। ४,८,९,११,१२,१४,१६,२३ जापती।

१९ विराड् जगती छन्द:। निषाद: स्वर:। ३,५,२४ विराट् त्रिष्टुप्। १३ भुरिक् त्रिष्टुक्। २५

त्रिष्टुप् च छन्द:। धैवत: स्वर:॥

तत्रादौ द्यावाभूमिगुणा उपदिश्यन्ते।

अब एकसौ बारहवें सूक्त का आरम्भ है। इसके प्रथम मन्त्र में सूर्य्य और <mark>भूमि के पु</mark>णों का

कथन किया है॥

ईळे द्यावापृथिवी पूर्विचित्तयेऽग्नि घुर्मं सुरुचं यामन्निष्टये। याभिभरे कारमंशाय जिन्वेथस्ताभिक् षु ऊतिभिरश्चिना गतिम्।। १॥

ईळे। द्यावापृथिवी इति। पूर्वऽचित्तये। अग्निम्। घुर्मम्। सुरुक्वम्। यामेन्। इष्टये। याभिः। भरे। का्रम्। अंशाया जिन्वथः। ताभिः। कुम् इति। सु। कुतिऽभिः। अश्विना। अग्रा गुतुम्भ १५

पदार्थ:-(ईळे) (द्यावापृथिवी) प्रकाशभूमी (पूर्विचित्तये) पूर्वै: कृतचयनाय (अग्निम्) विद्युतम् (धर्मम्) प्रतापस्वरूपम् (सुरुचम्) सुष्ठु दीप्तं रुचिकारकम् (यामन्) यान्ति यस्मिस्तस्मिन्मार्गे (इष्ट्रये) इष्ट्रसुखाय (याभिः) वक्ष्यमाणाभिः (भरे) संग्रामे (कारम्) कुर्वन्ति यस्मिस्तम् (अंशाय) भागाय (जिन्वथः) प्राप्नुतः। जिन्वतीति गतिकर्मासु प्रिटेतम्। (जिष्टे०२.१४) (ताभिः) (उ) वितर्के (सु) शोभने (ऊतिभिः) रक्षाभिः (अश्वना) विद्याव्यापनृष्टीलौ (आ) (गतम्) आगच्छतम्॥१॥

अन्वयः – हे अश्विना सर्वविद्याव्यापिनावध्यापकोपदेशको भवन्तौ! यथा यामन् पूर्वचित्तये इष्टये द्यावापृथिवी याभिरूतिभिर्भरे घर्मं सुरुचमग्निं प्राप्नुतस्तृथा त्रिभरंशाच कारं सु जिन्वथः कार्य्यसिद्धय आगतमित्यहमीळे॥१॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुक्तोपमालङ्कार:। हे मनुष्या! यथा प्रकाशाऽप्रकाशयुक्तौ सूर्य्यभूमिलोकौ सर्वेषां गृहादीनां चयनायाधार्यय च भवतो विद्युता सहैतौ संबन्धं कृत्वा सर्वेषां धारकौ च वर्तेते तथा यूयमि प्रजासु वर्त्तध्वम्। रा

पदार्थ:-हे (अश्विन) विद्वाओं में व्याप्त होनेवाले अध्यापक और उपदेशक! आप जैसे (यामन्) मार्ग में (पूर्विचत्त्रे) पूर्व विद्वानों में संचित किये हुए (इष्ट्रये) अभीष्ट सुख के लिये (द्वावापृथिवी) सूर्य का प्रकाश और भूमि (याभि:) जिन (ऊतिभि:) रक्षाओं से युक्त (भरे) संग्राम में (धर्मम्) प्रतापयुक्त (सुरुचम्) अच्छे प्रकार प्रदीप्त और रुचिकारक (अग्निम्) विद्युतरूप अग्नि को प्राप्त होते हैं, वैसे (ताभि:) उन रक्षाओं से (अंशाय) भाग के लिये (कारम्) जिस में क्रिया करते हैं, उस विषय को (सु, जिन्वथ:) उत्तमता से प्राप्त होते हैं (उ) तो कार्य्यसिद्धि करने के लिये (आ, गतम्) सदा आवें, इस हेतु मैं (ईळे) आपकी स्तुति करता हूं॥१॥

मण्डल-१। अनुवाक-१६। सूक्त-११२



भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! जैसे प्रकाशयुक्त सूर्याद और अन्धकारयुक्त भूमि आदि लोक सब घर आदिकों के चिनने और आधार के लिये होते और बिजुली के साथ सम्बन्ध करके सबके धारण करनेवाले होते हैं, वैसे तुम भी प्रजा में वर्त्ता करो॥ श्रा

अथाध्यापकोपदेशकविषयमाह।।

अब पढ़ाने और उपदेश करनेवालों के विषय में अगले मन्त्र में कहा है।

युवोर्दानार्यं सुभरां असुश्चतो रथमा तस्थुर्वचसं न मन्तवे। याभिर्धियोऽवंथुः कर्मन्निष्टये ताभिरू षु ऊतिभिरिश्चना ग्रीतम्राभिर

युवोः। दानार्य। सुऽभर्गः। अस्श्चर्तः। रथम्। आ। तस्थुः। वचसम्। ना मन्त्रेव। याभिः। धिर्यः। अवेथः। कर्मन्। इष्ट्ये। ताभिः। ऊम् इति। सु। ऊतिऽभिः। अश्विना। आ। गृतुम्॥ ना

पदार्थ:-(युवो:) युवयो: (दानाय) सुखिवतरणाय (सुभसः) ये सुष्ठ भरन्ति पुष्णन्ति वा (असश्चतः) असमवेता: (रथम्) रमणसाधनं यानम् (अप) (तस्युग) तिष्ठन्ति (वचसम्) सर्वै: स्तुत्या परिभाषितं मनुष्यम् (न) इव (मन्तवे) विज्ञातुम् (याभिः) (ध्रियः) प्रज्ञाः (अवथः) रक्षथः (कर्मन्) कर्मणि (इष्ट्रये) इष्टसुखाय (ताभिः) (उ) (सु) (अतिभिः) (अश्विना) विद्यादिदातारावध्यापकोपदेशकौ (आ) समन्तात् (गतम्) प्राप्नुतम्॥२॥

अन्वयः – हे अश्वना! सुभरा असश्चत्रो जना मन्त्रवे वचसं न युवोर्यं रथमातस्थुस्ते नो याभिधियः कर्मन्निष्टयेऽवथस्ताभिरूतिभिश्च युवां दानाय स्वास्त्रिम्भिन्न प्रतिश्रेष्ठतयाऽऽगच्छतम्॥२॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। है मनुष्या ये युष्मान् प्रज्ञां प्रापयेयुस्तान् सर्वथा सुरक्षय। यथा भवन्तो तेषां सेवनं कुर्युस्तथैव ते<mark>र्यूप युष्मान्</mark> शुभां विद्यां बोधयेयुः॥२॥

पदार्थ:-हे (अश्विना) पहाने और उपदेश करानेहारे विद्वानो! (सुभरा:) जो अच्छे प्रकार धारण वा पोषण करते कि जो अति आन्द के सिद्ध करनेहारे हैं, वा (असश्चत:) जो किसी बुरे कर्म और कुसंग में नहीं फँसते वे कुलने (मेन्नवे) विशेष जानने के लिये जैसे (वचसम्, न) सबने प्रशंसा के साथ विख्यात किये हुए अत्यन्त बुद्धिमान् विद्वान् जन को प्राप्त होवे, वैसे (युवो:) आप लोगों के (रथम्) जिस विमान आदि सान को (आ, तस्थु:) अच्छे प्रकार प्राप्त होकर स्थिर होते हैं, उसके साथ (उ) और (याभि:) जिन से (धिय:) उत्तम बुद्धियों को (कर्मन्) काम के बीच (इष्ट्रये) चाहे हुए सुख के लिये (अवथ:) राखते हैं (ताभि:) उन (ऊतिभि:) रक्षाओं के साथ तुम (दानाय) सुख देने के लिये हम लोगों के प्रक्रि (सु आ, गतम्) अच्छे प्रकार आओ॥२॥

११९०

ऋग्वेदभाष्यम्

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! जो तुमको उत्तम बुद्धि की प्राप्ति करवि, उनकी सब प्रकार से रक्षा करो। जैसे आप लोग उनका सेवन करें, वैसे ही वे लोग भी तुम को शुभ्विद्या का बोध कराया करें॥२॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

युवं तासां दिव्यस्यं प्रशासने विशां क्षयथो अमृतस्य मुज्मना। याभिर्धेनुमुस्वं र्रे पिन्वंथो नरा ताभिरू षु ऊतिभिरश्चिना गंतम्॥ ३००

युवम्। तासीम्। दिव्यस्यं। प्रुऽशासने। विशाम्। क्ष्युयः। अमृतस्य। पुज्यताः। याभिः। धेनुम्। अस्वम्। पिन्वयः। नुरा। ताभिः। ऊम् इति। सु। ऊतिऽभिः। अश्विना। आ। गृतम्॥ ३॥

पदार्थ:-(युवम्) युवामुपदेशकाध्यापकौ (तासाम्) पूर्वोक्तांत्राम् (दिव्यस्य) अतिशुद्धस्य (प्रशासने) (विशाम्) मनुष्यादिप्रजानाम् (क्षयथः) निवसथः (अमृतस्य) नाशरिहतस्य परमात्मनः (मज्मना) बलेन (याभिः) (धेनुम्) वाचम् (अस्वम्) या दुष्कर्मे च स्रूते नोत्पादयित ताम् (पिन्वथः) सेवेथाम् (नरा) नायकौ (ताभि) (उ) वितर्के (सु) शोभने (अतिभिः) रक्षणादिभिः (अश्विना) (आ) (गतम्) समन्तात् प्राप्नुतम्॥३॥

अन्वयः-हे नराऽश्विना युवं दिव्यस्याऽमृतस्य गर्न्सना सह यास्तत्संबन्धे प्रजास्सन्ति तासां विशां प्रशासने क्षयथ उ याभिरूतिभिरस्वं धेनुं पिन्वथस्ताभिः स्वागतम्॥३॥

भावार्थ:-त एव धन्या विद्वांस्में के प्रजाननान् विद्यासुशिक्षासुखवृद्धये प्रसादयन्ति तेषां शरीरात्मनो बलं च नित्यं वर्द्धयन्ति॥३॥

पदार्थ:-हे (नरा) विद्याव्यवहार में प्रधान (अश्विना) अध्यापक और उपदेशक लोगो! (युवम्) तुम दोनों (दिव्यस्य) अतीव शुद्ध (अमृतस्य) नाशरहित परमात्मा के (मज्मना) अनन्त बल के साथ जो परमात्मा के सम्बन्ध में प्रजान हैं (तासाम) उन (विशाम्) प्रजाओं के (प्रशासने) शिक्षा करने में (क्षयथ:) निवास करते हो (उ) और (याभि:) जिन (ऊतिभि:) रक्षाओं से (अस्वम्) जो दुष्ट काम को न उत्पन्न करती है, उस (धनुम्) स्मृष्ठ वर्षानेवाली वाणी का (पिन्वथ:) सेवन करते हो (ताभि:) उन रक्षाओं के साथ (सु, आ, गुतम्) अच्छे प्रकार हम लोगों को प्राप्त होओ॥३॥

भावार्थः - वे ही धन्य विद्वान् हैं जो प्रजाजनों को विद्या, अच्छी शिक्षा और सुख की वृद्धि होने के लिये प्रमाह कर्री और उनके शरीर तथा आत्मा के बल को नित्य बढ़ाया करते हैं॥३॥

पुनस्तौ कीदृशावित्युपदिश्यते॥

फिर वे दोनों कैसे हैं, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

थाभिः परिजमा तनयस्य मुज्मना द्विमाता तूर्षु तुरणिर्विभूषति।

मण्डल-१। अनुवाक-१६। सूक्त-११२ 9885

याभिस्त्रिमन्तुरभवद्विचक्ष्णस्ताभिक् षु ऊतिभिरश्चिना गतम्॥४॥

याभिः। परिऽज्मा। तर्नयस्य। मुज्मनां। द्विऽमाता। तूर्षु। तुरिणः। विऽभूषित। याभिः। त्रिऽमन्तुः। अभवत्। विऽचुक्षुणः। ताभिः। कुम् इतिं। सु। कुतिऽभिः। अश्विनाः। आः गुतुम्॥४॥

पदार्थ:-(याभि:) (परिज्मा) परितः सर्वतो गन्ता वायुः (तनयस्य) अपर्यस्याग्नेः (पज्मना) बलेन (द्विमाता) द्वयोरग्निजलयोर्माता प्रमापकः (तूर्षु) शीघ्रकारिषु (तर्णिः) प्रविताऽत्तिवेगवान् (विभूषित) अलङ्करोति (याभिः) (त्रिमन्तुः) तिसृणां कर्मोपासनाज्ञानविद्यान्तं मन्तुर्मन्ता (अभवत्) भवेत् (विचक्षणः) विविधतया दर्शकः (ताभिः०) इत्यादि पूर्ववत्॥४॥

अन्वयः-हे अश्वना! युवां याभिरूतिभिर्द्धिमाता तूर्षु तरिणः परिज्या वायुस्तन्यस्य मज्मना सुविभूषत्यु याभिरूतिभिस्त्रिमन्तुर्विचक्षणोऽभवद् भवेत् ताभिरूतिभिः सर्वानस्मान् विद्याद्मन्यस्य गतम्भा४॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। मनुष्यै: प्राप्यवत् प्रिप्नत्वेन संन्यासिवदुपकारकत्वेन सर्वेभ्यो विद्योन्नति: सम्पादनीया॥४॥

पदार्थ:-हे (अश्वना) विद्या और उपदेश की प्राप्त करमेहारे विद्वान् लोगो! (याभि:) जिन से (द्विमाता) दोनों अग्नि और जल का प्रमाण करनेवाला (तूर्षु) श्रीष्ठ करनेवालों में (तरिण:) उछलता सा अतीव वेगवाला (परिज्मा) सर्वत्र गमन करता विद्यु (तन्यम्य) अपने से उत्पन्न अग्नि के (मज्मना) बल से (सु, विभूषित) अच्छे प्रकार सुशोभित होता (३) और (याभि:) जिनसे (त्रिमन्तुः) कर्म, उपासना और ज्ञान विद्या और माननेहारा (विचक्षणः) विविध प्रकार से सब विद्याओं को प्रत्यक्ष करानेहारा (अभवत्) होवे (ताभिः) उन (ऊतिभिः) रक्षाओं से सिहत सब हम लोगों को विद्या देने के लिये (आ, गतम्) प्राप्त हुजिये॥४॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में विचिकलुप्तोपभालङ्कार है। मनुष्यों को योग्य है कि प्राण के समान प्रीति और संन्यासियों के समान उपकार करने से सबके लिये विद्या की उन्नति किया करें॥४॥

पुनस्तौ कीदृशावित्युपदिश्यते॥

फिर वेदानों कैसे हैं, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

याभी र्भ निवृतं सितमुद्भ्य उद्गेन्दनुमैरयतं स्वर्दृशे।

यार्भ: कुण्वे प्र सिषांसन्तुमार्वतं ताभिक षु ऊतिभिरिश्चना गतम्॥५॥३३॥

पाभि:। रेभम्। निऽवृंतम्। सितम्। अत्ऽभ्यः। उत्। वन्देनम्। ऐरयतम्। स्वः। दृशे। याभिः। कण्वम्। प्र। सिस्मिन्तम्। आर्वतम्। ताभिः। ऊम् इति। सु। ऊतिऽभिः। अश्विनाः। आ। गृतम्।। ५॥

पदार्थ:-(याभि:) (रेभम्) स्तोतारम् (निवृतम्) नितरां स्वीकृतं शास्त्रबोधम् (सितम्) शुद्धधर्मम् (अद्भ्यः) जलेभ्यः (उत्) उत्कृष्टे (वन्दनम्) गुणकीर्त्तनम् (ऐरयतम्) गमयतम् (स्वः) सुखम् (दृशे) दृष्टुम् (याभिः) (कण्वम्) मेधाविनम् (प्र) (सिषासन्तम्) विभाजितुमिच्छन्तम् (आवतम्) पालयतम् (ताभिः०) इत्यादि पूर्ववत्॥५॥

अन्वयः-हे अश्वना! युवां याभिरूतिभिः सितं निवृतं रेभं वन्दनं स्वर्दृशऽद्भ्य उदैरयतं यूर्णिश्च सिष्यसन्तं कण्वं प्रावतं ताभिरु स्वागतम्॥५॥

भावार्थ:-ये मनुष्या विदुषः सुरक्ष्य तेभ्यो विद्याः प्राप्य जलादिपदार्थे<u>भ्यः शि</u>ल्पविद्याः संपाद्य वर्द्धन्ते ते सर्वाणि सुखानि प्राप्नुवन्ति॥५॥

पदार्थ:-(अश्वना) पढ़ाने और उपदेश करनेवालो! तुम (याप्रि:) जिन (ऊतिभि:) रक्षाओं से (सितम्) शुद्ध धर्मयुक्त (निवृतम्) निरन्तर स्वीकार किये हुए श्रास्त्रबोध की (रेभम्) स्तुति और (वन्दनम्) गुणों की प्रशंसा करनेहारे को (स्व:) सुख के (दृशे) लिखने के अर्थ (अद्ध्य:) जलों से (उत्, ऐरयतम्) प्रेरणा करो और (याभि:) जिनसे (सिषासन्तम्) विश्वार कराने की इच्छा करनेहारे (कण्वम्) बुद्धिमान् विद्वान् की (प्र, आवतम्) रक्षा करो (ताभि:, अ उन्हों रक्षाओं से हम लोगों के प्रति (सु, आ, गतम्) उत्तमता से आइये॥५॥

भावार्थ:-जो मनुष्य विद्वानों की अच्छे प्रकार रक्षाकर, उनसे विद्याओं को प्राप्त हो, जलादि पदार्थों से शिल्पविद्या को सिद्ध करके बढ़ते हैं वेसिक सुख्यें को प्राप्त होते हैं॥५॥

पुनस्तौ कीदृशाविन्त्रुपदिश्यते॥

फिर वे दोनों कैसे हों, यह खिषय अगले मन्त्र में कहा है।।

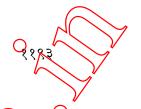
याभिरन्तकं जसमानुमारणे भुज्यं व्याभरव्यथिभिर्जिजिन्वर्थुः।

याभिः कुर्कन्धुं वृथ्यं व जिन्वयुस्ताभिरू षु ऊतिभिरिश्चना गतम्॥६॥

याभिः। अन्तंकम्। ज्ञामितम्। आऽअर्गणे। भुज्युम्। याभिः। अव्यथिऽभिः। जिजिन्वर्थः। याभिः। कुर्कस्थुम्। वृय्यम्। च। जिन्त्रथः। काभिः। कुर्कस्थुम्। वृय्यम्। च। जिन्त्रथः। काभिः। कुर्विऽभिः। अश्विना। आ। गृतुम्।। ६॥

पदार्थ:-(याभि:) (अनुकर्म) दुःखनाशकर्त्तारम् (जसमानम्) शत्रून् हिंसन्तम् (आरणे) सर्वतो युद्धभावे (भुज्युम्) पालकम् (याभिः) (अव्यथिभिः) व्यथारहिताभिः (जिजिन्वथुः) प्रीणीथः। अत्र सायणाचार्य्येण प्रमाल्लिट मध्यमपुरुषद्विवचनान्तप्रयोगे सिद्धेऽत्यन्ताशुद्धं प्रथमपुरुषबहुवचनान्तं साधितमित्रि खंद्यम् (याभिः) (कर्कश्वम्) कर्कान् कारुकानन्ति व्यवहारे बध्नाति तम् (वय्यम्) ज्ञातारम्। अत्र बद्धलकाद् गत्यर्थाद् वयधातोर्यन् प्रत्ययः। (च) (जिन्वथः) तर्प्यथः (ताभिः) इत्यादि पूर्वतृत्ति।

मण्डल-१। अनुवाक-१६। सूक्त-११२



अन्वय:-हे अश्विना! युवां याभिरूतिभिरारणेऽन्तकं जसमानं याभिरव्यथिभिर्भुज्युं च जिजिन्वथुर्यामः कर्कन्धुं वय्यं च जिन्वथस्ताभिरूतिभिरु स्वागतम्॥६॥

भावार्थ:-रक्षकैरधिष्ठातृभिश्च विना न खलु योद्धारः शत्रुभिस्सह संग्रामैर्योद्धं प्रजां पालयतुं च शक्नुवन्ति, ये प्रबन्धेन विदुषां रक्षणं न कुर्वन्ति ते पराजयं प्राप्य राज्यं कर्तुं न शक्नुवन्ति॥६॥

पदार्थ:-हे (अश्वना) सभा सेना के स्वामी विद्वान् लोगो! आप (याभि:) जिन (क्रिमि:) रक्षाओं से (आरणे) सब ओर से युद्ध होने में (अन्तकम्) दु:खों के नाशक और (जसमानम्) शत्रुओं को मारते हुए पुरुष को (याभि:) जिन (अव्यथिभि:) पीड़ारहित आनस्कारिक स्थाओं से (भुज्युम्) पालनेहारे पुरुष को (जिजिन्वथु:) प्रसन्न करते (च) और (याभि:) जिन रक्षाओं से (कर्कन्थुम्) कारीगरी करनेहारे (वय्यम्) ज्ञाता पुरुष की (जिन्वथ:) प्रसन्नता करते हो (ताभि:, उ) उन्हीं रक्षाओं के साथ हम लोगों के प्रति (सु, आ, गतम्) अच्छे प्रकार आइये॥६॥

भावार्थ:-रक्षा करनेवाले और अधिष्ठाताओं के विना योद्धा लाग शत्रुओं के साथ संग्राम में युद्ध करने और प्रजाओं के पालने को समर्थ नहीं हो सकते। जो प्रबन्ध से विद्वानों की रक्षा नहीं करते, वे पराजय को प्राप्त होकर राज्य करने को समर्थ नहीं होते। है।

पुनस्तौ कीद्भावित्युपद्भियते॥

फिर वे दोनों कैसे हों, यह बिषय अगले मन्त्र में कहा है।।

याभि: शुचन्तं धनुसां सुष्सदं तुम्नं धर्ममूम्यावन्तुमत्रये।

याभि: पृश्निगुं पुरुकुत्समार्वतुं ताभिरू षु ऊतिभिरिश्चना गतम्॥७॥

याभिः। शुचन्तिम्। धनुऽसम्म<u>ा सु</u>ङस्पर्दम्। तृप्तम्। घुर्मम्। ओम्याऽवन्तम्। अत्रये। याभिः। पृश्निऽगुम्। पुरुऽकुत्सम्। आर्वतम्। ताभिः। कृष् इति। सु। कुष्डिभिः। अश्विना। आ। गृतम्।।७।।

पदार्थ:-(याभि:) (शुर्चनिम्) पवित्रकारकम् (धनसाम्) यो धनानि सनोति विभजति तम्। अत्र धनोपपदात् सन् धातोसित्। (सुर्वेसदम्) शोभना संसद् यस्य तम् (तप्तम्) ऐश्वर्ययुक्तम्। ऐश्वर्यार्थात् तप्धातोस्तः प्रत्ययः। (धर्मम्) प्रशस्ता घर्मा यज्ञा विद्यन्ते यस्य तम्। धर्म इति यज्ञनामसु पठितम्। (निघं०३.१७) धर्मशब्दादर्शश्चादित्वादच्। (ओम्यावन्तम्) ये अवन्ति ते ओमानस्तान् ये यान्ति प्राप्नुवन्ति त ओम्याः, एते प्रशस्ता विद्यन्ते यस्य तम् (अत्रये) अविद्यमानानि त्रीण्याध्यात्मिकाधिभौतिकाधिदैविकानि दुःखानि वस्मिन् व्यवहारे तस्मै (याभिः) (पृश्निगुम्) अन्तरिक्षे गन्तारम् (पुरुकुत्सम्) बहवः कुत्सा वज्ञाः शस्त्रविशेषा यस्मिँस्तम् (आवतम्) पालयतम् (ताभिरिति) पूर्ववत्।।७॥

अन्वय:-हे अश्विना! युवां याभिरूतिभिरत्रये शुचिन्तं धनसां सुषंसदं तप्तं घर्ममोम्यावन्तं जनं पृश्निगुं पुरुर्कुत्से चावतं ताभिरु स्वागतम्॥७॥

भावार्थ:-विद्वद्भिर्धर्मात्मरक्षणेन दुष्टानां दण्डनेन च सत्यविद्या प्रकाशनीया:॥७॥

पदार्थ:-हे (अश्वना) उपदेश करने और पढ़ानेवालो! तुम दोनों (याभि:) जिस (अतिर्णः) रक्षाओं से (अत्रये) जिसमें आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक दु:ख नहीं हैं, उस प्यवहार के लिये (शुचिन्तम्) पवित्रकारक (धनसाम्) धन के विभागकर्ता (सुषंसदम्) अच्छी सभावाले (तप्तम्) ऐश्वर्ययुक्त (धर्मम्) उत्तम यज्ञवान् (ओम्यावन्तम्) रक्षकों को प्राप्त होनेहारे युरुष प्रशंसित जिसके हैं, उसकी और (याभि:) जिन रक्षाओं से (पृश्निगुम्) विमानादि से अन्तरिक्ष में जानेहारे (पुरुकुत्सम्) बहुत शस्त्राऽस्त्रयुक्त पुरुष की (आवतम्) रक्षा करें (ताभि:, उ) उन्हीं रक्षाओं से हम्म लोगों को (सु, आ, गतम्) उत्तमता से प्राप्त हूजिये॥७॥

भावार्थ:-विद्वानों को योग्य है कि धर्मात्माओं की रक्षा और दुष्टों की ताड़ना से सत्यविद्याओं का प्रकाश करें॥७॥

अथ सभासेनाध्यक्षौ किं कुर्यातामित्युपिद्वप्रयते॥

अब सभा और सेना के अध्यक्ष क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

याभिः शचीभिर्वृषणा परावृजं प्रान्धं श्रोणं चक्षस् एतंवे कृथः। याभिर्विर्तिकां प्रसिताममुञ्जतं ताभिरु पु ऊतिभिरिश्चना गतम्॥८॥

याभिः। शचीभिः। वृष्णा। पुराऽवृज्ञम्। प्रा अन्युम्। श्रोणम्। चक्षसे। एतेवे। कृथः। याभिः। वर्तिकाम्। युस्तिताम्। अर्मुञ्जतम्। ताभिः। कुम् इति। सु। कृतिःभिः। अश्विना। आ। गृतुम्।।८॥

पदार्थ:-(याभि:) वक्ष्यमाणाभि (श्रचीभि:) रक्षाकर्मभिः प्रज्ञाभिर्वा। श्रचीति कर्मनामसु पिठतम्। (निघं०२.१) प्रजानामसु पिठतम्। (निघं०३.९) (वृषणा) वर्षियतारौ। अत्राकारादेशः। (परावृजम्) धर्मविरुद्धगामिनम् (प्र) (अन्धम्) अविद्यान्धकारयुक्तम् (श्रोणम्) विधरवद्वर्त्तमानं पुरुषम् (चक्षसे) विद्यायुक्तवाण्याः प्रकाशास्त्र (एतवे) एतुं गन्तुम् (कृष्यः) कुरुतम्। अत्र लोडर्थे लट् विकरणस्य लुक् च। (याभिः) (वर्त्तिकाम्) श्रकुनिस्त्रियम् (प्रसिताम्) निगलिताम् (अमुञ्चतम्) मुञ्चतम्। अत्र लोडर्थे लङ्। (ताभिः) (उ) (सु) सुष्ठु गतौ (ऊतिभिः) रक्षणादिभिः (अश्विना) द्यावापृथिवीवच्छुभगुणकर्मस्वभाव- व्यापिनौ। अत्राऽऽकारादेशः। (आ) समन्तात् (गतम्) गच्छतम्। अत्र विकरणलोप्रश्व॥८०

अन्वयः-है चृषणाश्विना सभासेनाध्यक्षौ! युवां याभिः शचीभिः परावृजमन्धं श्रोणं च चक्षस एतवे विद्यां गन्तुं प्रकृथः याभिर्म्रसितां वर्त्तिकामिव प्रजाममुञ्जतं ताभिरू० इति पूर्ववत्॥८॥

मण्डल-१। अनुवाक-१६। सूक्त-११२



भावार्थ:-सभासेनापतिभ्यां स्विवद्याधर्माश्रयेण प्रजासु विद्याविनयौ प्रचार्याविद्याऽध्यमित्रारणेन् सर्वेभ्योऽभयदानं सततं कार्यम्॥८॥

पदार्थ:-हे (वृषणा) सुख के वर्षानेहारे (अश्विना) सभा और सेना के अधीशो! तुस (याभिः) जिन (श्राचीभिः) रक्षा सम्बन्धी कामों और प्रजाओं से (परावृजम्) विरोध्न करनेहारे (अन्यम्) अविद्यान्धकारयुक्त (श्रोणम्) विधिर के तुल्य वर्त्तमान पुरुष को (चक्क्षसे) विद्यायुक्त काणी के प्रवाश के लिये (एतवे) शुभ विद्या प्राप्त होने को (प्र, कृथः) अच्छे प्रकार योग्य करो और (याभिः) जिन रक्षाओं से (प्रसिताम्) निगली हुई (वर्त्तिकाम्) छोटी चिड़िया के समान प्रजा को दुः श्री से (अमुञ्जतम्) छुड़ाओ (ताभिक्त) उन्हीं (ऊतिभिः) रक्षाओं से हम लोगों को (सू, आ, गतम्) अच्छे प्रकार प्राप्त हुजिये॥८॥

भावार्थ:-सभा और सेना के पित को योग्य है कि अपनी विद्या और धर्म के आश्रय से प्रजाओं में विद्या और विनय का प्रचार करके अविद्या और अधर्म के मिवारण हैं सब प्राणियों को अभयदान निरन्तर किया करें॥८॥

पुनस्तौ किं कुर्य्यातामित्यह।)

फिर वे दोनों क्या करें, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

याभिः सिन्धुं मधुमन्तमस्थतं वसिष्टं याभिरज्युवेजिन्वतम्।

याभिः कुत्सं श्रुतर्यं नर्यमार्वतं ताभिक्त षु अतिभिरिश्चना गतम्॥९॥

याभिः। सिन्धुम्। मधुंऽमन्तम्। अस्थितम्। वर्मिष्ठम्। याभिः। अजुरौ। अजिन्वतम्। याभिः। कुत्स्मम्। श्रुतर्यम्। नर्यम्। आर्वतम्। ताभिः। ऊम् इति सु। ऊतिर्रभः। अश्विनाः। आ। गृतुम्।। ९॥

पदार्थ:-(याभि:) (सिन्धुम्) समुद्रम् (मधुमन्तम्) माधुर्यगुणोपेतम् (असश्चतम्) जानीतम्। अत्र सर्वत्र लोडर्थे लङ्। सश्चतृति गतिकर्मा) (निघं०२.१४) (वसिष्ठम्) यो वसति धर्मादिकर्मसु सोऽतिशयितस्तम् (याभि:) (अज्रेग) जरारहितौ। (अजिन्वतम्) प्रीणीतम् (याभि:) (कुत्सम्) वज्रायुधयुक्तम्। कुत्स इति वज्जनामसु पठितम्। (निघं०२.२०) (श्रुतर्यम्) श्रुतानि अर्थ्याणि विज्ञानशास्त्राणि येन तम्। अत्र शकन्ध्वादिना ह्यकारलोपः। (नर्यम्) नृषु नायकेषु साधुम् (आवतम्) रक्षतम्। अग्रे पूर्ववदर्शो वेद्यस्थि। १॥

अन्वर्धः न्द्रे अश्विनाजरौ! युवां याभिरूतिभिर्मधुमन्तं सिन्धुमसश्चतं याभिर्वसिष्ठमजिन्वतं याभिः श्रुतर्य्यं नर्य्यं चावतं ताभिरू अतिमिरसमाकं रक्षायै स्वागतम् अस्मान् प्राप्नुतम्॥९॥

भावार्थः-मनुष्यैर्यज्ञविधिना सर्वान् पदार्थान् संशोध्य सर्वान् सेवित्वा रोगान् निवार्य सदा सुर्ख्यायत्त्र्यम् ॥९॥

पदार्थ:-हे (अश्विना) विद्या पढ़ाने और उपदेश करनेवाले (अजरौ) जरावस्थारहित विद्वानो! तुमें (याभि:) जिन (ऊतिभि:) रक्षाओं से (मधुमन्तम्) मधुर गुणयुक्त (सिन्धुम्) समुद्र को (असश्वतम्) जानो वा (याभि:) जिन रक्षाओं से (विसष्ठम्) जो अत्यन्त धर्मादि कर्मों में वसनेवाला उसकी (अजिन्बतम्) प्रसन्नता करो, वा (याभि:) जिनसे (कुत्सम्) वज्र लिये हुए (श्रुतर्यम्) श्रवण से अलि श्लेष्ट (नर्थम्) मनुष्यों में अत्युत्तम पुरुष को (आवतम्) रक्षा करो, (ताभिरु) उन्हीं रक्षाओं के साथ हमारी रक्षा के लिये (स्वागतम्) अच्छे प्रकार आया कीजिये॥९॥

भावार्थ:-मनुष्यों को योग्य है कि यज्ञविधि से सब पदार्थों को अच्छे प्रकार भोधन कर सबका सेवन और रोगों का निवारण करके सदैव सुखी रहें॥९॥

पुनस्तौ कीदृशावित्याह॥

फिर वे दोनों कैसे हों, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है।

याभिर्विश्पलां धनुसामेथुर्व्यं सहस्रमीळह आजावजिस्ततम्।

याभिर्वशमुख्यं प्रेणिमावतं ताभिरू षु ऊतिभिर्श्युना गतम्। १०॥३४॥

याभिः। विश्पलाम्। धुनुऽसाम्। अथव्यम्। सहस्रंऽमीक्ष्क्रे। आजा। अजिन्वतम्। याभिः। वश्मेम्। अश्व्यम्। प्रेणिम्। आवतम्। ताभिः। कुम् इति। सु। कुतिऽभिः। अश्विक्ता अर्। मृतुम्। १०॥

पदार्थ:-(याभि:) (विश्पलाम्) विशः प्रचाः पात्योतेन सैन्येन तल्लाति यया ताम् (धनसाम्) धनानि सनन्ति संभजन्ति येन ताम् (अथर्व्यम्) अहिंसनीयां स्वसेनाम् (सहस्रमीळहे) सहस्राणि मीळहानि धनानि यस्मात् तस्मिन् (आजौ) संग्रामे। अन्जिबिति संग्रामनामसु पठितम्। (निघं०२.१७) (अजिन्वतम्) प्रीणीतम् (याभिः) (वशम्) कमनीयम् (अख्यम्) तुरङ्गेषु वेदादिषु वा साधुम् (प्रेणिम्) शत्रुनाशाय प्रेरितुमर्हम् (आवतम्) रक्षतम्। अन्यत् पूर्श्वत्।।१०॥

अन्वयः-हे अश्वना! सेनायुद्धाधिकृतौ युवां याभिरूतिभिः सहस्रमीळ्ह आजौ विश्पलां धनसामथर्ळ्यमजिन्वतं याभिर्वशं प्रेणिमश्व्यमावतं ताभिरूतिभर्युक्तौ भूत्वा प्रजापालनाय स्वागतम्॥१०॥

भावार्थ:-मनुष्येरिद्मिषश्य) ज्ञातव्यं शरीरात्मपुष्ट्या सुशिक्षितया सेनया च विना युद्धे विजयस्तमन्तरा प्रजापालनं श्रीसञ्चया राजवृद्धिश्च भवितुमयोग्यास्ति॥१०॥

पदार्थ:-हे (अश्वना) सेना और युद्ध के अधिकारी लोगो! (याभि:) जिन (ऊतिभि:) रक्षाओं से (सहस्रमीळहे) असंख्य पराक्रमादि धन जिसमें हैं, उस (आजौ) संग्राम में (विश्पलाम्) प्रजा के पालन करनेहारों को ग्रहण करने (धनसाम्) और पुष्कल धन देनेहारी (अथर्व्यम्) न नष्ट करने योग्य अपनी सेना को (अजिन्वतम्) प्रसन्न करो, वा (याभि:) जिन रक्षाओं से (वशम्) मनोहर (प्रेणिम्) और शत्रुओं के नाश् के लिश्न प्रेरणा करने योग्य (अश्व्यम्) घोड़ों वा अग्न्यादि पदार्थों के वेगों में उत्तम की (आवतम्)

मण्डल-१। अनुवाक-१६। सूक्त-११२ Q1960

रक्षा करो, (ताभिरु) उन्हीं रक्षाओं के साथ प्रजा पालन के लिये (स्वागतम्) अच्छे प्रकार आया कीजिये॥१०॥

भावार्थ:-मनुष्यों को यह अवश्य जानना चाहिये कि शरीर, आत्मा की पृष्टि और अच्छे प्रकार शिक्षा की हुई सेना के विना युद्ध में विजय और विजय के विना प्रजापालन, धन का संचय और राज्य की वृद्धि होने को योग्य नहीं है॥१०॥

पुनस्तौ कस्मै किं कुर्य्यातामित्याह॥

फिर वे दोनों किसके लिये क्या करें, इस विषय को अगले मात्र में कहा है।।

याभि: सुदानू औशिजार्य वृणिजे दीर्घश्रवसे मधु कोशो अक्षरती कक्षीर्वन्तं स्तोतारं याभिरावतं ताभिरू षु ऊतिभिरिश्चिता रात्तम्॥ ११॥

याभिः। सुदान् इति सुऽदान्। औृशिजाये। वृणिजे। दीर्घऽश्रवसे। मधु। कोशः। अक्षरत्। कुक्षीर्वन्तम्। स्तोतारम्। याभिः। आर्वतम्। ताभिः। ऊम् इति। सु। ऊतिऽभिः। अश्रिक्ताः। आर्वतम्। ११॥

पदार्थ:-(याभि:) (सुदानू) सुष्ठु दानकर्त्तासे (औशिजाय) मेधाविपुत्राय। उशिज इति मेधाविनामसु पठितम्। (निघं०३.१५) (वणिजे) व्यवहर्त्तुं श्लोलीय (दीर्घश्रवसे) दीर्घाणि महान्ति श्रवांसि विद्यादीन्यन्नानि धनानि वा यस्य तस्मै। श्रव इत्यन्ननामसु पठितम्। (निघं०२.७) धननामसु च। (निघं०२.१०) (मधु) मधुरं जलम् (कोष्नः) मेघः। कोश इति मेघनामसु पठितम्। (निघं०१.१०) (अक्षरत्) क्षरति (कक्षीवन्तम्) प्रशस्ताः कक्षा सहाया विद्यन्ते यस्य तम् (स्तोतारम्) विद्यागुणस्तावकम् (याभिः) अन्यत्पूर्ववत्॥११॥

अन्वय:-हे सुदानू अश्वना! याभिरूतिभर्दीर्घश्रवसे वणिज औशिजाय कोशो मध्वक्षरद् याभिर्वा युवां कक्षीवन्तं स्तोतारमावतं ताभिरु ऊतिभिरस्मान् पक्षितुं स्वागतम् ॥११॥

भावार्थ:-राजपुरुषाणां योग्ज्ञमस्ति ये द्वीपद्वीपान्तरे वा देशदेशान्तरे व्यापारकरणाय गच्छेयुरागच्छेयुश्च तेषां रक्षा विक्तेने विधेया॥११॥

पदार्थ: -हे (सुदानू) अच्छे प्रकार दान करनेवाले (अश्विना) अध्यापक और उपदेशक विद्वानो! (याभि:) जिन (क्रिंगि:) रक्षाओं से (दीर्घश्रवसे) जिसके बड़े -बड़े विद्यादि पदार्थ, अन्न और धन विद्यमान उस (विष्णिज) व्यवहार करनेवाले (औशिजाय) उत्तम बुद्धिमान् के पुत्र के लिये (कोश:) मेघ (मधु) मधुर मुण्युक्त जल को (अक्षरत्) वर्षता वा तुम (याभि:) जिन रक्षाओं से (कक्षीवन्तम्) उत्तम सहाय से युक्त (स्तोतारम्) विद्या के गुणों की प्रशंसा करनेवाले जन की (आवतम्) रक्षा करो (ताभिक) उन्हीं रक्षाओं से सहित हमारी रक्षा करने को (स्वागतम्) अच्छे प्रकार शीघ्र आया कीजिये॥११॥

११९८

ऋग्वेदभाष्यम्

भावार्थ:-राजपुरुषों को योग्य है कि जो द्वीप-द्वीपान्तर और देश-देशान्तर में व्यापार करने के लिये जावें-आवें, उनकी रक्षा प्रयत्न से किया करें॥११॥

अथ शिल्पदृष्टान्तेन सभासेनापतिकृत्यमुपदिश्यते॥

अब शिल्प दृष्टान्त से सभापति और सेनापति के काम का उपदेश किया है।। 4

याभी रसां क्षोदंसोद्नः पिपिन्वर्थुरन्श्वं याभी रथमावतं जिषे। याभिस्त्रिशोकं उस्त्रियां उदार्जत ताभिक् षु ऊतिभिरश्विना गंतम्॥ १२॥

याभिः। रसाम्। क्षोदंसा। उद्नः। पिपिन्वर्थुः। अनुश्चम्। याभिः। रथम्। आर्वतम्। जि्षे। याभिः। विऽशोर्कः। उस्त्रियाः। उत्ऽआर्जत। ताभिः। कुम् इति। सु। कुतिऽभिः। अश्विना। अर्थ गृतस्रा। १९।।

पदार्थ:-(याभि:) शिल्पिक्रयाभिः (रसाम्) प्रशस्तं रसं जले विद्यते ग्रस्यां ताम्। रस इति उदकनामसु पठितम्। (निघं०१.१२) अत्रार्शआदित्वान्मत्वर्थीयोऽच्ना (क्षाहस्त) प्रवाहेण (उद्नः) जलस्य (पिपिन्वथुः) पिपूर्तम् (अनश्चम्) अविद्यमाना अश्वा तुरङ्गद्वयो यस्मिन् (याभिः) गमनागमनाख्याभिर्गतिभिः (रथम्) विमानादियानसमूहम् (आवतम्) रक्षतम् (जिषे) शत्रून् जेतुम् (याभिः) सेनाभिः (त्रिशोकः) त्रिषु दुष्टगुणकर्मस्वभावेषु श्रोको यस्य विदुषः सः (उस्रियाः) उस्रासु रश्मिषु भवा विद्युतः। उस्रा इति रश्मिनामसु पठितम्। (निघं १४५) (उदाजत) ऊर्ध्वं समन्तात् क्षिपतु। अत्र लोडर्थे लङ्। ताभिरित्यादि पूर्ववत्॥१२॥

अन्वयः-हे अश्वना! युवां याभिरुद्नः श्रीद्सा रसां) पिपिन्वथुर्याभिर्जिषेऽनश्चं रथमावतं याभिर्वा त्रिशोको विद्वानुस्त्रिया उदाजत ताभिरु ऊतिभिः स्वागतम्।

भावार्थ:-यथा सर्वशिल्पशास्त्रकुशेली विद्वान् विमानादियानेषु कलायन्त्राणि रचयित्वा तेषु जलविद्युदादीन् प्रयुज्य यन्त्रै: कलाः संचाल्य स्वाभीष्टे गमनागमने करोति तथैव सभासेनापती आचरेताम्॥१२॥

पदार्थ:-हे (अश्विना) अध्यापक और उपदेशको! आप दोनों (याभि:) जिन शिल्पक्रियाओं से (उद्न:) जल के (क्षोदम्र) प्रवाह के साथ (रसाम्) जिसमें प्रशंसित जल विद्यमान हो, उस नदी को (पिपिन्वथु:) पूरी करो अर्थात् नहर आदि के प्रबन्ध से उसमें जल पहुंचाओ, वा (याभि:) जिन आने—जाने की चालों से (जिषे) शत्रुओं को जीतने के लिये (अनश्वम्) विना घोड़ों के (रथम्) विमान आदि रथसमूह को (आवत्म्) राखो, वा (याभि:) जिन सेनाओं से (त्रिशोकः) जिनको दुष्ट गुण, कर्म, स्वभावों में शांक है, वह विद्वान् (उस्त्रियाः) किरणों में हुए विद्युत् अग्नि की चिलकों को (उदाजत) ऊपर को पहुंचावे, (ताभिक्ष) उन्हीं (ऊतिभिः) सब रक्षारूप उक्त वस्तुओं से (स्वागतम्) हम लोगों के प्रति अच्छे प्रकार आइये॥१२॥

मण्डल-१। अनुवाक-१६। सूक्त-११२

११२

भावार्थ:-जैसे सब शिल्पशास्त्रों में चतुर विद्वान् विमानादि यानों में कलायन्त्रों के उनमें जल विद्युत् आदि का प्रयोग कर, यन्त्र से कलाओं को चला, अपने अभीष्ट स्थान में जाना-आना करता है, वैसे ही सभा सेना के पित किया करें॥१२॥

पुनस्तौ काविव किं कुर्यातामित्युपदिश्यते॥

फिर वे किसके समान क्या करें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा/है॥

याभिः सूर्यं परियाथः परावति मन्धातारं क्षेत्रपत्येष्वावतम्। याभिर्विप्रं प्र भरद्वाजमार्वतं ताभिक्त षु ऊतिभिरश्चिना ग्तम्॥ १३

याभिः। सूर्यम्। पुरि्ऽयाथः। पुराऽवति। मुन्धातारम्। क्षेत्रेऽपत्येषु। आवेतम्। याभिः। विप्रम्। प्र। भुरत्ऽवाजम्। आवेतम्। ताभिः। ऊम् इति। सु। ऊतिऽभिः। अश्विना। आग्रागतम्॥१३॥

पदार्थ:-(याभि:) (सूर्यम्) प्रकाशमयम् (परियाथ:) सबेतः प्राप्नुतम् (परावित) विप्रकृष्टे मार्गे (मन्धातारम्) यानेन सद्यो दूरदेशं गमयितारं मेधाविनम्। प्रधातित प्रेष्ट्राविनामसु पठितम्। (निघं०३.१५) (क्षेत्रपत्येषु) क्षेत्राणां भूमण्डलानां पतयः पालकास्तेषां कर्मसु (आवतम्) रक्षतम् (याभिः) रक्षाभिः (विप्रम्) मेधाविनम् (प्र) (भरद्वाजम्) विद्यासद्गुणान् भरतां व्ययं विज्ञापयितारम् (आवतम्) विजानीतम्। अन्यत् पूर्ववत्॥१३॥

अन्वयः-हे अश्वना! शिल्पविद्यास्वामिभूत्यौ! युत्रां कर्णिरूतिभिः परावित सूर्यमिव मन्धातारं परियाथः। याभिः क्षेत्रपत्येषु तमावतं भरद्वाजं विप्रं च प्रावतं ताभिरू स्विणितस्तारे ३॥

भावार्थ:-व्यावहारिकजनैर्विमास्तिदयसिर्विमा दूरदेशेषु गमनागमने कर्त्तुमशक्यतेऽतो महान् लाभो भवितुं न शक्यते तस्मादेतत् सर्वद्वार्<u>र नुष्ठेयम्</u>॥१३॥

पदार्थ:-हे (अश्विना) शिल्पविद्या के स्वामी और भृत्यो! तुम दोनों (याभि:) जिन (ऊतिभि:) रक्षादि से (परावित) दूर देश में (मूर्चम्) प्रकाशमान सूर्य के समान (मन्धातारम्) विमानादि यान से शीघ्र दूर देश को पहुंचिन वाले बुद्धिमान् को (परियाथ:) सब ओर से प्राप्त होओ, (याभि:) जिन रक्षाओं से (क्षेत्रपत्येषु) माण्डलिक राजाओं के काम में उसकी (आवतम्) रक्षा करो और (भरद्वाजम्) विद्या सद्गुणों के भरण करनेवालों को समझानेवाले (विप्रम्) मेधावी पुरुष की (प्रावतम्) अच्छे प्रकार रक्षा करो, (त्राभि: उ) उन्हीं रक्षाओं से हम लोगों के प्रति (सु, आ, गतम्) प्राप्त हूजिये॥१३॥

भावार्थः-व्यवहार करनेवाले मनुष्यों से विमानादि यानों के विना दूसरे देशों में जाना-आना नहीं हो सकता, इससे बड़ा लाभ नहीं हो सकता। इस कारण नाव-विमानादि की रचना अवश्य सदा करनी च्याहियारका १२००

ऋग्वेदभाष्यम् अथ प्रजासेनाजनसभाध्यक्षै: परस्परं किं किं कर्त्तव्यमित्याह॥

अब प्रजा सेनाजन और सभाध्यक्ष को परस्पर क्या-क्या करना चाहिये, इस विषय को अगले

मन्त्र में कहा है॥

याभिर्महामितिथिग्वं केशोजुवं दिवोदासं शम्बर्हत्य आवेतम्।

याभिः पूर्भिद्ये त्रुसद्स्युमार्वतं ताभिक् षु ऊतिभिरिश्चना गतम्॥१४॥

याभिः। महाम्। अतिथिऽग्वम्। कृशःऽजुर्वम्। दिवःऽदासम्। शुम्बुरऽहत्ये। अवितम्। याभिः। पूःअभिद्ये। त्रसर्दस्युम्। आर्वतम्। ताभिः। ऊम् इति। सु। ऊतिऽभिः। अश्विना। आ। गतम्॥१४॥

पदार्थ:-(याभि:) (महाम्) महान्तम् पूज्यम् (अतिथिग्वम्) अविधिन् प्रोच्युवन्तम् (कशोजुवम्) कशांस्युदकानि जवयति गमयति तम्। कश इत्युदकनामसु पठितम्। (निघं०१.१२) (दिवोदासम्) दिवो विद्याधर्मप्रकाशस्य दातारम्। दिवश्च दास उपसंख्यानम्। (अष्टाञ्चा०६,३.११) इति षष्ट्या अलुक्। (शम्बरहत्ये) शम्बरस्य बलस्य हत्या हननं यस्मिन् युद्धादिष्णवहारे तिस्मिन्। शम्बरमिति बलनामसु पठितम्। (निघं०२.९) (आवतम्) रक्षतम् (याभिः) क्रियाभिः (पूर्षिके) शत्रूणां पुराणि भिद्यन्ते यस्मिन् संग्रामे तस्मिन् (त्रसदस्युम्) यो दस्युभ्यस्त्रस्यित तम् (आकृतम्) रक्षतम्। ताभिरिति पूर्ववत्॥१४॥

अन्वयः – हे अश्वना! राजप्रजयोः शूरवीरजनौ युवां शम्बरहत्ये याभिरूतिभिर्महामतिथिग्वं कशोजुवं दिवोदासं सेनापतिमावतम्। याभिः पूर्भिद्ये त्रसदस्युमावतं ताभिरु स्वागतम्।।१४॥

भावार्थ:-प्रजासेनाजनैः सकलविद्यं भूमिकं पुरुष्टं सभापतिं कृत्वा संरक्ष्य सर्वस्मै भयप्रदं दुष्टं तस्करं हत्वा सुखानि प्राप्तव्यानि प्रापयितव्यानि च॥१५/।

पदार्थ:-हे (अश्विना) राजा और प्रज में)शूरवीर पुरुषो! तुम दोनों (शम्बरहत्ये) सेना वा दूसरे के बल पराक्रम का मारना जिसमें हो इस युद्धादि व्यवहार में (याभि:) जिन (ऊतिभि:) रक्षाओं से (महाम्) बड़े प्रशंसनीय (अतिथिवम्) अतिथियों को प्राप्त होने, (कशोजुवम्) जलों को चलाने और (दिवोदासम्) दिव्य विद्यारूप कियाओं के हेनेवाले सेनापित की (आवतम्) रक्षा करो, वा जिन रक्षाओं से (पूर्भिद्ये) शत्रुओं के नम्स बिदीर्ण हों, जिससे उस संग्राम में (त्रसदस्युम्) डाकुओं से डरे हुए श्रेष्ठ जन की (आवतम्) रक्षा करो, (माभिः) उन्हीं रक्षाओं से हमारी रक्षा के लिये (सु, आ, गतम्) अच्छे प्रकार आइये॥ १४॥

भावार्थ:-प्रेण और सेना के मनुष्यों को योग्य है कि सब विद्या में निपुण धार्मिक पुरुष को सभापित कर उसकी सब प्रकार रक्षा करके सब को भय देनेवाले दुष्ट डाकू को मार के आप सुखों को प्राप्त हों और सब को सुखी करें॥१४॥

मनुष्यैर्वेद्यशिल्पपुरुषार्थिन: किमर्थं सेव्या इत्युपदिश्यते॥

मुख्यों को वैद्य और शिल्पविद्या में पुरुषार्थ रखनेवाले जन किसलिये सेवन करने योग्य हैं, यह

मण्डल-१। अनुवाक-१६। सूक्त-११२

विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

याभिर्वम्रं विपिपानम्पस्तुतं कृलि याभिर्वित्तर्जानि दुवस्यर्थः।

याभिर्व्यश्चमुत पृथिमार्वतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्चिना गंतम्॥१५॥३५॥ याभिः। वुम्रम्। विऽपिपानम्। उपुऽस्तुतम्। कुलिम्। याभिः। वित्तऽर्जानिम्। दुवस्यय्रे याभिः। विञ्जेश्चम्।

ुत। पृथिम्। आर्वतम्। ताभिः। ऊम् इति। सु। ऊतिऽभिः। अश्विना। आ। गृतुम्॥ १५॥ ८

पदार्थ:-(याभि:) (वप्रम्) रोगनिवृत्तये वमनकर्त्तारम् (विपिपानम्) औषधरसानां विविधं पानं कर्तुं शीलम् (उपस्तुतम्) उपगतैर्गुणैः प्रशंसितम् (किलम्) यः किरित् विक्षिपिति हुःखानि दूरीकरोति तं गणकं वा (याभिः) (वित्तजानिम्) वित्ता प्रतीता जाया हद्या स्त्री येन तुम्। अत्र जायाया निङ्। (अष्टा०५.४.१३४) इति जायाशब्दस्य समासान्तो निङादेशः (दुवस्यथः) परिचरतम् (याभिः) रक्षणिक्रयाभिः (व्यश्वम्) विविधा विगता वा अश्वास्तुरङ्गा अग्न्याद्यो वा यस्मिन् सैन्ये याने वा तम् (उत्) अपि (पृथिम्) विशालबुद्धिम् (आवतम्) कामयतम् (ताभिः) क्रूट्याद्विष्युर्ववत्॥१५॥

अन्वयः-हे अश्विना राजप्रजाजनौ! युवां याभिरूर्विभिषान्भुपस्तुतं कलिं वित्तजानिं वम्रं दुवस्यथः। याभिर्व्यश्चं दुवस्यथ उत याभिः पृथिमावतं ताभिरु नैरोग्यं स्वागतम्।।१९५५

भावार्थ:-मनुष्यै: सद्वैद्यद्वारोत्तमान्यौष्धानि स्रेविन्त्रा रोगान्निवार्य बलबुद्धौ वर्धित्वा सेनापतिं शिल्पिनं विस्तृतपुरुषार्थिनं च जनं संसेव्य शुरीरात्मसुखानि सततं लब्धव्यानि॥१५॥

पदार्थ:-हे (अश्विना) राज प्रजाननों तुम (याभिः) जिन (ऊतिभिः) रक्षाओं से (विपिपानम्) विशेष कर ओषधियों के रसों को जो पीने के स्वभाववाला (उपस्तुतम्) आगे प्रतीत हुए गुणों से प्रशंसा को प्राप्त (किलम्) जो सब दुःखों से दूर करने वा ज्योतिष शास्त्रोक्त गणितविद्या को जाननेवाला (वित्तजानिम्) और जिसने हृद्ध्य को प्रिय सोदर स्त्री पाई हो उस (वम्रम्) रोगनिवृत्ति करने के लिये वमन करते हुए पुरुष की (दुवस्थ्यः) सेवा करो, (याभिः) वा जिन रक्षाओं से (व्यश्वम्) विविध घोड़े व अग्न्यादि पदार्थों से युक्त सेना वा यान की सेवा करो (उत) और (याभिः) जिन रक्षाओं से (पृथिम्) विशाल बुद्धिवाले पुरुष की (अवतम्) रक्षा करो (ताभिः, उ) उन्हीं से आरोग्य को (सु, आ, गतम्) अच्छे प्रकार सब अरू से प्राप्ति हुजिये॥१५॥

भावार्थ: मनुष्यों को उचित है कि सद्वैद्यों के द्वारा उत्तम ओषधियों के सेवन से रोगों का निवारण, जल और बुद्धि को बढ़ा सेना के अध्यक्ष और विस्तृत पुरुषार्थयुक्त शिल्पीजन की सम्यक् सेवा कर शुरीर और आत्मा के सुखों को प्राप्त होवें॥१५॥

अथाध्यापकोपदेशकाभ्यां किं कर्तव्यमित्याह।।

अब अध्यापक और उपदेशकों को क्या करना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

याभिर्नरा श्यवे याभिरत्रये याभिः पुरा मनवे गातुमीषर्थः।

याभिः शारोराजतुं स्यूमरश्मये ताभिक् षु ऊतिभिरश्चिना गतम्॥ १६॥

याभिः नुरा। श्यवे। याभिः। अत्रये। याभिः। पुरा। मनवे। गातुम्। ईषर्थुः। याभिः। शारीः। आर्जतम्। स्यूर्मऽरश्मये। ताभिः। कुम् इति। सु। कुतिऽभिः। अश्विना। आ। गतुम्॥१६॥

पदार्थ:-(याभि:) (नरा) नयनकर्तारो (शयवे) सुखेन शयनशीलाय (याभि:) अत्रये) अविद्यमाना आत्मिकवाचिकशारीरिकदोषा यस्मिस्तस्मै (याभि:) (पुरा) पूर्वम् (मनवे) धार्मिकप्रजापतये राज्ञे। प्रजापतिर्वे मनु:। (शत०६.४.३.१९) (गातुम्) पृथिवीम्। गातुरिति पृथिवीनामसु पठितम्। (निघं०१.१) गातुमिति वाङ्नामसु पठितम्। (निघं०१.११) (ईषर्थु:) प्रापितुमिच्छतम् (याभि:) (शारी:) शराणामिमा गती: (आजतम्) जानीतम् (स्यूमरश्मये) स्यूमाः संयुक्तिशमयो न्यायदीप्तयो यस्य तस्मै (ताभि:०) इत्यादि पूर्ववत्॥१६॥

अन्वयः-हे नराऽश्विनाध्यापकोपदेशकौ विद्वांसौ! युवां पूस याभिक्तिभः शयवे शान्तिर्याभिरत्रये सर्वाणि सुखानि याभिर्मनवे गातुं चेषथुः। याभिः स्यूमरश्मये न्यायकारिणे अपूर्याभः शत्रुभ्यः शारीराजतं ताभिरु स्वसेनारक्षायै स्वागतम्॥१६॥

भावार्थ:-अध्यापकोपदेशकयोरिदं योग्यमस्ति विद्योध्नर्मीपदेशेन सर्वान् जनान् विदुषो धार्मिकान् सम्पाद्य पुरुषार्थिनः सततं कुर्य्याताम्॥१६॥

पदार्थ:-हे (नरा) उत्तम कार्य हें प्रवृति कुरनिवाले (अश्विना) सब विद्याओं के पढ़ाने और उपदेश करनेवाले विद्वान् लोगो! तुम द्रोनों (पूरा) प्रथम (याभि:) जिन (ऊतिभि:) रक्षाओं से (शयवे) सुख से शयन करनेवाले को शान्ति, वा (याभि:) जिन रक्षाओं से (अत्रये) शरीर, मन, वाणी के दोषों से रिहत पुरुष के लिये सब सुख और (याभि:) जिन रक्षाओं से (मनवे) मननशील पुरुष के लिये (गातुम्) पृथिवी वा उत्तम वाणी को (ईपथु:) प्राप्त कराने की इच्छा करो वा (याभि:) जिन रक्षाओं से (स्यूमरशमये) सूर्यवत् संयुक्त न्यायप्रकाश करनेवाले पुरुष के लिये सुख की इच्छा करो वा जिनसे शत्रुओं को (शारी:) बाणों की गतियों को (आजतम्) प्राप्त कराओ (ताभिरु) उन्हीं रक्षाओं से अपनी सेनाओं की रक्षा के लिये (सु, आ, गतम्) अच्छे प्रकार उत्साह को प्राप्त हुजिये॥१६॥

भावार्थ:-अध्यापक और उपदेष्टाओं को यह योग्य है कि विद्या और धर्म के उपदेश से सब जनों को विद्वान् भार्मिक करके पुरुषार्थयुक्त निरन्तर किया करें॥१६॥

अथ सभासेनापतिभ्यां कथमनुष्ठेयमित्याह॥

अवस्मिभापति और सेनापति को कैसा अनुष्ठान करना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा

है॥

मण्डल-१। अनुवाक-१६। सूक्त-११२

याभिः पठवीं जठरस्य मुज्मनाग्निर्नार्नादीदेच्चित इद्धो अज्मन्ना।

याभि: शर्यातमवंथो महाधने ताभिक् षु ऊतिभिरश्चिना गंतम्।। १७॥

याभिः। पर्वर्वा। जर्ठरस्य। मुज्मनां। अग्निः। न। अदीदेत्। चितः। इद्धः। अज्मन्। आ<u>र्थाः याभिः।</u> शर्यातम्। अर्वथः। मुहाऽधुने। ताभिः। कुम् इतिं। सु। कुतिऽभिः। अश्विना। आ। गृतुम्॥ १७॥

पदार्थ:-(याभि:) (पठवां) ये पठिन्त तान् विद्यार्थिन ऋच्छिति प्राप्नोबि स सेनाध्यक्षः (जठरस्य) उदरस्य मध्ये। जठरमुदरं भवित जग्धमिस्मन् ध्रियते धीयते वा। (निरु०४ क्रि) (मज्मना) बलेन (अग्निः) पावकः (न) इव (अदीदेत्) प्रदीप्येत्। दीदयतीति ज्वलितकर्मस् पठितम्। (निघं०१.१६) अत्र दीदिधातोर्लिङ प्रथमैकवचने शपो लुक्। (चितः) इन्धनैः संयुक्तः (इद्धः) वदीप्तः (अज्मन्) अजन्ति प्रक्षिपन्ति शत्रून् यस्मिस्तत्र (आ) (याभिः) (शर्य्यातम्) शार्षे हिसकान् प्राप्तम् (अवथः) रक्षथः (महाधने) महान्ति धनानि यस्मात् तस्मिस्ताभिरिति पूर्ववत्॥१७॥

अन्वय:-हे अश्विना! युवां याभिरूतिभिः पठवां मज्मता मठरस्य मध्ये चित् इद्धोऽग्निर्नेवाज्मन् महाधन आदीदेत्। याभिः शर्य्यातमवथस्ताभिरु प्रजासेनारक्षार्थं स्वागतम्॥१७॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। यथा कश्चित् श्राय्योदिपुणे: शुम्भमानौ राजा रक्ष्यान् रक्षेत्, घात्यान् हन्यादिग्निर्वनिमव शत्रुसेना दहेत्, शत्रुणां मह्मन्ति धनानि प्रापय्यानन्दयेत्, तथैव सभासेनापतिभ्यामनुष्ठेयम्॥१७॥

पदार्थ:-हे (अश्वना) सभा और प्रेन के अधीश! तुम दोनों (याभि:) जिन (ऊतिभि:) रक्षाओं से (पठर्वा) पढ़नेवाले विद्यार्थियों को प्रोप्त होता वा (मज्मना) बल से (जठरस्य) उदर के मध्य (चित:) सञ्चित किये (इद्ध:) प्रदीप्त (अभि:) अग्नि के (न) समान (अज्मन्) जिसमें शत्रुओं को गिराते हैं, उस बड़े-बड़े धन की प्राष्ट्रि (करानेहारे युद्ध में (आ, अदीदेत्) अच्छे प्रदीप्त होवें, वा (याभि:) जिन रक्षाओं के (शर्य्यातम्) हिंसा करनेहारे को प्राप्त पुरुष की (अवथ:) रक्षा करो, (ताभिरु) इन्हीं रक्षाओं से प्रजा सेना की रक्षा के लिए (सु. अग्वगतम्) आया-जाया कीजिये॥१७॥

भावार्थ:-इस मन्त्र पे उपमालङ्कार है। जैसे कोई शौर्थ्यादि गुणों से शोभायमान राजा रक्षणीय की रक्षा करे और मारने योग्यों को मारे और जैसे अग्नि वन का दाह करे, वैसे शत्रु की सेना को भस्म करे और शत्रुओं के बहु-बड़े धनों को प्राप्त कराकर आनन्दित करावे, वैसे ही सभा और सेना के पित काम किया करें। रूप।

अथ सर्वे राजजनै: किंवत्सुखानि भोग्यानीत्याह॥

क्रा सुब राजजनों को किसके तुल्य सुख भोगने चाहिये, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में

१२०४

ऋग्वेदभाष्यम् किया है॥

याभिरङ्गिरो मनसा निर्ण्यथोऽयं गच्छथो विवरे गोर्अर्णसः। याभिर्मनुं शूरिम्षा समावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्॥१८॥

याभिः। अङ्गिरः। मनसा। निऽर्ण्यर्थः। अर्थम्। गच्छथः। विऽवरे। गोऽअर्णसः। याभिः। मनुम्। शूरेम्। इषा। सुम्ऽआवतम्। ताभिः। कुम् इति। सु। कुतिऽभिः। अश्विना। आ। गृतुम्॥ १८॥

पदार्थ:-(याभि:) (अङ्गिर:) अङ्गिति जानाति यो विद्वांस्तत्सम्बुद्धौ (मनसा) विज्ञानेन (निरण्यथ:) नित्यं रणथो युद्धमाचरथ:। अत्र विकरणव्यत्ययेन श्यन्। (अग्रम्) उत्तमिक्वयम् (गच्छथ:) (विवरे) अवकाशे (गोअर्णस:) गौ: पृथिव्याः जलस्य च। अत्र सर्वत्र विभाषा गोरिति प्रकृतिभावः। (याभि:) (मनुम्) युद्धज्ञातारम् (शूरम्) शत्रुहिंसकम् (इषा) इच्छिं। (समावतम्) सम्यग् रक्षतम् (ताभि:०) इति पूर्ववत्॥१८॥

अन्वयः – हे अङ्गिरस्त्वं मनसा विद्याधर्मौ सर्वान् बोधया हे अश्विन! सेनापालकयोधियतारौ युवां याभिरूतिभिर्गोअर्णसो विवरे निरण्यथोऽग्रं गच्छथो याभिः शूरं मनुं सुमावतं ताभिरू इषाऽस्मद्रक्षणाय स्वागतम्॥ १८॥

भावार्थ:-यथा विद्वान् विज्ञानेन सर्वाणि सुखानि साध्योति तथा सर्वे राजजनैरनेकै: साधनै: पृथिव्या नदीसमुद्रादाकशस्य मध्ये शत्रुन् विजित्य सुख्रानि सुष्टु राज्यव्यानि॥१८॥

पदार्थ:-हे (अङ्गिर:) जाननेहारे विद्वान ते (मनस्प्र) विज्ञान से विद्या और धर्म्म का सबको बोध करा। हे (अश्विना) सेना के पालने और श्रुद्ध करानेहार जन! तुम (याभि:) जिन (ऊतिभि:) रक्षाओं के साथ (गोअर्णस:) पृथिवी जल के (विवरे) अवक्राश में (निरण्यथ:) संग्राम करते और (अग्रम्) उत्तम विजय को (गच्छथ:) प्राप्त होते वो (याभि) जिन रक्षाओं से (श्रूरम्) शूरवीर (मनुम्) मननशील मनुष्य को (समावतम्) सम्यक् रक्षा करें (ताभिक्त) उन्हीं रक्षा और (इषा) इच्छा से हमारी रक्षा के लिये (सु, आ, गतम्) उचित समय कर अध्या काजिये॥१८॥

भावार्थ:-जैसे विद्वान किंचान से सूब सुखों को सिद्ध करता है, वैसे सब राजपुरुषों को अनेक साधनों से पृथिवी, नदी और समुद्र से आकाश के मध्य में शत्रुओं को जीत के सुखों को अच्छे प्रकार प्राप्त होना चाहिये॥१८॥

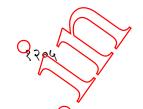
अथ स्त्रीपुंसाभ्यां कथं कदा विवाह: कार्य इत्याह॥

अब स्त्री पुरुष को कैसे और कब विवाह करना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

याभिः पेलीविमदायं न्यूहथुरा घं वा याभिरक्रणीरशिक्षतम्।

याभि: सुदासं ऊहथुं: सुदेव्यं र्रं ताभिंकः षु ऊतिभिरश्चिना गंतम्॥१९॥

मण्डल-१। अनुवाक-१६। सूक्त-११२



याभिः। पत्नीः। विऽमदार्य। निऽऊहर्थुः। आ। घ। वा। याभिः। अरुणीः। अशिक्षतम्। याभिः। सुऽदासे। ऊहर्थुः। सुऽदेव्यम्। ताभिः। ऊम् इति। सु। ऊतिऽभिः। अश्विना। आ। गृतम्॥१९॥

पदार्थ:-(याभि:) (पत्नी:) पत्युर्यज्ञसंबन्धिनीर्विदुषी: (विमदाय) विविधानन्दाय (न्यूह्यू:) नितरां वहतम् (आ) (घ) एव (वा) पक्षान्तरे (याभि:) (अरुणी:) ब्रह्मचारिणी: कन्याः (अशिक्षतम्) प्राठयतम् (याभि:) (सुदासे) सुष्ठुदाने (ऊह्यु:) प्राप्नुतम् (सुदेव्यम्) सुष्ठु देवेषु विद्वत्स् भवं विज्ञानम् (साभि:०) इति पूर्ववत्॥१९॥

अन्वयः - हे अश्विनाध्यापकाध्येतारौ! युवां याभिरूतिभिर्विमदाय स्तिनिर्मृहेशः। याभिरूतिभिररुणी - धैंवाशिक्षतम्। याभिः सुदासे सुदेव्यमूहथुश्च ताभिर्विद्या उ विनयं स्वागतम्॥१९

भावार्थ:-सुखं जिगमिषुभि: पुरुषै: स्त्रीभिश्च धर्मसेवितेन ब्रह्मचर्थ्येण च पूर्णां विद्यां युवावस्थां च प्राप्य स्वतुल्यतयैव विवाह: कर्त्तव्योऽथवा ब्रह्मचर्य एव स्थित्वा सर्वद्गं स्त्रीपुरुषाणां सुशिक्षा कार्या, निह तुल्यगुणकर्मस्वभावैर्विना गृहाश्रमं धृत्वा केचित् किञ्चिद्धि सुखें सुसंतानं प्राप्तुं शक्नुवन्त्यत एवमेव विवाह: कर्त्तव्य:॥१९॥

पदार्थ:-हे (अश्विना) पढ़ने-पढ़ानेहारे ब्रह्मचारी लोगों: तुम (याभि:) जिन (ऊतिभि:) रक्षाओं से (विमदाय) विविध आनन्द के लिये (पत्नी:) पित्त के साथ यज्ञसम्बन्ध करनेवाली विदुषी स्त्रियों को (न्यूह्यु:) निश्चय से ग्रहण करो, (वा) वा (याभि:) जिन रक्षाओं से (अरुणी:) ब्रह्मचारिणी कन्याओं को (घ) ही (आ, अशिक्षतम्) अच्छे प्रकार शिक्षा करों और (याभि:) जिन रक्षादि क्रियाओं से (सुदासे) अच्छे प्रकार दान करने में (सुदेव्यम्) उत्तम विद्वानों में उत्पन्न हुए विज्ञान को (ऊह्यु:) प्राप्त कराओ, (ताभि:) उन रक्षाओं से विद्या (उ) और बिनय को (सु, आ, गतम्) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये॥१९॥

भावार्थ:-सुख पाने की इच्छा करमेबाले पुरुष और स्त्रियों को धर्म से सेवित ब्रह्मचर्य से पूर्ण विद्या और युवावस्था को प्राप्त होकर अपनी ब्रुल्यता से ही विवाह करना योग्य है अथवा ब्रह्मचर्य ही में उहर के सर्वदा स्त्री-पुरुषों को अच्छी शिक्षा करना योग्य है, क्योंकि तुल्य गुण-कर्म-स्वभाववाले स्त्री-पुरुषों के विना गृहाश्रम को अप्रूण करके कोई किञ्चित् भी सुख वा उत्तम सन्तान को प्राप्त होने में समर्थ नहीं होते, इससे इसी प्रकार विवाह करना चाहिये॥१९॥

अथ सभाध्यक्षादिराजपुरुषै: कथं भवितव्यमित्याह॥

अब सभाध्यक्ष आदि राजपुरुषों को कैसा होना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

याभिः शंतीती भवेथो ददाशुषे भुज्युं याभिरवेथो याभिरधिगुम्।

अर्पेखार्वतीं सुभरामृतस्तुभुं ताभिरू षु ऊतिभिरिश्चना गतम्॥२०॥३६॥

याभिः। शंतातो इति शम्ऽताती। भवेथः। दुदाशुषे। भुज्युम्। याभिः। अवेथः। याभिः। अधिऽगुम्। ओम्याऽवंतीम्। सुऽभराम्। ऋतुऽस्तुभम्। ताभिः। ऊम् इति। सु। ऊतिऽभिः। अश्विना। आ। गुतुम्॥२०॥

पदार्थ:-(याभि:) (शन्ताती) शं सुखस्य कर्तारौ। अत्र शिवशमरिष्टस्य करे। (अष्टार्व्ह १९६३) इति तातिल् प्रत्ययः। (भवथः) भवतम् (ददाशुषे) विद्यासुखे दातुं शीलाय (भुज्युम्) सुखस्य भावतारं पालकं वा (याभिः) (अवथः) (याभिः) (अधिगुम्) इन्द्रं परमैश्वर्यवन्तम्। इन्द्रोऽष्वश्चिगुरुच्यते। (निरु०५.११) (ओम्यावतीम्) अवन्ति त ओमास्तेषु भवा प्रशस्ता विद्या तद्वतीम् (सुभराम्) सुष्टु) विभ्रति सुखानि यया ताम् (ऋतस्तुभम्) यया ऋतं स्तोभते स्तभ्नाति धरति (ताभिः०) इति पूर्ववत्।।२०॥

अन्वयः-हे अश्विना सभासेनेशौ! युवां ददाशुषे याभिरूतिभिः शन्ताती भवशो भवतं याभिर्भुज्युमवथोऽवतं याभिरिधृगुमोम्यावतीमृतस्तुभं सुभरां नीतिमवथोऽवतं ताभिरु ऊतिभिः सत्यं स्वागत्रम्। २०॥

भावार्थ:-राजादिभि: राजपुरुषै: सर्वस्य सुखकारिभिभीवित्रव्यम्। आप्तविद्यानीती धृत्वा मङ्गलमाप्तव्यम्॥२०॥

पदार्थ:-हे (अश्विना) सभा और सेना के अधीशो! तुम दोनों (द्वेशुषे) विद्या और सुख देनेवाले के लिये (याभि:) जिन (ऊतिभि:) रक्षा आदि क्रियाओं (प्राप्ताती) सुख के कर्ता (भवथ:) होते वा (याभि:) जिन रक्षाओं से (भुज्युम्) सुख के भोकता वा पालन करनेहारे की (अवथ:) रक्षा करते वा (याभि:) जिन रक्षाओं से (अधिगुम्) परमैश्वर्यवाले इन्द्र और (ओम्यावतीम्) रक्षा करनेहारे विद्वानों में उत्पन्न जो उत्तम विद्या उससे युक्त (सुभराम्) जिससे कि अच्छे प्रकार सुखों को (ऋतस्तुभम्) और सत्य का धारण होता है, उस नीति की रक्षा करते हो, (ताभिक) उन्हीं रक्षाओं से सत्य को (सु, आ, गतम्) अच्छे प्रकार प्राप्त होओ॥२०॥

भावार्थ:-राजादि राजपुरुषों की योग्य हैं कि सबको सुख देवें और आप्त पुरुषों की विद्या और नीति को धारण कर कल्याण को याप्त होवें।। २०॥

पुनस्तै: किं किं कार्व्यमित्याह॥

फिर उन लोगों को क्या क्या करना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

याभिः कृशानुपर्मं दुन्स्यथी जुवे याभिर्यूनो अर्वन्तमावतम्।

मधु प्रियं भरथो यत्सरइभ्यस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्चिना गतम्॥२१॥

याभि तकुशासुम्। असने। दुवस्यर्थः। जुवे। याभिः। यूर्नः। अर्वन्तम्। आर्वतम्। मधुं। प्रियम्। भुरुथः। यत्। सुरद्ऽभ्यः। ताथिः। कुम् इति। सु। कुतिऽभिः। अश्विना। आ। गृतुम्॥ २१॥

पदार्थ:-(याभि:) (कृशानुम्) कृषम् (असने) क्षेपणे (दुवस्यथः) परिचरतम् (जवे) वेगे (याभि:) (यूनः) यौवनस्थान् वीरान् (अर्वन्तम्) वाजिनम् (आवतम्) पालयतम् (मधु) मिष्टमन्नादिकम्

मण्डल-१। अनुवाक-१६। सूक्त-११२



(प्रियम्) (भरथः) धरतम् (यत्) (सरड्भ्यः) युद्धे विजयकर्तृसेनाजनादिभ्यः (तार्भिः) इति पूर्ववत्॥२१॥

अन्वय:-हे अश्वना सभासेनेशौ! युवां याभिरूतिभिरसने कृशानुं दुवस्यथ:। याभिर्जवे (युनोऽर्क्ननं चावतमु सरड्भ्यो यत् प्रियं तन्मधु च भरथस्ताभी राष्ट्रपालनाय स्वागतम्॥२१॥

भावार्थ:-राजपुरुषाणां योग्यमस्ति दु:खै: कृशितान् प्राणिनो यौवनावस्थान् व्यभिचारात्रालयेयु:, अश्वादिसेनाङ्गरक्षार्थं सर्वं प्रियं वस्तु संभरन्तु प्रतिक्षणं समीक्षया सर्वान् वर्धयेयु:।।२१॥

पदार्थ:-हे (अश्विना) सभा और सेना के अधीशो! तुम दोनों (याभि) जिने (ऊतिभिः) रक्षादि क्रियाओं से (असने) फेंकने में (कृशानुम्) दुर्बल की (दुवस्यथः) सूर्व करो, वा (याभिः) जिन रक्षाओं से (जवे) वेग में (यूनः) युवावस्था युक्त वीरों (अर्वन्तम्) और घ्रोड़े की (आवतम्) रक्षा करो (उ) और (सरइभ्यः) युद्ध में विजय करनेवाले सेनादि जनों से (यत्) जो (प्रियम्) क्रीमना के योग्य है उस (मधु) मीठे अन्न आदि पदार्थ को (भरथः) धारण करो, (ताभिः) उन रक्षाओं से युक्त होकर राज्यपालन के लिये (सु, आ, गतम्) अच्छे प्रकार आया कीजिये॥ २१॥

भावार्थ:-राजपुरुषों को योग्य है कि दु:खों से पीड़ित प्राणियों और युवावस्थावाले स्त्री-पुरुषों की व्यभिचार से रक्षा करें और घोड़े आदि सेन के अङ्गों की रक्षा के लिये सब प्रिय वस्तु को धारण करें, प्रतिक्षण सम्हाल से सबको बढ़ाया करें॥ १९॥

पुनस्तैर्युंद्धे कथमाचरणीयमित्याह॥

फिर उनको युद्ध में कैसा आञ्चरण करचा माहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

याभिर्नरं गोषुयुधं नृषाह्ये क्षेत्रस्य साता तनयस्य जिन्वंथः।

याभी रथाँ अवेथो साभिरर्वितस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्चिना गेतम्॥२२॥

याभिः। नर्रम्। गोषुऽसुर्धम्। न्रुउसही। क्षेत्रस्य। साता। तनयस्य। जिन्वथः। याभिः। रथान्। अवथः। याभिः। अर्वतः। ताभिः। कुम् इति। सु। क्रिकिः। अश्विना। आ। गतुम्॥२२॥

पदार्थ:-(याभि:) (नरम्) नेतारम् (गोषुयुधम्) पृथिव्यादिषु योद्धारम् (नृषाह्ये) नृभिः षोढव्ये (क्षेत्रस्य) स्त्रियाः (पाता) संभजनीये संग्रामे। सप्तम्येकवचनस्य डादेशः। (तनयस्य) (जिन्वथः) प्रीणीत (याभिः) (रथान्) विमानादियानानि (अवथः) वर्धयेतम् (याभिः) (अर्वतः) अश्वान् (ताभिः०) इति पूर्ववत्। रूरा

अस्वय:-हे अश्विना सभासेनाध्यक्षौ! युवां नृषाह्ये साता संग्रामे याभिरूतिभिर्गोषु युधं नरं जिन्वथो याभिः क्षेत्रस्य तुम्वस्य जिन्वथ उ याभी रथानर्वतोऽवथस्ताभिः सर्वाः प्रजाश्च संरक्षितुं स्वागतम्॥२२॥ १२०८

ऋग्वेदभाष्यम्

भावार्थ:-मनुष्यैर्युद्धे शत्रून् हत्वा स्वभृत्यादीन् संरक्ष्य सेनाङ्गानि वर्धनीयानि न जातु स्त्री बालकी हन्तव्यौ नायोद्धा संप्रेक्षका दूताश्चेति॥२२॥

पदार्थ:-हे (अश्विना) सभासेना के अध्यक्ष तुम दोनों! (नृषाह्रो) वीरों को सहने और (साता) सेवन करने योग्य संग्राम में (याभि:) जिन (ऊतिभि:) रक्षाओं से (गोषुयुधम्) पृथिवी पर युद्ध करनेहारे (नरम्) नायक को (जिन्वथ:) प्रसन्न करो (याभि:) वा जिन रक्षाओं से (क्षेत्रस्य) स्त्री और (तनयस्य) सन्तान को प्रसन्न रक्खो (3) और (याभि:) जिन रक्षाओं से (रथान्) रथों (अवतः) और घोड़ों की (अवथः) रक्षा करो (ताभि:) उन रक्षाओं से सब प्रजाओं की रक्षा करने को (सु. अर, गतम्) अच्छे प्रकार प्रवृत्त हूजिये॥२२॥

भावार्थ:-मनुष्यों को योग्य है कि युद्ध में शत्रुओं को मार अपने भूत्य आहि की रक्षा करके सेना के अङ्गों को बढ़ावें और स्त्री, बालकों, युद्ध के देखनेवाले और दूतों को कभी न मारें॥२२॥

अथ ते दुष्टनिवृत्तिं श्रेष्ठरक्षां कथं कुर्युरित्योह।।

अब वे राजजन दुष्टों की निवृत्ति और श्रेष्ठों की रक्षा कैसे करें, इस विषुध को अगले मन्त्र में कहा

है॥

याभिः कुत्समार्जुनेयं शतकत् प्र तुर्वीति प्र च द्रभीतिपार्वतम्। याभिर्ध्वसन्तिं पुरुषन्तिमार्वतं ताभिरू कुर्कतिभिरिश्चना गतम्॥२३॥

याभिः। कुत्सम्। आर्जुनेयम्। शतकृत् इति शत्रुकृत्। प्रा तुर्वीतिम्। प्रा च। द्रभीतिम्। आर्वतम्। याभिः। ध्वसन्तिम्। पुरुरसन्तिम्। आर्वतम्। ताभिः। कुर्न्स्ति। सु। कुर्तिऽभिः। अश्विना। आ। गृतम्।।२३।।

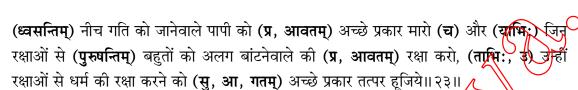
पदार्थ:-(याभि:) (कुत्सम्) वृज्ञम् (आर्जुनेयम्) अर्जुनेन रूपेण निर्वृत्तम्। अत्र चातुरिर्थको ढक्। (शतक्रतू) शतं प्रज्ञा कर्माणि वा ययोस्तौ (प्र) (तुर्वीतिम्) हिंसकम्। अत्र बाहुलकात् कीतिः प्रत्ययः। (प्र) (च) समुच्चये (दभीतिम्) दिस्पनम् (आवतम्) हन्यातम् (याभिः) (ध्वसन्तिम्) अधोगन्तारं पापिनम् (पुरुषन्तिम्) पुरूणां बहूनां सन्ति विभाजितास्म् (आवतम्) रक्षतम् (ताभिः) इति पूर्ववत्॥२३॥

अन्वयः-हे शतक्रत् अश्विना संभासेनेशौ! युवां याभिरूतिभिः सूर्यचन्द्रवत् प्रकाशमानौ सन्तावार्जुनेयं कुत्सं सङ्गृह्य तुर्वीतिं दभीतिं ध्वसन्तिं प्रावतम्। याभिः पुरुषन्तिं च प्रावतं ताभिरु धर्मं रक्षितुं स्वागतम्॥२३॥

भावार्थः राजादिमनुष्यः शस्त्रास्त्रप्रयोगान् विदित्वा दुष्टान् शत्रून् निवार्य यावन्तीहाधर्मयुक्तानि कर्माणि सिन्द्गि तार्वन्ति धर्मोपदेशेन निवार्य विविधा रक्षा विधाय प्रजाः सम्पाल्य परमानन्दो भोक्तव्यः। १२३॥

पदार्थ:-है (शतक़तू) असंख्योत्तम बुद्धिकर्मयुक्त (अश्विना) सभा सेना के पित! आप दोनों (यार्भि:) जिप (ऊतिभि:) रक्षा आदि से सूर्य-चन्द्रमा के समान प्रकाशमान होकर (आर्जुनेयम्) सुन्दर रूप के साथ सिद्ध किये हुए (कुत्सम्) वज्र का ग्रहण करके (तुर्वीतिम्) हिंसक (दभीतिम्) दम्भी

मण्डल-१। अनुवाक-१६। सूक्त-११२



भावार्थ:-राजादि मनुष्यों को योग्य है कि शस्त्रास्त्र प्रयोगों को जान, दुष्ट्र शत्रुओं का निवारण करके, जितने इस संसार में अधर्मयुक्त कर्म हैं उतनों का धर्म्मोपदेश से निवारण कर, नाना प्रकार की रक्षा का विधान कर, प्रजा का अच्छे प्रकार पालन करके परम आनन्द का भोग किया करें। २३॥

अध्यापकोपदेशकाभ्यां किं कर्त्तव्यमित्याह।।

अध्यापक और उपदेशकों को क्या करना चाहिये, इस विषय का अगले पन्त्र में कहा है।।

अप्नस्वतीमश्चिना वार्चमस्मे कृतं नो दस्रा वृषणा मनीषाम्। अद्यूत्येऽवसे नि ह्वये वां वृधे च नो भवतं वार्जसतौ। २४।

अप्नस्वतीम्। अश्विनाः। वार्चम्। अस्मे इति। कृतम्। मृः। हुस्ताः वृष्णाः। मृनीषाम्। अद्यूत्ये। अवसे। नि। हुये। वाम्। वृष्टे। चा नः। भवतम्। वार्जंऽसातौ॥२४॥

पदार्थ:-(अप्नस्वतीम्) प्रशस्तापत्ययुक्तम् (अश्वनी) आप्तावध्यापकोपदेशकौ (वाचम्) वेदादिशास्त्रसंस्कृतां वाणीम् (अस्मे) अस्मासु (कृतम्) कुरुतम्। अत्र विकरणस्य लुक्। (नः) अस्मभ्यम् (दस्ना) दुःखोपक्षयितारौ (वृषणा) सुखाभिवर्षकौ (पनीषाम्) योगविज्ञानवतीं बुद्धिम् (अद्यूत्ये) द्यूते भवो व्यवहारो द्यूत्यश्छलादिदूषितस्तद्भित्रे (अवसे) पक्षणाद्याय (नि) नितराम् (ह्वये) आह्वानं कुर्वे (वाम्) युवाम् (वृधे) सर्वतो वर्धनाय (च) अन्यषां समुच्चये (नः) अस्माकम् (भवतम्) (वाजसातौ) युद्धादिव्यवहारे॥ २४॥

अन्वयः-हे दस्रा वृषणार्शिश्वनाध्यापकोपवेशकौ! युवामस्मेऽस्मभ्यमप्नस्वतीं वाचं कृतम्। अद्यूत्ये नोऽवसे मनीषां कृतम्। वाजसातौ नोऽस्माकमन्येषां च्यवृधे सततं भवतम्। एतदर्थं वां युवामहं निह्वये॥२४॥

भावार्थ:-न खेलु किश्चिद्धेयाप्तयोर्विदुषोः समागमेन विना पूर्णविद्यायुक्तां वाचं प्रज्ञां च प्राप्तुमर्हति, नह्येते अन्तरा शत्रुज्यमभितो वृद्धिं च॥२४॥

पदार्थ; -हैं (दस्ना) सब के दु:खनिवारक (वृषणा) सुख को वर्षानेहारे (अश्विना) अध्यापक उपदेशक लोगी! तुम दोनों (अस्मे) हम में (अप्नस्वतीम्) बहुत पुत्र-पौत्र करनेहारी (वाचम्) वाणी को (कृतम्) कीजिये (अद्यूत्ये) छलादि दोषरहित व्यवहार में (न:) हमारी (अवसे) रक्षादि के लिये (मनीप्राम्) सोग विज्ञानवाली बुद्धि को कीजिये (वाजसातौ) युद्धादि व्यवहार में (न:) हमारी (च) और

१२१० अन्य लोगों की (वृधे) वृद्धि के लिये निरन्तर (भवतम्) उद्यत हुजिये, इसीके लिये (वाम्) तुम दोनों <mark>के</mark>

मैं (निह्वये) नित्य बुलाता हुं॥२४॥

भावार्थ:-कोई भी पुरुष आप्त विद्वानों के समागम के विना पूर्ण विद्यायुक्त वाणी और बुद्धि को प्राप्त नहीं हो सकता, न इन दोनों के विना शत्रुओं का जय और सब ओर से बढ़ती को श्रीप्त हो सकता है॥ २४॥

पनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

द्युभिरक्तुभिः परि पातमस्मानरिष्टेभिरश्चिना सौभंगेभिः। तन्नी मित्रो वर्मणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत्त औः॥२५॥३७॥७॥

द्युऽभिः। अक्तुऽभिः। परि। पातुम्। अस्मान्। अरिष्टेभिः। अश्विनाः सौभरिभिः। तत्। नः। मित्रः। वर्रुणः। मुमुहुन्ताम्। अदिति:। सिन्धु:। पृथिवी। उत। द्यौ:॥२५॥

पदार्थ:-(द्युभि:) दिवसै: (अक्तुभि:) रात्रिभि: स्रृह वर्तमान्। (परि) सर्वत: (पातम्) रक्षतम् (अस्मान्) भवदाश्रितान् (अरिष्टेभिः) हिंसितुमनहैंः (अश्चिन्) (स्प्रीभगेभिः) शोभनैश्वर्यैः (तत्) (नः) (मित्र:) (वरुण:) (मामहन्ताम्) (अदिति:) (सिन्धु:) (पृथिवी) (उत) (द्यौ:) एषां पूर्ववदर्थ:॥२५॥

अन्वय:-हे अश्वना! पूर्वोक्तौ युवां द्युभिरक्तुभिररिष्टेभिः स्रोभगेभिः सह वर्त्तमानानस्मान् सदा परिपातं तत् युष्मत्कृत्यं मित्रो वरुणोऽदिति: सिन्धु: पृथिवी उत द्योमीऽस्पभ्यं माप्नहन्ताम्॥२५॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालक्ष्मुः यथा मातापितरौ सन्तानान् मित्रः सखायं प्राणश्च शरीरं प्रीणाति समुद्रो गाम्भीर्यादिकं पृथिवी वृक्षादीन् सूर्ये: प्रकाशं च धृत्वा सर्वान् प्राणिनः सुखिनः कृत्वोपकारं जनयन्ति तथाऽध्यापकोपदेष्टारस्सर्वाः सत्भविद्याः सुशिक्षाश्च प्रापय्येष्टं सुखं प्रापयेयुः॥२५॥

अत्र द्यावापृथिवीगुणवर्णनं सभासेसाध्यक्षकृत्यं तत्कृतपरोपकारवर्णनं च कृतमत एतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेदितव्यम्।

अस्मिन्नध्यायेऽ ह्यूराऋरिन्विद्धदादिगुणवर्णनादेतदध्यायोक्तार्थानां षष्ट्राध्यायोक्तार्थै: सह सङ्गतिर्वेदितव्या॥

द्वित सप्तित्रंशत्तमो ३७ वर्गो द्वादशोत्तरशततमं ११२ सूक्तं च समाप्तम्॥

पदार्थ: हे (अश्विना) पूर्वोक्त अध्यापक और उपदेशक लोगो! तुम दोनों (द्यभि:) दिन और (अक्तुभि:) पित्र (अरिष्ट्रभि:) हिंसा के न योग्य (सौभगेभि:) सुन्दर ऐश्वर्यों के साथ वर्त्तमान (अस्मान्) हम लोमिको सर्वदा (परि, पातम्) सब प्रकार रक्षा कीजिये (तत्) तुम्हारे उस काम को (मित्र:) सबका सुहुद्ग (वुरुप्पेर) धर्मादि कार्यों में उत्तम (अदिति:) माता (सिन्धु:) समुद्र वा नदी (पृथिवी) भूमि वा

मण्डल-१। अनुवाक-१६। सूक्त-११२



आकाशस्थ वायु (उत) और (द्यौ:) विद्युत् वा सूर्य का प्रकाश (न:) हमारे लिये (मामहन्ताम) बार वार बढ़ावें॥२५॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे माता और पिता अपने-अपने सन्तानों, सखा मित्रों और प्राण शरीर को प्रसन्न करते हैं और समुद्र गम्भीरतादि, पृथिवी वृक्षदि और सूर्य प्रकाश को धारण कर और सब प्राणियों को सुखी करके उपकार को उत्पन्न करते हैं खैसे पढ़ाने और उपदेश करनेहारे सब सत्य विद्या और अच्छी शिक्षा को प्राप्त कराके सबको इष्ट सुखू से युक्त किया करें॥२५॥

इस सूक्त में सूर्य पृथिवी आदि के गुणों और सभा सेना के अधिकी फूर्व कर्तव्यों तथा उनके किये परोपकारादि कर्मों का वर्णन किया है, इससे इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये॥

इस अध्याय में दिन, रात्रि, अग्नि और विद्वान् आदि कि गुणों के वर्णन से इस सप्तमाध्याय में कहे अर्थों की षष्टाध्याय में कहे अर्थों के साथ सङ्गति जानूनी सहिया।

यह सैंतीसवां वर्ग और एकसौ बास्हेव सुक्र पूरा हुआ।।

इति श्रीपरमहंसपरिव्राजकाचार्याणां महाविदुषां श्रीयुनिक्रजान्दुसरस्वतीस्वामिनां शिष्येण श्रीमद्विद्वद्वरेण दयानन्दसरस्वतीस्वामिना विरचिते संस्कृताऽऽर्यभाषाभ्यां विभूषिते सुप्रमाणयुक्ते ऋग्वेदभाष्ये प्रथमाष्टके

ओ३म्।

अथाष्ट्रमोऽध्याय:॥

विश्वानि देव सिवतर्दुरितानि पर्रा सुव। यद्धद्रं तन्न आ सुव।। ऋ०५.८२.५॥
अथास्य विशत्युचस्य त्रयोदशोत्तरशततमस्य सूक्तस्याङ्गिरसः कुत्स ऋषिः। इशा देवता।
द्वितीयस्यार्धर्चस्य रात्रिरिप। १,३,९,१२,१७ निचृत्त्रिष्टुप्। ६ त्रिष्टुप्। ७,१८-२० विराट्
त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। २,५ स्वराट् पङ्क्तिः। ४,८,१०,११,१५,२६ भुरिक् पङ्क्तिः।

१३,१४ निचृत् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः

तत्रादिममन्त्रे विद्वद्गुणा उपदिश्यन्ते।

अब आठवें अध्याय का आरम्भ है। उसके प्रथम मन्त्र में विद्वानों के गुणों का उपदेश किया है।।

इदं श्रेष्टं ज्योतिषां ज्योतिरागांच्यित्रः प्रकेतो अजिन्ध् विभ्वा। यथा प्रस्ता सवितुः सुवायं पुवा रात्र्युषसे योनिम्हिक्। हो।

ट्टदम्। श्रेष्ठम्। ज्योतिषाम्। ज्योतिः। आ। अगात्। चित्रः। प्रङक्तिः। अजुनिष्टु। विऽभ्वां। यथां। प्रऽसूता। सुवितुः। सुवार्य। एव। रात्रीं। उषसें। योनिम्। अरैक्।। १॥

पदार्थ:-(इदम्) प्रत्यक्षं वक्ष्यमाणम् (अष्ठम्) प्रमस्तम् (ज्योतिषाम्) प्रकाशानाम् (ज्योतिः) प्रकाशम् (आ) समन्तात् (अगात्) प्राप्नोति (चित्रः) अद्भुतः (प्रकेतः) प्रकृष्टप्रज्ञः (अजिनष्ट) जायते (विभ्वा) विभुना परमेश्वरेण सह। अत्र तृतीर्षेक्षवेचनस्थाने आकारादेशः। (यथा) (प्रसूता) उत्पन्ना (सिवतुः) सूर्य्यस्य सम्बन्धेन (सवाक्ष्) ऐश्वर्याय (एव) अत्र निपातस्य चेति दीर्घः। (रात्री) (उषसे) प्रातःकालाय (योनिम्) (गृहम्) (अरिक्) स्वितिरिणिक्ति॥१॥

अन्वय:-यथा प्रसूता राजी सवितुः सवायाषसे योनिमारैक् तथैव चित्रः प्रकेतो विद्वान् यदिदं ज्योतिषां श्रेष्ठं ज्योतिर्ब्रह्मागात् तेनैव विभ्वा सृद्ध सुखैश्वर्यायम् जिनष्ट दुःखस्थानादारैक्॥१॥

भावार्थः-अत्रोर्भारक्कारः । यथा सूर्योदयं प्राप्यान्धकारो विनश्यित, तथैव ब्रह्मज्ञानमवाप्य दुःखं विनश्यित। अतः सर्वैर्ब्रह्मज्ञानस्य यिततव्यम्॥१॥

पदार्थ: (यथा) जैसे (प्रसूता) उत्पन्न हुई (रात्री) निशा (सिवतु:) सूर्य्य के सम्बन्ध से (सवाय) ऐश्वर्य्य के हेलु (उपसे) प्रातःकाल के लिये (योनिम्) घर-घर को (आरैक्) अलग-अलग प्राप्त होती है, वैसे ही (चित्रः) अद्भुत गुण, कर्म स्वभाववाला (प्रकेतः) बुद्धिमान् विद्वान् जिस (इदम्) इस (ज्योतिषाम्) प्रकाशकों के बीच (श्रेष्ठम्) अतीबोत्तम (ज्योतिः) प्रकाशस्वरूप ब्रह्म को (आ, अगात्)

मण्डल-१। अनुवाक-१६। सूक्त-११३

प्राप्त होता है (एव) उसी (विभ्वा) व्यापक परमात्मा के साथ सुखैश्वर्य के लिये (अजिनष्ट) हत्पन्न होत् है और दु:खस्थान से पृथक् होता है॥१॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे सूर्योदय को प्राप्त होकर अन्धकार नष्ट हो जाता है, वैसे ही ब्रह्मज्ञान को प्राप्त होकर दु:ख दूर हो जाता है। इससे सब मनुष्यों को योग्प है कि पर्सेश्वर को जानने के लिये प्रयत्न किया करें॥१॥

अथोषोरात्रिव्यवहारमाह॥

अब रात्रि और प्रभातवेला के व्यवहार को अगले मन्त्र में कह

रुशंद्वत्सा रुशंती श्वेत्यागादारेगु कृष्णा सर्दनान्यस्याः। सुमानबं सू अमृते अनूची द्यावा वर्णं चरत आमिनाने मरा

रुर्शत्ऽवत्सा। रुर्शती। श्वेत्या। आ। अगात्। अरैक्। ऊम् इति। कृष्णा, सर्दनानि। अस्याः। सुमानबंस्र इति सुमानऽबेन्ध्र। अमृते इति। अनूची इति। द्यावा। वर्णम्। चुर्तः। अपिमृत्युने इत्योऽमिनाने॥२॥

पदार्थ:-(फशद्वत्सा) रुशज्ज्वलितः सूर्य्यो वृत्सो यस्याः सा (फशती) रक्तवर्णयुक्ता (श्वेत्या) शुभ्रस्वरूपा (आ) (अगात्) समन्तात् प्राप्नोति (अर्थिक्) अतिरिणक्ति (उ) अद्भुते (कृष्णा) कृष्णवर्णा रात्री (सदनानि) स्थानानि (अस्याः) उषसः (समानबन्धू) यथा सहवर्त्तमानौ मित्रौ भ्रातरौ वा (अमृते) प्रवाहरूपेण विनाशरहिते (अनूची) अन्योऽत्यवर्तमाचे (द्यावा) द्यावौ स्वस्वप्रकाशेन प्रकाशमानौ (वर्णम्) स्वस्वरूपम् (चरतः) प्राप्नुतः (आमिनाने) प्रास्परं प्रीक्षपन्तौ पदार्थाविव॥२॥

यास्कमुनिरेव र्याख्यातवान्-फशद्वत्सा सूर्यवत्सा रोचतेर्ज्वलितकर्मणः। सूर्यमस्या बत्समाह साहचर्य्याद्रसहरणाद्वा रुशती श्वेत्यागात्। श्वेत्या श्वेततेरिस्चत् कृष्णा सदनान्यस्याः कृष्णवर्षा रात्रिः। क्रेष्णं कृष्यतेर्निकृष्टो वर्णः। अथैने संस्तौति। समानबन्ध्र समानबन्धने अमृते अम्रमध्रमणित्वनूष्टी अनुच्यावितीतरेतरमभिप्रेत्य द्यावा वर्णं चरतस्त एव द्यावौ द्योतनादिप वा द्यावा चरत्र तिया औह चरत इति स्यादामिनाने आमिन्वाने अन्योन्यस्याध्यात्मं कुर्वाणे। (निरु०२.२०)॥२॥

अन्वय; हे सिन्ष्या! अर्थं रुशद्वत्सा वा रुशतीव श्वेत्योषा आगादस्या उ सदनानि प्राप्ता कृष्णा रात्र्यारैक् ते द्वे अमृते आमिमान असूची द्योषा समानबन्धू इव वर्णं चरतस्ते यूयं युक्त्या सेवध्वम्॥२॥

भावार्थः अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। हे मनुष्या! यस्मिन् स्थाने रात्री वसति तस्मिन्नेव स्थाने कालान्तरे रेषा च वसति। आभ्यामुत्पन्नः सूर्य्यो द्वैमातुर इव वर्त्तते, इमे सदा बन्ध्वद् गतानुगामिन्यौ त्र्युषस्रो वर्नेते एवं यूयं वित्त॥२॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! जो यह (रुषद्वत्सा) प्रकाशित सूर्यरूप बछड़े की कामना करनेहारी वा (रुशती) लाल-लाल सी (श्वेत्या) शुक्लवर्णयुक्त अर्थात् गुलाबी रङ्ग की प्रभात वेला (आ, अगात्) प्राप्त होती है (अस्या:, 3) इस अद्भुत उषा के (सदनानि) स्थानों को प्राप्त हुई (कृष्णा) कार्स वर्णवाली रात (आरेक्) अच्छे प्रकार अलग-अलग वर्तती है, वे दोनों (अमृते) प्रवाह रूप से नित्य (आर्मन्मि) परस्पर एक-दूसरे को फेंकती हुई सी (अनूची) वर्तमान (द्यावा) अपने-अपने प्रक्राश्च से प्रकाशमान (समानबस्थू) दो सहोदर वा दो मित्रों के तुल्य (वर्णम्) अपने-अपने रूप को (चर्ताः) प्राप्त होती हैं, उन दोनों का युक्ति से सेवन किया करो॥२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! जिस स्थान में रात्री वसती है, उसी स्थान में कालान्तर में उषा भी वसती है। इन दोनों से उत्पन्न हुआ सूद्ध्य आसी वोनों माताओं से उत्पन्न हुए लड़के के समान है और ये दोनों सदा बन्धु के समान जाने-अनिवासी उन्न और रात्रि हैं, ऐसा तुम लोग जानो॥२॥

पुनस्तदेवाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्री में कहा है।।

सुमानो अध्वा स्वस्नोरनुन्तस्तमुन्यान्या चरत्नो दुविशिष्टे।

न मेथेते न तस्थतुः सुमेके नक्तोषासा सर्पनसा बिरूपे॥३॥

सुमानः। अध्वां। स्वस्नोः। अनुन्तः। तम्। अन्याऽअन्याः चुरतः। देविशिष्टे इति देवऽशिष्टे। न। मेथेते इति। न। तुस्थतुः। सुमेके इति सुऽमेके। नक्तोषसां। स्रामनसा। क्रिकीपे इति विऽक्ति।।३॥

पदार्थ:-(समान:) तुल्यः (अध्वा) मार्गः (स्वस्नोः) भगिनीवद्वर्त्तमानयोः (अनन्तः) अविद्यमानान्त आकाशः (तम्) (अन्यास्या) परस्परं वर्त्तमाने (चरतः) गच्छतः (देविशिष्टे) देवस्य जगदीश्वरस्य शासनं नियमं प्राप्ते (न) नियभे (मेथेते) हिंस्तः (न) (तस्थतुः) तिष्ठतः (सुमेके) नियमे निक्षिप्ते (नक्तोषासा) रात्र्युषसौ (समनसा) समानं मनो विज्ञानं ययोस्ताविव (विरूपे) विरुद्धस्वरूपे॥३॥

अन्वयः-हे मनुष्याः स्वाचित्र स्वस्रोरनन्तः समानोऽध्वास्ति ये देविशिष्टे विरूपे समनसेव वर्त्तमाने सुमेके नक्तोषसाः तमन्यान्या चरतस्ते कृदाचित्र मेथेते न च तस्थतुस्ते यूयं यथावज्जानीत॥३॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा विरुद्धस्वरूपौ सखायावस्मिन्नमर्यादेऽनन्ताकाशे न्यायाधीशन्यिमित्रा सहैव नित्यं चरतस्तथा राज्युषसौ परमेश्वरनियमनियते भूत्वा वर्तेते॥३॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! जिन (स्वस्नो:) बहिनियों के समान वर्त्ताव रखनेवाली रात्री और प्रभानिक्वाओं का (अनन्त:) अर्थात् सीमारहित आकाश (समान:) तुल्य (अध्वा) मार्ग है, जो (देविशिष्टे) प्रभिश्वर के शासन अर्थात् यथावत् नियम को प्राप्त (विरूपे) विरुद्धरूप (समनसा) तथा समान

मण्डल-१। अनुवाक-१६। सूक्त-११३



चित्तवाले मित्रों के तुल्य वर्तमान (सुमेक) और नियम से छोड़ी हुई (नक्तोषसा) रात्रि और क्ष्मित बेला (तम्) उस अपने नियम को (अन्यान्या) अलग-अलग (चरतः) प्राप्त होतीं और वे कद्मित्त (म्) महीं (मेथेते) नष्ट होतीं और (न, तस्थतुः) न ठहरती हैं, उनको तुम लोग यथावत् जानो॥३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे विरुद्ध स्वरूप्याले मित्र लोग इस नि:सीम अनन्त आकाश में न्यायाधीश के नियम के साथ ही नित्य वर्त्तते हैं, वैसे रात्रि-दिन परमिश्वर के नियम से नियत होकर वर्त्तते हैं॥३॥

पुनरुषो विषयमाह॥

फिर उषा का विषय अगले मन्त्र में कहा है।

भास्वती नेत्री सूनृतानामचेति चित्रा वि दुरो न आवर्ष प्रार्प्या जगुद्धेयु नो रायो अख्यदुषा अजीगुर्भुवनानि विश्वरी। श्री

भास्वती। नेत्री। सूनृतानाम्। अचैति। चित्रा। वि। दुर्रुः। अनुविरित्यावः। प्रुऽअर्प्या जर्गत्। वि। ऊम् इति। नः। रायः। अख्यत्। उषाः। अजीगः। भुवनानि। विश्वामारु।।

पदार्थ:-(भास्वती) प्रशस्ता भाः कान्तिर्विद्यते युस्याः सा (नेत्री) प्रापिका (सूनृतानाम्) वाग्जागरितादिव्यवहाराणाम् (अचेति) सम्यग् विद्यायताम् (चित्रा) विविधव्यवहारसिद्धिप्रदा (वि) (दुरः) द्वाराणि। अत्र पृषोदरादित्वात् संप्रसारणेनेष्टस्पसिद्धिः। (नः) अस्माकं (आवः) विवृणोतीव (प्राप्यं) अपीयत्वा (जगत्) संसारम् (वि) (उ) (जः) अस्मीभ्यम् (रायः) धनानि (अख्यत्) प्रख्याति (उषाः) सुप्रभातः (अजीगः) स्वव्याप्त्या निगलत्तेव (भुवजानि) लोकान् (विश्वा) सर्वान्। अत्र शेर्लोपः॥४॥

अन्वयः-हे विद्वांसो मनुष्या युष्पाभिर्यी भास्वती सूनृतानां नेत्री चित्रोषा नो दुरो व्यावो या नोऽस्मभ्यं जगत् प्रार्प्य रायो व्यख्यदु इति वितर्के विश्वाभुवनान्यजीगः साचेति अवश्यं विज्ञायताम्॥४॥

भावार्थ:-अत्र वान्कलुप्तोपमालङ्कार:। योषा सर्वं जगत् प्रकाश्य सर्वान् प्राणिनो जागरियत्वा सर्वं विश्वमिभव्याप्य सर्वान् पदार्थोने वृष्टिद्वारा समर्थियत्वा पुरुषार्थं प्रवर्त्य धनादीनि प्रापय्य मातेव सर्वान् प्राणिन: पात्यत आलस्ये व्यथा सा वेला नैव नेया॥४॥

पदार्थ: है विद्वन् मनुष्यो! तुम लोगों को जो (भास्वती) अतीवोत्तम प्रकाशवाले (सूनृतानाम्) वाणी और जागृत के ब्यवहारों को (नेत्री) प्राप्त करने और (चित्रा) अद्भुत गुण, कर्म, स्वभाववाली (उषा:) प्रभात वेला (न:) हमारे लिये (दुर:) द्वारों (वि, आव:) को प्रकट करती हुई सी वा जो (न:) हमारे लिये (जगत्) संसार को (प्राप्य) अच्छे प्रकार अर्पण करके (राय:) धनों को (वि, अख्यत्)

१२१६

प्रसिद्ध करती है (3) और (विश्वा) सब (भुवनानि) लोकों को (अजीग:) अपनी व्याप्ति से निगलती सी है, वह (अचेति) अवश्य जाननी है॥४॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो उषा सब जगत् को प्रकाशित करके, सूच प्राणियों को जगा, सब संसार में व्याप्त होकर, सब पदार्थों को वृष्टि द्वारा समर्थ करके, पुरुषार्थ में प्रमृत्त करा, धनादि की प्राप्ति करा, माता के समान सब प्राणियों को पालती है, इससे आलूस्य में उत्तम प्रातः समय की वेला व्यर्थ न गमाना चाहिये॥४॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

जिह्मश्ये ३ चरितवे मघोन्याभोगयं इष्टयं राय उ त्वम्। दुभ्रं पश्यंद्भ्य उर्विया विचक्षं उषा अजीगुर्भुवनानि विश्वां॥ प्रा १४)

जिह्मऽश्ये। चरितवे। मुघोनी। आऽभोगये। डुष्ट्ये। गुये। कुम् इति। लुम्। दुभ्रम्। पश्येत्ऽभ्यः। उुर्विया। विऽचक्षे। उुषाः। अुजीगुः। भुवनानि। विश्वा॥५॥

पदार्थ:-(जिह्मश्र्ये) जिहाः शेते स जिह्मशीस्तरमे शिष्ये वक्रत्वं प्राप्ताय जनाय। जहातेः सन्वदाकारलोपश्च। (उणा०१.१४१) अनेनायं सिद्धः जिह्मं जिह्मंतरूष्ट्वं उच्छ्रितो भवति। (निरु०८.१५) (चिरतवे) चिरतुं व्यवहर्त्तम् (मघोनी) प्रशस्तिन मघानि धनानि प्राप्तानि यस्यां सा (आभोगये) समन्ताद्भुञ्जते सुखानि यस्यां तस्ये पुरुषार्थश्चन्ताये। अत्र बहुवचनादौणादिको घिः प्रत्ययः। (इष्ट्ये) यजन्ति सङ्गच्छन्ते यस्मिन् यज्ञे तस्मै। अत्र बहुत्वकादौणादिकस्तिः प्रत्ययः किच्च। (राये) राज्यश्चिये (उ) अपि (त्वम्) पुरुषार्थी (दभ्रम्) हस्वं तस्सु। रभ्रामित हस्वनामसु पठितम्। (निघं०३.२) (पश्यद्ध्यः) संप्रेक्षमाणेभ्यः (उर्विया) बहुरूपा (विचक्षे) विविधप्रकटत्वाय (उषा) दाहारम्भनिमित्ता (अजीगः०) इति पूर्ववत्॥५॥

अन्वय:-हे विद्वँस्त्वं योविका मघोन्युषा विश्वा भुवनान्यजीगः जिह्मश्ये चिरतवे विचक्ष आभोगय इष्टये राये धनानि पश्यद्भ्यो दभ्रमु हस्वर्मिष् कस्तु प्रकृषायित तां विजानीहि॥५॥

भावार्थ:-ये मनुष्या रज्ञेन्याश्चतुर्थे यामे जागरित्वा शयनपर्यन्तव्यर्थं समयं न गमयन्ति, त एव सुखिनो भवन्ति नृत्ररे॥५॥

पदार्थ: हे जिद्धन! (त्वम्) तू जो (उर्विया) अनेक रूपयुक्त (मघोनी) अधिक धन प्राप्त करानेहारी (उषा:) प्रार्त्वला (विश्वा) सब (भुवनानि) लोकों को (अजीगः) निगलती (जिह्मश्ये) वा जो टेढ़े सोने अथित् सोने में टेढ़ापन को प्राप्त हुए जन के लिये वा (चिरतवे) विचरने को (विचक्षे) विविध प्रकट्टिंग के लिये (आभोगये) सब ओर से सुख के भोग जिसमें हों, उस पुरुषार्थ से युक्त क्रिया के लिये

मण्डल-१। अनुवाक-१६। सूक्त-

११३

(इष्टये) वा जिसमें मिलते हैं, उस यज्ञ के लिये वा (राये) धनों के लिये वा (पश्यद्ध्यः) देखते हुए मनुष्यों के लिये (दभ्रम्) छोटे से (उ) भी वस्तु को प्रकाश करती है, उस उषा को जान॥ पूरा

भावार्थ:-जो मनुष्य रात्री के चौथे प्रहर में जाग कर शयन पर्य्यन्त व्यर्थ समय की नहीं जाने देते, वे ही सुखी होते हैं, अन्य नहीं॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

क्षुत्रायं त्वं श्रवंसे त्वं महोया इष्टयें त्वमर्थमिव त्वमित्यै। विसंदृशा जीविताभिष्रचक्षं उषा अजीगुर्भुवनानि विश्वां॥ ६॥

क्ष्रुत्रार्य। त्व्रम्। श्रवंसे। त्व्रम्। मृहीयै। इष्टये। त्व्रम्। अर्थम् इक्ष्यः त्व्रम्। इत्यै। विऽसंदृशा। जीविता। अभिऽप्रचक्षे। उषा:। अजीगु:। भुवंनानि। विश्वां॥६॥

पदार्थ:-(क्षत्राय) राज्याय (त्वम्) (श्रवसे) सकल्विद्याश्रकणायात्राय वा (त्वम्) (महीये) पूज्यायै नीतये (इष्टये) इष्टरूपायै (त्वम्) (अर्थमिव) द्रव्यवत् (त्वम्) इत्यै) सङ्गत्यै प्राप्तये वा (विसदृशा) विविधधर्म्यव्यवहारैस्तुल्यानि (जीविता) जीवनानि (अभिष्रचक्षे) अभिगतप्रसिद्धवागादिव्यवहाराय (उषा अजीगर्भु०) इति पूर्ववत्॥६॥

अन्वय:-हे विद्वन् सभाध्यक्ष राजन्! स्थोषा स्वप्नुकाशेन विश्वाभुवनान्यजीगस्तथा त्वमभिप्रचक्षे क्षत्राय त्वं श्रवसे त्विमष्टये महीयै त्विमत्यै विसदृशाऽर्थिम्व जीशिता सूदी साध्नुहि॥६॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः यथा विद्याविनयेन प्रकाशमानाः सत्पुरुषाः सर्वान् संनिहितान् पदार्थानभिव्याप्य त्वद्गुणप्रकाशेन सर्वार्थसाधका भवन्ति, तथा राजादयो जना विद्यान्यायधर्मादीनभिव्याप्य सुर्विभौमराज्यसंरक्षणेन सर्वानन्दं साध्नुयुः॥६॥

पदार्थ:-हे विद्वन संभाध्यक्ष राजन! जैसे (उषा:) प्रातर्वेला अपने प्रकाश से (विश्वा) सब (भुवनानि) लोकों को (अजीपा:) ढीक लेती है (त्वम्) तू (अभिप्रचक्षे) अच्छे प्रकार शास्त्र-बोध से सिद्ध वाणी आदि व्यवहाररूप (क्षत्राय) राज्य के लिये और (त्वम्) तू (श्रवसे) श्रवण और अन्न के लिये (त्वम्) तू (इष्ट्रये) इष्ट्र सुख् और (महीये) सत्कार के लिये और (त्वम्) तू (इत्ये) सङ्गति प्राप्ति के लिये (विसदृशा) विविध धर्मयुक्त व्यवहारों के अनुकूल (अर्थिमव) द्रव्यों के समान (जीविता) जीवनादि को सदा किया कसाहा

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे विद्या विनय से प्रकाशमान सत्पुरुष सब सम्मीपस्थ षद्मर्थों को व्याप्त होकर उनके गुणों के प्रकाश से समस्त अर्थों को सिद्ध करनेवाले होते हैं,

वैसे राजादि पुरुष विद्या न्याय और धर्मादि को सब ओर से व्याप्त होकर चक्रवर्ती राज्य की यथावत् रक्षा से सब आनन्द को सिद्ध करें॥६॥

अथोषो दृष्टान्तेन विदुषीव्यवहारमाह॥

अब उषा के दृष्टान्त से विदुषी स्त्री के व्यवहार को अगले मन्त्र में कहा है।। 4

एषा दिवो दुंहिता प्रत्यंदर्शि व्युच्छन्ती युवृतिः शुक्रवांसाः। विश्वस्येशाना पार्थिवस्य वस्व उषो अद्येह सुंभगे व्युच्छ॥७॥

पुषा। दिव:। दुहिता। प्रति। अदुर्शि। विऽउच्छन्ती। युवति:। शुक्रऽवीसा:। विश्वस्य। ईशीना। पार्थिवस्य। वस्वी:। उर्ष:। अद्या इह। सुऽभुगे। वि। उच्छु॥७॥

पदार्थ:-(एषा) वक्ष्यमाणा (दिव:) प्रकाशमानस्य सूर्यस्य (दुहिता) पुत्री (प्रति) (अदिर्शि) दृश्यते (व्युच्छन्ती) विविधानि तमांसि विवासयन्ती (युवित:) प्राप्तयौवन्नवस्था (शृद्धवासा:) शुक्रानि शुद्धानि वासांसि यस्याः सा शुद्धवीर्य्या वा (विश्वस्य) सर्वस्य (ईशाना) प्रभवित्री (पार्थिवस्य) पृथिव्यां विदितस्य (वस्व:) द्रव्यस्य (उष:) सुखे निवासिनि विदुषि। अत्र वस निवास इत्यस्मादौणादिकोऽसुन् स च बाहुलकात् कित्। (अद्य) (इह) (सुभगे) सुष्ट्वेश्वर्य्याणि यस्यान्तिस्प्रधुद्धौ (वि) (उच्छ) विवासय॥७॥

अन्वयः-यथा शुक्रवासाः शुद्धवीर्या विश्वस्य पार्थिवस्य वस्त्र-ईशाना व्युच्छन्त्येषा दिवो युवतिर्दुहिता उषा प्रत्यदर्शि वारंवारमदर्शि तथा हे सुभग उषोऽद्य दिने इह व्युच्छ दुःखानि विवासय॥७॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार्य यदा कृतब्रह्मचर्य्येण विदुषा साधुना यूना स्वतुल्या कृतब्रह्मचर्या सुरूपवीर्या साध्वी सुखप्रदा पूर्णयुवतीर्विष्ट्रातिवर्षादारभ्य चतुर्विंशतिवार्षिकी कन्याऽऽध्युद्वहेत तदैवोषर्वत् सुप्रकाशितौ भूत्वा विवाहित्रौ स्त्रीपुरूषो सर्वाणि सुखानि प्राप्नुयाताम्॥७॥

पदार्थ:-जैसे (शुक्रवासाः) शुद्ध पराक्रमयुक्त (विश्वस्य) समस्त (पार्थिवस्य) पृथिवी में प्रसिद्ध हुए (वस्वः) धन की (ईशाना) अच्छे प्रकार सिद्ध करानेवाली (व्युच्छन्ती) और नाना प्रकार के अन्धकारों को दूर करती हुई (एका) यह (दिवः) सूर्य्य की (युवतीः) युवावस्था को प्राप्त अर्थात् अति पराक्रमवाली (दुहिता) क्रिके प्रभात् बेला (प्रत्यदर्शि) वार-वार देख पड़ती है वैसे हे (सुभगे) उत्तम भाग्यवती (उषः) सुख में निवासी करनेहारी विदुषी! (अद्य) आज तू (इह) यहाँ (व्युच्छ) दुःखों को दूर कर॥७॥

भावार्थ: - इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जब ब्रह्मचर्य किया हुआ सन्मार्गस्थ जवान विद्वान् पुरुष अपने तुल्य, अपने विद्यायुक्त, ब्रह्मचारिणी, सुन्दर रूप, बल, पराक्रमवाली, साध्वी=अच्छे स्वभावद्यक्त सुख देनेहारी, युवित अर्थात् बीसवें वर्ष, से चौबीसवें वर्ष की आयु युक्त कन्या से विवाह करे, तभी बिवाहित स्त्री-पुरुष उषा के समान सुप्रकाशित होकर सुखों को प्राप्त होवें॥७॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

मण्डल-१। अनुवाक-१६। सूक्त-११३

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

प्रायतोनामन्वेति पार्थं आयतोनां प्रथमा शश्चेतीनाम्। व्युच्छन्ती जीवमुदीरयन्युषा मृतं कं चन बोधर्यन्ती॥८॥

पुराऽयुतीनाम्। अनुं। एति। पार्थः। आऽयुतीनाम्। प्रथमा। शर्श्वतीनाम्। विऽउच्छन्ती। जीवम्। उत्ऽर्ध्वरयन्ती। उषाः। मृतम्। कम्। चुन। बोधर्यन्ती॥८॥

पदार्थ:-(परायतीनाम्) पूर्वं गतानाम् (अनु) (एति) पुनः प्राप्निति (पाथः) अन्तरिक्षमार्गम् (आयतीनाम्) आगामिनीनामुषसाम् (प्रथमा) विस्तृतादिमा (श्रश्चतीनाम्) प्रवाहरूपेणानादीनाम् (व्युच्छन्ती) तमो नाशयन्ती (जीवम्) प्राणधारिणम् (उदीरयन्ती) कर्मसु प्रवृत्तिमन्ती (उषाः) दिननिमित्तः प्रकाशः (मृतम्) मृतमिव सुप्तम् (कम्) (चन) प्राणिनम् (बोधयुन्ति) जागरयुन्ती॥८॥

अन्वय:-हे सुभगे! यथेयमुषा: शश्वतीनां परायतीनामुषसामन्त्याऽ उपतीनां प्रथमा व्युच्छन्ती जीवमुदीरयन्ती कञ्चन मृतमिवापि बोधयन्ति सती पाथोऽन्वेति, तथैव त्वं पतिव्रता भवि।।।

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। सौभार्याम् छन्त्यः स्त्रिय उषर्वदतीतानागतवर्त्तमानानां साध्वीनां पतिव्रतानां शाश्वतं धर्ममाश्रित्य स्वय्वपतीन् श्रुशोभमानाः सन्तानान्युत्पाद्य परिपाल्य विद्यासुशिक्षा बोधयन्त्यः सततमानन्दयेयु:॥८॥

पदार्थ:-हे उत्तम सौभाग्य बढ़ानेहारी स्त्री! जैसे यह (उषा:) प्रभात वेला (शश्वतीनाम्) पूर्व अतीत हुई प्रभात वेलाओं के पीछे (आयतीनाम्) आनेवाली वेलाओं में (प्रथमा) पहिली (व्युच्छनी) अन्धकार का विनाश करती और (जीवम्) जीव को (उदीरयन्ती) कामों में प्रवृत्त कराती हुई (कम्) किसी (चन) (मृतम्) मृतक के समान सोए हुए जन को (बोधयन्ती) जगाती हुई (पाथः) आकाश मार्ग को (अन्वेति) अनुकूलता से जाती-आती है, वैसे ही तू पतिव्रता हो॥८॥

भावार्थ:-इस में में बार्चिक लुप्तोपमालङ्कार है। सौभाग्य की इच्छा करनेवाली स्त्रीजन उषा के तुल्य भूत, भविष्यत्, वर्तमान समयों में हुई उत्तम शील पितव्रता स्त्रियों के सनातन वेदोक्त धर्म का आश्रय कर अपने अपने पित्र को सुखी करती और उत्तम शोभावाली होती हुई सन्तानों को उत्पन्न कर और सब ओर से पालम करके उन्हें सत्य विद्या और उत्तम शिक्षाओं का बोध कराती हुई सदा आनन्द को प्राप्त करवें। दें।

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

उषो यदग्निं समिधे चकर्थ वि यदावश्चश्चसा सूर्यस्य। यन्मानुषान् युक्ष्यमाणाँ अजीगुस्तद्वेवेषु चकृषे भुद्रमप्नैः॥९॥

१२२०

उर्ष:। यत्। अग्निम्। सुम्ऽइधे। चुकर्थे। वि। यत्। आर्वः। चक्षंसा। सूर्यस्य। यत्। मार्नुषान्। प्रक्ष्माणान्। अजीगृरितिं। तत्। देवेषुं। चुकृषे। भुद्रम्। अपः॥९॥

पदार्थ:-(उष:) प्रातर्वत् (यत्) या (अग्निम्) विद्युदग्निम् (सिमिधे) सम्प्रकप्रदीपनास (चकर्थ) करोषि (वि) (यत्) या (आव:) वृणोषि (चक्षसा) प्रकाशेन (सूर्व्यस्य) मार्तण्डस्य (यत्) या (मानुषान्) मनुष्यान् (यक्ष्यमाणान्) यज्ञं निवर्त्स्यतः (अजीगः) प्रसन्नान् करोति (तत्) सा (देवेषु) विद्वत्सु पतिषु पालकेषु सत्सु (चकृषे) कुर्याः (भद्रम्) कल्याणम् (अपः) अपत्यम्॥९॥

अन्वयः – हे उषर्वद्वर्त्तमाने! यद्या त्वं सूर्य्यस्य चक्षसा सिमधेऽग्मि खर्क्थ, यद्या दुःखानि व्यावः, यद्या यक्ष्यमाणान् मानुषानजीगः प्रीणासि तत् सा त्वं देवेषु पतिषु भद्रमप्नश्चकृषे कुर्याः ॥९॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा सूर्यस्य सम्बन्धिन्द्रुषाः सवः प्राणिभिः सङ्गत्य सर्वाञ्जीवान् सुखयित तथा साध्व्यो विदुष्यः स्त्रियः पतीन् प्रीणयन्यः सत्यः प्रशस्तान्यपत्यानि जनियतुं शक्नुवन्ति नेतराः कुभार्थ्याः॥९॥

पदार्थ:-हे (उष:) प्रभात वेला के समान वर्तमान विदुष्टि स्त्रि! (यत्) जो तू (सूर्य्यस्य) सूर्य्य के (चक्षसा) प्रकाश से (सिमधे) अच्छे प्रकार प्रकाश के लिये (अग्निम्) विद्युत् अग्नि को प्रदीप्त (चक्र्य) करती है वा (यत्) जो तू दु:खों को (वि, अवः) दूर करती वा (यत्) जो तू (यक्ष्यमाणान्) यज्ञ के करनेवाले (मानुषान्) मनुष्यों को (अजीगः) प्रप्त होकर प्रसन्न करती है (तत्) सो तू (देवेषु) विद्वान् पतियों में वस कर (भद्रम्) कल्याण करनेहारे (अग्नः) सन्तानों को उत्पन्न (चकृषे) किया कर॥९॥

भावार्थ:-इस मन्त्र मे वान्नकलु सोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य्य की संबन्धिनी प्रात:काल: की वेला सब प्राणियों के साथ संयुक्त होकर सब जीवों को सुखी करती है, वैसे सज्जन विदुषी स्त्री अपने पितयों को प्रसन्न करती हुईं उत्तम सन्तिमों के उत्पन्न करने को समर्थ होती हैं, इतर दुष्ट भार्य्या वैसा काम नहीं कर सकती॥९॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

कियृत्या यत्समया भवाति या व्यूषुर्याश्चे नूनं व्युच्छान्।

अनु पुर्वी कृपते वावशाना प्रदीध्याना जोषंमुन्याभिरेति॥ १०॥ २॥

किर्यति। आ। यत्। समर्या। भर्वाति। याः। विऽऊषुः। याः। च। नूनम्। विऽउच्छान्। अनुं। पूर्वाः। कृपते। वाव्रामा प्रदेशिध्याना। जोषेम्। अन्याभिः। एति॥१०॥

मण्डल-१। अनुवाक-१६। सूक्त-११३ d str

पदार्थ:-(कियति) अत्रान्येषामपीति दीर्घः। (आ) (यत्) तथा (समया) काले (भवाति) भवेत् (याः) उषसः (व्यूषुः) (याः) (च) (नूनम्) निश्चितम् (व्युच्छान्) व्युच्छन्ति तान् (अनु) अतुक्रूल्य (पूर्वाः) अतीताः (कृपते) समर्थयतु। व्यत्येनात्र शः। (वावशाना) भृशं कामयमानेव (प्रदीध्याना) प्रदीप्यमाना (जोषम्) प्रीतिम् (अन्याभिः) स्त्रीभिः (एति) प्राप्नोति॥१०॥

अन्वयः – हे स्त्रि! यद् यथा याः पूर्वा उषसस्ताः सर्वान् पदार्थान् कियति समया स्यूषुयोश व्युच्छान् व्यवशाना प्रदीध्याना सती कृपते नूनमाभवाति तद्वदन्याभिः सह जोषमन्वेति तथा मया पत्या सह सदा वर्तस्व।। रुण।

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। कियत्समयोषा भवतीति प्रश्नाः। स्पूर्योदयात् प्राग्यावान् पञ्चघटिकासमय इत्युत्तरम्। का स्त्रियः सुखमाप्नुवन्तीति, या अन्याधिर्विदुषिभि पतिभिश्च सह सततं सङ्गच्छेयुस्ताः प्रशंसनीयाश्च स्युः। याः करुणां विदधित ताः पतीन प्रीणयन्ति, याः पत्यनुकूला वर्त्तन्ते ताः सदाऽऽनिन्दता भवन्ति॥१०॥

पदार्थ: -हे स्त्रि! (यत्) जैसे (याः) जो (पूर्वाः) प्रथम गत् हुई प्रभात वेला सब पदार्थों को (कियति) कितने (समया) समय (व्यूषुः) प्रकाश करती रही (याः, च) और जो (व्युच्छान्) स्थिर पदार्थों की (वावशाना) कामना सी करती (प्रदीध्याना) और प्रकाश करती हुई (कृपते) अनुग्रह करती (नूनम्) निश्चय से (आ, भवाति) अच्छे प्रकार हाती अर्थात् प्रकाश करती उसके तुल्य यह दूसरी विद्यावती विदुषी (अन्याभिः) और स्त्रियों के स्मार्थ (जोषणन्वेति) प्रीति को अनुकूलता से प्राप्त होती है, वैसे तू मुझ पति के साथ सदा वर्त्ता कर।।

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तीपमालक्कार है।

(प्रश्न-) कितने समय तक उष: जाल होता है ?

(उत्तर-) सूर्योदय से पूर्व पाँच घड़ी उष:काल होता है।

(प्रश्न-) कौन स्त्री सुख को प्राप्त हॉन्नी है?

(उत्तर-) जो अस्य किंदुषी स्त्रियों और अपने पितयों के साथ सदा अनुकूल रहती हैं; और वे स्त्री प्रशंसा को भी प्राप्त होती हैं, जो कृपालु होती हैं वे स्त्री पितयों को प्रसन्न करती हैं, जो पितयों के अनुकूल वर्तती हैं, जे सदा सुखी रहती हैं॥१०॥

पुन: प्रभातविषयं प्राह॥

फिर प्रभात विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

क्रुपुष्टे ये पूर्वतरामप्रथन्त्युच्छन्तीमुषस् मर्त्यासः।

अस्माभिरू नु प्रतिचक्ष्यांभूदो ते यन्ति ये अपूरीषु पश्यान्॥ ११॥

१२२२

र्डुयुः। ते। ये। पूर्वंऽतराम्। अपेश्यन्। विऽउच्छन्तीम्। उषसम्। मर्त्यासः। अस्माभिः। ऊम् इति। नु। प्रतिऽचक्ष्या। अभूत्। ओ इति। ते। युन्ति ये। अपुरीषुं। पश्यान्॥११॥

पदार्थ:-(ईयु:) प्राप्नुयु: (ते) (ये) (पूर्वतराम्) अतिशयेन पूर्वाम् (अपश्यक्) पश्येयु: (व्युच्छन्तीम्) निद्रां विवासयन्तीम् (उषसम्) प्रभातसमयम् (मर्त्यास:) मनुष्या: (अस्माभि:) (उ) वितर्के (नु) शीघ्रम् (प्रतिचक्ष्या) प्रत्यक्षेण दृष्टुं योग्या (अभूत्) भवित (ओ) अवधारणे (ते) (अपरीषु) आगामिनीषूषस्सु (पश्यान्) पश्येयु:॥११॥

अन्वयः-ये मर्त्यासो व्युच्छन्ती पूर्वतरामुषसमीयुस्तेऽस्माभिः सह सुखमपश्यन् स्मेषा अस्मेष्भिः प्रतिचक्ष्याभूद् भवति सा नु सुखप्रदा भवति। उ ये अपरीषु पूर्वतरां पश्यान् त ओ एव सुखं यन्ति प्राप्नुविस्तु॥११॥

भावार्थ:-हे मनुष्या! उषसः प्राक् शयनादुत्थायावश्यकं कृत्या परिश्वरो ध्यायन्ति ते धीमन्तो धार्मिका जायन्ते। ये स्त्री पुरुषा जगदीश्वरं ध्यात्वा प्रीत्या सक्दते तंऽनेकविधानि सुखानि प्राप्नुवन्ति॥११॥

पदार्थ:-(ये) जो (मर्त्यास:) मनुष्य लोग (व्युच्छन्तीम्) ज्याती हुए (पूर्वतराम्) अति प्राचीन (उषसम्) प्रभात वेला को (ईयु:) प्राप्त होवें (ते) वे (अस्मिष्टिः) हम लोगों के साथ सुख को (अपश्यन्) देखते हैं, जो प्रभात वेला हमारे साथ (प्रतिचक्ष्या) प्रत्यक्ष से देखने योग्य (अभूत्) होती है वह (नु) शीघ्र सुख देनेवाली होती है। (उ) और (ये) जो (अपरीषु) आनेवाली उषाओं में व्यतीत हुई उषा को (पश्यान्) देखें (ते) वे (ओ) ही सुख की (येनि) श्राप्त होते हैं॥११॥

भावार्थ:-जो मनुष्य उषा के पहिले शयन से उँठ आवश्यक कर्म कर के परमेश्वर का ध्यान करते हैं, वे बुद्धिमान् और धार्मिक होते हैं। जो स्त्री-पुरुष परमेश्वर का ध्यान करके प्रीति से आपस में बोलते-चालते हैं, वे अनेक विध सुर्खों को प्राप्त होते हैं॥११॥

पुनरुषः प्रसंगेन स्त्रीविषयमाह॥

फिर उपा के प्रसङ्ग से अभीविषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

याव्यद्रेषा ऋतूपा ऋतेजाः सुम्नावरी सूनृतां ईरयन्ती।

सुमङ्गुलीर्बिभ्रती देववीर्तिमिहाद्योषः श्रेष्ठतमा व्युच्छ॥१२॥

यावयत्ऽद्वेषाः। ऋतुऽपाः। ऋतेऽजाः। सुम्नऽवरी। सूनृताः। ईरयन्ती। सुऽमङ्गुलीः। बिभ्रती। देवऽवीतिम्। इह। अद्या उषः / श्रेष्ठेरतमा। वि। उच्छा। १२॥

प्दार्थ:-(श्रावयद्द्वेषा:) यवयन्ति दूरीकृतानि द्वेषांस्यप्रियकर्माणि यया सा (ऋतणः) सत्यपालिका (ऋतेजाः) सत्ये प्रादुर्भृता (सुम्नावरी) सुम्नानि प्रशस्तानि सुखानि विद्यन्ते यस्यां सा (सूज्ञताः) वदादिसत्यशास्त्रसिद्धान्तवाचः (ईरयन्ती) सद्यः प्रेरयन्ती (सुमङ्गलीः) शोभनानि मङ्गलानि

मण्डल-१। अनुवाक-१६। सूक्त-११३ 9273

यासु ताः (देववीतिम्) विदुषां वीतिं विशिष्टां नीतिम् (इह) (अद्य) (उषः) उषर्वद् वर्तमाने बिदुषि (श्रेष्ठतमा) अतिशयेन प्रशंसिता (न) (उच्छ) दुःखं विवासय॥१२॥४०

अन्वय:-हे उषरुषर्वद्यावयद्द्वेषा ऋतपाः ऋतेजाः सुम्नावरी सुमङ्गलीः सूनृताः ईरयन्ती श्रेष्ठतमा देववीतिं बिभ्रती त्विमहाद्य व्युच्छ॥१२॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। यथोषास्तमो विवार्य प्रकार्श्व प्रोहिर्भाव्य धार्मिकान् सुखियत्वा चोरादीन् पीडियत्वा सर्वान् प्राणिन आह्वादयित, तथैव विद्याधर्मप्रकाशवत्य: श्रेमादिगुणान्विता विदुष्यस्सित्स्त्रिय: स्वपितभ्योऽपत्यानि कृत्वा सुशिक्षया विद्यान्धकारं मिन्नार्थं विद्यार्कं प्रापय्य कुलं सुभूषयेयु:॥१२॥

पदार्थ:-हे (उष:) उषा के समान वर्तमान विदुषी स्त्री! (यावयद्देषा:) जिसने द्वेषयुक्त कर्म दूर किये (ऋतपा:) सत्य की रक्षक (ऋतेजा:) सत्य व्यवहार पें प्रसिद्ध (सुम्नावरी) जिसमें प्रशंसित सुख विद्यमान वा (सुमङ्गली:) जिनमें सुन्दर मङ्गल होवे, उन (सून्ता:) वेदादि सत्यशास्त्रों की सिद्धान्तवाणियों को (ईरयन्ती) शीघ्र प्रेरणा करती हुई (श्रेष्ट्रतमा) अतिशय उत्तम गुण, कर्म और स्वभाव से युक्त (देववीतिम्) विद्वानों की विशेष नीति को (विश्वती) धास्ण करती हुई तू (इह) यहाँ (अद्य) आज (व्युच्छ) दु:ख को दूर कर॥१२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोमाल द्वार है। औस प्रभात वेला अन्धकार का निवारण, प्रकाश का प्रादुर्भाव करा, धार्मिकों को सुखी और चारोदि को पाड़ित करके सब प्राणियों को आनन्दित करती है, वैसे ही विद्या, धर्म, प्रकाशवती शमावि गुणे से मुक्त विदुषी उत्तम स्त्री अपने पतियों से सन्तानोत्पत्ति करके, अच्छी शिक्षा से अविद्यान कार को छुड़ा, विद्यारूप सूर्य को प्राप्त करा कुल को सुभूषित करें॥१२॥

पुन्स्त्रमेव विषयमाह॥

फिर्क्सी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

शर्श्वतपुरोषा व्युवास देख्यथी अद्येदं व्यावी मुघोनी।

अथो ट्युंच्यादुत्तर्षेअनु द्यूनजरामृतां चरति स्वधार्भिः॥ १३॥

80. अत्र 'बिभूती' पदं नैव व्याख्यातम्। सं०।

शर्श्वत्। पुरा। उषाः। वि। उवासा। देवी। अथो इति। अद्य। इदम्। वि। आवः। मघोनी। अथो इति। वि। उच्छात्। उत्ऽतरान्। अनुं। द्यून्। अजरां। अमृतां। चुर्ति। स्वधाभिः॥१३॥

पदार्थ:-(शश्चत्) नैरन्तर्य्ये (पुरा) पुरस्तात् (उषा:) (वि) (उवास) वस (देवी) (उद्योध्यानी (अथो) आनन्तर्य्ये (अद्य) इदानीम् (इदम्) विश्वम् (वि) (आव:) रक्षति (मद्यामी) प्रशस्तधनप्राप्तिनिमित्ता (अथो) (वि) (उच्छात्) विवसेत् (उत्तरान्) आगामिनः (अद्य) (द्यून्) दिवसान् (अजरा) वयोहानिरहिता (अमृता) विनाशविरहा (चरित) गच्छित (स्वधाभिः) स्त्र्यं धारितैः पदार्थैः सह॥१३॥

अन्वय:-हे स्त्रि! त्वं पुरा देवी मघोनी अजरामृतोषा इव उवास अथे यथोषा उत्तराननुद्यंश्च स्वधाभिः शश्चद्विचरति व्युच्छादद्येदं व्यावस्तथा त्वं भव॥१३॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। हे स्त्रि! यथोषा क्रार्रणुखाहुक्पत्वेन नित्या सती त्रिषु कालेषु प्रकाश्यान् पदार्थान् प्रकाश्य वर्त्तते तथाऽऽत्मत्वेन नित्यस्वरूपा त्वं त्रिकालस्थान् सद्व्यवहारान् विद्यासुशिक्षाभ्यां दीपयित्वा सौभाग्यवती भूत्वा सदा सुखिनी भवा १३॥

पदार्थ: - हे स्त्रीजन! (पुरा) प्रथम (देवी) अत्युत्त प्रकाशमान (मघोनी) प्रशंसित धन प्राप्ति करनेवाली (अजरा) पूर्ण युवावस्थायुक्त (अमृता) प्रेगरहित (आ:) प्रभात वेला के समान (उवास) वास कर और (अथो) इसके अनन्तर जैसे प्रभात वेला (उत्तरम्) आगे आनेवाले (अनु, द्यून्) दोनों के अनुकूल (स्वधाभि:) अपने आप धारण किमे हिए पदार्शों के साथ (शश्चत्) निरन्तर (वि, चरित) विचरती और अन्धकार को (वि, उच्छात्) दूर करेली तथा (अद्य) वर्तमान दिन में (इदम्) इस जगत् की (व्याव:) विविध प्रकार से रक्षा करती है, विसे तू हों) १३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे स्त्रि! जैसे प्रभातवेला कारण और प्रवाहरूप से नित्य हुई तीनों कालों में प्रकाश करने याएय पदार्थों का प्रकाश करके वर्त्तमान रहती है, वैसे आत्मपन से नित्यस्वरूप तू तीनों कालों में स्थित सत्प्र व्यवहारों को विद्या और सुशिक्षा से प्रकाश करके पुत्र, पौत्र, ऐश्वर्याद सौभाग्ययुक्त हो के सन्त्र सुखी हो॥१३॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

किर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

व्यर्श्विभिद्धिव अतिस्वद्यौदर्प कृष्णां निर्णिजं देव्यावः।

प्रबोधयन्यकुर्णभिरश्चैरोषा याति सुयुजा रथेन॥१४॥

्ति। अञ्चिरिमें:। दिवः। आतांसु। अद्यौत्। अर्प। कृष्णाम्। निःऽनिजम्। देवी। आवृरित्यांवः। प्रऽबोधयंन्ती। अरुणेभिः। अर्थे:। आ। उषाः। याति। सुऽयुजां। रथेन॥ १४॥ अष्टक-१। अध्याय-८। वर्ग-१-४

मण्डल-१। अनुवाक-१६। सूक्त-११३



पदार्थ:-(वि) (अञ्जिभि:) प्रकटीकरणैर्गुणैः (दिव:) आकाशात् (आतासु) व्याप्तासु (दिक्षु आता इति दिङ्नामसु पठितम्। (निघं०१.६) (अद्यौत्) विद्योतयित प्रकाशते (अप) (कृष्णाम्) राष्ट्रिम् (निर्णिजम्) रूपम्। निर्णिगिति रूपनामसु पठितम्। (निघं०३.७) (देवी) दिव्यगुणा (आवः) निवारयित (प्रबोधयन्ती) जागरणं प्रापयन्ती (अरुणेभि:) ईषद्रक्तैः (अश्वैः) व्यापनशीलैः क्रिरणैः (आ) (उषाः) (याति) (सुयुजा) सुष्ठु युक्तेन (रथेन) रमणीयस्वरूपेण॥१४॥

अन्वय:-हे स्त्रियो! यूयं यथा प्रबोधयन्ती देव्युषा अञ्जिभिर्दिव आतासु सूर्वान् पदार्थान् व्यद्यौत् निर्णिजं कृष्णामपाव: अरुणेभिरश्वै: सह वर्त्तमानेन सुयुजा रथेनायाति तद्वद्वर्त्तध्वम्॥१४॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। यथोषा: काष्ठासु व्याप्ताउस्ति तथा कन्या विद्यासु व्याप्नुयु:। यथेयमुषा: स्वकान्तिभि: सुशोभना रमणीयेन स्वरूपेण प्रकाशते तथेता: स्वशीलादिभि: सुन्दरेण रूपेण शुम्भेयु:। यथेयमुषा अन्धकारिनवारणेन प्रकाशं जन्यित तथेता मौर्ख्य निवार्यं सुसभ्यतादिगुणै: प्रकाशन्ताम्॥१४॥

पदार्थ:-हे स्त्रीजनो! तुम जैसे (प्रबोधयन्ती:) आतीं को जगाती हुई (देवी) दिव्यगुणयुक्त (उषा:) प्रातः समय की वेला (अञ्चिभिः) प्रकट कर्तहार गुणों के साथ (दिवः) आकाश से (आतासु) सर्वत्र व्याप्त दिशाओं में सब पदार्थों को (व्यद्धीत्) विशेष कर प्रकाशित करती (निर्णिजम्) वा निश्चितरूप (कृष्णाम्) कृष्णवर्ण रात्रि को (अपावः) हूर करती वा (अरुणेभिः) रक्तादि गुणयुक्त (अश्वैः) व्यापनशील किरणों के साथ वर्जमान (सुयुज्जा) अच्छे युक्त (रथेन) रमणीय स्वरूप से (आ, याति) आती है, उसके समान तुम लोग्न वर्ती करोगा १४॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाज्यकलुखोपमालङ्कार है। जैसे प्रातः समय की वेला दिशाओं में व्याप्त है, वैसे कन्या लोग विद्याओं में व्याप्त होनें, वा जैसे यह उषा अपनी कान्तियों से शोभायमान होकर रमणीय स्वरूप से प्रकाशवास रहती है, वैसे यह कन्याजन अपने शील आदि गुण और सुन्दर रूप से प्रकाशमान हों, जैसे यह उषा अन्धकार के निवारण रूप प्रकाश को उत्पन्न करती है, वैसे ये कन्याजन मूर्खता आदि का निवारण का सुमाभ्यतादि शुभ गुणों से सदा प्रकाशित रहें॥१४॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

आवहनी पोष्या वार्याणि चित्रं केतुं कृणुते चेकिताना।

र्द्युषीणामुपुमा शर्श्वतीनां विभातीनां प्रथमोषा व्यश्चित्॥१५॥३॥

आऽवह्रन्ती। पोष्या। वार्याणि। चित्रम्। केतुम्। कुणुते। चेकिताना। ईयुषीणाम्। उपुऽमा। शर्श्वतीनाम्। विऽभातीनाम्। प्रथमा। उषाः। वि। अश्वैत्॥१५॥

पदार्थ:-(आवहन्ती) प्रापयन्ती (पोष्या) पोषयितुमर्हाणि (वार्थ्याणि) वरीतुमर्हाणि (निद्राम्) अद्भुतम् (केतुम्) किरणम् (कृणुते) करोति (चेकिताना) भृशं चेतयन्ती (ईयुषीण्णम्) गच्छन्तीनाम् (उपमा) दृष्टान्तः (शश्वतीनाम्) अनादिभूतानां घटिकानाम् (विभातीन्नाम्) प्रकाशयन्तीनां सूर्य्यकान्तीनाम् (प्रथमा) आदिमा (उषाः) (वि) (अश्वेत्) व्याप्नोति॥१५॥

अन्वयः-हे स्त्रियो! यूयं यथोषाः पौष्या वार्य्याण्यावहन्ती चेकिताना चित्रं केतुं कृणुते विभातीनामीयुषीणां शश्वतीनां प्रथमोपमा व्यश्वेत्तथा शुभगुणकर्मसु विचरत॥१५॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। हे मनुष्या! यूयं निश्चित गानीत यथोषसमारभ्य कर्माण्युत्पद्यन्ते, तथा स्त्रिय आरभ्य गृहकल्पानि जायन्ते॥१५॥

पदार्थ:-हे स्त्री लोगो! तुम जैसे (उषा:) प्रातर्वेला (पोष्ण) पृष्टि कराने और (वार्याण) स्वीकार करने योग्य धनादि पदार्थों को (आवहन्ती) प्राप्त कराती और (चेकिताना) अत्यन्त चिताती हुई (चित्रम्) अद्भुत (केतुम्) किरण को (कृणुते) करती अर्थात् प्रकाशित करती हुई (श्राक्षतीनाम्) विशेष कर प्रकाशित करती हुई सूर्य्यकान्तियों और (ईयुषीणाम्) चलती हुई (श्राक्षतीनाम्) अनादि रूप घड़ियों की (प्रथमा) पहिली (उपमा) दृष्टान्त (व्यश्चेत्) व्याप्त होती है, वैस् ही शुभ गुण कर्मों में (चरत) विचरा करो॥१५॥

भावार्थ:-हे मनुष्यो! तुम लोग यह निश्चित जाने? कि जैसे प्रात:काल से आरम्भ करके कर्म उत्पन्न होते हैं, वैसे स्त्रियों के आरम्भ से घर के कर्म हुआ करते हैं॥१५॥

पुन तिमेच विषयमाह॥

फिर भी उसी विषय की अगले मन्त्र में कहा है।।

उदीर्ध्वं जीवो असुर्ने आगादम् प्राणात्तम् आ ज्योतिरेति। आर्वेक्पन्थां यात्रवे सूर्यायागनम् यत्रे प्रतिरन्त आर्युः॥१६॥

उत्। ईर्ध्वम्। जीकः। असुः। जाः। आगात्। अपं। प्र। अगात्। तमः। आ। ज्योतिः। एति। अरैक्। पन्थाम्। यात्रवे। सूर्यायः। अगन्म। यत्रो। प्रऽतिरन्ते। आयुः॥ १६॥

पदार्थ:-(३त) ऊर्ध्वम् (ईर्ध्वम्) कम्पध्वम् (जीवः) इच्छादिगुणविशिष्टः (असुः) प्राणः (नः) अस्मान् (आ) (अगात्) आगच्छति (अप) (प्र) (अगात्) गच्छति (तमः) तिमिरम् (एति) प्राप्नोति (अरैक्) न्यैविरिणेक्ति (पन्थाम्) पन्थानम्। अत्र छान्दसो वर्णलोपो वेति नलोपः। (यातवे) यातुम्

अष्टक-१। अध्याय-८। वर्ग-१-४

मण्डल-१। अनुवाक-१६। सूक्त-११३



(सूर्याय) सूर्यम्। गत्यर्थकर्मणि द्वितीयाचतुर्थ्यौ०। (अष्टा०२.३.१२) (अगन्म) गच्छामः (यत्र) (प्रतिरने) प्रकृष्टतया तरन्ति उल्लङ्घयन्ति (आयुः) जीवनम्॥१६॥^{४८}

अन्वयः – हे मनुष्या! यस्या उषसः सकाशान् नोऽस्माञ्जीवोऽसुरागाज्ज्योतिः प्रगात्तमोऽपैति यातेषे पन्थामरैक् तथा यतो वयं सूर्यायागन्म प्राणिनो यत्रायुः प्रतिरन्ते तां विदित्वोदीर्ध्वम्॥१६॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। प्रात:कालीनोषा: सर्वान् प्राणिनो जागेस्यति अन्धकारं च निवर्त्तयति। यथेयं सायंकालस्था सर्वान् कार्येभ्यो निवर्त्य स्वापयति मातृवत् सर्वान् सम्पाल्य व्यवहारयति, तथैव सती विदुषी स्त्री भवति॥१६॥

पदार्थ: - हे मनुष्यो! जिस उषा की उत्तेजना से (न:) हम लिंगों का (जीव:) जीवन का धर्ता इच्छादि गुणयुक्त (असु:) प्राण (आ, अगात्) सब ओर से प्राप्त होता, (च्योति:) प्रकाश (प्र, अगात्) प्राप्त होता, (तम:) रात्रि (अप, एति) दूर हो जाती और (यात्रवे) जाने-आमें का (पन्थाम्) मार्ग (अरैक्) अलग प्रकट होता, जिससे हम लोग (सूर्याय) सूर्य को (अर. अगने) अच्छे प्रकार प्राप्त होते तथा (यत्र) जिसमें प्राणी (आयु:) जीवन को (प्रतिरन्ते) प्राप्त होकर आमुन्द से बिताते हैं, उसको जान कर (उदीर्ध्वम्) पुरुषार्थ करने में चेष्टा किया करो॥१६॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालक्कार है। जैसे यह प्रात:काल की उषा सब प्राणियों को जगाती, अन्धकार को निवृत्त करती है। और जैसे सायक्काल की उषा सबको कार्य्यों से निवृत्त करके सुलाती है अर्थात् माता के समान सब जीली को अच्छे प्रकार पालन कर व्यवहार में नियुक्त कर देती है, वैसे ही सज्जन विदुषी स्त्री होती है॥ १६॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर्रेभी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

स्यूमना वाच उदियिति विद्धः स्तवीमो रेभ उषसी विभाती:। अद्या तर्दुच्छ ग्णाते मधोभ्यस्मे आयुर्नि दिदीहि प्रजावत्॥ १७॥

स्यूमना। वाचः। उत् इश्वर्ति। विह्निः। स्तर्वानः। रेभः। उषसैः। विऽभातीः। अद्य। तत्। उच्छ। गृणते। मुघोनिः। अस्मे इति आर्युः। मिरे दिदीहिः। प्रजाऽवित्।। १७॥

८८. अञ्च आ ज्योति:, इत्येते पदे नैव व्याख्याते। सं०

पदार्थ:-(स्यूमना) स्यूमानः सकलविद्यायुक्ताः। अत्राकारादेशः। (वाचः) देववाणीः (उत्) उत्कृष्टतया (इयर्ति) जानाति (विह्नः) पावकवद्वोढा विद्वान् (स्तवानः) स्तोतुं शीलः। अत्र स्वरव्यत्ययेनाद्युदात्तत्वम्। (रेभः) बहुश्रोता। अत्र रीङ् धातोरौणादिको भः प्रत्ययः (विभातीः)] (तत्) (उच्छ) विशिष्टतया वासय (गृणते) प्रशंसते (मघोनि) प्रशस्तधन्युक्ते (अग्रमे) अस्मभ्यम् (आयुः) जीवनहेत्वत्रम्। आयुरित्यन्नामसु पठितम्। (निघं०२.७) (नि) (दिदीहि) प्रकाशय (प्रजावत्) प्रशस्ताः प्रजा भवन्ति यस्मात् तत्॥१७॥ ४९

अन्वय:-हे मघोनि स्त्रि! त्वमस्मे गृणते पत्ये च यत्प्रजावदायुरस्ति तदद्य निर्दिदौहि, यस्तव रेभः स्तवानो विह्नर्वोढा पतिस्त्वदर्थं विभातीरुषसः सूर्य्य इव स्यूमना प्रिया वाच उदियत्तिं तं त्वमुच्छ्रभूष्ट्रण्य

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। यदा दम्पती सौहार्देन प्रस्परं बिद्यासुशिक्षाः सङ्गृह्य प्रशस्तान्यत्रधनादीनि वस्तूनि संचित्य सूर्यवद्धर्मन्यायं प्रकाश्य सुखे निवस्तस्तदेव गृहाश्रमस्य पूर्णं सुखं प्राप्नुत:॥१७॥

पदार्थ:-हे (मघोनि) प्रशंसित धनयुक्त स्त्री! तू (अस्में) हमारे और (गृणते) प्रशंसा करते हुए (पत्ये) पित के अर्थ जो (प्रजावत्) बहुत प्रजायुक्त (आयु) जीव का है त्त् अन्न है (तत्) वह (अद्य) आज (नि) निरन्तर (दिदीहि) प्रकाशित कर। जो तेरा (रेभ:) बहुश्रुत्त (स्तवान:) गुण प्रशंसाकर्त्ता (विह्न:) अग्नि के समान निर्वाह करनेहारा पित तेरे लिये (विभाती:) प्रकाशवती (उषस:) प्रभात वेलाओं को जैसे सूर्य वैसे (स्यूमना) सकल विद्याओं से युक्त प्रिय (वाच:) वेदवाणियों को (उत्, इयित) उत्तमता से जानता है, उसको तू (उच्छ) अच्छा निवास कुराया करा।

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तिपमालङ्कार है। जब स्त्री-पुरुष सुहृद्भाव से परस्पर विद्या और अच्छी शिक्षाओं को ग्रहण कर उत्तम अन्न, धनादि वस्तुओं का संचय करके सूर्य के समान धर्म न्याय का प्रकाश कर सुख में निवृद्धि करते हैं तभी गृहाश्रम के पूर्ण सुख को प्राप्त होते हैं॥१७॥

पुनरुष:प्रस्पान स्त्रीपुरुषविषयमाह॥

फिर उष:कार्ल के प्रसंभारे स्त्री-पुरुष के विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

या गोर्मतीरुषस् पर्ववीरी व्युच्छन्ति दाशुषे मर्त्याय। वायोरिक सुनृतानामुद्रके ता अश्वदा अंश्नवत्सोमसुत्वां॥ १८॥

याः। गोऽमतिः। उषसंः। सर्वीऽवीराः। विऽउच्छन्ति। दाशुषे। मर्त्याय। वायोःऽईव। सूनृतानाम्। उत्ऽअर्के। ताः। अश्वऽद्भरः। अस्वत्। सोमुऽसुत्वां॥ १८॥

ह९. अञ्च 'उपसः, विभाती:, अद्य' इत्येतानि पदानि नैव व्याख्यातानि। सं०।

अष्टक-१। अध्याय-८। वर्ग-१-४

मण्डल-१। अनुवाक-१६। सूक्त-११३ Q228

पदार्थ:-(या:) (गोमती:) बह्वयो गावो धेनवः किरणा वा विद्यन्ते यासां ताः (उषसः) सर्वेषीराः सर्वे वीराः भवन्ति यासु सतीषु ताः (व्युच्छन्ति) दुःखं विवासयन्ति (दाशुषे) सुखं दात्रे (मत्यीय) (वायोरिव) यथा पवनात् (सूनृतानाम्) वाचामन्नादिपदार्थानाम् (उदकें) उत्कृष्टतयाप्त्रो (ताः) विदुष्यः (अश्वदाः) या अश्वादीन् पशून् प्रददित (अश्नवत्) अश्नुते (सोमसुत्वा) यः सोममैश्र्यं सर्वित सः ॥१८॥

अन्वयः-हे मनुष्या! यूयं या सूनृतानामुदर्के वायोरिव वर्त्तमाना गोमतीरुषसो विदुष्यः स्त्रियो दाशुर्षे मर्त्याय व्युच्छन्ति। अश्वदाः सर्ववीराः प्राप्नुत यथा सोमसुत्वाश्नवत् तथैता प्राप्नुत॥१८॥

भावार्थ:-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। ब्रह्मचारिणां भाग्यामस्त समावर्त्तनानन्तरं स्वसदृशीर्विद्या-सुशीलतारूपलावण्यसम्पन्ना हृद्याः प्रभातवेला इव प्रश्नासीयुक्ता ब्रह्मचारिणीरुद्वाह्य गृहाश्रमे सुखमलंकुर्य्युः॥१८॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! तुम लोग (या:) जो (सूनृतानाम) श्रेष्ठ बाजी और अन्नादि की (उदर्के) उकृष्टता से प्राप्ति में (वायोरिव) जैसे वायु से (गोमती:) बहुत गौ का किरणोंवाली (उषस:) प्रभात वेला वर्त्तमान हैं, वैसे विदुषी स्त्री (दाशुषे) सुख देनेवाले (मर्ट्याय) मनुष्य के लिये (व्युच्छन्ति) दु:ख दूर करती और (अश्वदा:) अश्व आदि पशुओं को देनेवाली (सर्ववीस:) जिनके होते समस्त वीरजन होते हैं (ता:) उन विदुषी स्त्रियों को (सोमसुत्वा) ऐश्वर्य की सिद्धि करनेहारा जन (अश्नवत्) प्राप्त होता है, वैसे ही इनको प्राप्त होओ॥१८॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमा और चाचकलुलांपमालङ्कार हैं। ब्रह्मचारी लोगों को योग्य है कि समावर्त्तन के पश्चात् अपने सदृश विद्वा, उत्तम श्रीलिता, रूप और सुन्दरता से सम्पन्न हृदय को प्रिय, प्रभात वेला के समान प्रशंसित, ब्रह्मचारिशी कन्याओं से विवाह करके गृहाश्रम में पूर्ण सुख करें॥१८॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

माता देवानामहितानीकं युजस्य केतुर्बृहती वि भाहि।

प्रशस्तिकृद् ब्रह्मणे नो व्युर्धच्छा नो जने जनय विश्ववारे॥१९॥

माता। देवीसम्। अदितै:। अनीकम्। यज्ञस्यं। केतु:। बृहुती। वि। भाहि। प्रशस्तिऽकृत्। ब्रह्मणे। नु:। वि। उच्छ। आ। नु: जर्ने। जन्मु। विश्वऽवारे॥ १९॥

पदार्थः-(माता) (देवानाम्) विदुषाम् (अदिते:) जातस्यापत्यस्य अदितिर्जातमिति मन्त्रप्रमाणात्। (अनीक्रम्) सैन्यवद्रक्षयित्री (यज्ञस्य) विद्वत्सत्कारादेः कर्मणः (केतुः) ज्ञापयित्री पताकेव प्रसिद्धा (वृहती) महस्तिख्विद्धिका (वि) विविधतया (भाहि) (प्रशस्तिकृत्) प्रशंसां विधात्री (वृह्मणे) परमेश्वराय वेदाय वा

(न:) अस्मान् (वि) (उच्छ) सुखे स्थिरी कुरु (आ) (जने) संबन्धिनी पुरुषे (जनय) (विश्ववारे) या विश्वे सर्वं भद्रं वृणोति तत्सम्बुद्धौ॥१९॥

अन्वय:-हे विश्ववारे कुमारि! यज्ञस्य केतुरदितेः पालनायानीकमिव प्रशस्तिकृद् बृहती देवानां मात्रिसारी ब्रह्मणे त्वमुषर्वद्विभाहि नोऽस्माकं जने प्रीतिमाजनय व्युच्छ च॥१९॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। सत्पुरुषेण सत्येव स्त्री विवोढव्या यृत: सुसद्याना ऐश्वर्यं च नित्यं वर्धेत, भार्य्यासंबन्धजन्यदु:खेन तुल्यमिह किञ्चिदि महत् कष्टं न विद्यते, तस्मात् पुरुषेण सुलक्षणया स्त्रिया परीक्षां कृत्वा पाणिग्रहणं स्त्रिया च हृद्यस्य प्रशंसितरूपगुण्रयुक्तस्य पुरुषस्येव ग्रहणं कार्य्यम्॥१९॥

पदार्थ:-हे (विश्ववारे) समस्त कल्याण को स्वीकार करनेहारी कुमार्ग (यज्ञस्य) गृहाश्रम व्यवहार में विद्वानों के सत्कारादि कर्म की (केतु:) जतानेहारी पताका के समान प्रसिद्ध (अदिते:) उत्पन्न हुए सन्तान की रक्षा के लिये (अनीकम्) सेना के समान (प्रश्निस्तृकृत्) प्रशंसा करने और (बृहती) अत्यन्त सुख की बढ़ानेहारी (देवानाम्) विद्वानों की (माता) जन्मी हुई (बृह्मणे) वेदविद्या वा परमेश्वर के ज्ञान के लिये प्रभात वेला के समान (विभाहि) विशेष प्रकाशित हो (न:) हमारे (जने) कुटुम्बी जन में प्रीति को (आ, जनय) अच्छे प्रकार उत्पन्न किया कर और न:) हमको सुख में (व्युच्छ) स्थिर कर॥१९॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमाल्या है। स्त्पुरुष को योग्य है कि उत्तम विदुषी स्त्री के साथ विवाह करे, जिससे अच्छे सन्तान हों और ऐश्वर्ष नित्य बढ़ा करें, क्योंकि स्त्रीसंबन्ध से उत्पन्न हुए दु:ख के तुल्य इस संसार में कुछ भी बढ़ा कह मही है, उससे पुरुष सुलक्षणा स्त्री की परीक्षा करके पाणिग्रहण करे और स्त्री को भी योग्ब है कि अतीव हृदय के प्रिय प्रशंसित रूप गुणवाले पुरुष ही का पाणिग्रहण करे॥१९॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यच्चित्रमप्नं उपमो वहन्त्रीजानायं शशमानायं भुद्रम्।

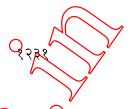
तन्नों मित्रो वर्रुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः॥२०॥४॥

यत्। ब्रित्रम्। अप्नैः। उषसैः। वहन्ति। ईजानाये। शृशृमानाये। भुद्रम्। तत्। नः। मित्रः। वर्रुणः। मुमुहुन्ताम्। अदितिः। स्मिर्धः। पूथिवी। उत। द्यौः॥२०॥

पदार्थ:-(चत्) (चित्रम्) अद्भुतम् (अप्नः) अपत्यम् (उषसः) प्रभातवेला इव स्त्रियः (वहन्ति) प्रापयन्ति (ईजानाय) सङ्गन्तुं शीलाय (शशमानाय) प्रशंसिताय (भद्रम्) कल्याणकरम् (तत्०) इति पूर्ववित्। १००।

अष्टक-१। अध्याय-८। वर्ग-१-४

मण्डल-१। अनुवाक-१६। सूक्त-११३



अन्वय:-हे मनुष्या या उषस इव वर्त्तमानाः सित्स्त्रियः! शसमानायेजानाय पुरुषाय नोऽस्मभ्यं च अच्चित्रं भद्रमप्नो वहन्ति याभिर्मित्रो वरुणोऽदितिः सिन्धुः पृथिवी उतापि द्यौश्च पालनीयाः सन्ति तास्तच्च भवनाः सन्ति मामहन्ताम्॥२०॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। श्रेष्ठा विदुष्यः स्त्रिय एव सन्तानानुत्पाद्य संरक्ष्य सुज्ञिक्षया वर्धयितुं शक्नुवन्ति। ये पुरुषाः स्त्रीः सत्कुर्वन्ति याः पुरुषांश्च तेषा कुले सर्वाणि सुखानि वसन्ति दुःखानिन्ते पलायन्ते॥२०॥

अत्र रात्र्युषर्गुणवर्णनं तद्दृष्टान्तेन स्त्रीपुरुषकर्त्तव्यकर्मोपदेशोऽत एतदर्थस्य पूर्वसूक्तीर्थेन सङ्कितिरस्तीरि वैद्यम्॥

इति त्रयोदशोत्तरशततमं ११३ सुक्तमष्टमे चतुर्थो ४ वर्गश्च सम्पूर्णः॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! जो (उषस:) उषा के समान स्त्री (शशमानाय) शिंगित राष्ट्रीक्त (ईजानाय) संग शील पुरुष के लिये और (न:) हमारे लिये (यत्) जो (चित्रम्) अद्भुत (भेद्रम्) कल्याप्पकारी (अप्न:) सन्तान की (वहन्ति) प्राप्ति करातीं वा जिन स्त्रियों से (मित्र:) सखा (वरुण:) उत्तम पिता (अदिति)) श्रेष्ठ माता (सिन्धु:) समुद्र वा नदी (पृथिवी) भूमि (उत्) और (द्यौ:) विद्युत् वा सूर्यादि प्रकाशमान पदार्थ पालन करने योग्य हैं, उन स्त्रियों वा (तत्) उस सन्तान को निरन्तर (मामहन्ताम्) उपकार में लगाया करो।। १००१

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। श्रेष्ट्र किंद्रान् ही सुन्तानों को उत्पन्न, अच्छे प्रकार रिक्षत और उनको अच्छी शिक्षा करके उनके बढ़ाने को समर्थ होते हैं। जी पुन्न स्त्रियों और जो स्त्री पुरुषों का सत्कार करती हैं, उनके कुल में सब सुख निवास करते हैं और दूस्ख भाग जाते हैं॥२०॥

इस सूक्त में रात्रि और प्रभात समय के पूर्णों का वर्णम् और इनके दृष्टान्त से स्त्री-पुरुषों के कर्त्तव्य कर्म का उपदेश किया है। इससे इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त से कहे अर्थ के साथ संगति है, यह जानना चाहिये॥

यह एकसौ तेरहवां ४१३ सुन्त और ४ चौथा वर्ग समाप्त हुआ॥

अथैकादशर्चस्य चतुर्दशोत्तरशततमस्यास्य सूक्तस्याङ्गिरसः कुत्स ऋषिः। रुद्रो देवता। १ जगती। २,७ निचृज्जगती। ३,६,८,९ विराड् जगती च च्छन्दः। निषादः स्वरः। ४,५,११ भुरिक्

त्रिष्टुप्। १० निचृत् त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथ विद्वद्विषयमाह।

अब ग्यारह ऋचावाले एकसौ चौदहवें सूक्त का प्रारम्भ है। उसके प्रथम मन्त्र में ब्रिट्केडियय को कहते हैं।।

ड्रमा रुद्राय त्वसे कपुर्दिने क्षुद्वीराय प्र भरामहे मृती:।

यथा शमसंद् द्विपदे चतुष्पदे विश्वं पृष्टं ग्रामे अस्मिन्ननातुरम्।(१)

ड्रमाः। रुद्रायं। त्वसे। कुपुर्दिने। क्षुयत्ऽवीराय। प्रा भुरामुहे। प्रतीः। स्थार्रे शम्। असंत्। द्विऽपदे। चतुःऽपदे। विश्वम्। पुष्टम्। ग्रामे। अस्मिन्। अनातुरम्॥ १॥

पदार्थ:-(इमा) प्रत्यक्षतयाऽऽप्तोपदिष्टा वेद्वादिशास्त्रात्भ्वाधसंयुक्ताः (रुद्राय) कृतचतुश्चत्वारिंशद्वर्षब्रह्मचर्य्याय (तवसे) बलयुक्ताय (कपिंते) ब्रह्मचारिणे (क्षयद्वीराय) क्षयन्तो दोषनाशका वीरा यस्य तस्मै (प्र) (भरामहे) धरामहे (मर्ताः) प्रज्ञः (प्रथा) (शम्) सुखम् (असत्) भवेत् (द्विपदे) मनुष्याद्याय (चतुष्पदे) गवाद्याय (विश्वम्) सर्वं प्रविद्वादिकम् (पुष्टम्) पुष्टिं प्राप्तम् (ग्रामे) शालासमुदाये नगरादौ (अस्मिन्) संसारे (अनातुरम्) दुःखविज्ञितम्॥१॥

अन्वय:-वयमध्यापकाः उपदेशका वा यथि द्विपदे चतुपूर्व शमसदस्मिन् ग्रामे विश्वमनातुरं पृष्टमसत्तथा तवसे क्षयद्वीराय रुद्राय कपर्दिन इमा मतीः प्रभरामहे॥ अ

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। यद्गा अपी वृद्धिद: पाठका उपदेष्टारश्च पाठिका उपदेष्ट्रचश्च सुशिक्षया ब्रह्मचारिण: श्रोतृँश्च ब्रह्मचारिणी: श्रोत्रीश्च विद्यायुक्ता: कुर्वन्ति तदैवेमे शरीरात्मबलं प्राप्य सर्वं जगत् सुखयन्ति॥१॥

पदार्थ:-हम अध्यापके वा उपदेशक लोग (यथा) जैसे (द्विपदे) मनुष्यादि (चतुष्पदे) और गौ आदि के लिये (शम्) सूख (असत्) होवे (अस्मिन्) इस (ग्रामे) बहुत घरोंवाले नगर आदि ग्राम में (विश्वम्) समस्त चराचर जीवादि (अनातुरम्) पीड़ारहित (पृष्टम्) पृष्टि को प्राप्त (असत्) हो तथा (तवसे) बलयुक्त (क्षयद्वीराय) जिसके दोषों का नाश करनेहारे वीर पुरुष विद्यमान (रुद्राय) उस चवालीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य कनरेहारे (कपर्दिने) ब्रह्मचारी पुरुष के लिये (इमाः) प्रत्यक्ष आप्तों के उपदेश और वेदादि सास्त्रों के बोध से संयुक्त (मतीः) उत्तम प्रज्ञाओं को (प्र, भरामहे) धारण करते हैं॥१॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जब आप्त, सत्यवादी, धर्मात्मा, वेदों के ज्ञाता, पढ़ाने और उपदेश करनेहारे विद्वान् तथा पढ़ाने और उपदेश करनेहारी स्त्री, उत्तम शिक्षा से ब्रह्मचारी और अष्टक-१। अध्याय-८। वर्ग-५-६

मण्डल-१। अनुवाक-१६। सूक्त-११४

श्रोता पुरुषों तथा ब्रह्मचारिणी और सुननेहारी स्त्रियों को विद्यायुक्त करते हैं, तभी ये लोग शारी औ आत्मा के बल को प्राप्त होकर सब संसार को सुखी कर देते हैं॥१॥

अथ राजविषयः प्रोच्यते॥

अब राजविषय कहा जाता है॥

मृळा नो रुद्रोत नो मर्यस्कृधि क्षयद्वीराय नर्मसा विधेम ते। यच्छं च योश्च मर्नुरायेजे पिता तर्दश्याम तर्व रुद्र प्रणीतिषु॥ आ

मृळ। नुः। रुद्र। उता नुः। मर्यः। कृष्टि। क्षुयत्ऽवीराय। नर्मसा। विधेम्। तेर यत्। प्राम्। च। योः। च। मर्नुः। आऽयेजे। पिता। तत्। अश्याम्। तर्व। रुद्र। प्रऽनीतिषु॥२॥

पदार्थ:-(मृड) सुखय। अत्र दीर्घ:। (न:) अस्मान् (फद्र) दृष्टान् श्रत्रुत् रोदियतः (उत) अपि (नः) अस्मभ्यम् (मयः) सुखम् (कृष्टि) कुरु (क्षयद्वीराय) क्षयन्तो विनिश्चितः शत्रुसेनास्था वीरा येन तस्मै (नमसा) अन्नेन सत्कारेण वा (विधेम) सेवेमिह (ते) तुष्यम् (यत्) (शम्) रोगनिवारणम् (च) ज्ञानम् (योः) दुःखवियोजनम्। अत्र युधातोडोंसिः प्रत्ययः। (च) गृणप्रापणसमुच्चये (मनुः) मननशीलः (आयेजे) समन्ताद्याजयित (पिता) पालकः (तत्) अश्याप्) प्राप्नुयाम। अत्र व्यत्ययेन श्यन् परस्मैपदं च। (तव) (फद्र) न्यायाधीश (प्रणीतिषु) प्रकृष्टासू नीतिषु। श्रा

अन्वय:-हे रुद्र! ये वयं क्षयद्वीराय ते तुभ्यत्रमसा विभ्रेम तात्रो त्वं मृड नोऽस्मभ्यं मयस्कृधि च।हे रुद्र! मनुः पितेव भवान् यच्छ स योश्चायेजे तदश्याम त उत् वयं तिच प्रणीतिषु वर्त्तमाना सततं सुखिनः स्याम॥२॥

भावार्थ:-राजपुरुषाः स्वयं सुरिवनो भूत्व सर्वाः प्रजाः सुखयेयुः नैवात्र कदाचिदालस्यं कुर्युः, प्रजाजनाश्च राजनीतिनियमेषु वर्त्तित्वा राजपुरुषान् सदा प्रीणयेयुः॥२॥

पदार्थ:-हे (फद्र) दुष्ट्र शत्रुओं को कुलानेहारे राजन्! जो हम (क्षयद्वीराय) विनाश किये शत्रु सेनास्थ वीर जिसने उस (ते) आपके लिये (नमसा) अत्र वा सत्कार से (विधेम) विधान करें अर्थात् सेवा करें, उन (न:) हम लोगों के तुम (मृड) सुखी करो और (न:) हम लोगों के लिये (मय:) सुख (कृषि) कीजिये। हे (फद्र) न्यायाधीश (मनु:) मननशील (पिता) पिता के समान आप (यत्) जो रोगों का (शम्) निवारण (चे) ज्ञान (यो:) दु:खों का अलग करना (च) और गुणों की प्राप्ति का (आयेजे) सब प्रकार सङ्ग कसते हो (तत्) उसको (अश्याम) प्राप्त होवें (उत) वे ही हम लोग (तव) तुम्हारी (प्रणीतिषु) उत्तम नीतियों में प्रवृत्त होकर निरन्तर सुखी होवें॥२॥

भेजार्थ:-राजपुरुषों को योग्य है कि स्वयं सुखी होकर सब प्रजाओं को सुखी करें। इस काम में अपलस्य कभी न करें और प्रजाजन राजनीति के नियम में वर्त्त के राजपुरुषों को सदा प्रसन्न रक्खें॥२॥

१२३४

ऋग्वेदभाष्यम्

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अश्यामं ते सुमतिं देवयुज्ययां क्ष्यद्वीरस्य तर्व रुद्र मीढ्वः। सुम्नायन्निद्विशों अस्माकुमा चुरारिष्टवीरा जुहवाम ते हुविः॥३॥

अश्यामं। ते। सुऽमृतिम्। देवऽयुज्ययां। क्षुयत्ऽवीरस्य। तर्व। रुद्र। मीढ्वः। सुम्नुऽयन्। इते। विश्रः। अस्मार्कम्। आ। चुर्। अरिष्टऽवीराः। जुहुवाम्। ते। हुविः॥३॥

पदार्थ:-(अश्याम) प्राप्नुयाम (ते) तव (सुमितम्) शोभनां बुद्धिम् (देवयज्यका) विदुषां सङ्गत्या सत्कारेण च (क्षयद्वीरस्य) क्षयन्तो निवासिता वीरा येन तस्य (तव) (रुद्र) एता सत्योपदेशान् राति ददाति तत्सम्बुद्धौ (मीढ्व:) सुखैः सिञ्चन् (सुम्नयन्) सुखयन् (इत्) अपि (विशः) प्रजाः (अस्माकम्) (आ) (चर) (अरिष्टवीराः) अरिष्टा अहिंसिता वीरा यासु ताः (जुहवाम्) दद्याप् (ते) तुभ्यम् (हविः) ग्रहीतुं योग्यं करम्॥३॥

अन्वयः-हे मीढ्वो रुद्र सभाध्यक्ष राजन्! वयं देवयञ्चया क्षेत्रद्वीरुख्यं तव सुमितमश्याम यः सुम्नयँ-स्त्वमस्माकमरिष्टवीरा विश आचर समन्तात् प्राप्नुयाः तस्य ते तव सूत्रमिद्धेश्याम् ते तुभ्यं हविर्जुहवाम च॥३॥

भावार्थ:-राज्ञा प्रज्ञाः सततं सुखियतव्याः प्रज्ञाभी राज्य च यदि राजा प्रजाभ्यः करं गृहीत्वा न पालयेत्तर्हि स राजा दस्युविद्वज्ञेयः या पालिताः प्रजा राज्ञभक्ता न स्युस्ता अपि चोरतुल्या बोध्या अत एव प्रजा राज्ञे करं ददित यतोऽयमस्माकं पालनं क्रूट्यात् राज्यम्येतत्प्रयोजनाय पालयित यतः प्रजा मह्यं करं प्रदद्युः॥३॥

पदार्थ: -हे (मीढ्व:) प्रजा को सुर्व से सीचने और (रुद्र) सत्योपदेश करनेवाले सभाध्यक्ष राजन्! हम लोग (देवयज्यया) बिद्धानों की संगति और सत्कार से (क्षयद्वीरस्य) वीरों का निवास करानेहारे (तव) तेरी (सुमितम्) श्रष्ट प्रजा को (अश्याम) प्राप्त होवें, जो (सुम्नयन्) सुख कराता हुआ तू (अस्माकम्) हमारी (अरिष्ट्वीराः) हिंसारिहत वीरोंवाली (विशः) प्रजाओं को (आ, चर) सब ओर से प्राप्त हो उस (ते) तेरी प्रजाओं को हम लोग (इत्) भी प्राप्त हों और (ते) तेरे लिये (हविः) देने योग्य पदार्थ को (जुहवाम) दिस्म करें।)

भावार्थ: राजा को योग्य है कि प्रजाओं को निरन्तर प्रसन्न रक्खे और प्रजाओं को उचित है कि राजा को आनुस्तित करें। जो राजा प्रजा से कर लेकर पालन न करे तो वह राजा डाकुओं के समान जानना चाहिये। और पालन की हुई प्रजा राजभक्त न हों, वे भी चोर के तुल्य जाननी चाहिये। इसिलये प्रजा राजा को कर देती है कि जिससे यह हमारा पालन करे और राजा इसिलये पालन करता है कि जिससे प्रजा सुझको कर देवें॥३॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

अष्टक-१। अध्याय-८। वर्ग-५-६

मण्डल-१। अनुवाक-१६। सूक्त-११४

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

त्वेषं वयं रुद्रं यज्ञसाधं वङ्कुं किविमवसे नि ह्वयामहे। आरे अस्मद्दैव्यं हेळो अस्यतु सुमृतिमिद्वयम्स्या वृणीमहे॥४॥

त्वेषम्। वयम्। रुद्रम्। युज्ञऽसार्धम्। वृङ्कुम्। कुविम्। अवसे। नि। ह्वयामहे। आरे अस्मत्। दैव्यम्। हेळ्:। अस्यतु। सुऽमृतिम्। इत्। वयम्। अस्य। आ। वृणीमहे॥४॥

पदार्थ:-(त्वेषम्) विद्यान्यायदीप्तिमन्तम् (वयम्) (फद्रम्) शत्रुगृद्धारम् (यज्ञसाधम्) यो यज्ञं प्रजापालनं साध्नोति तम् (वड्कुम्) दुष्टशत्रून् प्रति कुटिलम् (किंग्) सर्वेषां श्रास्त्राणां क्रान्तदर्शिनम् (अवसे) रक्षणाद्याय (नि) (ह्वयामहे) स्वसुखदु:खनिवेदनं कुर्महे (आरे) दूरे (अस्मत्) (दैव्यम्) देवेषु विद्वत्सु कुशलम् (हेड:) धार्मिकाणामनादरकर्तृनधार्मिकाञ्जनान् (अस्यत्) प्रक्षिपत् (सुमितिम्) धर्म्यां प्रज्ञाम् (इत्) एव (वयम्) (अस्य) (आ) समन्तात् (वृणीमहे) स्त्रीकुर्महे। ४॥

अन्वय:-वयमवसे यं त्वेषं वङ्कुं किंव यज्ञसाधं दैव्यं रिंद्र मिह्न अस्मेरे तथा वयं यस्यास्य सुमितमावृणीमहे स इदेव सभाध्यक्षो हेडोऽस्मदारे अस्यतु॥४॥

भावार्थ:-यथा प्रजास्था जना राजाज्ञां स्वीक्र्मिन्ति त्रथा राजपुरुषा अपि प्रज्ञाज्ञां मन्येरन्॥४॥

पदार्थ:-(वयम्) हम लोग (अवसे) हमा ओदि के लिये जिस (त्वेषम्) विद्या और न्याय से प्रकाशवान् (वड्कुम्) दुष्ट शत्रुओं के प्रति कृदिल (किन्म्) समस्त शास्त्रों को क्रम-क्रम से देखने और (यज्ञसाधम्) प्रजापालनरूप यज्ञ को सिंड्र किरनेहार (दैव्यम्) विद्वानों में कुशल (फर्रम्) शत्रुओं के रोकनेहारे को (नि, ह्वयामहे) अपना सुख-दुःख का निवदेन करें तथा (वयम्) हम लोग जिस (अस्य) इस रुद्र की (सुमितिम्) धर्मानुकूल उत्तम प्रज्ञा को (आ, वृणीमहे) सब ओर से स्वीकार करें (इत्) वही सभाध्यक्ष (हेड:) धार्मिक जनों का अनादर करनेहारे अधार्मिक जनों को (अस्मत्) हमसे (आरे) दूर (अस्यतु) निकाल देवे॥४॥

भावार्थ:-जैसे प्रजानि राजा को स्वीकार करते हैं, वैसे राजपुरुष भी प्रजा की आज्ञा को माना करें॥४॥

अथ वैद्यविषयमाह॥

अब वैद्यजन के विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

दिवो क्येहमफुषं कप्दिनं त्वेषं रूपं नमसा नि ह्वयामहे।

हस्ते बिभ्रंद् भेषुजा वार्याणि शर्म वर्म' च्छुर्दिरुस्मभ्यं' यंसत्॥५॥५॥

१२३६

द्विः। वृराहम्। अ्रुष्यम्। कुपर्दिनेम्। त्वेषम्। रूपम्। नर्मसा। नि। ह्वयामहे। हस्ते। बिभ्रेत्। भेषुजा। वार्याणि। शर्मा वर्मा छुर्दिः। अस्मभ्यम्। यंसुत्॥५॥

पदार्थ:-(दिव:) विद्यान्यायप्रकाशितव्यवहारान् (वराहम्) मेघमिव (अरुषम्) अशिष्किम् (कपर्दिनम्) कृतब्रह्मचर्यं जटिलं विद्वांसम् (त्वेषम्) प्रकाशमानम् (रूपम्) सुरूपम् (भपसा) अन्नन परिचर्यया च (नि) (ह्वयामहे) स्पर्द्धामहे (हस्ते) करे (बिभ्रत्) धारयन् (भेषजा) रोगमिवारकाणि (वार्याणि) ग्रहीतुं योग्यानि साधनानि (शर्म) गृहं सुखं वा (वर्म) कवचम् रछर्दिः) दीजियुक्तं शस्त्रास्त्रादिकम् (अस्मभ्यम्) (यंसत्) यच्छेत्॥५॥

अन्वय:-वयं नमसा यो हस्ते भेषजा वार्याणि बिभ्रत् सन् शर्म वर्म छर्दिरहम्भय यंसत् तं कपर्दिनं वैद्यं दिवो वराहमरुषं त्वेषं रूपं च निह्नयामहे॥५॥

भावार्थ:-ये मनुष्या वैद्यमित्राः पथ्यकारिणो जितेन्द्रियाः सुशौत्रा भवन्ति, त एवास्मिञ्जगति नीरोगा भूत्वा राज्यादिकं प्राप्य सुखमेधन्ते॥५॥

पदार्थ:-हम लोग (नमसा) अन्न और सेवा से जो (हस्ते) हाथ में (भेषजा) रोगनिवारक औषध (वार्च्याणि) और ग्रहण करने योग्य साधनों को (बिभ्रत्) धारण करता हुआ (श्रम्मं) घर, सुख (वर्म्मं) कवच (छर्दि:) प्रकाशयुक्त शस्त्र और अस्त्रादि को (अस्मभ्रम्) हमारे लिये (यंसत्) नियम से रक्खे, उस (कपर्दिनम्) जटाजूट ब्रह्मचारी वैद्य विद्वान् व्य (दिवः) ब्रिद्यान्यायप्रकाशित व्यवहारों वा (वराहम्) मेघ के तुल्य (अरुषम्) घोड़े आदि के (त्वेषम्) प्रकाशमान (रूपम्) सुन्दर रूप की (निह्वयामहे) नित्य स्पर्द्धा करें॥५॥

भावार्थ:-जो मनुष्य वैद्य के मित्र प्रथाकारी जितेन्द्रिय उत्तम शीलवाले होते हैं, वे ही इस जगत् में रोगरहित और राज्यादि को प्राप्त होकर सुख्य को बढ़ाते हैं॥५॥

पुर्वेद्योपदेशकौ कथं वर्त्तेयातामित्युपदिश्यते॥

फिर वैद्य और उपदेश करिनवाले कैसे अपना वर्त्ताव वर्त्ते, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

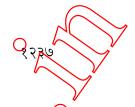
इदं पित्रे मुरुतामुख्यते वर्षः स्वादोः स्वादीयो रुद्राय वर्धनम्॥ रास्वा च नो अमृत मूर्तभोजनं त्मने तोकाय तनयाय मृळ॥६॥

इदम्। फ्रिंश मुरुताम्। उच्यते। वर्चः। स्वादोः। स्वादीयः। रुद्राये। वर्धनम्। रास्वे। चः। नः। अमृतः। मुर्तेऽभोजनम्। त्र्ये। तोकाये। तनयाय। मृळः॥६॥

पद्धि:-(इदम्) (पित्रे) पालकाय (मरुताम्) ऋतावृतौ यजतां विदुषाम् (उच्यते) उपदिश्यते (वच:) त्रचनम् (स्वादो:) स्वादिष्ठात् (स्वादोय:) अतिशयेन स्वादु प्रियकरम् (रुद्राय) सभाध्यक्षाय (वर्धनम्) वृद्धिकरम् (रास्व) देहि। अत्र द्वयचोऽतस्तिङ इति दीर्घः। (च) अनुक्तसमुच्चये (नः)

अष्टक-१। अध्याय-८। वर्ग-५-६

मण्डल-१। अनुवाक-१६। सूक्त-११४



अस्मभ्यमस्माकं वा (अमृत) नास्ति मृतं मरणदुःखं येन तत्सम्बुद्धौ (मर्तभोजनम्) मर्तानां मतृष्याणां भोग्यं वस्तु (त्मने) आत्मने (तोकाय) हस्वाय बालकाय (तनयाय) यूने पुत्राय (मृड) सुखुर्या। ६॥

अन्वय:-हे अमृत विद्वन् वैद्यराजोपदेशक वा! त्वं नोऽस्मभ्यमस्माकं वा त्मने तोकाय/तनयार्थः च स्वादोः स्वादीयो मर्त्तभोजनं रास्वा यदिदं मरुतां वर्धनं वचः पित्रे रुद्राय त्वयोच्यते तेनास्मान् मृड॥६॥

भावार्थ:-वैद्यस्योपदेशकस्य चेयं योग्यतास्ति स्वयमरोगः सत्याचारी पूत्वा पूर्वेभ्यो स्नुष्येभ्य औषधदानेनोपदेशेन चोपकृत्य सर्वान् सततं रक्षेत्॥६॥

पदार्थ:-हे (अमृत) मरण दु:ख दूर कराने तथा आयु बढ़ानेहार तैयराज है उपदेशक विद्वान्! आप (न:) हमारे (त्मने) शरीर (तोकाय) छोटे-छोटे बाल-बच्चे (तन्याय) जवान बेटे (च) और सेवक वैतनिक वा आयुधिक भृत्य अर्थात् चाकरों के लिये (स्वादी:) स्वादिष्ट से (स्वादीय:) स्वादिष्ट अर्थात् सब प्रकार स्वादवाला जो खाने में बहुत अच्छा लगे उस (मूर्त्यभोजनम्) मनुष्यों के भोजन करने के पदार्थ को (रास्व) देओ, जो (इदम्) यह (मरुताम्) ऋतु ऋतु में यूज करनेहारे विद्वानों को (वर्द्धनम्) बढ़ानेवाला (वच:) वचन (पित्रे) पालना करने (रुद्राय) और दुष्टों को रुलानेहारे सभाध्यक्ष के लिये (उच्यते) कहा जाता है, उससे हम लोगों को (मृड) सुखी की जिये।।६॥

भावार्थ:-वैद्य और उपदेश करनेवाले कि यह योग्य है कि आप नीरोग और सत्याचारी होकर सब मनुष्यों के लिये औषध देने और उपदेश करने से उपकार कर सबकी निरन्तर रक्षा करें॥६॥

अथ न्याय्धीष्ट्राः कश्रं वर्ततेत्युपदिश्यते॥

अब न्यायाधीश केसे वर्त, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

मा नो महान्तंमुत मा नो अर्धिक मा न उक्षंन्तमृत मा न उक्षितम्।

मा नो वधी: पितरं पति मातरं मो ने: प्रियास्तन्वों रुद्र रीरिष:॥७॥

मा। नुः। महान्तम्। उत्। मा। नुः। अर्थकम्। मा। नुः। उक्षन्तम्। उत। मा। नुः। उक्षितम्। मा। नुः। वृधीः। पितर्रम्। मा। उत। मातर्रम्। मा। नुः। पुर्याः। तुन्वः। रुद्ध। रिरिषः॥७॥

पदार्थ:-(मा) निषेधे (न:) अस्माकम् (महान्तम्) वयोविद्यावृद्धं जनम् (उत) अपि (मा) (न:) (अर्भकम्) बाल्यावस्थापत्रम् (मा) (न:) (उक्षन्तम्) वीर्यसेचनसमर्थं युवानम् (उत) (मा) (न:) (उक्षितम्) वीर्यसेचनस्थितं गर्भम् (मा) (न:) (वधी:) हिन्धि (पितरम्) पालकं जनकं विद्वांसं वा (मा) (उत) (मातरम्) मानसम्मानकर्त्री जननीं विदुषीं वा (मा) (न:) (प्रिया:) अभीप्सिताः (तन्वः) तनूः शरीरप्रणि (रुद्ध) न्यायाधीश दुष्टरोदयितः (रीरिषः) जिह। अत्र तुजादित्वाद्दीर्घः॥७॥

अन्वय:-हे रुद्र! त्वं नोऽस्माकं महान्तं मा वधीरुतापि नोऽर्भकं मा वधी:। न उक्षन्तं मा वधीरुतापि न उक्षिते मा वधी:। न: पितरं मा वधी: उत मातरं मा वधी:। न: प्रियास्तन्वस्तनू मां वधीरन्यायकारिणो दुष्टांश्च रीरिष:॥७॥

भावार्थ:-हे मनुष्या! यथा जगदीश्वरः पक्षपातं विहाय धार्मिकानुत्तमकर्मफलदाने गापिनश्च पापफलदानेन पीडयति तथैव यूयं प्रयतध्वम्॥७॥

पदार्थ:-(रुद्र) न्यायाधीश दुष्टों को रुलानेहारे सभापित (न:) हम लोगों में से (महान्त्रम्) बुड्ढे वा पढ़े-लिखे मनुष्य को (मा) मत (वधी:) मारो (उत) और (न:) हमारे (अर्भक्रम्) बालक को (मा) मत मारो (न:) हमारे (उक्षन्तम्) स्त्रीसङ्ग करने में समर्थ युवावस्था से परिपूर्ण मनुष्य को (मा) मत मारो (उत) और (न:) हमारे (उक्षितम्) वीर्यसेचन से स्थित हुए गर्भ को (मा) मत मारो (न:) हम लोगों के (पितरम्) पालने और उत्पन्न करनेहारे पिता वा उपदेश करनेवाले को (मा) मत मारो (उत) और (मातरम्) मान-सम्मान और उत्पन्न करनेहारी माता वा विदुषी स्त्री को (मा) मत मारो (न:) हम लोगों की (प्रिया:) स्त्री आदि के पियारे (तन्व:) शरीरों को (मा) मत मारो और अन्यायकारी दुष्टों को (रीरिष:) मारो॥७॥

भावार्थ:-हे मनुष्यो! जैसे ईश्वर पक्षपात को छोड़ के भ्रामिक सज्जनों को उत्तम कर्मों के फल देने से सुख देता और पापियों को पाप का फल देने से पौड़ा देता है, वैसे ही तुम लोग भी अच्छा यत्न करो॥७॥

पुन: राजजना: कथं वर्तेरिक्क्स्युपिदश्यते॥ फिर राजजन कैसे वर्तें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

मा नंस्तोके तनेये मा नं आयौ पा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः। वीरान्मा नो रुद्र भामितो, वैधाईविष्मन्तः सद्रमित्त्वां हवामहे॥८॥

मा। नुः। तोके। तर्नये। मार्<u>नुः। अप्रयो</u>। मा। नुः। गोर्षु। मा। नुः। अश्वेषु। रि<u>रिषः।</u> वीरान्। मा। नुः। <u>रुद्र</u>। भामितः। वृधीः। हुविष्मन्तः। सर्दम्। इत्। त्वा। हु<u>बामहे</u>॥८॥

पदार्थ:-(मा) (न:) अस्माक्रम् (तोके) सद्योजातेऽपत्ये पुत्रे (तनये) अतीतशैशवावस्थे (मा) (न:) (आयौ) जीवनविषये (मा) (न:) (गोषु) धेनुषु (मा) (न:) (अश्वेषु) वाजिषु (रीरिष:) हिंस्याः (वीरान्) (मा) (स:) अस्माकम् (रुद्र) (भामित:) क्रुद्धः सन् (वधी:) हन्याः (हविष्मन्तः) हवींषि प्रशस्तानि जगद्भुपकरणानि कर्माणि विद्यन्ते येषां ते (सदम्) स्थिरं वर्त्तमानं ज्ञानमाप्तम् (इत्) एव (त्वा) त्वाम् (हवामह) स्वीकुर्महे॥८॥

अन्वय:-हे रुद्र! हविष्मन्तो वयं यतस्सदं त्वामिदेव हवामहे तस्माद्धामितस्त्वं नस्तोके तनये मा रीरिषो न आयौ भा रीरिषः, नो गोषु मा रीरिषः, नोऽश्वेषु मा रीरिषः, नो वीरान् मा वधीः॥८॥

अष्टक-१। अध्याय-८। वर्ग-५-६

मण्डल-१। अनुवाक-१६। सूक्त-११४



भावार्थ: न कदाचिद्राजपुरुषै: क्रुद्धै: सिद्धः कस्याप्यन्यायेन हननं कार्य्यं गवादयः प्राचः सद्धाः रक्षणीयाः, प्रजास्थैर्जनैश्च राजाश्रयेणैव निरन्तरमानिन्दितव्यम्। सर्वेमिलित्वैवं जगदीश्वरः प्रार्थनीयश्च हे परमेश्वर! भवत्कृपया वयं बाल्याऽवस्थायां विवाहादिभिः कुकर्मिभः पुत्रादीनां हिंसनं कदािच्च कुर्य्याम, पुत्रादयोऽप्यस्माकमिप्रयं न कुर्य्युः, जगदुपकारकान् गवादीन् पशून् कदािचन्न हिंस्यामेति॥८॥

पदार्थ:-हे (फद्र) दुष्टों को रुलानेहारे सभापति! (हिविष्मनः:) जिनके प्रशेषायुक्त स्मार के उपकार करने के काम हैं, वे हम लोग जिस कारण (सदम्) स्थिर वर्तमान ज्ञान को प्राप्त (त्वाम्, इत्) आप ही को (हवामहे) अपना करते हैं, इससे (भामितः) क्रोध को प्राप्त हुए आप (नः) हम लोगों के (तोके) उत्पन्न हुए बालक वा (तनये) बालिकाओं से जो ऊपर है, इस बालक में (मा) (रीरिषः) घात मत करो (नः) हम लोगों के (आयौ) जीवन विषय में (मा) मत हिंसा करो (नः) हम लोगों के (गोषु) गौ आदि पशुसंघात में (मा) मत घात करो (नः) हम लोगों के (आयौ) मत करो (नः) हम लोगों के (भा) मत करो (नः) हमारे (वीरान्) वीरों को (मा) मत (वधीः) मारो॥८४।

भावार्थ:-क्रोध को प्राप्त हुए सज्जन राजपुरुषों को किसी को अन्याय से हनन न करना चाहिये और गौ आदि पशुओं की सदा रक्षा करनी चाहिये प्रजारनों की भी राजा के आश्रय से ही निरन्तर आनन्द करना चाहिये और सबों को मिल कर ईश्वर की ऐसी/प्रार्थना करनी चाहिये कि हे परमेश्वर! आप की कृपा से हम लोग बाल्यावस्था में विवाह आदि बुरे क्राम करके पुत्रादिकों का विनाश कभी न करें और वे पुत्र आदि भी हम लोगों के विरुद्ध काम को प्र करें तथा संसार का उपकार करने हारे गौ आदि पशुओं का कभी विनाश न करें॥८॥

पुना राज्यप्रजाजनाः परस्परं कथं वर्त्तरिन्नत्युपदिश्यते॥

फिर राजा प्रज्ञिन परस्पर केसे वर्तें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

उप ते स्तोमान् पशुपाद्ध्याकेरं राष्ट्री पितर्मरुतां सुम्नम्स्मे। भुद्रा हि ते सुम्तिभूष्ट्रियनुमार्था व्यमव इत्ते वृणीमहे॥९॥

उप। ते। स्तोमान्। पुशुपाः इव। आ। अकुरम्। रास्व। पितः। मुरुताम्। सुम्नम्। अस्मे इति। भुद्रा। हि। ते। सुऽमृतिः। मुळ्यतूऽतिम्। अर्थ वियम्। अर्वः। इत्। ते। वृणीमहे॥ ९॥

पदार्थ: उप) (ते) तुभ्यम् (स्तोमान्) स्तुत्यान् रत्नादिद्रव्यसमूहान् (पशुपाइव) यथा पशुपालको गवादिभ्यो दुग्धादिकं गृहीत्वा गोस्वामिने समर्पयति (आ) (अकरम्) करोमि (रास्व) देहि। द्वायोध्निस्तिः इति दीर्घः। (पितः) पालयिता रुद्र (मरुताम्) ऋत्विजाम् (सुम्नम्) सुखम् (अस्मे) मह्यम् (भूद्रा) कृत्यापारूपा (हि) यतः (ते) तव (सुमितः) शोभना प्रज्ञा (मृडयत्तमा) अतिशयेन सुखकर्त्री

(अथ) अत्र निपातस्य चेति दीर्घः। (वयम्) (अवः) रक्षणादिकम् (इत्) एव (ते) तव (वृणीमहे) स्वीकुर्महे॥९॥

अन्वय:-हे मरुतां पितर्यहं पशुपाइव स्तोमाँस्त उपाकरमतस्त्वमस्मे मह्यं सुम्नं रास्वाथ या ते विव्य मेडियतम्। भद्रा सुमतिर्यत् ते तवावोऽस्ति तां तच्च वयं यथा वृणीमहे तथेत्त्वमप्यस्मान् स्वीकुरु॥९॥

भावार्थः-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। प्रजापुरुषाः राजपुरुषेभ्यो राजनीति राजपुरुषाः प्रजापुरुषेभ्यः प्रजाव्यवहारं बुद्ध्वा विदितवेदितव्याः सन्तः सनातनं धर्ममाश्रयेयुः॥

पदार्थ:-हे (मरुताम्) ऋतु-ऋतु में यज्ञ करानेहारे की (पितः) प्रव्या करते हुए दुष्टों को रुलानेहारे सभापित! (हि) जिस कारण मैं (पशुपाइव) जैसे पशुओं को मलनेहारा चरवाहा अहीर गौ आदि पशुओं से दूध, दही, घी, मट्ठा आदि ले के पशुओं के स्वामी को द्रेता है, वैसे (स्तोमान्) प्रशंसनीय रत्न आदि पदार्थों को (ते) आपके लिये (उप, आ, अकरम्) आगे करता हूँ, इस कारण आप (अस्मे) मेरे लिये (सुम्नम्) सुख (रास्व) देओ, (अथ) इसके अनन्तर जो (ते) आपकी (मृडयत्तमा) सब प्रकार से सुख करनेवाली (भद्रा) सुखरूप (सुमितः) श्रेष्ठ मित और जो (ते) आपका (अवः) रक्षा करना है, उस मित और रक्षा करने को (वयम्) हम लोग जैसे (वृणीमहें) स्वीकार करते हैं (इत्) वैसे ही आप भी हम लोगों को स्वीकार करें॥९॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमा और वाचकर्ताप्तोपमालङ्कार हैं। प्रजापुरुष राजपुरुषों से राजनीति और राजपुरुष प्रजापुरुषों से प्रजाव्यवहार को जाने हुए सनातन धर्म का आश्रय करें॥९॥

पुन राजीप्रजाद्यमे उपदिश्यते॥

फिर राजा-प्रज के धर्म का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

आरे ते गोधनमुत पूरुपूर्व क्षयद्वीर सुम्नम्समे ते अस्तु।

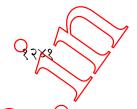
मृळा च नो अधि च क्रिह देवाधा च नः शर्म यच्छ द्विबर्ही:॥१०॥

आरे। ते। गोऽघ्नारा उता पुरुष्ण्याम्। क्षयंत्ऽवीर। सुम्नम्। अस्मे इति। ते। अस्तु। मृळ। च। नः। अर्धि। च। ब्रूहि। देव। अर्ध। च। नः। रामी मुच्छ। द्विऽबर्हीः॥१०॥

पदार्थ:-(आरे) समीप दूरे च (ते) तव सकाशात् (गोघ्नम्) गवां हन्तारम् (उत) (पुरुषघ्नम्) पुरुषाणां हन्तारम् (क्ष्यद्वीर) शूरवीरिनवासक (सुम्नम्) सुखम् (अस्मे) अस्मभ्यम् (ते) तुभ्यम् (अस्तु) भवतु (मृड्र) अत्रोत्तर्माधितो ण्यर्थ:। द्व्यचोऽतिस्तङ इति दीर्घश्च। (च) (नः) अस्मान् (अधि) आधिक्ये (च) (बूहि) आज्ञाप्य (देव) दिव्यकर्मकारिन् (अध) आनन्तर्ये। अत्र वर्णव्यत्ययेन थस्य धो निपातस्य चेति किर्यक्ष (च) (नः) (शर्म) गृहसुखम् (यच्छ) देहि (द्विबर्हाः) द्वयोव्यवहारपरमार्थयोवर्धकः॥१०॥

अष्टक-१। अध्याय-८। वर्ग-५-६

मण्डल-१। अनुवाक-१६। सूक्त-११४



अन्वयः - हे क्षयद्वीर देव! पुरुषघ्नं गोघ्नं च निवार्य तेऽस्मे च सुम्नमस्तु। अधाथ त्वं नोऽस्मान् मृहाहं च त्वां मृहानि त्वं नोऽस्मानिधब्रूहि। अहं त्वां चाधिब्रुवाणि। द्विबर्हास्त्वं नः शर्म यच्छ। अहं वः शर्म यच्छ्रानि सर्वे वयमारं धर्मात्मनां निकटे दुष्टात्मभ्यो दूरे च वसेम॥१०॥

भावार्थ:-मनुष्यै: प्रयत्नेन पशुघातिकेभ्यो मनुष्यमारेभ्यश्च दूरे निवसनीय्राम्। स्वेभ्य एते दूरे निवासनीया:। राज्ञा प्रजापुरुषैश्च परस्परमुपदिश्य सभां निर्माय रक्षणं विधाय व्यवहारपरमार्थौ साधनीयौ॥१०॥

पदार्थ:-हे (क्षयद्वीर) शूरवीर जनों का निवास कराने और (देव) दिख्य) अच्छे-अच्छे कर्म करानेहारे विद्वान् सभापित! (पुरुषघ्नम्) पुरुषों को मारने (च) और (में इनम्) में आदि उपकार करनेहारे पशुओं के विनाश करनेवाले प्राणी को निवार करके (ते) आपके (च) और (अस्मे) हम लोगों के लिये (सुम्नम्) सुख (अस्तु) हो, (अधा) इसके अनन्तर (न:) हम लोगों को (मुंड) सुखी कीजिये (च) और मैं आपको सुख देऊं, आप हम लोगों को (अधिबृहि) अधिक उपदेश देशों (च) और मैं आपको अधिक उपदेश करूं (द्विवर्हा:) व्यवहार और परमार्थ के बढ़ानेवित्ते आप (म:) हम लोगों के लिये (शर्म्म) घर का सुख (यच्छ) दीजिये (च) और आपके लिये में सुख देख्ने सब हम लोग धर्मात्माओं के (आरे) निकट और दुराचारियों से दूर रहें॥१०॥

भावार्थ:-मनुष्यों को चाहिये कि यत्न के साथ पूर्ण और मनुष्यों के विनाश करनेहारे दुराचारियों से दूर रहें और अपने से उनका दूर निवास करनेहों। राजा और प्रजाजनों को परस्पर एक-दूसरे से उपदेश कर सभा बना और सबकी रक्षा कर व्यवहार और प्रपार्थ का सुख सिद्ध करना चाहिये॥१०॥

पुनरेष्यापकापदेशकव्यवहारमाह।।

फिर अध्यापक और उपदेशकों के व्यवहारों को अगले मन्त्र में कहा है।।

अवीचाम नमी असमा अवस्यवी: श्रुणोतुं नो हवं रुद्रो मुरुत्वान्।

तन्नी मित्रो वर्षणी मामहर्मा मदिति: सिन्धुः पृथिवी उत द्यौ:॥११॥६॥

अवीचाम। नर्मः। अस्मा अवस्यवः। शृणोतुं। नः। हर्वम्। फुद्रः। मुरुत्वान्। तत्। नः। मित्रः। वर्रुणः। मुमुहुन्ताम्। अदितिः। सिन्धुः। पृथिवी। उत। द्यौः॥ ११॥

पदार्थ: (अवोचाम) वदेम (नमः) नमस्त इति वाक्यम् (अस्मै) माननीयाय सभाध्यक्षाय (अवस्यवः) आत्मनोऽवो रक्षणादिकमिच्छवः (शृणोतु) (नः) अस्माकम् (हवम्) आह्वानरूपं प्रशंसावाक्सम् (स्त्रः) अधीतविद्यः (मरुत्वान्) बलवान् (तत्) (नः०) इति पूर्ववत्॥११॥

अन्वय:-अवस्यवो वयमस्मै सभाध्यक्षाय नमोऽवोचाम स मरुत्वान् रुद्रो नस्तन्नोऽस्माकं हवं च शृणोतु ह मनुष्या! यन्नो नमो मित्रो वरुणोऽदिति: सिन्धु: पृथिवी उत द्यौर्वर्धयन्ति तद्भवन्तो मामहन्ताम्॥११॥

भावार्थ:-प्रजास्थै: पुरुषै राज्ञां प्रियाचरणानि नित्यं कर्त्तव्यानि राजभिश्च प्रजाजन्तिं। स्त्रोतिस्यानि। एवं मिलित्वा न्यायमुत्रीयान्यायं निराकुर्य्यु:॥११॥

अत्र ब्रह्मचारिविद्वत्सभाध्यक्षसभासदादिगुणवर्णनादेतत्सूक्तार्थस्य पूर्वसूर्वतोक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति बोध्यम्॥

इति चतुर्दशोत्तरं शततमं ११४ सूक्तं षष्ठो ६ वर्गश्च समाज्यः।

पदार्थ:-(अवस्थव:) अपनी रक्षा चाहते हुए हम लोग (अस्में) इस मान करने योग्य सभाध्यक्ष के लिये (नम:) 'नमस्ते' ऐसे वाक्य को (अवोचाम) कहें और वह (मस्त्वान) कलवान (रुद्र:) विद्या पढ़ा हुआ सभापित (तत्) उस (न:) हमारे (हवम्) बुलानेरूप प्रशंसावाक्य को (शृणोतु) सुने। हे मनुष्यो! जो (न:) हमारे 'नमस्ते' शब्द को (मित्र:) प्राण (वर्षणः) श्रेष्ठ विद्वान् (अदिति:) अन्तरिक्ष (सिन्धु:) समुद्र (पृथिवी) पृथ्वी (उत्त) और (द्यौ:) प्रकाश बढ़ाते हैं अर्थात् उक्त पदार्थों को जाननेहारे सभापित को वार-वार 'नमस्ते' शब्द कहा जाता, उसकी आप (शामहन्ताम्) वार-वार प्रशंसायुक्त करें॥११॥

भावार्थ:-प्रजापुरुषों को राजा लोगों के प्रिष्ट आचरण नित्य करने चाहियें और राजा लोगों को प्रजाजनों के कहे वाक्य सुनने योग्य हैं। ऐसे सूर्व राजा-प्रजा मिलकर न्याय की उन्नति और अन्याय को दूर करें॥११॥

इस सूक्त में ब्रह्मचारी, विद्वान, सभाधिक और सभासद् आदि गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त में कहे अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ एकता जानने योग्य है।।

यह एकसौ चौदहवां २९४ सूक्त और छठा ६ वर्ग समाप्त हुआ॥

अथ षड्चस्य पञ्चदशोत्तरशततमस्यास्य सूक्तस्याङ्गिरसः कुत्स ऋषिः। सूर्यो देवता। १,२,६ निचृत् त्रिष्टुप्। ३ विराट् त्रिष्टुप्। ४,५ त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

तत्रादावीश्वरगुणा उपदिश्यन्ते॥

अब छ: ऋचावाले एक सौ पन्द्रहवें सूक्त का आरम्भ है। उसके प्रथम मन्त्र में ईश्वर के मुणों का उपदेश किया है।।

चित्रं देवानामुद्रगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वर्मणस्याग्नेः।

आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षुं सूर्य आत्मा जर्गतस्तुस्थुर्षश्च॥ १॥

चित्रम्। देवानाम्। उत्। अगात्। अनीकम्। चक्षुः। मित्रस्यं। वरुणस्य। अग्नैः। आ। अग्राः। द्यावीपृथिवी इति। अन्तरिक्षम्। सूर्यः। आत्मा। जर्गतः। तस्थुषः। च॥ १॥

पदार्थ:-(चित्रम्) अद्भुतम् (देवानाम्) विदुषां दिव्यानां पदार्थानां वा उत्कृष्टतया (अगात्) प्राप्तमस्ति (अनीकम्) चक्षुरादीन्द्रियैरप्राप्तम् (चक्षुः) दर्शकं ब्रह्म (मित्रस्य) सृहृद इव वर्त्तमानस्य सूर्यस्य (वरुणस्य) आह्णादकस्य जलचन्द्रादेः (अग्नेः) विद्युद्रादेः (आ) समन्तात् (अप्राः) पूरितवान् (द्यावापृथिवी) प्रकाशभूमी (अन्तरिक्षम्) आकाशम् (सूर्यः) स्वित्वे ज्ञानप्रकाशः (आत्मा) अति सर्वत्र व्याप्नोति सर्वान्तर्यामी (जगतः) जङ्गमस्य (तस्युषः) श्राह्मरस्य (य) सकलजीवसमुच्चये॥१॥

अन्वयः-हे मनुष्या! यदनीकं देवानां मित्रस्य वरुषस्याग्नेश्चित्रं चक्षुरुदगाद्यो जगदीश्वरः सूर्य इव विज्ञानमयो जगतस्तस्थुषश्चात्मा योऽन्तरिक्षं द्यावापृथिवी चाप्राः परिपृष्त्वानस्त्रि तमेव यूयमुपाध्वम्॥१॥

भावार्थ:-न खलु दृश्यं परिक्छितं वस्तु परमात्मा भवितुमर्हति, नो कश्चिदप्यव्यक्तेन सर्वशक्तिमता जगदीश्वरेण विना सर्वस्य ज्यात उत्पादनं कर्त्तुं शक्नोति, नैव कश्चित् सर्वव्यापकसिच्चदानन्दस्वरूपमन्तर्यामिणे सर्वात्मानं परमेश्वरमन्तरा जगद्धर्तुं जीवानां पापपुण्यानां साक्षित्वं फलदानं च कर्त्तुमर्हति, नहोत्तस्योपासनया विना धर्मार्थकाममोक्षान् लब्धुं कोऽपि जीव: शक्नोति, तस्मादयमेवोपास्य इष्टदेव: स्मेमित्व्य:॥१॥

पदार्थ:-हे मनुष्ट्रा जो (अर्नांकम्) नेत्र से नहीं देखने में आता तथा (देवानाम्) विद्वान् और अच्छे-अच्छे पदार्थों वा (पित्रस्या) मित्र के समान वर्तमान सूर्य वा (वरुणस्य) आनन्द देनेवाले जल, चन्द्रलोक और अपनी व्याप्ति आदि पदार्थों वा (अग्नेः) बिजुली आदि अग्नि वा और सब पदार्थों का (चित्रम्) अद्भुत (चेश्वः) दिखानेवाला है, वह ब्रह्म (उदगात्) उत्कर्षता से प्राप्त है, जो जगदीश्वर (सूर्य्यः) सूर्य के सम्पन्न ज्ञान का प्रकाश करनेवाला विज्ञान से परिपूर्ण (जगतः) जङ्गम (च) और (तस्थुषः) स्थावर अर्थात् चराचर जगत् का (आत्मा) अन्तर्यामी अर्थात् जिसने (अन्तरिक्षम्) आकाश (द्याद्रापृथिको) प्रकाश और भूमिलोक को (आ, अप्राः) अच्छे प्रकार परिपूर्ण किया अर्थात् उनमें आप भूर रहा है, उसी परमात्मा की तुम लोग उपासना करो॥१॥

भावार्थ:- जो देखने योग्य परिमाणवाला पदार्थ है, वह परमात्मा होने को योग्य नहीं। न कोई भी उस अव्यक्त सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर के विना समस्त जगत् को उत्पन्न कर सकता है और न कोई सर्वव्यापक, सिच्चदानन्दस्वरूप, अनन्त, अन्तर्यामी, चराचर जगत् के आत्मा परमेश्वर के विना समस्त को धारण करने, जीवों को पाप और पुण्यों को साक्षीपन और उनके अनुसार जीवों को सुख दुःख रूप फल देने को योग्य है। न इस परमेश्वर की उपासना के विना धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के पाने को कोई जीव समर्थ होता है, इससे वही परमेश्वर उपासना करने योग्य इष्टदेव सब को मानना चार्स्स्रे॥१॥

पुनरीश्वरकृत्यमाह।।

फिर ईश्वर का कृत्य अगले मन्त्र में कहा है॥

सूर्यो देवीमुषसं रोचमानां मर्यो न योषामभ्येति पृश्चात्। यत्रा नरो देवयन्तो युगानि वितन्वते प्रति भुद्राय भुद्रम्॥ २॥

सूर्यः। देवीम्। उषस्पम्। रोचंमानाम्। मर्यः। न। योषाम्। अभि। एत्। युश्चात्। यत्रं। नर्रः। देवऽयन्तः। युगानिं। विऽतुन्वते। प्रतिं। भुद्रायं। भुद्रम्॥२॥

पदार्थ:-(सूर्य्य:) सिवता (देवीम्) द्योतिकाम् (ज्यसम्) सिन्धवेलाम् (रोचमानाम्) रुचिकारिकाम् (मर्य:) पितर्मनुष्यः (न) इव (योषाम्) स्वभायाम् (अभि) अभितः (एति) (पश्चात्) (यत्रा) यस्मिन्। अत्र दीर्घः। (नरः) नयनकर्ताषे गणकाः (देवयन्तः) कामयमाना गणितिवद्यां जानन्तो ज्ञापयन्तः (युगानि) वर्षाणि कृतत्रेताद्वापरकित्सिज्ञानि व्रा (वितन्वते) विस्तारयन्ति (प्रति) (भद्राय) कल्याणाय (भद्रम्) कल्याणम्॥२॥

अन्वय:-हे मनुष्या! येनेश्वरेणोत्पादा स्थापितोऽयं सूर्यो रोचमानां देवीमुषसं पश्चान्मर्यो योषां नेवाभ्येति, यत्र यस्मिन् विद्यमाने मार्तण्डे देवयन्तो नरो युगानि भद्राय भद्रं प्रति वितन्वते, तमेव सकलस्रष्टारं यूयं विजानीत॥२॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार्ण। हे विद्वांसो! युष्माभिर्येनेश्वरेण सूर्य्यं निर्माय प्रति ब्रह्माण्डस्य मध्ये स्थापित- स्तमाश्रित्य गणिताद्भयः सर्वे व्यवहाराः सिध्यन्ति, स कुतो न सेव्येत॥२॥

पदार्थ:-हे मनुष्तां जिस हैं श्रर ने उत्पन्न करके नियम (कक्षा) में स्थापन किया यह (सूर्य्य:) सूर्य्यमण्डल (रोचमानाम्) रिच्चि कराने (देवीम्) और सब पदार्थों को प्रकाशित करनेहारी (उषसम्) प्रात:काल की वेलून को उसके होने के (पश्चात्) पीछे जैसे (मर्च्य:) पित (योषाम्) अपनी स्त्री को प्राप्त हो (न) वैसे (अश्वीत्) सब ओर से दौड़ा जाता है, (यत्र) जिस विद्यमान सूर्य में (देवयन्त:) मनोहर चाल-चलन से सुद्रिर मणितविद्या को जानते-जनाते हुए (नर:) ज्योतिष विद्या के भावों को दूसरे की समझ में पहुँचानेहार ज्योतिषी जन (युगानि) पांच-पांच संवत्सरों की गणना से ज्योतिष में युग वा सत्यूर्यम्, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग को जान (भद्राय) उत्तम सुख के लिये (भद्रम्) उस उत्तम

अष्टक-१। अध्याय-८। वर्ग-७

मण्डल-१। अनुवाक-१६। सूक्त-११५ dskr

सुख के (प्रति, वितन्वते) प्रति विस्तार करते हैं, उसी परमेश्वर को सबका उत्पन्न करनेहास तुम लोग जानो॥२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे विद्वानो! तुम लोगों से जिस ईश्वर ने सूर्य्य को बनाकर प्रत्येक ब्रह्माण्ड में स्थापन किया, उसके आश्रय से गणित आदि समस्त व्यवहार सिद्ध होते हैं; वह ईश्वर क्यों न सेवन किया जाए॥२॥

पुन: सूर्य्यकृत्यमाह॥

फिर सूर्य्य के काम का अगले मन्त्र में वर्णन किया है।।

भुद्रा अश्वा हुरितः सूर्यस्य चित्रा एतंग्वा अनुमाद्यासः।

नुमुस्यन्तो दिव आ पृष्ठमंस्थुः परि द्यावापृथिवी यनि सुद्धः। आ

भुद्राः। अश्वाः। हुरितः। सूर्यस्य। चित्राः। एतऽग्वाः। अनुऽपाद्यसः। नुमस्यन्तः। दुवः। आ। पृष्ठम्। अस्थुः। परि। द्यावापृथिवी इति। युन्ति। सद्यः॥३॥

पदार्थ:-(भद्रा) कल्याणहेतवः (अश्वाः) महान्तो व्यक्तिश्रीलाः किरणाः (हरितः) दिशः। हरित इति दिङ्नामसु पठितम्। (निघं०१.६) (सूर्य्यस्थ) सिवृत्र्लोकस्य (चित्राः) अद्भुता अनेकवर्णाः (एतग्वाः) एतान् प्रत्यक्षान् पदार्थान् गच्छ्यन्तिति (अनुमाद्यासः) अनुमोदकारकगुणेन प्रशंसनीयाः (नमस्यन्तः) सत्कुर्वन्तः (दिवः) प्रकाश्यस्य पदार्थस्य (आ) (पृष्ठम्) पश्चाद् भागम् (अस्थुः) तिष्ठन्ति (परि) सर्वतः (द्यावापृथिवी) आकाशभूमी (यन्ति) प्रीप्नुवन्ति (सद्यः) शीघ्रम्॥३॥

अन्वय:-भद्रा अनुमाद्यासो नमस्यन्ति विद्वासो जना ये सूर्यस्य चित्रा एतग्वा अश्वाः किरणा हरितो द्यावापृथिवी सद्यः परि यन्ति दिवः पृष्ठमास्थुः समन्त्रात् तिष्ठन्ति, तान् विद्ययोपकुर्वन्तु॥३॥

भावार्थ:-मनुष्याणां विर्णयमस्ति श्रेष्ठोनध्यापकानाप्तान् प्राप्य नमस्कृत्य गणितादिक्रियाकौशलतां परिगृह्य सूर्यसम्बन्धिव्यवहमसनुष्ठानेन कृर्यिसिद्धिं कुर्यु:॥३॥

पदार्थ:-(भद्रा:) सुंख के करानेहारे (अनुमाद्यास:) आनन्द करने के गुण से प्रशंसा के योग्य (नमस्यन्त:) सत्कार करते हुए विद्वान् जन जो (सूर्व्यस्य) सूर्व्यलोक की (चित्रा:) चित्र-विचित्र (एतग्वा:) इन प्रत्येक्ष पदार्थी को प्राप्त होती हुई (अश्वा:) बहुत व्याप्त होनेवाली किरणें (हरित:) दिशा और (द्यावाप्रथिवी) आकाश-भूमि को (सद्य:) शीघ्र (परि, यन्ति) सब ओर से प्राप्त होतीं (दिव:) तथा प्रकाशित करने योग्य पदार्थ के (पृष्ठम्) पिछले भाग पर (आ, अस्थु:) अच्छे प्रकार ठहरती हैं, उनको विद्या से उपकार में लाओ॥३॥

१२४६

ऋग्वेदभाष्यम्

भावार्थ:-मनुष्यों को योग्य है कि श्रेष्ठ पढ़ानेवाले शास्त्रवेत्ता विद्वानों को प्राप्त हो, उनकी सत्कार कर, उनसे विद्या पढ़ गणित आदि क्रियाओं की चतुराई को ग्रहण कर, सूर्यसम्बन्धि व्यवहारों का अनुष्ठान कर कार्यसिद्धि करें॥३॥

पुनस्तत्कृत्यमाह॥

फिर उसी सूर्य का काम अगले मन्त्र में कहा है॥

तत् सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मध्या कर्त्तोविततं सं जभार। यदेदयुक्त हरितः सुधस्थादाद्रात्री वासंस्तनुते सिमस्मै॥४॥

तत्। सूर्यस्य। देव्ऽत्वम्। तत्। मृह्विऽत्वम्। मुध्या। कर्त्तीः। विऽत्ततम्। सूर्मा जुमार्ग्) यदा। इत्। अर्युक्त। हुरित्तिः। सुधऽस्थात्। आत्। रात्री। वार्सः। तुनुते। सिमस्मै॥४॥

पदार्थ:-(तत्) यत् प्रथममन्त्रोक्तं ब्रह्म (सूर्यस्य) सूर्यमण्डलस्य (देवत्वम्) देवस्य प्रकाशमयस्य भावः (तत्) (महित्वम्) (मध्या) मध्ये। अत्र सप्तम्येकवचनस्याकारः। (कर्त्तौः) कर्म (विततम्) व्याप्तम् (सम्) (जभार) हरित (यदा) (इत्) (अयुक्त) युनिक्त (हरितः) दिशः (सधस्थात्) समानस्थानात् (आत्) अनन्तरम् (रात्री) (वासः) वसनम् (तनुते) (सिमस्भे) सिक्स्मे लोकाय॥४॥

अन्वय:-हे मनुष्या! यदा तत् सूर्यस्य मध्या वितर्व सत् ब्रह्मैनस्य देवत्वं महित्वं कर्त्तोः सञ्जभार प्रलयसमये संहरित आत् यदा सृष्टिं करोति तदा सूर्यमयुक्तोत्पाद्य कक्षात्रां स्थापूर्यति, सूर्यः सधस्थाद्धरितः किरणैर्व्याप्य सिमस्मै वासस्तनुते, यस्य तत्त्वाद्वात्री जायते तदिदेव ब्रह्म यूयमूपिष्वं तदेव ज्ञानत्कर्त्तृ विजानीत॥४॥

भावार्थ:-हे सज्जना! यद्यपि सूर्य आकर्षणेन र्यृथिव्यादि पदार्थान् धरित पृथिव्यादिभ्यो महानिप वर्त्तते विश्वं प्रकाश्य व्यवहारयित च तद्रप्ययं (रमेश्वरस्योत्पादनधारणाकर्षणैर्विनोत्पत्तुं स्थातुमाकर्षितुं च न शक्नोति नैतमीश्वरमन्तरेणेदृशानां लोकानो रचने धारणं प्रलयं च कर्त्तुं कश्चित् समर्थो भवति॥४॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! (यदा) जब (तत्त) वह पहिले मन्त्र में कहा हुआ (सूर्य्यस्य) सूर्यमण्डल के (मध्या) बीच में (विततम्) व्याप्त ब्रह्म इस्र सूर्य्य के (देवत्वम्) प्रकाश (महित्वम्) बड़प्पन (कर्त्तीः) और काम का (संजभार) सेंह्मर क्रुरता अर्थात् प्रलय समय सूर्य्य के समस्त व्यवहार को हर लेता (आत्) और फिर जब सृष्टि को अपन्न करता है, तब सूर्य्य को (अयुक्त) युक्त अर्थात् उत्पन्न करता और नियत कक्षा में स्थापन करता है। सूर्य्य (सधस्थात्) एक स्थान से (हिरतः) दिशाओं को अपनी किरणों से व्याप्त हो कर (समस्में) समस्त लोक के लिये (वासः) अपने निवास का (तनुते) विस्तार करता तथा जिस ब्रह्म के तत्व से (रात्री) रात्री होती है (तत्, इत्) उसी ब्रह्म की उपासना तुम लोग करो तथा उसी को जगत् का कर्ता जाने॥।४॥

भावार्थ: - हे सज्जनो! यद्यपि सूर्य्य आकर्षण से पृथिवी आदि पदार्थी का धारण करता है, पृथिवी आदि लोकों से बड़ा भी वर्त्तमान है। संसार का प्रकाश कर व्यवहार भी कराता है तो भी यह

अष्टक-१। अध्याय-८। वर्ग-७

मण्डल-१। अनुवाक-१६। सूक्त-११५ d show

सूर्य्य परमेश्वर के उत्पादन, धारण और आकर्षण आदि गुणों के विना उत्पन्न होने, स्थिर रहने और पदार्थों का आकर्षण करने को समर्थ नहीं हो सकता। न इस ईश्वर के विना ऐसे-ऐसे लोक लोकासरों की रचना, धारणा और इनके प्रलय करने को कोई समर्थ होता है।।४।।

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

तिन्मित्रस्य वर्रुणस्याभिचक्षे सूर्यो रूपं कृणुते द्योरुपस्थे। अनुन्तमुन्यद्भुर्शदस्य पार्जः कृष्णमुन्यद्धरितः सं भरिन्ति॥५॥

तत्। मित्रस्यं। वर्रुणस्य। अभिऽचक्षे। सूर्यः। रूपम्। कृणुते। द्योः। उपऽस्या अनुन्तम्। अन्यत्। रुर्शत्। अस्य। पार्जः। कृष्णम्। अन्यत्। हुरितः। सम्। भुरन्ति॥५॥

पदार्थ:-(तत्) चेतनं ब्रह्म (मित्रस्य) प्राणस्य (वरुणस्य) उद्धानस्य (अभिचक्षे) संमुखदर्शनाय (सूर्य्य:) सिवता (रूपम्) चक्षुर्ग्राह्मं गुणम् (कृणुते) करोति (क्षोः) प्रकाशस्य (उपस्थे) समीपे (अनन्तम्) देशकालवस्तुपरिच्छेदशून्यम् (अन्यत्) सर्वेभ्यो भिन्नं स्रत् (रुश्तः) ज्वलितवर्णम् (अस्य) (पाजः) बलम्। पाज इति बलनामसु पठितम्। (निघं०२.९) (कृष्णम्) तिमिशाख्यम् (अन्यत्) भिन्नम् (हरितः) दिशः (सम्) (भरन्ति) धरन्ति॥५॥

अन्वयः-हे मनुष्या! यूयं यस्य सामर्थ्यान्यित्रस्य विस्तृर्णस्याभिचक्षे द्योरुपस्थे स्थितः सन् सूर्योऽनेकविधं रूपं कृणुते। अस्य सूर्य्यस्यान्यदुशत्पाजो रात्रेरन्यत्कृष्णि हरितो दिशः संभरन्ति तदनन्तं ब्रह्म सततं सेवध्वम्॥५॥

भावार्थ: –यस्य सामर्थ्येन रूपदिनस्त्रिम्नाप्तिनिमित्तः सूर्यः श्वेतकृष्णरूपविभाजकत्वेनाहर्निशं जनयित, तदनन्तं ब्रह्म विद्वयि कस्याप्यन्यस्योपासनं मनुष्या नैव कुर्य्युरिति विद्वद्भिः सततमुपदेष्टव्यम्॥५॥

पदार्थ:-हे मनुष्योः! तुम लोग जिसके सामर्थ्य से (मित्रस्य) प्राण और (वरुणस्य) उदान का (अभिचक्षे) सम्मुख दशन होने के लिये (द्योः) प्रकाश के (उपस्थे) समीप में ठहराता हुआ (सूर्य्यः) सूर्य्यलोक अनेक प्रकार (रूप्प्) प्रत्यक्ष देखने योग्य रूप को (कृणुते) प्रकट करता है। (अस्य) इस सूर्य के (अन्यत्) सबसे अलग (रूशत्) लाल आग के समान जलते हुए (पाजः) बल तथा रात्रि के (अन्यत्) अलग (कृष्णम्) काले अन्धकार रूप को (हरितः) दिशा-विदिशा (सं, भरन्ति) धारण करती हैं (तत्) उस् (अन्वन्म्) देश, काल और वस्तु के विभाग से शून्य परब्रह्म का सेवन करो॥५॥

१२४८

ऋग्वेदभाष्यम्

भावार्थ:-जिसके सामर्थ्य से रूप, दिन और रात्रि की प्राप्ति का निमित्त सूर्य श्वेत-कृष्ण रूप के विभाग से दिन रात्रि को उत्पन्न करता है, उस अनन्त परमेश्वर को छोड़ कर किसी और की उपासना मनुष्य नहीं करें, यह विद्वानों को निरन्तर उपदेश करना चाहिये॥५॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अद्या देवा उदिता सूर्यस्य निरंहंसः पिपृता निरंवद्यात्।

तन्नी मित्रो वर्रुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः॥६ । जा १६ ।

अद्या देवाः। उत्ऽईता। सूर्यस्य। निः। अंहंसः। पिपृत। निः। अव्यात्। तत्। मृः। मित्रः। वर्रणः। मुमुहुन्ताम्। अदितिः। सिर्स्थुः। पृथिवी। उता द्यौः॥६॥

पदार्थ:-(अद्य) इदानीम्। अत्र दीर्घ:। (देवा:) विद्वांसः (उदिना) उत्कृष्टप्राप्तौ (सूर्य्यस्य) जगदीश्वरस्य (नि:) नितराम् (अंहसः) पापात् (पिपृत) अत्र दीर्घ:। (निः) (अवद्यात्) गर्ह्यात् (तत्, नः०) पूर्ववत्॥६॥

अन्वय:-हे देवा:! सूर्यस्योपासनेनोदिता प्रकाशमाना: सम्यो यूर्य भिन्वद्यादंहसो निष्पिपृत यन्मित्रो वरुणोऽदिति: सिन्धु: पृथिवी उत द्यौ: प्रसाध्नुवन्ति तन्नोऽस्मान् सुखयित तद्ग्य भक्तो भामहन्ताम्॥६॥

भावार्थ:-मनुष्यै: पापादूरे स्थित्वा धर्ममूर्च्य जगदीश्वरमुपास्य शान्त्या धर्मार्थकाममोक्षाणां पूर्ति: सम्पाद्या॥६॥

अत्र सूर्यशब्देनेश्वरसिवतृलोकार्थवर्णनादस्य सूर्वतस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेद्यम्॥ इति प्रथमण्डले षोडशोऽनुवाकः ४६ पञ्चदशोनिरशततमं ११५ सूक्तं सप्तमो ७ वर्गश्च समाप्तः॥

पदार्थ:-हे (देवा:) विद्वासी! (सूर्य्यस्य) समस्त जगत् को उत्पन्न करनेवाले जगदीश्वर की उपासना से (उदिता) उदय अश्वान् सब प्रकार से उत्कर्ष की प्राप्ति में प्रकाशमान हुए तुम लोग (निः) निरन्तर (अवद्यात्) निन्दित (अंह्सः) प्राप ध्यादि कर्म से (निष्पिपृत) निर्गत होओ अर्थात् अपने आत्मा, मन और शरीर आदि को दुर रक्खों तथा जिसको (मित्रः) प्राण (वरुणः) उदान (अदितिः) अन्तरिक्ष (सिन्धुः) समुद्र (पृथिवी) पृथिवी (उत) और (द्यौः) प्रकाश आदि पदार्थ सिद्ध करते हैं (तत्) वह वस्तु वा कर्म (नः) हुस लोगों को सुख देता है, उसको तुम लोग (अद्य) आज (मामहन्ताम्) वार-वार प्रशंसित करो। हिं।

भूतिमर्थ: पनुष्यों को चाहिये कि पाप से दूर रह धर्म का आचरण और जगदीश्वर की उपासना कर शान्ति के साथ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की परिपूर्ण सिद्धि करें॥६॥

इस पूक्त में सूर्य्य शब्द से ईश्वर और सूर्य्यलोक के अर्थ का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ एकता है, यह जानना चाहिये॥ अष्टक-१। अध्याय-८। वर्ग-७

मण्डल-१। अनुवाक-१६। सूक्त-

११५

यह प्रथम मण्डल में सोलहवाँ १६ अनुवाक एक सौ पन्द्रहवाँ ११५ सूक्त और सातवाँ ७ वर्ग समाप्त हुआ॥

अथास्य पञ्चविंशत्यृचस्य षोडशोत्तरशततमस्य सूक्तस्य कक्षीवानृषिः। अश्विनौ देवते। १,१०,२२,२३ विराट् त्रिष्टुप्। २,८,९,१२-१५,१८,२०,२४,२५ निचृत् त्रिष्टुप्। ३,४,५, ७,२१ त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। ६,१६,१९ भूरिक् पिङ्क्तः। ११ पिङ्क्तः।

१७ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्द:। पञ्चम: स्वर:॥

अथ शिल्पविषयमाह॥

अब २५ पच्चीस ऋचावाले एकसौ सोलहवें सूक्त का आरम्भ है। इसके प्रश्नम मन्त्र से शिल्पविद्या के विषय का वर्णन किया है।।

नासत्याभ्यां बहिरिव प्र वृञ्जे स्तोमां इयर्म्यभियेव वार्तः। यावर्भगाय विमुदायं जायां सेनाजुवां न्यूहतू रथेन॥१॥

नासंत्याभ्याम्। बुर्हि:ऽईव। प्रा वृञ्चे। स्तोमान्। इयुर्मि। अभियाऽईव। वालंशी यौ। अभीगाय। विऽमदाय। जायाम्। सेनाऽजुवां। निऽऊहतुं:। रथेन॥ १॥

पदार्थ:-(नासत्याभ्याम्) अविद्यमानासत्याभ्यां पुण्यात्मभ्यां श्रिल्पभ्याम् (बर्हिरिव) परिबृंहकं छेदकमुदकिमव। बर्हिरित्युदकनामसु पठितम्। (निघं०१११२) (वृञ्जे) छिनिद्य (स्तोमान्) मार्गाय समूढान् पृथिवीपर्वतादीन् (इयिम) गच्छामि (अभ्रियेव) यथाऽभ्रेषु भवान्युदकानि (वातः) पवनः (यौ) (अर्भगाय) हस्वाय बालकाय। अत्र वर्णव्यत्ययेन कस्य गः) (विमदाय) विशिष्टो मदो हर्षो यस्मात्तस्मै (जायाम्) पत्नीम् (सेनाजुवा) वेगेन सेनां गिर्मियतारौ (न्यूहतुः) नितरां देशान्तरं प्रापयतः (रथेन) विमानादियानेन॥१॥

अन्वय:-हे मनुष्या! यथा नासत्याभ्यों शिल्पिभ्या योजितेन रथेन यौ सेनाजुवाऽर्भगाय विमदाय जायामिव संभारान् न्यूहतुस्तथा प्रयत्नवानहं स्तोमान् बहिरिव प्रवृञ्जे वातोऽभ्रियेव सद्य इयर्मि॥१॥

भावार्थ:-अत्रोपमावाच्यत्तुचोपमोलङ्कारौ। यानेषूपकृताः पृथिवीविकारजलाग्न्यादयः किं किमद्भृतं कार्य्यं न साध्नुवन्ति।

पदार्थ: - हे मनुष्टां , जैसे (ग्रांसत्याभ्याम्) सच्चे पुण्यात्मा शिल्पी अर्थात् कारीगरों ने जोड़े हुए (रथेन) विमानादि रथ से (या) जो (सेनाजुवा) वेग के साथ सेना को चलानेहारे दो सेनापित (अर्भगाय) छोटे बालक वा (विमदाय) विशेष जिससे आनन्द होवे उस जवान के लिये (जायाम्) स्त्री के समान पदार्थों को (न्यूहतु:) निरन्तर एक देश से दूसरे देश को पहुंचाते हैं, वैसे अच्छा यत्न करता हुआ मैं (स्तोमान्) मार्ग के सूधे होने के लिये बड़े-बड़े पृथिवी, पर्वत आदि को (बर्हिरिव) बढ़े हुए जल को जैसे वैम्रे (प्र, वृद्धे) छिन्न-भिन्न करता तथा (वात:) पवन जैसे (अभ्रियेव) बादलों को प्राप्त हो, वैसे एक देश को (इयमिं) जाता हूं॥१॥

अष्टक-१। अध्याय-८। वर्ग-८-१२

मण्डल-१। अनुवाक-१७। सूक्त-११६

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। रथ आदि यानों में उपकारी किए पृथिवी विकार, जल और अग्नि आदि पदार्थ क्या-क्या अद्भुत कार्यों को सिद्ध नहीं करते हैं ?॥ १॥

अथ युद्धविषयमाह।।

अब युद्ध के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं।

वीळुपत्मंभिराशुहेमंभिर्वा देवानां वा जूतिभिः शार्शदाना। तद्रासंभो नासत्या सहस्रंमाजा यमस्य प्रधने जिगाय॥२॥

वीळुपत्मेऽभिः। आशुहेमेऽभिः। वा। देवानाम्। वा। ज़ूतिऽभिः। प्राशिदाना। नत्। रासंभः। नासत्या। सहस्रम्। आजा। यमस्यं। प्रुऽधने। जिगाया। २॥

पदार्थ:-(वीळुपत्मिः) बलेन पतनशीलैः (आशुहेमिः) शीघ्रं गमयद्भिः (वा) (देवानाम्) विदुषाम् (वा) (जूतिभिः) जूयते प्राप्यतेऽर्थो याभिस्ताभियुद्धद्भिष्पिः (शाशदाना) छेदकौ (तत्) (रासभः) आदिष्टोपयोजनपृथिव्यादिगुणसमूहवत्पुरुषः। (सभाविश्वामित्यादिष्टोपयोजननामसु पठितम्। (निघं०१.१५) (नासत्या) सत्यस्वभावौ (सहस्रम्) असंख्यातम् (आजा) संग्रामे (यमस्य) उपरतस्य मृत्योरिव शत्रुसमूहस्य (प्रधने) प्रकृष्टानि धनानि यस्मित् (जिगाय) जयेत्॥२॥

अन्वयः-हे शाशदाना नासत्या सभासेनापूर्ती! भेकती यथा वीळुपत्मिभराशुहेमिभर्वा देवानां जूर्तिभिर्वा स्वकार्य्याणि न्यूहतुस्तथा तदाचरन् रासभः प्रधन आजा संग्रामे भूत्रस्य सहस्रं जिगाय शत्रोरसंख्यान् वीरान् जयेत्॥२॥

भावार्थ:-यथाग्निर्जलं वा जुने पुर्धिवीं वा प्रविष्टं सद्दहित छिनित्त वा तथाऽतिवेगकारिभिर्विद्युदादिभि: साधिते शस्त्रास्त्र: शत्रवो जेतव्या:॥२॥

पदार्थ:-हे (शाशदाना) पदार्थों को यथायोग्य छिन्न-छिन्न करनेहारे (नासत्या) सत्यस्वभावी सभापित और सेनापित! आप असे (वीळुपत्मभिः) बल से गिरते और (आशुहेमभिः) शीघ्र पहुंचाते हुए पदार्थों से (वा) अथवा (देवानामें) विद्वानों की (जूतिभिः) जिनसे अपना चाहा हुआ काम मिले सिद्ध हो उन युद्ध की क्रियाओं से (वा) निश्चेय कर अपने कामों को निरन्तर तर्क-वितर्क से सिद्ध करते हों, वैसे (तत्) उस आचारण को करवा हुआ (रासभः) कहे हुए उपयोग को जो प्राप्त उस पृथिवी आदि पदार्थसमूह के समान पुरुष (प्रधने) उत्तम-उत्तम गुण जिसमें प्राप्त होते, उस (आजा) संग्राम में (यमस्य) समाप आर्थे हुए मृत्यु के समान शत्रुओं के (सहस्रम्) असंख्यात वीरों को (जिगाय) जीते॥२॥

१२५२

ऋग्वेदभाष्यम्

भावार्थ:-जैसे अग्नि वा जल वन वा पृथिवी को प्रवेश कर उसको जलाता वा छिन्न-भिन्न करता है, वैसे अत्यन्त वेग करनेहारे बिजुली आदि पदार्थों से किये हुए शस्त्र और अस्त्रों से शत्रुजन जीतने चाहिये॥२॥

अथ नौकादिनिर्माणविद्योपदिश्यते॥

अब नाव आदि के बनाने की विद्या का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।

तुग्रो ह भुज्युमेश्विनोदमेघे र्यायं न कश्चिन्ममृवाँ अवाहाः। तमूहथुर्नोभिरात्मन्वतीभिरन्तरिक्षप्रद्धिरपोदकाभिः॥ ३॥

तुर्गः। हु। भुज्युम्। अश्विना। उदुऽमेघे। रियम्। न। कः। चित्। मुमूऽविन्। अवे। अहाः। तम्। ऊहुथुः। नौऽभिः। आत्मुन्ऽवतीभिः। अनुति्क्षुपुत्ऽभिः। अपंऽउदकाभिः॥३॥

पदार्थ:-(तुग्र:) शत्रुहिंसकः सेनापितः (ह) किल (भूज्युम्) रोज्यपालकं सुखभोक्तारं वा (अश्विना) वायुविद्युताविव बलिष्ठौ (उदमेघे) यस्योदकैर्मिहाते श्रिज्यते जपत्रतस्मिन् समुद्रे (रियम्) धनम् (न) इव (कः) (चित्) (ममृवान्) मृतः सन् (अव) (अहाः) त्यजेति। अत्र ओहाक् त्याग इत्यस्माल्लुङि प्रथमैकवचने आगमानुशासनस्यानित्यत्वात् सिगटौ न भवतः। (तम्) (ऊहथुः) वहेतम् (नौभिः) नौकाभिः (आत्मन्वतीभिः) प्रशस्ता आत्मन्वन्तो विचारवन्तः क्रियाकुशलाः पुरुषा विद्यन्ते यासु ताभिः (अनिरक्षप्रुद्धिः) अवकाशे गच्छन्तीभिः (अपोदकारिः) अपगृतं उदकप्रवेशो यासु ताभिः॥३॥

अन्वय:-हे अश्विना सेनापती! युवां तुग्र शबुहिंसनात्र यं भुज्युमुदमेघे कश्चिन्ममृवान् रियं नेवावाहास्तं हापोदकाभिरन्तरिक्षप्रुद्धिरात्मन्वतीभिनौभिरूहथुर्वहेन्स्॥३॥

भावार्थ: -यथा कश्चिन्मुमूर्षुर्जनो धार्मपुत्रोद्योनां मोहाद्विरज्य शरीरात्रिर्गच्छति तथा युयुत्सुभिः शूरैरनुभावनीयम्। यदा मनुष्यो द्वीपान्तरे समुद्रं तीर्त्वा शत्रुविजयाय गन्तुमिच्छेत्तदा दृढाभिर्बृहतीभिरन्तरप्प्रवेशादि द्वापरहिताभिः परिवृतात्मीयजनाभिः शस्त्रास्त्रादिसम्भारालंकृताभिनौंकाभिः सहैव यायात्॥३॥

पदार्थ:-हे (अश्विना) पवने और बिजुली के समान बलवान् सेनाधीशो! तुम (तुग्र:) शत्रुओं के मारनेवाला सेनापित शत्रुजन के मारने के लिये जिस (भुज्युम्) राज्य की पालना करने वा सुख भोगनेहारे पुरुष को (उदमेघे) जिसके जलां से संसार सींचा जाता है, उस समुद्र में जैसे (कश्चित्) कोई (ममृवान्) मरता हुआ (ग्रियम्) धन को छोड़े (न) वैसे (अवाहाः) छोड़ता है (तम्, ह) उसी को (अपोदकाभिः) जल जिसमें आते जाते (अन्तिरक्षप्रुद्धिः) अवकाश में चलती हुई (आत्मन्वतीभिः) और प्रशंसायुक्त विचारवृत्ते क्रिया करने में चतुर पुरुष जिनमें विद्यमान उन (नौभिः) नावों से (ऊहथुः) एक स्थान से दूसरे स्थान को पहुंचाओ॥३॥

अष्टक-१। अध्याय-८। वर्ग-८-१२

मण्डल-१। अनुवाक-१७। सूक्त-११६ 9243

भावार्थ:-जैसे कोई मरण चाहता हुआ मनुष्य धन, पुत्र आदि के मोह से छूट के शरीर से निकल जाता है, वैसे युद्ध चाहते हुए शूरों को अनुभव करना चाहिए। जब मनुष्य पृथिवी के किसी भाग से किसी भाग को समुद्र उतर कर शत्रुओं के जीतने को जाया चाहें, तब पुष्ट बड़ी-बड़ी कि जिनमें भीतर जल न जाता हो और जिनमें आत्मज्ञानी विचारवाले पुरुष बैठे हों और जो शस्त्र अस्त्र आदि युद्ध की सामग्री से शोभित हों, उन नावों के साथ जावें॥३॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

तिस्रः क्षपस्त्ररहातिवर्जिद्धर्नासत्या भुज्युमूह्युः पत्ङ्गैः।

समुद्रस्य धन्वन्नार्द्रस्य पारे त्रिभी रथैः शृतपद्धिः षळ्थेः।।४॥

तिस्रः। क्षपंः। त्रिः। अहां। अतिव्रजन्ऽभिः। नासत्या। भुज्युम्। कृह्युः। यतङ्गैः। समुद्रस्यं। धन्वन्। आर्द्रस्यं। पारे। त्रिऽभिः। रथैः। शृतपत्ऽभिः। षट्ऽअधैः॥४॥

पदार्थ:-(तिस्रः) त्रिसंख्याकाः (क्षपः) सञ्चीः (त्रिः) त्रिवारम् (अहा) त्रीणि दिनानि (अतिव्रजिद्धः) अतिशयेन गमयतृभिर्द्रव्यैः (नासत्या सत्येन परिपूर्णी (भुज्युम्) राज्यपालकम् (ऊहथुः) प्राप्नुतम् (पतङ्गैः) अश्ववद्वेगिभिः (समुद्रस्य) स्य्यद्रवत्यापा यस्मिन् तस्यान्तरिक्षस्य (धन्वन्) धन्वनो बहुसिकतस्य स्थलस्य (आर्द्रस्य) सपङ्कस्य सागरस्य (पारे) परभागे (त्रिभिः) भूम्यन्तरिक्षजलेषु गमयितृभिः (रथैः) रमणीयैर्विमानादिभियनिः (रभ्रत्योद्धः) शतैर्गमनशीलैः पादवेगैः (षडश्वैः) षट् अश्वा आशुगमकाः कलायन्त्रस्थितिप्रदेशा येषु तैः॥ ॥

अन्वयः-हे नासत्या सभासेनापती! युवां तिस्रः क्षपस्त्र्यहा दिनान्यतिव्रजद्भिः पतङ्गैः सहयुक्तैः षडश्वैः शतपद्भिस्त्रिभी रथैर्भुज्युं समुद्रस्य भस्त्वन्नार्द्रस्य पारे त्रिष्ह्रथुर्गमयेतम्॥४॥

भावार्थ:-अहो मनुष्या यदा श्रिष्वहीरात्रेषु समुद्रादिपारावारं गमिष्यन्त्यागमिष्यन्ति तदा किमपि सुखं दुर्लभं स्थास्यति न किमपि॥४)।

पदार्थ:-हे (नासत्या) सत्य से परिपूर्ण सभापित और सेनापित! तुम दोनों (तिस्रः) तीन (क्षपः) रात्रि (अहा) तीन दिन (अह्मिजद्भिः) अतीव चलते हुए पदार्थ (पतङ्गैः) जो कि घोड़े के समान वेगवाले हैं, उनके साथ वर्तमान (षडश्रेः) जिनमें जल्दी ले जानेहारे छः कलों के घर विद्यमान उन (शतपद्भिः) सैकड़ों पूर्ण के समान वेगयुक्त (त्रिभिः) भूमि, अन्तरिक्ष और जल में चलनेहारे (रथैः) रमणीय सुन्दर मनोह्म विस्मान आदि रथों से (भुज्युम्) राज्य की पालना करनेवाले को (समुद्रस्य) जिसमें अच्छे प्रकार

१२५४

परमाणुरूप जल जाते हैं, उस अन्तरिक्ष वा (धन्वन्) जिसमें बहुत बालू है, उस भूमि वा (आर्द्रस्य) कींचे के सहित जो समुद्र उसके (पारे) पार में (त्रि:) तीन बार (ऊह्थु:) पहुंचाओ॥४॥

भावार्थ:-आश्चर्य इस बात का है कि मनुष्य जो तीन दिन-रात में समुद्र स्थानों के अवार पार्र जावें-आवेंगे तो कुछ भी सुख दुर्लभ रहेगा! किन्तु कुछ भी नहीं॥४॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अनारम्भणे तदेवीरयेथामनास्थाने अग्रभणे समुद्रे। यदेश्विना ऊहथुर्भुज्युमस्तं शतारित्रां नार्वमातस्थिवांसम्॥५॥ 🕡

अनारम्भणे। तत्। अवीर्येथाम्। अनास्थाने। अग्रभणे। समुद्रे। येत् (अश्विनी) ऋहथुः। भुज्युम्। अस्त्रीम्। शतऽअरित्राम्। नार्वम्। आतस्थिऽवांसीम्॥५॥

पदार्थ:-(अनारम्भणे) अविद्यमानमारम्भणं यस्मिँस्तिस्मिष् (तत्) हो (अवीरयेथाम्) विक्रमेथाम् (अनास्थाने) अविद्यमानं स्थित्यधिकरणं यस्मिन् (अग्रभणे) च विद्यते ग्रहणं यस्मिन्। अत्र हस्यः भः। (समुद्रे) अन्तरिक्षे सागरे वा (यत्) यो (अश्विनो) विद्याप्राप्तिश्रालो (क्रह्थुः) विद्युद्वायू इव सद्यो गमयेतम् (भुज्युम्) भोगसमूहम् (अस्तम्) अस्यन्ति दूरीकुर्वन्ति दुःखानि यस्मिँस्तद्गृहम्। अस्तिमिति गृहनामसु पिठतम्। (निघं०३.४) (शतारित्राम्) शतसंख्याकान्यरित्राणि जलपरिमाणग्रहणार्थानि स्तम्भनानि वा यस्याम् (नावम्) नुदन्ति चालयन्ति प्रेरते वा या ताम्। ग्लामुदिभ्यां डो:। (उणा०२.६४) अनेनायं सिद्धः। (आतस्थिवांसम्) आस्थितम्॥५॥

अन्वयः-हे अश्वनौ! यद्यौ युवामनारम्भणे आस्थानेऽग्रभणे समुद्रे शतारित्रां नावमूहथुरस्तमातस्थिवांसं भुज्युमवीरयेथां विक्रमेथां तत् वयं सदा मृत्कुयोस्॥५॥

भावार्थ:-राजपुरुषैरालम्ब्रिविरहे मार्गे विमानादिभिरेव गन्तव्यं यावद् योद्धारो यथावत्र रक्ष्यन्ते तावच्छत्रवो जेतुं न शक्यन्ते। यत् शतमित्र्रिणि विद्यन्ते सा महाविस्तीर्णा नौर्विधातुं शक्यते। अत्र शतशब्दोऽसंख्यातवाच्यात्र गृहीतुं शक्यते। अतोऽतिदीर्घाया नौकाया विधानमत्र गम्यते। मनुष्यैर्यावती नौर्विधातुं शक्यते तावती निर्मातव्यैवं सद्योगामी जनो भूम्यन्तरिक्षगमनागमनार्थान्यपि यानानि विदध्यात्॥५॥

पदार्थ्य: हे (अश्वनी) विद्या में व्याप्त होनेवाले सभा सेनापित! (यत्) जो तुम दोनों (अनारम्भणे) जिस्सी अने-जाने का आरम्भ (अनास्थाने) ठहरने की जगह और (अग्रभणे) पकड़ नहीं है, उस (समुद्रे) अन्तरिक्ष वा सागर में (शतारित्राम्) जिसमें जल की थाह लेने को सौ बल्ली वा सौ खम्भे बियो रहते और (नावम्) जिसको जलाते वा पठाते उस नाव को बिजुली और पवन के वेग के स्मीन (शह्य:) बहाओ और (अस्तम्) जिसमें दु:खों को दूर करें उस घर में (आतस्थिवांसम्) धरे हुए

अष्टक-१। अध्याय-८। वर्ग-८-१२

मण्डल-१। अनुवाक-१७। सूक्त-११६ dshr

(भुज्युम्) खाने-पीने के पदार्थ समूह को (अवीरयेथाम्) एक देश से दूसरे देश को ले जाओ (पत्र) उन् तुम लोगों का हम सदा सत्कार करें॥५॥

भावार्थ:-राजपुरुषों को चाहिये कि निरालम्ब मार्ग में अर्थात् जिसमें कुछ उहरने को स्थान नहीं है, वहाँ विमान आदि यानों से ही जावें। जब तक युद्ध में लड़नेवाले वीरों की जैस्नी चाहिये वैस्ते रक्षा न की जाये, तब तक शत्रु जीते नहीं जा सकते। जिसमें सौ वल्ली विद्यमान हैं, बहु बहु फैलाव की नाव बनाई जा सकती है। इस मन्त्र में शत शब्द असंख्यातवाची भी लिया जा सकता है, इससे अतिदीर्घ नौका का बनाना इस मन्त्र में जाना जाता है। मनुष्य जितनी बड़ी नौका बही सकते हैं) उतनी बड़ी बनानी चाहिये। इस प्रकार शीघ्र जानेवाला पुरुष भूमि और अन्तरिक्ष में जाने आप के लिये यानों को बनावे॥५॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मूट्य में कहा है

यमश्चिना दुदर्थुः श्वेतमश्चमघाश्चाय शश्चदित्स्वस्ति।

तद्वां दात्रं मिं कीर्तेन्यं भूत् पैद्वो वाजी सदिमिद्धव्यों अर्यः॥६॥

यम्। अश्विनाः दृदर्थुः। श्वेतम्। अश्वेम्। अर्थः। अश्वेतः। इत्। स्वस्तिः। तत्। वामः। दात्रमः। महिः। कीर्तेन्यमः। भूतः। पुदः। वाजीः। सर्दमः। इतः। हर्व्यः। अर्थः। हाः।

पदार्थ:-(यम्) (अश्वना) जलपूषि साविवीशुँसुखदातारौ (ददथु:) (श्वेतम्) प्रवृद्धम् (अश्वम्) अध्वव्यापिनमन्निम् (अघाश्वाय) हन्तुम्योग्याय श्रीघ्रं गमयित्रे (श्रश्वत्) निरन्तरम् (इत्) एव (स्विस्ति) सुखम् (तत्) कर्म (वाम्) युवयोः (दात्रम्) दातुं योग्यम् (मिह्) महद्राज्यम् (कीर्त्तेन्यम्) कीर्तितुम् (भूत्) भवति (पैद्वः) सुखेन प्रापकः (वाजी) ज्ञानवान् (सदम्) सीदन्ति यस्मिन् याने तत् (इत्) एव (हव्यः) आदातुमर्हः (अर्थः) विणियन्नः ॥६॥

अन्वय:-हे अश्विनी स्वामघाश्राय वैश्याय यं श्वेतमश्वं भास्वरं विद्युदाख्यं ददथुर्दत्त:। येन शश्वत् स्वस्ति प्राप्य वां कीर्त्तेन्यं महि दात्रमिदेव गृहीत्या पद्धी वाजी तत् सदं रचियत्वाऽर्यश्च हव्यो भूद् भवति तदिदेव विधत्ताम्॥६॥

भावार्थः यो सभम्मेनाध्यक्षौ वणिजः संरक्ष्य यानेषु स्थापयित्वा द्वीपद्वीपान्तरे प्रेषयेतां तौ श्रियायुक्तौ भूत्वा सतत्ते सुखिनौ जायेते॥६॥

पदार्थ:-है (अश्विना) जल और पृथिवी के समान शीघ्र सुख देनेहारो सभासेनापित! तुम दोनों (अघाश्वाय) जो मारने के न योग्य और शीघ्र पंहुचानेवाला है, उस वैश्य के लिये (यम्) जिस (श्वेतम्) अन्छ बहे हुए (अश्वम्) मार्ग में व्याप्त प्रकाशमान बिजुलीरूप अग्नि को (ददथु:) देते हो तथा जिससे

(शश्वत्) निरन्तर (स्विस्ति) सुख को पाकर (वाम्) तुम दोनों की (कीर्त्तेन्यम्) कीर्ति होने के लिये (मिहि) बड़े राज्यपद (दात्रम्)और देने योग्य (इत्) ही पदार्थ को ग्रहण कर (पैद्वः) सुख से ले जानेहारा (वाजी) अच्छा ज्ञानवान् पुरुष उस (सदम्) रथ को कि जिसमें बैठते हैं, रच के (अर्यः) विणयां (हर्षः) पदार्थे के लेने योग्य (भूत्) होता है (तत्, इत्) उसी पूर्वोक्त विमानादि को बनाओ॥६॥

भावार्थ:-जो सभा और सेना के अधिपति विणयों (=विणकों) की भली भांति स्था कर रथ आदि यानों मे बैठा कर द्वीप-द्वीपान्तर में पंहुचावे, वे बहुत धनयुक्त होकर निरन्तर सुखी होते हैं। ६॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

युवं नेरा स्तुवते पंज्रियायं कक्षीवंते अरदतं पुरंधिम्। कारोतराच्छ्रफादर्श्वस्य वृष्णः शृतं कुम्भाँ असिञ्चतं सुर्ग्रायाः॥७॥/

युवम्। नुराः स्तुवते। पुत्रियाये। कृक्षीवते। अर्दतम्। पुरम्प्रधम्। कारोत्तरात्। श्राफात्। अश्चेस्य। वृष्णेः। शृतम्। कुम्भान्। असिञ्चतम्। सुर्रायाः॥७॥

पदार्थ:-(युवम्) युवाम् (नरा) नेतारौ विनयं प्राफ्तौ (स्तुवते) स्तृतिं कुर्वते (पित्रयाय) पज्रेषु पदेषु पदेषु भवाय। अत्र पदधातोरौणादिको रक् वाष्ट्रियस्थेन दस्य जः। ततो भवार्थे घः। (कक्षीवते) प्रशस्तशासनयुक्ताय (अरदतम्) सन् मार्गादिक बिज्ञापयताम् (पुरिश्चम्) पुरुं बहुविधां धियम्। पृषोदरादित्वादिष्टसिद्धिः। (कारोतरात्) कारान् व्यवहारोम् कुर्वतः शिल्पिन उ इति वितर्के तरित येन (शफात्) खुरादिव जलसेकस्थानात् (अश्वस्य) तुरङ्गस्येवाग्निगृहस्य (वृष्णः) बलवतः (शतम्) शतसंख्याकान् (कुष्भान्) (असिञ्चतम्) सिञ्चलम् (सुरायाः) अभिषुतस्य रसस्य॥७॥

अन्वयः-हे नरा! युवं युवां पजियाय कक्षीवते स्तुवते विद्यार्थिने पुरन्धिमरदतम्। वृष्णोऽश्वस्य कारोतराच्छफात्सुरायाः पूर्णान् शतं कुन्भानसिञ्चतम् १७॥

भावार्थ:-आप्तावध्यपिको पुरुषौ यूस्मै शमादियुक्ताय सज्जनाय विद्यार्थिने शिल्पकार्याय हस्तिक्रियायुक्तां बुद्धिं जन्म्बः स प्रश्नास्तः शिल्पी भूत्वा यानानि रचियतुं शक्नोति। शिल्पिनो यस्मिन् याने जलं संसिच्याधोऽग्निं प्रज्वात्य वाष्पर्यानानि चालयन्ति तेन तेऽश्वैरिव विद्युदादिभिः पदार्थैः सद्यो देशान्तरं गन्तुं शक्नुयः॥७॥

पदार्थ्य:—हे (परा) विनय को पाये हुए सभा सेनापित! (युवम्) तुम दोनों (पिज्रयाय) पदों में प्रसिद्ध होनेवाले (कक्षीवते) अच्छी सिखावट को सीखे और (स्तुवते) स्तुति करते हुए विद्यार्थी के लिये (पुरिश्यम्) बहुत प्रकार की बुद्धि और अच्छे मार्ग को (अरदतम्) चिन्ताओं तथा (वृष्णः) बलवान् (अश्वस्य) घोड़े के समान अग्नि संबन्धी कलाघर के (कारोतरात्) जिससे व्यवहारों को करते हुए शिल्पी

अष्टक-१। अध्याय-८। वर्ग-८-१२

मण्डल-१। अनुवाक-१७। सूक्त-११६ 9340

लोग तर्क के साथ पार होते हैं, उस (शफात्) खुर के समान जल सींचने के स्थान से (सुरायाः) खींच हुए रस से भरे (शतम्) सौ (कुम्भान्) घड़ों को ले (असिञ्चतम्) सींचा करो॥७॥

भावार्थ:- जो शास्त्रवेत्ता अध्यापक विद्वान् जिस शान्तिपूर्वक इन्द्रियों को विषयों से सेकने आदि गुणों से युक्त सज्जन विद्यार्थी के लिये शिल्पकार्य्य अर्थात् कारीगरी सिखाने को हाथ की चतुराईयुक्त बुद्धि उत्पन्न कराते अर्थात् सिखाते हैं, वह प्रशंसायुक्त शिल्पी अर्थात् कारीगर् होकर स्थ आदि को बना सकता है। शिल्पीजन जिस यान अर्थात् उत्तम विमान आदि रथ में जलघर में जल सींच और नीचे आग जलाकर भाफों से उसे चलाते हैं, उससे वे घोड़े से जैसे वैसे बिजुली आदि पदार्थी में शीघ्र एक देश से दूसरे देश को जा सकते हैं॥७॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।

हिमेनाग्नि घ्रंसमेवारयेथां पितुमतीमूर्जमस्मा अधितम्। ऋबीसे अत्रिमश्चिनावनीतमुन्निन्यथुः सर्वगणं स्वास्ति॥ ।।

हिमेन्। अग्निम्। घ्रंसम्। अवार्येथाम्। पितुऽमिन्। अर्जम्। अस्मै। अध्तम्। ऋबीसे। अत्रिम्। अश्विना। अर्वऽनीतम्। उत्। निन्युथुः। सर्वऽगणम्। स्वस्ति॥८॥

पदार्थ:-(हिमेनाग्निम्) शीतेनाग्निम् (घ्रेसम्) रात्र्या दिनम्। घ्रंस इत्यहर्नामसु पठितम्। (निघं०१.९) (अवारयेथाम्) निवारयेतम् (गितुमतीम्) प्रशस्तान्नयुक्ताम् (ऊर्जम्) पराक्रमाख्यां नीतिम् (अस्मै) (अधत्तम्) पोषयतम् (ऋबोसे) दुर्गतभासे व्यवहारे (अत्रिम्) अत्तारम्। अदेस्त्रिनिश्च। (उणा०४.६८) अत्र चकारात् व्रिबनुक्तसे। तेनादधातोस्त्रिप्। (अश्विना) यज्ञानुष्ठानशीलौ (अवनीतम्) अर्वाक् प्रापितम् (उत्) (निन्यश्रुध्ध) नयतम् (सर्वगणम्) सर्वे गणा यस्मिस्तत् (स्वस्ति) सुखम्॥८॥

यास्कमुनिरिमं मन्त्रमेव व्याचष्टे-ऋबीसमपगतभासमपहतभासमन्तर्हितभासं गतभासं वा। हिमेनोदकेन ग्रीष्मान्तेऽिमं घ्रंप्रमेहरवारयेथाम्। अन्नवतीं चास्मा ऊर्जमधत्तमग्नये। योऽयमृबीसे पृथिव्यामग्निरन्तरौषधिवनस्पत्तिष्वप्सु तमुन्निन्यथु:। सर्वगणं सर्वनामानम्। गणो गणनात् गुणश्च। यद् वृष्ट ओषधय उद्यन्ति, प्राक्षिनश्च पृथिव्यां तदश्चिनो रूपम्। तेनैनौ स्तौति स्तौति। (निरु० ६.३५.३६)॥८॥

अन्तरः ते अश्विता! युवां हिमेनोदकेनाग्निं घ्रंसं चावारयेथामस्मै पितुमतीमूर्जमधत्तमृबीसेऽत्रिमवनीतं सर्वगणं स्वस्ति चोक्तिन्यशुरूष्ट्वं तयतम्॥८॥

भेजार्थ:-विद्वद्भिरेतत्संसारसुखाय यज्ञेन शोधितेन जलेन वनरक्षणेन च परितापो निवारणीय:, संस्कृतेमान्नेन बलं प्रजननीयम्। यज्ञानुष्ठानेन त्रिविधदु:खं निवार्य सुखमुन्नेयम्॥८॥

पदार्थ:-हे (अश्विना) यज्ञानुष्ठान करनेवाले पुरुषो! तुम दोनों (हिमेन) शीतल जल से (अग्निम्) आग और (ग्रंसम्) रात्रि के साथ दिन को (अवारयेथाम्) निर्वारो अर्थात् बिताओ। (अस्मै) इसके लिये (पितुमतीम्) प्रशंसित अन्नयुक्त (ऊर्जम्) बलरूपी नीति को (अधत्तम्) पुष्ट करो और (ऋबीसे) हुन्य से जिसकी आभा जाती रही उस व्यवहार में (अत्रिम्) भोगनेहारे (अवनीतम्) पीछे प्रस्त कर्यये हुए (सर्वगणम्) जिसमे समस्त उत्तम पदार्थों का समूह है, उस (स्वस्ति) सुख को (अन्नय्युः) उन्नति देओ॥८॥

भावार्थ:-विद्वानों को चाहिये कि इस संसार के सुख के लिये यज्ञ से शोधे हुए जल से और वनों के रखने से अति उष्णता (खुश्की) दूर करें। अच्छे बनाए हुए अन्न से बल उत्पन्न करें और यज्ञ के आचरण से तीन प्रकार के दु:ख को निवार के सुख को उन्नति देवें॥ ८॥ ४

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।

पर्यावृतं नांसत्यानुदेथामुच्चार्बुध्नं चक्रथुर्जिह्मवारम्। क्षरुन्नापो न पायनाय राये सहस्राय तृष्यंते गोतम् या रू

पर्रा। अवतम्। नासत्या। अनुदेथाम्। उच्चाऽबुध्नम्। चक्क्थुः। जिह्नाऽवरिम्। क्षरेन्। आर्पः। न। पायनीय। गुये। सहस्रीय। तृष्यते। गोर्तमस्य॥९॥

पदार्थ:-(परा) (अवतम्) रक्षतम् (क्रास्त्या) अगिनवायू इव वर्तमानौ (अनुदेशाम्) प्रेरयेथाम् (उच्चाबुध्नम्) उच्चा ऊर्ध्वं बुध्नमन्तरिक्षं विसमस्तम् (ध्रक्रथु:) कुरुतम् (जिह्मवारम्) जिह्मं कुटिलं वारो वरणं यस्य तम् (क्षरन्) क्षरन्ति (आप्र) चाष्परूपाणि जलानि (न) इव (पायनाय) पानाय (राये) धनाय (सहस्राय) असंख्याताय (तृष्यते) त्रृषिताय (गातमस्य) अतिशयेन गौ: स्तोता गोतमस्तस्य॥९॥

अन्वयः – हे अग्निवायुवद्वत्मानो नासत्याऽश्विनौ! युवां जिह्मवारमुच्चाबुध्नमवतमनेन कार्य्यसिद्धिं चक्रथुः कुरुतम्। तं पराऽनुदेथां यो गोतमस्य अने तृष्यते पायनायापः क्षरन्नेव सहस्राय राये जायेत तादृशं निर्मिमाथाम्॥९॥

भावार्थ:-अत्रोपनालङ्कारः) शिल्पिभिर्विमानादियानेषु पुष्कलमधुरोदकाधारं कुण्डं निर्मायाग्निना संचाल्य तत्र संभारान् धृत्वा देशान्तरं गत्वाऽसंख्यातं धनं प्राप्य परोपकारः सेवनीयः॥९॥

पदार्थ:-हे (नासत्या) आग और पवन के समान वर्तमान सभापित और सेनाधिपित! तुम दोनों (जिह्मवारम्) जिसकों टेड़ी लगन और (उच्चाबुध्नम्) उससे जिसमें ऊँचा अन्तरिक्ष अर्थात् अवकाश उस रथ आदि को (अवतम्) रक्खो और अनेक कामों की सिद्धि (चक्रथु:) करो और उसको यथायोग्य व्यवहार में (परा, अनुदेशाम्) लगाओ। जो (गोतमस्य) अतीव स्तुति करने वाले के रथ पर (तृष्यते) प्यामें के लिये (पायनाय) पीने को (आप:) भाफरूप जल जैसे (क्षरन्) गिरते हैं (न) वैसे (सहस्राय) असींख्यात् (राय) धन देने के लिये प्रसिद्ध होता है, वैसे रथ आदि को बनाओ॥९॥

अष्टक-१। अध्याय-८। वर्ग-८-१२

मण्डल-१। अनुवाक-१७। सूक्त-११६



भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। शिल्पी लोगों को विमानादि यानों में जिसमें बहुत मीठें जल की धार मावे, ऐसे कुण्ड को बना, आग से उस विमान आदि यान को चला, उसमें सामग्री को धार, एक देश से दूसरे देश को जाय और असंख्यात धन पाय के परोपकार का सेवन करना/चाहिस्रा।९॥

अथ विधि: सामान्यत उपदिश्यते॥

अब सामान्य से विधि का उपदेश अगले मन्त्र में किया है। 🖊

जुजुरुषो नासत्योत वृद्धिं प्रामुश्चतं द्रापिमिव च्यवानात्। प्रातिरतं जिहुतस्यायुर्दस्रादित्पितिमकृणुतं क्नीनाम्।। १०॥ ९॥

जुजुरुषं:। नास्त्या। उत। वृद्धिम्। प्र। अमुञ्चतुम्। द्रापिम्ऽईव। च्यवन्मत्। प्र। अर्तिरतम्। जृद्धितस्यं। आर्युः। दुस्रा। आत्। इत्। पतिम्। अकुणुतुम्। कुनीर्नाम्॥ १०॥

पदार्थ:-(जुजुरुष:) जीर्णाद् वृद्धात् (नासत्या) (उते) अपि (विव्रम्) संविभक्तारम् (प्र, अमुञ्जतम्) प्रमुञ्जेतम् (द्रापिमिव) यथा कवचम् (च्यवानात्) फल्ल्यमानात् (प्र, अतिरतम्) प्रतरेतम् (जिहतस्य) हातु:। अत्र हा धातोरौणादिक इतच् प्रत्ययो बाहुलकात् सन्वच्च। (आयु:) जीवनम् (दस्रा) दातारौ (आत्) अनन्तरम् (इत्) एव (पितम्) पालकं स्वामिनम् (अकृणुतम्) कुरुतम् (कनीनाम्) यौवनत्वेन दीप्तिमतीनां ब्रह्मचारिणीनां कन्यानाम् (१०)।

अन्वय:-हे नासत्या राजधर्मसभापती! युवां च्यवानाद द्रापिमिव वित्रं प्राऽमुञ्चतं दु:खात् पृथक् कुरुतम्। उतापि जुजुरुषो विद्यावयोवृद्धादाप्तादध्यापकात् कनीन शिक्षामकुणीतमात् समये प्राप्त एकैकस्या इदेवैकैकं पितं च। हे दस्रा वैद्याविव प्राणदातारौ! जहितस्यायु: प्राऽतिरक्ष्मा १०॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कारः सिजपुरुषैरुपदेशकैश्च दातॄणां दुःखं विनाशनीयम्। विद्यासुप्रवृत्तानां कुमारकुमारीणां रक्षणं विधास विद्यासुशिक्षे प्रदापनीये, बाल्यावस्थायामर्थात् पञ्चविंशाद् वर्षात्प्राक् पुरुषस्य षोडशात् प्राक् स्त्रियाञ्च विवाहं निवार्थ्यात ऊर्ध्व यावदष्टाचत्वारिंशद्वर्षं पुरुषस्याचतुर्विंशतिवर्षं स्त्रियाः स्वयंवरं विवाहं कार्यायत्वा भविषामात्मशरीरबलमलं कर्त्तव्यम्॥१०॥

पदार्थ:-हे (नासत्या) राजधर्म की सभा के पित! तुम दोनों (च्यवानात्) भागे हुये से (द्रापिमिव) कवर्च के समान (विव्रम्) अच्छे विभाग करानेवाले को (प्रामुञ्जतम्) भलीभांति दुःख से पृथक् करो (जन्न) और (जुजुरुषः) बुड्ढे विद्यावान् शास्त्रज्ञ पढ़ानेवाले से (कनीनाम्) यौवनपन से तेजधारिण ब्रह्मचारिण कन्याओं को शिक्षा (अकृणुतम्) करो (आत्) इसके अनन्तर नियत समय की प्राप्ति, में उसमें से एक-एक (इत्) ही का एक-एक (पितम्) रक्षक पित करो। हे (दस्ना) वैद्यों के समान

प्राण के देनेहारो! (जिहतस्य) त्यागी की (आयु:) आयुर्दा को (प्रातिरतम्) अच्छे प्रकार पार लों पहुंचाओ॥१०॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। राजपुरुष और उपदेश करनेवालों को देनेवालीं की दुःखें दूर करना चाहिये, विद्याओं में प्रवृत्ति करते हुए कुमार और कुमारियों की रक्षा कर किया और अच्छी शिक्षा उनको दिलवाना चाहिये। बालकपन में अर्थात् पच्चीस वर्ष के भीतर पुरुष और सोबाह वर्ष के भीतर स्त्री के विवाह को रोक, इसके उपरान्त अड़तालीस वर्ष पर्य्यन्त पुरुष और चौबीस वर्ष पर्यन्त स्त्री का स्वयंवर विवाह कराकर सबके आत्मा और शरीर के बल को पूर्ण करना चाहिये। १०॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।

तद्वां नरा शंस्यं राध्यं चाभिष्टिमन्नांसत्या वर्र्स्थम्। यद्विद्वांसां निधिमिवापंगूळ्हमुईर्श्तादूपथुर्वन्दंनाय॥ ११।

तत्। वाम्। नुरा। शंस्यम्। राध्यम्। च। अभिष्टिऽमत्। नुर्सुत्याः वर्म्थम्। यत्। विद्वांसां। निधिम्ऽईव। अपंऽगूळ्हम्। उत्। दुर्शृतात्। ऊपर्थुः। वन्देनाय॥११॥

पदार्थ:-(तत्) (वाम्) युवयोः (नरा) धर्मन्तरो (श्रस्यम्) स्तुत्यं संसिद्धिकरम् (राध्यम्) राद्धं संसाद्धं योग्यम् (च) धर्मादिफलम् (अभिष्टिम्त्) अभीष्ट्राप्तं प्रशस्तानि सुखानि विद्यन्ते यस्मिस्तत् (नासत्या) सर्वदा सत्यपालकौ (वस्त्थम्) वस्णीयमुत्तमम् (यत्) (विद्वांसा) सकलविद्यावेत्तारौ (निधिमिव) (अपगूढम्) अपगतं संवरणमञ्ज्ञादनं यस्मातत् (उत्) (दर्शतात्) सुन्दराद् रूपात् (ऊपथुः) वपेथाम् (वन्दनाय) अभितः सत्कारार्हामाष्ट्याय प्रश्नंसायै च॥११॥

अन्वयः – हे नरा नासत्या विद्वांसा धर्मराज सभास्वामिनौ! वां युवयोर्यच्छंस्यं राध्यं चाभिष्टिमद्वरूथमपगूढं पूर्वोक्तं गृहाश्रमसंबन्धि कर्मास्ति तिद्विधामिव दर्शताद्वन्दनायोदूपथुरूर्ध्वं सततं वपेथाम्॥११॥

भावार्थ:-अत्रोपमालद्भारः। हे मनुष्यां। विद्याकोशात्परं सुखप्रदं धनं किमपि यूयं मा जानीत, न खल्वेतेन कर्मणा विनाऽ श्रीष्ट्यन्यपत्यानि सुखानि च प्राप्तुं शक्यानि नैव समीक्षया विना विद्या वृद्धिर्जायत इत्यवगच्छत॥११॥

पदार्थ: हे (नरा) धर्म की प्राप्ति (नासत्या) और सदा सत्य की पालना करने और (विद्वांसा) समस्त विद्या जाननेवाले धर्मराज, सभापित विद्वानो! (वाम्) तुम दोनों का (यत्) जो (शंस्यम्) प्रशंसनीय (च) और (राध्यम्) सिद्ध करने योग्य (अभिष्टिमत्) जिसमें चाहे हुए प्रशंसित सुख हैं (वरुथम्) जो स्वीकार करने योग्य (अपगूढम्) जिसमें गुप्तपन अलग हो गया ऐसा जो प्रथम कहा हुआ गृहाश्रीमसंबद्धि कर्म है, (तत्) उसको (निधिमिव) धन के कोष के समान (दर्शतात्) दिखनौट [दर्शनीय

मण्डल-१। अनुवाक-१७। सूक्त-११६ d str

सुन्दर] रूप से (वन्दनाय) सब ओर से सत्कार करने योग्य संतान और प्रशंसा के लिये (अर्ह, केप्युः) उच्च श्रेणी को पहुँचाओ अर्थात् उन्नति देओ॥११॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! विद्यानिधि के परे सुख देनेगाला धन कोई भी तुम मत जानो। न इस कर्म के विना चाहे हुए संतान और सुख मिल सकते हैं और न सत्यापत्य के विचार से निर्णीत ज्ञान के विना विद्या की वृद्धि होती है, यह जानो॥११॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

तद्वां नरा सुनये दंसं उग्रमाविष्कृणोमि तन्यतुर्न वृष्टिम्। दुध्यङ् ह यन्मध्वांथर्वुणो वामश्चांस्य शोष्णां प्र यदीमुक्तची १२॥

तत्। वाम्। नुरा। सुनर्ये। दंसः। उग्रम्। आविः। कृणोमि तुन्युतुः। ने। वृष्टिम्। दुध्यङ्। हु। यत्। मधुं। आथुर्वुणः। वाम्। अश्वस्य। शोष्णां। प्र। यत्। ईुम्। उवार्च॥ १२॥

पदार्थ:-(तत्) (वाम्) (नरा) सुनीतिमन्तौ (सन्ये) पुष्टुमैवनाय (दंस:) कर्म (उग्रम्) उत्कृष्टम् (आवि:) प्रादुर्भावे (कृणोमि) (तन्यतु:) विद्युत् (म) इव (कृष्ट्रिम्) (दध्यङ्) दधीन् विद्याधर्मधारकानञ्चन्ति प्राप्नोति सः (ह) किल (यत्) (मधु) मधुरं विज्ञानम् (अध्यर्वणः) अथर्वणोऽहिंसकस्यापत्यम् (वाम्) युवाभ्याम् (अश्वस्य) आशुगमकस्य द्रव्यस्य (शोष्म्यो) शरोवत्कर्मणा (प्र) (यत्) (ईम्) शास्त्रबोधम्। ईमिति पदनामसु पठितम्। (निघं०४.२) (उविच) उच्यात्॥१२॥

अन्वयः-हे नरा वां युवयोः सकाशाद दध्यङ्ख्यथर्वणोऽहं सनये तन्यतुर्वृष्टिं नेव यदुग्रं दंस आविष्कृणोमि यद्यो विद्वान् वाम् मह्यं चाश्वस्य शीर्ष्णा मध्वीं ह प्रोक्तक त्रद्युवां लोके सततमाविष्कुर्य्याथाम्॥१२॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्क्सर:। यथा वृष्टेगा विना कस्यचिदिप सुखं न जायते, तथा विदुषोऽन्तरा विद्यामन्तरेण च सुखं बुद्धिवर्धनेमतेन विना धर्मादय: पदार्था न सिध्यन्ति, तस्मादेतत्कर्म मनुष्यै: सदाऽनुष्ठेयम्॥१२॥

पदार्थ:-हे (नरा) अच्छी नीतियुक्त सभासेना के पित जनो! (वाम्) तुम दोनों से (दध्यङ्) विद्या धर्म को धारण करनेवालों का आदर करनेवाला (आधर्वण:) रक्षा करते हुए का सन्तान मैं (सनये) सुख के भलीभांति सेचन करने के लिये जैसे (तन्यतु:) बिजुली (वृष्टिम्) वर्षा को (न) वैसे जिस (उग्रम्) उत्कृष्ट (दूस:) कमें को (आविष्कृणोिम) प्रकट करता हूं, जो (यत्) विद्वान् (वाम्) तुम दोनों के लिये और मेरे लिये (अश्वस्य) शीघ्र गमन करानेहारे पदार्थ के (शीष्णी) शिर के समान उत्तम काम से (मध्)

मधुर (**ईम्**) शास्त्र के बोध को (**ह**) (**प्रोवाच**) कहे (तत्) उसे तुम दोनों लोक में निरन्तर प्रकट करो॥१२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे वृष्टि के विना किसी को भी सुख नहीं ही है, वैसे विद्वानों और विद्या के विना सुख और बुद्धि बढ़ना और इसके विना धर्म आदि पदार्थ नहीं सिद्ध होते हैं, इससे इस कर्म का अनुष्ठान मनुष्यों को सदा करना चाहिये॥१२॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अजोहवीन्नासत्या क्रा वां महे यामेन्पुरुभुजा पुरंधि:। श्रुतं तच्छासुंरिव वधिमत्या हिरंण्यहस्तमश्चिनावदत्तम्॥ १३११

अजीहवीत्। नासत्या। क्रा। वाम्। महे। यामन्। पुरुऽभुजा। पुरम्ऽधिः। श्रुतम्। तत्। शासुं:ऽइव। वृध्विऽमृत्याः। हिर्रण्यऽहस्तम्। अश्विनौ। अदन्तम्॥ १३॥

पदार्थ:-(अजोहवीत्) भृशं गृह्णीयात् (नासत्या) असत्याज्ञानृदिनाशनेन सत्यप्रकाशिनौ (करा) कुर्वाणौ (वाम्) युवयोः (महे) महते (यामन्) याम्ने सुख्प्राज्ये। अत्र या धातोरौणादिको मनिन्। (पुरुभुजा) पुरून् बहूनानन्दान् भुङ्क्तस्तौ (पुरिन्धः) बहुिष्द्यापुर्क्तः (श्रुतम्) पठितम् (तत्) (शासुरिव) यथा पूर्णविद्यस्याध्यापकस्य सकाशाच्छिष्याः (विद्यम्प्याः) ब्रध्यः प्रशस्ता वृद्धयो विद्यन्ते यस्यास्तस्याः सित्स्त्रयः। अत्र वृध् धातोरौणादिको रिक् प्रत्ययो बाहुत्यकात् रेफलोपः। (हरण्यहस्तम्) हिरण्यं हस्ते यस्मात् तम् (अश्विनौ) शुभगुणविद्याव्यापिकौ (अदत्तम्) दद्यातम्॥१३॥

अन्वयः-हे नासत्या पुरुऽभुजाऽश्विनविध्यापको ! यः पुरन्धिर्विद्वान् विध्यमत्याः करा महे यामन्नजोहवीद्वां युवयोर्यच्छूतं तच्छासुरिवाजोहवीत् तौ युन्नां सर्वेश्यो विद्या जिज्ञासुभ्यो यद्धिरण्यहस्तं श्रुतं तददत्तं सततं दद्यातम्॥१३॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार । हे चिह्नांसो! यथा विद्वान् विदुष्याः पाणि गृहीत्वा गृहाश्रमव्यवहारं साधयित तथा बुद्धिमतो विद्वार्थितः सङ्गृह्य पूर्णं विद्याप्रचारं कुरुत यथा चाध्यापकादध्येतारो विद्याः सङ्गृह्यानिन्दिता भवन्ति तथा विद्वांस्र्रो स्त्रीपुरुषौ स्वीयपरकीयापत्येभ्यः सुशिक्षया विद्यां दत्वा सदा प्रमोदेताम्॥१३॥

पदार्थ:-हे (नासत्या) असत्य अज्ञान के विनाश से सत्य का प्रकाश करने (पुरुभुजा) बहुत आनन्दों के भूग्पने तथा (अश्विनो) शुभ गुण और विद्या में व्याप्त होनेवाले अध्यापको! जो (पुरिच:) बहुत विद्यागुक्त बिद्धान् (विध्वमत्या:) प्रशंसित जिसकी वृद्धि है, उस उत्तम स्त्री के (करा) कर्म करते हुए दो पुत्रों का (मह) अत्यन्त (यामन्) सुख भोगने के लिये (अजोहवीत्) निरन्तर ग्रहण करे और (वाम्) तुम होनों का जो (श्रुतम्) सुना-पढ़ा है (तत्) उसको (शासुरिव) जैसे पूर्ण विद्यायुक्त पढ़ानेवाले स्रे शिष्ट्य प्रहण करे, वैसे निरन्तर ग्रहण करे। वे तुम दोनों विद्या चाहनेवाले सब जनों के लिये जो ऐसा है

मण्डल-१। अनुवाक-१७। सूक्त-११६ 9363

कि (हिरण्यहस्तम्) जिससे हाथ में सुवर्ण आता है, उस पढ़े सीखे बोध को (अदत्तम्) निरन्तर देवो॥१३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे विद्वानो! जैसे विद्वान् जन विदुषी स्वी को पाणिग्रहण कर गृहाश्रम के व्यवहार को सिद्ध करे, वैसे बुद्धिमान् विद्यार्थियों का संग्रह कर पूर्ण विद्याप्रचार को करो और जैसे पढ़ानेवाले से पढ़नेवाले विद्या का संग्रह कर आनन्दित होते हैं, वैसे विद्वान् स्त्री-पुरुष अपने तथा औरों के सन्तानों को उत्तम शिक्षा से विद्या देकर सदा प्रमुदित होवें॥१३॥

पुनर्मनुष्यै: कथं वर्त्तितव्यमित्याह॥

फिर मनुष्यों को कैसे वर्त्तना चाहिये, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है।।

आस्नो वृक्षस्य वर्तिकामभीके युवं नरा नासत्यामुमुक्तम्। उतो कृविं पुरुभुजा युवं हु कृपमाणमकृणुतं विचक्षी। १४॥

आस्तः। वृक्षंस्य। वर्तिकाम्। अभीके। युवम्। नुग्ना न्सित्काः। अप्रमुखुक्तम्। उतो इर्ति। कविम्। पुरुऽभुजा। युवम्। हु। कृपंमाणम्। अकृणुतम्। विऽचक्षे॥ १४॥

पदार्थ:-(आस्न:) आस्यान्मुखात् (वृकस्य) (वर्तिकाम्) चटका पक्षिणीमिव (अभीके) कामिते व्यवहारे (युवम्) युवाम् (नरा) सुखप्रापकौ (भासत्या) असत्यविरहौ (अमुमुक्तम्) मोचयतम् (उतो) अपि (कविम्) विद्यापारदर्शिनं मेधाविनम् (पुरुभुजा) शुरून् बहून् जनान् सुखानि भोजयितारौ (युवम्) युवाम् (ह) खलु (कृपमाणम्) कृपां कत्तरिम् अत्र विकरणव्यत्ययेन श:। (अकृणुतम्) कुरुतम् (विचक्षे) विख्यापयितुम्। अत्र तुमर्थे सेसेन्०। (अष्टा०३ ४९)॥१४॥

अन्वयः-हे पुरुभुजा नास्तव्या नरा अश्विनौ! युवं युवामभीके वृकस्यास्न आस्याद् वर्तिकामिव सर्वान् मनुष्यानविद्याजन्यदुःखादमुमुक्तं मोत्र्यतम्। उतो ह खुल्विप युवं सर्वा विद्या विचक्षे कृपमाणं कविमकृणुतम्॥१४॥

भावार्थ:-मनुष्यै: सुखरूप सर्वस्याभीष्टे विद्याग्रहणव्यवहाराख्ये सर्वान् मनुष्यान् प्रवर्त्य दु:खफलादन्याय्यात् कर्मणो निक्द्यी सर्वेषां प्राणिनामुपरि कृपां विधाय सुखयितव्यम्॥१४॥

पदार्थ:-हे (पुरुभुजा) बहुत जनों को सुख को भोग कराने (नासत्या) झूठ से अलग रहने (नरा) और सुखों को पहुचानेहार सभा सेनापितयो! (युवम्) तुम दोनों (अभीके) चाहे हुए व्यवहार में (वृकस्य) भेड़िया के (आस्नः) मुख से (वर्तिकाम्) चिरौटी के समान सब मनुष्यों को अविद्याजन्य दु:ख से (अमुमुक्तम्) छुडुाओ (उतो) और (ह) भी (युवम्) तुम दोनों सब विद्याओं को (विचक्षे) विख्यात करने को (कृपमाणम्) कृपा करनेवाले (किविम्) विद्या के पारगंता पुरुष को (अकृणुतम्) सिद्ध करो। अर्थः

१२६४

ऋग्वेदभाष्यम्

भावार्थ:-मनुष्यों को चाहिये कि सुखरूप सबके चाहे हुए विद्या ग्रहण के व्यवहार करने में सबि मनुष्यों को प्रवृत्त करके जिसका दु:ख फल है, उस अन्यायरूप काम से निवृत्त करके उन सब प्राणियों पर कृपा कर सुख देवें॥१४॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

चरित्रं हि वेरिवाच्छेदि पूर्णमाजा खेलस्य परितकम्यायाम्। सद्यो जङ्घामार्यसीं विश्पलायै धर्ने हिते सर्तवे प्रत्यंधत्तम्॥ १५॥ १०॥

चरित्रम्। हि। वे:ऽईव। अच्छेदि। पूर्णम्। आजा। खेलस्य। परिऽतक्म्यायाम्। सद्यः)। जङ्गाम्। आयसीम्। विश्पलायै। धर्ने। हिते। सर्तवे। प्रति। अधुत्तम्॥ १५॥

पदार्थ:-(चिरित्रम्) शत्रुशीलम् (हि) प्रसिद्धौ (वेरिव) उड्डीयम्पानस्य पश्चिण इव (अच्छेदि) छिद्येत (पर्णम्) पक्षम् (आजा) संग्रामे (खेलस्य) खण्डस्य (पिरतक्ष्यायाम्) रह्मौ। पिरतक्ष्या रात्रिः परित एनां तक्म। तक्मेत्युष्णनाम तकत इति सतः। (निरु०११ २५) (सद्दाः) शीघ्रम् (जङ्घाम्) हन्ति यया ताम् (आयसीम्) अयोविकाराम् (विश्पलायै) विशां प्रजीनां प्रलायै सुखप्रापिकायै नीत्यै (धने) सुवर्णरत्नादौ (हिते) सुखवर्धके (सर्त्तवे) सर्तुं गन्तुम् (प्रति) प्रत्यक्ष (अधत्तम्) भरतम्॥१५॥

अन्वय:-हे अश्वनौ! युवाभ्यामाजा परितक्म्याया खेलस्य चूर्रित्रं वेरिव पर्णं सद्योऽच्छेदि। हिते धने विश्पलायै आयसीं जङ्घां सर्तवे हि प्रत्यधत्तम्॥१५॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। भद्रै: प्रजापालनेतृत्परे राजादिजनै: पक्षिण: पक्षाविव दुष्टचिरत्रं युद्धे छेत्तव्यम्। शस्त्रास्त्राणि धृत्वा प्रजा: पालनीया:। कृतो य: प्रजाया: करो गृह्यते तस्य प्रत्युपकारो रक्षणमेव वेद्यम्॥१५॥

पदार्थ:-हे सभा सेनाविपति! तुम दोनों से (आजा) संग्राम में (परितक्म्यायाम्) रात्रि में (खेलस्य) शत्रु के खण्ड का (चरित्रम्) स्वाभाविक चरित्र अर्थात् शत्रुजनों की अलग-अलग बनी हुई टोली-टोली की चालाकियाँ (बेरिव) उड़ते हुए पक्षी का जैसे (पर्णम्) पंख काटा जाये, वैसे (सद्यः) शीघ्र (अच्छेदि) छिन्न-भिन्न की जाये तथा तुम (हिते) सुख बढ़ानेवाले (धने) सुवर्ण आदि धन के (निमित्त) (विश्पलाये) प्रजाजनों को सुख पहुंचानेवाली नीति के लिये (आयसीम्) लोहे के विकार से बनी हुई (जड़्ग्लाम्) जिससे कि मारते हैं उसकी खाल को (सर्तवे) शत्रुओं पर जाने अर्थात् चढ़ाई करने के लिये (हि) ही (प्रत्यक्षतम्) प्रत्यक्ष धारण करो॥१५॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। प्रजाजनों की पालना करने में अत्यन्त चित्त दिये हुए भद्र राजा आदि जनों को चाहिये कि पखेरू के पंखों के समान दुष्टों के चरित्र को युद्ध में छिन्न-भिन्न करें।

मण्डल-१। अनुवाक-१७। सूक्त-११६ Q SER

शस्त्र और अस्त्रों को धारण कर प्रजाजनों की पालना करें, क्योंकि जो प्रजाजनों से कर लिखा जाता है, उसका बदला देना उन प्रजाजनों की रक्षा करना ही समझना चाहिये॥१५॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

शृतं मेषान् वृक्ये चक्षदानमृजाश्चं तं पितान्धं चंकार। तस्मा अक्षी नांसत्या विचक्षु आधंत्तं दस्रा भिषजावनुर्वन्॥१६

शृतम्। मेषान्। वृक्ये। चुक्षुद्गुनम्। ऋज्ञऽअश्चम्। तम्। पिता। अञ्चम्। चक्षोप्। तम्भे। अक्षी इति। नासत्या। विऽचक्षे। आ। अधुनुम्। दुस्रा। भिषुजौ। अनुर्वन्॥ १६॥

पदार्थ:-(शतम्) शतसंख्याकान् (मेषान्) स्पर्द्धकान् (वृक्षे) वृक्षस्य स्तेनस्य स्त्रियै स्तेन्यै (चक्षदानम्) व्यक्तोपदेशकम्। अत्र चिक्षङ् धातौरौणादिक आनक् प्रत्ययोऽदुगागमश्च बाहुलकात्। (ऋग्राश्चम्) सरलतुरङ्गम् (तम्) (पिता) प्रजापालकौ राज (अध्यम्) चक्षुर्हीनम् (चकार) कुर्यात् (तस्मै) (अक्षी) चक्षुषी (नासत्या) सत्येन सह वर्त्तमानौ (विचक्षे) विक्षधदर्शनाय (आ) (अधत्तम्) पुष्येतम् (दस्रा) रोगोपक्षयितारौ (भिषजौ) सद्वैद्यौ (अन्वर्षणोऽविद्यमानज्ञानाय। सुपां सु० इति विभक्तिलुक्॥१६॥

अन्वय:-यो वृक्ये शतं मेषान् दद्याद् य ईद्गुपेद्विशेद् र्यस्तेनेषु ऋज्ञाश्वः स्यात्तं चक्षदानमृज्ञाश्चं पिताऽन्धिमिव दु:खारूढं चकार। हे नासत्या दस्रा भिषजाविव वर्तागित्रविभिन्नी धर्मराजसभाधीशौ! युवां योऽविद्यावान् कुपथगामी जारो रोगी वर्त्तते तस्मा अनर्वत्रविदुषे विचक्षे अक्षेत्रस्यवहारपरम्पर्थविद्यारूपे अक्षिणी आऽधत्तं समन्तात्पोषयतम्॥१६॥

भावार्थ:-ससभो राजा हिंसकार्य चोरान् लम्पटान् जनान् कारागृहेऽन्धानिव कृत्वोपदेशेन व्यवहारशिक्षया च धार्मिकान् सम्पाद्य धर्मविद्याप्रियान् पथ्यौषधिदानेनारोग्यांश्च कुर्य्यात्॥१६॥

पदार्थ:-जो (वृक्षे) वृक्षे अर्थात् चोर की स्त्री के लिये (शतम्) सैकड़ों (मेषान्) ईर्ष्या करनेवालों को देवे वा जो ऐसी उपदेश करे और जो चारों में सूधे घोड़ोंवाला हो (तम्) उस (चक्षदानम्) स्पष्ट उपदेश करने वा (ऋज्राध्यम्) सूधे घोड़ेवाले को (पिता) प्रजाजनों की पालना करनेहारा राजा जैसे (अन्धम्) अन्धा दुःखी होके वैसा दुःखी (चकार) करे। हे (नासत्या) सत्य के साथ वर्ताव रखने और (दस्रा) रोगों का विनाश करनेवाले धर्मराज सभापति (भिषजौ) वैद्यजनों के तुल्य वर्ताव रखनेवालो! तुम दोनों जो अज्ञानी के प्रमार्ग से चलनेवाले व्यभिचारी और रोगी है, (तस्मै) उस (अनर्वन्) अज्ञानी के लिये (विचक्षे) अनेकविध देखने को (अक्षी) व्यवहार और परमार्थ विद्यारूपी आँखों को (आ, अधन्तम्) अन्ध्ये प्रकार पोढ़ी [पृष्ट] करो॥१६॥

१२६६

ऋग्वेदभाष्यम्

भावार्थ:-सभा के सिंहत राजा हिंसा करनेवाले, चोर, कपटी, छली मनुष्यों को काराघर में अन्धों के समान रख कर और अपने उपदेश अर्थात् आज्ञारूप शिक्षा और व्यवहार की शिक्षा से धर्मात्मा कर, और विद्या में प्रीति रखनेवालों को उनकी प्रकृति के अनुकूल ओषिध देकर उनकी आरोम्य करे॥१६॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

आ वां रथं दुहिता सूर्यस्य कार्ष्मवातिष्ठदर्वता जयन्ती।

विश्वे देवा अन्वमन्यन्त हृद्धिः समुं श्रिया नांसत्या सचेथे॥ १६॥

आ। वाम्। रथम्। दुहिता। सूर्यस्य। कार्ष्यंऽइव। अतिष्ठत्। अर्वता अर्वता विश्वे देवा:। अर्नु। अमुन्यन्त। हत्ऽभि:। सम्। ऊम्ऽइति। श्रिया। नासत्या। सचेथे इति॥ १७॥

पदार्थ:-(आ) (वाम्) युवयोः सभासेनेशयोः (रथम्) विमानादियोन्नम् (दुहिता) दूरे हिता कन्येव कान्तिरूषाः (सूर्य्यस्य) (कार्ष्मेव) यथा काष्ठादिकं द्रव्यम् (अतिष्ठत्) तिष्ठतु (अर्वता) अश्वेन युक्तम् (जयन्ती) उत्कर्षतां प्राप्नुवती सेना (विश्वे) सर्वे (देवाः) विहासः (अनु) पश्चात् (अमन्यन्त) मन्यन्ताम् (हद्धिः) चित्तैः (सम्) (उ) (श्रिया) शुभलक्षण लक्ष्म्या (नासत्या) सद्विज्ञानप्रकाशकौ (सचेथे) सङ्गच्छेथाम्॥१७॥

अन्वयः-हे नासत्या सभासेनेशौ! सूर्य्यस्य दुह्तिव कुर्ण्येव वां युवयोर्जयन्ती सेनार्वता युक्तं रथमातिष्ठत् समन्तात्तिष्ठतु। यं विश्वे देवा हद्धिरन्वमन्यन्त ताम् श्रिया युक्तो स्नेना युवां सं सचेथे॥१७॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। हे पनुष्या) अखिलविद्वत्प्रशंसितां शस्त्रास्त्रवाहनसंभारादिसहितां श्रीमतीं सेनां संसाध्य सूर्य्य इव धर्मन्याये सूर्यं प्रकाशयत॥१७॥

पदार्थ:-हे (नासत्या) कृच्छे विज्ञान का प्रकाश करनेवाले सभा सेनापित जनो! (सूर्य्यस्य) सूर्य्य की (दुहिता) जो दूरदेश में द्वित करनेवाली कृन्या जैसी कान्ति प्रात:समय की वेला और (कार्ष्य) काठ आदि पदार्थों के समान (वाप) तुम) लोगों की (जयन्ती) शत्रुओं को जीतनेवाली सेना (अर्वता) घोड़े से जुड़े हुए (रथम्) रथ की (आ) अतिष्ठत्) स्थित हो अर्थात् रथ पर स्थित होवे वा जिसको (विश्वे) समस्त (देवा:) विद्वान् जन (हद्धि:) अपने चित्तों से (अनु, अमन्यन्त) अनुमान करें, उसको (उ) तो (श्रिया) शुभ लक्षणी वाली लक्ष्मी अर्थात् अच्छे धन से युक्त सेना को तुम लोग (सं, सचेथे) अच्छे प्रकार इकटूला कर्से। रुआ।

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! समस्त विद्वानों ने प्रशंसा की हुई शस्त्र, अस्त्र, वाह्म तथा सामग्री आदि सहित धनवती सेना को सिद्ध कर जैसे सूर्य्य अपना प्रकाश करे, वैसे त्रूपे व्योगे धर्म और न्याय का प्रकाश कराओ॥१७॥

मण्डल-१। अनुवाक-१७। सूक्त-११६

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यदयातं दिवोदासाय वृर्तिर्भरद्वाजायाश्विना हर्यन्ता। रेवदुवाह सचुनो रथो वां वृष्धभर्थ शिशुमारश्च युक्ता॥१८॥

यत्। अर्यातम्। दिव॑ःऽदासाय। वृतिः। भृरत्ऽवाजाय। अश्विना। हर्यन्ता। देवत्। उवाह् । सचनः। रथः। वाम्। वृषभः। च। शिंशुमार्रः। च। युक्ता॥ १८॥

पदार्थ:-(यत्) (अयातम्) प्राप्नुतम् (दिवोदासाय) न्यायिवद्याप्रकाशस्य वात्रे (वर्ति:) वर्तमानम् (भरद्वाजाय) भरन्तः पुष्यन्तः पुष्टिमन्तो वाजा वेगवन्तो योद्धारो तस्य तस्म (अश्विना) शत्रुसेनाव्यापिनौ (हयन्ता) गच्छन्तौ (रेवत्) बहुधनयुक्तम् (उवाह) वहित (स्थनः) सर्वैः सेनाङ्गैः स्वाङ्गैश्च समवेतः (रथः) रमणीयः (वाम्) युवयोः (वृषभः) विजयवर्षकः (च) दृदः (शिशुमारः) शिंशून् धर्मोल्लिङ्घनः शत्रून् मारयित येन सः (च) तत्सहायकान् (युक्ता) कृतयोगाभूगस्मै॥१८॥

अन्वयः-हे हयन्ता युक्ताश्विना सभासेनाधीशौ! युवां दिवोदासाय भरद्वाजाय यद्वर्ती रेवदयातं प्राप्नुतम्। यञ्च वां युवयोर्वृषभः शिंशमारः सचनो रथ उवाह तं तच्च सततं संरक्षतम्। १८॥

भावार्थ:-राजादिभिः राजपुरुषैः सर्वा स्वसामग्री न्यार्थन राज्यपालनायैव विधेया॥१८॥

पदार्थ:-हे (हयन्ता) चलने (युक्ता) योगाभ्यास करने और (अश्विना) शत्रुसेना में व्याप्त होनेवाले सभा सेना के पितयो! तुम देनों (दिवोदांसाय) न्याय और विद्या के प्रकाश के देनेवाले (भरद्वाजाय) जिसके कि पृष्ट होते हुए पृष्टिभान वेगवाले योद्धा हैं, उसके लिये (यत्) जिस (वर्त्तिः) वर्त्तमान (रेवत्) अत्यन्त धनयुक्त गृह आदि वस्तु को (अयातम्) प्राप्त होओ (च) और जो (वाम्) तुम दोनों का (वृषभः) विजय की पूर्ण करानेहार (शिंशुमारः) जिससे धर्म को उल्लङ्घ के चलानेहारों का विनाश करता है, जो कि (यचनः) स्मस्त अपने सेनाङ्गों से युक्त (रथः) मनोहर विमानादि रथ तुम लोगों को चाहे हुए स्थान में (अवाह) पहुंचाता है, उसकी (च) तथा उक्त गृह आदि की रक्षा करो॥१८॥

भावार्थ: राजा आदि राजपुरुषों को समस्त अपनी सामग्री न्याय से राज्य की पालना करने ही के लिये बनानी साहिया रहा।

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

र्वि पुश्चत्रं स्वपृत्यमार्युः सुवीर्यं नासत्या वहन्ता।

आ जुह्नावीं समनुसोप वाजैस्त्रिरह्नों भागं दर्धतीमयातम्॥ १९॥

र्यिम्। सुऽक्ष्र्त्रम्। सुऽअपत्यम्। आर्युः। सुऽवीर्यम्। नासत्याः वर्हन्ताः। आ। जुह्नावीम्। सऽमनसाः उपि। वाजैः। त्रिः। अह्नैः। भागम्। दर्धतीम्। अयातम्॥ १९॥

पदार्थ:-(रियम्) श्रीसमूहम् (सुक्षत्रम्) शोभनं राज्यम् (स्वपत्यम्) शोभनं सन्तितम् (आयुः) चिरञ्जीवनम् (सुर्वीर्यम्) उत्तमं पराक्रमम् (नासत्या) सत्यपालकौ सन्तौ (वहन्ताः) प्राप्नुवन्तौ (आ) (जह्नावीम्) जहत्यास्त्याज्यायाः शत्रुसेनाया इमां विरोधिनीं सेनाम्। अत्र जहातेर्द्वेऽन्त्यलोपश्च। (उणा०३.३६) इति हाधातो नुस्ततस्तस्येदिमित्यण्। पृषोदरादित्वाद्वर्णविपर्ययः। (समनस्य) समानं मनो विज्ञानं ययोस्तौ (उप) (वाजैः) ज्ञानवेगयुक्तैर्भृत्यादिभिः सह वर्त्तमान् (त्रः) त्रिवारम् (अहः) दिवसस्य (भागम्) भजनीयं समयम् (दधतीम्) धरन्तीम् (अयातम्) प्राप्नुतम्। १९८)

अन्वय:-हे समनसा वहन्ता नासत्याश्विनौ सभासेनेशौ! युवां सनातनन्यायसेवनाद्वींयं सुक्षत्रं स्वपत्यमायु: सुवीर्यं वाजै: सह वर्तमानां जह्नावीमह्नो भागं त्रिर्दधतीं सेनामुपायातं सम्यक् प्राप्नुतम्।।१९५।

भावार्थः - निहं कश्चिद्विद्यासत्यन्यायसेवनमन्तरैतानि धनीदीनि प्राप्य रिक्षत्वा सुखं कर्तुं शक्नोति तस्माद्धर्मसेवनेनैव राज्यादिकं प्राप्तुं शक्यम्॥१९॥

पदार्थ:-हे (समनसा) समान विज्ञानवाले (वहना) उत्तम सुख को प्राप्त हुए (नासत्या) सत्यधर्मपालक सभा सेना के अधिपितयो! तुम देवों समातर्म न्याय के सेवन से (रियम्) धनसमूह (सुक्षत्रम्) अच्छे राज्य (स्वपत्यम्) अच्छे सन्ताम (आयुः) चिरकाल जीवन (सुवीर्च्यम्) उत्तम पराक्रम को और (वाजैः) ज्ञान वा वेगयुक्त भृत्यदिकों के साथ वर्त्तमान (जह्नावीम्) छोड़ने योग्य शत्रुओं की सेना की विरोधिनी इस सेना को तथा (अह्न कि (भागम्) सेवने योग्य विभाग अर्थात् समय को और (त्रिः) तीन वार (दधतीम्) धारण करती हुई सेना के (उप, आ, अयातम्) समीप अच्छे प्रकार प्राप्त होओ॥१९॥

भावार्थ:-कोई विद्या/और सत्यन्याय के सेवन के विना इन धन आदि पदार्थों को प्राप्त हो और इनकी रक्षा कर सुख नहीं कर सकता है, इससे धर्म के सेवन से ही राज्य आदि प्राप्त हो सकता है॥१९॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

परिविष्टे जाहुषं विश्वतं: सीं सुगेभिर्नक्तंपूहथू रजीभि:।

्रिभुन्दुनो नासत्या रथेनु वि पर्वताँ अजर्यू अयातम्॥२०॥११॥

पर्स्थिवष्टम्। जाहुषम्। विश्वतः। सीम्। सुऽगेभिः। नक्तम्। ऊहुथुः। रजःऽभिः। विऽभिन्दुनां। नासत्या। र्थना कि। पर्वतान्। अजुरुयू इतिं। अयातम्॥२०॥

मण्डल-१। अनुवाक-१७। सूक्त-११६ G SES

पदार्थ:-(परिविष्टम्) सर्वतो व्याप्नुतम् (जाहुषम्) जहुषां गन्तव्यानामिदं गम्लम् अत्र ओहाङ्गतािवित्यस्मादौणादिक उसिस्ततस्तस्येदिमित्यण्। (विश्वतः) सर्वतः (सीम्) मर्थ्याद्रम् (सुरोभिः) सुखेन गमनािधकरणैर्मार्गैः (नक्तम्) रात्रिम् (ऊहथुः) वहतम् (रजोभिः) लौकैः (विभिन्दुना) विविधभेदकेन (नासत्या) (रथेन) (वि) (पर्वतान्) मेघान् शैलान् वा (अज्रूर्ध्) जरादिद्वीषरिहतौ (अयातम्) प्राप्नुयातम्॥२०॥

अन्वयः-हे नासत्या! युवां यथाऽजरयू सूर्याचन्द्रमसौ सुगेभी रजोभिर्लोकैः सह नक्तं पर्वतान् मेघान् वहतस्तथा विभिन्दुना रथेन सैन्यमूहथुः। विश्वतः सीं परिविष्टं जाहुषं राज्यं प्राप्य पर्वततुल्यान् शत्रून् व्यापतम्पार्णः।

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्काराः। यथा राजसभासद्द्री धर्म्यमार्गे राज्यं प्राप्य दुर्गस्थान् पर्वतादिस्थांश्चापि शत्रून् वशीकृत्य स्वप्रभावं प्रकाशयन्ति तथा सूर्याचन्द्रमुसी पृथिवीस्थान् पदार्थान् प्रकाशयतः। यथैतयोरसन्निहितेऽन्धकारो जायते तथैतेषामभावेऽनुस्थितमः प्रवर्तते॥२०॥

पदार्थ:-हे (नासत्या) सत्य धर्म के पालनेहारे सभूतसेनाधीशों, तुम दोनों जैसे (अजरयू) जीर्णता आदि दोषों से रहित सूर्य और चन्द्रमा (सुगेभि:) जिनमें कि सुख् से गमन हो उन मार्ग और (रजोभि:) लोकों के साथ (नक्तम्) रात्रि और (पर्वतान्) मेघ का पहाड़ों को यथायोग्य व्यवहारों में लाते हैं, वैसे (विभिन्दुना) विविध प्रकार से छिन्न-भिन्न करनेवाले (रथेन) रथ से सेना को यथायोग्य कार्य में (ऊहथु:) पहुंचाओ, (विश्वतः) सब ओर से (सीम्) मर्झदा को (प्रिरिविष्टम्) व्याप्त होओ, (जाहुषम्) प्राप्त होने योग्य नगरादि के राज्य को पाकर पर्वत के तुल्य शत्रुओं को (वि, अयातम्) विभेद कर प्राप्त होओ॥२०॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाज्यकलुफ्तोपमालङ्कार हैं। जैसे राजा के सभासद् जन धर्म के अनुकूल मार्गों से राज्य पाकर किला में वा पर्वत आदि स्थानों में ठहरे हुए शत्रुओं को वश में करके अपने प्रभाव को प्रकाशित करते हैं, वैसे सूर्य और चन्द्रमा पृथिवी के पदार्थों को प्रकाशित करते हैं। जैसे इन सूर्य्य और चन्द्रमा के निकट होने से अध्धकार उत्पन्न होता है, वैसे राजपुरुषों के अभाव में अन्यायरूपी अन्धकार प्रवृत हो जाता है।

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

एकस्या बस्तौरावतं रणाय वशमश्चिना सनये सहस्रा।

त्रिरहतं दुच्छुना इन्द्रवन्ता पृथुश्रवसो वृषणावरातीः॥२१॥

१२७०

ऋग्वेदभाष्यम्

एकंस्याः। वस्तोः। आवतुम्। रणाय। वर्शम्। अश्विनाः। सनये। सहस्रां। निः। अहतुम्। दुच्छुनीः। इन्द्रंऽवन्ता। पृथुऽश्रवंसः। वृषुणौ। अरातीः॥२१॥

पदार्थ:-(एकस्या:) सेनायाः (वस्तोः) दिनस्य मध्ये (आवतम्) विजयं कामयतम् (रणाय) संग्रामाय (वशम्) स्वाधीनताम् (अश्विना) सूर्य्याचन्द्रमसाविव सभासेनेशौ (सनये) राज्यसेवनाय (सहस्रा) असंख्यातानि धनादिवस्तूनि (निः) नितराम् (अहतम्) हन्याताम् (दुच्छुनाः) दुर्गते शुनं सुखं याभ्यस्ताः। अत्र वर्णव्यत्ययेन सस्य तः। शुनिमित सुखनामसु पठितम्। (निघ् ३.६) (इस्वन्ता) बह्वैश्वर्ययुक्तौ (पृथुश्रवसः) पृथूनि विस्तृतानि श्रवांस्यन्नानि यासां ताः (वृष्णा) सप्त्रास्त्रवर्णयतारौ बलवन्तौ (अरातीः) सुखदानरहिताः शत्रुसेनाः॥२१॥

अन्वयः-हे वृषणाविन्द्रवन्ताश्विना सभासेनेशौ! दुच्छुना यथा तमो मेघ्रांश्च सूर्य्यो अयित तथैकस्याः सेनाया रणाय प्रेषणेन वस्तोर्दिनस्य मध्ये स्वसेनामावतं वशं सहस्रा सनये पृथुश्रवसोऽरातीः शबुसेना निरहतम्॥२१॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा सूर्याचन्द्रमस्रोरुद्येन तमो निवृत्य सर्वे प्राणिन आनन्दन्ति तथा धर्मव्यवहारेण शत्रूणामधर्मस्य च निवृत्या धार्मिकाः सुराज्ये सुखयन्ति॥२१॥

पदार्थ:-हे (वृषणो) शस्त्र-अस्त्र की वर्षा कर विक्रं (इड्रुबन्ता) बहुत ऐश्वर्ययुक्त (अश्विना) सूर्य्य और चन्द्रमा के तुल्य सभा और सेना के अधीश्रो! (दुन्छुना) जिससे सुख निकल गया, उन शत्रु सेनाओं को जैसे अन्धकार और मेघों को सूर्य्य जीवना है, बैसे (एकस्या:) एक सेना के (रणाय) संग्राम के लिये जो पठाना है, उससे (वस्तो:) एक दिन के बीच (आवतम्) अपनी सेना के विजय को चाहो और उन सेनाओं को अपने (वशम्) वश में लाकर (एहस्रा) (सनये) हजारों धनादि पदार्थों को भोगने के लिये (पृथुश्रवस:) जिनके बहुत अत्र श्रावि (पदार्थ) हैं और (अराती:) जो किसी को सुख नहीं देती उन शत्रुसेनाओं को (निरहतम्) निरन्तर मन्सी। २१॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में व्याचकलुप्तीपमालङ्कार है। जैसे सूर्य्य और चन्द्रमा के उदय से अन्धकार की निवृत्ति होकर सब प्राणी सुर्खी होते हैं, वैशे धर्मरूपी व्यवहार से शत्रुओं और अधर्म की निवृत्ति होने से धर्मात्मा जन अच्छे राज्य में सुर्खी होते हैं॥ २१॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

शरस्य चिदार्चत्कस्यावृतादा नीचादुच्चा चेक्रथुः पार्तवे वाः॥

शृयवे सित्रासत्या शचीभिर्जस्रिये स्तर्यं पिप्यथुर्गाम्॥२२॥

्रश्ररस्य। चित्। आर्चत्ऽकस्य। अवतात्। आ। नीचात्। उच्चा। चक्र्थुः। पार्तवे। वारिति वाः। शयवे। चित्। नासू<mark>त्या। शर्</mark>चोभिः। जर्सुरये। स्तुर्यम्। पुप्युथुः। गाम्॥२२॥

मण्डल-१। अनुवाक-१७। सूक्त-११६ 95/48

पदार्थ:-(शरस्य) हिंसकस्य सकाशात् (चित्) अपि (आर्चत्कस्य) अर्चतः स्कृर्वतः शिष्टस्यानुकम्पकस्य। अत्रार्चधातोर्बाहुलकादौणादिकोऽतिः प्रत्ययस्ततोऽनुकम्पायां क्रा (अवतात) हिंसकाद् रक्षकाद्वा (आ) (नीचात्) निकृष्टानि कर्माणि सेवमानात् (उच्चा) उच्चादुल्कृष्टकर्मसेवमानात्। अत्र सुपां सुलुगिति पञ्चम्यैकवचनस्याकारादेशः। (चक्रथुः) कुर्य्याताम् (पातवे) (पातुम् (वाः) वारि। वारित्युदकनामसु पठितम्। (निघं०१.१२) (शयवे) शयानाय (चित्) अपि (नासत्या) सत्यिवज्ञानौ (शचीभः) प्रज्ञाभिः (जसुरये) हिंसकाय (स्तर्यम्) स्तरीषु नौकादियानेषु साधुम् (पिच्चथुः) वर्द्धेथाम्। अत्र व्यत्ययेन परस्मैपदम्। (गाम्) पृथिवीम्॥२२॥

अन्वयः-हे नासत्या! युवां शचीभिः शरस्य सिकाशादापतान्नीचादवताच्चिदप्यार्चत्कस्य सकाशादागतादुच्चावतात् प्रजाः पातवे बलमाचक्रथुः चिदिप शयवे जसुरये स्तर्यं वार्गां चे प्रिप्यथुः॥२२॥

भावार्थ:-हे मनुष्या! यूयं शत्रुनाशकस्य मित्रपूजकस्य मत्र्वारं कुरुत तस्मै पृथिवीं दद्यात् च। यथा वायुसूर्यो भूमिवृक्षेभ्यो जलमुत्कृष्य वर्षिक्त्वा सर्वं वर्धयतस्तथैवोत्कृष्टैः कर्मभिर्जगद्वर्धयत॥२२॥

पदार्थ:-हे (नासत्या) सत्यविज्ञानयुक्त सभासनाधीशी!-तुम दोनों (शचीभिः) अपनी बुद्धियों से (शरस्य) मारनेवाले की ओर से आये (नीचात्) निच कामों का सेवन करते हुए (अवतात्) हिंसा करने वाले से (चित्) और (आर्चत्कस्य) दूसरों की प्रशंसा कार्ने वा सत्कार करते हुए शिष्टजन की ओर से आये (उच्चा) उत्तम कर्म को सेवते हुए रक्षा करनेवाले से प्रजाजनों को (पातवे) पालने के लिये बल को (आ, चक्रथुः) अच्छे प्रकार करो (चित्) और (शयवे) सोते हुए और (जसुरये) हिंसक जनों के लिये (स्तर्यम्) जो नौका आदि यानों में अच्छा है, उस (वाः) जल और (गाम्) पृथिवी को (पिप्यथुः) बढ़ाओ॥२२॥

भावार्थ: -हे मनुष्यो निम्शतुओं के नाशक और मित्रजनों की प्रशंसा करनेवाले जन का सत्कार करो और उसके लिये पृथिक देशों, प्रेंस पवन और सूर्य भूमि और वृक्षों से जल को खैंच और वर्षा कर सबको बढ़ाते हैं, वैसे ही उसम कामों से संसार को बढ़ाओ॥२२॥

अथाध्यापकोपदेशकौ किं कुर्यातामित्याह॥

ख पद्मने और उपदेश करनेवाले क्या करें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अवस्युते सुवते कृष्णियाय ऋजूयते नांसत्या शचीभिः।

पुर्णुं न नुष्टमिव दर्शनाय विष्णाप्वं दद्युर्विश्वकाय॥२३॥

अवस्यते। स्तुवते। कृष्णियाये। ऋजुऽयते। नासत्या। शचीभिः। पृशुम्। न। नृष्टम्ऽईव। दर्शनीय। विष्णाप्वम्। दुद्रथुः। विश्वकाय॥२३॥

पदार्थ:-(अवस्यते) आत्मनोऽवो रक्षणादिकमिच्छते (स्तुवते) धर्मं श्लाघमानाय कृष्णियये कृष्णमाकर्षणमहीय। वा छन्दिस सर्वे विधयो भवन्तीति घः। (ऋजूयते) ऋजुरिवाचरित तस्मै (नासत्या) असत्यत्यागेन सत्यग्रहिणौ (शचीभः) सुशिक्षिकाभिर्वाग्भः (पशुम्) (न) इव (न्छमिव) पथाऽदर्शनं प्राप्तं वस्तु (दर्शनाय) प्रेक्षमाणाय (विष्णाप्वम्) विष्णान् विद्याव्यापिनो विदुष अप्निति बोधस्तम्। अत्र विष्लृ धातोर्नक् तत आप्लृधातोरू। वा छन्दसीति पूर्वसवर्णप्रतिषेधाद्यण्। (दद्युः) दक्षतम् (विश्वकाय) विश्वस्याऽनुकम्पकाय॥२३॥

अन्वय:-हे नासत्योपदेशकाध्यापकौ! युवां शचीभिरवस्यते स्तुवत स्तुयते कृष्णियोप विश्वकाय दर्शनाय पशुं न नष्टमिव विष्णाप्वं दद्यु:॥२३॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कारौ। आप्ता उपदेशकाध्यापका जुना यथा प्रत्यक्षं गवादिकमदृष्टं वस्तु वा दर्शयित्वा साक्षात्कारयन्ति तथा शमादिगुणान्वितेश्यो धीर्मद्भयः श्रोतृभ्योऽध्येतृभ्यश्च पृथिवीमारभ्येश्वरपर्यन्तानां पदार्थानां साङ्गोपाङ्गा विद्याः स्विक्तिरयन्तु नात्र कपटालस्यादिकुत्सितं कर्म कदाचित्कुर्य्यु:॥२३॥

पदार्थ:-हे (नामत्या) असत्य के छोड़ने से सत्य के ग्रहण करने, पढ़ाने और उपदेश करनेवालो! तुम दोनों (शचीभि:) अच्छी शिक्षा देनेवाली वाणियों से (अवस्थते) अपनी रक्षा और (स्तुवते) धर्म को चाहते हुए (ऋजूथते) सीधे स्वधावकाल के समान वर्तानेवाले (कृष्णियाय) आकर्षण के योग्य अर्थात् बुद्धि जिसको चाहती उस (विश्वकाय) संसार पर दया करनेवाले (दर्शनाय) धर्म-अधर्म को देखते हुये मनुष्य के लिये (पशुम्, न) असे पशु को प्रत्यक्ष दिखावे वैसे और जैसे (नष्टमिव) खोए हुए वस्तु को ढूंढ़ के बतावें, वैस्ने (विष्णाप्वम्) विद्या में रमे हुए विद्वानों को जो बोध प्राप्त होता है, उसको (ददश:) देओ॥ २३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में दो उपमालङ्कार हैं। शास्त्र के वक्ता, उपदेश करने और विद्या पढ़ानेवाले विद्वान् जन जैसे प्रत्यक्ष भी आदि पेशु को वा छिपे हुए वस्तु को दिखाकर प्रत्यक्ष कराते हैं, वैसे शम्, दम आदि गुणों से युक्त बुद्धिमान् श्रोता वा अध्येताओं को पृथिवी से लेके ईश्वर पर्य्यन्त पदार्थों का विज्ञान देनेवाली साङ्गोपाङ्गिविद्याओं को प्रत्यक्ष करावे और इस विषय में कपट और आलस्य आदि निन्दित कर्म कभी न करें॥२३॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

द्रश्च रात्रीरिशवेना नव द्यूनवनद्धं श्निथतम्प्स्वर्थनः।

मण्डल-१। अनुवाक-१७। सूक्त-११६



विष्रुतं रेभमुदन् प्रवृक्तमुन्निन्यथुः सोमीमव स्रुवेणी। २४॥

दर्श। रात्रीः। नर्व। द्यून्। अर्वऽनद्धम्। श्नृष्टितम्। अप्ऽसु। अन्तरिति। विऽप्नुतम्। रेभम्। उद्दिन्। प्रश्वेकतम्। उत्। निन्युथुः। सोर्मम्ऽइव। स्रुवेणी। २४।।

पदार्थ:-(दश) (रात्री:) (अशिवेन) असुखेन। अत्रान्येषामपीति दीर्घ:। (सव) (द्यून्) दिनानि (अवनद्धम्) अधोबद्धम् (श्रनिथतम्) शिथिलीकृतं नौकादिकम् (अप्सु) जूलेषु (अन्तः) आध्यन्तरे (विप्रुतम्) विप्रवमाणम् (रेभम्) स्तोतारम्। रेभ इति स्तोतृनामसु पठितम्। (निघं०३.१६) (उदिन) उदके। पदन्न० इत्युदकस्योदन्नादेशः। (प्रवृक्तम्) प्रवर्जितम् (उत्) ऊर्ध्वम् (नियशुः) नयतम् (सोमिव) यथा सोमवल्ल्यादि हविः (स्नुवेण) उत्थापकेन यज्ञपात्रेण॥२४॥

अन्वय:-हे नासत्या युवां यथा शचीभिरशिवेनामङ्गलकारिण युद्धेन सह वर्त्तमानौ शिल्पिनाववनद्धं श्निथतमुदिन विप्रुतं प्रवृक्तं नौकादिकं दश रात्रीर्नव द्यूनप्स्वन्तः स्रस्थाच्य पुनुष्ट्रप्वं नयत एवं स्रुवेण सोमिमव रेभमुन्निन्यथु:॥२४॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कारः। पूर्वस्मान् मन्त्रान् नासत्या प्राचीभिरति पदद्वयमनुवर्त्तते। हे जना! यथा जलाभ्यन्तरे नौकादिषु स्थिताः सेनाः शत्रुभिर्ह्मत् म् अक्यन्ते तथा विद्यासत्यधर्मोपदेशेषु स्थापिता जना अविद्याजन्यदुःखेन न पीडचन्ते। यथा समये शिल्प्रमी नौकादिकं जल इतस्ततो नीत्वा शत्रून् विजयन्ते तथा विद्यादानेनाविद्यां यूयं विजयध्यम्, यथा यज्ञे हुतं द्रव्यं वायुजलादिशुद्धिकरं जायते तथा सदुपदेश आत्मशुद्धिकरो भवति॥२४॥

पदार्थ:-हे (नामत्या) असल्य को छोड़ कर कर सत्य का ग्रहण करने, पढ़ाने और उपदेश करनेवालो! तुम दोनों जैसे (श्रचीभि:) अच्छी शिक्षा देनेवाली वाणियों से (अशिवेन) अमङ्गल करनेवाले युद्ध के साथ वर्त्तमान शिल्पी जून (अवनद्धम्) नीचे से बँधी (श्रनिधतम्) ढीली की हुई (उदिनि) जल में (विग्रुतम्) चलाई (प्रवृक्तम्) और इध्य-उध्य जाने से रोकी हुई नौका आदि को (दश) दश (रात्री:) रात्रि (नव) नौ (द्यून्) दिनों कर (अप्सु) जलों में (अन्त:) भीतर स्थिर कर फिर ऊपर को पहुंचावें उस ढंग से और जैसे (स्रुवेण) श्री अदि के उठाने के साधन स्रुवा से (सोमिमव) सोमलतादि ओषिधयों को उठाते हैं, वैसे (रेभम्) सबकी प्रशंसा करनेहारे अच्छे सज्जन को (उन्निन्यथु:) उन्नति को पहुंचाओ॥ २४।

भ्रावार्थ: इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। पिछले मन्त्र से (नासत्या, शचीिभः) इन दो पदों की अनुवृत्ति आती है। हे मनुष्यो! जैसे जल के भीतर नौका आदि में स्थित हुई सेना शत्रुओं से मारी नहीं जा सकती, वैसे विद्या और सत्यधर्म के उपदेशों में स्थापित किये हुए जन अविद्याजन्य दुःख से पीड़ा नहीं माती जैसे नियत समय पर कारीगर लोग नौकादि यानों को जल में इधर-उधर ले जाके शत्रुओं को

जीतते हैं, वैसे विद्यादान से अविद्याओं को आप जीतो। जैसे यज्ञकर्म में होमा हुआ द्रव्य वायु और जले आदि की शुद्धि करनेवाला होता है, वैसे सज्जनों का उपदेश आत्मा की शुद्धि करनेवाला होता है॥ २४॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

प्र वां दंसांस्यश्चिनाववोचमस्य पतिः स्यां सुगर्वः सुवीरः। उत पश्यन्नश्नुवन् दीर्घमायुरस्तिमिवेज्जीरिमाणं जगम्याम्॥२५॥१२॥

प्रा वाम्। दंसांसि। अश्विनौ। अवोचम्। अस्य। पतिः। स्याम्। सुऽगर्वः। सुऽवीरः। उता पश्येन्। अश्नुवन्। दीर्घम्। आर्युः। अस्तंम्ऽइव। इत्। जुरिमाणम्। जुगुम्याम्॥२५॥

पदार्थ:-(प्र) (वाम्) युवयोरुपदेशकाध्यापकयोः (दंसांसि) उपदेशाध्यापनादीनि कर्माणि (अश्विनौ) सर्वशुभकर्मविद्याव्यापिनौ (अवोचम्) वदेयम् (अस्य) व्यवहार्य्यय राज्यस्य वा (पतिः) पालकः (स्याम्) भवेयम् (सुगवः) शोभना गावो यस्य (सुविरः) शोभनपुत्रादिभृत्यः (उत) अपि (पश्यन्) सत्यासत्यं प्रेक्षमाणः (अश्नुवन्) विद्यासुखेन व्याप्नुधन् (दीर्घम्) वर्षशतादप्यधिकम् (आयुः) जीवनम् (अस्तिमव) गृहं प्राप्येव (जिरमाणम्) प्राप्तिस्य देद्वम् (इत्) एव (जगम्याम्) भृशं गच्छेयम्॥२५॥

अन्वयः-हे अश्वनावहं वां युवयोर्दंसांसि प्रावोचं ति सुपवः सुवारः पश्यन्नुतापि दीर्घमायुरश्नुवन् सन्नस्य पतिः स्याम्। परिव्राजकोऽस्तमिव जरिमाणं देहं त्यक्त्वा सुखेने जिन्योग्।। २५॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कारः। मनुष्याः सद्गे धार्मिकाणामाप्तानां कर्माणि संसेव्य धर्मजितेन्द्रियत्वाभ्यां विद्याः प्राप्यायुर्वर्धक्रित्या सुसहायाः सन्तो जगत्पालयेयुः। योगाभ्यासेन जीर्णानि शरीराणि त्यक्तवा विज्ञानान्मुक्तिं च गच्छेयुरिति॥ भूती।

अत्र पृथिव्यादिपदार्थगुण्रदृष्टेरतेनानुकूलतया सभासेनापत्यादिगुणकर्मवर्णनादेतत्सूक्तार्थस्य पूर्वसूक्तोक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्त्रीति वैद्यमार

इति द्वादशो १२ वर्गः षोडशोत्तरशततमस्य ११६ सूक्तं च समाप्तम्॥

पदार्थ:-हे (अश्विने) समस्त शुभ कर्म और विद्या में रमे हुए सज्जनो! मैं (वाम्) तुम दोनों उपदेश करने और पढ़ाने जार के (द्रंसांसि) उपदेश और विद्या पढ़ाने आदि कामों को (प्र, अवोचम्) कहूं उससे (सुगवः) अच्छी अच्छी गौ और उत्तम-उत्तम वाणी आदि पदार्थोंवाला (सुवीरः) पुत्र-पौत्र आदि भृत्ययुक्त (पश्यन्) सुत्य-असत्य को देखता (उत) और (दीर्घम्) बड़ी (आयुः) आयुर्दा को (अश्नुवन्) सूर्ख से ब्याप्त हुआ (अस्य) इस राज्य वा व्यवहार का (पितः) पालनेवाला (स्याम्) होऊं तथा संन्यासी महास्मा जैसे (अस्तिमव) घर को पाकर निर्लोभ से छोड़ दे, वैसे (जिरमाणम्) बुड्ढे हुए शरीर को छोड़ सुख से (इत्) ही (जगम्यात्) शीघ्र चला जाऊं॥२५॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्य सदा धार्मिक शास्त्रवक्ताओं के कर्मों को सेवन कर धर्म और जितेन्द्रियपन से विद्याओं को पाकर आयुर्दा बढ़ा के अच्छे सहाययुक्त हुए संसार की

मण्डल-१। अनुवाक-१७। सूक्त-११६

पालना करें और योगाभ्यास से जीर्ण अर्थात् बुड्ढे शरीरों को छोड़ विज्ञान से मुक्ति का प्राप्त होवें॥२५॥

इस सूक्त में पृथिवी आदि पदार्थों के गुणों के दृष्टान्त तथा अनुकूलता से सभासेनोपित आदि के गुण कर्मों के वर्णन से इस सूक्त में कहे अर्थ की पिछले सूक्त में कहे अर्थ के साथ सङ्गीत जाननी चाहिये॥

यह बारहवाँ १२ वर्ग और एक सौ सोलहवाँ ११६ सूक्त समान्त हुआ।

अथास्य पञ्चविंशत्यृचस्य सप्तदशोत्तरशततमस्य सूक्तस्य कक्षीवानृषि:। अश्विनौ देवते। १ निचृत् पङ्क्ति:। ६,२२ विराट् पङ्क्ति:। ११,२१,२५ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्द:। पञ्चम: स्वर:। २,४,७,१२,१६-१९ निचृत् त्रिष्टुप्। ८-१०, १३-१५,२०,२३ विराट् त्रिष्टुप्। ३,५,१४

त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथ राजधर्मविषयमाह।

अब एक सौ सत्रहवें सूक्त का आरम्भ है। उसके प्रथम मन्त्र में राजधर्म का उपदेश किया है।।

मध्वः सोर्मस्याश्चिना मदाय प्रत्नो होता विवासते वाम्। बर्हिष्मती रातिर्विश्चिता गीरिषा यातं नासत्योप वाजैः॥ १॥

मध्वः। सोमस्य। अश्विना। मदीय। प्रतः। होती। आ। विवासते। कामी बर्हिसिती गृतिः। विऽश्रिता। गीः। इषा। यातुम्। नासुत्या। उपं। वाजैः॥ १॥

पदार्थ:-(मध्व:) मधुरस्य (सोमस्य) सोमवल्ल्याद्योषधस्य। अत्र कर्मणि षष्ठी। (अश्विना) (मदाय) रोगनिवृत्तेरानन्दाय (प्रतः) प्राचीनविद्याध्येता (होता) सुख्याता (आ) (विवासते) परिचरित (वाम्) युवयोः (बर्हिष्मती) प्रशस्तवृद्धियुक्ता (रातिः) इतिः (विश्रिता) विविधैराप्तैः श्रिता सेविता (गीः) वाग् (इषा) स्वेच्छया (यातम्) प्राप्नुतम् (नासन्या) असत्यात्पृथगभूतौ (उप) (वाजैः) विज्ञानादिभिर्गुणैः॥१॥

अन्वय:-हे अश्विना! नासत्या युवामिषा प्रत्मे होतो बाजैर्मदाय वां युवयोर्मध्वः सोमस्य या बर्हिष्मती रातिर्विश्रिता गौश्चास्ति तां विवासत इवोपयातम्॥ 🔏

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमात्मङ्कारः। हे सभासेनेशावाप्तगुणकर्मसेवया विज्ञानादिकमुपगम्य शरीररोगनिवारणाय सोमाद्योषधिविद्याऽविद्यानिवारणाय विद्याश्च संसेव्याभीष्टं सुखं सम्पादयेतम्॥१॥

पदार्थ:-हे (अश्विना) विद्या में समे हुए (नासत्या) झूठ से अलग रहनेवाले सभा सेनाधीशो! तुम दोनों (इषा) अपनी इच्छा से (प्रतः) पुरानी विद्या पढ़नेहारा (होता) सुखदाता जैसे (वाजै:) विज्ञान आदि गुणों के साथ (प्रत्य) रोग दूर होने के आनन्द के लिये (वाम्) तुम दोनों को (प्रध्व:) मीठी (सोमस्य) सोमवल्ली आदि औषध की जो (बर्हिष्मती) प्रशंसित बढ़ी हुई (राति:) दानक्रिया और (विश्रिता) विविध प्रकार के शास्त्रवक्ता विद्वानों से सेवन की हुई (गी:) वाणी है, उसका जो (आ, विवासते) अच्छे प्रवार सेवन करता है, उसके समान (उप, यातम्) समीप आ रही अर्थात् उक्त अपनी क्रिया और वाणी का ज्यों का त्यों प्रचार करते रहो॥१॥

भावार्थ:=इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे सभा और सेना के अधीशो! तुम उत्तम शास्त्रविचा बिद्धानों के गुण और कर्मों की सेवा से विशेष ज्ञान आदि को पाकर शरीर के रोग दूर करने के

मण्डल-१। अनुवाक-१७। सूक्त-११७ d shop

लिये सोमवल्ली आदि ओषिथयों की विद्या और अविद्या अज्ञान के दूर करने को विद्या का सिन्नन कर चाहे हुए सुख की सिद्धि करो॥१॥

पुना राजधर्ममाह।।

फिर राजधर्म को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

यो वामिश्चना मनसो जवीयान् रथः स्वश्चो विश आजिगाति। येन गच्छ्रेथः सुकृतो दुरोणं तेन नरा वर्तिरस्मभ्यं यातम्॥२॥

यः। वाम्। अश्विनाः। मनसः। जवीयान्। रथः। सुऽअश्वः। विशः। अर्फ्राजिगाति। येने। गच्छेथः। सुऽकृतः। दुरोणमः तेने। नुराः। वुर्तिः। अस्मभ्यम्। यातुम्।।२॥

पदार्थ:-(य:) (वाम्) युवयोः (अश्विना) मनस्विनौ (मनसः) मननशीलाद्वेगवत्तरात् (जवीयान्) अतिशयेन वेगयुक्तः (रथः) युद्धक्रीडासाधकतमः (स्वश्वः) शिभ्न अश्व वेगवन्तो विद्युदादयस्तुरङ्गा वा यस्मिन् सः (विशः) प्रजाः (आजिगाति) समन्तात्प्रशंस्यिन्। अत्रान्तर्गतो ण्यर्थः। (येन) (गच्छथः) (सुकृतः) सुष्ठु साधनैः कृतो निष्पादितः (दुरोणम्) पृहम् (तन्) (नरा) न्यायनेतारौ (वर्तिः) वर्तमानम् (अस्मभ्यम्) (यातम्) प्राप्नुतम्॥२॥

अन्वय:-हे नराश्विना सभासेनेशौ! यः सुकृतः स्वश्वी मन्त्रौ जवीयान् रथोऽस्ति, स विश आजिगाति वा युवां येन रथेन वर्त्तिर्दुरोणं गच्छथस्तेनास्मभ्यं यातम्॥२॥

भावार्थ:-राजपुरुषैर्मनोवद्वेगानि विद्युदीहर्युर्वेतानि विविधानि यानान्यास्थाय प्रजाः संतोषितव्या। येन येन कर्मणा प्रशंसा जायेत तत्तदेव सत्ततं सर्विवव्यं नेतरत्॥२॥

पदार्थ:-हे (नरा) न्याय की प्राप्ति करानेवाले (अश्विना) विचारशील सभा सेनाधीशो! (य:) जो (सुकृत:) अच्छे साधनों से बन्निया हुआ (स्वश्वः) जिसमें अच्छे वेगवान् बिजुली आदि पदार्थ वा घोड़े लगे हैं, वह (मनसः) विचारशील अल्पन्त वगवान् मन से भी (जवीयान्) अधिक वेगवाला और (रथः) युद्ध की अत्यन्त क्रीड़ा क्रियाविला रथ है, वह (विशः) प्रजाजनों की (आजिगाति) अच्छे प्रकार प्रशंसा कराता और (वाम्) तुम दोनों (यन) जिस रथ से (वर्तिः) वर्त्तमान (दुरोणम्) घर को (गच्छथः) जाते हो (तेन) उससे (अस्मिश्रम्) हम् लोगों को (यातम्) प्राप्त हुजिये॥२॥

भावार्थ: राजपुरुषों को चाहिये कि मन के समान वेगवाले, बिजुली आदि पदार्थों से युक्त, अनेक प्रकार के रथ आदि यानों को निश्चित कर प्रजाजनों को सन्तोष देवें। और जिस-जिस कर्म से प्रशंस्म हो, इसी-उसी का निरन्तर सेवन करें, उससे और कर्म का सेवन न करें॥२॥

अथाध्ययनाऽध्यापनाख्यमाह।।

१२७८

ऋग्वेदभाष्यम्

अब पढ़ने और पढ़ाने रूप राजधर्म का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

ऋषिं नरावंहंसः पाञ्चजन्यमृबीसादित्रं मुञ्जथो गणेन। मिनन्ता दस्योरिशंवस्य माया अनुपूर्वं वृषणा चोदयन्ता॥३॥

ऋषिम्। नृरौ। अंहंसः। पाञ्चंऽजन्यम्। ऋबीसात्। अत्रिम्। मुञ्जूथः। गुणेनं। मिनन्तां। हस्यौरा अशिवस्य। मायाः। अनुऽपूर्वम्। वृष्णुा। चोदयन्ता॥३॥

पदार्थ:-(ऋषिम्) वेदपारगाध्यापकम् (नरौ) विद्यानेतारौ अहसः) विद्याध्ययनितरोधकाद्विघ्नाख्यात् पापात् (पाञ्चजन्यम्) पञ्चसु जनेसु प्राणादिषु भवां प्राप्तयोगसिद्धिम् (ऋबीसात्) नष्टविद्याप्रकाशविद्यारूपात्। ऋबीसमपगतभासमपहतभास्पन्तिहित्भागं गतभासं वा। (निरु०६.३५) (अत्रिम्) अविद्यमानान्यात्ममनः- शरीरदुःखानि येन तम् (मुञ्चथः) (गणेन) अन्याध्यापकविद्यार्थिसमूहेन (मिनन्ता) हिसन्तौ (दस्योः) उत्कोचक्रस्य (अशिक्षस्य) सर्वस्मै दुःखप्रदस्य (मायाः) कपटादियुक्ताः क्रियाः (अनुपूर्वम्) अनुकूलाः पूर्वे वृद्योक्ता आष्ट्रसिद्धान्ता यस्य तम् (वृषणा) सुखस्य वर्षकौ (चोदयन्ता) विद्यादिशुभगुणेषु प्रेरयन्तौ॥३॥

अन्वयः-हे नरौ! वृषणा चोदयन्ताऽशिवस्य दस्योर्माशी निनन्ताऽत्रेर्पूर्वं पाञ्चजन्यमत्रिं गणेनिषमृबीसादंहसो मुञ्जथः॥३॥

भावार्थ:-राजपुरुषाणामिदमुत्तमतमं कर्मास्ति यद्विद्याप्रचारर्तॄणां दु:खात् संरक्षणं सुखे संस्थापनं दस्य्वादीनां निवर्त्तनं स्वयं विद्याधर्मयुक्ता भूत्वा विद्याधर्मप्रचारे संप्रेर्य्य धर्मार्थकाममोक्षान् संसाधयेयु:॥३॥

पदार्थ:-हे (नरौ) विद्या प्राप्ति करार (विषणा) सुख के वर्षाने (चोदयन्ता) और विद्या आदि शुभ गुणों में प्रेरणा करनेवाले तथा (अशिवस्य) सबको दु:ख देनेहारे (दस्यो:) उचक्के की (माया:) कपटिक्रियाओं को (मिनन्ता) काटनेवाले सभासेनाधीशो! तुम दोनों (अनुपूर्वम्) अनुकूल वेद में कहे और उत्तम विद्वानों में माने हुए सिद्धान्त जिसके, उम (पाञ्चजन्यम्) प्राण, अपान, उदान, व्यान और समान में सिद्ध हुई योगसिद्ध को और जिसके सम्बन्ध में (अत्रिम्) आत्मा, मन और शरीर के दु:ख नष्ट हो जाते हैं, उस (गणेन) पढ़ने-पढ़ विवानों के साथ वर्तमान (ऋषिम्) वेदपारगन्ता अध्यापक को (ऋबीसात्) नष्ट हुआ है विद्या का प्रकाश जिससे उस अविद्यारूप अन्धकार (अंहसः) और विद्या पढ़ाने को रोक देने रूप अत्यन्त प्रमु से (मुञ्जथः) अलग रखते हो॥३॥

भाषार्थ: राजपुरुषों का यह अत्यन्त उत्तम काम है कि जो विद्याप्रचार करनेहारों को दु:ख से बचाना, उनको सुख में राखना और डाकू उचक्के आदि दुष्ट जनों को दूर करना और वे राजपुरुष आप विद्या और धर्म्य के प्रचार में लगा कर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष क्री सिद्धि करें। ३॥

मण्डल-१। अनुवाक-१७। सूक्त-११७

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अश्वं न गूळहमंश्विना दुरेवैर्ऋषिं नरा वृषणा रेभम्प्सु। सं तं रिणीथो विष्ठुंतं दंसोभिर्न वां जूर्यन्ति पूर्व्या कृतानि॥४॥

अर्श्वम्। न। गूळ्हम्। अश्विना। दुःऽएवैः। ऋषिम्। नगा। वृष्णा। रेभम्। अप्रसा सम्। तम्। रिणी्थः। विऽप्नतम्। दंसःऽभिः। न। वाम्। जूर्यन्ति। पूर्व्या। कृतानि॥४॥

पदार्थ:-(अश्वम्) विद्युतम् (न) इव (गूढम्) गूढाशयम् (अश्विनाः) सभामेनेशौ (दुरेवै:) दुःखं प्रापकैदुष्टैर्मनुष्यादिप्राणिभिः (ऋषिम्) पूर्वोक्तम् (नरा) सुखनेतारौ (चूषणा) विद्यावर्षयितारौ (रेभम्) सकलविद्यागुणस्तोतारम् (अप्सु) विद्याव्यापकेषु वेदादिषु सुनिष्टितम् (सप्) (तम्) (रिणीथः) (विप्नुतम्) विविधानां व्यवहाराणां वेत्तारम् (दंसोभिः) शिष्टानुष्टितैः कर्मिशः (न) निषेधे (वाम्) युवयोः (जूर्य्यन्ति) जीर्य्यन्ति जीर्णानि भवेयुः (पूर्व्याः) पूर्वैः कृतानि कार्य्याणि विश्वप्रचार्रूरूपाणि॥४॥

अन्वय:-हे नरा वृषणाश्विना! दुरेवैर्दंसोभिः पीडितमश्चिमव विष्रुतं रेभमप्सु सुनिष्ठितं तमृषिं न सुखेन गूढं संरिणीथ:। यतो वां युवयो: पूर्व्या कृतान्येतानि कर्माणि न जूर्यिन्ति। रा

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। राजपुरुषैर्यथ्य दस्युभिस्त्रहृतं गुप्ते स्थाने स्थापितं पीडितमश्चं सङ्गृह्य सुखेन संरक्ष्यते तथा मूढेर्दुष्कर्मकारिभिस्त्रिरस्कृतान् ब्रिद्याप्रचारकान् मनुष्यानखिलपीडात: पृथक्कृत्य सम्पूज्य सङ्गत्यैते सेव्यन्ते यानि च तेषां विद्युद्धिक्षप्रचाराणि कर्माणि तान्यजरामराणि सन्तीति वेद्यम्॥४॥

पदार्थ:-हे (नरा) सुख की प्राप्त (वृष्टणा) और विद्या की वर्षा करानेवाले (अश्विना) सभा सेनापितयो! तुम दोनों (दुरेवै:) दुःख को पहुँचानेवाले दुष्ट मनुष्य आदि प्राणियों (दंसोभि:) और श्रेष्ठ विद्वानों ने आचरण किये हुए कर्मों से ताड़िण को प्राप्त (अश्वम्) अति चलनेवाली बिजुली के समान (विप्रुतम्) विविध प्रकार अच्छे व्यवहारों को जानने (रेभम्) समस्त विद्या गुणों की प्रशंसा करने (अप्सु) विद्या में व्याप्त होने और वेदादि शास्त्रों में निश्चय रखनेवाले (तम्) उस पूर्व मन्त्र में कहे हुए (ऋषिम्) वेदपारगन्ता विद्वान् के (न) समान (गूढम्) अपने आशय को गुप्त रखनेवाले सज्जन पुरुष को सुख से (सं, रिणीथ:) अच्छे प्रकार युक्त करो, जिससे (वाम्, पूर्व्या, कृतािन) तुम लोगों के जो पूर्वजों ने किए हुए विद्याप्रचारस्य काम वे (न) नहीं (जूर्यन्ति) जीर्ण होते अर्थात् नाश को नहीं प्राप्त होते॥४॥

भावार्थ: इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। राजपुरुषों से जैसे डाकुओं द्वारा हरे, छिपे हुए स्थान में उहराये और पीड़ा दिये हुए घोड़े को लेकर वह सुख के साथ अच्छी प्रकार रक्षा किया जाता है, वैसे मृद्ध दुराह्मारी मनुष्यों द्वारा तिरस्कार किये हुए विद्याप्रचार करनेवाले मनुष्यों को समस्त पीड़ाओं से अलग

कर, सत्कार के साथ संग कर, ये सेवा को प्राप्त किये जाते हैं और जो उनके बिजुली की विद्या के प्रचार के काम हैं वे अजर-अमर हैं, यह जानना चाहिये॥४॥

अथ राजधर्मविषयमाह॥

अब अगले मन्त्र में राजधर्म विषय को कहते हैं॥

सुषुप्वांसं न निर्ऋतेरुपस्थे सूर्यं न देस्रा तमीस क्षियन्तेम्। शुभे रुक्मं देर्शतं निर्खातुमुदूपथुरश्चिना वन्देनाय॥५॥१३॥

सुसुप्वांस्पेम्। न। निःऽऋतिः। उपऽस्थे। सूर्यम्। न। दुस्रा। तर्पसि। क्ष्रियन्तेम्। शुभा कृक्ष्मम्। न। दुर्शृतम्। निऽखातम्। उत्। ऊप्थुः। अश्विना। वन्दंनाय॥५॥

पदार्थ:-(सुषुप्वांसम्) सुखेन शयानम् (न) इव (निर्ऋते:) सूमेः। निर्ऋतिरिति पृथिवीनामसु पिठतम्। (निघं०१.१) (उपस्थे) उत्सर्गे (सूर्य्यम्) सिवतारम् (न) इव (देख्या) दुःखिहंसको (तमिस) रात्रौ। तम इति रात्रिनामसु पिठतम्। (निघं०१.७) (क्षियन्तम्) निवसन्तम् (शुभे) शोभनाय (रुक्मम्) सुवर्णम्। रुक्ममिति हिरण्यनामसु पिठतम्। (निघं०१.२) (न) इव दर्शतम्) दृष्टव्यं रूपम् (निखातम्) फालकृष्टं क्षेत्रम् (उत्) ऊर्ध्वम् (ऊपथुः) वपेतम् (अधिना) कृषिकर्मविद्याव्यापिनौ (वन्दनाय) स्तवनाय॥५॥

अन्वय:-हे दस्राश्विना! युवां वन्दनाय निर्ऋतेहमस्थे तमसिर्गक्षयन्तं सुषुप्वांसं न सूर्यं नाशुभे रुक्मं न दर्शतं निखातमुदूपथु:॥५॥

भावार्थ:-अत्र तिस्र उपमा:। यश्च प्रजास्थाः, प्राणिनः सुराज्यं प्राप्य रात्रौ सुखेन सुप्त्वा दिने स्वाभीष्टानि कर्माणि सेवन्ते, सुशोभायै सुवर्णादिकोष्ट्राप्नुवन्ति, कृष्यादिकर्माणि कुर्वन्ति तथा सुप्रजाः प्राप्य राजपुरुषा महीयन्ते॥५॥

पदार्थ: -हे (दस्रा) दुः के का विनास करनेवाले (अश्विना) कृषिकर्म की विद्या में परिपूर्ण सभा सेनाधीशो! तुम दोनों (वन्दनाय) प्रशंसा करने के लिये (निर्ऋते:) भूमि के (उपस्थे) ऊपर (तमिस) रात्रि में (श्वियन्तम्) निवास करते और (मुर्युप्वांसम्) सुख से सोते हुए के (न) समान वा (सूर्य्यम्) सूर्य के (न) समान और (शुभे) शोभा के लिये (रुक्मम्) सुवर्ण के (न) समान (दर्शतम्) देखने योग्य रूप (निखातम्) फारे स्रे जोते हुए खेत को (उदूपथु:) ऊपर से बोओ॥५॥

भावार्थ: -इस मन्त्र में तीन उपमालङ्कार हैं। जैसे प्रजास्थ जन अच्छे राज्य को पाकर रात्रि में सुख से स्प्रेके दिन्न में चाहे हुए कामों मे मन लगाते हैं वा अच्छी शोभा होने के लिये सुवर्ण आदि वस्तुओं को पाते वा खेती आदि कामों को करते हैं, वैसे अच्छी प्रजा को प्राप्त होकर राजपुरुष प्रशंसा पाते हैं।।

पुनस्तमेव विषयमाह॥

मण्डल-१। अनुवाक-१७। सूक्त-११७

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

तद्वां नरा शंस्यं पञ्चियेणं कक्षीवंता नासत्या परिज्मन्। शृफादश्चंस्य वाजिनो जनाय शृतं कुम्भाँ असिञ्चतं मधूनाम्॥६॥

तत्। वाम्। न्राः। शंस्यम्। पुज्रियेणः। कृक्षीर्वताः। नासत्याः। परिऽज्मन्। शुफात्। अश्वरयः। वाजिनः। जनायः। शृतम्। कुम्भान्। असिञ्चतम्। मधूनाम्।।६॥

पदार्थ:-(तत्) (वाम्) युवयोः (नरा) नृषूत्तमौ नायकौ (शंस्त्रम्) प्रशंसनीयम् (पित्रयेण) प्राप्तव्येषु भवेन (कक्षीवता) शिक्षकेण विदुषा सिहतेन (नासत्या) (परिचम्ह्) परितः सर्वतो गच्छन्ति यस्मिन्मार्गे (शफात्) खुरात् शं फणित प्रापयतीति शफो वेगस्तस्माद्वाः अत्रान्यभ्योऽपि दृश्यत इति डः पृषोदरादित्वान्मलोपश्च। (अश्वस्य) तुरगस्य (वाजिनः) वेगवतः (जनाय) शुभगुणिवद्यासु प्रादुर्भूताय विदुषे (शतम्) (कुम्भान्) कलशान् (असिञ्चतम्) सुखेन सिञ्चतम् (मधूनाम्) उदकानाम्। मिध्वत्युदकनामसु पठितम्। (निघं०१.१२)॥६॥

अन्वयः-हे पज्रियेण कक्षीवता सह वर्त्तमानौ नामत्या नरा मां यत् परिज्मन् वाजिनोऽश्वस्य शफादिव विद्युद्वेगात् जनाय मधूनां शतं कुम्भानसिञ्चतं तद्वां युवयोः शंस्यं कर्म विष्णुनीमः॥६॥

भावार्थ:-राजपुरुषैर्मनुष्यादिसुखाय परिऽनेक्कुरूभजलेन सेचनं प्रत्यहं कारियतव्यम्, यतस्तुरङ्गादीनां पादापस्करणाद् धूलिर्नोत्तिष्ठेत येन मार्भे स्वसेनास्था जनाः सुखेन गमनागमने कुर्य्युः। एवमीदृशानि स्तुत्यानि कर्माणि कृत्वा प्रजाः स्तित्माह्यदितव्याः॥६॥

पदार्थ:-हे (पजियेण) प्राप्त होने योखों में प्रसिद्ध हुए (कक्षीवता) शिक्षा करनेहारे विद्वान् के साथ वर्तमान (नासत्या) सत्य व्यवहार वर्षनेवाले (नरा) मनुष्यों में उत्तम सबको अपने-अपने ढंग में लगानेहारे सभासेनाधीशो! तुम्न(दोनों जो (परिज्मन्) सब प्रकार से जिसमें जाते हैं, उस मार्ग को (वाजिनः) वेगवान् (अश्वस्य) घोड़ा की (श्राफात्) टाप के समान बिजुली के वेग से (जनाय) अच्छे गुणों और उत्तम विद्याओं में प्रसिद्ध हुए विद्वान् के लिये (मधूनाम्) जलों के (शतम्) सैकड़ों (कुम्भान्) घड़ों को (असिञ्चतम्) सुख से सिंचों अर्थात् भरो (तत्) उस (वाम्) तुम लोगों के (शंस्यम्) प्रशंसा करने योग्य काम को हम जानते हैं। ६॥

भावार्थः त्राजपुरुषों को चाहिये कि मनुष्य आदि प्राणियों के सुख के लिये मार्ग में अनेक घड़ों के जल से नित्य सींचाव कराया करें, जिससे घोड़े बैल आदि के पैरों की खूंदन से धूर न उड़े। और जिससे मोर्ग में अपनी सेना के जन सुख से आवें-जावें। इस प्रकार ऐसे प्रशंसित कामों को करके प्रजाजनों को पिरन्तर आनन्द देवें॥६॥

१२८२

ऋग्वेदभाष्यम्

पुनरध्यापकोपदेशकगुणा उपदिश्यन्ते॥

फिर अध्यापक और उपदेश करनेवालों के गुण अगले मन्त्र में कहते हैं॥

युवं नेरा स्तु<u>व</u>ते कृष्णियाये विष्णाप्वं दद्यविश्वकाय। घोषाये चित्पितृषदे दुग्रेणे पतिं जूर्यन्या अश्विनावदत्तम्॥७॥

युवम्। नुरा। स्तुवते। कृष्णियाये। विष्णाप्वम्। दुद्रथुः। विश्वकाय। घोषायै। चित्रा कित्रुक्रसदे। दुरोणे। पर्तिम्। जूर्यन्त्यै। अश्विनौ। अदुनुम्॥७॥

पदार्थ:-(युवम्) युवाम् (नरा) प्रधानौ (स्तुवते) सत्यवक्त्रे (कृष्णियाय) कृष्णं विलेखनं कृषिकर्मार्हिति यस्तस्मै (विष्णाप्वम्) विष्णानि कृषिव्याप्तानि कर्माण्याप्नेति क्षेत्रे पुरुषेण तम् (ददथुः) (विश्वकाय) अनुकम्पिताय समग्राय राज्ञे (घोषायै) घोषाः प्रश्नेसिताः शब्दाः गवादिस्थित्यर्थाः स्थानविशेषा वा विद्यन्ते यस्यां तस्यै (चित्) अपि (पितृषदे) प्रितरो बिद्याचिज्ञापका विद्वांसः सीदन्ति यस्मिँस्तस्मै (दुरोणे) गृहे (पितम्) पालकं स्वामिनम् (जूर्य्यास्यै) जीर्णान्स्थाप्राप्तनिमित्तायै (अश्विनौ) (अदत्तम्) दद्यातम्॥७॥

अन्वय:-हे नराश्विनौ! युवं युवां कृष्णियाय स्तुवते पितृषदे विश्वकीय दुरोणे विष्णाप्वं पतिं ददथु:। चिदिप जूर्यन्त्यै घोषायै पतिमदत्तम्॥७॥

भावार्थ:-राजादयो न्यायाधीशाः कृष्यादिकर्मकारिभ्या जनेभ्यः सर्वाण्युपकरणानि पालकान् पुरुषान् सत्यन्यायं च प्रजाभ्यो दत्वा पुरुषार्थे/प्रवर्तयेयुः।/ एताभ्यः कार्य्यसिद्धिसम्पन्नाभ्यो धर्म्यं स्वांशं यथावत् संगृह्णीयुः॥७॥

पदार्थ:-हे (नरा) सब कामों में प्रधान और (अश्वनौ) सब विद्याओं में व्याप्त सभासेनाधीशो! (युवम्) तुम दोनों (कृष्णियाय) खेती के काम की योग्यता रखने और (स्तुवते) सत्य बोलनेवाले (पितृषदे) जिसके समीप विद्या विज्ञान देनेवाले स्थित होते (विश्वकाय) और जो सभों पर दया करता है, उस राजा के लिये (दुरोणे) पूर में (विष्णाप्त्रम्) जिस पुरुष से खेती के भरे हुए कामों को प्राप्त होता, उस खेती रखनेवाले पुरुष को (देवश्वः) देओ (चित्) और (जूर्य्यन्त्ये) बुड्ढेपन को प्राप्त करनेवाली (घोषाये) जिसमें प्रशंसित शब्द का गौ आदि के रहने के विशेष स्थान हैं, उस खेती के लिये (पितम्) स्वामी अर्थात् उस्मुकी रक्षा करनेवाले को (अदत्तम्) देओ॥७॥

भावार्ष:-राजा आर्दि न्यायाधीश खेती आदि कामों के करनेवाले पुरुषों से सब उपकार पालना करनेवाले पुरुष और सन्य न्याय को प्रजाजनों को देकर उन्हें पुरुषार्थ में प्रवृत्त करें। इन कार्य्यों की सिद्धि को प्राप्त्र हुए प्रजाजनों से धर्म के अनुकूल अपने भाग को यथायोग्य ग्रहण करें॥७॥

पुनरत्र राजधर्ममाह॥

फिर यहाँ राजधर्म का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

मण्डल-१। अनुवाक-१७। सूक्त-

११७

युवं श्यावाय रुशतीमदत्तं महः श्लोणस्याश्चिना कण्वाय। प्रवाच्यं तद्वृषणा कृतं वां यन्नर्षिदाय श्रवी अध्यर्धन्तम्॥८॥

युवम्। श्यावीय। रुशतीम्। अदुत्तम्। मुहः। श्लोणस्ये। अश्विना। कण्वीय। प्रुऽवाच्येम्/ तत्। चृष्णा। कृतम्। वाुम्। यत्। नार्षेदाये। श्रवं:। अधिऽअर्धत्तम्॥८॥

पदार्थ:-(युवम्) युवाम् (श्यावाय) ज्ञानिने। श्यैङ्धातोरौणादिको वन्। (रुश्रेसीम्) प्रकाशिकां विद्याम् (अदत्तम्) दद्यातम् (महः) महतः (क्षोणस्य) अध्यापकस्य (अश्रित्र) बहुश्रुतौ (कण्वाय) मेधाविने (प्रवाच्यम्) प्रकर्षेण वक्तु योग्यं शास्त्रम् (तत्) (वृषण्ए) विलिष्टी (कृतम्) कर्त्तव्यम् कर्म (वाम्) युवयो: (यत्) (नार्षदाय) नृषु नायकेषु सीदित तदपत्याय। (श्रवः) श्रवणम् (अध्यधत्तम्) उपरि धरतम्॥८॥

अन्वय:-हे वृषणाऽश्विना! युवं युवां महः क्षोणस्य सकाशाच्छिया्वाय क्रेंणवाय रुशतीमदत्तम्। यद्वां युवयोः प्रवाच्यं कृतं श्रवोऽस्ति तन्नार्सदायाध्यधत्तम्॥८॥

भावार्थ:-सभाध्यक्षेण यादृश उपदेशो धीमतः प्रति क्रियतै तादृश एव सर्वलोकाधीशायोपदिशेत्। एवमेव सर्वान् मनुष्यान् प्रति वर्त्तितव्यम्॥८॥

पदार्थ:-हे (वृषणा) बलवान् (अश्विमा) बहुत् औन-विज्ञान की बातें सुने जाने हुए सभा सेनाधीशो! (युवम्) तुम दोनों (महः) बड़े (श्राणस्य) प्रदानेवाले के तीर से (श्यावाय) ज्ञानी (कण्वाय) बुद्धिमान् के लिये (फशतीम्) प्रकाश क्रिवाली विधा को (अदत्तम्) देओ तथा (यत्) जो (वाम्) तुम दोनों का (प्रवाच्यम्) भली-भांति कहमे योग्य शास्त्र (कृतम्) करने योग्य काम और (श्रव:) सुनना है (तत्) उसको तथा (नार्षदाय) उर्क्रम-उत्तमे व्यवहारों में मनुष्य आदि को पहुंचानेहारे जनों में स्थित होते हुए लड़के को **(अध्यधत्तम्)** अ**प**र्ने पर धारण **क**रो॥८॥

भावार्थ:-सभाध्यक्ष पुरुष से जिस प्रकार का उपदेश अच्छे बुद्धिमानों के प्रति किया जाता हो, वैसा ही सब लोकों के स्वामी के लिये उपदेश करें। ऐसे ही सब मनुष्यों के प्रति वर्ताव करना चाहिये॥८॥

अथात्र तारविद्यामूलमाह॥

अब यहाँ तारविद्या के मूल का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

रू वर्षास्थिश्चिना दर्धाना नि पेदवं ऊहथुराशुमर्श्वम्।

<u>मुह</u>स्त्रसां वाजिनुमप्रतीतमहि्हनं श्रवस्यं १ तर्रुत्रम्॥९॥

१२८४

ऋग्वेदभाष्यम्

पुरु। वर्षांसि। अश्विना। दर्धाना। नि। पेदवे। ऊहुथुः। आशुम्। अश्वम्। सहस्रऽसाम्। वाजिनम्। अप्रतिऽइतम्। अहिऽहर्नम्। श्रवस्यम्। तस्त्रम्॥९॥

पदार्थ:-(पुरु) बहूनि। शेश्छन्दसीति शेर्लोप:। (वर्णांस) रूपाणि (अश्वना) शिल्पिनी (देशना) धरन्तौ (नि) (पेदवे) गमनाय। पदधातोरौणादिरु: प्रत्ययो वर्णव्यत्ययेनास्यैकारश्च। (ऊह्युः) वहस्यतम् (आशुम्) शीघ्रगमकम् (अश्वम्) विद्युदाख्यमग्निम् (सहस्रसाम्) सहस्राण्यसंख्यावानि कमीणि सतित संभजित तम् (वाजिनम्) वेगवन्तम् (अप्रतीतम्) अदृश्यम् (अहिहनम्) मेघस्य हन्तारम् (श्रवस्यम्) श्रवस्यत्रे पृथिव्यादौ भवम् (तरुत्रम्) समुद्रादितारकम्॥९॥

अन्वयः-हे अश्वना! पुरु वर्पांसि दधाना सन्तौ युवां पेदवे श्रवस्यमप्रतीतं वाजिनसिह्हनं सहस्रसामाशुं तरुत्रंमश्चं न्यूहथु:॥९॥

भावार्थ: - नहीदृशेन सद्योगमकेन विद्युदग्न्यादिना विना देशान्तर पुखेन शीघ्रं गन्तुमागन्तुं सद्यः समाचारं ग्रहीतुं च कश्चिदपि शक्नोति॥९॥

पदार्थ:-हे (अश्वना) शिल्पीजनो! (पुरु) बहुत (वर्णीस) रूपों को (दधाना) धारण किए हुए तुम दोनों (पेदवे) शीघ्र जाने के लिये (श्रवस्यम्) पृथिवे अद्वि पदार्थों में हुए (अप्रतीतम्) गुप्त (वाजिनम्) वेगवान् (अहिहनम्) मेघ के मारनेवाले (सहस्रसाम्) हजारों कर्मों को सेवन करने (आशुम्) शीघ्र पहुंचानेवाले (तरुत्रम्) और समुद्र आदि स्रे पार उत्तर्श्नेवाले (अश्वम्) बिजुली रूप अग्नि को (न्यूह्थु:) चलाओ॥९॥

भावार्थ:-ऐसे शीघ्र पहुंचानेवाले बिर्जुली आदि अग्नि के विना एक देश से दूसरे देश को सुख से जाने-आने तथा शीघ्र समाचार लेने को कोई समुश्री नहीं हो सकता है॥९॥

अथ विद्युदाहिजगित्रमातृ ब्रह्मैवोपास्यमित्युपदिश्यते॥

अब बिजुली आदि पदार्थरूप संसार के। बनानेवाला परमेश्वर ही उपासनीय है, यह विषय अगले मुन्न में कहा है।।

एतानि वां श्रवुख्या सुदानु ब्रह्माङ्गूषं सर्दनं रोदस्योः।

यद्वां पुजासों अश्विना हर्वन्ते यातिमुषा च विदुषे च वार्जम्॥ १०॥ १४॥

एतानि। क्राम्। श्रवस्या। सुदानू इति सुऽदानू। ब्रह्म। आङ्गूषम्। सर्दनम्। रोर्दस्योः। यत्। वाम्। पुजासेः। अश्विना। हर्वन्ते। धातम्। इषा। च। विदुषे। च। वार्जम्॥ १०॥

प्रदर्शि:-(प्रतानि) कर्माणि (वाम्) युवयोः (श्रवस्या) श्रवस्स्वन्नादिषु साधूनि (सुदानू) शोभनवनिशीलौ (ब्रह्म) सर्वज्ञं परमेश्वरम् (आङ्कृषम्) अङ्गूषाणां विद्यानां विज्ञापकिमदम्। अत्रागिभातोक्षेषन्ततस्तस्येदिमित्यण्। (सदनम्) अधिकरणम् (रोदस्योः) पृथिवीसूर्ययोः (यत्) (वाम्) स्रुविश्वोः (पत्रासः) विज्ञापयितॄणि मित्राणि (अश्विना) (हवन्ते) आददित। हुधातोर्बहुलं छन्दसीति

मण्डल-१। अनुवाक-१७। सूक्त-११७ Q Received

श्लोरभाव:। (**यातम्**) प्राप्नुतम् (**इषा**) इच्छया (च) प्रयत्नेन योगाभ्यासेन च (विदुषे) प्राप्तिवास (च) विद्यार्थिभ्य: (वाजम्) विज्ञानम्॥१०॥

अन्वयः – हे सुदानू अश्विना! वां युवयोरेतानि श्रवस्या कर्माणि प्रशंसनीयानि सन्त्यतो व्यां पद्मीसा यद्रोदस्योः सदनमाङ्गूषं ब्रह्म हवन्ते यच्च युवां यातं तस्य वाजिमषा च विदुषे सम्यक् प्रापयतम्॥१०॥

भावार्थ:-सर्वेर्मनुष्यै: सर्वाधिष्ठानं सर्वोपास्यं सर्वनिर्मातृ प्रह्म यैरुपायैत्रिज्ञायते तैर्विज्ञायान्येभ्योऽप्येवमेव विज्ञाप्याखिलानन्द आप्तव्य:॥१०॥

पदार्थ:-हे (सुदानू) अच्छे दान देनेवाले (अश्विनौ) सभा सेन्धिशी! (वाम्) तुम दोनों के (एतानि) ये (श्रवस्या) अन्न आदि पदार्थों में उत्तम प्रशंसा योग्य कमें हैं, इस करण (वाम्) तुम दोनों (पन्नास:) विशेष ज्ञान देनेवाले मित्र जन (यत्) जिस (रोदस्योः) पृथिवी और सूर्य के (सदनम्) आधाररूप (आङ्गूषम्) विद्याओं के ज्ञान देनेवाले (ब्रह्म) स्वित्र परमेश्वर को (हवन्ते) ध्यान मार्ग से ग्रहण करते (च) और जिसको तुम लोग (यातम्) प्राप्त होते हो उसके (वाजम्) विज्ञान को (इष) इच्छा और (च) अच्छे यत्न तथा योगाभ्यास से (विदुषे) विद्वान् के लिये भेलीभांति पहुंचाओ॥१०॥

भावार्थ:-सब मनुष्यों को चाहिये कि सबका आधार, सबके उपासना के योग्य, सबका रचनेहारा ब्रह्म जिन उपायों से जाना जाता है, उन्हें जोन और के लिये भी ऐसे ही जनाकर पूर्ण आनन्द को प्राप्त होवें॥१०॥

वनिविद्युद्धिद्योपदिश्यते॥

फिर बिजुली क्री विद्या का अपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

सूनोर्मानेनाश्चिना गृणाना वाज्ये विप्राय भुरणा रदेना।

अगस्त्ये ब्रह्मणा वानुधाना सं विश्वपलां नासत्यारिणीतम्॥ ११॥

सूनोः। मानैन। अश्वन्ताः गृष्णानाः वाजम्। विप्रायः। भुरणाः। रदेन्ताः। अगस्त्ये। ब्रह्मणाः। वावृधानाः। सम्। विश्पलाम्। नासत्याः। अरिणीतम्।। २१०

पदार्थ:-(सूनो:) स्वाप्त्यस्येव (मानेन) सत्कारेण (अश्विना) व्याप्नुवन्तौ (गृणाना) उपदिशन्तौ (वाजम्) सत्यं बोधम् (विष्नाय) मेधाविने (भुरणा) सुखं धरन्तौ (रदन्ता) सुष्ठु लिखन्तौ (अगस्त्ये) अगस्तिषु ज्ञातव्येषु व्यबहारेषु साधूनि कर्माणि। अत्रागधातोरौणदिकस्तिः प्रत्ययोऽसुडागमश्च। (ब्रह्मणा) वेदेन (व्रावृधाना) वर्द्धमानौ। तुजादित्वादभ्यासदीर्घः। (सम्) (विश्पलाम्) विशां पालिका विद्याम् (नास्त्या) (अरिणीतम्) गच्छतम्॥११॥

अन्वय:-हे रदन्ता! सूनोरिव मानेन विप्राय वाजं गृणाना भुरणा नासत्या वावृधाना ब्रह्मणाऽगस्त्ये विश्पेली नाश्चिना मित्रत्वेन प्रजया सह समरिणीतं सङ्गच्छेथाम्॥११॥

भावार्थ:-अत्र लुप्तोपमालङ्कार:। यथा मातापितरावपत्यान्यपत्यानि च मातापितरावधापकाः शिष्यान् शिष्या अध्यापकांश्च पतय: स्त्री: स्त्रिय: पतींश्च सुहृदो मित्राणि परस्परं प्रीणन्ति तथैव राजान: प्रजा: प्रजाश्च राज्ञ: सततं प्रीणन्तु॥११॥

पदार्थ:-हे (रदन्ता) अच्छे लिखनेवालो! (सूनो:) अपने लड़के के समान (मानेन) सिकार से (विप्राय) अच्छी सुध रखनेवाले बुद्धिमान् जन के लिये (वाजम्) सच्चे बोध की (गृण्याना) उपदेश और (भुरणा) सुख धारण करते हुए (नासत्या) सत्य से भरे-पूरे (वावृधाना) बुद्धि को प्राप्त और (ब्रह्मणा) वेद से (अगस्त्ये) जानने योग्य व्यवहारों में उत्तम काम के निमित्त (विष्रपत्नाम्) प्रजाननें के पालनेवाली विद्या को (अश्विना) प्राप्त होते हुए सभासेनाधीशो! तुम दोनों मित्रपने से प्रजा के साथ (समिरणीतम्) मिलो॥११॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है। जैसे माता-पिता संतर्णनां और संतान माता-पिताओं, पढ़ानेवाले और पढ़नेवाले और पढ़नेवाले पढ़ानेवालों, पित स्त्रियों और स्त्री पितयों तथा मित्र मित्रों को परस्पर प्रसन्न करते हैं, वैसे ही राजा प्रजाजनों और प्रजा राजपें। की निरन्तर प्रसन्न करें॥११॥

पुनस्तमेव विषयमाहा।

फिर उसी विषय की अगले मन्त्र में कहा है॥

कुह याना सुष्टुति काव्यस्य दिवो नेपाता वृषणा शयुत्रा। हिर्रण्यस्येव कुलशं निर्खातुमुद्रप्रथुद्देशो अश्विनाहेन्॥ १२॥

कुहै। यान्तां। सुऽस्तुतिम्। क्राव्यस्य। दिवः। नुपाता। वृष्णा। शृयुऽत्रा। हिर्रण्यस्यऽइव। कुलर्शम्। निऽखातम्। उत्। ऊपुथुः। दुशुमे। अस्ति। अहेन्। १२॥

पदार्थ:-(कुह) कुत्र (यान्ता) गच्छनी (सुष्टुतिम्) प्रशस्तां स्तुतिम् (काव्यस्य) कवेः कर्मणः (दिवः) विज्ञानयुक्तस्य (नपाता) अविद्यमानपतनौ (वृषणा) श्रेष्ठौ कामवर्षयितारौ (शयुत्रा) यौ शयून् शयानान् त्रायतस्तौ (हिरण्यस्येव) यथा सुवर्णस्य (कलशम्) घटम् (निखातम्) मध्यावकाशम् (उत्) (ऊपथुः) वपतः (दशमे) (अश्विना) (अहन्) दिने॥१२॥

अन्वयः १- हे योत्ता नपाता वृषणा शयुत्राऽश्विना! युवां दशमेऽहन् हिरण्यस्येव निखातं कलशं दिवः काव्यस्य सुष्टुतिं कुहोदृष्यः॥ १०११

भावार्थ: अत्रोपमालङ्कार:। यथा धनाढ्या: सुवर्णादीनां पात्रेषु दुग्धादिकं संस्थाप्य प्रपच्य भुज्जानी: स्तुपन्ते तथा शिल्पिनावेतद्विद्यान्यायमार्गेषु प्रजा: संवेश्य धर्मन्यायोपदेशै: परिपक्वा: संसाध्य ग्रुप्यशीसूवं भुजानौ प्रशंसितौ कुह स्याताम् ? धार्मिकेषु विद्वत्स्वत्युत्तरम्॥१२॥

मण्डल-१। अनुवाक-१७। सूक्त-११७



पदार्थ:-हे (यान्ता) गमन करने (नपाता) न गिरने (वृषणा) श्रेष्ठ कामनाओं की वर्षा करने और (शयुत्रा) सोते हुए प्राणियों की रक्षा करनेवाले (अश्विना) सभा सेनाधीशो! तुम दोनों (दशमें) दशेवें (अहन्) दिन (हिरण्यस्येव) सुवर्ण के (निखातम्) बीच में पोले (कशलम्) घड़ा के समान (दिवः) विज्ञानयुक्त (काव्यस्य) कविताई की (सुष्टुतिम्) अच्छी बड़ाई की (कुह्) कहाँ (उद्भूप्युः) उत्कर्ण से बोते हो॥१२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे धनाढ्यजन सुवर्ण आदि धातुओं के वासनों में दूध, घी, दही आदि पदार्थों को धर और उनको पका कर खाते हुए प्रशंसा एति हैं, वैस् दो शिल्पीजन इस विद्या और न्यायमार्गों में प्रजाजनों का प्रवेश कराकर धर्म और न्याय के उपदेशों से उनको पक्के कर राज्य और धन के सुख को भोगते हुए प्रशंसित कहाँ होवें? इसका यह उत्तर है कि धार्मिक विद्वान् जनों में होवें॥१२॥

पुनर्युवाऽवस्थायामेव विवाहकरप्राऽवश्यकेत्व्रमाह॥

फिर जवान अवस्था में ही विवाह करना अवश्य र यह विषय अगले मन्त्र में कहा है।।

युवं च्यवानमिश्रना जर्रन्तं पुनर्युवानं चक्रथः शचीिमः।

युवो रथं दुहिता सूर्यस्य सह श्रिया निसत्यावृणीत॥ १३॥

युवम्। च्यवानम्। अश्विना। जर्रन्तम्। प्रुर्वः। युवानम्भ्रं चक्र्युः। शचीभिः। युवोः। रथम्। दुद्दिता। सूर्यस्य। सह। श्रिया। नासत्या। अवृणीत्॥ १३॥

पदार्थ:-(युवम्) युवाम् (च्यवानम्) पच्छन्तम् (अश्विना) शरीरात्मबलयुक्तौ (जरन्तम्) स्तवानम् (पुनः) (युवानम्) सम्पादितयौवनम् (चक्रथुः) कुरुतम् (श्रचीभिः) प्रज्ञाभिः कर्मभिर्वा (युवोः) (रथम्) रमणीयं पतिम् (दुहिता) पूर्णभुवितः कन्या (सूर्यस्य) सवितुरुषा इव (सह) (श्रिया) लक्ष्म्या शोभया विद्यया सेवया वा (नासत्या) (अवृगीतः) वृणुयात्॥१३॥

अन्वय:-हे नास्तुम् श्विमा! युवं शचीभिः सह वर्त्तमानान् स्वसन्तानान् सम्यग् यूनश्चक्रथुः। पुनर्युवोर्युवयोर्युवतिः सूर्यस्योषा इव बुहिता श्रिया सह वर्त्तमानं च्यवानं जरन्तं युवानं रथं पितं चावृणीत। पुत्रोऽपि युवा सन् युवितं च॥१३।

भावार्थः अत्रे लुप्तोपमालङ्कारः। मातापित्रादीनामतीव योग्यमस्ति यदा स्वापत्यानि पूर्णसुशिक्षाविद्या- शरीरात्मबलरूपलावण्यशीलारोग्यधर्मेश्वरविज्ञानादिभिः शुभैर्गुणैः सह वर्त्तमानानि स्युस्तुद्वा स्वेच्छापरीक्षाभ्यां स्वयंवरविधानेनाभिरूपौ तुल्यगुणकर्मस्वभावौ पूर्णयुवावस्थौ बलिष्ठौ कुमारौ

विवाहं कृत्वर्त्तुगामिनौ भूत्वा धर्मेण वर्त्तित्वा प्रजा: सूत्पादयेतामित्युपदेष्टव्यानि नह्येतेन विना कदार्चित् कुलोत्कर्षो भवितुं योग्योऽस्तीति तस्मात् सज्जनैरेवमेव सदा विधेयम्॥१३॥

पदार्थ:-हे (नासत्या) सत्य वर्त्ताव वर्त्तनेवाले (अश्विना) शरीर और आत्मा के बल से युक्त सभासेनाधीशो! (युवम्) तुम दोनों (शचीभि:) अच्छी बुद्धियों वा कर्मों के साथ वर्त्तमान अपने सन्त्रानों को भली-भांति सेवा कर जवान (चक्रथु:) करो (पुन:) फिर (युवो:) तुम दोनों की युवती अर्थात् यौवन अवस्था को प्राप्त (सूर्यस्य) सूर्य की किई हुई प्रात:काल की वेला के समान (दुहिता) कन्या (श्रिया) धन, शोभा, विद्या वा सेवा के (सह) साथ वर्त्तमान (च्यवानम्) गमन और (वर्त्तम) प्रशंसा करनेवाले (युवानम्) जवानी से परिपूर्ण (रथम्) रमण करने योग्य मनोहर पति को (अवूर्णीत) वरे और पुत्र भी ऐसा जवान होता हुआ युवति स्त्री को वरे॥१३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है। माता-पिता आदि को अतीन योग्य है कि जब अपने सन्तान पूर्ण अच्छी सिखावट, विद्या, शरीर और आत्मा के बल, रूप, लावण्य, स्वभाव, आरोग्यपन, धर्म और ईश्वर को जानने आदि उत्तम गुणों के साथ वर्ताव रखने को सम्पर्थ हों, तब अपनी इच्छा और परीक्षा के साथ आप ही स्वयंवर विधि से दोनों सुन्दर सम्मिन् गुण, क्रमें, स्वभावयुक्त पूरे जवान, बली, लड़की-लड़के विवाह कर ऋतु समय में साथ का संयोग करनेवलि होकर, धर्म के साथ अपना वर्ताव वर्त्त कर प्रजा अर्थात् सन्तानों को अच्छे उत्पन्न कर ये उपदेश देने चाहियें। विना इसके कभी कुल की उन्नति होने के योग्य नहीं है, इससे सज्जन पुरुषों की ऐसा ही सदा करना चाहिये॥१३॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी किष्य को ओगले मन्त्र में कहा है।।

युवं तुर्गाय पूर्व्येभिरेवै पुनर्मस्यावभवतं युवाना।

युवं भुज्युमणीसो निः समुद्राद् विभिक्त्हथुर्ऋजेभिरश्वै:॥१४॥

युवम्। तुर्यायः। पूर्व्वेभि/1 एवै:। पुनःऽमुन्योः। अभवतम्। युवानाः। युवम्। भुज्यम्। अणीसः। निः। समुद्रात्। विऽभिः। ऊह्युः। ऋजेभिः। अर्थाः। १४॥

पदार्थ:-(युवम्) युवाम् (तुग्राय) बलाय (पूर्व्योभिः) पूर्वैः कृतैः (एवैः) विज्ञानादिभिः (पुनर्मन्यौ) पुनः पुनर्मन्येते विजानीतस्तौ (अभवतम्) भवेतम् (युवाना) प्राप्तयौवनौ (युवम्) युवाम् (भुज्युम्) शरीग्रात्मपासकं पदार्थसमूहम् (अर्णसः) प्रचुरजलात् (निः) नितराम् (समुद्रात्) जलद्रावाधारात् (विभिः) वियति मन्तृभिः पक्षिभिरिव (ऊह्थुः) वहतम् (ऋग्रेभिः) ऋजुगमकैः (अश्वैः) आशुगामिभिविद्यदादिना निर्मितैविमानादियानैः॥१४॥

अन्त्रयः-हे पुनर्मन्यौ! युवानां कृतविद्यौ स्त्रीपुंसौ युवं युवां तुग्राय पूर्व्येभिरेवैः सुखिनावभवतम्। युवं युवां विभिर्मित पुनर्तेऋजेभिरश्वेरर्णसः समुद्राद्धज्युं निरूहथुः॥१४॥

मण्डल-१। अनुवाक-१७। सूक्त-११७



भावार्थ:-स्त्रीपुरुषौ पूर्वेराप्तैः कृतानि कर्माण्यनुष्ठाय धर्मयुक्तेन ब्रह्मचर्य्येण पूर्णा विद्या अचाप्य क्रियाकौशलेन विमानादियानानि सम्पाद्य भूगोलस्याभितो विहृत्य नित्यमानन्देताम्॥१४॥ 🔏

पदार्थ:-हे (पुनर्मन्यो) वार-वार जाननेवाले (युवाना) युवावस्था को प्राप्त विद्या पह हुए स्त्री-पुरुषो! (युवम्) तुम दोनों (तुप्राय) बल के लिये (पूर्व्यिभः) अगले सज्जनों से किये हुए (एवैः) विज्ञान आदि उत्तम व्यवहारों से सुखी (अभवतम्) होओ, (युवम्) तुम दोनों (विभिः) आकाश में उड़नेवाले पिक्षयों के समान (ऋप्रेभिः) जिनसे हाल न लगे न उन जोड़े हुए सरल चाल से चलाने वाले और (अश्वैः) शीघ्र जानेवाले बिजुली आदि पदार्थों से बने हुए विमानादि याने से (अर्णेषः) अगाध जल से भरे हुए (समुद्रात्) समुद्र से पार (भुज्युम्) शरीर और आत्मा की पालना करनेवाले पदार्थों को (निरूह्थुः) निर्वाहो अर्थात् निरन्तर पहुंचाओ॥१४॥

भावार्थ:-स्त्री-पुरुष अगले (पूर्व) महात्मा, ऋषि, महर्षियों ने किये जो काम हैं, उनका आचरण कर धर्मयुक्त ब्रह्मचर्य्य से शीघ्र पूर्ण विद्याओं को पाकर किया की कुशलता से विमान आदि यानों को बनाकर भूगोल के सब ओर विहार कर नित्य अपन्ययुक्त हों॥१४॥

पुनस्तमेव विषयमाहा।

फिर उसी विषय के अगले मन्त्र में कहा है॥

अजोहवीदश्विना तौुक्यो वां प्रोळ्हे समुद्रमेळ्ळाथिर्जगुन्वान्।

निष्टमूह्युः सुयुजा रथेन मनोज्वसा वृष्णा स्वस्ति॥१५॥१५॥

अजौहवीत्। अश्विना। तौक्रयः। सम्। प्राप्तक्रिक्तः। समुद्रम्। अव्यिषिः। जगुन्वान्। निः। तम्। ऊहुथुः। सुऽयुजौ। रथैन। मर्नःऽजवसा। वृष्णुण्या स्विस्ति। १५॥

पदार्थ:-(अजोहवीत) पूनः पुनः स्पर्धेत (अश्विना) विद्यासुशीलव्यापिनौ (तौक्र्यः) तुग्रेण बलेन निर्वृत्तः सेनावृन्दः (वाम) युवयोः (प्रोढः) प्रकर्षेणोढः प्राप्तः (समुद्रम्) (अव्यिषः) अविद्यमाना व्यिथव्यथा यस्य सः (जान्तान्) भृशं गन्ता (नः) नितराम् (तम्) (ऊहथुः) प्रापयेतम् (सुयुजा) सुष्ठु युक्तेन (रथेन) (मृनोजवसा) प्रजावद्वेगेन गच्छता (वृषणा) सुबलौ (स्वस्ति) सुखेन॥१५॥

अन्वयः है ज्ञेषणाऽश्विना दम्पती! युवां यो वां तौग्रचः प्रोढोऽव्यथिर्न जगन्वान् सेनासमुदायः समुद्रमजोहवीत्तं सुयुजा मनोजवसा रथेने स्वस्ति निरुहथुः॥१५॥

भावार्थः यदा कृतब्रह्मचर्यः पुरुषः शत्रुविजयाय समुद्रपारं गन्तुमिच्छेत्तदा सभार्यः सबल एव वेगविद्धयिर्भगच्छेदागच्छेच्च॥१५॥

पदार्थ:-हे (वृषणा) उत्तम बलवाले (अश्विना) विद्या और उत्तम शीलों में व्याप्त स्त्री-पुरुषी! तुम दोनों जो (वाम्) तुम्हारा (तौग्रचः) बल से सिद्ध हुआ (प्रोढः) उत्तमता से प्राप्त (अव्यिषः) जिसको व्यथा वा कष्ट नहीं है (जगन्वान्) जो निरन्तर गमन करनेवाला सेना का समुदाय है, वह (समुद्रमा) समुद्र का (अजोहवीत्) वार-वार तिरस्कार करे अर्थात् उससे उत्तीर्ण हो उसकी गम्भीरता न निर्मा (तम्) इस उक्त सेना समुदाय को (सुयुजा) सुन्दरता से जुड़े (मनोजवसा) मन के समान वेग से जाते हुए (रथेन) रमणीय विमान आदि यानसमुदाय से (स्वस्ति) सुखपूर्वक (निरूह्थुः) निर्वाहो अर्थात् एक देश से दूसरे देश को पहुंचाओ॥१५॥

भावार्थ:-जब ब्रह्मचर्य किये पुरुष शत्रुओं के विजय के लिये समुद्र के पार जाना चाहें, तब स्त्री और सेना के साथ ही वेगवान् यानों से जावें-आवें॥१५॥

पुना राजधर्ममाह॥

फिर राजधर्म विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

अजोहवीदश्चिना वर्तिका वामास्नो यत्सीममुं अतं वृक्तस्य। वि जयुषां ययथु: सान्वद्रेर्जातं विष्वाची अहत् विषया। १६॥

अजौहवीत्। अश्विना। वर्तिका। वाम्। आस्नः। यत्। सीम्। अमुंञ्चतम्। वृक्षस्य। वि। जयुषां। ययुषुः। सानुं। अद्रेः। जातम्। विष्वार्चः। अहुतुम्। विषेणा। १६॥

पदार्थ:-(अजोहवीत्) भृशमाह्नयेत् (अधिना) सद्भा यातारौ (वर्त्तिका) संग्रामे प्रवर्त्तमाना (वाम्) युवाम् (आस्नः) आस्यात् (यत्) यदा (सिप्) खलु (अमुञ्चतम्) मोचयतम् (वृकस्य) वन्यस्य शुनः (वि) (जयुषा) जयप्रदेन (ययथुः) यातम् (मानु) शिखरम् (अद्रेः) शैलस्य (जातम्) प्रसिद्धमुत्पन्नबलम् (विष्वाचः) विविधगतिमतः शत्रुमण्डलस्य (अहतम्) हन्यातम् (विषेण) विपर्ययकरेण निजबलेन॥१६॥

अन्वयः-हे अश्विना! वर्तिका सेना यत् सीं वामजोहवीत् तदा तां वृकस्यास्न इव शत्रुमण्डलादमुञ्चतम्। युवां जयुषा निजरथेनाद्रेः सानु वि ययथुः बिष्वाचो जातं बातं विषेणाहतं च॥१६॥

भावार्थ:-राजपुरुषा यथा बूज्यान् दयालुः शूरवीरो व्याघ्रमुखादजां निर्मोचयित, तथा दस्युभयात् प्रजाः पृथग्रक्षेयुः। यदा शक्तवः) पर्वतेषु वर्त्तमाना हन्तुमशक्याः स्युस्तदा तदन्नपानादिकं विदूष्य वशं नयेयुः॥१६॥

पदार्थ्य: हे अश्विना) शीघ्र जानेहारे सभासेनाधीशो! (वर्त्तिका) संग्राम में वर्त्तमान सेना (यत्सीम्) पिस समय (वाम्) तुम दोनों को (अजोहवीत्) निरन्तर बुलावे तब उसको (वृकस्य) भेड़िया के (आद्भी:) मुख से जैसे वैसे शत्रुमण्डल से (अमुञ्जतम्) छुड़ावो अर्थात् उस को जीतो और अपनी सेना को बद्दाओ, तुम दोनों (जयुषा) जय देनेवाले अपने रथ से (अद्रे:) पर्वत के (सानु) शिखर को (विद्याच:) विविध प्रकार जाओ और (विष्वाच:) विविध गित वाले शत्रुमण्डल के (जातम्) उत्पन्न

मण्डल-१। अनुवाक-१७। सूक्त-११७ 9388

हुए बल को (विषेण) उसका विपर्य्यय करने वाले विषरूप अपने बल से (अहतम्) विनाशो नष्ट्र करो॥१६॥

भावार्थ:-राजपुरुष जैसे बलवान् दयालु शूरवीर बघेले के मुख से छेरी को छुड़ोता है, वैसे डाकुओं के भय से प्रजाजनों को अलग रक्खें। जब शत्रुजन पर्वतों में वर्त्तमान मूले नहीं जा सकते हों, तब उनके अन्न-पान आदि को विदूषित कर उनको वश में लावें॥१६॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

शृतं मेषान् वृक्ये मामहानं तमः प्रणीतमिशिवेन पित्रा। आक्षी ऋजाश्चे अश्विनावधत्तं ज्योतिरुधार्यं चक्रथुर्विच्याः

शृतम्। मेषान्। वृक्ये। मुमहानम्। तमः। प्रऽनीतम्। अशिवेनि पित्रा। आशि इति। ऋजऽअशि। अशिनौ। अधितम्। ज्योतिः। अन्याये। चुक्रथुः। विऽचक्षे॥ १७॥

पदार्थ:- (शतम्) (मेषान्) (वृक्ये) वृकस्त्रिये (मोपहानम्) दत्तवन्तम् (तमः) अन्धकाररूपं दुःखम् (प्रणीतम्) प्रकृष्टतया प्रापितम् (अशिवेन) अमङ्गलकारिणा न्यायाधीशेन (पित्रा) पालकेन (आ) (अक्षी) चक्षुषी (ऋज्राश्चे) सुशिक्षिततुरङ्गादिष्टुस्ते सैन्ये (अश्विनौ) सभासेनेशौ (अधत्तम्) दध्यातम् (ज्योतिः) प्रकाशम् (अन्धाय) दृष्टिनिरुद्धाये सुन्धिनि (क्रुक्युः) कुरुतम् (विचक्षे)॥१७॥

अन्वयः-हे अश्वनौ! युवां येनाशिवेन पित्र तमः प्रेणीतं तं वृक्ये शतं मेघान् मामहानमिव प्रजाजनान् पीडयन्तं मुञ्जतं पृथकक्कुर्यातम्। ऋजाश्वे अक्षी चक्षुपी आधत्तप् अन्धाय विचक्षे ज्योतिश्चक्रथुः॥१७॥

भावार्थ:-हे सभासेनेशाद्यो राजपुरुषा यूयं प्रजायामन्यायेन वृक्यः स्वार्थसाधनाय मेषेषु यथा प्रवर्त्तन्ते तथा प्रवर्त्तमानान् स्वपृत्यान् सम्यग्द्रण्डयित्वान्यैर्धार्मिकैर्भृत्यैः प्रजासु सूर्य्यवद्रक्षणादिकं सततं प्रकाशयत। यथा चक्षुष्मान् कूपोदन्धं निवाय्यं सुखयित तथाऽन्यायकारिभ्यो भृत्येभ्यः पीडिताः प्रजाः पृथक् रक्षेत॥१७॥

पदार्थ:-हे (अश्विनौ) सभा सेनाधीशो! तुम दोनों जिस (अशिवेन) अमंगलकारी (पित्रा) प्रजा पालनेहारे न्यायाधीश ने (तम:) दु:खरूप अन्धकार (प्रणीतम्) भली-भांति पहुंचाया उस (वृक्ये) भेड़िनी के लिये (शतम्) सैकड़ों (मेषान्) मेंढ़ों को (मामहानम्) देते हुए के समान प्रजाजनों को पीड़ा देते हुए ग्राज्याधिकारी को छुड़ाओ, अलग करो (ऋजाश्वे) अच्छे सीखे हुए घोड़े आदि पदार्थों से युक्त सेना में (अशी) आँखों का (आ, अधतम्) आधान करो अर्थात् दृष्टि देओ, वहाँ के बने-बिगड़े व्यवहार

को विचारो और (अन्धाय) अन्धे के समान अज्ञानी के लिये (विचक्षे) विज्ञानपूर्वक देखने के लिये (ज्योति:) विद्याप्रकाश को (चक्रथु:) प्रकाशित करो॥१७॥

भावार्थ: -हे सभासेना आदि के पुरुषो! तुम लोग प्रजाजनों में अन्याय से भेड़िनी अपने प्रयोजने के लिये भेड़ बकरों में जैसे प्रवृत्त होती है, वैसे वर्ताव रखनेवाले अपने भृत्यों को अच्छे दण्ड ट्रेंकर अन्य धर्मात्मा भृत्यों से प्रजाजनों में सूर्य्य के समान रक्षा आदि व्यवहारों को निरन्तर प्रकाशित करो। जैसे आँखवाला कुएँ से अन्धे को बचा कर सुख देता है, वैसे अन्याय करनेवाले भृत्यों से पीड़ा को प्राप्त हुए प्रजाजनों को अलग रक्खो॥१७॥

पुना राजविषयमाह॥

फिर राज-विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

शुनमुन्धाय भर्गमह्वयत्सा वृकीरश्चिना वृषणा नरेति।

जारः कुनीनइव चक्षदान ऋजार्थः शतमेकं च मेषान्॥ १८॥

शुनम्। अन्धार्य। भर्रम्। अह्वयत्। सा। वृकीः। अश्विन्यं। वृष्ण्णाः नर्रा। इति। जारः। क्नीनेःऽइव। चुक्षुद्गनः। ऋजऽअश्वः। शृतम्। एकम्। च। मेषान्॥ १८॥

पदार्थ:-(शुनम्) सुखम् (अन्धाय) चक्षुर्हानाय (भरम्) पोषणम् (अह्वयत्) उपदिशेत् (सा) (वृक्तीः) स्तेनस्त्री। अत्र सुपा० इति सोः स्थाने सुः। (अश्विज्ञा) सभासेनेशौ (वृषणा) सुखवर्षकौ (नरा) (इति) प्रकारार्थे (जारः) व्यभिचारी वृद्धो व (कनीनङ्का) यथा प्रकाशमानो जनः (चक्षदानः) चक्षो विद्यावचो दीयते येन सः (ऋजाश्वः) ऋजूमितिमदश्वः युरुषः (शतम्) (एकम्) (च) समुच्चये (मेषान्) अवीन्॥१८॥

अन्वय:-हे वृषणा नराऽश्विना! सो वृकीः शतमेकं च मेषानह्नयदितीव ऋजाश्वश्वक्षदानो जारः कनीनइव युवामन्धाय भरं शुनमधत्तम्॥१८॥

भावार्थ:-अत्रोपमाल्द्भिरः। राजपुरुषा अविद्यान्धान् जनानन्यायकारिणां सकाशात् सतीः स्त्रीर्जाराणां संबन्धाद् वृक्षणां सकाशादजा इव विमोच्य सततं पालयेयु:॥१८॥

पदार्थ:-हे (वृषणा) सुर्वे वर्षाने और (नरा) धर्म-अधर्म का विवेक करनेहारे (अश्विना) सभा सेनाधीशो! (सा) बह (वृकी:) चोर की स्त्री (शतम्) सौ (च) और (एकम्) एक (मेषान्) भेंड़ मेढ़ों को (अह्वयत्) हांक्र देकर जैसे बुलावे (इति) इस प्रकार वा (ऋजाश्व:) सीधी चाल चलनेहारे घोड़ोंवाला (चक्षदान:) जिससे कि विद्यावचन दिया जाता है, उस (जार:) बुड्ढे वा जार कर्म करनेहारे चालाक (कनीनइदी) प्रकाशमान मनुष्य के समान तुम (अन्धाय) अन्धे के लिये (भरम्) पोषण अर्थात् उसकी पालनी और (शुनम्) सुख धारण करो॥१८॥

मण्डल-१। अनुवाक-१७। सूक्त-११७

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। राजपुरुष अविद्या से अन्धे हो रहे जानें को अन्यायकारियों से, उत्तम सती स्त्रियों को लंपट, वेश्याबाजों से, जैसे भेड़ियों से भेड़-बक्सों की बचावें, वैसे निरन्तर बचा कर पालें॥१८॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

मही वांमूितरिश्वना मयोभूकृत स्त्रामं धिष्णया सं रिणीथः। अथा युवामिद्वियत् पुरिधिरागच्छतं सीं वृषणाववीभिः॥१९॥

मही। वाम्। ऊति:। अश्विना। मयःऽभू। उत। स्नामम्। धिष्णया सम्। पुर्णीयः। अर्थ। युवाम्। इत्। अह्वयत्। पुर्रम्ऽधिः। आ। अगुच्छतम्। सीम्। वृष्णौ। अर्वःऽभिः॥१९॥

पदार्थ:-(मही) महती (वाम्) युवयोः (ऊतिः) रक्षणीदियुक्ता नीतिः (अश्विना) प्रजापालनाधिकृतौ सभासेनेशौ (मयोभूः) मयः सुखं भावधिति यो आ (उत) (स्नामम्) दुःखप्रदमन्यायम् (धिष्ण्या) धीमन्तौ (सम्) (रिणीथः) हिंस्तम् (अथ्) अत्र निपातस्य चेति दीर्घः। (युवाम्) द्वौ (इत्) (अह्वयत्) आह्वयेत् (पुरन्धिः) पुष्कलप्रज्ञः (आ) (अगच्छतम्) (सीम्) निश्चये (वृषणौ) (अवोभिः) रक्षणादिभिः॥१९॥

अन्वय:-हे वृषणौ धिष्ण्याश्विना! वां या मह्युत मुझेर्भूरूतिर्नीतिरस्ति तया स्नामं युवां संरिणीथ:। अथ य: पुरन्धिर्युवा युवतिमह्वयत्तमिदेवावोभि: सह सीमार्गस्व्याम्॥ १९॥

भावार्थ:-राजपुरुषैर्न्यायादन्याय पृथ्यकूत्य धर्मप्रवृत्तान् शरणागतान् संरक्ष्य सर्वतः कृतकृत्यै-र्भावतव्यम्॥१९॥

पदार्थ:-हे (वृषणौ) पुंख वर्षानेवाले (धिष्ण्या) बुद्धिमान् (अश्विना) सभा और सेना में अधिकार पाये हुए जनो! (वाम्) तुम दोनों की जो (मही) बड़ी (उत्त) और (मयोभू:) सुख को उत्पन्न करानेवाली (ऊति:) रक्षा आदि सुकी नीति है, उससे (स्नामम्) दु:ख देनेवाले अन्याय को (युवाम्) तुम (सं, रिणीथ:) भली-भांति दूर करो (अथ) इसके पीछे जो (पुरिच:) अति बुद्धिमान् जवान यौवन से पूर्ण स्त्री को (अह्विन) बुद्मिव (इत्) उसी के समान (अवोभि:) रक्षा आदि के साथ (सीम्) ही (आ, अगच्छतम्) आस्त्रीस्था

भावार्थः राजपुरुषों को चाहिये कि न्याय से अन्याय को अलग कर धर्म में प्रवृत्त, शरण आये हुए जुनों की अच्छे प्रकार पाल के सब ओर से कृतकृत्य हों॥१९॥

अथ स्त्रीपुरुषविषयमाह॥

१२९४

ऋग्वेदभाष्यम्

अब स्त्री-पुरुष विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अर्धेनुं दस्रा स्तर्यं विषेक्तामपिन्वतं शयवे अश्विना गाम्। युवं शृचीभिर्विमुदार्यं जायां न्यूह्थुः पुरुमित्रस्य योषाम्॥२०॥१६॥

अर्धेनुम्। दुस्रा। स्तुर्यम्। विऽसंक्ताम्। अपिन्वतम्। श्यवे। अश्विनाः। गाम्। युवम्। श्राचीभिः। विऽमदार्यः। जायाम्। नि। कुहुथुः। पुरुऽमित्रस्यं। योषाम्॥२०॥

पदार्थ:-(अधेनुम्) अदोहियत्रीम् (दस्रा) (स्तर्य्यम्) सुखैराच्छादिकाम् (विषक्ताम्) विविधैः पदार्थेर्युक्ताम् (अपिन्वतम्) जलादिभिः सिञ्चतम् (शयवे) शयानाय (अश्विना) भूगर्भिवद्याविदौ स्त्रीपुरुषौ (गाम्) पृथिवीम् (युवम्) युवाम् (शचीभिः) कर्मभिः (विमदाय) विर्षिणस्युक्ताय (जायाम्) (नि) (ऊह्थुः) प्राप्नुतम् (पुरुमित्रस्य) बहुसुहृदः (योषाम्) युवितं कन्याम् ।

अन्वय:-हे दस्राऽश्विना! युवं युवां शचीभिर्विषक्तां स्तर्ग्यं स्तरीमधेनुं गोमपिन्वतं विमदाय शयवे पुरुमित्रस्य योषा जायां न्यूहथुर्नितरां प्राप्नुतम्॥२०॥

भावार्थ:-अत्र लुप्तोपमालङ्कार:। हे राजपुरुषा! यूग्नं यथा सर्वेभित्रस्य सुलक्षणां हृद्यां ब्रह्मचारिणीं विदुषीं सुशीलां सततं सुखप्रदां धार्मिकीं कुमारीं भायिवाराष्ट्रह्वा संरक्षथ, तथैव सामादिभी राजकर्मिभर्मिराज्यं प्राप्य धर्मेण सदा पालयत॥२०॥

पदार्थ:-हे (दस्ना) दु:ख दूर करनेहारे (अधिना) मूगर्भ विद्या को जानते हुए स्त्री-पुरुषो! (युवम्) तुम दोनों (शचीभि:) कर्मों के साथ (विषक्ताम्) विविध प्रकार के पदार्थों से युक्त (स्तर्ध्यम्) सुखों से ढांपनेवाली नाव वा (अधेनुम्) नहीं दुहानेह्नरी (गाम्) गौ को (अपिन्वतम्) जलों से सींचो (विमदाय) विशेष मदयुक्त अर्थात् पूर्ण पुवास्त्रभावाले (शयवे) सोते हुए पुरुष के लिये (पुरुपित्रस्य) बहुत मित्रवाले की (योषाम्) युवित कन्या की (जायाम्) पत्नीपन को (न्यूह्थु:) निरन्तर प्राप्त कराओ॥२०॥

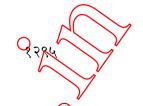
भावार्थ: -इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है। हे राजपुरुषो! तुम जैसे सबके मित्र की सुलक्षणा मन लगती, ब्रह्मचारिणी, पिष्टिना, अच्छे शीलस्वभाव की, निरन्तर सुख देनेवाली, धर्मशील, कुमारी को भार्य्या करने के लिये स्वीकार का उसकी रक्षा करते हो, वैसे ही साम, दाम, दण्ड, भेद अर्थात् शान्ति, किसी प्रकार का दूनाब, दंड दना और एक से दूसरे को तोड़-फोड़ उसको बेमन करना आदि राज कामों से भूमि के राज्य को पाकर धर्म से सदैव उसकी रक्षा करो॥२०॥

पुना राजधर्ममाह॥

फिर राजधर्म विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

भ्ये वृकेणाश्चिना वपन्तेषं दुहन्ता मर्नुषाय दस्रा।

मण्डल-१। अनुवाक-१७। सूक्त-११७



अभि दस्युं बर्कुरेणा धर्मन्तोरु ज्योतिश्चक्रथुरार्याय॥२१॥

यर्वम्। वृक्षेण। अश्विनाः। वर्षनाः। इषम्। दुहन्ताः। मर्नुषायः। दुस्राः। अभि। दस्युम्। बर्कुरेर्याः धर्मनाः। उरुः। ज्योतिः। चुक्रुथुः। आर्यायः।। २१।।

पदार्थ:-(यवम्) यवादिकमिव (वृकेण) छेदकेन शस्त्रादिना (अश्विना) सुख्वव्यापिनो विपन्ता) (इषम्) अन्नम् (दुहन्ता) प्रपूरयन्तौ (मनुषाय) मननशीलाय जनाय (दस्ना) दुःखिनाशकौ (अभि) (दस्युम्) (बकुरेण) भासमानेन सूर्व्यण तम इव। अत्रान्येषामपीति दीर्घन (धमन्ता) अग्नि संयुञ्जानौ (उरु) (ज्योति:) विद्याविनयप्रकाशम् (चक्रथुः) (आर्थ्याय) अर्थ्यस्येष्ठरस्य पुत्रविद्वर्षामानाय॥२१॥

यास्कमुनिरिमं मन्त्रमेवं व्याचष्टे-बकुरो भास्करो भयंकरो भासमाने द्रवतीति वा॥२५॥ यविमव वृकेणाश्चिनौ निवपन्तौ। वृको लाङ्गलं भवित विकर्तनात लाङ्गलं लङ्गतेः। लाङ्गलवद्वा। लाङ्गलं लगतेर्लङ्गतेर्लम्बतेर्वा। अत्रं दुहन्तौ मनुष्याय दर्शनीयाविभिधमनौ दस्युं बकुरेण ज्योतिषा वोदकेन वार्य्य ईश्वरपुत्रः। (निरु०६.२६)॥२१॥

अन्वयः-हे दस्राश्विना! युवां मनुषाय वृकेण यवमिव विषत्तेष दुहन्ताऽऽर्य्याय बकुरेण ज्योतिस्तम इव दस्युमभिधमन्तोरु राज्यं चक्रथु: कुरुतम्॥२१॥

भावार्थ:-अत्र लुप्तोपमालङ्कार:। राज्यहर्षे: प्रजाकण्टकान् लम्पटचोरानृतपरुषवादिनो दुष्टान् निरुध्य कृष्यादिकर्मयुक्तान् प्रजास्थान् वैश्यान् मरक्ष्य कृष्यादिकर्माण्युत्रीय विस्तीर्णं राज्यं सेवनीयम्॥२१॥

पदार्थ:-हे (दस्ना) दुःख दूर करनेहिर अश्विना) सुख में रमे हुए सभासेनाधीशो! तुम दोनों (मनुषाय) विचारवान् मनुष्य के लिष (वृक्कण) छिन्न-भिन्न करनेवाले हल आदि शस्त्र-अस्त्र से (यवम्) यव आदि अन्न के समान (वपना) बोते और (इषम्) अन्न को (दुहन्ता) पूर्ण करते हुए तथा (आर्च्याय) ईश्वर के पुत्र के तुल्य वर्तमान धार्मिक मनुष्य के लिये (बकुरेण) प्रकाशमान सूर्य्य ने किया (ज्योतिः) प्रकाश जैसे अन्धकार को विस (दस्युम्) डाकू, दुष्ट प्राणी को (अभि, धमन्ता) अग्नि से जलाते हुए (उरु) अत्यन्त बड़े राज्य को (चक्रयुः) करो॥ २१॥

भावार्थ: इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है। राजपुरुषों को चाहिये कि प्रजाजनों में जो कण्टक, लम्पट, चोर, झूटा और खारे बोलनेवाले दुष्ट मनुष्य हैं, उनको रोक, खेती आदि कामों से युक्त वैश्य प्रजाजनों की रक्षा और खेती आदि कामों की उन्नति कर अत्यन्त विस्तीर्ण राज्य का सेवन करें॥ २१॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

१२९६

ऋग्वेदभाष्यम्

आ्रथर्वणायाश्विना दधीचेऽश्रव्यं शिर्ः प्रत्यैरयतम्। सं वां मधु प्रवीचदृतायन् त्वाष्ट्रं यहस्राविपक्क्ष्यं वाम्॥२२॥

आ्थर्वणार्य। अश्विना। दुधीचे। अश्व्यम्। शिर्रः। प्रति। ऐर्यतम्। सः। वाम्। मधुं। प्र। वोचस्। स्तुऽभन्। त्वाष्ट्रम्। यत्। दुस्ती। अपिऽकृक्ष्यम्। वाम्॥२२॥

पदार्थ:-(आथर्वणाय) छिन्नसंशयस्य पुत्राय (अश्विना) सत्कर्मसु प्रेर्की (द्यीचे) दधीन् विद्याधर्मधरानञ्चित पूजयित तस्मै (अश्व्यम्) अश्वेषु भवम् (शिरः) उत्तमं स्वाङ्गम् (प्रति) (हेण्यतम्) प्रापयतम् (सः) (वाम्) युवाभ्याम् (मधु) मधुरम्। मन् धातोरयं प्रयोगः। (प्र) (वाचत्) उपिदशेत् (ऋतायन्) ऋतं सत्यमात्मन इच्छन् (त्वाष्ट्रम्) तूर्णं यः सकला विद्या अश्वितं तस्येदं विज्ञानम्। त्वष्टा तूर्णमश्वत इति नैरुक्ताः। (निरु०८.१३) (यत्) यस्मै (दस्नौ) दुःखनिवर्तकौ (अपिकक्ष्यम्) कक्षासु विद्याप्रदेशेषु भवा बोधाः कक्ष्यास्तान् प्रति वर्तते तत् (वाम्) युवम्॥२२॥

अन्वय:-हे दस्राविश्वना! वां युवां यदाथर्वणाय दधीचेऽश्व्यं शिरः प्रत्यैर्युत्म्। स ऋतायन् सन् वामिपकक्ष्यं त्वाष्ट्रं मधु प्र वोचत्॥२॥

भावार्थ:-सभासेनेशादयो राजपुरुषाः विद्वत्सु श्रद्धारिन् सत्कर्मसु प्रेरयन्तु ते च युष्पभ्यं सत्यमुपदिश्य प्रमादादधर्माच्च निवर्त्तयेयुः॥२२॥

पदार्थ:-हे (दस्नौ) दु:ख की निवृत्ति करने और (अश्विना) अच्छे कामों में प्रवृत्त करानेहारे सभासेनाधीशो! (वाम्) तुम दोनों (यत्) जिस (अश्विणाम्) जिसके संशय कट गए उसके पुत्र के लिये तथा (दधीचे) विद्या और धर्मों को धारण किये हुए मनुष्यों की प्रशंसा करनेवाले के लिये (अश्व्यम्) घोड़ों में हुए (शिर:) उत्तम अङ्ग को (प्रत्येपतम्) प्राप्त करो (स:) वह (ऋतायन्) अपने को सत्य व्यवहार चाहता हुआ (वाम्) तुम होनों के लिये (अपिकक्ष्यम्) विद्या की कक्षाओं में हुए बोधों के प्रति जो वर्त्तमान उस (त्वाष्ट्रम्) शीघ समस्त विद्याओं में व्याप्त होनेवाले विद्वान् के (मधु) मधुर विज्ञान का (प्र, वोचत्) उपदेश करे॥२२॥

भावार्थ:-सभायेनाधीश आदि राजजन विद्वानों में श्रद्धा करें और अच्छे कामों में प्रेरणा दें और वे तुम लोगों के लिये सत्य का अपदेश देकर प्रमाद और अधर्म से निवृत्त करें॥२२॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

मुद्दी कर्वी सुमितिमा चंके वां विश्वा धियों अश्विना प्रावतं मे।

अस्मे रुघि नासत्या बृहन्तंमपत्यसाचं श्रुत्यं रराथाम्॥२३॥

अष्टक-१। अध्याय-८। वर्ग-१३-१७

मण्डल-१। अनुवाक-१७। सूक्त-११७



सर्दा। कुवी इति। सुऽमृतिम्। आ। चुके। वाम्। विश्वाः। धिर्यः। अश्विना। प्र। अवतम्। मे। अमा इति। रियम्। नासत्या। बृहन्तम्। अपत्युऽसार्चम्। श्रुत्यम्। रराथाम्॥ २३॥

पदार्थ:-(सदा) (कवी) सर्वेषां क्रान्तप्रज्ञौ (सुमितम्) धर्म्यां धियम् (आ) (चके) भूणुयाम्। कै शब्देऽस्माल्लिट् व्यत्ययेनात्मनेपदम्। (वाम्) युवयोः (विश्वाः) अखिलाः (धिर्यः) धारणावतीर्बुद्धीः (अश्विना) विद्याप्रापकौ (प्र) (अवतम्) प्रवेशयतम् (मे) मह्मम् (अस्मे) अस्मध्येषु (रिविम्) धनम् (नासत्या) (बृहन्तम्) अतिप्रवृद्धम् (अपत्यसाचम्) पुत्रपौत्रादिसमेतम् (श्रुत्यम्) श्रोतुं योग्यम् (रराथाम्) दद्यातम्। अत्र राधातोर्लोटि बहुलं छन्दसीति शपः श्लुर्व्यत्ययेनात्मनेपदं च

अन्वयः-हे नासत्या कवी अश्विना! वां सुमितमहमाचके युवां में महां चिश्वा धियः सदा प्रावतमस्मे बृहन्तमपत्यसाचं श्रुत्यं रियं रराथाम्॥२३॥

भावार्थः-विद्यार्थिभी राजादिगृहस्थैश्चाप्तानां विदुषां सिकाशोदुत्तमाः प्रज्ञाः प्रापणीयास्ते च विद्वांसस्तेभ्यो विद्यादिधनं प्रदाय सततं सुशिक्षितान् धार्मिकान् विदुषः सुर्म्पादयन्तु॥२३॥

पदार्थ:-हे (नासत्या) सत्यव्यवहारयुक्त (कवी) सब पदार्थी में बुद्धि को चलाने और (अश्विना) विद्या की प्राप्ति करानेवाले सभासेनाधीशो! (वाम्) तुम लोगों की (सुमितिम्) धर्मयुक्त उत्तम बुद्धि को मैं (आ, चके) अच्छे प्रकार सुनूं। तुम दोनों (मे) किरे लिये (विश्वाः) समस्त (धियः) धारणावती बुद्धियों को (सदा) सब दिन (प्र, अवतम्) प्रवेश कराओं तथा (अस्मे) हम लोगों के लिये (बृहन्तम्) अति बढ़े हुए (अपत्यसाचम्) पुत्र-पौत्र आदि युक्त (श्रुत्यम्) सुनने योग्य (रियम्) धन को (रराथाम्) दिया करो॥ २३॥

भावार्थ:-विद्यार्थी और ग्रांजा आदि गृहस्थों को चाहिये कि शास्त्रवेत्ता विद्वानों के निकट से उत्तम बुद्धियों को लेवें और बे विद्वान् भी उनके लिये विद्या आदि धन को दे निरन्तर उन्हें अच्छी सिखावट सिखाकर के धर्मात्मा विद्वान् क्रों। उद्या

अथाध्यापककृत्यमाह।।

अब अध्यापक का कृत्य अगले मन्त्र में कहते हैं॥

हिर्गण्यहस्तमश्चिना रर्गणा पुत्रं नरा वध्निमत्या अदत्तम्।

त्रिध्य है, श्यावपश्चिना विकस्तुमुज्जीवस ऐरयतं सुदानू॥ २४॥

हिर्राण्यऽहस्तप्। अश्विना। रर्राणा। पुत्रम्। नृरा। वृध्विऽमृत्याः। अदुन्तम्। त्रिर्धा। हु। श्यावम्। अश्विना। विऽक्तिनम्। ज्त्। जीवसे। ऐर्यतम्। सुदान् इति सुऽदान्॥२४॥

पदार्थ:-(हिरण्यहस्तम्) हिरण्यानि सुवर्णादीनि हस्ते यस्य यद्वा विद्यातेजांसि हस्ताविव यस्य तम् (अश्विना) ऐश्वर्यवन्तौ (रराणा) दातारौ (पुत्रम्) त्रातारम् (नरा) नेतारौ (विद्यमत्याः) विधिकाया विद्यायाः (अदत्तम्) दद्यातम् (त्रिधा) त्रिभिः प्रकारैर्मनोवाक्छरीरशिक्षादिभिः सह (ह) किल (श्यावम्) प्राप्तिवर्षं (अश्विना) रक्षादिकर्मव्यापिनौ (विकस्तम्) विविधतया शासितारम् (उत्) (जीवसे) जीवितुप् (एरयतम्) प्रेरयतम् (सुदान्) सुष्ठु दानशीलाविव वर्त्तमानौ॥२४॥

अन्वयः-हे रराणा नरा अश्वना! युवां हिरण्यहस्तं विध्नमत्याः पुत्रं मह्ममदत्तम्। हे सुदानू अश्विना! युवां तं श्यावं विकस्तं जीवसे ह किल त्रिधोदैरयतम्॥२४॥

भावार्थ:-अध्यापकाः पुत्रानध्यापिकाः पुत्रींश्च ब्रह्मचर्येण संयोज्य केषां द्वितीयं विद्याजन्म सम्पाद्य जीवनोपायान् सुशिक्ष्य समये पितृभ्यः समर्पयेयुः। ते च गृहं प्राप्यापि तज्ञ्छिशां न विस्मरेयुः॥२४॥

पदार्थ:-हे (रराणा) उत्तम गुणों के देने (नरा) श्रेष्ठ पदार्थों की प्राप्त कराने और (अश्विना) रक्षा आदि कर्मों में व्याप्त होनेवाले अध्यापको! तुम दोनों (हिरण्यहातम्) जिसके हाथ में सुवर्ण आदि धन वा हाथ के समान विद्या और तेज आदि पदार्थ हैं, उस (विश्वमत्याः) वृद्धि देनेवाली विद्या की (पुत्रम्) रक्षा करनेवाले जन को मेरे लिये (अदत्तम्) देओ। हे (सुवर्त्न्) अच्छे व्यनशील सज्जनों के समान वर्तमान (अश्विना) ऐश्वर्य्ययुक्त पढ़ानेवालो! तुम दोनों उस (श्यावम्) विद्या पाये हुए (विकस्तम्) अनेकों प्रकार शिक्षा देनेहारे मनुष्य को (जीवसे) जीने के लिये (ह) ही (जिधा) तीन प्रकार अर्थात् मन, वाणी और शरीर की शिक्षा आदि के साथ (उद्, ऐरयतम्) प्रिणा देओ अर्थात् समझाओ॥ २४॥

भावार्थ:-पढ़ानेवाले सज्जन पुत्रों और पढ़ानेवाली स्त्रियां पुत्रियों को ब्रह्मचर्य्य नियम में लगा कर, इनके दूसरे विद्याजन्म को सिद्ध कर, जीवन के उपाय अच्छे प्रकार सिखाकर के, समय पर उनके माता-पिता को देवें और वे घर पर अक्रिर भी उन गुरुजनों की शिक्षाओं को न भूलें॥२४॥

पुनः खीपुरुषौ कदा विवाहं कुर्यातामित्युपदिश्यते॥

फिर स्त्री-मुख्य कब विवाह करें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है।।

एतानि वामश्चिना बीर्याणा प्र पूर्व्याण्यायवीऽवोचन्।

ब्रह्मं कृण्वन्तो वृष्णा सूर्वभ्यां सुवीरांसो विदश्यमा वंदेम॥२५॥१७॥

एतानि। वृत्पा अश्विना। वीर्याणि। प्रा पूर्व्याणि। आयर्वः। अवोचन्। ब्रह्मी कृण्वन्तेः। वृष्टणा। युवऽभ्याम्। सुऽवीर्रासः। विद्यम्। आ। वुद्रम्॥२५॥

पदार्थ:- एतानि) प्रशंसितानि (वाम्) युवयोः (अश्विना) प्रशंसितकर्मव्यापिनौ स्त्रीपुरुषौ (वीर्याणि) पराक्रमयुक्तानि कर्माणि (प्र) (पूर्व्याणि) पूर्वैविद्वद्भिः कृतानि (आयवः) मनुष्याः। आयव इति मनुष्यममसु पठितम्। (निघं०२.३) (अवोचन्) वदन्तु (ब्रह्म) अन्न धनं वा। ब्रह्मेत्यन्ननामसु पठितम्। (निघं०२.७) तथा ब्रह्मोति धननामसु पठितम्। (निघं०२.१०) (कृण्वन्तः) निष्पादयन्तः

अष्टक-१। अध्याय-८। वर्ग-१३-१७

मण्डल-१। अनुवाक-१७। सूक्त-११७



(वृषणा) विद्यावर्षकौ (युवभ्याम्) प्राप्तयुवावस्थाभ्यां युवाभ्याम् (सुवीरासः) सुशिक्षाविद्यास्वाता चीराः पुत्राः भृत्याश्च येषां ते (विदथम्) विज्ञानकारकमध्ययनाध्यापनं यज्ञम् (आ) (वदेम) उपदिश्लेमा रूपा)

अन्वय:-हे वृषणाऽश्विना! वां यान्येतानि पूर्व्याणि वीर्याणि कर्माणि तान्यायवः प्रवोचन् युष्टभ्यां सहा कृण्वन्तो सुवीरासो वयं विदथमावदेम॥२५॥

भावार्थ:-मनुष्या यैर्विद्वद्भिर्लोकोपकारकाणि विद्याधर्मोपदेशप्रचाराणि कृषाणि कृतानि क्रियन्ते वा तेषां प्रशंसामन्नादिना धनेन वा तत् सेवां च सततं कुर्वन्तु। निह केचिद्विद्वत्सङ्गेच विना विद्यादिरत्नानि प्राप्तुं शक्नुवन्ति। न किल केचित् कपटादि दोषरिहतानामाप्तानां विदुषां सङ्ग्रीष्ट्र्ययमे अन्तरा सुशीलतां विद्यावृद्धिं च कर्त्तुं समर्थयन्ति॥२५॥

अत्र राजप्रजाऽध्ययनाध्यापनादिकर्मवर्णनात् पूर्वसूक्तार्थेन सहैतत्सूक्तार्थस्य सङ्गतिरस्तीति बोध्यम्॥

इति प्रथमस्याष्टमे सप्तदशो १७ वर्ग: सप्तदशोत्त्रस्थतत्वमं १९७ सूक्तं च समाप्तम्॥

पदार्थ: - हे (वृषणा) विद्या के वर्षाने और (अश्विमा) प्रशस्ति कर्मों में व्याप्त स्त्रीपुरुषो! (वाम्) तुम दोनों के जो (एतानि) ये प्रशंसित (पूर्व्याणि) अगले विद्वानों के नियत किये हुए (वीर्याणि) पराक्रमयुक्त काम हैं, उनको (आयवः) मनुष्य (प्रावोचन्) भली-भांति कहें, (युवभ्याम्) तरुण अवस्थावाले तुम दोनों के लिये (ब्रह्म) अत्र और धन को (कृण्वन्तः) सिद्ध करते हुए (सुवीरासः) जिनके अच्छी सिखावट और उत्तम विद्यायुक्त वीर भूत्र, पौत्र और सेवक हैं, वे हम लोग (विद्यम्) विज्ञान करानेवाले पढ़ने-पढ़ाने रूप युक्त को (आ) वदेम) उपदेश करें॥२५॥

भावार्थ:- जिन विद्वान् मृतुष्यों ने लोक के उपकारक विद्या और धर्मीपदेश के प्रचार करनेवाले काम किये वा जिनसे किये जाति हैं, उनकी प्रशंसा और अन्न वा धन आदि से सेवा करें, क्योंकि कोई विद्वानों के संग के विना विद्वानों के संग और उनसे विद्या पढ़ने के विना अच्छी शिक्षा शीलता और विद्या की वृद्धि करने को समय नहीं हों। हैं॥ २५॥

इस सूक्द्र में राजा प्रजा और पढ़ने-पढ़ाने आदि कामों के वर्णन से पूर्व सूक्तार्थ के साथ इस सूक्त के अर्थ की सङ्गति है, यह समझना चाहिये॥

यह प्रथम अष्टके के आठवें अध्याय में सत्रहवां १७ वर्ग और एकसौ सत्रहवां ११७ सूक्त पूरा हुआ॥

अथास्यैकादशर्चस्याष्टादशोत्तरशततमस्य सूक्तस्य कक्षीवानृषिः। अश्विनौ देवते। १,११ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः। २,५,७ त्रिष्टुप्। ३,६,९,१० निचृत् त्रिष्टुप्। ४,८ विराट्ट

त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अस्यादौ विद्वत्स्त्रीपुरुषौ किं कुर्य्यातामित्युपदिश्यते।

अब ग्यारह ११ ऋचावाले एक सौ अठारहवें सूक्त का आरम्भ है। इसके प्रथम मूर्त्र में विद्वात् स्त्री-पुरुष क्या करें, यह विषय कहा है॥

आ वां रथों अश्विना श्येनपत्वा सुमृळीकः स्वर्वां यात्वर्वाङ्। यो मर्त्यस्य मनसो जवीयान् त्रिबन्धुरो वृषणा वार्तरहाः॥ १॥

आ। वाम्। रथः। अश्विना। रथेनऽपत्वा। सुऽमृळीकः। स्वऽवनि सीतु। अर्थिस्य। मर्नसः। जवीयान्। त्रिऽबुन्थुरः। वृष्णाः। वार्तऽरंहाः॥ १॥

पदार्थ:-(आ) (वाम्) युवयोः (रथः) (अश्विना) शिस्पिविदौ सुन्पती (श्येनपत्वा) श्येन इव पति। अत्र पतधातोरन्येभ्योऽपि दृश्यन्त इति विनिप्। (सुमृझेकः) सुष्ठु सुखियता (स्ववान्) प्रशस्ताः स्वे भृत्याः पदार्था वा विद्यन्ते यस्मिन् (यातु) गच्छतु (अर्वाङ्) अधिः (यः) (मर्त्यस्य) (मनसः) (जवीयान्) (त्रिबन्धुरः) त्रयो बन्धुरा अधोमध्योध्वं बन्धा यस्मिन् (वृषणा) बलिष्ठौ (वातरंहाः) वात इव रंहो गमनं यस्य॥१॥

अन्वयः-हे वृषणाऽश्विना! वां यस्त्रिबन्धुर् श्रेषेनपत्वो बातरंहा मर्त्यस्य मनसो जवीयान् सुमृडीकः स्ववान् रथोऽस्ति सोऽर्वाङ्डायातु॥१॥

भावार्थ:-स्त्रीपुरुषौ यदेदृशं प्योनं निर्मीयोपयुञ्जीयातां तदा किं तत्सुखं यत्साद्धं न शक्नुयाताम्॥१॥

पदार्थ: - हे (वृषणा) बल्वान् (अश्विना) शिल्प कामों के जाननेवाले स्त्री-पुरुषो! (वाम्) तुम दोनों को (यः) जो (त्रिबशुर) बिबन्धुर अश्वीत् जिसमें नीचे, बीच में और ऊपर बंधन हों (श्येनपत्वा) वाज पखेरू के समान जनेवाला (क्रातरंहाः) जिसका पवन समान वेग (मर्त्यस्य) मनुष्य के (मनसः) मन से भी (जवीयान्) अत्यन्त भावने और (सुमृडीकः) उत्तम सुख देनेवाला (स्ववान्) जिसमें प्रशंसित भृत्य वा अपने पद्मर्थ विद्यमान हैं, ऐसा (रथः) रथ है, वह (अर्वाङ्) नीचे (आ, यातु) आवे॥१॥

भावार्थ:-स्त्री-पुरुष जब ऐसे यान को उत्पन्न कर उपयोग में लावें तब ऐसा कौन सुख है, जिसको वे सिद्ध महीं कर सकें॥१॥

पुना राज्यसहायेन स्त्रीपुरुषविषयमाह॥

फिर राज्य के सहाय से स्त्री-पुरुष के विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

च्चिबुसुरेण त्रिवृता रथेन त्रिचुक्रेण सुवृता यातमुर्वाक्।

अष्टक-१। अध्याय-८। वर्ग-१८-१९

मण्डल-१। अनुवाक-१७। सूक्त-११८ 9308

पिन्वतं गा जिन्वतमर्वतो नो वर्धयतमश्चिना वीरमुस्मे॥२॥

त्रिऽबुन्धुरेणे। त्रिऽवृत्तां। रथेन। त्रिऽचुक्रेणं। सुऽवृतां। आ। यातम्। अर्वाक्। पिन्वंतम्। पाः। जिन्वतम्। अर्वतः। नः। वर्धयंतम्। अश्विना। वीरम्। अस्मे इति॥२॥

पदार्थ:-(त्रिबसुरेण) त्रिविधबन्धनयुक्तेन (त्रिवृता) त्र्यावरणेन (रथेन) (त्रिचक्रेण) त्रीणि कलानां चक्राणि यस्मिन् (सुवृता) शोभनैर्मनुष्यैः शृङ्गारैर्वा सह वर्त्तमानेन (आ) प्रातम्) प्राप्नुतम् (अर्वाक्) भूमेरधोभागम् (पिन्वतम्) सेवेथाम् (गाः) भूगोलस्था भूमीः (वित्वतम्) सुखयतम् (अर्वतः) प्राप्तराज्यान् जनानश्चान् वा (नः) अस्माकम् (वर्धयतम्) (अश्विना) (वरिम्) शूरपुरुषम् (अस्मे) अस्मान्॥२॥

अन्वयः-हे अश्विना! युवां त्रिबन्धुरेण त्रिचक्रेण त्रिवृता सुवृता रश्वेतावाँगायातम्। नो गाः पिन्वतमर्वतो जिन्वतमस्मेऽस्मान्नस्माकं वीरं च वर्धयतम्॥२॥

भावार्थ:-राजपुरुषाः सुसंभारा आप्तसहाया भूत्वा सर्वान् स्त्रीपुरुषान् समृद्धियुक्तान् कृत्वा प्रशंसिताः स्यु:॥२॥

पदार्थ:-हे (अश्विना) सभासेनाधीशो! तुम (निं (जिंबम्बर्गण) जो तीन प्रकार के बन्धनों से युक्त (जिंबक्रेण) जिसमें कलों के तीन चक्कर लगे (जिंवता) और तीन ओढ़ने के वस्त्रों से युक्त जो (सुवृता) अच्छे-अच्छे मनुष्य शृङ्गारों के साथ वर्तमान (रथेन) रथ है उससे (अर्वाक्) भूमि के नीचे (आ, यातम्) आओ, (नः) हम लोगों की (गिः) पृथिन में जो भूमि हैं, उनका (पिन्वतम्) सेवन करो, (अर्वतः) राज्य पाये हुए मनुष्य वा बीड़ों को (जिन्वतम्) जीआओ सुख देओ, (अस्मे) हम लोगों को और हम लोगों के (वीरम्) शूरवीर पुरुष को (वर्द्धयतम्) बढ़ाओ वृद्धि देओ॥२॥

भावार्थ:-राजपुरुष अस्त्री सामग्री और उत्तम शास्त्रवेत्ता विद्वानों का सहाय ले और तब स्त्री-पुरुषों को समृद्धि और सिद्धियुक्त करके प्रशसित हों॥२॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

र्फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

प्रवद्यामना सुवृत् यथेन दस्राविमं शृणुतं श्लोक्मद्रेः।

किमङ्ग लां प्रत्यवर्तिं गमिष्टाहुर्विप्रासो अश्विना पुराजाः॥३॥

प्रवत्ऽयोमना सुऽवृतां। रथेन। दस्रौं। इमम्। शृणुतम्। श्लोकंम्। अद्रैः। किम्। अङ्गः। वाम्। प्रति। अविनिम्। गर्मिष्ठा। आहुः। विप्रांसः। अश्विना। पुराऽजाः॥३॥

पदार्थ:-(प्रवद्यामना) प्रकृष्टं याति गच्छति यस्तेन (सुवृता) शोभनैः साधनैः सह वर्तमनिने (रथेन) विमानादियानेन (दस्त्रौ) दातारौ (इमम्) (शृणुतम्) (श्लोकम्) वाचम्। श्लोक इति वाङ्नामसु पिठतम्। (निघं०१.११) (अद्रे:) पर्वतस्य (किम्) (अङ्ग) (वाम्) युवाम् (प्रति) (अवर्तिम्) अलस्यम् (गिमष्ठा) अतिशयेन गन्तारौ (आहुः) उपदिशन्ति (विप्रासः) मेधाविनो विद्वांसः (अश्विना) पूराजाः) पूर्वं जाता वृद्धाः॥३॥

अन्वयः – हे प्रवद्यामना सुवृता रथेनाद्रेरुपरि गच्छन्तौ दस्रावश्विना! वां युवामिमं स्त्रीकं शृणुतम्। अङ्ग हे सभासेनेशौ! पुराजा विप्रासो गमिष्ठा वां प्रति किमवर्त्तिमाहुः किमिप नेत्यर्थः॥३॥

भावार्थ:-हे राजादयः स्त्रीपुरुषा! यूयं यद्यदाप्तैरुपदिश्यते तत्त्वदेव स्वीकुरुत। नहि सत्पुरुषोपदेशमन्तरा जगित जनानामुन्नतिर्जायते, यत्राप्तोपदेशा न प्रवत्तेन्ते तिन्नान्धकारावृताः सन्तः पशुवद्वर्तित्वा दुःखं सञ्चिन्वन्ति॥३॥

पदार्थ:-हे (प्रवद्यामना) भली-भांति चलने वाले (स्वृत्ता) अच्छे-अच्छे साधनों से युक्त (रथेन) विमान आदि रथ से (अद्रे:) पर्वत के ऊपर जाने और (दस्ते) दान आदि उत्तम कामों के करनेवाले (अश्विना) सभासेनाधीशो वा हे स्त्री-पुरुषो! (वाम) तुम केनों (इमम्) इस (श्लोकम्) वाणी को (शृणुतम्) सुनो कि (अङ्ग) हे उक्त सज्जनो! (पुराजा:) अणिले वृद्ध (विप्रास:) उत्तम बुद्धिवाले विद्वान् जन (गिमष्ठा) अति चलते हुए तुम दोनों के (प्रति) प्रति (किम्) किस (अवर्त्तिम्) न वर्तने न कहने योग्य निन्दित व्यवहार का (आहु:) उपदेश करते हैं अर्थात् कुछ भी नहीं॥३॥

भावार्थ:-हे राजा आदि स्त्री-पुरुषों! तुम जो जो विद्वानों ने उपदेश किया उसी-उसी को स्वीकार करो, क्योंकि सत्पुरुषों के उपदेश के वित्रा/संसार में मनुष्यों की उन्नति नहीं होती। जहाँ उत्तम विद्वानों के उपदेश नहीं प्रवृत्त होते हैं वहाँ सब अज्ञानरूपी अंधेरे से ढपे ही होकर पशुओं के समान वर्ताव कर दु:ख को इकट्ठा करते हैं॥३॥

पुनस्तौ कि कुर्यातामित्युपदिश्यते॥

फिर वे स्त्री पुरुष क्या करें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

आ वां श्येनासी अश्विना वहन्तु रथे युक्तासं आशर्वः पतुङ्गाः। ये अप्तुग्रे दिव्यासो न गृथ्वां अभि प्रयो नासत्या वहन्ति॥४॥

आ। वाम्। इधेनासं:। अश्विना। वहन्तु। रथे। युक्तासं:। आशर्व:। पतङ्गाः। ये। अप्ऽतुरं:। दिव्यासं:। न। गृध्रां:। अभिग्रप्रयः। तासुत्या। वहन्ति॥४॥

पदार्थ:-(आ) (वाम्) युवयोः (श्येनासः) श्येन इव गन्तारः (अश्विना) (वहन्तु) प्रापयन्तु (रथे) (युक्तासः) संयोजिताः (आशवः) शीघ्रगामिनोऽश्वा इवाग्न्यादयः। आशुरित्यश्वनामसु पठितम्। (भिघं० ११४) (पतङ्गाः) सूर्य्य इव देदीप्यमानाः (ये) (अप्तुरः) अप्स्वन्तरिक्षे त्वरन्ति ते (दिव्यासः)

अष्टक-१। अध्याय-८। वर्ग-१८-१९

मण्डल-१। अनुवाक-१७। सूक्त-११८



दिवि क्रीडायां साधवः (न) इव (गृधाः) पक्षिणः (अभि) (प्रयः) प्रियमाणं स्थानम् (नासत्याः) (वहन्ति) प्रापयन्ति॥४॥

अन्वयः-हे नासत्याश्विना! येऽप्तुरो दिव्यासो गृध्रा नेव प्रयोऽभि वहन्ति ते श्येनासः पतङ्गो आशवो रथे युक्तासः सन्तो वामावहन्ति॥४॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। हे स्त्रीपुरुषा! यथाकाशे स्वपक्षाभ्यामुङ्कीम्रामा राध्रादय: प्रक्षिण: सुखेन गच्छन्त्यागच्छन्ति, तथैव यूयं सुसाधितैर्विमानादिभिर्यानैरन्तरिक्षे गच्छन्तराच्छता। हा।

पदार्थ:-हे (नासत्या) सत्य के साथ वर्तमान (अश्विना) सब किह्याओं में) व्याप्त स्त्री पुरुषो! (ये) जो (अप्तुर:) अन्तरिक्ष में शीघ्रता करने (दिव्यास:) और अच्छे खेलनेवाल (गृधा:) गृध्र पखेरुओं के (न) समान (प्रय:) प्रीति किये अर्थात् चाहे हुए स्थान को (अभि, वहन्ति) सब ओर से पहुंचाते हैं, वे (श्येनास:) वाज पखेरू के समान चलने (पतङ्गा:) सूर्य के समान निर्न्तर प्रकाशमान (आशव:) और शीघ्रतायुक्त घोड़ों के समान अग्नि आदि पदार्थ (रथे) विमाचादि एथे में (युक्तास:) युक्त किये हुए (वाम्) तुम दोनों को (आ, वहन्ति) पहुंचाते हैं॥४॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे स्वी-पुरुषो ! जैसे आकाश में अपने पङ्खों से उड़ते हुए गृध्र आदि पखेरू सुख से आते-जाते हैं, वैसे ही तुप अच्छे मेंसद्ध किये विमान आदि यानों से अन्तरिक्ष में आओ-जाओ॥४॥

पुनस्तमेच विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

आ वां रथं युवृतिस्तिष्टुद्र्यं जुष्टेची नेरा दुहिता सूर्यस्य।

परि वामश्चा वर्षुषः पत्ङ्गा वयो वहन्त्वरुषा अभीके॥५॥१८॥

आ। वाम्। रथम्। युव्तिः। तिष्ठत्। अत्र। जुष्ट्वी। न्राः। दुद्दिता। सूर्यस्य। परि। वाम्। अश्राः। वर्ष्षः। प्रतङ्गः। वर्यः। वहुन्तु। अर्षाः। अभीवे।। ५॥

पदार्थ:-(आ) (वाम) युवयोः (रथम्) (युवितः) नवयौवना (तिष्ठत्) (अत्र) (जुष्ट्वी) प्रीता सेवमाना वा (न्ररा) (दुहिता) (सूर्यस्य) कान्तिः (पिर) (वाम्) युवाम् (अश्वाः) (वपुषः) सुरूपस्य। वपुरिति रूपनामसु पठितम्। (निघं०३.७) (पतङ्गाः) (वयः) पक्षिण इव (वहन्तु) (अरुषाः) रक्तादिगुणविशिष्टा अग्न्यादयः (अभीके) संग्रामे। अभीक इति संग्रामनामसु पठितम्। (निघं०२.१७)॥५॥

१३०४

ऋग्वेदभाष्यम्

अन्वय:-हे नरा नेतारौ सभासेनाधीशौ! वपुषो जुष्ट्वी युवतिर्दुहिता सूर्य्यस्योषाः पृथिवीमिव वां रथमातिष्ठत्। अत्राभीके पतङ्गा अरुषा वयोऽश्वा वां परिवहन्तु॥५॥

भावार्थ:-अत्र लुप्तोपमालङ्कारौ। यथा सूर्य्यस्य किरणाः सर्वतो विहरन्ति यथा पित्रिता साध्वी पतिं सुखं नयति यथा पक्षिण उपर्यधो गच्छन्ति तथा युद्धे श्रेष्ठानि यानान्युत्तम् वीस्ञाभीष्टं साध्नुवन्ति॥५॥

पदार्थ:-हे (नरा) सबके नायक सभासेनाधीशो! (वपुष:) सुन्दर रूप की (जुष्ट्वी) प्रीति को पाए हुए वा सुन्दर रूप की सेवा करती सुन्दरी (युवित:) नवयौवना (दुहिता) कन्या (पूर्यस्य) सूर्य्य की किरण जो प्रात:समय की वेला जैसे पृथिवी पर ठहरे वैसे (वाम्) तुम द्वेनों के (रथम्) रथ पर (आ, तिष्ठत्) आ बैठे (अत्र) इस (अभीके) संग्राम में (पतङ्गाः) गमन करते हुए (अस्थाः) लाल रङ्गवाले (वयः) पखेरुओं के समान (अश्वाः) शीघ्रगामी अग्नि आदि पदार्थ (बाम्) तुम दोनों को (पिर, वहन्तु) सब ओर से पहुंचावें॥५॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य्य कि किरणें प्रबंख ओर से आती-जाती हैं वा जैसे पतिव्रता उत्तम स्त्री पित को सुख पहुंचाती है वा लैसे पखेख के पर-नीचे जाते हैं, वैसे युद्ध में उत्तम यान और उत्तम वीर जन चाहे हुए सुख को सिद्ध करते हैं। ।।

पुनस्तमेव विषयमाहा।

फिर उसी विषय की अगले मन्त्र में कहा है॥

उद्वन्दनमैरतं दुंसनाभिरुद्रेभं देखा वृष्णा श्रेजीभ:।

निष्टीययं परियथः समुद्रात् प्रुन्श्र्व्यवीम् यक्रथुर्युवनिम्।।६॥

उत्। वन्दंनम्। <u>ऐरत</u>म्। दंसनाभिः उत्। र्भम्। दुस्रा। वृष्णा। शचीभिः। निः। तौक्रयम्। पार्यथः। सुमुद्रात्। पुनुरितिं। च्यवानम्। चुक्रुथुः। युवानम्॥६॥

पदार्थ:-(उत्) (वन्द्रम्प) स्तुत्यं यातम् (ऐरतम्) गच्छतम् (दंसनाभिः) भाषणैः (उत्) (रेभम्) स्तोतारम् (दस्रा) (वृषण्तं) (अचीभिः) कर्मभिः प्रज्ञाभिर्वा (निः) (तौग्रचम्) बलवतो हिंसकस्य राज्ञः पुत्रं राजन्यम् (पारयथः) (समुद्रात्) सागरात् (पुनः) (च्यवानम्) गन्तारम् (चक्रथुः) कुरुतः (युवानम्) बलवन्तम्॥६॥ 🔨

अन्वय् १-हे देशा वृषणा! युवां शचीभिर्दंसनाभिर्यथा तौग्रयं च्यवानं युवानं समुद्रान्नि:पारयथ:। पुनरवारं प्राप्तमुच्चक्रश्रुस्तथैवे निन्दनं रेभं चोदैरतम्॥६॥

भावार्थः चथा पोतगमयितारो जनान् समुद्रपारं नीत्वा सुखयन्ति तथा राजसभा शिल्पिनं उपट्रेशकांश्च दुःखात् पारं प्रापय्य सततमानन्दयेत्॥६॥

अष्टक-१। अध्याय-८। वर्ग-१८-१९

मण्डल-१। अनुवाक-१७। सूक्त-११८ Q3pt 7

पदार्थ: -हे (दस्ना) दु:खों के दूर करने और (वृषणा) सुख वर्षानेवाले सभासेनाधीशो तुम दोनों (शचीभि:) कर्म और बुद्धियों वा (दंसनाभि:) वचनों के साथ जैसे (तौग्रचम्) बलवान् प्रारनेवाला ग्रेजा का पुत्र (च्यवानम्) जो गमनकर्ता बली (युवानम्) जवान है उसको (समुद्रात्) सागर से (नि:, पारयथ:) निरन्तर पार पहुंचाते (पुन:) फिर इस ओर आए हुए को (उत्, चक्रथू:) उधर पहुंचाते हो, वैसे ही (वन्दनम्) प्रशंसा करने योग्य यान और (रेभम्) प्रशंसा करनेवाले मनुष्य को (उदैरतम्) इधर-उधर पहुंचाओ॥६॥

भावार्थ:-जैसे नाव के चलानेवाले मल्लाह आदि मनुष्यों को स्पूर्व के भीर पहुंचा कर सुखी करते हैं, वैसे राजसभा शिल्पीजनों और उपदेश करनेवालों को दुःख् से पार पहुंचा कर निरन्तर आनन्द देवें॥६॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मूह्य में कहा है

युवमत्र्येऽवंनीताय तुप्तमूर्जमोुमानमश्चिनावध्त्तम्।

युवं कण्वायापिरिप्ताय चक्षुः प्रत्यधत्तं सृष्ट्वितं जुजुषाणा॥७॥

युवम्। अत्रये। अर्वऽनीताय। तप्तम्। ऊर्जम्। ओमोर्मम् अश्विनौ। अधन्तम्। युवम्। कण्वाय। अपिऽरिप्ताय। चक्षुः। प्रति। अधन्तम्। सुऽस्तुतिम्। जुजुषाणा॥ ७॥

पदार्थ:-(युवम्) युवां स्त्रीपुरुषे (अत्रये) अविद्यमानित्रविधदुःखाय (अवनीताय) अविद्यानामपगमनाय [अविद्याऽज्ञानापगमनाय] (तप्तम्) तपोजनितम् (ऊर्जम्) पराक्रमम् (ओमानम्) रक्षणादिसत्कर्मपालकम् (अश्विनौ) (अथनेष) दध्यातम् (युवम्) (कण्वाय) मेधाविने (अपिरिप्ताय) सकलविद्योपचयनाय। लिपधालार्निष्ठा कपिलोकादित्वाल्लत्वविकल्पः। (चक्षुः) दर्शकं विज्ञानम् (प्रति) (अधन्तम्) (सुष्टुतिम्) शोभूनां प्रशेंसाम् (जुजुषाणा) सेवितौ प्रीतौ वा॥७॥

अन्वयः – हे जुजुषाणा श्विमो ! युवं युवामवनीतायापिरिप्तायात्रये कण्वाय तप्तमोमानमूर्जमधत्तम्। युवं युवां तस्माच्चक्षुः सुष्टुतिं च प्रत्यधत्तम् । धा

भावार्थः सभासेनध्यक्षादिभी राजपुरुषैर्धार्मिकाणां वेदादिविद्याप्रचाराय प्रयत्नमानानां विदुषां रक्षां विधाय तेभ्यो वित्तयं प्राप्य प्रजाः पालनीयाः॥७॥

पदार्थः है (जुजुषाणा) सेवा प्रीति को प्राप्त (अश्विनौ) समस्त गुणों में व्याप्त स्त्री-पुरुषो! (युवम्) तुस दोनों (अवनीताय) अविद्या अज्ञान के दूर होने (अपिरिप्ताय) और समस्त विद्याओं के बढ़ने के लिये (अवये) जिसको तीन प्रकार का दुःख नहीं है, उस (कण्वाय) बुद्धिमान् के लिये (तप्तम्)

तपस्या से उत्पन्न हुए (ओमानम्) रक्षा आदि अच्छे कामों की पालना करनेवाले (ऊर्जम्) पराक्रम की (अधत्तम्) धारण करो और (युवम्) तुम दोनों उस से (चक्षुः) सकल व्यवहारों के दिखलानेहारे उत्तम् ज्ञान और (सुष्टुतिम्) सुन्दर प्रशंसा को (प्रति, अधत्तम्) प्रतीति के साथ धारण करो॥७॥

भावार्थ:-सभासेनाधीश आदि राजपुरुषों को चाहिये कि धर्मात्मा जो कि वेद आदि बिद्या के प्रचार के लिये अच्छा प्रयत्न करते हैं, उन विद्वानों की रक्षा का विधान कर उनसे विनय को पाकर प्रजाजनों की पालना करें॥७॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

युवं धेनुं श्यवे नाधितायापिन्वतमिश्वना पूर्व्याये। अमुं अतुं वर्तिका महिसो निः प्रति जङ्घां विश्पलाया अध्यत्तम्। राम्

युवम्। धेनुम्। श्यवे। नाधिताये। अपिन्वतम्। अश्विना। पूर्व्याये। अपुत्रतम्। वर्तिकाम्। अहंसः। निः। प्रति। जङ्ग्राम्। विश्पलायाः। अधुत्तम्॥८॥

पदार्थ:-(युवम्) (धेनुम्) सुशिक्षितां वाचम् (श्रायेवे) सिखेच शयानाय (नाधिताय) ऐश्वर्ययुक्ताय (अिपन्वतम्) (अिश्वना) सुशिक्षितौ स्त्रीपुरुषौ (पृञ्जीय) पूर्वैविद्वद्भिः कृताय निष्पादिताय विदुषे (अमुञ्जतम्) मुञ्जेताम् (वर्त्तिकाम्) विनयादिसहितां चितिम् (अहसः) अधर्मानुष्ठानात् (निः) निर्गते (प्रति) (जङ्घाम्) सर्वसुखजनिकाम्। अच् तस्य जङ्घ सः (उप्णा०५.३१) इति जन धातोरच् प्रत्ययो जङ्घ आदेशश्च। (विश्पलायाः) प्रजायाः (अधनाम्) दृष्यातम्। ८॥

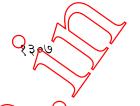
अन्वयः – हे अश्वना सकलविद्याव्यापिनी स्त्रीपुरेषों! युवं युवां नाधिताय पूर्व्याय शयवे धेनुमपिन्वतं यमंहसो निरमुञ्जतं तस्माद्विश्पलाया पालनाय जङ्कां वर्तिकां प्रत्यधत्तम्॥८॥

भावार्थ:-राजपुरुषाः सिर्विनिश्वर्ययुक्तान् परस्परं धनाढ्यकुलोद्गतान् प्रजास्थान् सत्यन्यायेन सन्तोष्य ब्रह्मचर्येण विद्याग्रहणात्र प्रवर्त्तयध्वम्। यतः कस्यापि पुत्रः पुत्री च विद्यासुशिक्षे अन्तरा नावशिष्येत्॥८॥

पदार्थ:-हे (अश्विन) अच्छी सीख पाये हुए समस्त विद्याओं में रमते हुए स्त्री-पुरुषो! (युवम्) तुम दोनों (नाधिताय) ऐश्वर्ययुक्त (पूर्व्याय) अगले विद्वानों ने किये हुए (शयवे) जो कि सुख से सोता है, उस विद्वान् के लिये (धेनुम्) अच्छी सीख दी हुई वाणी को (अपिन्वतम्) सेवन करो, जिसको (अंहसः) अधर्म के आचरणे से (मिरमुञ्जतम्) निरन्तर छुड़ाओ उससे (विश्पलायाः) प्रजाजनों की पालना के लिये (जङ्घाम्) सब सुखों की उत्पन्न करनेवाली (वर्तिकाम्) विनय, नम्रता आदि गुणों के सहित उत्तम नीति को (अस्यधन्तम्) प्रतीति से धारण करो॥८॥

अष्टक-१। अध्याय-८। वर्ग-१८-१९

मण्डल-१। अनुवाक-१७। सूक्त-११८



भावार्थ:-राजपुरुष सब ऐश्वर्ययुक्त परस्पर धनीजनों के कुल में हुए प्रजाजनों को सत्य-न्याय से सन्तोष दे उनको ब्रह्मचर्य के नियम से विद्या ग्रहण करने के लिये प्रवृत करावें, जिससे किसी का लड़का और लड़की विद्या और उत्तम शिक्षा के विना न रह जाये॥८॥

अथ विद्युद्धिद्यां दम्पती गृह्णीयातामित्याह।।

अब बिजुली की विद्या को स्त्रीपुरुष ग्रहण करें, इस विषय को अगले मुन्य में केहा है।।

युवं श्वेतं पेदव इन्द्रजूतमहिहन्मश्विनादत्तमश्चम्।

जोहूत्रमयों अभिभूतिमुत्रं सहस्रसां वृष्णं वीड्वंङ्गम्॥ ९॥

युवम्। श्वेतम्। पेदवे। इन्द्रंऽजूतम्। अहिऽहर्नम्। अश्विना। अदत्तम्। अश्वेम्। जहूर्त्रम्। अर्थः। अभिऽभूतिम्। उत्रम्। सहस्रऽसाम्। वृष्णम्। वीळुऽअङ्गम्॥९॥

पदार्थ:-(युवम्) (श्वेतम्) (पेदवे) गमनागमनाय (इन्ह्रजूतम्) स्भाध्यक्षेण प्रेरितम् (अहिहनम्) मेघहन्तारं सूर्य्यमिव (अश्विना) पत्नीसर्वलोकाधिपती (अद्यन्) दद्यातम् (अश्वम्) व्यापनशीलम् (जोहूत्रम्) अतिशयेन स्पर्धितम् (अर्थः) सर्वस्वामी सर्वप्रभाध्यक्षो राजा (अभिभूतिम्) शत्रूणां तिरस्कर्तारम् (उग्रम्) दुष्टैः शत्रुभिरसहम् (सहस्रमाम्) सहस्राणि कार्य्याणि सनित संभजित यस्तम् (वृषणम्) शत्रुसेनाया उपरि शस्त्रास्त्रवर्षानिमित्तम् (वोड्वङ्गम्) वीडूनि बलयुक्तानि दृढान्यङ्गानि यस्य तम्॥९॥

अन्वय:-हे अश्विना! युवं युवां एक्वे येको ये इन्द्रजूतं जोहूत्रं वृषणं वीड्वङ्गमुग्रमभिभूतिं सहस्रसां श्वेतमश्वमहिहनमिव युवाभ्यां ददाति तस्मै स्तर्ते सुखमदत्तम्॥९॥

भावार्थ:-यथा सूर्य्यो मेच्चं वर्षिस्त्या सर्वस्यै प्रजायै सुखं ददाति तथा शिल्पविद्याविदः स्त्रीपुरुषा अखिलप्रजायै सुखं प्रदद्यु:। स्त्रेषां मध्ये येऽतिर्रिथनो वीरस्त्रीपुरुषास्तान् सदा सत्कुर्य्यु:॥९॥

पदार्थ:-हे (अश्वना) यज्ञादि कर्म करानेवाली स्त्री और समस्त लोकों के अधिपित पुरुष! (युवम्) तुम दोनों (पेदवे) जिने अने के लिये जो (अर्थ:) सबका स्वामी सब सभाओं का प्रधान राजा (इन्द्रजूतम्) सभाध्यक्ष राजा वे ग्रेरणा किये (जोहूत्रम्) अत्यन्त ईर्ष्या करते वा शत्रुओं को घिसते हुए (वृषणम्) शत्रुओं की सेना पर शस्त्र और अस्त्रों की वर्षा करानेवाले (वीड्वङ्गम्) बली, पोढ़े अंगों से युक्त (उग्रम) दुष्ट शत्रुजनों से नहीं सहे जाते (अभिभूतिम्) और शत्रुओं का तिरस्कार करने (सहस्रसाम्) वा हजारों कामों को सेवनेवाले (श्वेतम्) सुपेद (अश्वम्) सभों में व्याप्त बिजुली रूप आग को (अहिहनम्) मेघ के छिन्न-भिन्न करनेवाले सूर्य्य के समान तुम दोनों के लिये देता है, उसके लिये निरन्तर सुख्र (अहनम्) देओ॥९॥

१३०८

ऋग्वेदभाष्यम्

भावार्थ:-जैसे सूर्य्य मेघ को वर्षा के सब प्रजा के लिये सुख देता है, वैसे शिल्पविद्या के जाननेवाले स्त्री-पुरुष समस्त प्रजा के लिये सुख देवें और अपने बीच में जो अतिरथी वीर स्त्री-पुरुष हैं, उनका सदा सत्कार करें॥९॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

ता वां नरा स्ववंसे सुजाता हवामहे अश्विना नार्धमानाः। आ न उप वसुमता रथेन गिरो जुषाणा सुवितार्यं यातम्॥१०॥

ता। वाम्। नुरा। सु। अवसे। सुऽजाता। हर्वामहे। अश्विना। नार्धमानाः। आ। नुः। उप। वसुंऽमता। रथेन। गिरं:। जुषाणा। सुवितार्थ। यातुम्॥ १०॥

पदार्थ:-(ता) तौ (वाम्) युवाम् (नरा) नैतारौ स्त्रीपुरुषौ (स्) (अवसे) रक्षणाद्याय (सुजाता) शोभनेषु सिद्धाग्रहणाख्यकर्मसु प्रादुर्भूतौ (हवामहे) आह्वयामूहे (अश्विना) प्रजाङ्गपालकौ (नाधमाना:) प्राप्तपुष्कलैश्वर्याः (आ) (नः) अस्मान् (उप) (वसुमता) प्रशस्तानि सुवर्णादीनि विद्यन्ते यस्मिँस्तेन (रथेन) रमणीयेन विमानादियानेन (गिरः) शुभा वाणीः (सुवाणी) सैव्यमानौ (सुविताय) ऐश्वर्याय। अत्र सुधातोरौणादिक इतच् किच्च। (यातम्) प्राप्नुतम्॥१०)

अन्वय:-हे सुजाता गिरो जुषाणाऽश्विना नरा निर्धमाना वर्ग्न ययोर्वामवसे सुहवामहे ता युवां वसुमता रथेन नोऽस्मान् सुवितायोपायातम्॥१०॥

भावार्थ:-प्रजास्थै: स्त्रीपुरुषैर्ये राजपुरुषा: प्रोभ्रेरन् ते प्रजाजनान् सततं प्रीणयन्तु, यत: परस्पराणां रक्षणेनैश्वर्यवृन्दो नित्यं वर्द्धेत॥१०॥

पदार्थ:-हे (सुजाता) श्रेष्ट विद्याग्रहण करने आदि उत्तम कामों में प्रसिद्ध हुए (गिर:) शुभ वाणियों का (जुषाणा) सेवन और (अश्विना) प्रजा के अङ्गों की पालना करने वाले (नरा) न्याय में प्रवृत्त करते हुए स्त्री-पुरुषो! (नाधामनाः) जिनको कि बहुत ऐश्वर्य मिला, वे हम जिन (वाम्) तुम लोगों को (अवसे) रक्षा आदि के लिये (सु, ह्वामहे) सुन्दरता से बुलावें (ता) वे तुम (वसुमता) जिसमें प्रशंसित सुवर्ण आदि धन विद्यमान है, उम्र (रथेन) मनोहर विमान आदि यान से (नः) हम लोगों को (सुविताय) ऐश्वर्य्य के लिये (उप, आ, यातम्) आ मिलो॥१०॥

भावार्थ:-प्रभाजनों के स्त्री-पुरुषों से जो राजपुरुष प्रीति को पावें, प्रसन्न हों, वे प्रजाजनों को प्रसन्न करें, जिससे एक-दूसरे की रक्षा से ऐश्वर्यसमूह नित्य बढ़े॥१०॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

था श्येनस्य जर्वसा नूर्तनेनास्मे यति नासत्या सुजोर्षाः।

अष्टक-१। अध्याय-८। वर्ग-१८-१९

मण्डल-१। अनुवाक-१७। सूक्त-११८ Q3PS

हवे हि वामश्विना स्तर्हेव्यः शश्चनुमार्या उषस्रो व्युष्टौ॥११॥१९॥

आ। श्येनस्य। जर्वसा। नूर्तनेन। अस्मे इति। यातम्। नासत्या। सऽजोषाः। हर्वे। हि। नाम्। अश्विना। गुत्तऽहेव्यः। शृश्चत्ऽतुमार्याः। उषसंः। विऽउष्टौ॥११॥

पदार्थ:-(आ) (श्येनस्य) (जवसा) वेगेनेव (नूतनेन) नवीनरथेन (अस्में) अस्मान् यातम्) उपागतम् (नासत्या) (सजोषा:) समानप्रेमा (हवे) स्तौमि (हि) किल (वाम्) युवाम् (अश्विना) (रातहव्य:) प्रदत्तहविः (शश्वत्तमायाः) अतिशयेनानादिरूपायाः (उषसः) प्रभातवेलायाः (व्युष्टौ) विशेषेण कामयमाने समये॥११॥

अन्वयः – हे नासत्याऽश्विना! सजोषा रातहव्योऽहं शश्वत्तमाया उषसो रेशुर्खे यो व हिचेती युवां हि किल श्येनस्य जबसेव नृतनेन रथेनास्मैऽस्मानायातम्॥११॥

भावार्थ:-स्त्रीपुरुषा रात्रेश्चतुर्थे याम उत्थायावश्यकं कृत्वा जगदीश्चरमुपास्य योगाभ्यासं कृत्वा राजप्रजाकार्य्याण्यनुष्ठातुं प्रवर्तेरन्। राजादिभिः प्रशंसनीयाः प्रजीजनाः सत्कर्तव्याः प्रजापुरुषैश्च स्तोतुमर्हा राजजनाश्च स्तोतव्याः। निह केनचिदधर्मसेवी स्तोतुमर्ही धर्मसेवी मिन्दतुं वा योग्योऽस्ति तस्मात्सर्वे धर्मव्यवस्थामाचरेयुः॥११॥

अत्र स्त्रीपुरुषराजप्रजाधर्मवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेक सह सङ्गतिरस्तीति बोध्यम्॥

इत्यष्टादशोत्तरशततमं ११८ सूर्क्त एकोन्जिंशो १९ वर्गश्च समाप्त:॥

पदार्थ:-हे (नासत्या) सत्ययुक्त (अश्विमा) समस्त गुणों में रमे हुए स्त्री-पुरुषो वा सभासेनाधीशो! (सजोषा:) जिसका एक प्रिय (राजह्रव्य:) वा जिसने भलीभांति होम की (सामग्री) दी वह मैं (शश्वतमाया:) अतीव अनादि रूप (अस्मा) प्रात:काल की वेला के (व्युष्टा) विशेष करके चाहे हुए समय में जिन (वाम्) तुमको (हवे) स्तृति से बुलाऊं, वे तुम (हि) निश्चय के साथ (श्येनस्य) वाज पखेरू के (जवसा) वेग के समान (नूतनेम) नये रथ से (अस्मे) हम लोगों को (आ, यातम्) आ मिलो॥११॥

भावार्थ: -स्त्री-पुरुष रात्रि के द्योंथे प्रहर में उठ अपना आवश्यक अर्थात् शरीर शुद्धि आदि काम कर, फिर जगदीश्वर की उपासिन और योगाभ्यास को करके राजा और प्रजा के कामों का आचरण करने को प्रवृत्त हों। राजा आदि संजनों को चाहिए कि प्रशंसा के योग्य प्रजाजनों का सत्कार करें और प्रजाजनों को चाहिए कि स्तुति करें। क्योंकि किसी को अधर्म सेवनेवाले दुष्ट जन की स्तुति और धर्म का सेवन करनेवाले धर्मात्मा जन की निन्दा करने योग्य नहीं है, इससे सब जन धर्म की व्यवस्था का आचरण करें॥११॥

दूस सूक्त में स्त्री-पुरुष और राजा-प्रजा के धर्म का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछ्टों सूक्त के अर्थ के साथ संगति समझनी चाहिये॥

यह एकसौ अद्वारहवां ११८ सूक्त और उन्नीसवां १९ वर्ग समाप्त हुआ॥

अथास्य दशर्चस्यैकोनविंशतिशततमस्य सूक्तस्य दैर्घतमसः कक्षीवानृषिः। अश्विनौ देवते। १,४,६ निचृज्जगती। ३,७,१० जगती। ८ विराङ्जगतीछन्दः। निषादः स्वरः। २,५,९,

भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥ पुनः स्त्रीपुरुषौ कथं वर्त्तेयातामित्युपदिश्यते।

अब एकसौ उन्नीसवें सूक्त का आरम्भ है। उसके प्रथम मन्त्र में फिर स्त्री-पुरुष <mark>क्रैसि अपव</mark>ा

वर्ताव वर्तें, यह उपदेश किया है॥

आ वां रथं पुरुमायं मेनोजुवं जीराश्चं युज्ञियं जीवसे हुवे। सहस्रकेतुं वनिनं शृतद्वेसुं श्रृष्टीवानं विरवोधामुभि प्रयं:॥१॥

आ। वाम्। रथम्। पुरुऽमायम्। मनःऽजुर्वम्। जीरऽअश्वम्। यज्ञियम्। श्रीवसी हुके सहस्रंऽकेतुम्। वृनिनेम्। शृतत्ऽर्वसुम्। श्रुष्टीऽवानेम्। वृतिवःऽधाम्। अभि। प्रयः॥ १॥

पदार्थ:-(आ) (वाम्) युवयोः स्त्रीपुरुषयोः (रथम्) रमणीयं बिमानादियानम् (पुरुमायम्) पूर्व्या मायया प्रज्ञया सम्पादितम् (मनोजुवम्) मनोवद्वेगवन्तम् (जीसश्चम्) जीसन् जीवान् प्राणधारकानश्नुते येन तम् (यित्रयम्) यज्ञयोग्यं देशं गन्तुमर्हम् (जीवसे) जीवनिष् (हेवे) स्तुवे (सहस्रकेतुम्) असंख्यातध्वजम् (विनिनम्) वनं बहूदकं विद्यते यस्मिँस्तम्। वनिमायुद्दकनामसु पठितम्। (निघं०१.१२) (शतद्वसुम्) शतान्यसंख्यातानि वसूनि यस्मिस्तम्। अत्र पृष्येदरित्वात् पूर्वपदस्य तुगागमः। (श्रृष्टीवानम्) श्रृष्टीः क्षिप्रगतीर्वनित भाजयित यस्तम्। श्रृष्टीति क्षिप्रनिमेषु पठितम्। वनधातोण्यन्तादच्। (विरवोधाम्) विरवः परिचरणं सुखसेवनं दधाति येन तम् (अभि) (प्रयः) प्रीणाति यः सः। औणादिकोऽन् प्रत्ययः॥१॥

अन्वय:-हे अश्वना! प्रयोऽहं जीवसे बां युवकोः पुरुमायं जीराश्वं यज्ञियं सहस्रकेतुं शतद्वसुं विननं श्रुष्टीवान् मनोजुवं विरवोधां रथमभ्याहुवे॥१॥

भावार्थ:-पूर्वस्मान् मन्त्रदक्षिनेत्यनुपर्तते। प्रयतमानैर्विद्वद्भिः शिल्पिभर्यदीष्येत तर्हि ईदृशो रथो निर्मातुं शक्येत॥१॥

पदार्थ:-हे समस्त राष्पों में व्याप्त स्त्री-पुरुषो! (प्रय:) प्रीति करनेवाला मैं (जीवसे) जीवन के लिये (वाम्) तुम दोनों का (पुरुपायम्) बहुत बुद्धि से बनाया हुआ (जीराश्चम्) जिस से प्राणधारी जीवों को प्राप्त होता वा उनको इकट्टा करता (यज्ञियम्) जो यज्ञ के देश को जाने योग्य (सहस्रकेतुम्) जिसमें सहस्रों झंडी लगी हों (शतद्वसुम्) सैकड़ों प्रकार के धन (विनिनम्) और बहुत जल विद्यमान हों (श्रृष्टीवानम्) जो शिश्र्यालियों को चलता हुआ (मनोजुवम्) मन के समान वेगवाला (विरिवोधाम्)

५०. पदनामसु। (निघं०४.३) क्षिप्रनामसु नोपलभ्यते। सं०

अष्टक-१। अध्याय-८। वर्ग-२०-२१

मण्डल-१। अनुवाक-१७। सूक्त-११९



जिससे मनुष्य सुख सेवन को धारण करता (रथम्) उस मनोहर विमान आदि यान की (अभाहुन) सब प्रकार प्रशंसा करता हूं॥१॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में पिछले सूक्त के अन्तिम मन्त्र से (अश्विना) इस पद की अनुवृत्ति आती है। अच्छा यत्न करते हुए विद्वान् शिल्पी जनों ने जो चाहा हो तो जैसा कि सब गुणों से युक्त विमान आदि रथ इस मन्त्र में वर्णन किया, वैसा बन सके॥१॥

पुनर्मनुष्याः किं कुर्य्युरित्युपदिश्यते॥

फिर मनुष्य क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में केहा है।

ऊर्ध्वा धोतिः प्रत्यस्य प्रयामन्यधायि शस्मन्समयन्त आ दिशः। स्वदामि घुमं प्रति यन्त्यूतय् आ वामूर्जानी रथमश्चिन् कहत्॥२॥

ऊर्ध्वा। धोतिः। प्रति। अस्य। प्रऽयोमिन। अधीय। शस्मेन्। समा अयुर्ने। आ। दिशः। स्वदीम। घुर्मम्। प्रति। युन्ति। ऊतर्यः। आ। वाुम्। ऊर्जानी। स्थम्। अश्विना। अस्तुन्।
पदार्थ:-(उर्ध्वा) (धीति:) धारणा (प्रति) (अस्य) (प्रमापिन) प्रयाणे (अधायि) धृता (शस्मन्) स्तोतुमर्हे (सम्) (अयन्ते) गच्छन्ते (आ) (दिशः) ये दिश्चन्यतिसृजन्ति ते जनाः (स्वदामि) (घर्मम्) प्रदीप्तं सुगन्धियुक्तं भोज्यं पदार्थम् (प्रति) (युम्ति) प्रोष्यन्ति (ऊतयः) कमनीया रक्षादयः (आ) (वाम्) युवयोः (ऊर्जानी) पराक्रमयुक्ता नीतिः (रथम्) विभानादियानम् (अश्विना) सभासेनेशौ (अरुहत्) रोहति॥२॥

अन्वय:-हे अश्विना! वां युवयोः श्रूसमन् प्रयमन्यूर्जान्यूर्ध्वा धीतिश्च यैर्जनैरधायि ते दिशः समायन्ते। यं रथं शिल्प्यारुहत्तं युवामारोहेताम्। यं घर्ममूत्वो नो पन्ति तं युवां प्रति यन्तु। यं घर्ममहं स्वदाम्यस्य स्वादं युवां प्रति यातम्॥२॥

भावार्थः-हे मनुष्या यूर्ये सुसंस्कृतानि रोगापहारकाणि बलप्रदान्यन्नानि भुङ्ग्ध्वम्। यात्रायां सर्वाः सामग्रीः सङ्गृह्य (पुर्मीर प्रोतिरक्षणे विधाय देशान्तरं गच्छत कुत्रापि नीतिं मा त्यजत॥२॥

पदार्थ: -हे (अश्विन) सभासेनाधीशो! (वाम्) तुम दोनों की (शस्मन्) प्रशंसा के योग्य (प्रयामिन) अति उत्तम यात्रा में जो (ऊर्जानी) पराक्रमयुक्त नीति और (ऊर्जा) (धीति:) उन्नतियुक्त धारणा वा उंची धारणा जिन मनुष्यों ने (अधायि) धारण की वे (दिश:) दान आदि उत्तम कर्म करनेहारे मनुष्य (सम्, आ, अयन्ते) भली-भांति आते हैं। जिस (रथम्) मनोहर विमान आदि यान का शिल्पी कारुक जेंग (आ, अरुहत्) आरोहरण करता अर्थात् उस पर चढ़ता है, उस पर तुम लोग चढ़ो। जिस (धर्मम्) उज्जब्ल सुगन्धियुक्त भोजन करने योग्य पदार्थ को (ऊतयः) मनोहर रक्षा आदि व्यवहार हम

लोगों के लिये (यन्ति) प्राप्त करते हैं, उसको (प्रति) तुम प्राप्त होओ और जिस उज्ज्वल सुगन्धियुक्त भोजन करने योग्य पदार्थ का मैं (स्वदामि) स्वाद लेऊं (अस्य) इसके स्वाद को तुम (प्रति) प्रतीति से प्राप्त होओ॥२॥

भावार्थ: -हे मनुष्यो! तुम अच्छे बने हुए, रोगों का विनाश करने और बल के देनहारे अहों को भोगो। यात्रा में सब सामग्री को लेकर एक-दूसरे से प्रीति और रक्षा कर-करा देश-पूर्रदेश को जाओ, पर कहीं नीति को न छोड़ो॥२॥

पुनः स्त्रीपुरुषकृत्यमाह॥

फिर अगले मन्त्र में स्त्री-पुरुष के करने योग्य काम का उपक्रेस किया है।।

सं यन्मिथः पर्स्पृधानासो अग्मत शुभे मुखा अमिता जायको रणे युवोरहं प्रवृणे चेकिते रथो यदिश्वना वहंथः सूरिमा वर्रम्॥ ३॥

सम्। यत्। मिथः। पुस्पृधानासः। अग्मत। श्रुभे। मुखाः। असिताः। ज्ञाष्ट्रवः। रणे। युवोः। अहं। प्रवणे। चेकिते। रथः। यत्। अश्विना। वहंथः। सूरिम्। आ। वर्रम्॥३॥

पदार्थ:-(सम्) (यत्) यस्मै (मिथः) परस्परम् (प्रमुधानसः) स्पर्द्धमानाः (अग्मत) गच्छत (शुभे) शुभगुणप्राप्तये (मखाः) यज्ञा इवोपकर्त्तारः (अमिताः) अप्रक्षिप्ताः (जायवः) शत्रून् विजेतारः (रणे) संग्रामे (युवोः) (अह) शत्रुविनिग्रहे (प्रवणे) प्रवत्ते गुल्छन्ति वीरा यस्मिन् (चेकिते) योद्धं जानाति (रथः) (यत्) यः (अश्विना) दम्पती (वहथः) प्रप्रिशः (प्रूरिम्) युद्धविद्याकुशलं धार्मिकं विद्वांसम् (आ) समन्तात् (वरम्) अतिश्रेष्ठम्॥३॥

अन्वय:-हे अश्विना! यद्यो विद्वांश्चिकित ये युवोर्यो मिथो युद्धे साधकतमोऽस्ति, यं वरं सूरिं युवां वहथस्तेनाह सह वर्त्तमाना यच्छुभे प्रवणे रणे पस्पृधानासो मखा अमिता जायवः समग्मत सङ्गच्छन्तां तस्मा आप्रयतन्ताम्॥३॥

भावार्थ:-राजपुरुषा यद्या शत्रुजमाय स्वसेनाः प्रेषयेयुस्तदा लब्धलक्ष्मीकाः कृतज्ञा युद्धकुशला योधियतारो विद्वांसः सेनाभिः सहावश्यं गच्छेयुः, सर्वाः सेनास्तदनुमत्यैव युध्येरन् यतो ध्रुवो विजयः स्यात्। यदा युद्धं निवर्तेत स्वस्वस्थानं वीरा आसीरँस्तदा तान् समूह्य प्रहर्षविजयार्थानि व्याख्यानानि कुर्युर्यतः ते सर्वे युद्धायोत्साहिता भूत्वा शत्रूनवश्यं विजयेरन्॥३॥

पदार्थ: है (अश्वना) स्त्री-पुरुषो! (यत्) जो विद्वान् (चेकिते) युद्ध करने को जानता है वा जो (युवोः) तुम लेंचों के (रथः) अति सुन्दर रथ (मिथः) परस्पर युद्ध के बीच लड़ाई करनेहारा है वा जिस (वरम्) अतिश्रष्ठ (स्रिरम्) युद्ध विद्या के जाननेवाले धार्मिक विद्वान् को तुम (वहथः) प्राप्त होते उसके साथ वद्धीपान (अह) शत्रुओं के बांधने वा उनको हार देने में (यत्) जिस (शुभे) अच्छे गुण के पाने के लिये (प्रवणे) जिसमें वीर जाते हैं, उस (रणे) संग्राम में (पर्मृधानासः) ईर्ष्या से एक-दूसरे को बुलाते

अष्टक-१। अध्याय-८। वर्ग-२०-२१

मण्डल-१। अनुवाक-१७। सूक्त-११९



हुए (मखा:) यज्ञ के समान उपकार करनेवाले (अिमता:) न गिराये हुए (जायव:) शत्रुओं के जित्नेहारे वीरपुरुष (समग्मत) अच्छे प्रकार जायें, उसके लिये (आ) उत्तम यत्न भी करें॥३॥

भावार्थ:-राजपुरुष जब शत्रुओं को जीतने को अपनी सेना पठावें, तब जिन्होंने धेन पाया, जो करे को जाननेवाला, युद्ध में चतुर, औरों से युद्ध करानेवाले विद्वान् जन वे सेन्नाओं के साथ अवश्य जावें। और सब सेना उन विद्वानों के अनुकूलता से युद्ध करें, जिससे निश्चल क्रियय हो। जब युद्ध निवृत्त हो रुक जाय और अपने-अपने स्थान पर वीर बैठें, तब उन सबको इकट्ठा कर आनन्द देकर जीतने के ढंग की बातें-चीतें करें, जिससे वे सब युद्ध करने के लिये उत्साह बांध के शत्रुओं को अवश्य जीतें॥३॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।

युवं भुज्युं भुरमाणुं विभिर्गतं स्वयुक्तिभिर्निवहन्ता पितृभ्य आ। यासिष्टं वर्त्तिर्वृषणा विजेन्यं १ दिवोदासायु महि स्रति वामर्वः॥४॥

युवम्। भुज्युम्। भुरमाणम्। विऽभिः। गृतम्। स्वयुक्तिऽभिः। निऽवहन्ता। पितृऽभ्यः। आ। यासिष्टम्। वृतिः। वृष्णा। विऽजेन्यम्। दिवःऽदासाय। महिं। चेति वाम्। अत्रः॥४॥

पदार्थ:-(युवम्) युवाम् (भुज्युम्) भागमहेम् (भुरमाणम्) पुष्टिकारकम्। डुभृञ्धातोः शानिच व्यत्ययेन शो बहुलं छन्दसीत्युत्वं ची (विभिः) पिक्षिभिरिव (गतम्) प्राप्तम् (स्वयुक्तिभिः) आत्मीयप्रकारैः (निवहन्ता) नितरां प्रापयन्तौ (पितृभ्यः) राजपालकेभ्यो वीरेभ्यः (आ) (यासिष्टम्) यातम् (वर्तिः) वर्तमानं सैन्यम् (वृषणा) सुख्वविक्षौ (विजेन्यम्) विजेतुं योग्यम् (दिवोदासाय) विद्याप्रकाशदात्रे सेनाध्यक्षाय (मिह्) महत् (चेक्षि) संज्ञायते। अत्राडभावः। (वाम्) युवयोः (अवः) रक्षकम्॥४॥

अन्वयः-हे वृषणाऽश्विन्। युनं व्यं भुरमाणं भुज्युं विभिर्गतिमव स्वयुक्तिभिः पितृभ्यो निवहन्ता सन्तौ यद्वां मह्मवो वर्त्तिः सैन्यं चेति तच्या सह्गृह्म द्विवादासाय विजेन्यमायासिष्टम्॥४॥

भावार्थ:-सेनापतिभियंद्र्येन्यं हृष्टं पुष्टं स्वभक्तं विज्ञायेत तद्विविधैर्भोगै: सुशिक्षया च संयोज्यागामिलाभाव प्रवर्त्येद्रशेन युध्वा शत्रवो विजेतुं शक्यन्ते॥४॥

पदार्थ: (वृष्णा) सुख वर्षाने और सब गुणों में रमनेहारे सभासेनाधीशो! (युवम्) तुम दोनों (वाम्) अपनी (शुरमाणम्) पृष्टि करनेवाले (भुज्युम्) भोजन करने के योग्य पदार्थ को (विभिः) पिक्षयों ने (गृतम्) पाये हुए के समान (स्वयुक्तिभिः) अपनी रीतियों से (पितृभ्यः) राज्य की पालना करनेहारे वीर्रों के लिये (निवहन्ता) निरन्तर पहुंचाते हुए (मिह्) अतीव (अवः) रक्षा करनेवाले पदार्थ और

(वर्ति:) जो सेनासमूह (चेति) जाना जाये, उसको भी लेकर (दिवोदासाय) विद्या का प्रकाश देनेवाले सेनाध्यक्ष के लिये (विजेन्यम्) जीतने योग्य शत्रुसेनासमूह को (आ, यासिष्टम्) प्राप्त होओ॥४॥

भावार्थ:-सेनापितयों से जो सेनासमूह हृष्ट-पृष्ट अर्थात् सुख से भरा-पूरा खाने-भिने से पृष्ट अपने को चाहता हुआ जान पड़े, उसको अनेक प्रकार के भोग और अच्छी सिखावर से युक्त कर अर्थात् उक्त पदार्थ उनको देकर आगे होनेवाले लाभ के लिये प्रवृत्त करा ऐसे सेन्नसमूह से युद्ध कर शत्रुजन जीते जा सकते हैं॥४॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

युवोरिश्वना वर्षेषे युवायुजं रथं वाणी येमतुरस्य शर्ध्यम्। आ वां पितृत्वं सुख्यायं जुग्मुषी योषांवृणीत जेन्यां युवां पेती। ५०॥

युवोः। अश्विना। वर्षेषे। युवाऽयुर्जम्। रथम्। वाणी इति। यूर्मेषुः। अस्या शर्ध्वम्। आ। वाम्। पतिऽत्वम्। सुख्यार्य। जुग्मुषी। योषा। अवृणीता जेन्या। युवाम्। पती इति॥ प्रा

पदार्थ:-(युवो:) (अश्विना) सभासेनाधीशौ (वपुषे) स्रिपार्थ (युवायुजम्) युवाभ्यां युज्यते तम्। वा छन्दिस सर्वे विधयो भवन्तीत्यप्राप्तोऽपि युवादेशः। (रथम्) रमणीयं सैन्यादियुक्तं यानम् (वाणी) उपदेशकाविव। इञ् वपादिभ्य इति शब्दार्थाद्वणभातिष्ठ्। (यमतुः) नियच्छतः (अस्य) राज्यकार्य्यस्य मध्ये (शर्ध्यम्) शर्द्धेषु बलेषु भवम् (आ) (व्यम्) युवयोः (पतित्वम्) पालकभावम् (सख्याय) सख्युः कर्मणे (जग्मुषो) गन्तुं शीला (योषा) प्रौद्धा बह्मचारिणीं युवतिः (अवृणीत) स्वीकुर्य्यात् (जन्या) जनेषु नयनकर्तृषु साधू (युवाम्) (पती) अन्योऽन्यस्य पालकौ॥५॥

अन्वयः-हे अश्विना! युवो: शर्भ्ये युज्जयुजं रथमस्य मध्ये स्थितौ वाणी वपुषे येमतुर्वा युवयो: सख्याय जेन्या पती युवां पतित्वं जग्मुषी योषा सती हाँ स्त्रियं पतिसावृणीत॥५॥

भावार्थ:-अत्र वाचक्रिलेष्तोपमालङ्कार)। यथा ब्रह्मचर्यं कृत्वा प्राप्तयौवनावस्था विदुषी कुमारी स्विप्रयं पितं प्राप्य सत्ति सेवते प्रथा च कृतब्रह्मचर्यो युवा स्वाभीष्टां स्त्रियं प्राप्यानन्दित, तथैव सभासेनापती सदा भवेताम्।

पदार्थ: हे (अश्वना) सभासेनाधीशो! (युवो:) तुम अपने (शर्ध्यम्) बलों से युक्त (युवायुजम्) तुमने जोड़े (स्थम्) मनोहर सेना आदि युक्त यान को (अस्य) इस राजकार्य के बीच में स्थिर हुए (वाणी) उपदेश करनेवालों के समान (वपुषे) अच्छे रूप के होने के लिये (येमतुः) नियम में रखते हो (वाम्) द्वंप दोनों के (सख्याय) मित्रपन अर्थात् अतीव प्रीति के लिये (जेन्या) नियम करते हुओं में श्रेष्ठ (पत्ती) पालेंचा करनेहारे (युवाम्) तुम्हारे साथ (पतित्वम्) पतिभाव को (जग्मुषी) प्राप्त होनेवाली

अष्टक-१। अध्याय-८। वर्ग-२०-२१

मण्डल-१। अनुवाक-१७। सूक्त-११९



(योषा) यौवन अवस्था से परिपूर्ण ब्रह्मचारिणी युवित स्त्री तुम में से अपने मन से चाहे हुए पति को (आ, अवृणीत) अच्छे प्रकार वरे॥५॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे विदुषी कुमारी कन्या ब्रह्मेचूर्य करके यौवन अवस्था को पाए हुए अपने प्यारे पित को पाकर निरन्तर उसकी सेवा करती है और जैसे ब्रह्मचर्य को किये हुए जवान पुरुष अपनी प्रीति के अनुकूल चाही हुई स्त्री को पाकर आनिन्दित होता है, बैसे ही सभा और सेनापित सदा होवें॥५॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।

युवं रेभं परिषूतेरुरुष्यथो हिमेन घुमं परितज्यमत्रये। युवं श्योर्व्वसं पिष्यथुर्गवि प्र दी्घेण वन्देनस्तार्यायुष्माहः॥

युवम्। रेभम्। परिऽसूतेः। उरुष्यथः। हिमेने। घर्मम्। परिऽत्रज्ञम्। अत्रये। युवम्। शयोः। अवसम्। पिप्यथुः। गवि। प्रा दीर्घेणी वन्देनः। तारि। आयुषा॥६॥

पदार्थ:-(युवम्) युवाम् (रेभम्) सकलिक्धास्तोत्तरम् (परिषूतेः) परितः सर्वतोः विद्याजन्मिन प्रादुर्भूतान् (उरुष्यः) रक्षथः। उरुष्यती रक्षाकुम्। (भिरुष्यः-२३) (हिमेन) शीतेन (धर्मम्) सूर्य्यतापम् (परितप्तम्) सर्वतः संक्लिष्टम् (अत्रये) अविद्यमानान्याध्यात्मिकादीनि त्रीणि दुःखानि यस्मिस्तस्मै सुखाय (युवम्) युवाम् (शयोः) शयानस्य (अवसम्) रक्षणीदिकम् (पिप्यथुः) वर्धयतम् (गवि) पृथिव्याम् (प्र) (दीर्घेण) प्रलम्बितेन (वन्दनः) स्तोतुमहे (तारि) तीर्यते (आयुषा) जीवनेन॥६॥

अन्वय:-हे अश्विना! यथा युवाज्ये पेरिसूतेः प्राप्तविद्यं परितप्तं रेभं विद्वांसं जनं हिमेन घर्ममिवोरुष्यथः। युवं गवि शयोरवसं पिप्यथुर्वन्दनो दीर्घेणासुषा युवाभ्यां तारि तथा वयमपि प्रयतेमहि॥६॥

भावार्थ:-अत्र व्यन्यकेलुष्तोपमालङ्कारः। हे विवाहितौ स्त्रीपुरुषौ! यथा शीतेनोष्णता हन्यते तथाऽविद्या विद्यया हतं पत आध्यात्मिकाधिभौतिकाधिदैविकानि दुःखानि नश्येयुः। यथा धार्मिकाराजपुरुषाश्चोरादीन् निवाय शयानान् प्रजाजनान् रक्षन्ति यथा च सूर्याचन्द्रमसौ सर्वं जगत् सम्पोष्य जीवनप्रदौ स्तस्तुर्थोऽस्मिञ्जगित प्रवर्तेथाम्॥६॥

पदार्थ: हे सब विद्याओं में व्याप्त स्त्री-पुरुषो! जैसे (युवम्) तुम दोनों (अत्रये) आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिष्ठैविक ये तीन दु:ख जिसमें नहीं हैं, उस उत्तम सुख के लिये (पिरसूते:) सब ओर से दूसरे विद्या जन्म में प्रसिद्ध हुए विद्वान् से विद्या को पाये हुए (पिरतप्तम्) सब प्रकार क्लेश को प्राप्त (रिभम्) समस्त विद्या की प्रशंसा करनेवाले विद्वान् मनुष्य को (हिमेन) शीत से (धर्मम्) घाम (धूप) के

समान (उरुष्यथः) पालो अर्थात् शीत से घाम जैसे बचाया जावे, वैसे पालो (युवम्) तुम दोनों (गिव) पृथिवी में (शयोः) सोते हुए की (अवसम्) रक्षा आदि को (पिप्यथुः) बढ़ाओ (वन्दनः) प्रशंसा करने योग्य व्यवहार (दीर्घण) लम्बी बहुत दिनों की (आयुषा) आयु से तुम दोनों ने (तारि) पार किया, वैसा हम लोग भी (प्र) प्रयत्न करें॥६॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे विवाह किये हुए स्त्री-प्रुर्रको! जैसे शीत से गरमी मारी जाती है, वैसे अविद्या को विद्या से मारो; जिससे आध्यात्मिक, आधि मैंकिक, आधि विवा ये तीन प्रकार के दु:ख नष्ट हों। जैसे धार्मिक राजपुरुष चोर आदि को दूर कर स्रांत हुए प्रजाजनों की रक्षा करते हैं और जैसे सूर्य्य चन्द्रमा सब जगत् की पृष्टि देकर जीवन के आजन्द को देनेवाले हैं, वैसे इस जगत् में प्रवृत्त होओ॥६॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।

युवं वन्देनं निर्द्धतं जर्ण्यया रथं न देस्रा कर्णा समिन्वथः। क्षेत्रादा विप्रं जनथो विपन्यया प्र वामत्रं विध्व देसम् भूवत्॥७॥

युवम्। वन्देनम्। नि:ऽऋतम्। जुरुण्ययो। रथम्। त्रा दुस्ता कर्णा। सम्। इन्व्थः। क्षेत्रात्। आ। विप्रम्। जुनुथः। विपुन्ययो। प्र। वाम्। अत्री विधते। दुसना। भुद्धत्। ७।

पदार्थ:-(युवम्) युवां स्त्रीपुरुषौ (बन्दम्म) कृदनीयम् (निर्ऋतम्) निरन्तरमृतं सत्यमस्मिन् (जरण्यया) जरणान् विद्यावृद्धानर्हति यया विद्याया तया युक्तम् (रथम्) विमानादियानम् (न) इव (दस्रा) (करणा) कुर्वन्तौ (सम्) (इन्वथः) प्राप्नुतम् (क्षेत्रात्) गर्भाशयोदरान्निवासस्थानात् (आ) (विप्रम्) विद्यासुशिक्षायोगेन मेधाविनम् (जन्थः) जनयतम्। शप आर्धधातुकत्वाण्णिलुक्। (विपन्यया) स्तोतुं योग्यया धर्म्यया नीत्या युक्तानि (प्र) (वाम्) युवयोः (अत्र) अस्मिञ्जगित (विधते) विधात्रे (दंसना) कर्माणि (भुवत्) भवेत्। अत्र विद्यात्।

अन्वय:-हे करण दुनाश्चिनौ स्त्रीपुरुषौ! युवं जरण्यया युक्तं निर्ऋतं वन्दनं विप्रं रथं न सिमन्वथः क्षेत्रादुत्पन्निमवाजनथो योऽत्र वां युव्योगृहाश्रमे संबन्धः प्रभुवत्तत्र विपन्यया युक्तानि दंसना कर्माणि विधते विधातुं प्रवर्त्तमानायोत्तमान् राज्यधर्माधिकारान् दद्यातम्॥७॥

भावार्थ:-मेननशीलाः स्त्रीपुरुषा जन्मारभ्य यावत् ब्रह्मचर्य्येण सकला विद्या गृह्णीयुस्तावृत्सन्तासन् सुशिक्ष्य यथायोग्येषु व्यवहारेषु सततं नियोजयेयु:॥७॥

पदार्थ: -हे (करणा) उत्तम कर्मों के करने वा (दस्रा) दु:ख दूर करनेवाले स्त्री पुरुषो! (युवम्) तुम दीनों (जरण्यया) विद्यावृद्ध अर्थात् अतीव विद्या पढ़े हुए विद्वानों के योग्य विद्या से युक्त (निर्ऋतम्) अपिमों जिस्तार सत्य विद्यमान (वन्दनम्) प्रशंसा करने योग्य (विप्रम्) विद्या और अच्छी शिक्षा के योग

अष्टक-१। अध्याय-८। वर्ग-२०-२१

मण्डल-१। अनुवाक-१७। सूक्त-११९



से उत्तम बुद्धिवाले विद्वान् को (रथम्) विमान आदि यान के (न) समान (सिमन्वथः) अच्छे क्रिकार प्राप्त होओ और (क्षेत्रात्) गर्भ के ठहरने की जगह से उत्पन्न हुए सन्तान के समान अपने क्रिवास से उन्नम काम को (आ, जनथः) अच्छे प्रकार प्रकट करो, जो (अत्र) इस संसार में (वाम्) तुम्रदोनों का गृहाश्रम के बीच सम्बन्ध (प्र, भुवत्) प्रबल हो, उस में (विपन्यया) प्रशंसा करने योग्य धर्म की नीति से युक्त (दंसना) कामों को (विधते) विधान करने को प्रवृत्त हुए मनुष्य के लिये उत्तम् राज्य के अधिकारों को देओ॥

भावार्थ:-विचार करनेवाले स्त्रीपुरुष जन्म से लेके जब तक ब्रह्मचूर्य से प्रमस्त विद्या ग्रहण करें, तब तक उत्तम शिक्षा देकर सन्तानों को यथायोग्य व्यवहारों में निर्स्तर युक्त करें॥७॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।

अगच्छतं कृपमाणं परावति पितुः स्वस्य त्येजसा निबाधिनम्। स्वर्वतीरित ऊतीर्युवोरहं चित्रा अभीके अभवत्रिभिष्टेया। ८॥

अर्गच्छतम्। कृपेमाणम्। पुराऽवति। पितुः। स्वस्या त्यजेशा। निऽबाधितम्। स्वःऽवतीः। इतः। ऊतीः। युवोः। अर्ह। चित्राः। अभीके। अभवन्। अभिष्टंयः॥।

पदार्थ:-(अगच्छतम्) प्राप्नुताम् (क्रप्माणम्) क्रूपां कर्त्तुं शीलम् (परावित) दूरदेशेऽपि स्थितम् (पितुः) जनकवद्वर्त्तमानस्याध्यापकस्य (क्रुक्रिशात् (स्वस्य) स्वकीयस्य (त्यजसा) संसारसुखत्यागेन (निबाधितम्) पीडितं संन्यासिनम् (स्वर्वतीः) स्वः प्रशस्तानि सुखानि विद्यन्ते यासु ताः (इतः) अस्माद्वर्त्तमानाद्यतेः (ऊतीः) रक्षष्ट्याद्याः (युवोः) युवयोः (अह) निश्चये (चित्राः) अद्भुताः (अभीके) समीपे (अभवन्) भवन्तु (अभिष्ट्यः) अभीपिताः॥८॥

अन्वयः-हे अश्विनौ स्त्रीपुरुषो भवन्तौ स्वस्य पितुः परावित स्थितं त्यजसा निबाधितं कृपमाणं परिव्राजं नित्यमगच्छतम्। इत एव युषीरभौकिऽह जित्रा अभिष्टयः स्वर्वतीरूतिरभवन्॥८॥

भावार्थ:-सर्वे मनुष्या पूर्णविद्यमाप्तं रागद्वेषपक्षपातरिहतं सर्वेषामुपिर कृपां कुर्वन्तं सर्वथासत्ययुक्तमसत्यत्याग्निं जितेन्द्रियं प्राप्तयोगिसद्धान्तं परावरज्ञं जीवन्मुक्तं संन्यासाश्रमे स्थितमुपदेशाय नित्यं भ्रमन्तं वेदविदं जनं प्राप्य धर्मार्थकाममोक्षाणां सविधानाः सिद्धिः प्राप्नुवन्तु, न खल्वीदृग्त्रनसङ्गोपदेशश्रवणाभ्यां विना कश्चिदिप यथार्थबोधमाप्तुं शक्नोति॥८॥

पदार्थ:-हे विद्या के विचार में रमे हुए स्त्री-पुरुषो! आप (स्वस्य) अपने (पितुः) पिता के समान क्रिमान पढ़ानेवाले से (परावित) दूर देश में भी ठहरे और (त्यजसा) संसार के सुख को छोड़ने

से (निबाधितम्) कष्ट पाते हुए (कृपमाणम्) कृपा करने के शीलवाले संन्यासी को नित्य (अगच्छर्तम्) प्राप्त होओ (इत:) इसी यित से (युवो:) तुम दोनों के (अभीके) समीप में (अह) निश्चय से (चित्रा:) अद्भुत (अभिष्ट्य:) चाही हुई (स्वर्वती:) जिनमें प्रशंसित सुख विद्यमान हैं (ऊती:) वे रक्षा अपित्र कामना (अभवन्) सिद्ध हों॥८॥

भावार्थ:-सब मनुष्य पूरी विद्या जानने और शस्त्रसिद्धान्त में रमनेकृल सम्भे द्वेष और पक्षपातरिहत सबके ऊपर कृपा करते सर्वथा सत्ययुक्त असत्य को छोड़े इन्द्रियों को जीते और योग के सिद्धान्त को पाये हुए अगले-पिछले व्यवहार को जाननेवाले जीवन्मुक्त संद्र्यास के आश्रम में स्थित, संसार में उपदेश करने के लिये नित्य भ्रमते हुए, वेदविद्या के जाननेवाले संन्यासीजन को पाकर धर्म, अर्थ, काम और मोक्षों की सिद्धियों को विधान के साथ पावें। ऐसे संन्यासी सादि उत्तम विद्वान् के सङ्ग और उपदेश के सुने विना कोई भी मनुष्य यथार्थ बोध को नहीं पा सकता।

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

उत स्या वां मधुंमन्मक्षिकारपन्मदे सोमंस्यौशिकी हुवेन्यति। युवं दंधीचो मन् आ विवासुथोऽथा शिर्प्रपति वासुक्यं वदत्॥ ९॥

उता स्या। वाम्। मधुंऽमत्। मक्षिका। अर्पुत्त महे। सोमेप्न्य। औृशिजः। हुवन्यति। युवम्। दुर्धीचः। मर्नः। आ। विवासुयः। अर्थ। शिर्रः। प्रति। वाम्। अरुव्यम् विदुत्॥ ९॥

पदार्थ:-(उत) अपि (स्या) असौ (वाम्) युद्धम् (मधुमत्) प्रशस्ता मधुरा मधवो गुणा विद्यन्ते यस्मिन् तत् (मिक्कित) मशित शब्दयित यास्म मिक्का। हिनमिशिभ्यां सिकन्। (उणा०४.१५४) इति मशि धातोः सिकन्। (अरपत्) रपित गुङ्गित (पदे) हर्ष (सोमस्य) धर्मप्रेरकस्य (औशिजः) कमनीयस्य पुत्रः (हुवन्यित) आत्मनो हुवनं दानमादानं चेच्छित्। अत्र हुवन् शब्दात् क्यचि वाच्छन्दसीतीत्वाभावेऽल्लोपः। (युवम्) युवाम् (दधीचः) विद्याधर्मधारकान्ञ्चिति विज्ञापयित तस्य सकाशात् (मनः) विज्ञानम् (आ) (विवासथः) सेवेथाम् (अथः) आनुन्तर्ये। निपातस्य चेति दीर्घः। (शिरः) शिर उत्तमाङ्गवत् प्रशस्तम् (प्रति) (वाम्) युवाम् (अश्व्यम्) अश्वषु व्याप्तविद्येषु साधु (वदत्) वदेत्॥९॥

अन्वय:-ह्रे अश्विनौ माङ्गिलिकौ राजप्रजाजनौ! युवं युवां य औशिजः परिव्राड् मदे प्रवर्त्तमाना स्या मिक्षका यथारपत्तथा वां मधुमञ्जवन्यित तस्य सोमस्य दधीचः सकाशान्मन आविवासथः। अथोत स वां प्रीत्यैतदश्व्यं सततं प्रति वदत्॥९॥

भावार्थ: अत्र लुप्तोपमालङ्कार:। हे मनुष्या! तथा मक्षिका: पार्थिवेभ्यो रसं गृहीत्वा वसतौ संचित्र्यानन्दन्ति तथैव योगविद्यैश्वर्योपपन्नस्य सत्योपदेशेन सुखे विधातुर्ब्रह्मनिष्ठस्य विदुष: संन्यासिन: स्रुपीपात्रस्या शिक्षां श्रुत्वा मत्वा निदिध्यास्य सदा यूयं सुखिनो भवेत॥९॥

अष्टक-१। अध्याय-८। वर्ग-२०-२१

मण्डल-१। अनुवाक-१७। सूक्त-११९



पदार्थ: - हे मंगलयुक्त राजा और प्रजाजनो! (युवम्) तुम दोनों जो (औशिजः) मलिह्य उत्तम् पुरुष का पुत्र संन्यासी (मदे) मद के निमित्त प्रवर्तमान (स्या) वह (मिक्षका) शब्द क्रूलेवाली मलेखी जैसे (अरपत्) गूंजती है, वैसे (वाम्) तुम दोनों को (मधुमत्) मधुमत् अर्थात् जिसमें प्रशेषित गुण हैं, उस व्यवहार के तुल्य (हुवन्यति) अपने को देना-लेना चाहता है, उस (सोमस्य) धर्म की प्रेरणा करने और (दधीचः) विद्या धर्म की धारणा करनेहारे के तीर से (मनः) विज्ञान को (आ, विवासथः) अच्छे प्रकार सेवो (अथ) इसके अनन्तर (उत) तर्क-वितर्क से वह (वाम्) तुम दोनों के प्रति प्रेति से इस ज्ञान को और (अश्व्यम्) विद्या में व्याप्त हुए विद्वानों में उत्तम (शिरः) शिर के स्थान प्रशंसित व्याख्यान को (प्रति, वदत्) कहे॥९॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! जैसे मक्खें पृथिवी में उत्पन्न हुए वृक्ष वनस्पतियों से रस, जिसको शहद कहते हैं, उसको लेकर अपने निष्मुस्थान में इकट्ठा कर आनन्द करती है, वैसे ही योगविद्या के ऐश्वर्य्य को प्राप्त सत्य उपदेश से सुख की विधान करनेवाले ब्रह्म-विचार में स्थिर विद्वान् संन्यासी के समीप से सत्यशिक्षा को सुप्त पनि और विचार के सर्वदा तुम लोग सुखी होओ॥९॥

अथ तडित्तारिवद्यापदेशः क्रियते॥

अब बिजुलीरूप अग्नि से जो तारविद्या प्रकट होती है/ उसका उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

युवं पेदवे पुरुवारमिश्चना स्पृथं श्वेत तरुतार दुवस्यथः।

शर्येर्भिद्यं पृतनासु दुष्टरं चुर्कत्यमिन्द्रिमिव चर्षणीसहम्॥१०॥२१॥

युवम्। पेदवे। पुरुऽवारम्। <u>अश्विनाः। स्पृ</u>धाम्। श्वेतम्। तुरुतारम्। दुवस्यथः। शर्वैः। अभिऽद्येम्। पृतेनासु। दुस्तरम्। चुर्कृत्यम्। इन्द्रम्ऽइव। चूर्पण्ऽसहम्॥ १०॥

पदार्थ:-(युवम्) युवाम् (पेद्धे) प्राप्तुं गन्तुं वा (पुरुवारम्) पुरूणि बहूनि वरितुं योग्यानि कर्माणि यस्मात्तम् (अश्वना) सर्वावद्याव्याप्तिमन्तौ समासेनेशौ (स्पृधाम्) शत्रुभिः सह स्पर्धमानाम् (श्वेतम्) सततं गन्तुं प्रवृद्धम् (त्ररुतारम्) शब्दान् संतारकं प्लावकं वा ताराख्यं व्यवहारम् (दुवस्यथः) सेवेथाम् (श्रार्थ्यः) हिंसितुं व्यिडितुमहैंर्यन्त्रैर्युक्तम् (अभिद्युम्) अभितो दिवो विद्युद्योगप्रकाशा यस्मिँस्तम् (पृतनासु) सेनासु (दुष्ट्रपम्) शत्रुभिर्दुःखेनोल्लङ्घयितुं शक्यम् (चर्कृत्यम्) भृशं कर्त्तं योग्यम् (इन्द्रमिव) सूर्य्यप्रकाशम्यव सधी गन्तारम् (चर्षणीसहम्) चर्षणयो मनुष्याः शत्रुन् सहन्ते येन तम्॥१०॥

अन्वयः-हे अश्वना! युवं पेदवे स्पृधां पृतनासु चर्कृत्यं श्वेतं पुरुवारं दुष्टरं चर्षणीसहं शर्य्येरभिद्युमिन्द्रमिव तरुतारं दुनस्यथुः।।१०॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। यथा मनुष्यैस्तिडिद्विद्ययाऽभीष्टानि कार्य्याणि संसाध्यन्ते तथैव परिव्राट्सङ्गेन सर्वा विद्या: प्राप्य धर्मादिकार्य्याणि कर्त्तुं प्रभूयन्ते। एताभ्यामेव व्यवहारपरमार्थसिद्धि: कर्त्तुं शक्या तस्मात्प्रयत्नेन तिडिद्विद्याऽवश्यं साधनीया॥१०॥

अत्र राजप्रजापरिव्राड्विद्याविचारानुष्ठानोक्तत्वादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्वीति बोध्यम्॥

इत्येकविंशतिः २१ वर्ग एकोनविंशतिशततमं ११९ सूक्तं च समाप्तम्॥

पदार्थ:-हे (अश्विना) सब विद्याओं में व्याप्त सभा सेनाधीशो! (युवम्) तुम दोनों (पेदवे) पहुंचने वा जाने को (स्पृधाम्) शत्रुओं को ईर्ष्या से बुलानेवालों को (पृत्नस्) सेनाओं में (चर्कृत्यम्) निरन्तर करने के योग्य (श्वेतम्) अतीव गमन करने को बढ़े हुए (पुरुवारम्) जिसमें कि बहुत लेने योग्य काम होते हैं (दुष्टरम्) जो शत्रुओं से दु:ख के साथ उलांघा जा सकता (चर्कणीसहम्) जिससे मनुष्य शत्रुओं को सहते जो (शर्य्यै:) तोड़ने-फोड़ने के योग्य पेंचों से बांधा जा (अभिद्युम्) जिसमें सब ओर बिजुली की आग चमकती, उस (इन्द्रमिव) सूर्य के प्रकाश के समान वर्तमान (तरुतारम्) संदेशों को तारने अर्थात् इधर-उधर पहुंचानेवाले तारयन्त्र को (दुवस्त्र्थः) सेवो। १०॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे मनुष्यों से बिजली से सिद्ध की हुई तारविद्या से चाहे हुए काम सिद्ध किये जाते हैं, वैसे ही संन्यामी के संग्रंसे समस्त विद्याओं को पाकर धर्म आदि काम करने को समर्थ होते हैं। इन्हीं दोनों से व्यक्तार और परमार्थ सिद्धि की जा सकती है। इससे यत्न के साथ तिंडत्-तारविद्या अवश्य सिद्ध करनी चाहियो। %।।

इस सूक्त में राजप्रजा, संन्यासी महामिओं की विद्या के विचार का आचरण कहने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गित समझनी चाहिये॥

यह इक्कीसवां २१ वर्ग और एकसौ उन्नीसवाँ ११९ सूक्त पूरा हुआ॥

अथास्य द्वादशर्च्चस्य विंशत्युत्तरशततमस्य सूक्तस्योशिक्पुत्रः कक्षीवानृषिः। अश्विनौ देवते। १,१२ पिपीलिकामध्या निचृदुगायत्री। २ भूरिग्गायत्री। १० गायत्री। ११ पिपीलिकामध्या

विराड् गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः। ३ स्वराट् ककुबुष्णिक्। ५ आर्घ्युष्णिक्। ६ (५ विराडार्घ्युष्णिक्। ८ भुरिगुष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः। ४ आर्घ्युनुष्टुप्। ७ स्वराडार्घ्यनुष्टुप्। ९

भुरिगनुष्टुप् छन्द:। गान्धार: स्वर:॥

तत्रादौ प्रश्नोत्तरविधिमाह।।

अब एकसौ बीसवें सूक्त का आरम्भ है। उसके प्रथम मन्त्र में प्रश्नोत्तरविधि का उपदेश करते

हैं॥

का राधुद्धोत्राश्चिना वां को वां जोषं उभयोः। कथा विधालप्रप्रचेताः॥ भा

का। राध्वत्। होत्रां। अश्विना। वाम्। कः। वाम्। जोषे। उभयोः। कुथा विध्वति। अप्रेऽचेताः॥ १॥

पदार्थ:-(का) सेना (राधत्) राध्नुयात् (होत्रा) शत्रुबल्निदातुं बिज्यं च दातुं योग्या (अश्विना) गृहाश्रमधर्मव्यापिनौ स्त्रीपुरुषौ (वाम्) युवयोः (कः) शत्रुः (वाम्) युवयोः (जोषे) प्रीतिजनके व्यवहारे (उभयोः) (कथा) केन प्रकारेण (विधाति) विदध्यात् (अप्रचिताः) बिक्राविज्ञानरहितः॥१॥

अन्वयः-हे अश्वना! वामुभयोः का होत्रा सेना विजयं स्धित्। वाषे कथा कोऽप्रचेताः पराजयं विधाति॥१॥ भावार्थः-सभासेनेशौ शूरविद्वद् व्यवहारम्भित्तैः सह व्यवहरेतां पुनरेतयोः पराजयं कर्तुं विजयं निरोद्धं समर्थौ स्यातां न कदाचित् कस्यापि पूर्खसहारम् प्रयोजनं सिध्यति तस्मात् सदा विद्वन्मैत्रीं सेवेताम्॥१॥

पदार्थ:-हे (अश्विना) गृहाश्रम धर्म में व्याप्त स्त्री-पुरुषो! (वाम्) तुम (उभयो:) दोनों की (का) कौन (होत्रा) सेना शत्रुओं के बल को लेने और उत्तम जीत देने की (राधत्) सिद्धि करे (वाम्) तुम दोनों के (जोषे) प्रीति उत्पन्न करनेहारे व्यवहार में (कथा) कैसे (क:) कौन (अप्रचेता:) विद्या विज्ञानरहित अर्थात् मूढ़ शत्रु हार को (विश्वास्त) विधान करे।।१॥

भावार्थ: -सभासे वाक्षीश शूर और विद्वान् के व्यवहारों को जाननेहारों के साथ अपना व्यवहार करें, फिर शूर और विद्वार्घ के होए देने और उनकी जीत को रोकने को समर्थ हों, कभी किसी का मूढ़ के सहाय से प्रयोजन नहीं सिद्ध होता। इससे सब दिन विद्वानों से मित्रता रक्खें॥१॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

विद्वासाविद्दुरः पृच्छेदविद्वानित्थापरो अचेताः। नू चिन्नु मर्ते अक्रौ॥२॥

विद्वांसौ। इत्। दुर्रः। पृच्छेत्। अविद्वान्। इत्था। अपरः। अचेताः। नु। चित्। नु। मर्ते। अक्रौ॥२॥

पदार्थ:-(विद्वांसौ) सकलविद्यायुक्तौ (इत्) एव (दुरः) शत्रून् हिंसितुं हृदयिहंसकान् प्रश्नान् वा (पृच्छेत्) (अविद्वान्) विद्याहीनो भृत्योऽन्यो वा (इत्था) इत्थम् (अपरः) अन्यः (अचेताः) ज्ञानरिहतः (नु) सद्यः (चित्) अपि (नु) शीघ्रम् (मर्त्ते) मनुष्ये (अक्रौ) अकर्त्तरि। अत्र नञ्युपपदात् कृथालीः इव कृषादिभ्य इति बहुलवचनात् कर्त्तरीक्॥२॥

अन्वयः-यथाऽचेता अविद्वान् विद्वांसौ दुरः पृच्छेदित्थाऽपरो विद्वानिदेव नु पृच्छेत्। अक्रौ पर्धे चिदपि नु पृच्छेद्यतोऽयमालस्यं त्यक्त्वा पुरुषार्थे प्रवर्तेत॥२॥

भावार्थ: –यथा विद्वांसो विदुषां संमत्या वर्तेरँस्तथाऽन्येऽपि वर्तन्ताम् सिदेव बिदुषः प्रति पृष्ट्वा सत्यासत्यनिर्णयं कृत्वा सत्यमाचरेयुरसत्यं च परित्यजेयुः। नात्र केनचित्वद्वाचिदालस्यं कर्त्तव्यम्। कृतो नापृष्ट्वा विजानातीत्यतः नैव केनचिदविदुषामुपदेशे विश्वसितव्यम्॥२॥

पदार्थ:-जैसे (अचेता:) अज्ञान (अविद्वान्) मूर्ख (विद्वांसी) दो विद्वावान् पण्डितजनों को (दुर:) शत्रुओं के मारने वा मन को अत्यन्त क्लेश देनेहारी बातों कि (पृच्छेत्) पूछे (इत्था) ऐसे (अपर:) और विद्वान् महात्मा अपने ढङ्ग से (इत्) ही (नु) शीघ्र पूछे (अक्री) नहीं करनेवाले (मर्त्त) मनुष्य के निमित्त (चित्) भी (नु) शीघ्र पूछे, जिससे यह आलस्य को छोड़ के प्रुरुषार्थ में प्रवृत्त हो॥२॥

भावार्थ:-जैसे विद्वान् विद्वानों की सम्मित से वर्तीव कर्ते, वैसे और भी वर्ते। सदैव विद्वानों को पूछ कर सत्य और असत्य का निर्णय कर आचरण करें और झूठ का त्याग करें। इस बात में किसी को कभी आलस्य न करना चाहिये, क्योंकि विना पूर्व कोई नहीं जानता है। इससे किसी को मूर्खों के उपदेश पर विश्वास न लाना चाहिये॥२॥

अथाध्यापकोपहें शकी विद्वासी किं कुर्य्यातामित्याह।।

अब अध्यापक और उपदेशक विद्वान क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

ता विद्वांसा हवामहे वां ता नो विद्वांसा मन्म वोचेतम्द्य। प्रार्चेद्दर्यमानो युवाकुः। ३॥

ता। विद्वांसां। हुनामुहे। वाम्। ता। नः। विद्वांसां। मन्मं। वोचेतम्। अद्य। प्र। आर्चत्। दर्यमानः। युवाकुः॥३॥

पदार्थ:-(ता) तीं सकलविद्याजन्यप्रश्नानृत्तरैः समाधातारौ (विद्वांसा) पूर्णविद्यायुक्तात्वाप्ताविध्याप- कोपदेशकौ। अत्राकारादेशः। (हवामहे) आदद्यः (वाम्) युवाम् (ता) तौ (नः) अस्मध्यम् (विद्वांसा) सर्वशुभविद्याविज्ञापकौ (मन्म) मन्तव्यं वेदोक्तं ज्ञानम् (वोचेतम्) ब्रूतम् (अद्य) अस्मिन् वर्तमानसमये (प्र) (आर्चत्) सत्कुर्यात् (दयमानः) सर्वेषामुपरि दयां कुर्वन् (युवाकुः) यो याव्यक्ति मिश्रयति संयोजयति सर्वाभिविद्याभिः सह जनान् सः॥३॥

अष्टक-१। अध्याय-८। वर्ग-२२-२३

मण्डल-१। अनुवाक-१७। सूक्त-१२० 9323

अन्वय:-यौ विद्वांसोऽद्य नो मन्म वोचेतं ता विद्वांसा वां वयं हवामहे, यो दयमानो युवाकुर्जनस्ता प्रार्वेत, द्रां सत्कुर्यातम्॥३॥

भावार्थ:-अस्मिन् संसारे यो यस्मै सत्या विद्याः प्रदद्यात् स तं मनोवाक्कायैः सेवेते यः कपटेन विद्यां गूहेत तं सततं तिरस्कुर्यात्। एवं सर्वे मिलित्वा विदुषां मानमविदुषामपमानं च सततं कुर्युर्यतः सत्कृता विद्वांसो विद्याप्रचारे प्रयतेरन्नसत्कृता अविद्वांसश्च॥३॥

पदार्थ:-जो (विद्वांसा) पूरी विद्या पढ़े उत्तम आप्त अध्यापक तथा उपदेशक विद्वान् (अद्य) इस समय में (न:) हम लोगों के लिये (मन्म) मानने योग्य उत्तम वेदों में कि हुए आन का (वोचेतम्) उपदेश करें (ता) उन समस्त विद्या से उत्पन्न हुए प्रश्नों के उत्तर देने और (विद्वांसा) सब उत्तम विद्याओं के जतानेहारे (वाम्) तुम दोनों विद्वानों को हम लोग (हवामहे) स्वीकार करते हैं, जो (दयमान:) सबके ऊपर दया करता हुआ (युवाकु:) मनुष्यों को समस्त विद्याओं के साथ स्रोयोग करानेहारा मनुष्य (ता) उन तुम दोनों विद्वानों का (प्र, आर्चत्) सत्कार करे, उसका तुम सत्कार करो॥३॥

भावार्थ:-इस संसार में जो जिसके लिये सत्य जिद्याओं के देवे, वह उसको मन, वाणी और शरीर से सेवे और जो कपट से विद्या को छिपावे उसकी निरुत्तर तिरस्कार करे। ऐसे सब लोग मिल-मिला के विद्वानों का मान और मूर्खों का अपमान निरन्तर कों, जिससे सत्कार को पाये हुए विद्वान् विद्या के प्रचार करने में अच्छे-अच्छे यत्न करें और अपमान कों पाये हुए मूर्ख भी करें॥३॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उस्री विषय को अंगले मन्त्र में कहा है।।

वि पृच्छामि पाक्या ३ न द्वाम् वर्षट्कृतस्याद्भुतस्य दस्रा।

पातं च सहासो युवं च रभ्यसो ने ॥४॥

वि। पृच्छामि। पाक्याँ। ने। देवान्। वर्षट्ऽकृतस्य। अद्भुतस्यं। दुस्रा। पातम्। च। सह्यंसः। युवम्। च। रभ्यंसः। नुः॥४॥

पदार्थ:-(वि) (पृच्छाप्) (पाक्या) विद्यायोगाभ्यासेन परिपक्विधय:। अत्राकारादेश:। (न) इव (देवान्) विदुष: (च्यट्कृतस्य) क्रियानिष्पादितस्य शिल्पविद्याजन्यस्य (अद्भुतस्य) आश्चर्यगुणयुक्तस्य (दस्रा) दुःख्रेषक्षयितारो (पातम्) रक्षतम् (च) (सह्यसः) सहीयोऽतिशयेन बलवत:। अत्र सह धातोरसुन् ततो मतुष् तत ईयसुनि विन्मतोरिति मतुब् लोप:। टेरिति टिलोप:। छान्दसो वर्णलोपो वेतीकारलोप:। (युवम्) युबाम् (च) (रभ्यसः) अतिशयेन रभस्विनः सततं प्रौढपुरुषार्थान्। पूर्ववदस्यापि सिद्धिः (नः) अस्मान्यस्या

अन्वयः – हे दस्राश्विनावध्यापकोपदेशकावहं युवं युवां सह्यसो रभ्यसः पाक्या देवान्नेव वषट्कृतस्याद्धृतस्य विज्ञानाय प्रश्नान् विपृच्छामि युवां च तान् समाधत्तम्। यतोऽहं भवन्तौ सेवे युवां च नोऽस्मान् पातम्॥४॥

भावार्थ:-विद्वांसो नित्यमाबालवृद्धान् प्रति सिद्धान्तविद्या उपदिशेयुर्यतस्तेषां रक्षोत्रती स्यानाम् भे च तान् सेवित्वा सुशीलतया पृष्ट्वा समाधानानि दधीरन्। एवं परस्परोपकारेण सर्वे सुखिन स्यः॥ रा

पदार्थ:-हे (दस्ना) दुःखों के दूर करने, पढ़ाने और उपदेश करनेहारे विद्वानों! मैं (युवम्) तुम दोनों को (सह्यस:) अतीव विद्याबल से भरे हुए (रभ्यस:) अत्यन्त उत्तम पुरुषार्थ युक्त (पाक्या) विद्या और योग के अभ्यास से जिनकी बुद्धि पक गई उन (देवान्) विद्वानों के (न) समान (क्यट्कृतस्य) क्रिया से सिद्धि किये हुए शिल्पविद्या से उत्पन्न होनेवाले (अद्भुतस्य) आश्चर्य कृप काम के विज्ञान के लिये प्रश्नों को (वि, पृच्छामि) पूछता हूं (च) और तुम दोनों उनके उत्तर देओ, जिससे में तुम्हारी सेवा करता हूं (च) और तुम (न:) हमारी (पातम्) रक्षा करो॥४॥

भावार्थ:-विद्वान् जन नित्य बालक आदि वृद्ध पर्य्यन्त मृतुष्यों को सिद्धान्त विद्याओं का उपदेश करें, जिससे उनकी रक्षा और उन्नित होवे और वे भी उनकी सेवा कर अच्छे स्वभाव से पूछ कर विद्वानों के दिये हुए समाधानों को धारण करें, ऐसे हिलमिल के एक न्हूसरे के उपकार से सब सुखी हों॥४॥

पुनस्तमेव विषयमाह।

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

प्र या घोषे भृगवाणे न शोभे यया वाची यजेति पश्चियो वाम्। प्रेष्ट्युर्न विद्वान्॥५॥२२॥ प्रा या। घोषे। भृगवाणे। न। शोभे। यस्मे वाचा यजेति। पुत्रियः। वाम्। प्रा इष्टरयुः। न। विद्वान्॥५॥

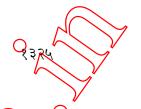
पदार्थ:-(प्र) (या) विदुषी (योष) उत्तमायां वाचि (भृगवाणे) यो भृगुः परिपक्वधीर्विद्वानिवाचरित तस्मिन्। भगुशब्दाचारे क्विप् ततो नामधातोर्व्यत्ययेनात्मनेपदे शानच् छन्दस्युभयथेति शानच् आर्द्धधानुकद्वाद गुणः। (न) इव (शोभे) प्रदीप्तो भवेयम् (यया) (वाचा) विद्यासुशिक्षायुक्तया वाण्या (यप्ति) पूजयि (पज्रियः) यः पज्रान् प्राप्तव्यान् बोधानर्हति सः (वाम्) युवाम् (प्र) (इषयुः) इष्यते सर्वेजनिविज्ञायत यत्तद्याति प्राप्नोतीति। इष धातोर्ध्वअर्थे कविधानिमिति कः। तस्मिन्नुपपदे याधातोरीणाद्विवः कुः (न) इव (विद्वान्)॥५॥

अन्वय:-हे अश्वनौ! पित्रिय इषयुर्विद्वान्न यया वाचा वां प्रजयित तयाऽहं शोभे या विदुषी स्त्री भृगवाणे घोषे यजित न दृश्यते तुयाऽहें तां प्रयज्यम्॥५॥

भानार्थः अञ्चीपमालङ्कारः। हे अध्यापकोपदेशकौ! भवन्तावाप्तवत्सर्वस्य कल्याणाय नित्यं प्रवर्तेताम् एवं विदुषी स्त्र्यपि। सर्वे जना विद्याधर्मसुशीलतादियुक्ताः सन्तः सततं शोभेरन्। नैव कोऽपि विद्वान्नविदुष्पा स्त्रिया सह विवाहं कुर्यात्, न कापि खलु मूर्खेण सह विदुषी च, किन्तु मूर्खो मूर्खया विद्वान् विदुष्पा च सह सम्बन्धं कुर्यात्॥५॥

अष्टक-१। अध्याय-८। वर्ग-२२-२३

मण्डल-१। अनुवाक-१७। सूक्त-१२०



पदार्थ: - हे समस्त विद्याओं में रमे हुए पढ़ाने और उपदेश करनेहारे विद्वानों! (पितृष्ट:) पाने योग्य बोधों को प्राप्त (इषयु:) सब जनों के अभीष्ट सुख को प्राप्त होनेवाला मनुष्य (विद्वान) विद्यापान् सज्जन के (न) समान (यया) जिस (वाचा) वाणी से (वाम्) तुम्हारा (प्र, यजित) अच्छा से कार करता है, उस वाणी से मैं (शोभे) शोभा पाऊं, (प्र) जो विदुषी स्त्री (भृगवाणे) अच्छे गुण्णों से पक्की सुद्धिवाले विद्वान् के समान आचरण करनेवाले में (घोषे) उत्तम वाणी के निमित्त सत्कार करती (न) सी दीखती है, उस वाणी से मैं उक्त स्त्री का (प्र) सत्कार करूं॥५॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे पढ़ाने उपदेश करनेहिए किहाने) आप उत्तम शास्त्र जाननेहारे श्रेष्ठ सज्जन के समान सबके सुख के लिये नित्य प्रवृत्त रहीं, ऐसे विदुषी स्त्री भी हो। सब मनुष्य विद्याधर्म और अच्छे शीलयुक्त होते हुए निरन्तर शोभायुक्त हों। कोई विद्वान् मूर्ख स्त्री के साथ विवाह न करे और न कोई पढ़ी स्त्री मूर्ख के साथ विवाह करें, किन्तु मूर्ख मूर्ख से और विद्वान् मनुष्य विदुषी स्त्री से सम्बन्ध करें॥५॥

पुनरध्ययनाध्यापनविधिक्रच्यते।

फिर पढ़ने-पढ़ाने की विधि का उपदेश आले मन्त्र में कहा है॥

श्रुतं गायत्रं तक्वेवानस्याहं चिद्धि रिरेभाश्चिना वाम्। आक्षी श्रुभस्पती दन्॥६॥ श्रुतम्। गायत्रम्। तक्वेवानस्य। अहम्। चित्। हि। रिरेभा अश्विना। वाम्। आ। अक्षी इति। श्रुभःऽपती इति। दन्॥६॥

पदार्थ:-(श्रुतम्) (गायत्रम्) गायन्ते त्रातृविज्ञानम् (तकवानस्य) प्राप्तविद्यस्य। गत्यर्थात् तकधातोरौणादिक उ: पश्चाद् भृगवीप्पवत्। (अहम्) (चित्) अपि (हि) खलु (रिरेभ) रेभ उपदिशानि। व्यत्ययेन परस्मैपदम्। (अश्रिना) विद्याप्रप्रकावध्यापकोपदेष्टारौ (वाम्) युवाम् (आ) (अश्ली) रूपप्रकाशके नेत्रे इव (श्रुभस्पती) धर्मस्य पालकौ (दन्) ददन्। डुदाञ् धातोः शतिर छन्दिस वेति वक्तव्यिमिति द्विवर्चनाभाव सार्वेष्ठानुकत्वान् डित्वमार्द्धधातुकत्वादाकारलोपश्च॥६॥

अन्वय:-हे अक्षी इव चूर्तम्ग्रीनौ शुभस्पती अश्विना! वां युवयोः सकाशात् तकवानस्य चिदपि गायत्रं श्रतुमादन्नहं हि रिरेभा।६॥ 🗘 🕜

भावार्थः अत्रे वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। मनुष्यैर्यदाप्तेभ्योऽधीयते श्रूयते तत्तदन्येभ्यो नित्यमध्याप्यमुषदेशतीयं च। यथाऽन्येभ्यः स्वयं विद्यां गृह्णीयात् तथैव प्रदद्यात्। नो खलु विद्यादानेन सदृशोऽन्यः कश्चिदपि धर्मोऽधिको विद्यते॥६॥

पदार्थ:-हे (अक्षी) रूपों के दिखानेहारी आँखों के समान वर्त्तमान (शुभस्पती) धर्म के पालने और (अश्विना) विद्या की प्राप्ति कराने वा उपदेश करनेहारे विद्वानो! (वाम्) तुम्हारे तीर से (तकवानस्य)

विद्या पाये विद्वान् के (चित्) भी (गायत्रम्) उस ज्ञान को जो गानेवाले की रक्षा करता है वा (श्रुतम्) सुन हुए उत्तम व्यवहार को (आ, दन्) ग्रहण करता हुआ (अहम्) मैं (हि) ही (रिरेभ) उपदेश करूं॥६॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि जो-जो उत्तम विद्वानी से पढ़ा वा सुना है, उस-उस को औरों को नित्य पढ़ाया और उपदेश किया करें। मनुष्य जैसे औरों से विद्या पावे, वैसे ही देवे, क्योंकि विद्यादान के समान कोई और धर्म बड़ा नहीं है॥६॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

युवं ह्यास्तं महो रन् युवं वा यन्निरतंतसतम्। ता नो वसू सुगोपा स्यति पातं नो वृक्तांदघायोः॥७॥ ध

युवम्। हि। आस्त्रम्। महः। रन्। युवम्। वा। यत्। निःऽअर्वतंस्तम्। तत्। नः। वसू इति। सुऽगोपा। स्यातम्। पातम्। नः। वृक्षात्। अघुऽयोः॥७॥

पदार्थ:-(युवम्) युवाम् (हि) किल (आस्तम्) आमुधाम्। च्युत्ययेन परस्मैपदम्। (महः) महतः (रन्) ददमानौ। दन्वदस्य सिद्धिः। (युवम्) युवाम् (वा) पक्ष्मितरे (यत्) (निरततंसतम्) नितरां विद्यादिभिर्भूषणैरलंकुरुतम्। (ता) तौ (नः) अस्मान् (वस्) कस्मियतारौ (सुगोपा) सुष्टुरक्षकौ (स्यातम्) (पातम्) पालयतम् (नः) अस्माकम् (वृकात्) स्तुज्ञत् (अघारोः) आत्मनोऽन्यायाचरणेनाघिमच्छतः॥७॥

अन्वयः-हे वसू अश्विनौ! रन् यौ युवं यद्मस्तं घा युवं)माऽस्माकं सुगोपा स्यातं तौ महोऽघायोर्वृकान्नोऽस्मान् पातं ता हि युवां निरततंसतं च॥७॥

भावार्थ:-यथा सभासेनेशौ च्रोरादिभयाते। प्रजास्त्रायेतां तथैतौ सर्वैः पालनीयौ स्याताम्। सर्वे धर्मेष्वासीनाः सन्तोऽध्यापकोपदेशक्रशिक्षका अधर्मं विनाशयेयु:॥७॥

पदार्थ: -हे (वसू) निवृद्ध करानेहार अध्यापक-उपदेशको! (रन्) औरों को सुख देते हुए जो (युवम्) तुम (यत्) जिस पर (आस्तम्) हैंटो (वा) अथवा (युवम्) तुम दोनों (नः) हम लोगों के (सुगोपा) भली भांति रहा करनेहारे (स्यातम्) होओ, वे (महः) बड़ा (अधायोः) जो कि अपने को अन्याय करने से पाप चाहता (वृद्धात्) उस चोर डाकू से (नः) हम लोगों को (पातम्) पालो और (ता) वे (हि) ही आप दोनों (निर्वृतंसतम्) विद्या आदि उत्तम भूषणों से परिपूर्ण शोभायमान करो॥७॥

भावार्थ:- जैसे सभा, सेनाधीश, चोर आदि के भय से प्रजाजनों की रक्षा करें, वैसे ये भी सब प्रजाजनों के पालने करने योग्य होवें। सब अध्यापक, उपदेशक तथा शिक्षक आदि मनुष्य धर्म में स्थिर हुए अध्यम् का विनाश करें॥७॥

अथ राजधर्ममाह॥

अब राजधर्म का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

अष्टक-१। अध्याय-८। वर्ग-२२-२३

मण्डल-१। अनुवाक-१७। सूक्त-१२० Q320

मा कस्मै धातम्भ्यमित्रिणे नो माकुत्रा नो गृहेभ्यो धेनवी गुः। स्तुनाभुजो अशिश्वीः॥८॥

मा। कस्मै। धातुम्। अभि। अमित्रिणे। नुः। मा। अकुत्री। नुः। गृहेभ्यः। धेनवर्ः। गुः। स्तुनुऽभुजीः। अभिश्वीः॥८॥

पदार्थ:-(मा) निषेधे (कस्मै) (धातम्) धरतम् (अभि) आभिमुख्ये (अमित्रिणे) अविद्यमानानि मित्राणि सखायो यस्य तस्मै जनाय (नः) अस्मान् (मा) (अकुत्र) अविषये अत्र ऋचि तुनु इति दीर्घः। (न) अस्माकम् (गृहेभ्यः) प्रासादेभ्यः (धेनवः) दुग्धदात्रयो गावः (गृहेभ्यः) प्राप्तुवन्तु (स्तनाभुजः) दुग्धयुक्तैः स्तनैः सवत्सान् मनुष्यादीन् पालयन्त्यः (अशिश्वीः) वत्सरहिताः। (मा

अन्वयः-हे रक्षकाश्विनौ सभासेनेशौ! युवां कस्मैचिदप्यमित्रिणे नाउस्पान् माभिधातम्। भवद्रक्षणेन नोऽस्माकं स्तनाभुजो धेनवोऽशिश्वीर्मा भवन्तु ता अस्माकं गृहेभ्योऽकुत्र मा गुः॥८॥

भावार्थ:-प्रजाजना राजजनानेवं शिक्षेरत्रस्मात् शत्र्वी मा षीक्रथेयुरस्माकं गवादिपशून् मा हरेयुरेवं भवन्तः प्रयतन्तामिति॥८॥

पदार्थ:-हे रक्षा करनेहारे सभासेनाधीश। तुम लोग (कस्मै) किसी (अमित्रिणे) ऐसे मनुष्य के लिये कि जिसके मित्र नहीं अर्थात् सबका अन्तु (न:) हम लोगों को (मा) मत (अभिधातम्) कहो, आपकी रक्षा से (न:) हम लोगों की (स्तनाभुजः) दूध भर हुए थनों से अपने बछड़ों समेत मनुष्य आदि प्राणियों को पालती हुई (धेनवः) गौयें (अशिधीः) ब्रेछड़ों से रहित अर्थात् वन्ध्या (मा) मत हों और वे हमारे (गृहेभ्यः) घरों से (अकुत्र) विदेश में मत् (गुः) पहुंचे॥८॥

भावार्थ:-प्रजाजन राज्यनी को ऐसी शिक्षा देवें कि हम लोगों को शत्रुजन मत पीड़ा दें और हमारे गौ, बैल, घोड़े आदि पशुर्भी को न चोर लें, ऐसा आप यत्न करो॥८॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

ष्मिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

दुहीयन् मित्रधितये युवाकु राये च नो मिमीतं वाजवत्यै। इषे च नो सिमीतं धेनुमत्यै॥ ९॥

दु<u>र्हीयन्। स्मित्र</u>ऽधितये। युवाकुं। राये। च। नः। मिमीतम्। वार्जंऽवत्ये। इषे। च। नः। मिमीतम्। धेनुऽमत्येभ्र

पदार्थ:-(दुहीयन्) या दुग्धादिभि: प्रिपपुरित। दुह धातोरौणादिक इ: किच्च तस्मात् इयजन्तरुलेड् बहुवचनम्। (मित्रधितये) मित्राणां धितिर्धारणं यस्मात् तस्मै (युवाकु) सुखेन मिश्रिताय

१३२८

दु:खै: पृथग्भूताय वा। **सुणां सुलुगि**ति विभिक्तिलुक्। (राये) धनाय (च) (नः) अस्माकम् (मिमीतम्) मन्येथाम् (वाजवत्ये) वाजः प्रशस्तं ज्ञानं विद्यते यस्यां तस्यै (इषे) इच्छायै (च) (नः) अस्मान् (मिमीतम्) (धेनुमत्यै) गो: संबन्धिन्यै॥९॥

अन्वय:-हे अश्विनौ सभासेनाधीशौ! युवां या गावो दुहीयँस्ता नोऽस्माकं मित्रधितये युवाकु रारे च जौवनाय मिमीतम्। वाजवत्यै धेनुमत्या इषे च नोऽस्मान् मिमीतं प्रेरयतम्॥९॥

भावार्थ:-ये गवादयः पशवो मित्रपालनज्ञानधननिमित्ता भवेयुस्तान् मनुष्याः सततं रक्षेयुः सर्वान् पुरुषार्थाय प्रवर्त्तयेयुः, यतः सुखसंयोगो दुःखिवयोजनं च स्यात्॥९॥

पदार्थ: - हे सब विद्याओं में व्याप्त सभासेनाधीशो! तुम दोनों जो मौरें (दुहीयन्) दूध आदि से पूर्ण करती हैं, उनको (न:) हमारे (मित्रधितये) जिससे मित्रों की धारणा हो तथा (चुवाकु) सुख से मेल वा दु:ख से अलग होना हो, उस (राये) धन के (च) और जीने के लिये (मिमीतम्) मानो तथा (वाजवत्ये) जिसमें प्रशंसित ज्ञान वा (धेनुमत्ये) गौ का संबन्ध विद्यमान है, उसके (च) और (इषे) इच्छा के लिये (न:) हमको (मिमीतम्) प्रेरणा देओ अर्थात् पहुँचाओ है।

भावार्थ:-जो गौ आदि पशु, मित्रों की पालना, जीम और ध्वन के कारण हों, उनको मनुष्य निरन्तर राखें और सबको पुरुषार्थ के लिये प्रवृत्त करें, जिससे सुख का मेल और दु:ख से अलग रहें॥९॥

पुनस्तुमेव विषयमाहै॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अश्विनोरसन् रथमनुश्चं वाजिनीवतोः। तेनीहं भूरि चाकन॥ १०॥

अश्विनौ:। असुनुम्। रथम्। अनुश्विम्) वाजिनीर्विवतो:। तेने। अहम्। भूरि। चाकुनु॥ १०॥

पदार्थ:-(अश्विनो:) स्थासेनेश्य्यौ: (असनम्) संभजेयम् (रथम्) रमणीयं विमानादियानम् (अनश्चम्) अविद्यमानतुरङ्गम् (व्यक्तिनीवतो:) प्रशस्ता विज्ञानादियुक्ता सभा सेना च विद्यते ययोस्तयोः (तेन) (अहम्) (भूरि) बहु (च्यक्ते) प्रकाशितो भवेयम्। तुजादित्वादभ्यासदीर्घ:॥१०॥

अन्वय:-अहं वाजिनीकतोरिक्षनीर्यमनश्चं रथमसनं तेन भूरि चाकन॥१०॥

भावार्थः यानि भूजलान्तरिक्षगमनार्थानि यानानि निर्मितानि भवन्ति तत्र पशवो नो युज्यन्ते, किन्तु तानि जलाग्निकलायस्त्रादिभिरव चलन्ति॥१०॥

पदार्थ:-(अहम्) मैं (वाजिनीवतो:) जिनके प्रशंसित विज्ञानयुक्त सभा और सेना विद्यमान हैं, उन (अश्विनो:) सभासेनाधीशों के (अनश्वम्) अनश्व अर्थात् जिसमें घोड़ा आदि नहीं लगते (रथम्) उस रमण् करने योग्य विमानादि यान का (असनम्) सेवन करूं और (तेन) उससे (भूरि) बहुत (चाकन) प्रकाशित होऊं।।१०॥

अष्टक-१। अध्याय-८। वर्ग-२२-२३

मण्डल-१। अनुवाक-१७। सूक्त-१२०



भावार्थ:-जो भूमि, जल और अन्तरिक्ष में चलने के विमान आदि यान बनाये जाते हैं उनमें पशु नहीं जोड़े जाते, किन्तु वे पानी और अग्नि के कलायन्त्रों से चलते हैं॥१०॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अयं समह मा तनूह्याते जनाँ अनुं। सोमपेयं सुखो रथः॥११॥

अयम्। समह। मा। तुनु। ऊह्याते। जर्नान्। अनु। सोमुऽपेर्यम्। सुऽख:। रथ्ना ११॥

पदार्थ:-(अयम्) (समह) यो महेन सत्कारेण सह वर्त्तते तत्सम्बुद्धी (मा) माम् (तनु) विस्तृणुहि (ऊह्याते) देशान्तरं गम्येते (जनान्) (अनु) (सोमपेयम्) सोमैरेश्वर्ययुक्तैः पत्तुं योग्यं रसम् (सुखः) शोभनानि खान्यवकाशा विद्यन्ते यस्मिन् सः (रथः) रमणाय तिष्ठित् यस्मिन्। ११॥

अन्वय:-हे समह विद्वँस्त्वं योऽयं सुखो रथोऽस्ति, येनाश्विनावनूह्याते क्रेन मा जनान् सोमपेयं च सुखेन तनु॥११॥

भावार्थ:-योऽनुत्तमयानकारी शिल्पी भवेत् स सर्वै: सक्तिर्व्योऽस्ति॥११॥

पदार्थ:-हे (समह) सत्कार के साथ वर्तान बिद्धानः! आप जो (अयम्) यह (सुखः) सुख अर्थात् जिसमें अच्छे-अच्छे अवकाश तथा (र्थाः) रमण बिहार करने के लिये जिसमें स्थित होते, वह विमान आदि यान है, जिससे पढ़ाने और उपदेश करनेहार (अनूहाते) अनुकूल एकदेश से दूसरे देश को पहुंचाए जाते हैं, उससे (मा) मुझे (जनार्ध) वा मनुष्यों अथवा (सोमपेयम्) ऐश्वर्य्ययुक्त मनुष्यों के पीने योग्य उत्तम रस को (तन्) विस्तारो अर्थात् उत्ति देओ॥११॥

भावार्थ:-जो अत्यन्त उन्नम् अधीत् जिससे उत्तम और न बन सके, उस यान का बनाने वाला शिल्पी हो, वह सबको सत्कार करने योग्य है। ११॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अध् स्वप्नस्य निर्विदेशभुञ्चतश्च रेवतः। उभा ता बिस्न नश्यतः॥१२॥२३॥१७॥

अर्थ। स्वप्निस्त्र। निः विद्रे। अर्भुञ्जतः। चृ। रेवतः। उभा। ता। बस्त्रि। नुश्युतः॥ १२॥

पदार्थ:-(अध) अथ (स्वापस्य) निद्रायाः (निः) (विदे) प्राप्नुयाम् वाच्छन्दसीति नुमभावः। (अभुञ्जतः) स्वयमप्रि भोगमकुर्वतः (च) (रेवतः) श्रीमतः (उभा) द्वौ (ता) तौ (बिस्न) सुखस्तम्भनात्। बसुस्तम्भ इत्यस्मादौणादिको रिक् विभिक्तलुक्च। (नश्यतः) अदर्शनं प्राप्नुतः॥१२॥

अन्वयः-अहं स्वप्नस्याभुञ्जतो रेवतश्च सकाशान्निर्विदे निर्विण्णो भवेयमधोभा यौ पुरुषार्थहीनौ स्तस्ता बैस्नि नश्यतः॥१२।

भावार्थ:-य ऐश्वर्यवानदाता यो दरिद्रो महामनास्तावलिसनौ सन्तौ दुख:भागिनौ सर्ति भवतः तस्मात् सर्वै: पुरुषार्थे प्रयतितव्यम्॥१२॥

अत्र प्रश्नोत्तराध्ययनाध्यापनराजधर्मविषयवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गितिरस्तीति वेदितव्यम्॥

इति विंशत्युत्तरशततमं १२० सूक्तं सप्तदशोऽनुवाकः १७ त्रयोविंशो २ इ वर्गश्च संसाप्तः॥

पदार्थ:-मैं (स्वप्नस्य) नींद (अभुञ्जत:) आप भी जो नहीं भोगता इस (च) और (रेवत:) धनवान् पुरुष के निकट से (निर्विदे) उदासीन भाव को प्राप्त होऊं (अध्य) इसके अनन्तर जो (उभा) दो पुरुषार्थहीन हैं (ता) वे दोनों (बिस्न) सुख के रुकने से (नश्यत:) नष्ट होते हैं ॥ २॥

भावार्थ:-जो ऐश्वर्यवान् न देनेवाला वा जो दिरद्री उदार्गित है, वे दोनों आलसी होते हुए दु:ख भोगनेवाले निरन्तर होते हैं, इससे सबको पुरुषार्थ के निमित्त अवस्थ यत्न करना चाहिये॥१२॥

इस सूक्त में प्रश्नोत्तर, पढ़ने-पढ़ाने और राजधार्य के किएक) का वर्णन होने से इसके अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति समझनी चाहिये॥

यह एक सौ बीसवां १२० सूक्त, सत्रहवां २७ अनुकाक और तेईसवां २३ वर्ग पूरा हुआ॥

अथास्य पञ्चदशर्चस्यैकविंशत्युत्तरशततमस्य सूक्तस्यौशिजः कक्षीवान् ऋषिः। विश्वेदेवा इन्द्रश्च

देवता:। १,७,१३ भुरिक्पङ्क्तिश्छन्द:। पञ्चम: स्वर:। २,८,१० त्रिष्टुप्।

३,४,६,१२,१४,१५ विराट् त्रिष्टुप्। ५,९,११ निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

तत्रादौ स्त्रीपुरुषाः कथं वर्तेरन्नित्युपदिश्यते।

अब १५ ऋचावाले एक सौ इक्कीसवें सूक्त का आरम्भ है। उसके पहिले मन्त्र में स्त्रीपुरूष केसे वर्त्ताव वर्तें, यह उपदेश किया है।।

कदित्था नृः पात्रं देवयतां श्रवृद्गिरो अङ्गिरसां तुर्ण्यन्।

प्र यदानुड्विश् आ हुर्म्यस्योरु क्रंसते अध्वरे यर्जन्रः॥ १॥

कत्। इत्था। नृन्। पात्रम्। देव्ऽयताम्। श्रवत्। गिरः। अङ्गिरसाम्। सुर्णयन्। प्राचित्। आर्नट्। विश्नः। आ। हर्म्यस्य। उरु। क्रंसते। अध्वरे। यर्जत्रः॥ १॥

पदार्थ:-(कत्) कदा। छान्दसो वर्णलोपो वेत्याकारलीपः। (झ्रथा) अनेन प्रकारेण (नृन्) प्राप्तव्यशिक्षान् (पात्रम्) पालनम् (देवयताम्) कामयमानानाम् (श्रवत्) श्रृणुयात् (गिरः) वेदविद्याशिक्षिता वाचः (अङ्गिरसाम्) प्राप्तविद्यासिद्धान्तरसानाम् (तुरण्यन्) त्वरिष् (प्रे) (यत्) याः (आनट्) अश्नुवीत। व्यत्ययेन शनम् परस्मैपदं च। (विशः) प्रजाः (आ) (हर्ष्यस्य) न्यायगृहस्य मध्ये (उरु) बहु (क्रंसते) क्रमेत (अध्वरे) अहिंसनीये प्रजापालनाख्ये व्यवहारे (यज्ञः) सङ्गमकर्त्ता॥१॥

अन्वय:-हे पुरुष! त्वमध्वरे यजत्रस्तुरण्यह्म सन् यथा जिज्ञासुर्नृन् पात्रं कुर्याद् देवयतामङ्गिरसां यद्या गिरः श्रवत्ता इत्था कच्छ्रोष्यसि। यथा च धार्मिको राज्ञा हर्म्यस्य मध्ये वर्त्तमानः सन् विनयेन विशः प्रानडुर्वाक्रंसत इत्था कद्भविष्यसि॥१॥

भावार्थ:-अत्र लुप्तोपमालङ्कीरः। है स्त्रीपुरुषौ! यथा आप्ताः सर्वान् मनुष्यादीन् सत्यं बोधयन्तोऽसत्यात्रिवारयन्तः सुक्रिक्षन्ते तथा स्वापत्यादीन् भवन्तः सततं सुशिक्षन्ताम्। यतो युष्माकं कुलेऽयोग्याः सन्तानाः कदाचित्र जायेरन्॥१॥

पदार्थ:-हे पुरुष ते (अध्वरे) न विनाश करने योग्य प्रजापालन रूप व्यवहार में (यजत्रः) सङ्ग करनेवाला (तुरण्यन्) शिष्ट्रित काला हुआ जैसे ज्ञान चाहनेहारा (नृन्) सिखाने योग्य बालक वा मनुष्यों की (पात्रम्) पालना करे तथा (देवयताम्) चाहते (अङ्गिरसाम्) और विद्या के सिद्धान्त रस को पाये हुए विद्वानों की (यत्) जिन (गिरः) वेदविद्या की शिक्षारूप वाणियों को (श्रवत्) सुने, उनको (इत्था) इस प्रकार से (कत्) कुक सुप्तेगा और जैसे धर्मात्मा राजा (हर्म्यस्य) न्यायघर के बीच वर्त्तमान हुआ विनय से (विशः) प्रजाजनों को (प्रानट्) प्राप्त होवे (उरु) और बहुत (आ, क्रंसते) आक्रमण करे अर्थात् उनके व्यवहारों में बुद्धि को दौड़ावे, इस प्रकार का कब होगा॥१॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है। हे स्त्री पुरुषो! जैसे शास्त्रवेत्ता विद्वान् सब मनुष्यादि को सत्य बोध कराते और झूठ से रोकते हुए उत्तम शिक्षा देते हैं, वैसे अपने सन्तान आदि को आप निरन्तर अच्छी शिक्षा देओ, जिससे तुम्हारे कुल में अयोग्य सन्तान कभी न उत्पन्न हो॥१॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

स्तम्भीद्ध द्यां स ध्रुरुणं प्रुषायदृभुर्वाजाय द्रविणं नरो गोः। अनुं स्वजां महिषश्चेक्षत व्रां मेनामश्चस्य परि मातरं गोः॥२॥

स्तम्भीत्। हु। द्याम्। सः। धुरुणम्। प्रुषायत्। ऋभुः। वार्जायः। द्रविणम्। नरेः। जोः। अनुं। स्वऽजाम्। मृहिषः। चुक्षुत्। ब्राम्। मेनाम्। अश्वस्य। परिं। मातर्रम्। गोः॥२॥

पदार्थ:-(स्तम्भीत्) धरेत्। अडभावः। (ह) खलु (द्याम्) प्रकाशम् (सः) मनुष्यः (धरुणम्) उदकम्। धरुणिमत्युदकनामसु पठितम्। (निघं०१.१२) (प्रृष्णायत्) प्रुष्णियात् सिञ्चेत्। अत्र शायच्। (ऋभुः) सकलविद्याजातप्रज्ञो मेधावी (वाजाय) विज्ञानायात्र्यस्य वा (द्रिवणम्) धनम् (नरः) धर्मविद्यानेता (गोः) पृथिव्याः (अनु) (स्वजाम्) स्वात्मजनिताम् (महिषः महिषः) महिष् इति महन्नामसु पठितम्। (निघं०३.३) (चक्षत) चक्षीत। अत्र शपोऽलुक्। (क्षाम्) वरितुमहीम्। वृज् धातोर्घजर्थे कः। (मेनाम्) विद्यासुशिक्षाभ्यां लब्धां वाचम् (अश्वस्य) व्याप्तुमहस्य राज्यस्य (पिर) सर्वतः (मातरम्) मातृवत्पालिकाम् (गोः) भूमेः॥२॥

अन्वय:-यथा महिष: सूर्यो गोर्धर्ताऽस्ति तथा ऋभुर्ग्रो वाजायाश्वस्य स्वजां व्रां मातरं मेनां परि चक्षत यथा वा स सूर्य्यो द्यां स्तम्भीत्तथा सह गोर्मध्ये द्रविणं वर्धियत्वा क्षेत्रं धरुणमिवानु प्रुषायत्॥२॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्त्रोपमोसङ्कार:। य आप्तविद्वत्सङ्गेन विद्यां विनयन्यायादिकं च धरेत्स सुखेन वर्धेत महान् पूज्यश्च स्यात्त्रारा।

पदार्थ:-जैसे (महिप्ः) बड़ा सूर्य (गोः) भूमि का धारण करनेवाला है, वैसे (ऋभुः) सकल विद्याओं से युक्त आप्तृह्धि मेधावी (नरः) धर्म और विद्या की प्राप्ति करानेवाला सज्जन (वाजाय) विज्ञान वा अन्न के लिये (अध्यस्य) व्याप्त होने योग्य राज्य की (स्वजाम्) आप से उत्पन्न की गई (व्राम्) स्वीकार करने के योग्य (मातरम्) माता के समान पालनेवाली (मेनाम्) विद्या और अच्छी शिक्षा से पाई हुई वाणी को (परि, चक्षत) सब ओर से कहे वा जैसे सूर्य्य (द्याम्) प्रकाश को (स्तम्भीत्) धारण करे, वैसे (स, ह) वही (गोः) पृथिवी पर (द्रविणम्) धन को बढ़ा खेत को (धरुणम्) जल के समान (अनु, प्रायात्) सींचा करें॥२॥

अष्टक-१। अध्याय-८। वर्ग-२४-२६

मण्डल-१। अनुवाक-१८। सूक्त-१२१ Q323

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो आप्त अर्थात् उत्तम शास्त्री विद्वान के संग्र से विद्या, विनय और न्याय आदि का धारण करे, वह सुख से बढ़े और बड़ा सत्कृत करने योग्य हो॥२॥

अथ राजधर्मविषयमाह॥

अब राजधर्म विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

नक्ष्द्भद्वं मरुणीः पूर्व्यं राट् तुरो विशामङ्गिरसामनु द्यून्। तक्ष्दुद्वं नियुतं तुस्तम्भद् द्यां चतुष्यदे नर्याय द्विपादे॥३॥

नक्षंत्। हर्वम्। अ्रुणीः। पूर्व्यम्। राट्। तुरः। विशाम्। अङ्गिरसाम्। अङ्गी द्यूना तक्षंत्। वर्ष्रम्। निऽयुंतम्। तुस्तम्भत्। द्याम्। चतुःऽपदे। नर्याय। द्विऽपादे॥ ३॥

पदार्थ:-(नक्षत्) प्राप्नुयात् (हवम्) दातुमादातुमर्हं न्ययम् (असुणी:) उषसोऽरुण्यो दीप्तय इव वर्त्तमानराजनीती: (पूर्व्यम्) पूर्वेविद्वद्भिः कृतमनुष्ठितम् (गट्) राज्यो सः (तुरः) त्वरितोऽनलसः सन् (विशाम्) पालनीयानां प्रजानाम् (अङ्गिरसाम्) अङ्गानां रसप्राप्णवत् प्रियाणाम् (अनु) (द्यून्) दिनानि (तक्षत्) तीक्ष्णीकृत्य शत्रून् हिंस्यात् (वज्रम्) श्रास्त्रासम्हन् (नियुतम्) नित्यं युक्तम् (तस्तम्भत्) स्तभ्नीयात् (द्याम्) विद्यान्यायप्रकाशम् (चतुष्पद्दे) गवाद्याय पशवे (नर्य्याय) नृषु साधवे (द्विपादे) मनुष्याद्याय।३॥

अन्वय:-यस्तुरो मनुष्यो विद्वान् चतुष्पदे द्विषदे नर्य्याय चानुद्यून् पूर्व्यं हवमुषसो दीप्तय इवारुणीश्च नक्षद् वियुतं वज्रं तक्षद् द्यां तस्तम्भत् सोऽङ्गिरसां विशां मध्ये गृह् भवति॥३॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। ये मनुष्या विनयादिभिर्मनुष्यादीन् गवादींश्चातीताप्तराजवद् रक्षन्त्रमस्यायेन कंचित्र)हिंसन्ति त एव सुखानि प्राप्नुवन्ति नेतरे॥३॥

पदार्थ:-जो (तुरः) तुरन्त आलस्य छोंड़े हुए विद्वान् मनुष्य (चतुष्पदे) गोआदि पशु वा (द्विपादे) मनुष्य आदि प्राणियों व (चर्याय) मनुष्यों में अति उत्तम महात्माजन के लिये (अनु, द्वून्) प्रतिदिन (पूर्व्यम्) अगले विद्वानों ने अनुष्ठान किये हुए (हवम्) देने-लेने योग्य और (अरुणी:) प्रातः समय की वेला लाल रंगवाली उजेलि के समान राजनीतियों को (नक्षत्) प्राप्त हो (नियुतम्) नित्य कार्य में युक्त किये हुए (वज्रम्) शस्त्र-अस्त्रों को (तक्षत्) तीक्ष्ण करके शत्रुओं को मारे तथा उनके (द्वाम्) विद्या और न्याय के प्रकाश को (तस्तम्भत्) निबन्ध करे, वह (अद्गिरसाम्) अङ्गों के रस अथवा प्राण के समान प्यारे (विश्वाम्) प्रजाजनों के बीच (राट्) प्रकाशमान राजा होता है॥३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य विनय आदि से मनुष्य आदि प्रणि और गौ आदि पशुओं को व्यतीत हुए आप्त, निष्कपट, सत्यवादी राजाओं के समान पालते और अन्याय से किसी को नहीं मारते हैं, वे ही सुखों को पाते हैं, और नहीं॥३॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अस्य मदे स्वर्यं दा ऋतायापीवृतमुक्तियाणामनीकम्। यद्धे प्रसर्गे त्रिकुकुम्निवर्तदपु दुहो मानुषस्य दुरो वः॥४॥

अस्य। मदे। स्वर्यम्। दाः। ऋताये। अपिऽवृतम्। उस्त्रयोणाम्। अनीवस्। कत्। हुः) प्रऽसर्गे। त्रिऽक्कुप्। निऽवर्तत्। अपे। दुहैः। मानुषस्य। दुरेः। वरिति। वः॥४॥

पदार्थ:-(अस्य) प्रत्यक्षविषयस्य (मदे) आनन्दिनिमत्ते सित (स्वच्चेम्) स्वरेषु विद्यासु शिक्षितासु वाक्षु साधु (दा:) दद्यात्। अत्र पुरुषव्यत्ययः। (ऋताय) स्वत्यलक्षणान्त्रितायोदकाय वा (अपिवृतम्) सुखबलैर्युक्तम् (उस्त्रियाणाम्) गवाम् (अनीकम्) सैन्यम् (खत्) यः (इ) खलु (प्रसर्गे) प्रकृष्ट उत्पादने (त्रिककुप्) त्रिभिः सेनाध्यापकोपदेशकैर्युक्ताः ककुभो दिशो यस्य सः (निवर्त्तत्) निवर्त्तयेत्। व्यत्ययेन परस्मैपदम्। (अप) (दुहः) गोहिंसकान् शत्रृन् (मानुषस्य) मनुष्यजातस्य (दुरः) द्वाराणि (वः) वृणुयात्॥४॥

अन्वयः-यद्यस्त्रिककुम् मनुष्योऽस्य मानुष्यिस्याणां त्र्यं प्रसर्गे मदे ऋतायापीवृतं स्वर्य्यमनीकं दाः। एतान् दुहो निवर्त्तत् दुरोऽपवः स ह सम्राड् भवितुं योग्युरे भवेत्।।४।)

भावार्थ:-त एव राजपुरुषा उत्तमि भविना ये प्रजास्थानां मनुष्यगवादिप्राणिनां सुखाय हिंसकान् मनुष्यान् निवर्त्य धर्मे राजन्ते परोप्रकारिषश्च सन्ति। येऽधर्ममार्गान्निरुध्य धर्ममार्गान् प्रकाशयन्ति त एव राजकर्माण्यर्हन्ति॥४॥

पदार्थ:-(यत्) जो (विक्रुप्) मनुष्य ऐसा है कि जिसकी पूर्व आदि दिशा सेना वा पढ़ाने और उपदेश करनेवालों से युक्त हैं (अस्य) इस प्रत्यक्ष (मानुषस्य) मनुष्य के (उस्त्रियाणाम्) गौओं के (प्रसर्गे) उत्तमता से उत्पन्न कराने रूप (मदे) आनन्द के निमित्त (ऋताय) सत्य व्यवहार वा जल के लिये (अपीवृतम्) सुख्र और बलों से युक्त (स्वर्य्यम्) विद्या और अच्छी शिक्षा रूप वचनों में श्रेष्ठ (अनीकम्) सेना को (दाः) (देवे बिथा इन (दुहः) गो आदि पशुओं के द्रोही अर्थात् मारनेहारे पशुहिंसक मनुष्यों को (निवर्त्तत्) रोके, हिंसा ने होने दे, (दुरः) उक्त दुष्टों के द्वारे (अप, वः) बन्द कर देवे (ह) वही चक्रवर्ती राजा होते को योग्य हैं॥४॥

अष्टक-१। अध्याय-८। वर्ग-२४-२६

मण्डल-१। अनुवाक-१८। सूक्त-१२१



भावार्थ:-वे ही राजपुरुष उत्तम होते हैं जो प्रजास्थ मनुष्य और गौ आदि प्राणियों के सूख के लिये हिंसक दुष्ट पुरुषों की निवृत्ति कर धर्म में प्रकाशमान होते और जो परोपकारी होते हैं। जो अध्रम मार्गों को रोक धर्म मार्गों को प्रकाशित करते हैं, वे ही राजकामों के योग्य होते हैं॥४॥﴿

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

तुभ्यं पयो यत् पितरावनीतां रार्धः सुरेतेस्तुरणे भुरण्यू। शुचि यत्ते रेक्ण आयंजन्त सबुर्दुर्घायाः पर्य उस्त्रियायाः॥५॥२५॥

तुभ्यम्। पर्यः। यत्। पितरौ। अनीताम्। रार्धः। सुऽरेतः। तुरणे। भुर्ण्यू इति। शुर्चि। यत्। ते। रेक्णः। आ। अर्यजन्त। सुबु:ऽदुर्घायाः। पर्यः। उस्त्रियायाः॥५॥

पदार्थ:-(तुभ्यम्) (पयः) दुग्धम् (यत्) यस्मै (पितरी) जननी जनकौ (अनीताम्) प्रापयेताम् (राधः) संसिद्धिकरं धनम् (सुरेतः) शोभनं रेतो वीर्य्यं यस्मिन्त् (तुरुणं) दुग्धादिपानार्थं त्वरमाणय। अत्र तुरण धातोः क्विप्। (भुरण्यू) धारणपोषणकर्तारौ (शुच्चि) पितृत्रं शुद्धिकारकम् (यत्) यस्मै (ते) तुभ्यम् (रेक्णः) प्रशस्तं धनमिव (आ) (अयजन्त) दद्व (सबर्दुष्ययाः) समानं सुखं बिभित्तं येन दुग्धेन तत्सबस्तद् दोग्धि तस्याः। अत्र समानोपपदाद् पृथ्धातोर्वित् वर्णव्यत्ययेन भस्य बः। (पयः) पातुमर्हम् (उस्चियायाः) धेनोर्गोः॥५॥

अन्वय:-हे सज्जन! यद्यस्मै तुरणे तुश्यं भुरण्यू पितरौ सुरेतः पयो राधश्चानीताम्। यद्यस्मै तुरणे ते तुश्यं दयालवो गोरक्षका मनुष्याः सबर्दुघाया उक्षिणयाः सुचि पयो रेक्णो धनं चायजन्तेव त्वमेतान् सततं सेवस्व कदाचिन्मा हिन्धि॥५॥

भावार्थ:-मनुष्या यथा मातापितृविदुषे सेवनेन धर्मेण सुखमाप्नुयुस्तथैव गवादीनां रक्षणेन धर्मेण सुखमाप्नुयु:। एतेषामप्रियाचरणं कद्मित्र कुर्यु:, कुत एते सर्वस्योपकारका सन्त्यत:॥५॥

पदार्थ: - हे सज्जि । (यत्) जिस (तुरणे) दूध आदि पदार्थ के पीने को जल्दी करते हुए (तुभ्यम्) तेरे लिये (भुरण्यू) धारण और पृष्टि करनेवाले (पितरौ) माता-पिता (सुरेत:) जिससे उत्तम वीर्य उत्पन्न होता उस (पय:) दूध और (राध:) उत्तम सिद्धि करनेवाले धन की (अनीताम्) प्राप्ति करावें और जैसे (यत्) दूध अदि के पीपे को जल्दी करते हुए जिस (ते) तेरे लिये दयालु गौ आदि पशुओं को राखनेवाले मनुष्य (सबर्दुधावाः) जिससे एकसा सुख धारण करना होता है, उस दूध को पूरा करनेहारी (उस्त्रियायाः) उत्तम पृष्टि देती हुई गौ के (शुचि) शुद्ध पवित्र (पय:) पीने योग्य दूध को (रेक्ण:)

प्रशंसित धन के समान (आ, अयजन्त) भली-भांति देवें, वैसे उन मनुष्यों की तू निरन्तर सेवा कर और उनके उपकार को कभी मत तोड़॥५॥

भावार्थ:-मनुष्य लोग जैसे माता-पिता और विद्वानों की सेवा से धर्म के साथ सुर्की की प्राप्त होवें, वैसे ही गौ आदि पशुओं की रक्षा से धर्म के साथ सुख पावें। इनके मन के विरुद्ध आचरण को कभी न करें, क्योंकि ये सबका उपकार करनेवाली प्राणी हैं, इससे॥५॥

पुनर्मनुष्याः कथं वर्त्तरन्नित्युपदिश्यते॥

फिर मनुष्य कैसे वर्तें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है

अध् प्र जीजे तुरिणिर्ममत् प्र रोच्यस्या उषसो न सूरेः। इन्दुर्येभिराष्ट्र स्वेदुहित्यैः स्रुवेणे सिञ्जञ्जरणाभि धार्म॥६११४८

१३३६

अर्थ। प्रा जुज्ञे। तुरिणीः। मुमुतु। प्रा ग्रेचि। अस्याः। उषसीः। ना सूर्रैः। इन्द्रैः। येभिः। आष्ट्री स्वऽइद्वीहव्यैः। स्रुवेणी सिञ्चन्। जुरणी। अभि। धीमा।६॥

पदार्थ:-(अध) अथ (प्र) (जज्ञे) जायताम् (तरिष्णः) दुःख्युत् पारगः सुखविस्तारकः (ममतु) आनन्द। अत्र विकरणस्य श्लुः। (प्र) (रोचि) जगित प्रकार्ध्येत् (अस्याः) गोः (उषसः) प्रभातात् (न) इव (सूरः) सिवता (इन्दुः) (येभिः) यैः (आष्ट्र) अश्नुवित्तः अत्र लिङि लुङ् विकरणस्य लुक्। (स्वेदुहव्यैः) स्वानि इदूनि ऐश्वर्याणि हव्यानि दातुमादातुं योग्यानि येश्यो हुग्धादिभ्यस्तैः (सुवेण) (सिञ्चन्) (जरणा) जरणानि स्तुत्यानि कर्माणि (अभि) (धाम) स्थानम् ॥६॥

अन्वयः-हे सत्कर्मानुष्ठातो! भवानुष्यः पूरो न येभिः स्वेदुहव्यैः स्रुवेण धामाभिसिञ्चन्निवास्या दुग्धादिभिः प्ररोचि। इन्दुः सन् जरणाष्ट तरणिः सन् ममत्तु अर्थ प्रज्जे प्रसिद्धौ भवतु॥६॥

भावार्थ:-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्काराँ। मनुष्या गवादीन् संरक्ष्योत्रीय वैद्यकशास्त्रानुसारेणैतेषां दुग्धादीनि सेवमाना बलिष्ठा अत्र्वेश्वर्ययुक्ताः सततं भवन्तु, यथा कश्चिदुपसाधनेन युक्त्या क्षेत्रं निर्माय जलेन सिञ्चन्नन्नादियुक्तो भूत्वा बलैश्वर्येण सूर्यवत्प्रकाशते तथैवैतानि स्तुत्यानि कर्माणि कुर्वन्तः प्रदीप्यन्ताम्॥६॥

पदार्थ:-हे अच्छे कैपों) के अनुष्ठान करनेवाले मनुष्य! आप (उषसः) प्रभात समय से (सूरः) सूर्य के (न) समान (येभिः) जिनसे (स्वेदुहव्यैः) अपने देने-लेने के योग्य दूध आदि पदार्थों से ऐश्वर्य अर्थात् उत्तम पदार्थ (सद्ध होते हैं, उनसे और (स्रुवेण) श्रुवा आदि के योग से (धाम) यज्ञभूमि को (अभिसिश्चर्य) सब ओर से सींचते हुए सज्जनों के समान (अस्याः) इन गौ के दूध आदि पदार्थों से (प्र, रोचि) द्वसार में भली-भांति प्रकाशमान हो और (इन्दुः) ऐश्वर्ययुक्त (जरणा) प्रशंसित कामों को (आष्ट्र) प्राप्त हो (तरिणः) दुःख से पार पहुंचे हुए सुख का विस्तार करने अर्थात् बढ़ानेवाले आप (मैमनु) आनन्द भोगो, (अध) इसके अनन्तर (प्र, जज्ञे) प्रसिद्ध होओ॥६॥

अष्टक-१। अध्याय-८। वर्ग-२४-२६

मण्डल-१। अनुवाक-१८। सूक्त-१२१



भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। मनुष्य गौ आदि पशुओं को राख्न और उनकी वृद्धि कर वैद्यकशास्त्र के अनुसार इन पशुओं से दूध आदि को सेवते हुए बलिए और अत्यन्त ऐश्वर्ययुक्त निरन्तर हों, जैसे कोई हल, पटेला आदि साधनों से युक्ति के साथ खेत को सिद्ध कर जल सींचता हुआ अन्न आदि पदार्थों से युक्त होकर बल और ऐश्वर्य से सूर्य्य के सूमान प्रकाशमान होता है, वैसे इन प्रशंसा योग्य कामों को करते हुए प्रकाशित हों॥६॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है

स्विध्मा यद्वनिधितिरपस्यात् सूरो अध्वरे परि रोधना गोः यद्धे प्रभासि कृत्व्याँ अनु द्यूननिर्विशे पृश्चिषे तुराये॥ अस

सुऽङ्गध्मा। यत्। वृनऽधितिः। अपस्यात्। सूर्रः। अध्वरे। परि। रोधना। योः। यत्। हु। प्रऽभासिं। कृत्व्यान्। अनुं। द्यून्। अनेर्विशे। पुशुऽइषे। तुराये॥७॥

पदार्थ:-(स्विध्मा) सुष्ठु इध्मा सुखप्रदीप्तिर्यया सा (ग्रत्) या (वनिधिति:) वनानां धृतिः (अपस्यात्) आत्मगोऽपांसि कर्माणीच्छेत् (सूरः) प्रिकः स्विता (अध्वरे) अविद्यमानोऽध्वरो हिंसन् यस्मिन् रक्षणे (पिर) सर्वतः (रोधना) रक्षणार्थानि (ग्रोः) धेनोः (यत्) यानि (ह) किल (प्रभासि) प्रदीप्यसे (कृत्व्यान्) कर्मसु साधून्। कृत्वीति कर्मनामसू पठितम्। (निघं०२.१) (अनु) (द्यून्) दिवसान् (अनिविंशे) अनस्सु शकटेषु विट् प्रवेशस्त्रामे। अत्र वा छन्दसीत्युत्त्वाभावः। (पश्चिषे) पशूनामिषे वृद्धीच्छायै (तुराय) सद्यो गमनाय॥७५

अन्वयः-हे सञ्जन! त्वया ख्रद्या स्विध्मा वनिधितः कृता यानि गोरोधना कृतानि तैस्त्वमध्वरे कृत्व्याननुद्यून् सूर इवानविंशे पश्चिषे तुराय यद्ध प्रभामि बद्धवान् पर्यपस्यात्॥७॥

भावार्थ:-अत्र वार्चकलुप्तोपमालङ्कार:। ये मनुष्या: पशुपालनवर्द्धनाद्याय वनानि रिक्षित्वा तत्रैताञ्चारियत्वा दुग्धादीनि स्वित्वा कृष्यादीनि कर्माणि यथावत् कुर्युस्ते राज्येश्वर्येण सूर्य इव प्रकाशमाना भवन्ति नेतरे गवादिहिंसका: ।।।।।

पदार्थ: -है सज्जन मनुष्य! तूने (यत्) जो ऐसी उत्तम क्रिया कि (स्विध्मा) जिससे सुन्दर सुख का प्रकाश होता वह (यनधिति:) वनों की धारणा अर्थात् रक्षा किई और जो (गो:) गौ की (रोधना) रक्षा होने के अर्थ काम किये हैं, उनसे तू (अध्वरे) जिसमें हिंसा आदि दु:ख नहीं हैं, उस रक्षा के निमित्त (कृत्यान) उत्तम कामों का (अनु, द्यून्) प्रतिदिन (सूर:) प्रेरणा देनेवाले सूर्यलोक के समान (अनर्विशे) लहू अस्व गाड़ियों में जो बैठना होता उसके लिये और (पश्चिषे) पशुओं के बढ़ने की इच्छा के लिये

और (तुराय) शीघ्र जाने के लिये (यत्) जो (ह) निश्चय से (प्रभासि) प्रकाशित होता है सो अपि (पर्यपस्यात्) अपने को उत्तम-उत्तम कामों की इच्छा करो॥७॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य पशुओं की रक्षा और बहुन भादि के लिये वनों को राख, उन्हीं में उन पशुओं को चरा, दूध आदि का सेवन कर, खेती कादि कामों को यथावत् करें, वे राज्य के ऐश्वर्य से सूर्य के समान प्रकाशमान होते हैं और गौ आदि प्रशुओं के मारनेवाले नहीं॥७॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अष्टा महो दिव आदो हरी इह द्युम्नासाहमिभ योधान इत्स्रम्। हरिं यत्ते मन्दिनं दुक्षन् वृधे गोरंभसमिद्रिभिर्वाताप्यम्॥८॥

अष्टा। महः। दिवः। आर्दः। हर्रो इति। इह। द्युम्नऽसहमा अभि। योष्ट्रानः। उत्सम्। हरिम्। यत्। ते। मन्दिनम्। धुक्षन्। वृधे। गोऽरंभसम्। अर्द्रिऽभिः। वातार्प्यम्॥८॥

पदार्थ:-(अष्टा) व्यापक: (महः) महतः (दिवः) द्रीत्याः आदः) अता। अत्र कृतो बहुलिमिति कर्त्तिर घञ्। बहुलं छन्दसीति घस्लादेशो न। (हरी) सूर्यस्य प्रकाशाकर्षणे इव (इह) जगित (द्युम्नासाहम्) द्युम्नानि धनानि सहन्ते येन (अभि) (योधानः) योद्धं श्रीलाः अत्रौणादिको निः प्रत्ययः। (उत्सम्) कृपम् (हिरम्) हयम् (यत्) ये (ते) तव (मन्दिनम्) क्रमनीयम् (द्वुक्षन्) अधुक्षन् दुहन्तु प्रिपपुरतु (वृधे) सुखानां वर्धनाय (गोरभसम्) गवां महत्त्वम्। रभक्षः इति महन्नामसु पठितम्। (निघं०३.३) (अद्रिभिः) मेघैः शैलीर्वा (वाताप्यम्) वातेन शुद्धेन वायुन्नाप्तुं योपयम्तारः।

अन्वय:-हे राजँस्ते यद्योधानो तृध आदोऽष्टा सूर्यो महो दिवो हरी अद्रिभि: प्रचरती वेह उत्सं विधाय द्युम्नसाहं हरिं मन्दिनं वाताप्यं गोरभसमभिदुक्षँम्ते त्वया सन्कर्स्वया:॥८॥

भावार्थ:-अत्र वाच्यक्तुप्तोपमालङ्क्ष्णेः। हे मनुष्या! यूयं यथा सूर्यो स्वप्रकाशेन सर्वं जगदानन्द्याकर्षणेन भूगोर्व धर्रात, त्रथेव नदीस्रोतः कूपादीन्निर्माय वनेषु वा घासादिकं वर्द्धयित्वा गोऽश्वादीनां रक्षणवर्द्धने विधाय द्वाधादिसेवनेन सततमानन्दत॥८॥

पदार्थ: हे राजन्! तें) तुम्हारे (यत्) जो (योधानः) युद्ध करनेवाले (वृधे) सुखों के बढ़ने के लिये जैसे (अप्रः) रेस आदि पदार्थ का भक्षण करने और (अष्टा) सब जगह व्याप्त होने वाला सूर्यलोक (महः) बङ्गी (दिवेश) दीप्ति से अपने (हरीं) प्रकाश और आकर्षण को (अद्रिभिः) मेघ वा पर्वतों के साथ प्रचिरत करता हैं, वैसे (इह) इस संसार में (उत्सम्) कुएँ को बनाय (द्युम्नसाहम्) जिससे धन सहे जाते अर्थात सित्ते उस (हिरम्) घोड़ा और (मन्दिनम्) मनोहर (वाताप्यम्) शुद्ध वायु से पाने योग्य

अष्टक-१। अध्याय-८। वर्ग-२४-२६

मण्डल-१। अनुवाक-१८। सूक्त-१२१



(गोरभसम्) गौओं के बड़प्पन को (अभि, दुक्षन्) सब प्रकार से पूर्ण करें, वे आपको सत्कार करने योग्य हैं॥८॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! तुम जैसे सूर्य्या अपने प्रकाश से सब जगत् को आनन्द देकर अपनी आकर्षण शक्ति से भूगोल का धारण करता है, वैसे ही नकी सोता, कुआं, बावरी, तालाब आदि को बना कर वन वा पर्वतों में घास आदि को ब्रह्म, गी और घोड़ आदि पशुओं की रक्षा और वृद्धि कर, दूध आदि के सेवन से निरन्तर आनन्द को प्राप्त होओं॥ ट॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।

त्वमायसं प्रति वर्तयो गोर्दिवो अश्मानमुपनीतमृभ्वा। कुत्साय यत्रं पुरुहूत वन्वञ्छुष्णमन्नैः परियासि बुधैः॥१॥

त्वम्। आयुसम्। प्रति। वृर्तयः। गोः। द्विवः। अश्मासम्। उपेऽजीतम्। ऋभ्वां। कुत्साय। यत्रं। पुरुऽहूत्। वुन्वन्। शुष्णम्। अनुन्तैः। पुरिऽयासि। वृधैः॥९॥

पदार्थ:-(त्वम्) प्रजापालकः (आयसम्) अयोनिर्मितं शस्त्रास्त्रादिकम् (प्रति) (वर्त्तयः) (गोः) गवादेः पशोः (दिवः) दिव्यसुखप्रदात् प्रकाशास् (अश्मान्नम्) व्यापनशीलं मेघम्। अश्मेति मेघनामसु पठितम्। (निघं०१.१०) (उपनीतम्) प्राप्तसमीपम् (ऋष्वा) मेधाविना (कुत्साय) वज्राय (यत्र) स्थले (पुरुहूत) बहुभिः स्पर्द्धित (वन्वन्) संभजमान (शृष्णम्) शोषकं बलम् (अनन्तैः) अविद्यमानसीमभिः (परियासि) सर्वतो याहि (वधैः) गोहिंस्राणां मारणापायैः॥९॥

अन्वयः – हे वन्वन् पुरुहूत! व्यं सूर्यो दिवस्तमो हत्वाऽश्मानमुपनीतं प्रापयतीव ऋभ्वा सहायसं गृहीत्वा कुत्साय शुष्णं चादधन् यत्र गोहिंसका वर्तन्ते, तित्र तेषामनन्तेवधः परियासि तान् गोः सकाशात्प्रति वर्त्तयश्च॥९॥

भावार्थ:-अत्र वान्कलुप्तोपमालङ्कार:। हे मनुष्या! यूयं यथा सविता मेघं वर्षयित्वाऽन्धकारं निवर्त्य सर्वमाह्णादयित, तथा मुबद्धिनां रक्षणं विधायैतद्धिंसकान् प्रतिरोध्य सततं सुखयत नह्णेतत्कर्म बुद्धिमत्सहायमन्तरा संभवित वस्माद्धीमतां सहायेनैव तदाचरत॥९॥

पदार्थ: है (वन्वन्) अच्छे प्रकार सेवन करते और (पुरुहूत) बहुत मनुष्यों से ईर्ष्या के साथ बुलाये हुए मनुष्य! (त्वम्) तू जैसे सूर्य (दिव:) दिव्य सुख देनेहारे प्रकाश से अन्धकार को दूर करके (अश्मानम्) व्याप्त होनेवाले (उपनीतम्) अपने समीप आये हुए मेघ को छिन्न-भिन्न कर संसार में पहुंचाता है वैसे (ऋभ्वा) मेधावी अर्थात् धीरबुद्धि वाले पुरुष के साथ (आयसम्) लोहे से बनाये हुए शम्त्र-अल्जों को ले के (कुत्साय) वज्र के लिये (शुष्णम्) शत्रुओं के पराक्रम को सुखानेहारे बल को

धारण करता हुआ (यत्र) जहां गौओं के मारनेवाले हैं, वहाँ उनको (अनन्तै:) जिनकी संख्या नहीं उन (वधै:) गोहिंसकों को मारने के उपायों से (परियासि) सब ओर से प्राप्त होते हो, उनको (गो:) गौ आदि पशुओं के समीप से (प्रति, वर्त्तय:) लौटाओ भी॥९।

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! तुम लोग जैसे सूर्य पेघ की वर्षा और अन्धकार को दूर कर सबको हर्ष आनन्दयुक्त करता है, वैसे गौ आदि पशुओं की रक्षा कर उनके मारनेवालों को रोक निरन्तर सुखी होओ। यह काम बुद्धिमानों के सहाय के विना होने को संभव महीं है, इससे बुद्धिमानों के सहाय से ही उक्त काम का आचरण करो॥९॥

पुनर्मनुष्याः किं कुर्युरित्याह॥

फिर मनुष्य क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

पुरा यत् सूर्स्तमंसो अपीतेस्तमंद्रिवः फलि्गं हेतिमस्या

शुष्णस्य चित् परिहितं यदोजो दिवस्परि सुग्रंथितं तदादेः॥ १७॥ २५॥

पुरा। यत्। सूर्रः। तमसः। अपिऽइतेः। तम्। अद्विऽवः। फुलिगुम् हेतिम्। अस्य। शुष्णीस्य। चित्। परिऽहितम्। यत्। ओर्जः। द्विवः। परि। सुऽप्रीथितम्। तत्। आ। अदुर्गियदः।। १०॥

पदार्थ:-(पुरा) पूर्वम् (यत्) यम् (सूरः) स्विता (तमसः) (अपीतेः) विनाशनात् (तम्) शत्रुबलम् (अद्रिवः) प्रशस्ता अद्रयो विद्यन्ते यस्य राज्ये त्रत्सम्बुद्धौ (फलिगम्) मेघम्। फलिग इति मेघनामसु पठितम्। (निघं०१.१०) (हेतिम्) वज्ञम्। हेतिरिति वज्रनामसु पठितम्। (निघं०२.२०) (अस्य) (शुष्णस्य) शोषकस्य शत्रोः (चित्रं) अपि (प्रिरिहतम्) सर्वतः सुखप्रदम् (यत्) (ओजः) बलम् (दिवः) प्रकाशात् (परि) (सुप्रथितम्) सुष्ठु निबद्धम् (तत्) (आ) (अदः) विदृणीहि। विकरणस्यालुक् लङ् प्रयोगः॥१०॥

अन्वय:-हे अद्रिवस्त्वं सूरः फिलिगं हत्वे तमसोऽपीतेर्दिवः प्रकाशत इव सेनया तमादः यद्यं पुरा निवर्त्तयस्तं सुग्रथितं स्थापय। यदस्य परिहित्तमेनोऽस्ति तिह्नवार्य शुष्णस्य परि चिदिप हेतिं निपातय। यतोऽयं गोहन्ता न स्यात्॥१०॥

भावार्थ:-अत्र लुप्तिपमालङ्कार:। हे राजपुरुषा! यथा सूर्यो मेघं हत्वा भूमौ निपात्य सर्वान् प्राणिन: प्रीणयति तथैव गोहिंसान्निपात्य गवादीन् सततं सुखयत॥१०॥

पदार्थ्य: (अहिंव:) जिनके राज्य में प्रशंसित पर्वत विद्यमान हैं, वैसे विख्यात हे राजन्! आप जैसे (सूर:) सूर्य (फलिंगम्) मेघ छिन्न-भिन्न कर (तमस:) अन्धकार के (अपीते:) विनाश करनेहारे (दिव:) प्रकाश से प्रकाशित होता है, वैसे अपनी सेना से (तम्) उस शत्रुबल को (आ, अदः) विदारो अर्थात् उसका विनाश करो, (यत्) जिसको (पुरा) पहिले निवृत्त करते रहे हो, उसको (सुप्रथितम्) अच्छा बींध कर ठहराओ, (यत्) जो (अस्य) इसका (परिहितम्) सब ओर से सुख देनेवाला (ओज:)

अष्टक-१। अध्याय-८। वर्ग-२४-२६

मण्डल-१। अनुवाक-१८। सूक्त-१२१



बल है (तत्) उसको निवृत्त कर (शुष्णस्य) सुखानेवाले शत्रु के (परि) सब ओर से (चित्) (हित्स्म) वज्र को उसके हाथ से गिरा देओ, जिससे यह गौओं का मारनेवाला न हो॥१०॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है। हे राजपुरुषो! जैसे सूर्य मेघ को मार और उसको भूमि में गिराय सब प्राणियों को प्रसन्न करता है, वैसे ही गौओं के मारनेवालों को मार गौ आदि पशुओं को निरन्तर सुखी करो॥१०॥

पुना राजप्रजाकृत्यमाह॥

फिर राजा और प्रजा का काम यह विषय अगले मन्त्र में कहा है।

अनुं त्वा मही पार्जसी अच्क्रे द्यावाक्षामां मदतामिन्द्र कर्प्सन्। त्वं वृत्रमाशयानं सिरासुं महो वर्ज्रेण सिष्वपो वराहुं सारक्षा

अर्नु। त्वा। मही इति। पार्जसी इति। अचक्रे इति। द्यार्वाक्ष्मसी। महताम्। इन्द्र। कर्मन्। त्वम्। वृत्रम्। आऽशर्यानम्। सिरास्रु। महः। वर्त्रण। सिस्वपः। वराहुम्॥११॥

पदार्थ:-(अनु) (त्वा) त्वाम् (मही) महत्यौ (माजसी) रप्तणिनिमत्ते। अत्र विभक्तेः पूर्वसवर्णः। पातेर्बले जुट् च। (उणा०४.२०३) इति पा धातोस्सुन् जुड्र्स्गृर्मश्च। (अचक्रे) अप्रतिहते। चक्रं चकतेर्वा। (निरु०४.२७) (द्यावाक्षामा) क्षमा एव क्षामा ह्याश्च क्षोमा च द्यावाक्षामा सूर्यपृथिव्यौ (मदताम्) आनन्दतु (इन्द्र) प्राप्तपरमैश्चर्य (कर्मन्) राज्यकर्मणि (त्वम्) (चृत्रम्) मेघम् (आशयानम्) समन्तात् प्राप्तिनद्रम् (सिरासु) बन्धनरूपासु नाडीषु (महः) स्ति (चृत्रणे) शस्त्रास्त्रसमूहेन (सिष्वपः) स्वापय। छन्दसीति संप्रसारणिनषेधः। (वराहुम्) वराणा धम्याणां व्यवहाराणां धार्मिकाणां जनानां च हन्तारं दस्युं शत्रुम्॥११॥

अन्वय:-हे इन्द्र! त्वं सूर्यो वृत्रमिव सिरासे सहो वज्रेण वराहुं हत्वाऽऽशयानमिव सिस्वप:। यतो मही पाजसी अचक्रे द्यावाक्षामा त्वा प्राप्य प्रत्येक्कर्मप्रतुम्द्रताम्॥११॥

भावार्थ:-अत्र वाचिकतुर्तीपमालङ्कारः। राजपुरुषैर्विनयपराक्रमाभ्यां दुष्टान् शत्रून् बध्वा हत्वा निवर्त्य मित्राणि धार्मिकान् सम्पाद्यं सर्वाः प्रजाः सत्कर्मसु प्रवर्त्यानन्दनीयाः॥११॥

पदार्थ: -हैं (इन्द्र) परम ऐश्वर्य को पाये हुए सभाध्यक्ष आदि सज्जन पुरुष! (त्वम्) आप सूर्य जैसे (वृत्रम्) मेच को छिन्न-भिन्न करे वैसे (सिरासु) बन्धनरूप नाड़ियों में (महः) बड़े (वज्रेण) शस्त्र और अस्त्रों के समूह से (वराहुम्) धर्मयुक्त उत्तम व्यवहार वा धार्मिक जनों के मारनेवाले दुष्ट शत्रु को मारके (आश्रायानम्) जिसने सब ओर से गाढ़ी नींद पाई उसके समान (सिष्वपः) सुलाओ जिससे (मही) बहु (प्रानसी) रक्षा करनेहारा और अपने प्रकाश करने में (अचक्रे) न रुके हुए (द्यावाक्षामा) सूर्य और

पृथिवी (त्वा) आपको प्राप्त होकर उनमें से प्रत्येक (कर्मन्) राज्य के काम में तुमको (अनु मदर्ताम्) अनुकूलता से आनन्द देवें॥११॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। राजपुरुषों को चाहिये कि विनय और प्रिकार से दुष्ट शत्रुओं को बांध, मार और निवार अर्थात् उनको धार्मिक मित्र बनाकर समस्त प्रजाननों की अच्छे कामों में प्रवृत्त करा आनन्दित करें॥११॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

त्वर्मिन्द्र नर्यो याँ अवो नृन् तिष्ठा वार्तस्य सुयुजो विहिष्ठान्। यं ते काव्य उशना मन्दिनं दाद् वृत्रहणं पार्यं ततक्ष् वर्ष्रम्॥ १२॥

त्वम्। इन्द्र्। नर्यः। यान्। अवः। नृन्। तिष्ठं। वार्तस्य। सुऽयुज्ञः। विश्वित्त्र्या यम्। ते। काव्यः। उ्शनां। मन्दिनंम्। दात्। वृत्रुऽहर्नम्। पार्यम्। तृत्रक्षु। वर्ज्रम्॥ १२॥

पदार्थ:-(त्वम्) (इन्द्र) प्रजापालक (नर्थः) नृष्यु पाधुः सुन् (यान्) (अवः) रक्षेः (नॄन्) धार्मिकान् जनान् (तिष्ठ) धर्मे वर्तस्व। अत्र द्वयचोऽतस्तिः इति दीर्घः। (वातस्य) प्राणस्य मध्ये योगाभ्यासेन (सुयुजः) सुष्ठु युक्तान् योगिनः (विहष्टान्) अतिस्रयेन वोढॄन् विद्याधर्मप्रापकान् (यम्) (ते) तुभ्यम् (काव्यः) कवेर्मेधाविनः पुत्रः (उशना) धर्मकामुकः अत्र डादेशः। (मन्दिनम्) स्तुत्यं जनम् (दात्) दद्यात् (वृत्रहणम्) शत्रुहन्तारं वीरम् (मार्थ्यम्) पूर्ण्यते समाप्यते कर्म येन तम् (ततक्ष) प्रक्षिपेत् (वज्रम्) शस्त्रास्त्रसमूहम्॥१२॥

अन्वयः - हे इन्द्र काव्य उशना नर्यस्त्वं यान् विष्ठान् वातस्य सुयुजो नॄनवस्तैः सह धर्मे तिष्ठ यस्ते यं वृत्रहणं मन्दिनं पार्यं जनं दात् यः शत्रूणामुपरि वज्नं ततिक्ष् तेनापि सह धर्मेण वर्त्तस्व॥१२॥

भावार्थ:-यथा राजपुरुषाः परमेश्वरोपासकानध्यापकोपदेशकानन्योत्तमव्यवहारस्थान् प्रजासेनाजनान् रक्षेयुस्तथैवैताक्रेते प्रस्ततं रक्षेयुः॥१२॥

पदार्थ:-हे (इन्ह्र) प्रजा प्रान्निहारे (काव्य:) धीर उत्तम बुद्धिमान् के पुत्र (उशना) धर्म की कामना करनेहारे (नर्च्य:) मपुष्ट्रों में साधु श्रेष्ठ हुए जन! (त्वम्) आप (यान्) जिन (विहष्ठान्) अतीव विद्या धर्म की प्राष्ट्रि करानेहारे (वातस्य) प्राण के बीच योगाभ्यास से (सुयुजः) अच्छे युक्त योगी (नृन्) धार्मिक जनों की (अवः) रक्षा करते हो उनके साथ धर्म के बीच (तिष्ठ) स्थिर होओ, जो (ते) आपके लिये (यम्) जिस (वृत्रहणम्) शत्रुओं के मारनेवाले वीर (मन्दिनम्) प्रशंसा के योग्य (पार्च्यम्) जिससे पूर्ण कार्य बने, उस मनुष्य को (दात्) देवे वा जो शत्रुओं पर (वृजम्) अति तेज शस्त्र और अस्त्रों को (तत्रुव्य) फेंके उस-उसके साथ भी धर्म से वर्तो॥१२॥

अष्टक-१। अध्याय-८। वर्ग-२४-२६

मण्डल-१। अनुवाक-१८। सूक्त-१२१ Q3x3

भावार्थ:-जैसे राजपुरुष परमेश्वर की उपासना करने, पढ़ने और उपदेश करनेवाले तथा और उत्तम व्यवहारों में स्थिर प्रजा और सेनाजनों की रक्षा करें, वैसे वे भी उनकी निरन्तर रक्षा क्रिया करें॥१२॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

त्वं सूरी हुरिती रामयो नृन् भर्यच्चक्रमेतिशो नायमिन्द्र। प्रास्य पारं नेवृतिं नाव्यानामपि कुर्तमवर्तयोऽयज्यून्॥ १३॥०

त्वम्। सूर्रः। हृरित्रीः। रुम्यः। नृन्। भर्रत्। चक्रम्। एत्रशः। न। अयम्। डुन्द्र्। प्रऽअस्ये। पारम्। न्वतिम्। न्वतिम्। न्वतिम्। अपि। कुर्तम्। अवर्त्ययः। अयज्यन्॥ १३॥

पदार्थ:-(त्वम्) राज्यपालनाधिकृतः (सूरः) सिवतेव (हिरितः) रश्मीन्। हिरत इति रश्मिनामसु पिठतम्। (निघं०१.६) (रामयः) आनन्देन क्रीडय। अशान्त्रेषामणीतं दीर्घः। (नृन्) प्रजाधर्मनायकान् (भरत्) भरेः (चक्रम्) क्रामित रथो येन तत् (एतशः) साधुरश्चः। एतश इत्यश्चनामसु पिठतम्। (निघं०१.१४) (न) इव (अयम्) (इन्द्र) परमैश्चर्यपद (प्रास्थ) प्रकृष्टतया प्रापय (पारम्) (नवितम्) (नाव्यानाम्) नौभिस्तार्य्याणाम् (अपि) (कर्त्तम्) कूपम्। कर्तिमिति कूपनामसु पिठतम्। (निघं०३.२३) (अवर्त्तयः) प्रवर्त्तय (अयज्यून्) असङ्गतिकर्तृन्॥१३॥

अन्वयः-हे इन्द्र! त्वमयं सूरो हरित इतिस्रश्चेत्र नायज्यून् नृन् भरत्। नाव्यानां नवितं नवितसंख्याकानि जलगमनार्थानि यानानि पारं प्रास्यैतान् पुरुषार्थितोऽपि कर्त्तुं खनितुं कर्म कर्त्तुं चावर्त्तयस्त्वमत्रास्मान् सदा रमयः॥१३॥

भावार्थ:-अत्र लुप्तोपम्प्रश्लेषालङ्कारौ। यथा सूर्यः सर्वान् स्वे स्वे कर्मणि प्रेरयित तथाप्ता विद्वांसोऽविदुषः शास्त्रशारीरकर्मण प्रवर्त्य सर्वाणि सुखानि संसाधयन्तु॥१३॥

पदार्थ:-हे (इन्द्र) परमेश्वर्ष के देनेवाल सभाध्यक्ष! (त्वम्) आप (अयम्) यह (सूरः) सूर्य्यलोक जैसे (हिरतः) किरणों को व्याप्ति (एतशः) उत्तम घोड़ा (चक्रम्) जिससे रथ दुरकता है, उस पहिये को यथायोग्य काम में लगाता है (ज्ञ) वैसे (अयज्यून्) विषयों में न संग करने और (नृन्) प्रजाजनों को धर्म की प्राप्ति करानेहीर मनुष्ये की (भरत्) पृष्टि और पालना करो तथा (नाव्यानाम्) नौकाओं से पार करने योग्य जो (नवित्स) जल में चलने के लिये नब्बे रथ हैं, उनको (पारम्) समुद्र के पार (प्रास्य) उत्तमता से पहुंचाला विधा उन उक्त पुरुषार्थी पुरुषों को (अपि) भी (कर्तम्) कूंआ खुदाने और कर्म करने को (अवर्म्यः) प्रवृत्त कराओ और आप यहाँ हम लोगों को सदा (रमयः) आनन्द से रमाओ॥१३॥

१३४४

ऋग्वेदभाष्यम्

भावार्थ:-इस मन्त्र में लुप्तोपमा और श्लेषालङ्कार हैं। जैसे सूर्य्य सबको अपने-अपने-अपने कामों में लगाता है, वैसे उत्तम शास्त्र जाननेवाले विद्वान् जन मूर्खजनों को शास्त्र और शरीर कर्म मे प्रवृत्त करा सब सुखों को सिद्ध करावें॥१३॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

त्वं नो अस्या इन्द्र दुर्हणायाः पाहि विज्ञिवो दुरितादभीके। प्र नो वार्जान् रृथ्यो ३ अश्वेबुध्यानिषे येन्धि श्रवंसे सूनृतायै॥ १४॥

त्वम्। नुः। अस्याः। इन्द्र्। दुःऽहनायाः। पाहि। वृज्ञिवः। दुःऽइतात्। धुर्भोके। प्राः) नुः। वार्जान्। रृथ्यः। अश्वंऽबुध्यान्। इषे। यन्धि। श्रवंसे। सूनृतायै॥ १४॥

पदार्थ:-(त्वम्) (नः) अस्मान् (अस्याः) प्रत्यक्षायाः (इन्ह्र) अध्यक्तियारक (दुर्हणायाः) दुःखेन हन्तुं योग्यायाः शत्रुसेनायाः (पाहि) (विज्ञवः) प्रशस्ता कृष्यो बिज्ञानयुक्ता नीतयो विद्यन्तेऽस्य तत्सम्बुद्धौ। वज धातोरौणादिक इः प्रत्ययो रुडागमश्च तत्ते पतुप् चा (दुरितात्) दुष्टाचारात् (अभीके) संग्रामे। अभीक इति संग्रामनामसु पठितम्। (निघं०२.(७) (प्र) (नः) अस्माकम् (वाजान्) विज्ञानवेगयुक्तान् संबन्धिनः (रथ्यः) रथस्य वोद्या सन् (अश्वबुध्यान्) अश्वानन्तरिक्षे भवानग्न्यादीन् चालियतुं वर्द्धितुं बुध्यन्ते तान् (इषे) इच्छायै (याद्य) यच्छ (श्रवसे) श्रवणायात्राय वा। श्रव इत्यन्ननामसु पठितम्। (निघं०२.७) (सूनृतायै) उत्तमायै प्रिष्टिस्यवाचे॥१४॥

अन्वय:-हे विज्ञव इन्द्र! रथस्त्वम्भीकऽस्या द्विरिताच्च नः पाहि। इषे श्रवसे सूनृतायै नोऽस्माकमश्वबुध्यान् वाजान् सुखं प्रयन्धि॥४४॥

भावार्थ:-सेनाधीशेन स्वसेना शत्रुहननाद् दुष्टाचाराच्च पृथग्रक्षणीया वीरेभ्यो बलिमच्छानुकूलं बलवर्द्धकं पेयं पुष्कलमत्रं च प्रद्वार हर्षियत्वा शत्रून् विजित्य प्रजाः सततं पालनीयाः॥१४॥

पदार्थ:-(विज्ञवः) जिसेकी प्रशंसित विशेष ज्ञानयुक्त नीति विद्यमान सो (इन्द्र) अधर्म का विनाश करनेहारे हे सेना विशेष (रख्यः) रथ का लेजानेवाला होता हुआ (त्वम्) तू (अभीके) संग्राम में (अस्याः) इस प्रत्यक्ष (दुहणायाः) दुःख से मारने योग्य शत्रुओं की सेना और (दुरितात्) दुष्ट आचरण से (नः) हम लोगों क्री (पाहि) रक्षा कर तथा (इषे) इच्छा (श्रवसे) सुनना वा अत्र और (सूनृताये) उत्तम सत्य तथा प्रिय वाणी के लिये (नः) हम लोगों के (अश्रबुध्यान्) अन्तरिक्ष में हुए अग्नि आदि पदार्थों को चलाने वा बढ़ाने को जो जानते उन्हें और (वाजान्) विशेष ज्ञान वा वेगयुक्त सम्बन्धियों को (प्र, यिष्ट) भली-भूति दे। १४।

अष्टक-१। अध्याय-८। वर्ग-२४-२६

मण्डल-१। अनुवाक-१८। सूक्त-

१२१

भावार्थ:-सेनाधीश को चाहिये कि अपनी सेना को शत्रु के मारने से और दुष्ट आचर्ण से अलु रक्खे तथा वीरों के लिये बल तथा उनकी इच्छा के अनुकूल बल के बढ़ानेवाले पीने योग्य पदार्थ मेथा पुष्कल अन्न दे, उनको प्रसन्न और शत्रुओं को अच्छे प्रकार जीत कर प्रजा की निरन्तर ग्रुक्षा करें।।१४।।

अथेश्ररविषयमाह।।

अब ईश्वर के विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

मा सा ते अस्मत्सुमृतिर्वि देसुद् वाजप्रमहुः समिषो वरन्त।

आ नो भज मघवुन् गोष्वुर्यो मंहिष्ठास्ते सधुमार्दः स्याम्॥ १५३ रहा। १॥

मा। सा। ते। अस्मत्। सुऽमृति:। वि। दुसुत्। वार्जंऽप्रमहः। सम्। इषः। वुरुन्। आ। नुः। भुजु। मुघुऽवुन्। गोऽषु। अर्थः। मंहिष्ठाः। ते। सधऽमादैः। स्याम्॥१५॥

पदार्थ:-(मा) निषेधे **(सा)** प्रतिपादितपूर्वा **(ते)** तव **(अस्मत)** अस्माकं सकाशात् **(सुमित:)** शोभना बुद्धिः (वि) (दसत्) क्षयेत् (वाजप्रमहः) वार्षिविक्रानिविद्विद्विद्वर्वा प्रकृष्टतया महाते पूज्यते यस्तत्सम्बुद्धौ (सम्) (इषः) इच्छा अन्नादीनि वा (व्रान्त) वृणिबन्तु। विकरणव्यत्ययेन शप्। (आ) (नः) अस्मान् (भज) अभिलष (मघवन्) प्रशस्तपूज्यध्यस्युक्ते (मोषु) पृथिवीवाणीधेनुधर्मप्रकाशेषु (अर्यः) स्वामीश्वरः (मंहिष्ठा) अतिशयेन सुखविद्यादिभिर्मिर्द्धमान्यः र्(त) तव (सधमादः) महानन्दिताः (स्याम) भवेम॥१५॥

अन्वय:-हे वाजप्रमहो मघवञ्जगदीश्वर्() ते तिष कुप्रया या सुमतिस्साऽस्मन्मा वि दसत्कदाचिन्न विनश्येत् सर्वे जना इषः संवरन्त। अर्यस्त्वं नोऽस्मान् गोष्वापुज् यतो महिष्ठाः सन्तो वयं ते तव सधमादः स्याम॥१५॥

भावार्थ:-मनुष्यै: सुप्रज्ञ<mark>ार्दप्राप्तये प</mark>रमेश्वर: स्वामी मन्तव्य: प्रार्थनीयश्च। यत ईश्वरस्य यादृशा गुणकर्मस्वभावाः सन्ति तादृशान् स्वकीयान् सेम्पाद्य परमात्मना सहानन्दे सततं तिष्ठेयुः॥१५॥

अत्र स्त्रीपुरुषराजुपूर्जादिधप्रवर्णनादेतदुक्तार्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति बोध्यम्॥

हे जगदीश्वर! यथा मिवक्क्र्याकटाक्षसहायप्राप्तेन मयर्ग्वेदस्य प्रथमाष्टकस्य भाष्यं सुखेन सम्पादितं तथैवाग्रेऽपि कर्त्तं शक्येत्॥

इति प्रथमाष्ट्रकेऽष्ट्रमेऽक्षाये षड्विंशो २६ वर्ग: प्रथमोऽष्ट्रकोऽष्ट्रमोऽध्याय एकविंशत्युत्तरं शततमं १२१ सुक्तं च समाप्तम्॥

्रादार्थ:- है (वाजप्रमह:) विशेष ज्ञान वा विद्वानों से अच्छे प्रकार सत्कार को प्राप्त किये (मघन्न) और प्रशंसित सत्कार करने योग्य धन से युक्त जगदीश्वर! (ते) आपकी कृपा से जो (सुमिति:) तुर्म <mark>कुद्धि है (सा)</mark> सो (**अस्मत्)** हमारे निकट से (**मा**) मत (**वि, दसत्**) विनाश को प्राप्त होवे, सब

मनुष्य (इष:) इच्छा और अन्न आदि पदार्थों को (सं, वरन्त) अच्छे प्रकार स्वीकार करें (अर्थ:) स्वीमी ईश्वर आप (न:) हम लोगों को (गोषु) पृथिवी, वाणी, धेनु और धर्म के प्रकाशों में (आ, भज़) चाहो, जिससे (मंहिष्ठा:) अत्यन्त सुख और विद्या आदि पदार्थों से वृद्धि को प्राप्त हुए हम लोग (ते) आपने (सधमाद:) अति आनन्दसहित (स्थाम) अर्थात् आप के विचार में मग्न हों॥१५॥

भावार्थ:-मनुष्यों को चाहिये कि उत्तम बुद्धि आदि की प्राप्ति के लिये परमेश्वर को स्वामी मानें और उनकी प्रार्थना करें। जिससे ईश्वर के जैसे गुण, कर्म और स्वभाव हैं, वैसे अपने सिद्ध करके परमात्मा के साथ आनन्द में निरन्तर स्थित हों॥१५॥

इस सूक्त में स्त्री-पुरुष और राज-प्रजा आदि के धर्म का वर्णन होंने से पूर्व सूक्तार्थ के साथ इस सूक्त के अर्थ की सङ्गति जाननी चाहिये॥

हे जगदीश्वर! जैसे आपकी कृपाकटाक्ष का सहाय जिसको प्राप्त हुआ, उस मैने ऋग्वेद के प्रथम अष्टक का भाष्य सुख से बनाया, वैसे आगे भी वह ऋग्वेदभाष्य भुक्कर बन सके।।

यह प्रथम अष्टक के आठवें अध्याय में छब्बीसवां २६ वर्ग, प्रथम अष्टक, आठवां अध्याय और एकसौ इक्कीसवां १२१ सूक्त समान हुआ।

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्याणां श्रीपरमविदुषा विरक्तीनन्दसरस्वतीस्वामिनां शिष्येण परमहंसपरिव्राजकाचार्येण श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना विरचित्ते संस्कृतार्यभाषाभ्यां समन्विते सुप्रमाणयुक्ते ऋग्वेदभाष्ये प्रथमाध्वेतेऽष्ट्रसोऽध्यायोऽलमगात्॥

॥ओ३म्॥

अथ द्वितीयाष्ट्रकारम्भ:॥

तत्र प्रथमोऽध्याय:॥

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि पर्रा सुव। यद्धद्रं तन्न आ सुव।। ऋ०५.८२.५॥ प्र व इत्यस्य पञ्चदशर्चस्य द्वाविंशत्युत्तरशततमस्य सूक्तस्य कक्षीवान् ऋषिः। विश्वदेवा देवताः।

१,५,१४ भुरिक् पङ्क्तिः। ४ निचृत्पङ्क्तिः। ३,१५ स्वराट्पङ्क्तिः। ६ विराट् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः। २,९,१०,१३ विराट् त्रिष्टुप्। ४,१२ निचृत् व्रिष्टुप्। ७,११

> त्रिष्टुप् च छन्दः। धैवतः स्वरः॥ तत्रादौ सभापतिकार्यमुपदिश्यते॥

अब द्वितीय अष्टक के प्रथम अध्याय का आरम्भ है। उसमें एक सौ बाईसवें सूक्त के प्रथम मन्त्र में सभापति के कार्य्य का उपदेश किया जाती है।।

प्र वः पान्तं रघुमन्यवोऽन्धो यज्ञं रुद्रायं मोळहुषे भरख्यम्। दिवो अस्तोष्यसुरस्य वीरैरिषुध्येवं मुहती रोदस्योः॥ १॥

प्रा वः। पान्तम्। रघुऽमन्यवः। अर्चः। क्रुज्ञम्। रुद्राष्ट्री मीळहुषै। भर्ध्वम्। दिवः। अस्तोषि। असुरस्य। वीरैः। इषुध्याऽईव। मुरुतः। रोदस्योः॥ १॥

पदार्थ:-(प्र) प्रकृष्टे (वः) युष्मान् (पान्तम्) रक्षन्तम् (रघुमन्यवः) लघुक्रोधाः। अत्र वर्णव्यत्ययेन लस्य रः। (अन्धः) अत्रम् (यज्ञम्) सङ्गन्तव्यम् (रुद्राय) दुष्टानां रोदयित्रे (मीढुषे) सज्जनान् प्रति सुखसेचकाय (भरध्वम्) ध्राध्वम् (दिषः) विद्याप्रकाशान् (अस्तोषि) स्तौमि (असुरस्य) अविदुषः (वीरैः) (इषुध्येव) इषवो धीयन्ते अस्यां तयेष (मरुतः) वायवः (रोदस्योः) भूमिसूर्ययोः॥१॥

अन्वयः-हे रघुमन्वि रोहस्योर्मरुत इव इषुध्येव वीरै: सह वर्त्तमाना यूयं मीढुषे रुद्राय व: पान्तं यज्ञमन्धश्च दिवोऽसुरस्य सम्बन्धे वर्त्तमानान् यथार्मभरध्वं तथाहमेतमस्तोषि॥१॥

भावार्थः अत्रोपमान्यचकलुप्तोपमालङ्कारौ। मनुष्यैर्यदा योग्यपुरुषैः सह प्रयत्यते तदा कठिनमपि कृत्यं सहजतय्रा सार्द्धे शक्यते॥१॥

प्रदर्शि:- है (रघुमन्यव:) थोड़े क्रोधवाले मनुष्यो! (रोदस्यो:) भूमि और सूर्य्यमण्डल में जैसे (मरुत:) पवन विद्यमान वैसे (इषुध्येव) जिसमें वाण धरे जाते उस धुनष से जैसे वैसे (वीरै:) वीर मनुष्यों के साथ वर्त्तमान तुम (मीढुषे) सज्जनों के प्रति सुखरूपी वृष्टि करने और (रुद्राय) दुष्टों को स्लानेहर सभाध्यक्षादि के लिये (व:) तुम लोगों की (पान्तम्) रक्षा करते हुए (यज्ञम्) सङ्गम करने

१३४८

योग्य उत्तम व्यवहार और (अन्धः) अन्न को तथा (दिवः) विद्या प्रकाशों जो कि (असुरस्य) अविद्वानों के सम्बन्ध में वर्त्तमान उपदेश आदि उनको जैसे (प्र, भरध्वम्) धारण वा पृष्ट करो, वैसे मैं इस तुम्हारे व्यवहार की (अस्तोषि) स्तृति करता हुँ॥१॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में पूर्णीपमा और वाचकलुप्तोपमा ये दोनों अलङ्कार हैं। जब मनुष्यों का योग्य पुरुषों के साथ अच्छा यत्न बनता है, तब कठिन भी काम सहज से सिद्ध कर सकते हैं। १।।

अथ दम्पत्योर्व्यवहारमाह॥

अब स्त्री-पुरुषों के व्यवहार को अगले मन्त्र में कहा है।

पत्नीव पूर्वहूर्ति वावृधध्या उषासानक्ता पुरुधा विदाने। स्तरीर्नात्कं व्युतं वसाना सूर्यस्य श्रिया सुदृशी हिर्रण्यैः।।

पत्नीर्ऽइव। पूर्वऽहूंतिम्। वृवृधध्यै। उषसानक्तां। पुरुधा। विद्रिने इति। स्तुर्गः। न। अत्केम्। विऽर्जतम्। वसाना। सूर्यस्य। श्रिया। सुऽदृशीं। हिर्रण्यै:॥२॥

पदार्थ:-(पत्नीव) यथा विदुषी स्त्री (पूर्वहूतिम्) पूर्वी हूर्रतिराह्वानं यस्य तम् (ववृधध्यै) वर्धियतुम्। अत्र बहुलं छन्दसीति शपः श्लुस्तुजादित्वाद्दीष्ट्र (उपम्रानक्ता) रात्रिदिने (पुरुधा) ये पुरून् बहून् धरतस्ते (विदाने) विज्ञायमाने (स्तरीः) कल्पसन्त्रुद्धसंयोगनास्तारिषत यास्ता नौकाः (न) इव (अत्कम्) कूपमिव (व्युतम्) विविधतयोतं विस्तृतं बस्त्रम् (व्यूप्ताना) परिद्धती (सूर्यस्य) सवितुः (श्रिया) शोभया (सुदृशी) सुष्ठु दर्शनं यस्याः सा (हिरण्कः) ज्योतिभिरिव॥२॥

अन्वय:-हे सित स्त्रि! त्वं पत्नीव वक्षाच्ये पूर्वहूति पतिं स्वीकृत्य पुरुधा विदाने उषासानक्तेव वर्त्तस्व सूर्यस्य हिरण्यै: श्रिया च सुदृशी अत्किमव व्युतं वसाता सिती स्त्रीने सततं भव॥२॥

भावार्थ:-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौँ। पतिव्रता सन्तं पतिं प्रीणाति स्त्रीव्रतः पतिः स्त्रियं च तौ यथाऽहोरात्रः सम्बद्धो वर्त्तते तथा वर्त्तमानौ वस्त्रालङ्कारैः सुशोभितौ धर्म्ये व्यवहारे यथावत्प्रयतेताम्॥२॥

पदार्थ:-हे सरल्स्वभावयुक्त उत्तम स्त्री! तू (पत्नीव) जैसे यज्ञादि कर्म में साथ रहने वाली विद्वान् की स्त्री (ववृधध्ये) कृद्धि करने को अर्थात् गृहस्थाश्रम् आदि व्यवहारों के बढ़ाने को (पूर्वहूतिम्) जिसका पहिले बुलाना होता अर्थात् सब कामों से जिसकी प्रथम सेवा करनी होती, उस अपने पित को स्वीकार कर (पुरुष्टा) जो बहुत व्यवहार वा पदार्थों की धारण करने हारे (विदाने) जाने जाते उन (उषासानक्ता) राष्ट्रिदिन के समान वर्त्त वैसी वर्त्ता कर तथा (सूर्यस्य) सूर्यमण्डल की (हरण्यै:) सुवर्ण सी चिल्किती हुई ज्योतियों और (श्रिया) उत्तम शोभा से (सुदृशी) जिस तेरा अच्छा दर्शन वह (अत्कम्) कुएं के समान (व्युतम्) अनेक प्रकार बुने हुए विस्तारयुक्त वस्त्र को (वसाना) पहिनती हुई (स्तरी:) जैसे कलारान्त्रादिकों के संयोग से ढांपी हुई नाव हों (न) वैसी निरन्तर हो॥२॥

अष्टक-२। अध्याय-१। वर्ग-१-३

मण्डल-१। अनुवाक-१८। सूक्त-१२२

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। पतिव्रता स्त्री विद्यमान अपने पवि को प्रसन्न करती और स्त्रीवत् अर्थात् नियम से अपनी स्त्री में रमनेहारा पित जैसे दिनगूति सम्बन्ध से मिला हुआ वर्त्तमान है, वैसे सम्बन्ध से वर्त्तमान कपड़े और गहने पहिने हुए सुशोभित धर्मयुक्त व्यवहार में यथावत् प्रयत्न करें॥२॥

अथ सद्गुणानां व्यवसायं व्यवहारं चाह॥

अब अगले मन्त्र में अच्छे गुणों के विचार और व्यवहार का उपदेश करते हैं।।

मुमत्तुं नः परिज्मा वसुर्हा मुमत्तु वातो अपां वृष्णवान्। शिशीतमिन्द्रापर्वता युवं नुस्तन्नो विश्वे वरिवस्यन्तु देवा:หราม

मुमत्तुं। नुः। परिऽज्मा। वृस्र्हां। मुमत्तुं। वार्तः। अपाम्। वृष्ण्कवान्। शिशातम्। इन्द्रापुर्वृता। युवम्। नुः। तत्। नुः। विश्वे। वृद्विस्युनु। देवाः॥३॥

पदार्थ:-(ममनु) हर्षयतु (नः) अस्मान् (परिज्या) परित्यो जमत्यति यः सोऽग्निः (वसर्हा) वसानां वासहेतूनामर्हकः। अत्र शक्थादिना पररूपम्। (ममनु (वातः) वायुः (अपाम्) जलानाम् (वृषण्वान्) वृष्टिहेतुः (शिशीतम्) तीक्ष्णबुद्धियुक्ताम् कुरुतप् (इन्द्रापर्वता) सूर्य्यमेघाविव (युवम्) युवाम् (नः) अस्मान् (तत्) (नः) अस्मभ्यम् (विश्वे) सर्वि (विरिवस्थन्तु) परिचरन्तु (देवाः) विद्वांसः॥३॥

अन्वय:-यथा वसर्हा परिज्मा नो ममरेख्पां वृषणवान् वातो नो ममत्तु। हे इन्द्रापर्वतेव वर्त्तमानावध्यापकोपदेशकौ! युवं निश्शिशीतं स्थि कि नो विरवस्यन्तु तथा तत् तान् सर्वान् सत्कृतान् वयं सततं कुर्याम॥३॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तीपमालेङ्कार:। ये मनुष्या यथाऽस्मान् प्रसादयेयुस्तथा वयमप्येतान् प्रीणयेम॥३॥

पदार्थ:-जैसे (वसहीं) निवास कराने की योग्यता को प्राप्त होता और (परिज्मा) पाये हुए पदार्थों को सब ओर से खाता जलाता हुआ अग्नि (नः) हम लोगों को (ममनु) आनन्दित करावे वा (अपाम्) जलों की (वृषण्वान्) वर्षा करानेहारा (वातः) पवन हम लोगों को (ममनु) आनन्दयुक्त करावे। हे (इन्द्रापर्वता) सूर्य्य और प्रघ के समान वर्तमान पढ़ाने और उपदेश करनेवालो! (युवम्) तुम दोनों (नः) हम लोगों को (शिशीतम्) अतितीक्ष्ण बुद्धि से युक्त करो वा (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग (नः) हम लोगों के लिये (विरवस्यन्तु) सेवन अर्थात् आश्रय करें, वैसे (तत्) उन सबको सत्कारयुक्त हम लोग सिरन्तर करें॥३॥

१३५०

ऋग्वेदभाष्यम्

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य जैसे हम लोगों को प्रसन्न करें, वैसे हम लोग भी उन मनुष्यों को प्रसन्न करें॥३॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

उत त्या में युशसां श्वेतनाये व्यन्ता पान्तौशिजो हुवध्यै। प्र वो नपातमुपां कृणुध्वं प्र मातरां रास्पिनस्यायोः॥४॥

उत्। त्या। मे। युशसां। श्<u>वेत</u>नायै। व्यन्तां। पान्तां। औृशिजः। हुवध्ये। प्र। वः। नपतिम्। श्रृपाम्। कृणुध्वम्। प्र। मातर्रा। रास्पिनस्यं। आयोः॥४॥

पदार्थ:-(उत) अपि (त्या) तौ (मे) मम (यशसा) सत्किर्त्यि (श्वेतनार्थ) प्रकाशाय (व्यन्ता) विविधबलोपेतौ (पान्ता) रक्षकौ (औशिज:) कामयमानपुत्र: (हुव्रध्ये) अद्तितुम् (प्रः) (वः) युष्माकम् (नपातम्) पातरहितम् (अपाम्) जलानाम् (कृणुध्वम्) कुरुध्वम् (प्र) (पात्रा) मानकारकौ (रास्पिनस्य) आदातुमर्हस्य (आयोः) जीवनस्य॥४॥

अन्वय:-हे मनुष्या! यथा मे यशसा श्वेतनायै व्यन्ता पिना त्या हुर्बध्यै मातरा रास्पिनस्यायोर्वर्द्धनाय प्रवर्तेते यथापां नपातं यूयं प्रकृणुध्वं तथोतौशिजोऽहं व आयु: सततं क्रूबर्द्धनेयम्। स्था

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। हे मेनुष्या! स्र्था सुशिक्षयाऽस्माकमायुर्यूयं वर्द्धयत तथा वयमपि युष्माकं जीवनमुन्नयेम॥४॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! जैसे (मे) मेर (यहासा) हत्तम यश से (श्वेतनायै) प्रकाश के लिये (व्यन्ता) अनेक प्रकार के बल से युक्त (पान्ता) रक्षा कर्णावाले (त्या) वे पूर्वोक्त पढ़ाने और उपदेश करनेहारे (हुवध्यै) हम लोगों के ग्रहण करने को (पातरा) मान करनेहारे (रास्पिनस्य) ग्रहण करने योग्य (आयो:) जीवन अर्थात् आयुर्दा के बढ़ाने को (प्र) प्रवृत्त होते हैं तथा जैसे तुम लोग (अपाम्) जलों के (नपातम्) विनाशरहित मार्ग को वा जली के न गिरने को (प्र, कृणुध्वम्) सिद्ध करो वैसे (उत) निश्चय से (औशिज:) कामना करते हुए का सुन्तान में (व:) तुम लोगों की आयुर्दा को निरन्तर बढ़ाऊं॥४॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! जैसे सुन्दर शिक्षा से हम लोगों की आयुर्दा को तुम बृद्धाओ, वैस्रे हम भी तुम्हारी आयुर्दा की उन्नति किया करें॥४॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

बा वो रुवण्युमौशिजो हुवध्यै घोषेव शंसमर्जुनस्य नंशे।

😠 वे पूष्णे दावन आँ अच्छा वोचेय वसुतातिमग्ने:॥५॥१॥

अष्टक-२। अध्याय-१। वर्ग-१-३

मण्डल-१। अनुवाक-१८। सूक्त-१२२ d 3 n s

आ। वः। रुवण्युम्। औ्शिजः। हुवध्यै। घोषांऽइव। शंसंम्। अर्जुनस्य। नंशे। प्र। वः। पूष्णे। दावने। आ अच्छं। वोचेया वसुऽतांतिम्। अग्नेः॥५॥

पदार्थ:-(आ) (व:) युष्पाकम् (रुवण्युम्) सुशब्दायमानम् (औशिजः) विद्याकेपस्य पुत्रः (हुवध्ये) होतुमादातुम् (घोषेव) आप्तानां वागिव (शंसम्) प्रशस्तम् (अर्जुनस्य) रूपस्य। अर्जुनमिति रूपनामसु पठितम्। (निघं०३.७) (नंशे) नाशनाय (प्र) (व:) (पूष्णे) पोषणाय (दावने) दि (आ) (अच्छ) (वोचेय) (वसुतातिम्) धनमेव (अग्ने:) पावकात्॥५॥

अन्वय:-हे विद्वांस! औशिजोऽहं वो रुवण्युमाहुवध्यै अर्जुनस्य शंसी विषय द्रीःखं नंशे वः पूष्णे दावनेऽग्नेर्वसुतातिं प्राच्छा वोचेय॥५॥

भावार्थ:-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। यथा वैद्याः सर्वेभ्यः आरोग्यं प्रदाय रोगान् सद्यो निवर्त्तयन्ति तथा सर्वे विद्यावन्तः सर्वान् सुखिनो विधाय सुप्रतिष्ट्रितान् कुर्कन्तु॥५॥

पदार्थ:-हे विद्वानो! (औशिज:) विद्वा की कामना करनेवालें का पुत्र मैं (व:) तुम लोगों के (फवण्युम्) अच्छे कहे हुए उत्तम उपदेश के (आ, हुवध्ये) प्रहान करने के लिये (अर्जुनस्य) रूप के (शंसम्) प्रशंसित व्यवहार को वा (घोषेव) विद्वानों की चाणी के समान दु:ख के (नंशे) नाश और (व:) तुम लोगों की (पूष्णे) पृष्टि करने तथा (दावने) दूससे को देगे के लिये (अग्ने:) अग्नि के सकाश से जो (वसुतातिम्) धन उसको ही (प्र, आ, अच्छा, वांचेय) उत्तमता से भली भांति अच्छा कहूं॥५॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमा और क्षाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे वैद्यजन सबके लिये आरोग्यपन देके रोगों को जल्दी दूर कराते, विद्ये सब विद्यावान् सबको सुखी कर अच्छी प्रतिष्ठा वाले करें॥५॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

श्रुतं में मित्राव राष्ट्र हुवेगोत श्रुतं सदीने विश्वतः सीम्।

श्रोतुं नः श्रोतुंरातिः सुश्रोतुंः सुक्षेत्रा सिन्धुंरद्धिः॥६॥

श्रुतम्। में। मित्रावरुणा। हर्वा। इमा। उत। श्रुतम्। सदेने। विश्वतः। सीम्। श्रोतुं। नः। श्रोतुंऽरातिः। सुऽश्रोतुंः। सुऽश्रत्रां सिक्युं। अत्ऽभिः॥६॥

पदार्थ: (श्रुजम्) (मे) मम (मित्रावरुणा) सुहृद्धरौ (हवा) होतुमर्हाणि वचनानि (इमा) इमानि (उत) (अपि (श्रुतम्) अत्र विकरणलुक्। (सदने) सदिस सभायाम् (विश्वतः) सर्वतः (सीम्) सीमायाम्

(श्रोतु) शृणोतु (न:) अस्माकम् (श्रोतुराति:) श्रोतुः श्रवणं रातिर्दानं यस्य (सुश्रोतुः) सुष्ठु शृणोति यस्तस्य (सुक्षेत्रा) शोभनानि क्षेत्राणि (सिन्धुः) नदी (अद्भिः) जलैः॥६॥

अन्वयः-हे मित्रावरुणा! सुश्रोतुर्मे इमा हवा श्रुतमुतापि सदने विश्वतः सीं श्रुतमद्भिः सिन्धुः सुक्षेत्रेष श्रीतुस्रतिनी वचनानि श्रोतु॥६॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। विद्वद्भिः सर्वेषां प्रश्नाञ्छृत्वा यथावत् समाधेयाः॥६॥

पदार्थ:-हे (मित्रावरुणा) मित्र और उत्तम जन (सुश्रोतु:, में) मुझ अच्छे सुननेवाले के (इमा) इन (हवा) देने-लेने योग्य वचनों को (श्रुतम्) सुनो (उत) और (सदने) सभा वा (विश्वतः) सब ओर से (सीम्) मर्थ्यादा में (श्रुतम्) सुनो अर्थात् वहाँ की चर्चा को समझो तथा (अदि:) जलों से जैसे (सिन्धु:) नदी (सुक्षेत्रा) उत्तम खेतों को प्राप्त हो, वैसे (श्रोतुराति:) जिसका सुनना दूसरे को देना है, वह (न:) हम लोगों के वचनों को (श्रोतु) सुने॥६॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। विद्वानों को सहिय कि सबके प्रश्नों को सुनके यथावत् उनका समाधान करें॥६॥

पुनस्तमेव विषयमाह।

फिर उसी विषय को अग्रले मन्त्र में बहा है॥

स्तुषे सा वां वरुण मित्र गुतिर्गवां शुक्रा पूक्षयमिष्ट्र पुन्ने।

श्रुतरंथे प्रियरंथे दर्धानाः सद्यः पुष्टि निरुधानासी अग्मन्॥७॥

स्तुषे। सा। वाम्। वकुणा मित्रा राक्तः। गर्वाम्। श्रृता। पृक्षऽयामेषु। पुत्रे। श्रुतऽर्रथे। प्रियऽर्रथे। दर्धानाः। सद्यः। पुष्टिम्। निऽकृश्वानासः। अग्मन्॥७॥

पदार्थ:-(स्तुषे) स्तौति। अह्न व्यत्ययेन मध्यमः। (सा) (वाम्) युवाम् (वरुण) गुणोत्कृष्ट (मित्र) सुहत् (रातिः) या राति ददानि सा (गवाम्) वाणीनाम् (श्राता) शतानि (पृक्षयामेषु) पृच्छचन्ते ये ते पृक्षास्तेषामिमे यामास्तेषु। अत्र पृच्छधातोर्बाहुलकादौणादिकः क्सः प्रत्ययः। (पन्ने) गमके (श्रुतरथे) श्रुते रमणीये रथे (प्रियरथे) क्मनीये रथे (दधानाः) धरन्तः (सद्यः) (पृष्टिम्) (निरुधानासः) निरोधं कुर्वाणाः (अग्मन्) गच्छेयुः॥७॥

अन्वयः-प्रथा विद्वांसः पत्रे श्रुतरथे प्रियरथे सद्यः पुष्टि दधाना दुःखं निरुन्धानासोऽग्मंस्तथा हे वरुण मित्र! युवां पृक्षयामेषु प्रश्चां शता गच्छतम् या युवयो रातिः स्त्री सा वां युवां यथा स्तुषे तथाऽहमपि स्तौमि॥७॥

भाषार्थः । यथेह विद्वांसः पुरुषार्थेनानेकान्यद्भुतानि यानानि रचयन्ति तथान्येद्भि रचनीयानि॥७॥

पदार्थ:-जैसे विद्वान् जन (पन्ने) पदार्थों के पहुंचानेवाले (श्रुतरथे) सुने हुए रमण करने योग्य रथ ब्रो (प्रियोपे) अति मनोहर रथ में (सद्य:) शीघ्र (पृष्टिम्) पृष्टि को (दधाना:) धारण करते और दु:ख को अष्टक-२। अध्याय-१। वर्ग-१-३

मण्डल-१। अनुवाक-१८। सूक्त-१२२ Q313

(निरुन्धानास:) रोकते हुए (अग्मन्) जावें, वैसे हे (वरुण) गुणों से उत्तमता को प्राप्त और (मित्र) पित्र, तुम (पृक्षयामेषु) जो पूंछे जाते उनके यम-नियमों में (गवाम्, शता) सैकड़ों वचनों को प्राप्त होजी। और जो तुम्हारी (राति:) दान देनेवाली स्त्री हैं (सा) वह (वाम्) तुम दोनों की (स्तुषे) स्त्रुति करती हैं, वैसे मैं भी स्तुति करूं॥७॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे इस संसार में विद्वाप जन पुरुषार्थ से अनेकों अद्भुत यानों को बनाते हैं, वैसे औरों को भी बनाने चाहिये॥७॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।

अस्य स्तुषे महिंमघस्य राष्ट्रः सर्चा सनेम नहुषः सुवीराः। जनो यः पुत्रेभ्यो वाजिनीवानश्चावतो रृथिनो महां सूरिः॥८॥

अस्य। स्तुषे। महिंऽमघस्य। रार्धः। सर्चा। सुनेम्। नहुर्षः। सुरुवीर्यः, जर्नः। यः। पुत्रेभ्यः। वाजिनीऽवान्। अश्चेऽवतः। रृथिनः। मह्यम्। सूरिः॥८॥

पदार्थ:-(अस्य) (स्तुषे) (महिमघस्य) महिम्मघं फूज्यं धनं यस्य तस्य (राधः) धनम् (सचा) समवायेन (सनेम) संभजेम (नहुषः) शुभाशू कर्मबद्धा मनुष्यः। नहुष इति मनुष्यनामसु पठितम्। (निघं०२.३) (सुवीराः) उत्कृष्टशूरवीराः (जनः) (यः) (पन्नेभ्यः) गमकेभ्यो यानेभ्यः (वाजिनीवान्) प्रशस्तवेदिक्रियायुक्तः (अश्वावतः) जिह्नश्वयुक्तिस्य। मन्त्रे सोमाश्चेन्द्रियविश्चदेव्यस्य मतौ। (अष्टा०६.३.१३१) इत्यश्वशब्दस्य मतौ। दीर्घः। (स्थिनः) प्रशस्तरथस्य (मह्मम्) (सूरिः) विद्वान्॥८॥

अन्वयः - हे विद्वंस्त्वमस्याश्चावता रिश्वनी महिमघस्य जनस्य राधः स्तुषे तस्य तत्सुवीरा वयं सचा सनेम यो नहुषो जनः पज्रेभ्यो वाजिनीवान् जार्यात् स सूरिर्मह्यमेलां विद्यां ददातु॥८॥

भावार्थ:-यथा पुरुषार्थी समृद्धिमान् जायते तथा सर्वैर्भवितव्यम्॥८॥

पदार्थ: -हे विद्वान ! आप (अस्य) इस (अश्वावतः) बहुत घोड़ों से युक्त (रिष्टनः) प्रशंसित रथ और (मिहमघस्य) प्रशंसा करने योग्य उत्तम धनवाले जन के (राधः) धन की (स्तुषे) स्तुति अर्थात् प्रशंसा करते हो उन् आपके उस काम को (सुवीराः) सुन्दर शूरवीर मनुष्यों वाले हम लोग (सचा) सम्बन्ध से (सनेप) अच्छे प्रकार सेवें (यः) जो (नहुषः) शुभ-अशुभ कामों से बंधा हुआ (जनः) मनुष्य (पन्नेभ्यः) एक स्थान को पहुंचानेहारे यानों से (वाजिनीवान्) प्रशंसित वेदोक्त क्रियायुक्त होता है, वह (सूरिश) विद्वान् (महाम्) मेरे लिये इस वेदोक्त शिल्पविद्या को देवे॥८॥

भावार्थ:-जैसे पुरुषार्थी मनुष्य समृद्धिमान् होता है, वैसे सब लोगों को होना चाहिये॥८॥

१३५४

ऋग्वेदभाष्यम् पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

जनो यो मित्रावरुणावभिधुगुपो न वां सुनोत्यक्ष्णयाधुक्। स्वयं स यक्ष्मं हृदये नि धत्त आपु यदीं होत्राभिर्ऋतावां॥९॥

जर्नः। यः। मित्राव्कृणौ। अभिऽधुक्। अपः। न। वाम्। सुनोर्ति। अक्ष्णयाऽधुक्। स्वयम्। सः। यक्ष्मम्। हृदये। नि। धुने। आपं। यत्। ईम्। होत्राभिः। ऋतऽवां॥ ९॥

पदार्थ:-(जन:) विद्वान् (य:) (मित्रावरुणौ) प्राणोदानाविव (अभिद्युक्) अभितो द्रोहं कुर्वन् (अप:) प्राणान् (न) निषेधे (वाम्) युवयोः (सुनोति) निष्पन्नान् करोति (अक्षणयाधुक्) कुटिलया रीत्या दुह्यति सः (स्वयम्) (सः) (यक्ष्मम्) राजरोगम् (हृदये) (नि) (धन्ते) (आप) आप्नोति (यत्) यः (ईम्) सर्वतः (होत्राभिः) आदातुमर्हाभिः क्रियाभिः (ऋतावा) य ऋतेन स्रत्येन क्लोन्ति संभजित सः॥९॥

अन्वयः – हे सत्योपदेशकयाजकौ! यो जनो वामपो मित्रावरुणाविषाभिधुन्रश्णृत्रोधुक् सन्न सुनोति, स स्वयं हृदये यक्ष्मं निधत्ते यद्यऋतावा होत्राभिरीमाप स स्वयं हृदये सुखं निधत्ते॥९॥

भावार्थ:-यो मनुष्य: परोपकारकान् विदुषो दृह्णि स सदी दुःखी यश्च प्रीणाति स च सुखी जायते॥९॥

पदार्थ: - हे सत्य उपदेश और यज्ञ करानेवाली! (यो) जो (जन:) विद्वान् (वाम्) तुम दोनों के (अप:) प्राण अर्थात् बलों को (मित्रावरुणा) प्राण तथा इदान जैसे वैसे (अभिधुक्) आगे से द्रोह करता वा (अक्ष्णयाधुक्) कुटिलरीति से द्रोह करता हुआ (न) नहीं (सुनोति) उत्पन्न करता (स:) वह (स्वयम्) आप (हृदये) अपने हृदय में (यक्ष्मम्) सजराग) को (नि, धत्ते) निरन्तर धारण करता वा (यत्) जो (ऋतावा) सत्य भाव से सेवन करनेवाला (होत्राभि:) ग्रहण करने योग्य क्रियाओं से (ईम्) सब ओर से आपके व्यवहारों को प्राप्त होता है, वह (अर्प) अपने हृदय में सुख को निरन्तर धारण करता है॥९॥

भावार्थ:-जो मनुष्य परीपकार करनेवाले विद्वानों से द्रोह करता वह सदा दु:खी और जो प्रीति करता है, वह सुखी होता है। १५ १०

अथ युद्धविषय उपदिश्यते॥

अब युद्ध के विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है॥

स क्रार्थतो महुषो दंसुजूतः शर्धस्तरो नुरां गूर्तश्रवाः।

विस्ट्रिसियाति बाळ्हसृत्वा विश्वास पृत्सु सद्मिच्छूरै:॥१०॥२॥

सः। व्रार्धतः। नहुषः। दम्ऽसुंजूतः। शर्धःऽतरः। नुराम्। गूर्तऽश्रवाः। विसृष्टऽरातिः। याति। बाळ्हुऽसृत्वा। विश्वासुर्रो सुन्दुस्। सर्दम्। इत्। शूर्रः॥१०॥ अष्टक-२। अध्याय-१। वर्ग-१-३

(इत्) एव (श्रूर:) शत्रूणां हिंसक:॥१०॥

मण्डल-१। अनुवाक-१८। सूक्त-१२२

पदार्थ:-(स:) (व्राधत:) विरोधिन: (नहुष:) मनुष्य: (दंसुजूत:) यो दंसुभिरुपक्षयिव्यक्तिर्मुत्रीर्स्जूत: प्रेरित: स: (शर्धस्तर:) अतिशयेन बलवान् (नराम्) नायकानां वीराणाम् (गूर्त्तश्रवा:) गूर्त्तेनोद्यमेर श्रवः श्रवणमत्रं वा यस्य स: (विसृष्टराति:) विविधा: सृष्टा रातयो दानादीनि येन स: (यादि) प्राप्नोति (बाढमृत्वा) यो बाढेन प्रशस्तेन बलेन सरित स: (विश्वासु) (पृत्सु) सेनासु (सद्वम्) शत्रुहिंस्स्कसैन्यम्

अन्वयः-यो दंसुजूतः शर्धस्तरो गूर्त्तश्रवा विसृष्टरातिर्बाढसृत्वा नहुषो नरां विश्वासु पृत्सु सदिमिद् गृहीत्वा व्राधतो युद्धाय याति स विजयमाप्नोति॥१०॥

भावार्थ:-मनुष्यै: शत्रोरधिकां युद्धसामग्रीं कृत्वा सुसहायेन से शत्रुर्विजेतव्य:॥१०॥

पदार्थ:-जो (दंसुजूत:) विनाश करनेहारे वीरों ने प्रेरण किया (शर्थस्तर:) अत्यन्त बलवान् (गूर्तश्रवा:) जिसका उद्यम के साथ सुनना और अन्न आदि पद्र्थ (विसृष्ट्रग्रंति:) जिसने अनेक प्रकार के दान आदि उत्तम-उत्तम सिद्ध किये (बाढसृत्वा) जो प्रशंस्ति बल से चलने (शूर:) और शत्रुओं को मारनेवाला (नहुष:) मनुष्य (नराम्) नायक वीरों की (बिश्वासु) समस्त (पृत्सु) सेनाओं में (सदम्) शत्रुओं के मारनेवाले वीर सेनाजन को (इत्) ही ग्रहण कर (वाध्तः) विरोध करनेवालों को युद्ध के लिये (याति) प्राप्त होता है (सः) वह विजय को पाता है। १०॥

भावार्थ:-मनुष्यों को चाहिये कि अपने राज्य से अधिक युद्ध की सामग्री को इकट्ठी कर अच्छे पुरुषों के सहाय से उस राजू को जीतें॥१०००

पुनर्पदेशककृत्यमाह।।

फिर उपदेश करनेवाले का कर्त्तव्य अगले मन्त्र में कहा है।।

अध् ग्मन्ता नहुषो हर्व सूरेः श्रोता राजानो अमृतस्य मन्द्राः।

नुभोजुवो यन्निर्वस्य राधुः प्रशस्तय महिना रथवते॥ ११॥

अर्ध। ग्मन्तं। नहुंपः। द्विम्। स्रूरेः। श्रोतं। राजानः। अमृतंस्य। मुन्द्राः। नभःऽजुवंः। यत्। निर्वस्यं। रार्धः। प्रऽशंस्तये। मुहुना। रथंऽवते॥ १६॥

पदार्थ: -(अध) अनिन्तर्ये (गमना) प्राप्नुत्। अत्र द्वयचोऽतस्तिङ इति दीर्घः। (नहुषः) विदुषो नरस्य (हवम्) उपदेशाख्यं शब्दम् (सूरेः) सर्वविद्याविदः (श्रोत) शृणुत। अत्र विकरणलुक् द्वयचोऽतृस्तिङ इति दीर्घश्च। (राजानः) राजमानाः (अमृतस्य) अविनाशिनः (मन्द्राः) आह्वादियतारः (नभोज्वः) विमानादिना नभसि गच्छन्तः (यत्) (निरवस्य) निर्गतोऽवो रक्षणं स्य (राधः) धनम् (प्रशस्तेश्व) प्रशस्ताय (महिना) महत्त्वेन (रथवते) बहवो रथा विद्यन्ते यस्य तस्मै॥११॥

१३५६

ऋग्वेदभाष्यम्

अन्वय:-हे मन्द्रा राजानो! यूयममृतस्य सूरेर्नहुषो हवं श्रोत नभोजुवो यूयं यन्निरवस्य राधस्तद् ग्मन्ताध महिनो प्रशस्तये रथवते राधो दत्त॥११॥

भावार्थः-ये परमेश्वरस्य परमविदुषः स्वात्मनश्च सकाशादविरोधिनस्तदुपदेशांश्च गृह्णीयुस्ते प्राप्तविद्या महाशया जायन्ते॥११॥

पदार्थ: - हे (मन्द्रा:) आनन्द करानेवाले (राजान:) प्रकाशमान सज्जनों तुम (अमृतस्य) आत्मरूप से मरणधर्म रहित (सूरे:) समस्त विद्याओं को जाननेवाले (नहुष:) किंद्रान् जन के (हवम्) उपदेश को (श्रोत) सुनो (नभोजुव:) विमान आदि से आकाश में गमन करते हुए तुम (चत्) जो (निरवस्य) रक्षाहीन का (राध:) धन है, उसको (गमन्त) प्राप्त होओ (अध) इसके अनन्तर (महिना) बड़प्पन से (प्रशस्तये) प्रशंसित (रथवते) बहुत रथवाले को धन देओ॥ १२॥

भावार्थ:-जो परमेश्वर, परम विद्वान् और अपने आत्मा के स्काश मे विरोधी नहीं होते और उनके उपदेशों का ग्रहण करें, वे विद्याओं को प्राप्त हुए महाशय हित्ते हैं।।११॥

पुनस्तमेव विषयमाह।

फिर उसी विषय को अगले मिन्त्रामें कहा है।।

पुतं शर्धं धाम यस्यं सूरेरित्यवोचन् दर्शतमस्य नंशी।

द्युम्नानि येषु वसुताती रारन् विश्वे सन्वन्तु प्रभृथेषु वार्जम्॥१२॥

पुतम्। शर्धम्। धाम्। यस्य। सूरेः। इति। अविद्यन्। दृष्ट्रीऽतयस्य। नंशे। द्युमानि। येषुं। वसुऽताितः। र्रन्। विश्वे। सुन्वन्तु। प्रुऽभृथेषुं। वार्जम्॥ १२॥

पदार्थ:-(एतम्) पूर्वोक्तं सर्वं वस्तुजातम् (शर्द्धम्) बलयुक्तम् (धाम) स्थानम् (यस्य) (सूरेः) विदुषः (इति) अनेन प्रकारेण (अवोचम्) वदयः (दशतयस्य) दशधा विद्यस्य (नंशे) अदर्शययम् (द्युम्नानि) यशांसि धनानि वा (येषु) (वसुतातिः) धनाद्यैश्वर्य्ययुक्तः (रारन्) दद्यः (विश्वे) सर्वे (सन्वन्तु) संभजन्तु (प्रभूथेषु) (वाजम्) ज्ञानपृत्रं वा॥१२॥

अन्वयः - वसुतातिर्ह पथा विद्वीर्मी यस्य दशतयस्य सूरेः सकाशाद् यच्छर्द्धं धामावोचन्। ये विश्वे वाजं रारन् येषु प्रभृथेषु द्युम्नानि सन्वन्त्वित सदेते सर्वे सेवित्वा दुःखानि नंशे॥१२॥

भावार्थः अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार। ये विपश्चितो मनुष्याः पूर्णविद्याविदोऽखिलाविद्याः प्राप्यान्यानुपदिश्रान्ति त्यशस्विनो भवन्ति॥१२॥

प्रदर्श: (वसुताित:) धन आदि ऐश्वर्य्ययुक्त मैं जैसे विद्वान् जन (यस्य) जिस (दशतयस्य) दश प्रकार की विद्वाओं से युक्त (सूरे:) विद्वान् के सकाश से जिस (शर्द्धम्) बलयुक्त (धाम) स्थान को (अब्रोधन्) कहें वा जो (विश्वे) सब विद्वान् (वाजम्) ज्ञान वा अन्न को (रारन्) देवें (येषु) जिन (प्रभृथेषु)

अष्टक-२। अध्याय-१। वर्ग-१-३

मण्डल-१। अनुवाक-१८। सूक्त-१२२

ान करें (**इति**) इस प्रकार उस

अच्छे धारण किये हुए पदार्थों में (द्युम्नानि) यश वा धनों का (सन्वन्तु) सेवन करें (इति) इस प्रकार उस ज्ञान और (एतम्) इन पूर्वोक्त सब पदार्थों का सेवन कर दु:खों को (नंशे) नाश करूं॥१२०।

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो विद्वान् मनुष्य पूर्ण विद्वाओं की जाननेहारे समस्त विद्याओं को पाकर औरों को उपदेश देते हैं, वे यशस्वी होते हैं॥१२॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

मन्दामहे दर्शतयस्य धासेर्द्विर्यत्पञ्च बिभ्रतो यन्त्यन्ना। किमिष्टाश्च इष्टरिश्मरेत ईशानासस्तर्भष ऋञ्जते नृन्॥ १३ ॥

मन्दामहे। दर्शाऽतयस्य। धासे:। द्वि:। यत्। पञ्ची। बिभ्रतः। यन्ति। अन्ना। किम्। इष्टऽअश्वः। इष्टऽर्राश्मः। एते। ईशानासः। तर्रुषः। ऋञ्चते। नृन्॥१३॥

पदार्थ:-(मन्दामहे) स्तुमः (दशतयस्य) दशविध्य (धासे) विद्यासुखधारकस्य विदुषः (द्विः) द्विवारम् (यत्) (पञ्च) अध्यापकोपदेशकाऽध्येत्र्युपदेश्यसामास्याः (बिभ्रतः) विद्यासुखेन सर्वान् पुष्यतः (यन्ति) प्राप्नुवन्ति (अन्ना) सुसंस्कृतान्यन्नानि (किप्) प्रेश्ने (इष्टाश्वः) इष्टाः संगता अश्वा यस्य सः (इष्टरिंगः) इष्टाः संयोजिता रश्मयो येन (एसे) (ईशानासः) समर्थाः (तरुषः) अविद्यासंप्लवकान् (ऋञ्जते) (नृन्) विद्यानायकान्॥१३॥

अन्वय:-यद्ये पञ्च दशतयस्य धासेविद्यामम् च द्विर्यन्ति य एत ईशानासस्तरुष ऋञ्जते प्रसाध्नुवन्ति तान् बिभ्रतो नृन् जनान् वयं मन्दामहे तच्छिक्षां प्राप्य जन इष्टाश्च इष्टाष्ट्रमः किं न जायते ?॥१३॥

भावार्थ:-ये सुशिक्षया स्वीन् विदुषः कुर्वन्तः साधनैरिष्टसाधकान् समर्थान् विदुषो न सेवन्ते त इष्टं सुखमपि न लभन्ते॥१३॥

पदार्थ:-(यत्) जो (पञ्च) पढ़ींने, उपदेश करने, पढ़ने और उपदेश सुननेवाले तथा सामान्य मनुष्य (दशतयस्य) दश प्रवीर के (धासे:) विद्या सुख का धारण करनेवाले विद्वान् की विद्या को और (अन्ना) अच्छे संस्कार से सिद्ध-किये हुए अन्नों को (द्वि:) दो वार (यन्ति) प्राप्त होते हैं वा जो (एते) ये (ईशानासः) समर्थ अविद्या अज्ञान में डुबानेवालों को (ऋज्ञते) प्रसिद्ध करते हैं, उन (बिभ्रतः) विद्या सुख से सब की सृष्टि (नृन्) और विद्याओं की प्राप्त करनेहारे मनुष्यों की हम लोग (मन्दामहे) स्तुति करते हैं, उनकी शिक्षा को पाकर मनुष्य (इष्टाश्चः) जिसको घोड़े प्राप्त हुए वा (इष्टरिंगः) जिसने कला यन्त्रादिकों की किरणें जोड़ी ऐसा (किम्) क्या नहीं होता है?॥१३॥

१३५८

ऋग्वेदभाष्यम्

भावार्थ:-जो अच्छी शिक्षा से सबको विद्वान् करते हुए साधनों से चाहे हुए को सिद्ध करनेवलि समर्थ विद्वानों का सेवन नहीं करते, वे अभीष्ट सुख को भी नहीं प्राप्त होते हैं॥१३॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

हिरंण्यकर्णं मणिग्रीवमर्ण्स्तन्नो विश्वे वरिवस्यन्तु देवाः।

अर्थो गिर्रः सद्य आ ज्ग्मुषीरोस्राश्चांकन्तूभर्येष्वस्मे॥ १४॥

हिर्रण्यऽकर्णम्। मृण्ऽिरशोवम्। अर्णः। तत्। नः। विश्वे। वृद्विस्यन्तु। देवाः। अर्यः। मिर्रः। सद्यः। आ। जुग्मुषीः। आ। उस्राः। चाकन्तु। उभयेषु। अस्मे इति॥१४॥

पदार्थ:-(हिरण्यकर्णम्) हिरण्यं कर्णे यस्य तम् (मिणग्रीवम्) सणयो प्रीक्तियां यस्य तम् (अर्ण:) सुसंस्कृतमुदकम् (तत्) (नः) अस्मभ्यम् (विश्वे) अखिलाः (विश्विस्यन्तु) सेवन्ताम् (देवाः) विद्वांसः (अर्थः) वैश्यः (गिरः) सर्वदेशभाषाः (सद्यः) तूर्णम् (आ) (जग्मषीः) प्राप्तुं योग्याः (आ) (उस्नाः) गावः (चाकन्तु) कामयन्तु (उभयेषु) स्वेष्वन्येषु च (अस्मे) अस्मासुभश्र्य।।

अन्वय:-ये विश्वे देवा नो जग्मुषीर्गिरस्सद्य आचकन्तूभवेष्यस्म च्युद्धर्णः कामयेरन् योऽर्यो जग्मुषीर्गिर उस्राश्च कामयते तं हिरण्यकर्णं मणिग्रीवं तदस्मांश्चावरिवस्यन्तु तानेतान् कर्णं प्रतिष्ठप्रयोग॥१४॥

भावार्थ:-ये विद्वांसो याश्च विदुष्यस्त्राम् दुहित्रश्च सद्यो विदुषो विदुषोश्च कुर्वन्ति, ये विष्णग्जनाः सकलदेशभाषा विज्ञाय देशदेशान्त्रसद् द्वीपद्वीप्रान्तराच्च धनमाहृत्य श्रीमन्तो भवन्ति ते सर्वैः सर्वथा सत्कर्त्तव्याः॥१४॥

पदार्थ:-जो (विश्वे, देवा:) समस्ति विद्वान (नः) हम लोगों के लिये (जग्मुषी:) प्राप्त होने योग्य (गिरः) वाणियों की (सद्यः) शीघ्र (आ, चाकन्तु) अच्छे प्रकार कामना करें वा (उभयेषु) अपने और दूसरों के निमित्त तथा (अस्मे) हम लोगों में जो (अर्णः) अच्छा बना हुआ जल है, उसकी कामना करें और जो (अर्थः) वैश्य प्राप्त होने योग्य सब देश, भाषाओं और (उस्नाः) गौओं की कामना करे उस (हिरण्यकर्णम्) कानों में कुण्डल और (मणिग्रीवम्) गले में मणियों को पहिने हुए वैश्य को (तत्) तथा उस उक्त व्यवहार और हम लोगों की (आ, विश्वस्थन्तु) अच्छे प्रकार सेवा करें, उन सबकी हम लोग प्रतिष्ठा करावें॥१४॥

भावार्थ: जो विद्वान् मनुष्य वा विदुषी पण्डिता स्त्री लड़के-लड़िकयों को शीघ्र विद्वान् और विदुषी करते वा जो विषयें सब देशों की भाषाओं को जानके देश-देशान्तर और द्वीप-द्वीपान्तर से धन को लाक्क्स ऐश्वर्ययुक्त होते हैं, वे सबको सब प्रकारों से सत्कार करने योग्य हैं॥१४॥

अथ राजधर्मविषयमाह॥

अब राजधर्म विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अष्टक-२। अध्याय-१। वर्ग-१-३

मण्डल-१। अनुवाक-१८। सूक्त-१२२ 93/2

चुत्वारों मा मशुर्शारेस्य शिश्वस्त्रयो राज्ञ आयंवसस्य जिष्णोः। रथो वां मित्रावरुणा दीर्घाप्साः स्यूमंगभस्तिः सूरो नाद्यौत्॥१५॥३॥

चुत्वारं:। मा। मुशुर्शारंस्य। शिश्वं:। त्रयं:। राज्ञं:। आर्यवसस्य। जिष्णोः। रथं: वामः मित्रावरुणा। दीर्घऽअप्साः। स्यूमंऽगभस्तिः। सूरं:। न। अद्यौत्॥ १५॥

पदार्थ:-(चत्वार:) वर्णा आश्रमाश्च (मा) माम् (मशर्शारस्य) यो मश्मन् दुष्टाम् शब्दान् शृणाति हिनस्ति तस्य। अत्र पृषोदरादिना पूर्वपदस्य रुगागमः। (शिश्वः) शासनीताः (त्रयः) अध्यक्षप्रजाभृत्याः (राज्ञः) न्यायविनयाभ्यां राजमानस्य प्रकाशमानस्य (आयवसस्य) पूर्णसामग्रीकस्य (जिष्णोः) जयशीलस्य (रथः) यानम् (वाम्) युवयोः (मित्रावरुणा) सुहृद्धरे (द्वीर्घाप्ताः) दीर्घा बृहन्तोऽप्साः शुभगुणव्याप्तयो येषां ते (स्यूमगभस्तः) समूहिकरणः (सूरः) सिवता (न) इव (अद्यौत्) प्रकाशयित॥१५॥

अन्वयः – हे मित्रावरुणा! यो वां रथः स मा मां प्राप्नोतु यस्य मित्राश्रीस्यायवसस्य जिष्णो राज्ञः स्यूमगभस्तिः सूरो न रथोऽद्यौत् तथा यस्य दीर्घाप्साश्चत्वारस्त्रयश्च शिश्वः स्युः स राज्य कर्तुमर्हेत्॥१५॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। यस्य राज्ञो पष्ट्रि विद्यास्पृशिक्षायुक्ता गुणकर्मस्वभावतो नियता धार्मिकाश्चत्वारो वर्णा आश्रमाश्च त्रय: सेनाप्रचित्यायाधीस्त्रश्च सन्ति स सूर्य इव कीर्त्या सुशोभितो भवति॥१५॥

अत्र राजप्रजामनुष्यधर्मवर्णनादेतासून्तीर्थस्य) पूर्वसूक्तोक्तार्थेन सह संगतिरस्तीति बोध्यम्॥ इति द्वाविंशत्युत्तरं श्रातमं १२२ सूक्तं तृतीयो ३ वर्गश्च समाप्तः॥

पदार्थ:-हे (मित्रावरुणा) मित्र और उत्तम जन! जो (वाम्) तुम लोगों का (रथ:) रथ है वह (मा) मुझको प्राप्त होवे जिल्ल (मशर्शारस्य) दुष्ट शब्दों का विनाश करते हुए (आयवसस्य) पूर्ण सामग्रीयुक्त (जिष्णोः) अनुओं को जीतनेहार (राज्ञः) न्याय और विनय से प्रकाशमान राजा का (स्यूमगभस्तः) बहुत किएणों से युक्त (सूरः) सूर्य के (न) समान रथ (अद्यौत्) प्रकाश करता तथा जिसके (दीर्घाप्साः) जिनको अच्छे गुणों में बहुत व्याप्ति वे (चत्वारः) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र वर्ण और ब्रह्मचर्य, गृहस्य, वानप्रस्थ, संन्यास ये चार आश्रम तथा (त्रयः) सेना आदि कामों के अधिपति, प्रजाजन तथा भूनराजन ये तीन (शिश्वः) सिखाने योग्य हों, वह राज्य करने को योग्य हो॥१५॥

मावार्थः इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जिस राजा के राज्य में विद्या और अच्छी शिक्षायुक्त, गुण, कर्म, स्वभाव से नियमयुक्त धर्मात्माजन, चारों वर्ण और आश्रम तथा सेना, प्रजा और न्यायाधीश हैं, वह सूच्ये के तुल्य कीर्ति से अच्छी शोभायुक्त होता है॥१५॥

इस सूक्त में राजा, प्रजा और साधारण मनुष्यों के धर्म के वर्णन से इस सूक्त में कहे हुए अर्थे

की पिछले सूक्त के साथ एकता है, यह जानना चाहिये॥

यह एक सौ बाईसवां १२२ सूक्त और तीसरा ३ वर्ग पूरा हुआ॥

पृथुरित्यस्य त्रयोदशर्चस्य त्रयोविंशत्युत्तरशततमस्य सूक्तस्य दीर्घतमसः पुत्रः कक्षीवानृषिः। उषा देवता। १,३,६,७,९,१०,१३ विराट् त्रिष्टुप्। २,४,८,१२ निचृत् त्रिष्टुप्। ५ त्रिष्टुप् च छन्द्रः।

धैवतः स्वरः। ११ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

अथ दम्पत्योर्विषयमाह॥

अब १२३ एक सौ तेईसवें सूक्त का आरम्भ है। उसके प्रथम मन्त्र में स्त्री-पुरुष क्रे किषय को कहते हैं॥

पृथू रथो दक्षिणाया अयोज्यैनं देवासो अमृतासो अस्थु:।

कृष्णादुर्दस्थादुर्या ३ विहायाधिर्कित्सन्ती मार्नुषाय क्षयाय॥ १॥

पृथुः। रथः। दक्षिणायाः। अयोजि। आ। एनम्। देवासः। अमृतस्थः। अस्थुःमे कृष्णात्। उत्। अस्थात्। अर्था। विऽह्ययाः। चिकित्सन्ती। मानुषाय। क्षयाय॥ १॥

पदार्थ:-(पृथु:) विस्तीर्ण: (रथ:) वाहनम् (दक्षिणायाः) दिशः (अयोजि) युज्यते (आ) एनम् (देवास:) दिव्यगुणाः (अमृतास:) मरणधर्मरहिताः (अस्थः) तिष्ठेन्तु (कृष्णात्) अन्धकारात् (उत्) (अस्थात्) ऊर्ध्वमुदेति (अर्या) वैश्यकन्या (विहायाः) महत्ती (चिकित्सन्ती) चिकित्सां कुर्वती (मानुषाय) मनुष्याणामस्मै (क्षयाय) गृहाय॥१॥

अन्वय:-या मनुष्याय क्षयाय चिकित्सन्ती विलया अर्या उष्णुः कृष्णादुदस्थादिव विदुषाऽयोजि सा चैनं पतिं च युनिक्त ययोर्दक्षिणायाः पृथू रथश्चरित तावमृतासो देवस्स आऽस्थुः ॥१॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालद्भार:। यो उपर्गुणा स्त्री चन्द्रगुणश्च पुमान् भवेत् तयोर्विवाहे जाते सततं सुखं भवति॥१॥

पदार्थ:-जो (मानुषाय) मनुष्यों के इसे (क्षयाय) घर के लिये (चिकित्सन्ती) रोगों को दूर करती हुई (विहाया:) बड़ी प्रशंसित (अर्या) बेश्य की कन्या जैसे प्रात:काल की वेला (कृष्णात्) अंधेरे से (उदस्थात्) ऊपर को उठती उदय करती है, वैसे विद्वान् ने (अयोजि) संयुक्त की अर्थात् अपने सङ्ग ली और वह (एनम्) इस विद्वान् को पेतिभाव से युक्त करती अपना पित मानती तथा जिन स्त्री-पुरुषों का (दिक्षणाया:) दक्षिण दिशा में) (पृथु:) विस्तारयुक्त (रथ:) रथ चलता है, उनको (अमृतास:) विनाशरहित (देवाम:) अच्छे-अच्छे गुण (आ, अस्थु:) उपस्थित होते हैं॥१॥

भावार्ष:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो प्रात:समय की वेला के गुणयुक्त अर्थात् शीतल स्वभाववासी स्त्री और चन्द्रमा के समान शीतल गुणवाला पुरुष हो, उनका परस्पर विवाह हो तो निरन्तर सुख होता है।।१॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

१३६२

ऋग्वेदभाष्यम्

पूर्वा विश्वस्माद्भवनादबोधि जयन्ती वाजं बृह्ती सनुत्री। उच्चा व्यंख्यद्यवृतिः पुनर्भूरोषा अंगन्प्रथमा पूर्वहूती॥२॥

पूर्वा। विश्वस्मात्। भुवनात्। अबोधि। जर्यन्ती। वार्जम्। बृह्ती। सर्नुत्री। उच्चा। वि। अर्ख्यत्। युवानः। पुनःऽभूः। आ। उषाः। अगुन्। प्रथमा। पूर्वऽहूती॥२॥

पदार्थ:-(पूर्वा) (विश्वस्मात्) अखिलात् (भुवनात्) जगत्स्थात्पदार्थसमूहृत्ते (अबोधि) बुध्यते (जयन्ती) जयशीलां (वाजम्) विज्ञानम् (बृहती) महती (सनुत्री) विभाजिका (उच्चारे उच्चानि बस्तूनि (वि) (अख्यत्) ख्यापयित। अत्रान्तर्गतो ण्यर्थः। (युवितः) (पुनर्भूः) या विवाहितपितमस्पानन्तरं नियोगेन पुनः सन्तानोत्पादिका भवित सा (आ) (उषाः) (अगन्) गच्छिति। अत्र त्रिष्ठि प्रथमैकवचने बहुलं छन्दसीति शपो लुक् संयोगत्वेन तलोपे मो नो धातोः (अष्टा०८.२.६४) इति पस्य नकारादेशः। (प्रथमा) (पूर्वहूतौ) पूर्वेषां विद्यावृद्धानां हूतिराह्वानं यस्मिन् गृहाश्रमे तस्मिन्॥२॥

अन्वय:-या पूर्वहूतौ पुनर्भूर्वाजं जयन्ती बृहती सनुत्री प्रथमा युव्वतिर्यथोषा विश्वस्माद्भवनात् पूर्वाऽबोधि। उच्चा व्यख्यत् तथा आगन्त्सा विवाहे योग्या भवति॥२॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। सर्वा: क्रन्या शतस्य चतुर्थाशं वयौ विद्याभ्यासे व्यतीत्य पूर्णविद्या भूत्वा स्वसदृशं पतिमुदुह्य प्रभातवत्सुरूपा भवन्तु ॥ २॥

पदार्थ:-(पूर्वहूतौ) जिसमें वृद्धजनों का बुलाचा होता उस गृहस्थाश्रम में जो (पुनर्भू:) विवाहे हुए पित के मर जाने के पीछे नियोग से फिर्स्सिन उद्भित्र करनेवाली होती वह (वाजम्) उत्तम ज्ञान को (जयन्ती) जीतती हुई (बृहती) बड़ी (सनुत्री) सक्त व्यवहारों को अलग-अलग करने और (प्रथमा) प्रथम (युवितः) युवा अवस्था को प्राप्त होनेवाली नवोढ़ा स्त्री जैसे (उषाः) प्रातःकाल की वेला (विश्वस्मात्) समस्त (भुवनात्) जात् के पदार्थों से (पूर्वा) प्रथम (अबोधि) जानी जाती और (उच्च) ऊंची-ऊंची वस्तुओं को (वि, अख्वत्) अच्छे प्रकार प्रकट करती वैसे (आ, अगन्) आती है, वह विवाह में योग्य होती है॥२॥

भावार्थ:-इस मुन्न में वाचकुलुप्तोपमालङ्कार है। सब कन्या पच्चीस वर्ष अपनी आयु को विद्या के अभ्यास करने में व्यतीत कर)पूरी विद्यावाली होकर अपने समान पित से विवाह कर प्रात:काल की वेला के समान अन्छे रूपवाली हों॥२॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

सदद्य भागं विभर्जासि नृभ्य उषो देवि मर्त्युत्रा सुजाते। द्वित्रो नो अत्रं सविता दर्मूना अनांगसो वोचित सूर्याय॥३॥ अष्टक-२। अध्याय-१। वर्ग-४-६

मण्डल-१। अनुवाक-१८। सूक्त-१२३ 9363

यत्। अद्या भागम्। विऽभजासा नृऽभ्यः। उर्षः। देवि। मृत्येऽत्रा। सुऽजाते। देवः। नः। अत्री सिव्ता। दर्मूनाः। अनागसः। वोचिति। सूर्याय॥३॥

पदार्थ:-(यत्) यम् (अद्य) (भागम्) भजनीयम् (विभजासि) विभजेः (मृथ्यः) नायकभ्यः (उषः) प्रभातवत् (देवि) सुलक्षणैः सुशोभिते (मर्त्यत्रा) मर्त्येषु मनुष्येषु (सुजाते) सर्त्किर्त्या प्रकाशिते (देवः) देदीप्यमानः (नः) अस्मभ्यम् (अत्र) अस्मिने गृहाश्रमे (सविता) सूर्यः (दमूनाः) सहद्वरः (अनागसः) अनपराधिनः (वोचिति) उच्याः (सूर्याय) परमेश्वरविज्ञानाय॥३॥

अन्वय:-हे सुजाते देवि कन्ये! त्वमद्य नृभ्य उषरिव यद्यं भागं विभजासि पश्चान द्रेमूना मर्त्यत्रा सवितेव देवस्तव पति: सूर्याय नोऽनागसो वोचित तौ युवां वयं सततं सत्कुर्याम॥३॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। यदा द्वौ स्त्रीपुरुषौ विद्यावन्तौ धर्माचारिणौ विद्याप्रचारकौ सदा परस्परस्मिन् प्रसन्नौ भवेतां तदा गृहाश्रमेऽतीव सुखभाजिनौ स्याताम्। र्रा।

पदार्थ:-हे (सुजाते) उत्तम कीर्त्ते से प्रकाशित और (देवि) अच्छे लक्षणों से शोभा को प्राप्त सुलक्षणी कन्या! तू (अद्य) आज (नृभ्यः) व्यवहारों की प्राप्त करनेहारे मनुष्यों के लिये (उषः) प्रातः समय की वेला के समान (यत्) जिस (भागम्) स्विने खेर्य व्यवहार का (विभजासि) अच्छे प्रकार सेवन करती और जो (अत्र) इस गृहाश्रम में (दम्नाः) पित्रों में उत्तम (मर्त्यत्रा) मनुष्यों में (सविता) सूर्य के समान (देवः) प्रकाशमान तेरा पित (सूर्याय) परमात्मा के विज्ञान के लिये (नः) हम लोगों को (अनागसः) विना अपराध के व्यवहारों की (वोचित्र) कहे उन तुम दोनों का सत्कार हम लोग निरन्तर करें॥३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्लोपमालङ्कार है। जब दो स्त्री-पुरुष विद्यावान्, धर्म का आचरण और विद्या का प्रचार करनेहारे स्थि कभी परस्पर में प्रसन्न हों, तब गृहाश्रम में अत्यन्त सुख का सेवन करनेहारे होवें॥३॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

किर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

गृहंगृह्महुसा यात्यच्छा दिवेदिवे अधि नामा दर्धाना।

सिष्पसन्ती द्योतना शश्रुदागादयम्यमिद्धजते वसूनाम्॥४॥

पृहम्ऽमृहम्। अहुना। याति। अच्छं। दिवेऽदिवे। अधि। नामं। दर्धाना। सिसासन्ती। द्योतना। शर्धत्। आ। अगातु। अग्रेस्ऽअग्रम्। इत्। भुजते। वसूनाम्॥४॥

पदार्थ:-(गृहंगृहम्) निकेतनं निकेतनम् (अहना) दिवसेन व्याप्त्या वा। अत्र वाच्छन्दसीत्यल्लीपो न। (याति) (अच्छ) उत्तमरीत्या। अत्र निपातस्य चेति दीर्घः। (दिवेदिवे) प्रतिदिनम् (अधि) उपरिभावे (नाम) संज्ञाम् (दधाना) धरन्ती (सिषासन्ती) दातुमिच्छन्ती (द्योतना) प्रकाशमाना (शश्वत्र विस्तरम् (आ) (अगात्) प्राप्नोति (अग्रमग्रम्) पुरः पुरः (इत्) एव (भजते) सेवते (वसूनाम्) पृथिब्युदीनास्ताम्।।

अन्वय:-या स्त्री यथोषा अहना गृहंगृहमच्छाधियाति दिवेदिवे नाम दधाना द्योतना सूर्ती वसूनामप्रमग्रं भजते शश्चिददागात् तथा सिषासन्ती भवेत् सा गृहाकार्य्यालङ्कारिणी स्यात्॥४॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा सूर्यदीप्तिः पदार्थानां पुतेभार्ये सेवते नियमेन प्रतिसमयं प्राप्नोति तथा स्त्रियापि भवितव्यम्॥४॥

पदार्थ:-जो स्त्री जैसे प्रात:काल की वेला (अहना) दिन वा व्याप्ति से (गृहंगृहम्) घर-घर को (अच्छाधियाति) उत्तम रीति के साथ अच्छी ऊपर से आती (दिवेदिवे) और प्रतिदिन (नाम) नाम (दधाना) धरती अर्थात् दिन-दिन का नाम आदित्यवार, सोम्लूक्तर आदि धरती (द्योतना) प्रकाशमान (वसूनाम्) पृथिवी आदि लोकों के (अग्रमग्रम्) प्रथम-प्रथम स्थान को (भजते) भजती और (शश्चत्) निरन्तर (इत्) ही (आ, अगात्) आती है, वैसे (सिषास्ति) उत्तम प्रदार्थ पित आदि को दिया चाहती हो, वह घर के काम को सुशोभित करनेहारी हो॥४॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमाल क्रिंग है। जैसे सूर्य की कान्ति-धाम सब पदार्थों के अगले-अगले भाग को सेवन करती और नियम सि प्रत्येक समय प्राप्त होती है, वैसे स्त्री को भी होना चाहिये॥४॥

पुन तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

भगस्य स्वसा वर्रणस्य जामिरुषः सूनृते प्रथमा जरस्व। पुश्चा स देध्या यो श्रुधस्य धाता ज्योम् तं दक्षिणया रथेन॥५॥४॥

भर्गस्य। स्वसा। वर्रुष्यस्य। जाप्निः। उर्षः। सूनृते। प्रथमा। जुरुस्व। पृश्चा। सः। दुध्याः। यः। अघस्य। धाता। जयम। तम्। दक्षिणया। रथेना। ।।।

पदार्थ:-(भगस्य) ऐश्वर्यस्य (स्वसा) भगिनीव (वरुणस्य) श्रेष्ठस्य (जािमः) कन्येव (उषः) उषाः (सूनृते) सत्याचरणयुक्ते (प्रथमा) (जरस्व) स्तुहि (पश्चा) पश्चात् (सः) (दध्याः) तिरस्कुरु (यः) (अधस्य) प्रापुस्य (धाता) (जयेम) (तम्) (दक्षिणया) सुशिक्षितया सेनया (रथेन) विमानादियानेन॥५॥

अन्वयः-हं सूनृते! त्वमुषरुषा इव भगस्य स्वसेव वरुणस्य जामिरिव प्रथमा सती विद्या जरस्व योऽघस्य धाता भवेतू तैं-दक्षिण्या रथेन यथा वयं जयेम तथा त्वं दध्याः। यो जनः पापी स्यात् स पश्चा तिरस्करणीयः॥५॥ अष्टक-२। अध्याय-१। वर्ग-४-६

मण्डल-१। अनुवाक-१८। सूक्त-१२३

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। स्त्रीभिः स्वस्वगृह ऐश्वर्योन्नतिः श्रेष्ठा रीतिर्दूष्टताङ्गं च सततं कार्य्यम्॥५॥

पदार्थ:-हे (सूनते) सत्य आचरणयुक्त स्त्री! तू (उषः) प्रातः समय की तेला के समान वा (भगस्य) ऐश्वर्य्य की (स्वसा) बहिन के समान वा (वरुणस्य) उत्तम पुरुष की (जार्भः) कन्या के समान (प्रथमा) प्रख्यात प्रशंसा को प्राप्त हुई विद्याओं की (जरस्व) स्तुति कर, (यः) को (अध्यस्य) अस्प्रध का (धाता) धारण करनेवाला हो (तम्) उसको (दक्षिणया) अच्छी सिखाई हुई सेना और (रथेन) विमान आदि यान से जैसे हम लोग (जयेम) जीतें, वैसे तू (दक्ष्याः) उसका तिरस्कार करने आर्थात् किरस्कार करने योग्य है॥५॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। स्त्रियों को चोहिये कि अपने-अपने घर में ऐश्वर्य की उन्नति, श्रेष्ठ रीति और दुष्टों का ताड़न निरन्तर किया क्रिया देश।

पुनस्तमेव विषयम्ग्रह्य

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कुल है॥

उदीरतां सूनृता उत्परंधी्रुक्ट्रग्नयः शुशुचान्सि अस्थः। स्पार्हा वसूनि तमसापंगूळहाविष्कृण्यात्युषसी विभातीः॥६॥

उत्। ईर्ताम्। सूनृताः। उत्। पुरम्ऽधीः। उत्। शुग्नर्थः। शुशुचानासः। अस्थुः। स्पार्हा। वसूनि। तमसा। अर्पऽगूळ्हा। आविः। कृण्वन्ति। उषसः। विऽभाति। हा

पदार्थ:-(उत्) उत्कृष्टतया (ईरताम्) प्रस्थन्तु (सूनृताः) सत्यभाषणादिक्रियाः (उत्) (पुरस्धीः) याः पुरं श्रितां दधाति ताः (उत्) (अग्नयः) पावका इव (शुशुचानासः) भृशं पवित्रकारकाः (अस्थुः) तिष्ठन्तु (स्पार्हा) स्पृहणीयानि (असूनि) (तमसा) अन्धकारेण (अपगूढा) आच्छादितानि (आविः) प्राकट्ये (कृण्वन्ति) कुर्वन्ति (उषसः) प्रभाताः (विभाताः) विशिष्टप्रकाशान्॥६॥

अन्वयः-हे सत्पुर्रेषाः स्मृताः सन्तो यूयं यथा पुरन्धीश्शुशुचानासोऽग्नय इव स्त्रिय उदीरताम् स्पार्हा वसूनि उदस्थुः। यथोषसस्तम्सापगूढा द्रव्याणि विभातीश्चोदाविष्कृण्वन्ति तथा भवत॥६॥

भावार्थः-अत्र वास्रकेलुप्तोपमालङ्कारः। यदा स्त्रिय उषर्वद्वर्त्तमाना अविद्यामलिनतादि निष्कृत्य विद्यापवित्रतादि संप्रकाश्येश्वर्यमुत्रयन्ति तदा ताः सततं सुखिन्यो भवन्ति॥६॥

पदार्थ: है भत्पुरुषो! (सूनृता:) सत्यभाषणादि क्रियावान् होते हुए तुम लोग जैसे (पुरस्थी:) शरीर के आश्रित क्रिया को धारण करती और (शुशुचानास:) निरन्तर पवित्र करानेवाले (अग्नय:) अग्नियों के समान चमकती-दमकती हुई स्त्री लोग (उदीरताम्) उत्तमता से प्रेरणा देवें वा (स्पार्हा)

१३६६

चाहने योग्य (वसूनि) धन आदि पदार्थों को (उदस्थुः) उन्नति से प्राप्त हों वा जैसे (उषसः) प्रभातसमय (तमसा) अन्धकार से (अपगूढा) ढंपे हुए पदार्थों और (विभातीः) अच्छे प्रकाशों को (उदाविष्कृणविन्त) ऊपर से प्रकट करते हैं, वैसे होओ॥६॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जब स्त्रीजन प्रभात समय की वेलाओं के समान वर्त्तमान अविद्या, मैलापन आदि दोषों को निकाल कर विद्या और पाकपन आदि मुणो को प्रकाश कर ऐश्वर्य की उन्नति करती हैं, तब वे निरन्तर सुखयुक्त होती हैं॥६॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अपान्यदेत्यभ्यर्थन्यदेति विषुरूपे अहनी सं चरेते।

पुरिक्षितोस्तमी अन्या गुहांकुरद्यौदुषाः शोशुंचता रथेन्॥७॥

अर्प। अन्यत्। एति। अभि। अन्यत्। एति। विषुरूपेऽइति विषुऽरूपे। अर्हनी इति। सम्। चरेते इति। पुरिऽक्षितो:। तमे:। अन्या। गुर्हा। अकः। अद्यौत्। उषा:। शोश्चित्रा। रथेन।। भार

पदार्थ:-(अप) (अन्यत्) (एति) प्राप्नोति (अपि) अभूवत्) (एति) (विषुरूपे) व्याप्तस्वरूपे (अहनी) रात्रिदिने (सम्) (चरेते) (परिक्षितोः) सर्वत्रो निक्सताः। अत्र तुमर्थे तोसुन्। (तमः) रात्री (अन्या) भिन्नानि (गृहा) आच्छादिका (अकः) क्रिसेति (अद्यौत्) द्योतयित (उषाः) दिनम् (शोशुचता) अत्यन्तं प्रकाशमानेन (रथेन) रम्येण स्वरूपेण।

अन्वयः-ये विषुरूपे अहनी रात्रिदिने सह संचरेते तयोः परिक्षितोस्तमः प्रकाशयोर्मध्याद् गुहातमोऽन्याऽकः कृत्यानि करोति उषाः शोशुचता रथेनाद्यौत्। अन्यदर्भेति। अन्यदभ्येतीव दम्पती वर्तेताम्॥७॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। अस्मिञ्जगित तमः प्रकाशरूपौ द्वौ पदार्थौ स्तः, याभ्यां सदा लोकार्द्धो दिनं रात्रिश्च वर्जते। यहस्तु तमस्त्यजित तत् त्विषं गृह्णाति यावदीप्तिस्तमस्त्यजित तावत्तिमस्रादत्ते द्वौ पर्य्यायेण सदेव स्वव्याप्त्य प्राप्तं प्राप्तं द्रव्यमाच्छादयतः सहैव वर्तते तयोर्यत्र यत्र संयोगस्तत्र तत्र संध्या यह स्वत्र वियोगस्तत्र तत्र रात्रिर्दिनं च यौ स्त्रीपुरुषावेवं संयुक्तौ वियुक्तौ च भूत्वा दुःखनिमित्तानि जहीतः सुख्वारणानि चादत्तस्तौ सदानन्दितौ भवतः॥७॥

पदार्थ: ना (विषुरूप) संसार में व्याप्त (अहनी) रात्रि और दिन एक साथ (सं, चरेते) सञ्चार करते अर्थात् आते-जाते हैं, उनमें (परिक्षितो:) सब ओर से वसनेहारे अन्धकार और उजेले के बीच में (गुहा) अन्धकार से संसार को ढांपनेवाली (तम:) रात्री (अन्या) और कामों को (अक:) करती तथा (उषा:) सूर्य के प्रकाश से पदार्थों को तपानेवाला दिन (शोशुचता) अत्यन्त प्रकाश और (रथेन) रमण करने पोर्य रूप से (अद्यौत्) उजेला करता (अन्यत्) अपने से भिन्न प्रकाश को (अप, एति) दूर करता

अष्टक-२। अध्याय-१। वर्ग-४-६

मण्डल-१। अनुवाक-१८। सूक्त-१२३

तथा (अन्यत्) अन्य प्रकाश को (अभ्येति) सब ओर से प्राप्त होता, इस सब व्यवहार के स्मान स्त्री, परुष अपना वर्त्ताव वर्ते॥७॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। इस जगत् में अन्धेरा-उज़ेला दे पदार्थ हैं, जिनसे सदैव पृथिवी आदि लोकों के आधे भाग में दिन और आधे में रात्रि रहती हैं। जो वस्तु अन्धकार को छोड़ता वह उजेले का ग्रहण करता और जितना प्रकाश अन्धकार को छोड़ता उतना रात्रि लेती, दोनों पारी से सदैव अपनी व्याप्ति के साथ पाये-पाये हुए पदार्थ को ढांपते और दोनों एक साथ वर्त्तमान हैं। उनका जहाँ-जहाँ संयोग है, वहाँ-वहाँ संध्या और जहाँ-जहाँ वियोग होता अर्थात् अलग होते वहाँ-वहाँ रात्रि और दिन होता। जो स्त्री-पुरुष ऐसे मिल और अलग होकर दुखि के कारणों को छोड़ते और सुख के कारणों को ग्रहण करते, वे सदैव आनन्दित होते हैं॥७॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मूह्य में कहा है।

सद्शीर्द्य सद्शीरिदु श्रो दीर्घं संचन्ते वर्मणस्य भाम

अनुवृद्यास्त्रिंशतं योजनान्येकैका क्रतुं पी यन्ति सुद्यः॥८॥

सुऽदृशीः। अद्य। सुऽदृशीः। इत्। ऊम् इति। श्वः। दोर्घम्। सचन्ते। वर्रुणस्य। धार्म। अनुवृद्याः। त्रिंशत्म्। योजनानि। एकाऽएका। क्रतुम्। परि। युन्ति। सुद्यः॥८॥

पदार्थ:-(सदृशी:) सदृश्यो राज्य उपिश्च (अँद्य) अस्मिन् दिने (सदृशी:) (इत्) एव (उ) वितर्के (श्व:) आगामिदिने (दीर्घम्) महान्तं समयम् (स्वन्ते) समवेता वर्त्तन्ते (वरुणस्य) वायोः (धाम) स्थानम् (अनवद्याः) अनिन्दिताः (त्रिंशतम्) (योजनित्) विंशत्यधिकशतं क्रोशान् (एकैका) (क्रतुम्) कर्म (परि) (यन्ति) (सद्यः) शीघ्रम्॥८॥

अन्वय:-या अद्य अनुबद्धा सदृशीर श्वः सदृशीर्वरुणस्य दीर्घं धाम सचन्ते। एकैका त्रिंशतं योजनानि क्रतुं सद्यः परियन्ति ता इद् व्यर्थाः केनिक्नो निक्यः। ।।

भावार्थ: -यथेश्वरिवयमियतानां गतानां वर्त्तमानानामागामिनां च रात्रिदिनानामन्यथात्वं न जायते, तथैव सर्वस्याः सृष्टिः क्रमिवपर्यासो न भवित तथा ये मनुष्या आलस्यं विहाय सृष्टिक्रमानुकूलतया प्रयतन्ते ते प्रशंसितिबद्धेश्वर्या आयन्ते यथैतद्रात्रिदिनं यथासमयं यात्यायाति च तथैव मनुष्यैर्व्यवहारेषु सदा वर्तितव्यस्मान्या

पदार्थ:-जो (अद्य) आज के दिन (अनवद्या:) प्रशंसित (सदृशी:) एकसी (उ) अथवा तो (श्व:) अपूर्लि दिन (सदृशी:) एकसी रात्रि और प्रभात वेला (वरुणस्य) पवन के (दीर्घम्) बड़े समय वा (धाम)

स्थान को (सचन्ते) संयोग को प्राप्त होती और (एकैका) उन में से प्रत्येक (त्रिंशतम्, योजनानि) एक सौ बीस क्रोश और (क्रतुम्) कर्म को (सद्य:) शीघ्र (पिर, यन्ति) पर्य्याय से प्राप्त होती हैं, वे (इत्) व्यर्थ किसी को न खोना चाहिये॥८॥

भावार्थ:-जैसे ईश्वर के नियम को जो प्राप्त हो गये, होते और होनेवाले रात्रि दिन हैं, उनका अन्यथापन नहीं होता, वैसे ही इस सब संसार के क्रम का विपरीत भाव नहीं होता तथा जो मनुष्य आलस को छोड़ सृष्टिक्रम की अनुकूलता से अच्छा यत्न किया करते हैं, वे प्रशंसित विद्या और ऐश्वर्य्यवाले होते हैं और जैसे यह रात्रि-दिन नियत समय आता और जाता, वैसे ही मनुष्यों को व्यवहारों में सदा अपना वर्ताव रखना चाहिये॥८॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।

जानत्यह्नैः प्रथमस्य नामे शुक्रा कृष्णादंजनिष्ट श्वितीशी। ऋतस्य योषा न मिनाति धामाह्रेरहर्निष्कृतमाचरेन्त्री॥ १॥

जानती। अह्नै:। प्रथमस्यै। नामे। शुक्रा। कृष्णात्। अर्पुतिष्ट्री श्रितीयी। ऋतस्यै। योषां। न। मिनाति। धामे। अह्नै:ऽअहः। नि:ऽकृतम्। आऽचर्रन्ती॥९॥

पदार्थ:-(जानती) ज्ञापयन्ती (अह्न:) दिनस्य (प्रथमस्य) विस्तीर्णस्यादिमावयवस्य वा (नाम) संज्ञाम् (शुक्रा) शुद्धिकरी (कृष्णात्) निकृष्टकर्णात् तमुसः (अजिनष्ट) जायते (श्वितीची) या श्वितिं श्वेतवर्णमञ्चिति सा (ऋतस्य) सत्यव्यवहास्युक्तजनस्य (योषा) भार्या (न) निषेधे (मिनाति) हिनस्ति (धाम) स्थानम् (अहरहः) (निष्कृतम्) निष्यत्रं निश्चितं वा (आचरन्ती)॥९॥

अन्वयः-हे स्त्रि! यथा प्रथमस्त्राह्मे नेप्स जानती शुक्रा श्वितीच्युषाः कृष्णादजनिष्ट। ऋतस्य योषेवाऽहरहराचरन्ती सती निष्कृतं धाम न मिनाति तथा त्वं भवा। रा

भावार्थ:-अत्र वाचक्लुष्तोपमालङ्कारः। यथोषा अन्धकारादुत्पद्य दिनं प्रसाधयित दिनविरोधिनी न जायते तथा स्त्री सत्याचरणेन स्त्रामातापितृपतिकुलं सत्कीर्त्या प्रशस्तं श्वशुरं प्रति पतिं प्रत्यप्रियं किञ्चित्राचरेत्॥९॥

पदार्थ:-हे स्त्र! जैसे (प्रथमस्य) विस्तरित पहिले (अह्न:) दिन वा दिन के आदिम भाग का (नाम) नाम (जानती) जानती हुई (शुक्रा) शुद्धि करनेहारी (श्वितीची) सुपेदी को प्राप्त होती हुई प्रात:समय की वेला (कृष्णात्) काले रङ्गवाले अन्धेरे से (अजिनष्ट) प्रसिद्ध हाती है वा (ऋतस्य) सत्य आचरणधुक्त मनुष्य की (योषा) स्त्री के समान (अहरहः) दिन-दिन (आचरन्ती) आचरण करती हुई (निष्ट्रितम्) उत्पन्न हुए वा निश्चय को प्राप्त (धाम) स्थान को (न) नहीं (मिनाति) नष्ट करती वैसे तू हुरे। इस

अष्टक-२। अध्याय-१। वर्ग-४-६

मण्डल-१। अनुवाक-१८। सूक्त-१२३ 9366

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे प्रात:समय की वेला अन्धकार से उत्पन्न होकर दिन को प्रसिद्ध करती है, दिन से विरोध करनेहारी नहीं होती, वैसे स्त्री सत्य आचरण से लेथा अपने माता, पिता और पित के कुल को उत्तम कीर्त्ति से प्रशस्त कर अपने श्वसुर और मृति के प्रति उनके अप्रसन्न होने का व्यवहार कुछ न करे॥९॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

कुन्येव तुन्वा ३ शाश्रीदानाँ एषि देवि देवि देविमयेक्षमाणम्। संस्मर्यमाना युवृतिः पुरस्तीदाविर्वक्षांसि कृणुषे विभाती॥१०॥५॥

कुन्योऽइव। तुन्वो। शार्शदाना। एषि। देवि। देवम्। इयेक्षमणिम्। सुम्रुस्मयेमाना। युवृतिः। पुरस्तोत्। आविः। वक्षांसि। कृणुषे। विऽभाती।१०॥

पदार्थ: - (कन्येव) कन्यावद्वर्त्तमाना (तन्वा) शरीरिण (श्राशब्दाना) व्यवहारेष्वितितीक्ष्णतामाचरन्ती (एषि) प्राप्नोषि (देवि) कामयमाने (देवम्) विद्वांसम् (इयक्षमाणम्) अतिशयेन संगच्छमानम् (संस्मयमाना) सम्यङ् मन्दहासयुक्ता (युवितः) चतुर्विशितिचार्षिकी (पुरस्तात्) प्रथमतः (आविः) प्रसिद्धौ (वक्षांसि) उरांसि (कृणुषे) (विभाती) विविधत्या (सदुषै: प्रकाशमाना॥१०॥

अन्वय:-हे देवि! या त्वं तन्वा क्रन्येव आशासमेयक्षमाणं देवं पतिमेषि पुरस्तात् विभाती युवितः संस्मयमानाविष्कृणुषे सोषरूपमा जायसे॥१०॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। यथा विदुर्धी ब्रह्मचारिणी पूर्णां विद्यां शिक्षां स्वसदृशं हृद्यं पतिं च प्राप्य सुखिनी भवति तथान्याभिर<u>प्याचरणीय</u>प्॥१०॥

पदार्थ:-हे (देवि) कार्यना करनेहारी कुमारी! जो तू (तन्वा) शरीर से (कन्येव) कन्या के समान वर्त्तमान (शाशदाना) व्यवहारों में अति तेजी दिखाती हुई (इयक्षमाणम्) अत्यन्त सङ्ग करते हुए (देवम्) विद्वान् पति को (एषि) प्राप्त होती (पुरस्तात्) और सम्मुख (विभाती) अनेक प्रकार सद्धुणों से प्रकाशमान (युवितः) जवानी को प्राप्त हुई (संस्मयमाना) मन्द-मन्द हंसती हुई (वक्षांसि) छाती आदि अङ्गों को (आविः, कृणुषे) प्रसिद्ध करती है सो तू प्रभात वेला की उपमा को प्राप्त होती है॥१०॥

भावार्थ: इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे विदुषी ब्रह्मचारिणी स्त्री पूरी विद्या शिक्षा और अपने समान मुनमाने पति को पाकर सुखी होती है, वैसे ही और स्त्रियों को भी आचरण करना चाहिये॥१०॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

१३७०

ऋग्वेदभाष्यम्

सुसंकाशा मातृमृष्टिव योषाविस्तन्वं कृणुषे दृशे कम्। भुद्रा त्वमुषो वितुरं व्युंच्छ् न तत्ते अन्या उषसो नशन्त॥११॥

सुऽसंकाशा। मातृमृष्टाऽइव। योषां। आविः। तुन्वंम्। कृणुषे। दृशे। कम्। भुद्रा। त्वम्। उषः। विरेत्सम्। वि उच्छ। न। तत्। ते। अन्याः। उषसंः। नुशन्तु॥११॥

पदार्थ:-(सुसंकाशा) सुष्ठु शिक्षया सम्यक् शासिता (मातृमृष्टेव) विदुष्या मूर्त्रा सत्यशिक्षाप्रदानेन शोधितेव (योषा) प्राप्तयौवना (आवि:) (तन्वम्) शरीरम् (कृणुषे) करोष्ट्रि (दृश्रे) दृष्टुम् (कम्) सुखस्वरूपम् (भद्रा) मङ्गलाचारिणी (त्वम्) (उषः) उषर्वद् वर्त्तमाने (वितरम्) सुखदातारम् (वि) विगतार्थे (उच्छ) विवासय (न) (तत्) (ते) तव (अन्याः) (उषसः) प्रभाताः (नृशन्तः) मृश्यन्ति॥११॥

अन्वय:-हे कन्ये सुसंकाशा योषा मातृमृष्टेव या दृशे तन्वमाविष्कृणुषे भेदा सती के प्रतिं प्राप्नोषि सा त्वं वितरं सुखं व्युच्छ।हे उषो! यथा अन्या उषसो न नशन्त तथा ते तत्सुखं मा नश्यतु॥११॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। यथोषसो नियमेन स्वं स्कृं समये देशं च प्राप्नुवन्ति तथा स्त्रिय: स्वकीयं स्वकीयं पतिं प्राप्यर्तुं प्राप्नुवन्तु॥११॥

पदार्थ:-हे कन्या! (सुसंकाशा) अच्छी सिखाक्ट र सिखाई हुई (योषा) युवित (मातृमृष्टेव) पढ़ी हुई पण्डिता माता ने सत्यशिक्षा देकर शुद्ध की सी जो (दृश) देखने को (तन्वम्) अपने शरीर को (आवि:) प्रकट (कृणुषे) करती (भद्रा) और मङ्गलिरूप आग्नरण करती हुई (कम्) सुखस्वरूप पित को प्राप्त होती है सो (त्वम्) तू (वितरम्) सुख दिनेबाले पूर्वार्थ और सुख को (व्युच्छ) स्वीकार कर, हे (उष:) प्रभात वेला के समान वर्तमान क्यों! जैसे (अन्या:) और (उषस:) प्रभात समय (न) नहीं (नशन्त) विनाश को प्राप्त होते, वैसे (ते) नेर (तेत) उक्त सुख न विनाश को प्राप्त हो॥११॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालक्कार है। जैसे प्रात:काल की वेला नियम से अपने-अपने समय और देश को प्राप्त होती हैं, वैसे जित्री अपने-अपने पति को पाकर ऋतुधर्म को प्राप्त होवें॥११॥

पुन्स्त्रेमेव विषयमाह॥

फिर रेसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अश्वावतीर्गोमतीर्विश्ववर्गुरा यतमाना रृष्टिमभि: सूर्यस्य।

पर्रा चु वित्ति पुन्रा च यन्ति भुद्रा नाम वहंमाना उषासं:॥१२॥

अश्चर्यताः। मोऽमंतीः। विश्वऽवाराः। यतमानाः। रृष्टिमऽभिः। सूर्यस्य। पर्रा। च। यन्ति। पुनेः। आ। च। यन्ति। भुद्रा नामा वहसानाः। उषसंः॥१२॥

परार्थ:-(अश्वावतीः) प्रशस्ता अश्वा व्याप्तयो विद्यन्ते यासां ताः। अत्र मतौ पूर्वपदस्य दीर्घः। (ग्रोमतीः) बहुपृथिवीकिरणयुक्ताः (विश्ववाराः) याः सर्वं जगद् वृण्वन्ति ताः (यतमानाः) प्रयत्नं कुर्वत्यः

अष्टक-२। अध्याय-१। वर्ग-४-६

मण्डल-१। अनुवाक-१८। सूक्त-१२३ Q 3/48

(रिश्मिभिः) किरणैः सह (सूर्यस्य) सिवतृलोकस्य (परा) (च) (यन्ति) गच्छन्ति (पुनः) (च) (यन्ति) (भद्रा) भद्राणि (नाम) नामानि (वहमानाः) प्राप्नुवत्यः (उषसः) प्रत्यूषसमयाः। अत्रान्येषामपीति दीर्घः॥१२॥

अन्वय:-हे स्त्रियो! सूर्यस्य रश्मिभिस्सहोत्पन्ना यतमाना अश्वावतीर्गोमतीर्विश्ववारा भूदा नाम वहमाना उषसः परा यन्ति च पुनरायन्ति च तथा यूयं वर्त्तध्वम्॥१२॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। यथा प्रभातवेला: सूर्यस्य सर्वियोगेन नियेता: सन्ति तथा विवाहिता: स्त्रीपुरुषा परस्परं प्रेमास्पदा: स्यु:॥१२॥

पदार्थ:-हे स्त्रियो! जैसे (सूर्यस्य) सूर्यमण्डल की (रिष्ट्रिमिप:) किरणों के साथ उत्पन्न (यतमाना:) उत्तम यत्न करती हुई (अश्वावती:) जिनकी प्रशंसित व्यप्तियाँ (ग्रीमती:) जो बहुत पृथिवी आदि लोक और किरणों से युक्त (विश्ववारा:) समस्त जगृत को अपने में लेती और (भद्रा) अच्छे (नाम) नामों को (वहमाना:) सबकी बुद्धियों में पहुंचाती हुई (उषसः) प्रभातवेला नियम के साथ (परा, यन्ति) पीछे को जाती (च) और (पुन:) फिर (च) भी (आ, यन्ति) आती हैं, वैसे नियम से तुम अपना वर्त्ताव वर्त्तो॥१२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालक्कार है। जैसे प्रभातवेला सूर्य के संयोग से नियम को प्राप्त है, वैसे विवाहित स्त्री-पुरुष परस्पर प्रेमिक स्थिर केरनेहारे हों॥१२॥

पुनम्तमेच विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

ऋतस्य रिशममनुयच्छमाना भद्रभद्धं क्रतुमस्मासु धेहि।

उषों नो अद्य सुहवा स्युच्छास्मासु रायों मुघवंत्सु च स्यु:॥१३॥६॥

ऋतस्यी रिश्मम्। अनुरयच्छमाना भुद्रम्रभद्रम्। ऋतुंम्। अस्मासुं। धेहि। उर्ष:। नुः। अद्या सुरहवां। वि। उच्छा अस्मासुं। रार्य:। मुघकार्यसा स्रो स्युरिति स्युः॥ १३॥

पदार्थ:-(ऋतस्य) अलस्य (रिश्मम्) किरणम् (अनुयच्छमाना) अनुकूलतया प्राप्ता (भद्रंभद्रम्) कल्याणकल्याणकरिकम् (ऋतुम्) प्रज्ञां कर्म वा (अस्मासु) (धेहि) (उषः) उषर्वद्वर्त्तमाने (नः) अस्मान् (अद्य) (सुहुवा) सृष्टु सुखप्रदा (वि) (उच्छ) (अस्मासु) (रायः) श्रियः (मघवत्सु) पूजितेषु धनेषु (च) (स्युः)॥१३॥

अस्यः-हे उषर्वत्पत्नि! त्वमद्य ऋतस्य रश्मिमुषा इव हृद्यं पतिमनुयच्छमानाऽस्मासु भद्रं भद्रं क्रतुं धेहि। सुह्वा सन्ती नोऽस्मान् व्युच्छ यतो मघवत्स्वस्मासु रायश्च स्यु:॥१३॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। यथा सत्य: स्त्रिय: स्वस्वपत्यादीन् यथावत् संसैव्ये प्रज्ञाधर्मैश्वर्याणि नित्यं वर्द्धयन्ति तथोषसोऽपि वर्तन्ते॥१३॥

अत्रोषर्दृष्टान्तेन स्त्रीधर्मवर्णनादेतत्सूक्तार्थस्य पूर्वसूक्तोक्तार्थेन सह संगतिरस्तीति वेदिस्त्यिम्॥ इति त्रयोविंशत्युत्तरं शततमं १२३ सूक्तं षष्ठो ६ वर्गश्च समाजः॥

पदार्थ:-हे (उष:) प्रात:समय की वेला सी अलवेली स्त्री! तू (अद्य) आज वैसे (ऋतस्य) जल की (रिश्मम्) किरण को प्रभात समय की वेला स्वीकार करती, वैसे मन से प्यारे पति को (अनुयच्छमाना) अनुकूलता से प्राप्त हुई (अस्मासु) हम लोगों में (भद्रंभद्रम्, ऋतुम्) अच्छी-अच्छी बुद्धि वा अच्छे-अच्छे काम को (धेहि) धर (सुहवा) और उत्तम सुख देनेवाली हिती हुई (नः) हम लोगों को (व्युच्छ) ठहरा जिससे (मघवत्सु) प्रशंसित धनवाले (अस्मासु) हम लोगों में (भायः) शोभा (च) भी (स्युः) हों॥१३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे श्रेष्ठ स्त्री अपने-अपने पति आदि की यथावत सेवा कर बुद्धि, धर्म और ऐश्वर्य्य को नित्य बढाती हैं, वैसे प्रशात समय की वेला भी है॥१३॥

इस सूक्त में प्रभात समय की वेला के दृष्टान्त से स्त्रिकों के अर्म का वर्णन करने से इस सूक्त में कहे हुए अर्थ की पिछले सूक्त में कहे अर्थ के साथ एकता है पह जानना चाहिये॥

यह एक सौ तेईसवां १२३ मूक्स और छुटा ६ वर्ग पूरा हुआ॥

अथ चतुर्विंशत्युत्तरशततमस्य त्रयोदशर्चस्य सूक्तस्य दैर्घतमसः कक्षीवान् ऋषिः। उषा देवता। १,३,६,९,१० निचृत् त्रिष्टुप्। ४,७,११ त्रिष्टुप्। १२ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः।

२,१३ भुरिक् पङ्क्तिः। ५ पङ्क्तिः। ८ विराट् पङ्क्तिश्च छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥ (

अथ सूर्यलोकविषयमाह॥

अब तेरह ऋचावाले एक सौ चौबीसवें १२४ सूक्त का आरम्भ है। उसके प्रथम मन्त्र में सूर्यक्रीक के विषय का वर्णन किया है॥

उषा उच्छन्ती सिमधाने अग्ना उद्यन्त्सूर्य उर्विया ज्योतिरश्रेत्। देवो नो अत्र सिवता न्वर्थं प्रासावीद् द्विपत्र चतुष्पदित्यै॥ १॥

उषाः। उच्छन्तीं। सम्ऽङ्ग्धाने। अग्नौ। उत्ऽयन्। सूर्यः। उर्विया। ज्योतिः। अश्रेत्। देवः। नः। अत्रं। सविता। नु। अर्थम्। प्र। असावीत्। द्विऽपत्। प्र। चतुःऽपत्। इत्यै॥ १॥

पदार्थ:-(उषा:) (उच्छन्ती) अन्धकारं निस्सारयन्ती (समिधाने) प्रदीप्ते (अग्नौ) पावके (उद्यन्) उदयं प्राप्नुवन् (सूर्य्यः) सविता (उर्विया) पृथिव्या। उर्विति पृथिवीनामसु पठितम्। (निघं०१.१) (ज्योति:) प्रकाशः (अश्रेत्) श्रयति (देवः) दिव्यप्रकाशः निः) अस्माकम् (अत्र) जगति (सविता) कर्म्मसु प्रेरकः (नु) शीघ्रम् (अर्थम्) प्रयोजनम् (प्र) (असावीत्) सुनोति (द्विपत्) द्वौ पादौ यस्य तत् (प्र) (चतुष्पत्) (इत्यै) प्रापयितुम्॥१॥

अन्वय:-यदा समिधानेऽग्नौ सूर्य्य उद्यन्सन्नुविश्वा सह नुर्गीतिरश्रेत् तदोच्छन्त्युषा जायते। एवमत्र सविता देवो नोऽर्थमित्यै प्रासावीत्, द्विपच्चतुष्पच्च नु प्रासावीत्रग्राष्ट्रभ

भावार्थ:-पृथिव्या सूर्य्यकिरणै: सह सियोग्ग जायते स एव तिर्य्यग्गतः सन्नुषसः कारणं भवति यदि सुर्य्यो न स्यात्, तर्हि विविधरूप्राणि द्वव्याणि पृथक् पृथक् दृष्टुमशक्यानि स्यु:॥१॥

पदार्थ:-जब (सिमधाने) जलते हुए (अग्नौ) अग्नि का निमित्त (सूर्य:) सूर्यमण्डल (उद्यन्) उदय होता हुआ (उर्विया) प्रिष्ठवी के साथ्न (ज्योति:) प्रकाश को (अश्रेत्) मिलाता तब (उच्छन्ती) अन्धकार को निकालती हुई (उषा:) प्रात:काल की वेला उत्पन्न होती है, ऐसे (अन्न) इस संसार में (सिवता) कामों में प्रेरण्य देनेवाला (देव:) उत्तम प्रकाशयुक्त उक्त सूर्यमण्डल (न:) हम लोगों के (अर्थम्) प्रयोजन को (इत्ये) प्राप्त कराने के लिये (प्रासावीत्) सारांश को उत्पन्न करता तथा (द्विपत्) दो पगवाले मनुष्यादि वो (चतुष्पत्) चार पगवाले चौपाये पशु आदि प्राणियों को (नु) शीघ्र (प्र) उत्तमता से उत्पन्न करता है।। ता

भावार्थ:=मृथिवी का सूर्य की किरणों के साथ संयोग होता है, वही संयोग तिरछा जाता हुआ प्रभाव समय के होने का कारण होता है, जो सूर्य न हो तो अनेक प्रकार के पदार्थ अलग अलग देखे नहीं जा सकते हैं॥१॥

१३७४

ऋग्वेदभाष्यम्

अथोषर्दृष्टान्तेन स्त्रीविषयमाह॥

अब उषा के दृष्टान्त से स्त्री के विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अमिनतो दैव्यानि व्रतानि प्रमिनतो मनुष्या युगानि। ईयुषीणामुपुमा शर्श्वतीनामायतोनां प्रथमोषा व्यद्यौत्॥२॥

अर्मिनती। दैर्व्यानि। वृतानि। प्रऽमिनती। मनुष्या। युगानि। ईयुषीणाम्। उपऽमा। शश्रतीनाम्। अप्रयतीनाम्। प्रथमा। उषा:। वि। अद्यौत्॥२॥

पदार्थ:-(अमिनती) अहिंसन्ती (दैव्यानि) दिव्यगुणानि (व्रतानि) वर्त्तमानानि सत्यानि वस्तूनि कर्माणि वा (प्रिमनती) प्रकृष्टतया हिंसन्ती (मनुष्या) मानुषसंबन्धीनि (युगनि) वर्षाणि (ईयुषीणाम्) अतीतानाम् (उपमा) दृष्टान्तः (शश्वतीनाम्) सनातनीनामुषसां प्रकृतीमां वा (आयतीनाम्) आगच्छन्तीनाम् (प्रथमा) (उषाः) (वि) (अद्यौत्) विविधतया प्रकाशयति॥२॥

अन्वय:-हे स्त्रि! यथोषा दैव्यानि व्रतान्यमिनती मनुष्या युगामि प्रमिनती शृश्वतीनामीयुषीणामुपमाऽऽयतीनां च प्रथमा विश्वं व्यद्यौत्। जागृतैर्मनुष्यैर्युक्त्या सदा सेव्या तथा त्वं वर्त्तस्व्रम्या।

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। यथेयमुष्तः सन्तर्वेन पृथिवीसूर्यसंयोगेन सह चिरता यावन्तं पूर्वं देशं जहाति तावन्तमुत्तरं देशमादत्ते वर्तमान्यः तीतानामुषसामुपमाऽऽगामिनीनामादिमा सती कार्य्यकारणयोर्ज्ञानं प्रज्ञापयन्ती सत्यधर्माचरणनिमित्तकालावेषुवत्वादायुर्व्ययन्ती वर्त्तते सा सेविता सती बुद्ध्यारोग्यादीन् शुभगुणान् प्रयच्छति तथा विदुष्ट्यः स्त्रियः स्यः॥२॥

पदार्थ: -हे स्त्री! जैसे (उषा:) प्रतःसमय की वेला (दैव्यानि) दिव्य गुणवाले (व्रतानि) सत्य पदार्थ वा सत्य कर्मों को (अमिनती) न छोड़ती और (मनुष्या) मनुष्यों के सम्बन्धी (युगानि) वर्षों को (प्रिमिनती) अच्छे प्रकार व्यतीत करती हुई (शश्वतीनाम्) सनातन प्रभातवेलाओं वा प्रकृतियों और (ईयुषीणाम्) हो गई प्रभातवेलाओं की (उपमा) उपमा दृष्टान्त और (आयतीनाम्) आनेवाली प्रभातवेलाओं में (प्रथमा) पहिली संसार को (व्यद्यौत्) अनेक प्रकार से प्रकाशित कराती और जागते अर्थात् व्यवहारों को करते हुए मनुष्य को युक्ति के साथ सदा सेवन करने योग्य है, वैसे तू अपना वर्ताव रख।। २।।

भावार्थ: इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे यह प्रात:समय की वेला विस्तारयुक्त पृथ्वी और सूर्यक साथ चलनेहारी जितने पूर्व देश को छोड़ती उतने उत्तर देश को ग्रहण करती है तथा वर्तमान और व्यक्ति हुई प्रात:समय की वेलाओं की उपमा और आनेवालियों की पहिली हुई कार्यरूप जगत् का और जगत् के कारण का अच्छे प्रकार ज्ञान कराती और सत्य धर्म के आचरण निमित्तक समय का अङ्ग होते से उमर को घटाती हुई वर्त्तमान है, वह सेवन की हुई बुद्धि और आरोग्य आदि अच्छे गुणों क्रो देती है, वैसे पण्डिता स्त्री हों॥२॥

अष्टक-२। अध्याय-१। वर्ग-७-९

मण्डल-१। अनुवाक-१८। सूक्त-१२४

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

एषा दिवो दुहिता प्रत्यंदर्शि ज्योतिर्वसाना समना पुरस्तात्। ऋतस्य पन्थामन्वेति साधु प्रजानतीव न दिशो मिनाति॥३॥

एषा। दिव:। दुहिता। प्रति। अदुर्शि। ज्योति:। वसाना। सुमुना। पुरस्तात्। ऋतस्य। प्रथाम्। अनु। एति। साधु। प्रजानुतीऽईव। न। दिशः। मिनाति॥३॥

पदार्थ:-(एषा) (दिव:) प्रकाशस्य (दुहिता) कन्येव (प्रक्रि) (सदिर्प) दृश्यते (ज्योति:) प्रकाशम् (वसाना) स्वीकुर्वती (समना) संग्रामे। अत्र सुपां स्वित्यकारादेश:। (पुरस्तात्) प्रथमत: (ऋतस्य) सत्यस्य कारणस्य (पन्थाम्) मार्गम् (अनु) (एति) (साधु) सम्यक् यथा स्यात् तथा (प्रजानतीव) यथा विज्ञानवती विदुषी (न) निषेधे (दिश:) (मिणाति) त्यज्ञीत॥३॥

अन्वय:-यथैवैषा ज्योतिर्वसाना समना दिवो दुहितेवास्माणः पुरस्तित् प्रत्यदर्शि यथाऽऽप्तो वीर ऋतस्य पन्थामन्वेति साधु प्रजानतीवोषा दिशो न मिनाति तद्वद्वर्त्तमानाः स्त्रियो वराः स्याः॥३॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। यथा सुनिस्रमेन वर्त्तमाना सत्युषा: सर्वानाह्वादयित सोत्तमं स्वभावं न हिनस्ति तथा स्त्रियो गार्हस्थ्यभूमी वर्त्तरनुभू३॥

पदार्थ:-जैसे ही (एषा) यह प्रातः समय की वेला (ज्योति:) प्रकाश को (वसाना) ग्रहण करती हुई (समना) संग्राम में (दिव:) सूर्य के प्रकाश को (दुहिता) लड़कीसी हम लोगों ने (पुरस्तात्) दिन के पहिले (प्रत्यदिश्व) प्रतीति से देखी वा भैसे समस्त विद्या पढ़ा हुआ वीर जन (ऋतस्य) सत्य कारण के (पन्थाम्) मार्ग को (अन्वेति) अनुकूलता से प्राप्त होता वा (साधु) अच्छे प्रकार जैसे हो वैसे (प्रजानतीव) विशेष ज्ञानवाली विदुषी पढ़ी हुई पण्डिता स्त्री के समान प्रभात वेला (दिश:) दिशाओं को (न) नहीं (मिनाति) छोड़ती, वैसे अपना वस्ति वर्तिती हुई स्त्री उत्तम हों॥३॥

भावार्थ:-इस में वार्चिकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे अच्छे नियम से वर्त्तमान हुई प्रात:समय की वेला सबको आनन्दित कराती और अपने उत्तम स्वभाव को नहीं नष्ट करती, वैसे स्त्री लोग गिरस्ती के धर्म में वर्त्ती॥ र्रा

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

उभी अदर्शि शुच्युवो न वक्षों नोधाईवाविर्यकृत प्रियाणि। अद्मसन्न संसतो बोधर्यन्ती शश्चन्तमागात्पुनरेयुषीणाम्॥४॥

उपो इति। अदुर्शि। शुन्ध्युर्वः। न। वक्षः। नोधाःऽईव। आविः। अकृत्। प्रियाणि। अद्गुऽसत्। न। सस्तिः। बोधर्यन्ती। शश्चतुऽतुमा। आ। अगात्। पुर्नः। आऽईयुषीणाम्॥४॥

पदार्थ:-(उपो) सामीप्ये (अदिशिं) दृश्यते (शुन्ध्युवः) आदित्यिकरणाः। शुन्ध्युरादित्यो भिवति (निरु०४.१६) (न) उपमायाम्। (निरु०१.४) (वक्षः) प्राप्तं वस्तु। वक्ष इति पदनामसु (निर्ध०४.२) (नोधाइव) यो नौति सर्वाणि शास्त्राणि तद्वत्। नुवो धुट् च। (उणा०४.२२६) अनेव नुधानीरसिप्रत्ययो धुडागमश्च। (आविः) प्राकट्ये (अकृत) करोति (प्रियाणि) वचनानि (अदासत्) योऽद्मानि मादयति परिपचित सः (न) इव (ससतः) स्वपतः प्राणिनः (बोधयन्ती) जागारयन्त्री (शिश्वनमा) यातिशयेन सनातनी (आ) (अगात्) प्राप्नोति (पुनः) (एयुषीणाम्) समन्तादतीतानामुष्क्रमम् ॥४॥

अन्वयः-यथोषा वक्षः शुन्ध्युवो न प्रियाणि नोधाइवाद्मसन्न ससन्नो बीध्यन्त्रोयुषीणां शश्वत्तमा सती पुनरागादाविरकृत च साऽस्माभिरुपो अदर्शि तथाभूताः स्त्रियो वरा भवन्ति॥४॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कारा:। या: स्त्र्युषर्वत्सूर्यवद्विद्वद्वच्च स्वाष्ट्यानि सुशिक्षया विदुष: करोति सा सर्वे: सत्कर्त्तव्येति॥४॥

पदार्थ:-जैसे प्रभात वेला (वक्ष:) पाये पदार्थ को (शुन्धुवः) सूर्य की किरणों के (न) समान वा (प्रियाणि) प्रिय वचनों की (नोधाइव) सब शास्त्रों की स्तुति श्रुशंसा करनेवाले विद्वान् के समान वा (अदासत्) भोजन के पदार्थों को पकानेवाले के (न) समान (ससतः) सोते हुए प्राणियों को (बोधयन्ती) निरन्तर जगाती हुई और (एयुषीणाम्) सब ओर सि व्यतीत हो गई प्रभात वेलाओं की (शश्चत्तमा) अतीव सनातन होती हुई (पुनः) फिर (आ, अगात्) ओती और (आविरकृत) संसार को प्रकाशित करती, वह हम लोगों ने (उपो) समीप में (अदिशि) देखी वसी भूती उत्तम होती हैं॥४॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार हैं। जो स्त्री प्रभात वेला वा सूर्य वा विद्वान् के समान अपने सन्तानों को उत्तम शिक्षा से विद्वान करती है, वह सबको सत्कार करने योग्य है॥४॥

पुनस्तमेव विषयमाह

फिर उस्री विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

पूर्वे अर्धे रजसी अप्यास्य गवां जिन्त्रयकृत प्र केतुम्।

व्युं प्रथते वितुरं वरीय ओभा पृणन्ती पित्रोरुपस्थां॥५॥७॥

पूर्वे। अर्धे। रत्नेसः। अप्यस्यं। गर्वाम्। जर्नित्री। अकृत्। प्र। केतुम्। वि। ऊम् इति। प्रथते। विऽतुरम्। वरीयः। आर् उभा। पूणन्ती पित्रोः। उपऽस्था॥५॥

पदार्थ:-(पूर्व) सम्मुखे वर्तमाने (अर्द्धे) (रजसः) लोकसमूहस्य (अप्त्यस्य) अप्तौ विस्तीर्णे संस्प्र्रे भवस्य (गवाम्) किरणानाम् (जिनत्री) उत्पादिका (अकृत) करोति (प्र) (केतुम्) किरणम् (वि) विकर्के (प्रथते) विस्तृणोति (वितरम्) विविधानि दुःखानि तरन्ति येन कर्मणा तत् (वरीयः)

अष्टक-२। अध्याय-१। वर्ग-७-९

मण्डल-१। अनुवाक-१८। सूक्त-१२४ d 3/00

अतिशयेन वरम् (आ) (उभा) (पृणन्ती) सुखयन्ती (पित्रोः) जनकयोरिव भूमिसूर्ययोः (उपस्था) कोड्रे तिष्ठति सा॥५॥

अन्वय:-यथोषा उभा लोकौ पृणन्ती पित्रोरुपस्था सती वितरं वरीयो व्युप्रथते गवां सनित्र्यप्यस्य रजसः पूर्वेऽर्द्धे केतुं प्राकृत तथा वर्तमाना भार्य्योत्तमा भवति॥५॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। उषस उत्पन्न: सूर्यप्रकृष्णो भूगोलार्द्धे सर्वदा प्रकाशतेऽपरेऽर्द्धे रात्रिर्भवित तयोर्मध्ये सर्वदोषा विराजत एवं नैरन्तर्येण रात्र्युषर्दिनानि क्रमेण वर्तन्तेऽत: किमागतं यावान् भूगोलप्रदेश: सूर्यस्य संनिधौ तावित दिनं यावानसंनिधौ तावित स्त्रिः। सन्ध्योरुषाश्चैवं लोकभ्रमणद्वारैतान्यपि भ्रमन्तीव दृश्यन्ते॥५॥

पदार्थ:-जैसे प्रातः समय की वेला कन्या के तुल्य (उभा) दोनों लोकों को (पृणन्ती) सुख से पूरती और (पित्रोः) अपने माता-पिता के समान भूमि और सूर्यमण्डल की (उपस्था) गोद में ठहरी हुई (वितरम्) जिससे विविध प्रकार के दुःखों से पार होते हैं उस (वितर्यः) अत्यन्त उत्तम काम को (वि, उ, प्रथते) विशेष करके तो विस्तारती तथा (गवाम्) सूर्य की किरणों को (जिनित्री) उत्पन्न करानेवाली (अप्त्यस्य) विस्तार युक्त संसार में हुए (रजसः) लोक समूह के (पूर्वे) प्रथम आगे वर्तमान (अर्द्धे) आधेभाग में (केतुम्) किरणों को (प्र, आ, अकृत) प्रसिद्ध करती है, वैसा वर्तमान करती हुई स्त्री उत्तम होती है॥५॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुक्तापमाल्यङ्कार है। प्रभात वेला से प्रसिद्ध हुआ सूर्यमण्डल का प्रकाश भूगोल के आधे भाग में सब कहीं उपेला करता है और आधे भाग में रात्रि होती है, उन दिन रात्रि के बीच में प्रात:समय की बेला सिराजमान है, ऐसे निरन्तर रात्रि प्रभातवेला और दिन क्रम से वर्तमान हैं। इससे क्या आया कि जितना पृथिवी का प्रदेश सूर्यमण्डल के आगे होता उतने में दिन और जितना पीछे होता जाता उतने में रात्रि होती तथा सायं और प्रात:काल की सन्धि में उषा होती है। इसी उक्त प्रकार से लोकों के यूम्म के द्वारा ये सायं प्रात:काल भी घूमते से दिखाई देते हैं॥५॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

एवेद्रेषा पुरुतमां दृशे कं नार्जामिं न परि वृणक्ति जामिम्। अर्पमा तुन्वा र् शार्शदाना नार्भादीषते न महो विभाती॥६॥

ऐव। इत्। एषा। पुरुऽतमा। दृशे। कम्। न। अजीमिम्। न। परि। वृणकितः। जामिम्। अरेपसा। तन्वा। शार्शदानम् न। अर्भात्। ईर्षते। न। महः। विऽभाती॥६॥

पदार्थ:-(एव) (इत्) अपि (एषा) (पुरुतमा) या बहून् पदार्थान् ताम्यति काङ्क्षिति सा (दृशे) दुष्टुम् (कम्) सुखम् (न) इव (अजामिम्) अभार्य्याम् (न) इव (पिर) (वृणिक्त) त्यजित (जामिम्) भार्याम् (अरेपसा) अकम्पितेन (तन्वा) शरीरेण (शाशदाना) अतीव सुन्दरी (न) निषेधे (अभात्) अरुपात् (ईषते) गच्छिति (न) निषेधे (महः) महत् (विभाती) प्रकाशयन्ती॥६॥

अन्वय:-यथारेपसा तन्वा शाशदाना पुरुतमा स्त्री देशे कं सुखं पतिं न न परिवृणक्ति प्रतिश्च जामि न सुखं न परित्यजति। अजामिं च परित्यजति तथैवैषोषा अर्भादिन्महो विभाती सती स्थूलं न परिजहाति क्रिन्तु सर्वमीषते॥ क्रे

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। यथा पतिव्रता स्त्री स्वं पतिं ब्रिह्मयान्येन संगच्छते यथा च स्त्रीव्रत: पुमान् स्वस्त्रीभिन्नां स्त्रियं न समवैति, विवाहितौ स्त्रीपुरुषौ यथानियमं यथासमयं संगच्छेते तथैवोषा नियतं देशं समयं च विहायान्यत्र युक्ता न भवति॥६॥

पदार्थ:-जैसे (अरेपसा) न कँपते हुए निर्भय (तन्वा) स्रसीर से (शाशदाना) अति सुन्दरी (पुरुतमा) बहुत पदार्थों को चाहनेवाली स्त्री (दृशे) देखने के लिए (कम्) सुख को पित के (न) समान (पिर, वृणिक्त) सब ओर से (न) नहीं छोड़ती पित भी (जामिम्) अपने स्त्री के (न) समान सुख को (न) नहीं छोड़ता और (अजामिम्) जो अपनी स्त्री नहीं उसको सब प्रकार से छोड़ता है, वैसे (एव) ही (एषा) यह प्रात:समय की वेला (अर्भात्) थोड़े से (इत्) भी (प्रहः) बहुत सूर्य के तेज का (विभाती) प्रकाश कराती हुई बड़े फैलते हुए सूर्य के प्रकाश का नहीं छोड़ती, किन्तु समस्त को (ईषते) प्राप्त होती है।।६।।

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमिलङ्कार है। जैसे पितव्रता स्त्री अपने पित को छोड़ और के पित का सङ्ग नहीं करती वा जैसे स्त्रीव्रत पुरुष अपने स्त्री से भिन्न दूसरी स्त्री का सम्बन्ध नहीं करता और विवाह किये हुए स्त्रीपुरुष नियम और समय के अनुकूल सङ्ग करते हैं, वैसे ही प्रात:समय की वेला नियमयुक्त देश और समय की छोड़ अन्यत्र युक्त नहीं होती॥६॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अभ्रातेवं पुंस एति प्रितीची गर्तारुगिव सनये धर्नानाम्।

जायेव पत्यं उशती सुवासां उषा हस्रेव नि रिणीते अप्सं:॥७॥

अभातार्ह्मवा पुंसः। एति। प्रतीची। गर्तेऽआरुगिव। सनये। धर्नानाम्। जायाऽईव। पत्ये। उशती। सुऽवासाः। ख्राः। द्वाः। द्वाः। द्वाः। प्रिणीते। अप्सः॥७॥

्षदार्थ:-(अभ्रातेव) यथाऽबन्धुस्तथा (पुंस:) पुरुषस्य (एति) प्राप्नोति (प्रतीची) प्रत्यञ्चतीति (गर्न्सिग्व) गर्ने आरुगारोहणं गर्नारुक् तद्वत् (सनये) विभागाय (धनानाम्) द्रव्याणाम् (जायेव) स्त्रीव

अष्टक-२। अध्याय-१। वर्ग-७-९

मण्डल-१। अनुवाक-१८। सूक्त-१२४ Q 3/48

(पत्ये) स्वस्वामिने (उशती) कामयमाना (सुवासाः) शोभनानि वासांसि यस्याः सा (उषा हिस्सेव) हसन्तीव (नि) (रिणीते) प्राप्नोति (अप्सः) रूपम्। अप्स इति रूपनामसु पठितम्। (निघं १८)

अन्वय:-इयमुषा: प्रतीची सत्यभ्रातेव पुंसो धनानां सनये गर्त्तारुगिव सर्वानेति पत्य उर्शती सुवासा जायेव पदार्थान् सेवते हस्रेव अप्सो निरिणीते॥७॥

भावार्थ:-अत्र चत्वार उपमालङ्कारा:। यथा भ्रातृरिहता कन्या स्वप्रीतं यति स्त्रयं प्राप्नोति, यथा न्यायाधीशो राजा राजपत्नीधनानां विभागाय न्यायाऽऽसनमाप्नोति, यथा प्रसञ्चवदना स्त्री आनिन्दतं पितं प्राप्नोति, सुरूपेण हावभावं च प्रकाशयित, तथैवेयमुषा अस्तीति वेद्यम्॥ ७

पदार्थ:-यह (उषा:) प्रातःसमय की वेला (प्रतीची) प्रत्येक स्थान को पहुंचती हुई (अभ्रातेव) विना भाई की कन्या जैसे (पुंस:) पुरुष को प्राप्त हो उसके समान वा जैसे (प्रतांरुगिव) दुःखरूपी गढ़े में पड़ा हुआ जन (धनानाम्) धन आदि पदार्थों के (सनये) विभाग करने के लिये राजगृह को प्राप्त हो, वैसे सब ऊंचे-नीचे पदार्थों के (एति) पहुंचती तथा (पत्ये) अपने षति के लिये (उशती) कामना करती हुई (सुवासा:) और सुन्दर वस्त्रों वाली (जायेव) विवाहिता क्रिके समान पदार्थों का सेवन करती और (हस्रेव) हँसती हुई स्त्री के तुल्य (अपस:) रूप को कि एपीते निरन्तर प्राप्त होती है॥७॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में चार उपमालङ्कार हैं। जैसे विला भाई की कन्या अपनी प्रीति से चाहे हुए पित को आप प्राप्त होती वा जैसे न्यायाधीश कर्जा, राजपत्नी और धन आदि पदार्थों के विभाग करने के लिये न्यायासन अर्थात् राजगद्दी [को], जैसे हैं समुख्यी स्त्री आनन्दयुक्त पित को प्राप्त होती और अच्छे रूप से अपने हावभाव को प्रकाशित करती, वैसे ही यह प्रातःसमय की वेला है, यह समझना चाहिये॥७॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

स्वसा स्वस्ने ज्यायास्यै कोर्निमारैगपैत्यस्याः प्रतिचक्ष्येव।

व्युच्छन्ती रिश्मिभिः सूर्यस्याञ्च इक्ते समनगाईव व्राः॥८॥

स्वसा। स्वसी ज्याबीस्था। योनिम्। अ्रैक्। अप। एति। अस्याः। प्रतिचक्ष्यंऽइव। विऽउच्छन्तीं। र्शिमऽभिः। सूर्यस्य। अञ्जि<u>ण अद्वतो सुमन</u>्गाःऽईव। वाः॥८॥

पदार्थः (स्वसा) भगिनी (स्वस्ने) भगिन्यै (ज्यायस्यै) ज्येष्ठायै (योनिम्) गृहम् (अरैक्) अतिक्रिणिक्त (अप) (एति) दूरं गच्छति (अस्याः) भगिन्याः (प्रतिचक्ष्येव) प्रत्यक्षं दृष्ट्वेव (व्युच्छन्ती)

तमो विवासयन्ती (रिश्मिभ:) किरणै: सह (सूर्यस्य) सिवतु: (अञ्जि) व्यक्तं रूपम् (अङ्क्ते) प्रकाशयिति (समनगाइव) समनमनवधारितं स्थानं गच्छन्तीव (व्रा:) या वृणोति॥८॥

अन्वयः – हे कन्ये! यथा व्युच्छन्ती व्रा उषाः सूर्यस्य रश्मिभिः सहाञ्जि समनगाइवाङ्क्ते यक्ष विस्वा ज्यायस्यै स्वस्ने योनिमारैगस्या वर्त्तमानं प्रतिचक्ष्येवापैति विवाहाय दूरं गच्छति तथा त्वं भव॥८॥

भावार्थ:-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। किनष्ठा भिगनी ज्येष्ठाया वर्त्तुमानं कृषं विज्ञाय स्वयंवराय दूरेऽपि स्थितं योग्यं पितं गृह्णीयात्। यथा शान्ताः पितव्रताः स्त्रियः स्वं प्रतं पेतं सेवोते तथा स्वं पितं सेवेत यथा च सूर्यः स्वकान्त्या कान्तिः सूर्येण च सह नित्यमानुकूल्क्रेन वर्तेते तथैव स्त्रीपुरुषौ स्याताम्॥८॥

पदार्थ: -हे कन्या! जैसे (व्युच्छन्ती) अन्धकार का निवारण करती हुई (व्रा) पदार्थों को स्वीकार करनेवाली प्रात:समय की वेला (सूर्यस्य) सूर्यमण्डल की (रिष्मिभिए) किरणों के साथ (अञ्जि) प्रसिद्ध रूप को (समनगाइव) निश्चय किये स्थान को जानने वाली स्त्री के समान (अङ्क्ते) प्रकाश करती है वा जैसे (स्वसा) बहिन (ज्यायस्य) जेटी (स्वस्ने) बहिन के लिये (योनिम्) अपने स्थान को (अरैक्) छोड़ती अर्थात् उत्थान देती तथा (अस्या:) इस अपनी बहिन के वर्जमान हाल को (प्रतिचक्ष्येव) प्रत्यक्ष देख के जैसे वैसे विवाह के लिये (अपैति) दूर जाती है, वैसी पू हो॥८॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमा और वाच्यालुप्तोपमालङ्कार हैं। छोटी बहिन जेठी बहिन के वर्त्तमान हाल को जानकर आप स्वयंवर विवाह के लिये चूर भी ठहरे हुए अपने अनुकूल पित का ग्रहण करे, जैसे शान्त पितवता स्त्री अपने पित को सेवन करती है, वैसे अपने पित का सेवन करे, जैसे सूर्य अपनी कान्ति के साथ और कान्ति सूर्य के साथ जैन्ह्य अनुकूलता से वर्ते, वैसे ही स्त्री-पुरुष हों॥८॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विश्वय को अगले मन्त्र में कहा है।।

आसां पूर्वासामहेसु स्वसॄणामपेरा पूर्वामभ्येति पृश्चात्।

ताः प्रत्वत्रव्यं भीर्नुनम्स्मे र्वदुंच्छन्तु सुदिनां उषासं:॥९॥

आसाम्। पूर्वासाम्। अहंऽभा स्वस्णाम्। अपरा। पूर्वाम्। अभि। एति। पृश्चात्। ताः। प्रत्नुऽवत्। नर्व्यसीः। नूनम्। अस्मे इति। र्रेखत्। उच्छन्तु। सुऽदिनाः। उषसः॥९॥

पदार्थः (आपाम्) (पूर्वासाम्) ज्येष्ठानाम् (अहसु) दिनेषु। अत्र वाच्छन्दसीति रोरभावे नलोपः। (स्वसॄणाम्) भिर्मिनाम् (अपरा) (पूर्वाम्) (अभि) (एति) प्राप्नुयात् (पश्चात्) (ताः) (प्रत्वत्) प्रत्नः प्राचीनो अधिविद्यते यस्मिन् (नव्यसीः) (नूनम्) निश्चितम् (अस्मे) अस्मभ्यम् (रेवत्) प्रशस्तपदार्थयुक्तं द्रव्यम् (उच्छन्त्) तमो विवासयन्तु (सुदिनाः) शोभनानि दिनानि याभ्यस्ताः (उषसः) उषसः प्रभाताः। अभिन्येष्ठपूर्णाति दीर्घः॥९॥

अष्टक-२। अध्याय-१। वर्ग-७-९

मण्डल-१। अनुवाक-१८। सूक्त-१२४



अन्वयः-यथाऽऽसां पूर्वासां स्वसॄणामपरा काचिद्धिगिन्यहसु केषु चिदहःसु पूर्वां भगिनीमभ्येति स्श्लात् स्वगृहं गच्छेत् तथा सुदिना उषासोऽस्मे नूनं प्रत्नवद्रेवन्नव्यसीः प्रकाशयन्तु ता उच्छन्तु च॥९॥

भावार्थ:-यथा बहवो भगिन्यो दूरे दूरे देशे विवाहिताः कदाचित् कयाचित् सह काचिन्मिलती स्वव्यवहारमाख्याति तथा पूर्वा उषसो वर्त्तमानया सह संयुज्य स्वव्यवहारं प्रकटयन्त्रि।

पदार्थ:-जैसे (आसाम्) इन (पूर्वासाम्) प्रथम उत्पन्न जेठी (स्वस्णाम्) बहिनों में (अपरा) अन्य कोई पीछे उत्पन्न हुई छोटी बहिन (अहसु) किन्हीं दिनों में अपनी (पूर्वाम्) जेठी बहिन के (अभ्येति) आगे जावे और (पश्चात्) पीछे अपने घर को चली जावे, वैसे (पृतिसः) जिनसे अच्छे-अच्छे दिन होते वे (उपसः) प्रातःसमय की वेला (अस्मे) हम लोगों के लिये (नूनम्) निश्चययुक्त (प्रत्नवत्) जिसमें पुरानी धन की धरोहर है, उस (रेवत्) प्रशंसित पदार्थयुक्त धन को (नव्यसीः) प्रतिदिन अत्यन्त नवीन होती हुई प्रकाश करे (ताः) वे (उच्छन्तु) अन्धकार को निष्माला (दूर्) करें॥९॥

भावार्थ:-जैसे बहुत बहिनें दूर-दूर देश में विवाही हुई होती उनमें कभी किसी के साथ कोई मिलती और अपने व्यवहार को कहती है, वैसे पिछली प्रति:समय की वेला वर्त्तमान वेला के साथ संयुक्त होकर अपने व्यवहार को प्रसिद्ध करती हैं॥ र्

पुनस्तमेव विषयमाह्या

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

प्र बोधयोषः पृण्तो मधोन्यबुध्यमानाः पुर्णयेः ससन्तु।

रेवर्दुच्छ मुघवद्भ्यो मघोनि∕रेत्त् स्तेत्रे सूनृते जारयन्ती॥१०॥८॥

प्रा बोध्या <u>उषः। पृणतः। मुघोनिः। अब</u>ध्यमानाः। पुणर्यः। सुसुन्तुः। रेवत्। उच्छः। मुघवत्ऽभ्यः। मुघोनिः। रेवत्। स्तोत्रे। सूनृते। जुरयन्ती।१९५॥

पदार्थ:-(प्र) (क्रोध्य) (उष्र) उषर्वद्वर्त्तमाने (पृणतः) पालयतः पृष्टान् प्राणिनः (मघोनि) पूजितधनयुक्ते (अबुध्यमात्रा) (पण्यः) व्यवहारयुक्ताः (ससन्तु) स्वपन्तु (रेवत्) प्रशस्तधनवत् (उच्छ) (मघवद्ध्यः) प्रशंसितधनेभ्यः (मघोनि) बहुधनकारिके (रेवत्) नित्यं संबद्धं धनम् (स्तोत्रे) स्तावकाय (सूनृते) सुष्टु सत्यस्त्रभावे (जारयन्ती) वयो गमयन्ती॥१०॥

अन्तर्यः हे मधीस्पुषः स्त्रि! त्वं येऽबुध्यमानाः पणयः उषस्समये दिने वा ससन्तु तान् पृणत उषर्वत् प्रबोधय। हे मघोनि सृनृते! त्वमुणर्वज्जारयन्ती मघवद्भयो रेवत् स्तोत्रे रेवदुच्छ प्रापय॥१०॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। न केनचिद् रात्रेः पश्चिमे यामे दिने वा शियतव्यम्। कृती निद्रादिनयोरिधकोष्णतायोगेन रोगाणां प्रादुर्भावात् कार्यावस्थयोर्हानेश्च। यथा पुरुषार्थयुक्त्या पुष्कलं धनं प्राप्नोति तथा सूर्योदयात् प्रागुत्थाय यत्नवान् दारिद्र्यं जहाति॥१०॥

पदार्थ:-हे (मघोनि) उत्तम धनयुक्त (उष:) प्रभातवेला के तुल्य वर्तमान स्त्री! तू जो (अबुध्यमाना:) अचेत नींद में डूबे हुए वा (पणय:) व्यवहारयुक्त प्राणी प्रभात समय का दिन में (ससन्तु) सोवें उनकी (पृणत:) पालना करनेवाले पृष्ट प्राणियों को प्रात:समय की वेला के प्रकाश के समान (प्र, बोधय) बोध करा। हे (मघोनि) अतीव धन इकट्ठा करनेवाली (सूनृते) उत्तम सत्यस्वभावयुक्त युवति! तू प्रभात वेला के समान (जारयन्ती) अवस्था व्यवति कराती हुई (मघवद्भय:) प्रशंसित धनवानों के लिये (रेवत्) उत्तम धनयुक्त व्यवहार जैसे हो वैसे (स्तोष) म्लुति प्रशंसा करनेवाले के लिये (रेवत्) स्थिर धन की (उच्छ) प्राप्ति करा॥१०॥

भावार्थ: -इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। किसी की राज्ञि के पिछले पहर में वा दिन में न सोना चाहिये, क्योंकि नींद और दिन के (धूप) घाम आदि की अधिक गरमी के योग से रोगों की उत्पत्ति होने से तथा काम और अवस्था की हानि से, जैसे पुरुषार्थ की युक्ति से बहुत धन को प्राप्त होता, वैसे सूर्योदय से पहिले उठ कर यत्नवान् पुरुष द्वरिद्वता का स्थाग करता है॥१०॥

पुनस्तमेव विषयमाहा।

फिर उसी विषय की अगले मुळ में कहा है॥

अवेयमश्रेद्युवृतिः पुरस्ताद्युडक्ते मर्वामरूणानामनीकम्।

वि नूनमुंच्छादसंति प्र केतुर्गृहंगृहुमुप जिष्ठाते अग्नि:॥११॥

अवं। इयम्। अश्वैत्। युवतिः। पुरस्तात्। युङ्क्ते। गर्वाम्। अर्गुणानाम्। अनीकम्। वि। नूनम्। उच्छात्। असीति। प्र। केतुः। गृहम्ऽगृहम्। उपितिष्ठाते। अपिनः॥ ११॥

पदार्थ:-(अव) (इयम्) (अश्वेत्) वर्द्धते (युवितः) पूर्णचतुर्विंशतिवार्षिकी (पुरस्तात्) प्रथमतः (युद्क्ते) समवैति (गवाम्) किरणानां गवादीनां पशूनां वा (अरुणानाम्) रक्तानाम् (अनीकम्) सैन्यमिव समूहम् (वि) (नूनम्) (उद्यात) प्राप्नुयात् (असित) स्यात् (प्र) (केतुः) उद्गतिशखा प्रज्ञावती वा (गृहंगृहम्) (उप) (तिष्ठाते) तिष्ठेत (अग्निः) अरुणतरुणतापस्तीव्रप्रतापो वा॥११॥

अन्वयः यथेषपुषा अरुणानां गवामनीकं युङ्क्ते पुरस्तादवाश्वैच्च तथा युवितररुणानां गवामनीकं युङ्क्तेऽवाश्वैत्रतः प्रकेतुरुषा असित नूनं व्युच्छात्। अग्निरस्या प्रतापो गृहंगृहमुपितष्ठाते युवितश्च प्रकेतुरसित नूनं व्युच्छात्। अग्निरस्युः प्रतापो गृहंगृहमुपितष्ठाते॥११॥

भोतार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथोषर्दिने सदैव समवेते वर्तेते तथैव विवाहितौ स्त्रीपुरुषो वर्त्तेयातां यथानियतं सर्वान् पदार्थान् प्राप्नुयातां च तदानयोः प्रतापो वर्द्धते॥११॥

अष्टक-२। अध्याय-१। वर्ग-७-९

मण्डल-१। अनुवाक-१८। सूक्त-१२४

पदार्थ:-जैसे (इयम्) यह प्रभातवेला (अरुणानाम्) लाली लिये हुए (गवाम्) सूर्य की किरणी के (अनीकम्) सेना के समान समूह को (युड्क्ते) जोड़ती और (प्रस्तादवाश्वेत्) पहिले से बहुती।हैं, वैसे (युवति:) पूरी चौबीस वर्ष की जवान स्त्री लाल रङ्ग के गौ आदि पशुओं के समूह को ओड़ती पीछे उन्नति को प्राप्त होती इससे (प्र., केतु:) उठी है शिखा जिसकी वह बढ़ती हुई प्रभूत वेला (असित) हो और (नुनम्) निश्चय से (व्युच्छात्) सबको प्राप्त हो (अग्नि:) तथा सूर्यमण्डल् का तरुण ताल उत्कट धाम (गृहंगृहम्) घर-घर (उप, तिष्ठाते) उपस्थित हो युवति भी उत्तम बुद्धिवाली होती, निश्चय से सब पदार्थों को प्राप्त होती और इसका उत्कट प्रताप घर-घर उपस्थित होता अर्थात् स्राप्त स्त्री पुरुष जानते और मानते हैं॥११॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे प्रभातवाला और दिन सदैव मिले हुए वर्त्तमान हैं, वैसे ही विवाहित स्त्री-पुरुष मेल से अपना वर्ताव स्वयं और जिस नियम के जो पदार्थ हों उस नियम से उनको पावें तब इनका प्रताप बढ़ता है॥११॥

पुनस्तमेव विषयमाह

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

उत्ते वर्यश्चिद्वसुतेरपप्तुन् नरश्च ये पितुभाजो ब्युष्टी

अमा सुते वहस् भूरि वाममुषों देवि द्राशुष्टे मर्त्याय॥ १२॥

उत्। ते। वर्यः। चित्। वृसतेः। अप्राप्तित्। निरः भूषे। ये। पितुऽभार्जः। विऽउष्टौ। अमा। सते। वृहसि। भूरि। वामम्। उर्ष:। देवि। दाशुषे। मर्त्याया। १२१

पदार्थ:-(उत्) (ते) तुभ्यम् (वयः) (चित्) अपि (वसतेः) निवासात् (अपप्तन्) पतन्ति (नरः) मनुष्याः (च) (ये) (पितुभाज्ञ) अन्नस्य विभाजकाः (व्यृष्टी) विशिष्टे निवासे (अमा) समीपस्थगृहाय (सते) वर्त्तमानाय (वहसि) (भूरि) बहु (वामम्) प्रशस्यम् (उषः) उषवीद्विद्याप्रकाशयुक्ते (देवि) दात्रि (दाशुषे) दात्रे (मर्त्याय) (न्त्राम पत्ये) (१२॥

अन्वय:-हे नरो! ये षितुभाजो युयं चिद् यथा वयो वसतेरुद्रपप्तन तथा व्यष्टावमा सते भवत। हे उषर्वदेवि स्त्रि! या त्वं च दाशुष सत्र्यायामास्रते भूरि वामं वहसि तस्यै ते तुभ्यमेतत्पतिरपि वहतु॥१२॥

भावर्थः उत्रे वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा पक्षिण उपर्य्यधो गच्छन्ति तथोषा रात्रिदिनयूर्क्सर्प्याधी पच्छति, या स्त्री पत्युः प्रियाचरणं कुर्य्यात्तथैवं पतिरपि करोतु॥१२॥

पद्मार्थ:-हे (नर:) मनुष्यो! (ये) जो (पितुभाज:) अन्न का विभाग करनेवाले तुम लोग (चितु) जैसे (वर्य) अवस्था को (वसते:) वसीति से (उत्, अपप्तन्) उत्तमता के साथ प्राप्त होते, वैसे ही

(व्युष्टों) विशेष निवास में (अमा) समीप के घर वा (सते) वर्तमान व्यवहार के लिये होओ और हे (उष:) प्रात:समय के प्रकाश के समान विद्याप्रकाशयुक्त (देवि) उत्तम व्यवहार की देनेवाली स्त्री! जो तू (च) भी (दाशुषे) देनेवाले (मर्त्याय) अपने पित के लिये तथा समीप के घर और वर्तमान व्यवहार के लिये (भूरि) बहुत (वामम्) प्रशंसनीय व्यवहार की (वहिस) प्राप्ति करती उस (ते) के लिये उपत व्यवहार की प्राप्ति तेरा पित भी करे॥१२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे पखेरू ऊपर रीचे जाते हैं, वैसे प्रात:समय की वेला रात्रि और दिन के ऊपर और नीचे जाती है तथा जैसे स्वी पति के प्रियाचरण को करे, वैसे ही पति भी स्त्री के प्यारे आचरण को करे॥१२॥

पुन: कीदृश्य: स्त्रियो वरा भवेयुरित्याहा। फिर कैसी स्त्री श्रेष्ठ हों, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा

अस्तोढ्वं स्तोम्या ब्रह्मणा मेऽवीवृधध्वमुश्तीरुषासः। युष्माकं देवीरवंसा सनेम सहस्त्रिणं च शृतिनं च वाजमा। १३॥९॥

अस्तोद्दवम्। स्तोम्याः। ब्रह्मणा। मे। अवीवृधध्वम्। <u>उशुतीः। युष्</u>याक्रम्। देवीः। अवसा। सनेम्। सहस्रिणम्। च। शृतिनेम्। च। वार्जम्॥ १३॥

पदार्थ:-(अस्तोढ्वम्) स्तुवत (स्तोष्ट्राः) स्तालुमर्हाः (ब्रह्मणा) वेदेन (मे) मह्मम् (अवीवृधध्वम्) वर्द्धयत (उशतीः) कामयमानाः (अग्रसः) प्रभाताः। अत्रान्येषामपीत्युपधादीर्घः। (युष्माकम्) (देवीः) दिव्यविद्यायुक्ताः (अवस्रा) रक्षणाद्येन (सनेम) अन्येभ्यो दद्याम। (सहस्रिणम्) सहस्रमसंख्याता गुणा विद्यन्ते यस्मिस्तुम् (च) (श्रातिनम्) शतशो विद्यायुक्तम् (च) (वाजम्) विज्ञानमयं बोधम्॥१३॥

अन्वयः-हे उषास! उषोभिज्ञुल्या स्तोस्पा देवीर्विदुष्यो ब्रह्मणा उशतीर्यूयं मे विद्या अस्तोढ्वमवीवृधध्वम्। युष्माकमवसा सहस्रिणं च शतिनं विद्यां साङ्गसरहस्यवेदादिशास्त्रबोधं सनेम॥१३॥

भावार्थः-अत्र विच्वेत्वसुप्तीप्रमालङ्कारः। यथोषसः शुभगुणकर्मस्वभावाः सन्ति, तद्वत् स्त्रियो भवेयुस्तथाऽत्युत्तमा मनुष्या भवेयुः। यथान्यस्माद्विदुषः स्वप्रयोजनाय विद्या गृह्णीयुस्तथैव प्रीत्यान्येभ्योऽपि दद्यः॥१३॥

अत्रोष्ट्रसो दृष्टान्तेन स्त्रीणां गुणवर्णनादेतत्सूक्तार्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह संगतिरस्तीति बोध्यम्॥ इति चतुर्विंशतत्युत्तरशततमं १२४ सूक्तं नवमो ९ वर्गश्च समाप्तः॥

पदार्थ:-हें (उषास:) प्रभात वेलाओं के तुल्य (स्तोम्या:) स्तुति करने योग्य (देवी:) दिव्य विद्युर्गुणवाकी पण्डिताओ! (ब्रह्मणा) वेद से (उशती:) कामना और कान्ति को प्राप्त होती हुई तुम (मे) मेरें लिये विद्याओं की (अस्तोढ्वम्) स्तुति प्रशंसा करो और (अवीवृधध्वम्) हम लोगों की उन्नति कराओ अष्टक-२। अध्याय-१। वर्ग-७-९

मण्डल-१। अनुवाक-१८। सूक्त-१२४

तथा (युष्माकम्) तुम्हारी (अवसा) रक्षा आदि से (सहिम्नणम्) जिसमें सहस्रों गुण विद्यमान (च) और जो (शितनम्) सैकड़ो प्रकार की विद्याओं से युक्त (च) और (वाजम्) अङ्ग, उपाङ्ग, उपनिषदी सहित वेदादि शास्त्रों का बोध उसको दूसरों के लिये हम लोग (सनेम) देवें॥१३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे प्रातर्वेला अन्य गुण, कर्म और स्वभाववाली हैं, वैसी स्त्री हों और वैसे उत्तम गुण, कर्म वाले मनुष्य हों। जैसे अन्य विद्वान् से अपने प्रयोजन के लिये विद्या लेवें, वैसे ही प्रीति से औरों के लिये भी विद्या देवें॥ १३॥

इस सूक्त में प्रभात वेला के दृष्टान्त से स्त्रियों के गुणों का वर्णन होने से इसे सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है, यह जानना चाहिये॥

पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गिति है, यह जानना चाहिये॥

यह एक सौ चौबीसवां १२४ सूक्त और नवां १ वर्ष समप्प्त हुआ॥

प्राता रत्निमिति पञ्चविंशत्युत्तरशततमस्य सप्तर्चस्य सूक्तस्य दैर्घतमसः कक्षीवान् ऋषिः। दम्पती देवते। १,३,७ त्रिष्टुप् छन्दः। २,६ निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। ४,५ जगती छन्दः।

0

निषाद: स्वर:॥

अथ कोऽत्र धन्यवादार्हो भूत्वाऽखिलसुखानि प्राप्नुयादित्याह॥

अब सात ऋचावाले एक सौ पच्चीसवें १२५ सूक्त का आरम्भ है। उसके प्रथम मिन्त्र में हैप संसार में कौन धन्यवाद के योग्य होकर सब सुखों को प्राप्त हो, इस विषय की कहते हैं।।

प्राता रत्नं प्रातिरत्वां दधाति तं चिकित्वान् प्रतिगृह्या नि धत्ते। तेनं प्रजां वर्धयमान् आयूं रायस्पोषेण सचते सुवीरः॥१॥ 🌈

प्रातरिति। रत्नेम्। प्रातःऽइत्वां। दुधाति। तम्। चिकित्वान्। प्रतिऽगृह्यं/िनः ध्रत्ने। प्रऽजाम्। वर्ध्यंमानः। आयुः। रायः। पोषेण। सचते। सुऽवीरः॥ १॥

पदार्थ:-(प्रात:) प्रभाते (रत्नम्) रम्यानन्दं वस्तु (प्रातिस्वा) यः प्रातरेव जागरणमेति सः। अत्र प्रातरूपपदादिण् धातोः क्वनिप्। (द्धाति) (तम्) (चिकित्व्यन्) विद्यानम् (प्रतिगृह्य) दत्वा गृहीत्वा च। अत्रान्येषामपीति दीर्घः। (नि) (धत्ते) नित्यं धरित (तम्) (प्रजीम्) पुत्रपौत्रादिकाम् (वर्द्धयमानः) विद्यासुशिक्षयोन्नयमानः (आयुः) जीवनम् (रायः) धनस्य (पाष्टण) पुष्ट्या (सचते) समवैति (सुवीरः) शोभनश्चासौ वीरश्च सः॥१॥

अन्वय:-यश्चिकित्वान् प्रातिरत्वा सुवीरो मनुष्टिः प्राता रेतुं दधाति प्रतिगृह्य तं निधत्ते तेन रायस्पोषेण प्रजामायुश्च वर्द्धयमानः सचते स सततं सुखी भवति॥१॥

भावार्थ:-य आलस्यं विहाय धर्म्य व्यवहारेण धनं प्राप्य संरक्ष्य भुक्त्वा भोजयित्वा दत्वा गृहीत्वा च सततं प्रयतेत, स सर्वाण्रि सुख्ति प्राप्तुयात्॥१॥

पदार्थ:-जो (चिकित्वान्) विशेष ज्ञानवान् (प्रातिरत्वा) प्रातःकाल में जागनेवाला (सुवीरः) सुन्दर वीर मनुष्य (प्रातः, रूवम्) प्रभात समय में रमण करने योग्य आनन्दमय पदार्थ को (दधाति) धारण करता और (प्रतिशृद्धा) दे लेकर फिर (तम्) उसको (नि, धत्ते) नित्य धारण वा (तेन) उस (रायस्पोषेण) धन की पृष्टि से (प्रजाम्) पुत्र-पौत्र आदि सन्तान और (आयुः) आयुर्दा को (वर्द्धयमानः) विद्या और उत्तम शिक्षा से बढ़ाता हुआ (सचते) उसका सम्बन्ध करता है, वह निरन्तर सुखी होता है॥१॥

भार्षार्थ: जो ओलस्य को छोड़ धर्म सम्बन्धी व्यवहार से धन को पा उसकी रक्षा, उसका स्वयं भोग कर, दूसरों को भोग करा और दे-लेकर निरन्तर उत्तम यत्न करे, वह सब सुखों को प्राप्त होवे प्रश्

कोऽत्र धर्मात्मा यशस्वी जायत इत्याह॥

अष्टक-२। अध्याय-१। वर्ग-१०

मण्डल-१। अनुवाक-१८। सूक्त-१२५ d3 Va

इस संसार में कौन धर्मात्मा और यशस्वी कीर्त्तिमान् होता है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा

है॥

सुगुर्रसत्सुहिर्ण्यः स्वश्चों बृहर्दस्मै वय् इन्द्रों दधाति। यस्त्वायन्तं वसुना प्रातरित्वो मुक्षीजेयेव पर्दिमुत्सिनार्ति॥२॥

सुऽगुः। असत्। सुऽहिर्ण्यः। सुऽअर्थः। बृहत्। अस्मै। वर्यः। इन्द्रः। द्रधा<u>ति। यः</u>। त्वा। आऽयन्त्रेम्। वर्युना। प्रातःऽङ्कत्वः। मुक्षीर्जयाऽइव। पर्दिम्। उत्ऽसिनाति॥२॥

पदार्थ:-(सुगु:) शोभना गावो यस्य सः (असत्) भवेत् (सुह्रिण्यः) शोभनीनि हिरण्यानि यस्य सः (स्वश्वः) शोभनी अश्वा यस्य सः (बृहत्) महत् (अस्मै) (वयः) चिरंजीवनम् (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् (दधाति) (यः) (त्वा) त्वाम् (आयन्तम्) आगच्छन्तम् (वस्ना) उत्तमेन द्रव्येण सह (प्रातिरत्वः) प्रातःकालमारभ्य प्रयत्नकर्त्तः (मुक्षीजयेव) मुक्ष्या मुञ्जाया जायते सा मुक्षीणा तयेव (पदिम्) पद्यते गम्यते या श्रीस्ताम् (उत्सिनाति) उत्कृष्टतया बध्नाति॥२॥

अन्वय:-हे प्रातिरत्वो य इन्द्रो वसुना आयन्तं त्वा दधीत्यस्म बृहद्वयश्च मुक्षीजयेव पदिमुत्सिनाति स सुगुस्सुहिरण्यस्स्वश्वोऽसद्भवेत्॥२॥

भावार्थ:-यो विद्वान् प्राप्तान् शिष्यार्स् सुशिक्षत्राऽधर्मविषयलोलुपतात्यागोपदेशेन दीर्घायुषो विद्यावतः श्रीमतश्च करोति सोऽत्र पुण्यकीर्त्तिज्ञायते॥२॥/

पदार्थ:-हे (प्रातिरत्व:) प्रातःसम्य में लेकी अच्छा यत्न करनेहारे (य:) जो (इन्द्र:) ऐश्वर्य्यवान् पुरुष (वसुना) उत्तम धन के साथ (अस्मन्म्) आते हुए (त्वा) तुझको (दधाति) धारण करता (अस्मै) इस कार्य के लिये (बृहत्) बहुत (वय:) चिरकाल तक जीवन और (मुक्षीजयेव) जो मूंज से उत्पन्न होती उससे जैसे बांधना बने जैसे पाधन से (पिरम्) प्राप्त होते हुए धन को (उत्सिनाति) अत्यन्त बांधता अर्थात् सम्बन्ध करता, वह (सुगुः) सुन्दर गौंओं (सुहिरण्यः) अच्छे-अच्छे सुवर्ण आदि धनों और (स्वश्वः) उत्तम-उत्तम घडिनेति (असत्) होवे॥२॥

भावार्थ:-जो विद्वान् प्राये हुए शिष्यों को उत्तम शिक्षा अर्थात् अधर्म और विषय भोग की चञ्चलता के त्यार आदि के उपदेश से बहुत आर्युदायुक्त विद्या और धनवाले करता है, वह इस संसार में उत्तम की तिमान होता है।।२।।

पुनरत्र स्त्रीपुरुषौ कीदृशौ भवेतामित्याह॥

फिर इस संसार में स्त्री और पुरुष कैसे हों, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

आर्च्यद्य सुकृतं प्रातिरच्छिन्निष्टेः पुत्रं वसुमता रथेन।

अंशो: सुतं पायय मत्सरस्य क्ष्यद्वीरं वर्धय सूनृताभि:॥३॥

आर्यम्। अद्यः। सुऽकृत्रम्। प्रातः। इच्छन्। इष्टेः। पुत्रम्। वसुंऽमता। रथेन। अंशोः। सुत्रम्। पाययः। मृत्सरस्यं। क्ष्यत्ऽवीरम्। वर्ध्यः। सूनृताभिः॥३॥

पदार्थ:-(आयम्) आगच्छेयं प्राप्नुयाम् (अद्य) अस्मिन् दिने (सुकृतम्) धूर्म्यं कर्म (प्रातः) प्रभाते (इच्छन्) (इष्टेः) इष्टस्य गृहाश्रमस्य स्थानात् (पुत्रम्) पवित्रं तनयम् (वसुमताः) प्रशस्तिधनयुक्तेन (रथेन) रमणीयेन यानेन (अंशोः) स्त्रीशरीरस्य भागात् (सुतम्) उत्पन्नम् (षायय) (मृत्यरस्य) हर्षनिमित्तस्य (क्षयद्वीरम्) क्षयतां शत्रूहन्तॄणां मध्ये प्रशंसायुक्तम् (वर्द्धय) उत्रय (सूनृताभिः) विद्यासत्यभाषणादिशुभ-गुणयुक्ताभिर्वाणीभिः॥३॥

अन्वय:-हे धात्रि! अहमद्य वसुमता रथेन प्रातिरष्टेः सुकृतिमच्छन् ग्रं प्रश्नमार्यस्त सुन मत्सरस्यांशो रसं पायय सूनृताभिः क्षयद्वीरं वर्द्धय॥३॥

भावार्थ:-स्त्रीपुरुषौ पूर्णब्रह्मचर्य्येण विद्यां संगृह्य परस्परस्य प्रस्त्रतया विवाहं कृत्वा धर्म्येण व्यवहारेण पुत्रादीनुत्पादयेताम्। तद्रक्षायै धार्मिकी धात्रीं समर्प्ययेतो स्रो चेन सुशिक्षया सम्पन्नं कुर्यात्॥३॥

पदार्थ:-हे धायि! मैं (अद्य) (वसुमता) प्रशंसित (धनपुष्त (प्रथन) मनोहर रमण करने योग्य रथ आदि यान से (प्रातः) प्रभात समय (इष्टेः) चाहे हुए गृहाश्रम के स्थान से (सुकृतम्) धर्मयुक्त काम की (इच्छन्) इच्छा करता हुआ जिस (पुत्रम्) पवित्र बालक को आयम्) पाऊं उस (सुतम्) उत्पन्न हुए पुत्र को (मत्सरस्य) आनन्द करानेवाला जो (अंशो) स्त्री का अरीर उसके भाग से जो रस अर्थात् दूध उत्पन्न होता, उस दूध को (पायय) पिला। हे वीर (सूनृतिष्रिः) विद्या, सत्यभाषण आदि शुभगुणयुक्त वाणियों से (क्षयद्वीरम्) शत्रुओं का क्षय करनेवालों में प्रशंसित वीर पुरुष की (वर्द्धय) उन्नति कर।।३॥

भावार्थ:-स्त्री-पुरुष पूरे ब्रह्मचर्स से किद्या का संग्रह और एक-दूसरे की प्रसन्नता से विवाह कर धर्मयुक्त व्यवहार से पुत्र आदि कन्तानों की उत्पन्न करें और उनकी रक्षा कराने के लिये धर्मवती धायि को देवें और वह इस सन्तान के उत्तम शिक्षा से युक्त करे॥३॥

षुनः स्त्रीपुरुषौ किं कुर्यातामित्याह॥

फिर्स्मी-पुरुष क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

उप क्षरित् सिर्चवो मयोभुवं ईजानं च युक्ष्यमाणं च धेनवः।

पृण्त्रं च पर्परि च श्रवस्यवी घृतस्य धारा उप यन्ति विश्वर्तः॥४॥

उर्थो क्ष्मुरिक्के सिन्धेवः। मुयःऽभुवेः। ईजानम्। च। यक्ष्यमाणम्। च। धेनवेः। पृणन्तेम्। च। पर्परिम्। च। श्रवस्यवेः घतस्य। धाराः। उप। यन्ति। विश्वतेः॥४॥

पदार्थ:-(उप) (क्षरन्ति) वर्षन्तु (सिन्धवः) नदा इव (मयोभुवः) सुखं भावुकाः (ईजानम्) यज्ञं कुर्वन्तम् (च) (यक्ष्यमाणम्) यज्ञं करिष्यमाणम् (च) (धेनवः) पयःप्रदा गाव इव (पृणन्तम्) पुष्यन्तम् अष्टक-२। अध्याय-१। वर्ग-१०

मण्डल-१। अनुवाक-१८। सूक्त-१२५ 93kg

(च) (पपुरिम्) पुष्टम् (च) (श्रवस्यवः) स्वयं श्रोतुमिच्छवः (घृतस्य) जलस्य (धाराः) (अ) (वश्रतः) सर्वतः॥४॥

अन्वय:-ये सिन्धव इव मयोभुवा जना धेनव इव पत्न्यो धात्र्यो वा ईजानं यक्ष्यमाणं चोप्रक्षरिन्ति। ये श्रवस्यवो विद्वांसो विदुष्यश्च पृणन्तं पपुरिं च शिक्षन्ते ते विश्वतो घृतस्य धारा इव सुखान्युपयन्ति प्राप्नुविन्त्। पर्णा

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। ये पुरुषा: स्त्रियश्च गृहाश्रमे पुरस्परस्य प्रियाचरणं कृत्वा विद्या अभ्यस्य सन्तानानभ्यासयन्ति ते सततं सुखान्यश्नुवते॥४॥

पदार्थ:-जो (सिन्धवः) बड़े नदों के समान (मयोभुवः) सुख की पानिन करानेवाले मनुष्य और (धेनवः) दूध देनेहारी गौओं के समान विवाही हुई स्त्री वा धार्यी (ईजानम्) यज्ञ करते (च) और (यक्ष्यमाणम्) यज्ञ करनेवाले पुरुष के (उप, क्षरित्त) समीप अन्तन्द वेषवि वा जो (श्रवस्थवः) आप सुनने की इच्छा करते हुए विद्वान् (च) और विदुषी स्त्री (पृण्निस्) पृष्ठ हीते (च) और (पपुरिम्) पृष्ट हुए (च) भी पुरुष को शिक्षा देते हैं, वे (विश्वतः) सब ओर से (धृतस्थ) जल की (धाराः) धाराओं के समान सुखों को (उप, यन्ति) प्राप्त होते हैं॥४॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो फूल्ष और स्त्री गृहाश्रम में एक-दूसरे के प्रिय आचरण और विद्याओं का अभ्यास करके सत्तानों को अभ्यास कराते हैं, वे निरन्तर सुखों को प्राप्त होते हैं॥४॥

मनुष्यै: कै: किर्माभस्त्र मोक्ष आप्तव्य इत्याह॥

इस संसार में मनुष्यों को किन क्रामों से मोक्षे प्राप्त हो सकता है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

नार्कस्य पृष्ठे अर्धि तिष्ठति श्रितो यः पृणाति स ह देवेषु गच्छति। तस्मा आपो घृत्रम्पन्ति सिन्धेवस्तस्मा इयं दक्षिणा पिन्वते सदा॥५॥

नार्कस्य। पृष्ठे। अधि तिष्ठति। श्रितः। यः। पृणाति। सः। हु। देवेषु। गुच्छति। तस्मै। आपैः। घृतम्। अर्षुन्ति। सिर्चवः। तस्मै। ड्रुयम्। दक्षिणा। पुन्वते। सद्यो॥५॥

पदार्थ: (नेकस्य) अविद्यमानदु:खस्यानन्दस्य (पृष्ठे) आधारे (अधि) उपरिभावे (तिष्ठति) (श्रित:) विद्यामाश्रित: (य:) (पृणाित) विद्यासुशिक्षासंस्कृताऽन्नाद्यै: स्वयं पृष्यित सन्तानान् पोषयित च (स:) (ह) किल (देवेषु) दिव्येषु गुणेषु विद्वत्सु वा (गच्छित) (तस्मै) (आप:) प्राणा जलािन वा (घृतम्) आज्यम् (अर्धिन्त) वर्षन्ति (सिन्धव:) नद्यः (तस्मै) (इयम्) अध्यापनजन्या (दक्षिणा) (पिन्वते) प्रीणाित (मृदा) भरा।

अन्वय:-यो मनुष्यो देवेषु गच्छति स ह विद्यामाश्रितः सन् नाकस्य पृष्ठेऽधि तिष्ठति सर्वान् पृणाति तस्मा औपः सदा घृतमर्षन्ति तस्मा इयं दक्षिणा सिन्धवः सदा पिन्वते॥५॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। ये मनुष्या नरदेहमाश्रित्य सत्पुरुषसंगं धर्म्याऽकार च सदा कुर्वन्ति, ते सदैव सुखिनो भवन्ति। ये विद्वांसो या विदुष्यो बालकान् यूनो बुद्धांश्च क्रम्या युवतिर्वृद्धाश्च निष्कपटतया विद्यासुशिक्षे सततं प्रापयन्ति, तेऽत्राखिलं सुखं प्राप्य मोक्षमृष्टिमच्छित्॥५॥

पदार्थ:-(य:) जो मनुष्य (देवेषु) दिव्यगुण वा उत्तम विद्वानों में (गच्छिति) जाता है (म:, ह) वहीं विद्या के (श्रित:) आश्रय को प्राप्त हुआ (नाकस्य) जिसमें किञ्चित् दु:खू नहीं उस उत्तम सुख के (पृष्ठे) आधार पर (अधि, तिष्ठति) स्थिर होता वा (पृणाित) विद्या उत्तम शिक्षा और अच्छे बनाए हुए अत्र आदि पदार्थों से आप पृष्ट होता और सन्तान को पृष्ट करता है (तस्मै) उसके लिये (आप:) प्राण वा जल (सदा) सब कभी (घृतम्) घी (अर्षन्ति) वर्षाते तथा (तस्मै) उसके लिये (इयम्) यह पढ़ाने से मिली हुई (दक्षिणा) दक्षिणा और (सिन्धव:) नदी, नद (सदा) सब कभी (पिन्वते) प्रसन्नता करते हैं॥५॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है जो मनुष्य इस मनुष्य देह का आश्रय कर सत्पुरुषों का सङ्ग और धर्म के अनुकूल आचरण को सदा करते हैं। सदैव सुखी होते हैं। जो विद्वान् व जो विदुषी पण्डिता स्त्री, बालक, जवान और बुड्ढे सिनुष्यों तथा कन्या, युवित और बुड्ढी स्त्रियों को निष्कपटता से विद्या और उत्तम शिक्षा को निष्क्रिय प्राप्त कराते, वे इस संसार में समग्र सुख को प्राप्त होकर अन्तकाल में मोक्ष को अधिगत होते अर्थीत् अधिकृता से प्राप्त होते हैं॥५॥

पुनश्चर्तुर्वणस्थाः कि कुर्युरित्याह॥

फिर चारों वर्णों में स्थिर होने कर्त मनुष्य क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

दक्षिणावतामिदिमानि चित्रा दक्षिणावतां दिवि सूर्यासः।

दक्षिणावन्तो अमृतं भूजिन्ते दक्षिणावन्तः प्र तिरन्त आयुः॥६॥

दक्षिणाऽवताम्। इत्। इपानि र्ष्युत्रा। दक्षिणाऽवताम्। द्विव। सूर्यासः। दक्षिणाऽवन्तः। अमृतेम्। भुजन्ते। दक्षिणाऽवन्तः। प्र। तिरुन्ते। आयुर्॥ प्रा

पदार्थ:-(दक्षिणावताम्) धर्मोपार्जिता धनविद्यादयो बहवः पदार्था विद्यन्ते येषां तेषाम् (इत्) एव (इमानि) प्रत्यक्षाणि (चित्रा) चित्राण्यद्धतानि (दक्षिणावताम्) प्रशंसितयोधिम्यधनविद्ययोदिक्षिणा दानं येषां तेषाम्। प्रशंसायां सतुम्। (दिवि) दिव्ये प्रकाशे (सूर्यासः) सवितार इव तेजस्विनो जनाः (दक्षिणावन्तः) बहुविद्याद्यानयुक्ताः (अमृतम्) मोक्षम् (भजन्ते) (दक्षिणावन्तः) बहुभयदानदातारः (प्र) (तिरन्ते) संतरन्ति (आहुः) प्राप्धारणम्॥६॥

अष्टक-२। अध्याय-१। वर्ग-१०

मण्डल-१। अनुवाक-१८। सूक्त-१२५



अन्वयः-दक्षिणावतां जनानामिमानि चित्राऽद्भुतानि सुखानि दक्षिणावतां दिवि सूर्य्यासः प्राप्नुविन्त् दक्षिणावन्त इदेवामृतं भजन्ते दक्षिणावन्त आयुः प्रतिरन्ते प्राप्नुवन्ते॥६॥

भावार्थ:-ये ब्राह्मणाः सार्वजनिकसुखाय विद्यासुशिक्षादानं, ये च क्षित्रिश्च न्यायेन व्यवहारेणाभयदानम्, ये वैश्या धर्मोपार्जितधनस्य दानम्, ये च शूद्राः सेवादानं च्यक्विन्ति ते पूर्णायुषो भूत्वेहामुत्रानन्दं सततं भुञ्जते॥६॥

पदार्थ:-(दक्षिणावताम्) जिनके धर्म से इकट्ठे किये धन, विद्या आदि बहुत पदार्थ विद्यमान हैं, उन मनुष्यों को (इमानि) ये प्रत्यक्ष (चित्रा) चित्र-विचित्र अद्भुत सुख (दक्षिणावताम्) जिनके प्रशंसित धर्म के अनुकूल धन और विद्या की दक्षिणा का दान होता उन से ज्वनों को (दिवि) उत्तम प्रकाश में (सूर्य्यास:) सूर्य्य के समान तेजस्वी जन प्राप्त होते हैं (दक्षिणावन्त:) बहुत विद्या-दानयुक्त सत्पुरुष (इत्) ही (अमृतम्) मोक्ष का (भजन्ते) सेवन करते और (दक्षिणावन्त:) बहुत प्रकार का अभय देनेहारे जन (आयु:) आयु के (प्रतिरन्ते) अच्छे प्रकार पार पहुंचे अर्थात् पूरी आयु भोगते हैं॥६॥

भावार्थ:-जो ब्राह्मण सब मनुष्यों के सुख के लिये विद्या और उत्तम शिक्षा का दान, वा जो क्षत्रिय न्याय के अनुकूल व्यवहार से प्रजा जनों को अभयदान, वा जो वैश्य धर्म से इकट्ठे किये हुए धन का दान और जो शूद्र सेवा दान करते हैं, वे पूर्ण आयुवाले होंकर इस जन्म और दूसरे जन्म में निरन्तर आनन्द को भोगते हैं॥६॥

इह संसार कितिविधा; मुरुषा भवनीत्याह॥

इस संसार में कितने प्रकार के प्रुरुष होते हैं। इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

मा पृणन्तो दुरितमेन आर्न्सा स्रिरिषुः सूरयेः सुव्रतासः।

अन्यस्तेषां परिधिरम्ब किश्चिदपूर्णन्तमभि सं यन्तु शोकाः॥७॥१०॥

मा। पृणन्तः। दुःऽइतम्। एनः। आ। अर्न्। मा। जारिषुः। सूरयः। सुऽव्रतासः। अन्यः। तेषाम्। परिऽधिः। अस्तु। कः। चित्। अपृणन्तम्। श्रृभ्भि। सुम्। यन्तु। शोकाः॥७॥

पदार्थ:-(मा) निषेध (गृणनः) स्वं स्वकीयांश्च पुष्यन्तः (दुरितम्) दुःखायेतं प्राप्तम् (एनः) पापाचरणम् (आ) पमन्तात् (अरन्) आचरन्तु (मा) (जारिषुः) जारकर्माणि कुर्वन्तु (सूरयः) विद्वांसः (सुव्रतासः) शिभन्ति व्रतानि सत्याचरणानि येषान्ते (अन्यः) भिन्नः (तेषाम्) धार्मिकाणां विदुषामधार्मिकाणां मूर्खाणां च (परिधिः) आवरणं मर्य्यादा (अस्तु) (कः) (चित्) अपि (अपृणन्तम्) धर्मेणापुर्यन्तमन्यानपाषयन्तम् (अभि) सर्वतः (सम्) सम्यक् (यन्तु) प्राप्नुवन्तु (शोकाः) विलापाः॥७॥

अनेब्रः-हे मनुष्या! भवन्तः पृणन्तः सन्तो दुरितमेनो माऽरन् दुरितमेनो मा जारिषुः, किन्तु सुव्रतासः सूरयः स्निक्षे धर्मेभ्रवाचरन्तु ये च युष्मदध्यापकास्तेषां युष्माकं च कश्चिदन्यः परिधिरस्तु। अपृणन्तं जनं शोका अभिसंयन्तु॥७॥

भावार्थ:-अस्मिन् जगित द्विविधा जनाः सन्ति। एके धार्मिका अपरे पापाश्च, ते प्रिभिन्नप्रस्थानास्सन्ति। ये धार्मिकास्ते धार्मिकस्याऽनुकरणेनैव धर्ममार्गे चलन्ति। ये च दुष्टास्ते त्वधार्मिकानुकरणेनैवाधर्मे चलन्ति। नैव कदाचिद् धार्मिकेरधार्मिकमार्गे गन्तव्यमधार्मिकेस्तु व्यक्तिमार्गे गन्तुं योग्यमेवं प्रत्येकजातौ धार्मिकाधार्मिकयोद्वीं मार्गो स्तः, तत्र धार्मिकान् सुखान्यधार्मिकान् दुः धानि च सदाप्नुवन्ति॥७॥

अस्मिन् सूक्ते धर्म्याचरणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह संगतिरस्तीति वैद्यम्॥ इति पञ्चविंशोत्तरशततमं १२५ सूक्तं दशमो १० वर्गश्च समाजः॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! आप लोग (पृणन्त:) स्वयं वा अपने सन्तान आदि की पृष्ट करते हुए (दुरितम्) दु:ख के लिये जो प्राप्त होता अर्थात् (एन:) पाप का आचरण (पा, आ, अरन्) मत करो और दु:ख के लिये प्राप्त होनेवाला पापाचरण जैसे हो वैसे (मा, जारिषु:) खोने कामों को मत करो, किन्तु (सुव्रतास:) उत्तम सत्य आचरणवाले (सूरय:) विद्वान् होते हुए धर्म ही का आचरण करो और जो तुम्हारे अध्यापक हों (तेषाम्) उन धार्मिक विद्वानों तथा तुम लोगों के बीच (कश्चित्) कोई (अन्य:) भिन्न (परिधि:) मर्य्यादा अर्थात् तुम सभी को ढांपने, गुप्त राखने, मूर्खपन से बचानेवाला प्रकार (अस्तु) हो और (अपृणन्तम्) धर्म से न पृष्ट होने न दूसरों को पृष्ट करनेवाले किन्तु अधर्म से पृष्ट होने तथा अधर्म ही से औरों को पृष्ट करनेवाले मनुष्य को (शोका:) शोक विलाप (अभि, सम्, यन्तु) सब ओर से प्राप्त हों॥७॥

भावार्थ:-इस संसार में दो प्रकार के मनुष्य होते हैं एक धार्मिक और दूसरे पापी। ये दोनों अच्छे प्रकार अलग-अलग स्थान और आचरणवाले है अर्थात् जो धार्मिक हैं वे धर्मात्माओं के अनुकरण ही से धर्म मार्ग में चलते और जो दुष्ट आचरण करनेवाले पापी हैं, वे अधर्मी दुष्ट जनों के आचरण ही से अधर्म में चलते हैं। कभी किन्हीं धर्मात्माओं को अधर्मी दुष्टजनों के मार्ग में नहीं चलना चाहिये और अधर्मी दुष्टों को अपनी दुष्टता छोड़ धर्मिकों के मार्ग में चलना योग्य है। इस प्रकार प्रत्येक जाति के पीछे धार्मिक और अधार्मिकों के दो मार्ग हैं, उत्तमें धर्म करनेवालों को सुख और अधर्मी दुष्टों को दु:ख सदा प्राप्त होते हैं॥७॥

इस सूक्त में धर्म के अनुकूल आचरण का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है, कि जानना जाहिये॥

यह एक सी पच्चीसवां १२५ सूक्त और दशवाँ १० वर्ग समाप्त हुआ॥

अमन्दानित्यस्य सप्तर्चस्य षड्विंशत्युत्तरशततमस्य सूक्तस्य १-५ कक्षीवान्। ६ भावयव्यः। ७ रोमशा ब्रह्मवादिनी चर्षिः। विद्वांसो देवताः। १-२, ४-५ निचृत् त्रिष्टुप्। ३ त्रिष्टुप् छन्दः।

धैवत: स्वर:। ६,७ अनुष्टुप् छन्द:। गान्धार: स्वर:॥

कोऽत्र राज्याधिकारे न स्थापनीय इत्याह॥

अब सात ऋचावाले एक सौ छब्बीसवें १२६ सूक्त का आरम्भ है। उसके प्रथम मन्त्र में इस संसार के राज्य के अधिकार में कौन न स्थापन करने योग्य है, इस विषय को असले मन्त्र में कहा है॥

अमन्दान् स्तोमान् प्र भरे मनीषा सिन्धावधि क्षियतो भाव्यस्य यो में सहस्रुमिमीत स्वानुतूर्तो राजा श्रवं इच्छमानः।। १४११

अर्मन्दान्। स्तोमान्। प्रा भुरे। मुनीषा। सिन्धौ। अधि। क्षियतः। भीव्यस्य। यैः। मे। सहस्रम्। अर्मिमीत। सुवान्। अुतूर्तः। राजा। श्रवः। इच्छमानः॥ १॥

पदार्थ:-(अमन्दान्) मन्दभावरहितान् तीव्रान् (स्तोमान्) स्तीतुम्हीन् विद्याविशेषान् (प्र) (भरे) धरे (मनीषा) बुद्ध्या (सिन्धौ) नद्याः समीपे (अधि) स्वीयनिते (क्षियतः) निवसतः (भाव्यस्य) भवितुं योग्यस्य (यः) (मे) मम (सहस्रम्) (अमिमीत) निमिमीते (सव्यन्) ऐश्वर्ययोग्यान् (अतूर्तः) अहिंसितः (राजा) (श्रवः) श्रवणम् (इच्छमानः) व्यत्ययेनात्नात्मनेपदम्॥ ॥

अन्वय:-योऽतूर्तः श्रव इच्छमानो राजा स्निन्धी क्षियते। भाव्यस्य मे सकाशात् सहस्रं सवानमन्दान् स्तोमांश्च मनीषाऽमिमीत तमहमधिप्रभरे॥१॥

भावार्थ:-यावदाप्तस्य विदुष अज्ञिया पुल्यार्थी विद्वान् नरो न भवेत्, तावत्तस्य राज्याधिकारे स्थापनं न कुर्यात्॥१॥

पदार्थ:-(य:) जो (अतुर्न:) हिसा आदि के दु:ख को न प्राप्त और (श्रव:) उत्तम उपदेश सुनने की (इच्छमान:) इच्छा करता हुआ (राजा) प्रकाशमान सभाध्यक्ष (सिन्धो) नदी के समीप (क्षियत:) निरन्तर वसते हुए (भाव्यस्य) प्रसिद्ध होने योग्य (मे) मेरे निकट (सहस्रम्) हजारों (सवान्) ऐश्वर्य योग्य (अमन्दान्) मन्दपनरहित तीव्र और (स्तोमान्) प्रशंसा करने योग्य विद्यासम्बन्धी विशेष ज्ञानों का (मनीषा) बुद्धि से अमिमीत्। निरन्तर मान करता उसको मैं (अधि) अपने मन के बीच (प्र, भरे) अच्छे प्रकार धारण कुर्हा। रहा

भार्षार्थ: जब तक सकल शास्त्र जाननेहारे विद्वान् की आज्ञा से पुरुषार्थी विद्वान् न हो, तब तक उसका ग्रुप्य के अधिकार में स्थापन न करे॥१॥

केऽत्र यशो विस्तारयन्तीत्याह॥

क्रीन इस संसार में यश का विस्तार करते हैं, इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

१३९४

ऋग्वेदभाष्यम्

शृतं राज्ञो नार्धमानस्य निष्काञ्छतमश्चान् प्रयंतान्त्सद्य आदंम्। शृतं कुक्षीवाँ असुरस्य गोनां दिवि श्रवोऽजरुमा तंतान॥२॥

शृतम्। राज्ञः। नार्धमानस्य। निष्कान्। शृतम्। अश्चान्। प्रऽयंतान्। सद्यः। आर्दम्। शृतम्। वश्चीवन्। असुरस्य। गोर्नाम्। द्विव। श्रवः। अजरम्। आ। तृतान्॥२॥

पदार्थ:-(शतम्) (राज्ञः) (नाधमानस्य) प्राप्तैश्वर्यस्य (निष्कान्) सौवर्णान् (शतम्) (अश्वान्) तुरङ्गान् (प्रयतान्) सुशिक्षितान् (सद्यः) (आदम्) आददामि (शतम्) (कश्वीवान्) बह्वयः कक्षयः विद्याप्रदेशा विदिताः सन्ति यस्य सः (असुरस्य) मेघस्य (गोनाम्) किरणानाम् (दिवि) आकाशे (श्रवः) श्रूयमाणं यशः (अजरम्) वयोनाशहीनम् (आ) (ततान) विस्तृणाति॥२॥

अन्वय:-यः कक्षीवान् विद्वानसुरस्येव नाधमानस्य राज्ञः शतं निकार्त्त प्रयतान् शतमश्चान् दिव्यजरं गोनां शतमिव श्रव आततान तमहं सद्य आदम्॥२॥

भावार्थ:-ये न्यायकारिणो विदुषो राज्ञ: सकाशात् सत्कृष्(प्राप्नुचिन्द्रः, ते यशो वितन्वते॥२॥

पदार्थ:-जो (कक्षीवान्) विद्या के बहुत व्यवहारों को जोन्ते हुँआ विद्वान् (असुरस्य) मेघ के समान उत्तम गुणी (नाधमानस्य) ऐश्वर्यवान् (राज्ञः) राज्य के (श्रतम्) सौ (निष्कान्) निष्क सुवर्णीं (प्रयतान्) अच्छे सिखाये हुए (श्रतम्) सौ (अश्वान्) भिड़ों और (दिवि) आकाश में (अजरम्) अविनाशी (गोनाम्, श्रतम्) सूर्यमण्डल की सैकड़ो किरणों के समान् (श्रवः) श्रूयमाण यश को (आ, ततान) विस्तारता है, उसको मैं (सद्यः) शीघ्र (आदम्) स्त्रीकार भ्रूरता हूँ॥२॥

भावार्थ:-जो न्यायकारी विद्वान् राजा के समीप से सत्कार को प्राप्त होते, वे यश का विस्तार करते हैं॥२॥

पुना राज्ञा किं कर्त्तव्यमित्याह॥

फिर राजा को क्या करना चाहिचे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है।।

उप मा श्यावाः स्वन्येन दुना वधुर्यन्तो दश रथासो अस्थुः।

षृष्टिः सहस्रुम् गृष्ट्रमागात् सनत्कक्षीवां अभिपत्वे अह्नाम्॥३॥

उपं। मा। श्यावाः। स्वन्यैन। दुत्ताः। वृधूऽमेन्तः। दर्श। स्थांसः। अस्थुः। षृष्टिः। सहस्रम्। अनुं। गर्व्यम्। आ। अगात्। सन्तर् क्शीवान् अभिऽपित्वे। अह्नाम्॥३॥

पदार्थ: (उप) (मा) माम् (श्यावा:) सिवतु: किरणाः (स्वनयेन) स्वस्य नयनं यस्य दातुस्तेन (दत्ताः) (वश्रूमन्तः) प्रशस्ता वध्वः स्त्रियो विद्यन्ते येषु ते (दश) एतत्संख्याकाः (रथासः) यानानि (अस्थुः) तिष्ठन्ति (षष्टिः) (सहस्रम्) (अनु) (गव्यम्) गवां भावम् (आ) (अगात्) गच्छेत् (सनत्) सदा (कक्षीवान्) युद्धे प्रशस्तकक्षः (अभिपित्वे) सर्वतः प्राप्तौ (अह्नाम्) दिनानाम्॥३॥

अष्टक-२। अध्याय-१। वर्ग-११

मण्डल-१। अनुवाक-१८। सूक्त-१२६



अन्वयः – येन स्वनयेन दात्रा सिवतुः श्यावा इव दत्ता दशरथासो वधूमन्तो मा मां सेनापतिम्रुपास्थः। यः कक्षीवानभिपित्वेऽह्नां सहस्रं गव्यमन्वागाद् यस्य षष्टिः पुरुषा अनुगच्छन्ति स सनत् सुखवर्द्धकोऽस्ति॥३॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। यत: सर्वे योद्धारो राज्ञ: सकाशाद्धनाद्विकं प्रेप्तुमिच्छन्ति तस्माद्राज्ञा तेभ्यो यथायोग्यं देयमेवं विनोत्साहो न जायते॥३॥

पदार्थ:-जिस (स्वनयेन) अपने धन आदि पदार्थ के पहुंचाने अर्थात् देखेवाले ते (श्याबा) सूर्य की किरणों के समान (दत्ता:) दिये हुए (दश) दश (स्थास:) रथ (वधुमन्त:) जिनमें प्रशंसित बहुएं विद्यमान वे (मा) मुझ सेनापित के (उपास्थु:) समीप स्थित होते तथा जी (कक्षीवाम) युद्ध में प्रशंसित कक्षावाला अर्थात् जिसके और अच्छे वीर योद्धा हैं, वह (अभिपित्वें) सब ओर से प्राप्ति के निमित्त (अह्नाम्, सहस्रम्) हजार दिन (गव्यम्) गौओं के दुग्ध आदि प्रसर्थ को उन्वागात्) प्राप्त होता और जिसके (षष्टि:) साठ पुरुष पीछे चलते वह (सनत्) सदा सुख का बढ़ानेवाला है॥३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जिस्स कारण सँब योद्धा राजा के समीप से धन आदि पदार्थ की प्राप्ति चाहते हैं, इससे राजा को उनके लिये यथाया धन आदि पदार्थ देना योग्य है, ऐसे विना किये उत्साह नहीं होता॥३॥

केऽत्र चक्रवर्त्ति एज्यं कर्तु महेन्तीत्याह।।

इस संसार में कौन चक्रवर्त्ति राज्य करने को श्रोग्य होती हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा

चत्वारिंशद्दर्शरथस्य शोणां सहस्रस्यात्रे श्रेणिं नयन्ति।

मुदच्युतः कृशुनावतो अस्यान् कुक्षीवन्त उद्गृक्षन्त पुजाः॥४॥

चुत्वारिंशत्। दर्शरथस्य शोणाः। सहस्रस्य। अत्रे। श्रेणिम्। नयन्ति। मुद्रऽच्युतः। कृश्ननऽवेतः। अत्योन्। कुक्षीवेन्तः। उत्। अमृक्षुन्तु। पुत्राः॥ ४॥

पदार्थ:-(चत्वारिंग्रात्) दिश्रारथस्य) दश रथा यस्य सेनेशस्य (श्रोणा:) रक्तगुणविशिष्टा अश्वाः (सहस्रस्य) (अग्रे) पुरतः (श्राणम्) पङ्क्तिम् (नयन्ति) (मदच्युतः) ये मदान् च्यवन्ते ते (कृशनावतः) कृशनं बहु सुवृणीदर्भूषणं विद्यते येषान्ते (अत्यान्) येऽतन्ति मार्गान् व्याप्नुवन्ति तान् (कक्षीवन्तः) प्रशस्ता कक्ष्या विद्यन्ते येषान्ते (उत्) (अमृक्षन्त) मृषन्ति सहन्ते (पन्नाः) पद्यते गच्छिति मार्गान् यैस्ते। अत्र वर्णवृत्यत्ययेन दस्य जः॥४॥

अस्तरः-यस्य दशरथस्य चत्वारिंशच्छोणाः सहस्रस्याग्रे श्रेणि नयन्ति। यस्य वा पज्राः कक्षीवन्तो भृत्या मद्रच्युतः कृश्यनोत्रतोऽत्यानुदमृक्षन्त स शत्रून् जेतुमर्हति॥४॥

भावार्थ:-येषां चतुरश्वयुक्ता दशसु दिक्षु रथाः सहस्राण्याश्विका लक्षाणि पदातयोऽक्षयः कोशाः पूर्णा विद्याविनयाः सन्ति, त एव साम्राज्यं कर्त्तुमर्हन्ति॥४॥

पदार्थ:-जिस (दशरथस्य) दशरथों से युक्त सेनापित के (चत्वारिंशत्) चालीस (श्रोणा) लोलें घोड़े (सहस्रस्य) सहस्र योद्धा वा सहस्र रथों के (अग्रे) आगे (श्रेणिम्) अपनी पाँति (पिष्क्र) को (नयन्ति) पहुंचाते अर्थात् एक साथ होकर आगे चलते वा जिस सेनापित के भृत्य ऐसे हैं (पद्माः) कि जिनके साथ मार्गों को जाते और (कक्षीवन्तः) जिनकी प्रशंसित कक्षा विद्यमान अर्थात् जिनके साथी छटे हुए वीर लड़नेवाले हैं वे (मदच्युतः) जो मद को चुआते उन (कृशनावतः) सुवर्ण आदि के गहने पिहने हुए तथा (अत्यान्) जिनसे मार्गों को रमते पहुंचते उन घोड़ा हाथी, रथ अदि को (उदमृक्षन्त) उत्कर्षता से सहते हैं, वह शत्रुओं के जीतने को योग्य होता है॥४॥

भावार्थ:-जिनके चार घोड़ा युक्त दशों दिशाओं में रथ, फ्रह्सों अध्वार (असवार,) लाखों पैदल जानेवाले, अत्यन्त पूर्ण कोश धन और पूर्ण विद्या, विनय नमूता आदि गुण हैं, वे ही चक्रवर्ति राज्य करने को योग्य हैं॥४॥

केऽत्रोत्तमा भवन्तीस्याहम

कौन मनुष्य इस जगत् में उत्तम होते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

पूर्वामनु प्रयंतिमा दंदे वस्त्रीन् युक्ताँ अष्ट्राविष्ययमो गाः। सुबर्यवो ये विश्यांइव व्रा अनस्वन्तः श्रव ऐप्रन्त प्रजाः॥५॥

पूर्वीम्। अनुं। प्रऽयंतिम्। आ। दुद्दे। व्यः। त्रीन्। युक्तान्। अष्टौ। अरिऽधायसः। गाः। सुऽबन्धंवः। ये। विश्याःऽइव। व्राः। अनस्वन्तः। श्रवः। ऐष्न्ता पत्राः॥।।।

पदार्थ:-(पूर्वाम्) आदिमाम् (अतु) आनूकूल्ये (प्रयतिम्) प्रयतन्ते यया ताम् (आ) (ददे) गृह्णामि (व:) युष्माकम् (ग्रीन्) (युक्तान्) नियुक्तास् (अष्टौ) (अश्वियसः) अरीन् शत्रून् दधाति यैस्ते (गाः) वृषभान् (सुबन्धवः) शोभना बन्धवो येषान्ते (ये) (विश्याइव) यथा विक्षु प्रजासु साधवो विणग्जनाः (वाः) ये व्रजन्ति ते। अत्र ब्रज्धानार्बाहुलकादौणादिको डः प्रत्ययः। वा इति पदनामसु पठितम्। (निघं०४.२) (अनस्वन्तः) बह्नायनांसि शकटानि विद्यन्ते येषान्ते (श्रवः) अन्नम् (ऐषन्त) इच्छेयुः (पन्नाः) प्रपन्नाः॥।

अन्वयः - ये पुबन्धवोऽनस्वन्तो व्राः पज्ञा विश्याइव श्रव ऐषन्त तान् वस्त्रीन् युक्तानध्यक्षान् अष्टौ सभ्यानरिधायुक्तो वीरेपु गाञ्चेषां पूर्वां प्रयतिमहमन्वाददे॥५॥

भावार्थ:-वे जनाः सभासेनाशालाऽध्यक्षान् कुशलानष्टौ सभासदः शत्रुविनाशकान् वीरान् गवादीन् पश्चन् मित्राणि धनाढ्यान् विणग्जनान् कृषीवलाँश्च संरक्ष्यात्राद्यैश्वर्य्यमुत्रयन्ति ते मनुष्यशिरोमणयः

अष्टक-२। अध्याय-१। वर्ग-११

मण्डल-१। अनुवाक-१८। सूक्त-१२६



पदार्थ:-(ये) जो ऐसे हैं कि (सुबन्धवः) जिनके उत्तम बन्धुजन (अनस्वन्तः) और बहुत लढ़ा छकड़ा विद्यमान (ब्राः) तथा जो गमन करनेवाले और (पज़ाः) दूसरों को प्राप्त वे (विश्यूग्रह्व) प्रजानें में उत्तम विणक् जनों के समान (श्रवः) अत्र को (ऐषन्त) चाहें उन (वः) तुम्हारे (त्रीन्) तीर (युक्तान्) आज्ञा दिये और अधिकार पाये भृत्यों (अष्टौ) आठ सभासदों (अश्वियसः) जिन्न्से शत्रुओं को धारण करते समझते, उन वीरों और (गाः) बैल आदि पशुओं को तथा इन सभी की (यूर्वाम्) पहली (प्रयतिम्) उत्तम यत्न की रीति को मैं (अनु, आ, ददे) अनुकूलता से ग्रहण करता हूँ॥५॥

भावार्थ:-जो जन सभा, सेना और शाला के अधिकारी, कुशल चित्र आठ सेभासदों, शत्रुओं का विनाश करनेवाले वीरों, गौ, बैल आदि पशुओं, मित्र, धनी, विणक्पनीं और खेती करनेवालों की अच्छे प्रकार रक्षा करके अन्न आदि ऐश्वर्य्य की उन्नति करते हैं, वे मनुष्यों में शिरोमिण अर्थात् अत्यन्त उत्तम होते हैं॥५॥

कै: काऽत्र राज्येऽवश्यं प्राप्त्व्येत्याहभ

किनसे इस राज्य में क्या अवश्य पानी चाहिये, इस्मे विषयोक्त्र अगले मन्त्र में कहा है।।

आर्गिधता परिंगिधता या क्रेशीकेव जङ्गेर ददांति मह्यं यादुंरी याशूनां भोज्यां श्राता। ६॥

आऽर्गधिता। परिऽर्गधिता। या। कुशीकाऽइंघ। जर्ङ्गहै। ददाित। महाम्। यार्दुरी। यार्शूनाम्। भोज्यां। शृता॥६॥

पदार्थ:-(आगधिता) समन्ताद् गृहीता। गध्यं गृह्णाते:। (निरु०५.१५) (परिगधिता) परितः सर्वतो गधिता शुभैर्गुणैर्युक्ता नीर्वि:। गध्यतिर्मिश्रीभावकर्मा। (निरु०५.१५) (या) (कशीकेव) यथा ताडनार्था कशीका (जङ्गहे) अत्यन्तं ग्रहीतव्ये (ददाति) (मह्मम्) (यादुरी) प्रयत्नशीला। अत्र यतधातोर्बाहुलकादौणादिक उरी प्रत्ययः तस्य दः। (याशूनाम्) प्रयतमानानाम्। अत्र यसु प्रयत्ने धातोर्बाहुलकादुण्प्रत्ययः सत्य श्रिश्चा (भोज्या) भोक्तुं योग्यानि (श्रता) शतानि असंख्यातानि वस्तूनि॥६॥

अन्वय:-या आगधितो प्रिरिंगधिता जङ्गहे कशीकेव याशूनां यादुरी शता भोज्या मह्यं ददाति सा सर्वैः स्वीकार्य्या॥६॥ 🔷 🔾

भावार्षः त्यत्रीपमालङ्कारः यया नीत्याऽसंख्यातानि [सुखानि] स्युः सा सर्वैः संपादनीया॥६॥

पदार्थः (या) जो (आगधिता) अच्छे प्रकार ग्रहण की हुई (परिगधिता) सब ओर से उत्तम-उत्तम, गुणों से युक्त (जङ्गहे) अत्यन्त ग्रहण करने योग्य व्यवहार में (कशीकेव) पशुओं के ताड़ना देने के लिये जो औगी होती उसके समान (याशूनाम्) अच्छा यत्न करनेवालों की (यादुरी) उत्तम यत्नवाली १३९८

नीति (भोज्या) भोगने योग्य (शता) सैकड़ों वस्तु (महाम्) मुझे (ददाति) देती है, वह सबको स्वीकार करने योग्य है॥६॥

ऋग्वेदभाष्यम्

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जिस नीति अर्थात् धर्म की चाल से अगणित सुख हो वह सबको सिद्ध करनी चाहिये॥६॥

पुना राज्ञी किं कुर्यादित्याह।।

फिर रानी क्या करे, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

उपोर्प मे पर्रा मृशु मा में दुभ्राणि मन्यथा:।

सर्वाहमस्मि रोमुशा गुन्धारीणामिवाविका॥७॥११॥१८॥

उपंऽउप। मे। पर्रा। मृश्। मा। मे। दुभ्राणि। मुन्यथाः। सर्वा। अहम्(अस्मि। राम्शा। गुन्धारीणाम्ऽइव। अविका॥७॥

पदार्थ:-(उपोप) अतिसमीपत्वे (मे) मम (परा) (मृश्रा) विचारिय (मा) निषेधे (मे) मम (दभ्राणि) अल्पानि कर्माणि (मन्यथा:) जानीयाः (सर्वा) (अहम्) (अस्मि) (रोमशा) प्रशस्तलोमा (गन्धारीणामिव) यथा पृथिवीराज्यधर्त्रीणां मध्ये (अविका) प्रक्षिकामण्डा

अन्वय:-हे पते राजन्! याऽहं गन्धारीणामिवाविका रोमशा सर्वास्मि तस्या मे गुणान् परा मृश मे दभ्राणि कर्माणि मोपोप मन्यथा:॥७॥

भावार्थ:-राज्ञी राजानं प्रति ब्रूयादहं भवती न्यूना नास्मि, यथा भवान् पुरुषाणां न्यायाधीशोऽस्ति तथाऽहं स्त्रीणां न्यायकारिणी भवामि, यथा पूर्वा राज्ञपतन्यः प्रजास्थानां स्त्रीणां न्यायकारिण्योऽभूवन् तथाहमपि स्याम्॥७॥

अत्र राजधर्मवर्णनादेतत्सूक्तुर्श्वस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह संगतिरस्तीति वेदितव्यम्॥

इति षड्विंशत्युत्तरं शत्विमं १२६ सूक्तमेकादशो ११ वर्गोऽष्टादशोऽनुवाकश्च समाप्त:॥

पदार्थ:-हे पित राजम्! जो (अहम्) में (गन्धारीणाम्, इव) पृथिवी के राज्यधारण करनेवालियों में जैसे (अविका) रक्षा करनेवालियों होती वैसे (रोमशा) प्रशंसित रोमोंवाली (सर्वा) सब प्रकार की (अस्मि) हूँ, उस (मे) मेरे पुणों को (परा, मृश) विचारो (मे) मेरे (दभ्राणि) कामों को छोटे (मा, उपोप) अपने पास्र में मत (मन्यथा:) मानो॥७॥

भावार्थ: रामी राजा के प्रति कहे कि मैं आप से न्यून नहीं हूँ, जैसे आप पुरुषों के न्यायाधीश हो, वैसे मूँ स्वियो का न्याय करनेवाली होती हूँ, और जैसे पहिले राजा-महाराजाओं की स्त्री प्रजास्थ स्त्रियों की न्याय करनेवाली हुईं वैसी मैं भी होऊं॥७॥

इस पूक्त में राजाओं के धर्म का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ एकता है, यह जानना चाहिये॥

अष्टक-२। अध्याय-१। वर्ग-११

मण्डल-१। अनुवाक-१८। सूक्त-१२६

यह एक सौ छब्बीसवां १२६ सूक्त, ग्यारहवां ११ वर्ग और अठारहवां १८ अनुवाक समाप्त्र हुआ।

अथाग्निमित्यस्यैकादशर्चस्य सप्तविंशत्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य परुच्छेप ऋषि:। अग्निर्देवता।

१-३ ८-९ अष्टिश्छन्दः। ४,७,११ भुरिगष्टिश्छन्दः। मध्यमः स्वरः। ५-६ अत्यष्टिश्छन्दः।

गास्थारः स्वरः। १० भुरिगतिशक्वरी छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥ अथ कीदृशयोः स्त्रीपुरुषयोर्विवाहो भिवतुं योग्य इत्याह॥

अब ग्यारह ऋचावाले एक सौ सत्ताईसवें सूक्त का आरम्भ है। उसके प्रथम मन्त्र में कैसे स्था पुरुषों का विवाह होना चाहिये, इस विषय का वर्णन किया है।।

अग्निं होतीरं मन्ये दास्वेन्तं वसुं सूनुं सहसो जातवेदसं विष्रं न अग्तवेदसं । य अर्ध्वयां स्वध्वरो देवो देवाच्यां कृपा। घृतस्यं विभ्राष्ट्रिमनुं वष्टि शोचिषाऽऽजुह्वानस्य सूर्पिषं:॥१४०

अग्निम्। होर्तारम्। मृन्ये। दास्वन्तम्। वस्नुम्। सूनुम्। सहसः। जातऽवैदसम्। विप्रम्। न। जातऽवैदसम्। यः। अर्ध्वया। सुऽअध्वरः। देवः। देवाच्या। कृपा। घृतस्य। विऽभ्राष्ट्रिम्। अनु। वृष्टि। शोविषा। आऽजुह्वानस्य। सुर्पिषं:॥१॥

पदार्थ:- (अग्निम्) अग्निवद्वर्त्तमानम् (होतारम्) पहोतारम् (मन्ये) जानीयाम् (दास्वन्तम्) दातारम् (वसुम्) ब्रह्मचर्येण कृतिवद्यानिवासम् (मृनुम्) पुत्रम् (सहसः) बलवतः (जातवेदसम्) प्रसिद्धविद्यम् (विप्रम्) मेधाविनम् (न) इव (जातवेदसम्) प्रकटिवद्यम् (यः) (अर्ध्वया) उत्कृष्टया विद्यया (स्वध्वरः) सुष्टु यज्ञस्याऽनुष्ठाता (देवः) कम्निषः (देवाच्या) या देवानञ्चति तया (कृपा) कल्पते समर्थयित यया तया (धृतस्य) आज्यस्य (विभ्राष्ट्रम्) विविधतया भृज्जन्ति परिपचन्ति येन तम् (अनु) (विष्टु) कामयते (शोचिषा) प्रकृशोन (आग्रुह्वानस्य) समन्ताद् हूयमानस्य (सर्पिषः) गन्तुं प्राप्तुमर्हस्य॥१॥

अन्वय:-हे कन्ये! यथाऽहें प्र ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवाच्या कृपादेवोऽस्ति तमाजुह्वानस्य सर्पिषो घृतस्य शोचिषा सह विभ्राष्टिं जनमनुविष्ट। यमग्निम्बि होतारं दास्वन्तं वसुं सहसस्सूनुं जातवेदसं विप्रन्न जातवेदसं पतिं मन्ये तथेदृशं पतिं त्वमपि स्वीकुरु॥१॥

भावार्थ:-अत्र वार्षक्रियतोपमालङ्कार:। यस्य शुभगुणशीलेषु महती प्रशंसा यस्योत्कृष्टं शरीरात्मबलं भवेतूरतं पुरुषं स्त्री पतित्वाय वृणुयात् एवं पुरुषोऽपीदृशीं स्त्रियं भार्यत्वाय स्वीकुर्यात्॥१॥

पदार्थ्य-हे कन्या! जैसे मैं (य:) जो (अर्ध्वया) उत्तम विद्या से (स्वध्वर:) सुन्दर यज्ञ का अनुष्ठान अर्थात् अरम्भ करनेवाली वह (देवाच्या) जो कि विद्वानों को प्राप्त होती और जिससे व्यवहार को समर्थ करते उस (कृपा) कृपा से (देव:) जो मनोहर अतिसुन्दर है, उस जन को (आजुह्वानस्य) अच्छे प्रकार होमने और (सर्पिष:) प्राप्त होने योग्य (घृतस्य) घी के (शोचिषा) प्रकाश के साथ (विभाष्टिम) जिससे अनेक प्रकार पदार्थ को पकाते उस अग्नि के समान (अनुविष्ट) अनुकूलता से

अष्टक-२। अध्याय-१। वर्ग-१२-१३

मण्डल-१। अनुवाक-१९। सूक्त-१२७

चाहता है वा जिस (अग्निम्) अग्नि के समान (होतारम्) ग्रहण करने (दास्वन्तम्) देनेवाले (क्सुम्) तथा ब्रह्मचर्य से विद्या के बीच में निवास किये हुए (सहसः) बलवान् पुरुष के (सूनुम्) पुत्र को (जातवेदसम्) जिसकी प्रसिद्ध वेदविद्या उस (विप्रम्) मेधावी के (न) समान (जातवेदसम्) प्रकट विद्यावाले विद्वान् को पति (मन्ये) मानती हूँ, वैसे ऐसे पति को तू भी स्वीकार कर। ।

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जिसकी उत्तम गुणवालों में बहुत प्रशंसा, जिसका अति उत्तम शरीर और आत्मा का बल हो, उस पुरुष को स्त्री प्रतिपने के लिये स्वीकार करे, ऐसा पुरुष भी इसी प्रकार की स्त्री को भार्यापन के लिये स्वीकार करे॥१॥

पुनः प्रजा राजत्वाय कीदृशं जनमाश्रयेयुरित्याह्।।

फिर प्रजाजन राज्य के लिये कैसे जन का आश्रय करें, इस क्रियुय को अपले मन्त्र में कहा है।।

यजिष्ठं त्वा यजमाना हुवेम् ज्येष्ट्रमङ्गिरसां विष्ठ्र मन्सिभूर्विष्रेभ्रि. शुक्रु मन्मिभ:।

परिज्मानिमव द्यां होतारं चर्षणीनाम्।

शोचिष्केशं वृषेणं यमिमा विशः प्रावेनु जुत्रये विश्नेगा २॥

यर्जिष्ठम्। त्वाः। यर्जमानाः। हुवेमः। ज्येष्ठम्। अद्भिरसाम्। विष्ठाः। मन्मंऽभिः। विष्ठेभिः। शुक्रः। मन्मंऽभिः। परिज्मानम्ऽइवः। द्याम्। होतारम्। चूर्षणीनाम्। शोविःऽकेशम्। वृषणम्। यम्। इमाः। विश्रः। प्रः। अवन्तुः। जूतये। विश्रः॥२॥

पदार्थ:-(यजिष्ठम्) अतिशयेन प्रशाम (ल्वा) त्वाम् (यजमानाः) संगन्तारः (हुवेम) प्रशंसेम (ज्येष्ठम्) अतिशयेन प्रशस्तम् (अङ्किरसास्) प्राणिनाम् (विप्र) मेधाविन् (मन्मिभः) मान्यमानैः (विप्रेभिः) विपश्चिद्धः सह (शुक्र) शुद्धान्यन् (मन्मिभः) विज्ञानैः (परिज्मानिमव) परितः सर्वतो भोक्तारिमव (द्याम्) प्रकाशम् (होतारम्) वृतिसम् (चर्षणीनाम्) मनुष्याणाम् (शोचिष्केशम्) शोचींषीव केशा यस्य तम् (वृषणम्) बलिष्ठम् (यम्) (ङ्माः) (विशः) प्रजाः (प्र) (अवन्तु) प्राप्नुवन्तु (जूतये) रक्षणाद्याय (विशः) प्रजाः॥२॥

अन्वय:-हे विप्र यजमाना! वयं मन्मभिर्विप्रेभिः सहाङ्गिरसां मध्ये ज्येष्ठं त्वा हुवेम। शुक्र यं मन्मभिश्चर्षणीनां होतारं परिज्मानिम्त्व द्यों शोचिष्करां वृषणं त्वामिमा विशः प्रावन्तु स त्वं जूतये इमा विशः प्राव॥२॥

भावार्थः भूमनुष्या यं विद्वांसं प्रशंसेयुः प्रजाश्च तमेवाप्तमाश्रयन्तु॥२॥

पदार्थ: हे (विप्र) उत्तम बुद्धिवाले विद्वान्! (यजमानाः) व्यवहारों का सङ्ग करनेहारे लोग (मन्प्रिः) मान करनेवाले (विप्रेभिः) विचक्षण विद्वानों के साथ (अङ्गिरसाम्) प्राणियों के बीच (ज्येष्ठम्) अतिप्रशिक्षित (यजिष्ठम्) अत्यन्त यज्ञ करनेवाले (त्वा, हुवेम) तुझको प्रशंसित करते हैं (शुक्र) शुद्ध

१४०२

आत्मा वाले धर्मात्मा जन (यम्) जिस (मन्मभिः) विज्ञानों के साथ (चर्षणीनाम्) मनुष्यों के बीच (होतारम्) दान करनेवाले (परिज्मानिव) सब ओर से भोगनेहारे के समान (द्याम्) प्रकाशरूप (शोचिष्केशम्) जिसके लपट जैसे चिलकते हुए केश हैं उस (वृषणम्) बलवान् तुझको (द्वारः) प्रजाजन (प्रावन्तु) अच्छे प्रकार प्राप्त होवें, वह तू (जूतये) रक्षा आदि के लिथे (विशः) प्रजा जनों को अच्छे प्रकार प्राप्त हो और पाल॥२॥

भावार्थ:-विद्वान् और प्रजाजन जिसकी प्रशंसा करें, उसी आप्त सर्वशास्त्रवैत्ता विद्वान् को आश्रय सब मनुष्य करें॥२॥

कोऽत्र प्रजापालनायोत्तमो भवतीत्याह॥

इस संसार में कौन प्रजा की पालना करने के लिये उत्तम होता है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

स हि पुरू चिदोर्जसा विरुक्मता दीद्यांनो भवति दुहुतरः पर्शन दुहित्रः। वीळु चिद्यस्य समृतौ श्रुवृद्धनेव यत्स्थिरम्। निष्कहमाणो यमते नायते धन्वासहा नायते॥ ३०

सः। हि। पुरू। चित्। ओर्जसा। विरुक्मता। दीद्यानः। भविता दुहुम्ऽतुरः। पुरुशुः। न। दुहुम्ऽतुरः। वीळु। चित्। यस्यं। सम्ऽऋती। श्रुवंत्। वनांऽइव। यत्। स्थिरम्। निः सहंमानः। यमते। न। अयते। धन्वऽसहां। न। अयते॥३॥

पदार्थ:-(स:) सभेशः (हि) किल (पुरु) बहु। अत्र संहितायामिति दीर्घः। (चित्) अपि (ओजसा) बलेन (विरुक्पता) विश्विधा रुषो भवन्ति यस्मात्तेन (दीद्यानः) प्रकाशमानः (भवति) (दुहन्तरः) यो द्रोग्धृन् तरित (पर्युः) कुटारः (न) इव (दुहन्तरः) दुहं तरित येन सः (वीळु) दृढम् (चित्) (यस्य) (समृतौ) सम्यक् ऋतिः प्राष्ट्रियया तस्याम् (श्रुवत्) यः शृणोति सः (वनेव) यथा वनानि तथा (यत्) स्थिरं निश्चलम् (चिःसहमानः) नितरां सहमाना वीरा यस्य सः (यमते) यच्छिति। अत्र वाच्छन्दसीति छादेशो न (नि) निषेध (अयते) प्राप्नोति (धन्वासहा) यो धनुषा शत्रून् सहते। अत्र छन्दसोऽन्त्यलोपः। (न) निषेध (अयते) प्राप्नोति॥३॥

अन्वय:-ह्रे सनुष्या! क्र्य समृतौ चिद्धनेव वीळु स्थिरं बलं यो निःसहमानः श्रुवत् शत्रून् यमते यं शत्रुर्नायते धन्वासहारीन् विक्रयते येत् यस्य विजयं शत्रुर्नायते यो दुहन्तरः परशुर्न पुरु विरुक्मतौजसा सह दीद्यानो दुहन्तरो भवति स हि चिद्धिजयी आयते हि।

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। मनुष्यैर्य: शत्रुभिर्नाभिभूयते प्रशस्तबलेन तान् विजेतुं शक्नोति, स एव प्रजापालकेषु शिरोमणिर्भवतीति वेदितव्यम्॥३॥ अष्टक-२। अध्याय-१। वर्ग-१२-१३

मण्डल-१। अनुवाक-१९। सूक्त-१२७

पदार्थ:-हे मनुष्यो! (यस्य) जिसकी (समृतौ) अच्छे प्रकार प्राप्ति करानेवाली क्रिया के निर्मित्त (चित्) ही (वनेव) वनों के समान (वीळु) दृढ़ (स्थिरम्) निश्चल बल को (नि:सहमानः) निर्मेतर सहनशील वीरों वाला (श्रुवत्) सुनता हुआ शत्रुओं को (यमते) नियम में लाता अर्थात् उनके सुने हुए उस बल को छिन्न-भिन्न कर उनको शत्रुता करने से रोकता वा जिसको शत्रुजन (न्म्यते) नहीं प्रप्त होता वा (धन्वासहा) जो अपने धनुष् से शत्रुओं को सहनेवाला शत्रु जनों को अच्छे प्रकार जीतता हा (यत्) जिसके विजय को शत्रु जन (नायते) नहीं प्राप्त होता वा जो (दुहन्तरः) द्रोह करनेवालों को तरता वह (परशुः) फरसा वा कुलाड़ा के (न) समान (पुरु) तीव्र बहुत प्रकार से ज्यों हो त्यों (विरुक्पता) जिससे, अनेक प्रकार की प्रीतियां हों, उस (ओजसा) बल के साथ (दीद्यानः) प्रकाशमान (दुहन्तरः) दुहन्तर (भवति) होता अर्थात् जिसके सहाय से अति द्रोह करनेवाले शत्रु को जीतता (सः, हि, चित्) वही कभी विजयी होते हैं॥३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्यों को जानना वाहिये कि जो शत्रुओं से नहीं पराजित होता और अपने प्रशंसित बल से उनको जीत स्वाही प्रजा पालनेवालों में शिरोमणि होता है॥३॥

पुनर्चायाधीशै: क्रियं वर्त्ततव्यामित्याह।।

फिर न्यायाधीशों को कैसे वर्त्तना ऋहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

द्ळहा चिदस्मा अनु दुर्यथा विद्व विजिष्ठाभिर्रणिभिर्दाष्ट्रचवसेऽग्नये दाष्ट्रचवसे।

प्र यः पुरूणि गाहते तक्षद्वसीव शोक्षिण।

स्थिरा चिदन्ना नि रिण्यत्योजमो नि स्थिराणि चिदोर्जसा॥४॥

दृब्ब्हा चित्। अस्मै। अर्जु। दुः। यथा। विदे। तेजिष्ठाभिः। अर्राणिऽभिः। दा्ष्ट्वि। अवसे। अग्नये। दा्ष्ट्वि। अवसे। प्राप्ति। प्राहते। तक्षेत्। वनाऽइव। शोचिषां। स्थिरा। चित्। अन्नां। नि। रिणाति। ओर्जसा। नि। स्थिराणि। चित्। ओर्जसा। ४।।

पदार्थ:-(दृढा) दृढानि (चित्) (अस्मै) सभाध्यक्षाय (अनु) (दुः) दद्युः। अत्र लुङ्यङभावः। (यथा) येन प्रकारण (विदे) विदुषे (तेजिष्ठाभिः) अतिशयेन तेजस्विनीभिः (अरणिभिः) (दाष्टि) दशित (अवसे) रक्षकाय (अग्नये) अग्नय इव वर्त्तमानाय (दाष्टि) दशित (अवसे) रक्षणाद्याय (प्र) (यः) (पुरूणि) बहूनि (आहते) विलोडते (तक्षत्) जलादीनि तनूकुर्वन् (वनेव) रश्मय इव। वनिमित रिश्मिगामसु पठितम्। (निघं०१.५) (शोचिषा) न्यायसेनाप्रकाशेन (स्थिरा) स्थिराणि (चित्) अपि (अन्ना)

१४०४

अतुमर्हाण्यन्नानि (नि) (रिणाति) प्राप्नोति (ओजसा) पराक्रमेण (नि) (स्थिराणि) (चित्) अ (ओजसा) कोमलेन कर्मणा॥४॥

अन्वय:-हे मनुष्या! यथा विद्वाँस्तेजिष्ठाभिररणिभिरस्मै विदेऽवसेऽग्नये दाष्टि विद्वांसो वा दृढा स्थिता निश्चलानी चिद्विज्ञानान्यनुदुस्तथा योऽवसे दाष्टि तक्षत्सन् सूर्यो वनेव शोचिषा पुरूणि शत्रुदलानि प्रगाहते। ओजसानिश्वराणि कर्मणि निरिणाति चिदोजसाऽन्ना चित्रिरिणाति स सुखमवाप्नोति॥४॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। यथा विपश्चितो विद्याप्रचारेण मनुष्याणामाल्माः प्रकाश्ये सर्वान् पुरुषार्थे नयन्ति तथा विद्वांसो न्यायाधीशाः प्रजा उद्यमयन्ति॥४॥

पदार्थ: -हे मनुष्यो! (यथा) जैसे विद्वान् (तेजिष्ठाभिः) अत्यन्त तेजवाली (अरणिभिः) अरणियों से (अस्मै) इस (विदे) शास्त्रवेत्ता (अवसे) रक्षा करनेवाले (अग्नये) अपि के सम्मन् वर्त्तमान सभाध्यक्ष के लिये (दाष्टि) ओविली को घिसने से काटता वा विद्वान् जन (दृढा) स्थिर निश्चल (चित्) भी विज्ञानों के (अनु, दुः) अनुक्रम से देवें वैसे (यः) जो (अवसे) रक्षा आदि करेंचे के लिये (दाष्टि) काटता अर्थात् उक्त क्रिया को करता वा (तक्षत्) अपने तेज से जल आदि को छिन्ने भिन्न करता हुआ सूर्यमण्डल (वनेव) किरणों को जैसे वैसे (शोचिषा) न्याय और सेना के प्रकाश से (पुरूणि) बहुत शत्रुदलों को (प्र, गाहते) अच्छे प्रकार विलोडता वा (ओजसा) पराक्रम से (स्थिराणि) स्थिर कर्मों को (नि) निरन्तर प्राप्त होता (चित्) और (ओजसा) कोमल काम से (अन्नि) खाने अग्य अन्नों को (चित्) भी (नि, रिणाति) निरन्तर प्राप्त होता है, वह सुख को प्राप्त होता है। हो।

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे विद्वान् जन विद्या के प्रचार से मनुष्यों के आत्माओं को प्रकाशित कर सबको पुरुषार्थी बनाते हैं, कैसे स्थानाधीश विद्वान् प्रजाजनों को उद्यमी करते हैं॥४॥

पुनर्सायाधीशैः किमनुष्ठेयमित्याह॥

फिर न्यायाधीशों को क्या अनुष्ठान वा आचरण करना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

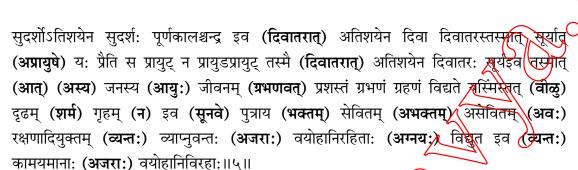
तमस्य पृक्षमुपरास् धीमहि नक्तं यः सुदर्शतरो दिवातरादप्रायुषे दिवातरात्। आदस्यायुर्गभणवद् वीक्रु शर्म न सूनवे।

भुक्तमभूक्तमबो व्यन्ती अजर्रा अग्नयो व्यन्ती अजर्राः॥५॥१२॥

तम्। अस्या पृक्षम्। उपरासु। धोमिहि। नक्तम्। यः। सुदर्शर्रतरः। दिवारतरात्। अप्रेरआयुषे। दिवारतरात्। आत्। अस्यू (आयुर्) प्रभणेऽवत्। वीळु। शर्मा न। सूनवे। भक्तम्। अर्थक्तम्। अर्थः। व्यन्तेः। अजर्राः। अजर्राः। अपन्येः। व्यन्तेः। अप्रतराः॥ ।।

पदार्थ:-(तम्) (अस्य) संसारस्य (पृक्षम्) सम्पृक्तारम् (उपरासु) दिक्षु। उपरा इति दिङ्नामसु प्रितितम्। (निघं०१.६) (धीमहि) दधीमहि (नक्तम्) रात्रौ (यः) (सुदर्शतरः) सुष्ठु दुष्टुं योग्यः अष्टक-२। अध्याय-१। वर्ग-१२-१३

मण्डल-१। अनुवाक-१९। सूक्त-१२७



अन्वयः-हे मनुष्या! यः सुदर्शतरोऽस्य दिवातरादप्रायुषे नक्तं सर्वान् दर्शयतीय सं पृक्षं दिवातरादुपरासु वयं धीमहि। आदस्य ग्रभणवद्वीळु भक्तमभक्तमव आयुः सूनवे न शर्म व्यन्तोऽजरा\अस्तय इव व्यन्तोऽजरा वयं धीमहि॥५॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा चन्द्रो नक्षत्रणयोषधीश्च पोषयति तथा सज्जनैः प्रजाः पोषणीयाः। यथा सन्तानान् पितरौ प्रीणीतस्तथा सर्वान् प्राणित्तो वयं प्रीणीयाम॥५॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! (य:) जो (सुदर्शतर:) अतीव सुन्दर देखें ने योग्य पूरी कलाओं से युक्त चन्द्रमा के समान राजा (अस्य) इस संसार का (दिवातरात) अत्यन्त प्रकाशवान् सूर्य से (अप्रायुषे) जो व्यवहार नहीं प्राप्त होता उसके लिये (नक्तम्) रात्रि में सब पदार्थों को दिखलाता सा है (तम्) उस (पृथ्लम्) उत्तम कामों का सम्बन्ध करनेवाले को (दिवातरात्र) अतीव प्रकाशवान् सूर्य के तुल्य उससे (उपरासु) दिशाओं में हम लोग (धीमिह) धारण करें अर्थात् सुनें (आत्) इसके अनन्तर (अस्य) इस मनुष्य का (ग्रभणवत्) जिसमें प्रशंसित सूब व्यवहारों का ग्रहण उस (वीळु) दृढ़ (भक्तम्) सेवन किये वा (अभक्तम्) न सेवन किये हुए (अतः) रक्षा आदि युक्त कर्म और (आयुः) जीवन को (सूनवे) पुत्र के लिये (न) जैसे वैसे (शर्म) घर को (व्यन्तः) विविध प्रकार से प्राप्त होते हुए (अजराः) पूरी अवस्थावाले वा (अग्नयः) बिकृती रूप अपने के समान (व्यन्तः) सब पदार्थों की कामना करते हुए (अजराः) अवस्था होने से रहिते हम लोग धारण करें॥५॥

भावार्थ:-इस मूल में वाचुक्रलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे चन्द्रमा तारागण और ओषधियों को पृष्ट करता है, वैसे सज्जनों को प्रजाननों का पालन-पोषण करना चाहिये। जैसे सन्तानों को पिता-माता तृप्त करते हैं, वैसे सब्द्रपाणियों को हम लोग तृप्त करें॥५॥

अथ राजादय: किं कुर्य्युरित्याह॥

अब राजा आदि क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

स हि शर्धों न मार्रुतं तुविष्वणिरप्नस्वतीषूर्वरास्विष्टनिरार्तनास्विष्टनिः।

आदेखुव्यान्यादुदिर्युज्ञस्यं केतुर्हणां।

अर्ध स्मास्य हर्षतो हषीवतो विश्वे जुषन्त पन्थां नरः। शुभे न पन्थाम्।।६॥

सः। हि। शर्धः। न। मार्रुतम्। तुविऽस्वनिः। अप्नस्वतीषु। उर्वरासु। इष्टनिः। आर्तनासु। इष्टनिः। आर्त्तासु। उर्वरानि। आऽद्दिः। यज्ञस्यं। केतुः। अर्हणां। अर्ध। स्मा अस्य। हर्षतः। हषीवतः। विश्वे। जुष्टन्तः। प्रश्नोम्। ना प्रस्थाम्।। ६॥

पदार्थ:-(स:) विद्वान् (हि) खलु (शर्धः) बलम् (न) इव (मास्तम्) मरुतुर्ममम् (तुर्विस्विनः) तुर्विवृद्धास्विनरुपदेशो यस्य सः (अप्नस्वतीषु) प्रशस्तमप्नोऽपत्यं विद्यते यासा तासु (उर्वरासु) सुन्दरवर्णयुक्तासु (इष्ट्रिनः) इच्छाविशिष्टः। अत्रेषधातोर्बाहुलकादौणादिकाऽनिः प्रत्ययस्तुगागमश्च। (आर्त्तनासु) या आर्त्तयन्ति सत्ययन्ति (इष्ट्रिनः) यष्टुं योग्यः (आदत्) अद्यति (ह्रव्यानि) अतुमर्हाणि (आदिदः) आदाता (यज्ञस्य) संगन्तव्यस्य व्यवहारस्य (केतुः) ज्ञानन्त्रम् (अहणा) सत्कृतानि (अध) अथ (स्म) एव (अस्य) (हर्षतः) प्राप्तहर्षस्य (हर्षावतः) बह्वाऽऽनन्दय्वतस्य। अत्रान्येषामिप दृश्यत इति पूर्वपदस्य दीर्घः। (विश्वे) सर्वे (जुषन्त) सेवन्ताम् (पन्थाम्) पन्धानम् (नरः) नायकाः (शुभे) शोभनाय (न) इव (पन्थाम्) धर्म्यं मार्गम्। अत्र वर्णव्यत्ययेन नस्य स्थाने अन्तरिदेशः॥६॥

अन्वयः - हे विश्वे नरो! यूयं हषीवतो हर्षतोऽस्य युप्तस्य शुभे ने पन्थां जुषन्ताम् यं केतुरादिदर्हणा हव्यान्यादन्मारुतं शर्धो नाप्नस्वतीषूर्वरास्वार्त्तनासु तुविष्वणिरिष्ट्रिनिरस्ति स् स्मृष्टिनिर्हि न्यायपन्थां प्राप्तुमर्हति॥६॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कारौ। ये मनुष्या धर्मेणपाजितानाँ पदार्थानां भोगं कुर्वन्तः प्रजासु धर्मविद्याः प्रचारयन्ति ते धर्ममार्गं प्रचारयितुं शक्नुवन्ति॥६॥

पदार्थ:-हे (विश्वे) सब (नर:) व्यवहारों को प्राप्ति करानेवाले मनुष्यो! तुम (हषीवत:) जो बहुत आनन्द से भरा (हर्षत:) और जिससे सब प्रकार का आनन्द प्राप्त हुआ (अस्य) इस (यज्ञस्य) सङ्ग करने अर्थात् पाने योग्य व्यवहार की (शुभे) उत्तमता के लिये (न) जैसे हो वैसे (पन्थाम्) धर्मयुक्त मार्ग का (जुषन्त) सेवन करो (अध) इसके अनन्तर जो (केतु:) ज्ञानवान् (आदिद:) ग्रहण करनेहारा (अर्हणा) सत्कार किये अर्थात् नम्रता के साथ हुए (कव्यानि) भोजन के योग्य पदार्थों को (आदत्) खावे वा (मारुतम्) पवनों के (शर्षः) बल के (न) समान (अप्नस्वतीषु) जिनके प्रशंसित सन्तान विद्यमान उन (उर्वरासु) सुन्दरी (आर्तनासु) भव्य आचरण करनेवाली स्त्रियों के समीप (तुविष्वणि:) जिसकी बहुत उत्तम निरन्तर बोल-चाल (इष्टनि:) और जो सत्कार करने योग्य है (स:, स्म) वही विद्वान् (इष्टनि:) इच्छा करनेवाला (हि) निश्चय के साथ (पन्थाम्) न्यायमार्ग को प्राप्त होने योग्य होता है॥६॥

भावर्थि: इस भन्त्र में दो उपमालङ्कार हैं। जो मनुष्य धर्म से इकट्ठे किये हुए पदार्थों का भोग करते हुए प्रजाजनों में धर्म और विद्या आदि गुणों का प्रचार करते हैं, वे दूसरों से धर्ममार्ग का प्रचार करा सकन्ने हैं।। इस

अथाऽध्यापकाऽध्येतारः कथं वर्त्तेरन्नित्याह॥

अष्टक-२। अध्याय-१। वर्ग-१२-१३

मण्डल-१। अनुवाक-१९। सूक्त-१२७

अब पढाने-पढने वाले कैसे वर्तें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

द्विता यदीं कीस्तासी अभिद्यंवो नमस्यन्तं उपवोचन्त भृगवो मुध्नन्ती दाशा अगवः।

अग्निरीशे वसूनां शुचिर्यो धर्णिरेषाम्।

प्रियाँ अपिधौंर्वनिषीष्ट्र मेधिर आ विनिषीष्ट्र मेधिर:॥७॥

द्विता। यत्। ईम्। क्रीस्तासं:। अभिऽद्यंवः। नुमस्यन्तं:। उपुऽवोचन्त। भृगवः। मुश्वनः। द्वाशा। भृगवः। अग्निः। ईशे। वसूनाम्। शुचिः। यः। धुणिः। एषाम्। प्रियान्। अपिऽधीन्। विविधेष्टः। आ। वृनिषीष्टः। मेधिरः॥ अ। विविधेष्टः। भेधिरः॥ ।

पदार्थ:-(द्विता) द्वयोर्भावः (यत्) ये (ईम्) अभिगताम् (कॅस्तिसः) मेधाविनः। कीस्तास इति मेधाविनामसु पठितम्। (निघं०३.१५) (अभिद्यवः) अभिगता प्रावी दोष्त्रमो येषां ते (नमस्यन्तः) धर्मं परिचरन्तः (उपवोचन्त) उपगतमुपदिशन्तु (भृगवः) अविद्याऽधर्मनाश्रमश्रीलाः (मध्नन्तः) मन्थनं कुर्वन्तः (दाशा) दानाय। अत्र सुपां सुलुगित्याकारादेशः। (भृगवः) दुःखभ्रभेकाः (अग्निः) विद्युत् (ईशे) ईष्टे। अत्र लोपस्त आत्मनेपदेषु (अष्टा०७.१.४१) इति त त्योपः (वसूनाम्) पृथिव्यादीनां मध्ये (शुचिः) पवित्रः शुद्धिकरः (यः) (धर्णिः) यो धरित सः (एषाम्) प्रत्यक्षाणाम् (प्रियान्) प्रसन्नान् (अपिधीन्) सदुणधारकान् दुःखाच्छादकान् (वनिषीष्ट) याचृत (मेधिरः) मेधावी (आ) समन्तात् (वनिषीष्ट) (मेधिरः) सङ्गमकः॥७॥

अन्वय:-हे मनुष्या! यत् कीस्तासोऽभिवा वर्मस्यन्तो भृगवो ज्ञानं मध्नन्तो भृगवश्च दाशा विद्यादानाय विद्यार्थिने द्वितेमुपवोचन्त। यथैषां वसूनां मध्ये यो धर्षिः शुचिरग्निरस्ति यथा मेधिरः प्रियानिपधीन् विनिषीष्ट यथा मेधिरो दातुनावनिषीष्ट विद्यामीशे तथैव तं तान् सब्ध्वमाशे॥

भावार्थ:-ये विद्यार्थिमो विद्वद्भ्यो निर्मं विद्या याचेरन् विद्वांसश्च तेभ्यो नित्यमेव विद्यां दद्युर्नेतेन दानेन ग्रहणेन वा तुल्यं किंक्टिप्युत्तम् क्रिमं विद्यते॥७॥

पदार्थ: -हे मनुख्या (यन) जो (कीस्तासः) उत्तम बुद्धिवाले विद्वान् (अभिद्यवः) जिनके आगे विद्या आदि गुणों के प्रकाश (नमस्यन्तः) जो धर्म का सेवन (भृगवः) तथा अविद्या और अधर्म के नाश करते ज्ञान को (मथन्तः) मथते हुए (भृगवः) और दुःख मिटाते हैं, वे (दाशा) विद्या दान के लिये विद्यार्थियों की (दिता) जैसे दो का होना हो वैसे अर्थात एक पर एक (ईम्) सम्मुख प्राप्त हुई विद्या (उपवोचन्त) और गुण का उपदेश करे वा जैसे (एषाम्) इन (वसूनाम्) पृथिवी, आदि लोकों के बीच (यः) जो (धर्णः) शिल्पविद्या विषयक कामों का धारण करनेहारा (शुचिः) पवित्र और दूसरों को युद्ध कर्नेहारा (अपनः) अग्नि है वा जैसे (मेधिरः) उत्तम बुद्धिवाला (प्रियान्) प्रसन्नचित्त और (अपिधीन्)

१४०८

श्रेष्ठ गुणों को धारण करने और दु:खों को ढांपने वाले विद्वानों को (विनषीष्ट) याचे अर्थात् उनसे किसी पदार्थ को मांगे वा (मेधिर:) सङ्ग करनेवाला पुरुष देनेवालों को (आ, विनषीष्ट) अच्छे प्रकार याचे वा विद्वा की (ईशे) ईश्वरता प्रकट करे अर्थात् विद्वा के अधिकार को प्रकाशित करे, वैसे ही तुम उक्त विद्वान् और अग्नि आदि पदार्थों का सेवन करो॥७॥

भावार्थ:-जो विद्यार्थी विद्वानों से नित्य विद्या मांगे उनके लिये विद्वान् भी नित्य हो विद्या को अच्छे प्रकार देवें, क्योंकि इस देने-लेने के तुल्य कुछ भी उत्तम काम नहीं हैं॥७॥

अथ कथं राजप्रजाजनोन्नति: स्यादित्याह॥

अब कैसे राजा और प्रजाजनों की उन्नति हो, इस विषय को अगले मन्त्रू में कहा है॥

विश्वांसां त्वा विशां पितं हवामहे सर्वांसां समानं दम्पति श्रुजे स्वामिर्वाहसं भुजे। अतिर्थि मानुषाणां पितुर्न यस्यांसया।

अमी च विश्वे अमृतांस आ वयो हुव्या देवेष्वा वर्षः ॥८॥

विश्वासाम्। त्वा। विशाम्। पतिम्। हुवामहे। सर्वासाम्। सुमानम्। दम्ऽपितम्। भुजे। स्त्यऽपिर्वाहसम्। भुजे। अतिथिम्। मानुषाणाम्। पितुः। न। यस्य। आसया। अमि इति। स्रा विश्वे। अमृतासः। आ। वर्यः। हुव्या। द्वेवेषुं। आ। वर्यः॥८॥

पदार्थ:-(विश्वासाम्) सर्वासाम् (त्वा) विश्वाम् (विश्वाम्) प्रजानाम् (पितम्) स्वामिनम् (हवामहे) स्वीकुर्महे (सर्वासाम्) समग्राणां क्रियाणाम् (समानम्) सक्षपातरिहतम् (दम्पितम्) स्त्रीपुरुषाख्यं द्वन्द्वम् (भुजे) शरीरे विद्यानन्दभोगाय (सत्यिप्विह्यम्) सत्याया गिरः प्रापकम् (भुजे) विद्यानन्दभोगाय (अतिथिम्) अतिथिमिव पूजनीयम् (मानुषाणाम्) नराणाम् (पितुः) अत्रम् (न) (यस्य) (आसया) उपवेशनेन (अमी) (च) (विश्वे) सर्वे (अमृतासः) मृत्युरिहताः (आ) अभितः (वयः) विद्याः कामयमानाः (हव्या) होतुमादातुम्हणि ज्ञानािस् (देवेषु) विद्वत्सु (आ) समन्तात् (वयः) प्राप्तविद्याः॥८॥

अन्वय:-हे मनुष्य! यथा चर्य भुजे विश्वासं हव्या गृहीतवन्त आवयो विश्व प्रमृतासरसम्भा वयं यस्यासया पितुर्न भुजे मानुषाणां समानमितिथिं सत्यिगर्वाहसं त्वां पितं हवामहे तथा दम्पितं भजामः॥८

भावार्थः ४ अत्रोपमालङ्कारः । यावत्पक्षपातरिहता आप्ता विद्वांसो राज्याऽधिकारिणो न भवन्ति, तावद्राजप्रजयो<mark>र्द्रभतिरपि</mark> न भवति॥८॥

प्रदर्शः है मनुष्य! जैसे हम लोग (भुजे) शरीर में विद्या का आनन्द भोगने के लिये (विश्वास्तेष) सब (विशाम्) प्रजाजनों के वा (सर्वासाम्) समस्त क्रियाओं के (पितम्) पालनेहारे अश्चिपित (त्वा) तुझको (हवामहे) स्वीकार करते हैं (च) और जैसे (अमी) वे (देवेषु) (आ) अच्छे प्रकार (व्यः) विद्यादि गुणों को चाहनेवाले (हव्या) ग्रहण करने योग्य ज्ञानों का ग्रहण किये और (आ,

अष्टक-२। अध्याय-१। वर्ग-१२-१३

मण्डल-१। अनुवाक-१९। सूक्त-१२७

वय:) अच्छे प्रकार विद्या आदि गुणों को पाये हुए (विश्वे) सब (अमृतास:) अमर अर्थात् किद्या प्रकाश से मृत्य दु:ख से रहित हुए हम लोग (यस्य) जिसकी (आसया) बैठक के (पितु:) अन्न के (म) समान (भुजे) विद्यानन्द भोगने के लिये (मानुषाणाम्) मनुष्यों के (समानम्) पक्षपातरहित (अतिश्विप) अतिथि के तुल्य सत्कार करने योग्य (सत्यगिर्वाहसम्) सत्यवाणी की प्राप्ति करानेवालो तुझ पालनेहारे को स्वीकार करते, वैसे (दम्पतिम्) स्त्री-पुरुष का सेवन करते हैं॥८॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जब तक पक्षपातरहित समग्र विद्या को जोने हुए धर्मात्मा विद्वान् राज्य के अधिकारी नहीं होते हैं, तब तक राजा और प्रजाजनों की स्विति भी नहीं होती है॥८॥

पुन: राजादयो जना: कीदृशा जायन्त इत्याह।।

फिर राजा आदि कैसे होते, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

त्वमंग्ने सहंसा सहंन्तमः शुष्मिन्तमा जायसे देवतातिये र्यिने देवतातये। शुष्मिन्तमा हि ते मदी द्युम्निन्तम उत क्रतुं:। अर्ध स्मा ते परि चरन्यजर श्रष्टीवानो नार्जसा १॥

त्वम्। अग्ने। सहंसा। सहंन्ऽतमः। श्रुष्मिन्ऽतंमः। जार्थसे। देवऽतांतये। रियः। न। देवऽतांतये। श्रुष्मिन्ऽतंमः। हि। ते। मदंः। द्युप्निन्ऽतमः। उत। क्रितुः। अर्थ। स्मा ते। परि। चुरन्ति। अजुर्। श्रुष्टीऽवानेः। न। अजुर्॥९॥

पदार्थ:-(त्वम्) (अग्ने) शूर्वि विद्वने (सहसा) बलेन (सहन्तमः) अतिशयेन सहा इति सहन्तमः (शुष्मिन्तमः) प्रशंसितं बलं विद्यते यस्य स शुष्मी सोऽतिशयितः (जायसे) (देवतातये) देवाय विदुषे (रियः) श्रीः (न) इव (देवतातये) देवामां विदुषामेव सत्काराय (शुष्मिन्तमः) अतिशयेन बलवान् (हि) खलु (ते) तव (मदः) हर्षः (द्युमिन्तमः) बहूनि द्युम्नानि धनानि विद्यन्ते यस्य स द्युम्नी इति द्युम्निन्तमः। अत्र सर्वत्र बाद घस्य (अष्टा०८.२.१७) इति नुट्। (उत) अपि (क्रतुः) (अध) आनन्तर्ये (स्म) एव। अत्र निपातस्य चिति दीर्घः। (ते) तव (पिर) सर्वतः (चरन्ति) (अजर) जरादोषरिहत (शुष्टीवानः) शीघृिक्रयायुक्ताः (न) इव (अजर) योऽजे जन्मरिहत ईश्वरे रमते तत्सम्बुद्धौ। अत्र वाच्छन्दसीत्यविहितो डः॥ ।।

अनुवा-हे अन्योनेवाजराग्ने विद्वन् ! देवतातये रियर्नेव देवतातये सहन्तमः शुष्मिन्तमस्त्वं सहसा जायसे यस्य ते तव श्रुष्मिन्तमो द्युप्निन्तमो मद उतापि क्रतुर्हि विद्यते। अध ते तव श्रुष्टीवानः स्म परिचरन्ति तं त्वां सर्वे वयमाश्रयमा । ।।

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। ये मनुष्या: सशरीरात्मबला: प्राज्ञा: श्रीमत्प्रजा जायन्ते ते सुखकारकी भवन्ति॥९॥

पदार्थ: -हे (अजर) तरुण अवस्थावाले के (न) समान (अजर) अजन्मा परमेश्वर में रगते हुए (अग्ने) शूरवीर विद्वान्! (देवतातये) विद्वान् के लिये (रियः) धन जैसे (न) वैसे (देवतातये) विद्वानं के सत्कार के लिये (सहन्तमः) अतीव सहनशील (शुष्मिन्तमः) अत्यन्त प्रशंसित बल्लवान् (स्वम्) आप (सहसा) बल से (जायसे) प्रकट होते हो जिन (ते) आपका (शुष्मिन्तमः) अत्यन्त बलयुक्त (द्युमिन्तमः) जिनके सम्बन्ध में बहुत धन विद्यमान वह अत्यन्त धनी (मदः) हर्ष (अतः) और (क्रतुः) यज्ञ (हि) ही है (अध) अनन्तर (ते) आपके (शुष्टीवानः) शीघ्र क्रियावाले (स्म) ही (परि, चरन्ति) सब ओर से चलते वा आपकी परिचर्या करते, उन आपका हम लोग आश्चय करें। (॥)

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो मनुष्य शरीर और आत्मा के बल से युक्त अच्छे प्रकार ज्ञाता, विद्या आदि धन प्रकाश युक्त सन्तानोंवाले होते हैं, के सुख करनेवाले होते हैं॥९॥

पुनरखिलैर्मनुष्यै: किं कर्त्तव्यमित्याहभ

फिर समस्त मनुष्यों को क्या करना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

प्र वो महे सहसा सहस्वत उष्वुंधे पशुषे नाग्न्य स्तोमी बभूत्वग्नये।

प्रति यदीं हिविष्मान् विश्वास क्षास जोगुर्वे।

अर्थे रेभो न जरत ऋषूणां जूर्णिर्हों के ऋषूणाम्। १०॥

प्रा वः। महे। सहंसा। सहंस्वते। उष्ट्रां पुशुक्ति। न। अग्नये। स्तोर्मः। बुभूतु। अग्नये। प्रति। यत्। ईम्। हुविष्मान्। विश्वासु। क्षासुं। जोगुंवे। अत्रे। द्रेभः। न जुम्तुं। ऋषूणाम्। जूर्णिः। होतां। ऋषूणाम्॥ १०॥

पदार्थ:-(प्र) (व:) युष्माक्षम् (महे) महते (सहसा) बलेन (सहस्वते) बहुबलयुक्ताय (उषर्बुधे) प्रत्युष:कालजागरकाय (पशुषे) विश्वकाय (न) इव (अग्नये) प्रकाशमानाय (स्तोम:) (बभूतु) भवतु। अत्र बहुलं छन्दसीति शप श्लुः (अग्नये) विद्युत इव (प्रति) प्रत्यक्षे (यत्) (ईम्) सर्वतः (हविष्मान्) प्रशस्तानि हवीषिं गृहीतानि विद्यन्ते यस्य सः (विश्वासु) सर्वासु (क्षासु) भूमिषु। क्षेति पृथिविनामसु पठितम्। (निघं०१.१) (जोगुबे) भृशमुपदेशकाय (अग्रे) प्रथमतः (रेभः) उपदेशकः (न) इव (जरते) स्तौति (ऋषूणाम्) प्राप्तविद्यानां जिज्ञासूनां वा (जूणिः) रोगवान् (होता) अत्ता (ऋषूणाम्) प्राप्तवैद्यकविद्यानाम्। १०॥

अन्त्रेयः है पनुष्या! वः सहस्वत उषर्बुधे पशुषे महे जोगुवेऽग्नये नाग्नये विश्वासु क्षासु हिवष्मान् स्तोमः सहसा प्रबभृतु स्भी नाग्रे ऋषूणां विद्या ईम् प्रति जरते यद्यो होता जूर्णिर्भवेत् स ऋषूणां सामीप्यं गत्वाऽरोगी भवेत्॥१०॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। यथा विद्वांसो विद्याप्राप्तये प्रयतन्ते, तथेह सर्वेर्मनुष्यै प्रयतितन्त्रम्॥१०॥ अष्टक-२। अध्याय-१। वर्ग-१२-१३

मण्डल-१। अनुवाक-१९। सूक्त-१२७



पदार्थ: - हे मनुष्यो! (व:) तुम लोगों के (सहस्वते) बहुत बलयुक्त (उपर्बुधे) प्रत्येक प्रभाद समय में जागने और (पशुषे) प्रबन्ध बाँधनेहारे (महे) बड़े (जोगुवे) निरन्तर उपदेशक (अग्नये) बिजुली के (न) समान (अग्नये) प्रकाशमान के लिये (विश्वासु) सब (क्षासु) भूमियों में (हविष्मास्) प्रशंसित ग्रहण किये हुए व्यवहार जिसमें विद्यमान वह (स्तोम:) प्रशंसा (सहसा) बल के साथ (फ्र बभूतु) समर्थ हो (रेभ:) उपदेश करनेवाले के (न) समान (अग्रे) आगे (ऋषूणाम्) बिन्होंने विद्या पह वा जो विद्या को जानना चाहते उनकी विद्याओं की (ईम्) सब ओर से (प्रति, जरते) प्रत्यक्ष में स्तुति करता (यत्) जो (होता) भोजन करनेवाला (जूणि:) जूड़ी आदि रोग से रोगी हो वह (ऋषुणाम्) जिन्होंने वैद्य विद्या पाई अर्थात् उत्तम वैद्य हैं, उनके समीप जाकर रोगरहित हो॥ रेजी

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे विद्वान् जन विद्या प्राप्ति के लिये अच्छा यत्न करते हैं, वैसे इस संसार में सब मनुष्यों को प्रयत्न करना चाहिये॥१०

पुनर्विद्यार्थिभि: किं कर्त्तृ व्यक्तिसाहा।

फिर विद्यार्थियों को क्या करना चाहिये, इस चिष्रय की अगले मन्त्र में कहा है।।

स नो नेर्दिष्टं दर्दृशान आ भराग्ने देवेभि सचनाः सुचेतुना महो रायः सुचेतुना। महि शविष्ठ नस्कृष्टि संचक्षे भुजे अस्य।

महि स्तोस्तृभ्यो मघवन्सुवीर्यं मुश्रीरुग्रो च अवसा॥ ११॥ १३॥

सः। नः। नेर्दिष्ठम्। दर्दृशानः। आ। भूर अस्ते। दुविभिः। सऽचनाः। सुऽचेतुनां। मृहः। ग्रयः। सुऽचेतुनां। मिहं। शृविष्ठः। नः। कृष्टि। सुम्ऽचक्षे। भूजे। अस्त्रे। मिहं। स्तोतुऽभ्यः। मुघऽवन्। सुऽवीर्यम्। मथीः। उत्रः। न। शर्वसा॥११॥

पदार्थ:-(स:) विद्वान (त:) अस्मध्याम् (नेदिष्ठम्) अतिशयेनान्तिकम् (ददृशानः) दृष्टवान् सन् (आ) समन्तात् (भर) धर्म (अग्ने) प्रावक इव वर्त्तमान (देवेभिः) विद्वद्धिः सह (सचनाः) समवैतुं योग्याः (सुचेतुना) सुष्ठु विज्ञात्रा)(महः) महतः (रायः) धनानि (सुचेतुना) सुष्ठु चेतियत्रा (मिह) महत् (शिवष्ठ) अतिशयेन बलवान् प्राप्तविद्य (नः) अस्मान् (कृष्टि) कुरु (संचक्षे) सम्यगाख्यानाय (भुजे) पालनाय (अस्ये) प्रजायै (मिह) महद्भयः (स्तोतृभ्यः) (मघवन्) पूजितधनयुक्त (सुवीर्यम्) शोभनं पराक्रमं (मुर्गीः) सो दृष्टान् मध्नाति सः (उग्नः) तेजस्वी (न) इव (शवसा) बलेन॥११॥

अन्वयः हे मध्यवन् शविष्ठाग्ने! स ददृशानस्त्वं सुचेतुना देवेभिश्च सह नो महः सचना राय आभरास्यै प्रजायै संचक्षे/भुजे श्रवसोग्रो न मथीस्त्वं नेदिष्ठं मिह सुवीर्यमाभराऽनेन सुचेतुना मिह स्तोतृभ्यो नोऽस्मान् विद्यावतः कृधि॥११॥

भावार्थः-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। विद्यार्थिभिराप्तानध्यापकान् संप्रार्थ्य संसेव्य पूर्णी विद्याः प्रापणीयाः, येन राजप्रजाजना विद्यावन्तो भूत्वा सततं धर्ममाचरेयुः॥११॥

इति सप्तविंशत्युत्तरं शततमं १२७ सूक्तं त्रयोदशो १३ वर्गश्च समाप्त:॥

पदार्थ:-हे (मघवन्) प्रशंसित धनयुक्त (शिवष्ठ) अतीव बलवान् विद्यादि गुणीं को पये हुए (अग्ने) अग्नि के समान प्रकाशमान (सः) वह (दृशानः) देखे हुए विद्वान्! आष्ट्र (सृचेतुना) सुन्दर समझनेवाले और (देवेभिः) विद्वानों के साथ (नः) हम लोगों के लिये (महः) बहुत (सचनाः) सम्बन्ध करने योग्य (रायः) धनों को (आ, भर) अच्छे प्रकार धारण करें (अस्यै) इस प्रजा के लिये (संचक्षे) उत्तमता में कहने उपदेश देने और (भुजे) इसको पालना करने के लिये (शवसा) अपने पराक्रम से (उगः) प्रचण्ड प्रतापवान् (न) के समान (मथीः) दुष्टों को मथनेवाले आप (नेहिष्ठम्) अत्यन्त समीप (मिह) बहुत (सुवीर्यम्) उत्तम पराक्रम को अच्छे प्रकार धारण करें और इस (सुचेतुना) सुन्दर ज्ञान देनेवाले गुण से (मिह) अधिकता से जैसे हो, वैसे (स्तोतृभ्यः) स्तुति प्रशंसा करनेवालों से (नः) हम लोगों को विद्यावान् (कृष्टि) करो॥११॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोप्यालङ्कार हैं। विद्यार्थियों को चाहिये कि सकल शास्त्र पढ़े हुए धार्मिक विद्वानों की प्रार्थना और सेवा कर पूरी विद्याओं को पावें, जिससे राजा और प्रजाजन विद्यावान होकर निरन्तर धर्म का आचरण करें॥ १९॥

इस सूक्त में विद्वान् और राजधर्म का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ एकता जाननी चाहिये॥

यह एक सौ सत्ताईसवां १२७ सूक्त और तेरहवाँ १३ वर्ग समाप्त हुआ॥

अयिमत्यस्याऽष्टर्चस्याऽष्टविंशत्युत्तरशततमस्य सूक्तस्य परुच्छेप ऋषिः। अग्निर्देवता। १ निचृदत्यष्टिः। ४,३,६,८ विराडत्यष्टिश्छन्दः। गान्धारः स्वरः। २ भुरिगष्टिः। ५,७

> निचृदष्टिश्छन्दः। मध्यमः स्वरः॥ *पुनर्विद्यार्थिनः कीदृशा भवेयुरित्याह॥*

फिर विद्यार्थी लोग कैसे होवें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

अयं जायत मनुषो धरीमणि होता यजिष्ठ उशिजामनु वृतमुग्निः स्वमनु वृतम्।

विश्वश्रुष्टिः सखीयते र्यिरिव श्रवस्यते।

अदेब्धो होता नि षेददिळस्पदे परिवीत ड्रळस्पदे॥ १॥

अयम्। जायत्। मर्नुषः। धरीमणि। होतां। यजिष्ठः। उशिजाम्। अर्नु (वृतम् अपनः। स्वम्। अर्नु। वृतम्। विश्वऽश्रुष्टिः। सुख्विऽयते। र्यिःऽईव। श्रवस्यते। अदेब्यः। होतां। निः सुद्ताः हूळः। पदे। परिऽवीतः। हूळः। पदे॥ १॥

पदार्थ:-(अयम्) (जायत) जायते (मनुषः) विद्वान (धरोमण्ण) धरन्ति सुखानि यस्मिँस्तस्मिन् व्यवहारे (होता) आदाता (यजिष्ठः) अतिशयेन यष्टा संगच्या (उजिजाम्) कामयमानानां जनानाम् (अनु) आनुकूल्ये (व्रतम्) शीलम् (अग्निः) पावक इव (स्वर्म्) स्वकीयम् (अनु) (व्रतम्) (विश्वश्रुष्टिः) विश्वाः श्रुष्टस्त्विरता गतयो यस्य सः। अत्र श्रुधातोर्बाहुलकादोष्पदिकः क्तिन् प्रत्ययः। (सखीयते) सखेवाचरित (रियरिव) श्रीरिव (श्रवस्यते) श्रोष्ट्यमाणाय (अद्ब्यः) अहिंसितः (होता) दाता (नि) नितराम् (सदत्) सीदिति (इळः) स्तोतुमर्हस्य जगदीश्वरस्य (पद्र) प्राप्तव्ये विज्ञाने (परिवीतः) परितः सर्वतो वीतं प्राप्तं विज्ञानं येन सः (इळः) प्रशंसितस्य धर्मस्य (पदे) पदनीये॥१॥

अन्वय:-योऽयमिडस्पद इवेडस्परेऽदब्धो होता परिवीतस्सन् निषदद्रयिरिव विश्वश्रुष्टिः सन् श्रवस्यतेऽग्निरिवोशिजामनुव्रतिमवाऽनुकृतं स्वं प्राप्ते धरीमणि होता यजिष्ठः सन् जायत स मनुषो सर्वैः सह सखीयते पूज्यश्च स्यात्॥१॥

भावार्थ:-अत्रोपनाचकलुर्जापमालङ्कारौ। यो विद्यां कामयमानानामनुगामि सुशीलो धर्म्ये व्यवहारे सुनिष्ठ: सर्वस्य सुहुत् शुभगुणदाता स्यात् स एव मनुष्यमुकुटमणिर्भवेत्॥१॥

पदार्थ: जो (अयम्) यह मनुष्य (इळ:) स्तुति के योग्य जगदीश्वर के (पदे) प्राप्त होने योग्य विशेष ज्ञान में जैसे से (इळ:) प्रशंसित धर्म के (पदे) पाने योग्य व्यवहार में (अदब्ध:) हिंसा आदि दोषरहित (होता) इत्तम गुणों का ग्रहण करनेहारा (परिवीत:) जिसने सब ओर से ज्ञान पाया ऐसा हुआ (नि, षद्त) स्थिर होता (रियरिव) वा धन के समान (विश्वश्रुष्टि:) जिसकी समस्त शीघ्र चालें ऐसा हुआ (श्रव्रस्थत) सुननेवाले के लिये (अग्नि:) आग के समान वा (उशिजाम्) कामना करनेवाले मनुष्यों के (अनु) अपूक्त (वृतम्) स्वभाव के तुल्य (अनु, वृतम्, स्वम्) अनुकूल ही अपने आचरण को प्राप्त वा

(धरीमिण) जिसमें सुखों को धारण करते उस व्यवहार में (होता) देनेहारा (यजिष्ठः) और अत्यन्त सङ्गि करता हुआ (जायत) प्रकट होता वह (मनुषः) मननशील विद्वान् सबके साथ (सखीयते) मित्र के समान आचरण करनेवाला और सबको सत्कार करने योग्य होवे॥१॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जो विद्या की इच्छा करनेवालों के अनुकूल चालचलन चलनेवाला, सुशील, धर्मयुक्त व्यवहार में अच्छी निष्ठा रखने<mark>बाला, सब</mark>का मित्र, शुभ गुणों का ग्रहण करनेवाला हो, वही मनुष्यों का मुकुटमणि अर्थात् अति श्रेष्ठ शिर्धरा होवे॥ १)।

पुनर्विद्वान् किं करोतीत्याह॥

फिर विद्वान् क्या करता है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है।

तं यज्ञसाधमपि वातयामस्यृतस्य पथा नमसा हुविष्मता द्वेकृतौता हुविष्मता।

स न कुर्जामुपाभृत्यया कृपा न जूर्यति।

यं मातुरिश्चा मनवे परावती देवं भाः परावतः॥ २०

तम्। युज्ञऽसार्धम्। अपि। वात्यामसा। ऋतस्य। पृथा। वर्षसा। हुविष्मता। देवऽताता। हुविष्मता। सः। नः। कुर्जाम्। उपुऽआभृति। अया। कृपा। न। जूर्यति। यम्। मात्रिरश्री। प्रनेव। पुराऽवर्तः। देवम्। भारिति भाः। पुराऽवर्तः॥२॥

पदार्थ:-(तम्) अग्निमिव विद्वांसम् (यनसाधम्) यहं साध्नुवन्तम् (अपि) (वातयामिस) वात इव प्रेरयेम (ऋतस्य) सत्यस्य (पथा) मार्गेण (नपसा) सत्कारेण (हविष्मता) बहुदानयुक्तेन (देवताता) देवेनेव (हविष्मता) बहुग्रहणं कुर्वता (सि) (ज्रः) अस्मान् (ऊर्जाम्) पराक्रमवताम् (उपाभृति) उपगतमाभृत्याभूषणं च तत् (अया) अन्या अत्र पृषोदरादिना नलोपः। (कृपा) कल्पनया (न) निषेधे (जूर्यति) रुजति (यम्) (मातिरिश्वा) वायुः (मनवे) मनुष्याय (परावतः) दूरदेशात् (देवम्) दातारम् (भाः) सूर्यदीप्तिरिव (परावतः) दूरदेशात्।

अन्वय:-यथा यं देवं परावतो भारिव मध्ये मातरिश्वा परावतो देशाद् दधाति सोऽया कृपा न ऊर्जामुपाभृति न जूर्यति यथा च स देवताता इविष्मृता ऋतस्य पथा गच्छित तथा हिवष्मता नमसा तं यज्ञसाधमिप वयं वातयामिस॥२॥

भावार्थः-अत्र वाचेकलुर्जापमालङ्कारः। विद्वान् मनुष्यो यथा वायुः सर्वान् मूर्त्तिमतः पदार्थान् धृत्वा प्राणिनः सुर्ख्येपति, तक्षेत्र विद्याधर्मौ धृत्वा सर्वान् मनुष्यान् सुखयतु॥२॥

पदार्श्व: जैसे (यम्) जिस (देवम्) गुण देनेवाले को (परावतः) दूर से जो (भाः) सूर्य की कान्ति उसके समूनि (पनेव) मनुष्य के लिये (मातिरश्वा) पवन (परावतः) दूर से धारण करता (सः) वह देनेवाल विद्वान् (अया) इस (कृपा) कल्पना से (नः) हम लोगों को (ऊर्जाम्) पराक्रमवाले पदार्थों का (उपभृति) सपीप आया हुआ आभूषण अर्थात् सुन्दरपन जैसे हो वैसे (न) नहीं (जूर्यति) रोगी करा और केस वह (देवताता) विद्वान् के समान (हविष्मता) बहुत देनेवाले (ऋतस्य) सत्य के (पथा) मार्ग से

अष्टक-२। अध्याय-१। वर्ग-१४-१५

मण्डल-१। अनुवाक-१९। सूक्त-१२८ GARA J

चलता है, वैसे (हविष्मता) बहुत ग्रहण करनेवाले (नमसा) सत्कार के साथ (तम्) उस अगि के समान प्रतापी (यज्ञसाधम्) यज्ञ साधनेवाले विद्वान् को (अपि) निश्चय के साथ हम लोग (वातयामिस) पवने के समान सब कार्यों में प्रेरणा देवें॥२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। विद्वान् मनुष्य जैसे पवन् सब मूर्तिमान पदार्थों को धारण करके प्राणियों को सुखी करता, वैसे ही विद्वान् मनुष्य विद्या और धर्म को धारण कर सब मनुष्यों को सुख देवे॥२॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।

एवेन सद्यः पर्येति पार्थिवं मुहुर्गी रेतो वृष्भः कनिकद्द द्धद्रेतः कनिकदत्। शृतं चक्षाणो अक्षभिर्देवो वनेषु तुर्विणिः। सदौ दर्धान उपरेषु सानुष्विग्नः परेषु सानुषु॥

एवेन। सद्यः। परि। पुति। पार्थिवम्। मुहुःऽगी। रेतः। वृष्यः। कर्निक्रदत्। दर्धत्। रेतः। कर्निक्रदत्। शृतम्। चक्षाणः। अक्षऽभिः। देवः। वनेषु। तुर्विणिः। सदः। दथनाः। उपरेषु। स्तानुषु। अग्निः। परेषु। सानुषु॥३॥

पदार्थ:-(एवेन) गमनेन (सद्य:) शीध्रम (पिरे) सर्वतः (एति) प्राप्नोति (पार्थिवम्) पृथिव्यां विदितम् (मृहुर्गीः) मृहुर्मुहुर्गिरं प्राप्तः (रेतः) जलम् (कृषभः) वर्षकः (किनक्रदत्) भृशं शब्दयन् (दधत्) धरन् (रेतः) वीर्यम् (किनक्रदत्) अत्यन्ति शब्दयन् (शतम्) असंख्यातानुपदेशान् (चक्षाणः) उपदिशन् (अक्षिः) इन्द्रियैः (देवः) देदीप्यमानेः (वनेषु) रिश्मषु (तुर्विणः) तमः शीतं हिंसन् (सदः) सीदन्ति येषु तान् (दधानः) धरन् (उपरेषु) मेघेषु (सानुषु) विभक्तेषु शिखरेषु (अग्निः) विद्युत्सूर्यरूपः (परेषु) उत्कृष्टेषु (सानुषु) शैलशिखरेषु।।

अन्वय:-हे विद्वंस्तृतं यथा मुहुर्गो रतः किनक्रदिव रेतः किनक्रदिधद् वृषभो वनेषु तुर्वणिर्देव उपरेषु सानुषु परेषु सानुषु च सदो दधानोऽप्रिमेश्वन प्रार्थिवं सद्यः पर्येति तथाऽक्षभिः शतं चक्षाणो भव॥३॥

भावार्थ: अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। यथा सूर्यो वायुश्च सर्वं धृत्वा मेघं वर्षयित्वा सर्वं जगदानन्दयित तथा विद्वांसो वेदविद्यां धृत्वाऽन्येषामात्मसूपदेशान् वर्षयित्वा सर्वान् मनुष्यान् सुखयन्ति॥ ॥

पदार्थ:=हे चिद्वान्! आप जैसे (मुहुर्गी:) वार-वार वाणी को प्राप्त (रेत:) जल को (किनक्रदत्) निरन्तर गर्जाता सा (रेत:) पराक्रम को (किनक्रदत्) अतीव शब्दायमान करता और (दधत्) धारण करता हुआ (कृप्पा:) वर्षा करने और (वनेषु) किरणों में (तुर्विणि:) अन्धकार और शीत का विनाश करता हुआ

(देव:) निरन्तर प्रकाशमान (उपरेषु) मेघों और (सानुषु) अलग-अलग पर्वत के शिखरों वा (परेषु) उत्तम (सानुषु) पर्वतों के शिखरों में (सद:) जिनमें जन बैठते हैं, उन स्थानों को (दधान:) धारण करता हुआ (अग्नि:) बिजुली तथा सूर्यरूप अग्नि (एवेन) अपनी लपट-झपट चाल से (पार्थिवम्) पृथिवी में जाने हुए पदार्थ को (सद्य:) शीघ्र (पर्येति) सब ओर से प्राप्त होता, वैसे (अक्षि:) इन्द्रियों से (शतम्) सैकड़ों उपदेशों को (चक्षाण:) करनेवाले होते हुए प्रसिद्ध हूजिये॥३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य और वायु सबको धारण और मेघ को वर्षाकर सब जगत् का आनन्द करते, वैसे विद्वान् जन वेदविद्या को धारण कर और के आत्माओ में अपने उपदेशों को वर्षा कर सब मनुष्यों को सुख देते हैं॥३॥

पुनः के विद्वांसोऽर्चनीया भवन्तीत्याह्।।

फिर कौन विद्वान् सत्कार के योग्य होते हैं, इस विषय को अपले सन्क्रमें कहा है।।

स सुक्रतुं: पुरोहितो दमेदमेऽग्निर्यज्ञस्याध्वरस्य चेति क्रत्वा युज्ञस्य चेति। क्रत्वा वेधा इषूयते विश्वा जातानि पस्पशे। यतो घृतश्रीरितिथिरजायत विह्वविधा अजायत।

सः। सुऽक्रतुः। पुरःऽहितः। दमेऽदमे। अग्निः। क्रुक्त्यो अध्वरस्य। चेतृति। क्रत्वा। यज्ञस्य। चेतृति। क्रत्वा। वेधाः। इषुऽयते। विश्वा। जातानि। पुस्पुशे। यतः। घृतुऽश्वीः। अतिथ्रिः। अजायत। वह्निः। वेधाः। अजायत॥४॥

पदार्थ:-(स:) विद्वान् (सुक्रतु:) सुष्टु कर्मप्रज्ञः (पुरोहित:) संपादितहितपुरस्सरः (दमेदमे) गृहे गृहे (अग्नि:) पावक इव वर्त्तमानः (यज्ञस्य) विद्वत्स्त्काराऽभिधस्य (अध्वरस्य) हिंसितुमनर्हस्य (चेतित) ज्ञापयित (क्रत्वा) प्रज्ञया कर्मणा वा (यज्ञस्य) संग्रीतुमर्हस्य (चेतित) ज्ञापयित (क्रत्वा) प्रज्ञया कर्मणा वा (वेधा:) मेधावी (इषूयते) इषूरिवान्तरित (विश्वा) सर्वाणि (जातािन) उत्पन्नािन (पस्पशे) प्रबध्नाित (यतः) (घृतश्री:) घृतमाज्यं सेवमानः (अतिथः) पूजनीयोऽविद्यमानितिथः (अजायत) जायेत (विद्वः) वोढेव (वेधाः) मेधावी (अजायत) जायेत ॥४॥

अन्वय:-हे मनुष्याः मुक्कतुः पुरोहितोऽग्निरिव दमेदमे क्रत्वा यज्ञस्य चेततीवाऽध्वरस्य चेतित क्रत्वा वेधा इष्यते विश्वा जातानि परपत्रे यो घृतश्रीरितिथिरजायत विह्निरिव वेधा अजायत स एव सवैविद्योपदेशाय समाश्रयितव्य:॥४॥

भावार्थः अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये विद्वांसो देशे देशे, नगरे नगरे, द्वीपे द्वीपे, ग्रामे ग्रामे, गृहे गृहे च्रस्त्यमुष्टिशन्ति ते सर्वैः सत्कर्त्तव्या भवन्ति॥४॥

पदार्थ: - हे मनुष्यो! जो (सुक्रतुः) उत्तम बुद्धि और कर्मवाला (पुरोहितः) प्रथम जिसने हित सिद्ध किया और (अग्निः) आग के समान प्रतापी वर्तमान (दमे, दमे) घर-घर में (क्रत्वा) उत्तम बुद्धि कर्म से (यज्ञस्य) विद्वानों के सत्काररूप कर्म की (चेतित) अच्छी चितौनी देते हुए के समान अष्टक-२। अध्याय-१। वर्ग-१४-१५

मण्डल-१। अनुवाक-१९। सूक्त-१२८ G x 800

(अध्वरस्य) न छोड़ने (यज्ञस्य) किन्तु सङ्ग करने योग्य उत्तम यज्ञ आदि काम का (चेत्र्लि) विज्ञान कराता वा जो (क्रत्वा) श्रेष्ठ बुद्धि वा कर्म से (वेधा:) धीर बुद्धिवाला (इष्यते) बाण के सूमान विषयों में प्रवेश करता और (विश्वा) समस्त (जातानि) उत्पन्न हुए पदार्थों का (पस्पशे) प्रबन्ध करता वा (यत:) जिससे (घृतश्री:) घी का सेवन करता हुआ (अतिथि:) जिसकी कोई कहीं ठहरने की तिथि निश्चित नहीं वह सत्कार के योग्य विद्वान् (अजायत) प्रसिद्ध होवे और (विह्वः) वस्तु के गुणादिकों की प्राप्ति करानेवाले अग्नि के समान (वेधा:) धीर बुद्धि पुरुष (अजायत) प्रसिद्ध होवे (स:) वही विद्वान् विद्या के उपदेश के लिये सबको अच्छे प्रकार आश्रय करने योग्य है॥४॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो विद्वान देश, मगर-नगर, द्वीप-द्वीप, गांव-गांव, घर-घर में सत्य का उपदेश करते वे सबको सत्कार करने योग्य होते हैं॥४॥

केऽत्र कल्याणविधायका भवन्त्रीत्याह।।

इस संसार में उत्तम सुख का विधान करनेवाले कौन होते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा

क्रत्वा यदस्य तर्विषीषु पृञ्चतेऽग्नेरवेण मुन्तां न भोज्येषिराय न भोज्या।

स हि ष्मा दानुमिन्वति वसूनां च मुज्जानी।

स नेस्त्रासते दुरितादंभिहुतः शंस्राद्घादंभिहुतः॥५॥१४॥

क्रत्वां। यत्। अस्या तर्विषीषु। पृञ्चती अनिः। अर्विना मुरुतांम्। ना भोज्यां। इषिरायं। न भोज्यां। सः। हि। स्मा दानम्। इन्वंति। वसूनाम्। चा मेज्यतां। सः। नः। त्रासते। दुःऽड्डतात्। अभिऽहृतः। शंसांत्। अघात्। अभिऽहृतः॥५॥

पदार्थ:-(क्रत्वा) प्रजूष (यत्) यः (अस्य) सेनेशस्य (तिवधीषु) प्रशस्तबलयुक्तासु सेनासु (पृञ्चते) सम्बध्नाति (अग्ने:) विद्युतः (अवेन) रक्षणाद्येन (मरुताम्) वायूनाम् (न) इव (भोज्या) भोक्तुं योग्यानि (इषिराय) प्राप्तावद्याय (न) इव (भोज्या) पालियतुं योग्यानि (सः) (हि) (स्म) एव। अत्र निपातस्य चेति दीर्घः। (दानम्) दीयते यत्तत् (इन्वित) प्राप्नोति (वसूनाम्) प्रथमकोटिप्रविष्टानां विदुषाम् (च) पृथिव्यादीनां वे (मज्मना) बलेन (सः) (नः) अस्मान् (त्रासते) उद्वेजयति (दुरितात्) दुःखप्रदायिनः (अभिहृतः) आभिमुख्ये प्राप्तात् कृटिलात् (शंसात्) प्रशंसनात् (अधात्) पापात् (अभिहृतः) अभितः सर्वतो वृद्धात्।।

अन्वय:-यदस्य क्रत्वाऽवेन मरुतामग्नेरिषिराय भोज्या नेव भोज्या न तिवषीषु पृञ्चते, यो हि मज्मना वसूर्नी चे दानिमन्वित, यो नोऽभिह्नुतो दुरितादिभिह्नुतोऽघात् त्रासते शंसात् संयोजयित स स्म सुखं प्राप्नोति, स च सुखकारी जायते, स स्म विद्वान् पूज्यः स सर्वाऽभिरक्षको भविति॥५॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। ये सुशिक्षाविद्यादानेन दुष्टस्वभावगुणेभ्योऽधर्माचरमेभ्यश्च निर्वर्त्य शुभगुणेषु प्रवर्त्तयन्ति, तेऽत्र कल्याणकारका आप्ता भवन्ति॥५॥

पदार्थ:-(यत्) जो (अस्य) इस सेनापित की (क्रत्वा) बुद्धि और (अवेन) रक्षा आदि काम से (मरुताम्) पवनों और (अग्ने:) बिजुली आग की (इषिराय) विद्या को प्राप्त हुए पुरुष के लिये (भीज्या) भोजन करने योग्य पदार्थों के (न) समान वा (भोज्या) पालने योग्य पदार्थों के (न) समान पदार्थों का (तिवषीषु) प्रशंसित बलयुक्त सेनाओं में (पृञ्जते) सम्बन्ध करता वा जो (हि) ठीक ठीक (मज्मना) बल से (वसूनाम्) प्रथम कक्षावाले विद्वानों तथा (च) पृथिव्यादि लोकों का (दानम्) जो दिया जाता पदार्थ उसको (इन्वित) प्राप्ति होता वा जो (न:) हम लागों को (अभिहृत:) आगे आये हुए कुटिल (दुरितात्) दु:खदायी (अभिहृत:) सब ओर से टेढ़े-मेढ़े छोटे-बड़े (अधात् पाप में (त्रासते) उद्वेग करता अर्थात् उठाता वा (शंसात्) प्रशंसा से संयोग कराता (स:, स्म) वहीं सुख को प्राप्त होता और (स:) वह सुख करनेवाला होता तथा वही विद्वान् सबके सत्कार करने योग्य और वह सभी की ओर से रक्षा करनेहारा होता है।।५॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है जो उत्तम् रिक्षा और विद्या के दान से दुष्टस्वभावी प्राणियों और अधर्म के आचरणों से निवृत्त करिक अच्छे गुणों में प्रवृत्त कराते, वे इस संसार में कल्याण करनेवाले धर्मात्मा विद्वान् होते हैं॥५॥

पुनर्विद्वांसः किं कुर्युरित्याह॥

फिर विद्वान् जूने क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

विश्वो विहाया अर्तिर्षसुर्दधे हस्ते दक्षिणे त्रिण्नि शिश्रथच्छ्वस्यया न शिश्रथत्। विश्वसमा इदिषु<u>ध्यते देवत्रा ह</u>च्यमोहिषे।

विश्वस्मा इत्सुकृते वार्गमण्वत्यग्निर्द्वारा व्यृण्वति॥६॥

विश्वः। ब्रिइहायाः। अर्गतः। वर्सः। दुधे। हस्ते। दक्षिणे। तुर्राणिः। न। शिश्रथ्यत्। श्रवस्यया। न। शिश्रथ्यत्। विश्वस्मै। इत्। ड्रुकुंध्यते। देवऽत्रा। ह्व्यम्। आ। ऊहिषे। विश्वस्मै। इत्। सुऽकृते। वार्रम्। ऋण्वृति। अग्निः। द्वारां। वि। ऋण्वृति॥ ६ ग

पदार्थ:-(विश्व:) सर्वः (विहायाः) शुभगुणव्याप्तः (अरितः) प्रापकः (वसुः) प्रथमकत्प्रवेद्याचर्यः (दधे) धरामि (हस्ते) (दक्षिणे) (तरिणः) तारकः (न) निषेधे (शिश्रथत्) श्रथयेत् (श्रवस्यया) आत्मनः श्रव इच्छया (न) निषेधे (शिश्रथत्) श्रथयेत्। अत्रोभयत्राऽडभावः। (विश्वस्मै)

अष्टक-२। अध्याय-१। वर्ग-१४-१५

मण्डल-१। अनुवाक-१९। सूक्त-१२८



सर्वस्मै (इत्) एव (इषुध्यते) इषुध इवाचरित तस्मै (देवत्रा) देवेष्विति (हव्यम्) दातुमर्हम् (अ) (ऊहिषे) वितर्कयिस (विश्वस्मै) (इत्) इव (सुकृते) सुष्ठु कर्त्तुं (वारम्) पुनः पुनर्वर्त्तुम् (ऋण्विति) प्राप्नोति (अग्निः) विद्युदिव (द्वारा) द्वाराणि (वि) विशेषाऽर्थे (ऋण्वित) प्राप्नोति॥६॥

अन्वय:-विश्वो विहाया अरितस्तरणिर्वसुः श्रवस्ययाऽग्निर्न शिश्रथिद्व न शिश्रथद्भिण हस्ते आभूलक इव देवत्राहं विद्या दधे विश्वस्मा इषुध्यते त्वं हव्यमोहिषे तथेद्यो विश्वस्मै सुकृते द्वारा ऋण्वति स सुखमिद्वारं व्यृण्वितिगद्ग॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। यथा सूर्य: सर्वान् व्यक्तान् पदार्थान् प्रकाश्य सर्वेभ्य: सर्वाणि सुखानि जनयति तथाऽहिंसका विद्वांसो विद्या: प्रकाश्य सर्वानानन्दयन्ति॥६॥

पदार्थ:-(विश्व:) समग्र (विहाया:) विद्या आदि शुभगुणों में स्थाप्त अपितः) उत्तम व्यवहारों की प्राप्ति कराता और (तर्राणः) तारनेहारा (वसुः) प्रथम श्रेणी का ब्रह्मचरों विद्वान् (श्रवस्थया) अपनी उत्तम उपदेश सुनने की इच्छा से जैसे (अग्निः) बिजुली ने (शिश्रथत्) शिथिल हो वैसे (न) नहीं (शिश्रथत्) शिथिल हो वा (दक्षिणे) दाहिने (हस्ते) हाथ में जैसे आमलक धरें वैसे (देवत्रा) विद्वानों में मैं विद्या को (दधे) धारण करूं वा (विश्वस्मे) सब (इषुध्यते) धनुष के समान आचरण करते हुए जनसमूह के लिये तू (हव्यम्) देने योग्य पदार्थ का (आ, ऊहिंगे) तर्क-बितर्क करता (इत्) वैसे ही जो (विश्वस्मे) सब (सुकृते) सुकर्म करनेवाले जनसमूह के लिये (इत्र्प) उत्तम व्यवहारों के द्वारों को (ऋण्वित) प्राप्त होता वह सुख (इत्) ही के (वारम्) स्वीकार करने को (वि, ऋण्वित) विशेषता से प्राप्त होता है॥६॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे सूर्य सब व्यक्त पदार्थों को प्रकाशित कर सबके लिये सब सुखों को उत्पन्न करता, वैसे हिंगा औदि दोषों से रहित विद्वान् जन विद्या का प्रकाश कर सबको आनन्दित करते हैं॥६॥

पुनस्ते किं कुर्युरित्याह॥

फिर के क्या कुरें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

स मानुषे वृजन् श्रातमो हिता इंग्निर्यज्ञेषु जेन्यो न विश्पतिः प्रियो यज्ञेषु विश्पतिः।

स ह्व्या मानुषाणामिळा कृतानि पत्यते।

स नम्ब्रासित वर्मणस्य धूर्तेर्मुहो देवस्य धूर्ते:॥७॥

सः। मानुषा वृज्ञने। शम्ऽतमः। हितः। अग्निः। युज्ञेषुं। जेन्यः। नं। विश्पितः। प्रियः। युज्ञेषुं। विश्पितः। सः। हुव्या मानुषाणाम्। हुळा। कृतानिं। पुत्यते। सः। नः। त्रासते। वर्रणस्य। धूर्तेः। मुहः। देवस्य। धूर्तेः॥७॥

पदार्थ:-(सः) विद्वान् (मानुषे) मानुषाणामस्मिन् (वृजने) व्रजन्ति यस्मिन् मार्गे तस्मिन् पृषोदरादिनास्य सिद्धिः। (शंतमः) अतिशयेन सुखकारी (हितः) हितसंपादकः (अग्निः) पावक इव

(यज्ञेषु) अग्निहोत्रादिषु (जेन्यः) जेतुं शीलः (न) इव (विश्पितः) विशां पालको राजा (प्रियः) प्रीणिति सः (यज्ञेषु) संगन्तव्येषु व्यवहारेषु (विश्पितः) विशां प्रजानां पालयिता (सः) (हव्या) हव्यान्यादातुमर्हाणि (मानुषाणाम्) (इळा) सुसंस्कृतानि वचनानि (कृतानि) निष्पन्नानि (पत्यते) प्राप्यते (सः) (नः) अस्मान् (त्रासते) उद्वेजयित (वरुणस्य) श्रेष्ठस्य (धूर्तेः) हिंसकस्य सकाशाल् (महः) महतः (देवस्य) विद्याप्रदस्य (धूर्तेः) अविद्या हिंसकस्य॥७॥

अन्वय:-यः प्रियो विश्पतिर्नोऽस्मान् धूर्तेस्त्रासते स धूर्तेर्महो देवस्य वरुणस्य सकाशात् यज्ञेषु मानुष्णामिळा कृतानि हव्या स्थिरीकरोति स सर्वैः पत्यते यो यज्ञेष्विग्निरिव जेन्यो न विश्पतिर्मानुषे वृजने हित्तस्थान्यां भवित स सर्वैः सत्कर्तव्यो भवित॥७॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। ये धर्ममार्गे जनानुपदेशेन प्रवर्तयन्ति नायेश्वो राजेव प्रजापालका दस्य्वादिभयनिवारका: विदुषां मित्राणि जना: सन्ति त एवान्धपरम्पराज्ञिरोधका भवितुमर्हन्ति॥७॥

पदार्थ:-जो (प्रिय:) तृप्ति करनेवाला है, वह (विश्पित:) प्रजाओं का पालक राजा (न:) हम लोगों को (धूर्ते:) हिंसक से (त्रासते) वेमन कराता और (स:) वह (धूर्ते:) अविद्या को नाशने और (मह:) बड़े (देवस्य) विद्या देनेवाले (वरुणस्य) उत्तम विद्वान के पान से जो (यज्ञेषु) सङ्ग करने योग्य व्यवहारों में (मानुषाणाम्) मनुष्यों के (इळा) अच्छे संस्कारों से पुक्त (कृतानि) सिद्ध किये शुद्ध वचन (हळा) जो कि ग्रहण करने योग्य हों उनको स्थिर करता तथा (स:) वह सबको (पत्यते) प्राप्त होता वा (यज्ञेषु) अग्निहोत्र आदि यज्ञों में (अग्नि:) अपि के समान वा (जेन्य:) विजयशील के (न:) समान (विश्पित:) प्रजाजनों का पालनेवाला (मानुषे) मनुष्यों के (वृजने) उस मार्ग में कि जिसमें गमन करते (हित:) हित सिद्ध करनेवाला (शंतम:) अति सुख्यकारी होता (स:) वह विद्वान् सबको सत्कार करने योग्य होता है॥७॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालक्कार है। जो धर्म मार्ग में मनुष्यों को उपदेश से प्रवृत्त कराते, न्यायाधीश राजा के समान प्रजाजनों को पालने, डाकू आदि दुष्ट प्राणियों से जो डर उसको निवृत्त करानेवाले विद्वानों के मित्रजन हैं, वे ही अध्यपरम्परा अर्थात् कुमार्ग के रोकनेवाले होने को योग्य होते हैं॥७॥

कस्य समागमेन किं प्राप्तव्यमित्याह।।

किस्के मिलिए से क्या पाने योग्य है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

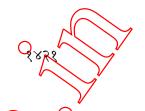
अर्पि होतारेमीळते वसुंधिति प्रियं चेतिष्ठमर्ति न्येरिरे हव्यवाहं न्येरिरे।

विश्वायुं विश्ववेदसं होतारं यज्तं कविम्।

द्वेवासी रुण्वमर्वसे वसूयवी गीर्भी रुण्वं वसूयर्वः॥८॥१५॥

अष्टक-२। अध्याय-१। वर्ग-१४-१५

मण्डल-१। अनुवाक-१९। सूक्त-१२८



अग्निम्। होतारम्। ईळ्ते। वसुंऽधितिम्। प्रियम्। चेतिष्ठम्। अर्गतम्। नि। एरिरे। ह्व्यऽवाहेम् नि। एरिरे। वृश्वऽआंयुम्। विश्वऽवेदसम्। होतारम्। युज्तम्। कुविम्। देवासः। रुण्वम्। अवसे। वृसुऽयर्वः। ग्रीरऽभिः रुण्वम्। वृसुऽयर्वः॥८॥

पदार्थ:-(अग्निम्) पावकमिव वर्तमानम् (होतारम्) दातारम् (ईळते) स्विवन्ति (वसुधितिम्) वसूनां धितयो यस्य तम् (प्रियम्) प्रीतिकारकम् (चेतिष्ठम्) अतिशयेन चेतितारम् (अर्पतम्) प्राप्तविद्यम् (नि) (एरिरे) प्रेरयन्ति (हव्यवाहम्) हव्यानां वोढारम् (नि) (एरिरे) प्राप्नवन्ति (विश्वायुम्) यो विश्वं सर्वं बोधमेति तम् (विश्ववेदसम्) विश्वं समग्रं वेदो धनं यस्य तम् (होतारम्) अष्टात्रीरम् (श्रजतम्) पूजितुमर्हम् (कविम्) पूर्णविद्यम् (देवासः) विद्वांसः (रण्वम्) सत्योपदेशकम् (अवसे) रक्षणाद्याय (वसूयवः) य आत्मनो वसूनि द्रव्याणीच्छन्ति ते (गीर्भिः) सुसंस्कृताभिर्वाग्भः (रण्वम्) सत्यवादिनम् (वसूयवः) अत्रोभयत्र वसुशब्दात् सुप आत्मनः वयजिति क्यच् प्रत्ययः वस्याच्छन्द्रसौत्युः प्रत्ययः, अन्येषामपीति दीर्घः॥८॥

अन्वयः-हे मनुष्या! ये देवासो यमग्निमिव होतारं वसुधितिम् तिं क्रूचवाहं चेतिष्ठं प्रियं विद्वांसं जिज्ञासवो न्येरिरे विश्वायुं विश्ववेदसं होतारं यजतं कविं रण्वं वसूयव इव न्येरिरे क्सूयुबोऽक्से गीर्भी रण्वमीळते तान् यूयमपीळिध्वम्॥८॥

भावार्थ:-अत्रवाचकलुप्तोपमालङ्कारः। हे भतुष्या! विद्वांसो यस्य सेवासंगेन विद्याः प्राप्नुवन्ति, तस्यैव सेवासङ्गेन युष्माभिरप्येता आप्तव्याः॥ अ

अत्र विद्वद्गुणवर्णनादेतत्सूक्तार्थस्य पूर्वेसूक्तार्थेन सह संगतिरस्तीति वेद्यम्॥ इत्यष्टाविंशत्युत्तरं शृत्तम् १२८ सूक्तं पञ्चदशो १५ वर्गश्च समाजः॥

पदार्थ: -हे मनुष्यो! जो (देवासः) विद्वान् जन जिस (अग्निम्) अग्नि के समान वर्त्तमान (होतारम्) देनेवाले (वसुधितम्) जिसके कि धनों की धारणा हैं (अरितम्) और जो विद्या पाये हुए हैं, उस (हव्यवाहम्) देने-लेने योग्य व्यवहार की प्राप्ति कराने (चेतिष्ठम्) चिताने और (प्रियम्) प्रीति उत्पन्न करानेहारे विद्वान् के जानी की इज्ला किये हुए (न्येरिरे) निरन्तर प्रेरणा देते वा (विश्वायुम्) जो सब विद्यादि गुणों के बोध को प्राप्त होता (विश्ववेदसम्) जिसका समग्र वेद धन उस (होतारम्) ग्रहण करनेवाले (यजताम्) सत्कार करने योग्य (किवम्) पूर्णविद्यायुक्त और (रण्वम्) सत्योपदेशक सत्यवादी पुरुष को (वमूयवः) जो धन आदि पदार्थों की इच्ला करते हैं, उनके समान (न्येरिरे) निरन्तर प्राप्त होते हैं वा जो (वमूयवः) धन आदि पदार्थों को चाहनेवाले (अवसे) रक्षा आदि के लिये (गीर्भिः) अच्ली संस्कार की हुई वाणियों से (रण्वम्) सत्य बोलनेवाले की (ईळते) स्तुति करते हैं, उन-सबों की तुम भी स्तुति करो। ।

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! विद्वान् लोग जिसकी सेवा और सङ्ग से विद्यादि गुणों को पाते हैं, उसी की सेवा और सङ्ग से तुम लोगों को चाहिये कि इनको पाओ॥८॥

इस सूक्त में विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले स्कूच के अर्थ के साथ एकता है, यह जानना चाहिये॥

यह एक सौ अट्ठाईसवां १२८ सूक्त और पन्द्रहवाँ १५ वर्ग पूरा हुआ।

अथ यं त्विमित्यस्यैकादशर्चस्यैकोनि्रंशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य परुच्छेप ऋषिः। इन्द्रो देवता। १, २ निचृदत्यष्टिः। ३ विराडत्यष्टिश्छन्दः। गास्यारः स्वरः। ४ अष्टिः। ६,११

भूरिगष्टिः। १० निचृद्ष्टिः छन्दः। मध्यमः स्वरः। ५ भूरिगतिशक्वरी। ७ स्वराडतिशक्वरी।

पञ्चम: स्वर:। ८,९ स्वराट् शक्वरी छन्द:। धैवत: स्वर:॥

विद्वांसः किं कुर्युरित्याह॥

अब ग्यारह ऋचावाले एक सौ उनतीसवें सूक्त का आरम्भ है। उसके प्रथम मन्द्रभें विद्वान् जने क्या करें, इस विषय को कहते हैं॥

यं त्वं रथिमिन्द्र मेधसातयेऽपाका सन्तिमिषिर प्रणयिस् प्रानिवद्य नयिस्। सद्यश्चित्तम्भिष्टेये करो वश्रश्च वाजिनेम्। सास्माक्षमनवद्य तूतुजान वेधसामिमां वाचं न वेधसाम्।।।

यम्। त्वम्। रथम्। इन्द्रः। मेधऽसांतये। अपाकाः। सन्तम्। इष्ट्रिः। प्रेऽत्रयस्थिः। प्रः। अनुवृद्धः। नयसिः। सद्यः। चित्। तम्। अभिष्टये। कर्रः। वर्शः। च। वाजिनम्। सः। अस्माक्षमः। अनुवृद्धः। तूतुजानः। वेधसाम्। इमाम्। वाचम्। न। वेधसाम्।। १॥

पदार्थ:-(यम्) (त्वम्) (रथम्) रमणीयम् (इन्द्र) विद्वन् सभेश (मेधसातये) मेधानां पवित्राणां संविभागाय (अपाका) अपगतमविद्याजन्यं दुः विं अस्य मम् (सन्तम्) विद्यमानम् (इषिर) इच्छो (प्रणयसि) (प्र) (अनवद्य) प्रशंसित (नयसि) क्रिप्यसि (मद्यः) (चित्) इव (तम्) (अभिष्टये) इष्टप्राप्तये (करः) कुर्य्याः। अत्र लेट्। (वशः) काम्यम्पनः (च) (वाजिनम्) प्रशस्तज्ञानवन्तम् (सः) (अस्माकम्) (अनवद्य) प्रशंसितगुणयुक्त (तूतुजान) क्षिप्रकारिन्। (वेधसाम्) मेधाविनाम् (इमाम्) (वाचम्) सुशिक्षितां वाणीम् (न) इव (वेधसाम्) मेधाविनाम्। १॥

अन्वयः-हे इषिरेन्द्र! त्वं मेधसातये अमपाका सन्तं रथं प्रणयसीव विद्यां प्रणयसि च, हे अनवद्य! वशस्त्वमभिष्टये च वाजिनं चित्तं सुद्धः करः।हे तूतुमामानवद्य! स त्वमस्माकं वेधसान्न वेधसामिमां वाचं करः॥१॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कारः। ये विद्वांसः सर्वान् मनुष्यान् विद्याविनयेषु प्रवर्त्तयन्ति तेऽभीष्टानि साद्धं शक्नुवन्ति॥१॥

पदार्थ: हे (इषिर) इच्छा करनेवाले (इन्द्र) विद्वान् सभापित! (त्वम्) आप (मेधसातये) पवित्र पदार्थों के अच्छे प्रकार विभाग करने के लिये (यम्) जिस (अपाका) पूर्ण ज्ञानवाले (सन्तम्) विद्यमान (रथम्) विद्वान् को रमण करने योग्य रथ को (प्रणयिस) प्राप्त कराने के समान विद्या को (प्रणयिस) प्राप्त करते हो (च) और हे (अनवद्य) प्रशंसायुक्त! (वशः) कामना करते हुए आप (अभिष्ट्रये) चाहे हुए पदार्थ की प्रप्ति के लिये (वाजिनम्) प्रशंसित ज्ञानवान् के (चित्) समान (तम्) उसको (सद्यः) शीघ्र (करः) सिद्ध करें वा हे (तूतुजान) शीघ्र कार्यों के कर्त्ता (अनवद्य) प्रशंसित गुणों से युक्त! (सः) सो

आप (अस्माकम्) हम (वेधसाम्) धीर बुद्धिवालों के (न) समान (वेधसाम्) बुद्धिमानों की (इमाम्) इसे (वाचम्) उत्तम शिक्षायुक्त वाणी को सिद्ध करें अर्थात् उसको उपदेश करें॥१॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो विद्वान् जन सब मनुष्यों को विद्या और विना आहे गुणों में प्रवृत्त कराते हैं, वे सब ओर से चाहे हुए पदार्थों की सिद्धि कर सकते हैं॥१॥

पुनर्विद्वांसः कीदृशा भवन्तीत्याह॥

फिर विद्वान् कैसे होते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है।

स श्रुंधि यः स्मा पृतंनासु कासुं चिद् दुक्षाय्यं इन्द्र भरंहृतये नृभिरस् प्रदूतिये नृभिः।

यः शूरैः स्वर्ःसनिता यो विप्रैर्वाजं तस्ता।

१४२४

तमीशानासं इरधन्त वाजिनं पृक्षमत्यं न वाजिनंम्॥२॥

सः। श्रुष्ट्रि। यः। स्म्। पृतंनासु। कासुं। चित्। द्वक्षाय्यः। इन्द्रा भरऽहूत्र्ये नृऽभिः। असिं। प्रऽतूर्तये। नृऽभिः। यः। श्रूरैः। स्वर्थरिति स्वः। सिनंता। यः। विष्रैः। वार्जम्। तस्ता। तभू। ईशानासः। इर्धन्तः। वार्जिनम्। पृक्षम्। अत्यम्। न। वार्जिनम्। २॥

पदार्थ:-(स:) सेनेशः (श्रुधि) शृणु (य:) (स्म) एवं। मत्र निपातस्य चेति दीर्घः। (पृतनासु) सेनासु (कासु) (चित्) अपि (दक्षाच्यः) यो राजकर्मसु प्रविणः (इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त (भरहूतये) भराणां पालकानां हूतये स्पर्द्धायै (नृभिः) नायकैः (असि) (प्रतृत्तेष) सद्योऽनुष्ठानाय (नृभिः) नायकैः (यः) (प्रूरैः) निर्भयैः (स्वः) सुखम् (सनिता) संविभाजकः (यः) (विप्रैः) मेधाविभिः (वाजम्) विज्ञानम् (तस्ता) प्लविता (तम्) (ईशानासः) स्मर्थः (इप्रधन्त) ये इरान् इळान् प्रेरकान् दधित ते इरधास्त इवाचरन्तु (वाजिनम्) विज्ञानवन्तम् (प्रक्षम्) सुखे सचकम् (अत्यम्) व्याप्तिशीलम् (न) इव (वाजिनम्) अश्वम्॥२॥

अन्वयः – हे इन्द्र सेनेश ! सिस्त्वं प्रतूर्तिये निर्भारव नृभिर्भरहूतये कासु चित्पृतनासु दक्षाय्योऽसि यस्त्वं शूरै: सिनता यो विप्रैर्वाजं तरुता वाजिनभत्यं नेव पृक्षं वाजिन धरिस तं त्वामीशानास इरधन्त स स्मैव सर्वस्य न्यायं श्रुधि॥२॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कारः । ये विद्वद्भिन्यीयाधीशैः सह राजधर्मं नयन्ति ते प्रजास्वानन्दप्रदा भवन्ति॥२॥

पदार्थ: हैं (इन्द्र) एएम ऐश्वर्ययुक्त सेनापित! (यः) जो आप (प्रतूर्त्तये) शीघ्र आरम्भ करने के लिये (नृभिः) मुख्य अग्रगन्ता मनुष्यों के समान (नृभिः) अपने अधिकारी कामचारी मनुष्यों से (भरहूतये) दूसरों की पालना करनेवाले राजजनों की स्पर्धा अर्थात् उनकी हार करने के लिये (कासु, चित्) किहीं (पृतनासु) सेनाओं में और (दक्षाय्यः) राजकामों में अति चतुर (असि) हो वा (यः) जो आप (श्रूरेः) निडर शूरवीरों के साथ (स्वः) सुख को (सिनता) अच्छे बांटनेवाले वा (यः) जो (विग्रैः) धार बुद्धिषालों के साथ (वाजम्) विशेष ज्ञान को (तस्ता) पार होनेवाले (वाजिनम्) विशेष ज्ञानवान्

अष्टक-२। अध्याय-१। वर्ग-१६-१७

मण्डल-१। अनुवाक-१९। सूक्त-१२९ G & Service Control of the Control o

(अत्यम्) व्याप्त होनेवाले के (न) समान (पृक्षम्) सुखों को सीचनेंवाले (वाजिनम्) घोड़े को धारण करते हो (तम्) उन आपको (ईशानासः) समर्थ जन (इरधन्तः) जो प्रेरणा करनेवालों क्रो धारण करते उनके जैसा आचरण करें अर्थात् प्रेरणा दें और (सः) (स्म) वही आप सबके न्याय को (शुधि) सुने॥२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो विद्वान् और न्यायाधीशों के स्रार्थ राजधर्म को प्राप्त करते, वे प्रजाजनों में आनन्द को अच्छे प्रकार देनेवाले होते हैं॥२॥

पुनः के जगदुपकारका भवन्तीत्याह॥

फिर कौन संसार का उपकार करनेवाले होते हैं, इस विषय को अग्लि मन्त्र में केहा है।।

दुस्मो हि ष्मा वृष्णुं पिन्वसि त्वचं कं चिद्यावीर्रहं शूर् मर्त्यं परिकृणक्षि मर्त्यम्। इन्द्रोत तुभ्यं तिह्ववे तदुद्राय स्वयंशसे।

मित्रायं वोचं वंरुणाय सुप्रर्थः सुमृळीकायं सुप्रर्थः।।३॥

दुस्मः। हि। स्मा वृषणम्। पिन्वसि। त्वचंम्। कम्। चित् सार्वीः) अररुम्। श्रूर्। मर्त्यम्। प्रिऽवृणिक्षं। मर्त्यम्। इन्द्रं। उता तुभ्यम्। तत्। द्विवे। तत्। कृद्रायं। स्वऽयशसे। मित्रया बोच्म्। वर्षणाय। सुऽप्रथं:। सुऽमृळीकार्य। सुऽप्रथं:॥३॥

पदार्थ:-(दस्म:) शत्रूणामुपक्षयिता (हि) यतः (प्रम) एव। अत्र निपातस्य चेति दीर्घः। (वृषणम्) विद्यावर्षकम् (पिन्वसि) सेवसे (त्वचम्) आच्छादकम् (कम्) (चित्) अपि (यावीः) अयावीः पृथक् करोषि (अरुक्म्) प्रापकम् (श्रूर) शत्रुहिस्म् (मन्यम्) मनुष्यम् (पित्वृणक्षि) सर्वतस्त्यजिस (मर्त्यम्) मनुष्यमिव (इन्द्र) सभेश (उत) अपि (तृभ्यम्) (तत्) (दिवे) कामयमानाय (तत्) (रुद्राय) दुष्टानां रोदियत्रे (स्वयशसे) स्वकीयं यक्षः कीर्चियस्य तस्मै (मित्राय) सुहृदे (वोचम्) उच्याम् (वरुणाय) वराय (सप्रथः) प्रथसा विस्तारेण युक्तम् (सुमृळीकाय) सुष्टु सुखकराय (सप्रथः) सप्रसिद्धिः॥३॥

अन्वय:-हे शूरेन्द्र हि यतो द्रस्मस्त्वं यं कञ्चित् त्वचं यावीर्वृषणमरहं मर्त्यमिव मर्त्यम् परिवृणिक्षि पिन्वस्यतस्तस्मै स्वयशसे पिज्ञान् तुभं च तद्वोचं दिवे हद्राय वहणाय सुमृळीकाय सप्रथ इव सप्रथोऽहं तदुत स्म वोचम्॥३॥

भावार्थः-अन्न वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये मनुष्याः सर्वेभ्यो मनुष्येभ्यो मित्रभावेन सत्यमुपदिश्रन्ति भूर्मं सेवन्ते ते परमसुखप्रदा भवन्ति॥३॥

पदार्थ: है (शूर) शत्रुओं को मारनेवाले (इन्द्र) सभापति! (हि) जिस कारण (दस्मः) शत्रुओं को विनाशनहारे आप जिस (कञ्चित्) किसी (त्वचम्) धर्म के ढांपनेवाले को (यावीः) पृथक् करते और (वृषणम्) विद्यादि गुणों के वर्षाने (अरुक्) वा दूसरे को उनकी प्राप्ति करानेवाले (मर्त्यम्) मनुष्य के

समान (मर्त्यम्) मनुष्य को (परिवृणक्षि) सब ओर से छोड़ते स्वतन्त्रता देते वा (पिन्विसि) उसका सैवन करते हैं, इस कारण उस (स्वयशसे) स्वकीर्त्ति से युक्त (मित्राय) सबके मित्र के लिये वा (तुभ्यम्) आपके लिये (तत्) उस व्यवहार को (वोचम्) मैं कहूं वा (दिवे) कामना करने (रुद्राय) दुष्टें को स्लाने (वरुणाय) श्रेष्ठ धर्म आचरण करने (सुमृळीकाय) और उत्तम सुख करनेवाले के लिये (सप्रथः) सब प्रकार के विस्तार से युक्त मनुष्य के समान (सप्रथः) प्रसिद्धि अर्थात् उत्तम कीर्तियुक्त (तत्) उस उक्त आप के उत्तम व्यवहार को (उत्त) तर्क-वितर्क से (स्म) ही कहूं॥३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य सब महुष्यों के लिये मित्रभाव से सत्य का उपदेश करते वा धर्म का सेवन करते, वे परम सुख के देनेवाले हुनेते हैं।।३॥

पुनर्मनुष्यैः कैः सह किं कर्त्तव्यमित्याह॥

फिर मनुष्यों को किनके साथ क्या करना चाहिये, इस विषय की अभले मुन्त्र में कहा है।।

अस्माकं व इन्द्रमुश्मसीष्टये सर्खायं विश्वायं प्रासहं सुजं वाजेषु प्रासहं युजम्। अस्माकं ब्रह्मोतयेऽवां पृत्सुषु कासुं चित्।

नुहि त्वा शत्रु: स्तरंते स्तृणोषि यं विश्वं शत्रुं स्तृणीषि यम्॥४॥

अस्मार्कम्। वः। इन्द्रम्। उश्मिष् । इष्ट्रये। सख्यम्। बिश्चेऽआयुम्। प्रऽसहंम्। युर्जम्। वाजेषु। प्रऽसहंम्। युर्जम्। युर्जम्। अत्रये। अवं। पृत्सुषुं। कास्र्वा चित्। नृह्गि त्वा। शर्त्रुः। स्तरते। स्तृणोषि। यम्। विश्वम्। शर्त्रुम्। स्तृणोषि। यम्॥४॥

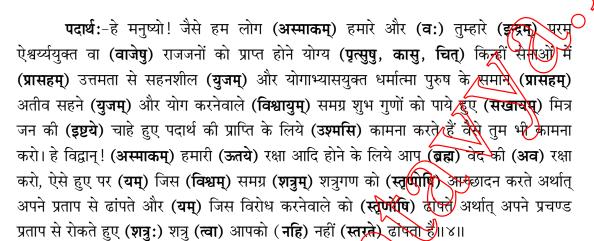
पदार्थ:-(अस्माकम्) (व:) युक्मिकम् (इन्द्रम्) परमैश्वर्यम् (उश्मिस्) कामयेमिह (इष्ट्रये) इष्टप्राप्तये (सखायम्) मित्रम् (विश्वायुम्) प्राप्तस्मग्रेश्वर्भगुणम् (प्रासहम्) प्रकृष्टतया सहनशीलम् (युजम्) योगयुक्तम् (वाजेषु) राजजनैः प्राप्तव्येषु (प्रासहम्) अतीवसोढारम् (युजम्) योक्तारम् (अस्माकम्) (ब्रह्म) वेदम् (ऊतये) रक्षाद्याय (अव) रक्षा अत्र द्वयचोऽतस्तिङ इति दीर्घः। (पृत्सुषु) संग्रामेषु। पृत्सुरिति संग्रामनामसु पठितम्। (निष्ठं र १७) (क्रासु) (चित्) (निह) (त्वा) त्वाम् (श्रृतः) (स्तरते) स्तृणोत्याच्छादयित। अत्र व्याद्ययेन श्राप्। (स्तृणोषि) आच्छादयिस (यम्) (विश्वम्) समग्रम्। (श्रृतुम्) विरोधिनम् (स्तृणोषि) आच्छादयस (यम्)॥४॥

अन्वयः - ह्रे मनुष्या! चथा वयमस्माकं वो युष्माकं चेन्द्रं परमैश्वर्य्ययुक्तं वाजेषु पृत्सुषु कासु चित् प्रासहं युजिमव प्रासहं युजिमव प्रासहं युजिमव प्रासहं युजिमव प्रासहं विश्वरां सखायिमष्टय उश्मिस तथा यूयमिप कामयध्वम्। हे विद्वन्नस्माकमूतये त्वं ब्रह्माऽव। एवं सित यं विश्वं स्तृणोषि यं चे विशोधनं स्तृणोषि स शत्रुस्त्वा निहं स्तरते॥४॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। मनुष्यैर्यावच्छक्यं तावद्बहुमित्राणि कर्तुं प्रयतितव्यम्। परन्तुं नाऽधार्मिकाः सखायः कार्य्याः न च दुष्टेषु मित्रता समाचरणीया। एवं सित शत्रूणां बलं नैव

अष्टक-२। अध्याय-१। वर्ग-१६-१७

मण्डल-१। अनुवाक-१९। सूक्त-१२९



भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्ट्रों को चाहित्रें कि जितना सामर्थ्य हो सके उतने से बहुत मित्र करने को उत्तम यत्न करें, परन्तु अधर्मी दुष्ट जन मित्रें न करने चाहिये और न दुष्टों में मित्रपन का आचरण करना चाहिये, ऐसे हुए पर शत्रुओं का बल मूही बढ़ता है॥४॥

कोऽत्र सुखदायी भवतीत्याहा।

इस संसार में कौन सुख का देनेवाला होता है, इस ब्रिषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

नि षू नुमार्तिमतिं कर्यस्य चित् तेजिष्ठाभिर्राणिभिनोतिभिरुयाभिरुयोतिभिः।

नेषि णो यथा पुरानेनाः शूर प्रिका

विश्वानि पूरोरपं पर्षे वहिरासा वहिनी अच्छ।।५॥१६॥

नि। सु। नुम्। अर्तिऽमित्सः कर्यस्य। चित्। तेर्जिष्ठाभिः। अरिणिभिः। न। ऊतिऽभिः। उग्राभिः। उग्राभिः। उग्राभिः। उग्राभिः। जेतिऽभिः। नेषि। नः। यथा। पुरा। अनेनाः। श्रूर्। प्रत्येसे। विश्वानि। पूरोः। अर्पः। पूर्षि। विह्वः। आसा। विह्वः। नः। अच्छी।। ५॥

पदार्थ:-(नि) (सु) शोधने (नम) नम्रो भव (अतिमितम्) अतिशयिता चासौ मितश्च ताम् (कयस्य) विज्ञातुः (चित्) अपि (तेजिष्ठाभिः) अतिशयेन तेजस्विनीभिः (अरिणिभिः) सुखप्रापिकाभिः (न) इव (ऊतिभिः) रक्षणाद्याभिः (उग्राभिः) तीव्राभिः (उग्र) तेजस्विन् (ऊतिभिः) रक्षणादिभिः (नेषि) (नः) अस्मान् (अथा) येन प्रकारेण (पुरा) पूर्वम् (अनेनाः) अविद्यमानमेनः पापं यस्य सः (शूर) दुष्टहिंसक् (मन्थसे) जानासि (विश्वानि) सर्वाणि (पूरोः) विदुषो मनुष्यस्य। पूरव इति मनुष्यनामसु पिठतस्। (तिघं०२.३) (अप) (पिषं) सिञ्चसि (विद्वः) वोढा (आसा) अन्तिके (विद्वः) वोढा (नः) अस्मान् (अच्छ) शोभने॥५॥

अन्वय:-हे उग्र शूर विद्वंस्त्वं तेजिष्ठाभिररणिभिरुग्राभिरूतिभिर्नोतिभिरतिमितं विनम। यथऽनेनाः पुरा नयित तथा नो मन्यसे सुनेष्यासा विह्निरिव नोऽच्छ पिष कयस्य पुरोश्चित् विह्नस्त्वं विश्वानि दुःखान्यपनेषि स त्वमस्माभिः सेवनीयोऽसि॥५॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। यो मनुष्याणां बुद्धिं सुरक्षया वर्द्धयित्वा पापेष्वश्रद्धां वन्तयति स्र एव सर्वान् सुखानि नेतुं शक्नोति॥५॥

पदार्थ:-हे (उग्र) तेजस्वी (श्रूर) दुष्टों को मारनेवाले विद्वान्! (तेजिष्ठाभिः) अतीव प्रतापयुक्त (अरिणिभिः) सुख देनेवाली (उग्राभिः) तीव्र (ऊतिभिः) रक्षा आदि क्रियाओं (ने) के समान (ऊतिभिः) रक्षाओं से (अतिमितम्) अत्यन्त विचारवाली बुद्धि को (नि, नम) नमो अर्थात् नम्रता के साथ वर्तो वा (यथा) जैसे (अनेनाः) पापरहित मनुष्य (पुरा) पहिले उत्तम कामों की प्राप्त कराते वा (आसा) अपने को आप (मन्यसे) जानते और (सु, नेषि) सुन्दरता से अच्छे कामों को प्राप्त कराते वा (आसा) अपने पास (विद्वः) पहुंचानेवाले के समान (नः) हम को (अच्छ, पि) अच्छे सींचते वा (कयस्य) विशेष ज्ञान देने और (पूरोः) पूरे विद्वान् मनुष्य के (चित्) भी (विद्वः) पहुंचानेवाले आप (विश्वानि) समग्र दु:खों को (अप) दूर करते हो सो आप हम लोगों के सेवल करूने योगुन हो॥५॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो मनुष्यों की मुद्धि को उत्तम रक्षा से बढ़ा कर पाप कर्मों में अश्रद्धा उत्पन्न करता है, वहीं सभी को सुख पहुंचा सकता है॥५॥

केभ्यो बिद्या देवेत्याहै॥

किनके लिये विद्या देनी चाहिय, इस विष्रय को अगले मन्त्र में कहा है।।

प्र तद्वीचेयं भव्यायेन्देवे हव्यो न य इसवान्मनम् रेजीत रक्षोहा मन्म रेजीत। स्वयं सो अस्मदा निदो व्यारकोत दुर्मितम्।

अवं स्रवेद्घशंसोऽवत्रुम्व क्षुद्रीस्व स्रवेत्॥६॥

प्रा तत्। वोचेयम्। भव्यया इन्देवे। हव्यः। न। यः। इषऽवान्। मन्मी रेर्जित। रृक्षुःऽहा। मन्मी रेर्जित। स्वयम्। सः। अस्मत्। अति विदः। वृषैः। अजेत्। दुःऽमृतिम्। अवं। स्रवेत्। अघऽशंसः। अवऽत्रम्। अवं। क्षुद्रम्ऽईव। स्रवेत्॥ ६॥

पदार्थ: (प्र) (तत्) उपदेश्यं ज्ञानम् (वोचेयम्) उपदिशेयम् (भव्याय) यो विद्याग्रहणेच्छुर्भविति तस्मै (इन्दवे) आद्राप् (हव्यः) होतुमादातुमर्हः (न) इव (यः) (इषवान्) ज्ञानवान् (मन्म) मन्तुं योग्यं ज्ञानम् (रेजित) अपार्जित (रक्षोहा) दुष्टगुणकर्मस्वभावहन्ता (मन्म) ज्ञातुं योग्यम् (रेजित) उपार्जित (स्वयम्) (सः) (अस्मत्) (आ) (निदः) निन्दकान् (वधैः) हननैः (अजेत) प्रक्षिपेत्। अत्र व्यव्यवनस्योपदम्। (दुर्मितम्) दुष्टा चासौ मितश्च ताम् (अव) वैपरीत्ये (स्रवेत्) गमयेत् (अघशंसः)

अष्टक-२। अध्याय-१। वर्ग-१६-१७

मण्डल-१। अनुवाक-१९। सूक्त-१२९



योऽघं पापं शंसित सः (अवतरम्) अवाङ्मुखम् (अव) (क्षुद्रमिव) यथा क्षुद्राऽऽशयम् (ऋवेत्) दण्डेयत्॥६॥

अन्वय:-अहं स्वयं यथा हव्यो रक्षोहा मन्म रेजित न य इषवान् मन्म रेजित तद्भव्यायेन्दवे प्रवोचेषम्। योऽस्मत् शिक्षां प्राप्य वधैर्निदो दुर्मितं चाजेत सोऽवतरं क्षुद्रमिवावस्रवेत। योऽघशंसोऽवास्रवेत् तं वाढं दण्ड्रपेत्॥६॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। विद्वान् ये शुभगुणकर्मस्वभावा विद्यार्थिन: सन्ति सभ्यः प्रीत्या विद्या प्रदद्यात्। निन्दकान् चोरान् निस्सारयेत् स्वयमपि सदा धार्मिकः स्यात्॥६॥

पदार्थ:-मैं (स्वयम्) आप जैसे (हव्यः) स्वीकार करने यो (स्वाह) दुष्ट गुण, कर्म, स्वभाववालों को मारनेवाला (मन्म) विचार करने योग्य ज्ञान का (रेज़िंत) संग्रह करते हुए के (न) समान (यः) जो (इषवान्) ज्ञानवान् (मन्म) जानने योग्य व्यवहार को (रेज़िंत) संग्रह करता है (तत्) उस उपदेश करने योग्य ज्ञान को (भव्याय) जो विद्याग्रहण की इच्छा करनेवालों होता है उस (इन्दवे) आर्द्र अर्थात् कोमल हृदयवाले के लिये (प्र, वोचेयम्) उत्तमला से कहूं जो (अस्मत्) हमसे शिक्षा पाकर (वधे:) मारने के उपायों से (निदः) निन्दा करनेहारों और (दुर्मितिम्) दुष्ट मितवाले जन को (अजेत) दूर करे (सः) वह (अवतरम्) अधोमुखी लिज्जित मुखवाल पुरुष को (श्रुद्रिमिव) तुच्छ आशयवाले के समान (अव, स्रवेत्) उसके स्वभाव से विपरीत दण्ड हिंचे और (अध्रांसः) जो पाप की प्रशंसा करता वह चोर, डाकू, लम्पट, लवाड़ आदि जन (अव, आ, स्रवेत्) अपने स्वभाव से अच्छे प्रकार उलटी चाल चले॥६॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमूलङ्कार है। अध्यापक विद्वान् जो शुभ, गुण, कर्म स्वभाववाले विद्यार्थी हैं, उनके लिये प्रीति से विद्याओं को देवे और निन्दा करनेहारे चोरों को निकाल देवे और आप भी सदैव धर्मात्मा हो॥६॥

पुनर्मात्रादिभिः सन्तानाः कथमुपदेष्टव्या इत्याह॥

फिर माता आदि की सन्तान केस उपदेशों से समझाने चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

वनेम तद्भीत्रया क्तिन्त्यां वनेमं र्यिं रियवः सुवीर्यं रणवं सन्तं सुवीर्यम्।

दुर्मन्मानं सुमन्नुंभिरेमिषा पृंचीमहि।

आ सुत्याभिरिन्द्रं द्युम्नहूरितिभिर्यजेत्रं द्युम्नहूरितिभि:॥७॥

वनेमं। तत्। होत्रेया। चितन्त्यां। वनेमं। रियम्। रिय्उवः। सुऽवीर्यम्। रेण्वम्। सन्तंम्। सुऽवीर्यम्। दुःऽमन्मानम्। सुमन्तुंऽभिः। आ। ईम्। इषा। पृचीमिह्। आ। सत्याभिः। इन्द्रंम्। द्युम्नहूंतिऽभिः। यजेत्रम्। द्युम्नहूंतिऽभिः॥७॥

पदार्थ:-(वनेम) संभजेम (तत्) विज्ञानम् (होत्रया) आदातुमर्हया (चितन्त्या) बुद्धिमत्या (चर्नम) विभज्य दद्याम (रियम्) श्रियम् (रियवः) श्रीमन् (सुवीर्यम्) श्रेष्ठपराक्रमम् (रण्वम्) इपदेशकम् (सन्तम्) वर्त्तमानम् (सुवीर्यम्) विद्याधर्माभ्यां सुष्ठ्वात्मबलम् (दुर्मन्मानम्) यो दुष्टं मन्यते स दुर्मन् यस्ते मिनाति तम् (सुमन्तुभिः) शोभनविद्यायुक्तैः (आ) समन्तात् (ईम्) प्राप्तव्यया (इमा) इच्छया (पृचीमिह) सम्बध्नीयाम (आ) (सत्याभिः) सत्याचरणान्विताभिः (इन्द्रम्) परमैश्वर्यम् (द्युम्नहूर्तिभिः) द्युम्नस्य धनस्य यशसो वाऽऽह्वानैः (यजत्रम्) संगन्तव्यम् (द्युम्नहृतिभिः)॥७॥

अन्वयः-हे रियवो! यथा वयं होत्रया चितन्त्या यद् ज्ञानं वनेम सुक्षेये रियं सन्तं रण्वं सुवीर्यं च वनेम सुमन्तुभिरीमिषा च दुर्मन्मानमापृचीमिह द्युम्नहूर्तिभिर्यजत्रमिव सत्याभिद्युम्नहूर्तिभिरिन्द्रमापृचीमिह तथा तदेतत्सर्वे त्वं वन पृड्क्ष्व॥७॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। मातार्षित्रीद्विर्विद्वर्वा स्वसन्ताना इत्थमुपदेष्टव्या यान्यस्माकं धर्म्याणि कर्माणि तान्याचरणीयानि नो इतस्राणि एवं सत्याचरणै: परोपकारेणैश्वर्यं सततमुत्रेयम्॥७॥

पदार्थ:-हे (रियव:) धनवान्! जैसे हम लोग (होत्रया) ग्रहण करने योग्य (चितन्त्या) चेतानेवाली बुद्धिमती (=बुद्धिमानी) से जिस ज्ञान का (वनेम) अच्छे प्रकार सेवन करें वा (सुवीर्यम्) श्रेष्ठ पराक्रमयुक्त (रियम्) धन तथा (स्वनम्) वर्तभान (रण्वम्) उपदेश करनेवाले (सुवीर्य्यम्) विद्या और धर्म से उत्तम आत्मा के बल क्ल (वनेम्) सेवन करें वा (सुमन्तुभि:) उत्तम विद्यायुक्त पुरुषों और (ईम्) पाने योग्य (इषा) इच्छा से (दुर्मन्मान्म्) दुष्ट जन मान करनेहारे को जो मारनेवाला उसका (आ, पृचीमिह) अच्छे प्रकार सम्बन्ध करें तथा (द्युमनहृतिभि:) धन वा यश की बातचीतों से (यजत्रम्) अच्छे प्रकार सङ्ग करने योग्य व्यवहार के स्थान (सत्याभि:) सत्य आचरणयुक्त (द्युमनहृतिभि:) धनविषयक बातों से (इन्द्रम्) परम (श्रव्य का (आ) अच्छे प्रकार सम्बन्ध करें वैसे (तत्) उक्त समस्त व्यवहार को आप भजो और उससे सम्बन्ध करें॥।।।

भावार्थ: इस मन्त्रिमें वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। माता और पिता आदि को वा विद्वानों को चाहिये कि अपने सन्तानों को इस प्रकार उपदेश करें कि जो हमारे धर्म के अनुकूल काम हैं, वे आचरण करने योग्य किन्तु और काम आचरण करने योग्य नहीं, ऐसे सत्याचरणों और परोपकार से निरन्तर ऐश्वर्य्य की उन्नति करनी चाहिये॥७॥

पुनर्मनुष्याः किं कृत्वा कीदृशा भवेयुरित्याह॥

अष्टक-२। अध्याय-१। वर्ग-१६-१७

मण्डल-१। अनुवाक-१९। सूक्त-१२९

फिर मनुष्य क्या कर के कैसे हों, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

प्रप्ना वो अस्मे स्वयंशोभिरूती परिवृर्ग इन्द्रों दुर्मतीनां दरीमन् दुर्मतीनाम्। स्वयं सा रिष्यध्ये या न उपेषे अत्रैः।

हुतेमसम्भ वंक्षति क्षिप्ता जूर्णिर्न वंक्षति॥८॥

प्रऽप्रं। वः। अस्मे इति। स्वयंशःऽभिः। ऊती। प्रिऽवर्गे। इन्द्रंः। दुःऽमृतीनाम्। दर्शेमेत्। दुःऽमृतीनाम्। स्वयम्। सा। रिष्यध्ये। या। नः। उपुऽर्ड्षे। अत्रैः। हृता। ईम्। असत्। न। वृक्षृति। क्षिप्ता। जूर्णिः। न। वृक्षृति॥८॥

पदार्थ:-(प्रप्रा) अत्र पादपूरणाय द्वित्त्वम्। निपातस्य चेति द्वीघैं:। (व्य) युष्मभ्यम् (अस्मे) अस्मभ्यम् (स्वयशोभि:) स्वकीयाभि: प्रशंसाभि: (ऊती) ऊत्या रक्षया (परिवर्णे) परितः सर्वतः सम्बन्धे (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् (दुर्मतीनाम्) दुष्टानां मनुष्याणाम् (दरीमन्) अतिशिषेने व्विदारणे। अत्रान्येषामिष दृश्यत इत्युपधादीर्घः। सुपामिति सप्तम्या लुक्। (दुर्मतीनाम्) दृष्टाकारिष्णं मनुष्याणाम् (स्वयम्) (सा) (रिषयध्ये) रिषयितुम् (या) सेना (नः) अस्मान् (उपेषे) (अत्रैः) अत्वन्तीत्याततायिनस्तान् गच्छन्तीत्यत्राः शत्रवस्तैः (हता) (ईम्) सर्वतः (असत्) भवेत् (न) निषेधे (वक्षति) उच्यात् (क्षिप्ता) प्रेरिता (जूणिः) शीघ्रकारिणी (न) इव (वक्षति) प्राप्ता भवतु॥८॥

अन्वय:-हे मित्राणि! वोऽस्मे इन्द्रो दुर्मतीन्। परिवर्गे दुर्मृतीनां दरीमंश्च स्वयशोभिरूती प्रप्र वक्षति या सेना न उपेषेऽत्रै: क्षिप्ता सा रिषयध्यै प्रवृत्ता स्वयमीं हतासूत् किन्तु सा त्रूणिर्न न वक्षति॥८॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। ये दुष्ट्रमं विद्यार्यं सत्सङ्गेन कीर्तिमन्तो भूत्वाऽतिप्रशंसितसेनया प्रजा रक्षन्ति ते स्वैश्वर्य्या जायन्ते॥८॥

पदार्थ:-हे मित्रो! (व:) तुम लोगों के लिये (अस्मे) और हमारे लिये (इन्द्र:) ऐश्वर्यवान् विद्वान् (दुर्मतीनाम्) दुष्ट बुद्धिवाले दूष्ट मनुष्यों के (परिवर्गे) सब ओर से सम्बन्ध में और (दुर्मतीनाम्) दुष्ट बुद्धिवाले दुराचारी मनुष्यों के (दरीमन्) अतिशय कर विदारने में (स्वयशोभि:) अपनी प्रशंसाओं और (ऊती) रक्षा से (प्रप्र, वश्यति) उत्तमता से उपदेश करे (या) जो सेना (न:) हम लोगों के (उपेषे) समीप आने के लिये (अत्रे:) आततायी शत्रुजनों ने (क्षिप्ता) प्रेरित की अर्थात् पठाई (भेजना) हो (सा) वह (रिषयध्ये) दूसरों की हनने कराने के लिये प्रवृत्त हुई (स्वयम्) आप (ईम्) सब ओर से (हता) नष्ट (असत्) हो, किन्तु वह (जूणि:) शीघ्रता करनेवाली के (न) समान (न) न (वक्षित) प्राप्त हो अर्थात् शीघ्रता करने ही ने पावे, किन्तु तावत् नष्ट हो जावे॥८॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो दुष्टों के सङ्ग को छोड़ सत्सङ्ग से कीर्त्तिमान् होकर असीव प्रशिक्ति सेना से प्रजा की रक्षा करते हैं, वे उत्तम ऐश्वर्यवाले होते हैं॥८॥ १४३२

पुनरुपदेशकै: कथं वर्त्तितव्यमित्याह॥

ऋग्वेदभाष्यम्

फिर उपदेश करनेवालों को कैसे वर्ताव रखना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है।

त्वं न इन्द्र राया परीणसा याहि पृथाँ अनेहसा पुरो याह्यरक्षसा।

सर्चस्व नः पराक आ सर्चस्वास्तमीक आ।

पाहि नो दूरादाराद्रभिष्टिभिः सदा पाह्यभिष्टिभिः॥ ९॥

त्वम्। नः। इन्द्रा राया। परीणसा। याहि। पृथा। अनेहस्रा। पुरः। याहि। अरक्षसा। सर्वस्व। न्। पुराके। आ। सर्वस्व। अस्तुम्ऽईके। आ। पाहि। नः। दूरात्। आरात्। अभिष्टिऽभिः। सदा। पृद्धि। अभिष्टिऽभिः॥९॥

पदार्थ:-(त्वम्) (नः) अस्मान् (इन्द्र) विद्यैश्वर्यवन् (राया) श्रिया (रिरिण्स) बहुना। परीणस इति बहुनामसु पठितम्। (निघं०३.१) (याहि) प्राप्नुहि (पथा) मार्गुण (अनेहस्म) अहिंसामयेन धर्मेण (पुरः) पुरो वर्त्तमानान् (याहि) प्राप्नुहि (अरक्षसा) अविद्यमानानि दुष्टानि रक्षांसि यस्मिंस्तेन (सचस्व) समवेहि (नः) अस्मान् (पराके) पराकइति दूरनामसु पठितम्। (चिघं०३,२६) (आ) समन्तात् (सचस्व) समवेहि प्राप्नुहि (अस्तमीके) समीपे (आ) समन्तात् (पाहि) (नः) अस्मान् (दूरात्) (आरात्) समीपात् (अभिष्टिभिः) अभितः सर्वतो यजन्ति संगच्छन्ति याभिस्ताभिः (सदा) सर्वस्मिन् काले (पाहि) रक्ष (अभिष्टिभिः) अभीष्टाभिः क्रियाभिः॥९॥

अन्वयः – हे इन्द्र विद्वँस्त्वं परीणसा राया नोऽस्मान् श्राह्यानेहसाऽरक्षसा पथा पुरो याहि नः पराके आसचस्व। अस्तमीके समीपेऽस्मानासचस्व। अभिष्टिभिर्द्रादाराच्यानः श्राहि। स्रदाऽभिष्टिभिरस्मान् पाहि॥९॥

भावार्थ:-उपदेशकैर्धर्म्यं मार्गे प्रवृत्य सर्वोन् प्रवर्त्त्योपदेशद्वारा समीपस्थान् दूरस्थाँश्च संगत्य भ्रमोच्छेदनेन सत्यविज्ञानप्रापणेन च सर्वे सतत् संग्रेक्षणीया:॥९॥

पदार्थ:-हे (इन्द्र) विद्या जा ऐश्वर्युक्त विद्वान्! (त्वम्) आप (परीणसा) बहुत (राया) धन से (न:) हम लोगों को (याहि) प्राप्त हो और (अनेहस:) रक्षामय जो धर्म उस से (अरक्षसा) और जिसमें दुष्ट प्राणी विद्यमान नहीं उस्म (प्रार्था) मार्ग से (पुर:) प्रथम जो वर्त्तमान उनको (याहि) प्राप्त हो और (न:) हमको (पराके) हर हो भें (आ, सचस्व) अच्छे प्रकार प्राप्त होओ मिलो और (अस्तमीके) समीप में हम लोगों को (आ, प्रचस्व) अच्छे प्रकार मिलो और जो (अभिष्टिभि:) सब ओर से क्रियाओं से सङ्ग करते उन्न (दूरात्) दूर और (आरात्) समीप से (न:) हम लोगों की (पाहि) रक्षा करो और (सदा) सब किथी (अभिष्टिभि:) सब ओर से चाही हुई क्रियाओं से हम लोगों की (पाहि) रक्षा करो॥९॥

भावार्थ:-उपदेशकों को चाहिये कि धर्म के अनुकूल मार्ग से आप प्रवृत्त हों और सबको प्रवृत्त करा कर अपने उपदेश के द्वारा समीपस्थ और दूरस्थ पदार्थों का सङ्ग कर भ्रम मिटाने और सत्यविज्ञान की प्राप्ति कराने से सबकी निरन्तर अच्छी रक्षा करें॥९॥

अष्टक-२। अध्याय-१। वर्ग-१६-१७

मण्डल-१। अनुवाक-१९। सूक्त-१२९

पुनर्मनुष्याः कीदृशा भवेयुरित्याह॥

फिर मनुष्य कैसे हों, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

त्वं ने इन्द्र गुया तरूषसोुग्रं चित् त्वा महिमा संक्षुदर्वसे महे मित्रं नार्वस्मर ओजिष्टु त्रातुरविता रथुं कं चिदमर्त्य।

अन्यमुस्मद्रिरिषे: कं चिंदद्रिवो रिरिक्षन्तं चिदद्रिव:॥१०॥

त्वम्। नः। इन्द्रः। ग्रायाः। तर्रूषसा। उग्रम्। चित्। त्वाः। मृहिमाः। सुक्षृत्। अवसे। मृहे। मित्रम्। नः। अवसे। ओर्जिष्ठः। त्रातः। अर्वित्रितिः। रथम्। कम्। चित्। अमृत्यः। अन्यम्। अन्यम्। जित्। अद्गिऽवः। रिरिक्षन्तम्। चित्। अद्गिऽवः॥१०॥

पदार्थ:-(त्वम्) (नः) (इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त राजन् (राया) परमलक्ष्म्या (तरूषसा) तरित्त शत्रुबलानि येन तत्तरुषस्तेन (उग्रम्) तीव्रम् (चित्) अपि (त्वा) त्वाप् (मिह्रमा) महतो भावः प्रतापः (सक्षत्) संबध्नीयात् (अवसे) रक्षणाद्याय (महे) महते (पित्रमा) स्रुवायम् (न) इव (अवसे) रक्षणाद्याय (ओजिष्ठ) अतिशयेनौजस्विन् (त्रातः) रक्षितः (अवितः) रक्षक (रथम्) रमणीयम् (कम्) सुखकरम् (चित्) अपि (अमर्त्य) कीर्त्या मरणधर्मरहित (अन्यप्) भिन्नम् (अस्मत्) (रिरिषेः) हिन्धि। अत्र बहुलं छन्दसीति शस्य श्लुः। (कम्) (चित्) अपि (अद्विवः) अद्रयो बहवो मेघा विद्यन्ते यस्मिन् सूर्ये तदिव तेजस्विन् (रिरिक्षन्तम्) रेष्टुं हिंसितुमिच्छन्तम् (चित्) इत्र (अद्विवः) बहुशैलराज्ययुक्त॥१०॥

अन्वय:-हे इन्द्र! तरूषसा राया महे जिसे मित्रं जेवावसे यं त्वा महिमा सक्षत् स त्वं चिन्नोऽस्मान् पाहि। हे ओजिष्ठावितरमर्त्य त्रातस्त्वं कं चिद्रथं प्रीप्नुहि। हे अद्रिवस्त्वमस्मत्कञ्चिदन्यं रिरिषे:। हे अद्रिवस्त्वं रिरिक्षन्तमुग्रं चिदिरिषे॥१०॥

भावार्थ:-अयमेव मनुष्पाणां महिमा प्रच्छ्रेष्ठपालनं दुष्टहिंसनं चेति॥१०॥

पदार्थ:-हे (इन्द्र) परमेश्वर्यकृत राजन् (त्वम्) आप (तरूषसा) जिससे शत्रुओं के बलों को पार होते उस काल और (राजा जिसमें से (महे) अत्यन्त (अवसे) रक्षा आदि सुख के लिये वा (मित्रम्) मित्र के (न) समान (अवसे) रक्षा आदि व्यवहार के लिये जिन (त्वा) आप को (मित्रमा) बड़प्पन प्रताप (सक्षेत्) सम्बन्धे अर्थात् मिले सो आप (चित्) भी (न:) हम लोगों की रक्षा करो। हे (ओजिष्ठ) अतीव प्रताप (अवित:) रक्षा करनेवाले (अमर्त्य) अपनी कीर्त्ति कलाप से मरण धर्म रहित (त्रात:) राज्य पालनेहारे! आप (कं, चित्) किसी (रथम्) रमण करने योग्य रथ को प्राप्त होओ। हे (अद्भित:) बहुत मेघोंवाले सूर्य के समान तेजस्वी आप (अस्मत्) हम लोगों से (कं, चित्) किसी

(अन्यम्) और ही को (रिरिषे:) मारो। हे (अद्रिव:) पर्वत भूमियों के राज्य से युक्त आप (रिरिक्षन्तम्) हिंसा करने की इच्छा करते हुए (उग्रम्) तीव्र प्राणी को (चित्) भी मारो ताड़ना देओ॥१०॥

भावार्थ:-मनुष्यों की यही महिमा है जो श्रेष्ठों की पालना और दुष्टों की हिंसा करना।

पुनर्विदुषा किं कर्त्तव्यमस्तीत्याह।।

फिर विद्वानों को क्या करना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

पाहि न इन्द्र सुष्टुत स्त्रिधोऽवयाता सदमिद्दुंर्मतीनां देवः सन्दुंर्मतीनाम्। हन्ता पापस्य रक्षसंस्त्राता विष्रस्य मार्वतः।

अर्धा हि त्वां जिन्ता जीजनद्वसो रक्ष्योहणं त्वा जीजनद्वसो॥ १९॥ १९॥

पाहि। नः। इन्द्र। सुऽस्तुता स्त्रिधः। अवऽयाता। सर्दम्। इत्। दुऽमतीनाम्। देवः। सन्। दुःऽमतीनाम्। हुन्ता। पापस्य। रक्षसः। त्राता। विप्रस्य। माऽवतः। अर्घ। हि। त्वा। जनिता। जीजनत्। वसो इति। रक्षःऽहनम्। त्वा। जीजनत्। वसो इति॥ ११॥

पदार्थ:-(पाहि) (न:) अस्मान् (इन्द्र) सभेश (मुष्टुत) सुष्ट्र) प्रशंसित (स्निध:) दु:खनिमित्तात् पापात् (अवयाता) विरुद्धं गन्ता (सदम्) स्थानम् (इत्) इत् (द्वर्मतीनाम्) दुष्टानां मनुष्याणाम् (देव:) सत्यं न्यायं कामयमानः (सन्) (दुर्मतीनाम्) दुष्ट्वियां मनुष्याणाम् (हन्ता) (पापस्य) पापाचारस्य (रक्षसः) परपीडकस्य (त्राता) रक्षकः (विप्रस्य) मेधाविनो धार्मिकस्य (मावतः) मच्छदृशस्य (अध) आनन्तर्ये (हि) खलु (त्वा) त्वाम् (जिनता) (जीजनत्) जनयेत्। अत्र लुड्यडभावः। (वसो) यः सज्जनेषु वसति तत्संबुद्धौ (रक्षोहणम्) (त्वा) त्वाम् (जीजनत्) जनयेत् (वसो) विद्यासु वासियतः॥११॥

अन्वय:-हे सुष्टुतेन्द्रावयाता देव: सन् दुर्मतीचं सदिमव दुर्मतीनां प्रचारं हत्वा स्निधो नोऽस्मान् पाहि। हे वसो जनिता! यं रक्षोहणं त्वा जीजनत्। हे वस्रों! यं त्या रक्षकं जीजनत् स हि त्वमध पापस्य रक्षसो हन्ता मावतो विप्रस्य त्राता भव॥११॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। इदमेव विदुषां प्रशंसनीयं कर्माऽस्ति यत् पापस्य खण्डनं धर्मस्य मण्डनमिति न केतिऽपि दुष्टस्य सङ्गः श्रेष्ठसङ्गत्यागश्च कर्त्तव्य इति॥११॥

अत्र विद्वद्राजधर्मवर्णभादेतत्सूक्तोक्तार्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह संगतिरस्तीति वेद्यम्॥

∠इत्येकोन्त्रिंदुत्तरं शततमं १२९ सूक्तं सप्तदशो १७ वर्गश्च समाप्तः॥

पदार्श्व: हे (षुष्टुत) उत्तम प्रशंसा को प्राप्त (इन्द्र) सभापित! (अवयाता) विरुद्ध मार्ग को जाते और (देवर) सन्य स्थाय की कामना अर्थात् खोज करते (सन्) हुए (दुर्मतीनाम्) दुष्ट मनुष्यों के (सदम्) स्थान के (इत्) समान (दुर्मतीनाम्) दुष्ट बुद्धिवाले मनुष्यों के प्रचार का विनाश कर (स्निधः) दुःख के हेतु पाप से (तः) हम लोगों की (पाहि) रक्षा करो। हे (वसो) सज्जनों में वसनेहारे (जनिता) उत्पन्न करेनेहारा पिता, गुरु जिस (रक्षोहणम्) दुष्टों के नाश करनेहारे (त्वा) आपको (जीजनत्) उत्पन्न करे। वा

अष्टक-२। अध्याय-१। वर्ग-१६-१७

मण्डल-१। अनुवाक-१९। सूक्त-१२९

हे (वसो) विद्यों में वास अर्थात् प्रवेश करानेहारे! जिन रक्षा करनेवाले (त्वा) आपको (जीजनत्) उत्पन्न करे सो (हि) ही आप (अथ) इसके अनन्तर (पापस्य) पाप आचरण करनेवाले (रक्षसः) राक्षस् अर्थात् औरों को पीड़ा देनेहारे के (हन्ता) मारनेवाले तथा (मावतः) मेरे समान (विप्रस्य) खुद्धिमान् धर्मात्मा पुरुष की (त्राता) रक्षा करनेवाले हूजिये॥११॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। यही विद्वानों का प्रश्नंसा करने योग्य काम है जो पाप का खण्डन और धर्म का मण्डन करना, किसी को दुष्ट का सङ्ग और श्रेष्ठजन का त्याग न करना चाहिये॥११॥

इस सूक्त में विद्वानों और राजजनों के धर्म का वर्णन होने से इस सूक्त में कहे हुए अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये॥

यह एक सौ उनतीसवाँ १२९ सूक्त और सत्रह्नी ९७ वर्ग समाप्त हुआ॥

एन्द्रेत्यस्य दशर्चस्य त्रिंशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य परुच्छेप ऋषि:। इन्द्रो देवता। १,५ भुरिगष्टि:। २,३,६,९ स्वराडष्टि:। ४,८ अष्टिश्छन्द:। मध्यम: स्वर:। ७ निचृदत्यष्टिश्छन्द;।

गान्धारः स्वरः। १० विराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथ राजप्रजाजनाः परस्परं प्रीत्या वर्त्तेरन्नित्याह॥

अब दश ऋचावाले एक सौ तीसवें सूक्त का आरम्भ है। उसके प्रथम मन्त्र में राजा और प्रजान आपस में प्रीति के साथ वर्त्तें, इस विषय को कहा है।।

एन्द्रं याह्यपं नः परावतो नायमच्छा विदर्थानीव सत्पतिरस्तं राजेब सत्पतिः।

हर्वामहे त्वा व्यं प्रयंस्वन्तः सुते सर्चा।

पुत्रासो न पितरं वाजसातये मंहिष्ठं वाजसातये॥ १॥

आ। इन्द्र। याहि। उप। नः। प्राऽवर्तः। न। अयम्। अच्छं। विद्रश्निरिङ्का सर्वेऽपितः। अस्तेम्। राजांऽइव। सत्ऽपितः। हवांमहे। त्वा। वयम्। प्रयस्वन्तः। सुते। सर्चा। पुत्रासः। ना र्ष्ट्रितरम्। वार्जंऽसातये। मंहिष्ठम्। वार्जंऽसातये॥ १॥

पदार्थ:-(आ) (इन्द्र) परमैश्वर्यवन् (याहि) प्राप्नुहि (उप्) (नः) अस्मानस्माकं वा (परावतः) दूरदेशात् (न) निषेधे (अयम्) (अच्छा) निश्शेषार्थे। अत्र निपातस्य चेति दीर्घः। (विद्यानीव) संग्रामानिव (सत्पितः) सतां धार्मिकाणां पितः। (अस्तम्) पृहस् (राजेव) (सत्पितः) सत्याचाररक्षकः (हवामहे) स्तुमः (त्वा) त्वाम् (वयम्) (प्रयस्वन्तः) बहुप्रयत्पशीलाः (सुते) निष्पन्ने (सचा) समवायेन (पुत्रासः) (न) इव (पितरम्) जनकम् (वाजसातये) युद्धविभागाय (मंहिष्ठम्) अतिशयेन पूजितम् (वाजसातये) पदार्थविभागाय॥१॥

अन्वय:-हे इन्द्र! अयं विद्वशानीकपात्यतस्त्वं नोऽस्मान् परावते नोपायाहि सत्पती राजेव सत्पतिस्त्वं नोऽस्माकमस्तमुपायाहि। प्रयस्वन्तो वयं सचा सते वाजसातये वाजसातये च पुत्रासः पितरं नेव मंहिष्टं त्वाच्छ हवामहे॥१॥

भावार्थ:-अत्रोप्भालुङ्कार: । अर्वे राजप्रजाजना: पितापुत्रविदह वर्त्तित्वा पुरुषार्थिन: स्यु:॥१॥

पदार्थ: -हे (इन्द्र) परमेश्वर्यवान् राजन्! (अयम्) यह शत्रुजन (विद्रथानीव) संग्रामों को जैसे वैसे आकर प्राप्त होता इससे आप (नः) हम लोगों के समीप (परावतः) दूर देश से (न) मत (उपायाहि) आइये, किन्तु विकट से आइये (सत्पितः) धार्मिक सज्जनों का पित (राजेव) जो प्रकाशमान उसके समान (सत्पितः) सत्याचरण की रक्षा करनेवाले आप हमारे (अस्तम्) घर को प्राप्त हो (प्रयस्वन्तः) अत्यन्त प्रयत्नशिल (वयम्) हम लोग (सचा) सम्बन्ध से (सुते) उत्पन्न हुए संसार में (वाजसातये) युद्ध के विभूग के लिये और (वाजसातये) पदार्थों के विभाग के लिये (पुत्रासः) पुत्रजन जैसे (पितरम्) पिता को

अष्टक-२। अध्याय-१। वर्ग-१८-१९

मण्डल-१। अनुवाक-१९। सूक्त-

१३० प्रकी **(अच्छ)** अच्छे प्रकार **(हवामहे) स्तु**ज्ञि क्

(न) वैसे (मंहिष्ठम्) अति सत्कारयुक्त (त्वा) आपकी (अच्छ) अच्छे प्रकार (हवामहे) स्तुनि करते हैं॥१॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। समस्त राजप्रजाजन पिता और पुत्र के समाने इस संसार में वर्त्तकर पुरुषार्थी हों॥१॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

पिबा सोर्मिमन्द्र सुवानमिद्रिभिः कोशेन सिक्तमेवतं न वंस्परितास्वास्पान वंस्पाः। मदाय हर्युतायं ते तुविष्ट्रमाय धायंसे।

आ त्वा यच्छन्तु हुरितो न सूर्यमहा विश्वेव सूर्यम्।। रा

पिबी सोर्मम्। इन्द्रा सुवानम्। अर्द्रिऽभिः। कोशैन। सिक्तम्। अब्तिम्। नै। वंस्पाः। तुतृषाणः। न। वंस्पाः। मदीय। हुर्युतायी ते। तुविःऽत्तमाय। धार्यसे। आ। त्वा। युच्छुन्तु। हुरित्रीः। न्। भूर्यम्। अही। विश्वीऽइव। सूर्यम्॥ २॥

पदार्थ:-(पिब) अत्र द्वाचोऽतस्तिङ इति दीर्घः। (स्मिम्) दिव्यौषधिरसम् (इन्द्र) सभेश (सुवानम्) सोतुमर्हम् (अद्रिभिः) शिलाखण्डादिभिः (कोश्रेत्र) मेघेन (सिक्तम्) संयुक्तम् (अवतम्) वृद्धम् (न) इव (वंसगः) संभक्ता (तातृषाणः) अतिशयेम् (पणिसितः (न) इव (वंसगः) वृषभः (मदाय) आनन्दाय (हर्यताय) कामिताय (ते) तुभ्यम् (तृविष्टमात्र) अतिशयेन तृविर्वहुस्तस्मै। तृविरिति बहुनामसु पठितम्। (निघं०३.१) (धायसे) धर्त्रे (आ) (त्वा) (यच्छन्तु) निगृह्णन्तु (हरितः) (न) इव (सूर्यम्) (अहा) अहानि (विश्वेव) विश्वानीव (सूर्यम्)॥ शा

अन्वयः – हे इन्द्र! वंसगो न वंसगस्वयम्दिभिः सुवानं कोशेनाऽवतं सिक्तं नेव सोमं पिब। तुविष्टमाय धायसे मदाय हर्य्यताय ते तुभ्यमयं सोम आप्रोतु सूर्यमहा विश्वेव सूर्यं हरिता न त्वा य आयच्छन्तु ते सुखमाप्नुवन्तु॥२॥

भावार्थ:-अत्रोपमल्ड्यारः । ये साधनोपसाधनैरायुर्वेदरीत्या महौषधिरसान् निर्माय सेवन्ते तेऽरोगा भूत्वा प्रयतितुं शक्नुवन्ति॥२(।)

पदार्थ:-ह्रे (इन्द्र) सभापति! (तातृषाण:) अतीव प्यासे (वंसग:) बैल के (न) समान बिलष्ठ (वंसग:) अच्छे विभाग करनेवाले आप (अद्रिभि:) शिलाखण्डों से (सुवानम्) निकालने के योग्य (कोशेन) मेघ से (अवतम्) बढ़े (सिक्तम्) और संयुक्त किये हुए के (न) समान (सोमम्) सुन्दर ओषियूगें के रस्त को (पिब) अच्छे प्रकार पिओ (तुविष्टमाय) अतीव बहुत प्रकार (धायसे) धारणा करनेवाले (सदाय) आनन्द के लिये (हर्य्यताय) और कामना किये हुए (ते) आपके लिये यह दिव्य ओषिय्यें का रस प्राप्त होवे अर्थात् चाहे हुए (सूर्यम्) सूर्य को (अहा) (विश्वेव) सब दिन जैसे वा

(सूर्यम्) सूर्यमण्डल को (हरित:) दिशा-विदिशा (न) जैसे वैसे (त्वा) आपको जो लोग (आ, यच्छन्तु अच्छे प्रकार निरन्तर ग्रहण करें, वे सुख को प्राप्त होवें॥२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो बड़े साधन और छोटे साधनों और आपूर्वेद अर्थात् वैद्यकविद्या की रीति से बड़ी-बड़ी ओषधियों के रसों को बनाकर उसका सेवन करते, के आरोग्यबान् होकर प्रयत्न कर सकते हैं॥२॥

पुन: के परमात्मानं ज्ञातुं शक्नुवन्तीत्याह॥

फिर कौन परमात्मा को जान सकते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है।

अविन्दद्विवो निर्हितं गुहां निधि वेर्न गर्भं परिवीतमश्मन्यन्ने अन्तरश्मित। वृजं वृज्री गर्वामिव सिषासन्निङ्गरस्तमः।

अपावृणोदिष् इन्द्रः परीवृता द्वार् इष्ः परीवृताः॥ ३ 📂

१४३८

अविन्दत्। दिवः। निऽहितम्। गुहो। निऽधिम्। वेः। ना भिन्। परिऽव्नातम्। अश्मिन्। अन्तः। अश्मिन्। वृज्ञम्। वृज्जी। गर्वाम्ऽइव। सिसासन्। अङ्गिरःऽतमः। अप। अवृष्मित्। इषः। इन्द्रः। परिऽवृताः। द्वारः। इषः। परिऽवृताः॥ ३॥

पदार्थ:-(अविन्दत्) प्राप्नोति (दिवः) विज्ञानप्रकाशते (निहतम्) स्थितम् (गुहा) गुहायां बुद्धौ (निधिम्) निधीयन्ते पदार्था यस्मिंस्तम् (वेः) पक्षिणः (म्) इच (गर्भम्) (परिवीतम्) परितः सर्वतो वीतं व्याप्तं कमनीयं च जलम् (अश्मिन) मेघपण्डले (अनन्ते) देशकालवस्त्वपरिछिन्ने (अन्तः) मध्ये (अश्मिन) मेघे (व्रजम्) व्रजन्ति गावो यस्मिन तम् (बज्री) वज्रो दण्डः शासनार्थो यस्य सः (गवामिव) (सिषासन्) ताडियतुं दण्डियतुमिच्छन्न (अङ्गिपस्तमः) अतिप्रशस्तः (अप) (अवृणोत्) वृणोति (इषः) एष्टव्या रथ्याः (इन्द्रः) परमैश्वर्यवाम् सूर्यः (परीवृताः) परितोऽन्धकारेणावृताः (द्वारः) द्वाराणि (इषा) (परीवृताः)॥३॥

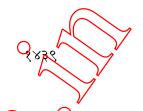
अन्वय:-यो वज्री प्रज़ं प्रवामिव सिषासन्निङ्गरस्तम इन्द्र इषः परीवृता इव परीवृता इषो द्वारश्चापावृणोदनन्तेऽश्मन्यश्मयन्त्रः प्रिकीतं वेर्गर्भं न गुहा निहितं निधिं परमात्मानं दिवोऽविन्दत् सोऽतुलं सुखमाप्नोति॥३॥

भावार्थः अत्रोपमान्यचकलुप्तोपमालङ्कारौ। ये योगाङ्गधर्मविद्यासत्सङ्गानुष्ठानेन स्वात्मिन स्थितं परमात्मानं विक्रीचीयुस्ते सूर्यस्तम इव स्वसङ्गिनामविद्यां निवार्य विद्याप्रकाशं जनियत्वा सर्वान् मोक्षमार्गे प्रवर्त्याऽनिर्दितान कर्त्तुं शक्नुवन्ति॥३॥

पदार्थ:-जो (वज्री) शासना के लिये दण्ड धारण किये हुए (वज्रं, गवामिव) जैसे गौओं के समूह गोशास्त्रा में गमन करते जाते-आते वैसे (सिषासन्) जनों को ताड़ना देने अर्थात् दण्ड देने की इच्छा करता हुआ अथवा जैसे (अङ्गिरस्तमः) अति श्रेष्ठ (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् सूर्य (इषः) इच्छा करने

अष्टक-२। अध्याय-१। वर्ग-१८-१९

मण्डल-१। अनुवाक-१९। सूक्त-१३०



योग्य (परीवृता:) अन्धकार से ढंपी हुई वीथियों को खोले, वैसे (परीवृता:) ढपी हुई (इष्) इच्छाओं और (द्वार:) द्वारों को (अपावृणोत्) खोले तथा (अनन्ते) देश, काल, वस्तु भेद से न प्रतीत होते हुए (अश्मिन) आकाश में (अश्मिन) वर्तमान मेघ के (अन्त:) बीच (परिवीतम्) सब ओर से व्याप्त और अति मनोहर जल वा (वे:) पक्षी के (गर्भम्) गर्भ के (न) समान (गृहा) बुद्धि में (निहितम्) स्थित (निधिम्) जिसमें निरन्तर पदार्थ धरे जायें, उस निधिरूप परमात्मा को (दिव्रा) विश्वान के प्रकाश से (अविदन्त्) प्राप्त होता है, वह अतुल सुख को प्राप्त होता है॥३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जो प्राण के अङ्का, धर्म, विद्या और सत्सङ्ग के अनुष्ठान से अपनी आत्मा में स्थित परमात्मा को जानें, के सूर्य जैसे अन्धकार को वैसे अपने सङ्गियों की अविद्या छुड़ा विद्या के प्रकाश को उत्पन्न कर सबको मोक्स्मार्ग में प्रवृत्त करा के उन्हें आनिन्दित कर सकते हैं॥३॥

केऽत्र सुशोभन्त इत्याहभ

इस संसार में कौन अच्छी शोभा को प्राप्त होते हैं, इस विषय की अगले मन्त्र में कहा है।।
दादृहाणो वज्रमिन्द्रो गर्भस्त्यो: क्षद्मैव तिष्ममस्त्राय, सं श्यदिहृहत्याय सं श्यत्।
संविव्यान ओर्जसा श्रवीभिरिन्द्र मुज्यती।
तष्टेव वृक्षं वृनिनो नि वृश्चिस प्रश्चेव नि वृश्चिस।। ४॥

दुदृहाणः। वर्त्रम्। इन्द्रेः। गर्भस्त्योः। क्षान्यइवा तिगमम्। असेनाय। सम्। श्यत्। अहिऽहत्याय। सम्। श्यत्। सम्ऽविव्यानः। ओर्जसा। शर्वःऽभिः। इन्द्रेः। मुज्यन्ति। तष्टाऽइव। वृक्षम्। वृनिनः। नि। वृक्ष्यसि। पुरुश्वाऽईव। नि। वृक्ष्यसि॥ ४॥

पदार्थ:-(दादृहाण:) विषान् हिंसन्। अत्र व्यत्ययेनात्मनेपदम्, तुजादित्वाद् दैर्घ्यम्, बहुलं छन्दसीति शपः श्लुः। विज्ञम्) तीव्रं शस्त्रं गृहीत्वा (इन्द्रः) विद्वान् (गभस्त्योः) बाह्वोः। गभस्तीति बाहुनामसु पठितम्। (पिष्टं १.४) (क्षदोव) उदकिमव (तिग्मम्) तीव्रम् (असनाय) प्रक्षेपणाय (सम्) सम्यक् (श्यत्) तृनूकरोति (अहिहत्याय) मेघहननाय (सम्) (श्यत्) (संविव्यानः) सम्यक् प्राप्नुवन् (ओजसा) पराक्रमेण (शवाभिः) सेनाद्यैर्बलैः (इन्द्र) दुष्टदोषविदारक (मज्मना) बलेन (तष्टेव) यथा छेता (वृक्षम्) (वर्तिनः) बचौति बहवो रश्मयो विद्यन्ते येषां त इव (नि) (वृक्षसि) छिनित्स (परश्चेव) यथा परशुना (नि) नितराम् (वृक्षसि) छिनित्स॥४॥

अन्वय:-हे विद्वन्! भवान् यथा सूर्योऽहिहत्याय तिग्मं वज्रं संश्यत् तथा गभस्त्योः क्षद्मेवासनाय तिग्मं वज्रं निधाय दादृहाणः इन्द्रस्सन् शत्रून् संश्यत्। हे इन्द्र! त्वं वृक्षं मज्मना तष्टेवौजसा शवोभिः सह संविव्यानस्सन् विनन इव दोषान् निवृश्चसि परश्वेवाविद्यां निवृश्चसि तथा वयमिप कुर्याम॥४॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। ये मनुष्याः प्रमादालस्यादीन् दोषान् पृथक्कृत्य जगित्र गुणाहित्स्यति ते सूर्यरश्मय इवेह संशोभन्ते॥४॥

पदार्थ:-हे विद्वान्! आप जैसे सूर्य (अहिहत्याय) मेघ के मारने को (तिगम्) तीं अपने किरणरूपी वज्र को (सं, श्यत्) तीक्ष्ण करता वैसे (गभस्त्योः) अपनी भुजाओं के (क्षरोव) जल के समान (असनाय) फेंकने के लिये तीव्र (वज्रम्) शस्त्र को निरन्तर धारण करके (दादृहाणः) दोषों का विनाश करते (इन्द्रः) और विद्वान् होते हुए शत्रुओं को (सं, श्यत्) अति सूक्ष्म करते अर्थात् उनका विनाश करते वा हे (इन्द्र) दुष्टों का दोष नाशनेवाले! आप (वृक्षम्) वृक्ष को (मज्मना) बल से (तष्टेव) जैसे बढ़ई आदि काटनेहारा वैसे (ओजसा) पराक्रम और (श्रवोधिः) सेना आदि बलों के साथ (संविव्यानः) अच्छे प्रकार प्राप्त होते हुए (विननः) वन वा बहुत किरणें जिनके विद्यमान उनके समान दोषों को (नि, वृश्चिस्) निरन्तर काटते वा (परश्चेव) जैसे फरसा से कोई पदार्थ काटता, वैसे अविद्या अर्थात् मूर्खपन को अपने ज्ञान से (नि, वृश्चिस्) काटते हो, वैसे हम लोग भी करें॥४॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो भूनुष्य प्रमाद और आलस्य आदि दोषों को अलग कर संसार में गुणों को निरन्तर धारण करते हैं, वे सूर्य की किरणों के समान यहाँ अच्छी शोभा को प्राप्त होते हैं॥४॥

पुन: के प्रकाशियां जायन्त इत्याह॥

फिर इस संसार में कौन प्रकाशित होते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

त्वं वृथा नद्यं इन्द्र सर्तुब्रेड<mark>च्छा समु</mark>द्रम्सुजो रथाइव वाजयतो रथाइव। इत ऊतीर्युञ्जत समाभमर्थमिक्षतम्

धेनूरिव मनवे विश्वदोहसो जनाय विश्वदोहसः॥५॥१८॥

त्वम्। वृथां। नृद्यः। सर्तवे। अच्छं। सुमुद्रम्। असृजुः। रथांन्ऽइव। वाजुऽयतः। रथांन्ऽइव। इतः। ऊतीः। अयुञ्जतः। सुम्युनम्। अर्थम्। अक्षितम्। धेनूःऽईव। मनवे। विश्वऽदोहसः। जनाय। विश्वऽदोहसः॥५॥

पदार्थ्यं: (त्वेम्) (वृथा) निष्प्रयोजनाय (नद्य:) (इन्द्र) विद्येश (सर्त्तवे) सर्तुं गन्तुम् (अच्छ) उत्तमरीत्या (समुद्रम्) सागरम् (असृजः) सृजेः (रथाँइव) यथा रथानिधष्ठाय (वाजयतः) सङ्ग्रामयतः (रथाँइव) (इतः) प्राप्ताः (ऊतीः) रक्षाद्याः क्रियाः (अयुञ्जत) युञ्जते (समानम्) तुल्यम् (अर्थम्) द्रव्यम् (अर्थितम्) क्ष्यरिहतम् (धेनूरिव) यथा दुग्धदात्रीर्गाः (मनवे) मननशीलाय मनुष्याय (विश्वदोहसः) विश्वं अर्थां ज्यादुर्णदेहिन्त पिपुरित ते (जनाय) धर्म्ये प्रसिद्धाय (विश्वदोहसः) विश्वस्मिन् सुखप्रपूरकाः॥५॥

मण्डल-१। अनुवाक-१९। सूक्त-१३० d & Kis

अन्वय:-हे इन्द्र! त्वं यथा नद्यः समुद्रं वृथा सृजिन्त तथा रथानिव वाजयतो रथानिव सर्त्तवे अच्छार्वृज्या जनाय विश्वदोहस इव ये मनवे विश्वदोहसस्सन्तो भवन्तो धेनूरिवेत ऊती रिक्षतं समानमर्थं चायुञ्जत् तैऽत्यन्तमामन्द प्राप्नुविन्ति॥५॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्काराः। ये धेनुवत्सुखं रथवद्धर्म्यमार्गमवलम्ब्य धार्मिकन्यायधीशवद्भृत्वा सर्वान् स्वसदृशान् कुर्वन्ति तेऽत्र प्रशंसिता जायन्ते॥५॥

पदार्थ:-हे (इन्द्र) विद्या के अधिपति! (त्वम्) आप जैसे (नद्यः) नदी (समुद्रम्) समुद्र को (वृथा) निष्प्रयोजन भर देती वैसे (रथानिव) रथों पर बैठनेहारों के समान (वाजयतः) संग्राम करते हुओं को (रथानिव) रथों के समान ही (सर्त्तवे) जाने को (अच्छ, असृज्रः) उत्तम पीति से कलायन्त्रों से युक्त मार्गों को बनावें वा (जनाय) धर्मयुक्त व्यवहार में प्रसिद्ध मनुष्य के लिये जो (विश्वदोहसः) समस्त जगत् को अपने गुणों से परिपूर्ण करते उनके समान (मनवे) विचारशील युरुष के लिये (विश्वदोहसः) संसार सुख को परिपूर्ण करनेवाले होते हुए आप (धेनूरिव) दूध दैनेवाली गौओं के समान (इतः) प्राप्त हुई (ऊतीः) रक्षादि क्रियाओं और (अश्वितम्) अक्षय (समानम्) स्मान अर्थात् काम के तुल्य (अर्थम्) पदार्थ का (अयुक्रत) योग करते हैं, वे अत्यन्त आनुद्ध को प्राप्त होते हैं॥५॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार हैं। जो पुरुष गौओं के समान सुख, रथ के समान धर्म के अनुकूल मार्ग का अवलम्ब कर धार्मिक न्यायाधीश के प्रमान होकर सबको अपने समान करते हैं, वे इस संसार में प्रशंसित होते हैं॥५॥

पुनर्मनुष्या (कस्मात्कि) प्राप्य कीदृशा भवन्तीत्याह॥

फिर मनुष्य किससे क्या पाकर कैसे हॉर्त हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

ड्रमां ते वाचं वसूयन आयवो रथं न धीरः स्वपा अतक्षिषुः सुम्नाय त्वामंतक्षिषुः। शुम्भन्तो जेन्यं यथा वाजेषु विप्र अजिनम्।

अत्यंपिव शर्वास सातरी धना विश्वा धनानि सातरी॥६॥

ड्टमाम्। ते। वार्चम्। ब्रुमुऽयन्तेः। आयर्वः। रथम्। न। धीर्रः। सुऽअपाः। अतिक्षिषुः। सुम्नाये। त्वाम्। अतिक्षिषुः। शुम्भन्तेः। जेन्यम्। यथा। वाजेषु। विष्रा वाजिनम्। अत्यम्ऽइव। शर्वसे। सातये। धर्ना। विश्वा। धर्नानि। सातये॥६॥

पदार्थ: (इमाम्) (ते) तव सकाशात् (वाचम्) विद्याधर्मसत्याऽन्वितां वाणीम् (वसूयन्तः) आत्म्सो वसूनि विज्ञानादीनि धनानीच्छन्तः (आयवः) विद्वांसः (रथम्) प्रशस्तं रमणीयं यानम् (न) इव (श्रीरः) ध्यानयुक्तः (स्वपाः) शोभनानि धर्म्याण्यपांसि कर्माणि यस्य सः (अतिश्वषुः) संवृणुयुः। तक्ष

त्वचने त्वचनं संवरणिमिति। (सुम्नाय) सुखाय (त्वा) त्वाम् (अतिक्षषुः) सूक्ष्मिधयं संपादयन्तु (शुम्भन्तः) प्राप्तशोभाः (जेन्यम्) जयित येन तम् (यथा) येन प्रकारेण (वाजेषु) संग्रामेषु (विप्र) मेधाविन् (वाजिनम्) (अत्यिमव) यथाऽश्वम् (शवसे) बलाय (सातये) संविभक्तये (धना) द्रव्याणि (विश्वा) सर्वाणि (सातये) संभोगाय॥६॥

अन्वय:-हे विप्र! यस्य ते तव सकाशादिमां वाचं प्राप्ता आयवो वसूयन्तः स्वपा धीरो र्थ नातक्षिषुः शुम्भन्तो यथा वाजेषु जेन्यं वाजिनमत्यिमव शवसे सातये धनानीव विश्वा धना प्राप्य सुम्नाय सातर्वे वामतिक्षषुस्त सुखिनो जायन्ते॥६॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। येऽनूचानादाप्ताद्विदुषोऽखिला विद्या: प्राप्य विस्तृतिधयो जायन्ते, ते समग्रमैश्वर्य्यं प्राप्य रथवदश्ववद्धीरवद्धर्म्यमार्गं गत्वा कृतकृत्या जायन्ते॥६॥

पदार्थ:-हे (विप्र) मेधावी धीर बुद्धिवाले जन! जिन (ते) आपके निकट से (इमाम्) इस (वाचम्) विद्या, धर्म और सत्ययुक्त वाणी को प्राप्त (आयवः) विद्वान जन (वसूयन्तः) अपने को विज्ञान आदि धन चाहते हुए (स्वपाः) जिसके उत्तम धर्म के अनुकूल काम वह (धीरः) धीरपुरुष (स्थम्) प्रशंसित रमण करने योग्य रथ को (न) जैसे वैसे (अतिक्षापुः) सूक्ष्मबुद्धि को स्वीकार करें वा (शुम्भन्तः) शोभा को प्राप्त हुए (यथा) जैसे (वाजेषु) संग्रामों में (जेन्यम्) जिमसे शत्रुओं को जीतते उस (वाजिनम्) अतिचतुर वा संग्रामयुक्त पुरुष को (अत्यिमव) घोहा के सम्प्रन (शवसे) बल के लिये और (सातये) अच्छे प्रकार विभाग करने के लिये (धनानि) दुक्ष आदे पदार्थों के समान (विश्वा) समस्त (धना) विद्या आदि पदार्थों को प्राप्त होकर (सुम्नाय) सुख और (सातये) संभोग के लिये। (त्वाम्) आपको (अतिक्षपुः) उत्तमता से स्वीकार करे वा विप्नि सुष्यों से ढांपे वे सुख होते हैं॥६॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालाङ्कार हैं। जो उपदेश करनेवाले धर्मात्मा विद्वान् जन से समस्त विद्याओं को पाकर विस्तारयुक्त ब्रुटींड अर्थात् सब विषयों में बुद्धि फैलानेहारे होते हैं, वे समग्र ऐश्वर्य को पाकर, रथ, घोड़ा और धीर पुरुष के समान धूर्म के अनुकूल मार्ग को प्राप्त होकर कृतकृत्य होते हैं॥६॥

[>] केऽत्रैश्वर्यमुन्नयन्तीत्याह।।

इस संसार में को प्रेश्वर की उन्नित करते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

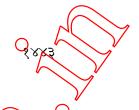
भिनत्पुरो नवृतिमिन्द्र पूरवे दिवौदासाय महि दाशुषे नृतो वर्त्रण दाशुषे नृतो।

अतिश्चिग्वास् शम्बरे गिरेक्त्रग्नो अवाभरत्।

मृह्ये धनानि देथमान ओजसा विश्वा धनान्योजसा॥७॥

भिनत्। पुरः। नुवृतिम्। इन्द्रः। पूरवै। दिवै:ऽदासाय। मिही। दाशुषे। नृतो इति। वन्नेण। दाशुषे। नृतो इति। अतिर्धिरम्बायो शम्बरम्। गिरेः। उत्रः। अवं। अभुरत्। महः। धर्नानि। दर्यमानः। ओर्जसा। विश्वा। धर्नानि।

मण्डल-१। अनुवाक-१९। सूक्त-१३०



पदार्थ:-(भिनत्) विदृणाति (पुरः) पुराणि (नवितम्) एतत् संख्याकानि (इन्द्र) दुष्टविद्यास्क्र (पूरवे) अलं साधनाय मनुष्याय। पूरव इति मनुष्यनामसु पठितम्। (निघं०२.३) (दिवादासाय) किमितस्य प्रदात्रे (मिह) महते पूजिताय (दाशुषे) विद्यादत्तवते (नृतो) विद्याप्राप्त्रायेऽङ्गानां प्रक्षेप्तः (वज्रेण) शस्त्रेणेवोपदेशेन (दाशुषे) दानं कुर्वते (नृतो) स्वगात्राणां विक्षेप्तः (अतिथिग्वाय) अतिथीन् गच्छते (शम्बरम्) मेघम् (गिरेः) शैलस्याग्रे (उग्रः) तीक्ष्णस्वभावः सूर्यः (अव) (अभरत्) विभित्ते (महः) महान्ति (धनानि) (दयमानः) दाता (ओजसा) पराक्रमेण (विश्वा) सर्वाणि (धनानि) (ओजसा) पराक्रमेण॥७॥

अन्वय:-हे नृतो नृतविन्द्र! यो भवान् वज्रेण शत्रूणां नवतिं पुर्गेऽधिनत् महि दिवोदासाय दाशुषे पूरवे सुखमवाभरत्। हे नृतो! भवान् अतिथिग्वाय दाशुष उग्रो गिरेः शम्बरिम् सेन्सा मही धनानि दयमान ओजसा विश्वा धनान्यवाभरत् स किञ्चिदिप दुःखं कथं प्राप्नुयात्॥७॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। नवितिमित्रि पदं बहूपलक्षणार्थम्। ये शत्रून् विजयमाना अतिथीन् सत्कुर्वन्तः धार्मिकान् विद्या ददमाना वर्त्तन्ते ते सूर्वो मिष्ठमुत्रीऽखिलमैश्वर्यं बिभ्रति॥७॥

पदार्थ:-हे (नृतो) अपने अङ्गों को युद्ध अदि में चलाने वा (नृतो) विद्या की प्राप्ति के लिये अपने शरीर की चेष्टा करने (इन्द्र) और दुष्टों का विनाश करनेवाले! जो आप (वन्नेण) शस्त्र वा उपदेश से शत्रुओं की (नवितम्) नब्बे (पुरः) नगिरयों की (भिन्त्र) विदारते नष्ट-भ्रष्ट करते वा (मिह) बड़प्पन पाये हुए सत्कारयुक्त (दिवोदासाय) चहुति पदार्थ क्री अच्छे प्रकार देनेवाले और (दाशुषे) विद्यादान किये हुए (पूरवे) पूरे साधनों से युक्त मनुष्य के लिये सुख को धारण करते तथा (अतिथिग्वाय) अतिथियों को प्राप्त होने और (दाशुषे) दान करनेवाले के लिये (उग्नः) तीक्ष्ण स्वभाव अर्थात् प्रचण्ड प्रतापवान् सूर्य (गिरेः) पर्वत के आगे (श्रम्बरम्) मेघ को जैसे वैसे (ओजसा) अपने पराक्रम से (महः) बड़े-बड़े (धनानि) धन आदि पदार्थों के (देशमानः) देनेवाले (ओजसा) पराक्रम से (विश्वा) समस्त (धनानि) धनों को (अवाभ्रस्त) धारण करते सो आप किञ्चित् भी दुःख को कैसे प्राप्त होवें॥७॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। इस मन्त्र में 'नवितम्' यह पद बहुतों का बोध कराने के लिये हैं भूजो शत्रुओं की जीतते, अथितियों का सत्कार करते और धार्मिकों को विद्या आदि गुण देते हुए वर्त्तमान हैं, से सूर्य्य जैसे मेघ को वैसे समस्त ऐश्वर्य धारण करते हैं॥७॥

पुनर्मनुष्यै: कीदृशैर्भवितव्यमित्याह।।

फिर मनुष्यों को कैसा होना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

इन्द्रेः समत्सु यर्जमानमार्यं प्रावृद्धिश्चेषु शृतमूर्तिराजिषु स्वर्मीळ्हेष्वाजिषुं।

१४४४

ऋग्वेदभाष्यम्

मनेवे शासंदव्रतान्त्वचं कृष्णामंरन्थयत्। दक्षुन्न विश्वं ततृषाणमोषति न्यर्शसानमोषति॥८॥

इन्ह्रं:। समत्ऽस्रं। यर्जमानम्। आर्यम्। प्रा आवृत्। विश्वेषु। शृतम्ऽर्कतिः। आजिषुं। स्वःऽमीळहेषु। आजिषुं। मनेवे। शासंत्। अवृतान्। त्वर्चम्। कृष्णाम्। अरम्थयत्। धर्भत्। न। विश्वम्। तृतृषाणम्। ओष्वित्। नि अर्शसानम्। ओष्वित्।। ८॥

पदार्थ:-(इन्द्र:) परमैश्वर्यवान् राजा (समत्सु) संग्रामेषु (यजमानम्) अश्वयस्य दातारम् (आर्यम्) उत्तमगुणकर्मस्वभावम् (प्र) प्रकृष्टे (आवत्) रक्षेत् (विश्वेषु) समग्रेषु (शतमूर्ति:) शतमसंख्याता ऊतयो रक्षा यस्मात् सः (आजिषु) प्राप्तेषु (स्वर्मीढेषु) स्वः सुखं मिह्यते सिच्यत् येषु तेषु) (आजिषु) संग्रामेषु (मनवे) मननशीलधार्मिकमनुष्यरक्षणाय (शासत्) शिष्यात् (अव्रतार्व) दुष्टाचारान् दस्यून् (त्वचम्) सम्पर्कमिन्द्रियम् (कृष्णाम्) कर्षिताम् (अरम्थयत्) हिंस्यात् (धक्षत्) दहेत्। अत्र वाच्छन्दसतीति भस्त्वं न। (न) इव (विश्वम्) सर्वम् (ततृषाणम्) प्राप्ततृषम् (ओषति) (नि) (अर्शसानम्) प्राप्तं सत् (ओषति) दहेत्॥८॥

अन्वय:-यश्शतमूर्तिरिन्द्रः स्वर्मीढेष्वाजिष्वाजिषु धार्मिकाः श्रा इव विश्वेषु समत्सु यजमानमार्य्यं प्रावत् मनवे व्रतान् शासदेषां त्वचं कृष्णां कुर्वत्ररन्धयदग्निर्विश्वं धक्षंस्ततृषाण्यमोषति नाशेक्षानं न्योषति स एव साम्राज्यं कर्त्तुमर्हति॥८॥

भावार्थ:-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारी भूनुष्यैरार्यगुणकर्मस्वभावान् स्वीकृत्य दस्युगुणकर्मस्वभावान् विहाय श्रेष्ठान् संरक्ष्य दुष्टान् संदण्ड्यं धर्मेण राज्यं शासनीयम्॥८॥

पदार्थ:-जो (शतमूति:) अर्थात् लिससे असंभूत्यात रक्षा होती वह (इन्द्र:) परम ऐश्वर्यवान् राजा (स्वर्मीढेषु) जिनमें सुख सिञ्चन किया जाता उन (आजिषु) प्राप्त हुए (आजिषु) संग्रामों में धार्मिक शूरवीरों के समान (विश्वेषु) समग्र (समस्प) संग्राम में (यजमानम्) अभय के देनेवाले (आर्यम्) उत्तम गुण, कर्म, स्वभाववाले पुरुष को (प्रावत्) अच्छे प्रकार पाले वा (मनवे) विचारशील धार्मिक मनुष्य की रक्षा के लिये (अव्रतान्) दुष्ट अच्रिप्ण करनेवाले डाकुओं को (शासत्) शिक्षा देवे और इनकी (त्वचम्) सम्बन्ध करने वाली खाल को (कृष्णाम्) खैंचता हुआ (अरन्धयत्) नष्ट करे वा अग्नि जैसे (विश्वम्) सब पदार्थ मात्र को (धक्षत्) जलावे और (ततृषाणम्) प्यासे प्राणी को (ओषति) दाहे अति जलन देवे (न) वैसे (अर्शसानम्) प्राप्त हुए शत्रुगण को (न्योषिति) निरन्तर जलावे, वही चक्रवर्ति राज्य करने योग्य होता है॥८॥ /

भाषार्थ: इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। मनुष्यों को चाहिये कि श्रेष्ठ गुण, कर्म, स्त्रभावों को स्थीकार और दुष्टों के गुण, कर्म, स्वभावों का त्याग कर श्रेष्ठों की रक्षा और दुष्टों को ताड़न देकर धर्म में राज्य की शासना करें॥८॥

पुनर्विद्वद्भिरत्र कथं भवितव्यमित्याह।।

मण्डल-१। अनुवाक-१९। सूक्त-१३०

फिर इस संसार में विद्वानों को कैसा होना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है।
सूर्यश्चकं प्र वृहज्जात् ओर्जसा प्रिपत्वे वार्चमरुणो मुषायतीशान आ मुषायित्र

उशना यत्परावतोऽजगन्नूतये कवे।

सुम्नान् विश्वा मनुषेव तुर्विण्रहाविश्वेव तुर्विणः॥९॥

सूर्रः। चक्रम्। प्रा बृहुत्। जातः। ओर्जसा। प्रऽपित्वे। वार्चम्। अरुणः। मुषा<u>र्वितः। ईश्रानेः</u>। आ। मुषायति। उश्रानी। यत्। प्राऽवर्तः। अर्जगन्। ऊतये। क्वे। सुम्नानि। विश्वां। मर्नुषाऽङ्का हुर्विणिः। अही। विश्वांऽइव। तुर्विणिः॥ ९॥

पदार्थ:-(सूर:) सूर्यः (चक्रम्) चक्रवद्वर्त्तमानं जगत् पृथिव्यादिकम् (प्र) बृहत् (जातः) प्रकटः सन् (ओजसा) स्वबलेन (प्रिपित्वे) उत्तरस्मिन् (वाचम्) (अरुप्पः) रक्तबर्णः (मुषायितः) मुषः खण्डक इवाचरित (ईशानः) शिक्तिमान् सन् (आ) (मुषायितः) (उश्राचा) (यतः) यः (परावतः) दूरतः (अजगन्) गच्छेत्। अत्र लिङ तिपि बहुलं छन्दसीति शपः श्लुः, मा ने धात्तीरित मस्य नः। (ऊतये) रक्षणाद्याय (कवे) विद्वन् (सुम्नानि) सुखानि (विश्वा) सर्वाणि (भनुषेव) मनुष्यवत् (तुर्वणिः) हिंसकः (अहा) दिनानि (विश्वेव) यथा सर्वाणि (तुर्वणिः) हिंसन्।

अन्वयः-हे कवे! यद्य ओजसाऽरुणस्तुर्विणिर्मितः सूरे विश्वाहा प्रिपत्वे बृहच्चक्रं प्रजनयतीव तुर्विणिर्मनुषेव विश्वा सुम्नानि वाचमाजनयतु मुषायतीव वेशान उश्चन भवानूत्वये परावतोऽजगन् दुष्टान् मुषायति स सर्वैः सत्कर्त्तव्यः॥९॥

भावार्थ:-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमाला हो। भें सूर्यवद्विद्याविनयधर्मप्रकाशकाः सर्वेषामुन्नतये प्रयतन्ते ते स्वयमप्युन्नता भवन्ति ॥ ९ ॥

पदार्थ:-हे (कवे) विद्वान ! (यत्) जो (ओजसा) अपने बल से (अरुण:) लालरङ्ग युक्त (तुर्विण:) मेघ को छिन्न-भिन्न करता और (जातः) प्रकट होता हुआ (सूरः) सूर्य्यमण्डल जैसे (विश्वाहा) सब दिनों को वा (प्रिपत्वे) उत्तरायण से (वृहत्) महान् (चक्रम्) चाक के समान वर्तमान जगत् को (प्र) प्रकट करता, वैसे और (तुर्विणः) दुष्टों की हिंसा करनेवाले उत्तमोत्तम (मनुषेव) मनुष्य के समान (विश्वा) समस्त (सुम्नानि) सुखों और (वाचम्) वाणी को (आ) अच्छे प्रकार प्रकट करें वा सूर्य जैसे (मुषायति) खण्डन करनेवाल के समान आचरण करता वैसे (ईशानः) समर्थ होते हुए (उशना) विद्यादि गुणों से कान्तियुक्त आप (ऊतये) रक्षा आदि व्यवहार के लिये (परावतः) परे अर्थात् दूर से (अजगन्) प्राप्त हों और सुष्टों को (मुषायति) खण्ड-खण्ड करें, सो सबको सत्कार करने योग्य हैं॥९॥

१४४६

ऋग्वेदभाष्यम्

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुपतोपमालङ्कार हैं। जो सूर्य के तुल्य विद्या, विनये और धर्म का प्रकाश करनेवाले सबकी उन्नति के लिये अच्छा यत्न करते हैं, वे आप भी उन्नतियुक्त होते हैं॥९॥

पुना राजप्रजाजनै: परस्परं कथं वर्त्तितव्यमित्याह॥

फिर राजा और प्रजाजनों को परस्पर कैसे वर्त्तना चाहिये, इस विषय को अगले मन्<mark>त्र मेंकहा है</mark>।।

स नो नव्येभिर्वृषकर्मन्नुक्थैः पुरां दर्तः पायुभिः पाहि शृग्मैः। दिवोदासेभिरिन्द्र स्तर्वानो वावृधी्था अहोभिरिव द्यौः॥१०॥१९॥

सः। नः। नव्येभिः। वृष्ऽकर्मन्। उक्थैः। पुर्राम्। दुर्तिरिति दर्तः। प्रायुऽभिः। पाहि। शृग्मैः। दिवःऽदासेभिः। इन्द्र। स्तर्वानः। वृवधीथाः। अहोभिःऽइव। द्यौः॥१०॥

पदार्थ:-(स:) (न:) अस्मान् (नव्येभि:) नवीनै: (वृषकर्मन्) वृषस्य मेघस्य कर्माणीव कर्माणि यस्य तत्सम्बुद्धौ (उक्थै:) प्रशंसनीयै: (पुराम्) शत्रुनगराणाम् (दर्सः) विदार्क (पायुभिः) रक्षणैः (पाहि) रक्ष (शग्मैः) सुखै:। शग्मिति सुखनामसु पठितम्। (निष्ठं०३.६) (दिवोदासेभिः) प्रकाशस्य दातृभिः (इन्द्र) सर्वरक्षक सभेश (स्तवानः) स्तूयमानः। अत्र कर्मणि श्रीनच्। (वावृधीथाः) वर्धेथाः। अत्र वाच्छन्दसीति शपः श्लुः, तुजादीनामित्यभ्यासस्य दैश्यम्, वाच्छन्दसीत्युपधागुणो न। (अहोभिरिव) यथा दिवसैः (द्यौः) सूर्य्यः॥१०॥

अन्वय:-हे वृषकर्मन्! पुरां दत्तरिन्द्र यो द्विद्धिसिभः भूजवानः स त्वं नव्येभिरुक्थैश्शग्मैः पायुभिद्यौरहोभिरिव नः पाहि वावुधीथाः॥१०॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। ग्राजेपुर्गी: स्यूर्यवत् विद्यासुशिक्षाधर्मोपदेशं प्रजा उत्साहनीया: प्रशंसनीयाश्चेवं प्रजाजनै: राजजनाश्चेति॥ १०॥

अत्र राजप्रजाकर्मवर्णना<mark>द्गतसूक्तार्थस्य</mark> पूर्वसूक्तार्थेन सह संगतिरस्तीति वेद्यम्॥

इति त्रिंशदुन्तरं शततमं १३० सूक्तमेकोनविंशो १९ वर्गश्च समाप्त:॥

पदार्थ:-(वृषकर्मन्) जिन्के वर्षनेवाले मेघ के कामों के समान काम वह (पुराम्) शत्रुनगरों को (दर्तः) दरने-विदारने-विनासने (इन्द्र) और सबकी रक्षा करनेवाले हे सेनापित! (दिवोदासेभिः) जो प्रकाश देनेवाली (स्तवानः) स्तुति प्रशंसा को प्राप्त हुए हैं (सः) वह आप (नव्येभिः) नवीन (उक्थेः) प्रशंसा करने ब्रोप्य (अगमेः) सुखों और (पायुभिः) रक्षाओं से (द्यौः) जैसे सूर्य (अहोभिरिव) दिनों से वैसे (नः) हम लोगों की (पाहि) रक्षा करें और (वावृधीथाः) वृद्धि को प्राप्त होवें॥१०॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। राजपुरुषों को सूर्य के समान विद्या, उत्तम शिक्षा और धर्म के उपदेश से प्रजाजनों को उत्साह देना और उनकी प्रशंसा करनी चाहिये और वैसे ही प्रजाजनों को स्रिजन बर्तने चाहिये॥१०॥

मण्डल-१। अनुवाक-१९। सूक्त-१३०

इस सूक्त में राजा और प्रजाजन के काम का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व स्कूत वे

यह एक सौ तीसवां १३० सूक्त और उन्नीसवां १९ वर्ग पूरा हुआ॥

इन्द्रायेत्यस्य सप्तर्चस्य एकत्रिंशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य परुच्छेप ऋषिः। इन्द्रो देवता। १,२ निचृदत्यष्टिः। ४ विराडत्यष्टिश्छन्दः। गान्धारः स्वरः। ३,५,६,७ भुरिगष्टिश्छन्दः। मध्यमः

स्वर:॥

अथेदं कस्य राज्यमस्तीत्याह।।

अब सात ऋचावाले एक सौ एकतीसवें सूक्त का आरम्भ है। उसके प्रथम मन्त्र में <mark>यह किसेका</mark> राज्य है, इस विषय को कहा है।।

इन्द्रांय हि द्यौरसुंरो अनेम्नतेन्द्रांय मही पृथिवी वरीमभिर्द्यम्माता वरीमभिर्। इन्द्रं विश्वे सजोषंसो देवासो दिधरे पुरः। इन्द्रांय विश्वा सर्वनानि मानुंषा रातानि सन्तु मानुंषा॥१।

इन्द्राया हि। द्यौः। असुरः। अनेम्नता इन्द्राया मुही। पृथ्विवी। वर्तमेऽभिः। द्युम्रीऽसाता। वरीमऽभिः। इन्द्रम्। विश्वी। सुऽजोषसः। देवासः। दुधिरे। पुरः। इन्द्राया विश्वा। सर्वनानि। मार्मुषा। रालानि। सन्तु। मार्नुषा॥१॥

पदार्थ:-(इन्द्राय) परमैश्वर्याय (हि) किल (द्यौ:) सूर्य: (असुर:) मेघ: (अनम्नत) (इन्द्राय) परमैश्वर्याय (मही) प्रकृति: (पृथिवी) भूमि: (वरीमिभ:) घरण्यि: (द्युम्नसाता) द्युम्नस्य प्रशंसाया विभागे (वरीमिभ:) वरणीयै: (इन्द्रम्) सर्वदु:खविदारकम् (विश्वे) सर्वे (सजोषस:) समानप्रीतिसेवना: (देवास:) विद्वांस: (दिधरे) दध्यु: (पुर:) सत्कारपुर:सर्भ (इन्द्राय) परमेश्वराय (विश्वा) सर्वाणि (सवनानि) ऐश्वर्याणि (मानुषा) मानुषाणामिमानि (रातानि) दत्तादि (सन्तु) भवन्तु (मानुषा) मानुषाणामिमानीव॥१॥

अन्वय:-हे मनुष्या! यस्मा इन्द्राय विष्मूरः यस्मा इन्द्राय हि मानुषेव वरीमभिर्ध्यम्नसातानम्नत यमिन्द्रं सजोषसो विश्वे देवासः पुरो दिधरे तस्मा इन्द्राय हि मानुषेव वरीमभिर्धमैंविश्वा सवनानि मानुषा रातानि सन्त्विति विजानीत॥१॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुजीपमालङ्करः। मनुष्यः यावत् किञ्चदत्र कार्यकारणात्मकं जगत् यावन्तो जीवाश्च वर्त्तन्त एतत् सर्वं परभेशस्य राज्यमस्त्रीति बोध्यम्॥१॥

पदार्थ:-हे मनुष्याः जिस (इन्द्राय) परमैश्वर्ययुक्त ईश्वर के लिये (द्यौ:) सूर्य (असुर:) और मेघ वा जिस (इन्द्राय) परमैश्वर्ययुक्त ईश्वर के लिये (मही) बड़ी प्रकृति और (पृथिवी) भूमि (वरीमिभ:) स्वीकार करने योग्य व्यवहारों से (द्युम्नसाता) प्रशंसा के विभाग अर्थात् अलग-अलग प्रतीति होने के निमित्त (अनम्नतः) नमें नम्रता को धारण करे वा जिसे (इन्द्रम्) सर्व दुःख विनाशनेवाले परमेश्वर को (सजोषसः) एकसी प्रीति करनेहारे (विश्वे) समस्त (देवासः) विद्वान् जन (पुरः) सत्कारपूर्वक (दिधरे) धारण करें उस (इन्द्राय) परमेश्वर के लिये (हि) ही (मानुषा) मनुष्यों के इन व्यवहारों के समान (वर्ग्नमिभः) स्वीकार करने योग्य धर्मों से (विश्वा) समस्त (सवनानि) ऐश्वर्य जो (मानुषा) मनुष्य स्विन्धी हैं, वे (रातानि) दिये हुए (सन्तु) होवें, इसको जानो॥१॥

मण्डल-१। अनुवाक-१९। सूक्त-१३१

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को जानना चाहिये कि जित्ना कुछ यहाँ कार्यकारणात्मक जगत् और जितने जीव वर्त्तमान हैं, यह सब परमेश्वर का राज्य है॥ 🔊 ।।

पुनर्मनुष्यै: परमात्मैवोपासनीय इत्याह॥

फिर मनुष्यों को परमात्मा की ही उपासना करनी चाहिये, इस विषय को अगले मूर्त्व में कहा है।

विश्वेषु हि त्वा सर्वनेषु तुझते समानमेकं वृष्पणयवः पृथक् स्वः सिन्ष्येषः पृथक्।

तं त्वा नावं न पुर्घाणिं शूषस्यं धुरि धीमहि।

इन्द्रं न युज्ञैश्चितयन्त आयवुः स्तोमेभिरिन्द्रमायवः॥२॥

विश्वेषु। हि। त्वा। सर्वनेषु। तुझते। समानम्। एकंम्। वृषंऽमन्यवः। पृथेक्। स्वर्शरिति स्वः। सिन्ध्यवः। पृथेक्। तम्। त्वा। नार्वम्। न। पूर्षणिम्। श्रूषस्य। धुरि। धीमहि। इन्द्रम्। न। युजैः। चितयन्तः। आयर्वः। स्तोमेभिः। इन्द्रम्। आयर्वः॥२॥

पदार्थ:-(विश्वेषु) सर्वेषु (हि) खलु (त्वा) त्वाम् (स्विनेष्)) एश्वर्येषु (तुञ्जते) तुञ्जन्ति पालयन्ति। अत्र व्यत्ययेनात्मनेपदमेकवचनं च। (समानम्) सर्वत्रैव स्वच्याप्रयेकरसम् (एकम्) अद्वितीयमसहायम् (वृषमण्यवः) वृषस्य मन्युरिव मन्युर्येषां ते (पृथक्) (स्वः) सुखस्वरूपम् (सनिष्यवः) संभजमानाः (पृथक्) (तम्) (त्वा) त्वाम् (नावम्) (न) इत्र (पर्षणिम्) सेचनीयाम् (शूषस्य) बलवतः (धुरि) धारके काष्ठे (धीमिह) धरेम। अत्र डुधाञ् धातोर्लिङ छन्दस्यूर्भयथेति शब्भाव आर्द्धधातुकत्वादीत्वम्। (इन्द्रम्) परमैश्वर्यम् (न) इव (यज्ञैः) विद्वत्संगसेष्ठैः (चित्रयन्तः) संचेतयन्तः। अत्र वाच्छन्दसीत्युपधागुणो न। (आयवः) ये पुरुषार्थं यन्ति ते मनुष्याः (स्तोमिभः) स्तुतिभिः (इन्द्रम्) परमैश्वर्यकारकं सूर्यम् (आयवः) ये सूर्यमिभतो यन्ति ते लोकाः॥ स्व

अन्वय:-हे परमेश्वर! पृथिक् पृथक् सिन्ध्या वृषमण्यवो वयं यं समानमेकं स्वस्त्वा विश्वेषु सवनेषु विद्वांसो यथा तुञ्जते पालयन्ति तथा हि तं त्वा शूष्पर्य धुरि पर्षणिं नावं न धीमहि इन्द्रमायव इव यज्ञैरिन्द्रं न चितयन्त आयवो वयं स्तोमेभिश्च प्रशंसेम॥२॥

भावार्थ:-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। मनुष्यैर्विद्वांसोऽयं सिच्चदानन्दं नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावं सर्वित्रैकरसव्यापिनं सर्वाधारं सर्वेश्वर्यप्रदमेकमद्वैतं परमात्मानमुपासते स एव निरन्तरमुपास्नीय प्रश

पदार्थ: है परमेश्वर! (पृथक्, पृथक्) अलग-अलग (सनिष्यवः) उत्तमता से सेवनवाले (वृषमण्यवः) जिनका बैल के क्रोध के समान क्रोध वे हम लोग जिन (समानम्) सर्वत्र एक रस व्याप्त (एकम्) जिसका दूसरा कोई सहायक नहीं उन (स्वः) सुखस्वरूप (त्वा) आपको (विश्लेषु) समग्र

(सवनेषु) ऐश्वर्य आदि पदार्थों में विद्वान् लोग जैसे (तुझते) राखते अर्थात् मानते-जानते हैं, वैसे (हि) (तम्) उन (त्वा) आपको (शूषस्य) बलवान् पुरुष के (धुरि) धारण करनेवाले काठ पर (पर्षणिम्) सींचने योग्य (नावम्) नाव के (न) समान (धीमिहि) धारण करें वा (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य करों वाले सूर्यमण्डल को जैसे उसके (आयवः) चारों ओर घूमते हुए लोक वैसे वा जैसे (यज्ञैः) किंद्वानों के सङ्ग और सेवनों से (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य को (न) वैसे (चितयनः) अच्छे प्रकार विन्तवन करते हुए (आयवः) पुरुषार्थ को प्राप्त होनेवाले हम लोग (स्तोमेभिः) स्तुतियों से आपकी प्रश्नेषा करें॥ २॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। मनुष्यों की चाहिंश कि विद्वान् जन जिस सिच्चदानन्दस्वरूप, नित्य, शुद्ध, बुद्ध और मुक्तस्वभाव, सर्वत्र एक्क्सस्व्यापी, सबका आधार, सब ऐश्वर्य देनेवाले एक अद्वैत (जिसकी तुल्यता का दूसरा नहीं) परमात्मा, की उपासना करते, वही निरन्तर सबको उपासना करने योग्य है॥२॥

पुनः सर्वैः क उपासनीय इत्यहा

फिर सबको किसकी उपासना करनी चाहिये, इस विषय को अगृह्रों मन्त्र में कहा है।।

वि त्वां ततस्रे मिथुना अवस्यवो वृजस्यं साता गृत्यस्य मिः सृजः सक्षंन इन्द्र निः सृजः। यद्गव्यन्ता द्वा जना स्वर्थन्तां सुमूहंसि।

आविष्करिकृद्वृषेणं सचाभुवं वर्ज्रमिह सचाभुवेष्।।३॥

वि। त्वा। तृतस्रे। मिथुनाः। अवस्यवेः। क्रुजस्ये। सात्रा गव्यस्य। निःऽसृजेः। सक्षेत्रः। इन्द्र। निःऽसृजेः। यत्। गव्यन्ता। द्वा। जर्ना। स्वः। यन्ता। समह्ज्यहिस्। अग्रविः। करिक्रत्। वृषणम्। सचाऽभुवेम्। वर्ज्रम्। इन्द्र। सुचाऽभुवेम्॥३॥

पदार्थ:-(वि) (त्वा) त्वां जगदीश्वरम् (ततस्त्रे) तस्यन्ति दुःखान्युपक्षयन्ति (मिथुनाः) मिथुनानि स्त्रीपुरुषाख्यद्वन्द्वानि (अवस्यवः) आत्मनोऽष्मिच्छवः (व्रजस्य) व्रजितुं गन्तुं योग्यस्य (साता) सम्यक् सेवने (गव्यस्य) गोभ्यो हितस्य (निःसुजः) मितरां सृजन्तः निष्पादयन्तः (सक्षन्तः) सहन्तः। अत्र सह धातोः पृषोदरादिवत्सकारागः (द्वाद्र) परमैश्वर्यप्रद (निःसृजः) नितरां संपन्नाः (यत्) यौ (गव्यन्ता) गौरिवाचरन्तौ (द्वा) द्वौ (जना) जनौ (स्वः) सुखस्वरूपम् (यन्ता) यन्तौ प्राप्नुवन्तौ (समूहिस) सम्यक् चेतयिस (आविः) प्राकट्ये (करिकत्) भृशं कुर्वन् (वृषणम्) सेचकम् (सचाभुवम्) यः समवाये भवति तम् (वज्रम्) द्वश्वनं व्रजमिव दण्डप्रदम् (इन्द्र) दुःखविदारक (सचाभुवम्) सत्यं भावुकम्॥३॥

अन्वयः है। इन्द्र! सक्षन्तो नि:सृजोऽवस्यवो नि:सृजो मिथुनाः त्वा प्राप्य व्रजस्य गव्यस्य सातेव दु:खानि विततस्रे हि इन्द्र! यद्यो गव्यन्ता द्वा स्वर्यन्ता जना आविष्करिक्रत्सँत्वं समूहिस तं सचाभुवं वज्रं वृषणं सचाभुवं त्वा तौ नित्यम्भारोवास्। ३॥

मण्डल-१। अनुवाक-१९। सूक्त-१३१



भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। ये पुरुषा: स्त्रियश्च सर्वस्य जगत: प्रकाशकं कृतीरं धर्तारं दातारं सर्वान्तर्यामिजगदीश्वरमेव सेवन्ते ते सततं सुखिनो भवन्ति॥३॥

पदार्थ:-हे (इन्द्र) परमैश्वर्य के देनेहारे जगदीश्वर! (सक्षन्तः) सहते हुए (नि:सूज): अनेकानेक व्यवहारों को उत्पन्न करने (अवस्थवः) और अपनी रक्षा चाहनेवाले (नि:सूज): अतीव सम्पन्न (मिथुनाः) स्त्री और पुरुष दो-दो जने (त्वा) आपको प्राप्त होके (व्रजस्य) जो योग्य (गृष्ट्यस्य) गौओं के लिये हित करनेवाले अर्थात् जिसमें आराम पाने को गौएँ जातीं उस गोंड़ा आदि स्थान के (साता) सेवन में जैसे दुःख छूटें, वैसे दुःखों को (विततस्रे) छोड़ते हैं। हे (इन्द्र) दुःखों का विनाश करनेवाले! (यत्) जो (गृष्ट्यन्ता) गौओं के समान आचरण करते (हा) दो (स्वः) सुखस्वरूप आपको (यन्ता) प्राप्त होते हुए (जना) स्त्री-पुरुषों को (आविष्करिक्रत्) प्रकट करते हुए आप (समूहिस) उनको अच्छे प्रकार चेतना देते हो, उन (सचाभुवम्) समवाय सम्बन्ध्य में प्रसिद्ध होते हुए (वज्रम्) दुष्टों को वज्र के समान दण्ड देने (वृष्णम्) सबको सींचने (सचाभुवम्) और सत्य की भावना करानेवाले आपकी वे दोनों नित्य उपासना करें॥३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जो पुरुष और स्त्री सब जगत् को प्रकाशित करने, उत्पन्न करने, धारण करने और देनेवाले स्वान्तर्यामी जगदीश्वर ही का सेवन करते हैं, वे निरन्तर सुखी होते हैं॥३॥

पुन: के किं कृत्वा किं कुर्युरित्याह॥

फिर कौन क्या करके क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

विदुष्टे अस्य वीर्यस्य पूरवः पुरो यदिन्द्र शारदीर्वार्तरः सासहानो अवार्तिरः।

शास्रस्तिमन्द्र मर्त्यम्यन्युं शवसपस्त।

महीमंपुष्णाः पृष्टिबीमिमा अपो मन्दसान इमा अपः॥४॥

विदुः। ते। अस्या विधिस्ता पूर्यः। पुरः। यत्। इन्द्रः। शार्रदीः। अवऽअतिरः। ससहानः। अवऽअतिरः। शांसः। तम्। इन्द्रः। मूर्त्यम्। अयञ्चम्। शृवसः। पृते। मृहीम्। अमुष्णाः। पृथिवीम्। इमाः। अपः। मृन्दुसानः। इमाः। अपः॥४॥

पद्धार्थ: (विदुः) जानीयुः (ते) तव (अस्य) (वीर्यस्य) पराक्रमस्य (पूरवः) मनुष्याः (पुरः) पूर्वम् (यूत् यः (इन्द्र) सर्वेषां धर्ता (शारदीः) शरदः इमाः (अवातिरः) अवतरेत् (सासहानः) सहमानः (अवातिरः) अवतरेत् (शासः) शिष्याः (तम्) (इन्द्र) सर्वाभिरक्षक (मर्त्यम्) मनुष्यम् (अयज्युम्) अयजमीतम् (शवसः) बलस्य (पते) स्वामिन् (महीम्) महतीम् (अमुष्णाः) मुष्णीयाः (पृथिवीम्)

(इमा:) प्रजाः (अप:) जलानि (मन्दसानः) कामयमानः (इमाः) प्रजाः (अप:) प्राणा इवे वर्त्तमानाः॥४॥

अन्वय:-हे इन्द्र! यथा पूरवस्ते तवाऽस्य वीर्यस्य पुर: प्रभावं विदुस्तथाऽन्येऽपि जानन्तु। यद्य: (स्प्रस्तिनो जने इमा: शारदीरपोऽवातिरस्तथा त्वमपि जानीह्यवातिरश्च। हे शवसस्पत इन्द्र! यथा त्वं यमयज्युं मर्त्यं शास्त्रः। यो पन्द्रप्रानो महीं पृथिवीं प्राप्य इमा अप: प्राणिन: पीडयेतं त्वममुष्णा वयमपि च शिष्याम॥४॥

भावार्थः-अत्र वाचलुप्तोपमालङ्कारः। य आप्तानां प्रभावं विदित्वा धर्ममान्दित्तं ते दुष्टाने शासितुं शक्नुवन्ति॥४॥

पदार्थ:-हे (इन्द्र) सब के धारण करनेहारे! जैसे (पूरव:) मनुष्य (ते) आपके (अस्य) इस (वीर्च्यस्य) पराक्रम के (पुर:) प्रथम प्रभाव को (विदु:) जानें वैसे, और भी जानें और (यत्) जो (सासहान:) सहन करता हुआ जन (इमा:) इन प्रजा और (शारदी) शरद करते सम्बन्धी (अप:) जलों को (अवातिर:) प्रकट करे, वैसे आप भी जानो और (अवातिर:) प्रकट करो। हे (शवस:) बल के (पते) स्वामी (इन्द्र) सबकी रक्षा करनेहारे! जैसे आप जिस (अवज्युम्) क्रिज न करनेहारे (मर्त्यम्) मनुष्य को (शास:) सिखाओ वा जो (मन्दसान:) कामना करता हुआ (पृष्टिम्) बड़ी (पृथिवीम्) पृथिवी को पाकर (इमा:) इन (अप:) प्राणों के समान वर्तमान प्रजाननों को पीड़ा देवे (तम्) उसको आप (अमुख्णा:) चुराओ, छिपाओ और हम भी सिखावें॥ हा।

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जी धर्मात्मा सज्जनों के प्रभाव को जानकर धर्माचरण करते हैं, वे दुष्टों को सिखला सकते हैं अर्थात् उनकी दुष्टता दूर होने को अच्छी शिक्षा दे सकते हैं॥४॥

पुनः प्रजास्थकाः किं कुर्युरित्याह॥

फिर प्रजा की रक्षा करनेहार क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

आदित्ते अस्य वीर्यस्य चर्किर्न्मदेषु वृषत्रुशिजो यदाविथ सखीयतो यदाविथ। चकर्थ कारमेभ्युः पूर्वनासु प्रवन्तवे।

ते अन्यामन्यां नुद्यं सिम्णात श्रवस्यन्तः सनिष्णत॥५॥

आत्। इत्रा ते। अस्य। वीर्यस्य। चर्किर्न्। मदेषु। वृष्ट्न्। उशिर्जः। यत्। आर्विथ। सुख्रिऽयतः। यत्। आर्विथ। चक्र्य्री कारम्। एभ्यः। पृतेनासु। प्रऽवेन्तवे। ते। अन्याम्ऽअन्याम्। नृद्यम्। सुनिष्णुत्। श्रवस्यन्तेः। सुनिष्णुत्। ४॥

पदार्थ:-(आत्) (इत्) एव (ते) तव (अस्य) (वीर्यस्य) पराक्रमस्य (चिर्करन्) भृशं विक्षिप्येयुः (मदेषु) हुषेषु (वृषन्) आनन्दं वर्षयन् (उशिजः) धर्मं कामयमानाः (यत्) ये (आविथ) रक्षेः (सखीयतः) स्विव्यक्तिः (यत्) यतः (आविथ) पालय (चकर्थ) कुरु (कारम्) क्रियते यस्तम् (एभ्यः) धार्मिकेभ्यः

मण्डल-१। अनुवाक-१९। सूक्त-१३१

(पृतनासु) मनुष्येषु। पृतना इति मनुष्यनामसु पठितम्। (निघं०२.३) (प्रवन्तवे) प्रविभागं कर्तुम् (ते) (अन्यामन्याम्) भिन्नां भिन्नाम् (नद्यम्) नदीम् (सनिष्णत) संभजेयुः (श्रवस्यन्तः) आत्मनः श्रवोऽन्नमिच्छन्तः (सनिष्णत) संभजन्तु॥५॥

अन्वय:-हे वृषन् विद्वन्! यद्य आप्तास्ते तवास्य वीर्यस्य प्रभावेण मदेषु वर्त्तमाना दृष्टांश्चर्किरन् श्रवस्यन्तः सन्तः प्रवन्तवे पृतनासु सिनष्णत। अन्यामन्यां नद्यं मेघ इव कृतं सिन्ध्णत तान् सृखीयतो जनास्त्वमाविथ यद्यतो यानाविथ तान् पुरुषार्थवतश्चकर्थेभ्यः सर्वं राज्यमाविथ यद्ये च ते भृत्यास्तेजि धर्मेणादित् प्रजा पालयेयुः॥५॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये मनुष्याः प्रजरिक्षणेऽधिकृतास्ते धर्मेण प्रजापालनं चिकीर्षन्तः प्रयतेरन्॥५॥

पदार्थ:-हे (वृषन्) आनन्द को वर्षाते हुए विद्वान्! (यत् जो धर्मात्मा जन (ते) आपके (अस्य) इस (वीर्यस्य) पराक्रम के प्रभाव से (मदेषु) आनन्दों में वर्तपान (उष्ट्रिजः) धर्म की कामना करते हुए जन (चिकिरन्) दुष्टों को निरन्तर दूर करें वा (श्रवस्यनः) अपने को अन्न की इच्छा करते हुए (प्रवन्तवे) अच्छे विभाग करने को (पृतनासु) मनुष्यों में (सिन्ध्यातः) सेवन करें अर्थात् (अन्यामन्याम्) अलग-अलग (नद्यम्) नदी को जैसे मेघ वैसे (कारम्) हो किया जाता उस कार का (सिन्ध्यातः) सेवन करें उन (सखीयतः) मित्र के समान आचरण करते हुए जनों क्री आप (आविश्व) पालो (यत्) जिस कारण जिनको (आविश्व) पालो इससे उनको पुरुषार्थित्राले (चक्र्यं) करो (एभ्यः) इन धार्मिक सज्जनों से सब राज्य की पालना करो और जो आप के कर्मचारी मुरुष हों (ते) वे भी धर्म से (आदित्) ही प्रजाजनों की पालना करें॥५॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य प्रजा की रक्षा करने में अधिकार पाये हुए हैं, वे धर्म के साथ प्रजा पालने की हुन्छा करते हुए उत्तम यत्नवान् हों॥५॥

प्रुनर्मनुष्याः केन किं कुर्युरित्याह॥

फिर मनुष्य मिससे क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

उतो नो अस्या उपसो जुषेत हार्थकस्य बोधि हिविषो हवीमिधः स्वर्षाता हवीमिधः।

यदिद्ध हुनुबे मृधो वृषा वजिञ्जिकेतसि।

आ मैं अस्य वेधसो नवीयसो मन्मे श्रुधि नवीयसः॥६॥

उतो इति। नु:। अस्या:। उषसं:। जुषेते। हि। अर्कस्यं। बोधि। हुविषं:। हवींमऽभि:। स्वं:ऽसाता। हवींमऽभि:। यत्। डुन्द्र। हन्तेवे। मृधं:। वृषां। वृजिन्। चिकेतिस। आ। मे्। अस्य। वेधसं:। नवींयसः। मृन्यं। श्रुधि। नवींयसः।। ६॥

पदार्थ:-(उतो) अपि (नः) अस्मान् (अस्याः) (उषसः) प्रातःकालस्य मध्ये (जुषेत्) सेवेत (ह) खलु (अर्कस्य) सूर्यस्य (बोधि) बोधय (हविषः) दातुमर्हस्य (हवीमिभः) आहातुम्हः कर्मिभः (स्वर्षाता) सुखानां विभागे। अत्र सुपां सुलुगिति ङेर्डा। (हवीमिभः) स्तोतुम्हः (यत्) ये (इन्द्र) दुष्टविदारक (हन्तवे) हन्तुम्। अत्र तवेन् प्रत्ययः। (मृधः) संग्रामस्थान् शत्रूम्। मूध इति संग्रामनामसु पठितम्। (निघं०२.१७) (वृषा) वृषेव बलिष्ठः (विज्ञन्) प्रशस्तशस्त्रयुक्त (विकेतिस) जानीयाः (आ) (मे) मम (अस्य) (वेधसः) मेधाविनः (नवीयसः) अतिशयेन नविद्याध्येतः (मन्म) विज्ञानजनकं शास्त्रम् (श्रुधि) श्रुणु (नवीयसः) अतिशयेन नवाऽध्यापकस्यभद्दा।

अन्वय:-हे विज्ञिन्दि! भवान् यथाऽर्कस्यास्या उषसश्च प्रभावण जना बुद्ध्यन्ते तथा नोऽस्मान् बोधि हि किलोतो स्वर्षाता हवीमिभर्हविषो जुषेत यद्यो वृषा त्वं मृधो हन्तवे चिकेत्सि नवीयसो वेधसो मेऽस्य नवीयसो मन्माश्रुधि॥६॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। यथा सूर्योत्पन्नयोषसा प्रबुद्धजना: प्रकाशे स्वान् स्वान् व्यवहाराननुतिष्ठन्ति तथा विद्वद्भिस्सुबोधिता नरा विज्ञानपुष्काशे स्वानि स्वानि कर्माणि कुर्वन्ति, ये दुष्टान्निवार्य श्रेष्ठान् संसेव्य नृतनाऽधीतविदुषां सन्त्राशाद्विद्धा पृत्नन्ति तेऽभीष्टप्राप्तौ सिद्धा जायन्ते॥६॥

पदार्थ:-हे (विज्ञन्) प्रशंसित शस्त्रयुक्त विद्वान्! (इन्द्र) दुष्टों का संहार करनेवाले आप जैसे (अर्कस्य) सूर्य और (अस्या:) इस (उष्पर्ः) प्रभात वला के प्रभाव से जन सचेत होते जागते हैं, वैसे (न:) हम लोगों को (बोधि) सचेत करों (हि. उतों) और निश्चय से (स्वर्षाता) सुखों के अलग-अलग करने में (हवीमिभः) स्पर्धा करने योग्य कामों के समान (हवीमिभः) प्रशंसा के योग्य कामों से (हविषः) देने योग्य पदार्थ का (जुषेत) सेवन करों (यत्) जो (वृषा) बैल के समान बलवान् आप (मृधः) संग्रामों में स्थित श्रात्रुओं को (हन्तवः) मारने को (चिकतिसः) जानो (नवीयसः) अतीव नवीन विद्या पढ़ने वाले (वेधसः) बुद्धिनान् (में) मुझ विद्यार्थी और (अस्य) इस (नवीयसः) अत्यन्त नवीन पढ़ानेवाले विद्वान् के (मन्म) विज्ञान उत्पन्न करनेवाले शास्त्र को (आश्रुधि) अच्छे प्रकार सुनो॥६॥

भावार्थ: इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य से प्रकट हुई प्रभात वेला से जागे हुए जन सूर्य के इन्जल में अपने-अपने व्यवहारों का आरम्भ करते हैं, वैसे विद्वानों से सुबोध किये मनुष्य विशेष ज्ञान के प्रक्राण में अपने-अपने कामों को करते हैं। जो दुष्टों की निवृत्ति और श्रेष्ठों की उत्तम सेवा वा नवीन पढ़े हुए विद्वानों के निकट से विद्या का ग्रहण करते हैं, वे चाहे हुए पदार्थ की प्राप्ति में सिद्ध होते हैं।

मण्डल-१। अनुवाक-१९। सूक्त-१३१

पुना राजप्रजाजनै: किं निवार्य्य किं कर्त्तव्यमित्याह॥

फिर राजा और प्रजाजनों को किसको छोड़ क्या करना चाहिये, इस विषय को अगले मून्त्र में

कहा है॥

त्वं तिमन्द्र वावृधानो अस्मयुरिमत्रयन्तं तुविजात् मर्त्यं वर्न्रेण श्रूर् मर्त्यम्। जिह यो नो अधायितं शृणुष्व सुश्रवंस्तमः।

रिष्टं न यामुन्नपं भूतु दुर्मतिर्विश्वापं भूतु दुर्मति:॥७॥२०॥

त्वम्। तम्। इन्द्रः। वृवृधानः। अस्मऽयुः। अमित्रऽयन्तेम्। तुविऽजात्। पत्यम्। वर्ष्णेणः। श्रूर्। मर्त्यम्। जृहि। यः। नः। अघऽयति। शृणुष्व। सुश्रव॑ःऽतमः। रिष्टम्। न। यामेन्। अप। भूतु। दुःशमृतिः। विश्वां। अप। भूतु। दुःऽमृतिः॥७॥

पदार्थ:-(त्वम्) (तम्) जनम् (इन्द्र) विद्यैश्वर्यांढ्ये (चान्रधानः) वर्धमानः (अस्मयुः) अस्मास्वात्मानिम्च्छुः (अमित्रयन्तम्) शत्रूयन्तम् (तुविज्ञात) सुविषु बहुषु प्रसिद्ध (मर्त्यम्) मनुष्यम् (वज्रेण) शस्त्रेण (शूर) शत्रूणां हिंसक (मर्त्यम्) मनुष्यम् (जिह्न) (यः) (नः) अस्मभ्यम् (अघायित) आत्मनोऽघिमच्छिति (शृणुष्व) (सुश्रवस्तमः) अतिशयेन सुद्धु शृणोति सः (रिष्टम्) हिंसितम् (न) इव (यामन्) यामिन (अप) (भूतु) भवतु (दुर्मितः) दुष्टा मर्तिर्यस्य सः (विश्वा) अखिला (अप) (भूतु) (दुर्मितः) दुष्टा चासौ मतिश्च दुर्मितः॥७॥

अन्वयः – हे तुविजात शूरेन्द्र! सुश्रवस्तुमा वावधार्मीऽस्मयुस्त्वं वज्रेणामित्रयन्तं मर्त्यं जिह। यो नोऽघायित तं मर्त्यं जिह। यो यामन् दुर्मितरभूतु तं रिष्टन्नेव जिह्न। यो दुर्मितः स्यात् सा विश्वाऽस्मत्तोऽपभूत्विति शृणुष्व॥७॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार । ये घोर्मिका राजप्रजाजनास्ते सर्वाभिश्चातुर्य्वेर्द्वेषकारिपरस्वापहारिणो हत्वा धर्म्यं राज्यं प्रशास्य निर्भृयान् मार्गान् कृत्वा विद्यावृद्धिं कुर्य्यु:॥७॥

अत्र श्रेष्ठाऽश्रेष्ठमनुष्यसत्कोस्तार्छनवर्णनादेतत्सूक्तार्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गितिरस्तीति वेद्यम्॥ इत्येकिशिरुदुमारं शततमं १३१ सूक्तं विंशो २० वर्गश्च समाजः॥

पदार्थ:-हे (तुविजात) बहुतों में प्रसिद्ध (शूर) शत्रुओं को मारनेवाले (इन्द्र) विद्या और ऐश्वर्य से युक्त (सुश्रवस्तम्) अतीव सुन्दरता से सुननेहारे और (वावृधानः) बढ़ते हुए (अस्मयुः) हम लोगों में अपनी इच्छा करेंगेवाले (त्वम्) आप (वज्रेण) शस्त्र से (अमित्रयन्तम्) शत्रुता करते हुए (मर्त्यम्) मनुष्य को (जिह्र) मारो (यः) जो (नः) हम लोगों के लिये (अधायित) अपना दुष्कर्म चाहता है (तम्) उस (मर्त्यम्) मनुष्य को मारो और जो (यामन्) रात्रि में (दुर्मितः) दुष्टमितवाला मनुष्य (अप, भूतु) अप्रसिद्ध हो (छिपे, उसको (रिष्टम्) दो मारनेवाले (न) जैसे मारें वैसे (जिह्न) मारो अर्थात् अत्यन्त दण्ड देओ जो

(दुर्मित:) दुष्टमित हो वह (विश्वा) समस्त हम लोगों से (अप, भूतु) छिपे दूर हो, यह आप (शृणुष्व) सुनो॥७॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो धार्मिक राजा और प्रजाजन हों, वे सब अतुग्रहियों से द्वेष वैर करने और पराया माल हरनेवाले दुष्टों को मार धर्म के अनुकूल राज्य की शिक्ष बेखटक मार्ग और विद्या की वृद्धि करें॥७॥

इस सूक्त में श्रेष्ठ और दुष्ट मनुष्यों का सत्कार और ताड़ना के वर्णन से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है, यह जानना चाहिये॥

पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है, यह जानना चाहिये॥ यह एक सौ इकतीसवां १३१ सूक्त और बीसवां २० वर्ग सम्मूल हुआ।। अथ त्वयेत्यस्य षडर्चस्य द्वात्रिंशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य परुच्छेप ऋषिः। इन्द्रो देवता। १,३,५,६ विराडत्यष्टिश्छन्दः। गान्धारः स्वरः। २ भुरिगतिशक्वरी छन्दः। पञ्चमः स्वरः। ४

> निचृदष्टिश्छन्दः। मध्यमः स्वरः॥ *पुनर्युद्धसमये सेनेशः किं कुर्यादित्याह॥*

फिर युद्ध समय में सेनापति क्या करे, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा 🕅

त्वया वयं मघवन्यूर्व्ये धन् इन्द्रत्वोताः सासह्याम पृतन्यतो वनुयाम वनुष्यतः। नेदिष्ठे अस्मिन्नहुन्यधि वोचा नु सुन्वते।

अस्मिन्यज्ञे वि चेयेमा भरे कृतं वाज्यन्तो भरे कृतम्॥ १॥

त्वर्या। वयम्। मुघुऽवन्। पूर्व्ये। धर्ने। इन्द्रंत्वाऽऊताः। सुसुह्याम्। पृत्नुत्यतः। वनुष्यतः। नेर्दिष्ठे। अस्मिन्। अर्होन। अर्धा। वोच्च। नु। सुन्वते। अस्मिन्। युज्ञे। वि। चुयेम्। भूरे। कृतम्। वोज्ञेऽयन्तः। भरे। कृतम्॥ १॥

पदार्थ:-(त्वया) (वयम्) (मघवन्) परमपूजितबहुधन्युक्ते (पूर्व्यो) पूर्वेः कृते (धने) (इन्द्रत्वोताः) इन्द्रेण त्वया पालिताः (सासह्याम) भृशं सहेम (पृतन्यतः) पृतना मनुष्या तानिवाचरतः (वनुयाम) संभजेम (वनुष्यतः) संभक्तान् (नेदिष्ठे) अविश्वयिन् निकटे (अस्मिन्) (अहिन) (अधि) उपरिभावे (वोच) उपदिश। अत्र द्वयचोऽतस्तिङ इति सिर्धः। (मृ) शीघ्रम् (सुन्वते) निष्पाद्यते (अस्मिन्) (यज्ञे) (वि) (चयेम) चिनुयाम। अत्राऽन्येषामपीति दीर्षः। (भरे) पालने (कृतम्) निष्पत्रम् (वाजयन्तः) ज्ञापयन्तः (भरे) संग्रामे। भर इति संग्रामनामस् पठितम्। (निरु०४.२४) (कृतम्) निष्पत्रम्॥१॥

अन्वयः – हे मघवन्! इन्द्रत्वोता वयं त्विया सह प्रार्ट्य धने पृतन्यतः सासह्याम। वनुष्यतो वनुयाम भरे कृतं विचयेम नेदिष्ठेऽस्मिन्नहनि सुन्वते त्वं सत्योपब्रेशं न्वाधिवोच्या १॥

भावार्थ:-सर्वेर्मनुष्यैर्धार्मिकेण स्तेशेन सह प्रीतिं विधायोत्साहेन शत्रून्विजित्य परश्रीनिचयः संपादनीयः सेनापतिश्च तात्कालीन्त्रकृतत्वेन सौर्यादिगुणानुपदिश्य शत्रूभिः सह सैन्यान् योधयेत्॥१॥

पदार्थ:-हे (मघवन) परम प्रशंसित बहुत धनवाले (इन्द्रत्वोता:) अति उत्तम ऐश्वर्ययुक्त जो आप उन्होंने पाले हुए (वयम) हिम लोग (क्वया) आप के साथ (पूर्व्य) अगले महाशयों ने किये (धने) धन के निमित्त (पृतन्यत:) मनुष्यों के समान आचरण करते हुए मनुष्यों को (सासह्याम) निरन्तर सहें (वनुष्यत:) और सेवन करनेव्यलों का (बनुयाम) सेवन करें तथा (भरे) रक्षा में (कृतम्) प्रसिद्ध हुए को (वाजयन्त:) समझाते हुए इसे लोग (अस्मिन्) इस (यज्ञे) यज्ञ में तथा (भरे) संग्राम में (कृतम्) उत्पन्न हुए व्यवहार को (विचग्नेम) विशेष कर खोजें और (नेदिष्ठे) अति निकट (अस्मिन्) इस (अहिन) आज के दिन (सुन्वते) व्यवहारों की सिद्धि करते हुए के लिये आप सत्य उपदेश (नु) शीघ्र (अधिवोच) सबके उपग्रन करो॥ १॥

१४५८

भावार्थ:-सब मनुष्यों को चाहिये कि धार्मिक सेनापित के साथ प्रीति और उत्साह कर शर्तुओं को जीत के अति उत्तम धन का समूह सिद्ध करें और सेनापित समय-समय पर अपनी वक्तृता से शूरता आदि गुणों का उपदेश कर शत्रुओं के साथ अपने सैनिकजनों का युद्ध करावे॥१॥

ऋग्वेदभाष्यम्

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

स्वर्जेषे भरं आप्रस्य वक्मन्युषर्बुधः स्वस्मिन्नञ्जेसि क्राणस्य स्वस्मिन्नञ्जेसि। अहन्निन्द्रो यथा विदे शीष्णांशीर्ष्णोपवाच्यः।

अस्मुत्रा ते सुध्रचक्सन्तु रातयो भुद्रा भुद्रस्य रातयः॥२॥

स्वः ऽजे्षे। भरें। आप्रस्य। वक्मीन। उषः ऽबुधः। स्वस्मिन्। अञ्चीमा क्राणस्या स्वस्मिन्। अञ्चीसा अहेन्। इन्द्रेः। यथा। विदे। शोष्णां ऽशीष्णां। उपऽवाच्येः। अस्मऽत्रा। ते। सञ्चकः। प्रन्तुः। गृतयेः। भुद्राः। भुद्रस्य। गृतयेः॥२॥

पदार्थ:-(स्वर्जेष) सुखेन जयशीलाय (भरे) संग्रामें (आप्रस्त्र) पूर्णबलस्य (वक्मिन) उपदेशे (उषर्जुध:) रात्रिचतुर्थप्रहरे जागृताः (स्वस्मिन्) (अञ्चित्त) प्रकर (क्राणस्य) कुर्वाणस्य। अव वा छन्दसीति शपो लुक्। (स्वस्मिन्) (अञ्चित्त) कामयमाने (अहन्) हिन्तु (इन्द्रः) सूर्यः (यथा) (विदे) ज्ञानवते (शीर्ष्णा शीर्ष्णा) शिरसा शिरसा (उपवाच्यः) उपवन्तुं योग्यः (अस्मत्रा) अस्मासु (ते) तव (सध्च्यक्) सहाऽञ्चतीति (सन्तु) भवन्तु (रातयः) दानानि (भद्गः) कल्याणकराः (भद्रस्य) कल्याणकरस्य (रातयः) दानानि॥२॥

अन्वय:-हे मनुष्या! यथा सभ्रजूरीपन्द्रा स्वर्जेष्ट्रे विदे शीष्णाशीष्णीपवाच्यस्तथा भरे आप्रस्य क्राणस्योषर्बुधो वक्मिन स्वस्मिन्नञ्जसीव स्वस्मिन्नञ्जसि रोघं सूर्सोऽहन्निव शत्रून् घ्नन्तु या अस्मत्रा भद्रा रातयस्ते भद्रस्य रातय इव स्युस्तास्ते सन्तु॥२॥

भावार्थ:-अत्रोपमाव विकासुप्तोपमात् द्वारौ। यस्सभेशः सर्वान् शूरवीरान् स्ववत्सत्करोति स शत्रून् जित्वा सर्वेभ्यः सुखं दात् श्रुक्नोति। संग्रामे स्वकीयाः पदार्था अन्यार्था अन्येषां च स्वार्थाः कर्त्तव्या एवं परस्परस्मिन् प्रीत्या विरोधं विद्याया विजयः प्राप्तव्यः॥२॥

पदार्थ: हे मनुष्यो (यथा) जैसे (सध्चक्) साथ जानेवाला (इन्द्र:) सूर्य्यमण्डल (स्वर्जेष) सुख से जीतनेवाले (विदे) ज्ञानवान् पुरुष के लिये (शीर्ष्णाशीर्ष्णा) शिर माथे (उपवाच्य:) समीप कहने योग्य है, वैसे (भूरें) संग्रीम में (आप्रस्य) पूर्ण बल (क्राणस्य) करते हुए समय के विभाग (उषर्बुध:) उष:काल अर्थात् सिंह के चौथे प्रहर में जागे हुए तुम लोग (वक्मिन) उपदेश में जैसे (स्वस्मिन्) अपने (अञ्जिष) प्रसिद्ध व्यवहार के निमित्त वैसे (स्वस्मिन्) अपने (अञ्जिष्त) चाहे हुए व्यवहार में जैसे मेघ को सूर्य (अहन) भारता वैसे शत्रुओं को मारो, जो (अस्मत्रा) हम लोगों के बीच (भद्रा:) कल्याण करनेवाले

मण्डल-१। अनुवाक-१९। सूक्त-१३२

(रातयः) दान आदि काम (ते) तुम (भद्रस्य) कल्याण करनेवाले के (रातयः) दोनों के समान हों के ते ते तेरे (सन्तु) हों॥२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जो सभापित सब श्रूरवीरों का अपने समान सत्कार करता है, वह शत्रुओं को जीतकर सबके लिये सुख दे सकता है। संग्राम में अपने पदार्थ औरों के लिये और औरों के अपने लिये करने चाहिये। ऐसे एक-दूसरे में प्रीक्षि के साथ विरोध छोड़ उत्तम जय प्राप्त करना चाहिये॥२॥

पुनर्मनुष्याः किं कृत्वा कीदृशा भवेयुरित्याह॥

फिर मनुष्य क्या करके कैसे हों, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

तत्तु प्रयः प्रत्नथा ते शुशुक्वनं यस्मिन्युज्ञे वार्मकृण्वत् क्षयमृतस्य वारिस् क्षयम्। वि तद्वीचेरधं द्वितान्तः पंश्यन्ति रृश्मिभिः।

स घा विदे अन्विन्द्री गुवेषणो बन्धुक्षिद्ध्यो गुवेषणः।।अ

तत्। तु। प्रयः। प्रत्निऽर्था। ते। शुशुक्वनम्। यस्मिना युज्ञे। वार्ष्प्र। अकृण्वता क्षयम्। ऋतस्य। वाः। असि। क्षयम्। वि। तत्। वोचेः। अर्धा द्विता। अन्तरिति। पुश्र्वान्ति। रश्मिक्ष्मिः। सः। घ। विदे। अर्नु। इन्द्रेः। गोऽएषणः। बुखुक्षित्ऽभ्येः। गोऽएषणः॥३॥

पदार्थ:-(तत्) पूर्वोक्तम् (तु) (प्रयः) प्रीतिकारकं वचः (प्रत्नथा) प्राचीनम् (ते) तव (शुशुक्वनम्) अतिशयेन प्रदीप्तम् (यम्मिन्) (यज्ञे) व्यवहारे (वारम्) वर्त्तुम् (अकृण्वत) कुर्वन्तु (क्षयम्) निवासम् (ऋतस्य) सत्यस्य (वाः) जलमिव (असि) (क्षयम्) प्राप्तव्यम् (वि) (तत्) (वोचेः) ब्रूयाः (अध) अथ (द्विता) द्वयोर्भावः (अन्तः) अध्यन्तरे (पश्यन्ति) प्रेक्षन्ते (रिश्मिभः) किरणैः (सः) (ध) एव। अत्र ऋचि तुनुघेति दीर्धः (विदे) ब्रीधा। अत्र व्यत्ययेनात्मनेपदम्। (अनु) (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् (गवेषणः) यो गां वर्ण्यामिच्छित् सः (बन्धुक्षिद्ध्यः) बन्धून् निवासयद्भयः (गवेषणः) गवां किरणानािमष्टः सूर्य इव। शा

अन्वय:-हे विद्वन्! गवेषण इन्द्र इव ते तव प्रत्नथा यस्मिन् यज्ञ ऋतस्य शुशुक्वनं क्षयं वारं वाः क्षयमिव ये प्रयोऽकृण्वत तेषां तत्तु त्वं प्राप्तोऽसि। अधाथ द्विता रिश्मिभरन्तर्यत् पश्यन्ति तत्त्वं विवोचेः स बन्धिक्षिद्भयो गवेषण इन्द्रोऽहं यदनुर्विदे बुलदेवे ह्वं जानीहि॥३॥

भावार्थः अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये सत्यगुणेषु प्रीतिं कुर्वन्ति ते विद्वांसो जायन्ते ये विद्वांगः स्युप्ते सूर्यप्रकाशेन सर्वान् पदार्थान् हस्तामलकवद् द्रष्टुं शक्नुवन्ति॥३॥

पदार्थ:-हे विद्वान्! (गवेषणः) जो वाणी की इच्छा करता है, उस (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् के समान (ते) आपका (प्रत्नथा) प्राचीन (यस्मिन्) जिस (यज्ञे) व्यवहार में (ऋतस्य) सत्य का (शृशुक्वनम्) अतिप्रकाशित (क्षयम्) निवास का (वारम्) स्वीकार करने को (वाः) जल और (क्षयम्) प्राप्त होने योग्य पदार्थ के समान जो (प्रयः) प्रीति करनेवाले वचन को (अकृण्वत) उच्चारण करें उनके (तत्) उस पूर्वोक्त वचन को (तु) तो आप प्राप्त (असि) हैं (अध) इसके अनन्तर (द्विता) दो कू होना असे हो वैसे (रिश्मिभः) किरणों के साथ (अन्तः) भीतर जिसको (पश्यिन्त) देखते हैं (तत्) उसको तू (वि, वोचेः) अच्छे कह और (सः) वह (वस्युक्षिद्धयः) बन्धुओं को निवास कराते हुए प्रुर्हणों के लिये (गवेषणः) किरणों को इष्ट सूर्य के समान ऐश्वर्यवान् मैं (अनु, विदे) अनुकूलता से जान्वा हूँ (घ) उसी को आप भी जानो॥३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो सत्य गुम्में भें प्रीक्ति करते हैं, वे विद्वान् होते और जो विद्वान् हों वे सूर्य के प्रकाश से सब हाथ में आमले के समान पदार्थों को देख सकते हैं॥३॥

पुनः के चक्रवर्त्तिराज्यं कर्त्तुमर्ह्यतीत्याह।।

फिर कौन चक्रवर्ति राज्य करने को योग्य होते हैं, इस विषय क्रि अगले मन्त्र में कहा है॥

नू इत्था ते पूर्वथा च प्रवाच्यं यदिङ्गरोभ्योऽवृणीर्ग वर्जिमन्द्र शिक्ष्नप्तपं वृजम्।

ऐभ्यं: समान्या दिशास्मभ्यं जेषि योह्मि च।

मुन्बद्भ्यों रखया कं चिदवृतं हणायन्तं चिदवृतम्॥४॥

नु। इत्था। ते। पूर्वऽथा। च। प्रऽवाच्याम्। यत्। अद्भिरःऽभ्यः। अवृणोः। अप। वृजम्। इन्द्रं। शिक्षेन्। अप। वृजम्। अप। वृजम्। अप। वृजम्। उप। पुम्यः। सुमान्या। दिशा। अपमभ्यम्। जेष्या। योत्सि। च। सुन्वत्ऽभ्यः। रुख्यः। कम्। चित्। अवृतम्। हृणायन्तम्। चित्। अवृतम्॥४॥

पदार्थ:-(नु) शीघ्रम् (द्वस्था) अनेन प्रकारेण (ते) तव (पूर्वथा) पूर्वैः प्रकारैः (च) (प्रवाच्यम्) प्रवक्तुं योग्यम् (यत्) (अङ्गिष्यः) प्राणेभ्य इव विद्वद्भ्यः (अवृणोः) वृण्याः (अप) निषेधे (व्रजम्) ज्ञातव्यम् (इन्द्र) अध्यपिनदिबद्धान्छतः (शिक्षन्) विद्यामुपादापयन् (अप) दूरीकरणे (व्रजम्) अधर्ममार्गम् (आ) (एभ्यः) बिद्धद्भयः (समान्या) समं वर्तमानया (दिशा) समन्तात् (अस्मभ्यम्) (जेषि) जयसि। अत्राऽडभावः। (योत्सि) युध्यसे। अत्र बहुलं छन्दसीति श्यनभावः। (च) (सुन्बद्भ्यः) अभिषवं कुर्वद्भयः (प्रव्यये) हिन्द्धि। अत्राऽन्येषामि दृश्यत इति दीर्घः। (कम्) (चित्) (अव्रतम्) सत्यभाषण्यद्भिव्यवहाररहितम् (हणायन्तम्) हरतीति हणो हरिणस्तद्वदाचरन्तम् (चित्) इव (अव्रतम्) मिथ्याच्यर्युक्तम्॥४।।

अन्वेषः-हे इन्द्र! त्वं शिक्षन् सन्नप व्रजं कुटिलगामिनमिव व्रजं जनमपावृणो:। अङ्गिरोभ्यो यत्पूर्वथा प्रवाच्यं व्रच्च नु गृह्मण। यस्त्वमेभ्य: सुन्वद्भयोऽस्मभ्यं समान्या दिशा शत्रूनायोत्सि जेषि च हृणायन्तमवृतं चिदिव वर्तमानमव्रतं

मण्डल-१। अनुवाक-१९। सूक्त-१३२



जनं रन्धय च तादृशं कञ्चिदिप दुष्टं दण्डदानेन विना मा त्यज। इत्था वर्त्तमानस्य ते तव इहामुत्रानन्द-सिद्धिमेनिष्यतीति जानीहि॥४॥

भावार्थ:-येषां राज्ये दुष्टवाचः स्तेना दुष्टवाचो व्यभिचारिणो न सन्ति हो साम्राज्यं कर्त्तु प्रभवन्ति॥४॥

पदार्थ:-हे (इन्द्र) पढ़ाने से अज्ञान का विनाश करनेवाले (शिक्षन्) विद्या के ग्रहण कराते हुए आप (अप, व्रजम्) न जानने योग्य कुटिलगामी के समान (व्रजम्) अधर्ममार्गी जन को (अपावृणोः) मत स्वीकार करो, (अङ्गिरोभ्यः) प्राणों के समान विद्वान् जनों ने (यत्) जो (पूर्वश्र) प्राचीन ढंगों से (प्रवाच्यम्) अच्छे प्रकार कहने योग्य उसको (च) भी (नु) शीघ्र ग्रहण करा, जो आप (एभ्यः) इन विद्वान् और (सुन्वद्ध्यः) पदार्थों के सार को खींचते हुए (अस्मभ्यम्) हमे लोगों के लिये (समान्या) एक सी वर्त्तमान (दिशा) दिशा से शत्रुओं को (आ, योत्सि) अच्छे प्रकार लड़ते-लड़ते (च) और (जेषि) जीतते वा (हणायन्तम्) हिरण के समान ऊलते-फांदते हुए (अव्रतम्) मृत्यभाषणादि व्यवहाररहित पुरुष के (चित्) समान (अव्रतम्) झूठे आचार से युक्त जन को (रस्वयः) मारो (च) और वैसे (कं, चित्) किसी दुष्ट को दण्ड देने के विना मत छोड़ो (इत्था) स्मि चर्ति हुए (ते) आपकी इस जन्म और परजन्म में आनन्द की सिद्धि होगी, इसको जानो॥४॥

भावार्थ:-जिनके राज्य में दुष्ट वचन किहमेवाले स्वीर भी व्यभिचारी नहीं हैं, वे चक्रवर्ति राज्य करने को समर्थ होते हैं॥४॥

पुनर्प्रमुख्याः किं कर्त्तुं शक्नुवन्तीत्याह॥

फिर मनुष्य क्या करके क्या कर सकते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

सं यज्जनान् क्रतुभिः श्रूरं ईक्षयुद्धेर्रे हिते तरुषन्त श्रवस्यवः प्र यक्षन्त श्रवस्यवः।

तस्मा आर्युः प्रजाविदिद्वार्थे अर्चन्त्याजसा।

इन्द्रं ओक्यं दिशिष्ति भूमियों देवाँ अच्छा न धीतर्यः॥५॥

सम्। यत्। जनान्। क्रतुं प्रमाः। ईक्षयंत्। धने। हिते। तुरुषन्तः। श्रुवस्यवः। प्र। युक्षुन्तः। श्रुवस्यवः। तस्मै। आयुः। प्रजाऽवेत्। इतः। बाधे। अर्चन्ति। ओर्जसा। इन्द्रे। ओक्यंम्। दिष्धिषन्तः। धीतयः। देवान्। अच्छं। न। धीतयः॥५॥

पदार्थ: (सम्) सम्यक् (यत्) यान् (जनान्) धार्मिकान् (क्रतुभिः) प्रज्ञाभिः कर्मभिर्वा (श्रूरः) निर्भृतः (इक्षयत्) दर्शयेत् (धने) (हिते) सुखकारके (तरुषन्त) ये दुःखानि तरन्ति तद्वदाचरत (श्रवस्यवः) अत्मनः श्रणिमच्छवः (प्र) (यक्षन्त) रोषत हिंस्त (श्रवस्यवः) आत्मनः श्रवणिमच्छव इव

वर्तमानाः (तस्मै) (आयुः) जीवनम् (प्रजावत्) बह्न्यः प्रजा विद्यन्ते यस्मिंस्तत् (इत्) एव (वाध) (अर्चिन्त) सत्कुर्वन्ति (ओजसा) पराक्रमेण (इन्द्रे) परमैश्वर्ययुक्ते (ओक्यम्) ओकेषु गृहेषु साधु (दिधिषन्त) उपदिशन्ति। अत्र व्यत्ययेनात्मनेपदम्। (धीतयः) धरन्तः (देवान्) विदुषः (अच्छ) उन्मरीत्या (न) इव (धीतयः) धरन्तः॥५॥

अन्वय:-हे विद्वांसः! श्रवस्यव इव वर्त्तमानाः श्रवस्यवो यूयं क्रतुभिर्यज्जनान् हिते धने तृर्हणन्त प्रयक्षन्त च। यः शूरः समीक्षयत् तस्मै प्रजावदायुर्भवतु। हे विपश्चितो! ये यूयं धीतयो न धीतयः सन्त इन्द्रे परमैक्स्ययुक्त ओक्से संपाद्य देवानाच्छादिधिषन्त बाध ओजसाऽर्चन्तीव बाध इद्रक्षत॥५॥

भावार्थ:-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। ये विद्वत्संगसेवाभ्यां विद्याः प्राप्य पुरुषार्थेन परमैश्वर्यमुत्रयन्ति ते सर्वान् प्राज्ञान् सुखिनः संपादयितुं शक्नुवन्ति॥५॥

पदार्थ:-हे विद्वानो! (श्रवस्थव:) अपने को सुनने में चाहूना करनेवालों के समान वर्त्तमान (श्रवस्थव:) अपने को सुनने की इच्छा करनेवाले तुम जैसे (क्रतुष्ध:) बुद्धि वा कर्मों से (थत्) जिन (जनान्) धार्मिक जनों को (हिते) सुख करनेहारे (धने) धन के निम्त (तरुपन्त) पार करो उद्धार करो और (प्रयक्षन्त) दुष्टों को दण्ड देओ और जो (श्रूर:) निर्मय श्रूरवीर पुरुष (समीक्षयत्) ज्ञान करावे व्यवहार को दर्शावे (तस्मै) उसके लिये (प्रजावत्) जिसमें बहुत सन्तान विद्यमान वह (आयु:) आयुर्दा हो। हे उत्तम विचारशील पुरुषो! तुम (धीतय:) धरिणा करते हुओं के (न) समान (धीतय:) धारणा करनेवाले होते हुए परम ऐश्वर्य्युक्त परमेश्वर में (ओक्यम्) घरों में श्रेष्ठ व्यवहार उसको सिद्ध कर (देवान्) विद्वानों को (अच्छ) अच्छा (दिधिषन्त) उपदेश करते समझाते हो वे आप (बाधे) दुष्ट व्यवहारों की बाधा के लिये (ओजसा) पराक्रम से (अविदिन्न) सत्कार करते हुओं के समान कष्ट में (इत्) ही रक्षा करो॥५॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जो विद्वानों के सङ्ग और सेवा में विद्वाओं को पाकर पुरुषार्थ से पूरम ऐश्वर्य की उन्नति करते हैं, वे सब ज्ञानवान् पुरुषों को सुखयुक्त कर सकते हैं॥५॥

पुत्रः) रेसनाजनाः परस्परं कथं वर्त्तेरन्नित्याह॥

फिर सेना जन प्ररस्पर कैसे वर्तें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

युवं तिमिन्नापर्वति पुरोयुधा यो नः पृत्नयादप् तंतिमिद्धतं वर्त्रेण तंतिमिद्धतम्। दुरे चतास च्छंत्सद्गहेनं यदिनेक्षत्।

अस्माकं सेत्रून्परि शूर विश्वती दुर्मा देषीष्ट विश्वतः॥६॥२१॥

मण्डल-१। अनुवाक-१९। सूक्त-१३२



युवम्। तम्। इन्द्रापुर्वता। पुरःऽयुधां। यः। नः। पृतन्यात्। अपं। तम्ऽत्मेम्। इत्। हृतम्। वर्त्रेम्। इत्। हृतम्। वर्त्रेम्। इत्। हृतम्। दूरे। चृत्तायं। छुंत्सुत्। गहंनम्। यत्। इनेक्षत्। अस्मार्कम्। शत्रून्। पिरं। श्रूरः। विश्वत्रः। दुर्मा दुर्षे। विश्वतः।। दु।

पदार्थ:-(युवम्) युवाम् (तम्) (इन्द्रापर्वता) सूर्यमेघाविव वर्त्तमानौ सभाद्वेषेशौ (पुरोयुधा) पुरः पूर्वं युध्येते यौ तौ (यः) (नः) अस्माकम् (पृतन्यात्) पृतनां सेनामिच्छेत् (अप) (तंतम्) (इत्) एव (हतम्) नाशयतम् (वज्रेण) तीव्रेण शस्त्राऽस्त्रेण (तंतम्) (इत्) एव (हतम्) (दूरे) (चत्ताय) याचिताय (छन्त्सत्) संवृणुयात् (गहनम्) कठिनम् (यत्) यः (इनक्षत्) व्याप्नुयात् (अस्माकृम्) (शत्रून्) (पिर) (श्रूर्) (विश्वतः) सर्वतः (दर्मा) विदारकः सन् (दर्षीष्ट) दृणीहि (विश्वतः) अभितः ।६॥

अन्वय:-हे पुरोयुधेन्द्रापर्वता युवं यो नः पृतन्यात् तं वज्रेणाऽप हतं यथा युकं यं हतं तंतिमद्वयमिष हन्याम। यं यं वयं हन्याम तंतिमद् युवामप हतम्। हे शूर दर्मा! त्वं यानस्माक् स्त्रून्विश्वत्ती दर्षीष्ट तान् वयमिष विश्वतो परि दर्षीष्मिहि यच्चताय गहनं दूरे छन्त्सत् शत्रुसेनामिनक्षत् तं युवां सततं रक्षतम्॥६॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। सेनापुरुषैर्ये सिनेशार्दीनां शत्रवस्सन्ति ते स्वेषामपि शत्रवो वेद्या: शत्रुभि: परस्परं भेदमप्राप्ता: सन्त: शत्रुन् विदीर्क प्रजा: संस्थन्तु॥६॥

अत्र राजधर्मवर्णनादेतत्सूक्तार्थस्य पूर्वसू<mark>क्तार्थेत्र सहर्र</mark>भ्सङ्गतिरस्तीति बोध्यम्॥

इति द्वात्रिंशदुत्तरं शततमं १३२ सूब्तमेकविंशो २१ वर्गश्च समाप्त:॥

पदार्थ:-हे (पुरोयुधा) पहिले युद्ध करनेवाले (इन्द्रापर्वता) सूर्य्य और मेघ के समान वर्तमान सभा सेनाधीशो! (युवम्) तुम (यः) जो (नः) हम लोगों की (पृतन्यात्) सेना को चाहे (तम्) उसको (वज्रेण) पैने तीक्ष्ण शस्त्र वा अस्त्र अथित कलाकौशल से बने हुए शस्त्र से (अप, हतम्) अत्यन्त मारो, जैसे तुम दोनों जिस जिसको (हतम्) मारो (तं, तम्) उस उसको (इत्) ही हम लोग भी मारें और जिस जिसको हम लोग मारें (तं, तम्) उस उसको (इत्) ही तुम मारो। हे (शूर) शूरवीर! (दर्मा) शत्रुओं को विदीर्ण करते हुए आप विन (अस्माकम्) हमारे (शत्रून्) शत्रुओं को (विश्वतः) सब ओर से (दर्षिष्ट) दरो विदीर्ण करो, इनको हम लोग भी (विश्वतः) सब ओर से (पिर) सब प्रकार दरें विदीर्ण करें, (यत्) जो (चत्राय) मांगे हुए के लिखे (गहनम्) कठिन व्यवहार को (दूरे) दूर में (छन्त्सत्) स्वीकार करे और शत्रुओं की सेन्न को (इनक्षत्) व्याप्त हो, उसकी तुम निरन्तर रक्षा करो॥६॥

भूतिर्थ: इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। सेना पुरुषों को जो सेनापित आदि पुरुषों के शत्रु हैं, व अपने भी शत्रु जानने चाहिये, शत्रुओं से परस्पर फूट को न प्राप्त हुए धार्मिक जन उन शत्रुओं को विद्वीर्ण कर प्रजाजनों की रक्षा करें॥६॥

इस सूक्त में राजधर्म का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है, यह जानना चाहिये॥

यह एक सौ बत्तीसवाँ १३२ सूक्त और इक्कीसवां २१ वर्ग समाप्त हुआ॥



उभे इत्यस्य सप्तर्चस्य त्रयस्त्रिंशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य परुच्छेप ऋषिः। इन्द्रो देवता। १ त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। २,३ निचदनुष्टुप्। ४ स्वराडनुष्टुप् छन्दः। गास्थारः स्वरः। ५ आर्षी गायत्री छन्दः। गान्थारः स्वरः। ६ स्वराइ ब्राह्मीजगती छन्दः। निषादः स्वरः।

विराडष्ट्रिश्छन्दः। मध्यमः स्वरः॥ कथं स्थिरं राज्यं स्यादित्याह॥

अब सात ऋचावाले एक सौ तैंतीसवें सूक्त का आरम्भ है। उसके प्रथम मन्त्र में कैसे स्थिर राज्य हो, इस विषय का उपदेश किया है।।

उभे पुनामि रोदंसी ऋतेन दुहों दहामि सं महीर्रिनन्द्राः। अभिक्लग्य यत्रं हुता अमित्रां वैलस्थानं परिं तृळ्हा अशेरम्।। १।

उभे इति। पुनामि। रोदंसी इति। ऋतेनं। दुहः। दुहामि। सम्। मृद्धीः। अनि्द्रिश्री। अभिऽव्लग्यं। यत्रं। हृताः। अमित्राः। वैलुऽस्थानम्। परि। तृळ्हाः। अशेरन्॥ १॥

पदार्थ:-(उभे) (पुनामि) पवित्रयामि (रोदसी) द्याव्यापृथिव्यो (ऋतेन) सत्येन (दुहः) हन्तुमिच्छून् (दहामि) भस्मीकरोमि (सम्) सम्यक् (महीः) महीति पृष्ठिवीनाम्सु पठितम्। (निघं०१.१) (अनिन्द्राः) अविद्यमाना इन्द्रा राजानो यासु ताः (अभिव्लग्य) अभितः सर्वते लिगित्वा। अत्र पृषोदरादिना वृगागमः। (यत्र) यस्मिन् (हताः) विनाशिताः (अमित्राः) मित्रभावविद्यताः (वैलस्थानम्) विलानामिदं वैलं तदेव स्थानं वैलस्थानम् (परि) सर्वतः (तृढाः) हिंसिताः (अशेगून्) शयीरन्॥१॥

अन्वयः-हे मनुष्या! यथाहमनिन्द्रा महोस्भिष्तग्य तेनभि रोदसी पुनामि। दुहः सन्दहामि यत्र वैलस्थानं प्राप्ताः परि तृढा हताः सन्तोऽमित्रा अशेरँस्तत्राऽहं प्रयुते वथा यूयामप्याचरत॥१॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। मनुष्यैः सर्वेरिदं सततमेष्टव्यं येन सत्येन व्यवहारेण राज्योन्नतिः पवित्रता शत्रुनिवृत्तिर्दिकण्टकं रोज्यं च स्यादिति॥१॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! जैसे मैं (अनिन्द्राः) जिनमें अविद्यमान राजजन हैं, उन (महीः) पृथिवी भूमियों का (अभिव्लग्य) सब ओर से सङ्ग कर अर्थात् उनको प्राप्त होकर (ऋतेन) सत्य से (उभे) दोनों (रोदसी) प्रकाश और पृथिवी को (पुनामि) पवित्र कर्त्ता हूँ और (दुहः) द्रोह करनेवालों को (सं, दहामि) अच्छी प्रकार जलाता हूँ (यत्र) जहाँ (वैलस्थानम्) विलरूप स्थान को प्राप्त (पिर, तृढाः) सब ओर से मारे (हताः) मरे हुए (अमित्राः) मित्रभाव रहित शत्रुजन (अशेरन्) सोवें वहाँ मैं यत्न करता हूँ, वैसा तुम भी आन्ररण करो। ३॥

भावार्थ: इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। सब मनुष्यों को यह निरन्तर इच्छा करनी चाहिये कि जिस सत्य व्यवहार से राज्य की उन्नति, पवित्रता, शत्रुओं की निवृत्ति और निवेंर निश्शत्रु ग्रुप्य हो ११।

मण्डल-१। अनुवाक-१९। सूक्त-१३३

पुनः शत्रवः कथं हन्तव्या इत्युपदिश्यते॥

फिर शत्रुजन कैसे मारने चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अभिऽव्लग्यां चिदद्रिवः शीर्षा यांतुमतीनाम्। छिन्धि वंटूरिणां पदा महावंटूरिणा पदा॥२॥

अभिऽव्लाये। चित्। अद्भिऽवः। शीर्षा। यातुऽमतीनाम्। छिस्थि। वट्ट्रिश्णां। पदा। मह्य वट्ट्रिश्णाः। पदा॥२॥ पदार्थः-(अभिव्लाय) अभितः सर्वतः प्राप्य। अत्राऽन्येषामपीति दीर्घः। (चित्र) इव (अद्भिवः) अद्रिवन्मेघ इव वर्त्तमान (शीर्षा) शीर्षाणि (यातुमतीनाम्) बहवो यातवो हिंसका विस्नेते यासु सेनासु तासाम् (छिन्धि) (वट्ट्रिश्णा) वेष्टितेन। अत्र वट वेष्टन इति धातोर्बाहुसकारोणिकि ऊरिः प्रत्ययः। (महावट्रिणा) महावर्णयुक्तेन (पदा) पादेन॥२॥

अन्वय:-हे अद्रिव: शूर! त्वं प्रशस्तं बलमभिक्लग्य यातुमतीनां महावेशूरिण पदा चिद्वटूरिणा पदा शीर्षा छिन्धि॥२॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। यः स्वबलमुत्रीय शत्रुवंलानि छित्वाऽरीन् पादाक्रान्तान् करोति, स राज्यं कर्त्तुमर्हति॥२॥

पदार्थ:-हे (अद्रिव:) मेघ के समान वर्तमान शूरवीर तू प्रशंसित बल को (अभिक्लग्य) सब ओर से पाकर (यातुमतीनाम्) जिनमें बहुत हिंसक पार-भूगर करनेहारे विद्यमान हैं, उन सेनाओं के (महावटूरिणा) बड़े-बड़े रंग से युक्त (पदा) चौथे भाग से जैसे (चित्) वैसे (वटूरिणा) लपेटे हुए (पदा) शस्त्रों के चौथे भाग से वा अपने के से दबा के (शीर्षा) शत्रुओं के शिरों को (छिस्च) छिन्न-भिन्न कर॥२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो अपने बल की उन्नति कर शत्रुओं के बलों को छिन्न-भिन्न कर उनको पैर से द्वाता है, बह राज्य करने को योग्य होता है॥२॥

पुनः शत्रुसेनाः कथं हन्तव्या इत्याह॥

फिर शत्रुओं की सेना केले मारनी चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

अवासां मघवञ्जिह् भर्धी यातुमतीनाम्।

वैलस्थानके अमिके महावैलस्थे अमिक।। ३॥

अवं आसाम् प्रघऽवन्। जृहि। शर्धः। यातुमतीनाम्। वैलुऽस्थानके। अर्मके। महाऽवैलेस्थे। अर्मके॥३॥ पदार्थः=(अव) (आसाम्) वक्ष्यमाणानाम् (मघवन्) परमधनयुक्त (जिह्) (शर्धः) बलम् (यातुमतीनाम्) हिंस्राणां सेनानाम्। (वैलस्थानके) वैलानि विलयुक्तानि स्थानानि यस्मिँस्तस्मिन् (अर्मके) दुःखप्राएके (महावैलस्थे) महागर्त्तयुक्ते (अर्मके) दुःखप्राएके (महावैलस्थे) महागर्त्तयुक्ते (अर्मके) दुःखप्राएके॥३॥

४७४

ऋग्वेदभाष्यम्

अन्वय:-हे मघवन्! अर्मके वैलस्थानक इवार्मके महावैलस्थ आसां यातुमतीनां शर्धोऽव जिह॥३॥

भावार्थ:-सेनावीरै: शत्रुसेना अतिदुर्गे गर्तादियुक्ते स्थले निपात्य हन्तव्या॥३॥

पदार्थ:-हे (मघवन्) परम धनयुक्त राजन्! (अर्मके) जो दु:ख पहुंचानेहारा और (कैलायानके) जिसमें विलयुक्त स्थान है, उनके समान (अर्मके) दु:ख पहुंचानेहारे (महावैलस्थे) बड़े बड़े गहेलों से युक्त स्थान में (आसाम्) इन (यातुमतीनाम्) हिंसक सेनाओं के (शर्धः) बल को (अव, जिह) छिन्न-भिन्न करो॥३॥

भावार्थ:-सेनावीरों को चाहिये कि शत्रुओं की सेनाओं को अतीव दुःख से आने योग्य गढ़ेले आदि से युक्त स्थान में गिरा कर मारें॥३॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।

यासां तिस्रः पञ्चाशतोऽभिव्लङ्गेर्पावपः।

तत्सु ते मनायति तुकत्सु ते मनायति॥४॥

यासाम्। तिस्रः। पञ्चाशतः। अभिऽव्लङ्गैः। अपऽअविष्। त्रवर्णसु। ते। मृनायति। तकत्। सु। ते। मृनायति॥४॥

पदार्थ:-(यासाम्) (तिस्रः) त्रित्वसंख्याताः (पञ्चाप्रतः) एतत्संख्याताः (अभिव्नङ्गैः) अभितो गमनागमनैः (अपावपः) दूरे प्रक्षिप (तत्) (सु) (ते) तुभ्यम् (मनायित) आत्मनो मन इवाचरित (तकत्) (सु) (ते) तुभ्यम् (मनायित)॥४॥

अन्वय:-हे मघवन्! यासां तिस्त्रा पञ्चार्याः मेना अभिव्लङ्गेरपावपस्तासां तत् ते सुमनायित तकत् ते सु मनायित॥४॥

भावार्थ:-मनुष्यैरीदृशं वर्द्धनीय येनैकोऽपि दुष्टानां सार्धशतस्य विजयं कुर्यात् स्वकीयं बलं रक्षेत्॥४॥

पदार्थ: -हे परम् उन्मे धुनुसुक्त राजन्! (यासाम्) जिन शत्रुसेनाओं के बीच (तिस्नः) तीन वा (पञ्चाशतः) पचास सेनाओं को (अभिक्नङ्गैः) चारों ओर से जाने-आने आदि व्यवहारों से (अपावपः) दूर पहुंचाओ, उन्ने सेनाओं का (तत्) वह पहुंचाना (ते) तेरे लिये (सुमनायित) अच्छे अपने मन के समान आचरण करता फिर भी (तकत्) वह (ते) तेरे लिये (सुमनायित)अच्छे अपने मन के समान आचरण करता है। ।

भावार्थ:-मनुष्यों को चाहिये कि ऐसा बल बढ़ावें जिससे एक ही वीर पचास दुष्ट शत्रुओं को जीवें और अपने बल की रक्षा करे॥४॥

पुना राजजनै: किं कृत्वा किं वर्द्धनीयमित्याह॥

मण्डल-१। अनुवाक-१९। सूक्त-१३३

8800

फिर राजजनों को क्या करके क्या बढ़ाना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

पिशङ्गभृष्टिमम्भृणं पिशाचिमिन्द्र सं मृण।

सर्वं रक्षो नि बहिय॥५॥

पिशङ्गंऽभृष्टिम्। अम्भृणम्। पिशाचिम्। इन्द्र। सम्। मृण्। सर्वम्। रक्षं:। नि। बुर्हुय॥५॥

पदार्थ:-(पिशङ्गभृष्टिम्) पीतवर्णेन भृष्टिः पाको यस्य तम् (अम्भृणम्) शत्रुभ्यो भयंकरम् (पिशाचिम्) यः पिशति तम् (इन्द्र) दुष्टविदारक (सम्) (मृण) हिन्धि (सर्वम्) (स्थः) दुष्टम् (नि) (बर्हय) निस्सारय॥५॥

अन्वय:-हे इन्द्र! त्वं पिशङ्गभृष्टिमम्भृणं पिशाचिं संमृण सर्वं रक्षो निबर्हय।

भावार्थ:-राजपुरुषैर्दुष्टान् निर्मूलीकृत्य सर्वैः सज्जनाः सततं वर्द्धनीयाः। प्र

पदार्थ:-हे (इन्द्र) दुष्टों को विदीर्ण करनेहारे राजजन! आप (पिश्नङ्गभृष्टिम्) अच्छे प्रकार पीला वर्ण होने से जिसका पाक होता (अम्भृणम्) उस निरन्तर भयहूर (पिश्नजिम्) पीसने दु:ख देनेहारे जन को (सम्मृण) अच्छे प्रकार मारो और (सर्वम्) समस्त (रक्ष्य) दुष्टजन को (निबर्हय) निकालो॥५॥

भावार्थ:-राजपुरुषों को चाहिये कि दुष्ट शत्रुओं की निर्मूल कर सब सज्जनों को निरन्तर बढ़ावें॥५॥

पुनरुत्तमैर्नरै: किं निवार्थ्य किं प्रचारणीयमित्याह॥

फिर उत्तम मनुष्यों को किसकी निवृत्ति कर ख्या प्रचार करना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र

में कहा है।।

अवर्म्ह ईन्द्र दादृहि श्रुधी नः शुक्षों हि हो। क्षा न भीषाँ अद्रिवो घृणात्र भीषाँ अद्रिवः।

शुष्मिन्तमो हि शुष्मिर्धर्वधैरुप्रेभिरोयस।

अपूरिषघ्नो अप्रतीत शूर सुर्त्वभिस्त्रिसपीः शूर सर्त्वभिः॥६॥

अवः। महः। इन्द्रा देवहि) श्रुधि। नः। श्रुशोर्च। हि। द्यौः। क्षाः। न। भीषा। अद्गिऽवः। घृणात्। न। भीषा। अद्गिऽवः। घृणात्। न। भीषा। अद्गिऽवः। श्रुष्मिन्ऽत्रीमः। हि। श्रुष्मिऽभिः। वधैः। उप्रैभिः। ईयसे। अप्रैरुषऽघः। अप्रतिऽइतः। श्रूर्। सत्वैऽभिः। विऽस्पतैः। श्रूर्। पत्वैऽभिः। । ।

पूर्वार्थ:- (अव:) अधोमुखम् (मह:) महत् (इन्द्र) (ददृहि) विदारय। अत्र श्नः श्लुः, तुजादीन्मीपत्यभ्यासदीर्घः। (श्रुधि) शृणु। अत्राऽन्येषामिप दृश्यत इति दीर्घः। (नः) अस्मान् (शुशोच) शोन्न्र (हि) (द्यौः) प्रकाश इव (क्षाः) पृथिवीः (न) इव (भीषा) भयेन (अद्रिवः) प्रशस्तमेघयुक्त सूर्येक्ट्रचेषान (घृणात) दीप्तात् (न) इव (भीषा) भयेन (अद्रिवः) प्रशस्ता अद्रयः शैला विद्यन्ते यस्य

तत्सम्बुद्धौ (शुष्मिन्तमः) बहुविधं बलं विद्यते यस्य स शुष्मिः सोऽतिशयितः (हि) खलु (शुष्मिभिः) बिलिष्ठैः (वधैः) हननैः (उग्रेभिः) तीक्ष्णस्वभावैः (ईयसे) गच्छिस (अपूरुषघ्नः) पुरुषात्र हन्ति सः (अप्रतीत) यो न प्रतीयते तत्संबुद्धौ (शूर) निर्भय (सत्विभिः) विज्ञानविद्धः (त्रिसप्तैः) एकविंसित्या (शूर) दुष्टहिंसक (सत्विभिः) पदार्थैः॥६॥

अन्वय:-हे अद्रिव इन्द्र! त्वमवर्दादृहि नः शुशोच नोऽस्माकं न्यायं श्रुधि द्यौः क्षा नेव प्रही रक्षा हे अद्रिवस्त्वं हि भीषा भयेन घृणान्नेव न्यायं द्योतयस्व भीषा दुष्टान् ताडय। हे शूर! यः शुष्मिन्तमोऽपूरुषघ्नस्त्रमुग्नेभिः शुष्मिभः सह शत्रूणां वधैरीयसे स त्वं त्रिसप्तैः सत्विभः सहैव वर्त्तस्व। हे अप्रतीत शूर! त्वं हि सत्विभः सम्बन्नो भवा।६॥

भावार्थ:-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। धार्मिकैर्नीचतां विवर्स्य श्रेष्ठतां प्रचार्य्य प्रशस्तबलोन्नतये शूरवीरै: पुरुषै: प्रजा: संरक्ष्य दशप्राणैरेकेन जीवेन दश्यभिरिन्द्रियरिव पुरुषार्थं कृत्वा यथायोग्या पदार्थवृद्धि: प्राप्तव्या॥६॥

पदार्थ:-हे (अद्रिवः) प्रशंसित मेघयुक्त सूर्य के समान क्लिमान (इन्द्र) उत्तम गुणों से प्रकाशित पुरुष! आप (अवः) नीचे को मुख राखनेवाले कुटिल को (हाद्हि) विद्वारों मारों (नः) हम लोगों को (शुशोच) शोचो, हमारे न्याय को (शुधि) सुनो और (हों:) प्रकाश असे (क्षाः) भूमियों को (न) वैसे (महः) अत्यन्त रक्षा करों, हे (अद्रिवः) प्रशंसित पर्वतोंवाली औप (हि) ही (भीषा) भय से (शृणात्) प्रकाशित के समान न्याय को प्रकाश करों और (भीषा) भय में दुष्टों को दण्ड देओ। हे (शूर) निर्भय निडर शूरवीर पुरुष! (शुष्मिन्तमः) जिनके अतीव बहुत अल विद्यमान (अपूरुषघनः) जो पुरुषों को न मारनेवाले आप (उग्रेभिः) तीक्ष्ण स्वभाववाले (शुष्मिभिः) बली पुरुषों के साथ तीक्ष्ण शत्रुओं के (वधैः) मारने के उपायों से (ईयसे) जाते हो सो आप (क्रिफ्तैः) इक्कीस (सत्विभः) विद्वानों के साथ ही वर्ताव रक्खो। हे (अप्रतीत) न प्रतीत होनेव्हिले गूढ़ विमारयुक्त (शूरः) दुष्टों को मारनेवाले! आप (हि) ही (सत्विभः) पदार्थों से युक्त होओ। हा

भावार्थ:-इस मन्त्र में डिपमा और बाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। धार्मिक पुरुषों को नीचपन की निवृत्ति और उत्तमता का प्रचार कर प्रशंसित बल की उन्नति के लिये शूरवीर पुरुषों से प्रजाजनों की अच्छे प्रकार रक्षा कर दश प्राण और एक जीव से दश इन्द्रियों के समान पुरुषार्थ कर यथायोग्य पदार्थों की वृद्धि प्राप्त करने योग्य है॥ ६॥

पुन किं कृत्वा किं निवार्य्य मनुष्या: समर्था जायन्त इत्याह॥

फिर क्या करके और किसकी निवृत्ति कर मनुष्य समर्थ होते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

वेपोति हि सुन्वस्थयं परीणसः सुन्वानो हि ष्मा यजत्यव द्विषौ देवानामव द्विषैः। सुन्वाम इत्सिषासति सहस्रा वाज्यवृतः।

मण्डल-१। अनुवाक-१९। सूक्त-१३३



सुन्वानायेन्द्रो ददात्याभुवं रृघिं ददात्याभुवंम्॥७॥२२॥१९॥

वनोति। हि। सुन्वन्। क्षयम्। परीणसः। सुन्वानः। हि। स्म। यर्जित। अवं। द्विषं:। देवानाम्। अवं। द्विषं:। सुन्वानः। इत्। सिषासित्। सहस्रां। वाजी। अवृतः। सुन्वानायं। इन्द्रं:। दुदाति। आऽभुवंम्। रिष्णः। दुदावि। आऽभुवंम्।। उत्। सामानिकः। सामान

पदार्थ:-(वनोति) याचते। अत्र व्यत्ययेन परस्मैपदम्। (हि) खलु (सुन्वन्) निष्पादयन् (क्षयम्) गृहम् (परीणसः) बहून् (सुन्वानः) निष्पादयन् (हि) यतः (स्म) एव। अत्र निष्पातस्य चेति दीर्घः। (यजित) संगच्छते (अव) (द्विषः) द्वेष्ट्रीन् (देवानाम्) विदुषाम् (अव) (द्विषः) शेजून् (सुन्वानः) अभिषवान् कुर्वन् (इत्) एव (सिषासित) सनितुं विभक्तुमिच्छति (सहस्रा) सहस्राप्यसंख्यातानि (वाजी) प्रशस्तज्ञानवान् (अवृतः) अनावृतः (सुन्वानाय) अभिषवं कुर्वते (इन्हः) सुखप्रदात्ने (ददाति) (आभुवम्) यत्र समन्ताद्भवति सुखं तम्। अत्र घत्रर्थे कविधानिमिति कः। (रियम्) देष्ट्यम् (द्वाति) (आभुवम्)॥७॥

अन्वय:-य इन्द्रः सुन्वानायाभुवं रियं ददाति स सुन्वानोऽवृत्ते वाजी सहस्रा देवानामविद्विष इत् सिषासित योऽविद्वषः सर्वस्मायाभुवं श्रियं ददाति यो हि सुन्वानो यजित स स्म पूरीणसः क्षेत्रं म्नुन्वन् सन् हि सुखं वनोति॥७॥

भावार्थ:-ये सर्वेषु मैत्रीं भावियत्वा सर्वेषां शत्रुविवर्तित् ते सर्वेषां श्रेयस्करा भूत्वा सर्वेभ्यो बहूनि सुखानि दातुं शक्नुवन्ति॥७॥

अत्र श्रेष्ठपालनदुष्टनिवारणाभ्यां राज्यस्थरतावर्णनमुक्तमत एतत्सूक्तार्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह संगतिरस्तीति वेद्यम्॥

इति त्रयिस्रंशदुत्तरं शततमं १३३ सूक्तं द्वाविंशो २२ वर्ग एकोनविंशोऽनुवाकश्च समाप्त:॥

पदार्थ:-जो (इन्द्र:) सुख देनेकाल (सुन्वानाय) पदार्थों का सार निकालते हुए पुरुष को (आभुवम्) जिसमें अच्छे प्रकार सुख होता उस (रियम) धन को (ददाति) देता है, वह (सुन्वानः) पदार्थों के सारों को प्रकट हुआ (अवृतः) प्रकट (वाजी) प्रशस्त ज्ञानवान् पुरुष (सहस्रा) हजारों (देवानाम्) विद्वानों के (अव, द्विषः) अति श्रुतओं को (इत्) ही (सिषासित) अलग करने को चाहता है जो (अव, द्विषः) अत्यन्त के कर्मुवालों को अलग करना चाहता है, वह सबके लिये (आभुवम्) जिसमें उत्तम सुख हो, उसे धन को (ददाति) देता है और जो (हि) निश्चय से (सुन्वानः) पदार्थों के सार को सिद्ध करता हुआ (यजति) सङ्ग करता है (स्म) वही (परीणसः) बहुत पदार्थों और (क्षयम्) घर को (सुन्वन्) सिद्ध करता हुआ (हि) ही सुख (वनोति) मांगता है॥७॥

भारार्थ: अंग सेब में मित्रता की भावना कराकर सबके शत्रुओं की निवृत्ति कराते हैं, वे सबके सुख कर्सवाले होकर सबके लिये बहुत सुख दे सकते हैं॥७॥

इसे सूक्त में श्रेष्ठों की पालना और दुष्टों की निवृत्ति से राज्य की स्थिरता का वर्णन है, इससे इस स्रूक्त में कहे हुए अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है, यह जानना चाहिये॥

यह एक सौ तेंतीसवां १३३ सूक्त बाईसवां २२ वर्ग और उन्नीसवां १९ अनुवाक पूरा हुआ॥

आ त्वेत्यस्य षड्चस्य चतुस्त्रिंशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य परुच्छेप ऋषिः। वायुर्देवता। १,३ निचृदत्यष्टिः। २,४ विराडत्यष्टिश्छन्दः। गान्धारः स्वरः। ५ अष्टिः। ६ विराडष्टिश्छन्दः। मध्यमः

स्वर:॥

अथ विद्वांसः कीदृशा भवेयुरित्याह॥

अब छ: ऋचावाले एक सौ चौतीसवें सूक्त का आरम्भ है। उसके प्रथम मन्त्र में विद्वार् कैसे हों, इस विषय को कहा है।।

आ त्वा जुर्वो रारहाणा अभि प्रयो वायो वहन्त्वह पूर्वपीतये सोर्मस्य पूर्वेपीतये। अर्ध्वा ते अर्न सूनृता मर्नास्तष्ठतु जानृती। नियुत्वता रथेना योहि दावने वायो मुखस्य दावने॥ १॥

आ। त्वा। जुर्व:। रारहाणा:। अभि। प्रयं:। वायो इति। वहन्तु। दूहा पूर्वेऽप्रौतये। सोमेस्य। पूर्वऽपीतये। क्र्ष्वा। ते। अनुं। सूनृतां। मर्नः। तिष्ठतु। जानृती। नियुत्वता। रथेन्। आ। याहि। दावने। वायो इति। मखस्य। दावने॥ १॥

पदार्थ:-(आ) समन्तात् (त्वा) त्वाम् (जुवः) विगुन्तः (रारहाणाः) त्यक्तारः। अत्र तुजादीनामित्यभ्यासदीर्घः। (अभि) (प्रयः) प्रीतिम् (वाया) वायुरिव वर्त्तमान (वहन्तु) प्राप्नुवन्तु (इह) अस्मिन् संसारे (पूर्वपीतये) पूर्वेषां पीतिः पानं तस्य (सोषस्य) ओषध्यादिरसस्य (पूर्वपीतये) पूर्वेषां पानायेव (अर्घा) उत्कृष्टा (ते) तव (अनु) (सूनृता) प्रियो वाक् (मनः) अन्तःकरणम् (तिष्ठतु) (जानती) या जानाति सा स्त्री (नियुत्वता) बहवो नियुतोऽश्वा विद्यन्ते यस्मिंस्तेन (रथेन) रमणीयेन यानेन (आ) समन्तात् (याहि) गच्छ (दावने) दात्रे (तायो) जानेवान् (मखस्य) यज्ञस्य (दावने) दात्रे॥१॥

अन्वय:-हे वायो! विद्वन्निह सोमस्य पूर्वपीतय इव पूर्वपीतये जुवो रारहाणा वायवस्त्वा प्रयोभ्यावहन्तु। हे वायो! यस्य ते ऊर्ध्वा सूनृता जानती मार्गोऽनुतिष्ठतु स् त्वं मखस्य दावन इव दावने नियुत्वता रथेना याहि॥१॥

भावार्थः-अत्र वान्केलुप्तोपमालुङ्कीरः। विद्वांसः सर्वेषु प्राणिषु प्राणवत् प्रिया भूत्वाऽनेकाश्वयुक्तैर्यानै- विक्वन्त्वागुरुकन्तु च॥१॥

पदार्थ:-हे (वायाँ) पत्न के समान वर्तमान विद्वान्! (इह) इस संसार में (सोमस्य) ओषधि आदि पदार्थों के रूस को (पूर्वपीतये) अगले सज्जनों के पीने के समान (पूर्वपीतये) जो पीना है, उसके लिये (जुव:) वैग्वान् (रारहाणा:) छोड़नेवाले पवन (त्वा) आपको (प्रय:) प्रीतिपूर्वक (अभि, आ, वहन्तु) चारों ओर से पहुंचावें। हे (वायो) ज्ञानवान् पुरुष! जिस (ते) आपकी (अर्ध्वा) उन्नतियुक्त अति उत्तम (सूजता) प्रिय वाणी (जानती) और ज्ञानवती हुई स्त्री (मन:) मन के (अनु, तिष्ठतु) अनुकूल स्थित हो सूजिप (मखस्य) यज्ञ के सम्बन्ध में (दावने) दान करनेवाले के लिये जैसे वैसे (दावने) देनेवाले के

लिये (नियुत्वता) जिसमें बहुत घोड़े विद्यमान हैं, उस (रथेन) रमण करने योग्य यान से (आ, याहि) आओ॥१॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। विद्वान् लोग सर्व प्राणियों में प्राणिके समाने प्रिय होकर अनेक घोड़ों से जुते हुए रथों से जावें-आवें॥१॥

पुनर्मनुष्यै: किं संसेव्य किं प्राप्तव्यमित्याह॥

फिर मनुष्यों को किसका सेवन कर क्या प्राप्त करना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

मन्दंनु त्वा मन्दिनौ वायविन्दंवोऽस्मत्क्राणासः सुकृता अभिद्यवो

गोभिः क्राणा अभिद्यवः।

यर्द्ध क्राणा इरध्ये दक्षं सर्चन्त ऊतर्यः।

सुध्रीचीना नियुतौ दावने धिय उप बुवत ई धिय: เรา

मन्देनु। त्वा। मन्दिने:। वायो इति। इन्देव:। अस्मत्। क्राणासे:। सुर्कृता:। अभिऽद्यंव:। गोभि:। क्राणाः। अभिऽद्यंव:। यत्। हु। क्राणाः। इरध्यै। दक्षम्। सर्चन्ते। ऊतयः। सुश्रीचीनाः। निऽयुतः। दावने। धियः। उप। ब्रुवते। ईम्। धियः॥२॥

पदार्थ:-(मन्दन्तु) कामयन्तु (त्वा) विम् (मन्दिनः) सुखं कामयमानाः (वायो) वायुरिव कमनीय (इन्दवः) आर्द्रीभूता (अस्मत्) अस्माकं सकाशात् (क्राणासः) उत्तमानि कर्माणि कुर्वन्तः (सुकृताः) सुष्ठु कर्म येषां ते (अभिद्यवः) अभित्रो द्यवो विद्याप्रकाशा येषान्ते (गोभिः) पृथिवीभिस्सह (क्राणाः) पुरुषार्थं कुर्वाणाः (अभिद्यवः) अभित्रो द्यवः सूर्यिकरणा इव देदीप्यमानाः (यत्) ये (ह) (क्राणाः) कर्त्तुं शीलाः (इरध्ये) ईस्तिं प्राप्तुम्। अत्र वर्णव्यत्ययेन ईकारस्थान इः। (दक्षम्) बलम् (सचन्ते) समवयन्ति (ऊतयः) (सादिक्रियावन्तः (सद्यीचीनाः) सहाञ्चन्तः (नियुतः) नियुक्ताः (दावने) दानाय (धियः) प्रज्ञाः (उप) (ब्रुक्ते) उप्रदिशन्ति (ईम्) सर्वतः (धियः) कर्माणि॥२॥

अन्वयः-हे वायो विद्वायघेऽस्मेत् क्राणासोऽभिद्यवः सुकृता अभिद्यव इवेन्दवः क्राणा इव मन्दिनस्त्वा मन्दन्तु ते ह ऊतयः क्राणा दक्षं गोभिरिरस्य सूचन्ते ये दावने सध्रीचीना नियुतो धिय उप ब्रुवते त ईं धियः प्राप्नुवन्ति॥२॥

भावार्थः अत्र वार्चिक्रलुप्तोपमालङ्कारः। ये मनुष्या विदुषः सेवन्ते सत्यमुपदिशन्ति च ते शरीरात्मबलं अथिताप्नुषुः॥२॥

(वायो) पवन के समान मनोहर विद्वान्! (यत्) जो (अस्मत्) हम लोगों से (क्राणासः) उत्तम कर्म करते हुए (अभिद्यवः) जिनके चारों ओर से प्रकाश विद्यमान (सुकृताः) जो सुन्दर स्वम कर्मवाले (अभिद्यवः) और सब ओर से सूर्य की किरणों के समान अत्यन्त प्रकाशमान

मण्डल-१। अनुवाक-२०। सूक्त-१३४

(इन्दव:) आर्द्रचित्त (क्राणा:) पुरुषार्थ करते हुए सज्जनों के समान (मन्दिन:) और सुख की कामना करते हुए (त्वा) आपको (मन्दन्तु) चाहे वे (ह) ही (ऊतय:) रक्षा आदि क्रियावान् (क्राणाः) कर्म करनेवाले (दक्षम्) बल को (गोभि:) भूमियों के साथ (इरध्ये) प्राप्त होने को (सचन्त) युक्त होते अर्थात् सम्बन्ध करते हैं। जो (दावने) दान के लिये (सधीचीना:) साथ सत्कार पाने वा जाने आर्में करते हैं, वे नियुक्त की अर्थात् किसी विषय में लगाई हुई (धिय:) बुद्धियों का (उप, ब्रुवते) हुपदेश करते हैं, वे

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य विद्वानों का सेक्न करते और सत्य का उपदेश करते हैं, वे शरीर और आत्मा के बल को कैसे न प्राप्त हों॥२॥

पुनर्विद्वद्भिः कथं वर्त्तितव्यमित्याह॥

फिर विद्वानों को कैसे वर्त्तना चाहिये, इस विषय को अपले मेन्त्र में) कहा है।।

वायुर्युंड्क्ते रोहिता वायुर्फणा वायू रथे अजिरा धुर्गि वोळ्हेंबे वहिष्ठा धुरि वोळ्हेंवे।

प्र बोधया पुरंस्थि जार आ संसतीर्मिव।

(ईम्) सब ओर से (धिय:) कर्मों को प्राप्त होते हैं॥२॥

प्र चक्ष्य रोदंसी वासयोषसुः श्रवंसे वासयोषसः (। ३)।।

वायुः। युड्क्ते। रोहिता। वायुः। अरुणा। वायुः। अर्जुरा। धुरि। वोळ्हेवे। वहिष्ठा। धुरि। वोळ्हेवे। प्रा बोध्यः। पुरेम्ऽधिम्। जारः। आ। ससतीम्ऽईव। प्रा बेक्ष्यः। शर्वसे। वासयः। अर्वसे। वासयः। उषसेः। अर्वसे। वासयः। उषसेः। ३॥

पदार्थ:-(वायु:) पवन इव (युद्धको) कलकौशलेन प्रेरितः संपर्चयित (रोहिता) रोहितानि रक्तगुणविशिष्टान्यग्न्यादीनि द्रव्याणि (वायु:) स्पूर्स्मः (अरुणा) पदार्थप्रापणसमर्थानि (वायु:) स्थूलः पवनः (रथे) रमणीये याने (अजिरी) अजिराणि क्षेप्तुं गमयितुमनर्हाणि (धुरि) सर्वाधारे (वोढवे) वोढुम् अत्र। तुमर्थे तवेन्प्रत्ययः। (विहुष्टा) अतिश्रप्ते वोढा। अत्राकारादेशः। (धुरि) (वोढवे) वोढुं देशान्तरे वहनाय (प्र, बोधय) (पुरिचम्) बहुपूजम् (जारः) (आ) समन्तात् (ससतीमिव) यथा सुप्ताम् (प्र) (चक्षय) प्रख्यापय (रोहमी) ध्रावार्थिवयौ (वासय) कलायन्त्रादिषु स्थापय (उषसः) दाहादिकर्तृन् पदार्थान् (श्रवसे) संदेशादि श्रवणीय (वासय) विद्युद्विद्यया स्थापय (उषसः) दिनानि॥३॥

अन्वय:-हॅ विद्वन्! भ्रुष्ठि वोढवे विहष्ठा वायुर्वोढवे धुरि रोहिता वायुररुणा वायुरजिरा रथे युङ्क्त इति त्वं जारः ससतीमिव पुरिष्ट्रि प्राबोध्य रोदसी प्रचक्षय तदुणानाख्यापयोषसो वासय श्रवसे चोषसो वासय॥३॥

भूतिर्थः अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। ये वायुवत्प्रयतन्त आप्तवज्जनान् प्रबोधयन्ति ते सूर्यवत्पृथितीवच्च प्रकाशिता सोढारो जायन्ते॥३॥

पदार्थ:-हे विद्वान् (धुरि) सबके आधारभूत जगत् में (वोढवे) पदार्थों के पहुंचाने को (विहिष्ठा) अतीव पहुंचानेवाला (वायु:) पवन (वोढवे) देशान्तर में पहुंचाने के लिये (धुरि) चलाने के मुख्य भाग

में (रोहिता) लाल-लाल रङ्ग के अग्नि आदि पदार्थों को वा (वायुः) पवन (अरुणा) पदार्थों को पहुंचाने में समर्थ जल, धुआं आदि पदार्थों को (वायुः) पवन (अजिरा) फेंकने योग्य पदार्थों को (रथे) रथ में (युङ्क्ते) जोड़ता है अर्थात् कलाकौशल से प्रेरणा को प्राप्त हुआ उन पदार्थों का सम्बन्ध करता है, इससे आप (जारः) जाल्म पुरुष जैसे (ससतीमिव) सोती हुई स्त्री को जगावे वैसे (पुरिध्यक्त) बहुत उत्तम बुद्धिमती स्त्री को (प्राबोधय) भलीभांति बोध कराओ, (रोदसी) प्रकाश और पृथित्री का (प्र. चक्षय) उत्तम व्याख्यान करो अर्थात् उनके गुणों को कहो, (उषसः) दाह आदि के करनेवाले पदार्थी अर्थात् अग्नि आदि को कलायन्त्रादिकों में (वासय) वसाओ, स्थापन करो और (श्रृवसे) सन्देशादि सुनने के लिये (उषसः) दिनों को (वासय) तार बिजुली की विद्या से स्थिर करो॥३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जी पहन के समान अच्छा यत्न करते और उत्तम धर्मात्मा के समान मनुष्यों को बोध कराते हैं, वे क्रूर्य और पृथिवी के समान प्रकाश और सहनशीलता से युक्त होते हैं॥३॥

पुनः के मनुष्याः कल्याणकरा भवन्तीत्याहा।

फिर कौन मनुष्य कल्याण करने वाले होते हैं, इस किएये को अगले मन्त्र में कहा है॥

तुभ्यंमुषासः शुचंयः परावितं भुद्रा वस्त्रां तुन्वतं देसुं रिश्मिषुं चित्रा नव्येषु रिश्मिषुं।

तुभ्यं धेनुः संबर्दुघा विश्वा वसूनि दोहता

अर्जनयो मस्तौ वक्षणाभ्यो दिव आ वक्षणाभ्यः॥४॥

तुभ्यम्। उषसः। शुर्चयः। प्राऽविति भूद्राः वस्त्रां। तुन्वते। दम्ऽसुं। रुश्मिषुं। चित्राः। नव्येषुः। रुश्मिषुं। तुभ्यम्। धेनुः। सुबुःदुर्घाः। विश्वाः। वसूनि। द्रोहते। अर्जन्यः। मुरुतः। वक्षणाभ्यः। द्विवः। आ। वक्षणाभ्यः॥ ४॥

पदार्थ:-(तुभ्यम्) (उषास्तर्) प्रभातवाताः। अत्रान्येषामपीति दीर्घः। (शुचयः) पवित्राः (परावति) दूरदेशे (भद्रा) कल्याणकराणि (बस्त्रा) वस्त्राण्याच्छादनानि (तन्वते) विस्तृणन्ति (दंसु) दाम्यन्ति जना येषु (रिष्ट्रमषु) किरणेषु (चित्रा) चित्राण्यद्भुतानि (नव्येषु) नवीनेषु (रिष्ट्रमषु) किरणेषु (तुभ्यम्) (धेनुः) वाणीः (सबर्दुघा) सर्वान् कामान् पूरयन्ति (विश्वा) सर्वाणि (वसूनि) धनानि (दोहते) प्रपिपर्ति (अजनयः) अजायमानाः (मस्त्रः) वायवः (वक्षणाभ्यः) वोढ्रीभ्यो नदीभ्यः (दिवः) प्रकाशस्य मध्ये (आ) समन्तात् (ब्रुश्रणाभ्यः) वहमानाभ्यः॥४॥

अन्वयः हे मेर्प्य ! यथा शुचय उषासः परावित दंसु रिष्मिषु नव्येषु रिष्मिष्विव तुभ्यं चित्रा भद्रा वस्त्रा तन्वते। यथा सबर्दुघ्य धेनुविक् तुभ्यं विश्वा वसूनि दोहते यथाऽजनयो मरुतो वक्षणाभ्य इव दिवो वक्षणाभ्यो जलमातन्वते तथा त्वं भव॥४॥४

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये मनुष्या रश्मिवन्न्यायप्रकाशं सुशिक्षितवाणीवद्वक्तृत्वं नुदीक्त् अभगुणवहनं कुर्वन्ति ते समग्रं कल्याणमश्नुवते॥४॥ अष्टक-२। अध्याय-१। वर्ग-२३

मण्डल-१। अनुवाक-२०। सूक्त-१३४

पदार्थ: - हे मनुष्य! जैसे (शुच्य:) शुद्ध (उषास:) प्रातः समय के पवन (परावित) दूर देश में (दंसु) जिनमें मनुष्य मन का दमन करते उन (रिश्मषु) किरणों में और (नव्येषु) नवीन (रिश्मषु) किरणों में वैसे (तुभ्यम्) तेरे लिये (चित्रा) चित्र-विचित्र अद्भुत (भद्रा) सुख करनेवाले (वस्त्रा) वस्त्र व द्रांष्में के अन्य पदार्थों का (तन्वते) विस्तार करते वा जैसे (सबर्दुघा) सब कामों को पूर्ण करती हुई (धेनुः) वाणी (तुभ्यम्) तेरे लिये (विश्वा) समस्त (वसूनि) धनों को (दोहते) पूरा करती वा जैसे (अजनयः) न उत्पन्न होनेवाले (मस्तः) पवन (वक्षणाभ्यः) जो जलादि पदार्थों को बहानेवाली नदियों में (दिवः) प्रकाश के बीच (वक्षणाभ्यः) बहानेवाली किरणों से जल का (आ) अच्छे प्रकार करते वैसा तू हो॥४॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य क्रिस्पों कि मुम्पान न्याय के प्रकाश और अच्छी शिक्षा युक्त वाणी के समान वक्तृता बोल-चाल और नदी के समान अच्छे गुणों की प्राप्ति करते वे समग्र सुख को प्राप्त होते हैं॥४॥

पुनर्मनुष्याः कथं वर्त्तरित्रत्याहम

फिर मनुष्य कैसे अपना वर्ताव वर्तें, इस विश्व को अगुले मन्त्र में कहा है।।

तुभ्यं शुक्रासः शुर्चयस्तुरुण्यवो मदेषूत्रा इषण्न भूर्कण्यपामिषन्त भुर्वणि। त्वां त्सारी दसमानो भगमीट्टे तक्ववीद्या

त्वं विश्वसमाद्भवनात्पासि धर्मणासुर्यत्पिसि धर्मणा॥५॥

तुभ्यम्। शुक्रासंः। शुच्यः। तुर्ण्यवः। प्रदेषु। द्वाः। इष्णन्तः। भुर्वणि। अपाम्। इष्टन्तः। भुर्वणि। त्वाम्। त्सारी। दर्समानः। भर्गम्। ईट्टे। तुक्वऽव्ययो त्यमः। विश्वस्मात्। भुर्वनात्। पासि। धर्मणा। असुर्यात्। पासि। धर्मणा। ।।

पदार्थ:- (तुभ्यम्) (शुक्कासः) शुद्धवीर्थ्याः (शुच्यः) पवित्रकारकाः (तुरण्यवः) पालकाः (मदेषु) हर्षेषु (उग्राः) तीव्राः (इषण्जा) इञ्छन्तु (भुविणि) धारणवित (अपाम्) (इषन्त) प्राप्नुवन्तु (भुविणि) पोषणवित (ल्याम्) (त्यामे) कुटिलगामी (दसमानः) शत्रूनुपक्षयन् (भगम्) ऐश्वर्य्यम् (ईट्टे) स्तौति (तक्ववीये) तक्वनां स्तेमानामसम्बन्धे मार्गे (त्वम्) (विश्वस्मात्) सर्वस्मात् (भुवनात्) संसारात् (पासि) रक्षसि (धूर्भणा) (असूर्यात्) असुराणां दुष्टानां निजव्यवहारात् (पासि) (धर्मणा) धर्मेण॥५॥

अन्वयः हे विद्वत् ! यस्त्वं धर्मणाऽसुर्यात् पासि धर्मणा विश्वस्माद्भवनात् पासि त्सारी दसमानो भवान् तक्ववीये भगमीट्टे तं त्वां येऽपा भुवणीषन्त। तुरण्यवः शुचयः शुक्रास उग्रा मदेषु भुवणि तुभ्यमिषणन्त॥५॥

भावार्थ:-मनुष्याणां योग्यताऽस्ति ये यान् रक्षेयुस्तांस्तेऽपि रक्षेयुर्दुष्टानां निवारणेनैश्वर्यमिच्छन्तु न कद्यचिद् सुरुषु विश्वासं कुर्यु:॥५॥

पदार्थ:-हे विद्वान्! जो (त्वम्) आप (धर्मणा) धर्म से (असुर्यात्) दुष्टों के निज व्यवहार से (पासि) रक्षा करते हो वा (धर्मणा) धर्म के साथ (विश्वस्मात्) समग्र (भुवनात्) संसार से (पासि) रक्षा करते हो तथा (त्सारी) तिरछे-बांके चलते और (दसमानः) शत्रुओं का संहार करते हुए अप (तक्ववीये) जिसमें चोरों का सम्बन्ध नहीं उस मार्ग में (भगम्) ऐश्वर्य्य की (ईट्टे) प्रश्रेषा करते छन (त्वाम्) आपको जो (अपाम्) जल वा कर्मों की (भुर्वणि) धारणावाले व्यवहार में (इंग्न्त) बाहते हैं वे (तुरण्यवः) पालना और (शुचयः) पवित्रता करनेवाले (शुक्रासः) शुद्ध वीर्य (उक्राः) तीव्र जन (मदेषु) आनन्दों में (भुर्वणि) और पालन-पोषण करनेवाले व्यवहार में (तुभ्यम्) तुम्ह्रारे लिये (इषणन्त) इच्छा करें॥५॥

भावार्थ:-मनुष्यों को योग्य है कि जो जिनकी रक्षा करें उनकी वे भी रक्षा करें। दुष्टों की निवृत्ति से ऐश्वर्य्य को चाहें और कभी दुष्टों में विश्वास न करें॥५॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

त्वं नो वायवेषामपूर्व्यः सोमानां प्रथमः पीति हिसि सुवार्गी पीतिमहिसि। उतो विहुत्मतीनां विशां वेवुर्जुषीणाम्।

विश्वा इत्ते धेनवो दुह आशिरं घृतं दुह्न आशिर्ण्णा६॥२३॥

त्वम्। नः। वायो इति। एषाम्। अपूर्व्यः। स्त्रोमीनाम्। प्रथमः। पीतिम्। अर्हुसि। सुतानीम्। पीतिम्। अर्हुसि। युतानीम्। पीतिम्। अर्हुसि। युतानीम्। पीतिम्। अर्हुसि। युतानीम्। पीतिम्। अर्हुसि। युतानीम्। पीतिम्। युत्तिम्। दुहुते। अर्प्राऽशिर्रम्। ६॥

पदार्थ:-(त्वम्) (नः) अस्माकम् (वाया) प्राण इव वर्तमान (एषाम्) (अपूर्व्यः) पूर्वैः कृतः पूर्व्यो न पूर्व्योऽपूर्व्यः (सोमानाम्) ऐश्वर्यकारकाणां महौषधिरसानाम् (प्रथमः) आदिमः प्रख्याता वा (पीतिम्) पानम् (अर्हसि) कर्तुं योग्योऽह्य (सुतानाम्) सुक्रियया निष्पादितानाम् (पीतिम्) पानम् (अर्हसि) (उतो) अपि (ब्रिह्नसतीनाम्) जुह्वति स्वीकुर्वन्ति याभिस्ता विहुतो मतयो यासु तासाम् (विशाम्) प्रजानाम् (ववर्जुषीणाम्) भृषां दोषान् वर्जयन्तीनाम्। अत्र यङ्लुगन्ताद् व्रजेः क्विबन्तं रूपम्। (विश्वाः) सर्वाः (इत्) एव (ते) तव (धनवः) गावः (दुहे) पिपुरित (आशिरम्) भोगम् (धृतम्) प्रदीप्तम् (दुहते) प्रपूरयन्ति (आशिरम्) समन्ताद्भोग्यम्॥६॥

अनुबर:-हे चयो परमबलवन्! अपूर्व्यस्त्वं नः सुतानां सोमानां पीतिमर्हसि प्रथमस्त्वमेषां पीतिमर्हसि यास्ते विश्वा धेनुब इदैवासिरं घुतं दुहत आशिरं दुहे तासां ववर्जुषीणां विहुत्मतीनां विशामुतो रक्षणं सततं कुरु॥६॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। राजपुरुषैर्ब्रह्मचर्यस्वौषधसेवनयुक्ताहारविहारै: शरीरात्मबलमुन्नीय धर्मेण प्रजामलने स्थिरैर्भवितव्यम्॥६॥ अष्टक-२। अध्याय-१। वर्ग-२३

मण्डल-१। अनुवाक-२०। सूक्त-१३४

) O

अत्र वायुदृष्टान्तेन शूरन्यायेषु प्रजाकर्मवर्णनादेतत्सूक्तार्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन संगतिरस्तीत्यवगन्तव्यम्॥

इति चतुस्त्रिंशदुत्तरं शततमं १३४ सूक्तं त्रयोविंशो २३ वर्गश्च समाप्त:॥

पदार्थ:-हे (वायो) प्राण के समान वर्तमान परम बलवान्! (अपूर्व्यः) जो अगले में नहीं प्रसिद्ध किये वे अपूर्व गुणी (त्वम्) आप (नः) हमारे (सुतानाम्) उत्तम क्रिया से निकाले हुए (सोमानम्) ऐश्वर्य करनेवाली बड़ी-बड़ी ओषधियों के रसों के (पीतिम्) पीने को (अहिंसि) योग्य हो और (प्रथमः) प्रथम विख्यात आप (एषाम्) इन उक्त पदार्थों के रसों के (पीतिम्) (अहिंसि) पीने को श्लोग्य हो जो (ते) आपकी (विश्वाः) समस्त (धेनवः) गौएं (इत्) ही (आश्रिरम्) भोगने के (भूतम्) कान्तियुक्त घृत को (दुह्रते) पूरा करती और (आश्रिरम्) अच्छे प्रकार भोजन करने योग्य दुर्ध औदि पदार्थ को (दुह्रे) पूरा करती उनकी और (ववर्जुषीणाम्) निरन्तर दोषों को त्याग करती हुई (वहुत्मतीनाम्) जिनमें विशेषता से होम करनेवाला विचारशील मनुष्य विद्यमान उन (विशाम्) प्रजाओं को (उत्तो) निश्चय से पालना कीजिये॥६॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। राजपुरुषों को चाहिये क्रि ब्रह्मचर्य और उत्तम औषध के सेवन और योग्य आहार-विहारों से शरीर और आत्मा के बात की उन्नति कर धर्म से प्रजा की पालना करने में स्थिर हों॥६॥

इस सूक्त में पवन के दृष्टान्त से शूरवीरों के न्यायिवर्षयकों में प्रजा कर्म के वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति हैं, यह जानना चाहिये॥

यह एक सौ चौंतीसवां १३४ सूक्त और तेईसवां २३ वर्ग पूरा हुआ॥६॥

स्तीर्णमित्यस्य नवर्चस्य पञ्चत्रिंशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य परुच्छेप ऋषिः। वायुर्देवता। १,३ निचृदत्यष्टिः। २,४ विराडत्यष्टिश्छन्दः। गान्धारः स्वरः। ५,९ भुरिगष्टिः। ६,८ निचृदष्टिः। ७

अष्टिश्छन्द:। मध्यम: स्वर:॥

पुन: के केषां केन किं प्राप्नुयुरित्याह॥

अब नव ऋचावाले एक सौ पैंतींसवे सूक्त का आरम्भ है। इसके प्रथम मन्त्र में क्रीने किनके किससे किसको प्राप्त हो, इस विषय को कहा है।।

स्तीर्णं बर्हिरूपं नो याहि वीतयें सहस्रेण नियुत्तं नियुत्वते शितिनीयित्वते। तुभ्यं हि पूर्वपतिये देवा देवायं येमिरे।

प्र ते सुतासो मधुंमन्तो अस्थिर्न्मदांय क्रत्वे अस्थिरन्॥ रूप्

स्तीर्णम्। बर्हिः। उपं। नः। याहि। वीतये। सहस्रेणा निऽयुत्तां। निऽयुत्वेते। श्रुतिनीभिः। नियुत्वते। तुभ्यम्। हि। पूर्वऽपीतये। देवाः। देवायं। येमिरे। प्रा ते। सुतासंः। मधुंऽमन्तः। अस्थिर्न्। मद्राया क्रत्वे। अस्थिर्न्॥ १॥

पदार्थ:-(स्तीर्णम्) आच्छादितम् (बर्हि:) उत्तमं विशालं गृहम् (उप) सामीप्ये (नः) अस्माकम् (याहि) प्राप्नुहि (वीतये) सुखप्राप्तये (सहस्रेण) असंख्याने (नियुता) निश्चितेन (नियुत्वते) नियुतो बहवोऽश्वा विद्यन्ते यस्य तस्मै (शितनीभिः) शतानि बहवो वीस विद्यन्ते यासु सेनासु ताभिः (नियुत्वते) बहुबलमिश्रिताय (तुभ्यम्) (हि) खलु (पूर्वपीतये) पूर्वस्य प्रामाय (देवाः) विद्वांसः (देवाय) दिव्यगुणाय (येमिरे) यच्छेयुः (प्र) (ते) तव (सुतासः) निष्पादिताः) (मधुमन्तः) प्रशस्तमधुरगुणयुक्ताः (अस्थिरन्) स्थिराः स्युः (मदाय) हर्षाय (क्रत्वे) प्रज्ञाय (अस्थिरन्) स्थिराः इवाचरेयुः॥१॥

अन्वय:-हे विद्वन्! यस्मै देवाय तुभ्ये हि पूर्वभातये देवा येमिरे यस्य ते तव मदाय क्रत्वे मधुमन्त: सुतास: प्राऽस्थिरन् भद्राऽस्थिरन् स त्वं न: स्त्रीर्णं बोईवीतय उप याहि नियुत्वते सहस्रोण नियुता उप याहि शतिनीभिस्सह नियुत्वते उप याहि॥१॥

भावार्थ:-विद्याधर्मि ज्ञासुभिर्मनुष्यै: ब्रिदुषामाह्वानं सर्वदा कार्य्यं तेषां सेवासङ्गाभ्यां विज्ञानमुन्नीय नित्यमानन्दितव्यम्॥१॥

पदार्थ:-हे विद्वान् ! जिसे (देवाय) दिव्यगुण के लिये (तुभ्यम्) (हि) आपको ही (पूर्वपीतये) प्रथम रस आदि प्रीपे को (देवाः) विद्वान् जन (येमिरे) नियम करें, उन (ते) आपके (मदाय) आनन्द और (क्रत्वे) उत्तम् खुद्धि के लिये (मधुमन्तः) प्रशंसित मधुरगुणयुक्त (सुतासः) उत्पन्न किये हुए पदार्थ (प्रास्थिरन्) अच्छे प्रकार स्थिर हों और सुखरूप (अस्थिरन्) स्थिर हों वैसे सो आप (नः) हमारे (स्तीर्णम्) ढंपे हुए (बर्हिः) उत्तम विशाल घर को (वीतये) सुख पाने के लिये (उप, याहि) पास पहुंचो (निय्नुत्वते) जिसके बहुत घोड़े विद्यमान उसके लिये (सहस्रोण) हजारों (नियुता) निश्चित व्यवहार से पास

अष्टक-२। अध्याय-१। वर्ग-२४-२५

मण्डल-१। अनुवाक-२०। सूक्त-१३५

१४८७

पहुंचो और (शितिनीभि:) जिनमें सैकड़ों वीर विद्यमान उन सेनाओं के साथ (नियुत्वते) बहुत बल से मिले हुए के लिये अर्थात् अत्यन्त बलवान् के लिये पास पहुंचो॥१॥

भावार्थ:-विद्या और धर्म को जानने की इच्छा करनेवाले मनुष्यों को चाहिये कि जिल्लानों की बुलाना सब कभी करें। उनकी सेवा और सङ्ग से विशेष ज्ञान की उन्नति कर नित्य आनन्द्रयुक्त हों॥ ३।।

पुनर्मनुष्यै: किं कृत्वा किं प्राप्तव्यमित्याह॥

फिर मनुष्यों को क्या करके क्या करना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र मैं कहा है।।

तुभ्यायं सोमः परिपूतो अद्रिभिः स्पार्हा वस्तिः परि कोशीमर्षति शुक्रा वस्ति। तवायं भाग आयुषु सोमी देवेषु हूयते।

वहं वायो नियुतों याह्यस्मुयुर्जुषाणो याह्यस्मुयु:॥२॥

तुभ्यं। अयम्। सोमं। परिंऽपूतः। अद्रिंऽभिः। स्पार्हा। वसानः। परिं। कोर्श्नम्। अर्षेति। शुक्रा। वसानः। अर्षेति। तवं। अयम्। भागः। आयुर्षु। सोमंः। देवेषुं। हृयते। वहं। वार्योः इति। निऽञ्चतः। याहि। अस्मऽयः। जुषाणः। याहि। अस्मऽयः॥२॥

पदार्थ:-(तुभ्य) तुभ्यम्। अत्र छान्दसो वर्णलोप इति मुकारलोप:। (अयम्) सोमः ओषधिगण इव (परिपूतः) सर्वतः पवित्रः (अद्रिभिः) मेघैः (स्पिहीं) ईप्प्रितव्यानि वस्त्राणि (वसानः) आच्छादयन् (पिर) (कोशम्) मेघम् (अर्षित) गच्छित (शुक्रा) शुद्धानि (वसानः) धरन् (अर्षित) प्राप्नुयात्। ऋधातोर्लेट्प्रयोगोऽयम्। (तव) (अयम्) (भागः) भेजनीयः (आयुषु) जीवनेषु (सोमः) चन्द्र इव (देवेषु) विद्वत्सु (हूयते) स्तूयते (वह) (वायो प्रवन् इष (नियुतः) नियुक्तानश्चान् (याहि) (अस्मयुः) अहिमवाचरन् (जुषाणः) प्रीतः (याहि) (अस्मयुः)। २॥

अन्वय:-हे वायो! त्वं नियुत्र पवन के स्वयानानि देशान्तरं वह जुषाणोऽस्मयुर्याहि। अस्मयुस्सन्नायाहि यस्य तवऽयमायुषु देवेषु सोमो भागोऽस्ति स्मे भवान् हूयते स वसानः सन् शुक्राऽर्षति योऽयमद्रिभिः परिपूतः सोमो हूयते कोशं पर्य्यर्षति तद्वत्स्पार्हा वसानस्त्वं याहि तस्य तुभ्य तत्स्वमाप्नोतु॥२॥

भावार्थ:-अत्र विचिक्तुष्त्रोपमालङ्कारः। ये मनुष्याः प्रशस्तवस्त्राभरणवेशाः शुभमाचरन्ति ते सर्वत्र प्रशंसां प्राप्नुवन्ति॥२॥

पदार्थ: हैं (वायो) विद्वान्! आप (नियुतः) कला कौशल से नियत किये हुए घोड़ों को जैसे पवन वैसे अपि योजों को एक देश से दूसरे देश को (वह) पहुंचाओं और (जुषाणः) प्रसन्नचित (अस्मयुः) मेरे समान आचरण करते हुए (याहि) पहुंचो (अस्मयुः) मेरे समान आचरण करते हुए आओ जिस (तव) आपका (अयम्) यह (आयुषु) जीवनों और (देवेषु) विद्वानों में (सोमः) ओषधिगण के सम्प्रन (भागः) सेवन करने योग्य भाग है वा जो आप (हूयते) स्तुति किये जाते हैं सो (वसानः) वस्त्र आदि और हुए (शुक्रा) शुद्ध व्यवहारों को (अर्षति) प्राप्त होते हैं, जो (अयम्) यह (अद्रिभिः) मेघों से

(परिपूत:) सब ओर से पवित्र हुआ (सोम:) चन्द्रमा के समान प्रशंसा किया जाता वा (कोशम्) मेघ की (पर्च्यर्षित) सब ओर से प्राप्त होता उसके समान (स्पार्हा) चाहे हुए वस्त्रों को (वसान:) धारण किये हुए आप प्राप्त होवें, उन (तुभ्य) आपके लिये उक्त सब वस्तु प्राप्त हों॥२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य प्रशंसित कपड़े-महत्ते पहिने हुए सुन्दर रूपवान् अच्छे आचरण करते हैं, वे सर्वत्र प्रशंसा को प्राप्त होते हैं॥२॥

पुना राज्ञा प्रजाभ्य: किं ग्राह्यमित्याह॥

फिर राजा को प्रजाजनों से क्या लेना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

आ नो नियुद्धिः शृतिनीभिरध्वरं संहुिस्त्रणीभिरुपयाहि वीतये वासी हुव्यानि वीतये। तवायं भाग ऋत्वियः सर्रिष्मः सूर्ये सर्चा। अध्वर्युभिर्भरमाणा अयंसत वायो शुक्रा अयंसत॥ ३॥

आ। नः। नियुत्ऽभिः। शृतिनीभिः। अध्वरम्। सहिम्नणीभिः। उप। याहि। वीतये। वायो इति। ह्व्यानि। वीतये। तवे। अयम्। भागः। ऋत्वियेः। सऽरिश्मः। सूर्ये। सच्या अध्वर्युऽभिर्ः। भरमाणाः। अयंसत्। वायो इति। शुक्रा। अयंसत्॥ ३॥

पदार्थ:-(आ) (नः) अस्माकम् (नियुद्धः), वायुगुणवद्वर्त्तमानैरश्वैः (शितनीभिः) प्रशस्तासंख्यातसेनाङ्गयुक्ताभिश्चमूभिः (अध्वरम्) राज्यपालनाख्ययज्ञम् (सहस्रिणीभिः) बहूनि सहस्राणि शूरवीरसंघा यासु ताभिः (उप) (याहि) (वितये) काम्मायै (वायो) विद्वन् (हव्यानि) आदातुमर्हाणि (वीतये) व्याप्तये (तव) (अयम्) (भागः) (ऋतियः) ऋतुः प्राप्तोऽस्य स ऋत्वियः (सरिष्मः) रिश्मिभिः प्रकाशैः सह वर्त्तमानः (सूर्य्य) (समा) समवेताः (अध्वर्य्युभिः) य आत्मानमध्वरिमच्छन्ति तैः (भरमाणाः) धरमाणाः (अयंसत) उपयच्छेयुः (वायो) प्रशस्तबलयुक्त (शुक्राः) शुद्धाः (अयंसत)॥३॥

अन्वय:-हे वायो! तव ये श्विय्युंभिभेरमाणा जना अयंसत ते सुखमयंसत यस्य तव सूर्ये सचा शुक्राः किरणा इव सरश्मिर्ऋत्विजोऽयं भागोऽस्थि स त्वं वीतये ह्रव्यान्युपयाहि। हे वायो! ये शतिनीभिस्सहस्निणीभि- र्नियुद्भिर्वीतये नोऽध्वरमुपयान्ति ताँस्त्वमुपालाहि॥३॥)

भावार्थ:-अत्र विषक्किपुप्तोपमालङ्कार:। राजपुरुषै: शत्रोर्बलाच्चतुर्गुणं वाऽधिकं बलं कृत्वाऽधार्मिकै: प्रात्नुभिस्सह योद्धव्यम्। ते प्रतिवर्षं प्रजाभ्यो गृहीतव्यो यावान् करो भवेत् तावन्तमेव गृह्णीयु:, सदैव धार्मिकान् विदुष उपसेवेरन्॥३॥

प्रदार्थ:- है (वायो) विद्वान्! (तव) आपके जो (अध्वर्ध्युभि:) अपने को यज्ञ की इच्छा करनेवालों ने (भरमाणा:) धारण किये मनुष्य (अयंसत) निवृत्त होवें सुख जैसे हो वैसे (अयंसत) निवृत्त हों अर्थात् सोंसारिक सुख को छोड़े जिन आपका (सूर्ये) सूर्य्ये के बीच (सचा) अच्छे प्रकार संयोग किये हुई (अक्रा:) शुद्ध किरणों के समान (सरिश्म:) प्रकाशों के साथ वर्त्तमान (ऋत्विय:) जिसका ऋतु

अष्टक-२। अध्याय-१। वर्ग-२४-२५

मण्डल-१। अनुवाक-२०। सूक्त-१३५

१४८९

समय प्राप्त हुआ वह (अयम्) यह (भागः) भाग है सो आप (वीतये) व्याप्त होने के लिये (हव्यानि) ग्रहण करने योग्य पदार्थों को (उपयाहि) समीप पहुंचें, प्राप्त हों। हे (वायो) प्रशंसित बलयुक्त! जो (शितनीभिः) प्रशंसित सैकड़ों अङ्गों से युक्त सेनाओं के साथ वा (सहिंसणीभिः) जिनमें बहुत हुजारे शूरवीरों के समूह उन सेनाओं के साथ वा (नियुद्धिः) पवन के गुण के समान घोड़ों से (वीतये) कामना के लिये (नः) हम लोगों के (अध्वरम्) राज्यपालनरूप यज्ञ को प्राप्त होते उनको आप (आ) आकर प्राप्त होओ॥३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। राजपुरुषों को चाहिये कि सेनुओं के बल से चौगुना वा अधिक बल कर दुष्ट शत्रुओं के साथ युद्ध करें और वे प्रतिवर्ष प्रजाननों से जितना कर लेना योग्य हो उतना ही लेवें तथा सदैव धर्मात्मा विद्वानों की सेवा करें॥ ३॥ ०

पुनर्मनुष्यै: किंवद्भवितव्यमित्याह।।

फिर मनुष्यों को किसके समान होना चाहिये, इस विषय को असले मन्त्र में कहा है॥

आ वां रथों नियुत्वान्वश्चदवंसेऽभि प्रयांसि सुधितानि वीतये वायों हुव्यानि वीतये। पिषतं मध्वो अर्चसः पूर्वपेयं हि वां हितम्। वायवा चुन्द्रेण राधुसा गंतुमिन्द्रेश्च राधुसा नित्म्। हुन

आ। वाम्। रथः। नियुत्वान्। वृक्षुत्। अवसे अभि। प्रयोसा सुऽधितानि। वीतये। वायो इति। ह्व्यानि। वीतये। पिर्वतम्। मध्वः। अर्धसः। पूर्वऽपेर्यम्। हिर्ग बाम्। हित्रम्। वायो इति। आ। चन्द्रेणे। राधसा। आ। गृतम्। इन्द्रेः। च। राधसा। आ। गृतम्॥४॥

पदार्थ:-(आ) (वाम्) युवद्रोः (रष्ठः) (नियुत्वान्) वायुवद्वेगवान् (वक्षत्) वहेत् (अवसे) विजयाऽगमाय (अभि) आभिमुख्ये (प्रयोसि) प्रीतानि (सुधितानि) सुष्ठु धृतानि (वीतये) आनन्दप्राप्तये (वायो) वायुवत् प्रिय (हव्यानि) दातुमहांणि (वीतये) धर्मप्रवेशाय (पिबतम्) (मध्वः) मधुरगुणयुक्तस्य (अन्धसः) अन्नस्य (पूर्वपेयम्) पूर्वे. पातुं योग्यम् (हि) खलु (वाम्) युवाभ्याम् (हितम्) (वायो) दुष्टानां हिंसक (आ) समन्तात् (चिद्रणः) सुवर्णेन। चन्द्रमिति हिरण्यनामसु पठितम्। (निघं०१.२) (राधसा) राध्नुवन्ति संसिद्धिं प्राप्नुवन्ति यमे तेन (आ) (गतम्) गच्छतं प्राप्नुतम् (इन्द्रः) विद्युत् (च) चकाराद्वायुः (राधसा) (आ) (संसिद्धिकरेण साधनेन सह (गतम्) प्राप्नुतम्। अत्रोभयत्र बहुलं छन्दसीति शपो लुक्॥४॥

अन्वयः है प्रभासनेशौ! यो वां नियुत्वान् रथो वीतये सुधितानि प्रयांस्यभ्यावक्षदवसे वीतये हव्यानि च तौ युवां यथेन्द्रो नियुष्ठ तथा राधसा गतम्। वां हि यन्मध्वोऽन्धसः पूर्वपेयं वां हितमस्ति तित्पबतं चन्द्रेण राधसाऽगतम्। हे वायो! त्वं चन्द्रेण राधसाऽगतम्। हे वायो! त्वं चन्द्रेण राधसाऽगतम्। हे वायो!

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। यथा वायुविद्युतौ सर्वाऽभिव्याप्ते भूत्वा सर्वाणि वस्तूनि सेवेते तथा सज्जनैरैश्वर्यप्राप्तये सर्वाणि साधनानि सेवनीयानि॥४॥

पदार्थ:-हे सभासेनाधीशो! जो (वाम्) तुम्हारा (नियुत्वान्) पवन के समान वेगवान् (र्थाः) रथे (पीतये) आनन्द की प्राप्ति के लिये (सुधितानि) अच्छे प्रकार धारण किये हुए (प्रवास्त) प्रीति के अनुकूल पदार्थों को (अभ्यावक्षत्) चारों ओर से अच्छे प्रकार पहुंचे और (अवसे) विजय की प्राप्ति वा (वीतये) धर्म की प्रवृत्ति के लिये (हव्यानि) देने योग्य पदार्थों को चारों ओर भली भांति पहुंचावे, वे तुम जैसे (इन्द्रः) बिजुली रूप आग (च) और पवन आवे वैसे (राधसा) जिससे सिद्धि की प्राप्त होते उस पदार्थ के साथ (आ गतम्) आओ, जो (मध्वः) मीठे (अन्धसः) अत्र का (पूर्वपयम्) अगले मनुष्यों के पीने योग्य (वाम्) और तुम दोनों के लिये (हितम्) सुखरूप भाग है, उसकी (पिवतम्) पिओ और (चन्द्रेण) सुवर्णरूप (राधसा) उत्तम सिद्धि करनेवाले धन के साथ (आगतम्) आओ। हे (वायो) पवन के समान प्रिय! आप उत्तम सिद्धि करनेवाले सुवर्ण के साथ सुख्योप को (आ) प्राप्त होओ और हे (वायो) दुष्टों की हिंसा करनेवाले! लेने-देने योग्य पदार्थों को भी (आ) प्राप्त होओ॥४॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है जिसे पवन और बिजुली सब में अभिव्याप्त होकर सब वस्तुओं का सेवन करते, वैसे सज्जनों को चाहिय कि एश्वर्य्य की प्राप्ति के लिये सब साधनों का सेवन करें॥४॥

पुनर्विद्वद्भि कि कर्तव्यमित्याह॥

फिर विद्वानों को क्या करना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

आ वां धियों ववृत्युरध्वराँ उपेमिपिन्दुं मर्मुजन्त वाजिनमाशुमत्यं न वाजिनम्। तेषां पिबतमस्मयू आ नों गन्तिमहोत्या।

इन्द्रवायू सुतानामद्रिभिश्चवं मदाय वाजदा युवम्॥५॥२४॥

आ। वाम्। धिर्यः। वृक्त्युः। अध्वरान्। उपं। इमम्। इन्दुंम्। मुर्मृजन्त। वाजिनंम्। आशुम्। अत्यंम्। न। वाजिनंम्। तेषाम्। पि्बत्म्। अस्ययाः इन्द्रंम्। यान्तम्। इहः। ऊत्याः इन्द्रंवायू इति। सुतानाम्। अद्गिऽभिः। युवम्। मद्ययः। वाज्ऽदाः। युवम्। प्रा

पदार्थ: आ) (वाप्) युवयोः (धियः) प्रज्ञाः कर्माणि वा (ववृत्युः) वर्तेरन्। अत्र बहुलं छन्दसीति शप्रः श्लूर्स्तत्ययेन परस्मैपदम्। (अध्वरान्) अहिंसकान् जनान् (उप) (इमम्) (इन्दुम्) परमैश्वर्यम् अत्रेद्धितार्वाबहुलकादुः प्रत्ययः। (मर्मृजन्त) अत्यन्तं मार्जयन्तु शोधयन्तु (वाजिनम्) प्रशस्तवेनम् (आशुम्) शीघ्रकारिणम् (अत्यम्) अतन्तमश्चम् (न) इव (वाजिनम्) बहुशुभलक्षणाऽन्वितम् (तेष्रम्) (मिषतम्) (अस्मयू) आवामिवाचरन्तौ (आ) (नः) अस्मान् (गन्तम्) गच्छतम्। अत्राडभावो बहुलं छन्दसीति शपो लुक्। (इह) अस्मिन् संसारे (अत्या) रक्षणादिसत्क्रियया (इन्द्रवायू) सर्प्पपवनाविव

अष्टक-२। अध्याय-१। वर्ग-२४-२५

मण्डल-१। अनुवाक-२०। सूक्त-१३५

१४९१

(सुतानाम्) संसिद्धानाम् (अद्रिभिः) शैलाऽवयवैरुलूखलादिभिः (युवम्) (मदाय) आनन्दाय (वाजदा) विज्ञानप्रदौ (युवम्) युवाम्॥५॥

अन्वयः-हे इन्द्रवायू! ये वां धियोऽध्वरानिममिन्दुं वाजिनं चाशु वाजिनमत्यं नेवा ववृत्युरिममिन्दुः प्रिन्ने तेषामद्रिभिः सुतानां रसं मदाय युवं पिबतमस्मयू वाजदा युवमिहोत्या नोऽस्मानागन्तम्॥५॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। य उपदेशका अध्यापकाश्च जनानां खुद्धीः शोधयित्वा सुशिक्षिताऽश्ववत्पराक्रमयन्ति त आनन्दभागिनो भवन्ति॥५॥

पदार्थ: -हे (इन्द्रवायू) सूर्य्य और पवन के समान सभा सेनाधी औं ! जो अपदेश करने वा पढ़ानेवाले विद्वान् जन (वाम्) तुम्हारे (धियः) बुद्धि और कर्मों वा (अध्वर्तन्) हिंसा न करनेवाले जनों (इमम्) इस (इन्दुम्) परम ऐश्वर्य और (वाजिनम्) प्रशंसित वेगयुक्त (आशुम्) काम में शीघ्रता करनेवाले (वाजिनम्) अनेक शुभ लक्षणों से युक्त (अत्यम्) निरन्तर गमन करते हुए जो हैं के (न) समान (आ, ववृत्युः) अच्छे प्रकार वर्तें, कार्य्य में लावें और इस परम ऐश्वर्य को (उप, मर्मृजन्त) समीप में अत्यन्त शुद्ध करें (तेषाम्) उनके (अद्रिभिः) अच्छे प्रकार पर्वत के टूंक वा उखली मूसलों से (सुतानाम्) सिद्ध किये अर्थात् कूट-पीट बनाए हुए पदार्थों के रस को (महाय) आनुत्य के लिये (युवम्) तुम (पिबतम्) पीओ तथा (अस्मयू) हम लोगों के समान आचरण करते हुए (वार्षदा) विशेष ज्ञान देनेवाले (युवम्) तुम दोनों इस संसार में (ऊत्या) रक्षा आदि उत्तम क्रिया से (नः) हम लोगों को (आगन्तम्) प्राप्त होओ॥५॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जी उपदेश करने और पढ़ानेवाले मनुष्यों की बुद्धियों को शुद्ध कर अच्छे सिखाये हुए घोड़े के समान पराक्रम युक्त कराते वे आनन्द सेवनवाले होते हैं॥५॥

पुन (नुष्यै: कि कर्त्तव्यमित्याह।।

फिर मनुष्यों को क्या करेना चाहियें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

डुमे वां सोमा अप्स्वा सुता डुहाध्वर्युभिर्भरमाणा अयंसत वायो शुक्रा अयंसत। एते वामभ्यस्थत हिर्: पवित्रमाश्रवः।

युवायवोऽति स्मारिय्व्यस्र सोमासो अत्यव्यया॥६॥

ड्रमे। वाम्। सोमाः। अप्रमु। आ। सुताः। इह। अध्वर्युऽभिः। भर्रमाणाः। अयंसत्। वायो इति। शुक्राः। अयंसत्। एते। वाम्र् अभि। अपृक्षत्। तिरः। प्वित्रम्। आशर्वः। युवाऽयर्वः। अति। रोमणि। अव्ययो। सोमासः। अति। अव्ययो। है।।

पदार्थ: (इमे) (वाम्) (सोमा:) महौषधय: (अप्सु) जलेषु (आ) (सुता:) (इह) अस्मिँल्लोके (अध्वर्युभि:) अध्वरं यज्ञमिच्छद्भि: (भरमाणा:) (अयंसत) यच्छेयु: (वायो) वायुवद् बलिष्ठ (शुक्रा:) शुद्धाः (अयंसत) गृह्णीयु: (एते) (वाम्) युवाम् (अभि) आभिमुख्ये (अमृक्षत) सृजेयु: (तिर:) तिरश्चीनम्

(पवित्रम्) शुद्धिकरम् (आशवः) ये अश्नुवन्ति ते (युवायवः) युवामिच्छवः (अति) (रोमाणि) लोमानि (अव्यया) व्ययरहितानि (सोमासः) ऐश्वर्य्ययुक्ताः (अति) (अव्यया) नाशरहितानि सुखानि॥६॥

अन्वय:-हे इन्द्र वायो! य इम इहाध्वर्युभिरप्सु सुताः सोमा भरमाणा वामयंसत शुक्रा अयंसत स्पूरते आश्वी युवायवः सोमासोऽव्ययाऽतिरोमाण्यत्यव्ययेव तिरः पवित्रं वामभ्यसृक्षत तान् युवां पिबतं संगच्छेतां च।

भावार्थ:-हे मनुष्या! येषां सेवनेन दृढाऽरोग्ययुक्ता देहात्मानो भवन्ति, येऽन्तः करणे शोधयन्ति, तान् यूयं नित्यं सेवध्वम्॥६॥

पदार्थ:-हे परम ऐश्वर्य्ययुक्त और (वायो) पवन के समान बलवान् जो (केंगे) ये (इह) इस संसार में (अध्वर्युभि:) यज्ञ की चाहना करनेवालों ने (अप्सु) जलों में (सुता:) उत्पन्न की (सोमा:) बड़ी-बड़ी ओषधि (भरमाणा:) पृष्टि करती हुई तुम दोनों को (अयंग्रत) देवें और (शुक्रा:) शुद्ध वे (अयंग्रत) लेवें वा जो (एते) ये (आशव:) इकट्ठे होते और (युवायक:) तुम दोनों की इच्छा करते हुए (सोमास:) ऐश्वर्य्ययुक्त (अव्यया) नाशरहित (अति, रोमाणि) अतीव रोमा अर्थात् नारियल की जटाओं के आकार (अति, अव्यया) सनातन सुखों के समान (तिर:) और से तिर्छ (पवित्रम्) शुद्धि करनेवाले पदार्थी और (वाम्) तुम दोनों को (अभि, अस्थ्रत) चार्री और से सिद्ध करें, उनको तुम पीओ और अच्छे प्रकार प्राप्त होओ॥६॥

भावार्थ:-हे मनुष्यो! जिनके सेवन से दृद्ध और आरोग्ययुक्त देह और आत्मा होते हैं तथा जो अन्त:करण को शुद्ध करते उनका तुम नित्य सेवस करोग होग

पुनर्मनुष्यै: किं कर्त्तृस्यमित्याह॥

फिर मनुष्यों को क्या करने चाहिये, इसे विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अति वायो ससतो याहि शश्चतो यन गावा वदित तत्र गच्छतं गृहमिन्द्रश्च गच्छतम्। वि सूनृता दर्दृशे रीयते वृतमा पूर्णया नियुता

याथो अध्वरमिन्द्रश्च/याथो अध्वरम्॥ ७॥

अति। वायो इति। समितः। प्याहि। शर्श्वतः। यत्रे। प्रावां। वर्दति। तत्रे। गुच्छतुम्। गृहम्। इन्द्रेः। च। गुच्छतुम्। वि। सूनृतां। दर्दृशे। रोग्रेति। घृतम्। आ। पूर्णयां। निऽयुतां। याथः। अध्वरम्। इन्द्रेः। च। याथः। अध्वरम्॥७॥

पदार्थ: (अति) अतिशये (वायो) वायुवद् बलवन् (ससतः) अविद्यामुल्लङ्घमानान् (याहि) (शश्वतः) समावनिषद्यायुक्तान् (यत्र) (ग्रावा) मेधावी (वदित) उपदिशति (तत्र) (गच्छतम्) प्राप्नुतम् (गृहम्) (इन्द्रः) (च) (गच्छतम्) (वि) (सूनृता) सुशिक्षिता सत्यप्रिया वाक् (ददृशे) दृश्यते (ग्रीयते) शिल्ल्यते सम्बध्यते (घृतम्) प्रदीप्तविज्ञानम् (आ) (पूर्णया) (नियुता) अखिलाङ्गयुक्तया वायोर्गतिवदृत्या

अष्टक-२। अध्याय-१। वर्ग-२४-२५ मण्डल-१। अनुवाक-२०। सूक्त-१३५

(**याथ:**) प्राप्नुथ: (अध्वरम्) अहिंसादिलक्षणं धर्मम् (इन्द्र:) ऐश्वर्ययुक्त: (च) (याथ:) गर्च्छथ (अध्वरम्) यज्ञम्॥७॥

अन्वय:-हे वायो विद्वँस्त्वं ससत: शश्वतो याहि यत्र ग्रावा वदति तत्र त्विमन्द्रश्च गच्छतं गृहं गच्छीतं य विददृशे घृतमारीयते तत्र पूर्णया नियुता यौ त्विमन्द्रश्चाध्वरं याथस्तौ युवामध्वरं याथ:॥७॥

भावार्थ:-मनुष्या यस्मिन् देशे स्थले वाऽऽप्ता विद्वांसः सत्यमुपदिशेयुस्तत्स्थानं मन्बी तद्पदेशं नित्यं शृणुयुः। येन विद्यावाणीं सत्यं विज्ञानं धर्मज्ञानं च प्राप्नुयुः॥७॥

पदार्थ:-हे (वायो) पवन के समान बलवान् विद्वान्! आप (ससतः) अविद्या की उल्लङ्कन किये और (शश्वत:) सनातन विद्या से युक्त पुरुषों को (याहि) प्राप्त होओ (क्षेत्र) जहाँ (ग्रावा) धीर बुद्धि पुरुष (अति, वदित) अत्यन्त उपदेश करता (तत्र) वहाँ आप (स्)्और (इन्द्राः) ऐश्वर्ययुक्त मनुष्य (गच्छतम्) जाओ और (गृहम्) घर (गच्छतम्) जाओ जहाँ (सुनता) उत्तरमिश्राक्षा युक्त सत्यप्रिय वाणी (वि, ददृशे) विशेषता से देखी जाती और (घृतम्) प्रकाशित विकान (आ, रीयते) अच्छे प्रकार सम्बद्ध होता अर्थात् मिलता वहाँ (पूर्णया) पूरी (नियुता) पवन की चाल के स्प्रेमान चाल से जो आप (इन्द्र:, च) और ऐश्वर्य्ययुक्त जन (अध्वरम्) अहिंसादि लक्षण (धर्मिको (स्रोप्थः) प्राप्त होते हो, वे तुम दोनों (अध्वरम्) यज्ञ को (याथ:) प्राप्त होते हो॥७॥

भावार्थ:-मनुष्य लोग जिस देश वा स्थान में शास्त्रकृता आप्त विद्वान् सत्य का उपदेश करें, उनके स्थान पर जाके उनके उपदेश को नित्य सुना केरें, ज़िर्मंसे विद्यायुक्त वाणी और सत्य विज्ञान और धर्मज्ञान को प्राप्त होवें॥७॥

पुन्मीनुष्यैः कि केर्त्तव्यमित्याह॥

फिर मनष्यों को क्या करता चाहिये. इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

अत्राह तद्वहिथे मध्व अस्ति यमेश्वत्थर्पुपतिष्ठन जायवोऽस्मे ते सन्तु जायवंः।

साकं गाव: सुवते प्रचिते यवो

न ते वायु उप दस्यन्ति ध्रेप्रवो नापं दस्यन्ति धेनवं:॥८॥

अत्र। अहं। तत्। वहेथे इति। मध्वं:। आऽहंतिम्। यम्। अश्वत्थम्। उपऽतिष्ठंन्त। जायवं:। अस्मे इति। ते। सुन्तु। जायर्वः। सार्द्धप्। गार्वः सुर्वते। पर्च्यते। यर्वः। न। ते। वायो इति। उप। दुस्यन्ति। धेनर्वः। न। अप। दुस्यन्ति। धेनवं:॥८॥ 🟒

पर्दार्थ: अत्र) (अह) किल (तत्) (वहेथे) प्रापयत: (मध्व:) मधुरस्य विज्ञानस्य (आहृतिम्) समन्ताद् सहणम् (यम्) (अश्वत्थम्) पिप्पलमिव (उपतिष्ठन्त) उपतिष्ठन्तु (जायवः) जयशीलाः (अस्मे) अस्मिक्स (ते) (सन्तु) (जायवः) जेतारः शूराः (साकम्) सह (गावः) धेनवः (सुवते) गर्भान् विमुञ्चन्ति

(पच्यते) परिपक्वो भवति (यव:) मिश्रामिश्रव्यवहारः (न) इव (ते) तव (वायो) वायुवद् बलयुक्ते (उप) (दस्यन्ति) क्षयन्ति (धेनवः) (न) निषेधे (अप) (दस्यन्ति) (धेनवः) वाण्यः॥८॥

अन्वय:-हे वायो विद्वन्! यावध्यापकोपदेशकावत्राऽह तद्वहेथे अश्वत्थं पक्षिण इव जायवो यं स्वार्णपितिष्ठन्ते मध्व आहुतिं चोपतिष्ठन्त तेऽस्मे जायवः सन्तु। एवं समाचरतस्ते गावः साकं सुवते यवः साकं पच्यते धन्वो नापदस्यन्ति धेनवो नोपदस्यन्ति॥८॥

भावार्थ:-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। यदि सर्वैर्मनुष्यैः श्रेष्ठमनुष्याणां संगर्भकामना परस्परस्मिन् प्रीतिः क्रियते तर्हि तेषां विद्याबलहासो भेदबुद्धिश्च नोपजायेत॥८॥

पदार्थ:-हे (वायो) पवन के समान विद्वान्! जो पढ़ाने और उपदेश करनेवाले (अत्राह) यहीं निश्चय से (तत्) उस विषय को (वहेथे) प्राप्त कराते वा (अश्वत्थम्) जैसे (पिप्तवृक्ष को पखेरू वैसे (जायवः) जीतनेहारे (यम्) जिन आपके (उपितष्ठन्त) समीप स्थित हों और (मध्वः) मधुर विज्ञान के (आहुतिम्) सब प्रकार ग्रहण करने को उपस्थित हों (ते) वे अस्में) हम लोगों के बीच (जायवः) जीतनेहारे शूर (सन्त) हों, ऐसे अच्छे प्रकार आचरण करते हुए (ते) आपकी (गावः) गौयें (साकम्) साथ (सुवते) विआती (यवः) मिला वा पृथक-पृथक् व्यवहार साथ (पच्यते) सिद्ध होता तथा (धेनवः) गौयें जैसे (अप, दस्यन्ति) नष्ट नहीं होतीं (न) वैसे (धेनवः) वाणी (न, उप, दस्यन्ति) नहीं नष्ट होतीं॥८॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमा और वाच्छ्रिलुप्तोपमाल ङ्कार हैं। जो सब मनुष्यों से श्रेष्ठ मनुष्यों के सङ्ग की कामना और आपस में प्रीति की जाय तो उचकी विद्या बल की हानि और भेद बुद्धि न उत्पन्न हो॥८॥

पुना युद्धाय के प्रेषणीया इत्याह॥

फिर राजा को युद्ध के लिये कौन पठाने योग्य हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

ड्रमे ये ते सु वायो बह्वीजसोऽन्तर्नेही ते प्तयन्त्युक्षणो महि ब्राधन्त उक्षणः।

धन्वश्चिद्ये अनाष्ट्रावी जीराश्चिदगिरौकसः।

सूर्यस्थेव रुमयौ दुनियन्तवो हस्तयोर्दुर्नियन्तवः॥९॥२५॥

ड्रमे। ये। तो सु। वायो इति। बाहुऽऔजसः। अन्तः। नदी इति। ते। प्तयन्ति। उक्षणः। महि। व्रोधन्तः। उक्षणः। धन्वन्। चित्। ये। अनाशवः। जीराः। चित्। अगिराऽओकसः। सूर्यस्यऽइव। रुश्मयः। दुःऽनियन्तेवः। हस्तयोः। दुःऽनियन्तेवः।

पदार्थ:-(इमै) (ये) (ते) तव (सु) (वायो) विद्वन् (बाह्वोजसः) भुजबलस्य (अन्तः) मध्ये (नद्धे) नदी इव वर्त्तमानौ (ते) तव (पतयन्ति) पितरिवाचरन्ति (उक्षणः) सेचनसमर्थान् (मिहि) महतः वर्धमानाः। अत्र पृषोदरादिना पूर्वस्याऽऽकारादेशो व्यत्ययेन परस्मैपदं च। (उक्षणः) बलप्रदान्

अष्टक-२। अध्याय-१। वर्ग-२४-२५

मण्डल-१। अनुवाक-२०। सूक्त-१३५

१४९५

(धन्वन्) धन्वन्यन्तरिक्षे (चित्) (ये) (अनाशवः) अव्याप्ताः (जीराः) वेगवन्तः (चित्) (अगिरौकर्सः) अविद्यमानया गिरा सहौको गृहं येषां ते। अत्र तृतीयाया अलुक्। (सूर्यस्येव) यथा सवितुः (रश्मयः) किरणाः (दुर्नियन्तवः) दुःखेन नियन्तुं निग्रहीतुं योग्याः (हस्तयोः) भुजयोः (दुर्नियन्तवः)॥९

अन्वय:-हे वायो! य इमे ते तव सहायेन बाह्वोजसोऽन्तः सुपतयन्ति तानुक्षणः संपादय य इसे ते तहापदेशन महि ब्राधन्तः सुपतयन्ति तानुक्षणः कुरु। ये धन्वन्नदी चिदिवानाशवो जीरा अगिरौकसो दुर्नियन्तवो स्थमेषः सूर्यस्येव चिद्धस्तयोः प्रतापेन शत्रुभिर्दुर्नियन्तवः सुपतयन्ति तान् सततं सत्कुरु॥९॥

भावार्थः-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। राजपुरुषैर्बाहूबलयुक्ताः शत्रुभिरेश्रुष्यमाणी वीराः पुरुषाः सेनायां सदैव रक्षणीया येन राजप्रतापः सदा वर्द्धेतेति॥९॥

अत्र मनुष्याणां परस्परवर्त्तमानोक्तत्वादेतदर्थस्य पूर्वसुक्तार्थेन स्रह संगितिरान्तीति वेद्यम्॥

इति पञ्चत्रिंशदुत्तरं शततमं १३५ सूक्तं पञ्चविंशो २५ वर्गश्च सुमाजः॥

पदार्थ:-हे (वायो) विद्वन्! (ये) जो (इमे) ये योद्धा लॉग (ते) आपके सहाय से (बाह्वोजसः) भुजाओं के बल के (अन्तः) बीच (सु, पतयन्ति) पालनेवाले के समान आचरण करते उनको (उक्षणः) सींचने में समर्थ कीजिये, (ये) जो (ते) आपके उपदेश (से (मही) बहुत (व्राधनः) बढ़ते हुए अच्छे प्रकार पालनेवाले के समान आचरण करते हैं, उनको (उक्षणः) बल देनेवाले कीजिये, जो (धन्वन्) अन्तिरक्ष में (नदी) नदी के (चित्) समान वर्त्तमान (अनाशवन्) किसी में व्याप्त नहीं (जीराः) वेगवान् (अगिरौकसः) जिनका अविद्यमान वाणी के साथ ठहरने का स्थान (दुर्नियन्तवः) जो दुःख से ग्रहण करने के योग्य वे (रश्मयः) किरण जैसे (सूर्यस्यक्) सूर्य को वैसे (चित्) और (हस्तयोः) अपनी भुजाओं के प्रताप से शत्रुओं ने (दुर्नियन्तवः) इुःख से ग्रहण करने योग्य अच्छी पालना करनेवाले के समान आचरण करें, उन वीरों का निस्त्र साकार करो॥९॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में व्यक्तिस्तोपमालङ्कार हैं। राजपुरुषों को चाहिये कि बाहुबलयुक्त शत्रुओं से न डरनेवाले वीर पुरुषों को सेना में सदैव रक्खें, जिससे राज्य का प्रताप सदा बढ़े॥९॥

इस सूक्त में मनुष्यों का परस्थर वर्तीव कहने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ एकता है, यह जानना चाहियों।

यह एक सौ पैतीसवाँ १३५ सूक्त और पच्चीसवाँ २५ वर्ग समाप्त हुआ॥

रि. संस्कृत भावार्थ में उपमा अलङ्कार भी है। सं०

अथ प्र स्वित्यस्य सप्तर्चस्य षट्त्रिंशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य परुच्छेप ऋषिः। मित्रावरुणौ

देवते। षष्ठसप्तमयोर्मन्त्रोक्ता देवता:। १,३,५,६ स्वराडत्यष्टि:। गास्वार: स्वर:। २

निचृदष्टिश्छन्दः। ४ भुरिगष्टिश्छन्दः। मध्यमः स्वरः। ७ त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथ के केभ्यः किं गृहीत्वा कीदृशा भवेयुरित्याह॥

अब सात ऋचावाले एक सौ छत्तीसवें सूक्त का आरम्भ है। इसके प्रथम मन्त्र में क्रीन किस्से क्या लेकर कैसे हों, इस विषय को कहा है।।

प्र सु ज्येष्ठं निचिराभ्यां बृहन्नमो हुव्यं मृति भरता मृळ्यद्भ्यां स्वर्गदेष्ठं मळ्यद्भ्यांम्। ता सम्राजां घृतासुती युज्ञेयज्ञ उपस्तुता।

अर्थैनो: क्ष्रत्रं न कुर्तश्चनाधृषे देवत्वं नू चिदाधृषे॥ १॥

प्रा सु। ज्येष्ठम्। निऽचिराभ्याम्। बृहत्। नर्मः। हृव्यम्। मृतिम्। भुरता मृळ्यत्ऽभ्याम्। स्वादिष्ठम्। मृळ्यत्ऽभ्याम्। ता। सम्ऽराजां। घृतासुती इति घृतऽआसुती। यज्ञेऽयेक्षा उपेऽस्तुता अर्थ। एनोः। क्षुत्रम्। न। कुर्तः। चन। आऽधृषे। देव्ऽत्वम्। नु। चित्। आऽधृषे॥ १॥

पदार्थ:-(प्र) प्रकर्षे (सु) शोभने (ज्येष्ठम्) आस्थिने प्रशस्यम् (निचिराभ्याम्) नितरां सनातनाभ्याम् (बृहत्) महत् (नमः) अत्रम् (हव्यम्) प्रहीतुं योग्यम् (मितम्) प्रज्ञाम् (भरत) स्वीकुरुत (मृळयद्भ्याम्) सुखयद्भ्याम् (स्वादिष्ठम्) अतिश्रम्ने स्वादु (मृळयद्भ्याम्) सुखकारकाभ्यां मातापितृभ्यां सह (ता) तौ (सम्राजा) सम्यग्राजेते (घृतामुती) घृतिनासुतिः सवनं ययोस्तौ (यज्ञेयज्ञे) प्रतियज्ञम् (उपस्तुता) उपगतेर्गुणैः प्रशंसितौ (अप्र) अनन्त्रम् (एनोः) एनयोः। अत्र छान्दसो वर्णलोप इत्यकारलोपः। (क्षत्रम्) राज्यम् (न) निषधे (कृताः) कस्मादिप (चन) (आधृषे) आधिर्षतुम् (देवत्वम्) विदुषां भावम् (नु) शीघ्रम् (चित्) अपि आधिर्षतुम्॥१॥

अन्वयः-हे मनुष्या! यूयं मुळयद्भ्यामितं निचिराभ्यां मृळयद्भयां सह ज्येष्ठं स्वादिष्ठं हव्यं बृहन्नमो मितं च नु प्रसुभरत यज्ञेयज्ञ उपस्तुता घृतासुती सम्भजा ता प्रसुभगत। अथैनोः क्षत्रमाधृषे चिदपि देवत्वमाधृषे कुतश्चन न क्षीयेत॥१॥

भावार्थः - ये बहुकालात् प्रवृतानामध्यापकोदेशकानां सकाशाद्विद्यां सदुपदेशाँश्च सद्यो गृह्णन्ति, ते चक्रवर्त्तिराजानो भवितुमहीन्त नामेषामैश्वर्यं कदाचिद्धीयते॥१॥

पदार्थ: हे मनुष्यों तुम (मृडयद्भ्याम्) सुख देते हुओं के समान (निचिराभ्याम्) निरन्तर सनातन (मृडयद्भ्याम्) सुख करनेवाले अध्यापक उपदेशक के साथ (ज्येष्ठम्) अतीव प्रशंसा करने योग्य (स्वादिष्ठम्) अत्येत स्वादु (हव्यम्) ग्रहण करने योग्य पदार्थ (बृहत्) बहुतसा (नमः) अत्र और (मितम्) चृद्धि को (नु) शीघ्र (प्र, सु, भरत) अच्छे प्रकार सुन्दरता से स्वीकार करो और (यज्ञेयज्ञे) प्रत्येक पद्म में (उपस्तुता) प्राप्त हुए गुणों से प्रशंसा को प्राप्त (घृतासुती) जिनका घी के साथ पदार्थों का स्वीर निकालना (सम्राजा) जो अच्छी प्रकाशमान (ता) उन उक्त महाशयों को भली-भांति ग्रहण करो,

अष्टक-२। अध्याय-१। वर्ग-२६

मण्डल-१। अनुवाक-२०। सूक्त-१३६

१४९७

(अथ) इसके अनन्तर (एनो:) इन दोनों का (क्षत्रम्) राज्य (आधृषे) ढिठाई देने को (चित्) और (देवत्वम्) विद्वान् पन (आधृषे) ढिठाई देने को (कुतश्चन) कहीं से (न) न नष्ट हो॥१॥

भावार्थ:-जो बहुतकाल से प्रवृत्त पढ़ाने और उपदेश करनेवालों के समीप से विद्या और अच्छे उपदेशों को शीघ्र ग्रहण करते, वे चक्रवर्ति राजा होने के योग्य होते हैं और न इनका एश्वर्य कभी नष्ट होता है॥१॥

पुनर्मनुष्याः किं प्राप्य कीदृशा भवन्तीत्याह॥

फिर मनुष्य क्या पाकर कैसे होते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है।

अदर्शि गातुरुखे वरीयसी पन्थां ऋतस्य समयंस्त रृश्मिभिश्चसूर्भास्य रृश्मिभिः।

द्युक्षं मित्रस्य सादनमर्यम्णो वर्रुणस्य च।

अर्था दधाते बृहदुक्थ्यं र्रं वर्य उपस्तुत्यं बृहद्वर्यः॥२॥/

अर्दर्शि। गातुः। उरवे। वरीयसी। पन्थाः। ऋतस्य। सम्। अर्द्धस्तः। रश्मिऽभिः। चक्षुः। भगस्य। रश्मिऽभिः। द्युक्षम्। मित्रस्य। सर्दनम्। अर्थम्णः। वर्रणस्य। च। अर्थ। द्याते इति। बृहत्। द्वस्र्यम्। वर्यः। उपुऽस्तुत्यम्। बृहत्। वर्यः॥२॥

पदार्थ:-(अदिर्शि) (गातु:) भूमि: (उरवे) विस्तृत्विय (वरीयसी) अतिशयेन वरा (पन्था:) मार्गः (ऋतस्य) जलस्य (सम्) (अयंस्त) उपयच्छित (रिष्मिषि:) किरणै: (चक्षु:) नेत्रम् (भगस्य) सूर्यस्येव धनस्य। भग इति धननामसु पठितम्। (विध् १.१०) (रिष्मिष:) किरणै: (द्युक्षम्) द्युलोकस्थम् (मित्रस्य) सुहृदः (सादनम्) सीदन्ति (अर्थः) अत्रान्येषामि दृश्यत इति दीर्घः। (अर्थम्णः) न्यायाधीशस्य (वरुणस्य) श्रेष्ठस्य (य) (अर्थः) अत्र निपातस्य चेति दीर्घः। (द्याते) (बृहृत्) महृत् (उक्थ्यम्) वक्तुं योग्यम् (वयः) पृथिणः (उपस्तुत्यम्) (बृहृत्) (वयः) किमतारः॥२॥

अन्वय:-येनोरवे वरीयम् नातुरदर्शि येत्र सूर्य्यस्य रश्मिभिरिव रश्मिभिस्सह चक्षुर्ऋतस्य भगस्य पन्थाः समयंस्त मित्रस्यार्थ्यम्णो वरुणस्य हुद्धं सादनं समध्यसाथ वयो बृहदिव ये वय उपस्तुत्यं बृहदुक्थ्यं दधित यौ दधाते ते सुखं प्राप्नुवन्ति॥२॥

भावार्थ:-अत्र वाचकल्पुतापमालङ्कारः। यथा सूर्यप्रकाशेन पृथिव्यां मार्गा दृश्यन्ते तथैवोत्तमानां विदुषां संगेन सत्य्री विद्याः प्रकाश्यन्ते यथा पक्षिण उत्तममाश्रयं प्राप्यानन्दन्ति तथा सिद्धद्याः प्राप्य जनाः सदा सुखयन्त्रिश्य

पृद्धिः जिससे (उरवे) बहुत बड़े के लिये (वरीयसी) अतीव श्रेष्ठ (गातुः) भूमि (अदिर्शि) दीखती वा जहाँ सूर्य के (रिश्मिभः) किरणों के समान (रिश्मिभः) किरणों के साथ (चक्षुः) नेत्र (ऋतस्य) जस और (भगस्य) सूर्य के समान धन का (पन्था) मार्ग (समयंस्त) मिलता वा (पित्रस्य) मित्र (अर्थम्णः) न्यायाधीश और (वरुणस्य) श्रेष्ठ पुरुष का (द्युक्षम्) प्रकाश लोकस्थ (सादनम्) जिसमें स्थिर

होते वह घर प्राप्त होता (अथ) अथवा जैसे (वय:) बहुत पखेरू (बृहत्) एक बड़े काम को वैसे जो (वय:) मनोहर जन (उपस्तुत्यम्) समीप से प्रशंसनीय (बृहत्) बड़े (उक्थ्यम्) और कहने योग्य काम को धारण करते (च) और जो दो मिलकर किसी काम को (दधाते) धारण करते, वे सब सुख पाति हैं। रोप

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य के प्रकाश से भूमि कर मार्ग दीखते हैं, वैसे ही उत्तम विद्वानों के सङ्ग से सत्य विद्याओं का प्रकाश होता है। वा जैसे प्रखेरू उत्तम आश्रय स्थान पाकर आनन्द पाते हैं, वैसे उत्तम विद्याओं को पाकर मनुष्य सब कभी सुख को हैं॥२॥

पुनर्विद्वद्भिः किंवत्किं प्राप्तव्यमित्याह।।

फिर विद्वानों को किसके समान क्या पाना चाहिये, इस विषय को अल्ले मन्त्र में कहा हैं॥ ज्योतिष्मतीमदितिं धार्यिक्षितिं स्वर्वतीमा संचेते दिवेदिवे जागृवासा दिवेदिवे। ज्योतिष्मत्भुत्रमांशाते आदित्या दानुंन्स्पती।

मित्रस्तयोर्वरुणो यातयज्जनोऽर्यमा यातयज्जनः॥ शा

ज्योतिष्मतीम्। अदितिम्। धाुर्यत्ऽक्षितिम्। स्वःऽवतीम्। आ। सूर्येते इति। द्विवेऽदिवे। जाुगृवांसा। द्विवेऽदिवे। ज्योतिष्मत्। क्षुत्रम्। आशाते इति। आदित्या। दार्नुनः। पत् इति। मित्रः। तयोः। वर्रुणः। यात्यत्ऽजनः। अर्यमा। यातयत्ऽजनः।। ३॥

पदार्थ:-(ज्योतिष्मतीम्) बहुतेजोयुक्ताम् (अदितिम्) दिवम् (धारयिक्षितिम्) भूमिं धरन्तीम् (स्वर्वतीम्) बहुसुखकारिकाम् (आ) (सचेते) सम्प्रवेतः (दिवेदिवे) प्रतिदिनम् (जागृवांसा) जागृतौ (दिवेदिवे) प्रतिदिनम् (ज्योतिष्मत्) बहुस्याययुक्तम् (क्षत्रम्) राज्यम् (आशाते) प्राप्नुतः (आदित्या) सूर्यप्राणौ (दानुनः) दानस्य (पती) पास्त्रियतारौ (भित्रः) सर्वप्राणः (तयोः) (वरुणः) वरः (यातयज्जनः) यातयन्तः प्रयत्नकारियतारो जना युस्य सः (अर्यमा) न्यायेशः (यातयज्जनः) पुरुषार्थवत्पुरुषः॥३॥

अन्वय:-यथाऽऽदित्या दिविदिवे स्ववंती भारियत्क्षितिं ज्योतिष्मतीमदितिमासचेते तथा यातयज्जनोऽर्यमा वरुणो यातयज्जनो मित्रश्च दानुनस्पती जामूवांसा सभासेनिश्री दिवेदिवे ज्योतिष्मत् क्षत्रमाशाते तयोः प्रभावेण सर्वाः प्रजाः सेनाश्चाऽत्यन्तं सुखं प्राप्नुविन्ता भा

भावार्थ:-अत्र वाच्किलुर्गिपमालङ्कार:। ये सूर्यप्राणवद्योगिवच्च सचेतना भूत्वा विद्याविनयधर्मै: सेना: प्रजाश्च रञ्जयुत्ति तेऽत्यन्तं यश: प्राप्नुवन्ति॥३॥

पदार्थ: जैसे (आदित्या) सूर्य और प्राण (दिवेदिवे) प्रतिदिन (स्वर्वतीम्) बहुत सुख करनेवाले (धारयिक्सितिम्) और भूमि को धारण करते हुए (ज्योतिष्मतीम्) प्रकाशवान् (अदितिम्) द्युलोक का (आसचेत्र) सब ओर से सम्बन्ध करते हैं, वैसे (यातयज्जन:) जिसके अच्छे प्रयत्न करानेवाले मनुष्य हैं, वह अर्थमा) न्यायाधीश (वरुण:) श्रेष्ठ प्राण तथा (यातयज्जन:) पुरुषार्थवान् पुरुष (मित्र:) सबका प्राण और (समृत:) दान की (पती) पालना करनेवाले (जागृवांसा) सब काम में जगे हुए सभा सेनाधीश

अष्टक-२। अध्याय-१। वर्ग-२६

मण्डल-१। अनुवाक-२०। सूक्त-१३६

१४९९

(दिवेदिवे) प्रतिदिन (ज्योतिष्मत्) बहुत न्याययुक्त (क्षत्रम्) राज्य को (आशाते) प्राप्त होते (तयोः) उनके प्रभाव से समस्त प्रजा और सेनाजन अत्यन्त सुख को प्राप्त होते हैं॥३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो सूर्य, प्राण और योगीजन के स्पार्ग सचेते होकर विद्या, विनय और धर्म से सेना और प्रजाजनों को प्रसन्न करते हैं, वे अत्यन्त यश पात हैं॥ आ

पुनरत्र मनुष्यै: कथं वर्त्तितव्यमित्याह॥

फिर इस संसार में मनुष्यों को कैसे वर्त्तना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र मे कहा है॥

अयं मित्राय वर्रुणाय शंत्रमः सोमी भूत्ववृपानेष्वाभेगो देवो देवेष्वाभेगः।
तं देवासी जुषेरत विश्वे अद्य सजोषंसः।

तथा राजाना करथो यदीमह ऋतावाना यदीमहे॥४॥

अयम्। मित्रायं। वर्मणाय। शम्ऽतमः। सोमः। भूतु। अवऽपानेषा आऽभगः। देवः। देवेषुं। आऽभंगः। तम्। देवासः। जुषेरतः। विश्वे। अद्या सुऽजोषसः। तथा। राजानाः। कुर्थः। यत्। ईमहे। ऋतेऽवानाः। यत्। ईमहे॥ ४॥

पदार्थ:-(अयम्) (मित्राय) सर्वसृहदे (वरुणाय) सर्वोत्कृष्टात्र (शंतमः) अतिशयेन सुखकारी (सोमः) सुखैश्वर्यकारको न्यायः (भूतु) भवतु। अत्र शर्पो लुक्, भसुवोस्तिङीति गुणप्रतिषेधः। (अवपानेषु) अत्यन्तेषु रक्षणेषु (आभगः) समस्तैश्वर्यः (देवः) सुखप्रदाता (देवेषु) दिव्येषु विद्वत्सु गुणेषु वा (आभगः) समस्तसौभाग्यः (तम्) (देवासः) विद्वांसः (जुषेरत) सेवेरन्प्रीणन्तु वा। अत्र बहुलं छन्दसीति रुडागमः। (विश्वे) सर्वे (अद्य) (सजोषसः) समानं धर्मं सेवमानाः (तथा) (राजाना) प्रकाशमानौ सभासेनेशौ (करथः) कुर्य्यातम् (यतः) सम्हिः। यस् (ईमहे) याचामहे (ऋतावाना) ऋतस्य सत्यस्य सम्बन्धिनौ। अत्रान्येषामिष दृश्यत इति दृष्टिः (यत्) यम् (ईमहे)॥४॥

अन्वय:-यथाऽयमवपानेषु प्रित्रीय वरेणायाभगः शंतमः सोमो भूतु तथा यो देवो देवेष्वाभगो भवतु तमद्य सजोषसो विश्वे देवासो जुषेरत यथा यद्यं राजापा करथस्तथा तं वयमीमहे यथा ऋतावाना यद्यं करथस्तथा तं वयमीमहे॥४॥

भावार्थ:-अत्रोपमानचेकलुप्तीपमालङ्कारौ। इह संसारे यथाऽऽप्ता धर्म्येण व्यवहारेणैश्वर्यमुत्रीय सर्वेषामुपकारके कर्मणि व्ययन्ति यथा सत्यं जिज्ञासवो धार्मिकान् विदुषो याचते तथा सर्वे मनुष्याः स्वमैश्वर्यं सत्कर्माष्ट्रा व्यययेयुः, विद्वद्भयो विद्याश्च याचेरन्॥४॥

पदार्थ: जैसे (अयम्) यह (अवपानेषु) अत्यन्त रक्षा आदि व्यवहारों में (मित्राय) सब के मित्र और (वरुणीय) सब से उत्तम के लिये (आभगः) समस्त ऐश्वर्य (शंतमः) अतीव सुख (सोमः) और सुखयुक्त ऐश्वर्य करनेवाला न्याय (भूतु) हो वैसे जो (देवः) सुख अच्छे प्रकार देनेवाला (देवेषु) दिव्य विद्वर्यों और दिव्य गुणों में (आभगः) समस्त साौभाग्य हो (तम्) उसको (अद्य) आज (सजोषसः) समान धर्म का सेवन करनेवाले (विश्वे) समस्त (देवासः) विद्वान् जन (जुषेरत) सेवन करें वा उससे

१५००

प्रीति करें और जैसे (यत्) जिस व्यवहार को (राजाना) प्रकाशमान सभा सेनापित (करथः) करें (तथा) वैसे उस व्यवहार को हम लोग (ईमहे) मांगते और जैसे (ऋतावाना) सत्य का सम्बन्ध करनेवाले (यत्) जिस काम को करें, वैसे उसको हम लोग भी (ईमहे) याचें मांगें॥४॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। इस संसार में जैसे शस्त्रिता विद्वान् धर्म के अनुकूल व्यवहार (से) ऐश्वर्य्य की उन्नति कर सब के उपकार कर्र्यहार कोम में खर्च करते वा जैसे सत्य व्यवहार को जानने की इच्छा करनेवाले धार्मिक विद्वानों को साचते अर्थात उनसे अपने प्रिय पदार्थ को मांगते, वैसे सब मनुष्य अपने ऐश्वर्य को अच्छे काम में खर्च करें और विद्वान् महाशयों से विद्वाओं की याचना करें॥४॥

पुनर्विद्वांसः कस्मै किं कुर्युरित्याह्॥

फिर विद्वान् किसके लिये क्या करें, इस विषय को अगले सन्त्र में कहा है।।

यो मित्राय वर्रुणायाविधुज्जनोऽनुर्वाणं तं परि पातो अहसी दाश्चांसं मर्तुमंहसः। तमर्युमाभि रक्षत्युजूयन्तुमनुं वृतम्।

उक्थेर्य एनो: परिभूषति वृतं स्तौमैराभूषति वृतम्।(५)।

यः। मित्रार्यं। वर्रुणायः। अविधत्। जनेः। अनुविषिम्। तमा परिं। पातः। अंहंसः। दाश्वांसंम्। मर्तम्। अंहंसः। तम्। अर्युमा। अभि। रृक्षति। ऋजुऽयन्तंम्। अनु। वृत्तम्। उक्थैः। यः। एनोः। परिऽभूषंति। वृत्तम्। स्तोमैः। आऽभूषंति। वृत्तम्।। ५॥

पदार्थ:- (यः) (मित्राय) सर्वोक्तिकाय (वरुणाय) सर्वोत्तमस्वभावाय (अविधत्) परिचरेत् (जनः) यशसा प्रादुर्भूतः (अनर्वाणम्) द्वेषाविद्योष्ट्रणहितम् (तम्) (पिर्) सर्वतः (पातः) रक्षतः (अंहसः) दुष्टाचारात् (दाश्चांसम्) विद्यादातारम् (मर्जम्) मनुष्यम् (अंहसः) पापात् (तम्) (अर्यमा) न्यायकारी (अभि) (रक्षति) (ऋजूयन्तम्) (आत्मनः ऋषुभाविमच्छन्तम् (अनु) (व्रतम्) सत्याचारशीलम् (उक्थैः) वक्तुमहेरिंरपदेशैः (यः) (एनोः) एनयोः (परिभूषित) सर्वतोऽलङ्करोति (व्रतम्) सुशीलम् (स्तोमैः) स्तोतुमहेंः (आभूषित) स्मन्त्रादाप्नोति (व्रतम्) सुशीलताम्॥५॥

अन्वय:-हे सभासेनशी जनो मित्राय वरुणाय युवाभ्यामविधत् तमनर्वाणं मर्त्तमंहसो युवां परिपातस्तं दाश्चांसं मर्त्तमंहसः परि पात्रः योऽर्यमा व्रतमृज्यन्तमभिरक्षति तं युवामनुरक्षथो य एनोरुक्थेर्व्रतं परिभूषित स्तोमैर्व्रतमाभूषित्र संस्विद्धांसः सततमारक्षन्तु॥५॥

भृतियर्थः भितद्वांसी ये धर्माऽधर्मी विविदिषयुर्धर्मस्य ग्रहणमधर्मस्य त्यागं च चिकीर्षेयुस्तानध्याप्योपदिश्य विद्याधर्मादिशुभगुणकर्मस्वभावैः सर्वत आभूषयेयुः॥५॥

पदार्थ:-हे सभासेनाधीशो! (य:) जो (जन:) यश से प्रसिद्ध हुआ (मित्राय) सर्वोपकार करने विकास करने और सबसे उत्तम स्वभाववाले मनुष्य के लिये तुम दोनों से (अविधत्) सेवा करे (तम्) उस

अष्टक-२। अध्याय-१। वर्ग-२६

मण्डल-१। अनुवाक-२०। सूक्त-१३६

(अनर्वाणम्) वैर आदि दोषों से रहित (मर्त्तम्) मनुष्य को (अंहसः) दुष्ट आचरण से तुम दीनों (पिरिपातः) सब ओर से बचाओ तथा (तम्) उस (दाश्चांसम्) विद्या देनेवाले मनुष्य को (अंहसः) पाप् से बचाओ (यः) जो (अर्यमा) न्याय करनेवाला सज्जन (वृतम्) सत्य आचरण करने और (ऋज्यन्तम्) अपने को कोमलपन चाहते हुए मनुष्य की (अभिरक्षिति) सब ओर से रक्षा करता उसकी तुम दीनों (अनु) पीछे रक्षा करो जो (एनोः) इन दोनों के (उक्थेः) कहने योग्य उपदेशों से (वृतम्) सुन्दर शील को (पिरिभूषिति) सब ओर से सुशोभित करता वा (स्तौमैः) प्रशंसा करने योग्य व्यवहारों से (वृतम्) सुन्दर शील को (आभूषित) अच्छे प्रकार शोभित करता, उसको सब विद्वान् निरन्तर प्रलिंगान्तर

भावार्थ:-विद्वान् जन जो लोग धर्म और अधर्म को जानना चाहें तथा धर्म का ग्रहण और अधर्म का त्याग करना चाहें, उनको पढ़ा और उपदेश कर विद्या और धर्म आदि भुभ गुण कर्म और स्वभाव से सब ओर से सुशोभित करें॥५॥

पुनर्मनुष्यै: किंवत्किं कुर्युरित्याहा।

फिर मनुष्यों को किसके समान क्या करना चाहिये, इस विषये को अगले मन्त्र में कहा है।।
नमी दिवे बृहते रोद्सीभ्यां मित्रायं वोचं वर्मणाय मोळहुषे सुमृळीकार्य मीळहुषे।
इन्द्रमिग्निमुप स्तुहि द्युक्षमर्यमणुं भर्गम्।

ज्योग्जीवन्तः प्रजयां सचेमहि सोमस्योती सचेमिहि॥६॥

नर्मः। द्विवे। बृह्ते। रोर्दसीभ्याम्। मित्राको वीच्म्। बर्रुणाय। मीळहुषे। सुऽमूळीकार्य। मीळहुषे। इन्द्रम्। अग्निम्। उपं। स्तुहु। द्युक्षम्। अर्यमणम्। भन्मा ज्याकः। जीवन्तः। प्रऽजयां। सचेमहि। सोर्मस्य। ऊती। सचेमहि॥६॥

पदार्थ:-(नम:) सत्करण्म् (दिसे) द्योतकाय (बृहते) महते (रोदसीभ्याम्) द्यावापृथिवीभ्याम् (मित्राय) सर्वसुहदे (वोचम्) उच्याम्। अन्नाडभावः। (वरुणाय) वराय (मीढुषे) शुभगुणसेचकाय (सुमृळीकाय) सुखकारकाय (मीढुषे) सुखप्रदाय (इन्द्रम्) परमैर्श्वयम् (अग्निम्) पावकवद्वर्त्तमानम् (उप) (स्तुहि) प्रशंस (द्युक्षम्) द्यातम् अर्थमणम्) न्यायाधीशम् (भगम्) धर्मं सेवमानम् (ज्योक्) निरन्तरम् (जीवन्तः) प्राणान् धरन्तः (प्रजय) सुसन्तानाद्यया सह (सचेमिह) समवयेम (सोमस्य) ऐश्वर्यस्य (ऊती) ऊत्या रक्षणाद्यया क्रियया साकम् (सचेमिह) व्याप्नुयाम॥६॥

अन्वर्यः हे विद्वत् ! यथाऽहं बृहते दिवे रोदसीभ्यां मित्राय वरुणाय मीढुषे सुमृळीकाय मीढुषे नमो वोचं तथा त्वं वदेथाः यथाऽहासिन्द्रमान्नं द्युक्षमर्य्यमणं भगं वोचं तथा त्वमुपस्तुहि। यथा जीवन्तो वयं प्रजया सह ज्योक् सचेमिह सोमस्योक्ष सह सचेमिह तथा त्वमिप सचस्व॥६॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्काराः। मनुष्यैर्विदुषामनुकरणं कृत्वा पदार्थविद्यायै प्रवर्त्य प्रविश्वर्यं प्राप्य सततं मोदितव्यम्॥६॥

पदार्थ:-हे विद्वान्! जैसे में (बृहते) बहुत (दिवे) प्रकाश करनेवाले के लिये वा (रोदसीभ्याम्) प्रकाश और पृथिवी से (मित्राय) सबके मित्र (वरुणाय) श्रेष्ठ (मीढुषे) शुभ गुणों से सींचने (सुमृळीकाय) सुख करने और (मीढुषे) अच्छे प्रकार सुख देनेवाले जन के लिये (नमः) स्कार विस्तर (वोचम्) कहूं वैसे आप कहो, वा जैसे मैं (इन्द्राय) परमैश्वर्यवाले (अग्निम्) अग्नि के समान वर्त्तमान (द्युक्षम्) प्रकाशयुक्त (अर्व्यमणम्) न्यायाधीश और (भगम्) धर्म सेवनेवाले को कहूं वैसे आप (उप, स्तुहि) उसके समीप प्रशंसा करो, वा जैसे (जीवन्तः) प्राण धारण किये जीवते हुए हम लोग (प्रजया) अच्छे सन्तान आदि सहित प्रजा के साथ (ज्योक्) निरन्तर (सचेमिह) सम्बद्ध हों और (सोमस्थ) ऐश्वर्य की (ऊतीः) रक्षा आदि किया के साथ (सचेमिह) सम्बद्ध हों, वैसे आप भी सम्बद्ध होंओ॥६॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में अनेक वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। मनुष्यों के विक्रानों के समान चाल-चलन कर पदार्थविद्या के लिये प्रवृत्त हो तथा प्रजा और ऐश्वर्य की पाकर निरन्तर आनन्दयुक्त होना चाहिये॥६॥

पुनर्विद्वांसोऽत्र जगित किंवद्वर्त्तेरित्रत्याहु॥

फिर विद्वान् जन इस संसार में किसके समान वर्तें, हिस विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

कुती देवानां वयमिन्द्रवन्तो मंसीमहि स्वयंशसो मुरुद्धिः।

अग्निर्मित्रो वर्मणुः शर्म यंसुन्तद्श्याम् मुघवानो व्वयं च।।७॥२६॥१॥

ऊती। देवानाम्। वयम्। इन्द्रंऽवन्तः। मुंस्रीमहि। स्वऽप्रेशसः। मुरुत्ऽभिः। अग्निः। मित्रः। वर्रुणः। शर्मी युंसुन्। तत्। अश्याम्। मुघुऽवानः। वयम्। चु॥ अ।

पदार्थ:-(ऊती) रक्षणाद्यया क्रियेग । अत्र सुपां सुलुगिति पूर्वसवर्णः (देवानाम्) सत्यं कामयमानानां विदुषाम् (वयम्) (इन्द्रवन्तः) बह्वश्वर्ययुक्ताः (मंसीमिहः) जानीयाम (स्वयशसः) स्वकीयं यशो येषान्ते (मरुद्धिः) प्राणैस्व वर्त्तमानैः श्रेष्ठैर्जनैः सह (अग्निः) विद्युदादिस्वरूपः (मित्रः) सूर्यः (वरुणः) चन्द्रः (शर्म्म) सुख्य (यंसन्) प्रयच्छन्ति। अत्र वाच्छन्दसीत्युसभावः। लुङ्यडभावश्च। (तत्) (अश्याम) भुञ्जीमिह (मध्यानः) पर्मुणूजितैश्वर्ययुक्ताः (वयम्) (च)॥७॥

अन्वयः-यथा मरुद्धिः सह्यानिर्मित्रो वरुणः शर्म यंसँस्तथा तदिन्द्रवन्तः स्वयशसो वयं देवानामूती मंसीमिह। अनेन च वयं मघवान्रो भद्रमश्याम्॥७॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। यथाऽत्र जगित पृथिव्यादय: पदार्था: सुखैश्वर्यकारका: सिन्त तथैव विदुषो शिक्षासंगा: सन्त्येतैर्वयं सुखैश्वर्या भूत्वा सततं मोदेमहीति॥७॥

्रभूत्र वास्विन्द्रादिपदार्थदृष्टान्तैर्मनुष्येभ्यो विद्याशिक्षावर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह संग्रिस्तीति वेद्यम्॥ अष्टक-२। अध्याय-१। वर्ग-२६

मण्डल-१। अनुवाक-२०। सूक्त-१३६

१५०३

अस्मिन्नध्याये क्रोधादिनिवारणाऽन्नादिरक्षणादयः परमैश्वर्यप्राप्त्यन्ताश्चार्था उक्ता अते एतदध्यायोक्तार्थानां पूर्वाऽध्यायोक्तार्थैः सह संगतिरस्तीति वेद्यम्॥

इत्युग्वेदे द्वितीयाऽष्टके प्रथमोऽध्याय: षड्विंशो २६ वर्ग: प्रथमे मण्डले षट्त्रिंशदुत्तरं शततमं १३६ स्कितं चे समाप्तम्॥

पदार्थ:-जैसे (मरुद्धि:) प्राणों के समान श्रेष्ठ जनों के साथ (अग्नि:) बिजुली आदि रूपवाला अग्नि (मित्र:) सूर्य (वरुण:) चन्द्रमा (शर्म) सुख को (यंसन्) देते हैं, वैसे (तत्) उस सुख को (इन्द्रवन्त:) बहुत ऐश्वर्ययुक्त (स्वयशस:) जिनके अपना यश विद्यमान वे (वयम्) हम लोग (देवानाम्) सत्य की कामना करनेवाले विद्वानों की (ऊती) रक्षा आदि क्रिया से (मंसीमहि) जीनें (च) और इससे (वयम्) हम लोग (मघवान:) परम ऐश्वर्ययुक्त हुए कल्याण को (अश्वराम्) भोपेंग्राजा

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे इस संसार में पृथिवी आदि पदार्थ सुख और ऐश्वर्य करनेवाले हैं, वैसे ही विद्वानों की सिखावट और उनके सङ्ग्र हैं। इनसे हम लोग सुख और ऐश्वर्यवाले होकर निरन्तर आनन्दयुक्त हों॥७॥

इस सूक्त में वायु और इन्द्र आदि पदार्थों के दृष्टान्तों से मनुष्यों के लिये विद्या और उत्तम शिक्षा का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ एकता है, यह जानना चाहिये॥

इस अध्याय में क्रोध आदि का निवास्प, अन्न अपदि की रक्षा और परम ऐश्वर्य की प्राप्ति पर्यन्त अर्थ कहे हैं, इससे इस अध्याय में कहे हुए अर्थों को पिछले अध्याय में कहे हुए अर्थों के साथ सङ्गित है, यह जानना चाहिये॥

यह ऋग्वेद में दूसरे अष्टक में प्रहला अध्याय और छब्बीसवां २६ वर्ग तथा प्रथम मण्डल में एक सौ छत्तीसवां १३६ सूक्त पूरा हुआ।।

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाधार्याणा परमिवदुषां विरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां शिष्येण दयानन्दसरस्वतीस्वामिना विरच्नि संस्कृतार्यभाषाभ्यां समन्विते सुप्रमाणयुक्त ऋग्वेदभाष्ये द्वितीयाष्टके प्रथमोऽध्यायः समाप्तः॥

॥ओ३म्॥

अथ द्वितीयाष्ट्रके द्वितीयाध्यायारम्भः॥

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि पर्रा सुव। यद्धद्रं तन्न आ सुव।। ऋ०५.८२.५॥ सुषुमेत्यस्य त्र्यचस्य सप्तत्रिंशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य परुच्छेप ऋषिः। मित्राद्धरूणौ देवते। निचृच्छक्वरी छन्दः। २ विराट् शक्वरी छन्दः। गास्वारः स्वरः। ३ भुरिगृतिशक्वरी छन्दः।

पञ्चमः स्वरः॥

अथ पनुष्याः किंवदत्र वर्त्तेरन्नित्याह॥

अब दूसरे अष्टक में द्वितीय अध्याय का आरम्भ और तीन ऋचाविले एक सी सेनीसवें सूक्त का आरम्भ है। उसके प्रथम मन्त्र में मनुष्य इस संसार में किसके समान करें, इस विषय को कहा

है॥

सुषुमा यातमद्रिभिगोंश्रीता मत्सरा इमे सोमासो मत्सरा इमें आ राजाना दिविस्पृशास्मुत्रा गन्तुमुप नः।

ड्रमे वां मित्रावरुणा गर्वाशिरः सोमाः शुक्रा मर्वाशिरः॥ १॥

सुषुम। आ। यातम्। अद्ग्रिंऽभिः। गोऽश्रीताः। मृत्स्रराः, इमे। सोमासः। मृत्स्रराः। इमे। आ। राजाना। दिविऽस्पृशा। अस्मऽत्रा। गुन्तम्। उपं। नःभ इमे। वात्। मित्रावरुणा। गोऽआशिरः। सोमाः। शुक्राः। गोऽआशिरः॥१॥

पदार्थ:-(सुषुम) निष्पादयेम। (आ) (सतम्) समन्तात् प्राप्नुतम् (अद्रिभिः) मेघैः अद्रिभिरिति मेघनामसु पठितम्। (निघं०१.१५) (ग्रेष्ट्रोताः) गाः किरणान् श्रीताः प्राप्ताः (मत्सराः) आनन्दप्रापकाः (इमे) (सोमासः) सोमाद्योष्ट्रियमूहाः (मत्स्रपः) आनन्दयुक्ताः (इमे) (आ) (राजाना) प्रकाशमानौ (दिविस्पृशा) यौ दिवि शुद्धे च्यवहारे स्पृशतस्तौ (अस्मत्रा) अस्मासु मध्ये (गन्तम्) प्राप्नुतम् (उप) (नः) अस्मान् (इमे) (वाप) युनाम् (मित्रावरुणा) प्राणोदानाविव वर्त्तमानौ (गवाशिरः) ये गोभिरिन्द्रियैर्वाऽश्यन्ते (सोमाः) ऐश्वर्ययुक्ताः पदार्थाः (शुक्राः) शुद्धाः (गवाशिरः) ये गोभिः किरणैरश्यन्ते॥ ।।

अन्तर्यः - रे मित्रोषरुणा! दिविस्पृशा राजाना य इमेऽद्रिभिर्गोश्रीता मत्सरा वयं सुषुम तान् वां युवामायातम्। य इमे मत्सग्रः सोमासः सन्ति तानस्मत्राऽऽयातं य इमे गवाशिर इव शुक्राः सोमा गवाशिर- स्तान्नोऽस्मांश्चोपागन्तम्॥१॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। अस्मिञ्जगति यथा पृथिव्यादयः पदार्था जीवनहेतवः स्रुत्ति, तथा मेथा अतीव प्राणप्रदास्सन्ति यथेमे वर्त्तन्ते तथैव मनुष्याः वर्त्तेरन्॥१॥ अष्टक-२। अध्याय-२। वर्ग-१

मण्डल-१। अनुवाक-२०। सूक्त-१३७

१५०५

पदार्थ:-हे (मित्रावरुणा) प्राण और उदान के समान वर्त्तमान (दिविस्पृशा) शुद्ध व्यवहार में स्पर्श करनेवाले (राजाना) प्रकाशमान सभासेनाधीशो! जो (इमे) ये (अद्रिभि:) मेघों से (ग्रेश्नीता:) किरणों को प्राप्त (मत्सरा:) आनन्दप्रापक हम लोग (सुषुम) किसी व्यवहार को सिद्ध करें, उसकी (वाम्) तुम दोनों (आयातम्) आओ अच्छे प्रकार प्राप्त होओ, जो (इमे) ये (मन्सरा:) आनन्द पहुंचानेहारी (सोमास:) सोमवल्ली आदि ओषधि हैं, उनको (अस्मत्रा) हम लोगों में अच्छी प्रकार पहुंचाओ, जो (इमे) ये (गवाशिर:) गौएँ वा इन्द्रियों से व्याप्त होते उनके समान (शुक्राः) शुद्ध (सोमा:) ऐश्वर्ययुक्त पदार्थ और (गवाशिर:) गौएं वा किरणों से व्याप्त होते उनको और (न:) हम लोगों के (उपागन्तम्) समीप पहुंचो॥१॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। इस जगत में जैसे पृथिमी आदि पदार्थ जीवन के हेतु हैं, वैसे मेघ अतीव जीवन देनेवाले हैं, जैसे ये सब वर्त्त रहे हैं, वैसे मनुष्य वर्त्ते॥१॥

अथौषध्यादिरसपानविषयमाह्न ।

अब ओषधि आदि पदार्थों के रस के पीने आदि के विषय को अगुर्ल मन्त्र में कहा है।।

इम आ यातमिन्देवः सोमासो दध्याशिरः सुन्सि द्ध्याशिरः।

उत वामुषसो बुधि साकं सूर्यस्य रुश्मिभा

सुतो मित्राय वर्रुणाय पीतये चार्र्म्यकृतियं पीत्ये।। र।।

डुमे। आ। यातम्। इन्दंवः। सोमांसः। दर्षिऽआशिरः। सुतासः। दर्षिऽआशिरः। उता वाम्। उषसंः। बुधि। साकम्। सूर्यस्य। रुश्मिऽभिः। सुतः। मित्रायं। क्रिणायः। प्रीतर्थे। चार्रः। ऋतायं। पीतर्थे॥२॥

पदार्थ:-(इमे) (आ) (यातम्) (इन्हेंबः) आर्द्रीभूताः (सोमासः) दिव्यौषधिरसाः (दध्याशिरः) ये दध्ना अश्यन्ते ते (सुतासः) संगिदिताः (दध्याशिरः) (उत) अपि (वाम्) युवाभ्याम् (उषसः) (बुधि) बोधे। अत्र संपदादिलक्षणः किवप्। (स्तकम्) सह (सूर्व्यस्य) (रिश्मिभः) किरणैः (सुतः) अभिनिष्पादितः (मित्राय) सुद्धेद (वरुणाय) धूर्यय (पीतये) पानाय (चारुः) सुन्दरः (ऋताय) सत्याचाराय (पीतये) पानाय॥२॥

अन्वय:-हेऽध्यापकाऽध्यित्तर्गे! यश्चारुर्मित्राय पीतये वरुणायर्ताय पीतये चोषसो बुधि सूर्यस्य रिश्मिभि: साकं सोमस्सुतस्तं युवामाद्वीतम्। वां स्नुइम इन्दव: सोमासो दध्याशिर इव दध्याशिरस्सुतास: सन्ति तानुताप्यायातम्॥२॥

भावार्थः: अप्रे वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। मनुष्यैरस्मिन् संसारे यावन्तो रसा ओषधयश्च निर्मातव्यास्तिबन्तः सर्वे सौहार्दोत्तमकर्मसेवनायालस्यादिनाशाय च समर्पणीयाः॥२॥

पदार्थ: -हे पढ़ाने वा पढ़नेवाले! जो (चारुः) सुन्दर (मित्राय) मित्र के लिये (पीतये) पीने को और (वरुण्ण्य) उत्तम जन के लिये (ऋताय) सत्याचरण और (पीतये) पीने को (उषसः) प्रभात वेला के (बुधि) प्रबोध में सूर्यमण्डल की (रिश्मिभिः) किरणों के (साकम्) साथ ओषिधयों का रस (सुतः) सब

ओर से सिद्ध किया गया है, उसको तुम (आयातम्) प्राप्त होओ तथा (वाम्) तुम्हारे लिये (इमे) ये (इन्दवः) गीले वा टपकते हुए (सोमासः) दिव्य ओषिधयों के रस और (दध्याशिरः) जो पदार्थ दही के साथ भोजन किये जाते उनके समान (दध्याशिरः) दही से मिले हुए भोजन (सुतासः) सिद्ध किये पये हैं (उत) उन्हें भी प्राप्त होओ॥२॥

भावार्थ:-मनुष्यों को चाहिये कि इस संसार में जितने रस वा ओषधियों की सिद्ध करें, उन सबको मित्रपन और उत्तम कर्म सेवने को तथा आलस्यादि दोषों के नाश करने को समर्पण करें॥ ॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

तां वां धेनुं न वांसरीम्ंशुं दुंहन्त्यद्रिभिः सोमं दुहन्त्यद्रिभिः अस्मुत्रा गन्तुमुपं नोऽर्वाञ्चा सोमंपीतये।

अयं वां मित्रावरुणा नृभिः सुतः सोम् आ पीत्रवे सुतः॥ ३। १॥

ताम्। वाम्। धेनुम्। न। वास्रीम्। अंशुम्। दुहृन्ति। अदिऽभिः। सूर्मम्। दुहृन्ति। अद्गिऽभिः। अस्मुऽत्रा। गृन्तम्। उपं। नः। अर्वाञ्चां। सोर्मंऽपीतये। अयम्। वाम्। मित्रोवसणा। नृऽभिः। सुतः। सोर्मः। आ। पीतये। सुतः॥३॥

पदार्थ:-(ताम्) (वाम्) युवयोः (धेनुम्) (त) इब्र (वासरीम्) निवासियत्रीम् (अंशुम्) विभक्तां सोमवल्लीम् (दुहन्ति) प्रपिपुरित (अद्गिभिः) मेघेः (सोमम्) ऐश्वर्यम् (दुहन्ति) प्रपूरयन्ति (अद्गिभः) प्रस्तरैः (अस्मत्रा) अस्मासु (गन्तम्) (गम्यतम् (उप) (नः) अस्माकम् (अर्वाञ्चा) अर्वागञ्चतौ (सोमपीतये) सोमा ओषधिरसाः प्रीयन्ते अस्मिस्तस्मै (अयम्) (वाम्) युवाभ्याम् (मित्रावरुणा) प्राणोदानाविव (नृभिः) नायकैः सह्र(सृतः) संपादितः (सोमः) सोमलतादिरसः (आ) समन्तात् (पीतये) पानाय (सुतः) निष्पादितः॥३॥

अन्वय:-हे मित्रावरुणा श्रेड्यां सन्तौ युवां वां यां वासरीं धेनुनेवाऽद्रिभिरंशुं दुहन्त्यद्रिभिः सोमपीतये सोमं दुहन्ति वामस्मत्रोपागन्तं योऽश्री नृभिः सोम्र सुतः स वामापीतये सुतोऽस्ति॥३॥

भावार्थः-अत्रोपमातिङ्कर्णः। यथा दुग्धदा गावः सुखान्यलङ्कुर्वन्ति तथा युक्त्या निर्मितः सोमलतादिरसः स्र्वीन् रोगान् निहन्ति॥३॥

अत्र सीमगुणेबर्णनादेतत्सूक्तार्थस्य पूर्वसूक्तोक्तार्थेन सह संगतिरस्तीति वेद्यम्॥

इति सप्तत्रिंशदुत्तरं शततमं १३७ सूक्तं प्रथमो १ वर्गश्च समाप्त:॥

पदार्थ:-हे (मित्रावरुणा) प्राण और उदान के समान सर्विमित्र और सर्वोत्तम सज्जनो! (न:) हमारे (अविश्वा) अभिमुख होते हुए तुम (वाम्) तुम्हारी जिस (वासरीम्) निवास करानेवाली (धेनुम्) के (म) समान (अद्रिभि:) पत्थरों से (अंशुम्) बढ़ी हुई सोमवल्ली को (दुहन्ति) दुहते जलादि से

अष्टक-२। अध्याय-२। वर्ग-१

मण्डल-१। अनुवाक-२०। सूक्त-१३७

पूर्ण करते वा (अद्रिभि:) मेघों से (सोमपीतये) उत्तम ओषिध रस जिसमें पीये जाते उसके लिये (सोमम्) ऐश्वर्य को (दुहन्ति) परिपूर्ण करते (वाम्) उसको (अस्मत्रा) हमारे (उपागन्तम्) समीप पहुंचाओं, जो (अयम्) यह (नृभि:) मनुष्यों ने (सोम:) सोमवल्ली आदि लताओं का रस (सत्रा) सिद्ध

किया है, वह (वाम्) तुम्हारे लिये (आपीतये) अच्छे प्रकार पीने को (सुत:) सिद्ध किया मेर्सा है। ३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे दूध देनेवाली गौयें सुखों को पूरा करती हैं, वैसे युक्ति से सिद्ध किया हुआ सोमवल्ली आदि का रस सब रोगों का नाश करता है।। इस

इस सूक्त में सोमलता के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये॥

यह एक सौ सैंतीसवां १३७ सूक्त और पहिला १ वर्ज़ पूरा हुओ।

प्रप्रेत्यस्य चतुर्ऋचस्याष्टात्रिंशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य परुच्छेप ऋषिः। पूषा देवता। १, ३ निचृदत्यष्टिः। २ विराडत्यष्टिश्छन्दः। गान्धारः स्वरः। ४ भुरिगष्टिश्छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

अथ पृष्टिकर्त्तुः प्रशंसामाह॥

अब चार ऋचावाले एक सौ अड़तीसवें सूक्त का आरम्भ है। उसके प्रथम मन्त्र में पुष्टि करनेहारे की प्रशंसा विषय को कहा है।।

प्रप्रं पूष्णस्तुंविजातस्यं शस्यते महित्वर्मस्य त्वसो न तन्दते स्तोत्रर्मस्य तन्दते। अर्चामि सुम्नयन्नहमन्त्यूतिं मयोभुवम्।

विश्वस्य यो मर्न आयुयुवे मुखो देव आयुयुवे मुख:॥ १॥

प्रऽप्री। पूष्णः। तुविऽजातस्यी। श्रस्यते। महिऽत्वम्। अस्य। तवसः निर्वत्वे। स्त्रीत्रम्। अस्य। न। तन्द्ते। अर्चीम। सुम्नुऽयन्। अहम्। अन्तिऽकितम्। म्यःऽभुवेम्। विश्वस्यः। सः। मर्चः। आऽयुयुवे। मुखः। देवः। आऽयुयुवे। मुखः॥ १॥

पदार्थ:-(प्रप्र) अतिप्रकृष्टे (पूष्ण:) प्रजापोषकस्य (जुविजातस्य) बहुषु प्रसिद्धस्य (शस्यते) (महित्वम्) महिमा (अस्य) (तवस:) बलस्य (न) निष्धे (तन्त्रते) हिनस्ति (स्तोत्रम्) (अस्य) (न) (तन्द्रते) (अर्चामि) (सुम्नयन्) सुखमिच्छन् (अहम्) (अन्द्युतिम्) अन्ति निकट ऊती रक्षणाद्या क्रिया यस्य तम् (मयोभुवम्) सुखं भावुकम् (विश्वस्य) संसारस्य (यः) (मनः) अन्तःकरणम् (आयुयुवे) समन्ताद् बध्नाति (मखः) प्राप्तविद्यः (देवः) विद्वाम् (आयुयुवे) (मखः) यज्ञ इव वर्त्तमानः॥१॥

अन्वय:-यस्याऽस्य तुविजातस्य पूष्णो महित्वं प्रप्र, श्रस्यते यस्याऽस्य तवसः स्तोत्रं न तन्दते विद्यां च न तन्दते यो मखो देवो विश्वस्य मन आयुयुवे यश्च मख्नाः सुखमायुयुक्ते तमन्त्यूतिं मयोभुवं पूष्णं सुम्नयन्नहमर्चामि॥१॥

भावार्थ:-ये शुभानि कर्माण्याचरित तेऽतिप्रशंसिता भवन्ति, ये सुशीलताविनयाभ्यां सर्वेषां चित्तं धर्म्येषु बध्नन्ति त एव सर्वेः सत्कृतिव्याः॥१४

पदार्थ:-जिस (अस्य) इस (तुविजातस्य) बहुतों में प्रसिद्ध (पूष्णः) प्रजा की रक्षा करनेवाले राजपुरुष का (महित्वम्) बहुपन् (प्रप्र, शस्यते) अतीव प्रशंसित किया जाता वा जिस (अस्य) इसके (तवसः) बल की (स्तोत्रम्) स्तुति (न) (तन्दते) प्रशंसक जन न नष्ट करते अर्थात् न छोड़ते और विद्या को (न) (तन्दते) त नष्ट करते हैं वा (यः) जो (मखः) विद्या पाये हुए (देवः) विद्वान् (विश्वस्य) संसार के (मनः) अन्तिःकरण् को (आयुयुवे) सब ओर से बांधता अर्थात् अपनी ओर खींचता वा जो (मखः) यज्ञ के सम्माप् वर्तामान सुख का (आयुयुवे) प्रबन्ध बांधता है, उस (अन्त्यूतिम्) अपने निकट रक्षा आदि क्रिया स्थिने और (मयोभुवम्) सुख की भावना करानेवाले प्रजापोषक का (सुम्नयन्) सुख चाहता हुआ (अहम्) में अर्चामि) सत्कार करता हूँ॥१॥

अष्टक-२। अध्याय-२। वर्ग-२

मण्डल-१। अनुवाक-२०। सूक्त-१३८

भावार्थ:-जो शुभ अच्छे कर्मों का आचरण करते हैं, वे अत्यन्त प्रशंसित होते हैं। जो सुशीलती और नम्रता से सबके चित्त को धर्मयुक्त व्यवहारों में बाँधते हैं, वे ही सबको सत्कार करने योग्य हैं॥१॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

प्र हि त्वां पूषन्नजिरं न यामेनि स्तोमेभिः कृण्व ऋणवो यथा मृध् उष्ट्री पाँपरो मृधः। हुवे यत्त्वां मयोभुवं देवं सख्याय मर्त्यः।

अस्मार्कमाङ्गूषान्द्युम्निस्कृधि वाजेषु द्युम्निनस्कृधि॥२॥

प्रा हि। त्वा। पूष्पन्। अजिरम्। न। यामेनि। स्तोमेभिः। कृण्वे। ऋणेनः। यथा पृष्टः। उष्ट्रः। न। पीप्परः। पृष्टः। हुवे। यत्। त्वा। मयःऽभुवेम्। देवम्। सख्याये। मर्त्यः। अस्माक्रम्। आङ्गूष्यम्। द्युम्निनः। कृष्टि। वाजेषु। द्युम्निनः। कृष्टि॥२॥

पदार्थ:-(प्र) प्रकर्षे (हि) (त्वा) त्वाम् (पूषन्) पृष्टिकर्तेः (अजिरम्) ज्ञानवन्तम् (न) इव (यामनि) यातिर (स्तोमेभिः) स्तुतिभिः (कृण्वे) करोमि (ऋण्वः) प्राप्नुयाः (यथा) (मृधः) संग्रामान् (उष्ट्रः) (न) इव (पीपरः) पारये। अत्र लुङ बहुल छन्दसीत्यङभावः। (मृधः) संग्रामान् (हुवे) स्पर्द्धे (यत्) यतः (त्वा) त्वाम् (मयोभुवम्) सुखकारकम् (देवम्) कान्तारम् (सख्याय) सखित्वाय (मर्त्यः) मनुष्यः (अस्माकम्) (आङ्गूषान्) प्राप्तविद्याम् (द्युम्निनः) यशस्विनः (कृष्टि) कुरु (वाजेषु) संग्रामेषु (द्युम्ननः) प्रशस्तकीर्त्तिमतः (कृष्टि)॥२॥

अन्वय:-हे पूषन्! यथा त्वं मृध् ऋणवं उष्ट्रीच्य मृधः पीपरस्तथा स्तोमेभिर्यामन्यजिरं न त्वा प्रकृण्वे त्वामहं हुवे यत् सख्याय मयोभुवं दैवं त्वा मर्त्योऽहं हुवे तत्ते स्माकमाङ्गूषान् वीरान् द्युम्निनः कृधि। वाजेषु द्युम्निनो हि कृधि॥२॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कारि:। ये मनुष्पा धीमतो विद्यार्थिनो विद्यावतः कुर्युः शत्रून् विजयेरन् ते कीर्त्या माननीयाः स्युः॥२॥

पदार्थ:-हे (पूष्स) हुए कर्मिवाले! (यथा) जैसे आप (मृध:) संग्रामों को (ऋणवः) प्राप्त करो अर्थात् हम लोगों को पहुंचाओं हा (उष्ट्रः) उष्ट्र के (न) समान (मृधः) संग्रामों को (पीपरः) पार कराओ अर्थात् उनसे उद्धार करो लेमे (स्तोमेभिः) स्तुतियों से (यामिन) पहुंचानेवाले व्यवहार में (अजिरम्) ज्ञानवान् अर्थात् अति प्रवीण के (न) समान (त्वा) आपको (प्र, कृण्वे) प्रशंसित करता हूँ और आपको में (हुवे) हुठ से बुलाता हूँ, (यत्) जिस कारण (सख्याय) मित्रपन के लिये (मयोभुवम्) सुख करनेवाले (देवम्) मतोहर (त्वा) आपको (मर्त्यः) मरणधर्म मनुष्य मैं हठ से बुलाता हूँ, इस कारण (अस्माकम्) हमार्थ (आङ्गूषान्) विद्या पाये हुए वीरों को (द्युम्निनः) यशस्वी (कृधि) करो और (वाजेषु) संग्रामों में (द्युम्निनः) प्रशंसित कीर्तिवाले (हि) ही (कृधि) करो॥२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो मनुष्य बुद्धिमान् विद्यार्थियों को विद्यावान् केरे शत्रुओं को जीतें, वे अच्छी कीर्त्ति के साथ माननीय हों॥२॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यस्यं ते पूषन्त्मुख्ये विपन्यवः क्रत्वां चित्सन्तोऽवंसा बुभुज्रिर इति क्रत्वा बुभुज्रिर। तामनुं त्वा नवीयसीं नियुतं राय ईमहे।

अहेळमान उरुशंसु सरी भव वाजेवाजे सरी भव॥३॥

यस्य। ते। पूष्प्न। सुख्ये। विपुन्यवे:। क्रत्वो।। चित्। सन्ते:। अवसा। जुभुविसे इति। क्रत्वो। जुभुविरे। ताम्। अनुं। त्वा। नवीयसीम्। निऽयुतम्। रायः। ईमहे। अहेळमानः। उस्प्रभूस्। सरी। भुव। वार्जेऽवाजे। सरी। भुव॥३॥

पदार्थ:-(यस्य) (ते) तव (पूषन्) पृष्टिकारक (ग्रेंग्वें) (न्निपन्यवः) विशेषेणात्मनः पनं स्तवनिमच्छवः। विपन्यव इति मेधाविनामसु पठितम्। (नियं ३.१५) (क्रत्वा) प्रज्ञया (चित्) (सन्तः) (अवसा) रक्षणाद्येन (बुभुजिरे) (इति) अनेन प्रकारेण (क्रत्वा) (बुभुजिरे) भुञ्जते (ताम्) (अनु) (त्वा) त्वाम् (नवीयसीम्) अतिशयेन नूतनाम् (नियुतम्) असंख्यातम् (रायः) राज्यश्रियः (ईमहे) याचामहे (अहेळमानः) अनादृतः सन् (उरुशंस) उरु बहु शिंसः प्रशंस्य यस्य तत्संबुद्धौ (सरी) सरित जानाति यः स प्रशस्तो विद्यते यस्य सः (भव) (वाजेवाजे) संग्रामे संग्राम (सरी) (भव)॥३॥

अन्वय:-हे पूषन् विद्वन्! यस्य ते तह साब्य ऋजुक्त वसा सह विपन्यवो नियुतं रायो बुभुज्ञिरे इति चित्सन्तः क्रत्वा यां नियुतं रायो बुभुज्ञिरे तां नवीयसीं वियुतं रायोऽज्ञीत्वा वयमीमहे। हे उरुशंस! अस्माभि- रहेडमानस्त्वं वाजेवाजे सरी भव धर्म्ये व्यवहारे च सरी भव॥३॥

भावार्थ:-ये धीमतां स्प्रामित्रत्वाभ्यों नूतनां नूतनां विद्यां प्राप्नुवन्ति ते प्राज्ञा भूत्वा विजयिनो भवन्ति॥३॥

पदार्थ:-हे (पूर्ण) पृष्टि करनेवाले विद्वान्! (यस्य) जिस (ते) आपकी (सख्ये) मित्रता में (क्रत्वा) उत्तम बुद्धि से (अवसा) रक्षा आदि के साथ (विपन्यवः) विशेषता से अपनी प्रशंसा चाहनेवाले जन (नियुतम्) असंख्यात (स्यः) राज्यलिक्ष्मयों को (बुभुज्रिरे) भोगते हैं (इति) इस प्रकार (चित्) ही (सन्तः) होते हुए (क्रांचा) उत्तम बुद्धि से जिस असंख्यात राज्यश्री को (बुभुज्रिरे) भोगते हैं (ताम्) उस (नवीयसीम्) अतीच नवीन उक्त श्री को और (अनु) अनुकूलता से (त्वा) आपको हम लोग (ईमहे) मांगते हैं हे (उक्शंस) बहुत प्रशंसायुक्त विद्वान्! हम लोगों से (अहेडमानः) अनादर को न प्राप्त होते हुए आप (ब्राजेवाजे) प्रत्येक संग्राम में (सरी) प्रशंसित ज्ञाता जन जिसके विद्यमान ऐसे (भव) हूजिये और धम्पुक्त व्यवहार में भी (सरी) उक्त गुणी (भव) हूजिये॥३॥

अष्टक-२। अध्याय-२। वर्ग-२

मण्डल-१। अनुवाक-२०। सूक्त-१३८

१५११

भावार्थ:-जो बुद्धिमानों के सङ्ग और मित्रपन से नवीन-नवीन विद्या को प्राप्त होते हैं, वे प्राज्ञे उत्तम ज्ञानवान् होकर विजयी होते हैं॥३॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अस्या ऊ षू ण उप सातये भुवोऽहेळमानो रिखाँ अजाश्व श्रवस्यताम्जाश्चा ओ षु त्वा ववृतीमिंह स्तोमेभिर्दस्म साधुभिः।

नुहि त्वा पूषन्नतिमन्य आघृणे न ते सुख्यमपहुवे॥४॥२॥

अस्याः। ऊम् इति। सु। नः। उप। सातये। भुवः। अहेळमानः। र्ह्यत्विन्। अज्ञाऽअश्च। श्रवस्यताम्। अज्ञऽअश्च। ओ इति। सु। त्वा। वृवृतीमृद्धि। स्तोमेभिः। दुस्म। साधुऽभिः। निह्य त्वा। पूष्ट्यः अतिऽमन्ये। आघृणे। न। ते। सुख्यम्। अपुऽह्ववे॥४॥

पदार्थ:-(अस्या:) प्रज्ञायाः (3) वितर्के (सु) अत्र निपृतिस्य चेति दीर्घः। (नः) अस्मभ्यम् (उप) (सातये) विभागाय (भुवः) भव। अत्र लुङि विकरणव्यत्त्रयेन सः प्रत्ययोऽडभावश्च (अहेळमानः) सत्कृतः सन् (रिवान्) दाता (अजाश्च) अजा अश्वाश्च विद्यानी यस्य तत्सम्बुद्धौ (श्रवस्यताम्) आत्मनः श्रवो धनमिच्छताम् (अजाश्च) (ओ) सम्बोधने (सु) (त्वा) त्वाम् (ववृतीमिह) भृशं वर्तेमिह (स्तोमेभिः) स्तुतिभिः (दस्म) दुःखोपक्षयितः (साधुभिः) सर्जनैः सह (निह) (त्वा) त्वाम् (पूषन्) (अतिमन्ये) अतिमानं कुर्याम् (आघृणे) समन्ताद् देदीप्यमान् (न) (ते) तव (सख्यम्) मित्रस्य भावं कर्म वा (अपहृवे) आच्छादयेयम्॥४॥

अन्वय:-हे पूषत्रजाश्व! श्रवस्यतामज्ञिव त्वं नेअस्याः प्रज्ञायाः सातये रिरवानहेडमानः सूपभुवः। हे आघृणे पूषत्रहं ते तव सख्यं नापहुवे त्वा नह्यतिमन्द्रे आ दस्म स्त्रोमिभिः साधुभिः सह वर्त्तमाना वयमु त्वा त्वां सुववृतीमिह॥४॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुम्सीपमालङ्कारः। धार्मिकैर्विद्वद्भिः सह प्रसिद्धं मित्रभावं वर्त्तित्वा बहुविधाः प्रज्ञाः सर्वेर्मनुष्यैः प्राप्तिस्याः। न कस्यच्छिष्टस्य तिरस्कारः कर्त्तव्यः॥४॥

अत्र पुष्टिकर्त्तॄणां धार्मिकाणां च प्रशंसावर्णनादेतत्सूक्तार्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह संगतिरस्तीति बोध्यम्॥

इत्यष्टिश्रिणदुर्मारं शततमं १३८ सूक्तं द्वितीयो २ वर्गश्च समाप्त:॥

पदार्थ:- हे (पूषन्) पृष्टि करनेवाले! (अजाश्व) जिनके छेरी (बकरी) और घोड़े विद्यमान हैं, ऐसे (श्रवस्थताम्) अपने को धन चाहनेवालों में (अजाश्व) जिनका छेरी घोड़ों के तुल्य उनके समान हे विद्वन्! आप (नार हमारे लिये (अस्थाः) इस उत्तम बुद्धि के (सातये) बांटने को (रिरवान्) देनेवाले और (अहेडमानः) सत्कारयुक्त (सूप, भुवः) उत्तमता से समीप में हूजिये। हे (आघृणे) सब ओर से प्रकाशमान पृष्टि करनेवाले पुरुष! मैं (ते) आपके (सख्यम्) मित्रपन और मित्रता के काम को (न) न (अपहुते) छिपाऊं (त्वा) आपका (निह, अतिमन्ये) अत्यन्त मान्य न करूं, किन्तु यथायोग्य आपको मानू (इ) और (ओ) हे (दस्म) दुःख मिटानेवाले (स्तोमेभिः) स्तुतियों से युक्त (साधुभिः) सज्जनों के

साथ वर्त्तमान हम लोग (त्वा) आपको (सु, ववृतीमिह) अच्छे प्रकार निरन्तर वर्ते अर्थात् आपके अनुकूल रहें॥४॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। धार्मिक विद्वानों के साथ प्रसिद्ध वित्रभाव को वर्त्त कर सब मनुष्यों को चाहिये कि बहुत प्रकार की उत्तम-उत्तम बुद्धियों को प्राप्त होवे और क्रिमी किसी शिष्ट पुरुष का तिरस्कार न करें॥४॥

इस सूक्त में पुष्टि करनेवाले विद्वान् वा धार्मिक सामान्य जन की प्रशंसा के वर्णन से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है, यह जानना चाहिये॥

यह एक सौ अड़तीसवाँ १३८ सूक्त और दूसरा २ वर्ग पूरा हुआ।

अस्त्वत्यस्यैकादशर्चस्यैकोनचत्वारिशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य परुच्छेप ऋषिः। विश्वे देवा देवताः (विभागश्च) १ विश्वेदेवाः। २ मित्रावरुणौ। ३-५ अश्विनौ। ६ इन्द्रः। ७ अग्निः। ८ मरुतः। ९ इन्द्राग्नी। १० बृहस्पितः। ११ विश्वेदेवाः। १, १० निचृदष्टिः। २, ३ विराडष्टिः। अष्टिश्छन्दः। गान्धारः स्वरः। ८ स्वराडत्यष्टिः। ४,९ भुरिगत्यष्टिः। ७ अत्यष्टिश्छन्दः। स्वरः। स्वरः। ५ निचृद्बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः। ११ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमृर् स्वरः॥ अथ पृरुषार्थप्रशंसामाह॥

0

अब एक सौ उनतालीसवें सूक्त का प्रारम्भ है। उसके प्रथम मन्त्र में पुरुष्<mark>रथ की प्रश</mark>ंसा का वर्णन करते हैं।।

अस्तु श्रौषट् पुरो अग्निं धिया देध आ नु तच्छधीं दिव्यं वीर्णीमह इन्स्वायू वीर्णीमहे। यद्धे क्राणा विवस्वति नाभां संदायि नव्यसी।

अधु प्र सू नु उप यन्तु धीतयो देवाँ अच्छा न धीतकः॥ शा

अस्तुं। श्रीषेट्। पुरः। अग्निम्। ध्रिया। दुधे। आ। नुः तत्। शर्धः दिव्यम्। वृणीमहे। इन्द्रवायू इति। वृणीमहे। यत्। हु। क्राणा। विवस्विति। नाभा। सम्ऽदायि। नव्यसी। अधे। प्रे। सु। नुः। उप। यन्तु। धीतर्यः। देवान्। अच्छे। न। धीतर्यः॥ १॥

पदार्थ:-(अस्तु) (श्रौषट्) हिवर्दात्रीम् (पृनः) पूर्णम् (अग्निम्) विद्युतम् (धिया) कर्मणा (दधे) दधीय (आ) (नु) (तत्) (श्रार्द्धः) बलम् (दिव्यम्) दिक्षि शुद्धे भवम् (वृणीमहे) संभरेमिह (इन्द्रवायू) विद्युत्प्राणौ (वृणीमहे) (यत्) यौ (ह) किल् (क्राणा) कुर्वाणौ (विवस्वित) सूर्ये (नाभा) मध्यभागाऽऽकर्षणे (संदायि) सम्प्रदीयते (नव्यस्त्री) अतीव नृतना प्रज्ञा कर्म वा (अध) आनन्तर्य्ये (प्र) (सु) अत्रान्येषामपीति दीर्घः। (नः) अस्मान् (उप) (यन्तु) प्राप्नुवन्तु (धीतयः) (देवान्) विदुषः (अच्छ) अत्राऽन्येषामपीति दीर्घः। (न) (धीतयः) अद्भालयः॥१॥

अन्वय:-हे मनुष्या! धित्तरो नेव धीतयो भवन्तो धिया नो देवानच्छोप यन्तु याभ्यां विवस्वित नाभा नव्यसी संदायि तौ क्राणा इन्द्रवायू ह वयं स्वृणीमहे यदहं श्रौषट् पुरोऽग्निं दिव्यं शर्ध आदधे यद्वयं प्रवृणीमहेऽध तत्सर्वेषां न्वस्तु॥१॥

भावार्थः अत्रोपमालङ्कारः। हे मनुष्या! यथाऽङ्गुलयः। सर्वेषु कर्मसूपयुक्ता भवन्ति, तथा यूयमपि पुरुषार्श्वे भवतः, यतो युष्मासु बलं वर्धेत॥१॥

पदार्थ: मनुष्यो! (धीतय:) अङ्गुलियों के (न) समान (धीतय:) धारणा करनेवाले आप (धिया) कर्म से (न:) हम (देवान्) विद्वान् जनों को (अच्छ) अच्छे प्रकार (उप, यन्तु) समीप में प्राप्त होओं, जिन्होंने (विवस्वित) सूर्यमण्डल में (नाभा) मध्यभाग की आकर्षण विद्या अर्थात् सूर्यमण्डल के प्रकाश में बहुत से प्रकाश को यन्त्रकलाओं से खींच के एकत्र उसकी उष्णता करने में (नव्यसी) अतीव

१५१४

नवीन उत्तम बुद्धि वा कर्म (संदायि) सम्यक् दिया उन (क्राणा) कर्म करने के हेतु (इन्द्रवायू) बिर्जुली और प्राण (ह) ही को हम लोग (सु, वृणीमहे) सुन्दर प्रकार से धारण करें। मैं जिस (श्रोषट्) हिवष् पदार्थ को देनेवाली विद्या बुद्धि (पुर:) पूर्ण (अग्निम्) विद्युत् और (दिव्यम्) शुद्ध प्राणि में हुए (शर्थः) बल को (आ, दधे) अच्छे प्रकार धारण करूं (यत्) जिन प्राण विद्युत् जन्य सुख को कम लोग (प्र, वृणीमहे) अच्छे प्रकार स्वीकार करें, (अध) इसके अनन्तर (तत्) वह सुख सबक्रे (नु, अस्तु) शीघ्र प्राप्त हो॥१॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! जैसे अङ्गुली सब कर्मों मे उपयुक्त होती है, वैसे तुम लोग भी पुरुषार्थ में युक्त होओ, जिससे तुम में बल बढ़े॥१॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।

यद्ध त्यन्मित्रावरुणावृतादध्याद्ददाथे अर्नृतं स्वेन मन्युना दक्षस्य स्वेन मन्युना युवोरित्थाधि सद्मस्वपंश्याम हिर्ण्ययम्।

धोभिश्चन मनसा स्वेभिरक्षभिः सोमस्य स्वेभिरक्ष्मभिः। रे॥

यत्। हु। त्यत्। मित्राव्रुणौ। ऋतात्। अधि। आदृहाश्चे इत्योऽदुद्धि। अर्नृतम्। स्वेनी मृन्युनी। दक्षीस्य। स्वेनी मृन्युनी। युवो:। इत्था। अधि। सर्बाऽसु। अपेश्याम। हिल्क्यिमः। धीभि:। चन। मनसा। स्वेभि:। अक्षऽभि:। सोमेस्य। स्वेभि:। अक्षऽभि:॥२॥

पदार्थ:-(यत्) (ह) (त्यत्) अद्वः (मिश्रव्यक्णी) प्राणोदानवद्वर्त्तमानौ (ऋतात्) सत्याद् धर्म्याद् व्यवहारात् (अधि) (आददाथे) (अनृत्र्ण्) मिथ्याव्यवहारम् (स्वेन) स्वकीयेन (मन्युना) (दक्षस्य) बलस्य (स्वेन) स्वात्मभावेन (मन्युना) क्रोधेन (युवोः) युवयोः (इत्था) अनेन प्रकारेण (अधि) (सद्मसु) गृहेषु (अपश्याम) संप्रेक्षेमिह (हिरण्याम्) हिरण्याम्) हिरण्याम् (धीभिः) कर्मिभः (चन) अपि (मनसा) प्रज्ञया (स्वेभिः) स्वकीयैः (अक्षभिः) इन्द्रियैः (सामस्य) ऐश्वर्यस्य (स्वेभिः) स्वकीयैः प्रज्ञानैः (अक्षभिः) प्राणैः॥२॥

अन्वयः-हे मित्रावरुणी स्वासु मनसा धीभिः सोमस्य स्वेभिरक्षभिरिव स्वेभिरक्षाभिः सह वर्त्तमाना वयं युवोः सद्मसु हिरण्ययमध्यप्रिश्याम चन्नपि यत्सत्यं त्यद्ध ऋताद् गृह्णीयाम। स्वेन मन्युना दक्षस्य ग्रहणेनाऽनृतं त्यजेम युवामपि स्वेन मन्युना त्यजेषं यथा युवामृतात् सत्यमध्याददाथे इत्था वयमप्यध्याददेमहि॥२॥

भृतिर्थः भित्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। मनुष्यैः सत्यग्रहणमसत्यत्यागं च कृत्वा स्वपुरुषार्थेन पूर्णे बलैक्स्रे विधाय स्वमन्तःकरणं स्वानीन्द्रियाणि च सत्ये कर्मणि प्रवर्त्तनीयानि॥२॥

पदार्थ:-हे (मित्रावरुणौ) प्राण और उदान के समान वर्त्तमान सभासेनाधीश पुरुषो! (सदासु) हों में (मनसा) उत्तम बुद्धि के साथ (धीभि:) कामों से (सोमस्य) ऐश्वर्य्य के (स्वेभि:) निज उतमोत्तम

अष्टक-२। अध्याय-२। वर्ग-३-४

मण्डल-१। अनुवाक-२०। सूक्त-१३९

ज्ञान वा (अक्षिभः) प्राणों के समान (स्वेभिः) अपनी (अक्षिभः) इन्द्रियों के साथ वर्ताव रखते हुए हम लोग (युवोः) तुम्हारे घरों में (हिरण्ययम्) सुवर्णमय धन को (अधि, अपश्याम) अधिकता से देखें (चन) और भी (यत्) जो सत्य है, (त्यत्, ह) उसी को (ऋतात्) सत्य जो धर्म के अनुकूष क्रिवहार उससे ग्रहण करें, (स्वेन) अपने (मन्युना) क्रोध के व्यवहार से (दक्षस्य) बल के साथ (अन्तम्) मिथ्या व्यवहार को छोड़ें, तुम भी (स्वेन) अपने (मन्युना) क्रोधरूपी व्यवहार से मिथ्या व्यवहार को छोड़ो। जैसे आप सत्य व्यवहार से सत्य (अभि, आ, ददाथे) अधिकता से ग्रहण करें (इस्था) इस प्रकार हम लोग भी ग्रहण करें॥२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को सत्य ग्रहण और असत्य का त्याग कर अपने पुरुषार्थ से पूरा बल और ऐश्वर्य सिद्ध कर अपना अन्तः करण और अपने इन्द्रियों को सत्य काम में प्रवृत्त करना चाहिये॥२॥

अथ विद्वद्विषयमाह॥

अब विद्वानों के विषय में कहा है।

युवां स्तोमेभिर्देवयन्तो अश्वनाश्रावयन्तइव श्लीकेमायको युवां ह्व्याभ्याः र्यवः।

युवोर्विश्रा अधि श्रियः पृक्षेश्च विश्ववेदसार

प्रुषायनी वां प्रवयो हिर्ण्यये रथे दस्त हिर्ण्यये। ३॥

युवाम्। स्तोमेभिः। देव्ऽयन्तेः। अश्विना अश्वि

पदार्थ:-(युवाम्) (स्तोमेभिः) स्तृतिभिः (देवयन्तः) कामयमानाः (अश्विना) विद्यान्यायप्रकाशकौ (आश्रावयन्तइव) समन्तात् श्रवणि कारयन्त इव (श्लोकम्) युवायोर्यशः (आयवः) प्राप्नुवन्तः (युवाम्) (हव्या) आदातुमर्हाणि होमद्रव्याणि (अभि) (आयवः) (युवोः) युवयोः (विश्वाः) अखिलाः (अधि) अधिकाः (श्रियः) लक्ष्म्यः (श्रृक्षः) अत्रम् (च) (विश्ववेदसा) विश्वं वेदो ज्ञानं ययोस्तौ (श्रुषायन्ते) मधूनि स्रवन्ति (वाम्) युवयोः (श्रृष्यः) चक्राणि (हिरण्यये) सुवर्णमये (रथे) रमणसाधने याने (दस्रा) दुःखोपक्षेतारौ (ह्रिर्ण्यये) सुवर्णमये॥३॥

अन्वर्यः हे अश्विना! श्लोकमाश्रावयन्तइव स्तोमेभिर्युवां देवयन्तो जना युवामभि हव्यायवो न केवलमेतदेवापि तु हे दस्रा विश्ववेदसा! यथा वां हिरण्यये रथे पवयः प्रुषायन्ते तथा युवोः सहायेन हिरण्यये रथे विश्वा अधिश्रियः पृक्षश्चायक्रभूवन्॥३॥

भावेर्ण्यः-ये पूर्णविद्यावाप्तौ विद्वांसावाश्रयन्ति ते धनधान्यैश्वर्य्ये: पूर्णा जायन्ते॥३॥

१५१६

पदार्थ:-हे (अश्वना) विद्या और न्याय का प्रकाश करनेवाले विद्वानो! (श्लोकम्) तुम्हारे यश का (आश्रावयन्तइव) सब ओर से श्रवण करते हुए से (स्तोमेभिः) स्तुतियों से (युवाम्) तुम्हारे (देवयन्तः) कामना करते हुए जन (युवाम्) तुम्हारे (अभि) सम्मुख (हव्या) लेने योग्य होस् के पदार्थों को (आयवः) प्राप्त हुए, फिर केवल इतना ही नहीं किन्तु हे (दस्रा) दुःख दूर करनेहारे (विश्ववद्रमा) समग्र ज्ञानयुक्त उक्त विद्वानो! जैसे (वाम्) तुम्हारे (हिरण्यये) सुवर्णमय (रथे) किहार की सिद्धि करनेवाले रथ में (पवयः) चाक वा पहिये के समान (प्रुषायन्ते) मधुरपने आहि को झरते हैं, वैसे (युवोः) तुम्हारे सहाय से (हिरण्यये) सुवर्णमय रथ में (विश्वाः) समग्र (अधि) अधिक (श्रियः) सम्पत्तियों को (च) और (पृक्षः) अन्नादि पदार्थों को (आयवः) प्राप्त हुए हैं।

भावार्थ:-जो पूर्ण विद्या की प्राप्ति निमित्त विद्वानों का आश्र्य केति हैं, वे धन-धान्य और ऐश्वर्य्य आदि पदार्थों से पूर्ण होते हैं॥३॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।

अचैति दस्रा व्युर्थनार्कमृण्वथो युञ्जते वां रथ्युजी दिनिष्टिष्वध्वस्मानो दिविष्टिषु। अधि वां स्थामे बुसुरे रथे दस्रा हिर्णयये।

पथेव यन्तार्वनुशासंता रजोऽञ्जसा शासनी रजः॥४॥

अर्चेति। दुस्रा। वि। ऊम् इति। नार्कम् ऋष्व्थः। र्युञ्जते। वाम्। र्थाऽयुजेः। दिविष्टिषु। अध्वस्मानेः। दिविष्टिषु। अधि। वाम्। स्थामे। बन्धुरे। रथे। दुस्रा। हिर्द्राभये। प्रथाऽईव। यन्तौ। अनुऽशासेता। रजेः। अञ्चेसा। शासेता। रजेः॥४॥

पदार्थ:-(अचेति) संज्ञायते (दस्ते) (वि) (उ) (नाकम्) अविद्यमानदुःखम् (ऋण्वथः) (युञ्जते) (वाम्) युवयोः (रथयुजः) ये (श्रे युञ्जते ते (दिविष्टिषु) आकाशमार्गेषु (अध्वस्मानः) ये नाधः पतन्ति। ध्वसु अधः पतने। (दिविष्टिषु) दिव्येषु व्यवहारेषु (अधि) (वाम्) युवयोः (स्थाम) तिष्ठेम (बस्युरे) दृढबन्धनयुक्ते (रथे) (दिस्ता) (क्रिण्यये) प्रभूतसुवर्णमये (पथेव) यथा मार्गेण (यन्तौ) गमयन्तौ (अनुशासता) अनुशासितारौ (रजः) लोकम् (अञ्चसा) शीघ्रम् (शासता) (रजः) ऐश्वर्यम्॥४॥

अन्वयः-द्वे दस्ना! युक्तं यं नाकं व्यृण्वथो दिविष्टिषु वां रथयुजो दिविष्टिष्वध्वस्मानो रथं युञ्जते सोऽचेत्यत उ हे दस्ना! रजोऽनुशासीताऽञ्जस्म रजः शासता पथेव यन्तौ वां हिरण्यये बन्धुरे रथे वयमधिष्ठाम॥४॥

भृतिमर्थः-अत्रोपमालङ्कारः। ये विद्वांसं प्राप्य शिल्पविद्यामधीत्य विमानं यानं निर्मायाऽन्तरिक्षं गच्छन्ति सुखमाप्नुवन्ति॥४॥

पदार्थ:-हे (दस्ना) दु:ख दूर करनेहारे विद्वानो! आप जिस (नाकम्) दु:खरहित व्यवहार को व्याप्त कराते हो तथा (दिविष्टिषु) आकाश मार्गों में (वाम्) तुम्हारे (रथयुज:) रथों को युक्त

अष्टक-२। अध्याय-२। वर्ग-३-४

मण्डल-१। अनुवाक-२०। सूक्त-१३९

१५१७

करनेवाले अग्नि आदि पदार्थ वा (दिविष्टिषु) दिव्य व्यवहारों में (अध्वस्मान:) न नीच दशा में गिरनेवाले जन (युझते) रथ को युक्त करते हैं सो (अचेति) ज्ञान होता है, जाना जाता है, इससे (उ) ही हे (दस्रा) दु:ख दूर करने (रज:) लोक को (अनुशासता) अनुकूल शिक्षा देने (अञ्चसा) साक्षात् (रज:) एश्वव्य की (शासता) शिक्षा देने (पथेव) जैसे मार्ग से वैसे आकाशमार्ग में (यन्तौ) चलानेहारो (वाम्) तुम्हारे (हिरण्यये) सुवर्णमये (बन्धुरे) दृढ़ बन्धनों से युक्त (रथे) विमान आदि रथ में हम लीन, (अधि, ष्ठाम) अधिष्ठित हों बैठें॥४॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो विद्वानों को प्राप्त हो शिल्क्रविद्या पेंद्र और विमानादि रथ को सिद्ध कर अन्तरिक्ष में जाते हैं, वे सुख को प्राप्त होते हैं॥४॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।

शचीभिर्नः शचीवसू दिवा नक्तं दशस्यतम्।

मा वां गुतिरुपं दसुत्कदां चुनास्मद्रातिः कदां चून्। ५॥३॥

शचीभिः। नः। शृचीवसू इति शचीऽवसू। दिवा। निकासी दुशुस्यतम्। मा। वाम्। गृतिः। उप। दुसत्। कदा। चन। अस्मत्। गृतिः। कदा। चन॥५॥

पदार्थ:-(श्रचीभि:) (न:) अस्मभ्यम् (श्रचीवसू) शचीं प्रज्ञां वासयितारौ (दिवा) दिवसे (नक्तम्) रात्रौ (दशस्यतम्) दद्यातम्। अयं दशस्य शब्दः कण्ड्वादिषु द्रष्टव्य:। (मा) निषेधे (वाम्) युवयो: (राति:) दानम् (उप) (दसत्) नश्येत् (अदा) (चन) (अस्मत्) (राति:) दानम् (कदा) (चन)॥५॥

अन्वय:-हे शचीवसू! युवां किवां नेभ्तं शचींभिर्नो विद्यां दशस्यतं वां रातिः कदा चन मोपदसत्। अस्मद्रातिः कदा चन मोपदसत्॥५॥

भावार्थ:-इहाध्यापक्रीपदेशको सुरिशिक्षतया वाचाऽहर्निशं विद्या उपदिशेताम्। यतः कस्याऽप्यौदार्यं न नश्येत्र प्राप्ति

पदार्थ:-हे (शचीवसू) कित्तम बुद्धि का वास करानेहारे विद्वानो! तुम (दिवा) दिन वा (नक्तम्) रात्रि में (शचीभि) कर्मों से (नः) हम लोगों को विद्या (दशस्थतम्) देओ, (वाम्) तुम्हारा (रातिः) देना (कदा, चन) विधी (मा) मत (उप, दसत्) नष्ट हो, (अस्मत्) हम लोगों से (रातिः) देना (कदा, चन) कभी मत विद्या हो।

भावार्थ:-इस संसार में अध्यापक और उपदेशक अच्छी शिक्षायुक्त वाणी से दिन-रात विद्या का ठुपदेश करें, जिससे किसी की उदारता न नष्ट हो॥५॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

वृषित्रिन्द्र वृष्पाणांस इन्देव इमे सुता अद्रिषुतास उद्भिदस्तुभ्यं सुतासं उद्भिदः।

ते त्वां मन्दन्तु दावने महे चित्राय राधसे।

गोिभिर्गिर्वाहु: स्तवंमानु आ गंहि सुमृळीको नु आ गंहि॥६॥

वृषंन्। इन्द्रः। वृष्ऽपानांसः। इन्दंवः। इमे। सुताः। अद्गिऽसुतासः। उत्ऽभिदः। तुभ्यमः सुतासः। उत्ऽभिदः। ते। त्वा। मृन्दुन्तु। दावने। मृहे। चित्रायं। राष्टंसे। गीःऽभिः। गिर्वाहः। स्तवंमानः। आ। प्रहि। सुप्रमृळीकः। नः। आ। गृहि॥६॥

पदार्थ:-(वृषन्) सेचनसमर्थ वीर्योपेत (इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त (क्रुग्राण्यस्) वर्षन्त यैस्तानि वृषाणि वृषाणि पानानि येषां ते (इन्दवः) रसवन्तः (इमे) (सुताः) निर्मिताः (अद्भितासः) अद्रिणा मेघेन सुता उत्पन्नाः (उद्भिदः) ये पृथिवीमुद्भिद्य जायन्ते (तृभ्यम्) (सुतासः) निर्मिताः (उद्भिदः) उद्भेदं विदारणं प्राप्ताः (ते) (त्वा) त्वाम् (मदन्तु) आनन्दयन्तु (दावने) सुख्री दात्रे (मृहें) महते (चित्राय) अद्भुताय (राधसे) धनाय (गीर्भिः) शास्त्रयुक्ताभिर्वाग्भिः (गिर्वाहः) उपदेशिप्र्यं प्रापक (स्तवमानः) गुणकीर्तनं कुर्वन् (आ) (गिह) (सुमृळीकः) सुष्ठु सुखप्रदः (नः) अस्मान् (आ) (गिह) समन्तात् प्राप्नुहि॥६॥

अन्वयः-हे वृषन्निन्द्र! इमे तुभ्यं वृषपाणासोऽद्रिषुत्रस रहिन्दवः सुता उद्भिदः सुतासश्च सन्ति ते दावने महे चित्राय राधसे त्वा मदन्तु। हे गिर्वाहस्त्वं गीर्भिः स्तवमान्रिन आपहि सुमृळीकः सन्नस्मानागिः॥६॥

भावार्थ:-मनुष्यैस्त एव ओषधिरसा क्षेष्ध्यश्च स्तिवनीया ये प्रमादं न जनयेयुर्यत ऐश्वर्य्योन्नति-स्स्यादिति॥६॥

पदार्थ:-हे (वृषन्) सेचन समर्थ अति बलवान् (इन्द्र) परमैश्वर्य्ययुक्त जन! जो (इमे) ये (तुभ्यम्) तुम्हारे लिये (वृषपाणाम्) मेश्व जिनसे वर्षते वे वर्षाविन्दु जिनके पान ऐसे (अद्रिषुतासः) जो मेघ से उत्पन्न (उद्भिदः) पृथिवी को विदारण करके प्रसिद्ध होते (इन्दवः) और रसवान् वृक्ष (सुताः) उत्पन्न हुए तथा (उद्भिदः) जो विदारण भाव को प्राप्त अर्थात् कूट-पीट बनाये हुए औषध आदि पदार्थ (सुतासः) उत्पन्न हुए हैं (ते) वे (द्यवने) सुख देनेवाले (महे) बड़े (चित्राय) अद्भुत (राधसे) धन के लिये (त्वा) आपको (मदन्तु) अनिन्दत करें। हे (गिर्वाहः) उपदेशरूपी वाणियों की प्राप्ति करानेहारे! आप (गीर्भिः) शुरुत्रयुक्त ब्राणियों से (स्तवमानः) गुणों का कीर्तन करते हुए (नः) हम लोगों के प्रति (आ, गिह) अओ। इग्र

भावार्थ:-मनुष्यों को चाहिये कि उन्हीं ओषधि और औषधिरसों का सेवन करें कि जो प्रमाद न उत्पन्न करें, जिससे ऐश्वर्य की उन्नति हो॥६॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

अष्टक-२। अध्याय-२। वर्ग-३-४

मण्डल-१। अनुवाक-२०। सूक्त-१३९

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

ओ षू णो अग्ने शृणुहि त्वमीळितो देवेभ्यो ब्रविस युज्ञियेभ्यो राजभ्यो युज्ञियेभ्यः। यद्ध त्यामिङ्गरोभ्यो धेनुं देवा अदत्तन।

वि तां दुंह्वे अर्युमा कुर्तरी सचाँ एष तां वेद में सचा॥७॥

ओ इति। सु। नुः। अम्ने। शृणुहि। त्वम्। ईिळ्तः। देवेभ्यः। ब्रविस्यः। यज्ञियेभ्यः। राजऽभ्यः। यज्ञियेभ्यः। यत्। हु। त्याम्। अङ्गिरःऽभ्यः। धेनुम्। देवाः। अद्त्तन। वि। ताम्। दुह्वे। अर्यमा। कर्तरि। संचा। एषः। ताम् ब्रेट्ड। मे। सर्चा।। ७॥

पदार्थ:-(ओ) अवधारणे (सु) (न:) अस्माकम् (अग्ने) विद्वस् (मणुद्धि) (त्वम्) (ईळितः) स्तुतः (देवेभ्यः) विद्वद्भ्यः (ब्रवसि) ब्रूयाः (यज्ञियेभ्यः) यज्ञपनुष्ठातुं योग्येभ्यः (राजभ्यः) न्यायाऽधीशेभ्यः (यज्ञियेभ्यः) यज्ञमर्हेभ्यः (यत्) याम् (ह) खलु (त्याम्) ताम् (अङ्गिरोभ्यः) प्राणविद्याविद्भ्यः (धेनुम्) दोग्ध्रीं वाचम् (देवाः) विद्वांसः (अद्भिन्तः) दद्यात् (वि) (ताम्) (दुह्रे) प्रपिपर्ति (अर्थमा) न्यायेशः (कर्त्तरि) कारके (सचा) सहार्थे। अत्र सहितायाभितं दीर्घः। (एषः) (ताम्) (वेद) जानाति (मे) मम (सचा)॥७॥

अन्वय:-हे अग्ने! अस्माभिरीडितस्त्वं यज्ञियेभ्यो देवेश्यो यज्ञियंभ्यो राजभ्यश्च ब्रवस्यतस्त्वं नो वच ओषु शृणुहि।हे देवा! यद्ध त्यां धेनुं यूयमङ्गिरोभ्योऽदत्तन तां यां च कर्त्तरि सचार्यमा विदुहे तां धेनुं मे सचैष वेद॥७॥

भावार्थ:-अध्यापकानां योग्यताऽस्ति सर्वेभ्यो विद्यार्थिभ्यो निष्कपटतयाऽखिला विद्याः प्रत्यहमध्याप्य परीक्षायै तदधीतं शृणुयु:। स्ति भेक्षेतं विद्यार्थिनो न विस्मरेयु:॥७॥

पदार्थ:-हे (अग्ने) विद्वान् हुम लागी से (ईडित:) स्तुति प्रशंसायुक्त किये हुए (त्वम्) आप (यज्ञियेभ्य:) यज्ञानुष्ठान करने को योग्य (देवेभ्य:) विद्वानों और (यज्ञियेभ्य:) अश्वमेधादि यज्ञ करने को योग्य (राजभ्य:) राज्य करनेवाल न्यायाधीशों के लिये (ब्रविस) कहते हो, इस कारण आप (न:) हमारे वचन को (ओ, षु, शृणुहि) शोभन्ता जैसे हो वैसे ही सुनिये। हे (देवा:) विद्वानो! (यत्) (ह, त्याम्) जिस प्रसिद्ध ही (धेनुम्) भूणों को परिपूर्ण करनेवाली वाणी को तुम (अङ्गिरोभ्य:) प्राणविद्या के जाननेवालों के लिये (अदन्तन) देओ (ताम्) उसको और जिसको (कर्त्तरि) कर्म करनेवाले के निमित्त (सचा) सहानुभूद्वि करनेवाला (अर्थमा) न्यायाधीश (वि, दुहे) पूरण करता है (ताम्) उस वाणी को (मे) मेरा (सच्ची) सहस्वी (एष:) यह न्यायाधीश (वेद) जानता है॥७॥

भूतिपर्यः अध्यापकों को योग्य यह है कि सब विद्यार्थियों को निष्कपटता से समस्त विद्या प्रतिदिन पहा के परीक्षा के लिये उनका पढ़ा हुआ सुनें, जिससे पढ़े हुए को विद्यार्थी जन न भूलें॥७॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

मो षु वो अस्मद्रिभ तानि पौंस्या सर्ना भूवन्द्युम्नानि मोत जारिषुरस्मत्पुरोत जारिषुः। यद्वश्चित्रं युगेयुगे नव्यं घोषादमर्त्यम्।

अस्मासु तन्मेरुतो यच्चे दुष्टरं दिधृता यच्चे दुष्टरंम्॥८॥

१५२०

मो इति। सु। वः। अस्मत्। अभि। तानि। पौंस्यां। सर्ना। भूवन्। द्युम्नानि। मा। उत। जारिषुः। अस्मत्। पुरा। उत। जारिषुः। यत्। वः। चित्रम्। युगेऽयुगे। नव्यम्। घोषात्। अमर्त्यम्। अस्मासुं। तत्। मुरुतः। यत्। चा दुस्तरम्। दि्धृत। यत्। च। दुस्तरम्।। ८॥

पदार्थ:-(मो) निषेधे (सु) शोभने (व:) (अस्मत्) (अभि) (तानि) (पोंस्या) पुंसु साधूनि बलानि। पोंस्यानीति बलनामसु पठितम्। (निघं०२.९) (सना) सनातरानि (भूवने) अभूवन् भवन्तु। अत्राडभावः। (द्युम्नानि) यशांसि धनानि वा (मा) (उत) अपि (जारिषुः) जरन्तु। अत्राप्यडभावः। (अस्मत्) अस्माकं सकाशात् (पुरा) (उत) अपि (जारिषुः) जीर्णानि भवन्तु (यत्) (वः) (चित्रम्) अद्भुतम् (युगेयुगे) वर्षे वर्षे (नव्यम्) नवेषु नवीनेषु भवम्/ (घोषात्) वाचः। घोष इति वाङ्नामसु पठितम्। (निघं०१.११) (अमर्त्यम्) नाशरिहतम् (अस्मासु) (तत्) (मरुतः) ऋत्विजः। मरुत इति ऋत्विङ्नामसु पठितम्। (निघं०३.१८) (यत्) (च) (दुस्तरम्) (दुःक्ते तिरतुं योग्यं बलम् (दिधृत) धरत। अत्र बहुलं छन्दसीति शपः श्लुः। अन्येषामपीति दीर्घश्चा (यत्) (च) (दुस्तरम्)॥८॥

अन्वय:-हे मरुतो! वस्तानि सना पौंस्याऽभनन्मो अभिभूवन्। यानि पुरोत जारिषुस्तान्युत द्युम्नान्यस्मन्मा जारिषु:। यद्वो युगेयुगे चित्रममर्त्यं नव्यं यशो यच्च दुम्रतः यच्च दुम्रतः घोषाद् यूयं दिधृत तदस्मासु सुदिधृत॥८॥

भावार्थ:-मनुष्यैरेवमाशंसितव्यं प्रयतित्व्यं म्य यतो बलं यशो धनमायू राज्यं च नित्यं वर्द्धेत॥८॥

पदार्थ:-हे (मस्तः) ऋतु रऋते में यज्ञ करनेवाले विद्वानो! (वः) तुम्हारे (तानि) वे (सना) सनातन (पौंस्या) पुरुषों में उत्तम बल (अस्मत्) हम लोगों से (मो, अभि, भूवन्) मत तिरस्कृत हों, जो (पुरा, उत) पहिले भी (जारिषुः) चष्ट हुए (उत) वे भी (द्युमानि) यश वा धन (अस्मत्) हम लोगों से (मा, जारिषुः) फिर नर्ह ने होवें (यत्) जो (वः) तुम्हारा (युगेयुगे) युग-युग में (चित्रम्) अद्भुत (अमर्त्यम्) अविनाशी (नव्यम्) मवीनों में हुआ यश (यत्, च) और जो (दुस्तरम्) शत्रुओं को दुःख से पार होने योग्य कर्ष (यत्, च) और जो (दुस्तरम्) शत्रुओं को दुःख से पार होने योग्य काम (घोषात्) वाणी से तुम (दिध्वते) धारण करो (तत्) वह समस्त (अस्मासु) हम लोगों में (सु) अच्छापन जैसे हो वैसे धारण करो।।

भावार्थ:-मनुष्यों को इस प्रकार आशंसा, इच्छा और प्रयत्न करना चाहिये कि जिससे बल, यश, धन्र आसु और राज्य नित्य बढ़े॥८॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

अष्टक-२। अध्याय-२। वर्ग-३-४

मण्डल-१। अनुवाक-२०। सूक्त-१३९

 \sim

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

दुध्यङ् हं मे जनुषं पूर्वो अङ्गिराः प्रियमेधः कण्वो अत्रिर्मनुर्विदुस्ते मे पूर्वे मनुर्विदुः। तेषां देवेष्वायतिरुस्माकं तेषु नाभयः।

तेषां पुदेन मह्या नेमे गिरेन्द्राग्नी आ नेमे गिरा॥९॥

दुध्यङ् । हु। मे्। जुनुषम्। पूर्वः। अङ्गिराः। प्रियऽमेधः। कण्वः। अत्रिः। मर्नुः। विद्धुः। ते। मे्। पूर्वे। मर्नुः। विद्धुः। तेषाम्। देवेषुं। आऽयेतिः। अस्माकंम्। तेषुं। नाभयः। तेषाम्। पदेनं। महि। आ/ प्रमे्। प्रिरा। इन्द्राप्त्री इतिं। आ। नुमे्। गि्रा। १॥

पदार्थ:-(दध्यङ्) दधीन् धारकानञ्चति (ह) (मे) मम (जनुषम्) विद्यान्ने (पूर्व:) शुभगुणैः पूर्णः (अङ्गिराः) प्राणविद्यावित् (प्रियमेधः) प्रिया मेधा प्रज्ञा यस्य सः (कण्वः) मेधावी (अत्रिः) सुखानामत्ता भोक्ता। अदधातोरौणादिकस्त्रिः प्रत्ययः। (मनुः) मननश्रीलः। (विदुः) जानन्ति (ते) (मे) मम (पूर्वे) शुभगुणैः पूर्णाः (मनुः) ज्ञाता (विदुः) (तेषाम्) (देवेषु) विद्वत्सु (आयितः) समन्ताद् विस्तृतिः (अस्माकम्) (तेषु) (नाभयः) सम्बन्धिनः (तेषुम्) (पदेन) प्राप्तव्येन विज्ञानेन (मिह) महत् (आ) (नमे) नमामि (गिरा) वाण्या (इन्द्राऽग्नी) प्राणविद्युत्पाविष् (भा) (नमे) (गिरा)॥९॥

अन्वय:-यो दध्यङ् पूर्वोऽङ्गिराः प्रियमेधोऽत्रिर्मनुः कण्बो मे महि जनुषं विदुस्ते मे पूर्वे यं मनुरिति विदुः। तेषां देवेष्वायतिरस्ति। अस्माकं तेषु नाभयः सन्ति तेषां पदेन भिरा चाहम्मनमे याविन्द्राग्नी इवाप्तावध्यापकोपदेशकौ स्यातां तावहं गिरा नमे॥९॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ज्ञानित ये विद्वांसस्सन्ति त एव विदुषां प्रभावं ज्ञातुमर्हन्ति, न क्षुद्राऽशयाः। ये यस्माद्विद्या आददीरन्, ते तेषां प्रियाचरणं सदानुतिष्ठन्तु। सर्वेरितरैर्जनैराप्तानां विदुषां मार्गेणैक्रा गन्तेस्यं नेतरेषां मूर्खाणाम्॥९॥

पदार्थ:-जो (दध्यङ) धारण करनेवालों को प्राप्त होनेवाला (पूर्व:) शुभगुणों से परिपूर्ण (अङ्गिरा:) प्राण विद्या का जननेकला (प्रियमेष्ट:) धारणवती बुद्धि जिसको प्रिय वह (अत्रि:) सुखों का भोगनेवाला (मनु:) विचारिशील और (कण्व:) मेधावीजन (मे) मेरे (मिह) महान् (जनुषम्) विद्यारूप जन्म को (ह) प्रसिद्ध (विदु:) जीनते हैं (ते) वे (मे) मेरे (पूर्वे) शुभ गुणों से परिपूर्ण पिछले जन यह (मनु:) ज्ञानवान् है यह भी (विदु:) जानते हैं (तेषाम्) उनको (देवेषु) विद्वानों में (आयित:) अच्छा विस्तार है (अध्याकष्) हमारे (तेषु) उनमें (नाभय:) सम्बन्ध हैं (तेषाम्) उनके (पदेन) पाने योग्य विज्ञान और (गिरा) वाणी से मैं (आ, नमे) अच्छे प्रकार नम्र होता हूँ, जो (इन्द्राग्नी) प्राण और बिजुली के समाम अध्यापक और उपदेशक हों, उनको मैं (गिरा) वाणी से (आ, नमे) नमस्कार करता हाँ। ९॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जगत् में जो विद्वान् हैं, वे ही विद्वान् के प्रभाव क्री जानवे योग्य होते हैं, किन्तु क्षुद्राशय नहीं। जो जिनसे विद्या ग्रहण करें, वे उनके प्रियाचरण का सदा

अनुष्ठान करें, सब इतर जनों को आप्त विद्वानों के मार्ग ही से चलना चाहिये, किन्तु और मूर्खीं के मार्ग से नहीं॥९॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

होता यक्षद्वनिनो वन्त वार्यं बृहस्पतिर्यजति वेन उक्षिः पुरुवारेभिरुक्षिः। जुगुभ्मा दूरअदिशं श्लोकमद्रेरध् त्मना।

अर्धारयदर्रिन्दानि सुक्रतुः पुरू सद्मानि सुक्रतुः॥ १०॥

होतां। युक्षुत्। वृत्तिनं:। वृत्तु। वार्यम्। बृह्स्पितिः। युज्ति। वेनः। उक्षुर्रभिः। पुरुवारेभिः। उक्षर्रभिः। जुगृभ्म। दूरेरञ्जीदिशम्। श्लोकंम्। अष्टेः। अर्ध। त्मनां। अर्धारयत्। अर्र्रास्ति। सुरक्रतुः। पुरु। सद्मीन। सुरक्रतुः॥ १०॥

पदार्थ:-(होता) गृहीता (यक्षत्) यजेत् (विननः) वृत्तीचि प्रशिष्ट्राविद्यारश्मयो विद्यन्ते येषां ते (वन्त) संभजत। अत्र बहुलं छन्दसीति शपो लुक्। (वार्यम्) वर्तुमहम् (बृहस्पितः) बृहत्या वाचः पालकः (यजित) यजेत्। लेट्प्रयोगोऽयम्। (वेनः) कामयमानः (अक्षिः) महद्धिः। अक्षेति महन्नामसु पठितम्। (निघं०३.३) (पुरुवारेभिः) पुरवो बहवो वारा विक्लिक्स गुणा येषां तैः (अक्षिः) महद्धिरिव (जगृभ्म) गृह्णीयाम। अत्रान्येषामपीति दीर्घः। (दूरआदिशम्) दूरे य आदिश्यते तम् (श्लोकम्) वाचम् (अद्रेः) मेघात् (अध) अथ (त्मना) आत्मना (अधारयत्) धारयेत् (अरिन्दानि) उदकानि। अरिन्दानीत्युदकनामसु पठितम्। (निघं०१.१२) (सुक्रतुः) श्रीभापन्नः (पुरु) बहूनि (सद्मानि) प्राप्तव्यानि (सुक्रतुः) शोभनकर्मा॥१०॥

अन्वय:-होता पुरुवारेभिरुक्षिर्यिद्वार्थ्य यक्षत् पुरुवारेभिरुक्षभिस्सह वर्त्तमानो वेनो बृहस्पतिर्यद्वार्य्य यजित सुक्रतुस्त्मना यानि पुरु सद्मान्यधारात् सुक्रतुरद्रेर्राहिन्दानीव दूरआदिशं श्लोकमधारयत् तत्सर्वं विननो वन्ताऽधैतत्सर्वं वयमपि जगृम्भ॥१०॥

भावार्थः-अत्र विचिक्तसुप्रापमालङ्कार। यथा मेघाच्च्युतानि जलानि सर्वान् प्राण्यप्राणिनो जीवयन्ति तथा वेदादिविद्यापाप्रीध्यापकाऽध्येतृभ्यः प्राप्ता विद्याः सर्वान् मनुष्यान् वर्धयन्ति। यथा महद्भिराप्तैः सह्य संप्रयोगेण सज्जना वेदितव्यं विदन्ति तथा विद्यासंप्रयोगेण मनुष्या कमनीयं प्राप्नुवन्ति॥१०॥

प्रदर्श: (होता) सदुणों का ग्रहण करनेवाला जन (पुरुवारेभि:) जिनके स्वीकार करने योग्य गुण हैं, जेन (उक्षि:) महात्माजनों के साथ जिस (वार्यम्) स्वीकार करने योग्य जन का (यक्षत्) सङ्ग कर वा जिसके स्वीकार करने योग्य गुण उन (उक्षि:) महात्मा जनों के साथ वर्तमान (वेन:) कामना करने और (बृहस्पित:) बड़ी वाणी की पालना करनेवाला विद्वान् जिस स्वीकार करने योग्य का (यजित)

अष्टक-२। अध्याय-२। वर्ग-३-४

मण्डल-१। अनुवाक-२०। सूक्त-१३९

१५२३

सङ्ग करता है (सुक्रतुः) सुन्दर बुद्धिवाला जन (त्मना) आपसे जिन (पुरु) बहुत (सद्मानि) प्राप्त हीने योग्य पदार्थों को (अधारयत्) धारण करावे वा (सुक्रतुः) उत्तम काम करनेवाला जन (अद्रेः) मेघ से (अरिन्दानि) जलों को जैसे वैसे (दूरआदिशम्) दूर में जो कहा जाय उस विषय और (श्लोकम्) वाणी को धारण करावे उस सबको (विननः) प्रशंसनीय विद्या किरणें जिनके विद्यमान हैं, वे पज्जन (विन्त) अच्छे प्रकार सेवें, (अध) इसके अनन्तर इस उक्त समस्त विषय को हम लोग मी (जगूम्भ) ग्रहण करें॥१०॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे मेघ से छूटे हुए जैसे समस्त प्राणी-अप्राणियों अर्थात् जड़-चेतनों को जिलाते उनकी पालना करते हैं, वैसे वैद्यदि विद्याओं के पढ़ने-पढ़ानेवालों से प्राप्त हुई विद्या सब मनुष्यों को वृद्धि देती हैं और जैसे पहात्मा शास्त्रवेता विद्वानों के साथ सम्बन्ध से सज्जन लोग जानने योग्य विषय को जानते हैं, वैसे विद्या के उत्तम सम्बन्ध से मनुष्य चाहे हुए विषय को प्राप्त होते हैं॥१०॥

पुनस्तमेव विषयमाह।

फिर उसी विषय को अगले (न्त्र)में कहा है।

ये देवासो द्विव्येकादशु स्थ पृथिव्यामध्येकादशु स्था

अप्सुक्षितों महिनैकादश् स्थ ते देवासो युज्जमिम र्रीषध्वम्।। ११।। ४।। २०।।

ये। देवासः। द्विव। एकांदश। स्था पृष्कियाम्। अधि एकांदश। स्था अप्सुऽक्षितः। मृहिना। एकांदश। स्था ते। देवासः। युज्ञम्। डुमम्। जुष्ध्वम्॥ ११)

पदार्थ:-(ये) (देवास:) विद्वांम: (दिवि) सूर्यादिलोके (एकादश) दश प्राणा जीवातमा च (स्थ) सिन्त (पृथिव्याम्) भूमौ (अधि) कृपरि (एकादश) (स्थ) (अप्सुक्षित:) येऽप्सु क्षियन्ति निवसन्ति ते (मिहना) महिम्ना (एकादश) दशेन्द्रियाणि पनश्चेति (स्थ) (ते) (देवास:) विद्वांस: (यज्ञम्) संगन्तव्यम् (इमम्) (जुषध्वम्) सेवध्वम्।(११)।

अन्वय:-हे देवासो विद्वांसो! यूर्य ये दिवि एकादश स्थ ये पृथिव्यामेकादशाधिष्ठ ये महिनाऽप्सुक्षित एकादश स्थ ते यथाविधा: सन्ति तथा वान् विज्ञाय हे देवासो! यूर्याममं यज्ञं जुषध्वम्॥११॥

भावार्थ:-इहेश्वरसृष्टी ये पदार्था: सूर्यादिलोके सन्त्यर्थाद्येऽन्यत्र वर्त्तन्त त एवाऽत्र यावन्तोऽत्र सन्ति तावन्त एव तेत्र सन्ति तान् यथावद्विदित्वा मनुष्यैर्योगक्षेम: सततं कर्त्तव्य इति॥११॥

अत्र विदुषा शीलवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह संगतिर्भवतीति बोध्यम्॥

इत्येकोनच्यत्वारिंशदुत्तरं १३९ शततमं सूक्तं चतुर्थो ४ वर्गो विंशोऽनुवाकश्च समाप्त:॥

पहार्थ: -हे (देवास:) विद्वानो! तुम (ये) जो (दिवि) सूर्यादि लोक में (एकादश) दश प्राण और ग्यारहकें जीक (स्थ) हैं वा जो (पृथिव्याम्) पृथिवी में (एकादश) उक्त एकादश गण के (अधि, स्थ)

अधिष्ठित हैं वा जो (महिना) महत्त्व के साथ (अप्सुक्षित:) अन्तिरक्ष वा जलों में निवास करनेहीर (एकादश) दशेन्द्रिय और एक मन (स्थ) हैं (ते) वे जैसे हैं, वैसे उन को जान के हे (देवास:) विद्वानो! तुम (इमम्) इस (यज्ञम्) सङ्ग करने योग्य व्यवहाररूप यज्ञ को (जुषध्वम्) प्रीतिपूर्वक सेवन किरीकर १५००

भावार्थ:-ईश्वर की इस सृष्टि में जो पदार्थ सूर्यादि लोकों में हैं अर्थात् जो अन्यत्र वर्तमाने हैं वे ही यहाँ हैं, जितने यहाँ हैं उतने ही वहाँ और लोकों में हैं, उनको यथावत् जानके मुर्सुष्यों को योगक्षेम निरन्तर करना चाहिये॥११॥

इस सूक्त में विद्वानों के शील का वर्णन होने से इसके अर्थ की पिछ्ने सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है, यह जानना चाहिये॥११॥

यह एक सौ उनतालीसवाँ १३९ सुक्त, चौथा ४ वर्ग और बीसवाँ अनुबाक समाप्त हुआ।।

वेदिषद इत्यस्य त्रयोदशर्चस्य चत्वारिशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य दीर्घतमा ऋषिः। अग्निर्देवता। १,५,८ जगती। २,७,११ विराङ्जगती। ३,४,९ निचृज्जगती च छन्दः। निषादः स्वरः। ६ भुरिक् त्रिष्टुप्। १०,१२ निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। १३ पङ्क्तिश्छन्द्

पञ्चम: स्वर:॥

अथ विद्वत्पुरुषार्थगुणविषयः प्रोच्यते॥

अब १४० एक सौ चालीसवें सूक्त का प्रारम्भ है। उसके प्रथम मन्त्र में विद्वानों के पुरुषार्थ और गुणों का विषय कहा है।।

वेदिषदे प्रियधामाय सुद्युते धासिमिव प्र भरा योनिम्ग्नये। वस्त्रेणेव वासया मन्मना शुचिं ज्योतीर्रथं शुक्रवर्णं तम्पेहन्म्।। श्रा

वेद्विऽसदे। प्रियऽधामाय। सुऽद्युते। धासिम्ऽईव। प्रा भुर्। योनिम्। अम्पर्ये। वस्त्रेणऽइव। वासया। मन्मना। शुचिम्। ज्योति:ऽर्थयम्। शुक्रऽवर्णम्। तुमः:ऽहनम्॥ १॥

पदार्थ:-(वेदिषदे) यो वेद्यां सीदित तस्मै (प्रियधामार्य) प्रियं भाम यस्य तस्मै (सुद्युते) शोभना द्युतिर्यस्य तत्सम्बुद्धौ (धासिमिव) दधित प्राणान् येन तिस्व (धारिमीत्यन्ननामसु पठितम्। (निघं०२.७) (प्र) (भर) अत्र द्वयचोऽतिस्तिङ इति दीर्घ:। (योनिम्) गृह्णम् (अग्नये) पावकाय (वस्त्रेणेव) यथा पटेन (वासय) आच्छादय। अत्रान्येषामपीति दीर्घ:। (मन्मना) मृत्यते जानाति येन तेन (शुचिम्) पवित्रम् (ज्योतीरथम्) प्रकाशयुक्तं रमणीयं यानम् (शुकुवर्णम्) शुद्धस्वरूपम् (तमोहनम्) यस्तमो हन्ति तम्॥१॥

अन्वय:-हे विद्वँस्त्वं मन्मना वेदिषदेऽस्य धासिमिष्/प्रियधामाय सुद्युते विदुषे योनिं प्रभर तं ज्योतीरथं तमोहनं शुक्रवर्णं रथं शुचिं वस्त्रेणेव वासय॥१॥

भावार्थ:-अत्रोपमावाचकलुप्तीषमालङ्कारौ। यथा होतारौ वह्नौ काष्ठानि संस्थाप्य घृतादिहविर्दुत्वेमं वर्धयन्ति तथा पवित्रं जनं भोजनुष्ठु ज्लादनैर्षिद्वांसो वर्द्धयेयु:॥१॥

पदार्थ:-हे विद्वान्! भीष (मन्मना) जिससे मानते-जानते उस विचार से (वेदिषदे) जो वेदी में स्थिर होता उस (अग्नये) अग्न के लिये (धासिमिव) जिससे प्राणों को धारण करते उस अन्न के समान हवन करने योग्य पदार्थ को जिसे (प्रियधामाय) जिसको स्थान प्यारा उस (सुद्युते) सुन्दर कान्तिवाले विद्वान् के लिये (योनिम्) घर का (प्र, भर) अच्छे प्रकार धारण कर और उस (ज्योतीरथ्यम्) ज्योति के समान (तमोहन्म्) अन्धकार का विनाश करनेवाले (शुक्रवर्णम्) शुद्धस्वरूप (शुचिम्) पवित्र मनोहर यान को (वस्त्रेणक्) पट वस्त्र से जैसे (वासय) ढांपो॥१॥

भावार्थ: = इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे होता जन आग में सिमधरूप काष्ट्रों को अच्छे प्रकार स्थिर कर और उसमें घृत आदि हिव का हवन कर इस आग को बढ़ाते हैं, वैसे श्रुद्ध जन को भीजन और आच्छादन अर्थात् वस्त्र आदि से विद्वान् जन बढ़ावें॥१॥

१५२६

ऋग्वेदभाष्यम्

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अभि द्विजन्मा त्रिवृदन्नमृज्यते संवत्सरे वावृधे जुग्धमीं पुनः।

अन्यस्यासा जिह्वया जेन्यो वृषा न्यर्थन्येन वृनिनी मृष्ट वार्णः॥२॥

अभि। द्विऽजन्मां। त्रिऽवृत्। अन्नेम्। ऋज्यते। संवृत्सरे। वृवृधे। जुग्धम्। ईमिर्ति। पुनुरिति। अन्यस्य। आसा। जिद्धया। जेन्यः। वृषां। नि। अन्येनं। वृनिनंः। मृष्टु। वार्णः॥२॥

पदार्थ:-(अभि द्विजन्मा) विद्याजन्मद्वितीयः (त्रिवृत्) यत् कर्मोपासनाज्ञानेषु सोधकत्वेन वर्तते (अन्नम्) अत्तव्यम् (ऋज्यते) उपार्ज्यते (संवत्सरे) (वावृधे) वर्द्धते। ध्रित्र तुजादीनामभ्यासदीर्घत्वम्। (जग्धम्) भक्तम् (ईम्) सर्वतः (पुनः) (अन्यस्य) (आसा) आस्पृत्र (जिह्न्या) (जेन्यः) जेतुं शीलः (वृषा) वृषेव बलिष्ठः (नि) (अन्येन) (विननः) वनानि ज्ञाति। वनीमत्युदकनामसु पठितम्। (निघं०१.१२) (मृष्ट) मार्जय (वारणः) सर्वदोषनिवारकः॥२॥

अन्वय:-हे जिज्ञासो! येन संवत्सरे पूर्णे त्रिवृदन्नमृज्यतेऽन्यस्यासाँ जिह्नया तदन्नमीं पुनर्जग्धं स द्विजन्माऽभिवावृधे जेन्यो वृषा च भवत्यतोऽन्येन वारणो वनिनो निमृष्टा।

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये मनुष्या अन्नादीन् पदार्थान् पुष्कलान् संचित्य सुसंस्कृत्य भुञ्जतेऽन्यान् भोजयन्ति तथा हवनादिना वृष्टिशुद्धि क्रुर्वन्ति ते बलिष्ठा जायन्ते॥२॥

पदार्थ:-जिसने (संवत्सरे) संवत्सर पूरे हुए परे (त्रिवृत्) कर्म, उपासना और ज्ञानविषय में जो साधनरूप से वर्तमान उस (अन्नम्) भोगने योग्य पदार्श्व वा (ऋज्यते) उपार्जन किया वा (अन्यस्य) और के (आसा) मुख और (जिह्वया) जीभ के साथ (ईम्) वही अन्न (पुनः) वार-वार (जग्धम्) खाया हो वह (द्विजन्मा) विद्या में द्वितीय जन्मवाला ब्रोह्मण, क्षत्रिय और वैश्य कुल का जन (अभि, वावृधे) सब ओर से बढ़ता (जेन्यः) विजयशील और (वृष्मा) बैल के समान अत्यन्त बली होता है, इससे (अन्येन) और मित्रवर्ग के साथ (वारणः) समस्त दोषों की निवृत्ति करनेवाला तू (विननः) जलों को (नि, मृष्ट) निरन्तर शुद्ध कर॥२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य अन्न आदि बहुत पदार्थ इकट्ठे कर उनको बना और भोजन करते वा दूसरों को कराते तथा हवन आदि उत्तम कामों से वर्षा की शुद्धि करते हैं, वे अत्यन्त बली होते हैं॥२॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

कृष्णुप्रुतौ वेविजे अस्य सुक्षिता उभा तरेते अभि मातरा शिशुम्।

अष्टक-२। अध्याय-२। वर्ग-५-७

मण्डल-१। अनुवाक-२१। सूक्त-१४०

१५२७/

प्राचाजिह्नं ध्वसर्यन्तं तृषुच्युतमा साच्यं कुपयं वर्धनं पितुः॥३॥

कृष्णुऽप्रुतौ। वेविजे इतिं। अस्य। सुऽक्षितौ। उभा। तुरेते इतिं। अभि। मातरां। शिशुंम्। प्राचाऽजिह्नम्। ध्वसर्यन्तम्। तुषुऽच्युतम्। आ। साच्यम्। कुपयम्। वर्धनम्। पितुः॥३॥

पदार्थ:-(कृष्णप्रुतौ) विद्वदुपदेशेन चित्ताकर्षणवृत्तिं प्राप्नुवत्यौ (वेविजे) भृशं बिभीतः। ओविजीभयचलनयोरित्यस्माद् यङ्लुगन्ताद् व्यत्ययेनात्मनेपदमेकवचनं च। (अस्य) (सिश्चितौ) सह निवसन्त्यौ (उभा) उभे (तरेते) (अभि) (मातरा) मातरौ धात्रीजनन्यौ (शिशुम्) बालेकम् (प्राच्यितह्म्) प्राक्दुग्धप्रदानादितः पूर्वं समन्ताज्जिह्ना यस्य तम् (ध्वसयन्तम्) चाञ्चल्येनिधः पतन्तिम्। ध्वसु ध्वंसु अधःपतन इत्यस्मात् स्वार्थे णिच्। (तृषुच्युतम्) क्षिप्रं पतितम्। तृष्विति श्लिप्रनामसु पिठतम्। (निघं०२.१५) (आ) (साच्यम्) साचितुं समवेतुं योग्यम् (कुपयम्) गोपनीयम् (वर्धनम्) वर्द्धियतारम् (पितुः) जनकस्य॥३॥

अन्वय:-यं प्राचाजिह्नं ध्वसयन्तं तृषुच्युतमासाच्यं कुपयं पितुर्वानं शिश् सक्षितौ मातराभितरेते अस्य तावुभा मातरा कृष्णप्रुतौ वेविजे॥३॥

भावार्थ:-सदसद्ज्ञानवर्द्धकं रोगादिक्लेशनिवारकं प्रेमोत्पादकं विद्वदुपदेशं प्राप्ते अपि बालकस्य जनन्यौ निजप्रेम्णा सर्वदा बिभीत:॥३॥

पदार्थ:-जिस (प्राचाजिह्नम्) दुग्ध आदि के देने से पहिले अच्छे प्रकार जीभ निकालने (ध्वसयन्तम्) गोदी से नीचे गिरने (तृषुच्युतम्) स शीघ्र गिर हुए (आ, साच्यम्) अच्छे प्रकार सम्बन्ध करने अर्थात् उठा लेने (कुपयम्) गोपित रखने योग्य और (पितुः) पिता का (वर्द्धनम्) यश वा प्रेम बढ़ानेवाले (शिशुम्) बालक को (सक्षितौ) एक साथ रहनेवाली (मातरा) धायी और माता (अभि, तरेते) दुःख से उत्तीर्ण करती (अस्य) इस बालक की वे (उभा) दोनों मातायें (कृष्णप्रतौ) विद्वानों के उपदेश से चित्त के आकर्षण धर्म को प्राप्त हुई (वेविजे) निरन्तर कँपती हैं अर्थात् डरती हैं कि कथंचित् बालक को दुःख न हो॥३॥

भावार्थ:-भले-ब्रुरे का ज्ञान बढ़ाने, रोग आदि बढ़े क्लेशों को दूर करने और प्रेम उत्पन्न करानेवाले विद्वानों के उपदेश को पाये हुए भी बालक की माता अर्थात् दूध पिलानेवाली धाय और उत्पन्न करनेवाली निज माता अर्थने प्रेम से सर्वदा डरती हैं॥३॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

भुमुक्ष्वो रे मनवे मानवस्यते रघुदुर्वः कृष्णसीतास ऊ जुर्वः।

असुमुना अंजि्रासो रघुष्यदो वार्तजूता उर्प युज्यन्त आ्शर्वः॥४॥

मुमुक्ष्वः। मनेवे। मानवस्यते। रघुऽद्ववः। कृष्णऽसीतासः। ऊम् इति। जुर्वः। असमनाः। अजिरासिः। रघुऽस्यदः। वार्तऽजूताः। उप। युज्यन्ते। आशर्वः॥४॥

पदार्थ:-(मुमुक्ष्व:) मोक्तुमिच्छन्तु:। अत्र जसादिषु वा वचनमिति गुणाभाव (मन्वे) (मन्वे) (मानवस्यते) मानवान् आत्मन इच्छते (रघुदुव:) ये रघून्यास्वादनीयान्यन्नानि द्रवन्ति (कूष्णसीतासः) कृष्णा कृषिसाधिनी सीता येषां ते (उ) (जुव:) जववन्तः (असमनाः) असमानम्बस्काः (अजिरासः) प्राप्तशीलाः (रघुष्यदः) ये रघूषु स्यन्दन्ते (वातजूताः) वात इव जूतं शीघ्रगमनं येषान्ते (उप) (कुज्यन्ते) अत्र व्यत्ययेनात्मनेपदम्। (आशवः) शुभगुणव्यापिनः॥४॥

अन्वयः-ये मुमुक्ष्वस्ते यथा रघुदुवो जुवोऽसमना अजिरासो रघुष्यदो वातजूत आश्वः कृष्णसीतासः कृषीवलाः कृषिकर्मण्युपयुज्यन्ते तथा मानवस्यते मनवे विदुषे योगिन उपयुज्यन्ताम्॥४॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। यथा कृषीवलाः क्षेत्राणि म्राम्यक् कर्षित्वा सुसंपाद्य वीजानि उप्त्वा फलवन्तो जायन्ते तथा मुमुक्षवो दमेनेन्द्रियाण्याकृष्य शमन मन उपशाम्य स्वात्मानं पवित्रीकृत्य ब्रह्मविदो जनान् सेवेरन्॥४॥

पदार्थ:-जो (मुमुक्ष्व:) संसार से छूटने की इच्छा किर्मेखाले हैं, वे जैसे (रघुदुव:) स्वादिष्ठ अत्रों को प्राप्त होनेवाले (जुव:) वेगवान् (असमना:) एकसा जिसका मन न हो (अजिरास:) जिनको शील प्राप्त है (रघुष्यद:) जो सन्मार्गों में चलनेवाले (वातजूता:) और पवन के समान वेगयुक्त (आशव:) शुभ गुणों में व्याप्त (कृष्णसीतास:) जिनके कि खिती का काम निकालनेवाली हर की यष्टि विद्यमान वे खेतीहर खेती के कामों का (3) तर्क-वितर्क के साथ (उप, युज्यन्ते) उपयोग करते हैं, वैसे (मानवस्यते) अपने को मनुष्यों की इच्छा करनेवाले (मुन्ने) मनुन्धील विद्वान् योगी पुरुष के लिये उपयोग करें॥४॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकत्पूप्तोपमाल ङ्कार है। जैसे खेती करनेवाले जन खेतों को अच्छे प्रकार जोत बोने के योग्य भली भाति करके और उसमें बीज बोय फलवान् होते हैं, वैसे मुमुक्षु पुरुष यम-नियम से इन्द्रियों को खैंच और शम अर्थात् शान्तिभाव से मन को शान्त कर अपने आत्मा को पवित्र कर ब्रह्मवेता जनों क्री सेवा करें। ४॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

क्रिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

आदेस्य ते ध्वसर्यन्तो वृथेरते कृष्णमभ्वं महि वर्षः करिक्रतः।

युन्सी मुह्ममुर्वेन प्राभि मर्भृशदभिश्चसन्स्तुनयुन्नेति नानंदत्॥५॥५॥

आत्। अस्या ते। ध्वसर्यन्तः। वृथां। ईर्ते। कृष्णम्। अर्ध्वम्। महिं। वर्षः। करिक्रतः। यत्। सीम्। महीम्। अवर्मिम्। म्रा अभि। मर्मृशत्। अभिऽश्वसन्। स्तनर्यन्। एति। नानंदत्॥५॥ अष्टक-२। अध्याय-२। वर्ग-५-७

मण्डल-१। अनुवाक-२१। सूक्त-१४०

१५२९

पदार्थ:-(आत्) आनन्तर्ये (अस्य) (ते) (ध्वसयन्तः) ध्वसिमवाचरन्तः (वृथा) मिथ्या (ईरते) (कृष्णम्) वर्णम् (अभ्वम्) अभवन्तम् (मिह्ह) महत् (वर्षः) (करिक्रतः) येऽतिशयेन कुर्वन्ति (यत्) ये (सीम्) सर्वतः (महोम्) महतीम् (अविनम्) पृथिवीम् (प्र) (अभि) (मर्मृशत्) अतिशयम् सहमानः) (अभिश्वसन्) सर्वतः श्वसन्प्राणं धरन् (स्तनयन्) विद्युदिव शब्दयन् (एति) गच्छिति (नानवत्) अतिशयम नादं कुर्वन्॥५॥

अन्वय:-यद्ये कृष्णमभ्वं महि वर्षो ध्वसयन्तः करिक्रतो वृथा प्रेरते तेऽस्य मोक्षस्य प्राप्तिं नाहिन्ति, यो महीमवनिमभिमर्मृशदभिश्वसन् नानदत् स्तनयन् शुभान् गुणान् सीमेति आत् स मुक्तिमाप्नोब्वि॥५॥

भावार्थ:-ये मनुष्या इह शरीरमवलम्ब्याधर्ममाचरन्ति ते दुहं बन्धनमाप्नुवन्ति, ये च शास्त्राण्यधीत्य योगमभ्यस्य धर्ममनुतिष्ठन्ते तेषामेव मुक्तिर्जायत इति॥५॥

पदार्थ:-(यत्) जो (कृष्णम्) काले वर्ण के (अभ्वम्) न होनेबाले (मृहि) बड़े (वर्ष:) रूप को (ध्वसयन्त:) विनाश करते हुए से (करिक्रत:) अत्यन्त कार्य कर्मकाल जन (वृथा) मिथ्या (प्रेरते) प्रेरणा करते हैं (ते) वे (अस्य) इस मोक्ष की प्राप्ति को नहीं योग्य हैं, जो (महीम्) बड़ी (अवनिम्) पृथिवी को (अभि, मर्मृशत्) सब ओर से अत्यन्त सहता (अभिश्वस्ति) सब और से श्वास लेता हुआ (नानदत्) अत्यन्त बोलता और (स्तनयन्) बिजुली के समान गर्जना करता अच्छे गुणों को (सीम्) सब ओर से (एति) प्राप्त होता है (आत्) इसके अनन्तर वह मृद्धित को प्राप्त होता है॥५॥

भावार्थ:-जो मनुष्य इस संसार में शरीर का आश्रम कर अधर्म करते हैं, वे दृढ़ बन्धन को पाते हैं और जो शास्त्रों को पढ़ योगाभ्यास कर, धर्म का अनुष्ठान करते उन्हीं की मुक्ति होती है॥५॥

के जुन इह शीभन्त इत्याह॥

कौन मनुष्य इस जगत् में शिशायमांच हाते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

भूषुत्र योऽधि बुभूषु नम्निते वृषेव पत्नीर्भ्येति रोर्म्वत्।

ओजायमानस्तन्वश्च श्रुप्भते भीमो न शृङ्गा दविधाव दुर्गृभि:॥६॥

भूषेन्। न। यः। अधि बभूषु प्रमिते। वृषांऽइव। पत्नीः। अभि। एति। रोरुवत्। ओजायमानः। तन्वः। च। शुम्भते। भीमः। न। शृङ्गा दुविध्यवा दुःऽगृभिः॥६॥

पदार्थ:-(भूषन्) अलंकुर्वन् (न) इव (यः) (अधि) (बभूषु) धर्मं धरन्तीषु (नम्नते) (वृषेव) यथा वृषा (पत्नीः) (यज्ञपम्बन्धिनीः स्त्रियः (अभि) (एति) प्राप्नोति (रोरुवत्) अतिशयेन शब्दयन् (ओजायमानः) अजि इवाचरन् (तन्वः) तनुः शरीराणि (च) (शुम्भते) सुशोभते। अत्र व्यत्येनात्मनेपदम्। (भीमः) भयङ्करः (न) इव (शृङ्गा) शृङ्गाणि (दिविधाव) भृशं चालयित (दुर्गृभिः) दुःखेन ग्रहीतुं योग्रः। भूद्रा

अन्वय:-यो भूषन्नेव बभूष्विधनम्नते पत्नी रोरुवद् वृषेव बलं दुर्गृभिर्भीमः सिंहः शृङ्गा नेवौजायमानस्तन्वश्चे शुम्भते दिवधाव सोऽत्यन्तं सुखमभ्येति॥६॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। ये सिंहवच्छत्रुदुर्ग्राह्या वृषभवद् बलिष्ठाः पुष्टाऽ रोग्यस्रिरेर् महौषधिसेविन: सर्वान् सज्जनान् भूषयेयुस्तेऽत्र सुशोभन्ते॥६॥

पदार्थ:-(य:) जो (भूषन्) अलंकृत करता हुआ (न) सा (बभूषु) धर्म की धरिणा करनेवालियों में (अधि, नम्नते) अधिक नम्न होता वा (पत्नी:) यज्ञसम्बन्ध करनेवाली स्त्रियों को (रोरुवत्) अत्यन्त बातचीत कह सुनाता वा (वृषेव) बैल के समान बल को और (दुर्गृभि:) दु:ख्य से पकड़िने योग्य (भीम:) भयङ्कर सिंह (शृङ्गा) सींगों को (न) जैसे वैसे (ओजायमान:) बैल के समान आचरण करता हुआ (तन्व:) शरीर को (च) भी (शुम्भते) सुन्दर शोभायमान करता वा (दृषिधाव) निरन्तर चलाता अर्थात् उनसे चेष्टा करता, वह अत्यन्त सुख को (अभि, एति) प्राप्त होता है। इस

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो मनुष्य सिंह के तुल्य शत्रुओं से अग्राह्म, बैल के तुल्य अति बली, पुष्ट, नीरोग शरीरवाले, बड़ी ओषिधयों के सेवक स्वयं सञ्जनों को शोभित करें, वे इस जगत् में शोभायमान होते हैं॥६॥

पुनस्तमेव विषय्माह

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

स संस्तिरो विष्टिर सं गृभायति जानक्षेव जोन्त्रीर्नित्य आ श्रीये। पुनर्वर्धन्ते अपि यन्ति देव्यमुन्यद्वर्षः पुत्रोः क्रुणवते सर्चा॥७॥

सः। सम्ऽस्तिरः। विऽस्तिरः। सम् गृश्यायोता जानन्। एव। जानतीः। निर्त्यः। आ। शृये। पुनः। वर्धन्ते। अपि। यन्ति। देव्यम्। अन्यत्। वर्षः। पुनोः। कुण्वते। सर्चा॥७॥

पदार्थ:-(स:) (संस्ति) सम्प्रमाच्छादकः (विस्तिरः) सुखविस्तारकः (सम्) (गृभायित) गृह्णाति। अत्र हस्य श्नः शायम्। (जानन्) (एव) (जानतीः) ज्ञानयुक्ताः (नित्यः) (आ) (शये) (पुनः) (वर्धन्ते) (अपि) (यन्ति) (देव्यप्) देवेषु विद्वत्सु भवम् (अन्यत्) (वर्षः) रूपम् (पित्रोः) जननीजनकयोः (कृण्वते) कुर्वन्ति (सचा) सपवेतम्॥७॥

अन्वय:-ह्रे मनुष्या! यथा स संस्तिरो विष्टिरो विद्वान् संगृभायित तथा जानन्नित्योऽहं जानतीरेवाशये। ये पित्रोरन्यद्देव्यं वर्प्रोरुपियस्ति ते पुनर्वर्धन्ते कृण्वत च तथा यूयमिप सचा कुरुत॥७॥

भाषार्थः भाषार्थः वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यैर्विद्यावद्भिः सह विदुषीणां विवाहो जायते ते नित्यं वर्धन्ते। ये सदुणान् मृह्णन्ति तेऽत्र पुरुषार्थिनो भूत्वा जन्मान्तरेऽपि सुखिनो जायन्ते॥७॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! जैसे (सः) वह (संस्तिरः) अच्छा ढांपने (विष्टिरः) वा सुख फैलानेवाला विद्वान् अम्, गृभायति) सुन्दरता से पदार्थों का ग्रहण करता वैसे (जानन्) जानता हुआ (नित्यः) नित्य अष्टक-२। अध्याय-२। वर्ग-५-७

मण्डल-१। अनुवाक-२१। सूक्त-१४०

१५३१

मैं (जानती:) ज्ञानवती उत्तम स्त्रियों के (एव) ही (आ, शये) पास सोता हूँ। जो (पित्रो:) माता-पिता के (अन्यत्) और (देव्यम्) विद्वानों में प्रसिद्ध (वर्ष:) रूप को (अपि, यन्ति) निश्चय से प्राप्त होते हैं, वे (पुन:) बार-बार (वर्द्धन्ते) बढ़ते हैं और (कृण्वते) उत्तम-उत्तम कार्यों को भी करते हैं, हिंसे (पुम:) (सचा) मिला हुआ काम किया करो॥७॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जिन विद्वानों के साथ विदुर्ष्य स्त्रियों का विवाह होता है, वे विद्वान् जन नित्य बढ़ते हैं, जो उत्तम गुणों का ग्रहण करते वे यहाँ पुरुषार्थी होकर जन्मान्तर में भी सुखयुक्त होते हैं॥७॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।

तम्युवं: केशिनी: सं हि रेभिर ऊर्ध्वास्तंस्थुर्ममुषी: प्रायवे पुनेः तासां जरां प्रमुञ्जन्नेति नानंददसुं परं जनयंज्जीवमस्त्रिम्।।४।।

तम्। अग्रुवं:। केशिनीं:। सम्। हि। रेभिरे। ऊर्ध्वा:। तस्यु:। मुमुर्धि:। प्र। आयवे। पुनिरित्तं। तासाम्। जुराम्। प्रऽमुञ्जन्। पृति। नानंदत्। असुम्। पर्रम्। जुनर्यन्। जीवम्। अतितम्। ।।

पदार्थ:-(तम्) विद्वांसं पितम् (अग्रुवः) अग्रमण्याः (केशिनीः) प्रशंसनीयकेशाः (सम्) (हि) खलु (रेभिरे) (ऊर्ध्वाः) उच्चपदव्यः (तस्थुः) तिष्ठित् (प्रमुषीः) म्रियमाणाः (प्र आयवे) प्रापणाय (पुनः) (तासाम्) (जराम्) वृद्धावस्थाम् (प्रमुद्धन्) हापग्रन् (एति) प्राप्नोति (नानदत्) (असुम्) प्राणम् (परम्) इष्टम् (जनयन्) प्रकाशयन् (जीवम्) जीवात्मानम् (अस्तृतम्) अहिंसितम्॥८॥

अन्वयः-या अग्रुवः केशिनीस्तं सूर्विभिरे ता हि प्रायवे मम्रुषीः पुनरूर्ध्वास्तस्थुः। योऽस्तृतं परमसुं जीवं नानदत् तासां जरां प्रमुञ्जन् विद्या जनयन् सुशिक्षाः प्रचार्यित स उत्तमं जन्मैति॥८॥

भावार्थ: -याः कन्या ब्रह्मचर्य्येणाऽखिला विद्या अभ्यस्यन्ति ता इह प्रशंसिता भूत्वा बहुसुखं भुक्त्वा जन्मान्तरेऽपि श्रेष्ठं सुखं प्राप्नुवन्ति, ये विद्वांसोऽपि शरीरात्मबलं न हिंसन्ति ते जरारोगरिहता जायन्ते॥८॥

पदार्थ:-जो (अग्रुव:) अग्रगण्य (केशिनी:) प्रशंसनीय केशोंवाली युवास्था को प्राप्त होती हुई कन्या (तम्) उस् विद्वान् प्रति को (सं, रेभिरे) सुन्दरता से कहती हैं वे (हि) ही (प्रायवे) पठाने (भेजने) अर्थात् दूसरे देश उस पित के पहुंचाने को (ममुषी:) मरी सीं हों (पुन:) फिर उसी के घर आने समय (अर्ध्वा:) अंची पदवी पाये हुई सी (तस्थु:) स्थिर होती हैं, जो (अस्तृतम्) नष्ट न किया गया (परम्) सबको इष्ट (असुम्) ऐसे प्राण को वा (जीवम्) जीवात्मा को (नानदत्) निरन्तर रटावे और (तास्थाः) उत्पन्न कराता हुआ उत्तम शिक्षाओं का प्रचार कराता है, वह उत्तम जन्म (एति) पाता है॥८॥

भावार्थ:-जो कन्याजन ब्रह्मचर्य के साथ समस्त विद्याओं का अभ्यास करती हैं, वे इस संसार में प्रशंसित हो और बहुत सुख भोग जन्मान्तर में भी उत्तम सुख को प्राप्त होती हैं और जो विद्वान लोग भी शरीर और आत्मा के बल को नष्ट नहीं करते, वे वृद्धावस्था और रोगों से रहित होते हैं।

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अधीवासं परि मातू रिहन्नहं तुवियेभिः सत्वंभिर्याति वि ज्रयः। वयो दर्धत्पद्वते रेरिहत्सदानु श्येनी सचते वर्तनीरहं॥९॥

अधीवासम्। परिं। मातुः। रिहन्। अहं। तुविऽश्रेभिः। सत्वंऽभिः। याति। वि। ह्रयः। वर्षत्। पुत्ऽवते। रेरिहत्। सदा। अनुं। श्येनी। सुचते। वर्तुनिः। अहं॥९॥

पदार्थ:-(अधीवासम्) अधीवासिमव घासादिकम् (पिर्म) (भातु:) मान्यप्रदायाः पृथिव्याः (रिहन्) परित्यजन् (अह) (तुविग्रेभिः) बहुशब्दविद्धः (सल्मिषः) प्राणिभिः (याति) प्राप्नोति (वि) (ज्रयः) वेगयुक्तः (वयः) आयुः (दधत्) धरन् (पद्वते) प्राची विद्यते थस्य तस्मै (रेरिहत्) अतिशयेन त्यजेत् (सदा) (अनु) (श्येनी) श्येनस्य स्त्री (सचते) प्राप्नि (वर्ति)ः) वर्त्तमानः (अह) निरोधे॥९॥

अन्वय:-हे वीर! यथा ज्रयोऽग्निमातुरिधवासं परिष्टिन्नहे तुर्विष्रेभिः सत्विभिर्वियाति यथा च वर्त्तनिः श्येनी वयो दधत् पद्धते सचते तथा दुष्टाननु रेरिहत् सन् भवान् सदाह् विप्लियात्॥ १०००

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार्या हे मनुष्प्रा! यथाऽग्निर्जङ्गलानि दहति पर्वतान् त्रोटयति तथाऽन्यायमधार्मिकांश्च निवर्त्य दुष्टानामभिष्नान् त्रोटेश्नित्वा सत्यधर्मं यूयं प्रचारयत॥९॥

पदार्थ:-हे वीर! जैसे (ज्रयः) वेनयुक्त अनि (मातुः) मान देनेवाली पृथिवी के (अधिवासम्) ऊपर से शरीर को जिससे ढांपते उस वस्त्र के समान घास आदि को (पिर, रिहन्) परित्याग करता हुआ (अह) प्रसिद्ध में (तुविग्रेभिः) बहुत शब्दों बाले (सत्विभिः) प्राणियों के साथ (वि, याति) विविध प्रकार से प्राप्त होता है और जैसे (क्रिनेन्दः) वर्तमान (श्येनी) बाज पक्षी की स्त्री वाजिनी (वयः) अवस्था को (दधत्) धारण करती हुई (पहते) पुग्ने वाले द्विपद-चतुष्पद प्राणी के लिये (सचते) प्राप्त होती है, वैसे दुष्टों को (अनु, रेरिहत्) अनुक्रमासे बार-बार छोड़ते हुए आप (सदा) (अह) ही उनको निग्रह स्थान को पहुंचाओ॥९॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! जैसे अग्नि जङ्गलादिकों को जलाता वा गर्वतो को तोड़ता, वैसे अन्याय और अधर्मात्माओं की निवृत्ति कर और दुष्टों के अभिमानों को तोड़ के अत्यधर्म का तुम प्रचार करो॥९॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

अष्टक-२। अध्याय-२। वर्ग-५-७

मण्डल-१। अनुवाक-२१। सूक्त-१४०

१५३३

अस्मार्कमग्ने मुर्घवत्सु दीदिह्यध् श्वसीवान्वृष्भो दमूनाः। अवास्या शिशुमतीरदीदेवीमैव युत्सु परिजर्भुराणः॥१०॥६॥

अस्मार्कम्। अग्ने। मुघर्वत्ऽसु। दीदिहि। अर्ध। श्वसीवान्। वृष्टभः। दमूनाः। अवऽअस्य। शिशुऽमोतिः। अदीदेः। वर्मऽइव। युत्ऽसु। परि्ऽजर्भुराणः।१०॥

पदार्थ:-(अस्माकम्) (अग्ने) पावक इव वर्त्तमान (मघवत्सु) बहुधनेष्ट्र (दौदिहि) प्रकाशय (अध) अनन्तरम् (श्वसीवान्) प्राणवान् (वृषभः) श्रेष्ठः (दमूनाः) दान्तः (अवास्य) विरुद्धतया प्रक्षिप्य। अत्रान्येषामपीति दीर्घः। (शिशुमतीः) प्रशस्ताः शिशवो बालका विद्यन्ते यासा ताः (अदीदेः) प्रकाशयेः (वर्मेव) कवचिमव (युत्सु) संग्रामेषु (परिजर्भुराणः) परितः सर्वतोऽतिशयेष पुष्यत्। १४०।।

अन्वय:-हे अग्ने! वृषभो दमूना: श्वसीवान् परजर्भुराणस्त्वमस्माकं युत्सु मघवत्स् वर्मव शिशुमतीर्दीदिहि। अध दु:खान्यवास्य सुखान्यदीदे:॥१०॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। हे विद्वन्! संग्रामे यथा वम्मीणा शरीरे रक्ष्यते तथा न्यायेन प्रजा रक्षे: संग्रामे स्त्रियो न हन्या:। यथा धनाढ्यानां स्त्रियो नित्यं मोदन्ते तथैव प्रजा मोदये:॥१०॥

पदार्थ:-हे (अग्ने) पावक के समान वर्तमान विद्वाम (वृष्ट्ये:) श्रेष्ठ (दमूना:) इन्द्रियों का दमन करनेवाले (श्वसीवान्) प्राणवान् और (परिजर्भुराण:) सब ओर से पृष्ट होते हुए आप (अस्माकम्) हमारे (युत्सु) संग्राम और (मघवत्सु) बहुत हैं धन जिनमें उन घरें वा मित्रवर्गों में (वर्मेव) कवच के समान (शिशुमती:) प्रशंसित बालकोंवाली स्त्री वा प्रवाओं को (दीदिहि) प्रकाशित करो (अध) इसके अनन्तर दु:खों के (अवास्य) विरुद्धता से दूर पहुंचन सुखों को (अदीदे:) प्रकाशित करो॥१०॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालाङ्कार है। है विद्वान्! संग्राम में जैसे कवच से शरीर संरक्षित किया जाता है, वैसे न्याय से प्रजाजनों की रक्षी कीजिये और युद्ध में स्त्रियों को न मारिये। जैसे धनी पुरुषों की स्त्रियां नित्य आनन्द भोगती हैं, वैसे ही प्रजाजनों को आनन्दित कीजिये॥१०॥

पुन्स्त्रेमेव विषयमाह॥

फिर रेसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

इदमंन् सुधितं दुर्धितादेधि प्रियादं चिन्मन्मनः प्रेयो अस्तु ते।

यते शुक्रीतुन्वो ३ रोचेते शुचि तेनास्मभ्यं वनसे रत्नमा त्वम्॥११॥

ड्डदम् असे। सुर्धितम्। दुःऽर्धितात्। अर्धि। प्रियात्। ऊम् इति। चित्। मन्मनः। प्रेयः। अस्तु। ते। यत्। ते। शुक्रम्। तुन्धः। रोचते। शुचि। तेने। अस्मभ्यम्। वनुसे। रत्नम्। आ। त्वम्॥११॥

पदार्थ:-(इदम्) (अग्ने) विद्वन् (सुधितम्) सुष्ठु धृतम् (दुर्धितात्) दुःखेन धृतात् (अधि) (प्रियात्) (उ) वितर्के (चित्) अपि (मन्मनः) मम मनः (प्रेयः) अतिशयेन प्रियम् (अस्तु) भवतु (ते)

तुभ्यम् (यत्) (ते) तव (शुक्रम्) शुद्धम् (तन्वः) शरीरस्य (रोचते) (शुचि) पवित्रकारकम् (तेन) (अस्मभ्यम्) (वनसे) संभजिस (रत्नम्) (आ) (त्वम्)॥११॥

अन्वय:-हे अग्ने! दुर्धितादु प्रियात् सुधितिमदं मन्मनस्ते प्रेयोऽस्तु यत्ते चित् तन्वः शुचि सुक्रमेषिरोक्ते तेनास्मभ्यं त्वं रत्नमावनसे॥११॥

भावार्थ:-मनुष्यैर्दु:खात्र शोचितव्यं सुखाद्य न हर्षितव्यं यतः परस्परस्योपकारीय चित्रं संलग्येत यदैश्वर्यं तत्सर्वेषां सुखाय विभज्येत॥११॥

पदार्थ:-हे (अग्ने) विद्वान्! (दुर्धिताद्) दुःख के साथ धारण किये हुए व्यक्षहार (उ) या तो (प्रियात्) प्रिय व्यवहार से (सुधितम्) सुन्दर धारण किया हुआ (इदम्) यह (मन्मनः) मेरा मन (ते) तुम्हारा (प्रेयः) अतीव प्यारा (अस्तु) हो और (यत्) जो (ते) तुम्हारे (चित्र) निश्चय के साथ (तन्वः) शरीर का (शुचि) पवित्र करनेवाला (शुक्रम्) शुद्ध पराक्रम (अधिरोधते) अधिकतर प्रकाशमान होता है (तेन) उससे (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिये (त्वम्) आप (रत्नार्भ) संगोहर धन का (आ, वनसे) अच्छे प्रकार सेवन करते हैं॥११॥

भावार्थ:-मनुष्यों को दु:ख से सोच न करना चाहिये और न सुख से हर्ष मानना चाहिये, जिससे एक-दूसरे के उपकार के लिये चित्त अच्छे प्रकार लगाया जाये और जो ऐश्वर्य हो, वह सब के सुख के लिये बांटा जाये॥११॥

पुनस्तुमेव विषयमाहै॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

रथाय नार्वमुत नो गृहाय नित्यारिश्री पुद्धवी रास्यग्ने।

अस्माकं वीराँ उत नो मुघ्रोनी जनाँ या पारयाच्छर्म या चं॥ १२॥

रथाय। नार्वम्। उता नुः। जृह्यया नित्ये अरित्राम्। पुत्ऽवतीम्। राप्ति। अग्ने। अस्माकम्। वीरान्। उता नुः। मुघोनः। जनान्। चु। या। पुरयात्। प्रामी या। चु। १२॥

पदार्थ:-(रथाय) समुद्रादिषु रमणाय (नावम्) बृहती नौकाम् (उत्) अपि (नः) अस्माकम् (गृहाय) निवासस्थानाय (निस्यापित्राम्) नित्यानि अरित्राणि नौस्तम्भनानि जलगाम्भीर्य्यपरीक्षकाणि यस्यां ताम् (पद्वतीम्) पृष्टा इव प्रशस्तानि चक्राणि विद्यन्ते यस्यां ताम् (रासि) ददासि (अग्ने) प्राप्तशिल्पविद्य (अस्माकम्) (वीरान्) अतिरथान्योद्धृन् (उत्) अपि (नः) अस्मान् (मघोनः) धनाढ्यान् (जनान्) प्रसिद्धान् विद्युः (ज्ञ) (या) (पारयात्) समुद्रपारं गमयेत् (शर्म) गृहम् (या) (च)॥१२॥

अन्वयः - हे अग्ने विद्वँस्त्वं या अस्माकं वीरानुत मघोनो जनान्नोऽस्माँश्च समुद्रं पारयात्, या च नः शर्मागमयेत् तां नित्यार्रां नावं नो रथायोत गृहाय रासि॥१२॥ अष्टक-२। अध्याय-२। वर्ग-५-७

मण्डल-१। अनुवाक-२१। सूक्त-१४०

१५३५

भावार्थ:-विद्वद्भिर्यथा मनुष्या अश्वादयश्च पद्भ्यां गच्छन्ति तादृशीं बृहतीं नावं रचयित्वा द्वीपान्तरे समुद्रे युद्धाय व्यवहाराय च गत्वाऽऽगत्य ऐश्वर्योन्नतिः सततं कार्य्या॥१२॥

पदार्थ:-हे (अग्ने) शिल्पविद्या पाये हुए विद्वान्! आप (या) जो (अस्माकम्) हम् विरान्) वीरों (उत) और भी (मघोनः) धनवान् (जनान्) मनुष्यों और (नः) हम लोगों को (च) भी समुद्र के (पारयात्) पार उतारे (च) और (या) जो हमको (शर्म) सुख को अच्छे प्रकार प्राप्त करे, उस (नित्यारित्राम्) नित्य दृढ़ बन्धनयुक्त जल की गहराई की परीक्षा करते हुए स्तम्भी तथा (पद्वतीम्) पैरों के समान प्रशंसित पहियों से युक्त (नावम्) बड़ी नाव को (नः) हमारे (रथाय) समुद्र आदि में रमण के लिये (उत) वा (गृहाय) घर के लिये (रासि) देते हो॥१२॥

भावार्थ:-विद्वानों को चाहिये कि जैसे मनुष्य और घोड़े आदि पशु प्रेरों से चलते हैं, वैसे चलनेवाली बड़ी नाव रच के और एक द्वीप से दूसरे द्वीप वा समुद्र में युद्धा अथवा व्यवहार के लिये जाय-आय [जाना-आना] करके ऐश्वर्य की उन्नति निरन्तर करें॥ श्राता

पुनस्तमेव विषयमाह।

फिर उसी विषय को अगले सिन्त्रामें कहा हैं॥

अभी नो अग्न उक्थमिज्जुंगुर्या द्यावाक्षामा सिन्धंबश्च विगूर्ताः। गव्यं यव्यं यन्तो दीर्घाहेषं वर्गमरुण्यो वरन्ता। १३/१७॥

अभि। नः। अग्ने। उक्थम्। इत्। जुगुर्याः। द्वाबाक्षामा। सिन्धवः। च। स्वऽर्गूर्ताः। गर्व्यम्। यर्व्यम्। यन्तेः। द्वीर्घा। अहा। इषम्। वरम्। अरुण्येः। वुर्नु॥ १००१

पदार्थ:-(अभि) आभिमुख्ये। अत्र सहित्रोधामिति दीर्घ:। (न:) अस्मान् (अग्ने) विद्वन् (उक्थम्) प्रशंसनीयम् (इत्) (जुगुर्या:) उद्याचिः। उद्यामनः कुर्याः (द्यावाक्षामा) अन्तरिक्षं भूमिश्च (सिन्धवः) समुद्रा नद्यश्च (च) (स्वगूर्ताः) स्वेरुद्यताः (ग्रव्यम्) गोर्विकारं दुग्धादिकं सुवर्णादिकम्वा (यव्यम्) यवानां भवनं क्षेत्रम् (यन्तः) प्राप्नुवन्तः (दीर्घा) द्वीष्ट्राणि (अहा) दिनानि (इषम्) अन्नम् (वरम्) रत्नादिकम् (अरुण्यः) उषःकाला (वर्गन्) स्वीक्रुर्यः। अत्र व्यत्ययेन शप्॥१३॥

अन्वय:-यथा द्यावाक्षामा सिन्धवोऽरुण्यश्च वरिमषमुक्थं गव्यं यव्यं यन्तः स्वगूर्ताः सन्तः दीर्घाहावरन्त तथाग्ने नोऽभीज्जुगुर्य्याः॥१३०।

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। मनुष्यैः सदा पुरुषार्थिभिर्भवितव्यं यैर्यानैः भूम्यन्तरिक्ष्म्भमुद्दन्तिषु सुखेन सद्यो गमनं स्यात् तानि यानान्यारुह्य प्रतिदिनं रजन्याश्चतुर्थे प्रहर उत्थाय दिवसेऽस्रुप्त्वा सदा प्रयतितव्यं यत उद्यमिन ऐश्वर्यमुपयन्त्यत इति॥१३॥

अञ्चे विद्वत्पुरुषार्थगुणवर्णनादेतत्सूक्तार्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेद्यम्॥

इति चत्वारिशदुत्तरं शततमं १४० सूक्तं सप्तमो ७ वर्गश्च समाप्त:॥

पदार्थ:-जैसे (द्यावाक्षामा) अन्तरिक्ष और भूमि (सिन्धवः) समुद्र और नदी तथा (अरुण्यः) उष:काल (च) और (वरम्) उत्तम रत्नादि पदार्थ (इषम्) अत्र (उक्थम्) प्रशंसनीय (गव्यम्) गौ का दूध आदि वा (यव्यम्) जौ के होनेवाले खेत को (यन्तः) प्राप्त होते हुए (स्वगूर्त्ताः) अपने-अपने स्वाभाविक गुणों से उद्यत (दीर्घा) बहुत (अहा) दिनों को (वरन्त) स्वीकार करें, वैसे हे (अग्ने) विह्नास्! (मः) हम लोगों को (अभि, इत्, जुगुर्याः) सब ओर से उद्यम ही में लगाइये॥१३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को सदा पुरुषार्थी होना चाहिए। जिन यानों से भूमि, अन्तरिक्ष, समुद्र और निदयों में सुख से शीघ्र जाना हो, उन्रायानों पर चढ़कर प्रतिदिन रात्रि के चौथे पहर में उठकर और दिन में न सोकर सदा प्रयत्न करना चाहिये, जिससे उद्यमी ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं॥१३॥

इस सूक्त में विद्वानों के पुरुषार्थ और गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है, यह जानना चाहिये॥

यह एक सौ चालीसवां १४० सूक्त और सातवां ७ वर्ग समाप्त हुआ।।

बळित्थेत्यस्य त्रयोदशर्चस्यैकचत्वारिशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य दीर्घतमा ऋषिः। अग्निर्देवता। १,२,३,६,११ जगती। ४,७,९,१० निचृज्जगती छन्दः। निषादः स्वरः। ५ स्वराट् त्रिष्टुप्। ८ भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। १२ भुरिक् पङ्क्तिः। १३ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चपः।

स्वर:॥

पुनर्विद्वद्वणानुपदिशति॥

अब एक सौ इकतालीसवें सूक्त का आरम्भ है। उसके प्रथम मन्त्र में फिर विद्वानी के गुणों का उपदेश करते हैं।।

बळित्था तद्वपुषे धायि दर्शतं देवस्य भर्गः सहसा यतो जिन। यदीमुप् ह्वरते साधते मृतिर्ऋतस्य धेनां अनयन्त सुस्रुतः। ১৯१।

बट्। इत्था। तत्। वर्षेषे। धायि। दुर्शतम्। देवस्य। भर्गः। सहसः। यतः। व्रीने। यत्। ईम्। उप। ह्वरते। साधते। मृतिः। ऋतस्य। धेनाः। अनुयन्त्। सुऽस्रुतः॥ १॥

पदार्थ:-(बट्) सत्यम् (इत्था) अनेन प्रकारेण विदुषः (तत्) (वंपुषे) सुरूपाय (धायि) ध्रियेत (दर्शतम्) दृष्टव्यम् (देवस्य) विदुषः (भर्गः) शुद्धं तेजः (सहसः) विद्याबलवतः (यतः) (जिन) उत्पद्यते। अत्राऽडभावः। (यत्) (ईम्) सर्वतः (उप) (ह्ररते) (साधते) (प्रतिः) प्रज्ञा (ऋतस्य) सत्यस्य (धेनाः) वाण्यः (अनयन्त) नयन्ति (सस्रुतः) याः समानं सृत्यं पार्गं स्नुत्रन्ति ताः॥१॥

अन्वयः-हे मनुष्या! यद् दर्शतं देवस्य भार्मि प्रति मम् स्रितिरुपह्नरते साधते च सस्रुत ऋतस्य धेना ईमनयन्त यतस्तत् सहसो जनि ततस्तद् बिडित्था वपुषे युष्मुर्ध्भिर्भिया। १५।

भावार्थ:-हे मनुष्या! यया प्रजया प्राची मत्याचारेण च विद्यावतां द्रष्टव्यं स्वरूपं ध्रियते कामश्च साध्यते तां वाचं तत्सत्यं च यूयं निद्भयं स्त्रीकुरुता। १॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! (यत्) जिस (दर्शतम्) देखने योग्य (देवस्य) विद्वान् के (भर्गः) शुद्ध तेजः के प्रति मेरी (मितः) बुद्धि (उपहरते) जाती कार्यसिद्धि करती और (सस्रुतः) जो समान सत्यमार्ग को प्राप्त होतीं वे (ऋतस्य) स्वय व्यवहार की (धेनाः) वाणियों को (ईम्) सब ओर से (अनयन्त) सत्यता को पहुंचाती तथा (यतः) जिस कारण (तत्) वह तेज (सहसः) विद्याबल से (जिन) उत्पन्न होता उस कारण (बिडित्था) वह सत्य तेज अर्थात् विद्वानों के गुणों का प्रकाश इस प्रकार अर्थात् उक्त रीति से (वपुषे) अपने सुरूप के लिये तुम लोगों से (धायि) धारण किया जाय॥१॥

भार्षार्थः हि में भूष्यो! जिस उत्तम बुद्धि और सत्य आचरण से विद्यावानों का देखने योग्य स्वरूप धारण किया जाता और काम सिद्ध किया जाता उस वाणी और उस सत्य आचार को तुम नित्य स्वीक्रीर कर्रा।१॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

पृक्षो वर्षुः पितुमान्नित्य आ श्रीये द्वितीयमा सप्तिश्रीवासु मातृषुं। तृतीयमस्य वृष्भस्य दोृहसे दर्शप्रमितं जनयन्त योषणः॥२॥

पृक्षः। वर्षुः। पितुऽमान्। नित्येः। आ। शृये। द्वितीर्यम्। आ। सप्तऽशिवासु। मातृष्ठ्वं। तृतिर्यम्। अस्य। वृष्पभस्ये। दोहसे। दर्शऽप्रमतिम्। जनयन्त्। योर्षणः॥२॥

पदार्थ:-(पृक्ष:) प्रष्टव्यम् (वपु:) सुन्दरं रूपम् (पितुमान्) प्रशस्तीत्रयुक्तः (नित्य:) नित्यस्त्वरूपः (आ) (शये) (द्वितीयम्) (आ) (सप्तिशवासु) सप्तिवधासु कल्याणकारिणीषु (मातृषु) मान्यकारिकासु (तृतीयम्) (अस्य) (वृषभस्य) यज्ञादिकर्मद्वारा वृष्टिकरस्य (विहसे) कामानां प्रपूर्णाय (दशप्रमितम्) दशधा प्रकृष्टा मतिर्यस्मिंस्तम् (जनयन्त) प्रकटयन्ति (वैषिधाः) मिश्रणशीला युवतयः॥२॥

अन्वयः-नित्यः पितुमान् अहं प्रथमं पृक्षो वपुराशयेऽस्य वृषभस्य मम् द्वितीयं स्रातिशिवासु मातृष्वावर्तते तृतीयं दशप्रमितं वपुर्दोहसे योषणो जनयन्त॥२॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। ये मनुष्या अत्र सर्ग्तविधेषु लोकेषु ब्रह्मचर्येणादिमं गृहाश्रमेण द्वितीयं वानप्रस्थसंन्यासाभ्यां तृतीयं कर्मोपासनिवज्ञान लाभेन्त ते दशानामिन्द्रियाणां प्राणानां च विषयमनोबुद्धि- चित्ताऽहङ्कारजीवानां च ज्ञानं प्राप्नुविद्धारि।

पदार्थ:-(नित्य:) नित्य (पितुमान्) प्रशंसित अत्रयुक्त मैं पहिले (पृक्ष:) पूंछने कहने योग्य (वपु:) सुन्दररूप का (आ, शये) आशय लेक अर्थात् आश्रित होता हूँ (अस्य) इस (वृषभस्य) यज्ञादि कर्म द्वारा जल वर्षानेवाले का मेरा (द्वितीश्रम्) दूसरा प्रनुद्दर रूप (सप्तिशवासु) सात प्रकार की कल्याण करने (मातृषु) और मान्य करनेवाली मालाओं के समीप (आ) अच्छे प्रकार वर्तमान और (तृतीयम्) तीसरा (दशप्रमितम्) दश प्रकार की उत्तम मित जिसमें होती उस सुन्दररूप को (दोहसे) कामों की परिपूर्णता के लिये (योषण:) प्रत्येक व्यवहारों को मिलानेवाली स्त्री (जनयन्त) प्रकट करती हैं॥२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोप्रमालङ्कार है। जो मनुष्य इस जगत् में सात प्रकार के लोकों में ब्रह्मचर्य से प्रथम, गृहात्रम से दूसरे और वानप्रस्थ वा संन्यास से तीसरे कर्म और उपासना के विज्ञान को प्राप्त होते वे दश इन्द्रियों, देश प्राणों के विषयक मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार और जीव के ज्ञान को प्राप्त होते हैं॥२॥٨

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

्रियदीं बुध्नान्महिषस्य वर्षस ईशानासः शर्वसा क्रन्तं सूरयः। यदीपनुं प्रदिवो मध्वं आधुवे गुहा सन्तं मातुरिश्वां मथायति॥३॥ अष्टक-२। अध्याय-२। वर्ग-८-९

मण्डल-१। अनुवाक-२१। सूक्त-१४१

१५३९

निः। यत्। ईम्। बुध्नात्। मृहिषस्ये। वर्षसः। ईशानासेः। शर्वसा। क्रन्ते। सूरयेः। यत्। ईम्। अनु। प्रुऽदिवेः। मध्वेः। आऽध्वे। गुह्नी। सन्तेम्। मातुरिश्ची। मथायिति॥३॥

पदार्थ:-(नि) नितराम् (यत्) यम् (ईम्) इमं प्रत्यक्षम् (बुध्नात्) अन्तरिक्षात् (महिष्यु) मिहतः मिहष इति महन्नामसु पठितम्। (निघं०३.३) (वर्षसः) रूपस्य। वर्ष इति रूपनामसु पठितम्। (निघं०३.७) (ईशानासः) ऐश्वर्ययुक्ताः (शवसा) बलेन (क्रन्त) क्रमन्तु (सूरयः) विद्वांसः (यत्) ये (ईम्) (अनु) (प्रदिवः) प्रकृष्टद्युतिमतः (मध्वः) विज्ञानयुक्तस्य (आधवे) समन्तात्प्रक्षेपणे (गुहा) बुद्धौ (सन्तम्) (मातरिश्वा) प्राणः (मथायति) मथ्नाति। अत्र छन्दिस शायजपीति शायन्। उत्त

अन्वयः-यत् ईशानासः सूरयश्शवसा यथाधवे मातिरश्वाऽग्निं मथायित तश्च महिषस्य वर्पसः सम्बन्धे स्थितं बुध्नादीमनुक्रन्त मध्वः प्रदिवो गुहा सन्तमीं यत् निष्क्रन्त ततस्ते सुखिनो जायन्ते॥॥॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। त एव ब्रह्मविदो जायन्ते ह्ये धर्माऽनुष्ठानयोगाभ्यासं सत्सङ्गं च कृत्वा स्वात्मानं विदित्वा परमात्मानं विदन्ति त एव मुमुख्युभ्य एतं ज्ञापयितुमर्हन्ति॥३॥

पदार्थ:-(यत्) जो (ईशानासः) ऐश्वर्ययुक्त (सूरयः) किद्वान जन (शवसा) बल से जैसे (आधवे) सब ओर से अन्न आदि के अलग करने के निम्ति (मातिरश्चा) प्राण वायु जाठराग्नि को (मथायित) मथता है वैसे (मिहषस्य) बड़े (वर्षसः) रूप अर्थात् सूर्यमण्डल के सम्बन्ध में स्थित (बुध्नात्) अन्तरिक्ष से (ईम्) इस प्रत्यक्ष व्यवहार क्रो (अनुक्रन्तं) अनुक्रम से प्राप्त हों वा (मध्वः) विशेष ज्ञानयुक्त (प्रदिवः) कान्तिमान् आत्मा के (गुह्मा गृहाश्चर में अर्थात् बुद्धि में (सन्तम्) वर्तमान (ईम्) प्रत्यक्ष (यत्) जिस ज्ञान को (निष्क्रन्त) निरम्बर क्रम से ग्राप्त हों, उससे वे सुखी होते हैं॥३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलु प्राप्ति होर्र है। वे ही ब्रह्मवेत्ता विद्वान् होते हैं, जो धर्मानुष्ठान, योगाभ्यास और सत्सङ्ग करके अपने अत्मा को जान परमात्मा को जानते हैं और वे ही मुमुक्षु जनों के लिये इस ज्ञान को विदित कराने के योग्य होते हैं॥३॥

पुनम्तमेव विषयमाह॥

फिर उर्सी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

प्र यत्पितुः पर्पात्रीयते पर्या पृक्षुधी वीरुधो दंस् रोहति।

उभा यद्स्य जुनुषुं यदिन्वंत आदिद्यविष्ठो अभवद् घृणा शुचिः॥४॥

प्रा यूत्। पृतुः। प्रमात्। नीयते। पिर्। आ। पृक्षुर्धः। वीरुर्धः। दम्ऽसुं। रोहृति। उभा। यत्। अस्य। जनुर्षम्। यत्। इन्वंतः (आत्। इत्। यविष्ठः। अभवत्। घृणा। शुचिः॥४॥

पदार्थ:-(प्र) (यत्) (पितुः) अन्नम् (परमात्) उत्कृष्टात् प्रयत्नात् (नीयते) प्राप्यते (पिर) (आ) (पृक्षुधः) प्रकर्षेण क्षोधितुं भोक्तुमिष्टाः। क्षुध बुभुक्षायाम्। अत्र कर्मणि क्विप् पृषोदरादित्वात् पूर्वसंप्रसारणं द्वी (चीक्थः) अतिविस्तृता लताः (दंसु) दमेषु (रोहति) वर्द्धते (उभा) उभौ (यत्) (अस्य) वृक्षजातेः

(जनुषम्) जन्म (यत्) (इन्वतः) प्रियस्य (आत्) आनन्तर्य्ये (इत्) एव (यविष्ठः) अतिशयेन युवा यविष्ठः (अभवत्) भवेत् (घृणा) दीप्तिः (शुचिः) पवित्रा॥४॥

अन्वय:-पुरुषेण परमात् यदस्य पितुः प्रणीयते यो दंसु पृक्षुधो वीरुधः पर्य्यारोहत्यादिन्वतो यजनुषम्भवत् यद्यः शुचिर्घृणाऽभवत् तावुभा इदेव यविष्ठो जनः प्राप्नुयात्॥४॥

भावार्थ:-मनुष्येरन्नमौषधं च सर्वतो ग्राह्यं तत्संस्कृतेन भुक्तेन सर्वं सुखं भवक्री<mark>ति मन्तर</mark>्थम्॥४॥

पदार्थ:-पुरुष से (परमात्) उत्कृष्ट उत्तम यत्न के साथ (यत्) जो (अस्य) प्रत्यक्ष वृक्षणति का सम्बन्धी (पितुः) अत्र (प्रणीयते) प्राप्त किया जाता है वा जो (दंसु) दूसरों के दबाने आदि के निमित्त में (पृक्षुधः) अत्यन्त भोगने को इष्ट (वीरुधः) अत्यन्त पौंडी हुई लताओं प्र (पर्स्यारोहति) चारों और से पौंडता है (आत्) और (इन्वतः) प्रिय इस यजमान का (यत्) जो (जनुष्म) जान (अभवत्) हो तथा (यत्) जो (शुचिः) पवित्र (घृणा) चमक-दमक हो उन (उभा) दोनों को (इत्) ही (यविष्ठः) अत्यन्त तरुण जन प्राप्त होवे॥४॥

भावार्थ:-मनुष्यों को चाहिये कि अन्न और औषध सब से लेवें और संस्कार किये अर्थात् बनाये हुए उस अन्न के भोजन से समस्त सुख होता है, ऐसा जानि मिहियो। ४॥

पुनस्तमेव विषयमाह।

फिर उसी विषय को अंगले मेर्च में कहा है॥

आदिन्मात्राविशृद्यास्वा शुचिरहिंस्युमान उर्बिया वि वावृधे।

अनु यत्पूर्वा अर्महत्सनाजुवो नि न्व्यंसीष्ववरासु धावते॥५॥८॥

आत्। इत्। मात्ः। आ। अविशृत्। चार्षु। आ। शुचिः। अहिंस्यमानः। उर्विया। वि। वृवृधे। अनुं। यत्। पूर्वाः। अर्रुहत्। सुनाऽजुर्वः। नि। नव्यम्भोषु। अर्वरासु। धावते॥५॥

पदार्थ:-(आत्) आनन्तर्थे (इत्) एव (मातृः) मातृवन्मान्यप्रदा ओषधीः (आ) (अविशत्) विशति (यासु) (आ) (शुचिक्ष्) (अहिंस्यमानः) अहिंसितः सन् (उर्विया) बहुना (वि) (वावृधे) वर्द्धते। अत्र तुजादीनामित्यभ्यास्दैष्यम्। (अन्) (यत्) यः (पूर्वाः) (अरुहत्) वर्धयति (सनाजुवः) सनातनी जूर्वेगो यासां ताः (न) (मळ्यापु) अतिशयेन नवीनासु (अवरासु) अर्वाचीनासु (धावते) सद्यो गच्छति॥५॥

अन्वयृर्ं यासु नव्यसीष्ववरास्वोषधीषु निधावते यद्यस्सनाजुवः पूर्वा ओषधीरन्वरुहत् स तास्वाशुचिरह्रिस्यमान् सन् डर्विया विवावृध आदिन्मातृराविशत्॥५॥

भावार्थः - ये पुरुषा वैद्यकविद्यामधीत्य महौषधानि युक्त्या सेवन्ते ते बहु वर्द्धन्ते। ओषधयो द्विविधा भवन्ति प्राक्ताना नवीनाश्च तासु ये विचक्षणा भवन्ति त एवारोगा जायन्ते॥५॥

अष्टक-२। अध्याय-२। वर्ग-८-९

मण्डल-१। अनुवाक-२१। सूक्त-१४१

पदार्थ:-जो (यासु) जिन (नव्यसीषु) अत्यन्त नवीन और (अवरासु) पिछली ओषधियों के निमित्त (नि, धावते) निरन्तर शीघ्र जाता है वा (यत्) जो (सनाजुव:) सनातन वेगवाली (पूर्वा:) पिछली ओषधियों को (अन्, अरुहत्) बढ़ाता है, वह उन ओषधियों में (आ, शृचि:) अच्छे प्रकार पिक्रि और (अहिंस्यमान:) विनाश को न प्राप्त होता हुआ (उर्विया) बहुत प्रकार (विवावधे) विशेषता से बहुता है (आत्) इसके पीछे (इत्) हो (मात्:) माता के समान मान करनेवाली ओषधियों क्रों (आ, अविशत्) अच्छे प्रकार प्रवेश करता है॥५॥

भावार्थ:-जो पुरुष वैद्यक विद्या को पढ, बडी-बडी ओषधियों का ख्रक्ति के साथ सेवन करते हैं, वे बहुत बढ़ते हैं। ओषधी दो प्रकार की होती हैं अर्थात् पुरानी और न्र्वीन्रउनमें जो विचक्षण चतुर होते हैं, वे ही नीरोग होते हैं॥५॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।

आदिद्धोतारं वृणते दिविष्टिषु भगमिव पपृचानास् ऋक्ते।

देवान्यत्क्रत्वा मुज्मना पुरुष्टुतो मर्तुं शंसं विश्व**ध्य वै**ति **धो**र्यसे॥६॥

आत्। इत्। होतारम्। वृण्ते। दिविष्टिषु। भर्गम्रइब्। पुण्चेन्मर्सः। ऋञ्चते। देवान्। यत्। क्रत्वा। मुज्मना। पुरुऽस्तुत:। मर्तम्। शंसम्। विश्वर्धा। वेति। धायसे॥६ 🖊

पदार्थ:-(आत्) (इत्) (होतारम्) द्वितारम् (क्वणते) संभजन्ति (दिविष्टिषु) दिव्यासु इष्टिषु (भगमिव) यथा धनैश्वर्यम् (पपृचानासः) বেদুর্কু কুর্বাস্থা: (ऋञ्जते) भृञ्जति (देवान्) दिव्यान् गुणान् (यत्) यः (क्रत्वा) कर्मणा प्रज्ञया वा (मज्म्ना) बिलेन) (पुरुष्टुतः) पुरुभिर्बहुभिः प्रशंसितः (मर्त्तम्) मनुष्यम् (शंसम्) प्रशंसितम् (विश्वधा) यो ब्रिश्वं देशाति सः (वेति) प्राप्नोति (धायसे) धारणाय॥६॥

अन्वय:-यद्य: पुरुष्टुतो विश्वेषा क्रत्वा मर्सुना धायसे शंसं मर्त्तं देवाँश्च वेति तमाद्धोतारं ये पप्रचानासो दिविष्टिषु भगमिव वृणते त इद् दु:खान्युञ्जते दहेन्ति॥६॥

भावार्थ:-अत्रोपनालुङ्कार:) ये सद्वैद्यं रत्निमव सेवन्ते ते शरीरात्मबला भूत्वा सुखिनो जायन्ते॥६॥

पदार्थ:-(यत्) जो (पुरुष्टुत:) बहुतों ने प्रशंसा किया हुआ (विश्वधा) विश्व को धारण करनेवाला (क्रत्वा) कर्म वर्ष विशेष बुद्धि से और (मज्मना) बल से (धायसे) धारणा के लिये (शंसम्) प्रशंसायुक्त (मर्तम्) मृतुष्य के और (देवान्) दिव्य गुणों को (वेति) प्राप्त होता है, उसको (आत्) और (होतारम्) देनेवाले<mark>⁄को जो (**पपृचानास:**) सम्बन्ध करते हुए जन (दिविष्टिषु) सुन्दर यज्ञों में (भगमिव)</mark> धन ऐश्वर्य्य के स्मान (ब्रुणते) सेवते हैं वे (इत्) ही दु:खों को (ऋअते) भूंजते हैं अर्थात् जलाते हैं॥६॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो अच्छे वैद्य का रत्न के समान सेवन करते हैं, वे शरीर और आत्मा के बलवाले होकर सुखी होते हैं॥६॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

वि यदस्थाद्यज्ञतो वार्तचोदितो ह्यारो न वक्वा जरणा अनांकृतः। तस्य पत्मन्द्रक्षुषं: कृष्णजंहसः शुचिजन्मनो रज् आ व्यध्वनः॥७॥

वि। यत्। अस्थात्। युज्तः। वार्तऽचोदितः। ह्वारः। न। वक्वां। जुरणाः। अनौकृतः। तस्यो पत्मेन्। ध्रक्षुषः। कृष्णऽजंहसः। शुचिऽजन्मनः। रजः। आ। विऽअध्वनः॥७॥

पदार्थ:-(वि) विशेषेण (यत्) यः (अस्थात्) तिष्ठेत् (यजतः) संगत्ता (वातचोदितः) वायुना प्राणेन वा प्रेरितः (ह्वारः) कुटिलतां कारयन् (न) इव (वक्वा) वक्ता (जरणा) स्तुतयः (अनाकृतः) न आकृतो न निवारितः (तस्य) (पत्मन्) (धक्षुषः) दहतः (कृष्णजेहसः) कृष्णानि जंहांसि हननानि यस्मिंस्तस्य (शुचिजन्मनः) शुचेः पवित्राज्जन्म यस्य तस्य (स्जः) कृष्णः (आ) (व्यध्वनः) विरुद्धोऽध्वा यस्य सः॥७॥

अन्वय:-यद्यो यजतो वक्वा अनाकृतो वातचोदिते विद्वान ह्वासेश्रीगर्न व्यस्थात् तस्य शुचिजन्मनः पत्मन्मार्गे कृष्णजंहसो धक्षुष आ व्यध्वनोऽग्ने रज इव जरणाः प्रशंसा जायन्ते॥७॥

भावार्थ:-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्करी। ये धर्म्भमातिष्ठन्ति ते सूर्य इव प्रसिद्धा जायन्ते, तत्कृता कीर्त्तिः सर्वास् दिक्षु विराजते॥७॥

पदार्थ:-(यत्) जो (यजतः) सङ्ग करने और (वक्वा) कहनेवाला (अनाकृतः) रुकावट को न प्राप्त हुआ (वातचोदितः) प्राण वा पवेष से प्रेरित विद्वान् (ह्वारः) कुटिलता करते हुए अग्नि के (न) समान (व्यस्थात्) विशेषता से स्थिर है (तस्य) उस (शुचिजन्मनः) पवित्रजन्मा विद्वान् के (पत्मन्) चाल-चलन में (कृष्णजंहसः) काले मारने हैं जिसके उस (धक्षुषः) जलाते हुए (आ, व्यध्वनः) अच्छे प्रकार विरुद्ध मार्गवाले अग्नि के (रुज्ञः) कण के समान (जरणाः) प्रशंसा स्तुति होती हैं॥७॥

भावार्थ:-इस मेन्त्र में अपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जो धर्म में अच्छी स्थिरता रखते हैं, वे सूर्य के समृत्स प्रसिद्ध होते हैं और उनकी की हुई कीर्त्ति सब दिशाओं में विराजमान होती हैं॥७॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

र्था न यातः शिक्वंभिः कृतो द्यामङ्गेभिररुषेभिरीयते।

आदेभ्य ते कृष्णासों दक्षि सूरयः शूर्रस्थेव त्वेषर्थादीषते वर्यः॥८॥

अष्टक-२। अध्याय-२। वर्ग-८-९

मण्डल-१। अनुवाक-२१। सूक्त-१४१

१५४३

रर्थः। न। यातः। शिक्वंऽभिः। कृतः। द्याम्। अङ्गेभिः। अ्रुष्वेभिः। ई्यते। आत्। अस्य। ते। कृष्णासिः। धृक्षिः। सूरर्यः। शूर्रस्यऽइव। त्वेषर्थात्। ई्षते। वर्यः॥८॥

पदार्थ:-(रथ:) रमणीयं यानम् (न) इव (यात:) प्राप्तः (शिक्विभः) कीलक भाषिभि (कृतः) संपादितः (द्वाम्) आकाशम् (अङ्गेभिः) अङ्गैः (अरुषेभिः) रक्तैर्गुणैः (ईयते) गर्छति (अत्) आनन्तर्ये (अस्य) (ते) (कृष्णासः) ये कृषन्ति ते (धिक्ष) दहिस। अत्र शपो लुक् (सूरवः) विद्वांसः (शूरस्येव) यथा शूरवीरस्य (त्वेषथात्) प्रदीप्तात् (ईषते) पश्यन्ति (वयः) पक्षिण इवेष्टा।

अन्वय:-कृष्णासः सूरयः शिक्वभिः कृतो द्यामरुषेभिरङ्गेभिस्सह यातो रथ ईयते नेव वय इवे शूरस्येव त्वेषथाद् व्यवहारादिव कलाकौशलादीषते सुखमाप्नुवन्ति। हे विद्वन्नाद्यस्त्वमग्निरिव पापानि धक्षिर्शास्त्रुक्ते सुखं जायते॥८॥

भावार्थ:-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। यथा शोभनेन विम्मनेनान्तरिक्षी गमनाऽऽगमने सुखेन जनाः कुर्वन्ति तथा विद्वांसो विद्यया धर्म्ये मार्गे विचरितुं शक्नुवन्ति॥८॥

पदार्थ:-(कृष्णास:) जो खींचते हैं वे (सूरय:) विद्वान जैसे (शिक्विभ:) कीलें और बन्धनों से (कृत:) सिद्ध किया (द्याम्) आकाश को (अरुषेभि:) लाल रहें वाले (अट्गेभि:) अङ्गों के साथ (यात:) प्राप्त हुआ (रथ:) रथ (ईयते) चलता है (न) वैसे के (इषते) देखते हैं वे सुख पाते हैं। हे विद्वन्! (आत्) इसके अनन्तर जो आप अग्नि के समान पाणें को (धिक्ष) जलाते हो (अस्य) इन (ते) आपको सुख होता है॥८॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमा और बाचकलुप्तोर्थमालङ्कार हैं। जैसे उत्तम विमान से अन्तरिक्ष में आना-जाना सुख से जन करते हैं, वैसे विद्विन जने विद्या से धर्म सम्बन्धी मार्ग में विचरने को समर्थ होते हैं॥८॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषये को अगले मन्त्र में कहा है॥

त्वया ह्यंने वर्मणो धूतवेनो मित्रः शाशिद्रे अर्थमा सुदानवः।

यत्सीमनु क्रतुनी विश्वभी विभुरुरान्न नेमिः परिभूरजायथाः॥९॥

त्वर्या। द्विर अग्ने। कर्रणः। धृतऽव्रेतः। मित्रः। शाशद्रे। अर्यमा। सुऽदानवेः। यत्। सीम्। अर्नु। क्रतुना। विश्वऽर्था। विऽभ्रुः। अर्गम्। न। नेमिः। पुरिऽभूः। अर्जायथाः॥९॥

प्रदार्थ: (त्वया) (हि) खलु (अग्ने) विद्वन् (वरुण:) श्रेष्ठः (धृतव्रतः) धृतसत्यः (मित्रः) (शाशद्रेश्रं शातयेः (अर्यमा) न्यायाधीशः (सुदानवः) सुष्ठु दानं येषान्ते (यत्) ये (सीम्) सर्वतः (अनु) (क्रत्नुना) प्रत्रेषा (विश्वया) सर्वथा (विभुः) व्यापक ईश्वरः (अरान्) चक्रस्याऽवयवान् (न) इव (नेमिः) व्यक्तम् (परिभूः) सर्वेषामुपरि भवतीति (अजायथाः) जायेथाः॥९॥

अन्वय:-हे अग्ने! यथा त्वया सह यद्ये वरुणो धृतव्रतो मित्रोऽर्यमा च सुदानवो हि भवन्ति तथा तत्सङ्गेन त्वें नेमिररात्रेव विश्वथा विभुरीश्वर इव क्रतुना परिभू: सीमन्वजायथा यतो दु:खं शाशद्रे छित्रं कुर्या:॥९॥

भावार्थः-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। यथेश्वरो न्यायकारी सर्वासु विद्यासु प्रवीपिति तथा विदुषां सङ्गेन प्राज्ञो न्यायकारी पूर्णविद्यश्च स्यात्॥९॥

पदार्थ:-हे (अग्ने) विद्वान्! जैसे (त्वया) तुम्हारे साथ (यत्) जो (वरुणः) श्रेष्ट (धृतेष्ट्रतः) सत्य व्यवहार को धारण किये हुए (मित्रः) सबका मित्र और (अर्यमा) न्यायाधीश (सुदान्तः) अच्छे दानशील (हि) ही होते हैं, वैसे उनके सङ्ग से आप (नेिमः) पहिआ (अरान्, न) अरों की जैसे चैसे (विश्वया) वा जैसे सब प्रकार से (विभुः) ईश्वर व्यापक है वैसे (क्रतुना) उत्तम बुद्धि से (यरिभूः) सर्वोपिर (सीम्) सब ओर से (अनु, अजायथाः) अनुक्रम से होओ जिससे दुःख को (शाश्वेर) पष्ट करो। शा

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे ईश्वर न्यायकारी और सब विद्याओं में प्रवीण है, वैसे विद्वानों के सङ्ग से बुद्धिमान्, न्यायकारि और पूरी विद्यावाला हो॥९॥

पुनस्तमेव विषयमाह।

फिर उसी विषय को अगले मन्त्रिमें कहा हैं॥

त्वमंग्ने शशमानायं सुन्वते रत्नं यविष्ठ देवतातिमिन्वस्मि।

तं त्वा नु नव्यं सहसो युवन्वयं भगं न कारे महिम्रत्न धीमहि॥ १०॥

त्वम्। अग्ने। शृशमानाये। सुन्वते। रत्नेम् यैविष्ठ्। देव्वर्तातिम्। इन्वसि। तम्। त्वा। नु। नव्यम्। सहसः। युवन्। वयम्। भर्गम्। न। कारे। महिऽरत्ना धीमुहिस्। १०॥

पदार्थ:-(त्वम्) (अग्ने) अग्निरिच वर्तमान विद्वन् (शशमानाय) अधर्ममाप्लुत्य धर्मं प्राप्नुवते (सुन्वते) ऐश्वर्योत्पादकाय (रत्नम्) रमणीयं ज्ञानं साधनं वा (यिवष्ठ) अतिशयेन युवम् (देवतातिम्) देवतामेव परमात्मानम् (इन्विस्) ध्यानयोगेन व्याप्नोषि (तम्) (त्वा) त्वाम् (नु) शीघ्रम् (नव्यम्) नवेषु विद्वत्सु भवम् (सहसः) बल्पस्य (युवन्) श्रोबनं प्राप्नुवन् (वयम्) (भगम्) (न) इव (कारे) कर्तव्ये व्यवहारे (महिरत्न) पूज्येर्गुले रुमणीस्र धीमहि) धरेमहि॥१०॥

अन्वय:-हे सहसौ युक्त युविष्ठ महिरत्नाऽग्ने! यस्त्वं शशमानाय सुन्वते रत्नं देवतातिं चेन्वसि तं नव्यं त्वा कारे भगन्नेव वयनु ध्रीसहि॥१०॥

भावार्थः - येश्रधर्मं विहाय धर्ममनुष्ठाय परमात्मनं प्राप्नुवन्ति तेऽतिरम्यमानन्दमाप्नुवन्ति॥१०॥

पदार्थ: है (सहसः) बलसम्बन्धी (युवन्) यौवनभाव को प्राप्त (यविष्ठ) अत्यन्त तरुण (महिरत्स) प्रशंसा करने योग्य गुणों से रमणीय (अग्ने) अग्नि के समान वर्तमान विद्वान्! जो (त्वम्) आप (शृष्ट्रामाय) अधर्म को उल्लंघ के धर्म को प्राप्त हुए (सुन्वते) और ऐश्वर्य को उत्पन्न करनेवाले उत्तम जूने के लिये (रत्नम्) रमणीय ज्ञान वा उसके साधन को और (देवतातिम्) परमेश्वर को (इन्विस्त)

अष्टक-२। अध्याय-२। वर्ग-८-९

मण्डल-१। अनुवाक-२१। सूक्त-१४१

ध्यानयोग से व्याप्त होते हो (तम्) उन (नव्यम्) नवीन विद्वानों में प्रसिद्ध (त्वा) आपको (कारे) कत्तेव्य व्यवहार में (भगम्) ऐश्वर्य के (न) समान (वयम्) हम लोग (नु) शीघ्र (धीमिह) धारण करें॥१०॥

भावार्थ:-जो अधर्म को छोड़ धर्म का अनुष्ठान कर परमात्मा को प्राप्त होते हैं, वे अति मिणीर्थ आनन्द को प्राप्त होते हैं॥१०॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

असमे रियं न स्वर्थं दमूनसं भगं दक्षं न प्रिचासि धर्णसिम्। र्श्मीरिव यो यमित जन्मनी उभे देवानां शंसमृत आ च सुक्रितः।

अस्मे इति। रियम्। न। सुऽअर्थम्। दमूनसम्। भर्गम्। दक्षम्। न। पूर्वचासि। धुर्णसम्। रुश्मीन्ऽईव। यः। यमित। जन्मनी इति। उभे इति। देवानाम्। शंसम्। ऋते। आ। च। सुऽक्रतुः। ११।

पदार्थ:-(अस्मे) अस्मभ्यम् (रियम्) धनम् (न) हूव (स्वर्धम्) सुष्ट्वर्थः प्रयोजनं यस्माद् यद्वाऽनर्थसाधनरिहतम् (दमूनसम्) दमनसाधकम् (भगम्) हेश्वर्थं भजपार्मम् (दक्षम्) अतिचतुरम् (न) इव (पपृचासि) संबध्नाति। अत्र व्यत्ययेन युष्मत्। (धर्णसिम्) भून्तरम्। अत्र बाहुलकादिसः प्रत्ययो नुडागमश्च। (रश्मीरिव) यथा किरणान् तथा (यः) (यपित) यच्छेत्। अत्र लेटि बहुलं छन्दसीति शबभावः। (जन्मनी) पूर्वापरे (उभे) द्वे (देवानाम्) विदुषाम् (शंसम्) प्रशंसाम् (ऋते) सत्ये (आ) (च) (सुकृतुः) शोभनप्रज्ञः॥११॥

अन्वयः – यः सुक्रतुर्विद्वानस्मे स्वर्थं पूर्वे न दम्नस् भगं दक्षं न धर्णसि पपृचासि रश्मीरिव ऋते देवानामुभे जन्मनी शंसं च य आयमति सोऽस्माभिः सक्त्रतिव्यो भवित्रा। ११॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्काराः ये पूर्यरश्मिवत्सर्वान् धर्म्ये पुरुषार्थे संयुञ्जन्ति स्वयं च तथैव वर्त्तन्ते ते गताऽगते जन्मनी पवित्रे कुर्वन्ति॥११॥

पदार्थ:-जो (सुक्रतु) उत्तम बुद्धिबाला विद्वान्! (अस्मे) हम लोगों के लिये (स्वर्थम्) जिससे अच्छे प्रयोजन हो वा जो अनुर्थ साधनों से रहित उस (रियम्) धन के (न) समान (दमूनसम्) इन्द्रियों को विषयों में दबा देने के स्पानिक्प (भगम्) ऐश्वर्य का और (दक्षम्) चतुर के (न) समान (धर्णिसम्) धारण करनेवाले का (पपृचासि) सम्बन्ध करता वा (रश्मींरिव) जैसे किरणों को वैसे (ऋते) सत्य व्यवहार में (देशानाम्) विद्वानों के (उभे) दो (जन्मनी) अगले-पिछले जन्म (च) और (शंसम्) प्रशंसा को (यः) जो (आरे यमित) बढ़ाता है, वह हम लोगों को सत्कार करने योग्य है॥११॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो सूर्य की किरणों के समान सबको धर्मसम्बन्धी पुरुष्ट्रार्थ में संयुक्त करते हैं और आप भी वैसे ही वर्त्तते हैं, वे अगले-पिछले जन्मों को पवित्र करते हैं।

१५४६

ऋग्वेदभाष्यम्

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

उत नेः सुद्योत्मां जीराश्चो होतां मन्द्रः शृणवच्चन्द्रर्रथः। स नो नेषुन्नेषतमैरमूरोऽग्निर्वामं सुवितं वस्यो अच्छी॥१२॥

उता नः। सुऽद्योत्मां। जीरऽअश्व। होतां। मुन्द्रः। शृणुवत्। चुन्द्रऽर्तथः। सः। नः। नेपत्। नेपंडतमेः। अमूरः। अग्निः। वामम्। सुवितम्। वस्यः। अच्छं॥ १२॥

पदार्थ:-(उत) (न:) अस्मान् (सुद्योत्मा) सुष्ठु प्रकाशः (जीराश्वः) जीरा वेमवन्तो बहवोऽश्वा यस्य सः (होता) दाता (मन्द्रः) प्रशंसितः (शृणवत्) शृणुयात् (चन्द्ररथः) चन्त्रं एजतं)सुवर्णं वा रथे यस्य सः (सः) (नः) अस्माकम् (नेषत्) नयेत् (नेषतमैः) अतिशयेन प्राप्तिकारकैः (अमूरः) गन्ता (अग्निः) (वामम्) सुरूपम् (सुवितम्) उत्पादितम् (वस्यः) वस्तुं योग्यः (अञ्च्छ) सर्वक्री॥१२॥

अन्वय:-यो मन्द्रश्चन्द्ररथः सद्योतमा जीराश्चो होता नोऽस्मान् शृणावत्। इताप्य योऽमूरो वस्योऽग्निरिव सुवितं वामं सुरूपं नेषतमैरच्छ नेषत् स नः प्रशंसितो भवति॥१२॥

भावार्थ:-यः सर्वेषां न्यायस्य श्रोता साङ्गोपाङ्गसामित्रिविद्याप्रकाशयुक्तः सर्वान् विद्योत्सुकान् विद्यायुक्तान् करोति स प्रकाशात्मा जायते॥१२॥

पदार्थ:-जो (मन्द्र:) प्रशंसायुक्त (चन्द्ररथः) जिसके रथ में चाँदी, सोना विद्यमान जो (सुद्योत्मा) उत्तम प्रकाशवाला (जीराश्वः) जिसके वेगवान् बहुत घोड़े वह (होता) दानशील जन (नः) हम लोगों को (शृणवत्) सुने (उत) और जो (अमूरः) मस्त्रशील (वस्यः) निवास करने योग्य (अग्निः) अग्नि के समान प्रकाशमान जन (सुवितम्) उत्पन्न किये हुए (वामम्) अच्छे रुप को (नेषतमैः) अतीव प्राप्ति करानेवाले गुणों से (अच्छ) अच्छा (नेषत्) प्राप्त करे (सः) वह (नः) हम लोगों के बीच प्रशंसित होता है॥१२॥

भावार्थ:-जो सबके त्याय का सुननेवीला, साङ्गोपाङ्ग सामग्रीसहित विद्याप्रकाशयुक्त, सब विद्या के उत्साहियों को विद्यायुक्त करता है, वह प्रकाशात्मा होता है॥१२॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

र्फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अस्तर्ष्ट्यस्ति, शिमीविद्धरुकै: साम्राज्याय प्रतुरं दर्धान:।

अमी चु मुघवानो वयं च मिहं न सूरो अति निष्टुंतन्यु:॥१३॥९॥

अस्तांवि। अग्निः। शिमीवत्ऽभिः। अर्कैः। साम्ऽराज्याय। प्रऽतुरम्। दर्धानः। अमी इति। चा ये। प्रऽवांत्रसम्बर्धे। चा मिह्नम्। ना सूर्रः। अति। निः। ततुन्युः।१३॥ अष्टक-२। अध्याय-२। वर्ग-८-९

मण्डल-१। अनुवाक-२१। सूक्त-१४१

१५४७

पदार्थ:-(अस्तावि) स्तूयते (अग्नि:) सूर्य इव सुशीलप्रकाशितः (शिमीवर्द्धः) प्रशंसितकर्मयुक्तैः (अर्कैः) सत्कर्त्तव्यैर्विद्वद्धिः सह (साम्राज्याय) चक्रवर्त्तिनो भावाय (प्रतरम्) प्रतरित् शत्रुबलानि येन तत् सैन्यम् (दधानः) (अमी) (च) (ये) (मघवानः) परमपूजितधनयुक्ताः (वयम्) (महम्) वृष्टिम् (न) इव (सूरः) सूर्यः (अति) (निः) (ततन्युः) विस्तृणीयुः॥१३॥

अन्वय:-यः शिमीवद्भिरकेंः प्रतरं दधानोऽग्निः साम्राज्यायास्तावि ये चामी म<u>ष्ट्रवानः सू</u>रो मिहन्नेव विद्यामितनिष्टतन्युः तं तांश्च वयं प्रशंसेम॥१३॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार। मनुष्यैर्यै धार्मिकैर्विद्वद्भिः सुशिक्षिता धर्मेण याज्यं विस्तृणन्तः प्रयतन्ते, त एव राज्ये विद्याधर्मोपदेशे च संस्थापनीया इति॥१३॥

अत्र विद्वदुणवर्णनादेतत्सूक्तार्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह संगतिर्वर्त्तृ इति विद्यम्।

इत्येकचत्वारिशदुत्तरं शततमं १४१ सूक्तं नवमो ९ वर्गश्च समाजः॥

पदार्थ:-जो (शिमीवद्धि:) प्रशंसित कर्मों से युक्त (अर्के:) सत्कार करने योग्य विद्वानों के साथ (प्रतरम्) शत्रुबलों को जिससे तरें उस सेनागण को (द्धानः) धीरण करता हुआ (अग्निः) सूर्य के समान सुशीलता से प्रकाशित (साम्राज्याय) चक्रवर्ति राज्य के लिये (अस्ताव) स्तुति पाता है (च) और (ये) जो (अमी) वे (मघवानः) परमपूजित धनयुक्त जन (सूरः) सूर्य (महम्) वर्षा को (न) जैसे वैसे विद्या को (अति, नि, ततन्युः) अतीव निरन्तर विस्तारें उस पूर्वोक्त सज्जन (च) और पीछे कहे हुए जनों की (वयम्) हम लोग प्रशंसा करें॥१३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार हैं। जो मनुष्यं धार्मिक विद्वानों से अच्छी शिक्षा को पाये हुए धर्म से राज्य का विस्तार करते हुए प्रयान करते हैं) वे ही राज्य, विद्या और धर्म के उपदेश में अच्छे प्रकार स्थापना करने योग्य हैं॥१३॥

इस सूक्त में विद्वानों के पुणों का बर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति वर्त्तमान है, यह क्रान्ता चाहिये।

यह एक सौ इकताली सवां १४१ सूक्त और नववां ९ वर्ग पूरा हुआ॥

सिमद्ध इत्यस्य त्रयोदशर्चस्य द्विचत्वारिशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य दीर्घतमा ऋषि:। १-४ अग्नि:। ५ बर्हि:। ६ देव्यो द्वार:। ७ उषासानक्ता। ८ दैव्यौ होतारौ। ९ सरस्वतीळाभारत्य:।

0

१० त्वष्टा। ११ वनस्पति:। १२ स्वाहाकृति:। १३ इन्द्रश्च देवता:। १,२,५,६,८,९ 🤇

निचृदनुष्टुप्। ४ स्वराडनुष्टुप्। ३,७,१०-१२ अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः। १३ भुस्निुष्णिक्

छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

अथाध्यापकाध्येतृविषयमाह।।

अब तेरह ऋचावाले एक सौ बयालीसवें सूक्त का आरम्भ है। उसके प्रथम मेन्स्र में अध्यापक और अध्येता के विषय को कहते हैं।।

सिमद्धो अग्न आ वह देवाँ अद्य यतस्रुचे। तन्तुं तनुष्व पूर्व्यं सुतसोमाय दा्शुषे॥ १॥

सम्ऽइंद्धः। अग्ने। आ। वृह् । द्वेवान्। अद्य। यृतऽस्त्रंचे। तन्तुम् (तृनुष्य) पूर्व्यम्। सुतऽसोमाय। दाशुषे॥ १॥ पदार्थः – (सिमद्धः) विद्यया प्रदीप्तोऽध्यापकः (अग्ने) अप्निस्त्रि सुप्रकाश (आ) (वह) प्रापय (देवान्) विदुषः (अद्य) अस्मिन् दिने (यतस्त्रुचे) उद्यतयस्पात्रीय युप्रमानाय (तन्तुम्) विस्तारम् (तनुष्व) विस्तृणीहि (पूर्व्यम्) पूर्वैः कृतम् (सुतसोमाय) निष्पाद्धितमहौषधिरसाय (दाशुषे) दात्रे॥ १॥

अन्वय:-हे अग्ने पावक इव समिद्धो विद्वांस्त्वमहा स्तसुचे सुत्रसोमाय दाशुषे देवानावह पूर्व्यं तन्तुं तनुष्व॥१॥ भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः यथा बाल्ययुवावस्थायां मातापित्रादयः सन्तानान् सुखयेयुस्तथा पुत्रा ब्रह्मचर्येणाधीस्य विद्वा प्राप्तयोवनाः कृतविवाहाः सन्तः स्वान्मातापित्रादीनानन्दयेयुः॥१॥

पदार्थ:-हे (अग्ने) पावक के सेमान उत्तम प्रकाशवाले (सिमद्धः) विद्या से प्रकाशित पढ़ानेवाले विद्वन्! आप (अद्य) आज के दिन (सुतस्मेमाय) जिसने बड़ी-बड़ी ओषधियों के रस निकाले और (यतसुचे) यज्ञपात्र उठाये हैं, उस यज्ञ करनेवाले (दाशुषे) दानशील जन के लिये (देवान्) विद्वानों की (आ, वह) प्राप्ति करो और (पूर्व्यम्) प्राचीनों के किये हुए (तन्तुम्) विस्तार को (तनुष्व) विस्तारो॥१॥

भावार्थ:-इस मेन्त्र में ब्राचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे बालकपन और तरुण अवस्था में माता और पिता आदि स्नृतानों को सुखी करें, वैसे पुत्रलोग ब्रह्मचर्य से विद्या को पढ़ युवावस्था को प्राप्त और विवाह किये हुए अपसे माता-पिता आदि को आनन्द देवें॥१॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

घृतेबन्तुमुपं मासि मधुमन्तं तनूनपात्।

अष्टक-२। अध्याय-२। वर्ग-१०-११

मण्डल-१। अनुवाक-२१। सूक्त-१४२

१५४९

युज्ञं विप्रस्य मार्वतः शशमानस्य दाशुषः॥२॥

घृतऽवन्तम्। उपं। मासि। मधुंऽमन्तम्। तुनूऽनुपात्। युज्ञम्। विष्रस्य। माऽवेतः। शृश्मानस्यं। दाश्रुवंः॥२॥ ○ पदार्थः-(घृतवन्तम्) बहुघृतयुक्तम् (उप) (मासि) परिमिमीषे (मधुमन्तम्) प्रशस्तमधुरिदगुम् युक्तम् (तनूनपात्) यस्तनूं शरीरं न पातयित तत्सम्बुद्धौ (यज्ञम्) (विप्रस्य) मेधाविनेः (मावतः) मत्सदृशस्य (शशमानस्य) दुःखमुल्लङ्घतः (दाशुषः) दातुः॥२॥

अन्वयः-हे तनूनपाद्विद्वँस्त्वं मावतो दाशुषः शशमानस्य विप्रस्य घृतवन्तं मधुमन्तं यूज्ञमुपेससि॥२॥

भावार्थ:-विद्यार्थिभिर्विदुषां संगतिं कृत्वा विद्वदुपमया भवितव्यम्॥२॥

पदार्थ:-हे (तनूनपात्) शरीर को नष्ट न करनेवाले विद्वन्! आप (मानतः) भेरे सदृश (दाशुषः) दानशील (शशमानस्य) और दु:ख उल्लंघन किये (विप्रस्य) मेधावी उर्न के (श्वतवन्तम्) बहुत घृत और (मधुमन्तम्) प्रशंसित मधुरादि गुणों से युक्त (यज्ञम्) यज्ञ का (उप मासि) भीमाण करनेवाले हो॥२॥

भावार्थ:-विद्यार्थियों को विद्वानों की सङ्गति कर विद्वानों के संदूश होना चाहिये॥२॥

पुनस्तमेव विषयम्हा

फिर उसी विषय को अगले फ्रिंग्समें कहा है॥

शुचि: पावको अद्भुतो मध्वा युज्ञं मिमिश्नित। नराशंसुस्त्रिरा दिवो देवो देवेषु युज्ञियः।। दे।।

शुर्चिः। पावकः। अद्धृतः। मध्वा। यूज्ञम्। पिपिश्वति। नराशंसिः। त्रिः। आ। दिवः। देवेषु। युज्ञियः॥३॥

पदार्थ:-(शुचि:) पवित्रः (पानकः) प्रवित्रकारकोऽग्निरिव (अद्भुतः) आश्चर्यगुणकर्मस्वभावः (मध्वा) मधुना सह (यज्ञम्) (मिर्मिश्चति) भेढुं सिश्चितुमलङ्कर्त्तुमिच्छिति (नराशंसः) नरैः प्रशंसितः (त्रिः) त्रिवारम् (आ) समन्तात् (दिवः) कामनातः (देवः) कामयमानः (देवेषु) विद्वत्सु (यज्ञियः) यज्ञं कर्त्तुमर्हः॥३॥

अन्वय:-यः पार्क विद्वती शुचिर्यज्ञियो नराशंसो देवो देवेषु दिवो मध्वा यज्ञं त्रिरामिमिक्षति, स सुखमाप्नोति॥३॥

भावार्थः मपुष्याः कौमारयौवनवृद्धावस्थासु विद्याप्रचाराख्यं व्यवहारं कुर्युस्ते कायिकवाचिकमानुसिकसुखानि प्राप्नुयुः॥३॥

पदार्थ: जो (पावक:) पवित्र करनेवाले अग्नि के समान (अद्भुत:) आश्चर्य गुण, कर्म, स्वभाववाला (शुचि:) पवित्र (यज्ञिय:) यज्ञ करने योग्य (नराशंस:) नरों से प्रशंसा को प्राप्त और (देव:) कम्मना करता हुआ जन (देवेषु) विद्वानों में (दिव:) कामना से (मध्वा) मधुर शर्करा वा सहत से

१५५०

(यज्ञम्) यज्ञ को (त्रि:) तीन वार (आ, मिमिक्षति) अच्छे प्रकार सींचने वा पूरे करने की इच्छा करता हैं वह सुख पाता है॥३॥

भावार्थ:-जो मनुष्य बालकाई, जवानी और बुढ़ापे में विद्याप्रचाररूपी व्यवहार की किरें कायिक, वाचिक और मानसिक सुखों को प्राप्त होवें॥३॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

ईिळ्तो अंग्न आ वहेन्द्रं चित्रमिह प्रियम्। इयं हि त्वां मतिर्ममाच्छां सुजिह्न वच्यते॥४॥

र्डुळित:। अग्ने। आ। वृहु। इन्द्रम्। चित्रम्। डुह। प्रियम्। डुयम्। हिर्ित्वा। प्रितः। मर्म। अच्छी। सुऽजिह्व। वुच्यते॥४॥

पदार्थ:-(ईळित:) प्रशंसित: (अग्ने) सूर्य इव प्रकाशीस्मन् (आ) (वह) (इन्द्रम्) परमैश्वर्यम् (चित्रम्) नानाविधम् (इह) अस्मिन् जन्मिन (प्रियम्) प्रीतिकरम् (इयम्) (हि) किल (त्वा) (मित:) प्रज्ञा (मम) (अच्छ) (सुजिह्व) शोभना जिह्वा मधुरभाषिणी यस्य तस्मिन्बुद्धी (वच्यते) उच्यते॥४॥

अन्वयः-हे सुजिह्वाऽग्ने! ईळितस्त्वमिह प्रियं चित्रसिन्द्रभावह या ममेयं मितस्त्वयाच्छ वच्यते सा हि त्वा प्राप्नोतु॥४॥

भावार्थ:-सर्वे: पुरुषार्थेन विद्वत्प्रज्ञां प्राप्य महदैश्वर्प्य संचेतव्यम्॥४॥

पदार्थ:-हे (सुजिह्न) मधुरभाषिणी जिह्नावाले (अग्ने) सूर्य के समान प्रकाशस्वरूप विद्वान्! (ईडित:) प्रशंसा को प्राप्त हुए आप (इह) इस ज्यूम में (प्रियम्) प्रीति करानेवाले (चित्रम्) चित्र-विचित्र नानाप्रकार के (इन्द्रम्) परमैश्वर्य को (अर् वह) प्राप्त करो जो (मम) मेरी (इयम्) यह (मित:) प्रज्ञा बुद्धि तुम से (अच्छ) अच्छी (वच्चते) कही साती है (हि) वही (त्वा) आप को प्राप्त हो॥४॥

भावार्थ:-सबको पुरुषार्थ से विद्वाली की बुद्धि पाकर महान् ऐश्वर्य का अच्छा संग्रह करना चाहिये॥४॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

स्तृण्यानासो अतस्त्रचो बर्हिर्यज्ञे स्वध्वरे।

कुन्ने देवव्यचस्तम्मिन्द्राय शर्म सुप्रथः॥५॥

स्युणानार्सः। युतऽस्रुचः। बुर्हिः। युज्ञे। सुऽअध्वरे। वृञ्जे। देवव्यचःऽतमम्। इन्द्राय। शर्मे। सुऽप्रर्थः॥५॥

अष्टक-२। अध्याय-२। वर्ग-१०-११ मण्डल-१। अनुवाक-२१। सूक्त-१४२

पदार्थ:-(स्तृणानास:) आच्छादकास्सन्तः (यतस्रचः) प्राप्तोद्यमाः (बर्हिः) बृहत् (यँज्ञे) विद्यादानाख्ये (स्वध्वरे) सुशोभमाने (वृञ्जे) वृञ्जते। अत्र लोपस्त आत्मनेपदेष्वित् तलोपो व्यत्ययेनात्मनेपदं च। (देवव्यचस्तमम्) देवैर्विद्वद्भिर्व्यचो व्याप्तं तदितशियतम् (इन्द्राय) (पर्मेश्वर्याय (शर्म) गृहम् (सप्रथः) प्रख्यातगुणैस्सह वर्त्तमानम्॥५॥

अन्वय:-ये स्वध्वरे यज्ञ इन्द्राय सप्रथो बर्हिर्देवव्यचस्तमं शर्म स्तृणानासस्सन्तो यतस्त्रची भवन्ति ते दु:खदारिद्र्यं वृञ्जे त्यजन्ति॥५॥

भावार्थ:-नह्युद्यमिनोऽन्तरा लक्ष्मीराज्यश्रियौ प्राप्नुत:। ये अत्युक्त विद्वीप्रवासयुक्त गृह आवसन्ति तेऽविद्यादारिद्रये निघ्नन्ति॥५॥

पदार्थ:-जो (स्वध्वरे) उत्तम शोभायुक्त (यज्ञे) विद्यादानरूप राष्ट्रे में (ब्राह्मय) परम ऐश्वर्य के लिये (सप्रथ:) प्रख्यात गुणों के साथ वर्त्तमान (बर्हि:) बड़े (देवव्यवस्तरम्) विद्वानों से अतीव व्याप्त (शर्म) घर को (स्तृणानासः) ढांपते हुए (यतस्रुचः) उद्यम को प्राप्त होते हैं, वे दुःख और दरिद्रपन का (वृञ्जे) त्याग कर देते हैं॥५॥

भावार्थ:-उद्यम करनेवालों के विना लक्ष्मी और रिज्य श्री प्राप्त नहीं होती तथा जो अतीव उत्तम विद्वानों के निवास संयुक्त घर में अच्छे प्रकार वसते हैं, वे अविद्या और दरिद्रता को निरन्तर नष्ट करते हैं॥५॥

पुनस्तुमेव विषयमाहै॥

फिर उसी विषय को अंगले मन्त्र में कहा है॥

वि श्रयन्तामृतावृधः प्रयै देवेभ्यी पहीः

पावकार्सः पुरुस्पृह्ये द्वाग्ने देवीर सुश्चर्तः॥६॥१०॥

वि। श्रयन्ताम्। ऋतुऽवृध्या प्रार्था देवेश्यः। महीः। पावकासः। पुरुऽस्पृहः। द्वारः। देवीः। असुश्चर्तः॥६॥ पदार्थ:-(वि) (श्रयकाम्) सेवन्ताम् (ऋतावृधः) ऋतेन सत्येनाचरणेन विज्ञानेन च वृद्धाः (प्रयै) प्रयितुम् (देवेभ्यः) विद्वद्भाः (मद्गीः) पूज्यतमा वाचः पृथिवी वा। महीति पृथिवीनामसु पठितम्। (निघं०१.१) **महीति वाङ्नामस्) पठितम्।** (निघं०१.११) (पावकासः) पवित्रकारिकाः (पुरुस्पृहः) याः पुरुभि: स्पृह्यन्त क्र्प्स्यन्ते त्रा: (द्वार:) द्वार इव सुशोभिता: (देवी:) कमनीया: (असश्चत:) परस्परं विलक्षणाः॥६//

अर्थय:-है\मनुष्या! देवेभ्यो याः पावकास ऋतावृधः पुरुस्पृहो द्वारो देवीरसश्चतो महीः प्रयै विद्वांसः कामयन्ते ता भवन्त्रे विश्रयन्ताम्।।६॥

भावार्थ:-मनुष्यै: सर्वेषामुपकाराय विद्यासुशिक्षिता वाचो रत्नकर्यो भूमयश्च कमितव्या: तदाश्रयेण प्रिवेत्रता संपादनीया।।६॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! (देवेभ्य:) विद्वानों के लिये जो (पावकास:) पवित्र करनेवाली (ऋतावृध:) सत्य आचरण और उत्तम ज्ञान से बढ़ाई हुई (पुरुस्पृह:) बहुतों से चाही जातीं (द्वार:) द्वारों के समान (देवी:) मनोहर (असश्चत:) परस्पर एक-दूसरे से विलक्षण (मही:) प्रशंसनीय वाणी वा पृथिवी जिनकी (प्रये) प्रीति के लिये विद्वान् जन कामना करते उनका आप लोग (विश्रयन्ताम्) विशेषणा से आश्रय करें॥६॥

भावार्थ:-मनुष्यों को सबके उपकार के लिये विद्या और अच्छी शिक्षायुक्त चाणी और रानों को प्रसिद्ध करनेवाली भूमियों की कामना करनी चाहिये और उनके आश्रय स्रे पवित्रता संपादन करनी चाहिये॥६॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।

आ भन्दमाने उपाकि नक्तोषासा सुपेशसा। यह्यी ऋतस्य मातरा सीदीतां बुर्हिरा सुमत्॥७॥

आ। भन्दंमाने इति। उपिके इति। नक्तोषसा। सुऽपेशसा। यही इति। ऋतस्य। मातरा। सीदंताम्। बहिः। आ। सुऽमत्॥७॥

पदार्थ:-(आ) (भन्दमाने) कल्याणकार्क (उपाके) परस्परमसन्निहितवर्त्तमाने (नक्तोषासा) रात्रिदिने (सुपेशसा) सुरूपे। अत्र सर्वत्र विभक्तेराकोग्गर्देश:। (यह्वी) कारणसूनू (ऋतस्य) सत्यस्य (मातरा) मानियत्र्यौ (सीदताम्) प्राप्नुत: (वर्षि:) उत्तमं गृहम् (आ) (सुमत्) सुष्टु माद्यन्ति हृष्यन्ति यस्मिन् तत्॥७॥

अन्वय:-हे मनुष्या! भवन्तो यथा ऋतस्य मातरा यह्वी उपाके सुपेशसा भन्दमाने नक्तोषासा आसीदतां तद्वदासुमद् बर्हि: प्राप्नुवन्तु॥७॥

भावार्थ:-यथाऽहोराद्धः सर्वान् प्राण्यप्राणिनो नियमेन स्व स्व क्रियासु प्रवर्त्तयति तथा सर्वेविद्वद्भिः सर्वे मनुष्या विक्रियासु प्रवर्तनीयाः॥७॥

पदार्थ:-हे मनुष्यों आणे जैसे (ऋतस्य) सत्य व्यवहार का (मातरा) मान करानेवालीं (यह्नी) कारण से उत्पन्न हुईं (उपाके) एक-दूसरे के साथ वर्त्तमान (सुपेशसा) उत्तम रूपयुक्त और (भन्दमाने) कल्याण करनेवाली (भक्तोषासा) रात्रि और प्रभात वेला (आ, सीदताम्) अच्छे प्रकार प्राप्त होवें जैसे (आ, सुमत्र) जिस्से बहुत आनन्द को प्राप्त होते हैं, उस (बर्हि:) उत्तम घर को प्राप्त होओ॥७॥

भावार्थ:-जैसे दिन-रात्रि समस्त प्राणी-अप्राणी को नियम से अपनी अपनी क्रियाओं में प्रवृत्त कराती है, वैसे सब विद्वानों को सर्वसाधारण मनुष्य उत्तम क्रियाओं में प्रवृत्त करने चाहिये॥७॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

अष्टक-२। अध्याय-२। वर्ग-१०-११

मण्डल-१। अनुवाक-२१। सूक्त-१४२

१५५३८

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

मुन्द्रजिह्वा जुगुर्वणी होतारा दैव्या कवी।

युज्ञं नो यक्षतामिमं सिध्रमुद्य दिविस्पृश्मेम्॥८॥

मुन्द्रऽजिह्वा। जुगुर्वणी इति। होतारा। दैव्या। कवी इति। युज्ञम्। नुः। युक्षुताम्। दुप्पम्। भूष्यम्। अद्य। द्विविऽस्पृश्णम्॥८॥

पदार्थ:-(मन्द्रजिह्वा) मन्द्रा प्रशंसिता जिह्वा ययोस्तौ (जुगुर्वणी) अत्यन्तेषुद्यमिनौ (होतारा) आदातारौ (दैव्या) देवेषु दिव्येषु गुणेषु भवौ (कवी) विक्रान्तप्रज्ञौ (यज्ञम्) विद्यादिप्राप्तिस्मधकं व्यवहारम् (नः) अस्मभ्यम् (यक्षताम्) संयच्छेते (इमम्) (सिध्रम्) मङ्गलकरम् (अद्यो) अस्मभ्य (दिवस्पृशम्) प्रकाशे स्पर्शनिमित्तम्॥८॥

अन्वय:-हे मनुष्या! यथाऽद्य मन्द्रजिह्वा जुगुर्वणी होतारा दैव्या कवी मेधािबनावध्यापकोपदेशकौ नो दिविस्पृशं सिध्रमिमं यज्ञं यक्षतां तथा यूयमपि सङ्गच्छध्वम्॥८॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। यथा विद्वांसो धम्पेण व्यवहारेण सह सङ्गता भवन्ति तथेतरैरपि भवितव्यम्॥८॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! जैसे (अद्य) आज (मन्द्रजिह्ना) जिनकी प्रशंसित जिह्ना है वे (जुगुर्वणी) अत्यन्त उद्यमी (होतारा) ग्रहण करनेवाले (दैल्मा) दिव्या/गुणों में प्रसिद्ध (कवी) प्रबल प्रज्ञायुक्त अध्यापक और उपदेशक लोग (न:) हम लोगों के लिये (दिवस्पृशम्) प्रकाश में संलग्नता कराने तथा (सिथ्रम्) मङ्गल करनेवाले (इमम्) इस (वज्रम्) विद्यादि की प्राप्ति के साधक व्यवहार का (यक्षताम्) सङ्ग करते हैं, वैसे तुम भी सङ्ग करो। (अद्योग)

भावार्थ:-इस मन्त्र में वात्र्यकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे विद्वान् जन धर्मयुक्त व्यवहार के साथ परस्पर सङ्ग करते हैं, वैसे साधारण मनुष्यों को भी होना चाहिये॥८॥

पुनस्त्रमेव विषयमाह॥

फिर इसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

शुचिर्देवेष्वर्पिता होत्रा मुरुत्सु भारती।

इळा सरस्त्रती मुही बुर्हिः सीदन्तु युज्ञियाः॥९॥

शुर्चि:। दुवेषा अर्पिता। होत्रां। मुरुत्ऽसुं। भारती। इळां। सरस्वती। मुही। बुिह:। सीटुन्तु। युज्ञयां:॥९॥ पदार्थ:=(शुचि:) पवित्रा (देवेषु) विद्वत्सु (अर्पिता) समर्पिता (होता) दातुमादातुमर्हा (मरुत्सु) स्तावक्रेषु (भारती) धारणपोषणकर्त्री (इळा) प्रशंसितुं योग्या (सरस्वती) प्रशस्तविज्ञानसम्बधिनी (मही) पूजितुं स्तकदेशहीं (बर्हि:) उपगतं वृद्धम् (सीदन्तु) प्राप्नुवन्तु (यिज्ञयाः) यज्ञसाधनाऽर्हा:॥९॥

अन्वय:-या देवेष्वर्पिता होत्रा मरुत्सु भारती शुचिरिळा सरस्वती मही च यज्ञिया बर्हि: सीदन्तु ता: सर्वे विद्यार्थिन: प्राप्नुवन्तु॥९॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। विद्यार्थिभिरेवमाशंसितव्यं या विद्वत्सु विद्या पाणी वर्त्तरे साऽस्मान् प्राप्नोतु॥९॥

पदार्थ:-जो (देवेषु) विद्वानों में (अर्पिता) समर्पण की हुई (होत्रा) देने-लोने सोम्ये किया वा (मरुत्सु) स्तुति करनेवालों में (भारती) धारण-पोषण करनेवाली (शुचि:) पवित्र (इक्रा) प्रशंसा के योग्य (सरस्वती) प्रशंसित विज्ञान का सम्बन्ध रखनेवाली (मही) और बड़ी (यज्ञिया:) यह सिद्ध कराने के योग्य क्रिया (बर्हि:) समीप प्राप्त बड़े हुए व्यवहार को (सीदन्तु) प्राप्त होके, उनको समस्त विद्यार्थी प्राप्त होवें॥९॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। विद्यार्थियों की ऐसी इच्छा करनी चाहिये कि जो विद्वानों में विद्या वा वाणी वर्त्तमान है, वह हमको प्राप्त होवे।

पुनस्तमेव विषयमाह।

फिर उसी विषय को अगले सन्त्रामें कहा हैं।

तन्नस्तुरीपमद्भृतं पुरु वारं पुरु त्मना।

त्वष्टा पोषाय वि ष्यंतु राये नाभा नो अस्मयु:॥ १०॥

तत्। नः। तुरीर्पम्। अद्धुतम्। पुरु। वा। अस्मि। पुरु। त्यनी। त्वष्टी। पोषीय। वि। स्युतु। राये। नाभी। नः। अस्मुऽयुः॥१०॥

पदार्थ:-(तत्) (नः) अस्मभ्यूम् (तुरिपम्) तूर्णं रक्षकम् (अद्भुतम्) आश्चर्यस्वरूपम् (पुरु) बहु (ता) (अरम्) अलम् (पुरु) बहु (तमना) आत्मना (त्वष्टा) विद्याधर्मेण राजमानः (पोषाय) पृष्टिकराय (वि) (स्यतु) प्राप्नोतु (राष्ट्रे) धनाय (नाभा) नाभौ (नः) अस्माकम् (अस्मयुः) अस्मान् कामयमानः॥१०॥

अन्वयः-हे विद्वन असम्बुस्त्वश्चा भवान् नः पुरु पोषाय राये नाभा प्राण इव विष्यतु त्मना तुरीपमद्भुतं पुरु वारं धनमस्ति तन्न आवह॥१०॥

भावार्थः यो विद्वानस्मान् कामयेत तं वयमपि कामयेमिह, योऽस्मान्न कामयेत तं वयमपि न कामयेमिह, तस्पात् परस्परस्य विद्यासुखे कामयमानावाचार्य्यविद्यार्थिनौ विद्योन्नतिं कुर्याताम्॥१०॥

पदार्थ:-ह विद्वान्! (अस्मयु:) हम लोगों की कामना करनेवाले (त्वष्टा) विद्या और धर्म से प्रकाशम्बन आप (न:) हम लोगों के (पुरु) बहुत (पोषाय) पोषण करने के लिये और (राये) धन होने के लिये (नाभा) नाभि में प्राण के समान (वि, घ्यतु) प्राप्त होवें और (त्मना) आत्मा से जो (तुरीपम्) तुरन्त

मण्डल-१। अनुवाक-२१। सूक्त-१४२

रक्षा करनेवाला (अद्भुतम्) अद्भुत आश्चर्यरूप (पुरु, वा, अरम्) बहुत वा पूरा धन है (तत्) उसकी (न:) हम लोगों के लिये प्राप्त कीजिये [कराइये]॥१०॥

भावार्थ:- जो विद्वान् हम लोगों की कामना करे उसकी हम लोग भी कामना करें, जो हम लोगों की कामना न करे उसकी हम भी कामना न करें। इससे परस्पर विद्या और सुख की कामना करते हुए आचार्य्य और विद्यार्थी लोग विद्या की उन्नति करें॥ १०॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अवसृजन्नुप त्मर्ना देवान्यंक्षि वनस्पते। अग्निर्हव्या सुंषूदति देवो देवेषु मेधिरः॥११॥

अवुऽसूजन्। उप। त्मना देवान्। युक्षु। वनस्पते। अग्निः। हुव्याः सुसूदुत्ति। देवः। देवेषु। मेधिरः॥ ११॥

पदार्थ:-(अवसृजन्) विविधया विद्ययाऽलंकुर्वन् (३५) (त्मन्गः) आत्मना (देवान्) विद्यां कामयमानान् (यक्षि) संगच्छसे (वनस्पते) रिष्मिपतिः सूर्व्य इव वर्त्तमान (अग्निः) पावकः (हव्या) दातुमर्हाणि (सुषूदति) सुष्ठु क्षरित वर्षति (देवः) देदी र्यम्पनः (देवेषु) द्योतमानेषु लोकेषु (मेधिरः) संगमयिता॥११॥

अन्वय:-हे वनस्पते! त्वं यतस्त्मना आत्मना हेन्नचुपावसृज्ये सन् देवेषु देवो मेधिरोऽग्निर्हव्या सुषूदतीव विद्यां यक्षि तस्मात् सत्कर्त्तव्योऽसि॥११॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। युश्ना सूर्य: पृथिव्यादिषु देवेषु दिव्येषु पदार्थेषु दिव्यस्वरूपस्सन् जलं वर्षयति तथा विद्धांसी प्राणि विद्यार्थिषु विद्यां वर्षयेयु:॥११॥

पदार्थ:-हे (वनस्पते) रिष्टमयों के पति सूर्य्य के समान वर्तमान! आप जिस कारण (त्मना) आत्मा से (देवान्) विद्या की कामना करते हुओं को (उपावसृजन्) अपने समीप नाना प्रकार की विद्या से पिरपूरित करते हुए (देवेषु) क्रिकेश्समान लोकों में (देव:) अत्यन्त दीपते हुए (मेधिर:) सङ्ग करानेवाले (अग्नि:) जैसे अग्नि (ह्या) होम् से देने योग्य पदार्थों को (सुषूदित) सुन्दरता से ग्रहण कर परमाणु रूप करता है, वैसे विद्या के (यक्षि) सङ्ग करते हो, इससे सत्कार करने योग्य हो॥११॥

भावार्थ: इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य्यमण्डल पृथिवी आदि दिव्य पदार्थीं में दिव्यरूप हुआ पुल को वर्षाता है, वैसे विद्वान् जन संसार में विद्यार्थियों में विद्या की वर्षा करावें॥११/॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

पूष्णवर्ते मुरुत्वते विश्वदेवाय वायवे।

स्वाहां गायुत्रवेपसे हुव्यिमन्द्राय कर्तन॥१२॥

पूष्प्ऽवते। मुरुत्वेते। विश्वदेवाय। वायवे। स्वाहां। गायुत्रऽवेपसे। हुव्यम्। इन्द्राय। कुर्तुन्॥ १२॥

पदार्थ:-(पूषण्वते) बहवः पूषणः पुष्टिकर्तारो गुणा विद्यन्ते यस्मिस्तस्मिन् (मरुत्वते) शिभित्वे मरुतो विद्यास्तावकाः सन्ति यस्मिन् (विश्वदेवाय) विश्वेऽखिला देवा विद्वांसो यस्मिस्तस्मिन् (वायवे) प्राप्तुं योग्याय (स्वाहा) सत्यया क्रियया (गायत्रवेपसे) गायत्रं गायन्तं त्रायमाणं वेप्ने रूपं यस्मात् तस्मै (हव्यम्) आदातुमर्हं कर्म (इन्द्राय) परमैश्वर्याय (कर्तन) कुरुत॥१२॥

अन्वयः - हे मनुष्या! यूयं स्वाहा पूषण्वते मरुत्वते विश्वदेवाय वायवे गायत्रवेपस इन्द्राय हव्ये कर्त्तन॥१२॥

भावार्थ:-येन धनेन पुष्टिर्विद्याविद्वत्सत्कारौ वेदविद्याप्रवृत्तिः सर्वोपकारश्च स्यात्तदेव धर्म्यं धनं भवति नेतरत्॥१२॥

पदार्थ: - हे मनुष्यो! तुम (स्वाहा) सत्य क्रिया से (पूषण्वते) जिसके बहुत पृष्टि करनेवाले गुण (मरुत्वते) जिसमें प्रशंसायुक्त विद्या की स्तुति करनेवाले (विश्ववेवाये) क्षा समस्त विद्वान् जन विद्यमान (वायवे) प्राप्त होने योग्य (गायत्रवेपसे) गानेवाले की रक्षा करता हुआ जिनसे रूप प्रकट होता उस (इन्द्राय) परमैश्वर्य के लिये (हव्यम्) ग्रहण करने योग्य क्षि की (क्रिने) करो॥१२॥

भावार्थ:-जिस धन से पुष्टि, विद्या, विद्वानों का सत्कार, वदिवद्या की प्रवृत्ति और सर्वोपकार हो, वहीं धर्म सम्बन्धी धन है, और नहीं॥१२॥

पुनस्त्रमेव विषयप्रह॥

फिर उसी क्रिप्य को अगून मन्त्र में कहा है॥

स्वाहांकृतान्या गृह्यपं हृव्यानि वीत्री।

इन्द्रा गिहि श्रुधी हवुं त्वां रहेवनी अध्वरे॥ १३॥ ११॥

स्वाहांऽकृतानि। आ। गृहि। उप। हुव्यानि। वीतये। इन्ह्रं। आ। गृहि। श्रुधि। हर्वम्। त्वाम्। हुवन्ते। अुध्वरे॥१३॥

पदार्थ:-(स्वाहकित् कि.) गृत्यिक्रियया निष्पादितानि (आ) (गिह) आगच्छ (उप) सामीप्ये (हव्यानि) आदातुमर्हाणि (वीत्ये) विद्याव्याप्तये (इन्द्र) परमैश्वर्ययोजक (आ) (गिह) (श्रुधी) शृणु। अत्र द्वयचोऽतिस्तिङ इति दीर्घ() (हवम्) स्तवनम् (त्वाम्) (हवन्ते) स्तुवन्ति (अध्वरे) अहिंसनीये व्यवहारे॥१३

अन्वयः हे दुन्द्र विद्वन् ! अध्वरे वीतये स्वाहाकृतानि हव्यान्युपागिह यं त्वां विद्यां जिज्ञासवो हवन्ते स त्वमागिह हवं श्रुधि। १२॥

मण्डल-१। अनुवाक-२१। सूक्त-१४२

१५५७

भावार्थ:-अध्यापको यावच्छास्त्रमध्यापयेत् तावत्प्रत्यहं प्रतिमासं वा परीक्षेत। विद्यार्थिषु ये येभ्यो विद्याः प्रदद्युस्ते तेषां शरीरेण मनसा धनेन सेवां कुर्युः॥१३॥

अत्राध्यापकाऽध्येतृविद्यागुणप्रशंसनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह संगतिरस्तीति बोध्याभा

इति द्विचत्वारिशदुत्तरं शततमं १४२ सूक्तमेकादशो ११ वर्गश्च समापा:॥

पदार्थ: -हे (इन्द्र) परमैश्वर्य को युक्त करनेवाले विद्वान्! आप (अध्वरे) न नष्ट करने योग्य व्यवहार में (वीतये) विद्या की प्राप्ति के लिये (स्वाहाकृतानि) सत्य क्रिया से (हेक्यानि) ग्रहण करने योग्य पदार्थों को (उपागिहि) प्राप्त होओ, जिन (त्वाम्) तुम्हारी (हवन्ते) विद्या को ज्ञान चाहते हुए विद्यार्थी जन स्तुति करते हैं, सो आप (आ, गिह) आओ और (हवम्) स्तुति कर्ते (शृष्टि) सुनो॥१३॥

भावार्थ:-अध्यापक जितना शास्त्र विद्यार्थियों को पढ़ावे उसकी प्रतिहित है। प्रतिमास परीक्षा करें और विद्यार्थियों में जो जिनको विद्या देवें, वे उनकी तन, मन, धन से सैचा करें॥१३॥

इस सूक्त में पढ़ने-पढ़ानेवालों के गुणों और विद्या की प्रशंसा होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये॥

यह एक सौ बयालीसवाँ १४२ सुक्त और स्यारहवाँ ११ वर्ग पूरा हुआ॥

अथ प्र तव्यसीमित्यस्याष्ट्रर्चस्य त्रिचत्वारिशदुत्तरशततमस्य सूक्तस्य दीर्घतमा ऋषिः। अग्निर्देवता। १,७ निचृज्जगती। २,३,५ विराङ्जगती। ४,६ जगती च छन्दः। निषादः स्वरः।

८ निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथ विद्वद्विषयमाह॥

अब विद्वानों के विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

प्र तव्यंसीं नव्यंसीं धीतिम्ग्नये वाचो मृति सहंसः सूनवे भरे। अपां नपाद्यो वसुंभिः सह प्रियो होता पृथिव्यां न्यसीददृत्वियः॥शा

प्रा तर्व्यसीम्। नर्व्यसीम्। धीतिम्। अग्नये। वाचः। मृतिम्। सहसः। पूनवे। भरे। अपाम्। नर्पात्। यः। वसुंऽभिः। सह। प्रियः। होतां। पृथिव्याम्। नि। असीदत्। ऋत्वियः॥१॥

पदार्थ:-(प्र) (तव्यसीम्) अतिशयेन बलवतीम् (नव्यसीम्) अतिशयेन नवीनाम् (धीतिम्) धियन्ति विजयं यया ताम् (अग्नये) अग्निवत्तीव्रबुद्धये (वाव्यः) वाएकः (मितम्) प्रज्ञाम् (सहसः) शरीरात्मबलवतः (सूनवे) (भरे) धरे (अपाम्) जलानाम् (नपात्) यो न पतित सः (यः) (वसुभिः) प्रथमकल्पैविद्विद्धिः (सह) (प्रियः) प्रीतः (होता) गृहिता (पृष्टिव्याम्) (नि) (असीदत्) सीदित (ऋत्वियः) य ऋतूनर्हित सः॥१॥

अन्वय:-अहमपांनपात् यः सूर्यः पृथिव्यामिव यो वसुभिः सह प्रियो होता ऋत्वियो न्यसीदत् तस्मात् सहसोऽग्नये सूनवे वाचः तव्यसी नव्यसीं धीतिं मितं प्रभिस्। १॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालद्भारः। विदुर्ग योग्यताऽस्ति यथा सूर्योऽपां धर्ताऽस्ति तथा पवित्रान् धीमतः प्रियाचरणान् सद्यो विद्यानां ग्रहीतॄन् विद्यार्थिनो गृहीत्वा विद्याविज्ञानं सद्यो जनयेयुरिति॥१॥

पदार्थ:-मैं (अपां नपात) जलों के बीच (य:) जो न गिरता वह सूर्य (पृथिव्याम्) पृथिवी पर जैसे वैसे जो (वसुभि:) प्रश्नम कक्षा के विद्वानों के (सह) साथ (प्रिय:) प्रीतियुक्त (होता) ग्रहण करनेवाला (ऋत्विय:) ऋतुओं की प्राप्यता रखता हुआ (नि, असीदत्) निरन्तर स्थिर होता है, उस (सहस:) शरीर और आस्या के कलयुक्त अध्यापक के सकाश से (अग्नये) अग्नि के समान तीक्ष्णबुद्धि (सूनवे) पुत्र वा शिष्य के लिये (वाच:) वाणी की (तव्यसीम्) अत्यन्त बलवती (नव्यसीम्) अतीव नवीन (धीतिम्) जिससे विजय को धारण करें, उस धारणा और (मितम्) उत्तम बुद्धि को (प्र, भरे) अच्छे प्रकार धारण करता हूँ॥१॥

भावार्थ:=इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। विद्वानों की योग्यता है कि जैसे सूर्य जलों की धारणी करमेवाला है, वैसे पवित्र बुद्धिमान् प्रिय आचरण करने और शीघ्र विद्याओं को ग्रहण करनेवाले ब्रिधार्थियों को लेकर विद्या का विज्ञान शीघ्र उत्पन्न करावें॥१॥

मण्डल-१। अनुवाक-२१। सूक्त-१४३



अथेश्वरविषयमाह॥

अब ईश्वरविषय अगले मन्त्र में कहते हैं॥

स जार्यमानः परुमे व्योमन्याविरुग्निरभवन्मातुरिर्श्वन।

अस्य क्रत्वा सिमधानस्य मुज्मना प्र द्यावा शोचिः पृथिवी अरोचयत्॥ २॥

सः। जार्यमानः। पुरमे। विऽओमनि। आविः। अग्निः। अभ्वत्। मातुरिश्चेने। अस्या क्रत्वा सुम्रह्धानस्य। मुज्मना। प्र। द्यावा। शोचिः। पृथिवी इति। अरोच्यत्॥२॥

पदार्थ:-(स:) अधीयानः (जायमानः) उत्पद्यमानः (परमे) प्रकृष्टे (व्योमिन) च्योमवद् व्यापके सर्वरक्षादिगुणान्विते ब्रह्मणि (आविः) प्राकट्ये (अग्निः) पावक इव (अग्रवतः) भवेत् (मातिरश्चने) अन्तरिक्षस्थाय वायवे (अस्य) (क्रत्वा) प्रज्ञया कर्मणा वा (सिमधानस्य) सम्बन्धः प्रदीप्तस्य (मज्मना) बलेन (प्र) (द्यावा) (शोचिः) पवित्रः (पृथिवी) (अरोचयत्) प्रकृष्णयत्। रा

अन्वय:-यो मातरिश्वनेऽग्निरिव परमे व्योमिन जायमान आविर्ध्मवत्, तस्प्रीस्य सिमधानस्य जनस्य शोचिः क्रत्वा मज्मना च द्यावा पृथिवी प्रारोचयत्, स सर्वेषां कल्याणकारी जुम्मते॥२॥

भावार्थ: -यदि विद्वांसो विद्यार्थिनः प्रयत्नेन भाविद्यासुर्शिक्षाधर्मयुक्तान् कुर्युस्तर्हि सर्वदा कल्याणभाजो भवेयु:॥२॥

पदार्थ:-जो (मातिरश्चने) अन्तरिक्षस्थ क्रियु के लिये (अग्नि:) अग्नि के समान (परमे) उत्तम (व्योमिन) आकाश के तुल्य सबमें व्याप्त सक्की रक्षा करने आदि गुणों से युक्त ब्रह्म में (जायमानः) उत्पन्न हुआ हम लोगों के लिये (आवि:) प्रकट (अभवत्) होवे, उस (अस्य) प्रत्यक्ष (सिमधानस्य) उत्तमता से प्रकाशमान जन का (शोचिरः) चित्रभाव (क्रत्वा) प्रज्ञा और कर्म वा (मज्मना) बल के साथ (द्यावा पृथिवी) अन्तरिक्ष और पृथिवी को (प्राराचयत्) प्रकाशित करावे, (सः) वह पढ़ा हुआ जन सबका कल्याणकारी होता है॥ २०

भावार्थ:-जो विद्वान् लोग विद्वाक्षियों को प्रयत्न के साथ विद्या, अच्छी शिक्षा और धर्म नीतियुक्त करें तो वे सर्वद्भेव क्रस्याण का सेवन करनेवाले होवें॥२॥

पुनर्विद्वद्विषयमाह॥

-फिर विद्वानों के विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अस्य चिषा अजरा अस्य भानवीः सुसंदृशीः सुप्रतीकस्य सुद्युतीः।

भव्यक्कस्मे अत्यक्तुर्न सिर्धवोऽग्ने रेजन्ते असंसन्तो अजर्राः॥३॥

अस्य। त्वेषाः। अजर्राः। अस्य। भानवः। सुऽसंदृशः। सुऽप्रतीकस्य। सुऽद्युर्तः। भाऽत्वेक्षसः। अति। अकृतुः। सः सिर्धवः। अग्नेः। रेजुन्ते। असंसन्तः। अजर्राः॥३॥

पदार्थ:-(अस्य) (त्वेषा:) विद्यासुशीलप्रकाशाः (अजराः) हानिरहिताः (अस्य) सूर्यस्य (भानवः) किरणा इव (सुसंदृशः) सत्यासत्ययोः सुष्ठु सम्यग्दृष्टुः (सुप्रतीकस्य) सुष्ठु प्रतीतियुक्तस्य (सुद्धुतः) अभितः प्रकाशमानस्य (भात्वक्षसः) भाः विद्याप्रकाशस्त्वक्षो बलं यासां ताः विद्याप्रकाममु पठितम्। (निघं०२.९) (अति) (अक्तुः) रात्रिः (न) इव (सिन्धवः) प्रवाहस्य (राजने) कम्पन्ते (अससनः) जागृताः (अजराः) हानिरहिताः॥३॥

अन्वयः-हे मनुष्याः! सुसंदृशः सुप्रतीकस्य सुद्युतोऽग्नेर्भानवोऽस्याध्यापकस्याजराः न्वाम भवन्ति। अस्याजरा अससन्तो भात्वक्षसः सिन्धवोऽक्तुर्नाति रेजन्ते॥३॥

भावार्थः-ये मनुष्याः सूर्यवद्विद्याप्रकाशका अविद्याऽन्धकारनाशकाः सर्वेषामानन्दप्रदा भवन्ति, त एव मनुष्यशिरोमणयो जायन्ते॥३॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! (सुसंदृशः) सत्य और असत्य को ज्ञानदृष्टि से देखनेवाले (सुप्रतीकस्य) सुन्दर प्रतीतियुक्त (सुद्युतः) सब ओर से प्रकाशमान (अग्नेः) सूर्ये के (भानवः) किरणों के समान (अस्य) इस अध्यापक के (अजराः) विनाशरहित (त्वेषाः) बिद्या और श्रील के प्रकाश होते हैं और वे (अस्य) इस महाशय के (अजराः) अजर-अमर (अससन्तः) जागते हुए (भात्वक्षसः) विद्या प्रकाशरूपी बलवाले (सिन्धवः) प्रवाहरूप उक्त तेज (अक्तुः) रात्रि के भा समान अविद्यान्धकार को (अति, रेजन्ते) अतिक्रमण करते हैं॥३॥

भावार्थ:-जो मनुष्य सूर्य के समान विद्या के प्रकाश करने, अविद्यान्धकार के विनाश करने और सबको आनन्द देनेवाले होते हैं, वे ही मनुष्यों के शिरोपणि होते हैं॥३॥

पुन्रीश्वरिविषयमाह॥

फिर ईश्वर विषय की अगले मन्त्र में कहा है॥

यमेरिरे भृगवो विश्ववेदस् नाभो पृथिव्या भुवनस्य मुज्मना। अग्निं तं गीर्भिर्हिनुहि स्व आ दमे प्र एको वस्वो वर्मणो न राजीत॥४॥

यम्। आऽईरिरे। श्रुम्बः। विश्वप्रवैदसम्। नाभां। पृथिव्याः। भुवनस्य। मुज्मनां। अग्निम्। तम्। गीःऽभिः। हिनुहि। स्वे। आ। दमे। यः। एकः। वस्वः। वर्रुणः। न। राजीत॥४॥

पदार्थ:-(यम्) प्रमात्मानम् (एरिरे) समन्ताज्जानीयुः (भृगवः) विद्ययाऽविद्याया भर्जका निवारका विद्वांसः। सगव इति पदनामसु पठितम्। (निघं०५.५) (विश्ववेदसम्) समग्रस्य विदितारम् (नाभा) मृश्ये (पृश्वव्याः) अन्तरिक्षस्य (भुवनस्य) लोकजातस्य (मज्मना) अनन्तेन बलेन (अग्निम्) सूर्यमिव स्वप्रकाशम् (तम्) (गीर्भः) प्रशंसिताभिर्वाग्भिः (हिनुहि) जानीहि (स्वे) स्वकीये (आ) समन्तीत् (हमे) गृहरूपे हृदयाऽवकाशे (यः) (एकः) अद्वितीयः (वस्वः) वसोर्द्रव्यरूपस्य (वरुणः) अतिश्रेष्टः (न) इव (राजति) प्रकाशते॥४॥

मण्डल-१। अनुवाक-२१। सूक्त-१४३

१५६१

अन्वय:-हे जिज्ञासो! यं विश्ववेदसं भृगव एरिरे य एको वरुणो मज्मना वरुणो नेव पृथिव्या भुवनस्य वस्वी नाभा मध्ये स्वव्याप्त्या राजित तमिग्नं स्वे दमे वर्त्तमानस्त्वं गीर्भिराहिनुहि॥४॥

भावार्थ:-हे मनुष्या! यो विद्वद्वेदितव्यः सर्वाऽभिव्यापी प्रशंसितुमर्हः सिच्चदान स्वित्रक्षण) सर्वशक्तिमानद्वितीयोऽतिसूक्ष्मः स्वप्रकाशोऽन्तर्यामी परमेश्वरोऽस्ति तं योगाङ्करनुष्ठानसिद्ध्या स्वस्मिन्वजानीत॥४॥

पदार्थ: - हे जिज्ञासु पुरुष! (यम्) जिस (विश्ववेदसम्) अच्छे संसार के वेता परमाना को (भृगवः) विद्या से अविद्या को भूंजनेवाले (एरिरे) सब ओर से जाने वा (यः) जो (एकः) एक अति श्रेष्ठ आप्त ईश्वर (मज्मना) अत्यन्त बल से (वरुणः) अति श्रेष्ठ के (न) समान (पृथिव्याः) अन्तरिक्ष के वा (भुवनस्य) लोक में उत्पन्न हुए (वस्वः) धनरूप पदार्थ के (नाभा) बीच में अपनी व्याप्ति से (राजित) प्रकाशमान है (तम्) उस (अग्निम्) सूर्य के समान ईश्वर जो कि (स्वे) अपने अर्थात् तेरे (दमे) घररूप हृदयाकाश में वर्तमान है, उसको (गीर्भः) प्रशंसित वाणियों से (अर्फे हिनुहि) जानो॥४॥

भावार्थ:-हे मनुष्यो! जो विद्वानों से जानने योग्य, सूष में सूब प्रकार व्याप्त, प्रशंसा के योग्य, सिच्चदानन्दादि लक्षण, सर्वशक्तिमान्, अद्वितीय, अतिसूक्ष्म, आप ही प्रकाशमान अन्तर्यामी परमेश्वर है, उसको योग के अङ्गों के अनुष्ठान की सिद्धि से अपने हृदय में जाने॥४॥

अथ विद्विषयमाहा। अब विद्वान के विषय में ऋहा है॥

न यो वराय मुरुतांमिव स्वनः सेनेव सृष्टा दिव्या यथाशिनः। अग्निर्जम्भैस्तिगितैरति भवीति योधी ने स्त्रून्स वना न्यूंञ्जते॥५॥

न। यः। वराय। मुरुताम्ऽइवा स्वन्ते। सेनाऽइव। सृष्टा। दिव्या। यथा। अ्शनिः। अग्निः। जम्भैः। तिगितैः। अति। भर्वति। योधः। न। शत्रून्। सः। वना। नि। ऋञ्जते॥५॥

पदार्थ:-(न) निषेधे (ये:) (वराय) स्त्रीकरणाय (मरुतामिव) यथा वायूनां विदुषां तथा (स्वन:) शब्द: (सेनेव) (सृष्टा) दिल्लि कारणे वाय्वादिकार्ये च भवा (यथा) (अश्रनि:) विद्युत् (अग्नि:) पावक: (जम्भे:) विस्फुरणे: (तिगितै:) तीक्ष्णै: (अत्ति) भक्षयित (भर्वति) हिनस्ति (योध:) प्रहर्त्ता (न) इव (शत्रून्) (स:) (वना) वनानि (नि) (ऋक्षते) साध्नोति॥५॥

अन्वयः - योऽ तिर्मरुतामिव स्वनो वा सृष्टा सेनेव वा यथा दिव्याऽशनिस्तथा वराय न शक्यः स तिगितैर्जम्भैरत्ति योधो न शत्रुन् भर्वति वना नि ऋञ्जते॥५॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। प्रचण्डवायुना प्रेरितोऽग्नि: शत्रुहिंसनमिव पदार्थान् दहति नासौ सहस्र निवारणीय इति॥५॥

पदार्थ:-(य:) जो (अग्नि:) आग (मरुतामिव) पवन वा विद्वानों के (स्वन:) शब्द के समान (सृष्टा, सेनेव) शत्रुदल में चक्रव्यूहादि रचना से रची हुई सेना के समान वा (यथा) जैसे (दिव्या) कारण वा वायु आदि कार्य द्रव्य में उत्पन्न हुई (अश्नि:) बिजुली के वैसे (वराय) स्वीकार करने के लिये (म) नहीं हो सकता अर्थात् तेजी के कारण रुक नहीं सकता (स:) वह (तिगितै:) तीक्ष्ण (जिस्मै:) स्कृतियों से (अति) भक्षण करता अर्थात् लकड़ी आदि को खाता है (योध:) योधा के (न) समान (श्रवूप) शत्रुओं को (भर्वति) नष्ट करता अर्थात् धनुर्विद्या में प्रविष्ट किया हुआ शत्रुदल को भूंजता है और (वना) बनों को (नि, ऋज्ञते) निरन्तर सिद्ध करता है॥५॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालंकार है। प्रचण्ड वायु से प्रेरित अति जलता हुआ अग्नि शत्रुओं को मारने के तुल्य पदार्थों को जलाता है, वह सहसा नहीं रुक सकता॥६॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।

कुविन्नो अग्निरुचर्थस्य वीरसुद् वसुंष्कुविद्वसुंभिः कार्यसुवर्म्त्।

चोदः कुवित्तुतुज्यात्सातये धियः शुचिप्रतीकं तम्या धिया गृणे॥६॥

कुवित्। नु:। अग्नि:। उचर्थस्य। वी:। असत्। वसुः। कुवित्। वसुंऽभि:। कार्मम्। आऽवरंत्। चोदः। कुवित्। तुतुज्यात्। सातर्ये। धिर्यः। शुचिंऽप्रतीकम्। तम्/ असा धिर्याः गृणे॥६॥

पदार्थ:-(कुवित्) महान् (नः) अस्मध्यम् (अग्निः) विद्युदादिस्वरूपः (उचथस्य) उचितस्य (वीः) व्यापकः (असत्) भवेत् (वसुः) कार्ययिता (कुवित्) महान् (वसुभिः) वासयितृभिः (कामम्) (आवरत्) आवृणुयात् (चोदः) चुद्यात् प्रेस्थेत् (कुवित्) महान् (तुतुज्यात्) बलयेत् (सातये) विभागाय (धियः) प्रज्ञाः (शुचिप्रतीकम्) (तम्) (अया) अनया। अत्र वाच्छन्दसीत्येकारादेशाभावः। (धिया) प्रज्ञया कर्मणा वा (गृणे) स्तौमि॥६॥

अन्वय:-यः कुविदग्नि उच्छास्य वीरस्हिसे भिस्सह कुविद्वसुः काममावरत्सातये कुविच्चोदो धियस्तुतुज्यात् तं शुचिप्रतीकमया धियाऽहं गृणे क्या

भावार्थः-ये विद्युद्धितिमुकामप्रापका बुद्धिबलप्रदायका महान्तो विद्वांसः स्वबुद्ध्या सर्वाञ्जनान् विदुषः कुर्वन्ति तान् सर्वे प्रशंसन्तु॥६॥

पदार्थ (जुवित्) बड़ा (अग्निः) बिजुली आदि रूपवाला अग्निः (नः) हमारे लिये (उचथस्य) हिचते पदार्थ का (वीः) व्यापक (असत्) हो वा (वसुभिः) वसानेवालों के साथ (कुवित्) बड़ा (वसुः) वसानेवाला (कामम्) काम को (आवरत्) भलीभांति स्वीकार करे वा (सातये) विभाग के लिये (कुवित्) बड़ा प्रशंसित जन (चोदः) प्रेरणा दे वा (धियः) बुद्धियों को (तुतुज्यात्) बलवती करे

मण्डल-१। अनुवाक-२१। सूक्त-१४३

१५६३

(तम्) उस (शुचिप्रतीकम्) पवित्र प्रतीति देनेवाले जन की (अया) इस (धिया) बुद्धि वा कर्म से (गृणी) मैं स्तुति करता हूँ॥६॥

भावार्थ:-जो बिजुली के समान उचित काम प्राप्त कराने और बुद्धि बल अत्यन्त स्निवलि बर्डे प्रशंसित विद्वान् अपनी बुद्धि से सब मनुष्यों को विद्वान् करते हैं, उनकी सब लोग प्रशंसा करें॥६

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

घृतप्रतीकं व ऋतस्यं धूर्षदंमिग्नं मित्रं न समिधान ऋंञ्जते। इन्धानो अक्रो विद्येषु दीद्यच्छुक्रवणांमुद्धं नो यंसते धिर्यम्॥ ध्रा

घृतऽप्रतीकम्। वः। ऋतस्ये। धृःऽसदेम्। अग्निम्। मित्रम्। न। सम्इड्यानः। ऋकः। विदर्थेषु। दीर्द्यत्। शुक्रऽवर्णाम्। उत्। ऊम् इति। नः। यंसते। धियम्॥७॥

पदार्थ:-(घृतप्रतीकम्) यो घृतमाज्यं प्रत्येति तम् (वं) युष्मभ्यम् (ऋतस्य) सत्यस्य (धूर्षदम्) यो धूर्षू हिंसकेषु सीदित तम् (अग्निम्) पावकम् (मित्रम्) सखायम् (न) इव (सिमधानः) सम्यक् प्रकाशमानः (ऋज्ञते) प्रसाध्नोति (इन्धानः) प्रदीप्तस्सन् (अक्रिः) अन्यरक्रान्तः। अत्र पृषोदरादिनेष्टसिद्धिः। (विदथेषु) संग्रामेषु (दीद्यत्) देदीप्यमानः (शुक्रवणम्) शुद्धस्वरूपाम् (उत्) (उ) इति वितर्के (नः) अस्माकम् (यंसते) रक्षति (धियम्) प्रज्ञाम्॥७॥

अन्वयः - हे मनुष्या! यस्समिधानो वो युष्पेष्यं भूष्टं घृतप्रतीकमग्निमृतस्य मित्रन्नेव ऋञ्जते य उ इन्धानोऽक्रो विदथेषु दीद्यत्सन् नः शुक्रवर्णां धियमुद्यंसते तं यूर्व चूर्यं च पुत्रुवत्सेवेमहि॥७॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। यो विधुद्धत्मवैशुभगुणाकरो मित्रवत्सुखप्रदाता संग्रामेषु वीर इव शत्रुजेता दु:खप्रध्वंसको वर्त्तते तं विद्वांसमाश्रित्य सर्वे मनुष्या विद्या: प्राप्नुयु:॥७॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! की (सिमधानः) अच्छे प्रकार प्रकाशमान विद्वान् (व:) तुम्हारे लिये (धूर्षदम्) हिंसकों में स्थिर होते हुए (धृतप्रतीकम्) जो घृत को प्राप्त होता उस (अग्निम्) आग को (ऋतस्य) सत्य व्यवहार के वर्तनेवाले (मित्रम्) मित्र के (न) समान (ऋज्ञते) प्रसिद्ध करता है (उ) और जो (इन्धानः) प्रकाशमान होता हुआ वा (अक्रः) औरों ने जिसको न दबा पाया वह (विद्थेषु) संग्रामों में (दीद्यत्) निरन्तर प्रकाशित होता हुआ (नः) हम लोगों की (शुक्रवर्णाम्) शुद्धस्वरूप (धियम्) प्रज्ञा को (उद्यंसते) उत्तर्भ रखता है, उसको तुम हम पिता के समान सेवें॥७॥

भूषार्थ: इस मेन्त्र में उपमालङ्कार है। जो बिजुली के समान समस्त शुभ गुणों की खान, मित्र के समान सुख का देने, संग्रामों में वीर के तुल्य शत्रुओं को जीतने और दु:ख का विनाश करनेवाला है, उस्र विद्वान का आश्रय कर सब मनुष्य विद्याओं को प्राप्त होवें॥७॥

पुनर्विद्वद्विषयमाह।।

फिर विद्वानों के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

अप्रयुच्छन्नप्रयुच्छद्धिरग्ने शिवेभिर्नः पायुभिः पाहि शृग्मैः।

अदेब्धेभिरदृपितेभिरिष्टेऽनिमिषद्धिः परि पाहि नो जाः॥८॥१२॥

अप्रेऽयुच्छन्। अप्रेयुच्छत्ऽभिः। अग्ने। शिवेभिः। नः। पायुऽभिः। पाहि। शृग्मैः। अद्विभिः। अद्यितेभिः। हुष्टे। अनिमिषत्ऽभिः। परिं। पाहि। नः। जाः॥८॥

पदार्थ:-(अप्रयुच्छन्) प्रमादमकुर्वन् (अप्रयुच्छद्धिः) प्रमादरहितैर्विद्वेद्धिस्स्सह अग्ने) विद्याविज्ञानप्रकाशयुक्त (शिवेभिः) कल्याणकारिभिः (नः) अस्मान् (पायुभिः) रक्षकेः (पाहि) रक्ष (श्रग्मैः) सुखप्रापकैः (अद्बेभिः) अहिंसकैः (अदृपितेभिः) मोहादिदोषपहिते (इष्ट्रे) पूजितुं योग्य। अत्र संज्ञायां क्तिच्। (अनिमिषद्धिः) नैरन्तर्येणालस्यरिहतैः (पिर) सर्वतः (पाहि) (न) अस्मान् (जाः) यो जनयित सुखानि सः॥८॥

अन्वय:-हे इष्टेऽग्ने अग्निवद् विद्वन्! त्वमप्रयुच्छन्सन्नप्रयुच्छद्धिः शिवेभिः प्रयुभिः शग्मैर्विद्वद्धिस्सह नः पाहि जास्त्वमनिमिषद्भिरदृषितेभिराप्तैस्सह नः परिपाहि॥८॥

भावार्थ:-मनुष्यैस्सततिमदमेष्टव्यं प्रयतितव्यं च धार्मिके विद्वेद्भिस्सह धार्मिका विद्वांसोऽस्मान् सततं रक्षेयुरिति॥८॥

अत्र विद्वदीश्वरगुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्त्यर्थेन् सहेर्संगतिरस्तीति वेद्यम्॥

इति त्रिंचत्वारिशदुत्तरं शततमं १२४३ सूक्तं द्वादशो १२ वर्गश्च समाजः॥

पदार्थ:-हे (इष्टे) सत्कार करने किया तथा (अग्ने) विद्या विज्ञान के प्रकाश से युक्त अग्नि के समान विद्वान्! आप (अग्रयुच्छन्) प्रमाद को न काते हुए (अग्रयुच्छद्धिः) प्रमादरहित विद्वानों के साथ वा (शिवेभिः) कल्याण करनेवाले (प्रायुभिः) रक्षक (शग्मैः) सुखप्रपाक विद्वानों के साथ (नः) हम लोगों की (पाहि) रक्षा करो तथा जाः) सुखों की उत्पत्ति करानेवाले आप (अनिमिषद्धिः) निरन्तर आलस्यरहित (अदब्धेभिः) हिंसा और (अद्िपतिभिः) मोहादि दोषरहित विद्वानों के साथ (नः) हम लोगों की (परि, पाहि) सब ओर से रक्षा करो।।८॥

भावार्थ:-मनुष्यों की निपन्तर यह चाहना और ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि धार्मिक विद्वानों के साथ धार्मिक विद्वास् हमारी निरन्तर रक्षा करें॥८॥

इस स्कृत में विद्वान् और ईश्वर के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जानना चाहिये॥

यह एक सौ तेंतालीसवाँ १४३ सूक्त और बारहवां १२ वर्ग समाप्त हुआ॥

एतीत्यस्य सप्तर्चस्य चतुश्चत्वारिशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य दीर्घतमा ऋषिः। अग्निर्देवता। १,३-५,७ निचृज्जगती। २ जगती छन्दः। निषादः स्वरः। ६ भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः

स्वर:॥

अथाध्यापकोपदेशकविषयमाह।।

अब एक सौ चवालीसवें सूक्त का प्रारम्भ है। उसके प्रथम मन्त्र में अध्यापक और उपदेश

एति प्र होता वृतमस्य माययोध्वा दधानः शुचिपेशसं धियम्।

अभि सुर्च: क्रमते दक्षिणावृतो या अस्य धार्म प्रथमं हु निस्ति।

एति। प्रा होतां। व्रुतम्। अस्य। माययां। ऊर्ध्वाम्। दर्धानः। शुचिर्रपेशसम्। धियम्। अभि। स्रुचः। क्रमते। दक्षिणाऽआवृतः। याः। अस्य। धार्म। प्रथमम्। हु। निसंते॥ १॥

पदार्थ:-(एति) प्राप्नोति (प्र) (होता) सदुणग्रहीता (वृत्तम्) सत्योच्रणशीलम् (अस्य) शिक्षकस्य (मायया) प्रज्ञया (अर्ध्वाम्) उत्कृष्टाम् (दधानः) (शुचिपेश्रसम्) पिक्रक्रपाम् (धियम्) प्रज्ञां कर्म वा (अभि) (सुचः) विज्ञानयुक्ताः (क्रमते) प्राप्नोति (दक्षिणावृतः) यो दक्षिणां वृण्वन्ति (याः) (अस्य) (धाम) दधित यस्मिंस्तत् (प्रथमम्) (ह) (निसते) चुम्ब्रिति॥१॥

अन्वय:-यो होता माययाऽस्य व्रतमूर्ध्वा शुचियशसंधियं दुधानः प्र क्रमते या अस्य स्नुचो दक्षिणावृतो धियः प्रथमं धाम निंसते ता अभ्येति स ह प्राज्ञतमो जायते॥ श्री

भावार्थ:-ये मनुष्या आप्तस्य विद्वा उपदेशाध्यापनाभ्यां विद्यायुक्तां बुद्धिमाप्नुवन्ति ते सुशीला जायन्ते॥१॥

पदार्थ:-जो (होता) सदुणों को ग्रहण करनेवाला पुरुष (मायया) उत्तम बुद्धि से (अस्य) इस शिक्षा करनेवाले के (व्रतम्) सत्याचरण श्रील को (अर्ध्वाम्) और उत्तम (शुचिपेशसम्) पवित्र (धियम्) बुद्धि वा कर्म को (दधानः) धूरिण करता हुआ (प्र, क्रमते) व्यवहारों में चलता है वा (याः) जो (अस्य) इसकी (सुचः) विज्ञानयूक्त (दक्षिणावृतः) दक्षिणा का आच्छादन करनेवाली बुद्धि हैं, उनको और (प्रथमम्) प्रथम (धाम) धाम को (निंसते) जो प्रीति को पहुंचाता है (ह) वही अत्यन्त बुद्धिमान् होता है॥१॥

भावार्थ:-जो मनुष्य शास्त्रवेत्ता विद्वान् के उपदेश और पढ़ाने से विद्यायुक्त बुद्धि को प्राप्त होते हैं, वे सुशील होते हैं।। १॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अभीमृतस्य दोहर्ना अनूषत् योनौ देवस्य सर्दने परीवृताः।

अपामुपस्थे विभृतो यदावसद्यं स्वधा अधयुद्याभिरीयते॥२॥

अभि। ईम्। ऋतस्यं। दो्हनाः। अनुष्ठतः। योनौ। देवस्यं। सर्दने। परिऽवृताः। अपाम्। उपऽस्थे। बिऽभृंतः। यत्। आ। अर्वसत्। अर्थ। स्वधाः। अध्यत्। याभिः। ईयते॥२॥

पदार्थ:-(अभि) आभिमुख्ये (ईम्) सर्वतः (ऋतस्य) सत्यस्य विज्ञानस्य (दौहेताः) पूरकाः (अनूषत) स्तुवन्ति। अत्रान्येषामिति दैर्घ्यं व्यत्ययेनात्मनेपदम्। (योनौ) गृहे (देवस्य) विदुषः (सदने) स्थाने (परिवृताः) आच्छादिता विदुष्यः (अपाम्) (उपस्थे) समीपे (विभृतः) विशेषण धृतः (यत्) यः (आ) (अवसत्) वसेत् (अध) आनन्तर्ये (स्वधाः) उदकानि। स्वधेत्युदकनामसु पठितम्। (निघं०१.१२) (अधयत्) पिबति (याभिः) अद्भिः (ईयते) गच्छति॥२॥

अन्वय:-हे मनुष्या! यथार्तस्य दोहनाः परिवृता देवस्य सदने योगाक्रभ्यनूषत् यद्यी वायुरपामुपस्थे विभृत आऽवसदध यथा विद्वान् स्वधा अधयद्याभिरीमीयते तथा तद्वद् यूयमपि वर्त्तध्वम्॥२॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। यथाऽऽकाशे जलि स्थिरीभूय ततो वर्षित्वा सर्वं जगत् पोषयति तथा विद्वान् चेतसि विद्यां स्थिरीकृत्य सर्वान् मनुष्यान् पोषयत्॥ ।।

पदार्थ:-हे मनुष्यो! जैसे (ऋतस्य) सत्य विज्ञान के (दोहनाः) पूरे करनेवाली (परिवृताः) वस्त्रादि से ढपी हुई अर्थात् लज्जावती पण्डिता स्त्री (देवस्य) विद्वान् के (सदने) स्थान वा (योनौ) घर में (अभ्यनूषत) सम्मुख में प्रशंसा करती हैं वा (यत्) जो व्यय् (अपाम्) जलों के (उपस्थे) समीप में (विभृतः) विशेषता से धारण किया हुआ (आवृसत्) अच्छे प्रकार वसे (अध) इसके अनन्तर जैसे विद्वान् (स्वधाः) जलों को (अधयत्) पिये वा (याभिः) जिने क्रियाओं से (ईम्) सब ओर से उनको (ईयते) प्राप्त होता है, वैसे उन सभी के समान तुम्) भी वर्तां। २॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकतेषुतोपमालङ्कार है। जैसे आकाश में जल स्थिर हो और वहाँ से वर्ष कर समस्त जगत् को पृष्ट करता है, वेसे विद्वान् जन चित्त में विद्या को स्थिर कर सब मनुष्यों को पृष्ट करें॥२॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फ़िर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

युर्यूषतः सर्वयसा तदिह्रपुः समानमर्थं वितरित्रता मिथः।

आर्द्वो भगो न हव्यः समस्मदा वोळ्हुर्न रुश्मीन्समयंस्त सार्रथिः॥३॥

युर्युक्तः। प्राप्तयसा। तत्। इत्। वर्षुः। समानम्। अर्थम्। विऽतरित्रता। मिथः। आत्। ईम्। भर्गः। न। हर्व्यः। सम्। अस्मत्। आ। वोळ्हुः। न। रुश्मीन्। सम्। अयंस्ता सार्रथिः॥३॥

पदार्थ:-(युयूषत:) मिश्रयितुमिच्छत: (सवयसा) समानं वयो ययोस्तौ (तत्) (इत्) (वपु:) अरूपम् (समानम्) तुल्यम् (अर्थम्) (वितरित्रता) विविधतयाऽतिशयेन तुरितुमिच्छन्तौ सम्पादयितु-

मण्डल-१। अनुवाक-२१। सूक्त-१४४

१५६७

मिच्छन्तौ। अत्र सर्वत्र विभक्तेराकारादेश:। (मिथ:) परस्परम् (आत्) आनन्तर्ये (ईम्) सर्वत: (भग:) ऐश्वर्यवान् (न) इव (हव्य:) होतुमादातुं स्वीकर्त्तुमर्हः (सम्) (अस्मत्) (आ) समन्तात् (वोढुः) वाहकस्याश्वादेः (न) इव (रश्मीन्) (सम्) (अयंस्त) यच्छतः (सारिषः)॥३॥

अन्वयः-यदा सवयसा शिष्यौ समानं वपुर्युयूषतस्तदिन्मिथोऽर्थं वितरित्रता भवतः। आदीं भागे न हेट्यस्तयो प्रत्येकः सारिथर्वोढू रश्मीन् नास्मदध्यापनान् समायंस्तोपदेशांश्च समयंस्त॥३॥

भावार्थ:-येऽध्यापकोपदेशका निष्कपटतयाऽन्यान् स्वतुल्यान् कर्त्तुमिच्छ्या विदुषः कुर्युस्त उत्तमैश्वर्यं प्राप्य जितेन्द्रियाः स्युः॥३॥

पदार्थ:-जब (सवयसा) समान अवस्थावाले दो शिष्य (समानम्) तुल्य (वपुः) स्वरूप को (युयूषतः) मिलाने अर्थात् एक-दूसरे की उन्नति करने को चाहते हैं (ब्रह्मि) तभी (वितरित्रता) अतीव अनेक प्रकार वे (मिथः) परस्पर (अर्थम्) धनादि पदार्थ की सिद्धि करने की इच्छा करते हैं (आत्) इसके अनन्तर (ईम्) सब ओर से (भगः) ऐश्वर्यवाला पुरुष जैसे (हक्षः) स्वीकार करने योग्य हो (न) वैसे उक्त विद्यार्थियों में से प्रत्येक (सारिषः) सारथी जैसे (वोषुः) पदार्थ पहुँचानेवाले घोड़े आदि की (रश्मीन्) रिस्सियों को (न) वैसे (अस्मत्) हम अध्याति आदि जिनों से पढ़ाइयों को (समायंस्त) भलीभांति स्वीकार करता और उपदेशों को (सम्) भलीभांति स्वीकार करता है॥३॥

भावार्थ:- जो अध्यापक और उपदेशक क्रांट- छल् के विना औरों को अपने तुल्य करने की इच्छा से उन्हें विद्वान् करें, वे उत्तम ऐश्वर्य को प्रार्कर जितन्त्रिय हों॥ ३॥

पुनस्तमेव विष्यमाह॥

फिर उसी किया को अगिले मन्त्र में कहा है।।

यमीं द्वा सर्वयसा सपूर्वतः समाने यानी मिथुना समीकसा।

दिवा न नक्तं पिलतो युवाजिन पुरू चरत्रुजरो मानुषा युगा॥४॥

यम्। ईम्। द्वा। सऽवयस्यो सूप्र्यतः। सुमोने। योनां। मिथुना। सम्ऽओकसा। दिवां। न। नक्तंम्। पुलितः। युवां। अजुनि। पुरु। चर्रन्। क्रुजरः। मानुष्रा युगा॥ ४॥

पदार्थ:-(यम्) सन्तानम् (ईम्) (द्वा) द्वौ (सवयसा) समानवयसौ (सपर्यतः) परिचरतः (समाने) तुल्ये (योना) योनौ जन्मनिमित्ते (मिथुना) दम्पती (समोकसा) समानगृहेण सह वर्तमानौ (दिवा) दिवसे/(न) इत्र (नक्तम्) रात्रौ (पिलतः) जातश्वेतकेशः (युवा) युवावस्थास्थः (अजिन) जायेत (पुरु) बहु/ (चर्स्स) विचरन् (अजरः) जरारोगरिहतः (मानुषा) मनुष्यसम्बन्धीनि (युगा) युगानि वर्षाणि। रहा।

अन्वयः-सवयसा द्वा समाने योना मिथुना दम्पती समोकसा सह वर्त्तमानौ दिवा नक्तन्नेव यमीं बालं सपर्यतः भ्रोऽजरो मोतुषा युगा पुरु चरन् पलितोऽपि युवाऽजनि॥४॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा प्रीत्या सह वर्त्तमानौ स्त्रीपुरुषौ धर्म्येण सुते जनियत्वा सुशिक्ष्य शीलेन संस्कृत्य भद्रं कुरुतस्तथा समानावध्यापकोपदेशकौ शिष्यान् सुशीलान् कुरुतः। यथा वा दिनं रात्र्या सह वर्त्तमानमिप स्वस्थाने रात्रिं निवारयति तथाऽ सिनिभिस्स्रहे वर्त्तमानावध्यापकोपदेशकौ मोहे न संलगतः। यथा वा कृतपूर्णब्रह्मचर्यौ रूपलावण्यवलादिगुणयुक्तं सन्तानमुत्पादयतस्तथैतौ सत्याध्यापनोपदेशाभ्यां सर्वेषां पूर्णमात्मबलं जनयतः॥४॥

पदार्थ:-(सवयसा) समान अवस्थायुक्त (द्वा) दो (समाने) तुल्य (योना) उत्पत्ति स्थान में (मिथुना) मैथुन कर्म करनेवाले स्त्री-पुरुष (समोकसा) समान घर के स्प्र्य वर्तमान (दिवा) दिन (नक्तम्) रात्रि के (न) समान (यम्) जिस (ईम्) प्रत्यक्ष बालक का (सपूर्वतः) सेवन करें उसको पालें, वह (अजरः) जरा अवस्थारूपी रोगरहित (मानुषा) मनुष्य सम्बन्धी (युगा) कर्षों को (पुरु) बहुत (चरन्) चलता भोगता हुआ (पिलतः) सुफेद बालोंवाला भी हो तो (युवा) जवान तरुण अवस्थावाला (अजिन) प्रकट होता है॥४॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। किसे प्रीति के साथ वर्त्तमान स्त्री-पुरुष धर्मसम्बन्धी व्यवहार से पुत्र को उत्पन्न कर उसे अच्छी शिक्षा दे शीलवान कर सुखी करते हैं, वैसे समान पढ़ाने और उपदेश करनेवाले दो विद्वान् शिष्यों को सुशील करते हैं। वा जैसे दिन; रात्रि के साथ वर्त्तमान भी अपने स्थान में रात्रि को निवृत्त करता है विसे अन्तर्मनयों के साथ वर्त्तमान पढ़ाने और उपदेश करनेवाले विद्वान् मोह में नहीं लगते हैं। वा जैसे किया है पूरा ब्रह्मचर्य जिन्होंने वे रूपलावण्य और बलादि गुणों से युक्त सन्तान को उत्पन्न करते हैं, वैसे में सत्य पढ़ाने और उपदेश करने से सबका पूरा आत्मबल उत्पन्न करते हैं।।४॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फ़िर उसी बिषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

तमीं हिन्वन्ति धीतयो दश विशो देवं मर्तांस ऊतये हवामहे। धनोरिधं प्रवत आ स ऋष्वत्यभिव्रजिदिर्वयुना नवाधित॥५॥

तम्। ईम्। हिन्विन्ति ध्रीतयः। दशी। विश्वाः। देवम्। मर्तासः। ऊतये। हवामहे। धनीः। अधि। प्रऽवर्तः। आ। सः। ऋण्वति। अभिव्यन्तिरभः। वयुनी। नर्वा। अधित्।। ५॥

पदार्थः (तेम्) (ईम्) (हिन्बिन्त) हितं कुर्वन्ति प्रीणयन्ति (धीतयः) करपादाङ्गुलय इव (दश) (व्रिशः) प्रणाः। अत्र वर्णव्यत्ययेन वस्य स्थाने वः। (देवम्) विद्वांसम् (मर्तासः) मनुष्याः (ऊतये) रक्षणाद्याः (हवामहे) गृह्णीमः (धनोः) धनुषः (अधि) उपरि (प्रवतः) प्रवणं प्राप्तान् वाणानिव (आ) सम्त्रीत् (पः) (ऋण्वति) प्राप्नोति। अत्र विकरणद्वयम्। (अभिव्रजिद्धः) अभितो गच्छिद्धः (वयुना) वृत्युनि प्रज्ञानि (नवा) नवानि (अधित) दधाति॥५॥

मण्डल-१। अनुवाक-२१। सूक्त-१४४

१५६९

अन्वय:-हे मनुष्या! मर्त्तासो वयमूतये यं देवं हवामहे दश धीतयो व्रिशोऽयं हिन्वन्ति तमीं यूयं स्वीकुरुत यो धनुर्विद्धनोरिधिक्षप्तान् प्रवतो गच्छतो वाणानिधत सोऽभिव्रजद्भिर्विद्वद्भिस्सह नवा वयुना आ ऋण्वति॥५॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। यथा कराङ्गुलिभिर्भोजनादिक्रियया शरीरिण कर्द्धने तथा विद्वदध्यापनोपदेशिक्रियया प्रजा वर्धन्ते। यथा च धनुर्वेदवित् शत्रून् जित्वा रत्नानि लभत्ते, वथा विद्वत्सङ्गफल- विद्विज्ञानानि प्राप्नोति॥५॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! (मर्तास:) मरणधर्मा मनुष्य हम लोग (ऊतये) रक्षा आदि के लिये जिस (देवम्) विद्वान् को (हवामहे) स्वीकार करते वा (दश) दश (धीतय:) हाश्च-पैरों को अङ्गुलियों के समान (विश:) प्रजा जिसको (हिन्वित्त) प्रसन्न करती हैं (तम्, ईम्) उसी को तुम लोग ग्रहण करो, जो धुनर्विद्या का जाननेवाला (धनो:) धनुष के (अधि) ऊपर आरोप कर छोड़े (प्रवत्ताः) जाते हुए वाणों को (अधित) धारण करता अर्थात् उनका सन्धान करता है (स:) वह (अधिव्यज्ञितः) सब ओर से जाते हुए विद्वानों के साथ (नवा) नवीन (वयुना) उत्तम-उत्तम ज्ञानों को (आ ऋणवित्त) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है॥५॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे हाओं की अङ्गुलियों से भोजन आदि क्रिया करने से शरीरादि बढ़ते हैं, वैसे विद्वानों के अध्यापन और उपदेशों की क्रिया से प्रजाजन वृद्धि पाते हैं वा जैसे धनुर्वेद का जाननेवाला शत्रुओं को जीत कर स्लां को प्राप्त होता है, वैसे विद्वानों के सङ्ग के फल को जाननेवाला जन उत्तम ज्ञानों को प्राप्त होता है। ।

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसीर्विषय को ओलि मन्त्र में कहा है॥

त्वं ह्यंग्ने दिव्यस्य राजीस् त्वं पार्थिवस्य पशुपाईव त्मना। एनी त पुते बृहुती अभिश्वसम्बद्धाः वक्वरी बुर्हिराशाते॥६॥

त्वम्। हि। अग्ने। दिक्रिस्या राजिसा त्वेम्। पार्थिवस्य। पुशुपाःऽईव। त्मनी। एनी इति। ते। एते इति। बृहुती इति। अभिऽश्रियो। हिर्फ्युयी इति। वक्वेरी इति। बुहिः। आशाते इति॥६॥

पदार्थ:-(त्वम्) (हि) किल (अग्ने) सूर्य इव प्रकाशमान (दिव्यस्य) दिवि भवस्य वृष्टिचादिविज्ञानस्य (राजिस्) प्रकाशयिस (त्वम्) (पार्थिवस्य) पृथिव्यां विदितस्य पदार्थविज्ञानस्य (पशुपाइव) यथा पशुपालकस्तथा (त्मना) आत्मना (एनी) येइतस्ते (ते) तव (एते) प्रत्यक्षे (बृहती) महत्यौ (अभिश्रिया) अभितः शोभायुक्ते (हिरण्ययी) प्रभूतिहरण्यमय्यौ (वक्वरी) प्रशंसिते (बिर्हः) वर्द्धनम् (आशाते) व्याप्नुतः॥६॥

अनेयः-हे अग्ने! त्वं हि पशुपाइव त्मना दिव्यस्य राजिस त्वं पार्थिवस्य राजिस ये एते एनी बृहती अभिश्रिया हिरिण्ययी क्वितरों द्यावापृथिव्यौ ते विज्ञानानुकूलं बर्हिराशाते॥६॥

भावार्थ:-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। यथा ऋद्धिसिद्धयः पूर्णां श्रियं कुर्वन्ति तथात्मवान् पुरुषः परमेश्वरे भूराज्ये च सुप्रकाशते यथा वा पशुपालः स्वान् पशून् प्रीत्या रक्षति तथा सभापितः स्वाः प्रजा रक्षेत्॥६॥

पदार्थ: -हे (अग्ने) सूर्य के समान प्रकाशमान विद्वान्! (त्वं, हि) आप ही (पशुपाइव) पशुओं की पालना करनेवालों के समान (त्मना) अपने से (दिव्यस्य) अन्तरिक्ष में हुई वृष्टि अदि के विज्ञान को (राजिस) प्रकाशित करते वा (त्वम्) आप (पार्थिवस्य) पृथिवी में जाने हुए पदार्थों के विज्ञान को प्रकाश करते हो (एते) ये प्रत्यक्ष (एनी) अपनी-अपनी कक्षा में घूमनेवाले (बृह्ती) अनीव विस्तारयुक्त (अभिश्रिया) सब ओर से शोभायमान (हिरण्ययी) बहुत हिरण्य जिनमें विद्यमान (वक्वरी) प्रशंसित सूर्यमण्डल और भूमण्डल वा (ते) आपके ज्ञान के अनुकूल (बिह्:) वृद्धि को (आशाते) व्याप्त होते हैं॥६॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्का हैं। जैसे ऋद्धि और सिद्धि पूरी लक्ष्मी को करती हैं, वैसे आत्मवान् पुरुष परमेश्वर और पृथिवी के राज्य में अच्छे प्रकार प्रकाशित होता। जैसे पशुओं का पालनेवाला प्रीति से अपने पशुओं की रक्षा करता है, वैसे सभापित अपने प्रजाजनों की रक्षा करे॥६॥

पुनस्तमेव विषयमाहा।

फिर उसी विषय वी अगले मुक्र में कहा है॥

अग्ने जुषस्व प्रति हर्य तद्वचो मृद्ध स्वधाव ऋतजात सुक्रतो।

यो विश्वतः प्रत्यङ्ङसि दर्श्नो प्रेण्वः संदृष्टी पितुमाँईव क्षयः॥७॥१३॥

अग्ने। जुषस्व। प्रति। हुर्य। तत्त्। विचेः। मन्द्री स्वधाऽवः। ऋतऽजात। सुक्रेतो इति सुऽक्रेतो। यः। विश्वतः। प्रत्यङ्। असि। दुर्शृतः। रुण्वः। सम्हदुष्टो। चितुमान्ऽईव। क्षयः॥७॥

पदार्थ:-(अग्ने) विद्युद्धि वर्तमान जुषस्व) (प्रति) (हर्य) कामयस्व (तत्) (वचः) (मन्द्र) प्रशंसनीय (स्वधावः) प्रश्रस्तं स्वधात्रत्रं विद्यते यस्य तत्सम्बुद्धौ (ऋतजात) ऋतात्सत्यात्प्रादुर्भूत (सुक्रतो) सुकर्मन् (यः) (विश्वतः) (प्रत्युङ्) प्रत्यञ्चतीति (असि) (दर्शतः) द्रष्टव्यः (रण्वः) शब्दविद्यावित् (संदृष्टौ) सम्यक् ब्रश्ने (पितुमानिव) यथाऽन्नादियुक्तः (क्षयः) निवासार्थः प्रासादः॥७॥

अन्वयः हे मेद्र स्वधाव ऋतजात सुक्रतोऽग्ने! यो विश्वतः प्रत्यङ् संदृष्टौ दर्शतो रण्यो विद्वँस्त्वं क्षयः पितुमानिवास्रित्स त्वे सन्मन्नेम्सतं वचस्तज्जुषस्व प्रति हर्य॥७॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। ये प्रशंसितबुद्धयो युक्ताहारविहारा: सत्ये व्यवहारे प्रसिद्धा धर्म्यकर्मप्रज्ञा आप्तानां विदुषां सकाशाद्विद्या उपदेशाँश्च कामयन्ते सेवन्ते च ते सर्वोत्कृष्टा जायन्ते॥७॥ अत्राऽध्यापकोपदेशकगुणवर्णनादेतत्सूक्तार्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेद्यम्॥

मण्डल-१। अनुवाक-२१। सूक्त-१४४

१५७१

इति चतुश्चत्वारिशदुत्तरं शततमं १४४ सूक्तं त्रयोदशो १३ वर्गश्च समाप्त:॥

पदार्थ:-हे (मन्द्र) प्रशंसनीय (स्वधाव:) प्रशंसित अन्नवाले (ऋतजात) सत्य व्यवहार से उत्पन्न हुए (सुक्रतो) सुन्दर कर्मों से युक्त (अग्ने) बिजुली के समान वर्तमान विद्वान्! (य:) जो (विश्वतः) सूर्ण के (प्रत्यङ्) प्रति जाने वा सब से सत्कार लेनेवाले (संदृष्टौ) अच्छे दीखने में (दर्शतः) दर्शतीय (रण्वः) शब्दशास्त्र को जाननेवाले विद्वान् आप (क्षयः) निवास के लिये घर (पितुमान्, इव्) अन्नयुक्त जैसे हो वैसे (असि) हैं, सो आप जो मेरी अभिलाषाकर (वचः) वचन है (तत्) उसको (जुषस्व) सेवो और (प्रति, हर्य) मेरे प्रति कामना करो॥७॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो प्रशंसित बुद्धिवाले यथ्निया आहार-विहार से रहते हुए सत्य व्यवहार में प्रसिद्ध धर्म के अनुकूल कर्म और बुद्धि रखनेहारे शास्त्रज्ञ विद्वानों के समीप से विद्या और उपदेशों को चाहते और सेवन करते हैं, वे सब से उत्तम केते हैं। अ

इस सूक्त में अध्यापक और उपदेशकों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है, यह जानना चाहिये॥

यह एक सौ चवालीसवां १४४ सूक्त और तिरहुचा १३ /वर्ग समाप्त हुआ॥

तं पृच्छतेत्यस्य पञ्चर्चस्य पञ्चचत्वारिशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य दीर्घतमा ऋषिः। अग्निर्देवता। १ विराङ्जगती। २,५ निचृज्जगती च च्छन्दः। निषादः स्वरः। ३,४ भुरिक् त्रिष्टुप्

छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथोपदेश्योपदेशकगुणानाह।।

अब एक सौ पैंतालीसवें सूक्त का आरम्भ है। उसके प्रथम मन्त्र में उपदेश करने योग्य और उपदेश करनेवालों के गुणों का वर्णन करते हैं॥

तं पृच्छता स जंगामा स वेंद्र स चिकित्वाँ ईयते सा न्वीयते।
तिस्मिन्त्सन्ति प्रशिष्टस्तिस्मिन्निष्टयः स वार्जस्य शर्वसः शुष्मिण्स्पितिः॥१॥

तम्। पृच्छत्। सः। जुगाम्। सः। वेद्र। सः। चिकित्वान्। ईयते। सः। मु ईयते। तस्मिन्। सन्ति। प्रऽिशर्षः। तस्मिन्। इष्टर्यः। सः। वार्जस्य। शर्वसः। शुष्मिणः। पतिः॥ १॥

पदार्थ:-तं पूर्वमन्त्रप्रतिपादितं विद्वांसम् (पृच्छत) अधान्येषामपेति दीर्घः। (सः) (जगाम) गच्छति (सः) (वेद) जानाति (सः) (चिकित्वान्) विज्ञानयुक्तः (ईश्वते) प्राप्नोति (सः) (नु) सद्यः (ईयते) प्राप्नोति (तस्मिन्) (सन्ति) (प्रशिषः) प्रकृष्टानि प्राप्नोति (तस्मिन्) (इष्टयः) सत्सङ्गतयः (सः) (वाजस्य) विज्ञानमयस्य (शवसः) बलस्य (शुष्मिणः) बहुषल्युक्तस्य सैन्यस्य राज्यस्य वा (पितः) स्वामी॥१॥

अन्वयः – हे मनुष्याः ! स सत्यमार्गे जगाम सि ब्रह्म वेद्र स चिकित्वान् सुखानीयते सान्वीयते तस्मिन् प्रशिषः सिन्ति तस्मिन्निष्टयः सिन्ति स वाजस्य शवसः शुष्ट्रिणः पतिरस्ति त यूयं पृच्छत॥१॥

भावार्थ:-यो विद्यासुशिक्षायुक्तो धार्मिकः प्रयत्नशीलः सर्वोपकारी सत्यस्य पालक आप्तो विद्वान् भवेत्, तदाश्रयाध्यापनोपदेशैः सर्वे मुनुष्या इष्टविनयप्राप्ताः सन्तु॥१॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! (म्ह) वह विद्वान सत्य मार्ग में (जगाम) चलता है (सः) वह (वेद) ब्रह्म को जानता है (सः) वह (चिकित्वान) विज्ञानपुक्त सुखों को (ईयते) प्राप्त होता (सः) वह (नु) शीघ्र अपने कर्तव्य को (ईयते) प्राप्त होता हैं (तिस्मन्) उसमें (प्रशिषः) उत्तम-उत्तम शिक्षा (सन्ति) विद्यमान हैं (तिस्मन्) उसमें (इष्ट्रणः) सिन्दङ्ग विद्यमान हैं (सः) वह (वाजस्य) विज्ञान का (शवसः) बल वा (शुष्मिणः) बलयुक्त सेनासमूह वा राज्य का (पितः) पालनेवाला स्वामी है, (तम्) उसको तुम (पृच्छत) पूछो॥१॥

भाषार्थ: जो विद्या और अच्छी शिक्षायुक्त, धार्मिक और यत्नशील, सबका उपकारी, सत्य की पालना करनेवाला विद्वान् हो, उसके आश्रय जो पढ़ाना और उपदेश हैं, उनसे सब मनुष्य चाहे हुए काम और विनय को प्राप्त हों॥१॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

मण्डल-१। अनुवाक-२१। सूक्त-१४५

१५७३

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

तमित्पृंच्छन्ति न सिमो वि पृंच्छति स्वेनेव धीरो मनसा यदग्रेभीत्। न मृष्यते प्रथमं नापरं वचोऽस्य क्रत्वां सचते अप्रदृपितः॥२॥

तम्। इत्। पृच्छुन्ति न। सिमः। वि। पृच्छुति। स्वेर्नऽइव। धीरः। मर्नसा। यत्। अग्रेभीत्। ना मृथ्यते। प्रथमम्। न। अपरम्। वर्चः। अस्य। क्रत्वा। सुचुते। अप्रेऽदृपितः॥२॥

पदार्थ:-(तम्) (इत्) एव (पृच्छन्ति) (न) निषेधे (सिमः) सर्वो प्रनुष्ये. (वि) (पृच्छिति) (स्वेनेव) (धीरः) ध्यानवान् (मनसा) विज्ञानेन (यत्) (अग्रभीत्) गृह्णाति (न) निषेधे (मृष्यते) संशय्यते (प्रथमम्) आदिमम् (न) (अपरम्) (वचः) वचनम् (अस्य) आप्तस्य विदुधः (ज्ञत्या) प्रज्ञया कर्मणा वा (सचते) समवैति (अग्रदृषितः) न प्रमोहितः॥२॥

अन्वय:-अप्रदृपितो धीर: स्वेनेव मनसा यद्वचोऽग्रभीद्यदस्य क्रत्वा सह सकते तत्र प्रथमं न मृष्यते तदपरं च न मृष्यते यं सिमो न विपृच्छित तिमदेव विद्वांस: पृच्छिन्ति॥२॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। आप्ता मोहादिदोषगृहिता बिद्धांसाँ योगाभ्यासपिवत्रीकृतेनात्मना यद्यत्सत्यमसत्यं वा निश्चिन्वन्ति तत्तत्सुनिश्चितं वर्तत इतिहरे मिनुष्यो मन्यन्ताम्। ये तेषां संगममकृत्वा सत्यासत्यनिर्णयं जिज्ञासन्ते ते कदाचिदिप सत्याश्रमत्यिनिर्णयं कर्त्तुं न शक्नुवन्ति तस्मादाप्तोपदेशेन सत्याश्रसत्यविनिर्णयः कर्त्तव्यः॥२॥

पदार्थ:-(अप्रदृषित:) जो अतीव मोह को नहीं प्राप्त हुआ वह (धीर:) ध्यानवान् विचारशील विद्वान् (स्वेनेव) अपने समान (मनसा) विज्ञान् से (युन्नू) जिस (वच:) वचन को (अग्रभीत्) ग्रहण करता है वा जो (अस्य) इस शास्त्रज्ञ धर्माद्मा विद्वान् की (क्रत्वा) बुद्धि वा कर्म के साथ (सचते) सम्बन्ध करता है, वह (प्रथमम्) प्रथम (न) नहीं (मध्यते) संशय को प्राप्त होता और वह (अपरम्) पीछे भी (न) नहीं संशय को प्राप्त होता है जिसको (सिप:) सर्व मनुष्यमात्र (न) नहीं (वि, पृच्छिति) विशेषता से पूछता है (तिमत्) उसी को विद्वान् जन (पृच्छिति) पूछते हैं॥२॥

भावार्थ: -इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। आप्त (=साक्षात्कार) जिन्होंने धर्मादि पदार्थ किये वे (शास्त्रवेत्ता) मोहादि दोषरिति विद्वान् योगाभ्यास से पवित्र किये हुए आत्मा से जिस-जिस को सत्य वा असत्य निश्चय करें, वह वह अच्छा निश्चय किया हुआ है, यह और मनुष्य मानें। जो उनका सङ्ग न करके सत्य-असत्य के निर्णय को जानना चाहते हैं, वे कभी सत्य-असत्य का निर्णय नहीं कर सकते। इससे आप्त विद्वानों के स्पर्देश से सत्य-असत्य का निर्णय करना चाहिये॥२॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

त्रिमद्रच्छन्ति जुह्वर्थस्तमर्वतीर्विश्चान्येकः शृणवृद्धचांसि मे।

पुरुष्ट्रैषस्ततुंरिर्यज्ञसाधनोऽच्छिद्रोतिः शिशुराद्ते सं रभः॥३॥

तम्। इत्। गुच्छृन्ति। जुह्वैः। तम्। अर्वतीः। विश्वानि। एकैः। शृणुवृत्। वचांसि। मे। पुरुष्रेषः। ततुरिः। युज्ञुऽसार्धनः। अच्छिद्रऽऊतिः। शिश्वीः। आ। अदुत्त। सम्। रभैः॥३॥

पदार्थ:-(तम्) (इत्) एव (गच्छन्ति) प्राप्नुवन्ति (जुह्वः) विद्याविज्ञाने अदिस्त्यः (तम्) (अर्वतीः) प्रशस्तबुद्धिमत्यः कन्याः (विश्वानि) अखिलानि (एकः) अद्वितीयः (शृणवत्) शृणुयात् (वचांसि) प्रश्नरूपाणि वचनानि (मे) मम (पुरुप्रेषः) पुरुभिर्बहुभिः सज्जनैः प्रेषः प्रेरितः (ततुरिः) दुःखात् सर्वान् सन्तारकः (यज्ञसाधनः) यज्ञस्य विद्वत्सत्कारस्य साधनानि यस्य (अच्छिद्रोतिः) अच्छिद्राऽप्रच्छिन्नाऽद्वैधीभूता ऊती रक्षणादिक्रिया यस्मात् सः (शिशुः) अविश्वादिदोषाणां तनूकर्त्ता (आ) समन्तात् (अदत्त) गृह्णीयात् (सम्) (रभः) महान्॥३॥

अन्वयः – हे विद्वान् ! भवानेको मे विश्वानि वचांसि शृणवद्यो रभः पुरुष्रेषस्ततुम् र्यज्ञसाधनोऽछिद्रोऽतिः शिशुः सर्वोपकारं कर्तुं प्रयत्नं समादत्त यं धीमन्तो गच्छन्ति तमर्वतीर्गच्छन्ति तमिरुष्ट्वि गच्छन्ति॥३॥

भावार्थ:-मनुष्यैर्यद्यद्विदितं यद्यदधीतं तस्य तस्य परीक्षामाप्ताय विदुषे यथा प्रदद्युरेवं कन्या अपि स्वाध्यापिकायै परीक्षां प्रदद्युर्नेवं विना सत्याऽसत्ययोस्सम्याप् निर्णयो भवितुमर्हति॥३॥

पदार्थ:-हे विद्वान्! आप (एक:) अकेले (मे) मेरे (विश्वानि) समस्त (वचांसि) वचनों को (शृणवत्) सुनें जो (रभ:) बड़ा महात्मा (पुरुप्रेषः) जिसको बहुत सज्जनों ने प्रेरणा दी हो (ततुरि:) जो दु:ख से सभी को तारनेवाला (यज्ञसाधनः) विद्वानों के सत्कार जिसके साधन अर्थात् जिसकी प्राप्ति करानेवाला (अच्छिद्रोतिः) जिससे नहीं खण्डित हुई रस्रणादि क्रिया (शिशुः) और जो अविद्यादि दोषों को छिन्न-भिन्न करे, सबके उपकार करने को अच्छा यत्न (समादत्त) भलीभांति ग्रहण करे (तम्) उसको (अर्वतीः) बुद्धिमित कन्या (गच्छिन्त) प्राप्त होती (तिमत्) और उसी को (जुह्वः) विद्या विज्ञान को ग्रहण करनेवाली कन्या प्राप्त होती हैं। इस

भावार्थ:-मनुष्यों ने ब्री जाना और जो जो पढ़ा उस-उस की परीक्षा जैसे अपने आप पढ़ानेवाले विद्वान् को देवें, वैसे कन्या भी अपनी पढ़ानेवाली को अपने पढ़े हुए की परीक्षा देवें। ऐसे करने के विना सत्याऽसत्य का सम्यक् जिणीय होने को योग्य नहीं है॥३॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

उप्रस्थायं चर्सते यत्समारंत सद्यो जातस्तंत्सार युज्येभिः।

💫 भि श्रान्तं मृशते नान्द्यं मुदे यदीं गच्छंन्त्युशृतीरंपिष्टितम्॥४॥

उष्टुं स्थार्यम्। चुरति। यत्। सुम्ऽआरत्। सुद्यः। जातः। तृत्सार्। युज्येभिः। अभि। श्वान्तम्। मृशते। नान्धे। । यत्। र्ट्रुम्। गर्च्छन्ति। उशतीः। अपिऽस्थितम्॥४॥

मण्डल-१। अनुवाक-२१। सूक्त-१४५

१५७५

पदार्थ:-(उपस्थायम्) अभिक्षणमुपस्थातुम् (चरित) गच्छन्ति (यत्) यः (समारत) सम्यक् प्राप्नुत (सद्यः) शीघ्रम् (जातः) प्रसिद्धः (तत्सार) तत्सरेत् (युज्येभिः) योजितुं योग्यैः सह (अभि) (श्वान्तम्) श्रान्तं परिपक्वज्ञानम्। अत्र वर्णव्यत्ययेन रेफस्य स्थानेः वः। (मृशते) (नान्द्ये) आनिद्वाय (यत्) यम् (ईम्) सर्वतः (गच्छन्ति) (उशतीः) कामयमाना विदुषीः (अपिस्थितम्) ॥४॥

अन्वय:-हे जिज्ञासवो जना! यद्यो युज्येभिस्सह सद्यो जात उपस्थायं चरित तत्सार श्राप्तमिभृशते बुद्धिमन्तो यद्यं नान्द्ये मुदेऽपिस्थितमुशतीरीं गच्छन्ति तं यूयं समारत॥४॥

भावार्थ:-हे मनुष्या! ये याश्च सद्यः पूर्णविद्या जायन्ते कुटिलतादिदोष्यम् विहास शान्त्यादिगुणान् प्राप्य सर्वेषां विद्यासुखाय अभीक्ष्णं प्रयतन्ते ते जगदानन्ददायकाः सन्ति॥४)

पदार्थ:-हे जिज्ञासु जनो (यत्) जो (युज्येभिः) युक्त करने योग्य यद्धि के साथ (सद्यः) शीघ्र (जातः) प्रसिद्ध हुआ (उपस्थायम्) क्षण-क्षण उपस्थान करने की (चरित्र) जाता है वा (तत्सार) कुटिलपन से जावे वा (श्वान्तम्) परिपक्व पूरे ज्ञान को (अभिमृशते) सब ओर से विचारता है वा बुद्धिमान् जन (यम्) जिस (नान्द्ये) अति आनन्द और (मुदे) स्मामन्य हुण होने के लिये (अपिस्थितम्) स्थिर हुए को और (उशतीः) कामना करती हुई पण्डिल् औं को (हुम्) सब ओर से (गच्छन्ति) प्राप्त होते, उसको तुम (समारत) अच्छे प्रकार प्राप्त होओ॥४॥

भावार्थ:-हे मनुष्यो! जो बालक और जो किन्या शोष्ट्र पूर्ण विद्यायुक्त होते हैं और कुटिलतादि दोषों को छोड़ शान्ति आदि गुणों को प्राप्त होक्स सबका ब्रिद्या तथा सुख होने के लिये वार-वार प्रयत्न करते हैं, वे जगत् को आनन्द देनेवाले होते हैं॥ ४॥

पुन तिमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय की अगले मन्त्र में कहा है॥

स ई मृगो अप्यो वनुर्युक्त त्वुच्युपमस्यां नि धायि। व्यंब्रवीद्वयुना मर्त्येभ्योऽग्निर्विद्वाँ ऋतिचिद्धि सत्यः॥५॥१४॥

सः। ईम्। मृगः। अप्यः। वनुर्गः। उपं। त्वचि। उप्ऽमस्याम्। नि। धायि। वि। अब्बेतीत्। वयुनां। मर्त्येभ्यः। अग्निः। विद्वान्। ऋतुऽचित्। हि। सत्यः॥५॥

पदार्थ:-(म:) (ईम्) (मृग:) (अप्य:) योऽपोर्हति (वनर्गु:) वनगामी। अत्र वनोपपदादृजु धातोरौणादिक (धप्रत्येषो बाहुलकात्कृत्वं च। (उप) (त्वचि) त्विगिन्द्रिये (उपमस्याम्) उपमायाम्। अत्र वाच्छन्दसीति स्योद्गगमः। (नि) (धायि) धीयते (वि) (अव्रवीत्) उपदिशति (वयुना) प्रज्ञानानि (मर्त्येभ्यः) मनुष्येभ्यः (अग्निः) अग्निरिव विद्यादिसदुणैः प्रकाशमानाः (विद्वान्) वेत्ति सर्वा विद्याः सः (ऋत्वित्) प्रऋतं सत्यं चिनोति (हि) किल (सत्यः) सत्सु पुरुषेषु साधुः॥५॥

अन्वय:-विद्वद्भिर्योऽप्यो वनर्गुर्मृग इव उपमस्यां त्वच्युपनिधायि च ऋतचिदग्निर्विद्वान् मर्त्येभ्यो वयुने व्यब्रवीत् स हि सत्योऽस्ति॥५॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। यथा तृषातुरो मृगो जलपानाय वने भ्रमित्व जिलं प्राप्य नन्दित तथा विद्वांसो शुभाचिरतान् विद्यार्थिन: प्राप्यानन्दिन्त, ये विद्या: प्राप्याऽन्येभ्यो मे प्रयच्छन्ति ते क्षुद्राशया: पापिष्ठा: सन्तीति॥५॥

अत्रोपदेशकोपदेश्यकर्त्तव्यकर्मवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह संगतिरस्त्रात्यवगन्तव्यम् इति पञ्चचत्वारिशदुत्तरं शततमं १४५ सूक्तं चतुर्दशो १४ वर्गश्च समाजः॥

पदार्थ:-विद्वानों से जो (अप्यः) जलों के योग्य (वनर्गुः) वनगुमी (मृगः) हरिण के समान (उपमस्याम्) उपमा रूप (त्वचि) त्विगिन्द्रिय में (उप, नि, धायि) सम्रीप निरन्ति धरा जाता है वा जो (ऋतचित्) सत्य व्यवहार को इकट्ठा करनेवाला (अग्निः) अग्नि के समान विद्या आदि गुणों से प्रकाशमान (विद्वान्) सब विद्याओं को जाननेवाला पण्डित (मत्येश्वः) पनुष्यों के लिये (वयुना) उत्तम-उत्तम ज्ञानों का (ईम्) ही (वि, अव्वतीत्) विशेष करके उपदेश देता है (सः, हि) वही (सत्यः) सज्जनों में साधु है॥५॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे नृषातुर मृग जल पीने के लिये वन में डोलता जल को पाकर आनन्दित होता है, वैसे विद्वार्ग जन शुभ आचरण करनेवाले विद्यार्थियों को पाकर आनन्दित होते हैं और जो शिक्षा पाकर औरों को महीं देते के क्षुद्राशय और अत्यन्त पापी होते हैं॥५॥

इस सूक्त में उपदेश करने और उपदेश सुक्तेवालों के कर्त्तव्य कामों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सूक्त है, यह जानना चाहिये॥

यह एक सौ पैंतालीसवां १४५ सुक्त और चौदहवां १४ वर्ग समाप्त हुआ॥

त्रिमूर्द्धानमित्यस्य पञ्चर्चस्य षट्चत्वारिशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य दीर्घतमा ऋषिः। अग्निर्देवता। १,२ विराट् त्रिष्टुप्। ३,५ त्रिष्टुप्। ४ निचृत्तिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथाग्निविद्वद् गुणा उपदिश्यन्ते॥

अब एक सौ छियालीसवें सूक्त का आरम्भ है। उसके प्रथम मन्त्र में अग्नि और विद्वानों के गुणो

का उपदेश किया है॥

त्रिमूर्धानं सप्तर्रिष्मं गृणीषेऽनूनम्गिनं पित्रोरुपस्थे। निष्कतमस्य चरतो ध्रुवस्य विश्वा द्विवो रोचनापप्रिवांसुम्॥ १॥

त्रिऽमूर्धानम्। सप्तऽर्रिश्मम्। गृणीष्ठे। अनूनम्। अग्निम्। पित्रोः। उपस्थि निऽस्नुतम्। अस्य। चर्रतः। ध्रुवस्यं। विश्वां। द्विवः। रोचना। आपुप्रिऽवांस्रम्॥ १॥

पदार्थ:-(त्रिमूर्द्धानम्) त्रिषु निकृष्टमध्यमोत्तमेषु पदार्थेषु मूर्द्धा वस्य तम् (सप्तरिश्मम्) सप्तसु छन्दस्सु लोकेषु वा रश्मयो यस्य तम् (गृणीषे) स्तौषि (अनूमम्) हीन्त्रारिहतम् (अग्निम्) विद्युतम् (पित्रो:) वाय्वाकाशयो: (उपस्थे) समीपे (निषत्तम्) नितरां प्राप्तम् (अग्न्य) (चरतः) स्वगत्या व्याप्तस्य (ध्रुवस्य) निश्चलस्य (विश्वा) सर्वाणि (दिवः) प्रकाशसित्तस्य (रोवना) प्रकाशनानि (आपप्रिवांसम्) समन्तात् पूर्णम्॥१॥

अन्वय:-हे धीमन्! यतस्त्वं पित्रोरुपस्थे निषक्तं विभूद्धानं स्प्रूतरिशममनूनमस्य चरतो ध्रुवस्य चराऽचरस्य दिवश्च विश्वा रोचनापप्रिवांसमग्निमिव वर्त्तमानं विद्वांसं गृणीषे सिन्त्वं विद्वां, प्राप्तुमर्हसि॥१॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा त्रिभिर्विद्युत्सूर्यप्रसिद्धाग्निरूपैरग्निः चराऽचरस्य कार्यसाधको वर्त्तते तथा विद्वांसोऽखिलस्य विश्वस्योपकारका भवन्ति॥१॥

पदार्थ:-हे धारणशील उत्तम बुद्धिवाल जन! जिससे तू (पित्रो:) पालनेवाले पवन और आकाश के (उपस्थे) समीप में (निषत्तम्) निरन्तर प्राप्त (त्रिमूर्द्धानम्) तीनों निकृष्ट, मध्यम और उत्तम पदार्थों में शिर रखनेवाले (सप्तरिश्मम्) सात गायत्री आदि छन्दों वा भूरादि सात लोकों में जिसकी प्रकाशरूप किरणें हों ऐसे (अनूनम्) हीनपने से रहित और (अस्य) इस (चरतः) अपनी गति से व्याप्त (धुवस्य) निश्चल (दिवः) सूर्यमण्डले के (विश्वा) समस्त (रोचना) प्रकाशों को (आपप्रिवांसम्) जिसने सब ओर से पूर्ण किया उस (अग्निम्) बिजुली रूप आग के समान वर्तमान विद्वान् की (गृणीषे) स्तुति करता है, सो तू विद्या पाने योग्य होता है॥१॥

भाषार्थ: इस भन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे तीन बिजुली, सूर्य और प्रसिद्ध अग्नि रूपों से अग्नि चराचर जगत् के कार्यों को सिद्ध करनेवाला है, वैसे विद्वान् जन समस्त विश्व का उपकार करनेवाले होते हैं॥१॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

उक्षा महाँ अभि वेवक्ष एने अजर्रस्तस्थावितऊतिर्ऋष्वः।

उर्व्याः पदो नि दंधाति सानौ रिहन्त्यूधी अरुषासी अस्य॥२॥

उक्षा। महान्। अभि। वृव्क्षे। एने इति। अजर्रः। तस्थौ। इतःऽऊतिः। ऋष्वः। उर्व्याः। पदः नि। दुर्धाति। सानौ। रिहन्ति। ऊर्थः। अरुषासंः। अस्य॥२॥

पदार्थ:-(उक्षा) सेचकः (महान्) (अभि) (ववक्षे) संहन्ति। अयं वक्षः सङ्घात इत्यस्य प्रयोगः। (एने) द्यावापृथिव्यौ (अजरः) हानिरहितः (तस्थौ) तिष्ठति (इतऊतिः) इतः ऊती रक्षणाद्या क्रिया यस्मात् सः (ऋष्वः) गतिमान् (उर्व्याः) पृथिव्याः (पदः) पदान् (नि) (द्याति) (स्पनौ) विश्वकते जगति (रिहन्ति) प्राप्नुवन्ति (ऊधः) जलस्थानम् (अरुषासः) अहिंसमानाः किरणाः (अस्थै) मेघस्य २॥

अन्वय:-हे मनुष्या! यथा उर्व्या महानुक्षा अजर ऋष्वः सूर्य एने ह्यावापृषिद्याविभ ववक्षे इतऊतिः सन् पदो निद्धाति अस्यारुषासः सानावृधो रिहन्ति यो ब्रह्माण्डस्य मध्ये तस्थौ तद्वद्गं सूर्य भेषत्॥ ॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। मनुष्यैर्यथा सूत्रात्मा वर्ग्युर्भूमिं सूर्य च धृत्वा जगद्रक्षति यथा वा सूर्य: पृथिव्या महान् वर्त्तते तथा वर्त्तितव्यम्॥२॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! जैसे (उर्व्या:) पृथिवी से (महान) बड़ा (उक्षा) वर्षा जल से सींचनेवाला (अजर:) हानिरहित (ऋष्व:) गितमान सूर्य (एने) इन अन्तरिक्ष और भूमिमण्डल को (अभि, ववक्षे) एकत्र करता है (इतऊति:) वा जिससे रक्षा अदि किया प्राप्त होती ऐसा होता हुआ (पद:) अपने अंशों को (नि, दधाति) निरन्तर स्थापित करता है (अस्य) इस सूर्य की (अरुषास:) नष्ट होती हुई किरणें (सानौ) अलग-अलग विस्तृत जगत् में (अर्थ:) जलस्थान को (रिहन्ति) प्राप्त होती हैं वा जो ब्रह्माण्ड के बीच में (तस्थौ) स्थिर है, उसके समान तुम लोग होओ॥२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तिपमालङ्कार है। मनुष्यों को जैसे सूत्रात्मा वायु; भूमि और सूर्यमण्डल को धारण करके सिंगर की रक्षा करता है वा जैसे सूर्य पृथिवी से बड़ा है, वैसा वर्त्ताव वर्त्तना चाहिये॥२॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

र्फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

सुमार्ग वृत्सेपुभि सुंचरन्ती विष्वर्षधेनू वि चरतः सुमेके।

अनुप्युच्याँ अध्वनो मिमाने विश्वान् केताँ अधि महो द्याने॥३॥

सुपानम्। वृत्सम्। अभि। संचर्रन्ती इति सुम्ऽचर्रन्ती। विष्वक्। धेनू इति। वि। चुर्तः। सुमेके इति सुर्भके। अ<u>न्यपुर्व</u>ज्यान्। अर्ध्वनः। मिर्माने इति। विश्वान्। केर्तान्। अर्धि। मुहः। दर्धाने इति॥३॥

मण्डल-१। अनुवाक-२१। सूक्त-१४६

१५७९

पदार्थ:-(समानम्) तुल्यम् (वत्सम्) वत्सवद्वर्त्तमानोऽहोरात्रः (अभि) अभितः (संचरन्ती) सम्यग् गच्छन्ती (विष्वक्) विषुं व्याप्तिमञ्चति (धेनू) धेनुरिव वर्त्तमाने (वि) (चरतः) (सुमेके) सुष्टु मेकः प्रक्षेपो ययोस्तौ (अनपवृज्यान्) अपवर्जितुमनर्हान् (अध्वनः) मार्गस्य (मिमाने) निर्माणकर्तृणी (विश्वान्) समग्रान् (केतान्) बोधान् (अधि) (महः) महतः (दधाने)॥३॥

अन्वय:-हे मनुष्या! यूयं यथा द्यावापृथिव्यौ समानं वत्समभिसंचरन्ती सुमेकेऽध्वनोऽनूपवृज्यान् पिमाने महो विश्वान् केतानिध दधाने धेनू इव विष्वग् विचरतः तथेमे विदित्वा पक्षपातं विहाय सर्वेषां कामान् पूर्यत॥३॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये मनुष्याः सूर्यवत् न्यायमुण्यकर्षकप्रकाशका नानाविधमार्गान् निर्मिमाणा धेनुवत् सर्वान् पुष्यन्तः समग्रा विद्या धरन्ति ते हुन्क्सहताः स्युः॥३॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! तुम लोग जैसे सूर्यलोक और भूमण्डल दोनों (समानम्) तुल्य (वत्सम्) बछड़े के समान वर्त्तमान दिन-रात्रि को (अभि, सं, चरन्ती) सब और से अच्छे प्रकार प्राप्त होते हुए (सुमेके) सुन्दर जिनका त्याग करना (अध्वन:) मार्ग से (अनुप्रत्यान्) न दूर करने योग्य पदार्थों को (मिमाने) बनावट (रचना) करनेवाले (महः) बड़े-बड़े (विश्वान) समग्र (केतान्) बोधों को (अधि, दधाने) अधिकता से धारण करते हुए (धेनू) गौओं के सम्मिन (विश्वान), वि, चरतः) सब ओर से विचर रहे हैं, वैसे इन्हें जान, पक्षपात को छोड़, सब कामों को पूरा करों। ३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य सूर्य के समान न्याय, गुणों के आकर्षण और प्रकाश⁴² करनेवाले, नानाविध मार्गों का निर्माण करते हुए, धेनु के समान सबकी पृष्टि करते हुए, समग्र विद्याओं को धारण करते हैं, वे दुःखरहित होते हैं॥३॥

पुनातमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय की अगले मन्त्र में कहा है॥

धीरांसः पुदुं कुवयों न्यन्ति नानां हृदा रक्षमाणा अजुर्यम्।

सिषांसन्तः पर्यपश्यन्ते सिन्धुंमाविरे यो अभवत् सूर्यो न्न्॥४॥

धीरांसः। पदम्। क्वयः। नुसून्त्। नानां। हृदा। रक्षमाणाः। अजुर्यम्। सिसांसन्तः। परिं। अपुश्यन्तः। सिस्धुम्। आविः। पुभ्यः। अभवत्। सूर्यः। नृन्॥४॥

पदार्थ:-(धीरासः) ध्यानवन्तो विद्वांसः (पदम्) पदनीयम् (कवयः) विक्रान्तप्रज्ञाः शास्त्रविदो विद्वांसः (नयन्ति) प्राप्नुवन्ति (नाना) अनेकान् (हृदा) हृदयेन (रक्षमाणाः) ये रक्षन्ति ते। अत्र व्यत्ययेनात्मपेपदम् (अजुर्यम्) यदजूर्षु हानिरहितेषु साधु (सिषासन्तः) संभक्तुमिच्छन्तः (परि) सर्वतः

५२ मुणों को आकर्षण करनेवालों का प्रकाश-हस्तलेख॥ सं)॥

(अपश्यन्त) पश्यन्ति (सिन्धुम्) नदीम् (आविः) प्राकट्ये (एभ्यः) (अभवत्) भवति (सूर्य्यः) सर्वितवे (नृन्) नायकान् मनुष्यान्॥४॥

अन्वय:-ये धीरासः कवयो हृदा नाना नॄन् रक्षमाणा सिषासन्तः सिन्धुं सूर्य इवाजुर्यं पदं नयन्ति सिप्तिसम्मि पर्यपश्यन्त य एभ्यो विद्याभिशिक्षे प्राप्याविरभवत् सोऽपि तत्पदमाप्नोति॥४॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। ये सर्वानात्मवत्सुखदु:खव्यवस्थायां विदित्वा न्यायमेवाश्रयन्ति तेऽव्ययं पदमाप्नुवन्ति, यथा सूर्यो जलं वर्षयित्वा नदी: पिपूर्ति तथा विद्वांसो सत्यवचांसि वर्षयित्वा मनुष्यात्मन: पिपुरित॥४॥

पदार्थ:-जो (धीरास:) ध्यानवान् (कवय:) विविध प्रकार के पहार्थों में आक्रमण करनेवाली बुद्धियुक्त विद्वान् (हृदा) हृदय से (नाना) अनेक (नृन्) मुखियों की (रक्षमाणाः) रक्षा करते और (सिषासन्तः) अच्छे प्रकार विभाग करने की इच्छा करते हुए (सूर्यः) सूर्व के समान अर्थात् जैसे सूर्यमण्डल (सिन्धुम्) नदी के जल को स्वीकार करता वैसे (अनुर्यम्) होनिरहित (पदम्) प्राप्त करने योग्य पद को (नयन्ति) प्राप्त होते हैं, वे परमात्मा को (परि, अपश्यन्त) सब ओर से देखते अर्थात् सब पदार्थों में विचारते हैं जो (एभ्यः) इनसे विद्या और उत्तम शिक्षा को पाके (आविः) प्रकट (अभवत्) होता है, वह भी उस पद को प्राप्त होता है॥४॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो सबको आत्मा के समान सुख-दु:ख की व्यवस्था में जान न्याय का ही आश्रय करते हैं। श्री अव्यय पूर्व को प्राप्त होते हैं। जैसे सूर्य जल को वर्षा कर निदयों को भरता पूरी करता है, वैसे विद्वान जन सत्यवचनों को वर्षा कर मनुष्यों के आत्माओं को पूर्ण करते हैं॥४॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फ़िर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

दिद्क्षेण्यः परि काष्ट्रीस् जेन्यं ईकेयों महो अर्भाय जीवसें।

पुरुऽत्रा यदभवुत्पूरहेभ्यो गुर्भभ्यो मुघवा विश्वदर्शतः॥५॥१५॥

दिदृक्षेण्यः। परि। केष्ट्रीस्। जैन्यः। ईळेन्यः। महः। अर्भायः। जीवसे। पुरुऽत्रा। यत्। अर्भवत्। सूः। अर्ह। एभ्यः। गर्भेभ्यः। मुद्रुऽवा। विश्वऽदर्शतः॥५॥

पदार्थः (दिद्वक्षेण्यः) द्रष्टुमिच्छयैष्टव्यः (पिरं) सर्वतः (काष्ठासु) दिक्षु (जेन्यः) जेतुं शीलः (ईळेन्यः) स्तातुमहः (पहः) महते (अर्भाय) अल्पाय (जीवसे) जीवितुम् (पुरुत्रा) पुरुषु बहुष्विति (यत्) यः (अभवत्) भवेत् (सूः) यः सूते सः (अह) विनिग्रहे (एभ्यः) (गर्भेभ्यः) गर्तुं स्तोतुं योग्येभ्यः (मधन्ना) परमपूजितधनयुक्तः (विश्वदर्शतः) विश्वैरखिलैर्विद्वद्भिद्र्द्रष्टुं योग्यः॥५॥

मण्डल-१। अनुवाक-२१। सूक्त-१४६

१५८१

अन्वयः – हे मनुष्या! यद्योऽहैभ्यो गर्भेभ्यो विद्वत्तमेभ्यो महोऽर्भाय जीवसे पुरुत्रा मघवा विश्वदर्शतो दिदृक्षेण्यः काष्ठासु जेन्य ईळेन्यस्सूः पर्यभवत्स सर्वैः सत्कर्त्तव्यः॥५॥

भावार्थ:-ये दिक्षु व्याप्तकीर्त्तयः शत्रूणां जेतारो विद्वत्तमेभ्यः प्राप्तविद्यासुशिक्षाः शुभार्णिक्श्नीया जनाः सन्ति ते जगन्मङ्गलाय प्रभवन्ति॥५॥

अस्मिन् सूक्तेऽग्निविद्वद्भुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन साकं सङ्गतिर्वेद्या॥

इति षट्चत्वारिशदुत्तरं शततमं १४६ सूक्तं पञ्चदशो १५ वर्गश्च समाम्त्ः॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! (यत्) जो (अह) ही (एभ्यः) इन (गर्भेभ्यः) स्तृति कर्रो के योग्य उत्तम विद्वानों से (महः) बहुत और (अभीय) अल्प (जीवसे) जीवन के लिये (पुरुत्रा) बहुतों में (मघवा) परम प्रतिष्ठित धनयुक्त (विश्वदर्शतः) समस्त विद्वानों से देखने के योग्य (दिदृश्लिपः) वा देखने की इच्छा से चाहने योग्य (काष्ठासु) दिशाओं में (जेन्यः) जीतनेवाला अर्थात् दिख्लियों (इंकेन्यः) और स्तृति प्रशंसा करने के योग्य (सूः) सब ओर से उत्पन्न (परि, अभवत्) हो सो सबको सत्कार करने के योग्य है॥५॥

भावार्थ:-जो दिशाओं में व्याप्त कीर्त्ति अर्थात् दिग्विजर्यी, प्रसिद्ध शत्रुओं को जीतनेवाले, उत्तम विद्वानों से विद्या उत्तम शिक्षाओं को पाये हुए शुभ गुणों से दर्शनीय जन है, वे संसार के मङ्गल के लिये समर्थ होते हैं॥५॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वानों के गुणों का वर्णने होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जानना चाहिये॥

यह एक सौ छियालीसवाँ १४६ सूक्त और पुन्रहवाँ १५ वर्ग समाप्त हुआ॥

कथेत्यस्य पञ्चर्चस्य सप्तचत्वारिशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य दीर्घतमा ऋषि:। अग्निर्देवता। १,३,४,५ निचृत्त्रिष्टुप्। २ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथ मित्राऽमित्रयोर्गुणानाह।।

अब एक सौ सैंतालीसवें सूक्त का आरम्भ है। उसके प्रथम मन्त्र में मित्र और अमित्र के सुणों

का वर्णन करते हैं।।
कथा ते अग्ने शुचर्यन्त आयोर्ददाशुर्वाजेभिराशुषाणाः।

उभे यत्तोके तर्नये दर्धांना ऋतस्य सामन् रुणयन्त देवाः॥ १॥

कथा। ते। अग्ने। शुचर्यन्तः। आयोः। दुदाशुः। वाजैभिः। आशुषाणाः। ध्रिभे इति। अत्। तोके इति। तनिये। दुर्धाना। ऋतस्य। सार्मन्। रुणयन्त् । देवाः॥ १॥

पदार्थ:-(कथा) कथम् (ते) तव (अग्ने) विद्वन् (शृच्यन्तः) भे शुचीनात्मन इच्छन्ति ते (आयोः) विदुषः (ददाशुः) दातुः (वाजेभिः) विज्ञानादिभिर्गृष्णेः सह (आशुषाणाः) आशुविभाजकाः (उभे) द्वे वृत्ते (यत्) (तोके) अपत्ये (तनये) पुत्रे (दधानाः) (ऋतस्य) सत्यस्य (सामन्) सामिन वेदे (रणयन्त) शब्दयेयुः। अत्राडभावः। (देवाः) विद्वांसः॥१॥

अन्वय:-हे अग्ने ददाशुरायोस्ते यद्ये वाजेभिः सह आशुष्पणास्तु तोके उभे दधानाः शुचयन्तो देवाः सन्ति ते सामन्नतस्य कथा रणयन्त॥१॥

भावार्थ:-सर्वे अध्यापका विद्वांसोऽनू सिन्पाप्ते क्रिद्वांसं प्रति प्रच्छेयुर्वयं कथमध्यापयेम, स तान् सम्यक् शिक्षेत् यथैते प्राप्तविद्यासुशिक्षा जिल्लेन्द्रिया धार्मिकाः स्युस्तथा भवन्तोऽध्यापयन्त्वित्युत्तरम्॥१॥

पदार्थ:-हे (अग्ने) विद्वान् (दूदाशुः) दिनेवाले (आयोः) विद्वान्! जो आप (ते) उन तुम्हारे (यत्) जो (वाजेभिः) विज्ञानादि गुणों के साथ (आशुषाणाः) शीघ्र विभाग करनेवाले (तनये) पुत्र और (तोके) पौत्र आदि के निमित्त (उभे) के प्रकार के चिरत्रों को (दधानाः) धारण किये हुए (शुचयन्तः) पवित्र व्यवहार अपने को चाहते हुए (दवाः) विद्वान जन हैं, वे (सामन्) सामवेद में (ऋतस्य) सत्य व्यवहार का (कथा) कैसे (रणयन्त्र) वृद्ध-विद्वाद करें॥१॥

भावार्थ: - सब अध्यापने विद्वान् जन उपदेशक शास्त्रवेत्ता धर्मज्ञ विद्वान् को पूछे कि हम लोग कैसे पढ़ावें, वह क्रूहें अच्छे प्रकार सिखावे, क्या सिखावे ? कि जैसे ये विद्या तथा उत्तम शिक्षा को प्राप्त इन्द्रियों को जीतनेवास धार्मिक पढ़नेवाले हों, वैसे आप लोग पढ़ावें, यह उत्तर है॥१॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

बोध्र मे अस्य वर्चसो यविष्ठ मंहिष्ठस्य प्रभृतस्य स्वधावः।

मण्डल-१। अनुवाक-२१। सूक्त-१४७

१५८३

पीर्यति त्वो अर्नु त्वो गृणाति वुन्दार्रुस्ते तुन्वं वन्दे अग्ने॥२॥

बोर्ध। में। अस्य। वर्चसः। युविष्ठ। मंहिष्ठस्य। प्रऽभृतस्य। स्वधाऽवः। पीर्यति। त्वः। अर्नु। त्वः पूणाति। वन्दार्भः। ते। तुन्वम्। वृन्दे। अग्ने॥२॥

पदार्थ:-(बोध) अत्र ह्रचचोऽतिस्तङ इति दीर्घ:। (मे) मम (अस्य) (वचस:) वचित्रस्य (विष्ठ) अतिशयेन युवा (मंहिष्ठस्य) अतिशयेनोरोर्बहुप्रज्ञस्य (प्रभृतस्य) प्रकर्षेण धृतस्य (विष्ठाः) प्रशस्तमन्नं विद्यते यस्य तत्सम्बुद्धौ (पीयित) पिबति (त्वः) अन्यः (अनु) आनुकूल्ये (त्वः) द्वितीयः (गृणाित) स्तौित (वन्दारुः) अभिवादनशीलः (ते) तव (तन्वम्) शरीरम् (वन्दो) अभिवादय (अम्मे) विद्वत्तम॥२॥

अन्वय:-हे स्वधावो यविष्ठ! त्वं मेऽस्य मंहिष्ठस्य प्रभृतस्य वचसो बोध। हे अन्तर्भ यथा त्वः पीयित यथा त्वोऽनुगृणाति तथाऽहमिप भवेयम्॥२॥

भावार्थ:-यदाऽऽचार्यस्य समीपे शिष्योऽधीयेत तदा पूर्वस्याऽभीतस्य परीक्षां दद्यात्। अध्ययनात्प्रागाचार्यं नमस्कुर्याद् यथाऽन्ये मेधाविनो युक्त्याधीयेम्स् तथा स्वयमिप पठेत्॥२॥

पदार्थ:-हे (स्वधाव:) प्रशंसित अत्रवाले (यिवष्ठ) अत्यन्त क्रण! तू (में) मेरे (अस्य) इस (मंहिष्ठस्य) अतीव बुद्धियुक्त (प्रभृतस्य) उत्तमता से धारण किये हुए (वचस:) वचन को (बोध) जान। हे (अग्ने) विद्वानों में उत्तम विद्वान्! जैसे (वन्दारु:) वन्दना करमवाला मैं (ते) तेरे (तन्वम्) शरीर को (वन्दे) अभिवादन करता हूँ वा जैसे (त्व:) दूसरा कोई जेने (पीयित) जल आदि को पीता है वा जैसे (त्व:) दूसरा कोई और जन (अनुगृणाति) अनुकूषता से स्त्रुति प्रशंसा करता है, वैसे मैं भी होऊं॥२॥

भावार्थ:-जब आचार्य के समीप शिष्य पहें, तब पिछले पहें हुए की परीक्षा देवे, पढ़ने से पहिले आचार्य को नमस्कार उसकी वन्द्रमा कि और जैसे अन्य धीर बुद्धिवाले पहें, वैसे आप भी पहें॥२॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विष्य को अगले मन्त्र में कहा है॥

ये पायवो माम्त्यं ते अक्ने पश्यन्तो अन्धं दुरितादरक्षन् रुरक्ष तान्त्सुकृता विश्ववैदा दिप्सन्त इद्रिपवो नाहं देभुः॥३॥

ये। <u>पायकी मामतेयम्। ते। अग्ने। पश्यन्तः। अन्यम्। दुःऽइतात्। अर्रक्षन्। र्</u>रक्षी तान्। सुऽकृतीः। विश्वऽवैदाः। द्विप्यन्तः। इत्। रिपर्वः। न। अही देभुः॥३॥

पदार्थ: (य) (पायवः) रक्षकाः (मामतेयम्) ममतायाः प्रजायाः अपत्यम् (ते) तव (अग्ने) विद्वन् (पेश्यन्तः) संप्रेक्षमाणाः (अन्धम्) अविद्यायुक्तम् (दुरितात्) दुष्टाचारात् (अरक्षन्) रक्षन्ति (ररक्ष) रक्षेत् (त्वन्) (सुकृतः) सुष्ठु कर्मकारिणः (विश्ववेदाः) यो विश्वं विज्ञानं वेत्ति सः (दिप्सन्तः) अस्मान् दिम्भतं हिसित्मिन्छन्तः (इत्) अपि (रिपवः) अरयः (न) निषेधे (अह्) विनिग्रहे (देशः) दश्नयुः॥३॥

अन्वय:-हे अग्ने विद्वन्! ते ये पश्यन्तः पायवो मामतेयमन्धं दुरितादरक्षन् तान् सुकृतो विश्ववेदा भवान् ररक्षे यतो दिप्सन्त इद्रिपवो नाह देभु:॥३॥

भावार्थ:-ये विद्याचक्षुषोऽन्धं कूपादिव जनानविद्याऽधर्माचरणाद्रक्षेयुस्तान् पितृवत्सत्हर्युं। ये व्यसनेषु निपातयेयुस्तान् दूरतो वर्जयेयु:॥३॥

पदार्थ: - हे (अग्ने) विद्वान्! (ते) आपके (ये) जो (पश्यन्तः) अच्छे देखनेवृति (पायवः) रक्षा करनेवाले (पापतेयम्) प्रजा का अपत्य जो कि (अग्धम्) अविद्यायुक्त हो उसको (दुरितात्) दुष्ट आचरण से (अरक्षन्) बचाते हैं (तान्) उन (सुकृतः) सुकृती उत्तम कर्म करनेवाले जल्लों को (विश्ववेदाः) समस्त विज्ञान के जाननेवाले आप (ररक्ष) पालें, जिससे (दिप्सन्तः) हम लोगों को मारने की इच्छा करते हुए (इत्) भी (रिपवः) शत्रुजन (न, अह) नहीं (देभुः) मार सकें॥३॥

भावार्थ:-जो विद्याचक्षु जन अन्धे को कूप से जैसे वैसे प्रचुष्यों को अविद्या और अधर्म के आचरण से बचावें, उनका पितरों के समान सत्कार करें और जो दुष्ट आचरणों में गिरावें उनका दूर से त्याग करे रहें॥३॥

पुनस्तमेव विषयमाहा।

फिर उसी विषय को अगृत्वे मन्त्र में बहा है॥

यो नो अग्ने अरिरवाँ अघायुररातीवा मुर्धियति द्वेशेन।

मन्त्रों गुरुः पुनरस्तु सो अस्मा अन्/मृक्षीष्ट तुन्त्रं दुरुक्तैः॥४॥

यः। नः। अग्ने। अर्रिऽवान्। अघुऽसुः। अर्गातिऽत्रा। मुर्चयिति। द्वयेने। मन्त्रेः। गुरुः। पुनेः। अस्तु। सः। अस्मै। अनुं। मृक्षीष्ट्र। तन्वंम्। दुःऽउक्तैः॥ ४॥

पदार्थ:-(य:) (न:) अस्मानस्पाकं वा (अग्ने) विद्वन् (अरितवान्) प्राप्नुवन् (अघायुः) आत्मनोऽघिमच्छुः (अरातीवा) यो असितिवाचरित (मर्चयित) उच्चरित (द्वयेन) द्विविधेन कर्मणा (मन्त्र:) विचारवान् (गुरुः) अपेदेश (पुनः) (अस्तु) भवतु (सः) (अस्मै) (अनु) (मृक्षीष्ट) शोधयतु (तन्वम्) शरीरम् (दुरुवते हुष्टेरुवते) (४॥

अन्वय:-हे अग्ने यो अरेरिवानघायुररातिवा द्वयेन दुरुक्तैर्नोऽस्मान् मर्चयति ततो यो नस्तन्वमनुमृक्षीष्ट सोऽस्माकमस्मै पुनर्मुन्हो गुरुरस्तु॥४॥

भावार्थः - ये पनुष्याणां मध्ये दुष्टं शिक्षन्ते ते त्याज्याः । ये सत्यं शिक्षन्ते ते माननीयास्सन्तु॥४॥

प्रदर्श: है (अग्ने) विद्वान्! (य:) जो (अरिरवान्) दु:खों को प्राप्त करता हुआ (अघायु:) अपने को अपर्यक्ष की इच्छा करनेवाला (अरातीवा) न देनेवाले जन के समान आचरण करता (द्वरोन) दो प्रकार के कर्म से वा (दुरुक्तै:) दुष्ट उक्तियों से (न:) हम लोगों को (मर्चयित) कहता है, उससे जो

मण्डल-१। अनुवाक-२१। सूक्त-१४७

हमारे (तन्वम्) शरीर को (अनु, मृक्षीष्ट) पीछे शोधे (स:) वह हमारा और (अस्मै) उक्त व्यवहार के लिये (पुन:) वार-वार (मन्त्र:) विचारशील (गुरु:) उपदेश करनेवाला (अस्तु) होवे॥४॥

भावार्थ:-जो मनुष्यों के बीच दुष्ट शिक्षा देते वा दुष्टों को सिखाते हैं, वे छोड़ने योख और जो सत्य शिक्षा देते वा सत्य वर्त्ताव वर्त्तनेवाले को सिखाते, वे मानने के योग्य होवें॥४॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

उत वा यः सहस्य प्रविद्वान् मर्तो मर्तं मुर्चयति द्वयेन।

अर्तः पाहि स्तवमान स्तुवन्तमग्ने मार्किर्नो दुरितार्यं धायीः॥ 🕕 📢

उता वा। यः। सहस्य। प्रऽविद्वान्। मर्तः। मर्तम्। मुर्चयितः। द्वयेने अतः। पाहि। स्तुवमानः। स्तुवन्तम्। अग्ने। मार्किः। नः। दुःऽङ्कृतायः। धायोः॥५॥

पदार्थ:-(उत) अपि (वा) पक्षान्तरे (यः) (सहस्य) सहिस पूर्व (प्रविद्वान्) प्रकर्षेण वेत्तीति प्रविद्वान् (मर्त्तः) मनुष्यः (मर्त्तम्) मनुष्यम् (मर्चयित्) शब्दयति (द्वार्यः) अध्यापनोपदेशरूपेण (अतः) (पाहि) (स्तवमान) स्तुतिकर्त्तः (स्तुवन्तम्) स्तुतिकर्त्तारम् (अनि) बिद्वन् (मािकः) निषेधे (नः) अस्मान् (दुरिताय) दुष्टाचाराय (धायीः) धाययेः॥५॥

अन्वयः-हे सहस्य स्तवमानाग्ने! त्वं यः प्रविद्वान् मर्त्तो प्रद्वयेन मर्त्तं मर्चयत्यतस्तं स्तुवन्तं पाहि। उत वा नोऽस्मान् दुरिताय माकिर्धायीः॥५॥

भावार्थ:-ये विद्वांसः सुशिक्षाध्यापनाभ्यां मुमुख्याणामात्मशरीरबलं वर्धयित्वाऽविद्यापापाचरणात् पृथक् कुर्वन्ति ते विश्वशोधका भवन्ति॥५॥

अस्मिन् सूक्ते मित्राऽमित्रमुणवर्णेचादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह संगतिरस्तीति वेद्यम्॥

इति सप्तचत्वारिशदुत्तरं शततसं १४७ सूक्तं षोडशो १६ वर्गश्च समाप्त:॥

पदार्थ:-हे (सहस्य) बलादिक, में प्रिसिद्ध होने (स्तवमान) और सज्जनों की प्रशंसा करनेवाले (अग्ने) विद्वान्! तू (यः) जो (प्रिक्कित्) उत्तमता से जाननेवाला (मर्तः) मनुष्य (द्वयेन) अध्यापन और उपदेश रूप से (मर्तम्) मनुष्य को (मर्चयित) कहता है अर्थात् प्रशंसित करता है (अतः) इससे (स्तुवन्तम्) स्तुति अर्थात् प्रशंसा करते हुए जन को (पाहि) पालो (उत, वा) अथवा (नः) हम लोगों को (दुरिताय) दुष्टू आचरण्य के लिये (मािकः) मत कभी (धार्योः) धायिये (पािलये)॥५॥

भूतिर्थः जो विद्वान् उत्तम शिक्षा और पढ़ाने से मनुष्यों के आत्मिक और शारीरिक बल को बढ़ा के और उनको अविद्या और पाप के आचरण से अलग करते हैं, वे सबकी शुद्धि करनेवाले होते हैं।

इस सूक्त में मित्र और अमित्रों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जानना चाहिये॥

एक सौ सैंतालीसवां १४७ सूक्त और सोलहवां १६ वर्ग समाप्त हुआ॥

मथीदित्यस्य पञ्चर्चस्याष्ट्रचत्वारिंशदुत्तरस्य सूक्तस्य दीर्घतमा ऋषिः। अग्निर्देवता। १,२ पङ्क्तिः। ५ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः। ३,४ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथ विद्वदग्निगुणानुपदिशति॥

अब एक सौ अड़तालीसवें सूक्त का आरम्भ है। उसके प्रथम मन्त्र में विद्वान् और अग्निक गुणें का उपदेश किया है।।

मथी॒द्यदीं विष्ठो मात्रिश्चा होतारं विश्वाप्सुं विश्वदेव्यम्। नि यं दुधुर्मनुष्यासु विश्लु स्वर्थणं चित्रं वर्षुषे विभावम्॥ १॥

मथीत्। यत्। ईम्। विष्टः। मात्तिरिश्चां। होतारम्। विश्वऽअप्सुम्। विश्वऽवेद्यम्। निष्णम्। दुधुः। मुनुष्यासु। विश्वः। स्वः। न। चित्रम्। वर्षे। विभाऽवंम्॥ १॥

पदार्थ:-(मथीत्) मथ्नाति (यत्) यः (ईम्) सर्वतः (विष्टः) प्रेकिष्टः (मातिरश्चा) अन्तरिक्षे शयानो वायुः (होतारम्) आदातारम् (विश्वाप्सुम्) विश्वं समग्रं स्प्पं गुणो चस्य तम् (विश्वदेव्यम्) विश्वेषु देवेषु पृथिव्यादिषु भवम् (नि) (यम्) (दधुः) दधित (मनुष्यासु) मनुष्यसम्बन्धिनीषु (विश्वु) प्रजासु (स्वः) सूर्य्यम् (न) इव (चित्रम्) अद्भृतम् (वपुषे) रूपाय (विभावम्) विशेषेण भावुकम्॥१॥

अन्वय:-हे मनुष्या! यद्यो विष्टो मातिरश्चा विश्वदेव विश्वाप्सु होत्नरमिनं मथीत् विद्वांसो मनुष्यासु विश्व स्वर्ण चित्रं वपुषे विभावं यमीं निदधुस्तं यूयं धरत॥१॥

भावार्थ:-ये मनुष्या वायुवद् व्यापिकां/विद्युतं मिश्नित्वा कार्याणि साध्नुवन्ति, ते अद्भुतानि कर्माणि कर्त्तुं शक्नुवन्ति॥१॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! (यत्) जो (विष्ट)) प्रविष्ट (मातिरश्चा) अन्तरिक्ष में सोनेवाला पवन (विश्वदेव्यम्) समस्त पृथिव्यादि द्विव्य पदार्थों में हुए (विश्वाप्सुम्) समग्र रूप ही जिसका गुण उस (होतारम्) सब पदार्थों के ग्रहम करनेवाले अग्नि को (मथीत्) मथता है वा विद्वान् जन (मनुष्यासु) मनुष्यसम्बन्धिनी (विश्व) प्रजित्रों में (स्व:) सूर्य के (न) समान (चित्रम्) अद्भुत और (वपुषे) रूप के लिये (विभावम्) विशेषल से भावन्। करनेवाले (यम्) जिस अग्नि को (ईम्) सब ओर से (नि, दधुः) निरन्तर धारण करते हैं, उसे अग्नि को तुम लोग धारण करो॥१॥

भावार्थ: जो मनुष्य पवन के समान व्याप्त होनेवाली बिजुली रूप आग को मथ के कार्य्यों की सिद्धि करते हैं वे अद्भुत कार्यों को कर सकते हैं॥१॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

<mark>डुद्</mark>येन्पित्र दंदभन्त मन्माग्निर्वरूथं मम् तस्य चाकन्।

जुषन्त विश्वान्यस्य कर्मोपंस्तुतिं भरमाणस्य कारोः॥२॥

दुदानम्। इत्। न। दुदुभुन्तु। मन्मी। अग्निः। वर्रूथम्। ममी। तस्यी। चाकुन्। जुषन्ती। विश्वानि। अस्य। कर्मी(उपंऽस्तुतिम्। भरमाणस्य। कारोः॥२॥

पदार्थ:-(ददानम्) दातारम् (इत्) (न) निषेधे (ददभन्त) दभ्नुयुः (मन्म) विज्ञामेस् (अग्निः) (वरूथम्) श्रेष्ठम् (मम) (तस्य) (चाकन्) कामयते (जुषन्त) सेवन्ताम् (विश्वानि) सूत्राणि (अस्य) (कर्म) कर्माणि (उपस्तुतिम्) उपगतां प्रशंसाम् (भरमाणस्य) (कारोः) शिल्पविद्यासाध्यकृतुः । २॥

अन्वयः-हे मनुष्या! भवन्तो योऽग्निर्विद्वान् मम तस्य च वरूथं मन्म ददानं चाकन् तंत्रोद् ददभन्त। अस्य भरमाणस्य कारोर्विश्वानि कर्मोपस्तुतिं च भवन्तो जुषन्त॥२॥

भावार्थ:-हे मनुष्यो! यो येभ्यो विद्यां दद्यात् ते तस्य सेवां स्तर्गतं कुर्गुः। अवश्यं सर्वे वेदाभ्यासं च कुर्य्युः॥२॥

पदार्थ: - हे मनुष्यो! आप जो (अग्नि:) विद्वान् (मम) मेर और (कस्य) उसके (वस्त्रथम्) उत्तम (मन्म) विज्ञान को (ददानम्) देते हुए उनकी (चाकन्) कामना करता है, उसको (नेत्) नहीं (ददभन्त) मारो, (अस्य) इस (भरमाणस्य) भरण-पोषण करते हुए (कारोः) शिल्पविद्या से सिद्ध होने योग्य कामों को करनेवाले उनके (विश्वानि) समस्त (कर्म) कर्मों की (उपस्तृतिम्) समीप प्राप्त हुई प्रशंसा को आप (जुषन्त) सेवो॥२॥

भावार्थ: -हे मनुष्यो! जो जिनके लिये विद्या देवे उसकी सेवा निरन्तर करें और अवश्य सब लोग वेद का अभ्यास करें॥२॥

पुन तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

नित्ये चिन्नु यं सदने कारि प्रशस्तिभर्दिधरे युज्ञियासः।

प्र सू नयन गृभयन दृष्ट्यावश्वासो न रुथ्यो रारहाणाः॥३॥

नित्ये। चित्। नु। धम् सर्दस्य जुगुभ्रे। प्रशस्तिऽभिः। दुधिरे। युज्ञियासः। प्र। सु। नुयुन्तु। गृभयन्तुः। दुष्टौ। अश्चासः। न। रुथ्यः। रुरहाणाः। भा

पदार्थ: (मित्ये) निशरिहते (चित्) अपि (नु) सद्यः (यम्) पावकम् (सदने) सीदिन्त यस्मित्राकाशे तस्मिन् (जगभ्रे) गृह्णीयुः (प्रशस्तिभिः) प्रशंसिताभिः क्रियाभिः (दिधरे) धरेयुः (यज्ञियासः) ये शिल्पाख्य क्रम्पर्हन्ति ते (प्र) (सु) अत्र संहितायामिति दीर्घः। (नयन्त) प्राप्नुयुः (गृभयन्तः) ग्रहीता इवाचरन्तः (इष्टो) गन्तव्यायाम् (अश्वासः) सुशिक्षितास्तुरङ्गाः (न) इव (रथ्यः) रथेषु साधवः (रस्हाणाः) प्ल्छन्तः। अत्र तुजादीनामित्यभ्यासदीर्घः॥३॥

मण्डल-१। अनुवाक-२१। सूक्त-१४८

१५८९

अन्वय:-ये यज्ञियासो जनाः प्रशस्तिभिर्नित्य इष्टौ सदने यं जगृभ्रे चिन्नु दिधरे तस्यालम्बनेन रारहाणा रथ्योऽश्वासो न गृभयन्तः सन्तो यानानि सुप्रणयन्त॥३॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। ये नित्ये आकाशे स्थितान् वाय्वग्न्यादिपदार्थानुत्तमाभि कार्येषु योजयन्ति ते विमानादीनि यानानि रचियतुं शक्नुवन्ति॥३॥

पदार्थ:-जो (यज्ञियास:) शिल्प यज्ञ के योग्य सज्जन (प्रशस्तिभि:) प्रशस्ति क्रियाओं से (नित्ये) नित्य नाशरहित (सदने) बैठें जिस आकाश में और (इष्ट्रौ) प्राप्त होने यात्र क्रिया से (यम्) जिस अग्नि का (जगृभ्रे) ग्रहण करें (चित्) और (नु) शीघ्र (दिधरे) धरें उसके आश्र्य से (रारहणा:) जाते हुए जो कि (रथ्य:) रथों में उत्तम प्रशंसावाले (अश्वास:) अच्छे शिक्षित घोड़े हैं उनके (न) समान और (गृभयन्त:) पदार्थों को ग्रहण करनेवालों के समान आचरण करते हुए (रथों) की (सु, प्र, नयन्त) उत्तम प्रीति से प्राप्त होवें॥३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो नित्य आकाश में स्थित वायु और अग्नि आदि पदार्थों को उत्तम क्रियाओं से कार्यों में युक्त करते हैं, वे विमान आदि यानें को बना सकते हैं॥३॥

पुनस्तमेव विषयमाहा

फिर उसी विषय को अग्रले मन्त्र में बहा है॥

पुरूणि दस्मो नि रिणाति जम्भैराद्रोचिते बन् आ विभावा। आदेस्य वातो अनु वाति शोचिरस्तुन शर्य्यामूर्सनामनु द्यून्॥४॥

पुरूणि। दुस्मः। नि। रिणाति। जम्भैः। आत्। रोज्ञते। वनै। आ। विभाऽवा। आत्। अस्य। वार्तः। अनु। वाति। शोचिः। अस्तुः। न। शर्याम्। असन्त्रम्। अनु। द्युमा ४॥

पदार्थ:-(पुरूणि) बहूनि (दस्मः) दुःखाँपक्षेता (नि) (रिणाति) प्राप्नोति (जम्भैः) चालनादिभिः स्वगुणैः (आत्) अनन्तरे (रोचते) (वने) रङ्गले (आ) समन्तात् (विभावा) यो विभाति सः (आत्) अनन्तरम् (अस्य) (वातः) वस्युः (अनु) (बाति) गच्छति (शोचिः) दीप्तिः (अस्तुः) प्रक्षेप्तुः (न) इव (शर्याम्) वायुताडनाख्यां क्रियाम् (असनाम्) प्रक्षेपणाम् (अनु) (द्यून्) दिनानि॥४॥

अन्वयः-यो विभावा रिप्पोर्गिर्नर्जम्भैः पुरूणि वस्तून्यनुद्यून् नि रिणाति आद्वने आ रोचते आदस्य वातोऽनुवाति यस्य शोचिरस्तुरसनां न शर्यां रिप्पाति तेनोत्तमानि कार्याणि मनुष्यैः साधनीयानि॥४॥

भावार्थः-असोपमालङ्कारः। ये विद्योत्पादनताडनादिक्रियाभिस्तडिद्विद्यां साध्नुवन्ति, ते प्रतिदिनमुत्रतिं लभित्तारिः॥

पदार्थ:-जो (विभावा) विशेषता से दीप्ति करने तथा (दस्म:) दु:ख का नाश करनेवाला अग्नि (जफ़्में:) चेलाने आदि अपने गुणों से (पुरूणि) बहुत वस्तुओं को (अनु, द्यून्) प्रतिदिन (नि, रिणाति) मिरन्तर पहुंचाता है, (आत्) इसके अनन्तर (वने) जङ्गल में (आ, रोचते) अच्छे प्रकार प्रकाशमान होता

है (आत्) और (अस्य) इसका सम्बन्धी (वात:) पवन (अनु, वाति) इसके पीछे बहता है, जिसकी (शोचि:) दीप्ति प्रकाशमान (अस्तु:) प्रेरणा देनेवाले शिल्पी जन की (असनाम्) प्रेरणा के (न) समान (शर्याम्) पवन की ताड़ना को प्राप्त होता है, उससे उत्तम काम मनुष्यों को सिद्ध करने चाहिष्या राष्ट्र

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो विद्या से उत्पन्न की हुई ताड़नादि क्रियाओं से बिजुली की विद्या को सिद्ध करते हैं, वे प्रतिदिन उन्नति को प्राप्त होते हैं॥४॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

न यं रिपवो न रिष्णयवो गर्भे सन्तं रेष्णा रेषयन्ति। अन्धा अपुश्या न देभन्नभिख्या नित्यास ई प्रेतारो अरक्षन्। १७॥

न। यम्। रिपर्वः। न। रिष्णयर्वः। गर्भे। सन्तम्। रेषणाः। रेषणाः। रेषणाः। अप्रथाः। अप्रथाः। न। दुभन्। अभिऽख्या। नित्यसः। ईम्। प्रेतारः। अरुक्षुन्॥५॥

पदार्थ:-(न) (यम्) (रिपव:) शत्रवः (न) (रिष्ण्यवः) आत्मेनो रेषणामिच्छवः (गर्भे) मध्ये (सन्तम्) वर्त्तमानम् (रेषणाः) हिंसकाः (रेषयन्ति) हिंसयन्ति (अभ्याः) ज्ञानदृष्टिरहिताः (अपश्याः) ये न पश्यन्ति ते (न) इव (दभन्) दभ्नुयुः (अभिख्या) ये अभितः ख्यन्ति ते (नित्यासः) अविनाशिनः (ईम्) सर्वतः (प्रेतारः) प्रीतिकर्त्तारः (अरक्षन्) रक्षेयुः॥५॥

अन्वय:-यं रिपवो न रेषयन्ति यं गर्भे सन्तं रेषणा रिष्ण्यवो न रेषयन्ति नित्यासोऽभिख्याऽपश्या नेवान्धा न दभन् ये प्रेतार ईम् रक्षन् तं तान् सर्वे सत्कुर्वन्तु।

भावार्थ:-हे मनुष्या! यं प्रिपवी हिन्तुं। ने शक्नुवन्ति यो गर्भेऽपि न क्षीयते स आत्मा वेदितव्यः॥५॥

अस्मिन् सूक्ते विद्वदग्नादिगुणवर्णनोदेतत्सूक्तार्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह संगतिर्बोध्या॥ इत्यष्टचत्वारिशदुक्तं शृतृतमं १४८ सूक्तं सप्तदशो १७ वर्गश्च समाप्तः॥

पदार्थ:-(यम्) जिसको (गिपव:) शत्रुजन (न) नहीं (रेषयन्ति) नष्ट करा सकते वा (गर्भे, सन्तम्) मध्य में वर्तमान जिसको (रेषणा:) हिंसक (रिषण्यव:) अपने को नष्ट होने की इच्छा करनेवाले (न) नष्ट नहीं कर्रा सकते क्रा (नित्यास:) नित्य अविनाशी (अभिख्या) सब ओर से ख्याति करने और (अपश्या:) नृ दिखनेवालों के (न) समान (अन्धा:) ज्ञानदृष्टिरहित (न) न (दभन्) नष्ट कर सकें जो (प्रेतार:) ब्रीवि करनेवाले (ईम्)सब ओर से (अरक्षन्) रक्षा करें उस अग्नि को और उनको सब सत्कारकृति करें॥५॥

भावार्थ: - हे मनुष्यो! जिसको रिपु जन नष्ट नहीं कर सकते हैं, जो गर्भ में भी नष्ट नहीं होता है, बहु आत्था जानने योग्य है॥५॥

मण्डल-१। अनुवाक-२१। सूक्त-१४८

इस सूक्त में विद्वान् और अग्नि आदि पदार्थों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है, यह जानने योग्य है॥

यह एक सौ अड़तालीसवां १४८ सूक्त और सत्रहवां १७ वर्ग समाप्त हुआ॥

महरित्यस्य पञ्चर्चस्य एकोनपञ्चाशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य दीर्घतमा ऋषिः। अग्निर्देवता। १ भुरिगनुष्टुप्। २,४ निचृदनुष्टुप्। ५ विराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः। ३ उष्णिक्छन्दः।

गाश्चार: स्वर:॥

अथ पुनर्विद्वदग्न्यादिगुणानाह।।

अब एक सौ उनचासवें सूक्त का आरम्भ है। उसके प्रथम मन्त्र में विद्वान् और अन्यादि पदार्थों के गुणों का वर्णन करते हैं।।

मृहः स राय एषेते पतिर्दिन्निन इनस्य वस्ननः पद आ। उप ध्रजन्तमद्रयो विधन्नित्॥ १॥

महः। सः। रायः। आ। <u>ईषते</u>। पतिः। दन्। इनः। इनस्यं। वर्षुत्रक्षे प्रदे। आर्थे उपं। ध्रजन्तम्। अद्रेयः। विधन्। इत्॥१॥

पदार्थ:-(महः) महतः (सः) (रायः) धनस्य (आ) (ईषते) प्राप्नोति (पतिः) स्वामी (दन्) दाता। अत्र बहुलं छन्दसीति शपो लुक्। (इनः) ईश्वरः (इनस्य) महदेश्वर्यस्य स्वामिनः (वसुनः) धनस्य (पदे) प्रापणे (आ) (उप) (ध्रजन्तम्) गच्छन्तम् (अद्रयः) (भूग्नी (विद्यन्) विद्यत् (इत्) इव॥१॥

अन्वय:-हे मनुष्या! यूयं य इनस्येनो वसुनो मही रायो दन् पितिरेषते य एतस्य पदे ध्रजन्तमद्रय इदिव उपाविधन्, स सर्वै: सत्कर्त्तव्य: स्यात्॥१॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। इह यश्ची सुपात्रद्धार्नेन कीर्त्तिर्भवति न तथाऽन्योपायेन, यः पुरुषार्थमाश्रित्य प्रयतते सोऽखिलं धनमाप्नोति॥१॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! तुम जो (इनस्य) महान् ऐश्वर्य के स्वामी का (इन:) ईश्वर (वसुन:) सामान्य धन का और (मह:) अत्यन्त (रायः) धन का (दन्) देनेवाला (पित:) स्वामी (आ, ईषते) अच्छे प्रकार का होता है वा जो विद्वान् जन इसकी (पदे) प्राप्ति के निमित्त (ध्रजन्तम्) पहुँचते हुए को (अद्रय:) मेघों के (इत्) समान (उपाविधन्) निकट होकर अच्छे प्रकार विधान करे (स:) वह सबको सत्कार करने योग्य है॥१॥

भावार्थ:-इस मेन्त्र में उपमालङ्कार है। इस संसार में जैसे सुपात्र को देने से कीर्तिं होती है, वैसे और उपाय से नहीं। जो पुरुषार्थ का आश्रय कर अच्छा यत्न करता है, वह पूर्ण धन को प्राप्त होता है॥१॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

स्यो वृषा नुरां न रोदस्योः श्रवोभिरस्ति जीवर्पीतसर्गः।

मण्डल-१। अनुवाक-२१। सूक्त-१४९

१५९३

प्रयः सम्बाणः शिश्रीत योनौ॥२॥

सः। यः। वृषां। नुराम्। न। रोदंस्योः। श्रवं:ऽभिः। अस्ति। जीवर्पोतऽसर्गः। प्र। यः। सुस्राणः शिश्रीत। योनौ॥२॥

पदार्थ:- (सः) (यः) (वृषा) श्रेष्ठो बिलिष्ठः (नराम्) नृणाम् (न) इव (रोदस्योः) द्वावापृथिन्योः (श्रवोभिः) अन्नादिपदार्थैः सह (अस्ति) (जीवपीतसर्गः) जीवैः सह पीतः स्पर्ते चेन (प्र) (यः) (सस्नाणः) सर्वगुणदोषान् प्राप्नुवन् (शिश्रीत) श्रयेत (योनौ) कारणे॥२॥

अन्वय:-यः श्रवोभिर्नरां न रोदस्योजीवपीतसर्गोऽस्ति यश्च सस्राणो योनौ प्रशिश्रीत स वृषस्वि २॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। यो नायकेषु नायक: पृथिव्यादिकार्यकार्यकारमञ्जिद्धमामाश्रयति, स एव सुखी जायते॥२॥

पदार्थ:-(य:) जो (श्रवोभि:) अन्न आदि पदार्थों के साथ (नराम्) मी ष्यों के बीच (न) जैसे-वैसे (रोदस्यो:) आकाश और पृथिवी के बीच (जीवपीतसर्ग:) जीवों के आथ पिया है सृष्टिक्रम जिसने अर्थात् विद्याबल से प्रत्येक जीव के गुण-दोषों को उत्पत्ति के साथ जाना वा (य:) जो (सम्नाण:) सब पदार्थों के गुण-दोषों को प्राप्त होता हुआ (योनों) कारण में अर्थाते सृष्टि के निमित्त में (प्र, शिश्रीत) आश्रय करे, उसमें आरूढ़ हो (स:) वह (वृषा) श्रेष्ट ब्रुक्वान् (अस्ति) है॥२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जी नायकों/में नायक, पृथिवी आदि पदार्थीं के कार्य कारण को जाननेवालों की विद्या का आश्रय करित है, वहीं सुखी होता है॥२॥

मुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उस्री विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

आ यः पुरं नार्मिणीमदीदेदत्ये कुर्विनेभुन्यो र्ननार्वा।

सूरो न र्रुष्ठक्वाञ्छतात्मी॥३॥

आ। यः। पुर्रम्। नार्मिणीम्। अदीदेत्। अत्यः। कृविः। नुभुन्यः। न। अर्वा। सूर्रः। न। रुरुक्वान्। शृतऽआत्मा॥३॥

पदार्थ:-(आ) समन्तात् (य:) (पुरम्) (नार्मिणीम्) नर्माणि क्रीडाविलासा विद्यन्ते येषां तेषामिमाम् (अदीदेत्) (अख्यः) अति व्याप्नोतीति (किवः) क्रान्तप्रज्ञः (नभन्यः) नभसि भवो नभन्यो वायुः। अत्र वर्णव्यत्वयेन नकारादेशः। नभ इति साधारणनामसु पठितम्। (निघं०१.४) (न) इव (अर्वा) अश्वः (सूरः) सूर्वः (न) इव (रुरुवान्) रुचिमान् (शतात्मा) शतेष्वसंख्यातेषु पदार्थेष्वात्मा विज्ञानं यस्य सः॥३॥

अन्वय:-योऽत्यो नभन्यो न कविरर्वा सूरो न रुरुक्वान् शतात्मा जनो नार्मिणीं पुरमादीदेत् प्रकाशयेत् स न्याये कर्त्तुमर्हति॥३॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। योऽसंख्यातपदार्थविद्यावित् सुशोभितां नगरीं वासयेत् स्रिक्षे सवितेव प्रकाशमानः स्यात्॥३॥

पदार्थ:-(य:) जो (अत्य:) व्याप्त होनेवाला (नभन्य:) आकाश में प्रसिद्ध पवन क्सके (न) समान (किव:) क्रम-क्रम से पदार्थों में व्याप्त होनेवाली बुद्धिवाला वा (अर्वा) बीहा और (सूरः) सूर्य के (न) समान (फफक्वान्) रुचिमान् (शतात्मा) असंख्यात पदार्थों में विद्धार्थ ज्ञाने रखनेवाला जन (नार्मिणीम्) क्रीडाविलासी आनन्द भोगनेवाले जनों की (पुरम्) पुरी को (आदीदेत्) अच्छे प्रकार प्रकाशित करे, वह न्याय करने योग्य होता है॥३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो असंख्यात पदार्थी को विद्याओं को जाननेवाला अच्छी शोभायुक्त नगरी को वसावे, वह ऐश्वर्यों से सूर्य के समान प्रकाश्मिन हो।। ३॥

पुनस्तमेव विषयमाह।

फिर उसी विषय को अगले सन्त्रामें कहा हैं॥

अभि द्विजन्मा त्री रोचनानि विश्वा रजांसि सुशुच् नो अस्थात्।

होता यजिष्ठो अपां सुधस्थे॥४॥

अभि। द्विऽजन्मा। त्री। रोचनानि। विश्वा रजांसि। शुशुचानः। अस्थात्। होता। यर्जिष्ठः। अपाम्। सुधऽस्थे॥४॥

पदार्थ:-(अभि) आभिमुख्ये (द्विजन्मा) द्वाभ्यामाकाशवायुभ्यां जन्म प्रादुर्भावो यस्य (त्री) त्रीणि (रोचनानि) सूर्यविद्युद्धूमिसम्बन्धीनि तेजसि (विश्वा) सर्वाणि (रजांसि) लोकान् (शुशुचानः) प्रकाशयन् (अस्थात्) तिष्ठति (होता) आकर्षणेनादाता (यजिष्ठः) अतिशयेन यष्टा सङ्गन्ता (अपाम्) जलानाम् (सद्यस्थे) सहस्थाने॥४॥

अन्वय:-हे विद्वनः पृथा द्विज्ञन्पा होता यजिष्ठोऽग्निरपां सधस्थे त्री रोचनानि विश्वा रजांसि शुशुचान: सन्नभ्यस्थात्तथा त्वं भव॥४॥

भावार्थः अत्र वाच्चकलुप्तोपमालङ्कारः। ये विद्याधर्म्ये विद्वत्सङ्गप्रकाशिते स्थानेऽनुतिष्ठन्ति ते सर्वान् शुभगुणुकर्मस्यभावानादातुमर्हन्ति॥४॥

पृद्धार्थ:-हे विद्वन्! जैसे (द्विजन्मा) दो अर्थात् आकाश और वायु से प्रसिद्ध जिसका जन्म ऐसा (होता) आकर्षण शक्ति से पदार्थों को ग्रहण करने और (यजिष्ठ:) अतिशय करके सङ्गत होनेवाला अग्नि (अप्राम्) जुलों के (सधस्थे) साथ के स्थान में (त्री) तीन (रोचनानि) अर्थात् सूर्य, बिजुली और भूमि के

मण्डल-१। अनुवाक-२१। सूक्त-१४९

१५९५

प्रकाशों को और (विश्वा) समस्त (रजांसि) लोकों को (शुशुचान:) प्रकाशित करता हुआ (अभ्यस्थात्) सब ओर से स्थित हो रहा है, वैसे तुम होओ॥४॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो विद्या और धर्मसंयुक्त व्यवहार में विद्वानों के सङ्ग से प्रकाशित हुए स्थान के निमित्त अनुष्ठान करते हैं, वे समस्त अच्छे गुण, कर्म और स्वभावां के ग्रहण करने के योग्य होते हैं॥४॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अयं स होता यो द्विजन्मा विश्वा दुधे वार्याणि श्रवस्या। मर्तो यो अस्मै सुतुको दुदार्शा।।५॥१८॥

अयम्। सः। होतां। यः। द्विऽजन्मां। विश्वां। दुधे। वार्याणि। श्रुव्स्था। मृतः। यः। अस्मै। सुऽतुर्कः। दुदार्शा। ५॥

पदार्थ:-(अयम्) (सः) (होता) ग्रहीता (यः) (हिजन्मा) ग्रमेविद्याशिक्षाभ्यां जातः (विश्वा) सर्वाणि (दधे) धत्ते (वार्याणि) वर्तुं स्वीकर्तुमर्हाणि (श्रवस्था) श्रविस श्रवणे भवानि (मर्त्तः) मनुष्यः (यः) (अस्मै) विद्यार्थिने (सुतुकः) सुष्ठु विद्यावृद्धः (ह्दार्श) दद्यात्।।५॥

अन्वयः-यः सुतुको मर्त्तोऽस्मै विद्यां ददाश श्रो द्विजन्मा होत्रा विश्वा श्रवस्या वार्य्याणि दधे सोऽयं पुण्यवान् भवति॥५॥

भावार्थ:-यस्य विद्यासुशिक्षायुक्तयोर्मातापित्रो; सकाशादेकं जन्माऽऽचार्यविद्याभ्यां द्वितीयं च स द्विजः सन् विद्वान् स्यात्॥५॥

अस्मिन् सूक्ते विद्वदग्न्याद्भिगुणिक्णानादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिर्वेद्या॥

इत्येकोनपञ्चाश्रद्धतरं शततमं १४९ सूक्तमष्टादशो १८ वर्गश्च समाप्तः॥

पदार्थ:-(य:) जो (मुंतुक:) सुन्दर विद्या से बड़ा उन्नति को प्राप्त हुआ (मर्त्त:) मनुष्य (अस्मै) इस विद्यार्थी के लिये विद्या को (देदाज़) देता है वा (य:) जो (द्विजन्मा) गर्भ और विद्या शिक्षा से उत्पन्न हुआ (होता) उत्तम गुणप्राही (विश्वा) समस्त (श्रवस्था) सुनने में प्रसिद्ध हुए (वार्याणि) स्वीकार करने योग्य विषयों को (देधे) धारण करता है (स:) (अथम्) सो यह पुण्यवान् होता है॥५॥

भावार्थः-पिसको विद्या और उत्तम शिक्षायुक्त माता-पिताओं से एक जन्म और दूसरा जन्म आचार्य और विद्या से हो वह द्विज होता हुआ विद्वान् हो॥५॥

्रस सूक्त में विद्वान् और अग्न्यादि पदार्थों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछल्ने सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये॥

🕽 यह एक सौ उनचासवां १४९ सूक्त और अठारहवां १८ वर्ग समाप्त हुआ॥

पुरु त्वेत्यस्य त्र्यृचस्य पञ्चाशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य दीर्घतमा ऋषिः। अग्निर्देवता। १,३ भूरिग्गायत्रीच्छन्दः। षड्जः स्वरः। २ निचृदुष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

अथ विद्वद्वणानाह॥

अब एक सौ पचासवें सूक्त का प्रारम्भ है। उसके प्रथम मन्त्र में विद्वानों के गुणों का उपदेश

पुरु त्वां दाश्चान् वोचेऽरिरंग्ने तर्व स्विदा। तोदस्येव शरण आ महस्यं॥ १॥

पुरु। त्वा। दाश्वान्। वोचे। अरि:। अग्ने। तर्व। स्वित्। आ। तोदस्यंऽइव। शर्भा आ। महस्यं॥ १॥ पदार्थ:-(पुरु) बहु (त्वा) त्वाम् (दाश्वान्) दाता (वोचे) वदेश्वर्स् (अरि:) प्रापकः (अग्ने) विद्वन् (तव) (स्वित्) एव (आ) (तोदस्येव) व्यथकस्येव (शरणे) गृहे (आ) (महस्य) महतः॥ १॥

अन्वय:-हे अग्ने! दाश्वानरिरहं महस्य तोदस्येव तव स्विदा शर्ले (त्वा पुर्बे केंचे॥१॥

भावार्थ:-यो यस्य भृत्यो भवेत् स तस्याऽज्ञां पालम्बित्वा कृतार्थ्यो भवेत्॥१॥

पदार्थ:-हे (अग्ने) विद्वान्! (दाश्वान्) दान देने और अपि व्यवहारों की प्राप्ति करानेवाला मैं (महस्य) महान् (तोदस्येव) व्यथा देनेवाले के जैसे क्से (त्व) आपके (स्वत्) ही (आ, शरणे) अच्छे प्रकार घर में (त्वा) आपको (पुरु, आ, वोचे) बहुत भली-भांति से कहूं॥१॥

भावार्थ:-जो जिसका रक्खा हुआ सिवेक हो वह उसकी आज्ञा का पालन करके कृतार्थ होवे॥१॥

पुनस्तमेब विषयमाह॥

फिर्राउसी बिषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

व्यनिनस्य धनिनः प्रहेषि चिदररुषः। कदा चन प्रजिगृतो अदेवश्रोहः॥ २॥

वि। अनिनस्य। धुनिनं । प्रुरहोषे। चित्। अर्रुरुषः। कुदा। चन। प्रुरुजिर्गतः। अदैवऽयो:॥२॥

पदार्थ:-(वि) (अभिनस्य) यत्प्रशस्तं प्राणिनिमित्तं तस्य (धिनिनः) बहुधनयुक्तस्य (प्रहोषे) यो जुहोति तस्मै (चित्) अपि (अरुषः) अहिंसकस्य (कदा) (चन) (प्रजिगतः) प्रकर्षेण भृशं प्राप्नुतः। अत्र यङन्तात् परस्य तदः शतृयङो लुक् वाच्छन्दसीति अभ्यासस्येत्वम्। (अदेवयोः) न देवौ अदेवौ तयोरदेवक्रोः॥२॥

अस्त्रय:-अहमदेवयोः प्रजिगतो अररुषो व्यनिनस्य धनिनः प्रहोषे कदा चनाऽप्रियं न वोचे। एवं चिदपि त्वं मा

मण्डल-१। अनुवाक-२१। सूक्त-१५०

१५९७

भावार्थ:-योऽविदुषोरध्यापकोपदेशकयोः संगं त्यक्त्वा विदुषोः सङ्गं करोति स सुखार्ढ्यो जायते॥२॥

पदार्थ:-मैं (अदेवयो:) जो नहीं विद्वान् हैं, उनको (प्रजिगत:) जो उत्तमता से मिरन्तर प्राप्ति होता हुआ (अररुष:) अहिंसक (व्यनिनस्य) विशेषता से प्रशंसित प्राण का निमित्त (धनिन:) अहुत धनयुक्त जन हैं उसके (प्रहोषे) उसको अच्छे ग्रहण करनेवाले के लिये (कदा, चन) कभी अप्रिय वचन न कहूं ऐसे (चित्) तू भी मत बोल॥२॥

भावार्थ:-जो अविद्वान् पढ़ाने और उपदेश करनेवालों के सङ्ग को छोड़ विद्वानों का सङ्ग करता है, वह सुखों से युक्त होता है॥२॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहर है।

स चन्द्रो विष्रु मर्त्यो महो ब्राधन्तमो दिवि।

प्रप्रेत्ते अग्ने वृनुषे: स्याम॥३॥१९॥

सः। चन्द्रः। विष्ठा मर्त्यः। मुहः। ब्रार्धन्ऽतमः। द्विवि। प्राप्त्र इत् ने अग्ने। वुनुर्षः। स्याम्॥३॥

पदार्थ:-(सः) (चन्द्रः) आह्वादकारकः विप्र) मेधाविन् (मर्त्यः) मनुष्यः (महः) महान् (व्राधन्तमः) अतिशयेन वर्द्धमानः (दिवि) (प्रप्न) (इत्) एव (ते) तव (अग्ने) विद्वन् (वनुषः) संविभाजकस्य (स्याम) भवेम॥३॥

अन्वयः-हे अग्ने विद्वन्! यथा वयं विनुषाने त्रवोपकारकाः प्रप्रेत् स्याम। हे विप्र! यथा स मर्त्यो व्राधन्तमो महश्चन्द्रो दिवीव वर्तते तथा त्वं वर्तस्व॥३।

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तीपमालेङ्कारः। यथा पृथिव्यादिपदार्थज्ञा विद्वांसो विद्याप्रकाशे प्रवर्त्तन्ते तथेतरैरपि वर्त्तितव्यम्॥३॥

अस्मिन् सूक्ते ब्रिह्ददुणवर्णभाद्रतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेद्यम्॥

इति पञ्चार्शदुत्तों शततमं १५० सूक्तमेकोनविंशो १९ वर्गश्च समाप्तः॥

पदार्थ: हे (अग्ने) विद्वान्! जैसे हम लोग (वनुषः) अलग सबको बांटनेवाले (ते) आपके उपकार करनेवाले (प्रेष्ठ, इत्, स्याम) उत्तम ही प्रकार से होवें। वा हे (विप्र) धीर बुद्धिवाले जन! जैसे (सः) वह (मर्न्यः) मनुष्य (व्राधन्तमः) अतीव उन्नति को प्राप्त जैसे (महः) बड़ा (चन्द्रः) चन्द्रमा (दिवि) आकाश में वर्त्तमान है, वैसे तू भी अपना वर्त्ताव रख॥३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे पृथिव्यादि पदार्थों को जाने हुए विद्वान् जन विद्याप्रकाश में प्रवृत्त होते हैं, वैसे और जनों को भी वर्त्ताव रखना चाहिये॥३॥

इस सूक्त में विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के साथ सङ्गति है, वह जानना चाहिये॥

यह एक सौ पचासवाँ १५० सूक्त और उन्नीसवां १९ वर्ग समाप्त हुआ।।

अथ मित्रमित्यस्य नवर्चस्यैकपञ्चाशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य दीर्घतमा ऋषिः। मित्रावरुणौ देवते। १ भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। २-५ विराट् जगती। ६,७ जगती। ८,९ 🗡

0

निचृज्जगती च छन्दः। निषादः स्वरः॥ अथ मित्रावरुणयोर्लक्षणविशेषानाह॥

अब नव ऋचावाले एक सौ इक्कावनवें सूक्त का आरम्भ है। उसके प्रथम मन्त्र में पित्रावरूणे के विशेष लक्षणों को कहते हैं।।

मित्रं न यं शिम्या गोर्षु गुव्यर्वः स्वाध्यो विदर्थे अप्सु जीर्जनन्। अरेजेतां रोर्दसी पार्जसा गिरा प्रति प्रियं येजुतं जुनुषामर्वः॥ 📶

मित्रम्। न। यम्। शिम्यां। गोषुं। गुव्यवं:। सुऽआध्यं:। विदर्थे। अष्ऽस्रुं। जीजीनन्। अरेजेताम्। रोदंसी इति। पार्जसा। गिरा। प्रतिं। प्रियम्। यजतम्। जनुषांम्। अवं:॥ १॥

पदार्थ:-(मित्रम्) सखायम् (न) इव (यम्) (शिम्या) किमैंगा शिमीति कर्मनामसु पठितम्। (निघं०२.१) (गोषु) धेनुषु (गव्यवः) गा इच्छवः (स्वाध्यः) सुष्ठु अध्योर्थेषान्ते (विदथे) यज्ञे (अप्सु) प्राणेषु (जीजनन्) जनयेयुः। अत्राडभावः। (अरेजेताम्) किम्पतिम् (रोद्धसी) द्यावापृथिव्यौ (पाजसा) बलेन (गिरा) सुशिक्षितया वाण्या (प्रति) (प्रियम्) यः प्रीणाति तम् (यजतम्) सङ्गन्तव्यम् (जनुषाम्) जनानाम् (अवः) रक्षणम्॥१॥

अन्वय:-प्रियं यजतं यमग्निं जनुषामवः प्रति स्वाध्यो गौष्टु गव्यवो मित्रं न विदथे शिम्याऽप्सु जीजनन् तस्याग्नेः पाजसा गिरा रोदसी अरेजेताम्॥१॥

भावार्थ:-ये विद्वांसः प्रजापालनामिञ्चवस्त्रे मित्रभावं कृत्वा सर्वं जगत् स्वात्मवत् रक्षेयु:॥१॥

पदार्थ:-(प्रियम्) जो प्रसन्न करता वा (यजतम्) सङ्ग करने योग्य (यम्) जिस अग्नि को (जनुषाम्) मनुष्यों के (अवः) रक्षा आदि के (प्रति) प्रति वा (स्वाध्यः) जिनकी उत्तम धीरबुद्धि वे (गोषु) गौओं में (गव्यवः) गौओं की इच्छा करनेवाले जन (मित्रम्, न) मित्र के समान (विदथे) यज्ञ में (शिम्या) कर्म से (अपसु) प्राण्यों के प्राणों में (जीजनन्) उत्पन्न कराते अर्थात् उस यज्ञ कर्म द्वारा वर्षा और वर्षा से अन्न होते और अन्नें से प्राणियों के जठराग्नि को बढ़ाते हैं, उस अग्नि के (पाजसा) बल (गिरा) रूप उत्तम् शिक्षित वाणी से (रोदसी) सूर्यमण्डल और पृथिवीमण्डल (अरेजेताम्) कम्पायमान होते हैं॥१॥ १

भाषार्थः भा बिद्वान् प्रजापालना किया चाहते हैं, वे मित्रता कर समस्त जगत् की रक्षा करें॥१॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

बद्ध त्यद्वां पुरुमीळहस्यं सोमिनः प्र मित्रासो न दंधिरे स्वाभुर्वः।

अध् क्रतुं विदतं गातुमर्चत उत श्रुतं वृषणा पुस्त्यावतः॥२॥

यत्। हु। त्यत्। वाम्। पुरुऽमीळहस्यं। सोमिनः। प्रा मित्रासंः। न। दुधिरे। सुऽआभुवंः। अर्था क्रतुंम्। विद्रतम्। गातुम्। अर्चते। उता श्रुतम्। वृष्णा। पुस्त्यंऽवतः॥२॥

पदार्थ:-(यत्) ये (ह) किल (त्यत्) तेषाम् (वाम्) युवाम् (पुरुमीढस्य) पुरुपिर्बहुभिर्गुणैः सिक्तस्य (सोमिनः) बह्वैश्वर्ययुक्तस्य (प्र) (मित्रासः) सखायः (न) इव (दिधरे) दूधित (स्वाभुवः) सुष्ठु समन्तात् परोपकारे भवन्ति (अध) अनन्तरम् (कृतुम्) प्रज्ञाम् (विदतम्) प्राप्नुतिम् (गातुम्) स्तृतिम् (अर्घते) सत्कर्त्रे (उत) अपि (श्रुतम्) (वृषणा) यौ वर्षयतो दुष्टानां शक्तिं बन्ध्यतस्तौ (पस्त्यावतः) प्रशस्तानि पस्त्यानि गृहाणि विद्यन्ते यस्य॥२॥

अन्वयः-हे वृषणाऽध्यापकोपदेशकौ! युवां पुरुमीढस्य पस्त्यावतः सोम्प्रिः क्रतु चार्च यद्ध स्वाभुवो मित्रासो न प्रदिधरे त्यत् तेषां गातुं विदतमधोत वामर्चते श्रुतम्॥२॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। ये मित्रवत् सर्वेषु जनेषु प्रेञ्चां संस्थाप्य विद्यां निद्धति, ते सौभाग्यवन्तो भवन्ति॥२॥

पदार्थ:-हे (वृषणा) शर आदि की वर्षा कराते, हुए की शक्ति को बांधते हुए अध्यापक और उपदेशको! तुम दोनों (पुरुमीढस्य) बहुत गुणों से सींचे हुए (पुरुपावत:) प्रशंसित घरोंवाले (सोमिन:) बहुत ऐश्वर्ययुक्त सज्जन की (कृतुम्) बुद्धि को (वत्, ह) ज निश्चय के साथ (स्वाभुव:) उत्तमता से परोपकार में प्रसिद्ध होनेवाले जन (मित्रास:) मित्रों के (च) समान (प्र, दिधरे) अच्छे प्रकार धारण करते (त्यत्) उनकी (गातुम्) पृथिवी को (विद्वस्य) प्राप्त होओ, (अध, उत) इसके अनन्तर भी (वाम्) तुम दोनों का (अर्चते) सत्कार करते हुए जन की (श्वतम्य) सुनो॥२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालिक्कार है। जी मित्र के समान सब जनों में उत्तम बुद्धि को स्थापन कर विद्याओं का स्थापन करते हैं, वे अच्छे भाग्यशाली होते हैं॥२॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर इसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

आ वां भूषन् श्चित्यो जन्म रोदंस्योः प्रवाच्यं वृषणा दक्षंसे महे। यदीमृताक्ष भरेथो यदर्वते प्र होत्रया शिम्यां वीथो अध्वरम्॥३॥

आ। वाम। भूषुत्। क्षितर्यः। जन्मी रोर्दस्योः। प्रऽवाच्यम्। वृष्णाा दक्षसे। महे। यत्। ईम्। ऋतायी भर्रथः। यत्। अर्वते। प्रा होन्या। शिम्या। वी्थः। अध्वरम्॥३॥

षदार्थ:-(आ) समन्तात् (वाम्) युवयोः (भूषन्) अलंकुर्युः (क्षितयः) मनुष्याः (जन्म) विद्याप्रादुर्भावम् (रोदस्योः) द्यावाभूम्योर्मध्ये (प्रवाच्यम्) प्रवक्तुमर्हम् (वृषणा) विद्यावर्षयितारौ (दक्षसे) आत्मबलाय (महे) महते (यत्) ये (ईम्) सर्वतः (ऋताय) सत्यविज्ञानाय (भरथः) धरथः (यत्) यतः

मण्डल-१। अनुवाक-२१। सूक्त-१५१

१६०१

(अर्वते) प्रशस्तविज्ञानवते (प्र) (होत्रया) आदातुमर्हया (शिम्या) सुकर्मयुक्तया (वीथ:) व्याप्नुर्थः (अध्वरम्) अहिंसाधर्मयुक्तं व्यवहारम्॥३॥

अन्वयः – हे वृषणा! यद्ये रोदस्योर्मध्ये वर्त्तमानाः क्षितयो महे दक्षसे वां युवयोः प्रवाच्यं जन्म भूपन् तिस्पङ्ग यद्यतोऽर्वत ऋताय होत्रया शिम्याऽध्वरं युवामाभरथः। ईं प्रवीथः। तस्माद्भवन्तौ प्रशंसनीयौ स्तः॥३॥

भावार्थ:-ये विद्वांसो बाल्यावस्थामारभ्य पुत्राणां कन्यानां च विद्याजन्य प्रवर्द्धसन्ति, ते सत्यविद्यानां प्रचारेण सर्वान् विभूषयन्ति॥३॥

पदार्थ:-हे (वृषणा) विद्या की वर्षा करानेवाले (यत्) जो (रोदस्योः) अन्तरिक्ष और पृथिवी के बीच वर्तमान (क्षितयः) मनुष्य (महे) अत्यन्त (दक्षसे) आत्मबल के लिये (वाम्) तुम दोनों का (प्रवाच्यम्) अच्छे प्रकार कहने योग्य (जन्म) जन्म को (भूषन्) सुशोभित करें, इन के सङ्ग से (यत्) जिस कारण (अर्वते) प्रशंसित विज्ञानवाले (ऋताय) सत्यविज्ञान युक्त स्च्जन् के लिये (होत्रया) ग्रहण करने योग्य (शिम्या) अच्छे कर्मों से युक्त क्रिया से (अध्वरम्) अहिंसा धर्मयुक्त व्यवहार को तुम (आ, भरथः) अच्छे प्रकार धारण करते हो और (ईम्) सब ओर से उसको (प्र) वीथः) व्याप्त होते हो, इससे आप प्रशंसा करने योग्य हो॥३॥

भावार्थ:-जो विद्वान् बाल्यावस्था से लेकर पुत्र और कर्याओं को विद्याजन्म की अति उन्नति दिलाते हैं, वे सत्य के प्रचार से सबको विभूषित कर्री हैं। राष्ट्र

पुनस्तमेव विषयमाहै॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

प्र सा क्षितिरंसुर् या मिह प्रिय ऋतीवार्जीवृतमा घोषथो बृहत्। युवं दिवो बृहतो दक्षमाभुवं गां न धुर्युपं युझाथे अपः॥४॥

प्रा सा। क्षितिः। असुरा। या महि। प्रिया। ऋतंऽवानौ। ऋतम्। आ। घोष्ट्यः। बृहत्। युवम्। द्विवः। बृहतः। दक्षम्। आऽभुवम्। गाम्। न। धुरि। उप। युङ्गार्थे इति। अपः॥४॥

पदार्थ:-(प्र) (स्ति) (असुर) प्राणवद् बलिष्ठौ। अत्राकारादेशो बहुलं छन्दसीति हस्वश्च। (या) (मिह) महति (प्रिया) सुर्वकारिणी (ऋतावानौ) सत्याचारिणौ (ऋतम्) सत्यम् (आ) (घोषथः) विशेषेण शब्दयथ्य (बृहत्) महत् (युवम्) युवाम् (दिवः) राज्यप्रकाशस्य (बृहतः) अतिवृद्धस्य (दक्षम्) बलम् (आभुवर्म्) सम्ताद्भवनशीलम् (गाम्) बलीवर्दम् (न) इव (धुरि) शकटादिवाहने (उप) (युआ्राथे) नियुक्तौ भूवतः (अपः) कर्म॥४॥

अन्वयः-हे ऋतावानावसुर! युवं यतो बृहतो दिवो दक्षमपश्च धुर्याभुवं गां नोपयुञ्जाथे बृहदृतमा घोषथस्तस्माद् युवां या-महि प्रिया क्षितिस्सा प्राप्नोतु॥४॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। ये सत्यमाचरन्त्युपदिशन्ति तेऽसंख्यं बलं प्राप्य महारज्यि भुञ्जते॥४॥

पदार्थ:-हे (ऋतावाना) सत्य आचरण करनेवाले (असुर) प्राण के समान बल्बान पित्र वरुण=राज-प्रजा-जन! (युवम्) तुम दोनों जिस कारण (बृहतः) अति उन्नति को प्राप्त (दिवः) प्रकाश (दक्षम्) बल और (अपः) कर्म को (धुरि) गाड़ी चलाने की धुरि के निमित्त (आधुवम्) अच्छे प्रकार होनेवाले (गाम्) प्रबल बैल के (न) समान (उप, युञ्जाथे) उपयोग में लाते हो और (बृहत्) अत्यन्त (ऋतम्) सत्य व्यवहार को (आघोषथः) विशेषता से शब्दायमान कर प्रख्यात करते हो इससे तुम दोनों को (या) जो (मिह) अत्यन्त (प्रिया) सुखकारिणी (क्षितिः) भूमि है (सा) हि (प्र) प्राप्त होवे॥४॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो सत्य का आचरण करते और जानका उपदेश करते हैं, वे असंख्य बल को प्राप्त होकर पृथिवी के राज्य को भोगते हैं॥४॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।

मही अत्र महिना वारमण्वथोऽरेणवस्तुज् आ प्रस्थेनवेशे स्वरंन्ति ता उपरताित सूर्यमा निमुचे उषस्रस्तक्व्वीरिव॥५॥२०॥

मही इति। अत्री महिना। वार्रम्। ऋणवृष्यः। अरेगावेश तुर्जः। आ। सद्मन्। धेनवः। स्वर्रन्ति। ताः। उपरऽतीति। सूर्यम्। आ। निऽम्रुर्चः। उषसः। तुक्वविःऽङ्गा। ।

पदार्थ:-(मही) महत्यां मह्याम् (अत्र) (महिन्ना) महिम्ना (वारम्) वर्तुमर्हम् (ऋण्वथः) प्राप्नुथः (अरेणवः) दुष्टानप्राप्ताः (तुजः) आदूताः (आ) (मदान्) सद्मिन गृहे (धेनवः) या धयन्ति पाययन्ति ताः (स्वरन्ति) (ताः) (उपरताति) उपराणा मेघानामवकाशवत्यन्तरिक्षे (सूर्यम्) (आ) (निम्नुचः) नितरां गच्छन्तीः (उषसः) प्रभातान् (त्वकवीरिव) यस्तकान् सेनाजनान् व्याप्नोति तद्वत्॥५॥

अन्वयः-हे अध्यापको प्रदेशको ! युवां तुक्ववीरिवात्र मही महिना उपरताति सूर्यमा निम्रुच उषस इव या अरेणवस्तुजो धेनवः सद्मन् क्रास्ट्रकरित् मा ऋण्वथः॥५॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कार्यः। यथा दुग्धदात्र्यो गावः सर्वान् प्रीणयन्ति तथाऽध्यापकोदेशका विद्यासुशिक्षाः प्रदृष्य सर्वान् सुखयेयुः॥५॥

पदार्थ्य-हे पहाने और उपदेश करनेवाले सज्जनो! तुम दोनों (तक्ववीरिव) जो सेनाजनों को व्याप्त होत्रा उसके समान (अत्र) इस (मही) पृथिवी में (महिना) बड़प्पन से (उपरताित) मेघों के अवकाश्रवाले अर्थात् मेघ जिसमें आते-जाते उस अन्तिरक्ष में (सूर्यम्) सूर्यमण्डल को (आ, निम्रुचः) मर्यादी माने निरन्तर गमन करती हुई (उषसः) प्रभात वेलाओं के समान (अरेणवः) जो दुष्टों को नहीं प्रपित (तुजः) सज्जनों ने ग्रहण की हुई (धेनवः) जो दुग्ध पिलाती हैं वे गौयें (सदान्) अपने गोंडों में

मण्डल-१। अनुवाक-२१। सूक्त-१५१

१६०३

(वारम्) स्वीकार करने योग्य (आ, स्वरन्ति) सब ओर से शब्द करती हैं (ता:) उनको (ऋण्वथ:) प्रीप्ते होओ॥५॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे दूध देनेवाली गौयें सब प्राणियों को प्रस्ति हैं। वैसे पढ़ाने और उपदेश करनेवाले जन विद्या और उत्तम शिक्षा को अच्छे प्रकार देकर सब मनुख्यों को सुखी करें॥५॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

आ वामृतायं केशिनीरेनूषत मित्र यत्र वर्रुण गातुमर्चथः। अव त्मनां सृजतुं पिन्वतुं धियों युवं विप्रस्य मन्मनामिरिष्यर्थः॥६॥

आ। वाम्। ऋतार्य केशिनीः। अनुष्तु। मित्री यत्री वर्रुणा मातुम्। अर्चथः। अर्व। त्मनी। सृजर्तम्। पिन्वतम्। धिर्यः। युवम्। विप्रस्य। मन्मनाम्। इर्ज्यथः॥६॥

पदार्थ:-(आ) (वाम्) युवाम् (ऋताय) सत्याचायय (केशिनीः) रश्मिमतीः (अनूषत) स्तुवत (मित्र) सखे (यत्र) (वरुण) वर (गातुम्) सत्यां स्तुतिम् (अविश्वः) सत्कुरुथः (अव) (त्मना) आत्मना (मृजतम्) निष्पादयतम् (पिन्वतम्) सिञ्चतम् (धिश्वः) प्रज्ञाः (युवम्) युवाम् (विप्रस्य) मेधाविनः (मन्मनाम्) मन्यमानाम् (इरज्यथः) ऐश्वर्ययुक्तां कुरुथः॥६॥)

अन्वय:-हे मित्र वरुण च विद्वांसौ! यत्रर्तां के शिनीः सुन्दरस्त्रियो वां युवामनूषत तत्र युवं गातुमार्चथ:। त्मना विप्रस्य धियोऽवसृजतं पिन्वतं च मन्मनामिरजथः ।

भावार्थ:-या इह प्रशंसिता स्त्रियों ये च यो पुरुषास्ते स्वसदृशैस्सह संयुज्यन्तां ब्रह्मचर्य्येण विद्यया विज्ञानमुन्नीयैश्वर्यं वर्द्धयन्तु॥६॥

पदार्थ:-हे (मित्र) मित्र और (वरुष) श्रेष्ठ विद्वानो! (यत्र) जहाँ (ऋताय) सत्याचरण के लिये (केशिनी:) चमक-दमकवाली सुन्दरी स्त्री (व्यम्) तुम दोनों की (अनूषत) स्तुति करें वहाँ (युवम्) तुम दोनों (गातुम्) सत्य स्तुति को (आ) अर्चथः) अच्छे प्रकार प्रशंसित करते हो (त्मना) अपने से (विप्रस्य) धीरबुद्धि युक्त सज्जन की (धियः) उत्तम बुद्धियों को (अव, सृजतम्) निरन्तर उत्पन्न करो और (पिन्वतम्) उपदेश्व/द्वारा सींच्ये (मन्मनाम्) और मान करती हुई को (इरज्यथः) ऐश्वर्ययुक्त करो॥६॥

भावार्षः जो यहाँ प्रशंसायुक्त स्त्रियां और जो पुरुष हैं, वे अपने समान पुरुष-स्त्रियों के साथ संयोग करें ब्रह्मचर्स से और विद्या से विशेष ज्ञान की उन्नति कर ऐश्वर्य को बढ़ावें॥६॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यो वां युज्ञैः शशमानो हु दार्शति कुविर्होता यर्जति मन्मुसार्धनः।

उपाहु तं गच्छेथो वी्थो अध्वरमच्छा गिर्रः सुमृति गन्तमस्मयू॥७॥

यः। वाम्। युज्ञैः। शृश्मानः। हु। दार्शति। कुविः। होतां। यर्जति। मुन्मुऽसार्धनः। उपं। अहं। तम्भ गुर्च्छ्रथः। वी्थः। अध्वरम्। अच्छे। गिरः। सुऽमृतिम्। गुन्तुम्। अस्मुयू इत्यस्मुऽयू॥७॥

पदार्थ:-(य:) (वाम्) युवाभ्याम् (यज्ञै:) सङ्गतैः कर्मभिः (शशमानः) प्लव्नमिने (ह) किल (दाशित) ददाति (किवः) महाप्रज्ञः (होता) आदाता (यजित) सत्करोति (मन्मस्थनः) मन्म विज्ञानं साधनं यस्य सः (उप) (अह) विनिग्रहे (तम्) (गच्छथः) प्राप्नुथः (वीथः) कोमयेथाम् (अध्वरम्) अहिंसामयं व्यवहारम् (अच्छ) उत्तमरीत्या। अत्र निपातस्य चेति दीर्घः। (गिरः) सुशिक्षिता वाणीः (सुमितम्) शोभनां प्रज्ञाम् (गन्तम्) प्राप्नुतम् (अस्मयू) अस्मानिच्छन्तौ॥७

अन्वयः-हे अध्यापकोपदेशकौ! यः शशमानः कविर्होता मन्मसाधनो प्रक्रैवा सुख दार्शित यजित च तं हाऽस्मयू युवामुपागच्छथो तावह अध्वरं गन्तं गिरः सुमितं चाच्छ वीथः॥७॥

भावार्थ:-येऽत्र सत्यविद्याकामुकाः सर्वेभ्यो विद्यादानेन सुशीलतां सम्पादयन्तः सुखं प्रददित, ते सर्वैः सत्कर्त्तव्याः॥७॥

पदार्थ:-हे अध्यापक और उपदेशको! (य:) जें (श्रामान): सब विषयों को पार होता हुआ (किव:) अत्यन्त बुद्धियुक्त (होता) सब विषयों को ग्रहण करनेवाला (मन्मसाधन:) जिस का विज्ञान ही साधन वह सज्जन (यज्ञै:) मिल के किये हुए कर्मों से (वाम्) तुम दोनों को सुख (दाशित) देता है और (यजित) तुम्हारा सत्कार करता है (तम्, ह) इसी के (अस्मयू) हमारी इच्छा करते हुए तुम (उप, गच्छथ:) सङ्ग पहुंचे हो वे आप (अह) बे लेक-टोक (अध्वरम्) हिंसारहित व्यवहार को (गन्तम्) प्राप्त होओ और (गिर:) सुन्दर शिक्षा की हुई आणी और (सुमितम्) सुन्दर विशेष बुद्धि को (अच्छ) उत्तम रीति से (वीथ:) चाहो॥७॥

भावार्थ:-जो इस संसार में सत्य बिद्या की कामना करनेवाले सबके लिये विद्या दान से उत्तम शीलपन का सम्पादन करते हुए पुख देते हैं, व सबको सत्कार करने योग्य हैं॥७॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फ़्रिस् उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

युवां युक्नैः प्रथमा गौभिरञ्जत ऋतावाना मनसो न प्रयुक्तिषु। भर्रात्रि वां पत्मीना संयता गिरोऽदृष्यता मनसा रेवद्राशाथे॥८॥

युवाम्। युद्धाः। प्रथमाः। गोभिः। अञ्चते। ऋतेऽवाना। मनेसः। न। प्रऽयेक्तिषु। भरेन्ति। वाम्। मन्मेना। सुम्ऽयुत्ती रिगरेः। अदृष्यता। मनेसा। रेवत्। आशाथे इति॥८॥

पदार्थः-(युवाम्) (यज्ञैः) सत्करणैः (प्रथमा) आदिमौ (गोभिः) सुशिक्षिताभिर्वाणीभिः (अञ्जते) कामयन्ते (ऋतावाना) सत्याचारसंबन्धिनौ (मनसः) अन्तःकरणस्य (न) इव (प्रयुक्तिषु) प्रकृष्टेषु योजनेषु

मण्डल-१। अनुवाक-२१। सूक्त-१५१

१६०५

(भरिन्त) पुष्यिन्त (वाम्) युवयोः (मन्मना) विज्ञानेन (संयता) संयमयुक्तेन (गिरः) विद्यायुक्ता वाणी (अदृप्यता) हर्षमोहरिहतेन (मनसा) अन्तःकरणेन (रेवत्) बहवो रायो विद्यन्ते यस्मिँस्तदैश्वर्यम् (आशाथे) प्राप्नुथः॥८॥

अन्वय:-हे अध्यापकोपदेशकौ! ये यज्ञैर्गोभिरञ्जते ऋतावाना प्रथमा युवां मनसः प्रयुक्तिषु नेव स्पवहारेषु भरिन्त वां युवयोः सकाशात् शिक्षाः प्राप्य संयता मन्मनादृप्यता मनसा गिरो रेवच्च भरिन्त युवामाशाश्चे तान् निस्पमध्यापयतं शिक्षेथां च॥८॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। हे विद्वांसो! ये युष्मान् विद्याप्राप्तये श्रद्धयानुसुः। ये च जितेन्द्रिया धार्मिका: स्युस्तान् प्रयत्नेन विद्यावतो धार्मिकान् कुरुत॥८॥

पदार्थ:-हे अध्यापकोपदेशक सज्जनो! जो (यज्ञै:) यज्ञों से (गोभि:) और सुन्दर शिक्षित वाणियों से (अञ्जते) कामना करते हैं (ऋतावाना) और सत्य आचरण का सम्बन्ध रखनेवाले (प्रथमा) आदि में होनेवाले तुम दोनों को (मनसः) अन्तःकरण के (प्रयुक्तिषु) प्रयोगों को उल्लासों में जैसे (न) वैसे व्यवहारों में (भरन्ति) पृष्ट करते हैं तथा (वाम्) तुम दोनों की शिक्षाओं को पाकर (संयता) संयमयुक्त (अदृप्यता) हर्ष-मोहरहित (मन्मना) विज्ञानकप (मनमा) मन से (गिरः) वाणियों और (रेवत्) बहुत धनों से भरे हुए ऐश्वर्य को पृष्ट करते हैं और तुम्ब्री (आशाथे) प्राप्त होते हैं, उनको तुम नित्य पढ़ाओ और सिखाओ॥८॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हि बिद्धानों! जो तुमको विद्या प्राप्ति के लिये श्रद्धा से प्राप्त होवें और जो जितेन्द्रिय, धार्मिक हों उन सभी को अच्छे यत्न के साथ विद्यावान् और धार्मिक करो॥८॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फ़िर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

रेवद्वयो दधाथे रेवद्रार्थाथे नर्रा मुग्राभिरितऊति माहिनम्।

न वां द्यावोऽहिम्निर्नेत् सिस्यवा न देवत्वं पुणयो नानशुर्मुघम्॥ ९॥ २१॥

रेवत्। वर्यः। दुधार्थे इति। रेवत्। आशार्थे इति। नर्रा। मायाभिः। इतऽर्ऊति। माहिनम्। न। वाम्। द्यावः। अहेऽभिः। न। उता सिर्चवः। न। दुवऽत्वम्। पुणर्यः। न। आनुशुः। मुघम्॥९॥

पदार्थः (रेवत्) प्रशस्तधनवत् (वयः) कमनीयम् (दधाये) धरथः (रेवत्) बह्वैश्वर्ययुक्तम् (आशाये) (नरा) नायकौ (मायाभिः) प्रज्ञाभिः (इतऊति) इतः ऊतिः रक्षा यस्मात् तत् (माहिनम्) अत्यन्तं पूज्यं महच्च। माहिन इति महन्नामसु पठितम्। (निघं०३.३) (न) निषेधे (वाम्) युवयोः (द्यावः) प्रकाशाः (अहभिः) दिनैः (न) (उत) (सिन्धवः) नद्यः (न) (देवत्वम्) विद्वत्त्वम् (पणयः) व्याब्दरमणाः (न) (आनशुः) व्याप्नवन्ति (मघम्) महदैश्वर्यम्॥९॥

अन्वय:-हे नरा! यौ युवां मायाभिर्माहिनमितऊति वयो रेवद्दधाथे रेवदाशाथे च तयोर्वां देवत्वं द्यावो नाहभिरहानि नोत सिन्धवो नानशु: पणयो मघं न नानशु:॥९॥

भावार्थः-यद्यद्विद्वांसः प्राप्नुवन्ति तत्तदितरे न यान्ति विदुषामुपमा विद्वांस एव भवेनि नापरे इति॥९॥

अस्मिन् सूक्ते मित्रावरुणलक्षणोक्तत्वादेतत्सूक्तार्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सूक्ष्तिर्वेदितच्या। इति एकपञ्चाशदुत्तरं शततमं १५१ सूक्तमेकविंशो २१ वर्गश्च स्मीप्तः।

पदार्थ:-हे (नरा) अग्रगामी जनो! जो तुम (मायाभि:) मानने योग्य बुद्धियों से (माहिनम्) अत्यन्त पूज्य और बड़ा भी (इतऊति) इधर से रक्षा जिससे उस (वयः) अति रम्य मनोहर (रेवत्) प्रशंसित धनयुक्त ऐश्वर्य को (द्याथे) धारण करते हो और (रेक्त्) बहुत एश्वर्ययुक्त व्यवहार को (आशाथे) प्राप्त होते हो उन (वाम्) आपको (देवत्वम्) विद्वत्ता को (द्यावः) प्रकाश (न) नहीं (अहिभः) दिनों के साथ दिन अर्थात् एकता रसमय (न) नहीं (उत) और (किश्ववः) बड़ी-बड़ी नदी-नद (न) नहीं (आनशुः) व्याप्त होते अर्थात् अपने-अपने गुणों से तिरस्कार नहीं कर सकते, जीत नहीं सकते, अधिक नहीं होवे तथा (पणयः) व्यवहार करते हुए जन (मध्म्) तुम्हार महत् ऐश्वर्य को (न) नहीं व्याप्त होते, जीत सकते॥९॥

भावार्थ:-जिस-जिस को विद्वान् प्राप्त करते हैं, अस-उसको इतर सामान्य जन प्राप्त नहीं होते। विद्वानों के उपमा विद्वान् ही होते हैं, और महीं होते।

इस सूक्त में मित्र-वरुण के लक्षण अर्थात् मित्र-वरुण शब्द से लिक्षित अध्यापक और उपदेशक आदि का वर्णन किया, इससे इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गिति है, यह जानना चाहिये॥

यह एक स्मे एकावनवां १५१ सूक्त और इक्कीसवां २१ वर्ग समाप्त हुआ॥

युविमत्यस्य सप्तर्चस्य द्विपञ्चाशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य दीर्घतमा ऋषिः। मित्रावरुणौ देवते। १,२,४-६ त्रिष्टुप्। ३ विराट् त्रिष्टुप्। ७ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथाध्यापकाध्याप्योपदेशकोपदेश्य विषयमाह।।

अब एक सौ बावनवें सूक्त का आरम्भ है। इसके प्रथम मन्त्र में पढ़ाने, पढ़ने और उपदेश करने,

उपदेश सुननेवालों के विषय को कहते हैं॥

युवं वस्त्राणि पीवसा वसाथे युवोरच्छिद्रा मन्तवी हु सर्गाः। अवीतिरतुमनृतानि विश्वे ऋतेने मित्रावरुणा सचेथे॥ १॥

युवम्। वस्त्रीणि। पीवसा। वसाथे इति। युवोः। अच्छिद्राः। मन्तर्वा है। सर्जाः। अवे। अतिरतम्। अर्नृतानि। विश्वा। ऋतेन। मित्रावरुणा। सचेथे इति॥ १॥

पदार्थ:-(युवम्) युवाम् (वस्त्राणि) शरीराच्छादकानि (पोवस्रा) स्थूलानि (वसाथे) आच्छादयथः (युवोः) (अच्छिद्रा) छिद्ररहिताः (मन्तवः) ज्ञातुं यायाः (ह) खलु (सर्गाः) स्रष्टुं योग्याः (अव) (अतिरतम्) उल्लङ्घयतम् (अनृतानि) मिथ्याभाषणाद्गीनि कम्पणि (विश्वा) सर्वाणि (ऋतेन) सत्येन (मित्रावरुणा) प्राणोदानवत्वर्त्तमानावध्यापकोपदेशकौ (सर्वेष्ट्र) सिङ्गुच्छेथे॥१॥

अन्वय:-हे मित्रावरुणा! यौ युवं पीवसा वस्त्राणि वसाथे पर्यार्युवोरिच्छद्रा मन्तवो ह सर्गास्सन्ति यौ युवां विश्वाऽनृतान्यवातिरतमृतेन सचेथे तावस्माभि: कुतो न सत्कृतेष्यौ भवश्वः।।

भावार्थ:-मनुष्यैः सदैव स्थूलान्यच्छिद्भीष, वस्त्राणि परिधाय विज्ञातुं योग्या दोषरहिता वस्त्रादयः पदार्था निर्मातव्याः। सदैव धृतेन सत्याचर्णनासत्याचरणानि त्यक्त्वा धर्मार्थकाममोक्षाः संसाधनीयाः॥१॥

पदार्थ: -हे (मित्रावरुणा) प्राण उदान के समान वर्तमान पढ़ाने और उपदेश करनेवाले! जो (युवम्) तुम लोग (पीवसा) स्भूल (वस्त्राणि) वस्त्रों को (वसाथे) ओढ़ते हो वा जिन (युवो:) तुम्हारे (अच्छिद्रा:) छेद-भेद रहित (मित्तव:) जानूने योग्य (ह) ही पदार्थ (सर्गा:) रचने योग्य हैं, जो तुम (विश्वा) समस्त (अनृतानि) मिथ्याभाषण आदि कामों को (अवातिरतम्) उल्लङ्घते पार होते और (ऋतेन) सत्य से (सचेथे) सङ्घ कुरते हो, वे तुम हम लोगों को क्यों न सत्कार करने योग्य होते हो॥१॥

भावार्थ: मनुष्यों को सदैव स्थूल छिद्ररिहत वस्त्र पहन कर जानने के योग्य दोषरिहत वस्त्र आदि पदार्थ निर्माण करने चाहियें और सदैव धारण किये हुए सत्याचरण से असत्याचरणों को छोड़ धर्मा, अर्थ काम और मोक्ष को अच्छे प्रकार सिद्ध करने चाहियें॥१॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

पुतच्चन त्वो वि चिकेतदेषां सुत्यो मन्त्रीः कविशस्त ऋघावान्।

त्रिरिशं हिन्त चतुरिश्रिक्त्यो देवनिदो ह प्रथमा अंजूर्यन्॥२॥

पुतत्। चन। त्वः। वि. चिकेतुत्। पुषाम्। सत्यः। मन्त्रः। कुविऽशस्तः। ऋघावान्। त्रिःऽअश्रिम्। हृन्ति। चतुःऽअश्रिः। उ्यः। देवऽनिर्दः। ह। प्रथमाः। अजूर्यन्॥२॥

पदार्थ:-(एतत्) (चन) अपि (त्वः) कश्चित् (वि) (चिकेतत्) विजानाति (एषास्) (सत्यः) अव्यभिचारी (मन्त्रः) विचारः (कविशस्तः) कविभिः मेधाविभिः शस्तः प्रशंसितः (ऋघावान्) ऋघाः बह्चयः स्तुतयो सत्यासत्यविवेचिका मतयो विद्यन्ते यस्मिन् सः (त्रिरश्चिम्) त्रिभविद्यमनःशरीरैग्रीऽश्यते प्राप्यते तम् (हिन्त) (चतुरश्चः) चतुरो वेदानश्नुते सः (उग्नः) तीव्रस्वभावः (दवनिदः) ये देवान्निन्दन्ति तान् (ह) खलु (प्रथमाः) आदिमाः (अजूर्यन्) वृद्धा जायन्ते॥२॥

अन्वय:-त्वः कश्चिदेवैषां विदुषां य ऋघावान् कविशस्तः सत्यो क्ल्येशस्त (त्रत्) विचिकेतत् यश्चतुरश्रिरुग्रो देविनदो हिन्त त्रिरश्रिं चिकेतत् ते प्रथमा ह खलु प्रथमाश्चनाजूर्यन्॥२॥

भावार्थ:-ये मनुष्याः विद्वन्निन्दां विहाय निन्दकान् सिवार्थ सत्यं ज्ञानं प्राप्य सत्याः विद्या अध्यापयन्तः सत्यमुपदिशन्तश्च पृथुसुखा जायन्ते ते धन्याः सन्ति॥ २०

पदार्थ:-(त्व:) कोई ही (एषाम्) इन विद्वानों में जो ऐसे हैं कि (ऋघावान्) बहुत स्तुति और सत्य असत्य की विवेचना करनेवाली मितयों से युक्त (कविश्वास्तः) मेधावी कवियों ने प्रशंसित किया (सत्य:) अव्यभिचारी (मन्त्र:) विचार है (एतत्) इसको (विर्वचकेतत्) विशेषता से जानता है और जो (चतुरित्र:) चारों वेदों को प्राप्त होता वह (अर्थ:) तीव्र स्वभाववाला (देवनिदः) जो विद्वानों की निन्दा करते हैं, उनको (हन्ति) मारता और (त्रिरिक्रम्) जो तीनों अर्थात् वाणी, मन और शरीर से प्राप्त किया जाता है, ऐसे उत्तम पदार्थ को जानता है, उनते चे सब (प्रथमाः) आदिम अर्थात् अग्रगामी अगुआ (ह) ही हैं और वे प्रथम (चन) ही (अजूर्यन्) बुड्ढे होते हैं॥२॥

भावार्थ:- जो मनुष्य विद्वानों की निन्दा को छोड़ निन्दकों को निवार के सत्य ज्ञान को प्राप्त हो, सत्य विद्याओं को पढ़ाते हुए और सत्य का उपदेश करते हुए विस्तृत सुख को प्राप्त होते हैं, वे धन्य हैं॥२॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अपादेति प्रथमा पद्धतीनां कस्तद्वां मित्रावरुणा चिकेत।

गुर्भी भार भरत्या चिदस्य ऋतं पिपुर्त्यनृतं नि तारीत्॥३॥

अपात्। एति। प्रथमा। पत्ऽवतीनाम्। कः। तत्। वाम्। मित्रावरुणाः। आ। चिकेतः। गर्भः। भारम्। भुरति। आ। चित्रा अस्यः। ऋतम्। पिपर्ति। अर्नृतम्। नि। तारीत्॥३॥

मण्डल-१। अनुवाक-२१। सूक्त-१५२

पदार्थ:-(अपात्) अविद्यमाना पादा यस्याः सा विद्या (एति) प्राप्नोति (प्रथमा) आर्दिमा (पद्वतीनाम्) प्रशस्ताः पादा विभागा विद्यन्ते यासां तासाम् (कः) (तत्) ताम् (वाम्) युवाभ्याम् (मित्रावरुणा) सुहृद्धरावध्यापकोपदेशकौ (आ) (चिकेत) जानीयात् (गर्भः) यो गृह्णाति सः (भारम्) पोषम् (भरति) धरति (आ) (चित्) अपि (अस्य) (ऋतम्) सत्यम् (पिपर्ति) पूर्णं कर्रेगति (अनुतम्) मिथ्याभाषणादिकं कर्म (नि) (तारीत्) उल्लङ्कते॥३॥

अन्वय:-हे मित्रावरुणा! या पद्धतीनां प्रथमाऽपादेति तत् वां क आ चिकेत यो गर्भी भारमाभरित विद्य्यस्य संसारस्य मध्ये ऋतं पिपत्तिं सोऽनृतं नितारीत्॥३॥

भावार्थ:-येऽनृतं विहाय सत्यं धृत्वा संभारान् सञ्चिन्वन्ति ते सत्यां/विद्धां प्राप्नुवन्ति॥३॥

पदार्थ: - हे (मित्रावरुणा) श्रेष्ठ मित्र पढ़ाने और उपदेश करनेवाली विद्वानी! जो (पद्धतीनाम्) प्रशंसित विभागोंवाली क्रियाओं में (प्रथमा) प्रथम (अपात्) विना विभागकाली विद्या (एति) प्राप्त होती है (तत्) उसको (वाम्) तुम से (कः) कौन (आ, चिकेत) जाने और जो (गर्भः) ग्रहण करनेवाला जन (भारम्) पृष्टि को (आ, भरति) सुशोभित करता वा अच्छे प्रकार धारण करता है (चित्) और भी (अस्य) इस संसार के बीच (ऋतम्) सत्य व्यवहार की (एएमि) पूर्ण करता है सो (अनृतम्) मिथ्याभाषण आदि काम को (नि, तारीत्) निरन्तर उल्लाङ्कता है।।

भावार्थ:-जो झूठ को छोड़ सत्य को धारण कर अपने सब सामान इकट्ठे करते हैं, वे सत्यविद्या को प्राप्त होते हैं॥३॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी किया को अगिले मन्त्र में कहा है।।

प्रयन्तमित्परि जारं कनीनां पश्यामिस् नोपनिपद्यमानम्।

अनंवपृग्णा वितंता वसानं प्रियं पित्रस्य वर्रुणस्य धाम॥४॥

प्रऽयन्तम्। इत्। परिष्यास्म। कुनीन्तम्। पश्यामिस। न। उपुऽनिपद्यमानम्। अनेवऽपृग्णा। विऽतेता। वसानम्। प्रियम्। मित्रस्य। क्रिस्स्य। ध्रामे। ४॥

पदार्थ:-(प्रयन्तम्) प्रयमे कुर्वन्तम् (इत्) एव (पिर) (जारम्) वयोहानिकारकम् (कनीनाम्) कामयमानानाम् (प्रयामिस्) (न) (उपनिपद्यमानम्) समीपे प्राप्नुवन्तम् (अनवपृग्णा) संपर्करिहतानि (वितता) विस्तृतानि क्रिजांसि (वसानम्) आच्छादयन्तम् (प्रियम्) (मित्रस्य) सुहृदः (वरुणस्य) श्रेष्ठस्य (धाम) सुख्धारणेषाधकं गृहम्॥४॥

अन्वयः-हे मनुष्या! यथा वयं कनीनां जारं प्रयन्तमुपनिपद्यमानमनवपृग्णा वितता वसानं सूर्यमिव मित्रस्य वरुणुस्विद्ययो भाम परि पश्यामसि। अस्माद्विरुद्धा न भवेम तथा यूयमप्येतत् प्राप्नुत॥४॥

भावार्थः-मनुष्या यथा रात्रीणां निहन्तारं स्वप्रकाशविस्तारकसूर्यं दृष्ट्वा कार्य्याणि साध्नुवन्ति तथाऽविद्यान्धकारनाशकविद्याप्रकाशकमाप्ताऽध्यापकोपदेशकसङ्गं प्राप्य क्लेशान् हन्युः॥४॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! जैसे हम लोग (कनीनाम्) कामना करती हुई प्रजाओं की (जारम्) अवस्था हरनेवाले (प्रयन्तम्) अच्छे यत्न करते (उपनिपद्यमानम्) समीप प्राप्त होते (अनवपृग्णा) सम्बन्धरहित अर्थात् अलग के पदार्थ जो (वितता) विथरे हैं उनको (वसानम्) आच्छादन करते अर्थात् अपने प्रकाश से प्रकाशित करते हुए सूर्य के समान (मित्रस्य) मित्र वा (वरुणस्य) श्रेष्ठ विद्वान् के (इत्) ही (प्रयम्) प्रिय (धाम) सुखसाधक घर को (परि, पश्यामिस) देखते हैं, इससे विरुद्ध (न) न हों, वैसे तुम भी इसको प्राप्त होओ॥४॥

भावार्थ:-मनुष्य लोग जैसे रात्रियों के निहन्ता अपने प्रकाश का जिस्सार करते हुए सूर्य को देख कर कार्य्यों को सिद्ध करते हैं, वैसे अविद्यान्धकार का नाश और विद्या का प्रकाश करनेवाले आप्त अध्यापक और उपदेशक के सङ्ग को पाकर क्लेशों को नष्ट करें।

पुनस्तमेव विषयमाह।

फिर उसी विषय को अगले स्त्रिमें कहा हैं॥

अनुश्चो जातो अनभीशुरर्वा कर्निक्रदत्पतयदृर्ध्वसानुः।

अचित्तं ब्रह्मं जुजुषुर्युवानः प्र मित्रे धाम् वस्णे गूर्णन्तः॥५॥

अनुश्वः। जातः। अनुभीशुः। अर्वा। कर्निकदेत्। पत्युत्। ऊर्ध्वऽसानुः। अचित्तेम्। ब्रह्मं। जुजुषुः। युर्वानः। प्रा मित्रे। धामं। वर्रुणे। गृणन्तेः॥५॥

पदार्थ:-(अनश्व:) अविद्यमानुत्रङ्गः (जातः) प्रकटः (अनभीशुः) नियामकरिष्मरिहतः (अर्वा) प्रापकः (किनिक्रदत्) शब्दयन् (पत्यत्) पच्छन् (अर्ध्वसानुः) ऊर्ध्वं सानवः शिखरा यस्य सः (अचित्तम्) चेतनतारिहतम् (ब्रह्म) धनादियुक्तमन्नम् (जुजुषुः) सेवेरन् (युवानः) युवावस्थां प्राप्ताः (प्र) (मित्रे) सख्यौ (धाम) स्थानम् (वरुणे) उत्तमे (गृणन्तः) प्रशंसन्तः॥५॥

अन्वयः-ये युवान्रार्जनभीशुरनश्चर किनिक्रदत्पतयज्जात ऊर्ध्वसानुरर्वा सूर्य्य इव मित्रे वरुणे धाम गृणन्तः सन्तोऽचित्तं ब्रह्म प्रजुजुषुस्ते बलकतो जायन्ते॥५॥

भावार्थः अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथाऽश्वयानादिरहित आकाश ऊर्ध्वं स्थितः सूर्य्य ईश्वराधारेण राज्ञते तथा विद्वद्विद्याधारा मनुष्याः पुष्कलं धनमन्नं च प्राप्य धर्म्ये व्यवहारे विराजन्ते॥५॥

प्रतिर्थ:- जि (युवान:) युवावस्था को प्राप्त जन (अनभीशुः) नियम करनेवाली किरणों से रहित (अनश्वः) जिसके जल्दी चलनेवाले घोड़े नहीं (किनक्रदत्) और वार वार शब्द करता वा (पतयत्) गमन करत्र हुआ (जातः) प्रसिद्ध हुआ और (ऋर्वसानुः) जिसके ऊपर को शिखा (अर्वा) प्राप्त होनेवाले सूर्य के समान (मित्रे) मित्र वा (वरुणे) उत्तम जन के निमित्त (धाम) स्थान की (गृणन्तः) प्रशंसा करते

मण्डल-१। अनुवाक-२१। सूक्त-१५२

१६११

हुए (अचित्तम्) चित्तरहित (ब्रह्म) वृद्धि को प्राप्त धन आदि पदार्थों से युक्त अन्न को (प्र, जुजुषु:) सेवें वे बलवान् होते हैं॥५॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे घोड़े वा रथ आदि सवारी से रहिते आकाश के बीच ऊपर को स्थित सूर्य ईश्वर के अवलम्ब से प्रकाशमान होता है, वैसे विद्वानों की बिद्या के आधारभूत मनुष्य बहुत धन और अन्न को पाकर धर्मयुक्त व्यवहार में विराजमान होते हैं।।।।

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

आ धेनवो मामतेयमवन्तीर्ब्रह्मप्रियं पीपयन्त्सस्मिन्नूर्धन्। पित्वो भिक्षेत वयुनानि विद्वानासाविवासन्नदितिमुरुष्येत्। स्।

आ। धेनर्वः। माम्तेयम्। अर्वन्तीः। ब्रह्मऽप्रियम्। पीपयम्। सम्मिन्। अर्थन्। पित्वः। भिक्षेतः। वयुननि। विद्वान्। आसा। आऽविर्वासन्। अर्दितिम्। उरुष्येत्॥६॥

पदार्थ:-(आ) (धेनवः) (मामतेयम्) ममताया अवत्यम् (अवृत्तीः) रक्षन्त्यः (ब्रह्मप्रियम्) ब्रह्म वेदाध्ययनं प्रियं यस्य तम् (पीपयन्) वर्द्धयेयुः (सस्मिन्) स्वस्मिन्। अत्र छान्दसो वर्णालोपो वेति वलोपः। (अधन्) ऊधनि दुग्धाधारे (पित्वः) अत्रस्य (भिक्षेत) याचेत (वयुनानि) प्रज्ञानानि (विद्वान्) (आसा) आस्येन (आविवासन्) समन्तात् (अदिविम्) अविनार्शकां विद्याम् (उरुष्येत्) सेवेत॥६॥

अन्वयः-यथा धेनवः सस्मिन्नूधन्भवेन दुग्धेन वत्सान् पुर्ण्यन्ति तथा या स्त्रियो ब्रह्मप्रियं मामतेयमवन्तीः सत्य आपीपयन् यथा वा विद्वानासा पित्वो भिक्षेताऽहितिपाबिवासन् वयुनान्युरुष्येत्तथाऽध्यापिका स्त्री पाठकाः पुरुषा अन्यान् विद्याशिक्षा ग्राहयेयुः॥६॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्लोपमालङ्कारः। यथा मातरः स्वापत्यानि दुग्धादिदानेन वर्द्धयन्ति, तथा विदुष्यः स्त्रियो विद्वांसः पुरुषाः कुमारोः कुमारांश्च विद्यासुशिक्षाभ्यां वर्द्धयेरन्॥६॥

पदार्थ:-जैसे (धेनव) धेनु गौयें (सिस्मिन्) अपने (ऋधन्) ऐन में हुए दूध से बछड़ों को पृष्ट करती हैं, वैसे जो स्त्री (क्रह्मप्रियम्) विदाध्ययन जिसको प्रिय उस (मामतेयम्) ममत्व से माने हुए अपने पुत्र की (अवन्ती:) रक्षा करती हुई (आ, पीपयन्) उसकी वृद्धि उन्नति करती हैं वा जैसे (विद्वान्) विद्यावान् जन (अग्रसा) मुख से (पित्व:) अन्न की (भिक्षेत) याचना करे और (अदितिम्) न नष्ट होनेवाली विद्या को (आखिवासम्) सब ओर से सेवन करता हुआ (वयुनानि) उत्तम ज्ञानों को (उरुष्येत्) सेवे वैसे पढ़ानेवाले युरुष औरों को विद्या और सिखावट का ग्रहण करावें॥६॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे माता जन अपने लड़कों को दूध आदि के देने से बढ़ाती हैं, वैसे विदुषी स्त्री और विद्वान् पुरुष कुमार और कुमारियों को विद्या और अच्छी शिक्षा से बढ़ावों उन्नति युक्त करें॥६॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

आ वां मित्रावरुणा हुव्यर्जुष्ट्रिं नर्मसा देवाववंसा ववृत्याम्। अस्माकुं ब्रह्म पृतनासु सह्या अस्माकं वृष्टिर्दिव्या सुंपारा॥७॥२२॥

आ। वाम्। मित्राव्रुणा। हुव्यऽर्जुष्टिम्। नर्मसा। देवौ। अर्वसा। ववृत्याम्। अस्मार्कम्। ब्रह्मा पृतेनासु। सह्याः। अस्मार्कम्। वृष्टिः। दिव्या। सुऽपारा॥७॥

पदार्थ:-(आ) (वाम्) युवाभ्याम् (मित्रावरुणा) सुहृद्वरौ (हव्यजुष्टिम्) आदातव्यसेवाम् (नमसा) अन्नेन (देवौ) दिव्यस्वभावौ (अवसा) रक्षणाद्येन कर्मणा (ववृत्याम्) वर्षयेयम्। अन्न बहुलं छन्दसीति शपः श्लुः। (अस्माकम्) (ब्रह्म) धनम् (पृतनासु) मनुष्येषु (सह्याः) सहनं कुर्थ्याः (अस्माकम्) (वृष्टिः) दुष्टानां शक्तिबन्धिका शक्तिः (दिव्या) शुद्धा (सुणारा) सुखेन पारः पूर्तिर्थराः सा॥७॥

अन्वय:-हे देवौ मित्रावरुणा! यथाहं वां नमसा हव्यजुष्टिमृतिबृत्यां तथा युवामवसाऽस्माकं पृतनासु ब्रह्म वर्द्धयेतम्।हे विद्वन्! याऽस्माकं दिव्या सुपारा वृष्टिरस्ति तां त्वं सह्यान्मारुप

भावार्थ:-यथा विद्वांसोऽतिप्रीत्याऽस्मभ्यं विद्वाः प्रदेषुस्तथा वयमेतानतिश्रद्धया सेवेमहि यतोऽस्माकं शुद्धा प्रशंसा सर्वत्र विदिता स्यादिति॥७॥

अत्राध्यापकोपदेशकशिष्यक्रमवर्णनादेवस्य पूर्वसूर्कतार्थेन सह सङ्गतिर्बोध्या॥

इति द्विपञ्चाशदुत्तरं शततमं १५२ सूक्ते द्वाविंशो २२ वर्गश्च समाप्त:॥

पदार्थ:-हे (देवौ) दिव्य स्वभावनात (भित्रावरुणा) मित्र और उत्तम जन! जैसे मैं (वाम्) तुम दोनों की (नमसा) अन्न से (हव्यजृष्टिम्) प्रहण करने योग्य सेवा को (आ, ववृत्याम्) अच्छे प्रकार वर्त्तं, वैसे तुम दोनों (अवसा) रक्षा आदि काम से (अस्माकम्) हमारे (पृतनासु) मनुष्यों में (ब्रह्म) धन की वृद्धि कराइये। हे विद्वन्! जो (अस्माकम्) हमारी (दिव्या) शुद्ध (सुपारा) जिससे कि सुख के साथ सब कामों की परिपूर्णता हो, एसी (वृष्टि) दुष्टों की शक्ति बांधनेवाली शक्ति है, उसको (सह्याः) सहो॥७॥

भावार्थ:-जैसे विद्वान जन अति प्रीति से हमारे लिये विद्याओं को देवें, वैसे हम लोग इनको अत्यन्त श्रद्धा से से जिस्सी हमारी शुद्ध प्रशंसा सर्वत्र विदित हो॥७॥

इस सूक्त में पढ़ाने और उपदेश करनेवाले तथा उन शिष्यों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछ्रुले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये॥

यहाँ एक सौ बावनवाँ १५२ सूक्त और बाईसवां २२ वर्ग पूरा हुआ॥

यजामह इत्यस्य चतुर्ऋचस्य त्रिपञ्चाशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य दीर्घतमा ऋषिः। मित्रावरुणौ देवते। १,२ निचृत् त्रिष्टुप्। ३ त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। ४ भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः

स्वर:॥

पुनर्मित्रावरुणगुणानाह।।

अब एक सौ त्रेपनवें सूक्त का आरम्भ है। उसके प्रथम मन्त्र में फिर मित्र-वरुण के गुणों के वर्णन करते हैं।

यजामहे वां महः सुजोषां हुव्येभिर्मित्रावरुणा नमोभिः।

घृतैर्घृतस्नू अध् यद्वांमस्मे अध्वर्यवो न धीतिभिर्भरन्ति॥ १॥

यजीमहे। वाम्। महः। सुऽजोषाः। हुव्येभिः। मित्रावरुणा। नर्मः अभिरी घृतै प्रमुस्नू इति घृतऽस्नू। अर्ध। यत्। वाम्। अस्मे इति। अध्वर्यवेः। न। धीतिऽभिः। भरीन्त॥ १॥

पदार्थ:-(यजामहे) सत्कुर्महे (वाम्) युवाभ्याम् (महः) महत् (सजोषाः) समानप्रीताः (हव्येभिः) दातुमहेंः (मित्रावरुणा) सुहृद्वरौ (नमोभिः) अत्रादिभिः (भूतैः) आज्यादिभी रसैः (भृतस्नू) घृतस्य स्नावकौ (अध) अनन्तरम् (यत्) (वाम्) युवाश्याम् (अस्मे) अस्मभ्यम् (अध्वर्यवः) अध्वरं अहिंसाधर्मकाममिच्छवः (न) इव (धीतिभिः) अङ्गुव्यिभः (भरान्त) धरन्ति॥१॥

अन्वय:-हे घृतस्नू मित्रावरुणा! वां सजोषा वयं भीतिभिर्द्धवर्यवो न हव्येभिर्नमोभिर्घृतैर्महो यजामहेऽध यद् वामस्मे च विद्वांसो भरन्ति तं धरतां च॥१॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। यजम्बन्धा अग्निह्मित्राद्यनुष्ठानै: सर्वस्य सुखं वर्द्धयन्ति, तथा सर्वे विद्वांसोऽनुतिष्ठन्तु॥१॥

पदार्थ:-हे (घृतस्नू) घृत फैलोने (मित्रावरुणा) मित्र और श्रेष्ठ जनो! (वाम्) तुम दोनों का (सजोषा:) समान प्रीति किये हुए हम लोग (धीतिभि:) अंगुलियों से (अध्वर्यव:) अहिंसा धर्म की कामनावालों के (न) समान (हें व्येभि:) देने योग्य (नमोभि:) अन्नादि पदार्थों से (घृतै:) और घी आदि रसों से (मह:) अत्यन्त (यज्ञमहें) सत्कार करते हैं, (अध) इसके अनन्तर (यत्) जिस व्यवहार को (वाम्) तुम दोनों के लिथे और (अस्मे) हमारे लिये विद्वान् जन (भरन्ति) धारण करते हैं, उस व्यवहार को धारण करो॥ १॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे यजमान अग्निहोत्र आदि अनुष्ठानों से सबके सुख को बढ़ाते हैं। वैसे समस्त विद्वान् जन अनुष्ठान करें॥१॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

प्रस्तुतिर्वां धामु न प्रयुक्तिरयामि मित्रावरुणा सुवृक्तिः।

अनक्ति यद्वां विद्धेषु होता सुम्नं वां सूरिर्वृषणावियक्षन्॥२॥

प्रऽस्तुंतिः। वाम्। धामं। न। प्रऽयुंक्तिः। अयोमि। मित्राव्रुणाः। सुऽवृक्तिः। अनक्तिं। यत्। वामः विद्धेषेषुः(होतां। सुम्नम्। वाम्। सूरिः। वृष्णौ। इयेक्षन्॥२॥

पदार्थ:-(प्रस्तुति:) प्रकृष्टा स्तुतिर्यस्य सः (वाम्) युवाभ्याम् (धाम) (न) इव (प्रयुक्तिः) प्रकृष्टा युक्तिर्यस्य सः (अयामि) एमि प्राप्नोमि (मित्रावरुणा) सुहृद्वरावध्यापकोपदेष्टारौ (सुवृक्तिः) शोभना वृक्तिर्वर्जनं यस्य सः (अनिक्त) कामयते (यत्) (वाम्) युवाभ्याम् (विद्येषु), विद्यानेषु (होता) दाता (सुमन्) सुखम् (वाम्) युवाभ्याम् (सूरिः) विद्वान् (वृषणौ) सुखवर्षकौ (इयक्षन्) प्राप्तुभिच्छन्॥२॥

अन्वय:-वृषणौ मित्रावरुणेयक्षन् सूरिः सुवृक्तिः प्रस्तुतिर्होता प्रयुक्तिरहं धाम न ब्रामयामि यद्यः सूरिवाँ विदथेष्वनिक्त वां सुम्नं वां प्रयच्छिति तमप्यहमयामि॥२॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। ये मनुष्या पापहारका: प्रशंसितगुणग्राहको विद्वत्सङ्गप्रिया: सर्वेभ्य: सुखप्रदा भवन्ति ते कल्याणभाजो भवन्ति॥२॥

पदार्थ:-हे (वृषणौ) सुखवृष्टि करनेहारे (मित्रावरुणा) मित्र और श्रेष्ठ जन (इयक्षन्) प्राप्त होने की इच्छा करता हुआ (सूरि:) विद्वान् (सुवृक्ति:) जिस्का सुन्दर राकना (प्रस्तुति:) और उत्तम स्तुति (होता) वह ग्रहण करनेवाला (प्रयुक्ति:) उत्तम युक्ति में (धारा) स्थान के (न) समान (वाम्) तुम दोनों को (अयामि) प्राप्त होता हूँ। वा (यत्) जो विद्वान (बाम्) सुम् दोनों से (विद्येषु) विज्ञानों में (अनिक्त) कामना करता है वा (वाम्) तुम दोनों के लिये (सुम्नम्) सुख देता है, उसको मैं प्राप्त होता हूँ॥२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो भूनुष्य आप पाप हरने और प्रशंसित गुणों को ग्रहण करनेवाले, जिनको विद्वानों का सङ्ग प्यापा है और सबके लिये सुख देनेवाले होते हैं, वे कल्याण को सेवनेवाले होते हैं॥२॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

पोपाय धेनुरदितिक्रीतम् जुनीय मित्रावरुणा हिव्दे।

हिनोति यद्वां विद्रश्रे सूपर्यन्त्स रातह्वयो मानुषो न होता॥३॥

पीपार्य। ध्रेतुः। अर्वितिः। ऋतार्य। जनाय। मित्रावरुणा। हुविःऽदे। हिनोति। यत्। वाम्। विदर्थे। सुपर्यन्। सः। रातऽहित्यर्रा मानुष्ये न। होतां॥३॥

पदार्थ: प्रीपाय) वर्द्धयित (धेनुः) दुग्धप्रदा गौरिव (अदितिः) अखण्डिता (ऋताय) सत्यं प्राप्ताय (जनाय) प्रसिद्धविदुषे (मित्रावरुणा) सत्योपदेशकौ (हिवर्दे) यो हवींषि ददाति तस्मै (हिनोति) वर्द्धयित (यत्) यः (वाम्) युवाम् (विदथे) विज्ञाने (सपर्यन्) सेवमानः (सः) (रातहव्यः) रातानि दत्तानि हन्यानि यम् सः (मानुषः) मनुष्यः (न) इव (होता) ग्रहीता॥३॥

मण्डल-१। अनुवाक-२१। सूक्त-१५३

१६१७

अन्वय:-हे मित्रावरुणा! यद्योऽदितिर्धेनुरिव हिवर्दे ऋताय जनाय सुम्नं पीपाय विदथे वां सपर्यन् रातहव्यो हीता मानुषो न हिनोति स जन उत्तमो भवति॥३॥

भावार्थ:-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। ये विद्यादानग्रहणकुशला अध्यापकोपदेशकाः सर्वाने वर्द्धयन्ति, ते शुभगुणै: सर्वतो वर्द्धन्ते॥३॥

पदार्थ: - हे (मित्रावरुणा) सत्य उपदेश करनेवाले मित्रावरुणो! (यत्) जो (अदितिः) अखण्डित, विनाश को नहीं प्राप्त हुई (धेनुः) दूध देनेवाली गौ के समान (हिवर्दे) ग्रहण करने योग्य पदार्थों को देता उस (ऋताय) सत्य व्यवहार को प्राप्त हुए (जनाय) प्रसिद्ध विद्वान् के लिये (सुम्नम्) सुख को (पीपाय) बढ़ाता और (विदथे) विज्ञान के निमित्त (वाम्) तुम दोनों की (सपर्यन्) सेवा करता हुआ (रातहव्यः) जिसने ग्रहण करने योग्य पदार्थ दिये वह (होता) लेनेवाले (मानुषः) मपुष्य के (न) समान (हिनोति) वृद्धि को प्राप्त कराता है और (सः) वह जन उत्तम होता है॥३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालक्कर हैं। जो विद्या देने-लेने में कुशल, पढ़ाने और उपदेश करनेवाले सबको उन्नति देते हैं, वे शुभ पुणों से सबसे अधिक उन्नति को पाते हैं॥३॥

पुनस्तमेव विषयमाह।

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

उत वां विक्षु मद्यास्वन्धो गाव आपृष्ट पीपयन्त देवी:।

उतो नो अस्य पूर्व्यः पितर्दन् क्रीतं पातं पर्यंस उस्त्रियायाः॥४॥२३॥

उता वाम्। विश्वा मद्यांसा अन्ध्रा मार्वः। आर्षः। चा पीपयन्ता देवीः। उतो इति। नः। अस्य। पूर्व्यः। पतिः। दन्। वीतम्। पातम्। पर्यसः। उन्नियोगः॥४॥

पदार्थ:-(उत) (वाम्) श्रुवाम् (विश्व) प्रजासु (मद्यासु) हर्षणीयासु (अन्धः) अन्नम् (गावः) वाण्यः (आपः) जलानि (च) (पीपयन्त) हुर्ज्यन्ति (देवीः) दिव्याः (उतो) (नः) अस्माकम् (अस्य) अध्यापनकर्मणः (पूर्व्यः) पूर्वः कृत्र (पतिः) पालयिता (दन्) ददन्। अत्र बहुलं छन्दसीति शपो लुक्। (वीतम्) व्याप्नुतम् (पातम्) प्रवतम् (पयसः) दुग्धस्य (उस्नियायाः) दुग्धदाया धेनोः। उस्नियेति गोनामसु पठितम्। (निघं०२११)॥४॥

अन्वयः दिहे मित्रावरुणो यथा देवीर्गाव आपश्च मद्यासु विक्षु वां पीपयन्तोताऽन्धः प्रदद्युः। उतो पूर्व्यः पितः नोऽस्माकमस्योस्त्रियासाः पर्यसो दन् वर्तते तथा युवां विद्यां वीतं दुग्धं च पातम्॥४॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। येऽत्र गोवत्सुखप्रदाः प्राणवत् प्रियाः प्रजासु वर्त्तन्ते तेऽत्रुलमानन्त्रमाप्नुवन्ति॥४॥

अत्र मित्रावरुणगुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिर्वेद्या॥

इति त्रिपञ्चाशदुत्तरं शततमं १५३ सूक्तं त्रयोविंशो २३ वर्गश्च समाप्त:॥

पदार्थ:-हे मित्र और वरुण श्रेष्ठ जन! जैसे (देवी:) दिव्य (गाव:) वाणी (आप:, च) और जल (मद्यासु) हर्षित करने योग्य (विक्षु) प्रजाजनों में (वाम्) तुम दोनों को (पीपयन्त) उन्नित देवें (उत्ते) और (पूर्व्य:) पूर्वजों ने नियत किया हुआ (पति:) पालना करनेवाला (न:) हमारे (अस्य) पढ़ाने के काम सम्बन्धी (उस्त्रियाया:) दुग्ध देने वाली भी के (पयस:) दुग्ध को (दन्) देता हुआ वर्त्तमान है, वैसे तुम दोनों विद्या को (वीतम्) व्याप्त हों और दुग्ध (पातम्) पिओ॥४॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो यहाँ गौओं के समान सुख देनेवाले और प्राण के समान प्रिय प्रजाजनों में वर्तमान हैं, वे इस संसार में अतुल आजन्द की प्राण्त होते हैं॥४॥

इस सूक्त में मित्र और वरुण के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये॥

यह एक सौ त्रेपनवां १५३ सुक्त और तेईसव २३ वर्ग समाप्त हुआ।।

विष्णोरित्यस्य षडर्चस्य चतुःपञ्चाशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य दीर्घतमा ऋषिः। विष्णुर्देवता। १,२ विराट्त्रिष्टुप् ३,४,६ निचृत् त्रिष्टुपा ५ त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथेश्वरमुक्तिपदवर्णनमाह।।

अब छ: ऋचावाले १५४ एक सौ चौपनवें सूक्त का प्रारम्भ है। उसके प्रथम मन्त्र में ईक्र और मुक्तिपद का वर्णन करते हैं।।

विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्र वोचं यः पार्थिवानि विमुमे रजांसि। यो अस्कंभायुदुत्तरं सुधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोर्रुगायः॥ १॥

विष्णोः। नु। कुम्। वीर्याणि। प्र। वोचम्। यः। पार्थिवानि। विऽमुमे। रज्ञास्मि यः। अस्किभायत्। उत्ऽत्रेरम्। सुधऽस्थम्। विऽचुकुमाणः। त्रेधा। उुरुगायः॥ १॥

पदार्थ:-(विष्णो:) वेवेष्टि व्याप्नोति सर्वत्र स विष्णुस्तस्य (न) पहाः (कम्) सुखम् (वीर्याणि) पराक्रमान् (प्र) (वोचम्) वदेयम् (य:) (पार्थिवानि) पृथिव्यां विदित्तिनि (विममे) (रजांसि) लोकान् (य:) (अस्कभायत्) स्तभ्नाति (उत्तरम्) प्रलयादनन्तरं कारणाख्यम् (सधस्थम्) सहस्थानम् (विचक्रमाणः) विशेषेण प्रचालयन् (त्रेधा) त्रिभिः प्रकारे (उक्तम्यः) य ऊरुभिर्बहुभिर्मन्त्रैर्गीयते स्तूयते वा॥१॥

अन्वय:-हे मनुष्या! यः पार्थिवानि रजांसि नु विममे य उरुगाय उत्तरं सधस्थं त्रेधा विचक्रमाणोऽस्कभायत्तस्य विष्णोर्वीर्याणि प्रवोचमनेन कं प्राप्नुयां तथा यूयमपि कुरुत्ता १॥

भावार्थ: -यथा सूर्यः स्वाकर्षणेन सर्वान् भूग्रालान् धरित तथा सूर्यादींल्लोकान् कारणजीवांश्च जगदीश्वरो धत्ते य इमानसंख्यलोकान् सूद्यो निर्मिमे भूसिमित्रमे प्रलीयन्ते च स एव सर्वेरुपास्य:॥१॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! (य:) जो (पार्थिवानि) पृथिवी में विदित (रजांसि) लोकों को अर्थात् पृथिवी में विख्यात सब स्थलों की (नु) श्रीष्ठ (विममें) अनेक प्रकार से रचता वा (य:) जो (उरुगाय:) बहुत वेदमन्त्रों से गाया जाता वी स्तृति किया जाता (उत्तरम्) प्रलय से अनन्तर (सधस्थम्) एक साथ के स्थान को (त्रेधा) तीन प्रकार से (विद्यक्रमाण:) विशेषकर कँपाता हुआ (अस्कभायत्) रोकता है, उस (विष्णो:) सर्वत्र व्याप्त हो त्राले परमेश्वर के (वीर्याणि) पराक्रमों को (प्र, वोचम्) अच्छे प्रकार कहूं और उससे (कम्) सुख पाऊं, वैसे तुम करो॥१॥

भावार्थ: - जैसे सूर्य अपनी आकर्षण शक्ति से सब भूगोलों को धारण करता है, वैसे सूर्य्यादि लोक, कारण और जीवि को जगदीश्वर धारण कर रहा है। जो इन असंख्य लोकों को शीघ्र निर्माण करता और जिस्सों प्रलय को प्राप्त होते हैं, वहीं सबको उपासना करने योग्य है॥१॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

प्र तद्विष्णुः स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुंचरो गिरिष्ठाः। यस्योरुषुं त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्ष्यिन्त भुवनानि विश्वा॥२॥

प्र। तत्। विष्णुः। स्तुवते। वीर्येणा मृगः। न। भीमः। कुचरः। गिरिऽस्थाः। यस्य क्रिणु विऽक्रमणेषु। अधिऽक्षियन्ति। भुवनानि। विश्वा॥२॥

पदार्थ:-(प्र) (तत्) सः (विष्णुः) सर्वव्यापिश्वरः (स्तवते) स्तौति (व्रियण) स्वप्राक्रमेण (मृगः) (न) इव (भीमः) भयङ्करः (कुचरः) यः कुत्सितं चरित सः (गिरिष्ठाः) यो पिरौ तिष्ठिति (यस्य) (उरुषु) विस्तीर्णेषु (त्रिषु) नामस्थानजन्मसु (विक्रमणेषु) विविधेषु सृष्टिक्रमेषु (अधिक्षियन्ति) आधाररूपेण निवसन्ति (भुवनानि) भवन्ति भूतानि येषु तानि लोकजातानि (विक्रम) सर्वाणि॥२॥

अन्वयः-हे मनुष्या! यस्य निर्मितेषूरुषु त्रिषु विक्रमणेषु विश्वा भुवितान्यधिक्षियन्ति, तत् स विष्णुः स्ववीर्येण कुचरो गिरिष्ठा मृगो भीमो नेव विश्वाँल्लोकान् प्रस्तवते॥२॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। निह कश्चिदिप पदार्थ ईश्वरसृष्टिनियम् क्रममुल्लिङ्घतुं शक्नोति, यो धार्मिकाणां मित्र इवाह्वादप्रदो दुष्टानां सिंह इव भयप्रदो न्यायादिगुणधर्त्ता परमात्माऽस्ति, स एव सर्वेषामिधष्ठाता न्यायाधीशोऽस्तीति वेदितव्यम्॥२॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! (यस्य) जिस जगदीश्वर के निर्माण-किये हुए (त्रिषु) जन्म, नाम और स्थान इन तीन (विक्रमणेषु) विविध प्रकार के सृष्टिक्रमों में (व्रिश्वा) समस्त (भुवनानि) लोक-लोकान्तर (अधिक्षयन्ति) आधाररूप से निवास करते हैं/(तत्) वह (विष्णुः) सर्वव्यापी परमात्मा अपने (वीर्येण) पराक्रम से (कुचरः) कुटिलगामी अर्थात कचे-चीचे भूगी प्रकार विषम स्थलों में चलने और (गिरिष्ठाः) पर्वत कन्दराओं में स्थिर होनेवाले (सृगः) हिंगण के (न) समान (भीमः) भयङ्कर समस्त लोक-लोकान्तरों को (प्रस्तवते) प्रशंसित कृरती है॥ २॥

भावार्थ: - कोई भी पदार्थ ईश्वर और सृष्टि के नियम को उल्लङ्घन नहीं सकता है। जो धार्मिक जनों को मित्र के समान आर्ह्द देने, दुष्टों की सिंह के समान भय देने और न्यायादि गुणों का धारण करनेवाला परमात्मा है, कि सबका अधिष्ठाता और न्यायाधीश है, यह जानना चाहिये॥२॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

प्र क्रिष्पंव भूषमेतु मन्मं गिरिक्षितं उरुगायाय वृष्णे।

य इदं दीर्षं प्रयतं सुधस्थमेको विमुमे त्रिभिरित्पदेभिः॥३॥

क्र विष्णवे। श्रुषम्। एतु। मन्मं। गिरिऽक्षिते। उ्रुऽगायायं। वृष्णे। य। इदम्। दीर्घम्। प्रऽयंतम्। सुधऽस्थम्। एकः। विरुम्मे त्रिऽभिः। इत्। पुदेभिः॥३॥

मण्डल-१। अनुवाक-२१। सूक्त-१५४

१६१९

पदार्थ:-(प्र) (विष्णवे) न्यायकाय (शूषम्) बलम् (एतु) प्राप्नोतु (मन्म) विज्ञानम् (गिरिक्षिते) गिरयो मेघाः शैला वा क्षितो व्युष्टा यस्मिँस्तस्मै (उरुगायाय) बहुभिः प्रशंसिताय (वृष्णे) अनन्तवीर्याय (यः) (इदम्) (दीर्घम्) बृहत् (प्रयतम्) प्रयत्नसाध्यम् (सधस्थम्) तत्त्वावयवैः सह स्थाप् (एकः) असहायोऽद्वितीयः (विममे) विशेषेण रचयति (त्रिभिः) स्थूलसूक्ष्मातिसूक्ष्मैरवयवैः (इत्) एव (पदिभिः) ज्ञातुमर्हैः॥३॥

अन्वय:-हे मनुष्या! य एक इत् त्रिभिः पदेभिरिदं दीर्घं प्रयतं सधस्थं प्रविममे तस्मै कृषो गिरिक्षित रहेगायाय विष्णवे मन्म शूषमेतु॥३॥

भावार्थ:-न खलु कश्चिदप्यनन्तबलं जगदीश्वरमन्तरेदं विचित्रं निप्तस्वष्टुं धर्तुं प्रलायियतुं च शक्नोति तस्मादेतं विहायान्यस्योपासनं केनचिदिप नैव कार्य्यम्॥३॥

पदार्थ: - हे मनुष्यो! (य:) जो (एक:) एक (इत्) ही परमात्मा (त्रिम:) तीन अर्थात् स्थूल, सूक्ष्म, अतिसूक्ष्म (पदेभि:) जानने योग्य अंशों से (इदम्) इस्न (दीर्घम्) बढ़े हुए (प्रयतम्) उत्तम यत्नसाध्य (सधस्थम्) सिद्धान्तावयवों से एक साथ के स्थान को (प्रविमम) विशेषता से रचता है, उस (वृष्णे) अनन्त पराक्रमी (गिरिक्षिते) मेघ वा पर्वतों को अपने अपने स्थर रखनेवाले (उरुगायाय) बहुत प्राणियों से वा बहुत प्रकारों से प्रशंसित (विष्णवे) व्याप्रक परमात्मा के लिये (मन्म) विज्ञान (श्रूषम्) और बल (एत्) प्राप्त होवे॥३॥

भावार्थ:-कोई भी अनन्त पराक्रमी जगारिश्वर के ब्रिना इस विचित्र जगत् के रचने, धारण करने और प्रलय करने को समर्थ नहीं हो सकता, इससे इसकी छोड़ और की उपासना किसी को न करनी चाहिये॥३॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फ<u>्रिर उसी बि</u>ष्य को अगले मन्त्र में कहा है॥

यस्य त्री पूर्णा मधुना पदान्यक्षीयमाणा स्वधया मदिनि।

य उ त्रिधातुं पृथिवीपुत द्वार्मेको दाधार भुवनानि विश्वा॥४॥

यस्य। त्री। पूर्णा मधुना) पदानि। अक्षीयमाणा। स्वधया। मदन्ति। यः। ऊम् इति। त्रिऽधातुं। पृथिवीम्। उत। द्याम्। एकंः। द्वाधार। भुवनानि। विश्वां॥४॥

पदार्थः (यस्य) जगदीश्वरस्य मध्ये (त्री) त्रीणि (पूर्णा) पूर्णानि (मधुना) मधुराद्येन गुणेन (पदानि) प्राप्तुमहोणि (अक्षीयमाणा) क्षयरिहतानि (स्वधया) स्वस्वरूपधारणया क्रियया (मदन्ति) (य:) (३) (बिधातु) त्रयः सत्वरजस्तम आदिधातवो येषु तानि (पृथिवीम्) भूमिम् (उत) अपि (द्याम्) सूर्य्यम् (एकः) अद्भाः (दाधार) धरति पोषयति वा (भृवनानि) (विश्वा) सर्वाणि॥४॥

अन्वय:-हे मनुष्या! यस्य रचनायां मधुना पूर्णाऽक्षीयमाणा त्री पदानि स्वधया मदन्ति य एक उ पृथिवीमुत द्यो त्रिधातु विश्वा भुवनानि दाधार स एव परमात्मा सर्वेवेंदितव्य:॥४॥

भावार्थ:-योऽनादिकारणात् सूर्यादिप्रकाशवत् क्षितीरुत्पाद्य सर्वेभींग्यै: पद्धिः सर्वे संयोज्याऽऽनन्दयति तदुणकर्मोपासनेनानन्दो हि सर्वेर्वर्द्धनीय:॥४॥

पदार्थ: - हे मनुष्यो! (यस्य) जिस ईश्वर के बीच (मधुना) मधुरादि गुण से (पूर्णा) पूर्ण (अक्षीयमाणा) विनाशरहित (त्री) तीन (पदानि) प्राप्त होने योग्य पद अर्थात् लोक (स्वधया) अपने—अपने रूप के धारण करने रूप क्रिया से (मदिन्त) आनन्द को प्राप्त होते हैं (यः) और जो (एकः) (उ) एक अर्थात् अद्वैत परमात्मा (पृथिवीम्) पृथिवीमण्डल (उत्त) और (द्याप्त) सूर्यमण्डल तथा (त्रिधातु) जिनमें सत्व, रजस्, तमस् ये तीनों धातु विद्यमान उन (विश्वा) समस्त (भुवानि) लोक-लोकान्तरों को (दाधार) धारण करता है, वही परमात्मा सब को मानने योग्य है॥४।

भावार्थ:-जो अनादि कारण से सूर्य आदि के तुल्य प्रकाशमान पृथिवियों को उत्पन्न कर समस्त भोग्य पदार्थों के साथ उनका संयोग करा उनको आनन्दित करता है, उसके गुण कर्म की उपासना से आनन्द ही सबको बढ़ाना चाहिये॥४॥

पुनस्तमेव विषयमाह

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

तदस्य प्रियम्भि पाथो अश्यां नरो वर्ष देवस्वो मदन्ति।

उरुक्रमस्य स हि बर्चुरित्था विष्णोः पदे प्रामे मध्व उत्सः॥५॥

तत्। अस्य। प्रियम्। अभि। पार्थः। अरुगम्। मरः। यत्रं। देवऽयर्वः। मर्दन्ति। उरुक्रमस्यं। सः। हि। बर्स्यः। दृत्था। विष्णोः। पुदे। पुरुमे। मध्वः। उत्प्रंः॥ भा

पदार्थ:-(तत्) (अस्य) (प्रियम्) येत्र प्रीणाति तत् (अभि) (पाथः) वर्त्म (अश्याम्) प्राप्नुयाम् (नरः) नेतारः (यत्र) यस्मिन्न (देवयवः) ह्ये देवान् दिव्यान् भोगान् कामयन्ते (मदन्ति) आनन्दयन्ति (उरुक्रमस्य) बहुपराक्रमस्य (सः) (हि) खलु (बन्धुः) दुःखविनाशकत्वेन सुखप्रदः (इत्था) अनेन प्रकारेण (विष्णोः) व्यापकस्य (पदे) प्राप्तव्ये (परमे) अत्युत्तमे मोक्षे पदे (मध्वः) मधुरादिरसयुक्तस्य (उत्सः) कूप इव हुप्तिकरः॥५॥

अन्वयः - अह पत्र देवयवो नरो मन्दित तदस्योरुक्रमस्य विष्णोः प्रियं पाथोऽभ्यश्यां यस्य परमे पदे मध्व उत्स इव तृप्तिकरो गुणो वर्तते स्मिह इत्था नो बन्धुरिवास्ति॥५॥

भावार्थः अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। ये परमेश्वरेण वेदद्वारा दत्तमाज्ञामनुगच्छन्ति, ते मोक्ष्मसुखमश्तुवते। यथा जना बन्धुं प्राप्य सहायं लभन्ते तृषिता वा मधुरजलं कूपं प्राप्य तृप्यन्ति तथा प्रिमेश्वरं प्राप्य पूर्णाऽनन्दा जायन्ते॥५॥

मण्डल-१। अनुवाक-२१। सूक्त-१५४

१६२१

पदार्थ:-मैं (यत्र) जिसमें (देवयव:) दिव्य लोगों की कामना करनेवाले (नर:) अग्रगन्ता उत्तमें जन (मदन्ति) आनन्दित होते हैं (तत्) उस (अस्य) इस (उरुक्रमस्य) अनन्त पराक्रमयुक्त (विष्णोः) व्यापक परमात्मा के (प्रियम्) प्रिय (पाथः) मार्ग को (अभ्यश्याम्) सब ओर से प्राप्त होने, जिसे परमात्मा के (परमे) अत्युत्तम (पदे) प्राप्त होने योग्य मोक्ष पद में (मध्वः) मधुरादि गुण्युक्त पदार्थ का (उत्सः) कूपसा तृप्ति करनेवाला गुण वर्त्तमान है (सः, हि) वही (इत्था) इस प्रकार से हमारा (बन्धुः) भाई के समान दुःख विनाश करने से सुख देनेवाला है॥५॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जो परमेश्वर की वेद्वद्वारा दी हुई आज्ञा के अनुकूल चलते हैं, वे मोक्ष सुख को प्राप्त होते हैं। जैसे जन बन्ध्र की प्राप्त होकर सहायता को पाते हैं वा प्यासे जन मीठे जल से पूर्ण कुये को पाकर तृप्त होते हैं, वैसे पामिश्वर को प्राप्त होकर पूर्ण आनन्द को प्राप्त होते हैं॥५॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।

ता वां वास्तून्युश्मिस गर्मध्यै यत्र गावो भूरिशृङ्गा अवास्तः। अत्राहु तदुक्तगायस्य वृष्णीः पर्मं पुदमवे भाति भूरि॥६॥२४॥

ता। वाम्। वास्तूनि। उष्टमुस्। गर्मध्यै। यत्रं। भूरिऽश्रृङ्गाः। अयासंः। अत्रं। अहं। तत्। उरुऽगायस्यं। वृष्णंः। पुरुमम्। पुदम्। अवं। भाति। भूरिं॥६॥

पदार्थ:- (ता) तानि (वार्ष) युवयोरध्यापकोपदेशकयोः परमयोगिनोः (वास्तूनि) वासाऽधिकरणानि (उश्मिस) कामयेमृहि (गाध्ये) गन्तुम् (यत्र) यस्मिन् (गावः) किरणाः (भूरिशृङ्गाः) भूरिशृङ्गाणीवोत्कृष्टानि तेजांसि येषु ते (अयासः) प्राप्ताः (अत्र) (अह) (तत्) (उरुगायस्य) बहुधा प्रशंसितस्य (वृष्णः) सुखवर्षकस्य (परमम्) प्रकृष्टम् (पदम्) प्राप्तुमर्हम् (अव) (भाति) प्रकाशते (भूरि) बहु॥६॥

इमं मन्त्रं यास्वसृत्तिरतं व्याम्पष्टः-तानि वां वास्तूनि कामयामहे गमनाय यत्र गावो भूरिशृङ्गा भूरीति बहुनो नामधेयं भवति सतः शृङ्गं श्रयतेर्वा शृणातेर्वा शम्नातेर्वा शरणायोद्गतमिति वा शिरसो निर्गतमिति वाऽयासोऽयनाः। तत्र तदुरुगायस्य विष्णोर्महागतेः परमं पदं परार्ध्यस्थमवभाति भूरि। पादः पद्यतेस्तिन्नधानास्यदं पशुपादप्रकृतिः प्रभागपादः प्रभागपादसामान्यादितराणि पदानीति। (निरु०२.७)॥६)

अन्वयः-हे आप्तौ विद्वांसौ! यत्रायासो भूरिशृङ्गा गावः सन्ति ता तानि वास्तूनि वां युवयोर्गमध्यै वयमुश्मसि। यदुरुगीयस्य कुणः परमेश्वरस्य परमं पदं भूर्यवभाति तदत्राह वयमुश्मसि॥६॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। यत्र विद्वांसो मुक्तिं प्राप्नुवन्ति तत्र किञ्चिदप्यन्धकारो नास्ति प्राप्तमोक्षाश्च भास्वरा भवन्ति तदेवाप्तानां मुक्तिपदं ब्रह्म सर्वप्रकाशकमस्तीति॥६॥

अत्र परमेश्वरमुक्तिपदवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गितिर्बोध्या॥

इति चतु:पञ्चाशदुत्तरं शततमं १५४ सूक्त चतुर्विंशो २४ वर्गश्च समाप्त:॥ 🗸

पदार्थ:-हे शास्त्रवेता विद्वानो! (यत्र) जहाँ (अयास:) प्राप्त हुए (भूरिशृद्धः) बहुत सींगों के समान उत्तम तेजोंवाले (गाव:) किरण हैं (ता) उन (वास्तूनि) स्थानों को (वाम्) तुम अध्यापक और उपदेशक परम योगीजनों के (गमध्ये) जाने को हम लोग (उश्मिस) चाहते हैं। जो (अलायस्य) बहुत प्रकारों से प्रशंसित (वृष्ण:) सुख वर्षानेवाले परमेश्वर को (परमम्) प्राप्त होने योग्य (पदम्) मोक्षपद (भूरि) अत्यन्त (अव, भाति) उत्कृष्टता से प्रकाशमान है (तत्) उसको (अत्राह्ण) यहाँ ही हम लोग चाहते हैं॥६॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जहाँ ब्रिह्म जन मुक्ति पाते हैं, वहाँ कुछ भी अन्धकार नहीं है और वे मोक्ष को प्राप्त हुए प्रकाशमान होते हैं, वहीं अप्त विद्वानों का मुक्तिपद है सो ब्रह्म सबका प्रकाश करनेवाला है॥६॥

इस सूक्त में परमेश्वर और मुक्ति का वर्णन होने से इस मूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये॥

यह एक सौ चौवनवाँ १५४ सूक्त और चौबे स्वां १२४ वर्ग समाप्त हुआ॥

प्र वइत्यस्य षड्चस्य पञ्चपञ्चाशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य दीर्घतमा ऋषि:। विष्णुर्देवता। १,३,६ भुरिक् त्रिष्टुप्। ४ स्वराट् त्रिष्टुप्। ५ निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। २

निचृज्जगती छन्द:। निषाद: स्वर:॥

अथाध्यापकोपदेशब्रह्मचर्यफलविषयमाह।।

अब एक सौ पचपनवें सूक्त का आरम्भ है। उसके प्रथम मन्त्र में पढ़ाने, उपदेश करनेवाले और

ब्रह्मचर्य सेवन का फल कहते हैं॥

प्र वुः पान्तमर्थसो धियायते मुहे शूराय विष्णवे चार्चत।

या सार्नुनि पर्वतानामदाभ्या महस्तस्थतुरर्वतेव साधुना॥ १॥

प्र। वः। पान्तम्। अर्चसः। ध्रियाऽयते। महे। श्रूरीय। विष्णवि। यू अर्चति। या। सार्नुनि। पर्वतानाम्। अद्योभ्या। महः। तस्यतुः। अर्वताऽइव। साधुनी॥ १॥

पदार्थ:-(प्र) (व:) युष्माकम् (पान्तम्) (अन्यसः) द्रिवीभूत्रस्यात्रादेः (धियायते) प्रज्ञां धारणिमच्छते (महे) महते (शूराय) शौर्यादिगुणोपेताय (विष्णवे) शुभगुणव्याप्ताय (च) (अर्चत) सत्कुरुत (या) यौ (सानुनि) शिखरे (पर्वतानाम्) मेघानां श्रीतानां वो (अदाभ्या) हिंसितुमयोग्यौ (महः) महद्यथास्यात्तथा (तस्थतुः) तिष्ठतः (अर्वतेव) या ऋकृष्टित तेनाऽष्ट्रवनेव (साधुना) सुशिक्षितेन॥१॥

अन्वयः-हे मनुष्या! धियायते महे शूराय बिष्णवे च वीष्ट्रम्धसः पान्तं यूयं प्रार्चत याऽदाभ्या मित्रावरुणौ पर्वतानां सानुन्यर्वतेव साधुना महस्तस्थतुस्ताविप प्रार्चिता ।

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। ये विद्यादानेन स्प्रीशक्षया जनान् विज्ञानेन वर्द्धयन्ति, ते महान्तो भवन्ति॥१॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! (धियायते) प्रज्ञा और धारण की इच्छा करनेवाले (महे) बड़े और (शूराय) शूरता आदि गुणों से युक्त (विणवे, च) और शुभ गुणों में व्याप्त महात्मा के लिये (व:) तुम्हारे (अन्धस:) गीले अन्न आदि पूर्दार्थ के (पान्तम्) पान को तुम (प्र, अर्चत) उत्तमता से सत्कार के साथ देओ। तथा (या) जो (अद्वाध्या) हिंगा न करने योग्य मित्र और वरुण अर्थात् अध्यापक और उपदेशक (पर्वतानाम्) पर्वतों के (सानुनि) शिखर पर (अर्वतेव) जानेवाले घोड़े के समान (साधुना) उत्तम सिखाये हुए शिष्य से (मह्य) बड़ा जैसे हो वैसे (तस्थतु:) स्थित होते अर्थात् जैसे घोड़ा से ऊंचे स्थान पर पहुंच जावें, वैसे विद्या पहुंकर कोर्ति के शिखर पर चढ़ जाते हैं, उनका भी उत्तम सत्कार करो॥१॥

भाषार्थ: रहस मेन्त्र में उपमालङ्कार है। जो विद्यादान, उत्तम शिक्षा और विज्ञान से जनों को वृद्धि देते हैं, ब्रे महात्मा होते हैं॥१॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

त्वेषमित्था समर्गणं शिमीवतोरिन्द्रीविष्णू सुत्पा वामुरुष्यति। या मर्त्याय प्रतिधीयमानुमित् कृशानोरस्तुरसनामुरुष्यर्थः॥२॥

त्वेषम्। इत्था। सम्ऽअरंणम्। शिमीऽवतोः। इन्द्रीविष्णू इति। सुत्ऽपाः। वाम्। उरुष्यति। स्रोति प्रतिऽधीयमानम्। इत्। कृशानीः। अस्तुः। असुनाम्। उरुष्यर्थः॥२॥

पदार्थ:-(त्वेषम्) प्रकाशम् (इत्था) अनेन प्रकारेण (समरणम्) सम्यक् प्रापकम् (इत्याविकाः) प्रशस्तकर्मयुक्तयोः (इन्द्राविष्णू) विद्युत्सूर्याविव (सुतपाः) सुतं पाति रक्षति सः (वाम्) युवाम् (उम्रष्यति) वर्द्धयति (या) यौ (मर्त्याय) मनुष्याय (प्रतिधीयमानम्) सम्यक् ध्रियमाणम् (इत्) (कृशानोः) विद्युतः (अस्तुः) प्रक्षेपतः (असनाम्) प्रक्षेपणां क्रियाम् (उम्रष्यथः) सेवेथाम्॥२॥

अन्वयः-यः शिमीवतोरध्यापकोपदेशकयोः सकाशात् समरणं त्वेषे प्रीप्य मर्चाच प्रतिधीयमानमुरुष्यति स सुतपा या इन्द्राविष्णू इवाध्यापकोपदेशकौ युवामस्तुः कृशानोरसनां यथेदुरुष्यथः इत्था चा स्रेवताम्॥२॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये तपस्विनो जितेन्द्रिया सन्तो विद्यामभ्यस्यन्ति, ते सूर्यविद्युद्धत्प्रकाशितात्मानो भवन्ति॥२॥

पदार्थ:-जो (शिमीवतो) प्रशस्त कर्मयुक्त अध्यापक और उपदेशक की उत्तेजना से (समरणम्) अच्छे प्रकार प्राप्ति करानेवाले (त्वेषम्) प्रकार को प्राप्त होकर (मर्त्याय) मनुष्य के लिये (प्रतिधीयमानम्) अच्छे प्रकार धारण किये हुए ब्याहार को (उरुध्यति) बढ़ाता है वह (सुतपा:) सुन्दर तपस्यावाला सज्जन पुरुष (या) जो (इन्द्राहिष्णू) बिजुली और सूर्य के समान पढ़ाने और उपदेश करनेवाले तुम दोनों (अस्तु:) एक देश से दूसरे देश क्रा पदार्थ पहुँचा देनेवाले (कृशानो:) बिजुली रूप आग की (असनाम्) पहुँचाने की क्रिया को पिसे (इत्) ही (उरुध्यथ:) सेवते हो (इत्था) इसी प्रकार से (वाम्) तुम दोनों को सेवें॥२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में ब्राचकलुप्तापमालङ्कार है। जो तपस्वी जितेन्द्रिय होते हुए विद्या का अभ्यास करते हैं, वे सूर्य और विजुली के समाम प्रकाशितात्मा होते हैं॥२॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

प्रिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

ता ईं वर्धन्ति महास्य पौंस्यं नि मातरा नयति रेतसे भुजे। दथर्पित पुत्रोऽन्तरं परं पितुर्नामं तृतीयमधि रोचने दिव:॥३॥

ताः। ईमा वर्धन्ति। मिही अस्या पौंस्यम्। नि। मातर्रा। नयति। रेतसे। भुजे। दर्धाति। पुत्रः। अवरम्। पर्रम्। पितुः। नामे। तृतीर्यम्। अर्धि। रोचने। दिवः॥३॥

मण्डल-१। अनुवाक-२१। सूक्त-१५५

१६२५

पदार्थ:-(ता:) विदुष्य: स्त्रिय: (ईम्) सर्वत: (वर्द्धन्ति) वर्द्धयन्ति (मिह्र) महत् (अस्य) अपत्यस्य (पौंस्यम्) पुंसो भावम् (नि) नितराम् (मातरा) मान्यकर्तारौ मातापितरौ (नयित) प्राप्नोति (रेतसे) वीर्यस्य वर्द्धनाय (भुजे) भोगाय (दधाति) (पुत्र:) जनकपालक: (अवरम्) अर्वाचित्रम् (पर्म्) प्रकृष्टम् (पितु:) जनकस्य सकाशात् (नाम) आख्याम् (तृतीयम्) त्रयाणां पूरकम् (अधि) उपिर (रोजन) प्रकाशे (दिव:) द्योतमानस्य सूर्यस्य॥३॥

अन्वयः-या विदुष्योऽस्य रेतसे भुजे मिह पौंस्यमीं वर्द्धन्ति स ता नयित यतः पुत्रे पितुर्मातुश्च प्राप्तिशक्षो दिवोऽधिरोचनेऽवरं परं तृतीयं च नाम निमातरा च दधाति॥३॥

भावार्थ:-त एव मातापितरौ हितैषिणौ ये स्वाऽपत्यानि दीर्घब्रह्मचर्केण पूर्णा विद्याः सुशिक्षा युवावस्थाञ्च प्रापय्य विवाहयन्ति, त एव प्रथमं द्वितीयं तृतीयं च पदार्थं प्राप्य भूर्यवत् सुप्रकाशात्मनो भवन्ति॥३॥

पदार्थ:-जो विदुषी स्त्रियां (अस्य) इस लड़के के (रेत्न्से) बीर्य बढ़ाने और (भुजे) भोगादि पदार्थ प्राप्त होने के लिये (मिह) अत्यन्त (पौस्यम्) पुरुषार्थ की (ईप्) सब ओर से (वर्द्धन्ति) बढ़ाती हैं वह (ता:) उनको (नयित) प्राप्त होता है। इसमें कारण यह है कि जिससे (पुत्र:) पुत्र (पितु:) पिता और माता की उत्तेजना से शिक्षा को प्राप्त हुआ (दिव:) पुकाशमान सूर्यमण्डल के (अधि, रोचने) ऊपरी प्रकाश में (अवरम्) निकृष्ट (परम्) उत्कृष्ट वा पिछले—अगल का उरले और (तृतीयम्) तीसरे (नाम) नाम को तथा (नि, मातरा) निरन्तर मान करनेवाले माता-पिता को (दधाति) धारण करता है॥३॥

भावार्थ:-वे ही माता-पिता हितैषी होते हैं, जो अपने सन्तानों की दीर्घ ब्रह्मचर्य से पूरी विद्या, उत्तम शिक्षा और युवावस्था को प्राप्त क्या विद्याह कराते हैं। वे ही प्रथम ब्रह्मचर्य, दूसरी पूरी विद्या, उत्तम शिक्षा और तृतीय युवावस्था को प्राप्त होकर सूर्य के समान प्रकाशमान होते हैं॥३॥

पुरस्तमेव विषयमाह॥

र्फिर उसी विषये को अगले मन्त्र में कहा है॥

तत्त्विद्दस्य पौंस्यं गूणीमसीनस्य त्रातुरवृकस्य मीळहुर्षः।

यः पार्थिवानि प्रिमित्रिक्यामिभिरुक क्रमिष्टोरुगायार्यं जीवसे॥४॥

तत्ऽतंत्। इत्। अस्या पाँस्यंम्। गृणीमुसि। इनस्यं। त्रातुः। अवृकस्यं। मीळहुषं:। यः। पार्थिवानि। त्रिऽभिः। इत्। विर्गामऽभिः। उरु। क्रिमिष्ट। उरुऽगायायं। जीवसं॥४॥

पदार्थ:-(तत्तत्) (इत्) एव (अस्य) कृतब्रह्मचर्यस्य जितेन्द्रियस्य (पौंस्यम्) पुरुषार्थस्य भावम् (गृणीमिस्) स्तुमः (इनस्य) समर्थस्येश्वरस्य (त्रातुः) रक्षकस्य (अवृकस्य) चौर्यादिदोषरिहतस्य (मीद्ध्यः) बीर्यसेचकस्य (यः) (पार्थिवानि) पृथिवीविकारजातानि (त्रिभिः) सत्वादिगुणैः (इत्) एव

(विगामभि:) विविधप्रशंसायुक्तैः (उरु) बहु (क्रमिष्ट) क्रमते (उरुगायाय) बहुप्रशंसिताय (जीवसे) जीवनाय प्राणधारणाय॥४॥

अन्वय:-यो विगामभिस्त्रिभिरुरुगायाय जीवसे यद्यत् पार्थिवानीदुरु क्रमिष्ट तत्तत् त्रातुरिनस्येषास्यावृकस्य मीढुषः पौंस्यमिद्वयं गृणीमसि॥४॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। मनुष्यै: सुखेन चिरंजीवनाय दीर्घे ब्रह्मचर्यं संसेव्यारोग्येण धातुसाम्यवर्द्धनेन शरीरबलं विद्याधर्मयोगाभ्यासवर्द्धनेनाऽऽत्मबलसूत्रीय सदैव सुखे स्थातव्यम्। य इमामीश्वराज्ञां पालयन्ति ते बाल्यावस्थायां स्वयंवरिववाहं कद्याचित्र कुर्बन्ति, नैतन विना पूर्णा पुरुषार्थवृद्धि: संभवति॥४॥

पदार्थ:-(य:) जो (विगामिभ:) विविध प्रशंसायुक्त (त्रिभ:) तीने पत्न रजस्, तमो गुणों के साथ (उरुगायाय) बहुत प्रशंसित (जीवसे) जीवन के लिये (पार्थिवानि) पृथिवों के किरणों से उत्पन्न हुए (इत्) ही पदार्थों को (उरु, क्रिमिष्ट) क्रम से अत्यन्त प्राप्त होता है (तत्तत्) उस-उस (त्रातुः) रक्षा करनेवाले (इनस्य) समर्थ ईश्वर के समान (अस्य) किये हुए ब्रह्मचर्य जितन्द्रिय इस (अवृकस्य) चोरी आदि दोषरहित (मीढुषः) वीर्य सेचन समर्थ पुरुष के (जिस्बम्) प्रुरुषार्थ की (इत्) ही हम लोग (गृणीमिस) प्रशंसा करते हैं॥४॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि सुख से चिरकाल तक जीने के लिये दीर्घ ब्रह्मचर्य को अच्छे प्रकार स्वेन कर आरोग्य और धातुओं की समता बढ़ाने से शरीर के बल और विद्या, धर्म तथा योगाभ्यास के बढ़ाने से आत्मबल की उन्नति कर सदैव सुख में रहें। जो लोग इस ईश्वर की आज्ञा का पालन करते हैं, के बल्यावस्था में स्वयंवर विवाह कभी नहीं करते। इसके विना पूर्ण पुरुषार्थ की वृद्धि की संभावना नहीं है। है।

पुरस्तमेव विषयमाह॥

किर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

द्वे इदंस्य क्रमणे स्वद्शिरे भ्रिख्याय मर्त्यो भुरण्यति।

तृतीयमस्य निकरा देशकेति वर्यश्चन पुतर्यन्तः पतुत्रिणः॥५॥

द्वे इति। इत्। अस्य। क्रमणे इति। स्वःऽदृष्टाः। अभिऽख्याये। मर्त्यः। भुरण्यति। तृतीयेम्। अस्य। नर्किः। आ। दुधुर्षति। वर्षः। चुत्ता पुतर्यन्तः। पुतुत्रिणः॥५॥

पद्धर्थ:-द्वि) शरीरात्मबले (इत्) इव (अस्य) ब्रह्मचारिणः (क्रमणे) अनुक्रमेण गमने (स्वर्दृशः) यः सुखं पश्यित तस्य (अभिख्याय) अभितः प्रख्यातुम् (मर्त्यः) मनुष्यः (भुरण्यित) धरित (तृतीयम्) त्रित्व्रसिख्याकं विद्याजन्म (अस्य) (निकः) निषेधे (आ) समन्तात् (दधर्षित) धर्षितुमिच्छति (वयः) (विनः) अपि (पतयनः) ऊर्ध्वमधो गच्छन्तः (पतित्रणः) पक्षिणः॥५॥

अष्टक-२। अध्याय-२। वर्ग-२५

मण्डल-१। अनुवाक-२१। सूक्त-१५५

१६२७

अन्वयः-यो मर्त्यः स्वर्दृशोऽस्य द्वे क्रमणे अभिख्याय भुरण्यति स पतयन्तः पतित्रणो वयश्चनेदिवास्य तृतीय निकरादधर्षति॥५॥

भावार्थ:-ये मातापितरः स्वापत्यानां ब्रह्मचर्याऽनुक्रमेण विद्याजन्म वर्द्धयन्ति ते स्वापत्यानि दीर्घायूषि बलिष्ठानि सुशीलानि कृत्वा नित्यं मोदन्ते॥५॥

पदार्थ:-जो (मर्त्य:) मनुष्य (स्वर्दृश:) सुख देनेवाले (अस्य) इस ब्रह्मचारी के (हे, क्रमणे) दो अनुक्रम से चलनेवाले अर्थात् वर्ताव वर्तने वाले शरीर-बल तथा आत्मबल को (अभिख्याय) से ओर से प्रख्यात करने को (भुरण्यति) धारण करता है, वह (पतयन्त:) ऊपर ब्रीचे जाते हुए (पतित्रण:) पंखोंवाले (वय:) पखेरू (चन) भी (इत्) जैसे किसी पदार्थ का विस्तृह करें वैसे भी (अस्य) इस ब्रह्मचारी के (तृतीयम्) तीसरे विद्या जन्म का (निक:, आ, दधर्षित) तिरुख्का (नहीं करता है॥५॥

भावार्थ:-जो माता-पिता अपने सन्तानों की ब्रह्मचर्य के अनुक्रम से ब्रिद्या जन्म को बढ़ाते हैं, वे अपने सन्तानों को दीर्घ आयुवाले, बलवान्, सुन्दरशीलयुक्त कर्के नित्य हर्षित होते हैं॥५॥

पुनस्तमेव विषयमाह।

फिर उसी विषय को अगले (न्त्रि)में कहा हैं॥

चतुर्भिः साकं नेवति च नामिभश्चकं न वृत्तं त्यतीरेवीविपत्। बृहच्छरीरो विमिमान ऋक्विभिर्युवाकुमारः प्रत्येत्प्रह्वम्॥६॥२५॥

चुतुर्भिः। साकम्। नुवृतिम्। च। नार्मऽभिः। चुक्रम्। न। वृत्तम्। व्यतीन्। अवीविष्रत्। बृहत्ऽश्रीराः। विऽमिर्मानः। ऋक्वेऽभिः। युवा। अकुमारः। प्रति एति। आहर्ष्टवम्॥६॥

पदार्थ:-(चतुर्भि:) चतुष्ट्वसंख्याकै: (स्रोक्षम्) सार्द्धम् (नवितम्) (च) (नामिभः) आख्याभिः (चक्रम्) (न) इव (वृत्तम्) (व्यतीन्) विशेषण प्राप्तबलान् (अवीविपत्) अतिशयेन भ्रामयित (वृहच्छरीरः) बृहत् महच्छरीर् यस्य (विमिमानः) विशेषण धातूनां निर्माता (ऋक्विभः) प्रशंसितैर्गुणकर्मस्वभावैः (युक्राः) प्राप्तयोवनावस्थः (अकुमारः) पञ्चविंशतिवर्षातीतः (प्रति) (एति) प्राप्नोति (आहवम्) प्रतिष्ठाञ्चानम्॥क्ष्राः

अन्वय:-यो विमिमानि मृहच्छरीरोऽकुमारो युवा वृत्तं चक्रं न चतुर्भिर्नामभि: साकं नवतिं च व्यतीनेकोऽप्यवीविपक्रुस ऋक्वभिराहवं प्रत्येति॥६॥

भावार्थः - अशोपमालङ्काराः। याऽष्टाचत्वारिंशद्वर्षप्रमिताखण्डितं ब्रह्मचर्यं सेवते, स एकोऽसहय्रोऽपि गोलचक्रवच्चतुर्ण्णवितं योद्धृन् भ्रामियतुं शक्नोति। मनुष्याणामादशमात्संवत्सराद् बाल्यावस्था। आषञ्चविंशतेः कुमारावस्था ततः षट्विंशवर्षारम्भाद्युवावस्थारम्भः पूरुषस्य सप्तद्वशाद्वर्षात्कन्यायाश्च युवावस्थारम्भोऽस्ति। अत ऊर्ध्वं ये स्वयंवरं विवाहं कुर्वन्ति कारयन्ति च ते महाभारवशालिनो जायन्ते॥६॥

अत्राध्यापकोपदेशकब्रह्मचर्यफलवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेदितव्यम्।

इति पञ्चपञ्चाशदुत्तरं १५५ शततमं सुक्तं पञ्चविंशो २५ वर्गश्च समाप्तः॥

पदार्थ:-जो (विमिमान:) विशेषता से धातुओं की वृद्धि का निर्माण करता हुआ (कृहक्षेतर:) बली स्थूल शरीरवाला (अकुमार:) पच्चीस वर्ष की अवस्था से निकल गया (युवा) किन्तु स्वावस्था को प्राप्त ब्रह्मचारी (वृत्तम्) गोल (चक्रम्) चक्र के (न) समान (चतुर्भि:) चार (नामिभ:) नामों के (साकम्) साथ (नवितं, च) और नव्वे अर्थात् चौरानवें नामों से (व्यतीन्) विशेषता से जिनकी बल प्राप्त हुआ उन बलवान् योद्धाओं को एक भी (अवीविपत्) अत्यन्त भ्रमाता है, वह (ऋक्वर्भि:) प्रशंसित गुण, कर्म, स्वभावों से (आहवम्) प्रतिष्ठा के साथ बुलाने को (प्रति, एति) प्राप्त होता है। हु।

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो अड़तालीस वर्ष भर अखिएकत ब्रह्मचर्य का सेवन करता है, वह अकेला भी गोलचक्र के समान चौरानवे योद्धाओं को श्रमा सकता है। मनुष्यों में दश वर्ष तक बाल्यावस्था, पच्चीस वर्ष तक कुमारावस्था, तदनन्तर छब्बीसवें क्ये के आरम्भ से युवावस्था पुरुष की होती है और सत्रहवें वर्ष से कन्या की युवावस्था का आरम्भ है। इसके उपरान्त जो स्वयंवर विवाह को करते-कराते हैं, वे महाभाग्यशाली होते हैं॥६॥

इस सूक्त में अध्यापकोपदेशक और ब्रह्मचर्य के फल के वर्णन से इसके अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ साथ सङ्गति है, यह जानना चाहिये॥

यह एक सौ पचपनवां १५५ सूर्वत और पच्छीसवां २५ वर्ग पूरा हुआ॥

भवेत्यस्य पञ्चर्चस्य षट्पञ्चाशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य दीर्घतमा ऋषिः। विष्णुर्देवता। १ निचृत्त्रिष्टुप्। २ विराट् त्रिष्टुप्। ५ स्वराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। ३ निचृज्जगती। ४

जगती छन्दः। निषाद:स्वर:॥

अथ विद्वदध्यापकाध्येतृगुणानाह।।

अब पांच ऋचावाले एक सौ छप्पनवें सूक्त का आरम्भ है। उसमें आरम्भ से विद्वानू अध्यापिक अध्येताओं के गुणों को कहते हैं।।

भवां मित्रो न शेव्यों घृतासुंतिर्विभूतद्युम्न एवया उ सप्रथाः।

अर्घा ते विष्णो विदुषां चिद्धर्यः स्तोमो युज्ञश्च राध्यो हुविष्मुताहरू।

भर्व। मित्रः। न। शेर्व्यः। घृतऽआंसुतिः। विभूतऽद्युम्नः। एवऽयाः। द्वर्षम् इति सुप्रप्रथाः। अर्ध। ते। विष्णो इति। विदुषा। चित्। अर्ध्यः। स्तोमः। यज्ञः। च। राध्यः। ह्विष्मता॥ १॥

पदार्थ:-(भव) अत्र द्वयचोऽतिस्तङ इति दीर्घः। (मिक्रः) (ने) इत्र (शेव्यः) सुखियतुं योग्यः (घृतासुतिः) घृतमासूयते येन सः (विभूतद्युम्नः) विशिष्टानि भूतानि द्युम्माने धनानि यशांसि वा यस्य सः (एवयाः) एवान् रक्षकान् याति (उ) वितर्के (सप्रथाः) सप्रख्यतिः (अध) अनन्तरम्। अत्र निपातस्य चेति दीर्घः। (ते) तव (विष्णो) सर्वासु विद्यासु व्यापिन् (विदुषा) अप्तेन विपश्चिता (चित्) अपि (अर्ध्यः) वर्द्धितुं योग्यः (स्तोमः) स्तोतुमर्हो व्यवहारः (यहः) सङ्गन्तुमर्हो ब्रह्मचर्याख्यः (च) (राध्यः) संशोधितुं योग्यः (हिवष्मता) प्रशस्तविद्यादानग्रहणयुक्तेन व्यवहारण्।/१॥

अन्वय:-हे विष्णो! ते तव योऽद्धर्यः स्वीमो यज्ञश्च हुर्विष्मता राध्योऽस्ति तं चानुष्ठायाऽध शेव्यो मित्रो न एवया उ सप्रथा विदुषा चिदिप घृतासुतिर्विभूतद्युम्नसूर्वे अवि।१॥

भावार्थ:-विद्वांसो यस्य ब्रह्मचर्यानुष्ठानाख्ययज्ञस्य वृद्धिं स्तुतिं संसिद्धिं च चिकीर्षन्ति तं संसेव्य विद्वान् भूत्वा सर्वस्य मित्रं भवेत्। ११॥

पदार्थ: -हे (विष्णो) सिमस्त विद्याओं में व्याप्त! (ते) तुम्हारा जो (अर्द्ध्यः) बढ़ने (स्तोमः) और स्तुति करने योग्य व्यवहार (यज्ञः, च) और सङ्गम करने योग्य ब्रह्मचर्य नामवाला यज्ञ (हविष्मता) प्रशस्त विद्या देने और ग्रहण करने से युक्त व्यवहार (राध्यः) अच्छे प्रकार सिद्ध करने योग्य है, उसका अनुष्ठान आरम्भ कर (अध) इसके अनन्तर (शेव्यः) सुखी करने योग्य (मित्रः) मित्र के (न) समान (एवयाः) रक्षा करने वालों को प्राप्त होनेवाला (उ) तर्क-वितर्क के साथ (सप्रथाः) उत्तम प्रसिद्धियुक्त (विदुषा) और आप्त उत्तम विद्वान् के साथ (चित्) भी (घृतासुतिः) जिससे घृत उत्पन्न होता (विभूतद्भूनः) और जिससे विशेष धन वा यश हुए हों ऐसा तू (भव) हो॥१॥

भावार्थ:-विद्वान् जन जिस ब्रह्मचर्यानुष्ठानरूप यज्ञ की वृद्धि, स्तुति और उत्तमता से सिद्धि करने क्री इच्छी करते हैं, उसका अच्छे प्रकार सेवन कर विद्वान् होके सबका मित्र हो॥१॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यः पूर्व्यायं वेधसे नवीयसे सुमज्जानये विष्णवे ददांशति।

यो जातमंस्य महुतो महि ब्रवृत् सेदु श्रवीभिर्युज्यं चिदुभ्यंसत्॥२॥

यः। पूर्व्याये। वेधसे। नवीयसे। सुमत्ऽजानये। विष्णवे। दर्दाशति। यः। जातम्। अस्<u>य। मह</u>तः। मिह। ब्रवत्। सः। इत्। ऊम् इति। श्रवं:ऽभिः। युज्यम्। चित्। अभि। असुत्॥२॥

पदार्थ:-(य:) (पूर्व्याय) पूर्वैविद्विद्धिः सुशिक्षया निष्पादिताय (वेधसे) मेथाविने (नवीयसे) अतिशयेनाधीतिवद्याय नूतनाय (सुमज्जानये) सुष्ठु प्राप्तिवद्याय प्रसिद्धाय (विष्णवे) विद्याव्याप्तुं शीलाय (ददाशाति) ददाति। अत्र बहुलं छन्दसीति शपः श्लुः। (यः) (जीतम्) उत्पृत्रं विज्ञानम् (अस्य) विद्याविषयस्य (महतः) पूजितव्यस्य (मिह्) महत् पूजितम् (ब्रवत्) ब्रूयोत् (सः) (इत्) एव (उ) वितर्के (श्रवोभिः) श्रवणमनननिदिध्यासनैः (युज्यम्) समाधातुमर्हम् (चित्) अपि (अभि) आभिमुख्ये (असत्) अभ्यासं कुर्यात्॥२॥

अन्वय:-यो नवीयसे सुमज्जानये पूर्व्याय वेधसे विष्णिते (दास्रात) योऽस्य महतो महि जातं ब्रवत् य उ श्रवोभिर्जातमहि युज्यमभ्यसत् स चिद्विद्वान् जायेत स इदेवाऽश्यापिषतुं योग्यो भवेत्॥२॥

भावार्थ:-ये निष्कपटतया धीमतो विद्वार्थिनोऽध्यापयन्त्युपदिशन्ति ये च धर्म्येणाऽधीयतेऽभ्यस्यन्ति च तेऽतिशयेन विद्वांसी धार्मिका भूत्वा महत्सुखं यान्ति॥२॥

पदार्थ:-(य:) जो (नवीयसे) अल्यन्त विद्या पूढ़ा हुआ नवीन (सुमज्जानये) सुन्दरता से पाई हुई विद्या से प्रसिद्ध (पूर्व्याय) पूर्वज विद्वानों में अच्छी सिखावटों से सिखाये हुए (वेधसे) मेधावी अर्थात् धीर (विष्णवे) विद्या में व्याप्त होने का स्वभाव रखने वाले के लिये विज्ञान (ददाशित) देता है वा (य:) जो (अस्य) इस (महत:) सत्कार करने यांग्य जन के (मिह) महान् प्रशंसित (जातम्) उत्पन्न हुए विज्ञान को (ब्रवत्) प्रकट कहे (उ) और (श्रवोभिः) श्रवण, मनन और निर्दिध्यासन अर्थात् अत्यन्त धारण करने-विचारने से अत्यन्त उत्पन्न हुए (युज्यम्) समाधान के योग्य विज्ञान का (अभ्यसत्) अभ्यास करे (स:, चित्) वही विद्वान् हो और) (इत्) वही पढ़ाने को योग्य हो॥२॥

भावार्थ: जो निष्कपटता से बुद्धिमान् विद्यार्थियों को पढ़ाते वा उनको उपदेश देते हैं और जो धर्मयुक्त व्यवहार से पढ़ते और अभ्यास करते हैं, वे सब अतीव विद्वान् और धार्मिक होकर बड़े सुख को प्राप्त होते हैं। हो।

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

तमु स्तोतारः पूर्व्यं यथा विद ऋतस्य गर्भं जुनुषा पिपर्तन।

अष्टक-२। अध्याय-२। वर्ग-२६

मण्डल-१। अनुवाक-२१। सूक्त-१५६

१६३१

आस्यं जानन्तो नामं चिद्विवक्तन् महस्ते विष्णो सुमृतिं भंजामहे॥३॥

तम्। कुम् इतिं। स्तोतारुः। पूर्व्यम्। यथां। विद। ऋतस्यं। गर्भम्। जुनुषां। पिपर्तनः। आ। अस्या जाननः। नामं। चित्। विवक्तनः। महः। ते। विष्णो इतिं। सुऽमृतिम्। भुजामहे॥ ३॥

पदार्थ:-(तम्) तमाप्तमध्यापकं विद्वांसम् (३) वितर्के (स्तोतार:) सर्वविद्यास्त्रविकाः (पूर्व्यम्) पूर्वै: कृतम् (यथा) (विद) विजानीत (ऋतस्य) सत्यस्य (गर्भम्) विद्याजं बोधम् (जनुषा) विद्याजन्मना (पिपर्त्तन) पिपृत विद्याभिः सेवया वा पूर्णं कुरुत (आ) (अस्य) (जानन्तः) (नामे प्रसिद्धिम्) (चित्) अपि (विवक्तन) वदतोपदिशत (महः) महतीम् (ते) तव (विष्णो) सकलविद्याव्याप्त (सुमितिम्) शोभनां प्रज्ञाम् (भजामहे) सेवामहे॥३॥

अन्वयः – हे स्तोतारो! यथा यूयं जनुषा पूर्व्यं तं विद। ऋतस्य गर्भमुं प्रियत्तेन। अस्य चिन्नामाजानन्तो विवक्तन तथा वयमपि विजानीम: पिपृम च। हे विष्णो! वयं यस्य ते महस्सुमितं भजामहे स भवान् मीऽस्मान् सुशिक्षस्व॥३॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। मनुष्या विद्यावृद्धयेऽनूचान्सध्यापकं प्राप्य सुसेव्य सत्या विद्याः प्रयत्नेन गृहीत्वा पूर्णा विद्वांसः स्युः॥३॥

पदार्थ:-हे (स्तोतार:) समस्त विद्याओं की स्तृति कानेबाले सज्जनो! (यथा) जैसे तुम (जनुषा) विद्या जन्म से (पूर्व्यम्) पूर्व विद्वानों ने किये हुए (तम्) उस आप्त अध्यापक विद्वान् को (विद) जानो और (ऋतस्य) सत्य व्यवहार के (गर्भम्) विद्यासम्बन्धी बोध्न को (उ) तर्क-वितर्क से (पिपर्त्तन) पालो वा विद्याओं से और सेवा से पूरा करो। तथा (अस्य) इसका (चित्) भी (नाम) नाम (आ, जानन्तः) अच्छे प्रकार जानते हुए (विवक्तन) कहो उपदेश करें वैसे हम लोग भी जानें, पालें और पूरा करें। हे (विष्णो) सकल विद्याओं में व्याप्त विद्वान्) हम जिन्न (ते) आप से (महः) महती (सुमितम्) सुन्दर बुद्धि को (भजामहे) भजते सेवते हैं, सो अपि इम लोगों को उत्तम शिक्षा देवें॥३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्य विद्या की वृद्धि के लिये शास्त्रवक्ता अध्यापक को पाकर और उसकी उत्तम सिवा कर सत्यविद्याओं को अच्छे यत्न से ग्रहण करके पूरे विद्वान् हों॥३॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

प्रिस् उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

तमस्य ग्रजा वर्र्मपुस्तमश्चिना क्रतुं सचन्त मार्रुतस्य वेधसः।

दा्धार दश्मेत्ममहिर्विदं वृजं च विष्णुः सिर्खवाँ अपोर्णुते॥४॥

तम्। अस्यो राजा। वर्रुणः। तम्। अश्विना। क्रतुंम्। सचन्त्र। मार्रुतस्य। वेधसः। दाधार। दक्षम्। उत्ऽतुमम्। अहुःऽविदेम्। व्रुजम्। च। विष्णुः। सर्खिऽवान्। अपुऽऊर्णुते॥४॥

पदार्थ:-(तम्) (अस्य) (राजा) प्रकाशमानः (वरुणः) वरः (तम्) (अश्विना) अध्यापकोपदेशकौ क्रतुम्) कर्म (सचन्त) प्राप्नुत (मारुतस्य) मरुतामयं तस्य (वेधसः) विधातुः (दाधार) धरतु (दक्षम्)

बलम् (उत्तमम्) प्रशस्तम् (अहर्विदम्) योऽहानि विन्दित तम् (व्रजम्) प्राप्तं देशम् (च) (विष्णुः) स्वदीप्तया व्यापकः सूर्य्यः (सिखवान्) बहवो मरुतः सखायो विद्यन्ते यस्य सः (अपोर्णुते) उद्घाटयित प्रकाशयित। आच्छादकमन्धकारं निवारयित॥४॥

अन्वय:-यः सिखवान् विष्णुरुत्तमं दक्षं दाधाराहर्विदं व्रजं चापोर्णुत तस्यास्य मारुतस्य वेधसस्तं क्रेषु वर्णो राजा तमश्विना च सचन्त॥४॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। यथाऽन्ये सज्जना आप्ताद्विदुषो विद्या गृहीत्वा प्रमामुत्रीय पूर्णं बलं प्राप्नुवन्ति। यथा यत्र यत्र सविताऽन्धकारं निवर्त्तयित तथा तत्र स्वित तन्महत्त्वं दृष्ट्वा सर्वे मनुष्या: पूर्णविद्यात् विद्याशिक्षा: प्राप्याऽविद्यान्धकारं निवर्त्तयेयु:॥४॥

पदार्थ:-जो (सिखवान्) बहुत पवनरूप मित्रोंवाला (विष्णु:) अपनी दीप्ति से व्यापक सूर्यमण्डल (उत्तमम्) प्रशंसित (दक्षम्) बल को (दाधार) धारण करे और (अहुर्विदम्) जो दिनों को प्राप्त होता अर्थात् जहाँ दिन होता उस (व्रजम्, च) प्राप्त हुए देश को (अपोर्णुते) प्रकाशित करता उस (अस्य) इस (मारुतस्य) पवनरूप सखायोंवाले (वेधसः) विधाता सूर्यमण्डल के (तम्) उस (क्रतुम्) कर्म को (वरुणः) श्रेष्ठ (राजा) प्रकाशमान सज्जन और तम्) इस मर्म को (अश्विना) अध्यापक और उपदेशक लोग (सचन्त) प्राप्त होवें॥४॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्का है। जैसे और सज्जन आप्त विद्वान् से विद्या ग्रहण कर उत्तम बुद्धि की उन्नति कर पूरे बल को प्राप्त होते हैं का जैसे जहाँ-जहाँ सविता अन्धकार को निवृत्त करता है, वैसे वहाँ-वहाँ उस सवितृमण्डल के महत्त्व को देख के समस्त पतले-मोटे, धनी-निर्धनी जन पूर्ण विद्यावाले से विद्या और शिक्षाओं के पाकर अधिद्यारूपी अन्धकार को निवृत्त करें॥४॥

पुनस्तम्ब विषयमाह॥

फिर उसी विश्वय को अगले मन्त्र में कहा है।।

आ यो विवायं सुचूर्थाय दैव्य इन्द्रीय विष्णुः सुकृते सुकृत्तरः।

वेधा अजिन्वित्रिष्युस्य अपूर्यमृतस्यं भागे यर्जमानुमाभजत्॥५॥२६॥२१॥

आ। यः। विवासी स्रोधाया दैव्यः। इन्द्राया विष्णुः। सुऽकृते। सुकृत्ऽतरः। वेधाः। अजिन्वत्। त्रिऽस्ष्यस्थः। आर्यम्भ ऋतस्य। भागे। यर्जमानम्। आ। अभुजृत्॥५॥

पदार्थः (अ) (यः) (विवाय) गच्छेत् (सचथाय) प्राप्तसम्बन्धाय (दैव्यः) विद्वत्सम्बन्धी (इन्द्राय) प्राप्तिश्वर्याय (विष्णुः) प्राप्तिवद्यः (सुकृते) धर्मात्मने (सुकृत्तरः) अतिशयेन सुष्ठु करोति यः (वेधाः) भेधावी (अजिन्वत्) जिन्वेत् (त्रिसधस्थः) त्रिषु यः कर्मोपासनाज्ञानेषु स्थितः (आर्यम्) सकृत्रसुभगुष्पकर्मस्वभावेषु वर्त्तमानम् (ऋतस्य) सत्यस्य (भागे) सेवने (यजमानम्) विद्यादातारम् (आ) (अभजत्र) सेवत॥५॥

अष्टक-२। अध्याय-२। वर्ग-२६

मण्डल-१। अनुवाक-२१। सूक्त-१५६

१६३३

अन्वयः-यो दैव्यस्त्रिसधस्थः सुकृत्तरो विष्णुर्वेधा सचथाय सुकृत इन्द्रायर्तस्य भाग आर्यं यजमानमाभजद्यश्च सर्वान् विद्याशिक्षादानेनाजिन्वत् स पूर्णं सुखमाविवाय॥५॥

भावार्थ:-ये विद्वत्प्रियाः कृतज्ञाः सुकृतिनः सर्वविद्याविदः सत्यधर्मविद्या प्रापकत्वेन स्विनि जनाने सुखयन्ति तेऽखिलसुखभाजो जायन्ते॥५॥

अस्मिन् सूक्ते विद्वदध्यापकाऽध्येतृगुणवर्णनोदेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्क्वतिर्वेद्याभे इति षट्पञ्चाशदुत्तरं १५६ शततमं सुक्त षड्विंशो २६ वर्ग एकविंशोऽनुवाकश्च समाजः॥

पदार्थ:-(य:) जो (दैव्य:) विद्वानों का सम्बन्धी (त्रिसधस्थ:) कर्म, उपासना और ज्ञान इन तीनों में स्थित (सुकृत्तर:) अतीव उत्तम कर्मवाला (विष्णु:) विद्या को प्राप्त (वेष्णः) मेधावी धीरबुद्धि सज्जन (सचथाय) धर्म सम्बन्ध को प्राप्त (सुकृते) धर्मात्मा (इन्द्राय) परमैश्चर्यब्राम् पत्र के लिये (ऋतस्य) सत्य के (भागे) सेवन के निमित्त (आर्च्यम्) समस्त शुभ गुण, कर्म और स्वधावों में वर्त्तमान (यजमानम्) विद्या देनेवाले को (आ, अभजत्) अच्छे प्रकार सेवे और ब्रा स्वको विद्या और शिक्षा देने से (अजिन्वत्) प्राण पोषण करे, वह पूरे सुख को (आ, विवाय) अच्छे प्रकृत प्राप्त हो॥५॥

भावार्थ:-जो विद्वानों के प्रिय, किये को जानने पानने बाले, सुकृति सर्वविद्यावेता जन, सत्य धर्म विद्या पहुंचाने से सब जनों को सुख देते हैं, वे अखिल सुख भीगनेवाले होते हैं॥५॥

इस सूक्त में विद्वान् अध्यापक और अध्येताओं के गुणों का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति समझनी चाहिया।

यह एक सौ छप्पनवां १५६ सूक्त, छब्बीसवां २६ वर्ग और इक्कीसवां २१ अनुवाक पूरा हुआ॥

अबोधीत्यस्य षड्चस्य सप्तपञ्चाशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य दीर्घतमा ऋषि:। अश्विनौ देवते। १ त्रिष्टुप्। ५ निचृत् त्रिष्टुप्। ६ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। २,४ जगती। ३

0

निचृज्जगती छन्द:। निषाद: स्वर:॥

अथाश्चिगुणानाह।।

अब छ: ऋचावाले एक सौ सत्तावनवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र से ही अधि के गुणों को कहते हैं॥

अबोध्यग्निर्ज्म उदेति सूर्यो व्युरेषाश्चन्द्रा मुह्यांवो अर्चिषा।

आयुक्षातामुश्चिना यातवे रथं प्रासावीद्देवः सविता जगुत् पृथेका 💵

अबोधि। अग्निः। ज्मः। उत्। एति। सूर्यः। वि। उषाः। चुन्द्रा। मही अविः। अर्थक्षाताम्। अश्विनी। यातेवे। रथम्। प्र। असावीत्। देवः। सुविता। जर्गत्। पृथंक्॥ १॥

पदार्थ:-(अबोधि) बुध्यते विज्ञायते (अग्नि:) विद्युदा्वि (ज्मः) शृथिव्याः (उत्) (एति) उदयं प्राप्नोति (सूर्यः) (वि) (उषाः) प्रभातः (चन्द्रा) आह्लादप्रदा (मही) महती (आवः) अवित (अर्चिषा) (अयुक्षाताम्) अयोजयताम्=युङ्कथः (अश्विना) विद्वांसिष्ठाप्राऽध्यापकोपदेशकौ (यातवे) यातुं गन्तुम् (रथम्) विमानादियानम् (प्र) (असावीत्) प्रसुवित (देवः) दिख्याणः (सविता) ऐश्वर्यकारकः (जगत्) (पृथक्)॥१॥

अन्वय:-यथाऽग्निरबोधि ज्मः सूर्य्य उदेति/मेही चन्द्रोष्/ व्यावः सविता देवो वार्चिषा जगत् पृथक् प्रासावीत् तथाऽश्विना यातवे रथमयुक्षाताम्॥१॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। भूश्रा विद्युत्सूर्योषसः स्वप्रकाशेन स्वयं प्रकाशिता भूत्वा सर्वं जगत् प्रकाश्यैश्वर्यं प्रापयन्ति तथेवाऽध्यापकोपदेशकाः पदार्थेश्वरविद्याः प्रकाश्याऽखिलमैश्वर्यं जनयेयुः॥१॥

पदार्थ:-जैसे (अग्निः) विद्युदादि अग्नि (अबोधि) जाना जाता है, (ज्मः) पृथिवी से अलग (सूर्यः) सूर्य (उदेति) इस्य होता है, (मही) बड़ी (चन्द्रा) आनन्द देनेवाली (उषाः) प्रभात वेला (व्यावः) फैलती उजाला देती है मा (सविता) ऐश्वर्य करनेवाला (देवः) दिव्यगुणी सूर्यमण्डल (अर्चिषा) अपने किरण समृद्ध से (जगत) मनुष्यादि प्राणिमात्र जगत् को (पृथक्) अलग (प्रासावीत्) अच्छे प्रकार प्रेरणा देता है, हैसे (अश्विना) अध्यापक और उपदेशक विद्वान् (यातवे) जाने के लिये (रथम्) विमानादि यान को (अर्यक्षात्म्) युक्त करते हैं॥१॥

भावार्थ:=इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे बिजुली, सूर्य और प्रभातवेला अपने प्रकार्श से अप प्रकाशित हो समस्त जगत् को प्रकाशित कर ऐश्वर्य की प्राप्ति कराते हैं, वैसे ही अध्यापक अष्टक-२। अध्याय-२। वर्ग-२७

मण्डल-१। अनुवाक-२२। सूक्त-१५७

१६३५

और उपदेशक लोग पदार्थ तथा ईश्वरसम्बन्धी विद्याओं को प्रकाशित कर समस्त ऐश्वर्य की उत्पत्ति करावें॥१॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यद्युञ्जार्थे वृषंणमश्चिना रथं घृतेनं नो मधुना क्ष्रत्रमुंक्षतम्। अस्माकं ब्रह्म पृतनासु जिन्वतं वयं धना शूरंसाता भजेमहि॥२॥

यत्। युञ्जाथे इति। वृष्णम्। अश्विना। रथम्। घृतेने। नः। मधुना। क्षुत्रम्। <u>अकृतम्। अस्माक्षम्। ब्रह्मी।</u> पृतेनासु। जिन्वतम्। वयम्। धना। शूर्रऽसाता। भुजेमुहि॥२॥

पदार्थ:-(यत्) यतः (युञ्जाथे) (वृषणम्) परशक्तिप्रतिबन्धेकप् (अश्चिन्) सभासेनेशौ (रथम्) विमानादियानम् (घृतेन) उदकेन (नः) अस्माकम् (मधुना) मधुराद्विमुण्युक्तेन ग्रेसेन (क्षत्रम्) क्षत्रियकुलम् (उक्षतम्) सिञ्चतम् (अस्माकम्) (ब्रह्म) ब्राह्मणकुलम् (पृतनाप्तुः) सेनास् (जन्वतम्) प्रीणीतम् (वयम्) प्रजासेनाजनाः (धना) धनानि (शूरसाता) शूरैः संभजनीये संग्रापे (भजेम्हि) सेवेमहि॥२॥

अन्वय:-हे अश्वना! युवां यद्वृषणं रथं युञ्जाथे ततो घृति । क्षित्रमुक्षतमस्माकं पृतनासु ब्रह्म जिन्वतं वयं शूरसाता धना भजेमिह॥२॥

भावार्थ:-मनुष्यै राजनीत्यङ्गै राष्ट्रं रक्षित्व धनादिकं ब्रर्द्धियत्वा संग्रामाञ्जित्वा सर्वेभ्यः सुखोन्नतिः कार्य्या॥२॥

पदार्थ:-हे (अश्विना) सभा और सेना के अधीशो! तुम (यत्) जिससे (वृषणम्) शत्रुओं की शिक्त को रोकनेवाले (रथम्) विमान आदि सन् को (युञ्जाथे) युक्त करते हो, इससे (घृतेन) जल और (मधुना) मधुरादि गुणयुक्त रस से (ने) हम लोगों के (क्षत्रम्) क्षत्रिय कुल को (उक्षतम्) सींचो, (अस्माकम्) हमारी (पृतनासु) सिनाओं में (बहा) ब्राह्मण कुल को (जिन्वतम्) प्रसन्न करो और (वयम्) हम प्रजा सेना जन (शूरसाता) शूरों के सेवन योग्य संग्राम में (धना) धनों को (भजेमिह) सेवन करें॥२॥

भावार्थ:-मनुष्यों की राजनीति के अङ्गों से राज्य को रख कर, धनादि को बढ़ाय और संग्रामों को जीत कर सबक्ने लिये सुख़ की उन्नति करनी चाहिये॥२॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अूर्वाङ् त्रिचेक्रो मंधुवाहनो स्थो जीराश्चो अश्विनौर्यातु सुष्टुतः।

चिवसुरो मुघवा विश्वसौभगुः शं नु आ विक्षद् द्विपदे चतुंष्पदे॥३॥

अर्वाङ्। त्रिऽचुक्रः। मृधुऽवाह्ननः। रथः। जीरऽअश्वः। अश्विनौः। यातु। सुऽस्तृतः। त्रिवुस्वुरः। मुघवा। विश्वऽसौभगः। शम् नुः। आ। वृक्षुत्। द्विऽपदे। चतुःऽपदेः॥३॥

पदार्थ:-(अर्वाङ्) अर्वाङधो देशमञ्चित (त्रिचक्रः) त्रीणि चक्राणि यस्मिन् (मधुवाह्नः) मधुनी जलेन वाहनीयः। मध्वित उदकनामसु पठितम्। (निघं०१.१२) (रथः) (जीराश्वः) जीरा वेगा अश्वा यस्मिन् (अश्विनोः) विद्वित्क्रियाकुशलयोः सकाशात् प्राप्तः (यातु) प्राप्नोतु (सुष्टूवः) सृष्टु प्रशंसितः (त्रिबन्धुरः) त्रयो बन्धुरा बन्धा यस्मिन् सः (मघवा) परमपूजितधनवान् (विश्वसीस्गः) विश्वे सुभगाः शोभनेश्वर्या भोगा येन सः (श्रम्) सुखम् (नः) अस्माकम् (आ) (वक्षत्) बहेत (त्रिपदे) मनुष्याद्याय (चतुष्पदे) गवाद्याय॥३॥

अन्वय:-योऽश्विनोः सुष्टुतो मधुवाहनस्त्रिचक्रो जीराश्वस्त्रिबन्धुरो विश्वमौभगोऽर्वाञ्च मघवा रथो नो द्विपदे चतुष्पदे च शमावक्षत्सोऽस्मान् यातु प्राप्नोतु॥३॥

भावार्थ:-मनुष्यैरित्थं प्रयतितव्यं येन पदार्थविद्यया प्रश्निस्तानि यानानि निर्मातुं शक्नुयु:। नैवं विनाऽखिलानि सुखानि भवितुमर्हन्ति॥३॥

पदार्थ:-जो (अश्विनोः) विद्वानों की क्रिया में कुशल से ज्जां की उत्तेजना से (सुष्टुतः) सुन्दर प्रशंसित (मधुवाहनः) जल से बहाने योग्य (त्रिचकः) जिसमें सीन चक्कर (जीराश्वः) वेगरूप घोड़े और (त्रिबन्धुरः) तीन बन्धन विद्यमान वा (विश्वसौभगः) समस्त सुन्दर ऐश्वर्य भोग जिससे होते वह (अर्वाङ्) नीचले देश अर्थात् जल आदि से चलनेवाला (मघचा) प्रशंसित धनयुक्त (रथः) रथ (नः) हमारे (द्विपदे) द्विपाद मनुष्यादि वा (चतुष्पदे) चौपाद गौ आदि प्राणि के लिये (शम्) सुख का (आ, वक्षत्) आवाहन करावे और हम लोगों को (यातु) प्राति होत्रो।

भावार्थ:-मनुष्यों को इस प्रकार प्रयत्न करना चाहिये जिससे पदार्थविद्या से प्रशंसायुक्त यानों को बनाने को समर्थ हों, ऐसे कर्ये के विना समस्त सुख होने को योग्य नहीं॥३॥

पुनम्तमेव विषयमाह॥

फिर उसीं विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

आ न ऊर्जं वहतम्श्रिना युवं मध्मत्या नः कश्या मिमिक्षतम्। प्रायुस्तार्दिष्टं नी रपासि मृक्षतं सेधतं द्वेषो भवतं सचाभुवा॥४॥

आ। तृः। ऊर्जम्। वहतम्। अश्विना। युवम्। मधुंऽमत्या। नः। कर्शया। मिमिक्षतम्। प्र। आयुंः। तारिष्टम्। निः। रपांसिः/पृक्षतम्। सेघतम्। द्वेषः। भवतम्। सचाऽभुवां॥४॥

पदार्थ:-(ओ) समन्तात् (नः) अस्मभ्यम् (ऊर्जम्) पराक्रमम् (वहतम्) प्रापयतम् (अश्विना) अध्यापकोपदेशकौ (युवम्) युवाम् (मधुमत्या) बहुजलवाष्पवेगयुक्तया (नः) अस्माकम् (कशया) गत्या शिक्ष्मा ब (मिमिक्षतम्) प्रापयितुमिच्छतम् (प्र) (आयुः) जीवनम् (तारिष्टम्) पारयतम् (निः) नितराम्

अष्टक-२। अध्याय-२। वर्ग-२७

मण्डल-१। अनुवाक-२२। सूक्त-१५७

१६३७

(रपांसि) पापानि (मृक्षतम्) शोधयतम् (सेधतम्) दूरीकृतम् (द्वेषः) द्वेषयुक्तानि (भवतम्) (सचाभुवा) सहकारिणौ॥४॥

अन्वयः-हे अश्विना! युवं मधुमत्या कशया न ऊर्जमावहतं मिमिक्षतं न आयु: प्रतारिष्टं द्विषो स्पासी नि:सेधतमस्मान् मृक्षतं सचाभुवा भवतम्॥४॥

भावार्थ:-अध्यापकोपदेशकावीदृशीं शिक्षां कुर्यातां यतो वयं सर्वेषां संख्यायो भूत्वा पक्षपातजन्यानि पापानि विहाय सिद्धाभीष्टा भवेम॥४॥

पदार्थ:-हे (अश्विना) अध्यापक और उपदेशक! (युवम्) तुम दोनों (मधुमत्या) बहुत जल वाष्पों के वेगों से युक्त (कशया) गित वा शिक्षा से (न:) हम लोगों के लिये (ऊर्जम्) पराक्रम की (आ, वहतम्) प्राप्ति करो, (मिमिक्षतम्) पराक्रम को प्राप्ति कराने की इच्छा (न:) हमारी (आयु:) उमर को (प्र, तारिष्टम्) अच्छे प्रकार पार पहुंचाओ, (द्वेष:) वैरभावयुक्त (रणांस) पाप्नों को (नि:, सेधतम्) दूर करो, हम लोगों को (मृक्षतम्) शुद्ध करो और हमारे (सचाभुवा) किकारी (भवतम्) होओ॥४॥

भावार्थ:-अध्यापक और उपदेशक लोग ऐसी शिक्षा करें कि जिससे हम लोग सबके मित्र होकर पक्षपात से उत्पन्न होनेवाले पापों को छोड़ अभीष्ट सिद्धि प्रतिवाल हों।

पुनस्तमेव व्रिषयमाह।

फिर उसी विषय को अंगले मेन्त्र में कहा है।।

युवं हु गर्भं जगतीषु धत्यो युवं विश्रीषु भुवनेष्ट्रन्तं:।

युवमुग्निं च वृषणावुपश्च वनुस्पृतीर्श्वनावैर्यथाम्॥५॥

युवम्। हु। गर्भम्। जर्गतीषु। धृत्यः। युवम्। विश्वेषु। भुवनेषु। अन्तरिति। युवम्। अग्निम्। च। वृष्णौ। अगः। च। वनस्पतीन्। अश्विनौ। ऐरयेथ्रम्।। भ

पदार्थ:-(युवम्) (ह) किल (गर्भम्) गर्भमिव विद्याबोधम् (जगतीषु) विविधासु पृथिव्यादिषु सृष्टिषु (धत्थः) धरथः (युवाम्) युवाम् (विश्वेषु) सर्वेषु (भुवनेषु) निवासाऽधिकरणेषु (अन्तः) मध्ये (युवम्) (अग्निम्) (च) (वार्षणौ) वर्षयितारौ (अपः) (च) (वनस्पतीन्) (अश्विनौ) सूर्य्याचन्द्रमसाविवाध्यापकापदेशको (ऐरयेथाम्) चालयेथाम्॥५॥

अन्वय:-हूं वृषणाविश्वनौ! युवं जगतीषु गर्भं धत्थो युवं ह विश्वेषु भुवनेष्वन्तरग्निं चैरयेथाम्। युवमपो वनस्पतींश्चैरयेथ्राम्॥५॥

भूर्षार्थ: भूत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। मनुष्या यथेह सूर्याचन्द्रमसौ विराजमानौ पृथिव्यां वृष्ट्या गर्भं धारिस्त्वा सर्वान् पदार्थान् जनयतस्तथा विद्यागर्भं धारियत्वा सर्वाणि सुखानि जनयेयु:॥५॥

पदार्थ:-हे (वृषणा) जल वर्षा करानेवाले (अश्विनौ) सूर्य और चन्द्रमा के समान अध्यापक और इंपर्देशको (युवम्) तुम दोनों (जगतीषु) विविध पृथिवी आदि सृष्टियों में (गर्भम्) गर्भ के समान विद्या के

बोध को (धत्थः) धरते हो (युवम्, ह) तुम्हीं (विश्वेषु) समस्त (भुवनेषु) लोक-लोकान्तरों के (अन्तः) बीच (अग्निम्) अग्नि को (च) भी (ऐरयेथाम्) चलाओ तथा (युवम्) तुम (अपः) जलों और (वनस्पतीन्) वनस्पति आदि वृक्षों को (च) डुलाओ॥५॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्य जैसे यहाँ सूर्य और चन्द्रमा विराजिमान हुए पृथिवी में वर्षा से गर्भ धारण करा कर समस्त पदार्थों को उत्पन्न कराते हैं, वैस्ने विद्यास्थ गर्भ को धारण करा के समस्त सुखों को उत्पन्न करावें॥५॥

पुनस्तमेव विषयमाह

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

युवं हं स्थो भिषजां भेषजेभिरथों ह स्थो रथ्या ३ राथ्येभि: अथों ह क्षूत्रमिं धत्थ उग्रा यो वां हुविष्मान्मनंसा दुदाशा है। २॥ २॥

युवम्। हु। स्थः। भिषजां। भेषुजेभिः। अथो इतिं। हु। स्थः। पृथ्या। स्थ्येभिरिति रथ्येभिः। अथो इतिं। हु। क्षुत्रम्। अधि। धृत्यः। उत्रा। यः। वाम्। हुविष्मान्। मनसा। दुदार्शा। हु।

पदार्थ:-(युवम्) युवाम् (ह) प्रसिद्धम् (ख्रः) प्रविषंजा) रोगनिवारकौ (भेषजेभिः) रोगापहन्तृभिर्वेद्यैः सह (अथो) अनन्तरम् (ह) खतु (स्थः) भवथः (रथ्या) रथे साधु (राथ्येभिः) रथवाहकैः। अत्रान्येषामिप दृश्यत इत्याद्यचो दीर्घः (अथो) (ह) (क्षत्रम्) राष्ट्रम् (अधि) (धत्यः) (उग्रा) उग्रौ तीव्रस्वभावौ (यः) (वाम्) युष्मभ्यम् (हिविष्मान्) बहुदानयुक्तः (मनसा) विज्ञानेन (ददाश) दाशति॥६॥

अन्वयः-हे अश्वनौ! युवं ह भेषजेभि (भूषजी स्थः) अथो ह राथ्येभी रथ्या स्थः। अथो हे उग्रा! यो हिवष्मान् वां मनसा ददाश तस्मै ह क्षत्रमिध धत्थः॥६॥

भावार्थ:-यदा मनुष्या विदुषां वैद्यानां सङ्गं कुर्वन्ति तदा वैद्यकविद्यामाप्नुवन्ति। यदा शूरा दातारो जायन्ते तदा राज्यं धृत्वा प्रशंसित्ति भूत्वा सत्त्रं सुखिनो भवन्तीति॥६॥

अस्मिन् सूक्तेऽश्विगु भवर्णेनादेतुदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिर्बोध्या॥

इति सप्पञ्जाशदुत्तरं शततमं १५७ सूक्तं सप्तविंशो २७ वर्गश्च समाप्तः॥ अस्मित्रध्याये सोमादिपदार्थमुनिपादनादेतदृशमाध्यायोक्तार्थानां नवमाध्यायोक्तार्थैः सह सङ्गतिर्वेदितव्या॥

पदार्थ:- हे विद्यादि संदुणों में व्याप्त सज्जनो! (युवम्, ह) तुम्हीं (भेषजेभि:) रोग दूर करनेवाले वैद्यों के साथ (भिषजा) रोग दूर करनेवाले (स्थ:) हो। (अथो) इसके अनन्तर (ह) निश्चय से (राथ्येभि:) रथ पहुंचानेवाले अश्वादिकों के साथ (रथ्या) रथ में प्रवीण रथवाले (स्थ:) हो। (अथो) इसके अनन्तर हे (उग्रा) तीच्च स्वभावेचाले सज्जनो! (य:) जो (हिवष्मान्) बहुदानयुक्त जन (वाम्) तुम दोनों के लिये (मनसा) विज्ञान से (ददाश) देता है अर्थात् पदार्थों का अर्पण करता है (ह) उसी के लिये (क्षत्रम्) राज्य को (अश्व, श्रथः) अधिकता से धारण करते हो॥६॥

अष्टक-२। अध्याय-२। वर्ग-२७

मण्डल-१। अनुवाक-२२। सूक्त-१५७

१६३९

भावार्थ:-जब मनुष्य विद्वान् वैद्यों का सङ्ग करते हैं, तब वैद्यक विद्या को प्राप्त होते हैं। जिबे शूर दाता होते हैं, तब राज्य धारण कर और प्रशंसित होकर निरन्तर सुखी होते हैं॥६॥

इस सूक्त में अश्वियों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के साथ सङ्गति जाननी चाहिये॥

यह एक सौ सत्तावनवां १५७ सूक्त और सत्ताईसवां २७ वर्ग समाप्त हुआ॥ इस अध्याय में सोम आदि पदार्थों के प्रतिपादन से इस दशवें अध्याय्न के अर्थों की नवम् अध्याय में कहे हुए अर्थों के साथ सङ्गति जाननी चाहिये॥

इति श्रीपरमहंसपरिव्राजकाचार्याणां श्रीमत्परमिवदुषां विरजानन्दसरस्वर्तीस्वामिनां शिष्येण परमहंसपरिव्राजकाचार्येण श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना विरचिते संस्कृतार्यभाषाश्रम समन्विते सुप्रमाणयुक्ते ऋग्वेदभाष्ये द्वितीयाष्टके द्वितीयोऽध्याय: समाष्त्रिसग्रमत्॥ २॥

॥ओ३म्॥

अथ द्वितीयाष्ट्रके तृतीयाऽध्यायारम्भः॥

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि पर्रा सुव। यद्धद्रं तन्न आ सुव। ऋ०५.८२.५॥ वसू इति षड्चस्याष्ट्रपञ्चाशदुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य दीर्घतमा ऋषिः॥ अश्विनौ देवते १,४,५ निचृत् त्रिष्टुप्। २ त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। ३ भुरिक् पड्किक्छन्दः। पञ्चमः

स्वरः। ६ निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः। स्वरः॥

अथ शिक्षकशिष्यकर्माण्याह।।

अब द्वितीयाष्ट्रक के तृतीय अध्याय का आरम्भ है। उसमें एक सौ अड्डावनवे सक्त के प्रथम मन्त्र में शिक्षा करनेवाले और शिष्य के कर्मों का क्रर्णन करते हैं।

वसूं रुद्रा पुरुमन्तूं वृधन्तां दशस्यतं नो वृषणाविभिष्टी।
दस्रां हु यद्रेक्णं औच्थ्यो वां प्र यत्सुस्राथे अक्रिकाभिरुत्ते॥ १॥

वसू इति। रुद्रा। पुरुमन्तू इति पुरुऽमन्तू। वृधन्ता। दुश्स्वतम्। नः। वृष्णौ। अभिष्ठौ। दस्रा। हु। यत्। रेक्णः। औचुथ्यः। वाम्। प्र। यत्। सुस्राथे इति। अर्कवाभिः। क्रेति। भूग

पदार्थ:-(वसू) वासियतारौ (फद्रा) चितुश्चर्त्वार्रिशद्वर्षप्रिमतब्रह्मचर्य्येणाधीतिवद्यौ (पुरुमन्तू) पुरुभिर्बहुभिर्मन्तव्यौ (वृधन्ता) वर्द्धमानौ (दशस्यतम्) दत्तम् (नः) अस्मभ्यम् (वृषणौ) वीर्यवन्तौ (अभिष्टौ) इष्टिसद्धौ (दस्रा) दुःखोपक्षियस्य (ह) (यत्) यः (रेक्णः) धनम्। रेक्ण इति धननामसु पठितम्। (निघं०२.१०) (औचथ्यः) प्रशंसितेषु भवः (वाम्) युवयोः (प्र) (यत्) यौ (सस्राथे) प्रापयतः (अकवाभिः) प्रशंसिताभिः (ऊती) रक्षाभिः॥१॥

अन्वयः-हे सभाशालेशोः यद्यो वामौचथ्या रेक्णोऽस्ति तं यद्यौ युवामकवाभिरूती नोऽस्मभ्यं सस्राथे तौ ह वृधन्ता पुरुमन्तू दस्रा वृषणौ वृद्धू रुद्रोऽभिष्टौ न सुखं प्रदशस्यतम्॥१॥

भावार्थ:-ये सूर्स्वायुक्त भवानुपकुर्वन्ति ते श्रीमन्तो जायन्ते॥१॥

पदार्थ:-हो सभा और शालाधीशो! (यत्) जो (वाम्) तुम दोनों का (औचथ्य:) उचित अर्थात् प्रशंसितों में हुआ (रेक्ण:) धन है उस धन को (यत्) जो तुम दोनों (अकवाभि:) प्रशंसित (ऊती) रक्षाओं से हम लागों के लिये (सस्राथे) प्राप्त कराते हो वे (ह) ही (वृधन्ता) बढ़ते हुए (पुरुमन्तू) बहुतों से मानने संग्य (दमा) दु:ख के नष्ट करनेहारे (वृषणौ) बलवान् (वसू) निवास दिलानेवाले (रुद्रा) चालीस वर्ष लों ब्रह्मचर्य से धर्मपूर्वक विद्या पढ़े हुए सज्जनो (अभिष्टौ) इष्टिसिद्ध के निमित्त (न:) हमारे लिये सुख (प्र. दशस्थतम्) उत्तमता से देओ॥१॥

अष्टक-२। अध्याय-३। वर्ग-१

मण्डल-१। अनुवाक-२२। सूक्त-१५८

रहरूर

भावार्थ:-जो सूर्य और पवन के समान सबका उपकार करते हैं, वे धनवान् होते हैं॥१॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

को वां दाशत्सुमृतये चिदुस्यै वसू यद्धेथे नर्मसा पदे गोः। जिगृतम्स्मे रेवतीः पुरंधीः काम्प्रेणेव मनसा चरन्ता॥२॥

कः। वाम्। दा्शृत्। सुऽमृतये। चित्। अस्यै। वसू इति। यत्। धेथे इति। नर्मसारपदे। सोः। जिगृतम्। अस्मे इति। रेवतीः। पुरम्ऽधीः। काुमुप्रेणऽइव। मर्नसा। चर्रना।।२॥

पदार्थ:-(क:) (वाम्) युवाभ्याम् (दाशत्) दद्यात् (सुमतये) सुष्टु प्रकारे (चित्) अपि (अस्यै) प्रत्यक्षायै (वसू) सुखेषु वासियतारौ (यत्) यो (धेथे) धरथः (नमसा) अन्नाद्दान (पदे) प्राप्तव्ये (गोः) पृथिव्याः (जिगृतम्) जागृतौ भवतम् (अस्मे) अस्मभ्यम् (रेवतीः) प्रशस्तश्रीयुक्ता (पुरन्धीः) पुरन्दधित यास्ताः (कामप्रेणेव) यत्कामं प्रति पिपर्तिं तेनेव (मनसा) विज्ञानवताऽन्तः करणेन (चरना) प्राप्नुवन्तौ गच्छन्तौ वा॥२॥

अन्वय:-यद्यौ वसू युवामस्यै सुमतये नमसा गोः पदे पुरुष रैव्ह्यिथे कामप्रेणेव मनसा चरन्ताऽस्मे जिगृतं ताभ्यां वामिमां मितं चित्को दाशत्॥२॥

भावार्थ:-ये पूर्णविद्याकामा मनुष्यान् सुध्रियः कर्तुं प्रश्नतन्ते ते पृथिव्यां पूजिता भवन्ति॥२॥

पदार्थ:-(यत्) जो (वसू) सुखों में निकास करानेहारे सभाशालाधीशो तुम (अस्यै) प्रत्यक्ष (सुमतये) सुन्दर बुद्धि के लिये (नमसा) क्रिज आदि से (गो:) पृथिवी के (पदे) प्राप्त होने योग्य स्थान में (पुरन्धी:) पुरग्राम को धारण करती हुई (रवती:) प्रशंसित धनयुक्त नगरियों को (धेथे) धारण करते हो और (कामप्रेणेव) कामना पूरण करनेवाले (मनसा) विज्ञानवान् अन्तःकरण से (चरन्ता) प्राप्त होते हुए तुम दोनों (अस्मे) हम लोगों के जिये (जिग्नस्) जागृत हो उन (वाम्) आपके लिये इस मित को (चित्) भी (कः) कौन (दाशत्) देवे रिरो

भावार्थ:-जो पूर्णिवद्या और कामनावाले पुरुष मनुष्यों को सुन्दर बुद्धिवाले करने को प्रयत्न करते हैं, वे पृथिवी में सत्कारयुक्ती होते हैं॥२॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

युक्तो है यहाँ तौक्रयायं पेरुर्वि मध्ये अर्णसो धार्यि पुत्रः।

अप वामवेः शरुणं गमेयुं शूरो नाज्म पुतर्यद्धिरेवैः॥३॥

युक्तः। हु। यत्। वाम्। तौक्र्यायं। पे्रुः। वि। मध्ये। अर्णसः। धार्यि। पुत्रः। उपं। वाम्। अर्वः। शुर्णम्। गुमेयम्। शूर्रः। न। अज्मं। पुतर्यत्ऽभिः। एवैः॥३॥

पदार्थ:-(युक्त:) (ह) खलु (यत्) यः (वाम्) युवयोः (तौग्रचाय) बलेषु साधवे (प्रतः) पाती (वि) (मध्ये) (अर्णसः) उदकस्य (धायि) ध्रियते (पज्रः) बलिष्ठः (उप) (वाम्) युवरोः (अवः) रक्षणादिकम् (शरणम्) आश्रयम् (गमेयम्) प्राप्नुयाम् (शूरः) विक्रान्तः (न) इव (अज्य) बलम् (पतयिद्धः) इतस्ततो धावयिद्धः (एवैः) प्रापकैः॥३॥

अन्वय:-हे सभाशालेशौ! वां यद्यस्तौग्र्याय युक्तः पेरुः पज्रोऽहमर्णसो मध्ये वि धोषि। अज्मे शूरो न पतयद्भिरेवैः सह वामवः शरणमुपगमेयं तं मां ह युवां वर्द्धयतम्॥३॥

भावार्थ:-ये जिज्ञासवः साधनोपसाधनैः सहाध्यापकात्ताम्प्रप्तानां विदुषामाश्रयमुपव्रजेयुस्ते विद्वांसो जायन्ते, ये च संप्रीत्या विद्या सुशिक्षा वर्द्धयन्ति तेऽत्र पूज्या भवन्ति। आ

पदार्थ:-हे सभाशालाधीशो! (वाम्) तुम दोनों का (यत्) जो (तोंग्र्याय) बलों में उत्तम बल उसके लिये (युक्त:) युक्त (पेरु:) सबों की पालना करनेवाली (पज़:) बलवान् मैं (अर्णस:) जल के (मध्ये) बीच (वि, धायि) विधान किया जाता हूँ अर्थात् जिल सम्बन्धी काम के लिये युक्त किया जाता हूँ तथा (अज्म) बल को (शूर:) शूर जैसे (न) वैसे (पत्यिद्ध:) हधर-उधर दौड़ाते हुए (एवै:) पदार्थों की प्राप्ति करानेवालों के साथ (वाम्) तुम्हारे (अवः) रक्षा आदि काम को और (शरणम्) आश्रय को (उप, गमेयम्) निकट प्राप्त होऊं उस मुझको (है) ही सुम बृद्धि देओ॥३॥

भावार्थ:-जो जिज्ञासु पुरुष साधन और उपसार्थनों से अध्यापक आप्त विद्वानों के आश्रय को प्राप्त हों, वे विद्वान् होते हैं और जो अच्छे प्रवार प्रीक्ति के साथ विद्या और अच्छी शिक्षा को बढ़ाते हैं, वे इस संसार में पूज्य होते हैं॥३॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषये को अगले मन्त्र में कहा है॥

उपस्तुतिरौचुथ्यप्रकृष्येन्मा सार्मिमे पत्तित्रणी वि दुंग्धाम्।

मा मामेधो दर्शतियश्चितो धाक् प्र यद्वां बद्धस्त्मिन खादिति क्षाम्॥४॥

उपंऽस्तुति औच्थ्यम्। उरुष्येत्। मा। माम्। ड्रमे इति। प्तित्रणी इति। वि। दुग्धाम्। मा। माम्। एर्थः। दर्शऽतयः। चित्रः। धाक् प्राः यत्। वाम्। बुद्धः। त्मिन। खादित। क्षाम्॥४॥

प्रदर्श: - (उपस्तुति:) उपगता चासौ स्तुति: (औचथ्यम्) उचितेषूचितेषु कर्मसु साधुम् (उरुष्येत्) सेवेत (मा) निषेधे (माम्) (इमे) विद्याप्रशंसे (पतित्रणी) पतितुं विनाशियतुं कुशिक्षे (वि) (दुग्धाम्) प्रिप्यूर्तम् (प्रा) (माम्) (एधः) इन्धनम् (दशतयः) दशगुणितः (चितः) संचितः (धाक्) दहेत्। अत्र

अष्टक-२। अध्याय-३। वर्ग-१

मण्डल-१। अनुवाक-२२। सूक्त-१५८

१६४३

मन्त्रे **घसे**त्यादिना लेर्लुग् **बहुलं छन्दसी**त्यडभावः। (प्र) (यत्) यः (वाम्) युवयोः (बद्धः) नियुक्तः (त्मिन) आत्मिन (खादित) खादेत् (क्षाम्) भूमिम्॥४॥

अन्वयः-हे सभाशालेशौ! वां यद्यो दशतय एधो बद्धश्चितोऽग्निः क्षां प्रधाक् तथा त्मिन मां मा खारिति। इमे पतित्रणी औचथ्यं मां मा विदुग्धामुपस्तुतिश्चोरुष्येत्॥४॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। यथा इन्धनैर्निर्वातस्थाने प्रवृद्धोऽग्नि, पृथिको काष्ठादीनि वा दहित तथा मां शोकाग्निर्मा दहतु। अज्ञानकुशीले मा प्राप्नुतां किन्तु शान्तिर्विद्या चे सततं वर्द्धताम्॥४॥

पदार्थ: - हे सभाशालाधीशो! (वाम्) तुम दोनों का (यत्) जो (दश्रतयः) दशगुणा (एधः) इन्धन (बद्धः) निरन्तर युक्त किया और (चितः) संचित किया हुआ अग्नि (क्ष्मम्) पूमिको (प्र, धाक्) जलावे वैसे (त्मिन) अपने में (माम्) मुझको (मा) मत (खादित) खावे (इमे) ये (पत्रिणी) नष्ट कराने के लिये कुशिक्षा (औचथ्यम्) उचित-उचित कामों में उत्तम (माम्) मुझे (मा) मत् (वि, दुग्धाम्) अपूर्ण करें, मेरी परिपूर्णता को मत नष्ट करें और (उपस्तुतिः) समीप प्राप्त हुई स्तुति भी (उरुघ्येत्) सेवें॥४॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है जिसे इन्धनों से निर्वात स्थान में अच्छे प्रकार बढ़ा हुआ अग्नि, पृथिवी और काष्ठ आदि पदार्थों को जलाता है, वैसे मुझे शोकरूप अग्नि मत जलावे और अज्ञानता वा कुशीलता मत प्राप्त हों, किन्तु श्राप्ति और ज़िद्या निरन्तर बढ़े।।४॥

पुनस्तुमेव विषयमाहै॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

न मा गरन्नद्यों मातृतमा दासा यदी सुर्ममुब्धम्वार्धः।

शिरो यदस्य त्रैतनो वित्रभूत स्त्रयं दास उरो अंसावर्षि खा। ५॥

न। मा। गुर्न्। नृद्यः। पातुरतिमाः। द्युसाः। यत्। ईम्। सुरस्ममुद्यम्। अवुरअधुः। शिर्रः। यत्। अस्य। हैतुनः। वि्रतक्षत्। स्वयम्। दास्य उर्रः। अंसौ। अपि। ग्धेति ग्धा।५॥

पदार्थ:-(न) (मा) माप (मर्स्न) निगलेयुः (नद्यः) सरितः (मातृतमाः) अतिशयेन मातर इव वर्त्तमानाः (दासाः) सुखप्रदाः (मेत्) यम् (ईम्) सर्वतः (सुसमुद्धम्) सुष्ठु सम्यगृजुम् (अवाधुः) अधो धरन्तु (शिरः) (यूत्) यः (अस्य) (त्रैतनः) यस्त्रीणि शरीरात्ममनोजानि सुखानि तनोति स एव (वितक्षत्) तक्षतु (स्वयम्) (दासः) सेवकः (उरः) वक्षःस्थलम् (अंसौ) भुजमूले (अपि) (म्ध) हन्तु। हन्तेर्लुङि छान्दसमेत्र्राप्ता

अन्वयः-हे विद्वांसो! दासाः सुसमुब्धं यन्मामीमवाधुस्तं मा मातृतमा नद्यो न गरन्। यद्यस्त्रैतनो दासोऽस्य मम शिरो विनक्षत् स स्वयं उरो अंसाविप ग्ध॥५॥

भावार्थ:-मनुष्यैरेवं प्रयतितव्यं यतो नदीसमुद्रा न निमज्जयेयु:। दास: शूद्रादि: सेवीयो नियुक्तोऽप्यतिसरलस्वभावं पुरुषमालस्येन पीडयति ततस्तं सुशिक्षेतानुचितत्वे ताडयेच्च। स्वशरीराङ्गानि सदा पोषणीयानि च॥५॥

पदार्थ: -हे विद्वानो! (दासा:) सुख देनेवाले दास जन (सुसमुख्यम्) अति सूर्ध स्वभावनाले (यत्) जिस मुझे (ईम्) सब ओर से (अवाधु:) पीडित करें उस (मा) मुझे (मानतमा:) माताओं के समान मान करने - करानेवाली (नद्य:) निदयां (न) न (गरन्) निगलें न गलावें, (यत्) जो (त्रैतन्) तीन अर्थात् शारीरिक, मानसिक और आत्मिक सुखों का विस्तार करनेवाला (दास्ट्र) सेवक (अस्य) इस मेरे (शिर:) को (वितक्षत्) विविध प्रकार की पीड़ा देवे, वह (स्वयम्) आप अपने (उर:) वक्ष:स्थल और (अंसौ) स्कन्धों को (अपि, ष्य) काटे॥५॥

भावार्थ:-मनुष्यों को चाहिये कि ऐसा प्रयत्न करें जिससे मही और समुद्र आदि न डुबा मारें। शूद्र आदि दास जनसेवा करने पर नियत हुआ भी आलस्यवश अति सूधे स्वभाववाले स्वामी को पीड़ा दिया करता अर्थात् उनका काम मन से नहीं करता, इससे उसको अच्छी शिक्षा देवे और अनुचित करने में ताड़ना भी दे तथा अपने-अपने शरीर के अङ्गों की सद्य पुष्कि करें। ।।

पुनस्तमेव विषयमाह।

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

दीर्घतमा मामतेयो जुंजुर्वान्दश्मे युग्ने। अपामर्थं युतीनां ब्रह्मा भवति स्मर्राथः॥ ६॥ १॥

द्येर्घऽत्रमाः। मामुतेयः। जुजुर्वान्। दुशुमे (युगे)। अपाम्। अर्थम्। युतीनाम्। ब्रह्मा। भुवृति। सार्रथिः॥६॥

पदार्थ:-(दीर्घतमाः) दीर्घ तमो यस्मात् सः (मामतेयः) ममतायां कुशलः (जुर्जुर्वान्) रोगापत्रः (दशमे) दशानां पूर्णे (युगे) वर्षे (अपाम्) विद्याविज्ञानयोगव्यापिनाम् (अर्थम्) प्रयोजनम् (यतीनाम्) संन्यासिनाम् (ब्रह्मा) सकलवेद्वित् (भवति) (सारथिः) रथप्राजकः॥६॥

अन्वयः-यो दीर्घन्मा समितेयो द्वरामे युगे जुजुर्वान् जायते। यश्च सारिधरिवाऽपां यतीनामर्थमाप्नोति स ब्रह्मा भवति॥६॥

भावार्थः - सेऽत्रात्यन्तिविद्यायुक्ता लोभातुरास्सन्ति ते सद्यो रुग्णा जायन्ते। ये पक्षपातरिहतानां संन्यासिनां हुर्षशोकिपन्दास्तुतिरिहतं विज्ञानाऽऽनन्दमाप्नुवन्ति ते स्वयं दुःखपारगा भूत्वाऽन्यानिप दुःखसागरात् पारे पयन्ति॥६॥

🕰 स्मिन् सूक्ते शिष्यशासककर्मवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिर्विज्ञेया॥

इति अष्टपञ्चाशदुत्तरं शततमं १५८ सूक्तं प्रथमो १ वर्गश्च समाप्तः॥

अष्टक-२। अध्याय-३। वर्ग-१

मण्डल-१। अनुवाक-२२। सूक्त-१५८

पदार्थ:-जो (दीर्घतमा:) जिससे दीर्घ अन्धकार प्रकट होता वह (मामतेय:) ममता में कुशल जन (दशमे) दशमे (युगे) वर्ष में (जुजुर्वान्) रोगी हो जाता है, जो (सारिथ:) रथ हांकनेवाले जन के समान (अपाम्) विद्या, विज्ञान और योगशास्त्र में व्याप्त (यतीनाम्) संन्यासियों के (अर्थम्) प्रयोजन को प्राप्त होता वह (ब्रह्मा) सकल वेदविद्या का जाननेवाला (भवति) होता है॥६॥

भावार्थ:-जो इस संसार में अत्यन्त अविद्या अज्ञानयुक्त, लोभातुर हैं वे शीघ्र रोगी होते और जो पक्षपातरहित संन्यासियों के सकाश से हर्ष-शोक तथा निन्दा-स्तुति रहित, विज्ञान और आनन्द को प्राप्त होते हैं, वे आप दु:ख के पारगामी होकर औरों को भी उसके पार करते हैं॥६४

इस सूक्त में शिष्य और शिक्षा देनेवाले के काम का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गित जाननी चाहिये॥

यह एक सौ अट्ठावनवां १५८ सूक्त और प्रथम १ वर्ग समाप्त हुआ॥

प्र द्यावेत्यस्य पञ्चर्चस्य एकोनषष्टितमस्य सूक्तस्य दीर्घतमा ऋषिः। द्यावापृथिव्यौ देवते। १ विराड् जगती। २,३,५ निचृज्जगती। ४ जगती च छन्दः। निषादः स्वरः॥

अथ विद्युद्विषयमाह॥

अब एक सौ उनसठवें सूक्त का आरम्भ है। उसके प्रथम मन्त्र में बिजुली के विषय में कहा है।।

प्र द्यार्वा युज्ञैः पृथिवी ऋतावृधा मही स्तुषे विदर्थेषु प्रचेतसा। देवेभिर्ये देवपुत्रे सुदंससेस्या धिया वार्याणि प्रभूषतः॥ १॥

प्र। द्यावां। युज्ञैः। पृथिवा इति। ऋतुऽवृधां। मुही इति। स्तुषे। विदर्थेषु। प्रऽचैतसा। देवेभिः। ये इति। देवऽपुत्रे इति देवऽपुत्रे। सुऽदंस्सा। इत्था। धिया। वार्याणि। प्रऽभूषतः॥ १॥

पदार्थ:-(प्र) (द्यावा) द्यौ: (यज्ञै:) सङ्गतैर्व्यवहारै: (पृथिवी) स्मि: ऋत्वृधा) कारणेन वर्द्धिते (मही) महत्यौ (स्तुषे) प्रशंसिस (विदथेषु) वेदितव्येषु पदार्थेषु (प्रवेतस्र) प्रकृष्टतया प्रज्ञानिमित्ते (देविभि:) दिव्यैरबादिभि: पदार्थे: सह (ये) (देवपुत्रे) देवैर्दिक्ये प्रकृत्येश्वे पुत्र इव प्रजाते (सुदंससा) प्रशंसितकर्मणी (इत्था) अनेन प्रकारेण (धिया) कर्मणा (बार्योषि) व्यरितुमर्हाण वस्तूनि (प्रभूषत:) प्रकृष्टतयाऽलंकृत:॥१॥

अन्वयः – हे विद्वन् ! ये ऋतावृधा प्रचेतसा देवपूर्वे सुदंससा मही द्यावापृथिवी यज्ञैर्विदथेषु देवेभिर्धिया च वार्याणि प्रभूषतः । त्वं च प्रस्तुष इत्था ते वयमपि नित्यं प्रशूसिम्। १॥

भावार्थः-ये मनुष्याः प्रयत्नेन क्रितिसूर्येश्वेगीणकर्मस्वभावान् यथावद्विजानीयुस्तेऽतुलेन सुखेनाऽलंकृताः स्युः॥१॥

पदार्थ:-हे विद्वान्! (ये) जो (ऋतावृधा) कारण से बढ़े हुए (प्रचेतसा) उत्तमता से प्रबल ज्ञान करानेहारे (देवपुत्रे) दिव्य प्रकृति के अशों से पुत्रों के समान उत्पन्न हुए (सुदंससा) प्रशंसित कर्मवाले (मही) बड़े (द्यावापृथिवी) सूर्यमण्डल और भूमिमण्डल (यज्ञैः) मिले हुए व्यवहारों से (विदथेषु) जानने योग्य पदार्थों में (देविभः) दिव्य जलादि पद्धार्थों और (धिया) कर्म के साथ (वार्व्याणि) स्वीकार करने योग्य पदार्थों को (प्रभूषतः) सुभूषित करते हैं और आप उन की (प्र, स्तुषे) प्रशंसा करते हैं (इत्था) इस प्रकार उनकी हम लोग भी प्रशंसा करें॥१॥

भावार्थः जो मनुष्य उत्तम यत्न के साथ पृथिवी और सूर्यमण्डल के गुण, कर्म, स्वभाव को यथावत् जानें, वे अतुल सुख से भूषित हों॥३॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

<mark>चुते म</mark>न्ये <u>पितुरद्वहो</u> मनो मातुर्मिह् स्वतंवस्तद्धवीमभिः।

अष्टक-२। अध्याय-३। वर्ग-२

मण्डल-१। अनुवाक-२२। सूक्त-१५९

१६४७

सुरेतसा पितरा भूमं चक्रतुरुरु प्रजायां अमृतं वरीमभिः॥२॥

उता मुन्ये। पितुः। अदुह्रैः। मनेः। मातुः। मिह्नै। स्वऽतेवः। तत्। हवीमऽभिः। सुऽरेतेसा। प्रित्रः। भूमी चक्कतुः। उरु। प्रऽजायोः। अमृतेम्। वरीमऽभिः॥२॥

पदार्थ:-(उत) (मन्ये) विजानीयाम् (पितुः) जनकस्य (अदुहः) द्रोहरिहतस्य (मेपः) मननम् (मातुः) जनन्याः (मिह्) महत् (स्वतवः) स्वं स्वकीयं तवो बलं यस्मिँस्तत् (तत्) (हबीमिभः) स्तोतुमहैंगुणैः (सुरेतसा) शोभनवीर्य्येण (पितरा) मातापितृवद्वर्त्तमाने (भूम) (चक्रतुः) कुरुतः (उरु) बहु (प्रजायाः) मनुष्यादिसृष्टये। अत्र चतुर्थ्यर्थे षष्ठी। (अमृतम्) अमृतिमव वर्तमानेष् (वरीमिभः) स्वीकर्त्तुमहैं:॥२॥

अन्वय:-हे मनुष्या! अहमेकाकी हवीमभिर्यददुहो मातुरुत पितुः स्वर्मवो महि प्रने उरु मन्ये तत् सुरेतसा पितरेव वर्त्तमानौ भूमिसूर्य्यो वरीमभि: प्रजाया अमृतं भूम चक्रतु:॥२॥

भावार्थ:-यथा माता पितरावपत्यानि संरक्ष्य विद्धेषतस्त्रथा भूमिसूर्य्यौ प्रजाभ्यः सुखमुत्रयतः॥२॥

पदार्थ: -हे मनुष्यो! मैं अकेला (हवीमिभ:) स्तुति कस्ते औंग्य गुणों के साथ जिस (अदुह:) द्रोहरिहत (मातु:) माता (उत) और (पितु:) पिता के (स्वतव:) अपने बलवाले (मिह) बड़े (मन:) मन को (उरु) बहुत (मन्ये) जानूं (तत्) उसको (सुरेतमा) सुन्दर पराक्रमवाले (पितरा) माता-पिता के समान वर्त्तमान भूमि और सूर्य (वरीमिभ:) स्वीकार कर्ने योग्य गुणों से (प्रजाया:) मनुष्य आदि सृष्टि के लिये (अमृतम्) अमृत के समान वर्त्तमान (भूग) बड़ा उत्साहित (चक्रतु:) करते हैं अर्थात् शिल्पव्यवहारों से प्रोत्साहित करते, मलीन मही रहते देते हैं॥२॥

भावार्थ:-जैसे माता-पिता लड़िकों को अच्छे प्रकार पालन कर उनको बढ़ाते हैं, वैसे भूमि और सूर्य्य प्रजाजनों के लिये सुख की कृति करते हैं॥२॥

पुनस्तेमेव विषयमाह॥

फिर इसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

ते सूनवः स्वपेसः सुद्धेससो मही जज्ञर्मातरा पूर्विचित्तये।

स्थातुर्ध्व 🛵 ज्यं जयन्तुर्ध्व धर्मीण पुत्रस्य पाथः पुदमद्वयाविनः॥ ३॥

ते। स्रून्वः: स्रुऽअपेसः। सुऽदंसंसः। मही इति। जुजुः। मातर्रा। पूर्वऽचित्तये। स्थातुः। च। सत्यम्। जर्गतः। च। धर्मणि पुत्रस्य। सुथः। पुदम्। अद्वयाविनः॥३॥

पदार्थ:-(ते) (सूनवः) (स्वपसः) सुष्ठु अपांसि कर्म्माणि येभ्यस्ते (सुदंससः) शोभनानि दंसांसि कर्माणि व्यवहारेषु येषां ते (मही) महत्यौ (जजुः) जायन्ते (मातरा) मान्यकारिण्यौ (पूर्विचत्तये) पूर्वा वासी चित्तिश्चयनं च तस्यै (स्थातुः) अचरस्य (च) (सत्यम्) नाशरिहतम् (जगतः) गच्छतः (च)

(धर्म्मणि) साधर्म्ये (पुत्रस्य) सन्तानस्य (पाथः) रक्षथः (पदम्) प्राप्तव्यम् (अद्वयाविनः) न विद्यते द्वितीयो यस्मिँस्तस्य॥३॥

अन्वय:-ये स्वपसः सुदंससः पूर्विचत्तये जज्जुस्ते मही मातरा जानीयुः। हे पितरौ! यौ युवां स्थातुःश्री जरातश्री धर्मण्यद्वयाविनः पुत्रस्य सत्यं पदं पाथस्तौ सूनवः सततं सेवेरन्॥३॥

भावार्थ:- किं भूमिसूर्यों सर्वेषां पालननिमित्ते न स्तः ? ये पितरश्चराचरस्य जूर्<mark>गती विक्रा</mark>नं पुत्रेभ्यो ग्राहयन्ति ते कृतकृत्या कुतो न स्युः ?॥३॥

पदार्थ:-जो (स्वपसः) सुन्दर कर्म और (सुदंससः) शोभन कर्मयुक्त स्पवहारवाल जन (पूर्विचत्तये) पूर्व पहिली जो चित्त अर्थात् किन्हीं पदार्थों का इकट्ठा करना है, उसके लिये (जजुः) प्रसिद्ध होते हैं (ते) वे (मही) बड़ी (मातरा) मान करनेवाली माताओं को जामि है माला-पिताओ! जो तुम (स्थातुः) स्थावर धर्मवाले (च) और (जगतः) जङ्गम जगत् के (च) भी (धर्मणि) साधर्म्य में (अद्वयाविनः) इकले (पुत्रस्य) पुत्र के (सत्यम्) सत्य (पदम्) प्रस्त होने योग्य पदार्थ की (पाथः) रक्षा करते हो, उनकी (सुनवः) पुत्र जन निरन्तर सेवा करें॥३॥

भावार्थ:-क्या भूमि और सूर्य सबके पालन के निम्त नहीं हैं? जो पिता-माता चराचर जगत् का विज्ञान पुत्रों के लिये ग्रहण कराते हैं, वे कृतकृत्य क्यों न हों े। ३॥

पुनस्तमेव विषयमाहा।

फिर उसी विषय की अगले मुन्त्र में कहा है॥

ते मायिनों मिमरे सुप्रचेतसो जामी सयोनो मिथुना समीकसा। नव्यंनव्यं तन्तुमा तन्वते दिवि समुद्दे अन्तः क्वयः सुदीतर्यः॥४॥

ते। मायिनः। मुमिरे। सुऽप्रचेतसः। जामी इति। सयौनी इति सऽयौनी। मिथुना। सम्ऽऔकसा। नव्यम्ऽनव्यम्। तन्तुम्। आ। तुन्वते। द्विवा समुद्रे। अन्तरिति। कुवर्यः। सुऽदीतर्यः॥४॥

पदार्थ:-(ते) (मायितः) प्रशंसिता स्मीयाः प्रज्ञा विद्यन्ते येषान्ते (मिमरे) निर्मिमते (सुप्रचेतसः) शोभनं प्रगतं चेतो विज्ञानं येषा ते (ज्ञामी) सुखभोक्तारौ (सयोनी) समाना योनिर्विद्या निमित्तं वा ययोस्तौ (मिथुना) द्वौ (समोकसा) स्पीनीनमोको निवसनं ययोस्तौ (नव्यंनव्यम्) नवीनंनवीनम् (तन्तुम्) विस्तृतं वस्तुविज्ञानं वा (आ तन्वते) (दिवि) विद्युति सूर्ये वा (समुद्रे) अन्तरिक्षे सागरे वा (अन्तः) मध्ये (कवयः) विद्वांसः (सुदीतयः) शोभना दीप्तिर्विद्यादीप्तिर्येषां ते। अत्र छान्दसो वर्णलोपोवेति प्रलोपः॥४॥

अन्वयः-ये सुप्रचेतसो मायिनः सुदीतयः कवयः समोकसा मिथुना सयोनी जामी प्राप्य विदित्वा वा दिवि समुद्रेर्धनर्वव्यत्व्यं तन्तुं मिमरे ते सर्वाणि विद्यासुखान्यातन्वते॥४॥ अष्टक-२। अध्याय-३। वर्ग-२

मण्डल-१। अनुवाक-२२। सूक्त-१५९

भावार्थ:-ये मनुष्या आप्तावध्यापकोपदेशकावुपेत्य विद्याः प्राप्य भूमिविद्युतौ वा विदित्वा सर्वाणि विद्याकृत्यानि हस्तामलकवत्साक्षात्कृत्यान्यानुपदिशन्ति ते जगद्भूषका भवन्ति॥४॥

पदार्थ:-जो (सुप्रचेतसः) सुन्दर प्रसन्नचित्त (मायिनः) प्रशंसित बुद्धि वा (सुदोत्सः) सुन्दर विद्या के प्रकाशवाले (कवयः) विद्वान् जन (समोकसा) समीचीन जिनका निवास (मिथुना) ऐसे दो (सयोनी) समान विद्या वा निमित्त (जामी) सुख भोगनेवालों को प्राप्त हो वा जानकर (दिश्वि) बिजुली और सूर्य के तथा (समुद्रे) अन्तरिक्ष वा समुद्र के (अन्तः) बीच (नव्यंनव्यम्) निवीन-नवीन तिन्तुम्) विस्तृत वस्तुविज्ञान को (मिमरे) उत्पन्न करते हैं (ते) वे सब विद्या और सुख्रों का (आ, तन्वते) अच्छे प्रकार विस्तार करते हैं॥४॥

भावार्थ:-जो मनुष्य आप्त अध्यापक और उपदेशकों को प्राप्त हो विद्याओं की प्राप्त हो वा भूमि और बिजुली को जान समस्त विद्या के कामों को हाथ में आमले के समान साक्षात् कर औरों को उपदेश देते हैं, वे संसार को शोभित करनेवाले होते हैं॥४॥

पुनस्तमेव विषयमाह।

फिर उसी विषय को अगले सन्त्रामें कहा। हैं।।

तद्राधी अद्य संवितुर्वरेण्यं वयं देवस्य प्रसुवे मेनापहे।

अस्मभ्यं द्यावापृथिवी सुचेतुनां रृयिं धृत्ते वसुमन्तं शतुग्वनम्॥५॥२॥

तत्। रार्धः। अद्य। स्वितुः। वरेण्यम्। वृत्रम्। द्वस्याः प्रऽस्वे। मनामहे। अस्मभ्यम्। द्यावापृथिवी इति। सुऽचेतुनां। रियम्। धन्तम्। वसुंऽमन्तम्। शृतुऽभिनिम्।।

पदार्थ:-(तत्) (राध:) द्रव्यम् (अद्ये इतानीम् (सिवतु:) जगदुत्पादकस्य (वरेण्यम्) वर्तुमर्हम् (वयम्) (देवस्य) द्योतकस्य (प्रस्ते) प्रसूतेऽस्मिञ्जगित (मनामहे) विजानीमः (अस्मभ्यम्) (द्यावापृथिवी) भूमिसूर्यो (सुचेतुना) सुष्ठु संज्ञानम् (रियम्) श्रियम् (धत्तम्) (वसुमन्तम्) बहुधनयुक्तम् (शतिग्वनम्) शतानि गावो विद्यन्ते यस्मिस्त्रम्। ।।

अन्वय:-हे अध्याकोपदेशको वियमद्य सिवतुर्देवस्य प्रसवे यद्वरेण्यं राधो मनामहे तच्छतिग्वनं वसुमन्तं रियं सुचेतुनाऽस्मभ्यं द्यावापृथिवी इव पूर्वाधितम्॥५॥

भावार्थः अत्र वान्त्रकलुप्तोपमालङ्कारः। विद्वांसो यथा द्यावापृथिव्यौ सर्वान् प्राणिनः सुखयन्ति तथा सर्वान् विद्वाधनीस्रत्या सुखयन्तु॥५॥

अस्मिन सुक्ते विद्युद्धमिवद्विद्वदुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेद्यम्॥

इति एकोनषष्ट्युत्तरं शततमं १५९ सूक्तं द्वितीयो २ वर्गश्च समाप्त:॥

पदार्थ:-हे अध्यापक और उपदेशको! (वयम्) हम लोग (अद्य) आज (सवितु:) जगत् के उप्पन्न करने (देवस्य) और प्रकाश करनेवाले ईश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न किये हुए इस जगत् में जिस

(वरेण्यम्) स्वीकार करने योग्य (राधः) द्रव्य को (मनामहे) जानते हैं (तत्) उस (शतिग्वनम्) सैकड़ों गौओंवाले (वसुमन्तम्) नाना प्रकार के धनों से युक्त (रियम्) धन को (सुचेतना) सुन्दर ज्ञान से (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिये (द्यावापृथिवी) भूमिमण्डल और सूर्यमण्डल के समान तुम (धनम्) धारण करो॥५॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। विद्वान् जन जैसे द्यावापृथि<u>यी सब प्रा</u>णियों को सुखी करते हैं, वैसे सबको विद्या और धन की उन्नति से सुखी करें॥५॥

इस सूक्त में बिजुली और भूमि के समान विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति समझनी चाहिये॥

यह एक सौ उनसठवाँ १५९ सूक्त और दूसरा २ वर्ग समाप्त हुआ।

ते हीत्यस्य पञ्चर्चस्य षष्ट्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य दीर्घतमा ऋषिः। द्यावापृथिव्यौ देवते। १ विराट् जगती। २-५ निचृज्जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

अथ द्यावापृथिव्योर्दृष्टान्तेन मनुष्याणामुपकारग्रहणमाह॥

अब पांच ऋचावाले एक सौ साठवें सूक्त का आरम्भ है। उसके प्रथम मन्त्र में द्यावापृश्विही के दृष्टान्त से मनुष्यों के उपकार करने का वर्णन करते हैं।।

ते हि द्यावापृथिवी विश्वशंम्भुव ऋतावरी रजसो धार्यत्कवी। सुजन्मनी धिषणे अन्तरीयते देवो देवी धर्मणा सूर्यः शुचिः॥ १॥

ते इति। हि। द्यावापृथिवी इति। विश्वऽशिष्भुवा। ऋताविरी इत्यृतऽविरी। एतिसा। धार्यत्रक्तेवी इति। सुजन्मेनी इति सुऽजन्मेनी। धिषणे इति। अन्तः। ई्यते। देवः। देवी इति। धर्मणा। सूर्यः। श्वीचिः। १२।

पदार्थ:-(ते) द्वे (हि) खलु (द्यावापृथिवी) विद्युदन्तरिक्षे (विश्वशृष्ट्युवा) विश्वस्मिन् शं सुखं भावुकेन (ऋतावरी) सत्यकारणयुक्ते (रजसः) लोकान् (धार्यत्कवी) भारयन्तौ कवी विक्रान्तदर्शनौ सूर्यविद्युतौ ययोस्तौ (सुजन्मनी) शोभनं जन्म ययोस्ते (धिष्णे) प्रसोद्यो (अन्तः) मध्ये (ईयते) प्राप्नोति (देवः) दिव्यगुणः (देवी) देदीप्यमाने (धर्मणा) स्वधर्मेण (सूर्यः) (श्रीचः) पवित्रः॥१॥

अन्वयः-हे विद्वांसो! ये विश्वशम्भुवा ऋतावरी धारुष्यक्रवी सुजन्मनी धिषणे देवी द्यावापृथिवी धर्मणा रजसोऽन्तर्धरतः ययोरन्तः शुचिर्देवः सूर्य्य ईयते ते हि यूयुं सम्याविजाभीत॥१॥

भावार्थ:-यथा सर्वेषां लोकान्ती वायुर्बिद्युदाकाशाऽधिकरणानि सन्ति तथेश्वरो वाय्वादीनामाधारोऽस्ति। अस्यां सृष्टावेकेकस्य ब्रह्माण्डस्य मध्य एकैकः सूर्यलोकोऽस्तीति सर्वे विद्युः॥१॥

पदार्थ: - हे विद्वानो! जो (विश्वश्रामुवा) संसार में सुख की भावना करनेहारे करके (ऋतावरी) सत्य कारण से युक्त (धारयत्क्वी) अनेक पदार्थों की धारणा कराते और प्रबल जिनका देखना (सुजन्मनी) सुन्दर जन्मवाले (धिषणे) उत्कर सहनशील (देवी) निरन्तर दीपते हुए (द्यावापृथिवी) बिजुली और अन्तरिक्ष लोक (धर्मणा) अपने धर्म्म से अर्थात् अपने भाव से (रजसः) लोकों को (अन्तः) अपने बीच में धरते हैं। जिन उन्नत द्यावापृथिवियों में (शुचिः) पवित्र (देवः) दिव्य गुणवाला (सूर्य्यः) सूर्यलोक (ईयते) प्राप्त होता है (ते) उन दोनों को (हि) ही तुम अच्छे प्रकार जानो॥१॥

भावार्ष: जैसे सब लोकों के वायु, बिजुली और आकाश ठहरने के स्थान हैं, वैसे ईश्वर उन वायु आदि पदार्थी का आधार है। इस सृष्टि में एक-एक ब्रह्माण्ड के बीच एक-एक सूर्यलोक है, यह सब जानें। १॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

उरुव्यर्चसा महिनी अस्थ्रतां पिता माता च भुवनानि रक्षतः। सुधृष्टमे वपुष्ये र्रुं न रोदंसी पिता यत्सीमिभ रूपैरवांसयत्॥ २॥

उक्त व्यर्चसा। महिनी इति। असुश्चर्ता। पिता। माता। च। भुवनानि। रृक्षतः। सुधृष्टेमे इति सुऽधृष्टेमे वुपुष्ये ३ इति। न। रोदंसी इति। पिता। यत्। सीम्। अभि। रूपैः। अवासयत्॥२॥

पदार्थ:-(उरुव्यचसा)बहुव्यापिनौ (मिहनी) महत्यौ (असश्चता) विलक्षणसूर्कप (पिता) (माता) (च) (भुवनानि) भवन्ति भूतानि येषु तानि (रक्षतः) (सुधृष्टेमे) सुष्ठु अतिशयेन मुसोळ्भौ (वपुष्ये) वपुषि रूपे भवे (न) इव (रोदसी) द्यावापृथिवी (पिता) पालकोऽग्निर्विद्युद्धा (यत्) ये (सीम्) सर्वतः (अभि) आभिमुख्ये (रूपैः) शुल्कादिभिः (अवासयत्) आच्छादयित॥२॥

अन्वय:-हे मनुष्या! पिता यद्ये रोदसी रूपै: सीमभ्यवासयत्तेऽसश्चर्ता सहिनी हरूव्यचसा सुधृष्टमे वपुष्ये नेव माता पिता च भुवनानि रक्षत:॥२॥

भावार्थ:-यथा सर्वाणि भूतानि भूमिसूर्या रक्षतो धर्मा तथा मृतापितरौ सन्तानान् पालयतो रक्षतश्च यदप्सु पृथिव्यामेतद्विकारेषु च रूपं दृश्यते तद्व्याप्तस्यार्गनेरवास्त्रीति वेदितव्यम्॥२॥

पदार्थ: -हे मनुष्यो! (पिता) पालन करनेवाल विद्युद्धार्च (यत्) जिन (रोदसी) सूर्य और भूमिमण्डल को (रूपै:) शुक्ल, कृष्ण, हरित, पीतिह रूपों से (सीम्) सब ओर से (अभ्यवासयत्) ढांपता है, उन (असश्चता) विलक्षण रूपवाले (महिनी) बड़े (उरुव्यचसा) बहुत व्याप्त होनेवाले (सुधृष्टमे) सुन्दर अत्यन्त उत्कर्षता से सहमिवाले (कुप्रुच्चे) रूप में प्रसिद्ध हुए सूर्यमण्डल और भूमिमण्डलों के (न) समान (माता) मान्य करनेवाली स्त्री (पिता, च) और पालना करनेवाला जन (भुवनानि) जिनमें प्राणी होते हैं, उन ब्रोकों की (रक्षतः) रक्षा करते हैं॥२॥

भावार्थ:-जैसे समस्त प्राणियों को भूमि और सूर्यमण्डल पालते और धारण करते हैं, वैसे माता-पिता सन्तानों की पालना और रक्षा करते हैं। जो जलों और पृथिवी वा इनके विकारों में रूप दिखाई देता है, वह व्याप्त अपने ही का है, यह समझना चाहिये॥२॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

प्रिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

स वहिं 🗸 पुत्रः फ़्रित्रोः पवित्रवान्युनाति धीरो भुवनानि मायया।

धेनुं र्व्य पृश्चि वृष्भं सुरेतसं विश्वाहा शुक्रं पयी अस्य दुक्षत॥३॥

सः। विह्निः। पुत्रः। पित्रोः। पिवर्त्रऽवान्। पुनाति। धीर्रः। भुवनानि। माययो। धेनुम्। चः। पृश्निम्। वृष्धभम्। सुऽरेत्रेसम्। विश्वाहो। शुक्रम्। पर्यः। अस्य। धुक्षतः॥३॥ अष्टक-२। अध्याय-३। वर्ग-३

मण्डल-१। अनुवाक-२२। सूक्त-१६०

१६५३

पदार्थ:-(स:) (विह्नः) वोढा (पुत्रः) अपत्यिमव (पित्रोः) वाय्वाकाशयोः (पिवत्रवान्) बहूनि पिवत्राणि कर्माणि विद्यन्ते यस्य सः (पुनाति) पिवत्रीकरोति (धीरः) ध्यानवान् (भुवनानि) लोकान् (मायया) प्रज्ञया (धेनुम्) गामिव वर्त्तमानां वाणीम् (च) (पृश्निम्) सूर्यम् (वृषभम्) सर्वलोकस्त्रिभक्ष्मे (सुरेतसम्) सुष्ठु बलम् (विश्वाहा) सर्वाणि दिनानि (शुक्रम्) आशुकरम् (पयः) दुग्धम् (अस्य) वहेः (धुक्षतः) प्रदुहन्ति। अत्र वाच्छन्दसीति भष्भावः॥३॥

अन्वयः – हे मनुष्या! पवित्रवान् पित्रोः पुत्र इव वर्त्तमानः स विह्नर्भुवनानि पुनाति। यो धेतं सुरेतसं वृष्णं पृश्निं शुक्रम्पयश्च विश्वाहा पुनाति। यं धीरो मायया जानात्यस्य सकाशादभीष्टसिद्धिं यूयं धुक्षत॥ ३

भावार्थ:-यथा सूर्य्यः सर्वौल्लोकान् धरित पवित्रयित तथा सुपुत्राः, हुलं शुन्धन्ति॥३॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! (पवित्रवान्) जिसके बहुत शुद्ध कर्म वर्तमान (पित्रोः) तथा जो वायु और आकाश के (पुत्रः) सन्तान के समान वर्तमान है (सः) वह (विह्नः) पदार्थों को प्राप्ति करानेवाला अग्नि (भुवनानि) लोकों को (पुनाति) पवित्र करता है। जो (धेनुम्) में के समान वर्तमान वाणी (सुरेतसम्) सुन्दर जिसका बल जो (वृषभम्) सब लोकों को रोकनेवाला (पूरिनम्) सूर्य है, उस (शुक्रम्) शीघ्रता करनेवाले को और (पयः) दूध को (च) और (विश्वाहा) स्विद्धिनों को पवित्र करता है, जिसको (धीरः) ध्यानवान् पुरुष (मायया) उत्तम बुद्धि से जानता है (अस्य) एस मिन्न की उत्तेजना से अभीष्ट सिद्धि को तुम (धुक्षत) पूरी करो॥३॥

भावार्थ:-जैसे सूर्य समस्त लोकों को भारण करना और पवित्र करता है, वैसे सुपुत्र कुल को पवित्र करते हैं॥३॥

पुन तिमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अयं देवानामुपसामुपस्रामु यो जुजानु रोदंसी विश्वशंभुवा।

वि यो मुमे रर्जसी सुक्रत्ययाजरें भि: स्कम्भनिभि: सर्मानृचे॥४॥

अयम्। देवानाम्। अपसीम्। अपःऽत्तमः। यः। जुजानं। रोदंसी् इतिं। विश्वऽशंभुवा। वि। यः। मुमे। रजसी इतिं। सुक्रुतुऽययां। अजरेभिः। स्कर्भनिभः। सम्। आनृचे॥४॥

पदार्थ:-(अयम्) (देवानाम्) पृथिव्यादीनाम् (अपसाम्) कर्मणाम् (अपस्तमः) अतिशयेन क्रियावान् (यू/) (जजान) प्रकटयित (रोदसी) द्यावापृथिव्यौ (विश्वशम्भुवा) विश्वस्मिन् शं सुखं भावुकेन (वि) (य/) (मर्प) मापयित (रजसी) लोकौ (सुक्रतूयया) सुष्ठु प्रज्ञया कर्मणा वा (अजरेभिः) अजरैहर्मिरहतैः प्रबन्धैः (स्कम्भनेभिः) स्तम्भनैः (सम्) (आनुचे) स्तौमि॥४॥

अन्वयः-योऽयं देवानामपसामपस्तमो यो विश्वशम्भुवा रोदसी जजान यः सुक्रतुयया स्कम्भनेभिरजरेभी रजसी

भावार्थ:-सृष्ट्युत्पत्तिस्थितिप्रलयकरणादीनि कर्माणि यस्य जगदीश्वरस्य भवन्ति यो नि कारणादिखलविविधं कार्यं रचयित्वाऽनन्तबलेन धरित, तमेव सर्वे सदा प्रशंसन्तु॥४॥

पदार्थ:-जो (अयम्) यह (देवानाम्) पृथिवी आदि लोकों के (अपसाम्) कर्मी के वीचे (अपस्तमः) अतीव क्रियावान् है वा (यः) जो (विश्वशम्भुवा) सब में सुख की भावना कर्मनेवाले कर्म से (रोदसी) सूर्यलोक और भूमिलोक को (जजान) प्रकट करता है वा (यः) जो (सुक्रतुयंवा) उत्तम बुद्धि, कर्म और (स्कम्भनेभिः) रुकावटों से और (अजरेभिः) हानिरहित प्रबन्धों के साथ (रजसी) भूमिलोक और सूर्यलोक का (वि, ममे) विविध प्रकार से मान करता उसकी मैं (सम्मान्चे) अच्छे प्रकार स्तुति करता हूँ॥४॥

भावार्थ:-सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करने आदि काम जिस जादीश्वर के होते हैं, जो निश्चय के साथ कारण से समस्त नाना प्रकार के कार्य को रच कर अन्नत्त बलू से धारण करता है, उसी को सब लोग सदैव प्रशंसित करें॥४॥

पुनस्तमेव विषयमाह।

फिर उसी विषय को अगले सिन्त्रामें कहा है।।

ते नो गृणाने महिनी महि श्रवः क्ष्रत्रं द्याक्षपृथिवी क्षाम्यो बृहत्। येनाभि कृष्टीस्तुतनाम विश्वहां पुनाय्युमोजी अस्मे सिमन्वतम्॥५॥३॥

ते इति। नुः। गुणाने इति। महिनी इति। महि। श्रवेश क्ष्रत्रम्। द्यावापृथिवी इति। धास्थः। बृहत्। येने। अभि। कृष्टीः। तुतनाम। विश्वहां। पुनार्य्यम्। ओर्कः, अस्मे इति। सम्। इन्वतम्॥५॥

पदार्थ:-(ते) उभे (नः) अस्मभ्यम् (गुणाने) स्तूयमाने। अत्र कृतो बहुलिमिति कर्मणि शानच्। (मिहनी) महत्यौ (मिह) पूज्यम् (श्रवः) अत्रम्। (क्षत्रम्) राज्यम् (द्यावापृथिवी) भूमिसवितारौ (धासथः) दध्याताम्। अत्र व्यत्ययः। (वृहत्) महत्त् (येन) (अभि) (कृष्टीः) मनुष्यान् (ततनाम) विस्तारयेम (विश्वहा) सर्वाणि दिनानि (प्रमाध्यम्) स्तोतुमहीम् (ओजः) पराक्रमम् (अस्मे) अस्मासु (सम्) (इन्वतम्) वर्द्धयतम्॥५॥

अन्वयः-ये गृणान पहिनी द्यावापृथिवी स्तस्ते नो बृहन् महि श्रवः क्षत्रं धासथः येन वयं विश्वहा कृष्टीरभिततनाम तत् प्रनाय्यमोजश्चासमें समिन्वतम्॥५॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। ये भूमिगुणविद्विद्यां विदित्वा तयोपयोक्तुं जानन्ति ते महद्बलं प्राप्य सोर्जिभोम राज्यं कर्त्तुं शक्नुवन्तीति॥५॥

अत्र द्यावापृथिवीदृष्टान्तेन मनुष्याणामेतदुपकारग्रहणमुक्तमत एतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गर्तिर्बोध्याप

इति षष्ठ्युत्तरं शततमं १६० सूक्तं तृतीयो ३ वर्गश्च समाप्तः॥

अष्टक-२। अध्याय-३। वर्ग-३

मण्डल-१। अनुवाक-२२। सूक्त-१६०

पदार्थ:-जो (गृणाने) स्तुति किये जाते हुए (मिहनी) बड़े (द्यावापृथिवी) भूमि और सूर्यलोक हैं (ते) वे (नः) हम लोगों के लिये (बृहत्) अत्यन्त (मिह) प्रशंसनीय (श्रवः) अत्र और (क्षत्रम्) राज्य को (धासथः) धारण करें (येन) जिससे हम लोग (विश्वहा) सब दिनों (कृष्टीः) मनुष्यों का (अभि तिनाम) सब ओर से विस्तार करें और उस (पनाय्यम्) प्रशंसा करने योग्य (ओजः) पराक्रम की (अस्में) हम लोगों के लिये (सिमन्वतम्) अच्छे प्रकार बढावें॥५॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो जन भूमि के गुणीं को जाननेवालों की विद्या को जान के उससे उपयोग करना जानते हैं, वे अत्यन्त बल को पाकर सब पृथिषी का राज्य कर सकते हैं॥५॥

इस सूक्त में द्यावापृथिवी के दृष्टान्त से मनुष्यों का यह उपकार ग्रेहण करना कहा, इससे इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गित है, यह समझमा चाहिना।

यह एक सौ साठवां १६० सूक्त और तीसरा वर्ष समाप्त हुआ॥

किम्वित्यस्य चतुर्दशर्चस्य एकषष्ट्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य दीर्घतमा ऋषिः। ऋभवो देवताः। १ विराट् जगती। २,५,६,८,१२ निचृज्जगती। ७,१० जगती च छन्दः। निषादः स्वरः। ३ निचृत् त्रिष्टुप्। ४,१३ भुरिक् त्रिष्टुप्। ९ स्वराट् त्रिष्टुप्। ११ त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। १४ ॥

स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

अथ मेधाविकर्म्माण्याह॥

अब चौदह ऋचावाले एक सौ इकसठवें सूक्त का प्रारम्भ है। उसके आरम्भ से स्थावि अर्थात् धीरबुद्धि के कर्मों को कहते हैं।।

किमु श्रेष्ठः किं यविष्ठो न आजगुन् किमीयते दूत्यं कहादूचित्रमा न निन्दिम चमुसं यो महाकुलोऽग्ने भ्रातुर्द्वण इद्भृतिमूदिमार्रशा

किम्। ऊम् इति। श्रेष्ठः। किम्। यविष्ठः। नः। आ। अजगुन्। किम्। ईस्र्वे। द्वीर्यम्। कत्। यत्। ऊचिम। न। निन्दुम्। चुमुसम्। यः। मुहाऽकुलः। अग्ने। भ्रातुः। द्वणः। इत्। भूतिम्। किद्मुमः १॥

पदार्थ:-(किम्) (३) (श्रेष्ठ:) (किम्) (यिवष्ठः) अतिशिष्टमें युवा (नः) अस्मान् (आ) (अजगन्) पुनः पुनः प्राप्नोति। अत्र यिङ लिङ बहुलं छन्द्रमीति श्रेपा लुक्। (किम्) (ईयते) प्राप्नोति (दूत्यम्) दूतस्य भावं कर्म वा (कत्) कदा (यत्) यम् (ऊचिम्) अच्याम (न) (निन्दिम्) निन्देम। अत्र वा छन्द्रसीति लिटि द्विवचनाभावः। (चमसम्) मेघम् (यः) (प्रहाकुलः) महत्कुलं यस्य (अग्ने) विद्वन् (भ्रातः) बन्धो (द्रुणः) यो द्रवति सः (इत्) एवं भूतिम्) एश्वर्यम् (ऊदिम्) वदेम॥१॥

अन्वयः – हे भ्रातरग्ने! यो महाकुलो हुण्श्चमसमाप्नोति तं वयं न निन्दिम नोऽस्मान् किं श्रेष्ठः किमु यविष्ठ आऽजगन् यद्यं वयमूचिम स किं दूत्यमीयते ते प्राप्येत के क्रूलिमूदिम॥१॥

भावार्थ:-जिज्ञासवो विदुष एवं पुच्छेयुरस्मान् कथमुत्तमविद्या प्राप्नुयात् कश्चास्मिन् विषये श्रेयान् बलिष्ठो दूत इव पदार्थोऽस्ति कं प्राप्य वयं मुखिनः स्यामेति॥१॥

पदार्थ: - हे (भ्रात:) बिन्धु (अग्ने) विद्वान्! (य:) जो (महाकुल:) बड़े कुलवाला (द्रुण:) शीघ्रगामी पुरुष (चमसम्) मैच को प्राप्त होता है, उसकी हम लोग (न) नहीं (निन्दिम) निन्दा करते (न:) हम लोगों को (किम) क्या (श्रेष्ठ:) श्रेष्ठ (किम्) क्या (उ) तो (यिवष्ठः) अतीव जवान पुरुष (आजगन्) वार-व्रार प्राप्त होता है (यत्) जिसको हम लोग (ऊचिम) कहें सो (किम्) क्या (दूत्यम्) दूतपन वा दूत के काम को (ईयते) प्राप्त होता है, उसको प्राप्त हो के (इत्) ही (कत्) कब (भूतिम्) ऐश्वर्य्य को (ऊदिम्) कहें उपदेश करें॥१॥

भावार्थ: जिज्ञासु जन विद्वानों को ऐसा पूछें कि हमको उत्तम विद्या कैसे प्राप्त हो और कौन इस विद्या विषय में श्रेष्ठ बलवान् दूत के समान पदार्थ है, किसको पाकर हम लोग सुखी होवें॥१॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

अष्टक-२। अध्याय-३। वर्ग-४-६

मण्डल-१। अनुवाक-२२। सूक्त-१६१

१६५७

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

एकं चमुसं चुतुर्रः कृणोतन् तद्वी देवा अब्बुवन् तद्व आर्गमम्। सौधन्वना यद्येवा करिष्यर्थं साकं देवैर्युज्ञियांसो भविष्यथ॥२॥

एकंम् चम्सम्। चतुर्रः। कृणोत्ना तत्। वः। देवाः। अब्बुवन्। तत्। वः। आ। अगम्म। सीधेवनाः। यदि। एव। कृष्यिर्थ। साकम्। देवैः। युज्ञियासः। भृविष्युथा।२॥

पदार्थ:-(एकम्) असहायम् (चमसम्) मेघम् (चतुरः) वाय्वग्निजलुभूमीः (कृणोतन्) कुर्यात् (तत्) (वः) युष्मान् (देवाः) विद्वांसः (अब्रुवन्) ब्रूयुरुपदिशेयुः (तत्) (वः) युष्माकं सकाशात् (आ) (अगमम्) प्राप्नुयाम् (सौधन्वनाः) शोभनेषु धनुष्षु कुशलाः (यदि) (एव) (विस्थिष) (साकम्) (देवैः) विद्वद्भिस्सह (यज्ञियासः) यज्ञमनुष्ठातुमर्हाः (भविष्यथ)॥२॥

अन्वय:-हे सौधन्वना! यदेकं चमसं देवा वोऽब्रुवँस्तद्यूयं कृणोतन यद्वोऽहमागम् तत् कृणोतन यदि देवै: साकं चतुर: पृच्छत तर्हि स्वकार्यं सिद्धमेव करिष्यथ यज्ञियासश्च भविष्यथ॥२॥

भावार्थ:-ये विदुषां सकाशात् प्रश्नोत्तरैर्विद्याः प्राप्य तदुक्तार्मि कर्माणि कुर्वन्ति ते विद्वांसो जायन्ते। पूर्वोक्तप्रश्नानामत्रोत्तराणि योऽस्मासु विद्याऽधिकः स्रिष्ठः, यो जितेन्द्रियः स बलिष्ठः, योऽग्निः स दूतः, या पुरुषार्थसिद्धिः सा विभूतिश्च॥२॥

पदार्थ:-हे (सौधन्वना:) उत्तम धनुषों मिं कुशल! रिजस (एकम्) इकेले (चमसम्) मेघ को (देवा:) विद्वान् जन (व:) तुम लोगों के प्रति (अनुवन्) कहें अर्थात् उसके गुणों का उपदेश करें (तत्) उसको तुम लोग (कृणोतन) करो और क्सिको (व) तुम लोगों की उत्तेजना से मैं (आगमम्) प्राप्त होऊं (तत्) उसको करो, (यदि) जो (देवै:) विद्वामों के (साकम्) साथ (चतुर:) वायु, अग्नि, जल, भूमि इन चारों को पूछो तो अपने काम को सिद्ध (एव) ही (करिष्यथ) करो और (यज्ञियास:) यज्ञ के अनुष्ठान के योग्य (भविष्यथ) होओ॥२॥

भावार्थ:- जो विद्वानों की उत्तेजना से प्रश्नोत्तरों से विद्याओं को पाकर उस में कहे हुए कामों को करते हैं वे विद्वान् होते हैं। पिछले प्रश्नों के यहाँ ये उत्तर हैं कि जो हम लोगों में विद्या में अधिक है, वह श्रेष्ठ। जो जितेन्द्रिय है, वह अत्यान बलवान्। जो अग्नि है, वह दूत और जो पुरुषार्थसिद्धि है, वह विभूति है॥२॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

भूग्निं दूते प्रति यदब्रवीतनाश्चः कर्त्वो रथं उतेह कर्त्वः।

थुनुः कर्त्वा युवृशा कर्त्वा द्वा तानि भ्रातुरनु वः कृत्व्येमसि॥३॥

अग्निम्। दूतम्। प्रति। यत्। अब्बेवीतन। अश्वः। कर्त्वः। र्थः। उत्त। इह। कर्त्वः। धेनुः। कर्त्वाः। युव्शाः कर्त्वाः। तानि। भ्रातः। अनु। वः। कृत्वाः। आ। इमुसि॥३॥

पदार्थ:-(अग्निम्) विद्युदादिम् (दूतम्) यो दुनोति तम् (प्रति) (यत्) यः (अब्रवितन्) ब्रूयाद्रे (अश्वः) आशुगामी (कर्त्त्वः) कर्त्तुमर्हः। अत्र सर्वत्र कृत्यार्थे त्वन् प्रत्ययः। (रथः) रमणसाधनः (उत्त) अपि (इह) (कर्त्त्वः) कर्त्तुं योग्यः (धेनुः) वाणी (कर्त्वा) कर्त्तुं योग्यः (युवशा) युवैर्मिश्रिताऽमिश्रितैस्तद्वत्कृतानि विस्तृतानि (कर्त्वा) कर्त्तव्यानि (द्वा) द्वौ (तानि) (प्रातः) बन्धो (अनु) (वः) युष्माकं सकाशात् (कृत्वी) कृत्वा। अत्र स्नात्व्यादयश्च (अष्टा०७.१.४५) इति निपातितम्। (आ) (इमिस) प्राप्नुमः॥३॥

अन्वय:-हे भ्रातर्विद्वन्! यद्योऽश्वः कर्त्त्वं उतेह रथः कर्त्त्वोऽस्ति तस्मिन्नं दूर्ते प्रति ग्रोऽब्रवीतन तदुपदेशेन या कर्त्त्वां धेनुरस्ति यानि कर्त्त्वां युवशा सन्ति येऽग्निवाचौ द्वा स्तस्तानि वः सिद्धानि कृत्वी वयमुन्वमसि॥३॥

भावार्थ:-यो यस्मै सत्यां विद्यां ब्रूयात्, अग्न्यादिकृत्यभुपिदशेच्च स तं बन्धुवद्विजानीयात्, स कर्त्तव्यानि कार्याणि साधितुं शक्नुयात्॥३॥

पदार्थ:-हे (भ्रात:) बन्धु विद्वान्! (यत्) जो (अश्वा) श्रीष्ठणामी (कर्त्वः) करने योग्य अर्थात् कलायन्त्रादि से सिद्ध होनेवाला नानाविध शिल्पिक्रयाजन्य पदार्थ (उत्त) अथवा (इह) यहाँ (रथः) रमण करने का साधन (कर्त्वः) करने योग्य विमान आदि पान हैं, उसको (अग्निम्) बिजुली आदि (दूतम्) दूत कर्मकारी अग्नि के (प्रति) प्रति जो (अब्रवीतन) कहे, उसके उपदेश से जो (कर्त्वा) करने योग्य (धेनुः) वाणी है वा जो (कर्त्वा) करने योग्य (युवशा) मिले-अनमिले व्यवहारों से विस्तृत काम हैं वा जो अग्नि और वाणी (द्वा) दो हैं (तानि) उन सबको (वः) तुन्हारी उत्तेजना से सिद्ध (कृत्वी) कर हम लोग (अनु, आ, इमिस्) अनुक्रम से उक्त पदार्थों को प्रान्त होते हैं॥३॥

भावार्थ:-जो जिसके लिये सत्यविद्या को कहे और अग्नि आदि से कर्तव्य का उपदेश करे, वह उसको बन्धु के समान जाने और वह करने योग्य कामों को सिद्ध कर सके॥३॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर्रें उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

चकुवांस् ऋभवस्तिदृष्ट्छत् क्वेद्भूद्यः स्य दूतो न आर्जगन्। यदाक्राख्येस्यमसाञ्चतुर्रः कृतानादित्त्वष्टा ग्नास्वन्तन्यानजे॥४॥

चृक्रवांस्री ऋभवः। तत्। अपृच्छत्। क्वं। इत्। अभूत्। यः। स्यः। दूतः। नः। आ। अर्जगन्। यदा। अवऽअर्ख्यत्। चुमुसान्। चुतुर्रः। कृतान्। आत्। इत्। त्वष्ट्रां। ग्नासुं। अन्तः। नि। आनुजे॥४॥

पदार्थ:-(चकृवांस:) कर्त्तारः (ऋभवः) मेधाविनः। ऋभुरिति मेधाविनामसु पठितम्।

अष्टक-२। अध्याय-३। वर्ग-४-६

मण्डल-१। अनुवाक-२२। सूक्त-१६१

१६५९

(दूत:) (न:) अस्मान् (आ) (अजगन्) पुनः पुनः प्राप्नोति (यदा) (अवाख्यत्) प्रख्यापयेत् (चमसान्) मेघान् (चतुरः) वाय्विग्नजलभूमीः (कृतान्) (आत्) (इत्) (त्वष्टा) तनूकर्त्ता (ग्नासु) गन्तुं योग्यासु भूमिषु (अन्तः) मध्ये (नि) (आनजे) अस्येच्चालयेत्॥४॥

अन्वयः-हे चकृवांस ऋभवो! यो दूतो न आजगन् स्य सः क्वाभूदिति तदित्तमेव विदुषः प्रति भवन्तोऽपुच्छत। यस्त्वष्टा यदा चमसानवाख्यत्तदा स चतुरः कृतान् विजानीयादात्स इत् ग्नास्वन्तर्यानानि न्यानजे॥४॥

भावार्थ:-ये विद्वत्सनीडे सुशिक्षां विद्यां च प्राप्य सर्वसिद्धान्तोत्तराणि विज्ञाय कार्येषु संप्रेषु ज्ञते ते मेधाविनो जायन्ते॥४॥

पदार्थ: -हे (चकृवांस:) कर्म करनेवाले (ऋभव:) मेधावि सज्जने (य:) जो (दूत:) दूत (न:) हमारे प्रति (आ, अजगन्) बार-बार प्राप्त होवे (स्य:) वह (क्व) कहाँ (अपूत्) उत्पन्न हुआ है (तत्, इत्) उस ही को विद्वानों के प्रति आप लोग (अपृच्छत) पूछो। जो (च्हुप्र) सूक्ष्मता करनेवाला (यदा) जब (चमसान्) मेघों को (अवाख्यत्) विख्यात करे, तब वह (चतुरः) चार पदार्थों को अर्थात् वायु, अग्नि जल और भूमि को (कृतान्) किये हुए अर्थात् पदार्थ बिद्या से उपयोग में लिये हुए जाने (आत्) और (इत्) वही (ग्नासु) गमन करने योग्य भूमियों के (अन्तः) बीच यानों को (नि, आनजे) चलावे॥४॥

भावार्थ:- जो विद्वानों के समीप में उत्तम शिक्षा और ब्रिद्या को पाकर समस्त सिद्धान्तों के उत्तरों को जान कार्य्यों में अत्युत्तम योग करते हैं, वे ब्रुट्सिमान् होते हैं॥ ४॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी किया को अगिले मन्त्र में कहा है।।

हनामैनाँ इति त्वष्टा यदब्रुवीच्यमसं ये देवपानमनिन्दिषुः।

अन्या नामानि कृण्वते सुते सचौ अन्यैरेनान्कन्या ३ नामभिः स्परत्॥५॥४॥

हर्नाम। एनान्। इति। त्वष्ट्री। यत्। अर्बेन्नीत्। चमसम्। ये। देवऽपार्नम्। अर्निन्दिषुः। अन्या। नार्मान। कृण्वते। सुते। सर्चा। अन्यैः एनान्। कुन्या। नार्माऽभिः। स्पुर्त्॥५॥

पदार्थ:-(हनाम) हिसेप्र (एनान्) इष्टाचारिण: (इति) अनेन प्रकारेण (त्वष्टा) छेता सूर्य इव विद्वान् (यत्) (अववीत्) ब्रूते (चमसम्) मेघम् (ये) (देवपानम्) देवै: किरणैरिन्द्रियैर्वा पेयम् (अनिन्दिषु:) चिन्देयु (अन्या) अन्यानि (नामानि) (कृण्वते) कुर्वन्ति (सुते) निष्पादिते (सचान्) संयुक्तान् (अन्येः) भिन्नैः (एनान्) जनान् (कन्या) कुमारिका (नामिभः) (स्परत्) प्रीणयेत्। अत्र लङ्ग्यडभीतः॥५॥

अन्वयः-हे मनुष्या! त्वष्टा यद्यं देवपानं चमसमब्रवीद्य एवमनिन्दिषुस्तानेनान् वयं हनाम। ये अर्वानन्येनीपभिरन्या नामानि सुते कृण्वत एनान् कन्या स्परदित्येवं तान् प्रति यूयमपि वर्त्तध्वम्॥५॥

भावार्थ:-ये विदुषो निन्देयुर्विद्वतस्विवद्वद्बुद्धिमिवद्वतसु विद्वतप्रज्ञां च कुर्युस्त खलास्सर्वेस्तिरस्करणीया:॥५॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! (त्वष्टा) छिन्न-भिन्न करनेवाला सूर्य के समान विद्वान पता जिसे (देवपानम्) किरण वा इन्द्रियों से पीने योग्य (चमसम्) मेघ जल को (अब्रवीत्) कहता है (या) जो इसकी (अनिन्दिषु:) निन्दा करें उन (एनान्) इनको हम लोग (हनाम) मारें नष्ट करें। जो (सचान्) संयुक्त (अन्यै:) और (नामभि:) नामों से (अन्या) और (नामानि) नामों को (पुत्ते) उत्पन्न किये हुए व्यवहार में (कृण्वते) प्रसिद्ध करते हैं (एनान्) इन जनों को (कन्या) कुमारी कन्या (स्परत्) प्रसन्न करे (इति) इस प्रकार से उनके प्रति तुम भी वर्त्तो॥५॥

भावार्थ:-जो विद्वानों की निन्दा करें, विद्वानों में मूर्खबुद्धि और मूर्खि में विद्वद्बुद्धि करें, वे ही खल सबको तिरस्कार करने योग्य हैं॥५॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।

इन्द्रो हरी युयुजे अश्विना रथं बृहस्पतिर्विश्वरूप्पानिता। ऋभुविभ्वा वाजी देवाँ अगच्छत स्वर्पसो युज्ञियं भागमीतन॥६॥

इन्ह्रं:। हरी इति। युयुजे। अश्विनां। रथम्। बृह्म्पतिः। विश्वर्रह्तपाम्। उपं। आज्ता ऋभुः। विऽभ्वां। वार्जः। देवान्। अगुच्छ्ता सुऽअपंसः। युज्ञियम्। भागम्। ऐक्ष्र्नाः ।

पदार्थ:-(इन्द्र:) विद्युदिव परमै विकारकः: सूर्यः (हरी) धारणाकर्षणविद्ये (युयुजे) युञ्जीत (अश्विना) शिल्पविद्याक्रियाशिक्षकौ (रथम्) रमणीयं यानम् (बृहस्पितः) बृहतां पितः सूर्य इव (विश्वरूपाम्) विश्वानि सर्वाणि रूपाणि पस्यां पृथिव्याम् (उप) (आजत) विजानीत (ऋभुः) धनञ्जयो सूत्रात्मा वायुरिव मेधावी (विभ्वत) विभुना (याजः) अन्नम् (देवान्) विदुषः (अगच्छत) प्राप्नुत (स्वपसः) शोभनानि धर्म्याणि कर्माणि येषान्ते (यिह्नयम्) यो यज्ञमर्हति तम् (भागम्) भजनीयम् (ऐतन) विजानीत॥६॥

अन्वय:-हे मनुष्यो! इन्ह्रो होते युयुजेऽश्विना रथं युञ्जीयातां बृहस्पतिरिव यूयं विश्वरूपामुपाजत। ऋभुर्विभ्वा वाज इव देवानगच्छत स्वृत्रसो यूयं युज्ञियं भागमैतन॥६॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये विद्युद्धत्कार्ययोजकाः शिल्पविद्या इव सर्वकार्यप्रणेतारः सूर्यवद्राज्यभूर्तारः प्राज्ञचिद्धदुषां सङ्गन्तारो धार्मिकवत्कर्मकर्त्तारो मनुष्याः सन्ति ते सौभाग्यवन्तो जायन्ते 🔏 ॥

पद्मर्थ:-हे मनुष्यो! (इन्द्र:) बिजुली के समान परमैश्वर्यकारक सूर्य (हरी) धारण-आकर्षण कर्मों क्री विद्याको (युयुजे) युक्त करे, (अश्विना) शिल्पविद्या वा उसकी क्रिया हथोटी के सिखानेवाले विद्वान्

अष्टक-२। अध्याय-३। वर्ग-४-६

मण्डल-१। अनुवाक-२२। सूक्त-१६१

जन (रथम) रमण करने योग्य विमान आदि ज्ञान को जोड़े, (बृहस्पति:) बड़े-बड़े पदार्थों की पालना करनेवाले सूर्य के समान तुम लोग (विश्वरूपाम्) जिसमें समस्त अर्थात् छोटे, बड़े, मोटे, पूतरे, टेढे, बकुचे, कारे, पीरे, रङ्गीले, चटकीले रूप विद्यमान हैं, उस पृथिवी को (उप, आजत) उत्तम(५ से ज्यूने) (ऋभु:) धनञ्जय सूत्रात्मा वायु के समान (विभ्वा) अपने व्याप्ति बल से (वाज:) अर्क को जैसे वैसे (देवान्) विद्वानों को (अगच्छत्) प्राप्त होओ और (स्वपसः) जिन के सुन्दर धर्मसम्बन्धी कोप हैं, ऐसे हुए तम **(यज्ञियम)** जो यज्ञ के योग्य **(भागम)** सेवन करने योग्य भोग है, उसको **(एजन)** जानो। **४**॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो बिजुली के सम्मान कार्य को युक्त करने. शिल्पविद्या के समान सब कार्यों को यथायोग्य व्यवहारों में लगाने, सूर्य के समान राज्य को पालने वाले, बुद्धिमानों के समान विद्वानो का सङ्ग करने और धार्मिक के समान कर्म करनेवाले मनुष्य हैं, वे सौभाग्यवान् होते हैं॥६॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

निश्चर्मणो गामरिणीत धीतिभिर्या जरन्ता युव्या के कुणोतन। सौधंन्वना अश्वादश्चंमतक्षत युक्त्वा रथुमुप्देवाँ अयात्रन॥७॥

नि:। चर्मण:। गाम्। अरिणीत। धीतिऽभिः। यो जरेन्ता। युवशा। ता। अकुणोतन। सौर्धन्वनाः। अश्चात्। अर्थम्। अतुक्षुतु। युक्त्वा। रथम्। उप। देवान्। अयात्रन्। ५॥

पदार्थ:-(नि:) नितराम् (चर्मण्के त्वरवद्भूगरिभागस्य (गाम्) पृथिवीम् (अरिणीत) प्राप्नुत (धीतिभि:) अङ्गुलिभिरिव धारणाभि (यो) (जैरन्ता) स्तुवन्तौ (युवशा) युवानो विद्यन्ते ययोस्तौ। अत्र लोमादिपामादिना मत्वर्थीयः 🔃 📶 तौ (अकृणोतन) कुरुत (सौधन्वनाः) सुधन्विन कुशलाः (अश्वात्) वेगवतः पदार्थात् (अर्थुम्) वेगवतां पदार्थम् (अतक्षत) अवस्तृणीत (युक्त्वा) (रथम्) यानम् (उप) (देवान्) दिव्यान् भोगार् गुणान् वा (अयोतन) प्राप्नुत॥७॥

अन्वय:-हे मनुष्यूर! पूर्वे धीति। श्वर्मण इव गामरिणीत। या जरन्ता युवशा शिल्पिनौ स्यातां ता शिल्पकर्मसु प्रवृत्तौ निरकृणोतन। सौधन्वनाः सत्तो श्वादश्वमतक्षत रथं युक्त्वा देवानुपायातन॥७॥

भावार्थः/अत्र वाच्कलुप्तोपमालङ्कारः। ये मनुष्या अङ्गुलीवत्कर्मकारिणः शिल्पविद्याप्रियाः पदार्थात् पदार्थ्याणान् विज्ञायं यानादिषु कार्येषूपयुञ्जते ते दिव्यान् भोगान् प्राप्नुवन्ति॥७॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! तुम (धीतिभि:) अङ्गुलियों के समान धारणाओं से (चर्मण:) शरीर की त्वचा के समान शरीर के ऊपरी भाग का सम्बन्ध रखनेवाली (गाम्) पृथिवी को (अरिणीत) प्राप्त होओ (या) जो (जरना) स्तृति प्रशंसा करते हुए (युवशा) युवा विद्यार्थियों को समीप रखनेवाले शिल्पी होवें, (ता) वे कारीगरी के कामों में अच्छे प्रकार प्रवृत्त हुए (निरकृणोतन) निरन्तर उन शिल्प कार्यों को करें।

(सौधन्वना:) उत्तम धनुष् में कुशल होते हुए सज्जन (अश्वात्) वेगवान् पदार्थ से (अश्वम्) वेगवील पदार्थ को (अतक्षत) छांटो और वेग देने में ठीक करो। और (रथम्) रथ को (युक्त्वा) जोड़ के (देवान्) दिव्य भोग वा दिव्य गुणों को (उपायातन) उपगत होओ, प्राप्त होओ॥७॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य अङ्गुलियों के समान कर्म के अरने और शिल्पविद्या में प्रीति रखनेवाले पदार्थ के गुणों को जानकर यान आदि कार्यों में इनका उपयोग करते हैं, वे दिव्य भोगों को प्राप्त होते हैं॥७॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

इदुमुंदकं पिंबतेत्यंब्रवीतनेदं वा घा पिबता मुञ्जनेजनम्। सौधन्वना यद्वि तन्नेव हर्यथ तृतीये घा सर्वने मादयाध्वै॥ ८॥

इदम्। उद्वकम्। पि्<u>षत्।</u> इति। अ<u>ष्ववीतन्। इदम्। वा। घ। पि</u>ष्त्। मुङ्गुऽनेजनम्। सौर्धन्वनाः। यदि। तत्। नऽइव। हर्यथा तृतीये। घा सर्वने। माद्वयाध्वै॥८॥

पदार्थ:-(इदम्) (उदकम्) (पिबत) (इति) असेन क्रिकेट (अब्रवीतन) ब्रूयुः (इदम्) (वा) पक्षान्तरे (घ) एव (पिबता) (मुञ्जनेजनम्) मुञ्जैनेजनं सुद्धीकृतम् (सौधन्वनाः) शोभनानि धनूंषि येषान्ते सुधन्वानस्तेषु कुशलाः (यदि) (तत्) (नेव) यथा न काम्यते ब्रथा (हर्यथ) कामयध्वम् (तृतीये) (घ) एव (सवने) ऐश्वर्ये (मादयाध्वै) आनन्दत॥८॥

अन्वयः – हे सौधन्वनाः सद्वैद्या! यूयं पश्यार्थिभ्य ह्रदमुदकं पिबत इदं मुञ्जनेजनं पिबत वा नेव पिबतेति घैवाब्रवीतन यदि तद्धर्यथ तर्हि तृतीये सवने ब्रेव स्तार्त मासूचाध्वै॥८॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार: वैद्यैमितापितृभिर्वा सर्वे रोगिण: सन्तानाश्च युष्माभि: शरीरात्मसुखायेदं सेव्यमिदन्न सेव्यमिदननुष्ठेयं नेदं चेति प्रथमत उपदेष्टव्या:। यत एते पूर्णशरीरात्मसुखा: सततं भवेयु:॥८॥

पदार्थ:-हे (सौधन्वना:) उसम धनुषवालों में कुशल अच्छे वैद्यो! तुम पथ्य भोजन चाहनेवालों से (इदम्) इस (उदकम्) जल की (पिबत) पिओ (इदम्) इस (मुझनेजनम्) मूंज के तृणों से शुद्ध किये हुए जल को पिओ (वा) अथवा (नेव) नहीं (पिबत) पिओ (इति) इस प्रकार से (घ) ही (अब्रवीतन) कहो, औरों को उपदेश देओ, (यदि) जो (तत्) उसको (हर्यथ) चाहो तो (तृतीये) तीसरे (सवने) ऐश्वर्य में (घ) ही सिरन्तर (माद्याध्वै) आनन्दित होओ॥८॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। वैद्य वा माता-पिताओं को चाहिये कि समस्त रोगी और सन्त्रनीं के लिये प्रथम ऐसा उपदेश करें कि तुमको शारीरिक और आत्मिक सुख के लिये यह सेवन

मण्डल-१। अनुवाक-२२। सूक्त-१६१

१६६३

करना चाहिये, यह न सेवन करना चाहिये, यह अनुष्ठान करना चाहिये, यह नहीं। जिस कारण ये पूर्ण आत्मिक और शारीरिक सुखयुक्त निरन्तर हों॥८॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

आपो भूयिष्ठा इत्येको अब्रवीदुग्निर्भूयिष्ठ इत्यन्यो अब्रवीत्। वधर्यन्तीं बहुभ्यः प्रैको अब्रवीदृता वदन्तश्चमुसाँ अपिंशत॥९॥

आपं:। भूयिष्ठाः। इति। एकं:। अब्बेत्ति। अग्निः। भूयिष्ठः। इति। अन्यः। अब्बेतिः। वृधःऽयन्तीम्। बहुऽभ्यः। प्र। एकं:। अब्बेतिः। ऋता। वर्दनः। चुमुसान्। अपिंशतः॥ ९॥

पदार्थ:-(आप:) जलानि (भूयिष्ठा:) अधिकाः (इति) एवम् (एकः) (अब्रवीत्) ब्रूते (अग्निः) पावकः (भूयिष्ठः) अधिकः (इति) (अन्यः) (अब्रवीत्) ब्रूते (वधर्यन्तीम्) भूमम् (बहुभ्यः) पदार्थेभ्यः (प्र) (एकः) (अब्रवीत्) वदित (ऋता) ऋतानि सत्यानि (वस्तः) उन्चरन्तः (चमसान्) मेघानिव (अपिंशत) विभक्तान् कुरुत॥९॥

अन्वयः – हे मनुष्या! यूयं यथैकः संयुक्तेषु पृथिव्यादिषु पदार्थेन्वर्यो भूयिष्ठा इत्यब्रवीदन्योऽग्निर्भूयिष्ठ इति प्राब्रवीदेको बहुभ्यो वर्धयन्तीं भूमिं भूयिष्ठामब्रवीदेवमृता वदन्रः सम्सन्तिव पदार्थानिपंशत॥९॥

भावार्थ:-अस्मिन् संसारे स्थूलेषु पदार्थेषु वा केर्चिदपोऽधिकाः केचिदिग्नमिधकं केचिद्धूमिं पुष्कलां वदन्ति, परन्तु स्थूलेषु भूमिरेवाधिकास्त्रीति। स्रत्येन विज्ञानेन मेघाऽवयविववेकवत् सर्वान् पदार्थान् विभक्तान् कृत्वा तत्त्वानि सर्वे सुर्र्रास्थ्रेस्थ्रेतेनु विना यथार्थां पदार्थविद्यां वेदितुं शक्नुवन्ति॥९॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! तुम जैसे (एक: एक पुरुष संयुक्त पृथिवी आदि पदार्थों में (आप:) जल (भूयिष्ठा) अधिक हैं (इति) ऐसा (अब्रवीत) कहता है (अन्य:) और दूसरा (अग्नि:) अग्नि (भूयिष्ठ:) अधिक है (इति) ऐसा (प्राव्रवीत) उत्तमता से कहता है तथा (एक:) कोई (बहुभ्य:) बहुत पदार्थों में (वधर्यन्तीम्) बढ़ती हुई भूमि को अधिक (अब्रवीत्) बतलाता है। इसी प्रकार (ऋता) सत्य बातों को (वदन्त:) कहते हुए सज्जन (अपसात्र) मेघों के समान पदार्थों को (अपिंशत) अलग-अलग करो॥९॥

भावार्थ:-इस सेंसार में स्थूल पदार्थों के बीच कोई जल को अधिक, कोई अग्नि को अधिक और कोई भूमि क्रो बड़ी-बड़ी बतलाते हैं, परन्तु स्थूल पदार्थों में भूमि ही अधिक है। इस प्रकार सत्य-विज्ञान से मेघ्र के अवयवों का जो ज्ञान उसके समान सब पदार्थों को अलग-अलग कर सिद्धान्तों की सब परीक्षा करें, इस काम के विना यथार्थ पदार्थविद्या को नहीं जान सकते॥९॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

श्रोणामेकं उदुकं गामवाजिति मांसमेकः पिंशति सूनयाभृतम्।

आ निम्रुचः शकृदेको अपाभर्त्कं स्वित्पुत्रेभ्यः पितरा उपावतुः॥ १०॥ ५॥

श्रोणाम्। एकः। <u>उद</u>कम्। गाम्। अवं। अजिति। मांसम्। एकः। पिंशिति। सूनर्या। आऽश्रेतम्। आ। निऽम्रचः। शकृत्। एकः। अपं। अभुरत्। किम्। स्वित्। पुत्रेभ्यः। पितरौ। उपं। आवतुः॥ १०॥

पदार्थ:-(श्रोणाम्) श्रोतव्याम् (एकः) विद्वान् (उदकम्) जलम् (गाम्) भूमिम् (अर्थ) (अजिति) जानाति प्रक्षिपति वा (मांसम्) मृतकशरीरावयवम् (एकः) असहायः (पिंशति) पृथ्कं करोति (सूनया) हिंसया (आभृतम्) समन्ताद् धृतम् (आ) (निम्रुचः) नित्यं प्राप्तस्य (शकृत्) विष्टेष (एकः) (अपः) (अभरत्) भरति (किम्) (स्वित्) प्रश्ने (पुत्रेभ्यः) (पितरौ) मातापितरौ (अप) (आवतुः) कामयेताम्॥१०॥

अन्वय:-यथैकः श्रोणाङ्गामुदकञ्चावाजित यथैकः सूनयाभृतं मांसं प्रिंशिति यथैको निम्रुचः शकृदपाभरत्तथा पितरौ पुत्रेभ्यः किं स्विदुपावतुः॥१०॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। ये पितरो यथा धेनुर्वस्मिमव व्याधो मांसिमव वैद्यो रोगिणो मलिनवारणिमव पुत्रान् दुर्गुणेभ्यो निवर्त्य शिक्षाविद्याप्तान् कुर्वन्ति, ते सन्तानसुखमाप्नुवते॥१०॥

पदार्थ:-जैसे (एक:) विद्वान् (श्रोणाम्) सुनने पाय (ग्राम्) भूमि और (उदकम्) जल को (अवाजित) जानता, कलायन्त्रों से उसको प्रेरणा देता है वा जैसे (एक:) इकेला (सूनया) हिंसा से (आभृतम्) अच्छे प्रकार धारणा किये हुए (मांसम्) भरे हुए के अङ्ग के टूंकटेड़े (=टुकड़े) को (पिंशित) अलग करता है, वा जैसे (एक:) एक (निम्नुच्:) नित्य प्राप्त प्राणी (शकृत्) मल के समान (अप, आ, अभरत्) पदार्थ को उठाता है, वैसे (पितृते) माता प्रिता (पुत्रेभ्य:) पुत्रों के लिये (किं, स्वित्) क्या (उपावतः) सपीप में चाहें॥१०॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकितुप्तोपमालङ्कार है। जो पिता-माता जैसे गौएं बछड़े को सुख चाहती, दु:ख से बचाती वा बहेलिया मास को लेके अनिष्ट को छोड़े वा वैद्य रोगी के मल को दूर करे, वैसे पुत्रों को दुर्गुणों से पृथक् कर शिक्षा और विद्यायुक्त करते हैं, वे सन्तान के सुख को पाते हैं॥१०॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फ़िर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

उद्घत्स्वस्मा अकृणोतना तृणं निवत्स्वपः स्वप्स्ययां नरः। अगोहास्य यदसंस्तना गृहे तदद्येदम्भवो नान् गच्छथा। ११॥

उद्वर्त्यस्य अस्मे। अकृणोतन्। तृणम्। निवत्ऽस्री। अपः। सुऽअपस्यया। नरः। अगीह्यस्य। यत्। असस्तन। गृहे। तृत् अहा। इदम्। ऋभवः। न। अन्। गुच्छृथः॥ ११॥

पदार्थ:-(उद्वत्सु) ऊर्ध्वेषूत्कृष्टेषु प्रदेशेषु (अस्मै) गवाद्याय पशवे (अकृणोतन) कुरुत। अत्रान्येषामपीति दीर्घ:। (तृणम्) हिंसितव्यं घासम् (निवत्सु) निम्नप्रदेशेषु (अप:) जलानि (स्वपस्यया)

मण्डल-१। अनुवाक-२२। सूक्त-१६१

१६६५

आत्मन: सुष्ठु अपस: कर्मण इच्छया (नर:) नेतार: (अगोह्यस्य) गोहितुं रक्षितुमनर्हस्य (यत्) (असस्तन) हिंसत (गृहे) (तत्) (अद्य) (इदम्) (ऋभव:) मेधाविन: (न) (अनु) गच्छथ॥११॥

अन्वयः-हे नरो! यूयं स्वपस्ययाऽस्मै निवत्सूद्वत्सु तृणमपश्चाकृणोतन। हे ऋभवो! यूयं यह्मोह्नस्य गृहै वस्त्वऽस्ति तन्नासस्तनाद्येदमनुगच्छथ॥११॥

भावार्थ:-मनुष्यैरुच्चनीचस्थलेषु पशुरक्षणाय जलानि घासाश्च संरक्षण्र<u>ियाः।</u> भरिक्षतस्य परपदार्थस्याप्यन्यायेन ग्रहणेच्छा कदाचिन्नैव कार्य्या। धर्मविद्यानां मेधाविन् च सङ्गः) सदैव कर्त्तव्यः॥११॥

पदार्थ:-हे (नर:) नेता अग्रगन्ता जनो! तुम (स्वपस्यया) अपने को उत्तम काम की इच्छा से (अस्मै) इस गवादि पशु के लिये (निवत्सु) नीचे और (उद्वत्सु) ऊंचे प्रदेशों में (तुणम्) काटने योग्य घास को और (अप:) जलों को (अकृणोतन) उत्पन्न करो। हे (ऋभवः) मेधानो जनो! तुम (यत्) जो (अगोह्यस्य) न लुकाय रखने योग्य के (गृहे) घर में वस्तु हैं (तृत्) उसको (न) न (असस्तन) नष्ट करो (अद्य) इस उत्तम समय में (इमम्) इसके (अनु, गच्छथ) पीछे चलो। ११०।

भावार्थ:-मनुष्यों को चाहिये कि ऊंचे-नीचे स्थली में पेशुओं के राखने के लिये जल और घास आदि पदार्थों को राखें और अरक्षित अर्थात् गिरे, पड़े वा प्रत्यक्ष में धरे हुए दूसरे के पदार्थ को भी अन्याय से ले लेने की इच्छा कभी न करें। धर्म, विद्या और बुद्धिमान् जनों का सङ्ग सदैव करें॥११॥

पुनस्तुमेव विषयमाहै॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

संमील्य यद्धवना पर्यसपित क्वी विन्तुत्वी पितरा व आसतु:।

अशंपत् यः कुरस्नं व आर्द्धे यः प्रार्ववीत्रो तस्मा अब्रवीतन॥१२॥

सुम्ऽमील्यं। यत्। भुवना पुरिऽअसर्पत्। क्वं। स्वित्। तात्या। पितरां। वः। आसुतुः। अर्शपत। यः। क्रस्नम्। वः। आऽदुदे। यः। प्राञ्जित्वीत्। प्रो इति। तस्मै। अबुवीतन्॥ १२॥

पदार्थ:- (संमोक्य) सम्यक्त निमेषणं कृत्वा (यत्) यदा (भुवना) भुवनानि लोकान् (पर्यसर्पत) परितः सर्वतो विजानीत (वदा) किस्मिन् (स्वित्) प्रश्ने (तात्या) तस्मिन्नवसरे भवा। अत्र वाच्छन्दसीति तदव्ययात् त्यप्। (पतरा) जननी जनकश्च (वः) युष्माकम् (आसतुः) (अशपत) सत्यपराधे आक्रुश्यत (यः) (करस्नम्) बोहुम्। करस्नाविति बाहुनामसु पठितम्। (निघं०२.४) (वः) युष्माकम् (आददे) गृह्णाति। अश्रात्मनेपदे तलोपः। (यः) आचार्यः (प्र) (अव्रवीत्) ब्रूयादुपदिशेत् (प्रो) प्रकृष्टार्थे (तस्मै) (अव्रवीर्त्स) उपदिशेत्॥१२॥

अवार:-हे विद्यार्थिनो! यूयं संमील्य यद्भुवना सन्ति तानि पर्य्यसर्पत तदा वस्तात्या पितरा क्व स्विदासर्वार्सिवसत:। यो वः करस्नमाददे यूयं यमशपत यो युष्मान् प्राब्रवीत् तस्मै प्रो अब्रवीतन॥१२॥

भावार्थ:-यदाऽध्यापकानां समीपे विद्यार्थिन आगच्छेयुस्तदैते इदं प्रष्टव्या:। यूयं कुत्रत्या युष्मिकं कुत्र निवासो मातापित्रो: किन्नाम किमध्येतुमिच्छथाखण्डितब्रह्मचर्यं करिष्यथ न वेत्यादि पृष्ट्वैतेभ्यो विद्याग्रहणाय ब्रह्मचर्यदीक्षां दद्यु: शिष्या अध्यापकानां निन्दामप्रियाचरणं च कदापि नैव कुर्य्य: (१११) भार

पदार्थ:-हे विद्यार्थिजनो! तुम (संमील्य) आंखे मिलमिला के (यत्) जो (भुवना) भूमि आदि लोक हैं, उनको (पर्यसर्पत) सब ओर से जानो, तब (व:) तुम्हारे (तात्या) उस समय्र होनेवाले (पितरा) माता-पिता अर्थात् विद्याऽध्ययन समय के माता-पिता (क्व) (स्वित्) कहीं (आसतुः) निरम्तर वसें (यः) और जो (वः) तुम्हारी (करस्नम्) भुजा को (आददे) पकड़ता है वा जिसको (अशपत) अपराध हुए पर कोसो (यः) जो आचार्य तुमको (प्र, अब्रवीत्) उपदेश सुनावे (तस्मै) उसके लिये (प्रो, अब्रवीतन) प्रिय वचन बोलो॥१२॥

भावार्थ:-जब पढ़ानेवालों के समीप विद्यार्थी आवें तब उनसे यह पूछना योग्य है कि तुम कहाँ के हो? तुम्हारा निवास कहाँ है? तुम्हारे माता-पिता का क्या नाम है? क्या पढ़ना चाहते हो? अखण्डित ब्रह्मचर्य करोगे वा न करोगे? इत्यादि पूछ करके ही इनको विद्या ग्रहण करने के लिये ब्रह्मचर्य की शिक्षा देवें और शिष्यजन पढ़ानेवालों की निन्हा और ग्रेतकूल आचरण कभी न करें॥१२॥

पुनस्तमेव विषयमाहै॥ फिर उसी विषय विश्विकाल अगले मुक्त में कहा है॥

सुषु प्वां सं ऋभव स्तद् पृच्छता गोहा के इदं नी अबूबुधत्। श्वानं बस्तो बोधियतारम ब्रवीत् संवत्सु इदम् द्या व्यंख्यत॥ १३॥

सुसुप्वांसः। ऋभवः। तत्। अपृच्छेत्। अगोहा। कः। इदम्। नः। अव्वूबुधत्। श्वानंम्। वस्तः। बोध्यितारंम्। अव्ववीत्। संवत्सरे। इदम्। अद्या विभिञ्जख्यता। १३॥

पदार्थ:-(सुसुप्वांस: के सुप्ताः (त्रुभवः) मेधाविनः (तत्) (अपृच्छत) (अगोह्य) अरक्ष्य (कः) (इदम्) कर्म (तः) अस्माप्त्र (अबूबुधत्) बोधयेत् (श्वानम्) प्रेरकम् (वस्तः) आच्छादकः (बोधियतारम्) ज्ञापियतारम् (अब्वीत्) ब्रूयात् (संवत्सरे) (इदम्) प्रत्यक्षम् (अद्य) अस्मिन् दिने (वि) (अख्यत) प्रख्यापृष्ट्य।१३॥

अन्वयुरी-हे सुसुप्वांस ऋभवो! यूयं यदपृच्छत यच्च व्यख्यत तिददं नः कोऽबूबुधत्। हे अगोह्य! वस्तः श्वानं बोधियतारं यूथा यदम्भिवत्तिद्दं संवत्सरेऽद्य वा त्वं ब्रूहि॥१३॥

भावार्थः-धीमन्तो यद्यद्विदुषः पृष्टा निश्चिनुयुः, तत्तन्न मूर्खा निश्चेतुं शक्नुयुः। जडधीर्य्यावत् संवृत्सिऽधीते तावत् प्राज्ञ एकस्मिन् दिने ग्रहीतुं शक्नोति॥१३॥

मण्डल-१। अनुवाक-२२। सूक्त-१६१

१६६७

पदार्थ: -हे (सुसुप्वांस:) सोनेवाले (ऋभव:) बुद्धिमान् जनो! तुम जिस काम को (अपृच्छत) पूछो और जिसको (वि, अख्यत) प्रसिद्ध कहो (तत्, इदम्) उस इस काम को (न:) हम लोगों को (क:) कौन (अवूबुधत्) जनावे। हे (अगोह्य) न गुप्त राखने योग्य (वस्त:) ढांपने-छिपानेवाल्य (अजनम्) कार्य्यों में प्रेरणा देने और (बोधियतारम्) शुभाशुभ विषय जनानेवाले को जैसे जिस विषय को (अब्बीत्) कहे, वैसे उस (इदम्) प्रत्यक्ष विषय को (संवत्सरे) एक वर्ष में वा (अद्य) आज तू कृहे॥ १३००

भावार्थ:-बुद्धिमान् जन जिस-जिस विषय को विद्वानों को पूछ कर निश्चस करें, उस्रो उसको मूर्ख निर्बुद्धि जन निश्चय नहीं कर सकें। जड़ मन्दमित जन जितना एक संवत्सर मे पढ़ता है, उतना बुद्धिमान् एक दिन में ग्रहण कर सकता है॥१३॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।

दिवा यान्ति मुरुतो भूम्याग्निर्यं वाती अन्तरिक्षेण याति।

अद्भिर्याति वर्मणः समुद्रैर्युष्माँ ड्रच्छन्तः शवसो नपातः॥ १४॥६॥

द्विवा यान्ति। मुरुत्तैः। भूम्या अग्निः। अयम्। वार्तः। भून्तिरक्षेणः। याति। अत्ऽभिः। याति। वर्रणः। सुमुद्रैः। युष्मान्। इच्छन्तैः। शृवसः। नृपातः।१४॥

पदार्थ:-(दिवा) सूर्येण सह (यानि) एच्छन्ति (मरुतः) सूक्ष्मावायवः (भूम्या) पृथिव्या (अग्निः) विद्युत् (अयम्) (वातः) मध्यो वायु (अन्तरिक्षेण) (याति) (अद्भिः) जलैः (याति) (वरुणः) उदानः (समुद्रैः) सागरैः (युष्मान्) (इच्छनः) (शवस्रः) बलवतः (नपातः) न विद्यते पात् पतनं येषां ते॥१४॥

अन्वय:-हे शवसो नपातो विद्वांसी यूयं वशा मरुतो दिवा सह यान्ति। अयमग्निर्भूम्या सह वातोऽन्तरिक्षेण च सह याति वरुणोऽद्भिः समुद्रैः सह या<mark>ति तथा युष्</mark>मानिच्छन्तो जना यान्तु॥१४॥

भावार्थः-अत्र वाचक्तुप्तोपमालङ्कारः। यथा सूर्यमरुतोर्भूम्यग्न्योर्वाय्वन्तरिक्षयोर्वरुणाऽपां सह वासोऽस्ति तथा मनुष्या विद्याविद्धां सह वासं कृत्वा नित्यसुखबलिष्ठा भवन्त्वित॥१४॥

अस्मिन् सूक्ते मॅ्धाकिकर्मवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेदितव्यम्॥

इति एकपञ्चत्तरं शततमं १६१ सूक्तं षष्टो ६ वर्गश्च समाप्त:॥

पदार्थ: हैं (शवस:) बलवान् के सन्तान (नपात:) पतन नहीं होता जिनका वे विद्वानो! तुम जैसे (मरुत:) पैवन (दिवा) सूर्यमण्डल के साथ (यान्ति) जाते हैं (अयम्) यह (अग्नि:) बिजुली रूप अग्नि (भूम्ब्रा) पृथिवी के साथ और (वात:) लोकों के बीच का वायु (अन्तिरक्षेण) अन्तिरक्ष के साथ (याति) जाता है (वरुण:) उदान वायु (अद्धि:) जल और (समुद्रै:) सागरों के साथ (याति) जाता है, वैसे (युष्मान्) तुमको (इच्छन्त:) चाहते हुए जन जावें॥१४॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य, पवन, भूमि, अग्नि, वायु, अन्तरिक्ष तथा वरुण और जलों का एक साथ निवास है, वैसे मनुष्य विद्या और विद्वानों के साथ वासकर नित्य सुखयुक्त और बली होवें॥१४॥

इस सूक्त में मेधावि के कर्मों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के साथ सङ्गति है, यह जानना चाहिये॥

यह एक सौ इकसठवाँ १६१ सूक्त और छठा ६ वर्ग समाप्त हुआर्गा

मा नो मित्र इत्यस्य द्वाविंशर्चस्य द्विषष्ट्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य दीर्घतमा ऋषिः। मित्रादयो लिङ्गोक्ता देवताः। १,२,९,१०,१७,२० निचृत् त्रिष्टुप्। ४,७,८,१८ त्रिष्टुप्। ५ विराट् त्रिष्टुप्। ६,११,२१ भुरिक् त्रिष्टुप्। १२ स्वराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। १३,१४ भुरिक् पङ्क्तिः। १५,१९,२२ स्वराट् पङ्किः। १६ विराट् पङ्क्तिरछन्दः। पञ्चमः स्वरः

0

निचृज्जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

अथाऽश्वस्य विद्युदूषेण व्याप्तस्याग्नेश्च विद्यामाह॥

अब एक सौ बासठवें सूक्त का आरम्भ है। उसके प्रथम मन्त्र में घोड़े और बिजुली रूप से व्याप्त जो अग्नि है, उसकी विद्या का वर्णन करते हैंग

मा नो मित्रो वर्रुणो अर्यमायुरिन्द्रं ऋभुक्षाः मुरुतः परि ख्यन्। यह्यजिनो देवजातस्य सप्तेः प्रवृक्ष्यामो विद्ये वीर्याणा १॥

मा। नुः। मित्रः। वर्रुणः। अर्युमा। आयुः। इन्द्रः। ऋभुश्राः। मुरुतः। परिं। ख्युन्। यत्। वाजिनः। देवऽजातस्य। सप्तैः। प्रऽवक्ष्यामः। विद्र्षे। वीर्याणि॥ १॥

पदार्थ:-(मा) (न:) अस्माकम् (मित्र:) सखा (व्यक्ताः) वर्षः (अर्घ्यमा) न्यायाधीशः (आयुः) ज्ञाता (इन्द्र:) ऐश्वर्यवान् (ऋभुक्षाः) मेधावी (मरुतः) ऋत्विजः (पिरं) वर्जने (ख्यन्) ख्यापयेयुः (यत्) यस्य (वाजिनः) वेगवतः (देवजातस्य) देवेश्यो दिव्यभूगं गुणेभ्यः प्रकटस्य (सप्तेः) अश्वस्य (प्रवक्ष्यामः) (विदये) संग्रामे (वीर्घ्याणि) पराक्रमान्॥१॥

अन्वय:-ऋत्विजो वयं विदथे यद्वाजिने देवजातस्य संप्तेर्वीर्य्याणि प्रवक्ष्यामस्तस्य नस्तुरङ्गस्य वीर्य्याणि मित्रो वरुणोऽर्यमायुरिन्द्र ऋभुक्षा मरुतश्च मा परिख्युन्।।।।

भावार्थ:-मनुष्यै: प्रशंसित्बंत्रवन्तः सुशिक्षिता अश्वा ग्राह्या ये सर्वत्र विजयैश्वर्याणि प्राप्नुयु:॥१॥

पदार्थ: -ऋतु -ऋतु में यज्ञ करनेहारे हम लोग (विदथे) संग्राम में (यत्) जिस (वाजिन:) वेगवान् (देवजातस्य) विहानों के वा दिव्य गुणों से प्रकट हुए (सप्ते:) घोड़े के (वीर्याणि) पराक्रमों को (प्रवक्ष्याम:) कहेंगे, उस (न:) हमारे घोड़ों के पराक्रमों को (मित्र:) मित्र (वरुण:) श्रेष्ठ (अर्यमा) न्यायाधीश (आयुः) ज्ञाता (इन्द्र:) ऐश्वर्यवान् (ऋभुक्षा:) बुद्धिमान् और (मरुत:) ऋत्विज् लोग (मा, परि, ख्यन्) छोड़ के मत कहें और उसके अनुकूल उसकी प्रशंसा करें॥१॥

भावार्थः भानुष्यों को प्रशंसित बलवान् अच्छे सीखे हुए घोड़े ग्रहण करने चाहिये, जिससे सर्वत्र विजय और ऐश्वर्यों को प्राप्त हों॥१॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यन्निर्णिजा रेक्णसा प्रावृतस्य राति गृंभीतां मुंखतो नयन्ति। सुप्रांडुजो मेम्यद्विश्वरूप इन्द्रापूष्णोः प्रियमप्येति पार्थः॥२॥

यत्। निःऽनिर्जा। रेक्णंसा। प्रावृतस्य। गुतिम्। गुभीताम्। मुखतः। नयन्ति। सुऽप्रांङ्। अजः। मिम्रात्। विश्वऽरूपः। इन्द्रापूष्णोः। प्रियम्। अपि। एति। पार्थः॥२॥

पदार्थ:-(यत्) ये (निर्णिजा) नित्यं शुद्धेन। निर्णिगिति रूपनामसु पूर्वतम्। (निर्शं०३.७) (रेक्णसा) धनेन (प्रावृतस्य) आच्छादितस्य (रातिम्) दानम् (गृभीताम्) (मुख्तः) (नयन्ति) (सुप्राङ्) यः सुष्ठु पृच्छिति सः (अजः) न जायते यः सः (मेम्यत्) भृशं हिंसन् (विश्वरूपः) विश्वानि सर्वाणि रूपाणि यस्य सः (इन्द्रापूष्णोः) ऐश्वर्यवत्पृष्टिमतोः (प्रियम्) कमनीयम् (अपि) (एति) प्राप्नोति (पाथः) उदकम्॥२॥

अन्वय:-यत्रिर्णिजा रेक्णसा प्रावृतस्य गृभीतां रातिं मुखतो नयन्ति। श्री मेम्यद्विश्वरूपः सुप्राङजो विद्वानिन्द्रापूष्णोः प्रियं पाथोऽप्येति ते सर्वे सुखमाप्नुवन्ति॥२॥

भावार्थ:-ये न्यायोपार्जितेन धनेन मुख्यानि धर्म्याणि कोच्याणि कुर्वन्ति ते परोपकारिणो भवन्ति॥२॥

पदार्थ:-(यत्) जो (निर्णिजा) नित्य शुद्ध (स्विणसा) धन से (प्रावृतस्य) ढंपे हुए (गृभीताम्) ग्रहण किये (रातिम्) देने को (मुखतः) मुख से (न्यन्ति) प्राप्त करते अर्थात् मुख से कहते हैं और जो (मेम्यत्) अज्ञानियों में निरन्तर मारता-पीटता हुआ (विश्वरूपः) जिसके सब रूप विद्यमान (सुप्राङ्) सुन्दरता से पूछता और (अजः) नहीं उल्पन्न होता अर्थात् एक वार पूर्ण भाव से विद्या पढ़ वार-वार विद्वत्ता से नहीं उत्पन्न होता वह विद्वान्न अने (इन्ह्रापूष्णोः) ऐश्वर्यवान् और पृष्टिमान् प्राणियों के (प्रियम्) मनोहर (पाथः) जल को (अप्येति) निश्चर्य से प्राप्त होता है, वे सब सुख को प्राप्त होते हैं॥२॥

भावार्थ:-जो न्याय से संचित किये हुए धन से मुख्य धर्म्म सम्बन्धी काम करते हैं, वे परोपकारी होते हैं॥२॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

प्रिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

एष छाग्ने पुरो अर्थन वाजिनां पूष्णो भागो नीयते विश्वदेव्यः। अभिष्युं यस्पृरोळाशुमर्वता त्वष्टेदेनं सौश्रवसायं जिन्वति॥३॥

र्षः। छामेः) पुरः। अश्वेन। वाजिनां। पूष्णः। भागः। नीयते। विश्वऽदेव्यः। अभिऽप्रियम्। यत्। पुरोळाशंम्। अर्वता, त्वेष्ट्र्यः। इत्। एनम्। सौश्रवसायं। जिन्वति॥३॥

मण्डल-१। अनुवाक-२२। सूक्त-१६२

१६७१

पदार्थ:-(एष:) प्रत्यक्ष: (छाग:) (पुर:) पूर्वम् (अश्वेन) तुरङ्गेन (वाजिना) वेगवता (पूर्ण्ण:) पुष्टेः (भागः) (नीयते) (विश्वदेव्यः) विश्वेषु सर्वेषु देवेषु दिव्यगुणेषु साधुः (अभिप्रियम्) अभितः कमनीयम् (यत्) यः (पुरोडाशम्) सुसंस्कृतमन्नम् (अर्वता) विज्ञानेन सह (त्वष्टा) सुरूपस्पिक्त (इत्) एव (एनम्) (सौश्रवसाय) शोभनेष्वन्नेषु भवाय (जिन्विति) प्राप्नोति॥३॥

अन्वय:-हे विद्वन्! येन पुरुषेण वाजिनाऽश्वेन सह एष विश्वदेव्यः पूष्णो भागः छागः पूरी नीयेन यद्यस्त्वष्टा सौश्रवसायार्वतैनमभिप्रियं पुरोडाशमिज्जिन्वति स सुखी जायते॥३॥

भावार्थ:-ये मनुष्या अश्वानां पृष्टये छागदुग्धं पाययन्ति सुसंस्कृतार्थं च भुञ्जते ते सुखिनो भवन्ति॥३॥

पदार्थ:-हे विद्वान्! जिस पुरुष ने (वाजिना) वेगवान् (अश्वेन) हो हो है साथ (एषः) यह प्रत्यक्ष (विश्वदेव्यः) समस्त दिव्य गुणों में उत्तम (पूष्णः) पृष्टि का (भागः) भाग (छागः) छाग (पुरः) पहिले (नीयते) पहुंचाया वा (यत्) जो (त्वष्टा) उत्तम रूप सिद्ध करने तत्वा जन (सीश्रवसाय) सुन्दर अत्रों में प्रसिद्ध अत्र के लिये (अर्वता) विशेष ज्ञान के साथ (एनम्) इस (अभिप्रियम्) सब ओर से प्रिय (पुरोडाशम्) सुन्दर बनाये हुए अत्र को (इत्) ही (जिन्वित् प्राप्त होत्रा है, वह सुखी होता है॥३॥

भावार्थ:-जो मनुष्य घोड़ों की पृष्टि के लिये छेरी का दूथ उनको पिलाते और अच्छे बनाये हुए अन्न को खाते हैं, वे निरन्तर सुखी होते हैं॥३॥

पुनस्तमेव विषयमाहै॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यद्धविष्यमृतुशो देवयानं त्रिमिंगुष्य पर्यश्रे नयन्ति।

अत्रा पूष्णः प्रथमो भाग एति युज्ञं देवेभ्यः प्रतिवेदयेन्तुजः॥४॥

यत्। हुविष्यम्। ऋतुऽशः। द्वेवऽयानम्। त्रिः। मानुषाः। परि। अश्चम्। नयन्ति। अत्री पूष्णः। प्रथमः। भागः। पति। यज्ञम्। देवेभ्यः। प्रतिऽवेदग्रन्। अजः॥४॥

पदार्थ:-(यत्) हे (इविष्यम्) हिवष्षु ग्रहणेषु साधुम् (ऋतुशः) बहुषु ऋतुषु (देवयानम्) देवानां विदुषां यात्रासाधकम् (त्रिः (मानुषाः) मनुष्याः (पिर) सर्वतः (अश्वम्) आशुगामिनम् (नयन्ति) प्राप्नुवन्ति (अत्र) अस्मिन् जगिति। अत्र ऋचि तुनुघेति दीर्घः। (पूष्णः) पोषकस्य (प्रथमः) आदिमः (भागः) भजनीयः (प्रति) प्राप्नोति (यज्ञम्) संगन्तुमर्हम् (देवेभ्यः) दिव्यगुणेभ्यः (प्रतिवेदयन्) स्वगुणं प्रत्यक्षतया प्रज्ञापर्यस् (अजः) प्राप्तव्यश्लागः॥४॥

अन्वय:-यद्ये मानुषा ऋतुशो हविष्यं देवयानमश्चं त्रिः परिणयन्ति, योऽत्र देवेभ्यः पूष्णः प्रथमो भागः प्रतिक्रेद्धम्मज्ञो अज्ञमेति तानेतं च सर्वे सज्जनाः सत्कुर्वन्तु॥४॥

भावार्थः-ये सर्वर्त्तुसुखसाधकानि यानानि रचयित्वाऽश्वाऽजादीन् पशून् वर्द्धयित्वा जर्गाद्धते संपादयन्ति, ते शरीरात्ममनोऽनुकूलं त्रिविधं सुखमश्नुवते॥४॥

पदार्थ:-(यत्) जो (मानुषा:) मनुष्य (ऋतुशः) बहुत ऋतुओं में (हिवष्यम्) ग्रहण करों योग्य पदार्थों में उत्तम (देवयानम्) विद्वानों की यात्रा सिद्ध करनेवाले (अश्वम्) शीघ्रगामी रथ की (त्रिः) तीन बार (परिणयन्ति) सब ओर से प्राप्त होते अर्थात् स्वीकार करते हैं वा जो (अत्र) इस जगत् में (देवेभ्यः) दिव्य गुणों के लिये (पूष्णः) पृष्टि करनेवाले का (प्रथमः) पहिला (भागः) सेवने योग्य भाग (प्रतिवेदयन्) अपने गुण को प्रत्यक्षता से जनाता हुआ (अजः) पाने योग्य छाग्र (यज्ञम्) सङ्ग करने योग्य व्यवहार को (एति) प्राप्त होता है, उनको और इस छाग को सब स्वान्त्र यथायोग्य सत्कारयुक्त करें॥४॥

भावार्थ:-जो समस्त ऋतुओं के सुख सिद्ध करनेवाले यानों को रच घोड़े और बकरे आदि पशुओं को बड़ा कर जगत् का हित सिद्ध करते हैं, वे शारीरिक किन्क और मानसिक तीनों प्रकार के सुख को प्राप्त होते हैं॥४॥

पुनस्तमेव विषयमाह।

फिर उसी विषय को अग्रले मन्त्र में बहा है॥

होताध्वर्युरावया अग्निमिन्धो ग्रावग्राभ क्र्स शंस्ता सुविप्रः। तेन युज्ञेन स्वरंकृतेन स्विष्टेन वक्षणा आ पृण्ह्वम्॥५॥७॥

होता। अध्वर्युः। आऽवयाः। अस्तिम्ऽङ्क्यः। ब्राव्डऽत्राभः। उत। शंस्ता। सुऽविष्रः। तेनी युज्ञेनी सुऽअरंकृतेन। सुऽइष्टिन। वक्षणाः। आ। पृणुष्ट्वम्॥ ॥।

पदार्थ:-(होता) यज्ञसाधकः (अध्वर्यु:) आत्मनोऽध्वरमिहंसनिमच्छुः (आवया:) यः समन्ताद्यजित संगच्छते सः (अभिमिश्वः) अनिप्रदीपकः (ग्रावग्राभः) यो ग्राव्णः स्तावकान् गृह्णाति सः (उत) (शंस्ता) प्रशंसिता (सुविपः) सुष्टु मेक्षावी (तेन) (यज्ञेन) (स्वरंकृतेन) सुष्टु पूर्णेन कृतेन (स्विष्टेन) (वक्षणाः) नदीः (आ) (शृणक्ष्यप्) प्रश्र्यध्वम्॥५॥

अन्वयः-हे मनुष्या! या होताऽध्वर्युरावयाऽग्निमिन्धो ग्रावग्राभ उतापि शंस्ता सुविप्रो विद्वानस्ति तेन साकं स्विष्टेन स्वरङ्कृतेन स्रह्मेन वक्षणा यूयमापृणध्वम्॥५॥

भावार्थः-सर्त्रे मनुष्या दुर्गन्धनिवारणाय सुखोन्नतये च यज्ञाऽनुष्ठानं कृत्वा सर्वत्र देशेषु सुगन्धिता अपो वर्षियुत्वा नेहीः पूर्ययुः॥५॥

पदार्थ: -है मनुष्यो! जो (होता) यज्ञ सिद्ध कराने (अध्वर्यु:) अपने को नष्ट न होने की इच्छा करन्ने (आवशा:) अच्छे प्रकार मिलने (अग्निमिश्य:) अग्नि को प्रकाशित करने (ग्रावग्राभ:) प्रशंसकों को ग्रहिण करने (उत) और (शंस्ता) प्रशंसा करनेवाला (सुविप्र:) सुन्दर बुद्धिमान् विद्वान् है (तेन) उसके

मण्डल-१। अनुवाक-२२। सूक्त-१६२

१६७३

साथ (स्विष्टेन) उत्तम चाहे और (स्वरङ्कृतेन) सुन्दर पूर्ण किये हुए (यज्ञेन) यज्ञकर्म से (वक्षणाः) नदियों को तुम (आ, पृणध्वम्) अच्छे प्रकार पूर्ण करो॥५॥

भावार्थ:-सब मनुष्य दुर्गन्ध के निवारने और सुख की उन्नति के लिये यज्ञ का अनुष्टीन के सर्वत्र देशों में सुगन्धित जलों को वर्षा कर निदयों को परिपूर्ण करें अर्थात् जल से भरें॥ ५१॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यूपवृस्का उत ये यूपवाहाश्चषालं ये अश्वयूपाय तक्षीत। ये चार्वते पर्चनं संभरन्युतो तेषांमुभिगूर्तिर्न इन्वतु॥६॥

यूप्ऽवृस्काः। उता ये। यूप्ऽवाहाः। चषालम्। ये। अश्वऽयूपिये तक्षीत्। ये। अर्वते। पर्चनम्। सम्ऽभरीन्ता उतो इति। तेषाम्। अभिऽगूर्तिः। नः। इन्वतु॥६॥

पदार्थ:-(यूपव्रस्काः) यूपाय स्तम्भाय ये वृश्चन्ति ते (इते अपि (ये) (यूपवाहाः) ये यूपं वहन्ति प्रापयन्ति (चषालम्) वृक्षविशेषम् (ये) (अश्चयूपाय) अश्वानं चूर्यनाय (तक्षिति) छिन्दिति। अत्र वचनव्यत्ययेनैकवचनम्। (ये) (च) (अर्वते) अश्वाय (पचनम्) (संभरन्ति) (उतो) अपि (तेषाम्) (अभिगूर्तिः) अभितः सर्वतो गूर्तिरुद्यमो यस्य सः (क्) अस्माम् (इन्वतु) प्राप्नोतु॥६॥

अन्वय:-ये यूपव्रस्का उत ये यूपवाहा अश्वमूष्पय चषाले तक्षति। ये चार्वते पचनं संभरन्ति यस्तेषामुतो अभिगूर्त्तिरस्ति स नोऽस्मानिन्वतु॥६॥

भावार्थ:-ये मनुष्या अश्वादिबन्धनाय काष्ट्राम्नं यूपान् कुर्वन्ति ये चाश्वानां पालनाय पदार्थान् स्वीकुर्वन्ति, ते उद्यमिनो भूत्वा सुखानि प्राप्तवित्ति। ।।

पदार्थ:-(ये) जो (यूपवरका:) खम्भे के लिये काष्ठ काटनेवाले (उत) और भी (ये) जो (यूपवाहा:) खम्भे को प्राप्त करानेवाले जन (अश्वयूपाय) घोड़ों के बांधने के लिये (चषालम्) किसी विशेष वृक्ष को (तक्षिति) काटते हैं (ये, हा) और जो (अर्वते) घोड़े के लिये (पचनम्) पकाने को (संभरन्ति) धारण करते और पृष्टि कार्त हैं, जो (तेषाम्) उनके बीच (उतो) निश्चय से (अभिगूर्ति:) सब ओर से उद्यमी है वह (न:) हम मिंगों को (इन्वतु) प्राप्त होवे॥६॥

भावार्थ: भा मनुष्य घोड़े आदि पशुओं के बांधने के लिये काठ के खम्भे वा खूंटे करते बनाते हैं वा जो घोड़ों के राखने को पदार्थ दाना, घास, चारा, घुड़सार आदि स्वीकार करते बनाते हैं, वे उद्यमी होकर सुख़ों को प्राप्त होते हैं॥६॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

चुपु प्रागत्सुमन्मेंऽधायि मन्मे देवानामाशा उप वीतपृष्ठः।

अन्वेनं विप्रा ऋषयो मदन्ति देवानां पृष्टे चंकृमा सुबर्स्युम्॥७॥

उपी प्रा अगात्। सुऽमत्। मे्। अधायि। मन्मी देवानीम्। आशीः। उपी वीतऽपृष्ठः। अनी एनमा विप्रीः। ऋषयः। मुद्दन्ति। देवानीम्। पुष्टे। चुकुम्। सुऽबन्धुम्॥७॥

पदार्थ:-(उप) समीपे (प्र) (अगात्) गच्छतु प्राप्नोतु (सुमत्) यः सुष्ठु मन्यते जनिति (मे) मम (अधायि) ध्रियते (मन्म) विज्ञानम् (देवानाम्) विदुषाम् (आशाः) प्राप्तीच्छाः (उप्र) (बीवपृष्ठः) वीता व्याप्ताः पृष्ठा विद्यासिद्धान्ता येन सः (अनु) (एनम्) (विप्राः) मेधाविनः (ऋषयः) वेदार्थवेत्तारः (मदिन्त) आनन्दयन्ति (देवानाम्) आप्तानाम् (पृष्टे) पृष्टियुक्ते व्यवहारे (चकृम) कुर्यामा अत्राऽन्येषामपीति दीर्घः। (सुबसुम्) शोभना बन्धवो यस्य तम्॥७॥

अन्वय:-येन देवानां मे मम च मन्माशाश्चोपाधायि यः सुमद्वीतपृष्ठो विद्वानेतदेतिश्चोपप्रागात्। ये ऋषयो विप्राः सुबन्धुमनुमदन्त्येनं तेषां देवानां पृष्टे वयं चकृम॥७॥

भावार्थ:-ये विद्वत्सिद्धान्तितं विज्ञानं धृत्वा तद्नुकूला भूव्वा विद्वांसो जायन्ते, ते शरीरात्मपृष्टियुक्ता भवन्ति॥७॥

पदार्थ:-जिसने (देवानाम्) विद्वानों का और (में) में (मेन्स्) विज्ञान और (आशा:) प्राप्ति की इच्छाओं को (उप, अधायि) समीप होकर धारण किया वा जी (सुमत्) सुन्दर मानता (वीतपृष्ठ:) सिद्धान्तों में व्याप्त हुआ विद्वान् जन उक्त ज्ञान और उक्त आशाओं को (उप, प्र, अगात्) समीप होकर अच्छे प्रकार प्राप्त हो वा जो (ऋषय:) वेदार्थ ही प्रवाल (विप्रा:) धीरबुद्धि जन (सुबन्धुम्) जिसके सुन्दर भाई हैं, उसको (अनु, मदन्ति) अनुमोदिन करते हैं, (एनम्) इस सुबन्धु सज्जन को उक्त (देवानाम्) व्यास साक्षात् कृतशास्त्रसिद्धान्त विद्वान् जने को (पुष्टे) पृष्टियुक्त व्यवहार में हम लोग (चकृम) करें अर्थात् नियत करें॥७॥

भावार्थ:-जो विद्वानों के सिद्धान्त किये हुए विज्ञान का धारण कर तदनुकूल हो विद्वान् होते हैं, वे शरीर और आत्मा की पृष्टि सियुक्त होते हैं। ७॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

रूर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यद्वाजिन्रे दाम सुंदानमर्वतो या शीर्षण्या रशना रज्जुरस्य। यद्वा कास्य प्रभृतमास्ये इतृणं सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु॥८॥

यूर्ता बाजिर्मः। दार्म। सम्ऽदानम्। अर्वतः। या। शोर्ष्घण्यां। रृश्चना। रज्जुः। अस्य। यत्। वा। घ। अस्य। प्रऽभृतम् अपुस्ये। तृणम्। सर्वां। ता। ते। अपि। देवेषुं। अस्तु॥८॥

पदार्थ:-(यत्) (वाजिन:) बलवतोऽश्वस्य (दाम) दमनसाधनम् (सन्दानम्) सम्यक् दीयते यत्तत् अर्वतः) शीघ्रं स्थानान्तरं प्राप्नुतः (या) (शीर्षण्या) शीर्ष्णि साधुः (रशना) व्यापिका (रज्जुः) (अस्य)

मण्डल-१। अनुवाक-२२। सुक्त-१६२

१६७५

(यत्) (वा) पक्षान्तरे (घ) एव (अस्य) (प्रभृतम्) प्रकृष्टतया धृतम् (आस्ये) (तृणम्) (सर्वा) सर्वाणि (ता) तानि (ते) तव (अपि) (देवेषु) (अस्तु) भवतु॥८॥

अन्वय:-हे विद्वन्! अस्यार्वतो वाजिनो यत्सन्दानं दाम या शीर्षण्या रशना रज्जुर्यद्वास्य घास्ये तृषं प्रित्सिस्ट्र तत्सर्वा ते देवेष्वपि सन्तु॥८॥

भावार्थ:-येऽश्वान् सुशिक्षितान् सुदमनानुत्तमाभरणान् पुष्टान् कृत्वैतैः कार्य्याणि साध्युवन्ति, ते सर्वाणि विजयादीनि साधितुं शक्नुवन्ति॥८॥

पदार्थ:-हे विद्वान्! (अस्य) इस (अर्वतः) शीघ्र दूसरे स्थान को पहुंचानेषाले (वाजिनः) बलवान् घोड़ा की (यत्) जो (संदानम्) अच्छे प्रकार दी जाती (दाम) और घड़िं को दमन करती अर्थात् उनके बल को दाबती हुई लगाम है (या) जो (शीर्षण्या) शिर में उसमे (रश्नना) व्याप्त होनेवाली (रज्जुः) रस्सी है (यत्, वा) अथवा जो (अस्य, घ) इसी के (आस्य) मुख्य में (तृणम्) तृणवीरुध घास (प्रभृतम्) अच्छे प्रकार भरी (अस्तु) हो (ता) वे (सर्वा) समस्त (ते) तुम्हारे पदार्थ (देवेषु) विद्वानों में (अपि) भी हों॥८॥

भावार्थ:- जो घोड़ों को सुशिक्षित, अच्छे इन्द्रिय समिन केरनेक्ल, उत्तम गहनों से युक्त और पुष्ट कर इन से कार्यों को सिद्ध करते हैं, वे समस्त विजय आदि क्यवहारों को सिद्ध कर सकते हैं॥८॥

पुनस्तमेव विषयमाह।।

फिर उसी विषय/को अगले मुन्त्र में कहा है॥

यदर्श्वस्य क्रविषो मिध्रुकाश् यद्भ्यस्वरो स्वधितौ रिप्तमस्ति।

यद्धस्तयोः शमितुर्यन्नखेषु मुर्वा तो अपि देवेष्वस्तु॥९॥

यत्। अर्श्वस्य। क्रविष:। मिश्लका। आश्री यत्। वा। स्वरौ। स्वऽर्धितौ। रिप्तम्। अस्ति। यत्। हस्तियो:। शृमितु:। यत्। नुखेषुं। सर्वा। ता। ते अपि। देवेषुं। अस्तु॥९॥

पदार्थ:-(यत्) (अश्वस्य) (क्रविष्ट) क्रमणशीलस्य। अत्र क्रमधातोरौणादिक इसिः प्रत्ययो वर्णव्यत्येन मस्य वः। (मिश्लका) मशित शब्दायते या सा (आश्र) अश्नाति (यत्) (वा) (स्वरौ) शब्दोपतापौ (स्वधितौ) स्वन धूनौ (रिप्तम्) लिप्तम् (अस्ति) (यत्) (हस्तयोः) (शिमतुः) यज्ञानुष्ठातुः (यत्) (नखेषु) न विद्यते खमाकाशं येषु तेषु (सर्वा) सर्वाणि (ता) तानि (ते) तव (अपि) (देवेषु) विद्वत्सु (अस्तु)।।१।

अर्थयः - हे विद्वन्! क्रविषोऽश्वस्य यद्रिप्तम्मक्षिकाश वा यद्या स्वधितौ स्वरौ स्तः शमितुर्हस्तयोर्यदस्ति यच्च नखेष्वस्ति ज्ञा सर्वो ते सन्त्वेतद्देवेष्वप्यस्तु॥९॥

भावार्थः-भृत्यैरश्वा दुर्गन्धलेपरहिताः शुद्धा मक्षिकादंशविरहा रक्षणीयाः। स्वहस्तेन रज्ज्वादिना सुनियम्य स्थेष्टङ्गमयितव्याः। एवं कृते सति तुरङ्गा दिव्यानि कार्याणि कुर्वन्ति॥९॥

पदार्थ:-हे विद्वान्! (क्रविष:) क्रमणशील अर्थात् चाल से पैर रखनेवाले (अश्वस्य) घोड़ा की (यत्) जिस (रिप्तम्) लिये हुए मल को (मिक्षका) शब्द करती अर्थात् भिनभिनाती हुई माखी (आश) खाती है (वा) अथवा (यत्) जो (स्वधितौ) आप धारण किये हुए (स्वरौ) हींसना और कष्ट सिक्लाना है (शिमतुः) यज्ञ का अनुष्ठान करनेवाले के (हस्तयोः) हाथों में (यत्) जो है और (यत् जो निखेषु) जिनमें आकाश नहीं विद्यमान है, उन नखों में (अस्ति) है (ता) वे (सर्वा) समस्त पद्धि (ते) तुम्हारे हों तथा यह सब (देवेषु) विद्वानों में (अपि) भी (अस्तु) हो॥९॥

भावार्थ:-भृत्यों को घोड़े दुर्गन्ध लेप रहित शुद्ध, माखी और डांश्चर से सहित रखने चाहिये। अपने हाथ तथा रज्जु आदि से उत्तम नियम कर अपने इच्छानुकूल चाल चलका चाहिये, ऐसे करने से घोड़े उत्तम काम करते हैं॥९॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।

यदूर्वध्यमुदरम्याप्वाति य आमस्यं क्रविषां गुन्धो अस्ति। सुकृता तच्छंमितारं: कृण्वन्तूत मेधं शृतुपाकं प्रमानाः १७॥८॥

यत्। ऊर्वध्यम्। उदरस्य। अपुऽवाति। यः। आमस्यो क्रुविषः। गुन्धः। अस्ति। सुऽकृता। तत्। शृ<u>पि</u>तारिः। कृण्वन्तु। उत। मेधम्। शृृतुऽपार्कम्। पुचन्तु॥ १०॥

पदार्थ:-(यत्) (ऊवध्यम्) विधतुं त्रिहितुमहिम्) (उदरस्य) (अपवाति) अपगतं वाति गच्छति (यः) (आमस्य) अपक्वस्य (क्रविषः) क्रिमितुं योग्यभ्याऽत्रस्य (गन्धः) (अस्ति) (सुकृता) सुष्ठु कृतानि निष्पादितानि (तत्) तानि (शिमतारः) संगतानस्य) निष्पादितारः (कृण्वन्तु) हिंसन्तु (उत्) (मेधम्) संगतम् (शृतपाकम्) शृश्चासौ पाकश्च तम्। प्रूनस्वत्मतिसंस्कारद्योतनार्थम्। (पचन्तु) परिपक्वं कुर्वन्तु॥१०॥

अन्वयः-हे विद्वांसः! शिमतारो भवन्तो य उदरस्योदरस्थस्यामस्य क्रविषो गन्धोऽपवाति यदूवध्यमस्ति वा तत्तानि कृण्वन्तु। उतापि मेधं शृतपूर्वे पचन्त्वेवं विश्वाय सुकृता भुञ्जताम्॥१०॥

भावार्थ:-ये मनुष्या उद्गुर्गगनिवारणाय सुसंस्कृतान्यन्नान्यौषधानि च भुञ्जते ते सुखिनो जायन्ते॥१०॥

पदार्थ: हे विद्वानी (शिमितार:) प्राप्त हुए अन्न को सिद्ध करने बनानेवाले आप (य:) जो (उदरस्य) उद्गर्भों ठेहरे हुए (आमस्य) कच्चे (क्रविष:) क्रम से निकलने योग्य अन्न का (गन्ध:) गन्ध (अपवाति) अपाने वायु के द्वारा जाता निकलता है वा (यत्) जो (ऊवध्यम्) ताड़ने के योग्य (अस्ति) है (तत्) उसको (कृण्वन्तु) काटो (उत) और (मेधम्) प्राप्त हुए (शृतपाकम्) परिपक्व पदार्थ को (पचन्तु) पका असे ऐसे उसे सिद्ध कर (सुकृता) सुन्दरता से बनाये हुए पदार्थों को खाओ॥१०॥

मण्डल-१। अनुवाक-२२। सूक्त-१६२

१६७७

भावार्थ:-जो मनुष्य उदररोग निवारने के लिये अच्छे बनाये अन्न और ओषधियों को खाते हैं, वे सुखी होते हैं॥१०॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यत्ते गात्रादुग्निना पुच्यमानादुभि शूलं निर्हतस्यावधाविति। मा तद्भम्यामा श्रिष्-मा तृणेषु देवेभ्यस्तदुशद्भयो रातमस्तु॥ ११॥

यत्। ते। गात्रात्। अग्निनां। पुच्यमानात्। अभि। शूर्लम्। निऽह्नंतस्य। अवऽधार्वति। मा। तेत्। भूम्याम्। आ। श्रिष्ठत्। मा। तृणेषु। देवेभ्यः। तत्। उ्शत्ऽभ्यः। गुतम्। अस्तु॥ ११॥

पदार्थ:-(यत्) शस्त्रम् (ते) तव (गात्रात्) हस्तात् (अग्निनो) क्रोधरूपण (पच्यमानात्) (अभि) अभिलक्ष्य (श्रूलम्) शूलिमव पीडाकरं शत्रुम् (निहतस्य) नितरां चलितस्य (अवधावित) निपतित (मा) (तत्) (भ्रूम्याम्) (आ) (श्रिषत्) शिलष्येत्। अत्राडभावो वर्ण्व्यत्ययेन ल्रस्य स्थाने रेफादेशश्च। (मा) (तृणेषु) तृणादिषु (देवेभ्यः) दिव्येभ्यः शत्रुभ्यः (तत्) (उप्रक्ष्यः) त्वृत्यदार्थान् कामयमानेभ्यः (रातम्) दत्तम् (अस्तु)॥११॥

अन्वयः-हे विद्वन्निहतस्य ते तवाग्निना पच्यमानाद्ध गात्रोद् यद्दिषशूलमवधावित तद्भूम्यां माऽऽश्रिषत् तत्तृणेषु माऽऽश्लिष्येत् किन्तूशद्भ्यो देवेभ्यो रातं स्यादत्तमस्तु॥१८॥

भावार्थ:-विद्वद्भिर्बलिष्ठै: संग्रामे शस्त्रचीलनावस्त्रे विचारेणैव शस्त्रं प्रक्षेपणीयं येन क्रोधान्निर्गतं शस्त्रं भूभ्यादौ न निपतेत्किन्तु शत्रुष्वेव कृत्विन्त्रिर स्याद्भित्॥११॥

पदार्थ:-हे विद्वान्! (निहतस्त्रा) निर्नार चलायमान हुए (ते) तुम्हारे (अग्निना) क्रोधाग्नि से (पच्यमानात्) तपाये हुए (गात्रात्) हाथ से (यत्) जो शस्त्र (अभि, शूलम्) लखके शूल के समान पीड़ाकारक शत्रु के सम्मुख (अव, धावति) चलाया जाता है (तत्) वह (भूम्याम्) भूमि में (मा, आ, श्रिषत्) न गिरे वा लगे और बह (तृणेषु) श्रासादि में (मा) मत आश्रित हो, किन्तु (उशद्ध्यः) आपके पदार्थों की चाहना करनेव्राले (देवेभ्याः) दिव्य गुणी शत्रु के लिये (रातम्) दिया (अस्तु) हो॥११॥

भावार्थ:-बलिष्ठ विद्वान्) मनुष्यों को चाहिये कि संग्राम में शस्त्र चलाने के समय विचारपूर्वक ही शस्त्र चलावें, जिस्से क्रोधपूर्वक चला शस्त्र भूमि आदि में न पड़े, किन्तु शत्रुओं को ही मारनेवाला हो॥११॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

वे बाजिनं परिपर्श्यन्ति पुक्वं य ईमाहुः सुर्भिर्निर्हरेति।

ये चार्वतो मांसभिक्षामुपासंत उतो तेषांमुभिगूर्तिर्न इन्वतु॥१२॥

ये। वाजिनम्। पुरिऽपर्श्यन्ति। पुक्वम्। ये। ईम्। आहुः। सुरुभिः। निः। हुर्। इति। ये। च्रा अर्वतः। मांसुऽभिक्षाम्। उपुऽआसते। उतो इति। तेषाम्। अभिऽगूर्तिः। नः। इन्वतु॥ १२॥

पदार्थ:-(ये) (वाजिनम्) बहुनि वाजा अन्नादीनि यस्मिन् तमाहारम् (परिपश्यन्ति) सूर्वतः प्रेक्षन्ते (पक्वम्) पाकेन सम्यक् संस्कृतम् (ये) (ईम्) जलम्। ईिमित उदकनामसु पिठ्रतम्। (निर्धे०१.१२) (आहु:) कथयन्ति (सुरभि:) सुगन्धः (नि:) (हरः) (इति) (ये) (च) (अर्वतः), प्राप्तस्य (मांस्प्रिक्षाम्) मांसस्य भिक्षामलाभम् (उपासते) (उतो) (तेषाम्) (अभिगृत्तिः) अभिगत उद्यमः (नः) अस्मान् (इन्वत्) व्याप्नोतु प्राप्नोतु॥१२॥

अन्वय:-ये वाजिनं पक्वं परिपश्यन्ति य ईं पक्वमाहु:। ये चार्वताः/मांसिभक्षामुर्वी उपासते तेषामभिगूर्त्तिः सुरभिश्च न इन्वतु। हे विद्वँस्त्विमिति रोगान्निर्हर॥१२॥

भावार्थ:-ये अत्रं जलं च शोधितुं पक्तुं भोक्तुं जान्मित् मांसं वर्जियत्वा भुञ्जते त उद्यमिनो जायन्ते॥१२॥

पदार्थ:-(ये) जो लोग (वाजिनम्) जिसमें बहुत् अन्नोदि) पदार्थ विद्यमान उस भोजन को (पक्वम्) पकाने से अच्छा बना हुआ (परिपश्यन्ति) सुब और से देखते हैं वा (ये) जो (ईम्) जल को पका (आहु:) कहते हैं (ये, च) और जो (अर्वत्रः) प्राप्त हुए प्राणी के (मांसभिक्षाम्) मांस के न प्राप्त होने को (उतो) तर्क-वितर्क से (उपासते) सूर्वित् करेले हैं (तेषाम्) उनका (अभिगूर्त्तिः) उद्यम और (सुरभि:) सुगन्ध (न:) हम लोगों को (इन्तु) व्यप्त वा प्राप्त हो। हे विद्वान्! तू (इति) इस प्रकार अर्थात् मांसादि अभक्ष्य के त्याग से रोगों को (निहुर) निरन्तर दूर कर॥१२॥

भावार्थ:-जो लोग अन्न और जेल की शुद्ध करना, पकाना, उसका भोजन करना जानते और मांस को छोड़ कर भोजन करते व उद्यमी होते हैं॥१२॥

पुन्रस्तेमेव विषयमाह॥

फिर इसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।। यत्नीक्षणं मांस्पर्यन्या अखाया या पात्राणि यूष्ण आसेर्चनानि।

ऊष्मुण्यापुधानां ह्यकुणामुङ्काः सूनाः परि भूषन्त्यश्चम्॥ १३॥

यत्। निर्ज्ञक्षेप्रम्। मांस्पर्चन्याः। उखार्याः। या। पात्राणि। यूष्णः। आऽसेचनानि। ऊष्मण्यां। अपिऽधानां। चुरूणाम्। ब्रुङ्काः। सूत्राः। परिं। भूषुन्ति। अर्थ्यम्॥ १३॥

पदार्थ:-(यत्) ये (नीक्षणम्) निरन्तरं च तदीक्षणं च नीक्षणाम् (मांस्पचन्या:) मांसानि पचन्ति स्मा अत्र मांसस्य पचयुड्घञोरित्यन्तलोपः। (उखायाः) पाकसाधिकायाः (या) यानि (पात्राणि) वृष्णः) रसस्य (**आसेचनानि**) समन्तात् सेचनाऽधिकरणानि (**ऊष्मण्या**) ऊष्मस् साधूनि (**अपिधाना**)

मण्डल-१। अनुवाक-२२। सूक्त-१६२

१६७९

अपिधानानि मुखाच्छादनानि (**चरूणाम्**) अन्नादिपचनाधाराणाम् (**अङ्काः)** लक्षणानि (**सूनाः**) प्रेरिताः (**परि) (भूषन्ति) (अश्वम्)** तुरङ्गम्॥१३॥

अन्वय:-यद्ये मांस्पचन्या उखाया नीक्षणं कुर्वन्ति तत्र वैमनस्यं कृत्वा या यूष्ण असिम्नतानि पात्राण्यूष्मण्याऽपिधाना चरूणामङ्काः सन्ति तान् सुष्ठु जानन्ति। अश्वं परिभूषन्ति च ते सूना जायन्ते॥१३००

भावार्थ:-ये मनुष्या मांसादिपचनदोषरिहतां पाकस्थालीं धर्तुं जलादिमासेचितुमिन्निं प्रज्वालियतुं पात्रैराच्छादितुं जानन्ति ते पाकविद्यायां कुशला भवन्ति। येऽश्वान् सुशिक्ष्य षरिभूष्य चालग्रन्ति ते सुखेनाध्वानं यान्ति॥१३॥

पदार्थ:-(यत्) जो (मांस्पचन्याः) मांसाहारी जिसमें मांस पकाते हैं, उस (उखायाः) पाक सिद्ध करनेवाली बटलोई का (नीक्षणम्) निरन्तर देखना करते, उसमें वैपनस्य कर (या) जो (यूष्णः) रस के (आसेचनानि) अच्छे प्रकार सेचन के आधार वा (पात्राणि) पात्र का (ऊष्मण्या) गरमपन उत्तम पदार्थ (अपिधाना) बटलोइयों के मुख ढापने की ढकनियां (चरूणाम्) अन्न आदि के पकाने के आधार बटलोई कड़ाही आदि वर्त्तनों के (अङ्काः) लक्षण हैं, उनको अच्छे जनते और (अश्वम्) घोड़े को (पिरभूषन्ति) सुशोभित करते हैं, वे (सूनाः) प्रत्येक काम में प्रेरित होते हैं। अर्थ

भावार्थ:-जो मनुष्य मांसादि के पकाने के द्रोष से एहिन बटलोई के धरने, जल आदि उस में छोड़ने, अग्नि को जलाने और उसको ढकनों से ढापनि की जलते हैं, वे पाकविद्या में कुशल होते हैं। जो घोड़ा को अच्छा सिखा उनको सुशोभित कर चलाति हैं, वे सुख से मार्ग को जाते हैं॥१३॥

पुनस्तमेव विष्यमाह॥

फिर उसी किया को अगिले मन्त्र में कहा है।।

निक्रमणं निषदेनं विवर्तनुं यस्य पड्केश्मर्वतः।

यच्च पुपौ यच्च घामि जुधास सूर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु॥ १४॥

निऽक्रमणम्। निऽषर्वनम्। विऽवर्तनम्। येत्। च। पड्वीशम्। अर्वतः। यत्। च। प्रपौ। यत्। च। घासिम्। जुघासं। सर्वा। ता। ते। अपि देतेषु। अस्ता। १४॥

पदार्थ:-(निक्रमणम्) मिश्चितं पादिवहरणम् (निषदनम्) निश्चितमासनम् (विवर्त्तनम्) विविधं वर्त्तनम् (यत्) (च्य्य) (पड्वीश्रम्) पादबन्धनमाच्छादनं वा (अर्वतः) शीघ्रं गन्तुरश्चस्य (यत्) (च्य) (पपौ) पिबित (यत्) (च्य) (शासम्) अदनम् (जघास) अति (सर्वा) सर्वाणि (ता) तानि (ते) तव (अपि) (देवेषु) (अर्प्तु)।।

अन्वयः-हे अश्वशिक्षक! अर्वतो यन्निक्रमणं निषदनं विवर्त्तनं पड्वीशं चास्ति। अयं यच्च पपौ यद् घासिं च जघार्य ता सर्वो ते सन्तु एतत्सर्वं देवेष्वप्यस्तु॥१४॥

भावार्थ:-यथा सुशिक्षिता अश्वाः सुशीला सुगतयो भवन्ति तथा विद्वच्छिक्षिता जनाः सभ्यो जायन्ते, यथाश्वा मितं पीत्वा भुक्त्वा जरयन्ति तथा विचक्षणा जना अपि स्यु:॥१४॥

पदार्थ:-हे घोड़े के सिखानेवाले! (अर्वत:) शीघ्र जानेवाले घोड़े का (यत्) जो (निक्रमणम्) निश्चित चलना, (निषदनम्) निश्चित बैठना, (विवर्त्तनम्) नाना प्रकार से चलाना-फिराना (पदवीशम्, च) और पिछाड़ी बांधना तथा उसको उढ़ाना है और यह घोड़ा (यत्, च) जो (पपौ) प्रीता (यत्, घासिम्, च) और जो घास को (जघास) खाता है (ता) वे (सर्वा) समस्त उक्त काम (ते) तुम्हारे हों और यह समस्त (देवेषु) विद्वानों में (अपि) भी (अस्तु) हो॥१४॥

भावार्थ:-जैसे सुन्दर सिखाये हुए घोड़े सुशील अच्छी चाल चलनेत्रले होते हैं, वैसे विद्वानों की शिक्षा पाये हुए जन सभ्य होते हैं। जैसे घोड़े आहार, भर पी खा के प्रचार हैं, वैसे विचक्षण बुद्धि विद्या से तीव्र पुरुष भी हों॥१४॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।

मा त्वाऽग्निध्वीनयीद् धूमगिस्धिमीखा भ्राजन्त्याभि क्रिक्त अप्टिः।

इष्टं वीतम्भिगूर्तं वर्षट्कृतं तं देवासः प्रति गृश्णुन्यश्चम्॥१५॥९॥

मा। त्वा। अग्निः। ध्वनयीत्। धूमऽर्गन्धिः। प्रा उखा। प्रार्जन्ती। अभि। विक्ता जिघेः। इष्टम्। वीतम्। अभिऽर्गूर्तम्। वर्षट्ऽकृतम्। तम्। देवासंः। प्रति। गृभ्यन्ति। अश्वेम्।१५॥

पदार्थ:-(मा) (त्वा) त्वाम् (अलि:) पावके. (ध्वनयीत्) ध्वनयेत् शब्दयेत् (धूमगिन्धः) धूमे गिन्धिर्गन्धो यस्य सः (मा) (उखा) पाकस्थाली (भ्राजन्ती) प्रकाशमाना (अभि) (विक्त) विञ्ज्यात् पृथक्कुर्यात् (जिघ्नः) जिघ्नन्ती (इष्ट्रम्) येन इज्यते तम् (वीतम्) व्याप्तिशीलम् (अभिगूर्त्तम्) अभित उद्यमिनम् (वषट्कृतम्) क्रियया जिष्पादितम् (तम्) (देवासः) विद्वांसः (प्रति) (गृभ्णन्ति) ग्राहयन्ति। अत्र णिज्लोपः। (अश्वम्) अश्ववत् स्रोष्ट्रं गमयितारम् ॥१५॥

अन्वयः-हे विद्वन् यमिष्टं भूषट्कृतं वीतमभिगूर्त्तमश्चं देवासस्त्वा प्रतिगृभ्णन्ति, तं त्वं गृहाण, स धूमगन्धिरग्निम् ध्वनयीत् भ्राजन्त्युखा जिघ्नमाभिविक्त॥१५॥

भावार्थः रूपे मनुष्या अग्निनाऽश्वेन वा यानानि गमयन्ति, ते श्रिया भ्राजन्ते येऽग्नौ सुगन्ध्यादिकं द्रव्यं जुह्वति ते रोगात्त्राब्दैर्न पीडयन्ते॥१५॥

प्रदर्श: - विद्वान्! जिस (इष्टम्) इष्ट अर्थात् जिससे यज्ञ वा सङ्ग किया जाता (वषट्कृतम्) जो क्रिया से सिद्ध किये हुए (वीतम्) व्याप्त होनेवाले (अभिगूर्तम्) सब ओर से उद्यमी (अश्वम्) घोड़े के समान श्रीष्ट्र पहुँचानेवाले बिजुलीरूप अग्नि को (देवासः) विद्वान् जन (त्वा) तुम्हें (प्रति, गृभ्णन्ति) प्रतिति से ग्रहण कराते हैं (तम्) उसको तुम ग्रहण करो, सो (धूमगन्धिः) धूम में गन्ध रखनेवाला

मण्डल-१। अनुवाक-२२। सूक्त-१६२

१६८१

(अग्नि:) अग्नि (मा, ध्वनयीत्) मत ध्विन दे, मत बहुत शब्द दे और (भ्राजन्ती) प्रकाशमान (उखा) अन्न पकाने को बटलोई (जिघ्नि:) अन्न गन्ध लेती हुई अर्थात् जिसके भीतर से भाफ उठ लौट के उसी में जाती वह (मा, अभि, विक्त) मत अन्न को अपने में से सब और अलग करे, उगले॥१५॥

भावार्थ:-जो मनुष्य अग्नि वा घोड़े से रथों को चलाते हैं, वे लक्ष्मी से प्रकाशमान होते हैं।जो अग्नि में सुगन्धि आदि पदार्थों को होमते हैं, वे रोग और कष्ट के शब्दों से पीड्यमान वहीं होते हैं॥१५॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यदश्चीय वासे उपस्तृणन्त्येधीवासं या हिर्गण्यान्यस्मै। सुंदानुमर्वन्तुं पड्वीशं प्रिया देवेष्वा यामयन्ति॥ १६॥

यत्। अश्वायः। वासः। उपस्तृणन्ति। अर्धोवासम्। या। हिर्रण्यान्। अर्स्मे। सुम्ऽदानंम्। अर्वन्तम्। पड्वीशम्। प्रिया। देवेषुं। आ। यामयन्ति॥ १६॥

पदार्थ:-(यत्) (अश्वाय) अग्नये (वासः) आच्छाद्रनम् (उपस्तूर्णन्ति) (अधीवासम्) अधि उपरि वास आच्छादने यस्य तम् (या) यानि (हिरण्यानि) ज्यातिर्मियानि (अस्मै) (संदानम्) समीचीनं दानं यस्मात्तम् (अर्वन्तम्) गमयन्तम् (पड्वीशम्) प्राप्ताना पदार्थानं विभाजकम् (प्रिया) प्रियाणि कमनीयानि (देवेषु) विद्वत्सु (आ) (यामयन्ति)॥१६॥

अन्वय:-ये विद्वांसोऽस्मा अश्वाय यद्वास उपस्तूणित्त यम्भीवांसं संदानमर्वन्तं पड्वीशमुपस्तृणिन्त तेन या प्रिया हिरण्यानि देवेष्वा यामयन्ति ते तानि प्राप्य श्रीमन्त्रे भव्नेन्ति॥ १६/॥

भावार्थ:-यदि मनुष्या विद्युदाहिस्क्रिष्मिग्निमुपयोक्तुं वर्द्धयितुं जानीयुस्तर्हि बहूनि सुखान्याप्नुयु:॥१६॥

पदार्थ:-जो विद्वान् जन (अस्मे) इस (अश्वाय) घोड़े के लिये (यत्) जिस (वासः) ओढ़ने के वस्त्र को (उपस्तृणन्ति) उठाते वा जिस (अश्वीवासम्) ऐसे चारजामा आदि को कि जिस के ऊपर ढाँपने का वस्त्र पड़ता वा (संलन्म) समीव्यीन जिससे दान बनता, उस यज्ञ आदि को (अर्वन्तम्) प्राप्त करते हुए (पड्वीशम्) प्राप्त पदार्थ को बांटने छिन्न-भिन्न करनेहारे अग्नि को उठाते ढाँपते कलाघरों में लगाते हैं और उससे (यूत्) जिन (प्रया) प्रिय मनोहर (हरण्यानि) प्रकाशमय पदार्थों को (देवेषु) विद्वानों में (आ, यामयन्ति) विस्तारते हैं, वे उन पदार्थों को पाकर श्रीमान् होते हैं॥१६॥

भूतार्थ: जो मनुष्य बिजुली आदि रूपवाले अग्नि के उपयोग करने और उसको बढ़ाने को जानें तो बहुत सुखों को प्राप्त हों॥१६॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

यत्ते सादे महसा शूकृतस्य पाष्पर्या वा कश्रीया वा तुतोदे। सुचेव ता हुविषों अध्वरेषु सर्वा ता ते ब्रह्मणा सूदयामि॥१७॥

यत्। ते। सादे। महंसा। शूकृतस्य। पाष्प्यां। वा। कशंया। वा। तुतोदं। स्रुचाऽईव। ता। हुविषः। सर्वा। ता। ते। ब्रह्मणा। सूद्रयामि॥१७॥

पदार्थ:-(यत्) यः (ते) तव (सादे) स्थितौ (महसा) महता (श्रूकृतस्यू) शौघ्रं निष्पादितस्य (पाष्पर्या) स्पर्शकारकेन (वा) (कशया) प्रेरकया (वा) (तुतोद) तुद्यात् प्रेरयेत् (सुचेव) (ता) तानि (हविषः) होतव्यस्य (अध्वरेषु) अहिंसनीयेषु यज्ञेषु (सर्वा) सर्वाणि (ता) तानि (ते) तच (ब्रह्मणा) धनेन (सूदयामि) क्षरयामि॥१७॥

अन्वय:-हे विद्वन्! यद्यस्ते सादे महसा बलेन शूकृतस्य पाष्पर्या वा क्रिश्रयाऽश्वं तृतोद्दे वाऽध्वरेषु हविष: स्रुचेव ता तानि तुतोद ता सर्वा ते ब्रह्मणाऽहं सूदयामि॥१७॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। यथा विद्वांस: कशया वेद्रोणाश्चं प्रतोद्रेन वृषभान् अंकुशेन हस्तिनं प्रताड्य सद्यो गमयन्ति, तथैव कलायन्त्रैरग्निं प्रचाल्य विमान्निद्यानिनि श्रीघ्रं गमयेयु:॥१७॥

पदार्थ:-हे विद्वान्! (यत्) जो (ते) तेरे (सार्द्र) स्थित होंने में (महसा) अत्यन्त बल से (शूकृतस्य) शीघ्र उत्पन्न किये हुए पदार्थों के (पाण्या) छूनेवाल पदार्थ से (वा) वा (कशया) जिससे प्रेरणा दी जाती, उस कोड़ा से घोड़े को (तृतोद) प्रिणा देवे (वा) वा (अध्वरेषु) न नष्ट करने योग्य यज्ञों में (हिवष:) होमने योग्य वस्तु के (सुचेव) जैसे खुचा से काम बनें वैसे (ता) उन कामों को प्रेरणा देवे (ता) उन (सर्वा) सब (ते) तेरे कामों को (ब्रह्मपूर्ण) धन से मैं (सूदयािम) अलग-अलग करता हूँ॥१७॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालक्कार है। जैसे विद्वान् जन कोड़ा वा बेंत से घोड़े को, पनेड़ी से बैलों को, अंकुश से हाथी को कच्छी ताड़ना दे उनको शीघ्र चलाते हैं, वैसे ही कलायन्त्रों से अग्नि को अच्छे प्रकार चला कर विमान आदि यानों को शीघ्र चलावें॥१७॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

प्रिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

चतुस्त्रिंश्रद्भाजिनो देवबन्धोर्वड्क्रीरश्चस्य स्वधितिः समैति।

अच्छिद्भा मात्रा वयुनां कृणोत् पर्रुष्परुरनुघुष्या वि शस्ता। १८॥

बर्नुःऽत्रिशत्। वाजिनः। देवऽबंस्थाः। वङ्क्रीः। अश्वस्य। स्वऽधितिः। सम्। एति। अच्छिद्रा। गात्रां। वयुनां। कृणोुनु। पर्सःऽपरुः। अनुऽघुष्यं। वि। शृस्तु॥१८॥

मण्डल-१। अनुवाक-२२। सूक्त-१६२

१६८३

पदार्थ:-(चतुस्त्रिंशत्) एतत्संख्याकाः (वाजिनः) वेगगुणवतो जलादयः (देवबर्खाः) प्रकाशमानानां पृथिव्यादीनां संबन्धिनः (वड्क्रीः) कुटिला गतीः (अश्वस्य) शीघ्रगामिनोऽग्नेः (स्वधितिः) विद्युत् (सम्) (एति) गच्छति (अच्छिद्रा) द्विधाभावरिहतानि (गात्रा) गात्राण्यङ्गानि (वयुनाः) प्रकानि कर्माणि वा (कृणोत) कुरुत (परुष्परः) प्रति मर्म (अनुघुष्य) आनुकूल्येन शब्दियत्वा। अत्रान्येषामप्रति दीर्घः। (वि) (शस्त) ताडयत हिंस्त॥१८॥

अन्वयः-हे विद्वांसो! यूयं देवबन्धोर्वाजिनोऽश्वस्य या स्वधितिः समेति तां चतुरित्रंशद्वङ्क्रीश्च)विशस्त परुष्परुग्नुघुष्याऽच्छिद्रा गात्रा वयुना कृणोत॥१८॥

भावार्थ:-हे मनुष्या! यस्मात्कारणाद्विद्युदुत्पद्यते तत्सर्वेषु पृथिव्यादिषु व्याप्तमस्ति अतस्तिङत्ताङनादिना कस्यचिदङ्गभङ्गो न भवेत् तावतां प्रयुज्जीक्ष्वं यद्यगिनगुणान् विदित्वा क्रियया संप्रयुज्जते, तर्हि किं कार्यमसाध्यं स्यात्॥१८॥

पदार्थ:-हे विद्वान् जन! तुम (देवबन्धोः) प्रकाशमान् मृथिव्यादिकों के सम्बन्धी (वाजिनः) वेगवाले (अश्वस्य) शीघ्रगामी अग्नि की जो (स्वधितिः) बिजुली (समेति) अच्छे प्रकार जाती है उसको और (चतुस्त्रिंशत्) चौंतीस प्रकार की (वड्क्रीः) टेढ़ी-मेही प्रतियों को (वि, शस्त) तड़काओ अर्थात् कलों को ताड़ना दे, उन गतियों को निकालो। तथा (प्रश्चप्रः) प्रत्येक मर्मस्थल पर (अनुघुष्य) अनुकूलता से कलायन्त्रों का शब्द करा कर (अच्छिद्रा) दो हुंक होने छिन्न-भिन्न होने से रहित (गात्रा) अङ्ग और (वयुना) उत्तम ज्ञान कर्मों को (कृणोत्रा) करेंग्री १५०॥

भावार्थ:-हे मनुष्यो! जिस कारण से बिजुली कृत्पन्न होती है, वह कारण सब पृथिव्यादिकों में व्याप्त है। इससे बिजुली की ताड़ना आदि से किसी की अङ्ग-भङ्ग न हो, उतनी बिजुली काम में लाओ। जो अग्नि के गुणों को जानकर यथार्थी य क्रिया से उस अग्नि का प्रयोग किया जाय तो कौन काम न सिद्ध होने योग्य हों अर्थात् सभी र्थिष्ट काम बनें॥१८॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

एकस्त्वष्टुरश्चरिया विश्वास्त्री द्वा यन्तारा भवतस्तर्थ ऋतुः।

या ते गात्राणामृतुथा कृणोमि ताता पिण्डानां प्र जुहोम्यग्नौ॥१९॥

एकः। त्वष्टुः। अश्वस्य। विऽश्वस्ता। द्वा। यन्तारा। भुवतः। तथा। ऋतुः। या। ते। गात्राणाम्। ऋतुऽथा। कृणोमि। ताःरता। षिएडोनाम्। प्रा जुहोम्। अग्नौ॥१९॥

पदार्थ:-(एक:) (त्वष्टु:) विद्युत: (अश्वस्य) व्याप्तस्य। अत्राऽन्येषामपीति दीर्घ:। (विशस्ता) (द्वा) द्वी (युतारा) नियन्तारौ (भवत:) (तथा) तेन प्रकारेण (ऋतु:) वसन्तादि: (या) यानि (ते) तव

(गात्राणाम्) अङ्गानाम् (ऋतुथा) ऋतौ ऋतौ। अत्र वाच्छन्दसीति थाल्। (कृणोमि) (ताता) तानि तीनि (पिण्डानाम्) (प्र) (जुहोमि) क्षिपामि (अग्नौ) वह्नौ॥१९॥

अन्वय:-हे विद्वँस्ते तव विद्याक्रियाभ्यां सिद्धस्य त्वष्टुरश्वस्याग्नेरेक ऋतुर्विशस्ता द्वा यन्तारा भवतस्त्रशायाः यात्राणामृतुथा कर्माणि पिण्डानां च येऽवयवास्ताता प्रयुक्तान्यहं कृणोम्यग्नौ प्रजुहोमि॥१९॥

भावार्थ:-ये सर्वपदार्थविच्छेदकस्य यथर्तुप्राप्तपदार्थेषु व्याप्तस्य वहेः कालूस्ष्टिक्रमी नियन्तारौ प्रशंसितान् गुणान् विज्ञायाऽभीष्टानि कार्याणि साध्नुवन्तः स्थूलानि काष्टादीनि किके प्रक्षिप्य बहूनि कार्याणि साध्नुयुस्ते शिल्पविद्याविदः कुतो न स्युः ?॥१९॥

पदार्थ:-हे विद्वान्! (ते) तेरी विद्या और क्रिया से सिद्ध क्रिसे हुए (त्वष्टुः) बिजुलीरूप (अश्वस्य) व्याप्त अग्नि का (एकः) एक (ऋतुः) वसन्तादि ऋतु (विश्नस्ता) छिन्न-भिन्न करनेवाला अर्थात् भिन्न-भिन्न पदार्थों में लगनेवाला और (द्वा) दो (यन्तारा) उसको नियम में रखनेवाले (भवतः) होते हैं (तथा) उसी प्रकार से (या) जो (गात्राणाम्) शरीरों के (ऋतुथा) ऋतु-ऋतु में काम उनको और (पिण्डानाम्) अनेक पदार्थों में सङ्घातों के जो-जो अङ्ग हैं (ताता) उन-उन का काम में प्रयोग मैं (कृणोमि) करता हूँ और (अग्नौ) अग्नि में (प्र, जुहोमि) हिम्मि हूँ॥ ११॥

भावार्थ:- जो सब पदार्थों के छिन्न-भिन्न करनवालें, खितु के अनुकूल पाये हुए पदार्थों में व्याप्त, बिजुलीरूप अग्नि के काल और सृष्टिक्रम नियम कर्णवालों और प्रशंसित गुणों को जान अभीष्ट कामों को सिद्ध करते हुए मोटे-मोटे लक्कड़ आदि पद्मार्थी को अग्न में छोड़ बहुत कामों को सिद्ध करें, वे शिल्पविद्या को जाननेवाले कैसे न हों ?॥१९॥

पुन तिमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

मा त्वां तपत्प्रिय आत्माप्यन्तं मा स्वधितिस्तुन्वर् आ तिष्ठिपत्ते।

मा ते गृध्नुरविश्सत्रातिहार्य छिद्रा गात्राण्यसिना मिथू कः॥२०॥

मा। त्वा। तुपत्। क्रियः। आत्मा। अपिऽयन्तम्। मा। स्वऽधितिः। तुन्वः। आ। तिस्थिपत्। ते। मा। ते। गृध्नुः। अविऽशस्ता। अतिऽहार्य। छिद्रा। गात्रीणि। असिनां। मिथूं। कृरितिं कः॥२०॥

पदार्थ:-(मा) (त्वा) त्वाम् (तपत्) तपेत् (प्रियः) कमनीयः (आत्मा) (अपियन्तम्) म्रियमाणम् (मा) (स्विधितिः) वस्रविद्विद्युत् (तन्वः) शरीराणि (आ) (तिष्ठिपत्) स्थापयेत् (ते) तव (मा) (ते) तव (गृध्नुः) अभिकाक्षिता (अविशस्ता) अविहिंसितानि (अतिहाय) अतिशयेन त्यक्त्वा (छिद्रा) छिद्राणि (गात्राणिः) अङ्गानि (असिना) खड्गेन (मिथू) परस्परम् (कः) कुर्यात्। अत्राडभावो मन्त्रे घस० (अष्ट्रा०२ ४८०) इत्यादिना च्लेर्लुक् च॥२०॥

मण्डल-१। अनुवाक-२२। सूक्त-१६२

१६८५

अन्वयः-हे विद्वँस्ते तव प्रिय आत्मा अपियन्तं त्वा मा तपत् स्वधितिस्ते तन्वो मातिष्ठिपत् गृध्नुरसिना तेऽविशस्ताच्छिद्रा गात्राण्यतिहाय मिथू मा कः॥२०॥

भावार्थ:-ये मनुष्या योगाभ्यासं कुर्वन्ति ते मृत्युना न पीड्यन्ते, जीने रोगाश्च न दुःख्यस्ति। २०४)

पदार्थ:-हे विद्वान्! (ते) तेरा (प्रिय:) मनोहर (आत्मा) आत्मा (अपियन्तम्) मर्पते हुए (त्वा) तुझे (मा, तपत्) मत कष्ट देवे और (स्वधिति:) वज्र के समान बिजुली तेरे (तन्व:) प्ररीरों को (मा, आ, तिष्ठिपत्) मत ढेर करे तथा (गृध्नु:) अभिकाङ्क्षा करनेवाला प्राणी (असिना) तलवार से (ते) तेरे (अविशस्ता) न मारे हुए अर्थात् निर्घायल और (छिद्रा) छिद्र इन्द्रिय सिह्त (मान्नाणि) अङ्गों को (अतिहाय) अतीव छोड़ (मिथ्र) परस्पर एकता (मा, कः) मत करे॥२०॥

भावार्थ:-जो मनुष्य योगाभ्यास करते हैं, वे मृत्यु रोग से नहीं प्रीड़ित होते और उनको जीवन में रोग भी दु:खी नहीं करते हैं॥२०॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

न वा उ एतिन्प्रियसे न रिष्यसि देवाँ इदेषि प्रथितिः सुगेभिः। हरी ते युञ्जा पृषंती अभूतामुपांस्थाद्वाजी धुरि रासभस्य॥२१॥

न। वै। ऊम् इति। एतत्। म्रियसे। न। रिष्युमि। देवान्। इत्। एषि। पृथिऽभिः। सुऽगेभिः। हरी इति। ते। युञ्जां। पृषती इति। अभूताम्। उपं। अस्थात्। वाजी। सुरि। रासभाया। २१॥

पदार्थ:-(न) (वै) निश्चये (उ) वितर्के (एत्रम्) चेतनस्वरूपम् (प्रियसे) (न) (रिष्यसि) हंसि (देवान्) विदुषो दिव्यान् पदार्थान् वार् (इत्) एवं (एषि) प्राप्नोषि (पथिभिः) मार्गैः (सुगेभिः) सुखेन गच्छन्ति येषु तैः (हरी) धारणाकर्षणपुणौ (ते) तव (युझा) युझानौ (पृषती) सेक्तारौ जलगुणौ (अभूताम्) भवतः (उप) अस्थात्) तिष्ठेत् (वाजी) वेगः (धुरि) धारके (रासभस्य) शब्दायमानस्य॥२१॥

अन्वय:-हे विद्वन् यहि औ ते प्रन आत्मा वा युञ्जा हरी पृषती अभूतां यस्तावुपास्थात्। रासभस्य धुरि वाजीव भवेस्तर्हि एतत्स्वरूपं प्राप्य न वे प्रियम् न उ रिष्यसि सुगेभि: पथिभिरिदेव देवानेषि॥ २१॥

भावार्थः रूऐ योगाध्यासेन समाहितात्मानो दिव्यान् योगिनः सङ्गस्य धर्म्यमार्गेण गच्छन्तः परमात्मिन स्वार्त्स्यानं सुञ्जते, ते प्राप्तमोक्षा जायन्ते॥२१॥

पदार्थ:-हे विद्वान्! यदि जो (ते) तुम्हारे मन वा आत्मा यथायोग्य करने में (युञ्जा) युक्त (हरी) श्रीरण और आकर्षण गुणवाले (पृषती) वा सींचनेवाले जल का गुण रखते हुए (अभूताम्) होते हैं, उनका जो (उपास्थात्) उपस्थान करे वा (रासभस्य) शब्द करते हुए रथ आदि की (धुरी) धुरी में विजी) हैंग तुल्य हो तो (एतत्) इस उक्त रूप को पाकर (न, वै, प्रियसे) नहीं मरते (न, उ) अथवा

तो न (रिष्यिस) किसी को मारते हो और (सुगेभि:) सुखपूर्वक जिनसे जाते हैं, उन (पिथिभि:) मार्गों से (इत्) ही (देवान्) विद्वानों वा दिव्य पदार्थों को (एषि) प्राप्त होते हो॥२१॥

भावार्थ:-जो योगाभ्यास से समाहित चित्त दिव्य योगी जनों को अच्छे प्रकार प्राप्त है धार्म युक्त मार्ग से चलते हुए परमात्मा से अपने आत्मा को युक्त करते हैं, वे मोक्ष पाये हुए होते हैं १९१।

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

सुगव्यं नो वाजी स्वश्व्यं पुंस: पुत्राँ उत विश्वापुषं रुयिम्।

अनागास्त्वं नो अदिति: कृणोतु क्षुत्रं नो अश्वी वनतां हुविष्माना १ માજુરા

सुऽगर्व्यम्। नुः। वाजी। सुऽअश्र्व्यम्। पुंसः। पुत्रान्। उत। विश्वर्यपूर्षम्। रिविम्। अनागाःऽत्वम्। नुः। अदितिः। कृणोतु। क्षुत्रम्। नुः। अश्वरः। वनुताम्। हृविष्मान्॥२२॥

पदार्थ:-(सुगव्यम्) सुष्ठु गोषु भवानि यस्मिंस्तत् (नः) अस्मोकम् (वाजी) वेगवान् (स्वश्व्यम्) शोभनेष्वश्चेषु भवम् (पुंसः) (पुत्रान्) (उत) (विश्वापुषम्) सर्वपृष्टिप्रदेम् (रियम्) श्रियम् (अनागास्त्वम्) निष्पापस्य भावम् (नः) अस्माकम् (अदितिः) अखिष्ठतः (कृष्णोतुं) करोतु (क्षत्रम्) राज्यम् (नः) अस्मान् (अश्वः) व्याप्तिशीलोऽग्निः (वनताम्) सेवताम् (हविष्मान्) संबद्धानि हवीषि यस्मिन् सः॥२२॥

अन्वय:-यथाऽयं वाजी न: सुगव्यं स्वश्व्यं पुंसः पुत्रानुतापि विश्वापुषं रियं कृणोतु सोऽदितिर्नोऽनागास्त्वं क्षत्रं कृणोतु स हविष्मानश्चो नो वनतां तथा वयमेनं साध्नुयाम्। २२११

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। भे पृथ्वित्र्यादिविद्यया गवामश्वानां पुसां पुत्राणां च पूर्णां पृष्टिं श्रियं च कृत्वाऽश्वाग्निविद्यया राज्ये कर्द्धित्वा निष्पापा भूत्वा सुखिनः स्युस्तेऽन्यानप्येवं कुर्युरिति॥२२॥

अत्राश्वाग्निवद्याप्रतिपादनादेतत्स्वेतार्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेद्यम्॥

इति द्विषष्ट्युचेरं शततमं १६२ सूक्तं दशमो १० वर्गश्च समाप्त:॥

पदार्थ:-जैसे यह (कार्जी) वेगवान् अग्नि (नः) हमारे (सुगव्यम्) सुन्दर गौओं में हुए पदार्थ जिसमें हैं, उसको (स्वश्र्यम्) सुन्दर घोड़ों में उत्पन्न हुए को (पुंसः) पुरुषत्ववाले (पुत्रान्) पुत्रों (उत) और (विश्वापुषम्) सब को पुष्टि देनेवाले (रियम्) धन को (कृणोतु) करे सो (अदितिः) अखण्डित न नाश को प्राप्त हुआ (नः) हमको (अनागास्त्वम्) पापपने से रहित (क्षत्रम्) राज्य को प्राप्त करे सो (हिविष्मान्) मिले हैं होम थोग्य पदार्थ जिसमें वह (अश्वः) व्याप्तिशील अग्नि (नः) हम लोगों को (वनताम्) से के, तैसे हम लोग इसको सिद्ध करें॥२२॥

भावार्थ: इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो पृथिवी आदि की विद्या से गौ, घोड़े और पुरुष सन्तानों की पूरी पृष्टि और धन को संचित करके शीघ्रगामी अश्वरूप अग्नि की विद्या से राज्य को बढ़ा के निष्पाप हो के सुखी हों वे औरों को भी ऐसे ही करें॥२२॥

मण्डल-१। अनुवाक-२२। सूक्त-१६२

१६८७

इस सूक्त में अश्वरूप अग्नि की विद्या का प्रतिपादन करने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है, यह जानना चाहिये॥

यह एक सौ बासठवां १६२ सूक्त और दशवां १० वर्ग समाप्त हुआ॥

यदक्रन्द इति त्रयोदशर्चस्य त्रिषष्ट्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य दीर्घतमा ऋषि:। अश्वोऽग्निर्देवता १,६,७,१३ त्रिष्टुप्। २ भुरिक् त्रिष्टुप्। ३,८ विराट् त्रिष्टुप्। ५,९,११ निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः।

धैवत: स्वर:। ४,१०,१२ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्द:। पञ्चम: स्वर:॥

अथ विद्वदग्निगुणानाह।।

अब एक सौ तिरेसठवें सूक्त का आरम्भ है । उसके आदि से विद्वान् और बिजुली के गुणों को कहते हैं।।

यदक्रन्दः प्रथमं जायमान उद्यन्त्रम्मुद्रादुत वा पुरीषात्।

श्येनस्य पक्षा हेरिणस्य बाहू उपस्तुत्यं महि जातं ते अर्वन्॥ 📶

यत्। अक्रन्दः। प्रथमम्। जार्यमानः। उत्ऽयन्। सुमुद्रात्। उत्। वा। पुरीषात्। श्रीनस्या पक्षा। हृरिणस्य। बाहू इति। उपुरस्तुत्यम्। मिहं। जातम्। ते। अर्वुन्॥ १॥

पदार्थ:-(यत्) यस्मात् कारणात् (अक्रन्दः) शब्दार्यसे (प्रथमम्) आदिमम् (जायमानः) उत्पद्यमानः (उद्यन्) उदयं प्राप्नुवन् (समुद्रात्) अन्तरिक्षात् (उत्त) अपि (वा) पक्षान्तरे (पुरीषात्) पूर्णात्कारणात् (श्येनस्य) (पक्षा) पक्षौ (हरिणस्य) (बाह्र) बाधकौ भुजौ (उपस्तुत्यम्) उपस्तोतुमर्हम् (मिह्र) महत् (जातम्) उत्पन्नम् (ते) तव (अर्वन्) विद्यान्वन् ॥ १॥

अन्वयः-हे अर्वन्! यत् त्वं समुद्रादुतापि वा पूर्योषदुद्यन्निवे जायमानः प्रथममक्रन्दः। यस्य ते श्येनस्य पक्षेव हरिणस्य बाहू इव उपस्तुत्यं महि जातं कर्माङ्गमग्निरस्ति स् सर्वैः सुन्कर्त्तव्यः॥१॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालुङ्कारः। ये धर्म्येण ब्रह्मचर्येण विद्या अधीयते, ते सूर्यवत् प्रकाशमानाः श्येनवद्वेगवन्तो मृगवदुत्प्लुवमानाः प्रश्लांसिता भवन्ति॥१॥

पदार्थ: - हे (अर्वन्) विज्ञानवान् विद्वन्! (यत्) जिस कारण तू (समुद्रात्) अन्तरिक्ष से (उत्) भी (वा) वा (पुरीषात्) पूर्ण कारण से (उद्यम्) उदय को प्राप्त होते हुए सूर्य के तुल्य (जायमानः) उत्पन्न होता (प्रथमम्) पहिले (अक्रह्रः) शब्द करता है, जिस (ते) तेरा (श्येनस्य) वाज के (पक्षा) पङ्खों के समान (हरिणस्य) हरिण के (बाहू) बाधा करनेवाली भुजा के तुल्य (उपस्तुत्यम्) समीप से प्रशंसा के योग्य (मिह, जातम्) बड़ा उपन्न हुआ काम साधक अग्नि है, सो सबको सत्कार करने योग्य है॥१॥

भावार्थ: इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो धर्मयुक्त ब्रह्मचर्य से विद्याओं को पढ़ते हैं, वे सूर्य के समान प्रकाशमान, वाज के समान वेगवान् और हिरण के समान कूदते हुए प्रशंसित होते हैं॥१॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अपेन दुत्तं त्रित एनमायुनुगिन्द्रं एणं प्रथमो अर्ध्यतिष्ठत्।

मण्डल-१। अनुवाक-२२। सूक्त-१६३

१६८९

गुन्धुर्वो अस्य रशुनामंगृभ्णात् सूरादश्चं वसवो निरंतष्ट॥२॥

यमेर्न। दुत्तम्। त्रितः। एनम्। अयुनक्। इन्द्रीः। एनम्। प्रथमः। अधि। अतिष्ठत्। गुन्धर्वः। अस्या स्थानाम्। अगृभ्णात्। सूर्रात्। अर्थम्। वसवः। निः। अतुष्टु॥२॥

पदार्थ:-(यमेन) नियामकेन (दत्तम्) (त्रितः) संप्लावकः। अत्रौणादिकस्तृधातोः किस्च् प्रत्ययः। (एनम्) पूर्वोक्तमुपस्तुत्यम् (आयुनक्) शिल्पकार्ये नियुञ्जीत (इन्द्रः) विद्युत् (एनम्) अत्र वा छन्दसीत्यप्राप्तं णत्वम्। (प्रथमः) प्रख्यातिमान् (अधि) (अतिष्ठत्) तिष्ठेत् (गन्धर्वः) यो गां पृथित्री धरित स वायुः (अस्य) (रशनाम्) स्नेहिकां क्रियाम् (अगृभ्णात्) गृह्णीयात् (सूरात्) सूर्योत् (अश्वम्) आशु गमियतारम् (वसवः) चतुर्विंशतिवार्षिकब्रह्मचर्येण कृतविद्याः (निः) (अतष्ट्र) त्रक्षरम्॥२॥

अन्वय:-हे वसवो! यूयं यं यमेन दत्तमेनं त्रित इन्द्रोऽयुनक् प्रथम प्रमाध्यतिष्ठह्र प्रभावीऽस्य रशनां सूराद्यमश्च चागृभ्णात्तं निरतष्ट॥२॥

भावार्थ:-ये मनुष्या विद्वदुपदेशप्राप्तां तां विद्यां गृहीत्व विद्युज्ञानितकारणाद्विस्तृतं वायुना धृतं सूर्योद्भावितमाशुगामिनमग्निं प्रयोजयन्ति, ते दारिद्रचच्छेत्तारो जायन्ते। १॥

पदार्थ:-हे (वसव:) चौबीस वर्ष ब्रह्मचर्य के सेवन से विद्यों को प्राप्त हुए सज्जनो! तुम जिस (यमेन) नियमकर्ता वायु से (दत्तम्) दिये हुए (एनम्) इस पूर्वेक्ति प्रशंसित अग्नि को (त्रित:) अनेकों पदार्थ वा अनेकों व्यवहारों को तरनेवाला (इन्द्र:) विजुलीरूप अग्नि (आयुनक्) शिल्प कामों में नियुक्त करे (प्रथम:) वा प्रख्यातिमान् पुरुष (एनम्) इस उक्त प्रश्नासत अग्नि का (अध्यतिष्ठत्) अधिष्ठाता हो वा (गन्धर्व:) पृथिवी को धारण करनेवाला व्ययु (अस्य) इसकी (रशनाम्) स्नेह क्रिया को और (सूरात्) सूर्य से (अश्वम्) शीघ्रगमन करानेवाले अग्नि को (अगृभ्णात्) ग्रहण करे उसको (निरतष्ट) निरन्तर काम में लाओ॥२॥

भावार्थ: - जो मनुष्य विह्नानों के उपदेश से पाई हुई विद्या को ग्रहण कर, बिजुली से उत्पन्न हुए कारण से फैले वायु से, धार्रण किये सूर्य में प्रकट हुए शीघ्रगामी अग्नि को प्रयोजन में लाते हैं, वे दिरद्रपन के नाश करनेवाले होतें हैं। श्री

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

असि खुमो अस्योदित्यो अर्वुन्नसि त्रितो गुह्येन वृतेनी

असि सोपेन समया विपृक्त आहुस्ते त्रीणि दिवि बर्मनानि॥३॥

असि। युमः। असि। आदित्यः। अर्वुन्। असि। त्रितः। गुह्येन। व्रृतेने। असि। सोमेन। सुमयो। विऽपृक्तः। आहुः। ता त्रीणि। दिवि। बर्म्यनानि॥३॥

पदार्थ:-(असि) अस्ति। अत्र सर्वत्र पुरुषव्यत्ययः। (यमः) नियन्ता (असि) अस्ति (आदित्यः) अदितावन्तरिक्षे भवः (अर्वन्) सर्वत्र प्राप्तः (असि) अस्ति (त्रितः) सन्तारकः (गृह्येन) गोप्येन (व्रतेन) शीलेन (असि) अस्ति (सोमेन) चन्द्रेणौषधिगणेन वा (समया) सामीप्ये (विपृक्तः) सम्बद्धेण संपर्करहितः (आहुः) कथयन्ति (ते) तस्य (त्रीणि) (दिवि) दिव्ये पदार्थे (बन्धनानि) प्रयोकस्ति।। शा

अन्वयः-हे मनुष्या! यो यमोऽस्यादित्योऽस्यर्वन्नसि गुह्येन व्रतेन त्रितोऽसि सोमेन समया विष्वारित, ते तस्य दिवि त्रीणि बन्धनान्याहुरेनं यूयं वित्त॥३॥

भावार्थ:-यो गूढोऽग्निः पृथिव्यादिवाय्वोषधीषु प्राप्तोऽस्ति यस्य पृ्थिव्यामुत्तरिक्षे सूर्ये च बन्धनानि सन्ति, तं सर्वे मनुष्या विजानन्तु॥३॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! जो (यम:) नियम का करनेवाला (अमि) है (आदित्य:) अन्तरिक्ष में प्रसिद्ध होनेवाला सूर्यरूप (असि) है, (अर्वन्) सर्वत्र प्राप्त है, (गुह्येन) गुष्त करने योग्य (व्रतेन) शील से (त्रित:) अच्छे प्रकार व्यवहारों का करनेवाला (असि) है, (सोमेन) चन्द्रमा वा ओषधिगण से (समया) समीप में (विगृक्त:) अपने रूप से अलग (असि) है (ते) इस अणि के (दिवि) दिव्य पदार्थ में (त्रीणि) तीन (बन्धनानि) प्रयोजन अगले लोगों ने (आहु:) कहे हैं, उसको तुम लोग जानो॥३॥

भावार्थ:-जो गूढ़ अग्नि पृथिव्यादि पदार्थों में, वायु और ऑषधियों में प्राप्त है, जिसके पृथिवी, अन्तरिक्ष और सूर्य में बन्धन हैं, उसको सब मनुष्य जानें। राष्ट्र

पुनस्तमेव विषयमाहै॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

त्रीणि त आहुर्दिवि बर्स्यनानि श्रीण्यूप्सु औण्यन्तः संमुद्रे।

उतेर्व मे वर्मणश्छन्स्यर्वुन येत्री त आहु: पर्म जनित्रम्॥४॥

त्रीणि। ते। आहु:। दिविश बन्धनानि। त्रीणि। अप्रसु। त्रीणि। अन्तरिति। समुद्रे। उत्तर्श्व। मे। वर्रुण:। छुन्सि। अुर्वुन्। यत्री। ते। आहु:। पर्मप्। जुनित्रीम्। ।।

पदार्थ:-(त्रीणि) (त) तत्र (आहु:) वदन्ति (दिवि) प्रकाशमयेऽग्नौ (बन्धनानि) (त्रीणि) (अप्सु) (त्रीणि) (अन्तः) आभान्तरे (समुद्रे) अन्तरिक्षे (उतेव) (मे) मम (वरुणः) श्रेष्ठः (छन्सि) ऊर्जयसि (अर्वन्) विज्ञातः (यत्र) अत्र ऋचि तुनुघेति दीर्घः। (ते) तव (आहुः) कथयन्ति (परमम्) प्रकृष्टम् (जिन्त्रम्) जस्म॥४॥

अर्थय:- है अर्वेन्! यत्र ते परमं जनित्रमाहुस्तत्र ममाप्यस्ति वरुणस्त्वं यथा छन्त्सि तथाऽहं छन्दयामि यथा ते त्रीण्यन्तस्र्यभुद्रे त्रीण्यप्स् त्रीणि दिवि च बन्धनान्याहुरुतेव मे सन्ति॥४॥

मण्डल-१। अनुवाक-२२। सूक्त-१६३

१६९१

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। यथाऽग्ने: कारणसूक्ष्मस्थूलानि स्वरूपाणि सन्ति, वाय्वग्न्यपृथिवीनो च वर्त्तन्ते, तथा सर्वेषां जातानां पदार्थानां त्रीणि स्वरूपाणि सन्ति। हे विद्वन्! यथा तव विद्याजन्म प्रकृष्टमस्ति तथा ममापि स्यात्॥४॥

पदार्थ: - हे (अर्वन्) विशेष ज्ञानवाले सज्जन! (यत्र) जहाँ (ते) तेरा (परमम्) उत्तम (जित्तम्) जन्म (आहु:) कहते हैं, वहाँ मेरा भी उत्तम जन्म है, (वरुण:) श्रेष्ठ तू जैसे (छन्तिस्) बल्लान् होता है, वैसे मैं बलवान् होता हूँ, जैसे (ते) तेरे (त्रीणि) तीन (अन्तः) भीतर (समुद्रे) अन्तिक्ष में (त्रीणि) तीन (अप्सु) जलों में (त्रीणि) तीन (दिवि) प्रकाशमान अग्नि में भी (बन्धनानि) बन्धन (आहुः) अगले जनों ने कहे हैं (उतेव) उसी के समान (मे) मेरे भी हैं॥४॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे अग्नि के कारण, सूक्ष्म और स्थूल रूप हैं- वायु, अग्नि, जल और पृथिवी के भी हैं, वैसे सब उत्पन्न हुए पदार्थों के तीन स्वरूप हैं। हे विद्वन्! जैसे तुम्हारा विद्या जन्म उत्तम है, वैसे मेरा भी हो॥४॥

पुनस्तमेव विषयमाह।

फिर उसी विषय को अगले सिन्त्रामें कहा। हैं॥

ड्रमा ते वाजिन्नवमार्जनानीमा शुफानां सिन्तिर्निधारी

अत्रा ते भुद्रा र्रशुना अपश्यमृतस्य या अभिरक्षेन्ति गोपाः॥५॥११॥

ड्टमा। ते। वाजिन्। अवऽमार्जनानि। ड्रम्मा शुफानाम् सनितुः। निऽधानी। अत्री ते। भुद्राः। रृशनाः। अपुश्यम्। ऋतस्यी याः। अभिऽरक्षीन्त। गोपाः स्पा

पदार्थ:-(इमा) इमानि (ते) त्रव (वाजिनी) विज्ञानवन् (अवमार्जनानि) शोधनानि (इमा) इमानि (शफानाम्) शं फणन्ति तेषाम्। अहाऽन्यस्योऽपि दृश्यत इति डः। (सिनतुः) संविभाजकस्य (निधाना) निधानानि (अत्र) अत्र। ऋचि तुज्ज्यिति दीष्रे। (ते) तस्य (भद्राः) भजनीयाः (रशनाः) आस्वादनीयाः (अपश्यम्) पश्येयम् (ऋतस्य) सत्यस्य कारणस्य (याः) (अभिरक्षन्ति) सर्वतः पालयन्ति (गोपाः) रक्षकाः॥५॥

अन्वयः-हे वाजिन्! भानीमा ते शफानामवमार्जनानि यानीमा सनितुर्निधाना सन्ति यास्त ऋतस्य भद्रा रशना गोपा अभिरक्षन्ति च गून् पूर्वोक्तानत्राऽहमपश्यम्॥५॥

भावार्थः - ये तुक्रमात् सर्वेषां पदार्थानां कारणं संयोगं च जानन्ति, ते पदार्थवेत्तारो भवन्ति॥५॥

पूर्दार्थ:-है (वाजिन्) विज्ञानवान् सज्जन! जो (इमा) ये (ते) आपके (शफानाम्) कल्याण को देनेवाले त्यवहारों के (अवमार्जनानि) शोधन वा जो (इमा) ये (सिनतुः) अच्छे प्रकार विभाग करते हुए आपूर्क (निधाना) पदार्थों का स्थापन करते हैं और (याः) जो (ते) आप के (ऋतस्य) सत्य कारण के

(भद्रा:) सेवन करने और (रशना:) स्वाद लेने योग्य पदार्थों को (गोपा:) रक्षा करनेवाले (अभिरक्षान्त) सब ओर से पालते हैं, उन सब पदार्थों को (अत्र) यहाँ मैं (अपश्यम्) देखूं॥५॥

भावार्थ:-जो मनुष्य अनुक्रम अर्थात् एक के पीछे एक, एक के पीछे एक ऐसे क्रम्से समस्त्र पदार्थीं के कारण और संयोग को जानते हैं, वे पदार्थवेत्ता होते हैं॥५॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

आत्मानं ते मनसारादंजानामुवो दिवा पत्तयन्तं पतुङ्गम्। शिरो अपश्यं पृथिभिः सुगेभिररेणुभिर्जेह्नमानं पतुत्रि॥६॥

आत्मानम्। ते। मनसा। आरात्। अजानाम्। अवः। दिवा। पतर्यन्तम्। प्रतङ्गम्। क्रिपः। अपुश्यम्। पृथिऽभिः। सुऽगेभिः। अरेुणुऽभिः। जेह्रमानम्। पुतुत्रि॥६॥

पदार्थ:-(आत्मानम्) सर्वाधिष्ठातारम् (ते) तव (मनूम्म) विञ्चानम् (आरात्) दूरात् समीपाद्वा (अजानाम्) जानीयाम् (अवः) रक्षणम् (दिवा) दिव्यन्तरिक्षे (पत्यन्तम्) गमयन्तम् (पतङ्गम्) यः प्रतियातं गच्छति तम् (शिरः) यच्छ्रीयते तदुत्तमाङ्गम् (अपश्यम्) पश्ययम् (पथिभिः) (सुगेभिः) सुखेन गमनाधिकरणैः (अरेणुभिः) अविद्यमानरजस्पर्शैः (जेह्मानम्) प्रयतमानम् (पतित्र) पतनशीलम्॥६॥

अन्वय:-हे विद्वन्! यथाऽहं ते तवात्मानं मास्माऽऽपद्पश्यं तथा त्वं मदात्मानं पश्य यथाहं तवावः पतित्र शिरोऽपश्यं तथा त्वं ममैतत्पश्य यथाऽरेणुभिः सुगेभिः पश्चिभिजेह्मानं दिवा पतयन्तं पतङ्गमग्निमश्वमजानां तथा त्वमपि पश्य॥६॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोप्रमालक्कारः। ये स्वपरात्मविदो विज्ञानेनोत्पन्नकार्यपरीक्षाद्वारा कारणगुणान् जानन्ति सुखेन विद्वांस्रो भवन्ति येऽनावरणे रजोयोगविरहेऽन्तरिक्षेऽग्न्यादियोगेन विमानानि चालयन्ति ते दूरमपि देशं सद्यो कृतुमर्हन्ति॥६॥

पदार्थ:-हे विद्वान्! किसे मैं (ते) तेरे आत्मानम्) सबके अधिष्ठाता आत्मा को (मनसा) विज्ञान से (आरात्) दूर से वा निकर से (अप्रश्यम्) देखूं वैसे तू मेरे आत्मा को देख, जैसे मैं तेरे (अव:) पालने को वा (पतित्र) गिरने के स्वभाव को और (शिर:) जो सेवन किया जाता उस शिर को देखूं, वैसे तू मेरे उक्त पदार्थ को द्रेख, जैसे (अरेणुभि:) धूलि से रहित (सुगेभि:) सुख से जिनमें जाते उन (पथिभि:) मार्गों से (जेहमानम्) उत्तम यत्न करते (दिवा) अन्तरिक्ष में (पतयन्तम्) जाते हुए (पतङ्गम्) प्रत्येक स्थान में पहुँचनेवाल अस्तिरूप घोड़े को (अजानाम्) देखूं, वैसे तू भी देख॥६॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो अपने वा पराये आत्मा के जाननेवाले विज्ञान से अपन्न कार्यों की परीक्षा द्वारा कारण गुणों को जानते हैं, वे सुख से विद्वान् होते हैं। जो विन

मण्डल-१। अनुवाक-२२। सूक्त-१६३

१६९३

ढपे, धूल के संयोग अन्तरिक्ष में अग्नि आदि पदार्थों के योग से विमानादिकों को चलाते हैं, वे दूर देश को भी शीघ्र जाने को योग्य होते हैं॥६॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अत्रा ते रूपमुन्तममपश्यं जिगीषमाणमिष आ पदे गोः।

यदा ते मर्तो अनु भोगमानुळादिद् प्रसिष्ठ ओषधीरजीग:॥७॥

अत्रं। ते। रूपम्। उत्ऽतमम्। अपुश्यम्। जिगीषमाणम्। इषः। आ। पुदे। गीः। युद्धाः ते। मर्तः। अर्नु। भोर्गम्। आर्नुः। आत्। इत्। ग्रसिष्ठः। ओषधीः। अजीगरिति॥७॥

पदार्थ:-(अत्र) अस्मिन् विद्यायोगाभ्यासव्यवहारे। अत्र ऋषि तुनुघेति दीर्थः। (ते) तव (रूपम्) स्वरूपम् (उत्तमम्) उत्कृष्टम् (अपश्यम्) पश्येयम् (जिगीषमाणम्) जेतुमिच्छ्न्तम् (इषः) अन्नानि (आ) (पदे) प्राप्तव्ये (गोः) पृथिव्याः (यदा) यस्मिन् काले (ते) तव (भर्तः) मनुष्यः (अनु) (भोगम्) (आनट्) प्राप्नोति। अत्र नक्षेतर्गतिकर्मणो लिङ छन्दस्यिप दृश्यत (अष्टो०६ %.७३) इत्याडागमः। नक्षतीति गतिकर्मासु पठितम्। (निघं०२.१४) (आत्) अनन्तरम्। (इत्) एव (ग्रसिष्ठः) अतिशयेन ग्रसिता (ओषधीः) यवादीन् (अजीगः) भृशं प्राप्नुयात्॥७॥

अन्वयः-हे विद्वन्! यदा ग्रसिष्ठो मर्त्तोऽनुभोग्रम्पानस् तदादिदोषधीरजीगः। यथाऽत्राहं ते जिगीषमाणमुत्तमं रूपमापश्यं गोः पदे त इषः प्राप्नुयाम् तथा त्वमप्येवं विधायतत्प्राप्नुहि॥७॥

भावार्थ:-उद्योगिनमेव भोगा उपल्भन्ते नालुसं ये प्रयत्नेन पदार्थविद्यां गृह्णन्ति, तेऽत्युत्तमां प्रतिष्ठां लभन्ते॥७॥

पदार्थ: -हे विद्वान्! (यदा) जब (ग्रांसष्ठ:) अतीव खानेवाला (मर्तः) मनुष्य (अनु, भोगम्) अनुकूल भोग को (आनट्) प्राप्त होता है, तब (आत्, इत्) उसी समय (ओषधी:) यवादि ओषधियों को (अजीगः) निरन्तर प्राप्त हो, जैसे (अत्र) इस विद्या और योगाभ्यास व्यवहार में मैं (ते) तुम्हारे (जिगीषमाणम्) जीतने की इच्छा क्रेप्टेनवाले (उत्तमम्) उत्तम (रूपम्) रूप को (आ, अपश्यम्) अच्छे प्रकार देखूं और (गोः) पृथिची के (पदे) पाने योग्य स्थान में (ते) आपके (इषः) अन्नादिकों को प्राप्त होऊं, वैसे आप भी ऐसा विधान कर इस उक्त व्यवहारादि को प्राप्त होओ॥७॥

भावार्थ:- उद्योगी पुरुष ही को अच्छे-अच्छे पदार्थ भोग प्राप्त होते हैं, किन्तु आलस्य करनेवाले को नहीं। जो यत्ने के साथ पदार्थविद्या का ग्रहण करते हैं, वे अति उत्तम प्रतिष्ठा को प्राप्त होते हैं॥७॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अर्नु त्वा रथो अनु मर्यो अर्वुन्ननु गावोऽनु भर्गः कुनीनाम्।

अनु व्रातांसस्तर्वं सुख्यमीयुरनुं देवा मंमिरे वीर्यं ते॥८॥

अर्नु। त्वा। रथः। अर्नु। मर्यः। अर्वुन्। अर्नु। गार्वः। अर्नु। भर्गः। क्रनीर्नाम्। अर्नु। व्रातसिः। तन्ने सुख्यम्। ई्युः। अर्नु। देवाः। मुमिरे। वीर्यम्। ते॥८॥

पदार्थ:-(अनु) (त्वा) त्वाम् (रथ:) विमानादियानम् (अनु) (मर्य:) मरणधर्मा मेनुष्यः (अर्वन्) अश्ववद्वर्त्तमान (अनु) (गाव:) धेनवः (अनु) (भगः) ऐश्वर्यम् (कनीनाम्) कार्मभानानाम् (अनु) (व्रातासः) व्रतेषु सत्याचरणेषु भवाः (तव) (सख्यम्) सख्युर्भावः कर्म वा (ईयुः) प्राप्नुयः (अनु) (देवाः) विद्वांसः (मिमरे) निर्मिमते (वीर्यम्) पराक्रमम् (ते) तव॥८॥

अन्वय:-हे अर्वन्! यं त्वाऽनु रथोऽनु मर्य्योऽनु गावः कनीनामनु भगो व्रातासी देवास्ते बीर्यमनु मिर्मरे, ते तस्य तव संख्यमन्वीयु:॥८॥

भावार्थ:-यथाऽग्निमनुयानानि मनुष्या गच्छन्ति तथाऽध्यपिकोपेदेशकावनुविज्ञानं लभन्ते, ये विदुष: सखीन् कुर्वन्ति ते सत्याचारा वीर्यवन्तो जायन्ते॥८॥

पदार्थ:-हे (अर्वन्) घोड़े के समान वर्तमान! जिस (त्वा) तेरे (अनु) पीछे (रथः) विमानादि रथ फिर (अनु) पीछे (मर्च्यः) मरणधर्म रखनेवाला मनुष्य फिर (अनु) पीछे (गावः) गौयें और (कर्नोनाम्) कामना करते हुए सज्जनों को (अनु) पीछे (भगः) ऐश्वर्य तथा (व्रातासः) सत्य आचरणों में प्रसिद्ध (देवाः) विद्वान् जन (ते) तेरे (वीर्यम्) पराक्रम को अनु, मृगिरे) अनुकूलता से सिद्ध करते हैं, वे उक्त विद्वान् (तव) तेरी (सख्यम्) मित्रता वा मित्र के काम को (अनु, ईयुः) अनुकूलता से प्राप्त होवें॥८॥

भावार्थ:-जैसे अग्नि के अनुकूल विमानादि यानीं को मनुष्य प्राप्त होते हैं, वैसे अध्यापक और उपदेशक के अनुकूल विज्ञान को प्राप्त होते हैं। जो विद्वानों को मित्र करते हैं, वे सत्याचरणशील और पराक्रमवान् होते हैं॥८॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

हिर्गण्यशृङ्गोऽयो अस्य पाद्धा मनोजवा अंवर् इन्द्रं आसीत्। देवा इदस्य हविरद्यमायुन्यो अर्वन्तं प्रथमो अध्यतिष्ठत्॥९॥

हिर्रण्यऽश्रृङ्गः। अर्थः) अस्य। पार्दाः। मर्नःऽजवाः। अर्वरः। इन्द्रः। आसीत्। देवाः। इत्। अस्य। हृविःऽअर्द्यम्। अर्थन्तम्। प्रथमः। अधिऽअतिष्ठत्॥९॥

पदार्थ: (हरण्यशृङ्गः) हिरण्यानि तेजांसि शृङ्गाणीव यस्य सः (अयः) प्राप्तिसाधकाः धातवः (अस्य) विद्युदूपस्याऽग्नेः (पादाः) पद्यन्ते गच्छन्ति यैस्त इव (मनोजवाः) मनोवद्वेगवन्तः (अवरः) अव्यक्तिः (इन्द्रः) सूर्य्यः (आसीत्) अस्ति (देवाः) विद्वांसो भूम्यादयो वा (इत्) एव (अस्य)

मण्डल-१। अनुवाक-२२। सुक्त-१६३

१६९५

(हविरद्यम्) अत्तुं योग्यम् (आयन्) आप्नुवन्ति (यः) (अर्वन्तम्) वेगवन्तमग्निमश्वम् (प्रथमः) प्रख्यातः (अध्यतिष्ठत्) अधिष्ठाता भवति॥९॥

अन्वय:-हे मनुष्या! यो हिरण्यशृङ्गो यस्याऽस्य मनोजवा अयः पादाः सन्ति सोऽवर इन्द्र आर्यात्। यो प्रथमोऽर्वन्तमध्यतिष्ठद् यस्याऽस्य हविरद्यमिद्देवा आयन् स बहुव्यापी विद्युद्विधोऽग्निरस्तीति विजानीत॥ र्

भावार्थ:-अस्मिंज्जगति त्रिधाऽग्निर्वत्तेते एकोऽतिसूक्ष्मः कारणाख्यो हित्तीयः सूक्ष्मो मूर्त्तद्रव्यव्यापी तृतीयः स्थूलः सूर्यादिस्वरूपो य इमं गुणकर्मस्वभावतो विज्ञाय संप्रयुद्धते ते सतते सुखिनो भवन्ति॥९॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! जो ऐसा है कि (हिरण्यशृङ्गः) जिसके तेजः प्रकाश शृङ्गों के समान हैं तथा जिस (अस्य) इस बिजुलीरूप अग्नि के (मनोजवाः) मन के समान वेग्नवाले (अयः) प्राप्तिसाधक धातु (पादाः) जिनसे चलें उन पैरों के समान हैं, वह (अवरः) एक निर्मला (इन्द्र्र्म) सूर्य (आसीत्) है और (यः) जो (प्रथमः) विख्यात (अर्वन्तम्) वेगवाले अश्वरूप अग्नि का (अध्यतिष्ठत्) अधिष्ठाता होता जिस (अस्य) इसके सम्बन्ध में (हिवरद्यम्) खाने योग्य होमने के पदार्थ (इत्) ही को (देवाः) विद्वान् वा भूमि आदि तेंतीस देव (आयन्) प्राप्त हैं, वह बहुतों में व्याप्त होनेष्ट्राला बिजुली के समान अग्नि है, ऐसा जानो॥९॥

भावार्थ:-इस जगत् में तीन प्रकार अग्नि है। एक अति सूक्ष्म जो कारण रूप कहाता, दूसरा वह जो सूक्ष्म मूर्त्तिमान् पदार्थों में व्याप्त होनेवाला और तीसेस स्थूल सूर्यादि स्वरूपवाला। जो इसको गुण, कर्म, स्वभाव से जान कर इसका अच्छे प्रकार प्रयोग करते हैं, वे निरन्तर सुखी होते हैं॥९॥

पुन तिमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

र्ट्टमान्तांसः सिर्लिकमध्यमासः सं शूर्रणासो दिव्यासो अत्याः। हंसाईव श्रेणिशो युत्तेने यदाक्षिष्टिव्यमज्यमश्राः॥ १०॥ १२॥

र्ट्टर्मऽर्अन्तासः। सिलिकऽपध्यमासः। सम्। शूर्रणासः। दिव्यासः। अत्याः। हंसाःऽईव। श्रेणिऽशः। यतन्ते। यत्। आक्षिषुः। दिव्यम्। अन्यम्। अश्राः॥ १०॥

पदार्थ:-(ईर्मान्तासः) कम्पनान्ताः (सिलिकमध्यमासः) सिलिकानां मध्ये भवाः (सम्) (शूरणासः) हिंधका कलायन्त्रताडनेन प्रकाशमानाः (दिव्यासः) दिव्यगुणकर्मस्वभावाः (अत्याः) अतितुं शीलाः (हंसाइव) हिंसपक्षिवत् (श्रेणिशः) पङ्क्तिवद्वर्त्तमानाः (यतन्ते) यातयन्ति। अन्तर्भावितण्यर्थः। (यत्) दे (आक्षिषुः) व्याप्नुवन्ति (दिव्यम्) दिवि भवम् (अज्मम्) गमनाधिकरणं मार्गम् (अश्वाः) आशूर्यन्तारः १०॥

अन्वयः-हे विद्वांसो! यद्ये सिलिकमध्यमास ईर्मान्तासः शूरणासो दिव्यासोऽत्या अश्वा हंसाइव श्रेणिशः संयतन्ते दिव्यमज्ममाक्षिषुस्तान् वाय्वग्निजलादीन् कार्य्येषु संप्रयुङ्गध्वम्॥१०॥

भावार्थ:-ये शिलिकादियन्त्रैस्संघर्षितेभ्यः पदार्थेभ्यो विद्युदादीनुत्पाद्य यानादिषु स्राप्रयोज्य कार्यसिद्धिं कुर्वन्ति, ते मनुष्या महतीं श्रियं लभन्ते॥१०॥

पदार्थ:-हे विद्वानो! (यत्) जो (सिलिकमध्यमासः) स्थान में प्रसिद्ध हुए (ईर्मान्तासः) कम्पन जिनका अन्त (शूरणासः) हिंसक अर्थात् कलायन्त्र को प्रबलता से ताड़ना देते हुए प्रकाशमान (दिव्यासः) दिव्य गुण, कर्म, स्वभाववाले (अत्याः) निरन्तर जानेवाले (अश्वाः) शीम्र जानेवाले अग्न्यादि रूप घोड़े (हंसाइव) हंसों के समान (श्रेणिशः) पङ्क्ति-सी किये हुए वर्न्समान (सम्, यतन्ते) अच्छा प्रयत्न कराते हैं और (दिव्यम्) अन्तरिक्ष में हुए (अज्मम्) मार्ग को (आक्षिषुः) व्याप्त होते हैं, उन वायु, अग्नि और जलादिकों को कार्यों में अच्छे प्रकार लगाओ॥१०॥

भावार्थ:-जो शिलिकादि यन्त्रों से अर्थात् जिनमें कोठे-दूरकोठे कलाओं के होते हैं, उन यन्त्रों से बिजुली आदि उत्पन्न कर और विमान आदि यानों में उनका संप्रेष्ठोग कर कार्यसिद्धि को करते हैं, वे मनुष्य बड़ी भारी लक्ष्मी को पाते हैं॥१०॥

पुनस्तमेव विषय्माह।

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

तव शरीरं पतियुष्णवर्वन् तव चित्तं चात्रहेक धूर्जीमान्।

तव शृङ्गाणि विष्ठिता पुरुत्रारण्येषु जर्भराष्ण चरन्ति॥ ११॥

तर्व। शरीरम्। पुत्विष्णु। अर्वुन्। तर्वः वित्तम्। वार्तःऽइव। ध्रजीमान्। तर्व। शृङ्गीणि। विऽस्थिता। पुरुऽत्रा। अर्रण्येषु। जर्भुराणा। चुरुन्ति॥११॥

पदार्थ:-(तव) (शरीरम्) (पतिषणु) गमनशीलम् (अर्वन्) गन्त्रश्ववद्वर्त्तमान (तव) (चित्तम्) अन्त:करणम् (वातइव) (ध्रजीमान्) गतिमान् (तव) (शृङ्गाणि) शृङ्ग इव उच्छ्रितानि कर्माणि (विष्ठिता) विशेषेण स्थितानि (पुरुषा) पुरुषु) बहुषु (अरण्येषु) वनेषु (जर्भुराणा) अत्यन्तं पुष्टानि (चरन्ति) गच्छन्ति॥११॥

अन्वय:-ह्रे अर्वन्! यथा पतियष्णु यानं तथा तव शरीरं ध्रजीमान् वात इव तव चित्तं पुरुत्राऽरण्येषु विष्ठिता जर्भुराणा शृङ्गाण्युपेनेश्वरात्त्र तथा तवेन्द्रियाणि प्राणाश्च वर्त्तन्ते॥११॥

भाषार्थः रहेः प्रचालिता विद्युन्मनोवद्गच्छित शैलशृङ्गवद्यानानि रच्यन्ते ये च वनाग्निवदग्न्यागारेषु पावकं प्रवाल्य यानानि चालयन्ति, ते सर्वत्र भूगोले विचरन्ति॥११॥

पदार्थ:-हे (अर्वन्) गमनशील घोड़े के समान वर्त्ताव रखनेवाले! जैसे (पतियण्णु) गमनशील विमान अदि यान वा (तव) तेरा (शरीरम्) शरीर वा (ध्रजीमान) गतिवाला (वातइव) पवन के समान

मण्डल-१। अनुवाक-२२। सूक्त-१६३

१६९७

तव तेरा (चित्तम्) चित्त वा (पुरुत्रा) बहुत (अरण्येषु) वनों में (विष्ठिता) विशेषता से ठहरे हुए (जर्भुराणा) अत्यन्त पुष्ट (शृङ्गाणि) सींगों के तुल्य ऊंचे वा उत्कृष्ट अत्युत्तम काम अग्नि से (चरनि) चलते हैं, वैसे (तव) तेरे इन्द्रिय और प्राण वर्तमान हैं॥११॥

भावार्थ:-जिन्होंने चलाई हुई बिजुली मन के समान जाती वा पर्वतों के शिख्यों के समान विमान आदि यान रचे हैं और जो वन की आग के समान अग्नि के घरों में अग्नि जला कर विमान आदि रथों को चलाते हैं, वे सर्वत्र भूगोल में विचरते हैं॥११॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

उपु प्रागाच्छर्मनं वाज्यर्वा देवद्रीचा मनसा दीध्यानः।

अजः पुरो नीयते नाभिरस्यानुं पृश्चात्क्ववयो यन्ति रेभाः॥ १२॥

उपं। प्रा अगात्। शर्सनम्। वाजी। अर्वां। देवऽद्रीचां। मन्स्मा दोध्यानः अजः। पुरः। नीयते। नाभिः। अस्य। अर्नु। पुश्चात्। कुवर्यः। युन्ति। रेुभाः॥१२॥

पदार्थ:-(उप) (प्र) (अगात्) गच्छति (शसनम्) हिंपनि बार्डनम् (वाजी) वेगवान् (अर्वा) अश्व इव (देवद्रीचा) देवान् विदुषोऽञ्चता (मनसा) (विष्यानः) देवीप्यमानः (अजः) जन्मरिहतः (पुरः) पुरस्तात् (नीयते) (नाभिः) बन्धनम् (अस्य) (अनु) (पश्चात्र) (कवयः) मेधाविनः (यन्ति) प्राप्नुवन्ति (रेभाः) विदितशब्दविद्याः॥१२॥

अन्वयः-यो दीध्यानोऽजो वाज्यर्वा देशदीचा पनसार्रस्य शसनमुपप्रागाद्येनाऽस्य नाभिः पुरः पश्चाच्च नीयते यं रेभाः कवयोऽनुयन्ति तं सर्वे संसेव्यन्ताम्॥१२॥

भावार्थ:-निह कर्षणताडन्रशिल्पेविद्याभ्यो विना अग्न्यादयः पदार्थाः कार्यसाधका जायन्ते॥१२॥

पदार्थ:-जो (दीध्यान:) देदिप्यमान (अज:) कारणरूप से अजन्मा (वाजी) वेगवान् (अर्वा) घोड़े के समान अग्नि (देवद्रीका) विद्वानों का अत्कार करते हुए (मनसा) मन से (अस्य) इस कलाघर के (शसनम्) ताड़न को (अर्व, प्रामात्) सब प्रकार से प्राप्त किया जाता है, जिससे इसका (नाभि:) बन्धन (पुर:) प्रथम से और (पश्चात्) प्रें (नीयते) प्राप्त किया जाता है, जिसको (रेभा:) शब्दविद्या को जाने हुए (कवय:) मेधूमूती बुद्धिमान् जन (अनु, यन्ति) अनुग्रह से चाहते हैं, उसको सब सेवें॥१२॥

भावार्थः खेला वा ताड़ना आदि शिल्पविद्याओं के विना अग्नि आदि पदार्थ कार्यों के सिद्ध करनेवाले नहीं हैं। १२॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अप्रप्रागात्परमं यत्सधस्थमर्वी अच्छा पितरं मातरं च।

अद्या देवाञ्चष्टंतमो हि गुम्या अथा शस्ति दाशुषे वार्याणि॥१३॥१३॥

उपी प्रा अगात्। पुरमम्। यत्। सुधऽस्थम्। अर्वीन्। अच्छी पितर्रम्। मातर्रम्। च। अद्या देवान्। जुर्छ्यतमः। हि। गुम्याः। अर्था आ। शास्ते। दाशुषे। वार्याणि॥ १३॥

पदार्थ:-(उप) (प्र) (अगात्) गच्छन्ति (परमम्) प्रकृष्टम् (यत्) यः (सध्ययम्) सहस्थानम् (अर्वान्) अग्न्याद्यश्वान् (अच्छ) सम्यक्। अत्र निपातस्य चेति दीर्घः। (पितरम्) जनकमध्यापकं वा (मातरम्) जननीं विद्यां वा (च) (अद्य) अस्मिन् दिने। अत्र निपातस्य चेति दिघि (देवान्) विदुषो दिव्यान् भोगान् गुणान् वा (जुष्टतमः) अतिशयेन सेवमानः (हि) किल (गम्याः) यन्ते योग्याः (अथ) (आ) (शास्ते) इच्छति (दाशुषे) दात्रे (वार्याणि) वर्तुं योग्यानि सुखानि॥

अन्वय:-यद्यो देवान् जुष्टतमोऽर्वानद्य परमं सधस्थं मातरं पितरं चेच्छ्रेपप्रागदिश्य पाशुषे वार्याणि हि गम्याः प्रियाश्चाशास्ते सोऽत्यन्तं सुखमश्नुते॥१३॥

भावार्थः-ये मातृपित्राऽऽचार्यैः प्राप्तशिक्षाः प्रशस्त्रस्थानिनवास्रिनो विद्वत्सङ्गप्रियाः सर्वेषां सुखदातारो वर्त्तन्ते तेऽत्रोत्तममानन्दं लभन्ते॥१३॥

अस्मिन् सूक्ते विद्वद्विद्युद्गुणवर्णनादेतत्सूक्तार्थस्य पूर्वसूक्तार्थन सह संगतिर्वेद्या॥

इति त्रिष्ट्युत्तरं शततमं १६३ सूक्तं त्रयोदशो १३ वर्गश्च समाप्त:॥

पदार्थ:-(यत्) जो (देवान्) विद्वान् वा दिव्य भोग और गुणों को (जुष्टतमः) अतीव सेवता हुआ (अर्वान्) अग्नि आदि पदार्थरूपी घोड़ों को (अर्घ) आजू के दिन (परमम्) उत्तम (सधस्थम्) एक साथ के स्थान को (मातरम्) उत्पन्न करनेवाली माता (पितरम्, च) और जन्म करानेवाले पिता वा अध्यापक को (अच्छ, उप, प्रागात्) अच्छे प्रकार सब् और प्रेप्राप्त होता (अथ) अथवा (दाशुषे) देनेवाले के लिये (वार्थ्याणि) स्वीकार करने योग्य सुख और (हि) निश्चय से (गम्याः) गमन करने योग्य प्यारी स्त्रियों वा प्राप्त होने योग्य क्रियाओं की (अर्प, शास्ते) आशा करता है, वह अत्यन्त सुख को प्राप्त होता है॥१३॥

भावार्थ:-जो माता, पिता और आचार्य से शिक्षा पाये प्रशंसित स्थानों के निवासी विद्वानों के सङ्ग की प्रीति रखनेवाले सब के स्रुख देनेवाले वर्त्तमान हैं, वे यहाँ उत्तम आनन्द को प्राप्त होते हैं॥१३॥

इस सूक्त में विद्वान और बिजुली के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गित जाननी चाहिये॥

यह एक सौ तिरेसठवां १६३ सूक्त और तेरहवां १३ वर्ग समाप्त हुआ॥

अस्येत्यस्य द्विपञ्चाशदृचस्य चतुष्पष्ट्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य दीर्घतमा ऋषिः। अस्येत्यारभ्य गौरीर्मिमायेत्येतदन्तानामेकचत्वारिशतो मन्त्राणां विश्वेदेवाः। तस्याः समुद्रा इत्यस्याः पूर्वभागस्य

वाक्। उत्तरार्द्धस्याप:। शकमयमित्यस्या: पुरोभागस्य शकधूम:। चरभागस्य सोम:। त्रयं केशिन इत्यस्या अग्निवायुसूर्या:। चत्वारि वागित्यस्या वाक्। इन्द्रमित्यस्या: कृष्णं नियानमित्यस्याश्च सूर्य:। द्वादशप्रधय इत्यस्या: संवत्सरात्मा काल:। यस्ते स्तन् इत्यस्याः सरस्वती। यज्ञेनेत्यस्या: साध्या:। समानमेतदित्यस्या: सुर्य: पूर्जन्यो वाऽग्नयं बा। दिव्यं

सुपर्णमित्यस्याः सरस्वान् सूर्यो वा देवताः॥

१,९,२७,३५,४०,५० विराट् त्रिष्टुप्। ३-८ ११,१८,२६,३१,३३ ३४,३७,४३, ४६, ४७,४९ निचृत् त्रिष्टुप्। २,१०,१३,१६,१७,१९,२४,२८,३२,५१ क्रिष्टुप्। १४,३९, ४१,४४,४५ भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। १२,१५,२३ जगती। २९,३६ निचृज्जगती छन्दः। निषादः स्वरः। २० भुरिक् पङ्क्तिः। २२,२५,४८ स्वराट् पङ्क्तिः। ३०,३८ पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः। ४२ भुरिक् बृहती छन्दः। सथ्यमः स्वरः। ५१ विराडनुष्टुप्

छन्दः। गास्थारः स्वरः।। अथ त्रिविधाग्निविषयमाह॥

अब एक सौ चौसठवें सूक्त का आरम्भ है। उसकि प्रथम मन्त्र में तीन प्रकार के अग्नि के विषय कोकिहते हैं।

अस्य वामस्य पिलतस्य होतुस्तस्य भ्रात्ती मध्यमो अस्त्यश्नीः। तृतीयो भ्राता घृतपृष्ठो अस्यात्रापश्य विश्वपति सप्तपुत्रम्॥१॥

अस्य। वामस्यं। पुलितस्यं। होतुः। तस्या श्रातां। मुध्यमः। अस्ति। अश्नः। तृतीर्यः। भ्रातां। घृतऽपृष्ठः। अस्य। अत्रं। अपृश्यम्। विश्पतिम्। सुन्तऽपृत्रमा। १॥

पदार्थ:-(अस्य) (वामस्य) शिल्पगुणेः प्रशस्तस्य (पिलतस्य) प्राप्तवृद्धावस्थस्य (होतुः) दातुः (तस्य) (भ्राता) भ्रातेव (मध्यमः) मध्य भवः पृथिव्यादिस्थो द्वितीयः (अस्ति) (अश्नः) भोक्ता (तृतीयः) (भ्राता) बन्धुवद्वर्त्तमानः (भृतपृष्ठः) घृतं जलं पृष्ठेऽस्य (अस्य) (अत्र) (अपश्यम्) (विश्पतिम्) प्रजायाः पालकम् (सप्तपृत्रम्) सप्तविभैस्तत्त्वैर्जातम्॥१॥

अन्वयः वामस्य पलितस्याऽस्य प्रथमो होतुस्तस्य भ्रातेवाऽश्नो मध्यमो घृतपृष्ठोऽस्य भ्रातेव तृतीयोऽस्ति। अत्र सप्तपुत्रं विश्पृति सूर्यमपश्यम्॥१॥

भावार्थः अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। अस्मिञ्जगित त्रिविधोऽग्निरस्ति एको विद्युद्रूपः, द्वितीयः काष्ट्रादिप्रज्वलितो भूमिस्थः, तृतीयः सवितृमण्डलस्थः सन् सर्वं जगत् पालयित॥१॥

पदार्थ:-(वामस्य) शिल्प के गुणों से प्रशंसित (पिलतस्य) वृद्धावस्था को प्राप्त (अस्य) इसे सज्जन का बिजुलीरूप पहिला, (होतु:) देने वा हवन करनेवाले (तस्य) उसके (भ्राता) बन्धु के समान (अश्न:) पदार्थों का भक्षण करनेवाला (मध्यम:) पृथिवी आदि लोकों में प्रसिद्ध हुआ दूसरा और (भृतगृष्ठ:) घृत वा जल जिसके पीठ पर अर्थात् ऊपर रहता वह (अस्य) इसके (भ्राता) भ्राता के समान (तृतीय:) तीसरा (अस्ति) है। (अत्र) यहाँ (सप्तपुत्रम्) सात प्रकार के तत्त्वों से उत्पन्न (विश्पितम्) प्रजाजनों की पालना करनेवाले सूर्य को मैं (अपश्यम्) देखूं॥१॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। इस जगत् में तीन प्रकार का अग्नि है-एक बिजुलीरूप, दूसरा काष्ठादि में जलता हुआ भूमिस्थ और तीसरा वह है जो कि सूर्यमण्डलस्थ होकर समस्त जगत् की पालना करता है॥१॥

अथोक्ताग्निप्रयोगतो विमानादियानविषयमाह्य।

अब अग्नि के प्रयोग से विमान आदि यान के क्लिप्य को कहते हैं॥

स्पत युञ्जन्ति रथमेक्वेचक्रमेको अश्वी वहति सप्तनिमाः त्रिनाभि चक्रम्जरमन्वं यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्थाः।

सपा युञ्जन्ति। रथम्। एकंऽचक्रम्। एकं:। अश्वरी वृहेति। सप्तऽनीमा। त्रिऽनाभि। चक्रम्। अनर्यम्। अनुर्वम्। यत्री हुमा। विश्वा। भुवना। अधि। तुस्थुः॥२॥

पदार्थ:-(सप्त) (युञ्जन्ति) (रथम्) विमानादियानम् (एकचक्रम्) एकं सर्वकलाभ्रमणार्थं चक्रं यस्मिन् तम् (एकः) असहायः (अश्वः) असुराामी वायुरिनर्वा (वहति) प्रापयति (सप्तनामा) सप्त नामानि यस्य (त्रिनाभि) त्रयो नाभयो बन्धानि यस्मिन् (चक्रम्) चक्रम् (अजरम्) जरादिरोगरिहतम् (अनर्वम्) प्राकृताश्वयोजनरिहतम् (अत्र) (इमा) (विश्वा) अखिलानि (भुवनानि) लोकाः (अधि) (तस्थुः) तिष्ठन्ति॥२॥

अन्वयः-यत्र एकचक्रं/ रेश्वं सप्तनाम्म एकोऽश्वो वहति यत्र सप्त कला युञ्जन्ति, यत्रेमा विश्वा भुवनाऽधितस्थुस्तत्राऽनर्वमज्ञं त्रिनुभिचक्ने शिल्पिनः स्थापयेयुः॥२॥

भावार्थः-ये विद्युद्धिनज्ञाद्यश्वयुक्तं यानं विधाय सर्वलोकाऽधिष्ठान आकाशे गमनाऽगमने सुखेन कुर्य्युस्ते समग्रैश्वर्यृत्लभेरन्॥२॥

पदार्थ: (यत्र) यहाँ (एकचक्रम्) एक सब कलाओं के घूमने के लिये जिसमें चक्कर है, उस (रथम्) विस्पान अदि चान को (सप्तनामा) सप्तनामोंवाला (एक:) एक (अश्व:) शीघ्रगामी वायु वा अग्नि (ब्रह्मति) पहुँचाता है वा जहाँ (सप्त) सात कलों के घर (युञ्जन्ति) युक्त होते हैं वा जहाँ (इमा) ये (विश्वा) समस्त (भुवना) लोक-लोकान्तर (अधि, तस्थु:) अधिष्ठित होते हैं, वहाँ (अनर्वम्) प्राकृत

मण्डल-१। अनुवाक-२२। सूक्त-१६४

१७०१

प्रसिद्ध घोड़ों से रहित (अजरम्) और जीर्णता से रहित (त्रिनाभि) तीन जिसमें बन्धन उस (चक्रम्) एक चक्कर को शिल्पी जन स्थापन करें॥२॥

भावार्थ:- जो लोग बिजुली और जलादि रूप घोड़ों से युक्त विमानादि रथ को बनाय पूर्व लोकों के अधिष्ठान अर्थात् जिसमें सब लोक ठहरते हैं, उस आकाश में गमनाऽगमन सुख से करें, बे समग्र ऐश्वर्य को प्राप्त हों॥ २॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

इमं रथमि ये सप्त तस्थुः सप्तचेक्रं सप्त वेहुन्यश्चीः। सप्त स्वसारो अभि सं नेवन्ते यत्र गवां निर्हिता सप्त निर्म्शः। ३॥

डुमम्। रथम्। अर्ध। ये। सुप्त। तुस्थुः। सुप्तऽचंक्रम्। सुप्त। वृहन्ति। अश्वरः। सुप्त। स्वसारः। अभि। सम्। नुवन्ते। यत्री गर्वाम्। निऽर्हिता। सुप्त। नामी।।३।।

पदार्थ:-(इमम्) (रथम्) (अधि) (ये) (सप्त) (तस्थुः) तिष्ट्रयः (सप्तचक्रम्) सप्त चक्राणि यस्मिँस्तम् (सप्त) (वहन्ति) चालयन्ति (अश्वाः) आशुगाधिने प्रमादयः (सप्त) (स्वसारः) भिगन्य इव वर्त्तमानाः कलाः (अभि) (सम्) (नवन्ते) गच्छन्ति चवत् इति गतिकर्मासु पठितम्। (निघं०२.१४) (यत्र) यस्मिन् (गवाम्) किरणानाम् (निहिता) धृतिनि (सप्त) (नाम) नामानि॥३॥

अन्वय:-यत्र गवां सप्त नाम निहिता सर्कि तेत्र स्वस्तर इव सप्ताऽभि संनवन्ते सप्ताश्चाश्च वहन्ति तिममं सप्तचक्रं रथं ये सप्त जना अधितस्थुस्तेऽत्र सुद्धिनी भूषिता।

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्रापमातिङ्कारोः ये स्वाम्यध्यापकाध्येतृनिर्मातृनियन्तृचालका अनेकचक्रतत्त्वादियुक्तानि यानानि रचित्रं जानन्ति, ते प्रशंसिता भवन्ति यस्मिञ्छेदनाकर्षणादिगुणाः किरणा वर्त्तन्ते, तत्र प्राणा अपि सन्ति॥ ३॥

पदार्थ:-(यत्र) जिसमें (भवाम्) किरणों के (सप्त) सात (नाम) नाम (निहिता) निरन्तर धरे स्थापित किये हुए हैं और वहाँ (स्वासर:) बहिनों के समान वर्त्तमान (सप्त) सात कला (अभि, सम्, नवन्ते) सामने मिलती हैं (सप्त) सात (अश्वा:) शीघ्रगामी अग्नि पदार्थ (वहन्ति) पहुँचाते हैं, उस (इमम्) इस (सप्त्रध्वक्रम्) स्नात चक्कर वाले (रथम्) रथ को (ये) जो (सप्त) सात जन (अधि, तस्थु:) अधिष्ठित होते हैं, वे इस जगत् में सुखी होते हैं॥३॥

भाषार्थ: इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो स्वामी अध्यापक अध्येता रचनेवाले नियमकर्नी और चलानेवाले अनेक प्रकार चक्कर और तत्त्वादियुक्त विमानादि यानों को रचने को जानते हैं, ब्रे प्रशंसित होते हैं, जिनमें छेदन वा आकर्षण गुणवाले किरण वर्त्तमान हैं, वहाँ प्राण भी हैं॥३॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

को देदर्श प्रथमं जार्यमानमस्थन्वन्तं यदेनस्था बिर्भर्ति। भूम्या असुरसृंगात्मा क्वं स्वित्को विद्वांसमुर्प गात्प्रष्टुंमेतत्॥४॥

कः। दुदुर्शः। प्रथमम्। जार्यमानम्। अस्थन्ऽवन्तम्। यत्। अनुस्थाः। बिर्भर्तिः। भूम्याः। असुः। अस्वाः। अस्वः।
पदार्थ:-(क:) (ददर्श) पश्यति (प्रथमम्) आदिमं प्रख्यातम् (जारामानेष्) (अस्थन्वन्तम्) अस्थियुक्तं देहम् (यत्) यम् (अनस्था) अस्थिरहितः (बिभर्त्ति) धरति (भूम्याः) पृथिच्या मध्ये (असुः) प्राणः (असुक्) रुधिरम् (आत्मा) जीवः (क्व) कस्मिन् (स्वित्) अपि (कः) (विद्वांसम्) (उप) (गात्) गच्छेत्। अत्राडभावः। (प्रष्टुम्) (एतत्)॥४॥

अन्वय:-यद्यं प्रथमं सृष्टेः प्रागादिमं जायमानमस्थन्वन्तं देहम्भूम्या मध्येऽत्रस्थाम्रुरसृगात्मा च बिभर्त्ते तं क्व स्वित् को ददर्श क एतत् प्रष्टुं विद्वांसमुपगात्॥४॥

भावार्थ: –यदा सृष्टेः प्रागीश्वरेण सर्वेषां शरीराणि निर्मितानि तदा कीऽपि जीव एतेषां द्रष्टा नासीत्। यदा तेषु जीवात्मानः प्रवेशितास्तदा प्राणादयो वायवः रुधिराद्या भाववो जीवाश्च मिलित्वा देहं धरन्ति स्म जीवयन्ति स्म च इत्यादि प्राप्तये विद्वांसं कश्चिदेव प्रष्टुं याति न पर्वे।। ४।।

पदार्थ:-(यत्) जिस (प्रथमम्) प्रख्यात प्रथम अर्थात् सृष्टि के पहले (जायमानम्) उत्पन्न होते हुए (अस्थन्वन्तम्) हिंडुयों से युक्त देह को (श्रूप्याः) भूष्टि के बीच (अनस्था) हिंडुयों से रहित (असुः) प्राण (असुक्) रुधिर और (आत्मा) जीव (बिभर्त्त) भूरण करता, उसको (क्व, स्वित्) कहीं भी (कः) कौन (ददर्श) देखता है (कः) और कौन (पत्ति) इस उक्त विषय के (प्रष्टुम) पूछने को (विद्वांसम्) विद्वान् के (उप, गात्) समीप जावेश्वरा

भावार्थ: - जब सृष्टि के जहिले ईश्वर ने सबके शरीर बनाए, तब कोई जीव इनका देखनेवाला न हुआ। जब उनमें जीवात्मा प्रकेश किये तब ब्राण आदि वायु, रुधिर आदि धातु और जीव भी मिल कर देह को धारण करते हुए और चेष्टा करते हुए, इत्यादि विषय की प्राप्ति के लिये विद्वान् को कोई ही पूछने को जाता है, किन्तु सब नहीं।। ४॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

पूर्कः पुरुषाम् मनुसार्विजानन् देवानामेना निर्हिता पुदानि।

बुत्से बुष्कयेऽधि सुप्त तन्तून् वि तित्निरे कुवयु ओतुवा उी।।५॥१४॥

मण्डल-१। अनुवाक-२२। सूक्त-१६४

१७०३

पार्कः। पृच्छामि। मनसा। अविजानन्। देवानाम्। एना। निऽहिता। पदानि। वृत्से। बुष्कर्ये। अधि। सूप्ता तन्तून्। वि। तुल्तिरे। कुवर्यः। ओतुवै। कुम् इति॥५॥

पदार्थ:-(पाक:) ब्रह्मचर्यादितपसा परिपचनीयोऽहम् (पृच्छामि) (मनसा) अन्त करणेने (अविजानन्) न विजानन् (देवानाम्) दिव्यानां विदुषाम् (एना) एनानि (निहिता) स्थितानि (पदापि) पत्तुं प्राप्तुं ज्ञातुं योग्यानि (वत्से) अपत्ये (बष्कये) द्रष्टव्ये (अधि) (सप्त) (तन्तून्) विस्तृतान भातृन् (वि) विविधतया (तिलरे) विस्तृणन्ति (कवय:) मेधाविनः (ओतवै) विस्ताराय (उ) वितक्रिप्ता

अन्वय:-ये कवय ओतवै बष्कये वत्से सप्त तन्तून् व्यधि तित्नरे तेषामु देवानामेना निहिता पदान्यविजानन् पाकोऽहं मनसा पृच्छामि॥५॥

भावार्थ:-मनुष्यैर्बाल्यावस्थामारभ्याविदितानि शास्त्राणि विद्वाद्भः परित्वो सर्वा विद्या अध्यापनेन प्रसारणीया:॥५॥

पदार्थ:-जो (कवय:) बुद्धिमान् जन (ओतवै) विस्तार के लिये (ज्रष्कये) देखने योग्य (वत्से) सन्तान के निमित्त (सप्त) सात (तन्तून्) विस्तृत धातुओं को (व्यध्, तुन्तिरे) अनेक प्रकार से अधिक-अधिक विस्तारते हैं (उ) उन्हीं (देवानाम्) दिव्य विद्वाने के (एना) इन (निहिता) स्थापित किये हुए (पदानि) प्राप्त होने वा जानने योग्य पदों को, अधिकारों की अविजानन्) न जानता हुआ (पाक:) ब्रह्मचर्यादि तपस्या से परिपक्व होने योग्य मैं (मनुस्त) अन्तः करण से (पृच्छामि) पूछता हूँ॥५॥

भावार्थ:-मनुष्यों को योग्य है कि बाल्यावस्था स्रोतंकर अविदित शास्त्रों को विद्वानों से पढ़ कर दूसरों को पढ़ाने से सब विद्वाओं को फैलाव्रें।।५॥

पुन तमेच विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अचिकित्वाञ्चिक्तुपश्चिद्धने क्वीस्च्छामि विद्यने न विद्वान्।

वि यस्तुस्तम्भ षिळ्मा रजांस्युजस्य रूपे किमपि स्विदेर्कम्॥६॥

अचिकित्वान्। चिक्तुष्:। चिन्। अत्री क्वीन्। पृच्छामि। विद्याने। न। विद्वान्। वि। यः। तस्तम्भी षट्। इमा। रजांसि। अजस्यी कृपे। किम्। अपि। स्वित्। एकंम्॥६॥

पदार्थ: अचिकित्वान्) अविद्वान् (चिकितुषः) (चित्) अपि (अत्र) अस्मिन् विद्याव्यवहारे (कवीन्) पूर्णृक्षिद्यानाप्तान् (पृच्छामि) (विद्यने) विज्ञानाय (न) इव (विद्वान्) विद्यावान् (वि) (यः) (तस्तम्भ) स्वश्नाति (पट्) (इमा) इमानि (रजांसि) पृथिव्यादीनि स्थूलानि तत्त्वानि (अजस्य) प्रकृतेर्जीवस्य वा (रूपे) (किम्) (अपि) (स्वित्) (एकम्)॥६॥

अन्यः-अचिकित्वानहं चिदत्र चिकितुषः कवीन् विद्वान् विद्वाने न पृच्छामि। यः षडिमा रजांसि वितस्तम्भ। अजस्य स्प्रेकिं स्विदप्येकमासीत् तद्यूयं ब्रूत॥६॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। यथा अविद्वांसो विदुषः पृष्ट्वा विद्वांसो भवन्ति तथा विद्वांसो परमविदुषः पृष्ट्वा विद्या वर्द्धयेयुः॥६॥

पदार्थ:-(अचिकित्वान्) अविद्वान् में (चित्) भी (अत्र) इस विद्याव्यवहार में (चिकितुष्:) अज्ञानरूपी रोग के दूर करनेवाले (कवीन्) पूरी विद्यायुक्त आप्तविद्वानों को (विद्वान्) विद्याप्त (विद्वान्) विशेष जानने के लिये (न) जैसे पूछे वैसे (पृच्छामि) पूछता हूँ, (यः) जो (प्रद्र) छः (इमा) इन (रजांसि) पृथिवी आदि स्थूल तत्त्वों को (वि, तस्तम्भ) इकट्ठा करता है (अजस्य) प्रकृति अथित जगत् के कारण वा जीव के (रूपे) रूप में (किम्) क्या (स्वित्, अपि) ही (एकम्) एक हुआ है, इसकी तुम कहो॥६॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे अविद्वान् विद्वानों की पूछ व विद्वान् होते हैं, वैसे विद्वान् भी परम विद्वानों को पूछ कर विद्वा की वृद्धि करें॥६॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में बहा है।

इह ब्रवीतु य ईमङ्ग वेदास्य वामस्य निहितं पूर्द केः।

शीर्षाः क्षीरं दुहते गावी अस्य वृद्धिं वस्त्रीना उद्के प्रदापुः॥७॥

डुह। ब्रुवीतु। यः। ईम्। अङ्ग। वेद्। अस्य। वामस्य। निऽहितम्। पुदम्। वेरिति वेः। शीर्ष्णः। क्षीरम्। दुहुते। गार्वः। अस्य। वृद्गिम्। वस्नानाः। उदुकम्। पुदा। अपुः। आ

पदार्थ:-(इह) अस्मिन् प्रश्ने (ब्रुलीतु) बद्दतु (यः) (ईम्) सर्वतः (अङ्ग) (वेद) जानाति (अस्य) (वामस्य) प्रशस्तस्य जगतः (निहितमू) स्थापितम् (पदम्) (वेः) पक्षिणः (शीर्ष्णः) शिरसः (क्षीरम्) दुग्धम् (दुह्रते) दुहन्ति (गावः) धेनवः (अस्य) (विव्रम्) वर्तुमर्हम् (वसानाः) आच्छादिताः (उदकम्) जलम् (पदा) पादेन (अपुः) पिकृति॥ जा

अन्वयः - हे अङ्ग ! योऽस्य वासस्य वेर्निहितं पदं वेद स इहेमुत्तरं ब्रवीतु यथा वसाना गावः क्षीरं दुहते वृक्षाः पदोदकमपुस्तथा शीर्ष्णोऽस्य विद्धिं जानीयुः) ७॥

भावार्थ: -यथा पिक्षणो जितिरक्षे भ्रमन्ति तथैव सर्वे लोका अन्तरिक्षे भ्रमन्ति। यथा गावो वत्सेभ्यो दुग्धं दत्वा वर्द्धयृत्ति तथा कारणानि कार्याण वर्द्धयन्ति। यथा वा वृक्षा मूलेन जलं पीत्वा वर्द्धन्ते तथा कारणेन कार्य्य वर्द्धते ॥ ७॥

पूर्दार्थ:-है (अङ्ग) प्यारे (य:) जो (अस्य) इस (वामस्य) प्रशंसित (वे:) पक्षी के (निहितम्) धरे हुए (पदम्) पद को (वेद) जानता है, वह (इह) इस प्रश्न में (ईम्) सब ओर से उत्तम (ब्रवीतु) कह देवे जिसे (ब्रसाना:) झूल ओढ़े हुई (गाव:) गौयें (क्षीरम्) दूध को (दुहते) पूरा करतीं अर्थात् दुहाती हैं

मण्डल-१। अनुवाक-२२। सूक्त-१६४

१७०५

वा वृक्ष (पदा) पग से (उदकम्) जल को (अपु:) पीते हैं, वैसे (शीर्ष्ण:, अस्य) इसके शिर के (वर्ब्रिम्) स्वीकार करने योग्य सब व्यवहार को जानें॥७॥

भावार्थ:- जैसे पक्षी अन्तरिक्ष में भ्रमते हैं, वैसे ही सब लोक अन्तरिक्ष में भ्रमते हैं जैसे गौर्थे बछड़ों के लिये दूध देकर बढ़ाती हैं, वैसे कारण कार्यों को बढ़ाते हैं वा जैसे वृक्ष जड़ से जल प्रकर बढ़ते हैं, वैसे कारण से कार्य बढ़ता है॥७॥

अथ सूर्यादीनां कार्य्यकारणव्यवस्थामाह॥

अब सूर्यादिकों की कार्य-कारण व्यवस्था को अगले मन्त्र में कहते हैं।

माता पितर्ममृत आ बंभाज धीत्यम्रे मनसा सं हि ज्यमे। सा बीभृत्सुर्गर्भरसा निर्विद्धा नर्मस्वन्त ईदुपवाकमीयुः।

माता। पितर्रम्। ऋते। आ। बुभाजा धीती। अर्थे। मर्नसा। सम्म हि। जुग्मे सा। बीभृत्सुः। गर्भेऽरसा। निऽविद्धा। नर्मस्वन्तः। इत्। उपुऽवाकम्। ई्युः॥८॥

पदार्थ:-(माता) पृथिवी (पितरम्) सूर्यम् (ऋते) विना (आ) (वभाज) सर्वं सेवते (धीती) धीत्या धारणेन। अत्र सुपां सुलुगिति पूर्वसवर्णादेश:। (अग्रे) सृष्टे प्रक् (मनसा) विज्ञानेन (सम्) सम्यक् (हि) किल (जग्मे) संगच्छते (सा) (बीभत्सु:) या भयप्रदा (गर्भरसा) रसो गर्भे यस्याः सा (निविद्धा) नितरां विद्युदादिभिस्ताडिता (नमस्वन्तः) प्रशस्तान्नयुक्ता भूत्वा (इत्) एव (उपवाकम्) उपगता वाक् यस्मिंस्तम् (ईयु:) यन्ति प्राप्नुवन्ति॥८॥

अन्वय:-बीभत्सुर्गर्भरसा निविद्धा सा भाता भेरत्यग्रे भितरमृते आ बभाज यं हि मनसा संजग्मे तामाप्य नमस्वन्त इदुपवाकमीयु:॥८॥

भावार्थ: -यदि सूर्येण विनारपृथिकी स्यात् तर्हि स्वशक्त्या सर्वान् कुतो न धारयेत्। यदि पृथिवी न स्यात्तर्हि सूर्यः स्वप्रकाशवान् कर्थे न भवेत्। अतोऽस्यां सृष्टौ स्व स्व स्वभावे सर्वे पदार्थाः स्वतन्त्राः सन्ति, सापेक्षव्यवहारे परतन्त्राश्चाद्या

पदार्थ:-(बीभत्यु:) जो भर्ग्सूर (गर्भरसा) जिसके गर्भ में रसरूप विद्यमान (निविद्धा) निरन्तर बंधी हुई (सा) वह (माता) पृथिकी (धीती) धारण से (अग्रे) सृष्टि के पूर्व (पितरम्) सूर्य के (ऋते) विना सबका (आ, बभूज) अच्छे प्रकार सेवन करती है, जिसको (हि) निश्चय के साथ (मनसा) विज्ञान से (सं, जग्मे) सूर्क होते, प्राप्त होते, उसको प्राप्त होकर (नमस्वन्त:) प्रशंसित अन्नयुक्त होकर (इत्) ही (उपवाकम्) जिसभे वचन मिलता उस भाग को (ईयु:) प्राप्त होते हैं॥८॥

भावार्थ:-यदि सूर्य के विना पृथिवी हो तो अपनी शक्ति से सबको क्यों न धारण करे? जो पृथिवी न हो तो सूर्य आप ही प्रकाशमान कैसे न हो? इस कारण इस सृष्टि में अपने-अपने स्वभाव से स्व पदार्थ स्वतन्त्र हैं और सापेक्ष व्यवहार में परतन्त्र भी हैं॥८॥

१७०६

ऋग्वेदभाष्यम्

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

युक्ता मातासीद् धुरि दक्षिणाया अतिष्ठद् गर्भो वृज्नीष्वन्तः। अमीमेद्वत्सो अनु गार्मपश्यद् विश्वरूप्यं त्रिषु योजनेषु॥९॥

युक्ता। माता। आसीत्। धुरि। दक्षिणायाः। अतिष्ठत्। गर्भः। वृज्ननीषुं। अन्तरिति। अमीमेत्। वृत्यः। अनुं। गाम्। अपुरुयुत्। विश्वऽरूप्यम्। वृषु। योजनेषु॥९॥

पदार्थ:-(युक्ता) (माता) पृथिवी (आसीत्) (धुरि) या धर्रात तस्याम् (दक्षिणायाः) दिक्षिणस्याम् (अतिष्ठत्) तिष्ठति (गर्भः) ग्रहीतव्यः (वृजनीषु) वर्जनीपास् कथास् (अन्तः) मध्ये (अमीमेत्) प्रक्षिपित (वत्सः) (अनु) (गाम्) (अपश्यत्) पश्यित (विश्वस्त्रप्यम्) विश्वेषु अखिलेषु रूपेषु भवम् (त्रिषु) (योजनेषु) बन्धनेषु॥९॥

अन्वय:-यो गर्भो वृजनीष्वन्तरतिष्ठत् यस्य दक्षिणाया धुरि माता युक्तोऽऽसीत् वत्सो गामिवामीमेत् त्रिषु योजनेषु विश्वरूप्यमन्वपश्यत् स पदार्थविद्या ज्ञातुमर्हति॥९॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। यथा गर्भकृषी मेद्यो गच्छत्सु घनेषु विराजते तथा सर्वेषां मान्यप्रदा भूमिराकर्षणेषु युक्तास्ति यथा वत्सो गम्निपच्छित तथेयं सूर्यमनुभ्रमित यस्यां सर्वाणि शुक्लादीनि रूपाणि सन्ति सैव सर्वेषां पालिकास्त्रिप्रश्

पदार्थ:-जो (गर्भ:) ग्रहण करने के ग्रेंस्य पदार्थ (वृजनीषु) वर्जनीय कक्षाओं में (अन्त:) भीतर (अतिष्ठत्) स्थिर होता है, जिसके (दक्षिण्याः) दाहिनी (धुरि) धारण करनेवाली धुरि में (माता) पृथिवी (युक्ता) जड़ी हुई (आसीत्) है। और (क्स्स) बेल्डा (गाम्) गौ को जैसे-वैसे (अमीमेत्) प्रक्षेप करता है तथा (त्रिषु) तीन (योजनेषु) बन्धनों में (विश्वरूप्यम्) समस्त पदार्थों में हुए भाव को (अन्वपश्यत्) अनुकूलता से देखता है, वह पद्मर्शविद्या के ज्ञानने को योग्य है॥९॥

भावार्थ:-इस मन्त्र मिं बाचकलुप्लेपमालङ्कार है। जैसे गर्भरूप मेघ चलते हुए बादलों में विराजमान है, वैसे सबक्रो मान्य देनेलाली भूमि आकर्षणों में युक्त है। जैसे बछड़ा गौ के पीछे जाता है, वैसे यह भूमि सूर्य का अनुभूमण करती है, जिसमें समस्त सुपेद, हरे, पीले, लाल आदि रूप हैं, वही सबका पालन करनेवाली है॥९॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

र्विस्रो मातृस्त्रीन्पितृन्बिभ्रदेकं ऊर्ध्वस्तस्थौ नेमवं ग्लापयन्ति।

मुत्रेयन्ते दिवो अमुर्घ्यं पृष्ठे विश्वविदुं वाचुमर्विश्वमिन्वाम्॥१०॥१५॥

अष्टक-२। अध्याय-३। वर्ग-१४-२३ मण्डल-१। अनुवाक-२२। सूक्त-१६४

तिस्रः। मातः। त्रीन्। पितृन्। बिभ्रत्। एकः। ऋर्वः। तस्थौ। न। ईम्। अर्व। ग्लुपयन्ति। मुन्त्रयन्ते। द्विवः अमुर्घ्या पृष्ठे। विश्वऽविद्यम्। वार्चम्। अविश्वऽमिन्वाम्॥ १०॥

पदार्थ:-(तिस्त:) (मात:) उत्तममध्यमनिकृष्टरूपा भूमि: (त्रीन्) विद्युत्प्रसिद्धसूर्यस्वरूपीनम्त्रीन् (पित्न) पालकान् (बिभ्रत्) धरन् सन् (एक:) सूत्रात्मा वायु: (ऊर्ध्व:) (तस्थौ) तिष्ठित् (न) (ईम्) सर्वतः (अव) (ग्लापयन्ति) (मन्त्रयन्ते) गुप्तं भाषन्ते (दिवः) प्रकाशमानस्य (अमुख्य) दूरे स्थितस्य सूर्यस्य (पृष्ठे) परभागे (विश्वविदम्) विश्वे विदन्ति ताम् (वाचम्) वाणी<mark>म् (अविश्वीिमन्वाम्</mark>) असर्वसेविताम॥१०॥

अन्वयः-यस्तिस्रो मातृस्त्रीन् पितृनीं ब्रिभ्रत्सन्नूद्ध्वं एकस्तस्थौ विद्वांस ये एतम्ब ग्लापयन्ति। अविश्वमिन्वां विश्वमिदं वाचं मन्त्रयन्ते तेऽमुष्य दिवः पृष्ठे विराजन्ते न ते दुःखमश्नुवते॥१०॥

भावार्थ:-यस्सूत्रात्मा वायुरग्निं जलं पृथिवीं च धरित तमध्यासेत्र निर्दित्वा सत्यां वाचमन्येभ्य उपदिशेतु॥१०॥

पदार्थ:-जो (तिस्त्र:) तीन (मात:) उत्तम, मध्यम, अध्यम, भूमियों तथा (त्रीन्) बिजुली और सूर्यरूप तीन (पित्न्) पालक अग्नियों को (ईम्) सब ओर्र से (विभूत्र) धारण करता हुआ (ऊर्ध्व:) ऊपर ऊंचा (एक:) एक सूत्रात्मा वायु (तस्थौ) स्थिर होता है पी विद्वान् जन उसको (अव, ग्लापयन्ति) कहते-सुनते अर्थात् उसके विषय में वार्तालाप क्र्यी हैं तथा/(अविश्वमिन्वाम्) जो सबसे न सेवन की गई (विश्वमिदम्) सब लोग उसको प्राप्त क्रोर्स उस (व्याचम्) वाणी को (मन्त्रयन्ते) सब ओर से विचारपूर्वक गुप्त कहते हैं, वे (अमुष्य) इस दूरस्थ (दिव:) प्रकाशमान सूर्य के (पृष्ठे) परभाग में विराजमान होते हैं, वे (न) नहीं दु:ख को प्राप्त होते हैं॥१०॥

भावार्थ:-जो सूत्रात्मा वायु, अस्नि, जेंद्व और पृथिवी को धारण करता है, उसको अभ्यास से जानके सत्य वाणी का औरों के लिये उपदेश करें॥१०॥

अथ विश्रोकतः कालव्यवस्थामाह॥

भुब बिशोर्प कर काल की व्यवस्था को कहते हैं।।

द्वादशारं नहि कर्जाराया वर्विति चक्रं परि द्यामृतस्य।

आ पुत्रा अंग्ने मिथुनासो अत्रं सप्त शतानि विंशतिश्चं तस्थु:॥११॥

द्वार्दश्र अरम्) नहि। तत्। जराय। वर्विति। चुक्रम्। परि। द्वाम्। ऋतस्य। आ। पुत्राः। अग्ने। मिथुनासः। अत्रे। सुप्ता श्रुतानि विश्वाति:। चु। तुस्थु:॥ ११॥

पदार्थ:-(द्वादशारम्) द्वादश अरा मासा अवयवा यस्य तं संवत्सरम् (निह) (तत्) (जराय) हान्<mark>ये (**वर्बार्स**) भुशं वर्त्तते (**चक्रम्**) चक्रवद्वर्त्तमानम् (**परि**) सर्वतः (द्याम्) द्योतमानं सूर्य्यम् (**ऋतस्य**)</mark>

सत्यस्य कारणस्य (आ) (पुत्रा:) तनया इव (अग्ने) विद्वन् (मिथुनास:) संयोगेनोत्पन्नाः (अत्र) अस्मिन् संसारे (सप्त) (शतानि) (विंशतिः) (च) (तस्थुः) तिष्ठन्ति॥११॥

अन्वयः-हे अग्ने विद्वँस्त्वमत्र यो द्वादशारं चक्रं द्यां परिवर्वित्तं तज्जराय निह भवति। येऽत्र ऋतस्य क्रिएएस्थ सकाशात् सप्तशतानि विंशतिश्च मिथुनासः पुत्रास्तत्त्वविषया आतस्थुस्तान् विजानीहि॥११॥

भावार्थ:-कालोऽनन्तोऽपरिणामी विभुश्च वर्तते। नैव तस्य कदाचिदुत्प्रतिर्माशो वाऽस्ति। एतज्जगतः कारणे विंशत्युत्तराणि यानि सप्तशतानि तत्त्वानि सन्ति तानि मिलित्वा स्थूलानीश्वरित्योगेन जातानि सन्ति। एषां कारणमजं च वर्तते यावाद्भिन्नान्येतानि प्रत्यक्षतया न जानीयात् ताविद्वद्यावृद्धये मनुष्यः प्रयतेत॥११॥

पदार्थ:-हे (अग्ने) विद्वान्! तू (अत्र) इस संसार में जो (द्वादशारम्) जिसके बारह अङ्ग हैं, वह (चक्रम्) चक्र के समान वर्तमान संवत्सर (द्वाम्) प्रकाशमान सूर्य के (पित, वर्वित्त) सब ओर से निरन्तर वर्तमान है (तत्) वह (जराय) हानि के लिये (निह) नहीं होता है, जो इस संसार में (ऋतस्य) सत्य कारण से (सप्त) सात (शतानि) सौ (विंशतिः) बीस (च) भी (पिथुनासः) संयोग से उत्पन्न हुए (पुन्नाः) पुत्रों के समान वर्तमान तत्त्व विषय (आ, तस्थः) अपने अपने विषयों में लगे हैं, उनको जान॥११॥

भावार्थ: - काल अनन्त, अपरिणामी और विभि क्र्तमान है, न उसकी कभी उत्पत्ति है और न नाश है। इस जगत् के कारण में सात सौ बीस जी तत्त्व हैं, व मिल के स्थूल ईश्वर के निर्माण किए हुए योग से उत्पन्न हुए हैं। इनका कारण अज और नित्य है, जब तक अलग अलग इन तत्त्वों को प्रत्यक्ष में न जाने तब तक विद्या की वृद्धि के लिये सिनुष्य रात्नी किया करें॥११॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

पञ्चीपादं पितरं द्वादीलकृतिं दिव आहुः परे अर्धे पुरीषिणीम्। अथेमे अन्य उपरे विचक्षुणं सुप्तचेक्रे षळर आहुरर्पितम्॥१२॥

पञ्चेऽपादम्। पितस्म्। द्वादेशऽआकृतिम्। दिवः। आहुः। परे। अर्धे। पुरीषिणम्। अर्थ। इमे। अन्ये। उपरे। विऽचुक्षुणम्। सुप्तऽचेक्के। षट्ऽअरे। आहुः। अर्पितम्॥ १२॥

पदार्थः (पञ्चपादम्) पञ्च क्षणमूहर्त्तप्रहरिवसपक्षाः पादा यस्य तं संवत्सरं सूर्यं वा (पितरम्) पितृवत्पालुनिनिन्तम् (द्वादशाकृतिम्) द्वादश मासा आकृतिर्यस्य तम् (दिवः) प्रकाशमानस्य (आहः) कथयन्त्रि (परे) (अर्द्धे) (पुरोषिणम्) पुराणां सिहतानां पदार्थानामीषितारम् (अथ) (इमे) (अन्ये) अन्ये पदार्थाः (उपरे) मेघमण्डले (विचक्षणम्) वाग्विषयम् (सप्तचक्रे) सप्तविधानि चक्राणि भ्रमणपरिधयो प्रस्मिस्तिस्मन् (षळरे) षट् ऋतवोऽरा यस्मिंस्तिस्मन् (आहः) कथयन्ति (अर्पितम्) स्थापितम्॥१२॥

मण्डल-१। अनुवाक-२२। सूक्त-१६४

१७०९

अन्वयः-हे मनुष्या! यूयं पञ्चपादं पितरं द्वादशाकृतिं पुरीषिणं दिवः परेऽर्द्धे विद्वांस आहुः। अथेमेऽन्ये विद्वासः षडरे सप्तचक्रे उपरे विचक्षणमर्पितमाहुस्तं विजानीत॥१२॥

भावार्थ:-हे मनुष्या! यूयमत्र कालस्याऽवयवा विवक्षिता यत्र विभौ नित्येऽनन्ते काले सर्व जगदुत्पत्तिस्थितिप्रलायन्तं लभ्यते तस्य सूक्ष्मत्वात् कालस्य बोधः कठिनोऽस्ति तस्मादेतं प्रयत्नेन विजानीत॥१२॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! तुम (पञ्चपादम्) क्षण, मुहुर्त्त, प्रहर, दिवस, पक्ष, व पांच पग जिस के (पितरम्) पिता के तुल्य पालना करानेवाले (द्वादशाकृतिम्) बारह महीने जिसका अफार (पुरीषिणम्) और मिले हुए पदार्थों की प्राप्ति वा हिंसा करानेवाले अर्थात् उनकी मिलाकृ को अलग-अलग करानेहारे संवत्सर को (दिव:) प्रकाशमान सूर्य के (परे) परले (अर्द्धे) आधे भूग में विद्वान् (आहु:) कहते हैं, बताते हैं (अथ) इसके अनन्तर (इमे) ये (अन्ये) और विद्वान् जन (पडरे) जिसमें छः ऋतु आरारूप और (सप्तचक्रे) सात चक्र घूमने की परिधि विद्यमान उस (उपरे) मिश्नएडल में (विचक्षणम्) वाणी के विषय को (अर्पितम्) स्थापित (आहु:) कहते हैं, उसको जानोश रूप।

भावार्थ:-हे मनुष्यो! तुम इस मन्त्र में काल के अवस्व कहें को अभीष्ट हैं। जिस विभु, एक रस, सनातन काल में समस्त जगत् उत्पत्ति, स्थिति, प्रलयान्त को लब्ध होता है, उसके सूक्ष्मत्व से उस काल का बोध कठिन है, इससे इसको प्रयत्न से जाना।।१२।

पुनस्तुपेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

पञ्चारे चुक्रे परिवर्तमाने तस्मिन्ना संस्थुभूविनानि विश्वा।

तस्य नाक्ष्मस्तप्यते भूरिभारः सुनादेव न शीर्यते सर्नाभिः॥ १३॥

पञ्चरअरे। चुक्रे। पुरिऽवर्तमाना तस्मिन्। आ। तस्थुः। भुवनानि। विश्वां। तस्यं। न। अक्षंः। तप्यते। भूरिरंभारः। सुनात्। एव। न। श<u>ोर्धते</u>। सुरुनाभिः॥ १३॥

पदार्थ:-(पञ्चारे) पञ्च तुम्मिन अरा यस्मिँस्तस्मिन् (चक्रे) चक्रवद्गम्यमाने (पिरवर्तमाने) (तिस्मिन्) (आ) (तस्थु:) लिप्टिने (भुवनानि) लोकाः (विश्वा) सर्वाणि (तस्य) (न) निषेधे (अक्षः) पुरो भागः (तप्यते) (भूरिभारः) भूरि बहुर्भारो यस्मिन् सः (सनात्) सनातने (एव) (न) (शीर्यते) हिंस्यते (सनाभिः) समाना निभिर्वन्थनं यस्य सः॥१३॥

अर्थयः - है विद्वांसः ! पञ्चारे परिवर्त्तमाने तस्मिञ्चक्रे विश्वा भुवनान्यातस्थुः । तस्याक्षो न तप्यते, सनाभिर्भूरिभारः कालः स्वीत् नैव शौर्यतो। १३॥

भोदार्थः-यथेदं चक्रं कारणकालाकाशदिगात्मकं जगत्परमेश्वरे व्याप्तं वर्तते तथैव क्रीत्मकाशदिक्षु कार्यकारणात्मकं जगद् व्याप्यमस्ति॥१३॥

पदार्थ:-हे विद्वानो! (पञ्चारे) जिसमें पांच तत्त्व अरारूप हैं (परिवर्त्तमाने) और जो सब ओर से वर्त्तमान (तिस्मन्) उस (चक्रे) पहिये के समान ढुलकते हुए पञ्चतत्त्व के पञ्चीकरण में (विश्वा) समस्त (भुवनानि) लोक (आ, तस्यु:) अच्छे प्रकार स्थिर होते हैं (तस्य) उसका (अक्ष:) अगला पाग अर्थात् जो उससे प्रथम ईश्वर है, वह (न) नहीं (तप्यते) कष्ट को प्राप्त होता अर्थात् संसार के सूख-दु:ख का अनुभव नहीं करता (सनाभि:) और जिसका समान बन्धन है अर्थात् क्रिया के साथ में लगा हुआ है और (भूरिभार:) जिनमें बहुत भार हैं, बहुत कार्य-कारण आरोपित हैं, वह काल (सनात्) सनात्भपन से (नैव) नहीं (शीर्यते) नष्ट होता॥१३॥

भावार्थ:-जैसे यह चक्ररूप कारण, काल, आकाश और दिशात्मक जपत परमेश्वर में व्याप्त है, वैसे ही काल, आकाश और दिशाओं में कार्यकारणात्मक जगत् व्याप्य है। १३॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।

सर्नेमि चक्रमजरं वि वावृत उत्तानायां दर्श युक्ता वहिता।
सूर्यस्य चक्षू रजसैत्यावृतं तस्मिन्नार्पिता भुवनि विश्वारी १४॥

सऽनैमि। चुक्रम्। अजर्रम्। वि। वृवृते। उत्तानायाम्। दश्री युक्ताः। वृहन्ति। सूर्यस्य। चक्षुः। रजसा। एति। आऽवृतम्। तस्मिन्। आर्पिता। भुवनानि। विश्वा॥ १४॥

पदार्थ:-(सनेमि) समानो नेमिर्यस्मिर्स्तत् (चक्रम्) चक्रवद्वर्त्तमानम् (अजरम्) जरादोषरिहतम् (वि) विशेषे (ववृते) पुनः पुनरावर्त्तते। अत्र तुजादीन्ग्रामिति दीर्घः। (उत्तानायाम्) उत्कृष्टतया विस्तृतायां जगत्याम् (दश) प्राणाः (युक्ताः) (वहृत्ति) प्राप्यन्ति (सूर्यस्य) (चक्षुः) व्यक्तिकारकम् (रजसा) लोकैः सह (एति) गच्छन्ति (आवृतम्) समन्तादाच्छादितम् (तस्मिन्) (आर्पिता) स्थापितानि (भुवनानि) भूगोलाख्यानि (विश्वा) सर्वाणि॥ श्वा

अन्वयः-हे मनुष्या! यह्मनेष्यजरं चक्रमुतामायां विववृते दश युक्ता वहन्ति यत्सूर्य्यस्य चक्षू रजसाऽऽवृतमेति तस्मिन् विश्वा भुवनान्यार्पिता कन्तिति यूये क्रित्त॥१४॥

भावार्थ:-यो विभुक्तियो सर्वलोकाधारस्समयो वर्त्तते, तस्यैव गत्या सूर्य्यादिलोकाः प्रकाशिता भवन्तीति सर्वैर्वेद्यम्॥१४॥

पदार्थ्य: हे मतृष्यों! जो (सनेमि) समान नेमि नाभिवाला (अजरम्) जरादोष से रहित (चक्रम्) चक्र के सम्पान वर्तमान कालचक्र (उत्तानायाम्) उत्तम विथरे हुए जगत् में (वि, ववृते) विशेष कर बार-बार आता है और उस कालचक्र को (दश) दश प्राण (युक्ताः) युक्त (वहन्ति) बहाते हैं। जो (सूर्यम्य) सूर्य का (चक्षुः) व्यक्ति प्रकटता करनेवाला भाग (रजसा) लोकों के साथ (आवृतम्) सब

मण्डल-१। अनुवाक-२२। सूक्त-१६४

१७११

ओर से आवरण को (एति) प्राप्त होता है अर्थात् ढंप जाता है (तस्मिन्) उसमें (विश्वा) समस्ते (भुवनानि) भूगोल (आर्पिता) स्थापित हैं, ऐसा तुम जानो॥१४॥

भावार्थ:-जो विभु, नित्य और सब लोकों का आधार समय वर्त्तमान है, उसी काल की गिति स् सूर्य आदि लोक प्रकाशित होते हैं, ऐसा सब लोगों को जानना चाहिये॥१४॥

अथ पृथिव्यादीनां रचनाविशेषमाह॥

अब पृथिव्यादिकों की रचना विशेष की व्याख्या करते हैं॥

साकुंजानां सप्तर्थमाहुरेकुजं षळिद्यमा ऋषयो देवजा इति। तेषांमिष्टानि विहितानि धामुशः स्थात्रे रेजन्ते विकृतानि रूपुर्शः॥१९५॥।

साकंऽजानाम्। सप्तर्थम्। आहुः। एकऽजम्। षट्। इत्। यमाः। ऋषेर्यः। देवेऽजाः। इति। तेषाम्। इष्टानि। विऽहितानि। धामुऽशः। स्थात्रे। रेजन्ते। विऽकृतानि। रूपुऽशः॥ १५॥

पदार्थ:-(साकंजानाम्) सहैव जातानाम् (सप्तथम्) सप्तमम् आहुः) कथयन्ति (एकजम्) एकस्मात्कारणाज्जातम् (षट्) (इत्) एव (यमाः) नियन्तरः (ऋषयः) गन्तारः (देवजाः) देवाद्विद्युतो जाताः (इति) प्रकारार्थे (तेषाम्) (इष्टानि) संगतानि (विद्वितिनि) ईश्वरेण रचितानि (धामशः) धामानि धामानि (स्थात्रे) स्थिरस्य कारणस्य मध्ये। अत्र षष्ट्रवर्थे चतुर्थी। (रेजन्ते) कम्पन्ते (विकृतानि) विकारमवस्थान्तरं प्राप्तानि (रूपशः) रूपैः सह।।

अन्वयः-हे विद्वांसो! यूयं साकंजानां मध्ये स्वदेकनं महोत्तत्वं सप्तथमाहुः, यत्र षड् देवजा यमा ऋषय ऋतवो वर्त्तन्ते तेषां मध्ये यानि धामश इष्टानीश्वरेण विहिन्नित्त्रे सूप्रेशी विकृतानि स्थात्रे रेजन्ते तानीदिति विजानीत॥१५॥

भावार्थ:-येऽत्र जगित पदार्थाः सन्ति ते सर्वे ब्रह्मिनयोगतो युगपज्जायन्ते नात्र रचनायां क्रमाकाङ्क्षाऽस्ति, कृतः परमेश्वरस्य सर्वेत्यापकत्वाऽनन्तसामर्थ्यवत्त्वाभ्याम्। अतः स स्वयमचिलतः सन् सर्वाणि भुवनानि चालयित, स ईश्वरोऽविकारः सन् सर्वान् विकारयित, यथा क्रमेण ऋतवो वर्त्तन्ते स्वानि स्वानि लिङ्गान्युत्पादयन्ति तथेव पदार्था उत्पद्धमानाः स्वान् स्वान् गुणान् प्राप्नुवन्ति॥१५॥

पदार्थ:-हे विद्वानी तुम (साकंजानाम्) एक साथ उत्पन्न हुए पदार्थों के बीच में जिस (एकजम्) एक कारण से रुप्न महत्तत्व को (सप्तथम्) सातवाँ (आहु:) कहते हैं, जहाँ (षट्) छः (देवजा:) देदीप्यमान बिजुली में उत्पन्न हुए (यमा:) नियन्ता अर्थात् सबको यथायोग्य व्यवहारों में वर्तानेवाले (ऋष्य:) आप सब से मिलनेवाले ऋतु वर्त्तमान हैं (तेषाम्) उनके बीच जिन (धामशः) प्रत्येक स्थान में (इष्टानि) मिले हुए पदार्थों को ईश्वर ने (विहितानि) रचा है और जो (रूपशः) रूपों के साथ (विकृतानि) अवस्थान्तर को प्राप्त हुए (स्थाने) स्थित कारण के बीच (रेजने) चलायमान होते, उन सबको (इत्) ही (इति) इस प्रकार से जानो॥१५॥

भावार्थ:-जो इस जगत् में पदार्थ हैं, वे सब ब्रह्म के निश्चित किये हुए व्यवहार से एक साथ उत्पन्न होते हैं। यहाँ रचना में क्रम की आकाङ्क्षा नहीं है, क्योंकि परमेश्वर के सर्वव्यापक और अनन्त सामर्थ्यवाला होने से। इससे वह आप अचिलत हुआ सब भुवनों को चलाता है और वह ईश्वर विकाररहित होता हुआ सब को विकारयुक्त करता है, जैसे क्रम से ऋतु वर्त्तमान हैं और अपरे-अपने चिह्नों को समय-समय में उत्पन्न करते हैं, वैसे ही उत्पन्न होते हुए पदार्थ अपने-अपने मुखें को प्राप्त होते हैं॥१५॥

अथ विद्वद्विदुषीविषयमाह॥

अब विद्वान् और विदुषी स्त्रियों के विषय को कहते 🚑

स्त्रियः सुतीस्ताँ उ मे पुंस आहुः पश्यदक्ष्णवान्न वि चेत्दुः स

कुविर्यः पुत्रः स ईमा चिकेत यस्ता विजानात्स पितुष्पितास्ति॥ श्रहः॥

स्त्रियः। सतीः। तान्। ऊम् इति। मे। पुंसः। आहुः। पश्यत्। अक्षुण्ऽवान्। न। वि। चेत्त्। अस्यः। कृविः। यः। पुत्रः। सः। ईम्। आ। चिकेत्। यः। ता। विऽजानात्। सः। पृतुः। पिताः अस्तत्॥ १६॥

पदार्थ:-(स्त्रिय:) (सती:) विद्यासुशिक्षादिशुभगुण्याहिताः (तान्) (३) वितर्के (मे) मम (पुंस:) पुरुषान् (आहु:) कथयन्ति (पश्यत्) पश्येत्। अत्र लड्युडभावः। (अक्षण्वान्) विज्ञानी (न) निषेधे (वि) (चेतत्) चेतेत् (अन्थः) ज्ञानशून्यः (कविः) विद्रमन्तपुत्रः (यः) (पुत्रः) पवित्रोपचितः (सः) (ईम्) (आ) (चिकेत) विज्ञानीत (यः) (ता) तानि (विज्ञानात्) (सः) (पितुः) जनकस्य (पिता) जनकः (असत्) भवेत्॥१६॥

अन्वयः – हे मनुष्या! यान् अक्षण्वान् पश्यद्धाः ने विचेतत् सतीः स्त्रिय आहुस्तानु मे पुंसो जनान् विजानीत। यः कविः पुत्रस्ता तानीमा विजानात् स विद्वान्न स्योत् यो विद्वान् भवेत् स पितुष्यितासदिति यूयं चिकेत॥१६॥

भावार्थ: –यद्विद्वांसो जानन्ति तस्बिद्धांसो ज्ञातुं न शक्नुवन्ति। यथा विद्वांसः पुत्रानध्याप्य विदुषः कुर्युस्तथा विदुष्यः स्त्रियः क्रून्या विदुषोः संपादयेयुः। ये पृथिवीमारभ्य परमेश्वरपर्यन्तानां पदार्थानां गुणकर्मस्वभावान् विज्ञाय्यस्मिर्थकाभूमीक्षान् साध्नुवन्ति ते युवानोऽपि वृद्धानां पितरो भवन्ति॥१६॥

पदार्थ: - हे मनुष्यो जिनकों (अक्षण्वान्) विज्ञानवान् पुरुष (पश्यत्) देखे (अन्धः) और अन्ध अर्थात् अज्ञानी पुरुष (न) नहीं (वि, चेतत्) विविध प्रकार से जाने और जिनको (सतीः) विद्या तथा उत्तम शिक्षादि शुभ पुणों से युक्त (स्त्रियः) स्त्रियां (आहुः) कहती हैं (तानु) उन्हीं (मे) मेरे (पुंसः) पुरुषों को जानो (यः) जो (कविः) विक्रमण करने अर्थात् प्रत्येक पदार्थ में क्रम-क्रम से पहुंचानेवाली बुद्धि रख्यनेवालो (पुत्रः) पवित्र वृद्धि को प्राप्त पुरुष (ता) उन इष्ट पदार्थों को (ईम्) सब ओर से (आ, विज्ञानीत्) अच्छे प्रकार जाने (सः) वह विद्वान् हो और (यः) जो विद्वान् हो (सः) वह (पितुः) पिता व्राप्तिः) पिता (असत्) हो, यह तुम (चिकेत) जानो॥१६॥

मण्डल-१। अनुवाक-२२। सूक्त-१६४

१७१३

भावार्थ:-जिसको विद्वान् जानते हैं, उसको अविद्वान् नहीं जान सकते। जैसे विद्वान् जन पुत्रों को पढ़ाकर विद्वान् करें, वैसे विदुषी स्त्रियां कन्याओं को विदुषी करें। जो पृथिवी से लेके ईश्वरपर्यन्त पदार्थी के गुण, कर्म, स्वभावों को जान धर्म्म, अर्थ, काम और मोक्ष को सिद्ध करते हैं, वे जवान भी बुद्धों के पिता होते हैं॥१६॥

पुन: पृथिव्यादीनां कार्यकारणविषयमाह॥

फिर पृथिव्यादिकों के कार्यकारण विषय को कहा है॥

अवः परेण पुर एनावरेण पुदा वृत्सं बिभ्रंती गौरुद्स्थात्। सा कुद्रीची कं स्विद्धं परागात् क्वं स्वित्सूते नुहि यूथे अन्त्राभूष्ण

अवः। परेणा पुरः। एना। अवरेणा पुदा। वृत्सम्। बिभ्रंती। गौः उत्। भ्रुस्यात्। सा। कुद्रीची। कम्। स्वित्। अर्धम्। परा। अगात्। क्वं। स्वित्। सूते। नुहि। यूथे। अन्तरिति॥ १७॥

पदार्थ:-(अव:) अधस्तात् (परेण) (पर:) (एना) एके (अवरेण) अर्वाचीनेन (पदा) प्रापकेन गमनरूपेण (वत्सम्) प्रसूतं मनुष्यादिकं संसारम् (बिभ्रती) धरन्ती (गौर) गच्छतीतिः गौः पृथिवी (उत्) (अस्थात्) तिष्ठति (सा) (कद्रीची) अचाक्षुष्यगमना (कस्) (स्वत्) (अर्द्धम्) भागम् (परा) (अगात्) गच्छति (क्व) कस्मिन् (स्वत्) (सूते) उत्पादयित (क्हि) निषेधे (यूथे) समूहे (अन्तः) मध्ये॥१७॥

अन्वय:-या वत्सं बिभ्रती गौर्येन परेणाऽवरेण च पदाऽव उद्धर्स्थात्। एना पर: परस्ताच्चोद्गच्छति या यूथेऽन्तः कं स्विदर्द्धं सूते सा कद्रीची क्व स्विन्निह पराऽगात्॥ १९६१

भावार्थ:-इयं पृथिवी सूर्यादध किंदी दक्षिणमुत्तरतश्च गच्छति। अस्या गतिर्विदुषोऽन्तरा न लक्ष्यते। अस्याः परेऽर्द्धे सदाऽन्धकारः पूर्वेऽद्धे प्रकाशश्च वर्त्तते मध्ये सर्वे पदार्था वर्त्तन्ते, सेयं पृथिवी जननीव सर्वान् पाति॥१७॥

पदार्थ:-जो (वत्सम्) हुन्म हुन् मुख्यादि संसार को (विभ्रती) धारण करती हुई (गौ:) गमन करनेवाली जिस (परेण) पर के का (अवरेण) उरले (पदा) प्राप्त करनेवाले गमनरूप चरण से (अव:) नीचे से (उदस्थात्) उठले हैं (एना) इससे (पर:) पीछे से उठती है, जो (यूथे) समूह के (अन्त:) बीच में (कम्, स्वित्) किसी को (अर्द्धम्) आधा (सूते) उत्पन्न करती है (सा) वह (कद्रीची) अप्रत्यक्ष गमन करनेवाली (क्व, स्वित्) किसी में (निह) नहीं (परा, अगात्) पर को लौट जाती॥१७॥

भावार्थ: -यह पृथिवी सूर्य से नीचे-ऊपर और उत्तर-दक्षिण को जाती है। इसकी गित विद्वानों के विना न्यदेखी जाती इसके परले आधे भाग में सदा अन्धकार और उरले आधे भाग में प्रकाश वर्त्तमान है बीच में सब पदार्थ वर्त्तमान हैं, सो यह पृथिवी माता के तुल्य सबकी रक्षा करती है॥१७॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अवः परेण पितरं यो अस्यानुवेदं पुर पुनावरेण।

कुर्वीयमानः क इह प्र वीचहेवं मनः कुतो अधि प्रजातम्॥ १८॥

अवः। परेण। पितरम्। यः। अस्य। अनुऽवेदं। पुरः। पुना। अवरेण। कुविऽयमानः। कः। हृहे। प्र देवम्। मनः। कुतः। अर्धि। प्रऽजीतम्॥ १८॥

पदार्थ:-(अव:) अवस्तात् (परेण) परेण मार्गेण (पितरम्) पालकं सूर्यम् (यः) (अस्य) (अनुवेद) विद्यापठनानन्तरं जानाति (पर:) परस्मात् (एना) एनेन (अवरेण) मार्गेण (क्वीयमानः) अतीव विद्वान् (क:) (इह) अस्यां विद्यायां जगित वा (प्र) (वोचत्) प्रवदेत् (देवम्) दिव्यगुण्भसंपन्नम् (मन:) अन्त:करणम् (कुत:) (अधि) (प्रजातम्) उत्पन्नम्॥१८॥

अन्वयः-यो विद्वानस्यावः परेण च वर्त्तमानं पितरमनुवेद। यः पर एनाउँ बरणानुवेद स् कवीयमानः कुत इदं देवं मनः प्रजातमितीह कोऽधि प्रवोचत्॥१८॥

भावार्थ:-ये मनुष्या विद्युतमारभ्य सूर्यपर्यन्तमग्निं पित्रिमिव पोल्नकं जानीयुः। यस्य पराऽवरे कार्यकारणाख्ये स्वरूपे स्तस्तदुपदेशं दिव्यान्त:करणा भूत्वा इह प्रवेदेयुः। १८॥

पदार्थ:-जो विद्वान् (अस्य) इसके (अवः) अधिभाग से और (परेण) परभाग से वर्तमान (पितरम्) पालनेवाले सूर्य को (अनुवेद) विद्या पढ़ के अनुवार जानता है (यः) जो (परः) पर और (एना) इस उक्त (अवरेण) नीचे के मार्ग से जानता है, वह (कवीयमानः) अतीव विद्वान् है और (कुतः) कहाँ से यह (देवम्) दिव्यगुणसम्पन्न (पनः) अनुरःकरण (प्रजातम्) उत्पन्न हुआ ऐसा (इह) इस विद्या वा जगत् में (कः) कौन (अधि, प्र, विद्युत्) अभिकतर कहे॥१८॥

भावार्थ:-जो मनुष्य बिजुली को लेकर भूर्यपर्यन्त अग्नि को पिता के समान पालनेवाला जाने, जिसके पराऽवर भाग में कार्यकारण स्वरूप है, उसका उपदेश दिव्य अन्त:करणवाले होकर इस संसार में कहें॥१८॥

पुन्स्त्रेमेव विषयमाह॥

फिरक्रमी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

ये अर्वाञ्चस्ताँ उ पराचे आहुर्ये पराञ्चस्ताँ उ अर्वाचे आहुः।

इन्द्रेश्च क्रिक्युं सोम् तानि धुरा न युक्ता रर्जसो वहन्ति॥१९॥

ये। अर्बाच्चाः तान्। ऊम् इति। पर्राचः। आहुः। ये। पर्राच्चः। तान्। ऊम् इति। अर्वाचः। आहुः। इन्द्रः। च। या। चुक्रथुंन सोमा तानि। धुरा। न। युक्ताः। रजसः। वृहुन्ति॥१९॥

पदार्थ:-(ये) (अर्वाञ्च:) अर्वागधोऽञ्चन्ति ये (तान्) (उ) (पराच:) परभागप्राप्तान् (आहु:) अयन्ति (ये) (पराञ्च:) परत्वेन व्यपदिष्टाः (तान्) (उ) वितर्के (अर्वाच:) अपरत्वेन व्यपदिष्टान्

मण्डल-१। अनुवाक-२२। सूक्त-१६४

१७१५

(आहु:) (इन्द्र:) सूर्य: (च) वायु: (या) यानि भुवनानि (चक्रथु:) कुर्यातम् (सोम) ऐश्वर्ययुक्त (तानि) (धुरा) धुरि युक्ता अश्वा इव (न) इव (युक्ता:) संबद्धाः (रजसः) लोकान् (वहन्ति) चालयन्ति॥१९॥

अन्वय:-हे सोम विद्वन्! येऽर्वाञ्चः पदार्थाः सन्ति तानु पराच आहुः। ये पराञ्चस्तान्वेवार्वास् विद्वतान् विजानीहि। इन्द्रो वायुश्च या यानि धरतः तानि युक्ता धुरा न रजसो वहन्ति, तानध्यापकोपदेशकौ युवां विद्वितान् चक्रथुः॥१९॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। हे मनुष्या! इह येऽध ऊर्ध्वपरावरस्थूलसूक्ष्मलघुत्वपुरुत्व-व्यवहारा: सन्ति ते सापेक्षा वर्त्तन्ते। एकस्यापेक्षया य इदमत ऊर्ध्व यदुच्यते तदेव अभयमाख्यां लभते यदस्मात्परं तदेवान्यस्मादवरं यदस्मात्स्थूलं तदन्यस्मात्सूक्ष्मं यदस्माल्लघु तदन्यस्माद् गुर्विति यूयं विजानीत, नह्यत्र किंचिदपि वस्तु निरपेक्षं वर्त्तते, नैव चानाधारम्॥१९॥

पदार्थ:-हे (सोम) ऐश्वर्ययुक्त विद्वान्! (ये) जो (अर्वाञ्चः) मीचे जानेवाल पदार्थ हैं (तान्, 3) उन्हीं को (पराचः) परे को पहुँचे हुए (आहुः) कहते हैं। और (ये) जो (पराञ्चः) परे से व्यवहार में लाये जाते अर्थात् परभाग में पहुँचनेवाले हैं (तान्, 3) उन्हें तर्क-वितक् से (अर्वाचः) नीचे जानेवाले (आहुः) कहते हैं उनको जानो, (इन्द्रः) सूर्य (च) और वायु (या) जिन् भुवनों को धारण करते हैं (तानि) उनको (युक्ताः) युक्त हुए अर्थात् उनमें सम्बन्ध किये हुए पदार्थ (धुरा) धारण करनेवाली धुरी में जुड़े हुए घोड़ों के (न) समान (रजसः) लोकों को (वहनि) बहाते ज्ञलाते हैं, उनको हे पढ़ाने और उपदेश करनेवालो! तुम विदित (चक्रथुः) करो जानो॥ १ ।।

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार हैं। हे मक्यो! यहाँ नीचे, ऊपर, परे, उरे, मोटे, सूक्ष्म, छुटाई-बड़ाई के व्यवहार हैं, वे सापेक्ष हैं। एक की अपेक्षा से यह इससे ऊंचा जो कहा जाता है, वहीं दोनों कथनों को प्राप्त होता है। जो इस से परे हैं वहीं और से नीचे है, जो इससे मोटा है वह और से सूक्ष्म। जो-जो इससे छोटा है वह और से बड़ा गुरु है, यह तुम जानो। यहाँ कोई वस्तु अपेक्षारहित नहीं है, और न निराधार ही है॥१९॥

अर्थेश्वरविषयमाह॥

अब् ड्रीयर के विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

द्वा सुपूर्णा स्युजा सखाया समानं वृक्षं परि षस्वजाते।

तयोरुतः रिप्पल स्वाद्वत्त्यनेशनन्त्रन्यो अभि चाकशीति॥२०॥१७॥

द्वार सुडचुर्णा। सुडयुर्जा। सर्खाया। सुमानम्। वृक्षम्। परि। सुस्वजाते इति। तयौ:। अन्य:। पिप्पेलम्। स्वादु। अति। अनेशनम्। अन्य:। अभि। चाकुशीति॥२०॥

पद्मर्थः-(द्वा) द्वौ। अत्र सर्वत्र सुपां सुलुगित्याकारादेशः। (सुपर्णा) शोभनानि पर्णानि ग्रुमिनायमेत्रादीनि कर्म्माणि वा ययोस्तौ (सयुजा) यौ समानसम्बन्धौ व्याप्यव्यापकभावेन सहैव युक्तौ वा

तौ (सखाया) मित्रवद्वर्त्तमानौ (समानम्) एकम् (वृक्षम्) यो वृश्च्यते छिद्यते तं कार्यकारणाख्यं वा (परि) सर्वतः (सस्वजाते) स्वजेते आश्रयतः। अत्र व्यत्ययेनात्मनेपदम्। (तयोः) जीवब्रह्मणोरनाद्योः (अन्यः) जीवः (पिप्पलम्) परिपक्वं फलं पापपुण्यजन्यं सुखदुःखात्मकभोगं वा (स्वादु) (अति) भुङ्के (अन्यः) उपभोगमकुर्वन् (अन्यः) परमेश्वरः (अभि) (चाकशीति) अभिपश्यति॥२०॥

अन्वय:-हे मनुष्या! यौ सुपर्णा सयुजा सखाया द्वा जीवेशौ समानं वृक्षं परिषस्वजाते तयोदेशः पिप्पलं स्वाद्वत्ति। अन्योऽनश्नन्नभिचाकशीतीति यूयं वित्त॥२०॥

भावार्थ:-अत्र रूपकालङ्कारः। जीवेशजगत्कारणानि त्रयः पदार्था अनाद्यो नित्याः सन्ति। जीवेशावल्पानन्तचेतनविज्ञानिनौ सदा विलक्षणौ व्याप्यव्यापकभावेन संयुक्ते भित्रवर्द्धर्तमानौ स्तः। तथैव यस्मादव्यक्तात्परमाणुरूपात्कारणात्कार्यं जायते तदप्यनादि नित्यं च्। जीवासम्ब पापपुण्यात्मकानि कर्माणि कृत्वा तत्फलानि भुञ्जत ईश्वरश्चेकोऽभिव्यापी सन् न्यायेन प्रापपुण्यप्रलदानात् न्यायाधीश इव पश्यति॥२०॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! (सुपर्णा) सुन्दर पंखोंवाले (सयुजा) समाने सम्बन्ध रखनेवाले (सखाया) मित्रों के समान वर्तमान (द्वा) दो पखेरू (समानम्) एक (व्याम्) जो काटा जाता उस वृक्ष का (परि, सस्वजाते) आश्रय करते हैं (तयो:) उनमें से (अन्य:) एक (प्रिणलम्) उस वृक्ष के पके हुए फल को (स्वादु) स्वादुपन से (अति) खाता है और (अन्य:) दूसरा (अनश्नन्) न खाता हुआ (अभि, चाकशीति) सब ओर से देखता है अर्थात् सुद्धर चलने फिरने वा क्रियाजन्य काम को जाननेवाले व्याप्यव्यापकभाव से साथ ही सम्बन्ध रखते हुए भित्रों के समान वर्तमान जीव और ईश-जीवातमा समान कार्यकारणरूप ब्रह्माण्ड देह का अश्रिय करते हैं। उन दोनों अनादि जीव ब्रह्म में जो जीव है, वह पाप-पुण्य से उत्पन्न सुख दु:खात्मक भोग को स्वादुपन से भोगता है और दूसरा ब्रह्मात्मा कर्मफल को न भोगता हुआ उस भोगते हुए जीव को स्व ओर से देखता अर्थात् साक्षी है, यह तुम जानो॥२०॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में लिपकालङ्कार है। जीव, परमात्मा और जगत् का कारण ये तीन पदार्थ अनादि और नित्य हैं। जीव और ईश-प्रमात्मा यथाक्रम से अल्प अनन्त चेतन विज्ञानवान् सदा विलक्षण व्याप्यव्यापकभाव से संसुक्ता और मित्र के समान वर्तमान हैं। वैसे ही जिस अव्यक्त परमाणुरूप कारण से कार्य्यरूप जगत् उत्पन्न होता है, वह भी अनादि और नित्य है। समस्त जीव पाप-पुण्यात्मक कार्यों को करके उनके फल्में को भोगते हैं और ईश्वर एक सब और से व्याप्त होता हुआ न्याय से पाप-पुण्य के फल को देने ही न्यायाधीश के समान देखता है॥२०॥

५३ यहाँ जीवात्मा के स्थान पर परमात्मा चाहिये जैसे की भावार्थ में स्पष्ट है (सम्पादक)

मण्डल-१। अनुवाक-२२। सूक्त-१६४



पुनरीश्वरविषयमाह॥

फिर ईश्वर के विषय को कहा है॥

यत्रा सुपूर्णा अमृतस्य भागमनिमेषं विद्याभिस्वरन्ति।

इनो विश्वस्य भुवनस्य गोपाः स मा धीरः पाक्मत्रा विवेश॥२१॥

यत्रं। सुऽपूर्णाः। अमृतस्य। भागम्। अनिऽमेषम्। विद्यां। अभिऽस्वरन्ति। इन्रः विश्वस्या भवनस्य। गोपाः। सः। मा। धीरः। पार्कम्। अत्रं। आ। विवेशा। २१॥

पदार्थ:-(यत्र) यस्मिन् परमेश्वरे। अत्र ऋचि तुनुघेति दीर्घः। (सुपर्णाः) शोभनेकर्माणो जीवाः (अमृतस्य) मोक्षस्य (भागम्) सेवनम् (अनिमेषम्) निरन्तरम् (विदथा) विद्ये विज्ञान्त्रमये (अभिस्वरित्त) आभिमुख्येनोच्चरित्त (इनः) स्वामी सूर्यः (विश्वस्य) समग्रस्य (भूवनस्य) भूताधिकरणस्य (गोपाः) रक्षकः (सः) (मा) माम् (धीरः) ध्यानवान् (पाकम्) परिपत्रवद्यवहारम् (अत्र) (आ) (विवेश) आविशाति॥२१॥

अन्वय:-यत्र विदथा सुपर्णा जीवा अमृतस्य भागमिनमेष्ट्रमिश्चस्वरित येत्र विश्वस्य भुवनस्य गोपा इन आ विवेश य एतं जानाति स धीरोऽत्र पाकं मा उपदिशेत्॥ २१॥

भावार्थ:-यत्र सवितृप्रभृतिलोकान्तरा द्वीपद्वीप्रान्तराश्च सर्वे लयमाप्नुवन्ति तदुपदेशेनैव साधका मोक्षमाप्नुवन्ति नान्यथा॥२१॥

पदार्थ:-(यत्र) जिस (विद्या) विक्रानम्य प्रमेश्वर में (सुपर्णा:) शोभन कर्मवाले जीव (अमृतस्य) मोक्ष के (भागम्) सेवने योग्य अस को (अनिमेषम्) निरन्तर (अभिस्वरन्ति) सन्मुख कहते अर्थात् प्रत्यक्ष कहते वा जिस परमेश्वर में (विश्वास्य) समग्र (भुवनस्य) लोक-लोकान्तर का (गोपा:) पालनेवाला (इन:) स्वामी सूर्यमण्डल (आ, विवेश) प्रवेश करता अर्थात् सूर्यादि लोक-लोकान्तर सब लय को प्राप्त होते हैं जो इसको जानता है (स:) वह (धीर:) ध्यानवान् पुरुष (अत्र) इस परमेश्वर में (पाकम्) परिपक्व व्यवहारवास्व (सा) मुझको उपदेश देवे॥ २१॥

भावार्थ:-जिस क्रिमान्मा में सवितृमण्डल आदि लोकलोकान्तर और द्वीपद्वीपान्तर सब लय हो जाते हैं, तद्विषयक उपदेश से ही साधक जन मोक्ष पाते हैं और किसी तरह से मोक्ष को प्राप्त नहीं हो सकते॥ २१॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यस्मिन्वृक्षे मुध्वदेः सुपूर्णा निविशन्ते सुर्वते चाधि विश्वे।

<mark>तस्येदा</mark>हुः पिप्पलं स्वा<u>द्वय्रे</u> तन्नोन्नशृद्यः पित<u>रं</u> न वेदे॥२२॥

यस्मिन्। वृक्षे। मुधुऽअद्ः। सुऽपुर्णाः। निऽविष्ठशनी। सुर्वते। चा अधि विश्वी। तस्यी इत्। आहुः। पिप्पर्लम्। स्वादु। अग्री। तत्। न। उत्। नुशुत्। यः। पितर्रम्। न। वेदी। २२॥

पदार्थ:-(यस्मिन्) (वृक्षे) (मध्वदः) ये मधूनि कर्मफलानि वाऽदन्ति ते (सुपर्णाः) शिभिनेपणी सुष्ठु पालनकर्माणः (नि, विशन्ते) निविष्टा भवन्ति (सुवते) जायन्ते (च) (अधि) (विश्वे) विश्वस्पिन्नणित वा (तस्य) (इत्) एव (आहुः) कथयन्ति (पिप्पलम्) उदकमिव निर्मलं फुर्ले कर्मफलं वा। पिप्पलमित्युदकनामसु पठितम्। (निघं०१.१२) (स्वादु) स्वादिष्ठम् (अग्रे) (तत्) (न) (उत्) (नशत्) नश्यति (यः) (पितरम्) परमात्मानम् (न) (वेद) जानाति॥२२॥

अन्वय:-हे विद्वांसो! यस्मिन् विश्वे वृक्षे मध्वदः सुपर्णा जीवा निविश्वतिष्ठी सुवते च तस्येत्पिप्पलमग्रे स्वाद्वाहुः तन्नोन्नशत् यः पितरं न वेद स तन्न प्राप्नोति॥२२॥

भावार्थ:-अत्र रूपकालङ्कार:। अनाद्यन्तात्कालादिदं विश्वं जायते विनश्यति जीवा जायन्ते मियन्ते च। अत्र जीवैर्यादृशं कर्म्माचिरितं तादृशमेवावश्यमीश्वर्र्यायेन भोक्तव्यमस्ति। कर्मजीवयोरिप नित्य: सम्बन्धः। ये परमात्मानं तदुणकर्मस्वभावानुकूलाचरणं स्वविद्वत्वा यथेष्टमाचरित्त ते सततं पीडचन्ते येऽतो विपरीतास्ते सदानन्दिन्त॥२२॥

पदार्थ:-हे विद्वानो! (यस्मिन्) जिस (विश्वे) समस्त (वृक्षे) वृक्ष पर (मध्वदः) मधु को खानेवाले (सुपर्णाः) सुन्दर पंखों से युक्त भौरा आदि पक्षी (जि, विशन्ते) स्थिर होते हैं (अधि, सुवते, च) और आधारभूत होकर अपने बालकों को स्त्पन्न करने (तस्य, इत्) उसी के (पिप्पलम्) जल के समान निर्मल फल को (अग्रे) आगे (स्वादु) स्वादिष्ठ (आहुः) कहते हैं और (तत्) वह (न) न (उत्, नशत्) नष्ट होता है अर्थात् वृक्षरूप इस्त जगत् में भधुर कर्मफलों को खानेवाले उत्तम कर्मयुक्त जीव स्थिर होते और उसमें सन्तानों को उत्तम करते हैं, उसका जल के समान निर्मल कर्मफल संसार में होना, इसको आगे उत्तम कहते हैं। और यह नहीं होता अर्थात् पीछे अशुभ कर्मों के करने से संसाररूप वृक्ष का जो फल चाहिये सो नहीं मिलता (यः) जो पुरुष (पितरम्) पालनेवाले परमात्मा को (न, वेद) नहीं जानता, वह इस संसार के उत्तम फल को नहीं पाता॥२२॥

भावार्थ:-इस मिन्न मिं क्पेकालङ्कार है। अनादि अनन्त काल से यह विश्व उत्पन्न होता और नष्ट होता है, जीव उत्पन्न होते और मरते भी जाते हैं। इस संसार में जीवों ने जैसा कर्म किया वैसा ही अवश्य ईश्वर के न्याय से भोग्य हैं कर्म, जीव का भी नित्यसम्बन्ध है। जो परमात्मा और उसके गुण, कर्म, स्वभावों के अनुकृत आचरण को न जानकर मनमाने काम करते हैं, वे निरन्तर पीड़ित होते हैं और जो उससे विष्मित हैं, के सदा आनन्द भोगते हैं॥ २२॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

मण्डल-१। अनुवाक-२२। सूक्त-१६४

१७१९

यद्गायत्रे अर्धि गायत्रमाहितं त्रेष्टुंभाद्गा त्रेष्टुंभं निरतक्षत।

यद्यु जगुज्जगुत्याहितं पुदं य इत्तद्विदुस्ते अमृतत्वमानशुः॥२३॥

यत्। गायुत्रे। अर्धि। गायुत्रम्। आऽहितम्। त्रैस्तुभात्। वा। त्रैस्तुभम्। निःऽअतक्षता यत्। वा। जर्मता जर्गता। आऽहितम्। पुदम्। ये। इत्। तत्। विदुः। ते। अमृतुऽत्वम्। आनुशुः॥२३॥

पदार्थ:-(यत्) (गायत्रे) गायत्री छन्दोवाच्ये (अधि) (गायत्रम्) गायतां रक्षकम् (सहितम्) स्थितम् (त्रैष्टुभात्) त्रिष्टुप्छन्दोवाच्यात् (वा) (त्रैष्टुभम्) त्रिष्टुपि भवम् (निरत्भात्) सितरां तन् कुर्वन्ति विस्तृणन्ति (यत्) (वा) (जगत्) (जगति) (आहितम्) स्थितम् (पदम्) वेदितव्यम् (ये) (इत्) एव (तत्) (विदुः) जानन्ति (ते) (अमृतत्वम्) मोक्षस्य भावम् (आनशुः) अश्नुवते॥ १६॥

अन्वयः-ये यदायत्रे गायत्रमध्याहितं त्रैष्टुभाद्वा त्रैष्टुभं निरतक्षत् व यज्जराति जगत्पदमाहितं तद्विदुस्ते इदमृतत्वमानशुः॥२३॥

भावार्थ:-ये सृष्टिपदार्थान् तत्र स्वामीश्वररचनां च क्रिजीय परमात्मानमभिध्याय विद्याधर्मोन्नतिं कुर्वन्ति ते मोक्षमाप्नुवन्ति॥२३॥

पदार्थ:-(ये) जो लोग (यत्) जो (गायत्रे) गायत्री बन्दोनाच्य वृत्ति में (गायत्रम्) गानेवालों की रक्षा करनेवाला (अधि, आहितम्) स्थित है (त्रैष्टुभार्त्, का) अथवा त्रिष्टुप् छन्दोवाच्य वृत्त से (त्रैष्टुभम्) त्रिष्टुप् में प्रसिद्ध हुए अर्थ को (निरतक्षत) निरन्त्र किस्तारते हैं (वा) वा (यत्) जो (जगित) संसार में (जगत्) प्राणि आदि जगत् (पदम्) जानने योग्य (आहित्रम्) स्थित है (तत्) उसको (विदुः) जानते हैं (ते) वे (इत्) ही (अमृतत्वम्) मोक्षभाव क्रें (अमृत्रुः) प्राप्त होते हैं॥२३॥

भावार्थ:- जो सृष्टि के पदार्थ और तहस्थाई श्वरकृत रचना को जानकर परमात्मा का सब ओर से ध्यान कर विद्या और धर्म की उन्निक करते हैं, व मोक्ष पाते हैं॥ २३॥

पुत्ररीश्वरविषयमाह॥

फिर ईश्वरु विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

गायुत्रेण प्रति (मिमीते अकेमर्केण साम त्रेष्ट्रंभेन वाकम्।

वाकेन वाकं द्विपदा चतुष्पदाक्षरेण मिमते सप्त वाणी ।।। २४॥

गायत्रेण्। प्रोत्। मिर्म<u>प्ति</u>। अर्कम्। अर्केण्। साम। त्रैस्तुभेन। वाकम्। वाकने। वाकम्। द्विऽपदा। चतुःऽपदा। अक्षरेण। मि<u>र्मुते। सुस्ता वा</u>णीः॥२४॥

पदार्थः (ग्रयत्रेण) गायत्री छन्दसा (प्रति) (मिमीते) रचयित (अर्कम्) ऋग्वेदम् (अर्केण) ऋचां समूहेन् (स्राम) सामवेदम् (त्रैष्टुभेन) त्रिवेदविद्यास्तवनेन (वाकम्) यजुः (वाकेन) यजुषा (वाकम्)

अथर्ववेदम् (द्विपदा) द्वौ पादौ यस्मिंस्तेन (चतुष्पदा) चत्वारः पादा यस्मिंस्तेन (अक्षरेण) नाशरहितेन (मिमते) (सप्त) गायत्र्यादिसप्तछन्दोन्विताः (वाणीः) वेदवाचः॥२४॥

अन्वय:-हे विद्वांसो! यो जगदीश्वरो गायत्रेणार्कमर्केण साम त्रैष्टुभेन वाकं द्विपदा चतुष्पदाऽक्षरेण वाकेन वाचे सप्त वाणीश्च प्रति मिमीते तज्ज्ञानं ये मिमते ते कृतकृत्या जायन्ते॥२४॥

भावार्थ:-येन जगदीश्वरेण वेदस्थान्यक्षरपदवाक्यछन्दोऽध्यायादीनि निर्मितान् तस्मै सर्वे मनुष्या धन्यवादं दद्यु:॥२४॥

पदार्थ:-हे विद्वानो! जो जगदीश्वर (गायत्रेण) गायत्री छन्द से (अर्कम्) ऋक (अर्कण) ऋचाओं के समूह से (साम) साम (त्रैष्टुभेन) त्रिष्टुप् छन्द वा तीन वेदों की विद्याओं की स्तुतियों से (वाकम्) यजुर्वेद (द्विपदा) दो पद जिस में विद्यमान वा (चतुष्पदा) चार पदवाब्रे (अक्षरेण) नाशरहित (वाकेन) यजुर्वेद से (वाकम्) अथर्ववेद और (सप्त) गायत्री आदि सात छन्द खुक्त (वाणीः) वेदवाणी को (प्रति, मिमीते) प्रतिमान करता है और जो उसके ज्ञान को (मिमते) मान करते हैं, वै कृतकृत्य होते हैं॥ २४॥

भावार्थ:-जिस जगदीश्वर ने वेदस्थ अक्षर, पद, वाक्य, छन्द, अध्याय आदि बनाये हैं, उसको सब मनुष्य धन्यवाद देवें॥ २४॥

पुनस्तमेव विषयमाह।

फिर उसी विषय को अंगले मेर्च में कहा है॥

जर्गता सिन्धुं दिव्यस्तभायद्रथन्तरे सूर्यं पर्यपश्यत्।

गायुत्रस्यं सुमिर्धस्तिस्र आहुस्तन्नं मुद्धा प्रेरिरिचे महित्वा॥२५॥१८॥

जर्गता। सिन्धुंम्। दिवि। अस्तुभागत्। स्थम्ऽतुरे। सूर्यम्। परि। अपश्यत्। गायत्रस्यं। सम्ऽइर्धः। तिस्रः। आहुः। ततः। मुह्ना। प्र। रिरिचे। मुहिऽल्ला॥ रे५॥

पदार्थ:-(जगता) संसार्थेंग सह (सिन्धुम्) नद्यादिकम् (दिवि) प्रकाशे (अस्तभायत्) स्तभ्नाति (रथन्तरे) अन्तरिक्षे (सूर्यम्) सिवृत्लोकम् (परि) सर्वतः (अपश्यत्) पश्यति (गायत्रस्य) गायत्र्या संसाधितस्य (सिम्धः) सम्बन्धः पदीक्षाः पदार्थाः (तिस्रः) त्रित्वसंख्यायुक्ताः (आहुः) कथयन्ति (ततः) (मह्ना) महता (प्र) (रिरिचे) परिणोक्ति (महित्वा) महित्वेन पूज्येन॥२५॥

अन्वय:-य्रो जगदीश्वये जगता सिन्धुं दिवि रथन्तरे सूर्यमस्तभायत् सर्वं पर्यपश्यत् या गायत्रस्य सकाशात् तिस्रः सिमिध आहुस्ततो रीहा महित्वा प्ररिरिचे स सर्वे: पूज्योऽस्ति॥२५॥

भाषार्थः - प्रदा ईश्वरेण जगन्निर्मितं तदैव नदीसमुद्रादीनि निर्मितानि। यथा सूर्य आकर्षणेन भूगोलान् धरित तथा सूर्योदिकं जगदीश्वरो धरित। यस्सर्वेषां जीवानां सर्वाणि पापपुण्यात्मकानि कर्माणि विज्ञाय फलानि प्रयच्छति, स सर्वेभ्यः पदार्थेभ्यो महानस्ति॥२५॥

मण्डल-१। अनुवाक-२२। सूक्त-१६४

१७२१

पदार्थ:-जो जगदीश्वर (जगता) संसार के साथ (सिन्धुम्) नदी आदि को (दिवि) प्रकाश (रथन्तरे) और अन्तरिक्ष में (सूर्यम्) सिवतृलोक को (अस्तभायत्) रोकता व सबको (पर्य्यप्रयत्) सब ओर से देखता है वा जिन (गायत्रस्य) गायत्री छन्द से अच्छे प्रकार से साधे हुए ऋग्वेद की उने जिन्न से (तिस्न:, सिमध:) अच्छे प्रकार प्रज्विलत तीन पदार्थों को अर्थात् भूत, भविष्यत्, वर्तमान तीनों काल के सुखों को (आहु:) कहते हैं (तत:) उनसे (मह्ना) बड़े (महित्वा) प्रशंसनीय भाव से प्रि, सिपेने) अलग होता है अर्थात् अलग गिना जाता है, वह सबको पूजने योग्य है॥२५॥

भावार्थ:-जब ईश्वर ने जगत् बनाया तभी नदी और समुद्र आदि बनाया जैसे पूर्य आकर्षण से भूगोलों को धारण करता है, वैसे सूर्य आदि जगत् को ईश्वर धारण करता है, जो सब जीवों के समस्त पाप पुण्यरूपी कम्मों को जान के फलों को देता है, वह ईश्वर सब पदार्थों से बड़ा है। २५॥

अथ विद्वद्विषयमाह॥

अब विद्वान् के विषय को अगले मन्त्रू में कहा है।।

उप ह्वये सुद्धां धेनुमेतां सुहस्तों गोधुगुत दोहदेनाम्। श्रेष्ठं सुवं संविता साविषन्नोऽभीद्धों धुर्मस्तदु पुप्रविद्यम्॥२६॥

उपं। ह्वये। सुऽदुर्घाम्। धेनुम्। एताम्। सुऽहस्तः। गुऽधुक्। उत्त। दोहृत्। एनाम्। श्रेष्ठंम्। सवम्। सविता। साविषत्। नः। अभिऽइंद्धः। घुर्मः। तत्। ऊम् इतिं। सु। प्रा बोच्चम्।। ६॥

पदार्थ:-(उप) (ह्वये) स्वीकरोमि (सुदुधाप्) सुष्ठु कामप्रपूरिकाम् (धेनुम्) दुग्धदात्री गोरूपाम् (एताम्) (सुहस्तः) शोभनौ हस्तौ यस्य सः (गोधुक्) यो गां दोग्धि (उत) अपि (दोहत्) दोग्धि (एनाम्) विद्याम् (श्रेष्ठम्) उत्तमम् (सवम्) ऐश्रूर्यम् (सविता) ऐश्र्यप्रदः (साविषत्) उत्पादयेत् (नः) अस्मभ्यम् (अभीद्धः) सर्वतः प्रदीप्तः (धर्मः) प्रतापः (तत्) पूर्वोक्तं सर्वम् (उ) (सु) (प्र) (वोचम्) उपदिशेयम्॥२६॥

अन्वय:-यथा सुहस्तो नोउस्मभ्यं साविषद् यथाऽभीद्धी सूर्मो वर्षो करोति तदु यथाहं सु प्रवोचं तथा त्वमप्येतत्सुप्रवोचे:॥२६॥

भावार्थ:-अत्र रूपकालङ्कारः। अध्यापका विद्वांसः पूर्णविद्यां वाणीं प्रदद्युः येनोत्तममैश्वर्यं शिष्याः प्राप्नुयुः। यथा सि्र्वता सर्वं जगत् प्रकाशयति तथोपदेशकाः सर्वा विद्याः प्रकाशयेयुः॥२६॥

पदार्थ: जैसे (सुहस्त:) सुन्दर जिसके हाथ और (गोधुक्) गौ को दुहता हुआ मैं (एताम्) इस (सुदुधाम्) अच्छे दुहाती अर्थात् कामों को पूरा करती हुई (धेनुम्) दूध देनेवाली गौरूप विद्या को (उप, ह्वये) स्वीकार करूं (उत) और (एनाम्) इस विद्या को आप भी (दोहत्) दुहते वा जिस (श्रेष्ठम्) उत्तम (स्वर्म) ऐश्वर्य को (सविता) ऐश्वर्य का देनेवाला (न:) हमारे लिये (साविधत्) उत्पन्न करे वा जैसे

(अभीद्धः) सब ओर से प्रदीप्त अर्थात् अति तपता हुआ (घर्मः) घाम वर्षा करता है (तदु) उसी सबकी जैसे मैं (सु, प्र, वोचम्) अच्छे प्रकार कहूं, वैसे तुम भी इसको अच्छे प्रकार कहो॥ २६॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में रूपकालङ्कार है। अध्यापक विद्वान् जन पूरी विद्या से भरी हुई विणि को अच्छे प्रकार देवें, जिससे उत्तम ऐश्वर्य को शिष्य प्राप्त हों। जैसे सविता समस्त जगत् को प्रकाशिस करता है, वैसे उपदेशक लोग सब विद्याओं को प्रकाशित करें॥२६॥

अथ गो: पृथिव्याश्च विषयमाह॥

अब गौ और पृथिवी के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं।

हिड्कृण्वती वसुपत्नी वसूनां वृत्सिम्च्छन्ती मनसाभ्यागीत्। (दुहामुश्चिभ्यां पयो अघ्येयं सा वर्धतां महते सौभंगाय॥ १९७॥

हिङ्शकृण्वती। वसुऽपत्नी। वसूनाम्। वत्सम्। इच्छन्ती। मनसा। अभि। आ। अगात्। दुहाम्। अश्विऽभ्याम्। पर्यः। अध्या। इयम्। सा। वर्धताम्। महते। सौभंगाय॥२७॥

पदार्थ:-(हिड्कृण्वती) हिमिति शब्दयन्ती (वसुण्नी) वसूत्रों प्रातिका (वसूनाम्) अग्न्यादीनाम् (वत्सम्) (इच्छन्ती) (मनसा) (अभि) (आ) (अणात् अध्यागच्छित (दुहाम्) (अश्विभ्याम्) सूर्यवायुभ्याम् (पयः) जलं दुग्धं वा (अघ्या) हिन्तुमयोग्या (इयम्) (सा) (वर्द्धताम्) (महते) (सौभगाय) शोभनानामैश्वर्याणां भावाय॥२७॥

अन्वय:-यथा हिङ्कृण्वती मनसा वत्सिमच्छ्नीयम्घ्न्यो गीरभ्यागात्। याऽश्विभ्यां पयो दुहां वर्त्तमानाभूरस्ति सा वसूनां वसुपत्नी महते सौभगाय वर्द्धताम्॥२७॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपप्रालङ्कारः। मथा पृथिवी महदैश्वर्यं वर्धयित तथा गावो महत्सुखं प्रयच्छन्ति, तस्मादेताः केनापि कद्मिवत्रैव हिंस्याः॥२७॥

पदार्थ:-जैसे (हिड्कृप्वाती) हिंका ती और (मनसा) मन से (वत्सम्) बछड़े को (इच्छन्ती) चाहती हुई (इयम्) यह (अध्या) पारने को ते योग्य गौ (अभि, आ, अगात्) सब ओर से आती वा जो (अश्विभ्याम्) सूर्य और क्युन्से (पयाः) जल वा दूध को (दुहाम्) दुहते हुए पदार्थों में वर्त्तमान पृथिवी है (सा) वह (वसूनाम्) अग्नि आदि वसुसञ्ज्ञकों में (वसुपत्नी) वसुओं की पालनवाली (महते) अत्यन्त (सौभगाय) सुन्दरू ऐश्वर्य के लिय (वर्द्धताम्) बढ़े, उन्नति को प्राप्त हो॥२७॥

भावार्थः इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे पृथिवी महान् ऐश्वर्य को बढ़ाती है, वैसे गौयें अत्यन्त सुख देती हैं। इससे ये गौयें कभी किसी को मारनी न चाहियें॥२७॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

गौरमीमेदनु वृत्सं मिषन्तं मूर्धानुं हिड्डुंकृणोन्मातुवा उ।

मण्डल-१। अनुवाक-२२। सूक्त-१६४

१७२३

सुक्वाणं घुर्ममुभि वावशाना मिमाति माुयुं पर्यते पर्योभिः॥२८॥

गौः। अमीमेत्। अन्। वृत्सम्। मिषन्तम्। मूर्धानम्। हिङ्। अकृणोत्। मात्वै। ऊम् इति। सृक्वाणम्। धर्मम्। अभि। वावृशाना। मिमोति। मायुम्। पर्यते। पर्यःऽभिः॥२८॥

पदार्थ:-(गौ:) पृथिवी धेनुर्वा (अमीमेत्) मिनाति (अनु) (वत्सम्) (मिष्नुतम्) शब्दयन्तम् (मूर्द्धानम्) मस्तकम् (हिङ्) हिंकारम् (अकृणोत्) करोति (मातवै) मानाय (उ) वितर्क (मूक्वाणम्) सृजन्तं दिनम् (धर्मम्) आतपम् (अभि) (वावशाना) भृशं कामयमाना (मिमाति) मिस्रीते। अत्र व्यत्ययेन परस्मैपदम्। (मायुम्) वाणीम्। मायुरिति वाङ्नामसु पठितम्। (निघ०१.११) (प्रयते) गच्छिति (पयोभिः) जलैस्सह॥२८॥

अन्वयः-हे मनुष्या! यथा वावशाना गौर्मिषन्तं वत्सं मूर्द्धानमनु हिर्देश्क्रिणोत् मीत्व्य उ वत्सस्य दुःखममीमेत् तथा पयोभिस्सह वर्त्तमाना गौ: पृथिवी घर्मं सृक्वाणं दिनं मायुं च कुर्वती पयते सुखप्भिर्मिगीति॥२८॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। यथा गा अनुवित्सा बन्नाननु गावो गच्छन्ति तथा पृथिवीरनुपदार्था: पदार्थाननु पृथिव्यो गच्छन्ति॥२८॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! जैसे (वावशाना) निरन्तर कपनि करती हुई (गौ:) गो (मिषन्तम्) मिमयाते हुए (वत्सम्) बछड़े को तथा (मूर्द्धानम्) मूंड़ को (अनु. हिड़, अकृणोत्) लखकर हिंकारती अर्थात् मूंड़ चाटती हुई हिंकारती है और (मातवे) मान करने (अ) ही के लिये उस बछड़े के दु:ख को (अमीमेत्) नष्ट करती, वैसे (पयोभि:) जलों के साथ वर्तमान पृथिवे (धर्मम्) आतप को (मृक्वाणम्) रचते हुए दिन को और (मायुम्) वाणी को प्रसिद्ध करती हुई (पयते) अपने भचक्र में जाती है और सुख का (अभि, मिमाति) सब ओर से मान करती अभित् होंदे करती है॥ २८॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे गौओं के पीछे बछड़े और बछड़ों के पीछे गौयें जातीं, वैसे पृथिवियों के पी<mark>छे पदार्थ औ</mark>र पदार्थों के पीछे पृथिवी जाती हैं॥२८॥

पुनेर्भूमिविषयमाह॥

क्रिर भूमि के विषय में कहा है॥

अयं स शिड्क्ते येत् गौर्भीवृता मिर्माति मायुं ध्वसनावधि श्रिता। सा चिक्तिभिनि हि चकार् मर्त्यं विद्युद्धवन्ती प्रति वृद्धिमौहत॥२९॥

अयम् सः शिङ्क्ते। येनं। गौः। अभिऽवृंता। मिर्माति। मायुम्। ध्वसनौ। अधि। श्रिता। सा। चित्तिऽभिः। नि। हि। चुक्रीरं। मत्येम्। विऽद्युत्। भवन्ती। प्रति। वृद्रिम्। औहतु॥२९॥

पदार्थ:-(अयम्) (सः) (शिङ्क्ते) अव्यक्तं शब्दं करोति (येन) (गौः) पृथिवी (अभीवृता) सर्वतो वायुना आवृता (मिमाति) गच्छति (मायुम्) परिमितं मार्गम् (ध्वसनौ) अधऊर्ध्वमध्यपतनार्थे परिधौ

(अधि) उपरि (श्रिता) (सा) (चित्तिभिः) चयनैः (नि) (हि) किल (चकार) करोति (मर्त्यम्) मरणधर्माणम् (विद्युत्) तडित् (भवन्ती) वर्त्तमाना (प्रति) (वव्रिम्) स्वकीयं रूपम् (औहत) ऊहृते॥ २९॥

अन्वयः-सोऽयं वत्सो मेघो भूमिं शिङ्क्ते येन ध्वसनावधि श्रिताऽभीवृता गौर्भूमिर्मायुं प्राक्तिम्यति, स्र चित्तिभिर्मर्त्यं चकार। तत्र हि भवन्ती विद्युद्वव्रिं च न्यौहत॥२९॥

भावार्थ: –यथा पृथिव्याः सकाशादुत्पद्याऽन्तिरक्षे बहुलो भूत्वा मेघः पृथिव्याः वृक्षादिकं संसिच्य वर्द्धयित, तथोवीं सर्वं वर्द्धयित, तत्रस्था विद्युदूपं प्रकाशयित। यथा शिल्पी क्रमण चित्या विज्ञानेन गृहादिकं निर्मिमीते तथा परमेश्वरेणेयं सृष्टिर्निर्मिता॥२९॥

पदार्थ:-(स:) सो (अयम्) यह बछड़े के समान मेघ भूमि को लख (शिड्क्ते) गर्जन का अव्यक्त शब्द करता है कौन कि (येन) जिससे (ध्वसनौ) ऊपर, तीचे और बीच में जाने को परकोटा उसमें (अधि, श्रिता) धरी हुई (अभीवृता) सब ओर पवन से आवृत (मौ:) पृथिवी (मायुम्) परिमित मार्ग को (प्रति, मिमाति) प्रति जाती है (सा) वह (चित्तिभिः) परमाणुओं के समूहों से (मर्त्यम्) मरणधर्मा मनुष्य को (चकार) करती है, उस पृथिवी (हि) ही में (भवती) वर्तमान (विद्युत्) बिजुली (विव्रम्) अपने रूप को (नि, औहत) निरन्तर तर्क-वितर्क स्मूरा होती है॥ २९॥

भावार्थ:-जैसे पृथिवी से उत्पन्न हो उठकर अन्तरिक्ष में बढ़ फैल मेघ पृथिवी में वृक्षादि को अच्छे सींच उनको बढ़ाता है, वैसे पृथिवी सबको बढ़ाती है और पृथिवी में जो बिजुली है, वह रूप को प्रकाशित करती। जैसे शिल्पी जन क्रम से किसी पदार्थ के इकट्ठा करने और विज्ञान से घर आदि बनाता है, वैसे परमेश्वर ने यह सृष्टि बनाई है॥ २९॥

पुन शिश्वर विषयमाह॥

फिर ईश्वर के विषय की अगले मन्त्र में कहा है॥

अनच्छीये तुरगातु जीवमेजद् श्रुव मध्य आ पुस्त्यानाम्।

जीवो मृतस्य चरित्र सबुधाभिरमेत्स्रो मर्त्येना सर्योनिः॥३०॥१९॥

अनत्। शृये। तुर्शाता जीवमा एजत्। ध्रुवम्। मध्ये। आ। पुस्त्यानाम्। जीवः। मृतस्ये। चुरति। स्वधाभिः। अमर्त्यः। मर्त्येन्। सऽयोनि।। ३०॥

पदार्थ:-(अनत्) प्राणत् (शये) शेते। अत्र लोपस्त आत्मनेपदेष्विति तलोपः। (तुरगातु) सद्योगमनम् (जीवम्) (एजत्) कंपयन् (ध्रुवम्) (मध्ये) (आ) (पस्त्यानाम्) गृहाणां जीवशरीराणां वा (जीवः) (पुतस्य) मरणस्वभावस्य (चरित) गच्छित (स्वधाभिः) अन्नादिभिः (अमर्त्यः) अनादिन्धीत्मृत्युधर्मरहितः (मर्त्येन) मरणधर्मेण शरीरेण (सयोनिः) समानस्थानः॥३०॥

अन्बर:-यद्ब्रह्म तुरगात्वनज्जीवमेजत्पस्त्यानां मध्ये ध्रुवं सच्छये यत्रामर्त्यो जीव: स्वधाभिर्मर्त्येन सह प्रयीविस्सर्भतस्य जगतो मध्य आचरति तत्र सर्वं जगद्वसतीति वेद्यम्॥३०॥

मण्डल-१। अनुवाक-२२। सूक्त-१६४

१७२८

भावार्थ:-अत्र रूपकालङ्कार:। यश्चलत्स्वचलोऽनित्येषु नित्यो व्याप्येषु व्यापक: परमेश्वरोऽस्ति। निह तद्व्याप्तया विनाऽतिसूक्ष्ममिप वस्त्वस्ति तस्मात्सर्वेर्जीवैरयमन्तर्यामिरूपेण स्थितोत् नित्यमुपासनीय:॥३०॥

पदार्थ:-जो ब्रह्म (तुरगातु) शीघ्र गमन को (अनत्) पुष्ट करता हुआ (जीवम्) जीव को एजत्) कंपाता और (पस्त्यानाम्) घरों के अर्थात् जीवों के शरीर के (मध्ये) बीच (ध्रुवम्) निश्चल होता हुआ (शये) सोता है। जहाँ (अमर्त्य:) अनादित्व से मृत्युधर्मरहित (जीव:) जीव (स्वधाभि:) अनादि और (मर्त्येन) मरणधर्मा शरीर के साथ (सयोनि:) एक स्थानी होता हुआ (मृतस्य) मरण स्वभाववाले जगत् के बीच (आ, चरति) आचरण करता है, उस ब्रह्म में सब जगत् वसता है, यह जानना चाहिये॥३०॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में रूपकालङ्कार है। जो चलते हुए पदार्थों में अचल, अनित्य पदार्थों में नित्य और व्याप्य पदार्थों में व्यापक परमेश्वर है, उसकी व्याप्ति के विना सूक्ष्म से सूक्ष्म वस्तु भी नहीं है। इससे सब जीवों को जो यह अन्तर्यामिरूप से स्थित हो रहा है, वह नित्य उपासना करने योग्य है॥३०॥

पुनस्तमेव विषयमाह।

फिर उसी विषय को अगले सिन्त्रामें कहा हैं॥

अपेश्यं गोपामनिपद्यमानुमा च पर्रा च पृथिशिश्चरित्तम्।

स सुधीची: स विषूचीर्वसानु आ विश्वविर्ति भुवनेष्ट्वन:॥३१॥

अपेश्यम्। गोपाम्। अनिऽपद्यमानम्। असि ह्या पर्राः ह्या प्रथिऽभिः। चर्रन्तम्। सः। सुधीचीः। सः। विषूचीः। वस्निः। आ। वरीवर्ति। भुवनेषु। अनिस्ति॥३१॥

पदार्थ:-(अपश्यम्) पश्येयम् (गोपाम्) मर्वरक्षकम् (अनिपद्यमानम्) यो मनआदीनीन्द्रियाणि न निपद्यते प्राप्नोति तम् (आ) (च) (परा) (च) (पथिभिः) मार्गैः (चरन्तम्) (सः) (सधीचीः) सह गच्छन्तीः (सः) (विषूचीः) विविधा गत्तीः (वसानः) आच्छादयन् (आ) (वरीवर्त्ति) भृशमावर्त्तते (भुवनेषु) लोकलोकान्तरेषु (अन्तः) मध्ये॥ ३१।

अन्वय:-अहं गोशमितिपद्ममात्। पथिभरा च परा च चरन्तमपश्यं स सधीची: स विषूचीर्वसानो भुवनेष्वन्तरावरीवर्त्ति॥३१॥

भावार्थः पहि सर्वस्य द्रष्टारं परमेश्वरं द्रष्टुं जीवाः शक्नुवन्ति परमेश्वरश्च सर्वाणि याथातथ्येन पश्यित। यथा वस्त्राहिभिरावृतः पदार्थो न दृश्यते तथा जीवोऽपि सूक्ष्मत्वान्न दृश्यते। इमे जीवाः कर्मगत्या सर्वेषु लोकेषु भूमिन्ता एषामन्तर्बिहश्च परमात्मा स्थितस्सन् पापपुण्यफलदानरूपन्यायेन सर्वान् सर्वत्र जन्मानि देदाति॥ ३१॥

पदार्थ:-मैं (गोपाम्) सबकी रक्षा करने (अनिपद्यमानम्) मन आदि इन्द्रियों को न प्राप्त होने और (पश्चिमि:) मार्गों से (आ, च) आगे और (परा, च) पीछे (चरन्तम्) प्राप्त होनेवाले परमात्मा वा

विचरते हुए जीव को (अपश्यम्) देखता हूँ (सः) वह जीवात्मा (सध्रीचीः) साथ प्राप्त होती हुई गर्तियों को (सः) वह जीव और (विषूचीः) नाना प्रकार की कर्मानुसार गतियों को (वसानः) ढांपता हुआ (भुवनेषु) लोकलोकान्तरों के (अन्तः) बीच (आ, वरीवर्त्ति) निरन्तर अच्छे प्रकार वर्त्तमान है (३१॥)

भावार्थ: -सब के देखनेवाले परमेश्वर के देखने को जीव समर्थ नहीं और परमेश्वर सबको युश्रार्थ भाव से देखता है। जैसे वस्त्रों आदि से ढंपा हुआ पदार्थ नहीं देखा जाता, वैसे जीव भी सूक्ष्म होने से नहीं देखा जाता। ये जीव कर्मगित से सब लोकों में भ्रमते हैं। इनके भीतर-बाहर परमात्मा स्थित हुआ पापपुण्य के फल देनेरूप न्याय से सबको सर्वत्र जन्म देता है॥ ३१॥

पुनर्जीवविषयमात्रमाह।।

फिर जीव विषयमात्र को कहा है।

य ईं चकार न सो अस्य वेंद्र य ईं दुदर्श हिरुगिन्न तस्मीत्।

स मातुर्योना परिवीतो अन्तर्बहुप्रजा निर्ऋतिमा विवेशा। ३२॥

यः। ईम्। चुकारं। न। सः। अस्य। वेद्र। यः। ईम्। दुदर्शी हिरुक्। इत्। नु। तस्मति। सः। मातुः। योनां। परिऽवीतः। अन्तः। बहुऽप्रजाः। निःऽऋतिम्। आ। विवेशः॥ ३२॥

पदार्थ:-(य:) जीव (ईम्) क्रियाम् (चकार) करोति-(न) (स:) (अस्य) जीवस्य स्वरूपम् (वेद) (य:) (ईम्) सर्वां क्रियाम् (ददर्श) पश्यित (हिरूक्) पृथक् (इत्) एव (नु) सद्यः (तस्मात्) (सः) (मातुः) जनन्याः (योना) गर्भाशये (परिवीवः) परित्र आवृतः (अन्तः) मध्ये (बहुप्रजाः) बहुजन्मा (निर्म्नतिम्) भूमिम् (आ) (विवेश) आविश्वित्राः २।)

अन्वय:-यो जीव ईं चकार सोऽस्य स्वरूप न वेद य ईं ददर्श स्वस्वरूपम् पश्यति स तस्माद्धिरुक् सन्मातुर्योनान्तः परिवीतो बहुप्रजा निर्ऋतिमिन्वाधिवेश॥३२॥

भावार्थ: -ये जीवाः कर्मभात्रं कुर्वन्ति नोपासनां ज्ञानं च प्राप्नुवन्ति ते स्वस्वरूपमपि न जानन्ति। ये च कर्मोपासनाज्ञानेषु निपुणास्ते स्वस्वरूपं परमात्मानश्च वेदितुमर्हन्ति। जीवानां प्राग्जन्मनामादिरुत्तरेषामन्त्रश्च न विद्युत्ते। यदा शरीरं त्यजन्ति तदाऽऽकाशस्था भूत्वा गर्भे प्रविश्य जनित्वा पृथिव्यां चेष्टावन्तो भवन्ति। २२॥

पदार्थ: (य:) जो जीव (ईम्) क्रियामात्र (चकार) करता है (स:) वह (अस्य) इस अपने रूप को (न) नहीं (वेद) जानता है (य:) जो (ईम्) समस्त क्रिया को (ददर्श) देखता और अपने रूप को जानता है (य:) केह (तस्मात्) इससे (हिरुक्) अलग होता हुआ (मातु:) माता के (योना) गर्भाशय के (अन्त:) चीच (पिरवीत:) सब ओर से ढंपा हुआ (बहुप्रजा:) बहुत बार जन्म लेनेवाला (निर्ऋतिम्) भूमि को (इत्) ही (नु) शीघ्र (आ, विवेश) प्रवेश करता है॥३२॥

मण्डल-१। अनुवाक-२२। सूक्त-१६४

१७२७

भावार्थ:- जो जीव कर्ममात्र करते किन्तु उपासना और ज्ञान को नहीं प्राप्त होते है, वे अपने स्वरूप को भी नहीं जानते। और जो कर्म, उपासना और ज्ञान में निपुण हैं, वे अपने स्वरूप और परमात्मा के जानने को योग्य हैं। जीवों के अगले जन्मों का आदि और पीछे अन्त नहीं है। जब अरिए को छोड़ते हैं, तब आकाशस्थ हो गर्भ में प्रवेश कर और जन्म पाकर पृथिवी में चेष्टा कियावान होते हैं॥ ३२॥

पुनः प्रकारान्तरेण तमेव विषयमाह॥

फिर प्रकारान्तर से उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है

द्यौर्म पिता जीनता नाभिरत्र बन्धुंमें माता पृथिवी महीयम्। उत्तानयोश्चम्वो र्र्योनिंरन्तरत्रा पिता दुहितुर्गर्भमार्धात्॥ ३ रू

द्यौः। मे। पिता। जुनिता। नाभिः। अत्री। बन्धुः। मे। माता। पृथ्विती मुही इयम्। उत्तानयौः। चुम्बौः। योनिः। अन्तः। अत्री। पिता। दुहितुः। गर्भम्। आ। अधात्॥ ३३॥

पदार्थ:-(द्यौ:) प्रकाशमानः सूर्यो विद्युदिव (मे) मम (पिता) (जनिता) (नाभि:) बन्धनम् (अत्र) अस्मिन् जन्मिन (बन्धु:) भ्रातृवत् प्राणः (मे) मम (पिता) मान्यप्रदा जननी (पृथिवी) भूमिरिव (मही) महती (इयम्) (उत्तानयोः) उपिरस्थयोरू स्थापितयाः पृथिवीसूर्ययोः (चम्वोः) सेनयोरिव (योनिः) गृहम् (अन्तः) मध्ये (अत्र) अस्मिन्। अत्र ऋचि हुनुघ० इति दीर्घः। (पिता) सूर्यः (दुहितुः) उषसः (गर्भम्) किरणाख्यं वीर्यम् (आ) (अधात् समन्ताह्म्धाति॥३३॥

अन्वय:-हे विद्वन्! यत्र पिता दुहितुर्भिमाञ्चात् तत्र्, चम्वोरिव स्थितयोरुत्तानयोरन्तो मम योनिरस्ति। अत्र मे जनिता पिता द्यौरिवाऽत्र मे नाभिर्बन्धुरियं मही पृथिवीच मोता वर्तत इति वेद्यम्॥३३॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तापमालङ्कारः। भूमिसूर्यौ सर्वेषां मातापितृबन्धुवद्वर्तते इदमेवाऽस्माकं निवासस्थानं यथा सूर्यः स्वस्माद्भुपत्राया उपसो मध्ये किरणाख्यं वीर्यं संस्थाप्य दिनं पुत्रं जनयित तथैव पितरौ प्रकाशमानं पुत्रमुत्पादयेताम्॥ ३३॥

पदार्थ:-हे विद्वान जहाँ (पिता) पितृस्थानी सूर्य (दुहितु:) कन्यारूप उषा प्रभात वेला के (गर्भम्) किरणरूपी वीर्य के (आ, अधात्) स्थापित करता है, वहाँ (चम्वो:) दो सेनाओं के समान स्थित (उत्तानयो:) उपरिस्थ ऊचे स्थापित किये हुए पृथिवी और सूर्य के (अन्त:) बीच मेरा (योनि:) घर है (अत्र) इस जन्म में (मे) मेरा (जिनता) उत्पन्न करनेवाला (पिता) पिता (द्यौ:) प्रकाशमान सूर्य बिजुली के समान तथा (अत्र) यहाँ (मे) मेरा (नाभि:) बन्धनरूप (बन्धु:) भाई के समान प्राण और (इयम्) यह (मही) बड़ी (पृथिवी) भूमि के समान (माता) मान देनेवाली माता वर्तमान है, यह जानना चाहिया। ३३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। भूमि और सूर्य सबके माता-पिता और बैन्धु के समान वर्त्तमान हैं, यही हमारा निवासस्थान है। जैसे सूर्य अपने से उत्पन्न हुई उषा के बीच किरणरूपी वीर्य को संस्थापन कर दिनरूपी पुत्र को उत्पन्न करता है, वैसे माता-पिता प्रकाशमान पुत्र को उत्पन्न करें॥ ३३॥

अथ विद्वद्विषयमाह।।

अब विद्वानों के विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

पृच्छामि त्वा परमन्तं पृथिव्याः पृच्छामि यत्र भुवनस्य नाभिः। पृच्छामि त्वा वृष्णो अश्वस्य रेतः पृच्छामि वाचः परमं व्योमा स्थान

पृच्छामि। त्वा। परेम्। अर्त्तम्। पृथिव्याः। पृच्छामि। यत्रे। भुवेनस्य। नाभिः। पृच्छामि। त्वा। वृष्णः। अर्थस्य। रेतः। पृच्छामि। वाचः। पुरुमम्। विऽऔम॥३४॥

पदार्थ:-(पृच्छामि) (त्वा) त्वाम् (परम्) (अन्तम्) (पृथ्वियोः) (पृच्छामि) (यत्र) (भुवनस्य) लोकसमूहस्य (नाभिः) बन्धनम् (पृच्छामि) (त्वा) (वृष्णः) वौध्वर्षकस्य (अश्वस्य) अश्ववद्वीर्यवतः (रेतः) वीर्यम् (पृच्छामि) (वाचः) (परमम्) प्रकृष्टम् (व्योम्) विपापके मवकाशम्॥ ३४॥

अन्वय:-हे विद्वँस्त्वा पृथिव्याः परमन्तं पृच्छामि। सत्र भुवनस्य नाभिरस्ति तं पृच्छामि। वृष्णोऽश्वस्य रेतस्त्वा पृच्छामि। वाचः परमं व्योम त्वां पृच्छामि॥३४॥

भावार्थ:-अत्र चत्वारः प्रश्नाः सन्ति तदुत्तराण्युत्तरत्र मन्त्रे वर्त्तन्ते, इत्थमेव जिज्ञासुभिर्विद्वांसो नित्यं प्रष्टव्याः॥३४॥

पदार्थ: – हे विद्वान्! (त्वा) आपकी (पृष्टिव्या:) पृथिवी के (परम्) पर (अन्तम्) अन्त को (पृच्छामि) पूछता हूँ, (यत्र) जहाँ (भुवसस्य) लोकसमूह का (नाभि:) बन्धन है, उसको (पृच्छामि) पूछता हूँ, (वृष्ण:) वीर्यवान् वर्णनेवाले (अधस्य) घोड़ों के समान वीर्यवान् के (रेत:) वीर्य को (त्वा) आपको (पृच्छामि) पूछता हूँ, और (वाच:) वाणी के (परमम्) परम (व्योम) व्यापक अवकाश अर्थात् आकाश को आपको (पृच्छामि) पूछता हूँ, पूछता हूँ। ३४॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में चार प्रश्न हैं और उनके उत्तर अगले मन्त्र में वर्तमान हैं। ऐसे ही जिज्ञासुओं को विद्वान् जन वित्य पूछने चाहिये॥३४॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

🙀 वेदिः परो अन्तः पृथिव्या अयं युज्ञो भुवनस्य नाभिः।

अर्थ सोमो वृष्णो अर्थस्य रेती बृह्मायं वाचः पर्मं व्योम॥३५॥२०॥

मण्डल-१। अनुवाक-२२। सूक्त-१६४

१७२९

ड्डयम्। वेर्दिः। पर्रः। अन्तेः। पृथिव्याः। अयम्। यज्ञः। भुवनस्य। नाभिः। अयम्। सोर्मः। वृष्णेः। अर्थस्य। रेतेः। बृह्मा। अयम्। वाचः। पुरुमम्। विऽऔम॥३५॥

पदार्थ:-(इयम्) (वेदि:) विदन्ति शब्दान् यस्यां साऽऽकाशवायुस्वरूपा (पर:) पर् भागः (पृथिव्याः) भूमेः (अयम्) (यज्ञः) यष्टुं संगन्तुमर्हः सूर्यः (भुवनस्य) भूगोलसमूहस्य (चार्भः) आकर्षणेन बन्धनम् (अयम्) (सोमः) सोमलतादिरसश्चन्द्रमा वा (वृष्णः) वर्षकस्य (अश्वस्य) (रेतः) वीर्यमिव (ब्रह्मा) चतुर्वेदविज्जनश्चतुर्णां वेदानां प्रकाशकः परमात्मा वा (अयम्) (वाचः) ब्राण्याः (परमम्) (व्योम) अवकाशः॥३५॥

अन्वयः-हे मनुष्या! यूयं पृथिव्याः परोऽन्तरियं वेदिरयं यज्ञो भुवनस्य नाभिरषं सोमो वृष्णोऽश्वस्य रेत इवायं ब्रह्मा वाचः परमं व्योमास्ति तानि यथावद्वित्त॥३५॥

भावार्थ:-पूर्वमन्त्रस्थानां प्रश्नानामिह क्रमेणोत्तराणि चेदितव्यानि पृथिव्या अभित आकाशवायुरेकैकस्य ब्रह्माण्डस्य मध्ये सूर्यो वीर्योत्पादिका आष्ठियो पृथिव्या मध्ये विद्याविधः सर्ववेदाध्ययनं परमात्मविज्ञानं वास्तीति निश्चेतव्यम्॥ ३५॥

पदार्थ: - हे मनुष्यो! तुम (पृथिव्या:) भूमि का (परा) पर (अन्तः) भाग (इयम्) यह (वेदिः) जिसमें शब्दों को जानें वह आकाश और वायु रूप बेदि (अथम्) यह (यज्ञः) यज्ञ [सूर्य] (भुवनस्य) भूगोल समूह का (नाभिः) आकर्षण से बन्धन (अयम्) यह (सोमः) सोमलतादि रस वा चन्द्रमा (वृष्णः) वर्षा करने और (अश्वस्य) शीघ्रगामी सूर्य के (रतः) वीर्य के समान और (अयम्) यह (ब्रह्मा) चारों वेदों का प्रकाश करनेवाला विद्वान वा परमातमा (वाचः) वाणी का (परमम्) उत्तम (व्योम) अवकाश है, उनको यथावत् जानो॥३५॥

भावार्थ:-पिछले मन्त्र में कहें हुए प्रश्नों के यहाँ क्रम से उत्तर जानने चाहिये। पृथिवी के चारों और आकाशयुक्त वायु, एक-एक ब्रह्माण्ड के बीच सूर्य और बल उत्पन्न करनेवाली ओषिधयाँ, तथा पृथिवी के बीच विद्या की अविधि समस्त वेदों का पढ़ना और परमात्मा का उत्तम ज्ञान है, यह निश्चय करना चाहिये॥३५॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

किर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

सप्तार्ध्नपर्भो भुवनस्य रेतो विष्णोस्तिष्ठन्ति प्रदिशा विर्धर्मणि।

ते धीतिभिर्मर्नेसा ते विपश्चितः परिभुवः परि भवन्ति विश्वतः॥३६॥

सप्ता अर्धेऽगुर्भाः। भुवनस्य। रेतः। विष्णोः। तिष्ठन्ति। प्रुऽदिशां। विऽर्धर्मणि। ते। धीतिऽभिः। मनसा। ते। विष्रुऽचितः परिऽभुवः। परि। भवन्ति। विश्वतः॥३६॥

पदार्थ:-(सप्त) (अर्द्धगर्भा:) अपूर्णगर्भा महत्तत्त्वाहङ्कारपञ्चभूतसूक्ष्मावयवाः (भुवनस्य) संसारस्य (रेतः) वीर्यम् (विष्णोः) व्यापकस्य परमेश्वरस्य (तिष्ठन्ति) (प्रदिशा) आज्ञया (विधर्मणि) विरुद्धधर्मण्याकाशे (ते) (धीतिभिः) कर्मभिः (मनसा) (ते) (विपश्चितः) विदुषः (परिभुवः) परितस्सर्वतो विद्यासु भवन्ति (परि) (भवन्ति) (विश्वतः) सर्वतः॥३६॥

अन्वयः-ये सप्तार्द्धगर्भा भुवनस्य रेतो निर्माय विष्णोः प्रदिशा विधर्मणि तिष्ठन्ति, ते धीतिभिक्षे मनसा च परिभुवो विपश्चितो विश्वतः परिभवन्ति॥३६॥

भावार्थ:-यानि महत्तत्त्वाऽहङ्कारौ पञ्चसूक्ष्माणि भूतानि च सप्त सन्ति तानि पञ्चीकृतानि सर्वस्य स्थूलस्य कारणानि सन्ति चेतनविरुद्धधर्मे जडेऽन्तरिक्षे सर्वाणि वसन्ति। वे यथावत्सृष्टिक्रमं जानन्ति ते विद्वांसः सर्वतः पूज्यन्ते, ये चैतं न जानन्ति ते सर्वतिस्तिरस्कृता भवित्ता। इस्।

पदार्थ:-जो (सप्त) सात (अर्द्धगर्भा:) आधे गर्भरूप अर्थात् पञ्चीकरण को प्राप्त महत्तत्त्व, अहङ्कार, पृथिवी, अप्, तेज, वायु, आकाश के सूक्ष्म अवयवरूप स्रिप्श्यिरी (भुवनस्य) संसार के (रेत:) बीज को उत्पन्न कर (विष्णो:) व्यापक परमात्मा की (प्रदिशा) आज्ञा से अर्थात् उसकी आज्ञारूप वेदोक्त व्यवस्था से (विधर्मणि) चेतन से विरुद्ध धर्मवाले अकाश में (तिष्ठन्ति) स्थित होते हैं (ते) वे (धीतिभि:) कर्म और (ते) वे (मनसा) विचार के साथ (प्रिमुव:) सब ओर से विद्या में कुशल (विपश्चित:) विद्वान् जन (विश्वत:) सब ओर से (परि, भवन्ति) तिरस्कृत करते अर्थात् उनके यथार्थ भाव के जानने को विद्वान् जन भी कष्ट पाते हैं। रहि।।

भावार्थ:-जो महत्तत्त्व, अहङ्कार, पञ्चसूक्ष्मभूत सात पदार्थ हैं, वे पञ्चीकरण को प्राप्त हुए सब स्थूल जगत् के कारण हैं। चेतन से विरुद्ध भर्मिक्लों जड़रूप अन्तरिक्ष में सब वसते हैं। जो यथावत् सृष्टिक्रम को जानते हैं, वे विद्वान् जन सब और से सत्कार को प्राप्त होते हैं और जो इसको नहीं जानते, वे सब ओर से तिरस्कार को प्राप्त होते हैं ३६॥

उक्ते प्रकारान्तरेणाह॥

पूर्वीक्त विषय को प्रकारान्तर से कहते हैं॥

न वि जानामि विद्विद्यास्म निण्यः संनद्धो मनसा चरामि।

यदा माग्रेन्प्रथम्जा ऋतस्यादिद्वाचो अंश्नुवे भागमस्या:॥३७॥

न। विश जानुम्। यत्ऽईव। इदम्। अस्मि। निण्यः। सम्ऽनद्धः। मनसा। चरामि। यदा। मा। आ। अर्गन्। प्रथमुऽजाः। ऋतस्यो आत्। इत्। वाचः। अ्रुनुवे। भागम्। अस्याः॥३७॥

पदार्थ:-(न) निषेधे (वि) विशेषेण (जानामि) (यदिव) सङ्गतमिव (इदम्) जगत् (अस्मि) (निण्यः) अन्तर्हित:। अत्र वर्णव्यत्ययेन णत्वम्। निण्य इति निर्णीतान्तर्हितनामसु पठितम्। (भिघं०३)२५) (सन्नद्धः) सम्यग्बद्धः (मनसा) अन्तःकरणेन (चरामि) गच्छामि (यदा) (मा) मां जीवम्

मण्डल-१। अनुवाक-२२। सूक्त-१६४

१७३१

(आ) (अगन्) समन्तात्प्राप्ताः (प्रथमजाः) प्रथमात् कारणाज्जाताः पूर्वोक्ता महत्तत्त्वादयः (ऋतस्य) सत्यस्य (आत्) अनन्तरम् (इत्) एव (वाचः) वाण्याः (अश्नुवे) प्राप्नोमि (भागम्) (अस्याः)॥३७॥

अन्वयः-यदा प्रथमजा मागन्नादिदृतस्यास्या वाचो भागमहमश्नुवे। यावदिदं प्राप्तो नास्मि तावर्षुक्तं विजानामि मनसा संनद्धो निण्यश्चरामि॥३७॥

भावार्थ:-अल्पज्ञाऽल्पशक्तिमत्त्वात् साधनैर्विना जीवः साध्यं ग्रहीतुं न शक्नोति। सद्भे श्रोत्रादीनि प्राप्नोति तदा वेदितुमर्हति। यावद्विद्यया सत्यं न जानाति तावदिभमानं कुर्वन् पशुरिव विचरति॥३७)।

पदार्थ:-(यदा) जब (प्रथमजा:) उपादान कारण प्रकृति से उत्पन्न हुए पूर्वोक्त पहत्तत्त्वार्दि (मा) मुझ जीव को (आ, आगन्) प्राप्त हुए अर्थात् स्थूल शरीरावस्था हुई (अत, इत) उसके अनन्तर ही (ऋतस्य) सत्य और (अस्या:) इस (वाच:) वाणी के (भागम्) भए। को विद्या कियय को मैं (अश्नुवे) प्राप्त होता हूँ। जब तक (इदम्) इस शरीर को प्राप्त नहीं (अस्मि) होता हूँ, तब तक उस विषय को (यदिव) जैसे के वैसा (न) नहीं (वि, जानामि) विशेषता से जानता हूँ। किन्तु (मनसा) विचार से (संनद्ध:) अच्छा बँधा हुआ (निण्य:) अन्तर्हित अर्थात् भीतर उस विष्यार को स्थिर किये (चरामि) विचरता हूँ॥

भावार्थ: - अल्पज्ञता और अल्पशक्तिमत्ता के कारण साध्ये रूप इन्द्रियों के विना जीव सिद्ध करने योग्य वस्तु को नहीं ग्रहण कर सकता। जब श्रोत्राद्धि इन्द्रियों को प्राप्त होता है, तब जानने को योग्य होता है, जब तक विद्या से सत्य पदार्थ को नहीं जानता, जब तक अभिमान करता हुआ पशु के समान विचरता है॥३७॥

पुनः (प्रकारान्तरणीक्तविषयमाह॥

फिर प्रकारान्तर से उक्ते विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अपाङ् प्राङेति स्वधया गृभीतोऽमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः।

ता शर्थन्ता विषूची में वियन्ता न्य्रे में चिक्युर्न नि चिक्युरन्यम्॥ ३८॥

अपोङ्। प्राङ्। पुर्वि। स्वध्या। प्रृभीतः। अमर्त्यः। मर्त्येन। सऽयोनिः। ता। शश्चन्ता। विष्वचीना। विऽयन्ता। नि। अन्यम्। चिक्युः। न। नि। खिक्युः। अन्यम्॥ ३८॥

पदार्थ:-(अपाङ्) अपाञ्चतीति (प्राङ्) प्रकृष्टमञ्चतीति (एति) प्राप्नोति (स्वधया) जलादिना सह वर्त्तमानः। स्वधेत्युद्वन्तपामसु पठितम्। (निघं०१.१२) स्वधेत्यन्ननामसु पठितम्। (निघं०२.७) (गृभीतः) गृहीतः (अर्थर्व्यः) सरणधर्मरहितो जीवः (मर्त्येन) मरणधर्मरहितेन शरीरादिना। अत्राऽन्येषामपीति दीर्घः। (सयोनिः) समानस्थानः (ता) तौ मर्त्यामत्याँ जडचेतनौ (शश्चन्ता) सनातनौ (विषूचीना) विष्वगञ्चितारौ (विषूचीना) विष्वगञ्चितारौ (विष्युन्ता) विष्विधान् प्राप्नुवन्तौ (नि) (अन्यम्) (चिक्युः) चिनुयुः (न) (नि) (चिक्युः) (अन्यम्)॥३८॥

अन्वयः-यः स्वधयापाङ् प्राङेति यो गृभीतो अमर्त्यो मर्त्येन सयोनिरस्ति ता शश्वन्ता विषूचीना वियन्ता वर्ततेत तमन्यं विद्वांसो निचिक्युरविद्वांसश्चान्यं न निचिक्युः॥३८॥

भावार्थ:-अस्मिञ्जगति द्वौ पदार्थौ वर्तेते जडश्चेतनश्च तयोर्जडोऽन्यं स्वस्वरूपञ्च जानाति वित्रावनुत्पन्नावनादी अविनाशिनौ च वर्तेते, जडः संयोगेत स्थूलावर्ण्थां प्राप्तश्चेतनो जीवः संयोगेन वियोगेन च स्वरूपं न जहाति, किन्तु स्थूलसूक्ष्मयोगेन स्थूलसूक्ष्म इव विभाति कूटस्थः सन् यादृशोऽस्ति तादृश एव तिष्ठति॥३८॥

पदार्थ:-जो (स्वधया) जल आदि पदार्थों के साथ वर्तमान (अपाङ्) इत्वेटा (ओड्) सीधा (एति) प्राप्त होता है और जो (गृभीत:) ग्रहण किया हुआ (अमर्त्य:) प्ररणधर्मरहित जीव (मर्त्यन) मरणधर्मरहित शरीरादि के साथ (सयोनि:) एक स्थानवाला हो रहा है (स्र) वि वोनों (शश्चन्ता) सनातन (विषूचीना) सर्वत्र जाने और (वियन्ता) नाना प्रकार से प्राप्त होनेवाले वर्त्तमान हैं, उनमें से उस (अन्यम्) एक जीव और शरीर आदि को विद्वान् जन (नि, विक्युः) निरन्तर जानते और अविद्वान् (अन्यम्) उस एक को (न, नि, विक्युः) वैसा नहीं जानते॥ इद्या

भावार्थ:-इस जगत् में दो पदार्थ वर्तमान हैं- एक जुड़ दुम्म चेतन। उनमें जड़ और को और अपने रूप को नहीं जानता और चेतन अपने को और दूसर को जानता है। दोनों अनुत्पन्न अनादि और विनाशरहित वर्तमान हैं। जड़ अर्थात् शरीरादि परमाणुओं के संयोग से स्थूलावस्था को प्राप्त हुआ चेतन जीव संयोग वा वियोग से अपने रूप को नहीं छुड़िता, किन्तु स्थूल वा सूक्ष्म पदार्थ के संयोग से स्थूल वा सूक्ष्म सा भान होता है, परन्तु वह एकतार स्थित जैसा है, वैसा ही ठहरता है॥३८॥

पुन्रीश्वरिविषयमाह॥

फिर ईश्वर के विषय की अगले मन्त्र में कहा है।।

ऋचो अक्षरे परमे व्योधन यस्मित्देवा अधि विश्वे निषेदुः।

यस्तन्न वेद किमृचा किरिष्यति य इतिद्विदुस्त इमे समासते॥ ३९॥

ऋ्चः। अक्षरें। परमें। विऽऔपन्। यस्मिन्। देवाः। अर्धि। विश्वे। निऽसेदुः। यः। तत्। न। वेद्रे। किम्। ऋ्चा। कुरुष्युति। ये। इत्। तत्। विद्वे। ते। इमे। सम्। आसुते॥३९॥

पदार्थ:-(ऋच:) ऋग्वेदादेः (अक्षरे) नाशरिहते (परमे) प्रकृष्टे (व्योमन्) व्योम्नि व्यापके परमेश्वरे (यस्मिन्) (देवाः) पृथिवीसूर्यलोकादयः (अधि) (विश्वे) सर्वे (निषेदुः) निषीदन्ति (यः) (तत्) ब्रह्म (न) (वद) जानित (ते) (ऋचा) वेदचतुष्टयेन (किरिष्यिति) (ये) (इत्) एव (तत्) (विदुः) जानित् (ते) (इमे) (सम्) (आसते) सम्यगासते। अयं निरुक्ते व्याख्यातः॥ (निरु०१३.१०)॥३९॥

अन्त्रयः-यस्मिन्नृचः सकाशात्प्रतिपादितेऽक्षरे परमे व्योमन्परमेश्वरे विश्वे देवा अधि निषेदुः। यस्तन्न वेद स ऋचा वेदेंच किं क्रिरिष्यति ये तद्विदुस्त इमे इदेव ब्रह्माणि समासते॥३९॥

मण्डल-१। अनुवाक-२२। सूक्त-१६४

१७३३

भावार्थ:-यत्सर्वेषां वेदानां परमं प्रमेयं प्रतिपाद्यं ब्रह्मामरं च जीवाः कार्य्यकारणाख्ये जगच्चाऽस्ति। एषां मध्यात्सर्वाधारो व्योमवद्व्यापकः परमात्मा जीवाः कार्यकारणञ्च व्याप्यमस्ति। अत् एव सर्वे जीवादयः पदार्थाः परमेश्वरे निवसन्ति। ये वेदानधीत्यैत्प्रमेयं न जानन्ति, ते वेदैः किमिपि फलं ने प्राप्नुवन्ति। ये च वेदानधीत्य जीवान् कार्यं कारणं ब्रह्म च गुणकर्मस्वभावतो विदन्ति, ते सर्वे धर्मार्थकाममोक्षेषु सिद्धेषु आनन्दन्ति॥३९॥

पदार्थ:-(यस्मिन्) जिस (ऋच:) ऋग्वेदादि वेदमात्र से प्रतिपादित (अक्षरे) नाशरहित (परमे) उत्तम (व्योमन्) आकाश के बीच व्यापक परमेश्वर में (विश्वे) समस्त (देवाः) पृथिकीसूर्यलोकादि देव (अधि, निषेदुः) आधेयरूप से स्थित होते हैं। (यः) जो (तत्) उस परब्रह्म परमेश्वर को (न, वेद) नहीं जानता वह (ऋचा) चार वेद से (किम्) क्या (किरिष्यति) कर सकता है और (ये) जो (तत्) उस परब्रह्म को (विदुः) जानते हैं (ते) (इमे, इत्) वे ही ये ब्रह्म में (समासते) अच्छे प्रकार स्थिर होते हैं॥ ३९॥

भावार्थ:- जो सब वेदों का परम प्रमेय पदार्थरूप और विदों से प्रतिपाद्य ब्रह्म अमर और जीव तथा कार्यकारणरूप जगत् है। इन सभी में से सबका आधार अर्थात् ठहरने का स्थान आकाशवत् परमात्मा व्यापक और जीव तथा कार्य कारणरूप जगत व्याप्य हैं। इसी से सब जीव आदि पदार्थ परमेश्वर में निवास करते हैं। और जो वेदों को पढ़ के इस प्रमेश की नहीं जानते, वे वेदों से कुछ भी फल नहीं पाते और जो वेदों को पढ़ के जीव, कार्य, कार्यण और ब्रह्म को गुण, कर्म, स्वभाव से जानते हैं, वे सब धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के सिद्ध होने पर आक्द को प्राप्त होते हैं॥३९॥

अथ विदुषीविष्यमाह॥

अब विदुषी स्त्रि के विषय में कहा है।।

सूयवसाद्भगवती हि भूया अथी वेर्य भगवनाः स्याम।

अद्धि तृर्णमध्ये विश्<u>वद्भनीं पिर्व शुद्धमुंद</u>कमाचर्गनी॥४०॥२१॥

सुयवस्ऽअत्। भर्गंऽविद्धाः हि। भूयाः। अथो इति। वयम्। भर्गंऽवन्तः। स्याम्। अद्धि। तृर्णम्। अघ्ये। विश्वऽदानीम्। पिर्व। शुद्धम्। उद्भुकम्। आऽचर्रन्ती॥४०॥

पदार्थ:-(सुयवसात् यो शोभनानि यवसानि सुखानि अत्ति सा (भगवती) बह्वैश्वर्ययुक्ता विदुषी (हि) किल (भूयाः) (अथो) (वयम्) (भगवनः) बह्वैश्वर्ययुक्ताः (स्याम) भवेम (अद्धि) अशान (तृणम्) (अघ्ये) गौरिव वर्तमाने (विश्वदानीम्) विश्वं समग्रं दानं यस्यास्ताम् (पिब) (शुद्धम्) पवित्रम् (उदकम्) जलम् (आवरनी) सत्याचरणं कुर्वती। अयं निरुक्ते व्याख्यातः। (निरु०११.४४)॥४०॥

्रेन्वय:- हे अञ्चे! त्वं सुयवसाद्भगवती भूया हि यतो वयं भगवन्तस्स्याम। यथा गौस्तृणं जग्ध्वा शुद्धमुदकं पीत्वर्र सुम्धं दत्त्वा वत्सादीन् सुखयति तथा विश्वदानीमाचरन्ती सत्यथो सुखमद्धि विद्यारसं पिब॥४०॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। यावन्मातरो वेदविदो न स्युस्तावत्तदपत्यान्यपि विद्यावन्ति न भवन्ति। या विदुष्यो भूत्वा स्वयंवरं विवाहं कृत्वा सन्तानानुत्पाद्य सुशिक्ष्य विदुष: कुर्वन्ति, ता गाव इव सर्वं जगदाह्लादयन्ति॥४०॥

पदार्थ:-हे (अघ्ये) न हनने योग्य गौ के समान वर्तमान विदुषी! तुम (सुयवसात्) सुन्दर सुखों को भोगनेवाली (भगवती) बहुत ऐश्वर्यवती (भूया:) हो कि (हि) जिस कारण (वयम्) हम लोग (भगवन्त:) बहुत ऐश्वर्ययुक्त (स्याम) हों। जैसे गौ (तृणम्) तृण को खा (शुद्धम्) शुद्ध (उदकम्) जल को पी और दूध देकर बछड़े आदि को सुखी करती है, वैसे (विश्वदानीम्) समस्त जिसमें दान उस क्रिया का (आचरन्ती) सत्य आचरण करती हुई (अथो) इसके अनन्तर सुख को (अद्धि) भोग और विद्यारस को (पिंब) पी॥४०॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जब तक भाताजन वेदवित् न हों, तब तक उनमें सन्तान भी विद्यावान् नहीं होते हैं। जो विदुषी हो स्वयंकर विषाह कर सन्तानों को उत्पन्न कर उनको अच्छी शिक्षा देकर उन्हें विद्वान् करती हैं, वे गौओं के समान समस्त जगत् को आनन्दित करती हैं॥४०॥

पुनर्विदुषीविषयमाह।

फिर विदुषी के विषय को अगले मेन्त्र में कहा है॥

गौरीर्मिमाय सिल्लानि तक्ष्तयेकंपदी द्विपदी सा चर्नुष्पदी। अष्टापदी नवंपदी बभूवुषी सहस्राक्ष्रा प्रमु व्योमन्॥४१॥

गौरीः। मिमाया सुलिलानि। नक्षिति। एकेप्पदी। द्विऽपदी। सा। चर्नुःऽपदी। अष्टाऽपदी। नर्वऽपदी। बुभूवुषी। सुहस्र्वऽअक्षरा। पुरुमे। विऽअपन्। १॥

पदार्थ:-(गौरी:) गौरवर्णीः (मिम्पेश) शब्दायते (सिललानि) जलानीव निर्मलानि वचनानि (तक्षती) (एकपदी) एकवेदाश्यासिनी (द्विपदी) अभ्यस्तद्विवेदा (सा) (चतुष्पदी) चतुर्वेदाध्यापिका (अष्टापदी) वेदोपवेदविद्वासुन्ता (नवपदी) चतुर्वेदोपवेदव्याकरणादिशिक्षायुक्ता (बभूवुषी) अतिशयेन विद्यासु भवन्ती (सहस्राक्षरा) सहस्राणि असंख्यातान्यक्षराणि यस्याः सा (परमे) सर्वोत्कृष्टे (व्योमन्) व्योमवद् व्याप्तेऽक्षुब्धे। अयुं निरुक्ते व्याख्यातः (निरु०११.४०)॥४१॥

अन्वयः - हे स्त्रीपुरुषा! यैकपदी द्विपदी चतुष्पदी अष्टापदी नवपदी बभूवृषी सहस्राक्षरा सती परमे व्योमन् प्रयतते गौरीब्रिंद्षीर्मिस्य संलिलानीव तक्षती सा विश्वकल्याणकारिका भवति॥४१॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। या स्त्रिय: सर्वान् साङ्गोपाङ्गान् वेदानधीत्याध्यापयन्ति ता: सर्वान् सतुष्यानुत्रयन्ति॥४१॥

अष्टक-२। अध्याय-३। वर्ग-१४-२३

मण्डल-१। अनुवाक-२२। सूक्त-१६४

१७३५

पदार्थ:-हे स्त्री-पुरुषो! जो (एकपदी) एक वेद का अभ्यास करनेवाली वा (द्विपदी) दो वेद जिसने अभ्यास किये वा (चतुष्पदी) चार वेदों की पढ़ानेवाली वा (अष्टापदी) चार वेद और चार उपवेदों की विद्या से युक्त वा (नवपदी) चार वेद, चार उपवेद और व्याकरणादि शिक्षायुक्त (बभूवुषी) किरिश्य करके विद्याओं में प्रसिद्ध होती और (सहस्राक्षरा) असंख्यात अक्षरोंवाली होती हुई (परके सबसे उत्तम (व्योमन्) आकाश के समान व्याप्त निश्चल परमात्मा के निमित्त प्रयत्न करती है और (गौरी:) गौरवर्णयुक्त विदुषी स्त्रियों को (मिमाय) शब्द कराती अर्थात् (सिललानि) जल के समान निर्मल वचनों को (तक्षती) छांटती अर्थात् अर्वाद दोषों से अलग करती हुई (सा) वह संस्थार के लिये अत्यन्त सुख करनेवाली होती है॥४१॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो स्त्री समस्त्र साङ्गाभङ्ग वेदों को पढ़ के पढ़ाती हैं, वे सब मनुष्यों की उन्नति करती हैं॥४१॥

अथ वाणीविषयमाह॥

अब वाणी के विषय को अगले मन्त्र में कहा है।

तस्याः समुद्रा अधि वि क्षरिति तेने जीवन्ति प्रदिशुक्षतम्त्रः।

तर्तः क्षरत्यक्षरं तद्विश्वमुपं जीवति॥४२॥

तस्याः। सुमुद्राः। अधि। वि। क्षुरन्ति। तेने। जीवन्ति। प्रुश्रदिशः। चर्तस्रः। तर्तः। क्षुर्ति। अक्षरम्। तत्। विश्वम्। उप। जीवृति॥४२॥

पदार्थ:-(तस्या:) वाण्याः (समुद्राः) शब्दाः र्णवाः (अधि) (वि) (क्षरन्ति) अक्षराणि वर्षन्ति (तेन) कार्येण (जीवन्ति) (प्रदिशः) द्रिशोषदिशः (चतस्रः) चतुः संख्योपेताः (ततः) (क्षरित्) (अक्षरम्) अक्षयस्वभावम् (तत्) तस्मात् (विश्वम्) सर्वं जगत् (उप) (जीविति)। अयं मन्त्रो निरुक्ते व्याख्यातः॥ (निरु०११.४१)॥४२॥

अन्वय:-हे मनुष्या:! तस्याः समुद्रा अभिक्रि क्षरन्ति तेन चतस्रः प्रदिशो जीवन्ति ततो यदक्षरं क्षरित तिद्वश्वमुप जीवति॥४२॥

भावार्थ:-समुद्रवदा<mark>काश्रास्तत्र रत्नवच्छब्दाः प्रयोक्तारो ग्रहीतारस्तदुपदेशश्रवणेन सर्वेषामुपजीवनं</mark> भवति॥४२॥

पदार्थ्य: हे पतुष्यो! (तस्या:) उस वाणी के (समुद्रा:, अधि, वि, क्षरन्ति) शब्दरूपी अर्णव समुद्र अक्षरों की पूर्ण करते हैं (तेन) उस काम से (चतस्त्र:) चारों (प्रदिश:) दिशा और चारों उपदिशा (जीवन्ति) जीवती है और (तत:) उससे जो (अक्षरम्) न नष्ट होनेवाला अक्षरमात्र (क्षरित) वर्षता है (तत्र) उससे (विश्वम्) समस्त जगत् (उप, जीवित) उपजीविका को प्राप्त होता है॥४२॥

भावार्थ:-समुद्र के समान आकाश है, उसके बीच रत्नों के समान शब्द शब्दों के प्रयोग करनेवाले रत्नों का ग्रहण करनेवाले हैं, उन शब्दों के उपदेश सुनने से सबकी जीविका और सबका आश्रय होता है॥४२॥

अथ ब्रह्मचर्यविषयमाह॥

अब ब्रह्मचर्य विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

शक् मयं धूममारादेपश्यं विषुवर्ता पर एनावरेण। उक्षाणुं पृश्निमपचन्त वीरास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्॥४३॥

शृक्ऽमर्यम्। धूमम्। आरात्। अपुश्यम्। विषुऽवर्ता। पुरः। पुना। अवर्रिणः। क्रशार्यम्। पृश्निम्। अपुचन्तः। वीराः। तानि। धर्माणि। प्रथमानि। आसुन्॥४३॥

पदार्थ:-(शकमयम्) शक्तिमयम् (धूमम्) ब्रह्मचर्यकर्मानुष्टानारिन्धूमम् (आरात्) समीपात् (अपश्यम्) पश्यामि (विषूवता) व्याप्तिमता (परः) परस्तात् (एनः) एनेन (अवरेण) अर्वाचीनेन (उक्षाणम्) सेचकम् (पृश्निम्) आकाशम् (अपचन्त) पचन्ति (वीरः) व्याप्तिवद्याः (तानि) (धर्म्माणि) (प्रथमानि) आदिमानि ब्रह्मचर्याख्यानि (आसन्) सन्ति॥४६॥

अन्वयः - हे मनुष्या! अहमाराच्छकमयं धूममपश्यम्नाऽक्रोण विषूवता धूमेन परो वीरा: पृश्निमुक्षाणं चापचन्त तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्नभवन्॥४३॥

भावार्थ:-विद्वज्जना अग्निहोत्रादियज्ञैमूँघमण्डलस्थ्नं जलं शोधयित्वा सर्वाणि वस्तूनि शोधयन्ति। अतो ब्रह्मचर्याऽनुष्ठानेन सर्वेषां शरीराण्यात्मसूनसी मू शोधयन्तु। सर्वे जनाः समीपस्थं धूममग्निमन्यं पदार्थञ्च प्रत्यक्षतया पश्यन्ति परावर्गो विद्वास्तु भूमिमारभ्य परमेश्वरपर्यन्तं वस्तुसमूहं साक्षात्कर्त्तुं शक्नोति॥४३॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! में (आरात्) समीप से (शकमयम्) शक्तिमय समर्थ (धूमम्) ब्रह्मचर्य कर्मानुष्ठान के अग्नि के धूम को (अपश्यम्) देखता हूँ (एना, अवरेण) इस नीचे इधर-उधर जाते हुए (विषूवता) व्याप्तिमान् भूम से (पर्) पीछे (वीराः) विद्याओं में व्याप्त पूर्ण विद्वान् (पृश्निम्) आकाश और (उक्षाणम्) सींचनेवाले पिघ्य को (अपचन्त) पचाते अर्थात् ब्रह्मचर्य विषयक अग्निहोत्राग्नि तपते हैं (तानि) वे (धर्माण्रि) धर्म (प्रथमानि) प्रथम ब्रह्मचर्यसञ्ज्ञक (आसन्) हुए हैं॥४३॥

भावार्थ:-विद्वान् जन अग्निहोत्रादि यज्ञों से मेघमण्डलस्थ जल को शुद्ध कर सब वस्तुओं को शुद्ध करते हैं, इससे ब्रह्मचर्य के अनुष्ठान से सबके शरीर, आत्मा और मन को शुद्ध करावें। सब मनुष्यमुद्ध समीपस्थ धूम और अग्नि वा और पदार्थ को प्रत्यक्षता से देखते हैं और अग्नि-पिछले भाव को जीन्वेवास्ता विद्वान् तो भूमि से लेके परमेश्वर पर्यन्त वस्तुसमूह को साक्षात् कर सकता है॥४३॥

पुनर्विद्वद्विषयमाह॥

अष्टक-२। अध्याय-३। वर्ग-१४-२३

मण्डल-१। अनुवाक-२२। सूक्त-१६४

१७३७

फिर विद्वानों के विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

त्रयः केशिन ऋतुथा वि चक्षिते संवत्सरे वेपत् एकं एषाम्। विश्वमेको अभि चेष्टे शचीभिर्धाजिरेकस्य ददृशे न रूपम्॥४४॥

त्रयः। केशिनः। ऋतुऽथा। वि। चुक्षुते। संवृत्सरे। वृपते। एकः। एषाम्। विश्वम्। एकः। अभि। चुष्टे। शचीभिः। ध्राजिः। एकस्य। दुदृशे। न। रूपम्॥४४॥

पदार्थ:-(त्रय:) वायुविद्युत्सूर्याः (केशिन:) प्रकाशवन्तो ज्ञापकाः (ऋतुथा) ऋतुप्रकारेण (वि) (चक्षते) दर्शयन्ति (संवत्सरे) (वपते) वीजानि संतनुते (एकः) (एषाम्) त्रयाणाम् (विश्वम्) समग्रं जगत् (एकः) सूर्यः (अभि) अभितः (चष्टे) प्रकाशयित (शचीभिः) कर्मभिः (शक्षिति कर्मनामसु पठितम्। (निघं०२.१) (ध्राजिः) गितः (एकस्य) वायोः (ददृशे) दृश्यते (न) (क्रिपम्) इत्र निरुक्ते व्याख्याता॥ (निरु०१२.२७)॥४४॥

अन्वयः – हे अध्यापकाऽध्येतृपरीक्षका! यूयं यथा केशिनस्त्रयः स्पिविद्युद्धायवः संवत्सरे ऋतुथा शचीभिर्विचक्षत एषामेको वपत एको विश्वमभिचष्ट एकस्य ध्राजी रूपं च न ददृशे तथ्य-सूर्यमिह स्वन्धिवम्॥४४॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। हैं मनुष्या! यूयं वायुसूर्यविद्युद्धदध्ययनाऽध्यापनादिभिर्विद्या वर्द्धयत यूथात्मनो रूपं चक्षुषा न दृश्यते तथा विदुषां गतिर्न लक्ष्यते यथा ऋतवः संवत्सरमारभन्तं समयं विभिन्नति क्रथा कर्मारम्भं विद्याऽविद्ये धर्माऽधर्मौ च विभन्नतु॥४४॥

पदार्थ:-हे पढ़ने-पढ़ानेवाले लोगों के परीक्षेत्रों! तुम जैसे (केशिन:) प्रकाशवान् वा अपने गुण को समय पाय जतानेवाले (त्रय:) तीन अर्थीत् सुर्ग, बिजुली और वायु (संवत्सरे) संवत्सर अर्थात् वर्ष में (ऋतुथा) वसन्तादि ऋतु के प्रकार से (श्रचीभि:) जो कर्म उनसे (वि, चक्षते) दिखाते अर्थात् समय-समय के व्यवहार को प्रकाशित कराते हैं (एषाम्) इन तीनों में (एक:) एक बिजुलीरूप अग्नि (वपते) जीवों को उत्पन्न कराता (एक:) सूर्य (विश्वम्) समग्र जगत् को (अभि, चष्टे) प्रकाशित करता और (एकस्य) वायु की (ध्राजिः) गति और (रूपम्) रूप (न) नहीं (दृशे) दीखता, वैसे तुम यहाँ प्रवर्तमान होओ॥४४॥

भावार्थ: इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! तुम वायु, सूर्य और बिजुली के समान अध्ययन अध्यापन आदि कर्मों से विद्याओं को बढ़ाओ। जैसे अपने आत्मा का रूप नेत्र से नहीं दीखता, वैसे विद्वानों की गित नहीं जानी जाती। जैसे ऋतु संवत्सर को आरम्भ करते हुए समय को विभाग क्रिते हैं, वैसे कम्मीरम्भ विद्या-अविद्या और धर्म्म-अधर्म्म को पृथक्-पृथक् करें॥४४॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

चत्वारि वाक् परिमिता पदानि तानि विदुर्बाह्यणा ये मेनीिषणिः। गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गियन्ति तुरीयं वाचो मेनुष्या वदन्ति॥४५॥

चुत्वारि। वाक्। परिर्श्वमता। पुदानि। तानि। विदुः। ब्राह्मणाः। ये। मुनीषिणः। गुहा। त्रीणि। निर्शहिता) ने। हुङ्ग्यन्ति। तुरीर्यम्। वाचः। मुनुष्याः। वदन्ति॥४५॥

पदार्थ:-(चत्वारि) नामाख्यातोपसर्गनिपाताः (वाक्) वाचः। अत्र सुपां सुनुगिति ड्यो लुक्। (परिमिता) परिमाणयुक्तानि (पदानि) वेदितुं योग्यानि (तानि) (विदुः) जासन्ति (क्राह्मणाः) व्याकरणवेदेश्वरवेत्तारः (ये) (मनीषिणः) मनसो दमनशीलाः (गृहा) गृहायां बुद्धौ (त्रीणि) नामाख्यातोपसर्गाः (निहिता) धृतानि (न) (इङ्गयन्ति) चेष्टन्ते (तुरीयम्) चित्रश्रीतः॥ (निहर्ति) उच्चारयन्ति। अयं मन्त्रो निरुक्ते व्योख्यीतः॥ (निरु०१३.९)॥४५॥

अन्वय:-ये मनीषिणो ब्राह्मणा वाक् परिमिता यानि चत्वारि पदानि वानि बिद्व: तिषां गुहा त्रीणि निहिता सन्ति नेङ्गयन्ति ये मनुष्या: सन्ति ते वाचस्तुरीयं वदन्ति॥४५॥

भावार्थः-विदुषामिवदुषां चेयोनेव भेदोऽस्ति ये विहांसः सन्ति ते नामाख्यातोपसर्गनिपाताँश्चतुरो जानन्ति। तेषां त्रीणि ज्ञानस्थानि सन्ति चतुर्थं सिद्धं शब्दसमूहं प्रसिद्धं व्यवहारे वदन्ति। ये चाऽविद्वांसस्ते नामाख्यातोपसर्गनिपातात्र जानन्ति किन्तु निपातरूपं सृधिन्ज्ञानसहत्रं सिद्धं शब्दं प्रयुञ्जते॥४५॥

पदार्थ:-(ये) जो (मनीषिण:) मन को सेक्नेवाली (ब्राह्मणा:) व्याकरण, वेद और ईश्वर के जाननेवाले विद्वान् जन (वाक्) वाणी के (परिपिता) परिभाणयुक्त जो (चत्वारि) नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात चार (पदानि) जानने को योग्य पद हैं (ज़ानि) उनको (विदुः) जानते हैं, उनमें से (त्रीणि) तीन (गुहा) बुद्धि में (निहिता) धरे हुए हैं (न) इड्गयन्ति) चेष्टा नहीं करते। जो (मनुष्याः) साधारण मनुष्य हैं, वे (वाचः) वाणी के (तुम्रीयम्) चतुर्थ भाग अर्थात् निपातमात्र को (वदन्ति) कहते हैं॥४५॥

भावार्थ:-विद्वान् और कविद्वानों में इतना ही भेद है कि जो विद्वान् हैं, वे नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात इन चारों को जानते हैं। उनमें से तीन ज्ञान में रहते हैं, चौथे सिद्ध शब्दसमूह को प्रसिद्ध व्यवहार में सब कहते हैं और जो अविद्वान् हैं वे नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपातों को नहीं जानते, किन्तु निपातरूप साधन-ज्ञान रहित प्रसिद्ध शब्द का प्रयोग करते हैं। ४५॥

पुनर्विद्वद्विषयान्तर्गतेश्वरविषयमाह।।

फिर विद्वद्विषयान्तर्गत ईश्वर विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

इन्हें मित्रे वरुणमुग्निमांहुरथी दिव्यः स सुपूर्णो गुरुत्मान्।

ष्कुं सद्विप्रो बहुधा वेदन्यग्निं युमं मोतुरिश्चोनमाहुः॥४६॥२२॥

अष्टक-२। अध्याय-३। वर्ग-१४-२३

मण्डल-१। अनुवाक-२२। सूक्त-१६४

१७३९

इन्द्रम्। मित्रम्। वर्र्णणम्। अग्निम्। आहुः। अथो इति। दिव्यः। सः। सुऽपूर्णः। गुरुत्मान्। एक्षेम्। सत्। विप्राः। बहुधा। वुदुन्ति। अग्निम्। युमम्। मातुरिश्चानम्। आहुः॥४६॥

पदार्थ:-(इन्द्रम्) परमैश्वर्ययुक्तम् (मित्रम्) मित्रमिव वर्त्तमानम् (वरुणम्) श्रेष्ठम् (स्निम्) सर्वव्याप्तं विद्युदादिलक्षणम् (आहु:) कथयन्ति (अथो) (दिव्य:) दिवि भवः (सः) (सृपर्णः) श्रीधनानि पर्णानि पालनानि यस्य सः (गरुत्मान्) गुर्वात्मा (एकम्) असहायम् (सत्) विद्यमानम् (विप्राः) भेधाविनः (बहुधा) बहुप्रकारैर्नामभिः (वदन्ति) (अग्निम्) सर्वव्याप्तं परमात्मरूपम् (यमम्) नियन्तारम् (मातिरश्चानम्) मातिरश्चा वायुस्तल्लक्षणम् (आहुः) कथयन्ति। अयं मन्त्री निरुक्ते व्याख्यातः॥ (निरुक्तः)।४६॥

अन्वय:-विप्रा इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमिति बहुधाऽऽहु:। अथो स बिल्यू सुपणि गरुमानस्तीति बहुधा वदन्ति एकं सद् ब्रह्म अग्निं यमं मातिरश्चानं चाहु:॥४६॥

भावार्थ:-यथाऽग्न्यादेरिन्द्रादीनि नामानि सन्ति तथैकस्य परपोत्पनोऽग्न्यादीनि सहस्रशो नामानि वर्त्तन्ते। यावन्तः परमेश्वरस्य गुणकर्मस्वभावाः सन्ति तावन्त एवैतस्य नाम्धेयानि सन्तीति वेद्यम्॥४६॥

पदार्थ:-(विप्रा:) बुद्धिमान् जन (इन्द्रम्) परमैश्यियुक्त (पित्रम्) मित्रवत् वर्त्तमान (वरुणम्) श्रेष्ठ (अग्निम्) सर्वव्याप्त विद्युदादि लक्षणयुक्त अग्नि को (बहुधा) बहुत प्रकारों से बहुत नामों से (आहु:) कहते हैं। (अथो) इस के अनन्तर (स:) मह (दिव्याः) प्रकाश में प्रसिद्ध प्रकाशमय (सुपर्णः) सुन्दर जिसके पालना आदि कर्म (गरुत्मान्) महान् आदमान्नाला है, इत्यादि बहुत प्रकारों बहुत नामों से (वदन्ति) कहते हैं तथा वे अन्य विद्वान् (एकम्) एक (सत्) विद्यमान परब्रह्म परमेश्वर को (अग्निम्) सर्वव्याप्त परमात्मारूप (यमम्) सर्वनियास्त्र और (मतिरिश्चानम्) वायु लक्षण लिक्षत भी (आहुः) कहते हैं॥४६॥

भावार्थ:-जैसे अग्न्यादि पदार्थों के इन्द्र आदि नाम हैं, वैसे एक परमात्मा के अग्नि आदि सहस्रों नाम वर्त्तमान हैं। जितने परमेश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव हैं, उतने ही इस परमात्मा के नाम हैं, यह जानना चाहिये॥४६॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

किर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

कृष्णं नियतं हर्यः सुपुर्णा अपो वसाना दिवमुत्पंतन्ति। त आविष्ठुनन्सदेनादृतस्यादिद् घृतेनं पृथिवी व्युंद्यते॥४७॥

कृष्णम्। निऽयानेम्। हर्रयः। सुऽपुर्णाः। अपः। वसानाः। दिवेम्। उत्। पुतन्ति। ते। आ। अववृत्रुत्रन्। सर्दमुत्ति। ऋत्रुप्रे। आत्। इत्। घृतेने। पृथिवी। वि। उद्युते॥४७॥

पदार्थ:-(कृष्णम्) कर्षितुं योग्यम् (नियानम्) नित्यं प्राप्त भूगोलाख्यं विमानादिकं वा (हर्यः) हरणशीलाः (सुपर्णाः) रश्मयः (अपः) प्राणान् जलानि वा (वसानाः) आच्छादयन्तः (दिवम्) प्रकाशमयं सूर्यम् (उत्) (पतन्ति) प्राप्नुवन्ति (ते) (आ) (अववृत्रन्) वर्तन्ते। अत्र वृतु वर्त्तने इत्यस्माहर्षम् ते लक्ष् व्यत्ययेन परस्मैपदं प्रथमस्य बहुवचने बहुलं छन्दसीति रुडागमश्च। (सदनात्) स्थानात् (ऋतस्य) सत्यस्य कारणस्य (आत्) अनन्तरम् (इत्) एव (घृतेन) जलेन (पृथिवी) भूमिः (वि) (उद्वर्त) विख्वाते। अयं मन्त्रो निरुक्ते व्याख्यातः॥ (निरु०।७.२४.)॥४७॥

अन्वयः-हे मनुष्या! अपो वसाना हरयः सुपर्णाः कृष्णं नियानं दिवमुत्पतन्ति, ते सूर्वमाञ्चवृत्रन्नृतस्य सदनात् प्राप्तेन घृतेन पृथिवी व्यूद्यते तमादिद्यथावद्विजानीत॥४७॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। यथा सुशिक्षिता अश्वा यानानि सद्यो नयन्ति तथाऽग्न्यादय: पदार्था विमानं यानमाकाशमुद्रमयन्ति यथा सूर्यिकरूपा भूमितलाज्जलमाकृष्य वर्षित्वा सर्वान् वृक्षादीनार्द्रान् कुर्वन्ति तथा विद्वांस: सर्वान् मनुष्यानानन्दयान्त्रा ४७॥

पदार्थ: – हे मनुष्यो! (अप:) प्राण वा जलों को (बस्तानाः) हापती हुई (हरयः) हरणशील (सुपर्णाः) सूर्य की किरणें (कृष्णम्) खींचने योग्य (नियानम्) नित्यु प्राप्त भूगोल वा विमान आदि यान को वा (दिवम्) प्रकाशमय सूर्य के (उत्, पतन्ति) ऊपर गिरली हैं) और (ते) वे (आववृत्रन्) सूर्य के सब ओर से वर्त्तमान हैं (ऋतस्य) सत्यकारण के (सदन्ति) स्थान से प्राप्त (धृतेन) जल से (पृथिवी) भूमि (वि, उद्यते) विशेषतर गीली की जाती है, उसके (आत्, इत्) इसके अनन्तर ही यथावत् जानो॥४७॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे अच्छे सीखे हुए घोड़े रथों को शीघ्र पहुंचाते हैं, वैसे अग्नि आदि पदार्थ विमान रभ को आकाश में पहुँचाते हैं। जैसे सूर्य की किरणें भूमितल से जल को खींच और वर्षा समस्त कुक्ष आदि को आर्द्र करती हैं, वैसे विद्वान् जन सब मनुष्यों को आनन्दित करते हैं॥४७॥

अथ विद्वोद्विषये शिल्पविषयमाह।।

अब बिद्वद्विषय में शिल्प विषय को कहा है॥

द्वादश प्रधयश्चक्रमेक त्रोणि नभ्यानि क उ तिच्चिकेत।

तस्मिन्त्स्राकं त्रिशृता न शृङ्कवौऽर्पिताः षृष्टिर्न चेलाचलासः॥४८॥

द्वार्दशार प्रेडवर्षः। चक्रम्। एक्षम्। त्रीणि। नभ्योनि। कः। ऊम् इति। तत्। चिकेत्। तस्मिन्। साकम्। त्रिऽशृता। नारशङ्कवेरा अर्पिताः। षष्टिः। न। चलाचलासेः॥४८॥

पदार्थ:-(द्वादश) (प्रधय:) धारिका धुर: (चक्रम्) चक्रवद्वर्त्तमानम् (एकम्) (त्रीणि) (नभ्यानि) नहौं निभो साधूनि। अत्र वर्णव्यत्ययेन हस्य भ:। (क:) (उ) वितर्के (तत्) (चिकेत) जानीयात् (तस्मिन्)

अष्टक-२। अध्याय-३। वर्ग-१४-२३

मण्डल-१। अनुवाक-२२। सूक्त-१६४

१७४१

(साकम्) सह (त्रिशता) त्रीणि शतानि येषु (न) इव (शङ्कवः) कीलाः (अर्पिताः) (षष्टिः) (न) इव (चलाचलासः) चलाश्च अचलाश्च ताः। अयं निरुक्ते व्याख्यातः॥ (निरु०४.२७)॥४८॥

अन्वयः-हे मनुष्या! यस्मिन् याने त्रिशता शङ्कवो नेव साकमर्पिताः षष्टिर्न चलाचलासस्तस्मिन्ने चर्क द्वादशे प्रधयस्त्रीणि नभ्यानि च स्थापितानि स्युस्तत् क उ चिकेत॥४८॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। केचिदेव विद्वांसो यथा शरीररचनां जानन्ति तथा विमानादियानिर्माणं विदन्ति। यदा जलस्थलाऽऽकाशेषु सद्यो गमनाय यानानि निर्मातुमिच्छा जायते तदा तेषु अनेकानि जलाग्निचक्राण्यनेकानि बन्धनानि अनेकानि धारणानि कीलकार्ध्व स्थानीयाः। एवं कृतेऽभीष्टिसिद्धिस्स्यात्॥४८॥

पदार्थ: -हे मनुष्यो! जिस रथ में (त्रिशता) तीन सौ (शंकवः) ब्राध्वनेषाली कीलों के (न) समान (साकम्) साथ (अर्पिताः) लगाई हुई (षष्टिः) साठ कीलों (न) जैसी कीलों जो कि (चलाचलासः) चल-अचल अर्थात् चलती और न चलती और (तस्मिन्) उस्पृति (एकम्) एक (चक्रम्) पहिया जैसा गोल चक्कर (द्वादश) बारह (प्रधयः) पहिओं की हालें अर्थाल् हाल लगे हुए पहिये और (त्रीणि) तीन (नभ्यानि) पहिओं की बीच की नाभियों से उत्तमता से हहराने बाली धुरी स्थापित की हों (तत्) उसको (कः) कौन (उ) तर्क-वितर्क से (चिकेत) जाने॥४८॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। कोई हो विद्वान जैसे शरीर-रचना को जानते हैं, वैसे विमान आदि यानों को बनाना जानते हैं। जब जल, स्थल और आकाश में शीघ्र जाने के लिये रथों को बनाने की इच्छा होती है, तब उनमें अनेक जल, अभि के चक्कर, अनेक बन्धन, अनेक धारण और कीलें रचनी चाहियें, ऐसा करने से चाही हुई सिद्ध हैं।ती है।।४८।।

पुनरत्रे विदुषीविषयमाह॥

फिर यहाँ विदुषी स्त्री के विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

यस्ते स्तर्नः शश्यो यी मयोभूर्येन् विश्वा पुष्यसि वार्याणि।

यो रंलुधा वंसुविद्युः सद्भुः सरस्विति तिमह धार्तवे कः॥४९॥

यः। ते। स्तर्नः। शृश्यः। मार्यःऽभू। येने। विश्वा। पुष्यसि। वार्याणि। यः। रृत्नुऽधाः। वसुऽवित्। यः। सुऽदर्नः। सर्रस्वित। तुम्। इह। धार्तवे। कुरिति कः॥४९॥

पदार्थः (ये) (ते) तव (स्तनः) स्तन इव वर्त्तमानः शुद्धो व्यवहारः (शशयः) शयान इव (यः) (मयोभूः) सुर्खं भितुकः (येन) (विश्वा) सर्वाणि (पुष्यिस) (वार्याणि) स्वीकर्त्तुमर्हाणि विद्यादीनि धनानि वा (यः) (रत्नधाः) रत्नानि रमणीयानि वस्तूनि दधाति (वसुवित्) वसूनि विन्दति प्राप्नोति (यः)

(**सुदत्रः)** सुष्ठु दत्राणि दानानि यस्मात् सः (**सरस्वति**) वागिव वर्त्तमाने (तम्) (इह) (धातवे) धातुं पातुम् (कः) कुरु। अयं मन्त्रो निरुक्ते व्याख्यातः॥^{५४} (निरु०६.१४)॥४९॥

अन्वय:-हे सरस्वित विदुषि स्त्रि! ते यः शशयो यो मयोभूश्च स्तनो येन त्वं विश्वा वार्याणि पुष्यिस् यो स्तिधी वसुविद्यश्च सुदत्रोऽस्ति तिमह धातवे कः॥४९॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा माता स्तनपयसा सन्तानं पार्ति तथा बिदुषी स्त्री सर्वं कुटुम्बं रक्षति यथा सुभोजनेन शरीरं पुष्टं जायते तथा मातुः सुशिक्षां प्राप्याऽत्मा पुष्टो जायते॥ १९॥

पदार्थ:-हे (सरस्वित) विदुषी स्त्री! (ते) तेरा (य:) जो (शशय:) सोवासा सन्त और (य:) जो (मयोभू:) सुख की भावना करनेहारा (स्तन:) स्तन के समान वर्तमान शुद्ध व्यवहार (येन) जिससे तू (विश्वा) समस्त (वार्याणि) स्वीकार करने योग्य विद्या आदि वा धतों को (पुष्याम) पृष्ट करती है (य:) जो (रत्नधा:) रमणीय वस्तुओं को धारण करने और (वसुवित्) धनों को प्राप्त हॉनेवाला और (य:) जो (सुदत्र:) सुदत्र अर्थात् जिससे अच्छे-अच्छे देने हों (तम्) उस् अपने स्तन को (इह) यहाँ गृहाश्रम में (धातवे) सन्तानों के पीने को (क:) कर॥४९॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है जिसे माता अपने स्तन के दूध से सन्तान की रक्षा करती है, वैसे विदुषी स्त्री सब कुटुम्ब की रक्षा करती है जैसे सुन्दर घृतात्र पदार्थों के भोजन करने से शरीर बलवान होता है, वैसे माता की सुशिक्षा क्रो पाकर अपन्या पृष्ट होता है॥४९॥

पुनि इद्विषयमाहा

फिर विद्वानों के विषय को अमुल मन्त्र में कहा है॥

युज्ञेन युज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माण प्रेथ्रीमान्यासन्।

ते हु नार्कं महिमार्नः सच्चन्त् सूत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः॥५०॥

युज्ञेर्न। युज्ञम्। अयुज्जन्तु। दुवाः। तानि धर्माणि। प्रथ्यमानि। आसुन्। ते। हु। नार्कम्। मुहिमार्नः। सुचन्तु। यत्री पूर्वी साध्याः। सन्ति। देवाः॥ ५०॥

पदार्थ:-(यज्ञेन) अन्यादिद्विव्यपदार्थसमूहेन (यज्ञम्) धर्मार्थकाममोक्षव्यवहारम् (अयजन्त) यजन्ति संगच्छन्ते (देवा:) चिद्वासः (तानि) (धर्माणि) (प्रथमानि) आदिमानि ब्रह्मचर्य्यादीनि (आसन्) सन्ति (ते) (ह) किल (नाकम्) दुःखविरहं सुखम् (महिमानः) पूज्यतां प्राप्नुवन्तः (सचन्त) सचन्ते लभन्ते (यत्र) यस्मिन् (पूर्वे) अधीतविद्याः (साध्याः) अन्यैर्विद्यार्थं संसेवितुमर्हाः (सन्ति) वर्तन्ते (देवाः) विद्वांसः॥५०॥

र अञ्जनिरुष्तेऽस्य मन्त्रस्य व्याख्यानं न विद्यते। (सुदत्र:) इति पदस्य निर्वचनं तु दरीदृश्यते॥ सं.॥

अष्टक-२। अध्याय-३। वर्ग-१४-२३

मण्डल-१। अनुवाक-२२। सुक्त-१६४

१७४३

अन्वयः-ये देवा यज्ञेन यज्ञमयजन्त यानि ब्रह्मचर्यादीनि धर्माणि प्रथमान्यासन् तानि सेवन्ते सेवयन्ति च ते हे यत्र पूर्वे साध्या देवाः सन्ति तत्र महिमानः सन्तो नाकं सचन्त॥५०॥

भावार्थ:-ये प्रथमे वयसि ब्रह्मचर्यसुशिक्षादीनि सेवितव्यानि कर्माणि प्रथमं कुर्वित्त, अप्तिविद्वद्वद्विद्वांसो भूत्वा विद्यानन्दं प्राप्य सर्वत्र सत्कृता भवन्ति॥५०॥

पदार्थ: - जो (देवा:) विद्वान् जन (यज्ञेन) अग्नि आदि दिव्य पदार्थों के समूह से (यज्ञम्) धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के व्यवहार को (अयजन्त) मिलते प्राप्त होते हैं और जो ब्रह्मचर्य आदि (अर्माणि) धर्म (प्रथमानि) प्रथम (आसन्) हैं (तानि) उनका सेवन करते और कराते हैं (ते, ह) के ही (यत्र) यहाँ (पूर्वे) पहिले अर्थात् जिन्होंने विद्या पढ़ ली (साध्या:) तथा औरों को विद्यासिद्धि के लिये सेवन करने योग्य (देवा:) विद्वान् जन (सन्ति) हैं, वहाँ (मिहमान:) सत्कार को प्राप्त हुए (नाकम्) दु:खरहित सुख को (सचन्त) प्राप्त होते हैं॥५०॥

भावार्थ:-जो लोग प्रथमावस्था में ब्रह्मचर्य से उत्तम उत्तम शिक्षा आदि सेवन करने योग्य कामों को प्रथम करते हैं, वे आप्त अर्थात् विद्यादि गुण, धर्म्मादि कार्यों को साक्षात् किये हुए जो विद्वान् उनके समान विद्वान् होकर विद्यानन्द को प्राप्त होकर सर्वत्र सत्व्यार को प्राप्त होते हैं॥५०॥

पुनर्विद्वद्विष्यमाह॥

फिर विद्वान् के विषय क्रों अगले मेन्न्र में कहा है।।

समानमेतदुद्कमुच्चैत्यव चाहंभि:। /

भूमिं पुर्जन्या जिन्वन्ति दिवं जिन्वन्युग्नयः॥५१॥

सुमानम्। एतत्। उदुकम्। उत्। च्या एति। अव। च्या अहंऽभिः। भूमिम्। पुर्जन्याः। जिन्वन्ति। दिवेम्। जिन्वन्ति। अग्नर्यः॥५१॥

पदार्थ:-(समानम्) (एत्न्) पूर्वोक्तं विदुषां कर्म (उदकम्) जलम् (उत्) (च) (एति) प्राप्नोति (अव) (च) (अहभिः) दिक्तः। अत्र छान्द्रम्। वर्णलोपो वेति रलोपः। (भूमिम्) (पर्जन्याः) मेघाः (जिन्वन्ति) प्रीणन्ति (दिव्रम्) अत्रिप्तम् (जिन्वन्ति) तर्पयन्ति (अग्नयः) विद्युतः॥५१॥

अन्वयः-यदुदकमहर्भिस्देति चावैति च तेनैतत्समानम्। अतः पर्जन्या भूमिं जिन्वन्ति। अग्नयो दिवं जिन्वन्ति। ५१॥ 🔥

भावार्थः-ब्रह्मचर्याद्यनुष्ठानेषु कृतेन हवनादिना वायुवृष्ट्युदकशुद्धिर्जायते ततः शुद्धोदकवर्षणेन भूमिजास्तृप्यन्ति। तत एतद्विदुषां पूर्वोक्तं कर्मोदकवदस्ति॥५१॥

पदार्थ:-जौ (उदकम्) जल (अहिभः) बहुत दिनों से (उत्, एति) ऊपर को जाता अर्थात् सूर्य के ब्राप से कण-कण हो और पवन के बल से उठकर अन्तरिक्ष में ठहरता (च) और (अव) नीच को क्यी आता अर्थात् वर्षा काल पाय भूमि पर वर्षता है, उसके (एतत्) यह पूर्वोक्त विद्वानों का

ब्रह्मचर्य अग्निहोत्र आदि धर्मादि व्यवहार (समानम्) तुल्य है। इसी से (पर्जन्या:) मेघ (भूमिम्) भूमि को (जिन्वन्ति) तृप्त करते और (अग्नय:) बिजुली आदि अग्नि (दिवम्) अन्तरिक्ष को (जिन्वन्ति) तृप्त करते अर्थात् वर्षा से भूमि पर उत्पन्न जीव जीते और अग्नि से अन्तरिक्ष, वायु, मेघ आदि शुद्ध होते हैं। पर्शि

भावार्थ:-ब्रह्मचर्य आदि अनुष्ठानों में किये हुए हवन आदि से पवन और वर्षा जल की शुद्धि होती है, उससे शुद्ध जल वर्षने से भूमि पर उत्पन्न हुए जीव तृप्त होते हैं। इससे विद्वानों का पूर्वोक्त ब्रह्मचर्यादि कर्म जल के समान है, जैसे ऊपर जाता और नीचे आता वैसे अग्निहोत्रादि से पद्मर्थ का ऊपर जाना और नीचे आना है॥५१॥

पुनः सूर्यदृष्टान्तेन विद्वद्विषयमाह॥

फिर सूर्य के दृष्टान्त से विद्वानों के विषय को अगले मन्त्र में वहा है।।

दिव्यं सुपूर्णं वायसं बृहन्तमपां गर्भं दर्शतमोषिधीनाम्।

अभीपतो वृष्टिभिस्तुर्पयन्तुं सरस्वन्तुमवसे जोहवीमि। ५२५ २३॥२२॥

दिव्यम्। सुऽपूर्णम्। वायसम्। बृहन्तम्। अपाम्। गर्भम्। दृश्तिम्। आर्षधीनाम्। अभीप्तः। वृष्टिऽभिः। तुर्पर्यन्तम्। सर्रस्वन्तम्। अवसे। जोहुवीम्॥५२॥

पदार्थ:-(दिव्यम्) दिव्यगुणस्वभावम् (सुपर्णम्) सुपर्णा रश्मयो विद्यन्ते यस्मिँस्तम् (वायसम्) अतिगन्तारम्। वा गितगन्धनयोरित्यतोऽसुन् युङ्गमश्चोणादिः (बृहन्तम्) सर्वेभ्यो महान्तम् (अपाम्) अन्तिरक्षस्य। आप इत्यन्तिरक्षनामसु पिठतम्। (निघं०१ ३) (गर्भम्) गर्भ इव मध्ये स्थितम् (दर्शतम्) यो दर्शयित तम् (ओषधीनाम्) सोमादीनाम् (अभीषतः) अभित उभयत आपो यस्मिँस्तस्मात् (वृष्टिभिः) (तर्पयन्तम्) (सरस्वन्तम्) सरांस्युदकानि बहुनि विद्यन्ते यस्मिँस्तम् (अवसे) रक्षणाद्याय (जोहवीिम) भृशमाददािम॥५२॥

अन्वयः-हे मनुष्या! यथाऽहम्बसे दिस्यं सुपर्णं वायसं बृहन्तमपां गर्भमोषधीनां दर्शतं वृष्टिभिरभीपतस्तर्पयन्तं सरस्वन्तं सूर्यमिव वर्त्तमानं विद्वांसं ज्ञिन्वीमि तथैत सूर्यमप्यादत्त॥५२॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुष्तोपमालङ्कारः। यथा सूर्यलोको भूगोलानां मध्यस्थः सन् सर्वान् प्रकाशयित तथैव विद्वान सर्वेलोकमध्यस्थः सन् सर्वेषामात्मनः प्रकाशयित यथा सूर्यो वर्षाभिस्सर्वान् सुखयित तथैव विद्वान् विद्वास्त्रिक्षोपदेशवृष्टिभिः सर्वान् जनानानन्दयित॥५२॥

अत्राग्निकालसूर्यविमानादीश्वरविद्वित्स्त्रियादिगुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेदितव्यम्॥

इति चतुष्पप्रयुक्तरं शततमं १६४ सूक्तं त्रयोविंशो २३ वर्गो द्वाविंशोऽनुवाकश्च समाप्त:॥

पदार्थ: है प्रनुष्यो! जैसे मैं (अवसे) रक्षा आदि के लिये (दिव्यम्) दिव्य गुण, स्वभावयुक्त (सुपर्णम्) जिसमें सुन्दर गमनशील रिंम विद्यमान (वायसम्) जो अत्यन्त जानेवाले (बृहन्तम्) सब से बहें (असम्) अन्तरिक्ष के (गर्भम्) बीच गर्भ के समान स्थित (ओषधीनाम्) सोमादि ओषधियों को (दर्शतम्) दिखानेवाले (वृष्टिभिः) वर्षा से (अभीपतः) दोनों ओर आगे-पीछे जल से युक्त जो मेघादि

अष्टक-२। अध्याय-३। वर्ग-१४-२३

मण्डल-१। अनुवाक-२२। सूक्त-१६४

१७४५

उससे (तर्पयन्तम्) तृप्ति करनेवाले (सरस्वन्तम्) बहुत जल जिसमें विद्यमान उस सूर्य के समान वर्त्तमिन विद्वान् को (जोहवीमि) निरन्तर ग्रहण करते हैं, वैसे इसको तुम भी ग्रहण करो॥५२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्यलोक भूगोल के बीच स्थित हुआ सबको प्रकाशित करता है, वैसे ही विद्वान् जन सब लोकों के मध्य स्थिर होता हुआ सबक्ने आत्माओं को प्रकाशित करता है। जैसे सूर्य वर्षा से सबको सुखी करता है, वैसे ही विद्वान् विद्या, उत्तम शिक्षा और उपदेशवृष्टियों से सब जनों को आनन्दित करता है॥५२॥

इस सूक्त में अग्नि, काल, सूर्य, विमान आदि पदार्थ तथा ईश्वर, विद्वान और स्त्री आदि के गुणवर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है, यह जीनना चाहिये॥

यह एक सौ चौंसठवां १६४ सूक्त और तेईसवां २३ वर्ग और बाईसव्यं २२ अनुवाक पूरा हुआ॥

कयेति पञ्चदशर्चस्य पञ्चषष्ट्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य अगस्त्य ऋषिः। इन्द्रो देवता। १, ३,४,५, ११,१२ विराट् त्रिष्टुप्। २,८,९ त्रिष्टुप्। १३ निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः।

६,७,१०,१४ भुरिक् पङ्क्तिः। १५ पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

अथ विद्रद्गुणानाह॥

अब पन्द्रह ऋचावाले एक सौ पैंसेठवें सूक्त का आरम्भ है। उसमें आदि से विद्वानों के गुणो को कहते हैं।।

कर्या शुभा सर्वयसः सनीळाः समान्या मुरुतः सं मिमिश्चः।

कर्या मृती कुत एतांस एतेऽर्चीन्त शुष्मं वृषीणो वसूया॥१॥

कर्या। शुभा। सऽवेयसः। सऽनीळाः। समान्या। मुरुतः। सम्। मिभिश्चः। कर्या। मृताः। कर्तः। आऽईतासः। एते। अर्चन्ति। शुष्पम्। वृषणः। वसुऽया॥ १॥

पदार्थ:-(कया) (शुभा) शुभगुणकर्मणा (सवयस:) सूर्णानं वयो श्रेषान्ते (सनीळा:) समीपस्थाः (समान्या) तुल्यया क्रियया (मरुत:) वायव इव वर्त्तमानाः (सम्) (मिन्धु:) सिञ्चन्ति (कया) (मती) मत्या (कुतः) (एतासः) समन्तात् प्राप्ताः (एते) (अर्धनि) प्राप्नुवन्ति (शुष्मम्) बलम् (वृषणः) वर्षितारः (वसूया) आत्मनो वसूनां धनानामिच्छया॥ ध्रा

अन्वय:-हे मनुष्या:! सवयस: सनीळा मरुले विद्वांस: कुर्ग समान्या शुभा संमिमिक्षु:। एतासो वृषण एते वसूया कया मती कुत: शुष्ममर्चन्ति॥१॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्करः। (प्रश्नूर) यथा वायवो वर्षाः कृत्वा सर्वान् तर्पयन्ति तथा विद्वांसो रागद्वेषरिहतया धर्म्यया कया क्रियया जनानुत्रयेयुः। केन विज्ञानेन सित्क्रियया च सर्वान् सत्कुर्युः? आप्तरीया वेदोक्तयेत्युत्तरम्॥१॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! (सर्वयस:) संपान अवस्थावाले (सनीळा:) समीपस्थ (मरुत:) पवनों के समान वर्तमान विद्वान् जन (क्या) किस (समान्या) तुल्य क्रिया के साथ (शुभा) शुभ गुण, कर्म से (संगिमिश्च:) अच्छे प्रकार सेचनाहि कर्म करते हैं तथा (एतास:) अच्छे प्रकार प्राप्त हुए (वृषण:) वर्षनेवाले (एते) ये (वसूया) अपने को धनों की इच्छा के साथ (कया) किस (मती) मित से (कुत:) कहाँ से (शुष्मम्) बल को (अर्चन्ति) प्राप्त होते हैं॥१॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। (प्रश्न) जैसे पवन वर्षा कर सबको तृप्त करते हैं, वैसे विद्वान जेते भी रागद्वेषरहित धर्मयुक्त किस क्रिया से जनों की उन्नति करावें और किस विज्ञान वा अच्छी क्रिया से सबका सत्कार करें? इस विषय में उत्तर यही है कि आप्त सज्जनों की रीति और वेदोक्स क्रिया से उक्त कार्य करें॥१॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

अष्टक-२। अध्याय-३। वर्ग-२४-२६

मण्डल-१। अनुवाक-२३। सूक्त-१६५

SPAP

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

कस्य ब्रह्माणि जुजुषुर्युवानः को अध्वरे मुरुत आ वेवर्त। श्येनाँईव ध्रजतो अन्तरिक्षे केन महा मनसा रीरमाम॥२॥

कस्य। ब्रह्माणि। जुजुषुः। युवानः। कः। अध्वरे। मुरुतः। आ। वृवर्ते। श्येनान्ऽईवा ध्रजेतः। अन्तरिक्षे। केने। मुहा। मनसा। रीरुमामु॥२॥

पदार्थ:-(कस्य) (ब्रह्माणि) बृहन्ति यानि धनान्यन्नानि वा तानि। ब्रह्मेति धननामसु पठितम्। (निघं०२.१०) अन्ननाम च०। (निघं०२.७) (जुजुषु:) सेवन्ते। अत्र बहुलं छन्दसीति शपः श्लुः। (युवानः) ब्रह्मचर्येण विद्यया च प्राप्तयौवनाः (कः) (अध्वरे) अहिंसनीये धुम्ये च्यब्हारे (मरुतः) वायव इव (आ) समन्तात् (ववर्त्त) वर्तते। अत्रापि शपः श्लुस्तस्य स्थाने तप् च। श्येनानिव) अश्वानिव। श्येनास इत्यश्चनामसु पठितम्। (निघं०१.१४) (ध्रजतः) गच्छतः (अन्तरिक्षे) आकाशे (केन) (महा) महता (मनसा) (रीरमाम) सर्वान् रमयेम॥२॥

अन्वय:-ये मरुत इव युवानो विद्वांस: कस्य ब्रह्माणि जुजूनुः। कोऽस्मिश्रध्वर आववर्त्त वयं केन महा मनसा ध्रजतो श्येनानिव कान् गृहीत्वाऽन्तरिक्षे रीरमाम॥२॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। यथा वायवो जात्स्थान् पदार्थीन् सेवन्ते तथा ब्रह्मचर्यविद्याबोधाभ्यां परमिश्रयं सेवन्ताम्। यथाऽन्तरिक्षे उड्डीयमानान् श्राविद्योन् पिश्लणः पश्यन्ति, तथैव सभूगोला वयमाकाशे रमेमिह सर्वान् रमयामः। एतत् ज्ञातुं विद्वांस एक शब्नुविद्या। २॥

पदार्थ:-जो (मरुत:) पवनों के समान वेगयुक्त (युवान:) ब्रह्मचर्य और विद्या से युवावस्था को प्राप्त विद्वान् (कस्य) किसके (ब्रह्माणि) चुद्धि को प्राप्त होते जो अन्न वा धन उनको (जुजुषु:) सेवते हैं और (क:) कौन इस (अध्वरे) न नष्ट करने योग्य धर्मयुक्त व्यवहार में (आ, ववर्त्त) अच्छे प्रकार वर्तमान है, हम लोग (केन) कौन (महा) बड़े (मनसा) मन से (ध्रजत:) जानेवाले (श्येनानिव) घोड़ों के समान किनको लेकर (अन्तरिक्ष) अन्तरिक्ष में (रीरमाम) सबको रमावें॥२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपभालङ्कार है। जैसे वायु संसारस्थ पदार्थों का सेवन करते हैं, वैसे ब्रह्मचर्य और विद्या के बोध से प्राप्त श्री को सेवें। जैसे अन्तरिक्ष में उड़ते हुए श्येनादि पिक्षयों को देखते हैं, वैसे ही भूगोलू के साथ हम लोग आकाश में रमें और सबको रमावें, इसको विद्वान् ही जान सकते हैं॥२॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

कुर्तुस्त्वर्मिन्द्र माहिनु: सन्नेको यासि सत्पते किं ते इत्था।

सं पृच्छसे समराणः श्रृभानैर्वोचेस्तन्नो हरिवो यत्ते अस्मे॥३॥

कुर्तः। त्वम्। इन्द्रः। मार्हिनः। सन्। एकः। यासि। सत्ऽपते। किम्। ते। इत्था। सम्। पृच्छसे। सम्अअराणः। शुभानैः। वोचेः। तत्। नः। हृरिऽवः। यत्। ते। अस्मे इति॥३॥

पदार्थ:-(कुत:) कस्मात् (त्वम्) (इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त (माहिन:) महिमायुक्तः । अत्र महेरिनण् चेत्युणादौ सिद्धः। (सन्) (एकः) असहायः (यासि) गच्छिस (सत्पते) सतां पालक (किम्) (तै) (इत्था) अनेन हेतुना (सम्) (पृच्छसे) (समराणः) सम्यक् प्राप्नुवन् (शुभानैः) शुभैर्वचनैः (वोचेः) उच्याः (तत्) (नः) अस्मान् (हरिवः) प्रशस्ता हरयो हरणगुणा विद्यन्ते यस्मिँस्तत्सम्बुद्धौ (वत्) (ते) तव (अस्मे) अस्माकम्॥३॥

अन्वय:-हे इन्द्र सत्पते! माहिन एक: सँस्त्वं सूर्य इव कुतो यासि क्राइट्था विमास्त्रि। हे हरिव:! समराणस्त्वं यत्ते मनस्यस्मे वर्तते तच्छुभानैर्नोऽस्मान् वोचेर्यतस्त्वं संपृच्छसे च॥३॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। यथा सूर्य एक्की सर्वाज्ञकृष्य प्रकाशते। यथाऽऽप्तो विद्वान् सर्वत्र भ्राम्यन् सर्वान् सत्यपालकान् करोति तथा त्वं क्व गच्छांस कस्मादायासि किं करोषीति पृच्छामि। वद स्वोत्तरम्। धर्म्ये मार्गे गच्छामि। गुष्कुलादायामि। अध्यापनमुपदेशञ्च करोमीति समाधानम्॥३॥

पदार्थ:-हे (इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त (सत्पते) सज्जनों के पालनेवाले! (माहिन:) महिमायुक्त (एक:) इकिले (सन्) होते हुए (त्वम्) आपूर् के समान (कुतः) कहाँ से (यासि) जाते हैं (ते) आपका (इत्था) इस प्रकार से (किम्) क्या है। हे (हरिवः) प्रशंसित गुणोंवाले! (समराणः) अच्छे प्रकार प्राप्त हुये आप (यत्) जो (ते) आपके मन् में (अस्मे) हम लोगों के लिये वर्त्तता है (तत्) उसको (शुभानैः) उत्तम वचनों से (नः) हम लोगों के प्रति (वोचेः) कहो, जिससे आप (सं, पृच्छसे) सम्यक् पृछते भी हैं अर्थात् हमारी व्यवस्था आप पृछते हैं॥३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोप्रेमालङ्कार है। जैसे सूर्य एकाएकी सबको खींच के आप प्रकाशमान होता है वा जैसे आप विद्वान सर्वत्र भ्रमण करता हुआ सबको सत्य पालनेवाले करता है, वैसे तू कहाँ जाता है? कहाँ से आता है? क्या करता है? यह पूछता हूँ उत्तर कह। धर्मयुक्त मार्गों को जाता हूँ। गुरुकुल से आता हूँ। पढ़ाना वा उपदेश करता हूँ, यह समाधान है॥३॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

ब्रह्माणि मे मृतयः शं सुतासः शुष्मं इयर्ति प्रभृतो मे अद्रिः। आ शासते प्रति हर्यन्युक्थेमा हरी वहतुस्ता नो अच्छा।। ४॥ अष्टक-२। अध्याय-३। वर्ग-२४-२६

मण्डल-१। अनुवाक-२३। सूक्त-१६५

१७४९

ब्रह्मणि। मे। मृतर्यः। शम्। सुतासः। शुष्पः। इयुर्ति। प्रऽभृतः। मे। अद्रिः। आ। शासते। प्रति। हुर्युन्ति। उक्था। इमा। हर्रो इति। वहुतः। ता। नः। अच्छी। ४॥

पदार्थ:-(ब्रह्माणि) धनान्यत्रानि वा (मे) मम (मतयः) मननशीला मनुष्याः (अम्) सुर्वम् (सुतासः) प्राप्ताः (शुष्मः) बलवान् (इयर्ति) प्राप्नोति (प्रभृतः) (मे) मम (अद्रिः) मेघः (आ) (श्राप्नते) इच्छन्ति (प्रति) (हर्यन्ति) कामयन्ते (उक्था) वक्तुं योग्यानि (इमा) इमानि (हर्गः) धारणाकर्षणगुणौ (वहतः) प्राप्नुतः (ता) तौ (नः) अस्मान् (अच्छ) सम्यक्॥४॥

अन्वय:-हे मनुष्या! यथा प्रभृत: शुष्मोऽद्रिर्मेघ इव मे उपदेश: सर्वानियर्त्ति। यथा सुतासो मेनयो मे ब्रह्माणि शं चाशासते। इमोक्था प्रति हर्यन्ति यथा ता हरी नोऽस्मानच्छ वहतस्तथा यूयं भवत॥४॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। य उदारास्ते मेघवत् सर्वेभ्यः सुर्खानि वर्षन्ति सर्वेभ्यो विद्यादानं कामयन्ते। यथाऽऽत्मसुखिमच्छिन्ति तथा परेषां सुखानि कर्त्तुं द्वःखानि विनाशियतुं सर्व इच्छन्तु॥४॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! जैसे (प्रभृत:) शास्त्रविज्ञान से भरी हुआ (प्रुप्प:) बलवान् (अद्रि:) मेघ के समान (मे) मेरा उपदेश सबको (इयर्ति) प्राप्त होता, वा जिसे (सुरास:) प्राप्त हुए (मतय:) मननशील मनुष्य (मे) मेरे (ब्रह्माणि) धनों वा अत्रों को और (प्रम्) सुख के (आशासते) चाहते हैं, वा (इमा) इन (उक्था) कहने के योग्य पदार्थों की (प्रति, हर्यन्ति) प्रीति से कामना करते हैं, वा जैसे (ता) वे (हरी) धारण-आकर्षण गुण (नः) हम लोगों को (अच्छ) अच्छा (वहतः) प्राप्त होते हैं, वैसे तुम सब होओ॥४॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालुझीर है। जो उदार हैं वे मेघ के समान सबके लिये समान सुखों को वर्षाते हैं, सबके लिये विद्यादान की कामना करते हैं। जैसे अपने को सुख की इच्छा करते हैं, वैसे औरों को सुखी करने और दुःखों का विनाश करने को सब चाहें॥४॥

पुनम्तमेव विषयमाह॥

फिर उर्जी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अतो वयमन्त्रमभिद्विजानाः स्वक्षंत्रभिस्तन्वर्थः शुम्भमानाः।

महोभिरेताँ उप युज्महें न्विन्द्रं स्वधामनु हि नो बुभूर्थ॥५॥२४॥

अर्तः। व्यम्। अन्तमेभिः। युजानाः। स्वऽक्षेत्रेभिः। तन्वः। शुष्मेमानाः। महेःऽभिः। एतीन्। उपे। युज्महे। नु। इन्द्री स्वृक्षम्। अर्पु। हि। नुः। बुभूर्थ॥५॥

पदार्थ:-(अतः) अस्माद्धेतोः (वयम्) (अन्तमेभिः) समीपस्थैः। अन्तमानामित्यन्तिकनामसु पदितमा (ज्ञिघं०२.१६) (युजानाः) (स्वक्षत्रेभिः) स्वकीयै राज्यैः (तन्वः) तनूः (शुम्भमानाः) शुभ्रमुम्मद्याः सम्पादयन्तः (महोभिः) महत्तमैः (एतान्) (उप) (युज्महे) समादधीमहि। अत्र बहुलं

छन्दसीति श्यनो लुक्। (नु) शीघ्रम् (इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त (स्वधाम्) अन्नमुदकं वा (अनु) (हि) किले (न:) अस्माकम् (बभूथ) भवसि॥५॥

अन्वयः-हे इन्द्र! यतस्त्वं हि नस्स्वधामनु बभूथैतानुप युङ्क्षेऽतो वयमेतांश्च युजानाः स्वक्षत्रेभिस्तन्ब प्रिम्मानी अन्तमेभिर्महोभिर्नूप युज्महे॥५॥

भावार्थ:-ये शरीरेण बलारोग्ययुक्ता धार्मिकैर्बलिष्ठैर्विद्वद्भिः सर्वाणि कर्माण्यसमाद्ध्यात्राः सर्वेषां सुखाय वर्त्तमाना महद्राज्यन्यायायोपयुञ्जते ते सद्यो धर्मार्थकाममोक्षसिद्धिमाप्नुवन्ति।

पदार्थ: -हे (इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त पुरुष! जिस कारण आप (हि) ही (नः) हम्मेरे (स्वधाम्) अन्न और जल का (अनु, बभूथ) अनुभव करते हैं (अतः) इससे (वयम्) हम् लोग (एतान्) इन पदार्थों को (युजानाः) युक्त और (स्वक्षत्रेभिः) अपने राज्यों से (तन्वः) शरीरों को (शुम्भानाः) शुभगुणयुक्त करते हुए (अन्तमेभिः) समीपस्थ (महोभिः) अत्यन्त बड़े कामों से (नु) शौघ्र (उप, युज्महे) उपयोग लेते हैं॥५॥

भावार्थ:- जो शरीर से बल और आरोग्ययुक्त धार्मिक बिल्रु विद्वानों से सब कामों का समाधान करते हुए सबके सुख के लिये वर्त्तमान अत्यन्त राज्य के लिये उपयोग करते हैं, वे शीघ्र धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि को प्राप्त होते हैं॥५॥

पुनस्तमेव विषयमाहा।

फिर उसी विषय की अगले मुद्र में कहा है।।

क्वर् स्या वो मरुतः स्वधासीद्भ सन्मामेक समर्धनाहिहत्ये।

अहं ह्यु रेग्रस्तविषस्तुविष्मान् विश्वस्य भूत्रीरनेमं वध्सनै:॥६॥

क्वं। स्या। वु:। मुक्तु:। स्वभा। अस्तीत्। यत्। माम्। एकंम्। सुम्ऽअर्धत्त। अहिऽहत्ये। अहम्। हि। उत्रः। तुर्विषः। तुर्विष्मान्। विश्वस्य। शत्रों। अनमम्। वसुरुस्तै:॥६॥

पदार्थ:-(क्व) कुत्र (स्वा) असौ (व:) युष्माकम् (मरुत:) प्राणा इव वर्त्तमानाः (स्वधा) अन्नमुदकं वा (आसीत्) अस्त (यतः (माम्) (एकम्) (समधत्त) सम्यग् धरतः (अहिहत्ये) मेघहनने (अहम्) (हि) खलु (उग्रः) सिव्यन्वभावः (तिवषः) बलवतः (तुविष्मान्) बलवान्। तुविरिति बलनामसु पिठतम्। (निघं०३११) (विश्वस्य) समग्रस्य (शत्रोः) (अनमम्) नमामि (वधस्नैः) यानि वधेन स्नापयन्ति शस्त्राणि तैः।।हा।

अर्वय:-है मरुतो! यद्यतो मामेकमहिहत्ये समधत्त स्या वः स्वधा क्वाऽऽसीत्। यथा तुविष्मानुग्रोऽहं तिवषो विश्वस्य श्रीवेधस्नैरनमस्तं हि मां यूयं सुखे धरत॥६॥

भावार्थ:-ये मनुष्या विद्यां धृत्वा सूर्यो मेघमिव शत्रुबलं निवारयेयुस्ते सर्वे विद्वांसं प्रति पृच्छेयुर्या सूर्विधारिका शक्तिर्वर्त्तते सा क्वाऽस्तीति सर्वत्र स्थितेत्युत्तरम्॥६॥ अष्टक-२। अध्याय-३। वर्ग-२४-२६

मण्डल-१। अनुवाक-२३। सुक्त-१६५

१७५१

पदार्थ:-हे (मरुत:) प्राण के समान वर्तमान विद्वानो! (यत्) जिससे (माम्) मुझ (एकम्) एक को (अहिहत्ये) मेघ के वर्षण होने में (समधत्त) अच्छे प्रकार धारण करो (स्या) वह (व:) आपका (स्वधा) अत्र और जल (क्व) कहाँ (आसीत्) है, वैसे (तुविष्मान्) बलवान् (उप्र:) तीव्र स्वभाववालों (अहम्) मैं जो (तिवध:) बलवान् (विश्वस्य) समग्र (शत्रो:) शत्रु के (वधस्नै:) वध से न्हेंबानेवाले शस्त्र उनके साथ (अनमम्) नमता हूँ (हि) उसी मुझको तुम सुख में धारण करो॥६॥

भावार्थ:- जो मनुष्य विद्याओं को धारण कर सूर्य जैसे मेघ को वैसे शत्रु बल को निवृत्त करें, वे सब विद्वान् के प्रति पूछें कि जो सबको धारण करनेवाली शक्ति है वह कहाँ है ? सर्भेत्र स्थित है, यह उत्तर है॥६॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।

भूरिं चकर्थ युज्येभिरस्मे समानेभिर्वृषभ् पौंस्येभिः। भूरीणि हि कृणवामा शिव्छेन्द्र क्रत्वां मरुतो युद्धशामा। भूरीणि

भूरि। चुकुर्थ्। युज्येभिः। अस्मे इति। सुमानेभिः। वृष्यु परिवेशिः) भूरोणि। हि। कृणवीम। शृविष्ठ। इन्द्री। क्रत्वी। मरुतः। यत्। वश्रोम।।७।।

पदार्थ:-(भूरि) बहु (चकर्थ) करोषि (युज्येभि:) योजनीयैः कर्मभिः (अस्मे) अस्मभ्यम् (समानेभिः) तुल्यैः (वृषभ) उपदेशवर्षक (पौर्स्यिभः) पुरुषार्थैः (भूरीणि) बहूनि (हि) किल (कृणवाम) कुर्याम। अत्रान्येषामपीति दीर्घः। (शविष्ठ) बिलाइ (क्रुट्स) सर्वसुखप्रद (क्रुत्वा) प्रज्ञया (मरुतः) विद्वांसो मनुष्याः (यत्) यम् (वशाम) कामयेमिहि।। ।

अन्वय:-हे वृषभ! यथा त्वं स्मानिभिर्युज्योभिः पौंस्येभिरस्मे भूरि सुखं चकर्थ। तस्मै तुभ्यं वयं भूरीणि सुखानि कृणवाम। हे शिविष्ठेन्द्र! यथा त्वं कृत्वाऽस्मान् विदुषः करोषि तथा वयं तव सेवां कुर्याम। हे मरुतो! यूयं यत् कामियष्यध्वे तद्वयमिप वशाम हि क्रिमियमिह॥७॥

भावार्थ:-अत्र क्रिक्तुप्तोप्रमालङ्कारः। यथेह विद्वांसो पुरुषार्थेन सर्वान् विद्यासुशिक्षायुक्तान् कुर्वन्ति तथैतान् सर्वे सत्कुर्युः। ये सर्वविद्याऽध्यापकाः सर्वेषां सुखं कामुकाः स्युस्तेऽध्यापनोपदेशयोः प्रधाना भवन्तु॥७॥

पदार्थ्य: हे (ब्रुषभ) उपदेश की वर्षा करनेवाले! जैसे आप (समानेभि:) समान तुल्य (युज्येभि:) योग्य कर्मों वा (पेस्थिभ:) पुरुषार्थों से (अस्मे) हमारे लिये (भूरि) बहुत सुख (चकर्थ) करते हैं, उन आपके त्रिये हम लोग (भूरीणि) बहुत सुख (कृणवाम) करें। हे (शिवष्ठ) बलवान् (इन्द्र) सबको सुख देनेव्राले! जैसे आप (कृत्वा) उत्तम बुद्धि से हम लोगों को विद्वान् करते हैं, वैसे हम लोग आपकी सेवा

करें। हे (मरुत:) विद्वान् मनुष्यो! तुम (यत्) जिसकी कामना करो, उसकी हम भी (वशाम, हि) कामनी ही करें॥७॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे इस संसार में विद्वान् जन पुरुषिथं से सबको विद्या और उत्तम शिक्षा से युक्त करते हैं, वैसे इनको सब सत्कारयुक्त करें। जो सब विद्याओं के पढ़ाने और सबके सुख को चाहनेवाले हों, वे पढ़ाने और उपदेश करने में प्रधान हों।

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

वधों वृत्रं मंकत इन्द्रियेण स्वेन भामेन तिव्षो बंभूवान्। अहमेता मनेवे विश्वर्श्चन्द्राः सुगा अपर्श्वकर् वर्ज्नबाहुः॥ ४५१८

वधीम्। वृत्रम्। मुरुतः। इन्द्रियेणी स्वेनी भामेन। तुविषः। बुभूबान्। अहम्। एताः। मनेवे। विश्वऽचेन्द्राः। सुऽगाः। अपः। चुकुर्। वर्ज्ञेऽबाहुः॥८॥

पदार्थ:-(वधीम्) हन्मि (वृत्रम्) मेघम् (मरुतः) जाणवत् प्रियाः (इन्द्रियेण) मनसा (स्वेन) स्वकीयेन (भामेन) क्रोधेन (तिवषः) बलात् (बभूवान्) भविता (अहम्) (एताः) (मनवे) मननशीलाय मनुष्याय (विश्वश्चन्द्राः) विश्वानि चन्द्राणि सुवर्णानि यश्चरताः (सुगाः) सुष्ठु गच्छन्ति ताः (अपः) जलानि (चकर) करोमि (वज्रबाहुः) वज्रो बाहौ यस्य सः

अन्वय:-हे मरुतो! वज्जबाहुर्बभूवानहं यथा सूर्यो चूत्रं हत्न्वाऽपः सुगाः करोति, तथा स्वेन भामेनेन्द्रियेण तिवषश्च शत्रून् वधीं मनवे विश्वश्चन्द्रा एताश्श्रियश्चकार॥८)

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपुमालङ्कार:। यथा सूर्यप्रेरितया वृष्ट्या सर्वं जगज्जीवित तथा शत्रुविघनिवारणेन सर्वे प्राणिनो जीवन्ति। ।।

पदार्थ:-हे (मरुत:) प्राण के समान प्रिय विद्वानो! (वज्रबाहु:) जिसके हाथ में वज्र है (बभूवान्) ऐसा होनेवाला (अहम) मैं जैसे सूर्ज (वृत्रम्) मेघ को मार (अप:) जलों को (सुगा:) सुन्दर जानेवाले करता है, वैसे (स्वेन) अपने (भामेन) क्रोध से और (इन्द्रियेण) मन से (तिवष:) बल से शत्रुओं को (वधीम्) मारता हूँ और (मनवे) विचारशील मनुष्य के लिये (विश्वश्चन्द्रा:) समस्त सुवर्णादि धन जिनसे होते (युता:) उन्न लक्ष्मियों को (चकर) करता हूँ॥८॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य से प्रेरित वर्षा से समस्त जगत् जीवता है, वैसे शुक्रुओं से होते हुए विघ्नों को निवारने से सब प्राणी जीवते हैं॥८॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अनुत्तमा ते मघवुन्नकिर्नु न त्वावाँ अस्ति देवता विदानः।

अष्टक-२। अध्याय-३। वर्ग-२४-२६

मण्डल-१। अनुवाक-२३। सूक्त-१६५

१७५३

न जार्यमानो नशते न जातो यानि करिष्या कृणुहि प्रवृद्ध॥९॥

अर्नुत्तम्। आ। ते। मुघुऽवृन्। निक्तः। नु। न। त्वाऽवान्। अस्ति। देवता। विदानः। न। जार्यमानः। नुस्रते। न। जातः। यानि। कुरिष्या। कृणुहि। प्रुऽवृद्ध॥९॥

पदार्थ:-(अनुत्तम्) अप्रेरितम् (आ) समन्तात् (ते) तव (मघवन्) परमधनयुक्त (नेिकः) निषधे (नु) शीघ्रे (न) (त्वावान्) त्वया सदृशः (अस्ति) (देवता) दिव्यगुणः (विदानः) विद्वान् (न) (जायमानः) उत्पद्यमानः (नशते) नश्यति (न) (जातः) उत्पन्नः (यानि) (करिष्या) कर्तुं योग्यानि। अत्र सुपां सुनुगिति डादेशः। (कृणुहि) कुरु (प्रवृद्ध) अतिशयेन विद्यया प्रतिष्ठित॥९॥

अन्वय:-हे मघवन्! ते तवाऽनुत्तं निकर्विद्यते त्वावानन्यो देवता विदानो निस्ति विष्णिमानो नु न नशते जातो न नशते।हे प्रवृद्ध!त्वं यानि करिष्या सन्ति तानि न्वाकृणुहि॥९॥

भावार्थ:-यथाऽन्तर्यामिण ईश्वरात्किंचिदव्याप्तं न विद्यते न कश्चित्तव्यीदृशो जायते न जातो न जिन्छ्यते न नश्यति कर्त्तव्यानि कार्याणि करोति, तथैव विद्वद्भिभीवतव्यं वैद्वित्रव्यं च॥९॥

पदार्थ:-हे (मघवन्) परमधनवान् विद्वान्! (ते) आपका (अनुसम्) न प्रेरणा किया हुआ (निकः) नहीं कोई विद्यमान है और (त्वावान्) तुम्हारे सदृश और (देवता) दिख्य गुणवाला (विदानः) विद्वान् (न) नहीं (अस्ति) है। तथा (जायमानः) उत्पन्न होनेवाला (नु) शांघ्र (न) नहीं (नशते) नष्ट होता (जातः) उत्पन्न हुआ भी (न) नहीं नष्ट होता। हे (प्रवृद्ध) अन्यन्त चिद्धां से प्रतिष्ठा को प्राप्त! आप (यानि) जो (किरिष्या) करने योग्य काम हैं, उनको शींघ्र (भ्रा, कृणुहि) अच्छे प्रकार करिये॥९॥

भावार्थ:-जैसे अन्तर्यामी ईश्वर से अन्याप्त कुछ भी नहीं विद्यमान है, न कोई उसके सदृश उत्पन्न होता, न उत्पन्न हुआ और न होगा, न विहुन्य होता है, किन्तु ईश्वरभाव से अपने कर्त्तव्य कामों को करता है, वैसे ही विद्वानों को होना और जानना चाहिये॥१॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विष्य)को अगले मन्त्र में कहा है॥

एकंस्य चिन्मे विश्वरंस्त्वेजों या नु देधृष्वान् कृणवै मनीषा। अहं ह्यु रेप्रो मरुतो विद्वानी यानि च्यविमन्द्र इदीश एषाम्॥ १०॥ २५॥

एकंस्य। बित्। में। बिप्रभा अस्तु। ओर्जः। या। नु। दुधृष्वान्। कृणवै। मनीषा। अहम्। हि। उग्रः। मुरुतः। विदानः। यानि च्यवम्। इन्द्रंः। इत्। ईशे। एषाम्॥ १०॥

पदार्थ: (एकस्य) (चित्) अपि (मे) मम (विभु) व्यापकम् (अस्तु) भवतु (ओजः) बलम् (या) यामि (नु) सद्यः (दधृष्वान्) प्रसोढा (कृणवै) कर्तुं शक्नुयाम् (मनीषा) प्रज्ञया (अहम्) (हि) किल (उमः) बीवः (मस्तः) मरुद्वद्वर्त्तमानाः (विदानः) विद्वान् (यानि) (च्यवम्) प्राप्नुयाम् (इन्द्रः) दुःखच्छेता (इन्) एवं (ईशे) (एषाम्) प्राणिनाम्॥१०॥

अन्वय:-हे मरुतो! यथैकस्य चिन्मे विभ्वोजोऽस्तु या दधृष्वानहं तथा तद्धि वोऽस्तु तानि सहत यथाहं मनीषो नु विद्या कृणवै उग्रो विदान इन्द्र: सन् यानि च्यवमेषामिदीशे च तथा यूयं वर्त्तध्वम्॥१०॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। यथा जगदीश्वरोऽनन्तपराक्रमवान् व्यापकेऽस्ति तथा विद्वांस: सर्वेषु शास्त्रेषु धर्मकृत्येषु च व्याप्नुवन्तु न्यायाधीशा भूत्वैतेषां मनुष्यादीनां प्रुखं संपादयन्तु॥१०॥

पदार्थ: - हे (मरुत:) पवनों के समान वर्त्तमान सज्जनो! जैसे (एकस्य) एक (चित्) ही (मे) मेरे को (विभु) व्यापक (ओज:) बल (अस्तु) हो और (या) जिनको (दृष्ट्रचान्न) उच्छे प्रकार सहनेवाला मैं होऊं, वैसे वह बल (हि) निश्चय से तुम्हारा हो और उनका सहन तुम करो। जैसे (अहम्) मैं (मनीषा) बुद्धि से (नु) शीघ्र (कृणवै) विद्या कर सकूं और (उप:) तीव्र (विदान:) (इन्द्र:) दुःख का छिन्न-भिन्न करनेवाला होता हुआ (यानि) जिन पदार्थों को (च्यवम्) प्राप्त होऊं और (एपाम्, इत्) इन्हीं का (ईशे) स्वामी होऊं, वैसे तुम वर्त्तो॥१०॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे जैनदीश्वर अनन्त पराक्रमी और व्यापक है, वैसे विद्वान् जन समस्त शास्त्र और धर्मकृत्यों में व्याप्त होवें और स्यायाधीश होकर इन मनुष्यादि के सुखों को संपादन करें॥१०॥

पुनस्तमेव विषयमाहो।

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अमन्दन्मा मरुतः स्तोमो अत्र यन्मे नरः श्रुत्ख्रं ब्रह्मं चक्र। इन्द्राय वृष्णे सुमखाय महां सख्ये सम्बन्धिस्तुन्वे तुनूभिः॥११॥

अमन्दत्। मा। मुरुतः। स्तोमः। अन्। यत्। मे। नुरः। श्रुत्यम्। ब्रह्मं। चुक्र। इन्द्राय। वृष्णे सुऽमेखाय। मह्यम्। सख्ये। सखायः। तुन्वे। तुनूभिः॥ ११॥

पदार्थ:-(अमन्दत्) ब्रीनन्दयतु (म्ल) माम् (मरुतः) विद्वांसः (स्तोमः) स्तुतिसमूहः (अत्र) (यत्) (मे) मह्मम् (नरः) नायकाः (श्रुत्यम्) श्रुतिषु साधु (ब्रह्म) वेदः (चक्र) कुर्वन्तु (इन्द्राय) विद्याप्रकाशिताय (वृष्णे) बस्वते (सुमखाय) उत्तमयज्ञानुष्ठात्रे (मह्मम्) (सख्ये) सर्विमित्राय (सखायः) सुर्वसुहृदः (तन्वे) शरीराय (तन्भः) शरीरैः॥११॥

अन्वय् १-हे महतो! यथा मे यत् श्रुत्यं ब्रह्म स्तोमश्चाऽत्र माऽमन्दत्तथा युष्मानप्यानन्दयतु। हे नरो! यथा यूयं सुमखाय वृष्ण इन्द्रोग संख्ये मह्यं सखायस्सन्तस्तनूभिर्मे तन्वे सुखं चक्र तथाऽहमिप युष्मभ्यमेतत् करोमि॥११॥

भावार्थः - अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। विद्वांसो यथाऽधीताः शब्दार्थसम्बन्धतो विज्ञाता वेदाः स्वार्त्भनः सुखयन्ति, तथैवापरान् सुखयिष्यन्तीति मत्वा ते शिष्यमध्यापयेयुः। यथा स्वयं ब्रह्मचर्यभाराग्यवीर्यवन्तो भूत्वा दीर्घायुषस्स्युस्तथैवान्यानिप कुर्युः॥११॥ अष्टक-२। अध्याय-३। वर्ग-२४-२६

मण्डल-१। अनुवाक-२३। सूक्त-१६५

१७५५

पदार्थ:-हे (मरुत:) विद्वानो! जैसे (मे) मेरे लिये (यत्) जो (श्रुत्यम्) सुनने योग्य (ब्रह्म) विद और (स्तोम:) स्तुतिसमूह है वह (अत्र) यहाँ (मा) मुझे (अमन्दत्) आनन्दित करे, वैसे तुमको भी आनन्दित करावे। हे (नर:) अग्रगामी मुखिया जनो! जैसे तुम (समुखाय) उत्तम यज्ञानुष्ठानि करिनेवाले (वृष्णे) बलवान् (इन्द्राय) विद्या से प्रकाशित (सख्ये) सबके मित्र (मह्मम्) मेरे लिये (सखाय:) सबके सुहद् होते हुए (तनूभि:) शरीरों के साथ मेरे (तन्वे) शरीर के लिये सुख (चक्र) करों, वैसे में भी इसको करूं॥११॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। विद्वान् जन जैसे पढ़ें और शब्दार्थ सम्बन्ध से जाने हुए वेद पढ़नेवाले के आत्मा को सुख देते हैं, वैसे ही औरों को भी सुखी करेंगे, ऐसा मान के वे अध्यापक शिष्य को पढ़ावें। जैसे आप ब्रह्मचर्य से रोगरहित बलवान होकर दिखीनी हों, वैसे औरों को भी करें॥११॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।

एवेद्रेते प्रति मा रोचमाना अनेद्यः श्रव एषो द्यानाः। संचक्ष्या मरुतश्चन्द्रवर्णा अच्छान्त मे छुदयाया च मूनम्॥१२॥

पुव। इत्। पुते। प्रति। मा। रोचमानाः। अर्चेद्यः। श्रवंः। आ। इषंः। दधानाः। सम्ऽचक्ष्यं। मुरुतः। चुन्द्रऽवर्णाः। अच्छन्ति। मे्। छुदयाथ। चु। नूनम्॥ १२/॥

पदार्थ:-(एव) निश्चये (इत्) एवं (एते) (प्रति) (मा) माम् (रोचमानाः) (अनेद्यः) प्रशस्यम्। अनेद्य इति प्रशस्यनामसु पठितम्। (निघं प्रे हे) (श्रवः) शृण्वन्ति येन तच्छास्त्रम् (आ) (इषः) इच्छाः (दधानाः) धरन्तः (संचक्ष्य) सम्यग्रध्याष्ट्रोपदिश्य वा। अत्राऽन्येषामपीति दीर्घः। (मरुतः) प्राणवत् प्रिया विद्वांसः (चन्द्रवर्णाः) चन्द्रस्य वर्ण इच वर्णो येषान्ते (अच्छान्त) विद्यया आच्छादयन्तः (मे) मम (छदयाथ) अविद्यां दूरीकुरुत (च) विद्यां दत्त (मूनम्) निश्चितम्॥१२॥

अन्वयः - हे मरुतोः प्रथेष आद्रधाना मेत् प्रति रोचमाना एते यूयमनेद्यः श्रवः संचक्ष्य चन्द्रवर्णास्सन्तो मामच्छान्त तथैवेदानीं च नून मे छुद्योषा। १२॥

भावार्थः अत्र वाचुकलुप्तोपमालङ्कारः। ये स्त्रीपुरुषान् विद्यासु प्रदीप्य प्रशस्तगुणकर्मस्वभावान् कृत्वा धर्म्येषु प्रयुक्ते ते विश्वस्याऽलङ्कर्त्तारस्स्युः॥१२॥

पदार्थ: हे (मरुत:) प्राणों के समान प्रिय विद्वान् जनो! जैसे (इष:) इच्छाओं को (आ, दधाना:) अच्छे प्रकार धारण किये हुए (मा, इत्) मेरे ही (प्रति, रोचमाना:) प्रति प्रकाशमान होते हुए (एत्) ये तम् (अनेद्य:) प्रशंसनीय (श्रव:) सुनने के साधन शास्त्र को (संचक्ष्य) पढ़ा वा उसका उपदेशमात्र कर (चन्द्रवर्णा:) चन्द्रमा के समान उज्ज्वल कान्तिवाले हुए मुझे (अच्छान्त) विद्या से ढांपते

हुए वैसे (एव) ही अब (च) भी (नूनम्) निश्चय से (मे, छदयाथ) विद्याओं से आच्छादित करो, मिरे अविद्या को दूर करो और विद्या देओ॥१२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो स्त्री-पुरुषों को विद्याओं में प्रकाशित और उन्हें प्रशंसित गुण, कर्म, स्वभाववाले कर धर्मयुक्त व्यवहारों में लगाते हैं, वे सबके सुभूषित करनेवाले हों॥१२॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

को न्वर्त्र मरुतो मामहे वः प्र यातन् सर्खीरच्छा सखायः। पन्मानि चित्रा अपिवातयन्त एषां भूत नवेदा म ऋतानाम् १९३॥

कः। नु। अत्रं। मुक्तुः। मामुहे। वः। प्र। यातन्। सखीन्। अच्छे। भ्रेखायः। मन्मानि। चित्राः। अपिऽवातयन्तः। एषाम्। भूत्। नवैदाः। मे। ऋतानाम्॥ १३॥

पदार्थ:-(क:) (नु) सद्यः (अत्र) (मस्तः) (मामहे) पहयेति अत्र मह पूजायामित्यस्मात् लिट बहुलं छन्दसीति श्लुर्विकरणो व्यत्ययेनात्मनेपदं तुजादित्वाद् विधः (व:) युष्मान् (प्र) (यातन) प्राप्नुवन्तु (सखीन्) सुहदः (अच्छ) (सखायः) (मन्मानि) विज्ञानिति (चित्राः) अद्भुताः (अपिवातयन्तः) शीघ्रं गमयन्तः (एषाम्) (भूत) भवत (नवेदाः) न विद्यन्ते दुःखानि येषु (मे) मम (ऋतानाम्) सत्यानाम्॥१३॥

अन्वय:-हे मरुतो! अत्र वः को नु मानिहे हे सखायाँ! यूयं सखीनच्छ प्रयातन। हे चित्रा! मन्मान्यिपवातयन्तो यूयं मे ऋतानामेषां नवेदा भूत॥१३॥

भावार्थ:-मनुष्याः सर्वेषु मुहृद्दो भूत्वा विद्यां प्राप्य्य सर्वान् धर्म्यपुरुषार्थे संयोजयन्तु। यत एते सर्वत्र सत्कृताः स्युः सत्याऽसत्ये विज्ञायान्यासुपदिशेयुः॥१३॥

पदार्थ:-हे (मरुत:) प्राणवत् प्रिय विद्वानो! (अत्र) इस स्थान में (व:) तुम लोगों को (क:) कौन (नु) शीघ्र (मामहे) सक्तिस्युक्त करता है। हे (सखाय:) मित्र विद्वानो! तुम (सखीन्) अपने मित्रों को (अच्छ) अच्छे प्रकार (प्र) यातन) प्राप्त होओ। हे (चित्रा:) अद्भुत कर्म करनेवाले विद्वानो! (मन्मानि) विज्ञानों को (अपिवातयन्त:) शीघ्र पहुंचाते हुए तुम (मे) मेरे (एषाम्) इन (ऋतानाम्) सत्य व्यवहारों के औद्य (नेशेदा:) नवेद अर्थात् जिनमें दु:ख नहीं है, ऐसे (भूत) होओ॥१३॥

भाषार्थ: पनुष्य सबमें मित्र हो और उनको विद्या पहुँचाकर सबको धर्मयुक्त पुरुषार्थ में संयुक्त करें। जिससे ये सर्वत्र सत्कारयुक्त हों और आप सत्य-असत्य जान औरों को उपदेश दें॥१३॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अष्टक-२। अध्याय-३। वर्ग-२४-२६

मण्डल-१। अनुवाक-२३। सूक्त-१६५

१७५७

आ यहुंवस्याद् दुवसे न काुरुरस्माञ्चक्रे मान्यस्यं मेधा।

ओ षु वर्त्त मरुतो विष्रमच्छेमा ब्रह्माणि जरिता वो अर्चत्।। १४॥

आ। यत्। दुवस्यात्। दुवसें। न। कारुः। अस्मान्। चक्रे। मान्यस्यं। मेधा। ओ इतिं। सु। वर्ते मस्ताः। विप्रम्। अच्छं। इमा। ब्रह्मणि। जुरिता। वुः। अर्चुत्॥ १४॥

पदार्थ:-(आ) समन्तात् (यत्) यस्मात् (दुवस्यात्) सेवमानात् (दुवसे) द्रुवस्यते परिचरते (न) इव (कारु:) शिल्पकार्यसाधिका (अस्मान्) (चक्रे) करोति (मान्यस्य) माननीयस्य योत्यस्य (मेधा) प्रज्ञा (ओ) आभिमुख्ये (सु) (वर्त्त) वर्तते (मरुत:) विद्वांसः (विप्रम्) मेधाविनम् (अच्छ) (इमा) इमानि (ब्रह्माणि) वेदान् (जिरता) स्तोता (व:) युष्मान् (अर्च्चत्) सत्कुर्यात्॥१४॥

अन्वय:-हे मरुतो! यद्दुवस्याद् दुवसे नास्मभ्यं प्राप्ता मान्यस्य कर्ष्मिशाऽस्मान् करूनाचक्रेऽतो यूयं विप्रमो षु वर्त्त किमर्थं तत्राह जरिताऽच्छेमा ब्रह्माणि संगृह्माच्छ वोऽर्चत्॥१४॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। यथा शिल्पिन: शिल्पविद्यासिद्धार्मि वस्तूनि सेवन्ते तथा वेदार्थास्तज्ज्ञानं च सर्वै: सेवितव्यम्। निह वेदविद्यया विना मुज्यतमी विद्वान् स्यात्॥१४॥

पदार्थ:-हे (मरुत:) विद्वानो! (यत्) जिस कारण (दुवस्थात्) सेवन करनेवाले से (दुवसे) सेवन करनेवाले अर्थात् एक से अधिक दूसरे के लिये जैसे (च वैसे हम लोगों के लिये प्राप्त हुई (मान्यस्य) मानने योग्य योग्यता को प्राप्त सज्जन की (क्रिक्:) शिल्प कार्यों को सिद्ध करनेवाली (मेधा) बुद्धि (अस्मान्) हम लोगों को (आ, चक्रे) करती है अर्थात् शिल्पकार्यों में निपुण करती है, इससे तुम (विप्रम्) मेधावी धीरबुद्धिवाले पुरुष के (आ, षु, वर्त्त) सम्मुख वर्त्तमान होओ, किसलिये (जिरता) स्तुति करनेवाला (इमा) इन (ब्रह्माणि) वदीं को संग्रह कर (अच्छ) अच्छे प्रकार (व:) तुम लोगों को (अर्चत्) सेवे॥१४॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में डामालङ्कार है। जैसे शिल्पीजन शिल्पविद्या से सिद्ध की हुई वस्तुओं का सेवन करते हैं, वैसे वेदार्थ और वेदज्ञान सबको सेवने चाहिये, जिस कारण वेदविद्या के विना अतीव सत्कार करने योग्य विद्वान सहीं होता। १४॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

एष व स्तीमी मस्त इयं गीर्मीन्दार्यस्य मान्यस्य कारोः।

एमा यसिष्ट तुन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम्॥१५॥२६॥३॥

्ष्यः। वः। स्तोर्मः। मु<u>रुतः। इ</u>यम्। गीः। मान्दार्यस्यं। मान्यस्यं। कारोः। आ। इषा। यासीष्टः। तन्वे। वयाम्। विद्यामा इषम्। चुजनंम्। जीरऽदांनुम्॥१५॥

पदार्थ:-(एष:) (व:) युष्मभ्यम् (स्तोमः) स्तुतिसमूहः (मस्तः) विद्वत्तमाः (इयम्) वेदाध्ययन- सुशिक्षायुक्ता (गी:) वाग् (मान्दार्यस्य) मान्दस्य स्तोतुमर्हस्योत्तमगुणकर्मस्वभावस्य च (मान्यस्य) पूजितव्यस्य (कारोः) पुरुषार्थिनः (आ) (इषा) इच्छया (यासीष्ट) प्राप्तुपात्। अत्र व्यत्ययेनात्मनेपदम्। (तन्वे) विस्ताराय (वयाम्) वयम्। अत्रान्येषामपीति दीर्घः। (विद्याम्) लभेगहि (इषम्) अत्रम् (वृजनम्) बलम् (जीरदानुम्) जीवनम्॥१५॥

अन्वयः-हे मरुत! एष वः स्तोमो मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोरियं गीर्वास्ति। अति युष्मासु प्रत्येकस्तन्व इषाऽऽयासीष्ट वयामिषं वृजनं जीरदानुं च विद्याम॥१५॥

भावार्थः-य आप्तानां प्रयतमानानां विदुषां सकाशाद्विद्याशिक्षे लब्ध्वा धर्म्यव्यवहारमाचरन्ति तेषां जन्मसाफल्यमस्तीति वेदितव्यम्॥१५॥

अत्र विद्वद्भुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिर्बोध्याम

इति पञ्चषष्ट्युत्तरं शततमं १६५ सूक्तं षड्विंशो १६ वर्गश्च समाप्तः॥ अस्मित्रध्याये वसुरुद्राद्यर्थानां प्रतिपादनादेतदध्यायोक्तार्थानां पूर्वोऽध्यायोक्तार्थेस्सह सङ्गतिर्वर्त्तत इति

पदार्थ:-हे (मरुत:) उत्तम विद्वानो! (एष:) यह (वं: तुमें लोगों के लिये (स्तोम:) स्तुतियों का समूह और (मान्दार्यस्य) स्तुति के योग्य वा उत्तम गुण, कर्म, स्वभाववाले (मान्यस्य) मानने योग्य (कारो:) कार [कार्य] करनेवाले पुरुषार्थी जन की (इसमें) यह (गी:) वाणी है, इससे तुममें से प्रत्येक (तन्वे) बढ़ाने के लिये (इषा) इच्छा के साथ (आ, यामीष्ट) आओ, प्राप्त होओ (वयाम्) और हम लोग (इषम्) अत्र (वृजनम्) बल (जीरदानुम्) धीर जीवन की (विद्याम) प्राप्त होवें॥१५॥

भावार्थ:-जो आप्त, शास्त्रज्ञ, धर्मातमा, पुरुषार्थी, विद्वान् पुरुषों की उत्तेजना से विद्या और शिक्षा को प्राप्त होकर धर्मयुक्त व्यवहार का आचरण करते हैं, उनके जन्म की सफलता है, यह जानना चाहिये॥१५॥

इस सूक्त में विद्वानों के पुणों के वर्णन से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये॥

यह एक सौ पैस्टवां १६५ सूक्त और छब्बीसवां २६ वर्ग समाप्त हुआ॥

इस अध्याय में वस्पुरुद्रादिकों के अर्थों का प्रतिपादन होने से इस अध्याय में कहे हुए अर्थों की पिछले अध्याय में कहे अर्थों के साथ सङ्गति वर्त्तमान है, यह जानना चाहिये॥

द्र्रित श्रीयुत परमहंसपरिव्राजकाचार्थ्याणां परमविदुषां श्रीमद्विरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां शिष्येण श्रीपरमहंसपरिव्राजकाचार्येण श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मिते संस्कृतार्यभाषाभ्यां सुभूषिते सुप्रमाणयुक्त ऋग्वेदभाष्ये द्वितीयाष्टके तृतीयोऽध्यायः समाप्तः॥

ओ३म्

अथ द्वितीयाष्ट्रके चतुर्थाऽध्याय आरभ्यते॥

विश्वानि देव सिवतर्दुरितानि पर्ग सुव। यद्धद्रं तन्न आ सुव।। ऋ०५.८२.५॥ तिदत्यस्य पञ्चदशर्च्यस्य षट्षष्टयुत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य मैत्रावरुणाऽगस्त्य अधिः। मरुतो देवताः। १,२,८ जगती। ३,५,६,१२,१३ निचृज्जगती। ४ विराट् जगती छन्दः। निषादः (स्वरः। ७,९,१० भुरिक् त्रिष्टुप्। ११ विराट् त्रिष्टुप्। १४ त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। १५

पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

अथ मरुच्छन्दार्थप्रतिपाद्यविदुषां गुणाने हूं।।

अब द्वितीयाष्ट्रक के चतुर्थाध्याय और एक सौ छियासठवें सूक्त का आरम्भ है। उसके आरम्भ से ही मरुच्छब्दार्थप्रतिपाद्य विद्वानों के गुणूँ की कहते हैं॥

तन्नु वोचाम रभुसाय जन्मने पूर्वं महित्वं वृष्मस्य केतवे। ऐधेव यामन्मरुतस्तुविष्वणो युधेवं शक्रास्त्रविषाणि कर्तन॥१॥

तत्। नु। वोचाम्। रभुसाये। जन्मेने। पूर्वम्। महिऽत्वम्। ब्रृष्टभस्ये। केतवे। ऐधाऽईव। यामेन्। मुरुतः। तुविऽस्वनः। युधाऽईव। शृकाः। तुविषाणि। कर्तन्॥ १

पदार्थ:-(तत्) (नु) सद्यः (वोचाम्) उपिद्देशम्/(रभसाय) वेगयुक्ताय (जन्मने) जाताय (पूर्वम्) (महित्वम्) महेर्महेतो भावम् (वृषभस्य) श्लेष्ट्रस्य (कतवे) विज्ञानाय (ऐधेव) ऐधैः काष्ठैरिव (यामन्) यामिन मार्गे (मरुतः) मनुष्याः (तृत्विष्वणः) त्रुविर्बहुविधः स्वनो येषान्ते। अत्र व्यत्ययेनैकवचनम्। (युधेव) युद्धेनेव (शक्राः) शक्तिमृतः (तिविषाणि) बलानि (कर्तन) कुरुत॥१॥

अन्वयः-हे तुविष्वणः अन्ता मरुतो! युष्पोग प्रति वृषभस्य रभसाय केतवे जन्मने यत्पूर्वं महित्वं तद्वयं वोचाम यूयमैधेव यामन् युधेव तिवषाणि निजक्मभिन्नं कर्तना। १॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कारः। विद्वांसो जिज्ञासून् प्रति वर्त्तमानजन्मनां प्राग्जन्मनाञ्च सञ्चितनिमित्तज्ञानं कार्यं दृष्ट्वोप्पदिशेयु:। यथा मनुष्याणां ब्रह्मचर्यजितेन्द्रियत्वादिभि: शरीरात्मबलानि पूर्णानि स्युस्तथा कुरुतेति च्राशः।

पदार्थ: है (तुनिष्वण:) बहुत प्रकार के शब्दोंवाले (शक्र:) शक्तिमान् (मरुत:) मनुष्यो! तुम्हारे प्रति (वृष्भस्य) श्रेष्ठ सज्जन का (रभसाय) वेगयुक्त अर्थात् प्रबल (केतवे) विज्ञान (जन्मने) जो उत्पन्न हुआ उसके लिये जो (पूर्वम्) पहिला (महित्वम्) माहात्म्य (तत्) उसको हम (वोचाम) कहें, उपदेश

१७६०

करें, तुम (ऐधेव) काष्ठों के समान वा (यामन्) मार्ग में (युधेव) युद्ध के समान अपने कर्मों से (तिवषाणि) बलों को (नु) शीघ्र (कर्त्तन) करो॥१॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। विद्वान् जन जिज्ञासु जनों के प्रति वर्त्तमान जिस् और पूर्व जन्मों के सञ्चित कर्मों के निमित्त ज्ञान को उनके कार्यों को देख कर उपदेश करें। और जैसे ममुख्या के ब्रह्मचर्य और जितेन्द्रियत्वादि गुणों से शरीर और आत्मबल पूरे हों, वैसे करें॥१॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

नित्यं न सूनुं मधु बिभ्रत उप क्रीळेन्ति क्रीळा विदथेषु घृष्वया नक्षन्ति रुद्रा अवसा नमुस्विनं न मर्धन्ति स्वतंवसो हिव्यक्रितम्॥ १॥

नित्यम्। न। सूनुम्। मधुं। बिभूतः। उपं। क्रीळेन्ति। क्रीकाः। बिद्धेषु। शूष्टेषेः। नक्षेन्ति। सुद्राः। अवसा। नुमस्विनम्। न। मुर्धेन्ति। स्वऽतंवसः। हुविःऽकृतम्॥२॥

पदार्थ:-(नित्यम्) नाशरिहतजीवम् (न) इव (मूनुम्) अप्रत्यम् (मधु) मधुरादिगुणयुक्तम् (बिभ्रतः) धरतः (उप) सामीप्ये (क्रीळिन्त) (क्रीळाः) क्रीडकाः (विदथेषु) संग्रामेषु (घृष्वयः) सोढारः (नक्षन्ति) प्राप्नुवन्ति (फद्राः) प्राणा इव (अवसा) स्थणाद्येन (नमस्विनम्) बह्वत्रयुक्तम् (न) निधेषे (मर्द्धन्ति) योधयन्ति (स्वतवसः) स्वं स्वकीयं) तवो बलं येषान्ते (हविष्कृतम्) हिविभिदीनैर्निष्पादितम्॥२॥

अन्वयः - हे मनुष्या! यूयं ये नित्यं न मधु बिभ्रता सूनुमुप क्रीळन्ति विदथेषु घृष्वयः क्रीळा नक्षन्ति रुद्रा इवावसा नमस्विनं न मर्द्धन्ति स्वतवसो हविष्कृते रक्षन्ति ब्राह्मित्यं सेवध्वम्॥२॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार: ये सर्वेषामुपकारे प्राणवत्तर्पणे जलात्रवदानन्दे सुलक्षणाऽपत्यवद्वर्त्तन्ते ते श्रेष्ठान् वर्द्धितुं दुष्टात्रमयितुं शक्नुवन्ति॥ २॥

पदार्थ:-हे मनुष्या! जिसे जो लोग (नित्यम्) नाशरहित जीव के (न) समान (मधु) मधुरादि गुणयुक्त पदार्थ को (बिश्रतः) धारण करते हुए (सूनुम्) पुत्र के समान (उप, क्रीडन्ति) समीप खेलते हैं वा (विद्थेषु) संग्रामों में (धृष्यः) शत्रु के बल को सहने और (क्रीडाः) खेलनेवाले (नक्षन्ति) प्राप्त होते हैं वा (फद्राः) प्राणों के समान (अवसा) रक्षा आदि कर्म से (नमस्विनम्) बहुत अत्रयुक्त जन को (न) नहीं (मर्द्धन्ति) खड़ाते और (स्वतवसः) अपना बल पूर्ण रखते हुए (हविष्कृतम्) दानों से सिद्ध किये हुए पदार्थ को रखते हैं उसका नित्य सेवन करो॥२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो सबके उपकार में प्राण के समान तृप्ति करने में जल, अन्नू के समान और आनन्द में सुन्दर लक्षणोंवाली विदुषी के पुत्र के समान वर्त्तमान हैं, वे श्रेष्ठों को बढ़ा और दुष्टों को नमा सकते हैं अर्थात् श्रेष्ठों को उन्नति दे सकते और दुष्टों को नम्र कर सकते हैं॥२॥

अष्टक-२। अध्याय-४। वर्ग-१-३

मण्डल-१। अनुवाक-२३। सूक्त-१६६

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यस्मा ऊर्मासो अमृता अर्रासत रायस्पोषं च हुविषां ददाशुषे। उक्षन्त्यंस्मै मुरुतों हिताईव पुरू रजांसि पर्यसा मयोभुवं:॥३॥

यस्मै। ऊर्मासः। अमृताः। अरोसत। रायः। पोषेम्। च। हुविषां। दुदाशुषे। असन्ति। अस्मै। मुरुतः हिताःऽईव। पुरु। रजांसि। पर्यसा। मुयःऽभुवेः॥३॥

पदार्थ:-(यस्मै) (ऊमासः) रक्षणादिकर्तारः (अमृताः) नाशरिहताः (अरासत) रासन्ते (रायः) धर्म्यस्य धनस्य (पोषम्) पृष्टिम् (च) (हिवषा) विद्यादिदानेन (ददाशुषे) (उत्रे (उक्किन्)) सिञ्चन्ति (अस्मै) संसाराय (मरुतः) वायवः (हिताइव) यथा हितसंपादकास्तथा (पुरु) पुरूषि बहुनि। अत्र संहितायामिति दीर्घः सुपां सुलुगिति शसो लुक्। (रजांसि) (पयसा) जलेन (मयोभुवः) सुखं भावुकाः॥३॥

अन्वय:-हे विद्वांसोऽमृता ऊमासो भवन्तो यथा मयोभुवो हिताह्व मरुत्तोऽसी पयसा पुरु रजांस्युक्षन्ति तथा यस्मै ददाशुषे हविषा रायस्पोषं विद्याञ्चारासत सोऽप्येवमेवेह वर्त्तत॥३॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। मनुष्यैर्वायुवत्सर्वेषां सुर्वानि स्रेंसाध्य विद्यासत्योपदेशैर्जलेन वृक्षं सिक्त्वेव मनुष्या वर्द्धनीया:॥३॥

पदार्थ: - हे विद्वानो! (अमृता:) नाशरहित (ऊपास:) रक्षणादि कर्मवाले आप जैसे (मयोभुव:) सुख की भावना करनेवाले (हिताइव) हितसिद्ध करनेवालों के समान (मरुत:) पवन (अस्मै) इस प्राणी के लिये (पयसा) जल से (पुरु) बहुत (क्लांसि) लाक्नों वा स्थलों को (अक्षन्ति) सीचते हैं, वैसे (यस्मै) जिस (ददाशुषे) देनेवाले के लिये (हिन्षि) विद्यादि देने से (राय:) धर्मयुक्त धन की (पोषम्) पृष्टि को (च) और विद्या को (अरासत) देते हैं, वह भी ऐसे ही वर्ते॥३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में हुप्रमालङ्कार है। मनुष्यों को वायु के समान सबके सुखों को अच्छे प्रकार विद्या और सत्योपदेश से जल्प से बुक्षों के समाम सींचकर मनुष्यों की वृद्धि करनी चाहिये॥३॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

प्रिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

आ ये द्भांसि तिविधीभिरव्यंत प्र व एवासः स्वयंतासो अध्रजन्।

भयं त्रिक्षे भुवनानि हुम्या चित्रो वो यामः प्रयंतास्वृष्टिषुं॥४॥

अतः यो रजेर्पसः। तर्विषीभिः। अर्व्यतः। प्रः। वृः। एवसिः। स्वऽयतासः। अध्यज्ञन्। भर्यन्ते। विश्वां। भुवनानि। हुर्म्याः चित्रेश्च वृः। यार्मः। प्रऽयतासुः। ऋष्टिषुं॥४॥

पदार्थ:-(आ) समन्तात् (ये) (रजांसि) लोकाः (तिवषिभिः) बलैः (अव्यत) प्राप्नुवन्ति (प्र) (वः) युष्माकम् (एवासः) गमनशीलाः (स्वयतासः) स्वेन बलेन नियमं प्राप्ता नत्वन्येनाश्चादिनेति (अध्रजन्) धावन्ति (भयन्ते) कम्पन्ते (विश्वा) सर्वाणि (भुवनानि) लोकाः (हर्म्या) उत्तम्पिन गृहाणि (चित्रः) अद्भृतः (वः) युष्माकम् (यामः) प्रापणम् (प्रयतासु) नियतासु (ऋष्टिषु) प्राप्तिषु 哉॥

अन्वय:-हे विद्वांसो! ये व एवास: स्वयतासो रथास्तविषीभी रजांसि आ अव्यत ते प्राध्न<u>्रजन् तेष</u>ो धावने विश्वा भुवनानि हर्म्या भयन्ते तस्मात् प्रयतास्वृष्टिषु चित्रो वो यामोऽस्ति॥४॥

भावार्थ:-विद्वांसो निजशास्त्रादद्धतबलेन रथादिकं निर्माय नियुवासु श्रृतिषु गत्वागत्य सत्यविद्याऽध्यापनोपदेशै: सर्वान् मनुष्यान् पालयित्वाऽसत्यविद्योपदेशान्निवर्त्त्रयेयुः,।४॥

पदार्थ:-हे विद्वानो! (ये) जो (वः) तुम्हारे (एवासः) गमनश्रील (प्वयत्तासः) अपने बल से नियम को प्राप्त अर्थात् अश्वादि के विना आप ही गमन करने में सम्बद्ध स्थ (तिवधिभिः) बलों के साथ (रजांसि) लोकों को (आ, अव्यत) अच्छे प्रकार प्राप्त होते हैं वे (प्र. अध्वजन्) अत्यन्त धावते है, उनके धावन में (विश्वा) समस्त (भुवनानि) लोक (हम्या) उत्तमेत्तम् घर (भयन्ते) कांपते हैं इस कारण (प्रयतासु) नियत (ऋष्टिषु) प्राप्तियों में (चित्रः) अद्भुत (व्र.) हुम्हारा (यामः) पहुँचना है॥४॥

भावार्थ:-विद्वान् जन निज शास्त्रीय अद्भुत बल से स्थानि बना के नियत वृत्तियों में जा आकर सत्य विद्या पढ़ाने और उनके उपदेशों से सब मनुष्यों की पाल के असत्य विद्या के उपदेशों को निवृत्त करें॥४॥

पुत्रस्तमेव विष्यमाह॥

फिर उसी किष्य को अगिले मन्त्र में कहा है।।

यत्त्वेषयामा नदयन्त पर्वतान् दिवो वा पृष्ठं नर्या अचुच्यवुः।

विश्वो वो अज्मेश्यते वनस्पती स्थीयनीव प्र जिहीत ओषधि:॥५॥१॥

यत्। त्वेषयामाः। नदयन्ते पर्वतान्। द्विष्यः। वा। पृष्ठम्। नर्याः। अर्चुच्यवुः। विश्वः। वः। अर्ज्यन्। भ्यते। वनस्पतिः। रृथियन्तीर्ऽइव। श्रा ज़िहीते। ओर्षिः॥५॥

पदार्थ:-(यत्) यद् (त्वेषयामाः) त्वेषे दीप्तौ सत्यां यामो गमनं येषान्ते (नदयन्त) नादयन्ति (पर्वतान्) मेघान् (दिवः) अन्तरिक्षस्य (वा) (पृष्ठम्) उपरिभागम् (नर्याः) नृभ्यो हिताः (अचुच्यवुः) प्राप्नुवन्ति (विश्वः) खः) युष्पाकम् (अज्मन्) अज्मनि पथि (भयते) कम्पते (वनस्पितः) वनस्पितवृक्षः (रथीयन्तीवृ) आत्सनो सथन इच्छन्तीव सेना (प्र) (जिहीते) प्राप्नोति (ओषधिः) सोमादिः॥५॥

अन्वयः-हे विद्वांसो! यत्त्वेषयामा नर्या युष्मद्रथा दिवः पर्वतान्नदयन्त भुवः पृष्ठं वाऽचुच्यवुः तदा विश्वो वनस्मृती रथियत्तीव वोऽज्मन्भयते ओषधिश्च प्रजिहीते॥५॥ अष्टक-२। अध्याय-४। वर्ग-१-३

मण्डल-१। अनुवाक-२३। सूक्त-१६६

१७६३

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। अन्तरिक्षप्रदेशेषु विद्वद्भिः प्रयुक्ताकाशयानानां महत्तरेण वेगेन कदाचिन्मेघविपर्याससम्भवस्तथा पृथिव्याः कम्पनेन वृक्षादीनां कम्पनसम्भवश्च॥५॥

पदार्थ:-हे विद्वानो! (यत्) जब (त्वेषयामा:) अग्नि का प्रकाश होने से गमन कर्मी वालें (नर्या:) मनुष्यों के लिये अत्यन्त साधक तुम्हारे रथ (दिव:) अन्तरिक्ष के (पर्वतान्) मेखें को (मदयन्त) शब्दायमान करते अर्थात् तुम्हारे रथों के वेग से अपने स्थान से तितर-बितर हुए मेघ गजेगदि शब्द करते हैं (वा) अथवा पृथिवी के (पृष्ठम्) पृष्ठ भाग को (अचुच्यवु:) प्राप्त होते तब (विश्व:, वनस्पित:) समस्त वृक्ष (रिधयन्तीव) अपने रथी को चाहती हुई सेना के समान (व:) तुम्हारे (अज्मन्) मार्ग में (भयते) कंपता है अर्थात् जो वृक्ष मार्ग में होता वह थरथरा उठता और (अभिविद:) सोमादि ओषधि (प्र, जिहीते) अच्छे प्रकार स्थान त्याग कर देती अर्थात् कपकपाहट में स्थान, से तिहार हितर होती है॥५॥

भावार्थ: – अन्तरिक्ष के मार्गों में विद्वानों के प्रयोग किए हुए अक्तिसगामी यानों के अत्यन्त वेग से कभी मेघों के तितर – बितर जाने का सम्भव और पृथिवी के कम्पन से वृक्ष वनस्पति के कम्पने का सम्भव होता है।। ५।।

पुनस्तमेव विषयमाह।

फिर उसी विषय को अग्रले मन्त्र में बहा है॥

यूयं न उत्रा मरुतः सुचेतुनारिष्टग्रामाः सुपति षिपतैन। यत्रा वो दिद्युद्रदेति क्रिविर्दती रिणाति पुश्चः सुधितेव बुईणां॥६॥

यूयम्। नः। उत्राः। मुरुनेव्यक्ताः अरिष्टुरुणमाः। सुऽमितम्। पिपर्तन्। यत्रे। वः। दिद्युत्। रदिति। क्रिविःऽदती। रिणाति। पृश्वः। सुधिताऽईवा वर्हणा। ६)।

पदार्थ:-(यूयम्) (नः) क्षस्माक्षम् (उग्राः) तीव्रगुणकर्मस्वभावाः (मरुतः) मरुद्वत्सुचेष्टाः (सुचेतुना) सुष्ठु विज्ञानेन (अरिष्ट्रग्रामाः) अहिंसका ग्रामा येभ्यस्ते (सुमितम्) प्रशस्तां प्रज्ञाम् (पिपर्तन) पूरयन्तु (यत्र) अत्र ऋचि तुः इत्यनेन दीष्टः। (वः) युष्माकम् (दिद्युत्) देदीप्यमाना विद्युत् (रदित) विलिखति (क्रिविर्दती) क्रिविर्हिंसन्भेव दन्ता यस्याः सा (रिणाति) गच्छति (पश्चः) पशून् (सुधितेव) सुष्ठु धृतेव (बर्हणा) वद्धते या स्रो॥६॥

अन्वय:-ह्रे उग्रा मुख्ते विद्वांसो! यूयमरिष्टग्रामाः सन्तो नः सुमितं सुचेतुना पिपर्त्तन। यत्र क्रिविर्दती वो विद्युद्रदित तत्र सुधितेव सूर्हणा सा पश्चो रिणाति॥६॥

भाषार्थः अत्रोपमालङ्कारः। शिल्पव्यवहारसंसाधिता विद्युदश्वादिपशुवत्कार्यसाधिका भवति। तस्याः क्रियावेत्तारो विद्वांसोऽन्यानपि तद्विद्याकुशलान् संपादयन्तु॥६॥

पदोर्थ:-हे (उग्रा:) तीव्रगुणकर्मस्वभावयुक्त (मरुत:) पवनों के समान शीघ्रता करनेवाले विद्वानो (यूयम्) तुम (अरिष्टग्रामा:) जिनसे ग्राम के ग्राम अहिंसक होते अर्थात् पशु आदि जीवों को

जिन्होंने ताड़ना देना छोड़ दिया ऐसे होते हुए (न:) हमारी (सुमितम्) प्रशस्त उत्तम बुद्धि को (सुचेतुना) सुन्दर विज्ञान से (पिपर्तन) पूरी करो। (यत्र) जहाँ (क्रिविदंती) हिंसा करने रूप दांत हैं, जिसके वह (व:) तुम्हारे सम्बन्ध से (दिद्युत्) अत्यन्त प्रकाशमान बिजुली (रदित) पदार्थों को छिन्न-भित्र ब्रेस्ती हैं) वहाँ सुधितेव) अच्छे प्रकार धारण की हुई वस्तु के समान (बर्हणा) बढ़ती हुई (पश्वः) पशुओं को अर्थात् पशुभावों को (रिणाति) प्राप्त होती जैसे पशु, घोड़े बैल आदि रथादिकों क्रों जोड़े हुए उनको चलाते हैं, वैसे उन रथों को अति वेग से चलाती है॥६॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। शिल्पव्यवहार से सिद्ध की बिद्धालीहरू आग घोड़ें आदि पशुओं के समान कार्य सिद्ध करनेवाली होती है, उसकी क्रिया को जाननेवाले विद्वान अन्य जनों को भी उस विद्यद्विद्या से कुशल करें॥६॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।

प्र स्कम्भदेष्णा अनवभ्रराधसोऽलातृणासो विदर्शेषु सुष्ठेताः। अर्चन्युकं मंद्रिरस्यं पोतये विदुर्वोरस्यं प्रथमामि ग्रीस्यानि ।।।

प्रा स्कम्भऽदेष्णाः। अनुवभ्रऽरोधसः। अलातृणार्मः। विद्योषु सुऽस्तुताः। अर्चन्ति। अर्कम्। मृद्धिरस्य। पोतये। विदुः। वीरस्य। प्रथुमानि। पौंस्या॥७॥

पदार्थ:-(प्र) (स्कम्भदेष्णाः) स्तम्भन्दित्तरः (अनवभ्रराधसः) अविनष्टधनाः (अलातृणासः) अलं शत्रूणां हिंसकाः (विदथेषु) संग्रामेषु (सृष्टुताः) सृष्टु प्रशंसिताः (अर्च्चिन्त) सत्कुर्विन्त (अर्कम्) अर्चनीयं विद्वांसम् (मिदरस्य) आनृद्रप्रदेस्य गूलस्य (पीतये) पानाय (विदुः) जानन्ति (वीरस्य) शूरत्वादिगुणयुक्तस्य योद्धः (प्रथमानि) (पौस्या) बलानि॥७॥

अन्वय:-ये स्कम्भदेष्णा कृतवभ्रराधसी लातृणासः सुष्टुता जना विदथेषु वीरस्य प्रथमानि पौंस्या विदुस्ते मदिरस्य पीतयेऽर्कं प्रार्च्चन्ति॥७॥

भावार्थ:-ये युक्ताऽऽहारिक्रहाराः शूरजनप्रियाः स्वसेनाबलानि वर्द्धयन्ते ते शत्रुभि रहिता असंख्यधना पुष्कलदातारः प्राप्तप्रेशंसा भवन्ति॥७॥

पदार्थ: नो (स्कम्पदेष्णा:) स्तम्भन देनेवाले अर्थात् रोक देनेवाले (अनवभ्रराधस:) जिनका धन विनाश को नहीं प्राप्त हुआ (अलातृणास:) पूर्ण शत्रुओं को मारनेहारे (सुष्टुता:) अच्छी प्रशंसा को प्राप्त जन (विद्थेषु) संप्रामों में (वीरस्य) शूरता आदि गुणयुक्त युद्ध करनेवाले के (प्रथमानि) प्रथम (पौंस्या) पुरुषार्थी जलों को (विदु:) जानते हैं, वे (मिदरस्य) आनन्दायक रस के (पीतये) पीने को (अर्कम्) सत्क्रार करने योग्य विद्वान् का (प्र, अर्च्चित्त) अच्छा सत्कार करते हैं॥७॥

अष्टक-२। अध्याय-४। वर्ग-१-३

मण्डल-१। अनुवाक-२३। सूक्त-१६६

१७६८

भावार्थ:-जो यथायोग्य आहार-विहार करने, शूरजनों से प्रीति रखनेवाले अपनी सेना के बेलों को बढ़ाते हैं, वे शत्रुरहित असङ्ख्य धनयुक्त बहुत दान देनेवाले और प्रशंसा को प्राप्त होते हैं। العربات

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

शृतभुंजिभिस्तम्भिह्वतेरघात् पूर्भी रक्षता मरुतो यमार्वत। जनुं यमुत्रास्तवसो विरिष्शिनः पाथना शंसात्तनेयस्य पुष्टिषुं॥८॥

शृतभुंजिऽभिः। तम्। अभिऽह्वंतेः। अघात्। पूःऽभिः। रृक्षुतः। मुरुतः। यम्। आवता जर्नम्। यम्। उग्राः। तुवसः। विऽरृष्शिनः। पाथनं। शंसात्। तनयऽस्य। पृष्टिषुं॥८॥

पदार्थ:-(शतभुजिभि:) शतसङ्ख्यं सुखं भोक्तुं शीलं येषित् (तम्) (अभिहृते:) अभितः कुटिलात् (अघात्) पापात् (पूर्भि:) पूरणपालनसुखयुक्तैर्नगरैः (रक्षतः) अऋउन्येषामपीति दीर्घः। (मरुतः) वायव इव वर्त्तमानाः (यम्) (आवत) पालयत (जनम्) (यम्) (घ्राः) तृजस्विनः (तवसः) प्रवृद्धबलाः (विरिष्शिनः) पूर्णविद्याशिक्षावीर्याः (पाथन) रक्षत। अत्रान्येषामपीति दीर्घः। (शंसात्) आत्मस्तुतिरूपात् दोषात् (तनयस्य) अपत्यस्य (पृष्टिषु) पृष्टिकरणेषु कर्मसु।

अन्वयः-हे तनयस्य पृष्टिषु प्रयतमाना उग्रास्त्रकस्ये विरिष्मिनी मरुतो! यूयं शतभुजिभिः पूर्भिः सह यमभिह्नुतेरघाद् रक्षत यं जनमावत यं शंसात्पाथन तं वयम्पि सर्वतो रक्षेत्रा।।८॥

भावार्थः-ये मनुष्या युक्ताऽहारिक्ष्तिरस्रिशिक्षेष्ठहाचर्यविद्याभिः स्वसन्तानान् पृष्टियुक्तान् सत्यप्रशंसिनः पापात् पृथग्भूताँश्च कुर्वन्ति क्षाप्यूतस्यजाः आनन्दयन्ति च तेऽनन्तसुखा भवन्ति॥८॥

पदार्थ:-हे (तनयस्य) सन्तान् की (पृष्टिष्) पृष्टि करानेवाले कामों में प्रयत्न करते हुए (उग्राः) तेजस्वी तीव्र प्रतापयुक्त (तवसः) अत्यत्त बढ़ हुए बल से युक्त (विरिष्णानः) पूर्ण विद्या, पूर्ण शिक्षा और पूर्ण पराक्रमवाले (मरुतः) पवनों के समान वर्तमान विद्वानो! तुम (शतभुजिभिः) असङ्ख्य सुख भोगने को जिनका शील (पृष्टिः) पूरण पालन और सुखयुक्त नगरों के साथ (यम्) जिसकी (अभिहुतेः) सब ओर से कुटिल (अधान) पाप्न से (रक्षत) रक्षा करो बचाओ वा (यम्) जिस (जनम्) जन को (आवत) पालो वा जिसकी (शंसात्) आत्मप्रशंसारूप दोष से (पाथन) पालना करो (तम्) उसकी हम लोग भी सब ओर से रक्षा करें॥८॥

भावार्थः - जो मनुष्य युक्त आहार-विहार, उत्तम शिक्षा, ब्रह्मचर्य और विद्यादि गुणों से अपने सन्तानों को पृष्टिश्रुक्त, सत्य की प्रशंसा करनेवाले और पाप से अलग रहनेवाले करते और प्राण के समान प्रदेश को आनिन्दत करते हैं, वे अनन्त सुखभोक्ता होते हैं॥८॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

विश्वांनि भुद्रा मेरुतो रथेषु वो मिथुस्पृध्येव तिव्वषाण्याहिता। अंसेष्वा वः प्रपेथेषु खादयोऽक्षो वश्चका समया वि वावृते॥९॥

विश्वानि। भुद्रा। मु<u>रुतः</u>। रथेषु। वः। मुथुस्पृध्याऽइव। तुविषाणि। आऽहिता। अंसेषु। आ। वः। प्र**प्राप्तु** खादर्यः। अक्षः। वः। चुक्रा। समया। वि। वुवृते॥९॥

पदार्थ:-(विश्वानि) सर्वाणि (भद्रा) कल्याणकारकानि (मरुतः) वायुवद्बिल्निः (रथेषु) समणीयेषु यानेषु (वः) युष्माकम् (मिथस्पृध्येव) यथा परस्परं पृत्सु संग्रामेषु भवा सेना तद्दत् (तिवषाणि) बलानि (आहिता) समन्ताद् धृतानि (अंसेषु) स्कन्धेषु भुजेषु (आ) (वः) युष्माकम् (प्रपथेषु) प्रकृष्टेषु सरलेषु मार्गेषु (खादयः) खाद्यानि भक्षविशेषाणि (अक्षः) रथ्यो भागः (वः) युष्माकम् (चक्रा) चक्राणि (समया) निकटे (वि) (ववृते) वर्तते। अत्र तुजादीनामिति अभ्यासदीर्षश्चि। १॥

अन्वय:-हे मरुतो! वो रथेषु विश्वानि भद्रा मिथस्पृध्येव तिवषाण्याहिता सन्ति वो सेषु च प्रपथेषु खादय: सन्ति वोऽक्षश्रक्रा समयाऽऽवि ववृते॥९॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। ये स्वयं ब्रस्तिष्ठाः कॅल्याणाचाराः सुमार्गगामिनः परिपूर्णधनसेनादिसहिताः सन्ति तेऽजसा शत्रून् विजेतुं शक्तुविति।

पदार्थ:-हे (मरुत:) पवनों के समान बर्ल सज्जने! (व:) तुम्हारे (रथेषु) रमणीय यानों में (विश्वानि) समस्त (भद्रा) कल्याण करनेवाले (मथरपृध्येत) संग्रामों में जैसे परस्पर सेना है, वैसे (तिवधाणि) बल (आहिता) सब ओर से धरे हुए हैं (व:) तुम्हारे (अंसेषु) स्कन्धों में उक्त बल है तथा (प्रपथेषु) उत्तम सीधे मार्गों में (खादय:) किने योग्य विशेष भक्ष्य भोज्य पदार्थ हैं (व:) तुम्हारे (अक्ष:) रथ का अक्षभाग धुरी (चक्रा) पहियों के (समया) समीप (आ, वि, ववृते) विविध प्रकार से प्रत्यक्ष वर्तमान है॥९॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो आप बलवान्, कल्याण के आचरण करनेवाले, सुमार्गगामी, परिपूर्ण धन सेनाद सहित हैं, वे प्रत्यक्ष शत्रुओं को जीत सकते हैं॥९॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

प्रिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

भूरोणि भूदा नर्येषु बाहुषु वक्षःसु रुक्मा रभूसासी अञ्जर्यः।

अंसे वित्रं ध्विषु क्षुरा अर्घ वयो न पुक्षान् व्यनु श्रियों धिरे॥ १०॥ २॥

भूसीणा भूगा नर्येषु। बाहुषुं। वक्षःऽसु। रुक्माः। रुभुसासः। अञ्जर्यः। अंसेषु। एताः। पुविषु। क्षुराः। अधि। वर्यः न। पुक्षान्। वि। अनुं। श्रियः। धिरे॥ १०॥ अष्टक-२। अध्याय-४। वर्ग-१-३

मण्डल-१। अनुवाक-२३। सूक्त-१६६

१७६७

पदार्थ:-(भूरीणि) बहूनि (भद्रा) भजनीयानि धर्म्याणि कर्माणि (नर्येषु) नृभ्यो हितेषु (बाहुषु) प्रचण्डदोर्दण्डेषु (वक्षस्सु) उरस्सु (रुक्मा:) सुवर्णरत्नादियुक्ता अलङ्काराः (रभसासः) वेगवन्तः (अञ्चयः) प्रसिद्धप्रशंसाः (अंसेषु) स्कन्धेषु (एताः) शिक्षायां प्राप्ताः (पविषु) सुशिक्षितासु विशु पविति वाङ्नामसु पठितम्। (निघं०१.११) (क्षुराः) धर्म्यशब्दाः (अधि) अधिके (वयः) पक्षिणः (न) इव (पक्षान्) (वि) (अनु) (श्रियः) लक्ष्मीः (धिरे) दिधरे दिधति। अत्र छान्दसोऽभ्यासस्य विकाश्वा।

अन्वय:-येषां नर्येषु भूरीणि भद्रा बाहुषु वक्षःसु रुक्मा अंसेष्वेता रभसासोऽञ्जयः पिक्विधिक्षुरा वर्तेन्ते वयः पक्षान् न श्रियो व्यनु धिरे॥१०॥

भावार्थः - ये ब्रह्मचर्येण प्राप्तविद्या गृहाश्रमे धृताऽलङ्काराः प्रस्कार्थयुक्ताः कृतपरोपकारा वानप्रस्थे प्राप्तवैराग्या अध्यापनरताः संन्यासेऽधिगतयाथातथ्याः परोप्रकाररताः भवत्र विचरन्तः सत्यं ग्राहयन्तोऽसत्यं त्याजयन्तोऽखिलाञ्जनान् वर्द्धयन्ति ते मोक्षमाप्नुवन्ति। १०॥

पदार्थ:-जिनके (नर्येषु) मनुष्यों के लिये हितरूप पदार्थों में (भूरोणि) बहुत (भद्रा) सेवन करने योग्य धर्मयुक्त कर्म वा (बाहुषु) प्रचण्ड भुजदण्डों और (वक्ष:सु) बक्ष: स्थलों में (फक्मा:) सुवर्ण और रत्नादियुक्त अलङ्कार (अंसेषु) स्कन्धों में (एता:) विद्या की शिक्षा में प्राप्त (रभसास:) वेग जिनमें विद्यमान ऐसे (अञ्जय:) प्रसिद्ध प्रशंसायुक्त पदार्थ (पविषु, अधि) उत्तम शिक्षायुक्त वाणियों में (क्षुरा:) धर्मानुकूल शब्द वर्त्तमान हैं, वे (वय:) पखेरू (प्रशान) पखेर को (न) जैसे वैसे (श्रिय:) लिक्ष्मियों को (वि, अनु, धिरे) विशेषता से अनुकूल धारण कर्ति हैं॥ १००।

भावार्थ:-जो ब्रह्मचर्य से विद्याओं को प्राप्त हुए, गृहाश्रम में आभूषणों को धारण किये, पुरुषार्थयुक्त, परोपकारी, वानप्रस्थाश्रम हैं वैराष्य को प्राप्त, पढ़ाने में रमे हुए और संन्यास आश्रम में प्राप्त हुआ यथार्थभाव जिनको और परोपकारी सर्वत्र विचरते सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग कराते हुए समस्त मनुष्यों को बद्धार्त हैं, व मोक्ष को प्राप्त होते हैं॥१०॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

महान्तों मुह्ना विभ्वी के विभूतयो दूरेदृशों ये दिव्याईव स्तृभिः।

मुन्द्राः सुजिह्वाः स्वेरितार आसिभः संमिश्ला इन्हें मुरुतः परिष्टुर्भः॥११॥

महान्त्रंश मुह्ना विऽभ्वेः। विऽभूतयः। दूरेऽदृशेः। ये। दिव्याःऽईव। स्तृऽभिः। मुन्द्राः। सुऽजि्ह्वाः। स्वरितारः। अपुसऽभिः। सभ्ऽमिश्लाः। इन्द्रे। मुरुतः पुरिस्तुभैः॥११॥

पदार्थ:-(महान्त:) परिमाणेनाधिकाः (मह्ना) स्वमिहम्ना (विभ्वः) समर्थाः (विभूतयः) विव्रिधिश्वर्यप्रदाः (दूरेदृशः) दूरे पश्यन्ति ते (ये) (दिव्याइव) यथा सूर्यस्थाः किरणास्तथा (स्तृभिः) अध्यापका उपदेष्टारो वा

(आसिभः) मुखैः (संपिश्लाः) सम्यक् मिश्रिताः। अत्र किपलकादित्वाल्लत्वम्। (इन्द्रे) विद्युति (मरुतः) वायव इव (परिष्टुभः) सर्वतो धर्तारः॥११॥

अन्वय:-ये विद्वांसो! महा महान्तो विभ्वो विभूतयो दूरेदृश इन्द्रे संमिश्ला स्तृभिः सह वर्त्तमानाः (रिष्टु) परुती दिव्या इव मन्द्राः सुजिह्वाः स्वरितारः सन्त आसभिरध्यापयन्त्युपदिशन्ति च ते निर्मलविद्या जायते॥११॥

भावार्थः-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। यथा वायवः सर्वमूनेद्रव्यधर्तारो विद्युत्सुंयुक्तप्रकाशका व्याप्ताः सन्ति तथा विद्वांसो पूर्तद्रव्यविद्योपदेष्टारो विद्याविद्यार्थिसंयुक्तविज्ञानदातारः सकलविद्याशुभाचरणव्यापिनः सन्तो नरोत्तमा भवन्ति ११॥

पदार्थ:-जो विद्वान् जन (महा) अपनी महिमा से (महान्त:) बड़े (विश्वः) समर्थ (विभूतयः) नाना प्रकार के ऐश्वर्यों को देनेवाले (दूरेदृशः) दूरदर्शी (इन्द्रे) बिजुली के विषय में (संमिश्लाः) अच्छे मिले हुए (स्तृभिः) आच्छादन करने, संसार पर छाया करनेहारे तारुपणों के साथ वर्त्तमान (पिरष्टुभः) सब ओर से धारण करनेहारे (मरुतः) पवनों के समान तथा (दिच्यो, इव) सूर्यस्थ किरणों के समान (मन्द्राः) कमनीय मनोहर (सुजिह्वाः) सत्य वाणी बोलनेवाले (स्विस्तारः) पढ़ाने और उपदेश करनेवाले होते हुए (आसिभः) मुखों से पढ़ाते और उपदेश करते हैं विभूतिम्ल बिद्यावान् होते हैं॥११॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमाल क्रिप्र हैं। जैसे पवन समस्त मूर्तिमान् पदार्थों को धारण करनेवाले बिजुली के संयोग से प्रकाशक और सर्वेत्र च्याप्त है, वैसे विद्वान् जन मूर्तिमान् द्रव्यों की विद्या के उपदेष्टा, विद्या और विद्यार्थियों के सियोग के विशेष ज्ञान को देनेवाले, सकल विद्या और शुभ आचरणों में व्याप्त होते हुए मनुष्यों में उत्तम होते हैं।।११॥

पुन तिमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

तर्द्धः सुजाता मरुतो महित्व<u>नं द</u>ीर्षं वो दात्रमिदतिरिव वृतम्। इन्द्रश्चन त्यर्जसा वि हुणाति तज्जनीय यस्मै सुकृते अराध्वम्॥१२॥

तत्। वः। सुऽजाताः। पुरुत्। महिऽत्वनम्। दीर्घम्। वः। दात्रम्। अदितेःऽइव। व्रतम्। इन्द्रेः। चन। त्यर्जसा। वि। हुणाति। तत्। जनिया समी सुऽकृते। अर्राध्वम्॥१२॥

पदार्थ: (त्त्) (वः) युष्माकम् (सुजाताः) सुष्ठु प्रसिद्धाः (मरुतः) वायव इव वर्तमानाः (मिहत्वनम्) महिमानेप् (दीर्घम्) विस्तीर्णम् (वः) युष्माकम् (दात्रम्) दानम् (अदितेरिव) अन्तरिक्षस्येव (वृतम्) श्रीस्थम् (इन्द्रः) विद्युत् (चन) अपि (त्यजसा) त्यागेन (वि) (हुणाति) कुटिलं गच्छति (तत्) (जनाय) (यस्मै) (सुकृते) सुष्ठु धर्मकारिणे (अराध्वम्) दत्त॥१२॥

अन्बर:-हे सुजाता मरुतो! यद्घोऽदितेरिव महित्वनं दीर्घं दात्रं वो व्रतमस्ति। तद्यदिन्द्रश्चन त्यजसा विह्रुणाति क्रिय यस्मे सुकृते जनायाराध्वं स जगदुपकाराय शक्नुयात्॥१२॥ अष्टक-२। अध्याय-४। वर्ग-१-३

मण्डल-१। अनुवाक-२३। सूक्त-१६६

१७६९

भावार्थ:-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। येषां प्राणवन्महिमा विस्तृतं विद्यादानमाकाशवच्छान्त शीलं विद्युद्धदुष्टाचारत्यागोऽस्ति ते सर्वेभ्य: सुखं दातुमर्हन्ति॥१२॥

पदार्थ:-हे (सुजाता:) सुन्दर प्रसिद्ध (मरुत:) पवनों के समान वर्तमान! जो (क्) तुम्हार (अदितेरिव) अन्तरिक्ष को जैसे वैसे (महित्वनम्) महिमा (दीर्घम्) विस्तारयुक्त (दात्रम्) दान और (वः) तुम्हारा (व्रतम्) शील है (तत्) उसको तथा जो (इन्द्रः) बिजुली (चन) भी (त्यजसा) त्याम से अर्थात् एक पदार्थ छोड़ दूसरे पर गिरने से (वि) (हुणाति) टेढ़ी-बेढ़ी जाती (तत्) उस बृत्त को भी (यस्मै) जिस (सुकृते) सुन्दर धर्म करनेवाले (जनाय) सज्जन के लिये (अराध्वम) देखी वह संसार का उपकार कर सके॥१२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जिनकी प्राण के तुल्य महिमा, विस्तारयुक्त विद्या का दान, आकाशवत् शान्तियुक्त शील और बिजुली के समान दुष्टाचरण का त्याग है, वे सबको सुख देने को योग्य है॥१२॥

पुनस्तमेव विषयमाह।

फिर उसी विषय को अगले सिन्त्रामें कहा हैं॥

तद्वी जामित्वं मंरुतः परे युगे पुरू यच्छंसम्मृतास् आर्वत। अया धिया मनवे श्रुष्टिमाव्यां साकं नरी दंसनैरा विकित्रिरे॥ १३॥

तत्। वः। जामिऽत्वम्। मुरुतः। परे। युगे। पुरु। यत्। शंसीम्। अमृतासः। आर्वतः। अया। धिया। मर्नवे। श्रुष्टिम्। आर्व्यः। साकम्। नरेः। दंसनैः। आ। व्रिक्तितिरेः॥ १३०।

पदार्थ:-(तत्) (व:) युष्माकृष् (जािपत्वम्) सुखदु:खभोगम् (मरुत:) प्राणवत् प्रियतमाः (परे) (युगे) वर्षे परजन्मिन वा (पुरु) बहु (यत्) (शंसम्) प्रशंसाम् (अमृतासः) मृत्युरिहताः (आवत) (अया) अनया (धिया) प्रज्ञया (मनवे) मनुष्याय (शृष्टिम्) प्राप्तव्यं वस्तु (आव्य) रिक्षत्वा (साकम्) युष्मत् सत्सङ्गेन (नरः) धर्म्येषु जनामां नेतारः (दंसने) शुभाऽशुभसुखदुःखप्रापकैः कर्मभिः (आ) (चिकित्रिरे) जानत॥१३॥

अन्वयः – हे अमृतासी फित्रे! परे युगे यद्वः पुरु जामित्वं वर्तते तच्छंसमावत। अया धिया मनवे श्रुष्टिमाव्य नरः साकं युष्माभिः सह द्वंसनैः सर्वाचिकित्रिरे॥१३॥

भावार्थः-अस्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा वायवोऽत्र सृष्टौ वर्त्तमाने प्रलये च वर्तन्ते तथा नित्या जीवास्मिन्तियया वायवो जडमिप वस्तु अध ऊर्ध्वं नयन्ति तथा जीवा अपि कर्मिभिः सह पूर्वस्मिन् मध्ये अर्थ्भिमिनि च समये यथाकालं यथाकर्म भ्रमन्ति॥१३॥

पदोर्थ:-हे (अमृतासः) मृत्युधर्मरहित (मरुतः) प्राणों के समान अत्यन्त प्रिय विद्वान् जनो! (परे, युगे) परले वर्ष में वा परजन्म में (यत्) जो (वः) तुम लोगों का (पुरु) बहुत (जामित्वम्) सुख-

दु:ख का भोग वर्तमान है (तत्) उसको (शंसम्) प्रशंसारूप (आवत) रक्खो और (अया) इस (धिया) बुद्धि से (मनवे) मनुष्य के लिये (श्रृष्टिम्) प्राप्त होने योग्य वस्तु की (आव्य) रक्षा कर (नरः) धर्मयुक्त व्यवहारों में मनुष्यों को पहुँचानेवाले मनुष्य (साकम्) तुम्हारे साथ (दंसनैः) शुभ-अशुभ पुर्व दुःखे फलों की प्राप्त करानेवाले कर्मों से (आ, चिकित्रिरे) सब को अच्छे प्रकार जानें॥१३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे वायु इस सृष्टि में और वर्तमान प्रलय में वर्त्तमान हैं, वैसे नित्य जीव हैं तथा जैसे वायु जड़ वस्तु को भी नीचे ऊपर पहुँचाते हैं, वैसे जीव भी कर्मों के साथ पिछले, बीच के और अगले समय में समय और अपने कर्मों के अनुसार चक्कर खाते फिरते हैं॥१३॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।

येनं दीर्धं मंरुतः श्रूशवाम युष्माकेन परीणसा तुरास्। आ यन्तर्नन्वजने जनांस एभिर्युज्ञेभिस्तद्रभीष्टिंमुश्याम्॥१४॥

येनं। दीर्घम्। मुरुतः। श्रूशवाम। युष्माकेन। परीणसा। जुरासः। अर्थे यत्। ततनेन्। वृजने। जनासः। एभिः। युज्ञेभिः। तत्। अभि। इष्टिम्। अश्याम्॥ १४॥

पदार्थ:-(येन) (दीर्घम्) प्रलम्बितं ब्रह्मचर्यम् (मरुत्यः) वायुवद्विद्याबिलिष्ठाः (श्रूशवाम) वर्द्धेमिहि (युष्माकेन) युष्माकं सम्बन्धेन। अत्र वाच्छन्द्रसीत्यनण्यप्ति युष्माकादेशः। (परीणसा) बहुना। परीणसा इति बहुनामसु पठितम्। (निघं०३.१) (कृत्तमः) त्विद्धितारः (आ) (यत्) याम (ततनन्) तन्वन्तु (वृजने) बले (जनासः) विद्यया प्रसिद्धाः (एभिः) (यद्मिभा) विद्वत्सङ्गैः (तत्) ताम् (अभि) (इष्टिम्) (अश्याम्) प्राप्नुयाम्॥१४॥

अन्वय:-हे तुरासो मरुतो वयं येन सुष्माकेन परीणसोपदेशेन दीर्घं प्राप्य शूशवाम येन जनासो वृजने यद्यामाततनन्तत्तामभीष्टिमेभिर्यज्ञेभिद्भिमस्याम्॥१४॥

भावार्थ:-येषां सह्ययेन मुनुष्या बहुविद्याधनबलाः स्युस्तान्नित्यं वर्द्धयेयुः। विद्वांसो यादृशं धर्ममाचरेयुस्तादृशमितरेऽप्याचरन्तुः॥१४॥

पदार्थ: हे (तुरासः) शीघ्रता करनेवाले (मरुतः) पवन के समान विद्याबलयुक्त विद्वानो! हम लोग (येन) जिस (पुरमाकेन) आप लोगों के सम्बन्ध के (परीणसा) बहुत उपदेश से (दीर्घम्) दीर्घ अत्यन्त लुम्खे ब्रह्मेचर्य को प्राप्त होके (शूशवाम) वृद्धि को प्राप्त हों जिससे (जनासः) विद्या से प्रसिद्ध मनुष्य (वृजने) बल के निमित्त (यत्) जिस क्रिया को (आ, ततनन्) विस्तारें (तत्) उस (अभीष्टिम्) सब प्रकार से चाही हुई क्रिया को (एभिः) इन (यज्ञेभिः) विद्वानों के सङ्गरूपयज्ञों से मैं (अश्याम्) प्रक्रिं॥ १ ॥।

अष्टक-२। अध्याय-४। वर्ग-१-३

मण्डल-१। अनुवाक-२३। सूक्त-१६६

नित्य वृद्धि करें,

भावार्थ:-जिनके सहाय से मनुष्य बहुत विद्या, धर्म और बलवाले हों उनकी नित्य वृद्धि कीरें, विद्वान् जन जैसे धर्म का आचरण करें, वैसा ही और भी जन करें॥१४॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

एष वः स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः। एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम्॥१५॥३॥

पुषः। वः। स्तोर्मः। मुरुतः। इयम्। गीः। मान्दार्यस्यं। मान्यस्यं। कारोः। आ। इषा। यासीष्टः। तन्वे। वयाम्। विद्यामं। इषम्। वृजनंम्। जीरऽदानुमः। १५॥

पदार्थ:-(एष:) (व:) युष्माकम् (स्तोम:) स्तवनम् (मस्तिः) विद्वासः (इयम्) (गी:) वाणी (मान्दार्यस्य) आनन्दिनो धार्मिकस्य (मान्यस्य) सत्कर्त्तुं योग्यस्य (कारोः) प्रयतमानस्य (आ) (इषा) इच्छया (यासीष्ट) प्राप्नुयात् (तन्वे) शरीराय (वयाम्) वयम्। वर्णव्यत्ययेनाऽत्र दीर्घः। (विद्याम) प्राप्नुयाम (इषम्) अन्नम् (वृजनम्) बलम् (जीरदानुम्) जीवनम्। १५५।

अन्वय:-हे मरुतो! वो य एष स्तोमो मान्दार्यस्य मान्यस्य क्रांगिरवं मीर्वर्त्तते यां तन्वे इषा कश्चिदायासीष्ट तामिषं वृजनं जीरदानुञ्च वयां विद्याम॥१५॥

भावार्थ:-मनुष्यैर्विदुषां स्तुतिं कृत्वा आप्तस्य वाचे श्रुत्वा शरीरात्मबलं वर्द्धयित्वा दीर्घं जीवनं प्राप्तव्यमिति॥१५॥

अत्र मरुद्विद्वदुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्विसूक्तार्थेन्र सङ्गितरस्तीति वेद्यम्॥

इति षट्षष्ट्युत्तरं श्रुततेम (६६) सूक्त तृतीयो ३ वर्गश्च समाप्त:॥

पदार्थ:-हे (मरुत:) विद्वारो! (ब्:) तुम्हारा जो (एष:) यह (स्तोम:) स्तुति और (मान्दार्यस्य) आनन्द करनेवाले धर्मात्मा (मान्यस्य) सत्कार करने योग्य (कारो:) अत्यन्त यत्न करते हुए जन की (इयम्) यह (गी:) वाणी और जिस् क्रिया की (तन्वे) शरीर के लिये (इषा) इच्छा के साथ कोई भी (आ, यासीष्ट) अच्छे प्रकार प्राप्त हो उस क्रिया (इषम्) अन्न (वृजनम्) बल और (जीरदानुम्) जीवन को (वयाम्) हम लोग (विद्वास्य) प्राप्त होवें॥१५॥

भावार्थ: भनुष्यों को विद्वानों की स्तुति कर, शास्त्रज्ञ धर्मात्माओं की वाणी सुन, शरीर और आत्मा के बल्क की बहुर दीर्घजीवन प्राप्त करना चाहिये॥१५॥

इस सूक्तों में मरुच्छब्दार्थ से विद्वानों के गुण का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है, यह जानना चाहिये॥

यह एक सौ छियासठवां १६६ सूक्त और तीसरा ३ वर्ग समाप्त हुआ॥

सहस्रमित्यस्यैकादशर्च्चस्य सप्तषष्ट्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्यागस्त्य ऋषिः। इन्द्रो मरुच्च देवता। १,४,५ भुरिक् पङ्किः। ७,९ स्वराट् पङ्किः। १० निचृत् पङ्किः। ११ पङ्किश्छन्दः।

पञ्चमः स्वरः। २,३,६,८ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः।

अथ सज्जनगुणानाह॥

अब एक सौ सरसठवें सूक्त का आरम्भ है। उसके प्रथम मन्त्र में सज्जनों के गुण्<u>गें का वणीत</u> करते हैं॥

सहस्रं त इन्द्रोतयो नः सहस्रमिषो हरिवो गूर्तर्तमाः।

सुहस्रुं रायों माद्यध्ये सहुस्रिण उप नो यन्तु वार्जाः॥ १॥

सहस्रम्। ते। इन्द्र। ऊतर्यः। नः। सहस्रम्। इषः। हृरिऽवः। पूर्वश्तमाः। सहस्रम्। रायः। माद्यध्यै। सहस्रिणः। उप। नः। यन्तु। वाजाः॥ १॥

पदार्थ:-(सहस्रम्) असंख्या (ते) तव (इन्द्र) परमेश्वर्ययुक्त सम्प्राट् (ऊतयः) रक्षाः (नः) अस्माकम् (सहस्रम्) (इषः) अन्नादीनि (हरिवः) धारणाऽऽकर्षणाद्वियुक्त (गूर्त्ततमाः) अतिशयिता उद्यमाः (सहस्रम्) (रायः) श्रियः (मादयध्ये) मादयितुमानिद्वितुम् (सहस्रम्) सहस्रमसंख्याता बहवः पदार्थाः सन्ति येषु ते (उप) (नः) अस्मान् (यन्तु) प्राष्ट्रकृतु (बाज्यः) बोधाः॥१॥

अन्वयः-हे हरिव इन्द्र! यास्ते सहस्रमृतयः सहस्रिणः सहस्रं गूर्ततमा रायः सन्ति ता नः सन्तु। सहस्रिणो वाजा मादयध्यै नोऽस्मानुपयन्तु॥१॥

भावार्थ:-मनुष्यैर्यानि भाग्यशालिकां सर्वोत्तमुमामग्रया यथायोग्यक्रियया चाऽसंख्यानि सुखानि भवन्ति, तान्यस्माकं सन्त्विति मत्वा सत्रति प्रयतितृत्यम्॥१॥

पदार्थ:-हे (हरिव:) धारणाकर्षणादियुक्त (इन्द्र) परमैश्वर्यवाले विद्वान्! जो (ते) आपकी (सहस्रम्) सहस्रों (ऊतय:) रक्षायें (सहस्रम्) सहस्रों (इष:) अत्र आदि पदार्थ (सहस्रम्) सहस्रों (गूर्त्ततमा:) अत्यन्त उद्यम वा/(राय:) धन हैं; वे (न:) हमारे हों और (सहस्रिण:) सहस्रों पदार्थ जिनमें विद्यमान वे (वाजा:) बोश (मादयध्ये) आनन्दित करने के लिये (न:) हम लोगों को (उप, यन्तु) निकट प्राप्त हों॥१॥

भावार्थ: मनुष्यों को जो भाग्यशालियों को सर्वोत्तम सामग्री से और यथायोग्य क्रिया से असंख्य सुख होते हैं, ब्रेट्समार हों, ऐसा मानकर निरन्तर प्रयत्न करना चाहिये॥१॥

पुनर्वायुदृष्टान्तेन सज्जनगुणानाह॥

अब पवन के दृष्टान्त से सज्जन के गुणों को कहा है॥

अर्ो तोऽवोभिर्मुस्तो यान्त्वच्छा ज्येष्ठेभिर्वा बृहर्द्दिवै: सुमाया:।

अष्टक-२। अध्याय-४। वर्ग-४-५

मण्डल-१। अनुवाक-२३। सूक्त-१६७

६७७१

अध् यदेषां नियुतः पर्माः समुद्रस्यं चिद्धनर्यन्त पारे॥२॥

आ। नुः। अर्वःऽभिः। मुरुतः। यान्तु। अर्च्छ। ज्येष्ठेभिः। वा। बृहत्ऽदिवैः। सुऽमायाः। अर्ध। यता एषाम्। निऽयुतः। पुरुमाः। सुमुद्रस्य। चित्। धनर्यन्त। पारे॥२॥

पदार्थ:-(आ) समन्तात् (नः) अस्मान् (अवोभिः) रक्षणादिभिः (मस्तः), वीयवः (चानु) प्राप्नुवन्तु (अच्छ) (ज्येष्ठेभिः) विद्यावयोवृद्धैः सह (वा) (बृहिद्दवैः) बृहती दिवा विद्या येषान्तैः (सुमायाः) सुष्ठु माया प्रज्ञा येषान्ते (अध) (यत्) ये (एषाम्) प्राज्ञानाम् (नियुतः) वायुरिव विद्युदादयोऽश्वाः (परमाः) प्रकृष्टाः (समुद्रस्य) सागरस्य (चित्) अपि (धनयन्) आत्मेनो धनमिच्छन्ति। अत्राडभावः। (पारे)॥२॥

अन्वय:-यद्ये सुमाया बृहिद्दिवैर्ज्येष्ठेभिर्वाऽवोभिः सह मरुत इव नोच्लामान्तु। अधिष्रां/चित् समुद्रस्य पारे परमा नियुतो धनयन्त तान् वयं सत्कुर्याम॥२॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये बृहत्तमाभिन्निभिर्वायुवद्वेगेन व्यवहाराय समुद्रस्य पाराऽवारौ गत्वाऽऽगत्य श्रियमुन्नयन्ति तेऽतुलं सुखमाप्नुवन्ति॥२॥

पदार्थ:-(यत्) जो (सुमायाः) सुन्दर बुद्धिवाले (ब्रहेहितेः) जिनकी अतीव विद्या प्रसिद्ध उन (ज्येष्ठेभिः) विद्या और अवस्था से बढे हुओं के (या) अथवा (अवोभिः) रक्षा आदि कर्मों के साथ (मरुतः) पवनों के समान सज्जन (नः) हम लोगों को (अच्छं) अच्छे प्रकार (आ, यानु) प्राप्त होवें (अध) इसके अनन्तर (एषाम्, चित्) इनके भी (समुद्रस्य) सागर के (पारे) पार (परमाः) अत्यन्त उत्तम (नियुतः) पवन के समान बिजुली आदि अश्व (धनयन्त) अपने को धन की इच्छा करते हैं, उनका हम लोग सत्कार करें॥२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुत्तोपमालङ्कार है। जो अतीव बड़ी नौकाओं से पवन के समान वेग से व्यवहारसिद्धि के लिये समुद्ध के वार पार जा आ के धन की उन्नति करते हैं, वे अतुल सुख को प्राप्त होते हैं॥२॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

प्रिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

मिम्यक्ष् येषु सुधिता घृताची हिर्रण्यनिर्णिगुपरा न ऋष्टिः।

गृहा वस्तो मनुषो न योषा सभावती विद्रश्येव सं वाकु॥३॥

र्ष्ट्रिप्यक्षा येषुं। सुऽधिता। घृताची। हिर्रण्यऽनिर्निक्। उपरा। न। ऋष्टिः। गुहां। चरन्ती। मर्नुषः। न। योषां। सुभाऽवृत्ती विदुथ्याऽइव। सम्। वाक्॥३॥

पदार्थ:-(मिम्यक्ष) प्राप्नुहि (येषु) (सुधिता) सुष्ठु धृता (घृताची) या घृतमुदकमञ्चति सा रात्री। कृताचीति रात्रिनामसु पठितम्। (निघं०१.७) (हिरण्यनिर्णिक्) या हिरण्येन निर्णेनेक्ति पुष्णाति सा

(उपरा) उपरिस्था दिक्। उपरा इति दिङ्नामसु पठितम्। (निघं०१.६) (न) इव (ऋष्टिः) प्रापिका (गृहा) गृहायाम् (चरन्ती) गच्छन्ती (मनुषः) मनुषस्य (न) इव (योषा) (सभावती) सभासम्बन्धिनी (विद्थ्येव) विदथेषु संग्रामेषु विज्ञानेषु भवेव (सम्) (वाक्) वाणी॥३॥

अन्वय:-हे विद्वन्! त्वं येषु घृताचीव सुधिता उपरा न ऋष्टिर्हिरण्यनिर्णिग्गुहा चरन्ती मनुषो विद्वश्यव सभावती वागस्ति तां सं मिम्यक्ष॥३॥

भावार्थ:-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। ये मनुष्याः पत्याऽसत्यतिर्णयाय सर्वशुभगुणकर्मस्वभावां विद्यासुशिक्षायुक्तामाप्तवाणीं प्राप्नुवन्ति ते बह्वैश्वर्याः सन्तो दिक्षु सुकीर्त्तयो भवन्ति॥३॥

पदार्थ:-हे विद्वान्! आप (येषु) जिनमें (घृताची) जल को श्रीतला से छीड़नेवाली रात्रि के समान वा (सुधिता) अच्छे प्रकार धारण की हुई (उपरा) ऊपरली दिशा के (न) समान वा (ऋष्टिः) प्रत्येक पदार्थ को प्राप्त करानेवाली (हिरण्यनिर्णिक्) जो सुवर्ण सि पुष्टि होती और (गुहा, चरन्ती) गुप्त स्थलों में विचरती हुई (मनुषः) मनुष्य की (योषा) स्त्री (न) उसके समान वा (विद्थ्येव) संग्राम वा विज्ञानों में हुई क्रिया आदि के समान (सभावती) सभा सम्बन्धिनी (वाक्) वाणी है, उसको (सम्, मिम्यक्ष) अच्छे प्रकार प्राप्त होओ॥३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमा और वाचकल्यातीपमालङ्कार हैं। जो मनुष्य सत्य-असत्य के निर्णय के लिये सब शुभ, गुण, कर्म स्वभाववाली विद्या सुशिक्षामुक्त शास्त्रज्ञ धर्मात्मा विद्वानों की वाणी को प्राप्त होते हैं, वे बहुत ऐश्वर्यवान् होते हुए दृशिओं में सुन्दर कीर्ति को प्राप्त होते हैं॥३॥

पुनमतिमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

परा शुभ्रा अयासी युद्धा साधारणयेव मुरुती मिमिश्चः।

न रोंदुसी अर्प नुदन्ते घोरा जुषनु वृधं सुख्यार्य देवा:॥४॥

पर्रा। शुभ्राः। अयुर्कः, युव्या, साधारण्याऽईव। मुरुतः। मिमिक्षुः। न। रोदसी इति। अप। नुदन्त। घोराः। जुषन्ती वृधम्। सुख्यायी देवाः (४))

पदार्थ:-(परा) (शुभाः) स्वच्छाः (अयासः) शीघ्रगामिनः (यव्या) मिश्रिताऽमिश्रितगत्या (साधारण्येव) यथा साधारणया (मस्तः) वायवः (मिमिश्चः) सिञ्चन्ति (न) निषेधे (रोदसी) द्यावापृथिव्यौ (अप) (नुद्रन्त) दुर्शकुर्वन्ति (घोराः) विद्युद्योगेन भयङ्कराः (जुषन्त) सेवन्ताम् (वृधम्) वर्द्धनम् (सख्याय) मित्राणां श्वावाय (देवाः) विद्वांसः॥४॥

अन्बर:-यथा शुभ्रा अयासो मरुतो यव्या रोदसी मिमिक्षु:। घोरा: सन्तो न परापनुदन्त तथा देवा वृधं सख्याय स्राभारण्येष जुषन्त॥४॥ अष्टक-२। अध्याय-४। वर्ग-४-५

मण्डल-१। अनुवाक-२३। सूक्त-१६७

१७७५

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। यथा वायुविद्युद्योगजन्या वृष्टिरनेका ओषधीरुत्पाद्य सर्वान् प्राणिनो जीवियत्वा दु:खानि दूरीकरोति यथोत्तमा पतिव्रता स्त्री पतिमाह्णादयित तथैव विद्वांसो विद्यासुशिक्षा वर्षणेन् धर्मसेवया च सर्वान् मनुष्यानाह्लादयेयु:॥४॥

पदार्थ:-जैसे (शुभ्रा:) स्वच्छ (अयास:) शीघ्रगामी (मरुत:) पवन (यव्या) मिली न मिली हुई चाल से (रोदसी) आकाश और पृथिवी को (मिमिश्चु:) सींचते और (घोरा:) बिजुली के चोम से भयङ्कर होते हुए (न, परा, अप, नुदन्त) उनको परावृत्त नहीं करते, उलट नहीं देते वैसे (देवा:) विद्वान् जन (वृधम्) वृद्धि को (सख्याय) मित्रता के लिये (साधारण्येव) साधारण क्रिया से जैसे वैसे (जुषन्त) सेवें॥४॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे वायु और बिजुली के यो से उत्पन्न हुई वर्षा अनेक ओषियों को उत्पन्न कर सब प्राणियों को जीवन देकर दु:खों को दूर करती है वा जैसे उत्तम पितव्रता स्त्री पित को आनन्दित करती है, वैसे ही विद्वान् जन विद्या और उत्तम शिक्षा की वर्षा से और धर्म के सेवन से सब मनुष्यों को आह्लादित करें॥४॥

पुनस्तमेव विषयमाह।

फिर उसी विषय को अग्रले मन्त्र में बहा है॥

जोष्द्रद्वीमसुर्या सुचध्यै विषितस्तुका सेद्भी नृमणाः।

आ सूर्येव विध्तो रथं गात् त्वेषप्रतिका नभस्रो नेत्या॥५॥४॥

जोर्षत्। यत्। ईम्। असुर्या। सचध्यै। विसित्र स्तुक्रा। रोदसी। नृऽमर्नाः। आ। सूर्याऽईव। विध्तः। रथम्। गात्। त्वेषऽप्रतीका। नर्भसः। न। इत्या॥५॥

पदार्थ:-(जोषत्) सेवेत (यत्) यः (इम्) जलम् (असुर्या) असुरेषु मेघेषु भवा (सचध्ये) सचितुं संयोक्तुम् (विषितस्तुका) विविध्वया सिता बद्धा स्तुका स्तुतिर्यया सा (रोदसी) द्यावापृथिव्यौ (नृमणाः) नृषु नायकेषु मनो यस्याः सा (आ) (सूर्येव) यथा सूर्यस्य दीप्तिः (विधतः) ताडियतॄन् (रथम्) रमणीयं यानं व्यवहारञ्च (गात्) व्यक्ति (त्रोपप्रतीका) त्वेषस्य प्रकाशस्य प्रतीतिकारिका (नभसः) जलस्य (न) इव (इत्या) प्राप्तुं योग्या। ५

अन्वय:- प्रह्मोऽसुर्या विषितस्तुका नृमणा ईं सचध्यै सूर्येव रोदसी जोषत् त्वेषप्रतीकेत्या सती नभसो रथं न विधतश्चागात् प्रवृत्त स्त्री सूर्तते॥ ५॥

भाषार्थः अत्रोपमालङ्कारः। यथाऽग्निर्विद्युदूर्पेण सर्वमभिव्याप्य प्रकाशयति तथा सर्वा विद्यासुर्विक्षाः प्राप्य स्त्री समग्रं कुलं प्रशंसयति॥५॥

पदार्थ:-(यत्) जो (असुर्या) मेघों में प्रसिद्ध (विषितस्तुका) विविध प्रकार की जिसकी स्तुति स्रोपकन्धी और (नृमणा:) जो अग्रगामी जनों में चित्त रखती हुई (ईम्) जल के (सचध्यै) संयोग के लिये

३७७६

(सूर्येव) सूर्य की दीप्ति के समान (रोदसी) आकाश और पृथिवी को (जोषत्) सेवे अर्थात् उनके गुणे में रमे वा (त्वेषप्रतीका) प्रकाश की प्रतीति करानेवाली और (इत्या) प्राप्त होने के योग्य होती हुई (नभसः) जल सम्बन्धी (रथम्) रमण करने योग्य रथ के (न) समान व्यवहार की और (विधतः) साइना करनेवालों को (आ, गात्) प्राप्त होती वह स्त्री प्रवर है॥५॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे अग्नि बिजुलीरूप से सबको सूर्व प्रकार से व्याप्त होकर प्रकाशित करती है, वैसे सब विद्या उत्तम शिक्षाओं को पाकर स्त्री समग्र कुल को प्रशंसिक करती है॥५॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।

आस्थापयन्त युवृतिं युवानः शुभे निर्मिश्लां विद्येषु पुत्रिम्। अर्को यद्वो मरुतो ह्विष्मान् गायद् गाथं सुतसोमो दुवस्यन्॥ ॥

आ। अस्थापयन्त। युवतिम्। युवानः। शुभे। निऽमिश्लाम्। विद्धेषुः प्रजाम। अर्कः। यत्। वः। मुरुतः। हृविष्मान्। गार्यत्। गाथम्। सुतऽसोमः। दुवस्यन्॥६॥

पदार्थ:-(आ) समन्तात् (अस्थापयन्त) (युवितम्) यौवनाऽवस्थां प्राप्ताम् (युवानः) यौवनावस्थास्थाः (शुभे) शुभगुणकर्मस्वभावग्रहण्ण्य (निर्मिश्लाम्) नितरां पूर्णविद्यासुशिक्षायुक्ताम् (विदथेषु) धर्म्येषु व्यवहारेषु (पन्नाम्) गन्त्रीम् (अर्कः) अर्चनीयमत्रम्। अर्क इत्यन्ननामसु पठितम्। (निघं०२.७) (यत्) यः (वः) युष्माकम् (मस्तः) विद्यायुक्ताः प्राणवत् प्रियाः सज्जनाः (हविष्मान्) आदत्तबहुविद्यः (गायत्) स्तुयात्। अत्राङ्माबः। (गाथम्) प्रशंसनीयमुपदेशम् (सुतसोमः) सुतः सोम ऐश्वर्यं येन (दुवस्यन्) परिचरन्॥६॥

अन्वयः – हे मरुतो ! युवानो भवन्तो शुभे पिमिश्लां विदथेषु पज्रां युवितमास्थापयन्त । यद्वोऽर्कोऽत्रं तदास्थापयन्त यो हविष्मान् सुतसोमो गायत् स गृथि दुवस्यन् सत्त्रमानन्देत्॥६॥

भावार्थ:-सर्वेषां सज़पुरुषोद्गीनामत्यन्तं योग्यमस्ति स्वकन्याः पुत्राँश्च दीर्घे ब्रह्मचर्ये संस्थाप्य विद्यासुशिक्षे संग्राह्य पूर्णिवद्यामां भरस्परं प्रसन्नानां स्वयंवरं विवाहं कारयेयुर्यतो यावज्जीवनं तावदानन्दिताः स्युः॥६॥

पदार्थ: हे (मुरुत:) विद्यायुक्त प्राण के समान प्रिय सज्जनो! (युवान:) यौवनावस्था को प्राप्त आप (शुभे) शुभे प्राण, कर्म और स्वभाव ग्रहण करने के लिये (निमिश्लाम्) निरन्तर पूर्ण विद्या और सुशिक्षायुक्त और (विदथेषु) धर्मयुक्त व्यवहारों में (पज्राम्) जानेवाली (युवितम्) युवती स्त्री को (आ, अस्त्राप्यन्त) अच्छे प्रकार स्थापित करते और (यत्) जो (व:) तुम्हारा (अर्क:) सत्कार करने योग्य अन्न हैं उसकी अच्छे प्रकार स्थापित करते हो। तथा जो (हिविष्मान्) बहुत विद्यावान् (सुतसोम:) जिसने

अष्टक-२। अध्याय-४। वर्ग-४-५

मण्डल-१। अनुवाक-२३। सूक्त-१६७

*છાઇ ક*_

ऐश्वर्य उत्पन्न किया और (गायत्) स्तुति करे वह (गाथम्) प्रशंसनीय उपदेश को (दुवस्यन्) सेवता हुँओ निरन्तर आनन्द करे॥६॥

भावार्थ:-सब राजपुरुषादिकों को अत्यन्त योग्य है कि अपने कन्या और पुत्रों को दीर्घ किस्तिच्यें में संस्थापित कर विद्या और उत्तम शिक्षा उनको ग्रहण करा, पूर्ण विद्यावाले परस्पर प्रसन्त्र पुत्र कन्याओं का स्वयंवर विवाह करावें, जिससे जब तक जीवन रहे तब आनन्दित रहें॥६॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

प्र तं विवक्षिम् वक्ष्यो य एषां मुरुतां महिमा सत्यो अस्ति। सचा यदीं वृषंमणा अहंयुः स्थिरा चिज्जनीर्वहते सुभागाःशि ।।।

प्र। तम्। विव्वक्मि। वक्म्यः। यः। एषाम्। मुरुताम्। मृहिमा। मृत्यः। अस्ति। सर्चा। यत्। ईम्। वृषेऽमनाः। अहम्ऽयुः। स्थिरा। चित्। जनीः। वहते। सुऽभागाः॥७॥

पदार्थ:-(प्र) (तम्) (विविक्म) विशेषेण वदामि अत्र वोच्छुन्दंसीति कुत्वम्। (वक्म्यः) वक्तुं योग्यः (यः) (एषाम्) (मस्ताम्) वायूनामिव विदुष्णम् (महिमा) महतो भावः (सत्यः) सत्सु साधुरव्यभिचारि (अस्ति) (सचा) सम्बन्धेन (यत्) मः (ईम्) सर्वतः (वृषमनाः) वृषे वीर्यसेचने मनो यस्य सः (अहंयुः) अहं विद्यते यस्मिन् सः (श्रियः) निश्चलाः। अत्राकारादेशः। (चित्) खलु (जनीः) अपत्यानि प्रादुर्भवित्रीः (वहते) प्राप्नोति (सुभाक्षः) शोभने भागो भजनं यासान्ताः॥७॥

अन्वय:-य एषां मरुतां वक्म्य: सत्यो महिमास्ति ते यद्योऽहंयुर्वृषमना ई सचा स्थिरा चित् सुभागा जनीर्वहते तं चाहं प्रविवक्मि॥७॥

भावार्थ:-मनुष्याणामिदमेल महत्त्वं यहीर्घण ब्रह्मचर्येण कुमाराः कुमार्यश्च पूर्णायुशरीरात्मबलाय विद्यासुशिक्षे गृहीत्वा चिरञ्जीवानि दृढकायमनोसि भाग्यशालीन्यपत्यान्युत्पाद्य प्रशंसितकरणमिति॥७॥

पदार्थ:-(य:) जो (एपाम्) इन (मर्स्नाम्) पवनों के समान विद्वानों का (वक्म्य:) कहने योग्य (सत्य:) सत्य (मिहमा) बहुष्पत् (अस्ति) है (तम्) उसको और (यत्) जो (अहंयु:) अहङ्कारवाला अभिमानी (वृषमना:) जिसका वीर्य सींचने में मन वह (ईम्) सब ओर से (सचा) सम्बन्ध के साथ (स्थिरा, चित्) स्थिर ही (सुभागा:) सुन्दर सेवने करने (जनी:) अपत्यों की उत्पन्न करनेवाली स्त्रियों को (वहते) प्राप्त होता उसको भी मैं (प्र, विविक्म) अच्छे प्रकार विशेषता से कहता हूँ॥७॥

भार्तार्थ: पनुष्यों का यही बड़प्पन है, जो दीर्घ ब्रह्मचर्य से कुमार और कुमारी शरीर और आत्मा के पूर्ण बल के लिये विद्या और उत्तम शिक्षा को ग्रहण कर चिरञ्जीवी दृढ़ जिनके शरीर और मन ऐसे भाग्यशाली सन्तानों को उत्पन्न कर उनको प्रशंसित करना॥७॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

2008

ऋग्वेदभाष्यम्

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

पान्ति मित्रावर्रुणाववद्याच्चर्यत ईमर्युमो अप्रशस्तान्। उत च्यवन्ते अच्युता ध्रुवाणि वावृध ई मरुतो दार्तिवारः॥८॥

पान्ति। मित्रावर्रुणौ अवद्यात्। चयते। ईम्। अर्युमो इति। अप्रेऽशस्तान्। उत। च्यवन्ते। अर्युता। ध्रुवाणि। वृवृधे। ईम्। मुरुतः। दार्तिऽवारः॥८॥

पदार्थ:-(पान्ति) रक्षन्ति (मित्रावरुणौ) सखिवरावध्यापकोपदेशकौ हा (अवद्यात्) मिन्द्यात् पापाचरणात् (चयते) एकत्र करोति (ईम्) प्रत्यक्षम् (अर्च्यमो) न्यायकारी। अत्रार्थोपपदान्मन धातोरौणादिको बाहुलकादो प्रत्ययः। (अप्रशस्तान्) निन्द्यकर्माचारिणः (उत्ते) अपि (च्यवन्ते) प्राप्नुवन्ति (अच्युता) विनाशरहितानि (ध्रुवाणि) दृढानि कर्माणि (वावृधे) वर्द्धते (ईम्) सर्वतः (मरुतः) विद्वांसः (दातिवारः) यो दातिं दानं वृणोति सः॥८॥

अन्वय:-हे मरुतो! भवन्तो मित्रावरुणौ चावद्यात् पान्ति जनान्/स्थन्ति। अर्येम् अप्रशस्तानीञ्चयते। उत तेऽच्युता ध्रुवाणि च्यवन्ते दातिवार ईं वावधे॥८॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये मनुष्या विद्यार्थ्यमसुशिक्षादानेनाज्ञानिनोऽधर्मान्निवर्त्य धुवाणि शुभगुणकर्माणि प्रापयन्ति ते सुखात् पृथक् न भवन्ति।

पदार्थ:-हे (मरुत:) विद्वानो! आप लॉम्प और (मित्रावरुणो) मित्र और श्रेष्ठ सज्जन वा अध्यापक और उपदेशक जन (अवद्यात्) निद्ध पापाचरुण से (पान्ति) मनुष्यों की रक्षा करते हैं तथा (अर्यमो) न्याय करनेवाला राजा (अप्रशस्तिन्) दुराचार्ल जनों को (ईम्) प्रत्यक्ष (चयते) इकट्ठा करता है (उत) और वे (अच्युता) विनाशरहित्र (श्रुवाणि) ध्रुव दृढ़ कामों को (च्यवन्ते) प्राप्त होते हैं और (दातिवार:) दान को लेनेवाला (ईम्) सेंग्र ओर से (वावृधे) बढ़ता है॥८॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में क्राचकलुप्तोपपालङ्कार है। जो मनुष्य विद्या, धर्म और उत्तम शिक्षा के देने से अज्ञानियों को अधर्म से ज़िवृत कर ध्रुव और शुभ गुण, कर्मों को प्राप्त कराते हैं, वे सुख से अलग नहीं होते॥८॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

र्फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

नहीं ने वो भरुतो अन्त्यस्मे आरात्ताच्चिच्छवसो अन्तमापुः।

दे धुष्णुना शर्वसा शुश्रुवांसोऽर्णो न द्वेषो धृषता परि घु:॥९॥

नेहि। नु। वः। मुरुतः। अन्ति। अस्मे इति। आरात्तीत्। चित्। शर्वसः। अन्तेम्। आपुः। ते। धृष्णुनी। शर्वसा। गुशुऽवांसः। अर्णाः। न। द्वेषः। धृषुता। परि। स्थुः॥९॥ अष्टक-२। अध्याय-४। वर्ग-४-५

मण्डल-१। अनुवाक-२३। सूक्त-१६७

१७७९

पदार्थ:-(निह) निषेधे। अत्र निपातस्य चेति दीर्घः। (नु) सद्यः (वः) युष्माकम् (मरुतः) महाबलिष्ठाः (अन्ति) समीपे (अस्मे) अस्माकम् (आरात्तात्) दूरात् (चित्) अपि (शवसः) बलस्य (अन्तम्) सीमानम् (आपुः) प्राप्नुवन्ति (ते) (धृष्णुना) दृढेन (शवसा) बलेन (श्रूशुवांसः) विद्मानाः (आर्पः) उदकम्। अर्ण इत्युदकनामसु पठितम्। (निघं०१.१२) (न) इव (द्वेषः) द्वेषादीन् दोषान् धर्मद्वेष्ट्रीन् मनुष्यान् वा (धृषता) प्रागल्भ्येन (पिरं) सर्वतस्त्यागे (स्थुः) तिष्ठेयुः॥९॥

अन्वय:-हे मरुतो! ये वोऽस्मे चान्ति शवसोऽन्तं नु नह्यापुर्ये चारात्ताच्चित् धृष्णुन श्रेवसा शूशुवासेऽर्णो न धृषता द्वेषः परिष्ठुस्त आप्ता भवेयुः॥९॥

भावार्थ: -यदि वयं पूर्णं शरीरात्मबलं प्राप्नुयाम तर्हि शत्रवोऽस्माकं युष्माकं च पराजयं कर्तुं न शक्नुयु:। ये दुष्टान् लोभादीन् दोषाँश्च त्यजेयुस्ते बलिष्ठा भूत्वा दु:खस्य प्रारं गर्क्यु॥५॥

पदार्थ:-हे (मरुत:) महाबलवान् विद्वानो! जो (व:) तुम्हारे और (असे) हमारे (अन्ति) समीप में (शवस:) बल की (अन्तम्) सीमा को (नु) शीघ्र (निह्न) नहीं (अपु:) प्राप्त होते और जो (आरात्तात्) दूर से (चित्) भी (धृष्णुना) दृढ़ (शवसा) बल से (श्रृशुवांस!) बढ़ते हुए (अर्ण:) जल के (न) समान (धृषता) प्रगल्भता से ढ़िठाई से (द्वेष:) वैर आदि दोष वा धिमिविसेधी मनुष्यों को (परि, स्थु:) सब ओर से छोड़ने में स्थिर हों (ते) वे आप्त अर्थात् शास्त्रज्ञ धूर्मात्मा हों।।

भावार्थ:-यदि हम लोग पूर्ण शरीर और अत्मा के ब्रुल को प्राप्त होवें तो शत्रुजन हमारा और तुम्हारा पराजय न कर सकें। जो दुष्ट और लोभदि देखों को छोड़ें, वे अति बली होकर दु:ख के पार पहुँचें॥९॥

पुन तिमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

व्यम्होन्द्रस्य प्रेष्ठा व्यंश्वा वोचम्हि सम्यें।

व्यं पुरा महि च ने अनु द्यून् तन्ने ऋभुक्षा नुरामनु ष्यात्॥ १०॥

वयम्। अद्याः इन्द्रस्थाः प्रष्ठाः। वर्यम्। श्वः। वोचेमहि। स्ऽमर्ये। वयम्। पुरा। महि। च। नः। अनुं। द्यून्। तत्। नः। ऋभुक्षाः। नराम्। अनुं। स्यान्॥ १०॥

पदार्थ: (वयम्) (अद्य) अस्मिन् दिने (इन्द्रस्य) परमैश्वर्ययुक्तस्य धार्मिकस्य विदुषः (प्रेष्ठाः) अतिशयेन प्रियाः (वयम्) (श्वः) आगामिदिने (वोचेमिह) वदेम। अत्राडभावः। (समर्ये) संग्रामे (वयम्) (पुरा) (मृहि) महेत् (च) (नः) अस्माकम् (अनु) (द्यून्) दिनानि (तत्) (नः) अस्मध्यम् (ऋभुक्षाः) मेधावी (तराम्) मनुष्याणाम् (अनु) आनुकूल्ये (स्यात्)॥१०॥

अन्वयः - हे विद्वांसो! वयमद्य इन्द्रस्य प्रेष्ठाः स्मो वयं श्वः समर्ये वोचेमहि। पुरा यच्च नो महि तद्वयमनु द्यून् क्रोंचमिह रोगं मनुष्याणां मध्ये न ऋभुक्षा अनुष्यात्॥१०॥

०७७१

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये विद्वत्प्रीतिं युद्धेषूत्साहं मनुष्यादीनां प्रियं पुरस्तादाचरन्ति ते सर्वेषां प्रिया भवन्ति॥१०॥

पदार्थ:-हे विद्वानो! (वयम्) हम लोग (अद्य) आज (इन्द्रस्य) परमिवद्या और ऐक्षेत्रियुक्त धार्मिक विद्वान् के (प्रेष्ठा:) अत्यन्त प्रिय हैं (वयम्) हम लोग (श्व:) कल के आनेवाले दिन (पमर्च्य) संग्राम में (वोचेमिह) कहें (च) और (पुरा) प्रथम जो (न:) हम लोगों का (मिह) बङ्ग्पेम है (तत्) उसको (वयम्) हम लोग (अनु, द्यून्) प्रतिदिन कहें और (नराम्) मनुष्यों के बीच (न:) हम्मेर लिये (ऋभुक्षा:) मेधावी बुद्धिमान् वीर पुरुष (अनु, ष्यात्) अनुकूल हों॥१०॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो विद्वानों से प्रोति, युद्ध में उत्साह और मनुष्यादिकों का प्रिय काम का पहिले से आचरण करते हैं, सबके प्यारे होते हैं॥ १००।

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।

एष वः स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कासेः।
एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदीन्ता । १४।।

एषः। वः। स्तोमः। मुरुतः। इयम्। गीः। मान्दार्कस्या मान्यस्य कारोः। आ। इषा। यासीष्ट। तन्वे। वयाम्। विद्यामे। इषम्। वृजनेम्। जीरऽदानुंम्॥ ११॥

पदार्थ:-(एष:) (व:) युष्माकम् (स्तोप:) स्तवनम् (मस्तः) विद्वांसः (इयम्) (गीः) वेदविद्याशिक्षायुक्ता वाणी (मान्दार्यस्य) स्तिनद्रप्रदोत्तप्रस्य (मान्यस्य) सत्कर्तुं योग्यस्य (कारोः) सर्वस्य मुखकर्तुः (आ) समन्तात् (इषा) इच्छ्या (यासीष्ट्र) प्राप्नुयात् (तन्वे) शरीराय (वयाम्) वयम् (विद्याम) विजानीयाम (इषम्) (वृजनम्) बलुम् (जीरदानुम्) जीवननिमित्तम्॥११॥

अन्वय:-हे मरुतो! एष वि स्तामो मान्यस्य मान्यस्य कारोरियङ्गीरस्ति। तस्या येषाऽऽयासीष्ट वयां तन्वे तामिषं जीरदानुं वृजनं च विद्याम। १२११

भावार्थ:-ये विश्वतः श्लाष्यान् गुणान् प्राप्याप्तानां सत्कारं कृत्वा शरीरात्मबलाय विद्यापराक्रमौ सञ्चिन्वन्ति ते सुखेन जीवन्ति । १४॥

अत्र वायुद्धान्तेन सञ्जनगुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति बोध्यम्॥

द्वेति सप्तषष्ट्युत्तरं शततमं १६७ सूक्तं पञ्चमो ५ वर्गश्च समाप्त:॥

पद्धि: है (मस्तः) विद्वानो! (एषः) यह (वः) तुम्हारी (स्तोमः) स्तुति और (मान्दार्यस्य) आनन्द के देनेवाले उत्तम (मान्यस्य) मान सत्कार करने योग्य (कारोः) सबका सुख करनेवाले सज्जन की (इयम्) यह (गीः) वेदविद्या की उत्तम शिक्षा से युक्त वाणी है, इसकी जो (इषा) इच्छा के साथ

अष्टक-२। अध्याय-४। वर्ग-४-५

मण्डल-१। अनुवाक-२३। सूक्त-१६७

ल (जीवनामा)

(आ, यासीष्ट) प्राप्ति हो (वयाम्) हम लोग (तन्वे) शरीर के लिये उस (इषम्) इच्छा (जीरदार्नुम्) जीवन के निमित्त और (वृजनम्) बल को (विद्याम) जानें॥११॥

भावार्थ:- जो सबसे प्रशंसा करने योग्य गुणों को प्राप्त होकर आप्त धर्मात्मा सज्जनों का सिकार कर शरीर और आत्मा के बल के लिये विद्या और पराक्रम सम्पादन करते हैं, वे सुख से जीते हैं। १११।।

इस सूक्त में वायु के दृष्टान्त से सज्जन विद्वान् जनों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गित है, यह समझना चाहिये॥

यह एक सौ सरसठवां सुक्त और पांचवां वर्ग समाप्त हुआ।।



यज्ञायज्ञेत्यस्य दशर्च्चस्याष्ट्रषष्ट्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य अगस्त्य ऋषिः। मरुतो देवताः। १,४ निचृज्जगती छन्दः। निषादः स्वरः। २,५ विराट् त्रिष्टुप्। ३ स्वराट् त्रिष्टुप्। ६,७ भुरिक् त्रिष्टुप्।

८ त्रिष्टुप्। ९ निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। १० पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

अथ वायुदृष्टान्तेन सज्जनगुणानाह॥

अब एक सौ अरसठवें सूक्त का आरम्भ है। उसके आरम्भ में पवन के दृष्टान्त से सिज्जनों के गुणों का वर्णन करते हैं।।

युज्ञायंज्ञा वः समुना तुंतुर्विणुर्धियंधियं वो देवया उ दिधध्वे।

आ वोऽर्वाचीः सुविताय रोदीस्योमीहे वीवृत्यामवीसे सुवृक्तिभिताश्ला

युज्ञाऽर्यज्ञा। वः। सुमुना। तुतुर्विणिः। धियम्ऽधियम्। वः। देवेऽस्यः। अम् इति। दुधिध्वे। आ। वः। अर्वार्चः। सुवितार्य। रोदंस्योः। मुहे। वुवृत्याम्। अवसे। सुवृक्तिऽभिः॥ १॥

पदार्थ:-(यज्ञायज्ञा) यज्ञेयज्ञे (व:) युष्माकम् (सम्मा) तुल्ये (तुतुर्वणि:) शीघ्रगतिः (धियंधियम्) कर्मकर्म (व:) युष्माकम् (देवयाः) ये देवान् दिव्यान् गुण्णम् यान्ति ते (उ) (दिधिष्वे) (आ) (व:) युष्माकम् (अर्वाचः) (सुविताय) ऐश्वर्याय (रोदस्योः) (महे) (ववृत्याम्) (अवसे) (सुवृक्तिभिः) सुष्ठु वर्जनैस्सह॥१॥

अन्वय:-हे विद्वांसो! यथा देवया: प्राणा वो ध्यिष्यं दधित तथा उ यूयं तान् दिधिध्वे। यथा तेषां यज्ञायज्ञा समना तुतुर्विणरिस्त तथा वोऽस्तु। यथा विय रोदस्योः सुविताय महेऽवसे व: सुवृक्तिभिरर्वाचो वायूनाववृत्यामिच्छामस्तथा यूयमिच्छथ॥१॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमाल्ख्नारः। अर्था वायवो नियमेनाऽनेकविधगतयो भूत्वा विश्वं धरन्ति तथा विद्वांसो विद्याशिक्षायुक्ता भूत्वा विद्यार्थिनो धरन्तु, येनाऽसंख्यैश्वर्यं प्राप्तं स्यात्॥१॥

पदार्थ: -हे विद्वानो! जैसे (देवयाः) दिव्य गुणों को जो प्राप्त होते वे प्राण वायु (व:) तुम्हारे (धियंधियम्) काम-काम को ध्रीरण करते वैसे (उ) ही तुम उनको (दिधध्वे) धारण करो। जैसे उन पवनों की (यज्ञायज्ञा) यज्ञ-यज्ञ में और (समना) समान व्यवहारों में (तुतुर्विणः) शीघ्र गित है, वैसे (व:) तुम्हारी गित हो, जैसे हप्प सिग् (रोदस्योः) आकाश और पृथिवी सम्बन्धी (सुविताय) ऐश्वर्य के लिये और (महे) अत्यन्त्र (अवसे) रक्षा के लिये (व:) तुम्हारे (सुवुवितिभः) सुन्दर त्यागों के साथ (अर्वाचः) नीचे आने-जानेवाल पवनों को (आ, ववृत्याम्) अच्छे वर्त्ताने के लिये चाहते हैं, वैसे तुम चाहो॥१॥

भावार्थ: रहस मेन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे पवन नियम से अनेकविध गतिमान् होकर विश्व कृत धारण करते हैं, वैसे विद्वान् जन विद्या और उत्तम शिक्षायुक्त होकर विद्यार्थियों को धारण करें, जिस्त्रों असंख्य ऐश्वर्य प्राप्त हों॥१॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

अष्टक-२। अध्याय-४। वर्ग-६-७

मण्डल-१। अनुवाक-२३। सूक्त-१६८

१७८३

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

वृद्रासो न ये स्वृजाः स्वर्तवस् इष्टं स्वरिभृजायन्त धूर्तयः। सहुस्त्रियासो अपां नोर्मयं आसा गावो वन्द्यासो नोक्षणः॥२॥

वृद्रासं:। न। ये। स्वृऽजाः। स्वृऽतंवसः। इषेम्। स्वंः। अभिऽजायन्त। धूतंयः। सुहुस्त्रियोसः। अपाम्। न। कुर्मयः। आसा। गावंः। वन्द्यांसः। न। उक्षणः॥२॥

पदार्थ:-(वव्रासः) सद्यो गन्तारः। अत्र व्रजधातोर्बाहुलाकादौणादिको हः प्रस्पयः द्वित्वज्ञे (न) इव (ये) (स्वजाः) स्वस्मात्कारणाज्जाताः (स्वतवसः) स्वकीयबलयुक्ताः (इषम्) ज्ञानम् (स्वः) सुखम् (अभिजायन्त) (धूतयः) गन्तारः कम्पयितारश्च (सहस्रियासः) सहस्राणि (अषाम्) जलानाम् (न) इव (ऊर्म्पयः) तरङ्गाः (आसा) मुखेन (गावः) धेनवः (वन्द्यासः) वन्दितुं कामित्रतुम्हाः (न) इव (उक्षणः) वृषभान्॥२॥

अन्वय:-हे विद्वांसो! ये स्वजाः स्वतवसो धूतयो वव्रासो नापा सहस्रियास क्रिमयो नासा वन्द्यासो गाव उक्षणो नेषं स्वश्चाभिजायन्त तान् यूयं विजानीत॥२॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। ये वायुवद्बलिष्ठास्तर विदुत्याहिनो गाोवदुपकारका: कारणवत् सुखजनका दुष्टानां कम्पयितारो मनुष्या: स्युस्तेऽत्र धार्मा भवनित्राम्र ॥

पदार्थ:-हे विद्वानो! (ये) जो (स्वजा:) अपने ही क्रारण से उत्पन्न (स्वतवसः) अपने बल से बलवान् (धृतयः) जाने वा दूसरों को कम्पाहेवाले मनुष्ट्र (वव्रासः) शीघ्रगामियों के (न) समान वा (अपाम्) जलों की (सहस्रियासः) हजारों (अर्मयः) हुए ह्नों के (न) समान (आसा) मुख से (वन्द्यासः) वन्दना और कामना के योग्य (गावः) गौधे हिसे (इक्षणः) बैलों को (न) वैसे (इषम्) ज्ञान और (स्वः) सुख को (अभिजायन्त) प्रकट करते हैं, उत्तको तुम जानो॥२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो पवन के समान बलवान्, तरङ्गों के समान उत्साही, गौओं के समान उपकार करनेवाले, कारण के तुल्य सुखजनक दुष्टों को कम्पाने भय देनेवाले मनुष्य हों, वे यहाँ धन्य होते हैं॥२

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

सोम्प्रसी न ये सुतास्तृप्तांश्रांवो हृत्सु पीतासी दुवसी नासते। ऐपामसेषु रुम्भिणीव रारभे हस्तेषु खादिश्च कृतिश्च सं देधे॥३॥

सोमासः। ना ये। सुताः। तृप्तऽअंशवः। हृत्ऽसु। पी॒तासः। दुवसः। ना आसेते। आ। एषाम्। अंसेषु। राभिणीऽह्वा रुभे। हस्तेषु। खादिः। चा कृतिः। चा सम्। दुधे॥३॥

पदार्थ:-(सोमास:) सोमाद्योषिधरसाः (न) इव (ये) मरुत इव विद्वांसः (सुताः) निस्सारिताः (तृप्तांशवः) तृप्ता अंशवो येभ्यस्ते (हृत्सु) हृदयेषु (पीतासः) पीताः (दुवसः) परिचारकाः (न) इव (आसते) (आ) (एषाम्) (अंसेषु) भुजस्कन्धेषु (रिम्भणीव) यथाऽऽरिम्भिका गृहकार्येषु चतुरा स्त्री (रारभे) रेभे (हस्तेषु) करेषु (खादिः) भोजनम् (च) (कृतिः) क्रिया (च) (सम्) सम्यक् रहेषे)॥ शा

अन्वय:-अहं ये सुतास्तृप्तांशवः सोमासो हृत्सु पीतासो न दुवसो न आसत एषामंसेष्ट्र रिम्भणीव आरारभे। यैर्हस्तेषु खादिश्च कृतिश्च ध्रियते तैस्सह सर्वाः सित्क्रियाः सन्दधे॥३॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। ये सज्जना ओषधीवत्कुशिक्षादुष्टाचार्यवनासकोः परिचारकवत् सुखप्रदा: पतिव्रतास्त्रीवत् प्रियाचारिण: क्रियाकुशला: सन्ति तेऽत्र सृष्टौ सर्व्य विद्या: संधातुमर्हन्ति॥३॥

पदार्थ:-मैं (ये) जो पवनों के समान विद्वान् (तृप्तांशवः) जिन्नसे सूर्ण किरण आदि पदार्थ तृप्त होते और वे (सुताः) कूट-पीट निकाले हुए (सोमासः) सोमादि ओणिंध रस (हृत्सु) हृदयों में (पीतासः) पीये हुए हों उनके (न) समान वा (दुवसः) सेवन करनेवालों के (न) समान (आसते) बैठते स्थिर होते (एषाम्) इनके (अंसेषु) भुजस्कन्धों में (रिम्भणीव) जैसे प्रत्येक काम का आरम्भ करनेवाली स्त्री संलग्न हो, वैसे (आ, रारभे) संलग्न होता हूँ। और जिन्होंने हिस्सेषु) हाओं में (खादिः) भोजन (च) और (कृतिः) क्रिया (च) भी धारण की है, उनके साथ सब क्रियाओं को (सम्, दधे) अच्छे प्रकार धारण करता हूँ॥३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। ज़ि सञ्जन आषिधयों के समान दुष्ट शिक्षा और दुष्टाचार के विनाश करने, सेवकों के समान सुख देने और प्रतिव्रता स्त्री के समान प्रिय आचरण करनेवाले क्रियाकुशल हैं, वे इस सृष्टि में सब विद्याओं के अन्त्रे धारण करने, यथायोग्य कामों में वर्ताने को योग्य होते हैं॥३॥

पुरस्तमेव विषयमाह॥

क्तिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अव स्वयुंक्ता दिव आ वृष्ट्रा ययुरमर्त्याः कर्शया चोदत् त्मना। अरेणवंस्तुविजाता अवाच्यवुर्द्ळ्हानि चिन्मुरुतो भ्राजंदृष्टयः॥४॥

अर्व। स्वश्र्युक्ताः। द्विः। आ। वृथां। युयुः। अर्मर्त्याः। कर्शया। चोद्त्। त्मनां। अरेणर्वः। तुविऽजाताः। अचुच्यवुः। दृळ्हानि। चित्। मुरुतः। भ्राजित्ऽऋष्टयः॥४॥

पदार्थ:-(अव) (स्वयुक्ता:) स्वेनैव गच्छन्तः (दिवः) आकाशात् (आ) (वृथा) (ययुः) गच्छन्ति (अमर्त्याः) मरणधर्म्मरिहताः (कशया) शासनेन गत्या वा (चोदत) प्रेरयत (त्मना) आत्मना (अर्ग्रेणवः) म विद्यन्ते रेणवो येषु ते (तुविजाताः) तुविना बलेन सह प्रसिद्धाः (अचुच्यवुः) अत्र व्यत्ययेन प्रस्मैपद्मे। (दृढानि) (चित्) अपि (मरुतः) वायवः (भ्राजदृष्टयः) भ्राजन्त ऋष्टयो गतयो येषान्ते॥४॥

अष्टक-२। अध्याय-४। वर्ग-६-७

मण्डल-१। अनुवाक-२३। सूक्त-१६८

१७८५

अन्वयः-हे मनुष्या! यूयं त्मना कशया यथा स्वयुक्ता अमर्त्या अरेणवस्तुविजाता भ्राजदृष्टयो मरुतो दिव आययुर्दृढानि चिद् वृथाऽवाऽचुच्यवुस्तथैताञ्चोदत॥४॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। यथा वायवो स्वयमेव गच्छन्त्यागच्छन्ति अन्यादीन् धृत्वा दृढत्वेन प्रकाशयन्ति तथा विद्वांसस्स्वयमेवाऽध्यापनोपदेशेषु नियुक्त्वा व्यर्थानि कर्माणि त्यक्त्वा त्याजयित्वा च विद्यासुशिक्षाभिस्सर्वाञ्जनान् द्योतयन्ति॥४॥

पदार्थ: - हे मनुष्यो! तुम (त्मना) आत्मा से (कशया) शिक्षा या गित से जैसे (स्वयुक्ता:) अपने से गमन करनेवाले (अमर्त्या:) मरणधर्मरहित (अरेणव:) जिनमें रेणु वालू उद्दी विद्यम्पन (तुर्विजाता:) बल के साथ प्रसिद्ध और (भ्राजदृष्ट्य:) जिनकी प्रकाशमान गित वे (मरुह्नः) पवन (दिव:) आकाश से (आ, ययु:) आते प्राप्त होते हैं और (दृढानि) पृष्ट (चित्) भी पदार्थों को (भ्रथा) वृथा निष्काम (अव, अचुच्यवु:) प्राप्त होते, वैसे इनको (चोदत) प्रेरणा देओ॥४॥

भावार्थ: -इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे किन आप ही जाते-आते हैं और अग्नि आदि पदार्थों को धारण कर दृढ़ता से प्रकाशित करते हैं, वैसे किहान जाप ही पढ़ाने और उपदेशों में नियुक्त हो व्यर्थ कामों को छोड़कर और छुड़वा के विद्या और उत्तम शिक्षा से सब जनों को प्रकाशित करते हैं॥४॥

पुनस्तमेव विषयमाहा।

फिर उसी विषय की अगले मुद्र में कहा है॥

को वोऽन्तर्मस्त ऋष्टिविद्युतो रेजर्सि त्मना हर्वेव जिह्नया। धन्वच्युत इषां न यामिन पुसूत्रेषा सहन्यो ३ नैत्रशः॥५॥६॥

कः। वः। अन्तः। मु<u>रुतः। ऋष्ट्रिऽबिद्युतः।</u> रजिति। त्मनी। हन्वाऽइव। जिह्नयी। धुन्वऽच्युतेः। डुषाम्। न। यामिन। पुरुऽप्रेषाः। अहुन्येः। न। एतुंशः। ए।।

पदार्थ:-(क:) (व) युष्पाकम् (अन्तः) मध्ये (मस्तः) विद्वांसः (ऋष्टिविद्युतः) ऋष्टिर्विद्युदिव येषान्ते (रेजित) कम्पते (ज्ञासा) आत्मना (हन्वेव) यथा हनू तथा (जिह्नया) वाचा (धन्वच्युतः) धन्वनोऽन्तिरक्षाच्च्युताः प्रापाः (इषाम्) इच्छानाम् (न) इव (यामिन) मार्गे (पुरुप्रेषाः) बहुभिः प्रेरिताः (अहन्यः) अहिन भवाः (न) इव (एतशः) अश्वः। एतश इत्यश्वनामसु पठितम्। (निघं १.१४)॥५॥

अन्वयः १ हे पुरप्रेषा ऋष्टिविद्युतो मरुतो! वोऽन्तः को रेजित। जिह्नया हन्वेव त्मना को वोऽन्ता रेजित। इषां धन्वच्युतो मेल्रा नाहरूप एतसो न यामिन युष्मान् कः संयुनिक्त॥६॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। यदा जिज्ञासवो विदुषः प्रति पृच्छेयुस्तदा विद्वांस एभ्यो याथुर्तभ्यमुत्तराणि दद्युः॥५॥

पदार्थ:-हे (पुरुप्रेषा:) बहुतों से प्रेरणा को प्राप्त (ऋष्टिविद्युत:) ऋष्टि-द्विधारा खड्ग की बिजुली के समान तीव्र रखनेवाले (मरुत:) विद्वानो! (व:) तुम्हारे (अन्त:) बीच में (क:) कौन (रेजित) कम्पता है और (जिह्वया) वाणी से (हन्वेव) कनफटी जैसे डुलाई जावें वैसे (त्मना) अपि किने तुम्हारे बीच में कम्पता है (इषाम्) और इच्छाओं के सम्बन्ध में (धन्वच्युत:) अन्तरिक्ष में प्राप्त सेचे के (न) समान वा (अहन्य:) दिन में प्रसिद्ध होनेवाले (एतश:) घोड़े के (न) समान (क्रामिन) पर्ण में तुम लोगों को कौन संयुक्त करता है॥५॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जब जिज्ञासु जन विद्वानों के यदि पूछे तब विद्वान् जन उनके लिये यथार्थ उत्तर देवें॥५॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।

क्वं स्विद्स्य रजसो महस्परं क्वावंरं मरुतो यस्मित्रायुषा यच्च्यावयंथ विथुरेव संहितं व्यद्गिणा पतथ त्वेष्मण्विम्।। ६/।

क्वं। स्वित्। अस्य। रजसः। महः। परम्। क्वं। अवरम्। मह्त्रः। यस्मिन्। आऽयय। यत्। च्यवयेथ। विश्वराऽईव। सम्ऽहितम्। वि। अर्द्रिणा। पृत्था त्वेषम्। अर्णुक्मारहः।

पदार्थ:-(क्व) कस्मिन् (स्वत्) एव (रजिस्:) भूगोलस्य (महः) महत् (परम्) कारणम् (क्व) (अवरम्) कार्यम् (मरुतः) विद्वांसः (यस्मिन्) (आग्न्य) आगच्छत। अत्र लोडर्थे लिट्। (यत्) (च्यावयथ) चालपथ (विथुरेव) यथा व्यक्षितान् (संहितम्) कृतसाधनम् (वि) (अद्रिणा) मेघेन सह (पतथ) अध आगच्छथ (त्वेषम्) सूर्य्यद्वीष्तिम् (अर्णवम्) समुद्रम्॥६॥

अन्वय:-हे मरुतोऽस्य रजसो महस्पर क्व स्वित् क्वावरं वर्त्तत इति पृच्छाम:। यस्मिन् यूयमायय यच्च्यावयथ यस्मिन् विथुरेव संहितमिदं जगद्येनाहुणा सह वायवस्त्वेषमर्णवं विपतथ तदेव सर्वस्य जगतो महत् कारणं वर्त्तत इत्युत्तरम्॥६॥

भावार्थ: -यस्मिन्दिं भूगोलार्दिकं गच्छत्यागच्छति कम्पते तदेवाकाशवत् कारणं विजानीत, यस्मिन्नेते लोका उत्पद्यन्ते विद्यन्ते।भ्रमन्ति प्रलीयन्ते च तत्परं निमित्तं कारणं ब्रह्मेति॥६॥

पदार्थ: -हे (मस्त) विद्वानो! (अस्य) इस (रजस:) भूगोल का (मह:) बड़ा (परम्) कारण (क्व, स्वित्) विश्वयं से कहाँ और (क्व) कहाँ (अवरम्) कार्य्य वर्तमान है, इस को हम लोग पूछते हैं (यस्मिन्) किसमें तुम (आयय) आओ (यत्) जिसको (च्यावयथ) चलाओ जिसमें (विथुरेव) दबाये पदार्थों है समान (सहितम्) मेल किये हुए यह जगत् है, जिससे (अद्रिणा) मेघवृन्द के पवन (त्वेषम्) सूर्य के प्रकाश और (अर्णवम्) समुद्र को (वि, पतथ) नीचे प्राप्त होते हैं, वही पराब्रह्म सब जगत् का कृद्ध कोएग है, यही उक्त प्रश्नों का उत्तर है॥६॥

अष्टक-२। अध्याय-४। वर्ग-६-७

मण्डल-१। अनुवाक-२३। सूक्त-१६८

भावार्थ:-जिससे यह भूगोल आदि जगतु जाता-आता, कम्पता उसी को आकाश के समान कारण जानो, जिसमें ये लोक उत्पन्न होते, भ्रमते और प्रलय हो जाते हैं, वह परम उत्कृष्ट निम्नित कारण, ब्रह्म है॥६॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

सातिर्न वोऽमेवती स्वर्वती त्वेषा विपाका मरुतः पिपिष्वती। भुद्रा वो राति: पृणतो न दक्षिणा पृथुज्रयी असुर्येव जञ्जती॥७॥

सातिः। न। वः। अर्मऽवती। स्व॑ःऽवती। त्वेषा। विऽपाका। मुरुतः। पिरिष्वती। भूग्नः। रातिः। पृणतः। न। दक्षिणा। पृथुऽज्रयी। असुर्याऽइव। जञ्जती॥७॥

पदार्थ:-(साति:) लोकानां विभक्तिः (न) इव (वः) युष्माक्स्म् (अमवती) ज्ञानयुक्ता (स्वर्वती) विद्यमानसुखा (त्वेषा) प्रदीप्तिः (विपाका) विविधगुणैः परिपक्व (मस्तः) विद्वांसः (पिपिष्वती) पिपींषि बहवोऽवयवा विद्यते यस्याः सा (भद्रा) कल्याणकारिणी (बः) युष्मीकम् (रातिः) दानम् (पृणतः) पालकस्य विद्यादिभि: प्रपूरकस्य वा (न) इव (दक्षिणा) देतुं भीग्या (पुंथुज्रयी) बहुवेगा (असुर्येव) असुषु प्राणेषु भवा विद्युदिव (जञ्जती) यथा युद्धे प्रवृत्ता सेन्रामधार

अन्वय:-हे मरुतो! वो या पिपिष्वत्यमवती विपाक त्वेषा सातिर्नेवास्ति वो या पृणतो दक्षिणा नेव पृथुज्जय्यसुर्य्येव जञ्जती भद्रा रातिरस्ति तया सर्वान् वद्धयाण्या

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। येषां जिल्लानां पुर्णपुण्यजन्या सुखदु:खफला गतिरस्ति, तया सर्वे जीवा विचरन्ति। ये पुरुषार्थिनः सैन्या; शत्रुनिव प्रापानि विजित्य निवार्य धर्ममाचरन्ति, ते सदैव सुखिनो भवन्ति॥७॥

पदार्थ:-हे (मरुत:) विद्वानी! (वे) तुम्हारी जो (पिपिष्वती) बहुत अङ्गींवाली (अमवती) ज्ञानवती (स्वर्वती) जिसमें सुख विद्यमान (विपाका) विविध प्रकार के गुणों से परिपक्व (त्वेषा) उत्तम दीप्ति (साति:) लोकों कि विभक्ति अर्थात् विशेष भाग के (न) समान है और (व:) तुम्हारी जो (पृणतः) पालन करने वा विद्यादि गुणों से परिपूर्ण करनेवाले की (दक्षिणा) देने योग्य दक्षिणा के (न) समान (पृथुज्रयी) बहुत वेगवर्ती (असुर्येव) प्राणों में होनेवाली बिजुली के समान वा (जञ्जती) युद्ध में प्रवृत्त झंझियाली हुई सेना के समान (भद्रा) कल्याण करनेवाली (राति:) देनी है, उससे सबको बढ़ाओ॥७/

्भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो इन जीवों की पाप-पुण्य से उत्पन्न हुई, सुख दु:ख फल्क्वाली ग्रेति है, उससे समस्त जीव विचरते हैं। जो पुरुषार्थी सेनाजन शत्रुओं को जैसे-वैसे पापों को ज़ीत निकार धर्म का आचरण करते हैं, वे सदैव सुखी होते हैं॥७॥

১১७१

ऋग्वेदभाष्यम्

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

प्रति ष्टोभन्ति सिर्स्थवः पविभ्यो यद्भियां वार्चमुदी्रयन्ति।

अवं स्मयन्त विद्युतं: पृथिव्यां यदी घृतं मुरुतः प्रुष्णुवन्ति॥८॥

प्रति। स्तोभुन्ति। सिर्चवः। पुविऽभ्यः। यत्। अभ्रियाम्। वार्चम्। उत्ऽर्द्वरयन्ति। अव। सम्यन्ते। विऽद्युतः। पृथिव्याम्। यदि। घृतम्। मुरुतः। प्रुष्णुवन्ति॥८॥

पदार्थ:-(प्रति) (स्तोभन्ति) स्तभनन्ति। अत्र व्यत्ययेन परस्मैपदम्। (सिन्धवः) नद्यः (पविभ्यः) वज्रवत् किरणेभ्यः (यत्) यदा (अभ्रियाम्) अभ्रेषु भवां गर्जनाम् (वाच्य्) व्यप्णिम् (उदीरयन्ति) प्रेरते (अव) (स्मयन्त) ईषद्धसन्ति (विद्युतः) तिङतः (पृथिव्याम्) भूमौ (यदि) अत्र निपातस्य चेति दीर्घः। (धृतम्) उदकम् (मरुतः) (प्रृष्णुवन्ति) स्नेहयन्ति॥८॥

अन्वय:-हे विद्वांसो! यद्यदा मरुतोऽभ्रियां वाचमुदीरयन्ति तद्ग्रासिन्धवः पृविभ्यः प्रतिष्टोभन्ति यदि च मरुतो घृतं प्रुष्णुवन्ति तदा विद्युतः पृथिव्यामवस्मयन्त तद्वद्यूयं भवत॥८॥

भावार्थ:-ये मनुष्या नदीवदार्द्रा तिडद्वत्तीव्र विद्यो पैठित्वाऽध्यापयन्ति, ते सूर्यवत् सत्याऽसत्यप्रकाशका जायन्ते॥८॥

पदार्थ:-हे विद्वानो! (यत्) जब (मरुतः) पबन (अश्रियाम्) मेघों में हुई गर्जनारूप (वाचम्) वाणी को (उदीरयन्ति) प्रेरणा देते अर्थात् बद्द्वि को गर्ज़ित हैं, तब (सिन्धवः) निदयां (पविभ्यः) वज्र तुल्य किरणों से अर्थात् बिजुली के लपट इएछों से (प्रति, ष्ट्रोभन्ति) क्षोभित होती हैं और (यदि) जब पवन (घृतम्) मेघों के जल (प्रुष्णुवन्ति) वर्षाते। हैं, तब (विद्युतः) बिजुलियां (पृथिव्याम्) भूमि पर (अव, स्मयन्त) मुसुकियाती सी जान पड्निती हैं, वसे तुम होओ॥८॥

भावार्थ:-जो मनुष्य नदी के समान आर्द्रचित्त, बिजुली के समान तीव्र स्वभाववाले विद्या को पढ़ कर पढ़ाते हैं, वे सूर्य के समान सत्य और असत्य को प्रकाश करनेवाले होते हैं॥८॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

प्रिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

असूत पूरिनर्महृते राणाय त्वेषम्यासां मुरुतामनीकम्।

ते संप्युक्तराऽजनयुन्ताभ्वमादित्स्वधामिष्युरां पर्यपश्यन्॥९॥

अर्पूता पृष्टिनः। महते। रणाय। त्वेषम्। अयासाम्। मरुताम्। अनीकम्। ते। सप्सरासः। अजनयन्त। अभ्वम्। आत्। इत्। स्वधाम्। इष्रिराम्। परि। अपुश्यन्॥९॥

अष्टक-२। अध्याय-४। वर्ग-६-७ मण्डल-१। अनुवाक-२३। सूक्त-१६८

पदार्थ:-(असूत) सूते (पृश्नि:) आदित्य इव (महते) (रणाय) संग्रामाय (त्वेषम्) प्रदीप्तम् (अयासाम्) गन्तृणाम् (मरुताम्) मनुष्याणाम् (अनीकम्) सैन्यम् (ते) (सप्सरासः) गन्तारः। अत्र सप्तेरौणादिकः सरप्रत्ययः। **सप्तीति गतिकर्मास् पठितम्।** (निघं०३.१४) **(अजनयन्त)** (अभ्वस्) अविद्यमानम् (आत्) अनन्तरम् (इत्) एव (स्वधाम्) अन्नम् (इषिराम्) प्राप्तव्याम् (परि) (अपश्यन्) सर्वतः पश्येयुः॥९॥

अन्वय:-एषामयासां मरुतां पृश्निरिव त्वेषमनीकं महते रणायासूत ते आदिदिषिरां स्वधामजनयन्त स्नेप्सरास: सन्तोऽभ्वं पर्य्यपश्यन्॥९॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। ये विचक्षणा राजपुरुष विजयाय प्रशस्तां सेनां स्वीकृत्याऽन्नाद्यैश्वर्यमुन्नयन्ति, ते तृप्तिमाप्नुवन्ति॥९॥

पदार्थ:-(एषाम्) इन (अयासाम्) गमनशील (मरुताम्) मनुष्यों का (प्रृश्नि:) आदित्य के समान प्रचण्ड प्रतापवान् (त्वेषम्) प्रदीप्त (अनीकम्) गण (महते) मूह्गन् (रुगाय) संग्राम के लिये (असूत) उत्पन्न होता है (आत्) इसके अनन्तर (इत्) ही (ते) वे (इक्सिप्) प्राप्त होने योग्य पदार्थों के बीच (स्वधाम्) अन्न को (अजनयन्त) उत्पन्न करते और (सप्प्रशिक्कः) गुप्तम् करते हुए (अभ्वम्) अविद्यमान अर्थात् जो प्रत्यक्ष विद्यमान नहीं उसको (पर्य्यपश्यन्) सब और से दिखते हैं॥९॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो ब्रिचक्षण राजपुरुष विजय के लिये प्रशंसित सेना को स्वीकार कर अन्नादि ऐश्वर्य की उन्नित हैं, वे नुप्ति को प्राप्त होते हैं॥९॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी किंपून को अगिले मन्त्र में कहा है।।

एष वः स्तोमी मरुत इयं गीर्मान्दार्थस्य मान्यस्य कारोः।

एषा यासीष्ट तुन्वे वृक्ष विद्यापेष वृजनं जीरदानुम्॥ १०॥ ७॥

एषः। वः। स्तोर्मः। मुक्तः। ड्रयम्। गीत्रे भान्दार्यस्ये। मान्यस्ये। कारोः। आ। ड्रषा। यासीष्ट्र। तन्वे। वयाम्। विद्यामं। डूषम्। वृजनंम्। जीरउद्देनुम्।१०॥

पदार्थ:-(एष:) (वः) गुष्माकम् (स्तोमः) प्रश्नोत्तराख्य आलापः (मरुतः) विद्वद्वराः (इयम्) (गी:) सत्यप्रिया बाक् (मान्दार्यस्य) सर्वेभ्य आनन्दप्रदस्योत्तमस्य (मान्यस्य) ज्ञातुं योग्यस्य (कारो:) क्रियाकुशलस्य्र^(आ) (इषा) इच्छया (यासीष्ट) प्राप्नुयात् (तन्वे) शरीरसुखाय (वयाम्) (विद्याम) प्राप्ता भवेम **(इष्म्)** अन्ने**प् (वृजनम्**) शत्रुनिकन्दनं बलम् (**जीरदानुम्**) जीवदयाम्॥१०॥

्रेन्वय:-हे मरुतो! य एष वस्स्तोमो मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोर्येयङ्गीर्येषा तन्वे आयासीष्ट तया वयामिषं वुजनं जीरद्वानु विद्याप्।।१०॥

भावार्थः-ये सकलविद्यास्तावका आप्तवाचो जीवदयाविशिष्टाः सन्ति, ते सर्वेषां सुखजनकी भवन्तीति॥१०॥

अत्र वायुदृष्टान्तेन सज्जनगुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेद्यम्

पदार्थ:-हे (मरुत:) श्रेष्ठ विद्वानो! जो (एष:) यह (व:) तुम्हारा (स्तोम:) प्रश्नोत्तररूप आलाप कथन (मान्दार्थस्य) सबके लिये आनन्द देनेवाले उत्तम (मान्यस्य) जानने योग्य (कारो:) क्रियाकुशल सज्जन की जो (इयम्) यह (गी:) सत्यप्रिया वाणी और जो (इषा) इच्छा के साथ (तन्बे) शरीर सुख के लिये (आ, यासीष्ट) प्राप्त हो उससे (वयाम्) हम लोग (इषम्) अन्न (वजनम्) शत्रुओं को दु:ख देनेवाले बल और (जीरदानुम्) जीवों की दया को (विद्याम) प्राप्त होवें।

भावार्थ:-जो समस्त विद्या की स्तुति और प्रशंसा करने और आष्तवाक अर्थात् धर्मात्मा विद्वानों की वाणियों में रहने तथा जीवों की दया से युक्त सज्जन पूरुष हैं, वे सभी के सुखों को उत्पन्न करानेवाले होते हैं॥१०॥

इस सूक्त में पवनों के दृष्टान्त से विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इसके अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है, यह जानना चाहिये॥

यह एक सौ अरसठवां १६८ सूक्त और सातृवां ७ वर्ग समाप्त हुआ॥

महरित्यस्याष्टर्चस्य एकोनसप्तत्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्यागस्त्य ऋषि:। इन्द्रो देवता १,३ भुरिक् पङ्क्ति:। २ पङ्क्ति:। ५,६ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्द:। पञ्चम: स्वर:। ४ ब्राह्मयुष्णिक्

छन्दः। ऋषभः स्वरः। ७,८ निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथ विद्रद्गुणानाह॥

अब एक सौ उनहत्तरवें सूक्त का आरम्भ है। उसके प्रथम मन्त्र में विद्वानों के गुण्गें का वर्णस् करते हैं॥

मुहश्चित्त्विमिन्द्र यत एतान् मुहश्चिदिस् त्यर्जसो वरूता। स नो वेधो मुरुतां चिकित्वान्त्सुम्ना वनुष्व तव हि प्रेष्ठां॥ १॥/

महः। चित्। त्वम्। इन्द्र। यतः। एतान्। महः। चित्। असि। त्यर्जस्या वस्ति। सः। नः। वेधः। मरुताम्। चिकित्वान्। सुम्ना। वनुष्व। तर्व। हि। प्रेष्ठां॥ १॥

पदार्थ:-(महः) महतः (चित्) अपि (त्वम्) (इन्द्र) दुःखेबिदारकातिविद्याबलसम्पन्न (यतः) यस्मात् कारणात् (एतान्) (महः) महतः (चित्) (असि) (त्यज्ञसः) त्यागात् (वरूता) वरिता स्वीकर्ता। प्रसितः इत्यादिषु निपातः। (सः) (नः) (अस्मभ्यम्) (वेषः) प्राप्तः (मरुताम्) विदुषां मनुष्याणाम् (चिकित्वान्) ज्ञानवान् (सुम्ना) सुम्नानि सुखानि (वनुष्क) प्रयच्छ (तव) (हि) किल (प्रेष्ठा) अतिशयेन प्रियाणि॥१॥

अन्वय:-हे इन्द्र! यतस्त्वमेतान् महश्चिन्महृतीऽपि त्येषुस्री वरूतासि ततो महश्चिदसि। हे मरुतां वेधः! स चिकित्वाँस्त्वं यानि सुम्ना तव सन्ति तानि नो वनुष्ट्राह्म।

भावार्थ:-ये विरक्तानां संन्यासिनां सिक्नोमेधाविनो जायन्ते तेषां कदाचिदप्रियं नोत्पद्यते॥१॥

पदार्थ:-हे (इन्द्र) दु:ख के विदारण करनेवाले अत्यन्त विद्यागुणसम्पन्न! (यतः) जिस कारण (त्वम्) आप (एतान्) इन विद्वानों को (महः) अत्यन्त (चित्) भी (त्यजसः) त्याग से (वरूता) स्वीकार करनेवाले (असि) हैं, इस करण (महश्चित्) बड़े भी हैं। हे (मरुताम्) विद्वान् सज्जनों के बीच (वेधः) अत्यन्त बुद्धिमान्! (सः) सो (चिक्नित्वान्) ज्ञानवान् आप जो (सुम्ना) सुख (तव) आपको (प्रेष्ठा) अत्यन्त प्रिय हैं, उनको (नः) हमारे लिये (वनुष्व, हि) निश्चय से देओ॥१॥

भावार्थ: जो विरक्त संन्यासियों के सङ्ग से बुद्धिमान् होते हैं, उनको कभी अनिष्ट दु:ख नहीं उत्पन्न होता॥ १४॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अर्बुज्जन ईन्द्र विश्वकृष्टीर्विदानासौ निष्पिधौ मर्त्युत्रा।

मुरुतां पृत्सुतिर्हासमाना स्वीमीळहस्य प्रधनस्य सातौ॥२॥

अर्युजन्। ते। इन्द्र। विश्वऽकृष्टीः। विदानांसः। निःऽसिर्धः। मृर्त्युऽत्रा। मुरुतांम्। पृत्सुतिः। हास्माना। स्वःऽमीळ्हस्यं। प्रुऽधनस्य। सातौ॥२॥

पदार्थ:-(अयुज्रन्) युज्जन्ति (ते) (इन्द्र) सुखप्रद (विश्वकृष्टी:) सर्वान् मनुष्यान् (विदानासः) विद्वांसः सन्तः (निष्विधः) अधर्मं प्रतिषेधन्तः (मर्त्यत्रा) मर्त्येषु (मरुताम्) मनुष्याणाम् (पृत्सुतिः) वीरसेना (हासमाना) आनन्दमयी (स्वर्मीढस्य) सुखैः सेचकस्य (प्रधनस्य) प्रकृष्टिस्य धनस्य (सातौ) संग्रामे॥२॥

अन्वय:-हे इन्द्र! ये निष्धिधो मर्त्यत्रा विदानासः स्वर्मीढस्य प्रधनस्य सातौ विश्वकृष्टिरयुज्रंस्ते या मरुतां हासमाना पृत्सुतिस्तां प्राप्नुवन्तु॥२॥

भावार्थ:-ये पूर्वं ब्रह्मचर्येण विद्यामधीत्याप्तानां सङ्गेनाखिली शिक्षां ग्राप्य धार्मिका जायन्ते, ते विश्वस्य सुखप्रदा भवन्ति॥२॥

पदार्थ:-हे (इन्द्र) सुख के देनेहारे विद्वान्! जो (निष्धिः) अध्य का निषेध करनेहारे (मर्त्यत्रा) मनुष्यों में (विदानासः) विद्वान् होते हुए (स्वर्मीढस्य) पुर्खी स् श्रीचनेहारे (प्रधनस्य) उत्तम धन के (सातौ) अच्छे प्रकार भाग में (विश्वकृष्टीः) सब मनुष्यों को (अयुज्रन) युक्त करते हैं (ते) वे जो (मरुताम्) मनुष्यों की (हासमाना) आनन्दमयी (पृत्सुतिः) विर्में ना है, उसको प्राप्त होवें॥२॥

भावार्थ:-जो पहिले ब्रह्मचर्य से विद्या को पढ़कर धर्मात्मा शास्त्रज्ञ विद्वानों के सङ्ग से समस्त शिक्षा को पाकर धार्मिक होते हैं, वे संसार को सुख देनवाले होते हैं॥२॥

पुन तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अम्यक्सा त इन्द्र ऋष्ट्रिस्म सनेप्यभवं मुरुतो जुनन्ति।

अग्निश्चिद्धि ष्मातुसे भूरेनुक्वानाप्रे न द्वीपं दर्धति प्रयांसि॥३॥

अर्म्यक्। सा। ते इन्त्रा ऋष्टि अस्मे इति। सर्नेमि। अर्ध्वम्। मुरुतः। जुनन्ति। अग्निः। चित्। हि। स्म। अतुसे। शुशुक्वान्। आर्पः। न। द्वीचम्। दर्धति। प्रयांसि॥३॥

पदार्थ: अम्यक्) अमिं सरलां गतिमञ्चित गच्छित (सा) (ते) तव (इन्द्र) दुष्टिविदारक (ऋष्टिः) प्राप्तिः (अस्प्रें) अस्पप्रम् (सनेमि) पुराणम्। सनेमीति पुराणनामसु पठितम्। (निघं०३.२७) (अभ्वम्) अचाक्षुषत्वेनाप्रसिद्धं कारणम् (मरुतः) मनुष्याः (जुनित्त) प्राप्नुवन्ति (अग्निः) पावका इव (चित्) इव (हि) खलु (स्म) (अतसे) निरन्तर आकाशे (शुशुक्वान्) शोचकः (आपः) जलानि (न) इव (द्वीपम्) द्विधामासि वस्त्रिमस्तम् (दधित) धरन्ति (प्रयांसि) कमनीयानि वस्त्रिन॥३॥

अष्टक-२। अध्याय-४। वर्ग-८-९

मण्डल-१। अनुवाक-२३। सूक्त-१६९

१७९३

अन्वयः-हे इन्द्र! यथा मरुतः सनेम्यभ्वं जुनन्ति सा ते ऋष्टिरस्मे अम्यगस्ति। शुशुक्वानग्निश्चित्वं हि स्मापो द्वीप न सर्वेषामनादिकारणमतसेऽतः सर्वे प्रयांसि दधति॥३॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। यदनादिकारणं विद्वांसो जानन्ति, तदितरे जना जातुं शक्नुवन्ति॥३॥

पदार्थ:-हे (इन्द्र) दुष्टों को विदारण करनेवाले! जिससे (मस्त:) मनुष्य (सनिम्) प्राचीन और (अभ्वम्) नेत्र से प्रत्यक्ष देखने में अप्रसिद्ध उत्तम विषय को (जुनित) प्राप्त होते हैं (सा) वह (ते) आपकी (ऋष्टिः) प्राप्ति (अस्मे) हमारे लिए (अम्यक्) सीधी चाल को प्राप्त होती है अर्थात् सरलता से आप हम लोगों को प्राप्त होते हैं। और (शुशुक्वान्) शुद्ध करनेवाले (अग्निः) अग्नि के समान (चित्) ही आप (हि) निश्चय के साथ (स्म) जैसे आश्चर्यवत् (आपः) जल (द्वीपम्) दो प्रकार से जिसमें जल आवें-जावें उस बड़े भारी नद को प्राप्त हों (न) वैसे सब के अनािक कारण को (अतसे) निरन्तर प्राप्त होते हैं, इससे सब मनुष्य (प्रयांसि) सुन्दर मनोहर चाहने योग्य वस्तुओं को (दधित) धारण करते हैं॥३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जिस अनुविद्वान् जोनते उसको और जन नहीं जान सकते हैं॥३॥

पुनस्तमेव विषयमाहा।

फिर उसी विषय की अगले मुन्त्र में कहा है॥

त्वं तू न इन्द्र तं र्घि दा ओजिष्ट्रमा दक्षिणचेवं रातिम्।

स्तुर्तश्च यास्ते चुकर्नन्त वायोः स्तर्ग् न मध्वः पीपयन्त वाजैः॥४॥

त्वम्। तु। नुः। इन्द्र। तम्। र्ययम्। दाः। ओर्जिष्ठया। दक्षिणयाऽइव। गुतिम्।। स्तुर्तः। चा। याः। ते। चुकर्नन्त। वायोः। स्तर्नम्। ना मध्वं गुणुपुयन्ता वाजैः॥४॥

पदार्थ:-(त्वम्) (तु) एक (नः) अस्मिभ्यम् (इन्द्र) बहुप्रद (तम्) (रियम्) दुग्धादिधनम् (दाः) देहि (ओजिष्ठया) अतिश्रृष्टिक पर्पक्रमुम् क्तया (दक्षिणयेव) यथा दक्षिणया तथा (रितम्) दानम् (स्तुतः) स्तुतिं कुर्वत्यः। क्विबन्तः शब्द्रीऽयम्। (च) (याः) (ते) त्वाम्। कर्मणि षष्ठी। (चकनन्त) कामयन्ते (वायोः) पवनम् अत्र कर्मणि षष्ठी। (स्तनम्) दुग्धस्याधारम् (न) इव (मध्वः) मधुरस्य (पीपयन्त) पाययन्ति (वाजैः) अस्तिदिभिः सह॥४॥

अर्थय:-है इन्द्र! त्वं तु न ओजिष्ठया दक्षिणयेव रातिं तं रियं दाः यं ते वायोश्च याः स्तुतस्ता मध्वः स्तनं न चकनन्त्र वीजैः पीपयन्त च॥४॥

भोदार्थ:-यथा बहुप्रदो यजमान ऋत्विजे पुष्कलं धनं दत्वैतमलङ्करोति यथा वा पुत्रा मातुर्दुग्धं प्रीत्वा पुर्श जायन्ते तथा सभाध्यक्षपरितोषेण भृत्या अलंधना भोजनादिदानेन च बलिष्ठा भवन्ति॥४॥

पदार्थ:-हे (इन्द्र) बहुत पदार्थों के देनेवाले! (त्वम्) आप (तु) तो (नः) हमारे लिये (ओजिष्ठया) अतीव बलवती (दक्षिणयेव) दक्षिणा के साथ दान जैसे दिया जाय वैसे (रातिम्) दान को तथा (तम्) उस (रियम्) दुग्धादि धन को (दाः) दीजिये कि जिससे (ते) आपकी और (वियोग) पुष्टम की (च) भी (याः) जो (स्तुतः) स्तुति करनेवाली हैं वे (मध्वः) मधुर उत्तम (स्तनम्) दूध के भरे हुए स्तन के (न) समान (चकनन्त) चाहती और (वाजैः) अन्नादिकों के साथ (पीपयन्त) बच्चरों को पिलाती हैं॥४॥

भावार्थ:-जैसे बहुत पदार्थों को देनेवाला यजमान ऋतु-ऋतु में यज्ञादि करामेवाले पुराहित के लिये बहुत धन देकर उसको सुशोभित करता है वा जैसे पुत्र माता का दूध पी के पुष्ट हो जाते हैं, वैसे सभाध्यक्ष के परितोष से भृत्यजन पूर्ण धनी और उनके दिये भोजनादि पुदार्थों से बुलवान् होते हैं॥४॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में क्रहा है।।

त्वे रायं इन्द्र तोशर्तमाः प्रणेतारः कस्यं चिदृतायोः।
ते षु णो मुरुतो मृळयन्तु ये स्मा पुरा गांतूयनीय देवाः। ५॥८॥

त्वे इति। रार्यः। इन्द्रः। तोशऽतिमाः। प्रऽनेतारः। कस्या चित्रः ऋतुऽयोः। ते। सु। नः। मुरुतः। मृळ्यन्तु। ये। स्मा पुरा। गातुयन्तिऽइव। देवाः॥५॥

पदार्थ:-(त्वे) त्विय सहायकारिण स्ति (रायः) धनानि (इन्द्र) दातः (तोशतमाः) अतिशयेन प्रीताः सन्तः (प्रणेतारः) प्रसाधकाः (कस्त्र) (चित्) (ऋतायोः) आत्मन ऋतुं सत्यिमच्छुः (ते) (सु) (नः) अस्मान् (मरुतः) वायुविद्यावेत्त्रारः (मूळ्येन्तु) सुखयन्तु (ये) (स्म) एव। अत्र निपातस्य चेति दीर्घः। (पुरा) पूर्वम् (गातुयन्तीव) आत्मेरे गातुं पृथिवीमिच्छन्तीव (देवाः) विद्वांसः॥५॥

अन्वयः-हे इन्द्र! ये कस्य चिदृतायोः प्रणेतारस्तोशतमा मरुतो देवास्त्वे सित रायः प्रापय्य नः सुमृळयन्तु पुरा गातुयन्तीव प्रयतन्ते ते स्म रक्षितार स्युः॥५॥

भावार्थ:-अत्रोपनासङ्कारः। ये वायुविद्यादिवेत्तारः परोपकारविद्यादानप्रियाः पृथिवीवत् सर्वान् पुरुषार्थे धरन्ति, ते सर्वदा सुखिन्ता भवन्ति॥५॥

पदार्थ: है (इन्द्र) देनेवाले! (ये) जो (कस्य, चित्) किसी (ऋतायोः) अपने को सत्य की चाहना करनेवाले (प्रेणेतारः) उत्तम साधक (तोशतमाः) और अतीव प्रसन्नचित्त होते हुए (मरुतः) पवनविद्या को जिपनेवाले (देवाः) विद्वान् जन (त्वे) तुम्हारे रक्षक होते (रायः) धनों की प्राप्ति करा (नः) हम लोगों को (सु, मृळयन्तु) अच्छे प्रकार सुखी करें वा (पुरा) पूर्व (गातुयन्तीव) अपने को पृथिवी चाहरे हुए प्रयत्न करते हैं (ते, स्म) वे ही रक्षा करनेवाले हों॥५॥

अष्टक-२। अध्याय-४। वर्ग-८-९

मण्डल-१। अनुवाक-२३। सूक्त-१६९

१७९८

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो वायुविद्या के जाननेवाले परोपकार और विद्यादान देने में प्रसन्नचित्त पृथिवी के समान सब प्राणियों को पुरुषार्थ में धारण करते हैं, वे सर्वदा सुखी होते हैं॥५॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

प्रति प्र याहीन्द्र मीळहुषो नृन्महः पार्थिवे सदेने यतस्व।

अध् यदेषां पृथुबुध्नास् एतास्तीर्थे नार्यः पौंस्यानि तस्थुः॥६॥

प्रति। प्रा याद्वि। इन्द्रा मीळहुर्षः। नृन्। महः। पार्थिवे। सर्दने। यतस्व। अर्धा यत्। एकम्। पृथुऽबुध्नासः। एताः। तीर्थे। न। अर्च्यः। पौंस्यानि। तस्थुः॥६॥

पदार्थ:-(प्रति) (प्र) (याहि) गच्छ (इन्द्र) प्रयतमान (मीढुष्: सुखै: स्रेयकान् (नृन्) नायकान् (महः) महति (पार्थिवे) पृथिव्यां विदिते (सदने) गृहे (यतस्व) यतमानो भव अध) अनन्तरम् (यत्) ये (एषाम्) (पृथुबुध्नासः) विस्तीर्णान्तिरक्षाः (एताः) (तीर्थे) तर्मि येन तम्मिन् (न) इव (अर्थः) वैश्यः (पौंस्यानि) बलानि (तस्थुः) तिष्ठन्ति॥६॥

अन्वय:-हे इन्द्र! त्वं यद्ये पृथुबुध्नासो जना एताः स्त्रियश्चेषां पौस्यानि तीर्थे समुद्रादितारिकायां नाव्यर्थ्यो न तस्थुः तान् मीढुषो नृन् प्रति प्रयाह्यध महः पार्थिवे सदने यतस्त्रमाह्म

भावार्थ:-ये पुरुषा याः स्त्रियश्च ब्रह्मचर्येण बलानि क्रर्द्धियत्वाऽऽप्तान् सज्जनान् सेवन्ते, ते ताश्च विद्वांसो विदुष्यश्च जायन्ते॥६॥

पदार्थ:-हे (इन्द्र) प्रयत्न करनेवाली आप (प्रत्) जो (पृथुबुध्नासः) विस्तारयुक्त अन्तरिक्षवाले जन (एताः) ये स्त्रीजन और (एषाम्) इनके (प्रीस्थानि) बल (तीर्थे) जिससे समुद्ररूप जल समूहों को तरें, उस नौका में (अर्थः) वैश्य के (च) समान (तस्थुः) स्थिर होते हैं, उन (मीढुषः) सुखों से सींचनेवाले (नृन्) अग्रगामी मनुष्यों को (प्रति) (प्र, याहि) प्राप्त होओ (अध) इसके अनन्तर (महः) बड़े (पार्थिवे) पृथिवी में विदित (सदने) घर में (यतस्व) यत्न करो॥६॥

भावार्थ:-जो पुरुष और जो स्त्री ब्रह्मचर्य से बलों को बढ़ाकर आप्त धर्म्मात्मा शास्त्रवक्ता सज्जनों की सेवा करते हैं, वे पुरुष विद्वान् और वे स्त्रियां विदुषी होती हैं॥६॥

अथ प्रकृतविषये शूरवीरत्वगुणानाह॥

अब प्रकृत विषय में शूरवीर होने के गुणों को कहा है॥

प्रति घोरोणामेतानाम्यासां मुरुतां शृण्व आयुतामुपुब्दिः।

ये मर्त्यं पृतनायन्तुमूमैर्ऋणावानं न पुतर्यन्त सर्गैः॥७॥

प्रति। घोराणाम्। एतानाम्। अयासाम्। मुरुताम्। शृण्वे। आऽयताम्। उपब्दिः। ये। मर्त्यम्। पृतुनाऽयन्तम्। ऊमैः। ऋणुऽवानम्। न। पुतर्यन्त। सर्गैः॥७॥

पदार्थ:-(प्रति) वीप्सायाम् (घोराणाम्) हन्त्रीणाम् (एतानाम्) पूर्वोक्तानाम् (अयोसाम्) प्राप्तानाम् (मरुताम्) वायूनामिव विदुषां विदुषीजनानां वा (शृण्वे) (आयताम्) आगच्छतामागच्छन्तीनां वा (उपिब्दः) वाक्। उपिब्दिरिति वाङ्नामसु पठितम्। (निघं०१.११) (ये) (मर्त्यम्) मनुष्यम् (पृतनायन्तम्) आत्मनः पृतनां सेनामिच्छन्तम् (ऊमैः) रक्षणादिभिः (ऋणावानम्) ऋणयुक्तम् (भ) इव (पतयन्त) पतिमिवाचरन्तु। अत्राङभावः। (सर्गैः) संसृष्टैः॥७॥

अन्वयः-हे मनुष्या! यथाऽहं घोराणामेतानामयासामायतां मरुतां योपब्दिस्ति तां प्रति शृण्वे ये पृतनायन्तं मर्त्यमृणावानं नोमै: सर्गे: पतयन्त तान्सेवे तथा यूयमप्याचरत॥७॥

भावार्थ:-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। ये दुष्टानां पुरुषाणां स्त्रीणां च कठारान् शब्दान् श्रुत्वा न शोचन्ति ते शूरवीरा भवन्ति॥७॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! जैसे मैं (घोराणाम्) मारनेवाली (एतासम्) इन पूर्वोक्त (अयासाम्) प्राप्त हुए वा (आयताम्) (मरुताम्) आते हुए पवनवत् शीघ्रकार्ण मनुष्य क्री जनों की जो (उपिट्दः) वाणी है, उसको (प्रति, शृण्वे) वार-वार सुनता हूँ और (ये) जो (पृत्तसर्थन्तम्) अपने को सेना की इच्छा करते हुए (मर्त्यम्) मनुष्य को (ऋणावानम्) ऋणयुक्त को जैसे (ने) वैसे (ऊमैः) रक्षणादि (सर्गैः) संसर्गों से युक्त विषयों के साथ (पतयन्त) स्वामी के सूपिन मार्चे उनका सेवन करता हूँ, वैसे तुम भी आचरण करो॥७॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमा और विचकर्त्मु प्तोपमालङ्कार हैं। जो दुष्ट पुरुषों और स्त्रियों के कठोर शब्दों को सुनकर नहीं सोच करते हैं, वे श्रूरवीर होते हैं॥७॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषये को अगले मन्त्र में कहा है॥

त्वं मानेभ्य इन्द्र विश्वजन्या रदा मुरुद्धिः शुरुधो गोअग्राः।

स्तवानिभिः स्तवस् देव दुवैर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम्॥८॥९॥

त्वम्। मानेभ्यः। इन्द्र्। विश्वऽर्जन्या। रद्। मुरुत्ऽभिः। शुरुधः। गोऽअग्राः। स्तवनिभिः। स्तुवसे। देव। देवैः। विद्यामे। इषम्। क्रुजनम्। जीरऽदानुम्॥८॥

प्रदर्शः (मानेभ्यः) सत्कारेभ्यः (इन्द्र) सभेश (विश्वजन्या) या विश्वं जनयन्ति ताः। अत्र भव्यगेयेते कत्तीरजन्यशब्दः सुपां सुलुगिति जसस्स्थाने आकारादेशः। (रद) विलिख। अत्र द्वयन्त्रोऽत्तस्तिङ इति दीर्घः। (मरुद्धिः) मरुद्विद्याविद्धिः (शुरुधः) ये शुरून् हिंसकान् सूर्यिकरणान् दधित धरित्ति वे (गोअग्राः) गावः सूर्यिकरणा अग्रे यासान्ताः (स्तवानेभिः) सर्वविद्यास्तावकैः (स्तवसे) स्तुतये

अष्टक-२। अध्याय-४। वर्ग-८-९

मण्डल-१। अनुवाक-२३। सूक्त-१६९

१७९७

(देव) विद्वन् (देवै:) विद्वद्भिः (विद्याम) जानीयाम (इषम्) अन्नम् (वृजनम्) बलम् (जीरदार्नुम्) जीवस्वरूपम्॥८॥

अन्वय:-हे देवेन्द्र! यथा वयं मानेभ्यस्स्तवसे स्तवानेभिर्मरुद्धिर्देवैर्विश्वजन्या शुरुधो गोअग्रा अप क्रि वजने जीरदानुं च विद्याम तथैता एतच्च त्वं रद॥८॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। मनुष्यैविदुषां सत्कारेण विद्या अधीत्र्य पदार्थविद्याविज्ञानं प्राप्तव्यम्॥८॥

अस्मिन् सूक्ते विद्वदादिगुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिर्वेदिवळाले

इत्येकोनषष्ट्युत्तरं शततमं १६९ सूक्तं नवमो ९ वर्गश्च समाप्तः।

पदार्थ:-हे (देव) विद्वान् (इन्द्र) सभापति! जैसे हम लोग (मानेभ्यः) सत्कारों से (स्तवसे) स्तुति के लिये (स्तवानेभिः) समस्त विद्याओं की स्तुति प्रशंसा करनेबाले (मर्राद्धः) पवनों की विद्या जाननेवाले (देवैः) विद्वानों से (विश्वजन्या) विश्व को उत्पन्न करने और (शुम्र्धः) निज हिंसक किरणों के धारण करनेवाले (गो, अग्राः) जिनके सूर्यिकरण आगे विद्यमिन उन जल और (इषम्) अन्न (वृजनम्) बल और (जीरदानुम्) जीवनस्वरूप को (विद्याम) जाने विद्याम जोने स्वर्थ जाने अर्थात् उनका नाम धामरूप सब प्रकार जाने है।

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्क्स्प है। मतुष्ट्यों को योग्य है कि विद्वानों के सत्कार से विद्याओं को अध्ययन कर पदार्थविद्या के विज्ञान की प्राप्त होवें॥८॥

इस सूक्त में विद्वान् आदि के गुणों का विष्ति होने से इसके अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये॥

यह एक सौ उनहत्तरवाँ १६ ९ सूक्त और नवां ९ वर्ग समाप्त हुआ॥

नू नूनमिति पञ्चर्चस्य सप्तत्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य अगस्त्य ऋषिः। इन्द्रो देवता। १ स्वराडनुष्टुप्। २ अनुष्टुप्। ३ विराडनुष्टुप्। ४ निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः। ५ भुरिकृ

> पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥ पुनः प्रकारान्तरेण विद्वद्वणानाह॥

अब एक सौ सत्तरवें सूक्त का आरम्भ है। उसमें आरम्भ से प्रकारान्तर करके विद्वार्ती के गुणे

का वर्णन करते हैं॥

न नूनमस्ति नो श्वः कस्तद्वेद यदद्धेतम्।

अन्यस्य चित्तम्भि सञ्चरेण्यमुताधीतं वि नेश्यति॥ १॥

न। नूनम्। अस्ति। नो इति। श्वः। तत्। वेद्र। यत्। अद्धुतम्। अध्यस्य। विवस्पा अभि। सम्ऽचरेण्यम्। उत्त। आऽधीतम्। वि। नुश्युति॥ १॥

पदार्थ:-(न) निषेधे (नूनम्) निश्चितम् (अस्ति) विद्युते (नो) श्चरः) आगामिदिने (कः) (तत्) (वेद) जानाति (यत्) (अद्भुतम्) आश्चर्यभूतिमव वर्त्तमानम् (अन्यस्य) (चित्तम्) अन्तःकरणस्य स्मरणात्मिकां वृत्तिम् (अभि) (सञ्चरेण्यम्) सम्यक् चित्तुं ज्ञातं योग्येम् (उत्त) अपि (आधीतम्) समन्ताद् धृतम् (वि) (नश्यित) अदृष्टं भवति॥१॥

अन्वयः-हे मनुष्या! यदन्यस्य सञ्चरेण्यं चित्तमृत्विभितं नाभि विनश्यित नाद्य भूत्वा नूनमस्ति नो श्वश्च तदद्धतं को वेद॥१॥

भावार्थ: -यो जीवो भूत्वा न जायते भूत्वा न विनश्यित नित्य आश्चर्यगुणकर्मस्वभावोऽनादिश्चेतनो वर्त्तते तस्य वेत्ताऽप्याश्चर्यभूत:॥१॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! (यत) जो (अन्यस्य) औरों को (सञ्चरेण्यम्) अच्छे प्रकार जानने योग्य (चित्तम्) अन्त:करण की स्मरणात्मिका वृद्धि (उत) और (आधीतम्) सब ओर से धारण किया हुआ विषय (न) न (अभि, वि, प्रथित) नहीं विनाश को प्राप्त होता न आज होकर (नूनम्) निश्चित रहता (अस्ति) है और (नो) न (श्वः) आप्ति दिन निश्चित रहता है (तत्) उस (अद्भुतम्) आश्चर्यस्वरूप के समान वर्त्तमान को (कः) कौत (बेद) जानता है॥१॥

भावार्थ: जो जीवरूप होकर उत्पन्न नहीं होता और न उत्पन्न होकर विनाश को प्राप्त होता है, नित्य आश्चर्य गुण, कर्म, स्वभाववाला अनादि चेतन है, उसका जाननेवाला भी आश्चर्यस्वरूप होता है॥१॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

कि ने इन्द्र जिघांसिस भ्रातरो मुरुतस्तवी

अष्टक-२। अध्याय-४। वर्ग-१०

मण्डल-१। अनुवाक-२३। सूक्त-१७०

१७९९

तेभिः कल्पस्व साधुया मा नः समर्गणे वधीः॥२॥

किम्। नः। इन्द्र। जिघांससि। भ्रातंरः। मरुतः। तवं। तेभिः। कुल्यस्व। साधुऽया। मा। नः। सम्इअरणे। वृधीः॥२॥

पदार्थ:-(किम्) (नः) अस्मान् (इन्द्र) सभेश विद्वन् (जिघांसिस) हन्तुमिच्छेसि (भ्रातरः) बन्धवः (मरुतः) मनुष्याः (तव) (तेभिः) तैः सह (कल्पस्व) समर्थो भव (साध्रुषा) साधुना कर्मणा (मा) (नः) अस्मान् (समरणे) सङ्ग्रामे। समरण इति संग्रामनामसु पठितम्। (निश्ं २.१७) विधीः) हन्याः॥२॥

अन्वय:-हे इन्द्र! ये वयं मरुतस्तव भ्रातरः स्मस्तान्नोऽस्मान् किं जिघांसिहि? हेशि: स्राधुया कल्पस्व समरणे नो मा वधी:॥२॥

भावार्थ:-ये बन्धून् पीडियतुमिच्छेयुस्ते सदा पीडिता जायन्ते वे अक्षितुमिच्छन्ति ते समर्था भवन्ति।ये सर्वोपकारकास्तेषां किञ्चिदप्यप्रियं न प्राप्तं भवति॥ अ

पदार्थ:-हे (इन्द्र) सभापित विद्वान्! जो हम (मरुतः) मनुष्यं लोग (तव) आपके (भ्रातरः) भाई हैं, उन (नः) हम लोगों को (किम्) क्या (जिघांसिस) पार्ग की हैंच्छा करते हो? (तेभिः) उन हम लोगों के साथ (साधुया) उत्तम काम से (कल्पस्व) समर्थ होओं और (समरणे) संग्राम में (नः) हम लोगों को (मा, वधीः) मत मारिये॥२॥

भावार्थ: - जो कोई बन्धुओं को पीड़ा दूनि चाहे बे सदा पीड़ित होते हैं और जो बन्धुओं की रक्षा किया चाहते हैं, वे समर्थ होते हैं अर्थात सब काम उनके प्रबलता से बनते हैं। जो सबका उपकार करनेवाले हैं, उनको कुछ भी काम अप्रियमहीं प्राप्त होता॥२॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

<mark>फिर उसी विष्</mark>य को अगले मन्त्र में कहा है॥

किं नो भ्रातरगस्त्य संख्या सन्नति पन्यसे।

विद्या हि ते यथा मनोऽम्पभ्यमित्र दित्सिस॥३॥

किम्। नु:। श्रातु:। असम्प्र्यम्। सर्खा। सन्। अति। मृन्यसे। विद्या हि। ते। यथा। मर्नः। अस्मभ्यम्। इत्। न। दित्सुसि॥३॥

पदार्थ: (किम्) प्रश्ने (न:) अस्मान् (भ्रात:) बन्धो (अगस्त्य) अगस्तौ विज्ञाने साधो (सखा) मित्रम् (सन्) (अति) (मन्यसे) (विद्य) जानीयाम। अत्र द्वयचोऽतस्तिङ इति दीर्घ:। (हि) किल (ते) तव (यथा) (मन्न:) अन्त:करणम् (अस्मभ्यम्) (इत्) एव (न) (दित्सिस्) दातुमिच्छिसि॥३॥

अन्वयः-हे अगस्त्य भ्रातः! विद्वन् सखा संस्त्वं नः किमति मन्यसे? यथा ते मनोऽस्मभ्यं हि न दित्सिसि अन्वा वर्यं विद्या।३॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। ये येषां सखायस्ते मनोकर्मवाग्भिस्तेषां प्रियमाचरेयुर्यावज्ज्ञानं स्वस्य भवेत्तावन्मित्राय समर्पयेत्॥३॥

पदार्थ:-हे (अगस्त्य) विज्ञान में उत्तमता रखनेवाले (भ्रात:) भाई! विद्वान् (सखा) (सन्) होते हुए आप (न:) हम लोगों को (किम्) क्या (अति, मन्यसे) अतिमान करते हो? अर्थात् हमारे मान को छोड़कर वर्तते हो? (यथा) जैसे (ते) तुम्हारा अपना (मन:) अन्त:करण (अस्मिध्यम्) हमारे लिये (हि) ही (न) न (दित्सिस) देना चाहते हो अर्थात् हमारे लिये अपने अन्त:करण की उत्साहित क्या नहीं किया चाहते हो? वैसे (इत्) ही तुमको हम लोग (विद्य) जानें॥३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो जिनके मित्र हों वे मूर्त, वचन और कर्म से उनकी प्रसन्नता का काम करें और जितना विद्या, ज्ञान अपने को हो, उतना मित्र के समर्पण करें॥३॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

अरं कृण्वन्तु वेद्धिं समुग्निमिन्धतां पुरः। तत्रामृतस्य चेतनं युज्ञं ते तनवावहै॥४॥

अर्रम्। कृण्वन्तु। वेदिम्। सम्। अग्निम्। इस्थ्रताम्। पुरः। तत्री अमृतस्य। चेतेनम्। युज्ञम्। ते। तुनुवावहै॥५॥

पदार्थ:-(अरम्) अलम् (कृण्वन्तु) कुर्वेन्तु (वेदिम्) वेत्ति यया तां प्रज्ञाम् (सम्) (अग्निम्) पावकिमव विज्ञानम् (इन्धताम्) दीप्यन्तु (पुरः) प्रथमम् (तत्र) वेद्याम् (अमृतस्य) अविनाशिनो जीवस्य (चेतनम्) चेतित येन तम् (यज्ञम्) यजित् संगु छिन्ति येन तम् (ते) तव (तनवावहै) विस्तृणावहै॥४॥

अन्वय:-हे सखे! यथा विद्वांसो येश पुरो वेदमग्निं च सिमन्धतामरं कृण्वन्तु तत्राऽमृतस्य ते चेतनं यज्ञं तथाऽऽवामध्यापकोपदेशकौ तनवावहै॥४॥

भावार्थ:-यथा ऋत्विन्यजमाना वह्नै मुगन्ध्यादिद्रव्यं हुत्वा वायुजले संशोध्य सुखेन सहितं जगत् कुर्वन्ति तथाऽध्यापकोपदेशकावन्येषामन्त:करणेषु विद्यासुशिक्षे संस्थाप्य सर्वेषां सुखं विस्तारयताम्॥४॥

पदार्थ: – हे मित्र! जैसे बिद्धान् जन जहाँ (पुर:) प्रथम (वेदिम्) जिससे प्राणी विषयों को जानता है, उस प्रज्ञा और (अग्निम्) अग्नि के समान देदीप्यमान विज्ञान को (सिमिश्यताम्) प्रदीप्त करें वा (अरम्, कृण्वन्तु) सुशोभित करें (तत्र) वहाँ (अमृतस्य) विनाशरहित जीवमात्र (ते) आपके (चेतनम्) चेतन अर्थात् जिससे अच्छे प्रकार यह जीव जानता और (यज्ञम्) विषयों को प्राप्त होता, उसको वैसे हम पढ़ाने और उपदेश करनेवाले (तनवावहै) विस्तारें॥४॥

भावार्थ:-जैसे ऋतु-ऋतु में यज्ञ करानेवाले और यजमान अग्नि में सुगन्धादि द्रव्य का हवन कर इससे बासू और जल को अच्छे प्रकार शोध कर जगत् को सुख से युक्त करते हैं, वैसे अध्यापक और अष्टक-२। अध्याय-४। वर्ग-१०

मण्डल-१। अनुवाक-२३। सूक्त-१७०

उपदेशक औरों के अन्त:करणों में विद्या और उत्तम शिक्षा संस्थापन कर सबके सुख का विस्तार करें॥४॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

त्वमीशिषे वसुपते वसूनां त्वं मित्राणां मित्रपते धेष्ठः।

इन्द्र त्वं मुरुद्धिः सं वेदस्वाध् प्राशानि ऋतुथा हुवींषि॥५॥१०॥

त्वम्। ईशिषे। वसुऽपते। वसूनाम्। त्वम्। मित्राणाम्। मित्रऽपते। धेष्ठः। इन्द्री त्वम्। मुरुत्ऽभिः। सम्। वदुस्व। अर्थ। प्र। अशान्। ऋतुऽथा। हुवींषि॥५॥

पदार्थ:-(त्वम्) (ईशिषे) ऐश्वर्यं करोषि (वसुपते) वसूर्तां धनानी पालक (वसूनाम्) कृतचतुर्विंशतिवर्षब्रह्मचर्याणां पृथिव्यादिवत् क्षमादिधर्मयुक्तानाम् (त्वम्) (मित्रणाम्) सुहृदाम् (मित्रपते) मित्राणां पालक (धेष्ठ:) अतिशयेन धाता (इन्द्र) परमैश्वर्य्यप्रद्र (त्वम्) (मुर्हद्भिः) वायुवद्वर्त्तमानैविद्वद्भिः सह (सम्) (वदस्व) (अध) अनन्तरम् (प्र) (अशान) भृहत्क्व (ऋतुथा) ऋत्वनुकूलानि (हवींषि) अतुं योग्यान्यन्नानि॥५॥

अन्वय:-हे वसूनां वसुपते! त्वमीशिषे। हे मित्राणां मित्रपते! त्वं धेष्ठो भवसि। हे इन्द्र! त्वं मरुद्धिः सह संवदस्वाध त्वमृतुथा हवींषि प्राशान॥५॥

भावार्थ:-ये धनवन्तः सर्वेषां सुहृदो ब्रिहेभिः सह संस्कृतान्यन्नानि भुञ्जते विद्यावृद्धविद्वद्भिः सह संवदन्ते ते समर्था ऐश्वर्यवन्तो जायन्ते॥५॥

अस्मिन् सूक्ते विद्वदुणवर्णनाद्नेत्तदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेद्यम्॥

इति सप्तत्युत्तग्रं (शततेषं १७० सूक्तं दशमो १० वर्गश्च समाप्त:॥

पदार्थ:-(वसूनाम्) किया है चौबीस वर्ष ब्रह्मचर्य जिन्होंने और जो पृथिव्यादिकों के समान सहनशील हैं उन (वसुपते) है धनों के स्वामी (त्वम्) तुम (ईशिषे) ऐश्वर्यवान् हो वा ऐश्वर्य्य बढ़ाते हो। हे (मित्राणाम्) मित्रों में (मित्रपते) मित्रों के पालनेवाले श्रेष्ठ मित्र! (त्वम्) तुम (धेष्ठः) अतीव धारण करनेवाले होते हो। हे (इन्द्र) प्रमिश्वर्य के देनेवाले! (त्वम्) तुम (मरुद्धिः) पवनों के समान वर्तमान विद्वानों के साथ (संवदस्व) संवाद करो। (अध) इसके अनन्तर (ऋतुथा) ऋतु-ऋतु के अनुकूल (हवींषि) खाने धोरय क्षत्रों को (प्र, अशान) अच्छे प्रकार खाओ॥५॥

भृतिमर्थ: े जो धनवान् सब के मित्र बहुतों के साथ संस्कार किये हुए अन्नों को खाते और विद्या से परिपूर्ण विद्वानों के साथ संवाद करते हैं, वे समर्थ और ऐश्वर्यवान् होते हैं॥५॥

इस सूक्त में विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गित है, यह जानना चाहिये॥

ऋग्वेदभाष्यम् १८०२ यह एक सौ सत्तरवां १७० सूक्त और दशवां १० वर्ग समाप्त हुआ॥ प्रतीत्यस्य षड्चस्यैकसप्तत्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य अगस्त्य ऋषिः। मरुतो देवताः। १,५ निचृत् त्रिष्टुप्। २ त्रिष्टुप्। ४,६ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। ३ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः।

पञ्जम स्वर:॥

पुनर्विद्वत्कृत्यमाह॥

अब एक सौ इकहत्तरवें सूक्त का आरम्भ है। उसमें फिर विद्वानों के कृत्य का वर्णम कस्ते हैं।

प्रति व एना नर्मसाहमैमि सूक्तेन भिक्षे सुमृतिं तुराणाम्। रुराणता मरुतो वेद्याभिनिं हेळो धृत्त वि मुचध्वमश्चान्॥ १॥

प्रति। वः। एना। नर्मसा। अहम्। एमि। सुऽउक्तेर्न। भिक्षेः। सुऽमिनिम्। तुराप्पामः। र्राणतां। मुरुतः। वेद्याभिः। नि। हेळः। धुत्त। वि। मुच्ध्वम्। अश्वान्॥ १॥

पदार्थ:-(प्रति) (व:) युष्मान् (एना) एनेन (नमसा) न्मस्कारेष्णीन वा (अहम्) (एमि) प्राप्नोमि (सूक्तेन) सुष्ठु कथितेन (भिक्षे) याचे (सुमितम्) क्रोभनां पितृष् (तुराणाम्) शीघ्रकारिणाम् (रराणता) रममाणेन मनसा (मरुत:) विद्वांसः (वेद्याभिः) वेदितुं अभ्याभिः (नि) (हेळः) अनादरम् (धत्त) (वि) (मुचध्वम्) त्यजत (अश्वान्) अत्युत्कृष्टवेगवतः ।

अन्वय:-हे मरुतोऽहमेना नमसा व: प्रत्येमि। सुक्रीन सुराणां सुमिति भिक्षे। हे मरुतो! यूयं रराणता मनसा वेद्याभिर्हेडो निधत्ताश्चान् विमुचध्वञ्च॥१॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार्टी ये श्रुद्धिनान्तःकरणेन नानाविज्ञानानि लभन्ते ते क्वाप्यनादरं नाप्नुवन्ति॥१॥

पदार्थ:-हे (मरुत:) विद्वानो (अहम) में (एना) इस (नमसा) नमस्कार सत्कार वा अन्न से (व:) तुम्हारे (प्रति, एमि) प्रति आता हूँ और (सूक्तेन) सुन्दर कहे हुए विषय से (तुराणाम्) शीघ्रकारी जनों की (सुमितम्) उत्तम मित्र को (भिक्षे) मांगता हूँ। हे विद्वानो! तुम (रराणता) रमण करते हुए मन से (वेद्याभि:) दूसरे को बताने योग्य क्रियाओं से (हेड:) अनादर को (नि, धत्त) धारण करो अर्थात् सत्कार-असत्कार के विश्वयों को घित्रार के हर्ष-शोक न करो। और (अश्वान्) अतीव उत्तम वेगवान् अपने घोड़ों को (वि, मुम्ब्यम्) छोड़ो॥१॥

भावार्थ: हस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो शुद्ध, अन्त:करण से नाना प्रकार के विज्ञानों को प्राप्त होते हैं, वे कहीं अनादर नहीं पाते॥१॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

पुषे वः स्तोमो मरुतो नर्मस्वान्हुदा तृष्टो मर्नसा धायि देवाः।

उपेमा यात मनसा जुषाणा यूयं हि ष्टा नमस इद्वृधासः॥२॥

पुषः। वः। स्तोमेः। मुरुतः। नर्मस्वान्। हृदा। तृष्टः। मर्नसा। धायि। देवाः। उपे। ईम् आ। यातः मर्नसा। जुषाणाः। यूयम्। हि। स्था नर्मसः। इत्। वृधार्सः॥२॥

पदार्थ:-(एष:) (व:) युष्माकम् (स्तोम:) स्तुतिविषयः (मस्तः) विद्वांसः (नमस्वान्) सत्कारात्मकः (हृदा) हृदयस्थेन (तृष्टः) विहितः (मनसा) अन्तः करणेन (धार्षः) ध्रियेत (देवाः) कामयमानाः (उप) (ईम्) सर्वतः (आ) (यात) समन्तात्प्राप्नुत (मनसा) चित्तेन (जुषाणाः) स्रोवमानाः (यूयम्) (हि) किल (स्थ) भवथ। अत्रान्येषामपीति दीर्घः। (नमसः) अत्राद्यैश्वर्यस्य (इत्) एव (वृधासः) वर्द्धमाना वर्द्धयितारो वा॥२॥

अन्वय:-हे देवा मरुतो! येनैष वो नमस्वान् हृदा तष्टः स्तोमो मनसा धार्णि त हि प्रच्या जुषाणाः सन्तो यूयमुपा यात नमस इदीं वृधासः स्थ॥२॥

भावार्थ:-ये धार्मिकाणां विदुषां शीलं स्वीकुर्वन्ति ते प्रश्लंसिता भेषज्ञि॥२॥

पदार्थ:-हे (देवा:) कामना करते हुए (मरुत:) विद्वानी! जिससे (एष:) यह (व:) तुम्हारा (नमस्वान्) सत्कारात्मक (हृदा) हृदयस्थ विचार से (तृष्ट्:) विधान किया (स्तोम:) सत्कारात्मक स्तुति विषय (मनसा) मन से (धायि) धारण किया जाय (हि) उसी को (मनसा) मन से (जुषाणा:) सेवते हुए (यूयम्) तुम लोग (उप, आ, यात) समीप आओ और (नमसूर:) अन्नादि ऐश्वर्य की (इत्) ही (ईम्) सब ओर से (वृधास:) वृद्धि को प्राप्त वा उसको ब्रुट्सिवाल (स्थ्र) होओ॥२॥

भावार्थ:-जो धार्मिक विद्वानों के श्रील को स्वाकार करते हैं, वे प्रशंसित होते हैं॥२॥

पुन तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

स्तुतासी नो मुरुती मुळ्यन्तूत स्तुतो मुघवा शम्भविष्ठ:।

उर्ध्वा नं: सन्तु कोप्या बनान्यहां विश्वा मरुतो जिगीषा॥३॥

स्तुतासः। नः। मुक्तः। मुक्रयुसु। उता स्तुतः। मघऽवा। शम्ऽभीवष्ठः। ऊर्ध्वा। नः। सुन्तु। कोम्या। वनानि। अहानि। विश्वा। मुक्तुः। जिगीषा। र।

पदार्थ: (स्तृतास:) प्रशंसिताः (नः) अस्मान् (मस्तः) बलिष्ठा विद्वांसः (मृळयन्तु) सुखयन्तु (उत) अपि (स्तृतः) प्रशंसां प्राप्तः (मघवा) पूजितुं योग्यः (शम्भविष्ठः) सुखस्यः भावयितृतमः (उर्ध्वा) उत्कृष्टानि (नः) अस्माकम् (सन्तु) (कोम्या) प्रशंसनीयानि (वनानि) भजनीयानि (अहानि) दिनानि (विश्वा) सर्वाणि (मस्तः) शूरवीराः (जिगीषा) जेतुमिष्टानि॥३॥

अन्वयः-हे मरुतोऽस्माभिः स्तुतासो भवन्तो नोऽस्मान् मृळयन्तु उतापि स्तुतस्सन्मघवा शम्भविष्ठोऽस्तु। हे क्त्तो यथो नो विश्वा कोम्या जिगीषा वनान्यहान्यूर्ध्वा सन्ति तथा युष्माकमपि सन्तु॥३॥ अष्टक-२। अध्याय-४। वर्ग-११

मण्डल-१। अनुवाक-२३। सूक्त-१७१

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। मनुष्यैर्येषु यादृशा गुणकर्मस्वभावास्स्यु: तेषां तादृश्येव प्रशंसा कार्या, त एव प्रशंसिता भवेयुर्येऽन्येषां सुखोन्नतये प्रयतेरन्, त एव सेवनीया: स्युर्य इह प्रापाचरणं विहाय धार्मिका भवेयुस्ते प्रतिदिनं विद्यासुशिक्षावृद्धय उद्योगिन: स्यु:॥३॥

पदार्थ:-हे (मरुत:) बलवान् विद्वानो! हम लोगों से (स्तुतास:) स्तुति किए हुए आए (त्र:) हमको (मृळयन्तु) सुखी करो (उत) और (स्तुत:) प्रशंसा को प्राप्त होता हुआ (मृथवा) संस्कार करने योग्य पुरुष (शम्भविष्ठ:) अतीव सुख की भावना करनेवाला हो। हे (मरुत:) शूरवीर जनो! जैसे (न:) हमारे (विश्वा) समस्त (कोम्या) प्रशंसनीय (जिगीषा) जीतने और (वनानि) खेवने योग्य (अहानि) दिन (उर्ध्वा) उत्कृष्ट हैं, वैसे तुम्हारे (सन्तु) हों॥३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को च्राहिए कि जिनमें जैसे गुण, कर्म, स्वभाव हों उनकी वैसी ही प्रशंसा करें और प्रशंसा योग्य वे ही हों जो औरों की सुखोन्नति के लिये प्रयत्न करें और वे ही सेवने योग्य हों जो पापाचरण को छोड़ धार्मिक हों, वे प्रतिदिन विद्या और उत्तम शिक्षा की वृद्धि के अर्थ उद्योगी हों॥३॥

पुनस्तमेव विषयमाह।

फिर उसी विषय को अग्रले मन्त्र में बहा है॥

अस्मादहं तिविषादीषेमाण इन्द्रीद्धिया मुस्ती रेजपानै:।

युष्पभ्यं हुव्या निर्शितान्यासुन् तान्युरि चुकुमा मृळता नः॥४॥

अस्मात्। अहम्। तिविषात्। ईषंमाण्य इन्द्रात्। भ्रिया। मुरुतः। रेजमानः। युष्मभ्यम्। हृव्या। निऽर्शितानि। आसुन्। तानि। आरे। चुकुम्। मृळते। नुः॥ ४॥

पदार्थ:-(अस्मात्) (अहम्) (तिविषात्) बिलिष्ठात् (ईषमाणः) ऐश्वर्यं कुर्वन्। अत्र बहुलं छन्दसीति शपो लुक्। (इन्द्रात्) परमैश्वर्यात् सभासेनेशात् (भिया) भयेन (मरुतः) प्राण इव प्रियाः सभासदः (रेजमानः) कम्पमानः (युष्मभ्यम्) (हव्या) आदातुमर्हाणि (निशितानि) तीव्राणि शस्त्रास्त्राणि (आसन्) सन्ति (तानि) (आरे) समीपे (चकृम) कुर्याम (मृळत) सुखयत। अत्रोभयत्राऽन्येषामपीति दीर्घः। (नः) अस्मान्॥४॥

अन्वय:- है मरुतोऽस्मात्तविषादीषमाण इन्द्राद्भिया रेजमानोऽहिमदं निवेदयामि। यानि युष्मभ्यं हव्या निशितान्यासंस्तानि वयमारे चकृम तैर्नोऽस्मान् यूयं यथा मृळत तथा वयमपि युष्मान् सुखयेम॥४॥

भाषार्थः शिदा कस्माच्चिद्राजपुरुषादन्यायेन पीड्यमानः प्रजाजनः सभायां स्वदुःखं निवेदयेत् तदा तस्य हच्छल्यमुत्पाटयेत्। येन राजपुरुषा न्याये वर्त्तरन्, प्रजाजनाश्च प्रीताः स्युः। यावन्तः स्त्रीपुरुषा भवेष्ट्रस्तावन्तः सर्वे शस्त्राभ्यासं कुर्युः॥४॥

पदार्थ:-हे (मरुत:) प्राण के समान सभासदो! (अस्मात्) इस (तिवधात्) अत्यन्त बलवान् से (ईषमाण:) ऐश्वर्य करता और (इन्द्रात्) परमैश्वर्यवान् सभा सेनापित से (भिया) भय से (रेजमान:) कम्पता हुआ (अहम्) मैं यह निवदेन करता हूँ कि जो (युष्मभ्यम्) तुम्हारे लिये (हव्या) प्रहण कर्मे योग्य (निशितानि) शस्त्र-अस्त्र तीव्र (आसन्) हैं (तानि) उनकी हम लोग (आरे) समीव (चकृम्) करें और उनसे (न:) हम लोगों को तुम जैसे (मृळत) सुखी करों, वैसे हम भी तुम लोगों की सुखी करें॥४॥

भावार्थ:-जब किसी राजपुरुष से अन्यायपूर्वक पीड़ा को प्राप्त होता हुआ प्रजाजन सभा के बीच अपने दु:ख निवेदन करे, तब उसके मन के कांटों को उपाड़ देवें अधात उसके मन की शुद्ध भावना करा देवें, जिससे राजपुरुष न्याय में वर्तें और प्रजाजन भी प्रसन्न हों, जितने स्त्री पुरुष हों सब शस्त्र का अभ्यास करें॥४॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।

येन मार्नासश्चितयंन्त उस्रा व्युष्टिषु शर्वसा शर्श्वतीनिम्। स नो मुरुद्धिर्वृषभु श्रवो धा उत्र उप्रेभिः स्थितः सहोद्धाः॥५॥

येन्। मार्नासः। चितयेन्ते। उस्राः। विऽउष्टिषु। अवसाः। शर्श्वतिमाम्। सः। नः। मुरुत्ऽभिः। वृष्भा श्रवः। धाः। उत्रः। उप्रेभिः। स्थविरः। सहःऽदाः॥५॥

पदार्थ:-(येन) (मानास:) विचारवन्त्रः (चितयुन्ते) संज्ञापयन्ति (उस्त्रा:) मूलराज्ये परम्परया निवसन्तः (व्यृष्टिषु) विविधासु वसितषु (शबसा) बलेन (शश्चतीनाम्) सनातनीनाम् (सः) (नः) अस्माकम् (मरुद्धिः) विद्वद्धिः सह (वृष्पः) सुखानां वर्षक (श्रवः) अन्नादिकम् (धाः) दध्याः। अत्राडभावः। (उग्रः) तीव्रस्वभावः (उग्रेभिः) तेजस्विभिः (स्थिवरः) कृतज्ञो वृद्धः (सहोदाः) बलप्रदः॥५॥

अन्वय:-येन शवसा विर्तमाना शक्ष्तीमां व्यृष्टिषूस्रा मानासो विद्वांस: प्रजाश्चितयन्ते। हे वृषभ सभेशोग्रेभिर्मरुद्धिस्सहोग्र: स्थ्रविर; सहोद्दा, संस्त्वं श्रवो धा: स नोऽस्माकं राजा भव॥५॥

भावार्थः - यत्र सिर्भाषां भौलाः शास्त्रविदो धार्मिका सभासदः सत्यं न्यायं कुर्युविद्यावयोवृद्धः सभेशश्च स्यात् तत्रु १० न्यायस्य प्रवेशो न भवति॥५॥

पदार्थ्य: (येम) जिस (शवसा) बल से वर्त्तमान (शश्वतीनाम्) सनातन (व्युष्टिषु) नाना प्रकार की विस्तियों में (उस्त्राः) मूल राज्य में परम्परा से निवास करते हुए (मानासः) विचारवान् विद्वान् जन प्रजाजनों को (चितवन्ते) चैतन्य करते हैं। हे (वृषभ) सुखों को वर्षा करनेवाले सभापित! (उग्रेभिः) तेजस्वी (मर्मुद्धः) विद्वानों के साथ (उग्रः) तीव्रस्वभाव (स्थविरः) कृतज्ञ वृद्ध (सहोदाः) बल के

अष्टक-२। अध्याय-४। वर्ग-११

मण्डल-१। अनुवाक-२३। सूक्त-१७१

देनेवाले होते हुए आप (श्रव:) अन्न आदि पदार्थ को (धा:) धारण कीजिये और (स:) सो आप (न:) हमारे राजा हुजिये॥५॥

भावार्थ:-जहाँ सभा में मूल जड़ के अर्थात् निष्कलङ्क कुल परम्परा से उत्पर्भ हुए और शास्त्रवेत्ता धार्मिक सभासद् सत्य न्याय करें और विद्या तथा अवस्था से वृद्ध सभापित भी हो, बहाँ अन्याय का प्रवेश नहीं होता है॥५॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

त्वं पाहीन्द्र सहीयसो नृन् भवा मुरुद्धिरवयातहेळा:।

सुप्रकेतेभिः सासहिर्दधानो विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम्।। रूपे ११॥

त्वम्। पाहि। इन्द्र। सहीयसः। नृन्। भवं। मुरुत्ऽभिः। अवयात्रऽहेळाः। सुउप्रकेतेभिः। सुसहिः। दर्धानः। विद्यामं। इषम्। वृजनंम्। जीरऽदानुम्॥६॥

पदार्थ:-(त्वम्) (पाहि) (इन्द्र) सभेश (सहीयसः) अतिशयेम् ब्रॅलयुक्तान् सोढॄन् (नृन्) मनुष्यान् (भव) अत्र द्वयचोऽतस्तिङ इति दीर्घः। (मरुद्धिः) प्राण इत् रक्षकेर्विद्वद्भिः (अवयातहेळाः) अवयातं दूरीभूतं हेळो यस्मात् सः (सुप्रकेतेभिः) शोभनः प्रकृष्टः केस्रो विज्ञानं येषान्ते (सासिहः) अतिशयेन सोढा (दधानः) धरन् (विद्याम) जानीयाम (इषम्) विद्यायोगमं बोधम् (वृजनम्) बलम् (जीरदानुम्) जीवात्मानम्॥६॥

अन्वयः-हे इन्द्र! त्वं सुप्रकेतेभिर्मरुद्धिः सह सह्रोष्ट्रसो नृन् पाहि। अवयातहेळा भव यथेषं वृजनं जीरदानुं दधानः सन् सासहिर्भवसि तथा भूत्वैतद्वयं विद्यामा। ६५।

भावार्थ:-ये मनुष्याः क्रोधादिदोषरहिताः विद्याविज्ञानधर्मयुक्ताः क्षमावन्तः सज्जनैस्सह अदण्ड्यान् रक्षन्ति दण्ड्यान् दण्ड्यन्ति च ते राजकर्मचारिणो भवितुमर्हन्ति॥६॥

अत्र विद्वत्कृत्यवर्णनादित्दर्थस्य पूर्वस्वतार्थेन सह सङ्गतिर्वेद्या॥

इति एकस्पतित्युत्तारे शततमं १७१ सूक्तमेकादशो ११ वर्गश्च समाप्त:॥

पदार्थ:-हे (इन्द्र) स्थार्यति! (त्वम्) आप (सुप्रकेतेभिः) सुन्दर उत्तम ज्ञानवान् (मरुद्धिः) प्राण के समान रक्षा करनेवाले विद्वानों के साथ (सहीयसः) अतीव बलयुक्त सहनेवाले (नृन्) मनुष्यों की (पाहि) रक्षा किंग्ये और (अवयातहेळाः) दूर हुआ अनादर अपकीर्तिभाव जिससे ऐसे (भव) हूजिये जैसे (इषमू) विद्या योग से उत्पन्न हुए बोध (वृजनम्) बल और (जीरदानुम्) जीवात्मा को (दधानः) धारण किंते हुए (सासिहः) अतीव सहनशील होते हो, वैसे हुए इसको हम लोग (विद्याम) जानें॥६॥

भावार्थ:-जो मनुष्य क्रोधादि दोषरहित, विद्या विज्ञान धर्म्मयुक्त, क्षमावान् जन, सज्जनों के साथ जो दण्ड देने योग्य नहीं हैं उनकी रक्षा करते और दण्ड देने योग्यों को दण्ड देते हैं, वे राजकर्मचारी होने के योग्य हैं॥६॥

इस सूक्त में विद्वानों के कृत्य का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले स्वान के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए॥

यह एक सौ इकहत्तरवां १७१ सूक्त और ग्यारहवां ११ वर्ग समाप्त हुआ।।

चित्र इत्यस्य त्रृचस्य द्विसप्तत्युत्तरस्य शततमस्यागस्त्य ऋषिः। मरुतो देवताः। १ विराड्

गायत्री। २,३ गायत्री छन्द:। षड्ज: स्वर:॥

अथ वायुदृष्टान्तेन विद्वद्वणानाह॥

अब तीन ऋचावाले एक सौ बहत्तरवें सूक्त का आरम्भ है। उसके प्रथम मन्त्र में पवन के दृष्टान्त से विद्वानों के गुणों का वर्णन करते हैं।।

चित्रो वोऽस्तु यामश्चित्र ऊती सुदानवः।

मरुतो अहिभानवः॥ १॥

चित्रः। वः। अस्तु। यामः। चित्रः। ऊती। सुऽदानुवः। मर्म्तः। अहिऽभान्वः। शा

पदार्थ:-(चित्र:) विचित्रः (वः) युष्माकम् (अस्तु) भवतु (धामः) पर्मनम् (चित्रः) अद्भुतः (ऊती) रक्षणादिना (सुदानवः) सुष्ठु दातारः (मरुतः) प्राणवद्धर्तमोनाः अहिभानवः) अहेर्मेघस्य प्रकाशकाः॥१॥

अन्वय:-हे ऊती सह वर्त्तमाना अहिभानवः सुदानवो मरुत्रो ! यथा बायूना चित्रो यामश्चित्रः स्वभावोऽस्ति तथा वोऽस्तु॥१॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। हे मनुख्या! यथा जीवनप्रदानवर्षाकारणादीनि वायूनामद्भुतानि कर्माणि सन्ति तथा भवतामपि सन्तु। १।।

पदार्थ: -हे (ऊती) रक्षा आदि के प्राथ वर्तमान (अहिभानवः) मेघ का प्रकाश करनेवाले (सुदानवः) सुन्दर दानशील और (मरुतः) प्राण के सम्मान वर्त्तमान जनो! जैसे पवनों का (चित्रः) अद्भुत (यामः) गमन करना वा (चित्रः) चित्र विविध्य स्त्रभाव है, वैसे (वः) तुम्हारा (अस्तु) हो॥१॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वान्कलुं जोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! जैसे जीवन का अच्छे प्रकार देना, वर्षा करना आदि पवनों के अद्भुत कम्म हैं, षैसे तुम्हारे भी हों॥१॥

पुन्स्तमेव विषयमाह॥

फिर इसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

आरे सा वं: सुंदानवों) मरुत ऋञ्जती शरुः।

आरे अरुषा यमख्या २॥

आरेर सा वः सुऽदान्वः। मर्रतः। ऋञ्जती। शर्रः। आरे। अश्मी। यम्। अस्येथ॥२॥

पदार्थ: (आरे) दूरे (सा) (व:) युष्माकम् (सुदानव:) प्रशस्तदानकर्त्तारः (मरुत:) वायुवद्बिल्षष्टाः (ऋञ्जती) ऋञ्जमाना पाचियत्री (शरुः) दुष्टानां हिंसिका ऋष्टिः (आरे) समीपे (अश्मा) मेप्ल इक (यम्) शस्त्रविशेषम् (अस्यथ) प्रक्षिपत॥२॥

अन्वयः-हे सुदानवो मरुतो! वो युष्पाकं या ऋञ्जती शरुरस्ति साऽस्मत्त आरे अस्तु। यं शस्त्रविशेषमेशमा यूयमस्यथ सोऽस्मत्त आरे अस्तु॥२॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये मनुष्या मेघवत् सुखप्रदा दुष्टानां त्यक्तारः। श्रेष्टानां समीपे दुष्टेभ्यो दूरे वसन्ति ते सङ्गन्तव्या भवन्ति॥२॥

पदार्थ:-हे (मुदानवः) प्रशंसित दान करनेवाले (मरुतः) वायुवत् बलकृति विद्वारों! (वः) तुम्हारी जो (ऋज्ञती) पचाती-जलाती (शरुः) दुष्टों को विनाशती हुई द्विधारा तलकार है (सा) वह हमसे (आरे) दूर रहे और (यम्) जिस विशेष शस्त्र को (अश्मा) मेघ के समान तुम् अस्त्रकों छोड़ते हो, वह हमारे (आरे) समीप रहे॥२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य प्रेघ के समान सुख देनेवाले, दुष्टों को छोड़नेवाले, श्रेष्ठों के समीप और दुष्टों से दूर वसते हैं, वे सङ्ग करने श्रेएय हैं।। ९।।

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।

तृणुस्कुन्दस्य नु विशः परि वृङ्क्त सुदानवः

अर्ध्वान्नः कर्त्त जीवसे॥३॥१२॥

तृणुऽस्कुन्दस्य। नु। विश्राः। परि। वृङ्क्तु। सुर्द्धानुष्टः। कुर्क्नान्। नुः। कुर्तु। जीवसी॥३॥

पदार्थ:-(तृणस्कन्दस्य) यस्तृणानि स्क्रिन्दित् ग्रेळिति गमयित वा तस्य (नु) शीघ्रम् (विशः) प्रजाः (पिर) सर्वतः (वृङ्क्त) त्यजत (सुक्तिवः) उत्तुमदानाः (ऊद्र्ध्वान्) उत्कृष्टान् (नः) अस्मान् (कर्त्त) कुरुत (जीवसे) जीवितुम्॥३॥

अन्वय:-हे सुदानवो! यूयं तृणुस्कन्द्रस्य विशों नु परि वृङ्क जीवसे नो ऊद्ध्वीन् कर्त॥३॥

भावार्थ:-यथा वायुः स्क्रीः प्रजा रक्षति तथा सभेशो वर्त्तेत। यथा प्रजापीडा नश्येत्, मनुष्या उत्कृष्टा दीर्घजीविनो जायेरन् क्या सर्वेरनुष्टेयम्॥३॥

अत्र वायुवद्विद्वद्व्याप्रभासनाद्वेष्मदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिर्वेद्या॥

इति द्विस्पान्युत्तरं शततमं १७२ सूक्तं द्वादशो १२ वर्गश्च समाप्त:॥

पदार्थ: हैं (सुदान्वः) उत्तम दान देनेवाले! तुम (तृणस्कन्दस्य) जो तृणों को प्राप्त अर्थात् तृणमात्र का ल्लोंभ कर्ता वा दूसरों को उस लोभ पर पहुँचाता उसकी (विशः) प्रजा को (नु) शीघ्र (पिर, वृङ्क) सब और से छोड़ों और (जीवसे) जीवने के अर्थ (नः) हम लोगों को (ऊद्ध्वान्) उत्कृष्ट (कर्त्त) करो॥ अर्थ

भावार्थ:-जैसे वायु समस्त प्रजा की रक्षा करता वैसे सभापित वर्ते। जैसे प्रजाजनों की पीड़ा नष्ट में, मनुष्य उत्कृष्ट अति उत्तम बहुत जीवनेवाले उत्पन्न हों, वैसा कार्य्यारम्भ सबको करना चाहिये॥३॥ अष्टक-२। अध्याय-४। वर्ग-१२

मण्डल-१। अनुवाक-२३। सूक्त-१७२

इस सूक्त में पवन के तुल्य विद्वानों के गुणों की प्रशंसा होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले

सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए॥

यह एक सौ बहत्तरवां १७२ सूक्त और बारहवां १२ वर्ग समाप्त हुआ॥

गायदित्यस्य त्रयोदशर्चस्य त्रिसप्तत्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य अगस्त्य ऋषिः। इन्द्रो देवता। १,५,११ पङ्किः। ६,९,१०,१२ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः। २,८ विराट् त्रिष्टुप्। ३

0

त्रिष्टुप्। ७,१३ निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। ४ बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

पुनर्विद्वद्वणानाह॥

अब तेरह ऋचावाले एक सौ तेहत्तरवें सूक्त का आरम्भ है। उसमें आरम्भ से फिर्ट्र विद्वानों के गणों का वर्णन करते हैं।।

गायुत्साम नभुन्यं र्थया वेरचीम तद्वीवृधानं स्वर्वत्।

गावीं धेनवीं बुर्हिष्यंदब्धा आ यत्सुद्मानं दिव्यं विवासान्॥ १॥

गार्यत्। सामं। नुभुन्यम्। यथां। वे:। अर्चाम। तत्। वुवृधानम्। स्व प्रवत्। गार्वः। बुर्हिषि। अर्देब्धाः। आ। यत्। सुद्मानम्। द्विव्यम्। विवासान्॥ १॥

पदार्थ:-(गायत्) गायेत् (साम) (नभन्यम्) नभिस साध्या अत्र वर्णव्यत्ययेन सस्य नः। (यथा) (वेः) स्वीकुर्याः (अर्चाम) सत्कुर्याम (तत्) (ववृधानम्) भूशं बर्ज्जम्। तुजादीनामित्यभ्यासदैर्घ्यम्। (स्वर्वत्) स्वः सुखं सम्बद्धं यस्मिँस्तत्। अत्र सम्बन्धं मतुप्र (भावः) किरणा इव (धेनवः) दुग्धदात्र्यः (बिहिषि) अन्तरिक्षे (अदब्धाः) हिंसितुमयोग्याः (आ) (यत्) (मद्मानम्) सीदन्ति यस्मिँस्तम् (दिव्यम्) कमनीयम् (विवासान्) सेवेरन्॥१॥

अन्वय:-यत्स्वर्वद्ववृधानं नभन्यं साम विद्वान् यथा त्वं ब्रेस्तथा गायद् बर्हिषि गाव इव याश्चादब्धा धेनवो दिव्यं सद्मानमाविवासाँस्तत्ताश्च वयमर्चाम॥१॥

भावार्थ:-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारो। यथा किरणा अन्तरिक्षे विस्तीर्णा भूत्वा सर्वं प्रकाशयन्ति तथाऽस्माभिर्विद्यया सर्वेषासन्तः करणानि प्रकाशनीयानि। यथा निराधाराः पक्षिण आकाशे गच्छन्त्यागच्छन्ति तथा विदुषां भूगोलानाञ्च प्रतिरस्ति॥१॥

पदार्थ:-(यत्) जो (विर्वत्) सुख सम्बन्धी वा सुखोत्पादक (ववृधानम्) अत्यन्त वृद्धि को प्राप्त (नभन्यम्) आकाश के बीच में साध्य अर्थात् गगन मण्डल में व्याप्त (साम) साम गान को विद्वान् आप (यथा) जैसे (वे:) स्वीकार करें भैसे (गायत्) गावें और (बर्हिष) अन्तरिक्ष में जो (गाव:) किरणें उनके समान जो (अदब्धा:) न हिंसा करने योग्य (धेनव:) दूध देनेवाली गौयें (दिव्यम्) मनोहर (सद्मानम्) जिसमें स्थित होते हैं, उस घर को (आ, विवासान्) अच्छे प्रकार सेवन करें (तत्) उस सामगान और उन गौओं क्रों हम लोग (अर्चाम) सराहें उनका सत्कार करें॥१॥

भावार्थ: -इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे किरणें अन्तरिक्ष में बिखर कर सबक्री प्रकाश करती है, वैसे हम लोगों को विद्या से सबके अन्त:करण प्रकाशित करने चाहिये। जैसे निर्माधार पक्षी आकाश में आते-जाते हैं, वैसे विद्वानों और लोक-लोकान्तरों की चाल है॥१॥

अष्टक-२। अध्याय-४। वर्ग-१३-१५

मण्डल-१। अनुवाक-२३। सूक्त-१७३

अथ प्रकृतविषये स्त्रीपुरुषयोर्गृहकृत्यदृष्टान्तेनान्यानुपदिशति॥

अब चलते हुए प्रकरण में स्त्री-पुरुष के घर में काम के दृष्टान्त से औरों को उपदेश करते हैं إل

अर्चद्वृषा वृषिभिः स्वेदुहिव्यैर्मृगो नाश्नो अति यज्जुंगुर्यात्। प्र मन्द्रयुर्मनां गूर्ते होता भरते मर्यो मिथुना यजेत्रः॥२॥

अर्चत्। वृषां। वृषंऽभिः। स्वऽईदुहव्यैः। मृगः। न। अश्नः। अति। यत्। जुगुर्यात्। प्रा<u>मन्दयुः। मृ</u>ताम्। गूर्त्। होतां। भरते। मर्यः। मिथुना। यजेत्रः॥२॥

पदार्थ:-(अर्चत्) अर्चेत् (वृषा) सत्योपदेशशब्दवर्षकः (वृषिभः) उपदेशकैः सेह (स्वेदुहव्यैः) स्वेन प्रकाशितदानाऽऽदानैः (मृगः) (न) इव (अश्नः) व्यापकः (अति) (पत्) (जुगुर्धात्) उद्यच्छेत् (प्र) (मन्द्युः) आत्मनो मन्दं प्रशंसनिमच्छुः (मनाम्) मननशीलानाम् (गूर्त्री उद्यच्छत् (होता) दाता (भरते) धरते (मर्यः) मरणधर्मा मनुष्यः (मिथुना) मिथुनानि स्त्रीपुरुषद्वन्द्वानि (यजत्रः) मङ्गन्ता॥२॥

अन्वय:-हे मनुष्या! यथा वृषा अश्नो मन्दयुर्होता यजत्रो मर्यो/स्पेदुहव्येर्घृषित्रस्सह यन्मृगो नाऽति जुगुर्याद्भरते मनां सङ्गमर्चत् यथा वा मिथुना सङ्गतं व्यवहारं कुर्युस्तथा यूयं प्रगूर्त्तमन्त्र।

भावार्थ:-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। यथा स्वयंष्ट्राता स्त्रीपुरुषाः परस्परमुद्योगं कृत्वा मृगवद्वेगेन गृहकृत्यानि संसाध्य विदुषां सङ्गेन सत्यं स्विकृत्याऽस्तर्यं विहाय परमेश्वरं विदुषश्च सत्कुर्वन्ति तथा सर्वे मनुष्याः सङ्गन्तारः स्यु:॥२॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! जैसे (वृषा) सत्प्रीपदेश शक्तें की वर्षा करनेवाला (अश्नः) शुभ गुणों में व्याप्त (मन्दयुः) अपनी प्रशंसा चाहता हुआ (होता) दानशील (यजत्रः) सङ्ग करनेवाला (मर्यः) मरणधम्मा मनुष्य (स्वेदुहव्यैः) आप ही प्रकाशित किये देने-लेने के व्यवहारों और (वृषिभः) उपदेश करनेवालों के साथ (यत्) जो (मृगः) हरिण के (न) समान (अति, जुगुर्यात्) अतीव उद्यम करे, अति यत्न करे और (भरते) धारण कर्जा (मनाम्) विचारशीलों का सङ्ग (अर्चत्) सराहे प्रशंसित करे वा जैसे (मिथुना) स्त्री-पुरुष दो-दो मिले के सङ्ग धर्म को करें, वैसे तुम (प्र, गूर्त्) उत्तम उद्यम करो॥२॥

भावार्थ:-इस मूल में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे स्वयंवर किये हुए स्त्री-पुरुष परस्पर उद्योग कर हरिण के समान वेग से घर के कामों को सिद्ध कर विद्वानों के सङ्ग से सत्य को स्वीकार कर असूत्य को छोड़कर परमेश्वर और विद्वानों का सत्कार करते हैं, वैसे समस्त मनुष्य सङ्ग करनेवाले हों। रू।

पुनः प्रकारान्तरेणोपदेशविषयमाह।।

फिर प्रकारान्तर से उपदेश विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

नुभुद्धोता परि सद्म मिता यन्भरुद्गर्भमा शुरर्दः पृथिव्याः।

क्रन्द्रदश्चो नयमानो कुवद्गौरुन्तर्दूतो न रोदंसी चरुद्वाक्॥३॥

नक्ष्र्तं। होतां। पिरं। सद्मी मिता। यन्। भरत्। गर्भम्। आ। शृरदं:। पृथिव्याः। क्रन्दंत्। अश्वंः नयमानः। कृवत्। गौः। अन्तः। दूतः। न। रोदंसी इतिं। चुर्त्। वाक्॥३॥

पदार्थ:-(नक्षत्) प्राप्नुयात् (होता) ग्रहीता (पिर) सर्वतः (सद्ग) सद्मानि स्थीपानि (मिता) मितानि (यन्) गच्छेयुः। अत्राडभावः। (भरत्) भरेत् (गर्भम्) (आ) (शरदः) (पृथिव्याः) भूमेः (क्रन्दत्) ह्वयित (अश्वः) तुरङ्ग इव (नयमानः) (रुवत्) शब्दायते (गौः) वृषभ इव (अतः) मध्ये (दूतः) समाचारप्रापकः (न) इव (रोदसी) द्यावापृथिव्यौ (चरत्) प्राप्नोति (वाक्) वाणी। ३॥

अन्वय:-हे मनुष्या! यथा होताग्निर्मिता सद्म नक्षच्छरदः पृथिव्या गर्भमाभूत् न्यमनोऽश्व इव क्रन्दत्। गौरिव रुवद् दूतो न वागिव वा रोदसी अन्तश्चरत्तथा भवन्तः परियन्॥३॥

भावार्थ:-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। यथाऽश्वो गविश्च प्रिमितं मार्गं गच्छन्ति तथाऽग्निर्नियतं देशं गच्छिति यथा धार्मिकाः स्वकीयं वस्तु गृह्णति तथा ऋत्ववः स्वलिङ्गान्याप्नुवन्ति यथा द्यावापृथिव्यौ सहैव वर्तेते तथा विवाहितौ स्त्रीपुरुषौ वर्तेयाताम्। ३॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! जैसे (होता) ग्रहण करनेवाली (मिता) प्रमाणयुक्त (सद्य) घरों को (नक्षत्) प्राप्त होवे वा (शरदः) शरद् ऋतु सम्बन्धी (पृथिव्याः) पृथिवी के (गर्भम्) गर्भ को (आ, भरत्) पूरा करता वा (नयमानः) पदार्थों को पहुँचाता हुआ (अश्वः) घोड़ के समान (क्रन्दत्) शब्द करता वा (गौः) वृषभः के समान (रुवत्) शब्द करता वा (दूतः) समाचार पहुँचानेवाले दूत के (न) समान वा (वाक्) वाणी के समान (रोदसी) आकाश और पृथिवी के (अन्तः) बीच (चरत्) विचरता वैसे आप लोग (परि, यनु) पर्यटन करें॥३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमा और वास्कलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे घोड़ा और गौयें परिमित मार्ग को जाती हैं, वैसे अग्नि नियत किये हुए देशस्थान को जाता है। जैसे धार्मिक जन अपने पदार्थ लेते हैं, वैसे ऋतु अपने चिह्नों को प्राप्त होते हैं, वा जैसे द्यावापृथिवी एक साथ वर्त्तमान हैं वैसे विवाह किये हुए स्त्री-पुरुष वर्ते॥३॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

ता कुर्माषतेरास्मै प्र च्यौलानि देवयन्ती भरने।

जुओषुदिस्रों दुस्मर्वर्चा नासत्येव सुग्म्यो रथेष्ठाः॥४॥

ता। कुर्मे। अर्षऽतरा। अस्मै। प्र। च्यौत्नानि। देवऽयन्तेः। भुरन्ते। जुजौषत्। इन्द्रेः। दुस्मऽर्वर्चाः। नास्त्रियाऽङ्कवा सुगम्येः। रुथेऽस्थाः॥४॥ अष्टक-२। अध्याय-४। वर्ग-१३-१५

मण्डल-१। अनुवाक-२३। सूक्त-१७३

पदार्थ:-(ता) तानि (कर्म) कर्म्म। अत्र लुङ च्लेर्लुक् छन्दस्युभयथेत्यार्द्धधातुकत्वेन डित्वाभावादुण:। (अषतरा) प्राप्ततराणि। अत्र ऋष धातो रेफस्य लोप:। (अस्मै) (प्र) प्रकर्षे (च्यौत्नानि) स्तोत्राणि (देवयन्त:) आत्मनो देवान् विदुष इच्छन्तः (भरन्ते) दधित (जुजोषत्) जुर्षेत् (इन्द्रः) ऐश्वर्यमिच्छुः (दस्मवर्चाः) दस्मेषु शत्रुषु वर्चस्तेजः प्रागल्भ्यं यस्य सः (नासत्येव) सूर्याचन्द्रमसाविव (सुग्म्यः) सुगेषु सुखाधिकरणेषु साधुः (रथेष्ठाः) यो रथे तिष्ठति सः॥४॥

अन्वय:-हे मनुष्या! यथा देवयन्तोऽस्मै याऽषतरा च्यौत्नानि प्र भरन्ते ता दस्मवर्चाः सुग्म्यो रथेषा इन्द्रो नासत्येव ता जुजोषत्तथा वयं कर्म॥४॥

भावार्थ:-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। ये सूर्याचन्द्रवच्छुभ्रमुणकर्मस्वभावैः प्रकाशिता आप्तवदाचरन्ति ते किं किं सुखन्नाप्नुवन्ति॥४॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! जैसे (देवयन्त:) अपने को विद्वानों की इच्छा करनेवाले सज्जन (अस्मै) जिन (अषतरा) अतीव प्राप्त पदार्थों और (च्यौत्मिन) इस आगे कहन योग्य एश्वर्य चाहनेवाले सभापित आदि के लिये स्तुतियों को (प्र, भरन्ते) उत्तमता से धारण करते हैं (ता) उनको (दस्मवर्चा:) शत्रुओं में जिसका पराक्रम वर्त रहा है, वह (सुग्म्य:) सुख साधन पद्मार्थों में छत्तम (खेष्ठा:) रथ में बैठनेवाला (इन्द्र:) ऐश्वर्य चाहता हुआ (नासत्येव) सूर्य और चन्द्रमा के स्मान (जुजोषत्) सेवे, वैसे हम लोग (कर्म) करें॥४॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमा और वार्कालुष्तोपमालङ्कार हैं। जो सूर्य-चन्द्रमा के समान शुभ गुण, कर्म, स्वभावों से प्रकाशित, आप्त शास्त्रज्ञ धर्मान्याओं के तुल्य आचरण करते हैं, वे क्या-क्या सुख नहीं पाते हैं॥४॥

अर्थ सदसद्विचनपरं विद्वद्विषयमाह॥

अब भले-बुरे के विवेक करने पर भी विद्वानों का विषय उसका अगले मन्त्र में उपदेश किया है॥

तमुं घुहीन्द्रं यो हु सत्वा ये शूरों मुघवा यो रथेछा:।

प्रतीचश्चिद्योधीयान्वृषण्यान् वववुषश्चित्तमसो विहुन्ता॥५॥१३॥

तम्। ऊम् इति। स्तुहि। इन्द्रम्। यः। हु। सत्वी। यः। शूर्रः। मघऽवी। यः। रृथेऽस्थाः। प्रतीचः। चित्। योधीयान्। वृष्णुरवान्। वृववुषः। चित्। तमसः। विऽहुन्ता॥५॥

पदार्थ:-(तम्) (उ) वितर्के (स्तुहि) प्रशंस (इन्द्रम्) परमैश्वर्यवन्तं सेनेशम् (यः) (ह) किल (सत्वा) पत्निष्ठः (यः) (शूरः) निर्भयः (मघवा) परमपूजितधनयुक्तः (यः) (रथेष्ठाः) रथे तिष्ठति (प्रतृचिः) पत् प्रत्यगञ्चति तस्य (चित्) अपि (योधीयान्) अतिशयेन योद्धा (वृषण्वान्) बलवान्

(वववुषः) रूपवतः। अत्र विविरिति रूपनाम धातोर्लिटः क्वसुः। (चित्) अपि (तमसः) अन्धकारस्य (विहन्ता) विशेषेण नाशकः॥५॥

अन्वय:-हे विद्वँस्त्वं यः सत्वा यश्चिच्छूरो मघवा यश्चिद्रथेष्ठा योधीयान् वृषण्वान् प्रतीचो ववव्रुषस्तिम्सी विहुन्ती सूर्य इवाऽस्ति तमु हेन्द्रं स्तुहि॥५॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। मनुष्यैस्तस्यैव स्तुतिः कार्या यः प्रशंसिताि कर्माणि कुर्यात्। तस्यैव निन्दा कार्या यो निन्द्यानि कर्माण्याचरेत् सैव स्तुतिर्यत्सल्यभाषणं सैव निन्दा यन्मिथ्याप्रलपनम्॥

पदार्थ:-हे विद्वान्! आप (य:) जो (सत्वा) बलवान् (य:, चित्) और जो (शूरः) शूर (मघवा) परमपूजित धनयुक्त (य:, चित्) और जो (खेष्ठा:) रथ में स्थित्, हमेनेवाला (योधीयान्) अत्यन्त युद्धशील (वृषण्वान्) बलवान् (प्रतीच:) प्रति पदार्थ प्राप्त होनेवाले (ववनुषः) रूपयुक्त (तमसः) अन्धकार का (विहन्ता) विनाश करनेवाले सूर्य के समान है (तम्, उ, ह) उसी (इन्द्रम्) परमैश्वर्यवान् सेनापित की (स्तुहि) प्रशंसा करो॥५॥

भावार्थ: - इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मिनुन्यों को म्वाहिये कि उसी की स्तुति करें जो प्रशंसित कर्म करे और उसी की निन्दा करें जो निन्दित कर्मी का आचरण करे। वहीं स्तुति है जो सत्य कहना और वहीं निन्दा है, जो किसी के विषय में झूई बक्ना है।। ५॥

अथ प्रकृतविषये साकलोकान्त्ररविषयमाह॥

अब इस प्रकृत विद्वद्विषय में लोकव्योकान्तर विज्ञान विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

प्र यदित्था महिना नृभ्यो अस्त्यारं गिदंसी कृक्ष्ये र् नास्मै।

सं विव्य इन्ह्री वृजनुं न भूमा भृति स्वधावाँ ओपुशर्मिव द्याम्॥६॥

प्रा यत्। इत्था। मृहिना। नुरुभ्यः। अस्ति। अर्रम्। रोर्दसी इति। कृक्ष्ये र्र् इति। न। अस्मै। सम्। विव्ये। इन्द्रः। वृजनम्। न। भूमे। भर्ति। स्वधाऽवान्। ओपुरुम्,ऽईव। द्याम्॥६॥

पदार्थ:-(प्र) (प्रत्) (इत्था) अस्माद्धेतोः (महिना) महिम्ना निजमहत्त्वेन (नृभ्यः) नायकेभ्यः (अस्ति) (अरम्) अलम् (राद्ध्मी) द्यावापृथिव्यौ (कक्ष्ये) कक्षासु भवे (न) निषेधे (अस्मै) (सम्) (विव्ये) संवृणोत्रि (इन्द्रः) सूर्यः (वृजनम्) बलम् (न) इव (भूम) भूमानि वस्तूनि। अत्रान्येषामपीति दीर्घः। (भर्ति) विभर्ति। अत्र बहुलं छन्दीसीति शपो लुक्। (स्वधावान्) अत्रवान् (ओपशमिव) अत्यन्तं सम्बद्धम् (ब्राम्) भूकाशम्॥६॥

अन्वय:-यद्य इन्द्रो वृजनं न भूम संविव्ये स्वधावानोपशमिव द्यां प्रभर्ति अस्मै कक्ष्ये रोदसी नारं पर्यास इत्था महिन्न पृथ्यो समस्ति॥६॥ अष्टक-२। अध्याय-४। वर्ग-१३-१५

मण्डल-१। अनुवाक-२३। सूक्त-१७३

भावार्थ:-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। प्रकाशरहिता: यथा पथिव्यादय: सर्वमावृण्वन्ति तथा सूर्यः स्वप्रकाशेन सर्वमाच्छादयित यथा भौमान् पदार्थान् पृथिवी धरतीत्थुमेव सूर्यो भूगोलान् बिभर्ति॥६॥

पदार्थ:-(यत्) जो (इन्द्र:) सूर्य (वृजनम्) बल के (न) समान (भूम) बहुत पदार्थों को (सम्, विव्ये) अच्छे प्रकार स्वीकार करता और (स्वधावान्) अन्नादि पदार्थवाला यह सूर्यम्पडल (ओपशमिव) अत्यन्त एक में मिले हुए पदार्थ के समान (द्याम्) प्रकाश को (प्र, भिर्ति) धारण करता (अस्मे) इसके लिये (कक्ष्ये) अपनी-अपनी कक्षाओं में प्रसिद्ध हुए (रोदसी) द्युलोक और पृथिकी लोक (न) नहीं (अरम्) परिपूर्ण होते वह (इत्था) इस प्रकार (महिना) अपनी महिमा से (नृश्य:) अग्रगामी मनुष्यों के लिए परिपूर्ण (अरमस्ति) समर्थ है॥६॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे प्रकाशरहित पृथिवी आदि पदार्थ सबका आच्छादन करते हैं, वैसे सूर्य अपने प्रकाश से सुबका आच्छादन करता है। जैसे भूमिज पदार्थों को पृथिवी धारण करती है, ऐसे ही सूर्य भूगोलों को धारण करता है।।६॥

अथ प्रकृतविषये राज्यप्रास्तिसाधनुमाहा।

अब विद्वद्विषय में राज्यप्राप्ति का साधन विषय अगेले मन्त्र में कहा है।।

समत्सु त्वा शूर सुतामुराणं प्रपृथिन्तमं परितंसवध्या

सुजोषस इन्द्रं मदे शोणीः सूरिं चिद्धी अनुमद्भित् वाजैः॥७॥

सुमत्ऽसुं। त्वा। शूर। सुताम्। उराणम्। प्रुष्थिन्ऽनुर्मम्। पुरिऽतुंसुयध्यै। सुऽजोषंसः। इन्द्रम्। मदे। क्षोणीः। मूरिम्। चित्। ये। अनुऽमदन्ति। वाजैः॥७॥

पदार्थ:-(समत्सु) सङ्ग्राप्नेषु (त्या) त्वाम् (शूर) दुष्टहिंसक (सताम्) सत्पुरुषाणाम् (उराणम्) बहुबलं कुर्वन्तम् (प्रपथिन्तमम्) अतिश्वेचे प्रकृष्टपथगामिनम् (परितंसयध्ये) परितः सर्वतस्तंसयितुं भूषियतुम् (सजोषसः) समानग्रीतिसेवनाः (इन्द्रम्) सेनेशम् (मदे) हर्षाय (क्षोणीः) भूमीः (सूरिम्) विद्वांसम् (चित्) इव (ये) (अन् मद्भित) (वाजै:) वेगादिगुणयुक्तैर्वीरेरश्वेर्वा॥७॥

अन्वय:-हे शुर! य सेजोष्ट्रेस: समत्स् परितंसयध्ये सतामुराणं प्रपथिन्तमिमन्द्रं त्वा मदे क्षोणी: सुरिं चिदिव वाजैरनुमदन्ति ताँस्त्वृम्प्यनुमन्दय्याणा

भावार्थः-त एव निर्वेरा ये स्वात्मतुल्यानन्यान् प्राणिनो जानन्ति तेषामेव राज्यं वर्द्धते ये सत्पुरुषाणामेव सक्षे प्रतिदिनं कुर्वन्ति॥७॥

पदार्थ:-ह (शूर) दुष्टों की हिंसा करनेवाले सेनाधीश! (ये) जो (सजोषस:) समान प्रीति सेव<mark>नेवाले (स्पारस्</mark>) सङ्ग्रामों में (**परितंसयध्ये**) सब ओर से भूषित करने के लिए (सताम्) सत्पुरुषों में (उराजप्र) अधिक बल करते हुए (प्रपथिन्तमम्) आवश्यकता से उत्तम पथगामी (**इन्द्रम्**) सेनापति (त्वा)

तुमको (मदे) हर्ष आनन्द के लिये (क्षोणी:) भूमियों को (सूरिम्) विद्वान् के (चित्) समान (वार्ज:) वेगादि गुणयुक्त वीर वा अश्वादिकों के साथ (अनु, मदिन्त) अनुमोद आनन्द देते हैं, उनको तू भी आनन्दित कर॥७॥

भावार्थ:-वे ही निर्वेर हैं, जो अपने समान और प्राणियों को जानते हैं। उन्हीं का राज्य बढ़ता है, जो सत्पुरुषों का ही प्रतिदिन सङ्ग करते हैं॥७॥

पुनर्विद्वदुपदेशेन राजविषयमाह॥

फिर विद्वानों के उपदेश से राजविषय को अगले मन्त्र में कहर है।

एवा हि ते शं सर्वना समुद्र आपो यत्ते आसु मर्दन्ति देवी:। विश्वा ते अनु जोष्या भूद्रौ: सूरींश्चिद्यदि धिषा वेषि जनस्रिरा

एव। हि। ते। शम्। सर्वना। सुमुद्रे। आर्षः। यत्। ते। आसु। मर्द्रन्ति। देवीः। विश्वां। ते। अर्नु। जोष्यां। भूत्। गौः। सूरीन्। चित्। यदि। धिषा। वेषि। जर्नान्॥८॥

पदार्थ:-(एव) अवधारणे। अत्र निपातस्य चेति दीर्घ:। (है) खलु (ते) तव (शम्) सुखम् (सवना) ऐश्वर्य्याणि (समुद्रे) अन्तरिक्षे (आपः) जलानि (यत) पद्रे (ते) तव (आसु) अप्सु (मदिन्त) (देवीः) दिव्यगुणसम्पन्नाः (विश्वा) सर्वा (ते) तक (अनु) (जीष्या) सेवितुं योग्या (भूत्) भवति। अत्राडभावः। (गौः) विद्यासुशिक्षिता वाणी (स्तिन्) विदुष्णः (चित्) (यदि) (धिषा) प्रज्ञया (वेषि) कामयसे (जनान्) उत्तमान् मनुष्यान्॥८॥

अन्वय:-हे इन्द्र सभेश! समुद्र आप हव ते हि स्वूनाच्छमेव कुर्वन्ति ते देवीर्यदासु मदन्ति त्वं च यदि धिषा सूरीश्श्रिज्जनान् वेषि तदा ते विश्वा गौरनुज्जोष्माभूत। १॥)

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्लोपमालङ्कार:। यथा सूर्य आकाशे मेघमुन्नीय सर्वान् सुखयित तथा सत्पुरुषस्यैश्वर्यं वर्द्धमानं सत्सक्तानानदस्रति यथा पुरुषा विद्वांसो भवेयुस्तथैव स्त्रियोऽपि स्यु:॥८॥

पदार्थ:-हे सभापति (समुद्रे) अलि क्ष में (आप:) जलों के समान (ते) आपके (हि) ही (सवना) ऐश्वर्य (शम्) सूख (एव) ही करते हैं वा (ते) आपकी (देवी:) दिव्य गुण सम्पन्न विदुषी (यत्) जब (आसु) इन जलों में (मद्धिन) हिष्ति होती हैं और आप (यदि) जो (धिषा) उत्तम बुद्धि से (सूरीन्) विद्वान् (चित्) मात्र (जनान्) जनों को (वेषि) चाहते हो तब (ते) आपकी (विश्वा) समस्त (गौ:) विद्या सुशिक्षायुक्त व्याणी (अनु, जांच्या) अनुकूलता से सेवने योग्य (भूत्) होती है॥८॥

भाषार्थ: इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य आकाश में मेघ की उन्नति कर सबको सुखी करता है, वैसे सज्जन पुरुष का बढ़ता हुआ ऐश्वर्य सबको आनन्दित करता है, जैसे पुरुष विद्वान हों, बैसे स्त्री भी हों॥८॥

अथ मित्रपरत्वेन विद्वद्विषयमाह॥

अष्टक-२। अध्याय-४। वर्ग-१३-१५

मण्डल-१। अनुवाक-२३। सूक्त-१७३

अब मित्रपरत्व से विद्वानों के विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

असाम् यथा सुष्खायं एन स्वभिष्टयो नृरां न शंसैः। असुद्यर्था न इन्द्रो वन्दनेष्ठास्तुरो न कर्म नयमान उक्था॥९॥

असीम। यथा। सुऽस्खार्यः। एन्। सुऽअभिष्टर्यः। न्राम्। न। शंसैः। असीत्। यथा। नः। इन्द्रः। वृन्दुनेऽस्थाः। तुरः। न। कर्म। नर्यमानः। उक्था॥९॥

पदार्थ:-(असाम) भवेम (यथा) (सुसखाय:) शोभनाः सखायो येषान्ते (ऐस्) एति युर्गेषार्थेन सुखानि यस्तत्सम्बुद्धौ (स्विभिष्टय:) शोभना अभिष्टयोऽभिप्राया येषान्ते (नराम्) नायकानाम् (न) इव (शंसै:) प्रशंसाभिः (असत्) भवेत् (यथा) (नः) अस्मान् (इन्द्रः) पर्यक्षिय्येषुक्ते मित्रः (वन्दनेष्ठाः) स्तवने तिष्ठति यः (तुरः) शीघ्रकारी (न) इव (कर्म) धर्म्यं कृत्येम् (नयमानः) प्राप्नुवन् प्रापयन् वा (उक्था) प्रशस्तानि विज्ञानानि॥९॥

अन्वयः-हे एन विद्वन्! यथा स्विभष्टयः सुसखायो वयं नूरो शंसैर्नेचिम्गुणैस्त्वां प्राप्ता असाम यथा वा वन्दनेष्ठाः तुर इन्द्रः कर्म नेव नोऽस्माकमुक्था नयमानोऽसत् तथा वयमान्यरेम।।९,। /

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। ये सर्वेषु प्राणिषु सुहिद्ध्यविन वर्तीन्ते ते सर्वेरिभवन्दनीयाः स्यु:। ये सर्वान् सुबोधन्नयन्ति ते अत्युत्तमविद्या भवन्ति॥९॥

पदार्थ:-हे (एन) पुरुषार्थ के सुखों को प्राप्त होते हुए विद्वान्! (यथा) जैसे (स्विभष्टयः) सुन्दर अभिप्राय और (सुसखायः) उत्तम मित्र जिस्के वे हम् लोग (नराम्) अग्रगामी प्रशंसित पुरुषों की (शंसै:) प्रशंसाओं के (न) समान उत्तम गुणों से आपको प्राप्त (असाम) होवें वा (यथा) जैसे (वन्दनेष्ठाः) स्तुति में स्थिर होता हुआ (तुरः) श्रीष्रकारी (इन्द्रः) परमैश्वर्ययुक्त मित्र (कर्म) धर्मयुक्त कर्म के (न) समान (नः) हमारे (उक्था) प्रशंसायुक्त विद्वानों को (नयमानः) प्राप्त करता वा कराता हुआ (असत्) हो, वैसा आचरण हम लोग करें॥९॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो सब प्राणियों में मित्रभाव से वर्त्तमान हैं वे सबको अभिवादन करने योग्य हूँ, जो सबस्रों उत्तम बोध को प्राप्त करते हैं, वे अतीव उत्तम विद्यावाले होते हैं॥९॥

अथ राजशासनपरं विद्वद्विषयमाह॥

अब राजशिक्षा पर विद्वानों के विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

ब्रिपर्धसी नरा न शंसैरस्माकां सदिन्द्रो वर्ज्रहस्तः।

भूत्रायुवो न पूर्पतिं सुशिष्टौ मध्यायुव उप शिक्षन्ति युज्ञै:॥१०॥१४॥

विऽस्पर्धसः। नुराम्। न। शंसैः। अस्माके। असुत्। इन्द्रः। वर्चऽहस्तः। मित्रुऽयुर्वः। न। पूःऽपर्तिम्। सुऽशिष्टौ। मुध्युऽयुर्वः। उपं। शिक्षुन्ति। युज्ञैः॥१०॥

पदार्थ:-(विष्पर्द्धसः) परस्परं विशेषतः स्पर्द्धमानाः (नराम्) धर्मस्य नेतॄणाम् (न) हुन (शंसेः) प्रशंसायुक्तैः (अस्माक) अस्माकम्। अत्र छान्दसो वर्णलोपो वेति मलोपः। (असत्) भवेत् (इन्द्रः) सभेशः (वज्रहस्तः) शस्त्रास्त्रशासनपाणिः (मित्रायुवः) य आत्मनो मित्राणीच्छवः (न) इव (पूर्पतिम्) पुरां पालकम् (सुशिष्टौ) शोभने शासने (मध्यायुवः) य आत्मनो मध्यं मध्यस्थिमच्छवो विद्वांसे (उप) (शिक्षन्ति) शिक्षां प्रददित (यज्ञैः) अध्यापनाऽध्ययनोपदेशसङ्गतिकरणैः॥१०॥

अन्वयः-वज्रहस्त इन्द्रोऽस्माकासदिति नरां शंसैर्न वादानुवादैः परस्परं विस्पृद्धसो पित्रायुवो न मध्यायुवो जनाः सुशिष्टौ यज्ञैः पूर्पतिमुपशिक्षन्तिः॥१०॥

भावार्थः-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। यथा सत्याचरणस्पार्द्धनः सर्वेषां सुहृदः पक्षपातविरहाः सत्यमाचरन्तो जनाः सत्यमुपदिशन्ति, तथैव सभेश्ली सज्ञा प्रजासु वर्तेत॥१०॥

पदार्थ:-(वज्रहस्त:) शस्त्र और अस्त्रों की शिक्षा जिसके हाथ में है, वह (इन्द्र:) सभापति (अस्माक) हमारा (असत्) हो अर्थात् हमारा रक्षक हो ऐसी (मराम्) धर्म की प्राप्ति करानेवाले पुरुषों की (शंसै:) प्रशंसायुक्त विवादों के (न) समान वादानुवादों से (विष्युद्धिस:) परस्पर विशेषता से स्पद्धी ईर्ष्या करते और (मित्रायुव:) अपने को मित्र चाहते हुए जिनों के (न) समान (मध्यायुव:) मध्यस्थ चाहते हुए विद्वान् जन (सुशिष्टों) उत्तम शिक्षा के निमित्त (यज्ञें:) पहना-पढ़ाना, उपदेश करना और सङ्ग मेल-मिलाप करना इत्यादि कर्मों से (पूर्णतिम्) पूरी नगिर्द्यों के पालनेवाले सभापित राजा को (उप, शिक्षन्ति) उपशिक्षा देते हैं अर्थात् उसके समीप जाकर हिस्स अने वहरे का भेद सिखाते हैं॥१०॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमा और व्यवकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे सत्याचरण में स्पर्ध्धा करनेवाले सब के मित्र पक्षपातरहित सत्य का आचरण करते हुए जन सत्य का उपदेश करते हैं, वैसे ही सभापित राजा प्रजाजनों में वर्के (१०॥

पूर्वोक्तं विषयमाह॥

पूर्वोक्त विषय को विशद करते हुए अगले मन्त्र में कहा है।।

युज्ञो हि ष्मेन्द्रं कश्चिद्वश्चर्श्वहुगुणश्चिन्मनेसा परियन्।

तीर्थे गच्छी तातृषाणमोको दीर्घो न सिधमा कृणोत्यध्वा॥११॥

युज्ञः। हिर्हिस्मा इन्द्रम्। कः। चित्। ऋस्यन्। जुहुगुणः। चित्। मर्नसा। पुरिऽयन्। तीर्थे। न। अच्छे। तुतृषाणम्(ओकः। दीर्घः। न। सिध्रम्। आ। कृणोति। अध्वां॥११॥

पदार्थ:-(यज्ञ:) राजधर्माख्यः (हि) (स्म) एव (इन्द्रम्) (कः) (चित्) अपि (ऋग्धन्) वर्द्धमानः सन् (जुहुराणः) दुष्टेषु कुटिलः (चित्) इव (मनसा) (परियन्) परितः सर्वतः प्राप्नुवन् (तीर्थे) जलाशये अष्टक-२। अध्याय-४। वर्ग-१३-१५

मण्डल-१। अनुवाक-२३। सुक्त-१७३

१८२१

(न) इव (अच्छ) सम्यक्। अत्र निपातस्य चेति दीर्घः। (ततृषाणम्) भृशं तृषितम् (ओकः) गृहम् (दीर्घः) बृहत् (न) इव (सिध्रम्) शीघ्रताम् (आ) (कृणोति) करोति (अध्वा) सन्मार्गरूपः॥११॥

अन्वय:-कश्चिद्यज्ञो हि ष्मेद्रमृन्धन्मनसा जुहुराणश्चित्परियँस्तीर्थे न स्थानेऽच्छ ततृषाणं दीर्घ ओक्क्र नेध्वरूप सिध्रमा कृणोति॥११॥

भावार्थ:-पूर्वमन्त्रे शीघ्रतररक्षाभिकाङ्क्षिणो विपश्चितः शासनादियज्ञैः पूर्पितं राजानमुष्णिक्षक्षन्तीति यदुक्तम् तत्र यज्ञतः शीघ्रभावमुपदिशन्नाह। (यज्ञो हीति) अत्रोपमावाचकलुप्तोपभालङ्कारौ-यदि सुखं वर्द्धियतुमिच्छेयुस्तर्हि सर्वे धर्ममाचरन्तु यदि परोपकारं कर्त्तुमिच्छेयुस्तर्हि सत्यमुपदिशन्तु। ११॥

पदार्थ:-(कश्चित्) कोई (यज्ञ:) राजधर्म (हि, ष्म) निश्चय से ही (कृद्भू) सभापति को (ऋच्चन्) उन्नति देता वा (मनसा) विचार के साथ (जुहुराणः) दुष्टजनों में कुट्लि क्रिया अर्मात् कुटिलता से वर्ता (चित्) सो (परियन्) सब ओर से प्राप्त होता हुआ (तीर्थे) जलाशय के (न) समान स्थान में (अच्छा) अच्छे (तृषाणम्) निरन्तर पियासे को (दीर्घः) बड़ा (ओकः) स्थान जैसे मिले (न) वैसे (अध्वा) सन्मार्गरूप हुआ (सिश्चम्) शीघ्रता को (आ, कृणोति) अच्छे प्रकार करत्। है॥११॥

भावार्थ:-पूर्व मन्त्र में अति शीघ्रता से रक्षा चाहत हुए चिद्वाम् बुद्धिमान् जन शिक्षा करना रूप आदि यज्ञों से अपनी पुरी नगरी के पालनेवाले राजा को समीए जीकर शिक्षा देते हैं, यह को विषय कहा था, वहाँ यज्ञ से शीघ्रता का उपदेश करते हुए (यज्ञों हि॰) इस मन्त्र का उपदेश करते हैं। इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जो सुख्य के बेह्मने की इच्छा करें तो सब धर्म का आचरण करें और जो परोपकार करने की इच्छा करें तो सूत्य का उपकेश करें॥११॥

अथ साधारणजनेषु बल्लादिविषये विद्वदुपदेशमाह।।

अब साधारण जनों में बलादि विषय में विद्वानों का उपदेश किया है।।

मो षू ण इन्द्रात्र पृत्सु हेवरस्ति हि ष्मा ते शुष्मिन्नव्याः।

मुहश्चिद्यस्य मीळहुक्षी बुट्या हुविष्मती मुरुतो वन्दते गी:॥१२॥

मो इति। सु। नुः। इन्ह्रा अत्रे। पूर्त्ऽसु। देवैः। अस्ति। हि। स्मा ते। शुष्मिन्। अवऽयाः। महः। चित्। यस्य। मीळहुर्षः। युव्या। हुविष्मतः। मस्तिः। वन्दते। गीः॥ १२॥

पदार्थ:-(मो) निषेधे (सु) (नः) अस्माकम् (इन्द्र) विद्यैश्वर्यप्रापक (अत्र) आसु (पृत्सु) सङ्ग्रामेषु (देवैः) बिद्धद्विवीरेस्सह (अस्ति) (हि) यतः (स्म) एव (ते) (शुष्मिन्) बलिष्ठ (अवयाः) योऽवयजित्रि विरुद्धि कमे न सङ्गच्छते सः (महः) महतः (चित्) अपि (यस्य) (मीढुषः) (यव्या) नदीव। यव्येति (तदीनामसु पठितम्। (निघं०१.१३) (हिवष्मतः) बहुविद्यादानसम्बन्धिनः (मस्तः) विदुषः (वन्द्वते) (गिः) सत्यगुणाढ्या वाणीः॥१२॥

अन्वयः – हे इन्द्र! भवानत्र देवैंनींऽस्माकं पृत्सु सहायकारी हि स्वस्ति ष्म। हे शुष्मित्रवयाः संस्त्वं यस्य ते मीढुषो हविष्मतो महर्मरुतो यव्या गीर्वन्दते चिदिव वर्त्तते स त्वमस्मान् मो हिन्धि॥१२॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। यो बलं प्राप्नुयात् स सज्जनेषु शत्रुव्ह्र्य सदाप्तस्योपदेशमङ्गीकुर्यात्रेतरस्य॥१२॥

पदार्थ:-हे (इन्द्र) विद्या और ऐश्वर्य की प्राप्ति करनेवाले विद्वान्! आप (अत्र) यहाँ (देवै:) विद्वान् वीरों के साथ (न:) हम लोगों के (पृत्सु) संग्रामों में (ही) जिस कारण (सु, अस्ति) अच्छे प्रकार सहायकारी हैं (स्म) ही और हे (शुष्मिन्) अत्यन्त बलवान्! (अवया:) जो विरुद्ध कर्म को नहीं प्राप्त होता ऐसे होते हुए आप (यस्य) जिन (मीढुष:) सींचनेवाले (हिवष्मतः) बहुत विद्यादान सम्बन्धी (महः) बड़े (ते) आप (मरुतः) विद्वान् की (यव्या) नदी के समान (गिः) सित्य गुणों से युक्त वाणी (वन्दते) स्तुति करती अर्थात् सब पदार्थों की प्रशंसा करती (चित्) सी वर्तमान् है, वे आप हम लोगों को (मो) मत मारिये॥१२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो बल को प्राप्त हो, वह सज्जनों में शत्रु के समान न वर्ते। सदा आप्त शास्त्रज्ञ धर्मात्मा जनों के उपदेश को स्वीकार करे। इतर अधर्मात्मा के उपदेश को न स्वीकार करे। १२॥

पुनस्तमेव विषयमाहा। फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

एषः स्तोमं इन्द्र तुभ्यंमुस्मे एतेन गातुं हरिको विदो नः।

आ नो ववृत्याः सुवितायं देव विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम्॥ १३॥ १५॥

एषः। स्तोमः। इन्द्र। तुभ्यम्। अस्म इति। एतेनं। गातुम्। हृरिऽवः। विदः। नः। आ। नः। ववृत्याः। सुवितायं। देव। विद्याम। इषम्। वृजनम्। जीस्डदार्पुम्॥ १३॥

पदार्थ:-(एष:) (स्त्रीम:) श्लाघा (इन्द्र) प्रशस्तैश्वर्य (तुभ्यम्) (अस्मे) अस्माकम् (एतेन) न्यायेन (गातुम्) भूमिम् (हरिव:) प्रशस्ता हरयोऽश्वा विद्यन्ते यस्य तत्सम्बुद्धौ (विद:) लभस्व (न:) अस्मान् (आ) (न:) अस्माकम् (ववृत्या:) वर्तेथाः (सुविताय) ऐश्वर्याय (देव) सुखप्रद (विद्याम) प्राप्नुयाम (इषम्) ह्रच्छासिद्धम् (वृजनम्) सन्मार्गम् (जीरदानुम्) दीर्घञ्चीवनम्॥१३॥

अन्वयः १ हे देखेन्द्र! य एषोऽस्मे स्तोमोऽस्ति स तुभ्यमस्तु। हे हरिवो! त्वमेतेन गातुं नोऽस्माँश्च विदः नः सुविताय आ खुत्यो पतो चयमिषं वृजनं जीरदानुं च विद्याम॥१३॥

भावार्थः - केमचिद्धद्रेण जनेन स्वमुखेन स्वप्रशंसा नैव कार्य्या परोक्तां स्वप्रशंसां श्रुत्वा न प्रमुद्धिस्व्यम् यथा स्वोन्नतिर्ऋष्येत तथा परोन्नतिः सदैष्टव्येति॥१३॥

अत्र विद्वद्विषयवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिर्वेद्या॥

अष्टक-२। अध्याय-४। वर्ग-१३-१५

मण्डल-१। अनुवाक-२३। सूक्त-१७३

१८२३

इति त्रिसप्तत्युत्तरं शततमं १७३ सूक्त पञ्चदशो १५ वर्गश्च समाप्त:॥

पदार्थ:-हे (देव) सुख देनेवाले (इन्द्र) प्रशंसायुक्त ऐश्वर्यवान्! जो (एषः) यह (अस्मे) हमारी (स्तोमः) स्तुतिपूर्वक चाहना है वह (तुभ्यम्) तुम्हारे लिये हो। हे (हरिवः) प्रशंसित घोड़ पाले! आए (एतेन) इस न्याय से (गातुम्) भूमि और (नः) हम लोगों को (विदः) प्राप्त हू जिये (नः) हमारे (सुविताय) ऐश्वर्य के लिये (आ, ववृत्याः) आ वर्तमान हू जिये, जिससे हम लोग (इंधम्) इंग्डंग सिद्धि (वृजनम्) सन्मार्ग और (जीरदानुम्) दीर्घ जीवन को (विद्याम) प्राप्त होवें॥१३॥

भावार्थ:-किसी भद्रजन को अपने मुख से अपनी प्रशंसा नहीं करनी चाहिए सेथा और ने कही हुई अपनी प्रशंसा सुनकर न आनन्दित होना चाहिये अर्थात् न हंसना चाहिये जैसे अपने से अपनी उन्नति चाही जावे, वैसे औरों की उन्नति सदैव चाहनी चाहिये॥१३॥

इस सूक्त में विद्वानों के विषय का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए॥

यह एक सौ तिहत्तरवाँ १७३ सुक्त और पन्द्रहवी १५ वर्ग समाप्त हुआ॥

त्वं राजेत्यस्य दशर्चस्य चतुस्सप्तत्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य अगस्त्य ऋषि:। इन्द्रो देवता। १ निचृत्पङ्क्ति:। २,३,६,८,१० भुरिक्पङ्क्ति:। ४ स्वराट् पङ्क्ति:। ५,७,९ पङ्क्तिश्छन्दः।

पञ्चम: स्वर:॥

अथ राजकृत्यवर्णनमाह॥

अब एक सौ चौहत्तरवें सूक्त का आरम्भ है। उसमें आरम्भ से राजकृत्य का वर्णन् कस्ते हैं।

त्वं राजेन्द्र ये चे देवा रक्षा नृन्पाह्यसुर त्वमस्मान्।

त्वं सत्पतिर्मघवां नुस्तर्भेत्रस्त्वं सत्यो वस्त्रवानः सहोदाः॥ १॥

त्वम्। राजां। इन्द्रः। ये। चः। देवाः। रक्षां। नृन्। पाहि। असुरः। त्वम्। अस्मान्। त्वम्। सत्ऽपंतिः। मघऽवां। नः। तस्त्रः। त्वम्। सत्यः। वस्त्रंवानः। सहःऽदाः॥१॥

पदार्थ:-(त्वम्) (राजा) न्यायिवनयाभ्यां राजमानः (इन्द्र) परिमेश्रेष्ट्रीयुक्त (ये) (च) (देवाः) सद्गुणिनो धर्मात्मानो विद्वांसः (रक्ष) अत्र द्वयचोऽतस्तिङ इति रीर्घः। (नृत्र) मनुष्यान् (पाहि) (असुर) मेघ इव वर्त्तमानः (त्वम्) (अस्मान्) (त्वम्) (सत्पितः) स्तां वेदाची अत्पुरुषाणां वा पालकः (मघवा) परमपूजितधनयुक्तः (नः) अस्माकम् (तस्त्रः) दुःखिद्वलिङ्गियती (त्वम्) (सत्यः) सत्सु साधुः (वसवानः) वसोर्धनस्यानः प्राप्तिर्यतः (सहोदाः) बलुपदः॥१॥

अन्वय:-हे इन्द्र! त्वं सत्पतिर्मघवा नस्तरुत्रोऽस्मि त्वं सत्यो प्रसवानः सहोदा असि त्वं राजासि। अतो हे असुर! त्वमस्मान् नन्पाहि ये च देवाः सन्ति तान् रक्ष॥१॥

भावार्थ:-यो राजा भवितुमिच्छेत्म धार्मिकार्न् सत्पुरुषान् विदुषोऽमात्यान् संरक्ष्यैतै: प्रजाः पालयेत्। यो हि सत्याचारी बलवान् सद्ग्यङ्गो सर्वात्रिस राज्यमाप्नोति॥१॥

पदार्थ:-हे (इन्द्र) परमैश्चर्ययुक्त! (त्वम्) आप (सत्पितः) वेद वा सज्जनों को पालनेवाले (मघवा) परमप्रशंसित धनवान (तः) हम लोगों को (तस्त्रः) दुःखरूपी समुद्र से पार उतारनेवाले हैं (त्वम्) आप (सत्यः) सज्जनों में उत्तम (वस्त्वानः) धनप्राप्ति कराने और (सहोदाः) बल के देनेवाले हैं तथा (त्वम्) आप (राजा) त्याय और विनय से प्रकाशमान राजा हैं, इससे हे (असुर) मेघ के समान! (त्वम्) आप (अस्मान्) हम (न्त्रा) मनुष्यों को (पाहि) पालो (ये, च) और जो (देवाः) श्रेष्ठ गुणोंवाले धर्मात्मा विद्वान् हैं, उनकी (रक्षा) रक्षा करो॥१॥

भावार्ष:-जो राजा होना चाहे वह धार्मिक सत्पुरुष विद्वान् मन्त्री जनों को अच्छे प्रकार रख के उनसे प्रजाननों की पालमा करावे, जो ही सत्याचारी बलवान् सज्जनों का सङ्ग करनेवाला होता है, वह राज्य को पाल होता है॥१॥

पुनस्तमेव विषयं सूर्यदृष्टान्तेनाह॥

फिर उसी विषय को सूर्य के दृष्टान्त से कहते हैं॥

अष्टक-२। अध्याय-४। वर्ग-१६-१७

मण्डल-१। अनुवाक-२३। सूक्त-१७४

दनो विशं इन्द्र मृधवांचः सप्त यत्पुरः शर्म शार्रदीर्दर्त्। ऋणोरपो अनवद्याणी यूने वृत्रं पुरुकुत्साय रन्धीः॥२॥

दर्नः। विशः। इन्द्रः। मृध्रऽवाचः। सप्तः। यत्। पुरः। शर्मः। शारदीः। दर्त्। ऋणोः। अपः। अनुबद्धाः अणिः। यूने। वृत्रम्। पुरुऽकुत्साय। रुखीः॥२॥

पदार्थ:-(दन:) अनद:। अत्राद्यन्तवर्णविपर्ययोऽडभावश्च। (विश:) प्रजाः (इन्द्र) विद्युद्गितिव वर्त्तमान (मृध्रवाच:) मृधाः प्रवृद्धा वाणीः (सप्त) सप्तछन्दोन्विता (यत्) (पुरः) शत्रुत्रेपार्यः (शार्म) गृहम् (शारदीः) शरदृतुसम्बन्धिनीः (दर्त्) विदारितवान्भवित। अत्र विकरणाभावः। (ऋणोः) प्रेप्नुयाः (अपः) जलानि (अनवद्य) प्रशंसित (अर्णाः) नदी सम्बन्धिनीः। अर्णा इति नदीन्सिस् पंडितम्। (निघं०१.१३) (यूने) (वृत्रम्) मेघम् (पुरुकुत्साय) पुरवो बहवः कृत्सा वज्राः किरणा यस्मिन् (रस्धीः) संराध्नुहि। अत्राडभावः॥२॥

अन्वय:-हे इन्द्र! यद्यस्त्वं सप्तशारदीः पुरः शर्म च दर्त् मृश्रुवाचो विश्वो देनः। स हे अनवद्य! यथा सूर्यः पुरुकुत्साय यूने वृत्रं प्राप्याणी अपो वर्षयित तथा त्वमृणो रन्धीश्च॥२॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। राज्ञा शत्रुपराणि वीरस्थानिद्वार्य ते निवारणीया: सूर्यो जलेन यथा जगद्रक्षति तथा राज्ञा प्रजा रक्षणीया:॥२॥

पदार्थ:-हे (इन्द्र) विद्युत् अग्नि के समान कर्तमाने! (यत्) जो आप (सप्त) सात (शारदी:) शरद् ऋतु सम्बन्धिनी (पुर:) शत्रुओं की नगरी और (भ्रमी) शत्रु घर को (दर्त्त्) विदारनेवाले होते हैं (मृध्रवाच:) अति बढ़ी हुई जिनकी वाणी का (विशः) प्रजाओं को (दन:) शिक्षा देते राज्य के अनुकूल शासन देते हैं, सो हे (अनवद्य) प्रशंस्म को प्रप्ता राजन्! जैसे सूर्यमण्डल (पुरुकुत्साय) बहुत वज्ररूपी अपनी किरणें जिसमें वर्त्तमान उस (यूने) तरुण प्रबलतर वा सुख-दु:ख से मिलते न मिलते हुए संसार के लिये (वृत्रम्) मेघ को प्राप्त कराके (अर्णाः) नदी सम्बन्धीः (अपः) जलों को वर्षाता वैसे आप (ऋणोः) प्राप्त होओ (रस्थीः) अच्छे प्रकार कार्य सिद्धि करनेवाले होओ॥२॥

भावार्थ:-इस मूत्र में उपमालङ्कार है। राजा को चाहिये कि शत्रुओं के पुर, नगर, शरद् आदि ऋतुओं में सुख देनेवाले स्थान आदि वस्तु नष्ट कर शत्रुजन निवारणे चाहियें और सूर्य मेघजल से जैसे जगत् की रक्षा करूता है, वैसे राजा को प्रजा की रक्षा करनी चाहिये॥२॥

अथ राजानस्सपत्नीकाः परिवर्त्तन्तां कलाकौशलसिद्धये अग्निवद्यां विदन्त्वित्याह।। अब्य पाजजेष सपत्नीक, परिभ्रमण करें और कलाकौशल की सिद्धि के लिये अग्निविद्या को जानें,

इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

अजे वृत्ते इन्द्र शूर्रपत्नोद्याः च येभिः पुरुहूत नूनम्।

रक्षों अग्निमुशुषुं तूर्वयाणं सिंहो न दमे अपांसि वस्तोः॥३॥

अर्ज। वृत्तः। ड्रन्द्र। शूर्रऽपत्नीः। द्याम्। च्रा येभिः। पुरुऽहूत् नूनम्। रक्षो इति। अग्निम् अशुर्षम्। तूर्वयाणम्। सिंहः। न। दमे। अपांसि। वस्तोः॥३॥

पदार्थ:- (अज) जानीहि। अत्र द्वयचोऽतस्तिङ इति दीर्घः। (वृतः) स्वीकृतः सन् (इन्द्र) शत्रुदलिवदारक (शूरपत्नीः) शूराणां स्त्रियः (द्वाम्) प्रकाशम् (च) (येभिः) यैः (पुरुद्धतः) बहु भरसत्कृत (नूनम्) निश्चितम् (रक्षो) रक्षेव (अग्निम्) (अशुषम्) शोषरिहतम् (तूर्वयाणम्) तूर्षाणि शीष्ट्रणमनानि यानानि यस्मात्तम् (सिंहः) (न) इव (दमे) गृहे (अपांसि) कर्माणि (वस्तोः) वासिष्वनुम्॥ ३॥

अन्वय:-हे पुरुहूतेन्द्र! वृतस्त्वं येभिस्सह शूरपत्नीर्द्यां च नूनमज जानीहि ते सिंहो न दमेऽपांसि वस्तोः तूर्वयाणमशुषमग्निं रक्षो॥३॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। यथा सिंह: स्वगृहे बलात्सर्वान निरूपिंद्ध मधा निजबलाद्राजा स्वगृहे लाभप्राप्तये प्रयतेत। येन संयुक्तेनाग्निना यानानि तूर्णं गच्छन्ति तिन संस्पाधिते याने स्थित्वा सत्पत्नीका इतस्ततो गच्छन्त्वागच्छन्तु॥३॥

पदार्थ:-हे (पुरुहूत) बहुतों ने सत्कार किये हुए (इन्हें) शत्रुद्धल के नाशक (वृत:) राज्याधिकार में स्वीकार किये हुए राजन्! आप (येभि:) जिनके साथ (श्रूरपत्नी:) शूरों की पत्नी और (द्याञ्च) प्रकाश को (नूनम्) निश्चित (अज) जानो उनके साथ (सिंह:) सिंह के (न) समान (दमे) घर में (अपांसि) कर्मों के (वस्तो:) रोकने को (तूर्वयाणम्) शीघ्र गूमेंच कराचेत्राले यान जिससे सिद्ध होते उस (अशुषम्) शोषरहित जिसमें अर्थात् लोहा, तांबा, पीतल आदि धृतु पिघिला करें, गीले हुआ करें उस (अग्निम्) अग्नि को (रक्षो) अवश्य रक्खो॥३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालिक्कार है। जैसे सिंह अपने भिटे में बल से सबको रोकता ले जाता है, वैसे राजा निज बल से अपने वस में लोभप्राप्ति के लिये प्रयत्न करे। जिस अच्छे प्रकार प्रयोग किये अग्नि से यान शीघ्र जाते हैं, इस अग्नि से सिद्ध किये हुए यान पर स्थिर होकर स्त्री-पुरुष इधर-उधर से आवें-जावें॥३॥

अथ राजधर्मे संग्रामविषयमाह॥

अब राजधर्म में संग्राम विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

शेषुत्रु त इसू सस्मिन् योनौ प्रशस्तिये पवीरवस्य मुह्ना।

मूर्अदण्यिव यद्युधा गास्तिष्ठद्धरी धृष्ता मृष्ट्र वार्जान्॥४॥

शिर्षन्। नु। ते। इन्द्र। सिस्मिन्। योनौ। प्रऽशंस्तये। पवीरवस्य। मह्ना। सृजत्। अर्णांसि। अर्व। यत्। युधा। गाः विष्ठता हेरी इति। धृष्ता। मृष्टु। वाजान्॥४॥ अष्टक-२। अध्याय-४। वर्ग-१६-१७

मण्डल-१। अनुवाक-२३। सूक्त-१७४

पदार्थ:-(श्रेषन्) शयेरन्। अत्र लेटि व्यत्ययेन परस्मैपदम्। (न्) सद्य: (ते) (इन्द्र) सेनिश (सस्मिन्) अत्र छान्दसो वर्णविपर्यास:। (योनौ) स्थाने (प्रशस्तये) उत्कृष्टतायै (पवीरवस्य) वज्रध्वने: (मह्ना) महिम्ना (सजत्) सजेत् (अर्णांसि) जलानि (अव) (यत्) यस्मिन् संग्रामे (युधा) यद्धिन (याः) भूमी: (तिष्ठत्) अतितिष्ठति (हरी) यौ यानानि हरतस्तौ (धृषता) दृढेन बलेन (मृष्ट्र) शत्रुबलें सह (वाजान्) शत्रुवेगान्॥४॥

अन्वयः-हे इन्द्र! प्रशस्तये सस्मिन् योनौ ते पवीरवस्य महा नु शेषन् सद्यः शत्रवः राषेरन्। यद्यस्मिन् संग्रामे सूर्योऽर्णांस्यवसृजदिव युधा गा हरी तिष्ठत्। हे मृष्ट! धृषता वाजांश्च तिष्ठत्॥४॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। ये स्वप्रकृतिस्था: शूर्व्वीरास्सन्त् ते स्वस्वाधिकारे न्यायेन वर्तित्वा शत्रुन्नि:शेषान् कृत्वा धर्म्यं स्वमहिमानं प्रकाशयेयु:॥४॥

पदार्थ:-हे (इन्द्र) सेनापित! (प्रशस्तये) तेरी उत्कर्षता के लिये (सिम्निन्) उस (योनी) स्थान में वा संग्राम में (ते) तेरे (पवीरवस्य) वज्र की ध्वनि के (मह्ना) महिमा से (न) शीघ्र (शेषन्) शत्रुजन सोवें। (यत्) जिस संग्राम में सूर्य जैसे (अणाँसि) जलों को (अव, सुजत्) उत्पन्न करे अर्थात् मेघ से वर्षावे वैसे (युधा) युद्ध से (गा:) भूमियों और जो यानों कि ले जाले उन घोड़ों को (तिष्ठत्) अधिष्ठित होता और हे (मृष्ट) शतुबल को सहनेवाले! (धृषता) दृढ़ बल से (वाजान्) शतुओं के वेगों को अधिष्ठित होता है॥४॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालाङ्कार हो जो अपने स्वभावानुकृल शुरवीर हों वे अपने-अपने अधिकार में न्याय से वर्त्तकर शत्रुजनों को विशेष्ट्र कर धर्म के अनुकूल अपनी महिमा का प्रकाश करावें॥४॥

पुनस्तम्ब विषयमाह॥

फिर उसी बिष्य को अगले मन्त्र में कहा है॥

वहु कुर्त्सिमन्द्र यस्मिर्श्वाकन्त्स्यूमन्यू ऋजा वात्स्याश्चा।

प्र सुरश्चकं वृह्मद्भीकेऽभि स्पृधी यासिषद्वज्रवाहः॥५॥१६॥

वहं। कुत्सम्। इन्द्रो यस्मिन्। चाकन्। स्यूमन्यू इति। ऋजा। वार्तस्य। अश्वा। प्र। सूर्रः। चक्रम्। वृहुतात्। अभीके। अभि। स्पृष्ट्री। यासिषुत्। वर्त्राऽबाहु:॥५॥

पदार्थ्र (वह) प्रापय (कुत्सम्) वज्रम् (इन्द्र) सभेश (यस्मिन्) (चाकन्) कामयसे। अत्र कनीदीप्तिकान्तिगितिष्वित्यस्माल्लङो मध्यमैकवचने बहुलं छन्दसीति शपः स्थाने श्लुः, श्लाविति द्वित्वं बहुलं ब्रेंद्रस्यमाङ्योगेऽपीत्यडभावः, संयोगान्तसलोपश्च। (स्यूमन्यू) आत्मनः स्यूमानं शीघ्रं गमनिमच्छू (ऋत्रा) ऋजेशामिनौ (वातस्य) वायोरिव (अश्वा) अश्वौ (प्र) (सूर:) सूर्य: (चक्रम्) स्वराज्यम् (वृहतात्)

वर्द्धयन्तु (अभीके) समीपे (अभि) सन्मुखे (स्पृधः) स्पर्द्धमानान् शत्रून् (यासिषत्) यातुमिच्छितु (वज्रबाहुः) वज्रः शस्त्रास्त्रम्बाह्वोर्यस्य॥५॥

अन्वय:-हे इन्द्र! त्वं यस्मिन् वातस्य वायोरिव स्यूमन्यू ऋजा अश्वा चाकँस्तस्मिन् कुत्सं (बहु सूर् इव वज्रबाहुर्भवाँश्चकं प्रवृहतादभीके स्पृधोऽभियासिषत्॥५॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा सूर्यस्तथा प्रतापवान् राजा शस्त्रास्त्रप्रहारैः संग्रामे शत्रुन् विजित्य निजराज्यं वर्द्धयेत्॥५॥

पदार्थ:-हे (इन्द्र) सभापति! आप (यस्मिन्) जिस संग्राम में (वातस्य) पवन की सी शींघ्र और सरल गित (स्यूमन्यू) चाहने और (ऋजा) सरल चाल चलनेवाले (अश्वा) में हों को (चाकन्) चाहते हैं, उसमें (कुत्सम्) वज्र को (वह) पहुंचाओ वज्र चलाओ अर्थात् वज्र से ग्रुजुओं का मंहार करो (सूर:) सूर्य के समान प्रतापवान् (वज्रबाहु:) शस्त्र-अस्त्रों को भुजाओं में धारण किये हुए आप: (चक्रम्) अपने राज्य को (प्र, वृहतात्) बढ़ाओ और (अभीके) संग्राम में (स्पृथः) ईंग्य्यां करते हुए शत्रुओं के (अभि, यासिषत्) सन्मुख जाने की इच्छा करो॥५॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है जिसे सूर्य प्रतापवान् है, वैसा प्रतापवान् राजा अस्त्र और शस्त्रों के प्रहारों से संग्राम में शत्रुओं को अच्छे प्रकार जीतकर अपने राज्य को बढ़ावे॥५॥

पुनस्तमेव विषयमाहा।

फिर उसी विषय की अगले मुद्र में कहा है।।

ज्यन्वाँ ईन्द्र मित्रेरूओदप्रवृद्धो हस्वि अदार्शून्।

प्र ये पश्यंत्रर्यमणुं सचायोस्वया शूर्ती वहमाना अपत्यम्॥६॥

जुघुन्वान्। डुन्द्र। मित्रेरून्। चोत्दऽप्रवेद्धः। हुर्ग्दिऽवः। अदाशून्। प्र। ये। पश्यन्।। अर्यमणम्। सर्चा। आयोः। त्वयां। शूर्ताः। वहंमानाः। अपत्यम्। हु।।

पदार्थ:-(जघन्वान्) हितेबान् (इन्द्र) सूर्य इव सभेश (मित्रेरून्) मित्रहिंसकान् शत्रून्। अत्र मित्रोपपदाद् रुषधातोर्बाहुलका सौणाद्विको डुः प्रत्ययः (चोदप्रवृद्धः) चोदेन प्रेरणेन प्रवृद्धः (हरिवः) बह्वैश्वर्ययुक्त (अदाशून्) अदातृन् (प्र) (ये) (पश्यन्) समीक्षन्ते (अर्घ्यमणम्) न्यायेशम् (सचा) संयोगेन (आयोः) प्रापकस्य (त्वया) (शूर्ताः) विमर्दिताः (वहमानाः) नयन्तो धूर्ताः (अपत्यम्) सन्तानम्॥६॥

अन्वयः हि हस्ति इन्द्र! चोदप्रवृद्धस्त्वमदाशून् मित्रेरून् जघन्वानसि। अतो ये आयोरपत्यं वहमानास्त्वया शूर्ता हतास्ते सचा शत्सम्बन्धने त्वामर्य्यमणं प्रपश्यन्॥६॥

भावार्थः-ये मित्रवदाभाषमाणाः परिच्छित्राश्चतुराः शत्रवः सज्जनानुद्वेजयन्ति तान् राजा समूलघातं हन्यात्। त्यासाने स्थित्वा सुसमीक्ष्याऽन्यायं विवर्त्तयेत्॥६॥

अष्टक-२। अध्याय-४। वर्ग-१६-१७

मण्डल-१। अनुवाक-२३। सुक्त-१७४

पदार्थ:-हे (हरिव:) बहुत घोड़ोंवाले (इन्द्र) सूर्य के समान सभापति! (चोदप्रवृद्ध:) सदुपर्देशी की प्रेरणा से अच्छे प्रकार बढ़े हुए आप (अदाशून) दान न देने और (मित्रेरून) मित्रों की हिंसा करनेवाले शत्रुओं को (जघन्वान्) मारनेवाले हो इससे (ये) जो (आयो:) दूसरे को सुख पहुंचीनेवाले सज्जन के (अपत्यम्) सन्तान को (वहमानाः) पहुंचाने अर्थात् अन्यत्र ले जानेवाले धूर्तजन (त्वया) आप ने (शर्ता:) छिन्न-भिन्न किये वे (सचा) उस सम्बन्ध से तुम (अर्घ्यमणम्) न्यायाधीर्य को 🐚 पश्यन्) देखते हैं॥६॥

भावार्थ:-जो मित्र के समान बातचीत करते हुए दुष्टप्रकृति चतुर अञ्चजन सेज्जनों की उद्वेग कराते उनको राजा समृल जैसे वे नष्ट हों वैसे मारे और न्यायासन पर बैद्ध अच्छे प्रकार देख विचार अन्याय को निवृत्त करे॥६॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।

रपत्कविरिन्द्रार्कसातौ क्षां दासायीपबर्हणीं कः।

करित्तस्रो मुघवा दानुचित्रा नि दुर्योणे कुर्यवास पृष्ठि श्रेन्।।७॥

रपत्। कवि:। इन्द्र। अर्कऽसातौ। क्षाम्। दासाद्म उष्डबर्हण्याम्। करिति क:। करत्। तिस्र:। मघऽवा। दानुंऽचित्रा:। नि। दुर्योणे। कुर्यवाचम्। मृधि। श्रेत्॥७॥

पदार्थ:-(रपत्) व्यक्तं वदेत् (कवि:) सूर्वशास्त्रीर्वत् (इन्द्र) सूर्यवत् सभेश (अर्कसातौ) अन्नानां संविभागे (क्षाम्) भूमिम् (दासाय) शूद्रवर्मायु (उपलुहणीम्) सुवर्द्धिकाम् (कः) करोति। अत्राडभावः। (करत्) कुर्यात् (तिस्र:) उत्तममध्यमनिकृष्टरूपेमा त्रिविधा (मघवा) उत्तमधनसम्बन्धी (दानुचित्रा:) अद्भृतदानाः (नि) (दुर्योणे) समराङ्गणे (क्रयवाचम्) यः कुयवान् विक्त प्रशंसित तम् (मृधि) युद्धे (श्रेत्) आश्रयेत्॥७॥

अन्वय:-हे इन्द्र! यः क्रिवेर्ष्क्सातौ दास्त्रायोपबर्हणीं क्षां कः स सत्यं रपद्यो मघवा तिस्रो दानुचित्राः करत्स दुर्योणे मृधि कुयवाचं निश्रेत्।

भावार्थ:-शास्त्रज्ञस्मभाप्रेतिः शुद्रवर्गाय शास्त्रशिक्षयोत्तमान्नादिवृद्धिकरीं भूमिं सम्पादयेत्। सत्यशीलदान-वैच्चित्र्यसम्पादनायीत्तममध्यमनिकृष्टान् दानव्यवहारान् सम्पादयेत् सर्वदा संग्रामादिभूमौ शत्रुन् संहत्य ग्रुप्यं बिलर्द्धयेत्॥

पदार्थ: है (इन्द्र) सूर्य के समान सभापति! जो (कवि:) सर्वशास्त्रों का जाननेवाला (अर्कसातौ) अत्रों के अच्छे प्रकार विभाग में (दासाय) शुद्र वर्ग के लिये (उपवर्हणीम्) अच्छी वृद्धि देनेवाली (क्षाम्) भूमि⁄ को (के) नियत करता वह सत्य स्पष्ट (रपत्) कहे जो (मघवा) उत्तम धन का सम्बन्ध रखनेवाला (तिस्त्र:) इतम, मध्यम और निकृष्ट कि (दानुचित्रा:) अद्भुत दान जिनमें होता उन क्रियाओं को (करत्)

नियत करे वह (दुर्योणे) समरभूमि विषयक (मृधि) युद्ध में (कुयवाचम्) कुत्सित यवों की प्रशीसी करनेवाले सामान्य जन का (नि, श्रेत्) आश्रय लेवे॥७॥

भावार्थ:-शास्त्र जाननेवाले सभापित शूद्रवर्ग के लिये शास्त्र की शिक्षा के साथ उत्पानीहि की वृद्धि करनेवाली भूमि को संपादन करावें और सत्यशील तथा दान की विचित्रता संपादन करने के लिये उत्तम, मध्यम, निकृष्ट दानव्यवहारों को सिद्ध करें और सब काल में संग्रामादि भूमियों में शत्रुओं का संहार कर अपने राज्य को बढ़ाता रहे॥७॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

सना ता तं इन्द्र नव्या आगुः सहो नभोऽविंरणाय पूर्वीर्प् भिनत्पुरो न भिदो अदेवीर्ननमो वध्रदेवस्य पीयोः॥

सर्ना। ता। ते। इन्द्र। नव्याः। आ। अगुः। सर्हः। नर्भः। अधिऽरणोष्। प्रूर्वीः। भिनत्। पुरः। न। भिर्दः। अर्देवीः। नुनर्मः। वर्धः। अर्देवस्य। पीयोः॥८॥

पदार्थ:-(सना) सनानि प्रसिद्धानि शौर्याणि (ता) जानि ते जासि (ते) तव (इन्द्र) सिवतृवद्वर्त्तमान (नव्या:) नवा जना इव (आ) (अगु:) आगच्छेयुः (सहः) सहस्ते लिङ मध्यमैकवचनेऽडभावः। (नभः) हिंसकान् (अविरणाय) युद्धनिवृत्तये (पूर्वी:) प्राचीनाः (भिनतः) अभिनत्। अत्राऽडभावः। (पुरः) शत्रूणां नगरीः (न) इव (भिदः) भिन्नाः (अदेवीः) अस्रस्य दुष्टस्य नगरीः (ननमः) नमयित। अत्रान्तर्भावितो ण्यर्थः। नम धातोर्लेटि मध्यमैकवचने अस्र स्लुः अलाविति द्विवंचनम्। (वधः) नाशः (अदेवस्य) असुरस्य शत्रुगणस्य (पीयोः) स्थूलस्य अत्र पीवो धातोर्बाद्वलकादौणादिको युक् प्रत्ययः॥८॥

अन्वयः-हे इन्द्र! त्वमविरणाम् नभी सहो भवान् पूर्वीः पुरो भिनत् न भिदोऽदेवीर्ननमस्तेनादेवस्य पीयोर्वधो भवतीत्येतानि यानि ते सना ता नव्या अगुःगटम

भावार्थ:-अत्रोपमाल्द्धिरः। राजान् संग्रामादिष्वीदृशानि शूरताप्रदर्शकानि कर्माण्याचरेयुर्यानि दृष्ट्वैवादृष्टपूर्वकर्माणो नक्निन्दुःष्टाः पूजाजना बिभ्येयुः॥८॥

पदार्थ:-हे (इन्द्र) सूर्य के समान प्रतापवान् राजन्! आप (अविरणाय) युद्ध की निवृत्ति के लिये (नभः) हिंसक शृत्रुजनों को (सहः) सहते हो। आप जैसे (पूर्वीः) प्राचीन (पुरः) शत्रुओं की नगरियों को (भिनत्) छित्र भिन्न करते हुए (न) वैसे (भिदः) भिन्न अलग-अलग (अदेवीः) शत्रुवर्गों की दुष्ट नगरियों को (ननमः) नमार्के ढहाते हो उससे (अदेवस्य, पीयोः) राक्षसपन संचारते हुए शत्रुगण का (वधः) नाश होता है (यह जो (त) आपके (सना) प्रसिद्ध शूरपने के काम हैं (ता) उनको (नव्याः) नवीन प्रजाजन (आर्गुः) प्राप्त होवें॥८॥

अष्टक-२। अध्याय-४। वर्ग-१६-१७

मण्डल-१। अनुवाक-२३। सूक्त-१७४

१८३१

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। राजजन संग्रामादि भूमियों में ऐसे शूरता दिखलानेवाले कामों का आचरण करें, जिनको देख के ही जिन्होंने पिछली शूरता के काम नहीं देखे, वे नबीन दुष्ट्र प्रजाजन भयभीत हों॥८॥

अथ प्रकारान्तरेण राजधर्मविषयमाह॥

अब प्रकारान्तर से राजधर्म विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

त्वं धुनिरिन्द्र धुनिमतीर्ऋणोरपः सीरा न स्रवन्तीः।

प्र यत्समुद्रमित शूर् पर्षि पारया तुर्वशं यदुं स्वस्ति॥९॥

त्वम्। धुनिः। इन्द्रः। धुनिऽमतीः। ऋणोः। अपः। सीराः। न। स्रर्वन्तीः। प्रसिपुरुम्। अति। श्रूरः। पर्षि। पारये। तुर्वश्रम्। यद्वेम्। स्वस्ति॥९॥

पदार्थ:-(त्वम्) (धुनिः) कम्पकः (इन्द्र) सूर्य्यवद्वर्तमान (धुनिपतीः) कम्पयुक्ताः (ऋणोः) प्राप्नुयाः (अपः) जलानि (सीराः) नाडीः (न) इव (स्रवन्तीः) गच्छन्तीः (प्र) (यत्) यः (समुद्रम्) (अति) (श्रूर) शत्रुहिंसक (पर्षि) सिक्तमुदकम् (पारय) त्रीरे प्रापय। अत्रान्येषामपीति दीर्घः। (तुर्वशम्) यस्तूर्णकारी वशंगतस्तं मनुष्यम् (यदुम्) यत्नशीलम् (स्वस्ति) सुष्यम्।। ९॥

अन्वयः-हे इन्द्र धुनिस्त्वं विद्वदग्निधुनिमतीरपः स्वन्तीः सीरा च प्रजाः प्राणीः। हे शूर! यद्यस्त्वं समुद्रमित पर्षि स यदुन्तुर्वशं स्वस्ति पारय॥९॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। यथा शर्रीरस्था विद्युत्राडीषु रुधिरं गमयित सूर्यो जलं च जगित प्रापयित तथा प्रजासु सुखं गमयेद् दुष्टान् क्रम्प्यूत्। ९)।

पदार्थ:-हे (इन्द्र) सूर्य के समान वर्तमान (धुनि:) शत्रुओं को कंपानेवाले! (त्वम्) आप बिजुलीरूप सूर्यमण्डलस्थ अग्नि जैसे (धुनिमतों:) कंपते हुए (अप:) जलों को वा बिजुलीरूप जठराग्नि जैसे (स्रवन्ती:) चलती हुई (स्रोरा:) नाडियों को (न) वैसे प्रजाजनों को (प्राणों:) प्राप्त हूजिये। हे (शूर) शत्रुओं की हिंसा करनेवाले! (यत्) जो आप (समुद्रम्) समुद्र को (अति, पर्षि) अतिक्रमण करने उतिर के पार पहुंचते हो सो (चदुम्) यत्नशील और (तुर्वशम्) जो शीघ्र कार्यकर्त्ता अपने वश को प्राप्त हुआ उस जन को (स्वस्ति) कल्याण जैसे हो वैसे (पारय) समुद्रादि नद के एक तट से दूसरे तट को झटपट पहुंचवाइये॥९॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे शरीरस्थ बिजुलीरूप अग्नि नाड़ियों में रुधिर को पहुंचाती है और सूर्यमण्डल जल को जगत् में पहुंचाता है, वैसे प्रजाओं में सुख को प्राप्त करावें और दुष्टों को केंपावें।। रा

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

त्वमस्मार्कमिन्द्र विश्वर्धं स्या अवृकर्तमो नुरां र्रृपाता।

स नो विश्वासां स्पृधां सहोदा विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम्॥ १०॥ १७॥

त्वम्। अस्मार्कम्। इन्द्रः। विश्वर्षः। स्याः। अवृकऽतमः। नुराम्। नृरपाता। सः। नः। विश्वरीसीम्। स्पृथ्वम्। सहःऽदाः। विद्यामः। इषम्। वृजनम्। जीरऽदानुम्॥ १०॥

पदार्थ:-(त्वम्) (अस्माकम्) (इन्द्र) सुखप्रदातः (विश्वध) विश्वेस्सर्वैः प्रकृरिरिति विश्वध। अत्र छान्दसो हस्वः। (स्याः) भवेः (अवृकतमः) न सन्ति वृकाश्चौरा यस्य सम्बन्धे सोऽतिशिष्ठा इति (नराम्) नराणाम् (नृपाता) नृणां रक्षकः (सः) (नः) अस्माकम् (विश्वासाम्) सर्वोसाम् (स्पृधाम्) युद्धित्रयाणाम् (सहोदाः) बलप्रदाः (विद्याम्) विजानीयाम (इषम्) शास्त्रविज्ञानम् (वृजनम्) धर्म्यं मार्गम् (जीरदानुम्) जीवस्वरूपम्॥१०॥

अन्वय:-हे इन्द्र! त्वमस्माकं मध्ये विश्वध नरां नृपातावृकतमः स्याः एस नो विश्वासा स्पृधां सहोदाः स्या यतो वयं जीरदानुं वृजनिमषं च विद्याम॥१०॥

भावार्थ:-ये यमान्विता नियतेन्द्रियाः प्रजार्श्वकाश्चौर्याद्विकर्मत्यक्तवन्तो निवसेरँस्ते महदैश्वर्यमाप्नुवन्ति॥१०॥

अत्र राजकृत्यवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गितिर्वेद्वारी।

इति चतुस्सप्तत्युत्तरं शततमं १७४ सूक्तं सप्तदेशो १७ वर्गश्च समाप्त:॥

पदार्थ:-हे (इन्द्र) सुख देनेवाले! (त्वम्) आप (अस्माकम्) हमारे बीच (विश्वध) सब प्रकार से (नराम्) मनुष्यों में (नृपाता) मनुष्यों की रक्षा करनेवाले अर्थात् प्रजाजनों की पालना करनेवाले और (अवृकतमः) जिनके सम्बन्ध में चोरजन नहीं ऐसे (स्थाः) हूजिये तथा (सः) सो आप (नः) हमारे (विश्वासाम्) समस्त (स्पृधाम्) युद्ध की क्रियाओं के (सहोदाः) बल देनेवाले हूजिये, जिससे हम लोग (जीरदानुम्) जीव के रूप को (वृजनम्) धर्मयुक्त मार्ग को और (इषम्) शास्त्रविज्ञान को (विद्याम) प्राप्त होवें॥१२॥

भावार्थ:-जो यम-नियमों से युक्त नियत इन्द्रियों वाले प्रजाजनों के रक्षक चौर्यादि कर्मों को छोड़े हुए अपने राज्य में निवास करते हैं, वे अत्यन्त ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं॥१०॥

इस मन्त्र में राष्ट्रिजों के क्रुस्य का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये॥

थुह एक स्मे चौहत्तरवां १७४ सूक्त और सत्रहवां १७ वर्ग पूरा हुआ॥

मत्सीत्यस्य षड्चस्य पञ्चसप्तत्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य अगस्त्य ऋषिः। इन्द्रो देवता। १ स्वराडनुष्टुप्। २ विराडनुष्टुप्। ५ अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः। ३ निचृत् त्रिष्टुप्। ६ भुरिक्

त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। ४ उष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

अथ राजविषयं प्रकारान्तरेणाह॥

अब राजविषय को प्रकारान्तर से कहते हैं॥

मत्स्यपायि ते महः पात्रस्येव हरिवो मत्सरो मर्दः। वृषां ते वृष्ण इन्दुर्वाजी सहस्रसार्तमः॥ १॥

मित्सं। अपायि। ते। महः। पात्रस्यऽइव। हृरिऽवः। मृत्सुरः। मर्दः। विषे। ते। वृष्णे। इन्दुः। वाजी। सुहुस्रुऽसार्तमः॥१॥

पदार्थ:-(मित्स) हष्यसि (अपायि) (ते) तव (महः) महतः (पात्रस्येव) यथा पात्रस्य मध्ये (हिरवः) प्रशस्ताश्च (मत्सरः) हर्षकरः (मदः) मदन्ति हर्षन्ति स्रिग्येष भूगाऽसौ (वृषा) बलकरः (ते) तुभ्यम् (वृष्णे) सेचकाय बलवते (इन्दुः) ऐश्वर्यकरः (वाजी) वेम्ह्रान् (सहस्रसातमः) अतिशयेन सहस्रस्य विभाजकः॥१॥

अन्वय:-हे हरिवो! महः पात्रस्येव यस्ते मत्सरो महस्त्वपायि तेच त्वं मित्स स च वाजी सहस्रसातमो वृष्णे ते वृषेन्दुर्भविति॥१॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। यथाऽश्वादिके पीत्वा घासं जग्ध्वा बलिष्ठा वेगवन्तो जायन्ते तथा पथ्योषधिसेविन आनन्दिता भवन्ति॥ अर्

पदार्थ:-हे (हरिव:) प्रशंसित घोड़ोंबलो (मह:) बड़े (पात्रस्थेव) पात्र के बीच जैसे रक्खा हो, वैसे जो (ते) आप का (मत्सर:) हुई कर्पवाला (मद:) नीरोगता के साथ जिससे जन आनन्दित होते हैं, वह ओषिथयों का सार आपने (अपाधि) पिया है, उससे आप (मत्सि) आनन्दित होते हैं और वह (वाजी) वेगवान् (सहस्रसातर्पः) अतीव सहस्र लोगों का विभाग करनेवाला (वृष्णे) सींचनेवाले बलवान् जो (ते) आप उनके लिये (बृष्णे) बलु और (इन्दुः) ऐश्वर्य करनेवाला होता है॥१॥

भावार्थ:-इस मेन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे घोड़े दूध आदि पी, घास खा बलवान् और वेगवान् होते हैं, वैसे पथ्य ओषधियों के सेवन करनेवाले मनुष्य आनन्दित होते हैं॥१॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

ຊ नस्ते गन्तु मत्सुरो वृषा मदो वरेण्यः।

मुहोवाँ इन्द्र सानुसिः पृतनाषाळमर्त्यः॥२॥

आ। नः। ते। गुन्तु। मृत्सरः। वृषां। मदः। वरेण्यः। सहऽवांन्। इन्द्र। सान्तिः। पृतनाषाट्। अमर्त्यः॥२॥ पदार्थः-(आ) समन्तात् (नः) अस्मान् (ते) तव (गन्तु) प्राप्नोतु (मत्सरः) सुखकरः (वृषा) वीर्यकारी (मदः) औषधिसारः (वरेण्यः) वर्तुं स्वीकर्त्तुमर्हः (सहावान्) सहो बहुसहनं विक्रिते यस्मिन् सः। अत्राऽन्येषामपीत्युपधादीर्घः। (इन्द्र) सभेश (सानिसः) संविभाजकः (पृतनाषाट्) पृतन्ति नृसेना सहते येन सः (अमर्त्यः) मनुष्यस्वभावाद्विलक्षणः॥२॥

अन्वयः-हे इन्द्र! ते यो मत्सरो वरेण्यो वृषा सहावान् सानिसः पृतनाषाडमर्त्यो महोऽस्ति स नीऽस्माना गन्तु॥२॥

भावार्थ:-मनुष्यैराप्तानां धर्मात्मनामोषधिरसोऽस्मान् प्राप्नोत्विति सुद्देवेषित्व्यम्॥२॥

पदार्थ:-हे (इन्द्र) सभापति! (ते) आपका जो (मत्सर:) सुख्न करिताला (वरेण्य:) स्वीकार करने योग्य (वृषा) वीर्यकारी (सहावान्) जिसमें बहुत सहनशीलता विद्यमान (सानिसः) जो अच्छे प्रकार रोगों का विभाग-करनेवाला (पृतनाषाट्) जिससे मनुष्यों की सेना को सहते हैं और (अमर्त्यः) जो मनुष्य स्वभाव से विलक्षण (मदः) ओषिधयों का रस है, वह (नः) हुण लोगों को (आ, गन्तु) प्राप्त हो॥२॥

भावार्थ:-मनुष्यों को चाहिये कि आप्त धर्मात्मा जनीं का ओषधि रस हमको प्राप्त हो, ऐसी सदा चाहना करें॥२॥

अथ राज्यविषय सेनोषतिविषयमाह॥

अब राजविषय में सेनाप्रति के विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

त्वं हि शूरुः सर्निता चोदयो, मनुष्रो रश्रम्

सहावान्दस्युमवृतमोषः प्रात्रं ते शोचिषां॥३॥

त्वम्। हि। शूर्रः। सर्निता चोदयः। सर्नेषः। स्थम्। सहऽवान्। दस्युम्। अव्वतम्। ओषः। पात्रम्। न। शोचिषां॥३॥

पदार्थ:-(त्वम्) (हि) युद्धः (शूरः) निर्भयः (सिनता) संविभक्ता (चोदयः) प्रेरय (मनुषः) मनुष्यान् (रथम्) युद्धाय प्रवित्ताम् (सहावान्) बलवान्। अत्राऽन्येषामपीति दीर्घः। (दस्युम्) प्रसह्य परस्वापहर्त्तारम् (अव्रतम्) दुःशीलम् (ओषः) दहसि (पात्रम्) (न) इव (शोचिषा) प्रदीप्तयाऽग्निज्ञीलया॥३॥

अन्वयः-हे सेनेश! हि यतः शूरस्सनिता त्वं मनुषो रथं चोदयः। सहावाञ्छोचिषा पात्रं नाव्रतं दस्युमोषस्तुरमान्मान्यभाक् स्याः॥३॥

भावार्थः-ये सेनापतयो युद्धसमये रथादियानानि योध्ँश्च युद्धाय प्रचालयितुं जानन्ति, ते विह्नः क्राष्ट्रिमिन्य दस्यून् भस्मीकर्तुं शक्नुवन्ति॥३॥ अष्टक-२। अध्याय-४। वर्ग-१८

मण्डल-१। अनुवाक-२३। सूक्त-१७५

१८३५

पदार्थ:-हे सेनापित! (हि) जिस कारण (शूरः) शूरवीर निडर (सिनता) सेना को संविधारी करने अर्थात् पद्मादि व्यूह रचना से बांटनेवाले (त्वम्) आप (मनुषः) मनुष्यों और (रथम्) युद्ध के लिये प्रवृत्त किये हुए रथ को (चोदयः) प्रेरणा दें अर्थात् युद्ध समय में आगे को बढ़ावें और (सहाचान्) बलवान् आप (शोचिषा) दीपते हुए अग्नि की लपट से जैसे (पात्रम्) काष्ठ आदि के पात्र को (ने) वैसे (अव्रतम्) दुश्शील दुराचारी (दस्युम्) हठ कर पराये धन को हरनेवाले दुष्टजन को (ओषः) जलाओ इससे मान्यभागी होओ॥३॥

भावार्थ:-जो सेनापित युद्ध समय में रथ आदि यान और योद्धाओं को दङ्क से पूलाने की जानते हैं, वे आग जैसे काष्ठ को वैसे डाकुओं को भस्म कर सकते हैं॥३॥

अथ राजधर्मविषये सभापतिविषयमाहु॥

अब राजधर्म विषय में सभापति के विषय को अगले फर्ने में कहा है।।

मुषाय सूर्यं कवे चक्रमीशान ओर्जसा।

वहु शुष्णांय वृधं कुत्सुं वातुस्यार्थै:॥४॥

मुषाया सूर्यम्। कुवे। चुक्रम्। ईशानः। ओर्जसा। वहा शुर्णीया बुधेम्। कुत्सम्। वार्तस्य। अर्थैः॥४॥

पदार्थ:-(मुषाय) (सूर्यम्) (कवे) क्रान्तदर्शन सकलविद्याविद्वन् (चक्रम्) भूगोलराज्यम् (ईशान:) ऐश्वर्यवान् समर्थ: (ओजसा) बलेन (वह) प्रापय (शृष्णाय) परेषां हृदयस्य शोषकाय (वधम्) (कुत्सम्) वज्रम् (वातस्य) वायो: (अश्वै:) वेग्रिंदिभिर्गुणै:) ४॥

अन्वय:-हे कवे ईशानस्त्वं सूर्यीमवौजना चक्रं मुपाप्न शुष्णाय वातस्याऽश्वेरिव स्वबलै: कुत्सं परिवर्त्य वधं वह प्रापय॥४॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्नोपमासङ्कारः। ये चक्रवर्तिराज्यं कर्त्तुमिच्छेयुस्ते दस्यून् दुष्टाचारान् मनुष्यान्निवर्त्त्यं न्यायं प्रवर्त्तयेयुः ॥४॥

पदार्थ: -हे (कवे) क्रेप-क्रम से कृष्टि देने समस्त विद्याओं के जाननेवाले सभापित (ईशान:) ऐश्वर्यवान् समर्थ! आप (सूर्यप्) प्रूर्यमण्डल के समान (ओजसा) बल से युक्त (चक्रम्) भूगोल के राज्य को (मुषाय) हर के (शुष्ट्राय) औरों के हृदय को सुखानेवाले दुष्ट के लिये (वातस्य) पवन के (अश्वै:) वेगादि प्रूणों के समान अपने बलों से (कुत्सम्) वज्र को घुमा के (वधम्) वध को (वह) पहुंचाओ अर्थात् उक्त दुष्ट को मारो॥४॥

भावार्थ: इस मेन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो चक्रवर्ती राज्य करने की इच्छा करें, वे डाकू और दुष्टाचारी मेनुष्यों को निवार के न्याय को प्रवृत्त करावें॥४॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

शुष्मिन्तमो हि ते मदो द्युम्निन्तम उत क्रतुः। वृत्रघ्ना वरिवोविदा मंसीष्ठा अश्वसातमः॥५॥

शुष्मिन्ऽत्रमः। हि। ते। मर्दः। द्युम्निन्ऽत्रमः। उत। क्रतुः। वृत्रुऽघ्ना। वृत्रिवःऽविदाः। ससीक्षाः। अश्वऽसात्रमः॥५॥

पदार्थ:-(शुष्मिन्तमः) अतिशयेन बली (हि) यतः (ते) तव (मदः) हर्षः (शुप्तिन्तमः) अतिशयेन यशस्वी (उत) अपि (कृतुः) कर्मपराक्रमः (वृत्रघ्ना) वृत्रं मेघं हिन्ति यस्तेन सूर्येणेव (विरवोविदा) परिचरणं विन्दित प्राप्नोति येन तेन पराक्रमेण (मंसीष्ठाः) मन्येथाः (अश्वसातमः) योऽश्वान् सनित संभजित सोऽतिशयितः॥५॥

अन्वय:-हे सर्वेश! हि ते शुष्मिन्तमो मद उतापि द्युम्निन्तमः क्रतुः चरक्रमोऽस्ति तेन वृत्रघ्ना वरिवोविदाऽश्वसातमो मंसीष्ठाः॥५॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। ये सूर्य्यवृतेषस्विनो विद्युद्वत्पराक्रमिणो यशस्विनो बलिष्ठा विद्याविनयधर्मान् सेवन्ते ते सुखमश्नुवते॥५॥

पदार्थ:-हे सबके ईश्वर सभापति! (हि) जिस्स वरिष् (ते) आपका (शुष्मिन्तमः) अतीव बलवाला (मदः) आनन्द (उत) और (द्युम्निन्तमः) अतीव यशयुक्त (क्रतुः) पराक्रमरूप कर्म है, उससे (वृत्रघ्ना) मेघ को छिन्न-भिन्न करनेवाले सूर्य के समान प्रकाशमान (विरिवोविदा) जिससे कि सेवा को प्राप्त होता, उस पराक्रम से (अश्वसातमः) अतीव अश्वाद्विकों का अच्छे विभाग करनेवाले आप दूसरे के विषय [विनय] को (मंसीष्ठाः) मानो॥५॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकुलुप्तीप्रालिक्कार है। जो सूर्य के समान तेजस्वी, बिजुली के समान पराक्रमी, यशस्वी, अत्यन्त बली जून विद्या, विनय और धर्म का सेवन करते हैं, वे सुख को प्राप्त होते हैं॥५॥

पुन्स्त्रेमेव विषयमाह॥

फिर इसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यथा पूर्वभयो जरित्भयो इन्द्र मर्यड्वापो न तृष्यंते बुभूर्थ।

तामनु त्वा निविदं जोहवीमि विद्यामेषं वृजनं जी्रदानुम्॥६॥१८॥

यथार पूर्वभ्यः। जुरितृऽभ्यः। इन्द्रः। मर्यःऽइवः। आर्पः। नः। तृष्यते। बुभूर्थः। ताम्। अनुं। त्वाः। निऽविद्यम्। जोहुवीम्। विद्यामा इपम्। वृजनम्। जीरऽदानुम्॥६॥

परार्थ:-(यथा) येन प्रकारेण (पूर्वेभ्य:) अधीतपूर्वविद्येभ्य: (जरितृभ्य:) सक्रलिबिह्मपुणस्तावकेभ्य: (इन्द्र) विद्यैश्वर्ययुक्त (मयइव) सुखमिव (आप:) जलानि (न) इव (तृष्यते) अष्टक-२। अध्याय-४। वर्ग-१८

मण्डल-१। अनुवाक-२३। सूक्त-१७५

१८३७

तृषाक्रान्ताय (**बभूथ**) भव (ताम्) (अनु) (त्वा) (निविदम्) नित्यविद्याम् (जोहवीमि) भृशं स्तीमि (विद्याम) (इषम्) (वृजनम्) बलम्। वृजनिमित बलनामसु पठितम्। (निघं०२.९) (जीरदानुम्) स्वात्मस्वरूपम्॥६॥

अन्वय:-हे इन्द्र! यथा निविदा पूर्वेभ्यो जिरतृभ्यो मयइव तृष्यत आपो न त्वं बभूथ ता सिविदमेन व्याहं जोहवीमि। अतो वयमिषं वृजनं जीरादानुञ्च विद्याम॥६॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। ये ब्रह्मचर्येणाप्तेभ्यो विद्याशिक्षे प्राप्याऽन्येभ्यः प्रयच्छन्ति ते सुखेन तृप्ताः सन्तो प्रशंसामाप्नुवन्ति। ये विरोधं विहाय परस्परमुपदिशन्ति ते विज्ञानब्र्<u>व्य जीवप</u>रमात्मस्वरूपं च जानन्ति॥६॥

अत्र राजव्यवहारवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीरित वेद्यम्।) इति पञ्चसप्तत्युत्तरं शततमं १७५ सूक्तमष्टादशो १८ वर्गेश्च समाप्तः॥

पदार्थ:-हे (इन्द्र) विद्यैश्वर्ययुक्त! (यथा) जिस प्रकार नित्य विद्या से (पूर्वभ्य:) प्रथम विद्या अध्ययन किये (जिरतृभ्य:) समस्त विद्या गुणों की स्तुति करनेबाले जुमों के लिये (मयइव) सुख के समान वा (तृष्यते) तृषा से पीड़ित जन के लिये (आप) जुलों के (न) समान आप (बभूथ) हूजिये, (ताम्) उस (निविदम्) नित्य विद्या के (अनु) अनुकूल (त्वा) आपकी मैं (जोहवीमि) निरन्तर स्तुति करता हूँ। और इसी से हम लोग (इषम्) इच्छासिद्धि (वृजनम्) बल और (जीरदानुम्) आत्मस्वरूप को (विद्याम) प्राप्त होवें॥६॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार हैं। जो बहुत्वर्य के साथ शास्त्रज्ञ धर्मात्माओं से विद्या और शिक्षा पाकर औरों को देते हैं, वे सुख से कुत्र होते हुए प्रशंसा को प्राप्त होते हैं और जो विरोध को छोड़ परस्पर उपदेश करते हैं वे विज्ञान, बक्ष और जोव्यत्मा-परमात्मा के स्वरूप को जानते हैं॥६॥

इस सूक्त में राजव्यवहार के वर्णेंग से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये॥

यह एक सूर् पचहत्तरवा १७५ सूक्त और अठारहवां १८ वर्ग समाप्त हुआ॥

मत्सीत्यस्य षड्चस्य षट्सप्तत्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्यागस्त्य ऋषिः। इन्द्रो देवता। १,४ अनुष्टुप्। २ निचृदनुष्टुप्। ३ विराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः। ५ भुरिगुष्णिक् छन्दः। ऋषभः

स्वर:। ६ भुरिक् त्रिष्टुप् छन्द:। धैवत: स्वर:॥

अथ राजविषये विद्यापुरुषार्थयोगमाह॥

अब एक सौ छिहत्तरवें सूक्त का आरम्भ है। उसके प्रथम मन्त्र में राजविषय में विद्यानुकूष्टें पुरुषार्थ योग को कहते हैं।।

मित्से नो वस्यइष्टय इन्द्रमिन्दो वृषा विश।

ऋ्घायमाण इन्वसि शत्रुमन्ति न विनदसि॥ १॥

मित्सि। नुः। वस्यै:ऽइष्टये। इन्द्रम्। इन्द्रो इति। वृषां। आ। विश्वा अध्यायमाणः। इन्विसि। शार्त्रम्। अन्ति। न। विन्दुसि॥ १॥

पदार्थ:-(मित्स) आनन्दिस (न:) अस्माकम् (वृष्णिहृष्ट्ये) वृसीयसोऽतिशयितस्य धनस्य सङ्गमनाय (इन्द्रम्) परमैश्वर्य्यम् (इन्द्रो) आर्द्रस्वभाव (वृष्ण) बलिष्टः (आ) समन्तात् (विश) प्राप्नुहि (ऋघायमाणः) वर्द्धमानः। अत्र ऋधु धातोः कः प्रत्ययो वर्ष्णवित्ययेने घः तत उपमानादाचार इति क्यङ्। (इन्विस) व्याप्नोषि (शत्रुम्) (अन्ति) (न) निषेधे (विन्द्रिस्) लग्नमः॥१॥

अन्वय:-हे इन्दो! चन्द्र इव वर्त्तमानन्यायेश वृषा या प्रधायमाणस्त्वं नो वस्यइष्टये इन्द्रं प्राप्य मित्स शत्रुमिन्वसि। अन्ति न विन्दिस स त्वं सेनामाविश॥१॥

भावार्थ:-ये प्रजानामिष्टसुखाय दुष्टाने निवर्त्तयन्ति सत्याचारं व्याप्नुवन्ति, ते महदैश्वर्य्यमाप्नुवन्ति॥१॥

पदार्थ:-हे (इन्दो) चन्द्रमा के समान शांतल शान्तस्वरूपवाले न्यायाधीश! जो (वृषा) बलवान् (ऋघायमाण:) वृद्धि को प्राप्त होते हुए आप (न:) हमारे (वस्यइष्टये) अत्यन्त धन की सङ्गित के लिए (इन्द्रम्) परमैश्वर्य को प्राप्त होकर (मित्स) आनन्द को प्राप्त होते हो और (शत्रुम्) शत्रु को (इन्विस) व्याप्त होते अर्थात् उनके किये हुए दुर्गचार को प्रथम ही जानते हो किन्तु (अन्ति) अपने समीप (न) नहीं (विन्दिस) शत्रु पाते सो आप सेना को (आ, विश) अच्छे प्रकार प्राप्त होओ॥१॥

भावार्थ: जो प्रजाजनों के चाहे हुए सुख के लिये दुष्टों को निवृत्ति कराते और सत्य आचरण को व्याप्त होते, वे महानु ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं॥१॥

अथ प्रकृतविषये विद्याबीजविषयमाह॥

अब प्रकृत विषय में विद्यारूप बीज के विषय को कहते हैं॥

तस्पुन्ना वेशया गिरो य एकेश्चर्षणीनाम्।

अष्टक-२। अध्याय-४। वर्ग-१९

मण्डल-१। अनुवाक-२३। सूक्त-१७६

१८३९

अनु स्वधा यमुप्यते यवं न चर्कृषुद् वृषां॥२॥

तस्मिन्। आ। वेश्या गिर्रः। यः। एकः। चर्षणीनाम्। अनुं। स्वधा। यम्। उप्यते। यवम्। नः चर्क्षत्। वृषां॥२॥

पदार्थ:-(तस्मिन्) (आ) (वेशय) समन्तात् प्रापय। अत्र संहितायामिति, दीर्घः। (निरः) उपदेशरूपा वाणीः (यः) (एकः) असहायः (चर्षणीनाम्) मनुष्याणाम् (अनु) (ख्वा) अवस् (यम्) (उप्यते) (यवम्) (न) इव (चर्कृषत्) भृशं कर्षन् भृशं भूमिं विलिखन् (वृषा) कृष्ट्रिकमेकुशलाः॥ २॥

अन्वय:-हे विद्वंस्तस्मिन् गिर आ वेशय यश्चर्षणीनामेक एवाऽस्ति। यमनुलक्ष्य चकृषेद् वृषा यवं न स्वधान्नमुप्यते च॥२॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। यथा कृषिवला: क्षेत्रेषु वीजान्त्रुप्त्या धनानि लभन्ते तथा विद्वांसो जिज्ञासूनामात्मसु विद्यासुशिक्षे प्रवेश्य सुखानि लभन्ते॥२॥

पदार्थ: -हे विद्वान्! (तस्मिन्) उसमें (गिर:) उपदेशरूप वाणियों को (आ, वेशय) अच्छे प्रकार प्रविष्ट कराइये कि (य:) जो (चर्षणीनाम्) मनुष्यों में (एक:) एक अकेला सहायरहित दीनजन है और (यम्) जिसका (अनु) पीछा लखिकर (चर्कृषत्) निरन्तर भूमि को जोतता हुआ (वृषा) कृषिकर्म में कुशल जन (यवम्) यव अत्र को (न) जैसे बोये वैसे (स्वधा) अत्र (उप्यते) बोया जाता अर्थात् भोजन दिया जाता है॥२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार हैं। जैसे कृषिवल खेती करनेवाले उन खेतों में बीजों को बोकर अन्नों वा धनों को पाते हैं, वैसे विक्रम जन ज्ञान विद्या चाहनेवाले शिष्य जनों के आत्मा में विद्या और उत्तम शिक्षा प्रवेश करा सुखों को प्राप्त हीते हैं।

पुनस्तमेव विषयमाह॥

<mark>फिर उसी विष्</mark>य को अगले मन्त्र में कहा है॥

यस्य विश्वानि हस्त्रियोः पञ्च क्षितीनां वसुं।

स्पाशयंस्व यो अनुमुधुद्धिर्ध्यवाशनिर्जिह॥३॥

यस्यं। विश्वानि। हस्त्योः पञ्चं। क्षिृतीनाम्। वसुं। स्पा्शयंस्व यः। अस्पुऽधुक्। दिव्याऽइव। अ्शनिः। जुहु॥३॥

पदार्थः (वशानि) सर्वाणि (हस्तयोः) (पञ्च) ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्रनिषादानाम् (क्षितीनाम्) मनुष्यणाम् (वसु) विद्याधनानि (स्पाशयस्व) (यः) (अस्मध्रुक्) अस्मान् द्रोग्धि (दिव्येव) यथा द्रिव्ये (अशनिः) विद्युत् (जिह्न)॥३॥

अन्वयः -हे विद्वन्! यस्य हस्तयोः पञ्च क्षितीनां विश्वानि वसु सन्ति स त्वं योऽस्मध्रुक्तं स्पाशयस्वाशनिर्दिव्येव जिल्लास्या

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यस्याऽधिकारे समग्रा विद्याः सन्ति यो जातशत्रून् हन्ति स दिव्यैश्वर्यस्य प्रापको भवति॥३॥

पदार्थ:-हे विद्वान्! (यस्य) जिनके आप (हस्तयो:) हाथों में (पञ्च) ब्राह्मण, क्षत्रिय विषय, शुट्टें और निषाद इन जातियों के (क्षितीनाम्) मनुष्यों के (विश्वानि) समस्त (वसु) विद्याधन हैं सो आप (यः) जो (अस्मधुक्) हम लोगों को द्रोह करता है, उसको (स्पाशयस्व) पीड़ा देओ और अशनिक्ष) बिजुली (दिव्येव) जो आकाश में उत्पन्न हुई और भूमि में गिरी हुई संहार करती है, उसके समान (जिह्न) नष्ट करो॥३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जिसके अधिकार में समग्र विद्या हैं, जो उत्पन्न हुए शत्रुओं को मारता है, वह दिव्य ऐश्वर्य प्राप्ति करानेवाला होता है।। है।

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा ।।

असुन्वन्तं समं जिह दूणाशं यो न ते मर्यः। अस्मभ्यमस्य वेदेनं दुद्धि सूरिश्चिदोहते॥४॥

असुन्वन्तम्। सुमुम्। जुद्धि। दुःऽनर्शम्। यः। न। है। सर्वः। असम्भ्यम्। अस्य। वेदेनम्। दुद्धि। सूरिः। चित्। ओहुते॥४॥

पदार्थ:-(असुन्वन्तम्) अभिषवादिनिष्मदेनपुरुषार्थरिहतम् (समम्) सर्वम् (जिह्न) (दूणाशम्) दुःखेन नाशनीयम् (यः) (न) निषेधे (ते) च्रुष्ठ (म्यः) सुखम् (अस्मभ्यम्) (अस्य) (वेदनम्) धनम् (दिद्धि) धर। अत्र दध धारण इत्यस्माद् बहुलं छन्दसीति शपो लुक् व्यत्ययेन परस्मैपदञ्च। (सूरिः) विद्वान् (चित्) इव (ओहते) व्यवहारान् वहति। अत्र वाच्छन्दसीति संप्रसारणं लघूपधगुणः॥४॥

अन्वय:-हे राजन्! त्वं तिमसुन्वन्तं दूर्णाशं समं जिह यः सूरिश्चिदिवौहते ते मयो न प्रापयित त्वमस्य वेदनमस्मभ्यं दिद्ध॥४॥

भावार्थ:-येऽल्मा भवेयुस्तान् राजा ताडयेत्। यथा विद्वान् सर्वेभ्यः सुखं ददाति तथा यावच्छक्यं तावत्सुखं सर्वेभ्यो दद्यात्॥ अ

पदार्थ: हे राजन् आप उस (असुन्वन्तम्) पदार्थों के सार खींचने आदि पुरुषार्थ से रहित (दूणाशम्) और दुःख से विनाशने योग्य (समम्) समस्त आलसीगण को (जिहि) मारो दण्ड देओ कि (यः) जो (पूरिः) विद्वान् के (चित्) समान (ओहते) व्यवहारों की प्राप्ति करता है और (ते) तुम्हारे (मयः) अख को (न) नहीं पहुंचाता तथा आप (अस्य) इसके (वेदनम्) धन को (अस्मभ्यम्) हमारे अर्थ (दिद्वि) धारण करो॥४॥

अष्टक-२। अध्याय-४। वर्ग-१९

मण्डल-१। अनुवाक-२३। सूक्त-१७६

भावार्थ:-जो आलसी जन हों उनको राजा ताड़ना दिलावे। जैसे विद्वान् जन सबके लिये सुखे देता है, वैसे जितना अपना सामर्थ्य हो उतना सुख सबके लिये देवे॥४॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

आवो यस्य द्विबर्हमोऽर्केषु सानुषगर्मत्। आजाविन्द्रस्येन्दो प्रावो वाजेषु वाजिनम्॥५॥

आर्वः। यस्यं। द्विऽबर्हसः। अर्केषुं। सानुषक्। असंत्। आजौ। इन्द्रंस्य। इन्द्रो इति प्रे आवः। वाजेषु। वाजिनेम्॥५॥

पदार्थ:-(आव:) (यस्य) (द्विबर्हस:) यो द्वाभ्यां विद्यापुरुषार्थाभ्यों वर्द्धते तस्य (अर्केषु) सुसत्कृतेष्वन्नेषु (सानुषक्) सानुकूलता (असत्) भवेत् (आजौ) संग्रामे (इन्द्रस्य) परमैश्वर्यस्य (इन्द्रो) सुप्रजासु चन्द्रवद्वर्त्तमान (प्र) (आव:) रक्ष (वाजेषु) वेगेषु (वाजिष्म्) बस्त्वन्तम्॥५॥

अन्वय:-हे इन्दो! यस्य द्विबर्हसोऽर्केषु सानुषगसत्। यं त्वमानः स इन्द्रस्याजौ वाजेषु वाजिनं त्वां प्रावः सततं रक्षन्तु॥५॥

भावार्थ:-यथा सेनेशौ सर्वान् भृत्यान् रक्षेत्तभा भूत्यास्तं सततं रक्षेयु:॥५॥

पदार्थ:-हे (इन्दो) अपनी प्रजाओं में जन्द्रमा के स्मान वर्तमान! (यस्य) जिस (द्विबर्हसः) विद्या पुरुषार्थ से बढ़ते हुए जन के (अर्केषु) अच्छे सराहे हुए अन्नादि पदार्थों में (सानुषक्) सानुकूलता ही (असत्) हो, जिसकी आप (आवः) क्ला करें, कह (इन्द्रस्य) परमैश्वर्य सम्बन्धी (आजौ) संग्राम में (वाजेषु) वेगों में वर्तमान (वाजिनम्) बलवाम् आपको (प्र, आवः) अच्छे प्रकार रक्षायुक्त करे अर्थात् निरन्तर आपकी रक्षा करे॥५॥

भावार्थ:-जैसे सेनापित सब चाकरों की रक्षा करें, वैसे वे चाकर भी उसकी निरन्तर रक्षा करें॥५॥

अर्थ प्रकृतविषये योगपुरुषार्थ: प्रोच्यते॥

अब प्रकृत विषय में योग के पुरुषार्थ का वर्णन किया जाता है।।

यथां पूर्वेभ्यो जिल्लाभ्यं इन्द्र मर्यद्वापो न तृष्यंते बिभूर्य।

तामुन् त्वा भिवदं जोहवीमि विद्यामेषं वृजनं जी्रदानुम्।।६॥१९॥

क्या। पूर्वेभ्यः। जुरिरुऽभ्यः। इन्द्र। मयःऽइव। आर्पः। न। तृष्यंते। बुभूर्य। ताम्। अर्नु। त्वा। निऽविद्रम्। जोहुवीम्। ब्रिद्यामं। इषम्। वृजर्नम्। जीरऽदानुम्।।६॥

पदार्थ:-(यथा) (पूर्वेभ्य:) कृतयोगाभ्यासपुर:सरेभ्यः (जिरतृभ्यः) योगगुणसिद्धीनां वेदितृभ्यः (इन्द्र) योगैश्वर्यजिज्ञासो (मयइव) सुखमिव (आपः) जलानि (न) इव (तृष्यते) पिपासवे (बभूथ) भव (ताम्) (अनु) (त्वा) (निविदम्) निश्चितप्रतिज्ञम् (जोहवीिम) भृशं ह्वयामि (विद्याम) (इषम्) इच्छासिद्धिम् (वृजनम्) दुःखत्यागम् (जीरदानुम्) जीवदयाम्॥६॥

अन्वय:-हे इन्द्र! त्वं योगजिज्ञासवः यथा पूर्वेभ्यो जित्तृभ्यो योगं प्राप्य साधित्वा सिद्धा भवित्वे तथा भूत्वा मयइव तृष्यत आपो न बभूथ। तां योगविद्यामनुवर्त्तमान निविदं त्वा जोहवीमि। एवं कृत्वा ब्यामिषं वृजनं जीप्दानुं च विद्याम॥६॥

भावार्थ:-ये योगारूढेभ्यो योगशिक्षां प्राप्य पुरुषार्थेन योगमभ्यस्य सिद्धा जायन्ते तेऽलं सुखं लभन्ते।ये तान् सेवन्ते तेऽपि सुखं प्राप्नुवन्ति॥६॥

अस्मिन् सुक्ते विद्यापुरुषार्थयोगवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थे सह सङ्गतिर्वेदितव्या॥

इति षट्सप्तत्युत्तरं शततमं १७६ सूक्तमेकोनविंशो १९ बर्गश्च समाप्त:॥

पदार्थ: -हे (इन्द्र) योग के ऐश्वर्य का ज्ञान चाहते हुए जन! (यथा) जैसे योग जानने की इच्छावाले (पूर्वेभ्य:) किया है योगाभ्यास जिन्होंने उन प्रान्तों जारतृभ्य:) योग गुण सिद्धियों के जाननेवाले विद्वानों से योग को पाकर और सिद्ध कर होते अर्थात् योगसम्पन्न होते हैं, वैसे होकर (मयइव) सुख के समान और (तृष्यते) पियासे के लिय (अग्नः) जलों के (न) समान (बभूथ) हूजिये और (ताम्) उस योगविद्या के (अनु) अनुवर्त्तमान (निविद्यम्) और निश्चित प्रतिज्ञा जिन्होंने की उन (त्वा) आपको (जोहवीमि) निरन्तर कहता हूँ, ऐसे कर हम स्वोग (इषम्) इच्छासिद्धि (वृजनम्) दु:खत्याग और (जीरदानुम्) जीवदया को (विद्याम) प्राप्त हों। हमें

भावार्थ:-जो जिज्ञासु जन योगारूढ़ पुरुषों से योगशिक्षा को प्राप्त होकर पुरुषार्थ से योग का अभ्यास कर सिद्ध होते हैं, वे पूर्ण सुख को पाते और जो उत्तम योगियों का सेवन करते वे भी सुख को प्राप्त होते हैं॥६॥

इस सूक्त में विद्या, पुरुषार्थ और योग का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जास्त्री विहियो।

यह एक सौ छिइतरवाँ १७६ सूक्त और उन्नीसवां १९ वर्ग समाप्त हुआ॥

आ चर्षणिप्रा इत्यस्य पञ्चर्चस्य सप्तसप्तत्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्यागस्त्य ऋषिः। इन्द्रो देवता। १,२ निचृत् त्रिष्टुप्। ३ त्रिष्टुप्। ४ भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। ५ भुरिक्

पङ्क्तिश्छन्द:। पञ्चम: स्वर:॥

अथ राजविद्वद्वणानाह।।

अब एक सौ सतहत्तरवें सूक्त का आरम्भ है। उसमें राजा और विद्वानों के गुणों को कहते है। आ चेर्षणिप्रा वृष्भो जनानां राजा कृष्टीनां पुरुहूत इन्द्रेः।

स्तुतः श्रवस्यन्नवसोपं मुद्रिग्युक्त्वा हरी वृष्णा यांह्यर्वाङ्॥ १॥

आ। चूर्षणिऽप्राः। वृष्भः। जर्नानाम्। राजां। कृष्टीनाम्। पुरुऽहूतः। इन्द्रं स्तृतः। श्रुवस्यन्। अवसा। उपं। मुद्रिक्। युक्त्वा। हरी इति। वृष्णा। आ। याहि। अर्वाङ्॥ १॥

पदार्थ:-(आ) समन्तात् (चर्षणिप्रा:) यश्चर्षणीन्मनुष्यान् प्रति विद्या पिपर्ति सः (वृषभः) अतीव बलवान् (जनानाम्) शुभगुणेषु प्रादुर्भूतानाम् (राजा) प्रकाशमानः (कृष्टीनाम्) मनुष्याणाम् (पुरुहूतः) बहुभिः सत्कृतः (इन्द्रः) ऐश्वर्यप्रदः (स्तुतः) प्रशंसितः (अवस्यन्) आत्मनः श्रवोऽन्निमच्छन् (अवसा) रक्षणादिना (उप) (मद्रिक्) यो मद्रं काममञ्जित्ति सिः (श्रुवत्वा) संयोज्य (हरी) हरणशीलौ (वृषणा) बलिष्ठावश्चौ (आ) (याहि) प्राप्नुहि (अर्वाङ्क) योऽविषद्धौ देशमञ्चति गच्छति तम्॥१॥

अन्वय:-हे विद्वन्! यथा वृषभो जनानां चर्षाण्या सजा कृष्णेनां पुरुहूतः स्तुतः श्रवस्यन्मद्रिगिन्द्रो वृषणा हरी युक्त्वा अर्वाङ् याति तथाऽवसा त्वमस्मानुपा याहि॥१॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा भूभगुणकर्मस्वभावा सभाध्यक्षाः प्रजासु चेष्टेरँस्तथा प्रजास्थैश्लेष्टितव्यम्। यथा कश्लिद्धिमानमाङ्गृह्यापरि गुज्जारुध आयाति तथा विद्वांसः पराऽवरज्ञा स्युः॥१॥

पदार्थ:-हे विद्वान्! जैसे (वृषभे) अतीव बलवान् (जनानाम्) शुद्ध गुणों में प्रसिद्ध हुए जनों में (चर्षणिप्रा:) मनुष्यों को विद्या से पूर्ण करनेवाला (राजा) प्रकाशमान और (कृष्टीनाम्) मनुष्यों में (पुरुहूत:) बहुतों से सत्कार की प्राप्त हुआ (स्तुत:) प्रशंसित (श्रवस्थन्) अपने को अन्न की इच्छा करता हुआ (मिद्रक्) जो काम की प्राप्त होता वह (इन्द्र:) ऐश्वर्य का देनेवाला (वृषणा) अति बली (हरी) हरणशील घोड़ों को (युक्तवा) जोड़कर (अर्वाङ्) नीचली भूमियों में जाता है, वैसे (अवसा) रक्षा आदि के साथ आप हम लोगों के (उप, आ, याहि) समीप आओ॥१॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे शुभ गुण, कर्म, स्वभाववाले सभाध्यक्ष प्रजाजनों में चिष्टा करें, बैसे प्रजाजनों को भी चेष्टा करनी चाहिये। जैसे कोई विमान पर चिंद और ऊपर को जायुक्तर नीचे आता है, वैसे विद्वान् जन अगले-पिछले विषय को जानने वाले हों॥१॥

अथ राजविषयमाह॥

अब अगले मन्त्र में राजविषय का उपदेश किया है।।

१८४४

ये ते वृष्णो वृष्भासं इन्द्र ब्रह्मयुजो वृष्रथासो अत्याः। ताँ आ तिष्ठ तेभिरा याह्यर्वाङ् हर्वामहे त्वा सुत ईन्द्र सोमे॥२॥

ये। ते। वृष्णः। वृष्भासः। इन्द्र। ब्रह्मऽयुर्जः। वृष्ऽस्थासः। अत्याः। तान्। आ। तिष्ठः। तेप्रिः। आ। योहिं। अर्वाङ्। हर्वामहे। त्वा। सुते। इन्द्र। सोमे॥२॥

पदार्थ:-(ये) (ते) (वृषणः) प्रबला युवानः (वृषभासः) परिशक्तिबन्धृकाः (इन्द्र) विद्युदिव सेनेश (ब्रह्मयुजः) ब्रह्माणं युञ्जन्ति यैस्ते (वृषरथासः) वृषाः शक्तिबन्धका रथा रमणसाधनानि येषान्ते (अत्याः) नितरां गमनशीला अश्वाः (तान्) (आ) समन्तात् (तिष्ठ) (तेभिः) तैः (आ) आभिमुख्ये (याहि) आगच्छ (अर्वाङ्) अभिमुखम् (हवामहे) स्वीकुर्महे (त्वा) त्वाम् (सुते) (पण्णे (इन्द्र)) सूर्य इव वर्त्तमान (सोमे) ओषध्यादिगुण इवैश्वर्ये॥२॥

अन्वय:-हे इन्द्र! ते वृषणो ये वृषभासो ब्रह्मयुजो वृषरथासोऽत्याः सन्ति तानातिष्ठ । हे इन्द्र! वयं सुते सोमे त्वा हवामहे त्वं तेभिरर्वाङायाहि॥२॥

भावार्थ:-ये राजानः सर्वसाधनसाध्यरथान् प्रबलानेश्वान् कुर्णभांश्च कार्येषु संयोजयन्ति, ते प्रशस्तयानादियुक्ता ऐश्वर्यं लभन्ते॥३॥

पदार्थ:-हे (इन्द्र) सूर्य के समान वर्तमान एन्जरे! (ते) आपके (ये) जो (वृषणः) प्रबल जवान (वृषभासः) वृषभ (ब्रह्मयुजः) उत्तम अत्र का प्रार्थ करनेवृप्त (वृषरथासः) शक्तिबन्धक और रमण साधन रथ (अत्याः) और निरन्तर गमनशील पाड़े हैं (तृप्रन्) उनको (आ, तिष्ठ) यत्नवान् करो अर्थात् उन पर चढो, उन्हें कार्यकारी करो। हे (इन्ह्रं) सूर्य के प्रमान वर्तमान राजन्! हम लोग (सुते) उत्पन्न हुए (सोमे) ओषधि आदिकों के गुण के सुमान ऐश्वर्य के निमित्त (त्वा) आपको (हवामहे) स्वीकार करते हैं, आप (तेभिः) उनके साथ (अर्वाङ्) सम्मुख (आ, याहि) आओ॥२॥

भावार्थ:-जो राजजन समस्त साधनों में साध्य रथों, प्रबल घोड़ों और बैलों को कार्य्यों में संयुक्त कराते हैं, वे प्रशस्त याने आदि पदार्थी से युक्त हुए राजजन ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं॥२॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

प्रिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

आ तिष्ट्र∕प्थं वृष्<mark>ष्</mark>मुं वृषां ते सुतः सोमः परिषिक्ता मधूनि।

युक्को वृष्यां वृषभ क्षितीनां हरिभ्यां याहि प्रवतोपं मुद्रिक्॥३॥

आ। तिष्ठा पर्थम्। वृषंणम्। वृषां। ते। सुतः। सोमः। परिऽसिक्ता। मधूनि। युक्त्वा। वृषंभ्याम्। वृष्भाः क्षितीनुम्। इरिऽभ्याम्। याहि। प्रऽवर्ता। उपं। मुद्रिक्॥३॥ अष्टक-२। अध्याय-४। वर्ग-२०

मण्डल-१। अनुवाक-२३। सूक्त-१७७

पदार्थ:-(आ) समन्तात् (तिष्ठ) (रथम्) विमानादियानम् (वृषणम्) दृढम् (वृषा) रसादिपूर्णः (ते) तुभ्यम् (सुतः) निष्पादितः (सोमः) सोमलतादिरसः (परिषिक्ता) परितः सर्वतः सिक्तानि (मधूनि) मधुरादिद्रव्याणि (युक्त्वा) (वृषभ्याम्) बलिष्ठाभ्याम् (वृषभ) परशक्तिबन्धकत्वेन बलिष्ठ (श्वितिनाम्) मनुष्याणाम् (हरिभ्याम्) हरणशीलाभ्याम् (याहि) (प्रवता) निम्नेन मार्गेण (उप) (मद्रिक् अस्पानश्चन् प्राप्नुवन्॥३॥

अन्वयः-हे वृषभ राजन्! मद्रिग्वृषा सँस्त्वं यस्ते सोमः सुतस्तत्र मधूनि परिषिक्ता ते पीत्वा क्षितीनी वृषभ्यां हरिभ्यां वृषणं रथं युक्त्वा युद्धमा तिष्ठ प्रवतोप याहि॥३॥

भावार्थ:-ये युक्ताहारिवहाराः सोमाद्योषिधरससेविनो दीर्घब्रह्मचर्यः सरीरात्मबलयुक्ता राजानो विद्युदादि पदार्थवेगयुक्तानि यानानि साधियत्वा दण्डेन दुष्टान् निवार्य्य स्पर्मन् सज्यं रक्षयेयुस्त एव सुखिनो भवन्ति॥३॥

पदार्थ:-हे (वृषभ:) दूसरों के सामर्थ्य रोकने से बलिष्ट राज्न! (माद्रक्) हम लोगों को प्राप्त होते और (वृषा) रस आदि से परिपूर्ण होते हुए आप जो (ते) अपने लिये (सोम:) सोमलता आदि का रस (सुत:) उत्पन्न किया गया है, उसमें (मधूनि) मीठे-मिंठ पदार्थ (यरिषिक्ता) सब ओर से सीचें हुए हैं, उस रस को पी कर (क्षितीनाम्) मनुष्यों के (वृषभ्याम्) प्रबल (हरिभ्याम्) हरणशील घोड़ों से (वृषणम्) दृढ़ (रथम्) रथ को (युक्त्वा) जोड़ युद्ध का (अ, तिष्ठ) यत्न करो वा युद्ध की प्रतिज्ञा पूर्ण करो और (प्रवता) नीचे मार्ग से (उप, याहि) स्मिप आओं। ३॥

भावार्थ:-जो आहार-विहार से युक्त सोमाहि श्रीषिधयों के रस के सेवनेवाले, दीर्घ ब्रह्मचर्य्य किये हुए, शरीर और आत्मा के बल से युक्त सज्जन, बिजुली आदि पदार्थों के वेग से युक्त यानों को सिद्ध कर, दण्ड से दुष्टों को निवारण कर, न्यार्थ से राज्य की रक्षा कराया करें, वे ही सुखी होते हैं॥३॥

अथ राजविद्वद्विषयमाह॥

अब राजा और विद्वान् के विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

अयं युज्ञो देवया अयं मियेष्टं हुमा ब्रह्माण्ययमिन्द्र सोमः।

स्तोर्णं बहिरा हु शक्का प्रयाहि पिबा निषद्य वि मुचा हरी इह।। ४॥

अयम्। युज्ञः। देव्ऽयाः। अयम्। मियेर्धः। इमा। ब्रह्माणि। अयम्। इन्द्र। सोर्मः। स्तीर्णम्। बर्हिः। आ। तु। शृक्रः। प्रा याहि। पिर्व। तिऽसद्या वि। मुच्। हरी इति। इहः॥४॥

पदार्थ: अयम्) (यज्ञ:) राजधर्मशिल्पकार्व्यसङ्गत्युन्नतः (देवयाः) देवान् दिव्यान् गुणान् विदुषो वा यावि प्राप्नोति येन सः (अयम्) (मियेधः) मियेन प्रक्षेपणेनैधः प्रदीपनं यस्य सः (इमा) इमानि (ब्रह्मािम) धनानि। ब्रह्मोति धननामसु पठितम्। (निघं०२.१०) (अयम्) (इन्द्र) सभेश (सोमः) प्रतीयधिप्प एश्वर्यं वा (स्तीर्णम्) आच्छादितम् (बर्हिः) उत्तमासनम् (आ) (तु) (शक्र) शक्तिमान् (प्र)

१८४६

(याहि) प्राप्नुहि (पिब) अत्र द्वयचोऽतस्तिङ इति दीर्घः। (निषद्य) उपविश्य (वि) (मुच) त्यज। अत्र द्वयचोऽतस्तिङ इति दीर्घः। वा छन्दसीति उपधा नकारलोपः। (हरी) विद्युतो धारणाकर्षणावश्चौ। हरि इतीन्द्रस्येत्यादिष्टोपयोजन-नामसु पठितम्। (निघं०१.१५)। (इह) अस्मिन् जगित।। ४॥

अन्वय:-हे शक्रेन्द्र! अयं देवया यज्ञोऽयं मियेधोऽयं सोमस्त्वदं स्तीर्णं बर्हिर्निसद्येमा ब्रह्माण् प्रायाहि। इमं सोमं पिब इह हरी स्वीकृत्य दु:खं विमुच॥४॥

भावार्थ:-सर्वैर्जनैर्व्यवहारे प्रयत्य यदा राजा स्नातको विद्यावयोवृद्धश्चानकोत्तदाऽऽस्मादिभिः सत्कृत्य प्रष्टव्यः, स तान् प्रति यथोचितं धर्म्यं विद्याप्रपूर्वं यूचो ब्रूयाद्यतो दुःखहानिसिद्धिर्विद्युदादिपदार्थसिद्धिश्च स्यात्॥४॥

पदार्थ:-हे (शक्र) शक्तिमान् (इन्द्र) सभापति! (अयम्) यह (देवर्षाः) जिससे दिव्य गुण वा उत्तम विद्वानों को प्राप्त होना होता वह (यज्ञः) राजधर्म और शिल्प की सङ्गृति से उन्नित को प्राप्त हुआ यज्ञ वा (अयम्) यह (मियेधः) जिसकी पदार्थों के डारने से कृद्धि होती यह (अयम्) यह (सोमः) बड़ी-बड़ी ओषधियों का रस वा ऐश्वर्य (तु) और यह (स्तीर्णम्) ढंपा हुआ (बिहिः) उत्तम आसन है (निसद्य) इस आसन पर बैठ (इमा) इन (ब्रह्माणि) धन्ते को (प्राप्नार्यह) उत्तमता से प्राप्त होओ। इस उक्त ओषधि को (पिब) पी, (इह) यहाँ (हरी) बिजुली के भारण और आकर्षणरूपी घोड़ों को स्वीकार कर और दु:ख को (विमुच) छोड़॥४॥

भावार्थ:-सब मनुष्यों को व्यवहार में अच्छा यन कर जब राजा, ब्रह्मचारी तथा विद्या और अवस्था से बढ़ा हुआ सज्जन आवे, तब आसन आहि में उसका सत्कार कर पूछना चाहिए। वह उनके प्रति यथोचित धर्म के अनुकूल विद्या की प्राणि कर्णवाले वचन को कहे, जिससे दु:ख की हानि, सुख की वृद्धि और बिजुली आदि पदार्थों की भी सिद्धि हो॥४॥

पुतस्तमेव विषयमाह॥

क्रिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

ओ सुष्टुंत इन्द्र आहूँ वोंडुपु ब्रह्माणि मान्यस्य कारोः।

विद्याम् वस्तोर्स्वसा गुणन्तो विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम्॥५॥२०॥

ओ इति। सुऽस्तुतः। इन्द्रा याहि। अर्वाङ्। उप। ब्रह्माणि। मान्यस्य। कारोः। विद्यामी वस्तीः। अर्वसा। गृणन्तः। विद्यामी इषम्। वृजनम्। जीरऽदानुम्॥५॥

पद्धार्थ:-(ओ) सम्बोधने (सुष्टुत:) सुष्टु प्रशंसित: (इन्द्र) धनप्रद सभेश (याहि) प्राप्नुहि (अर्वाङ्क्) अविचीनमञ्जन् (उप) (ब्रह्माणि) धनानि (मान्यस्य) सत्कर्तुं योग्यस्य (कारोः) कारकस्य (विद्याम) जानीयाम (वस्तोः) प्रतिदिनम् (अवसा) रक्षणाद्येन (गृणन्तः) स्तुवन्तः (विद्याम) विजानीयाम (ईषम्) प्राप्तिम् (वृजनम्) सद्गितम् (जीरदानुम्) जीवात्मानम्॥५॥

अष्टक-२। अध्याय-४। वर्ग-२०

मण्डल-१। अनुवाक-२३। सूक्त-१७७

१८४७

अन्वय:-ओ इन्द्र! यथा वयं मान्यस्य कारोर्ब्रह्माणि वस्तोरुपविद्याम यथा वावसा गृणन्तः सन्त इषं वृजने जीरदानुञ्च विद्याम तथा त्वं सुष्टुतोऽर्वाङ् याहि॥५॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। ये धनमाप्नुयुस्ते परेषां सत्कारं कुर्यु:। ये क्रियाहुम्स्त्राः शिल्पिन ऐश्वर्य्यमाप्नुयुस्ते सर्वे: सत्कर्त्तव्या: स्यु:। यथा यथा विद्यादिसदुणा अधिका: स्युस्तथा वथा निरिभमानिनो भवन्तु॥५॥

अत्र राजादिविद्वद्भुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेदितव्या॥ इति सप्तसप्तत्युत्तरं शततमं १७७ सूक्तं विंशो २० वर्गश्च समाप्तः॥

पदार्थ:-(ओ, इन्द्र) हे धन देनेवाले सभापित! जैसे हम लोग (मायस्य) सत्कार करने योग्य (कारो:) कार करनेवाले के (ब्रह्माणि) धनों को (वस्तो:) प्रतिदिन (उप, बिद्याम) समीप में जानें वा जैसे (अवसा) रक्षा आदि के साथ (गृणन्त:) स्तुति करते हुए हम लोग (इप्रम) प्राप्ति (वृजनम्) उत्तम गित और (जीरदानुम्) जीवात्मा को (विद्याम) जानें, वैसे आप (सुष्टुत:) अच्छे प्रकार स्तुति को प्राप्त हुए (अर्वाङ्) (याहि) सम्मुख आओ॥५॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जि अने को प्राप्त हों, वे औरों का सत्कार करें। जो क्रियाकुशल शिल्पीजन ऐश्वर्य को प्राप्त हों, वे सबको सत्कार करने योग्य हों। जैसे जैसे विद्या आदि अच्छे गुण अधिक हों, वैसे-वैसे अभिमानरहित हों। ।

यहाँ राजा आदि विद्वानों के गुणों का क्यीन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है, यह जानना चाहिए॥

यह एक सौ सतहत्तरवां १७७ सूक्त और बीसवां २० वर्ग समाप्त हुआ॥

यद्धेति पञ्चर्चस्याऽष्टसप्तत्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य अगस्य ऋषिः। इन्द्रो देवता। १,२ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः। ३,४ निचृत् त्रिष्टुप्। ५ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः

स्वर:॥

अथ सेनापतिगुणानाह।।

अब एक सौ अठहत्तरवें सूक्त का आरम्भ है। उसमें आरम्भ से सेनापित के गुणों क<mark>ूर वर्णन क</mark>रते हैं॥

यद्ध स्या त इन्द्र श्रुष्टिरस्ति यया बुभूर्थ जरितृभ्यं ऊती।

मा न कामं महर्यन्तमा धुग्विश्वा ते अश्यां पर्याप आयो:॥ १।

यत्। हु। स्या। ते। इन्द्र। श्रुष्टिः। अस्ति। यया। बुभूर्थ। जुरितृऽभ्यः ऋती। मार्ग नः। कार्मम्। महर्यन्तम्। आ। धक्। विश्वा। ते। अष्ट्याम्। परि। आपः। आयोः॥ १॥

पदार्थ:-(यत्) या (ह) किल (स्या) असौ (ते) तक (इन्द्र) स्नेश (श्रृष्टि:) श्रोतव्या विद्या (अस्ति) (यया) (बभूथ) भवसि (जिरतृभ्य:) सकलविद्यास्तावके भ्यः (ऊती) ऊत्या रक्षणादिकर्म- युक्तया (मा) निषेधे (नः) अस्माकम् (कामम्) (महयन्तम्) सन्कर्तव्यम् (आ) समन्तात् (धक्) दहेः (विश्वा) सर्वाणि (ते) तव (अश्याम्) प्राप्नुयाम (पिर्) सर्वतः (आपः) प्राणबलानि (आयोः) जीवनस्य॥१॥

अन्वय:-हे इन्द्र! यद्या स्या ते श्रुष्टिरस्ति यश्ची त्वं जित्तिभूत्र उपदेष्टा बभूथ तयोती नो महयन्तं कामं मा धक्। ते हायो: या आपस्ता: विश्वा पर्यश्याम्॥१॥

भावार्थ:-सेनापत्यादयो राजपुरुषाः भूजप्रयोजनाय कस्यापि कार्य्य न विनाशयेयु:। सदाऽध्यापकाऽध्येतृणां रक्षां कुर्यु:।,यतो चलिष्ठा दीर्घायुषो जनाः स्यु:॥१॥

पदार्थ:-हे (इन्द्र) सेनापित! (अत् जो (स्या) यह (ते) आपकी (श्रुष्टि:) सुनने योग्य विद्या (अस्ति) है (यया) जिससे आप (जिरतृष्यः) समस्त विद्या की स्तुति करनेवालों के लिये उपदेश करनेवाले (बभूथ) होते हैं, उस (कृती) रक्षा आदि कर्म से युक्त विद्या से (नः) हमारे (महयन्तम्) सत्कार प्रशंसा करने योग्य (काम्म्) काम को (मा, आ, धक्) मत जलाओ (ते) आपके (ह) ही (आयोः) जीवन के जो (आपः) प्राण बल हैं, उन (विश्वा) सभी को (पर्यश्याम्) सब ओर से प्राप्त होऊं॥१॥

भाषार्थः सिनापित आदि राजपुरुष अपने प्रयोजन के लिये किसी के काम को न विनाशें, सदैव पढ़ाने और पढ़नेवालों की रक्षा करें, जिससे बहुत बलवान् आयुयुक्त जन हों॥१॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अष्टक-२। अध्याय-४। वर्ग-२१

मण्डल-१। अनुवाक-२३। सूक्त-१७८

न घा राजेन्द्र आ देभन्नो या नु स्वसारा कृणवेन्त योनौ। आपेश्चिदस्मै सुतुकां अवेषुन् गर्मन्न इन्द्रीः सुख्या वर्यश्च॥२॥

न। घा राजां। इन्द्रंः। आ। दुभृत्। नुः। या। नु। स्वसारा। कृण्वन्त। योनौ। आर्पः। चित्। अस्मै स्रार्कुकाः। अवेषुन्। गर्मत्। नुः। इन्द्रंः। सुख्या। वर्यः। चु॥२॥

पदार्थ:-(न) निषेधे (घ) एव। अत्र ऋचि तुनुघेति दीर्घ:। (राजा) विद्यार्वनयाभ्यां राजमानः (इन्द्र:) परमैश्वर्ययुक्तः (आ) समन्तात् (दभत्) हिंस्यात् (नः) अस्मान् (या) ये (ने) सद्यः (स्वसारा) भिगन्याविव (कृणवन्त) कुरुत (योनौ) गृहे (आपः) जलानि (चित्) इव (अस्मै) (सुतुकाः) सुष्ठु आदात्र्यः (अवेषन्) व्याप्नुवन्ति (गमत्) प्राप्नुयात् (नः) अस्मान् (इन्द्रः) परमेश्वर्यकाम् (सख्या) मित्रस्य कर्म्माणि (वयः) जीवनम् (च)॥२॥

अन्वय:-हे मनुष्या! यथा इन्द्रो राजा नोऽस्मान्नादभत्तथा वयं नु तं प्रसा हिंसेमो यथा या स्वसारा योनौ बन्धुं न हिंस्यात्तां तथा तद्वद्वयं कञ्चिदपि न हिंस्याम यथा विद्वांसो हिंसां न कुर्वन्ति स्था सर्वे ने कृण्वन्त यथेन्द्रोऽस्मै सख्या वयश्च सुतुका आपोऽवेषंश्चिदिव नोऽस्मान् गमत्तथैतं वयमपि प्राप्नुयाम॥२॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथाप्ति वयालवे कञ्चन न हिंसन्ति तथा सर्व आचरन्तु॥२॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! जैसे (इन्द्र:) परमैश्वर्ययुक्त (राजा) विद्या और विनय से प्रकाशमान राजा (न:) हम लोगों को (न) न (आ, दभत्) मारे ने इण्ड देवें, वैसे हम लोग (नु) भी उसको (घ) ही मत दु:ख देवें, जैसे (या) जो (स्वसारा) दो बहितियों के प्रमान दो स्त्री (योनौ) घर में बन्धु को न मारें, वैसे उनके समान हम किसी को न मारें, जैसे विद्वान जन हिंसा नहीं करते हैं, वैसे सब लोग न (कृण्वन्त) करें, जैसे (इन्द्र:) परमैश्वर्यवान् (अस्मै) इस सज्जन के लिये (सख्या) मित्रपन के काम (वय:) जीवन (च) और (सुतुका:) सुन्दर ग्रहण करनेवाली स्त्री (आप:) जलों को (अवेषन्) व्याप्त होती हैं (चित्) उनके समान (न:) हम लोगों को (गमत्) प्राप्त हो, वैसे उनको हम भी प्राप्त होवें॥२॥

भावार्थ:-इस मृत्र में वाचकुलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे शास्त्रज्ञ धर्मात्मा दयालु विद्वान् किसी को नहीं मारते, वैसे सब आचरण कोंगर।।

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

<u>५. दयालव</u>ो विद्वांस:॥ सं.॥

जेता नृभिरिन्द्रैः पृत्सु शूरः श्रोता हवं नार्धमानस्य कारोः। प्रभिर्ता रथं दाशुर्ष उपाक उद्यन्ता गिरो यदि च त्मना भूत्॥३॥

जेता। नृऽभिः। इन्द्रः। पृत्ऽसु। शूर्रः। श्रोतां। हर्वम्। नार्धमानस्य। कारोः। प्रऽर्भर्ता। रथम्। हाशुर्षः। उपाके। उत्ऽयन्तां। गिरंः। यदि। च। त्मनां। भूत्॥ ३॥

पदार्थ:-(जेता) जेतुं शीलः (नृभिः) नायकैवीरैस्सह (इन्द्रः) सेनेशः (पृत्स् सङ्ग्रामेषु (श्रूरः) शत्रूणां हिंसकः (श्रोता) (हवम्) आदातुमर्हं विद्याबोधम् (नाधमानस्य) यात्रमानस्य (कारोः) कर्तुं शीलस्य (प्रभत्ता) प्रकृष्टानां विद्यानां धर्ता (रथम्) यानम् (दाशुषः) दातुं शिलस्य (उपाके) समीपे (उद्यन्ता) उत्कृष्टतया नियन्ता (गिरः) वाणीः (यदि) (च) (त्मना) आत्मिना (भूते) भवेत्। अत्राडभावः लिङ्थें लुङ् च॥३॥

अन्वय:-यदि नृभिस्सह शूरो जेता नाधमानस्य कारोईवं श्रोता प्रभर्त् दोशुष उपाके गिर उद्यन्तेन्द्रस्त्वं त्मना पृत्सु रथं च गृहीत्वा प्रवृत्तो भूत्तर्हि तस्य ध्रुवो विजय: स्यात्॥३॥

भावार्थ:-ये विद्यां याचेयुस्तेभ्यस्सततं दद्यात्। ये निर्वेन्द्रिया सूर्त्यवादिनो भवन्ति तेषामेव विद्या प्राप्ता भवति। ये विद्याशरीरबलैर्युक्ता शत्रुभिः सह युद्धयन्ति तेषा कृती पराजयः ?॥३॥

पदार्थ:-(यदि) जो (नृभिः) नायक वीरों के साथ (शूरः) शत्रुओं की हिंसा करनेवाला (जेता) विजयशील (नाधमानस्य) मांगते हुए (कारोः) कार्यकारी पुरुष के (हवम्) ग्रहण करने योग्य विद्याबोध को (श्रोता) सुननेवाला (प्रभर्ता) उत्तम विद्याओं का धारुण करनेवाला (दाशुषः) दानशील के (उपाके) समीप (गिरः) वाणियों का (उद्यन्ता) उद्यम् करनेवाला (इन्द्रः) सेनाधीश तू (त्मना) अपने से (पृत्सु) संग्रामों में (रथम्) रथ को (च) भी ग्रह्मण करके प्रेष्ट्रत (भूत्) होवे, उसका दृढ़ विजय हो॥३॥

भावार्थ:- जो विद्या की याना करें उसकी निरन्तर विद्या देवें। जो जितेन्द्रिय सत्यवादी होते हैं, उन्हीं को विद्या प्राप्त होती है। जो विद्या और शरीर बलों से शत्रुओं के साथ युद्ध करते हैं, उनका कैसे पराजय हो?॥३॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

प्रिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

एवा नृश्चिरिन्द्रः सुश्रवस्या प्रखादः पृक्षो अभि मित्रिणो भूत्। सम्पर्य द्वाः स्तवते विवाचि सत्राकरो यर्जमानस्य शंसः॥४॥

क्वा नुर्जा इन्द्रंः। सुऽश्रवस्या। प्रखादः। पृक्षः। अभि। मित्रिणः। भूत्। सुऽमुर्ये। इषः। स्तुवते। विऽवाचि। सूत्राऽकुरः। यर्जमानस्य। शंसः॥४॥ अष्टक-२। अध्याय-४। वर्ग-२१

मण्डल-१। अनुवाक-२३। सूक्त-१७८

पदार्थ:-(एव) निश्चये। अत्र निपातस्य चेति दीर्घः। (नृभिः) वीरैः पुरुषैः सह (इन्द्रः) सेनेशः (सुश्रवस्या) शोभनान्नेच्छया (प्रखादः) अतिभक्षकः (पृक्षः) ज्ञापयितुमिष्टमन्नम् (अभि) आभिमुख्ये (मित्रिणः) मित्राणि यस्य सन्ति तस्य (भूत्) भवेत् (समर्थ्ये) सम्यगर्थ्ये वणिजि (इषः) अन्नापि (सवते) प्रशंसित (विवाचि) विविधविद्यासुशिक्षायुक्ते (सन्नाकरः) सत्रा सत्यं करोतीति (यजभानस्य) द्वतुः (शंसः) प्रशंसकः॥४॥

अन्वयः – हे मनुष्या! नृभिः सहेन्द्रः सुश्रवस्या पृक्षः प्रखादो मित्रिणोऽभि भूत् विवासि सत्राकरो योजमानस्य शंसः समर्थ्ये इषः स्तवतयेव॥४॥

भावार्थ:-ये उद्योगिनः सत्यवादिनः सत्योपदेशं कुर्वन्ति ते नायका मविन्ति॥४॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! (नृिभः) वीर पुरुषों के साथ (इन्द्रः) सेन्प्रपति (सुश्रुवस्या) उत्तम अन्न की इच्छा से (पृक्षः) दूसरों को बता देने को चाहा हुआ अन्न उसको (प्रखादः) अतीव खानेवाला और (मित्रिणः) मित्र जिसके वर्त्तमान उसके (अभि, भूत्) सम्मुख हो तथा (विवाचि) नाना प्रकार की विद्या और उत्तम शिक्षायुक्त वीर जन के निमित्त (सन्नाकरः) सत्य व्यवहार करने और (यजमानस्य) देनेवाले की (शंसः) प्रशंसा करनेवाला (समर्थ्य) उत्तम विणयों के निमित्त (इषः) अन्नों की (स्तवते) स्तुति प्रशंसा करता (एव) ही है॥४॥

भावार्थ:-जो उद्योगी और सत्यवादी जर्ज सत्येपेट्स करते हैं, वे नायक, अधिपित और अग्रगामी होते हैं।।

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी किया को अगिले मन्त्र में कहा है।।

त्वया वयं मंघवन्निन्द्र शत्रूनिभ ष्याम महतो मन्यमानान्।

त्वं त्राता त्वमुं नो वृधे भूविङामेषं वृजनं जीरदानुम्॥५॥२१॥

त्वर्या। वयम्। मुघुऽवृत्त्री इन्द्रा शत्रून्। श्रुभि। स्यामः। मुहुतः। मन्यमानान्। त्वम्। त्राता। त्वम्। ऊम् इति। नः। वृधे। भूः। विद्यामे। इष्मि। वृजनेम्। जीरऽदोनुम्।। ५॥

पदार्थ: - (त्वया) (त्वयम्) (मघवन्) परमपूजितधनयुक्त (इन्द्र) शत्रुविदारक (शत्रून्) (अभि) आभिमुख्ये (स्याम्) भवेम (महतः) प्रबलान् (मन्यमानान्) अभिमानिनः (त्वम्) (त्राता) (त्वम्) (उ) वितर्के (नः) अस्माक्ष्म (वृधे) (भूः) भवेः (विद्याम) (इषम्) प्रेरणम् (वृजनम्) बलम् (जीरदानुम्) जीवस्वभावस्याप्त्रभावस्य

अन्वय:-हे मधवन्निन्द्र! त्वया सह वर्त्तमाना वयं महतो मन्यमानाञ्छत्रून् विजयमाना अभि स्याम। त्वं नस्त्राता त्वम् विभे भूयतो वयमिषं वृजनं जीरदानुञ्च विद्याम॥५॥

भावार्थ:-ये युद्धाऽधिकारिणो भृत्यान् सर्वथा सत्कृत्योत्साह्य योधयन्ति युद्धमानानां सततं रक्षणे मृतानां पुत्रकलत्राणां च पालनं कुर्युस्ते सर्वत्र विजयितारः स्युरिति॥५॥

अत्र सेनापतिगुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेदितव्यम्॥

इति अष्टसप्तत्युत्तरं शततमं १७८ सूक्तमेकविंशो २१ वर्गश्च समाप्तः॥

पदार्थ:-हे (मघवन्) परम प्रशंसित धनयुक्त (इन्द्र) शत्रुओं को विदीर्ण करनेवाले (त्वया) आपके साथ वर्तमान (वयम्) हम लोग (महतः) प्रबल (मन्यमानान्) अभिमानी (शत्रून्) शत्रुओं को जीतनेवाले (अभि, स्याम) सब ओर से होवें (त्वम्) आप (नः) हमारे (त्राता) रक्षक सहायक और (त्वम्, उ) आप तो ही (वृधे) वृद्धि के लिये (भूः) हो, जिससे हम लोग (इष्म) प्रत्येक काम की प्रेरणा (वृजनम्) बल और (जीरदानुम्) जीवस्वभाव को (विद्याम) पावें॥५॥०

भावार्थ:-जो युद्ध करनेवाले भृत्यों का सर्वथा सत्कार कर और उनको उत्साह दे युद्ध करते हैं, युद्ध करते हुओं की निरन्तर रक्षा और मरे हुओं के पुत्र, कन्या और स्त्रियों की पालना करें, वे सब सर्वत्र विजय करनेवाले हों॥५॥

इस सूक्त में सेनापित के गुणों का वर्णन होने से स्मासूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है, यह जानना चाहिये॥

यह एक सौ अठहत्तरवां १७८ सूक्त्र और इक्क्नीसवाँ २१ वर्ग समाप्त हुआ॥

पूर्वीरिति षड्चस्यैकोनाशीत्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य लोपामुद्राऽगस्त्यौ ऋषी। दम्पती देवता। १,४ त्रिष्टुप्। २,३ निचृत् त्रिष्टुप्। ६ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। ५ निचृद्बृहती

छन्द:। मध्यम: स्वर:॥

अथ विद्वत्स्त्रीपुरुषविषयमाह॥

तब एक सौ उनासी सूक्त का आरम्भ है। उसके प्रथम मन्त्र में विद्वान् स्त्रीपुरुष के विषय के कहते हैं॥

पूर्वीरहं शरदीः शश्रमाणा दोषा वस्तीकृषसी जरयन्तीः।

मिनाति श्रियं जिरमा तनूनामप्यू नु पत्नीर्वृषंणो जगुम्यु:॥ १। 🗸

पूर्वीः। अहम्। श्रारदेः। शृश्रमाणा। दोषाः। वस्तोः। उषसः। जुरयत्तिशी मिनाति। श्रियम्। जुरिमा। तुनूनाम्। अपि। ऊम् इति। नु। पत्नीः। वृषणः। जगुम्युः॥ १॥

पदार्थ:-(पूर्वी:) पूर्वं भूताः (अहम्) (शरदः) (शश्रमाणा) तेषोन्त्रिता (दोषाः) रात्रयः (वस्तोः) दिनम् (उषसः) प्रभाताः (जरयन्तीः) जरां प्रापयन्तीः (प्रिनाति) हिन्हित (श्रियम्) लक्ष्मीम् (जिरमा) अतिशयेन जरिता वयोहानिकर्ता (तनूनाम्) शरीराणाम् (अपि) (उ) वितर्के (नु) शीघ्रम् (पत्नीः) (वृषणः) सेक्तारः (जगम्यः) भृशं प्राप्नुयः। अत्र वाह्यन्दसीति नुगागमाभावः॥१॥

अन्वय:-यथाऽहं पूर्वी: शरदो दोषा वस्तो जर्यन्तीरुषसश्चे प्राश्रमाणाऽस्मि अप्यु अपि तु यथा तनूनां जरिमा श्रियं मिनाति तथा वृषण: पत्नीर्नु जगम्यु:॥१॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा बाल्यावस्थामारभ्य विदुषीभिः स्त्रीभिः प्रत्यहं प्रभातसमयात् गृहकार्य्याणि पतिसेवादीचि व कर्माणि कृतानि तथा कृतब्रह्मचर्यस्त्रीपुरुषैः सर्वाणि कार्याण्यनुष्ठेयानि॥१॥

पदार्थ:-जैसे (अहम्) में (पूर्वीः) पहिले हुई (शरदः) वर्षों तथा (दोषाः) रात्रि (वस्तोः) दिन (जरयन्तीः) सबकी अवस्था की जीर्ण करती हुई (उषसः) प्रभात वेलाओं पर (शश्रमाणा) श्रम करती हुई हूँ (अपि, उ) और ले जैसे (तनुन्मम्) शरीरों की (जिरमा) अतीव अवस्था को नष्ट करनेवाला काल (श्रियम्) लक्ष्मी को (मिनाति) विनाशता है, वैसे (वृषणः) वीर्य्य सेचनेवाले (पत्नीः) अपनी अपनी स्त्रियों को (नु) शीघ्र (जगम्युः) प्राप्त होवें॥१॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे बाल्यावस्था को लेकर विदुषी स्त्रियों ने प्रतिदिन प्रभात समय से घर के कार्य और पित की सेवा आदि कर्म किये हैं, वैसे किया है ब्रह्मचर्य जिन्होंने उन स्त्री-पुरूषों को समस्त कार्यों का अनुष्ठान करना चाहिए॥१॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

ये चिद्धि पूर्व ऋतुसाप आसन्त्साकं देवेभिरवद्वृतानि।

ते चिदवासुर्नेह्यन्तंमापुः समू नु पत्नीर्वृषंभिर्जगम्युः॥२॥

ये। चित्। हि। पूर्वे। ऋतुऽसार्पः। आस्नेन्। साकम्। देवेभिः। अवदेन्। ऋतानि। ते। चित्।। अव। अक्रुः। नृहि। अन्तेम्। आपुः। सम्। ऊम् इतिं। नु। पत्नीः। वृषेऽभिः। जुगुम्युः॥२॥

पदार्थ:-(ये) (चित्) (हि) खलु (पूर्वे) (ऋतसाप:) य आप्नुवते त अग्रूपः समानाश्च ते इति सापः सन्त्यस्य मध्ये व्यापकाः व्यापयितारो वा विद्वांसः (आसन्) (साकम्) (देवेभिः) विद्वाद्भिः स्सह (अवदन्) (ऋतानि) सत्यानि (ते) (चित्) इव (अव) (असुः) दोषान् प्रक्षिपेयुः (निह) (अन्तम्) (आपुः) प्राप्नुवन्ति (सम्) (उ) (नु) सद्यः (पत्नीः) स्त्रियः (वृषिभः) वीर्यवद्धिः प्रतिभिस्त्रहं (जगम्युः) भृशं गच्छेयुः॥२॥

अन्वय:-ये ऋतसापः पूर्वे विद्वांसो देवेभिः साकमृतान्यवदंस्ते विद्वि सुखिन आसन् ये नु पत्नीर्वृषभिस्सह संजग्म्युश्चिदिवाऽवासुस्त उ अन्तं नह्यापुः॥२॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। ब्रह्मचारिभिर्विद्यार्थिभिस्तेभ्ये एवँ विद्या शिक्षे ग्राह्मे। ये पूर्वमधीतविद्या: सत्याचारिणो जितेन्द्रिया: स्युस्तिभिर्बेह्मचीरिणीभिस्सह विवाहं कुर्युर्या: स्वतुल्यगुणकर्मस्वभावा विदुष्य: स्यु:॥२॥

पदार्थ:-(ये) जो (ऋतसाप:) सत्यव्यवहार में व्याप्नक वा दूसरों को व्याप्त करानेवाले (पूर्वे) पूर्व विद्वान् (देवेभि:) विद्वानों के (साकम्) स्पृथ (ऋतािष्ठ) सत्यव्यवहारों को (अवदन्) कहते हुए (ते, चित्, हि) वे भी सुखी (आसन्) हुए और जो (न) श्रीष्ठ (पत्नी:) स्त्रीजन (वृषभि:) वीर्य्यवान् पतियों के साथ (सम्, जगम्यु:) निरन्तर जावे (चित्) उनके समान (अवासु:) दोषों को दूर करें वे (3) (अन्तम्) अन्त को (निह) नहीं (अग्रु:) श्राप्त होते हैं॥२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। ब्रह्मचर्य्यस्थ विद्यार्थियों को उन्हीं से विद्या और अच्छी शिक्षा लेनी चाहिये कि जो पहिले विद्या पढ़े हुए सत्याचारी जितेन्द्रिय हों और उन ब्रह्मचारियों के साथ विवाह करें जो अपने तुल्ल पुण, कर्म स्वभाववाली विदुषी हों॥२॥

अथ गृहाश्रमे स्त्रीपुरुषयोः परस्परं संवादरूपविषयमाह॥

अषु गृहाश्रम् व्यवहार में स्त्री-पुरुष के व्यवहार को अगले मन्त्र में कहा है॥

न मृषी श्रान्तं यदवन्ति देवा विश्वा इत्स्पृधी अभ्यश्नवाव।

ज्य<u>ाचेदत्रे श</u>तनीथमाजिं यत्सम्यञ्जां मिथुनाव्भ्यजाव॥३॥

ने। मृषां। श्रान्तम्। यत्। अर्वन्ति। देवाः। विश्वाः। इत्। स्पृष्टः। अभि। अञ्चवाव। जर्याव। इत्। अत्रे। गुतुऽनीश्रम्। अुजिम्। यत्। सुम्यञ्चां। मिथुनौ। अभि। अर्जाव॥३॥ अष्टक-२। अध्याय-४। वर्ग-२२

मण्डल-१। अनुवाक-२३। सूक्त-१७९

पदार्थ:-(न) निषेधे (मृषा) मिथ्या (श्रान्तम्) खिद्यन्तम् (यत्) यतः (अविन्त) रक्षन्ति (देवाः) विद्वांसः (विश्वाः) सर्वाः (इत्) एव (स्पृधः) संग्रामान् (अभि) आभिमुख्ये (अश्नवाव) व्याप्नयाव जेतुं समर्थौ स्याव (जयाव) (इत्) एव (अत्र) (शतनीथम्) शतैः प्राप्तव्यम् (आजिम्) सङ्ग्रामम् (यत्) यतः) (सम्यञ्चा) सम्यगञ्चन्तौ (मिथुनौ) स्त्रीपुरुषौ (अभि) (अजाव) प्राप्नुयाव॥३॥

अन्वय:-देवा विद्वांसो यदत्र मृषा श्रान्तन्नावन्ति तत आवां विश्वा इत् स्पृधोऽभ्यश्नवाव <mark>ब्रह्मतो मृहोश्र</mark>मं सम्यञ्चा सन्तौ मिथुनावभ्यजाव तत: शतनीथमाजिं जयावेत्॥३॥

भावार्थ:-यत आप्ता विद्वांसो मिथ्याचारिणो मूढान् विद्यार्थिनो नाध्याप्यक्ति किन्तु परित्यजन्ति ततः स्त्रीपुरुषा मिथ्याचारान् व्यभिचारादिदोषान् त्यजेयुः। यथा गृहाश्रमोत्कर्षः स्यात्तथा स्त्रीपुरुषौ परस्परं धर्माचारिणौ प्रयतेताम्॥३॥

पदार्थ:-(देवा:) विद्वान् जन (यत्) जिस कारण (अत्र) इस जेग्त में (मृषा) मिथ्या (श्रान्तम्) खेद करते हुए की (न) नहीं (अवन्ति) रक्षा करते हैं, इससे हम (विश्वा, इत्) सभी (स्पृध:) संग्रामों को (अभि, अश्नवाव) सम्मुख होकर (यत्) जिस कारण गृहाश्रम को (सम्बञ्चा) अच्छे प्रकार प्राप्त होते हुए (मिथुनौ) स्त्री-पुरुष हम दोनों (अभ्यजाव) सब और पर उसके व्यवहारों को प्राप्त होवें, इससे (श्रातनीथम्) जो सैकड़ों से प्राप्त होने योग्य (आजिम्) संग्राम को (जयावेत्) जीतते ही हैं॥३॥

भावार्थ:-जिस कारण आप विद्वान् जन मिस्याचारी मूह विद्यार्थी जनों को नहीं पढ़ाते हैं, इससे स्त्रीपुरुष मिथ्या आचार व्यभिचारादि दोषों को स्थागें। और जैसे गृहाश्रम का उत्कर्ष हो, वैसे स्त्रीपुरुष परस्पर धर्म के आचरण करनेवाले हों॥३॥

पुन तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय की अगले मन्त्र में कहा है॥

नदस्य मा स्थातः काम आगिति आजातो अमुतः कुर्तिश्चत्। लोपामुद्रा वृष्णुं नी स्णिति धीरुम्भीरा धयति श्वसन्तम्॥४॥

नुदस्य। मा। सुधनः कार्पः। आ। अगुन्। इतः। आऽजातः। अमुतः। कुर्तः। चित्। लोपामुद्रा। वृषणम्। निः। रिणाति। धीरम्। अधीरा। धुयनि। श्रुसन्तम्॥ ४॥

पदार्थ: (पदस्य) अव्यक्तशब्दं कुर्वतो वृषभादेः (मा) माम् (स्थतः) रेतो निरोद्धः (कामः) (आगन्) आगृन्धति प्राप्नोति (इतः) अस्मात् (आजातः) सर्वतः प्रसिद्धः (अमुतः) अमुष्मात् (कुतः) कस्मात् (वित्) भूपि (लोपामुद्रा) लोप एव आमुद्रा समन्तात् प्रत्ययकारिणी यस्याः सा (वृषणम्) वीर्यवन्त्रम् (निः) नितराम् (रिणाति) (धीरम्) धैर्ययुक्तम् (अधीरा) धैर्यरहिता (धयित) आधरित (श्रम्निन्म्) प्रणयन्तम्॥४॥

अन्वय:-इतोऽमुत: कुतश्चिदाजातो रुधतो नदस्य कामो मागन्नधीरा लोपामुद्रेयं वृषणं धीरं श्वसन्तं पितं नीरिणाति धयित च॥४॥

भावार्थ:-ये विद्याधैर्य्यादिरहिता स्त्रिय उद्घहन्ति ते सुखन्नाप्नुवन्ति। योऽकामां कर्न्यां सम्काम् कुमारीं चोद्वाहयेत् तत्र किमपि सुखं न जायते। तस्मात् परस्परं प्रीतौ सदृशौ विवाहं कुर्याता तमेव मङ्गलम्॥४॥

पदार्थ:-(इत:) इधर से वा (अमुत:) उधर से वा (कुतश्चित्) कहीं से (अजात:) सब ओर से प्रसिद्ध (स्थत:) वीर्य रोकने वा (नदस्य) अव्यक्त शब्द करनेवाले वृषभ आद्धि का (काम:) काम (मा) मुझको (आगन्) प्राप्त होता अर्थात् उनके सदृश कामदेव उत्पन्न होता है। और (अर्थारा) धीरज से रहित वा (लोपामुद्रा) लोप होजाना लुकि जाना ही प्रतीत का चिह्न है जिसका सो यह सभी (वृषणम्) वीर्यवान् (धीरम्) धीरजयुक्त (श्चसन्तम्) श्वासें लेते हुए अर्थात् श्यनादि दश्म में निमन्न पुरुष को (नीरिणित) निरन्तर प्राप्त होती और (धयित) उससे गमन भी करती है॥४॥

भावार्थ:-जो विद्या, धैर्य आदि रहित स्त्रियों को विकारते हैं, के सुख नहीं पाते हैं। जो पुरुष कामरहित कन्या को वा कामरहित पुरुष को कुमारी विवाह, वहाँ कुछ भी सुख नहीं होता। इससे परस्पर प्रीतिवाले गुणों में समान स्त्री-पुरुष विवाह करें, वहाँ हो मङ्गाल स्नाचार है॥४॥

अथ प्रकृतविषये महौष्रीसारसङ्ग्रह्मविषयमाह।।

अब प्रकृत विषय में महौपिधियों के सुरसंग्रह को कहा है।।

ड्रमं नु सोम्मिन्तितो हृत्सु पीतमुप् बुवे। यत्सीमार्गश्चकृमा तत्सु मृळतु पुलुकामो हि मर्त्यः॥५॥

ड्रमम्। नु। सोर्मम्। अन्तितः। हृत्रेषु। पौतम्। उप। ब्रुवे। यत्। सीम्। आर्गः। चकृम। तत्। सु। मृळ्तु। पुलुऽकार्मः। हि। मर्त्यः॥५॥

पदार्थ:-(इमम्) (नु) (सोमम्) ओष्ट्रिंग्सम् (अन्तितः) समीपतः (हृत्सु) हृदयेषु (पीतम्) (उप) (त्रुवे) उपदिशामि (यत्) (सोम्) सर्वृतः (आगः) अपराधम् (चकृम) कुर्य्याम। अत्राऽन्येषामपीति दीर्घः। (तत्) (सु) (मृळतु) सुख्येतु (पृत्नुकामः) बहुकामः (हि) खलु (मर्त्यः) मनुष्यः॥५॥

अन्वय:- अहं यदिमं हत्सु पीतं सोममुपब्रुवे तत्पुलुकामो हि मर्त्यः सुमृळतु यदागो वयं चकृम तन्नु सीमन्तितस्सर्वे त्य्रानु ।

भाषार्थः भेहौषधिरसं पिबन्ति तेऽरोगा बलिष्ठा जायन्ते ये कुपथ्यमाचरन्ति ते रोगै: पीडचन्त्रे (५॥

पदोर्थ:-मैं (यत्) जिस (इमम्) इस (हृत्सु) हृदयों में (पीतम्) पिये हुए (सोमम्) ओषधियों के इस के इस, बुवे) उपदेश पूर्वक कहता हूँ, उसको (पुलुकाम:) बहुत कामनावाला (मर्त्य:) पुरुष (हि)

अष्टक-२। अध्याय-४। वर्ग-२२

मण्डल-१। अनुवाक-२३। सूक्त-१७९

ही (सुमृळतु) सुख संयुक्त करे अर्थात् अपने सुख में उसका संयोग करे। जिस (आगः) अपराध को हमें लोग (चकृम) करें (तत्) उसको (नु) शीघ्र (सीम्) सब ओर से (अन्तितः) समीप से सभी जन छोड़ें अर्थात् क्षमा करें॥५॥

भावार्थ:-जो महौषधियों के रस को पीते हैं, वे रोगरहित बलिष्ठ होते हैं। जो कुषश्याचरण करते हैं, वे रोगों से पीडचमान होते हैं॥५॥

अथ सन्तानोत्पत्तिविषयमाह॥

अब सन्तानोत्पत्ति विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अगस्त्युः खनमानः खुनित्रैः प्रजामपत्युं बलिमुच्छमानः।

उभौ वर्णावृषिरुयः पुंपोषु सत्या देवेष्वाशिषों जगाम।। ६ ५८२ र । २३।।

अगस्त्यः। खर्नमानः। खुनित्रैः। प्रऽजाम्। अपत्यम्। बर्लम्। इच्छम्पैनः। उभौ वर्णौ। ऋषिः। उग्रः। पुपोष्। सत्याः। देवेषुं। आऽशिर्षः। जुगाम्॥६॥

पदार्थ:-(अगस्त्य:) ये धर्मादन्यत्र न गच्छन्ति तेऽपस्तयस्तुषु साधुः (खनमानः) खनमानो भूमिमवदारयन् (खनित्रै:) खननसाधनैः (प्रजाम्) राज्यप् (अपन्यम्) सन्तानम् (बलम्) (इच्छमानः) (उभौ) (वणौ) परस्परेण व्रियमाणौ सुन्दरस्वरूपौ (क्रिषः) वैद्यर्थवेत्ता (उग्रः) तेजस्वी (पुपोष) पुष्णाति (सत्याः) सत्सु कर्मसु साधवः (देवेषु) विद्वत्सु क्रामेषु वा (आशिषः) सिद्धा इच्छाः (जगाम) गच्छति॥६॥

अन्वय:-यथा खनित्रैभूमिं खनमान: कृषीक्लो भ्रान्यादिकं प्राप्य सुखी जायते तथा ब्रह्मचर्येण विद्यया प्रजामपत्यं बलिमच्छमानोऽगस्त्य: ऋषिरुप्रो विद्वान पुषोष देवेषु सत्या आशिषो जगाम तथोभौ वर्णो स्त्रीपुरुषौ भवेताम्॥६॥

भागवार्थ:-अत्रोपमावानकलुप्तोपमात्रङ्कारौ। यथा कृषीवलाः सुक्षेत्रेषु सुवीजानि उप्त्वा फलवन्तो जायन्ते। यथा च धार्मिका ब्रिद्धांस्रो सत्यान् कामान् प्राप्नुवन्ति तथा ब्रह्मचर्य्येण यौवनं प्राप्य स्वेच्छया विवाहं कुर्युस्ते सुक्षेत्रोत्तमृविज्ञसम्बन्ध्रवत्फलवन्तो भवन्ति॥६॥

अत्र विद्वत्स्त्रीपुरुषेगुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेदितव्यम्॥

इत्येकोन्ग्रशीत्युत्तरं श्राततमं १७९ सूक्तं द्वाविंशो २२ वर्गस्त्रयोविंशोऽनुवाकश्च समाप्त:॥

पदार्थ्य: जैसे (खिनत्रे:) कुद्दाल, फाँवडा, कसी आदि खोदने के साधनों से भूमि को (खनमान:) खोदल हुआ खेती करनेवाला धान्य आदि अनाज पाके सुखी होता है, वैसे ब्रह्मचर्य और विद्या से (प्रजाम्) राज्य (अपत्यम्) सन्तान और (बलम्) बल की (इच्छमान:) इच्छा करता हुआ (अम्रस्य:) निरपराधियों में उत्तम (ऋषि:) वेदार्थवेत्ता (उम्र:) तेजस्वी विद्वान् (पुपोष) पुष्ट होता है (देवपु) और विद्वानों में वा कामों में (सत्या:) अच्छे कर्मों में उत्तम सत्य और (आशिष:) सिद्ध इच्छाओं

को (जगाम) प्राप्त होता है, वैसे (उभौ) दोनों (वणौं) परस्पर एक दूसरे का स्वीकार करते हुए स्त्री पुरुष होवें॥६॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे कृषि करनेवाले अच्छे वित्तें में उत्तम बीजों को बोय कर फलवान् होते हैं और जैसे धार्मिक विद्वान् जन सत्य कामों को प्राप्त होते हैं, वैसे ब्रह्मचर्य से युवावस्था को प्राप्त होकर अपनी इच्छा से विवाह करें, वे अच्छे खित में उत्तम बीज सम्बन्धी के समान फलवान् होते हैं॥६॥

इस सूक्त में विदुषी स्त्री और विद्वान् पुरुषों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है, यह जानना चाहिये॥

यह एक सौ उनासीवां १७९ सूक्त बाईसवां २२ वर्ग तेईसवां २३ अनुबाक समाप्त हुआ॥

युवोरित्यशीत्युत्तरस्य शततमस्य दशर्चस्य सूक्तस्य अगस्त्य ऋषि:। अश्विनौ देवते। १,४,७ निचृत् त्रिष्टुप्। ३,५,६,८ विराट् त्रिष्टुप्। १० त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। २,९ भुरिक्

पङ्क्तिश्छन्द:। पञ्चम: स्वर:॥

पुनस्स्त्रीपुरुषगुणानाह।।

अब एक सौ अस्सी वें सूक्त का आरम्भ है। उसमें आरम्भ से स्त्री-पुरुषों के गुणू<mark>ं का वर्णस्</mark> करते हैं॥

युवो रजांसि सुयमसो अश्वा रथो यद्वां पर्यणांसि दीर्यत्।

हिरुण्ययो वां पुवर्यः प्रुषायुन् मध्वः पिर्बन्ता उषर्सः सचेथे॥ 📶

युवोः। रजांसि। सुऽयमासः। अश्चाः। रथः। यत्। वाम्। परि अर्णासि। दीर्यत्। हिर्ण्ययाः। वाम्। पुवर्यः। प्रुषायुन्। मध्वः। पिर्वन्तौ। उषसः। सुचेथे इति॥ १॥

पदार्थ:-(युवो:) युवयो: (रजांसि) लोकान् (सुयम्मासः) स्वय्ययुक्ताः (अश्वाः) वेगवन्तो वह्नयादयः (रथः) यानम् (यत्) यः (वाम्) युवयोः (पिर्) सर्वतः (अर्थाः) जलानि (दीयत्) गच्छेत्। दीयतीति गतिकर्मासु पठितम्। (निघं०२.१४) (हिरण्ययाः) सुवर्णप्रचुराः (वाम्) युवयोः (पवयः) चक्राणि (प्रुषायन्) छिन्दन्ति (मध्वः) मधुरस्य रसस्य (पिवन्तो) (उषसः) प्रभातस्य (सचेथे) संवेते॥१॥

अन्वय:-हे स्त्रीपुरुषौ! यद्यदा युवो: सुयमास्रोऽश्वा रजांसि वां रथोऽणांसि परिदीयत् वां रथस्य हिरण्यया: पवय: प्रुषायन् मध्व: पिबन्तौ भवन्तावुषस: सचेथे॥ १०००

भावार्थ:-यौ स्त्रीपुरुषौ लोकविज्ञानौ पदार्थसंज्ञाधितरथेन यायिनौ स्वलंकृतौ दुग्धादिरसं पिबन्तौ समयानुरोधेन कार्यसाधकौ स्तस्तौ प्राप्तेश्वर्यो स्यातास्।।१॥

पदार्थ: - हे स्त्रीपुरुषो! (यत्) जेल (युवो:) तुम दोनों को (सुयमास:) संयम चाल के नियम को पकड़े हुए (अश्व:) वेगवान् अपन आदि पदार्थ (रजांसि) लोक-लोकान्तरों को और (वाम्) तुम्हारा (रथ:) रथ (अर्णांसि) जलस्थलों को (पिर, दीयत्) सब ओर से जावे, (वाम्) तुम दोनों के रथ के (हिरण्यया:) बहुत सुवर्ण्युक्त (पक्र्य:) चाक पहिये (प्रुषायन्) भूमि को छेदते-भेदते हैं तथा (मध्व:) मधुर रस को (पिबन्तौ) पीते हुए आप (उषस:) प्रभात समय का (सचेथे) सेवन करते हैं॥१॥

भावार्थ: जो स्त्री-पुरुष लोक का विज्ञान राखते और पदार्थविद्या संसाधित रथ से जानेवाले, अच्छे आभूषण पहिने दुग्धादि रस पीते हुए समय के अनुरोध से कार्य्यसिद्ध करनेवाले हैं, वे ऐश्वर्य्य को प्राप्त हों॥ १०

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

बुवमत्यस्यावं नक्षथो यद्विपंतमनो नर्यस्य प्रयंज्योः।

स्वसा यद्वां विश्वगूर्ती भराति वाजायेहे मधुपाविषे चं॥२॥

युवम्। अत्यस्य। अवं। नुक्ष्यः। यत्। विऽपंत्मनः। नर्यस्य। प्रऽयंज्योः। स्वसां। यत्। वाम्। विश्वमूर्ती इति विश्वऽगूर्ती। भराति। वाजाय। ईट्टे। मुधुऽपौ। ड्रुषे। चु॥२॥

पदार्थ:-(युवम्) युवाम् (अत्यस्य) अत्यस्याश्वस्य (अव) (नक्षथः) प्राप्तुर्थः (यत्) यौ (विपत्मनः) विशेषेण गमनशीलस्य (नर्घ्यस्य) नृषु साधोः (प्रयज्योः) प्रयोक्तुं योग्यस्य (स्वसा) भिगनी (यत्) या (वाम्) युवाम् (विश्वगूर्त्ती) समग्रोद्यमौ (भराति) भरेत् (वाजाय) विज्ञाताय (ईट्टे) स्तौति (मधुपौ) मधुरं पिबन्तौ (इषे) अन्नाय (च)॥२॥

अन्वय:-हे स्त्रीपुरुषौ! यद्यौ युवं युवां प्रयज्योर्नर्यस्य विपत्मनोऽत्यस्याव्यनक्षित्रः। युद्धौ विश्वगूर्ती वां स्वसा भराति वाजाय चेट्टे तौ मधुपौ युवामिषे प्रयतेथाम्॥२॥

भावार्थ:-यदि स्त्रीपुरुषावग्न्याद्यश्विवद्यां जानीयातां तर्हि यथेष्टे गन्तुं भावनुयाताम्। यस्य भगिनी विदुषी स्यात् तस्य प्रशंसा कुतो न स्यात्॥२॥

पदार्थ:-हे स्त्रीपुरुषी! (यत्) जो (युवम्) तुम दोनों (प्रयज्याः) प्रयोग करने योग्य अर्थात् कार्य्य संचार में वर्तने योग्य (नर्यस्य) मनुष्यों में उत्तम (विप्रमन्) विशेष चलनेवाले (अत्यस्य) घोड़े को (अव, नक्ष्यः) प्राप्त होते हो (यत्) जिस (विश्वगूर्त्ती) समस्त उद्यम के करनेवालों (वाम्) तुम दोनों को (स्वसा) बहिन तुम्हारी (भराति) पाले-पोषे (वाजाय, च) और विज्ञान होने के लिये (ईट्टे) तुम दोनों की स्तुति करती अर्थात् प्रशंसा करती वे (मधुपौ) मधुर मीठे क्रॉ पीते हुए तुम दोनों (इषे) अन्नादि पदार्थों के होने के लिए उत्तम यत्न करो॥२॥

भावार्थ:-जो स्त्री-पुरुष अग्नि खोदि पदार्थीं को शीघ्रगामी करने की विद्या को जानें तो यथेष्ट स्थान को जा सकते हैं, जिसकी बहुन पिण्डता हो, उसकी प्रशंसा क्यों न हो ?॥२॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

युवं पर्य उस्त्रियमधनं प्रक्वमामायामव पूर्व्यं गोः।

अन्तर्यद्विननों वॉमृत्प्सू ह्वारो न शुचिर्यजेते हुविष्मान्॥३॥

युवम्। पर्यः। उम्रियायाम्। अधन्तम्। प्रक्वम्। आमार्याम्। अवं। पूर्व्यम्। गोः। अन्तः। यत्। वृनिनंः। वाम्। ऋतप्पू इत्यंतऽप्र्याः ह्यारः। न। शुचिः। यर्जतः। हृविष्मान्॥३॥

पदार्थ: (युवम्) युवाम् (पयः) दुग्धम् (उस्त्रियायाम्) गवि (अधत्तम्) दध्यातम् (पक्वम्) (आमायाम्) अप्रौढायाम् (अव) (पूर्व्यम्) पूर्वैः कृतम् (गोः) (अन्तः) (यत्) (वनिनः) रिश्मिमतः (वृष्म्) युवयोः (ऋतप्सू) ऋतं जलं प्सातो भक्षयतस्तौ। ऋतिमत्युदकनामसु पठितम्। (निघं१.१२)

अष्टक-२। अध्याय-४। वर्ग-२३-२४ मण्डल-१। अनुवाक-२४। सूक्त-१८०

(ह्वार:) ह्वरस्य क्रोधस्यायं निवारकः (न) इव (शुचि:) पवित्रः (यजते) सङ्गच्छते (हविष्मान् शुद्धसामग्रीयुक्त:॥३॥

अन्वय:-हे ऋतप्स् ! युवं शुचिर्हविष्मान् ह्वारो न वामुस्त्रियायां यत्पयो आमायां पक्वं गो: (पूव यद्यजतेन्तरस्ति तदवाधत्तम्॥३॥

भावार्थ:-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। यथा सुर्य्यो रसमाकर्षति चन्द्<u>री वर्षय</u>ित पृथिवीं पुष्णाति तथा अध्यापकोपदेशकौ वर्त्तेतां यथा क्रोधादिदोषरहिता जनाः शान्त्यादिभिः सुखानि लभेने तथा युवामपि भवेतम्॥३॥

पदार्थ:-हे (ऋतप्सू) जल खानेहारे स्त्रीपुरुषो! (युवम्) तुम दोन्ने (शुचि:) पवित्र (हविष्मान्) शुद्ध सामग्रीयुक्त (ह्वार:) क्रोध के निवारण करनेवाले सज्जन के (त्र) सामान (वाम्) तुम दोनों की (उस्त्रियायाम्) गौ में (यत्) जो (पय:) दुग्ध वा (आमायाम्) जो युवाबस्था को नहीं प्राप्त हुई उस गौ में (पक्वम्) अवस्था से परिपक्व भाग (गो:) गौ का (पूर्व्यम्) पूर्वज लोगों ने प्रसिद्ध किया हुआ है वा (विनिनः) किरणोंवाले सूर्यमण्डल के (अन्तः) भीतर अर्थात् प्रकाश रूपूर्ण (यजते) प्राप्त होता है, उसको (अवाधत्तम्) अच्छे प्रकार धारण करो॥३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्त्रोपमालङ्क्रिस्ट्रिं। जैसे सूर्यमण्डल रस को खींचता है और चन्द्रमा वर्षाता, पृथिवी की पृष्टि करता, वैसे अध्यापेक [और] उपदेश करनेवाले वर्ताव रक्खें। जैसे क्रोधादि दोषरहित जन शान्ति आदि गुणों से सुर्खी को प्रोष्त्र/हीते हैं, वैसे तुम भी होओ॥३॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी किया को अगिले मन्त्र में कहा है।।

युवं ह घुर्मं मधुमन्तुमत्रयेऽपी त क्षोद्में वृणीतमेषे।

तद्वां नरावश्चिना पश्चेड्रध्ये रथ्येव सुका प्रति यन्ति मध्वः॥४॥

युवम्। ह। घुर्मम्। मधुर्द्भन्तम्। अत्रये। अपः। न। क्षोद्रः। अवृणीतुम्। पुषे। तत्। वाुम्। नुरौ। अश्विना। पर्श्व:ऽइष्टिः। रथ्योऽइव। चुक्रा प्रति। युन्ति। मध्वे:॥४॥

पदार्थ:-(युवम्) युवाम्)(ह) किल (धर्मम्) दिनम् (मधुमन्तम्) मधुरादिगुणयुक्तम् (अत्रये) न सन्ति त्रीणि भूतभूतिष्यद्वर्त्तम्मनकालजानि दुःखानि यस्य तस्मै सर्वदा सुखसम्पन्नाय (अपः) प्राणान् (न) इव (क्षोद:) उदक्षे (अवृणीतम्) वृणीयाताम् (एषे) समन्तादिच्छवे (तत्) (वाम्) युवयोः (नरौ) नायकौ (अश्विना) विद्युदादिविद्याव्यापिनौ (पश्चइष्टि:) पशोः सङ्गतिः (रथ्येव) यथा रथेषु साधूनि (चक्रा) चक्राणि**(प्रति) (यन्ति)** प्राप्नुवन्ति (**मध्वः)** मधृनि॥४॥

अ<u>न्वेयः</u> - हे नराविश्वना! युवमेषेऽत्रये मधुमन्तं घर्मं क्षोदोऽपो नाऽवुणीतं यद्वां पश्चइष्टी रथ्येव चक्रा मध्वः प्रतियन्ति बेद्ध युवां प्रायातम्॥४॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। यदि स्त्रीपुरुषौ गृहाश्रमे मधुरादिरसयुक्तानि द्रव्याणि उत्तमान् पशून् रथादीनि यानान्यप्राप्स्यतं तर्हि तयो: सर्वाणि दिनानि सुखेनागमिष्यन्॥४॥

पदार्थ:-हे (नरौ) नायक अग्रगन्ता (अश्विना) बिजुली आदि की विद्या में व्याप्त जि पुरुषों) (युवम्) तुम दोनों (एषे) सब ओर से इच्छा करते हुए (अत्रये) और भूत, भविष्यत्, वर्तमान तीमों आल में जिसको दु:ख नहीं, ऐसे सर्वदा सुखयुक्त रहनेवाले पुरुष के लिये (मधुमन्तम्) मधुसदि गुणयुक्त (धर्मम्) दिन और (क्षोद:) जल को (अप:) प्राणों के (न) समान (अवृणीतम्) स्वीकार करें। जिस कारण (वाम्) तुम दोनों की (पश्चइष्टि:) पशुकुल की सङ्गति (रथ्येव) रथों में उत्तम स्वक्रा) पहियों के समान (मध्व:) मधुर फलों को (प्रति, यन्ति) प्रति प्राप्त होते हैं (तत्, ह) हस कारण प्राप्त होओ॥४॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। यदि स्त्रीपुरुष गृहाश्चम् में मधुराकि रसों से युक्त पदार्थों और उत्तम पशुओं को, रथ आदि यानों को प्राप्त होवें तो उनके सब दिन सुख हो जावें॥४॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।

आ वां दानायं ववृतीय दस्रा गोरोहेण तौुक्यों न जिड़िंदे

अपः श्रोणी संचते माहिना वां जूर्णी वाम्युरंहसी यनत्रा।।५॥२३॥

आ। वाम्। दानार्य। ववृतीया दुस्रा। गोः। अहिना तोष्ट्रयः। न। जिब्निः। अपः। क्षोणी इतिं। सुचते। माहिना। वाम्। जूर्णः। वाम्। अक्षुः। अंहसः। युज्युमाए।।

पदार्थ:-(आ) समन्तात् (वाम्) युवाम् (दाज्ञाय) (ववृतीय) वर्तयामि। अत्र बहुलं छन्दसीति साभ्यासत्वम्। (दस्ना) दुःखोपक्षेतार्गे (गीः) पृथिव्याः (ओहेन) वीजादिस्थापनेन (तौज्रयः) तुग्रा बिलनस्तेषु भवः (न) इव (जिव्रिः) जीर्षो वृद्धः (अपः) जलानि (क्षोणी) भूमिः (सचते) सम्बध्नाति (माहिना) महत्वेन (वाम्) युवाम् (जूर्णः) रोगी (वाम्) युवाम् (अक्षुः) व्याप्तुं शीलः (अंहसः) दृष्टाचारात् (यजत्रा) सङ्गमियक्रारीत्।।

अन्वय:-हे दस्रा कात्रा! जिल्लिस्तीग्रयो नाहं गोरोहेण वां दानायाववृतीय यथा माहिना क्षोण्यपः सचते तथा जूर्णोऽहं वां सचेयमक्षुरंहसो वा प्रामुभयम्॥५॥

भावार्थः अत्रोपमात्वचकलुप्तोपमालङ्कारौ। विद्वांसो स्त्रीपुरुषेभ्य एवमुपदिशेयुर्यथा वयं युष्मभ्यं विद्या दद्याम दुष्टाचारात् पृथग्रक्षयेम तथा युष्माभिरप्याचरणीयम्। पृथिवीवत् क्षमोपकारादीनि कर्माणि कर्त्तव्यानि। ।

पदार्थ:-हे (दस्रा) दु:ख दूर करने और (यजत्रा) सर्वव्यवहार की सङ्गित करानेवाले स्त्री-पुरुष्ट्री (जिद्धः) जीर्ण वृद्ध (तौत्रयः) बलवानों में बली जन के (न) समान मैं (गोरोहेण) पृथिवी के ब्रीज स्थापन से (वाम्) तुम दोनो को (दानाय) देने के लिये (आववृतीय) अच्छे वर्त्तू जैसे (माहिना) अष्टक-२। अध्याय-४। वर्ग-२३-२४

मण्डल-१। अनुवाक-२४। सूक्त-१८०

१८६३

बड़ी होने से (क्षोणी) भूमि (अप:) जलों का (सचते) सम्बन्ध करती है, वैसे (जूर्ण:) रोगवान् में (वाम्) तुम्हारा सम्बन्ध करूं और (अक्षु:) व्याप्त होने के शीलस्वभाववाला मैं (अंहस:) दृष्टाचार से (वाम्) तुम दोनों को अलग रक्खूं॥५॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। विद्वान् जन स्त्री पुरुषों के लिये ऐसा उपदेश करें कि जैसे हम लोग तुम्हारे लिये विद्यायें देवें, दुष्ट आचारों से अलग् रक्खें, असा तुमको भी आचरण करना चाहिये और पृथिवी के समान क्षमा तथा परोपकारादि कर्म करमें साहिये॥५॥

अथ सन्तानशिक्षापरं गार्हस्थ्यकर्माह॥

अब सन्तानशिक्षापरक गार्हस्थ कर्म अगले मन्त्र में कहा है।

नि यद्युवेथे नियुर्तः सुदान् उपं स्वधार्भः सृजथः पुरंधिम्। प्रेषद्वेषद्वातो न सूरिरा महे देदे सुवृतो न वार्जम्॥६॥

नि। यत्। युवेथे इति। निऽयुत्तः। सुदान् इति सुऽदानू। उपि स्वधाभिः। सृज्यः। पुरम्ऽधिम्। प्रेषत्। वेषत्। वार्तः। न। सूरिः। आ। मुहे। दुदे। सुऽवृतः। न। वार्जम्॥६॥

पदार्थ:-(नि) (यत्) यदा (युवेथे) सङ्गमयथः (जियुतः) व्ययोर्वेगादिगुणानिव निश्चितान् पदार्थान् (सुदान्) सुष्ठु दानकर्तारौ (उप) (स्वधाभिः) अन्नाविभिः षदार्थः (सृजथः) (पुरिन्धम्) प्राप्तव्यं विज्ञानम् (प्रेषत्) प्रीणीत। लेट् प्रयोगः तिपि। (वेषत्) अभिपञ्छत्। लिपि लेट् प्रयोगः। (वातः) वायुः (न) इव (सूरिः) विद्वान् (आ) (महे) महते (ददे) (सुद्भवः) श्लीभनैव्रतैधिम्यैनियमैर्युक्तः (न) इव (वाजम्) विज्ञानम्॥६॥

अन्वयः-यद्यदा हे सुदानू स्त्रीपुरुष्ट्रौ! नियुत्ता नियुत्ता नियुत्ता नियुत्ता नियुत्ता नियुत्ता स्वधाभिर्यस्य पुरन्धिमुपसृजथः स सूरिः प्रेषत् वातो न वेषत्। सुव्रतो न महे वाजमाददे॥६॥ 🗸

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार्यः। पित्राद्यः शिल्पिक्रियाकौशलतां पुत्रेषु सम्पादयेयुः। शिक्षां प्राप्ताः पुत्रादयः सर्वपदार्थान् विजामीयुः कलायन्त्रः चिलतेन वायुवद्वेगेन यानेन यत्र कुत्राभीष्टप्रदेशं स्थाने गच्छेयुः॥६॥

पदार्थ:-(यत्) जब है (मुदानू) सुन्दर दानशील स्त्रीपुरुषो! (नियुतः) पवन के वेगादि गुणों के समान निश्चित पद्मर्थों को (नियुवेथे) एक-दूसरे से मिलाते हो तब (स्वधाभिः) अन्नादि पदार्थों से जिससे (पुरिच्यम्) प्राप्त होने शोग्य विज्ञान को (उप, मृजथः) उत्पन्न करते हो वह (सूरिः) विद्वान् (प्रेषत्) प्रसन्न हो (वातः) पवन के (न) समान (वेषत्) सब ओर से गमन करे और (सुव्नतः) सुन्दर व्रत अर्थात् धर्म के अनुकूल नियमों से युक्त सज्जन पुरुष के (न) समान (महे) महत्त्व अर्थात् बड़प्पन के लिये (वाजम्) विशेष ज्ञान को (आददे) ग्रहण करता हूँ॥६॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। पितादिकों को चाहिये कि शिल्पक्रिया की कुशलता की पुत्रादिकों में उत्पन्न करावें, शिक्षा को प्राप्त हुए पुत्रादि समस्त पदार्थों को विशेषता से जानें और कलायन्त्रों से चलाये हुए पवन के समान जिससे वेग उस यान से जहाँ-तहां चाहे हुए स्थान को जावें॥६॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

वयं चिद्धि वां जिर्तारः सत्या विपन्यामेहे वि प्रणिर्हितावान्।

वयम्। चित्। हि। वाम्। जुरितार्रः। सुत्याः। विपुन्यामहे। वि। पुण्णिः। हित्रिक्षन्। अर्घ। चित्। हि। स्म्। अश्विनौ। अन्तिऽदेवम्॥७॥

पदार्थ:-(वयम्) (चित्) अपि (हि) (वाम्) युवाम् (जिरतारः) स्तावकाः (सत्याः) सत्सु साधवः (विपन्यामहे) विशेषेण स्तुमहे (वि) (पणिः) व्यवहर्त्ता (हितावान्) हितं विद्यते यस्य सः (अध) अनन्तरम्। अत्र निपातस्य चेति दीर्घः। (चित्) इव (हि) खुलु (स्म) एव (अश्विनौ) सर्वपदार्थगुणव्यापिनौ स्त्रीपुरुषौ (अनिन्द्या) निन्दितुमनहौं (पाथः) उदकम् (हि) विस्मये (स्म) अतीते। अत्र निपातस्य चेति दीर्घः। (वृषणौ) बलिष्ठौ (अन्तिदेवम्) अन्तिषु विद्वत्यु विद्वासम्॥७॥

अन्वय:-हेऽनिन्द्या वृषणाविश्वनौ! यथा हित्रावान् विपिप्तिर्वां प्रशंसित तथा वां प्रशंसेम यथा चिद्धि जिरतारः सत्या वयं युवां विपन्यामहे तथा स्म ह्यन्तिदेवं सेक्नेमिहि यथा हिर्सम पाथिश्चत् तर्पयित तथाध विदुषः सत्कुर्याम॥७॥

भावार्थ:-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमाल्यारो। मनुष्यैर्यथा विद्वांसो प्रशंसनीयान् प्रशंसन्ति निन्दान्निन्दन्ति तथा वर्तितव्यम्॥७॥

पदार्थ:-हे (अनिन्द्या) निन्दा के न योग्य (वृषणौ) बलवान् (अश्विनौ) समस्त पदार्थ गुणव्यापी स्त्रीपुरुषो! तुम जैसे (हितावाह) हित जिसके विद्यमान वह (विपणि:) विशेषतर व्यवहार करनेवाला जन (वाम्) तुम दोनों की प्रशंसा करता है, वैसे हम लोग प्रशंसा करें। वा जैसे (चित्, हि) हि (जिरतार:) स्तुति प्रशंसा करने और (सल्याः) सत्य व्यवहार वर्त्तनेवाले (वयम्) हम लोग तुम दोनों की (विपन्यामहे) उत्तम स्तुति करते हैं, वैसे (सम, हि) ही (अन्तिदेवम्) विद्वानों में विद्वान् जन की सेवा करें वा जैसे (हि, सम) ही आश्चर्यरूप (पाथः) जल (चित्) निश्चय से तृप्ति करता है, वैसे (अध) इसके अनन्तर विद्वानों की सत्कार करें॥७॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। मनुष्यों को चाहिये कि जैसे विद्वान् जन प्रशंसा करने योग्यों की प्रशंसा करते और निन्दा करने योग्यों की निन्दा करते हैं, वैसे वर्त्ताव प्रविदेशांश्व अष्टक-२। अध्याय-४। वर्ग-२३-२४

मण्डल-१। अनुवाक-२४। सूक्त-१८०

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

युवां चिद्धि ष्माश्चिनावनु द्यून् विरुद्रस्य प्रस्नवणस्य सातौ। अगस्त्यो नुरां नृषु प्रशस्तुः काराधुनीव चितयत्सुहस्रैः॥८॥

युवाम्। चित्। हि। स्म। अश्विनौ। अनुं। द्यून्। विऽरुंद्रस्य। प्रऽस्रवंणस्य। सातौ। श्रूगस्त्यः। नृषुं। प्रऽशंस्तः। कार्राधुनीऽइव। चित्युत्। सहस्रैः॥८॥

पदार्थ:-(युवाम्) (चित्) (हि) यतः (स्म) (अश्विनौ) सूर्य्याचन्द्रमस्विव स्त्रीपुरुषौ (अनुद्यून्) प्रतिदिनम् (विरुद्रस्य) विविधा रुद्राः प्राणा यस्मिन् तस्य (प्रस्रवणाय) प्रकर्णेण गतस्य (सातौ) संविभक्तौ (अगस्त्यः) अगमपराधमस्यन्ति प्रक्षिपन्ति तेषु साधुः (नर्राम्) सृत्र्याणाम् (नृषु) मनुष्येषु (प्रशस्तः) उत्तमः (काराधुनीव) कारान् शब्दान् धूनयतीव (चितयत्र) संज्ञापयेत् (सहस्रैः)॥८॥

अन्वयः-हे अश्विनौ! यथा युवां चिद्धि स्म विरुद्रस्य प्रस्रवणस्य सातोक्तुद्धून्निजापत्यानुपदिशेतं तथा नरां नृषु प्रशस्तोऽगस्त्यः सहस्रैः काराधुनीव सर्वाश्चितयत्संज्ञापयेत्॥८॥

भावार्थ:-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। ये जिन्न प्रकाशयन्ति, ते प्रशंसिता भवन्ति॥८॥

पदार्थ:-हे (अश्विनौ) सूर्य और चन्द्रमा के तुल्य गुणवाले स्त्री-पुरुषो! जैसे (युवाम्, चित्) तुम ही (हि, स्म) जिस कारण (विरुद्रस्य) विविध्न प्रकार से प्राण विद्यमान उस (प्रस्रवणस्य) उत्तमता से जानेवाले शरीर की (सातौ) संभिक्त में (अनु, द्यून) प्रतिदिन अपने सन्तानों को उपदेश देओ, वैसे उसी कारण (नराम्) मनुष्यों के बीच (नृष्) श्रेष्ठ मनुष्यों में (प्रशस्तः) उत्तम (अगस्त्यः) अपराध को दूर करनेवाला जन (सहस्रैः) हजारों प्रकार से (काराधुनीव) शब्दों को कंपाते हुए वादित्र आदि के समान सबको (चितयत्) उत्तम चितावेशिया

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जो स्त्रीपुरुष निरन्तर सूर्य और चन्द्रमा के समान अपने क्लानों का विद्या और उत्तम उपदेशों से प्रकाशित करते हैं, वे प्रशंसावान् होते हैं॥८॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

प्र सद्घेर महिना रथस्य प्र स्पन्द्रा याथो मनुषो न होता।

धुतं सूरिभ्यं उत वा स्वश्व्यं नासंत्या रियाचीः स्याम॥९॥

प्रा यत्। वहेथे इति। मृहिना। रथस्य। प्रा स्पन्द्रा। याथः। मर्नुषः। न। होता। धृत्तम्। सूरिऽभ्यः। उता वा सुऽअश्र्व्यम्। नासत्या। रुयिऽसार्चः। स्याम्॥९॥

पदार्थ:-(प्र) (यत्) यो (वहेथे) प्राप्नुथः (महिना) महत्त्वेन सह (रथस्य) रमणीयस्य प्र) (स्पन्द्रा) प्रचलितौ (याथः) गच्छथः (मनुषः) मानवान् (न) इव (होता) दाता (धत्तम्) (सूरिभ्यः) विद्वद्भयः (उत) अपि (वा) (स्वश्र्व्यम्) शोभना अश्वा यस्मिस्तम् (नासत्या) सत्यस्वश्चावौ (निष्णाचः) ये रियणा सह समवयन्ति ते (स्थाम) भवेम॥९॥

अन्वय:-हे स्पन्द्रा नासत्या! यत् युवां होता मनुषो न महिना रथस्य प्र वहेथे वेशान्तर प्रवोषसतौ सूरिभ्यो धनं धत्तं उत वा स्वश्व्यं प्राप्नुतं यतो वयं रियषाचः स्याम॥९॥

भावार्थ:-मनुष्या यथा स्वसुखाय यानि साधनानीच्छेसुस्त्रम्थेव परेणामानन्दायेच्छेयु:। ये सुपात्रेभ्योऽध्यापकेभ्यो दानं ददित ते श्रीमन्तो भवन्ति॥९॥

पदार्थ:-हे (स्पन्द्रा) उत्तम चाल चलने और (नासत्या) सत्य स्वभावयुक्त स्त्री-पुरुषो! (यत्) जो तुम (होता) दान करनेवाले (मनुषः) मनुष्य के (न) समान (महिना) बड़प्पन के साथ (रथस्य) रमण करने योग्य विमानादि रथ को (प्रवहेथे) प्राप्त होते और (प्रयापः) एक देश से दूसरे देश पुहँचाते हो, वे आप (सूरिभ्यः) विद्वानों के लिए धन को (धत्तम्) धारण करो (उत, वा) अथवा (स्वश्व्यम्) सुन्दर घोड़ा जिसमें विराजमान उत्तम धनादि विभव को प्राप्त होओ, जिससे हम लोग (रियषाचः) धन के साथ सम्बन्ध करनेवाले (स्याम) हों॥९॥

भावार्थ:-मनुष्य जैसे अपने सुख के लिये जिन साधनों की इच्छा करें, उन्हीं को औरों के आनन्द के लिये चाहें। जो सुपात्र पढ़ानेवालों की श्रृनदान देते हैं, वे श्रीमान् धनवान् होते हैं॥९॥

\ पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

तं वां रथं वयम्द्या हिर्बम् स्तोमैरिश्चेना सुविताय नव्यम्। अरिष्टनेमिं पर्कि स्मियाने विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम्॥ १०॥ २४॥

तम्। वाम्। रथम्। व्यम्। अद्याः हुवेम्। स्तोमैः। अश्विनाः सुवितार्यः। नव्यम्। अरिष्टऽनेमिम्। परिः। द्याम्। हुयानम्। विद्यामः। द्वरामः। वृजनमः। जीरऽदानुम्। १०॥

पदार्थः (तम्) पूर्वमन्त्रप्रतिपादितम् (वाम्) युवयोः (रथम्) रमणीयं विमानादियानम् (वयम्) (अद्य) अस्मिन् दिस्। अत्र निपातस्य चेति दीर्घः। (हुवेम) स्वीकुर्याम (स्तोमैः) प्रशंसाभिः (अश्विना) हे सर्वगुण्यपिनौ स्त्रोपुरुषौ (सुविताय) ऐश्वर्याय (नव्यम्) नवीनम् (अरिष्टनेमिम्) दुःखनिवारकम् (पिर) सर्वतः (द्याम्) आकाशम् (इयानम्) गच्छन्तम् (विद्याम्) विजानीयाम (इषम्) प्राप्तव्यं सुखम् (वृजनम्) प्रमित्रम् (जीरदानुम्) जीवम्॥१०॥

अष्टक-२। अध्याय-४। वर्ग-२३-२४

मण्डल-१। अनुवाक-२४। सूक्त-१८०

१८६७

अन्वयः-हे अश्वना! वयमद्य सुविताय स्तोमैरिष्टनेमिं नव्यं द्यां परीयानं तं वां रथं हुवेमेषं वृजनं जीरदाँनुञ्चे विद्याम॥१०॥

भावार्थ: - मनुष्यै: सदैव नवीनानि नवीनानि विद्याकार्याणि साधनीयानि। येन प्रशंसो स्यादाकाशादिषु गमनेनेच्छासिद्धिश्च प्राप्येत्॥१०॥

अत्र स्त्रीपुरुषगुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेदितव्यमूर्य

इत्यशीत्युत्तरं शततमं १८० सुक्तं चतुर्विशो २४ वर्गश्च समाप्तः

पदार्थ:-हे (अश्विना) सर्वगुणव्यापी पुरुषो! (वयम्) हम लोग (अद्य) अज (पुविताय) ऐश्वर्य के लिये (स्तौमै:) प्रशंसाओं से (अरिष्टनेमिम्) दु:खनिवारक (नव्यम्) नविन (द्याम्) आकाश को (परि, इयानम्) सब ओर से जाते हुए (तम्) उस पूर्व मन्त्रोक्त (वाम्) तम दोनों के (प्रथम्) रथ को (हुवेम) स्वीकार करें तथा (इषम्) प्राप्तव्य सुख (वृजनम्) गमन और (जीरदानुम्) जीव को (विद्याम) प्राप्त होवें॥१०॥

भावार्थ:-मनुष्यों को सदैव नवीन-नवीन विद्या के कार्य सिद्ध करने चाहियें, जिससे इस संसार में प्रशंसा हो और आकाशादिकों में जाने से इच्छासिद्धि पार्ह जाने।।

इस सूक्त में स्त्री-पुरुषों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्तार्थ के साथ सङ्गति है, यह जानना चाहिये॥

यह एक सौ अस्सीवां १८० सूक्त और चौलींसवां २४ वर्ग समाप्त हुआ॥

कदित्यस्य नवर्चस्यैकाशीत्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य अगस्त्य ऋषिः। अश्विनौ देवते। १,३ विराट् त्रिष्टुप्। २,४,६-९ निचृत् त्रिष्टुप्। ५ त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथाश्चिदृष्टान्तेनाध्यापकोपदेशकगुणानाह।।

अब एक सौ इक्यासीवें सूक्त का आरम्भ है। उसके प्रथम मन्त्र में अश्विपद वाच्यों के क्षान्त से अध्यापक और उपदेशक के गुणों का वर्णन करते हैं।।

कदु प्रेष्ठांविषां रेयोणामध्वर्यन्ता यदुन्निनीथो अपाम्। अयं वां युज्ञो अंकृत प्रशस्तिं वसुंधिती अवितारा जनानाम्॥ १॥ ४

कत्। ऊम् इति। प्रेष्ठौ। इषाम्। रयोणाम्। अध्वर्यन्ता। यत्। उत्ऽनिनीश्रः। अपाम्। अयम्। वाम्। यज्ञः। अकृत्। प्रऽष्ठितम्। वसुधितो इति वसुऽधितो। अवितारा। जनानाम्।। १।।

पदार्थ:-(कत्) कदा (3) (प्रेष्ठौ) प्रीणीत इति प्रियौ इगुपश्चेति करे। अतिशयेन प्रियौ प्रेष्ठौ। (इषाम्) अन्नानाम् (रयोणाम्) (अध्वर्यन्ता) आत्मनोऽध्वरिमच्छ्रप्ती (यत्) (उन्निनीथः) उत्कर्षं प्राप्नुथः (अपाम्) जलानां प्राणानां वा (अयम्) (वाम्) युवयोः (यज्ञः) (अकृत्) करोति (प्रशस्तिम्) प्रशंसाम् (वसुधिती) यौ वसूनि धरतस्तौ (अवितारा) रक्षितारौ (जनाम्) स्नुष्याणाम्॥१॥

अन्वयः-हे इषां रयीणां प्रेष्ठौ जनानामवितारा वस्तिभित्ती अध्यापकोपदेशकौ! युवां कदु कदाचिदध्वर्यन्ता यदपामुत्रिनीथः सोऽयं वां यज्ञो प्रशस्तिमकृत॥१॥

भावार्थः-यदा विद्वांसो मनुष्यान् विद्वाः नयिन्तं तदा ते सर्वप्रिया ऐश्वर्यवन्तो भवन्ति। यदाऽध्ययनाऽध्यापनेन सुगन्ध्यादिहोमेन चूर्जीबात्मनो नलानि च शोधयन्ति तदा प्रशंसामाप्नुवन्ति॥१॥

पदार्थ:-हे (इषाम्) अत्र और (स्थेणाम्) धनादि पदार्थों के विषय (प्रेष्ठौ) अत्यन्त प्रीतिवाले (जनानाम्) मनुष्यों की (अवितारा) रक्षा और (वसुधिती) धनादि पदार्थों को धारण करनेवाला अध्यापक और उपदेशको! तुम (कत्, क) कभी (अध्वर्यन्ता) अपने को यज्ञ की इच्छा करते हुए (यत्) जो (अपाम्) जल वा प्राणों की (उत्, निनीथ:) जति को पहुँचाते अर्थात् अत्यन्त व्यवहार में लाते हैं सो (अयम्) यह (वाम्) तुम्हर्स (यज्ञ:) द्वव्यमय वा वाणीमय यज्ञ (प्रशस्तिम्) प्रशंसा को (अकृत) करता है॥१॥

भावार्थ: जब विद्वान जन मनुष्यों को विद्याओं की प्राप्ति कराते हैं, तब वे सबके पियारे ऐश्वर्यवान् होते हैं। जब पढ़ने और पढ़ाने से और सुगन्धादि पदार्थों के होम से जीवात्मा और जलों की शुद्धि कराते हैं, तेल प्रशंसा को प्राप्त होते हैं॥१॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

आ वामश्रांसुः शुर्चयः पयुस्पा वार्तरंहसो दुव्यासो अत्याः।

अष्टक-२। अध्याय-४। वर्ग-२५-२६

मण्डल-१। अनुवाक-२४। सूक्त-१८१

१८६९

मुनोजुवो वृषेणो वीतपृष्ठा एह स्वराजी अश्विना वहन्तु॥२॥

आ। वाम्। अश्वासः। शुर्चयः। प्यःऽपाः। वार्तऽरंहसः। दिव्यासः। अत्याः। मृनःऽजुर्वः। वृषणः। वीतऽपृष्ठाः। आ। इह। स्वऽराजः। अश्विनां। वृहुन्तु॥२॥

पदार्थ:-(आ) समन्तात् (वाम्) युवयोः (अश्वासः) शीघ्रगामिनः (शुचयः) प्रवित्रोः (पयस्पाः) पयस उदकस्य पातारः (वातरंहसः) वातस्य रंहो गमनिमव गमनं येषान्ते (दिव्यासः) (अत्याः) सततगमनाः (मनोजुवः) मनस इव जूर्वेगो येषान्ते (वृषणः) शक्तिबन्धकाः (वीत्रपृष्ठाः) वीतं व्याप्तं पृष्ठं पृथिव्यादितलं यैस्ते (आ) अभितः (इह) अस्मिन् संसारे (स्वराजः) स्वयं राजमानाः (अश्विना) वायुविद्युदिव वर्त्तमानौ (वहन्तु) प्राप्नुवन्तु॥२॥

अन्वय:-हे विद्वांसौ! येऽश्वास: शुचय: पयस्पा दिव्यासो वातरंहसो मुत्रीजुर्वो सूष्प्रणे वीतपृष्ठा: स्वराजो अत्या आ सन्ति त इह वामश्विनाऽऽवहन्तु॥२॥

भावार्थ:-विद्वांसो यान् विद्युदादिपदार्थान् गुणकर्मस्वभवितौ विज्ञानीयुस्तानन्येभ्योऽप्युपदिशन्तु यावन्मनुष्या सृष्टिपदार्थविद्या न जानन्ति तावदिखलं सुखन्नाप्नुवन्ति॥२॥

पदार्थ:-हे विद्वानो! जो (अश्वासः) शीघ्रगामी जोहे (शुर्घेयः) पवित्र (पयस्पाः) जल के पीनेवाले (दिव्यासः) दिव्य (वातरंहसः) पवन के समान वेप अ (मनोजुवः) मनोवद्वेगवाले (वृषणः) परशक्ति बन्धक (वीतपृष्ठाः) जिन्हों से पृथिवीतल व्याप्त (स्वराजः) जो आप प्रकाशमान (अत्याः) निरन्तर जानेवाले (आ) अच्छे प्रकार हैं, वे (इह) इस स्थान में (वाम्) तुम (अश्विना) अध्यापक और उपदेशकों को (आ, वहन्तु) पहुंचावें॥२॥

भावार्थ:-विद्वान् जन जिन बिजुखी सादि पदार्थों को गुण, कर्म, स्वभाव से जानें, उनका औरों के लिये भी उपदेश देवें। जब तक मनुष्य सृष्टि की पदार्थविद्या को नहीं जानते, तब तक संपूर्ण सुख को नहीं प्राप्त होते हैं॥२॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर इसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

आ वां रथोऽविन् प्रवेत्वन्स्प्रवन्धुरः सुवितायं गम्याः।

वृष्णीः स्थातारा मन्सी जवीयानहंपूर्वी यजतो धिष्णया यः॥३॥

आ। वाम्। ग्रे:। अवनिः। न। प्रवत्वान्। सृप्रऽवस्थरः। सुवितायं। गुम्याः। वृष्णः। स्थाताग्रा। मनसः। जवीयान्। ब्रह्मुरुपूर्वः। युजतः। धिष्णया। यः॥३॥

पदार्थ:-(आ) समन्तात् (वाम्) युवयोः (रथः) यानम् (अविनः) पृथिवी (न) इव (प्रवत्वान्) प्रशस्ता प्रवतो वेगादयो गुणा विद्यन्ते यस्मिन् (सृप्रवश्वुरः) सुप्रैः सङ्गतैर्वन्ध्ररैर्बन्धनैर्युक्तः (सुविताय) क्ष्यायाः (ग्राम्याः) गमयितुं योग्याः (वृष्णः) बलवतः (स्थातारा) स्थातारो (मनसः) (जवीयान्)

अतिशयेन वेगवान् (अहंपूर्वः) अयमहमित्यात्मज्ञानेन पूर्णः (यजतः) सङ्गतः (धिष्ण्या) धिष्णौ प्रगल्भौ (यः)॥३॥

अन्वयः-हे स्थातारा धिष्ण्या! यो वामविनर्न प्रवत्वान् सृप्रवन्धुरो मनसो जवीयान् अहंपूर्वो स्वाती रक्ष) सुविताय भवति यत्र वृष्ण आगम्याः प्रयुज्यन्ते तमहं साध्नुयाम॥३॥

भावार्थ:-मनुष्यैरैश्वर्य्योन्नतये पृथिवीवन्मनोवेगवद्वेगवन्ति यानानि निर्मीयन्ते ते<mark>ठत्र दृह्य</mark>ोस्थिरसुखा जायन्ते॥३॥

पदार्थ:-हे (स्थातारा) स्थित होनेवाले (धिष्ण्या) धृष्टप्रगल्भ अध्यापक और उपदेशको! (य:) जो (वाम्) तुम्हारा (अविनः) पृथिवी के (न) समान (प्रवत्वान्) जिसमें प्रशस्त वेगादि गुण विद्यमान (सृप्रवस्युरः) जो मिले हुए बन्धनों से युक्त (मनसः) मन से भी (ज्वीयान्) सत्यान वेगवान् (अहंपूर्वः) यह मैं हूँ, इस प्रकार आत्मज्ञान से पूर्ण (यजतः) मिला हुआ (रथः) रथ (सुविताय) ऐश्वर्य्य के लिये होता है, जिसमें (वृष्णः) बलवान् (आ, गम्याः) चलाने को योग्य अपन्यादि पदार्थ अच्छे प्रकार जोड़े जाते हैं, उसको मैं सिद्ध करूं॥३॥

भावार्थ:-मनुष्यों से जो ऐश्वर्य की उन्नित के लिये पृथिलों के तुल्य वा मन के वेग तुल्य वेगवान् यान बनाये जाते हैं, वे यहाँ स्थिर सुख देनेवाले हाते हैं। ।।

पुनस्तमेव विषयमाहा।

फिर उसी विषय की अगले मुद्र में कहा है॥

इहेह जाता समवावशीतामरेपस्म तुन्वा र नामिभः स्वैः।

जिष्णुर्वामन्यः सुमंखस्य सूरिट्विं अन्यः सुभगः पुत्र ऊहै॥४॥

इहऽईह। जाता। सम्। अञ्चा<u>वशौता</u>म्। अर्पसा। तुन्वा। नामंऽभिः। स्वैः। जिष्णुः। वाम्। अन्यः। सुऽमंखस्य। सूरिः। दिवः। अन्यः। सुऽभगः। सुत्रः। <u>उह</u>े॥४॥

पदार्थ:-(इहेह) अस्मिञ्जपति। अत्र वीप्सायां द्वित्वं प्रकर्षद्योतनार्थम्। (जाता) जातौ (सम्) सम्यक् (अवावशीताम्) भृष्यं काम्ग्रेथाम्। वश कान्तावित्यस्य यङ्लुगन्तं लिङ रूपम्। (अरेपसा) न विद्यते रेपः पापं ययोस्तौ (तम्बा) शरीरेण (नामिभः) आख्याभिः (स्वैः) स्वकीयैः (जिष्णुः) जेतुं शीलः (वाम्) युवयोर्मध्ये (अन्यः) द्वितीयः (सुमखस्य) (सूरिः) विद्वान् (दिवः) प्रकाशात् (अन्यः) (सुभगः) सुन्दरैश्वर्यः (पुत्रः) ये पुनाति सः (ऊहे) वितर्कयामि॥४॥

अर्थयः - हे अरपसाऽश्विनौ! युवयोरिहेह जाता युवां स्वया तन्वा स्वैर्नामभिः समवावशीताम्। वां जिष्णुरन्यः सुमखस्य दिवः सूरिरन्यः सुभगः पुत्रोऽस्ति तमहमूहे॥४॥

भोकार्थ:-मनुष्या अस्यां सृष्टौ भूगर्भादिविद्यां विज्ञाय यो जेताध्यापको बह्वैश्वर्य्यः सर्वस्य रक्षकः। प्रदेश्यविद्यां तर्केण विजानीयात् स प्रसिद्धो जायते॥४॥ अष्टक-२। अध्याय-४। वर्ग-२५-२६

मण्डल-१। अनुवाक-२४। सूक्त-१८१

पदार्थ:-हे (अरेपसा) निष्पाप सर्वगुणव्यापी अध्यापक और उपदेशक जन (इहेह) इस जगत् में (जाता) प्रसिद्ध हुए आप लोगो! अपने (तन्वा) शरीर से और (स्वै:) अपने (नामिभ:) नामों के साथ (सम्, अवावशीताम्) निरन्तर कामना करनेवाले हूजिये (वाम्) तुममें से (जिष्णु:) जीतमे के स्वभाववाला (अन्य:) दूसरा (सुमखस्य) सुख के (दिव:) प्रकाश से (सूरि:) विद्वान् (अन्य:) और (सुभग:) सुन्दर ऐश्वर्यवान् (पृत्र:) पवित्र करता है, उसको (ऊहे) तर्कता हुँ-तर्क से कहता हुँ॥४॥

भावार्थ:-हे मनुष्यो! इस सृष्टि में भूगर्भादि विद्या को जान के जो जीतनेकाला अध्यापके बहुत ऐश्वर्यवाला सबका रक्षक पदार्थविद्या को तर्क से जाने वह प्रसिद्ध होता है॥४॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।

प्र वां निचेरुः केंकुहो वशाँ अर्नु पिशङ्गरूपः सर्दनानि गम्याः। हरी अन्यस्य पीपर्यन्त वाजैर्म्था रजांस्यश्चिना वि विषिः।। पारुपः॥

प्रा वाम्। निऽचे्रुरः। कुकुहः। वर्शान्। अर्नु। पि्शङ्गिङ्ग्रूपः। सर्दन्ति। गुम्याः। हरी् इति। अन्यस्य। पी्पर्यन्त। वाजैः। मुश्ना। रजांसि। अश्विना। वि। घोषैः॥५॥

पदार्थ:-(प्र) (वाम्) युवयोः (निचेरः) चर्म (ककुहः) सर्वा दिशः (वशान्) वशवर्तिनः (अनु) आनुकूल्ये (पिशङ्गरूपः) पिशङ्गं पीतं सुवर्णीविमिश्रतं रूपे यस्य सः (सदनानि) भुवनानि (गम्याः) गच्छेः (हरी) धारणाकर्षणाविव बलपराक्रमी (अध्यस्य) (पीपयन्त) आप्याययन्ति (वाजैः) वेगादिभिर्गुणैः (मध्ना) मन्थानि मथितानि (स्वाप्ति) लोकान् (अश्विना) वायुसूर्यवदध्यापकोपदेशकौ (वि) (घोषैः) शब्दैः॥५॥

अन्वयः-हे अश्वना! ययोर्वा शिशङ्गस्पो ककुहो निचेरुरथो वशाननुवर्त्तते तयोः प्रत्येकस्त्वं सदनानि प्रगम्याः। यथाऽन्यस्य हरी वाजैघोषिश्च प्रमथ्ना रजीसि वर्द्धभनस्तथा जनास्तौ विपीपयन्त॥५॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। हे मनुष्या! यथा वायुः सर्वान् वशयति वायुसूर्यौ लोकान् धरतः। तथा विद्याद्धर्मौ भूत्व, यूरं सुर्खिनो भवतः॥५॥

पदार्थ:-हे (अश्विन) पूर्वन और सूर्य के समान अध्यापक और उपदेशको! जिन (वाम्) तुम्हारा जैसे (पिशङ्गरूप;) पीला सूर्वण आदि से मिला हुआ रूप है जिसका वह (ककुह:) सब दिशाओं को (निचेरः) विवर्धनेवाला (वशान्) वशवर्त्ति जनों को (अनु) अनुकूल वर्त्तता है, उनमें से प्रत्येक तुम (सदनानि) खोकों को (प्र, गम्याः) अच्छे प्रकार प्राप्त होओ, जैसे (अन्यस्य) और अर्थात् अपने से भिन्न पदार्थ की (हरी) धारण और आकर्षण के समान बल, पराक्रम (वाजैः) वेगादि गुणों और (घोषैः) शब्दों से (मध्ना) अच्छे प्रकार मथे हुए (रजांसि) लोकों को बढ़ाते हैं, वैसे मनुष्य उनको (वि, पीपयन्त) विशेष कर परिपूर्ण करते हैं॥५॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! जैसे पवन सबको अपने वर्श में करता है तथा वायु और सूर्यलोक सबको धारण करते हैं, वैसे विद्या धर्म्म को धारण कर तुम भी सुखी होओ॥५॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

प्र वां शरद्वांन्वृष्भो न निष्षाट् पूर्वीरिषेश्चरति मध्वं इष्णन्। एवैरन्यस्यं पोपयन्त वाजैर्वेषंन्तीरूर्ध्वा नद्यो न आगुः॥६॥

प्रा वाम्। श्रास्त्ऽवान्। वृष्भः। न। निष्षाट्। पूर्वीः। इषेः। चुर्ति। पिष्वाः। इष्णान्। एवैः। अन्यस्य। पीपर्यन्त। वाजैः। वेषेन्तीः। अर्थाः। नृद्येः। नुः। आ। अगुः॥६॥

पदार्थ:-(प्र) प्रकर्षे (वाम्) युवयोः (शरद्वान्) शरदो या ऋतवस्ता विद्यन्ते यस्मिन् सः (वृषभः) वृष्टिकर्ता (न) इव (निष्पाट्) यो नितरां सहते (पूर्वीः) पूर्व प्रप्ताः (इषः) ज्ञातव्याः प्रजाः (चरित) प्राप्नोति (मध्वः) मधूनि (इष्णन्) इच्छन् (एवैः) प्राप्कैः (अन्यस्यः) भिन्नस्य (पीपयन्त) वर्द्धयन्ति (वाजैः) वेगैः (वेषन्तीः) व्याप्नुवत्यः (उद्ध्वाः) ऊद्ध्वं पामित्यो ज्ञीलाः (नद्यः) सरितः (नः) अस्मान् (आ) समन्तात् (अगुः) व्याप्नुवन्तु॥६॥

अन्वयः-हे अध्यापकोपदेशकौ! यथा वां श्रम्ह्यन् वृषभा न निष्पाट् पूर्वीरिषश्चरति मध्व इष्णन्नेवैरन्यस्य पूर्वीरिषः प्राप्नोति तथा वाजैस्सह वर्त्तमाना ऊद्ध्वां वेष्ट्रनार्नद्द्योऽनेष्ट्रस्मान् प्रपीपयन्त आगुः॥६॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमानद्वारः। प्र आप्तयोरध्यापकोपदेशकयोः सकाशाद्विद्याः प्राप्याऽन्यान् ददति तेऽग्निवत्तेजस्विनः शुद्धा भूत्वा सर्वतो वर्त्तन्ते॥६॥

पदार्थ: - हे अध्यापकोपदेशक जैसो! जैसे (वाम्) तुम्हारा (शरद्वान्) शरद् जो ऋतुयें वे जिनमें विद्यमान वह (वृषभः) वर्षा कर्णावाला जो सूर्य्यमण्डल उसके (न) समान (निष्पाट्) निरन्तर सहनशील जन (पूर्वीः) अगले समय में प्राप्त हुई प्रजा (इषः) और जानने योग्य प्रजा जनों को (चरित) प्राप्त होता है वा (मध्वः) मधुर पद्धर्थों को (इश्लान्) चाहता हुआ (एवैः) प्राप्ति करानेवाले पदार्थों से (अन्यस्य) दूसरे की पिछली वा जानने योग्या अगली प्रजाओं को प्राप्त होता है, वैसे (वाजैः) वेगों के साथ वर्तमान (उद्ध्वाः) ऊपर को जानेवाली लपटें वा (वेषन्तीः) इधर-उधर व्याप्त होनेवाली (नद्यः) निदयां (नः) हम लोगों को (श्व. प्रेपयन्त) वृद्धि दिलाती हैं और (आगुः) प्राप्त होती हैं॥६॥

भाषार्थः इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो आप्त अध्यापक और उपदेशकों से विद्याओं को प्राप्त हो के औरों को देते हैं, वे अग्नि के तुल्य तेजस्वी शुद्ध होकर सब ओर से वर्त्तमान हैं॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

अष्टक-२। अध्याय-४। वर्ग-२५-२६

मण्डल-१। अनुवाक-२४। सूक्त-१८१

१८७३

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

असर्जि वां स्थिवरा वेधसा गीर्बाळहे अश्विना <u>त्रे</u>धा क्षर्रन्ती। उपस्तुताववतुं नार्धमानुं यामुन्नयामञ्छूणुतुं हवं मे॥७॥

असर्जि। वाम्। स्थविरा। वेधसा। गीः। बाळ्हे। अश्विना। त्रेधा। क्षरंन्ती। उपंऽस्तुतौ। अवृत्रेम्। नार्धमानम्। यामन्। अर्थामन्। शृणुतुम्। हर्वम्। मेु॥७॥

पदार्थ:-(असर्जि) (वाम्) युवयोः (स्थिवरा) स्थूला विस्तीर्णा (वेधसा) प्राज्ञौ (गीत्) वाणी (वाढे) प्रापणे (अश्विना) सत्योपदेशव्यापिनौ (त्रेधा) त्रिप्रकारैः (क्षरन्ती) प्राप्नुवन्ती (उपस्तुतौ) निकटे प्रशंसितौ (अवतम्) प्राप्नुतम् (नाधमानम्) विद्यैश्वर्य्यवन्तं संपादितवन्तम् (ग्राप्नुत्रम्) यामिन सत्ये मार्गे (अयामन्) अगन्तव्ये मार्गे (शृणुतम्) (हवम्) श्रोतुमर्हं शब्दम् (मे) भूम्(७॥

अन्वय:-हे वेधसाऽश्विना! वां या स्थिवरा त्रेधा क्षरन्ती गीर्वाढेऽसूर्जि तामुक्स्तुतौ सन्तौ युवामवतं वां नाधमानं मे मम हवं यामन्नयामञ्छूणुतम्॥७॥

भावार्थः-य आप्तवाचं शृण्वन्ति ते कुमार्गं विहास सुमार्गं प्राप्नुवन्ति। ये मनःकर्मभ्यां मिथ्या वक्तुन्नेच्छन्ति ते माननीया भवन्ति॥७॥

पदार्थ:-हे (वेधसा) प्राज्ञ उत्तम बुद्धिवालें (अश्विमा) सत्योपदेशव्यापी अध्यापकोपदेशको! (वाम्) तुम्हारी जो (स्थिवरा) स्थूल और विस्तार को प्राप्त (त्रेधा) तीन प्रकारों से (क्षरन्ती) प्राप्त होती हुई (गी:) वाणी (वाढे) प्राप्ति करानेवाले व्यक्तिर में (असिर्जि) रच गई उसको (उपस्तुतौ) अपने समीप दूसरे से प्रशंसा को प्राप्त होते हुए तुम किन्ते (अवतम्) प्राप्त होओ, तुम दोनों को (नाधमानम्) विद्या और ऐश्वर्य्ययुक्त संपादित करता हुआ अभीत तुम्हारे ऐश्वर्य्य को वर्णन करते हुए (मे) मेरे (हवम्) सुनने योग्य शब्द को (यामन्) सत्य मार्ग (अयोपन्) और न जाने योग्य मार्ग में (श्रुणुतम्) सुनिये॥७॥

भावार्थ:-जो श्रेष्ठ धर्मात्मा विद्वानों की वाणी को सुनते हैं, वे कुमार्ग को छोड़ सुमार्ग को प्राप्त होते हैं। जो मन और कर्म से झूट बोलने को नहीं चाहते वे माननीय होते हैं॥७॥

∕पुनरध्यपकोपदेशकविषयमाह॥

फिर् अभापकोपदेशक विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

उत स्यार्श्वां रुशितो वप्संसो गीस्त्रिबहिषि सदीस पिन्वते नृन्। वृष्यि वां मेस्रो वृषणा पीपाय गोर्न सेके मनुषो दशस्यन्॥८॥

क्ता स्वा। वाम्। रुशंतः। वप्संसः। गीः। त्रिऽबहिषिं। सर्दसि। पिन्वते। नृन्। वृषां। वाम्। मेघः। वृषणा। पीपायुः। गौः। नः सेके। मर्नुषः। दुशस्यन्॥८॥

पदार्थ:-(उत) अपि (स्या) सा (वाम्) युवयोः (फशतः) प्रकाशितस्य (वप्ससः) सुरूपस्य (गीः) वाक् (त्रिबर्हिषि) त्रयो वेदवेतारो वृद्धा यस्यां तस्याम् (सदिस) सभायाम् (पिन्वते) सेवते (नृन्) नायकान् मनुष्यान् (वृषा) (वाम्) युवयोः (मेघः) मेघ इव (वृषणा) दुष्टसामर्थ्यबन्धको (गिपाभ) आप्याययित वर्द्धयित (गोः) पृथिव्याः (न) इव (सेके) सिञ्चने (मनुषः) मनुष्यान् (दशस्यन्) अभिमतं प्रयच्छन्॥८॥

अन्वय:-हे वृषणा! वां रुशतो वप्ससो या गी: स्या त्रिबर्हिषि सदिस नॄन् पिन्वते तां वीं चूषा मेघो दश्रीप्यन् गो: सेके न च व्यवहारे मनुष: पीपाय तमृत वयं सेवेमिह॥८॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। मनुष्या यदा सत्यं वदन्ति तदा मुखा रकृतिर्मलीनी न भवित यदा मिथ्या वदन्ति तदा मुखं मलीनं जायते। यथा पृथिव्यामौषधानां वर्द्धको मेघस्त्रीया मे सभासद उपदेश्यांश्च सत्यभाषणेन वर्द्धयन्ति ते सर्वेषां हितैषिणो भवन्ति॥८॥

पदार्थ:-हे (वृषणा) दुष्टों की सामर्थ्य बांधनेवाले अध्यापकोपदेशकी! (वाम्) तुम दोनों के (रुशत:) प्रकाशित (वप्सस:) रूप की जो (गी:) वाणी है (स्था) वह (त्रिबर्हिष) तीन वेदवेता वृद्ध जिसमें हैं, उस (सदिस) सभा में (नृन्) अग्रगन्ता मनुष्यों की (पिन्कत) सेवती है और (वाम्) तुम दोनों का जो (वृषा) सेचने में समर्थ (मेघ:) मेघ के समान वाणी विषय (दशस्थन्) चाहे हुए फल को देता हुआ (गो:) पृथिवी के (सेके) सेचन में (न) जैसे वैसे अपने व्यवहार में (मनुष:) मनुष्यों की (पीपाय) उन्नति कराता है, उसको (उत) भी हम सेवें॥८॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार हैं। मनुष्य नेब सत्य कहते हैं, तब उनके मुख की आकृति मलीन नहीं होती और जब झूंठ कहते हैं, तब उनके भुख मलीन हो जाता है। जैसे पृथिवी पर ओषिथयों का बढ़ानेवाला मेघ है, वैसे जो सभासद उपदेश करने योग्यों को सत्य भाषण से बढ़ाते हैं, वे सबके हितैषी होते हैं॥८॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

युवां पूषेवाश्चिता पुरिन्धियुग्निमुषां न जरते ह्विष्मान्।

हुवे यद्वां वरिवस्या गृणानो विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम्॥९॥२६॥

युवाम्॥ पूषार्इव। अश्विना। पुर्रम्ऽधिः। अग्निम्। उषाम्। न। जुर्ते। हुविष्मान्। हुवे। यत्। वाम्। वृद्विस्या। पूणानः विद्यमा दुषम्। वृजनम्। जीरऽदानुम्॥९॥

पदार्थ:-(युवाम्) (पूषेव) पृष्टिकर्त्ता सूर्य्य इव (अश्विना) सत्योपदेशक रक्षयितः (पुरिचः) यः पुरं अपद्धरित सः (अग्निम्) पावकम् (उषाम्) उषसं प्रभातवेलाम् (न) इव (जरते) स्तौति (हविष्णान्) प्रभस्तानि हवीषिं दानानि विद्यन्ते यस्य सः (हुवे) स्वीकरोमि (यत्) यः (वाम्) युवयोः (विरवस्या)

अष्टक-२। अध्याय-४। वर्ग-२५-२६

मण्डल-१। अनुवाक-२४। सूक्त-१८१

१८७५

वरिवसि परिचर्य्यायां भवानि सेवनकर्माणि (गृणानः) स्तुवन् (विद्याम) विजानीयाम (इषम्) विज्ञानम् (वृजनम्) बलम् (जीरदानुम्) दीर्घं जीवनम्॥९॥

अन्वय:-हे अश्विनाऽग्निमुषां यत् पुरन्धिः पूषेव हिवष्मान् युवां न जरते तथा वां विरवस्या स (गुणा)ः प्रति युवां हुवे, एवं कुर्वन्तो वयमिषं वृजनं जीरदानुञ्च विद्याम॥९॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। यथा सूर्य: सर्वेषां पुष्टिकरोऽग्निं प्रभातकालं चावि:केरोति तथा प्रशस्तदानशील: पुरुषो विद्वदुणानाख्यापयति॥९॥

अस्मिन् सूक्तेऽश्विदृष्टान्तेनाऽध्यापकोपदेशकगुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिर्वेद्या॥

इत्येकाशीत्युत्तरं शततमं १८१ सूक्तं षड्विंशो २६ वर्गश्च समूहिन्।।

पदार्थ:-हे (अश्विना) सत्योपदेशक और रक्षा करनेवाले विहाने! (अपने) अग्नि और (उषाम्) प्रभात वेला को (यत्) जो (पुरिच:) जगत् को धारण करने और (पृषेक) पृष्टि करनेवाले सूर्य के समान (हिंविष्मान्) प्रशस्त दान जिसके विद्यमान वह जन (युवाम्) तुम दिनों की (ज्ञा) जैसे (जरते) स्तुति करता है, वैसे (वाम्) तुम दोनों की (विद्यस्या) सेवा में हुए कर्मों की (ग्रृणाम:) प्रशंसा करता हुआ वह मैं तुमको (हुवे) स्वीकार करता हूँ, ऐसे करते हुए हम लोग (इषम्) विज्ञान (वृजनम्) बल और (जीरदानुम्) दीर्घजीवन को (विद्याम) जानें॥९॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे सूर्य सूर्व की पृष्टि करनेवाला अग्नि और प्रभात समय को प्रकट करता, वैसे प्रशंसित दानशील पुरुष विद्वानों के गुणों को अच्छे प्रकार कहता है॥९॥

इस सूक्त में अश्वि के दृष्टान्त से अध्यापक और उपदेशकों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की सङ्गति पिछले सूक्त के साथ समझनी चोहिये॥

यह एक सौ इक्यासीवा १६१ सुक्त और छब्बीसवां २६ वर्ग समाप्त हुआ॥

अभूदित्यष्टर्चस्य द्व्यशीत्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य अगस्त्य ऋषि:। अश्विनौ देवते। १,५,७ िनचृज्जगती। ३ जगती। ४ विराट् जगती छन्दः। निषादः स्वरः। २ स्वराट् त्रिष्टुप् छन्दः।

धैवतः स्वरः। ६,८ स्वराट् पङ्क्तिछन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

अथ विद्वत्कृत्यमाह॥

अब एक सौ बयासीवें सूक्त का आरम्भ है। इसमें आरम्भ से विद्वानों के कार्य को कहते हैं।

अभूदिदं वयुनमो षु भूषता रथो वृष्णवान्मद्ता मनीषिणः।

धियंजिन्वा धिष्णयां विश्पलांवसू दिवो नपाता सुकृते शुचिव्रता॥ शा

अभूत्। इदम्। वयुनेम्। ओ इति। सु। भूषत्। रथः। वृष्ण्ऽवान्। प्रदेते, मन्ग्रेष्ट्रिणः। ध्रियम्ऽजिन्वा। धिष्णयो। विश्रपलावसू इति। द्विवः। नपाता। सुऽकृते। शुचिऽव्रता॥ १॥

पदार्थ:-(अभूत्) भवति (इदम्) (वयुनम्) प्रज्ञानम् (ओ) सम्बोधने (सु) (भूषत) अलंकुरुत। अत्राऽन्येषामपीति दीर्घ:। (रथ:) यानम् (वृषण्वान्) अन्ययानानां वेगश्रक्तिबन्धयिता (मदत) आनन्दत। अत्राऽन्येषामपीति दीर्घ:। (मनीषिण:) मेधाविनः (धियंजिन्दा) यो प्रधयं प्रज्ञां जिन्वतः प्रीणीतस्तौ (धिष्ण्या) दृढौ प्रगल्भौ (विश्पलावसू) विशां पालयिता चित्रक्रम्भिलौ। ११। प्रकाशस्य (नपाता) प्रपातरहितौ (सुकृते) शोभने मार्गे (शुचिव्रता) पवित्रक्रम्भिलौ। ११।

अन्वयः-ओ मनीषिणो! याभ्यामिदं वयुनमभूदुरपूर्व स्यात्। कृषण्वान् रथश्चाभूतौ सुकृते धियंजिन्वा दिवो नपाता धिष्ण्या शुचिव्रता विश्पलावस् अध्यापकोपदेशकौ यूयं सुभूषत तत्सुङ्गेन मदत॥१॥

भावार्थ:-हे मनुष्या! तौ वराध्यापकोपदेशकौ ययोः सङ्गेन प्रजापालनसुशीलतेश्वरधर्मशिल्पव्यवहार्गविद्यो वर्द्धेरन्॥१॥

पदार्थ:-(ओ) ओ (मनीप्रिण:) धीमानों! जिनसे (इदम्) यह (वयुनम्) उत्तम ज्ञान (अभूत्) हुआ और (वृषण्वान्) यानों की वैग सक्ति को बांधनेवाला (रथ:) रथ हुआ उन (सुकृते) सुकर्मरूप शोभन मार्ग में (धियंजिन्वा) बुद्धि को तृप्त एखते (दिव:) विद्यादि प्रकाश के (नपाता) पतन से रहित (धिष्ण्या) दृढ़ प्रगल्भ (भूचिव्रता) प्रवित्र कर्म करने के स्वभाव से युक्त (विश्पलावसू) प्रजाजनों की पालना करने और वसानेवाले अभ्यापक और उपदेशकों को तुम (सु, भूषत) सुशोभित करो और उनके सङ्ग से (मदत) अपनिद्तत होओ।।१॥

भावार्ष:-है भनुष्यों! वे श्रेष्ठ अध्यापक और उपदेशक नहीं है कि जिनके सङ्ग से प्रजा पालना, सुशीलता, क्रेश्वर, सूर्म और शिल्प व्यवहार की विद्या न बढ़ें॥१॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

इन्द्रतमा हि धिष्ण्यां मुरुत्तमा दुस्रा दंसिष्ठा रुथ्या रुथीतमा।

अष्टक-२। अध्याय-४। वर्ग-२७-२८

मण्डल-१। अनुवाक-२४। सूक्त-१८२

१८७७

पूर्णं रथं वहेथे मध्व आचितं तेन दाश्वांसमुपं याथो अश्विना॥२॥

इन्द्रंऽतमा। हि। धिष्णयो। मुरुत्ऽतमा। दुस्रा। दंसिष्ठा। रुथ्यो। रुथ्या। पूर्णम्। रथम्। बहुेथे इति। मध्वः। आऽचितम्। तेनं। दाश्चांसम्। उप। या्थः। अश्चिना॥२॥

पदार्थ:-(इन्द्रतमा) अतिशयेनैश्वर्ययुक्तौ (हि) (धिष्ण्या) प्रगल्भौ (मरुत्तमा) अतिशयेन विद्वद्युक्तौ (दस्ना) दुःखोपक्षयितारौ (दंसिष्ठा) अतिशयेन दंसितारौ पराक्रमिणौ (रथ्या) रथेषु साधू (रथीतमा) प्रशंसितरथयुक्तौ (पूर्णम्) (रथम्) रमणीयं यानम् (वहेथे) प्राप्नुथः (मध्वरे) मधुना। गृतीयार्थे षष्ठी (आचितम्) सिहतम् (तेन) (दाश्वांसम्) विद्यादातारम् (उप) (यथः) प्राप्नुथः (अश्विना) विद्युत्पवनाविव सकलविद्याव्यापिनौ॥२॥

अन्वय:-हे अश्विना! यौ युवां हीन्द्रतमा धिष्ण्या मरुत्तमा दस्रा दंसिष्ठा र्थातम्म स्थः। मध्व आचितं पूर्णं शस्त्रास्त्रै: परिपूर्णं यं रथं वहेथे तेन दाश्वांसमुपयाथस्तावस्माभिर्नित्यं सत्कर्त्तव्यौ॥२॥

भावार्थ:-ये विद्युदग्निजवायुभिश्चालितं रथमास्थाय दशिदशान्तरं गच्छन्ति तेऽलंधनविजया जायन्ते॥२॥

पदार्थ:-हे (अश्वना) अध्यापकोपदेशक जनो (हि) तुम्हीं (इन्द्रतमा) अतीव ऐश्वर्ययुक्त (धिष्ण्या) प्रगल्भ (मरुत्तमा) अत्यन्त विद्वानों को साथ लिये हुए (दस्ना) दुःख के दूर करने वाले (दंसिष्ठा) अतीव पराक्रमी (रथ्या) रथ चलाने में अष्ठ और (रथीतमा) प्रशंसित पराक्रमयुक्त हों और (मध्व:) मधु से (आचितम्) भरे हुए (पूर्णम्) श्रुष्त्र और अस्त्रों से परिपूर्ण जिस (रथम्) रथ को (वहेथे) प्राप्त होते हो (तेन) और उससे (दाश्वांसम्) विद्या देनेवले जन के (उप, याथ:) समीप जाते हो, वे हम लोगों को नित्य सत्कार करने योग्य हों॥ राष्ट्री

भावार्थ:- जो बिजुली, अग्नि, जेल और वायु इनसे चलाये हुए रथ पर स्थित हो देशदेशान्तर को जाते हैं, वे परिपूर्ण धन जीतनेवार्ल होते हैं॥ २॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर इसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

किमत्रं दस्ता कृणुष्यः किमासाथे जनो यः कश्चिदहिवर्महीयते।

अर्ति क्रिम्ष्टं जुरतं पुणेरसुं ज्योतिर्विप्राय कृणुतं वचस्यवे॥३॥

किम् अत्री द्वेस्ता। कृणुथः। किम्। आसाथे इति। जर्नः। यः। कः। चित्। अहंविः। मृहीयते। अति। कृमिष्टम्। ज्रुरतम्। पुणेः। असुम्। ज्योतिः। विप्राय। कृणुतुम्। वचस्यवे॥३॥

पदार्थ:-(किम्) (अत्र) अस्मिन् व्यवहारे (दस्रा) दु:खोपक्षयितारौ (कृणुथ:) (किम्) (आसाथे) उपिक्सथ: (जन:) मनुष्य: (य:) (क:) (चित्) अपि (अहिव:) अविद्यमानं हिवरादानमदनं वा यस्य (महीयते) आत्मानं त्यागबुद्ध्या बहु मनुते (अति) (क्रिमष्टम्) अतिक्रमणं (जुरतम्) रुजतं नाशयतम्

(पणे:) सदसद्व्यवहर्त्तुः (असुम्) प्रज्ञाम् (ज्योति:) प्रकाशम् (विप्राय) मेधाविने (कृणुतम्) (वचस्यवे) आत्मनो वच इच्छवे॥३॥

अन्वय:-हे दस्राऽध्यापकोपदेशकौ! युवा: यः कश्चिदहविर्जनो महीयते तस्मै वचस्यवे विप्राय ज्योतिः कृणुतम्) पणेरसुमतिक्रमिष्टं जुरतं च किमत्रासाथे किं कृणुथश्च॥३॥

भावार्थ:-अध्यापकाऽध्येतारौ यथाऽप्तो विद्वान् सर्वेषां सुखाय प्रयतते तथा वृत्तेवाताम् ३॥

पदार्थ:-हे (दस्ना) दु:ख के नाश करनेवाले अध्यापक उपदेशको! तुम (यू) जो (क: चित्) कोई ऐसा है कि (अहिंव:) जिसके लेना वा भोजन करना नहीं विद्यमाद है, यह (जन:) मनुष्य (महीयते) अपने को त्यागबुद्धि से बहुत कुछ मानता है, उस (वचस्यवे) अपने को वचन की इच्छा करते हुए (विप्राय) मेधावी उत्तम धीरबुद्धि पुरुष के लिये (ज्योति:) प्रकेश (कृणुतम्) करो अर्थात् विद्यादि सदुणों का आविर्भाव करो और (पणे:) सत् और असत् पर्यार्थ का व्यवहार करनेवाले जन की (असुम्) बुद्धि को (अति, क्रमिष्टम्) अतिक्रमण करो और (जुरतम्) नाश करो अर्थात् उसकी अच्छे काम में लगनेवाली बुद्धि को विवेचन करो और असत् काम में लगे हुई बुद्धि को विनाशो तथा (किम्) क्या (अत्र) इस व्यवहार में (आसाथे) स्थिर होते और (किम्) क्या (कृणुथ:) करते हो ?॥३॥

भावार्थ:-अध्यापक और उपदेशक जैसे आप्त विद्वान सबके सुख के लिये उत्तम यत्न करता है, वैसे अपना वर्ताव वर्ती॥३॥

पुनस्त्रमेव विषयमाहै॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

जम्भर्यतम्भितो रायतः शुनी हुतं स्थि ब्रिद्युस्तान्यश्चिना।

वार्चवाचं जरितू रिलनीं कृतिमुंभा शंसं नासत्यावतं मर्म॥४॥

जुम्भयतम्। अभितः। रायतः। शुनः। इतम्। मृष्यः। विदर्थुः। तानि। अश्विना। वार्चम्ऽवाचम्। जुरितुः। रुत्निनीम्। कृतम्। उभा। शंस्रम्। ससुत्या। अवतम्। मर्म॥४॥

पदार्थ:-(जम्भयतम्) विनाः यतम् (अभितः) सर्वतः (रायतः) शब्दयतः (शुनः) कुक्कुरान् (हतम्) नाशयतम् (मृधः) संग्रामान् (विद्युः) विजानीथः (तानि) वचांसि (अश्विना) विद्याबलव्यापिनौ (वाचंवाचम्) (जूरितुः) स्त्रोतुरध्यापकादुपदेशकात् (रितनीम्) रमणीयाम् (कृतम्) कुरुतम् (उभा) (शंसम्) स्तुतिम् (नासत्या) अविद्यमानसत्यौ (अवतम्) (मम)॥४॥

अविय:-हे नासत्याश्विना! यो युवां शुनो रायतो दुष्टानिभतो जम्भयतं मृधो हतं तानि विदथुर्जिरतू रितनीं वाचंवाच्छ्य विदथु:। शंसं कृतं तावुभा मम वाणीमवतम्॥४॥

भावार्थ:-येषां दुष्टबन्धने शत्रुविजये विद्वदुपदेशस्वीकारे च सामर्थ्यमस्ति त एवास्माकं रक्षकाः विद्यार्थाः अष्टक-२। अध्याय-४। वर्ग-२७-२८

मण्डल-१। अनुवाक-२४। सूक्त-१८२

पदार्थ:-हे (नासत्या) सत्य व्यवहार वर्त्तने और (अश्विना) विद्याबल में व्याप्त होनेवाले

सज्जनो! जो तुम (रायत:) भौंकते हुए मनुष्यभक्षी दुष्ट (श्रृन:) कुत्तों को (अभित:, जम्भयूतम्) सब ओर से विनाशो तथा (मृध:) संग्रामों को (हतम्) विनाशो और (तानि) उन सब कामों की (विद्यू:) जानते हो तथा (जरितु:) स्तुति प्रशंसा करनेवाले अध्यापक और उपदेशक से (रिक्सिम्) रमणीय (वाचंवाचम्) वाणी-वाणी को जानते हो और (शंसम्) स्तृति (कृतम्) करो वे (उभूग सेनो तुम (मम) मेरी वाणी को (अवतम्) तृप्त करो॥४॥

भावार्थ:-जिनका दुष्टों के बांधने, शत्रुओं के जीतने और विद्वानों के उपदेश के स्वीकार करने में सामर्थ्य है, वे ही हम लोगों के रक्षक होते हैं॥४॥

अथ प्रकृतविषये नौकाविमानादिनिर्माणविषयमाहभ

अब प्रकरणगत विषय में नौका और विमानादि बनाने के विषय को अपले मन्त्र में कहा है।।

युवमेतं चेक्रथु: सिर्स्युषु प्लवमातम्वन्तं पक्षिणं तौय्रस्यि कम्।

येन देवता मनसा निरूहथुं: सुपजुनी पेतथु: क्ष्रोदस्तो मुहः अर्प ॥२७॥

युवम्। पुतम्। चुक्रथु:। सिन्धुषु। प्लुवम्। आत्मुन्ऽवन्तिम्। पुक्षिषिम्। तौक्र्याये। कम्। येने। देवुऽत्रा। मनसा। निःऽऊहर्थुः। सुऽपृप्तनी। पेतुथुः। क्षोदंसः। मृहः॥५॥

पदार्थ:-(युवम्) (एतम्) (चक्रथुः) कुर्मित्म् (स्मिधुषु) नदीषु समुद्रेषु वा (प्लवम्) प्लवन्ते पारावारौ गच्छन्ति येन तं नौकादिकम् (अन्यन्वन्तम्)/स्वकीयजनयुक्तम् (पक्षिणम्) पक्षौ विद्यन्ते यस्मिस्तम् (तौक्र्याय) तुग्रेषु बलिष्ठेषु भक्क्ष्य (कम्) सुखकारिणम् (येन) (देवत्रा) देवेष्विति (मनसा) विज्ञानेन (निरूह्थु:) नितरां वाहयेतुम् (सुपज्जी) शोभनं पतनं गमनं ययोस्तौ (पेतथु:) पतेतम् (**क्षोदस:**) जलस्य (मह:) महत:॥﴿॥

अन्वय:-हे अश्विना! युवं युवां सिन्धुमुत्तीग्रचायैतमात्मन्वन्तं पक्षिणं कं प्लवं चक्रथु:। येन देवत्रा मनसा सुपप्तनी निरूहथुर्महः क्षोदसः पेतृथुः।।।।

भावार्थ:-ये क्रिक्तिर्प्रा दृद्गे नावो रचयित्वा समुद्रस्य मध्ये गमनाऽगमने कुर्वन्ति, ते स्वयं सुखिनो भूत्वाऽन्यान् सुख्यिति॥भूग

पदार्थ:-हे उक्त मुणवाले अध्यापकोपदेशको! (युवम्) तुम (सिन्धुषु) नदी वा समुद्रों में (तौक्र्याय) बृत्रवानों भें प्रसिद्ध हुए जन के लिये (एतम्) इस (आत्मन्वन्तम्) अपने जनों से युक्त (पक्षिणम्) और पक्ष जिसमें विद्यमान ऐसे (कम्) सुखकारी (प्लवम्) उस नौकादि यान को जिससे पार-अवार अर्थात् इस पार उस पार जाते हैं (चक्रथु:) सिद्ध करो कि (येन) जिससे (देवत्रा) देवों में (मन्या) विश्वान के साथ (स्**पप्तनी**) जिनका सुन्दर गमन है, वे आप (निरूहथ:)</mark> निरन्तर उस नौकादि <mark>य्यप्ति को श्रहाइये</mark> और (**महः)** बहुत **(क्षोदसः)** जल के (**पेतथुः)** पार जावें॥५॥

भावार्थ:-जो जन लम्बी, चौड़ी, ऊँची नावों को रच के समुद्र के बीच जाना-आना करते हैं, व आप सुखी होकर औरों को सुखी करते हैं॥५॥

पुनर्नीकादियानविषयमाह।।

फिर नौकादि यान विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अवंविद्धं तौग्रयमुप्स्वर्रन्तर्रनारम्भुणे तमस्मि प्रविद्धम्। चर्तस्रो नावो जठलस्य जुष्टा उद्धिभ्यामिषिताः पारयन्ति॥६॥

अर्वऽविद्धम्। तौुश्चम्। अप्ऽसु। अन्तः। अनारम्भुणे। तमिस। प्रऽविद्धम्। चतस्रः। नार्वः। जठलस्य। जुष्टाः। उत्। अश्विऽभ्याम्। इषिताः। पार्यन्ति॥६॥

पदार्थ:-(अवविद्धम्) अवताडितम् (तौग्रयम्) बलदातृषु र्यवम् अप्रुं) जलेष्वन्तरिक्षे वा (अन्तः) मध्ये (अनारम्भणे) अविद्यमानमारम्भणं यस्य तस्मिन् (तपि) अन्यकारे (प्रविद्धम्) प्रकर्षेण व्यथितम् (चतस्रः) एतत्संख्याकाः (नावः) पार्श्वस्था नौकाः (ज्ञष्टलस्य) ज्रुरस्य उदरस्य मध्ये (जुष्टाः) सेविताः (उत्) (अश्विभ्याम्) वाय्वग्निभ्याम् (इषिताः) प्रेरिक्षः (पार्यन्तः) पारं गमयन्ति॥६॥

अन्वय:-या अश्विभ्यामिषिता एकैकस्या अभितश्चतस्रो निवा पिठलस्य मध्य इव समुद्रे जुष्टा अनारम्भणे तमसि प्रविद्धमप्स्वन्तरविद्धन्तौग्रयमुत्पारयन्ति ता विद्विद्धिर्निर्मातव्याद्भिद्दा

भावार्थ:-मनुष्या यदा नौकायां स्थित्वा प्रमुद्भार्गेण) गन्तुमिच्छेयुस्तदा महत्या नावा सह हस्वाः सम्बद्ध्य समुद्रमध्ये गमनागमने कुर्यु:॥६॥

पदार्थ:-जो (अश्विभ्याम्) वायु और अनि से (इषिताः) प्रेरणा दी हुई अर्थात् पवन और अनि के बल से चली हुई एक-एक चौतरफ्री (चतस्त्र) चार-चार (नावः) नावें (जठलस्य) उदर के समान समुद्र में (जुष्टाः) की हुई (अनुम्भणे) जिसका अविद्यमान आरम्भण उस (तमिस) अन्धकार में (प्रविद्धम्) अच्छे प्रकार व्यथित (अप्सु) जलों के (अन्तः) भीतर (अवविद्धम्) विशेष पीड़ा पाये हुए (तौष्रचम्) बल को ग्रहण कि विद्वानों में प्रसिद्ध जन को (उत्पारयन्ति) उत्तमता से पार पहुँचाती हैं, वे विद्वानों को बनानी चाहिश्रेंगाः

भावार्थ:-मनुष्य जिल्हा नौका में बैठ के समुद्र के मार्ग से जाने की इच्छा करें, तब बड़ी नाव के साथ छोटी-छोटी सावें जोड़ समुद्र में जाना-आना करें॥६॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

कः स्विद् वृक्षो निष्ठितो मध्ये अर्णसो यं तौक्रयो नाधितः पर्यषस्वजत्।

पुर्णो मृगस्यं पुतरोरिवारभु उर्दश्चिना ऊह्रथुः श्रोमंतायु कम्॥७॥

अष्टक-२। अध्याय-४। वर्ग-२७-२८

मण्डल-१। अनुवाक-२४। सूक्त-१८२

१८८१

कः। स्वित्। वृक्षः। निःऽस्थितः। मध्ये। अर्णसः। यम्। तौक्रयः। नाधितः। परिऽअसंस्वजत्। पुर्णा। मृगस्य। पुतरोःऽइव। आऽरभे। उत्। अश्विनौ। कुहुथुः। श्रोमेताय। कम्॥७॥

पदार्थ:-(क:) (स्वत्) प्रश्ने (वृक्षः) (निष्ठितः) नितरां स्थितः (मध्ये) (अर्णसः) जिल्स्ये (यम्) (तौक्रयः) तुप्रेषु बलवत्सु भवः (नाधितः) उपतप्तः (पर्व्यषस्वजत्) परिष्वजित (पूर्णा) प्रणीनि (मृगस्य) मार्जियतुं योग्यस्य (पतरोरिव) गन्तुरिव (आरभे) आरब्धुम् (उत्) ऊर्ध्वे (अश्विनौ) जलाग्नी इव निर्मातृवोढारौ (ऊह्थुः) वहतः (श्रोमताय) प्रशस्तकीर्त्तेयुक्ताय व्यवहाराय (कम्)। अ

अन्वय:-हे अश्विनावर्णसो मध्ये क: स्विद् वृक्षो निष्ठितो यं नाधितस्तौग्रय: पर्य्यपस्वजन्मगस्य पतरोरिव पर्णा श्रोमतायारभे कमुदूहथु:॥७॥

भावार्थ:-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। हे नौयायिनोऽर्णवस्त्र मध्ये केश्विद् वृक्षोऽस्ति यस्मिन् वद्धा नौकास्तिष्ठेयुरिति। न तत्र वृक्षो नाप्यन्याधारः किन्तु नाव एवाऽ अधारोऽरित्राण्येव स्तम्भनानि। एवमेव यथा पक्षिण ऊर्ध्वं गत्वाऽधः पतन्ति तथैव विमानानि सन्तीत्युत्तरम्गार्था

पदार्थ:-हे (अश्विना) जल और अग्नि के समान विमानादि यानां के रचने और पहुंचानेवाले विद्वानो! (अर्णसः) जल के (मध्ये) बीच में (कः, स्वित्) कौने (बृक्षः) वृक्ष (निष्ठितः) निरन्तर स्थिर हो रहा है (यम्) जिसको (नाधितः) कष्ट को प्राप्त (त्राष्ट्र्यः) बलवानों में प्रसिद्ध हुआ पुरुष (पर्यषस्वजत्) लगता अर्थात् जिसमें अटकता है और (मृगस्य) शुद्ध करने योग्य (पतरोरिव) जाते हुए प्राणी के (पर्णा) पङ्खों के समान (श्रोमताय) प्रसन्त कीर्तिष्टुक्त व्यवहार के लिये (आरभे) आरम्भ करने को (कम्) कौन यान को (उत्, ऊह्थुः) ऊपर के मार्ग से पहुंचाते हो॥७॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमा और जाविकलुप्रीपमालङ्कार हैं। नौका पर जानेवालो! समुद्र में कोई वृक्ष है जिसमें बन्धी हुई नौका स्थित हों, कहाँ नहीं वृक्ष और न आधार है, किन्तु नौका ही आधार, बल्ली ही खम्भे हैं, ऐसे ही जैसे पखेरू रूपर को जाय फिर नीचे आते हैं, वैसे ही विमानादि यान हैं॥७॥

पुन: साधारणतयाऽध्यापकोपदेशकविषयमाह॥

फिर साधारण आहे से अध्यापक और उपदेशक के विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

तद्वां नरा नासत्यावनु ष्याद् यद्वां मानांस उचथुमवोचन्।

अस्माद्द्य सर्दसः सोम्यादा विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम्॥८॥२८॥

तृत् वाम् निरा नासत्यौ। अनुं। स्यात्। यत्। वाम्। मानांसः। उचर्थम्। अवांचन्। अस्मात्। अद्य। सदंसः। सोम्यात् नामा विद्यामा दृषम्। वृजनंम्। जीरऽदानुम्॥८॥

पदोर्थ:-(तत्) (वाम्) युवयोः (नरा) नेतारौ (नासत्यौ) असत्याचारविरहितौ (अनु) (स्यात्) (यत्) (बाम्) युवयोः (मानासः) विज्ञानवन्तः (उचथम्) वक्तुं योग्यम् (अवोचन्) कथयेयुः (अस्मात्)

(अद्य) (सदसः) सभातः (सोम्यात्) सोमगुणसम्पन्नात् (आ) (विद्याम) (इषम्) इच्छासिद्धिम् (वृजनम्) बलम् (जीरदानुम्) जीवनोपायम्॥८॥

अन्वयः-हे नरा नासत्यौ! यद्वां युवयोरिष्टमनुष्यात्तद्वां भवतु मानासो यदुचथमवोचंस्तद्युवां गृह्वीयातास्म यथाऽद्यास्मात् सोम्यात् सदस इषं वृजनं जीरदानुं वयमाविद्याम तथैतद्युवामप्याप्नुतम्॥८॥

स्पाचितमस्ति

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। मनुष्यस्येदं यत्स्वार्थमिच्छेत्परार्थमपीच्छेत्। विद्वांसो यद्यदुपदिशेयुस्तत्तत्प्रीत्या सर्वे गृह्णीयुरिति॥ पूर्व अत्र विद्वत्कृत्यवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिर्वेद्या॥

इति द्वयशीत्युत्तरं शततमं १८२ सुक्तमष्टादशो १८ वर्गश्च समाप्त:॥

पदार्थ: - हे (नरा) नायक अग्रगामी (नासत्यों) असत्य आचरण से रहित अध्यापकोपदेशको! (यत्) जो (वाम्) तुम दोनों को (अनु, ष्यात्) चाहते हुए के अनुकूल हो (तत्) कह आप लोगों को हो अर्थात् परिपूर्ण हो और (मानास:) विचारशील सज्जन पुरुष (यत्) जिस् (उच्चथम्) कहने योग्य विषय को (अवोचन्) कहें उसको तुम दोनों ग्रहण करो, जैसे (अद्य) अन्ज (अस्मात्) इस (सोम्यात्) सोमगुण सम्पन्न (सदस:) सभास्थान से (इषम्) इच्छासिद्धि (वृजनम्) बले (जीरदानुम्) जीवन के उपाय को हम लोग (आ) (विद्याम) प्राप्त होवें॥८॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्य की यह अच्छे प्रकार उचित है कि अपने प्रयोजन को चाहें तथा परोपकार भी चाहें और विद्वान जन जिस जिसका उपदेश करें, उस उसको प्रीति से सब लोग ग्रहण करें॥८॥

इस सूक्त में विद्वानों के कृत्य का वर्णीन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है, यह जानना चाहिये॥

यह एक सौ बयासीवा सूक्त और अट्टाईसवां वर्ग समाप्त हुआ।।

तिमत्यस्य षड्चस्य त्र्यशीत्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य अगस्त्य ऋषिः। अश्विनौ देवते। १,४,६ त्रिष्टुप्। २,३ निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। ५ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

अथ विद्विच्छिल्पविद्यागुणानाह॥

अब एक सौ तिरासी सूक्त का आरम्भ है। उसके आरम्भ से विद्वान् की शिल्पविद्या के कुणों का

विषय कहा है॥

तं युञ्जाथां मनसो यो जवीयान् त्रिवन्धुरो वृषणा यस्त्रिच्कः। येनौपयाथः सुकृतौ दुरोणं त्रिधातुना पतथो विर्न पणैः॥१॥

तम्। युञ्जाथाम्। मनसः। यः। जवीयान्। त्रिऽवस्थुरः। वृष्णाः। यः। त्रिऽर्ध्काः। येन्। उप्ऽयाथः। सुऽकृतीः। दुरोणम्। त्रिऽधातुना। पृतथः। विः। न। पुर्णैः॥ १॥

पदार्थ:-(तम्) (युञ्जाथाम्) (मनसः) (यः) (जवीयान्) अतिस्येक विगवान् (त्रिवन्धुरः) त्रयो वन्धुरा यस्मिन् सः (वृषणा) बलिष्ठौ (यः) (त्रिचक्रः) त्रीणि क्रिम्मिन् सः (येन) (उपयाथः) समीपं प्राप्नुतः (सुकृतः) धर्मात्मनः (दुरोणम्) गृहम् (त्रिधातुनाः) त्रयो धातवो यस्मिँस्तेन (पतथः) गच्छथः (विः) पक्षी (न) इव (पर्णैः) पक्षैः॥१॥

अन्वयः-हे वृषणाऽश्विनौ विद्वांसौ! युवां यः पर्णेर्विन पनसो जवीयान् त्रिवन्धुरो यस्त्रिचक्रो येन त्रिधातुना सुकृतो दुरोणमुपयाथः सद्यः पतथस्तं युञ्जाथाम्॥१॥

भावार्थ:-ये शीघ्रं गमयितारं पक्षिवद्क्षिशे गमनुस्राधनं साङ्गोपाङ्गसुरचितं यानं न साध्नुवन्ति ते कथमैश्वर्यं लभेरन् ?॥१॥

पदार्थ:-हे (वृषणा) बलवान् सर्विविद्यासम्पन्न शिल्पविद्या के अध्यापकोपदेशको! तुम (य:) जो (पणैं:) पङ्क्षों से (वि:, न) पखेरू के समान (मनसः) मन से (जवीयान्) अत्यन्त वेगवाला (त्रिवन्धुरः) और तीन बन्धन जिसमें विद्यान्त (य:) तथा जो (त्रिचक्रः) तीन चक्करवाला रथ है (येन) जिस (त्रिधातुना) तीन धातुओंवाले रथ से (सुकृतः) धर्मात्मा पुरुष के (दुरोणम्) घर को (उपयाथः) निकट जाते हो (तम्) उसको (युक्काशुम्म्) जोड़ी जोतो॥१॥

भावार्थ:- जो शीम्र लि जाने और पखेरू के समान आकाश में चलनेवाले साङ्गोपाङ्ग अच्छे बने हुए रथ को नहीं सिद्ध करते हैं, वे कैसे ऐश्वर्य को पावें॥१॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

सुवृद्रथों वर्तते यन्नभि क्षां यत्तिष्ठथः क्रतुंमन्तानुं पृक्षे।

वर्षुर्वपुष्या संचतामियं गीर्दिवो दुहित्रोषसा सचेथे॥२॥

४८८४

सुऽवृत्। रथः। <u>वर्तते</u>। यन्। अभि। क्षाम्। यत्। तिष्ठेथः। क्रतुंऽमन्ता। अनुं। पृक्षे। वर्षुः। वर्षुष्या। सचर्ताम्। इयम्। गीः। द्विवः। दुहित्रा। उषसां। सचेथे इति॥२॥

पदार्थ:-(सुवृत्) यस्सुवर्तुमर्हः (रथः) रन्तुं योग्यः (वर्तते) (यन्) गच्छन्। अगि भतौ शतृप्रत्ययो यणादेशश्च। (अभि) अभितः (क्षाम्) पृथिवीम् (यत्) यस्मिन् (तिष्ठथः) (क्रतुमन्ता) बहुप्रज्ञायुक्तौ (अनु) (पृक्षे) सम्पर्के (वपुः) रूपम् (वपुष्या) वपुषि भवानि (सचताम्) (इयम्) (गीः) सुशिक्षिता वाक् (दिवः) सूर्य्यस्य (दुहित्रा) या कन्येव वर्त्तमाना तया (उषसा) प्रभातवेलया (सचेथे) संयुङ्कथः॥२॥

अन्वय:-हे क्रतुमन्ता यानसाधकचालकौ! युवां सुवृद्रथः क्षां यन्नभि वर्तते क्रियुक्षे युवां तिष्ठथो यद्वपुरस्ति येन वपुष्यानु सचतां यथेयं गीर्वक्ता च दिवो दुहित्रोषसा सह युवां सचेथे तथा कथ्न भुग्यशासिनौ भवधः ?॥२॥

भावार्थ:-मनुष्या येन यानेन गन्तुमिच्छेयुस्तत्सुन्दरं पृथिष्यादिषु सद्योगमनयोग्यमुषा इव प्रकाशमानं यथा तथा सुविचारेण रचयन्तु॥२॥

पदार्थ:-हे (क्रतुमन्ता) बहुत उत्तम बुद्धियुक्त रथों के चलाने और सिद्ध करनेवाले विद्वानो! तुम (सुवृत्) सुन्दरता से स्वीकार करने (रथ:) और रमण करने होए प्रक्षे) पृथ्वे को (यन्) जाता हुआ (अभि) सब ओर से (वर्त्तते) वर्तमान है, (यह) जिसमें एथ्वे) दूसरों के सम्बन्ध में तुम लोग (तिष्ठथ:) स्थिर होते हो और जो (वपु:) रूप है अर्थात किंच सा बन रहा है, उस सबसे (वपुष्या) सुन्दर रूप में प्रसिद्ध हुए व्यवहारों का (अनु, सचनाम्) अनुकूलता से सम्बन्ध करो और जैसे (इयम्) यह (गी:) सुशिक्षित वाणी और कहनेवाला पुरुष (दिवः) सूर्य की (दुहित्रा) कन्या के समान वर्तमान (उषसा) प्रभात वेला से तुम दोनों को (सम्बन्धे) संयुक्त होते हैं, वैसे कैसे न तुम भाग्यशाली होते हो ?॥२॥

भावार्थ:-मनुष्य जिस ग्रान से जाने को चाहें वह सुन्दर पृथिव्यादिकों में शीघ्र चलने योग्य प्रभात वेला के समान प्रकाशमार्ग जैसे वैसे अच्छे विचार से बनावें॥२॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर्रे उँसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

आ तिष्ठतं सुवृतं यो रथो वामनुं वृतानि वर्तते हिविष्मान्। येनं ज्ञा नासत्येषयध्यै वृतिर्याथस्तनयाय त्मने च॥३॥

अग्रा तिष्टतुमा सुउवृत्तम्। यः। रथः। वाम्। अनुं। वृतानिं। वर्तते। हृविष्मान्। येनं। नुरा। नासत्या। इष्यध्यै। वर्तिः। यथः। तनयाया त्मने। च॥३॥

पदार्थ:-(आ) समन्तात् (तिष्ठतम्) (सुवृतम्) यः सुष्ठु सर्वाङ्गैः शोभनस्तम् (यः) (रथः) (वाम्) खुवाम् (अनु) (व्रतानि) शीलानि (वर्त्तते) (हविष्मान्) बह्वद्यादिपदार्थयुक्तः (येन) (नरा) नेतारौ अष्टक-२। अध्याय-४। वर्ग-२९

मण्डल-१। अनुवाक-२४। सूक्त-१८३

(नासत्या) सत्यविद्याक्रियौ (इषयध्यै) एषियतुं गमियतुम् (वर्तिः) मार्गम् (याथः) गच्छथः (तनयाय) सन्तानाय (तमने) आत्मिन (च)॥३॥

अन्वयः-हे नरा नासत्या! यो हिवष्मान् रथो वामनु वर्त्तते येनेषयध्यै व्रतानि वर्द्धयित्वा तन्स्रयात्मे वर्त्तिर्याथस्तं सुवृतं रथं युवामातिष्ठतम्॥३॥

भावार्थ:-मनुष्याः स्वस्य सन्तानादीनाञ्च सुखोन्नतये सुदृढेन विस्तीर्णेन साङ्ग्रोपाङ्गसामग्र्या पूर्णेन सद्योगामिना भक्ष्यभोज्यलेह्यचूष्यैर्युक्तेन रथेन भूसमुद्राकाशमार्गेषु प्रसमाहिततया गच्छेपुरागच्छेयुश्च। ३॥

पदार्थ: -हे (नरा) अग्रगामी नायक (नासत्या) सत्य विद्या क्रियम्युक्त पुरुषो! (य:) जो (हिवष्मान्) बहुत खाने योग्य पदार्थीवाला (रथ:) रथ (वाम्) तुम दोनों के (अनु, वर्तते) अनुकूल वर्तमान है (येन) जिससे (इषयध्ये) ले जाने को (व्रतानि) शील उत्तम भाषां को बढ़ा कर (तनयाय) सन्तान के लिये (च) और (तमने) अपने लिये भी (वर्ति:) मार्ग को (याथ:) जाते हो (सुवृतम्) उस सर्वाङ्ग सुन्दर रथ को तुम दोनों (आ, तिष्ठतम्) अच्छे प्रकार स्थित हो अरे। इ।।

भावार्थ:-मनुष्य अपने [व] सन्तानों की सुखोन्नति के लिये अच्छी, दृढ़, लम्बे-चौड़े, साङ्गोपाङ्ग सामग्री से पूर्ण, शीघ्र चलनेवाले, भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चोष्य भर्थात् चट-पट खाने उत्तमता से धीरज में खाने, चाटने और चूषने योग्य पदार्थों से युक्त रथ से पृथिवी, समृद्ध और आकाश मार्गों में अति उत्तमता से सावधानी के साथ जावें और आवें॥३॥

पुनस्तमेव विषयमाहै॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

मा वां वृको मा वृकीरा दंधर्षिना पिरि वर्क्तमुत मार्ति धक्तम्। अयं वां भागो निर्हित इसं गीर्हस्राविमे वां निधयो मधूनाम्॥४॥

मा। वाम्। वृक्तैः। मा। वृक्तीः। आ। उर्धान्। मा। परि। वृक्तुम्। उत। मा। अति। धक्तुम्। अयम्। वाम्। भागः। निऽहितः। इयम्। गीः। दस्त्री इमे। वाम्। निऽधर्यः। मधूनाम्॥४॥

पदार्थ:-(मा) निषेत्रे (वास्) युवाम् (वृकः) स्तेनः (मा) (वृकोः) स्तेनस्य स्त्रीः। अत्र पूर्वसवर्णादेशः। (आ) अपि च्याद्धर्षीत्) धर्षेत् (मा) (पिर) (वर्क्तम्) त्यजतम् (उत) अपि (मा) (अति) (धक्तम्) दहतम् (अयम्) (वाम्) युवयोः (भागः) भजनीयोऽधिकारः (निहतः) स्थापितः (इयम्) (गीः) आज्ञुत्ता वाक् (दस्त्रौ) दुःखोपक्षयितारौ (इमे) (वाम्) युवयोः (निधयः) राशयः (मधूनाम्) मधुरादिगुणकुकतानां सोमादिपदार्थानाम्॥४॥

भन्वय:-हे दस्नौ! वामिमे मधूनां निधयो वामयं भागो निहित इयं गीश्चास्ति। युवामस्मान् मा परिवर्क्तमुतापि मातिश्चक्तं येने वां वृको मा वृकीर्मा दधर्षीत्। तमुपायं युवां सदा नितिष्ठताम्॥४॥

भावार्थ:-मनुष्या यदा गृहे निवसेयुर्यानेष्वरण्ये वा प्रतिष्ठेरँस्तदा भोगोपभोगयोग्यान् पदार्थीन् शस्त्रास्त्राणि वीरसेनाञ्च संस्थाप्य निवसेयुर्गच्छेयुर्वा यतः कश्चिदपि विघ्नो न स्यात्॥४॥

पदार्थ:-हे (दस्त्री) दु:खनाशक शिल्पविद्याऽध्यापक उपदेशको! (वाम्) तुम दोनों के (इमे) रे (मधूनाम्) मधुरादि गुणयुक्त पदार्थों के (निध्य:) राशी समूह (वाम्) तुम दोनों का (अयम्) यह (भागः) सेवने योग्य अधिकार (निहितः) स्थापित और (इयम्) यह (गीः) वाणी है, तुम दोनों हमको (मा, परि, वर्क्तम्) मत छोड़ो (उत) और (मा, अति, धक्तम्) मत विनाशों और जिससे (वाम्) तुम दोनों को (वृकः) चोर, ठग गठकटा आदि दुष्ट जन (मा) मत (वृकीः) चोरी, ठगी, मठकटी आदि दुष्ट औरतें (मा, आ, दधर्षीत्) मत विनाशों, मत नष्ट करें॥४॥

भावार्थ:-मनुष्य जब घर में निवास करें वा यानों में और वन में ब्रिलिशन होवें, तब भोग करने के लिये पूर्ण भोग और उपभोग योग्य पदार्थों, शस्त्र वा अस्त्रों और ब्रिस्सेना को संस्थापन कर निवास करें वा जावें, जिससे कोई विघ्न न हो॥४॥

पुनस्तमेव विषयमाह।

फिर उसी विषय को अगले सिन्त्रामें कहा हैं॥

युवां गोतमः पुरुमीळहो अत्रिर्दस्रा हवतेऽवसे हुनिष्मीन्। दिशुं न दिष्टामृजूयेव यन्ता मे हवं नामुत्योपं यात्रम्॥५॥

युवाम्। गोर्तमः। पुरुऽमीळहः। अत्रिः। द्वा इवते। अवसे। हृविष्मान्। दिशम्। न। दिष्टाम्। ऋजुयाऽईव। यन्तां। आ। मे। हर्वम्। नास्तयाः। उपं। यातम्।।।

पदार्थ:-(युवाम्) (गोतमः) मधीवी (पुरुमीढः) पुरुभिर्बहुभिः पदार्थेः सिक्तः (अत्रिः) सततं गामी (दस्रा) दुःखदारिद्र्यनाशकौ (हवते) गृह्णाति (अवसे) रक्षणाद्याय (हविष्मान्) प्रशंसितादेययुक्तः (दिशम्) (न) इव (दिष्टाम्) निदर्शिताम् (ऋजूयेव) ऋजुना मार्गेणेव। अत्र टा स्थाने यादेशः। अत्राऽन्येषामपीति दीर्घः। (यक्ता) नियमकर्ता (आ) (मे) मम (हवम्) दानम् (नासत्या) सत्यप्रियौ (उप) (यातम्) प्राप्नुतम्॥५॥

अन्वय:-हे दस्रा नास्तिपा! मुवां यो हविष्मान् पुरुमीढोऽत्रिर्गीतमोऽवसे हवते तद्वत् यन्ता ऋजूयेव दिष्टां दिशन्न च मे हवमुपयातम्॥ १५॥

भावार्थः-अशोपमालङ्कारः। यथा नौकादियानयायिनस्सरलेन मार्गेणोद्दिष्टां दिशं गच्छन्ति तथा जिज्ञासव आप्तानो विदुषां सामीप्यं गच्छेयुः॥५॥

पदार्थ: -हे (दस्ना) दु:ख दारिद्र्य विनाशनेहारे (नासत्या) सत्यप्रिय शिल्पविद्याऽध्यापकोपदेशक विद्वानी! (युवाम्) तुम दोनों (य:) जो (हविष्मान्) प्रशंसित ग्रहण करने योग्य (पुरुमीढ:) बहुत पदार्थों सींच्या हुआ (अत्रि:) निरन्तर गमनशील (गोतम:) मेधावी जन (अवसे) रक्षा आदि के लिये (हवते)

अष्टक-२। अध्याय-४। वर्ग-२९

मण्डल-१। अनुवाक-२४। सूक्त-१८३

उत्तम पदार्थों को ग्रहण करता है, वैसे और जैसे (यन्ता) नियमकर्ता जन (ऋजूयेव) सरल मार्ग से जैसे तैसे (दिष्टाम्) निर्देश की (दिशम्) पूर्वापि दिशा के (न) समान (मे) मेरे (हवम्) दान को (उप, आ, यातम्) अच्छे प्रकार समीप प्राप्त होओ॥५॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे नौकादि यान से जानेवाले जन सरल भार्ग से बताई हुई दिशा को जाते हैं, वैसे सीखनेवाले विद्यार्थी जन आप्त विद्वानों के समीप जावें॥ प्रा

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अतारिष्म् तमंसस्पारमस्य प्रति वां स्तोमो अश्विनावधायि। एह यातं पृथिभिर्देवयानैर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम्॥६॥ १९॥ ४॥

अतारिष्म। तमंसः। पारम्। अस्य। प्रति। वाम्। स्तोमः। अश्वित्रौ। अधायो आ। इह। यातम्। पृथिऽभिः। देवऽयानैः। विद्यामं। इषम्। वृजनंम्। जीरऽदानुम्॥६॥

पदार्थ:-(अतारिष्म) तरेम (तमसः) रात्रेः प्रकाशस्त्रितस्य समुद्रस्य वा (पारम्) परतटम् (अस्य) (प्रति) (वाम्) युवयोर्युवां वा (स्तोमः) श्लाघ्यो व्यवहारः (अश्विनौ) शिल्पाविद्याव्यापिनौ (अधायि) (आ) (इह) (यातम्) (पथिभिः) (देवयानैः) वेता यस्ति येषु तैः (विद्याम) (इषम्) (वृजनम्) (जीरदानुम्)॥६॥

अन्वय:-हे अश्वनौ! यथेह वां स्तोमोऽधार्यिन्त्था वां प्रत्यस्य तमसः पारमतारिष्म यथा वयिमषं वृजनं जीरदानुं विद्याम तथा युवां देवयानैः पथिभिरस्मानायातम्॥दभ

भावार्थः-हे शिल्पविद्यावित्तम्म भवेषुप्त एव नौकादियानैर्भूसमुद्रान्तरिक्षमार्गैः पारावारौ गमयितुं शक्नुवन्ति त एव विद्वन्मार्गेष्वऽग्न्यादियामैर्पन्तुं योग्या इति॥६॥

अस्मिन् सूक्ते विद्वच्छ्रिविद्यागुणबर्णानादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिर्वेद्या॥

इति त्र्यशीत्युत्तरं शतत्मं १८,३ सूक्तमेकोनत्रिंशो २९ वर्गश्चतुर्थोऽध्यायश्च समाप्त:॥

अस्मिन्नध्याये ज्निम्मरेदिन्त्रार्थं ग्न्यश्चिविमानादियानगुणवर्णनादेतदध्यायार्थस्य पूर्वाऽध्यायार्थेन सह सङ्गतिर्वेद्या॥

पदार्थ: ﴿ (अश्विन) शिल्पविद्याव्यापी सज्जनो! जैसे (इह) यहाँ (वाम्) तुम दोनों का (स्तोम:) स्तुर्ति स्रोय व्यवहार (अधायि) धारण किया गया, वैसे तुम्हारे (प्रति) प्रति हम (अस्य) इस (तमस:) अध्यक्षारे के (पारम्) पार को (अतारिष्म) तरें पहुंचें, जैसे हम (इषम्) इच्छासिद्धि (वृजनम्) बल और (जीरदानुम्) जीवन को (विद्याम) प्राप्त होवें, वैसे तुम दोनों (देवयानै:) विद्वान् जिन मार्गों से जावे उन् (परिभि:) मार्गों से हम लोगों को (आ, यातम्) प्राप्त होओ॥६॥

भावार्थ:-जो अतीव शिल्पविद्यावेता जन हों वे ही नौकादि यानों से भू, समुद्र और अन्तरिक्षे मार्गों से पार-अवर लेजा-लेआ सकते हैं, वे ही विद्वानों के मार्गों में अग्नि आदि पदार्थों से बने हुए विमान आदि यानों से जाने को योग्य हैं॥६॥

इस सूक्त में विद्वानों की शिल्पविद्या के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए॥

यह एक सौ तिरासीवां १८३ सुक्त और ऊनतीसवां २९ वर्ग और चतुर्थाध्याय समाप्त हुआ।

इस अध्याय में जन्म, पवन, इन्द्र, अग्नि, अश्वि और विमानादि यानों के गुणो का वर्णन आदि होने से इस अध्याय के अर्थ की पिछले अध्याय के अर्थ के साथ सङ्गति स्मिद्धानी चाहिये॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्याणां परमविदुषां श्रीमद्विरजान्त्यस्वतीस्वामिनां शिष्येण परमहंसपरिव्राजकाचार्येण श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मिते संस्कृतस्यभाषाभ्यां विभूषिते सुप्रमाणयुक्ते ऋग्वेदभाष्ये द्वितीयाऽष्टकस्य चतुर्थोऽध्याद्धः समाजः॥

॥ओ३म्॥

अथ द्वितीयाष्ट्रके पञ्चमाऽऽध्यायारम्भः॥

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि पर्रा सुव। यद्धद्रं तन्न आ सुव। ऋ०५.८२.५॥ ता वामिति षड्चस्य चतुरशीत्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य अगस्त्य ऋषिः। अश्विनौ देवते। १ पङ्क्तिः। ४ भुरिक् पङ्क्तिः। ५-६ निचृत् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः। १३ किराट् त्रिष्टुप्

छन्द:। धैवत: स्वर:॥

पुनरध्यापकोपदेशकविषयमाह।।

अब द्वितीयाष्ट्रक के पञ्चम अध्याय के प्रथम सूक्त का आरम्भ है। उसके प्रथम मन्त्र में अध्यापक और उपदेशक विषय को कहा है।

ता वाम् द्या तार्वपुरं हुवेमोच्छन्यामुषस्य वह्निस्कथैः

नासत्या कुह चित्सन्तवियों दिवो नपाता सुदास्तिगया अ

ता। वाम्। अद्यः। तौ। अपुरम्। हुवेम्। उच्छन्त्याम्। उपित्। विद्वः। उक्थैः। नासंत्या। कुहं। चित्। सन्तौ। अर्थः। दिवः। नपाता। सुदाःऽतंराय॥ १॥

पदार्थ:-(ता) तौ (वाम्) युवाम् (ब्रह्म) (तौ) (अपरम्) पश्चात् (हुवेम) (उच्छन्याम्) विविधवासदात्र्याम् (उषितः) प्रभातवेलायाम् (विह्नः) वोढा (उक्थैः) प्रशंसनीयैर्वचोभिः (नासत्या) असत्यात् पृथग्भूतौ (कुह्न) कस्मिन् (चित्र) अपि (सन्तौ) (अर्थ्यः) विणग्जनः (दिवः) व्यवहारस्य (नपाता) न विद्यते पातो ययोस्तौ (सुदास्तराय) अतिशयेन सुष्ठु प्रदात्रे॥१॥

अन्वय:-हे नपाता नासत्या व्यामद्य उच्छन्त्यामुषिस ता वां हुवेम तावपरं स्वीकुर्य्याम युवां कुह चित् सन्तौ यथा विह्निरिवार्य्य: सुदास्तरायोक्थेर्द्रिया मध्ये वर्तते तथा वयमि वर्त्तेमिह॥१॥

भावार्थ:-अत्र वान्वकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा विद्वांसो द्यावापृथिवीभ्यामुपकारान् कुर्वन्ति तथा वयं विद्वद्भ्य उपकृता भवम् १५

पदार्थ:-हे (नपाता) जिनका पात विद्यमान नहीं वे (नासत्या) मिथ्या व्यवहार से अलग हुए सत्यप्रिय विद्वानों! हम लोग (अद्य) आज (उच्छन्त्याम्) नाना प्रकार का वास देनेवाली (उषिस) प्रभात वेला में (ता) उन (वाम्) तुम दोनों महाशयों को (हुवेम) स्वीकार करें (तौ) और उन आपको (अपरम्) पीछे भी स्वीकार करें तुम (कुह, चित्) किसी स्थान में (सन्तौ) हुए हो और जैसे (विद्वः) पदार्थों को एक स्थान को पहुंचानेवाले अग्नि के समान (अर्थः) विणयां (सुदास्तराय) अतीव सुन्दरता से उत्तम

देनेवाले के लिये (उक्थै:) प्रशंसा करने के योग्य वचनों से (दिव:) व्यवहार के बीच वर्त्तमान है, वैसे हम लोग वर्त्ते॥१॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे विद्वान् जन आकाश और पृष्टियो रे उपकार करते हैं, वैसे हम लोग विद्वानों से उपकार को प्राप्त हुए वर्त्ते॥१॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अस्मे ऊ षु वृषणा मादयेथामुत्पणीहितमूर्म्या मदन्ता।

श्रुतं मे अच्छोक्तिभिर्मतीनामेष्टां नरा निचेतारा च कर्णैः॥२।

अस्मे इतिं। ऊम् इतिं। सु। वृष्णाः। माद्रयेथाम्। उत्। पणीमा हृतम्। ऋसीः। मर्दन्ताः। श्रुतम्। मे। अच्छोक्तिऽभिः। मतीनाम्। एष्टां। नरा। निऽचेतारा। च। कर्णैः॥ २॥

पदार्थ:-(अस्मे) अस्मान् (उ) वितर्के (सु) शोभने (वृषणा) बल्हिष्टौ (मादयेथाम्) आनन्दयेथाम् (उत्) (पणीन्) प्रशस्तव्यवहारकर्त्रीन् (हतम्) (ऊर्घ्या) राज्या सह् उन्धेति रात्रिनामसु पठितम्। (निघं०१.७) (मदन्ता) आनन्दन्तौ (श्रुतम्) शृणुतम् (मे पूर्ण (अच्छोक्तिभिः) शोभनैर्वचोभिः (मतीनाम्) मनुष्याणाम् (एष्टा) पर्य्यालोचकः (नरा) नेतारौ (निचतारा) नित्यं ज्ञानवन्तौ ज्ञापकौ (च) (कर्णैः) श्रौत्रैः॥२॥

अन्वय:-हे वृषणा निचेतारा नरा! न्युवां पणीनस्मे सुमादयेथामूर्म्या सह मदन्ता दुष्टानुद्धतं मतीनामच्छोक्तिभिर्योऽहमेष्टा तस्य च मे सुष्ट्रक्तिं कर्णेरु श्रुतम् ॥

भावार्थः - यथाऽध्यापकोपदेष्टाम् विध्यात्तुप्रवेष्याँ ॥ वेदवचोभिः संज्ञाप्य विदुषः कुर्वन्ति तथा तद्भचः श्रत्वा तौ सदा सर्वेरानन्दनीयौ॥ २ ॥

पदार्थ:-हे (वृषणा) ब्लुवान् (निचेतारा) नित्य ज्ञानवान् और ज्ञान के देनेवाले (नरा) अग्रगामी विद्वानो! तुम (पणीन्) प्रशंसित व्यवहार करनेवाले (अस्मे) हम लोगों को (सु, मादयेथाम्) सुन्दरता से आनन्दित करो (अर्म्या) कीर राचि को साथ (मदन्ता) आनन्दित होते हुए तुम लोग दुष्टों का (उत्, हतम्) उद्धार करो अर्थात् उनको उस दुष्टता से बचाओ और (मतीनाम्) मनुष्यों की (अच्छोक्तिभिः) अच्छी उक्तियों अर्थात् सुन्दर वचनों से जो मैं (एष्टा) विवेक करनेवाला हूँ उस (च, मे) मेरी भी सुन्दर उक्ति को (कणैं:) कृतों से (उ, श्रुतम्) तर्क-वितर्क करने के साथ सुनो॥२॥

भाषार्थ: जिसे अध्यापक और उपदेश करनेवाले जन पढ़ाने और उपदेश सुनाने योग्य पुरुषों को वेदवचर्स से अच्छे प्रकार ज्ञान देकर विद्वान् करते हैं, वैसे उनके वचन को सुनके वे सब काल में सबको आनुनिद्धत करने योग्य हैं॥२॥

अथ शिष्यशिक्षापरमध्यापकोपदेशकविषयमाह।।

अष्टक-२। अध्याय-५। वर्ग-१

मण्डल-१। अनुवाक-२४। सूक्त-१८४

अब शिष्य को सिखावट देने के ढङ्ग पर अध्यापकोपदेशक विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

श्रिये पूषित्रिषुकृतेव देवा नासत्या वहुतुं सूर्यायाः।

वच्यन्ते वां ककुहा अप्सु जाता युगा जूर्णेव वर्मणस्य भूरेः॥३॥

श्रिये। पूष्पन्। इषुकृतांऽइव। देवा। नासंत्या। वहतुम्। सूर्यायाः। वच्यन्ते। वाम्। कुकुहाः। अपरस्। जाताः। युगा। जूर्णाऽईव। वर्मणस्य। भूरेः॥३॥

पदार्थ:-(श्रिये) लक्ष्म्यै (पूषन्) पोषक (इषुकृतेव) वाणीकृताविव (देवा) हातारौ (नामत्या) असत्यद्वेषिणौ (वहतुम्) प्रापकम् (सूर्य्यायाः) सूर्यस्य कान्तेः (वच्यन्ते) स्तुवन्ति। च्यत्ययेन श्यँश्च। (वाम्) युवाम् (ककुहाः) दिशः (अप्सु) अन्तरिक्षप्रदेशेषु (जाताः) प्रसिद्धाः (भुगा) युगानि वर्षाणि (जूर्णेव) पुरातनानीव (वरुणस्य) उत्तमस्य जलस्य वा (भूरेः) वहोः पूर्णे।

अन्वयः – हे पूषन्! त्वं देवा नासत्या सूर्याया वहतुमिषुकृतेव श्रिये प्रयतस्व। हे अध्यापकोपदेशकावप्सु जाताः ककुहा वरुणस्य भूरेर्युगा जूर्णेव वां वच्यन्ते॥३॥

भावार्थ:-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। यथा इषुकृतास्पेना शत्रून् विजयते तथा धनस्य सदुपायं शीघ्रमेव कुर्यात्, कालविशेषेषु दिनेषु कार्याणि, रात्रिभागेषु नात्पद्यन्ते सदुणानान्तु सर्वत्र प्रशंसा जायते॥३॥

पदार्थ:-हे (पूषन्) पृष्टि करनेवाले! तू (देवा) देनेक्नले (नासत्या) मिथ्या व्यवहार के विरोधी अध्यापकर उपदेशक (सूर्य्याया:) सूर्य की कान्ति की (वहुतुम्) प्राप्ति करनेवाले व्यवहार को (इषुकृतेव) जैसे वाणी से सिद्ध किए हुए दो पदार्थ हो तेसे (शिक्र) लक्ष्मी के लिये प्रयत्न कर। और हे अध्यापक उपदेशको! (अप्सु) अन्तरिक्षप्रदेशों में (जातार) प्रसिद्ध हुई (ककुहा:) दिशा (वरुणस्य) उत्तम सज्जन वा जल के (भूरे:) बहुत उत्कर्ष से (युगा) वर्षों जो (जूर्णेव) पुरातन व्यतीत हुई उनके समान (वाम्) तुम दोनों की (वच्यन्ते) प्रशंसा कृती हैं अर्थात् दिशा-दिशान्तरों में तुम्हारी प्रशंसा होती है॥३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमा और क्रानिकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे बाणकृत सेना अर्थात् बाण के समान प्रेरणा दी हुई सेन् सत्रुओं को जीतती है, वैसे धन के श्रेष्ठ उपाय को शीघ्र ही करे, काल के विशेष विभागों में जो दिन है, अनमें कार्य जैसे बनते हैं, वैसे रात्रि भागों में नहीं उत्पन्न होते हैं। श्रेष्ठ गुणीजनों की सब बगह प्रशंसा होती है।।३॥

अथ सज्जनताश्रयमध्यापकोपदेशकविषयमाह।।

अब पञ्जनेता का आश्रय लिये हुए अध्यापक और उपदेशक विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

्र्यूस्मे सा वां माध्वी रातिरस्तु स्तोमं हिनोतं मान्यस्य कारो:।

अनु यद्वां श्रवस्यां सुदानू सुवीर्याय चर्षणयो मदन्ति॥४॥

अस्मे इति। सा। वाम्। माध्वी इति। रातिः। अस्तु। स्तोमेम्। हिनोतम्। मान्यस्य। कारोः। अर्नु। यत्। वाम्। श्रवस्या। सुदानू इति सुऽदानू। सुऽवीर्याय। चुर्षुणयः। मदन्ति॥४॥

पदार्थ:-(अस्मे) अस्मभ्यम् (सा) श्रीः (वाम्) युवयोः (माध्वी) मधुरादिगुणयुवता (रातिः) दानम् (अस्तु) भवतु (स्तोमम्) श्लाघ्यम् (हिनोतम्) प्राप्नुतम् (मान्यस्य) प्रशंसितुं योग्वस्य (कारः) कारकस्य (अनु) आनुकूल्ये (यत्) (वाम्) युवाम् (श्रवस्या) आत्मनः श्रवः श्रवणिम्ध्छ्या (सुदानू) सुष्ठु दातारौ (सुवीर्य्याय) उत्तमपराक्रमाय (चर्षणयः) मनुष्याः (वदन्ति) कामयन्ते॥४॥

अन्वय:-हे सुदानू! या वां माध्वी रातिर्वर्त्तते साऽस्मे अस्तु युवां मान्यस्य कारोः स्त्रोमे हिनीतं यद्यौ श्रवस्या वां सुवीर्य्याय चर्षणयोऽनु मदन्ति तौ वयमप्यनु मदेम॥४॥

भावार्थ:-या आप्तानां नीतिर्विदुषां स्तुतिः कमनीया भवेत् स्रोत्तुमपरोक्रमाश्रु प्रभवति॥४॥

पदार्थ:-हे (सूदानू) अच्छे देनेवाले! जो (वाम्) तुम दोनीं की (माध्वी) मधुरादि गुणयुक्त (राति:) देनि वर्त्तमान है (सा) वह (अस्मे) हम लोगों के लिये (अस्तु) हो। और तुम (मान्यस्य) प्रशंसा के योग्य (कारो:) कार करनेवाले की (स्तोमम्) प्रशंसा को (हिनोतम्) प्रप्त होओ और (श्रवस्या) अपने को सुनने की इच्छा से (यत्) जिन (वाम्) तुमको (सुवीय्याय) असम पराक्रम के लिये (चर्षणय:) साधारण मनुष्य (अनु, मदन्ति) अनुमोदन देते हैं तुम्हारी काम्मा करते हैं, उनको हम भी अनुमोदन देवें॥४॥

भावार्थ:-जो आप्त श्रेष्ठ सद्धर्मी सज्जानों की नीति और विद्वानों की स्तुति मनोहर हो, वह उत्तम पराक्रम के लिये समर्थ होती है॥४॥

अथाध्य एक पिदेशकप्रशंसाविषयमाह।।

अब अध्यापक और उपदेशकों की प्रशंसा का विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

एष वां स्तोमों अश्वनावकारि मानेभिर्मघवाना सुवृक्ति। यातं वर्तिस्तनयाय स्मिने चागस्त्ये नासत्या मदन्ता॥५॥

पुषः। वाम्। स्तोर्षः। अश्विनौ। अकारि। मानेभिः। मुघुऽवाना। सुऽवृक्ति। यातम्। वर्तिः। तनयाय। त्मने। च। अगस्त्ये। नासत्या। मदन्ता। पा

पदार्थ: (एषः) (वाम्) युवयोः (स्तोमः) प्रशंसा (अश्विनौ) अध्यापकोपदेशकौ (अकारि) क्रियते (मानेभिः) ये मन्यन्ते तैर्विद्वद्भिः (मघवाना) परमपूजितधनयुक्तौ (सुवृक्ति) सुष्ठु वृक्तिर्वर्जनं सुवृक्ति यूधी तथी (यातम्) प्राप्नुतम् (वर्त्तिः) सन्मार्गम् (तनयाय) सुसन्तानाय (त्मने) स्वात्मने (च) (अगस्त्ये) अपराधरहिते मार्गे (नासत्या) सत्यनिष्ठौ (मदन्ता) कामयमानौ॥५॥

अन्वेषः-हे मघवानाध्यापकोपदेशकौ! एष वां स्तोमो मानेभिः सुवृक्त्यकारि। हे नासत्याश्विनावगस्त्ये मदन्ता ब्रुवां तनयाय त्मने च वर्त्तिर्यातं प्राप्नुतम्॥५॥ अष्टक-२। अध्याय-५। वर्ग-१

मण्डल-१। अनुवाक-२४। सूक्त-१८४

१८९३

भावार्थ:-सैव स्तुतिर्भवति यां विद्वांसो मन्यन्ते तथैव परोपकारः स्याद्यादृशः स्वापत्याय स्वात्मने चेष्यते स एव धर्ममार्गो भवेद्यत्राप्ता गच्छन्ति॥५॥

पदार्थ:-हे (मघवाना) परमपूजित अध्यापकोपदेशको! (एषः) यह (वाम्) तुम विनों की (स्तोमः) प्रशंसा (मानेभिः) जो मानते हैं उन्होंने (सुवृक्ति) सुन्दर त्याग जैसे हो वैसे (अकारि) के है अर्थात् कुछ मुखदेखी मिथ्या प्रशंसा नहीं की। और हे (नासत्या) सत्य में निरद्धार स्थिर रहनेवाले (अश्विनौ) अध्यापक उपदेशक लोगो! (अगस्त्ये) अपराधरहित मार्ग में (मदन्ता) शुभकामना करते हुए तुम (तनयाय) उत्तम सन्तान और (तमने, च) अपने लिये (वर्तिः) अच्छे मार्ग को (यातम्) प्राप्त होओ॥५॥

भावार्थ: - वहीं स्तुति होती है जिनको विद्वान् जन मानते हैं, जैसा ही प्रोपकार होता है जैसा अपने सन्तान और अपने लिये चाहा जाता है और वहीं धर्ममार्ग हो कि जिसमें श्रेष्ठ धर्मात्मा विद्वान् जन चलते हैं।। ५।।

पुनरध्यापकोपदेशकविषयमहिभ

फिर अध्यापकोपदेशक विषय को अगले सन्त्र में कहा है॥

अतारिष्म् तमसस्पारमस्य प्रति वां स्तोमो अश्विनविद्यायि।

एह यातं पृथिभिर्देवयानैर्विद्यामेषं वृज्नं जीरदानुम्रा ६॥ १॥

अर्तारिष्म। तर्मसः। पारम्। अस्य। प्रति। बार्म्। स्तोम्। स्तोम्। अश्विनौ। अधायि। आ। इह। यातम्। पृथिऽभिः। देवऽयानैः। विद्यामे। इषम्। वृजनेम्। जीरऽदोनुस्। हु॥

पदार्थ:-(अतारिष्म) तरेम (त्रूपसं:) अविद्याऽन्थकारस्य (पारम्) (अस्य) (प्रति) (वाम्) युवाम् (स्तोम:) प्रशंसा (अश्विनौ) यौ व्यूपदेशकौ (अधायि) ध्रियते (आ) (इह) अस्मिन् विज्ञातव्ये व्यवहारे (यातम्) आगच्छतम् (पथिभि:) (देवयानै:) देवा यान्ति येषु तै: (विद्याम) (इषम्) इष्टं सुखम् (वृजनम्) शरीरात्मबलम् (जीरदानुम्) जीवात्पानम्॥६॥

अन्वय:-हे अश्वनाविष्ठ यः स्त्रामी वां प्रत्यधायि तेनास्य तमसस्पारमतारिष्म यथा युवां देवयानै: पथिभिरिषं वृजनं जीरदानुमायातं तथैतद्वयं विद्याम्॥६॥

भावार्थः त एव विद्यायाः परंपारं जनान् गमयितुं शक्नुवन्ति ये धर्म्ममार्गेणैव गच्छन्ति यथार्थोपदेष्टारश्च भवस्ति॥६॥

अस्मिन सुक्तेऽध्यापकोपदेशकलक्षणोक्तत्वादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिर्वेद्या।।

इति चतुरशीत्युत्तरं शततमं १८४ सूक्तं प्रथमो १ वर्गश्च समाप्त:॥

पदार्थ:-हे (अश्विनौ) विशेष उपदेश देनेवाले! (इह) इस जानने योग्य व्यवहार में जो (स्तोम:)

प्रशासा (वाम्) तुम दोनों के (प्रति) प्रति (अधायि) धारण की गई उससे (अस्य) इस (तमस:)

अविद्यान्धकार के (पारम्) पार को (अतारिष्म) पहुँचें, जैसे तुम (देवयानै:) आप्त विद्वान् जिनमें जाते हैं, उन (पथिभि:) मार्गों से (इषम्) इष्ट सुख (वृजनम्) शारीरिक और आत्मिक बल तथा (जीरदानुम्) जीवात्मा को (आ, यातम्) प्राप्त होओ, वैसे इसको हम भी (विद्याम) प्राप्त होवें॥६॥

भावार्थ:-वे ही विद्या के परमपार मनुष्यों को पहुंचा सकते हैं, जो धर्म मार्ग से ही चलते हैं और यथार्थ के उपदेशक भी हैं॥६॥

इस सूक्त में अध्यापक और उपदेशकों के लक्षणों को कहने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति समझनी चाहिये।।

यह एक सौ चौरासीवां १८४ सूक्त और प्रथम १ वर्ग समाच हुआ।

कतरेत्यस्यैकादशर्चस्य पञ्चाशीत्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य अगस्त्य ऋषि:। द्यावापृथिव्यौ देवते। १,६-८,१०,११ त्रिष्टुप्। २ विराट् त्रिष्टुप्। ३-५,९ निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः

स्वर:॥

अथ जन्यजनककर्माण्याह।।

अब एक सौ पचासी सूक्त का आरम्भ है। उसके प्रथम मन्त्र से उत्पन्न होने योग्य और उत्पन्न करनेवाले गुणों का वर्णन करते हैं॥

कृत्रा पूर्वी कृत्रापरायोः कृथा जाते केवयः को वि वेद। विश्वं त्मना बिभृतो यद्ध नामु वि वेतेते अहनी चुक्रियेव॥ १।

कृत्रा। पूर्वी। कृत्रा। अपरा। अयोः। कृथा। जाते इति। कृवयः। किः। वि। विद्यो विश्वेम्। त्मनी। बिभृतः। यत्। हु। नाम। वि। वृतेते इति। अहेनी इति। चुक्रियोऽइव॥ १॥

पदार्थ:-(कतरा) द्वयोर्द्वयोर्मध्ये कतरौ (पूर्वा) पूर्वो (कतरा) कल्रौ (अपरा) अपरौ (अयो:) अनयोर्द्वावापृथिव्यो: कार्यकारणयोर्वा। अत्र छान्दसो वर्णलोप:। (कशा) कथम् (जाते) उत्पन्ने (कवय:) विद्वांस: (क:) (वि) (वेद) जानाति। (विश्वम्) सर्वम् (क्ना) अत्मेना (विभृत:) धरत: (यत्) ये (ह) किल (नाम) जलम् (वि) (वर्तेते) (अहनी) अहर्निश्म (चक्नियेव) यथा चक्रे भव: पदार्थ:॥१॥

अन्वय:-हे कवयोऽयो: कतरा पूर्वा कतराऽपार इमे कथा भूर्ति एतत् को वि वेद। त्मना यद्ध विश्वं नामाऽस्ति तद्बिभृतस्ते अहनी चक्रियेव वि वर्तेते तौ गुणस्वभावी विज्ञानीहि। 🔃

भावार्थः -हे विद्वांसा! येऽस्मिञ्जगृति द्यावापृश्वित्यौ ये च पूर्वाः कारणाख्याः पराः कार्य्याख्याः पदार्थाः सन्ति। ये आधाराधेयसम्बन्धेनाहो त्रिवहर्तन्ते तान् यूयं विजानीत॥ अयं मन्त्रः निरुक्ते व्याख्यातः॥ (निरु०३.२२॥१॥

पदार्थ: -हे (कवय:) बिहान् पुरुषों (अयो:) द्यावापृथिवी में वा कार्य-कारणों में (कतरा) कौन (पूर्वा) पूर्व (कतरा) कौन (अपस) पीछे हैं, ये द्यावापृथिवी वा संसार के कारण और कार्यरूप पदार्थ (कथा) कैसे (जाते) उत्कृत हुए इस् विषय को (क:) कौन (वि, वेद) विविध प्रकार से जानता है, (त्मना) आप प्रत्येक (यत्) पी (ह) निश्चित (विश्वम्) समस्त जगत् (नाम) प्रसिद्ध है, उसको (बिभृत:) धारण करते वा पूष्ट करते हैं और वे (अहनी) दिन-रात्रि (चिक्रियेव) चाक के समान घूमते वैसे (वि, वर्तेते) विविध प्रकार से वर्त्तमान हैं॥१॥

भाषार्थः के विद्वानो! जो इस जगत् में द्यावापृथिवी और जो प्रथम कारण और पर कार्य्यरूप पदार्थ हैं तथा जो आधाराधेय सम्बन्ध से दिन-रात्रि के समान वर्त्तमान हैं, उन सबको तुम जानो॥१॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

१८९६

भूरिं द्वे अचरन्ती चर्रन्तं पद्वन्तं गर्भम्पदी दधाते।

नित्यं न सूनुं पित्रोरुपस्थे द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात्॥२॥

भूरिम्। द्वे इति। अचरन्ती इति। चरन्तम्। पुत्ऽवन्तम्। गर्भम्। अपदी इति। दुधाते इति। निह्यम्। निर्माम्। पुत्रोः। उपऽस्थे। द्यावो। रक्षेतम्। पृथिवी इति। नुः। अभ्वति।। २॥

पदार्थ:-(भूरिम्) बहुम् (द्वे) (अचरन्ती) इतस्ततः स्वकक्षां विहाय गितरिहते (चरन्तम्) गच्छन्तम् (पद्वन्तम्) बहवः पादा विद्यन्ते यस्मिँस्तम् (गर्भम्) कार्य्याख्यम् (अपदे) अविद्यमानपादे (दधाते) (नित्यम्) (न) इव (सूनुम्) (पित्रोः) (उपस्थे) (द्यावा) द्यौः (रक्षतम्) (पृथिको) भूमिः (नः) अस्मान् (अभ्वात्) असत्याचरणजन्याद् दुःखात्॥२॥

अन्वयः – हे द्यावापृथिवी! द्यावापृथिवीव वर्त्तमानौ मातापितरौ यथा उचर्त्ती अपदी द्वे भूरिं पद्वन्तं चरन्तं गर्भं पित्रोरुपस्थे नित्यं सूनुं न दधाते तथाऽभ्वान्नो रक्षतम्॥२॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। यथा भूमिसूर्यो दूढौ सन्तौ स्थावरजङ्गमं बहुना प्रकारेण पालयित्वा वर्द्धयतस्तथा मातापितरावतिथ्याऽऽचार्य्यो च सन्तानाञ्चिष्याँश्च संरक्ष्य विद्यासुशिक्षाभ्यां वर्द्धयेताम्॥२॥

पदार्थ:-हे (द्यावापृथिवी) द्यावापृथिवी के समान वर्तमान मातापितरो! जैसे (अचरन्ती) इधर-उधर अपनी कक्षा को छोड़ कर न जानेवाले (अपदी) पैरों से रहित (द्वे) दोनों द्यावापृथिवी (भूरिम्) बहुत (पद्वन्तम्) पगवाले (चरन्तम्) चलते हुर्र्स (पर्भम्) कार्य्यरूप जगत को (पित्रो:) माता-पिता के (उपस्थे) गोद में नित्य (सूनुम्) पुत्र के (न) समान (द्वाते) धारण करते हैं, वैसे (अभ्वात्) मिथ्याचरण से उत्पन्न हुए दु:ख से (न:) हम लोगों की (स्थानम्) रक्षा करो॥२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुष्तोपमालङ्कार है। जैसे भूमि-सूर्य दृढ़ होते हुए स्थावर, जङ्गम, चर, अचर, जगत् को बहुत प्रकृष्ठ से पाल के बढ़ाते हैं, वैसे माता, पिता अतिथि, आचार्य्य, सन्तान और शिष्यों की अच्छे प्रकार रक्षा कर विद्या और उन्नम शिक्षा से बढ़ावें॥२॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

प्रिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

अनेहो द्भार्तिसुर्वे हुवे स्वर्वदव्धं नमस्वत्।

तद्रोद्रमी जनेपतं जरित्रे द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात्॥३॥

अनिहः। दोत्रम्। अदितेः। अनुर्वम्। हुवे। स्वःऽवत्। अवधम्। नर्मस्वत्। तत्। रोदुसी इति। जनयतम्। जुरित्रे। द्यावा। रक्षतम्। पृथिवी इति। नः। अभ्वात्॥३॥ अष्टक-२। अध्याय-५। वर्ग-२-३

मण्डल-१। अनुवाक-२४। सूक्त-१८५

१८९७

पदार्थ:-(अनेहः) अहन्तव्यम् (दात्रम्) दानम् (अदितेः) पृथिव्याः सूर्यस्य वा (अनर्वम्) अविद्यमानाश्वम् (हुवे) स्वीकुर्वे (स्वर्वत्) सुखवत् (अवधम्) अमरणम् (नमस्वत्) नमः प्रशस्तम्त्रं विद्यते यस्मिँस्तत् (तत्) (रोदसी) अहोरात्राविव (जनयतम्) (जिरत्रे) स्तुतिकर्त्रे (द्यावा) (रक्षतम्) सूर्य्यभूमी (नः) अस्मान् (अभ्वात्)॥३॥

अन्वय:-अहमदितेरनेहोऽनर्वं स्वर्वदवधं नमस्वद्दात्रं हुवे। हे रोदसी इव वर्त्तमानौ माल्लापितसै! सद्दात्रं जिरत्रे मदर्थञ्जनयतम्। हे द्यावापृथिवीव वर्त्तमानौ मातापितरौ! नोऽस्मानभ्वाद्रक्षतम्॥३॥

भावार्थ:-ये इमे भूमिसूर्य्योऽन्ये च प्रत्यक्षाः पदार्था दृश्यन्ते तेऽविन्यशिनोऽनीदेः कारणाज्जाता इति वेद्यम्॥३॥

पदार्थ:-मैं (अदिते:) पृथिवी वा सूर्य के (अनेहः) न विनाशने योग्य (अन्वेम्) जिसमें अश्व का सम्बन्ध नहीं ऐसे (स्वर्वत्) सुखयुक्त तथा (अवधम्) जिसका नाश मही (नम्बत्) जिसमें प्रशंसित अन्न विद्यमान उस (दात्रम्) दानपात्रमात्र का (हुवे) स्वीकार करता हूँ। हे (रादसी) दिन रात्रि के समान वर्तमान माता-पिताओ! (तत्) उस दान कर्म को (जिरत्रे) स्तुति करते हुए मेरे लिये (जनयतम्) उत्पन्न करो। हे (द्यावापृथिवी) द्यावापृथिवी के समान वर्तमान माता किताओं! (नः) हम लोगों को (अभ्वात्) अधर्म्म से (रक्षतम्) बचाओ॥३॥

भावार्थ:-जो ये भूमि-सूर्य और प्रत्यक्ष प्रवर्थि दीखते हैं, वे अविनाशी अनादिकारण से हुए हैं, ऐसा जानना चाहिये॥३॥

पुनर्दृष्टान्तर्मत्द्यावापुष्टिवीविषयमाह।।

फिर दृष्टान्त प्राप्त द्यालापृषिकी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अर्तप्यमाने अवसार्वन्ती अनु साम सदसी देवपुत्रे।

उभे देवानां मुभयेभिरह्यां द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात्॥४॥

अर्तप्यमाने इति। अर्वामा अर्वन्ती इति। अर्नु। स्यामा रोर्दमी इति। देवपुत्रे इति देवऽपुत्रे। उभे इति। देवानाम्। उभयेभिः। अह्नाम् स्थानम्। पृथिवी इति। नः। अभ्वात्॥४॥

पदार्थ:-(अतप्यमाने) सन्तापरहिते (अवसा) रक्षणादिना (अवन्ती) रक्षित्र्यौ (अनु) (स्याम) भवेम (रोदसी) यकाशभूमी (देवपुत्रे) देवस्य परमात्मनः पुत्रवद्वर्त्तमाने (उभे) (देवानाम्) दिव्यानां जलादीनाम् (उभयोगिः) स्थावरजङ्गमैः सह (अह्नाम्) दिनानाम् (द्यावा) (रक्षतम्) (पृथिवी) (नः) (अभ्वात्) ।

अन्वय:-हे मनुष्या! यथाऽतप्यमानेऽवसावन्ती देवपुत्रे उभे रोदसी अह्नां मध्य उभयेभि: सह देवानां जीवानां रक्षतृस्तिश्रा हे आवापृथिवीव वर्त्तमानौ मातापितरौ! युवामभ्वान्नो रक्षतं येन वयं सुखिनोऽनुष्याम॥४॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा पृथिव्यादयः पदार्थाः सर्वं स्थावरजङ्गमं पालयन्ति तथा मातापित्राऽचार्य्यराजादयः प्रजा रक्षन्तु॥४॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! जैसे (अतप्यमाने) सन्तापरहित (अवसा) रक्षा आदि से (अवनी) रक्षी करती हुई (देवपुत्रे) देव जो परमात्मा उसके पुत्र के समान वर्तमान (उभे) दोनों (रोदसी) प्रकाशभूमि (अह्नाम्) दिनों के बीच (उभयेभि:) स्थावर और जङ्गमों के साथ (देवानाम्) दिव्यू जलादि पदार्थों के जीवन की रक्षा करते हैं, वैसे हे (द्यावा, पृथिवी) आकाश और पृथिवी के समान वर्तमान माता-पिताओ! तुम दोनों (अभ्वात्) अपराध से (न:) हमारी (रक्षतम्) रक्षा कीजिये, जिससे हम लोग (अनु, स्थाम) पीछे सुखी होवें॥४॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे पृथिवी और पृप्तर्थ समस्त स्थावर-जङ्गम की पालना करते हैं, वैसे माता, पिता, आचार्य्य और राजा आदि प्रजा की रक्षा करें॥४॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।

संगच्छमाने युवती समन्ते स्वसारा जामी पित्रीकृपस्या

अभिजिम्नी भुवनस्य नाभिं द्यावा रक्षतं पृष्ठिवी चा अभ्वति॥५॥२॥

संगच्छंमाने इति सम्ऽगच्छंमाने। युवती इति। समन्ते इति सम्ऽअन्ते। स्वसारा। जामी इति। पित्रोः। उपऽस्थे। अभिजिन्नेन्ती इत्यंभिऽजिन्नेन्ती। भुवनस्य। स्मिन्। स्वात्मा रक्षेतम्। पृथिवी इति। नः। अभ्वति॥५॥

पदार्थ:-(संगच्छमाने) सहगामिन्वी (युवती) युवाऽवस्थास्थे स्त्रियाविव (समन्ते) सम्यगन्तो ययोस्ते (स्वसारा) भगिन्यौ (जामी) कन्ये इव (पित्रो:) (उपस्थे) अङ्के (अभिजिघ्नन्ती) (भुवनस्य) लोकजातस्य (नाभिम्) नहनं मध्यस्थमाकर्षणाख्यं बन्धनम् (द्यावा) (रक्षतम्) (पृथिवी) (न:) (अभ्वात्)॥५॥

अन्वय:-पित्रोरुपस्थे संनिच्छमाने जामी सुवती समन्ते स्वसारेव भुवनस्य नाभिमभिजिघ्रन्ती द्यावापृथिवी इव हे मातापितरौ! युवां नोऽस्मानभूतद्रभूतप्॥५॥

भावार्थ:-अत्र वार्षकलेप्तापमालङ्कार:। हे मनुष्या! यथा ब्रह्मचर्य्येण कृतविद्यौ यौवनस्थौ सञ्जातप्रीती कन्यानुरौ सुखिन्रौ स्यातां तथा द्यावापृथिव्यौ जगद्धिताय वर्त्तेते॥५॥

पदार्थ्य: (पिन्नी:) माता-पिता की (उपस्थे) गोद में (संगच्छमाने) मिलाती हुई (जामी) दो कन्याओं के समाम वा (युवती) तरुण दो स्त्रियों के समान वा (समन्ते) पूर्ण सिद्धान्त जिनका उन दो (स्वसार्य) बहिनियों के समान (भुवनस्य) संसार के (नाभिम्) मध्यस्थ आकर्षण को (अभि, जिघ्नन्ती) गन्ध्य के समान स्वीकार करते हुये (द्यावा, पृथिवी) आकाश और पृथिवी के समान माता-पिताओ! तुम

अष्टक-२। अध्याय-५। वर्ग-२-३

मण्डल-१। अनुवाक-२४। सूक्त-१८५

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! जैसे ब्रह्मचर्य से विद्या सिद्धि किये हुए तरुण जिनको परस्पर पूर्ण प्रीति है, वे कन्या वर सुखी हों, वैसे द्यावापृथिवी जगत् के हित के लिये वर्तमान हैं॥५॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

उर्वी सद्मनी बृहती ऋतेने हुवे देवानामवसा जिनेत्री। दुधाते ये अमृतं सुप्रतींके द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात्॥६॥

उर्वी इति। सर्चनी इति। बृहुती इति। ऋतेने। हुवे। देवानाम्। अवसा। इति। देधाते इति। ये इति। अमृतम्। सुप्रतीके इति सुऽप्रतीके। द्यावा। रक्षतम्। पृथिवी इति। नः। अभ्वति। ६॥

पदार्थ:-(ऊर्वी) बहुविस्तीर्णे (सदानी) सर्वेषां निवासाऽधिकरणे (बृहुती) महत्यौ (ऋतेन) जलेन (हुवे) प्रशंसामि (देवानाम्) विदुषाम् (अवसा) रक्षणादिन् (जिनिन्ने) उत्पादियत्री (दधाते) (ये) (अमृतम्) जलम्। अमृतमित्युदकनामसु पठितम्। (निघं०११२) (सुप्रतीके) सुष्ठु प्रतीतिविषये (द्यावा) (रक्षतम्) (पृथिवी) (नः) (अभ्वात्)॥६॥

अन्वय:-हे मातापितरौ! ये उर्वी सद्मनी बृहती क्रितेनाञ्चसी देवानां जिनत्री सुप्रतीके द्यावापृथिवी यथामृतं दधातेऽहं हुवे तथाऽभ्वान्नोऽस्मान् युवां रक्षतम्॥६॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार्यः ये मोक्नपितरः सत्योपदेशेन सूर्यवद्विद्याप्रकाशयुक्ताः पृथिवीजलेन वृक्षानिव शरीरबलेन वर्द्धयन्त्रि, तू सर्वेष्) रक्षां कर्त्तुमर्हन्ति॥६॥

पदार्थ: - हे माता-पिताओ! (वे) जे (उर्वी) बहुत विस्तारवाली (सदानी) सबकी निवासस्थान (बृहती) बड़ी (ऋतेन) जल से और (अवसा) रक्षा आदि के साथ (देवानाम्) विद्वानों की (जिनत्री) उत्पन्न करनेवाली (सुप्रतीके) सुन्दर प्रतीति का विषय (द्यावा, पृथिवी) आकाश और पृथिवी (अमृतम्) जल को (द्याते) धारण करती हैं और मैं उनकी (हुवे) प्रशंसा करता हूँ, वैसे (अभ्वात्) अपराध से (न:) हम लोगों की तुम (रक्षतम्) रक्षा करो॥६॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में बाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो माता-पिता सत्योपदेश से सूर्य के समान विद्या प्रकाश से यूक्त सर्वग्रुण सम्भृत पृथिवी जैसे जल से वृक्षों को वैसे शारीरिक बल से बढ़ाते हैं, वे सबकी रक्षा कृरी को योग्य हैं॥६॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

डुर्की पृथ्वी बहुले दूरेअन्ते उप ब्रुवे नर्मसा युज्ञे अस्मिन्।

दुधाते ये सुभर्गे सुप्रतूर्ती द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात्॥७॥

उर्वी इति। पृथ्वी इति। बहुले इति। दूरेअन्ते इति दूरेऽअन्ते। उप। ब्रुवे। नर्मसा। युज्ञे। अस्मिन्। दुधाते(इति। ये इति। सुभगे इति सुऽभगे। सुप्रतूर्ती इति सुऽप्रतूर्ती। द्यावा। रक्षतम्। पृथिवी इति। नुः। अभ्वात्।

पदार्थ:-(उर्वी) बहुपदार्थयुक्ते (पृथ्वी) विस्तीर्णे (बहुले) ये बहूनि वस्तूनि सातो गृह्णाती: (दूरेअन्ते) (उप) (बुवे) उपदिशेयम् (नमसा) अन्नेन (यज्ञे) सङ्गन्तव्ये (अस्मिन्) संसारव्यवहार (दधाते) (ये) (सुभगे) सुष्ट्वैश्वर्य्यप्रापिके (सुप्रतूर्त्ती) अतितूर्णगती (द्यावा) (रक्षतम्) (पृथिवी) (नः) (अभ्वात्)॥७॥

अन्वय:-दूरेअन्ते बहुले उर्वी पृथ्वी सुभगे सुप्रतूर्ती द्यावापृथिवी अस्मिन् यज्ञ नमसाऽहमुपब्रुवे ये च सुभगे सुप्रतूर्ती द्यावापृथिवी दधाते ते द्यावापृथिवीव वर्त्तमानौ हे मातापितरौ! नोऽस्मान्ध्युद्धस्तम्।

भावार्थः – यथा पृथिव्याः समीपे चन्द्रलोकभूमिस्तथा सूर्यलोकीभूमिर्दूरे। एवं सर्वत्रैव प्रकाशाऽन्धकाररूपं लोकद्वन्द्वं वर्त्तते ताभ्यां यथोन्नतिः स्यात् तथ्यासर्वैः प्रश्ववितव्यम्॥७॥

पदार्थ:-(दूरेअन्ते) दूर में और समीप में (बहुले) बहुत वस्तुओं को ग्रहण करनेवाली (उर्वी) बहुत पदार्थयुक्त (पृथ्वी) बड़ी आकाश और पृथिवी का (अस्मिन्) इस संसार के व्यवहार (यज्ञे) जो कि सङ्ग करने योग्य उसमें (नमसा) अत्र के साथ मैं (उप, बुवे) उपदेश करता हूँ और (ये) जो (सुभगे) सुन्दर ऐश्वर्य की प्राप्ति करनेवाली (सुप्रतूर्त्ती) अतिशीघ्र गित्रयुक्त आकाश और पृथिवी (दधाते) समस्त पदार्थों को धारण करते हैं, उन (द्यावापृथिवी) आकाश और पृथिवी के समान वर्त्तमान माता-पिताओ! (न:) हमको (अभ्वात्) अपराध से (रक्षतमू) बचाओ। अ

भावार्थ:-जैसे पृथिवी के समीप में चिन्द्रक्ति की भूमि है, वैसे सूर्य लोकस्थ भूमि दूर में हैं, ऐसे सब जगह प्रकाश और अन्धकाररूप लोकह्रय वर्तमान है, उन लोकों से जैसे उन्नति हो, वैसा यत्न सबको करना चाहिये॥७॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर इसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

देवान्वा यच्चकृमा कच्चिदागः सर्खायं वा सद्मिज्जास्पतिं वा। इयं धीभूशा अवसानमेषां द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात्॥८॥

पह. पूर्णतयो अन्वय का अनुसरण नहीं किया गया है। सं०

अष्टक-२। अध्याय-५। वर्ग-२-३

मण्डल-१। अनुवाक-२४। सूक्त-१८५

१९०१

देवान्। वा। यत्। चुकृम। कत्। चित्। आर्गः। सर्खायम्। वा। सर्दम्। इत्। जाःपंतिम्। वा। इयम्। धीः। भूयाः। अवऽयानेम्। एषाम्। द्यावां। रक्षंतम्। पृथिवी इति। नः। अभ्वति्।।८॥

पदार्थ:-(देवान्) विदुष: (वा) पक्षान्तरे (यत्) (चकृम) कुर्याम। अत्रान्येषामपीति दीर्घ: (कत्) (चित्) (आगः) अपराधम् (सखायम्) मित्रम् (वा) (सदम्) सदा (इत्) एव (जास्पतिप्) आयायाः पतिम् (वा) (इयम्) (धीः) कर्म्म प्रज्ञा वा (भूयाः) (अवयानम्) अपगमनं निरसनम् (एषाम्) पदार्थानां मध्ये (द्यावा) (रक्षतम्) (पृथिवी) (न) (अभ्वात्)॥८॥

अन्वय:-यत् किच्चिद्देवान् वा सखायं वा सदिमिज्जास्पितं या प्रत्यागश्चकृमैषामपस्धानामियं भ्रीरवयानं भूया:। हे द्यावापृथिवीव वर्त्तमानौ मातापितरौ! नोऽस्मानभ्वाद्रक्षतम्॥८॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। ये मातापितर: स्मृतीना त्रिजेलवन्न पालयन्ति, ते स्वधर्मच्युता: सन्ति ये च पितृत्र रक्षन्ति ते सन्ताना अपि विधर्माण: सन्ति। ८॥)

पदार्थ:-(यत्) जो (कच्चित्) कुछ (देवान्) विद्वानों (वा) बा (सखायम्) मित्र (वा) वा (सदिमत्) सदैव (वा) वा (जास्पितम्) स्त्री की पालना करनेविले के भी प्रति (आगः) अपराध (चकुम) करें (एषाम्) इन सब अपराधों का (इयम्) यह (धीः) किमें वा क्वजान (अवयानम्) दूर करनेवाला (भूयाः) हो। हे (द्वावा, पृथिवी) आकाश और पृथिवी के समान वर्तमान माता-पिताओ! (नः) हम लोगों को (अभ्वात्) अपराध से (रक्षतम्) बचाओ॥॥।

भावार्थ: - इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो माता-पिता सन्तानों को अन्न-जल के समान नहीं पालते, वे अपने धर्म्म से गिरते हैं और जो माता-पिताओं की रक्षा नहीं करते, वे सन्तान भी अधर्मी होते हैं।। ८।।

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

उभा शंसा नर्या मार्मिच्छामुभे मार्गेती अवसा सचेताम्।

भूरि चिद्य: मुदाम्तरायेषा मदंन इषयेम देवा:॥९॥

उभा। शंसां। नयो। मीप्। अविष्टाम्। उभे इति। माम्। ऊती इति। अवसा। सचेताम्। भूरि। चित्। अर्यः। सुदाःऽतराय। इषा। मूर्दन्तः। इष्युम्। देवाः॥९॥

पदार्थ: (उभा) उभा (शंसा) प्रशंसिता (नर्था) नृषु साधु (माम्) (अविष्टाम्) रक्षतम् (उभे) (माम्) (क्रती) स्ववहारिवद्यारक्षे (अवसा) रक्षादिना (सचेताम्) प्राप्नुताम् (भूरि) बहु (चित्) इव (अर्थ:) विश्विपन्तः (सुदास्तराय) अतिशयेन दात्रे (इषा) इच्छया (मदन्तः) सुखयन्तः (इषयेम) प्राप्नुयाम (देवाः) विद्वासः॥९॥

अन्वय:-उभा शंसा नर्य्या द्यावापृथिवीव मातापितरौ मामविष्टां मामुभे ऊती अवसा सचेताम्। हे देवा! अर्य्य सुदास्तराय भूरि चिन्मदन्तो वयमिषेषयेम॥९॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। यथा सूर्याचन्द्रमसौ सर्वं संयुज्य प्राणिन सुक्रियतः) यथार्थधनाढ्यो वैश्यो बह्वत्रादिकं दत्वा भिक्षुकान् प्रीणाति तथा विद्वांस: सर्वेषां प्रीणने प्रवर्सेस्त्।। ९॥

पदार्थ:-(उभा) दोनों (शंसा) प्रशंसा को प्राप्त (नर्या) मनुष्यों में उत्तम द्याविष्धिकों के समान माता-पिता (माम्) मेरी (अविष्टाम्) रक्षा करें और (माम्) मुझे (उभे) दोनों (ऊत्ती) रक्षाएं (अवसा) औरों की रक्षा आदि के साथ (सचेताम्) प्राप्त होवें। हे (देवा:) विद्वानो! (अर्थ:) सम्पर्श (सुदास्तराय) अतीव देनेवाले के लिये (भूरि, चित्) बहुत जैसे देवे वैसे (मदन्त:) सुखी होते हुए हम लोग (इषा) इच्छा से (इषयेम) प्राप्त होवें॥९॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य्य और चन्द्रमा सबका संयोग कर प्राणियों को सुखी करते हैं तथा जैसे धनाढ्य वैश्य बहुत अन्न आदि पदार्थ देकर भिखारियों को प्रसन्न करता है, वैसे विद्वान् जन सबके प्रसन्न करने में प्रवृत्त होवें॥९११

प्रकृतविषयेऽभीष्टवक्तव्यविषयमाह्य

चलते हुए विषय में चाहे हुए कहने योग्य विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

ऋतं दिवे तद्वीचं पृथिव्या अभिश्रावार्य प्रथम सुमेधाः।

पातामवद्याद् दुरितादुभीके पिता मृति च रक्ष्रतामवीभि:॥१०॥

ऋतम्। दिवे। तत्। अवोचम्। पृथिको अभिऽश्राकाये। प्रथमम्। सुऽमेधाः। पाताम्। अवद्यात्। दुःऽङ्गतत्। अभीके। पिता। माता। च। रक्षताम्। अवःऽभिः । १०॥)

पदार्थ:-(ऋतम्) सत्यम् (दिवे) दिव्यसुखाय (तत्) (अवोचम्) उपदिशेयं वदेयं च (पृथिव्यै) पृथिवीव वर्त्तमानायै स्त्रियै (अभिज्ञावाय) य अभितः शृणोति श्रावयित वा तस्मै (प्रथमम्) पुरः (सुमेधाः) सुष्ठु प्रज्ञाः (पाताम्) रक्षताम् (अवद्यात्) निद्यात् (दुरितात्) दुष्टाचरणात् (अभीके) कमिते (पिता) पालकः (माता) मान्यकर्भे (हो) (रक्षाताम्) (अवोभिः) रक्षणादिभिः॥१०॥

अन्वय:-हे मनुष्या! (यथा सुमेधा अहमभिश्रावाय पृथिव्ये च यत् प्रथममृतमवोचं तिद्दवे चाऽभीके वर्त्तमानेऽवद्याद् दुरिक्रितौ पातां तथा पिता माता चावोभि: रक्षताम्॥१०॥

भावार्ष:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। उपदेशकेन उपदेश्यान् प्रत्येवं वाच्यं यादृशं प्रियं लोकहितं सत्यं मेपीच्येत तथा युष्माभिरपि वक्तव्यं यथा पितर: स्वसन्तानान् सेवन्ते तथैतेऽपत्यैरपि सदा सेवनीयार्थ।१०॥

पद्मर्थ:-हे मनुष्यो! जैसे (सुमेधा:) सुन्दर बुद्धिवाला मैं (अभिश्रावाय) जो सब ओर से सुनता ब्रिस्चार्व उसके लिये और (पृथिव्यै) पृथिवी के समान वर्त्तमान क्षमाशील स्त्री के लिये जो (प्रथमम्) अष्टक-२। अध्याय-५। वर्ग-२-३

मण्डल-१। अनुवाक-२४। सूक्त-१८५

प्रथम (ऋतम्) सत्य (अवोचम्) उपदेश करूं और कहुं (तत्) उसको (दिवे) दिव्य उत्तमवाले के लिये भी उपदेश करूं कहुं जैसे (अभीके) कामना किये हुए व्यवहार में वर्त्तमान (अवद्यात्) निन्दा योग्य (दुरितात्) दृष्ट आचरण से उक्त दोनों (पाताम्) रक्षा करें, वैसे (पिता) पिता (च) और (भाता) सोती (अवोभि:) रक्षा आदि व्यवहारों से मेरी (रक्षताम्) रक्षा करें॥॥१०॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। उपदेश करनेवाले को उपदेश सुनने योग्यों के प्रति ऐसा कहना चाहिये कि जैसा प्रिय लोकहितकारी वचन मुझसे कहा जावे, वैसे आप लोगो को भी कहना चाहिये जैसे माता-पिता अपने सन्तानों की सेवा करते हैं, वैसे ये सन्तानों की भी सदा सेवने योग्य हैं॥१०॥

अथात्र सत्यमात्रोपदेशविषयमाह।।

अब चलते हुए विषय में सत्यमात्र के उपदेश विषय को अगले मन्त्रामें कहा है।।

इदं द्यावापृथिवी सुत्यमस्तु पितुर्मातुर्यदिहोपेबुवे वास् भूतं देवानामवुमे अवीभिर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम्॥ १९॥३॥

इदम्। द्यावापृथिवी इति। सत्यम्। अस्तु। पितः। मितः। यतु। द्वेहः। उपुऽब्रुवे। वाम्। भूतम्। देवानाम्। अवमे इति। अवै:ऽभि:। विद्यामे। इषम्। वृजनेम्। जीरऽदिनुम्। १९।।

पदार्थ:-(इदम्) जगत् (द्यावापृथिवी) क्रिसुदेन्त्रिक्षे/(सत्यम्) (अस्तु) (पितः) पालक (मातः) मान्यप्रदे (यत्) (इह) (उपबुवे) (वाम्) युवाम् (भूतम्) निष्पन्नम् (देवानाम्) विदुषाम् (अवमे) रक्षितव्ये व्यवहारे (अवोभि:) पालनै: (विद्याम) (दुधम्) (वृजुनुम्) (जीरदानुम्)॥११॥

अन्वय:-हे द्यावापृथिवी इव वर्त्तमूने मातः पिताः देवानामवमे भूतं यदिह वामुपब्रुवे तदिदं सत्यमस्तु येन वयं युवयोरवोभिरिषं वृजनं जीरदानुं च विद्यामृ॥११

भावार्थ:-पितरः सन्तानान् प्रत्येवस्पदिशेयुर्यान्यस्माकं धर्म्याणि कर्माणि तान्येव युष्माभिः सेवनीयानि नो इतराणि सिन्तानाः पितृन् प्रत्येवं वदन्तु यान्यस्माकं सत्याचरणानि तान्येव युष्माभिराचरतिव्यानि नाली निष्पीतामि। ११॥

अत्र द्यावापृथिवीदृष्ट्रिन्तेने जन्याजनककर्मवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिर्वेद्या॥

🛆 इति पञ्चाशीत्युत्तरं शततमं १८५ सूक्त तृतीयो ३ वर्गश्च समाप्त:॥

पदार्थ दे (द्यावापृथिवी) आकाश और पृथिवी के समान वर्त्तमान (मात:, पित:) माता पिताओ! (देंबानाम) विद्वानों के (अवमे) रक्षादि व्यवहार में (भूतम्) उत्पन्न हुए (यत्) जिस व्यवहार से (इह) यहाँ (वाम्) तुम्हारे (उपबुवे) समीप कहता हूँ (तत्) सो (इदम्) यह (सत्यम्) सत्य (अस्तु) हो, जिस्सी हम तुस्हारी (अवोभि:) पालनाओं से (इषम्) इच्छासिद्धि (वृजनम्) बल और (जीरदानुम्) जीवन क्री (विद्याप) प्राप्त होवें॥११॥

भावार्थ:-माता-पिता जब सन्तानों के प्रति ऐसा उपदेश करें कि जो हमारे धर्मयुक्त कर्म हैं, वे ही तुमको सेवने चाहियें और नहीं तथा सन्तान पिता-माता आदि अपने पालनेवालों से ऐसे कहें कि जो हमारे सत्य आचरण हैं, वे ही तुमको आचरण करने चाहियें और उनसे विपरीत नहीं॥११॥

इस सूक्त में द्यावापृथिवी के दृष्टान्त से उत्पन्न होने योग्य और उत्पादक के कर्मी का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गिति है, यह जानना चाहिये॥

यह एक सौ पचासीवाँ १८५ सूक्त और तीसरा ३ वर्ग समाप्त हुआ।

आ न इत्येकादशर्च्चस्य षडशीत्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य अगस्त्य ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। १,८,९ त्रिष्टुप्। २,४ निचृत् त्रिष्टुप्। ११ भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। ३,५,७ भुरिक्

पङ्क्ति:। ६ पङ्क्ति:। १० स्वराट् पङ्क्तिश्छन्द:। पञ्चम: स्वर:॥

अथ विद्वद्विषय: प्रोच्यते॥

अब ग्यारह ऋचावाले एक सौ छयासी सूक्त का आरम्भ है। इसके आरम्भ से विद्वा<mark>र्ती का विषय</mark> कहा है।।

आ न इळाभिर्विदथें सुशस्ति विश्वानरः सविता देव एतु। अपि यथां युवानो मत्स्र्या नो विश्वं जगदभिपित्वे मनीषा॥ १०००

आ। नुः। इळाभिः। विद्ये। सुऽश्रस्ति। विश्वानरः। सुविता। देवः १ एतुः। असि यथा। युवानुः। मत्स्य। नुः। विश्वम्। जर्गत्। अभिऽपित्वे। मुनीषा॥ १॥

पदार्थ:-(आ) समन्तात् (नः) अस्मान् (इळाभिः) अन्नादिभित्रिम्भिस्सह वा (विद्ये) विज्ञानमये व्यवहारे (सुशस्ति) सुष्ठु प्रशंसिताभिः। अत्र सुपां सुलुगिति भिसो लुक्ने (विश्वानरः) यो विश्वानि सर्वाणि भूतानि नयति सः (सविता) सूर्य इव स्वप्रकाशमान ईश्वरः (देवः) देदीप्यमानः (एतु) प्राप्नोतु (अपि) (यथा) (युवानः) यौवनावस्थां प्राप्ताः (मत्सथ) आनन्दत्। अत्रान्येषामपीति दीर्घः। (नः) अस्मान् (विश्वम्) सर्वम् (जगत्) (अभिपित्वे) अभितः प्राष्ट्राक्ष्य (मनोष्ठा) प्रज्ञया॥१॥

अन्वयः-हे विद्वन्! भवान् यथा विश्वानग्रे देवः सिंद्रुता सुशस्त्यभिपित्वे विदथे विश्वं जगत् प्राप्तोऽस्ति तथेळाभिर्न आ एतु। हे युवानो! यथा यूयं मनीषाङ्गस्मिन् सत्ये व्यवहारे मत्सथ तथा नोऽस्मानप्यानन्दयत॥१॥

भावार्थ:-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालक्कारो यथा परमात्मा पक्षपातं विहाय सर्वेषां न्यायं करोति सर्वेषु तुल्यां प्रीतिं च तथा विद्विद्धरापे भवितच्यं यथा युवानः स्वतुल्याभिर्हद्याभिर्युवतीभिस्सह विवाहं कृत्वा सुखयन्ति तथा विद्वांसो विद्वार्थनो विदुषः कृत्वा प्रसन्ना भवन्ति॥१॥

पदार्थ:-हे विद्वन्! अप जैसे (विश्वानरः) सब प्राणियों को पहुँचानेवाला अर्थात् अपने-अपने शुभाऽशुभ कर्मों के परिणास करनेवाला (देवः) देदीप्यमान अर्थात् (सविता) सूर्य के समान आप प्रकाशमान ईश्वर (सुशस्ति) सन्द्रा प्रशंसाओं से (अभिपित्वे) सब ओर से पाने योग्य (विद्ये) विज्ञानमय व्यवहार में (विश्वाम्) समग्र (जगत्) को प्राप्त है, वैसे (इडाभिः) अन्नादि पदार्थ वाणियों के साथ (नः) हम लोगों को (आ, एतु) प्राप्त हो आवे। हे (युवानः) यौवनावस्था को प्राप्त तरुण जनो! (यथा) जैसे तुम (मनीका) उत्तम बुद्धि से इस व्यवहार में (मत्सथ) आनन्दित होवो वैसे (नः) हमको (अपि) भी आनन्दित कोजिये॥ श॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे परमात्मा पक्षपात को छोड़ के स्राथ और सभी में समान प्रीति करता है, वैसे विद्वानों को भी होना चाहिये। जैसा युवावस्थावाले

पुरुष अपने समान मन को प्यारी युवती स्त्रियों के साथ विवाह कर सुखयुक्त होते हैं, वैसे विद्वान् जने विद्यार्थियों को विद्वान् कर प्रसन्न होते हैं॥१॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

आ नो विश्व आस्क्रा गमन्तु देवा मित्रो अर्यमा वर्मणः सजोषाः। भुवन्यर्था नो विश्वे वृधासः कर्रन्त्सुषाहां विश्वरं न शर्वः॥२॥

आ। नुः। विश्वे। आस्क्राः। गुमुन्तु। देवाः। मित्रः। अर्युमा। वर्रुणः। सुऽजोर्षाः। भुवन्। यथा। नुः। विश्वे। वृधासः। कर्रन्। सुऽसहा। वि््रुरम्। न। शर्वः॥२॥

पदार्थ:-(आ) (नः) (विश्वे) (आस्क्राः) शत्रुबलस्य क्रिमिस्रिः (गमन्तु) समन्तात् प्राप्नुवन्तु (देवाः) विद्वांसः (मित्रः) प्राणवद्वर्त्तमानः (अर्थमा) न्यायकारी (वस्णः) अतिश्रेष्ठः (सजोषाः) समानप्रीतिसेवनः (भुवन्) भवेयुः (यथा) (नः) अस्मान् (विश्वे) सर्वे (वृथासः) सुखवर्द्धकाः (करन्) कुर्वन्तु (सुषाहा) सुष्ठु साहस्सहनं यस्य सः (विथुरम्) (न) ह्व (श्वः) खलम्॥२॥

अन्वय:-हे मनुष्यास्तथा मित्रोर्यमा वरुणस्सजोषा आस्त्रितिवि देवा मोऽस्मानागमन्तु यथा विश्वे ते नो वृधासो भुवन्त्सुषाहा विथुरं न शव: करन्॥२॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। येन मार्गेण किद्वांसो गच्छेयुस्तस्मिन्नेव सर्वे गच्छन्तु, यथाप्ता स्वात्मवदन्येषां सुखदु:खानि जानन्ति तथैव सर्वेभेषित्तव्यम्॥२॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! वैसे (मित्र प्राप के समान वर्तमान (अर्थमा) न्यायकारी (वरुण:) अतिश्रेष्ठ (सजोषा:) समान प्रीति का स्नेवन रखनेवाला और (आस्क्रा:) शत्रुबल को पादाक्रान्त करने पाद तले दबाने वाले (विश्वे) समस्त (देवा:) विद्वान् जन (नः) हम लोगों को (आ, गमन्तु) सब ओर से प्राप्त होवें कि (यथा) जैसे (विश्वे) समस्त वे विद्वान् (नः) हमारा (वृधासः) सुख बढ़ानेवाले (भुवन्) होवें और (सुषाहा) सुन्दर जिसका सहन क्षाणा शान्तिपन वह जन (विश्वुरम्) व्यथा पीड़ा देते हुए पदार्थ के (न) समान तीव्र (शव्हें) क्रिस्त् (क्रिप्त्) करें॥२॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जिस मार्ग से विद्वान् जन चलें, उसी से सर्व लोग चलें। जैसे आप्त शास्त्रज्ञ विद्वान् जन औरों के सुख-दु:खों को अपने तुल्य जानते हैं, वैसे ही सबको होना चाहिये॥२॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

ष्रेष्ठे वो अतिथिं गृणीषेऽग्निं शुस्तिभिस्तुर्वणिः सुजोषाः।

अष्टक-२। अध्याय-५। वर्ग-४-५

मण्डल-१। अनुवाक-२४। सूक्त-१८६

१९०७

असुद्यर्था नो वर्रुणः सुकोतिरिषेश्च पर्षदिरगूर्तः सूरिः॥३॥

प्रेष्ठम्। वः। अतिथिम्। गृणोषे। अग्निम्। शृस्तिऽभिः। तुर्वणिः। सुऽजोषीः। असेत्। यथी। नः वर्रणः। सुऽकीर्तिः। इषैः। चः। पूर्षत्। अरिऽगूर्तः। सूरिः॥३॥

पदार्थ:-(प्रेष्ठम्) अतिशयेन प्रियम् (व:) युष्मान् (अतिथिम्) अतिथिवद्वर्त्तमानम् (गृणीषे) प्रशंससि (अग्निम्) विद्ववद्वर्त्तमानं विद्याप्रकाशितं विद्वांसम् (शस्तिभिः) प्रशंसाभिः (तुर्विभिः) सद्योगामी (सजोषाः) समानप्रीतिः (असत्) भवेत् (यथा) (नः) अस्माकम् (वरुणः) वरो विद्वान् (सुकीर्तिः) पुण्यप्रशंसः (इषः) अन्नानि (च) इच्छाः (पर्षत्) सिञ्चेत् (अरिगूर्तः) अरिषु शत्रुषु गूर्ते उद्यमी (सूरिः) अतिप्रवीणो विद्वान्॥३॥

अन्वयः-हे विद्वन्! यथा तुर्विणः सजोषाः सँस्त्वं शस्तिभिरग्नि प्रेष्ठभितिर्थे गृणीषे यथाऽरिगूर्तः सुकीर्तिर्वरुणो नोऽस्मानिषश्च पर्षत् सूरिरसत्तथा वो युष्मान् प्रति वर्त्तेत॥३॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। ये गृहस्था: प्रीत्याऽऽप्तानृतिर्थि च सेवन्ते धर्म्ये व्यवहार उद्योगिनो भवन्ति, ते याथातथ्यं विज्ञानं प्राप्यं श्रीमन्तो भवन्ति॥३॥

पदार्थ: - हे विद्वान्! जैसे (तुर्विण:) शीघ्र जाने और (स्जीषा:) समान प्रीति रखनेवाले आप (शस्तिभि:) प्रशंसाओं से (अग्निम्) अग्नि के समान वर्तिमान विद्वा से प्रकाशित (प्रेष्ठम्) अतिप्रिय (अतिथिम्) अतिथिवद्वर्त्तमान विद्वान् की (गृणीषे) प्रशंसा कर्त्ते हो वा (यथा) जैसे (अरिगूर्तः) शत्रुओं में उद्यम करने और (सुकीर्तिः) पुण्य प्रशंसावाली (वरुणः) उत्तम विद्वान् (नः) हम लोगों को (इषः) अत्रादि पदार्थ (च) और इच्छाओं को (पर्षत्) सींचे व्य (सूरिः) अतीव प्रवीण विद्वान् (असत्) हो वैसे (वः) तुम लोगों के प्रति वर्तें॥३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालक्कार है। जी गृहस्थजन प्रीति के साथ श्रेष्ठ, उत्तम शास्त्रज्ञ विद्वानों और अतिथि की सेवा करते हैं, भूमियुक्त व्यवहार में उद्योगवान् होते वे यथार्थ विज्ञान को पाकर श्रीमान् होते हैं॥३॥

अ्थ्र विद्यां प्राप्योद्योगकरणविषयमाह॥

अब विद्या का प्रार्कर उद्योग करने के विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

उपं व एषे नर्मसा जिंगीषोषासानक्तां सुदुर्धेव धेनु:।

सुमार्ने अहेस्त्रिमिमानो अर्कं विषुरूपे पर्यसि सस्मिन्नूर्धन्॥४॥

उर्यो वृः। आ। ईषे। नर्मसा। जिगीषा। उषासानक्तां। सुदुर्घाऽइव। धेनुः। समाने। अर्हन्। विऽिममानः। अर्कम्। विषुऽरूपे। पर्यसि। सस्मिन्। अर्धन्॥४॥

पदार्थ:-(उप) (व:) युष्मान् (आ) समन्तात् (ईषे) (नमसा) अन्नादिना (जिगीषा) जेतुमिच्छा उषासानक्ता) अहर्निशम् (सुदुघेव) यथा सुष्ठु कामधुक् (धेनु:) वाक् (समाने) एकस्मिन् (अहन्) अहनि

दिने (विमिमान:) विशेषेण निर्माता सन् (अर्कम्) सत्कर्त्तव्यमन्नम् (विषुरूपे) विरुद्धस्वरूपे (पर्यास) उदके (सिस्मन्) सर्वस्मिन्। अत्र छान्दसो वर्णलोपो वेति रेफवकारलोपः। (अधन्) ऊधनि॥४॥

अन्वय:-समानेऽहन्नर्कं विमिमानोऽहं उषासानक्तेव धेनुस्सुदुघेव नमसा जिगीषा यथा स्यात्तर्था वो सुप्मान्। विषुरूपे पयसि सस्मिन्नूधन् व उपेषे॥४॥

भावार्थ:-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। ये रात्रिदिवसवद्वर्त्तमाने विद्वाठिवदी विदित्वा सर्विस्मिन् समय उद्योगं कृत्वा धेनुवत् प्राणिन उपकृत्य दुष्टान् विजयन्ते, ते दुग्धे घृतसिव संसारे भारभूता भवन्ति॥४॥

पदार्थ:-(समाने) एकसे (अहन्) दिन में (अर्कम्) सत्कार करने योग्य अन्न को (विमिमानः) विशेषता से बनानेवाला मैं (उषासानक्ता) दिन-रात्रि के समान वा (ध्रेनुः) वाणी जो (सुदुघेव) सुन्दर कामना पूरण करनेवाली उसके समान (नमसा) अन्नादि पदार्थ से (जिंगीषा) जीतने की इच्छा जैसे हो वैसे (विषुरूपे) नाना प्रकार के रूपवाले (पयिस) जल और (सिस्पन्) समान (अधन्) दूध के निमित (वः) तुम लोगों के (उप, आ, ईषे) समीप सब ओर से प्राप्त होता हूँ॥ अ।

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपम्लिङ्कार हैं। जो रात्रि-दिवस के समान वर्त्तमान विद्या अविद्या को जान कर, सब समय में उद्योग कर, धनु के समान समान प्राणियों का उपकार कर, दुष्टों को जीतते वे दूध में घी के तुल्य संसार में सारभूत होते हैं। ४॥

पुनस्तुमेव विषयमाहै॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

उत नोऽहिर्बुध्न्यो ३ मयस्कः शिष्ट्यं नि प्रिपेयं षीव वेति सिर्स्यः।

येन नपातम्पां जुनाम मन्नोजुन्ते वृषणों यं वहन्ति॥५॥४॥

उता नः। अहिः। बुध्यः मयैः। क्रिरित् कः। शिशुम्। न। पिप्युषीऽइव। वेति। सिर्स्युः। येने। नपातम्। अपाम्। जुनामे। मुनुःऽजुर्वः। वृष्याः। यम्। वहन्ति। ५॥

पदार्थ: -(उत) कृषि (मः) अस्मान् (अहिः) व्याप्तिशीलो मेघः (बुध्यः) अन्तिरक्षस्थः (मयः) सुखम् (कः) (शिशुम्) बालकम् (न) इव (पिप्युषीइव) यथा वर्द्धयन्ती (वेति) व्याप्नोति (सिन्धुः) नदी (येन) (नपातम्) यातरिहतम् (अपाम्) जलानाम् (जुनाम) बध्नीयाम (मनोजुवः) मनसो जूर्वेग इव वेगो येषान्ते विद्युदाद्व्यः (चूषणः) वृष्टिकर्त्तारः (यम्) (वहन्ति) प्राप्नुवन्ति॥५॥

अविय:-हे मनुष्या! वयं येनाऽपां नपातं जुनाम मनोजुवो वृषणो यं वहन्ति स बुध्न्योऽहिः पिप्युषीव शिशुं न नोऽस्मान् विति। उतापि सिन्धुर्मयः कः॥५॥

भावार्थः-अत्रोपमालङ्कारः। यदि मेघो न स्यात्तर्हि मातृवत्प्राणिनः कः पालयेत्? यदि सूर्व्विद्युद्धायवा न स्युस्तर्ह्येतं को धरेत्?॥५॥ अष्टक-२। अध्याय-५। वर्ग-४-५

मण्डल-१। अनुवाक-२४। सूक्त-१८६

१९०९

पदार्थ:-हे मनुष्यो! हम लोग (येन) जिससे (अपाम्) जलों के (नपातम्) पतन को न प्राप्ते पदार्थ को (जुनाम) बांधे वा (मनोजुव:) मन के तुल्य वेग जिनका वे बिजुली आदि (वृषण:) वृष्टि करानेवाले (यम्) जिसको (वहन्ति) प्राप्त होते हैं, वह (बुध्य:) अन्तरिक्षस्थ (अहि:) व्यापिन्शिल मेथे (पिप्युषीव) बढ़ाती हुई वृद्धि देती उन्नति करती हुई स्त्री (शिशुम्) बालक को (न) जैसे वैसे (म:) हम लोगों को (वेति) व्याप्त होता (उत) और (सिन्धु:) नदी (मय:) सुख को (क:) करती है।। पाप्त

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो मेघ न हो तो माता के तुल्य प्राणियों की पालेग कौन करे ? जो सूर्य, बिजुली और पवन न हों तो इस मेघ को कौन धारण करे ?॥५४

अथ मेघसूर्यदृष्टान्तेनोक्तविषयमाह॥

अब मेघ और सूर्य के दृष्टान्त से उक्त विषय को अगले मुन्त्र में कहा।है।।

उत नं ईं त्वष्टां गुन्त्वच्छा स्मत्सूरिभिरिभिष्टित्वे सजोषाः। आ वृत्रहेन्द्रश्चर्षणिप्रास्तुविष्टमो नुरां नं इह गम्याः।।

उता नः। ईम्। त्वष्टां। आ। गुन्तु। अच्छं। स्मत्। सूरिऽभिः। अभिऽपित्वें। सुऽजोषां:। आ। वृत्रुऽहा। इन्द्रं:। चुर्षुणुऽप्राः। तुविःऽत्रमः। नुराम्। नः। इह। गुम्याः॥६॥

पदार्थ:-(उत) (न:) अस्मान् (ईम्) जलम् (खष्टा) प्रकाशमानः (आ) (गन्तु) आगच्छन्तु (अच्छ) सम्यक् (स्मत्) प्रशंसायाम् (सूरिभिः) विष्ठद्धिः (अभिपित्वे) अभितः प्राप्तव्ये (सजोषाः) समानप्रीतिः (आ) (वृत्रहा) मेघहन्ता (इन्द्र) सूर्यः (चर्षणिप्राः) यश्चर्षणीन् मनुष्यान् सुखैः पिपर्तिं सः (तुविष्टमः) अतिशयेन बली (नराम्) नराष्ट्रमः (अस्मान् (इह) (गम्याः) गच्छेः॥६॥

अन्वय:-हे विद्वन्! यथेह वृत्रह्म चेषीप्रास्त्रीवष्टमस्त्वष्टेन्द्र ईं वर्षयित तथा त्वं नरां न आ गम्या उत स्मदिभिपित्वे सजोषा भवान्त्सूरिभिर्नोऽच्छ्रगन्तु रहा।

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तीपमालङ्कार:। ये सूर्यवद्विद्यां प्रकाशयन्ति स्वात्मवत् सर्वान् मत्वा सुखयन्ति, ते बलवन्तो जायन्त्रे। ६॥

पदार्थ:-हे विद्वात्! जैसे (द्वार) यहाँ (वृत्रहा) मेघ का हननेवाला (चर्षणिप्राः) मनुष्यों को सुखों से पूर्ण करनेवाला (तुविष्टमः) अतिव बली (त्वष्टा) प्रकाशमान (इन्द्रः) सूर्य (ईम्) जल को वर्षाता है, वैसे तुम (नराम्) सब मनुष्यों के बीच (नः) हम लोगों को (आ, गम्याः) अच्छे प्रकार प्राप्त होओ (उत) और (स्पत्) प्रशंसायुक्त (अभिपित्वे) सब ओर से पाने योग्य व्यवहार में (सजोषाः) समान प्रीति रखनेवाले अप (स्रिमः) विद्वानों के साथ (नः) हम लोगों के प्रति (अच्छ, आ, गन्तु) अच्छे प्रकार आइये।

भाषार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो सूर्य के समान विद्या का प्रकाश कराते हैं और अपने आत्मा के तुल्य सबको मान सुखी करते हैं, वे बलवान् होते हैं॥६॥ १९१०

ऋग्वेदभाष्यम्

पुनर्दृष्टान्तरेण विद्वद्विषयमाह॥

फिर और दृष्टान्त से विद्वानों के विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

उत न ईं मृतयोऽश्वयोगाः शिशुं न गावस्तर्रुणं रिहन्ति। तमीं गिरो जनयो न पत्नीः सुर्भिष्टमं नुरां नसन्त॥७॥

उता नः। ईम्। मृतयः। अश्वंऽयोगाः। शिशुंम्। न। गार्वः। तर्रुणम्। रिहृन्ति। तम्। ईम्। गिरः। जनयः। न। पत्नीः। सुर्भाःऽत्रंपम्। न्राम्। नुसन्तु॥७॥

पदार्थ:-(उत) (नः) अस्मान् (ईम्) (मतयः) मनुष्याः (अश्वयोगः) येऽश्वभ् योजयन्ति ते (शिशुम्) वत्सम् (न) इव (गावः) (तरुणम्) युवावस्थास्थम् (रिहन्ति) प्राप्नुकित् (तम्) (ईम्) सर्वतः (गिरः) वाणीः (जनयः) जनयितारः (न) इव (पत्नीः) दारान् (सुरिभष्टमम्) अतिशयेन सुरिभः सुगन्धिस्तम् (नराम्) मनुष्याणाम् (नसन्त) प्राप्नुवन्तु। नस्त इति गतिकर्मासु पठितम्। (निघं०२.१४)॥७॥

अन्वय:-हे मनुष्या! येऽश्वयोगा मतयस्तरुणं शिशुं गावो न चोऽस्मानी हिंहिन्त यं नरां मध्ये सुरिभष्टमं जनयः पत्नीर्न नसन्त स ईं गिरः प्राप्नोति तमुतापि वयं सेवेमहि॥७॥

भावार्थ:-यथाऽश्वारूढाः सद्यः स्थानान्तरं स्था बा गार्को वत्सान् यथा वा स्त्रीव्रताः स्वपत्नीश्च प्राप्नुवन्ति तथा विद्वांसो विद्याप्तवाचो यान्ति॥७॥

पदार्थ: - हे मनुष्यो! जो (अश्वयोगा:) अश्वयोग) अर्थात् अश्वों का योग कराते हैं, वे (मतय:) मनुष्य (तरुणम्) तरुण (शिशुम्) बछड़ों को (न) भूसे (गाव:) गौयें वैसे (न:) हम लोगों को (ईम्) सब ओर से (रिहन्ति) प्राप्त होते हैं, जिस्स (नेप्तम्) मनुष्यों के बीच (सुरिभष्टमम्) अतिशय करके सुगन्धित सुन्दर कीर्तिमान को (जन्य:) उत्पत्ति करानेवाले जन (पत्नी:) अपनी पत्नियों को जैसे (न) वैसे (नसन्त) प्राप्त होवें, वह (ईम्) सब ओर से (गिर:) वाणियों को प्राप्त होता है (तम्) उसको (उत) ही हम लोग सेवें॥७॥

भावार्थ:-जैसे प्रृह्न्चला शीम्न एक स्थान से दूसरे स्थान को वा जैसे गौयें बछड़ों को वा स्त्रीवत् जन अपनी-अपनी पत्निमें को भाप्त होते हैं, वैसे विद्वान् जन विद्या और श्रेष्ठ विद्वानों की वाणियों को प्राप्त होते हैं॥७॥

अथ वाय्वादिदृष्टान्तेनोक्तविषयमाह॥

अब पक्न आदि के दृष्टान्त से विद्वानों के विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

७. नसन्त (निघं०४.१.२२) निरु०४.१५ एवं 'नसतिराप्नोतिकर्मा वा।' निरु०७.१७ सं०।

अष्टक-२। अध्याय-५। वर्ग-४-५

मण्डल-१। अनुवाक-२४। सूक्त-१८६

3668

उत न ई मुरुतो वृद्धसेनाः स्मद्रोदंसी सर्मनसः सदन्तु। पृषंदश्चासोऽवनयो न स्था रिशादंसो मित्रयुजो न देवाः॥८॥

उता नः। ईम्। मुरुतः। वृद्धऽसेनाः। स्मत्। रोर्दसी इति। सऽर्मनसः। सदुन्तु। पृषेत्ऽअश्वासः। व्यवनेषः। न। रथाः। रिशार्दसः। मित्रऽयुर्जः। न। देवाः॥८॥

पदार्थ:-(उत) (न:) अस्मान् (ईम्) जलम् (मस्तः) वायवः (वृद्धसेनाः) वृद्धा प्रौढा सेना येषां ते (स्मत्) एव (रोदसी) द्यावापृथिव्यौ (समनसः) समानं मनो येषान्ते (सदन्तु) प्राप्नुचन्तु (पृषदश्चासः) पृषतः पृष्टाः पृष्टाः अश्वा येषान्ते (अवनयः) भूमयः (न) इव (रथाः) रमणीयाः (रिशादसः) ये रिशाञ्छत्रून् दसन्ति नाशयन्ति ते (मित्रयुजः) ये मित्रैः सह युञ्जन्ति ते (न) इव (देवाः) विद्वांसः॥८॥

अन्वय:-मरुत ईमिव वृद्धसेना नोऽस्मान् सदन्तूत समनसः स्मद्रीदेशी सदन्तु पृषदश्वासोऽवनयो रथा न रिशादसो मित्रयुजो देवा न भवन्ति॥८॥

भावार्थ:-ये वीरसेनाः समानमतयो बृहद्यानाः पृष्टिचीवत् क्षमाशीला मित्रप्रिया विद्वांसः सर्वप्रियमाचरन्ति, ते प्रसन्ना भवन्ति॥८॥

पदार्थ:-(मस्तः) पवन (ईम्) जल को जैसे वैसे (वृद्धमेनाः) बढ़ी हुई प्रौढ़ तरुण प्रचण्ड बल वेगवाली जिनकी सेना वे (नः) हम लोगों को (सदन्तुः) प्राप्त होवं (उतः) और (समनसः) समान जिनका मन वे परोपकारी विद्वान् (स्मत्) ही (रोदसी) आकाश और पृथिवी को प्राप्त हों (पृषदश्वासः) पृष्ट जिनके घोड़ा वे विद्वान् जन वा (अवनयः) भूमि (रथाः) रमणीय यानों के (न) समान (रिशादसः) रिसहा [अर्थात्] शत्रुओं को नाश कराते और (मित्रुबुजः) मित्रों के साथ संयोग रखते उन (देवाः) विद्वानों के (न) समान होते हैं॥८॥

भावार्थ:-जिनकी वीर सेना जो समान मित रखनेवाले बड़े बड़े रथादि यान जिनके तीर [पास] पृथिवी के समान क्षमाशील मित्रप्रिय विद्वान् जन सबका प्रिय आचरण करते हैं, वे प्रसन्न होते हैं॥८॥

पुनर्विद्वद्विषयमाह॥

फिर विद्वान् के विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

प्र नु यदेषां महिन चिक्तित्रे प्र युंञ्जन्ते प्रयुज्यस्ते सुवृक्ति।

अध् युदेषां सुदिने म शरुर्विश्वमेरिणं प्रषायन्त सेनाः॥९॥

प्रा र्यु। यदा एषाम्। महिना। चिकित्रे। प्रा युञ्जन्ते। प्राऽयुर्जः। ते। सुऽवृक्ति। अर्ध। यत्। एषाम्। सुऽदिने। न। शर्रुः। विश्वम्। आ। इरिणम्। प्रुषायन्ते। सेर्नाः॥९॥

पदार्थ:-(प्र) (नु) सद्य: (यत्) ये (एषाम्) विदुषाम् (मिहना) मिहम्ना (चिकित्रे) विज्ञानवते (प्र) (युज्जन्ते) (प्रयुजः) प्रकर्षेण युज्जन्ति (ते) (सुवृक्ति) सुष्ठु व्रजन्ति यस्मिस्तम् (अध) अनन्तरे (यत्)

ये (एषाम्) प्रयोकतॄणाम् (सुदिने) शोभने समये (न) इव (श्ररु:) हिंसकः (विश्वम्) सर्वम् (आ) समन्तात् (इरिणम्) कम्पितं जगत् (प्रुषायन्त) सेवन्ताम् (सेनाः)॥९॥

अन्वय:-यद्य एषां महिना प्र चिकित्रे प्रयुजो नु प्रयुञ्जन्ते। अध यदेषां सुदिने विश्वमिरिणं शर्रः सेना नेची प्रुषायन्त ते सुवृक्ति प्राप्नुवन्ति॥९॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। ये राजान: पूर्णविद्यानध्यापकान् विद्याप्रचार्यये प्रवर्ष्स्यन्ति ते महिमानमाप्नुवन्ति। ये कृतज्ञकुलीनशूरवीरसेना: पुष्यन्ति, ते सदा विजयमाप्नुवन्ति।

पदार्थ:-(यत्) जो (एषाम्) इन विद्वानों के लिये (मिहना) मिहमा से (प्र. चिकित्रे) उत्तमता से विशेष ज्ञानवान् विद्वान् के लिये (प्रयुज:) उत्तमता से योग करते उनके (त) शीघ्र (प्रयुज्जने) अच्छे प्रकार युक्त करते हैं (अध) इसके अनन्तर (यत्) जो जन (एषाम्) इन अच्छे योग करनेवालों के (सुदिने) उत्तम समय में (विश्वम्) समस्त (इरिणम्) कम्पायमान जपत् को (प्रकः) मारनेवाला वीर जन (सेनाः) सेनाओं को जैसे (न) वैसे (आ, प्रषायन्त) सेवन करें (त) वे (सुवृक्ति) सुन्दर गमन जिसमें हो, उस उत्तम सुख वा मार्ग को प्राप्त होते हैं॥९॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो राजजून पूरी विद्यावाले अध्यापकों को विद्याप्रचार के लिये प्रवृत्त करते हैं, वे महिमा-बड़ाई को प्राप्त होते हैं। जो क्रिये को जाननेवाले कुलीन शूरवीरों की सेनाओं को पुष्ट करते, वे सदा विजय को प्राप्त होते हैं।। ९॥

अथाध्यापक्रोपदेशकविष्यमाह।।

अब अध्यापक और उपदेशकों के विष्म्य को अगले मन्त्र में कहा है।।

प्रो अश्विनाववंसे कृणुध्वं प्रपूष्णुं स्वतवसो हि सन्ति।

अद्वेषो विष्णुर्वातं ऋभुक्षा, अस्त्रां सुम्नायं ववृतीय देवान्॥ १०॥

प्रो इति। अश्विनौ। अवसि कृणुक्<u>यम्। प्रा पूषर्णम्। स्व</u>ऽत्तेवसः। हि। सन्ति। अ<u>द्</u>रेषः। विष्णुः। वार्तः। ऋभुक्षाः। अच्छं। सुम्नायं। वृवृतीक्ष्यः देवान्॥ १०॥

पदार्थ:-(प्रो) प्रकर्ष (अश्विनों) विद्याव्याप्ताऽध्यापकोपदेशकौ (अवसे) रक्षणादिने (कृणुध्वम्) (प्र) (पूषणम्) पोषकम् (स्वतेवसः) स्वकीयं तवो बलं येषान्ते (हि) निश्चये (सन्ति) (अद्वेषः) द्वेषभावरहिताः (विष्णुः) व्यापकः (वातः) वायुः (ऋभुक्षाः) मेधावी (अच्छ) अत्र निपातस्य चेति दीर्घः। (सुम्नाय) सुख्यथ् (वेब्रुतीय) वर्त्तेयम् (देवान्) विदुषः॥१०॥

अर्थय:-है राजप्रजाजना! यूयं ये हि स्वतवसोऽद्वेषो विद्वांसस्सन्ति तान् याविश्वनावध्यापकोपदेशकौ मुख्यौ परीक्षकौ स्वस्तौ विद्याया अवसे प्रकृणुध्वम्। यथा वात इव विष्णुर्ऋभुक्षा अहं सुम्नाय देवानच्छ ववृतीय तथा यूयं पूषणं प्रो कृणुध्वम्॥ १०॥

अष्टक-२। अध्याय-५। वर्ग-४-५

मण्डल-१। अनुवाक-२४। सूक्त-१८६

१९१३

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। ये रागद्वेषरहिता विद्याप्रचारप्रिया: पूर्णशरीरात्मबेला धार्मिका विद्वांस: सन्ति, तान् सर्वे विद्याप्रचाराय संस्थापयन्तु येन सुखं वर्द्धेत॥१०॥

पदार्थ:-हे राजा प्रजाजनो! तुम जो (हि) ही (स्वतवसः) अपना बल रखनेवाले (अहेपः) निर्वेश विद्वान् जन (सन्ति) हैं उनको जो (अश्वनौ) विद्याव्याप्त अध्यापक और उपदेशक मुख्य परीक्षक हैं, वे विद्या की (अवसे) रक्षा, पढ़ाना, विचारना, उपदेश करना इत्यादि के लिये (प्र, कृणुध्वम्) अच्छे प्रकार नियत करें और जैसे (वातः) पवन के समान (विष्णुः) गुण व्याप्तिशील (ऋभुक्षाः) संधावी मैं (सुम्नाय) सुख के लिये (देवान्) विद्वानों को (अच्छ, ववृतीय) अच्छा वर्त्ताऊं, वैसे तुम (पूषणम्) पृष्टि करनेवाले को (प्रो) उत्तमता से नियत करो॥१०॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो रापद्वेष्ठरहित विक्राप्रचार के प्रिय, पूरे शारीरिक-आत्मिक बलवाले धार्मिक विद्वान् हैं, उनको सब लोग विद्वाप्रचार के लिये संस्थापन करें, जिससे सुख बढ़े॥१०॥

पुनस्तमेव विषयमाह।

फिर उसी विषय को अगले सिन्त्रामें कहा हैं॥

ड्रयं सा वो अस्मे दीर्धितिर्यजत्रा अपिप्राणी च सदेनी च भूयाः।

नि या देवेषु यतते वसूयुर्विद्यामेषं वृज्यं जीदानुम्। ११॥५॥

ड्डयम्। सा। वः। अस्मे इति। दीर्धितः। युज्याः। अर्पिऽप्राणीं। च। सर्दनी। च। भूयाः। नि। या। देवेषुं। यति। वसुऽयः। विद्यामं। ड्डषम्। वृजनंम्। जीस्वत्तुम्।११००

पदार्थ:-(इयम्) वेदविद्या (मा) (वं) मूज्माकम् (अस्मे) अस्मभ्यम् (दीधितः) विद्याप्रदीप्तिः (यजत्राः) विदुषां पूजकाः (अपिप्राणी) सिश्चितप्राणबलप्रदा (च) (सदनी) दुःखविनाशनेन सुखप्रदा (च) (भूयाः) (नि) (या) (देवेषु) बिद्धत्सु (सत्ते) यत्नं करोति (वसूयुः) वसूनि धनानीच्छुः (विद्याम) (इषम्) (वृजनम्) (जीरदानुम्)। ११॥

अन्वय:-हे यजत्रात या वसूयुद्गीर्धितिर्देवेषु नि यतते सेयं वो दीधितिरस्मे अपिप्राणी च सदनी च भूया:। यतो वयिमषं वजनं जीरदानुञ्च विद्यामा १९४॥

भावार्थः विद्यैव मृतुष्याणां सुखप्रदा येन विद्याधनं न प्राप्तं सोऽन्तः सदा दिरद्र इव वर्त्तते॥११॥ अस्मिन् स्वत्रे विद्वद्रुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिर्वेद्या॥

इति षडशीत्युत्तरं शततमं १८६ सूक्तं पञ्चमो ५ वर्गश्च समाप्त:॥

पदार्थ:-हे (यजत्रा) विद्वानों के पूजनेवालो! (या) जो (वसूयु:) धनों को चाहनेवाली अर्थात् जिस्से धनादि उत्तम पदार्थ सिद्ध होते हैं, उस विद्या की उत्तम दीप्ति कान्ति (देवेषु) विद्वानों में (नि, यतते) निरन्तर यत्न करती है, कार्यकारिणी होती है, (सा, इयम्) सो यह (व:) तुम्हारी (दीधिति:)

उक्त कान्ति (अस्मे) हमारे लिये (अपिप्राणी) निश्चित प्राण बल की देनेवाली (च) और (सदनी) दुःखे विनाशने से सुख देनेवाली (च) भी (भूया:) हो, जिससे हम लोग (इषम्) इच्छासिद्धि वा अन्नादि पदार्थ (वृजनम्) बल और (जीरदानुम्) जीवन को (विद्याम) प्राप्त होवें॥११॥

भावार्थ:-विद्या ही मनुष्यों को सुख देनेवाली है, जिसने विद्या धन न पाया, वह भीतर से सदा दिरद्रसा वर्त्तमान रहता है॥११॥

इस सूक्त में विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस के अर्थ की पिछले सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये॥

यह एक सौ छयीसवां १८६ सूक्त और पांचवां ५ वर्ग सूक्ताज़ हुआ।

पितुमित्यस्यैकादशर्चस्य सप्ताशीत्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य अगस्त्य ऋषिः। ओषधयो देवताः। १ उष्णिक्। ६,७ भुरिगुष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः। २,८ निचृद् गायत्री। ४ विराट् गायत्री। ९,१० गायत्री च छन्द। षड्जः स्वरः। ३,५ निचृदनुष्टुप्। ११ स्वराडनुष्टुप् छन्द्

गान्धारः स्वरः॥

अथान्नगुणानाह।।

अब ग्यारह ऋचावाले एक सौ सतासीवें सूक्त का आरम्भ है। उसके आरम्भ से अप के गुणों की कहते हैं॥

पितुं नु स्तोषं महो धर्माणं तर्विषीम्। यस्य त्रितो व्योजसा वृत्रं विपर्वमुर्दयंत्॥ १॥

पितुम्। नु। स्तोष्पम्। महः। धर्मार्णम्। तिविषीम्। यस्य। त्रितः। वि। श्रोजसा। वृत्रम्। विऽपेर्वम्। अर्दयेत्॥१॥

पदार्थ:-(पितुम्) अत्रम् (नु) सद्यः (स्तोषम्) प्रशंसेयम् (पहः) महत् (धर्माणम्) धर्मकारिणम् (तिविषीम्) बलम् (यस्य) (त्रितः) मनोवाक्कर्मभ्यः (वि) विविधेऽर्थे (ओजसा) पराक्रमेण (वृत्रम्) वरणीयं धनम् (विपर्वम्) विविधेरङ्गोपाङ्गैः पूर्णम् (अर्द्यत्) अर्द्यत् प्रापयेत्॥१॥

अन्वय:-यस्य त्रितो व्योजसा विपर्वं वृत्रमर्दयन्नस्म म पितुं मुह्रौ धर्माणं तविषीं चाहं स्तोषम्॥१॥

भावार्थ:-ये बह्नन्नं गृहीत्वा सुसंस्कृत्येतदुणान् विदित्वा यथायोग्यं द्रव्यान्तरेण संयोज्य भुञ्जते, ते धर्माचरणाः सन्तः शरीरात्मबलं प्राप्य पुरुष्ट्रार्थेन् श्रियमुन्नेतुं शक्नुवन्ति॥१॥

पदार्थ:-(यस्य) जिसका (त्रिव्रः) मा विज्ञन, कर्म से (वि, ओजसा) विविध प्रकार के पराक्रम से (विपर्वम्) विविध प्रकार के अङ्ग और उपाङ्गों से पूर्ण (वृत्रम्) स्वीकार करने योग्य धन को (अर्दयत्) प्राप्त करे उसके लिक्ने (नु) शीम्र (पितुम्) अन्न (महः) बहुत (धर्माणम्) धर्म करनेवाले और (तिवधीम्) बल की मैं (स्तोषम्) प्रशंसा करूने।१॥

भावार्थ:-जो बहुत अन्न को ले अच्छा संस्कार कर और उसके गुणों का जान यथायोग्य और व्यञ्जनादि पदार्थों के साथ मिला के खाते हैं, वे धर्म के आचरण करनेवाले होते हुए शरीर और आत्मा के बल को प्राप्त होकूर पुरुषार्थ से लक्ष्मी की उन्नति कर सकते हैं॥१॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

स्वादों पितौ मधों पितो वयं त्वां ववृमहे।

अस्मार्कमविता भवा। २॥

स्वादो इति। पितो इति। पितो इति। पितो इति। वयम्। त्वा। ववृमहे। अस्मार्कम्। अविता। भवा। २॥ पदार्थ:-(स्वादो) स्वादु (पितो) पेयम् (मधो) मधुरम् (पितो) पालकमन्नम् (वयम्) त्वा) तत् अत्र व्यत्ययः। (ववृमहे) स्वीकुर्महे (अस्माकम्) (अविता) रक्षकः (भव)॥२॥

अन्वयः-हे परमात्मन्! त्वन्निर्मितं स्वादो पितो मधो पितो त्वा वयं ववृष्टहे। अवस्त्वं तदन्नपानदानेनास्माकमविता भव॥२॥

भावार्थ:-मनुष्यैर्मधुरादिरसयोगेन स्वादिष्ठमन्नं व्यञ्जनं चायुर्वेदरीत्या निर्मीय सदा भोवतव्यम्। यद्रोगनाशकत्वेनायुर्वर्द्धनादृक्षकं भवेत्॥२॥

पदार्थ:-हे परमात्मन्! आप के रचे (स्वादो) स्वादु (पितो) पीने कार्य जल तथा (मधो) मधुर (पितो) पालना करनेवाले (त्वा) उस अत्र को (वयम्) हम लोग (वव्सुहे) स्वीकार करते हैं, इससे आप उस अन्नपान के दान से (अस्माकम्) हमारी (अविता) रक्षा करनेवाले (भ्व) तुर्जिये॥२॥

भावार्थ:-मनुष्यों को मधुरादि रस के योग से स्वादिष्ठ अत्र और व्यञ्जन को आयुर्वेद की रीति से बनाकर सदा भोजन करना चाहिये, जो रोग को नष्ट करने से अयुर्दी बढ़ामें से रक्षा करनेवाला हो॥२॥

पुनस्तमेव विषयमाह्य

फिर उसी विषय को अमले मन्त्र में कहा है॥

उप नः पित्वा चर शिवः शिवाभिकृतिभिः। मुयोभुरिद्वषेण्यः सर्खा सुशेवो अद्वयः॥३॥)

उपं। नुः। पितो इति। आ। चुर्। शिकः। शिवाभिः। कुतिऽभिः। मुयुःऽभुः। अद्विषेण्यः। सर्खा। सुऽशेर्वः। अद्वेयाः॥३॥

पदार्थ:-(उप) (नः) अस्पध्यम् (पिता) अत्रव्यापिन् (आ) समन्तात् (चर) प्राप्नुहि (शिवः) सुखकारी (शिवाभिः) सुखकारिणीभिः (ऊतिभिः) रक्षणादिक्रियाभिः (मयोभुः) सुखं भावुकः (अद्विषेण्यः) अद्वेष्टा (सखा) मित्रम् (सुशेवः) सुष्ठु सुखः (अद्वयाः) अविद्यमानं द्वयं यस्मिन् सः॥३॥

अन्वय:-हे पितो (मिया)भुरिद्विष्ठेष्रय: सुशेवोऽद्वया: सखा त्वं शिवाभिरूतिभिस्सह शिवो न उपाचर॥३॥

भावार्थ:-अन्नादिपद्धिस्त्रीपकः परमेश्वर आरोग्यप्रदाभी रक्षणरूपाभिः क्रियाभिः सर्वान् सुहृद्धावेन संपालस्री सर्वेषां भित्रभूतो वर्त्तत एव॥३॥

पदार्थः हे (पितो) अन्नव्यापी परमात्मन्! (मयोभुः) सुख की भावना करानेवाले (अद्विषेण्यः) निर्वेर (सुश्रेवः) सुन्दर सुखयुक्त (अद्वयाः) जिसमें द्वन्द्वभाव नहीं (सखा) जो मित्र आप (शिवाभिः) सुखकारिणी (ऊतिभिः) रक्षा आदि क्रियाओं के साथ (नः) हम लोगों के लिये (शिवः) सुखकारी (उप, आ सम्भीप अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये॥३॥

अष्टक-२। अध्याय-५। वर्ग-६-७

मण्डल-१। अनुवाक-२४। सूक्त-१८७

१९१७

भावार्थ:-अन्नादि पदार्थव्यापी परमेश्वर आरोग्य देनेवाली रक्षारूप क्रियाओं से सब जीवों की मित्रभाव से अच्छे प्रकार पालता हुआ सबका मित्र हुआ ही वर्त्त रहा है॥३॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

तव त्ये पितो रसा रजांस्यनु विष्टिताः।

द्विवि वार्ताइव श्रिता:॥४॥

तर्व। त्ये। पितो इति। रसाः। रजांसि। अनु। विऽस्थिताः। द्विव। वार्ताःऽइव। श्रिताः। रा

पदार्थ:-(तव) तस्य (त्ये) ते (पितो) अन्नव्यापिन् परमात्मन् (रमाः) स्त्राद्वन्नादि षड्विधाः (रजांसि) लोकान् (अनु) (विष्ठिताः) विशेषेण स्थिताः (दिवि) अन्तर्स्थि (वाताद्व्य) (श्रिताः) आश्रिताः सेवमानाः॥४॥

अन्वय:-हे पितो! तव तस्यात्रस्य मध्ये ये रसा दिवि वाताइव श्रिसास्त्ये रज्ञास्यनु विष्ठिता भवन्ति॥४॥

भावार्थ:-अस्मिन् संसारे परमात्मव्यवस्थया लोकत्वोकोन्त्रे भूमिजलपवनानुकूला रसादयो भवन्ति, निह सर्वे सार्वित्रका इति भाव:॥४॥

पदार्थ:-हे (पितो:) अन्नव्यापिन् परमात्मन् (त्तव) उस अन्न के बीच जो (रसा:) स्वादु खट्टा मीठा तीखा चरपरा आदि छ: प्रकार के रस (दिनिः) अन्तरिक्ष में (वाताइव) पवनों के समान (श्रिता:) आश्रय को प्राप्त हो रहे हैं (त्ये) वे (रजांसिः) लोकलोक्शान्तरों को (अनु, विष्टिता:) पीछे प्रविष्ट होते हैं॥४॥

भावार्थ:-इस संसार में परमातमा की उनस्था से लोकलोकान्तरों में भूमि, जल और पवन के अनुकूल रसादि पदार्थ होते हैं, किन्तु सके पदार्थ सब जगह प्राप्त नहीं हो सकते॥४॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

तव त्ये पितो दिद्तुस्तव स्थादिष्ट ते पितो।

प्र स्वाद्मानो रसानी तुर्विग्रीवा इवेरते॥५॥६॥

तर्व। त्ये। पितो इति दर्दतः। तर्व। स्वादिष्ठ। ते। पितो इति। प्र। स्वाद्मीनः। रसीनाम्। तुविग्रीवीःऽइव। ईर्ते॥५॥

पदार्थ: (तेष) (त्ये) ते (पितो) अन्नव्यापिन् पालकेश्वर (ददत:) (तव) (स्वादिष्ठ) अतिशयेन स्वाद्रित: (ते) तस्य (पितो) (प्र) (स्वादान:) स्वादिष्ठाः (रसानाम्) मधुरादीनाम् (तुविग्रीवाइव) तुवि बृलिष्ठा प्रीवा येषान्ते (ईरते) प्राप्नुयुः॥५॥

अन्वय:-हे पितो! ददतस्तव त्ये पूर्वोक्ता रसाः सन्ति। हे स्वादिष्ठ पितो! तव ते रसा रसानां मध्ये स्वाद्मानस्तुविग्रीवाइव प्रेरते जीवानां प्रीतिं जनयन्ति॥५॥

भावार्थ:-सर्वपदार्थव्यापकः परमात्मैव सर्वेभ्योऽन्नादिपदार्थान् प्रयच्छत तत्कृता एवं पदार्थाः स्वगुणानुकूलाः केचित् स्वादिष्ठाः केचिच्च स्वादुतरास्सन्तीति सर्वेवेदितव्यम्॥५॥

पदार्थ:-हे (पितो) अन्नव्यापी पालक परमात्मन्! (ददतः) देते हुए (तव) आपके जो अन्न वा (त्ये) वे पूर्वोक्त रस हैं। हे (स्वादिष्ठ) अतीव स्वादुयुक्त (पितो) पालक अन्नव्यापक परमात्मन्। (तव) आपके उस अन्न के सहित (ते) वे रस (रसानाम्) मधुरादि रसों के बीच (स्वादाम्यः) अतीव स्वादु (तुविग्रीवाइव) जिनका प्रबल गला उन जीवों के समान (प्रेरते) प्रेरणा देते अर्थात् जीवों को प्रीति उत्पन्न कराते हैं॥५॥

भावार्थ:-सब पदार्थों में व्याप्त परमात्मा ही सभी के लिये अज़ोद्द पदार्थों को अच्छे प्रकार देता है और उसके किये हुए ही पदार्थ अपने गुणों के अनुकूल कोई अतीव स्वादुतर है, यह सबको जानना चाहिये॥५॥

पुनस्तमेव विषयमहि।

फिर उसी विषय को अगृत्वे मन्त्र में बहा है॥

त्वे पितो महानां देवानां मनो हितम्। अकार्रि चार्र केतुना तवाहिमवसावधीत्।। ६॥

त्वे इति । पितो इति। महानाम्। देवन्तिम्। मनेः रहितम्। अकारि। चार्रः। केतुनां। तर्व। अहिम्। अर्वसा। अवधीत्॥६॥

पदार्थ:-(त्वे) त्विय (पिनो) अवव्यापिन् पालकेश्वर (महानाम्) महतां पूज्यानाम् (देवानाम्) विदुषाम् (मनः) (हितम्) धृतं प्रसन्नं वा (अकारि) क्रियते (चारु) श्रेष्ठतरम् (केतुना) विज्ञानेन (तव) तस्य। अत्र व्यत्ययः। (अहिम्) मध्म् (अवस्त) (अवधीत्) हन्ति॥६॥

अन्वयः-पितो यस्यात्रत्यापिनस्त्रवावसा सूर्योऽहिमवधीत् तस्य तव केतुना यच्चार्वकारि तन्महानां देवानां मनस्त्वे हितमस्ति॥६॥

भावार्थः त्यद्यतं न भुज्येत तर्हि कस्यापि मनो न हृष्येत मनसोऽन्नमयत्वात् तस्माद्यस्योत्पत्तये मेघो निमित्तमस्ति तदेशं सुष्ठु संस्कृत्य भोक्तव्यम्॥६॥

पदार्थ: है (पितो) अन्नव्यापी पालना करनेवाले ईश्वर! (तव) जिस आपकी (अवसा) रक्षा आदि से सूर्य (अहिम्) मेघ को (अवधीत्) हन्ता है, उन आपके (केतुना) विज्ञान से जो (चारु) श्रेष्ठतर (अक्रांसि) किया जाता है वह (महानाम्) महात्मा पूज्य (देवानाम्) विद्वानों का (मनः) मन (त्वे) आप में (हित्तम्) धरा है वा प्रसन्न है॥६॥

अष्टक-२। अध्याय-५। वर्ग-६-७

मण्डल-१। अनुवाक-२४। सुक्त-१८७

भावार्थ:-यदि अन्न भोजन न किया जाय तो किसी का मन आनन्दित न हो, क्योंकि मन अन्नमय है। इस कारण जिसकी उत्पत्ति के लिये मेघ निमित्त है, उस अन्न को सुन्दरता से बनाकर भोजून करना चाहिये॥६॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यदुदो पितो अर्जगन् विवस्व पर्वतानाम्। अत्रा चिन्नो मधो पितोऽरं भक्षार्य गम्या:॥७॥

यतः। अदः। पितो इति। अर्जगन्। विवस्व। पर्वतानाम्। अत्र। चित्। न्य मुख्ये इति। पितो इति। अर्रम्। भक्षार्यं। गम्या:॥७॥

पदार्थ:-(यत्) (अदः) तत्। अत्र वाच्छन्दसीत्यप्राप्तमृष्युत्वम्। (प्रितो) (अजगन्) गच्छन्ति (विवस्व) विशेषेण वस। अत्र व्यत्ययेनात्मनेपदम्। (पर्वतानाम्) भेघानाम् (अत्र) अस्मिन्। अत्र ऋचितनुघेति दीर्घः। (चित्) अपि (नः) अस्माकम् (मधो) मधुर (पित्रे) पालकान्नदातः (अरम्) अलम् (भक्षाय) भोजनाय (गम्या:) प्रापये:॥७॥

अन्वय:-हे पितो! यददो पितोऽन्नं विद्वांसोऽजगन् तत्र विवस्त्र हे मधो पितो! अत्र चित् पर्वतानां मध्ये नो भक्षायाऽन्नमरं गम्या:॥७॥

भावार्थ:-सर्वेषु पदार्थेषु व्याप्तं परमे अर अक्षणादिसमये संस्मरेद्यस्य परमात्मनो हि कृपयात्रानि विविधानि सर्वत्र दिग्देशकालानुकूलानि वर्तन्ते, तुं परमात्मानमेव संस्मृत्य सर्वे पदार्था गृहीतव्या इति॥७॥

पदार्थ:-हे (पितो) अन्नव्यापिन् पालकश्वर! (यत्) जिस (अदः) प्रत्यक्ष अन्न को विद्वान् जन (अजगन्) प्राप्त होते हैं, उसमें (विवस्व) स्थाप्तिमान् हुजिये। हे (मधो) मधुर (पितो) पालकान्नदाता ईश्वर! (अत्र, चित्) इन (पर्वतासम्) मेघों के बीच भी जो कि अन्न के निमित्त कहे हैं (न:) हमारे (भक्षाय) भक्षण करने के लिख्न अन्न क्रों (अरम्) परिपूर्ण (गम्या:) प्राप्त कराइये॥७॥

भावार्थ:-सब पदार्थी में व्याप्त परमेश्वर को भक्षण आदि समय में स्मरण करें, जिस कारण जिस परमात्मा क्री कपा से अन्नादि पदार्थ विविध प्रकार के पूर्वीदि दिशा, देश और काल के अनुकूल वर्त्तमान हैं, उस्परमोत्मा हीं का संस्मरण कर सब पदार्थ ग्रहण करने चाहियें॥७॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

<mark>यदे</mark>पामोषधीनां पर्रिशमारिशामहे। वार्तापे पीव इद्भव॥८॥

यत्। अपाम्। ओर्षधीनाम्। परिंशम्। आऽरिशामेहे। वार्तापे। पीर्वः। इत्। भव॥८॥

पदार्थ:-(यत्) अन्नम् (अपाम्) जलानाम् (ओषधीनाम्) सोमाद्योषधीनाम् (परिंशम्) परितः सर्वतोंऽशं लेशम्। अत्र छान्दसो वर्णलोपो वेत्यलोपः। (आरिशामहे) समन्तात् प्राप्नुयाम। अत्र लिश् गतावित्यस्य वर्णव्यत्ययेन लस्य स्थाने रेफादेशः। (वातापे) वात इव सर्वान् पदार्था विपाप्नोति तत्सम्बुद्धौ (पीवः) वृद्धिकरः (इत्) एव (भव)॥८॥

अन्वय:-हे वातापे परमेश्वर! वयमपामोषधीनां यत्परिंशमन्नमारिशामहे तेन त्वं पीव इद्भवाटाः।

भावार्थ:-जलान्नघृतसंस्कारेण प्रशस्तान्यन्नानि व्यञ्जनानि निर्माय भोक्तारो युक्ताहारविहारेण पुष्टा भवन्तु॥८॥

पदार्थ:-हे (वातापे) पवन के समान सर्वपदार्थ व्यापक परमेश्वर हम लोग (अपाम्) जलों और (ओषधीनाम्) सोमादि ओषधियों के (यत्) जिस (परिशम्) सब ओर से प्राप्त होनेवाले अंश को (आरिशामहे) अच्छे प्रकार प्राप्त होते हैं, उससे आप (पीव:) उत्तम वृद्धि करनेवाले (इत्) ही (भव) हूजिये॥८॥

भावार्थ:-जल, अन्न और घृत के संस्कार से प्रशंसित अन्न और व्यञ्जन इलायची, मिरच वा घृत, दूध पदार्थों को उत्तम बनाकर उन पदार्थों के भोजन करिनेवाल जने युक्त आहार और विहार से पुष्ट होवें॥८॥

पुनस्तमेव विषयमाह।

फिर उसी विषय औं अगले मुन्त्र में कहा है।।

यते सोम् गवाशिरो यवाशिरो भूजामहा वार्तापे पीव इद्भव॥९॥

यत्। ते। सोम्। गोऽआंशिरः। यव्रंऽआशिरः। भर्मामहे। वार्तापे। पीर्वः। इत्। भुवा। ९॥

पदार्थ:-(यत्) (ते) तस्य (सोम्) यवाद्योषिधरसव्यापिन् ईश्वर (गवाशिरः) गोरससंस्कर्ता च (यवाशिरः) यवाद्योषिधसंयोगेन संस्कृतस्य (भजामहे) सेवामहे (वातापे) वातवत्सर्वव्यापिन् (पीवः) प्रवृद्धिकरः (इत्) एव (भव) (१)

अन्वयः-हे सोम! निक्रिंग् यवुर्शिरस्ते यत्सेव्यमंशं वयं भजामहे। तस्मात् हे वातापे! पीव इद्भव॥९॥

भावार्थ:-यथा जेनो अत्रोदिपदार्थेषु तत्तत्पाकक्रियानुकूलान् सर्वान् संस्कारान् कुर्वन्ति तथा रसानिप रसोचितसंस्कारै: संप्रद्वयन्तु॥८॥

पदार्थ्य है (सोम) यवादि ओषि रसव्यापी ईश्वर! (गवाशिर:) गौ के रस से बनाये वा (यवाशिर:) यवादि आपियों के संयोग से बनाये हुए (ते) उस अन्न के (यत्) जिस सेवनीय अंश को हम लोग (भजामहे) सेवते हैं, उससे हे (वातापे) पवन के समान सब पदार्थों में व्यापक परमेश्वर! (पीव्यः) उस्तम वृद्धि करनेवाले (इत्) ही (भव) हजिये॥९॥

अष्टक-२। अध्याय-५। वर्ग-६-७

मण्डल-१। अनुवाक-२४। सूक्त-१८७

१९२१

भावार्थ:-जैसे मनुष्य अन्नादि पदार्थों में उन-उन की पाकक्रिया के अनुकूल सब संस्कारों की करते हैं, वैसे रसों को भी रसोचित संस्कारों से सिद्ध करें॥९॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

क्रम्भ ओषधे भव पीवो वृक्क उंदार्थिः। वार्तापे पीव इद्भव॥ १०॥

कुरुम्भः। ओषुष्टे। भुवु। पीर्वः। वृक्कः। उदार्थिः। वार्तापे। पीर्वः। इत्। भुवु। १०॥

पदार्थ:-(करम्भ:) कर्त्ता (ओषधे) ओषधिव्यापिन् (भव) (पिवा) प्रवृद्धिकरः (वृक्कः) रोगादिवर्जियता (उदारिथः) उद्दीपकः (वातापे) वातइव व्यापिन् (पीवः) प्रवृद्धिकरः (इत्) (भव)॥१०॥

अन्वय:-हे ओषधे! त्वं करम्भ उदारिथर्वृक्कः पीवो भव।हे वातुम्ने!त्वं पीव इद्भव॥१०॥

भावार्थ:-यथा संयमी शुभाचारेण शरीरमात्मानञ्च बहुनियुक्तं कर्गात तथा संयमेन सर्वपदार्थान् सर्वे वर्त्तयन्तु॥१०॥

पदार्थ:-हे (ओषधे) ओषधिव्यापी परमेश्वर! आप (करम्भूः) करनेवाले (उदारिथः) जाठराग्नि के प्रदीपक (वृक्कः) रोगादिकों के वर्जन कराने और (श्रीवः) उत्तम वृद्धि करानेवाले (भव) हूजिये। तथा हे (वातापे) पवन के समान सर्वव्यापक परमात्मन्। आप (पीवः) उत्तम वृद्धि देनेवाले (इत्) ही (भव) हूजिये॥१०॥

भावार्थ:-जैसे संयमी पुरुष शुभावार से शारीर और आत्मा को बलयुक्त करता है, वैसे संयम से सब पदार्थों को सब वर्त्ता॥१०॥ 🔥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फ्रिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

तं त्वा वयं पितो विमेशिर्पाब्रो न हुव्या सुंषूदिम।

देवेभ्यस्त्वा सधुमार्दम्सपूर्णं त्वा सधुमार्दम्॥११॥७॥

तम्। त्वा। वयम्। फिर्से इति। वर्चःऽभिः। गार्वः। न। हृव्या। सुसूदिम्। देवेभ्यः। त्वा। स्ध्ऽमार्दम्। अस्मभ्यम्। त्वा। स्ध्ऽमार्दम्॥ १२॥

पद्मर्थ: तम्) (त्वा) त्वाम् (वयम्) (पितो) अन्नव्यापिन् पालकेश्वर (वचोभिः) स्तुतिवाक्यैः (गावः) धनवः (च) इव (हव्या) अतुं योग्यानि (सुषूदिम) क्षारयेम (देवेभ्यः) विद्वद्भयः (त्वा) त्वाम् (सधमादम्) सह मादयितारम् (अस्मभ्यम्) (त्वा) त्वाम् (सधमादम्) सह मादयितारम्॥११॥

अन्वयः – हे पितो! तं त्वा त्वामाश्रित्य वचोभिर्गावो न ततो वयं यथा हव्या सुषूदिम। तथा वयं देवेभ्यः सधमादे त्वाऽस्मभ्यं सधमादञ्च त्वा विद्वांस आश्रयन्ताम्॥११॥

भावार्थः-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। यथा गावो तृणादिकं भुक्त्वा रत्नं दुर्ध्य ददित तथाऽन्नादिपदार्थेभ्यः श्रेष्ठतरो भागो निष्काशनीयः। ये स्वसङ्गिनोऽन्नादिना सत्कुर्वन्ति परस्परानन्दकाङ्क्षया परमात्मानञ्चाश्रयन्ति ते प्रशंसिता जायन्ते॥११॥

अस्मिन् सूक्तेऽन्नगुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेदित्त्यम्॥ इति सप्तत्यशीत्युत्तरं शततमं १८७ सूक्तं सप्तमो ७ वर्गश्च सम्प्राप्तः॥

पदार्थ:-हे (पितो) अन्नव्यापी पालकेश्वर! (तम्) उन पूर्वोक्त त्वा) आपका आश्रय लेकर (वचोभि:) स्तुति वाक्यों प्रशंसाओं से (गाव:) दूध देती हुई गौवें (न) जैसे दूध, वि, दही आदि पदार्थों को देवें, वैसे उस अन्न से (वयम्) हम जैसे (हव्या) भोजन करने केस्य पदार्थों को (सुपूदिम) निकाशें तथा हम (देवेभ्य:) विद्वानों के लिये (सधमादम्) साथ आन्द देनेवाले (त्वा) आपका हम तथा (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (सधमादम्) साथ आनन्द देनेवाले (त्वा) आपका विद्वान् जन आश्रय करें॥११॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमाल हुन्हें। जैसे गौयें तृण, घास आदि खाकर रत्न दूध देती हैं, वैसे अन्नादि पदार्थों से श्रेष्ठतर भाग निकासना चाहिये। जो अपने सङ्गियों का अन्नादि पदार्थों से सत्कार करते और परस्पर एक-दूसने के अनन्द्र की इच्छा से परमात्मा का आश्रय लेते हैं, वे प्रशंसित होते हैं॥११॥

इस सूक्त में अन्न के गुणों का कर्णा होने में इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति समझनी चाहिये॥

यह एक सौ सर्व्यसीवां १४७ सूक्त और सातवां ७ वर्ग समाप्त हुआ॥

समिद्ध इत्येकादशर्चस्याष्टाऽशीत्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य अगस्त्य ऋषिः। अप्रियो देवताः

१,३,५-७,१० निचृद् गायत्री। २,४,८,९,११ गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अथाऽग्निदृष्टान्तेन राजगुणानाह।।

अब ग्यारह ऋचावाले एक सौ अट्ठासीवें सूक्त का आरम्भ है। उसके प्रथम मन्त्र में असि के दृष्टान्त से राजगुणों का उपदेश करते हैं।

सिमद्धो अद्य राजिस देवो देवै: सहस्रजित्। दूतो हुव्या कुविर्वह॥१॥

सम्ऽईद्धः। अद्या राजुसि। देवः। देवैः। सहस्रऽजित्। दूतः। हव्या। कृबिः। सुद्धा २॥

पदार्थ:-(सिमद्ध:) अग्निरिव प्रदीप्तः (अद्य) (राजिस) प्रक्रीशसे (देवः) जिगीषुः (देवैः) जिगीषुभिवीरैस्सह (सहस्रजित्) यः सहस्राणि शत्रून् जयित सः (दूतः) यो दुनोति परितापयित शत्रुस्वान्तानि सः (हव्या) आदातुमर्हाणि (किवः) विक्रान्तप्रज्ञः/(वह) प्रपय्ता १॥

अन्वय:-हे सहस्रजित् राजन्! सिमद्ध इव देवै: सह देवः सहस्रेजिहुतः कविस्त्वमद्य राजसि, स त्वं हव्या वह॥१॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यो जिन्नरिव दुष्टान् परितापयित सज्जनसङ्गेन शत्रून् विजयते विद्वत्सङ्गेन प्राज्ञः सन् प्राप्तुमर्हाणि वस्तूनि प्राप्तोति, प्र राज्यं कर्त्तुमर्हति॥१॥

पदार्थ: - हे (सहस्रजित्) सहस्रों श्रिजुओं को जीतनेवाले राजन्! (सिमद्धः) जलती हुई प्रकाशयुक्त अग्नि के समान प्रकाशमान (देवैः) क्रिजय चाहते हुए वीरों के साथ (देवः) विजय चाहनेवाले और (दूतः) शत्रुओं के चित्तों को सन्ताम देते हुए (किवः) प्रबल प्रज्ञायुक्त आप (अद्य) आज (राजिस) अधिकतर शोभायमान हो रहे हैं सो आप (हव्या) ग्रहण करने योग्य पदार्थों को (वह) प्राप्त कीजिये॥१॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमीलङ्कार है। जो अग्नि के समान दुष्टों को सब ओर से कष्ट देता, सज्जनों के सङ्ग से सत्तुओं को जीतता, विद्वानों के सङ्ग से बुद्धिमान् होता हुआ प्राप्त होने योग्य वस्तुओं को प्राप्त होता, यह राज्य करने को योग्य है॥१॥

अथाऽध्यापकविषयमाह।।

अब अध्यापक के विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

त्रनुपाद्तं यते मध्वां यज्ञः समज्यते। दर्धत्सहुस्त्रिणीरिषं:॥२॥

त्र्चूऽनपात्। ऋतम्। यते। मध्वा। यज्ञः। सम्। अज्यते। दर्धत्। सहस्त्रिणीः। इषः॥२॥

पदार्थ:-(तनूनपात्) यस्तनूनि शरीराणि न पातयित सः (ऋतम्) यज्ञं सत्यव्यवहारं जलादि चे (यते) गच्छते (मध्वा) मधुरादिना (यज्ञः) यजनीयः (सम्) सम्यक् (अज्यते) व्यज्यते (दधत्) यो दधाति सः (सहस्रिणीः) बह्वीः (इषः) अन्नानि॥२॥

अन्वय:-य: सहस्रिणीरिषो दधत्तनूनपाद्यज्ञ ऋतं मध्वा यते समज्यते तं सर्वे साध्नुत॥२॥

भावार्थ:-येन कर्मणाऽतुलानि धनधान्यानि प्राप्यन्ते तस्याऽनुष्ठानं मनुष्याः सृद्धते कुर्वनेसु। २॥

पदार्थ:-जो (सहस्रिणी:) सहस्रों (इष:) अन्नादि पदार्थों को (दधत्) धारण करते हुआ (तनूनपात्) शरीरों को न गिराने न नाश करनेहारा अर्थात् पालनेवाला (यज्ञ:) पदार्थों भें संयुक्त करने योग्य अग्नि (ऋतम्) यज्ञ, सत्य व्यवहार और जलादि पदार्थ को (मध्वा) मधुरता आदि के साथ (यते) प्राप्त होते हुए जन के लिये (समज्यते) अच्छे प्रकार प्रकट होता है, उसकी स्व प्रिद्ध करें॥२॥

भावार्थ:-जिस कर्म से अतुल धन-धान्य प्राप्त होते हैं, उसका अनुष्ठान आरम्भ मनुष्य निरन्तर करें॥२॥

पुनस्तमेव विषयमाहू।

फिर उसी विषय को अगले (नित्र)में कहा) हैं।।

आजुह्वांनो न ईड्यों देवाँ आ विक्षि युज्ञियाना

अग्ने सहस्रुसा असि॥३॥

आऽजुह्वानः। नुः। ईड्यः। देवान्। आ। वक्षाः युज्ञियात्र्। अग्ने। सुहुसुऽसाः। असा।। ३॥

पदार्थ:-(आजुह्वान:) कृतहोम: कृत्राऽरम्न्यणो वा (न:) अस्मान् (ईड्य:) स्तोतुमध्येषितुं योग्य: (देवान्) विदुषो दिव्यान् गुणूम् वा अ) (विश्व) वहिस प्रापयसि (यिज्ञयान्) यज्ञसाधकान् (अग्ने) विहिरिव वर्तमान (सहस्रसार) यः सहस्राणि पदार्थान् सनोति विभजति सः (असि)॥३॥

अन्वय:-हे अग्नेऽग्निरिव वर्तमान विद्वतः! यतोऽस्माभिराजुह्वान ईडचः सहस्रसास्त्वमसि तस्मान्नो यज्ञियान् देवानाविक्षा। ३॥

भावार्थ:-अत्र क्विकलुप्तोप्रमालङ्कारः। यथा गुणकर्मस्वभावतः संसेवितोऽग्निर्बहूनि कार्याणि साध्नोति तथा सेवित आप्तो विद्वीम् सर्वान् शुभान् गुणान् कार्यसिद्धीश्च प्रापयति॥३॥

पदार्थ: हैं (अग्ने) अग्नि के समान वर्त्तमान विद्वान्! जिस कारण हम लोगों से जिस प्रकार (आजुह्वानः) हीम को प्राप्त (ईड्यः) ढूंढने योग्य (सहस्रसाः) सहस्रों पदार्थों का विभाग करनेवाला अग्नि हो, वैसे अपन्त्रण बुलाये को प्राप्त स्तुति प्रशंसा के योग्य सहस्रों पदार्थों को देनेवाले आप (असि) हैं इससे (नः) हम लोगों के (यज्ञियान्) यज्ञ सिद्ध करानेवाले (देवान्) विद्वान् वा दिव्य गुणों को आप अच्छे प्रकार प्राप्त कराते हैं॥३॥

अष्टक-२। अध्याय-५। वर्ग-८-९

मण्डल-१। अनुवाक-२४। सूक्त-१८८

१९२५

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे गुण, कर्म, स्वभाव से अच्छे प्रकार सेवन किया हुआ अग्नि बहुत कार्यों को सिद्ध करता है, वैसे सेवा किया हुआ आप्त विद्वान् समस्त श्रुभ गुणों और कार्यसिद्धियों को प्राप्त कराता है॥३॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

प्राचीनं बुर्हिरोजसा सहस्रवीरमस्तृणन्। यत्रदित्या विराजेथ॥४॥

प्राचीनेम्। बर्हि:। ओर्जसा। सहस्रंऽवीरम्। अस्तृणुन्। यत्रं। आदुत्या:। विऽराजिया। सा

पदार्थ:-(प्राचीनम्) प्राक्तनम् (बर्हि:) संवर्द्धितं तेज इव विज्ञानम् (ओजसा) पराक्रमेण (सहस्रवीरम्) सहस्राणि वीरा यस्मिँस्तम् (अस्तृणन्) आच्छादयन्ति (श्रेत्र) यस्मि (आदित्याः) सूर्य्याः (विराजथ) विशेषेण प्रकाशध्वम्॥४॥

अन्वय:-हे मनुष्या! यत्राऽऽदित्या ओजसा सहस्रवीरं प्राचीनं व्यक्तिरस्तृणेच् तक्र यूयं विराजथ॥४॥

भावार्थ:-यत्र सनातने कारणे सूर्यादयो लोका: प्रकृष्ण्ते, तत्र सूर्यं वयं च प्रकाशामहे॥४॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! (यत्र) जिस सनातन कारण में (अप्रिंत्याः) सूर्य्यादि लोक (ओजसा) पराक्रम वा प्रताप से (सहस्रवीरम्) सहस्रों जिसमें विरे उस (प्राचीनम्) पुरातन (बर्हिः) अच्छे प्रकार बढ़े हुए विज्ञान को (अस्तृणन्) ढांपते हैं, वहाँ तुम लोग (विप्राजय) विशेषता से प्रकाशित होओ॥४॥

भावार्थ:-जिस सनातन कारण में स्ट्रियेदि लोक्न-लोकान्तर प्रकाशित होते हैं, वहाँ तुम हम

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिराउसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

विराट् सुम्राड् विभ्वी प्रभविर्बिक्क्ष्म भूयंसीश्च या:। दुरों घृतान्यंक्षरन्॥५॥८॥

विऽराट्। सुम्ऽराट्। विऽभ्वोः। प्रऽभ्वोः। बुह्धोः। चु। भूयंसीः। चु। याः। दुर्रः। घृतानि। अुक्षुरुन्॥५॥

पदार्थ:-(विराद्) यो विश्विधेषु गुणेषु कर्मसु वा राजते (सम्राट्) यश्चक्रवर्त्तीव विद्यासु सम्यग् राजते सः (विभ्वी:) व्यापिकाः (प्रभ्वी:) समर्थाः (बह्वी:) अनेकाः (च) (भूयसीः) पुनः पुनरिधकाः (च) (याः) (दुर्द्श द्वाराणि (भूतानि) उदकानि (अक्षरन्) प्राप्नुवन्ति॥५॥

अन्बर्धः - हे विदेत ! विराट् सम्राट् त्वं या विभ्वीः प्रभ्वीर्बह्वीर्भूयसीश्चाऽण्व्यो मात्रा दुरो घृतानि चाक्षरन् ता विजानीहि॥

भावार्थः - हे मनुष्याः ! याः सर्वस्य जगतो बहुतत्त्वाढ्यास्त्रिगुणात्मिका मात्रा नित्यस्वरूपेण सदा वर्त्तन्ते, ता आरम्भ पृथिवीपर्यन्तान् पदार्थान् विज्ञाय सर्वकार्य्याणि साधनीयानि॥५॥

पदार्थ:-हे विद्वान्! (विराट्) जो विविध प्रकार के गुणों और कर्मों में प्रकाशमान वा (सप्राट्) जो चक्रवर्ती के समान विद्याओं में सुन्दरता से प्रकाशमान सो आप (या:) जो (विश्वी:) व्याप्त होनेवाली (प्रश्वी:) समर्थ (बह्वी:) बहुत अनेक (भूयसी:, च) और अधिक से अधिक पूक्षी मात्र) (दुर:) द्वारे अर्थात् सर्व कार्यसुखों को और (धृतानि, च) जलों को (अक्षरन्) प्राप्त होती हैं, उनको जानो॥५॥

भावार्थ:-हे मनुष्यो! जो सब जगत् की बहुत तत्त्वयुक्त सत्व रजस्तमो सुणवाली सूक्ष्ममात्रा नित्यस्वरूप से सदा वर्त्तमान हैं, उनको लेकर पृथिवी पर्यन्त पदार्थों को जान सब कार्य सिद्ध करने चाहियें॥५॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।

सुरुक्मे हि सुपेशसाऽधि श्रिया विराजतः। उषासावेह सीदताम्॥६॥

सुरुक्मे इति सुऽरुक्मे। हि। सुऽपेश्रीसा। अर्धि। श्रिया। विऽराजितः। उष्ट्रमी। आ। इह। सीदुताम्।।६॥

पदार्थ:-(सुरुक्मे) रमणीये (हि) (सुपेशसा) प्रश्निस्तिक्षे कार्यकारणे (अधि) (श्रिया) शोभया (विराजत:) देदीप्येते (उषासौ) रात्रिदिने इव (आ) (इह) कार्य्यकारणविद्यायाम् (सीदताम्) स्थिरौ स्याताम्॥६॥

अन्वयः-हे अध्यापकोपदेशकौ! यथेह सूर्धिमे सुपेशस्त्र कार्य्यकारणे श्रियाधिविराजतः। ते हि विदित्वा उषासाविव भवन्तौ परोपकार आ सीदताम्॥६॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। येऽस्यां सृष्टौ विद्यासुशिक्षे प्राप्य कार्य्यज्ञानपुरःसरं कारणज्ञानं लभन्ते ते सूर्य्याचन्द्रमसाविव परोपकार रमन्ते॥६॥

पदार्थ:-हे अध्यापक अंत उपदेशक लोगो! जैसे (इह) इस कार्यकारण विद्या में (सुरुक्मे) सुन्दर रमणीय (सुपेशसा) प्रशृंसित स्वरूप क्रार्थिकारण (श्रिया) शोभा से (अधि, विराजतः) देदीप्यमान होते हैं (हि) उन्हीं को ज्याकर (उपाप्ना) रात्रि, दिन के ससान आप लोग परोपकार में (आ, सीदताम्) अच्छे प्रकार स्थिर होओपदि

भावार्थ: इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो इस सृष्टि के विद्या और अच्छी शिक्षा को पाकर कार्य्यज्ञानपूर्वक कारणज्ञान को प्राप्त होते हैं, वे सूर्य-चन्द्रमा के समान परोपकार में रमते हैं॥६॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

प्रयुपा हि सुवार्चसा होतारा दैव्या कवी। युज्ञं नो यक्षतामिमम्।।७।। प्रथमा। हि। सुऽवार्चसा। होतारा। दैव्यां। कुवी इति। युज्ञम्। नुः। युक्षुताम्। इमम्।७। अष्टक-२। अध्याय-५। वर्ग-८-९

मण्डल-१। अनुवाक-२४। सूक्त-१८८

१९२७

पदार्थ:-(प्रथमा) आदिमौ विद्याबलविस्तारकौ (हि) यतः (सुवाचसा) शोभनं वाचो वचने ययोस्तौ (होतारा) आदातारौ (दैव्या) देवेषु दिव्येषु बोधेषु कुशलौ (कवी) सकलविद्यावेत्तारावध्यापकोपदेशकौ (यज्ञम्) धनादिसङ्गमकम् (नः) अस्माकम् (यक्षताम्) (इमम्) प्रत्यक्षतया वर्त्तमानम्॥७॥

अन्वयः-हे मनुष्या! हि यतो होतारा दैव्या प्रथमा सुवाचसा कवी न इमं यज्ञं यक्षताम्॥ 📶

भावार्थ:-अत्र ये येषामुपकारं कुर्वन्ति तैस्ते सत्कर्त्तव्या भवन्ति॥७॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! (हि) जिस कारण (होतार) ग्रहण कर्ता (दैव्या) दिव्य बोधों में कुशल (प्रथमा) प्रथम विद्या बल को बढानेवाले (सुवाचसा) सुन्दर जिनका वच्य (केबी) जो सकल विद्या के वेता अध्यापकोपदेशक जन हैं वे (न:) हमारे (इमम्) इस प्रत्यक्षता से वर्तमान (यज्ञम्) धनादि पदार्थों के मेल कराने वा व्यवहार का (यक्षताम्) सङ्ग करावें॥७॥

भावार्थ:-इस संसार में जो जिनका उपकार करते हैं, वे उनको सत्कार करने योग्य होते हैं॥७॥

अथ स्त्रीपुरुषविषयमाह।।

अब स्त्रीपुरुष के विषय को अगूर्व मुन्त्र में कहा है॥

भारतीळे सरस्वित या वः सर्वा उपबुवे। ता रश्लोदयन श्रिये॥८॥

भार्रति। इळे। सर्रस्वति। या:। वु:। सर्वा:। उप्रबुवि। ता:। नु:। चोदुयुत्। श्रिये॥८॥

पदार्थ:- (भारति) सकलविद्याधारिके (इस्ते) प्रेष्ट्रस्ते (सरस्वति) प्रशस्तं सरो विज्ञानं गमनं वा विद्यते यस्यां तत्सम्बुद्धौ (याः) (वः) युष्मान् प्रति (सर्वाः) अखिला वाचः (उपत्नुवे) उपयोगि वच उपदिशेयम् (ताः) सर्वा विदुष्यः (नः) अस्मान् (चोदयत) (श्रिये) लक्ष्मीप्राप्तये॥८॥

अन्वय:-हे भारतीळे सरस्वित्रया वे सर्वा अहमुपब्रुवे ता यूयं नोऽस्मान् श्रिये चोदयत प्रेरयत॥८॥

भावार्थ:-याः प्रशंसितस्तिन्दर्यशुभलेक्षणलिक्षता अनवद्यशास्त्रविज्ञानरममाणाः कन्या भवेयुस्ताः पाणिग्राहान् पतीन् प्राप्य धर्मेण धन्मदिपदार्थातुन्त्रयेयु:॥८॥

पदार्थ:-हे (भारति) समस्त्र विद्या के धारण करनेवाली वा (इळे) हे प्रशंसावती वा (सरस्वित) हे विज्ञान और उत्तम गतिवाली (या:) जो (व:) तुम (सर्वा:) सभी को समीप में (उपबुवे) उपयोग करनेवाले वचन क्रम उपदेश करूं (ता:) वे तुम (न:) हम लोगों को (श्रिये) लक्ष्मी प्राप्त होने के लिये (चोदयत) प्रेरणा देअपाटा

भार्कार्थ: जो प्रशंसित सौन्दर्य, उत्तम लक्षणों से युक्त देखी गई, श्रेष्ठतर शास्त्रविज्ञान में रमनेवाली कन्या हों, वे अपने पाणिग्रहण करनेवाले पितयों को पाकर धर्म से धनादि पदार्थों की उन्नति करें।

अथेश्वरविषयमाह।।

अब ईश्वर विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

त्वष्टां रूपाणि हि प्रभु: पुशून्विश्चांन्त्समानुजे।

तेषां नः स्फातिमा यंज॥९॥

त्वष्टां। रूपाणि। हि। प्रुऽभुः। पुशून्। विश्वान्। सुम्ऽआनुजे। तेषाम्। नुः। स्फातिम्। आ) युज्रो। १॥

पदार्थ:- (त्वष्टा) सर्वस्य जगतो निर्माता (रूपाणि) सर्वाणि विविधस्वरूपणि स्थूलानि वस्तूनि (हि) खलु (प्रभु:) समर्थ: (पशून्) गवादीन् (विश्वान्) सर्वान् (समानजे) व्यक्तीकरति (तेषाम्) (नः) अस्माकम् (स्फातिम्) वृद्धिम् (आ) समन्तात् (यज) गमय॥९॥

अन्वय:-हे विद्वन्! यथा त्वष्टा प्रभुरीश्वरो हि विश्वान् पशून् रूपाणि च सम्मिन्जे तथा नः स्फातिमायज॥९॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। यथा जगदीश्वरेणातीद्विष्यदितिसूक्ष्मकारणाद्विचित्राणि सूर्यचन्द्रपृथिव्योषधिमनुष्यशरीराऽवयवादीनि निर्मितानि तथाऽस्याः सृष्ट्रेर्गुणकर्मस्वभावक्रमेणानेकानि व्यवहारसाधकानि वस्तूनि निर्मातव्यानि॥९॥

पदार्थ: - हे विद्वान्! जैसे (त्वष्टा) सब जगत् का निर्माण करनेवाला (प्रभु:) समर्थ ईश्वर (हि) ही (विश्वान्) समस्त (पशून्) गवादि पशुओं और (क्याण्) समस्त विविध प्रकार से स्थूल वस्तुओं को (समानजे) अच्छे प्रकार प्रकट करता और (तेषाम्) उनकी (स्फातिम्) वृद्धि को प्रकट करता है, वैसे आप (न:) हमारी वृद्धि को (आ, यज) अच्छे प्रकार प्राप्तु कीजिये॥९॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्लेक्सालङ्कार हैं। जैसे जगदीश्वर ने इन्द्रियों से परे जो अतिसूक्ष्म कारण है, उससे चित्र-विचित्र सूर्य, चून्द्रमा, पृथिन्नी, ओषधि और मनुष्य के शरीरावयवादि वस्तु बनाई हैं, वैसे इस सृष्टि के गुण, कर्म और स्वभाव, क्रम से अनेक व्यवहार सिद्ध करनेवाली वस्तुयें बनानी चाहियें॥९॥

अथ दातुविषयमाह।।

क्षेत्र देनेतुगल के विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

उप त्मन्यां वनस्पते पार्थी देवेभ्यः सज।

अग्निर्हुब्यानि सिख्वदत्॥ १०॥

उपा न्पन्या कुरूपते। पार्थः। देवेभ्यं। सृजु। अग्निः। हुव्यानि। सिस्वुदुत्॥ १०॥

पदार्थ: (उप) (त्मन्या) आत्मिन साध्व्या क्रियया (वनस्पते) वनानां पालक (पाथ:) अन्नम् (देवेभ्यः) विद्वद्भ्यो दिव्यगुणेभ्यो वा (सृज) (अग्निः) पावकः (हव्यानि) अत्तव्यानि (सिष्वदत्) स्वाद्करोति। ४०॥

अष्टक-२। अध्याय-५। वर्ग-८-९

मण्डल-१। अनुवाक-२४। सूक्त-१८८

१९२९

अन्वय:-हे वनस्पते! त्मन्या तथाऽग्निर्देवेभ्यो हव्यानि सिष्वदत्तथा त्वं देवेभ्य पाथ उपसृज॥१०॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपालङ्कार:। ये वनादिरक्षणेन तृणौषधीन् वर्द्धयन्ति, ते सर्वोपकारं कर्त्तुं योग्या जायन्ते॥१०॥

पदार्थ: -हे (वनस्पते) वनों के पालनेवाले! (त्मन्या) अपने बीच उत्तम क्रिया से जैसे (ऑफ्रि:) अग्नि (देवेभ्य:) विद्वान् वा दिव्य गुणों के लिये (हव्यानि) भोजन करने योग्य पदार्थीं को (सिष्वदत्) स्वादिष्ठ करता है, वैसे आप विद्वान् वा दिव्य गुणों के लिये (पाथ:) अन्न को (उप, सृज) उनके लिये देओ॥१०॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो वनादिकों की रक्षा से घास, फूस और ओषधियों को बढ़ाते हैं, वे सबका उपकार करने योग्य होते हैं॥१०॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।

पुरोगा अग्निर्देवानां गायुत्रेण सम्जयते। स्वाहाकृतीषु रोचते। ११॥९॥

पुरःऽगाः। अग्निः। देवानाम्। गायुत्रेणी सम्। अज्यते (स्वाहीऽकृतीर्षु। रोचते।११॥

पदार्थ:-(पुरोगा:) अग्रगामी (अग्नि:) पावक: (देवाजाम्) दिव्यगुणानां पृथिव्यादीनां मध्ये (गायत्रेण) गायत्रीछन्दोऽभिहितेन बोधेन (सम्) (अन्यते) (स्वाहाकृतीषु) स्वाहया कृतयः क्रिया येषु व्यवहारेषु तेषु (रोचते) दीप्यते॥११॥

अन्वय:-ये परोपकारिणस्ते यथा देवानां पुसेगा अध्निर्मीयत्रेण स्वाहाकृतीषु समज्यते रोचते च तथाऽग्रचा भूत्वा सर्वत्र सित्क्रियन्ते॥११॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपिमलङ्कारः यदि मनुष्या अग्निप्रधानान् दिव्यान् पदार्थान् व्यवहारसिद्धये सम्प्रयुञ्जीरन् तर्हि वे एश्वय्योद्ध्या भूत्वा मान्या जायन्त इति वेद्यम्॥११॥

अत्राग्न्यादिदृष्टान्तेन राजाऽध्यापकोपद्रेशकस्त्रीपुरुषेश्वरदातृगुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिर्वेद्या॥

इत्यष्टाशीत्युत्तर्गे शततमं १८८ सूक्तं नवमो ९ वर्गश्च समाप्तः॥

पदार्थ:-जो परोपकारी जन हैं, वे जैसे (देवानाम्) दिव्य गुण वा पृथिव्यादिकों के बीच (पुरोगा:) अग्रगामी (अग्निः) अग्न (गायत्रेण) गायत्री छन्द से कहे हुए बोध से (स्वाहाकृतीषु) स्वाहा शब्द से जिन व्यवहास में क्रियायें होतीं, उनमें (समज्यते) प्रकट किया जाता और वह (रोचते) प्रदीप्त होता है, बैसे अग्रम्भूभी होकर सर्वत्र सत्कार को प्राप्त होते हैं॥११॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। यदि मनुष्य अग्नि प्रधान दिव्य पदार्थों को व्यवहारसिद्धि के लिये संयुक्त करें तो वे ऐश्वर्ययुक्त होकर माननीय होते हैं, यह समझना चाहिये॥११॥

इस सूक्त में अग्नि के दृष्टान्त से राजा, अध्यापक, उपदेशक, स्त्रीपुरुष, ईश्वर और देनेवाले के गुणों का वर्णन होने से इसके अर्थ की पिछले सूक्तार्थ के साथ सङ्गति समझनी चाहिये॥

यह एक सौ अठासीवां १८८ सूक्त और नवमां ९ वर्ग समाप्त हुआ॥

अग्न इत्यष्टर्चस्य एकोननवत्युत्तरशततमस्य सूक्तस्य अगस्त्य ऋषि:। अग्निर्देवता। १,४,८ निचृत् त्रिष्टुप् छन्द:। धैवत: स्वर:। २ भुरिक् पङ्क्ति:। ३,५,६ स्वराट् पङ्क्ति:। ७

पङ्क्तिश्छन्द:। पञ्चम: स्वर:॥

अथेश्वरगुणानाह।।

अब एक सौ नवासीवें सूक्त का आरम्भ है। उसके प्रथम मन्त्र में ईश्वर के गुणों का उपदेश करते हैं।।

अग्ने नयं सुपर्था राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्। युयोध्यर्थस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमंउक्ति विधेम॥१॥

अग्ने। नर्य। सुऽपर्था। राये। अस्मान्। विश्वानि। देव। वयुनानि। विद्वान्। व्युमेधि। अस्मत्। जुहुराणम्। एनं:। भूयिष्ठाम्। ते। नर्मःऽउक्तिम्। विधेम्॥ १॥

पदार्थ:-(अग्ने) स्वप्रकाशस्वरूपेश्वर (नय) प्रापय (पुण्या) ध्रम्येंण सुगमेन सरलेन मार्गेण (राये) ऐश्वर्यानन्दप्राप्तये (अस्मान्) मुमुक्षून् (विश्वानि) सर्वाणि चराचरजगत्कर्माणि च (देव) कमनीयानन्दप्रद (वयुनानि) प्रज्ञानानि (विद्वान्) यो वेति (युक्येष्टि) वियोजय (अस्मत्) (जुहुराणम्) कुटिलगतिजन्यम् (एनः) पापम् (भूयिष्ठाम्) अधिकाम् (ते) त्व (नमउक्तिम्) नमसा सत्कारेण सह स्तुतिम् (विधेम) कुर्याम॥१॥

अन्वयः-हे देवाऽग्ने विद्वाँस्त्वमस्मान् राये ग्रूपिश्च विश्वाह्मि वयुनानि नय। जुहुराणमेनोऽस्मद् युयोधि यतो वयं ते भूयिष्ठां नमउक्तिं विधेम॥१॥

भावार्थ:-मनुष्यैर्धर्मविज्ञानमार्गप्राप्तये अभूमिनवृत्तये च परमेश्वरः सम्प्रार्थनीयः सदा सुमार्गेण गन्तव्यं दुष्पथादधर्ममार्गात्पृथक् स्थातव्ये यथा विद्वांसः परमेश्वरे परानुरिक्तं कुर्वन्ति तथेतरैश्च कार्या॥१॥

पदार्थ:-हे (देव) मनोहर जानन्द के देनेवाले (अग्ने) स्वप्रकाशस्वरूपेश्वर (विद्वान्) सकल शास्त्रवेत्ता! आप (अस्मान्) हुम मुमुक्षु अर्थात् मोक्ष चाहते हुए जनों को (राये) धनादि प्राप्ति के लिये (सुपथा) धर्मयुक्त सरल पार्ग से (विश्वानि) समस्त (वयुनानि) उमत-उत्तम ज्ञानों को (नय) प्राप्त कराइये, (जुहुराणम्) खरी चाला से उत्पन्न हुए (एनः) पाप को (अस्मत्) हम से (युयोधि) अलग करिये जिसमें हम (ते) आपकी (भूयिष्ठाम्) अधिकतर (नमउक्तिम्) सत्कार के साथ स्तुति का (विधेम) विधान करें॥१॥

भावार भावार भावार मार्ग का धर्म तथा विज्ञान मार्ग की प्राप्ति और अधर्म की निवृत्ति के लिये परमेश्वर की अच्छे प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये और सदा सुमार्ग से चलना चाहिये, दु:खरूपी अधर्म मार्ग से अलग्र रहना चाहिये, जैसे विद्वान् लोग परमेश्वर में उत्तम अनुराग करते, वैसे अन्य लोगों को भी करना चाहिये।

१९३२

ऋग्वेदभाष्यम्

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अग्ने त्वं पारया नव्यो अस्मान्स्वस्तिभिरित दुर्गाणि विश्वा। पूर्श्व पृथ्वी बहुला न उर्वी भर्वा तोकाय तनयाय शं यो:॥२॥

अग्ने। त्वम्। पार्यः। नव्यः। अस्मान्। स्वस्तिऽभिः। अति। दुःऽगानि। विश्वा। पूः। या पृथ्वी। बहुला। नः। उर्वी। भवं। तोकार्य। तनयाय। शम्। योः॥२॥

पदार्थ:-(अग्ने) परमेश्वर (त्वम्) (पारय) दु:खाचारात् पृथिकृत्वा श्रेष्ठाचारं नय। अत्राऽन्येषामपीति दीर्घ:। (नव्य:) नव एव नव्यः (अस्मान्) (स्वस्तिभिः) सुखैः (अति) (दुर्गाणि) दु:खेन गन्तुं योग्यानि (विश्वा) सर्वाणि (पूः) पुररूपा (च) (पृथ्वी) सूमिः (बहुला) या बहून् पदार्थान् लाति सा (नः) अस्माकम् (उर्वी) विस्तीर्णा (भव) अत्र ह्याचोऽतसित्वं इति दीर्घः। (तोकाय) अतिबालकाय (तनयाय) कुमाराय (शम्) सुखम् (योः) प्रापकः

अन्वय:-हे अग्ने! त्वं स्वस्तिभिरस्मान् विश्वानि दुर्गाणि प्रास्य यथा नेच्योँ पूर्बहुला उर्वी पृथ्वी चाऽस्ति तथा नोऽस्माकं तोकाय तनयाय शं योर्भव॥२॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। यथा परमेश्वरः पुण्यात्मनो दुष्टाचारात् पृथग् रक्षति पृथिवीवत् पालयति तथा विद्वान् सुशिक्षया सुकर्मिणो दुष्टाचारुत् पृथक् कृत्वा सुव्यवहारेण रक्षति॥२॥

पदार्थ:-हे (अग्ने) परमेश्वर! (त्वम्) आप (स्क्रिस्तिभि:) सुखों से (अस्मान्) हम लोगों को (विश्वा) समस्त (अति, दुर्गाणि) अत्यन्त दुर्ग के व्यवहारों (पारय) पार कीजिये। जैसे (नव्यः) नवीन विद्वान् और (पू:) पुररूप (बहुला) बहुत येव्थी को लेनेवाली (उर्वी) विस्तृत (पृथ्वी, च) भूमि भी है, वैसे (नः) हमारे (तोकाय) अत्यन्त छोठे और (तनयाय) कुछ बड़े बालक के लिये (शं, योः) सुख को प्राप्त करानेवाले (भव) ह्जिये।। रा

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपूर्म लङ्कार है। जैसे परमेश्वर पुण्यात्मा जनों को दुष्ट आचार से अलग रखता और पृथिली के समान पालना करता है, वैसे विद्वान् जन सुन्दर शिक्षा से उत्तम कर्म करनेवालों को दुष्ट आचरण से अलग कर सुन्दर व्यवहार से रक्षा करता है॥२॥

अथेश्वरदृष्टान्तेन विद्वद्गुणानाह॥

अब ईश्वर के दृष्टान्त से विद्वानों के गुणों को अगले मन्त्र में कहा है।।

अभि त्वेपसमधुयोध्यमीवा अनीनित्रा अभ्यमन्त कृष्टीः।

पुर्तरस्मभ्यं सुवितायं देव क्षां विश्वेभिरुमृतेभिर्यजत्र॥३॥

अष्टक-२। अध्याय-५। वर्ग-१०-११

मण्डल-१। अनुवाक-२४। सूक्त-१८९

१९३३

अग्ने। त्वम्। अस्मत्। युयोधि। अमीवाः। अनेग्निऽत्राः। अभि। अमेन्त। कृष्टीः। पुनेः। अस्मर्भ्यम्। सुविताये। देव। क्षाम्। विश्वेभिः। अमृतेभिः। युज्त्रु॥३॥

पदार्थ:-(अग्ने) ईश्वर इव विद्वन् (त्वम्) (अस्मत्) (युयोधि) पृथक् कुरु (अमीवाः) सेगाः (अनिनन्नाः) अविद्यमानज्वरेण रक्षकाः (अभ्यमन्त) अभितो रुजन्ति (कृष्टीः) मनुष्यान् (पुनः) (अस्मभ्यम्) (सुविताय) ऐश्वर्यप्राप्तये (देव) कामयमान (क्षाम्) भूमिं भूमिराज्यमान्नं व्या (विश्वर्षिः) सर्वैः (अमृतेभिः) अमृतात्मकैरोषधैः (यजत्र) सङ्गच्छमान॥३॥

अन्वयः-हे यजत्र देवाग्ने वैद्यस्त्वं येऽनग्नित्रा अमीवा रोगाः कृष्टेस्भ्यमन्ते तानस्मद् युयोधि पुनर्विश्वेभिरमृतेभिरस्मभ्यं सुविताय क्षां भूराज्यं प्राप्रय॥३॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। यथेश्वरो वेदद्वाराऽविद्यारोभी प्रानीम पृथक् करोति, तथा सद्वैद्या मनुष्यान् रोगेभ्यो निवर्त्य अमृतात्मकैरौषधैर्वर्द्धयित्वैश्वर्यं प्रापयन्ति। ३।।)

पदार्थ:-हे (यजत्र) सङ्ग करते हुए (देव) कामना करने विले (अपने) ईश्वर के समान विद्वान् वैद्य जन! (त्वम्) आप जो (अनिन्त्रा:) ऐसे हैं कि यदि उनके साथ ज्वर न विद्यमान हो तो अविद्यमान ज्वर से शरीर की रक्षा करनेवाले हैं, वे (अमीवा:) रोग (कृष्टी:) मनुष्यों को (अभ्यमन्त) सब ओर से रुग्ण करते कष्ट देते हैं, उनको (अस्मत्) हम लोगों से (युमोधि) अलग कर (पुनः) फिर (विश्वेभिः) समस्त (अमृतेभिः) अमृतरूप ओषधियों से (अस्मध्यम्) हम लोगों के लिये (सुविताय) ऐश्वर्य प्राप्त होने के लिये (श्वाम्) भूमि के राज्य को प्राप्त कीजिये॥॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे ईश्वर वेदद्वारा अविद्यारूपी रोग से मनुष्यों को अलग करता है, वैसे अच्छे वैद्य मनुष्यों को रोगों से निवृत्त कर अमृतरूपी ओषधियों से बड़ा कर ऐश्वर्य की प्राप्ति कराते हैं॥३॥

पुनर्विद्वद्विषयमाह।।

किर विद्वानों के विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

पाहि नो अग्ने प्रायुभिरजम्मेर्ट्त प्रिय सर्दन आ शुंशुक्वान्। मा ते भयं जेरितार युविष्ठ नूनं विदुन्मापुरं सहस्व:॥४॥

पाहि। नृः/ अग्ने। प्रायुभिः। अजैस्रैः। उता प्रिये। सर्दने। आ। शुशुक्वान्। मा। ते। भ्यम्। जरितार्रम्। युविष्ठु। नूनम्। र्विद्वा मा। अपुरम्। सहस्वः॥४॥

पूर्टार्थ: (पार्ह) (न:) अस्मान् (अग्ने) अग्निवद्विद्वन् (पायुभि:) रक्षणोपायै: (अजसै:) निरन्तरै (उत) (प्रिये) कमनीये (सदने) स्थाने (आ) (शुशुक्वान्) विद्याविनयाभ्यां प्रकाशित: (मा) (ते) तव (भयम्) (जिरतारम्) (यिवष्ठ) अतिशयेन युवन् (नूनम्) निश्चितम् (विदत्) विद्यात् प्राप्नुयात् (मा) (अग्रम्) अन्यम् (सहस्व:) सोढुं शील॥४॥

अन्वय:-हे अग्ने शुशुक्वाँस्त्वमजस्नैः पायुभिः प्रिये सदन उत शरीरे बहिर्वा नोऽस्माना पाहि। हे यविष्ठे सहस्वस्ते जरितारं भयं मा विदन्नूनमपरं भयं माप्नुयात्॥४॥

भावार्थ:-त एव प्रशंसनीया जना ये सततं प्राणिनो रक्षन्ति, कस्मादिप भयं विक्रिक्य कुर्वन्ति॥४॥

पदार्थ:-हे (अग्ने) अग्नि के समान विद्वान्! (शुशुक्वान्) विद्या और विनय से प्रकाश को प्राप्त (अजस्त्रे:) निरन्तर (पायुभि:) रक्षा के उपायों से (प्रिये) मनोहर (सदने) स्थान (जन) वा शरीर में वा बाहर (न:) हम लोगों को (आ, पाहि) अच्छे प्रकार पालिये, जिससे हे (यिव्रष्ट) अन्यन्त युवावस्थावाले (सहस्व:) सहनशील विद्वन्! (ते) आपकी (जिरतारम्) स्तुति करनेवाले को (भयम्) भय (मा) मत (विदत्) प्राप्त होवे (नूनम्) निश्चय कर (अपरम्) और को भय (मा) मत प्राप्त होवे। (सहस्व:)

भावार्थ:-वे ही प्रशंसनीय जन हैं, जो निरन्तर प्राणियों की रक्षा करते हैं और किसी के लिये भय वा निर्बलता को नहीं प्रकाशित करते हैं॥४॥

अथ शासकविषयमाह।

अब शिक्षा देनेवाले के विषय को अगिले मेन्त्र में कहा है।।

मा नी अग्नेऽव सृजो अघायाविष्यवे रिप्रवे दुच्छुपीये

मा दुत्वते दर्शते मादते नो मा रीषते सहसावन्यस् दाः॥५॥१०॥

मा। नुः। अग्ने। अवं। सृजुः। अघायं। अविष्यवे। रिप्रवे। दुच्छुनयि। मा। दुत्वते। दशते। मा। अदते। नुः। मा। रिषते। सहसाऽवन्। पर्रा। दाः॥५॥

पदार्थ:-(मा) (नः) अस्मान्न (अप) विद्वन् (अव) (सृजः) संयोजयेः (अघाय) पापाय (अविष्यवे) धर्ममव्याप्नुवते (स्मिवे) शत्रवे (दुच्छनाये) दुष्टं शुनं गमनं यस्यास्तस्यै। अत्र शुनगतावित्यस्माद् घत्रथे क इति कः। (मा) (दत्वते) दन्तवते (दशते) दंशकाय (मा) (अदते) (नः) अस्मान् (मा) (रिषते) हिंसकाय। अत्राऽन्येषामपीत्याद्यचो दैर्घ्यम्। (सहसावन्) बहु सहो बलं सहनं वा विद्यते यस्य तत्सम्बुद्धौ (क्सः) (दाः) दूरीकुर्याः॥५॥

अन्वय:-हे अग्ने ! त्वं तोऽभायाविष्यवे रिपवे दुच्छनायै च मावसृज:। हे सहसावन् ! दत्वते दशते मादते मा रिषते च नो मा परा क्राः॥५॥

भावार्थः-मेरुप्यैविंद्वद्राजाऽध्यापकोपदेशकान् प्रत्येवं प्रार्थनीयमस्मान् दुर्व्यसनाय दुष्टसङ्गाय मा प्रेरयत्, किन्तु सदेशे श्रेष्ठाचारधर्ममार्गसत्सङ्गेषु संयोजयतेति॥५॥

पदार्थ: -हे (अग्ने) विद्वान्! आप (नः) हम लोगों को (अघाय) पापी जन के लिये (अविष्यवे) वा ब्री धर्म को नहीं व्याप्त उस (रिपवे) शत्रुजन अथवा (दुच्छुनायै) दुष्ट चाल जिसकी उनके लिये (पावसूजः) मत मिलाइये। हे (सहसावान्) बहुत बल वा बहुत सहनशीलतायुक्त विद्वान्! (दत्वते)

अष्टक-२। अध्याय-५। वर्ग-१०-११

मण्डल-१। अनुवाक-२४। सूक्त-१८९

१९३५

दातोंवाले और (दशते) दाढ़ों से विदीर्ण करनेवाले के (मा) मत तथा (अदते) विना दातोंवाले दुष्ट के लिये (मा) मत और (रिषते) हिंसा करनेवाले के लिये (नः) हम लोगों को (मा, परा, दाः) मत दूर कीजिये अर्थात् मत अलग कर उनको दीजिये॥५॥

भावार्थ:-मनुष्यों को विद्वान्, राजा, अध्यापक और उपदेशकों के प्रति ऐसी प्रार्थना करनी चाहिये कि हम लोगों को दुष्ट स्वभाव और दुष्ट सङ्गवाले को मत पहुंचाओ, क्रिन्तु सदैन श्रेष्ठाचार धर्ममार्ग और सत्सङ्गों में संयुक्त करो॥५॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

वि घ त्वावाँ ऋतजात यंसद् गृणानो अंग्ने तुन्वे ३ वस्थ्रम्। विश्वाद्विरिक्षोरुत वा निनित्सोरिभिहुतामिस हि देव विष्यद्।। ६०१

वि। घा त्वाऽवान्। ऋतुऽजाता यंसत्। गृणानः। अग्ने। तुर्खा वरूपम् विश्वात्। रिरिक्षोः। उता वा। निनित्सोः। अभिऽहुताम्। असिं। हि। देवा विष्यद्॥६॥

पदार्थ:-(वि) विशेषेण (घ) एव (त्वावान्) त्वायां सदुशः (ऋतजात) सत्याचारे प्राप्तप्रसिद्धे (यंसत्) यच्छेत् (गृणानः) स्तुवन् (अग्ने) विद्युद्धि वर्तमानं विद्वन् (तन्वे) शरीराय (वरूथम्) स्वीकर्त्तुमर्हम् (विश्वात्) समग्रात् (रिरिक्षोः) हिंसितुमिन्छोः (उत्त) अपि (वा) (निनित्सोः) निन्दितुमिच्छोः (अभिहुताम्) सर्वतः कुटिलाचस्णान्।म् (असि) (हि) (देव) जिगीषो (विष्यट्) यो विषो व्याप्नुवतः पटित प्राप्नोति सः॥६॥

अन्वयः-हे ऋतजात देवाग्ने! त्वायान् गृणानो विद्वान् तन्वे वरुथं घ वि यंसत् यो विष्पट् त्वं विश्वाद्विरिक्षोरुत वा निनित्सो: पृथग्वि यंसत्तस्माद्धि त्वमभिहुतां श्वासिताऽसि॥६॥

भावार्थ:-ये गुणदोषवेतारः सत्याचरणाः सर्वेभ्यो हिंसकनिन्दककुटिलेभ्यो जनेभ्यः पृथक् वसन्ति, ते सर्वं भद्रमाप्नुवन्तिमद्दम

पदार्थ:-हे (ऋतजात) सत्य आचार में प्रसिद्धि पाये हुए (देव) विजय चाहनेवाले (अग्ने) बिजुली के तुल्य चञ्चल ताप्युक्ते! (त्वावान्) तुम्हारे सदृश (गृणानः) स्तुति करता हुआ विद्वान् (तन्वे) शरीर के लिये (ब्रुस्थ्यम्) स्वीकार करने के योग्य (घ) ही पदार्थ को (वियंसत्) देवे। जो (विष्यट्) व्याप्तिमानों कृत्रेपाप्त होते आप (विश्वात्) समस्त (रिरिक्षोः) हिंसा करना चाहते हुए (उत, वा) अथवा (निनित्सोः) पिनन्दो करना चाहते हुए से अलग देवें (हि) इसी से आप (अभिहृताम्) सब ओर से कृटिल आचरण क्रिरनेवालों को शिक्षा देनेवाले (असि) होते हैं॥६॥

भार्क्णर्थ:-जो गुण दोषों के जाननेवाले सत्याचरणवान् जन समस्त हिंसक, निन्दक और कुटिल ब्रिनी से अलग रहते हैं, वे समस्त कल्याण को प्राप्त होते हैं॥६॥ १९३६

ऋग्वेदभाष्यम्

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

त्वं ताँ अंग्न उभयान्वि विद्वान् वेषि प्रिपत्वे मनुषो यजत्र। अभिपित्वे मनवे शास्यो भूर्ममृजेन्यं उशिग्भिर्नाक्रः॥७॥

त्वम्। तान्। अग्ने। उभयान्। वि। विद्वान्। वेषि। प्रऽपित्वे। मर्नुषः। युज्त्रः। अभिऽपित्वे। मर्नवे। शास्यः। भूः। मुर्मृजेन्यः। उशिक्ऽभिः। न। अक्रः॥७॥

पदार्थ:- (त्वम्) (तान्) (अग्ने) दुष्टप्रशासकविद्वन् (उभयान्) कुटिलान् निन्दकोन् हिंसकान् वा (वि) विद्वान् (वेषि) प्राप्नोषि (प्रिपत्वे) प्रकर्षेण प्राप्ते समये (मनुष् प्राप्ते (यजत्र) पूजनीय (अभिपित्वे) अभितः प्राप्ते (मनवे) मननशीलाय मनुष्याय (श्रास्थः) शिक्तुं योग्यः (भूः) भवेः (मर्मृजेन्यः) अत्यन्तमलंकरणीयः (उशिग्भः) कामयमानैर्जनैः (न) निषेधे (अन्नः) दुष्टान् क्राम्यति॥७॥

अन्वयः-हे यजत्राऽग्ने विद्वान्! यस्त्वं तानुभयान् मनुषः प्रिपत्वे विद्वेषि सोऽभिपित्वे मनवे शास्यो भूरुशिग्भिर्ममृजेन्यो भवान् नाक्रः॥७॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। ये विद्वांसो मनुष्या या किन्नुया त्रावद्धिंसकान् क्रूरान् जुगुप्सकान् स्वबलेनाभिमर्द्य निवर्त्य सत्यं कामयमानान् हर्षयन्ति, त्रे शासितारी भूत्वा शुद्धा जायन्ते॥७॥

पदार्थ:-हे (यजत्र) सत्कार करने योग्य (अम्मे) दुष्टी को शिक्षा देनेवाले (विद्वान्) विद्वान् जन! जो (त्वम्) आप (तान्) उन (उभयान्) दोनों प्रकार के ष्ट्राटिल निन्दक वा हिंसक (मनुषः) मनुष्यों को (प्रिपित्वे) उत्तमता से प्राप्त समय में (वि विष्) प्राप्त होते वह आप (अभिपित्वे) सब ओर से प्राप्त व्यवहार में (मनवे) विचारशील मनुष्य के लिये (शास्यः) शिक्षा करने योग्य (भूः) हूजिये और (उशिग्भिः) कामना करते हुए जनों से (मर्मृजन्यः) अत्यन्त शोभा करने योग्य आप (नाक्रः) दुष्टों को उल्लंघते नहीं, छोड़ते नहीं अर्थात् उनकी दुष्टता को निवारण कर उन्हें शिक्षा देते हैं॥७॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो विद्वान् जन जितना हो सके उतना हिंसक, क्रूर और निन्दक जनों को अपने क्लू से सब्धे और से मींजमांज उनका बल नष्ट कर सत्य की कामना करनेवालों को हर्ष दिलाते हैं, वे शिक्षादेनवाले होकर शुद्ध होते हैं॥७॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

अवीचाम निवर्चनान्यस्मिन् मानस्य सूनुः सहसाने अग्नौ।

व्यं सहस्रमृषिभिः सनेम विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम्॥८॥११॥

अष्टक-२। अध्याय-५। वर्ग-१०-११

मण्डल-१। अनुवाक-२४। सूक्त-१८९

१९३७

अवोचाम। निऽवर्चनानि। अस्मिन्। मार्नस्य। सूनुः। सहसाने। अग्नौ। वयम्। सहस्रम्। ऋषिऽभिः। सर्नेम्। विद्यामे। ड्रुषम्। वृजर्नम्। जीरऽदानुम्॥८॥

पदार्थ:- (अवोचाम) उपदिशेम (निवचनानि) परीक्षया निश्चितानि धर्म्यवचांसि (अस्मिन्) (मानस्य) विज्ञानवतो जनस्य (सूनुः) (सहसाने) सहमाने (अग्नौ) पावक इव विदुषी (वयम्) (सहस्रम्) असङ्ख्यम् (ऋषिभिः) वेदार्थविद्धिः सह (सनेम) संभजेम (विद्याम) (वृजनम्) (जीरदानुम्)॥८॥

अन्वय:-हे मनुष्या! यो मानस्य सूनुस्तमस्मिन् सहसानेऽग्नौ निवचनानि यथा व्ययमवीसाम ऋषिभि सहस्रं सनेम इषं वृजनं जीरदानुं च विद्याम तथा यूयमप्याचरत॥८॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथाप्ताः शान्ता उपदेशुरः श्रोतृभ्यः सत्यान्युपदिश्य सुखिनः कुर्वन्ति तैः सहान्ये विद्वांसो जायन्ते तथोपदिश्य श्रुत्वा विद्यातृर्द्धिं सर्वे कुर्वन्तु॥८॥

अस्मिन् सूक्ते परमेश्वरविद्वच्छासकगुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वस्कतार्थेन स्रेह सङ्गतिरस्तीति वेद्यम्॥

इत्येकोननवत्युत्तरं शततमं १८९ सूक्तमेकादशो (११ वर्ग् अ समाजः॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! जो (मानस्य) विज्ञानवान् जन का (सूनु:) मन्तान है, उसके प्रति (अस्मिन्) इस (सहसाने) सहन करते हुए (अग्नो) अग्नि के सम्मिन् विद्वान् के निमित्त (निवचनानि) परीक्षा से निश्चित किये वचनों को जैसे (वयम्) हम लोग (अवोचाम्) पपदेश करें वा (ऋषिभि:) वेदार्थ के जाननेवालों से (सहस्रम्) असंख्य सुख का (सनेम्) सक्त को वा (इषम्) इच्छासिद्धि (वृजनम्) बल और (जीरदानुम्) जीवन को (विद्याम) प्राप्त होवें वैस्त सुम्, भी आचरण करो॥८॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे आप्त, शान्त, उपदेश करनेवाले विद्वान् जन श्रोताजनों के लिये सत्य वस्तुओं का उपदेश दे सुखी करते हैं, उनके साथ और विद्वान् होते हैं, वैसे उपदेश दे दूसरे का श्रवण कर विद्यावृद्धि सब करें।। ८॥

इस सूक्त में परमेश्वर, विद्वान् और शिक्षा देनेवाले के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के सार्थ सङ्गति है, यह जानना चाहिये॥

यह एक सौ विस्थिवां १८९ सूक्त और ग्यारहवां ११ वर्ग समाप्त हुआ॥

अनर्वाणिमत्यष्टर्चस्य नवत्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य अगस्त्य ऋषिः। बृहस्पतिर्देवता। १-३ निचृत् त्रिष्टुप्। ४,८ त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। ५-७ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः। धैवतः स्वरः॥ अथ विदुषां गुणकर्मस्वभावानाह॥

अब एक सौ नव्वे सूक्त का आरम्भ है। उसके प्रथम मन्त्र में विद्वानों के गुण, कर्म, स्वभावों क

वर्णन करते हैं॥

अनुर्वाणं वृष्भं मुन्द्रजिह्नं बृहस्पिति वर्धया नव्यमिकैः।

गाथान्यः सुरुचो यस्य देवा आशृण्वन्ति नर्वमानस्य मर्ताः॥१॥

अनुर्वाणम्। वृष्यभम्। मुन्द्रऽजिह्नम्। बृहुस्पतिम्। वर्धयः। नव्यम्। अर्कैः। गायान्यः। सुरुरुचेः। यस्ये। देवाः। आऽशृण्वन्ति। नवीमानस्य। मर्ताः॥ १॥

पदार्थ:- (अनर्वाणम्) अविद्यमानाश्चं पदातिम् (वृषभम्) श्रेष्ठम् (मेन्द्रजिह्नम्) मन्द्रा मोदकारिणी जिह्ना यस्य तम् (बृहस्पतिम्) बृहतः शास्त्रबोधस्य पालकमितिधम् (वर्द्ध्य) उन्नय। अत्राऽन्येषामपीति दीर्घः। (नव्यम्) नवेषु विद्वत्सु प्रतिष्ठितम् (अर्कैः) अन्नादिभिः। अन्न बहुवचनं सूपाद्यूपलक्षणार्थम्। (गाथान्यः) यो गाथां नयित तस्य (सुरुवः) शोभने धर्म्य (कुर्मणि रुक् प्रीतिर्यस्य (यस्य) (देवाः) दातारः (आशृणवित्त) समन्तात् प्रशंसां कुर्वन्ति (नवमानस्य) स्वोतुमहस्य (मर्त्ताः) मनुष्याः॥१॥

अन्वयः-हे विद्वन् गृहस्थ! देवा मर्ता यस्य म्ब्यान्यस्य सुप्रची गाथान्यः प्रशंसामाशृण्वन्ति तमनर्वाणं वृषभं मन्द्रजिह्नं बृहस्पतिं नव्यमतिथिमर्केस्त्वं वर्द्धय॥१॥

भावार्थ:-ये गृहस्थाः प्रशंसिनां पार्मिकाणां विदुषामितथीनां प्रशंसां शृणुयुस्तान् दूरादप्याहूय सम्प्रीत्या अन्नपानवस्त्रधनादिभिः सत्कृत्य सङ्गत्य विद्योन्नत्या शरीरात्मबलं वर्द्धयित्वा न्यायेन सर्वान् सुखेन सह संयोजयेयुः॥१॥

पदार्थ:-हे विद्वान् गृहस्थ! (देवाः) देनेवाले (मर्ताः) मनुष्य (यस्य) जिस (नवमानस्य) स्तुति करने योग्य (सुरुवः) सुन्दर धर्मयुक्त काम में प्रीति रखनेवाले (गाथान्यः) धर्मोपदेशों की प्राप्ति करने अर्थात् औरों के प्रति करनेवाले सुन्जन की प्रशंसा (आ, शृण्वन्ति) सब ओर से करते हैं, उस (अनर्वाणम्) अनर्वा अर्थात् अर्थात् अर्थात् न रखने, किन्तु पैरों से देश-देश घूमनेवाले (वृषभम्) श्रेष्ठ (मन्द्रजिह्नम्) हर्ष करनेवाली जिह्ना जिसकी उस (वृहस्पतिम्) अत्यन्त शास्त्रबोध की पालना करनेवाले (नव्यम्) नवीन विद्वानों की प्रतिष्ठा को प्राप्त अतिथि को (अर्कः) अन्न, रोटी, दाल, भात आदि उत्तम उत्तम पदार्थों से उसको (वर्द्धय) बढ़ाओ, उन्नति देओ, उसकी सेवा करो॥१॥

भावार्य: जो गृहस्थ प्रशंसा करनेवाले धार्मिक विद्वान् वा अतिथि संन्यासी अभ्यागत आदि सज्जनीं की प्रशंसा सुनें, उन्हें दूर से भी बुलाकर अच्छी प्रीति अन्न, पान, वस्त्र और धनादिक पदार्थों से अष्टक-२। अध्याय-५। वर्ग-१२-१३

मण्डल-१। अनुवाक-२४। सूक्त-१९०

सभी को संख

सत्कार कर उनसे सङ्ग कर विद्या की उन्नित से शरीर आत्मा के बल को बढ़ावा न्याय से सभी को सुंख के साथ संयोग करावें॥१॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

तमृत्विया उप वार्चः सचन्ते सर्गो न यो देवयतामसंर्जि। बृहस्पतिः स हाञ्जो वरांसि विभ्वार्भवृत्समृते मातुरिश्चा॥२॥

तम्। ऋत्वियाः। उपं। वार्चः। स्<u>चन्ते</u>। सर्गः। न। यः। देव्ऽयताम्। असर्जि। बृहस्पतिः। सः। हि। अञ्चः। वरांसि। विऽभ्वां। अभवत्। सम्। ऋते। मातस्थितं। २॥

पदार्थ:- (तम्) (ऋत्वियाः) या ऋतुमर्हन्ति ताः (उप) (वाचः) विद्याशिक्षायुक्ता वाणीः (सचन्ते) समवयन्ति (सर्गः) सृष्टिः (न) इव (यः) (देवयताम्) आत्मने देवान् विदुषः कुर्वताम् (असर्जि) सृज्यते (बृहस्पितः) बृहत्या वेदवाचः पालियता (सः) (हि) (अञ्चः) सर्वैः कमनीयः (वरांसि) वराणि (विभ्वा) विभुना व्यापकेन (अभवत्) भवेत् (सम्) (ऋते) सत्ये (मातिरिश्चा) वायुरिव॥२॥

अन्वय:-यो मातरिश्वेव ऋतेऽञ्जो बृहस्पतिर्विभ्व सूष्टः सम्भवत् यो वरांसि कृतवान् स्यात्, स हि देवयतामसर्जि तमृत्विया वाचः सर्गो नोप सचन्ते॥२॥

भावार्थ:-अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालद्भरी। यथोद्भर्क निम्नमार्गेण गत्वा निम्नस्थले स्थिरं भवति तथा यं विद्याशिक्षे आप्नुतस्सोऽभिमानं विक्रास्य सम्रो भूल्वा विद्याशयोऽस्तूचितवक्ता प्रसिद्धश्च स्यात्। यथा सर्वत्र व्यापकेनेश्वरेण यथायोग्यं विविधं जमित्रिमित्रोत्तथा विद्वत्सेवको विश्वकर्मा स्यात्॥२॥

पदार्थ:- (य:) जो (मात्रिशा) पवन के समान (ऋते) सत्य व्यवहार में (अञ्चः) सभी को कामना करने योग्य (बृहस्पितः) अनन्त चेद्र्याणी का पालनेवाला (विश्वा) व्यापक परमात्मा ने बनाया हुआ (समभवत्) अच्छे प्रकार हो और जो (बरांसि) उत्तम कर्मों को करने वाला हो (स:, हि) वही (देवयताम्) अपने को विद्वान करहे हुओं के बीच (असर्जि) सिद्ध किया जाता है (तम्) उसका (ऋत्वया:) जो ऋतु समय के ग्रीग्य होती वे (वाच:) विद्या सुशिक्षायुक्त वाणी (सर्गः) संसार के (न) समान ही (उप, मुद्दान्ते) सम्बन्ध करती हैं॥२॥

भावार्थ: इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे जल नीचे मार्ग से जाकर गढ़ेले में ठूहरता, वैसे जिसको विद्या शिक्षा प्राप्त होती हैं, वह अभिमान छोड़ के नम्र हो विद्याशय और उचित के नेवाला प्रसिद्ध हो, जैसे सर्वत्र व्याप्त ईश्वर ने यथायोग्य विविध प्रकार का जगत् बनाया, वैसे विद्यानी की भेवा करनेवाला समस्त काम करनेवाला हो॥२॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

उपस्तुतिं नर्मस् उद्यतिं च श्लोकं यंसत्सिवितेव प्र बाहू।

अस्य क्रत्वाहुन्यो र्रु यो अस्ति मृगो न भीमो अर्थुक्षसुस्तुर्विष्मान्॥३॥

उपेऽस्तुतिम्। नर्मसः। उत्ऽयेतिम्। चा श्लोकेम्। यंस्त्। सुविताऽईव। प्रा बाहू इति। अस्या क्रत्वी। अहुन्यः। यः। अस्ति। मृगः। न। भीमः। अरुक्षसीः। तुर्विष्मान्॥३॥

पदार्थ: (उपस्तुतिम्) उपगतां प्रशंसाम् (नमसः) नम्रस्य (उद्यतिम्) रुद्यमम् (च) (प्रलोकम्) सत्यां वाणीम् (यंसत्) प्रेरयेत् (सिवतेव) यथा भूगोलान् सूर्यः (प्र) (बाहू) भूजी (अस्य) (क्रत्वा) प्रज्ञया (अहन्यः) अहिन भवः (यः) (अस्ति) (मृगः) सिंहः (न) इव धीगः) अयङ्करः (अरक्षसः) कुटिलस्योत्तमस्य (तुविष्मान्) तुविषो बहवो बलवन्तो वीरा विद्यन्ते यस्थ सः।। अर्थ

अन्वय:-यो नमस उपस्तुतिमुद्यतिं श्लोकं सिवतेव बाहू च प्रयंसत् । अस्योरक्षसः क्रत्वा सह योऽहन्योऽस्ति, स मृगो न भीमस्तुविष्मान् भवति॥३॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। हे मनुष्या! यस्य सूर्यप्रकाशबद्धिर्धांकीर्त्युद्यमप्रज्ञाबलानि स्युः, स सत्यवाक् सर्वे: सेवनीय:॥३॥

पदार्थ:- (य:) जो (नमस:) नम्रजन की (उपस्तुतिम्) प्राप्त हुई प्रशंसा (उद्यतिम्) उद्यम और (श्लोकम्) सत्य वाणी को तथा (सिवतेव) सूर्य के जल जैसे भूगोलों को वैसे (बाहू, च) अपनी भुजाओं को भी (प्रयंसत्) प्रेरणा देवे, (अस्य) इस (अरक्ष्म:) श्रृष्ट पुरुष की (क्रत्वा) उत्तम बुद्धि के साथ जो (अहन्य:) दिन में प्रसिद्ध (अस्ति) है, वह (मृगः) सिंह के (न:) समान वीर (भीम:) भयङ्कर (तुविष्मान्) बहुत जिसके बलवान् वीर पुरुष विद्यानन हों, ऐसा होता है॥३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालक्कार है। हे मनुष्यो! जिसके सूर्यप्रकाश के तुल्य विद्या, कीर्ति, उद्यम, प्रज्ञा और बल हों, वह सुत्र वाणीवार्शा सबको सत्कार करने योग्य है॥३॥

पुन्स्त्रेमेव विषयमाह॥

फिर्रोसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अस्य श्लोको दिबीयते पृथिव्यामत्यो न यंसद्यक्षभृद्विचेताः।

मृगाणां ने हेतयो अनि चेमा बृहस्पते रहिमायाँ अभि द्यून्॥४॥

अस्य श्लोकः दिवि। ईयते। पृथिव्याम्। अत्यः। न। यंसत्। युक्षुऽभृत्। विऽचैताः। मृगाणाम्। न। हेतर्यः। यन्ति। च। इमाः। बृहुस्पतेः। अहिंऽमायान्। अभि। द्यून्॥४॥

परार्थ:- (अस्य) विदुष: (श्लोक:) वाणी (दिवि) दिव्ये व्यवहारे (ईयते) गच्छति (पृथिव्याम्) भूमी (अस्यः) अश्वः (न) इव (यंसत्) यच्छेत् (यक्षभृत्) यक्षान् पूज्यान् विदुषो बिभर्त्ति सः (विचेताः) अष्टक-२। अध्याय-५। वर्ग-१२-१३

मण्डल-१। अनुवाक-२४। सुक्त-१९०

विविधाश्चेताः प्रज्ञा यस्य। चेत इति प्रज्ञानामसु पठितम्। (निघं०३.९) (मृगाणाम्) (न) इव (हेतर्यः) गतयः (यन्ति) गच्छन्ति (च) (इमाः) (बृहस्पतेः) परमविदुषः (अहिमायान्) अहेर्मेघस्य माया इव माया प्रज्ञा येषां तान् (अभि, द्यून्) अभितो वर्त्तमानान् दिवसान्॥४॥

अन्वयः-हे मनुष्या! अस्याप्तस्य श्लोकः पृथिव्यामत्यो न दिवीयते, तथा यक्षभृद्विचेता विद्वान् प्रगाणां हेत्या न यंसत् याश्चेमा बृहस्पतेर्वाचोऽभिद्यूनहिमायान् यन्ति तान् सर्वान् मनुष्याः सेवन्ताम्॥४॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। यो दिव्यविद्याप्रज्ञाशीलान् विदुषः सेवते स मेघाडम्बरेषुक्तानि दिनानीव वर्त्तमानानविद्यायुक्तान् मनुष्यान् प्रकाशं सवितेव विद्यां दत्वा पवित्रयिद्धं शक्नोरिए॥४॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! (अस्य) इस आप्त विद्वान् की (श्लोकः) कृष्णि और (पृथिव्याम्) पृथिवी पर (अत्यः) घोड़ा (न) जैसे (दिवि) दिव्य व्यवहार में (ईयते) जाता है तथा जो (मक्क्षभृत्) पूज्य विद्वानों को धारण करनेवाला (विचेताः) जिसकी नाना प्रकार की बुद्धि वह विद्वान् (मृगाणाम्) मृगों की (हेतयः) गतियों के (न) समान (यंसत्) उत्तम ज्ञान देवे (च) और जो (इमाः) ये (बृहस्पतेः) परम विद्वान् की वाणी (अभि, द्यून्) सब ओर से वर्त्तमान दिनों में (अहिमाधान्) मेघ की माया के समान जिनकी बुद्धि उन सज्जनों को (यन्ति) प्राप्त होतीं, उन सभी कृ मनुष्ट्रा सेवन करें॥४॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो दिव्य विद्या और प्रज्ञाशील विद्वानों की सेवा करता है, वह मेघ के डंग-डमालयुक्त दिनों के समान वर्त्तमन अविद्यायुक्त मनुष्यों को प्रकाश को सविता जैसे वैसे विद्या देकर पवित्र कर सकता है॥४॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी किया को अगिले मन्त्र में कहा है।।

ये त्वां देवोस्त्रिकं मन्यंमानाः पापा भूद्रमुंपुजीवन्ति पुत्राः।

न दूढ्ये ३ अनु ददासि वामं बृहस्पते चर्यस इत्पियां रुम्॥ ५॥ १२॥

ये। त्वा। देव। उस्तिक्ष्मा मन्यमानाः। पुणाः। भुद्रम्। उपुऽजीवन्ति। पुजाः। न। दुःऽध्ये। अनुं। दुदासि। वामम्। बृहंस्पते। चर्यसे। इत्राम्प्रियोरुम्। ।।

पदार्थ:- (ये) (त्वि) लाम् (देव) विद्वन् (उस्निकम्) य उस्नाभिगोभिश्चरित तम् (मन्यमानाः) विजानन्तः (पापाः) अधर्माचरणाः (भद्रम्) कल्याणरूपिणम् (उपजीवन्ति) (पज्राः) प्राप्ताः। अत्र वर्णव्यत्ययेन द्रस्य जे। (न) (दूढ्ये) यो दुष्टं ध्यायित विचारयित तस्मै। अत्र चतुर्थ्ये सप्तमी। (अनु) (ददासि) (बामम्) प्रशस्यम्। वामिति प्रशस्यानामसु पठितम्। (निघं०३.८) (बृहस्पते) बृहतां विदुषां पालक (स्रयसे) प्राप्नाषि (इत्) एव (पियारुम्) पानेच्छुकम्॥५॥

अन्वयः-हे देव विद्वन्! ये मन्यमानाः पापाः पज्रा उस्निकं भद्रं त्वा त्वामुपजीवन्ति ते त्वया शासनीयाः। हे ब्रहस्पते। सस्त्वं दृढ्ये सुखं नानुददासि वामं पियारुमिच्चयसे स त्वं सर्वानुपदिश॥५॥

१९४२

भावार्थः-ये विद्वांसः स्वसन्निहितानज्ञानिभमानिनः पापाचारानुपदिश्य धार्मिकान् कुर्वन्ति, कल्याणमाप्नुवन्ति॥५॥

पदार्थ:-हे (देव) विद्वान्! (ये) जो (मन्यमानाः) विज्ञानवान् (पापाः) अधर्माचारी (प्राण्) प्राप्त हुए जन (उस्त्रिकम्) गौओं के साथ विचरते उन (भद्रम्) कल्याणरूपी (त्वा) आप के (इप्र, जीवान्त) समीप जीवित हैं, वे आपकी शिक्षा पाने योग्य हैं। हे (बृहस्पते) बड़े विद्वानों की पालना करमेवाले! जो आप (दूढ्ये) दुष्ट-बुरा विचार करनेवाले को (न, अनु, ददािस) अनुक्रम से सुख नहीं देते (बामम्) प्रशंसित (पियारुम्) पान की इच्छा करनेवाले को (इत्) ही (चयसे) प्राप्त होते, बे आप सभी को उपदेश देओ॥५॥

भावार्थ:- जो विद्वान् जन अपने निकटवर्त्ती, अज्ञ, अभिमानी, प्राप्ती कर्नो को उपदेश दे धार्मिक करते हैं, वे कल्याण को प्राप्त होते हैं॥५॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।

सुप्रैतुं: सूयवंसो न पत्थां दुर्नियन्तुः परिप्रीतो प क्रिन्नः। अनुर्वाणों अभि ये चक्षते नोऽपीवृता अप्रोणीवन्तो अस्थुः॥६॥

सुऽप्रेतुं:। सुऽयवंस:। न। पन्थां:। दुःऽनियन्तुः। परिंऽप्रोतेः। न। मित्रः। अनुर्वाणं:। अभि। ये। चक्षंते। नः। अपिंऽवृताः। अपुऽकुर्णुवन्तं:। अस्थुः॥६॥

पदार्थ:-(सुप्रेतु:) सुष्ठु विद्योपेतस्य (सुराष्ट्रस:) शोभनानि यवांसि अन्नानि यस्य तस्य। अत्राऽन्येषामपीत्याद्यचो दीर्घ:। (न) इव (पर्या:) मार्गः (दुर्नियनुः) यो दुर्दुःखेन नियन्ता तस्य (परिप्रीतः) सर्वतः प्रसन्नः (न) इव (पित्रः) सखा (अनर्वाणः) अविद्यमानमधर्मादन्यत्र गमनं येषान्ते (अभि) आभिमुख्ये (ये) (चक्षते) सत्यमुपदिशन्ति (नः) अस्मान् (अपीवृताः) ये निश्चये वर्त्तन्ते (अपोर्णुवन्तः) अविद्यादिदोषैर्यावस्तः (अस्युः) तिष्ठेयुः॥६॥

अन्वयः - येऽनर्वाणां ऽपीतृता नोर्म्मानपोर्ण्वन्तस्सन्तः सुवयसः सुप्रैतुः पन्था न दुर्नियन्तुः परिप्रीतो मित्रो नाभिचक्षते तेऽस्माकमुपदेशका अस्थः ॥ ६॥

भावार्थः अत्रोपमालङ्कारः। ये विद्वांसोऽलंसाधनोपसाधनयुक्ताः, सुपथेनाविद्यायुक्तान् विद्याधर्मे प्रापयन्ति, अभितेन्द्रियस्य जितेन्द्रियत्वप्रदः, सिखविच्छिष्यान् प्रशासित, तेऽत्राध्यापका उपदेशकाश्च भवन्ति॥६॥

पदार्थ:- (ये) जो (अनर्वाण:) धर्म से अन्यत्र अधर्म में अपनी चाल-चलन नहीं रखते (अप्रीवृत्ता:) और समस्त पदार्थों के निश्चय में वर्तमान (न:) हम लोगों को (अपोर्णुवन्त:) अविद्यादि द्विभिं से प ढापते हुए जन (सुयवस:) जिसके सुन्दर अन्न विद्यमान उस (सुप्रैतु:) उत्तम विद्यायुक्त

अष्टक-२। अध्याय-५। वर्ग-१२-१३

मण्डल-१। अनुवाक-२४। सूक्त-१९०

विद्वान् का (पन्था:) मार्ग (न) जैसे वैसे तथा (दुर्नियन्तु:) जो दु:ख से नियम करनेवाला उसके (परिप्रीत:) सब ओर से प्रसन्न (पित्र:) मित्र के (न) समान (अभि, चक्षते) अच्छे प्रकार उपदेश करते हैं, वे हम लोगों के उपदेशक (अस्थ:) ठहराये जावें॥६॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो विद्वान् जन पूर्ण साधन और उपसाधनों से युक्त, उत्तम मार्ग से अविद्यायुक्तों को विद्या और धर्म की प्राप्ति कराते और जिसने इन्द्रिय नहीं जीते उसको जितेन्द्रियता देनेवाले, मित्र के समान शिष्यों को उत्तम शिक्षा देते हैं, वे इस जगल में अध्यापक और उपदेशक होने चाहियें॥६॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।

सं यं स्तुभोऽवनयो न यन्ति समुद्रं न स्रवतो रोध्वक्राः।

स विद्वाँ उभयंञ्चष्टे अन्तर्बृहस्पितस्तर् आपेश्च गृष्ट्रीः।

सम्। यम्। स्तुर्भः। अवनयः। न। यन्ति। सुमुद्रम्। न। स्वर्तः। रोधेऽधेकाः। सः। विद्वान्। उभयेम्। चृष्टे। अन्तः। बृहस्पतिः। तेरः। आपः। चृ। गृधः॥७॥

पदार्थ:- (सम्) सम्यक् (यम्) (स्तुभः) स्तिम्धिकाः (अवनयः) तटस्था भूमयः (न) इव (यन्ति) गच्छन्ति (समुद्रम्) सागरम् (न) इव (स्वतः) गच्छन्त्यः (रोधचक्राः) रोधाश्चक्राणि च यासु ता नद्यः। रोधचक्रा इति नदीनामसु पिठतम्। (निघं०१.१३) (सः) (विद्वान्) (उभयम्) व्यवहारपरमार्थसिद्धिकरं विज्ञानम् (चष्टे) हिषद्भिति (अन्तः) मध्ये (वृहस्पितः) बृहत्या वाचः पालियता (तरः) यस्तरित सः (आपः) (च) (गृष्वः) सर्विषां सुखमिभकाङ्क्षकः॥७॥

अन्वय:-बुद्धिमन्तो विद्यार्थिन्त्र स्तुभीऽवनयो न समुद्रं स्रवतो रोधचक्रा न यमध्यापकं संयन्ति स तरो गृध्रो विद्वान् बृहस्पतिस्तानुभयं चष्टे। अन्तर्बाहुश्चाप इचान्त्र करणबाह्यचेष्टाः शोधयति, स सर्वेषां सुखकरो भवति॥७॥

भावार्थ:-अत्रोपमालद्भारे: यथा सर्वोधारा भूमयः सूर्य्यमभितो गच्छन्ति यथा नद्यः समुद्रं प्रविशन्ति तथा सज्जन् आप्तान् विदुषो गत्वा विद्यां प्राप्य धर्मममनुप्रविश्य बहिरन्तर्व्यवहारान् शोधयेयु:॥७॥

पदार्थ: कुद्धिमान् विद्यार्थीजन (स्तुभः) जलादि को रोकनेवाली (अवनयः) किनारे की भूमियों के (न) समान् (समुद्भा) सागर को (स्रवतः) जाती हुई (रोधचक्राः) भ्रमर मेढ़ा जिनके जल में पड़ते उन नदियों के (न) समान (यम्) जिस अध्यापक को (सम्, यन्ति) अच्छे प्रकार प्राप्त होते हैं (सः) वह (तरः) सर्च विषयों के पार होने (गृधः) और सबके सुख को चाहनेवाला (विद्वान्) विद्वान् (बृहस्पितः) अत्यन्ति बढ़ी हुई वाणी वा वेदवाणी का पालनेवाला जन उसको (उभयम्) दोनों अर्थात् व्यावहारिक और प्रिस्मार्थिक विज्ञान का (चष्टे) उपदेश देता है तथा (अन्तः) भीतर (च) और बाहर के (आपः) जलों के

समान अन्तः करण की और बाहर की चेष्टाओं को शुद्ध करता है, वह सबका सुख करनेवाला हीती है॥७॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे सबका आधार भूमि सूर्य्य के चारों ओर जाती है घे जैसे नदी समुद्र को प्रवेश करती है, वैसे सज्जन श्रेष्ठ विद्वानों और विद्या को प्राप्त हो, धर्म में प्रवेश कर बाहरले और भीतर के व्यवहारों को शुद्ध करें॥७॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

एवा महस्तुंविजातस्तुविष्मान् बृहस्पतिर्वृष्टभो धायि देव:। स नं: स्तुतो वी्रवद्धातु गोमंद् विद्यामेषं वृजनं जी्रदिशुम्श ८॥१३)

एव। महः। तुविऽजातः। तुर्विष्मान्। बृह्स्पतिः। वृष्यः। धाया-देवः। सः। मृः। स्तुतः। वीरऽवेत्। धातु। गोऽमत्। विद्यामं। इषम्। वृजनम्। जीरऽदानुम्॥८॥

पदार्थ:-(एव) निश्चये। अत्र निपातस्य चेति दीर्घः (महः) महान् (तुविजातः) तुवेर्विद्यावृद्धात् प्रसिद्धविद्यः (तुविष्मान्) शरीरात्मबलयुक्तः (बृहस्पितः) बृहतां वेदानामध्यापनोपदेशाभ्यां पालयिता (वृषभः) विद्वच्छिरोमणिः (धायि) ध्रियते (देवः) कानीयतमः (सः) (नः) अस्मभ्यम् (स्तुतः) प्रशंसितः (वीरवत्) बहवो वीरा विद्यन्ते यस्मिन् विज्ञाने तत् (धातु) दधातु (गोमत्) प्रशस्ता गौर्वाग्यस्मिँस्तत् (विद्याम्) (इषम्) विज्ञानम् (वृजनम्) (जीरदाद्भुम्) ॥८॥

अन्वय:-विद्वद्भिर्यो महस्तुविजातस्तुविभान वृष्भो द्वेव: स्तुतो बृहस्पतिर्धायि स एव नो वीरवद्गोमद्विज्ञानं धातु यतो वयमिषं वृजनम् जीरदानुं च विद्याम॥८॥

भावार्थ:-विद्वद्भिस्सकलश्रास्त्रविचारसारेण विद्यार्थिन: शास्त्रसम्पन्ना: कार्य्या यतस्ते शरीरात्मबलं विज्ञानं च प्राप्नुयु:॥८॥

अत्र विदुषां गुणकर्मन्त्रिभववर्णनादेतद्रर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिर्वेदितव्या॥

इति निवासुत्तरं प्राप्ततमं १९० सूक्तं त्रयोदशो १३ वर्गश्च समाप्तः॥

पदार्थ:-विद्वानों से जो (महः) बड़ा (तुविजातः) विद्यावृद्ध जन से प्रसिद्ध विद्यावाला (तुविष्मान्) शरीर् और आत्मा के बल से युक्त (वृषभः) विद्वानों में शिरोमणि (देवः) अति मनोहर (स्तुतः) प्रशंस्म्युक्त (बृहस्पितः) वेदों का अध्यापन पढ़ाने और उपदेश करने से पालनेवाला विद्वान् जन (धायि) ध्रम्ण किया जाता है (सः, एव) वही (नः) हम लोगों के लिये (वीरवत्) बहुत जिसमें वीर विद्यमान हा (गोमत्) प्रशंसित वाणी विद्यमान उस विज्ञान को (धातु) धारण करे, जिससे हम लोग (इष्म) विज्ञान (वृजनम्) बल और (जीरदानुम्) जीवन को (विद्याम) प्राप्त होवें॥८॥

अष्टक-२। अध्याय-५। वर्ग-१२-१३

मण्डल-१। अनुवाक-२४। सूक्त-१९०

भावार्थ:-विद्वानों को चाहिये कि सकल शास्त्रों के विचार के सार से विद्यार्थी जनों के

शास्त्रसम्पन्न करें जिससे वे शारीरिक और आत्मिक बल और विज्ञान को प्राप्त होवें॥८॥

इस सूक्त में विद्वानों के गुण, कर्म और स्वभावों का वर्णन होने से इस सूक्त के पिछले सूक्तार्थ के साथ सङ्गति समझनी चाहिये॥

यह एक सौ नब्बेवाँ १९० सूक्त और तेरहवां १३ वर्ग समाप्त हुआ

कङ्कत इति षोडशर्चस्य एकनवत्युत्तरस्य शततमस्य सूक्तस्य अगस्त्य ऋषि:। अबोषधिसूर्य्या देवता:। १ उष्णिक्। २ भुरिगुष्णिक्। ३,७ स्वराडुष्णिक्। १३ विराडुष्णिक् छन्द:। ऋषभः

स्वर:। ४,९,१४ विराडनुष्टुप्। ५,८,१५ निचृदनुष्टुप्। ६ अनुष्टुप्। १०,११ निचृत्

ब्राह्मचनुष्टुप्। १२ विराड् ब्राह्मचनुष्टुप्। १६ भुरिगनुष्टुप् छन्द:। गान्धार: स्वर:।

अथ विषौषधिविषवैद्यानां च विषयमाह॥

अब एक सौ एक्यानवे सूक्त का आरम्भ है। उसके प्रथम मन्त्र से विषौषधि और विषवैद्यों के विषय को कहते हैं।।

कङ्कतो न कङ्कतोऽथौ सतीनकङ्कतः।

द्वाविति प्लुषी इति न्यर्द्रष्टां अलिप्सत॥ १॥

कङ्कतः। न। कङ्कतः। अथो इति। सुतीनऽकेङ्कतः। द्वौ। इति। प्लुषी। इति। मिर्र)भृदृष्टाः। अलिप्सुत्।। १॥

पदार्थ:- (कङ्कतः) विषवान् (न) इव (कङ्कतः) चृज्ञलः (अश्वे) आनन्तर्ये (सतीनकङ्कतः) सतीनिमव चञ्चलः। सतीनिमत्युदकनामसु पठितम्॥ (निघं०१.१२) (द्वी) (इति) प्रकारे (प्लुषी इति) दाहकौ दुःखप्रदौ (नि) (अदृष्टाः) ये न दृश्यन्ते ते विषधारिपो जिल्लाः) (अलिप्सत) लिम्पन्ति॥१॥

अन्वय:-यो मनुष्यः कङ्कतो न कङ्कतोऽथो सतीनकङ्कतो द्वाषिति यथा प्लुषी इत्यन्येन सह सज्जेरन् तथाऽदृष्टा न्यलिप्सत॥१॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। यथा किंद्विच्चञ्चलो जैनोऽध्यापकोपदेष्टारौ प्राप्य कङ्कते तथाऽदृष्टा विषधारिण: क्षुद्रा जीवा: पुन: पुनर्निवारिता अष्युपरि पुत्रीन्त॥१॥

पदार्थ:-जो मनुष्य (कडूत:) विषवित प्राणी के (न) समान (कडूत:) चञ्चल (अथो) और जो (सतीनकडूत:) जल के समान चञ्चल हैं वे (द्वाविति) दोनों इस प्रकार के जैसे (प्लुषी, इति) जो जलानेवाले दु:खदायी दूसरे के सङ्ग लगें, वैसे (अदृष्टा:) जो नहीं दीखते विषधारी जीव वे (नि, अलिप्सत) निरन्तर चिपटते हैं।

भावार्थ:-इस महिन्न में उपमालक्कार है। जैसे कोई चञ्चल जन अध्यापक और उपदेश को पाकर चञ्चलता देता है, वैसे न देखें हुए छोटे-छोटे विषधारी मत्कुण, डांश आदि क्षुद्र जीव बार-बार निवारण करने पर भी ऊपर गिरते हैं॥ १॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अदृष्टीन् हन्त्यायत्यथी हन्ति परायती।

अर्थे अवघ्नती हुन्त्यथी पिनष्टि पिंषुती॥२॥

अष्टक-२। अध्याय-५। वर्ग-१४-१६ मण्डल-१। अनुवाक-२४। सूक्त-१९१

अदृष्टांन्। हुन्ति। आऽयती। अथो इति। हुन्ति। पुराऽयती। अथो इति। अवऽघ्नती। हुन्ति। अथो इति पिन्ष्ट्रि। पिंषती॥२॥

पदार्थ:- (अदृष्टान्) दृष्टिपथमनागतान् (हन्ति) नाशयति (आयती) समन्तात्प्राप्त्रमणिष्धी (अथो) (हन्ति) दुरी करोति (परायती) परागच्छन्ती (अथो) (अवध्नती) अत्यन्तं दु:ख्रेपन्ती (हन्ति) (अथो) (पिनष्टि) सङ्घर्षति (पिंषती) पेषणं कुर्वन्ती॥२॥

अन्वय:-आयत्योषधिरदृष्टान् हन्ति। अथो परायती हन्ति। अथोऽवघ्नती हन्ति। अथो पिषर्योषधी पिनष्टि। २॥

भावार्थ:-ये आगताननागतानागन्तुकांश्च विषधारिण: पूर्वापरौषधिसनेन निवर्तयन्ति, ते विषधारिणां विषैर्नावगाह्यन्ते॥२॥

पदार्थ:- (आयती) अच्छे प्रकार प्राप्त हुई औषधी (अदृष्टाम्)/अदृष्ट (चिष्ट्र)गारी जीवों को (हन्ति) नष्ट करती (अथो) इसके अनन्तर (परायती) पीछे प्राप्त हुई ओषधी (हन्ति) विषधारियों को दूर करती है (अथो) इसके अनन्तर (अवध्नती) अत्यन्त दु:ख देती हुई ओप्पि (हन्ति) विषधारियों को नष्ट करती (अथो) इसके अनन्तर (पिंघती) पीसी जाती हुई ओषधि (पिन्छि) विषधारियों को पीसती है॥२॥

भावार्थ:-जो आये. न आये वा आनेवाले विषधारियों को अगली-पिछली ओषधियों के देने से निवृत्त कराते हैं, वे विषधारियों के विषों से नहीं पीड़ित होते हैं।।

पुनस्तमेव विष्यमोह।।

फिर उसी विषय के अगले मन्त्र में कहा है।।

शरास: कुशरासो दर्भास: सैर्या उत्तर

मौञ्जा अदृष्टां वैरिणाः सर्वे सोक स्वित्रिप्सत॥३॥

शुरासः। कुर्शरासः। दुर्भार्सः। सुर्याः। उता मौज्ञाः। अदृष्टाः। वैरिणाः। सर्वे। साकम्। नि। अलिप्सत्।। ३।।

पदार्थ:-(शरास:) विष्पुद्रष्टु सुदृशा अन्तिशिछद्रास्तृणविशेषस्थाः (कृशरास:) कृत्सिताश्च ते (दर्भास:) कुशाः (सैय्राः) तुष्ठामादितटेषु भवास्तृणविशेषस्थाः (उत) अपि (मौझा:) मुञ्जानामिमे (अदृष्टाः) (वैरिणाः) वीरिणेषु भूवाः (सर्वे) (साकम्) सह (नि) (अलिप्सत) लिम्पन्ति॥३॥

अन्वय:-र्वेश्वरासः कुशुरासो दर्भासः सैर्या मौञ्जा उत वैरिणा अदृष्टाः सन्ति ते सर्वे साकं न्यलिप्सत॥३॥

भाकार्थः ये त्रिविधतृणेषु क्वचित् स्थानादिलोभेन क्वचिच्च तद्गन्धमाघ्रातुं पृथक् पृथक् क्षुद्रा विषधरा अदृष्टा जीवास्तिष्ठन्ति तेऽवसरं प्राप्य मनुष्यादिप्राणिनो बाधन्ते॥३॥

पद्मार्थ:-जो (शरास:) बांस के तुल्य भीतर छिद्रवाले तृणों में ठहरनेवाले वा जो (कुशरास:) निस्ति इक्ते तुणों में ठहरते वा (दर्भास:) कुशस्थ वा जो (सैर्या:) तालाबों के तटों में प्राय: होनेवाले नुणों में ठेहरते वा (**मौञ्जा:**) मूंज में ठहरते (**उत**) और (**वैरिणा:**) गाड़र में होनेवाले छोटे-छोटे

(अदृष्टा:) जो नहीं देखे गये जीव हैं, वे (सर्वे) समस्त (साकम्) एक साथ (न्यलिप्सत) निरन्तर मिलते हैं॥३॥

भावार्थ:-जो नाना प्रकार के तृणों में कहीं स्थानादि के लोभ से और कहीं उन तृष्में के पृष्टि लेने को अलग-अलग छोटे छोटे विषधारी छिपे हुए जीव रहते हैं, वे अवसर पाकर मनुष्यादि प्राणियों को पीड़ा देते हैं॥३॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

नि गावो गोष्ठे असंदुन् नि मृगासो अविक्षत। नि केतवो जनानां न्यर्थदृष्टां अलिप्सत॥४॥

नि। गार्वः। गोऽस्थे। असद्वन्। नि। मृगार्सः। अविक्षुत्। नि। केतवेः। जर्नानाम्। नि। अदृष्टाः। अलिप्सत्।।४॥

पदार्थ:- (नि) नितराम् (गाव:) धेनवः (गोष्ठे) माबस्तिष्ठस्ति यस्मिंस्तस्मिन् स्थाने (असदन्) सीदन्ति (नि) (मृगासः) श्वापदादयः (अविक्षत) प्रविशान्ति (नि) (केतवः) ज्ञानानि (जनानाम्) मनुष्याणाम् (नि) (अदृष्टाः) दृष्टिपथमनागता विषधरा विष्का वा (अलिप्सत)॥४॥

अन्वय:-यथा गोष्ठे गावो न्यसदन् वने मृगासो न्यिविक्षत् जनामी केतवो न्यविक्षत तथा अदृष्टा न्यलिप्सत॥४॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः यथा नानाप्रकारा जीवा निजनिजसुखसंभोगस्थानं प्रविशन्ति, तथा विषधरा जीवाश्च यत्र-कुत्र प्राप्तस्थानं प्रविशन्ति॥४॥

पदार्थ:-जैसे (गोष्ठे) गोशालूग वा गिह्ये में (गाव:) गौयें (न्यसदन्) स्थित होतीं वा वन में (मृगास:) भेड़िया, हरिण आदि जीव (न्यविक्षत) निरन्तर प्रवेश करते वा (जनानाम्) मनुष्यों के (केतव:) ज्ञान, बुद्धि, स्मृति अपिद (नि) चिवेश कर जातीं अर्थात कार्य्यों में प्रवेश कर जातीं वैसे (अदृष्टा:) जो दृष्टिगोचर नहीं होते वे छिए हुए विषधारी जीव वा विषधारी जन्तुओं के विष (नि, अलिप्सत) प्राणियों को सिल्जु जाते हैं। ४॥

भावार्थ:-इस मन्त्र मिं वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे नाना प्रकार के जीव निज-निज सुख-संभोग के स्थान को प्रवेश करते हैं, वैसे विषधर जीव जहाँ-तहाँ पाये हुए स्थान को प्रवेश करते हैं॥४॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

<u>एते इ</u> त्ये प्रत्यदृश्रन् प्रदोषं तस्कराइव।

अष्टक-२। अध्याय-५। वर्ग-१४-१६

मण्डल-१। अनुवाक-२४। सूक्त-१९१

१९४९

अर्दृष्ट्या विश्वदृष्ट्याः प्रतिबुद्धा अभूतन॥५॥१४॥

पुते। ऊम् इति। त्ये। प्रति। अदृश्चन्। प्रुऽदोषम्। तस्कराःऽइव। अदृष्टाः। विश्वेऽदृष्टाः। प्रतिऽबुद्धाः। अभूतन्॥ ५॥

पदार्थ:- (एते) विषधरा विषा वा (उ) वितर्के (त्ये) (प्रति) (अदृश्रन्) दृश्येभे (प्रदोषम्) रात्र्यारम्भे (तस्कराइव) यथा चोराः (अदृष्टाः) ये न दृश्यन्ते (विश्वदृष्टाः) विश्वैः सर्वेर्दृष्टाः (प्रतिबुद्धाः) प्रतीतेन ज्ञानेन युक्ताः (अभूतन) भवन्ति॥५॥

अन्वय:-त्य एते उ प्रदोषं तस्कराइव प्रत्यदृश्रन्। हे अदृष्टा विश्वदृष्टा यूयं प्रतिबुद्ध अभूतनाप्रे।

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। यथा चोरेषु दस्यवो दृष्टा इतर अदृष्ट्याः सन्ति, जथा जना विविधान् प्रसिद्धाऽप्रसिद्धान् विषधारिणो विषान् वा जानन्तु॥५॥

पदार्थ:- (त्ये) वे (एते) (3) ही पूर्वोक्त विषधर वा विष (प्रेक्षेम्) रात्रि के आरम्भ में (तस्कराइव) जैसे चोर वैसे (प्रत्यदृश्रन्) प्रतीति से दिखाई देते हैं। हे (अदृष्टा:) दृष्टिपथ न आनेवालो वा (विश्वदृष्टा:) सबके देखे हुए विषधारियो! तुम (प्रतिबुद्धा:) प्रतीत ज्ञान से अर्थात् ठीक समय से युक्त (अभूतन) होओ॥५॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे नारों में डाकू देखे और न देखे होते हैं, वैसे मनुष्य नाना प्रकार के प्रसिद्ध-अप्रसिद्ध विषधारियों वा क्रियों को जोमें।।५॥

पुनस्त्रमेव विषयप्राह॥

फिर उसी किया को अगुले मन्त्र में कहा है॥

द्यौर्वः पिता पृथिवी माता सोमी भारादितिः स्वसा।

अर्दृष्टा विश्वदृष्टास्तिष्ठंतुल्यता स कंम्॥६॥

द्यौः। वः। पिता। पृथिकी माता। सोमेः भार्ता। अदितिः। स्वसा। अदृष्टाः। विश्वेऽदृष्टाः। तिष्ठेत। इलयंत। सु। कुम्।। ६।।

पदार्थ:- (द्यौ: सूर्य इव (व:) युष्माकम् (पिता) (पृथिवी) अवनिरिव (माता) (सोम:) चन्द्र इव (भ्राता) (अदिति:) अदिविरदीना देवमाता॥ (निरु०४.२२) (स्वसा) भगिनि (अदृष्टा:) ये न दृश्यन्ते ते (विश्वदृष्टा:) विश्वस्सवैर्दृष्टा ये ते (तिष्ठत) स्थिरा भवत (इलयत) गच्छत। अत्राऽन्येषामपीति दीर्घ:। (स्) (कस्) संखम्॥६॥

अन्वयः - हे अदृष्टा विश्वदृष्टा! येषां द्योर्वः पिता पृथिवी माता सोमो भ्राताऽदितिः स्वसाऽस्ति, ते यूयं सु कं तिष्ठतं स्वस्थानमिलयत च॥६॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। ये विषधारिणो जीवास्ते संशमनाद्युपायैर्निवारणीयो औषध्यादिभिर्विषास्संवारणीया:॥६॥

पदार्थ:-हे (अदृष्टा:) दृष्टिगोचर न होनेवाले और (विश्वदृष्टा:) सबके देखे हुए विष्णिरियों) जिनका (द्यौ:) सूर्य के समान सन्ताप करनेवाला (व:) तुम्हारा (पिता) पिता (पृथिवी) पृथिवी के समान (माता) माता (सोम:) चन्द्रमा के समान (भ्राता) भ्राता और (अदिति:) विद्वानों की अदीम माता के समान (स्वसा) बहिन है, वे तुम (सु, कम्) उत्तम सुख जैसे हो (तिष्ठत) ठहरो और अपने स्थान को (इलयत) जावो॥६॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो विषधारी स्पी हैं, वे शान्त्यादि उपायों और ओषध्यादिकों से विषनिवारण करने चाहियें॥६॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

ये अंस्या ये अङ्गर्चाः सूचीका ये प्रकङ्कताः।

अर्दृष्टाः किं चनेह वः सर्वे साकं नि जस्यता<mark></mark>

ये। अंस्याः। ये। अङ्गर्घाः। सूचीकाः। ये। प्रऽकङ्कताः। अदृष्टाः किम्। चना इह। वः। सर्वे। साकम्। नि। जुस्यतु॥७॥

पदार्थ:-(ये) (अंस्या:) अंसेषु स्कन्धेषु भवा: (ये) (अङ्गचा:) अङ्गेषु भवा: (सूचीका:) सूचीव व्यथका वृश्चिकादयः (ये) (प्रकङ्कताः) कृष्ट्रभीडाप्रद्राश्चञ्चलाः (अदृष्टाः) अदृश्यमानाः (किम्) (चन) किमिप (इह) अस्मिन् संसारे (वः) मुष्माकम् (सर्वे) (साकम्) सह (नि) (जस्यत) मुञ्जन्तु मोचयन्तु वा॥७॥

अन्वय:-हे अदृष्टा! इह ये वींऽस्या येऽज्ञ्र्याः सूचीका विषधरा ये प्रकङ्कताः सन्ति यत् किञ्चन विषादिकं चैते सर्वे यूयं साकं निजस्यत॥७॥

भावार्थ:-मनुष्ये प्रयत्नेन प्ररिशतमदु:खप्रदानि विषाणि दूरीकरणीयानि येनेह सततं पुरुषार्थी वर्द्धेत॥७॥

पदार्थ: हे (अदृष्टाः) दृष्टिगोचर न हुए विषधारी जीवो! (इह) इस संसार में (ये) जो (व:) तुम्हारे बीच (अंग्याः) स्कन्धों में प्रसिद्ध होनेवाले (ये) जो (अङ्गचाः) अङ्गों में प्रसिद्ध होनेवाले और (मूचीकाः) पूची के समान व्यथा देनेवाले बीछी आदि विषधारी जीव तथा (ये) जो (प्रकङ्कताः) अति पीड़ा देमें शाले चञ्चल हैं और जो (किञ्चन) कुछ विष आदि हैं, ये (सर्वे) सब तुम (साकम्) एक साथ अर्थात विषध समेत (नि, जस्यत) हम लोगों को छोड़ देओ वा छुड़ा देओ॥७॥

अष्टक-२। अध्याय-५। वर्ग-१४-१६

मण्डल-१। अनुवाक-२४। सूक्त-१९१

१९५१

भावार्थ:-मनुष्यों को उत्तम यत्न के साथ शरीर और आत्मा को दु:ख देनेवाले विष दूर करने चाहियें, जिससे यहाँ निरन्तर पुरुषार्थ बढ़े॥७॥

अथ सूर्यदृष्टान्तेनोक्तविषयमाह॥

अब सूर्य के दृष्टान्त से उक्त विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

उत्पुरस्तात्सूर्य'एति विश्वदृष्टो अदृष्ट्टहा।

अदृष्टान्त्सर्वाञ्चम्भयन्त्सर्वाश्च यातुधान्यः॥८॥

उत्। पुरस्तात्। सूर्यः। एति। विश्वऽदृष्टः। अदृष्टुऽहा। अदृष्टान्। सर्वान्। जम्भक्ने। सर्वाः। च। यातुऽधान्यः॥८॥

पदार्थ:- (उत्) (पुरस्तात्) (सूर्य:) (एति) (विश्वदृष्ट:) विश्वन दृष्ट: (अदृष्टहा) योऽदृष्टमन्धकारं हिन्त सः (अदृष्टान्) (सर्वान्) पदार्थान् (जम्भयन्) सावयवान् दर्शयन् (सर्वाः) (च) (यातुधान्यः) यातूनि दुराचरणशीलानि दधित ताः॥८॥

अन्वयः-हे वैद्या! युष्माभिर्यथा सर्वानदृष्टान् जम्भयन्निवर्त्तयदृष्ट्रहा विश्वदृष्टः सूर्यः पुरस्तादुदेति तथा सर्वाश्च यातुधान्यो निवारणीयाः॥८॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कार:। प्रथा सूर्यस्तमो निवर्त्य प्रकाशं जनयति तथा वैद्यैर्विषहरणौषधिभि: सर्वाणि विषाणि निर्मूलानि क्रियाणि॥८॥

पदार्थ:-हे वैद्यजनो! तुमको जैसे (सर्वान्) सब पदार्थ (अदृष्टान्) जो कि न देखे गये उनको (जम्भयन्) अङ्ग-अङ्ग के साथ दिखलाता हुआ (अदृष्टहा) जो नहीं देखा गया अन्धकार उसको विनाशनेवाला (विश्वदृष्ट:) संसार में देखा (सूर्य:) सूर्यमण्डल (पुरस्तात्) पूर्व दिशा में (उदेति) उदय को प्राप्त होता है, वैसे (सर्वा:) (च) (यातुधान्य:) सभी दुराचारियों को धारण करनेवाली दुर्व्यथा निवारण करनी चाहिये॥८॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोष्टमालङ्कार है। जैसे सूर्य अन्धकार को निवारण करने प्रकाश को उत्पन्न करता है, वैसे वैद्यज्ञों को विषहरण ओषिधयों से विषों को निर्मूल करना विनाशना चाहिये॥८॥

पुनः सूर्यदृष्टान्तेनैवोक्तविषयमाह॥

फिर सूर्य के दृष्टान्त से ही उक्त विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

उद्देषप्तद्रसौ सूर्यः पुरु विश्वानि जूर्वन्।

अपुदित्यः पर्वतेभ्यो विश्वदृष्टो अदृष्टुहा॥९॥

जन्। अपुपत्। असौ। सूर्यः। पुरु। विश्वानि। जूर्वन्। आदित्यः। पर्वतेभ्यः। विश्वऽदृष्टः। अदृष्टुऽहा॥९॥

पदार्थ:- (उत्) (अपप्तत्) (असौ) (सूर्यः) सिवता (पुरु) बहु (विश्वानि) सर्वाणि (जूर्वैन्) विनाशयन् (आदित्यः) (पर्वतेभ्यः) मेघेभ्यः शैलेभ्यो वा (विश्वदृष्टः) सर्वैर्दृष्टः (अदृष्टहा) यो गुप्तान् विषान् हन्ति सः॥९॥

अन्वयः – हे विद्वन् ! यथाऽसौ सूर्यो विश्वानि पुरु जूर्वन्नुदपप्तद् यथादित्यः पर्वतेभ्य उदपप्तत् तथा दृष्टहा विश्वनृष्टो भिषग्विषनिवारणे प्रयतेत॥९॥

भावार्थ:-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा सविता स्वप्रकाशेन सर्वान् पदार्थान् प्राप्नोति तथा विषसंपृक्तवायवादिपदार्थान् विषहरणशीला वैद्या हरन्ति प्राणिनः सुखयन्ति च

पदार्थ: - हे विद्वन्! जैसे (असौ) यह (सूर्य:) सूर्यमण्डल (विश्वानि) समस्त अन्धकारजन्य दु:खों को (पुरु) बहुत (जूर्वन्) विनाश करता हुआ (उत्, अपप्तत्) उद्भ्य होता है।और जैसे (आदित्य:) आदित्य सूर्य (पर्वतेभ्य:) पर्वत वा मेघों से उदय को प्राप्त होता है, बैसे (अदृष्टहा) गुप्त विषों को विनाश करनेवाला (विश्वदृष्ट:) सभी ने देखा हुआ विष हरनेवाला बैद्य विष को निवृत्त करने का प्रयत्न करे॥९॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है जिसे स्विता अपने प्रकाश से सब पदार्थों को प्राप्त होता है, वैसे विषहरणशील वैद्यजन विषसंयुक्त पवन आदि पदार्थों को हरते और प्राणियों को सुखी करते हैं॥९॥

पुन: सूर्यमण्डलविषहरणविषयमाह॥

फिर सूर्य के प्रसङ्ग से विषहरण विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

सूर्ये विषमा संजामि दृति सुरवित् गृही सो चिन्नु न मराति नो वर्य मरामारे अस्य योजनं हरिष्ठा मधु त्वा मधुला चंकारा। १०॥ १५॥

सूर्ये। विषम्। आ। सुर्जाम्। दूर्तिम्। सुर्गा वतः। गृहे। सः। चित्। नु। न। मुराति। नो इति। वयम्। मुराम्। आरे। अस्य। योजनम्। हुर्गिस्याः। मधुभन्वा। मुधुला। चुकारु॥ १०॥

पदार्थ:- (सूर्ये) स्वित्रि (विषम्) (आ) (सजामि) संयुनज्मि (दृतिम्) चर्ममयसुरापात्रमिव (सुरावत:) सवं कुर्वत: (गृहे) (स:) अत्र वाच्छन्दसीति सुलोपो नाप्राप्तमप्युत्वम्। (चित्) अपि (नु) (न) (मराति) प्रियते (नो) (वयम्) (मराम) प्रियेमहि (आरे) दूरे (अस्य) (योजनम्) (हरिष्ठाः) यो हरौ विषहरणे तिष्ठिति सः (मधु) (त्वा) त्वाम् (मधुला) मधुविद्या मधु लात्याददाति सा (चकार) करोति।

अन्वयः-अहं सुरावतो गृहे दृतिमिव सूर्ये विषमासजामि सो चिन्नु न मराति। नो वयं मराम-अस्य योजनमारे भवति। हे बिषधारिन्! हरिष्ठास्त्वा त्वां मधु चकार। एषा मधुलास्य विषहरणा मधुविद्यास्ति॥१०॥ अष्टक-२। अध्याय-५। वर्ग-१४-१६

मण्डल-१। अनुवाक-२४। सूक्त-१९१

१९५३

भावार्थ:-यत्सूर्यप्रकाशस्य रोगनिवारकस्य संयोगेन विषहरा महौषधिभिर्विषं निवारयन्ति मधुरत्वे च संपादयन्ति तदेतत्सूर्यविध्वंसकरं न भवति ते च दीर्घायुषो भवन्ति॥१०॥

पदार्थ:-मैं (मुरावत:) सुरा खींचनेवाले शूण्डिया कलार के (गृहे) घर में (दृतिम् कि सुरापात्र जैसे हो वैसे (सूर्ये) सूर्यमण्डल में (विषम्) विष का (आ, सजामि) आरोपण करता हूँ (स:, चित्, नु) वह भी (न, मराति) नहीं मारा जाय और (नो) न (वयम्) हम लोग (मराम) मारे जावें (अस्य) इस विष का (योजनम्) योग (आरे) दूर होता है। हे विषधारी! (हरिष्ठा:) जो हरण में अर्थात् विषहरण में स्थिर है, विषहरण विद्या जानता है, वह (त्वा) तुझे (मधु) मधुरता को प्राप्त (चकार) करता है, यह (मधुला) इसकी मधुरता को ग्रहण करनेवाली विषहरण मधुविद्या है। है।

भावार्थ:-जो रोगनिवारक सूर्य के प्रकाश के संयोग से विषहरी वैद्यान बार्ड़ी बड़ी ओषधियों से विष को दूर करते हैं और मधुरता को सिद्ध करते हैं, सो यह सूर्य को विध्वंस करनेवाला काम नहीं होता और वे विष हरनेवाले भी दीर्घायु होते हैं॥१०॥

अथ विषहारकपक्षिनिमित्तं विषहरणीविषयपाहर्भ

अब विष हरनेवाले पक्षी के निमित्त को ले विष क्रूप्त के विषय को कहते हैं॥

इयत्तिका शंकुन्तिका सका जंघास ते विष्रम्।

सो चिन्नु न मेराति नो वयं मेरामारे अस्य योजेशं हिर्ष्टिश मधु त्वा मधुला चेकार॥११॥

इयुत्तिका। शुकुत्तिका। सुका। जुधास। हि। विषम्। सी इति। चित्। नु। न। मुराति। नो इति। वयम्। मुराम्। आरे। अस्य। योजनम्। हुरिऽस्थाः। मधु त्वार्। सुधुला। चुकार्॥११॥

पदार्थ:- (इयत्तिका) इयति प्रदेशे भवा बाला (शकुन्तिका) कपिञ्जली (सका) सा (जघास) अति (ते) तव (विषम्) व्याप्नोत्रङ्गानि यत्तत् (सो) सा। अत्राज्व्यत्ययेन आकारस्थाने ओकारादेश:। (चित्) अपि (नु) (न) (मराति) (नो) (चयम्) (मराम) (आरे) (अस्य) (योजनम्) (हरिष्ठा:) (मधु मधुरमौषधम् (त्वा) त्वाम् (मधुन्ता) माधुर्यप्रदा मधुविद्या (चकार) करोति॥११॥

अन्वय:-हे विषभ्यभिन्नज्ञन्। या इयत्तिका शकुन्तिका सका ते विषं जघास सो चिन्नु न मराति वयं नो मरामास्य योजनमारे भवति। हे विषधारिन्। इरिष्ट्रास्त्वा मधु चकारैषास्या मधुलास्ति॥११॥

भावार्थः / भनुष्या ये विषहराः पक्षिणः सन्ति तान् संरक्ष्य तैर्विषं हारयेयुः॥११॥

पदार्थ: है जिस के भय से डरते हुए जन! जो (इयित्तका) इतने विशेष देश में हुई (शकुन्तिका) किपिञ्जली प्रक्षिणी है (सका) वह (ते) तेरे (विषम्) विष को (जधास) खा लेती है (सो, चित्, नु) वह भी शीष्र (न) नहीं (मराति) मरे और (वयम्) हम लोग (नो) न (मराम) मारे जायें और (अस्य) इस उक्त्र पश्चिणों के संयोग से विष का (योजनम्) योग (आरे) दूर होता है। हे विषधारी! (हिरिष्ठा:)

विषहरण में स्थिर विष हरनेवाले वैद्य! (त्वा) तुझे (मधु) मधुरता को (चकार) प्राप्त करता है यही इसकी (मधुला) मधुरता ग्रहण कराने और विष हरनेवाली विद्या है॥११॥

भावार्थ:-मनुष्य जो विष हरनेवाली पक्षी हैं, उन्हें पालन कर उनसे विष हराया करें। (९१)।

अथान्यजीवेभ्यो विषहरणविषयमाह॥

अब और जीवों से विष हरने के विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

त्रिः सप्त विष्पुलिङ्गुका विषस्य पुष्यंमक्षन्। ताश्चिन्न न मेरिन्त नो वयं मेरामारे अस्य योजनं हिर्ष्टुष्ठा मधुं त्वा मधुला चंकार॥१२॥

त्रिः। सप्ता विष्पुलिङ्गुकाः। विषस्ये। पुष्येम्। अक्षुन्। ताः। चित्। न्र्रीन्। मुस्जिः। नो इति। वयम्। मुगुम्। आरो। अस्य। योजनम्। हृरिऽस्थाः। मधुं। त्वा। मुधुला। चुकारु॥ १२॥

पदार्थ:- (त्रि:) त्रिवारम् (सप्त) (विष्पुलिङ्गकाः) हस्वाः पक्षिणः (विषस्य) (पुष्यम्) पोषितुं योग्यम् (अक्षन्) अदन्ति (ताः) (चित्) इव (नु) सद्यः (नि) (परिन्त) (नो) (वयम्) (मराम) (आरे) (अस्य) (योजनम्) (हरिष्ठाः) (मधु) (त्वा) (मधुला) (चकार्णा) । ।

अन्वय:-यास्त्रिः सप्त विष्पुलिङ्गका विषस्य पुष्पमक्षम्। त्राश्चित्रु न मरन्ति वयं नो मराम। यो हरिष्ठा अस्य योजनमारे करोति स हे विषधर! त्वा त्वां मधु चकार क्रोति सेषास्य मधुला विद्यास्ति॥१२॥

भावार्थ: –यथा जलौका विषहर्यः सन्ति तथेकविंशतिर्हस्वाः पक्षिण्यो विषभक्षिकाः सन्ति तैरोषधैश्च ये विषरोगान्नाशयन्ति ते चिरं जीर्वन्तिस् १२॥

पदार्थ:-जो (त्रि:, सप्त, ब्रिप्शुलिक्स्तकाः) इक्कीस प्रकार की छोटी-छोटी चिड़ियाँ (विषस्य) विष के (पुष्यम्) पृष्ट होने योग्य पुष्प को (अक्षन्) खाती हैं (ता:, चित्, नु) वे भी (न) न (मरित्त) मरती हैं और (वयम्) हम लोग (नो) न (मरित्र) मरें (हरिष्ठा:) विष हरनेवाला वैद्यवर (अस्य) इस विष का (योजनम्) योग (आरे) दूर करता है, वह है विषधारी! (त्वा) तुझे (मधु) मधुरता को (चकार) प्राप्त करता है, यही इसकी (मधुला) बिष्कुहरण मधु ग्रहण करनेवाली विद्या है॥१२॥

भावार्थ:-जैसे जोंक विश्व हरनेवाली हैं, वैसे इक्कीस छोटी-छोटी पक्षिणी पङ्खांवाली चिड़ियां विष खानेवाली हैं। उसमें और ओषधियों से जो विष सम्बन्धी रोगों का नाश करते हैं, वे चिरजीवी होते हैं॥१२॥

पुनर्विषहरणविषयमाह।।

फिर विषहरण विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

<u>न्वो</u>नां नंवतीनां विषस्य रोपुंषीणाम्।

अष्टक-२। अध्याय-५। वर्ग-१४-१६

मण्डल-१। अनुवाक-२४। सूक्त-१९१

सर्वासामग्रभुं नामारे अस्य योजनं हिर्ष्टा मधुं त्वा मधुला चंकार॥१३॥

नवानाम्। नवतीनाम्। विषस्ये। रोपुंषीणाम्। सर्वासाम्। अग्रभम्। नामे। आरे। अस्य। योजेनम्। हृस्डिस्थाः। पर्धु। त्वा। मुधुला। चकारु॥ १३॥

पदार्थ:- (नवानाम्) (नवतीनाम्) (विषस्य) (रोपुषीणाम्) विमोहयन्तीनाम् (सर्वासाम्) (अग्रभम्) गृह्णीयाम् (नाम) संज्ञाम् (आरे) समीपे (अस्य) नाम्नः (योजनम्) (हरिष्ठाः) (मधुला) (चकार)॥१३॥

अन्वय:-हे विद्वन्! यथाऽहं विषस्य सर्वासां रोपुषीणां नवानां नवतीनां नामाग्रभमस्य योजनमारे करोति, तथा हे विषधारिन्! हरिष्ठास्त्वा मधु चकार सैवास्य मधुलास्ति॥१३॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। हे मनुष्या! वयं प्यत्त्रेत्रेकोन्स्रत्युकारं विषमस्ति तस्य नामगुणकर्मस्वभावान् विदित्वा तत्प्रतिषेधिका ओषधीर्विज्ञाय सेवित्वा विषरोगाजी दूरीकुर्याम॥१३॥

पदार्थ:-हे विद्वान्! जैसे मैं (विषस्य) विष की (प्रविसिष्) सब (रोपुषीणाम्) विमोहन करनेवाली (नवानाम्) नव (नवतीनाम्) नब्बे अर्थात् निन्यानवे विषसम्बन्धी पीड़ा की तरङ्गों का (नाम) नाम (अग्रभम्) लेऊं और (अस्य) इस विष का (योजन्म्) योग (आरे) दूर करता हूँ, वैसे हे विषधारिन्! (हरिष्ठाः) विष हरने में स्थिर वैद्य (त्वा) तुझे (पद्य) मधुरता को (चकार) प्राप्त करता है, वही इसकी (मधुला) मधुरता को ग्रहण करनेवाली विषहरण विद्या है॥१३॥

भावार्थ:-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमृलिङ्कार है। है मनुष्यो! हम लोग जो यहाँ निन्यानवे प्रकार का विष है, उसके नाम, गुण, कर्म और स्वभावों को ज्ञानकर उस विष का प्रतिषेध करनेवाली ओषधियों को जान और उनका सेवन कर विषसम्बन्धों गिगों को दूर करें॥१३॥

पुनर्विषहरणं मयूरिणी प्रसङ्गेनाह॥

फिर विषहरण को सयूरिणियों के प्रसङ्ग से कहते हैं॥

त्रिः सुप्त मयूर्यः सुप्ते स्वसारो अशुर्वः।

तास्ते विषं वि जिम्रिर उद्धकं कुम्भिनीरिव॥ १४॥

त्रिः। सुप्ता मुयूर्यः सुप्ता स्वसारः। अग्रुवंः। ताः। ते। विषम्। वि। जु<u>धिरे। उद</u>कम्। कुम्भिनीःऽइव॥१४म

पदार्थः - (क्रि.) (सप्त) एकविंशतिधा (मयूर्यः) मयूराणां स्त्रियः (सप्त) (स्वसारः) भिगन्य इव सर्पादिनाश्चेन सुख्येदाः (अयुवः) अग्रगामिन्यो नद्यः। अयुव इति नदीनामसु पठितम्। (निघं०१.१३) (ताः) (ते) तुभ्यम् (विषम्) प्राणहरम् (वि) (जिभ्रिरे) हरतु (उदकम्) जलम् (कुम्भिनीरिव) यथा जल्लाधिकारिण्यः॥१४॥

अन्वय:-हे मनुष्या! या: सप्त स्वसारोऽग्रुवो नद्य इव त्रि: सप्त मयूर्य: सन्ति ता उदकं कुम्भिनीरिव ते विषे विजभ्रिरे॥१४॥

भावार्थ:-अत्रोपमालङ्कार:। मनुष्यैर्या एकविंशतिर्मयूरव्यक्तय: सन्ति ता न हन्तव्याः, किन्तु सर्व वर्द्धनीया या नद्य: स्थिरजला: स्युस्ता रोगहेतुत्वात्र सेवनीया:। यज्जलं चलित सूर्यिकरणान् वार्युं च स्पृशित तदुत्तमं रोगहरं भवति॥१४॥

पदार्थ:-हे मनुष्यो! जो (सप्त) सात (स्वसार:) बहनियों के समान तथा (अग्रुव:) आगे जानेवाली निदयों के समान (त्रि:, सप्त) इक्कीस (मयूर्य:) मोरिनी हैं (तार:) के (उदकम्) जल को (कुम्भिनीरिव) जल का जिनके अधिकार है, वे घट ले जानेवाली कहारियों के समान (ते) तेरे (विषम्) विष को (वि, जिभ्रेरे) विशेषता से हरें॥१४॥

भावार्थ: -इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्यों को जो इक्कीस प्रकार की मयूर की व्यक्ति हैं, वे न मारनी चाहियें, किन्तु सदैव उनकी वृद्धि करने योग्य है। जो नहीं स्थिर जलवाली हो वे रोग के कारण होने से न सेवनी चाहिये। जो जल चलता है, सूर्यिकरण और कार्यु को कूता है, वह रोग दूर करनेवाला उत्तम होता है।।१४।।

पुनस्तमेव विषयमाह।

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

इयत्तकः कुषुम्भकस्तकं भिनुक्चश्रम्मा ततो विषं प्र वावृते पराचीरनु स्वंवतः॥ १५००

इय्त्तकः। कुषुम्भकः। तकम्। भिनुष्। अश्मना। ततः। विषम्। प्र। ववृते। पर्राचीः। अनु। सुम्ऽवर्तः॥१५॥

पदार्थ:- (इयत्तकः) कृष्मितस्सः (कृषुम्भकः) अल्पः कृषुम्भो नकुलः। अत्रोभयत्र कन् प्रत्ययः। (तकम्) तम्। अत्राऽकच् प्रत्ययः। (भिनद्गि) पृथक् करोमि (अश्मना) विषहरेण पाषाणेन (ततः) तस्मात् (विषम्) (प्र) (वावृते प्रकर्तते (पराचीः) याः परागञ्चन्ति ताः (अनु) अनुलक्ष्य (संवतः) विभागवत्यः॥१५॥

अन्वय:-यू इयत्तकः कुषुम्भको विषयुक्तोऽस्ति तकमश्मनाऽहं भिनद्मि ततो विषं तत्परित्यज्य संवतः पराचीरनुलक्ष्य प्रवावते। १५॥

भाषार्थः से पुरुषा विषहरै रत्नैर्विषं निवारयन्ति ते विषजरोगान् निहत्य बलिष्ठा भूत्वा शत्रुभूतान् रोगान् द्विजयन्ते॥१५१॥

पदार्थ:-जो (इयत्तक:) मैला, कुचैला, निन्द्य (कुषुम्भक:) छोटा सा नकुल विषयुक्त है (तकम्) इस-दुष्ट को (अश्मना) विष हरनेवाले पत्थर से मैं (भिनद्मि) अलग करता हूँ (तत:) इस कारण (विषम्) अष्टक-२। अध्याय-५। वर्ग-१४-१६

मण्डल-१। अनुवाक-२४। सूक्त-१९१

१९५७

उस विष को छोड़ (संवत:) विभागवाली (पराची:) जो परे दूर प्राप्त होतीं उन दिशाओं को (अनु) पीछा लिख (प्र, वावृते) प्रवृत्त होता है, उनसे भी निकल जाता है॥१५॥

भावार्थ:-जो पुरुष विष हरनेवाले रत्नों से विष को निवृत्त करते हैं, वे विष से उत्पन्न हुए रागें को मार बली होकर शत्रुभूत रोगों को जीतते हैं॥१५॥

अथ वृश्चिकादिविषहरणविषयमाह॥

अब वीछी आदि के विष हरने के विषय को अगले मन्त्र में कहा हैं।।

कुषुम्भकस्तद्ववीद् गिरेः प्रवर्तमानुकः।

वृश्चिकस्यार्सं विषम्रसं वृश्चिक ते विषम्॥ १६॥ १६॥ २४॥(१॥

कुषुम्भकः। तत्। अब्रवीत्। गिरेः। प्रऽवर्तमानकः। वृश्चिकस्य। भूर्यम्। विषम्। अर्सम्। वृश्चिकः। ते। विषम्॥ १६॥

पदार्थ:- (कुषुम्भकः) अल्पः कुषुम्भो नकुलः (तेत्) (अव्वीत्) ब्रूते (गिरेः) शैलात् (प्रवर्त्तमानकः) प्रकृष्टतया वर्त्तमानः (वृश्चिकस्य) (अस्प्रम्) अविद्यमानरसम् (विषम्) (अरसम्) (वृश्चिक) यो वृश्चति छिनत्त्यङ्गानि तस्य (ते) तस्य (विषम्)। (६॥)

अन्वय:-गिरेः प्रवर्तमानकः कुषुम्भको वृश्चिकस्य विषम्रसं यदेववीत्तत्ततो हे वृश्चिक! तेऽरसं विषमस्ति॥१६॥ भावार्थ:-मनुष्या वृश्चिकादिविषनिवारकं पर्वत्तीयनकुलसंरक्षणं कुर्युर्यतो विषरोगनिवारणक्षमा भवेयुरिति॥१६॥

अत्र विषहरौषधजीवविषवैद्यानां गणवर्णनादेनदर्थस्य पूर्वसूक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेद्यम्॥ इति एकनवत्युत्तरं शततमं १९१ सूर्वतं षोडशो १६ वर्गश्चतुविशोऽनुवाकः प्रथमं मण्डलञ्च समाप्तम्॥

पदार्थ:- (गिरे:) पर्वत से (प्रवर्तमानकः) प्रवृत्त हुआ (कुषुम्भकः) छोटा नेउला (वृश्चिकस्य) वीछीं के (विषम्) विष को (अस्सम्) नीरस जो (अब्रवीत्) कहता अर्थात् चेष्टा से दूसरों को जताता है, (तत्) इस कारण हे (वृश्चिक) अङ्गों को छदन करनेवाले प्राणी! (ते) तेरे (अरसम्) (विषम्) विष है॥१६॥

भावार्थ:-मनुष्य विक्री आदि छोटे-छोटे जीवों के विष हरनेवाले पर्वतीय निउले का संरक्षण करे, जिससे विष्यारें को निवारण करने में समर्थ होवें॥१६॥

इस स्वत में विष हरनेवाली ओषधी, विष हरनेवाले जीव और विषहारी वैद्यों के गुण का वर्णन होने से इस स्वत के अर्थ की पिछले सूक्तार्थ के साथ सङ्गति है, यह समझना चाहिये॥

यह एक सौ एक्यानवां १९१ सूक्त और सोलहवां १६ वर्ग चौबीसवां २४ अनुवाक और प्रथम मण्डल समाप्त हुआ॥

्रइति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्याणां परमविदुषां विरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां शिष्येण

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना विरचिते संस्कृतार्यभाषाभ्यां समन्विते सुप्रमाणयुक्ते सुभाषाविभूषिते ऋग्वेदभष्यि प्रथमं मण्डलं समाप्तम्॥